ताओ उपनिषद्

भगवान श्री रजनीश

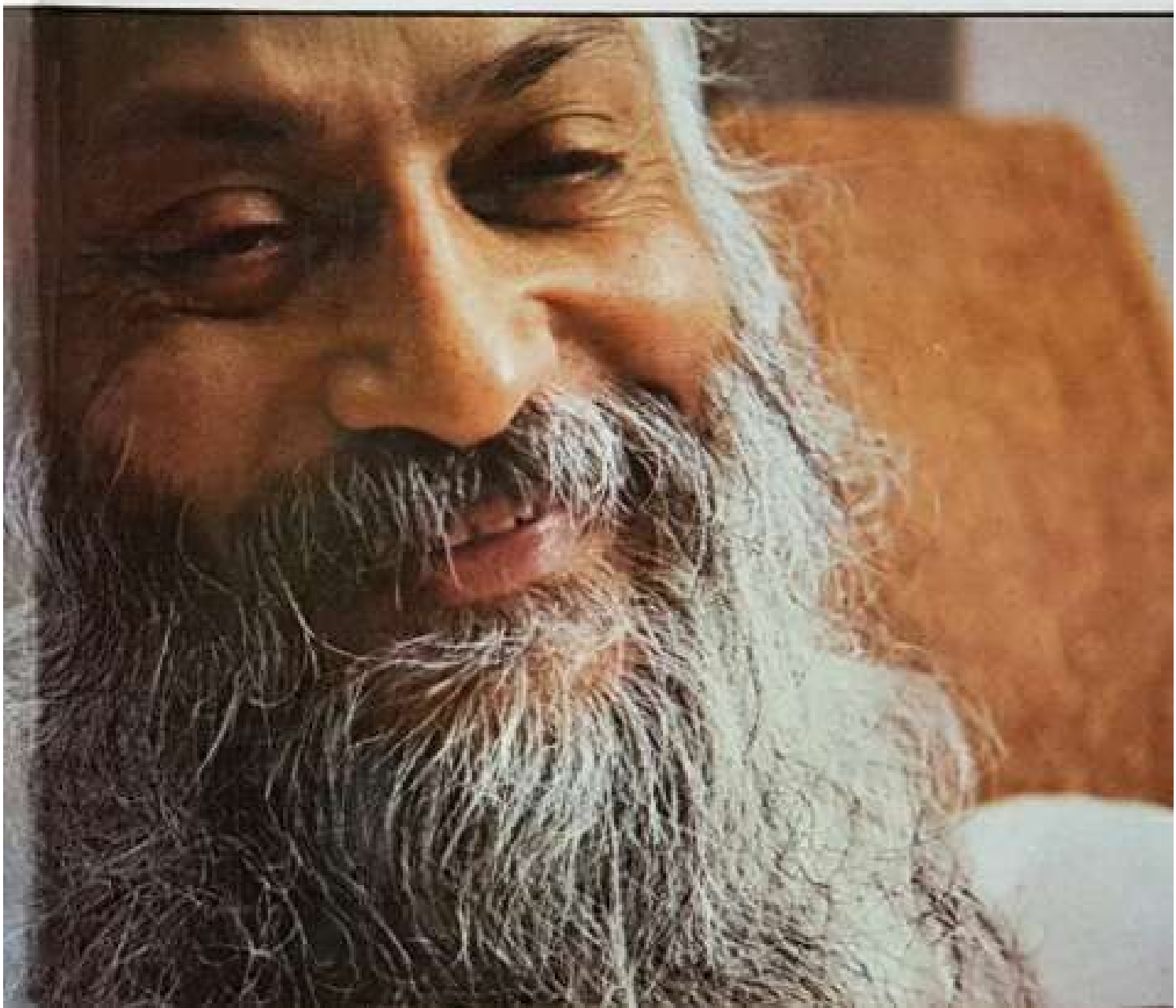

प्रवचन-क्रम

1. सनातन व अविकारी ताओ 2
2. रहस्यमय परम स्रोत--ताओ 22
3. ताओ की निष्काम गहराइयों में 44
4. अज्ञान और ज्ञान के पार--वह रहस्य भरा ताओ 63
5. सापेक्ष विरोधों से मुक्त--सुंदर और शुभ 83
6. विपरीत स्वरों का संगीत 102
7. निष्क्रिय कर्म व निःशब्द संवाद--ज्ञानी का 127
8. स्वामित्व और श्रेय की आकांक्षा से मुक्त कर्म 147
9. महत्वाकांक्षा का जहर व जीवन की व्यवस्था 167
10. भरे पेट और खाली मन का राज--ताओ 194
11. कोरे ज्ञान से इच्छा-मुक्ति व अक्रिय व्यवस्था की ओर 208
12. वह परम शून्य, परम उदगम, परम आधार--ताओ 227
13. अहंकार-विसर्जन और रहस्य में प्रवेश 244
14. प्रतिबिंब उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था 265
15. समझ, शून्यता, समर्पण व पुरुषार्थ 283
16. निष्पक्ष हैं तीनों--स्वर्ग, पृथ्वी और संत 302
17. विरोधों में एकता और शून्य में प्रतिष्ठा 318
18. घाटी-सदृश, स्त्रैण व रहस्यमयी परम सत्ता 334
19. स्त्रैण-चित्त के अन्य आयामः श्रद्धा, स्वीकार और समर्पण 351
20. धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं 368
21. जल का स्वभाव ताओ के निकट है 387
22. लाओत्से सर्वाधिक सार्थक--वर्तमान विश्व-स्थिति में 405

पहला प्रवचन

सनातन व अविकारी ताओ

Chapter 1 : Sutra 1

The Absolute Tao

The Tao that can be trodden is not the enduring
and unchanging Tao. The name that can be
named is not the enduring and unchanging name.

अध्याय 1 : सूत्र 1

परम ताओ
जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह सनातन और अविकारी पथ नहीं है।
जिसके नाम का सुमिरण हो, वह कालजयी एवं सदा एकरस रहने वाला नाम नहीं है।

जिन्होंने जाना है--शब्दों से नहीं, शास्त्रों से नहीं, वरन जीवन से ही, जीकर--लाओत्से उन थोड़े से लोगों में से एक है। और जिन्होंने केवल जाना ही नहीं है, वरन जनाने की भी अथक चेष्टा की है--लाओत्से उन और भी बहुत थोड़े से लोगों में से एक है।

लेकिन जिन्होंने भी जाना है और जिन्होंने भी दूसरों को जनाने की कोशिश की है, उनका प्राथमिक अनुभव यही है कि जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है; जो वाणी का आकार ले सकता है, आकार लेते ही अपनी निराकार सत्ता को अनिवार्यतया खो देता है। जैसे कोई आकाश को चित्रित करे, तो आकाश कभी भी चित्रित नहीं होगा; जो भी चित्र में बनेगा, निश्चित ही वह आकाश नहीं है। आकाश तो वह है जो सबको घेरे हुए है; चित्र तो किसी को भी नहीं घेर पाएगा। चित्र तो स्वयं ही आकाश से घिरा हुआ है।

तो चित्र में बना हुआ जैसा आकाश होगा, ऐसे ही शब्द में बना हुआ सत्य होगा। न तो चित्र में बने आकाश में पक्षी उड़ सकेगा, न चित्र में बने आकाश में सूरज निकलेगा, न रात तारे दिखाई पड़ेंगे। चित्र का आकाश तो होगा मृत; कहने को ही आकाश होगा, नाम ही भर आकाश होगा। आकाश के होने की कोई संभावना चित्र में नहीं है।

जो भी सत्य को कहने चलेगा, उसे पहले ही कदम पर जो बड़ी से बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाती है, वह यह कि शब्द में डालते ही सत्य असत्य हो जाता है। ऐसा हो जाता है, जैसा वह नहीं है। और जो कहना चाहा था, वह अनकहा रह जाता है। और जो नहीं कहना चाहा था, वह मुखर हो जाता है।

लाओत्से अपनी पहली पंक्ति में इसी बात से शुरू करता है।

ताओ बहुत अनूठा शब्द है। उसके अर्थ को थोड़ा ख्याल में ले लें तो आगे बढ़ने में आसानी होगी। ताओ के बहुत अर्थ हैं। जो भी चीज जितनी गहरी होती है उतनी बहुअर्थी हो जाती है। और जब कोई चीज बहुआयामी, मल्टी डायमेंशनल होती है, तब स्वभावतः जटिलता और बढ़ जाती है।

ताओ का एक तो अर्थ हैः पथ, मार्ग, दि वे। लेकिन सभी पथ बंधे हुए होते हैं। ताओ ऐसा पथ है जैसे पक्षी आकाश में उड़ता है; उड़ता है तब पथ तो निर्मित होता है, लेकिन बंधा हुआ निर्मित नहीं होता है। सभी पथों पर चरणचिह्न बन जाते हैं और पीछे से आने वालों के लिए सुविधा हो जाती है। ताओ ऐसा पथ है जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, उनके पदों के कोई चिह्न नहीं बनते, और पीछे से आने वाले को कोई भी सुविधा नहीं होती।

तो अगर यह ख्याल में रहे कि ऐसा पथ जो बंधा हुआ नहीं है, ऐसा पथ जिस पर चरणचिह्न नहीं बनते, ऐसा पथ जिसे कोई दूसरा आपके लिए निर्मित नहीं कर सकता--आप ही चलते हैं और पथ निर्मित होता है--तो हम ताओ का अर्थ पथ भी कर सकते हैं, दि वे भी कर सकते हैं। लेकिन ऐसा पथ तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए ताओ को पथ कहना उचित होगा?

लेकिन यह एक आयाम ताओ का है। तब पथ का एक दूसरा अर्थ लें: पथ है वह, जिससे पहुंचा जा सके; पथ है वह, जो मंजिल से जोड़ दे। लेकिन ताओ ऐसा पथ भी नहीं है। जब हम एक रास्ते पर चलते हैं और मंजिल पर पहुंच जाते हैं, तो रास्ता और मंजिल दोनों जुड़े हुए होते हैं। असल में, मंजिल रास्ते का आखिरी छोर होता है, और रास्ता मंजिल की शुरुआत होती है। रास्ता और मंजिल दो चीजें नहीं हैं, जुड़े हुए संयुक्त हैं। रास्ते के बिना मंजिल न हो सकेगी; मंजिल के बिना रास्ता न होगा। लेकिन ताओ एक ऐसा पथ है, जो मंजिल से जुड़ा हुआ नहीं है। जब कोई रास्ता मंजिल से जुड़ा होता है, तो सभी को उतना ही रास्ता चलना पड़ता है, तभी मंजिल आती है।

ताओ ऐसा पथ है कि जो जहां खड़ा है, उसी स्थान पर, उसी जगह पर खड़े हुए मंजिल को उपलब्ध हो सकता है। इसलिए ताओ को ऐसा पथ भी नहीं कहा जा सकता। जहां खड़े हैं हम, जिस जगह, जिस स्थान पर, वहीं से मंजिल मिल सके; और ऐसा भी हो सकता है कि हम जन्मों-जन्मों चलें, और मंजिल न मिल सके; तो ताओ जरूर किसी और तरह का पथ है। इसलिए एक तो पथ का अर्थ है कहीं गहरे में, लेकिन बहुत सी शर्तों के साथ।

दूसरा ताओ का अर्थ हैः धर्म। लेकिन धर्म का अर्थ मजहब नहीं है, रिलीजन नहीं है। धर्म का वही अर्थ है जो पुरातनतम ऋषियों ने लिया है। धर्म का अर्थ होता हैः वह नियम, जो सभी को धारण किए हुए है। जीवन जहां भी है, उसे धारण करने वाला जो आत्यंतिक नियम, दि अल्टिमेट लॉ, वह जो आखिरी कानून है वह। तो ताओ धर्म है--मजहब के अर्थों में नहीं, इसलाम और हिंदू और जैन और बौद्ध और सिक्ख के अर्थों में नहीं--जीवन का परम नियम। धर्म है, जीवन के शाश्वत नियम के अर्थ में।

लेकिन सभी नियम सीमित होते हैं। ताओ ऐसा नियम है जिसकी कोई सीमा नहीं है।

असल में सीमा तो होती है मृत्यु की; जीवन की कोई सीमा नहीं होती। मरी हुई वस्तुएं ही सीमित होती हैं; जीवित वस्तु सीमित नहीं होती, असीम होती है। जीवन का अर्थ ही हैः फैलाव की निरंतर क्षमता, दि कैपेसिटी टु एक्सपैंड। एक बीज जीवित है, अगर वह अंकुर हो सकता है। एक अंकुर जीवित है, अगर वह वृक्ष हो सकता है। एक वृक्ष जीवित है, अगर उसमें और अंकुर, और बीज लग सकते हैं। जहां फैलाव की क्षमता रुक जाती है वहीं जीवन रुक जाता है। बच्चा इसीलिए ज्यादा जीवित है बूढ़े से; अभी फैलाव की क्षमता है बहुत।

तो ताओ कोई सीमित अर्थों में नियम नहीं है। आदमी के बनाए हुए कानून जैसा कानून नहीं है, जिसको कि डिफाइन किया जा सके, जिसकी परिभाषा तय की जा सके, जिसकी परिसीमा तय की जा सके। ताओ ऐसा नियम है जो अनंत विस्तार है, और अनंत-असीम को छूने में समर्थ है।

इसलिए सिर्फ धर्म कह देने से काम न चलेगा।

एक और शब्द है--ऋषियों ने उपयोग किया--वह शायद और भी निकट है ताओ के। वह शब्द है ऋत--जिससे ऋतु बना। वेद ऋत की चर्चा करते हैं, वह ताओ की चर्चा है। ऋत का अर्थ होता है... ऋतुओं से समझें तो आसानी हो जाएगी।

गरमी आती है, फिर वर्षा आ जाती है, फिर शीत आ जाती है, फिर गरमी आ जाती है। एक वर्तुल है। वर्तुल घूमता चला जाता है। बचपन होता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आ जाता है, मौत आ जाती है। एक वर्तुल है, वह घूमता चला जाता है। सुबह होती है, सांझ होती है, रात होती है, फिर सुबह हो जाती है। सूरज निकलता है, डूबता है, फिर उगता है। एक वर्तुल है। जीवन की एक गति है वर्तुलाकार। उस गति को चलाने वाला जो नियामक तत्व है, उसका नाम है ऋत।

ध्यान रहे, ऋत में किसी ईश्वर की धारणा नहीं है। ऋत का अर्थ है नियामक तत्व; नियामक व्यक्ति नहीं। नॉट परसन, बट प्रिंसिपल। कोई व्यक्ति नहीं जो नियामक हो, कोई तत्व जो नियमन किए चला जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं कि नियमन किए चला जाता है, क्योंकि इससे व्यक्ति का भाव पैदा होता है। नहीं, जिससे नियमन होता है, जिससे नियम निकलते हैं। ऐसा नहीं कि वह नियम देता है और व्यवस्था जुटाता है। नहीं, बस उससे नियम पैदा होते रहते हैं। जैसे बीज से अंकुर निकलता रहता है, ऐसा ऋत से ऋतुएं निकलती रहती हैं। ताओ का गहनतम अर्थ वह भी है।

लेकिन फिर भी ये कोई भी शब्द ताओ को ठीक से प्रकट नहीं करते हैं। क्योंकि जो-जो इनको अर्थ दिया जा सकता है, ताओ उससे फिर भी बड़ा है। और कुछ न कुछ पीछे छूट जाता है। शब्दों की जो बड़ी से बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि सभी शब्द द्वैत से निर्मित हैं। अगर हम कहें रात, तो दिन पीछे छूट जाता है। अगर हम कहें प्रकाश, तो अंधेरा पीछे छूट जाता है। अगर हम कहें जीवन, तो मौत पीछे छूट जाती है। हम कुछ भी कहें, कुछ सदा पीछे छूट जाता है। और जीवन ऐसा है--संयुक्त, इकट्ठा। वहां रात और दिन अलग नहीं हैं। और वहां जन्म और मृत्यु अलग नहीं हैं। और वहां बच्चा और बूढ़ा दो नहीं हैं। और वहां सर्दी और गरमी दो नहीं हैं। और वहां सुबह सूरज का उगना सांझ का डूबना भी है। जीवन कुछ ऐसा है--संयुक्त, इकट्ठा। लेकिन जब भी हम शब्द में बोलते हैं, तो कुछ छूट जाता है। कहें दिन, तो रात छूट जाती है। और जीवन में रात भी है।

तो अगर हम कहें कोई भी एक शब्द--यह है ताओ, यह है मार्ग, यह है धर्म, यह है ऋत--बस हमारे कहते ही कुछ पीछे छूट जाता है। समझ लें, हम कहते हैं, नियम। नियम कहते ही अराजकता पीछे छूट जाती है। लेकिन जीवन में वह भी है। नियम कहते ही वह जो अनार्किक, वह जो अराजक तत्व है, वह पीछे छूट जाता है।

नीत्शे ने कहीं लिखा है कि जिस दिन अराजकता न होगी उस दिन नए तारे कैसे निर्मित होंगे? जिस दिन अराजकता न होगी उस दिन नया सृजन कैसे होगा? क्योंकि सृष्टि तो जन्मती है अराजकता से, केऑस से। आउट ऑफ केऑस इ.ज क्रिएशन। अगर केऑस न होगा, अराजकता न होगी, तो सृष्टि का जन्म न होगा। और अगर सृष्टि अकेली हो, तो फिर समाप्त न हो सकेगी, क्योंकि उसे समाप्त होने के लिए फिर अराजकता में डूब जाना पड़े।

जब हम कहते हैं नियम, प्रिंसिपल, तब अराजकता पीछे छूट जाती है। वह भी जीवन में है। उसे छोड़ने का उपाय जीवन के पास नहीं है, शब्दों के पास है। इसलिए हम कहते हैं ऋत, तो भी कुछ पीछे छूट जाता है; वह अराजक तत्व पीछे छूट जाता है। जो घटता है और फिर भी नियम के भीतर नहीं घटता।

इस जीवन में सभी कुछ नियम से नहीं घटता है; नहीं तो जीवन दो कौड़ी का हो जाएगा। इस जीवन में कुछ है जो नियम छोड़ कर भी घटता है। सच तो यह है, इस जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह नियम छोड़ कर घटता है। जो भी गैर-महत्वपूर्ण है, वह नियम से घटता है। इस जीवन में जो भी गहरी अनुभूतियां हैं, वे किसी नियम से नहीं आतीं--अकारण, अनायास, अनायाचित द्वार पर दस्तक दे देती हैं।

जिस दिन किसी के जीवन में प्रभु का आना होता है, उस दिन वह यह नहीं कह पाता कि मैंने यह-यह किया था, इसलिए तुम्हें पाया। उस दिन वह यही कह पाता है कि कैसी तुम्हारी दया! कैसी तुम्हारी अनुकंपा! मैंने कुछ भी न किया था; या जो भी किया था, अब मैं जानता हूं, उसे तुमसे पाने से कोई भी संबंध न था; यह तुम्हारा आगमन कैसा! यह तुम आ कैसे गए! न मैंने कभी तुम्हें मांगा था, न मैंने कभी तुम्हें चाहा था, न मैंने तुम्हें कभी खोजा था। या मांगा भी था, तो कुछ गलत मांगा था; और खोजा भी था, तो वहां जहां तुम नहीं थे; और चाहा भी था, तो भी माना न था कि तुम मिल जाओगे। और यह तुम्हारा आगमन! और जब प्रभु का आगमन होता है किसी के जीवन में, तो उसका किया हुआ कहीं भी तो कुछ संबंध नहीं बना पाता। अनायास!

इस जीवन में सभी कुछ नियम होता, तो हम कह सकते थे, ताओ का अर्थ है ऋत। लेकिन इस जीवन में वह जो नियम के बाहर है, वह रोज घटता है; हर घड़ी-पहर, अनायास भी, अकारण भी, वह मौजूद हो जाता है। न, उसे भी हम जीवन और अस्तित्व के बाहर न छोड़ पाएंगे। इसलिए अब हम ताओ को क्या कहें?

तो लाओत्से अपना पहला सूत्र कहता है। उस सूत्र में वह कहता है, "जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह सनातन, अविकारी पथ नहीं है।"

जिस पथ पर विचरण किया जा सके! अब पथ का अर्थ ही होता है कि जिस पर विचरण किया जा सके। लेकिन लाओत्से कहता है, जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह नहीं; जिस पर आप चल सकें, वह नहीं। फिर अगर जिस पर हम चल ही न सकें, उसे पथ कहने का क्या प्रयोजन? हम चल सकें तो ही पथ है।

लाओत्से कहता है, "जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह सनातन, अविकारी पथ नहीं है।"

बहुत सी बातें इस छोटे से सूत्र में हैं। एक, जिस पथ पर चला जा सके, जिस पर चलने की घटना घट सके, उस पर पहुंचने की घटना न घटेगी। क्योंकि जहां हमें पहुंचना है, वह कहीं दूर नहीं, यहीं और अभी है। अगर मुझे आपके पास आना हो, तो मैं किसी रास्ते पर चल सकता हूं। लेकिन मुझे अपने ही पास आना हो, तो मैं किस रास्ते पर चलूंगा? और जितना चलूंगा रास्तों पर, उतना ही भटक जाऊंगा; अपने से दूर, और दूर होता चला जाऊंगा। जो आदमी स्वयं को खोजने किसी रास्ते पर जाएगा, वह अपने को कभी भी नहीं पा सकेगा। कैसे पा सकेगा? अपने ही हाथ से, खोज के ही कारण, वह अपने को खो देगा।

जिसे स्वयं को खोजना है उसे तो सब रास्ते छोड़ देने पड़ेंगे, क्योंकि स्वयं तक कोई भी रास्ता नहीं जाता है। असल में, स्वयं तक पहुंचने के लिए रास्ते की जरूरत ही नहीं है। रास्ते की जरूरत तो दूसरे तक पहुंचने के लिए है। स्वयं तक तो वह पहुंच जाता है, जो सब रास्तों से उतर कर खड़ा हो जाता है। जो चलता ही नहीं, वह पहुंच जाता है।

तो लाओत्से कहता है, जिस पथ पर चला जा सके, वह सनातन और अविकारी पथ नहीं है।

दो बातें कहता है। वह सनातन नहीं है। असल में, जिस रास्ते पर भी हम चल सकें, वह हमारा ही बनाया हुआ होगा। हमारा ही बनाया हुआ होगा, इसलिए सनातन नहीं होगा। आदमी का ही निर्मित होगा, इसलिए परमात्मा से निर्मित नहीं होगा। और जो पथ हमने बनाया है, वह सत्य तक कैसे ले जाएगा? क्योंकि अगर हमें सत्य के भवन का पता होता, तो हम ऐसा रास्ता भी बना लेते जो सत्य तक ले जाए।

ध्यान रहे, रास्ता तो तभी बनाया जा सकता है, जब मंजिल पता हो। मुझे आपका घर पता हो, तो मैं वहां तक रास्ता बना लूं। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। अगर मुझे आपका घर पता है, तो मैं बिना रास्ते के ही आपके घर पहुंच गया होऊंगा। नहीं तो फिर मुझे आपके घर का पता कैसे चला है?

इजिप्त के पुराने सूफियों के सूत्रों का एक हिस्सा कहता है कि जब तुम्हें परमात्मा मिलेगा और तुम उसे पहचानोगे, तब तुम जरूर कहोगे कि अरे, तुम्हें तो मैं पहले से ही जानता था! और अगर तुम ऐसा न कह सकोगे, तो तुम परमात्मा को पहचान कैसे सकोगे? रिकग्नीशन इ.ज इम्पासिबल। रिकग्नीशन का तो मतलब ही यह होता है। अगर परमात्मा मेरे सामने आए और मैं खड़े होकर उससे पूछूं कि आप कौन हैं? तब तो मैं पहचान न सकूंगा। और अगर मैं देखते ही पहचान गया कि प्रभु आ गए, तो उसका अर्थ है कि मैंने कभी किसी क्षण में, किसी कोने से, किसी द्वार से जाना था; आज पहचाना। यह रिकग्नीशन है। हम जाने को ही पहचान सकते हैं।

अगर आपको पता ही है कि सत्य कहां है, तो आपके लिए रास्ते की जरूरत कहां रही? आप सत्य तक कहीं पहुंच ही गए हैं, जान ही लिया है। तो जिसे पता है वह रास्ता नहीं बनाता। और जिसे पता नहीं है वह रास्ता बनाता है। और जो नहीं जानते, उनके बनाए हुए रास्ते कैसे पहुंचा पाएंगे? वे सनातन पथ नहीं हो सकते।

सनातन पथ कौन सा है?

जो आदमी ने कभी नहीं बनाया। जब आदमी नहीं था, तब भी था। और जब आदमी नहीं होगा, तब भी होगा।

सनातन पथ कौन सा है?

जिसे वेद के ऋषि नहीं बनाते, जिसे बुद्ध नहीं बनाते, जिसे महावीर नहीं बनाते, मोहम्मद, कृष्ण और क्राइस्ट जिसे नहीं बनाते। ज्यादा से ज्यादा उसके संबंध में कुछ खबर देते हैं, बनाते नहीं। इसलिए ऋषि नहीं कहते कि हम जो कह रहे हैं, वह हमारा है। कहते हैं, ऐसा पहले भी लोगों ने कहा है, ऐसा सदा ही लोगों ने जाना है। यह जो हम खबर ला रहे हैं, यह उस रास्ते की खबर है जो सदा से है। जब हम नहीं थे, तब भी था। और जब कोई नहीं था, तब भी था। जब यह जमीन बनती थी और इस पर कोई जीवन न था, तब भी था। और जब यह जमीन मिटती होगी और जीवन विसर्जित होता होगा, तब भी होगा। आकाश की भांति वह सदा मौजूद था।

यह दूसरी बात है कि हमारे पंख इतने मजबूत न थे कि हम उसमें कल तक उड़ सकते; आज उड़ पाते हैं। यह दूसरी बात है कि आज भी हम हिम्मत नहीं जुटा पाते और अपने घोंसले के किनारे पर बैठे रहते हैं, परों को तौलते रहते हैं, और सोचते रहते हैं कि उड़ें या न उड़ें। लेकिन वह आकाश आपके उड़ने से पैदा नहीं होगा। वह आपके पंख भी जब पैदा न हुए थे, जब आप अंडे के भीतर बंद थे, तब भी था। और आपके पास पंख भी हों, और आप बैठे रहें और न उड़ें, तो ऐसा नहीं कि आकाश नहीं है। आकाश है। आकाश आपके बिना है।

तो सनातन पथ तो वह है जो चलने वाले के बिना है। अगर चलने वाले पर कोई पथ निर्भर है, तो वह सनातन नहीं है। और जिस पथ पर भी चला जा सकता है वह विकारग्रस्त हो जाता है, क्योंकि चलने वाला अपनी बीमारियों को लेकर चलता है। इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

जो बीमारियों के बाहर हो गया वह चलता नहीं। चलने की कोई जरूरत न रही। वह पहुंच गया। जो बीमारियों से भरा है वह चलता है। चलता ही इसलिए है कि बीमारियां हैं, उनसे छूटना चाहता है। बीमारियों से छूटने के लिए ही चलता है। जिस रास्ते पर भी चलता है, वहीं, उसी रास्ते को संक्रामक करता है। जहां भी खड़ा होता है, वहीं अपवित्र हो जाता है सब। जहां भी खोजता है, वहीं और धुआं पैदा कर देता है।

जैसे पानी में कीचड़ उठ गई हो और कोई पानी में घुस जाए और कीचड़ को बिठालने की कोशिश में लग जाए, तो उसकी सारी कोशिश, जो कीचड़ उठ गई है, उसे तो बैठने ही न देगी, और जो बैठी थी, उसे भी उठा लेती है। वह जितना डेस्पेरेटली, जितना पागल होकर कोशिश करता है कि कीचड़ को बिठा दूं, बिठा दूं, उतनी ही कीचड़ और उठ जाती है, पानी और गंदा हो जाता है। लाओत्से वहां से निकलता होगा, तो वह कहेगा कि मित्र, तुम बाहर निकल आओ। क्योंकि जिसे तुम शुद्ध करोगे वह अशुद्ध हो जाएगा, तुम ही अशुद्ध हो इसलिए। तुम कृपा करके बाहर निकल आओ। तुम पानी को अकेला छोड़ दो। तुम तट पर बैठ जाओ। पानी शुद्ध हो जाएगा। तुम प्रयास मत करो। तुम्हारे सब प्रयास खतरनाक हैं।

वह पथ अविकारी नहीं हो सकता जिस पथ पर बीमार लोग चलें।

और ध्यान रहे, सिर्फ बीमार ही चलते हैं। जो पहुंच गए, जो शुद्ध हुए, जिन्होंने जाना, वे रुक जाते हैं। चलने का कोई सवाल नहीं रह जाता। असल में, हम चलते ही इसलिए हैं कि कोई वासना हमें चलाती है। वासना अपवित्रता है। ईश्वर को पाने की वासना भी अपवित्रता है। मोक्ष पहुंचने की वासना भी अपनी दुर्गंध लिए रहती है। असल में, जहां वासना है, वहीं चित्त कुरूप हो जाएगा। जहां वासना है, वहीं चित्त तनाव से भर जाएगा। जहां वासना है पहुंचने की, जहां आकांक्षा है, वहीं दौड़, वहीं पागलपन पैदा होगा। और सब बीमारियां आ जाएंगी, सब बीमारियां इकट्ठी हो जाएंगी।

लाओत्से कहता है, जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह पथ सनातन भी नहीं, अविकारी भी नहीं।

क्या ऐसा भी कोई पथ है जिस पर विचरण न किया जा सके? क्या ऐसा भी कोई पथ है जिस पर चला नहीं जाता, वरन खड़ा हो जाया जाता है? क्या ऐसा भी कोई पथ है जो खड़े होने के लिए है?

कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेगा, उलटा मालूम पड़ेगा। रास्ते चलाने के लिए होते हैं, खड़े होने के लिए नहीं होते। लेकिन ताओ उसी पथ का नाम है जो चला कर नहीं पहुंचाता, रुका कर पहुंचाता है। लेकिन चूंकि रुक कर लोग पहुंच गए हैं, इसलिए उसे पथ कहते हैं। चूंकि लोग रुक कर पहुंच गए हैं, इसलिए उसे पथ कहते हैं। और चूंकि दौड़-दौड़ कर भी लोग संसार के किसी पथ से कहीं नहीं पहुंचे हैं, इसलिए उसे पथ सिर्फ नाम मात्र को ही कहा जा सकता है। वह पथ नहीं है।

उस वाक्य का दूसरा हिस्सा है, "जिसके नाम का सुमिरण हो, वह कालजयी एवं सदा एकरस रहने वाला नाम नहीं है।"

दि नेम व्हिच कैन बी नेम्ड, जिसे नाम दिया जा सके, जिसका सुमिरण हो सके, जिसे शब्द दिया जा सके, वह असली नाम नहीं है। वह कालजयी, समय को जीत ले, समय के अतीत हो, समय जिसे नष्ट न कर दे, वैसा वह नाम नहीं है। इसे थोड़ा समझें।

सभी चीजों को हम नाम दे देते हैं। सुविधा होती है नाम देने से। व्यवहार-सुलभ हो जाता है, संबंधित होना आसान हो जाता है, विश्लेषण सुगम बन जाता है। नाम न दें तो बड़ी जटिलता, उलझन हो जाती है। नाम दिए बिना इस जगत में कोई गति नहीं। पर ध्यान रहे, जैसे ही हम नाम दे देते हैं, वैसे ही उस वस्तु को, जिसकी असीमता थी, हम एक सीमित दरवाजा बना देते हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। वस्तुओं को भी जब हम नाम देते हैं, तो हम सीमा दे देते हैं।

एक व्यक्ति आपके पास बैठा है। अभी आपको कुछ पता नहीं, वह कौन है। पड़ोस में बैठा है आपके, शरीर उसका आपको स्पर्श करता है। अभी आपको कुछ भी पता नहीं है, वह कौन है। अभी उसकी सत्ता विराट है। फिर आप पूछते हैं और वह कहता है कि मैं मुसलमान हूं, कि हिंदू हूं। सत्ता सिकुड़ गई। जो-जो हिंदू नहीं है--वह छंट गया, गिर गया। उतना सत्ता का हिस्सा टूट कर अलग हो गया। एक सीमित दायरा बन गया। वह मुसलमान है। आप पूछते हैं, शिया हैं या सुन्नी हैं? वह कहता है, सुन्नी हूं। और भी हिस्सा, मुसलमान का भी, गिर गया। आप पूछते चले जाते हैं। और वह अपनी आखिरी जगह पर पहुंच जाएगा बताते-बताते। तब वह बिंदु मात्र रह जाएगा। वह यूक्लिड के बिंदु की भांति हो जाएगा। इतना सिकुड़ जाएगा, इतना छोटा हो जाएगा, आखिर में तो वह एक छोटा सा ईगो, एक छोटा सा अहंकार मात्र रह जाएगा--सब तरफ से घिरा हुआ।

लेकिन तब सुविधा हो जाएगी हमें। तब आप अपने शरीर को सिकोड़ कर बैठ सकते हैं, या निकट ले सकते हैं उसको हृदय के। तब आप उससे बात कर सकते हैं, और तब आप अपेक्षा कर सकते हैं कि उससे क्या उत्तर मिलेगा। वह प्रेडिक्टेबल हो गया। अब आप भविष्यवाणी कर सकते हैं। इस आदमी के साथ ज्यादा देर बैठना उचित होगा, नहीं होगा, आप तय कर सकते हैं। इस आदमी के साथ अब व्यवहार सुगम और आसान है। इस आदमी की जो रहस्यपूर्ण सत्ता थी, अब वह रहस्यपूर्ण नहीं रह गई। अब वह वस्तु बन गया है। नाम हम देते ही इसीलिए हैं कि हम व्यवहार में ला सकें। चीजों के साथ व्यवहार कर सकें; चीजों का हम उपयोग कर सकें; हमारे सारे दिए हुए नाम ऐसे ही कामचलाऊ, यूटिलिटेरियन हैं। उनकी उपयोगिता है, उनका सत्य नहीं है।

क्या हम परमात्मा को, परम सत्ता को भी नाम दे सकते हैं? क्या हमारा दिया हुआ नाम अर्थपूर्ण होगा?

हम छोटी सी वस्तु को भी नाम देते हैं, तो उसकी सत्ता को भी विकृत कर देते हैं। हमने दिया नाम कि सत्ता विकृत हुई, सीमा बंधी। हम परमात्मा को नाम, पहली तो बात यह है, दे न सकेंगे। क्योंकि कहीं भी उसे हमारी आंखें देख नहीं पाती हैं, कहीं भी हमारे हाथ उसे छू नहीं पाते हैं, कहीं भी हमारे कान उसे सुन नहीं पाते हैं, कहीं उससे हमारा मिलन नहीं होता है। और फिर भी, जो जानते हैं, वे कहते हैं, हमारी आंख उसी को देखती है सब जगह; उसी को सुनते हैं हमारे कान; जो भी हम छूते हैं, उसी को छूते हैं; और जिससे भी हमारा मिलन होता है, उसी से मिलन है। पर ये वे, जो जानते हैं। जो नहीं जानते, उन्हें तो उसका कहीं दर्शन नहीं होता। उसे नाम कैसे देंगे? और जो जानते हैं, जिन्हें उसका ही दर्शन होता है सब जगह, वे भी उसे कैसे नाम देंगे? क्योंकि जो चीज कहीं एक जगह हो, उसे नाम दिया जा सकता है।

एक मित्र को हम मुसलमान कह सकते हैं, क्योंकि वह मस्जिद में मिलता है, मंदिर में नहीं मिलता। वह आदमी मंदिर में भी मिल जाए, वह आदमी गुरुद्वारे में भी मिल जाए, वह आदमी चर्च में भी मिल जाए, वह आदमी एक दिन तिलक लगाए हुए और कीर्तन करता मिल जाए और एक दिन नमाज पढ़ता मिल जाए, तो फिर मुसलमान कहना मुश्किल हो जाएगा। और तब तो बहुत ही मुश्किल हो जाएगा कि जहां भी आप जाएं, वही आदमी मिल जाए। तब तो फिर उसे मुसलमान न कह सकेंगे।

जो नहीं जानते हैं, वे नाम नहीं दे सकते, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं वे किसे नाम दे रहे हैं। और जो जानते हैं, वे भी नाम नहीं दे सकते, क्योंकि उन्हें पता है, सभी नाम उसी के हैं, सभी जगह वही है। वही है।

इसलिए लाओत्से कहता है, उसे नाम नहीं दिया जा सकता। ऐसा कोई नाम नहीं दिया जा सकता, जिसका सुमिरण हो सके।

और नाम तो इसीलिए होते हैं कि उनका सुमिरण हो सके। नाम इसीलिए होते हैं कि हम पुकार सकें, बुला सकें, स्मरण कर सकें। अगर ऐसा उसका कोई नाम है जिसका सुमिरण न हो सके, तो उसे नाम कहना ही व्यर्थ है। नाम है किसलिए? एक बाप अपने बेटे को नाम देता है कि बुला सके, पुकार सके; जरूरत हो, आवाज दे सके। नाम की उपयोगिता क्या है, कि पुकारा जा सके। और लाओत्से कहता है कि सुमिरण हो सके, तो वह नाम उसका नाम नहीं है। सुमिरण के लिए ही तो लोगों ने नाम रखा है। कोई उसे राम कहता है, कोई उसे कृष्ण कहता है, कोई उसे अल्लाह कहता है। सुमिरण के ही लिए तो नाम रखा है। इसलिए कि हम, जो नहीं जानते, उसकी याद कर सकें, उसे पुकार सकें।

लेकिन हमें, जिन्हें उसका पता ही नहीं है, हम उसका नाम कैसे रख लेंगे? और जो भी हम नाम रखेंगे वह हमारे संबंध में तो खबर देगा, उसके संबंध में कोई भी खबर नहीं देगा। जब आप कहते हैं, हमने उसका नाम राम रखा है। तो उससे खबर मिलती है कि आप हिंदू घर में पैदा हुए हैं, और कुछ भी नहीं। इससे उसका नाम पता नहीं चलता। आप कहते हैं, हम उसका नाम अल्लाह मानते हैं। इससे इतना ही पता चलता है कि आप उस घर में बड़े हुए हैं जहां उसका नाम अल्लाह माना जाता रहा है। इससे आपके बाबत पता चलता है; इससे उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं चलता। और इसीलिए तो अल्लाह को मानने वाला राम को मानने वाले से लड़ सकता है। अगर अल्लाह वाले को पता होता कि यह किसका नाम है, और राम वाले को पता होता कि यह किसका नाम है, तो झगड़ा असंभव था। वह तो कुछ भी पता नहीं है। नाम ही हमारे हाथ में है। जिसे हमने नाम दिया है, उसका हमें कोई भी पता नहीं है।

लाओत्से बड़ी अदभुत शर्त लगाता है। वह शर्त यह लगाता है कि जिसका स्मरण किया जा सके, वह उसका नाम नहीं है।

और सभी नामों का स्मरण किया जा सकता है। ऐसा कोई नाम आपको पता है जिसका स्मरण न किया जा सके? अगर स्मरण न किया जा सके, तो आपको पता भी कैसे चलेगा?

बोधिधर्म सम्राट वू के सामने खड़ा है। और सम्राट वू ने उससे पूछा है, बोधिधर्म, उस पवित्र और परम सत्य के संबंध में कुछ कहो! बोधिधर्म ने कहा, कैसा पवित्र? कुछ भी पवित्र नहीं है! नथिंग इ.ज होली! और कैसा परम सत्य? देयर इ.ज नथिंग बट एम्पटीनेस। शून्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

स्वभावतः, सम्राट वू चौंका और उसने बोधिधर्म से कहा, फिर क्या मैं यह पूछने की इजाजत पा सकता हूं कि मेरे सामने जो खड़ा होकर बोल रहा है, वह कौन है? तो बोधिधर्म ने क्या कहा, पता है? बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मैं नहीं जानता। यह जो तुम्हारे सामने खड़े होकर बोल रहा है, यह कौन है, यह मैं नहीं जानता।

वू तो समझा कि यह आदमी पागल है। वू ने कहा, इतना भी पता नहीं कि तुम कौन हो? बोधिधर्म ने कहा, जब तक पता था, तब तक कुछ भी पता नहीं था। जब से पता चला है, तब से यह भी नहीं कह सकता कि पता है। क्योंकि जिसका पता चल जाए, जिसे हम पहचान लें, जिसे हम नाम दे दें, वह भी कोई नाम है!

लाओत्से कहता है, जिसका सुमिरण किया जा सके, वह उसका नाम नहीं है। और जिसका सुमिरण किया जा सके, वह समय के पार नहीं ले जाएगा। समय के पार वही वस्तु जा सकती है जो सदा समय के पार है ही। कालातीत वही हो सकता है जो कालातीत है ही। समय के भीतर जो पैदा होता है, वह समय के भीतर नष्ट हो जाता है। अगर आप कह सकते हैं कि मैंने पांच बज कर पांच मिनट पर स्मरण किया प्रभु का, तो ध्यान रखना, यह स्मरण समय के पार न ले जा सकेगा। जो समय के भीतर पुकारा गया था, वह समय के भीतर ही गूंज कर समाप्त हो जाएगा। और परमात्मा समय के बाहर है। क्यों? क्योंकि समय के भीतर सिर्फ परिवर्तन है। और परमात्मा परिवर्तन नहीं है।

अगर ठीक से समझें, तो समय का अर्थ है परिवर्तन। कभी आपने ख्याल किया कि आपको समय का पता क्यों चलता है? सच तो यह है कि आपको समय का कभी पता नहीं चलता, सिर्फ परिवर्तन का पता चलता है। इसे ऐसा लें। इस कमरे में हम इतने लोग बैठे हैं। अगर ऐसा हो जाए कि वर्ष भर हम यहां बैठे रहें और हममें से कोई भी जरा भी परिवर्तित न हो, तो क्या हमें पता चलेगा कि वर्ष बीत गया? कुछ भी परिवर्तित न हो, एक वर्ष के लिए यह कमरा ठहर जाए, यह जैसा है वैसा ही वर्ष भर के लिए रह जाए, तो क्या हमें पता चल सकेगा कि वर्ष भर बीत गया? हमें यह भी पता नहीं चलेगा कि क्षण भर भी बीता। क्योंकि बीतने का पता चलता है चीजों की बदलाहट से। असल में, बदलाहट का बोध ही समय है। इसलिए जितने जोर से चीजें बदलती हैं, उतने जोर से पता चलता है। आपको दिन का जितना पता चलता है, उतना रात का नहीं पता चलता।

एक आदमी साठ साल जीता है, तो बीस साल सोता है। लेकिन बीस साल का कोई एकाउंट है? बीस साल का कुछ पता है? बीस साल साठ साल में आदमी सोता है। पर बीस साल का कोई हिसाब नहीं है। बीस साल का कोई पता नहीं चलता; वे नींद में बीत जाते हैं। वहां चीजें कुछ थिर हो जाती हैं। उतने जोर से परिवर्तन नहीं है, सड़क उतने जोर से नहीं चलती, ट्रैफिक उतनी गति में नहीं है। सब चीजें ठहरी हैं। आप अकेले रह गए हैं।

अगर एक व्यक्ति को हम बेहोश कर दें और सौ साल बाद उसे होश में लाएं, तो उसे बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि सौ साल बीत गए। जाग कर वह चौंकेगा। और अगर वह ऐसी ही दुनिया वापस पा सके जैसा वह सोते वक्त पाई थी उसने--वही लोग उसके पास हों; वही घड़ी-कांटा वहीं हो दीवार पर लटका हुआ; बच्चा स्कूल गया था, अभी न लौटा हो; पत्नी खाना बनाती थी, उसके बर्तन की आवाज किचन से आती हो; और वह आदमी जगे--तो उसे बिल्कुल पता नहीं चलेगा कि सौ साल बीत गए।

समय का बोध परिवर्तन का बोध है। चूंकि चीजें भाग रही हैं, बदल रही हैं, इसलिए समय का बोध होता है। इसलिए जितने जोर से चीजें बदलने लगती हैं, उतनी टाइम कांशसनेस, समय का बोध बढ़ने लगता है।

पुरानी दुनिया में समय का इतना बोध नहीं था। चीजें थिर थीं। करीब-करीब वही थीं। बाप जहां चीजों को छोड़ता था, बेटा वहीं पाता था। और बेटा फिर चीजों को वहीं छोड़ता था जहां उसने अपने बाप से पाया था। चीजें थिर थीं। अब कुछ भी वैसा नहीं है। जहां कल था, आज नहीं होगा; जहां आज है, कल नहीं होगा। सब बदल जाएगा। इसलिए समय का भारी बोध। एक-एक पल समय का कीमती मालूम पड़ता है।

समय में जो भी पैदा होगा, वह परिवर्तित होगा ही। समय के भीतर सनातन की कोई घटना प्रवेश नहीं करती। शाश्वत की कोई किरण समय के भीतर नहीं आती। ऐसा ही समझें कि जैसे जो नदी में होगा वह गीला होगा ही। हां, जिसे गीला नहीं होना, उसे तट पर होना पड़ेगा। समय की धारा में जो होगा वह परिवर्तित होगा ही। समय के बाहर होना पड़ेगा, तो अपरिवर्तित नित्य का जगत प्रारंभ होता है।

लाओत्से कहता है, जो नाम सुमिरण किया जा सके... ।

सुमिरण तो समय में होगा। शब्द का उच्चारण तो समय लेगा। एक पूरा शब्द भी हम एक क्षण में नहीं बोल पाते। एक हिस्सा बोल पाते हैं, फिर दूसरा दूसरा, तीसरा तीसरा। जब मैं बोलता हूं समय, तब भी समय बह रहा है--स बोलता हूं और हिस्से में, म बोलता हूं और हिस्से में, य बोलता हूं और हिस्से में।

हेराक्लतु ने कहा है, यू कैन नॉट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर--एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हो। क्योंकि जब दुबारा उतरने आओगे तब तक नदी तो बह गई होगी।

हेराक्लतु भी बहुत कंजूसी से कह रहा है। सच तो यह है, वन कैन नॉट स्टेप ईवन वंस इन दि सेम रिवर। क्योंकि जब मेरे पैर का तलवा पानी की ऊपर की धार को छूता है, नदी भागी जा रही है। और जब मेरा तलवा थोड़ा सा प्रवेश करता है, तब नदी भागी जा रही है। जब मैं नदी को स्पर्श करता हूं, तब नदी में पानी और था; और जब मैं नदी की तलहटी में पहुंचता हूं, तब पानी और है। एक बार भी नहीं छू सकता।

और नदी तो ठीक ही है। जब नदी को मैं छू रहा हूं, तो नदी ही बदल रही होती तो भी ठीक था। जो पैर छू रहा है, वह भी उतनी ही तेजी से बदला जा रहा है। नहीं, नदी में दुबारा उतरना तो असंभव है; एक बार भी उतरना असंभव है। इसलिए नहीं कि नदी बदल रही है, इसलिए भी कि नदी में उतरने वाला भी बदल रहा है। जब नदी की पहली सतह पर मैंने पैर रखा था, तो मेरा मन और था। और जब नदी की आधी सतह पर मैं पहुंचा था, तो मेरा मन और हो गया। और जब तलहटी में मेरा पैर पड़ा, तब मेरा मन और था। नहीं, इतना ही नहीं कि शरीर बदल रहा है, मेरा मन भी बदला जा रहा है।

बुद्ध कहते थे अनेक बार; कोई आता तो बुद्ध कहते उससे जाते वक्त, ध्यान रखना, तुम जो आए थे वही वापस नहीं लौट रहे हो! अभी घड़ी भर पहले वह आदमी आया था। चौंक जाते थे लोग और कहते थे, क्या कहते हैं आप? बुद्ध कहते थे, निश्चित ही! तुमने सुना, मैंने कहा, इतने में भी सब बदल गया है।

झेन फकीर बोकोजू एक पुल पर से गुजर रहा है। साथी है एक साथ में। वह साथी बोकोजू से कहता है, देखते हैं आप, नदी कितने जोर से बही जा रही है! बोकोजू कहता है, नदी का बहना तो कोई भी देखता है मित्र, जरा गौर से देख, पुल भी कितने जोर से बहा जा रहा है--दि ब्रिज!

वह आदमी चौंक कर चारों तरफ देखता है, ब्रिज तो अपनी जगह खड़ा है। पुल कहीं बहते हैं? नदियां बहती हैं। वह आदमी चौंक कर बोकोजू की तरफ देखता है। बोकोजू कहता है, और यह तो अभी मैंने तुझसे पूरी बात न कही। और गौर से देख, पुल पर जो खड़े हैं, वे और भी जोर से बहे जा रहे हैं।

यहां जो भी घटित होता है समय के भीतर, वह परिवर्तन है। यहां जो भी कहा जाता है, वह मिट जाएगा। यहां जो भी लिखा जाता है, वह बुझ जाएगा। यहां सब हस्ताक्षर रेत के ऊपर हैं। रेत पर भी नहीं, पानी पर।

तो जो नाम परमात्मा का स्मरण किया जा सके, ओंठों से, वाणी से, शब्द से, समय में, स्थान में; नहीं, वह कालजयी नाम नहीं है। वह वह नाम नहीं है, जो समय के पार है। लेकिन उस नाम को स्मरण नहीं किया जा सकता। उसे कोई जान सकता है, बोल नहीं सकता। उसे कोई जी सकता है, पुकार नहीं सकता। उसमें कोई हो सकता है, लेकिन अपने ओंठों पर, अपनी जीभ पर उसे नहीं रख सकता।

साथ ही कहता है लाओत्से, न तो वह कालजयी है और न सदा एकरस रहने वाला है।

एक सा रहने वाला नहीं है। और परमात्मा भी जो बदल जाए उसे क्या परमात्मा कहना? और मार्ग भी जो बदल जाए उसे क्या मार्ग कहना? और सत्य भी जो बदल जाए उसे क्या सत्य कहना? सत्य से अपेक्षा ही

यही है कि हम कितने ही भटकें और कहीं हों, जब भी हम पहुंचेंगे, वह वही होगा--एकरस, वैसा ही होगा--एकरस। हम कैसे भी हों, हम कहीं भी भटकें, जन्मों और जन्मों की यात्रा के बाद जब हम उस द्वार पर पहुंचेंगे, तो वह वही होगा--एकरस।

एकरसता, एक सा ही होना--इसमें दो-तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। वही हो सकता है एक सा जो पूर्ण हो। जो अपूर्ण हो वह एक सा नहीं हो सकता। क्योंकि अपूर्णता के भीतर गहरी वासना पूर्ण होने की बनी रहती है। वही तो परिवर्तन करवाती है। नदी कैसे एक जगह रुकी रहे? उसे सागर से मिलना है। भागती है। आदमी कैसे एक जगह रुका रहे? उसे न मालूम कितनी वासनाएं पूरी करनी हैं! न मालूम कितने सागर! मन कैसे एक सा बना रहे? उसे बहुत दौड़ना है, बहुत पाना है। एकरस तो वही हो सकता है, जिसे पाने को कुछ भी नहीं, पहुंचने को कोई जगह नहीं। वही जो पहुंच गया वहां, हो गया वही जिसके आगे और कोई होना नहीं है; या जो है सदा से वही।

ध्यान रहे, एकरस का अर्थ है पूर्ण। पूर्ण में दूसरा रस पैदा नहीं होता।

नसरुद्दीन के संबंध में एक मजाक बहुत जाहिर है। एक तारों वाला वाद्य उठा लाया था फकीर नसरुद्दीन। पर उस वाद्य की गर्दन पर एक ही जगह उंगली रख कर, और रगड़ता रहता था तारों को। पत्नी परेशान हुई। एक दिन, दो दिन, चार दिन, आठ दिन। उसने कहा, क्षमा करिए, यह कौन सा संगीत आप पैदा कर रहे हैं? मोहल्ले के लोग भी बेचैन और परेशान हो गए। आधी-आधी रात और वह एक ही तूं-तूं, एक ही बजती रहती थी।

आखिर सारे लोग इकट्ठे हो गए। कहा, नसरुद्दीन, अब बंद करो! बहुत देखे बजाने वाले, तुम भी एक नए बजाने वाले मालूम पड़ते हो! हमने बड़े-बड़े बजाने वाले देखे। आदमी हाथ को इधर-उधर भी सरकाता है, कुछ और आवाज भी निकालता है। यह क्या तूं-तूं तुम एक ही लगाए रखते हो; सिर पका जा रहा है। मोहल्ला छोड़ने का विचार कर रहे हैं। या तो तुम छोड़ दो, या हम! मगर इतना तो बता दो कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और यह एक ही आवाज? ऐसा तो हमने कोई संगीतज्ञ नहीं देखा।

नसरुद्दीन ने कहा कि वे लोग अभी ठीक स्थान खोज रहे हैं, मैं पहुंच गया हूं। नीचे-ऊपर हाथ फिरा कर ठीक जगह खोज रहे हैं कि कहां ठहर जाएं। हम पहुंच गए हैं। हम तो वही बजाएंगे। मंजिल आ गई।

यह मजाक था नसरुद्दीन का। लेकिन उस आदमी ने बड़े गहरे और कीमती मजाक किए हैं। अगर परमात्मा कोई स्वर बजाता होगा, तो एक ही होगा। हाथ उसका इधर-उधर न सरकता होगा। वहां कोई धारा न बहती होगी, वहां कोई परिवर्तन न होगा।

लाओत्से कहता है, एकरस नहीं है वह, जो हम बोल सकते हैं; जो आदमी उच्चारित कर सकता है, वह उसका नाम नहीं है।

अंतिम रूप से इस सूत्र में एक बात और समझ लें।

शब्द हो, नाम हो, सब मन से पैदा होते हैं। सारी सृष्टि मन की है। मन ही निर्मित करता और बनाता है। और मन अज्ञान है। मन को कुछ भी पता नहीं। लेकिन जो मन को पता नहीं है, मन उसको भी निर्मित करता है। निर्मित करके एक तृप्ति हमें मिलती है कि अब हमें पता है।

अगर मैं आपसे कहूं, आपको ईश्वर का कोई भी पता नहीं है, तो बड़ी बेचैनी पैदा होती है। लेकिन मैं आपसे कहूं कि अरे आपको बिल्कुल पता है, आप जो सुबह राम-राम जपते हैं, वही तो है ईश्वर का नाम, मन को राहत मिलती है। अगर मैं आपसे कहूं, नहीं, कोई उसका नाम नहीं, और जो भी नाम तुमने लिया है, ध्यान

रखना, उससे उसका कोई भी संबंध नहीं है, तो मन बड़ी बेचैनी में, वैक्यूम में, शून्य में छूट जाता है। उसे कोई सहारा नहीं मिलता खड़े होने को, पकड़ने को। और मन जल्दी ही सहारे खोजेगा। सहारा मिल जाए, तो फिर और आगे खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

मन सब्स्टीट्यूट देता है सत्य के, सत्य की परिपूरक व्यवस्था कर देता है। कहता है, यह रहा, इससे काम चल जाएगा। और जो मन पर रुक जाते हैं, वे उन पथों पर रुक जाएंगे जो आदमी के बनाए हुए हैं, उन शास्त्रों पर रुक जाएंगे जो आदमी के निर्मित, और उन नामों पर रुक जाएंगे जिनका परमात्मा से कोई भी संबंध नहीं है।

इस पहले ही छोटे से परम वचन में लाओत्से सारी संभावनाएं तोड़ देता है। सहारे, सारे सहारे, छीन लेता है। आदमी का मन जो भी कर सकता है, उसकी सारी की सारी पूर्व-भूमिका नष्ट कर देता है। सोचेंगे हम कि अगर ऐसा ही है, तो अब लाओत्से आगे लिखेगा क्या? कहेगा क्या? जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहेगा? जिस पथ पर विचरण नहीं हो सकता, उसका इशारा करेगा? जिस अविकारी को, जिस कालजयी को इंगित कर रहा है, शब्दों में उसे लाओत्से बांधेगा कैसे?

लाओत्से की पूरी प्रक्रिया निषेध की होगी। इसलिए निषेध के संबंध में कुछ बात समझ लें, ताकि आगे लाओत्से को समझना आसान हो जाए।

दो हैं रास्ते इस जगत में इशारा करने के। एक रास्ता है पाजिटिव, विधायक इंगित करने का। आप मुझसे पूछते हैं, क्या है यह? मैं नाम ले देता हूं--दीवार है, दरवाजा है, मकान है। विधायक अंगुली सीधा ही इशारा कर देती है, डायरेक्ट, यह रहा। आप पूछते थे, दरवाजा कहां है? यह है। आप पूछते थे, दीया कहां है? यह है।

लेकिन अंगुलियों से जिस तरफ इशारे किए जा सकते हैं, वे क्षुद्र ही हो सकती हैं चीजें। विराट की तरफ अंगुलियों से इशारे नहीं किए जा सकते। क्षुद्र की तरफ इशारा अंगुली से किया जा सकता है--यह। कोई पूछता है, परमात्मा कहां है? तो नहीं कहा जा सकता, यह है। परमात्मा की तरफ इशारे अंगुलियों से नहीं करने पड़ते; सब अंगुलियां बांध कर, मुट्ठी बंद करके करने पड़ते हैं कि यह है। जब मुट्ठी बांध कर कोई कहता है कि यह है, तो उसका मतलब है इशारा कहीं भी नहीं जा रहा है--नोव्हेयर गोइंग। किसी तरफ है, ऐसा नहीं कह सकते; क्योंकि सब तरफ है।

लेकिन वह आदमी तो इससे राजी न होगा। मुट्ठी बांध कर अगर मैं कहूं कि यह है, तो शायद समझेगा कि मुट्ठी है। तो मुझे कहना पड़ेगा, यह भी नहीं है, मुट्ठी भी नहीं है। और तब निषेध शुरू होगा। शायद वह आदमी पूछेगा, शायद आप समझे नहीं, मैं और अपने सवाल को सरल कर लूं। पूरब की तरफ है? तो मुझे कहना पड़ेगा, नहीं। जानते हुए कि पूरब भी उसी में है, कहना पड़ेगा, नहीं। क्योंकि अगर मैं कहूं पूरब की तरफ है, तो फिर दक्षिण का क्या होगा? उत्तर का क्या होगा? पश्चिम का क्या होगा? और जब हम कहते हैं, हां, पूरब की तरफ है, तो जाने-अनजाने हम कह जाते हैं कि पश्चिम की तरफ नहीं है। क्योंकि दिशाएं तो सिर्फ सीमित की सूचना देती हैं। शेष जो रह जाता है, उसको इनकार कर देती हैं।

तो दूसरा रास्ता है निषेध-इंगित का। उसमें जब कोई बताने चलता है, तो वह यह नहीं कहता, यह है। वह कहता है, यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है, नेति-नेति। नॉट दिस, नॉट दिस, नॉट दिस, वह कहता चला जाता है। बड़े धीरज की जरूरत है निषेध के मार्ग पर। क्योंकि जो-जो आप कहेंगे, यह है? वह कहेगा, नहीं है। जो-जो आप कहेंगे, यह है? वह कहेगा, नहीं है। और वह जगह आ जाएगी, जब पूछने को कुछ भी न रहेगा कि यह है? तब वह कहेगा, यही है।

जैसे आप कमरे में मुझसे पूछने चले और आपने टेबल पकड़ी और कुर्सी पकड़ी और दीवार पकड़ी। और मैं इनकार करता गया, इनकार करता गया। और कमरे की सब चीजें चुक गईं। और आपने मुझे पकड़ा, और मैंने इनकार किया। और आपने आपको पकड़ा, और मैंने इनकार किया। और इनकार करने को कुछ भी न बचा। तब लाओत्से कहेगा, यह है। लेकिन तब आपकी कठिनाई होगी; आप कहेंगे, अब तो सब इनकार कर दिया। अब?

असल में, जो इनकार करके भी इनकार नहीं किया जा सकता--वही है। जिसे हम इनकार कर दें और इनकार हो जाए, उसकी क्या सत्ता है! आदमी के हां कहने पर जिसका होना निर्भर है, आदमी के न कहने पर जिसका न होना निर्भर है, उसका भी कोई मूल्य है? आस्तिक कहता है, है; और सोचता है कि ईश्वर उसके है कहने से कुछ बलवान होता होगा। नास्तिक कहता है, नहीं है; और सोचता है कि शायद नहीं कहने से ईश्वर कमजोर होता होगा। और ऐसा नास्तिक ही नहीं सोचता; आस्तिक भी सोचता है कि किसी ने अगर कहा, नहीं है, तो बड़ा नुकसान पहुंचाता है। और ऐसा आस्तिक ही नहीं सोचता; नास्तिक भी सोचता है कि किसी ने कहा, है, तो जाओ खंडन करो कि नहीं है; क्योंकि बड़ा नुकसान पहुंचाता है। आदमी के हां और न कहने से... ।

एक बहुत पुरानी तिब्बतन कथा है कि एक छोटा सा मच्छर था। आदमी ने लिखी, इसलिए छोटा सा लिखा है। मच्छर बहुत बड़ा था, मच्छरों में बड़े से बड़ा मच्छर था। कहना चाहिए, मच्छरों में राजा था, सम्राट था। कोई मच्छर गोबर के टीले पर रहता था, कोई मच्छर वृक्ष के ऊपर रहता था, कोई मच्छर कहीं। राजा कहां रहे, बड़ी चिंता मच्छरों में फैली। फिर एक हाथी का कान खोजा गया। और मच्छरों ने कहा कि महल तो यही है आपके रहने के योग्य।

मच्छर जाकर दरवाजे पर खड़ा हुआ, हाथी के कान पर। महान विशालकाय दरवाजा था--हाथी-द्वार। मच्छर ने दरवाजे पर खड़े होकर कहा कि सुन ऐ हाथी, मैं मच्छरों का राजा, फलां-फलां मेरा नाम, आज से तुझ पर कृपा करता हूं, और तेरे कान को अपना निवास-स्थान बनाता हूं। जैसा कि रिवाज था, मच्छर ने तीन बार घोषणा की। क्योंकि यह उचित नहीं था कि किसी के भीतर निवास बनाया जाए और खबर न की जाए। हाथी खड़ा सुनता रहा। मच्छर ने सोचा, ठीक है--मौनं सम्मति लक्षणम्। वह सम्मति देता है, मौन है।

फिर मच्छर वर्षों तक रहता था, आता था, जाता था। उसके बच्चे, संतति और बड़ा विस्तार हुआ, बड़ा परिवार वहां रहने लगा। फिर भी जगह बहुत थी। मेहमान भी आते, और भी लोग रुकते। बहुत काफी था।

फिर और कोई जगह सम्राट के लिए खोज ली गई और मच्छरों ने कहा कि अब आप चलें, हम और बड़ा महल खोज लिए हैं। तो मच्छर ने फिर दरवाजे पर खड़े होकर कहा कि ऐ हाथी सुन, अब मच्छरों का सम्राट, फलां-फलां मेरा नाम है, अब मैं जा रहा हूं। हमने तुझ पर कृपा की। तेरे कान को महल बनाया।

कोई आवाज न आई। मच्छर ने सोचा, क्या अब भी मौन को सम्मति का लक्षण मानना पड़ेगा? अब भी? यह जरा दुखद मालूम पड़ा कि ठीक है, जाओ, कुछ मतलब नहीं। वह हां भी नहीं भर रहा है, न भी नहीं भर रहा है। उसने और जोर से चिल्ला कर कहा, लेकिन फिर भी कुछ पता न चला। उसने और जोर से चिल्ला कर कहा। हाथी को धीमी सी आवाज सुनाई पड़ी कि कुछ... । हाथी ने गौर से सुना, तो सुनाई पड़ा कि एक मच्छर कह रहा है कि मैं सम्राट मच्छरों का, मैं जा रहा हूं, तुझ पर मेरी कृपा थी, इतने दिन तेरे कान में निवास किया। क्या तुझे मेरी आवाज सुनाई नहीं पड़ती है?

हाथी ने कहा, महानुभाव, आप कब आए, मुझे पता नहीं। आप कितने दिन से रह रहे हैं, मुझे पता नहीं। आप आइए, रहिए, जाइए, जो आपको करना हो, करिए। मुझे कुछ भी पता नहीं है।

तिब्बतन फकीर इस कथा को किसी अर्थ से कहते हैं। आदमी आता है। दर्शन, फिलासफी, धर्म, मार्ग, पथ, सत्य, सिद्धांत, शब्द निर्मित करता है। चिल्ला-चिल्ला कर कहता है इस अस्तित्व के चारों तरफ कि सुनो, राम है उसका नाम! कि सुनो, कृष्ण है उसका नाम! आकाश चुप है। उस अनंत को कहीं कोई खबर नहीं मिलती। हाथी ने तो मच्छर को आखिरी में सुन भी लिया, क्योंकि हाथी और मच्छर में कितना ही फर्क हो, कोई क्वालिटेटिव फर्क नहीं है। क्वांटिटी का फर्क है; मात्रा ही का फर्क है। हाथी जरा बड़ा मच्छर है, मच्छर जरा छोटा हाथी है। कोई ऐसा गुणात्मक भेद नहीं है कि दोनों के बीच चर्चा न हो सके। हो सकती है, थोड़ी कठिनाई पड़ेगी। मच्छर को बहुत जोर से बोलना पड़ेगा, हाथी को बहुत गौर से सुनना पड़ेगा। लेकिन घटना घट सकती है, असंभव नहीं है।

लेकिन अस्तित्व और मनुष्य के मन के बीच कोई इतना भी संबंध नहीं है। न हम आते हैं, तब उसे पता चलता है कि हमने बैंड-बाजे बजा कर घोषणा कर दी है कि मेरा जन्म हो रहा है। न हम मरते हैं, तब उसे पता चलता है। हम आते हैं और चले जाते हैं। पानी पर खींची रेखा की भांति बनते हैं और मिट जाते हैं। लेकिन इस थोड़ी सी देर में, जब कि रेखा बनने और मिटने के बीच में थोड़ी देर बचती है, उतनी थोड़ी देर में हम न मालूम कितने शब्द निर्मित करते हैं। उस बीच हम न मालूम कितने सिद्धांत निर्मित करते हैं। उस बीच हम न मालूम कितने शास्त्र बनाते हैं, संप्रदाय बनाते हैं। उस बीच हम मन का पूरा जाल फैला देते हैं।

लाओत्से उस जाल को काटेगा। नेति-नेति उसके कहने का ढंग है। असल में, जिनको परम के संबंध में कुछ कहना हो, परम के संबंध में कुछ कहना हो, तो उन्हें कहना ही पड़ेगा कि उस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। और फिर कहने की कोशिश करनी पड़ेगी। और वह कोशिश यही होगी कि यह नहीं है, यह नहीं है। वह पथ, जिस पर विचरण किया जा सके, नहीं, वह नहीं है। वह शब्द, जिसका स्मरण किया जा सके, नहीं, वह नहीं है।

और आप भाषा की भूल में मत पड़ जाना। क्योंकि जिसका स्मरण किया जा सके, वही है नाम; और तो कोई नाम हम बोल नहीं सकते। और जिस पर विचरण किया जा सके, उसी को तो हम पथ कहते हैं; और किसी पथ को तो हम जानते नहीं हैं। अगर इसको बिल्कुल ठीक, ठीक से रख दिया जाए, तो बहुत हैरानी होगी। वह हैरानी यह होगी कि अगर इसको ऐसा कहा जाएः जो भी पथ है, वह पथ नहीं; जो भी नाम है, वह नाम नहीं; तो आपकी समझ में... । सीधा अर्थ इतना ही हैः दैट व्हिच इ.ज ए वे इ.ज नॉट ए वे एट ऑल, दैट व्हिच इ.ज ए नेम इ.ज नॉट ए नेम एट ऑल!

यही कह रहा है वह। वह यही कह रहा है, पहुंचना हो तो पथ से बचना, नहीं तो भटक जाओगे। और जानना हो उसे, पुकारना हो उसे, तो नाम भर मत लेना, नहीं तो चूक जाओगे। और उसके संबंध में इंच भर की चूक अनंत चूक है। कोई इंच भर की चूक छोटी चूक नहीं है; बड़ी से बड़ी चूक है, हो गई।

मारपा के सामने एक युवक आकर बैठा है। वह तीन वर्ष से मारपा के पास है। और मारपा से कह रहा है, रास्ता बताइए। कुछ उसका पता-ठिकाना बताइए। कुछ नाम हो तो बोलिए। और जब भी वह कहता है कि कुछ उसका पता-ठिकाना बताइए, तभी अगर मारपा बोलता भी है, तो एकदम चुप हो जाता है। वैसे बोलता रहता है। और जब भी वह युवक कहता है, कुछ पता-ठिकाना बताइए, अभी तो आप बोल ही रहे हैं, थोड़ा उसका भी, कि वह एकदम आंख बंद करके चुप हो जाता है। अगर मारपा का शिष्य पूछता है कि कोई तो रास्ता बताइए, तो वह चल भी रहा हो रास्ते पर तो एकदम खड़ा हो जाता है।

तीन साल में परेशान हो गया। उसने कहा कि हद्द हो गई। वैसे आप थोड़ा चलते भी हैं, और जब भी मैं रास्ते की बात उठाता हूं कि एकदम ठहर जाते हैं। वैसे आप बोलते हैं, कोई एतराज आपको बोलने में नहीं है, लेकिन जैसे ही मैं उसकी खबर पूछता हूं कि आप आंख बंद करके ओंठ सी लेते हैं। और मैं उसी के लिए आया हूं। न तो आपका बाकी चलना मुझे कोई प्रयोजन है, और न आपकी बाकी बातों से मुझे कोई मतलब है। लेकिन मारपा तो आंख ही बंद करके बैठ जाता है जब ऐसी बात छिड़ती है।

आखिर एक दिन उस युवक ने कहा, अब मैं जाऊं?

मारपा ने पूछा, तुम आए ही कब थे? तीन साल से तुम दरवाजे के बाहर ही घूम रहे हो। आते कहां भीतर? जाने की आज्ञा किससे लेते हो? मैंने एक क्षण को नहीं जाना कि तुम भीतर आए। कई बार मैं द्वार खोल कर खड़ा हो गया। कई बार रुक गया कि शायद मैं चलता हूं, इसलिए तुम प्रवेश न कर पाते होओ। तो मैं खड़ा हो गया। जब भी तुमने सवाल पूछा, मैंने तुम्हें जवाब दिया है।

उस युवक ने कहा, हद्द हो गई। यही तो बेचैनी है कि जब भी मैंने सवाल पूछा, आप चुप रह गए हैं। ऐसे आप बोलते रहते हैं। यह भी इल्जाम मुझ पर आप लगा रहे हैं? इसीलिए तो मैं जाता हूं छोड़ कर तुम्हें कि जब भी मैंने पूछा, आप चुप रह गए हैं।

मारपा ने कहा, वही था जवाब। काश, तुम भी उस वक्त चुप रह जाते! काश, जब मैं चलते-चलते ठहर गया था, तुम भी ठहर जाते! तो मिलन हो जाता हमारा।

बताना है उसके संबंध में, तो मौन होना पड़ता है। चलाना है उसके संबंध में किसी को, तो खड़े हो जाना पड़ता है। उलटी दिखती हैं बातें, लेकिन ऐसा ही है। लाओत्से एक-एक कदम एक-एक चीज को गिराता चलेगा। उस जगह ले जाएगा आपको, जहां कुछ भी न बचे गिराने को। आप भी न बचें! खालीपन रह जाए।

और खालीपन ही निर्विकार है। ध्यान रखें, जहां कुछ भी आया, वहीं विकार आ जाता है। शून्य के अतिरिक्त और कोई पवित्रता नहीं है। शून्य के अतिरिक्त और कोई निर्दोष, इनोसेंट स्थिति नहीं है। जरा सा कंपन एक विचार का, कि नरक के द्वार खुल जाते हैं। जरा सा एक रेखा का खिंच जाना मन में, और संसार निर्मित हो जाता है। जरा सी वासना की कौंध, और अनंत जन्मों का चक्कर शुरू हो जाता है। शून्य, बिल्कुल शून्य; नहीं है कोई आकार उठता भीतर, नहीं कोई शब्द, नहीं कोई नाम, नहीं कोई मार्ग, नहीं कोई मंजिल, न कहीं जाना है, न कुछ पहुंचना है, न कुछ पाना है। ऐसी जब कोई स्थिति बनती है, तब ताओ प्रकट होता है। तब मार्ग प्रकट होता है। तब वह नाम सुना जाता है। तब वह अविकारी और सनातन नियम बोध में आता है। वह नियम, अराजकता जिसके विपरीत नहीं है; वह नियम, जो अराजकता को भी अपने गर्भ में समाए हुए है।

किसी को भी पूछना हो सवाल तो पूछ लें। और कोई भी सवाल, क्योंकि सब सवाल एक से हैं। कुछ भी पूछ लें।

एक मित्र पूछते हैं कि विचार चलते हैं और पीछे ऐसा भी लगता है कि थोड़ा निर्विचार हुआ और चारों तरफ विचार चलते रहते हैं और केंद्र पर कहीं कोई निर्विचार का भी ख्याल होता है, और वह स्थिति जब कि सब विचार बंद हो जाते हैं, इन दोनों की बात पूछते हैं।

जब तक विचार चलते हैं, तब तक निर्विचार का ख्याल सिर्फ एक विचार है। जब तक विचार चलते हैं, तब तक निर्विचार का ख्याल सिर्फ एक विचार है। वह भी एक विचार है कि मैं निर्विचार हूं; और इधर विचार

चल रहे हैं, और मैं निर्विचार हूं। क्योंकि मैं निर्विचार हूं, इसकी स्थिति तो तभी स्मरण में आएगी, जब विचार नहीं चल रहे होंगे। और मजे की बात यह है कि यह जब स्थिति बनेगी, तब यह ख्याल भी नहीं रहेगा कि मैं निर्विचार हूं। क्योंकि निर्विचार होने का ख्याल एक विचार मात्र है।

जैसे एक आदमी जब पूर्ण स्वस्थ होता है, तो यह भी पता नहीं रहता कि मैं स्वस्थ हूं। इस बात का पता कि मैं स्वस्थ हूं, बीमारी की खबर देता है। इसलिए अक्सर बीमार आदमी स्वास्थ्य की बात करते हुए देखे जाते हैं--स्वस्थ आदमी नहीं, बीमार आदमी। बीमारी बनी रहे किसी कोने पर, तो स्वास्थ्य का बोध बन सकता है। और कई दफा स्वास्थ्य का ख्याल एक नई तरह की बीमारी ही सिद्ध होती है। अगर कोई आदमी स्वास्थ्य के प्रति बहुत सचेतन हो गया, तो रुग्ण हो जाता है। यह रोग है एक।

तो ऐसी घटना घटती है, जब कि आप मन से सोच-सोच कर, सुन-सुन कर, समझ-समझ कर यह आकांक्षा मन में बना लेते हैं कि निर्विचार हो जाऊं। क्योंकि सुना कि पवित्र है वही, सुना कि परम आनंद है वही, सुना कि वहीं है समाधि का सुख, सुना कि सब फीका पड़ जाता है, वहीं है आनंद, तो फिर आकांक्षा बनती है, वासना बनती है कि मैं निर्विचार हो जाऊं।

अब ध्यान रखें, निर्विचार होने को कभी वासना नहीं बनाया जा सकता। पर बनती है।

असल में मन की तरकीब ही यही है कि आप कुछ भी कहो, वह उसको वासना में निर्मित कर देता है। वह कहता है, मोक्ष चाहिए? मोक्ष में बड़ा आनंद है, मोक्ष चाहिए? मोक्ष की कोशिश करो, खोजो, मिल जाएगा। अब मोक्ष की खोज शुरू हो गई। और जिस मोक्ष को मन खोजता है, वह मोक्ष नहीं है। असल में, जहां मन नहीं होता, वहां मोक्ष है। इसलिए मन का खोजा हुआ मोक्ष तो मोक्ष नहीं हो सकता। निर्विचार की बात सुनते-सुनते मन में बैठ जाता है, निर्विचार होना चाहिए।

ध्यान रखें, निर्विचार होना चाहिए, यह एक विचार है। यह लाओत्से को सुन कर आ गया हो ख्याल में, यह मुझे सुन कर ख्याल में आ जाए, किसी और को सुन कर ख्याल में आ जाए, किसी किताब से पढ़ लें और यह ख्याल में आ जाए कि निर्विचार होना चाहिए। पर यह आपके पास क्या है--निर्विचार होना? यह एक विचार है। सिर्फ निर्विचार होना है, इसलिए विचार नहीं है, इस भूल में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। दिस इ.ज ए मोड ऑफ थॉट, टु बी थॉटलेस। यह एक प्रकार हुआ विचार का।

अब अगर इस विचार पर आप जिद्द देकर पड़ जाएं, तो मन आपको दूसरा धोखा देगा। वह कहेगा कि देखो, भीतर तो निर्विचार है, आस-पास विचार घूम रहे हैं; आर-पार चल रहे हैं विचार, मैं तो बाहर खड़ा हुआ हूं।

लेकिन मैं जो बाहर खड़ा हुआ हूं, यह क्या है? इ.ज इट मोर दैन ए थॉट? यह जो मैं बाहर खड़ा हूं, यह क्या है? यह एक विचार है।

पर इससे भी थोड़ा सुख मिलेगा, थोड़ी शांति मिलेगी। वह शांति नहीं, जो कालजयी है; वह शांति नहीं, जिसका कोई नाम नहीं है। न, इससे एक शांति मिलेगी, जो कि मन को सदा मिलती है, जब भी वह अपनी किसी वासना को पूरा कर लेता है। यह एक वासना थी मन में कि निर्विचार हो जाऊं। अब यह विचार बीच में खड़ा हो गया कि मैं निर्विचार हूं। मन को बड़ी तृप्ति मिलती है कि देखो, मैं निर्विचार भी हो गया।

और मन बड़ा कुशल है। एक छोटे से कोने में एक विचार को खड़ा कर देगा कि मैं निर्विचार हूं, और चारों तरफ विचार घूमते रहेंगे। और चारों तरफ कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि भीतर जहां मैं कह रहा हूं कि मैं निर्विचार हूं, वहां भी विचार अभी खड़ा हुआ है। वहां भी विचार मौजूद है। हां, ज्यादा से ज्यादा यह हो सकता

है कि वहां जरा एक थिर विचार खड़ा है, बाकी विचार चल रहे हैं। बाकी विचार चल रहे हैं--दूकान है, बाजार है, काम है, धंधा है--वे चारों तरफ चल रहे हैं। और यह एक विचार, कि मैं निर्विचार हूं, खड़ा हो गया है बीच में।

लेकिन अगर इसको भी बहुत गौर से देखेंगे तो यह भी पूरा खड़ा हुआ नहीं मिलेगा, क्योंकि कोई विचार पूरा खड़ा हुआ नहीं हो सकता। यह भी दीए की लौ की भांति नीचा-ऊंचा होता रहेगा। एक क्षण को लगेगा, हूं; एक क्षण को लगेगा, नहीं हूं। एक क्षण को लगेगा कि अरे, ये तो विचार भीतर घुस गए! एक क्षण को लगेगा, मैं फिर बाहर हूं। एक क्षण को लगेगा, मैं फिर खो गया। यह बस ऐसा ही होता रहेगा। यह, क्योंकि कोई भी विचार परिवर्तन के बाहर नहीं हो सकता--यह विचार भी नहीं कि मैं निर्विचार हूं--यह भी डोलता रहेगा, फ्लक्चुएटिंग, नीचा-ऊंचा, इधर-उधर पूरे वक्त होता रहेगा। क्षण भर को ऐसा लगेगा कि हूं, और लगा नहीं कि गया।

नहीं, ताओ ऐसी स्थिति की बात नहीं है। ऋत और बात है। नहीं, विचार तो हैं ही नहीं चारों तरफ, यह विचार भी नहीं है कि मैं निर्विचार हूं। कोई भी नहीं बचा जो कह सके, मैं निर्विचार हूं। भीतर कोई है ही नहीं, निपट सन्नाटा है। चुप्पी के सिवाय कुछ भी नहीं है। यह जानने वाला भी नहीं है, खड़े होकर जो कह दे कि देखो, मैं बिल्कुल चुप हूं। इतना भी अगर मौजूद है, तो जानना, मन आखिरी धोखा दे रहा है--दि लास्ट डिसेप्शन! और इसी धोखे में आए कि मन फौरन आपको वापस पूरे चक्कर में खड़ा कर देगा एक सेकेंड में। अगर आप इस ख्याल में आ गए कि अरे, हो गया निर्विचार, आप वापस पहुंच गए गहनतम नर्क में।

यह एक विचार करीब-करीब ऐसे ही काम करता है, जैसा बच्चे लूडो का खेल खेलते हैं। चढ़ते हैं, बड़ी मुश्किल लगाते हैं, नसेनियां, सीढ़ियां, और फिर एक सांप के मुंह पर पड़ते हैं और सरक कर नीचे सांप की पूंछ पर आ जाते हैं। अगर एक भी विचार का ख्याल आ गया, मैं निर्विचार हूं, यह भी ख्याल आ गया, तो सांप के मुंह में पड़े आप। आप नीचे उतर जाएंगे; वे सब सीढ़ियां जो चढ़े थे, वे सब बेकार हो गई हैं।

इसलिए बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मैं नहीं जानता। कौन खड़ा है आपके सामने, मुझे खुद ही पता नहीं।

किसी ने बाद में बोधिधर्म को कहा कि वू बहुत दुखी और पीड़ित हुआ है। सम्राट बहुत अपमानित हुआ है। आपने इस तरह के जवाब दिए! सम्राट को ऐसे जवाब नहीं देने थे। आपने कह दिया कि मुझे पता ही नहीं कौन है।

बोधिधर्म ने कहा कि तुम सम्राट की बात कर रहे हो! सम्राट की वजह से, कि यह बेचारा इतनी दूर आया, मैंने इतना भी जवाब दिया। अन्यथा इतना जवाब भी गलत था। वह भी नहीं है मेरे भीतर जो कह सके कि मुझे पता नहीं कौन है। यह तो सिर्फ उसकी वजह से कि वह और ही हैरान हो जाएगा इसलिए उसको मैंने कह दिया। बट डोंट मिसअंडरस्टैंड मी, बोधिधर्म ने कहा, मुझे गलत मत समझना। इतना भी मेरे भीतर नहीं है कोई जो कहे कि मुझे पता नहीं है। यह सिर्फ सम्राट इतनी दूर से चल कर आया था, वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था मेरी। जैसे कोई बच्चा आ जाए और हम उसे खिलौना पकड़ा दें, ऐसा मैंने उसे एक खिलौना दिया है।

जब तक विचार चल रहे हैं चारों तरफ, तब तक जानना कि आप भी एक विचार हो--यू आर ए थॉट। जब कुछ भी न रह जाए, यह पता करने वाला भी न रह जाए, कुछ रह ही न जाए... ।

और जरा भी कठिनाई नहीं है, जरा भी कठिनाई नहीं है। यह हमें दिक्कत की बात मालूम पड़ती है। और बुद्ध को समझने में इस देश में जो बड़ी से बड़ी कठिनाई हुई, वह यही थी। और चीन में बुद्ध को समझने में

आसानी पड़ी, उसका कारण यह लाओत्से था, और कोई नहीं। चीन में बुद्ध समझे जा सके लाओत्से की वजह से। लाओत्से बुद्ध के पहले वह सब कह चुका था। तो जब बुद्ध की बात पहुंची चीन में और बुद्ध का शब्द लोगों ने सुना कि आत्मा भी नहीं है, तो लोग समझ पाए। लाओत्से की एक भूमिका थी, जो कह रहा था, कुछ भी नहीं है।

भारत में बड़ी कठिनाई हो गई। हम यह बात मानने को तैयार हैं, विचार समाप्त हो जाए, बहुत अच्छा; लेकिन मैं तो रहूं। मोक्ष मिले, बिल्कुल ठीक; लेकिन मैं रहूं। मुझे तो बचना ही चाहिए। तो जब बुद्ध ने इस देश में कहा, अनत्ता, अनात्मा। कहा कि नहीं, आत्मा भी नहीं है, क्योंकि यह भी एक विचार है।

इसे समझें थोड़ा। मैं आत्मा हूं, यह भी एक विचार है। और निश्चित ही वह जगह है, जहां यह विचार भी नहीं होता। और वहीं आत्मा है। यह उलटा दिखता है। यह विचार भी जहां नहीं होता कि मैं आत्मा हूं, वहीं आत्मा है। लेकिन वह तो प्रकट हो जाएगी। आप काटते चले जाएं, काटते चले जाएं, आखिर में खुद कट जाएं। करीब-करीब ऐसा करना पड़ता है जैसे दीया जलता है, आग जलती है, लौ जलती है। लौ पहले तेल को जलाती रहती है। फिर तेल चुक जाता है। फिर लौ बाती को जलाने लगती है। फिर बाती चुक जाती है। फिर पता है, लौ का क्या होता है? लौ खो जाती है। लौ पहले तेल को जला देती है, फिर बाती को जला देती है, फिर स्वयं को जला लेती है।

विचार को छोड़ दें, विचार काट डालें। फिर स्वयं को भी छोड़ दें। फिर विचारों को काट डाला, स्वयं को भी छोड़ दिया, यह भी छोड़ दें। तब कुछ नहीं बचता। एक निर्विकार भाव-अवस्था, एक निर्विकार अस्तित्व, एक मौन-शांत सत्ता, एक्झिस्टेंस शेष रह जाता है, जहां मैं का भंवर नहीं बनता।

पानी में भंवर बनते देखे होंगे। जोर चक्कर से भंवर बनता है। और भंवर की एक खूबी होती है, आप कुछ भी डाल दो तो वह भंवर उसको फौरन खींच कर घुमाने लगता है। मैं एक भंवर है। जिसमें आप कुछ भी डालें, वह किसी भी चीज को पकड़ कर घुमाने लगेगा।

इस निर्विचार, निरहंकार स्थिति में कोई भंवर नहीं रह जाता, कोई घूमने की स्थिति नहीं रह जाती। और तब, तब ताओ का अनुभव है, तब धर्म का, या बुद्ध जिसे धम्म कहते थे, नियम का, ऋषि जिसे ऋत कहते रहे हैं, महावीर जिसे कैवल्य कहते हैं। कैवल्य का अर्थ है, कुछ भी न बचा, केवल होना ही बचा; कोई उपाधि न रही, कोई विशेषण न रहा; सिर्फ अस्तित्व रह गया। मात्र होना, जस्ट बीइंग! जैसे कोई एक गहन गड्ढ में झांके, या जैसे कोई खुले आकाश में झांके--न कोई बादल, न कोई तारे, खाली आकाश रह गया। ऐसा ही जब भीतर रह जाता है, झांकने वाला भी नहीं रह जाता, सिर्फ खालीपन रह जाता है, तब पता चलता है उसका, उस पथ का, जिस पर विचरण संभव नहीं है, उस पथ का, जो अविकारी है। और तब पता चलता है उस सत्य का, जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, जो कालजयी है, जो कालातीत है, जो सदा एकरस है, जो केवल स्वयं है।

जीसस के एक भक्त ने, तरतूलियन ने... तरतूलियन से कोई पूछता है कि जीसस के संबंध में कुछ समझाओ, कुछ हमें उदाहरण दो जिससे पता चले कि जीसस कैसे थे। तो तरतूलियन कहता है कि मत मुझसे गलती करवाओ। जीसस बस बिल्कुल अपने ही जैसे थे--जस्ट लाइक हिमसेल्फ। बस अपने ही जैसे; और किसी से कोई तुलना नहीं हो सकती।

क्या होगा वहां? उस ताओ की दशा में, उस ऋत में डूब कर क्या होगा? कैसे होंगे हम? क्या होगा हमारा रूप? क्या होगी आकृति? क्या होगा नाम? कोई बचेगा जानने वाला? नहीं बचेगा? क्या होगा?

कोई तुलना नहीं हो सकती, कुछ कहा भी नहीं जा सकता। इशारे सब नकारात्मक हैं। इतना कहा जा सकता है, आप नहीं होंगे। आप बिल्कुल नहीं होंगे। और जो होगा, उसे आपने अपने भीतर कभी नहीं जाना है। इतना कहा जा सकता है, कोई विचार न होगा, यह विचार भी नहीं कि मैं निर्विचार हूं। फिर भी होगी चेतना, लेकिन ऐसी, जिसे आपने कभी नहीं जानी है।

और उसके पहले मन सब तरह की वंचनाएं खड़ी करने में समर्थ है। इसलिए सजग रहना जरूरी है। मन इतना कुशल है, इतना सूक्ष्म रूप से चालाक और कुशल है कि सब धोखे खड़े करने में समर्थ है। कामवासना से भरे चित्त को ब्रह्मचर्य का धोखा दे सकता है। परिपूर्ण स्वयं के प्रति अज्ञानी को आत्मज्ञानी का धोखा दे सकता है। जिसे कुछ भी पता नहीं है, उसे ख्याल दिला सकता है कि उसे सब पता है। जो नहीं मिला है, उसकी भी खबर दे सकता है कि मिल गया है। इसलिए मन की डिसेप्टिविटी, उसकी जो प्रवंचकता है, उसके सब रूप ठीक से समझ लेने जरूरी हैं।

हुआंग पो के सामने एक युवक आया है और कह रहा है कि मैं शांत हो गया हूं। हुआंग पो पूछता है, फिर तुम यहां किसलिए आए हो? अगर तुम शांत हो गए हो, तो तुम यहां किसलिए आए हो? जाओ! क्योंकि मैं तो सिर्फ अशांत लोगों का इलाज करता हूं। युवक न तो जा सकता है, क्योंकि देखता है, हुआंग पो किसी और ही ढंग से शांत मालूम होता है। कहता है, नहीं, कुछ दिन तो रुकने की आज्ञा दें।

हुआंग पो कहता है, शांत लोगों के लिए रुकने की कोई भी आज्ञा नहीं है। जरा सोच कर बाहर से फिर आओ। अशांत तो नहीं हो? क्योंकि मैं नहीं सोचता हूं, हुआंग पो कहता है, कि तुम दो सौ मील पैदल चल कर मुझे बताने सिर्फ यह आओगे कि मैं शांत हूं। दो सौ मील पैदल चल कर मुझे यह बताने आओगे कि मैं शांत हूं! और अगर इसके लिए आए हो, तो बात खतम हो गई। धन्यवाद! परमात्मा करे कि तुम सच में ही शांत होओ। लेकिन एक दफा बाहर जाकर फिर सोच आओ।

युवक बाहर जाता है। और तभी हुआंग पो कहता है, अब बाहर जाने की कोई जरूरत नहीं, लौट आओ। क्योंकि अगर अभी इतनी भी अशांति बाकी है कि सोचना है कि शांत हूं या नहीं, वापस आ जाओ। तुम्हारी झिझक ने सब कुछ कह दिया है। तुम सोचने जा रहे हो बाहर कि मैं शांत हूं या नहीं, यह काफी अशांति है। हुआंग पो कहता है, रुको! हुआंग पो कहता है, व्हेयरएवर देयर इ.ज च्वॉइस--जहां भी चुनाव है, वहीं अशांति है। अभी तुम चुनने जा रहे हो कि शांत हूं कि अशांत हूं? तुम पर्याप्त अशांत हो। बैठो! मैं तुम्हारे काम पड़ सकता हूं। लेकिन तभी, जब तुम अपने मन की धोखे देने की कुशलता को समझ जाओ।

तुम अशांत हो और मन तुम्हें धोखा दे रहा है कि तुम शांत हो। तुम्हें कुछ पता नहीं है और तुम कहते हो, मुझे मालूम है कि भीतर आत्मा है। तुम्हें कुछ पता नहीं और तुम कहते हो, यह सारा संसार परमात्मा ने बनाया है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं है और तुम कहते हो कि आत्मा अमर है। मन के इस धोखे में जो पड़ेगा, वह फिर उसे न जान पाएगा जो जानने जैसा है। और उसे न जान पाए, इसलिए मन ये सारे धोखे निर्मित करता है।

तो जब तक तुम्हें पता चलता हो कि विचार चल रहा है और मुझे पता चल रहा है कि विचार चल रहा है, तब तक तुम जानना कि मन ने अपने दो हिस्से किएः एक हिस्सा विचार चलाने वाला, और एक हिस्सा एक विचार का कि मैं विचार नहीं हूं, मैं निर्विचार हूं। यह मन का ही द्वैत है।

सच तो यह है कि मन के बाहर द्वैत होता ही नहीं। मन के बाहर अद्वैत हो जाता है। और अद्वैत का कोई बोध नहीं होता, ऐसा बोध नहीं होता कि तुम कह सको, ऐसा है। ज्यादा से ज्यादा तुम इतना ही कह सकोगे, ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है, ऐसा नहीं है।

आज इतना, कल फिर हम बैठें। और आप सब पूछ सकते हैं।

दूसरा प्रवचन

रहस्यमय परम स्रोत--ताओ

Chapter 1 : Sutra 2

(Conceived of as) having no name,
it is the originator of heaven and earth;
the named is the mother of all things.

अध्याय 1 : सूत्र 2

वह अनाम ही पृथ्वी और स्वर्ग का जनक है।
वह नामधारी ही सभी पदार्थों की जननी है।

अस्तित्व है अनाम।
नाम देते ही वस्तु का जन्म होता है।

जब तक नाम नहीं दिया, तब तक प्रत्येक वस्तु असीम अस्तित्व का अंग होती है। जैसे ही नाम दिया, टूट जाती है, अलग और पृथक हो जाती है। नाम पृथकता की सीमा-रेखा है। नाम का अर्थ है पृथक करना। जब तक नाम नहीं दिया, तब तक सब एक है। जैसे ही नाम दिया, चीजें टूट जाती हैं और अलग हो जाती हैं।

लाओत्से कहता है, वह अनाम स्वर्ग और नर्क का जन्मदाता है, मूल स्रोत है। और यह नाम, या नामी समस्त वस्तुओं की जननी है।

पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि यदि मनुष्य पृथ्वी पर न हो, तो चीजों में कोई भी फर्क न होगा। गुलाब के फूल में और गुलाब के कांटे में भेद न होगा। भेद है भी नहीं। गुलाब का कांटा गुलाब के फूल से ऐसा जुड़ा है, जैसा आपके हृदय से आपकी आंखें जुड़ी हैं। जमीन में और आसमान में भी कोई भेद न होगा। वह जगह बतानी कठिन है, जहां जमीन समाप्त होती है और आसमान शुरू होता है। वे संयुक्त हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। यह समुद्र कहां शुरू होता है और जमीन कहां शुरू होती है, बताना मुश्किल है--आदमी न हो तो। तो समुद्र के भीतर जमीन का फैलाव है और समुद्र का फैलाव जमीन के भीतर है। इसीलिए तो कहीं भी खोदते हैं कुआं तो पानी निकल आता है। सागर में भी गहरे उतरें तो जमीन मिल जाएगी। सागर में पानी थोड़ा ज्यादा और मिट्टी थोड़ी कम है; और मिट्टी में थोड़ा पानी कम और मिट्टी ज्यादा है। बाकी बिना मिट्टी के पानी नहीं हो सकता; और बिना पानी के मिट्टी नहीं हो सकती है।

आदमी को हम अलग कर दें तो चीजों में कोई भेद नहीं है, सब चीजें जुड़ी हुई और एक हैं। आदमी के आते ही चीजें अलग-अलग हो जाती हैं। होती नहीं, आदमी को अलग-अलग दिखाई पड़ने लगती हैं। अगर मैं आपको देखता हूं, तो आपके हाथ मुझे अलग मालूम पड़ते हैं, आपकी आंख मुझे अलग मालूम पड़ती हैं, आपके

कान अलग मालूम पड़ते हैं, आपके पैर अलग मालूम पड़ते हैं। लेकिन आपके भीतर, आपके अस्तित्व में कहीं भी तो कोई भेद नहीं है। आंख और कान और हाथ और पैर, सब संयुक्त हैं, एक ही चीज का फैलाव हैं। हाथ के भीतर बहने वाली ऊर्जा और शक्ति आंख के भीतर देखने वाली ऊर्जा और शक्ति से अलग नहीं है। हाथ ही आंख से देखता है; आंख ही हाथ से छूती है। आपके भीतर, आपके अस्तित्व में जरा भी फासला नहीं है। लेकिन बाहर से देखने पर, नाम दिए जाने पर, फासला शुरू हो जाता है। कहा आंख, और आंख कान से अलग हो गई। कहा हाथ, और हाथ पैर से अलग हो गए। दिया नाम, कि हमने सीमा खींची और चीजों को पृथक किया।

लाओत्से कहता है, वह अनाम--दि नेमलेस--जब तक हम उसे नाम न दें, तब तक वह समस्त अस्तित्व का स्रोत है। और अस्तित्व को दो नाम दिए हैं लाओत्से नेः स्वर्ग का और नर्क का, स्वर्ग का और पृथ्वी का।

मनुष्य के अनुभव में, प्रतीति में सुख और दुख दो अनुभूतियां हैं--गहरी से गहरी। अस्तित्व का जो अनुभव है, अगर हम नाम को छोड़ दें, तो या तो सुख की भांति होता है या दुख की भांति होता है। और सुख और दुख भी दो चीजें नहीं हैं। अगर हम नाम बिल्कुल छोड़ दें, तो सुख दुख का हिस्सा मालूम होगा और दुख सुख का हिस्सा मालूम होगा। लेकिन हम हर चीज को नाम देकर चलते हैं। मेरे भीतर सुख की प्रतीति हो रही हो, अगर मैं यह न कहूं कि यह सुख है, तो हर सुख की प्रतीति की अपनी पीड़ा होती है। यह थोड़ा कठिन होगा समझना। हर सुख की प्रतीति की अपनी पीड़ा होती है। प्रेम की भी अपनी पीड़ा है। सुख का भी अपना दंश है, सुख की भी अपनी चुभन है, सुख का भी अपना कांटा है--अगर नाम न दें। अगर नाम दे दें, तो हम सुख को अलग कर लेते हैं, दुख को अलग कर देते हैं। फिर सुख में जो दुख होता है, उसे भुला देते हैं--मान कर कि वह सुख का हिस्सा नहीं है। और दुख में जो सुख होता है, उसे भुला देते हैं--मान कर कि वह दुख का हिस्सा नहीं है। क्योंकि हमारे शब्द में दुख में सुख कहीं भी नहीं समाता; और हमारे शब्द सुख में दुख कहीं भी नहीं समाता।

आज ही मैं किसी से बात करता था कि यदि हम अनुभव में उतरें, तो प्रेम और घृणा में अंतर करना बहुत मुश्किल है। शब्द में तो साफ अंतर है। इससे बड़ा अंतर और क्या होगा? कहां प्रेम, कहां घृणा! और जो लोग प्रेम की परिभाषाएं करेंगे, वे कहेंगे, प्रेम वहीं है जहां घृणा नहीं है, और घृणा वहीं है जहां प्रेम नहीं है। लेकिन जीवंत अनुभव में प्रवेश करें, तो घृणा प्रेम में बदल जाती है, प्रेम घृणा में बदल जाता है। असल में, ऐसा कोई भी प्रेम नहीं है, जिसे हमने जाना है, जिसमें घृणा का हिस्सा मौजूद न रहता हो। इसलिए जिसे भी हम प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। लेकिन शब्द में कठिनाई है। शब्द में, प्रेम में सिर्फ प्रेम आता है, घृणा छूट जाती है। अगर अनुभव में उतरें, भीतर झांक कर देखें, तो जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। अनुभव में, शब्द में नहीं। और जिसे हम घृणा करते हैं, उसे हम घृणा इसीलिए कर पाते हैं कि हम उसे प्रेम करते हैं; अन्यथा घृणा करना संभव न होगा। शत्रु से भी एक तरह की मित्रता होती है; शत्रु से भी एक तरह का लगाव होता है। मित्र से भी एक तरह का अलगाव होता है और एक तरह की शत्रुता होती है।

शब्द की अड़चन है। शब्द हमारे ठोस हैं और अपने से विपरीत को भीतर नहीं लेते। अस्तित्व बहुत तरल और लिक्विड है; अपने से विपरीत को सदा भीतर लेता है। हमारे जन्म में मृत्यु नहीं समाती; लेकिन अस्तित्व में जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है, समाई हुई है। हमारी बीमारी में स्वास्थ्य के लिए कोई जगह नहीं है। लेकिन अस्तित्व में सिर्फ स्वस्थ आदमी ही बीमार हो सकता है। अगर आप स्वस्थ नहीं हैं, तो बीमार न हो सकेंगे। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं होता। बीमार होने के लिए जिंदा होना जरूरी है, बीमार होने के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। स्वास्थ्य के साथ ही बीमारी घटित हो सकती है। और अगर आपको पता चलता है कि मैं बीमार हूं, तो इसीलिए पता चलता है कि आप स्वस्थ हैं। अन्यथा बीमारी का पता किसको चलेगा? पता कैसे चलेगा? मैं

यह कह रहा हूं कि जहां अस्तित्व है, वहां हमारे विपरीत भेद गिर जाते हैं और एक का ही विस्तार हो जाता है। जहां हमने नाम दिया, वहीं चीजें टूट कर दो हिस्सों में बंट जाती हैं; एक डिकॉटॉमी, एक द्वैत निर्मित हो जाता है--तत्काल। यहां दिया नाम, वहां अस्तित्व खंड-खंड हो गया। नाम देना खंड-खंड करने की प्रक्रिया है। और नाम छोड़ देना अखंड को जानने का मार्ग है।

पर हम बिना नाम दिए क्षण भर को नहीं रहते। बिना नाम दिए बड़ी बेचैनी होगी। हम देखते हैं, शायद देखते के साथ ही नाम दे देते हैं। सुनते हैं, सुनते के साथ ही नाम दे देते हैं। एक फूल दिखा, कि मन देखने के साथ ही साथ नाम देता है--गुलाब है, सुंदर है, कि असुंदर है, कि पहले जाना हुआ है, कि नहीं जाना हुआ है, अपरिचित है, कि परिचित है। तत्काल गुलाब का फूल तो छूट जाता है और शब्दों का एक जाल हमारे चित्त के ऊपर निर्मित हो जाता है। फिर हम उस शब्द के जाल में अस्तित्व को जब देखते हैं, तो अस्तित्व टूटा हुआ मालूम पड़ता है।

लाओत्से कह रहा है कि अनाम तो अस्तित्व का जनक है, सारे अस्तित्व का स्रोत है; और नाम सारी वस्तुओं की जननी है।

तो हम परमात्मा को कोई नाम न दे सकेंगे; क्योंकि नाम देते ही परमात्मा वस्तु हो जाएगा। जिस चीज को भी हम नाम देंगे, वह वस्तु हो जाएगी। आत्मा को भी नाम देंगे तो वह वस्तु हो जाएगी। और अगर हम पत्थर को भी नाम न दें तो वह आत्मा हो जाएगा। अगर हम नाम देने से बच जाएं और हमारा मन नाम निर्मित न करे, और हम बिना शब्द और बिना नाम के किसी पत्थर को भी देख लें, तो पत्थर में परमात्मा प्रकट हो जाएगा। और हम किसी प्रेम से धड़कते हुए हृदय को भी नाम देकर देखें--मेरा बेटा, मेरी मां, मेरी पत्नी--कि हृदय जो धड़कता हुआ था जीवन से, वह भी पत्थर का एक टुकड़ा हो जाएगा। दिया नाम, कि चेतना वस्तु बन जाती है। छोड़ा नाम, कि वस्तुएं चैतन्य हो जाती हैं।

तो लाओत्से दो हिस्से करता है--अस्तित्व। अस्तित्व को समझाने के लिए उसने बांटाः हेवन एंड अर्थ, पृथ्वी और स्वर्ग। पृथ्वी से अर्थ है लाओत्से का पदार्थ का, मैटर का। और स्वर्ग से अर्थ है लाओत्से का अनुभव का, अनुभूति का, चैतन्य का, चेतना का। तो समस्त पदार्थ और समस्त चेतना का जनक है अनाम। स्वर्ग है एक अनुभव, पृथ्वी है एक स्थिति। पृथ्वी से प्रयोजन है लाओत्से का--जिन दिनों लाओत्से ने ये शब्द उपयोग किए चीन में, पृथ्वी से वही अर्थ था जो हम पदार्थ से लेते हैं और स्वर्ग से वही अर्थ था जो हम चैतन्य से लेते हैं। क्योंकि स्वर्ग की प्रतीति और अनुभव चेतना को होगी। पदार्थ से अर्थ है जड़ता का और स्वर्ग से अर्थ है चेतना का। समस्त चैतन्य और समस्त पदार्थ का मूल स्रोत है अनाम। और समस्त वस्तुओं की जननी है नाम देने की प्रक्रिया।

हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं। न तो हम पदार्थ के जगत में रहते हैं और न हम स्वर्ग के, चेतना के जगत में रहते हैं। हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं। इसे ठीक से, अपने आस-पास थोड़ी नजर फेंक कर देखेंगे, तो समझ में आ सकेगा। हम वस्तुओं के जगत में रहते हैं--वी लिव इन थिंग्स। ऐसा नहीं कि आपके घर में फर्नीचर है, इसलिए आप वस्तुओं में रहते हैं; मकान है, इसलिए वस्तुओं में रहते हैं; धन है, इसलिए वस्तुओं में रहते हैं। नहीं; फर्नीचर, मकान और धन और दरवाजे और दीवारें, ये तो वस्तुएं हैं ही। लेकिन इन दीवार-दरवाजों, इस फर्नीचर और वस्तुओं के बीच में जो लोग रहते हैं, वे भी करीब-करीब वस्तुएं हो जाते हैं।

मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो चाहता हूं कि कल भी मेरा प्रेम कायम रहे; तो चाहता हूं कि जिसने मुझे आज प्रेम दिया, वह कल भी मुझे प्रेम दे। अब कल का भरोसा सिर्फ वस्तु का किया जा सकता है, व्यक्ति का नहीं

किया जा सकता। कल का भरोसा वस्तु का किया जा सकता है। कुर्सी मैंने जहां रखी थी अपने कमरे में, कल भी वहीं मिल सकती है। प्रेडिक्टेबल है, उसकी भविष्यवाणी हो सकती है। और रिलायबल है, उस पर निर्भर रहा जा सकता है। क्योंकि मुर्दा कुर्सी की अपनी कोई चेतना, अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन जिसे मैंने आज प्रेम किया, कल भी उसका प्रेम मुझे ऐसा ही मिलेगा--अगर व्यक्ति जीवंत है और चेतना है, तो पक्का नहीं हुआ जा सकता। हो भी सकता है, न भी हो। लेकिन मैं चाहता हूं कि नहीं, कल भी यही हो जो आज हुआ था। तो फिर मुझे कोशिश करनी पड़ेगी कि यह व्यक्ति को मिटा कर मैं वस्तु बना लूं। तो फिर रिलायबल हो जाएगा।

तो फिर मैं अपने प्रेमी को पति बना लूं या प्रेयसी को पत्नी बना लूं। कानून का, समाज का सहारा ले लूं। और कल सुबह जब मैं प्रेम की मांग करूं, तो वह पत्नी या वह पति इनकार न कर पाएगा। क्योंकि वादे तय हो गए हैं, समझौता हो गया है; सब सुनिश्चित हो गया है। अब मुझे इनकार करना मुझे धोखा देना है; वह कर्तव्य से च्युत होना है। तो जिसे मैंने कल के प्रेम में बांधा, उसे मैंने वस्तु बनाया। और अगर उसने जरा सी भी चेतना दिखाई और व्यक्तित्व दिखाया, तो अड़चन होगी, तो संघर्ष होगा, तो कलह होगी।

इसलिए हमारे सारे संबंध कलह बन जाते हैं। क्योंकि हम व्यक्तियों से वस्तुओं जैसी अपेक्षा करते हैं। बहुत कोशिश करके भी कोई व्यक्ति वस्तु नहीं हो पाता, बहुत कोशिश करके भी नहीं हो पाता। हां, कोशिश करता है, उससे जड़ होता चला जाता है। फिर भी नहीं हो पाता; थोड़ी चेतना भीतर जगती रहती है, वह उपद्रव करती रहती है। फिर सारा जीवन उस चेतना को दबाने और उस पदार्थ को लादने की चेष्टा बनती है।

और जिस व्यक्ति को भी मैंने दबा कर वस्तु बना दिया, या किसी ने दबा कर मुझे वस्तु बना दिया, तो एक दूसरी दुर्घटना घटती है, कि अगर सच में ही कोई बिल्कुल वस्तु बन जाए, तो उससे प्रेम करने का अर्थ ही खो जाता है। कुर्सी से प्रेम करने का कोई अर्थ तो नहीं है। आनंद तो यही था कि वहां चैतन्य था। अब यह मनुष्य का डाइलेमा है, यह मनुष्य का द्वंद्व है, कि वह चाहता है व्यक्ति से ऐसा प्रेम, जैसा वस्तुओं से ही मिल सकता है। और वस्तुओं से प्रेम नहीं चाहता, क्योंकि वस्तुओं के प्रेम का क्या मतलब है? एक ऐसी ही असंभव संभावना हमारे मन में दौड़ती रहती है कि व्यक्ति से ऐसा प्रेम मिले, जैसा वस्तु से मिलता है। यह असंभव है। अगर वह व्यक्ति व्यक्ति रहे, तो प्रेम असंभव हो जाएगा; और अगर वह व्यक्ति वस्तु बन जाए, तो हमारा रस खो जाएगा। दोनों ही स्थितियों में सिवा फ्रस्ट्रेशन और विषाद के कुछ हाथ न लगेगा।

और हम सब एक-दूसरे को वस्तु बनाने में लगे रहते हैं। हम जिसको परिवार कहते हैं, समाज कहते हैं, वह व्यक्तियों का समूह कम, वस्तुओं का संग्रह ज्यादा है। यह जो हमारी स्थिति है, इसके पीछे अगर हम खोजने जाएं, तो लाओत्से जो कहता है, वही घटना मिलेगी। असल में, जहां है नाम, वहां व्यक्ति विलीन हो जाएगा, चेतना खो जाएगी और वस्तु रह जाएगी। अगर मैंने किसी से इतना भी कहा कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, तो मैं वस्तु बन गया। मैंने नाम दे दिया एक जीवंत घटना को, जो अभी बढ़ती और बड़ी होती, फैलती और नई होती। और पता नहीं, कैसी होती! कल क्या होता, नहीं कहा जा सकता था। मैंने दिया नाम, अब मैंने सीमा बांधी। अब मैं कल रोकूंगा, उससे अन्यथा न होने दूंगा जो मैंने नाम दिया है।

कल सुबह जब मेरे ऊपर क्रोध आएगा, तो मैं कहूंगा, मैं प्रेमी हूं, मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। तो मैं क्रोध को दबाऊंगा। और जब क्रोध आया हो और क्रोध दबाया गया हो, तो जो प्रेम किया जाएगा, वह झूठा और थोथा हो जाएगा। और जो प्रेमी क्रोध करने में समर्थ नहीं है, वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि जिसको मैं इतना अपना नहीं मान सकता कि उस पर क्रोध कर सकूं, उसको इतना भी कभी अपना न मान पाऊंगा कि उसे प्रेम कर सकूं।

लेकिन मैंने कहा, मैं प्रेमी हूं! तो कल जो सुबह क्रोध आएगा, उसका क्या होगा अब? उस वक्त मुझे धोखा देना पड़ेगा। या तो मैं क्रोध को पी जाऊं, दबा जाऊं, छिपा जाऊं, और ऊपर प्रेम को दिखलाए चला जाऊं। वह प्रेम झूठा होगा, क्रोध असली होगा। असली भीतर दबेगा, नकली ऊपर इकट्ठा होता चला जाएगा। तब फिर मैं एक झूठी वस्तु हो जाऊंगा, एक व्यक्ति नहीं। और यह जो भीतर दबा हुआ क्रोध है, यह बदला लेगा। यह रोज-रोज धक्के देगा, यह रोज-रोज टूट कर बाहर आना चाहेगा। और तब स्वभावतः, जिसे प्रेम किया है, उससे ही घृणा निर्मित होगी। और जिसे चाहा है, उससे ही बचने की चेष्टा चलने लगेगी।

पर नाम देकर भूल हुई है। लाओत्से कहता है, नाम देकर भूल हो गई है। जब मैंने किसी से कहा कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, तब मैंने ठीक से समझ लिया था कि प्रेमी होने का क्या अर्थ होता है? मैंने एक क्षण की अनुभूति को स्थिर नाम दे दिया। अगर मैंने भीतर झांक कर देखा होता, तो शायद मैं ऐसा नाम न देता। शायद चुप रह जाना उचित होता। शायद बोल कर भूल हो गई।

अमरीका का एक प्रेसिडेंट, कुलीज, कम बोलता था, अत्यधिक कम। दुनिया में कोई राजनीतिज्ञ इतना कम बोलने वाला नहीं हुआ है। कोई मरने के वर्ष भर पहले किसी मित्र ने उससे पूछा कि कुलीज, इतना कम बोलते हो, इतना कम बोले हो जिंदगी भर, कारण क्या है? तो कुलीज ने कहा, जो नहीं बोला है, उसके लिए दंड कभी नहीं मिलता; जो नहीं बोला है, उसके लिए कभी पछताना नहीं पड़ता है। जो बोला है, उसके लिए बहुत पछताना पड़ा है। यह तो मुझे ज्यादा अनुभव न था, कुलीज ने कहा, अगर दुबारा मुझे मौका मिले तो मैं बिल्कुल चुप रह जाने वाला हूं। यह तो अनुभव न था ज्यादा, अनुभव से धीरे-धीरे सीखा। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि जो बोला, उसके लिए दंड पाया सदा; जो नहीं बोला, उसके लिए कोई पीड़ा मुझे नहीं झेलनी पड़ी।

शायद आप सोचते होंगे, किसी को गाली दे दी होगी, उससे दंड पाया। नहीं, गाली से तो दंड मिल ही जाता है; टू ऑबियस, साफ ही है। नहीं, जब किसी से कहा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, उसके भी दंड भोगने पड़ते हैं।

असल में, शब्द दिया, नाम दिया कि दंड होगा। क्योंकि हमने वस्तु बनाई, जहां कि वस्तु नहीं थी, जहां कि तरल व्यक्तित्व था। जहां कि तरल प्रवाह था, वहां हमने ठोक कर नदी की बीच धार में दीवार खड़ी करने की कोशिश की। अब तकलीफ होगी, अब पीड़ा होगी। जीवन प्रवाह की तरह बहना चाहेगा; और हमारे ठोके गए नाम के तख्ते अड़चन डालेंगे। और जीवन बड़ा है; कोई तख्ता नाम का ठोका हुआ टिकेगा नहीं, बहा कर ले जाएगा। लेकिन तब पीछे पीड़ा का दंश और पश्चात्ताप और विषाद छूट जाता है।

लाओत्से कहता है, नाम ही मत देना। नाम दिया कि वस्तुएं पैदा हो जाती हैं।

एक क्षण को सोचें कि अगर अचानक ऐसी घटना घट जाए कि हम यहां इतने लोग बैठे हैं और हम सब भाषा भूल जाएं--एक घंटे भर के लिए! तो जमीन-आसमान में कोई फर्क होगा? तो अंधेरे और प्रकाश में कोई फर्क होगा? तो आप में और पड़ोसी में कोई फर्क होगा? तो हिंदू और मुसलमान भिन्न होंगे? तो स्त्री और पुरुष में फासला होगा? अगर एक घंटे को हम सारी भाषा भूल जाएं, तो सारे फासले भी तत्काल, घंटे भर के लिए, गिर जाएंगे। एक अनूठा ही जगत होगा--विस्तार से भरा हुआ। जहां कोई सीमा न होगी। जहां चीजें फैलती तो होंगी, लेकिन रुकती न होंगी। तब आपको ऐसा न लगेगा कि कोई आपके पड़ोस में बैठा है। क्योंकि ऐसा लगने के लिए भाषा जरूरी है। तब कोई पड़ोसी है, ऐसा भी न लगेगा। क्योंकि ऐसा लगने के लिए भाषा जरूरी है।

तब कोई मित्र है, ऐसा भी नहीं लगेगा; कोई शत्रु है, ऐसा भी नहीं लगेगा। तब तो एक विराट अस्तित्व रह जाएगा।

उस अस्तित्व में दो प्रतीतियां--प्रतीतियां, नाम नहीं--उस अस्तित्व में दो प्रतीतियां रहेंगी, जिनको लाओत्से कहता हैः हेवन एंड अर्थ, स्वर्ग और पृथ्वी। या ज्यादा आज की भाषा में होगा कहना ठीकः पदार्थ और चैतन्य। दो विस्तार रह जाएंगे--पदार्थ का और चैतन्य का। यह प्रतीति होगी, यह भी नाम नहीं होगा। यह प्रतीति होगी। शेष सारे नाम वस्तुओं के हैं। वस्तु पदार्थ भी हो सकती है, वस्तु व्यक्ति भी हो सकता है। अगर हम व्यक्ति को नाम देंगे, तो वह भी वस्तु हो जाता है। अगर हम पदार्थ को नाम देंगे, तो वह भी वस्तु हो जाता है। अगर मैंने कहा यह कुर्सी, तो वह भी वस्तु हो गई। और मैंने कहा पत्नी, पति, बेटा, वे भी वस्तु हो गए। बेटे को भी पजेस किया जा सकता है, कुर्सी को भी पजेस किया जा सकता है। बेटे की भी मालकियत हो सकती है, कुर्सी की भी मालकियत हो सकती है।

लेकिन जीवन की कोई मालकियत नहीं हो सकती। और न पदार्थ की कोई मालकियत हो सकती है। क्योंकि आपको पता नहीं कि जब आप नहीं थे, तब भी यह कुर्सी थी; और आप जब नहीं होंगे, तब भी यह होगी। और आप जिसको कह रहे हैं मेरा बेटा, कल उसकी श्वास बंद हो जाएगी, तो आप उसको मरघट में जाकर जला आएंगे। और जब उसकी श्वास बंद हो रही होगी, तब आप आकाश से यह न कह सकेंगे कि मेरा बेटा, मेरी बिना आज्ञा के उसकी श्वास कैसे बंद हो रही है? तब आप अपने बेटे से यह न कह सकेंगे कि तू बड़ा अनुशासनहीन है, उच्छृंखल है, मुझसे पूछा भी नहीं और तूने श्वास बंद कर ली। मरते वक्त मुझसे तो पूछ लेना था। मैं तेरा बाप हूं! मैंने तुझे जन्म दिया है!

लेकिन मरते वक्त न बेटा पूछ सकेगा, न बाप की आज्ञा की जरूरत पड़ेगी। अस्तित्व किसी की मालकियत नहीं मानता। जन्म के समय भी आपको भ्रम ही हुआ है कि आपने जन्म दिया है। अस्तित्व किसी की मालकियत नहीं मानता, न वस्तुएं किसी की मालकियत मानती हैं। लेकिन नाम के साथ मालकियत पैदा होती है; और नाम के साथ वस्तु बनती है। वस्तु का दूसरा छोर है मालकियत। जहां भी मालकियत है, वहां वस्तु होगी। वह व्यक्ति की है कि पदार्थ की है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जहां किसी ने कहा, मेरा! वहां मालकियत खड़ी हो जाएगी; वहीं चीजें अस्तित्व को खो देंगी और वस्तुएं बन जाएंगी। हम रहते हैं वस्तुओं से घिरे हुए। इन सारी वस्तुओं का जन्मदाता, लाओत्से कहता है, नाम देने की प्रक्रिया है--दि नेमिंग! यह जो हम नाम दिए चले जाते हैं, यही।

मैं सदा लाओत्से के संबंध में कहता रहा हूं। एक मित्र के साथ लाओत्से सुबह घूमने निकलता है। वर्षों से साथी है। मित्र जानता है कि लाओत्से सदा चुप रहता है। तो मित्र के घर कोई मेहमान आया है और वह उसको भी घुमाने ले आया है। रास्ते में उस मेहमान ने बड़ी परेशानी अनुभव की है। वह बहुत रेस्टलेस हो गया है। क्योंकि न लाओत्से बोलता है, न उसका मेजबान बोलता है। वह मित्र बहुत परेशान हो गया। आखिर उसके वश के बाहर हो गया, तो उसने कहा कि सुबह बहुत सुंदर है, देखते हैं! लेकिन न मित्र ने देखा न जवाब दिया, न लाओत्से ने देखा न जवाब दिया। तब और बेचैनी उसकी बढ़ गई। इससे तो चुप ही रहता तो अच्छा था।

लौट आए। लौटने के बाद लाओत्से ने मित्र के कान में कहा कि अपने साथी को दुबारा मत लाना, बहुत बातूनी मालूम पड़ता है--टू मच टाकेटिव। मित्र भी थोड़ा दंग हुआ, क्योंकि इतनी ज्यादा बात तो नहीं की थी। कोई डेढ़ घंटे की अवधि में एक ही तो बात बोला था वह कि सुबह बड़ी सुंदर है।

सांझ को मित्र आया और लाओत्से से कहा, क्षमा करना, उसे तो रोक दिया। लेकिन मैं भी बेचैन रहा हूं। ऐसी ज्यादा बात तो नहीं की थी। इतना ही कहा था कि सुबह बड़ी सुंदर है। लाओत्से ने कहा, दिया नाम कि चीजें नष्ट हो जाती हैं। सुबह बड़ी सुंदर थी, जब तक वह तुम्हारा साथी नहीं बोला था।

कठिन पड़ेगा समझना। लाओत्से कहता है, सुबह बड़ी सुंदर थी, जब तक तुम्हारा साथी नहीं बोला था। तब तक उस सौंदर्य में कोई सीमा न थी। तब तक वह सौंदर्य कहीं समाप्त होता हुआ मालूम नहीं पड़ता था। तब तक उस सौंदर्य का कोई अंत न था। लेकिन जैसे ही तुम्हारे मित्र ने कहा, बड़ी सुंदर है सुबह, सब सिकुड़ कर छोटा हो गया। तुम्हारे मित्र के शब्दों ने सब पर सीमा बांध दी। तुम्हारा मित्र सब पर हावी हो गया। और जब इतना सौंदर्य था, तो बोलना सिर्फ कुरूपता थी। जहां इतना सौंदर्य था, वहां बोलना सिर्फ विघ्न था। तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारे मित्र को सौंदर्य का कोई पता नहीं। उसने तो सिर्फ बात चलाई थी, उसे कुछ पता नहीं है सौंदर्य का। क्योंकि सौंदर्य का पता होता तो बोलता हुआ आदमी चुप हो जाता है। चुप आदमी कैसे बोल सकता था? सौंदर्य का इम्पैक्ट है। जब चारों ओर से सौंदर्य घेर लेता है, तो प्राण चुप हो जाते हैं। हृदय धड़कता भी है, तो पता नहीं चलता कि धड़कता है। सब निस्पंद हो जाता है। पर हम चुप थे और तुम्हारा मित्र बोल पड़ा। उसे सौंदर्य का कोई पता न था, उसे सुबह का भी कोई पता न था। वह सिर्फ खूंटी खोज रहा था, बातचीत, चर्चा चलाने को।

हम सब खोजते हैं। कोई भी मिलता है, आप मौसम की चर्चा शुरू कर देते हैं, कुछ भी बात शुरू कर देते हैं। वह सिर्फ बहाना होता है। असल में, चुप रहना इतना कठिन है कि हम किसी भी बहाने से बोलना शुरू कर देते हैं।

अब दुबारा जब आप किसी से बातचीत शुरू करें, तो ख्याल रखना, आपको फौरन पता चल जाएगा कि ये सिर्फ बहाने हैं। न सुबह से मतलब, न सूरज से मतलब, न बादलों से मतलब, न वर्षा से मतलब, कोई मतलब नहीं है। पर कहीं से बात शुरू होनी चाहिए, क्योंकि दो आदमी चुप रहने की कला ही भूल गए हैं, कि दो आदमी साथ हों तो चुप रह सकें।

फ्रायड ने अपने जीवन भर के अनुभवों के बाद लिखा है कि पहले तो मैं सोचता था कि हम बात करते हैं कुछ कहने के लिए, लेकिन अब मेरा अनुभव यह है कि हम बात करते हैं कुछ छिपाने के लिए। कुछ चीजें हैं, जो चुप रहने में उघड़ जाएंगी, उनको हम बातचीत करके छिपा लेते हैं।

एक आदमी के पास घंटे भर मौन से बैठ जाइए तो उस आदमी को जितना आप जान पाएंगे, उतना आप वर्ष भर उससे बात करते रहिए तो न जान पाएंगे। बात जो है, वह आदमी अपने को छिपाने के लिए अपने चारों तरफ एक जाल खड़ा कर रहा है। उसकी आंखों को फिर आप न देख पाएंगे, उसके शब्दों में अटक जाएंगे। उसके उठने को न देख पाएंगे; उसके बैठने को न देख पाएंगे; उसके गेस्चर्स आपके ख्याल में न आएंगे। उसके शब्द ही शब्द आपके आस-पास रह जाएंगे।

कभी आपने ख्याल किया है, जब आप पीछे किसी आदमी को याद करते हैं, तो सिवाय शब्दों के आपको कुछ और याद आता है? याद आता है, उस आदमी ने कैसे आपको देखा था? याद आता है, उसने कैसे आपके हाथ का स्पर्श किया था? याद आता है, उसके शरीर की गंध कैसी थी? याद आता है, उसकी आंखों का ढंग कैसा था? याद आता है, वह कमरे में कैसा प्रवेश हुआ था? याद आता है, वह कैसा बैठा था, उठा था?

कुछ भी याद नहीं आता है। इतना ही याद आता है कि उसने क्या कहा था। आदमी न हुआ वह, ग्रामोफोन हुआ। आपने उसके बाबत जो स्मृति बनाई है, वह सिर्फ शब्दों की है। उसके पूरे अस्तित्व का आपको

कोई भी पता नहीं है। कितनी हैरानी की बात है! अगर आप अपनी मां की शक्ल भी आंख बंद करके गौर से देखना चाहें, तो आप पक्का पता न लगा पाएंगे कि मां की शक्ल कैसी है।

आप शायद एकदम से मेरी बात को इनकार करेंगे कि ऐसा कैसे हो सकता है? आप घर जाकर करना। आंख बंद कर लेना और देखना कि मां की शक्ल कैसी है? और आप पाएंगे कि जब तक गौर नहीं किया था, तब तक तो कुछ-कुछ पता था कि ऐसी है। और जब आप गौर करेंगे, तो बहुत धुंधला हो जाएगा, सब रूप-रेखा खो जाएगी, मां की शक्ल भी आप न पकड़ पाएंगे। क्योंकि किस बेटे ने मां को देखा है?

और अगर याद भी आएगी, तो किसी फोटोग्राफ के कारण याद आएगी, मां की वजह से नहीं आएगी। कोई चित्र की वजह से याद आ सकती है। आपके घर में कोई चित्र लटका है, वह याद आ जाएगा। लेकिन फर्क समझना आप। मां मौजूद थी, वह याद नहीं आती है। उसके खून से बड़े हुए हैं, उसकी गोदी में उठे हैं, उसके साथ दौड़े हैं, बैठे हैं, बात की है, सब किया है, वह याद नहीं आती। एक तस्वीर जो घर में लटकी है, वह याद आती है! तस्वीर एक वस्तु है, मां एक व्यक्ति है। लेकिन व्यक्ति याद नहीं आता और तस्वीर याद आती है। क्या, कारण क्या होगा?

असल में, हम जीवित के संपर्क से बचते रहते हैं खुद भी; और दूसरा भी हमारे जीवित को न जान ले, उसको भी बचाते रहते हैं। यह सारी जिंदगी एक बचाव है। और भाषा बड़ी कुशलता से बचाने का इंतजाम कर देती है।

एक फ्रेंच वैज्ञानिक बारह वर्षों तक साइबेरिया में एस्कीमोज के बीच में रहा। बारह वर्ष लंबा वक्त है। और एस्कीमो इस पृथ्वी पर उन थोड़ी सी कौमों में से एक हैं, जो भाषा के कारण अभी भी पागल नहीं हुए हैं। एस्कीमो दिन में दस-पांच शब्द बोले तो काफी है। अगर एस्कीमो को भूख लगी है, तो वह इतना नहीं कहता कि मुझे भूख लगी है, वह इतना ही कहता है--भूख! और कहने पर जोर कम होता है, उसका हाथ कहता है भूख, उसकी आंख कहती है भूख, उसका पूरा शरीर कहता है भूख!

बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उस वैज्ञानिक के संस्मरण मैं पढ़ता था। उसने लिखा है कि मेरे पहले छह महीने तो ऐसे थे, जैसे मैं नर्क में पड़ गया। क्योंकि वे बोलते ही नहीं हैं। और मैं बोलने को उबलता था। लेकिन किससे बोलूं? तो उसने लिखा है कि मैं अकेले में जाकर अपने से ही जोर से बोल लेता था।

आप सब भी अपने से अकेले में बोलते हैं। रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखो, करीब-करीब सब अपने से बातचीत करते चले जा रहे हैं। कभी-कभी तो बातचीत गर्मा-गर्मी की भी हो जाती है--अकेले में ही। हाथ-पैर तक हिल जाते हैं; सिर झटका दे देता है, इशारे हो जाते हैं। और हर आदमी अपने से भीतर बात करने में लगा है। बाहर आप बात कर रहे हैं; भीतर आप बात कर रहे हैं; एक क्षण का अवकाश नहीं कि नाम से आप हट जाएं, शब्द से आप हट जाएं और अस्तित्व में आपकी गति हो जाए।

लेकिन छह महीने तकलीफ तो बहुत थी उस वैज्ञानिक को, छह महीने के बाद उसे बड़े अनूठे अनुभव होने शुरू हुए। पहली दफे जिंदगी में शब्दहीन गैप, शब्दहीन अंतराल आने लगे। और तब उसे पता चला कि एस्कीमो किसी और ही दुनिया में रह रहे हैं।

लाओत्से जिस दुनिया की बात कर रहा है, जिन लोगों की बात कर रहा है, जिन संभावनाओं की बात कर रहा है, वह शब्दहीन अनुभूति की संभावना की बात है। शब्द के साथ वस्तुओं का जगत आ जाता है। शब्द के हटते ही वस्तुओं का जगत हट जाता है, अस्तित्व मात्र ही रह जाता है।

प्रश्नः ओशो, अनाम की इस मौन अनुभूति को स्वर्ग और पृथ्वी या चेतना व पदार्थ, ऐसा द्वैतमूलक नाम क्यों दिया गया है? अद्वैत की अभिव्यक्ति क्यों नहीं की गई है?

अभिव्यक्ति द्वैत की ही हो सकती है; अद्वैत अनभिव्यक्त रह जाता है। तो जो अधिकतम किया जा सकता है, वह दो--बोलने में। निकटतम जो सत्य के है, वह दो--बोलने में। बोलने के बाहर तो एक ही रह जाता है। लेकिन भाषा किसी भी चीज को दो में तोड़े बिना नहीं बोल सकती है।

लाओत्से बोल रहा है, लिख रहा है, तो जो न्यूनतम भूल हो सकती है, वह कर रहा है। इससे ज्यादा ठीक बात नहीं हो सकती। और अगर हमें इसे भी इनकार करना हो, तो भी शब्द का ही उपयोग करेंगे। तो हम कहेंगे अद्वैत, दो नहीं। लेकिन फिर भी हमें दो का तो उपयोग करना ही पड़ेगा। नहीं कहने के लिए भी कहना पड़ेगा, दो नहीं। वह दो तो हमारा पीछा करेगा ही। जब तक हम बोलने की चेष्टा करेंगे, दो हमारा पीछा करेगा ही। बोलना छोड़ें, तो एक रह जाता है।

हम कह सकते हैं कि हम एक ही क्यों न बोलें?

लेकिन हमें ख्याल नहीं है। जब आप बोलते हैं एक, तब तत्काल दो का ख्याल पैदा हो जाता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बोले एक और दो का ख्याल पैदा न करवा दे। और जो बोले एक, उसको भी दो का ख्याल तत्काल पैदा हो जाता है। असल में, एक का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर दो न होते हों। एक सिर्फ दो तक पहुंचने की सीढ़ी का काम करता है, और कुछ भी नहीं।

लाओत्से दो शब्दों का प्रयोग कर रहा है इसीलिए कि शब्द में अधिकतम जो कहा जा सकता है, वह दो। अनेक को घटा-घटा कर दो तक लाया जा सकता है। फिर उसके पार तो निःशब्द का जगत है। उसके पार तो इतना भी नहीं कहा जा सकता जितना लाओत्से कह रहा है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह एक अनाम है। उस एक के लिए अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती है। जो भी हम कहेंगे, कहते ही दो बन जाता है।

यह करीब-करीब ऐसा है जैसे हम पानी में एक लकड़ी को डालें, डालते ही वह तिरछी हो जाती है। होती नहीं, दिखाई पड़ती है। हो जाती तो इतना उपद्रव न था, तो वह भी सत्य हो जाता कि लकड़ी तिरछी हो गई। होती नहीं, दिखाई पड़ती है। बाहर निकालते हैं, फिर एक हो जाती है। हो नहीं जाती, वह एक थी ही। फिर पानी में डालते हैं, वह फिर तिरछी हो जाती है। और जिस आदमी ने हजार दफे पानी में डाल कर देख ली है, वह जब एक हजार एकवीं बार फिर पानी में डालता है, तो वह यह आशा न रखे कि मैं इतना अनुभवी हो गया, अब मुझे तिरछी न दिखाई पड़ेगी। तिरछी तो दिखाई पड़ेगी ही, अनुभव केवल इतना ही फायदा देगा कि वह आदमी मानेगा नहीं कि तिरछी है। दिखाई तो तिरछी ही पड़ेगी।

जैसे पानी में डालते ही रेडिएशन का नियम बदल जाता है, किरणों की गति बदल जाती है, इसलिए लकड़ी तिरछी दिखाई पड़ने लगती है, वैसे ही भाषा में सत्य को डालते ही रेडिएशन बदल जाता है; और एक बताने वाला शब्द भी डालिए भाषा में, तत्काल तिरछा होकर दो की सूचना देने लगता है।

लाओत्से को भी पता है कि जो मैं कह रहा हूं, वह द्वैत है। लेकिन कोई उपाय नहीं है। लाओत्से भी कहेगा, तो द्वैत का ही उपयोग करना पड़ेगा। इतनी कठिनाई है कि अगर लाओत्से चुप भी रहे और चुप रह कर भी कहना चाहे, तो भी द्वैत हो जाएगा। अभिव्यक्ति की चेष्टा द्वैत बना देगी।

समझें! बहुत मौके पर ऐसा हुआ है।

शेख फरीद के पास कोई गया है और उससे पूछता है कि मुझे कुछ कहो! लेकिन वही कहना जो सत्य है, जरा सा भी असत्य न हो। मुझे तो तुम उसी सत्य को बताना, संतों ने जिसकी तरफ इशारा किया है और कहा है कि बताया नहीं जा सकता। तुम मुझे वही सत्य बता दो, जो निःशब्द है। फरीद ने क्या कहा? फरीद ने कहा, जरूर बताऊंगा, तुम अपने प्रश्न को इस भांति बना कर लाओ कि शब्द उसमें न हों। तुम निःशब्द में पूछोगे, मैं निःशब्द में उत्तर दे दूंगा। लेकिन तुम मेरे साथ ज्यादती मत करो कि तुम शब्द में पूछो और मैं निःशब्द में उत्तर दूं। तुम जाओ, तुम निःशब्द बना लाओ अपने प्रश्न को। मैं वादा करता हूं कि निःशब्द में उत्तर दूंगा।

वह आदमी चला गया। कठिनाई तो थी। बहुत सोचा उसने, वर्षों। कभी-कभी फरीद उसके गांव से निकलता था, तो उसके दरवाजे खटखटाता था कि क्यों भाई, क्या हुआ तुम्हारे सवाल का? बना पाए अब तक कि नहीं बना पाए? वह आदमी कहता, बहुत कोशिश करता हूं, लेकिन प्रश्न बनता नहीं बिना शब्द के। और कोशिश करो, फरीद कहता था। जब तुम्हारी कोशिश पूरी हो जाए और तुम बना लो निःशब्द प्रश्न, तो आ जाना मेरे पास! मैंने उत्तर तैयार रखा है।

वह आदमी भी मर गया, फरीद भी मर गया। न वह आदमी कभी फरीद के पास गया; न कभी वह फरीद का उत्तर किसी को सुनने मिला। मरते वक्त किसी ने फरीद से पूछा कि वह तैयार उत्तर आपके पास है; वह आदमी तो आता ही नहीं, हम सब सुनने को उत्सुक हैं। वह आप हमें बता जाएं! फरीद चुप बैठा रहा। उन्होंने कहा, बता दें! फरीद चुप बैठा रहा। उन्होंने कहा, बता दें, आपकी आखिरी घड़ी है, कहीं उत्तर आपके साथ न चला जाए। फरीद ने कहा कि मैं बता रहा हूं; मैं मौन हूं, यही मेरा उत्तर है। लेकिन अगर मैं इतना भी कहूं कि मैं मौन से बता रहा हूं, तो उससे द्वैत पैदा होता है। क्योंकि उसका मतलब होता है, मौन से बताया जा सकता है, बिना मौन के नहीं बताया जा सकता। डुआलिटी खड़ी हो जाती है, डिस्टिंकशन पैदा हो जाता है, भेद निर्मित हो जाता है। इसलिए तुम मुझसे यह मत कहलवाओ कि मैं मौन से बता रहा हूं; मैं मौन हूं और तुम समझ लो, शब्द मत उठाओ।

पर अकेले मौन से कैसे समझा जा सकता है?

लाओत्से ने यह अकेली एक ही किताब लिखी है। और यह उसने लिखी जिंदगी के आखिरी हिस्से में। उसने कोई किताब कभी नहीं लिखी। और जिंदगी भर लोग उसके पीछे पड़े थे। साधारण से आदमी से लेकर सम्राटों तक ने उससे प्रार्थना की थी कि लाओत्से, अपने अनुभव को लिख जाओ। लाओत्से हंसता और टाल देता। और लाओत्से कहता, कौन कब लिख पाया है? मुझे उस नासमझी में मत डालें। पहले भी लोगों ने कोशिश की है। जो जानते हैं, वे उनकी कोशिश पर हंसते हैं; क्योंकि वे असफल हुए हैं। और जो नहीं जानते, वे उनकी असफलता को सत्य समझ कर पकड़ लेते हैं। मुझसे यह भूल मत करवाएं। जो जानते हैं, वे मुझ पर हंसेंगे कि देखो, लाओत्से भी वही कर रहा है। जो नहीं कहा जा सकता, उसे कह रहा है; जो नहीं लिखा जा सकता, उसको लिख रहा है। नहीं, मैं यह न करूंगा।

लाओत्से जिंदगी भर टालता रहा, टालता रहा। मौत करीब आने लगी; तो मित्रों का दबाव और शिष्यों का आग्रह भारी पड़ने लगा। लाओत्से के पास सच में संपदा तो बहुत थी। बहुत कम लोगों के पास इतनी संपदा रही है, बहुत कम लोगों ने इतना गहरा जाना और देखा है। तो स्वाभाविक था, आस-पास के लोगों का आग्रह भी उचित और ठीक ही था कि लाओत्से लिख जाओ, लिख जाओ।

जब आग्रह बहुत बढ़ गया और मौत आती दिखाई न पड़ी, और लाओत्से मुश्किल में पड़ गया, तो एक रात निकल भागा। निकल भागा उन लोगों की वजह से, जो पीछे पड़े थे कि लिखो! बोलो! कहो! सुबह शिष्यों ने

देखा कि लाओत्से की कुटिया खाली है। पक्षी उड़ गया, पिंजड़ा खाली पड़ा है। वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। सम्राट को खबर की गई और लाओत्से को देश की सीमा पर पकड़ा गया। सम्राट ने अधिकारी भेजे और लाओत्से को रुकवाया, चुंगी पर देश की, जहां चीन समाप्त होता था। और लाओत्से से कहा कि सम्राट ने कहा है कि चुंगी दिए बिना जा न सकोगे बाहर। तो लाओत्से ने कहा कि मैं कुछ ले ही नहीं जा रहा हूं जिस पर चुंगी देनी पड़े! मैं कोई कर चुकाऊं? मैं कुछ ले नहीं जा रहा हूं! सम्राट ने खबर भिजवाई कि तुमसे ज्यादा संपत्ति इस मुल्क के बाहर कभी कोई आदमी लेकर नहीं भागा है। रुको चुंगी नाके पर और जो भी तुमने जाना है, लिख जाओ!

यह किताब उस चुंगी नाके पर लिखी गई थी। वह लिख जाओ, तो मुल्क के बाहर निकल सकोगे, अन्यथा मुल्क के बाहर नहीं निकल सकोगे। मजबूरी में, पुलिस के पहरे में, यह किताब लिखी गई थी। लाओत्से ने कहा, ठीक है, मुझे जाना ही है बाहर, तो मैं कुछ लिखे जाता हूं।

यह ताओ तेह किंग अनूठी किताब है। इस तरह कभी नहीं लिखी गई कोई किताब। भाग रहा था लाओत्से इसी किताब को लिखने से बचने के लिए। निश्चित कठोरता, लगती है, सम्राट ने की; लेकिन दया भी लगती है। यह किताब न होती! और लाओत्से जैसे और लोग भी हुए हैं, जो नहीं लिख गए हैं। लेकिन जो नहीं लिख जाते हैं, उससे भी तो क्या फायदा होता है? जो लिख जाते हैं, उससे भी क्या फायदा होता है? जो नहीं लिख जाते, उन पर कम से कम विवाद नहीं होता। जो लिख जाते हैं, उन पर विवाद होता है। जो लिख जाते हैं, उनके एक-एक शब्द का हम विचार करते हैं कि क्या मतलब है! और मतलब शब्द के बाहर है। कभी अगर मनुष्य-जाति का अंतिम लेखा-जोखा होगा, तो कहना मुश्किल है कि जो लिख गए हैं वे बुद्धिमान समझे जाएंगे कि जो नहीं लिख गए हैं वे बुद्धिमान समझे जाएंगे। वैसे दो में से कुछ भी चुनो, द्वैत का ही चुनाव है। कोई लिखने के खिलाफ चुप रहने को चुन लेता है; कोई चुप रहने के खिलाफ लिखने को चुन लेता है। बाकी द्वैत से बचने का उपाय नहीं है।

तो लाओत्से जब शब्द का उपयोग करेगा, तो द्वैत आ जाएगा। इसलिए उसने जान कर कहा कि वह अनाम पृथ्वी और स्वर्ग का जनक है और वह नामधारी वस्तुओं का मूल स्रोत है।

द्वैत निश्चित आ जाता है शब्द के साथ। लेकिन इसी आशा में लाओत्से जैसे लोग शब्द का उपयोग करते हैं कि शायद शब्द के सहारे निःशब्द की ओर धक्का दिया जा सके। यह संभव है। क्योंकि द्वैत केवल दिखाई पड़ता है, है नहीं; इसलिए यह संभव है। द्वैत केवल दिखाई पड़ता है, है नहीं। अगर होता, तब तो कोई संभावना न थी।

समझें कि हम यहां एक वीणा के तार को मैं छेड़ देता हूं और छोड़ देता हूं। ध्वनि होती है पैदा इस भवन में, गूंजती है आवाज, फिर धीरे-धीरे आवाज शून्य में खोने लगती है। क्या आप बता सकते हैं, आवाज कब खो जाएगी और कब शून्य शुरू होगा? क्या आप कोई सीमा खींच सकेंगे, जब आप कह सकें, इस समय तक वीणा का स्वर गूंजता था और इसके आगे गूंजना बंद हो गया? क्या आप स्पष्ट रूप से ध्वनि में और निर्ध्वनि में कोई सीमा खींच सकेंगे? या कि आप पाएंगे कि ध्वनि निर्ध्वनि में खोती चली जाती है; शब्द शून्य बनता चला जाता है। अगर एक वीणा के छेड़े गए तार के साथ आप अपने मन के तार को बिठा कर बैठ जाएं और जैसे-जैसे तार की छेड़ी हुई ध्वनि शून्य में गिरने लगे, आप भी उसके साथ उतने ही मौन में गिरने लगें, तो थोड़ी ही देर में आप पाएंगे कि ध्वनि के सहारे आप निर्ध्वनि में पहुंच गए हैं, शब्द के सहारे आप निःशब्द में पहुंच गए हैं।

इस आशा में ही लाओत्से या बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट बोलते हैं। इस आशा में ही कि शायद उनके शब्द के सहारे से आपको वे धीरे से निःशब्द में ले जा सकें। एक उपाय की भांति।

बुद्ध निरंतर कहते थे कि मैं जो भी बोलता हूं, वह उसे कहने के लिए नहीं जो है, तुम्हें वहां तक पहुंचाने के लिए। उसे कहने के लिए नहीं जो है, क्योंकि वह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन तुम्हें वहां तक पहुंचाया जा

सकता है, जहां वह है। शायद मेरे शब्दों की आवाज सुन कर तुम उस तरफ की यात्रा पर निकल जाओ। उस आयाम में, उस दिशा में तुम्हारा मुंह फिर जाए, तो शायद किसी दिन तुम उस महागड्ढ में, उस एबिस में गिर जाओ, उस अतल में गिर जाओ, जहां उस परम का साक्षात्कार है।

लेकिन द्वैत तो सभी की भाषा में आ जाएगा। बुद्ध संसार और निर्वाण की बात करते हैं, द्वैत हो गया। महावीर पदार्थ और आत्मा की बात करते हैं, द्वैत हो गया। यह तो खैर, लेकिन महावीर तो कहते हैं कि ठीक है, द्वैत को मैं मान कर चलता हूं। शंकर तो द्वैत को मान कर नहीं चलते; लेकिन माया और ब्रह्म की बात किए बिना काम नहीं चलता है। शंकर तो कहते हैं, दो नहीं हैं, फिर भी माया की बात और ब्रह्म की बात तो करनी ही पड़ती है। क्योंकि अगर दो नहीं हैं, तो शंकर लोगों से क्या कह रहे हैं फिर? किस चीज से छूटना है, अगर दो नहीं हैं? किस चीज से मुक्त होना है, अगर दो नहीं हैं? अगर ब्रह्म ही है, तो हम सब ब्रह्म हैं ही। अब जाना कहां? अब पहुंचना कहां है? अब करना क्या है? तो शंकर को भी कहीं से तो छुड़ाना पड़ता है। कुछ है जो छोड़ने जैसा है--अज्ञान है, माया है, अविद्या है। फिर दो खड़े हो जाते हैं। शंकर बड़ी मुश्किल में पड़े रहे, क्या करें?

महावीर ने इसलिए सुस्पष्ट कहा कि दो हैं, मान कर चलें। क्योंकि जब दो मिट जाएंगे, तब तुम खुद ही जान लोगे कि एक है; उसकी चर्चा हम न करें। हम दो की ही चर्चा करें, हम दो की ही चर्चा में से वहां ले चलें, जहां दोनों गिर जाते हैं। शंकर ने कहा, हम उसकी ही चर्चा करेंगे, जो एक है। लेकिन कठिनाई में पड़ गए और दो की चर्चा करनी पड़ी। जिन्होंने दो की चर्चा की है, उनको भी एक का इशारा करना पड़ा है।

बुद्ध इतना कहते हैं--संसार छोड़ो, निर्वाण पाओ। और आखिरी वचन में कहते हैं, संसार और निर्वाण एक ही है। बहुत चौंका गए। बुद्ध का यह वचन दो हजार साल तक बेचैनी का कारण रहा है बौद्ध भिक्षु और साधक के लिए। संसार ही निर्वाण है! इससे ज्यादा, इससे ज्यादा कठिन बात और क्या होगी? अगर संसार ही निर्वाण है, तो फिर जाना कहां है? फिर छोड़ना क्या है? फिर पाना क्या है? तो कुछ तो बुद्ध के पंथ हैं जो इनकार करते हैं कि यह वचन बुद्ध का न होगा। क्योंकि बुद्ध तो कहते हैं, छोड़ो संसार और पाओ निर्वाण। यह दोनों को एक वह कैसे कहेंगे? इनकार ही करते हैं कि यह वचन बुद्ध का नहीं होगा।

लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं, यही वचन बुद्ध का है; बाकी और छोड़े भी जा सकते हैं। जब बुद्ध ने जाना होगा, तब संसार और निर्वाण में कोई भी फर्क नहीं रह जाता है। तब शरीर और आत्मा में भेद नहीं। तब माया और ब्रह्म एक हैं। और तब बंधन और स्वतंत्रता एक ही चीज के दो रूप हैं--बंधन और स्वतंत्रता! पर यह अनुभव; अभिव्यक्ति तो तत्काल दो बन जाएगी।

अभिव्यक्ति देने के लिए लाओत्से कहता हैः पृथ्वी और स्वर्ग, पदार्थ और चेतना।

प्रश्नः ओशो, कल कहा गया है कि जिसे नाम दिया जा सके, वह सनातन व अविकारी सत्य न होगा। लेकिन परम सत्य को दिए गए नाम कामचलाऊ हैं और नाम-सुमिरण की साधना से भी लोग अनाम को उपलब्ध हुए हैं। कृपया समझाएं कि विकारी नाम से यात्रा प्रारंभ करके अविकारी अनाम को उपलब्ध क्यों नहीं किया जा सकता?

लाओत्से छलांग को पसंद करता है, सीढ़ियों को नहीं। ऐसे तो सीढ़ी भी छोटी छलांग है। जब आप सीढ़ी भी चढ़ते हैं, तब भी सीढ़ी क्या चढ़ते हैं, छोटी-छोटी छलांग लेते हैं। बीस हिस्सों में बांट देते हैं। कोई आदमी

बीस हिस्सों की सीढ़ी को इकट्ठी छलांग लेता है, एक छलांग में ही बीस सीढ़ियों वाले हिस्से को कूद जाता है। अगर हम कहना चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि वह आदमी बड़ी सीढ़ी बनाता है। छलांग न कहना चाहें तो कोई अड़चन नहीं है, हम कह सकते हैं कि वह आदमी बीस सीढ़ी की एक ही सीढ़ी बनाता है। एक आदमी उसी हिस्से को बीस टुकड़ों में तोड़ कर सीढ़ी पर चढ़ता है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि वह आदमी बीस छलांग लेता है। आदमी-आदमी पर निर्भर है; साहस-साहस पर निर्भर है।

लाओत्से छलांगवादी है। वह कहता है कि जिसे छोड़ना ही है, उसे पकड़ना ही क्यों! विकारी से निर्विकारी तक जाना है--छोड़ कर ही जाया जा सकता है। छोड़ दो और पहुंच जाओ।

जो सीढ़ीवादी हैं, जो ग्रेजुएल प्रोग्रेस की धारणा रखते हैं, जैसा कि आमतौर से नाम-स्मरण वाले साधक और संत हुए हैं। जैसे मीरा है या चैतन्य हैं, ये भी वहीं पहुंच जाते हैं जहां लाओत्से पहुंचता है। लेकिन वे कहते हैं, छोड़ना है जरूर, लेकिन धीरे-धीरे छोड़ना है। एक-एक सीढ़ी छोड़ते चलेंगे।

तो अब जैसे नानक हुए हैं। वे सब सीढ़ी... । तो नानक कहते हैं, पहले जाप शुरू करो, नाम-स्मरण शुरू करो। और कहे चले जाते हैं कि उसका कोई नाम नहीं है; उसका कोई नाम नहीं है। वह जो अलख निरंजन है, उसका कोई नाम नहीं है; वह जो अकाल है, वह समय के बाहर है। पर नाम-स्मरण करो। पहले ओंठ से नाम-स्मरण करो--यह पहली सीढ़ी। फिर ओंठ को बंद कर लो, फिर कंठ से नाम-स्मरण करो--यह दूसरी सीढ़ी। फिर कंठ से भी छोड़ दो, फिर हृदय से स्मरण करो--यह तीसरी सीढ़ी। फिर हृदय से भी छोड़ दो, फिर अजपा जाप हो जाए। तुम मत करो, जाप को होने दो। तुम मत करो। और ऐसा हो जाता है। ओंठ से; फिर कंठ से; फिर कंठ से भी नहीं, फिर सिर्फ हृदय से; और जब हृदय से होने लगता है, तो छोड़ दो--फिर पूरे शरीर के रोएं-रोएं में, पूरे अस्तित्व में नाम गूंजने लगता है। पर यह भी मंजिल नहीं है, अभी सीढ़ी ही चल रहे हैं। फिर इसको भी छोड़ दो। फिर अजपा; अब जाप ही नहीं। पर यह चार सीढ़ियों में छोड़ा गया। अजपा आएगा, अनाम आएगा, लेकिन चार सीढ़ियों में छोड़ा गया।

लाओत्से कहता है, जिसे छोड़ना ही है, उसे इतने धीरे-धीरे क्या छोड़ना? लाओत्से कहता है कि अगर छोड़ते हो इतने धीरे-धीरे, तो इसका मतलब है, छोड़ने का तुम्हारा मन नहीं है। पकड़े रखना चाहते हो, इसलिए पोस्टपोन करते हो। कहते हो कि जरा अभी ओंठ से कर लें, फिर ओंठ का छोड़ देंगे। फिर कंठ से कर लेंगे, फिर कंठ से छोड़ देंगे। जब अजपा में ही जाना है, तो लाओत्से कहता है, अभी और यहीं! समय को खोने की जरूरत क्या है? छोड़ दो। छलांग, जंप।

लेकिन जरूरी नहीं है कि लाओत्से जैसा कहता है, वैसा सभी को सुगम हो। कभी-कभी तो छुड़ाने के लिए धीरे-धीरे ही छुड़ाना पड़ता है। लोग हैं, टाइप हैं, बड़े भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं।

अगर किसी को हम कहें कि छलांग के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है, सीढ़ियों से उतरने का उपाय ही नहीं है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वह छलांग लगाएगा। अगर वह छलांग लगाने वाला नहीं है, तो सीढ़ियां भी नहीं उतरेगा, बस इतना ही होगा। वह बैठ कर ही रह जाएगा। वह कहेगा, यह बात ही अपने काम की नहीं है। पर उसके लिए भी परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग तो होना ही चाहिए। उसे कोई कहता है, सीढ़ियों से आ जाओ।

लाओत्से जो कह रहा है, वह उसके अपने टाइप की बात कह रहा है। इसे सदा ध्यान में रखना, नहीं तो मेरी बात में आपको निरंतर कठिनाई होगी। मेरा अपना, खुद का, निजी जो स्वभाव है, वह ऐसा है कि जब मैं लाओत्से पर बोल रहा हूं, तो मैं लाओत्से होकर ही बोल रहा हूं। फिर मैं भूल जाऊंगा कि कोई चैतन्य कभी हुए,

कि कोई मीरा कभी हुई, कि कोई कृष्ण ने कभी कोई गीता कही। वह मेरे नहीं बीच में आएगी। वह बात खतम हो गई।

तो अच्छा होगा कि जब लाओत्से पर बोल रहा हूं, तो दूसरे सवाल बीच में मत उठाएंगे। उससे समझने में फायदा नहीं होगा, नुकसान ही पड़ेगा। जब कृष्ण पर बोलता हूं, तब पूछ लेना; तब लाओत्से को बीच में मत लाना। क्योंकि जब कृष्ण पर बोलता हूं, तो कृष्ण ही होकर बोलना है। फिर बीच में दूसरे को लाना नहीं है। और मेरा अपना कोई लगाव नहीं है; इसीलिए मैं किसी के भी साथ पूरा हो सकता हूं। मेरा अपना कोई लगाव नहीं है। अगर मेरा अपना कोई लगाव हो, तो मैं किसी के साथ पूरा नहीं हो सकता। अगर मेरा लगाव हो कि नाम-स्मरण से ही पहुंचा जा सकता है, तो फिर लाओत्से को मैं आपको न समझा पाऊंगा। अन्याय हो जाएगा।

नहीं! मैं कहता हूं, लाओत्से बिल्कुल ही ठीक कहता है, एकदम ठीक कहता है। और फिर भी जब मैं चैतन्य पर बोलूंगा, तो कहूंगा कि चैतन्य बिल्कुल ठीक कहते हैं। सीढ़ियों से भी पहुंचा जा सकता है। लेकिन अभी उसे मत उठाएं। क्योंकि उसे उठाने से लाओत्से को समझने में कोई सुगमता न होगी। उसे भूल जाएं, उसे बिल्कुल ही भूल जाएं। लाओत्से को समझने बैठे हैं तो छलांग की बात ही पूरी समझ लें।

नहीं तो हमारा मन ऐसा करता है, जब मैं छलांग की बात समझाने बैठता हूं तब आप सीढ़ियों की बात उठाते हैं और जब मैं सीढ़ियों की बात समझाने बैठता हूं तब आप छलांग की बात उठाते हैं। आप चूकते हैं। बेईमानी है वह मन की। क्योंकि जब मैं कहता हूं, कीर्तन करो, तब आप कहते हैं कीर्तन से क्या होगा? और जब मैं कहता हूं, सब फेंक दो, नाम वगैरह जला दो, तब आप कहते हैं कि यह आप तो कह रहे थे कि कीर्तन से होगा। न आपने वह किया, न आप यह करेंगे। आप अपना बचाव खोजते चले जाएंगे।

आप से जो बन पड़े, वह कर लो। लेकिन इतना तो कर ही लो कम से कम कि जो मैं समझा रहा हूं, उसे पूरा का पूरा, प्रामाणिक समझ लो। उसमें दूसरे को डालो ही मत। वह सब फारेन है। जैसे लाओत्से के बीच में नाम की बात ही मत लाना। संकीर्तन, कीर्तन का सवाल ही मत उठाना। वह बिल्कुल कचरा है। लाओत्से की व्यवस्था में उसका कोई भी उपयोग नहीं है। वह वैसा ही है, जैसे कि एक बैलगाड़ी के चाक को उठा कर और कार में लगाने की कोशिश में कोई लग जाए। ऐसा नहीं कि बैलगाड़ी नहीं चलती है; बैलगाड़ी बराबर चलती है। उलटा भी नहीं होगा। कार के चक्के को भी बैलगाड़ी में लगाने मत चले जाना। ऐसा नहीं कि वह नहीं चलता है; वह भी चलता है। एक सिस्टम अपने भीतर गतिमान होती है, अपने बाहर व्यर्थ हो जाती है।

लाओत्से के लिए सब बेमानी है। और लाओत्से ठीक कहता है, गलत नहीं कहता। असल में, ठीक इतनी बड़ी बात है, सत्य इतना बड़ा है कि वह अपने से विपरीत सत्यों को समा लेता है। सत्य इतना बड़ा है कि वह अपने से विपरीत को भी मेहमान बना लेता है। असत्य बहुत छोटा होता है; वह अपने से विपरीत को मेहमान नहीं बना सकता। सत्य के भवन में, जैसा कि जीसस ने कहा है कि मेरे प्रभु के मकान में बहुत कक्ष हैं--देयर आर मेनी मैन्शंस इन माई लार्ड्स हाउस। बहुत कक्ष हैं मेरे प्रभु के मकान में। और एक-एक कक्ष इतना बड़ा है कि एक कृष्ण के लिए, एक बुद्ध के लिए, एक महावीर के लिए, एक लाओत्से के लिए, और इस तरह के हजार लोग हों, तो उनके लिए एक कक्ष काफी है एक-एक के लिए। और वे सभी कक्ष प्रभु के मंदिर के कक्ष हैं।

लेकिन जब मैं तुम्हें लाओत्से के कक्ष का दरवाजा बताऊं, तब तुम यह मत कहना कि यह दरवाजा तो लाल रंग का है; कल जो कक्ष का आपने दरवाजा दिखाया था, कृष्ण का, वह तो पीले रंग का था। आप तो कहते थे कि पीले रंग के दरवाजे से प्रवेश होगा। अब आप कहते हैं, लाल रंग के दरवाजे से प्रवेश होगा!

और मजा यह है कि आप पीले रंग के दरवाजे से भी प्रवेश नहीं किए थे और अब आप पीले रंग के दरवाजे की आड़ लेकर लाल रंग के दरवाजे से भी प्रवेश नहीं करेंगे।

कहीं से भी प्रवेश कर जाएं! छलांग बने लगाते, छलांग लगा जाएं। जिनका चित्त युवा है और साहस से भरा है, वे छलांग लगा जाएं। जो डरे हुए हैं, भयभीत हैं, छलांग लगाने में पता नहीं हाथ-पैर न टूट जाएं, वे भी कम से कम सीढ़ियां तो उतरें। वे वहीं पहुंच जाएंगे थोड़ी देर-अबेर। लेकिन बैठे न रह जाएं। क्योंकि बैठने वाला कभी नहीं पहुंचेगा। और यह भी मैं नहीं कहता कि हर कोई छलांग लगा जाए। क्योंकि जिसका मन लगाने का न हो, वह न ही लगाए। क्योंकि जरूरी नहीं है कि छलांग से पहुंचे ही, हाथ-पैर भी तोड़ ले सकता है। यह जरूरी नहीं है कि छलांग लगाने में कोई गौरव है। लगती हो तो लगाएं, न लगती हो तो सीढ़ियों से उतर आएं।

लेकिन जिससे छलांग लगती हो वह सीढ़ियों से उतर कर समय क्यों जाया करे? और ध्यान रहे, जो छलांग लगा सकता है, वह सीढ़ियों पर गिर भी सकता है। सीढ़ियां बहुत छोटी पड़ेंगी उसके लिए। वह गिर सकता है, हाथ-पैर तोड़ सकता है। जैसा सीढ़ियों से उतरने वाला छलांग में हाथ-पैर तोड़ सकता है, वैसा छलांग लगाने वाला सीढ़ियों में हाथ-पैर तोड़ सकता है।

नहीं, निश्चित कर लें। अपने को समझ लें। मैं तो न मालूम कितने मार्गों की बात किए चला जाऊंगा। आपको जो दरवाजा अपने जैसा लगे, आप उसमें प्रवेश कर जाना। आप इसकी फिक्र मत करना कि आगे के दरवाजे को और समझ लें। आपको जो भी समझने जैसा लगे, वहां से चुपचाप प्रवेश कर जाना।

और आखिर में मंदिर के बीच में पहुंच कर आप पाएंगे कि और दरवाजों से प्रवेश किए लोग भी वहीं पहुंचे हैं। किस दरवाजे से पहुंचे हैं आप, यह मंदिर के अंतर्गृह में पहुंचने पर कोई नहीं पूछता--कि आप किस दरवाजे से आए? बाएं से आए कि दाएं से आए? छलांग लगा कर चढ़े थे सीढ़ियां, कि सीढ़ियां आसानी से चढ़े थे? मंदिर के भीतर पहुंच कर, प्रभु की प्रतिमा के निकट पहुंच कर कोई आप से हिसाब नहीं पूछेगा कि आप धीमे आए, तेजी से आए? एक-एक सीढ़ी चढ़े, दो-दो सीढ़ियां छलांग लगाईं? कूद कर आ गए? क्या किया, कोई नहीं पूछेगा। न आप ही याद रखेंगे कि आप कैसे आए। मंजिल पर पहुंच गया यात्री तत्काल भूल जाता है मार्ग को। मार्ग तभी तक याद रहता है जब तक मंजिल नहीं है।

ये सवाल न उठाएं; इससे लाओत्से को समझने में कठिनाई पड़ेगी। और इससे चैतन्य या मीरा को समझने में कोई सुविधा न होगी। लाओत्से को समझने चले हैं तो पूरा का पूरा आत्मसात हो जाएं, उसकी बात समझें। वह बिल्कुल ठीक कह रहा है। कुछ लोग उसके ही रास्ते से पहुंचे हैं, कुछ लोग उसी के रास्ते से पहुंच सकते हैं। आप में से भी कुछ होंगे, जो उसी के रास्ते से पहुंच सकते हैं। पूरी तरह समझ लें। शायद आप ही वही हों। तो वह रस आपके मन में बैठ जाए तो रास्ता बन जाए।

लेकिन हमारा मन सदा ऐसा होता है। पहले मैं लोगों को शांत बैठ कर ध्यान करवा रहा था। तो वे मुझसे आकर कहते थे कि इसमें तो कुछ होता नहीं, बैठे रहते हैं। वही लोग, ठीक वही लोग, जब मैं तेजी से ध्यान करवाने लगा, आकर मुझसे कहने लगे कि इससे तो वह शांत बैठने वाला बहुत अच्छा था। उन्होंने ही मुझसे कहा था कि इससे कुछ नहीं होता, शांत बैठे समय खराब हो जाता है। अब वे मुझसे कहते हैं कि वह बहुत अच्छा था, उसमें तो शांत बैठ कर बड़ा आनंद आता था। उस वक्त उन्होंने मुझसे उलटा कहा था।

नहीं, आनंद नहीं; अब इससे बचना है। तब वे उससे बच रहे थे, कि इससे कुछ नहीं होता। अब वे पीछे लौट कर कहते हैं कि उससे कुछ होता था। अब इससे बचना है।

अगर बचते चले जाना है, तब तो कोई अड़चन नहीं है। अन्यथा जब एक बात को समझने बैठें, तो शेष सब बातों को भूल जाएं। तब पूरे उसमें लीन हों, डूबें। शायद वह रास्ता आपके लिए रास्ता बन जाए।

और कुछ पूछना हो तो पूछ लें, सूत्र फिर कल लेंगे।

प्रश्नः जिस निर्विचार स्थिति का आपने वर्णन किया है जिसमें कांशसनेस, चेतना का अस्तित्व निष्क्रिय तो होना ही चाहिए। तो अगर कांशस माइंड पूर्ण निर्विचार व निष्क्रिय हो जाए तो इसमें और जड़ अस्तित्व में क्या फर्क होगा? जब कुछ भी करना नहीं, सिर्फ निपट होना ही लक्ष्य हो, तो ऐसी स्थिति में और मृत शांति में कोई फर्क नहीं होता? हमारे लिए चेतना के अस्तित्व का क्या प्रयोजन हो सकता है? लकड़ी की कुर्सी का अस्तित्व और निर्विचार-निष्क्रिय मानवीय अस्तित्व में क्या फर्क है, कृपया समझाएं।

न तो आपने कभी लकड़ी की कुर्सी होकर देखा, और न कभी निर्विचार मनुष्य होकर देखा। दोनों में से कोई भी आपने नहीं देखा है। लेकिन सोचते हैं हम कि दोनों में फर्क होना चाहिए; या सोचते हैं कि शायद दोनों में कोई फर्क न होगा। लकड़ी की कुर्सी कैसा अनुभव करती है, इसका आपको कोई भी पता नहीं है। अनुभव करती भी है, नहीं करती, इसका भी कोई पता नहीं है। निर्विचार मनुष्य कैसा अनुभव करता है, इसका भी कोई पता नहीं है। लेकिन प्रश्न मन में उठता है। प्रश्न बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारे सभी प्रश्न ऐसे हैं। हमारे सभी प्रश्न ऐसे हैं कि जो हमारे अनुभव के बाहर होता है, उसके संबंध में हम प्रश्न निर्मित कर लेते हैं। उनका कोई भी उत्तर परिणामकारी नहीं होगा। सिर्फ अनुभव ही परिणामकारी हो सकता है।

तो पहले तो हम थोड़ा अनुभव को समझें, फिर उत्तर को भी देख लें।

जब व्यक्ति के सारे विचार शांत हो जाते हैं, तो कांशसनेस तो रहती है, सेल्फ कांशसनेस नहीं रहती। चेतना तो रहती है, लेकिन स्वचेतना नहीं रहती। लेकिन हमें बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि हमने सिवाय सेल्फ कांशसनेस के और कोई कांशसनेस कभी जानी नहीं है। जब हम कहते हैं, चेतन हूं मैं, तो उसका मतलब होता है, मैं हूं। हमारे चेतन होने का एक ही मतलब होता है, अपने होने का हमें पता है कि मैं हूं। हालांकि बिल्कुल पता नहीं है कि कौन हूं? क्या हूं? कुछ पता नहीं, बस मैं हूं।

यह जो हमारी स्वचेतना है, सेल्फ कांशसनेस है, यह रोग है, बीमारी है। इसी स्वचेतना के संघट का नाम अहंकार है, ईगो है। इस स्वचेतना को बढ़ाने के लिए हम हजार तरह के उपाय करते हैं। जब आप बहुत अच्छे कपड़े पहन कर निकले हैं, जैसे किसी और के पास नहीं हैं, तो होता क्या है? यह स्वचेतना मजबूत होती है। साधारण कपड़ों में सेल्फ कांशस होना मुश्किल हो जाता है। असाधारण कपड़ों में आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। अगर आप रथ पर बैठ कर चल रहे हैं और बाकी लोग जमीन पर चल रहे हैं, तो आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। आप हाथी पर बैठे हैं, बाकी लोग जमीन पर हैं, तो आप सेल्फ कांशस हो जाते हैं। आप कुछ हैं। यह जो होने का सघन भाव है, यह तो रोग है, बीमारी है। यही चिंता है, यही तनाव है, यही अशांति है।

जिस व्यक्ति के विचार शून्य हो जाएंगे, वह कांशस तो होगा, सेल्फ कांशस नहीं होगा। चैतन्य तो वह पूरा होगा, चेतना तो उसके रोएं-रोएं में होगी, चेतना तो उसके चारों ओर प्रवाहित होगी; लेकिन चेतना के बीच में कोई मैं नाम का केंद्र नहीं होगा--सेंटरलेस! कोई केंद्र नहीं होगा मैं नाम का।

पर यह कठिन होगा बिना अनुभव के ख्याल में आना। क्योंकि हमारा अनुभव एक ही है, वह मैं नाम का केंद्र जो है, वह घाव की तरह बीच में फड़कता रहता है। उसका ही हमें पता है। इसलिए बेहोशी में अच्छा

लगता है; शराब पीकर अच्छा लगता है। क्योंकि उसमें वह जो सेल्फ कांशसनेस है, वह डूब जाती है। वह घाव थोड़ी देर के लिए भूल जाता है। रात गहरी नींद आ जाती है, तो सुबह अच्छा लगता है। क्योंकि उस रात की गहरी नींद में वह जो बीमारी थी, वह थोड़ी देर के लिए छूट जाती है। कहीं संगीत सुन लेते हैं घड़ी भर, भूल जाते हैं, अच्छा लगता है। वह जो मैं नाम की बीमारी थी, वह थोड़ी देर के लिए विसर्जित हो जाती है।

लेकिन चैतन्य को हमने नहीं जाना है कभी। हमने सिर्फ इस कनसनट्रेटेड ईगो को जाना है, इस एकाग्र हो गए अहंकार को जाना है। यह अहंकार चेतना का रोग है।

जब विचार शून्य होते हैं, शांत और निर्विचार होते हैं, तब चेतना पूरी होती है, लेकिन आप नहीं होते, मैं नहीं होता हूं। होता हूं सिर्फ। अगर हम इस मैं हूं को दो हिस्सों में तोड़ दें, मैं को अलग कर दें, सिर्फ हूं बच जाए, तो हूं होता हूं--एमनेस। नॉट आई एम, एमनेस। मैं हूं ऐसा नहीं; हूं। इस हूं में कहीं कोई मैं का भाव नहीं होता। और चूंकि हूं में मैं का कोई भाव नहीं होता, इसलिए तू का कोई सवाल नहीं होता। इधर गिरता है मैं, उधर तू गिर जाता है।

इसलिए जब हम सेल्फ कांशस होते हैं, तो व्यक्ति होते हैं; और जब हम सिर्फ कांशसनेस होते हैं, तो समष्टि हो जाते हैं। जब होता हूं मैं, तब मैं अलग और सारा जगत अलग। मैं एक द्वीप बन जाता हूं, एक आईलैंड, अलग। और जब सिर्फ हूं, मैं खो गया, तो मैं एक महाद्वीप हो जाता हूं। सब चांद-तारे मेरे होने के भीतर घूमने लगते हैं। सूरज मेरे भीतर उगने लगता है। फूल मेरे भीतर खिलने लगते हैं। मित्र, शत्रु, वे सब, जो कल की भाषा में जो भी थे, वे सब मेरे भीतर घटित होने लगते हैं। मैं फैल जाता हूं। इसको पुराना जो ढंग है कहने का, वह यह है कि मैं ब्रह्म हो जाता हूं। ब्रह्म का अर्थ, मैं फैल जाता हूं। मैं इतना फैल जाता हूं कि सब मेरे भीतर आ जाता है, कुछ भी मेरे बाहर नहीं रह जाता।

तो जब तक स्वचेतना है, तब तक सब बाहर और आप अलग। और जब सिर्फ चेतना रह जाती है, तो सब भीतर, सब भीतर, बाहर कुछ भी नहीं--देयर इ.ज नो आउटसाइड। चैतन्य के लिए कोई बाहर का हिस्सा नहीं है, सब भीतर ही भीतर है--ओनली इनसाइडनेस।

पर उसका अनुभव न हो तो ख्याल में न आए। कैसे ख्याल में आए? क्योंकि हम तो सोच ही नहीं सकते कि कोई ऐसी इनसाइड हो सकती है, जिसमें आउटसाइड न हो। जहां भी इनसाइड होती है, आउटसाइड होती है। हमारा सारा अनुभव यह कहता है कि घर का भीतर होगा, तो बाहर भी तो होगा। क्योंकि हमें उस घर का तो पता नहीं है, जो यह पूरा विराट एक ही घर है, इसके बाहर कुछ भी नहीं है। जब सिर्फ चेतना रह जाती है और विचार खो जाते हैं, तो सब भीतर आ जाता है।

तब सवाल है कि फिर जड़ और चेतन में वहां क्या फर्क होगा? वह पूछते हैं आप कि कुर्सी में और हममें क्या फर्क होगा?

यह अभी सवाल उठता है, क्योंकि अभी आपको कुर्सी में और अपने में फर्क दिखाई पड़ता है। उस विराट चैतन्य की स्थिति में कुर्सी भी आपके भीतर होगी, आपका हिस्सा होगी। इतनी ही चैतन्य होगी, जितने चैतन्य आप हैं। कुर्सी भी जीवंत होगी; इतनी ही जीवंत होगी, जितने जीवंत आप हैं। कुर्सी अभी भी जीवंत है, लेकिन उसके जीवंत होने की जो डायमेंशन है, वह इतनी भिन्न है कि आप उससे परिचित नहीं हो सकते। कोई भी चीज चेतना के बाहर नहीं है; सब चेतना के भीतर है। और कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जिसके बाहर चेतना हो, सब चीजों के भीतर चैतन्य का वास है। लेकिन बहुत-बहुत ढंगों से। ढंग को थोड़ा हम समझ लें तो हमारे ख्याल में आए।

एक पत्थर उठा कर मैं फेंकूं दीवार के पार, तो वह दीवार के पार नहीं जाता, दीवार के इसी पार गिर जाता है। लेकिन हवा में से फेंकता हूं, तो हवा के पार चला जाता है। दीवार का ढंग और है, हवा का ढंग और है। दीवार का ढंग और है, हवा का ढंग और है। लेकिन ऐसी चीजें हैं, जो दीवार के पार चली जाती हैं; जैसे एक्सरे है, वह दीवार के पार चली जाती है। उसके लिए दीवार हवा की तरह ही व्यवहार करती है। एक्सरे के लिए दीवार दीवार का व्यवहार नहीं करती, हवा का ही व्यवहार करती है। एक्सरे को पता ही नहीं चलेगा कि दीवार पड़ी बीच में, या हवा पड़ी बीच में या दीवार पड़ी, पत्थर था कि हवा थी, कुछ पता नहीं चलेगा। एक्सरे दोनों को पार कर जाती है। एक्सरे के लिए दीवार हवा जैसी है, पर पत्थर के लिए हवा जैसी नहीं है। पत्थर कहेगा, दीवार अलग है, हवा अलग है।

मैं आपको यह कह रहा हूं कि हमारी जो चेतना होती है, उसके ऊपर निर्भर करता है कि हमें चीजें कैसी दिखाई पड़ती हैं। अगर हम सेल्फसेंट्रिक हैं, तो कुर्सी अलग है, मैं अलग हूं। और अगर सेल्फ टूट गया, तो जैसे दीवार और हवा एक्सरे के लिए एक ही हो जाती हैं, ऐसे ही उस चेतना के लिए दोनों एक हो जाते हैं, कोई भेद नहीं रह जाता।

पर उसका हमें पता हो तभी। उसका हमें पता न हो तो? तो जब तक एक्सरे का कोई पता नहीं था, कोई मानने को राजी नहीं हो सकता था कि आपके पेट की अंतड़ियों की तस्वीर बाहर से ली जा सकेगी। कोई कैसे मानने को राजी होता? यह हो ही कैसे सकता है? फोटोग्राफर कहता कि पागल हो गए हैं आप! तस्वीर लेंगे तो आपकी चमड़ी की आएगी, आपके भीतर की हड्डियों की कैसे आएगी? वह भी किरणों का उपयोग करता है, लेकिन साधारण किरणों का उपयोग करता है। पर ऐसी किरण भी है, जो चमड़ी को पार करके हड्डी पर पहुंच जाती है। उस किरण का जब हमें पता चला, तब हमने जाना कि यह हो सकता है।

असल में, चैतन्य के भी आयाम हैं। जिस चेतना में हम जीते हैं, उसका फैलाव बिल्कुल नहीं है। अपने में सिकुड़े हुए रहते हैं। कुर्सी भी अलग है, पड़ोसी भी अलग है; सब चीजें अलग हैं, हम अलग हैं। अलगाव हमारी चेतना का स्वभाव है, जैसी चेतना अभी है। और जैसे ही चेतना का रूप बदलता है--विचारों के हटते ही गुणात्मक अंतर होता है--वैसे ही चीजों में पृथकत्व गिर जाता है, बीच के फासले गिर जाते हैं। सारी चीजें एक मालूम होने लगती हैं। और प्रत्येक चीज नए ढंग से जीवंत मालूम होने लगती है।

अल्डुअस हक्सले ने पहली दफा जब एल एस डी लिया तो--भाग्य की बात कि आपके सवाल से मेल खाता है--वह जहां बैठा था, सामने ही एक कुर्सी रखी थी। और जब उसने एल एस डी लिया, तो थोड़ी देर में ही वह बहुत हैरान हो गया! कुर्सी से जैसे किरणें निकलने लगीं! कुर्सी, जो साधारण सी, मुर्दा सी कुर्सी थी, उससे किरणें निकलने लगीं। उसमें अनूठे रंग दिखाई पड़ने लगे। वह बहुत हैरान हो गया। उसने कुर्सी में ऐसे सौंदर्य और ऐसी महिमा का कभी दर्शन ही नहीं किया था। जब उसने अपनी किताब लिखी, जिसमें उसने यह वर्णन किया, तो उसने कहा, मैं चकित हो गया! उस दिन मुझे पहली दफे पता चला, हक्सले ने लिखा, कि कुर्सी ऐसी भी हो सकती है! पर वह तो, वह यह कुर्सी न थी, वह तो कोई और ही रूप था। इतने सुंदर रंग थे उसमें, कि किसी हीरे से कैसे निकलें! इतनी जीवंत थी, कि उस पर बैठा न जा सके! इतनी सुंदर थी, कि मैंने कोई सूर्य और चांद और तारे इतने सुंदर नहीं देखे!

तब अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि उस दिन मुझे ख्याल में आया... । एल एस डी से तो कुछ नहीं हुआ था, एल एस डी से तो थोड़ी सी चेतना फैलती है; वह थोड़ा कांशसनेस एक्सपैंडिंग ड्रग है। थोड़ी सी आपकी चेतना थोड़ी सी फैल जाती है, कुछ क्षणों के लिए। पर इतने से फैलाव में कुर्सी जीवंत हो गई! तो अल्डुअस हक्सले ने

लिखा कि अब मैं मान सकता हूं उन लोगों को, जिन्होंने पत्थर को देख कर भगवान जैसा प्रणाम किया हो। उनकी चेतना का कोई फैलाव और रहा होगा। तो अल्डुअस हक्सले ने लिखा कि अब मैं मान सकता हूं वानगॉग जैसे चित्रकार को, जिसने कुर्सी का चित्र बनाया। क्योंकि कुर्सी का कोई चित्र किसलिए बनाए? आप सोच सकते हैं कि पेंट करने बैठें तो कुर्सी का चित्र बनाइएगा? और वानगॉग जैसा अनूठा चित्रकार कुर्सी का चित्र बनाए, महीनों मेहनत करे, पागल होगा? कुर्सी भी कोई बनाने जैसी चीज है? लेकिन हक्सले ने कहा कि तब तक मैं कभी नहीं समझ पाया था कि वानगॉग ने क्यों कुर्सी का चित्र बनाया। तब मैं समझा कि वानगॉग ने किसी और चेतना के क्षण में इस कुर्सी को देखा होगा, जिसको उसने रंगा है।

पर फिर भी हमारे रंग बहुत फीके हैं। एल एस डी के बाद जो रंग दिखाई पड़ते हैं, वे रंग हमने कभी देखे नहीं हैं। पर एल एस डी कुछ भी नहीं करता, आपकी साधारण चेतना को थोड़ा सा फैलाव देता है, जैसे कि हमने किसी गुब्बारे में थोड़ी हवा और भर दी और वह बड़ा हो गया। पर उस थोड़े से फैलाव में सब रंग बदल जाते हैं। साधारण किनारे, रास्ते के किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर हीरे-मोतियों जैसे चमकने लगते हैं।

आज अगर एल एस डी का इतना प्रभाव है सारे पश्चिम पर और सारी पश्चिम की नई पीढ़ी दीवानी है, उसका और कोई कारण नहीं है। यह सारा जगत बहुत रूपवान हो जाता है। यह सारा जगत ऐसा सेंसेशन से भर जाता है, जैसा हमने कभी नहीं जाना। साधारण सा हाथ परमात्मा का हाथ जैसा मालूम हो सकता है। साधारण से कपड़े ऐसी रौनक और ऐसी महिमा ले लेते हैं, जैसा कि कल्पना के बाहर है। यह सब... एल एस डी ने एक नया ख्याल तो खोला। वह नया ख्याल यह है कि चेतना अगर जरा सी फैल जाए, तो जगत बिल्कुल दूसरा हो जाता है।

लेकिन महावीर या लाओत्से जैसी चेतना जब पूरी फैलती होगी, छोटी-मोटी नहीं, पूरी तरह ही फैल जाती होगी--असल में, जो-जो रोकने वाले कारण थे अहंकार के, वे सब गिर जाते होंगे, फैलाव पूर्ण हो जाता होगा--उस क्षण कुर्सी में और आप में क्या फर्क रहेगा? समझ में आपके अभी आना मुश्किल पड़ेगा, क्योंकि जिस कुर्सी को आप जानते हैं, वह भी असली कुर्सी नहीं है; और जिस आप को आप जानते हैं, वह भी असली आप नहीं हैं। दो नकली चीजों के बीच आप हिसाब लगाने बैठेंगे, कुछ ख्याल में नहीं आ सकता।

आप असली हो जाइए, तो कुर्सी को भी असली होने का मौका मिले। क्योंकि नकली आदमी असली कुर्सी को नहीं देख सकता है। और तब आपके लिए नए द्वार... । हक्सले ने अपनी किताब का नाम रखा हैः न्यू डोर्स ऑफ परसेप्शन--दर्शन के नए द्वार; एल एस डी से। और एल एस डी तो सिर्फ एक रासायनिक परिवर्तन है। छह घंटे, आठ घंटे, बारह घंटे के लिए रहेगा, फिर खो जाएगा; और वह भी अत्यल्प। लेकिन जिन्हें परमात्म-अनुभव हुआ, जिनकी स्वचेतना खो गई--चेतना खो गई नहीं, जिनकी स्वचेतना खो गई--और जो चैतन्य हुए, उनके लिए तो सारे फासले गिर जाते हैं और प्रत्येक जगत का कण-कण... ।

अगर महावीर सम्हल कर चलते हैं, तो जैसा जैनी समझते हैं वैसा नहीं है कि चींटी को बचाने के लिए चल रहे हैं; कि कहीं कोई मच्छर न मर जाए, इसलिए परेशान हैं। जो मच्छर आपको दिखाई पड़ता है, वह महावीर को नहीं दिखाई पड़ता। नहीं तो वे भी इतनी फिक्र उसकी नहीं कर सकते हैं। जो चींटी आपको दिखाई पड़ती है, वह महावीर को दिखाई पड़ती हो, तो इतनी फिक्र वे भी नहीं कर सकते हैं।

असल में, चींटी में पहली बार उस ब्रह्म के दर्शन होते हैं, जो हमको कभी नहीं होते। इसलिए महावीर बचा कर चलते हैं, ऐसा नहीं। और कोई उपाय ही नहीं है, चलना ही पड़ेगा ऐसा बच कर। मच्छर मच्छर नहीं है, चींटी चींटी नहीं है। उतना ही जीवन उनमें प्रकट हो गया, जितना खुद महावीर के भीतर प्रकट हो रहा है।

एक और ही जगत का द्वार खुलता है। उस जगत के द्वार खुलने पर आप इसी दुनिया में नहीं रहते। इसलिए इस दुनिया के सवाल आप मत पूछिए। इस दुनिया के सवाल से उस दुनिया का कोई तालमेल, कोई कंसिस्टेंसी, कोई रेलेवेंस नहीं है।

हमारे सवाल करीब-करीब ऐसे हैं, जैसे कि आप मुझसे पूछें कि सपने में मैं सो जाता हूं, तो जब मैं सो जाता हूं तो मेरे सोए हुए सपने की हालत में मेरे कमरे का और मेरा क्या संबंध होता है?

कोई संबंध नहीं होता। कि होता है कोई संबंध? आप इस कमरे में सो सकते हैं और लंदन में हो सकते हैं सपने में। कमरे के भीतर बंद सो सकते हैं और खुले आकाश के नीचे हो सकते हैं, चांद-तारों के नीचे, सपने में। क्या संबंध होता है आपका इस कमरे से सोते वक्त?

नहीं, जैसे ही आप सोते हैं, आप चेतना के दूसरे आयाम में प्रवेश कर जाते हैं। यह कमरा जिस आयाम में था, वहीं पड़ा रह जाता है; आप दूसरी दुनिया में चले गए। फिर आपको इस कमरे के बाहर जाना हो, तो दरवाजा नहीं खोलना पड़ता। स्वभावतः, आप पूछेंगे कि सपने में अगर बाहर जाना हो, तो चाबी पास रखनी चाहिए? कि सपना ठीक से देखना हो, तो चश्मा लगाना चाहिए? नहीं, चश्मे की कोई जरूरत न पड़ेगी, आंखें कितनी ही कमजोर हों। आप दूसरे आयाम में प्रवेश कर रहे हैं, जहां इस तरह के चश्मे की कोई जरूरत न पड़ेगी। इस आंख की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। इस दरवाजे को खोलने की भी जरूरत नहीं, और बाहर हो जाएंगे।

लेकिन जिस आदमी ने सपना न देखा हो कभी, उससे आप कहें कि एक ऐसी भी हालत होती है कि बिना दरवाजा खोले बाहर हो जाते हैं। वह कहेगा, माफ करो, आपका दिमाग ठीक है? अगर आप किसी आदमी से कहें, जिसने सपना न देखा हो, कि एक ऐसी भी हालत होती है कि न हवाई जहाज में बैठो, न ट्रेन में सवार हो, न जहाज में यात्रा करो, क्षण भर में यहां से लंदन पहुंच जाओ, कोई बीच में वाहन की जरूरत ही नहीं पड़ती; दरवाजा खोलो मत, चाबी की जरूरत नहीं, निकल जाओ, पहुंच जाओ। वह कहेगा, आपका दिमाग तो ठीक है न? जिसने सपना न देखा हो, वह आपसे पूछेगा, तो टकरा न जाएंगे बंद दरवाजे से? तो बिना चाबी के ताला कैसे खुलेगा? उसके सब सवाल संगत हैं। फिर भी आप हंसेंगे। आप कहेंगे, तुझे सपने का पता नहीं। वहां ये कोई सवाल संगत नहीं हैं।

जैसे ही विचार गिर जाते हैं और निर्विचार चेतना का जन्म होता है, आप एक बिल्कुल ही और लोक में प्रवेश करते हैं। उस लोक में इस जगत की कोई भी चीज संगत नहीं है। कोई भी चीज, कोई भी नियम संगत नहीं है। इस जगत में जो जड़ दिखाई पड़ रहा है, वह वहां चैतन्य हो जाएगा। इस जगत में जो मृत दिखाई पड़ रहा है, वह वहां जीवंत हो जाएगा। इस जगत में जहां दरवाजे थे, वहां दीवारें हो जाएंगी। इस जगत में जहां दीवारें थीं, वहां दरवाजे हो जाएंगे। इस जगत का कोई भी प्रश्न संगत नहीं है। इसलिए हम जो-जो प्रश्न उठाए चले जाते हैं, उनकी कोई अर्थवत्ता नहीं है।

प्रश्न इसीलिए अर्थपूर्ण हो सकते हैं कि हम उस लोक में कैसे प्रवेश करें? लेकिन अगर आप सोचते हों कि इसी लोक में बैठे हुए हम उस लोक की बातों को प्रश्नों से समझ लेंगे, तो आप गलती में हैं। वह संभव नहीं हो सकता है।

आज इतना ही। और पूछना है कुछ? अच्छी बात है।

प्रश्नः ओशो, कल आपने बताया कि अगर भगवान मिल गया तो सहज पता लग जाएगा कि यह तो मैंने देखा है। दूसरी बात यह बताई कि कुछ नहीं है, और जो है, वही है। और आज भी बताया कि पदार्थ और चैतन्य दो नहीं, पर एक ही है, एकरस है। तो वह भगवान जो एकरस है, वही स्थिति है कि समथिंग बियांड?

दोनों ही बातें हैं। वह जो एकरस स्थिति है, वह तो है ही भगवान। लेकिन वह जो एकरस स्थिति है, वह सदा ही बियांड और बियांड फैलती चली जाती है। वह कहीं समाप्त नहीं होती।

समझें कि मैं एक सागर में कूद पड़ा। तो मैं यह कह सकता हूं कि मैं सागर में उतर गया, लेकिन फिर भी यह नहीं कह सकता कि पूरे सागर में उतर गया। इतना ही कह सकता हूं, एक किनारे से एक कोना मैंने स्पर्श कर लिया। सागर तो बियांड है। जहां मैं खड़ा हूं, वहां एकाध-दो लहर मुझे छू जाती हैं। सागर तो अनंत है।

तो जब कोई परमात्मा को जानता है, तो ऐसा ही जानता है कि यही सब, जो है, वही परमात्मा है। लेकिन ऐसा भी जानता है साथ ही साथ कि जितना मैं जान रहा हूं, उतना ही नहीं, और भी बियांड, और भी पार, वह और भी पार है। और कितना ही जान ले कोई, यह बियांडनेस खतम नहीं होती; यह बनी ही रहती है। यही उसकी मिस्ट्री है; यही उसका रहस्य है। कितना ही कोई जान ले, कितना ही दूर यात्रा कर आए, फिर भी वह पाता है कि दूसरे किनारे का कोई भी पता नहीं है। जिस किनारे से हम उतरे थे, उसका भर पता है। कितना ही दूर कोई चला जाए, दूसरे किनारे का कोई पता नहीं है।

और एक मजे की घटना घटती है, जो समझ में न आएगी। जब वह लौट कर आता है, तो पाता है, जिस किनारे को छोड़ा था, वह भी अब वहां नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक किनारा फिर बचा रहता है; वह तो तभी तक है, जब तक आप किनारे पर खड़े हैं। जब आप कूद गए सागर में, तो दूसरे किनारे का तो कभी पता नहीं लगता; लौट कर अगर अपने किनारे को भी खोजा, कि जहां खड़े थे वह जगह, अब वह भी नहीं है।

जो है, वही परमात्मा है। लेकिन जो है, वह सदा ही पार और पार, पार और पार फैलता चला जाता है। हम जितने भी दूर जाते हैं, हम पाते हैं कि वह और पार फैला हुआ है, और पार फैला हुआ है।

और ऐसी कोई जगह कोई कभी नहीं पहुंच पाया, जहां से उसने कहा हो, बस यहां तक है! और ऐसी जगह कोई कभी नहीं पहुंच पाएगा। वह लॉजिकली असंभव है। क्योंकि अगर कोई आदमी किसी ऐसी जगह पहुंच जाए और कहे कि यह आ गया आखिरी पड़ाव, यहां तक ही परमात्मा है, तो बड़ा सवाल यह उठेगा कि इसके बाद क्या है? बाद तो कुछ होना ही चाहिए। कोई भी सीमा अकेले नहीं बनती; सीमा बनाने के लिए दूसरे की जरूरत पड़ती है। आपके घर की जो फेंसिंग है, वह आपका घर ही अकेला हो तो मुश्किल हो जाए बनाना। वह तो पड़ोसी के घर की वजह से बन पाती है। अगर पार कुछ दूसरा न हो, तो सीमा नहीं बन सकती। और परमात्मा अकेला ही है। यानी जो अकेला है, उसी को हम परमात्मा कह रहे हैं; जो अस्तित्व है, वही है।

तो उसको हम कभी ऐसी जगह न पहुंच पाएंगे, जहां हम कह सकें, बस यहीं तक! क्योंकि यह तो तभी हो सकता है, जब दूसरा कोई शुरू हो जाए वहां से। कोई भी बिगनिंग, कोई भी प्रारंभ किसी चीज का अंत होता है। और कोई भी अंत किसी चीज का प्रारंभ होता है। अगर कोई दूसरी चीज प्रारंभ हो रही हो, तो हम परमात्मा के अंत को पा सकते हैं। लेकिन कहीं कोई दूसरी चीज नहीं है जो प्रारंभ हो जाए।

वैज्ञानिक भी बहुत तकलीफ में पड़े हैं; क्योंकि उनको भी बड़ी अड़चन है, यह विश्व कहीं न कहीं तो समाप्त होना चाहिए। परमात्मा उनके लिए सवाल नहीं है अभी। लेकिन विश्व तो कहीं न कहीं समाप्त होना चाहिए। यह यूनिवर्स कहीं तो पूरा होना चाहिए। यह कहां पूरा होगा? और अगर पूरा हो जाएगा, तो फिर क्या

होगा? यह सवाल तत्काल खड़ा हो जाता है। जहां इसकी सीमा आएगी, वहां... तो वैज्ञानिक कहते हैं, दूसरा यूनिवर्स शुरू हो जाएगा। लेकिन उससे कोई हल नहीं होता। अब हम सारे यूनिवर्स जो शुरू हो सकते हैं, उनको इकट्ठा सोचें और फिर पूछें कि वे कहां खत्म होंगे? वे खत्म नहीं हो सकते।

सत्य या सत्ता अनंत है, इस अर्थों में।

इसलिए परमात्मा जो है, वह है। और साथ ही वह भी है, जो पार फैला हुआ है। वह जो बियांड एंड बियांड है, वह इसके अंतर्गत स्वीकृत है। ये दो चीजें नहीं हैं।

इसलिए हम कभी ऐसा नहीं कह सकते कि यही है परमात्मा। इतना ही कह सकते हैं, यह भी है परमात्मा; और भी पार है, और भी पार है। जो हम जानते हैं, वह भी परमात्मा है; जो हम नहीं जानते हैं, वह भी परमात्मा है। जो किसी ने जाना, वह भी परमात्मा है; जो किसी ने नहीं जाना, वह भी परमात्मा है। और वह भी, जो शायद कोई कभी नहीं जानेगा। अज्ञात ही नहीं है वह, अज्ञेय भी है। नॉट ओनली अननोन, बट अननोएबल आल्सो। क्योंकि अननोन हम उसे कहते हैं, जिसे कभी नोन बनाया जा सकेगा। आज अननोन है, अज्ञात है, कल ज्ञात हो जाएगा। परमात्मा साथ ही अननोएबल भी है, अज्ञेय भी है। ऐसा भी है कि कभी ज्ञात नहीं होगा। वह जो सदा शेष रह जाएगा, सदा शेष रह जाएगा, वह जो सदा पीछे मौजूद रह जाएगा, उसे भी सम्मिलित करना पड़ेगा।

तो कहना पड़ेगा कि यह तो परमात्मा है ही, इसके पार जो है, वह भी परमात्मा है। और जो सदा ही पार रह जाता है, वह भी परमात्मा है।

फिर कल बात करेंगे।

तीसरा प्रवचन

ताओ की निष्काम गहराइयों में

Chapter 1 : Sutra 3

Therefore:
Always stripped of passion we must be found,
If life's Secret we would sound;
But if passion always within us be,
Its outer fringe is all that we shall see.

अध्याय 1 : सूत्र 3

इसलिए यदि जीवन के रहस्य की अतुल गहराइयों
को मापना हो तो निष्काम जीवन
ही उपयोगी है। कामयुक्त मन को
इसकी बाह्य परिधि ही दिखती है।

जिस पथ पर विचरण किया जा सके, वह पथ नहीं; जिस सत्य की निर्वचना हो सके, वह सत्य नहीं।

अनाम है अस्तित्व का जन्मदाता और नाम है वस्तुओं की जननी।

ऐसे दो सूत्रों के बाद लाओत्से का तीसरा सूत्र हैः देयरफोर, इसलिए। तो सबसे पहले तो इस इसलिए को समझ लेना जरूरी है, फिर हम सूत्र को समझ पाएंगे। आश्चर्यजनक लगता है एकदम से, क्योंकि पहली दो बातों से तीसरे सूत्र का ऐसा कोई संबंध नहीं है, जिसे देयरफोर से जोड़ा जा सके।

सत्य नहीं कहा जा सकता। ऐसा मार्ग नहीं, जिस पर चला जा सके। अनाम है अस्तित्व, वस्तुओं का जगत नाम का जगत है। इसलिए, जो चित्त काम से जड़ा है, वह जीवन की अतल गहराइयों को, जीवन के रहस्य को नहीं जान पाएगा; जान पाएगा केवल जीवन की बाह्य परिधि को।

देयरफोर, इसलिए तो तभी जोड़ा जाता है, जब नीचे आने वाली बात ऊपर गई बातों से निर्गमित होती हो, निकलती हो, निःसृत होती हो। पहली दो बातों से ही तीसरी बात निकलती हो, तभी उसे इसलिए से जोड़ा जा सकता है। लेकिन काम से भरे हुए मन का शब्द से भरे हुए मन से क्या संबंध है? ऐसा पथ जिस पर चला न जा सके, ऐसे पथ का कामवासना से भरे हुए मन से क्या संबंध है? ऐसे अस्तित्व को जिसे कोई नाम न दिया जा सके, उसका कामवासना से भरे हुए चित्त से क्या संबंध है?

प्रकट दिखाई नहीं पड़ता, अप्रकट है। इसलिए लाओत्से के इस इसलिए शब्द को, इस देयरफोर को समझने में बड़ी कठिनाई पड़ती रही है। पहले संबंध को थोड़ा देख लें।

असल में, जो वासना से भरा है, वही कहीं पहुंचना चाहता है। कहीं पहुंचने की इच्छा ही वासना है। मैं जो हूं, अगर मैं वही होने से राजी हूं, तो मेरे लिए सब पथ बेकार हुए, मेरे लिए कोई मार्ग न रहा। जब मुझे कहीं जाना ही नहीं है, जब मुझे कहीं पहुंचना ही नहीं है, तब मेरे लिए किसी भी मार्ग का कोई भी प्रयोजन न रहा। मुझे कहीं पहुंचना है, मुझे कहीं जाना है, मुझे कुछ होना है, मुझे कुछ पाना है, तो फिर रास्ते अनिवार्य हो जाते हैं। यात्रा ही न करनी हो, तो पथों का क्या प्रयोजन है? लेकिन यात्रा करनी हो, तो पथ का प्रयोजन है। हम जितने पथों का निर्माण करते हैं, वे सभी वासना के पथ हैं। कोई भी मार्ग बिना कामना के निर्मित नहीं होता। यद्यपि कामना का मार्ग से कोई संबंध नहीं है, कामना का संबंध है मंजिल से। पर कोई भी मंजिल बिना मार्ग के नहीं पहुंची जा सकती। और कोई भी वासना बिना मार्ग के पूरी नहीं की जा सकती। और कोई भी इच्छा को पूरा करना हो तो साधन जरूरी हैं।

वासना तो कहीं पहुंचने की आकांक्षा है। कोई दूर का तारा वासना से भरे चित्त में चमकता रहता है और कहता हैः यहां आ जाओ तो शांति मिलेगी, यहां आ जाओ तो सुख मिलेगा, यहां आ जाओ तो आनंद पाओगे। जहां तुम खड़े हो, वहां आनंद नहीं है। यहां, जहां यह वासना चमकाती है किसी तारे को, वहां आनंद है। और हममें और उस तारे में बड़ा फासला है। उसे जोड़ने के लिए रास्ता बनाना पड़ता है। फिर वह रास्ता चाहे हम धन से बनाएं, वह रास्ता चाहे हम धर्म से बनाएं, वह रास्ता चाहे हम बाहर यात्रा करें, वह रास्ता चाहे हम भीतर जाएं, उस रास्ते से चाहे हम जगत की कोई वस्तु पाना चाहें और चाहे मोक्ष और चाहे परमात्मा का द्वार खोलना चाहें! लेकिन अगर हमारी मंजिल कहीं दूर है, तो बीच में हमें और उस मंजिल को जोड़ने के लिए मार्ग अनिवार्य हो जाता है।

और लाओत्से कहता है, जिस मार्ग पर चला जा सके, वह असली मार्ग नहीं है। पर वासना से भरा हुआ चित्त तो मार्गों पर चलेगा ही। इसका अर्थ यह हुआ कि वासना से भरा हुआ चित्त जिन मार्गों पर भी चलता है, वे कोई भी असली मार्ग नहीं हैं। चलना ही गलत मार्ग पर होता है; चलना होता ही नहीं असली मार्ग पर। असल में, कहीं भी जाने की आकांक्षा गलत जाने की आकांक्षा है--कहीं भी; बेशर्त। ऐसा नहीं कि धन पाने की आकांक्षा गलत है; और ऐसा भी नहीं कि सारे जगत को जीत लेने की आकांक्षा गलत है। नहीं, मोक्ष को पाने की आकांक्षा भी इतनी ही गलत है। असल में, जहां पाने का सवाल है, वहीं चित्त तनाव से भर जाता है और अशांत हो जाता है।

कामवासना से भरा हुआ चित्त जहां है, वहां कभी नहीं होता; और जहां नहीं है, सदा वहीं डोलता रहता है। यह बड़ी असंभव स्थिति है। मैं जहां होता हूं, वहां नहीं होता; और जहां नहीं होता हूं, वहां सदा डोलता रहता हूं। स्वभावतः परिणाम में संताप, एंग्विश पैदा होता है, खिंचाव पैदा होता है। क्योंकि मैं जहां हूं, वहीं हो सकता हूं आराम से। जहां मैं नहीं हूं, वहां आराम से नहीं हो सकता। पर जहां मैं हूं, वहीं होने के लिए जरूरी है कि मेरे जाने का मन ही न हो कहीं; चित्त कोई यात्रा ही न करता हो।

इसलिए लाओत्से कहता है, देयरफोर। इसलिए वह कहता है कि काम से भरा हुआ चित्त, इच्छा से भरा हुआ चित्त जीवन की अतल गहराई के द्वार नहीं खोल पाता है; केवल परिधि से, बाह्य परिधि से परिचित हो पाता है। रहस्य अनजाने रह जाते हैं। महल अपरिचित रह जाता है। महल के बाहर की दीवार को ही जीवन समझ कर वासना से भरा हुआ चित्त जीता है।

जीएगा ही। क्योंकि महल है यहां और अभी; और वासना से भरा चित्त सदा होता है कहीं और कभी। वह कभी भी हियर एंड नाउ, अभी और यहीं नहीं होता। कहीं और, स्वप्न में! और ऐसा नहीं है कि वह जब वहां

पहुंच जाएगा तो कोई स्थिति परिवर्तित होगी। आज जिस जगह मैं खड़ा हूं, वहां सोचता हूं कहीं और होने के लिए; और जब वहां पहुंच जाऊंगा, तो यही मन मेरे साथ फिर खड़ा हो जाएगा और कहीं और जाने की आकांक्षाओं के बीज पुनः निर्मित कर लेगा। ऐसे हम दौड़ते ही रहते हैं। और यह बहुत मजेदार दौड़ है। क्योंकि जिस जगह के लिए हम दौड़ते हैं, वहां पहुंच कर हम पुनः फिर किसी और जगह के लिए दौड़ने लगते हैं।

असल में, जिसे हमने पाने के पहले मंजिल समझा, पाने के बाद वह फिर पड़ाव हो जाता है। पाने के पहले लगता है, वहां पहुंच कर सब मिल जाएगा। पहुंच कर लगता है कि यह तो केवल शुरुआत है, और आगे जाना होगा। और हर बिंदु पर ठहराव के ऐसा ही लगता है, और आगे जाना होगा। इसलिए हम कहीं भी शांति से नहीं हो पाते हैं एक क्षण को भी।

लाओत्से ने जान कर इन सूत्रों के पीछे देयरफोर का उपयोग किया है, जैसे कोई गणित या तर्क में करता है। और जो निष्पत्ति ली है, वह यह हैः आलवेज स्ट्रिप्ड ऑफ पैशन वी मस्ट बी फाउंड--वासना से उघड़े हुए, वासना से उखड़े हुए। जैसे वासना की पर्तों को कोई छील दे अपने ऊपर से। जैसे कोई प्याज को छील डाले और सारी पर्तों को अलग फेंक दे; और फेंकता जाए, जब तक एक भी पर्त बचे। लेकिन प्याज को छीलते-छीलते आखिर में हाथ कुछ भी नहीं लगता है। पर्त को निकालते हैं, एक दूसरी पर्त हाथ आती है; उसे निकालते हैं, तीसरी पर्त हाथ आती है। उखाड़ते चले जाते हैं; आखिर में तो शून्य ही बच रहता है।

अगर आप अपनी सारी इच्छाओं को हटा दें, तो क्या आपको ख्याल है कि आप बचेंगे? क्या आप अपनी इच्छाओं के जोड़ से ज्यादा कुछ हैं? अगर आपकी सारी इच्छाएं खींच डाली जाएं प्याज की पर्तों की भांति, तो आप एक शून्य के अतिरिक्त और क्या होंगे? आपने जो चाहा है, वही तो आप हैं; उसका ही जोड़! अगर आपकी सारी चाह झड़ जाए, तो आप क्या होंगे, कभी सोचा है! एक निपट शून्य; ना-कुछ।

लेकिन उसी शून्य से, उसी ना-कुछ से जीवन का द्वार खुलता है।

असल में, सभी द्वार शून्य से खुलते हैं। आप एक मकान बनाते हैं, आप उसमें एक दरवाजा बनाते हैं। आपने ख्याल रखा कि दरवाजा क्या है? दरवाजा सिर्फ एक शून्य है। जहां आपने दीवार नहीं बनाई है, वह दरवाजा है। ठीक से समझें, तो दरवाजे का अर्थ होता है, जहां कुछ भी नहीं है। दीवार से भीतर प्रवेश नहीं होगा। प्रवेश तो दरवाजे से होगा। दरवाजे का मतलब क्या होता है? दरवाजे का मतलब जहां शून्य है। जहां कुछ भी नहीं है, वहां से आप प्रवेश करते हैं। और जहां कुछ है, वहां से आप प्रवेश नहीं करते। अब यह बहुत मजे की बात है, मकान में प्रवेश मकान से कभी नहीं होता। उस जगह से होता है, जहां शून्य होता है, जहां कुछ भी नहीं होता, मकान नहीं होता। दरवाजे का मतलब है, मकान का न होना। दरवाजे को छोड़ कर मकान होता है।

तो जब तक हमारे भीतर ऐसा शून्य हमें न मिल जाए, जहां कुछ भी नहीं है, तब तक हम उस जीवन के परम रहस्य में प्रवेश न कर पाएंगे। वह महल हमसे अपरिचित और अनजाना ही रह जाएगा।

तो लाओत्से कहता है, उखाड़ डालो सारी पर्तें कामना की। एक भी पर्त कामना की न रह जाए।

हम भी कभी-कभी कामना की पर्तें तो उखाड़ते हैं। लेकिन हम एक उखाड़ते हैं तभी, जब हम उससे बड़ी निर्मित कर लेते हैं। हम भी वासनाओं को छोड़ते हैं। पर हम एक वासना को तभी छोड़ते हैं, जब उससे बड़ी वासना को रिप्लेस, उसको उसकी जगह परिपूरक कर लेते हैं। असल में, हम छोड़ते तभी हैं किसी वासना को, जब उससे बड़ी वासना पर हमारा पैर पड़ जाता है। छोटे मकान हम छोड़ देते हैं बड़े मकानों के लिए, छोटे पद हम छोड़ देते हैं बड़े पदों के लिए। हम भी छोड़ते हैं। पर सदा और बड़ा परकोटा निर्मित हो जाए, तब हम कोई छोटी दीवार छोड़ते हैं।

और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम जीवन की पूरी वासना का ढांचा भी छोड़ते हैं। एक आदमी धन खोजता था, पद खोजता था, यश खोजता था। सब बंद कर देता है; पदों से नीचे उतर जाता है, धन का त्याग कर देता है, वस्त्र छोड़ नग्न हो जाता है। और कहता है, मैं अब प्रभु को खोजने जाता हूं। सब छोड़ देता है। लेकिन तब एक और विराट वासना के पीछे सारा ढांचा तोड़ देता है। अब कोई भी उससे न कह सकेगा कि वह धन खोज रहा है। कोई भी न कह सकेगा, पद खोज रहा है। कोई भी न कह सकेगा कि वह प्रतिष्ठा खोज रहा है।

लेकिन अगर ईश्वर शब्द में हम गौर करें, तो हमें सब मिल जाएगा। ईश्वर शब्द बनता है ऐश्वर्य से। परम ऐश्वर्य का नाम ईश्वर है। अब वह उस ऐश्वर्य को खोज रहा है, जिसका कभी अंत नहीं होता। अब वह उस धन की तलाश में है, जिसे चोर चुरा नहीं सकते। अब वह उस संपदा की खोज कर रहा है, जिसे मृत्यु छीन नहीं सकती। पर सब खोज वही है। अब वह उस पद को खोज रहा है, जिस पद से वापस उतरना नहीं होता। अब वह उस प्रतिष्ठा को खोज रहा है, जिसका कोई अंत नहीं है। लेकिन खोज जारी है। नाम उसने अपनी खोज का ईश्वर रखा है।

ध्यान रहे, ईश्वर को कोई भी वासना का विषय, आब्जेक्ट नहीं बना सकता है। और बनाएगा तो वहां ईश्वर को न पाएगा, अपनी ही पुरानी वासनाओं को नए रूप में स्थापित पाएगा। मोक्ष को कोई वासना का विषय नहीं बना सकता है, आब्जेक्ट नहीं बना सकता। और अगर बनाएगा तो मोक्ष केवल एक नया कारागृह--सुंदर, स्वर्ण से निर्मित, फूलों से सजा, पर एक नया कारागृह ही सिद्ध होगा। असल में, वासना हमें कभी भी कारागृह के बाहर नहीं ले जा सकती। जहां तक चाह है, वहां तक बंधन है।

लाओत्से कहता है, उखाड़ डालो, हटा डालो, एक-एक पर्त को तोड़ दो कामवासना की। क्यों? क्योंकि तभी जीवन में जो छिपा हुआ अतल रहस्य है, उस अतल रहस्य की गहराइयों को मापना हो, तो इसके लिए निष्काम हो जाना ही उपयोगी है। निष्काम का अर्थ है, समस्त कामनाओं से शून्य।

शांति की कामना मन में रह जाती है, ध्यान की कामना मन में रह जाती है, समाधि की कामना मन में रह जाती है। और मन बहुत चालाक है। मन कहता है, कोई हर्ज नहीं, अब तुम्हें पद नहीं चाहिए, ध्यान तो चाहिए; अब तुम्हें धन नहीं चाहिए, शांति तो चाहिए। और मन जीता है न धन में, न ध्यान में, न शांति में, न स्वर्ग में। मन जीता है चाह में, चाहने में, वह डिजायरिंग में। इसलिए मन कहता है, कोई भी विषय काम दे देगा, कोई हर्ज नहीं। पर कुछ तो चाहिए। निष्काम का अर्थ है, कुछ भी नहीं चाहिए। और ध्यान रहे, मन की चालाकी बहुत गहरी है। यहां तक वह चालाकी कर सकता है कि कहे कि कुछ भी नहीं चाहिए, यही मेरी चाह है। निष्काम होना है, यही मेरी कामना है। लेकिन मन फिर पीछे खड़ा ही रहेगा।

रवींद्रनाथ ने गीतांजलि में कहीं एक पंक्ति में प्रभु से गाया है, प्रभु से प्रार्थना की हैः तुझसे कुछ और नहीं चाहता, इतनी ही चाह है कि मेरे मन में कोई चाह न रह जाए!

पर कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। और अगर कोई गहराई से देखे, तो जो मांगता है कि मुझे दस हजार रुपए मिल जाएं, जो मांगता है कि मुझे एक बड़ा मकान मिल जाए, उसकी चाह इतनी बड़ी नहीं, जितनी रवींद्रनाथ की है। वह बेचारा बहुत दीन है। वह मांग ही क्या रहा है? उसकी मांग का मूल्य ही क्या है? रवींद्रनाथ कहते हैं, कुछ और नहीं चाहिए सिवाय इसके कि अचाह मिल जाए, चाह के बाहर हो जाऊं। पर यह चाह है--अंतिम, आखिरी, अति सूक्ष्म।

और लाओत्से कहता है, निष्काम! उखाड़ डालो, आखिरी दम तक उखाड़ डालो।

लाओत्से के पास कोई मिलने आया है, एक युवक। और लाओत्से से कहता है, मुझे शांति चाहिए। लाओत्से कहता है, कभी न मिलेगी। वह युवक कहता है, ऐसी मुझमें आपको क्या कठिनाई मालूम पड़ती है? ऐसा मैंने क्या पाप किया है कि मुझे शांति कभी न मिलेगी? लाओत्से कहता है, जब तक तू चाहेगा शांति को, तब तक नहीं मिलेगी। हमने भी चाह कर देखा बहुत दिन तक। और आखिर में पाया कि शांति की चाह जितनी बड़ी अशांति बन जाती है, उतनी जगत में कोई अशांति नहीं है। इस शांति को चाहना छोड़ कर आ।

एक और घटना मुझे याद आती है। लिंची के पास कोई एक साधक आया है और लिंची से कहता है, सब मैंने छोड़ दिया। लिंची कहता है, कृपा कर, इसे भी छोड़ कर आ! वह युवक कहता है, लेकिन मैंने सब ही छोड़ दिया। लिंची कहता है, इतना भी बचाने की कोई जरूरत नहीं।

इतना सूक्ष्म है निष्काम का भाव!

वह युवक कह रहा है कि मैं सब छोड़ दिया। लिंची कहता है, इसे भी छोड़ आ। इतने से को क्यों बचा रहा है? नहीं, वह कहता है, मेरे पास कुछ बचा ही नहीं है। लिंची कहता है, इसे भी मत बचा।

वासना, कामना, चाह, बहुत घूम-घूम कर अनेक-अनेक द्वारों से हमें पकड़ती है।

निष्काम होने का अर्थ हैः मैं जैसा हूं, वैसा राजी हूं। अशांत हूं तो अशांत; बेचैन हूं तो बेचैन; बंधन में हूं तो बंधन में; दुखी हूं तो दुखी। मैं जैसा हूं, टोटल एक्सेप्टबिलिटी, इसकी समग्र स्वीकृति। नहीं, मुझे इंच भर भी अन्यथा होने का सवाल नहीं है। जो हूं, हूं।

तो फिर कोई गति नहीं, फिर कोई मोटिवेशन नहीं। फिर कोई यात्रा कैसे शुरू होगी? फिर मन कैसे कहेगा, वहां चलो, वह पा लो। मैं जो हूं, हूं।

ताओ का सार अंश तथाता है--स्वीकृति। जहां समग्र स्वीकृति है, वहां निष्कामता है। और जहां जरा सी भी अस्वीकृति है, वहीं चाह का जन्म है। जरा सी अस्वीकृति, और पैदा हुई चाह, और काम आया, वासना ने पकड़ा, दौड़ शुरू हुई। ख्याल किया आपने, अस्वीकृति से चाह का जन्म होता है। हम सब चाहों में जीए हैं, जीते हैं। अपनी एक-एक चाह को खोज कर देखेंगे, तो फौरन पता चल जाएगा कि किस अस्वीकृति से यह चाह पैदा हुई, कौन सी चीज थी जो आपने चाही ऐसी न हो, अन्य हो, अन्यथा हो, भिन्न हो, और चाह का जन्म हुआ।

नसरुद्दीन के जीवन में पढ़ा है मैंने। एक दिन गांव से कोई की अरथी गुजर रही है, कोई मर गया है। मुल्ला का घर पड़ा है बीच में, नसरुद्दीन का। बड़ा आदमी मरा है गांव का। करीब-करीब गांव के सभी प्रतिष्ठित लोग अरथी में सम्मिलित हुए हैं। नसरुद्दीन का घर बीच में पड़ा देख कर सम्मानवश अनेक लोगों ने नसरुद्दीन के झोपड़े की तरफ हाथ उठा कर सलाम किया है, नमस्कार किया है।

नसरुद्दीन की पत्नी बाहर खड़ी है। वह दौड़ कर आकर मुल्ला को कहती है कि मुल्ला, नगर में कोई प्रतिष्ठित जन गुजर गया है, बहुत लोग अरथी में जा रहे हैं; तुम्हारी तरफ देख कर, तुम्हारे झोपड़े की तरफ देख कर अनेक लोग नमस्कार कर रहे हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, हो सकता है, आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी; लेकिन उस समय मैं दूसरी करवट लिए हुए लेटा था। और तुझे तो पता ही है कि वह जो आदमी मर गया है, उसकी सदा से गलत आदत है। घड़ी भर बाद भी मर सकता था, तब तक हम करवट उस तरफ किए होते।

नसरुद्दीन तो व्यंग्य कर रहा है आदमी पर। लेकिन वह कहता है कि उस वक्त हम दूसरी तरफ करवट किए हुए थे। नमस्कार लेने को करवट बदलने का भी कोई सवाल नहीं था!

एक बार गांव के लोगों ने सोचा, नसरुद्दीन बहुत मुश्किल में है। कुछ पैसे इकट्ठे किए और नसरुद्दीन को देने आए। वह सीधा, चित्त लेटा हुआ था, खुले आकाश के नीचे, वृक्ष के पास। लोगों ने कहा कि हम कुछ पैसे भेंट करने आए हैं, नसरुद्दीन! सुना कि तुम बहुत तकलीफ में हो। नसरुद्दीन ने कहा, तुम थोड़ी देर से आना, क्योंकि खीसा मेरा नीचे दबा है। जब मैं उलटा लेट जाऊं, तब तुम आकर रख जाना।

नसरुद्दीन ने आदमी पर गहरे व्यंग्य किए हैं। वह कीमती आदमी था।

पर अगर हम निष्काम भाव की गहराई में जाएं, तो हमें पता चलेगा कि जहां हैं, जैसे हैं, स्वीकृत है; उसमें इंच भर यहां-वहां होने की कोई कामना नहीं है। न हो वैसी कामना, तो लाओत्से कहता है, जीवन के रहस्य को, अतल गहराइयों को स्पर्श किया जा सकता है। और गहराइयों में ही जीवन है। सतह पर तो केवल परिधि है; सतह पर तो बाह्य रेखा मात्र है। जैसे मैं आपके शरीर को स्पर्श करके लौट आऊं और कहूं कि मैंने आपको स्पर्श किया। यद्यपि हम ऐसा ही कहते हैं। अगर मैं आपके शरीर को स्पर्श करके लौट आऊं, तो मैं यही कहता हूं कि मैंने आपको स्पर्श किया। यद्यपि केवल बाह्य रूप-रेखा को, आकृति को छूकर आ गया हूं, आपको नहीं स्पर्श किया है। आपके शरीर की जो बाह्य रूप-रेखा है, आकृति है, वह आप नहीं हैं। वह रूप-रेखा तो केवल आप और जगत के बीच एक सीमा है। आप तो गहन गहरे में, भीतर हैं। वह सब तो आपके लिए बाह्य आयोजन है, जिसके भीतर आप हो सके हैं। वह आपका सिर्फ घर है, भवन है, वस्त्र है।

पर दूसरे को हम वस्त्रों से देखते हों और रूप-रेखा छूते हों, वह तो क्षम्य है। हम अपने को भी बाहर से ही देखते हैं और अपने को भी हम शरीर से ही छूते और स्पर्श करते हैं।

पूरे जीवन को हम बाहर से ही छू पाते हैं। लाओत्से कहता है, कामयुक्त मन के कारण।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। कामयुक्त मन गहरे क्यों नहीं जा सकता? तीन सूत्र हैं।

एक, कामयुक्त मन एक जगह एक क्षण से ज्यादा ठहर नहीं सकता, इसलिए खुदाई नहीं कर सकता। कामयुक्त मन भागा हुआ मन है। एक क्षण भी एक जगह रुक नहीं सकता। तो गहरे उतरने के लिए तो खुदाई की जरूरत पड़ेगी। और अगर आप हाथ में एक कुदाली लेकर और दौड़ते हुए खोदते चले जाते हों, तो कुआं आप न खोद पाएंगे। थोड़े-बहुत कंकड़-पत्थर जगह-जगह के उखाड़ देंगे, रास्ते को खराब कर देंगे या जमीन को व्यर्थ के गड्ढों से भर देंगे, लेकिन कुआं आप न खोद पाएंगे। कुआं खोदने के लिए एक जगह, एक जगह चोट, एक जगह श्रम, प्रतीक्षा--कामयुक्त मन वह नहीं कर पाता। कामयुक्त मन सदा भागा हुआ है। कहना चाहिए, एक कदम आपसे सदा आगे है। आप जहां होते हैं, वहां से थोड़ा आगे ही भागा हुआ होता है। जैसे छाया आपके पीछे चलती है, ऐसे काम आपके आगे चलता है। जहां आप हैं, वह आगे के दर्शन दिलाने लगता है।

तो एक तो कामयुक्त मन क्षण भर भी ठहरता नहीं; ठहराए बिना कोई गहराई नहीं है।

दूसरा, कामयुक्त मन कभी भी वर्तमान में नहीं होता, कभी भी। और जीवन वर्तमान में है। कामयुक्त मन होता है सदा भविष्य में। जीवन को छूना है तो इसी क्षण छूना पड़ेगा। और कामयुक्त मन कहता है, किसी और क्षण में सब कुछ छिपा है। कल जहां मैं पहुंचूंगा, वहां सब आनंद के द्वार खुलेंगे। कल जहां मैं पहुंचूंगा, वहां खजाने गड़े हैं। आज? आज तो कुछ भी नहीं है। कामयुक्त मन वर्तमान के प्रति अत्यंत उदास और भविष्य के प्रति अति आतुर मन है। और जीवन का रहस्य तो है वर्तमान में।

असल में, अस्तित्व में सिर्फ वर्तमान है; न तो अतीत है कुछ और न भविष्य है कुछ। अस्तित्व सदा वर्तमान है। अस्तित्व सदा है। अतीत और भविष्य कामयुक्त मन की विडंबनाएं हैं। मन अतीत को सम्हाल कर रखता है, क्योंकि अतीत के ही सहारे भविष्य की यात्रा की जा सकती है। इसलिए जिसे हम भविष्य कहते हैं,

वह हमारे अतीत का ही पुनरावर्तन है; अतीत का ही प्रतिफलन, उसका ही रिफ्लेक्शन है, या कहें उसका ही प्रोजेक्शन है। जो-जो हमने अतीत में पाया है, उसे ही हम फिर-फिर करके भविष्य में पाना चाहते हैं, थोड़े हेर-फेर से। तो हम अपने अतीत को सम्हाल कर रखते हैं, ताकि हम अपने भविष्य को निर्मित कर सकें।

लेकिन अतीत केवल स्मृति है, अस्तित्व नहीं। और भविष्य केवल कल्पना है, अस्तित्व नहीं। भविष्य केवल स्वप्न है, जो अभी घटा नहीं; और अतीत वह स्वप्न है, जो घट गया। और जो है सदा, वह न तो अतीत है और न भविष्य है। वह वर्तमान है। शायद उसे वर्तमान कहना भी एकदम ठीक नहीं है। ठीक इसलिए नहीं है कि वर्तमान हम कहते उसे हैं, जो अतीत और भविष्य के बीच में होता है। लेकिन अगर अतीत भी झूठ है और भविष्य भी झूठ है, तो उन दोनों के बीच में कोई सत्य नहीं हो सकता। दो झूठों के बीच में सत्य के अस्तित्व का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए अगर और ठीक से हम कहें, तो वर्तमान भी नहीं है, अस्तित्व इटरनिटी है, शाश्वतता है, सनातनता है। न वहां कभी कुछ मिटता है और न कभी वहां कुछ होता है, वहां सब है। सारी स्थिति है की है। और इस है में जो प्रवेश करे, इस इ.जनेस में, वह जीवन की अतल गहराइयों को छू पाएगा।

कामयुक्त मन तो दौड़ता रहेगा परिधि पर। अतीत से लेगा रस, भविष्य में फैलाएगा स्वप्न; अतीत में डालेगा जड़ें, भविष्य में फैलाएगा शाखाएं--उन फूलों के लिए जो कभी आएं। और अस्तित्व? अस्तित्व अभी बीता जा रहा है। वह अभी है। इसी क्षण है, यहीं है।

तीसरी बात, जीवन है निकटतम। निकटतम कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि हम स्वयं जीवन हैं। निकटतम भी हो, तो भी हमसे थोड़ा दूर हो गया। जीवन हम स्वयं हैं। और कामयुक्त मन सदा दूर की तलाश है, दि फार अवे। कामयुक्त मन सदा दूर की तलाश है। और जीवन है निकटतम, निकटतम से भी निकट। और कामयुक्त मन है दूर से भी दूर। इन दोनों का कहीं मिलन नहीं होता। जीवन का और मन का कहीं भी मिलन नहीं होता।

किप्लिंग ने कहीं गीत गाया है कि पूरब और पश्चिम कहीं नहीं मिलते।

वे शायद कहीं मिल भी सकते हों, लेकिन मन और जीवन कहीं नहीं मिलते। हैरानी की लगेगी बात कि मन और जीवन कहीं नहीं मिलते। इसलिए जो मन से भरा है, वह जीवन से रिक्त हो जाता है। और जो मन से खाली होता है, वह जीवन से भर जाता है।

लेकिन कठिनाई मालूम पड़ेगी, क्योंकि हम तो मन से ही भरे हैं। तो हमें जीवन का कोई पता चला या नहीं चला? नहीं, हमें जीवन का कोई पता नहीं चला है। हमने मन को ही जीवन समझा है। और मन को जीवन समझ लेना ऐसे ही है, जैसे कंकड़-पत्थरों को कोई हीरा समझ ले। या वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्तों को कोई फूल समझ ले और कभी आंख उठा कर ही न देखे कि ऊपर फूल भी खिलते हैं। सूखे पत्ते जो वृक्ष से गिर जाते हैं, वर्जित, फेंक दिए जाते हैं, निष्कासित, उनको बीनता रहे और समझे कि फूल हैं, उनके ढेर लगा ले और तिजोरियां भर ले। मन केवल राख है अतीत की। जैसे रास्ते से कोई राहगीर गुजरे तो कपड़ों पर धूल जम जाए, ऐसा अस्तित्व से गुजर कर जो राख हम पर इकट्ठी हो जाती है मार्गों की, उसका संग्रह है मन। उसी संग्रह से हम भविष्य के संबंध में सोचते चले जाते हैं।

लाओत्से उसकी जड़ को काट डालना चाहता है। इसलिए लाओत्से कहता है, काम से मुक्त। क्योंकि काम जहां नहीं है, वहां मन ठहर नहीं सकता। काम जड़ है। अगर बुद्ध से जाकर पूछेंगे, तो बुद्ध कहेंगे, तृष्णा! बस तृष्णा न हो तो सब मिल जाएगा तुम्हें। ठीक शब्द है तृष्णा। जिसको लाओत्से कह रहा है डिजायरिंग, कामना,

पैशन, वासना, उसे बुद्ध कह रहे हैं तृष्णा। महावीर उसे कहते हैं प्रमाद। अलग-अलग शब्द लोगों ने उपयोग किए हैं। पर एक, मन को काटने की जो जड़ है, वह एक ही है।

जिसने कुछ चाहा, वह मन के बाहर न हो सकेगा। जिसने कुछ भी न चाहा, वह इसी क्षण मन के बाहर है, इसी क्षण! उसे कल तक रुकने की जरूरत नहीं है। अगर इसी क्षण बैठ कर आप इतना साहस जुटा पाएं कि अब मैं नहीं कुछ चाह रहा हूं, तो इसी क्षण आप जन्मों-जन्मों की अंधी स्थिति के बाहर हो सकते हैं। इसी क्षण!

लेकिन धोखा होगा। और धोखा इसलिए नहीं होता कि बाहर होना असंभव है। धोखा इसलिए होता है कि आप पूरे मन के राज को नहीं समझ पाते हैं। मेरी बात सुनेंगे तो आपके मन में होगा, अगर हो सकते हैं बाहर तो क्यों न हो जाएं? अभी हो जाएं। हो जाना चाहिए।

अगर आपने हो जाने की चाह निर्मित की और आपने इसलिए आंख बंद की कि अच्छा है, मुक्त हो जाएं झंझट से, शांत हो जाएंगे, परम आनंद बरस पड़ेगा, यह तृष्णा को तोड़ ही दें, तो द्वार खुल जाएंगे जीवन के रहस्य के, अगर आपने इसको भी चाह का रूप दिया, तो आप फिर छटक गए, फिर भटक गए।

एक सूफी फकीर हुआ है, बायजीद। बायजीद जब पहली दफा अपने गुरु के पास गया, तो उसे बड़ी नींद की आदत थी। गुरु समझाता रहता, बायजीद सो जाता। गुरु बायजीद को बाहर पहरे पर बिठालता, बायजीद सो जाता। गुरु ने बहुत बार कहा कि देख, तू सोने से ही चूक जाएगा। पर बायजीद कहता कि मैं इतना तो जागता रहता हूं; ऐसा तो नहीं कि सोया ही रहता हूं। बहुत जागता भी हूं, थोड़ा सोता भी हूं। पर उसके गुरु ने कहा, तुझे पता नहीं है कि कभी ऐसा होता है कि चौबीस घंटे जागे हो और एक क्षण को सो गए हो और सब खो जाता है।

बायजीद ने उस रात एक सपना देखा कि वह मर गया है और स्वर्ग के द्वार पर पहुंच गया है। द्वार बंद हैं और द्वार पर एक तख्ती लगी है कि जो भी द्वार पर आए और प्रवेश का इच्छुक हो, वह चुपचाप बैठ जाए। एक हजार वर्ष में एक बार द्वार खुलता है, एक क्षण को। सजग हो बैठा रहे, जब द्वार खुले, भीतर प्रवेश कर जाए। बायजीद बड़ा घबड़ाया, एक हजार साल में एक बार खुलेगा एक क्षण को! और झपकी तो, एक हजार साल का मामला है, लगती ही रहेगी। बड़ी साहस करके, बड़ी हिम्मत जुटा कर, बड़ी ताकत लगा कर, आंखों को खोल कर बैठा-बैठा-बैठा, फिर झपकी लग गई। जब झपकी खुली तो देखा कि द्वार बंद हो रहा था। घबड़ाया, भागा, लेकिन द्वार बंद हो चुका था। फिर बैठा, फिर एक हजार साल बीते। फिर एक दिन झपकी लगी थी, आवाज आई कि द्वार खुला जैसे। लेकिन मन ने कहा, यह सब सपना है; ऐसे द्वार नहीं खुला करते। अभी हजार साल भी कहां पूरे हुए! फिर भी घबड़ा कर उठा, लेकिन देखा कि द्वार बंद हो रहा है। नींद खुल गई। सपने थे।

गुरु के पास, आधी रात थी, उसी वक्त गया। और कहा, अब पलक न झपकाऊंगा, मुझे माफ कर दें। गुरु ने कहा, हुआ क्या? अपना सपना कहा। गुरु ने कहा, तूने ठीक से नहीं देखा। दरवाजे के इस तरफ तख्ती लगी थी कि हजार साल में एक बार द्वार खुलेगा, एक क्षण को खुला रहेगा और फिर बंद हो जाता है। जब द्वार बंद हो रहा था, तूने दूसरी तरफ लगी हुई तख्ती देखी कि नहीं? बायजीद ने कहा, दूसरी तरफ की तख्ती देखने का मौका नहीं मिला। द्वार करीब-करीब बंद ही हो रहा था तभी, तभी दो दफा... ।

बायजीद के गुरु ने कहा, अब दुबारा कभी सपना आए तो दूसरी तरफ की तख्ती भी एक दफा देख लेना। उस पर यह भी लिखा है कि यह द्वार तभी खुलता है, जब तुम सोते हो।

जब हम मूर्च्छित होते हैं, तभी द्वार खुलता है। ऐसा द्वार के खुलने की क्या शर्त हो सकती है?

असल बात यह है, अगर और गहरे में जाएं--बायजीद के गुरु ने उससे नहीं कहा--अगर और गहरे में जाएं, तो जब द्वार खुलता है, तभी हम मूर्च्छित हो जाते हैं। वह हमारे मन का कारण है। ऐसा नहीं कि जब हम मूर्च्छित होते हैं, तब द्वार खुलता है। लेकिन जब द्वार खुलता है, तभी हम मूर्च्छित हो जाते हैं। क्योंकि अगर वह द्वार एक दफा हमें खुला दिख जाए, तो फिर मन के बचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए मन अपनी पूरी सुरक्षा करता है; वह अपने को बचाने के पूरे इंतजाम करता है। सब तरह के इंतजाम करता है।

अभी परसों एक युवक मेरे पास आए। और उन्होंने कहा कि ध्यान में तो... । अभी दो महीने पहले आए थे, तो बड़े बेचैन थे। मन शांत कैसे हो? अशांति बहुत है; बेचैनी, घबड़ाहट बहुत है। मन शांत होना शुरू हुआ, घबड़ाहट कम होनी शुरू हुई। तो अभी वे एक नई घबड़ाहट लेकर आए थे, वे यह कह रहे थे कि मन तो शांत हो रहा है, घबड़ाहट भी कम हो रही है, लेकिन अब एक नया डर लगता है कि और भीतर प्रवेश करना या नहीं?

क्या डर है?

कहीं ऐसा तो न होगा कि जीवन की वासनाओं में रुचि कम हो जाए? कहीं ऐसा तो न होगा कि जीवन की जो चारों तरफ दौड़ है, उसमें रुचि कम हो जाए? ऐसा तो न होगा कि मेरी महत्वाकांक्षा मर जाए? नहीं तो फिर विकास कैसे करूंगा?

ठीक कह रहे हैं, मन ऐसी ही बातें खोज कर लाता है। तभी द्वार खुलता है, तभी मन ऐसी बातें खोज लाता है। ऐसा तो न होगा कि मेरा सब बना-बनाया जो व्यवस्था है, वह बिगड़ जाए? मन तत्काल कोई खबर भीतर से खोज लाता है।

अभी एक सज्जन ने मुझे लिखा कि ध्यान बहुत गहरा जा रहा है, लेकिन अब मैं कर नहीं पाता हूं, क्योंकि मुझे ऐसा डर लगता है कि कहीं ध्यान में मैं मर न जाऊं! ऐसी घबड़ाहट होती है कि ध्यान में मैं मर न जाऊं! अगर ध्यान में मर गया, तो फिर क्या होगा? आप जिम्मेवार होंगे?

मैंने कहा, तुम्हारा क्या ख्याल है, बिना ध्यान के मरोगे ही नहीं? अगर तुम्हारा यह पक्का हो कि तुम बिना ध्यान के मरोगे ही नहीं, तो ध्यान में मरोगे तो जिम्मा मैं ले सकता हूं। लेकिन अगर तुम बिना ध्यान के भी मर सकते हो, तो ध्यान का जिम्मा मुझ पर क्यों डालते हो?

लोग मुझे लिखते हैं, हम पागल तो न हो जाएंगे? ध्यान गहरा होता है तो हम पागल तो न हो जाएंगे?

मन फौरन ही इंतजाम करता है। जैसे ही आप उस जगह पहुंचेंगे जहां द्वार खुलता हो, मन कहेगा कि नहीं, अब आगे मत बढ़ना; बस अब लौट चलो। अब कोई भी बहाना खोजेगा।

मैं लोगों को समझाता रहा हूं कि वस्त्र बदलने से कुछ भी न होगा, नाम बदलने से कुछ न होगा, संन्यास लेने से कुछ न होगा। तो वे लोग मेरे पास आते थे और कहते थे कि कुछ तो बाहर का सहारा दें! अगर बाहर कोई भी सहारा नहीं, तो हम भीतर कैसे जाएं? तो आप तो ऐसी बात करते हैं कि हम भीतर जा ही न सकेंगे। माला नहीं, कपड़े नहीं, पूजा नहीं, मूर्ति नहीं, मंदिर नहीं, उपवास नहीं, कुछ भी नहीं, तो हम भीतर कैसे जाएं? कुछ बाहर का सहारा दें। मैंने कहा, ठीक, बाहर का सहारा देता हूं। अब वे ही लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कपड़े बदलने से क्या होगा? माला पहनने से क्या होगा? पूजा, प्रार्थना, कीर्तन से क्या होगा? ये तो सब बाहर की चीजें हैं।

मैं बड़ी हैरानी में पड़ता हूं कभी कि आदमी का मन कैसा है? और यह एक ही आदमी दोनों बातें कह जाता है और फिर भी नहीं देख पाता कि यह मेरा मन दोनों बातें कहता है। जब भीतर जाने का उपाय बनता है

तब वह मन कहता है, बिना सहारे के भीतर कैसे जाओगे? जब बाहर का सहारा दो तो वह मन कहता है, बाहर के सहारे से क्या होगा? जाना तो भीतर है! और अदभुत तो बात यह है कि हमारी बुद्धिहीनता इतनी गहरी है कि हम अपने मन की इन मूढ़तापूर्ण बातों को बिल्कुल भी नहीं समझ पाते। हर बार मन इंतजाम जुटा देता है कि सो जाओ। बहुत क्षुद्र बहाने जुटा देता है कि सो जाओ।

एक मित्र अभी आए और मुझसे कहने लगे कि आपने ही तो सदा कहा है कि किसी को दुख नहीं देना चाहिए। तो अगर मैं कपड़े संन्यासी के पहनूं तो मेरी पत्नी को दुख होता है।

तो मैंने उनसे पूछा कि तुमने मेरी यह बात कब सुनी थी? कहा, दस साल हो गए। दस साल में तुमने पत्नी को दुख कोई दिया कि नहीं? अगर न दिया हो, तुम्हें मैं संन्यासी मानता हूं। तुम जाओ। तुम्हें कपड़े बदलने की जरूरत नहीं है। उन्होंने कहा, नहीं, दुख तो दिया। तो मैंने कहा, सिर्फ यह कपड़ा पहनते वक्त अब दुख न दोगे। और सारे दुख देते वक्त तुम मेरे पास न आए कि आपने कहा था कि पत्नी को कोई दुख न देना, किसी को दुख न देना। और सब दुख तुमने मजे से दिए।

पर आदमी की मूढ़ता अदभुत है। वह कहेगा, यह कपड़े बदलने से पत्नी को दुख हो जाएगा। और आपने ही तो कहा था कि किसी को दुख मत देना। अगर तुमने दुख देने बंद कर दिए हैं, तो बिल्कुल ठीक है, मत दो दुख।

नहीं, वह कहते हैं, दुख देना तो कुछ बंद नहीं किए, मैं तो वैसे ही का वैसा हूं। और सब तो चलता ही है।

हैरानी जो है, वह यह है कि हम अपने मन को कभी जरा दूर से खड़े होकर नहीं देख पाते कि वह कब हमें सोने की सलाह देता है। और सलाह वह ऐसी देता है कि लगेगा कि बिल्कुल ठीक है। बात तो बिल्कुल ठीक है। मगर यह पत्नी सिर्फ बहाना है। यह मन है असली चीज। यह मन पत्नी का बहाना ले रहा है। यह बगल की, पड़ोस की स्त्री को देखते वक्त इसने कभी बहाना नहीं लिया था कि पत्नी को दुख होगा। इसने कहा, कैसी पत्नी! कैसा क्या! ये सब तो, ये सब तो कामचलाऊ नाते-रिश्ते हैं। संसार में कौन किसका है? तब कभी ख्याल में नहीं आता है।

लेकिन मन, जब भी मन के पार जाने का कोई कदम उठाने को हम होंगे, तभी सोने की सलाह देता है। वह द्वार खुलता है स्वर्ग का, ऐसा नहीं कि जब आप सोते हैं; वह जब खुलने को होता है, तभी मन कहता है, सो जाओ! हजार बहाने जुटा लेता है कि कितनी देर से जग रहे हो! थक गए हो, अब सो जाना चाहिए।

लाओत्से कह रहा है, कामना ही मन है। और निष्काम हुए बिना जीवन की गहराई में उतरने का कोई भी उपाय नहीं है।

प्रश्नः ओशो, कृपया यह बतलाएं कि क्या लाओत्से के ये सारे उपदेश पराजित जीवन के हारे हुए व्यक्ति के उपदेश नहीं हैं? क्या इन उपदेशों के मूल में एक प्रकार की निषेधात्मक अभिवृत्ति या पलायनवादिता नहीं है? तथाता या स्वीकृति की इस नीति से शोषण के तंत्र को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा? और अंत में, क्या इन उपदेशों को केवल कोरी सैद्धांतिक आदर्शवादिता नहीं कह सकते? ये व्यावहारिक नहीं हैं, और न इनमें काम से मुक्त होने का या अमूर्च्छित होने का उपाय बताया गया है।

लाओत्से उपाय में विश्वास नहीं करता। क्योंकि लाओत्से कहता है, उपाय तो वासना के ही होते हैं। निर्वासना का कोई उपाय नहीं होता। उपाय का मतलब होता है, साधन। उपाय का मतलब होता है, मार्ग।

उपाय का मतलब होता है, कहीं पहुंचने के लिए की गई कोई क्रिया। मार्ग का मतलब होता है, किसी मंजिल को जोड़ने वाली व्यवस्था, कोई सेतु, साधन।

लाओत्से कहता है, वासना के लिए उपाय की जरूरत है, मार्ग की जरूरत है, दौड़ने की जरूरत है, श्रम की जरूरत है, प्रयत्न की जरूरत है। निर्वासना के लिए तो समझ, अंडरस्टैंडिंग काफी है। निर्वासना के लिए समझ काफी है, कोई उपाय आवश्यक नहीं हैं--लाओत्से के लिए। और जो भी समझ पाए पूरी बात को, उसके लिए भी कोई उपाय आवश्यक नहीं हैं। सब उपाय नासमझों के लिए दिए गए खिलौने हैं, धीरे-धीरे छीनने की व्यवस्था है। इकट्ठा वे न छोड़ सकेंगे, इसलिए धीरे-धीरे छुड़ाने का आयोजन है।

लाओत्से तो कहता है कि अंडरस्टैंडिंग, समझ, प्रज्ञा! अगर ख्याल में आ जाए मन का यह जाल, तो आप इसी क्षण बाहर हो जाएंगे ख्याल में आने से ही, कोई और उपाय की जरूरत नहीं है। मुझे यह समझ में आ जाए कि यह जहर है, तो यह प्याला मेरे हाथ से छूट जाएगा। इस प्याले को छुड़ाने के लिए मुझे कोई कसरत करने की जरूरत नहीं है। मुझे समझ में आ जाए, आग जलाती है, तो यह हाथ आग की तरफ जाने से रुक जाएगा। इसे रोकने के लिए मुझे दो-चार पहलवान लगाने की जरूरत नहीं है।

उपाय तो तब करने पड़ते हैं जब समझ न हो, समझ हो तो उपाय की जरूरत नहीं है। इसलिए दो मार्ग हैं। एक मार्ग है उपाय का, नासमझी का। नासमझ आदमी कहता है, समझ तो मेरे पास नहीं है, कोई उपाय बता दो, जिससे मैं समझ की कमी पूरी कर लूं। कोई तरकीब, कोई टेक्नीक, कोई मेथड। नासमझी उपाय मांगती है, बिना उपाय के नहीं जी सकती। समझदारी के लिए किसी उपाय की जरूरत नहीं है। बात समझ में आ गई और बात समाप्त हो गई। समझ लेना ही काफी है। उसका कारण है। क्योंकि लाओत्से जैसे लोगों का ख्याल है कि हम वस्तुतः बंधे हुए नहीं हैं, हमें बंधे होने का सिर्फ ख्याल है। हम बीमार नहीं हैं, केवल अज्ञानी हैं।

दो बातें हैं। एक आदमी बीमार है, सच में बीमार है। वास्तविक बीमारी उसके छाती को पकड़े हुए है। तब तो दवा की जरूरत पड़ेगी ही, उपाय आवश्यक होगा। लेकिन एक आदमी है, जो बीमार बिल्कुल नहीं है, सिर्फ वहम है उसे कि मैं बीमार हूं। तब दवा देना मंहगा और खतरनाक भी हो सकता है। क्योंकि दवा तब नई बीमारी बन सकती है। इस आदमी को तो सिर्फ समझ चाहिए कि वह बीमार नहीं है। और अगर इसे दवा भी देनी पड़े कभी, तो शक्कर की गालियां ही देनी पड़ेंगी, पानी ही पिलाना पड़ेगा। वह सिर्फ धोखा ही होने वाला है दवा का। वह दवा होने वाली नहीं है।

लाओत्से का ख्याल है--और ठीक ख्याल है--कि जीवन की जो कठिनाई है, वह अज्ञान की कठिनाई है। वह वास्तविक कठिनाई नहीं है। हम सच में ही परमात्मा से दूर नहीं हो गए हैं, सिर्फ हमें ख्याल है। हम सच में ही अपने जीवन के महल के बाहर चले नहीं गए हैं, चले जाने का हमें सिर्फ ख्याल है। हमने जीवन की संपदा को खोया नहीं है, हम सिर्फ भूल गए हैं। अगर यह बात है, तो लाओत्से कहता है, उपाय की क्या जरूरत है? उपाय का कोई सवाल नहीं है। समझ पर्याप्त होगी। समझ ही उपाय है।

बुद्ध ने कहीं कहा है, कि जो नहीं समझते, उन्हें मैंने विधियां दी हैं। और जो समझते हैं, उन्हें मैंने समझ दी है। जो नहीं समझते, उन्हें मैंने उपाय दिए हैं कि तुम ऐसा-ऐसा करो तो हो जाएगा। जो समझते हैं, उन्हें मैंने समझा दिया है। बात समाप्त हो गई।

करीब-करीब... जैसा कि मनोवैज्ञानिक की कोच पर सैकड़ों मरीज रोज आते हैं, जिन्हें बीमारी नहीं होती। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, वे बीमार तो हैं ही। बीमारी कोई नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमार तो वे हैं ही। असली बीमारों से भी ज्यादा बीमार हैं! और बीमारी बिल्कुल नहीं है। सिर्फ वहम है, सिर्फ

ख्याल है कि बीमारी है। उनका भी इलाज करना पड़ता है। इलाज क्या है? फ्रायड या जुंग क्या करते रहे हैं? कुछ नहीं, उस मरीज से वर्षों तक उसकी बीमारी को उखाड़ कर बात करते रहे हैं। इस बातचीत के दौरान अगर समझ पैदा हो जाए, तो वह आदमी बीमारी के बाहर हो जाता है। और अगर समझ पैदा न हो, तो वह आदमी बीमारी के भीतर रह जाता है।

जीवन की समस्या वास्तविक बीमारी की समस्या नहीं है। जीवन की समस्या एक भ्रांत, सूडो बीमारी की समस्या है। इसलिए लाओत्से किसी उपाय की बात नहीं करता। वह कहता है, निरुपाय हो रहो! बस, यही उपाय है। जान लो, समझ लो और ठहर जाओ, बस यही उपाय है।

लाओत्से की बात किसी हताशा, किसी पराजय की बात भी नहीं है। यह बहुत मजे की बात है। यह समझनी चाहिए। यह सदा मन में उठती है। लाओत्से जैसे व्यक्तियों की बात सुन कर ऐसा लगता है, एस्केपिस्ट हैं, पलायनवादी हैं। कहते हैं, कुछ चाहो मत। नहीं चाहेंगे तो बढ़ेंगे कैसे? यद्यपि चाह कर कितने बढ़ गए हैं, इसका कोई हिसाब रखा? चाह कर कितने बढ़ गए हैं?

अल्डुअस हक्सले से कोई पूछ रहा था कि आपकी तीन पीढ़ियां--हक्सले परिवार की तीन पीढ़ियां प्रोग्रेस और प्रगति के पक्ष में काम करती रही हैं, बाप और परदादा से लेकर तीन परिवार मनुष्य-जाति की प्रगति हो, इस का काम करते रहे हैं--तो अल्डुअस से किसी ने पूछा है कि आपकी तीन पीढ़ियों ने काम किया है मनुष्य की प्रगति के लिए। आपसे हम लेखा चाहते हैं, ब्योरा चाहते हैं इस बात का कि क्या आप कह सकते हैं कि आदमी आज से पांच हजार साल पहले जैसा था, उससे आज ज्यादा सुखी है? ज्यादा शांत है? ज्यादा आनंदित है?

अल्डुअस हक्सले ने कहा, अगर मेरे परदादा से पूछा होता, तो वे हिम्मत से कह सकते थे कि हां, है! अगर मेरे बाप से पूछा होता, तो वे थोड़ा झिझकते। मैं उत्तर ही नहीं दे सकता।

नहीं, आदमी सुखी भी नहीं हुआ, शांत भी नहीं हुआ, आनंदित भी नहीं हुआ। और प्रगति काफी हो गई। प्रगति कम न हुई, प्रगति काफी हो गई।

लाओत्से की बात से यह ख्याल उठता है, प्रगति रुक जाएगी। लेकिन आदमी प्रगति के लिए है क्या? या कि प्रगति आदमी के लिए है? अगर आदमी सिर्फ प्रगति के लिए है, तो फिर ठीक है, आदमी की कुर्बानी हो जाए, कोई चिंता नहीं। प्रगति होनी चाहिए; होकर रहनी चाहिए। छोटा मकान बड़ा हो जाना चाहिए; आदमी मर जाए, मर जाए। रास्ते पर दस मील प्रति घंटे की रफ्तार के वाहन हट जाने चाहिए, हजार मील की रफ्तार के वाहन आ जाने चाहिए; कोई फिक्र नहीं कि रास्ते पर आदमी बचे कि न बचे। चांद-तारों पर पहुंचना चाहिए; कोई फिक्र नहीं, पहुंचने वाला बचे कि न बचे। अगर प्रगति ही लक्ष्य है, तब तो लाओत्से की बात गलत है। लेकिन अगर आदमी, उसका आनंद, उसके जीवन का रस लक्ष्य है, तो लाओत्से की बात सही है। सच तो यह है कि कितनी ही वासना से दौड़ भला कितनी ही हो जाए, पहुंचना नहीं होता है।

ध्यान रखना, दौड़ लिए, इसका मतलब यह नहीं कि पहुंच गए। दौड़ लेने मात्र से कोई पहुंच नहीं जाता। लेकिन तर्क ऐसा कहता है मन का कि नहीं दौड़ेंगे, तो कहीं न पहुंचेंगे। दौड़ेंगे, तो ही पहुंचेंगे।

लाओत्से कहता है, जीवन की जो परम संपदा है, वह ठहरने और खड़े होने से दिखाई पड़ती है, दौड़ने से दिखाई नहीं पड़ती। और ऐसा लाओत्से अकेला नहीं कहता है। ऐसा बुद्ध भी कहते हैं, महावीर भी कहते हैं, पतंजलि भी कहते हैं। इस जगत में जिन लोगों ने जाना, वे सभी कहते हैं। अगर ऐसा है, तो सब ज्ञानी पलायनवादी हैं और सब अज्ञानी प्रगतिवादी हैं। एक भी ज्ञानी लाओत्से से भिन्न नहीं कहेगा।

फिर यह भी मजे की बात है कि ये सब अज्ञानी, जो प्रगति करते हैं, घूम कर आज नहीं कल किसी न किसी लाओत्से के चरण में जाते हैं कि शांति चाहिए। लाओत्से कभी इन अज्ञानियों के चरणों में कभी नहीं गया कि शांति चाहिए। प्रगतिवादी सदा ही किसी दिन पलायनवादी के चरण में बैठ जाता है कि मुझे शांति दो। वह पलायनवादी कभी किसी प्रगतिवादी के पास पूछने नहीं जाता कि तुम्हें बड़ा आनंद मिल गया, थोड़ा आनंद मुझे भी दो। निरपवाद रूप से ऐसा क्यों होता है? लाओत्से के पास भी आंखें हैं, बुद्ध के पास भी आंखें हैं। उनको भी तो दिखाई पड़ेगा कि प्रगतिवादी आगे पहुंचा जा रहा है, हम भटक गए। लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि बुद्ध उनके पास आएं पूछने। वही प्रगतिवादी जाता है लौट-लौट कर पूछने कि मेरा मन बड़ा अशांत है, बड़ा पीड़ित हूं, बड़ा परेशान हूं।

नहीं, पलायन से नहीं। स्थिति कुछ ऐसी है। शब्द से कुछ खतरा नहीं है, लेकिन शब्द के कनोटेशंस! घर में आग लगी है और अगर मैं घर के बाहर भागने लगूं और आप कहें कि पलायनवादी हो! भागते हो घर के बाहर! तो एक अर्थ में शाब्दिक तो ठीक ही है, पलायन है। छोड़ रहा हूं घर; जहां आग लगी है, उससे हट रहा हूं। लेकिन आग लगे घर में रहना समझदारी नहीं है। आग लगे घर में रहना अगर समझदारी है, तो जब कोई हार्न बजा रही हो ट्रक तो उसके सामने खड़े रहना बहादुरी है। जो हटता है हार्न सुन कर, एस्केपिस्ट है। भाग रहे हो? यह तो अवसर है परीक्षा का, कि जब हार्न बज रहा है ट्रक का, तब खड़े रहो वहीं। हिम्मत खो रहे हो, साहस कम कर रहे हो!

नहीं, अगर हम जीवन की स्थिति को ठीक से समझें, तो लाओत्से जीवन से नहीं भाग रहा है; लाओत्से सिर्फ मूढ़ता से हट रहा है। लाओत्से सिर्फ आग से हट रहा है, बीमारी से हट रहा है। जीवन में तो गहरे जा रहा है। और हम जो समझ रहे हैं कि हम जीवन में आगे बढ़ रहे हैं, हम सिर्फ निपट मूढ़ता में आगे बढ़ते चले जाते हैं और जीवन से वंचित होते चले जाते हैं। अंतिम कसौटी क्या है? लाओत्से की शक्ल और हमारी शक्ल को मिलाना चाहिए। लाओत्से मरते वक्त भी चिंतित नहीं है, हम जीते वक्त भी चिंतित हैं। लाओत्से मौत को भी आलिंगन करने में आनंदित है, हम जीवन को भी कभी आनंद से आलिंगन नहीं कर पाए। लाओत्से बीमारी में भी हंसता है, हम स्वस्थ होकर भी रोते रहते हैं। कसौटी क्या है? लाओत्से के हाथों में कांटे भी रख दो तो अनुगृहीत हो जाएगा, हमारे हाथों में कोई फूल भी रख जाए तो धन्यवाद का भाव नहीं उठता। नहीं, क्या है मार्ग जिससे हम पहचानें? कौन सा मापदंड है?

लाओत्से पलायनवादी नहीं है। और अगर लाओत्से पलायनवादी है, तो सभी को पलायनवादी होना चाहिए। फिर पलायनवाद धर्म है। क्योंकि लाओत्से व्यर्थ से पलायन करके जीवन की सार्थकता और सार में प्रवेश करता है।

ऐसा लगता है कि शायद इसमें हताशा, निराशा है। जीवन से डर गए, भयभीत हो गए। लड़ने की सामर्थ्य नहीं है। शायद इसलिए हट रहे हो, कमजोर हो। कमजोरी का भी लक्षण लाओत्से नहीं देता।

कमजोरी का जरा लक्षण नहीं देता। बुद्ध और लाओत्से और क्राइस्ट जैसे लोग जितनी सबलता का लक्षण देते हैं, उतनी सबलता का लक्षण कोई भी नहीं देता। और जिनको हम प्रगतिवादी कहते हैं, वे धीरे-धीरे सब नर्वस होते चले जाते हैं, सब। सबके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। और सबका स्नायु-मंडल रुग्ण हो जाता है। और सबकी छाती पर हजार तरह के भय प्रवेश कर जाते हैं।

आज अमरीका के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मुश्किल से दस प्रतिशत लोग हैं जिन्हें हम मानसिक रूप से स्वस्थ कह सकें। तो नब्बे प्रतिशत लोग? और इन दस प्रतिशत का अगर हिसाब लगाने जाया जाए, तो इस दस

प्रतिशत में गैर पढ़े-लिखे लोग, ग्रामीण, जंगल में रहने वाले लोग, मजदूर, नीचे वर्ग के लोग हैं। जितनी ऊपर वर्ग की दुनिया है, जितने जो लोग प्रगति कर गए हैं, उतना ही आंकड़ा बड़ा होता चला जाता है। बात क्या है?

लाओत्से जैसी गहरी नींद तो कोई प्रगतिवादी कभी नहीं सो सकता, न लाओत्से जैसा आनंद से भोजन कर सकता है, न लाओत्से जैसे पाचन की क्षमता है। न लाओत्से जैसा स्वास्थ्य है, न लाओत्से जैसी निर्भयता है। न लाओत्से जैसा मौन है।

न, यह जो बहती हुई आनंद की सतत धारा है लाओत्से में, यह निराशा की खबर नहीं देती, हताशा की खबर नहीं देती। यह आदमी हारा हुआ नहीं है। लाओत्से तो कहता है यह कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका। और कोई पूछने लगा, क्यों नहीं हरा सका? तो लाओत्से ने कहा, मैंने कभी किसी को जीतना ही न चाहा। हरा तो तभी सकते हो, जब मैं किसी को जीतना चाहूं। मुझे हराओगे तो तभी, जब मैं जीतने को निकलूं। मैं किसी को जीतने न निकला।

हमें लगेगा कि शायद लाओत्से इसलिए जीतने नहीं निकला कि लड़ने से डरता है।

और लाओत्से कहता है, जीतने इसलिए न निकला कि तुम्हारी दुनिया में जीतने योग्य कुछ भी था नहीं। कुछ दिखा ही नहीं कि कुछ जीतने योग्य है। इन क्षुद्र चीजों को, जिनके लिए तुम जीतने जाते थे, इनको मैंने जीतने योग्य न समझा। और इन क्षुद्र चीजों के लिए हारने के लिए व्यर्थ का उपद्रव खड़ा करना? क्योंकि जीतने निकले कि हारोगे। जीत जाओ, तो भी कुछ नहीं मिलता। और व्यर्थ हार जाओ, तो बेचैनी और परेशानी सिर पर आ जाती है। मैं जीतने ही न गया। इसलिए नहीं कि हारने से डरता था, बल्कि इसलिए कि जीतने योग्य कुछ था नहीं।

यह जो हमें, हमारे मन में जो सवाल उठता है, बिल्कुल स्वाभाविक है। हमें लगता है कि यह तो, यह तो एक पेसिमिस्ट, दुखवादी का दृष्टिकोण है। लेकिन दुखवादी को दुखी होना चाहिए न! तो बड़ी उलटी बात है कि दुखवादी दुखी नहीं मालूम पड़ता। और हम सुखवादी दुखी मालूम पड़ते हैं।

सारे पश्चिम में जब पहली दफा बुद्ध के ग्रंथों का अनुवाद हुआ, तो उन्होंने कहा, यह पेसिमिस्ट है--पार एक्सीलेंस। यह तो आखिरी दम का दुखवादी है बुद्ध। क्योंकि कहता हैः जन्म दुख है, जीवन दुख है, जरा दुख है, मरण दुख है, सब दुख है। यह तो दुखवादी है। लेकिन उनमें से किसी ने न सोचा कि इसके चेहरे की तरफ तो देखो। यह दुखवादी है, तुम सुखवादी हो! तो तुम्हारे चेहरे पर सुख की कोई छाप होनी चाहिए। तुम्हारे चेहरे पर सुख का कोई इशारा नहीं दिखाई पड़ता। और यह आदमी जो कहता है, जन्म दुख है, जीवन दुख है, सब दुख है, इसके आनंद का कोई पारावार नहीं है। तो जरूर कहीं कोई भूल हो रही है।

बुद्ध कहते हैं कि जीवन दुख है, इसे जो जान ले, वही आनंद को उपलब्ध होता है। और जो समझे कि जीवन सुख है, वह सिर्फ दुख को उपलब्ध होता है। ठीक है यह गणित बुद्ध का, बहुत ही गहरा है। बुद्ध या लाओत्से कहते हैं कि जो जीवन को सुख समझ कर चलेगा, वह दुख पाएगा, क्योंकि जीवन दुख है। अगर मैं कांटे को फूल मान कर चलूंगा, तो कांटा चुभेगा और दुख पाऊंगा। क्योंकि कांटा है, फूल नहीं है। लेकिन अगर मैं कांटे को कांटा ही मान कर चलूं, तो फिर कांटा मुझे दुख नहीं दे सकता। कांटा दुख देने की तरकीब करता है, फूल जैसा दिखाई पड़ता है, तब दुख दे पाता है। बुद्ध कहते हैं, जीवन दुख है, इसे जान लो; फिर तुमसे तुम्हारे सुख को कोई न छीन सकेगा। और तुमने जीवन को सुख जाना कि तुम दुख में पड़ोगे, क्योंकि तुमने भ्रांति का सिलसिला शुरू किया।

लाओत्से दुखवादी नहीं है। लाओत्से परम आनंदवादी है--परम। आनंद की जितनी उत्कृष्ट चरमता हो सकती है, आत्यंतिकता हो सकती है, लाओत्से आत्यंतिक आनंदवादी है।

लाओत्से का एक शिष्य च्वांगत्से हुआ। च्वांगत्से को चीन के सम्राट ने निमंत्रण भेजा कि तुम आओ और मेरे बड़े वजीर बन जाओ। च्वांगत्से ने खबर भेजी, लेकिन मैं जितने सुख में हूं, उसके ऊपर कोई सुख नहीं। तो वजीर बना कर तुम मुझे नीचे ही उतार पाओगे। क्योंकि इसके आगे तो कोई आनंद है नहीं। अब तो कहीं भी बढ़ना पीछे हटना है। च्वांगत्से ने कहा, अब कहीं भी बढ़ना पीछे हटना है। अब तो इंच भर सरकना, खोना है। क्योंकि जहां मैं हूं, उससे परम कोई आनंद नहीं है।

हमको लगेगा कि वजीर होने का मौका मिलता है, पागल है। खुद सम्राट बुलाता है। नहीं तो एक-एक वोटर के पास जाना पड़ता था। पागल है बिल्कुल, चुपचाप चले जाना था। ऐसा मौका नहीं खोना था। लेकिन च्वांगत्से की समझ उसे कुछ और कहती है। च्वांगत्से की समझ यह कहती है कि मैं जिस परम आनंद में हूं, वहां से जरा भी हिला, तो तुम मुझे नीचे ही उतार लोगे। इसके आगे और कोई गति नहीं है। तुम सम्हालो।

लाओत्से या च्वांगत्से या कोई और तथाता की जब बात करते हैं, एक्सेप्टबिलिटी की, कि सब कर लो स्वीकार, तो इसलिए नहीं कि किसी विषाद से, किसी फ्रस्ट्रेशन से, किसी संताप से, इसलिए नहीं कि जीवन में संतोष रखना बड़ी अच्छी बात है। इसलिए नहीं।

स्वीकार का भाव दो कारणों से हो सकता है। एक तो इसलिए आदमी स्वीकार कर ले कि अब कोई उपाय नहीं है, अब स्वीकार ही कर लो! इसमें कम से कम कंसोलेशन, सांत्वना रहेगी।

नहीं, लाओत्से की टोटल एक्सेप्टबिलिटी, तथाता का यह अर्थ नहीं है। लाओत्से कहता है, जो आदमी यह कहता है कि स्वीकार करने से संतोष रहेगा, वह आदमी अभी भी अस्वीकार कर रहा है।

इसको समझ लेना चाहिए। वह अभी भी अस्वीकार कर रहा है। क्योंकि अगर अस्वीकार न हो, तो असंतोष कैसा? मैं कहता हूं कि मेरे पैर में कांटा गड़ा है, अब स्वीकार ही कर लूं, तो कम से कम संतोष रहेगा कि ठीक है, गड़ गया। पीड़ा हो रही है, स्वीकार कर लूं। लेकिन इस स्वीकृति में अस्वीकार छिपा हुआ है। सच तो यह है कि मेरी स्वीकृति अस्वीकार का ही एक ढंग है। पीड़ा तो मुझे हो रही है, दुख मुझे हो रहा है। अब कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता, तो मैं आंख बंद करके कहता हूं कि ठीक है, इसमें भी कोई, परमात्मा का कोई राज होगा, कोई रहस्य होगा। अभिशाप में भी वरदान छिपा होगा। काले बादलों के भीतर भी सफेद चमकती हुई बिजली छिपी रहती है। कांटों के भीतर भी फूल रहता है। दुख में भी सुख छिपे रहते हैं। लेकिन मेरी खोज सुख की ही है, वह सफेद बिजली की रेखा के लिए ही मेरी खोज है। काले बादल की मेरी कोई स्वीकृति नहीं है। और जब रात बहुत अंधेरी हो जाती है, तो सुबह करीब होती है। मगर मेरी आकांक्षा सुबह के लिए ही है। काली रात को अपने को समझाने के लिए मैं समझा रहा हूं कि कोई हर्जा नहीं, रात बहुत काली हो गई, अब सुबह, भोर करीब होगी। लेकिन मेरी इच्छा भोर के लिए है। रात के कालेपन को, मैं भोर की इच्छा को सामने रख कर, थोड़ा हलका कर रहा हूं, संतोष कर रहा हूं।

लेकिन लाओत्से इस तथाता की बात नहीं करता। लाओत्से कहता है, इसलिए नहीं स्वीकृति कि संतोष चाहिए; बल्कि इसलिए कि अस्वीकृति मूढ़ता है। अस्वीकृति से सिवाय आदमी अपने को निरंतर नर्क में डालने के और कहीं नहीं ले जाता है। लाओत्से का जोर स्वीकृति पर कम, अस्वीकृति की समझ पर ज्यादा है। जिस दिन हम अस्वीकृति को समझ लेंगे पूरा कि मैं अपने हाथ से नर्क पैदा कर रहा हूं, उस दिन अस्वीकृति विदा हो जाएगी, और जो शेष रह जाएगी, वह स्वीकृति होगी। इस फर्क को समझ लें। एक तो ऐसी स्वीकृति है, जो

अस्वीकृति के खिलाफ हम खड़ी करते हैं, इंपोज करते हैं। और एक ऐसी स्वीकृति है, जो अस्वीकृति के तिरोहित हो जाने पर पाई जाती है। इन दोनों में बड़ा फर्क है। जब अस्वीकृति भीतर होती है और स्वीकृति को हम बाहर से खड़ा करते हैं, तो द्वंद्व निर्मित होता है। भीतर अस्वीकार होता है, बाहर स्वीकार होता है।

मित्र मेरा चल बसा, तो मैं कहता हूं कि ठीक है, स्वीकार ही करना पड़ेगा, कोई उपाय भी नहीं है। तो अपने मन को मैं समझाता हूं कि सभी को जाना पड़ता है, मृत्यु तो सभी की होती है, मृत्यु तो होगी ही। कौन इस दुनिया में सदा रहने को आया है? यह सब मैं अपने को समझाता-बुझाता हूं। लेकिन भीतर टीस गड़ती रहती है। मित्र चला गया, उसका खालीपन अखरता रहता है। भीतर मन कहता है, बुरा हुआ, नहीं होना था। और बाहर मन को मैं समझाता हूं कि यह तो होता ही रहता है; यह तो होता ही रहा है; इससे बचा नहीं जा सकता। ये दोनों बातें साथ चलती रहती हैं। ऊपर की कोशिश से मैं मलहम-पट्टी कर रहा हूं। घाव भीतर बना ही रहता है।

लाओत्से इस तरह की स्वीकृति तथाता के लिए नहीं कह रहा है। लाओत्से कह रहा है कि मैं यह नहीं कहता कि मैं दुखी हूं मेरे मित्र के मर जाने से, मैं तो सिर्फ आश्चर्यचकित हूं कि इतने दिन जीए कैसे? मैं सिर्फ आश्चर्यचकित हूं, इतने दिन जीए कैसे? जीवन बड़ी असंभव घटना है; मौत बड़ी सहज घटना है। मौत को आश्चर्य नहीं कहा जा सकता, जीवन आश्चर्य है। है यह आश्चर्य।

लाओत्से कहेगा, इतने दिन जीए कैसे? आश्चर्य्!

च्वांगत्से का मैंने नाम लिया। च्वांगत्से की पत्नी मर गई। तो सम्राट गया सांत्वना देने, तो वह खंजड़ी बजा रहा था अपने द्वार पर बैठ कर। सुबह पत्नी को विदा किया, बारह बजे खंजड़ी बजाता था। पैर फैलाए हुए था, गीत गाता था। सम्राट थोड़ा झिझका। वह तो तैयार होकर आया था, जैसा कि जब भी कोई किसी के घर मर जाता है तो लोग तैयार होकर आते हैं--क्या कहना! क्या पूछना! सब तैयार होता है, बिल्कुल रिहर्सल दो दफे घर में करके आते हैं। क्या कहेंगे; क्या उत्तर देगा; और क्या जवाब होगा। सब पक्का ही है। और जो दो-चार अनुभवी हैं, दो-चार को विदा कर चुके हैं, वे तो बिल्कुल पक्के ही हैं। उनको तो कोई जरूरत ही नहीं, उनको डायलॉग बिल्कुल याद ही होता है। वह तैयार करके सम्राट आया था कि ऐसा-ऐसा दुख प्रकट करेंगे, ऐसा-ऐसा भाव बताएंगे। इधर देखा तो हालत ही उलटी थी। यहां पुराने डायलॉग का उपाय न था। वे खंजड़ी बजा रहे थे। और बड़े आनंदित थे।

सम्राट से न रहा गया। उसने कहा, च्वांगत्से, दुख न मनाओ, इतना काफी है; कम से कम खंजड़ी तो मत बजाओ। बहुत है, इतना ही बहुत है कि दुख मत मनाओ। बाकी खंजड़ी?

च्वांगत्से ने क्या कहा, पता है? च्वांगत्से ने कहा, या तो दुख मनाओ या खंजड़ी बजाओ। दो के बीच में खड़े होने की कोई जगह नहीं है। दो के बीच में खड़े होने की कोई जगह नहीं है। और दुखी मैं क्यों होऊं? परमात्मा को धन्यवाद दे रहा हूं कि इतने दिन जीवन था--आश्चर्य! उसने मेरी इतनी सेवा की--आश्चर्य! उसने मुझे इतना प्रेम दिया--आश्चर्य! और मैं उसे विदा के क्षण में अगर खंजड़ी बजा कर विदा भी न दे सकूं, तो बहुत अकृतज्ञ! मैं उसे विदा दे रहा हूं। अब वह दूर, धीरे-धीरे दूर होती जाती होगी इस लोक से। मैं उसे विदा दे रहा हूं। मेरी खंजड़ी की आवाज धीमी होती जाती होगी। पर जाते क्षण में मैं उसे आनंद से विदा दे पाऊं।

हम हैं एक, साथ रह कर भी आनंद से नहीं रह पाते, हम सुखवादी हैं! च्वांगत्से है एक, मृत पत्नी को खंजड़ी बजा कर आनंद की विदा दे रहा है, वह दुखवादी है! तब फिर हमारा दुखवाद-सुखवाद बड़ा अजीब है। कौन दुखवादी है? हम दुखवादी हैं, चौबीस घंटे दुख में रहते हैं। च्वांगत्से परम सुखवादियों में एक है।

लाओत्से इसलिए नहीं कहता कि स्वीकार कर लो, किसी विवशता से, किसी हेल्पलेसनेस से। नहीं, किसी बल से, किसी शक्ति से, किसी सामर्थ्य से! स्वीकार कर लेना बड़ी सामर्थ्य है, बड़ा बल है। महावीर को कोई पत्थर मार रहा है; महावीर खड़े हैं। हमारे मन में होगा, कैसा कायर आदमी है? पत्थर का जवाब तो और बड़े पत्थर से देना चाहिए। लेकिन महावीर खड़े हैं--किसी कायरता से नहीं, किसी परम शक्ति के कारण। इतनी विराट शक्ति है भीतर कि ये पत्थर लगते नहीं, ये पत्थर चोट नहीं पहुंचा पाते। ये पत्थर भीतर किसी रिएक्शन को, किसी प्रतिक्रिया को जन्म नहीं दे पाते। ये पत्थर फेंकने वाला बचकाना है। महावीर इस पर दया से भरे हैं, पूरी करुणा से, कि कैसा पागल है, व्यर्थ मेहनत उठा रहा है।

हम दो में से एक काम कर सकते हैंः या तो पत्थर का जवाब पत्थर से दें और या भाग खड़े हों। हमें दो के अतिरिक्त तीसरा विकल्प नहीं दिखाई पड़ता। महावीर का विकल्प तीसरा है। न तो वे भागते हैं, न वे पत्थर का जवाब पत्थर से देते हैं। वे पत्थर को लेते ही नहीं। पत्थर उनके भीतर किसी तरह का कोई व्यवधान पैदा नहीं कर पाता। और इससे वे बड़े लाभ में रहते हैं, हानि में नहीं रहते। इससे वे अपनी परम शांति, अपने परम आनंद में प्रतिष्ठित रहते हैं। वे उससे इंच भर यहां-वहां नहीं होते।

समस्त धर्म महापराक्रम से पैदा होता है, महापुरुषार्थ से; और समस्त धर्म अभय से जन्मता है, भय से नहीं। और समस्त धर्म आनंद में प्रतिष्ठा है, दुख में नहीं। दुख का सूत्र है, सुख की मांग। आनंद की प्रतिष्ठा का मार्ग है, दुख की स्वीकृति।

शेष कल। कुछ पूछते हैं?

प्रश्नः समझ लेना, यह किस घटना का नाम है?

जो भी जीवन में हो रहा है, वह दो ढंग से हो सकता हैः बिना समझे, समझ कर। उदाहरण से समझें तो आसानी होगी।

आपने मुझे दी गाली, मुझे आया क्रोध। क्या मेरा क्रोध आपकी गाली से एकदम पैदा हो जाता है या इन दोनों के बीच में समझने की भी कोई घटना घटती है? क्या जब आप मुझे गाली देते हैं, तो मैं समझने की कोशिश करता हूं कि मेरे भीतर आपकी गाली से क्रोध क्यों पैदा हो रहा है? क्या मैं भीतर लौट कर देखता हूं कि क्रोध पैदा होना चाहिए, नहीं होना चाहिए? क्या मैं भीतर देखता हूं कि क्रोध क्या है?

अगर यह मैं कुछ भी नहीं देखता, आपने गाली दी और मैंने क्रोध किया और इन दोनों के बीच में मेरी समझ के लिए कोई अंतराल न रहा, कोई जगह न रही; उधर गाली, इधर क्रोध; उधर दबाई बटन और मैं भभका; तो फिर मैं यंत्र की तरह व्यवहार कर रहा हूं। यह व्यवहार नासमझी का व्यवहार है।

अगर आपने दी गाली, मैंने समझा कि क्या उठता है मेरे भीतर, क्यों उठता है मेरे भीतर? गाली मुझे कहां छूती है? किस घाव को स्पर्श करती है? किस जगह गड़ती है? क्यों गड़ती है? गाली में ऐसा क्या है जो मुझे इतना आग से भर जाता है? गाली में ऐसा क्या है जो मुझे इतना जहरीला कर देता है? यह सब मैंने समझा और फिर देखा इस जहर को, इस उठते क्रोध को, इस आग को पहचाना कि यह क्या है, तो जो मैं करूंगा, वह समझ होगी।

और मजे की बात यह है कि क्रोध केवल नासमझी में किया जा सकता है, समझ में नहीं किया जा सकता। इसलिए अगर आपने दी गाली और मैंने की समझ की फिक्र, तो क्रोध असंभव है। आपने दी गाली और मैंने समझ की कोई चिंता न ली, तो ही क्रोध संभव है।

इसलिए लाओत्से जैसा आदमी कहेगा, क्रोध को हटाने की, उपाय की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई विधि की जरूरत नहीं है। कोई मंत्र-तंत्र की जरूरत नहीं है। कोई ताबीज बांधने की जरूरत नहीं है। कोई कसम, कोई प्रतिज्ञा, कोई व्रत लेने की जरूरत नहीं है। क्रोध को समझ लो, और क्रोध असंभव हो जाएगा।

अभी एक पश्चिमी मित्र को मैं एक ध्यान करवा रहा हूं। वे यहां मौजूद हैं। क्रोध उनकी पीड़ा है भारी। किसी पर निकलता है। तो उन्हें मैंने कहा है कि तीन दिन से वह एक तकिए को लेकर उस पर क्रोध निकालें।

पहले वे बहुत हैरान हुए। उन्होंने कहा, आप क्या पागलपन की बात करते हैं! तकिए पर?

मैंने कहा, तुम शुरू करो। क्योंकि जब तुम आदमी पर निकाल सकते हो, तो तकिए पर निकालने में बहुत ज्यादा पागलपन नहीं है। आदमी पर निकाल सकते हो, उसमें कभी पागलपन नहीं दिखा, तो तकिए पर निकालने में उतना पागलपन कभी भी नहीं है। कोशिश करो।

पहले दिन कोशिश की। मुझे आकर खबर दी कि पहले तो थोड़ा सा अजीब लगा कि यह मैं क्या कर रहा हूं! लेकिन पांच-सात मिनट में गति आ गई और मैंने तकिए को ठीक ऐसे मारना शुरू कर दिया जैसे वह जीवित हो। और न केवल जीवित, बल्कि थोड़ी ही देर में, मेरी जिस व्यक्ति से सर्वाधिक शत्रुता रही है, तकिया उसका ही रूप हो गया। मुझे उसकी याद आ गई, जो दस साल पुरानी है। जिसे मैंने मारना चाहा था और नहीं मारा, उसका चेहरा तकिए में मुझे दिखाई पड़ने लगा। हंसी भी आई, बेचैनी भी हुई और रस भी आया। और मारा भी।

अब वे तीन दिन से तकिए को मार रहे हैं। आज सारी रिपोर्ट दे गए हैं। वह चकित करने वाली रिपोर्ट है। वह पूरी रिपोर्ट यह है कि पहले दिन वे सब चेहरे आने शुरू हो गए, जिनको मारना चाहा और नहीं मार पाए। दूसरे दिन चेहरे खो गए, शुद्ध क्रोध रह गया। निकल रहा है एक तरफ से, दूसरी तरफ कोई भी नहीं है। शुद्ध क्रोध! और तब उनको समझ आया कि ये तो सिर्फ बहाने थे लोग, जिन पर मैंने निकाला। यह आग तो मेरे भीतर ही है, जो बहाने खोजती है। तब एक अंडरस्टैंडिंग पैदा हुई, एक समझ पैदा हुई। क्रोध को एक नए रूप में देखा। आज वह दूसरे पर निकलने का दूसरे पर जिम्मा न रहा। आज अपने ही भीतर कोई आग है जो निकलना चाहती है, अपने पर ही जिम्मा आ गया; आब्जेक्टिव न रहा, सब्जेक्टिव हो गया। आपने गाली दी, इसलिए क्रोध किया था, ऐसा नहीं; अब समझ में आया कि मैं क्रोध करना चाहता था और आपकी गाली की प्रतीक्षा थी। और अगर आप गाली न देते, तो मैं कहीं और से गाली खोजता। मैं उकसाता कि गाली दो। मैं ऐसी तरकीब करता, मैं ऐसी बात करता, मैं ऐसा काम करता कि कहीं से गाली आए। क्योंकि मेरे भीतर जो भर गया था, वह रिलीज होना चाहता था। उसे मुक्त होना जरूरी था।

दूसरे दिन उन्हें दिखाई पड़ा--वे दिन भर कर रहे हैं; तीन-चार बार दिन में कर रहे हैं; घंटे-घंटे भर तीन-चार बार--दूसरे दिन उन्हें दिखाई पड़ा कि यह क्रोध किसी पर नहीं है, यह क्रोध मेरे भीतर है। और आज तीसरा दिन था उनका। आज उन्होंने मुझे आकर कहा कि हैरान हूं; जैसे ही यह दिखाई पड़ा कि किसी पर नहीं है, मेरे ही भीतर है, वैसे ही जैसे भीतर कोई चीज विदा हो गई, सब शांत हो गया है। मैं निपट असमर्थ हो गया हूं। अगर मुझे कोई गाली दे इस वक्त, तो मैं क्रोध न कर पाऊंगा। इस वक्त तो नहीं ही कर पाऊंगा। क्योंकि इस वक्त भीतर से जैसे कोई बहुत भार था, वह फिंक गया है। सब खाली हो गया है।

समझ का अर्थ है, आपके भीतर जो भी घटे, वह आपके जानते, अवेयरनेस में, आपके होश में, आपके चैतन्य में घटे। जो भी! और तब बहुत कुछ घटना बंद हो जाएगा अपने आप। और जो बंद हो जाए, वही पाप है। और जो होशपूर्वक भी चलता रहे, वही पुण्य है। और समझ कसौटी है। समझ के साथ जो चल पाए, वह पुण्य है; और समझ के साथ जो न चल पाए, वह पाप है। नासमझी में ही जो चल सके, वह पाप है। और नासमझी में जिसे चलाया ही न जा सके, वह पुण्य है। तो यह समझ का अर्थ इतना ही हुआ कि मेरे भीतर जो भी घटता है, वह मेरे ध्यानपूर्वक घटे, मेरे गैर-ध्यान में न घटे।

और सब गैर-ध्यान में घटता है। कब आप क्रोधित हो जाते हैं, कब आप प्रेम से भर जाते हैं, कभी आप सुख अनुभव करते हैं, कब दुख अनुभव करते हैं, सब भान के बाहर है, अनकांशस है। अचानक लगता है, सुखी हूं; अचानक लगता है, दुखी हूं। लगता है, बड़ा विषाद है। और जब आपको विषाद लगता है, तब आप यह नहीं सोचते कि यह मेरे भीतर से आ रहा है। तब आस-पास आप कारण खोजते हैंः कौन कर रहा है, विषाद में मुझे डाल रहा है? लड़का डालता है, कि लड़की, कि पत्नी, कि पति, कि मित्र, कि धंधा? कौन है? फौरन आप खोजने निकल जाते हैं। और खोज कर किसी न किसी को पकड़ लेते हैं।

लेकिन वे सब एस्केप गोट्स हैं, वे सब बहाने हैं, वे सब खूंटियां हैं। वे कोई असली नहीं हैं। क्योंकि मजे की बात यह है कि आपको बिल्कुल अकेले कमरे में बंद कर दिया जाए, तब भी यही सब आप करेंगे जो आप किसी के साथ कर रहे हैं। यही करेंगे। आप सोचते हैं, मित्र मिल जाता है, इसलिए बात करते हैं? अकेले में छोड़ दिए जाएं, अकेले में बात करेंगे। सपने के मित्र से बात करेंगे। आप सोचते हैं, क्रोध करते हैं, क्योंकि कोई गाली देता है? तो आपको बंद कमरे में रख दिया जाए, पंद्रह दिन में आप पाएंगे कि आप सैकड़ों दफे क्रोधित हो गए बंद कमरे में। हो सकता है, कमीज जोर से पटकी हो; हो सकता है, बर्तन फेंक दिया हो; हो सकता है, स्नान करते वक्त क्रोध निकाला हो। पच्चीस रास्ते से आप क्रोध निकाल लेंगे।

यह समझपूर्वक हो सके, जो भी भीतर घटता है। अंतर-जीवन की कोई भी घटना मेरे गैर-ध्यान में न हो, इसका नाम समझ है, अंडरस्टैंडिंग है। और मजे की बात यह है कि समझ अगर हो, तो जो गलत है, वह होना अपने से बंद हो जाता है। समझ न हो, तो जो सही है, उसे आप कितना ही उपाय करें तो भी आप उसको शुरू नहीं कर सकते।

फिर कल।

चौथा प्रवचन

अज्ञान और ज्ञान के पार--वह रहस्य भरा ताओ

Chapter 1 : Sutra 4

Under these two aspects, it is really the same; but as development takes place, it receives the different names. Together we call them the Mystery. Where the Mystery is the deepest, is the gate of all that is subtle and wonderful.

अध्याय 1 : सूत्र 4

इन दोनों पक्षों में यह एक ही है; किंतु ज्यों-ज्यों इसकी प्रगति होती है, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं। इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं। जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि हो, वहीं उस सूक्ष्म और चमत्कारी का प्रवेश-द्वार है।

दो के भीतर एक का ही निवास है। जहां-जहां दो दिखाई पड़ता है बुद्धि को, वहां-वहां अस्तित्व तो एक ही है। ऐसा कहें, बुद्धि का देखने का ढंग चीजों को दो में तोड़ लेने का है। जैसे ही बुद्धि किसी चीज को देखने जाती है, वैसे ही दो में तोड़े बिना नहीं रह सकती।

उसके कुछ कारण हैं। बुद्धि असंगत को अस्वीकार करती है। बुद्धि विपरीत को साथ नहीं रख पाती; बुद्धि विरोधी को तोड़ देती है। जैसे, बुद्धि देखने जाएगी जीवन को, तो मृत्यु को जीवन के भीतर देखना बुद्धि के लिए असंभव है। क्योंकि मृत्यु बिल्कुल ही उलटी मालूम पड़ती है। जीवन के तर्क के साथ उसकी कोई संगति नहीं है। ऐसा लगता है कि मृत्यु जीवन का अंत है। ऐसा लगता है, मृत्यु जीवन की शत्रु है। ऐसा लगता है, मृत्यु जीवन के बाहर, जीवन पर आक्रमण है।

लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है; मृत्यु जीवन के बाहर घटने वाली घटना नहीं। मृत्यु जीवन के भीतर ही घटती है, मृत्यु जीवन का ही हिस्सा है, मृत्यु जीवन की ही पूर्णता है। मृत्यु और जीवन ऐसे ही हैं, जैसे बाहर आने वाली श्वास और भीतर जाने वाली श्वास एक ही हैं। जो श्वास भीतर जाती है, वही बाहर जाती है। जन्म में जो श्वास भीतर आती है, मृत्यु में वही श्वास बाहर जाती है। अस्तित्व में मृत्यु और जीवन एक ही हैं। लेकिन बुद्धि जब सोचने चलती है, तो बुद्धि असंगत को स्वीकार नहीं कर पाती; संगत को स्वीकार कर पाती है। संगत की दृष्टि से जीवन अलग हो जाता है और मृत्यु अलग हो जाती है।

लेकिन अस्तित्व असंगत को भी स्वीकार करता है, विपरीत को, विरोधी को भी स्वीकार करता है। अस्तित्व को बाधा नहीं पड़ती फूल और कांटे को एक ही शाखा पर लगा देने में। अस्तित्व को कोई अड़चन नहीं है अंधेरे और प्रकाश को एक ही साथ चलाए रखने में। सच तो यह है कि अंधेरा प्रकाश का ही धीमा रूप है, और प्रकाश अंधकार की ही कम सघन स्थिति है। अगर हम प्रकाश को मिटा दें जगत से बिल्कुल, तो तत्काल बुद्धि

कहेगी, अंधेरा ही अंधेरा बच रहेगा। लेकिन अगर हम सच में ही जगत से प्रकाश को बिल्कुल मिटा दें, तो अंधेरा भी नहीं बच रहेगा।

और सरलता से समझें तो ख्याल में आ जाए। अगर हम जगत से गर्मी को बिल्कुल मिटा दें, तो बुद्धि कहेगी, ठंड ही ठंड बच रहेगी। लेकिन जिसे हम शीत कहते हैं, ठंड कहते हैं, वह गर्मी का रूप है। अगर हम गर्मी को पूरा मिटा दें जगत से, तो शीत बिल्कुल मिट जाएगी; वह कहीं भी नहीं बच रहेगी। अगर हम मृत्यु को बिल्कुल मिटा सकें जगत से, तो जीवन समाप्त हो जाएगा। अस्तित्व विपरीत के साथ है। बुद्धि विपरीत को बाहर कर देती है। बुद्धि बहुत छोटी चीज है; अस्तित्व बहुत बड़ा। बुद्धि की समझ के बाहर पड़ता है यह कि विपरीत भी एक हो, कि जीवन और मृत्यु एक हो, कि प्रेम और घृणा एक हो, कि अंधेरा और प्रकाश एक हो, कि नर्क और स्वर्ग एक हो। यह बुद्धि की समझ के बाहर है कि दुख और सुख एक ही चीज के दो नाम हैं। यह बुद्धि कैसे समझ पाए!

बुद्धि कहती है, सुख अलग है, दुख अलग है; सुख को पाना है, दुख से बचना है; दुख को नहीं आने देना है, सुख को निमंत्रण देना है। लेकिन अस्तित्व कहता है, जिसने बुलाया सुख को, उसने दुख को भी निमंत्रण दे दिया है। और जिसने बचना चाहा दुख से, उसे सुख को भी छोड़ना पड़ा है। अस्तित्व में विपरीत एक है।

और लाओत्से कहता है, अंडर दीज टू आसपेक्ट्स, इट इ.ज रियली दि सेम। वह जो नाम के भीतर है और वह जो अनाम के भीतर है, इन दो पहलुओं में वह एक ही है।

इतनी तीव्रता से लाओत्से ने कहा कि वह जो पथ है, विचरण उस पर नहीं किया जा सकता; और वह जो सत्य है, उसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता। और अब लाओत्से कहता है, वह जो नाम के अंतर्गत है वह, और वह जो अनाम के अंतर्गत है वह, वे दोनों एक ही हैं--रियली दि सेम। यथार्थ में, वस्तुतः वे दोनों एक ही हैं।

यह भी हमारी बुद्धि का ही द्वैत है कि हम कहें, यह अनाम का जगत है और यह नाम का, कि हम कहें कि यह वस्तुओं का जगत है और वह अस्तित्व का, कि हम कहें कि यह व्यक्तियों का जगत है और वह अव्यक्ति का, कि हम कहें कि यह आकार का जगत है और वह निराकार का।

लाओत्से कहता है, नहीं, वस्तुतः उन दोनों के भीतर भी वह एक ही है। जिसे हम नाम देते हैं, उसके भीतर भी अनाम बैठा है; और जिसे हम अनाम कहते हैं, उसे भी हमने नाम तो दे ही दिया है। इससे क्या भेद पड़ता है कि हम उसे अनाम कहते हैं? वी हैव नेम्ड इट! अनाम रख लिया है उसका नाम हमने।

यह थोड़ा कठिन मालूम पड़ेगा, क्योंकि लाओत्से ने बहुत जोर दिया है शुरू में कि दोनों बिल्कुल अलग हैं। नाम मत देना उसे; नाम दिया कि वह सत्य न रह जाएगा। बोलना मत उसे; बोले कि वह विकृत हो जाएगा। चलना मत उस पथ पर, क्योंकि वह अविकारी पथ चला नहीं जा सकता। और अब लाओत्से घड़ी भर बाद यह कहता है कि उन दोनों के भीतर वस्तुतः एक ही है। कठिन पड़ेगी बात समझनी। लेकिन यह और भी गहरी बात है; जो लाओत्से ने पहले कहा, उससे भी गहरा है यह। नाम के भीतर भी वही है, आकार के भीतर भी वही है।

मैं अपने मकान की खिड़की से झांक कर देखता हूं, तो आकाश मुझे आकार में दिखाई पड़ता है। पर जिस आकाश को मैं खिड़की के भीतर से देखता हूं आकार में बंधा हुआ, जब बाहर जाऊंगा खिड़की-द्वार के, तो वही निराकार दिखाई पड़ेगा। उस समय मैं क्या कहूंगा, खिड़की से जो आकाश दिखा था, वह दूसरा था?

निश्चित ही, भेद तो है। क्योंकि खिड़की से जब दिखा था, तो आकार के चौखटे में जड़ा हुआ दिखा था। और अब जब देखता हूं, तो कोई भी चौखटा, कोई भी आकार नहीं है। निश्चित ही, भेद तो है। लेकिन गहरे में भेद कहां है? खिड़की से इसे ही देखा था, जो निराकार है। और अगर भूल थी तो आकाश की न थी, खिड़की की

थी। और खिड़की आकाश को आकार कैसे दे सकेगी? खिड़की जैसी छोटी चीज अगर आकाश जैसे विराट तत्व को आकार देने में समर्थ हो जाए, तो आकाश से ज्यादा शक्तिशाली हो जाती है।

तो जिसे बुद्धि ने नाम देकर जाना है, वह भी वही है, जिसे बुद्धिमानों ने बुद्धि के पार जाकर अनाम जाना है।

और लाओत्से कहता है, चल कर वहां तक न पहुंच सकोगे, रुक कर पहुंचोगे। हालांकि रुक कर आदमी वहीं पहुंचता है, जहां चलता हुआ दौड़ता रहता है। उन दोनों में भेद नहीं है, उन दोनों में अंतर नहीं है।

द्वैत को बड़ी गहरी चोट इस छोटे से वचन में लाओत्से ने की है--आखिरी चोट; जिसमें विपरीत को समाहित करने की कोशिश की है। और इसे एकबारगी बहुत साफ ख्याल में आ जाना चाहिए कि सारे द्वैत बुद्धि-निर्मित हैं। अस्तित्व उनसे अपरिचित है। अस्तित्व ने द्वैत को कभी जाना नहीं, डुआलिज्म को कभी जाना नहीं। विपरीत से विपरीत चीज अस्तित्व में जुड़ी और संयुक्त है। जुड़ी और संयुक्त ही नहीं, एक ही है। जुड़ी और संयुक्त भी हमें कहना पड़ती है, क्योंकि हमारा मन दो में तोड़ कर ही देखता है।

एक सिक्के में हम दो पहलू देखते हैं। और साफ ही दो पहलू होते हैं। फिर भी क्या हम कह सकते हैं कि एक पहलू को दूसरे से अलग किया जा सकेगा? क्या हम सिक्के के एक पहलू को बचा कर दूसरे को फेंक सकते हैं? हम कुछ भी करें, सिक्के में दो पहलू ही रहेंगे, और हम एक को न बचा सकेंगे और एक को हम न हटा सकेंगे। जिसे हम दूसरा पहलू कहते हैं, वह वही सिक्का है। फिर भी मजे की बात है कि हम एक छोटे से सिक्के के दोनों पहलू भी एक साथ देख नहीं सकते। सिक्का बड़ी चीज नहीं है, उसे हम हाथ पर रख कर देख लें। पर जब भी हम सिक्के को देखते हैं, हमारी आंखें एक ही पहलू को देख पाती हैं। दूसरा पहलू तो सिर्फ कल्पना में होता है कि होगा। उलटा कर जब देखते हैं, तब दूसरा देखते हैं, तब पहला छिप जाता है। कौन कहेगा... ।

बर्कले पश्चिम में एक विचारक हुआ और कीमती विचारक हुआ। वह कहा करता था कि जब आप कमरे के बाहर जाते हैं, तो कमरे की चीजें शून्य में विलीन हो जाती हैं। आप जब कमरे के भीतर आते हैं, तब वे फिर पुनः प्रकट हो जाती हैं। लेकिन जब कमरे में कोई नहीं रहता, तो कमरे में कोई वस्तु नहीं रह जाती। और बर्कले कहता था कि अगर कोई इससे विपरीत सिद्ध कर दे, तो मैं तैयार हूं। पर विपरीत सिद्ध करना असंभव है। क्योंकि सिद्ध करने के लिए कमरे के भीतर रहना पड़ेगा। और बर्कले कहता ही इतना था कि जब तक कोई कमरे के भीतर है, वस्तुएं होती हैं। जब कमरे के भीतर कोई देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं तिरोहित हो जाती हैं। क्योंकि वह कहता था, बिना देखने वाले के दृश्य बचेगा कैसे? बिना द्रष्टा के दृश्य बचेगा कैसे? अगर आप एक छेद करके दीवार से झांकें, तो द्रष्टा मौजूद हो जाता है, वस्तुएं प्रकट हो जाती हैं।

बर्कले जो कह रहा था, वह यह कह रहा था कि द्रष्टा और दृश्य में गहरा संबंध है। निश्चित ही, यह बात तो सही नहीं है बर्कले की कि जब कोई देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं नहीं रह जाती हैं। लेकिन यह बात जरूर सच है कि जब देखने वाला नहीं होता, तो वस्तुएं वैसी ही नहीं रह जातीं, जैसा देखने वाले के होने पर होती हैं।

जैसे, अब तो फिजिक्स भी इसे स्वीकार करती है कि जब आप कमरे के बाहर चले जाते हैं, तो कमरे की वस्तुएं रंग खो देती हैं, कमरे की वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। रह ही नहीं सकता। जब आप कमरे के बाहर होते हैं और कमरा सब तरफ से बंद होता है और कोई देखने वाला नहीं होता, तो कमरे की वस्तुएं बेरंग, कलरलेस हो जाती हैं। निश्चित ही, अगर वस्तुएं रंगहीन हो जाती हैं, तो आपके कमरे में जो पेंटिंग टंगी है, वह क्या होती होगी? कम से कम पेंटिंग नहीं होती होगी।

रंगहीन इसलिए हो जाती हैं कि फिजिक्स कहती है कि रंग आंख के जोड़ से निर्मित होता है। अगर मैं देख रहा हूं कि आप सफेद कपड़े पहने हुए बैठे हैं, तो आपके सफेद कपड़े आपके सफेद कपड़ों पर ही निर्भर नहीं हैं; मेरी आंख उनको सफेद देखती है। अगर कोई आंख न हो इस कमरे में, तो कपड़े सफेद नहीं रह जाएंगे। रंग जो है, वह आंख से जुड़ा हुआ है। और जरूरी नहीं है कि आकार भी वैसा ही रह जाए, जैसा हम देखते हैं, क्योंकि आकार भी हमारी आंख से जुड़ा है। अगर वस्तु रह भी जाती होगी कमरे के भीतर, जब हम बाहर हो जाते हैं, तो ठीक वैसी ही नहीं रह जाती है, जैसी हम थे तब थी। और जैसी रह जाती है, उसे हम कभी न जान पाएंगे। क्योंकि जब भी हम आएंगे, तब वह वैसी न रह जाएगी।

इसलिए इमेनुअल कांट, एक जर्मन चिंतक, कहा करता था कि वस्तु जैसी अपने आप में है--थिंग इन इटसेल्फ--उसे कभी नहीं जाना जा सकता। जब भी हम जानेंगे, तो हम उसे ऐसा जानेंगे, जैसा हम जान सकते हैं।

असल में, जो भी हम जानते हैं, वह हमारे जान सकने की क्षमता से निर्भर होता है, निर्मित होता है। जरूरी नहीं है कि हम इतने लोग इस कमरे में बैठे हुए हैं, इसमें एक मकड़ी भी चलती होगी, एक छिपकली भी दीवार पर सरकती होगी, एक मक्खी भी गुजरती होगी, एक कीड़ा भी सरकता होगा; वे सभी इस कमरे को एक जैसा नहीं देखेंगे। हो सकता है, कुछ चीजें छिपकली को दिखाई पड़ती हों, जो हमें कभी भी दिखाई न पड़ेंगी। और हो सकता है, मकड़ी कुछ चीजों को अनुभव करती हो, जिसका अनुभव हमें कभी न होगा। और हो सकता है, जमीन पर सरकने वाला कीड़ा कुछ ऐसी ध्वनियां सुनता हो, जो हमें बिल्कुल सुनाई नहीं पड़ रही हैं। और यह तो बिल्कुल ही निश्चित है कि जो हम देख रहे हैं, जान रहे हैं, सुन रहे हैं, उनसे ये कोई भी प्राणी परिचित न हो पाते होंगे।

जो भी हम देखते हैं, उसमें देखने वाला जुड़ जाता है। बुद्धि जैसे ही कुछ देखती है, बुद्धि अपना पैटर्न, अपना ढांचा दे देती है। बुद्धि का सबसे गहरा जो ढांचा है, वह द्वैत का है। वह चीजों को दो हिस्सों में तोड़ देती है सबसे पहले। विपरीत को अलग कर देती है, कंट्राडिक्टरी को अलग कर देती है।

और प्रत्येक चीज कंट्राडिक्टरी से निर्मित है। मैं कहता हूं कि मैं क्रोध नहीं करता, सिर्फ क्षमा करता हूं। लेकिन बिना क्रोध के कोई क्षमा नहीं होती। या हो सकती है? अगर आप क्रोधित नहीं हुए हैं, तो क्षमा कर सकेंगे? क्षमा करने के लिए पहले क्रोधित हो जाना बिल्कुल जरूरी है। क्षमा क्रोध के पीछे ही आती है; क्रोध का ही हिस्सा होकर आती है। क्रोध के बिना क्षमा संभव नहीं है। पर हम क्रोध और क्षमा को अलग करके देखते हैं। हम कहते हैं, फलां आदमी क्रोधी है और फलां आदमी क्षमावान है। और हम कभी ऐसा नहीं देख पाएंगे कि क्रोध ही क्षमा है।

बुद्धि तोड़ती है। जीवन के सब तलों पर बुद्धि तोड़ती चली जाती है।

लाओत्से कहता है कि बुद्धि के ये सारे के सारे खंडों के भीतर वह एक ही छिपा है। हम उसे कितना ही तोड़ें, हम उसे तोड़ नहीं पाते हैं। वह एक ही बना रहता है। हम कितनी ही सीमाएं बनाएं, वह असीम असीम ही बना रहता है। हम नाम दें या न दें, वह एक ही है।

तो पहली तो बात लाओत्से कहता है कि इस समस्त द्वैत के भीतर, इन सब दो के भीतर उस एक का ही वास है।

बैठे हैं इस कमरे के भीतर; हमने दीवारें बना ली हैं; तो हमने कमरे के आकाश को अलग तोड़ लिया है बाहर के आकाश से। लेकिन कभी आपने सोचा है कि आकाश को आप तोड़ कैसे सकेंगे? तलवार आकाश को

काट नहीं सकती। दीवार आकाश को काट नहीं सकती, क्योंकि दीवार को ही आकाश में ही होना पड़ता है। और आकाश दीवार के पोर-पोर में समाया हुआ है। तो जो बाहर का आकाश है और जो भीतर का आकाश है, वह जो हमारा विभाजन है, वह विभाजन वस्तुतः कहीं नहीं है। पर हमारे काम चलाने के लिए पर्याप्त है। बाहर के आकाश में सोना मुश्किल हो जाएगा; दीवार के भीतर के आकाश में हम सुविधा से सो जाते हैं। निश्चित ही, भेद तो है। बाहर के आकाश में पानी बरस रहा है; भीतर के आकाश में हम पानी से निश्चिंत बैठे हैं।

पर फिर भी हमने आकाश को दो हिस्सों में बांटा नहीं है। हम कभी बांट नहीं पाएंगे। आकाश अखंड है, एक है। भीतर और बाहर हमारे कामचलाऊ फर्क हैं। जो भीतर है, वही बाहर है। जो बाहर है, वही भीतर है। भीतर और बाहर शब्द भी हमारे बुद्धि के द्वैत से निर्मित होते हैं। अन्यथा न कुछ भीतर है, न कुछ बाहर है। एक ही है। उसे हम कभी भीतर कहते हैं, उसे हम कभी बाहर कहते हैं।

लाओत्से, बुद्धि का जो द्वैत है वह अत्यंत ऊपरी है, यह कह रहा है। भीतर, अंतर-सत्ता में, अस्तित्व की गहराई में, एक का ही वास है। जैसे कोई वृक्ष निकलता है जमीन से, तो पहले एक ही होता है। फिर शीघ्र ही उसमें शाखाएं टूटने लगती हैं। और फिर शाखाएं टूटती चली जाती हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, जैसे ही प्रगति होती है, जैसे ही विकास होता है, वैसे ही अनेक पैदा हो जाता है। अनंत नाम आ जाते हैं।

हिंदुओं ने जीवन को एक वृक्ष के रूप में कोई पांच हजार साल पहले से सोचा है। और मोक्ष को एक उलटे वृक्ष के रूप में सोचा है। संसार ऐसा वृक्ष है, जो एक से पैदा होता और अनेक हो जाता है। एक वृक्ष की शाखा उठनी शुरू होती है, पींड़ उसे हम कहते हैं, और फिर अनेक शाखाएं हो जाती हैं। और फिर प्रत्येक शाखा अनेक शाखा बन जाती है। और फिर प्रत्येक अनेक शाखा भी अनेक पत्तों में फैल जाती है। मोक्ष इससे उलटा वृक्ष है, जिसमें अनेक शाखाओं से हम कम शाखाओं की तरफ आते हैं। फिर कम शाखाओं से और कम शाखाओं की तरफ आते हैं। फिर और कम शाखाओं से एक की तरफ आते हैं। और फिर एक से हम उस बीज में चले जाते हैं, जिससे सब निर्मित होता है और विकसित होता है।

लाओत्से कह रहा है, जैसे ही डेवलपमेंट होता है, जैसे ही अनफोल्डमेंट होता है, जैसे ही चीजें खुलती हैं, वैसे ही अनेक हो जाती हैं। एक बीज तो एक होता है, वृक्ष अनेक-अनेक शाखाओं में बंट जाता है। और फिर अनेक शाखाओं पर अनेक-अनेक बीज लग जाते हैं--एक ही बीज से। ठीक वैसे ही अस्तित्व तो एक है, अनाम, फिर नाम की बहुत शाखाएं उसमें निकलती हैं। सत्य तो एक है, निःशब्द, फिर शब्द की बहुत शाखाएं उसमें निकलती हैं, बहुत पत्ते लगते हैं।

पर लाओत्से कहता है, फिर भी वह जो एक में है, वही अनेक में भी है। और वह जो बीज में है, वही पत्ते में भी है। दूसरा हो कैसे सकता है? दूसरे के होने का कोई उपाय नहीं है। दूसरा है ही नहीं।

इस वचन के दूसरे हिस्से में ः ज्यों-ज्यों प्रगति होती है, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं।

वह भिन्न-भिन्न नहीं हो जाता, लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करते हैं। मैंने कहा कि वृक्ष बीज में एक होता है, शाखाओं में अनेक हो जाता है। लेकिन वह भी, हम जो बाहर खड़े हैं, उनको दिखाई पड़ता है। अगर वृक्ष कह सके, तो वृक्ष कहेगा, मैं एक हूं। वृक्ष को अपना पत्ता भी और अपनी जड़ भी जुड़ी हुई मालूम पड़ेगी। भीतर तो एक ही प्रवाह है, एक ही रस की धार बहती है।

आपको अपने पैर का अंगूठा और आपका सिर, आपकी आंख और आपके हाथ की अंगुलियां भीतर से अलग-अलग मालूम होती हैं? आंख बंद करके देखेंगे, तो भीतर एक का ही सतत प्रवाह हो जाता है। उस प्रवाह में ही ये सारे के सारे रूप तिरोहित हो जाते हैं।

बाहर से कोई आपको देखेगा, तो आपकी आंख अलग है, अंगुली अलग है। निश्चित ही, अंगुली तोड़ने से आंख नहीं फूटेगी। और निश्चित ही, आंख फूट जाने से अंगुली नहीं टूट जाएगी। बाहर से सब अनेक ही मालूम पड़ता है। लेकिन भीतर? मैंने कहा कि अंगुली तोड़ने से आंख नहीं फूटेगी, यह भी बाहर से। भीतर तो अंगुली का टूटना भी आंख को कमजोर कर जाता है। भीतर तो आंख का भी फूटना अंगुली को भी अंधा कर जाता है। भीतर तो एक ही है प्रवाह। भीतर तो जरा भी भेद नहीं है।

और अगर हम शरीरशास्त्री से पूछें, तो वह भी यही कहता है। बहुत अनूठी बात शरीरशास्त्री कहता है। नवीन से नवीन खोजें कुछ बड़े पुराने रहस्यों को पुनर्स्थापित करती हैं। शरीरशास्त्री कहता है कि आंख जिन सेल्स से बनी है, उन्हीं सेल्स से पैर का अंगूठा भी बना है। उनमें जरा भी भेद नहीं है। अगर भेद है कुछ, तो वह सिर्फ उन सेल्स ने स्पेशियलाइजेशन कर लिया है। सारे शरीर के कोश एक जैसे हैं। लेकिन शरीर के कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है देखने के लिए। और कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है सुनने के लिए। और कुछ कोशों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है स्पर्श करने के लिए। लेकिन वे सब कोश एक जैसे हैं। उन कोशों के जीवन-तत्व में कोई भी भेद नहीं है। रंच मात्र भी फर्क नहीं है। आंख की जो इतनी सूक्ष्म पुतली है, वह भी आपकी चमड़ी ही है। वह भी चमड़ी ही है, जो बहुत सूक्ष्मतम रूप में देखने का काम उसने शुरू कर दिया है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि हाथ की चमड़ी भी देखने में उतनी ही समर्थ है। अगर उसका भी प्रशिक्षण हो सके, तो वह भी देख सकती है। क्योंकि दोनों को निर्मित करने वाला जो कोश है, वह एक जैसा है। उसमें कोई फर्क नहीं है।

जब बच्चा मां के पेट में आता है, तो न तो आंख होती है, न कान होते हैं, न नाक होती है, न हाथ, न पैर होते हैं। जब पहले दिन बीजारोपण होता है, तो कुछ भी नहीं होता। सिर्फ सेल होता है खाली। फिर उसी सेल से सेल पैदा होते हैं। और वे सारे सेल जिस सेल से पैदा होते हैं, उससे भिन्न नहीं हो सकते, वही होते हैं। फिर धीरे-धीरे कुछ सेल आंख का काम शुरू कर देते हैं, कुछ सेल कान का काम शुरू कर देते हैं, कुछ सेल हृदय बन जाते हैं। एक ही तरह के सेल फैलते चले जाते हैं। और शरीर में सारा का सारा भेद निर्मित हो जाता है।

बीज एक होता है, शाखाएं अलग-अलग मालूम पड़ने लगती हैं। रस-धार एक होती है, जीवन-धार एक होती है, पर प्रत्येक चीज अलग दिखाई पड़ने लगती है--अनफोल्डमेंट पर, जब चीजें खुलती हैं। मां के पेट में जो सेल पहले दिन निर्मित हुआ है, वह बंद है। वह अभी खुलेगा, उघड़ेगा, अपने पर्दे तोड़ेगा, फैलेगा। फैलेगा तो बहुत जरूरतें होंगी। प्रत्येक जरूरत के अनुसार बहुत से हिस्से उसके अलग-अलग काम करना शुरू कर देंगे। और जब ये सब अलग-अलग काम करना शुरू कर देंगे, तो इनके अलग-अलग नाम होंगे।

इसे हम एक उदाहरण समझ सकते हैं। हिंदू सदा कहते रहे हैं कि यह जगत भी इसी तरह एक छोटे से अंडे से निर्मित होता है, जैसे व्यक्ति। और इस जगत का भी सब कुछ जीवन-धार एक ही है। फिर सब चीजें अलग होती हैं; जैसे खुलती जाती हैं, फैलती चली जाती हैं। और लाओत्से भी वही कह रहा है। वह कह रहा है, लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारने लगते हैं। उपनिषदों ने कहा है, सत्य तो एक है, पर जानने वाले उसे अनेक तरह से जानते हैं। रहस्य तो एक है, लेकिन बुद्धिमानों ने उसे अलग-अलग नामों से पुकारा है। नाम ही अलग-अलग हो पाते हैं। पर नाम के कारण हमारे मन में ऐसी भ्रांति बननी शुरू होती है कि चीजें अलग-अलग हैं। तब गलती हो जाती है, तब भ्रांति हो जाती है। वह भ्रांति टूट जाए, तो अद्वैत का स्मरण हमें हो सकता है।

और लाओत्से कहता है कि जिसे ऐसे अद्वैत का स्मरण हो, वही... । लोग जिसे भिन्न-भिन्न नामों से स्मरण करते हैं, और फिर भी जो एक है। इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं--दि मिस्ट्री!

रहस्य क्या है इस जगत का?

विज्ञान रहस्य को स्वीकार नहीं करता, धर्म रहस्य को स्वीकार करता है। वही फर्क है विज्ञान और धर्म में। विज्ञान मानता है, जगत में कोई भी रहस्य नहीं है। और जितना हम जान लेंगे, उतना ही रहस्य कम हो जाएगा। अर्थात रहस्य अज्ञान का नाम है। विज्ञान के हिसाब से रहस्य का अर्थ है अज्ञान। जिसे हम नहीं जानते, वह रहस्य मालूम पड़ता है। जान लेंगे, रहस्य समाप्त हो जाएगा। और जानने के लिए विज्ञान क्या करता है? अगर ठीक से समझें, तो लाओत्से जो कह रहा है, ठीक उससे विपरीत करता है। विज्ञान करता क्या है? विज्ञान चीजों को नाम देते चला जाता है। और जिस चीज को विज्ञान नाम देने में समर्थ हो जाता है, समझता है कि हमने जान लिया। नाम की परिभाषा तय कर देता है और जानता है कि हमने जान लिया।

विज्ञान इसीलिए रोज स्पेशलाइज्ड होता चला जाता है। एक युग था कि विज्ञान एक था। फिर उसके विभाजन होने शुरू हो गए। फिर विज्ञान की जो शाखाएं थीं, उनकी भी प्रशाखाएं होनी शुरू हो गईं। और अब प्रशाखाओं की भी प्रशाखाएं होनी शुरू हो गईं।

एक वक्त था कि सारी दुनिया में सारा ज्ञान फिलासफी के अंतर्गत आ जाता था। इसलिए आज भी हम अपनी पुरानी यूनिवर्सिटीज में पी एचड़ी. की डिग्री दिए चले जाते हैं--उसको भी, जिसका फिलासफी से कोई संबंध नहीं है। अब एक आदमी केमिस्ट्री में रिसर्च करता है, उसे हम पी एचड़ी. की डिग्री देते हैं। वह एक हजार साल पुरानी आदत है। उसको डाक्टर ऑफ फिलासफी कहते हैं। फिलासफी से उसका कोई लेना-देना नहीं है अब। लेकिन एक हजार साल पहले केमिस्ट्री फिलासफी का एक हिस्सा थी।

अरस्तू ने एक किताब लिखी है आज से दो हजार साल पहले। तो उसकी किताब के एक-एक अध्याय का जो नाम था, आज एक-एक विज्ञान का नाम है। और बहुत मजेदार मजाक की घटना घटी है। उसने फिजिक्स का जो चैप्टर लिखा था, उसके बाद का जो चैप्टर था, वह धर्म का था। और इसलिए पश्चिम में यूनान धर्म को मेटाफिजिक्स कहने लगा। मेटाफिजिक्स का इतना ही मतलब होता है, फिजिक्स के बाद वाला चैप्टर। फिजिक्स के आगे जो अध्याय आता है, उसका नाम मेटाफिजिक्स था। आज भी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पर जो पुरानी तख्ती लगी है फिजिक्स के डिपार्टमेंट पर, वह लगी हैः डिपार्टमेंट ऑफ नेचुरल फिलासफी। हजार साल पहले फिजिक्स नेचुरल फिलासफी थी। फिर विभाजन हुआ। और विज्ञान तो विभाजित होगा। क्योंकि जितना ज्यादा हमें जानना हो, जितना व्यवस्थित जानना हो, उतना संकीर्ण करना पड़ेगा खोज को, उतना नैरो डाउन करना पड़ेगा। जितना ज्यादा जानना हो किसी चीज के संबंध में, उतनी कम चीज जानने के लिए चुननी पड़ेगी। इसलिए विज्ञान की परिभाषा है, ज्यादा से ज्यादा जानने की कोशिश कम से कम के संबंध में।

तो जब हम कम करेंगे तो चीजें टूटती चली जाएंगी। अब तो फिजिक्स भी अकेली नहीं है। अब तो फिजिक्स को भी हमें हिस्सों में तोड़ देना पड़ा। अब तो केमिस्ट्री भी एक विज्ञान नहीं है। अब तो आर्गेनिक केमिस्ट्री अलग होगी, इन-आर्गेनिक अलग होगी। और रोज टूटते जाएंगे हिस्से। विज्ञान धीरे-धीरे पत्तों पर पहुंच जाता है, और रहस्य से दूर होता चला जाता है।

लाओत्से कहता है, नाम और अनाम के, दोनों के बीच में जो एक होना है, उसी का नाम मिस्ट्री है, उसी का नाम रहस्य है।

असल में, जो अद्वैत की तरफ जाएगा, वह रहस्य की तरफ जाएगा। और जो अनेक की तरफ जाएगा, वह रहस्य की तरफ नहीं जाएगा। इसलिए विज्ञान धीरे-धीरे रहस्य को तोड़ता चला जाता है। वह सोचता है, कोई रहस्य नहीं है, सब रहस्य हम जान लेंगे। और फिर भी रहस्य अपनी जगह ही खड़ा रहेगा। विज्ञान का जानने का ढंग ऐसा है कि वह रहस्य से वंचित हो जाएगा। और इसलिए विज्ञान जितना विकसित हुआ, आदमी का

रहस्य-भाव उतना कम हुआ। धर्म को जो नुकसान पहुंचे हैं, उनमें गहरे से गहरा नुकसान है रहस्य-भाव के कम होने से। कोई रहस्य नहीं मालूम पड़ता। सब चीजें ज्ञात हैं।

एक फूल आप देखते हैं। कोई कहता है, सुंदर है। आप कहते हैं, बेकार की बात कर रहे हो। इसमें कौन सा सौंदर्य है? फलां-फलां रंग हैं, फलां-फलां तत्वों से मिल कर बना है। जाएं और वैज्ञानिक से विश्लेषण करवा लें, वह सब निकाल कर बता देगा कि क्या-क्या है। और सौंदर्य इसमें कहीं भी नहीं है।

जैसे ही हम चीजों के सारे तथ्यों को जान लेते हैं और नाम दे देते हैं, वैसे ही वह जो सबके भीतर छिपा हुआ अद्वैत था, वह लुप्त हो जाता है, वह खो जाता है। उसके खोने के साथ ही रहस्य विसर्जित हो जाता है।

लाओत्से कहता है, अनेक जिसे हमने नाम दिए हैं, फिर भी जो एक है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। अनेक होकर भी जो एक ही बना रहता है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ कर भी जो अभिन्न ही बना रहता है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। द्वैत में बंटा हुआ दिखाई पड़ता है, फिर भी बंटता नहीं, अनबंटा है, अनडिवाइडेड है, उसे ही हम रहस्य कहते हैं। रहस्य का मतलब समझ लें। रहस्य का मतलब होता है, जिसे हम जान भी लेते हैं और फिर भी नहीं जान पाते। धर्म की भाषा में रहस्य का अर्थ होता है, जिसे हम जान भी लेते हैं और फिर भी नहीं जान पाते। जिसे हम पहचान भी लेते हैं और फिर भी जो अनपहचाना रह जाता है।

इसे उदाहरण से समझें तो शायद ख्याल में आ जाए। आप किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं और पचास साल उसके साथ रहे हैं। क्या आप उसे जान पाए? परिचित तो भलीभांति हो गए होंगे। पचास साल में अगर परिचित नहीं हो पाए तो फिर कब परिचित हो पाएंगे? परिचित भलीभांति हो गए हैं, सब कुछ जानते हुए मालूम पड़ते हैं। और फिर भी क्या आप साहस से कह सकेंगे कि आप उसे जान पाए? उसका कोना-कोना जान लिया, उसकी एक-एक बात जान ली, उसकी सब आदतों का आपको पता है। फिर भी आप क्या कह सकते हैं कि वह प्रेडिक्टेबल है? कल सुबह क्या करेगा, यह आप बता सकते हैं?

नहीं, वह अनप्रेडिक्टेबल एलीमेंट मौजूद है। और ऐसा नहीं कि पचास साल कम हैं, पांच सौ साल में भी वह मौजूद ही रहेगा। वही रहस्य है, दि अनप्रेडिक्टेबल! वह जिसकी हम कोई घोषणा न कर पाएंगे, जिसकी हम कोई भविष्यवाणी न कर पाएंगे! जिसको हम जान कर भी न कह पाएंगे कि हमने जान लिया।

और किसी किनारे से देखें।

संत अगस्तीन से कोई पूछता है कि समय क्या है? व्हाट इ.ज टाइम? तो अगस्तीन कहता है, जब तक मुझसे कोई नहीं पूछता, मैं भलीभांति जानता हूं; और जब कोई पूछता है, तभी गड़बड़ हो जाती है।

आप भी जानते हैं कि समय क्या है; भलीभांति जानते हैं। समय से उठते हैं। अगर न जानते, तो समय से उठते कैसे? न जानते, तो समय से घर कैसे पहुंचते? न जानते, तो कैसे तय करते कि समय हो गया? जानते जरूर हैं समय को। लेकिन अगस्तीन ने ठीक कहा है कि जब तक मुझसे कोई नहीं पूछता, तब तक मैं बिल्कुल जानता हूं कि व्हाट इ.ज टाइम, और तुमने पूछा कि सब खो जाता है। कोई पूछे ले कि क्या है समय? तो आज तक जगत का बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी उत्तर नहीं दे पाया है। और ऐसे बुद्धिहीन से बुद्धिहीन आदमी समय का उपयोग कर रहा है। ऐसे मूढ़ से मूढ़ आदमी समय में जी रहा है। और बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी इशारा नहीं कर सकता कि यह है समय।

छोड़ें, समय थोड़ी जटिल बात है; जीवन तो इतनी जटिल नहीं। हम सब जी रहे हैं। हम काफी जी लिए हैं। जो जानते हैं, वे कहते हैं, हजारों-हजारों जन्म जी लिए हैं। छोड़ें उन्हें; इतना ही मान लें कि हम एक जन्म जी लिए हैं। पचास साल, चालीस साल, बीस साल, साठ साल जी लिए हैं। जीवन को जाना है। लेकिन अगर

कोई पूछे कि जीवन क्या है? तो बस चूक जाता है हाथ। क्या हो जाता है? जीवन क्या है, जब जी लिए हैं, तो बताना चाहिए।

लाओत्से कहता है, इसे हम रहस्य कहते हैं। जान भी लेते हैं, फिर भी अनजाना रह जाता है। सब जान लेते हैं, फिर भी पाते हैं कि सब अनजाना रह गया। अस्तित्व चारों तरफ मौजूद है। भीतर-बाहर वही है। रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में वही व्याप्त है। फिर भी अनजाना है। क्या जाना हमने?

ये लहरें समुद्र की लाखों साल से आकर इस तट पर टकरा कर गिर रही होंगी। तट, अभी तक ये लहरें जान न पाई होंगी कि क्या है? और न यह तट जान पाया होगा कि ये लहरें क्या हैं? लेकिन आप कहेंगे, लहरों की छोड़िए। लेकिन अगर आप भी लाख वर्ष तक इस तट से इसी तरह टकराते रहें, तो भी इतना ही जान पाएंगे जितना लहरें जान पाई हैं। क्या हम जान पाते हैं? एक ऊपरी परिचय, एक एक्वेनटेंस हो जाता है। और उस ऊपरी परिचय को हम कहने लगते हैं ज्ञान। इस ऊपरी परिचय को ज्ञान कहने से बड़ी भ्रांति पैदा होती है; तब हम रहस्य से वंचित रह जाते हैं। लाओत्से कहता है, इस ऊपरी परिचय को ज्ञान मत समझना, जानना कि बस ऊपरी पहचान है। तब तुम्हें प्रतिपल रहस्य चारों तरफ उपस्थित दिखाई पड़ेगा। रहस्य है ही। कितना ही जान लें हम, उसका कोई अंत नहीं होता।

और अब, अब जब कि विज्ञान थोड़ा गहन और गंभीर हुआ है और उसका बचपना टूटा है, क्योंकि विज्ञान को अभी पैदा हुए ज्यादा दिन नहीं हुए। धर्म को, अंदाजन बीस हजार साल के तो चिह्न मौजूद हैं धर्म को पैदा हुए। तो धर्म ने अगर आज से पांच हजार साल पहले भी यह बात कही है कि जीवन रहस्य है, तब भी वह पंद्रह हजार साल पुरानी घटना थी, अनुभव था। विज्ञान को तो पैदा हुए तीन सौ साल हुए हैं। बिल्कुल बचपना है। यह बात पक्की है कि जिस दिन विज्ञान भी पंद्रह हजार साल की उम्र का होगा, तब वह इतने ही जोर से घोषणा करके कहेगा कि जीवन रहस्य है।

पंद्रह हजार साल तो दूर है; अभी आइंस्टीन मौजूद था। तो हमने विज्ञान की जो बड़ी से बड़ी प्रतिभा पैदा की है, वह उस आदमी में थी। लेकिन मरते वक्त वह आदमी कह कर गया है कि मैं सोचता था अपनी युवा अवस्था में कि सत्य को जाना जा सकेगा, अब मैं ऐसा नहीं सोचता हूं। अब मैं सोचता हूं कि सत्य अज्ञेय है और अज्ञेय ही रहेगा। हम बहुत कुछ जान लेंगे, यह पक्का है। फिर भी जानने को उतना ही शेष रहेगा, जितना हमारे जानने के पहले शेष था। हमारे जानने से कुछ अंतर न पड़ेगा। वह ऐसा ही होगा, जैसे हम एक चुल्लू भर पानी समुद्र से भर लाए। शायद चुल्लू भर पानी समुद्र से भरने में समुद्र थोड़ा कम भी होता होगा, लेकिन वह जो अज्ञात का चारों तरफ विस्तार है, अज्ञेय का, अननोएबल का, वह हमारे कितने ही जान लेने से चुल्लू भर भी कम नहीं होता।

धर्म इसे रहस्य कहता है, वह सदा शेष ही रह जाता है--अनजाना, अपरिचित। उतना का उतना मौजूद रह जाता है। रहस्य का अर्थ है... ।

तीन चीजें समझ लें। अज्ञान; अज्ञान रहस्य नहीं है। विज्ञान समझता है कि अज्ञान की वजह से ही यह रहस्य मालूम होता है। वह विज्ञान की भूल है। अज्ञान रहस्य नहीं है; क्योंकि अज्ञान में हमें कुछ पता ही नहीं है। रहस्य का तो पता होगा ही कैसे! कुछ भी पता नहीं है। ज्ञान भी रहस्य नहीं है; क्योंकि ज्ञान में हमें कुछ पता है। रहस्य ज्ञान से ऊपर की घटना है। अज्ञान के ऊपर ज्ञान घटता है; ज्ञान के ऊपर रहस्य घटता है। जो अज्ञान से जानने में जाएगा, वह ज्ञानी हो जाएगा। और जो ज्ञान से भी और ऊपर जानने में जाएगा, वह रहस्यवादी, मिस्टिक हो जाएगा।

तीन सीढ़ियां समझ लें। एक अज्ञान की सीढ़ी है। अगर आप अज्ञान से बढ़ेंगे, तो दूसरी सीढ़ी ज्ञान की है। न जानने से जानने की दुनिया शुरू होती है। लेकिन अगर आप न जानने में रुक गए, तो अज्ञानी रह जाएंगे; और अगर आप जानने में रुक गए, तो ज्ञानी रह जाएंगे; अगर आप जानने के भी ऊपर उठे, तो रहस्य की दुनिया शुरू होती है। और तब उस अवस्था में ज्ञान होते हुए भी अज्ञान का पूर्ण बोध होता है। ज्ञान और अज्ञान रहस्य में एक ही हो जाते हैं। जैसा लाओत्से कह रहा है कि वे दोनों पहलुओं के भीतर एक ही है। रहस्य का अनुभव उसे होता है, जिसे अज्ञान में भी और ज्ञान में भी एक के ही दर्शन होने लगते हैं। और जिसे लगता है कि अज्ञानी और ज्ञानी में बहुत फासला नहीं है। अज्ञानी को भ्रम है कि मुझे पता नहीं। ज्ञानी को भ्रम है कि मुझे पता है। रहस्यवादी को पता है कि पता होने की कोई संभावना नहीं है।

नहीं, रहस्यवादी यह नहीं कहता है कि जानो मत। वह कहता है, जानो, खूब जानो; लेकिन इतना गहरा जानो कि तुम जानने के भी पार निकल जाओ। वह जानना तुम्हारा बंधन और तुम्हारी सीमा न बन जाए। अज्ञान से तो ऊपर उठ गए हो, ज्ञान के भी ऊपर उठ जाओ।

ईशावास्य के ऋषि ने कहा है, अज्ञानी तो भटक ही जाते हैं अंधकार में, लेकिन उन ज्ञानियों का क्या कहें जो महा अंधकार में भटक जाते हैं!

कौन से ज्ञानी होंगे जो महा अंधकार में भटक जाते हैं? हमने तो यही सुना है कि ज्ञानी नहीं भटकते, अज्ञानी भटकते हैं। यह ईशावास्य का ऋषि क्या कह रहा है? जरूर इसे वही बात पता है जो लाओत्से को पता है। यह कह रहा है कि अज्ञानी तो भटकते हैं इस कारण कि उन्हें पता नहीं है। और ज्ञानी इसलिए भटक जाते हैं कि वे सोचते हैं कि उन्हें पता है। और ध्यान रहे, ऋषि कहता है, अज्ञानी तो अंधकार में भटकते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। उसकी विनम्रता भी खो जाती है, और अहंकार सघन हो जाता है।

रहस्य, ज्ञान और अज्ञान, दोनों का अतिक्रमण है। रहस्य इस बात की खबर है कि नहीं, जानो बहुत, जान नहीं पाओगे। जानने की कोशिश करो बहुत, कोशिश असफल होगी। दौड़ो, खोजो, आविष्कार करो, लेकिन आखिर में एक ही बात आविष्कार कर पाओगे कि जीवन अतल रहस्य है, उसका तल नहीं खोजा जा सकता है।

लाओत्से कहता है, इसे हम रहस्य कहते हैं। दोनों के भीतर यथार्थ में एक है, इसे हम रहस्य कहते हैं। जन्म और मृत्यु में एक है, अंधेरे और प्रकाश में एक है, इसे हम रहस्य कहते हैं।

और इसके बाद की पंक्ति उसकी बहुत अदभुत है।

"इन नामों के समूह को ही हम रहस्य कहते हैं। और जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि है, वहीं उस सूक्ष्म और चमत्कारी का प्रवेश-द्वार है।"

जहां रहस्य की सघनता सर्वोपरि है! रहस्य की सघनता! क्या अर्थ होगा रहस्य की सघनता का? पीछे लौट कर चलना पड़े।

अज्ञानी को पता होता है कि मुझे पता नहीं है। अहंकार सूक्ष्म होता है, निर्बल होता है। होता है, क्योंकि इतना तो उसे भी ख्याल है कि मुझे पता नहीं है। ज्ञानी को पता होता है कि मुझे पता है। मैं और मजबूत हो गया होता है, सघन हो गया होता है।

अज्ञानी के मन में थोड़ा-बहुत रहस्य का भाव भी होता है अज्ञान के कारण। उसे बहुत वंडर्स दिखाई पड़ते हैं, चारों तरफ विचित्रताएं दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि वह कुछ नहीं समझ पाता। आकाश में बिजली चमकती है, तो वह सोचता है, शायद इंद्र नाराज हैं। वर्षा होती है, तो सोचता है, शायद देवता प्रसन्न हैं। फसल आती है, तो सोचता है, पुण्य का फल है। फसल नहीं आती, भूकंप आ जाता है, तो सोचता है, पापों का परिणाम है। वह

अपने कुछ हिसाब लगाए चला जाता है। पर रहस्य होता है, अज्ञान-निर्भर होता है। मैं होता है कम सघन, रहस्य की प्रतीति थोड़ी होती है। लेकिन रहस्य को भी अज्ञान शीघ्रता से कुछ न कुछ व्याख्याओं में परिवर्तित कर लेता है। बिजली इंद्र बन जाती है, वर्षा पाप-पुण्य का फल बन जाती है। सुख-दुख न्याय, कर्म के सिद्धांत बन जाते हैं। कुछ न कुछ व्याख्या निर्मित कर लेता है अज्ञानी भी। जिस मात्रा में व्याख्या कर लेता है, उसी मात्रा में अहंकार मजबूत हो जाता है।

ज्ञानी जानता है तथ्यों को। जितना जानता है, उतना मजबूती से मैं मजबूत होता है। और जितनी मजबूती से मैं मजबूत होता है, उतना ही रहस्य का भाव विरल हो जाता है। सघन नहीं, विरल हो जाता है। रहस्य के भाव की सघनता विलीन हो जाती है।

तीसरे चरण में, जहां ज्ञानी न ज्ञानी रह जाता न अज्ञानी, जानता है और फिर भी जानता है कि नहीं जानता हूं, वहां मैं बिल्कुल खो जाता है। और जहां खोता है मैं, वहां रहस्य सघन होता है। ये दो चीजें हैंः मैं और रहस्य। अगर मैं बहुत सघन होगा, तो रहस्य विरल होगा। अगर मैं विरल होगा, तो रहस्य सघन होगा। अगर मैं पूरी तरह से मजबूत हो जाए, तो रहस्य बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। और अगर मैं बिल्कुल शून्य हो जाए, तो रहस्य परिपूर्ण रूप से सघन और तीव्र हो जाएगा। मैं के केंद्र की ही मात्रा पर तय करेगा कि रहस्य कितना सघन है। इसलिए समस्त रहस्यवादी कहते हैं, मैं को विसर्जित करो; मैं को खो दो; तब तुम्हें जीवन का रहस्य पता चलेगा।

यह मैं क्यों बाधा देता है? यह मैं अंधा कर देता है, रहस्य को नहीं देखने देता। रहस्य का मतलब ही यह है कि मेरा कोई वश न चलेगा, मैं जान न पाऊंगा। मेरी कोई सामर्थ्य नहीं है, मैं असहाय हूं। तभी रहस्य का बोध होगा।

इसलिए छोटे बच्चे जितने रहस्य से घिरे रहते हैं, बूढ़े नहीं घिरे रहते। छोटे बच्चे रहस्य के जगत में जीते हैं। क्यों? अभी मैं उतना सघन नहीं है। अभी तितली उड़ती है, तो ऐसा लगता है कि परम स्वप्न पूरा हुआ। अभी फूल खिलता है, तो ऐसा लगता है कि अनंत के द्वार खुले। अभी सूरज निकलता है, तो ऐसा लगता है कि बस परम प्रकाश का दर्शन हुआ। अभी सागर की लहर टकराती है, तो हृदय में आनंद की पुलक नाच जाती है। अभी राह के किनारे पड़े हुए कंकड़-पत्थर रंगीन भी बच्चा उठा लाता है, तो उनमें हीरे और मोती उसे दिखाई पड़ते हैं। अभी मैं बहुत सघन नहीं है। अभी चारों तरफ रहस्य का दर्शन होता है।

तो बच्चे का तो पूरा समय एक काव्य में बीतता है, एक कविता में। इसलिए छोटे बच्चे सपने में और जागने में फर्क नहीं कर पाते। छोटा बच्चा सुबह उठ कर रात सपने में खो गई गुड़िया के लिए सुबह रो सकता है, चिल्ला सकता है कि गुड़िया टूट गई, गई कहां! और हम उसे कितना ही समझाएं कि वह सपना था, हम न समझा पाते हैं। उसका कारण है कि अभी सपने में और जागने में कोई बहुत स्पष्ट भेद-रेखा नहीं है। अभी वह दिन में भी सपने देखता है। अभी रात और दिन में बहुत फासला नहीं है, पलक खुलने और बंद होने का ही फासला है। भीतर अभी बहुत तरल है। अभी रहस्य का भाव बहुत मजबूत है।

फिर जैसे-जैसे मैं मजबूत होगा, वैसे-वैसे रहस्य विलीन होता जाएगा। जितना बच्चा शिक्षित होगा, सर्टिफिकेट लाएगा, जितना बड़ा होगा, जितना अपने पैरों पर खड़ा होगा, जितनी-जितनी योग्यता अर्जित करेगा, उतना मैं धीरे-धीरे साफ होगा, निखरेगा, उतना रहस्य गिरता चला जाएगा।

लेकिन बच्चे का जो रहस्य है, वह अज्ञान से संबंधित रहस्य है। संत का जो रहस्य है, वह ज्ञान के बाद का रहस्य है। ज्ञान के पहले भी एक रहस्य है, वह अज्ञान का है। ज्ञान के बाद भी एक रहस्य है, वह अज्ञान का नहीं है।

यही फर्क है कवि में और ऋषि में। कवि भी रहस्य में जीता है, लेकिन अज्ञान से भरे। और ऋषि भी काव्य में जीता है, लेकिन ज्ञान के पार जो काव्य है। ऋषि का अर्थ कवि ही होता है। लेकिन ऐसा कवि, जिसके पास आंखें हैं, जिसने देखा। ऋषि भी काव्य में ही जीता है। उसके लिए भी जगत प्रोज नहीं, पोएट्री है। उसके लिए जगत गद्य नहीं है, रूखा-सूखा नहीं है। उसके लिए जगत पद्यमय है, गीत में बंधा है, छंद से आविष्ट है, नृत्य से, गीत से आच्छादित है। लेकिन ऋषि, ज्ञान के बाद जो रहस्य आता है, उसका कवि है। और कवि, ज्ञान के पहले जो रहस्य होता है अज्ञान का, उसका ऋषि है। इतना ही उन दोनों में फर्क है।

इसलिए हम उपनिषद के ऋषियों को मात्र कवि नहीं कह सकते। यद्यपि उन जैसा काव्य कम ही पैदा हुआ है। और हम अपने श्रेष्ठतम कवि को भी ऋषि नहीं कह सकते, क्योंकि उसका काव्य केवल अज्ञान का काव्य है। हमारा कवि असल में ऐसा बच्चा है, जो बच्चा ही रह गया। जिसका शरीर तो बढ़ता चला गया, लेकिन जिसके भीतर के सपने और बाहर की दुनिया में भेद-रेखा निर्मित न हुई। बाल-सुलभ है! इसलिए कवि अगर बच्चों जैसे काम करते दिखाई पड़ जाएं, तो बहुत हैरानी की बात नहीं। इसलिए कवियों का व्यवहार अप्रौढ़, इम्मैच्योर मालूम पड़ता है। और कई बार हम समझ नहीं पाते। और इसलिए कवियों का बहुत सा व्यवहार अनैतिक मालूम पड़ता है।

अब पिकासो एक स्त्री को प्रेम करता है। करता है, करता है, बिल्कुल पागल है। ऐसा प्रेम कम ही लोग करते हैं, जैसा पिकासो कर सकता है। लेकिन बस एक दिन प्रेम उजड़ गया। और वह दूसरी स्त्री को वैसा ही प्रेम करने लगा, जैसा इसको करता था। चारों तरफ की दुनिया को यह अनैतिक लगेगा। लेकिन कुल मामला इतना है कि पिकासो बिल्कुल बाल-सुलभ है।

जैसे एक बच्चा एक गुड़िया को प्रेम कर रहा था; कर रहा था, तो छाती से लगाए फिर रहा था। फिर एक दिन ऊब गया, तो उसने उसे टिका कर एक कोने में रख दिया। अब वह लौट कर भी नहीं देखता। बच्चे को हम अनैतिक न कहेंगे, क्योंकि हम मान कर चलते हैं, वह बच्चा है। पिकासो को हम अनैतिक कहेंगे कि कैसा प्रेम है? यह धोखा है। यद्यपि पिकासो धोखा नहीं दिया। जब उसने प्रेम किया है, तो उतना ही किया है, जैसे बच्चा गुड़िया को छाती से लगा कर चलता था, रात छोड़ता नहीं था। इतना ही प्रेम किया है, सघन प्रेम किया है। लेकिन जब चला गया तो चला गया। वह बच्चे जैसा हट गया। अब वह किसी दूसरे को कर रहा है। अनैतिक लगेगा।

केवल सच पूछा जाए, तो कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ उनके भीतर जो अनैतिकता हमें दिखाई पड़ती है, उसका मूल कारण कुल इतना ही होता है कि उनका शरीर तो प्रौढ़ हो गया होता है, लेकिन उनका बचपन गया नहीं होता है। भीतर गहरे में वे बच्चे जैसे रह जाते हैं। इसीलिए वे काव्य लिख पाते हैं। लेकिन इसीलिए वे जीवन में उपद्रव हो जाते हैं। इसीलिए वे सुंदर चित्र बना पाते हैं, लेकिन जीवन उनका कुरूप हो जाता है। इसीलिए वे गीत अच्छा गा पाते हैं, लेकिन जीवन के संबंध में उन जैसा अनगढ़ कोई भी नहीं होता।

ऋषि बहुत और बात है। वह फिर से पाया गया बचपन है, चाइल्डहुड रिगेन्ड। बचपन नहीं है वह। वह समस्त प्रौढ़ता और समस्त ज्ञान के बाद पाई गई फिर से सरलता है, फिर से इनोसेंस है, फिर से वही निर्दोष भाव है।

इसलिए संत में भी बच्चों जैसे भाव दिखाई पड़ सकते हैं, लेकिन संत में कवि जैसी अनैतिकता नहीं दिखाई पड़ सकती। संत में बच्चे जैसी सरलता और निर्दोषता दिखाई पड़ेगी, लेकिन कवि जैसी उच्छृंखलता नहीं दिखाई पड़ सकती। उसकी निर्दोषता में भी, उसकी परम स्वतंत्रता में भी एक व्यवस्था और एक नियम और एक अनुशासन होगा। उसकी स्वच्छंदता में भी एक आत्मानुशासन होगा। उसके सारे बच्चे जैसे व्यवहार के भीतर भी परम अनुभव की धारा होगी। और फिर भी वह ज्ञान और अनुभव के बाहर गया, फिर भी वह ज्ञान से भी ऊपर उठा है।

लाओत्से कहता है, रहस्य कहते हैं हम इसे। और इस रहस्य से, इस रहस्य की अगर सघनता बढ़ जाए, तो वह जीवन का जो सूक्ष्म राज है, वह जो चमत्कारपूर्ण जीवन का द्वार है, वह खुलता है।

सघन होगा तब, जब अहंकार होगा विरल। यह प्रपोर्सनेट होगा सदा। इसे हम ऐसा मान सकते हैं, सौ प्रतिशत अहंकार, तो शून्य प्रतिशत रहस्य का भाव। नब्बे प्रतिशत अहंकार, तो दस प्रतिशत रहस्य का भाव। दस प्रतिशत अहंकार, तो नब्बे प्रतिशत रहस्य का भाव। शून्य प्रतिशत अहंकार, तो सौ प्रतिशत रहस्य का भाव। यह बिल्कुल यह शक्ति एक ही है। जो अहंकार में पड़ती है, वह वही शक्ति है, जो रहस्य में पड़ेगी। इसलिए अहंकार जितना मुक्त होगा, उस शक्ति को छोड़ेगा, उतना वह शक्ति रहस्य में प्रवेश कर जाएगी।

जीवन-ऊर्जा की दो वैकल्पिक दिशाएं हैंः अस्मिता और रहस्य। मैं और तू। वह तू जो है परमात्मा, वह रहस्य है। इधर मैं मजबूत होता है, तो तू क्षीण होता चला जाता है।

हमारी सदी ने अकारण ही ईश्वर को इनकार नहीं किया है। हमारी सदी पृथ्वी पर सबसे ज्यादा अहंकारी सदी है। और मजा यह है कि अहंकार ज्ञान का है। होगा ही; ज्ञान का ही अहंकार होता है। हमारी सदी सबसे ज्यादा ज्ञानपूर्ण सदी है। यह उलटी बात लगेगी, लेकिन अगर आपने मेरी पिछली पूरी बात ठीक से ख्याल में ली है, तो समझ में आ जाएगी।

हमारी सदी मनुष्य-जाति के ज्ञात इतिहास में सर्वाधिक ज्ञानपूर्ण है। और परिणामतः सर्वाधिक अहंकारी है। और अंततः सर्वाधिक रहस्य से वंचित है। जितना हम ज्ञानपूर्ण होते चले जाएंगे, जितनी हमारी लाइब्रेरीज बड़ी होती चली जाएंगी, हमारी यूनिवर्सिटीज ज्ञान की थाती बनती चली जाएंगी, हमारे बच्चे ज्ञान के जानकार होते चले जाएंगे, उतना रहस्य तिरोहित होता चला जाएगा। और ऐसी घड़ी आ सकती है--और वही आदमी की आखिरी सुसाइडल घड़ी होती है--जब कोई सभ्यता इतनी ज्ञानी हो जाती है कि उसको रहस्य का कोई बोध न रह जाए, तो सिवाय मरने के फिर कोई उपाय नहीं रह जाता। क्योंकि जीया जाता है रहस्य से, अहंकार से नहीं। हम भी, जो अहंकारी हैं, वे भी रहस्य से ही जीते हैं। पूर्ण अहंकार के साथ जीना असंभव है; सिर्फ मृत्यु ही संभव है, आत्मघात ही संभव है। अगर सब हमने जान लिया, ऐसा ख्याल आ जाए, तो मरने के सिवाय और कुछ जानने को शेष नहीं रह जाएगा।

इसलिए जितना हम पीछे लौटते हैं, उतना हम आदमी को जीवन के प्रति ज्यादा रसमय पाते हैं। आत्महत्या उतनी कम होती है, जितना हम पीछे लौटते हैं। यह बड़े मजे की बात है, अज्ञानी सभ्यताएं आत्महत्याएं नहीं करती हैं। क्योंकि आत्महत्या होने के लिए जितना सघन अहंकार चाहिए, वह उनके पास नहीं होता। मरने के लिए बहुत प्रगाढ़ मैं चाहिए; इतना मजबूत मैं चाहिए कि जीवन के समस्त रहस्य को इनकार करके हत्या में उतर जाए। स्वयं को समाप्त करने के लिए बड़ी मजबूत अस्मिता चाहिए। स्वयं की गरदन काटने के लिए बहुत सघन अहंकार चाहिए। इसलिए जितनी पुरानी सभ्यता, अज्ञानी, आदि, आदिम, उतनी आत्महत्या नहीं। आदिवासी आत्महत्या को जानते ही नहीं। अपरिचित हैं, और सोच ही नहीं पाते। ऐसी बहुत

सी भाषाएं हैं आज भी पृथ्वी पर, जिनमें आत्महत्या के लिए कोई शब्द नहीं है। क्योंकि उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि कोई अपने को किसलिए मारेगा!

पर हमारे लिए स्थिति बिल्कुल बदल गई है।

अलबर्ट कामू ने अपनी एक किताब का प्रारंभ किया है और कहा है, दि ओनली फिलासॉफिकल प्राब्लम इ.ज सुसाइड--एकमात्र दार्शनिक समस्या है और वह है आत्मघात।

कोई आदमी एक दर्शन-ग्रंथ की शुरुआत ऐसी करेगा! और अलबर्ट कामू समझदार लोगों में एक था आज के युग के। नहीं, ईश्वर की चर्चा नहीं की है कामू ने अपनी किताब में, कि दर्शन की समस्या ईश्वर है। चर्चा की है कि दर्शन की एकमात्र समस्या आत्मघात है, कि आदमी जीए तो क्यों जीए?

ठीक है उसका पूछना। अगर रहस्य न हो, तो जीने का कारण क्या है? खाना खाने के लिए जीए? मकान में रहने के लिए जीए? बच्चे पैदा करने के लिए जीए? फिर बच्चे किसलिए जीएं? वे और बच्चे पैदा करने के लिए जीएं? इस सबका क्या प्रयोजन है? मकान बनाए, रास्ते बनाए, हवाई जहाज बनाए--पर जीए क्यों?

अगर आप कहें, प्रेम के लिए! तो आप रहस्य की दुनिया में उतरे। कामू कहेगा, प्रेम कहां है? सब जगह खोजा, सिवाय कामवासना के कुछ नहीं पाया। प्रेम तो रहस्य है, कामवासना तथ्य है। पकड़ने जाएंगे, तो कामवासना पकड़ में आएगी, प्रेम पकड़ में नहीं आएगा। कोई कहे, आनंद के लिए! आनंद तो रहस्य है; तथ्य तो तथाकथित सुख-दुख है। और सब सुख के पीछे दुख छिपा है। तो कामू कहेगा, किसलिए जीना है? और ठीक है, एक सुख एक बार देख लिया।

नसरुद्दीन एक होटल में बैठा हुआ है। और कोई आदमी उससे आकर पूछता है... कोई आदमी बैठ कर बातचीत करने लगा है, गांव के समाचार पूछता है। अजनबी है, परदेशी है। नसरुद्दीन उससे कहता है कि आप ताश तो नहीं खेलते हैं? अन्यथा हम ताश खेलें। वह आदमी कहता है, एक बार खेल कर देखा, फिर बेकार पाया। नसरुद्दीन कहता है, आप शतरंज में तो शौक नहीं रखते हैं? अन्यथा मैं शतरंज बुला लूं। वह आदमी कहता है, एक दफा शतरंज भी खेली थी। नहीं, कुछ सार न पाया। नसरुद्दीन कहता है, फिर आपके लिए मैं क्या इंतजाम करूं? संगीत सुनना पसंद करेंगे? तो मैं कुछ वाद्य बजाऊं। वह आदमी कहता है, एक दफा सुना था, सार नहीं पाया। तो नसरुद्दीन कहता है, मछली मारने के शौकीन हैं? तो चलें हम, मौसम अच्छा है, बाहर मछलियां मारें। तो वह आदमी कहता है, मैं तो न जा सकूंगा, मेरा लड़का है उसे ले जाएं।

नसरुद्दीन उससे कहता है, माफ करें, मैं सोचता हूं, आपका एकमात्र लड़का! नसरुद्दीन उससे कहता है, मैं सोचता हूं, आपका एकमात्र लड़का होगा यह। क्योंकि एक दफा देखा होगा आपने प्रेम, काम, फिर दुबारा तो... आई प्रिज्यूम योर ओनली सन, नसरुद्दीन कहता है। क्योंकि एक दफा ताश खेल कर देखा, बेकार पाया। एक दफा शतरंज खेल कर देखी, बेकार पाई। एक दफा मछली मार कर देखी, बेकार पाई। तो आई प्रिज्यूम योर ओनली सन!

जीवन में कोई तथ्य ऐसा नहीं है, जो दुबारा देखने योग्य है। और अगर दुबारा देखने योग्य है, तो वह तथ्य नहीं होगा, उसमें कुछ रहस्य होगा, जो अनजाना रह गया, जिसको फिर जानना पड़ेगा, फिर जानना पड़ेगा। फिर भी अनजाना रह जाएगा, तो फिर जानना पड़ेगा। जिस चीज को हम पूरा जान लें, उसे दुबारा जानने का कोई भी सवाल नहीं है। क्या सवाल है? नहीं जान पाते हैं पूरा, इसलिए दुबारा जानते हैं, तिबारा जानते हैं, हजार बार जानते हैं, और फिर भी एक हजार एक बार जानने की कामना जगती है। क्योंकि वह अनजाना, अपरिचित रहस्य पीछे शेष रह गया।

तो कामू ठीक कहता है, अगर कोई रहस्य नहीं है, तो आत्महत्या एकमात्र दार्शनिक समस्या है। हमारा युग सर्वाधिक ज्ञानपूर्ण, सर्वाधिक आत्महत्याएं करने वाला, सर्वाधिक अहंकार से भरा। इसलिए हम कहते हैं, कोई ईश्वर नहीं है, कोई धर्म नहीं है, कोई रहस्य नहीं है।

और लाओत्से कहता है, जो विरल करेगा अस्मिता को, सघन करेगा रहस्य को, उसके लिए जीवन के सूक्ष्म और चमत्कारी... ।

ये सूक्ष्म और चमत्कारी, दो शब्द ख्याल में ले लेने चाहिए। एक, सूक्ष्म से हम जो मतलब लेते हैं साधारणतः, वह लाओत्से जैसे लोग नहीं लेते। सूक्ष्म से हमारा मतलब होता है कम स्थूल। हम कहते हैं, दीवार स्थूल है, वायु सूक्ष्म है। लेकिन वायु भी स्थूल है, सूक्ष्म नहीं; कम स्थूल है। जो भेद है वायु में और दीवार में, वह बहुत ज्यादा नहीं है। वह कोई गुणात्मक भेद नहीं है, वह मात्रा का ही भेद है। क्वांटिटी का भेद है, क्वालिटी का भेद नहीं है।

और वायु की भी दीवार बनाई जा सकती है। और वायु से भी आपको इतने जोर से गिराया जा सकता है, जितना आपकी दीवार से आप टकरा कर कभी न गिरें। और दीवार से आप बच भी जाएं, अगर वायु की सघन दीवार खड़ी की जाए, तो आप उससे बच न पाएं। दीवार में ही वजन नहीं है, वायु में भी वजन है, बहुत ज्यादा वजन है। वह तो आपको पता नहीं चलता, क्योंकि आपके चारों तरफ शरीर पर वायु का एक सा वजन पड़ता है। इसलिए वायु अपने वजन को काट देती है। नहीं तो हजारों पौंड का वजन आपके ऊपर है। आप मर जाएं दब कर इसी वक्त, अगर एक तरफ से वायु अलग हो जाए। जब जोर की हवा चलती है, तो आप शायद आगे को गिर पड़ने को होते हैं। तो आप सोचते होंगे, पीछे की हवा धक्का दे रही है इसलिए, तो आप गलत सोचते हैं। पीछे की हवा आपको धक्का देकर नहीं गिरा रही है। पीछे की हवा के धक्के के कारण आपके आगे की हवा धक रही है, वहां खाली जगह पैदा हो रही है, वह खाली जगह में आप गिरेंगे।

वायु का तो अपना बहुत स्थूल रूप है। हम किन चीजों को सूक्ष्म कहते हैं? हमारा सब सूक्ष्म स्थूल का ही एक रूप होता है। लाओत्से जैसे लोग जब सूक्ष्म का उपयोग करते हैं, दि सटल, तो उनका मतलब होता है वह, जो इंद्रियों की किसी भी भांति पकड़ में नहीं आता। सूक्ष्म का अर्थ समझ लेना आप। वायु हमारी आंख को नहीं दिखाई पड़ती, लेकिन हाथ को तो दिखाई पड़ती है। इंद्रियों की पकड़ में आती है, सूक्ष्म नहीं है। सूक्ष्म का अर्थ है, जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर है।

आपने कोई ऐसी चीज जानी है जो इंद्रियों की पकड़ के बाहर है? जो भी जाना है, सब इंद्रियों की पकड़ से जाना है। देखा तो आंख से, सुना तो कान से, सूंघा तो नाक से, छुआ तो हाथ से। आपके अनुभव में सूक्ष्म का कोई भी अनुभव नहीं है। इसे हम ऐसी व्याख्या कर लेंः जो इंद्रियों से जाना जाता है, वह स्थूल; और जो इंद्रियों से नहीं जाना जाता और फिर भी जाना जाता है, वह सूक्ष्म। तब आपको ख्याल में आएगा। नहीं तो हम जो फर्क करते हैं, वह इंद्रियों में फर्क कर लेते हैं।

एक आवाज जोर से आ रही है, तो हम कहते हैं स्थूल। और बहुत बारीक और धीमी आ रही है, तो हम कहते हैं सूक्ष्म। इनमें कोई फर्क नहीं है। ये एक ही आवाज की तारतम्यताएं हैं। और दोनों को कान पकड़ लेता है। और कान अगर न भी पकड़ सके, रेडियो पकड़ ले, तो भी सूक्ष्म नहीं है, वह स्थूल है। उसका मतलब यह हुआ कि थोड़ा बड़ा कान पकड़ लेता है। छोटा कान नहीं पकड़ता, थोड़ा बड़ा कान पकड़ लेता है।

अभी यहां से चित्र गुजर रहे हैं। टेलीविजन पकड़ लेता है; हम, हमारी आंख नहीं पकड़ पाती। लेकिन वह भी सूक्ष्म नहीं है। क्योंकि टेलीविजन तो बहुत स्थूल चीज है। हमसे जरा आंख उसकी तेज है। रेडियो का कान हमसे ज्यादा तेज है। मात्रा का फर्क है।

इसलिए जो चीज भी इंद्रियों की पकड़ में आती है--या एक नई बात और उसमें जोड़ दूं, जो पुराने ऋषियों ने नहीं जोड़ी है, क्योंकि उनको पता नहीं था--जो बात इंद्रियों की पकड़ में आती है वह, और या इंद्रियों के द्वारा बनाए गए किसी भी यंत्र की पकड़ में आती है वह, वह सब स्थूल है। क्योंकि इंद्रियों से जो यंत्र बनते हैं, वे सूक्ष्म को नहीं पकड़ पाएंगे। इंद्रियों के बनाए हुए यंत्र इंद्रियों के एक्सटेनशंस हैं, और कुछ नहीं। हमारी दूरबीन क्या है? हमारी आंख का फैलाव है। हमारा राडार क्या है? हमारी आंख का फैलाव है। हमारी बंदूक क्या है? हाथ से पत्थर फेंक कर मार सकते थे, उसका बढ़ाव है। हम अपनी इंद्रियों को बढ़ाने में लगे हैं। हमारा छुरा, हमारी तलवार क्या है? हमारे नाखून हैं बढ़े हुए। जंगली जानवर नाखून से आदमी की छाती फाड़ता है, हम एक लोहे का पंजा बना कर छाती फाड़ देते हैं। हमारी सब इंद्रियों के बढ़ाव जो हैं, एक्सटेनशंस जो हैं, उनकी पकड़ में जो आ जाए, वह भी स्थूल है।

सूक्ष्म वह है, जो इंद्रियों की पकड़ में ही न आए, और फिर भी पकड़ में आए। ध्यान रखें, अगर पकड़ में ही न आए, तब तो आपको उसका पता ही न चले। इसलिए दूसरी बात भी ख्याल रख लें। पकड़ में तो आए जरूर, लेकिन किसी इंद्रिय के द्वारा पकड़ में न आए। इमीजिएट हो, कोई मीडिएटर बीच में न हो। कोई मध्यस्थ इंद्रिय का बीच में न हो। मैं आपको देख लूं बिना आंख के, मैं आपको सुन लूं बिना कान के, मैं आपको छू लूं बिना हाथ के, तो सूक्ष्म--तो सूक्ष्म। न हाथ है बीच में, न कोई यंत्र है बीच में; कोई है ही नहीं बीच में। बीच में कोई नहीं है, सीधी मेरी चेतना अनुभव को उपलब्ध हो, तो वह अनुभव सूक्ष्म है।

लाओत्से कहता है, जिस व्यक्ति का रहस्य-बोध सघन हो जाता है, वह सूक्ष्म का द्वार खोल लेता है।

रहस्य-बोध के सघन होने से, अहंकार के गिरते ही, हमें इंद्रियों की जरूरत नहीं रह जाती। यह बहुत मजे की बात है। अहंकार के गिरते ही हमें इंद्रियों की जरूरत नहीं रह जाती। असल में, अहंकार ही है जो इंद्रियों के द्वारा काम करता है। अगर अहंकार गिर जाए, इंद्रियों की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और बिना इंद्रियों के, नॉन-सेंसरी अनुभव शुरू हो जाते हैं। और जब बिना इंद्रियों के कोई अनुभव होते हैं, तो उनका नाम सूक्ष्म है।

ऐसे अनुभव कभी-कभी आपको भी झलक जाते हैं। कभी-कभी किसी क्षण में, किसी अवसर पर, किसी स्थिति में आपका अहंकार विरल होता है, तो ऐसे अनुभव आपको झलक जाते हैं--अनायास। पर अहंकार सघन हो जाता है पुनः, अनुभव खो जाता है। और फिर आप कितना ही समझने की कोशिश करें, आप उसको न समझ पाएंगे। अहंकार उसे न समझ पाएगा। आपने ऐसी आवाजें सुनी हैं, जिनको आपने बाद में स्वयं झुठलाया और कहा कि नहीं, मैंने नहीं सुना होगा। क्योंकि मैं कैसे सुन सकता था? वहां कोई मौजूद ही न था! आपने ऐसे क्षणों में कभी कुछ ऐसे रूप देखे हैं, जिनको आपने ही बाद में इनकार किया और कहा कि मैं कैसे देख सकता था? वहां तो कोई भी मौजूद न था! आप ऐसी संभावनाओं के निकट आ गए हैं बहुत बार--अनायास--जिनको बाद में आप खुद भी विश्वास नहीं कर पाते हैं। क्योंकि आपका अहंकार जब सघन होता है, वह कहता है, यह हो कैसे सकता है? बिना इंद्रियों के हो कैसे सकता है?

एक मेरे मित्र; उनके पिता गुजर गए हैं। पर जिस दिन उनके पिता गुजरे, मित्र कवि हैं, सांझ को वे कोई सांझ की छह बजे की बस से दूसरे गांव गए हैं। पिता ठीक थे, भले थे, कोई बात न थी। दूसरे गांव वे जा रहे थे

एक कवि सम्मेलन में भाग लेने। तो रास्ते में बस में बैठे हुए वे अपने काव्य के जगत में, अपनी कविता के बनाने में डूबे रहे।

अब जब कोई काव्य में डूबता है, तो अहंकार विरल हो जाता है। क्योंकि वह बच्चा हो जाता है, वह फिर पुरानी दुनिया में रिग्रेस कर जाता है। तितलियों में उड़ता है, फूलों में हंसता है, पक्षियों से बोलता है। वह नीचे उतर जाता है। झरने बात करने लगते हैं, वृक्ष चर्चा उठाने लगते हैं, आकाश के बादलों में संदेश होने लगते हैं। वह अहंकार विरल हो जाता है।

तो वे अपने काव्य में डूबे हुए जाते थे। अचानक नौ बजे रात उन्हें बस में ही बैठे-बैठे एकदम उदासी पकड़ गई। उनकी समझ के बाहर था। एकदम प्रफुल्लित थे, प्रसन्न थे, गीत उतरते थे। क्या हुआ? एकदम चारों तरफ जैसे उदासी आ गई। जैसे कोई काला बादल आकर ऊपर बैठ जाए। कोई कारण न था, अकारण था। इसलिए और बेचैनी हुई। काव्य की धारा टूट गई और मन बड़ी गहन चिंता में और विषाद में डूब गया। वे तीन घंटे, बारह बजे जब दूसरे गांव पहुंचे, तब तक वैसी हालत रही। जाकर सो गए, लेकिन नींद न आए।

रात के दो बजे किसी ने द्वार पर दस्तक दी और आवाज आई, मुन्ना! बहुत हैरान हुए, क्योंकि मुन्ना उनके पिता ही कहते हैं उन्हें। दरवाजा खोला बाहर जाकर। भरोसा तो नहीं आया। पिता के होने का कोई सवाल नहीं। दूसरा कोई जीवित आदमी मुन्ना अब उनसे कहता नहीं है। दरवाजा खोल कर देखा, हवा सांय-सांय करके भीतर भर गई। रात अंधेरी है, कहीं कोई आदमी नहीं है। जिस होटल में ठहरे हैं, सब सो गया है, सब सन्नाटा है। नीचे सड़क खाली है। दूसरी मंजिल पर हैं। कोई आकस्मिक आ नहीं सकता है। फिर द्वार बंद करके सोचा, मन का कोई भ्रम होगा।

फिर सो गए हैं। पर फिर पांच-सात मिनट ही बीते हैं कि फिर वही दस्तक, और फिर आवाज इतनी साफ, और अब दुबारा थी तो वे खुद भी सजग थे। स्वरलहरी इतनी परिचित कि पिता के सिवाय किसी की आवाज नहीं। फिर द्वार खोला है, लेकिन फिर वहां कोई नहीं है। हवा सांय-सांय करके फिर भीतर भर आती है। सो न सके। बेचैनी उठी। तीन बजे रात, जाकर नीचे घर फोन लगाया। पता चला कि पिता चल बसे। ठीक दो बजे रात उनकी सांस टूटी और ठीक दो बजे रात पहली दस्तक और मुन्ना की आवाज! पर वे अपने को झुठलाते रहे। वे अब भी झुठलाते हैं। वे कहते हैं, पता नहीं, कोई भ्रम ही होगा। अब भी--बुद्धिमान आदमी हैं, सोच-विचार करते हैं--अब भी वे कहते हैं, हुआ है, लेकिन अब भी मैं नहीं मानता कि पिता होंगे। कोई भूल हो गई। या तो मेरे मन का ही कोई खेल होगा, कोई संयोग, कोई कोइंसीडेंस, कि दो बजे वे मरे हैं और दो बजे मुझे कुछ ख्याल आ गया होगा।

ऐसे हम सब के जीवन में कभी-कभी सूक्ष्म झांकता है। हम खुद झुठलाए चले जाते हैं। लेकिन अगर रहस्य का बोध सघन हो जाए, तो सूक्ष्म झांकता नहीं, हम ही सूक्ष्म में कूद जाते हैं। फिर हम सूक्ष्म में जीते हैं। फिर यह चौबीस घंटे चारों तरफ होने लगता है, यह चारों तरफ होने लगता है।

लाओत्से कहता है, सूक्ष्म का द्वार खुल जाता है और चमत्कारी का। दि मिरैकुलस का! वह जो वंडरफुल है उसका! वह जो विस्मयजनक है उसका!

चमत्कार क्या है, इसे भी थोड़ा सा समझ लेना जरूरी है। जगत में हम साधारणतः जिसे चमत्कार कहते हैं, उसमें भी कुछ बात है, इसीलिए चमत्कार कहते हैं। यद्यपि हमें पता नहीं कि क्या बात है।

कब कहते हैं आप चमत्कार? एक आदमी मर गया; और जीसस उसके सिर पर हाथ रख देते हैं और वह आदमी जिंदा हो जाता है। तो हम कहते हैं, चमत्कार हुआ! मरा हुआ आदमी जिंदा हो गया। क्यों कहते हैं

चमत्कार? एक आदमी बीमार है और किसी के चरणों में सिर रख देता है और स्वस्थ हो जाता है। हम कहते हैं, चमत्कार हुआ। क्यों हुआ चमत्कार? बुद्ध किसी वृक्ष के पास से गुजरते हैं। और वृक्ष सूखा है और उसमें नए अंकुर आ जाते हैं। तो हम कहते हैं, चमत्कार हुआ। लेकिन क्यों कहते हैं चमत्कार हुआ? कारण क्या है चमत्कार कहने का?

एक ही कारण साधारणतः जो हमारे ख्याल में है, वह यह है कि जहां भी कार्य-कारण के बाहर कोई घटना घटती है, वहां चमत्कार है। ऐसे तो हर वृक्ष में नए अंकुर आते हैं, लेकिन वक्त से आते हैं, नियम से आते हैं। कारण होता है तो आते हैं। अब सूखा वृक्ष। वर्षों से जिस पर पत्ते नहीं, कोई कारण नहीं आने का। बुद्ध के निकलने से आते हैं। और बुद्ध का निकलना वृक्ष में अंकुर आने का कारण नहीं है। असंबंधित है, कोई संबंध नहीं है। बुद्ध के निकलने से वृक्ष में पत्ते आने का क्या संबंध है?

एक आदमी मर गया है। अगर दवा से ठीक हो जाए, तो हम कहेंगे कि शायद हृदय की गति थोड़ी कम चलती होगी, ठीक चलने लगी है। एक आदमी बीमार है। दवा से ठीक हो जाए, तो हम कहते हैं, कोई चमत्कार नहीं। क्यों? क्योंकि दवा में कारण है और ठीक हो जाना कार्य है। एक कॉजालिटी है। लेकिन एक आदमी के पैर में सिर रख दो और ठीक हो जाओ, तो फिर कोई कॉजालिटी नहीं है। फिर चमत्कार है।

चमत्कार का मतलब है, कार्य-कारण का नियम जहां टूट जाता है; जहां कोई संबंध खोजे नहीं मिलता कि क्या है कारण और क्या है कार्य। अब जीसस किसी के सिर पर हाथ रखें, मुर्दा आदमी जिंदा हो, इसका कोई भी संबंध नहीं है। जीसस के हाथ से क्या संबंध है? लेकिन आदमी जिंदा हो गया है, तो चमत्कार है। साधारणतः हम चमत्कार जिसे कहते हैं, उसके पीछे का राज जो है वह इतना ही है कि वहां कार्य-कारण हमारी समझ में नहीं आते।

लेकिन वहां भी कार्य-कारण हो सकते हैं, होते हैं। वहां भी कार्य-कारण हो सकते हैं, होते हैं। इसलिए जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं, आज नहीं कल विज्ञान सिद्ध कर देगा कि वे चमत्कार नहीं हैं। कार्य-कारण का पता लगाने की बात है, बस! पता चल जाएगा, चमत्कार खो जाएगा।

अगर एक आदमी मेरे पैर में आकर सिर रख दे और उसकी बीमारी ठीक हो जाए, तो चमत्कार नहीं है। नहीं है इसलिए... लेकिन दिखाई पड़ेगा। क्योंकि आपको कार्य-कारण का संबंध आप नहीं जोड़ पाते। लेकिन हो सकता है, वह आदमी सच में किसी बीमारी से पीड़ित ही न हो। सिर्फ उसे ख्याल हो बीमारी का, सिर्फ एक मानसिक बीमारी से ग्रस्त हो। और अगर बहुत भरोसे से, और बहुत आस्था से मेरे पैर में सिर रख दे आकर, तो उतनी आस्था से वह भरोसा, जो बीमारी को मजबूत किए था, पिघल जाए, टूट जाए। चमत्कार हो जाएगा, लेकिन चमत्कार नहीं हुआ। देयर इ.ज नो मिरेकल, क्योंकि कार्य-कारण पूरा काम कर रहा है। उसकी ही अपनी श्रद्धा से बनाई गई बीमारी थी, अपनी ही श्रद्धा से कट गई। मेरे पैर ने कुछ भी नहीं किया है। मेरा पैर कुछ कर भी नहीं सकता। चमत्कार कुछ भी नहीं है। चमत्कार जरा भी नहीं है।

अगर कोई मुर्दा आदमी भी जीवित हो जाए, तब भी चमत्कार नहीं है। और आज नहीं कल हम उसके मुर्दा होने के, जीवित होने का राज खोज सकते हैं कि वह क्यों जीवित हो गया। अगर बीमारी मानसिक होती है, तो क्या आप समझते हैं मौत मानसिक नहीं हो सकती? बिल्कुल होती है। मौत मानसिक भी होती है। सभी लोग शारीरिक बीमारियों से नहीं मरते; समझदार लोग अक्सर मानसिक बीमारियों से मरते हैं।

अगर पक्का भरोसा आ जाए कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मर गया, तो आप मर जाएंगे। आपका शरीर-यंत्र पूरी तरह ठीक है, अभी वह चल सकता था। सिर्फ आपकी चेतना भीतर सिकुड़ गई है। जीसस का

हाथ उस सिकुड़ी हुई चेतना को फैला सकता है। कोई चमत्कार नहीं है। जीसस के हाथ में इतनी चुंबकीय ताकत है कि आपके भीतर जो दबी चेतना है, वह उठ कर सतह पर आ जाए।

यह जो मैग्नेटिज्म है, यह जो शरीर का जीवंत चुंबकीय तत्व है, यह इसका अपना विज्ञान है, इसके अपने कार्य-कारण हैं। तब यह भी हो सकता है कि पैर में किसी ने सिर रखा हो और उसे कुछ लाभ हो जाए, बिना उसकी आस्था के भी। तब इस व्यक्ति के पैर का जो जीवंत चुंबकीय तत्व है, वह प्रवेश कर सकता है। जैसे बिजली प्रवेश करती है छू देने से, शॉक लग जाता है और आदमी गिर पड़ता है, वैसे ही शरीर की विद्युत-धारा और शरीर का चुंबकीय तत्व भी प्रवेश करता है और दूसरे को छूता है और परिवर्तित करता है। लेकिन तब कार्य-कारण खोज लिए जाते हैं। नहीं, चमत्कार यहां नहीं है। हम चमत्कार सिर्फ इसलिए कहते हैं कि हमें कार्य-कारण का पता नहीं चलता।

लाओत्से जिस चमत्कार की बात कर रहा है, वह बहुत और है। वह चमत्कार उस जगह है, जहां हमारा अहंकार पूरी तरह समाप्त हो जाता है। और जब हमारा अहंकार पूरी तरह समाप्त होता है, तो एक अनूठी घटना घटती है कि हमें कार्य-कारण में जो भेद दिखाई पड़ता था, वह विदा हो जाता है। कार्य ही कारण हो जाता है; कारण ही कार्य हो जाता है। बीज ही वृक्ष हो जाता है; वृक्ष ही बीज हो जाता है। और उस स्थिति में कोई व्यक्ति बीज और वृक्ष को एक ही साथ देख सकता है, साइमलटेनियसली। लेकिन तब वह चमत्कार है।

इसे थोड़ा समझें। यह थोड़ा गहन है।

हम देखते हैं एक दफा बीज को, लेकिन उसी वक्त हम वृक्ष को नहीं देख सकते। वृक्ष को देखने में हमें बीस साल ठहरना पड़ेगा। बीस साल बाद हम वृक्ष को देखेंगे। लेकिन तब बीज न दिखाई पड़ेगा। हम एक बच्चे को देखते हैं पैदा होते हुए, तब हम बूढ़े को नहीं देख सकते। बूढ़े के लिए हमें सत्तर साल रुकना पड़ेगा। लेकिन जब हम बूढ़े को देखेंगे, तब तक बच्चा खो गया होगा। हम दोनों को साथ न देख सकेंगे।

चमत्कार लाओत्से उसे कहता है कि उस रहस्य के जगत में जब गहन होता रहस्य और अहंकार शून्य हो जाता, तो बच्चे में बूढ़ा दिखाई पड़ता है; बूढ़े में बच्चा दिखाई पड़ता है; जन्म में मौत दिखने लगती है; बीज में पूरा वृक्ष दिखाई पड़ता है। जो फूल अभी नहीं खिले, वे खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। जो अभी नहीं हुआ, वह होता हुआ मालूम पड़ता है। जो हो चुका, वह मौजूद मालूम पड़ता है। जो होगा, वह भी मौजूद मालूम पड़ता है। अतीत और भविष्य समाप्त हो जाते हैं। एक ही क्षण रह जाता है। सारा अस्तित्व एक क्षण की इटरनिटी में, सनातन में खड़ा हो जाता है।

तो जो कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से कि ये जिन्हें तू सोचता है कि तू मारेगा, मैं इन्हें मरा हुआ देख रहा हूं अर्जुन! ये मर चुके हैं, अर्जुन! ये सिर्फ तुझे खड़े दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि तुझे भविष्य दिखाई नहीं देता। यह चमत्कार है।

चमत्कार का अर्थ है, कार्य-कारण जहां भिन्न न रह जाएं। वे भिन्न हैं भी नहीं, हमारे देखने के ढंग में भूल है। हमारा ढंग ऐसा है, जैसे मैं दीवार में एक छोटा सा छेद कर लूं और उस छेद में से इस कमरे में देखूं। आपकी तरफ से देखना शुरू करूं, तो पहले मुझे अ नाम का व्यक्ति दिखाई पड़े। फिर जब मेरी आंख आगे घूमे, तो अ खो जाए और ब दिखाई पड़े। फिर जब मेरी आंख और आगे बढ़े, तो ब भी खो जाए और स दिखाई पड़े। और समझ लें कि अगर मेरी गर्दन को मोड़ने की सुविधा न हो, तो मैं क्या समझूंगा? मैं यहीं समझूंगा कि अ समाप्त हो गया, ब समाप्त हो गया, अब स दिखाई पड़ रहा है। लेकिन आगे जो ड है, वह अभी मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है।

लेकिन दीवार अचानक खो जाए और मैं पूरे कमरे को एक साथ देख लूं--अ, ब, स, ड, सब मुझे एक साथ दिखाई पड़ जाएं--वह चमत्कार है। अगर मुझे इस सृष्टि का जन्म होता हुआ और इस सृष्टि की प्रलय होती हुई एक साथ दिखाई पड़ जाए, तो चमत्कार है।

लाओत्से कहता है कि जो इस रहस्य में सघन उतर जाता है, सूक्ष्म के द्वार खुलते हैं उसे, और अंततः चमत्कार का द्वार खुलता है। तब वह विश्व को पैदा होते और समाप्त होते एक साथ देखता है। तब वह परमात्मा को जगत को बनाते और मिटाते एक साथ देखता है।

पर इसे समझना कठिन होगा। और इसे समझा नहीं जा सकता, इसलिए उसका नाम चमत्कार है। हम जिन्हें चमत्कार कहते हैं, उनका चमत्कार से कोई संबंध नहीं है। उनको समझा जा सकता है, उनको खोजा जा सकता है। लेकिन हम भी इसीलिए कहते हैं कि हमें कार्य-कारण का पता नहीं चलता। असली चमत्कार में भी कार्य-कारण का पता नहीं चलता, क्योंकि कारण और कार्य एक साथ उपस्थित हो जाते हैं।

अभी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की एक प्रयोगशाला में बहुत हैरानी की आकस्मिक घटना घट गई। उससे इस चमत्कार को समझने में आसानी मिलेगी। कुछ वैज्ञानिक एक कली का चित्र ले रहे थे। और चित्र कली का नहीं आया, फूल का आ गया। जिस फिल्म का उपयोग किया जा रहा था, वह अधिकतम सेंसिटिव जो फिल्म आज संभव है, वह थी। अभी सामने कैमरे के कली ही थी; अंदर जो चित्र आया, वह फूल का आया।

स्वभावतः, लगा कि कोई भूल हो गई। कली अभी भी कली थी, चित्र फूल का आ गया। लेकिन सुरक्षित रखा गया। समझा गया कि कोई भूल-चूक हो सकती है। पहले से कोई एक्सपोजर हो गया हो। कोई किरण प्रवेश कर गई हो, कोई गड़बड़ हो गई हो। कोई केमिकल भूल-चूक हो गई हो, कुछ न कुछ गड़बड़ हो गई है।

उस चित्र को रखा गया सम्हाल कर। और जब कली फूल बनी, तब उसके दूसरे चित्र लिए गए। और बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि वह चित्र वही था। जो बाद में चित्र आए वे चित्र वही थे, जो चित्र पहले आ गया था। उस प्रयोग को दुबारा दुहराया नहीं जा सका है अब तक। लेकिन इस बात की संभावना प्रकट हो गई है और जिस वैज्ञानिक के द्वारा यह घटना घटी है, उसको यह आस्था गहन हो गई है कि हम किसी न किसी दिन इतनी सेंसिटिव फिल्म तैयार कर लेंगे कि जब बच्चा पैदा हो, तो हम उसके बुढ़ापे का चित्र ले लें। क्योंकि जो होने वाला है, वह सूक्ष्म के जगत में अभी हो ही गया है। जो कल होने वाला है, उसकी होने की सारी प्रक्रिया सूक्ष्म के जगत में अभी शुरू हो गई है। यह और गहन जगत में हो गई होगी; हम तक खबर पहुंचने में देर लगेगी। हमारी इंद्रियां जब तक पकड़ेंगी, उसमें देर लगेगी। अगर हम बिना इंद्रियों के पकड़ पाएं, तो शायद अभी पकड़ लें।

शायद टाइम का जो गैप है, कली जब फूल बनती है तो कली और फूल के बीच समय का जो फासला है, वह कली और फूल के बीच नहीं, वह हमारी इंद्रियों और फूल के बीच है। अगर हमारी इंद्रियां बीच से हट जाएं, तो हम कली में फूल को देख सकते हैं। और तब चमत्कार घटित होता है। और उस चमत्कार की जो दुनिया है, उस चमत्कार की दुनिया में प्रवेश ही धर्म के विज्ञान का लक्ष्य है।

लाओत्से जो कह रहा है, उसने इस छोटे से वचन में बहुत कुछ कहा है। इस... लेकिन यह सब कोड है। इसको ऐसा सीधा पढ़ जाएंगे, तो कुछ भी इसमें मिलेगा नहीं। इसे खोल-खोल कर, एक-एक शब्द की पर्त उखाड़-उखाड़ कर देखेंगे, तब कहीं लाओत्से की आत्मा से थोड़ा सा स्पर्श होता है।

आज इतना ही रहने दें, कल बात करें।

पांचवां प्रवचन

सापेक्ष विरोधों से मुक्त--सुंदर और शुभ

Chapter 2 : Sutra 1

The Rise Of Relative Opposites

When the people of the Earth all know beauty as beauty, there arises (the recognition of) ugliness. When the people of the Earth all know the good as good, there arises (the recognition of) evil.

अध्याय 2: सूत्र 1

सापेक्ष विरोधों की उत्पत्ति

जब पृथ्वी के प्राणी सुंदर के सौंदर्य से परिचित होते हैं,
तभी से कुरूप की पहचान शुरू होती है।
और जब वे शुभ से परिचित होते हैं,
तभी उन्हें इस बात का बोध होता है कि अशुभ क्या है।

सौंदर्य से परिचित होते ही, सौंदर्य की प्रतीति होते ही, इस बात की खबर मिलती है कि कुरूप का परिचय हो गया। शुभ का बोध अशुभ के बोध के बिना असंभव है।

लाओत्से ने अपने प्रथम सूत्रों में जो बात कही है, उसे एक नए आयाम से पुनः दोहराया है। लाओत्से यह कह रहा है, जो व्यक्ति सुंदर को अनुभव करता है, वह बिना कुरूप का अनुभव किए सुंदर को अनुभव न कर सकेगा। जिस व्यक्ति के मन में सौंदर्य की प्रतीति होती है, उस व्यक्ति के मन में उतनी ही कुरूपता की प्रतीति भी होगी। असल में, जिसे कुरूप का कुछ भी पता नहीं है, उसे सौंदर्य का भी कोई पता नहीं होगा। जो व्यक्ति शुभ होने की कोशिश करता है, उसके मन में अशुभ की मौजूदगी जरूर ही होगी। जो अच्छा होना चाहता है, वह बुरा हुए बिना अच्छा न हो सकेगा।

लाओत्से का ख्याल था--और महत्वपूर्ण ख्याल है--कि जिस दिन से लोगों ने जाना कि सौंदर्य क्या है, उसी दिन से जगत से वह सहज सौंदर्य खो गया, जिसमें कुरूपता का अभाव था। और जब से लोगों ने समझा कि शुभ क्या है, तभी से शुभ की वह सहज अवस्था खो गई, जब कि लोगों को अशुभ का कोई पता ही न था।

इसे हम ऐसा समझें। यदि हम मनुष्य के पुरातन, अति पुरातन में प्रवेश करें, यदि मनुष्य की प्रथम सौम्य, सरल और प्राकृतिक, नैसर्गिक अवस्था का ख्याल करें, तो हमें वहां सौंदर्य का बोध नहीं मिलेगा। लेकिन साथ ही

वहां कुरूपता के बोध का भी अभाव होगा। वहां हमें ईमानदार लोग नहीं मिलेंगे, क्योंकि बेईमानी वहां संभव नहीं थी। वहां हमें चोर खोजे से नहीं मिलेंगे, क्योंकि साधु वहां नहीं होता था।

लाओत्से यह कह रहा है कि यह सारा जीवन हमारा सदा ही द्वंद्व से निर्मित होता है। अगर किसी समाज में लोग बहुत ईमानदार होने के लिए आतुर हों, तो वे केवल इस बात की खबर देते हैं कि वह समाज बहुत बेईमान हो गया है। अगर किसी समाज में मां-बाप अपने बच्चों को सिखाते हों कि सच बोलना धर्म है, तो जानना चाहिए कि उस समाज ने जीवन की जो सहज सच्चाई है, वह खो दी है, और उस समाज में असत्य बोलना व्यवहार बन गया है।

लाओत्से यह कह रहा है कि हम उसी बात पर जोर देते हैं, जिससे विपरीत पहले ही मौजूद हो गया होता है। अगर हम बच्चों से कहते हैं, झूठ मत बोलो, तो उसका अर्थ इतना ही है कि झूठ काफी जोर से प्रचलित है। अगर हम उनसे कहते हैं, ईमानदार बनो, तो उसका मतलब इतना ही है कि बेईमानी ने घर कर लिया है।

लाओत्से के पास कथा है कि कनफ्यूशियस मिलने गया था। कनफ्यूशियस, इस पृथ्वी पर जो नैतिक विचारक हुए हैं, उनमें श्रेष्ठतम है। नैतिक विचारक, धार्मिक नहीं! कनफ्यूशियस कोई धार्मिक विचारक नहीं है, नैतिक विचारक, माॅरल थिंकर। कनफ्यूशियस उन लोगों में से है, जिन्होंने सिर्फ, मनुष्य कैसे अच्छा हो, इस संबंध में गहनतम चिंतन और विचार किया है।

स्वभावतः, कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया, यह सुन कर कि लाओत्से बहुत बड़ा धार्मिक व्यक्ति है, तो मैं लाओत्से से प्रार्थना करूं कि तुम भी लोगों को समझाओ कि वे अच्छे कैसे हो जाएं, ईमानदार कैसे हो जाएं, चोरी क्यों न करें, कैसे चोरी से बचें, कैसे अचोर बनें, कैसे क्रोध छोड़ें, कैसे क्षमावान बनें, हिंसा कैसे मिटे, अहिंसा कैसे आए, तुम भी लोगों को समझाओ।

तो कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया। लाओत्से अपने झोपड़े के बाहर बैठा है। कनफ्यूशियस ने कहा, लोगों को समझाओ कि वे अच्छे कैसे हो जाएं। लाओत्से ने कहा, जब तक बुराई न हो, तब तक लोग अच्छे कैसे हो सकेंगे? बुराई होगी तो ही लोग अच्छे हो सकेंगे। तो मैं तो यह समझाता हूं कि बुराई कैसे न हो, अच्छे की मैं फिक्र नहीं करता हूं। मैं तो वह स्थिति चाहता हूं, जहां अच्छे का भी पता नहीं चलता है कि कौन अच्छा है।

कनफ्यूशियस की समझ में कुछ भी न पड़ा। कनफ्यूशियस ने कहा, लोग बेईमान हैं, उन्हें ईमानदारी समझानी है। लाओत्से ने कहा कि जिस दिन से तुमने ईमानदारी की बात की, उसी दिन से बेईमानी प्रगाढ़ हो गई है। मैं वह दिन चाहता हूं जहां लोग ईमानदारी की बात ही नहीं करते।

कनफ्यूशियस की फिर भी समझ में न आया। किसी नैतिक चिंतक की समझ में न आएगा यह सूत्र। क्योंकि नैतिक चिंतक ऐसा मानता है कि बुराई और भलाई विपरीत चीजें हैं; बुराई को काट दो, तो भलाई बच रहेगी।

लाओत्से ऐसा मानता है कि बुराई और भलाई एक ही चीज के दो पहलू हैं। तुम एक को न काट पाओगे। अगर फेंको तो दोनों को फेंक दो; बचाओगे तो दोनों बच जाएंगी। अगर तुमने चाहा कि भलाई बच जाए, तो बुराई पीछे से मौजूद रहेगी। क्योंकि भलाई बुराई के बिना बच नहीं सकती। और तुमने चाहा कि हम ईमानदार को आदर दें, तो तुम तभी दे पाओगे, जब बेईमान मौजूद रहें।

यह बहुत समझने जैसी बात है। सच में ही अगर कोई बेईमान न रह जाए, तो ईमानदार का कोई आदर होगा? कोई चोर न रह जाए, तो साधु की कोई प्रतिष्ठा होगी? इसका अर्थ यह हुआ कि अगर साधु को प्रतिष्ठित रहना हो, तो चोर को बनाए ही रखना पड़ेगा। और जीवन के रहस्यों में एक यही है कि साधु निरंतर चोर के

खिलाफ बोल रहा है, लेकिन उसे पता नहीं है कि चोर की वजह से ही वह पहचाना जाता है। चोर की वजह से ही वह है। असाधु नहीं, तो साधु खो जाएगा। साधु का अस्तित्व असाधु के आस-पास ही हो सकता है, उसके बीच में ही हो सकता है।

लाओत्से कहता है, धर्म तो तब था दुनिया में, जब साधु का पता ही नहीं चलता था। लाओत्से की बात बहुत गहरी है। वह यह कहता है, धर्म तो तब था दुनिया में, जब साधु का कोई पता ही नहीं चलता था। जब शुभ का कोई ख्याल ही नहीं था कि अच्छाई क्या है। जब कोई समझाता ही नहीं था कि सत्य बोलना धर्म है। जब कोई किसी से कहता ही नहीं था कि हिंसा पाप है। जिस दिन अहिंसा को बनाओगे पुण्य, जिस दिन सत्य को कहोगे धर्म, उसी दिन उनसे विपरीत गुण अपनी पूरी सामथ्र्य से मौजूद हो जाते हैं।

लाओत्से ने कनफ्यूशियस से कहा कि तुम सब भले लोग शांत हो जाओ, तुम दुनिया में भलाई की बातें बंद करो। और तुम पाओगे कि अगर तुम भलाई को बिल्कुल छोड़ने में समर्थ हो, तो बुराई छूट जाएगी।

लेकिन कनफ्यूशियस नहीं समझ पाएगा। न गांधी समझ पाएंगे। न कोई और नैतिक व्यक्ति समझ पाएगा। वह कहेगा, यह तो और बुरा हो जाएगा। हम किसी तरह भलाई को समझा-बुझा कर, पकड़ कर, श्रम-चेष्टा करके, बचा कर रखते हैं। और लाओत्से यह कह रहा है कि तुम भलाई को बचाते हो, साथ ही बुराई बच जाती है। ये दोनों संयुक्त हैं। इनमें से एक को बचाना संभव नहीं है। या तो दोनों बचेंगे या दोनों हटा देने पड़ेंगे।

लाओत्से कहता है, धर्म की अवस्था वह है, जहां दोनों नहीं रह जाते। इसको वह कहता था, सरल ताओ, स्वभाव का, धर्म का जगत। इसे वह कहता था, मनुष्य अगर अपने पूरे स्वभाव में आ जाए, तो न वहां बुराई है, न वहां भलाई है। वहां ऐसा मूल्यांकन नहीं है, वैल्युएशन नहीं है। वहां न निंदा है, न प्रशंसा है। वहां न कुछ सुंदर है, न कुछ कुरूप है। वहां चीजें जैसी हैं वैसी हैं।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है, जो व्यक्ति जितना सौंदर्य के बोध से भर जाता है, उतनी कुरूपता उसे पीड़ित करने लगती है। क्योंकि संवेदनशीलता एक साथ ही बढ़ती है। मैंने कहा कि ऐसा होना सुंदर है, तो उससे विपरीत सब कुरूप हो जाएगा। मैंने जरा सा भी तय किया एक पक्ष में कि दूसरे पक्ष में भी उतना ही तय हो जाता है।

तो लाओत्से कहता है, व्हेन दि पीपुल आॅफ दि अर्थ आल नो ब्यूटी ऐज ब्यूटी, जब पृथ्वी के लोग पहचानने लगते हैं कि सौंदर्य यह रहा, यह है सौंदर्य, जब वे सौंदर्य को सौंदर्य कहने लगते हैं, देयर एराइजेज दि रिकग्नीशन आॅफ अग्लीनेस, उसी क्षण वह जो कुरूप है, वह जो विरूप है, उसकी प्रत्यभिज्ञा शुरू हो जाती है, उसकी पहचान शुरू हो जाती है। व्हेन दि पीपुल आॅफ दि अर्थ आल नो दि गुड ऐज गुड, और जब शुभ को शुभ पहचानने लगते हैं पृथ्वी के लोग, देयर एराइजेज दि रिकग्नीशन आॅफ ईविल, वहीं अशुभ की पहचान शुरू हो जाती है।

बड़ा कठिन सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि अगर पृथ्वी पर हम चाहते हैं कि सौंदर्य हो, तो सौंदर्य को सौंदर्य की तरह पहचानना उचित नहीं है। पहचानना ही उचित नहीं है, क्योंकि पहचानने में कुरूप के मूल्य का उपयोग करना पड़ता है। अगर कोई आपसे पूछे, सौंदर्य क्या है? तो आप यही कहेंगे न कि जो कुरूप नहीं है। सौंदर्य को पहचानने में बिना कुरूप के कोई उपाय नहीं है। अगर कोई आपसे पूछे कि साधु कौन है? तो आप यहीं कहेंगे न कि जो असाधु नहीं है। साधु को पहचानने में असाधु को परिभाषा के भीतर लाना पड़ता है। और सौंदर्य की पहचान में कुरूपता की सीमा-रेखा बनानी पड़ती है।

तो लाओत्से कहता है, सौंदर्य को सौंदर्य की तरह जब नहीं पहचाना जाता--सौंदर्य तो होता ही है, लेकिन जब उसे कोई पहचानता नहीं--जब कोई उस पर लेबल नहीं लगाता, नाम नहीं देता कि यह रहा सौंदर्य, जब सौंदर्य अनाम है, तब कुरूपता पैदा नहीं होती। और जब कोई शुभ को शुभ का नाम नहीं देता, शुभ को कोई सम्मान नहीं मिलता, शुभ को कोई आदर नहीं देता, शुभ को कोई पहचानता भी नहीं, तब अशुभ का कोई उपाय नहीं है। द्वंद्व के बाहर भी एक शुभ है, द्वंद्व के बाहर भी एक सौंदर्य है। पर उस सौंदर्य को सौंदर्य नहीं कहा जा सकता, और उस शुभ को शुभ नहीं कहा जा सकता। उसे कुछ कहने का उपाय नहीं है। उस संबंध में मौन ही रह जाना एकमात्र उपाय है।

लाओत्से ने कहा, कनफ्यूशियस वापस जाओ! और तुम नैतिक लोग ही इस जगत को विकृत करने वाले हो। यू आर दि मिस्चीफ मेकर्स। तुम जाओ। तुम कृपा करो, किसी को शुभ बनाने की तुम कोशिश मत करो। क्योंकि तुम्हारे शुभ बनाने की कोशिश से लोग सिर्फ अशुभ में उतरेंगे।

बहुत संभावना तो यह है कि बाप जब बेटे से पहली बार कहता है कि सत्य बोलना धर्म है, तब बेटे को पता भी नहीं होता कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। जब पहली बार बाप अपने बेटे से कहता है, झूठ बोलना पाप है, तब तक बेटे को पता भी नहीं होता कि झूठ क्या है। और बाप का यह कहना कि झूठ बोलना पाप है, बेटे में झूठ के प्रति पहले आकर्षण का जन्म होता है। अगर उसके पहले बेटे ने झूठ भी बोला है, तो झूठ जान कर नहीं बोला है। अगर उसके पहले बेटे ने झूठ भी बोला है, तो झूठ जान कर नहीं बोला है, झूठ की कोई प्रत्यभिज्ञा नहीं है उसे। झूठ की कोई पाप की रेखा उसके मन पर नहीं खिंच सकती, जब तक प्रत्यभिज्ञा न हो। लेकिन अब, अब डिस्टिंक्शन, अब भेद शुरू होगा। अब वह जानेगा कि क्या सत्य है और क्या झूठ है। और जैसे ही वह जानेगा क्या सत्य है और क्या झूठ है, वैसे ही चित्त की सहजता नष्ट होती है और द्वंद्व का जन्म होता है।

लेकिन हम सब तरफ द्वंद्व निर्मित कर लेते हैं। और हम ख्याल भी नहीं कर पाते, हम सोचते हैं, भले के लिए ऐसा करते हैं।

लाओत्से बहुत क्रांतिकारी है इस दृष्टि से। वह कहता है, यही है बुराई, यही है बुराई। हम जब भी बुराई को जन्म देते हैं तो भलाई के बहाने देते हैं। असल में, बुराई को सीधा जन्म दिया नहीं जा सकता। जब भी हम बुराई को जन्म देते हैं, भलाई के बहाने देते हैं। हम भलाई को ही बनाने जाते हैं और बुराई निर्मित होती है। बुराई को कोई सीधा निर्मित नहीं करता।

एक आदिवासी है, आदिम है, जंगल में रहता है। उसे हमारे जैसा सौंदर्य का बोध नहीं है। उसे हमारे जैसा कुरूपता का भी बोध नहीं है। उसे यह भेद ही नहीं है। वह प्रेम कर पाता है; कुरूप और सौंदर्य को बीच में लाने की उसे जरूरत नहीं पड़ती। हम जिसे कुरूप कहेंगे, वह उसे भी प्रेम कर पाता है। हम जिसे सुंदर कहेंगे, वह उसे भी प्रेम कर पाता है। उसका प्रेम कोई सीमा नहीं बांधता। सुंदर को ही प्रेम मिलेगा, ऐसा नहीं; कुरूप को नहीं मिलेगा, ऐसा नहीं। वह सब को प्रेम कर पाता है। सुंदर और कुरूप की धारणा विकसित नहीं है।

हम धारणा विकसित करते हैं। हम सुंदर और कुरूप को अलग करते हैं। और तब बड़े मजे की बात है कि हम सुंदर को भी प्रेम नहीं कर पाते हैं। जो बड़े मजे की बात है वह यह है कि बिना धारणा के वह आदिम आदमी कुरूप को भी प्रेम कर पाता है, जिसे हम कुरूप कहें। लेकिन हम धारणा को विकसित करके सुंदर को भी प्रेम नहीं कर पाते हैं। पहले हम सोचते हैं कि सुंदर को हम प्रेम कर पाएंगे, इसलिए हम कुरूप को अलग करते हैं और सुंदर को अलग करते हैं। फिर सुंदर को भी हम प्रेम नहीं कर पाते हैं। क्योंकि द्वंद्व से भरा हुआ चित्त प्रेम

करने में असमर्थ है। और सुंदर और कुरूप का द्वंद्व है। और जिसे आपने सुंदर कहा है, वह कितनी देर सुंदर रहेगा?

यह बहुत मजे की बात है कि जिसको आपने कुरूप कहा है, वह सदा के लिए कुरूप हो जाएगा। और जिसको आपने सुंदर कहा है, वह दो दिन बाद सुंदर नहीं रह जाएगा। हाथ में क्या पड़ेगा? यह कभी आपने ख्याल किया? जिसको आपने कुरूप कहा है, वह स्थायी हो गया उसका। उसकी कुरूपता सदा के लिए तय हो गई। लेकिन जिसको आपने सुंदर कहा है, दो दिन बाद उसे आप सुंदर न कह पाएंगे। उसका सौंदर्य खो जाएगा। तब अंततः ऐसे द्वंद्वग्रस्त मन के हाथ में सौंदर्य बिल्कुल नहीं पड़ेगा, कुरूपता ही कुरूपता इकट्ठी हो जाएगी।

और एक आदिम चित्त है, जो भेद नहीं करता, कुरूप और सौंदर्य की कोई रेखा नहीं बांटता। हम जिसे कुरूप कहें, उसे भी प्रेम कर पाता है। और चूंकि प्रेम कर पाता है, इसलिए सभी उसके लिए सुंदर हो जाता है।

ध्यान रहे, हम उसे प्रेम करते हैं, जो सुंदर है। दो दिन बाद सौंदर्य पिघल जाएगा और बिगड़ जाएगा। परिचय से, परिचित होते ही सौंदर्य का जो अपरिचित रस था, वह खो जाएगा। सौंदर्य का जो अपरिचित आकर्षण और आमंत्रण था, वह विलीन हो जाएगा। हम उसे प्रेम करते हैं, जो सुंदर है। दो दिन बाद सौंदर्य खो जाएगा। फिर प्रेम कहां टिकेगा? आदिम मनुष्य प्रेम करता है, और जिसे प्रेम करता है, उसे सौंदर्य दे देता है।

भेद आप समझ लेना। हम सुंदर को प्रेम करते हैं। सुंदर दो दिन बाद खो जाएगा। प्रेम कहां टिकेगा? आदिम मनुष्य प्रेम करता है पहले, और जिसे प्रेम करता है, उसमें सौंदर्य को पाता है। और प्रेम की खूबी है, अगर वह स्वयं पर निर्भर हो तो रोज बढ़ता चला जाता है और किसी और चीज पर निर्भर हो तो रोज घटता चला जाता है। अगर मैंने इसलिए प्रेम किया कि आप सुंदर हैं, तो प्रेम रोज घटेगा। लेकिन अगर मैंने सिर्फ इसलिए प्रेम किया कि मुझे प्रेम करना है, तो आपका सौंदर्य रोज बढ़ता जाएगा। प्रेम अगर अपने पैरों पर खड़ा होता है, तो विकासमान है। और प्रेम अगर किसी के कंधे का सहारा लेता है, तो आज नहीं कल लंगड़ा होकर गिर जाएगा।

लेकिन फिर भी यह हम कह रहे हैं, इसलिए हमें सौंदर्य और कुरूप शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। आदिम चित्त को सौंदर्य और कुरूप शब्द का कोई बोध नहीं है। करीब-करीब आदम चित्त वैसा है जैसे एक मां के दो बेटे हैं, एक जिसे लोग सुंदर कहते हैं और एक जिसे लोग सुंदर नहीं कहते हैं। लेकिन मां के लिए उनके सौंदर्य में कोई भी भेद नहीं है। एक बेटा कुरूप नहीं है, दूसरा बेटा सुंदर नहीं है। दोनों बेटे हैं, इसलिए दोनों सुंदर हैं। उनका सौंदर्य उनके बेटे होने से निकलता है। मां का प्रेम प्राथमिक है। उस प्रेम से उनका सुंदर होना निकलता है।

आदिम चित्त, जिसकी लाओत्से बात कर रहा है, सरल स्वभाव में जीने वाला चित्त, द्वंद्व और भेद के बाहर है।

इसलिए लाओत्से कहता है, बुराई जरूर मिटानी है; लेकिन जब तक तुम भलाई को बचाना चाहते हो, तुम बुराई को न मिटा सकोगे। असाधु दुनिया से जरूर विदा करने हैं, लेकिन जब तक तुम साधु का जय-जयकार किए चले जाओगे, तब तक तुम असाधु को विदा नहीं कर सकते।

अब इसके भीतर बहुत गहरा जाल है। साधु भी इसमें ही रस लेगा कि समाज में असाधु हों। इसलिए जब समाज में ज्यादा असाधु होंगे, तो साधु में ज्यादा रौनक दिखाई पड़ेगी। क्योंकि इनकी वह निंदा कर सकेगा, इनको गाली दे सकेगा, इनको बदलने के अभियान चला सकेगा, इनको ठीक करने के लिए श्रम कर सकेगा। उसको काम मिलेगा, वह कुछ कर रहा है। लेकिन अगर एक समाज ऐसा हो कि जिसमें कोई असाधु न हो, तो

साधु के नाम से जिनकी अस्मिता और अहंकार परिपुष्ट होते हैं, वे एकदम ही नपुंसक और व्यर्थ हो जाएंगे, उनको खड़े होने की जगह भी नहीं मिलेगी।

अब यह बहुत उलटा है, लेकिन और मजे का भी है कि साधु का अहंकार तभी परिपुष्ट हो सकता है, जब उसके आस-पास असाधुओं का समाज हो। यह ठीक वैसा ही है कि एक धनी आदमी को मजा तभी आ सकता है, जब आस-पास गरीबी से गरीबी में डूबे हुए लोग हों। एक बड़े महल का रस तभी है, जब चारों तरफ झोपड़े बने हों। अन्यथा महल का कोई भी रस नहीं है। महल का रस महल में नहीं है। वह जो झोपड़े में पीड़ा है, उसमें निर्भर है। और साधु का रस भी साधुता में नहीं है, वे जो असाधु चारों तरफ खड़े हैं, उनकी तुलना में जो अहंकार को बल मिलता है, उसमें है।

लाओत्से कहता है, दोनों को ही छोड़ दो; हम तो धर्म उसे कहते हैं, जहां न शुभ रह जाता, न अशुभ। इसलिए आमतौर से जो धर्म की व्याख्या की जाती हैः शुभ धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। मंगल धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। सत्य धर्म है! लाओत्से कहेगा, नहीं। क्योंकि जहां सत्य है, वहां असत्य उपस्थित हो गया। और जहां शुभ है, वहां अशुभ ने पैर रख दिए। और जहां मंगल है, वहां अमंगल मौजूद रहेगा। लाओत्से कहता है, जहां दोनों नहीं हैं, द्वंद्व जहां नहीं है, जहां चित्त निद्र्वंद्व है, जहां चित्त अद्वैत में है, जहां इंच भर फासला पैदा नहीं हुआ, वहां धर्म है। तो धर्म लाओत्से के लिए द्वंद्वातीत है, ट्रांसेनडेंटल है, पार। जहां न अंधेरा है, न उजाला है। अगर लाओत्से से हम कहें कि परमात्मा प्रकाश-स्वरूप है, तो वह इनकार करेगा। वह कहेगा, फिर अंधेरे का क्या होगा? फिर अंधेरा कहां जाएगा? फिर तुम्हारा परमात्मा सदा ही अंधेरे में घिरा रहेगा। क्योंकि जो भी प्रकाश है, वह अंधेरे में घिरा रहता है।

ध्यान रखना, जो भी प्रकाश है, वह अंधेरे में घिरा रहता है। अंधेरे के बिना प्रकाश नहीं हो सकता। इसलिए प्रकाश की एक छोटी सी बाती जलाओ, और अंधेरे का एक सागर चारों तरफ उसे घेरे रहता है। उसके बीच में ही वह प्रकाश की बाती जलती है। अगर चारों तरफ से अंधेरा हट जाए, तो प्रकाश की बाती तत्काल खो जाएगी, दीन-हीन हो जाएगी, वह कहीं नहीं रह जाएगी।

लाओत्से कहेगा, नहीं, परमात्मा प्रकाश नहीं। परमात्मा तो वहां है, जहां प्रकाश और अंधकार दोनों नहीं हैं, जहां द्वैत और दुई नहीं हैं।

नैतिक चिंतन और धार्मिक चिंतन का यही बुनियादी फासला है। नैतिक चिंतन सदा जीवन को दो हिस्सों में बांटता है। एक को करता है निंदित, एक को देता है सम्मान। और जिसको सम्मान देता है, उसको बढ़ावा देता है, पुरस्कार देता है। जिसकी निंदा करता है, उसको अपमानित करता है, उसको दीन करता है।

पर आपने कभी सोचा कि इस पूरी की पूरी स्ट्रेटेजी में राज क्या है? इस नीतिशó की सारी की सारी व्यवस्था में राज क्या है? सीक्रेट क्या है?

सीक्रेट है अहंकार। हम कहते हैं, चोर बुरा है, निंदित है, अपमानित है। तो हम लोगों के अहंकार को यह कहते हैं कि अगर तुम चोरी करते हुए पकड़े गए तो तुम्हारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी, अपमान पाओगे, दो कौड़ी के रह जाओगे। लोग तुम्हें बुरी दृष्टि से देखेंगे। अगर चोरी न करोगे, तो सम्मान पाओगे। लोग फूलमालाएं पहनाएंगे और रथयात्राएं निकालेंगे। लोग सम्मान करेंगे, तुम्हारे नाम की प्रतिष्ठा होगी, तुम यश पाओगे; इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी यश पाओगे, स्वर्ग के दावेदार बनोगे। और अगर बुरा किया, तो नर्क में सड़ोगे, पाप और ग्लानि में। पर हम कर क्या रहे हैं? अगर इन दोनों के बीच हम देखें, तो हम कर क्या रहे हैं?

बुरे आदमी के अहंकार को हम चोट पहुंचा रहे हैं और भले आदमी के अहंकार की हम पूर्ति कर रहे हैं। और हम सब को यही सिखा रहे हैं कि अपने अहंकार की पूर्ति चाहते हो तो अच्छे बनो। अगर बुरे बने तो अहंकार को नुकसान पहुंचेगा। नीतिशाó का सारा ढांचा अहंकार पर खड़ा हुआ है। और बड़े मजे की बात यह है कि हमें यह कभी ख्याल में नहीं आता कि अहंकार के ढांचे पर नीतिशाó खड़ा कैसे हो सकता है? अहंकार से ज्यादा अनैतिक और क्या होगा? लेकिन सारी व्यवस्था नीति की अहंकार पर खड़ी है।

लाओत्से जब यह कह रहा है, तो वह अहंकार के पूरे ढांचे को गिरा रहा है। वह कह रहा है कि हम शुभ-अशुभ को स्वीकार नहीं करते, हम पाप-पुण्य को स्वीकार नहीं करते। हम तो वह चित्त-दशा चाहते हैं, जहां द्वैत का भाव ही नहीं है। लेकिन वहां अहंकार का भी भाव नहीं रह जाएगा।

धर्म निरहंकार स्थिति है, और नीति अहंकार पर ही खड़ी हुई व्यवस्था है।

हमारा सारा उपक्रम, बच्चे से लेकर बूढ़े तक, अहंकार के ही आस-पास घूमता है। हम बच्चों को स्कूल में कहते हैं, प्रथम आओ, अन्यथा अपमानित हो। प्रथम आते हो, तो सम्मान है। अच्छे अंक पाते हो, तो सम्मान है। कम अंक पाए, तो अपमान है। फिर वही खेल हम जारी रखते हैं पूरे जीवन में। बूढ़े को भी हम यही कहते हैं कि अगर अच्छा किया, तो ज्यादा अंक पाओगे, स्वर्ग मिलेगा। अच्छा नहीं किया, नर्क जाओगे, अंक कम मिलेंगे। पराजित हो जाओगे, अपमानित हो जाओगे। इस जगत में भी पृथ्वी पर नाम नहीं मिलेगा, परलोक में भी नाम को खोओगे। पर नाम ही!

अहंकार के ही आधार पर हम जो नीति खड़ी करते हैं, वह नैतिक नहीं हो पाती है। और तब, तब सारी नीति की व्यवस्था के नीचे अनीति का गहन विस्तार होता चला जाता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति, जो कुशल है अपने को नैतिक दिखाने में, वह नैतिक होने की चिंता छोड़ देता है। क्योंकि असली सवाल तो नाम का है, यश का है, अस्मिता का है--लोग क्या कहेंगे?

अगर मैं चोरी करता हूं और नहीं पकड़ा जाता, तो मैं अचोर बना रहता हूं। और नीति ने भी यही कहा था कि लोग बुरा कहेंगे। लोग कहें बुरा कि परमात्मा कहे बुरा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई बुरा कहेगा, किसी के सामने मैं अपमानित होऊंगा। अगर मैं चोरी करके और किसी की भी पकड़ में नहीं आता हूं, तो मैं चोरी भी कर लेता हूं, अहंकार भी बचा लेता हूं। तो हर्ज क्या है? मैं बेईमानी भी कर लेता हूं और अपनी इज्जत भी बचा लेता हूं, तो हर्ज क्या है? इसलिए नैतिकता घूम-फिर कर अंततः प्रवंचना सिद्ध होती है। और जो लोग कुशल हैं, बुद्धिमान हैं, वे अनैतिक होने के कुशल मार्ग खोज लेते हैं और नैतिक दिखावे की व्यवस्था कर लेते हैं। वे दिखाई पड़ते हैं कुछ और, हो जाते हैं कुछ और।

लाओत्से कहता है, हम इस नैतिकता में भरोसा नहीं करते हैं।

पश्चिम में जब पहली बार उपनिषदों की खबर पहुंची, उन्हें भी बड़ी चिंता हुई। क्योंकि उपनिषद भी लाओत्से के ही निकट हैं। उपनिषदों में कहीं नहीं कहा गया है कि चोरी मत करो, कि हिंसा मत करो। उपनिषदों ने कोई इस तरह का उपदेश नहीं दिया है। तो पश्चिम तो ईसाइयत के टेन कमांडमेंट्स से परिचित था। व्यभिचार मत करो, चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, ये तो धर्म के आधार हैं। और जब उपनिषद पहली दफे अनुवादित हुए, या लाओत्से का ताओ तेह किंग पहली दफे अनुवादित हुआ, तो पश्चिम के लोगों ने कहा, ये पूरब के लोग तो अनैतिक मालूम होते हैं। ये इनके महर्षि हैं! इसमें एक भी शब्द धर्म का नहीं है। क्योंकि धर्म का मतलब यह है कि समझाओ लोगों को कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, धोखा मत दो। यह तो इनमें कहीं भी नहीं कहा गया है। ये किस तरह के धर्मशाó हैं!

तो पश्चिम में पहला जो संपर्क हुआ पूरब के गहन विचार का तो पश्चिम के लोगों को लगा कि ये सब अनैतिक सिद्धांत हैं। जैसे-जैसे गहराई बढ़ी समझ की, और पश्चिम और निकट आया, और गहरे गया, वैसे उन्हें पता चला कि ये अनैतिक नहीं हैं। एक नई उन्हें धारणा, एक नई कैटेगरी बनानी पड़ी, अतिनैतिक की। तीन कोटियां बनानी पड़ींः अनैतिक, इम्माॅरल; नैतिक, माॅरल; और अतिनैतिक, एमाॅरल या ट्रांसमाॅरल। धीरे-धीरे ख्याल में आया कि ये शाó न तो नैतिक हैं, न अनैतिक हैं। ये नीति की बात ही नहीं करते। ये किसी और ही रहस्य की बात कर रहे हैं, जो नीति के पार चला जाता है। ये शाó ही धर्मशाó हैं।

यह बहुत मजे की बात है, नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। और अक्सर आस्तिक से ज्यादा नैतिक होता है। क्योंकि आस्तिक की तो नैतिकता भी एक सौदा है। वह अपनी नैतिकता से भी कुछ पाने के पीछे पड़ा है--मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, पुण्य मिलेगा, अच्छा जन्म मिलेगा--वह कुछ पाने के पीछे पड़ा है। उसकी नैतिकता एक बार्गेनिंग है। वह जानता है कि थोड़ी तकलीफ मैं उठा रहा हूं तो ज्यादा सुख पा लूंगा। लेकिन नास्तिक की नैतिकता तो शुद्ध नैतिकता है। कोई बार्गेन भी नहीं है, क्योंकि आगे कोई जन्म नहीं है। नास्तिक जान रहा है कि अच्छा भी करने वाला मर जाएगा और मिट्टी में मिल जाएगा और बुरा करने वाला भी मर जाएगा और मिट्टी में मिल जाएगा। कोई पुण्य-फल नहीं मिलने वाला है। फिर भी नास्तिक अगर नैतिक है, तो निश्चित ही उसकी नैतिकता आस्तिकता से ज्यादा मूल्य की है। उसकी नैतिकता ज्यादा शुद्ध है। उसमें कोई सौदा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई पुण्य-फल का सवाल नहीं, कोई फलाकांक्षा का उपाय नहीं। क्योंकि न कोई परमात्मा है, जो फल देगा; न कोई कर्म की व्यवस्था है, जो फल देगी; न कोई भविष्य है, न कोई नया जन्म है। आखिरी है यह बात! अगर मैं झूठ बोलूं, तो भी मिट्टी में मिल जाऊंगा; सच बोलूं, तो भी मिट्टी में मिल जाऊंगा। कोई फल नहीं मिलने वाला है। और नास्तिक अगर नैतिक हो पाए, तो निश्चित ही आस्तिक से उसकी नैतिकता गहरी है।

नास्तिक नैतिक हो सकता है। नास्तिक को नैतिक होने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन नास्तिक धार्मिक नहीं हो सकता है। और जो आस्तिक सिर्फ नैतिक है, वह नास्तिक से भी गया-बीता है। धार्मिक हो आस्तिक, तभी उसकी आस्तिकता का कोई मूल्य है। अन्यथा उसकी आस्तिकता नास्तिक की नैतिकता से भी नीची है। क्योंकि वह कुछ कर रहा है कुछ पाने के लिए।

अगर आस्तिक को पता चल जाए कि नहीं कोई परमात्मा है, तो उसकी नैतिकता अभी डगमगा जाए। आस्तिक को पता चल जाए कि नहीं कोई पुनर्जन्म है, उसकी नैतिकता अभी डगमगा जाए। आस्तिक को पता चल जाए कि कानून बदल गया, और जो लोग सच बोलते हैं वे नर्क जाने लगे, जो लोग झूठ बोलते हैं वे स्वर्ग जाने लगे, वह अभी झूठ बोलने लगेगा।

नास्तिक को फर्क नहीं पड़ेगा। आपका ईश्वर रहे न रहे, नर्क-स्वर्ग में बदलाहट हो जाए, नास्तिक को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि वे उसके आधार नहीं हैं। उनके कारण वह नैतिक नहीं है। वह नैतिक है तो इसलिए कि वह कहता है कि नैतिक होने में सुख है। मेरा विवेक कहता है नैतिक होने को, इसलिए मैं नैतिक हूं। और कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अपने को ज्यादा स्वच्छ और शांत पाता हूं, इसलिए नैतिक हूं। और कोई प्रयोजन नहीं है।

आस्तिक तो तभी आस्तिक होता है, जब वह धार्मिक हो। नैतिक होने से नहीं होता। नैतिक तो नास्तिक भी हो जाता है, और आस्तिक से बेहतर हो जाता है।

लाओत्से आस्तिकता का आधारभूत सूत्र कह रहा है। वह यह कह रहा है कि तुम द्वंद्व में मत बांटो जीवन को; दोनों के पार हटो।

हमारे मन में फौरन डर पैदा होगा। हमारे मन में, जो कि हम नीति से बंधे हैं, हमारे मन में डर पैदा होगा कि अगर दोनों के पार हुए, तो अनैतिक हो जाएंगे। तत्काल जो लाओत्से की बात सुन कर ख्याल में आएगा, वह यह आएगा, अगर दोनों के पार हुए तो फिर चोरी क्यों न करें? हमारे मन में सवाल उठेगा, अगर दोनों ही छोड़ देने हैं, तो दुनिया बुरी हो जाएगी। क्योंकि हम अच्छे तो ऊपर-ऊपर से हैं, बुराई सब भीतर भरी है। अगर हमने जरा भी शिथिलता की, तो अच्छाई तो टूट जाएगी, बुराई फैल जाएगी। यह भय हमारे भीतर का वास्तविक भय है।

लेकिन लाओत्से कहता है कि जो अच्छाई के भी पार जाने को तैयार है, वह बुराई में गिरने को कभी तैयार नहीं होगा। जो अच्छाई तक को छोड़ने को तैयार है, उसे तुम बुराई में कैसे गिरा पाओगे? असल में, सब बुराइयों में गिरने का कारण भी अहंकार होता है। और हमने अहंकार को ही अच्छाई में चढ़ने की सीढ़ी बनाई है। और वही बुराई में गिरने का कारण है।

लाओत्से कहता है कि जो अच्छाई तक में चढ़ने को उत्सुक नहीं है, वह बुराई में गिरने को राजी नहीं होगा। और जो अच्छाई में चढ़ने को उत्सुक है, उसे बुराई में गिरने को कभी भी फुसलाया जा सकता है। क्षण भर, और वह नीचे गिर जाएगा। अगर उसको ऐसा दिखाई पड़े कि बुराई अच्छाई से ज्यादा फल दे सकती है--क्योंकि फल के कारण ही वह अच्छाई कर रहा है--अगर उसे ऐसा दिखाई पड़े कि बुराई से अहंकार ज्यादा तृप्त होगा बजाय अच्छाई के, तो वह अभी बुराई में चला जाएगा। क्योंकि वह अच्छाई में भी अहंकार के लिए ही गया है।

लाओत्से कहता है, जो अच्छाई और बुराई दोनों के पार चला जाता है, उसके गिरने का भी कोई उपाय नहीं, उसके उठने का भी कोई उपाय नहीं। वह पहाड़ों पर भी नहीं चढ़ता, वह खाइयों में भी नहीं उतरता। वह जीवन की समतल रेखा पर आ जाता है। उस समतल रेखा का नाम ऋत, उस समतल रेखा का नाम ताओ। जहां इंच भर वह नीचे भी नहीं गिरता, ऊपर भी नहीं उठता। उस समतल रेखा का नाम धर्म।

तो लाओत्से कहता है कि मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम बुराई छोड़ो, मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम अच्छाई पकड़ो, मैं तुमसे कहता हूं, तुम यह समझो कि अच्छाई और बुराई एक ही चीज के दो नाम हैं। तुम यह पहचानो कि ये दोनों संयुक्त घटनाएं हैं। और जब तुम यह पहचान लोगे ये दोनों संयुक्त हैं, तो तुम इन दोनों के पार हो सकोगे।

इसे हम कुछ और तरह से समझ लें तो शायद ख्याल में आ जाए।

एक फूल के पास आप खड़े हैं। क्या जरूरी है यह कहना कि उसे सुंदर कहें? क्या जरूरी है यह कहना कि उसे कुरूप कहें? और क्या आपके कहने से फूल में कोई अंतर पड़ता है? आपके कहने से फूल में कोई भी अंतर नहीं पड़ता। लेकिन आपके कहने से आप में जरूर अंतर पड़ता है। अगर आप सुंदर कहते हैं, तो आपका फूल के प्रति व्यवहार और हो जाता है। अगर आप कुरूप कहते हैं, तो आपका फूल के प्रति व्यवहार और हो जाता है। आपके कहने से फूल में अंतर नहीं पड़ता, लेकिन आप में अंतर पड़ता है।

और सच में ही क्या है आधार कहने का कि फूल सुंदर है? क्या है क्राइटेरियन? कौन सा है तराजू जिससे आप नापते हैं कि फूल सुंदर है? बड़ी कठिनाई में पड़ेंगे, अगर कोई पूछे कि क्यों? तो क्या है आधार?

गहरे से गहरा आधार यही होगा कि मुझे पसंद पड़ता है। लेकिन आपकी पसंदगी सौंदर्य का कोई नियम है? कुरूप का क्या होगा आधार? कि मुझे पसंद नहीं पड़ता है। लेकिन आपकी नापसंदगी को परमात्मा ने नियम बनाया है कि वह कुरूप हो गई चीज जो नापसंद है? पसंद और नापसंद क्या खबर देती हैं? आपके

बाबत खबर देती हैं, फूल के बाबत कोई भी खबर नहीं देतीं। क्योंकि मैं उसी फूल के पास खड़े होकर दूसरी पसंदगी जाहिर कर सकता हूं। फूल फिर भी फूल रहेगा। कोई उसे कुरूप कह जाए, कोई उसे सुंदर कह जाए, कोई कुछ न कहे, फूल फूल रहेगा। और हजार लोग फूल के पास से निकल कर हजार वक्तव्य दे जाएं, तो भी फूल फूल रहेगा। फिर वे वक्तव्य किसके संबंध में खबर देते हैं? फूल के संबंध में या देने वाले के संबंध में?

अगर हम ठीक से समझें तो सभी वक्तव्य देने वाले के संबंध में खबर देते हैं। अगर मैं कहता हूं, यह फूल सुंदर है। तो इसको ठीक से कहना हो तो ऐसा कहना पड़ेगा कि मैं इस तरह का आदमी हूं कि यह फूल मुझे सुंदर मालूम पड़ता है। मगर जरूरी नहीं है कि शाम को भी यह फूल मुझे सुंदर मालूम पड़े; शाम को यह कुरूप मालूम पड़ सकता है। तब मुझे कहना पड़ेगा, अब मैं ऐसा आदमी हो गया हूं कि यह फूल मुझे कुरूप मालूम पड़ता है। लेकिन यह कल सुबह फिर सुंदर मालूम पड़ सकता है। ये सौंदर्य और कुरूप, ये आब्जेक्टिव हैं, विषयगत हैं, वस्तुगत हैं या सब्जेक्टिव फीलिंग्स हैं? ये हमारी आंतरिक, मानसिक भावनाएं हैं या वस्तु का स्वरूप हैं?

ये हमारी मानसिक भावनाएं हैं। मानसिक भावनाओं को फूल पर आरोपित कर देना न्यायसंगत नहीं है। आप कौन हैं फूल पर आरोपित हो जाने वाले? कौन सा अधिकार है? कोई भी अधिकार नहीं है। पर हम सब आरोपित कर रहे हैं अपने को।

फूल के पास एक दिन खड़े होकर देखें, न कहें सुंदर, न कहें कुरूप। इतना ही काफी है कि फूल है। खड़े रहें चुपचाप, सम्हालें अपनी पुरानी आदत को जो तत्काल कह देती है सुंदर या कुरूप। रुकें जजमेंट से, निर्णय न लें, खड़े रहें। उधर रहे फूल, इधर रहें आप, बीच में कोई निर्णय न हो कि सुंदर कि कुरूप।

और थोड़े दिन के अभ्यास से जिस दिन यह संभव हो जाएगा कि आपके और फूल के बीच में कोई भावधारा न रहे, कोई निर्णय न रहे, उस दिन आप फूल के एक नए सौंदर्य का अनुभव करेंगे, जो सौंदर्य और कुरूप के पार है। उस दिन फूल का आविर्भाव आपके सामने नया होगा। उस दिन आपकी कोई मानसिक धारणा नहीं होगी। उस दिन आपकी पसंद-नापसंद नहीं होगी। उस दिन आप बीच में नहीं होंगे। फूल ही खिला होगा अपनी पूर्णता में। और जब फूल अपनी पूर्णता में खिलता है, हमारे किसी बिना मनोभाव की बाधा के, तब उसका एक सौंदर्य है, जो सुंदर और कुरूप दोनों के पार है। ध्यान रखना, जब मैं कह रहा हूं कि उसका एक अपना सौंदर्य है, जो हमारी धारणाओं के पार है।

लाओत्से कहता है, उसे हम कहते हैं सौंदर्य, जहां कुरूपता का पता ही नहीं है। लेकिन तब सौंदर्य का भी पता नहीं होता, जैसे सौंदर्य को हम जानते हैं।

एक वृक्ष है। आप राह से गुजरे हैं और वृक्ष की शाखा वर्षा में आपके ऊपर गिर पड़ी है। तब आप ऐसा तो नहीं कहते कि वृक्ष ने बहुत बुरा किया; वृक्ष बहुत शैतान है, कि दुष्ट है, कि हिंसक है; कि वृक्ष की इच्छा आपको नुकसान पहुंचाने की थी; कि अब आप वृक्ष से बदला लेकर रहेंगे।

नहीं, आप कुछ भी नहीं कहते। आप वृक्ष के संबंध में कोई निर्णय ही नहीं लेते। आप वृक्ष के संबंध में निर्णय-शून्य होते हैं। तब रात वृक्ष की गिरी हुई शाखा आपकी नींद में चिंता नहीं बनती। तब महीनों आप उससे बदला कैसे लें, इसमें व्यतीत नहीं करते। क्योंकि आपने कोई निर्णय न लिया कि शुभ हुआ कि अशुभ हुआ, वृक्ष ने बुरा किया कि भला किया। आपने यह सोचा ही नहीं कि वृक्ष ने कुछ किया। संयोग की बात थी कि आप नीचे थे और वृक्ष की शाखा गिर पड़ी। वृक्ष को आप कोई दोष नहीं देते।

लेकिन एक आदमी एक लकड़ी आपको मार दे। लकड़ी तो दूर की बात है, एक गाली मार दे। लकड़ी में तो थोड़ी चोट भी रहती है, गाली में तो कोई चोट भी नहीं है। खाली शब्द कैसे घाव कर पाते होंगे? लेकिन

तत्काल मन निर्णय लेता है कि बुरा किया उसने, कि भला किया, कि बदला लेना जरूरी हो गया। अब चिंता पकड़ेगी। अब चित्त घूमेगा आस-पास उस गाली के। अब महीनों नष्ट हो सकते हैं; सालों नष्ट हो सकते हैं; पूरा जीवन भी लग सकता है उस काम में। पर कहां से शुरुआत हुई? उस आदमी के गाली देने से शुरुआत हुई, कि आपके निर्णय लेने से शुरुआत हुई, यह समझने की बात है।

अगर आप निर्णय न लेते और आप कहते, संयोग की बात कि मैं निकट पड़ गया और तुम्हारे मुंह में गाली आ गई, जैसे कि मैं पास से गुजरता था और वृक्ष की शाखा गिरी, संयोग की बात कि मैं पास से गुजरता था और तुम्हारे मुंह में गाली आ गई। मैं कोई निर्णय नहीं लेता कि शुभ हुआ कि अशुभ हुआ; संयोग हुआ। अगर सच में ही मैं वृक्ष की शाखा की तरह इसे भी संयोग की भांति देख पाऊं और बुरे और भले का निर्णय न लूं, तो क्या यह मेरे मन में चिंता बन पाएगी? क्या यह गाली घाव बन जाएगी? क्या इसके आस-पास मुझे जीवन का और समय नष्ट करना पड़ेगा? क्या मुझे गालियां बनानी पड़ेंगी और देनी पड़ेंगी? और क्या गालियां देकर मुझे और गालियां निमंत्रण करवानी पड़ेंगी? नहीं, यह बात समाप्त हो गई। मैंने कुछ बुरे-भले का निर्णय न लिया। एक तथ्य था, जाना और बढ़ गया। लाओत्से इसे शुभ कहता है।

अब ध्यान रखना, इसमें बहुत बारीक फासले हैं। जीसस कहेंगे कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। लाओत्से कहेगा, ऐसा मत करना। जीसस कहेंगे, जो गाल पर तुम्हारे एक चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। लेकिन लाओत्से कहेगा, अगर दूसरा तुमने उसके सामने किया, तो तुमने निर्णय ले लिया, तुमने निर्णय ले लिया। एंड यू हैव रिएक्टेड, और तुमने प्रतिक्रिया भी कर दी। माना कि तुमने गाली नहीं दी, लेकिन चांटा तुमने मार दिया; तुमने दूसरा गाल सामने किया न!

जीसस कहते हैं, अपने शत्रु को भी प्रेम करना। लाओत्से कहेगा, नहीं, ऐसा मत करना। क्योंकि तुमने प्रेम भी प्रकट किया, तो भी इतना मान लिया कि वह शत्रु है। लाओत्से की बात बहुत-बहुत पार है। लाओत्से कहेगा, शत्रु को प्रेम करना, तो शत्रु तो मान ही लिया। फिर तुमने क्या किया, शत्रु को गाली दी, घृणा की, या प्रेम किया, ये दूसरी बातें हैं। लेकिन एक बात तय हो गई कि वह शत्रु है।

नसरुद्दीन के जीवन में एक उल्लेख है कि वह अपने छोटे भाई को चांटा मार दिया है। और उसका पिता उससे कहता है, नसरुद्दीन, कल ही तू बाइबिल में पढ़ रहा था कि अपने शत्रु को भी प्रेम करना चाहिए।

नसरुद्दीन ने कहा, वह मैं पढ़ रहा था; लेकिन यह मेरा भाई है, मेरा शत्रु नहीं है। मैं बिल्कुल मानता हूं। लेकिन यह मेरा शत्रु है ही नहीं।

शत्रु की स्वीकृति, लाओत्से कहेगा, निर्णय हो गया। और तुमने यह मान लिया कि इस आदमी ने बुरा किया है। इसलिए इसको बुराई से जवाब नहीं देना है, भलाई से जवाब देना है।

जीसस कहते हैं कि बुराई का जवाब भलाई से दो। लेकिन बुराई उसने की है, यह निर्णय तो कर लिया। फिर जवाब तुम भलाई से देते हो, यह नैतिक हुआ, धार्मिक न हुआ। लाओत्से कहेगा, जवाब ही नहीं देते हो, क्योंकि तुम निर्णय ही नहीं लेते हो। तुम कहते हो, ऐसा हुआ, बात समाप्त हो गई। इसके आगे तुम चिंतन ही नहीं चलाते हो, विचार की रेखा ही नहीं उठने देते हो। एक आदमी ने चांटा मारा, बात समाप्त हो गई, घटना पूरी हो गई। तुम इस घटना से कुछ शुरुआत नहीं करते अपने मन में। कुछ भी, कि इसने बुरा किया कि अच्छा किया, कि दोस्त था, कि मित्र था, कि शत्रु था; कौन है, कौन नहीं है; मैं क्या करूं, क्या न करूं; तुम कोई चिंतन का सूत्रपात नहीं करते हो। यह घटना पूरी हो गई, दरवाजा बंद हो गया, अध्याय समाप्त हुआ। तुम उसे इति कर

देते हो; दि एंड कर देते हो। बात समाप्त हो गई। तथ्य पूरा हो गया। तुम उसे खींचते नहीं मन में। तो लाओत्से कहता है, तुम धार्मिक हो।

अगर तुमने इतना भी निर्णय किया कि यह बुरा हुआ, अब मैं क्या करूं, तो तुम धर्म से च्युत होते हो। भेद ही धर्म से च्युत हो जाना है। निर्णय ही धर्म से नीचे गिर जाना है।

लाओत्से की समस्त चेष्टा, चित्त की जो बंधी हुई आदत है चीजों को दो में तोड़ लेने की, उससे आपको सजग करना है; कि चित्त दो में तोड़ पाए, उसके पहले आप जाग जाना। इसके पहले कि चित्त चीजों को दो करे, आप जाग जाना। वह दो न कर पाए। उसने दो कर लिया, तो फिर आप कुछ भी करो, फिर आप कुछ भी करो, चित्त ने एक बार दो कर लिया तो आप फिर चक्कर के बाहर न हो पाओगे। दो करने के पहले जाग जाना।

इसलिए वह सौंदर्य और शुभ, दो बातों को उठाता है। दो ही हमारे बुनियादी भेद हैं। सौंदर्य के भेद पर हमारा सारा एस्थेटिक्स, सौंदर्य-शाó खड़ा होता है। और शुभ और अशुभ के भेद पर हमारी ईथिक्स, हमारा पूरा नीति-शाó खड़ा होता है। लाओत्से कहता है, इन दोनों में धर्म नहीं है। इन दोनों के पार! प्रीतिकर-अप्रीतिकर, रुचिकर-अरुचिकर, सुंदर-असुंदर, शुभ-अशुभ, अच्छा-बुरा, श्रेयस्कर-अश्रेयस्कर, ये सारे भेद के पार धर्म है।

लाओत्से न कहेगा, क्षमा कर देना धर्म है। लाओत्से कहेगा, तुमने क्षमा की तो तुमने स्वीकार किया कि क्रोध आ गया। नहीं, जब क्रोध उठता हो या क्षमा उठती हो, तब तुम चौंक कर सजग हो जाना कि अब विपरीत का द्वंद्व उठता है।

इसलिए लाओत्से को हम क्षमावान न कह सकेंगे। अगर लाओत्से से हम पूछेंगे कि तुम सबको क्षमा कर देते हो? तो लाओत्से कहेगा, मैंने कभी किसी पर क्रोध ही नहीं किया। लाओत्से को अगर किसी ने गाली दी है, तो हमें लगेगा कि उसने क्षमा कर दिया, क्योंकि वह कुछ भी नहीं बोला, अपनी राह चला गया। पर हमारी भूल है। लाओत्से से हम पूछेंगे तो वह कहेगा, नहीं, मैंने क्रोध ही नहीं किया; क्षमा का तो सवाल ही नहीं उठता। क्षमा तो तभी संभव है, जब क्रोध हो जाए। और जब क्रोध ही हो गया, तो फिर क्या क्षमा होगी? फिर सब लीपापोती है। फिर सब पीछे से इंतजाम है, मलहम-पट्टी है। लाओत्से कहता है, हमने क्रोध ही न किया। इसलिए क्षमा करने की झंझट में हम पड़े ही नहीं। वह तो दूसरा कदम था, जो क्रोध कर लिया होता, तो करना पड़ता।

लाओत्से का गहरे से गहरा जोर इस बात पर है कि जहां द्वंद्व उठे, उसके पहले ही सजग हो जाना और निर्द्वंद्व में ठहरना, द्वंद्व में मत उतरना।

प्रश्नः भगवान श्री, जैसे कल आपने कैथार्सिस, फुट पिलो बीटिंग के जरिए क्रोध-निवृत्ति का प्रयोग बताया, वैसे काम, लोभ, मोह और अहंकार की निवृत्ति के लिए कौन से प्रयोग किए जाएं, कृपया इन बातों पर दृष्टि डालिए।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार! जैसा शब्दों से लगता है, उससे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे बहुत सी बीमारियां आदमी के आस-पास हैं। सचाई यह नहीं है। इतनी बीमारियां नहीं हैं, जितने नाम हमें मालूम हैं। बीमारी तो एक ही है। ऊर्जा एक ही है, जो इन सब में प्रकट होती है। अगर काम को आपने दबाया, तो क्रोध बन जाता है। और हम सबने काम को दबाया है, इसलिए सबके भीतर क्रोध कम-ज्यादा मात्रा में इकट्ठा होता है।

अब अगर क्रोध से बचना हो, तो उसे कुछ रूप देना पड़ता है। नहीं तो क्रोध जीने न देगा। तो अगर आप लोभ में क्रोध की शक्ति को रूपांतरित कर सकें तो आप कम क्रोधी हो जाएंगे; आपका क्रोध लोभ में निकलना शुरू हो जाएगा। फिर आप आदमियों की गर्दन कम दबाएंगे, रुपए की गर्दन पर मुट्ठी बांध लेंगे।

एक बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि मनुष्य के पास एक ही ऊर्जा है, एक ही इनर्जी है। हम उसके पच्चीस प्रयोग कर सकते हैं। और अगर हम विकृत हो जाएं तो वह हजार धाराओं में बह सकती है। और अगर आपने एक-एक धारा से लड़ने की कोशिश की तो आप पागल हो जाएंगे, क्योंकि आप एक-एक से लड़ते भी रहेंगे और मूल से आपका कभी मुकाबला न होगा।

तो पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि मूल ऊर्जा एक है आदमी के पास। और अगर कोई भी रूपांतरण, कोई भी ट्रांसफार्मेशन करना है, तो मूल ऊर्जा से सीधा संपर्क साधना जरूरी है। उसकी अभिव्यक्तियों से मत उलझिए। सुगमतम मार्ग यह है कि आपके भीतर इन चार में से जो सर्वाधिक प्रबल हो, आप उससे शुरू करिए। अगर आपको लगता है कि क्रोध सर्वाधिक प्रबल है आपके भीतर, तो वह आपका चीफ करेक्टरिस्टिक हुआ।

गुरजिएफ के पास जब भी कोई जाता, तो वह कहता कि पहले तुम्हारी खास बीमारी मैं पता कर लूं; तुम्हारी खास बीमारी क्या है? तुम्हारा खास लक्षण क्या है?

और हर आदमी का खास लक्षण है। किसी का खास लक्षण लोभ है। किसी का खास लक्षण क्रोध है। किसी का खास लक्षण काम है। किसी का खास लक्षण भय है। किसी का खास लक्षण अहंकार है। लक्षण हैं। अपना खास लक्षण पकड़ लें। और सबसे लड़ने मत जाएं। सबसे लड़ने मत जाएं, खास लक्षण पकड़ लें। वह खास लक्षण आपके मूल स्रोत से जुड़ी हुई सबसे बड़ी धारा है। अगर वह क्रोध है, तो क्रोध को पकड़ लें। अगर वह काम है, तो काम को पकड़ लें। और उस खास लक्षण पर सजगता का प्रयोग करना शुरू करें, और कैथार्सिस का। जैसा मैंने कल क्रोध के लिए आपको कहा कि एक तकिए पर भी प्रयोग एक मित्र कर रहे हैं और बड़े परिणाम हैं।

जो भी आपके भीतर खास लक्षण हो, उस पर दो काम करें। पहला काम तो यह है कि उसकी पूरी सजगता बढ़ाएं। क्योंकि कठिनाई यह है सदा कि जो हमारा खास लक्षण होता है, उसे हम सबसे ज्यादा छिपा कर रखते हैं। जैसे क्रोधी आदमी सबसे ज्यादा अपने क्रोध को छिपा कर रखता है, क्योंकि वह डरा रहता है, कहीं भी निकल न जाए। वह उसको छिपाए रखता है। वह हजार तरह के झूठ खड़े करता है अपने आस-पास, ताकि क्रोध का दूसरों को भी पता न चले, उसको खुद को भी पता न चले। और अगर पता न चले, तो उसे बदला नहीं जा सकता।

तो पहले तो सारे के सारे पर्दे हटा लें और अपनी स्थिति को ठीक समझ लें कि यह मेरी खास लक्षणा है।

दूसरा, इसके साथ सजग होना शुरू करें। जैसे क्रोध आ गया। तो जब क्रोध आता है तो तत्काल हमें ख्याल आता है उस आदमी का, जिसने क्रोध दिलवाया; उसका ख्याल नहीं आता, जिसे क्रोध आया। अगर आपने मुझे क्रोध दिलवाया, तो मैं आपके चिंतन में पड़ जाता हूं, अपने को बिल्कुल भूल जाता हूं; जब कि असली चीज मैं हूं, जिसे क्रोध आया। जिसने क्रोध दिलवाया, उसने तो सिर्फ निमित्त का काम किया। वह तो गया। वह तो जरा सी चिनगारी फेंक गया और मेरी बारूद जल रही है। और उसकी चिनगारी बेकार हो जाती, अगर मेरे पास बारूद न होती। लेकिन मैं अपने जलते हुए बारूद के भवन को नहीं देखता, अब मैं उसकी चिनगारी को देखता हूं। और सोचता हूं कि जितनी आग मुझमें जल रही है, वह आदमी फेंक गया।

वह आदमी नहीं फेंक गया इतनी आग, वह तो चिनगारी ही फेंक गया। यह आग तो मेरी बारूद है, जो जल कर इतना बड़ा रूप ले रही है। यह इतनी आग वह आदमी नहीं फेंक गया। उसको पता भी नहीं होगा। हो सकता है, अनजाने ही फेंक गया हो। उसको ख्याल भी न हो कि आप जल रहे हैं घर में।

आप इस सारी आग को उस आदमी पर आरोपित करते हैं। और इसलिए जब आप उस पर नाराज होते हैं, तो उसकी समझ में भी नहीं आता कि इतनी तो कोई बात भी न थी। उसकी भी समझ में नहीं आता, यह इसलिए हमेशा कठिनाई होती है। क्योंकि आप जितनी आरोपित करते हैं, वह आपकी है।

इसलिए वह भी चौंकता है कि इतनी तो कोई बात भी नहीं कही थी आपसे, आप इतने पागल हुए जा रहे हैं! उसकी समझ के बाहर होता है। जिस पर भी आपने कभी क्रोध किया है, आपको पता होगा कि उसकी समझ के बाहर पड़ा है कि इतने क्रोध की तो कोई बात ही न थी। आप पर भी किसी ने क्रोध किया है, तो आप भी यही सोचते हैं कि इतनी तो बात ही न थी। बात जरा सी थी, आप इतना बड़ा कर रहे हैं। लेकिन एक नेचुरल फैलेसी है, एक सहज भ्रांति है, और वह यह है कि जितनी आग मुझमें जलती है, मैं समझता हूं आपने जलाई। आप चिनगारी फेंकते हैं, बारूद मेरे पास तैयार है। वह बारूद पकड़ लेती है आग को। और कितनी बढ़ जाएगी, कहना कठिन है।

और जब भी हमें क्रोध पकड़ता है, तो हमारा ध्यान उस पर होता है, जिसने क्रोध शुरू करवाया है। अगर आप ऐसा ही ध्यान रखेंगे, तो क्रोध के कभी बाहर न हो सकेंगे। जब कोई क्रोध करवाए, तब उसे तत्काल भूल जाइए; और अब इसका स्मरण करिए, जिसको क्रोध हो रहा है। और ध्यान रखिए, जिसने क्रोध करवाया है, उसका आप कितना ही चिंतन करिए, आप उसमें कोई फर्क न करवा पाएंगे। फर्क कुछ भी हो सकता है, तो इसमें हो सकता है जिसे क्रोध हुआ है।

तो जब क्रोध पकड़े, लोभ पकड़े, कामवासना पकड़े--जब कुछ भी पकड़े--तो तत्काल आब्जेक्ट को छोड़ दें। एक ó ी को देख कर मन कामातुर हो गया है, एक पुरुष को देख कर मन कामातुर हो गया है; ध्यान रखिए, वही घटना घट रही है, उसने तो सिर्फ चिनगारी दी, शायद उसे पता भी न हो। और क्रोध के मामले में तो थोड़ी चेष्टा भी होती है दूसरे की तरफ से, काम के मामले में तो अक्सर चेष्टा भी नहीं होती दूसरे की तरफ से। एक ó ी रास्ते से गुजर रही है, और आपके मन में काम पकड़ गया। तब भी आप उसका ही चिंतन करने में लग जाते हैं। तब भी आप नहीं देखते कि भीतर की ऊर्जा, जिसमें काम की लपट पकड़ रही है, वह क्या है? इस भांति हम चूक जाते हैं स्वयं को जानने से, स्वयं के निरीक्षण से। और स्वयं का निरीक्षण न हो, तो जीवन में कोई रूपांतरण नहीं हो सकता।

तो जब काम पकड़े, तत्काल बाहर को भूल जाएं, आब्जेक्ट को भूल जाएं, विषय को भूल जाएं। जिसने काम पकड़ाया, क्रोध पकड़ाया, लोभ पकड़ाया, उसे तत्काल भूल जाएं। और तत्काल ध्यान करें भीतर, कि मेरे भीतर क्या हो रहा है? दबाएं न भीतर; जो हो रहा है, उसे पूरा होने दें। कमरा बंद कर लें। जो हो रहा है, उसे पूरा होने दें। उसको जितना साफ करके देख सकें, उतना बेहतर है।

क्रोध भीतर आ रहा है, तो चिल्लाएं, कूदें, फांदें, बकें, जो करना है, कमरा बंद कर लें। अपने पूरे पागलपन को पूरा अपने सामने करके देख लें। क्योंकि दूसरों ने तो कई बार आपका यह पागलपन देखा; आप ही बच गए हैं देखने से। दूसरे तो इसका काफी मजा ले चुके हैं। दूसरों को आपने काफी रस दिया। आप ही बच गए हैं इस घटना को देखने से। और आपको पता तब चलता है, जब यह सब घटना जा चुकी होती है, नाटक समाप्त

हो गया होता है। तब बैठे हुए अपने घर में, पीछे स्मृति में उसको देखते हैं। तब राख ही रह गई होती है; आग तो नहीं रहती।

और ध्यान रखिए, राख से आग का कोई भी पता नहीं चलता है। राख का कितना ही बड़ा ढेर घर में लगा हो, उससे आग के छोटे से अंगारे का भी पता नहीं चलता है। और जिस आदमी ने आग न देखी हो, वह राख को देख कर कोई निष्कर्ष ही नहीं ले सकता कि आग क्या है। कोई कनक्लूजन संभव नहीं है। कोई तर्कशाó राख से आग तक नहीं ले जा सकता कि आग क्या है। अनुमान भी नहीं लग सकता, इनफरेंस भी नहीं हो सकता। और आप जब भी अपने क्रोध को देखते हैं, तब राख की तरह देखते हैं। जब सब जा चुका तब राख का ढेर रह जाता है, आप बैठे उस पर पछता रहे हैं।

नहीं, उससे कोई फायदा न होगा। जब आग जलती है पूरी, तब उसे देखें। और उसे देखने में आसानी पड़ेगी, अगर उसको अभिव्यक्त करें। और ध्यान रखिए, जब आप दूसरे पर अभिव्यक्त करते हैं, तब आप पूरी अभिव्यक्ति कभी नहीं कर पाते। अगर मैं अपनी पत्नी पर नाराज होता हूं या पति पर नाराज होता हूं, या पिता पर या बेटे पर या भाई पर, तो लिमिटेशंस हैं नाराजगी के। क्योंकि कोई पत्नी इतनी नहीं है कि मैं पूरा क्रोध उस पर कर पाऊं। एक सीमा है। एक सीमा तक क्रोध करूंगा, बाकी पी जाऊंगा। पूरा तो नहीं कर सकता हूं। आज तक किसी ने भी पूरा क्रोध नहीं किया है। बाप भी जब छोटे से बेटे पर करता है--हालांकि बेटे की कोई सामथ्र्य नहीं, बाप चाहे तो उसकी गर्दन तोड़ दे--वह भी पूरा नहीं कर पाता। पच्चीस सीमाएं बीच में खड़ी हो जाती हैं। थोड़ा-बहुत कर पाते हैं; तो करने का मजा भी नहीं आ पाता, और पीड़ा भी आ जाती है। उसको देख भी नहीं पाते पूरा। इसलिए कल फिर करेंगे, परसों फिर करेंगे, और सदा अधूरा करेंगे।

अगर क्रोध को पूरा देखना हो, तो अकेले में करके ही पूरा देखा जा सकता है। तब कोई सीमा नहीं होती। इसलिए मैंने वह जो पिलो मेडिटेशन, वह जो तकिए पर ध्यान करने की प्रक्रिया कुछ मित्रों को करवाता हूं, वह इसलिए कि तकिए पर पूरा किया जा सकता है।

जिस मित्र का मैं कल कह रहा था, आज उसके साथी ने मुझे आकर खबर दी है कि आज तो चाकू निकाल कर उसने तकिए को चीर-फाड़ डाला है। यह तो मैंने कहा भी नहीं था। हमें एकदम हंसी आएगी कि तकिए को कोई चाकू से कैसे चीरेगा-फाड़ेगा? लेकिन जब जिंदा आदमी को चीर-फाड़ सकते हैं हम, तब हंसी नहीं आती, तो तकिए को चीरने-फाड़ने में कौन सी कठिनाई है? और जब एक आदमी जिंदा आदमी को भी चीरता-फाड़ता है, तब भी जो रस है वह चीरने-फाड़ने का है, आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। वह तकिए में भी उतना ही रस आ जाता है। और तकिए में रस ज्यादा आ जाता है, क्योंकि तकिए पर कोई भी सीमा बांधने की जरूरत नहीं है।

तो अपने कमरे में बंद हो जाएं और अपने मूल, जो आपकी बीमारी है, उसको जब प्रकट होने का मौका हो, तब उसे प्रकट करें। इसको मेडिटेशन समझें, इसको ध्यान समझें। उसे पूरा निकालें। उसको आपके रोएं-रोएं में प्रकट होने दें। चिल्लाएं, कूदें, फांदें, जो भी हो रहा है उसे होने दें। और पीछे से देखें, आपको हंसी भी आएगी। हैरानी भी होगी। यह मैं कर सकता हूं, यह जान कर भी चकित होंगे आप। मन को विस्मय भी पकड़ेगा कि यह मैं कैसे कर रहा हूं? और अकेले में? कोई होता, तब भी ठीक था।

एक-दो दफे तो आपको थोड़ी सी बेचैनी होगी, तीसरी दफे आप पूरी गति में आ जाएंगे और पूरे रस से कर पाएंगे। और जब आप पूरे रस से कर पाएंगे, तब आपको एक अदभुत अनुभव होगा कि आप कर भी रहे होंगे बाहर और बीच में कोई चेतना खड़ी होकर देखने भी लगेगी। दूसरे के साथ यह कभी होना मुश्किल है या बहुत

कठिन है। एकांत में यह सरलता से हो जाएगा। चारों तरफ क्रोध की लपटें जल रही होंगी, आप बीच में खड़े होकर अलग हो जाएंगे।

और एक दफा इस तरह अलग होकर अपने क्रोध को किसी ने देख लिया, एक दफा इस तरह खड़े होकर किसी ने अपनी कामवासना को देख लिया, लोभ को देख लिया, भय को देख लिया, तो उसके जीवन में एक ज्ञान की किरण फूटनी शुरू हो जाएगी। वह एक अनुभव को उपलब्ध हुआ। उसने अपनी एक ऊर्जा को पहचाना। और अब इस ऊर्जा के द्वारा उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। जिस ऊर्जा को हम पहचान लेते हैं, हम उसके मालिक हो जाते हैं। जिस शक्ति को हम जान लेते हैं, उसके हम मालिक हो जाते हैं। और जिस शक्ति को हम नहीं जानते, हम उसके गुलाम होते हैं।

तो आप तकिए को अपनी प्रेयसी भी समझ सकते हैं। आप तकिए को कोहिनूर का हीरा भी समझ सकते हैं। आप तकिए को अपना दुश्मन भी समझ सकते हैं, जिसके सामने आप थर-थर कांप रहे हैं और भयभीत हो रहे हैं। इससे कोई सवाल नहीं है कि आप क्या... । आपका जो लक्षण हो, उस लक्षण को पहचान लें।

और उसे पहचान लेने में कठिनाई नहीं है। क्योंकि वह चौबीस घंटे आपके पीछे लगा हुआ है। वह आप भलीभांति जानते हैं कि आपका मूल लक्षण क्या है। एक ही होता है एक आदमी में मूल लक्षण, बाकी सब चीजें उससे जुड़ी होती हैं। अगर उसमें कामवासना मूल है, तो क्रोध, लोभ सब सेकेंडरी होंगे। अगर वह लोभ भी करेगा, तो कामवासना की पूर्ति के लिए। अगर वह क्रोध भी करेगा, तो कामवासना की पूर्ति के लिए। अगर वह भयभीत भी होगा, तो कामवासना में कोई बाधा न पड़ जाए इसलिए। प्राइमरी, प्राथमिक कामवासना होगी, बाकी सब सेकेंडरी हो जाएंगे।

अगर क्रोध आपका मूल है, तो आप किसी को प्रेम भी करेंगे तो इसीलिए ताकि आप क्रोध कर पाएं। आपकी कामवासना सेकेंडरी हो जाएगी, नंबर दो की हो जाएगी। वैसा आदमी लोगों से प्रेम करेगा इसलिए कि उन पर क्रोध कर सके। पर उसका मूल क्रोध हो जाएगा। वैसा आदमी लोभ भी करेगा, पैसा भी कमाएगा तो इसीलिए, ताकि जब वह क्रोध करे तो उसके पास ताकत हो। यह उसे चाहे पता हो या न हो पता, उसके पास धन बढ़ता जाएगा, उसी मात्रा में उसकी क्रोध की क्षमता बढ़ती जाएगी। और जिन-जिन के ऊपर उसके धन की ताकत होगी, उनकी गर्दन वह बिल्कुल दबा देगा। वैसा आदमी अगर पद की इच्छा करेगा तो इसीलिए कि पद पर पहुंच कर वह क्रोध को पूरी तरह कर पाए। कई बार दिखाई नहीं पड़ता कि क्रोध कितना छिपा रहता है।

विंस्टन चर्चिल की एक लड़की ने शादी की एक ऐसे युवक से, जिसको चर्चिल नहीं चाहता था कि वह शादी करे। बहुत क्रोध था मन में, पी गया। शादी हो गई। उस युवक को कभी उसने कहा भी नहीं कि मेरे मन में क्रोध है। उस बेचारे को कुछ पता भी नहीं। वह चर्चिल को पापा-पापा कह कर बात करता रहता। लेकिन चर्चिल को जब भी वह पापा कहता था, तो आग लग जाती थी। यह आदमी उसे पापा कहे, उसे बिल्कुल बरदाश्त के बाहर था।

दूसरे महायुद्ध के बाद एक दिन वह आया हुआ था दामाद। और उसने चर्चिल से पूछा कि पापा, आप इस समय दुनिया का सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ किसको मानते हैं?

फिर उसे उसने पापा कहा, तो उसे बहुत बेचैनी हो गई। उसने कहा कि मैं मुसोलिनी को सबसे बड़ा राजनीतिज्ञ मानता हूं। तो जरा उसका दामाद हैरान हुआ। क्योंकि चर्चिल अपने दुश्मन को और मुसोलिनी को कहेगा! और जब कि दुनिया में बड़े लोग थे। रूजवेल्ट था और स्टैलिन थे और हिटलर थे; तब मुसोलिनी पर एकदम से नजर जाएगी उसकी! और चर्चिल खुद कोई मुसोलिनी से कम आदमी नहीं था, ज्यादा ही आदमी था।

तो उसने पूछा, मैं समझा नहीं कि आप मुसोलिनी को क्यों... ?

तब चर्चिल एकदम चौंका, पर उसने कहा कि जाने भी दो। पर उसके दामाद ने जिद्द पकड़ी कि नहीं, मुझे बताइए कि क्यों? तो उसने कहा, अब तू नहीं मानता तो मैं कहता हूं। मैं मुसोलिनी को इसलिए बड़ा राजनीतिज्ञ कह पाया, क्योंकि उसमें इतनी हिम्मत थी कि अपने दामाद को गोली मार दे। और कोई कारण नहीं है उसमें। उस वक्त मेरे मन में तुझे गोली मारने का एकदम हो रहा था, कि पापा जब तू कहता है, पापा, तब मुझे लगता है कि गोली मार दूं। लेकिन आई हैव नाॅट दि गट्स। मुसोलिनी में गट्स थे, अपने दामाद को उसने गोली मार दी। इसलिए उसको मैं बड़ा भारी आदमी मानता हूं। मुझमें उतने गट्स नहीं हैं।

हमारे दिमाग में पर्तें हैं। छिपाए चले जाते हैं, दबाए चले जाते हैं। कभी उखड़ आती हैं, कभी निकल आती हैं, कभी दिखाई पड़ जाती हैं। कभी जीवन भर भी हम छिपाए चले जाते हैं। कई दफे ऐसा भी होता है कि आदमी समझता है कुछ और मुझमें ज्यादा है, कुछ होता और ज्यादा है।

तो पहचान पहली तो जरूरी यह है कि अपना थोड़ा निरीक्षण करें। एक महीने डायरी रखें। रोज लिखें कि आप रोज क्या कर रहे हैं सर्वाधिक?

तीन बातों से पहचान करें। सर्वाधिक पुनरावृत्ति किस वृत्ति की होती है? लोभ की, काम की, भय की, क्रोध की, किसकी? सर्वाधिक आवृत्ति किसकी होती है चौबीस घंटे में?

फिर जिस चीज की आवृत्ति सर्वाधिक होती है, साथ में यह भी देखेंः उसमें, उसकी आवृत्ति में सर्वाधिक रस आता है? और यह भी देखें कि रस के होने के दो ढंग हैंः उसमें मजा भी आ सकता है, उसमें पश्चात्ताप भी हो सकता है। लेकिन दोनों हालत में रस होता है।

फिर तीसरी बात यह देखें कि वह वृत्ति अगर आपसे बिल्कुल काट दी जाए, तो आपका व्यक्तित्व जैसा पुराना था, वैसा ही रहेगा कि बिल्कुल बदल जाएगा। क्योंकि जो आपका चीफ करेक्टर है, उसके बदलने से आपका पूरा व्यक्तित्व दूसरा हो जाएगा। आप सोच ही न पाएंगे कि मैं कैसा होऊंगा, अगर आप उस हिस्से को काट दें।

एक पंद्रह दिन डायरी रखें। और पंद्रह दिन पूरे चौबीस घंटे का हिसाब-किताब रख कर निकालें नतीजा कि क्या है बात। एक पर आप पहुंच जाएंगे, जो प्राइमरी होगा। और तब उस आधारभूत वृत्ति के प्रति सजग हों। और जब भी वह वृत्ति जगे, तब एकांत में उसकी अभिव्यक्ति का दर्शन करें, साक्षी बनें। उसकी कैथार्सिस भी हो जाएगी, उसका रेचन भी होगा, उसकी पहचान भी बढ़ेगी। और आप अपने संबंध में ज्यादा मालिक अनुभव करने लगेंगे।

इस प्रक्रिया से गुजरने के लिए अगर लाओत्से की बात ख्याल में रखेंगे, तो और सरलता हो जाएगी। अगर आप क्रोध को सिर्फ इसलिए जानना चाहते हैं कि क्रोध से मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, तो आपको जानने में बहुत कठिनाई पड़ेगी। क्योंकि मुक्त होने का जो भाव है, उसमें आपने भेद निर्मित कर लिया। आप मानने लगे कि अक्रोध बहुत अच्छी चीज है, क्रोध बुरी चीज है; काम बुरी चीज है, अकाम अच्छी चीज है; लोभ बुरी चीज है, अलोभ अच्छी चीज है; अगर आपने ऐसा भेद खड़ा किया, तो आपको जानने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। और अगर आप किसी तरह पार भी हुए, तो वह पार होना सप्रेशन ही होगा, दमन ही होगा।

अगर लाओत्से की बात ख्याल में रखें, क्रोध से अक्रोध को जोड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। यह भी सोचने की कोई जरूरत नहीं है कि क्रोध बुरा है। अभी तो हमें यही पता नहीं कि क्रोध क्या है। बुरे का निर्णय

हम क्यों करें? बुरे का निर्णय उधार है। दूसरे लोग कहते हैं कि क्रोध बुरा है, सुन लिया है। हम भी कहते हैं, क्रोध बुरा है; और किए चले जाते हैं।

नहीं, निर्णय छोड़ें। क्रोध क्या है, इसे ही जानें। अभी जल्दी न करें कि बुरा है, अच्छा है। कौन जाने? बिल्कुल निष्पक्ष होकर क्रोध को पता लगाने जाएं। अगर आप निष्पक्ष होकर गए, तो क्रोध अपने भीतर दबी हुई सारी पर्तों को आपके सामने प्रकट कर पाएगा। अगर आप कह कर गए, मान कर कि बुरा है, तो उसके गहरे हिस्से दबे रह जाएंगे, वे आपके सामने प्रकट न होंगे। उनके प्रकट होने के लिए आपके चित्त का बिल्कुल ही निष्पक्ष होना जरूरी है। क्योंकि आपने दबाया ही इसलिए है कि बुरा है; इसीलिए तो दबाया। अभी भी मान रहे हैं कि बुरा है, तो दबाए चले जाएंगे। इसलिए एक बड़ी अदभुत और दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटती है कि जो लोग क्रोध से जितना बचना चाहते हैं, उतने क्रोधी हो जाते हैं। क्योंकि बचने के लिए दबाना पड़ता है। और मुक्त होने के लिए जानना जरूरी है। और जानना दबाए हुए चित्त में असंभव है।

निष्पक्ष होकर जाएं। इतना ही जान कर जाएं, आकाश में जैसे बिजली कौंधती है, न बुरी, न भली; बादल गरजते हैं, न बुरे, न भले; ऐसे ही भीतर क्रोध की चमक है, लोभ की धाराएं बहती हैं, कामवासना की ऊर्जा सरकती है; ये सब है। ये शक्तियां हैं, इन्हें देखने जाएं, निष्पक्ष मन से। कोई दुर्भाव लेकर नहीं, कोई निर्णय लेकर नहीं। कभी भी कनक्लूजन से शुरू न करें, नहीं तो आप कनक्लूजन तक कभी न पहुंचेंगे। कभी भी निष्कर्ष से शुरू न करें, निष्कर्ष को अंत में आने दें।

नहीं तो आपकी हालत वैसी हो जाती है, जैसे स्कूल का बच्चा किताब को उलटा कर पहले पीछे देख लेता है, उत्तर क्या है। और एक दफा उत्तर दिख गया तो बहुत मुसीबत हो जाती है।

उत्तर दिखने की जरूरत ही नहीं है। आपको तो प्रोसेस करना चाहिए, प्रक्रिया करनी चाहिए। उत्तर आएगा। उत्तर पहले देख लिया, तो फिर उत्तर लाने की इतनी जल्दी हो जाती है कि प्रक्रिया करने की सुविधा नहीं रहती। और हम सब उत्तर लिए बैठे हैं। हम सबने किताब उलटा कर देख ली है। या हमारे सब बाप-दादे उलटी किताब ही हमारे हाथ में दे देते हैं; कि पहले उत्तर मिल जाता है, पीछे प्रोसेस का पता चलता है। और कभी प्रोसेस का पता ही नहीं चलता, क्योंकि जिनको उत्तर पता है, वे सोचते हैं, जब उत्तर ही पता है तो प्रोसेस का क्या करना?

आपको पता ही है कि क्रोध बुरा है, आपको पता ही है कि कामवासना बुरी है।

अभी आठ दिन पहले एक मित्र आए। उन्होंने कहा कि मैंने आपको अभी गीता में सुना, तो मुझे बहुत अच्छा लगा, इसलिए आया हूं। पहले आपको मैंने कामवासना के ऊपर सुना, तो मुझे इतना बुरा लगा कि मैंने आना छोड़ दिया था। मैंने आना छोड़ दिया था बिल्कुल। गीता सुनी तो बहुत अच्छी लगी, तो मैं आया हूं।

मैंने कहा, कहिए, क्या तकलीफ है?

तो तकलीफ यही है कि कामवासना मन को बुरा सताती है। तो मैंने कहा, मैं आपसे बात न करूंगा, नहीं तो आपको फिर बुरा लगेगा। आप गीता पढ़ो और अपना रास्ता निकालो।

कैसे अदभुत लोग हो! मैंने कहा, दरवाजे के बिल्कुल बाहर हो जाओ और दुबारा यहां मुझसे कामवासना के संबंध में पूछने मत आना। गीता के संबंध में कुछ पूछना हो तो आना। क्योंकि जो अच्छा लगता है, वही पूछो।

कामवासना है समस्या, पर उसके संबंध में जानने में भी डर लगता है। इसलिए जो जनाए, वह दुश्मन मालूम पड़ता है। गीता से तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मजे से सुनो और घर चले जाओ। वह जिंदगी को कहीं छूती नहीं। उससे अपना कोई लेना-देना नहीं। बाहर हम खड़े रहते हैं, गीता की धारा अलग बह जाती है।

मैंने कहा कि तुम आदमी कैसे हो? और यह एक आदमी का मामला नहीं है। न मालूम कितने लोगों को मैं जानता हूं, जिनका प्रश्न वह... । लेकिन इसकी स्वीकृति भी तो नहीं होनी चाहिए मन में कि यह मेरा प्रश्न है।

इसको वह मुझसे कहने लगे कि यह प्राइवेट मैं आपसे पूछता हूं, निजी आपसे पूछता हूं, इसको पब्लिक में कहने की कोई जरूरत नहीं है।

मैंने कहा, जिस तरह तुम्हें निजी यह सवाल है, ऐसा सबका यह निजी सवाल है। और सभी पब्लिक में गीता सुनना चाहते हैं। तो निजी मैं एक-एक आदमी को क्या और कहां बताता फिरूंगा? और जो असली तुम्हारी समस्या है, वह तुम उठाने तक में डरते हो। और जो तुम्हारी समस्या नहीं है, उसको सुनने में मजा लेते हो। तो हजारों साल बीत जाते हैं और आदमी वैसे का वैसा बना रहता है।

अपनी समस्या को पकड़ें, निष्कर्ष पहले से लेकर मत जाएं। निष्कर्ष से जो शुरू करेगा, वह निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुंचता। समस्या से शुरू करें। निष्कर्ष हमें पता नहीं है, यह मान कर शुरू करें। हमें मालूम नहीं कि क्रोध अच्छा है कि बुरा है, सुंदर है कि असुंदर है--है। अब हम इसे पूरा जान लें कि क्या है?

और बड़े मजे की बात यह है, जो पूरा जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है। और जो मुक्त होना चाहता है, वह पूरा जान नहीं पाता। यह जो कठिनाई है, यह ख्याल में ले लें। जो मुक्त होना चाहता है, उसने निष्कर्ष पहले ले लिया कि बुरा है। अब वह प्रक्रिया से गुजरने का सवाल ही नहीं। वह कहता है, वह तो मुझे मालूम ही है कि बुरा है; अब इतना ही बता दीजिए कि मुक्त कैसे हो जाऊं! और मुक्त होने की एक ही प्रक्रिया है, पूर्ण बोध। और वह कहता है कि मुझे तो बोध है ही कि बुरा है। तब वह पूर्ण बोध की प्रक्रिया से नहीं गुजरता।

तो आप प्रक्रिया से गुजरें, उसका पूर्ण बोध लें। दूसरे के उधार निष्कर्ष से बचें। बुद्ध कहते हों, महावीर कहते हों--कोई भी कहता हो--मैं कहता हूं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि बुरा है या भला है। आप निष्कर्ष न लें। आप बिना निष्कर्ष के, निष्पक्ष, अनप्रेज्युडिस्ड, बिना किसी धारणा के भीतर प्रवेश कर जाएं। और देखें कि क्या है? क्या है क्रोध? क्रोध से ही जानें कि क्रोध क्या है; आप पूर्व-धारणा को उस पर न थोपें। और जिस दिन आप क्रोध को उसकी परिपूर्ण नग्नता में, उसकी परिपूर्ण विकरालता में, उसकी परिपूर्ण आग में और जहर में जान लेंगे, उसी दिन आप पाएंगे, आप अचानक बाहर हो गए हैं, क्रोध है ही नहीं।

और ऐसा किसी भी वृत्ति के साथ किया जा सकता है। यह वृत्ति से कोई फर्क नहीं पड़ता, प्रक्रिया एक ही होगी। बीमारी एक ही है, उसके नाम भर अलग हैं।

छटवां प्रवचन

विपरीत स्वरों का संगीत

Chapter 2 : Sutra 2

So it is that existence and non–existence give birth
the one to the idea of the other; that difficulty
and ease produce the one the idea of the other;
that length and shortness fashion out the one the
figure of the other; that the idea of height and
lowness arise from the contrast of the one with
the other; that the musical notes and tones
become harmonious through the relationship of
one with another; and that being before and
behind give the idea of one following another.

अध्याय 2 : सूत्र 2

इस प्रकार अस्तित्व और अनस्तित्व मिल कर एक-दूसरे के
भाव को जन्म देते हैं; असरल और सरल एक-दूसरे के भाव
की सृष्टि करते हैं; विस्तार और संक्षेप एक-दूसरे की आकृति
का निर्माण करते हैं; उच्चता और नीचता का भाव एक-दूसरे
के विरोध पर अवलंबित हैं; संगीत के स्वर और ध्वनियां परस्पर संबद्ध होकर ही समस्वर बनती हैं, और पूर्वगमन एवं अनुगमन से ही क्रम के भाव की उत्पत्ति होती है।

जो विरोधी है, जो विपरीत है, वही संगी भी है, वही साथी भी। जो शत्रु है, जो दुश्मन है, वही मित्र भी है, वही सगा भी।

लाओत्से विरोधी को विरोधी नहीं देखता, दूर को दूर नहीं मानता, विपरीत को विपरीत नहीं। लाओत्से का कहना है, सब दूरियां निकटता से ही तौली जाती हैं। और सब निकटताएं दूरियों का ही छोटा रूप हैं। शुभ्र रेखा खींचनी हो, तो अंधेरी, काली पृष्ठभूमि की जरूरत पड़ती है।

इसलिए जो कहता है कि सफेद काले के विरोध में है, वह गलत कहता है; क्योंकि सफेद को उभार कर दिखाने के लिए काले का ही उपयोग करना पड़ता है। जो कहता है कि सुबह रात को नष्ट कर देती है, वह भ्रांत है; सच तो यही है कि सुबह रात से ही जन्म पाती है।

जिन चीजों को हम विरोध में देखते हैं, लाओत्से उन्हें संयोग में देखता है। पूरा गेस्टाल्ट, देखने का ढंग लाओत्से का, हमसे विपरीत है। हम जहां चीजों में तनाव देखते हैं, वहां लाओत्से आकर्षण देखता है। जहां हम देखते हैं सुस्पष्ट रूप से कि कोई हमें मिटाने का उपाय कर रहा है, वहां लाओत्से कहता है, उसके बिना हम हो ही न सकेंगे। वह जो हमें मिटाने का उपाय कर रहा है, उसके बिना हमारे होने की कोई संभावना नहीं है। इसे वह उदाहरण के लिए एक-एक चीज में लेता है।

वह कहता है, अगर दो न होंगे, तो एक के होने की कोई जगह न रह जाएगी। गणित का एक उदाहरण वह ले रहा है। गणितज्ञ स्वीकार करते हैं कि अगर हम एक की संख्या को बचाना चाहें, तो हमें दो के बाद की सारी संख्याएं बचानी पड़ेंगी। अगर हम दो के बाद की सारी संख्याओं को मिटा डालें, तो एक में कोई भी अर्थ न रह जाएगा। एक में जो भी अर्थ है, वह दो के कारण ही है।

सोचें हम, अगर एक अकेला आंकड़ा हो हमारे पास, तो उसमें क्या अर्थ होगा? व्हाट इट विल मीन? उसमें कोई भी अर्थ नहीं होगा। वह अर्थहीन होगा। उसमें जो अर्थ आता है, वह तो दो-तीन-चार, वह नौ तक जो फैला हुआ विस्तार है, उसी से आता है। अगर हम एक के बाद की सारी संख्याएं हटा दें, तो एक अर्थहीन हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, एक दो से अलग नहीं है, दो का ही हिस्सा है। वह कहता है, अगर हम ऊंचाई को हटा दें, तो नीचाई क्या होगी? अगर हम पर्वत-शिखरों को मिटा दें, तो खाइयां कहां बचेंगी? कैसे बचेंगी? यद्यपि खाइयां विपरीत मालूम पड़ती हैं पर्वत के शिखर से। पर्वत का शिखर मालूम होता है आकाश को छूता हुआ; खाइयां मालूम होती हैं पाताल को छूती हुई। पर लाओत्से कहता है, खाइयां बनती हैं पर्वत के निकट पर्वत के ही कारण। असल में, खाई पर्वत के शिखर का ही दूसरा हिस्सा है, उसका ही दूसरा पहलू है। एक को हम मिटाएंगे, दूसरा मिट जाएगा। अगर हम शिखर बचाना चाहें, खाइयां मिटाना चाहें, तो शिखर न बचेंगे।

हम सदा ऐसा ही देखते हैं कि खाई उलटी है, शिखर उलटा है।

लाओत्से कहता है, खाई ही शिखर का आधार है; शिखर ही खाई का जन्मदाता है। वे दोनों संयुक्त हैं; उन्हें अलग करने का उपाय नहीं है। लाओत्से कहता है, जिसे हम अलग न कर सकें, उसे विपरीत क्यों कहें? जिसे हम अलग न कर सकें, उसे विपरीत क्यों कहें?

नेपोलियन का एक जन्मजात शत्रु मर गया था। तो नेपोलियन की आंख में आंसू आ गए। पास कोई मित्र बैठा था, उसने पूछा कि आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपका जन्मजात शत्रु मर गया!

नेपोलियन ने कहा, यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था। लेकिन आज जब मेरा जन्मजात शत्रु मर गया है, जिससे मेरी सदा की शत्रुता थी और जिससे कभी मित्रता की कोई आशा न थी, तो आज जब वह मर गया है, तब मैं पाता हूं कि मेरा कुछ हिस्सा कम हो गया। अब मैं वही कभी न हो सकूंगा, जो उसकी मौजूदगी में था।

नेपोलियन को यह जो प्रतीति है, यह लाओत्से की धारणा को स्पष्ट करेगी। नेपोलियन कहता है, मेरे शत्रु के मर जाने से मुझमें भी कुछ मर गया, जो उसकी बिना मौजूदगी के अब कभी न हो सकेगा। मैं कुछ कम हो गया। मुझमें कुछ था, जो उसी की वजह से था। आज वह नहीं है, तो मेरे भीतर भी वह बात नहीं रह गई।

तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि शत्रु भी आपको बनाते हैं, मित्र ही नहीं। और शत्रुओं के बिना भी आप कम हो जाएंगे, खाली हो जाएंगे।

लाओत्से कहता है, जगत में विपरीत कुछ भी नहीं है; विपरीत केवल दिखाई पड़ता है।

बीमारी स्वास्थ्य के विपरीत नहीं है। और अगर हम मेडिकल साइंस से पूछें, तो वह भी कहेगी कि बीमारी भी स्वास्थ्य का ही हिस्सा है। बीमार होने के लिए भी स्वस्थ होना जरूरी है। हम स्वस्थ हुए बिना बीमार भी नहीं हो सकते। इसलिए मरा हुआ आदमी बीमार नहीं हो सकता। और इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि एक उम्र के बाद मौत भी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि मरने के लिए भी जितना स्वास्थ्य चाहिए, अगर उतना भी आदमी के पास न बचा हो, तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। अक्सर अस्सी और नब्बे के पार मौत बड़ी सरक-सरक कर आती है।

लुकमान ने कहा है कि अगर आदमी कभी बीमार न पड़ा हो, तो पहली ही बीमारी में समाप्त हो जाता है। क्योंकि वह इतना जीवंत होता है कि पहली बीमारी ही मौत बन सकती है। जो आदमी बहुत-बहुत बीमार पड़ा हो, वह इतनी जल्दी नहीं मरता है। मरने के लिए, तत्क्षण मर जाने के लिए, बहुत जीवंत स्वास्थ्य चाहिए।

ये उलटी बातें दिखाई पड़ती हैं। हम तो स्वास्थ्य के विपरीत देखते हैं बीमारी को। लेकिन अगर हम भीतर से भी देखें, तो भी हमें पता चलेगा कि बीमारी स्वास्थ्य की रक्षा का उपाय है। जब आप बीमार होते हैं, तो आपका शरीर स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जो कठिन चेष्टा कर रहा है, वही आपकी बीमारी है। एक आदमी को बुखार आ गया है। बुखार कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि शरीर स्वस्थ रहने की इतनी चेष्टा कर रहा है कि उत्तप्त हो गया है, गर्म हो गया है; इतना लड़ रहा है स्वस्थ होने के लिए कि बीमार हो गया है।

अस्तित्व में बीमारी और स्वास्थ्य एक ही चीज के दो हिस्से हैं। और जितने भी विरोध हैं, जितनी भी विपरीतताएं हैं, लाओत्से के हिसाब से वे कोई भी विपरीत नहीं हैं। अगर कोई आदमी सोचता हो कि अपमानित मैं कभी न होऊं, तो वह ध्यान रखे, वह सम्मानित कभी न हो सकेगा। जिसे सम्मानित होना है, उसे अपमानित होने की तैयारी रखनी पड़ती है। और जो सम्मानित होता है, वह बहुत तरह के अपमान से गुजर कर ही हो पाता है। तो लाओत्से कहता है कि अगर किसी को अपमानित न होना हो, तो उसे एक काम करना चाहिए, सम्मानित होने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। फिर उसे कोई अपमानित न कर सकेगा।

लाओत्से ने कहा है कि मैं सदा वहां बैठा, जहां से मुझे कोई उठा न सकता था। मैं आखिरी जगह बैठा; जहां लोग जूते उतारते थे, वहां मैं बैठा। क्योंकि कोई अगर मुझे उठा कर भी फेंकता, तो उससे और ज्यादा फेंकने को कोई जगह न थी। मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका है, लाओत्से ने कहा है, क्योंकि मैंने कभी सम्मान नहीं चाहा। सम्मान चाहा कि अपमान आएगा। अपमान की तैयारी न हो, तो सम्मान का कोई उपाय नहीं है। जो ऊंचा होना चाहेगा, वह नीचे गिरेगा। और जिसे नीचे गिरने में डर हो, उसे ऊंचे उठने की कोशिश में नहीं पड़ना चाहिए। और जिसे नीचे गिरने की हिम्मत हो, वह मजे से ऊपर उठ सकता है।

लाओत्से यह कह रहा है कि वह जो विपरीत है, उससे हम बचना चाहते हैं, तो हम भूल में पड़ेंगे, तो हम कठिनाई में पड़ जाएंगे। या तो दोनों से बच जाओ, या दोनों की तैयारी हो। अस्तित्व द्वैत है। जिस अस्तित्व को हम जानते हैं, जहां हम जीते हैं, जो हमारे मन का जगत है, वह द्वैत है। वहां प्रत्येक चीज ऐसे ही सम्हाली गई है, जैसे कोई आर्किटेक्ट किसी दरवाजे पर आर्क बनाता है। असल में, आर्किटेक्ट का नाम ही आर्क बनाने से शुरू हुआ। जो आर्क बना सकता है, वही आर्किटेक्ट है। दरवाजे पर जो आर्क होती है, उसकी कला सिर्फ इतनी है कि हम उसमें विपरीत ईंटें लगा देते हैं। गोल--आधी ईंटें एक तरफ रुख; आधी ईंटें दूसरी तरफ रुख। कुछ और नहीं होता। लेकिन विपरीत ईंटें बड़े से बड़े भवन को सम्हाल लेती हैं ऊपर। विपरीत ईंटें एक-दूसरे को दबाती हैं, एक-दूसरे से संघर्षरत हो जाती हैं। उनके संघर्ष में शक्ति उत्पन्न होती है; वही शक्ति पूरे भवन को सम्हाल लेती है।

कोई सोच सकता है कि जब विपरीत ईंटों में इतनी शक्ति है, तो हम एक ही रुख वाली, एक ही तरफ को झुकी हुई ईंटें लगा दें तो और भी अच्छा होगा। लेकिन तब आर्क नहीं बनेगा और भवन उठेगा नहीं। विपरीत ईंटों से बनता है तोरण-द्वार। फिर कितनी ही बड़ी भवन की क्षमता और शक्ति और वजन को उठाया जा सकता है।

पूरे जीवन का द्वार, पूरे जीवन का आधार विपरीत पर है। जहां भी कोई चीज है, तत्काल उसको सम्हालने वाली विपरीत चीज वहां खड़ी है। चाहे स्त्री हो और पुरुष; चाहे ऋण विद्युत हो और धन विद्युत; चाहे आकाश हो और पृथ्वी; चाहे अग्नि हो या जल--चारों तरफ जीवन का सारा आयोजन विपरीत को एक-दूसरे के विपरीत खड़ा करके, सहारा देकर निर्माण का है। विपरीत सहयोगी है। वे जो ईंटें उलटी लगी हैं, दुश्मन नहीं हैं, वे मित्र हैं। उनकी विपरीतता ही आधार है।

इसलिए लाओत्से कुछ उदाहरण लेता है। वह कहता है, सो इट इ.ज दैट एक्झिस्टेंस एंड नॉन-एक्झिस्टेंस गिव बर्थ दि वन टु दि आइडिया ऑफ दि अदर। अस्तित्व अनस्तित्व का ख्याल देता है; अनस्तित्व अस्तित्व का ख्याल देता है। ऐसा समझें, जीवन मृत्यु का ख्याल देती है, मृत्यु जीवन का ख्याल। न तो हम सोच सकते हैं, अस्तित्व कभी ऐसा होगा जब अनस्तित्व न रह जाए। न हम सोच सकते हैं कि जीवन कभी ऐसा होगा कि मृत्यु न रह जाए। जीवन होगा तो मृत्यु होगी ही। मृत्यु के बिना जीवन के होने का कोई भी उपाय नहीं।

यह लाओत्से क्यों कहता है? यह इसलिए कहता है कि अगर यह समझ में आ जाए, तो आपके मन में एक अपूर्व स्वीकृति का भाव आ जाएगा। तब आप मृत्यु से भयभीत न रहेंगे। तब आप जानेंगे, वह जीवन का अनिवार्य अंग है। तब मृत्यु को भी स्वीकार और स्वागत करने की क्षमता होगी। तब आप जानेंगे, जब जीवन को चाहा, तभी मृत्यु भी चाह ली गई है। जब मैंने जीवन की तरफ पैर उठाए, तब मैं मृत्यु की तरफ चला ही गया हूं। तब आप जानेंगे कि अकेले जीवन को बचाने की बात मूढ़तापूर्ण है, स्टुपिड है। जीवन बचेगा ही मृत्यु के साथ। अगर मैं चाहता हूं जीवन, तो मृत्यु को भी चाहूं। और अगर मैं नहीं चाहता हूं मृत्यु को, तो जीवन को भी न चाहूं।

और दोनों ही स्थितियों में अपूर्व ज्ञान उत्पन्न होता है। या तो कोई व्यक्ति जीवन और मृत्यु को दोनों ही चाहना छोड़ दे, तो भी परम वीतरागता को उपलब्ध हो जाता है। और या जीवन और मृत्यु को एक साथ चाह ले और भेंट कर ले, तो भी परम वीतरागता को उपलब्ध हो जाता है। या तो द्वंद्व छोड़ दिया जाए, या द्वंद्व पूरा का पूरा अंगीकार कर लिया जाए, तो आप द्वंद्व के बाहर हो जाते हैं।

लेकिन हमारा मन ऐसा होता है, एक को बचा लें और दूसरे को छोड़ दें। मन कहता है, जीवन बचाने जैसा है, मृत्यु छोड़ देने जैसी है। मन कहता है, प्रेम बचाने जैसा है, घृणा छोड़ देने जैसी है। मन कहता है, मित्र बच जाएं, शत्रु छूट जाएं। मन कहता है, सम्मान मिले, अपमान न मिले। मन कहता है, स्वास्थ्य तो हो, बीमारी कभी न आए। मन कहता है, जवानी तो हो, बुढ़ापा न आए। मन कहता है, सुख तो बचे, दुख से बचना हो जाए।

और जब मन ऐसे चुनाव करता है, तभी जीवन एक संकट और एक चिंता और एक व्यर्थ का तनाव हो जाता है। इस दो में से एक को चुनना ही दुख है। या तो दोनों को छोड़ दें या दोनों को स्वीकार कर लें, तो परम आनंद की और परम तृप्ति की अवस्था पैदा होती है।

लाओत्से यह दिखाना चाहता है कि तुम चाहे कुछ भी करो, चाहे तुम पकड़ो, चाहे तुम छोड़ो, द्वंद्व को पृथक-पृथक नहीं किया जा सकता। वे संयुक्त हैं। संयुक्त भी हम कहते हैं भाषा में, वे एक ही हैं। वे एक ही चीज के दो छोर हैं। ऐसा ही, जैसे कोई आदमी सोच ले कि श्वास मैं भीतर तो ले जाऊं, लेकिन बाहर न निकालूं। तो

वह आदमी मरेगा। क्योंकि जिसे हम बाहर की श्वास कहते हैं, बाहर जाने वाली श्वास, वह और भीतर जाने वाली श्वास एक ही श्वास के दो नाम हैं। या तो दोनों को ही छोड़ दो, या दोनों को बचा लो। एक को बचाने और एक को छोड़ने की सुविधा नहीं है। लाओत्से ये सारे उदाहरण इसलिए लेता है।

वह कहता है, "अस्तित्व, अनस्तित्व मिल कर एक-दूसरे के भाव को जन्म देते हैं।"

वे संगी हैं, साथी हैं, शत्रु नहीं। एक-दूसरे के विपरीत नहीं, जोड़ा हैं।

"असरल और सरल एक-दूसरे के भाव की सृष्टि करते हैं।"

अगर कोई सरल होना चाहे, चेष्टा करे, जैसा कि साधु करते हैं सरल होने की चेष्टा, और इसलिए साधु जितनी सरल होने की चेष्टा करते हैं, उतने ही जटिल और कांप्लेक्स हो जाते हैं। सरल होने की कोई चेष्टा करेगा, तो जटिल हो जाएगा। हां, यह हो सकता है कि सरल होने में वह दो वस्त्र बचा ले, लंगोटी बचा ले, एक बार भोजन करने लगे, झाड़ के नीचे सोने लगे, यह सब हो सकता है, लेकिन फिर भी सरलता नहीं होगी। झाड़ के नीचे सोना इतना प्रयोजन और इतनी आयोजना से है, झाड़ के नीचे सोना इतनी व्यवस्था और अनुशासन से है, झाड़ के नीचे सोना इतने अभ्यास से है कि इस अभ्यास के पीछे जो चित्त है, वह जटिल हो जाएगा, वह कठिन हो जाएगा।

सरलता का अर्थ ही यही है कि महल के भीतर भी व्यक्ति ऐसे ही सो जाए, जैसे झाड़ के नीचे।

हमें एक तरह की कठिनता दिखाई आसानी से पड़ जाती है। अगर हम एक सम्राट को, जो महलों में रहने का आदी रहा हो, कीमती वस्त्र जिसने पहने हों, आज अचानक उसे लंगोटी लगा कर खड़ा कर दें, तो उसे बड़ी कठिनाई होगी। लेकिन कभी आपने सोचा कि जो लंगोटी लगाने का आदी होकर झाड़ के नीचे बैठा रहा हो, उसे आज हम सिंहासन पर बैठा कर कीमती वस्त्र पहना दें, तो कठिनाई कुछ कम होगी?

उतनी ही कठिनाई होगी। ज्यादा भी हो सकती है! ज्यादा भी हो सकती है, क्योंकि महल में रहने के लिए विशेष अभ्यास नहीं करना पड़ता, झाड़ के नीचे रहने के लिए विशेष अभ्यास करना पड़ता है। सुंदर वस्त्र पहनने के लिए कोई आयोजना और साधना नहीं करनी पड़ती, निर्वस्त्र होने के लिए साधना और आयोजना करनी पड़ती है। तो वह जो निर्वस्त्र खड़ा है, उसे अगर अचानक हम वस्त्र दे दें, तो हमारे वस्त्रों से वह बड़ा ही कष्ट पाएगा। उसके भीतर कठिनाई होगी।

डायोजनीज, एक फकीर, सुकरात से मिलने गया था। सुकरात बहुत सरल व्यक्ति था--वैसा सरल व्यक्ति, जिसने सरलता को साधा नहीं है। क्योंकि जिसने साधा, वह तो जटिल हो गया। सरलता भी साध कर लाई जाए, कल्टीवेट करनी पड़े, तो जटिल हो जाती है।

सुकरात सरल व्यक्ति था। उसने सरलता को कभी साधा नहीं था। उसने असरलता के विपरीत किसी सरलता को कभी पकड़ा नहीं था। डायोजनीज जटिल था। उसने सरलता को साधा था। वह अक्सर नग्न रहता, या अगर कभी कपड़े भी पहनता, तो चिथड़ों से जोड़ कर पहनता। अगर कभी नए कपड़े उसे कोई भेंट कर देता, तो उनको पहले काट कर, टुकड़े करवा कर, पुनः जुड़वा कर, तभी उन्हें पहनता। अगर कोई नए कपड़े भेंट कर देता, तो पहले उन्हें गंदे करता, सड़ाता, खराब करता, फिर चिथड़े बनाता, फिर उन्हें जोड़ता। सरलता का अभ्यासी था।

सुकरात को मिलने आया। सुकरात से उसने कहा, तुम्हें इन इतने सुंदर वस्त्रों में देख कर मुझे लगता है, कैसे तुम साधु हो? कैसी तुम्हारी सरलता? सुकरात हंसने लगा और उसने कहा, हो सकता है, सरल मैं न होऊं; हो सकता है, तुम जो कहते हो, वह ठीक है।

डायोजनीज नहीं समझ पाया होगा कि सरल व्यक्ति का यह लक्षण है। तो डायोजनीज ने कहा कि तुम खुद ही स्वीकार करते हो? यही तो मैंने लोगों से कहा था कि सुकरात सरल आदमी नहीं है। तुम खुद भी स्वीकार करते हो, मुहर लगाते हो मेरी बात पर? सुकरात ने कहा, तुम कहते हो, तो इनकार करने का मैं कोई कारण नहीं पाता हूं; असरल ही होऊंगा। डायोजनीज खिलखिला कर हंसने लगा।

जब वह उतर रहा था नीचे, तो सुकरात का शिष्य प्लेटो उसे द्वार पर मिला। उसने प्लेटो से कहा कि सुनो, तुम्हारे गुरु ने लोगों के सामने स्वीकार की है यह बात कि वह सरल नहीं है।

प्लेटो ने नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि तुम्हारे फटे चिथड़ों में जो छेद हैं, उनमें से सिवाय अहंकार के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। तुम कृपा करके नंगे कभी मत होना, नहीं तो सिवाय अहंकार के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम्हारे छेद में से सिर्फ अहंकार ही दिखाई पड़ता है। प्लेटो ने कहा, तुम समझ ही नहीं पाए, यही तो सरल आदमी का लक्षण है कि तुम उससे कहने जाओ कि तुम सरल नहीं हो तो वह स्वीकार कर लेगा। और तुम्हारी यह घोषित सरलता बड़ी असरल है, बहुत जटिल है।

सरलता अगर सचेष्ट है, तो जटिल हो जाती है। और जटिलता भी अगर निश्चेष्ट है, तो सरल हो जाती है।

असली सवाल द्वंद्व के बीच चुनाव का नहीं है। जब भी हम दो में से किसी एक को चुनते हैं, तो बड़ी मजे की बात यह है, कि उससे विपरीत तत्काल मौजूद हो जाता है। अगर हमने अहिंसा साधी, तो हमारे भीतर हिंसा का तत्व तत्काल मौजूद हो जाता है। इसलिए जो भी अहिंसा साधेगा, वह बहुत सूक्ष्म रूप से हिंसक हो जाएगा। उसकी हिंसा को पहचानना मुश्किल होगा, लेकिन वह हिंसक हो जाएगा। जो ब्रह्मचर्य साधेगा, वह बहुत गहरे तल पर कामातुर हो जाएगा। विपरीत के बिना हम कुछ साध ही नहीं सकते। क्योंकि साधने के लिए विपरीत से लड़ना पड़ता है।

और मजे की बात है, जिससे हम लड़ते हैं, उस जैसे ही हम हो जाते हैं। एक बार यह तो हो सकता है कि मित्र का आप पर कोई प्रभाव न पड़े, लेकिन यह नहीं हो सकता कि शत्रु का प्रभाव न पड़े। मित्र से तो आप अप्रभावित भी रह सकते हैं, लेकिन शत्रु से अप्रभावित रहना असंभव है। शत्रु का तो संस्कार पड़ेगा ही। अगर किसी ने तय किया कि मैं हिंसा का शत्रु हूं, तो वह कितनी ही अहिंसा साध ले, भीतर गहरे में वह हिंसक ही बना रहेगा। और किसी ने अगर निर्णय लिया कि मैं निरहंकारी होकर रहूंगा, अहंकार पोंछ डालूंगा, तो डायोजनीज जैसी हालत होगी; चिथड़ों के छेदों से सिवाय अहंकार के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

लाओत्से कह रहा है, "असरल और सरल एक-दूसरे के भाव की सृष्टि करते हैं।"

अगर आपको यह पता चल गया है कि आप सरल हैं, तो आप जानना कि आप असरल हो चुके हैं। अगर आपको यह ख्याल आ गया कि मैं अहिंसक हूं, तो आप जानना कि आपकी हिंसा पुष्ट हो चुकी है। अगर आप कहने लगे कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया हूं, तो आप जानना कि आप अब्रह्मचर्य की खाई में गिर गए हैं। अगर आपने कहीं घोषणा की कि मैंने ईश्वर को पा लिया है, तो आप पक्का समझ लेना कि आपका हाथ ईश्वर पर से छिटक गया है। ये जो घोषणाएं हैं, ये घोषणाएं हम विपरीत के लिए ही तो कर रहे हैं। और विपरीत से बचा नहीं जा सकता। इसलिए सरलता अघोषित होती है। होती है, जिसमें होती है, उसे भी उसका पता नहीं होता।

इसे ऐसा समझें। जब आप स्वस्थ होते हैं, तो आपको स्वास्थ्य का कोई पता नहीं होता। स्वास्थ्य का पता सिर्फ बीमार आदमी को होता है। बड़ी उलटी लगती है बात, पर ऐसा ही सत्य है। अगर आप बिल्कुल स्वस्थ हैं, तो आपको स्वास्थ्य का पता ही नहीं होता। बीमारी खटकती है, तो स्वास्थ्य का पता चलता है। बीमारी दरवाजा ठकठकाती है, तो स्वास्थ्य का पता चलता है। सिर्फ बीमार लोग शरीर के प्रति बोध से भरे होते हैं,

स्वस्थ आदमी को शरीर का बोध नहीं होता। इसलिए आयुर्वेद में तो स्वस्थ आदमी का लक्षण है विदेह भाव--दि फीलिंग ऑफ बॉडीलेसनेस। वही आदमी स्वस्थ है, जिसे बॉडी का, शरीर का पता नहीं चलता। अगर पता चलता है, तो वह बीमार है।

असल में, जिस हिस्से में आपको पता चलता है, शरीर का वह हिस्सा बीमार होता है। अगर आपको पता चलता है कि पेट है, तो उसका मतलब पेट बीमार है। आपको पता चलता है कि सिर है, तो उसका अर्थ है कि सिर बीमार है। आपको कभी सिर का पता चला है? हेडेक के बिना हेड का कोई पता नहीं चलता। अगर थोड़ा भी पता चलता है, तो उसी मात्रा में हेडेक मौजूद है। स्वास्थ्य तो सहज स्थिति है; उसका कोई पता नहीं चलता।

जिस दिन कोई व्यक्ति सच में सरल हो जाता है, उसे पता ही नहीं चलता कि वह सरल है। वह इतना सरल हो जाता है कि दूसरे उससे आकर कहें कि तुम असरल मालूम पड़ते हो, तो वह स्वीकार कर लेगा। वह इतना प्रभु को उपलब्ध हो जाता है कि दूसरे उससे आकर कहें कि तुम्हें कुछ पता ही नहीं, तो उसके लिए भी राजी हो जाएगा। वह इतना अहिंसक हो जाता है कि उसे ख्याल ही नहीं होता कि मैं अहिंसक हूं। क्योंकि ख्याल तो सिर्फ हिंसक को ही हो सकता है।

"विस्तार और संक्षेप एक-दूसरे की आकृति का निर्माण करते हैं।"

विस्तार बड़ी बात मालूम पड़ती है, संक्षेप छोटी बात मालूम पड़ती है; ब्रह्मांड बहुत बड़ी बात है और छोटा सा अणु बहुत छोटी बात है। लेकिन अणु-अणु मिल कर ब्रह्मांड का निर्माण करते हैं। अणुओं को हटा लें, ब्रह्मांड शून्य हो जाएगा। बूंद को हटा लें, सागर रिक्त हो जाएगा। हालांकि सागर को कभी पता नहीं कि बूंद ही उसका निर्माण करती है। और अगर बूंद और सागर की चर्चा हो, तो बूंद को सागर स्वीकार भी नहीं करेगा कि तू मुझे निर्माण करती है। यद्यपि बूंद-बूंद ही मिल कर सागर बनता है। सागर बूंदों के जोड़ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और अगर बूंद-बूंद से जुड़ कर सागर बनता है, तो बूंद भी छोटा सागर ही है। बूंद को अन्य कुछ कहना उचित नहीं; छोटा सागर है। तभी तो बूंद-बूंद मिल कर बड़ा सागर बन जाता होगा।

तो अगर हम ऐसा कहें तो भूल न होगी कि बूंद छोटा सागर है, सागर बड़ी बूंद है। यही सत्य के करीब है कि सागर बड़ी बूंद है और बूंद छोटा सागर है। जिसे हम विस्तार कहते हैं, जिसे हम विराट कहते हैं, जिसे हम ब्रह्मांड कहते हैं, वह भी अणु ही है। और जिसे हम अणु कहते हैं, वह भी ब्रह्मांड ही है।

उपनिषदों के ऋषियों ने कहा है कि पिंड और ब्रह्मांड में भेद नहीं जाना, छोटे में और बड़े में अंतर नहीं पाया, ना-कुछ और सब कुछ को एक ही जैसा देखा।

लाओत्से कहता है कि यह जो हमें इतना-इतना भेद दिखाई पड़ता है, यह सारा का सारा भेद भ्रांति है।

अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह भी लाओत्से की इस बात से राजी होगा। और यह जान कर आप हैरान होंगे कि पश्चिम के कुछ नवयुवक वैज्ञानिक लाओत्से में बहुत उत्सुक हैं। और इस संबंध में भी चिंतना चलती है वैज्ञानिकों में कि क्या कभी लाओत्से को आधार बना कर किसी नए विज्ञान का जन्म हो सकेगा?

और एक बहुत कीमती विचारक और गणितज्ञ ने एक किताब लिखी हैः ताओ और विज्ञान।

लाओत्से के विचार से क्या और तरह के विज्ञान का जन्म नहीं होगा?

होगा! क्योंकि पश्चिम का जो विज्ञान निर्मित हुआ है, वह उस यूनानी धारणा के ऊपर खड़ा है, जो विपरीत को स्वीकार करती है। पश्चिम का सारा विज्ञान एरिस्टोटेलियन है, अरस्तू के सिद्धांत पर खड़ा है। और लाओत्से से बड़ा विरोधी अरस्तू का दूसरा नहीं है। अगर हम ठीक से समझें तो दुनिया में दो ही विचार हैंः एक

अरस्तू का और एक लाओत्से का। पूरब का सारा विचार लाओत्से का विचार है और पश्चिम का सारा विचार अरस्तू का। तो इन दोनों के थोड़े भेद को हम ख्याल में ले लें, तो बात आसानी से समझ में आ जाएगी।

अरस्तू कहता है कि अंधेरा अंधेरा है, प्रकाश प्रकाश; दोनों विपरीत हैं, दोनों का कोई मिलन नहीं। और वह कहता है, प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? जलाओ दीया, और अंधेरा मिट जाता है; बुझाओ दीया, और अंधेरा आ जाता है। अंधेरा तब आता है, जब प्रकाश नहीं होता। प्रकाश जब होता है, तब अंधेरा मिट जाता है। तो अरस्तू कहता है कि अंधेरा अंधेरा है, प्रकाश प्रकाश है; दोनों में कोई मेल नहीं। अरस्तू का पूरा सिद्धांत, उसका पूरा का पूरा तर्कशास्त्र एक बुनियाद पर खड़ा है। और वह यह है कि ए इ.ज ए, बी इ.ज बी; एंड ए कैन नॉट बी बी। अ अ है, ब ब है; और अ कभी ब नहीं हो सकता। लाओत्से का पूरा सिद्धांत अगर हम अरस्तू की भाषा में बनाना चाहें तो वह यह है कि ए इ.ज ए एंड आल्सो बी; एंड ए कैन नॉट रिमेन ए विदाउट बिकमिंग बी। अ अ है और ब भी; और अ अ नहीं रह सकता बिना ब बने। अरस्तू का सिद्धांत ठोस धारणा का है; लाओत्से का सिद्धांत तरल, लिक्विड धारणा का है।

लाओत्से कहता है, चीजें इतनी तरल हैं कि अपने विपरीत में बह जाती हैं। खाई शिखर बन जाती है, शिखर खाई बन जाता है। कल जहां खाई थी, आज वहां शिखर है। आज जहां शिखर है, कल वहां खाई हो जाएगी। जीवन मृत्यु बन जाती है, मृत्यु से पुनः जीवन आविष्कृत हो जाता है। जवानी बुढ़ापा बनती जाती है, बूढ़े नए बच्चों में जन्म लेते चले जाते हैं। नहीं, अंधेरा अंधेरा नहीं है, प्रकाश प्रकाश नहीं है। अंधेरा प्रकाश का ही धीमा रूप है, और प्रकाश अंधेरे का ही प्रखर रूप है।

लाओत्से और अरस्तू--ऐसा निर्णायक स्थिति है जगत में।

तो पश्चिम के वैज्ञानिक सोचते हैं इस दिशा में कि अगर कभी लाओत्से को आधार बना कर विज्ञान विकसित हो, तो दूसरा ही डायमेंशन होगा। अभी तो अरस्तू को मान कर विज्ञान विकसित हुआ। पश्चिम का पूरा विज्ञान ग्रीक विचार पर खड़ा है। अरस्तू पिता है। अरस्तू ने जो सिद्धांत दिए, उन्हीं का फैलाव दो हजार साल में हुआ है। अरस्तू और आइंस्टीन अलग-अलग नहीं, एक हीशृंखला के हिस्से हैं। तर्क वही है; सोचने का ढंग वही है।

लाओत्से तो बिल्कुल विपरीत है। अगर लाओत्से कभी विज्ञान का आधार बने तो दूसरी ही साइंस पैदा होगी, जिसका हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उसकी दृष्टि क्या होगी। अगर--इसको उदाहरण से समझें--अगर अरस्तू की बात सही है, तो हम मृत्यु को नष्ट करके जीवन को बचा सकेंगे। बल्कि जितना हम मृत्यु को नष्ट करेंगे, जीवन उतना ही ज्यादा बचेगा। और अगर हम किसी दिन मृत्यु को बिल्कुल ही नष्ट कर दें, तो परम जीवन बचेगा, जीवन ही जीवन बचेगा। लाओत्से के हिसाब से स्थिति उलटी है। अगर हमने मृत्यु को नष्ट किया, तो हम जीवन को नष्ट कर देंगे। और अगर मृत्यु बिल्कुल नष्ट हो गई, तो जीवन बिल्कुल शून्य हो जाएगा।

अब इसे हम देखें कि वस्तुतः घटना क्या घटी है? यह बड़े मजे की बात है कि हमने जितनी बीमारियां नष्ट कीं, आदमी का स्वास्थ्य उतना कम हुआ है। आदमी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं हुआ है बीमारियां घटने से। लाओत्से के जमाने का आदमी जितना स्वस्थ था, उतने स्वस्थ हम नहीं हैं। हालांकि लाओत्से के जमाने में बीमारियों से लड़ने के इतने उपाय नहीं थे, जितने हमारे पास हैं।

आज भी जंगल का आदिवासी है, उसके पास बीमारी से लड़ने के बहुत उपाय नहीं हैं। बीमारियां बहुत हैं, उपाय बिल्कुल नहीं हैं। स्वस्थ वह हमसे बहुत ज्यादा है। और स्वास्थ्य के उसके इतने प्रमाण हैं कि हैरानी होती है। अफ्रीकी जंगल में आज भी जो असभ्य कौमें हैं, उनके शरीर पर बनाया गया कैसा भी घाव बिना किसी

इलाज के अड़तालीस घंटे में भर जाता है। बिना किसी इलाज के! कुल्हाड़ी मार दी है पैर पर, अड़तालीस घंटे में घाव भर जाएगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि उनका स्वास्थ्य अपूर्व है। वही स्वास्थ्य की इतनी ऊर्जा, वही वाइटेलिटी चौबीस घंटे में किसी भी तरह के घाव को भर देती है--बिना किसी इलाज के! और या जो इलाज हैं, वे बिल्कुल इलाज नहीं हैं। कोई पत्ता बांध लिया है, कुछ कर लिया है, उससे कोई लेना-देना नहीं है। उसका कोई साइंटिफिक संबंध नहीं है, पत्ते से उस घाव के भरने का। पत्ता तो सिर्फ बहाना है, शरीर ही घाव को भर लेता है।

अफ्रीका के जंगल के आदिवासी के पास बीमारियां बहुत हैं चारों तरफ; इलाज का कोई उपाय नहीं है, मेडिसिन की कोई समझ नहीं है, कोई मेडिकल कालेज नहीं है, कोई चिकित्सक नहीं है; फिर भी स्वास्थ्य अपूर्व है।

लाओत्से सही हो सकता है। लाओत्से कहता है, तुम जितना बीमारियां खत्म करने में लगोगे, उतना ही तुम स्वास्थ्य भी समाप्त कर लोगे। क्योंकि यह जगत द्वैत पर निर्भर है, तुम एक तरफ की ईंटें गिराओगे, दूसरी तरफ की विपरीत ईंटें तत्काल गिर जाएंगी। और अब पश्चिम का वैज्ञानिक भी इस पर सोचने लगा है कि लाओत्से की बात में सच्चाई हो सकती है।

कहानी है पुरानी कि लाओत्से को मानने वाला एक बूढ़ा अपने जवान बेटे के साथ--बूढ़े की उम्र है कोई नब्बे वर्ष--अपने जवान बेटे के साथ, दोनों अपने बगीचे में, जहां बैल या घोड़े जोतना चाहिए, पानी के मोट में दोनों जुत कर और पानी खींच रहे हैं। कनफ्यूशियस वहां से गुजरता है। कनफ्यूशियस और लाओत्से में वैसा ही विपरीत भेद है, जैसा अरस्तू और लाओत्से में। कनफ्यूशियस एरिस्टोटेलियन है और उसके सोचने का ढंग अरस्तू जैसा है। इसलिए पश्चिम कनफ्यूशियस को बहुत सम्मान दिया पिछले तीन सौ वर्षों में। लाओत्से का सम्मान अब बढ़ रहा है, अब ख्याल में आया है, क्योंकि विज्ञान बड़ी अजीब हालत में पड़ गया और बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

कनफ्यूशियस गुजरता है बगीचे के पास से। देखता है, नब्बे साल का बूढ़ा, अपने तीस साल के जवान बेटे को, दोनों जुते हैं, पसीने से तरबतर हो रहे हैं, पानी खींच रहे हैं। कनफ्यूशियस को दया आई। उसने कहा, पागल, तुम्हें पता नहीं मालूम होता है। बूढ़े के पास जाकर उसने कहा कि तुम्हें पता है कि अब तो शहरों में हमने घोड़ों से या बैलों से पानी खींचना शुरू कर दिया है! तुम क्यों जुते हुए हो इसके भीतर?

उस बूढ़े ने कहा, जरा धीरे कहो, मेरा जवान बेटा न सुन ले। कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, जरा थोड़ी देर से आना, जब मेरा बेटा घर भोजन करने चला जाए।

जब बेटा चला गया, कनफ्यूशियस वापस आया और उसने कहा, तुमने बेटे को क्यों न सुनने दिया?

उस बूढ़े ने कहा कि मैं नब्बे साल का हूं और अभी तीस साल के जवान से लड़ सकता हूं। लेकिन अगर मैं अपने बेटे को घोड़े जुतवा दूं, तो नब्बे साल की उम्र में मेरे जैसा स्वास्थ्य उसके पास फिर नहीं होगा। घोड़ों के पास होगा, मेरे बेटे के पास नहीं होगा। यह बात तुम मत कहो। मेरा बेटा सुन ले तो उसका जीवन नष्ट हो जाए। हमें पता चल गया है, हमें पता चल गया है कि शहरों में घोड़े जुतने लगे हैं। और हमें यह भी पता चल गया है कि मशीनें भी बन गई हैं जो पानी को कुएं से खींच लें। और हमारा बेटा चाहेगा कि मशीनों से खींच ले। लेकिन जब मशीनें कुएं से पानी खींचेंगी, तो बेटा क्या करेगा? उसके शरीर का क्या होगा? उसके स्वास्थ्य का क्या होगा?

हम एक तरफ जो करते हैं, तत्काल उसका दूसरी तरफ परिणाम होता है। और लाओत्से सही है, तो परिणाम बहुत भयंकर होता है।

उदाहरण के लिए, हम गहरी नींद सोना चाहते हैं। तो जो आदमी गहरी नींद सोना चाहता है, वह विश्राम का प्रेमी है। और जो विश्राम का प्रेमी है, वह श्रम न करेगा। और जो श्रम न करेगा, वह गहरी नींद न सो सकेगा। लाओत्से कहता है, श्रम और विश्राम संयुक्त हैं। अगर तुम विश्राम चाहते हो, तो गहरा श्रम करो; इतना श्रम करो कि विश्राम उतर आए तुम्हारे ऊपर।

लेकिन हम अरस्तू के ढंग से सोचेंगे, तो विश्राम और श्रम तो विपरीत हैं। अगर मैं विश्राम का प्रेमी हूं और गहरी नींद लेना चाहता हूं, तो मैं दिन भर आराम से बैठा रहूं। लेकिन जो दिन भर आराम से बैठा रहेगा, रात का आराम उसका नष्ट हो जाएगा। क्योंकि विश्राम के लिए श्रम के द्वारा अर्जन करना पड़ता है। इट हैज टु बी अर्न्ड। विश्राम में जाना है, तो श्रम में अर्जन करना पड़ेगा। और या फिर बिना विश्राम के राजी रहना पड़ेगा।

तो यह बड़े मजेदार घटना घटती है कि जो विश्राम का प्रेमी है, वह दिन भर विश्राम करता है, रात की नींद खो देता है। और जितनी रात की नींद खोता है, दूसरे दिन उतना ही विश्राम करता है कि अब नींद की कमी पूरी कर ले। जितनी कमी पूरी करता है, उतनी रात की नींद नष्ट होती चली जाती है। एक दिन वह पाता है, एक चक्कर में पड़ गया है, जहां विश्राम असंभव हो जाता है।

लाओत्से कहता है, विश्राम चाहते हो तो उलटी तरफ जाओ, श्रम करो। क्योंकि श्रम और विश्राम विपरीत नहीं, सहयोगी, संगी हैं, साथी हैं। जितना गहरा श्रम करोगे, उतने गहरे विश्राम में चले जाओगे। और इससे उलटा भी सही है, जितने गहरे विश्राम में जाओगे, दूसरे दिन उतनी ही बड़ी श्रम की क्षमता लेकर जगोगे। अगर यह ख्याल आ जाए, तो लाओत्से कहेगा कि सवाल विपरीत को नष्ट करने का नहीं है, सवाल विपरीत के उपयोग करने का है।

अरस्तू कहता है कि प्रकृति बीमारियां देती है, तो प्रकृति से लड़ो। इसलिए पश्चिम का पूरा विज्ञान प्रकृति से संघर्ष है। सारी भाषा लड़ाई की है। रसेल ने एक किताब लिखी हैः कांक्वेस्ट ऑफ नेचर--प्रकृति पर विजय। यह सारा संघर्ष की भाषा है।

लाओत्से हंसेगा। लाओत्से कहेगा, तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम प्रकृति के एक हिस्से हो। तुम विजय पा कैसे सकोगे? जैसे मेरा हाथ मेरे ऊपर विजय पाने निकल जाए, तो क्या होगा? जैसे मेरा पैर सोचने लगे कि मुझ पर विजय पा ले, तो क्या होगा? मूढ़ता होगी। लाओत्से कहता है, प्रकृति पर विजय नहीं पाई जा सकती, क्योंकि तुम प्रकृति हो। और जो विजय पाने चला है, वह प्रकृति का ही हिस्सा है। विजय पाने की कोशिश में तुम सिर्फ तनाव से भर जाओगे, संताप से भर जाओगे। प्रकृति को जीओ, विजय पाने मत जाओ। प्रकृति से लड़ कर तुम उसके राज मत पूछो, प्रकृति से प्रेम करो, उसमें डूबो, वह अपने राज खोल देती है।

अगर किसी दिन लाओत्से के ऊपर साइंस का पूरा ढांचा, स्ट्रक्चर खड़ा हो, तो साइंस बिल्कुल दूसरी होगी। लड़ने की भाषा में नहीं होगी, सहयोग की भाषा में होगी। कांफ्लिक्ट नहीं, कोआपरेशन! संघर्ष नहीं, सहयोग! तब हम और ही ढंग से सोचेंगे। और जो आदमी संघर्ष की भाषा में सोचता है, उसका तर्क वही है कि अ अ है, ब ब है; इसलिए अगर अ को पाना है, तो ब को हटाओ, तो अ बढ़ जाएगा। अगर स्वास्थ्य पाना है, तो बीमारी से लड़ो। बीमारी हटा डालो, तो स्वास्थ्य बढ़ जाएगा। नहीं।

पढ़ता था मैं रथ्सचाइल्ड का संस्मरण। उसने अपना पूरा मकान एयरकंडीशंड किया है। उसका पोर्च भी एयरकंडीशंड है। कार भीतर आती है, तो दरवाजा आटोमेटिक खुलता है; कार बाहर जाती है, तो आटोमेटिक

बंद हो जाता है। एयरकंडीशंड कार है। उसमें बैठ कर वह अपने दफ्तर के एयरकंडीशंड पोर्च में उतरता है, फिर अपने एयरकंडीशंड दफ्तर में चला जाता है। फिर उसको पच्चीस बीमारियां आनी शुरू होती हैं। फिर चिकित्सक उससे कहते हैं कि तुम दो घंटे गर्म पानी के टब में बैठे रहो। फिर वह दो घंटे गर्म पानी के टब में बैठ कर पसीना निकलवाता है।

फिर उसको ख्याल आता है कि यह मैं क्या कर रहा हूं? एयरकंडीशंड करके सारी व्यवस्था मैं पसीने को रोक रहा हूं। फिर पसीने को रोक कर, दो घंटे टब में बैठ कर पसीने को निकाल रहा हूं। फिर पसीना ज्यादा निकल गया, गर्मी मालूम पड़ती है, इसलिए एयरकंडीशंड में बैठ कर अपने को ठंडा कर रहा हूं। फिर ज्यादा ठंडा हो गया, फिर पसीना नहीं निकला, बीमार पड़ता हूं, तो फिर... यह मैं कर क्या रहा हूं?

करीब-करीब, संघर्ष की जो भाषा है, वह ऐसे ही द्वंद्व में डाल देती है।

लाओत्से कहता है कि जिसको हम विपरीत कहते हैं, वह विपरीत नहीं है। और अगर ठंडक का मजा लेना है, तो धूप का मजा लिए बिना नहीं लिया जा सकता है। यह उलटी दिखाई पड़ती है बात, लेकिन मैं भी कहता हूं कि लाओत्से ठीक कहता है। अगर ठंडक का मजा लेना है, तो धूप का मजा लिए बिना नहीं लिया जा सकता है। और जिसने पसीने का सुख नहीं लिया, वह शीतलता का सुख न ले पाएगा। जिसने पसीने का सुख नहीं लिया, उसके लिए शीतलता भी बीमारी हो जाएगी। और जिसने बहते हुए पसीने का आनंद लिया है, वही ठंडी शीतलता में बैठ कर शीतलता का भी आनंद ले पाएगा। असल में जो गर्म होना नहीं जानता, वह ठंडा नहीं हो पाएगा। ये विपरीत नहीं हैं, ये संयुक्त हैं। और दोनों का संयोग ही जीवन का संगीत है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "उच्चता और नीचता का भाव एक-दूसरे के विरोध पर अवलंबित हैं; संगीत के स्वर और ध्वनियां परस्पर संबद्ध होकर ही समस्वर बनती हैं।"

संगीत के स्वर--विपरीत स्वर, विरोधी स्वर--संयुक्त होकर, लयबद्ध होकर, श्रेष्ठतर संगीत को जन्म देते हैं। जिसको हम हार्मनी कहते हैं, संगीत की लय कहते हैं, वह विपरीत स्वरों का जमाव है। जब हम शोरगुल करते हैं तब भी हम उन्हीं ध्वनियों का उपयोग करते हैं, जिन ध्वनियों का उपयोग हम संगीत के पैदा करने में करते हैं। फर्क क्या होता है? शोरगुल में वे ही ध्वनियां अराजक होती हैं, कोई तालमेल नहीं होता उनमें। संगीत में वे ही ध्वनियां तालयुक्त हो जाती हैं; एक-दूसरे के साथ सहयोग में बंध जाती हैं।

इस मकान को गिरा कर हम ईंटों का ढेर लगा दें, तो भी पदार्थ तो यही होगा, ईंटें यही होंगी। फिर इन्हीं ईंटों का फैलाव करके हम एक सुंदर मकान बना लेते हैं। स्वर और ध्वनियां तो वही हैं, जो बाजार के शोरगुल में सुनाई पड़ती हैं। वे ही स्वर हैं, वे ही ध्वनियां हैं। संगीत में क्या होता है? हम उनकी अराजकता को हटा देते हैं, उनकी आपस की कलह को हटा देते हैं, और विपरीत के बीच भी मैत्री स्थापित कर देते हैं। वे ही स्वर, वे ही ध्वनियां अपूर्व संगीत बन जाती हैं। और अगर कोई सोचता हो कि हम एक ही तरह के स्वर से संगीत पैदा कर लेंगे, तो वह पागल है। एक ही तरह के स्वर से संगीत पैदा नहीं होगा। संगीत के लिए अनेक स्वर चाहिए, विभिन्न स्वर चाहिए; विपरीत, विरोधी दिखने वाले स्वर चाहिए; तभी संगीत निर्मित होगा।

यह जो हमारे मन में बचपन से ही बैठी हुई एरिस्टोटेलियन धारणा है, उससे मुक्त हुए बिना लाओत्से को समझना बहुत कठिन है। हमारे मन में सदा ही यही बात है कि हम, चीजों को देखने का हमारा जो गेस्टाल्ट है, हमारा जो ढंग है, वह सदा विपरीत में है। हम कहीं भी कुछ देखते हैं, तो तत्काल विपरीत की भाषा में उसे तोड़ कर सोचते हैं--कहीं भी! अगर एक व्यक्ति आपकी आलोचना कर रहा है, तो आप तत्काल सोचते हैं वह शत्रु है। लेकिन वह मित्र भी हो सकता है। और जो जानते हैं, वे कहेंगे, मित्र है। कबीर तो कहते हैं, निंदक नियरे राखिए,

आंगन-कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने ही पास में आंगन-कुटी छाप कर, अच्छी जगह बना कर पास ही ठहरा लो। क्योंकि वह ऐसी-ऐसी काम की बातें कहेगा कि जो हो सकता है तुमसे कोई भी न कहे। कम से कम जो तुम्हारे मित्र हैं, वे कभी न कहेंगे। वह ऐसी बातें कह सकता है, जो तुम्हें अपने आत्मदर्शन में उपयोगी हो जाएं। वह ऐसी बातें कह सकता है, जो तुम्हें स्वयं से मिलाने में मार्ग बन जाएं। उसे तो अपने पास ही ठहरा लो।

अब कबीर लाओत्से की बात कह रहे हैं। वह जो तुम्हारी निंदा कर रहा है, उसके प्रति भी शत्रुता का भाव न लो। कोई जरूरत नहीं है। उसकी निंदा का भी उपयोग हो सकता है। उसकी निंदा भी एक समस्वर संगीत बन सकती है। लेकिन हम उलटे लोग हैं! निंदा की तो बात दूसरी, अगर कोई आकर अचानक हमारी प्रशंसा करने लगे, तो भी हम चौंकते हैं कि कोई गड़बड़ होगी। नहीं तो कोई किसी की प्रशंसा करता है! जरूर कोई मतलब होगा। खुशामद के पीछे जरूर कोई मतलब होगा। प्रशंसा कर रहा है, तो जरूर अब कुछ न कुछ मांग करेगा। या तो कर्ज लेने आया होगा, या पता नहीं आगे क्या बात निकले! प्रशंसा सुन कर भी हम चौंक जाते हैं, निंदा की तो बात बहुत दूर है।

लाओत्से... जीवन को देखने की जो हमारी व्यवस्था है, एक व्यवस्था तो यह है कि हम सारे जगत की शत्रुता में खड़े हैं। बीमारी भी दुश्मन है, मौत भी दुश्मन है, बुढ़ापा भी दुश्मन है। आस-पास के लोग भी दुश्मन हैं, प्रकृति भी दुश्मन है, समाज भी दुश्मन है। सारा जगत, सारा परमात्मा हमारे खिलाफ लगा हुआ है। और एक हम हैं। इस सारे संघर्ष को पार करके हमें जीना है। एक तो यह गेस्टाल्ट है। एक तो यह ढंग है।

और दूसरा ढंग यह है कि चांद, तारे और आकाश और पृथ्वी और परमात्मा और समाज और पशु और पक्षी और वृक्ष और पौधे और सब--बीमारी भी, दुश्मन भी, मौत भी--मेरे साथी हैं, संगी हैं। सब मेरे जीवन के हिस्से हैं। उन सब के साथ ही मैं हूं। मैं उनके बिना न हो पाऊंगा। यह दूसरा गेस्टाल्ट है। यह जिंदगी का दूसरा ढंग है।

निश्चित ही, पहले ढंग का अंतिम परिणाम चिंता होगी, एंग्जाइटी होगी। अगर सारी दुनिया से लड़ना ही लड़ना है, चौबीस घंटे, सुबह से सांझ तक लड़ना ही लड़ना है, तो जिंदगी आनंद नहीं हो सकती। और लड़ कर भी मरना ही पड़ेगा। रोज-रोज हारना ही पड़ेगा। क्योंकि लड़ कर भी कौन जीता है? मौत तो आएगी, बुढ़ापा आएगा ही, बीमारी आएगी ही; लड़-लड़ कर भी सब आएगा। और हम लड़ते ही रहेंगे, और यह सब आता ही रहेगा, तो इसका अंतिम परिणाम क्या होगा? हम सिर्फ खोखले हो जाएंगे और चिंता के सिवाय हमारे भीतर कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा।

पश्चिम के विज्ञान के चिंतन ने करीब-करीब ऐसी हालत पैदा कर दी है। हर चीज से लड़ना है, सब चीज से भयभीत होना है। क्योंकि जब लड़ना है, तो भयभीत होगे। और जब लड़ना है, तो हर एक के विपरीत सुरक्षा का आयोजन करना है। हिटलर शादी नहीं किया इसीलिए, कि शादी कर ले, तो कम से कम एक स्त्री तो कमरे में सोने की हकदार हो जाएगी। और रात वह गर्दन दबा दे!

अगर सारी दुनिया से ही संघर्ष है... । फ्रायड के हिसाब से, पति-पत्नी के बीच जो संबंध है, वह एक कलह है, एक कांफ्लिक्ट। वह अरस्तू के विचार का फैलाव है सब पूरा पश्चिम का चिंतन! पति और पत्नी के बीच जो संबंध है, फ्रायड उसे कहता है, ए सेक्सुअल वार। वह कोई प्रेम वगैरह नहीं है। वह सिर्फ एक काम-युद्ध है, जिसमें पति पत्नी को डामिनेट करने की कोशिश में लगा है, पत्नी पति को डामिनेट करने की कोशिश में लगी है।

जो होशियार हैं, वे इस अधिकार की और डामिनेशन की कोशिश को शिष्ट ढंगों से करते हैं। जो गंवार हैं, वे सीधा लट्ठ उठा कर संघर्ष कर रहे हैं। बाकी संघर्ष है।

यह एक गेस्टाल्ट है, जिसमें सभी संबंध ऐसे हो जाएंगे। ऐसा नहीं कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध ही विकृत होगा। जब संबंध विकृत होने की दृष्टि होगी, तो कोई भी संबंध नहीं बचेगा। बाप और बेटे के बीच तब संघर्ष है। तुर्गनेव की किताब है बहुत प्रसिद्धः फादर्स एंड संस--पिता और पुत्र। जिसमें तुर्गनेव ने यह कहा है कि पिता और पुत्र के बीच निरंतर संघर्ष है। कोई संबंध नहीं है सिवाय संघर्ष के। बेटा जो है, वह बाप का हकदार है; इसलिए बाप को हटाने की कोशिश में लगा है। वह जगह छोड़ दे, बेटा उसकी जगह बैठ जाए।

यह एक गेस्टाल्ट है। देखेंगे तो दिखाई पड़ जाएगा कि बेटा बाप को हटाने की कोशिश में लगा है, कि हटो, एक चाबी दो, दूसरी चाबी दो, तीसरी चाबी दो। अब तुम घर बैठो, अब रिटायर हो जाओ, अब दुकान पर बैठने दो, दफ्तर में बैठने दो। बेटा एक कोशिश में लगा है। बाप एक कोशिश में लगा है पैर जमा कर कि जब तक बन सके, तब तक वह वहीं खड़ा रहे, बेटे को न घुस जाने दे। इसे ऐसा देखने में कोई कठिनाई नहीं है। ऐसा देखा जा सकता है; ऐसा है। जैसी हमने जिंदगी बनाई है, जिस ढंग से, उसमें ऐसा है।

और बड़ी मजेदार बात है कि बाप बेटे को बड़ा कर रहा है, पाल रहा है, पोस रहा है। और सिर्फ इसीलिए कि वह उसकी जगह छीन लेगा कल। उसको शिक्षित कर रहा है, सिर्फ इसलिए कि कल वह उसके खाते-बही पर कब्जा कर लेगा। उसको बीमारी से बचा रहा है, उसको शिक्षित कर रहा है, उसको बड़ा कर रहा है, इसलिए कि कल वह चाबी छीन लेगा। मां बेटे की शादी करने के पीछे पड़ी है। कल उसकी पत्नी आ जाएगी और वह पत्नी सब छीनना शुरू कर देगी। और तब कलह शुरू होगी। और वह कलह जारी रहेगी।

गेस्टाल्ट क्या है हमारे देखने का?

अगर हम जीवन को एक कलह, एक कांफ्लिक्ट, एक संघर्ष, एक स्ट्रगल की भाषा में देखते हैं, तो धीरे-धीरे जीवन के सब पर्तों पर और सब संबंधों में संघर्ष हो जाएगा। तब व्यक्ति अकेला बचता है और सारा जगत उसके विपरीत शत्रु की तरह खड़ा है। सारा जगत प्रतिस्पर्धा में, और अकेला मैं बचा हूं।

स्वभावतः, इतने बड़े जगत के खिलाफ प्रतिस्पर्धा में खड़े होकर सिवाय चिंता के पहाड़ के और क्या मिलेगा? और चिंता के बाद भी विजय का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि पराजय ही होने वाली है। बुढ़ापा आएगा ही, मौत आएगी ही, सब डूब ही जाएगा। चाहे बाप कितना ही लड़े, बेटे को दे ही जाना पड़ेगा। चाहे सास कितनी ही लड़े, बहू के हाथ में शक्ति पहुंच ही जाएगी। और चाहे गुरु कितना ही संघर्ष करे, शिष्य आज नहीं कल उसकी जगह बैठ ही जाएगा।

बायजीद ने एक सूत्र लिखा है। लिखा है कि जिन-जिन को मैंने धनुर्विद्या सिखाई, उनका आखिरी निशाना मैं ही बना। जिन-जिन ने सीख ली धनुर्विद्या, बस वे आखिरी निशाना मुझे ही बनाने लगे।

वह ठीक ही कहा है! अगर गुरु और विद्यार्थी के, शिष्य के बीच संघर्ष है, तो यही होगा। यही होगा कि गुरु विद्यार्थी को इसीलिए तैयार कर रहा है कि कल विद्यार्थी उसको हटाएगा।

यह सारी जिंदगी एक संघर्ष है दूसरे को हटाने के लिए। और सब तरफ दुश्मन हैं, कोई मित्र नहीं। जो मित्र मालूम पड़ते हैं, वे थोड़े कम दुश्मन हैं, बस इतना ही। थोड़े अपने वाले दुश्मन हैं, इतना ही। कुछ लोग जरा दूर के दुश्मन हैं, कुछ जरा पास के दुश्मन हैं। जो पास के हैं, जरा ख्याल रखते हैं। जरा दूर के हैं, बिल्कुल ख्याल नहीं रखते। बाकी दुश्मनी स्थिर है।

लाओत्से एक दूसरे गेस्टाल्ट को प्रस्तावित करता है। और लाओत्से ने जिस तरह से उसे रखा है, काश वह कभी आदमी की समझ में आ सके, तो हम एक दूसरी ही संस्कृति और दूसरे ही जगत का निर्माण कर लें। वह कहता है, तुम अलग हो ही नहीं। इसलिए शत्रुता का सवाल कहां? तुम व्यक्ति हो ही नहीं। क्योंकि व्यक्ति तुम सिर्फ इसीलिए दिखाई पड़ रहे हो कि तुम्हें समष्टि का कोई पता नहीं। लेकिन जहां भी व्यक्ति है, वहां समष्टि से जुड़ा है। व्यक्ति हो ही नहीं सकता समष्टि के बिना। तुम हो इसलिए कि और सब हैं। वह जो वृक्ष दरवाजे पर खड़ा है, वह भी तुम्हारे होने में भागीदार है।

लाओत्से ने कहा है अपने एक शिष्य को जो, सामने के वृक्ष से कुछ पत्ते तोड़ने भेजा है उसे किसी ने, वह पूरी शाखा तोड़ कर लिए जा रहा है। तो लाओत्से उसे रोकता है और कहता है, तुझे पता नहीं पागल, कि यह वृक्ष अधूरा हुआ, तो तू भी कुछ कम हुआ। यह यहां सामने खड़ा था पूरा का पूरा, तो हम कुछ और अर्थों में हरे थे। आज इसका घाव हमारे भीतर भी घाव बन गया।

हम इतने अलग नहीं हैं; हम सब जुड़े हैं। हमने पृथ्वी पर से वृक्ष काट डाले। लाओत्से तो एक शाखा के तोड़ने पर यह कह रहा है। हमने सारे के सारे वृक्ष काट डाले; सारे जंगल गिरा दिए। अब हमको पता चल रहा है कि गलती हो गई। जंगल हमने काटे इसलिए कि हमने सोचा जंगल मनुष्य का दुश्मन है। क्योंकि जंगल में मनुष्य को डर था। जंगली जानवर थे, भय था, घबड़ाहट थी। जंगल काट-काट कर हमने जमीन साफ करके अपने नगर बसा लिए। हम यह भूल ही गए कि हमारे नगरों में जो पानी गिरता था, वह जंगल के बिना नहीं गिरेगा; कि हमारे नगरों पर जो हवाएं बहती थीं, वे जंगल के बिना नहीं बहेंगी; कि हमारे नगरों पर जो शीतलता छा जाती थी, वह बिना जंगलों के नहीं छाएगी; कि हम जंगल सब काट डालेंगे, तो नगर हमारे सब उजड़ जाएंगे।

अब आज सारे यूरोप में मूवमेंट है, आंदोलन है। और वह आंदोलन इसलिए है कि वृक्ष अब न काटे जाएं; एक पत्ता भी काटना सख्त जुर्म है। क्योंकि आदमी गिर जाएगा, अगर वृक्ष गिर गए।

तो लाओत्से ढाई हजार साल पहले एक डाल के टूटने पर कहता है कि तुझे पता नहीं पागल, हम कुछ कम हो गए हैं। वह वृक्ष हमारा हिस्सा था, हमारे अस्तित्व का।

जैसे कि एक तस्वीर में से, एक पेंटिंग में से किसी ने एक कोने में एक वृक्ष को अलग कर लिया हो, तो तस्वीर वहीं नहीं रह जाती, तस्वीर कुछ और हो जाती है! एक छोटा सा बुरुश, रंग की एक छोटी सी रेखा एक तस्वीर को पूरा बदल देती है। जरा सा इशारा! अगर हमने जरा सा एक वृक्ष एक पेंटिंग में से निकाल लिया, तो पेंटिंग वही नहीं रह जाती है। क्योंकि टोटल, उसका समग्र रूप और हो जाता है। सारा संबंध बदल जाता है। आकाश के और झोपड़े के बीच में जो वृक्ष खड़ा था, वह अब नहीं है। अब आकाश और झोपड़े निपट नंगे होकर खड़े हो जाते हैं।

हमने काट डाले वृक्ष। हमने सोचा कि हम आदमी के रहने के लिए अच्छी जगह बना लेंगे। हमने जानवर मिटा डाले, हमने कुछ जानवरों की जातियां बिल्कुल समाप्त कर दीं। अब इकोलॉजी--यह जो मूवमेंट चलता है, इकोलॉजी कहलाता है--उसका कहना है कि हमने जो-जो चीज कमी कर ली है, उस सब का परिणाम आदमी को भोगना पड़ रहा है। जंगल में जो पक्षी गीत गाते हैं, वे भी हमारे हिस्से हैं। और जिस दिन जंगल में कोई पक्षी गीत नहीं गाएगा, उस दिन हम प्रकृति का जो संगीत है, उसमें एक व्याघात उत्पन्न कर रहे हैं। उस व्याघात के बाद हमारे चित्त उतने शांत न रह जाएंगे, जितने उस संगीत के साथ थे। पर हमें ख्याल नहीं आता। क्योंकि बड़ा

है; आदमी बहुत छोटे अपने घर में, अपने कोने में जीता है। उसे पता नहीं कि आकाश में बादल चलते हैं अब या नहीं चलते, वृक्षों पर फूल आते हैं कि नहीं आते, वसंत में पक्षी गीत गाते हैं कि नहीं गाते।

पिछले तीन वर्ष पहले इंग्लैंड में एक किताब छपीः दि साइलेंट स्प्रिंग--मौन वसंत। पिछले तीन वर्ष पहले इंग्लैंड के वसंत में अचानक हैरानी का फर्क आ गया। लाखों पक्षी अचानक वसंत के मौसम में वृक्षों से गिरे और मर गए। लाखों! ढेर लग गए रास्तों पर पक्षियों के। पूरा, पूरा वसंत मौन हो गया। और बड़ी मुश्किल हुई कि क्या हुआ? क्या बात हो गई? रेडिएशन पर इंग्लैंड में जो प्रयोग चलते थे और एटामिक इनर्जी के जो प्रयोग चलते थे, उनकी कुछ भूल-चूक से वैसा हुआ। लेकिन इंग्लैंड उस वसंत के बाद फीका हो गया! अब इंग्लैंड में वैसा वसंत नहीं आएगा कभी। गाने वाले पक्षियों का बड़ा हिस्सा एकदम समाप्त हो गया। उसको रिप्लेस करना मुश्किल है।

लेकिन अगर वैसा वसंत न आएगा, तो हम सोचेंगे, क्या हमें फर्क पड़ता है? हमारी दूकान में क्या फर्क पड़ेगा? हमारे दफ्तर में क्या फर्क पड़ेगा? नहीं पक्षी गाएंगे।

काश, जिंदगी इतनी अलग-अलग होती! इतनी अलग-अलग नहीं है। वहां सब संयुक्त है, सब जुड़ा है। अरबों प्रकाश वर्ष दूर भी अगर कोई तारा नष्ट हो जाता है, तो इस पृथ्वी पर कुछ कमी हो जाती है। अगर कल चांद मिट जाए, तो इस पृथ्वी पर फर्क हो जाएगा! आपके सागर में लहरें न उठेंगी; आपकी स्त्रियों का मासिक धर्म अव्यवस्थित हो जाएगा; वह अट्ठाइस दिन में नहीं आएगा फिर। वह चांद की वजह से अट्ठाइस दिन में आता है। सब कुछ और हो जाएगा। एक छोटा सा अंतर और सारी चीजों की स्थिति बदल जाती है।

लाओत्से कहता था कि चीजें जैसी हैं, उन्हें वैसा रहने दो। स्वीकार करो, वे साथी हैं। विपरीत को भी मत हटाओ। जो बिल्कुल दुश्मन मालूम पड़ता है, उसे भी बसा रहने दो। उसे भी बसा रहने दो, क्योंकि प्रकृति का जाल गहन है, रहस्यपूर्ण है। भीतर सब चीजें जुड़ी हैं। तुम्हें पता नहीं, तुम एक हटा कर क्या उपद्रव कर लोगे।

अब जब इकोलॉजी की चर्चा सारी दुनिया में चलनी शुरू हुई है और समझ बढ़ी है आदमी की, तो ऐसा पता चलना शुरू हुआ कि हम कितनी तरह से जुड़े हुए हैं, कहना बहुत मुश्किल है! बहुत मुश्किल है कहना कि हम कितनी तरह से जुड़े हुए हैं! उदाहरण के लिए, अगर हम जंगलों को काट डालते हैं, वृक्षों को हटा लेते हैं, तो वृक्ष जो हमारे लिए जीवन का तत्व इकट्ठा करते हैं, वह विलीन हो जाता है।

वृक्ष सूरज की किरणों को रूपांतरित करते हैं, उसको इस योग्य बनाते हैं कि वह हमारे शरीर में जाकर पच जाए। सीधी सूरज की किरण हमारे शरीर में नहीं पच पाएगी। वृक्ष ही उसे पीकर ट्रांसफार्म करते हैं और हमारे भोजन के योग्य बनाते हैं। वृक्ष जमीन से मिट्टी को खींचते हैं और भोजन निर्मित कर देते हैं। आप कभी सोचते भी नहीं कि सब्जी आप खा रहे हैं, वह जिन वृक्षों ने उसे निर्मित किया है, अगर वे निर्मित न करते, तो नीचे सिर्फ मिट्टी का ढेर होता। वह मिट्टी का ढेर सब्जी बन गई है, वह सब्जी बन कर आपके पचने के योग्य हो गई है।

आप पूरे चौबीस घंटे अपने श्वास को बाहर फेंक रहे हैं और आक्सीजन को पचा रहे हैं और कार्बन डाय आक्साइड को बाहर निकाल रहे हैं। वृक्ष सारी कार्बन डाय आक्साइड को पीकर आक्सीजन को बाहर निकाल रहे हैं। अगर पृथ्वी पर वृक्ष कम हो जाएंगे, तो आप कार्बन डाय आक्साइड बाहर निकालेंगे, आक्सीजन कम होती जाएगी रोज-रोज। एक दिन आप पाएंगे, जीवन शांत हो गया, क्योंकि आक्सीजन देने वाले वृक्ष कट गए।

लाओत्से को तो पता भी नहीं था आक्सीजन का। लाओत्से को पता भी नहीं था कि वृक्ष क्या कर रहे हैं। फिर भी वह कहता है कि चीजें सब जुड़ी हैं, तुम अकेले नहीं हो। और जरा भी तुमने हेर-फेर किया, तो तुम में

भी हेर-फेर हो जाएगा। एक इंटीग्रेटेड एक्झिस्टेंस है, एक संयुक्त अस्तित्व है। उसमें अनस्तित्व भी जुड़ा है। उसमें मृत्यु भी जुड़ी है। उसमें बीमारी भी जुड़ी है। उसमें सब संयुक्त है। लाओत्से कहता है कि इन सबके बीच अगर सहयोग की धारणा हो--विजय की नहीं, साथ की, संग होने की, एकात्म की--तो जीवन में एक संगीत पैदा होता है। वही संगीत ताओ है, वही संगीत धर्म है, वही संगीत ऋत है।

लगता है ऐसा कि इकोलॉजी की समझ हमारी जितनी बढ़ेगी, लाओत्से के बाबत हमारी जानकारी गहरी होगी। क्योंकि जितना हमें पता चलेगा, चीजें जुड़ी हैं, वह उतना ही हमें बदलाहट करने की जल्दी छोड़नी पड़ेगी।

अब अभी मैं देख रहा था कि सिर्फ साठ वर्षों में, आने वाले साठ वर्षों में, जिस मात्रा में हम समुद्र के पानी पर तेल फेंक रहे हैं--हजार तरह से, फैक्टरियों के जरिए, जहाजों के जरिए--जिस मात्रा में हम समुद्र के सतह पर तेल फेंक रहे हैं, साठ वर्ष अगर इसी तरह जारी रहा, तो किसी युद्ध की जरूरत न होगी, सिर्फ वह तेल समुद्र के पानी पर फैल कर हमें मृत कर देगा। क्योंकि समुद्र का पानी सूर्य की किरणों को लेकर कुछ जीवन-तत्व पैदा करता है, जिनके बिना पृथ्वी पर जीवन असंभव हो जाएगा। वह नवीनतम खोज है। और जब समुद्र की सतह पर तेल की पर्त हो जाती है, तो वह तत्व पैदा होना बंद हो जाता है।

अब हम साबुन की जगह डिटरजेंट पाउडर का उपयोग कर रहे हैं। अभी इकोलॉजी की खोज कहती है कि सिर्फ पचास साल अगर हमने साबुन की जगह धुलाई के नए जो पाउडर हैं, उनका उपयोग किया, तो किसी महायुद्ध की जरूरत नहीं होगी; आदमी उनका उपयोग करके ही मर जाएगा। साबुन, जब आप कपड़े को धोते हैं, तो मिट्टी में जाकर पंद्रह दिन में रि-एब्जार्ब्ड हो जाता है; पंद्रह दिन में साबुन फिर प्रकृति में विलीन हो जाता है। लेकिन डिटरजेंट पाउडर को विलीन होने में डेढ़ सौ वर्ष लगते हैं। डेढ़ सौ वर्ष तक वह मिट्टी में वैसा ही पड़ा रहेगा; विलीन नहीं हो सकता। और पंद्रह वर्ष के बाद वह पायजनस होना शुरू हो जाएगा। और डेढ़ सौ वर्ष तक वह नष्ट नहीं हो सकता। उसका मतलब हुआ कि एक सौ पैंतीस वर्ष तक वह जहर की तरह मिट्टी में पड़ा रहेगा। और सारी दुनिया जिस मात्रा में उसका उपयोग कर रही है, वैज्ञानिक कहते हैं, पचास साल और पूरी की पूरी पृथ्वी पर जो भी पैदा होता है, वह सब विषाक्त हो जाएगा। आप पानी पीएंगे, तो जहर पीएंगे। और आप सब्जी काटेंगे, तो जहर काटेंगे।

लेकिन इसकी हमें समझ नहीं होती कि चीजें किस तरह जुड़ी हैं। साबुन मंहगी पड़ती है, डिटरजेंट पाउडर सस्ता पड़ता है। ठीक है, बात खतम हो गई। सस्ता पड़ता है, इसलिए हम उसका उपयोग कर लेते हैं। जो भी हम कर रहे हैं, वह संयुक्त है। और जरा सा, इंच भर का फर्क बहुत बड़े फर्क लाएगा।

लाओत्से किसी भी फर्क के पक्ष में नहीं था। लाओत्से कहता था, जीवन जैसा है, स्वीकार करो। विपरीत को भी स्वीकार करो, उसका भी कोई रहस्य होगा। मौत आती है, उसे भी आलिंगन कर लो, उसका भी कोई रहस्य होगा। तुम लड़ो ही मत, तुम झुक जाओ, यील्ड करो। तुम चरण पर पड़ जाओ जीवन के; तुम समर्पित हो जाओ। तुम संघर्ष में मत पड़ो।

और लाओत्से कहता था, अगर तुम समर्पण में पड़ जाओ, तो तुम्हारे जीवन में चिंता का लेश मात्र भी पैदा नहीं होता है। समर्पित मन को कैसी चिंता? जिसने प्रकृति से शत्रुता नहीं पाली, उसको कैसी चिंता? जो लड़ने ही नहीं जा रहा है, उसे हारने का डर कैसा? उसकी विजय सुनिश्चित है। हार ही उसकी विजय है। लाओत्से सरेंडरिंग के लिए, समर्पण के लिए ये सारे सूत्र कह रहा है।

अंतिम सूत्र वह कहता है, "और पूर्वगमन एवं अनुगमन से ही क्रम के भाव की उत्पत्ति होती है।"

जो पहले चला गया और जो पीछे आएगा, उससे ही हम क्रम निर्मित करते हैं। अगर पहले जाने वाला न जाए, तो पीछे आने वाला नहीं आएगा। इसे ऐसा समझें कि घर में एक वृद्ध गुजर गया। हम कभी इसे जोड़ते नहीं कि घर में बच्चे के जन्म के लिए जरूरी है कि वृद्ध गुजर जाए! लेकिन जब घर में वृद्ध गुजरता है, तो हम रोते-चिल्लाते हैं। और जब घर में बच्चा पैदा होता है, हम बैंड-बाजे बजाते हैं! हालांकि हम कभी इस जोड़ को नहीं देख पाते कि घर से एक वृद्ध का जाना एक बच्चे के लिए जगह खाली करने का आयोजन मात्र है। जो पहले गया है, वह पीछे आने वाले के लिए जरूरी है।

हम वृद्ध को भी रोक लेना चाहते हैं और बच्चे को भी बुला लेना चाहते हैं। ये दोनों संभव नहीं हो सकते। कभी सोचें कि एक घर में अगर दो-तीन-चार पीढ़ियों तक बूढ़े न मरें, तो उस घर में क्या हो? उस घर में बच्चे पैदा होते से ही पागल हो जाएं। इधर पैदा हुए कि उधर पागल हुए! अगर चार-पांच पीढ़ी के वृद्ध मौजूद हों घर में, तो बच्चों का जीना असंभव है। एक ही पीढ़ी के वृद्ध काफी मुश्किल कर देते हैं। और अगर चार-पांच पीढ़ी के वृद्ध होंगे तो दो-तीन पीढ़ी के वृद्धों की तो कोई कीमत ही नहीं होगी, उनके पीछे वाले बैठे होंगे। और वे इतने अनुभवी होंगे कि बच्चों को सीखने ही न देंगे। वे इतना जानते होंगे कि बच्चे को जानने का उपाय न रह जाएगा। वे इतनी सख्ती से बच्चे की गर्दन पर बैठ जाएंगे कि बच्चे को हिलने का मौका न रह जाएगा। बच्चे पैदा होते से ही पागल हो जाएंगे।

वृद्ध का विदा होना जरूरी है, ताकि बच्चे आ सकें। और बच्चे आएंगे, तो वृद्ध विदा होते रहेंगे।

लाओत्से कहता है, सब क्रम बंधा हुआ है। इधर जवानी आती है, तो बचपन का जाना जरूरी है। इधर बुढ़ापा आता है, तो जवानी का जाना जरूरी है। और यह सब संयुक्त है। हम इसमें भी हिस्से बांट लेते हैं। और हम कहते हैं, इतना हमें पसंद है, यह बच जाए, जवानी बच जाए।

बर्नार्ड शॉ बूढ़ा जब हो गया, कोई बर्नार्ड शॉ से पूछा है कि क्या ख्याल हैं तुम्हारे अब? तो बर्नार्ड शॉ ने बहुत हैरानी की बात कही। बर्नार्ड शॉ ने कहा, जब मैं जवान था, तो मैं सोचता था, सदा जवान रह जाऊं! बूढ़ा होकर मुझे पता चला कि परमात्मा ने जवानों पर शक्ति देकर व्यर्थ ही शक्ति को गंवाया है। इतनी ताकत बूढ़ों को दी होती, तो अनुभव के साथ मजा आ जाता। जवानों को देकर, बिल्कुल गैर-अनुभवी लोगों को ताकत देकर, व्यर्थ गंवा दिया।

लेकिन अनुभव के बढ़ने के साथ ताकत कम हो जाती है। गैर-अनुभवी के पास ताकत ज्यादा होती है, इस प्रकृति का कुछ राज है। बच्चा सर्वाधिक शक्तिशाली होता है; बूढ़ा सर्वाधिक कमजोर हो जाता है। अगर हमारे हाथ में हो--जैसा बर्नार्ड शॉ ने सुझाव दिया--अगर हमारे हाथ में हो, तो हम ऐसा कहें, बच्चे को बिल्कुल कमजोर होना चाहिए, उसके पास कोई ताकत नहीं होनी चाहिए। ताकत तो बूढ़े के पास होनी चाहिए, उसके पास अनुभव है। लेकिन कोमल गैर-अनुभवी बच्चे के पास ताकत है, फैलने की, बढ़ने की, विकसित होने की। और अनुभवी बूढ़े के पास कोई ताकत नहीं है। बात क्या है?

बात कुछ महत्वपूर्ण है। असल में, अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही मृत्यु का पास आना है। अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही मृत्यु का पास आना है। अनुभव के इकट्ठे होने का अर्थ ही है कि जीवन का काम पूरा हो गया, अब आप विदा होते हैं। और जब जीवन का काम पूरा हो गया, विश्वविद्यालय से बाहर निकलने का वक्त आ गया--जीवन के विश्वविद्यालय से--तो आपके पास ताकत की कोई जरूरत नहीं है। कब्र में जाने के लिए किसी ताकत की कोई जरूरत नहीं है। आप चले जाएंगे। गैर-अनुभवी के लिए ताकत की जरूरत है, क्योंकि अनुभव बिना ताकत के नहीं मिल सकेगा। भूल-चूक करनी पड़ेगी, भटकना पड़ेगा, गिरना-उठना पड़ेगा। गैर-

अनुभवी के पास ताकत है। अनुभवी के पास कोई ताकत नहीं है, क्योंकि अब उसे भूल-चूक भी नहीं करनी पड़ती। अब उसको पक्का बंधा हुआ रास्ता मालूम है। वह उसी पर चलता है। वह लीक इधर-उधर नहीं हिलता। वह भूल नहीं करता, वह झंझट में नहीं पड़ता, वह सदा ठीक ही करता है। उसको ज्यादा ताकत की भी जरूरत नहीं है।

बच्चे के पास ज्यादा ताकत है। क्योंकि अभी पूरा विस्तार अनुभव का खुला पड़ा है। अभी सीखने उसे जाना है। तो गैर-अनुभवी के पास ताकत है, क्योंकि अनुभव के लिए ताकत की जरूरत है। अनुभवी के पास ताकत नहीं है, क्योंकि अनुभवी के लिए अब मृत्यु के सिवा और कुछ शेष नहीं बचा है।

पर जीवन के इस क्रम को हम उलटाने की बहुत कोशिश करते हैं। हम कोशिश करते हैं कि बेटे को हम अनुभव दे दें, उसके समय के पहले अनुभव दे दें। उसके अनुभव के पहले हम अपना अनुभव उसे दे दें। वह कभी संभव नहीं हो पाता। वह कभी संभव नहीं हो सकता है। क्योंकि हमें ख्याल नहीं, प्रकृति की जो अपनी लयबद्ध व्यवस्था है, जिसमें एक क्रम है; जिसमें पहले गया हुआ पीछे आने वाले से जुड़ा है; जिसमें पीछे आने वाला पहले जाने वाले से जुड़ा है। लेकिन हमें उसका कोई बोध नहीं है।

एक व्यक्ति मेरे पास आए और मुझे श्रद्धा दे, तो मैं आशा करता हूं कि अब वह रोज मुझे श्रद्धा दे। अब मैं गलती करता हूं। अब मैं गलती करता हूं, क्योंकि जिस व्यक्ति ने मुझे श्रद्धा दी, बहुत संभावना पैदा कर ली उसने कि कल वह मुझे अश्रद्धा दे। अश्रद्धा का पूर्ण, पूर्णता कब होगी? क्योंकि जीवन तो विपरीत से मिल कर बना है। जिसने मुझे श्रद्धा दी, वह मुझे अश्रद्धा भी देगा। अगर लाओत्से की समझ गहरी हो, तो लाओत्से जानता है कि जिससे तुमने श्रद्धा ली, उससे अश्रद्धा लेने की तैयारी रखना। लेकिन हम? जिसने हमें श्रद्धा दी, उससे हम और श्रद्धा रखने की तैयारी रखते हैं! तब हम कठिनाई में पड़ते हैं। और जिसने हमें अश्रद्धा दी, उससे हम अपेक्षा रखते हैं कि और अश्रद्धा देगा, हालांकि वह अपेक्षा भी इतनी ही गलत है। जिसने हमें अश्रद्धा दी, वह आज नहीं कल हमें श्रद्धा देने की तैयारी करेगा। क्योंकि विपरीत संयुक्त हैं।

एक यहूदी फकीर की कहानी मैं सदा कहता रहा हूं। एक यहूदी हसीद, उसने एक किताब लिखी है। हसीद क्रांतिकारी फकीर हैं। और यहूदी पुरोहित वर्ग उनके विपरीत है, जैसा कि सदा होता है। इस हसीद ने एक किताब लिखी और अपने प्रधान यहूदी पुरोहित के पास भेजी। जिसके हाथ भेजी, उससे कहा कि तू देखना, वह क्या व्यवहार करते हैं! कुछ बोलना मत, तुझे कुछ करना नहीं है; सिर्फ देखना, साक्षी रहना।

उसने जाकर किताब दी। तो जो बड़ा पुरोहित था, वह और उसकी पत्नी दोनों बैठे थे सांझ अपने बगीचे में। उसने किताब दी और उसने कहा कि फलां-फलां हसीद फकीर ने यह किताब भेजी है। उसने मुश्किल से हाथ में ले पाया था, जैसे ही सुना कि हसीद ने भेजी है, उसने जोर से किताब फेंक दी सड़क की तरफ और कहा, ऐसी अपवित्र किताब को मैं हाथ भी न लगाना चाहूंगा।

उसकी पत्नी ने कहा, लेकिन इतने कठोर होने की जरूरत क्या है? घर में इतनी किताबें हैं, इसको भी रख दिया होता! और फेंकना भी था तो इस आदमी के चले जाने पर फेंक सकते थे। ऐसा असंस्कृत व्यवहार करने की जरूरत क्या है? रख देते, किताबें इतनी रखी हैं, एक किताब और रख जाती। और फेंकना ही था, तो पीछे कभी भी फेंक देते। इतनी जल्दी क्या थी!

यह उस आदमी ने खड़े होकर सुना। उसके मन में ख्याल आया कि पत्नी भली है। लौट कर उसने अपने गुरु को कहा कि पुरोहित तो बहुत दुष्ट आदमी मालूम होता है। उसको तो कभी आप अपने में उत्सुक कर पाएंगे, इसकी कोई आशा नहीं है। लेकिन उसकी पत्नी कभी आप में उत्सुक हो सकती है।

उस फकीर ने कहा, पहले पूरी कथा तो कहो; तुम व्याख्या मत करो। हुआ क्या?

उसने कहा, हुआ इतना ही कि पुरोहित ने तो किताब लेकर ऐसे फेंक दी, जैसे जहर हो। और कहा कि फेंको इसे, यहां मैं हाथ भी नहीं लगाऊंगा। इतनी अपवित्र को मैं छू भी नहीं सकता। और उसकी पत्नी ने कहा कि ऐसी जल्दी क्या थी? रख देते, घर में बहुत किताबें थीं, पड़ी रहती। और फेंकना था तो पीछे फेंक देते। इतना अशिष्ट होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

हसीद कहने लगा, वह फकीर कहने लगा, कि कभी पुरोहित से तो हमारा संबंध भी बन जाए, उसकी पत्नी से कभी न बन सकेगा। उस फकीर ने कहा, पुरोहित से हमारा कभी संबंध बन ही जाएगा। जो इतनी घृणा से भरा है, वह कितनी देर इतनी घृणा से भरा रहेगा? आखिर प्रेम प्रतीक्षा करता होगा, वह लौट आएगा। लेकिन जो इतनी उपेक्षा की बात कह रही है कि रख देते, पड़ी रहती, इनडिफरेंट, पीछे फेंक देते, कोई हर्जा न था, शिष्टाचार का तो ख्याल रखो, उस स्त्री का हमारे प्रति कोई भी भाव नहीं है; न घृणा का, न प्रेम का। उससे हमारा संबंध बहुत मुश्किल है। लेकिन पुरोहित से हमारा संबंध बन ही जाएगा। तुम देखोगे कि पुरोहित अब तक किताब उठा कर पढ़ रहा होगा। तुम जाओ वापस।

उसने कहा, क्या बात करते हैं! वह पढ़ेगा कभी?

तुम वापस जाओ, तुम व्याख्या मत करो। तुम जाकर फिर देखो।

लौट कर उसने देखा, द्वार बंद हैं। खिड़की से झांका, पुरोहित वह किताब लेकर पढ़ रहा है।

जीवन ऐसा है! उसमें जो गाली दे जाता है, वह प्रेम करने की क्षमता जुटा कर ले जाता है। उसमें जो प्रेम प्रकट कर जाता है, वह गाली देने की क्षमता जुटा कर ले जाता है। विपरीत संयुक्त है। जो आदर करता है, वह अनादर करने की क्षमता इकट्ठी करने लगता है। जो अनादर करता है, वह क्षमा मांगने के लिए उत्सुकता इकट्ठी करने लगता है। अगर कोई जीवन को ऐसा देख पाए, तब न मित्र मित्र, न शत्रु शत्रु! तब चीजें एक विराट पैटर्न में, एक विराट ढांचे में दिखाई पड़ने लगती हैं, एक गेस्टाल्ट में दिखाई पड़ने लगती हैं।

तब अगर कोई मेरे पास आता है, तो मैं जानता हूं कि दूर जाएगा। जब कोई मुझसे दूर जाता है, तो मैं जानता हूं पास आएगा। लेकिन न पास आने वाले पर कोई चिंता लेने की जरूरत है, न दूर जाने वाले पर कोई चिंता लेने की जरूरत है। जीवन का ऐसा नियम है। जब कोई जन्मता है, तो मरने के लिए; और जब कोई मरता है, तो जन्मने के लिए। ऐसा जीवन का नियम है। इस विराट नियम के वैपरीत्य को अगर हम एक ही व्यवस्था का लयबद्ध, छंदबद्ध रूप समझ लें, तो लाओत्से को समझना आसान हो जाएगा। इस सूत्र का यही अर्थ है।

प्रश्नः ओशो, आधुनिक विज्ञान ने मनुष्य-जाति को प्रकृति से दूर करके जीवन के अनेक आयामों को विकसित कर लिया है। कृपया बताएं कि वैज्ञानिक जीवन-प्रणाली की जटिलता के साथ ताओ-युग के सहज जीवन का संतुलन आज किस प्रकार स्थापित किया जाए?

संतुलन स्थापित करने की बात नहीं है। लाओत्से और आधुनिक विज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करने की बात नहीं है। लाओत्से की दृष्टि अगर ख्याल में आ जाए, तो बिल्कुल ही नवीन विज्ञान का जन्म होगा। बिल्कुल नए विज्ञान का जन्म होगा। लाओत्से की दृष्टि पर एक नए ही विज्ञान का जन्म होगा, क्योंकि पूरे जीवन की दृष्टि ही और है। अरस्तू के आधार पर जो विज्ञान विकसित हुआ है, वह विज्ञान बहुत अधूरा, अज्ञानी

है। उसने जीवन के इतने छोटे से हिस्से को समझने की कोशिश की है, और पूरे हिस्से को छोड़ दिया है। कहना चाहिए, वह बचकाना है, चाइल्डिश है। उसने समग्र को देखने का कोई प्रयास अभी तक नहीं किया है।

लेकिन अभी तक कर भी नहीं सकता था। अब उसे करना पड़ेगा। अणु-शस्त्र के खोज लेने के बाद, अणु-ऊर्जा के विकास के बाद विज्ञान को अपनी पुरानी समस्त आधारशिलाओं पर पुनर्विचार करने को मजबूर हो जाना पड़ा है। क्यों? क्योंकि अगर विज्ञान जैसा अभी तक बढ़ रहा था, अब कहे कि हम ऐसे ही आगे बढ़ेंगे, तो सिवाय मनुष्य-जाति के अंत के कुछ और रास्ता नहीं है। तो विज्ञान को अपनी पूर्व-धारणाओं को फिर से सोचना पड़ रहा है कि कहीं कोई बुनियादी भूल है, कहीं कोई गलती हो रही है, कि हम इतनी मेहनत करते हैं और परिणाम बुरे आते हैं! चेष्टा हम इतनी करते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं, और परिणाम विपरीत आते हैं! सारे श्रम का फल दुख ही होता है! तो विज्ञान को अपनी पूर्व धारणाओं पर पुनः विचार करना पड़ रहा है। और उसमें जो भूल कभी पकड़ में आएगी, वह अरस्तू के साथ हो गई भूल है। और तब जीवन के साथ संघर्ष का विज्ञान नहीं, जीवन के साथ सहयोग का विज्ञान!

अब इसमें फर्क होंगे। सारी आधारशिला बदल जाएगी। जीवन के साथ संघर्ष का विज्ञान सोचता ही विनाश करने की भाषा में है। समझ लें--उदाहरण लें, तो जल्दी आसानी हो जाए--समझ लें कि मच्छर हैं, मलेरिया आता है। तो एरिस्टोटेलियन दिमाग सोचेगा कि मच्छरों को खतम कर दो, तो मलेरिया नहीं आएगा। विनाश की भाषा फौरन ख्याल में आएगी, मच्छरों को नष्ट कर दो, मलेरिया नहीं आएगा। लेकिन मच्छरों के होने से कुछ और भी आ रहा हो सकता था; वह भी रुक जाएगा। मच्छरों की मौजूदगी कुछ और भी कर रही हो सकती थी; वह भी रुक जाएगा। पर उसका पता तो देर से लगेगा। शायद तब लगे, जब तक कि मच्छर न बचें। और तब मच्छर को रिप्लेस करने के लिए हमें कुछ और उपाय करना पड़े!

लाओत्से के सामने अगर सवाल आएगा कि मच्छर है, हम क्या करें? तो लाओत्से इस भाषा में नहीं सोचेगा कि मच्छर को नष्ट कर दो। दो ढंग हो सकते हैं मच्छर के साथ सहयोग करने के। या तो आदमी के शरीर को बदला जाए कि मच्छर नुकसान न पहुंचा पाए। मच्छर को विनाश करने की कोई जरूरत नहीं है। या मच्छर के शरीर को बदला जाए कि मच्छर मित्र हो जाए, शत्रु न रह जाए। ये दोनों बातें हो सकती हैं।

अगर लाओत्से के ढंग से सोचा गया होता तो यही होता कि हम कोई सामंजस्य खोजते। अगर मच्छर को बिल्कुल मारा जा सकता है, तो इसमें कौन सी कठिनाई है कि मच्छर को विषरहित किया जा सके? अगर मच्छर को मारा जा सकता है, विषरहित किया जा सकता है, तो इसमें कौन सी कठिनाई है कि मनुष्य के रेजिस्टेंस को बढ़ाया जा सके? लाओत्से तो पसंद करेगा कि मनुष्य का रेजिस्टेंस बढ़ा दिया जाए।

दो उपाय हैं। धूप पड़ रही है बाहर। तो एक रास्ता तो यह है कि मैं छाता लगा कर जाऊं। तब मैं धूप को दुश्मन मान कर रोक रहा हूं। और एक रास्ता यह है कि मैं शरीर को ऐसा बलिष्ठ करके जाऊं कि धूप मुझे पीड़ा न दे पाए। लाओत्से कहेगा कि उचित है कि शरीर को बलिष्ठ करके जाओ; और तब धूप तुम्हें मित्र मालूम पड़ेगी। क्योंकि न इतनी धूप पड़ती, न तुम इतना शरीर को बलिष्ठ करके जाते। शरीर को ऐसा बलिष्ठ करके जाओ कि धूप शत्रु मालूम न पड़े। धूप तो कमजोर शरीर को शत्रु मालूम पड़ रही है।

यह जो हमारा, हम जिस ढंग से सोचते हैं, उस पर निर्भर करता है कि हम कोई सहयोग का मार्ग खोजें। जीवन और हमारे बीच सहयोग स्थापित हो।

संघर्ष अंततः हमें आत्मघात में ले जाएगा। क्योंकि संघर्ष हम कहां तक करेंगे? जो भी, संघर्ष की भाषा यह है कि जो भी हमें नुकसान पहुंचाता हुआ मालूम पड़े, उसे समाप्त करो। अगर हम मच्छरों को समाप्त करते

हैं, और कल हमें लगता है कि चीनी हमें नुकसान पहुंचाते मालूम पड़ते हैं, तो हम उन्हें क्यों समाप्त न करें? परसों हमें लगता है कि भारतीय नुकसान पहुंचाते मालूम पड़ते हैं, हम उन्हें समाप्त क्यों न करें? जो भाषा है युद्ध की, वह सब जगह लागू होगी। जो भी नुकसान पहुंचाता मालूम पड़ता है, उसे समाप्त करो। अमरीका सोचे, रूस को समाप्त करो; रूस सोचे, अमरीका को समाप्त करे।

लेकिन एटामिक खोज के बाद रूस और अमरीका, दोनों के दिमाग में एक बात साफ हो गई कि समाप्त करने की भाषा अब न चलेगी। क्योंकि अब कोई भी किसी को समाप्त करे, तो इस आशा में नहीं कर सकता कि हम बचेंगे। हां, दस मिनट का फर्क पड़ेगा समाप्त होने में। बस इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। जो शुरू करेगा, वह दस मिनट बाद समाप्त होगा। जो आक्रामक होगा, वह दस मिनट बाद समाप्त होगा। जो डिफेंसिव होगा, वह दस मिनट पहले समाप्त हो जाएगा। लेकिन घोषणा करने को भी वक्त नहीं मिलेगा कि हम जीत गए हैं। तब रूस और अमरीका के मस्तिष्क में भी पिछले दस वर्षों में निरंतर एक ख्याल आया है कि सहयोग की भाषा में सोचें। संघर्ष की भाषा का अब कोई अर्थ नहीं है। साथी होकर को-एक्झिस्टेंस की भाषा में सोचें, सह-अस्तित्व की भाषा में सोचें।

मगर आदमी ही सह-अस्तित्व की भाषा में सोचे तो नहीं होगा। सह-अस्तित्व की पूरी भाषा! फिर हम प्रकृति की तरफ भी वही भाषा होनी चाहिए। फिर बीमारियों की तरफ भी वही भाषा होनी चाहिए। फिर हर चीज की तरफ वही भाषा होनी चाहिए। लाओत्से की भाषा सह-अस्तित्व की भाषा है--समग्र के प्रति। और ऐसा नहीं हो सकता कि हम कहें कि हम सिर्फ फलां आदमी के प्रति हमारा सह-अस्तित्व का भाव है, बाकी में हम संघर्ष जारी रखेंगे। यह नहीं हो सकता। क्योंकि अगर हमने बाकी के साथ संघर्ष जारी रखा, तो हम तलाश रखेंगे मौके की कि कभी इस आदमी को भी समाप्त कर दें तो झंझट से मुक्त हो जाएं।

नए विज्ञान का जन्म होगा--लाओत्से की समझ के अनुसार। और लाओत्से की समझ जो है, अगर ठीक से हम समझें, तो लाओत्से का मतलब होता है पूरब का मस्तिष्क, दि ईस्टर्न माइंड। लाओत्से की समझ का अर्थ होता है पूर्वीय मन, पूरब के सोचने का ढंग यह है। अरस्तू का मतलब होता है पश्चिम के सोचने का ढंग।

इसे ऐसा अगर हम कहें, पश्चिम के सोचने के ढंग का अर्थ होता है तर्क, पूरब के सोचने के ढंग का अर्थ होता है अनुभूति। एक विज्ञान अब तक जो खड़ा हुआ है, वह आब्जेक्टिव है, वस्तु की खोज-बीन से खड़ा हुआ है। लाओत्से के साथ, योग के साथ, पतंजलि और बुद्ध के साथ कभी कोई विज्ञान खड़ा होगा, तो वह मनुष्य के मन की खोज से होगा, वस्तु की खोज से नहीं।

संतुलन नहीं हो पाएगा, समन्वय भी नहीं हो पाएगा। हां, लाओत्से का विज्ञान अगर निर्मित होना शुरू हो जाए, तो आधुनिक विज्ञान जो आज तक विकसित हुआ है, उसमें धीरे-धीरे आत्मसात हो जाएगा। क्योंकि यह सिर्फ खंड है। यह एक टुकड़ा है। अनुभूति का विज्ञान विराट होगा। उसमें यह टुकड़ा समाविष्ट हो सकता है। और समाविष्ट होकर यह अपनी सार्थकता पा लेगा। समाविष्ट होकर इसका जो-जो दंश है, वह नष्ट हो जाएगा, इसमें जो-जो मूल्यवान है, वह उभर आएगा।

और पश्चिम में बहुत लक्षण दिखाई पड़ने शुरू हो गए, जिनसे साफ होता है कि कई तरफ से हमला शुरू हुआ है। लाओत्से कई तरफ से प्रवेश करता है। लाओत्से का मतलब पूरब। अब जैसे कि अमरीका का एक वस्तुशिल्पी, आर्किटेक्ट है, राइट। उसने जो नए मकान बनाए हैं, वे लाओत्सियन हैं। उसके नए मकान की जो सारी-सारी योजना है, वह यह है कि मकान ऐसा होना चाहिए कि वह आस-पास के जमीन के टुकड़े, आस-पास के पहाड़ के टुकड़े, आस-पास के वृक्षों से पृथक न हो, उनका एक हिस्सा हो।

तो अगर राइट मकान बनाएगा और एक बड़ा वृक्ष आ जाएगा, तो वृक्ष को नहीं काटेगा, मकान को काटेगा। वह कहेगा, मकान आदमी के हाथ की बनाई चीज है, यह कट सकता है। अगर इस बीच, कमरे के बीच में वृक्ष आ जाएगा, तो राइट उसको बचाने की कोशिश करेगा, चाहे इस कमरे को थोड़ा तोड़ना-फोड़ना पड़े। वृक्ष नहीं तोड़ा जा सकता; वृक्ष यहीं रहेगा। इस बैठकखाने में भी वृक्ष की पींड़ रहेगी और बैठकखाने को ऐसा बनाएगा कि वृक्ष की पींड़ के साथ उसका एक तालमेल, एक संगति, एक संगीत बन जाए।

तो राइट ने जो मकान बनाए हैं, वे प्रकृति के हिस्से हैं। अगर दूर से उन्हें देखें, तो पता भी नहीं चलेगा कि मकान है। क्योंकि लाओत्से कहता है, ऐसा मकान, जो दिखाई पड़ जाए, वायलेंट है। वायलेंट है ही। अब जैसे कि यह तुम्हारा वुडलैंड का मकान है, अब यह वायलेंट है। अगर छब्बीस मंजिल ऊंचा मकान जाएगा, तो वृक्ष कहां रह जाएंगे? पहाड़ कहां रह जाएंगे? आदमी कहां रह जाएगा? वह सब खो जाएगा। मकान नंगा खड़ा हो जाएगा। बेतुका! उसका कोई को-एक्झिस्टेंस नहीं होगा। वह अकेला ही खड़ा हो जाएगा अपनी अकड़ से।

वृक्ष उसको छाते हों, पहाड़ उससे स्पर्श करते हों, नदियां उसके पास आवाज करती हों। आदमी उसके पास से गुजरे तो ऐसा न लगे कि मकान दुश्मन है; आदमी उसके पास से गुजरे तो नाचीज न हो जाए, ऐसा न लगे कि कीड़ा-मकोड़ा है। अपनी ही बनाई चीज के सामने आदमी कीड़ा-मकोड़ा हो जाए, तो खतरनाक उसके परिणाम हैं।

राइट जो मकान बनाता है, वे मकान ऐसे हैं कि उन मकानों में बगीचे भीतर चले जाएंगे, लॉन भीतर प्रवेश कर जाएगा, छतों पर वृक्ष हो जाएंगे, घास-पात उग आएगी तो उसको उखाड़ कर नहीं फेंका जाएगा। मकान ऐसा होगा कि जैसे प्रकृति में अपने आप उग आया हो--इट हैज ग्रोन। ऐसा नहीं कि हमने बना दिया, थोप दिया ऊपर से। जैसे वृक्ष उगते हैं, ऐसा मकान भी उगा है।

राइट का बहुत प्रभाव हुआ है अमरीका में और यूरोप में। क्योंकि उसके मकान में एक और ही सौंदर्य है। उसके मकान की छाया में एक और ही रस है। उसके मकान में बैठना प्रकृति से टूटना नहीं है, प्रकृति में ही होना है।

तो हजार रास्तों से पश्चिम के मन में लाओत्सियन ख्याल प्रवेश कर रहे हैं--हजार रास्तों से।

नया कवि है। तो नया कवि तुक नहीं बांध रहा है, व्याकरण की चिंता नहीं कर रहा है। क्योंकि लाओत्से कहता है, हवाएं जब बहती हैं, तो तुमने कभी सुना कि उन्होंने व्याकरण की फिक्र की हो? और जब बादल गरजते हैं, तो तुमने कभी सुना कि वे कोई तुक बांधते हों? फिर भी उनका अपना एक छंद है; छंदहीन छंद है।

तो सारे पश्चिम पर, सारी दुनिया पर काव्य उतर रहा है, जो छंदहीन है। जिसमें एक आंतरिक लय है, लेकिन ऊपरी बिठाव नहीं है। जिसमें तुकबंदी नहीं है, मात्रा नहीं हैं, शब्दों की तौल नहीं है। लेकिन फिर भी भीतर एक बहाव है, एक प्रवाह है, एक धारा है। और उस धारा में एक संगीत है।

पश्चिम में चित्रकार चित्र बना रहे हैं। ऐसे चित्रकार हैं कुछ, जिन्होंने अपने चित्रों पर फ्रेम लगानी बंद कर दी है। क्योंकि फ्रेम कहीं तो नहीं होती सिवाय आदमी की बनाई हुई चीजों के। आकाश में कोई फ्रेम नहीं है। सूरज निकलता है फ्रेमलेस, उसमें कहीं कोई फ्रेम नहीं है। तारे बिना फ्रेम के हैं। फूल खिलते हैं, वृक्ष होते हैं, सब एंडलेस एक्सटेंशन है। कहीं कोई चीज खतम होती नहीं मालूम पड़ती। सब चीजें चलती ही चली जाती हैं। बढ़ते चले जाओ, चलती चली जाती हैं।

तो चित्रकार बना रहे हैं चित्र, जिन पर फ्रेम नहीं लगा रहे हैं। वे कहते हैं, हम फ्रेम न लगाएंगे, क्योंकि फ्रेम आदमी का बिठाया हुआ हिस्सा है। चित्र के भीतर सब आ जाना चाहिए, ऐसा भी जरूरी नहीं है।

लाओत्से के अनुसार पेंटिंग पैदा हुई थी चीन में। ताओ चित्रकला अलग ही चित्रकला है। क्योंकि लाओत्से जैसा आदमी जब भी होता है, तो उसकी दृष्टि को लेकर सब दिशाओं में काम शुरू होता है। तो लाओत्से के अनुसार चित्र बनने शुरू हुए थे। उन चित्रों का मजा ही और था! उन चित्रों में फ्रेम नहीं है। उन चित्रों में चीजें शुरू और अंत नहीं होतीं। जिंदगी में कहीं कोई चीज शुरू और अंत नहीं होती। सब चीजें एंडलेस, बिगनिंगलेस हैं। सिर्फ हम जो चीजें बनाते हैं, वे शुरू होती हैं और अंत होती हैं। तो लाओत्से के जो चित्रकार चित्र बनाते हैं, वे कहीं से भी शुरू हो सकते हैं, कहीं भी समाप्त हो सकते हैं।

नई चित्रकला में वह बात प्रवेश कर रही है। नई कथा में वह बात प्रवेश कर रही है। कथा कहीं से भी शुरू होती है। पुरानी कथा देखिए। एक था राजा--वहीं से शुरू होती थी। एक बिगनिंग थी। और एक अंत था कि विवाह हो गया, फिर वे दोनों सुख से रहने लगे। बस यहां सब चीजें इस फ्रेम के बीच में पूरी होती थीं। नई कथा कहीं से भी शुरू होती है; नई कथा कहीं भी पूरी हो जाती है। सच पूछा जाए, तो नई कथा पूरी होती नहीं, शुरू होती नहीं, एक फ्रैगमेंट है। क्योंकि लाओत्सियन जो ख्याल है, वह यह है कि हम कुछ भी कहें, वह एक फ्रैगमेंट होगा। वह पूरा नहीं हो सकता। हम खुद ही पूरे नहीं हैं। सब चीजें खंड ही हैं। तो खंड ही रहने दो, फिर उनको पूर्ण करने की नाहक चेष्टा मत दिखलाओ। अन्यथा विकृति होती है, कुरूप हो जाता है सब।

काव्य में, चित्र में, संगीत में, स्थापत्य में, मूर्ति में, विज्ञान में सब तरफ से पूरब का मन प्रवेश कर रहा है। पश्चिम बहुत आक्रांत है, पश्चिम बहुत भयभीत है। हरमन हेस ने कहीं लिखा है कि पश्चिम को पता चलेगा शीघ्र कि तुमने पूरब के ऊपर हमला करके जो विजय पा ली थी, वह बहुत थोड़े दिन की सिद्ध हुई। लेकिन जिस दिन पूरब अपनी पूरी अंतर-भावनाओं को लेकर हमला कर देगा, उस दिन उनकी विजय स्थायी हो सकती है। तुमने जो विजय पा ली थी, वह बहुत ऊपरी ही सिद्ध होने वाली थी, क्योंकि वह बंदूक के कुंदे पर थी। लेकिन अगर कभी पूरब अपने पूरे अनुभव को, जो उसने हजारों वर्षों में पाला है, लेकर हमला करेगा... । निश्चित ही, उसका हमला भी और तरह का होगा। क्योंकि अनुभूति हमला नहीं करती, चुपचाप न मालूम किस कोने से प्रवेश कर जाती है। वह प्रवेश कर रही है।

पश्चिम आक्रांत है। और पश्चिम को यह बात रोज-रोज अनुभव हो रही है कि उसके मापदंड हिल रहे हैं। उसने जो तय किया था, वह कंप रहा है। और पूरब बड़े जोर से, जैसे आकाश में अचानक बादल छा जाएं, ऐसा छाता जा रहा है। वह धीरे-धीरे पूरे पश्चिम को घेर लेगा। स्वाभाविक भी है, क्योंकि पश्चिम की पूरी पकड़, ठीक से हम समझें, तो बहुत ऊपरी है, सुपरफीशियल है, सतह पर है। और सतह पर है, इसीलिए पश्चिम जल्दी सफल हो सका। पूरब की सारी पकड़ इतनी आत्मगत और गहरी है कि जल्दी सफल नहीं हो सकता।

ध्यान रहे, मौसमी फूल चार महीने में लग जाते हैं, दो महीने में लग जाते हैं। स्थायी फूल लगाने हों तो वर्षों लगते हैं। पूरब की पकड़ गहरी है। इसलिए बहुत, हजारों वर्ष लगते हैं, तब कहीं पूरब की एकाध धारणा विजय पाती है। पश्चिम की धारणाएं बहुत ऊपरी हैं। सौ वर्ष में एक धारणा विजय पा सकती है और अस्त हो सकती है। लेकिन पूरब प्रतीक्षा कर सकता है। पूरब बहुत प्रतीक्षा कर सकता है, और मौका देख सकता है कि जब मौका आएगा और पश्चिम पराजय के किनारे खड़ा हो गया है और पराजय के किनारे खड़ा है, तब पूरब ने जो जाना है, वह वापस फैल जा सकता है। लाओत्से पूरब की अंतरतम प्रज्ञा है, दि इनरमोस्ट विजडम! जो सारभूत है पूरब का, वह लाओत्से में छिपा है।

संतुलन नहीं होगा, समन्वय नहीं होगा। लाओत्से की धारणा पर एक नए विज्ञान का जन्म हो सकता है। और जल्दी होगा। क्योंकि बहुत सी बातें हैं, जो कि आपके ख्याल में एकदम से नहीं आ सकतीं। जैसे यूक्लिड की

ज्यामेट्री पश्चिम का आधार थी अब तक। सारे विज्ञान के नीचे जो गणित का फैलाव था, वह यूक्लिडियन था। और कोई सोच भी नहीं सकता था कि नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री उसको बदल देगी। कभी कोई नहीं सोच सकता था। लेकिन पिछले डेढ़ सौ वर्षों में यूक्लिड के आधार हिल गए और उसकी जगह नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री आ गई। अब नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री बिल्कुल लाओत्सियन है। कोई जानता नहीं है कि वह लाओत्सियन है, वह बिल्कुल लाओत्सियन है।

यूक्लिड कहता है, दो समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलती हैं। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि दो समानांतर रेखाएं मिली ही हुई हैं। तो अब लाओत्सियन सूत्र जो है न--मिली ही हुई हैं! तुम्हारे खींचने की कमजोरी है कि तुम आखिर तक नहीं खींचते, अन्यथा वे मिल जाएंगी। तुम खींचे चले जाओ, एक वक्त आएगा, वे मिल जाएंगी। तुम बहुत निकट देखते हो, दूर नहीं देखते। लेकिन दूर निकट का हिस्सा है। और अब स्वीकार करना पड़ रहा है कि अगर कोई भी तरह की दो समानांतर पैरेलल रेखाएं अंतहीन बढ़ाई जाएं, तो मिल जाएंगी।

यूक्लिड कहता है कि किसी भी वर्तुल, किसी भी सर्किल का कोई खंड स्ट्रेट लाइन नहीं हो सकता। कैसे होगा? एक वर्तुल है। उसका हम एक टुकड़ा तोड़ें, तो वह घूमा ही हुआ होगा, स्ट्रेट नहीं हो सकता। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि सब स्ट्रेट लाइन भी किसी बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं। कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर तुम दोनों तरफ खींचते चले जाओगे, बड़ा वर्तुल निर्मित हो जाएगा।

और अब स्वीकार करना पड़ रहा है कि वह बात ठीक है। क्योंकि इस पृथ्वी पर हम कोई भी सीधी रेखा खींचें, चूंकि पृथ्वी गोल है... । अगर मैं इस कमरे में, यह हमारा कमरा बिल्कुल सीधा दिखाई पड़ रहा है न! यह रेखा बिल्कुल सीधी है। लेकिन पृथ्वी गोल है, तो यह रेखा सीधी हो नहीं सकती। यह गोल पृथ्वी का, बहुत बड़ा गोल है, उसका एक छोटा सा खंड है। अगर हम किसी भी सीधी रेखा को खींचते ही चले जाएं दोनों तरफ, तो अंत में वर्तुल निर्मित हो जाएगा। इसका मतलब हुआ कि सब सीधी रेखाएं वर्तुल के खंड हैं। और यूक्लिड कहता था कि कोई वर्तुल का खंड सीधी रेखा नहीं हो सकता।

यूक्लिड की ज्यामेट्री की जगह नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री आ गई है।

पिछले दो सौ वर्षों में पश्चिम की साइंस का जो बुनियादी आधार था, वह था सर्टेंटी, निश्चयात्मकता। क्योंकि विज्ञान अगर निश्चय न हो, तो फिर काव्य में और विज्ञान में फर्क क्या है? विज्ञान को बिल्कुल निश्चित होना चाहिए, तभी विज्ञान है। लेकिन अभी पिछले पंद्रह वर्षों से नया सिद्धांत आया हैः अनसर्टेंटी, अनिश्चय। क्योंकि जैसे ही हमने अणु को तोड़ा और इलेक्ट्रान तक पहुंचे, वैसे ही हमको पता चला कि इलेक्ट्रान का जो व्यवहार है, वह अनसर्टेन है। उसके बाबत निश्चित नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा।

इलेक्ट्रान का व्यवहार जो है, आदमी जैसा है। अगर आदमी सच्चा हो, तो आदमी के बाबत भी नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा। हां, झूठे आदमियों के बाबत कहा जा सकता है कि वे क्या करेंगे। वे सुबह उठ कर क्या करेंगे, बराबर कहा जा सकता है। दोपहर क्या करेंगे, बराबर कहा जा सकता है। शाम क्या करेंगे, कहा जा सकता है। सांझ क्या करेंगे, कहा जा सकता है। उनका पूरा भविष्य लिखा जा सकता है कि ये तीन दफे क्रोध करेंगे दिन में, छह दफे सिगरेट पीएंगे, सात दफे यह करेंगे, वह सब कहा जा सकता है। लेकिन आथेंटिक आदमी के बाबत कल का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा। कल सुबह क्या करेगा, नहीं कहा जा सकता।

रात वह आथेंटिक आदमी उठ कर और सोई हुई यशोधरा को छोड़ कर चला जाएगा, यह नहीं कहा जा सकता। सोच भी नहीं सकती थी यशोधरा कि यह आदमी जो रात साथ सोया था, एक दिन का बच्चा था अभी

पैदा हुआ, यह चुपचाप रात नदारद हो जाएगा! यह उसकी कल्पना के भी भीतर नहीं आ सकता था। कोई कारण ही नहीं दिखाई पड़ता था कि यह आदमी कल सुबह अचानक नदारद हो जाएगा।

आथेंटिक, प्रामाणिक आदमी अनिश्चित होगा। अनिश्चित अर्थात स्वतंत्र होगा। निश्चित अर्थात गुलाम होगा।

हम सोचते थे, पदार्थ तो निश्चित ही होगा, क्योंकि पदार्थ तो पदार्थ है। लेकिन अब पदार्थ रहा नहीं, अब पदार्थ ऊर्जा है, इनर्जी है। और इनर्जी अनिश्चित है। इसलिए पिछले पंद्रह वर्षों में जो विज्ञान की गहनतम खोज है, वह हैः प्रिंसिपल ऑफ अनसर्टेंटी। अब अगर विज्ञान भी अनसर्टेन है, तो काव्य में और विज्ञान में अंतर क्या रहेगा?

आइंस्टीन ने अपने अंतिम दिनों में कहा है कि बहुत शीघ्र वह वक्त आएगा कि वैज्ञानिकों के वक्तव्य मिस्टिक्स के वक्तव्य मालूम पड़ने लगेंगे कि ये कोई रहस्यवादियों के वक्तव्य हैं। और एडिंगटन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने सोचना शुरू किया था, तो मैं सोचता था, जगत एक वस्तु है; और अब जब मैं अपना जीवन समाप्त कर रहा हूं, तो मैं कह सकता हूं, जगत एक वस्तु नहीं, एक विचार है। इट रिजेंबल्स मोर ए थॉट दैन ए थिंग।

अब विचार और वस्तु में बड़ा फर्क है। और वैज्ञानिक कहें कि जगत एक विचार जैसा मालूम पड़ता है, वस्तु जैसा नहीं, तो फिर जिन ऋषियों ने कहा कि जगत एक ब्रह्म है, कुछ फर्क रहा? जिन ऋषियों ने कहा, जगत एक आत्मा है, जगत एक चैतन्य है। तो अगर एडिंगटन कहता है, गणितज्ञ, वैज्ञानिक कहता है कि जगत एक विचार जैसा मालूम पड़ता है, वस्तु जैसा नहीं! तो एडिंगटन के वक्तव्य में और ऋषियों के वक्तव्य में फासला नहीं रह जाता।

विज्ञान जगह-जगह से टूट रहा है, उसका घर गिर रहा है। और यह सदी पूरी होते-होते विज्ञान का भवन धीरे-धीरे विनष्ट हो जाएगा। और उसकी जगह एक बहुत नई जीवन-चेतना ले लेगी। और वह जीवन-चेतना सहयोग की, विराट के साथ एक होने की! वह जीवन की जो धारा होगी, ब्रह्मवादी होगी, वस्तुवादी नहीं।

समन्वय नहीं होगा दोनों के बीच। यह खंड तो टूटेगा और गिरेगा। और विराट का अभ्युदय इसके भीतर से हो सकता है। होना चाहिए। होने की पूरी संभावना है।

सातवां प्रवचन

निष्क्रिय कर्म व निःशब्द संवाद--ज्ञानी का

Chapter 2 : Sutra 3

Therefore the sage manages affairs without
action; and conveys his doctrine without words.

अध्याय 2 : सूत्र 3

इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों
की व्यवस्था करते हैं तथा निःशब्द द्वारा अपने
सिद्धांतों का संप्रेषण करते हैं।

अस्तित्व द्वंद्व है। जो भी किया जाए, उसके साथ ही उससे विपरीत भी होना शुरू हो जाता है।

लाओत्से ने पहले दो सूत्रों में अस्तित्व की इस द्वंद्वात्मकता की बात की है। और अब तीसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, "इसलिए--देयरफोर दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन--इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था करता है।"

इसे समझना, थोड़े गहरे में जाना पड़े। अगर ज्ञानी किसी से कहे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तो वह साथ ही घृणा को जन्म दे रहा है। अगर ज्ञानी कहे कि मैं लोगों के हित के लिए काम करता हूं, तो वह अहित को जन्म दे रहा है। अगर ज्ञानी कहे कि मैं तुम्हें जो देता हूं, यह सत्य है, तो वह असत्य को जन्म दे रहा है। लाओत्से ने पहले कहा कि प्रत्येक चीज द्वंद्व से भरी है। यहां हम कुछ भी करेंगे, तो उससे विपरीत तत्काल हो जाता है। विपरीत बचेगा नहीं। विपरीत से बचने का उपाय नहीं है। हमने कुछ किया कि हम विपरीत के जन्मदाता हो जाते हैं। हमने किसी की रक्षा की, तो हम किसी को नुकसान पहुंचा देते हैं। और हमने किसी को बचाया, तो हम किसी को मिटाने का कारण बन जाते हैं।

यदि द्वंद्व जीवन का सार है, तो हम जो भी करेंगे, उससे विपरीत भी तत्काल हो जाएगा। चाहे हमें ज्ञात हो, चाहे हमें ज्ञात न हो; चाहे हम पहचान पाएं, चाहे हम न पहचान पाएं; चाहे किसी को ज्ञात हो और चाहे किसी को ज्ञात न हो; लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, यह असंभव है कि हम एक को पैदा करें और उससे उलटा पैदा न हो जाए।

इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करते हैं। बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करते हैं। अगर वे चाहते हैं कि आपका मंगल हो, तो आपके मंगल के लिए सक्रिय नहीं होते। अगर वे मंगल के लिए सक्रिय होंगे, तो आपका अमंगल भी हो जाएगा।

यह बहुत कठिन बात है। जटिल भी और गहन भी। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि अगर किसी का मंगल करना हो, तो मंगल करना पड़ेगा। अगर किसी की सेवा करनी है, तो सेवा करनी पड़ेगी। और किसी को सहायता पहुंचानी है, तो सहायता पहुंचानी पड़ेगी। लेकिन लाओत्से जिस सूत्र को समझा रहा है, वह यह है कि तुम जब सेवा करोगे, तभी तुम उसे गुलाम बनाने का यंत्र भी पैदा कर दोगे। जब तुम किसी को प्रेम करोगे, तो तुम घृणा का भी आयोजन निर्मित कर दोगे। क्योंकि प्रकट होते ही प्रेम घृणा को जन्म देता है; सक्रिय होते ही सेवा शत्रुता बन जाती है।

तो ज्ञानी क्या करेगा? क्या ज्ञानी प्रेम नहीं करेगा? क्या ज्ञानी मंगल के लिए कामना नहीं करेगा? क्या ज्ञानी सेवा के लिए आतुर नहीं होगा?

अगर वह ज्ञानी है, तो लाओत्से कहता है, ही मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, वह बिना सक्रिय हुए व्यवस्था करेगा। वह अगर प्रेम भी करेगा, तो प्रेम को सक्रियता नहीं देगा। उसका प्रेम कभी भी किसी क्रिया में प्रकट नहीं होगा। क्रिया तो दूर, वह अपने प्रेम को शब्द भी नहीं देगा। वह यह भी नहीं कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं। इसलिए नहीं कहेगा कि जो कहता है, मैं प्रेम करता हूं, यह कहने से ही इस शब्द के आस-पास घृणा की रेखा खिंच जाती है।

जब मैं किसी से कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो एक तो यह बात साफ हुई कि पहले मैं प्रेम नहीं करता था, अब करता हूं। और जब मैं कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो इसकी शर्तें होंगी कि किस स्थिति में मैं करूंगा और किस स्थिति में नहीं करूंगा। या कि यह बेशर्त होगा? कहा हुआ कोई भी शब्द बेशर्त, अनकंडीशनल नहीं हो सकता। फिर जब मैं कहता हूं, मैं प्रेम करता हूं, तो मानता हूं कि कल नहीं करता था, मानना पड़ेगा कि कल भी हो सकता है न करूं। इस प्रेम के छोटे से द्वीप के आस-पास बड़ा सागर अप्रेम का होगा। असल में, उस सागर से अलग दिखलाने के लिए ही तो मैं घोषणा करता हूं कि मैं प्रेम करता हूं। वह जो अंधेरा घिरा है चारों तरफ, उसमें इस दीए को जलाता हूं। उस अंधेरे के विपरीत ही यह दीया जला रहा हूं। और दीया जला कर मैं अंधेरे को और प्रकट कर रहा हूं, स्पष्ट कर रहा हूं; अंधेरे को भी मजबूत कर रहा हूं।

लाओत्से कहता है, ज्ञानी अगर प्रेम करेगा, तो सक्रिय नहीं होगा। इतना भी सक्रिय नहीं होगा कि वह कहे कि मैं प्रेम करता हूं। उसका प्रेम अकर्ममय होगा, इनएक्टिव होगा। उसका प्रेम उसकी घोषणा नहीं, उसका अस्तित्व होगा। उसका प्रेम उसका वक्तव्य नहीं, उसकी आत्मा होगी। वह प्रेम ही होगा। और इसलिए, मैं प्रेम करता हूं, यह कहना उसके लिए उचित नहीं होगा। जो घृणा है, वह कह सकता है, मैं प्रेम करता हूं। लेकिन जो प्रेम ही है, वह कैसे कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं? और प्रेम करता हूं, यह तो कहेगा ही नहीं, प्रेम करने के लिए जो आयोजना करनी पड़ती है, जो कर्म करना पड़ता है, वह भी वह करने नहीं जाएगा। उसका प्रेम एक मौन अभिव्यक्ति होगी, एक शून्य अभिव्यक्ति होगी। उसका प्रेम एक मौजूदगी होगी--अघोषित! एक प्रेजेंस होगी, एक उपस्थिति होगी--अप्रचारित, निःशब्द, निष्क्रिय। और बड़े आश्चर्य की बात तो यही है कि ऐसा जो प्रेम है, वह अपने से विपरीत को पैदा नहीं करता, घृणा को पैदा नहीं करता। क्योंकि जो सक्रिय नहीं हुआ, वह द्वंद्व के जगत में नहीं आया। ऐसा प्रेम सिर्फ प्रेम ही होता है। और ऐसा प्रेम कभी समाप्त नहीं होता; क्योंकि जो शुरू ही नहीं हुआ समय की धारा में, वह समय की धारा में समाप्त भी नहीं होगा।

पर ऐसे प्रेम को पहचानना अति कठिन है। क्योंकि हम शब्दों को पहचानते हैं। हम कर्मों को पहचानते हैं। कोई व्यक्ति कहे कि मैं प्रेम करता हूं, तो समझ में आता। कोई ऐसा कर्म करे प्रेम करने जैसा, तो समझ में आता।

अगर निष्क्रिय प्रेम हो, अनभिव्यक्त प्रेम हो, अघोषित प्रेम हो, तो हमारे ख्याल में ही नहीं आता। हम समझेंगे, नहीं है। इसलिए बहुत बार ऐसा हुआ कि इस पृथ्वी पर ठीक-ठीक प्रेमी नहीं पहचाने जा सके।

जीसस एक गांव से गुजर रहे हैं। और एक वृक्ष के तले विश्राम किया है। वह वृक्ष उस जमाने की बड़ी वेश्या मेग्दालीन का वृक्ष है, उसका बगीचा है। उसने अपनी खिड़की से झांक कर जीसस को देखा, जब वह जाने के करीब थे विश्राम करके। उसने बहुत लोग देखे थे, इतना सुंदर व्यक्ति नहीं देखा था। एक सौंदर्य है जो शरीर का है, और जो थोड़े ही परिचय से विलीन हो जाता है। और एक सौंदर्य है जो आत्मा का है, जो परिचय की गहराई से गहन होता जाता है। एक सौंदर्य है जो आकृति का है। और एक सौंदर्य है जो अस्तित्व का है। उसने बहुत सुंदर लोग देखे थे। मेग्दालीन सुंदरतम स्त्रियों में एक थी। सम्राट उसके द्वार पर दस्तक देते थे। सम्राटों को भी सदा द्वार खुला हुआ नहीं मिलता था। जीसस को देख वह मोहित हो गई। वह निकली अपने भवन के बाहर, जाते हुए युवक को रोका और जीसस से कहा, भीतर आएं, मेहमान बनें मेरे।

जीसस ने कहा, अब तो मेरा विश्राम पूरा हो चुका। कभी फिर तुम्हारे राह पर थक जाऊंगा, तो अब वृक्ष के नीचे विश्राम न करके भीतर आ जाऊंगा। पर अब तो मेरे जाने का समय हुआ।

मेग्दालीन के लिए यह भारी अपमान था। वह सोच भी नहीं सकती थी कि एक भिखारी जैसा युवक हतप्रभ न हो जाएगा उसे देख कर! बड़े सम्राट उसे देख कर होश खो देते थे। और जीसस ने अपना झोला उठा लिया, वे चलने को तत्पर हो गए। मेग्दालीन ने कहा, युवक, यह अपमानजनक है! यह पहला मौका है कि मैंने किसी को निमंत्रण दिया है। क्या तुम इतना भी प्रेम मेरे प्रति प्रकट न करोगे कि दो क्षण मेरे घर में रुक जाओ?

जीसस ने कहा, जो तुम्हारे पास प्रेम प्रकट करने आते हैं, फिर से सोचना, उन्होंने तुम्हें कभी प्रेम किया है? जिन्होंने प्रकट किया है, उन्होंने कभी प्रेम किया है? मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। लेकिन अभी तो मेरे जाने का समय हुआ।

मेग्दालीन नहीं समझ पाई होगी जीसस का यह कहना कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं, लेकिन अभी तो मेरे जाने का समय हुआ। सैकड़ों वर्ष तक जीसस के इस वक्तव्य पर विचार होता रहा है कि जीसस का क्या मतलब था कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। अगर ऐसा था, तो प्रेम प्रकट करना था। यह वक्तव्य भी बिल्कुल इम्पर्सनल है, अवैयक्तिक है। जीसस ने यह नहीं कहा कि मेग्दालीन, मैं तुझे प्रेम करता हूं। जीसस ने कहा, मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। यह किसी व्यक्ति के प्रति कही गई बात नहीं थी। सूचक थी। और अगर प्रेम था, तो थोड़ा सा कृत्य करके दिखाना था! इतना ही कृत्य करते कि उसके घर के भीतर चले जाते। यह कैसा प्रेम था?

फिर दुबारा कभी जीसस उस वृक्ष के नीचे भी नहीं रुके और दुबारा कभी मेग्दालीन के घर में भी नहीं गए। दुबारा उस रास्ते से गुजरने का मौका ही न आया। वह जीसस का जो वक्तव्य था कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं, वह न तो क्रिया बना और न व्यक्ति के प्रति घोषणा बना। पर उसका अर्थ क्या था?

लाओत्से को समझेंगे तो ख्याल में आएगा। फिर भी, लाओत्से शायद इतना भी न कहता कि मैं ही हूं अकेला जो प्रेम कर सकता हूं। लाओत्से इतना भी न कहता। क्योंकि इतना भी बहुत हो गया। इतने में भी रूप मिल गया, आकृति बन गई। इतने में भी व्यक्त हो गई बात और समय की धारा में प्रवेश कर गई। लाओत्से चुपचाप ही चल देता; लाओत्से उत्तर भी न देता। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जैसे ही हम कुछ प्रकट करते हैं, उससे विपरीत निर्मित हो जाता है, तत्क्षण! जैसे मैं बोलता हूं और पर्वत से प्रतिध्वनि गूंज जाती है, ऐसे ही।

यहां प्रेम, वहां घृणा संगृहीत होने लगती है! यहां दया, वहां कठोरता की पर्तें जमने लगती हैं! यहां अहिंसा, वहां हिंसा निवास बनाने लगती है! हम जो भी करते हैं, उससे विपरीत से नहीं बच सकते हैं।

इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती है कि जिसे भी हम प्रेम करते हैं, उसी से हम पीड़ा पाते हैं। जो भी किसी को प्रेम करेगा, वह उसी से पीड़ा पाएगा जिससे प्रेम करेगा। प्रेम से पीड़ा नहीं मिलनी चाहिए। लेकिन प्रेम प्रकट होकर तत्काल अप्रेम को पैदा कर देता है। अप्रेम से पीड़ा मिलती है।

लाओत्से कहता है, जो ज्ञानी हैं, जो जानते हैं, जिन्हें इस राज का पता है कि अस्तित्व में किसी भी चीज को बनाओ, विपरीत बन जाता है--इससे बचने का कोई उपाय नहीं है, इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता, यही नियम है--वे क्या करेंगे?

वे व्यवस्था तो करते हैं, लेकिन बिना क्रिया के व्यवस्था करते हैं।

"दि सेज कनवेज हिज डॉक्ट्रिन विदाउट वर्ड्स।"

और वह ज्ञानी जो है, बिना शब्द के अपना सिद्धांत समझाता है। बिना कर्म के अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता है, बिना शब्द के अपनी दृष्टि को, अपने दर्शन को।

सोचना पड़ेगा। क्योंकि ऐसा एक भी ज्ञानी नहीं हुआ, जिसने शब्द का उपयोग न किया हो। और लाओत्से कहता है, ज्ञानी कभी भी शब्द से अपने दर्शन को अभिव्यक्त नहीं करता। तो इसके दो मतलब हो सकते हैं।

एक मतलब तो यह कि जो भी बोले हैं, वे कोई भी ज्ञानी नहीं थे। और जो ज्ञानी थे, उनका हमें कोई पता नहीं। फिर लाओत्से, बुद्ध और जीसस और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट, वे भी ज्ञानियों की पंक्ति में सम्मिलित न हो सकेंगे। दूसरा अर्थ यह हो सकता है--और वही अर्थ है--कि बुद्ध ने जो भी बोला है, उस बोलने में उनका दर्शन नहीं है; जो भी बोला है, उसमें उनकी सार बात नहीं है। बोलने से तो केवल उन्होंने लोगों को बुलाया है निकट। जो निकट आ गए हैं, उनसे बिना बोले कहा है। बोलना तो एक डिवाइस थी, एक उपाय था, सत्य को बताने का नहीं, वे जो बोलने के सिवाय कुछ भी नहीं समझ सकते हैं, उन्हें पास बुलाने का।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। बोलने से तो सत्य को बोला नहीं जा सकता। बोलते ही सत्य असत्य को जन्म देता है। और बोलते ही सिद्धांत विवाद बन जाता है। इसलिए सब सिद्धांत वाद बन जाते हैं, बोलते ही। वाद बनते ही विपरीत वाद निर्मित होता है। संघर्ष और कलह और संप्रदाय और मत, सारा उपद्रव का जन्म होता है। क्या सत्य के बोलने से ऐसा होगा कि सत्य बोला जाए तो विवाद पैदा हो? सत्य के बोलने से तो विवाद पैदा नहीं होगा। लेकिन सत्य बोला ही नहीं जाता, और न कभी बोला गया है। जो भी बोला गया है, वह केवल, जो शब्द को ही समझ सकते हैं, उनको बुलाने का उपाय है। एक बार वे पास आ जाएं, एक बार वे निकट मौजूद हो जाएं, तो उनसे मौन में भी बात की जा सकती है।

यह सिर्फ प्रलोभन है, बोलना सिर्फ प्रलोभन है। जैसे हम छोटे बच्चों को शक्कर की गोलियां दे देते हैं स्कूल बुलाने के लिए, खेल-खिलौने रख देते हैं स्कूल बुलाने के लिए। फिर धीरे-धीरे खेल-खिलौने कम होते जाते हैं। नर्सरी में तो हमें खेल-खिलौने ही रखने पड़ते हैं; पढ़ाई-लिखाई का कोई सवाल नहीं। कहते उसे स्कूल हैं, बाकी पढ़ाई-लिखाई का कोई वास्ता नहीं है। फिर धीरे-धीरे खिलौने विदा होने लगेंगे। फिर भी बच्चों की किताबों में हमें बड़ी रंगीन तस्वीरें रखनी पड़ती हैं। जब बच्चे पहली दफे किताब लेते हैं, तो किताब के लिए रंगीन तस्वीर नहीं देखते, रंगीन तस्वीर के लिए किताब पढ़ते हैं। फिर रंगीन तस्वीरें समाप्त होने लगती हैं। फिर धीरे-धीरे तस्वीरें विदा हो जाती हैं।

ठीक ऐसे ही बुद्ध या लाओत्से जब बोलते हैं, तो बोलते हैं उनके लिए, जो सिर्फ बोलने को ही समझ सकेंगे। लोग जब पास आ जाते हैं, निकट आ जाते हैं, पास बैठने की क्षमता पा जाते हैं, सत्संग का रस और स्वाद मिलने लगता है, तब बुद्ध और लाओत्से जैसे लोग मौन होने लगते हैं। और जो वाणी के लोभ में आया था, वह किसी दिन मौन का संदेश पाकर लौटता है।

ज्ञानियों ने कभी भी कुछ कहा नहीं है। बहुत कुछ कहा है, यह जानते हुए कहता हूं। ज्ञानी सुबह से सांझ तक समझाते रहे हैं लोगों को, फिर भी सत्य उन्होंने नहीं कहा है। सत्य तो उन्होंने तब दिया है, जब सुनने वाला मौन में लेने को राजी हो गया। जब उसकी ग्राहकता आ गई, जब वह रिसेप्टिव हुआ, और जब उसकी तैयारी हो गई, तब उन्होंने उसे मौन में कुछ कहा है। कहने की घटना सदा मौन में घटी है।

लेकिन हम जो संग्रह करते हैं, वह तो बोला हुआ है। हम जो संग्रह करते हैं, वह बोला हुआ है। इसलिए शास्त्र में वह छूट जाता है, जो सत्य है। क्योंकि सत्य कभी शब्द में कहा नहीं गया था। जो कहा गया था, वह केवल प्रलोभन था। वह ऐसा ही है कि हम कभी भविष्य के लिए किसी स्कूल को बचाना चाहें, उसकी स्मृति को बचाना चाहें, स्कूल में रखे हुए खेल-खिलौने इकट्ठे कर लें। और बाद में, हजारों वर्ष बाद, हम कहें कि यही था स्कूल में जो पढ़ाया जाता था।

ये खेल-खिलौने नहीं पढ़ाए जाते थे। यह तो सिर्फ प्रलोभन था। जो पढ़ाया जाता था, वह यह खेल-खिलौनों में नहीं है। यह तो सिर्फ बच्चों को बुलाने के लिए निमंत्रण था।

बुद्ध ने जो कहा है, कृष्ण ने जो कहा है, लाओत्से ने जो कहा है, महावीर ने जो कहा है, उस कहे हुए को हम संगृहीत कर लेते हैं। लेकिन जो नहीं कहा है, उसको तो संग्रह करने का कोई उपाय नहीं है। और जो नहीं कहा है, या नहीं कह कर ही जो कहा है, चुप रह कर जो बताया है, मौजूद होकर, किसी के पास होकर जो बताया है, सन्निधि में जो, उपस्थिति में जिसकी प्रतीति हुई है, जो एक से दूसरे में प्रवेश कर गया है एक जीवंत धारा की तरह, उसका तो संग्रह नहीं हो पाता।

इसलिए हजारों वर्षों तक ऋषियों ने कोशिश की कि ग्रंथ लिखे न जाएं। हजारों वर्षों तक इस बात की आग्रहपूर्ण चेष्टा रही कि कुछ भी लिखा न जाए। क्योंकि लिखे हुए में वह तो छूट जाएगा जिसे कहने के लिए यह सब कहा था, यद्यपि इसमें वह कहा नहीं जा सका है। वे खाली, रिक्त स्थान तो छूट ही जाएंगे। और वही थे असली। इसलिए सैकड़ों वर्षों तक, बल्कि हजारों वर्षों तक... । वेद लिखे गए कोई पांच हजार वर्ष पहले। लेकिन लिखे जाने के पहले कम से कम नब्बे हजार वर्ष तक वे अस्तित्व में थे--कम से कम! लिखे तो गए हैं पांच ही हजार वर्ष पहले, लेकिन कम से कम नब्बे हजार--कम से कम कह रहा हूं, इससे ज्यादा की संभावना है, यह न्यूनतम बता रहा हूं आपको--कम से कम नब्बे हजार वर्ष तक वे अस्तित्व में थे। और जो वेद जैसे विचार को जन्म दे सकते थे, वे लिखने की कला न खोज पाते हों, यह नासमझी की बात है। जो वेद जैसे विचार को जन्म दे सकते हों, वे भाषा न बना पाते हों, लिपि न बना पाते हों, यह पागलपन की बात है।

नब्बे हजार वर्ष तक वेद क्यों नहीं लिखे गए?

आग्रह था कि न लिखे जाएं, न लिखे जाएं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सीधा ही संक्रमित करता रहे, डायरेक्ट ट्रांसफर हो। क्योंकि वह व्यक्ति शब्द भी दे सकेगा और वह शून्य मौजूदगी भी दे सकेगा! किताब फिर शून्य मौजूदगी नहीं दे सकेगी। किताब तो जड़ हो जाएगी। और किताब उनके भी हाथ लग जाएगी, जो कुछ भी नहीं जानते हैं। किताब को बचाना मुश्किल है। किताब अज्ञानी के हाथ में भी लग सकती है। और किताब अज्ञानी के हाथ में लग जाए तो अज्ञानी को इतनी जल्दी ज्ञानी होने का भ्रम पैदा होता है जिसका कोई हिसाब

नहीं। अज्ञानी होना बुरा नहीं है, अज्ञान में ज्ञानी का भ्रम पैदा हो जाना बहुत खतरनाक है। क्योंकि फिर ज्ञान के द्वार ही बंद हो गए।

हजारों-हजारों साल तक, सदियों तक आग्रह किया गया कि कुछ लिखा न जाए। जो जानता हो, वह उसे दे दे जो जानने के योग्य हो गया हो। जब तक जानने के योग्य न हो, तब तक शब्द का उपयोग करे; और जब जानने के योग्य हो जाए, तो निःशब्द संभाषण करे, मौन में कह दे। और जब तक कोई मौन को समझने के योग्य न हो जाए, तब तक जाहिर उसके सामने रखा जाए कि अभी उसे कुछ भी नहीं कहा गया है। अभी सिर्फ बाहरी बातें की गई हैं। अभी असली बात नहीं कही गई। तब तक उसे रोका जाए, ताकि उसे ज्ञानी होने का भ्रम न पैदा हो जाए।

जिस दिन से किताबें लिखी गईं, उस दिन से ज्ञानी कम और ज्ञान ज्यादा मालूम होने लगा। फिर जिस दिन से किताबें छापी गईं, उस दिन से तो बात ही सब समाप्त हो गई। क्योंकि लिखी हुई किताब भी बहुत सीमित लोगों तक पहुंच सकती थी; छपी हुई किताब का तो कोई पहुंचने की बाधा न रही। और जो भी महत्वपूर्ण था, वह क्रमशः--क्योंकि वह तो व्यक्ति के द्वारा सीधा ही संक्रमण हो सकता था--वह खोता चला गया।

लाओत्से जिन दिनों की बात कर रहा है, वह उन दिनों की बात है, जब ज्ञानी अपने दर्शन को निःशब्द में समझाते थे।

इसे और दो-तीन तरह से भी देख लेना जरूरी है।

जितने पीछे हम लौट जाएंगे, उतना ही साधना पांडित्य नहीं है। जितने पीछे हम लौटेंगे, साधना पांडित्य नहीं है। साधना मौन होने का अभ्यास है। और पांडित्य तो शब्द से भरने का अभ्यास है।

बुद्ध ने घर छोड़ा। तो वे गए; जो भी जानता था, उसके पास गए। और उससे कहा कि मैं परम सत्य की खोज में आया हूं, तुम्हें परम सत्य हो पता तो मुझे कहो। तो अदभुत लोग थे! जिन्हें नहीं पता था, उन्होंने कहा, परम सत्य का हमें पता नहीं; हम तो शास्त्र सत्य को जानते हैं। तो वह हम तुमसे कह सकते हैं। तो बुद्ध ने कहा, शास्त्र सत्य मुझे नहीं जानना, मुझे तो सत्य ही जानना है। तो उन्होंने कहा, तुम और किसी के पास जाओ।

फिर बुद्ध उनके पास गए, जिन्होंने उन्हें साधना कराई। एक व्यक्ति के पास बुद्ध तीन वर्ष तक साधना करते थे। जो-जो उसने कहा, वह उन्होंने पूरा किया। जब सब पूरा कर डाला, तब बुद्ध ने कहा कि अब कुछ और भी करने को बचा है? या मेरे करने में कोई भूल-चूक रही है? उस गुरु ने कहा, नहीं, तुम्हारे करने में कोई भूल-चूक नहीं रही; तुमने पूरी निष्ठा से पूरा कर दिया है। तो बुद्ध ने कहा, लेकिन मुझे परम सत्य का अभी तक कोई पता नहीं चला। तो उस व्यक्ति ने कहा, जितना मैं जानता था, उतना मैंने तुम्हें करवा दिया। परम सत्य का मुझे भी कोई पता नहीं है। अब तुम कहीं और जाओ; तुम किसी और को खोजो।

बुद्ध छह वर्ष तक ऐसे चक्कर काटते फिरे। जिसके पास जो सीखने मिला, उन्होंने सीखा। जब तक नहीं सीखा, तब तक सवाल भी नहीं पूछा। यह बड़े मजे की बात है। तीन साल एक आदमी के पास समाप्त किए हैं। जब उस आदमी ने कहा, अब मुझे सिखाने को कुछ भी नहीं है; तब बुद्ध ने कहा, लेकिन परम सत्य मुझे अभी नहीं मिला। तीन साल पहले पूछना था यह बात कि परम सत्य तुम्हारे पास है? तीन साल खराब करके यह पूछने की क्या जरूरत है?

असली सवाल यह नहीं है कि परम सत्य किसी के पास है। असली सवाल यह है कि तुम पहले अपने को योग्य बनाते हो या नहीं। इसलिए तीन साल बाद पूछा। क्योंकि यह योग्यता भी तो आनी चाहिए कि मैं पूछ

सकूं। जब गुरु ही कहने लगा कि अब मेरे पास सिखाने को कुछ भी नहीं, तब बुद्ध ने कहा, लेकिन परम सत्य मुझे नहीं मिला। और तुमने जो सिखाया, वह मैंने पूरा किया। अगर उसमें कोई कमी रही हो तो मुझे बताओ। मैं उसे पूरा करने को तैयार हूं। पर उसने कहा कि नहीं, तुम पूरा कर चुके हो। और अब बताने को मेरे पास कुछ भी नहीं। जितना मैं जानता था, वह मैंने तुमसे कह दिया। उसके आगे तुम कहीं और खोजो।

बुद्ध सारे गुरुओं के पास भटक लिए, सारे शास्त्रियों के पास भटक लिए, नहीं मिला। फिर वे अकेली अपनी यात्रा पर चले गए। लेकिन अपनी अकेली यात्रा पर जाने के पहले उन्होंने सब द्वार-दरवाजे खटखटा लिए। ध्यान रहे, अकेले की यात्रा भी वही कर सकता है, जिसने बहुतों के साथ चल कर देख लिया हो। अकेले की यात्रा पर भी वही जा सकता है, जो बहुत सी यात्राओं पर बहुतों के साथ जा चुका हो। हमारे चारों तरफ न मालूम कितना-कितना जानने वाले लोग हैं। जितना वे जानते हैं, उतने दूर तक तो उनके साथ चल लेना उचित है। उसके पहले अकेले होने की जिद्द भी खतरनाक है और नुकसानदायक है। यह अनुभव भी आवश्यक है--अकेले हो जाने के लिए।

तो बुद्ध ने एक-एक को खोजा। जो जहां तक ले जा सकता था, वहां तक ले गया। उसको धन्यवाद दिया कि उसने इतनी कृपा की, और विदा हुए। जब उन्हें परम सत्य का अनुभव हुआ, तब उन्होंने कहा कि मैं सोचता था कि शायद जिनके पास मैं गया हूं, वे मुझसे कुछ छिपा तो नहीं रहे हैं। लेकिन अब मैं कह सकता हूं, उन्होंने कुछ भी न छिपाया था। असल में, परम सत्य बात ऐसी थी कि उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता था। उसे कोई दूसरा नहीं दे सकता था। और मैं दूसरे से ले भी नहीं सकता था, क्योंकि मेरे मौन की भी वैसी क्षमता न थी। मैं शब्द से ही पूछता था, शब्द से ही वे बताते थे। जब कोई परम मौन में उतरने लगे, तभी तो परम मौन में उसे कहा भी जा सकता है।

लाओत्से कहता है, ज्ञानी न तो कर्म करते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वे व्यवस्था नहीं करते। इस भूल में न पड़ जाना। अकर्म का अर्थ निष्क्रिय नहीं है। अकर्म का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि ज्ञानी पड़े रहते हैं और कुछ नहीं करते। इसका मतलब बहुत और है। इसका मतलब यह है कि ज्ञानी न करने से कर्म की व्यवस्था करते हैं।

एक पिता है। अगर पिता सच में आदृत है, और आदृत है तो ही पिता है, अन्यथा पिता होने में क्या है! कोई मेकेनिकल, कोई यांत्रिक अर्थ में तो कोई पिता का कोई अर्थ नहीं होता। अगर सच में पिता है, तो उसके कमरे के भीतर आते ही बेटा व्यवस्थित होकर बैठ जाता है। नहीं, उसे आते ही से डंडा नहीं बजाना पड़ता कि सब ठीक-ठाक बैठ जाओ, मैं पिता भीतर आ गया हूं। उसे व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। वह आया और व्यवस्था हो जाती है। उसकी मौजूदगी। उसे पता भी नहीं चलता कि उसके आने से व्यवस्था हो गई है। उसका आना और व्यवस्था हो जाना, एक साथ घटित होता है।

अगर पिता थोड़ा कमजोर है, तो उसे आंख से थोड़ा इशारा करना पड़ता है। लेकिन वह भी बड़ा शक्तिशाली पिता है जो आंख के इशारे से व्यवस्था करवा लेता है। उतने शक्तिशाली पिता भी खोजने आज मुश्किल हैं। हालांकि कमजोर है, क्योंकि मौजूदगी काम नहीं करती, उसको आंख से कुछ कर्म करना पड़ता है। उसे कुछ दबाव, कुछ इशारा, उसे कुछ करना पड़ता है। उसे सक्रिय होना पड़ता है।

उससे भी कमजोर पिता है जो शब्द बोल कर कहता है, शांत हो जाओ, व्यवस्था से बैठो। हालांकि वह भी काफी शक्तिशाली पिता है। उतना शक्तिशाली पिता भी आज नहीं पाया जाता कि वह कहे और कोई मान ले! संभावना तो यह है कि वह कहे तो और न कोई माने!

नसरुद्दीन से कोई उसका मित्र पूछ रहा है कि तुम्हारे सात बेटे हैं, परेशान कर डालते होंगे? नसरुद्दीन ने कहा, कभी नहीं, मुझे मेरे बेटों ने कभी कोई तकलीफ न दी। हां, एक दफे भर मुझे घूंसा तानना पड़ा था इन सेल्फ डिफेंस, अपनी आत्मरक्षा के लिए। बस, बाकी और कभी नहीं। बाकी तो मैं ऐसी चाल ही नहीं चलता जिसमें कि झंझट आए।

बाप कह रहा है! कि मैं ऐसी चाल ही नहीं चलता जिसमें झंझट आए। जहां बेटे होते हैं, वहां से बच कर निकल जाता हूं। सिर्फ एक बार आत्मरक्षा के निमित्त मुझे घूंसा बांधना पड़ा था। बस और कभी मुझे उन्होंने कोई तकलीफ नहीं दी।

और भी कमजोर बाप है, तो एक ही बात को पचास दफे कहेगा। कोई परिणाम न पाएगा तो भी इक्यावनवीं दफे कहने तो तैयार है।

ठीक वैसी ही स्थिति ज्ञानी की है। ज्ञानी अकर्म से व्यवस्था करता है। उसकी मौजूदगी व्यवस्था देती है। कर्म से व्यवस्था नहीं करता। कर्म सब्स्टीट्यूट है। ज्ञान न हो, तो फिर कर्म से व्यवस्था करनी पड़ती है।

इसलिए आपको एक और राज ख्याल में आ जाए। आप जितने अतीत में उतरेंगे, ज्ञानी को आप उतना ही अकर्मी पाएंगे। वह अपनी कुटी में बैठा है, या अपने जंगल में बैठा है। यद्यपि उसकी मौजूदगी व्यवस्था देती थी। और वह जंगल की कुटी में बैठा रहता और सम्राट को कुछ पूछना होता तो जंगल भागा हुआ आता। उसके चरणों में आकर बैठता। ज्ञानी राज्य में रहे, इसके लिए सम्राट कोशिश करते। वह राज्य में बना रहे, बस! वह मौजूद रहे!

फिर जैसे-जैसे इतिहास में हम आगे हटें, वैसे हमें पता चलेगा कि ज्ञानी कर्म में उतर रहा है। बुद्ध और महावीर भी हमें बहुत कर्मठ नहीं मालूम पड़ते। लेकिन अगर आज बुद्ध और महावीर हों, तो हम उनसे कहेंगे, कुछ समाज-सेवा करिए, कुछ अस्पताल चलाइए, कोई स्कूल खोलिए, कोई ग्रामदान करवाइए। कुछ तो करिए! गरीबी हटाओ आंदोलन चलाइए, कुछ करिए। बैठे-ठाले आपका क्या फायदा है? अगर आज बुद्ध को पैदा होना पड़े, और लाओत्से को तो भूल कर पैदा नहीं होना चाहिए। अगर लाओत्से आज पैदा हो, तो हम उसको पता नहीं, पता नहीं हम उसको किस काम के लिए कहें कि तू यह काम कर!

आज जिसे हम महात्मा कहते हैं, वह महात्मा ज्ञानी नहीं है। उसका महात्मा होना भी इस बात पर निर्भर करता है कि वह क्या करता है। उसका महात्मा होना उसके शुद्ध अस्तित्व पर निर्भर नहीं करता। उसका महात्मा होना उसके बीइंग पर निर्भर नहीं, उसके डूइंग पर निर्भर है--वह क्या करता है! सवाल यह नहीं है कि व्हाट ही इ.ज, सवाल यह है कि व्हाट ही इ.ज डूइंग, उसने क्या किया? उसका ब्योरा क्या है?

अगर आज हम पूछें कि लाओत्से ने क्या किया? तो कोई भी ब्योरा नहीं है। करने के नाम पर लाओत्से की जिंदगी बिल्कुल खाली है। अगर हम करने से तौलें, तो हमारे गांव का जो छोटा-मोटा सेवक होता है, वह भी बहुत कर रहा है। एक ग्राम-सेवक भी ज्यादा कर रहा है लाओत्से से।

नहीं, लेकिन पुराने दिनों ने यह पूछा ही नहीं कि तुम करते क्या हो? पूछा यह कि तुम हो क्या? और समझ यह थी कि जब इतनी बड़ी आत्मिक सत्ता होती है, तो उसके परिणाम में बहुत कुछ होता है जो करना नहीं पड़ता। लाओत्से अगर इस गांव में मौजूद है, तो उसकी मौजूदगी काफी है। इस गांव के लिए जो भी हो सकता है, वह उसकी मौजूदगी से हो जाएगा। करने जाना पड़े, तो लाओत्से कहता है, बहुत कमजोर ज्ञानी है। ज्ञानी की मौजूदगी सक्रियता है। उसका होना काफी है। जैसे चुंबक मौजूद हो, तो फिर उसे कुछ करना नहीं पड़ता, लोहे के टुकड़े खिंचे चले आते हैं। अगर चुंबक को एक-एक लोहे के टुकड़े को खींचने भी जाना पड़े, तो

समझना कि चुंबक नकली है। चुंबक नहीं है। चुंबक का होना जो है, उसकी जो शक्ति है, वह उसके बीइंग में, वह उसके होने में छिपी है। उसके होने से ही उसका फील्ड निर्मित होता है, उसका क्षेत्र बनता है। उस क्षेत्र में जो भी आता है, वह खिंच आता है।

बुद्ध जहां बैठ जाएं, वहां एक चुंबकीय क्षेत्र बन जाता है। उस बीच घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं। कहानियां कहती हैं--आज कहानियां हो गई हैं--कि बुद्ध जिस गांव में ठहर जाएं, वहां चोरी बंद हो जाती है। नहीं यह कि बुद्ध एक-एक चोर को समझाते हैं। हत्याएं बंद हो जाती हैं। नहीं कि बुद्ध हत्यारों को जाकर राजी करते हैं कि तुम व्रत लो, अणुव्रत ले लो, कि अब हत्या नहीं करोगे। बुद्ध की मौजूदगी!

और बुद्ध मानते हैं कि अगर मेरी मौजूदगी काम न कर पाए, तो मेरे चिल्लाने से नहीं काम होगा। जब अस्तित्व काम नहीं कर पाता, तो वाणी क्या कर पाएगी? अगर मेरा होना ही काम नहीं कर पाता, तो मेरा प्रचार क्या काम कर पाएगा? अस्तित्व तो बड़ी शक्तिशाली चीज है। अगर वह भी बेकार जा रही है, तो चिल्लाने से क्या होगा? अगर बुद्ध चोर के सामने खड़े हैं और चोर की चोरी नहीं गिर जाती, तो बुद्ध के समझाने से क्या होगा कि चोरी छोड़ दो। अगर बुद्ध की मौजूदगी नहीं चोरी छुड़वा पाती, तो बुद्ध की वाणी क्या बुद्ध से बड़ी है?

इसे थोड़ा ऐसा देखें। तो क्या बुद्ध चोर के हाथ-पैर दाबें तो चोर चोरी छोड़ देगा? तो क्या बुद्ध का हाथ-पैर दाबना बुद्ध के होने से बड़ा है?

नहीं, लाओत्से जब कह रहा है, तो वह यह कह रहा है कि बीइंग से बड़ा कुछ भी नहीं है। वह जो आत्म-स्थिति है, उससे बड़ा कुछ भी नहीं है। कर्म वगैरह तो सब परिधि हैं, छोटी-मोटी बातें हैं। वह जो आत्मा में जो सार है, अगर वही कुछ नहीं कर पाता, तो फिर कुछ और कुछ न कर पाएगा।

इसलिए लाओत्से कहता है, देयरफोर। वह फिर कहता है, इसलिए। क्योंकि एक को पैदा करो तो विपरीत पैदा हो जाता है, इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था और निःशब्द द्वारा अपने दर्शन का संप्रेषण करते हैं। जो उन्होंने जाना है, उसे मौन से कहते हैं; और जो उन्होंने जीया है, उसे मौजूदगी से फैलाते हैं। यह बड़ी मौन घटना है। यह बड़ी सायलेंट, चुप, शांत घटना है। ज्ञानी एक शून्य की तरह विचरण करते हैं, जैसे नहीं हैं।

बड़ी मजेदार घटना है कि लाओत्से की मरने की कोई खबर नहीं मिली है। लाओत्से कब मरा, इसका कोई उल्लेख नहीं है। लाओत्से का क्या हुआ, कहां गया, इसका इतिहास के पास कोई लेखा-जोखा नहीं है। एक लोक-प्रचलित बात जरूर चलती रही है हजारों साल तक कि लाओत्से को जिस आदमी ने आखिरी बार देखा, उसने पूछा कि लाओत्से, कहां जा रहे हो? तो लाओत्से ने कहा, जहां से मैं आया था! तो उस आदमी ने पूछा, लेकिन लोग सदा-सदा चिंता करते रहेंगे कि तुम कहां गए? क्या हुआ?

लाओत्से ने कहा, जब मैं पैदा हुआ तो अज्ञानी था। तो थोड़ा शोरगुल मचा था मेरे पैदा होने का। थोड़ी आवाज, घटना घटी थी मेरे पैदा होने की। तब मैं अज्ञानी था। अब मैं ज्ञानी होकर मरूंगा, तो मेरे मरने की कोई भी, कोई भी आवाज भी पैदा नहीं होगी। मेरे मरने की घटना ही नहीं घटेगी एक अर्थ में। घटनाओं के जगत में मेरा कोई लेखा-खोजा नहीं रहेगा। क्योंकि ज्ञानी चुपचाप जीता है और चुपचाप विदा हो जाता है।

और ऐसा ही चुपचाप वह विदा हो गया। लोगों ने जाना भर कि वह था, और अब नहीं है। लेकिन उसकी मृत्यु की कोई घटना नहीं घटी है। घटना इस अर्थ में कि किसी दूसरे को भी पता चल गया हो कि लाओत्से अब मर गया। लाओत्से ने जो यह अंतिम बात कही है किसी यात्री से कि अब मैं ज्ञानी हूं, अब तो मेरे मरने की कोई

आवाज, कोई ध्वनि पैदा नहीं होगी। अब तो मैं ऐसे ही खो जाऊंगा, जैसे नहीं था। क्योंकि सच में मैं उसी दिन खो गया, जिस दिन मैंने जाना। अब मैं उस दिन के बाद एक शून्य हूं। शून्य चले तो पैरों की आवाज नहीं होती और शून्य चले तो पदचिह्न नहीं बनते और न पगध्वनि होती है। जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं और पैरों के कोई चिह्न नहीं बनते, ऐसे ही।

यह जो लाओत्से कहता है कि ज्ञानी बिना कुछ किए व्यवस्था करते हैं, भाषा में कठिनाई है कहने में, इसलिए उसे कहना पड़ता है, व्यवस्था करते हैं। व्यवस्था भी करते नहीं, व्यवस्था होती है। तो बजाय ऐसा कहने के कि दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, उचित यही है कहने का, अफेयर्स आर मैनेज्ड विदाउट एक्शन। ज्ञानी व्यवस्था करता है, ऐसा नहीं; ज्ञानी से बिना क्रिया के, बिना कर्म के कार्य व्यवस्थित होते हैं। ऐसा जान कर, चेतन रूप से उसे कुछ करना नहीं पड़ता है। वह कुछ करता ही नहीं, क्योंकि करने का जो वहम है, वह अहंकार के साथ ही गिर जाता है। जब तक मैं हूं, तब तक कर्ता होता है, तब तक लगता है, मैं करता हूं। और बड़े मजे की बात है, ऐसी चीजों को भी मैं कहता हूं, मैं करता हूं, जिनको मैं बिल्कुल नहीं करता हूं। जब तक मेरा मैं है, तब तक मैं सब चीजों को इस ढंग से विवेचना करता हूं कि लगे कि मैं उनका कर्ता हूं। श्वास लेता हूं तो मैं लेता हूं, जीता हूं तो मैं जीता हूं, बीमार होता हूं तो मैं होता हूं, स्वस्थ होता हूं तो मैं होता हूं, जैसे कि मैं कर रहा हूं। जवान होता हूं तो मैं होता हूं, बूढ़ा होता हूं तो मैं होता हूं, जैसे मैं कुछ कर रहा हूं। अहंकार हर एक क्रिया को अपने से जोड़ लेता है।

ज्ञानी का तो अहंकार खो गया, इसलिए हर क्रिया परमात्मा से जुड़ जाती है, ज्ञानी से हट जाती है। इसलिए ज्ञानी कुछ भी नहीं करता। और जिस दिन ज्ञानी इस स्थिति में आ जाता है कि कुछ भी नहीं करता, उस दिन ज्ञानी सिर्फ माध्यम हो जाता है परमात्मा का। वह परमात्मा का एक साधन हो जाता है। परमात्मा ही उसे उठाता, परमात्मा ही उसे बिठाता, परमात्मा ही उसे चलाता, परमात्मा ही उससे बोलता, या परमात्मा ही उससे चुप होता है।

इसलिए उपनिषद के ऋषियों ने अपने नाम अपने वचनों के साथ नहीं लिखे। नहीं लिखे इसलिए कि वे परमात्मा के वचन हैं। इसलिए वेद को हम किसी भी व्यक्ति से नहीं जोड़ पाए, वरन हमने जाना कि वेद अपौरुषेय हैं, किसी पुरुष के द्वारा निर्मित नहीं हैं। इससे बड़ी नासमझी की बात भी पैदा हुई। लोग कहने लगे कि वेद को स्वयं ईश्वर ने लिखा है। सचाई दूसरी है। सचाई इतनी है कि जिन्होंने वेद को लिखा, उनकी ऐसी समझ नहीं थी कि हम लिख रहे हैं। लिखा तो आदमी ने ही है। लेकिन जिस आदमी ने लिखा है, उसकी अस्मिता बिल्कुल खो गई थी। उसे बिल्कुल कारण न था कहने का कि मैं लिख रहा हूं। उससे कोई पूछता, तो वह यही कहता कि परमात्मा लिखवा रहा है, या परमात्मा लिख रहा है। लिखे तो मनुष्यों ने ही हैं। लेकिन जिन्होंने लिखे थे, उनका कोई अहंकार नहीं था। इसलिए वे कह सके कि हमारे नहीं हैं, परमात्मा ही लिखवा रहा है, अपौरुषेय हैं।

इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम सत्यों का किसी भी, किसी भी ढंग से प्राकट्य हुआ है, वह सभी अपौरुषेय है। उसमें करने वाले को, मैं कर रहा हूं, इसका कोई भी पता नहीं रहा है। और जहां इसका पता रहा है, वहीं सत्य विकृत हुआ है, वहीं सौंदर्य कुरूप हो गया है, वहीं प्रेम घृणा बन गया है।

लाओत्से कहता है, न तो वे कर्म से व्यवस्था करते हैं और न शब्द से संदेश देते हैं। फिर भी कर्म करते हैं। लाओत्से चलता है, उठता है, सोता है, बैठता है। खाना खाता है। भूख लगती है, नींद आती है। भिक्षा मांगता है।

एक गांव से दूसरे गांव जाता है। कोई समझने आता है, उसे समझाता है। कर्म तो वह करता है। लेकिन इन कर्मों से लाओत्से ऐसी भ्रांति में नहीं पड़ता कि मैं दुनिया की कोई व्यवस्था कर रहा हूं। इसे और समझ लें।

लाओत्से इन कर्मों को ऐसे ही करता है, जैसे लाओत्से से कोई पूछता है कि तुम उठते हो, बैठते हो, सोते हो, जागते हो, चलते हो, समझाते हो, कर्म तो करते ही हो! तो लाओत्से कहता है, मेरे कर्म ऐसे ही हैं, जैसे सूखा पत्ता हवा में उड़ता हो। हवा पूरब की तरफ ले जाती है, तो सूखा पत्ता पूरब की तरफ चला जाता है; हवा पश्चिम की तरफ ले जाती है, तो सूखा पत्ता पश्चिम की तरफ चला जाता है। कभी-कभी हवा आकाश में उठा देती है बवंडर पर चढ़ा कर, तो सूखा पत्ता आकाश में उड़ जाता है। और कभी-कभी हवाएं शांत हो जाती हैं और पत्ते को बिल्कुल भूल जाती हैं, और पत्ता जमीन पर पड़ जाता है। मैं एक सूखे पत्ते की तरह हवाओं में डोलता रहता हूं। हवाओं की जो मर्जी! जब वे मुझे आकाश में उठा देती हैं, तब मैं अकड़ नहीं जाता कि देखो, मैं सिंहासन पर बैठा हूं। और जब वे मुझे जमीन पर गिरा देती हैं, तो मैं जार-जार रोने नहीं लगता कि देखो, मैं अपमानित हुआ, मेरी उपेक्षा हुई। जब वे मुझे आकाश में उठा देती हैं हवाएं, तब मैं उनके ऊपर तैरने का आनंद लेता हूं। और जब वे मुझे नीचे गिरा जाती हैं, तब मैं विश्राम में चला जाता हूं, विश्राम का आनंद लेता हूं। जब पश्चिम की तरफ ले चलती हैं, तब पश्चिम की यात्रा! और जब पूरब की तरफ ले चलती हैं, तो पूरब की यात्रा! मेरी अपनी कोई यात्रा नहीं। मुझे कहीं जाना नहीं। हवाओं को भी नाराज करने का कोई कारण नहीं पाता हूं। अपनी कोई मर्जी होती, तो हवाओं से भी कहता कि पूरब मत ले जाओ, कि पश्चिम मत ले जाओ, कि ऊपर मत उठाओ, कि नीचे मत गिराओ। अपनी कोई मर्जी नहीं है।

लाओत्से कहता है, जो भी हो रहा है, वह मैं नहीं कर रहा हूं; वह हो रहा है। इसलिए जो भी फल आए, कोई प्रयोजन नहीं है। कोई लाओत्से से समझता है, समझ ले; ठीक। न समझे, ठीक। लाओत्से किसी को कनविंस करने नहीं निकला हुआ है।

इसको फर्क समझें। एक मुसलमान मित्र दो-चार दिन पहले मुझे मिलने आए थे। वे पूछने लगे कि हिंदू धर्म की संख्या इतनी कम क्यों है, अगर इतना ऊंचा धर्म है तो? इसलाम की इतनी संख्या है, ईसाइयत की इतनी संख्या है, बौद्ध धर्म की इतनी संख्या है। और हिंदू धर्म सबसे पुराना है, आप कहते हैं, तो उसकी संख्या सबसे ज्यादा होनी चाहिए। तो मैंने उनसे कहा कि उसका कारण है। जिन ऋषियों ने हिंदू धर्म के आधार रखे, वे कहते थे, हम कौन हैं किसी को कनविंस करने वाले! हम कौन हैं कि किसी को समझा कर बदल दें! हम कौन हैं कि किसी को कनवर्ट करें! कि उससे कहें कि तू हिंदू हो जा! हम ही नहीं हैं। तो अगर कोई पतंजलि के पास जाए, या वशिष्ठ के पास जाए, या याज्ञवल्क्य के पास जाए, तो समझा देंगे; जो पूछेगा, बता देंगे। फिर बात समाप्त हो गई। लेना-देना नहीं है। वह माना कि नहीं, इसका भी कोई हिसाब नहीं रखना है। वह राजी होकर मेरे पीछे चला कि नहीं, इसका भी कोई हिसाब नहीं रखना है। मैं हूं ही नहीं। मेरे पीछे चलने का सवाल क्या है? तुमने उठाया था सवाल, अगर मेरे प्राणों में जवाब उठा तो दे दिया, नहीं उठा तो नहीं दिया। वह भी मैंने दिया है, ऐसा नहीं।

अगर आप लाओत्से से सवाल पूछें, तो जरूरी नहीं है कि जवाब आए। लाओत्से कहेगा, आएगा जवाब तो दे दूंगा, और नहीं आएगा तो क्षमा मांगता हूं। कई बार लाओत्से के पास लोग कष्ट में पड़ गए हैं। कोई बहुत दूर से यात्रा करके आया है और लाओत्से से सवाल पूछता है। और लाओत्से कहता है, लेकिन जवाब तो आता नहीं है मित्र! वह आदमी कहता है, मैं बहुत दूर से आ रहा हूं, मीलों चल कर आ रहा हूं। लाओत्से कहता है, तुम कितने

ही मीलों चल कर आओ, लेकिन जो जवाब मेरे भीतर नहीं आता उसे मैं कहां से लाऊं! तुम रुको। आ जाए, तो मैं तुम्हें दे दूं। न आ जाए, तो तुम क्षमा करना।

कनवर्शन, दूसरे को बदलने की भी चेष्टा नहीं है। जैसे सूरज निकला, और किसी फूल को खिलना हो तो खिल जाए और न खिलना हो तो न खिले। जो फूल नहीं खिले, वे सूरज के मत्थे नहीं मढ़ जाएंगे। कल कोई परमात्मा सूरज से नहीं पूछ सकेगा कि इतने फूल नहीं खिले, उस दिन तुम सुबह निकले थे, उसका जिम्मा? और जो फूल खिल गए, उनका भी गौरव लेने के लिए सूरज किसी दिन परमात्मा के सामने हाथ फैला कर खड़ा नहीं होगा, कि इतने फूल खिल गए थे जब मैं निकला था! सूरज का काम है निकलना। फूल को खिलना हो, खिल जाए। वह फूल का काम है। सूरज निकलता है और चला जाता है। ऐसे लाओत्से जैसे व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं। व्यवस्था भी नहीं करते, संदेश भी नहीं देते। फिर भी जो लेने की तैयारी हो किसी की, तो उनसे संदेश मिल जाता है। और कोई अपने को व्यवस्थित करवाना चाहे, तो उनकी मौजूदगी में व्यवस्थित हो जाता है। लेकिन ये सारी घटनाएं हैपनिंग हैं। ये सारी घटनाएं नियोजित कर्म नहीं हैं। ये सहज फलीभूत होने वाली, सहज घट जाने वाली घटनाएं हैं।

यह हमें ख्याल में आना बहुत कठिन होता है। क्योंकि हमने कभी जीवन में ऐसा कोई काम नहीं किया, जो बिना किए किया हो। और हमने कभी कोई ऐसी बात नहीं कही, जो बिना कहे कही हो। इसलिए हमारे आयाम में, हमारे अनुभव में यह बात कहीं नहीं आती। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, कुछ प्रयोग करके देखें। और आप पाएंगे कि आपके बात यह अनुभव में आनी शुरू हो गई।

जैसे आप चाहते हों कि आपके घर में शांति हो, तो व्यवस्था मत दें, सिर्फ आप शांत होते चले जाएं। मैनेज मत करें। मैनेज करने वाले से कभी कुछ व्यवस्थित नहीं होने वाला है। आप सिर्फ शांत हो जाएं। अगर आप घर में शांति चाहते हैं, दस सदस्यों का परिवार है, आप चाहते हैं, घर में शांति हो, आप सिर्फ शांत हो जाएं। और थोड़े ही दिन में आप पाएंगे कि घर में अनूठी शांति उतरनी शुरू हो गई। न मालूम अनजाने रास्तों से, न मालूम अनजाने द्वारों और झरोखों से शांति घर में उतरने लगी। जिनमें आपको कल सब अशांति-अशांति का उपाय दिखता था, वे भी शांत होते हुए मालूम होने लगे हैं। आप सिर्फ शांत होते जाएं, और साल भर बाद आप देखेंगे कि घर चारों तरफ शांत हो गया। और आपने कहीं भी कुछ किया नहीं। अगर कुछ किया, तो अपने भीतर किया।

असल में, शांत व्यक्ति अपने चारों तरफ शांति की तरंगें पैदा करने लगता है। अशांत व्यक्ति अपने चारों तरफ पूरे समय रेडिएशन कर रहा है, किरणें फेंक रहा है अशांति की। अब तो वैज्ञानिकों ने उपाय...। अभी एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने एक मशीन बनाई है, जो व्यक्ति को सामने खड़ा करके बता सकती है कि इस व्यक्ति के आस-पास अशांति फैलती है या शांति। उस व्यक्ति के शरीर से जो किरणें निकलती हैं, वे सामने की उस मशीन पर टकराती हैं और वह मशीन इतनी खबर देती है कि किस वेवलेंथ की किरणें इस व्यक्ति के शरीर से रेडिएट होती हैं। और हर तरह के रेडिएशन की अलग वेवलेंथ है। और हर वेवलेंथ का अलग परिणाम है।

और बड़े मजे की बात है कि वह आदमी वहीं सामने खड़ा है, आप उसके कान में जाकर कह दें कि तुम्हें पता है, तुम्हारी पत्नी पड़ोसी के साथ भाग गई! फौरन उसका रेडिएशन बदल जाता है। वह मशीन फौरन खबर देती है कि रेडिएशन बदल गया। अब यह आदमी आग से जला जा रहा है। यह किसी की हत्या कर दे, ऐसी इसकी भीतरी स्थिति हो गई है। या आप उसके कान में आकर कह दें कि तुम्हें लाटरी मिल गई, कुछ पता है! उसका सारा रेडिएशन और हो जाता है।

पूरे समय, हमारा शरीर जो है, एक रेडिएटर है। हम सब छोटे-छोटे न्यूक्लियस हैं, जिनसे चौबीस घंटे हजारों तरह की किरणें बाहर फेंकी जा रही हैं। और बड़े मजे की बात यह है कि जब हम किरणें फेंकते हैं और दूसरे से प्रतिफलित होकर लौटती हैं, तो हम समझते हैं, वह दूसरा हम पर क्रोध कर रहा है। अगर मैं अपने चारों तरफ ऐसी किरणें फेंक रहा हूं जो दूसरे से लौट कर क्रोध बन जाएंगी, तो मुझे लगेगा कि दूसरा आदमी मुझ पर क्रोध कर रहा है। जब कि मैं यह कभी ख्याल न करूंगा कि मैं जो भी उपाय कर रहा हूं अपने व्यक्तित्व से, वे ऐसे हैं कि दूसरे से लौट कर किरणें क्रोध बन जाएंगी।

और हम सब यही कर रहे हैं। और एकाध आदमी नहीं, सब जब ऐसा कर रहे हों, तो एक घर में दस आदमी हैं, तो उपद्रव दस गुना; दस गुना नहीं, बल्कि गुणनफल हो जाता है; कुछ हिसाब ही नहीं रहता उसका कि कितना उपद्रव मच जाता है--एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे, और लौट रही हैं, और जा रही हैं--एक जाल बन जाता है। उस जाल में हम जीते हैं। और फिर हम मैनेज करते हैं। और यह परेशान आदमी, उपद्रव से भरा आदमी शांति के लिए स्थापना करने के उपाय करता है। और अशांति खड़ी कर देता है।

लाओत्से कहता है, शांत हो जाएं, तो आपके चारों तरफ शांति फैलने लगेगी।

फिर भी जरूरी नहीं है। क्योंकि लाओत्से के पास भी कोई अशांत रह सकता है। और बुद्ध के पास बैठ कर भी कोई हत्या का विचार कर सकता है। बुद्ध का खुद सौतेला भाई बुद्ध के पास वर्षों रह कर भी बुद्ध की हत्या के आयोजन ही करता रहा। तो उसने बुद्ध को मारने के हजारों उपाय किए हैं। बुद्ध नीचे ध्यान कर रहे हैं शिलाखंड पर बैठ कर, वह ऊपर से पत्थर सरका देता है। बड़ी मुश्किल की बात है! बुद्ध ध्यान में बैठे हों, तो उनके पास तो जो रेडिएशन होना चाहिए, वह अपूर्व शांति का होना चाहिए। और अगर बुद्ध के पास नहीं होगा, तो किसके पास होगा? पर वह देवदत्त है, वह पत्थर सरका रहा है नीचे बुद्ध पर। वे रास्ते से गुजर रहे हैं, निरीह बुद्ध, जो कि एक फूल को भी चोट न पहुंचाना चाहें, और देवदत्त एक पागल हाथी को छुड़वा देता है। और वह सौतेला भाई है, कजिन है। तब तो सवाल उठता है कि बात क्या है? अगर बुद्ध के पास शांति की और आनंद की किरणें फैलती हैं, तो इसको क्या हो रहा है?

लेकिन वे भी तभी फैल सकती हैं, जब आप ग्राहक हों, नहीं तो आपके भीतर नहीं फैलेंगी। आप अपने द्वार बंद रख सकते हैं। इतनी स्वतंत्रता है आपको। आप अपने भीतर के जहर में जी सकते हैं। और अमृत की भी वर्षा हो रही हो, तो छाता लगा सकते हैं।

तो जब यह कहा जा रहा है तो इस बात को ध्यान में रख लेना आप, कि लाओत्से का जो ज्ञानी है, वह अपनी तरफ से तो शांत हो जाएगा, अपनी तरफ से शांति की किरणें फेंकेगा; फिर जो भी उस शांति की किरणों के लिए ग्राहक हैं, उनमें व्यवस्था हो जाएगी; जो नहीं हैं ग्राहक, उनमें व्यवस्था नहीं होगी। लेकिन फिर भी लाओत्से उनकी अशांति में भागीदार तो नहीं ही रह जाएगा। वह अशांति की किरणें फेंकता, तो उनकी अशांति को बढ़ाने में तो भागीदार होता ही! अब कम से कम अशांति उनकी नहीं बढ़ाएगा। अगर शांति न भी उनको मिल सकी, तो भी अशांति बढ़ाने में हाथ नहीं बंटाएगा। और इतना भी कम नहीं है, इतना भी बहुत है! और इसके इकट्ठे परिणामों का जोड़ तो बहुत ज्यादा हो जाता है। उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

अभी हम अणु का विस्फोट कर लिए हैं। तो हमें पता चला है कि परमाणु में, पदार्थ के आखिरी कण में अपरिसीम शक्ति है। इसकी हमें कभी कल्पना भी नहीं थी। यह कभी किसी ने सोचा भी नहीं था। यह इमेजिनेशन में भी कभी नहीं था कि परमाणु में इतनी शक्ति होगी। क्योंकि सदा हम सोचते हैं कि शक्ति बड़े में होनी चाहिए, छोटे में क्या शक्ति होगी? शक्ति को हम बड़े से सोचते हैं। छोटे में क्या शक्ति होगी? लेकिन राज

उलटा है। जितना सूक्ष्मतम हो, उतना ही ज्यादा शक्तिशाली होता है। शक्ति सूक्ष्म में है, बड़े में नहीं। सूक्ष्मतम में अधिकतम शक्ति है। और जो शून्यतम है, वह शक्ति का अपरिसीम पारावार है। वहां तो कोई हिसाब ही नहीं है। सूक्ष्म में शक्ति बढ़ती चली जाती है। शून्य पूर्ण शक्ति का हो जाता है।

अगर ज्ञानी पूर्ण शून्य हो जाए, निष्क्रिय; न कुछ करता, न कुछ बोलता; नहीं, उसमें कोई हलन-चलन ही नहीं है, कोई कंपन ही नहीं है; निष्कंप हो जाए, शून्य हो जाए, तो परम शक्ति का आगार हो जाता है। वह परम शक्ति अनेक-अनेक रूपों में आयोजन करने लगती है, अनेक व्यवस्थाएं देने लगती है। अनेक जीवन उसके निकट बदल जाते हैं। दूर-दूर तक, कभी-कभी लाखों वर्षों तक उसके परिणाम होते हैं।

अब मैंने आपसे कहा कि देवदत्त है सौतेला भाई। बुद्ध के पास वर्षों रह कर भी हत्या के विचार बुद्ध की ही कर रहा है। लेकिन ऐसे लोग भी हैं, जो पच्चीस सौ साल बाद बुद्ध के नाम से ही पुलकित हो जाते हैं और उनके भीतर कोई द्वार खुल जाता है। और पच्चीस सौ साल की सीमा पार करके बुद्ध की किरणें उनमें आज भी प्रवेश कर जाती हैं। क्योंकि इस जगत में कोई भी रेडिएशन कभी खोता नहीं है। इस जगत में जो भी किरण है, वह कभी खोती नहीं है। इस जगत में जो भी है, वह नहीं खोता है। बुद्ध के हृदय से जो किरणों का विकीर्णन हुआ था, वे आज भी, आज भी उसी तरह फैलती रहती हैं। आज भी कोई हृदय उनके लिए खुलता है, तो तत्काल उसमें प्रवेश कर जाती हैं।

बुद्ध का ही क्यों, जो भी जानने वाले कभी हुए हैं, उनका भी! और जो नहीं जानने वाले हुए हैं, उनका भी! जब आप हत्या का विचार करते हैं, तो आप अकेले नहीं होते; जगत के सारे हत्यारों की किरणें आपको उपलब्ध हो जाती हैं। ध्यान रहे, न तो इस जगत में किसी आदमी ने अकेले हत्या की है और न इस जगत में अकेले किसी आदमी ने परम ज्ञान पाया है। जब कोई परम ज्ञान पाने को आतुर होता है, तो जगत के सब परम ज्ञानियों की शक्ति उसमें बहने लगती है। और जब कोई किसी की हत्या करने को आतुर होता है, तो जगत के सारे हत्यारे--जो कभी हुए, जो अभी हैं, या जो कभी होंगे--उन सब का प्रवाह उस आदमी की तरफ हो जाता है, वह गड्ढा बन जाता है। इसलिए हत्यारे अक्सर कहते हैं, और ज्ञानी भी। हत्यारे अक्सर कहते हैं कि यह मैं कैसे कर पाया? यह मैं नहीं कर सकता, यह मैं सोच ही नहीं सकता कि हत्या मैंने की होगी। यह मैंने कभी कल्पना नहीं की थी कि मैं ऐसा काम कर पाऊंगा।

इसमें थोड़ा सा सत्य है। क्योंकि हत्या करने का विचार तो हत्यारे ने ही किया, लेकिन हत्या करते वक्त उसको जो किरणें उपलब्ध होती हैं, जो शक्ति उपलब्ध होती है, उसमें बहुत हत्यारों का हाथ है।

इसलिए कोई ज्ञानी भी यह नहीं कहता कि यह ज्ञान मुझे मिला। यद्यपि चेष्टा उसने की, साधना उसने की, संकल्प उसने किया, समर्पण उसने किया। लेकिन जब ज्ञान उपलब्ध होता है, तो जगत के समस्त ज्ञानियों की शक्ति उसके साथ खड़ी हो जाती है। इस जगत में हम व्यक्ति की तरह नहीं जीते हैं। हम एक बड़े, अनंत व्यक्तियों के जाल में एक बिंदु की तरह जीते हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है कि चुप भी हो जाता है सब, मौन से भी कह दिया जाता है, और निष्क्रियता से भी व्यवस्था हो जाती है। व्यक्ति जो है, वह परमाणु है चेतना का। जैसे कि साइंस ने खोज लिया एटम; वह है पदार्थ का। अगर हम व्यक्ति के भीतर उतरते चले जाएं--और उसी के भीतर उतरने का नाम धर्म है। और ये सारे के सारे जो सूत्र हैं लाओत्से के, ये उसी की तरफ इशारे हैं कि हम भीतर उतरते चले जाएं।

अब जब हम कहते हैं, कर्म से क्या व्यवस्था करते हो, होने से ही हो जाएगी। तो कर्म तो होता है बाहर, और होना होता है भीतर। बीइंग तो है भीतर, डूइंग है बाहर। जब लाओत्से कहता है कि तुम शुद्ध हो जाओ तो

चारों तरफ शुद्धि फैल जाएगी, तुम शुद्ध करने की कोशिश मत करो; तो वह यह कह रहा है कि भीतर जाओ। जब लाओत्से कहता है, शब्द से न कह सकोगे सत्य को, निःशब्द से। तो शब्द तो है बाहर, निःशब्द है भीतर। तो वह कहता है, भीतर जाओ। यह सारा आयोजन, यह सारा इशारा भीतर की तरफ गति का है।

और जब कोई भीतर पहुंचता है, तो उस परमाणु को उपलब्ध हो जाता है, जो चैतन्य का परमाणु है, चिन्मय परमाणु है। दि एटम ऑफ कांशसनेस! और उसकी विराट ऊर्जा है। उस चैतन्य के परमाणु को ही हम परमात्मा कहें। उसकी विराट ऊर्जा है। जैसे ही हम उस जगह पहुंचते हैं, इतनी शक्ति हो जाती है कि शक्ति ही काम करती है। फिर हमें अलग से काम नहीं करना पड़ता। अगर हम ऐसा कहें तो अजीब लगेगाः इस जगत में शक्तिहीन ही काम करते हैं; शक्तिशालियों के तो होने से ही काम हो जाता है। इस जगत में जो नहीं जानते, वे ही केवल श्रम करके कुछ कर पाते हैं; जो जानते हैं, वे तो विश्राम से भी कर लेते हैं। जिन्हें पता है, वे तो मौन से भी बोल देते हैं; और जिन्हें पता नहीं है, वे लाख-लाख शब्दों का उपयोग करके भी कुछ भी नहीं कह पाते हैं।

लाओत्से का यह सूत्र बहुत बारीक है। वह आदमी ही बारीक था। वह जो भी कह रहा है, ऊपर से दिखाई पड़ेगा कि बहुत छोटा है। अभी एक मित्र ने मुझे भीतर जाकर कहा कि आज का सूत्र तो बहुत छोटा है।

छोटा नहीं है, यह सूत्र बहुत बड़ा है। एक ही पंक्ति में है, पर इस एक सूत्र में करीब-करीब सब वेद आ जाते हैं, सब धर्म-ग्रंथ आ जाते हैं। जो भी जानने वालों ने कहा है, इसमें सब समाया हुआ है--इस छोटे से सूत्र में! इस अकेले को बचा कर पूरी किताब भी फेंक दी जाए, तो जो जानता है, वह इस छोटी सी कुंजी से पूरी किताब फिर से खोज लेगा। काफी है। उसे फिर दोहरा दूं। फिर आपके सवाल होंगे।

"देयरफोर दि सेज मैनेजेज अफेयर्स विदाउट एक्शन, एंड कनवेज हिज डॉक्ट्रिन विदाउट वर्ड्स। इसलिए ज्ञानी निष्क्रियता से व्यवस्था करता है, और निःशब्द द्वारा अपने दर्शन को संप्रेषित कर देता है।"

इस संबंध में कोई सवाल हों, या पीछे कोई सवाल रह गए हों, तो वे ले लें। और कल एक बैठक और बढ़ानी पड़ेगी, ताकि एक सूत्र रह गया है दूसरे अध्याय का, वह हम कल कर लेंगे।

प्रश्नः ओशो, लाओत्से के अद्वैत मूलक दर्शन की व्याख्या से पता चलता है कि वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो चुका था। फिर क्या कारण है कि संसार के इने-गिने लोगों ने ही उसके जीवन-दर्शन को अपना मार्ग-दर्शक बनाया? क्या उसकी यह विफलता ही उसके दृष्टिकोण की कटु आलोचना नहीं है? और क्या अरस्तू का अपनाया जाना उसके विज्ञान की उत्कृष्टता का प्रमाण नहीं है? कृपया इस पर प्रकाश डालें!

लाओत्से को बहुत कम लोग जानते हैं। जितना ऊंचा हो शिखर, उतनी ही कम आंखें उस तक पहुंच पाती हैं। जितनी हो गहराई, उतने ही कम डुबकीखोर उस गहराई तक पहुंच पाते हैं। सागर की लहरें तो दिखाई पड़ती हैं, सागर के मोती दिखाई नहीं पड़ते हैं।

लाओत्से की गहराई सागरों की गहराई है। कभी कोई गहरा डुबकीखोर वहां तक पहुंच पाता है। जगत डुबकीखोरों से नहीं बना हुआ है। जगत तो उनसे चलता है, जो लहरों पर तैरने वाली नाव बना लेते हैं। आदमी को उस पार जाना होता है; आदमी को सागर की गहराई में जाने का प्रयोजन नहीं होता। तो जो नाव बनाने का विज्ञान बता सकते हैं, वे प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

अरस्तू महत्वपूर्ण हो गया। क्योंकि अरस्तू ने जो तर्क दिया, वह संसार के काम का है। चाहे दूर जाकर खतरनाक सिद्ध हो, लेकिन पहले कदम में बहुत प्रीतिकर है। चाहे अंतिम फल जहरीला हो, लेकिन ऊपर मिठास

की पर्त है। तो अरस्तू की बात समझ में आएगी, क्योंकि अरस्तू शक्ति कैसे उपलब्ध हो, इसके सूत्र दे रहा है। और लाओत्से शांति कैसे मिले, इसके सूत्र दे रहा है। यद्यपि शांति ही अंतिम रूप से शक्ति है, और शक्ति अंतिम रूप से सिवाय अशांति के और कुछ भी नहीं है।

लेकिन प्राथमिक रूप से ऐसी बात नहीं है। अरस्तू के रास्ते पर चलिए तो एटम बम तक पहुंच जाएंगे। और लाओत्से के रास्ते पर चलिए तो एटम बम तक नहीं पहुंचेंगे। लाओत्से के रास्ते पर चलिए तो लाओत्से पर ही पहुंच जाएंगे, और कहीं नहीं। तो जिन्हें यात्रा करनी है, उनके लिए तो अरस्तू ही अच्छा लगेगा। क्योंकि कहीं-कहीं-कहीं पहुंचते रहेंगे, चांद पर पहुंचेंगे--दूर! लाओत्से पर तो वे ही लोग यात्रा कर सकते हैं, जो यात्रा नहीं ही करना चाहते हैं। बस, लाओत्से पर ही पहुंच सकते हैं। न किसी चांद पर, न किसी तारे पर, न किसी अणु बम पर, कहीं भी नहीं।

फिर हमारे मन में, सबके मन में, शक्ति की आकांक्षा है, महत्वाकांक्षा है। धन चाहिए, शक्ति चाहिए, पद चाहिए, यश चाहिए, अस्मिता चाहिए, अहंकार चाहिए। लाओत्से की हम सुनेंगे और भाग खड़े होंगे। क्योंकि हमारा सब कुछ छीन लेने की बात है वहां। हमें लाओत्से देता तो कुछ भी नहीं, ले सब लेता है। और हम सब भिखमंगे हैं। हम भिक्षा मांगने निकले हैं। लाओत्से के पास हम जरा भी न टिकेंगे। क्योंकि हमारे पास और जो है, भिक्षापात्र है, शायद वह भी छीन ले!

डायोजनीज के संबंध में कथा है कि डायोजनीज एक लालटेन लेकर घूमा करता था, दिन के उजाले में भी, एथेंस की सड़कों पर। और कोई पूछता, किसको खोज रहे हो? तो वह कहता, एक ईमानदार आदमी की तलाश है, ईमानदार आदमी को खोज रहा हूं। कई वर्षों तक ऐसा चलता रहा; एक आदमी कई वर्षों से देखता था। एक दिन उसने पूछा कि वह ईमानदार आदमी मिला? सफलता मिली? डायोजनीज ने कहा, काफी सफलता यही है कि अपनी लालटेन बची हुई है। इसको भी कई लोग ले जाने की कोशिश करते रहे। अपनी लालटेन बची है, यही कोई कम है!

आदमी लाओत्से के पास जाएगा तब, जब खोने की तैयारी हो। कितनों की खोने की तैयारी है? छीनने की तैयारी है। तो छीनने का जो शास्त्र है, वह अरस्तू से विकसित हो सका। इसलिए तो पूरब हारा। पूरब अरस्तू को पैदा नहीं कर सका, इसलिए पूरब हारा, गुलाम रहा, इतनी परेशानियां झेली हैं। क्योंकि पूरब छीनने का शास्त्र विकसित नहीं कर सका। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि लंबे अरसे में फायदे में कौन रहेगा। लंबे अरसे की बात अलग हो जाती है। पहले कदम पर कौन फायदे में है, इससे कुछ तय नहीं होता। दूसरे कदम पर सब बदल जाता है। अंत तक पहुंचते-पहुंचते सब बदल सकता है। और बदल जाएगा।

पूरब ने बीच में काफी नुकसान उठाया, ऐसा दिखाई पड़ता है। लेकिन अगर पूरब हिम्मत से लाओत्से और बुद्ध के साथ खड़ा रहे, तो पश्चिम को समझना पड़ेगा कि उसने नासमझी की है खुद। उसने जो छीना, वे खिलौने थे। उनसे कुछ फर्क नहीं पड़ता था। और उसने जो खोया, वह आत्मा थी। और पूरब ने जो खोया, वे खिलौने थे। और जो बचाया, वह आत्मा थी। अगर पूरब निश्चित रूप से खड़ा रहे लाओत्से के साथ।

लाओत्से का नाम कम लोगों तक पहुंचा, उसका कारण यही है कि लाओत्से तक कोई जाना नहीं चाहता। मिल जाए तो हम उससे बचना चाहेंगे, कि अभी नहीं, फिर कभी; जब समय आएगा, हम आपके पास आएंगे। आप कहां मिल गए हैं हमें! अभी नहीं, अभी तो हम खोजने निकले हैं, अभी तो हम कमाने निकले हैं। इसलिए, और इसलिए भी कि लाओत्से जो कह रहा है... ।

दो तरह की बातें हैं इस जगत में। एक तो ऐसी बात है, जो कि निपट साधारण मनुष्य को, जैसा मनुष्य है, उसकी ही समझ में आ जाती है। और एक ऐसी बात है, जब तक वह मनुष्य पूरी तरह न बदले, तब तक समझ में ही नहीं आती। एक तो ऐसी बात है कि आदमी जैसा है--प्रकृति उसे जैसा पैदा करती है, एक जानवर की तरह--एक तो उस जानवर की तरह जो आदमी है, उसकी ही सीधी समझ में आ जाता है। कोई और ट्रेनिंग की जरूरत नहीं होती उसको। उसकी वृत्तियां ही समझ लेती हैं कि ठीक है। और एक ऐसा ज्ञान है, जब तक यह आदमी पूरा रूपांतरित न किया जाए, प्रशिक्षित न किया जाए, तैयार न किया जाए, तब तक इसकी समझ में वह ज्ञान नहीं आता।

लाओत्से जो कह रहा है, वह सीधे-सीधे आदमी जैसा पैदा होता है, उसकी समझ का नहीं है। उसकी समझ का नहीं है। आदमी रूपांतरित हो, यानी लाओत्से को समझने के पहले भी एक कीमिया से गुजरना जरूरी है, तभी लाओत्से समझ में आएगा। अन्यथा वह समझ में नहीं आएगा।

समझें हम, एक छोटा बच्चा है। उसे हम हरे, पीले, लाल पत्थर बीनने को कह दें, वह बीन लाएगा। लेकिन हम उससे कहें कि हीरा छांट लो इसमें से, तो जरा कठिनाई हो जाएगी। हीरे की परख के लिए रुकना पड़ेगा। और बहुत संभव यह है कि बच्चा पत्थर बचा ले और हीरा फेंक दे। क्योंकि हीरा तो तैयार करना पड़ता है। हीरा तो छिपा होता है। कई बार तो हीरा पत्थर से बदतर होता है। उसकी तो पूरी तैयारी होती है, तब वह प्रकट होता है। और बच्चा उसे अभी पहचान न पाएगा। बच्चे की भी तैयारी होती है, तब परख आएगी।

तो लाओत्से तो हीरे की बातें कर रहा है। तो पृथ्वी पर जब भी कोई बच्चे नहीं रह जाते, कोई प्रौढ़ होता है, मैच्योर होता है, तब लाओत्से को समझ पाता है। अरस्तू को समझने के लिए तो स्कूल जाने वाला बच्चा पर्याप्त है। उसमें कोई और विशेष योग्यता की जरूरत नहीं है। अभी भी मनुष्यता उस जगह नहीं आई है, जहां लाओत्से को अधिक लोग समझ सकें--अभी भी। अभी भी कभी लाख में एक-दो आदमी समझ पाते हैं। ध्यान रहे, जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह हमेशा एरिस्टोक्रेटिक है। जो भी महत्वपूर्ण है, वह आभिजात्य है। वह थोड़े से ही लोगों की समझ में आने वाला है। और ज्ञान की शर्त है अपनी, कि ज्ञान आपके लिए नीचे नहीं उतरता, आपको ही ज्ञान के लिए ऊपर चढ़ना पड़ता है। लाओत्से आपके लिए नीचे नहीं उतरेगा; आपको ही लाओत्से के लिए ऊपर चढ़ना पड़ेगा।

तो ज्ञान एक चढ़ाई है, ऊंची चढ़ाई है। विज्ञान, आप जहां हैं, वहीं आपको उपलब्ध होता है। ज्ञान, आप आगे बढ़ें, तो उपलब्ध होता है। तो लाओत्से कम लोगों की समझ में आया। लेकिन जिनकी भी समझ में आया, वे इस जगत के श्रेष्ठतम फूल थे। अरस्तू सबके काम का है, लेकिन वे लोग इस जगत के फूल नहीं हैं।

फिर जितनी गहन बात हो, अपने समय से उतने ही पहले हो जाती है। जैसे लाओत्से ने जो कहा है, अभी भी शायद और ढाई हजार साल लगेगा, तब लाओत्से कंटेंप्रेरी हो पाएगा। तब वह समसामयिक हो पाएगा, आज से ढाई हजार साल बाद। तब लोगों को लगेगा कि ठीक, अब हम वहां खड़े हैं, जहां से लाओत्से को हम समझ सकें।

इसे ऐसा समझें तो आसानी होगी। एक आदमी कविता करता है। अगर कविता उसकी सबको समझ में आ जाती है, अभी समझ में आ जाती है, तो दो दिन से ज्यादा टिकने वाली नहीं है। समझ नहीं आती, किसी को समझ आती है, शिखर पर जो है उसको समझ आती है, तो यह कविता हजारों साल टिक जाएगी। एक कालिदास हजारों साल टिक पाता है। एक फिल्मी गीत दो महीने भी टिक जाए तो बहुत है। फिल्मी गीत दो महीने नहीं टिकता। सब की समझ में आता है; एकदम से धुन पकड़ लेता है। मोहल्ले-मोहल्ले, गांव-गांव, खेत-

खेत, गली-कूचे-कूचे गाया जाने लगता है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसको गुनगुनाने लगते हैं। हर बाथरूम उसे सुन लेता है। फिर अचानक पाया जाता है कि वह खो गया। फिर दुबारा कभी उसकी कोई खबर नहीं मिलती। बात क्या है? सब की समझ में इतना आ गया कि सब की समझ के तल का था। उसके बचने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जब एक कोई सच में गीत पैदा होता है, तो वर्षों लग जाते हैं; कभी-कभी कवि मर जाता है, तब पता चलता है।

सोरेन कीर्कगार्ड ने किताबें लिखीं। उसकी जिंदगी में किसी को पता न चल सका। एक किताब मुश्किल से छाप पाया, तो पांच कापी बिकीं। वह भी अपने मित्रों ने खरीदीं। बाप जो पैसा छोड़ गया था, बैंक में जमा था, उसी से अपना जिंदगी भर खर्च चलाया। क्योंकि वह तो चौबीस घंटे सोचने, खोजने में लगा था। कमाने की फुर्सत न थी। बाप जो छोड़ गया था बैंक में, हर एक तारीख को उसमें से कुछ पैसा निकाल लाना है, महीना गुजार कर फिर पहुंच जाना है। जिस दिन आखिरी पैसा चुका, बैंक गया, और बैंक में पता चला कि पैसा तो पूरा समाप्त हो गया। बैंक के बाहर ही उसकी सांस टूट गई, सोरेन कीर्कगार्ड की। उसने कहा, अब तो कोई जीने की कोई बात ही न रही! जिस दिन पैसा खाते में चुक गया, उस दिन दरवाजे पर गिर कर मर गया। क्योंकि एक पैसा आने का तो कहीं से कोई उपाय न था। कोई सवाल ही न था। सौ साल किसी ने याद भी न किया सोरेन कीर्कगार्ड को। उसकी किताबों का, उसके नाम का किसी को पता न था। इधर पिछले तीस-चालीस वर्ष में पुनराविष्कृत हुआ। और आज पश्चिम में जिस आदमी का सर्वाधिक प्रभाव समझा जाए, वह सोरेन कीर्कगार्ड है। और अब लोग कहते हैं कि अभी सैकड़ों वर्ष लगेंगे सोरेन कीर्कगार्ड को ठीक से समझने के लिए। लेकिन उसके गांव के लोग हंसे। लोगों ने मजाक उड़ाई कि पागल हो, अरे कुछ कमाओ! चार पैसे कमा लो!

विनसेंट वानगॉग ने जो चित्र बनाए, आज एक-एक चित्र की कीमत तीन लाख, चार लाख, पांच लाख रुपए है। एक-एक चित्र की! और विनसेंट वानगॉग एक चित्र न बेच सका। किसी दूकान से दो कप चाय के लिए थे, तो उसको एक पेंटिंग दे आया कि पैसे तो नहीं हैं। कहीं से एक सिगरेट का पैकेट लिया था, उसको एक पेंटिंग दे आया कि पैसे तो नहीं हैं। मरने के साठ साल बाद जब उसका पता चलना शुरू हुआ, वानगॉग का, तो लोगों ने अपने कबाड़खानों में खोज कर उसके चित्र निकाल लिए। किसी होटल में पड़ा था, किसी दूकान में पड़ा था, किसी से रोटी ली थी उसने और एक चित्र दे गया था। जिनके पास पड़े मिल गए, वे लखपति हो गए। क्योंकि एक-एक चित्र की कीमत पांच-पांच लाख रुपया हो गई।

आज केवल दो सौ चित्र हैं उसके। लोग छाती पीट-पीट कर रोए, क्योंकि वह तो कई को दे गया था। वह कोई फेंक चुका था, कोई कुछ कर चुका था। किसी को पता नहीं था, क्या हुआ। और विनसेंट वानगॉग मनुष्य-जाति के इतिहास में पैदा हुए चित्रकारों में चरम कोटि का चित्रकार है अब। लेकिन अपने वक्त में, अभी सिर्फ डेढ़ सौ साल पहले, सप्ताह में पूरे सात दिन रोटी नहीं खा सका। क्योंकि उसका भाई उसे जितना पैसा देता, वह इतना होता कि वह सात दिन सिर्फ रोटी खा सके। तो वह चार दिन रोटी खा लेता और तीन दिन के पैसे बचा कर रंग खरीद कर चित्र बना लेता। बत्तीस साल की उम्र में जब बिल्कुल मरणासन्न हो गया, क्योंकि चार दिन खाना खाना और तीन दिन चित्र बनाना, यह कैसे चलता, तो गोली मार कर मर गया। और लिख गया यह कि अब कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मैं भाई को व्यर्थ तकलीफ दूं! उसको आखिर रोटी के लिए पैसे तो देने ही पड़ते हैं। और मुझे जो बनाना था, वह मैंने बना लिया। एक चित्र, जिसके लिए मैं साल भर से रुका था, वह आज पूरा हो गया।

अब ये जो लोग हैं, ये किसी और तल पर जीते हैं। उस तल पर जब मनुष्य-जाति कभी पहुंचती है, तब उनका आविष्कार होता है। मगर विनसेंट वानगॉग या सोरेन कीर्कगार्ड, ये कोई एवरेस्ट पर जीने वाले लोग फिर भी नहीं हैं। ये फिर भी ऐसे ही छोटी-मोटी पहाड़ियों पर जीने वाले लोग हैं। लाओत्से तो जीता है गौरीशंकर पर। वहां तक तो कभी-कभी कोई आदमी पहुंचता है। और कभी हम आशा करें कि कभी मनुष्य-जाति का कोई बड़ा हिस्सा भी उस जगह निवास बनाएगा, तो हजारों-लाखों साल प्रतीक्षा करनी पड़े।

इसलिए नहीं प्रभाव हो पाता। पर पुनः-पुनः ऐसे लोगों को फिर-फिर खोजना पड़ता है। इनका स्वर कभी खोता नहीं, बना ही रहता है, गूंजता ही रहता है। और कई दफे तो ऐसा होता है कि हम बिल्कुल ही भूल गए होते हैं। और जब कभी फिर कोई वैसी बात कहता है, तो हमें लगता है, बहुत नई बात कह रहा है। लाओत्से के शिष्य च्वांगत्से ने कहा है, एवरी डिस्कवरी इ.ज जस्ट ए रि-डिस्कवरी, सब आविष्कार सिर्फ पुनआर्विष्कार है। ऐसी कोई बात जगत में नहीं है, जो नहीं जान ली गई। लेकिन जिन्होंने जानी थी, वे इतने शिखर पर थे कि वह कभी सामान्य न हो पाई, खो गई। फिर कभी कोई दूसरा आदमी जब उसको जानता है, तो फिर ऐसा लगता है कि नया आविष्कार हो गया। यह आदमी कितनी नई बात कह रहा है! लेकिन इस जगत में कोई चीज ऐसी नहीं है, जो नहीं जान ली गई हजारों बार।

पर आदमी का दुर्भाग्य कि आदमी पहाड़ों पर नहीं जीता, समतल भूमि पर जीता है। शिखरों की बातें खो जाती हैं, फिर भूल जाती हैं। फिर कभी उनको जन्माता है कोई। जब कोई जन्माता है, तो वे फिर नई मालूम पड़ती हैं।

ये जो लाओत्से के वक्तव्य हैं, ये श्रेष्ठतम वक्तव्यों में से कुछ हैं, जो मनुष्य ने कभी भी दिए हैं। बहुत आखिरी जो कहा जा सकता है, जिसके आगे कहने का कोई उपाय ही नहीं बचता, उस बाउंड्री लैंड पर, उस सीमांत पर लड़खड़ाता हुआ आदमी है लाओत्से, जिसके पार निःशब्द है। बस आखिरी सीमा पर वह कुछ कह रहा है। तो वहां तक जब कोई पहुंचता है, तो समझ में आता है; नहीं पहुंचता, तो नहीं समझ में आता है। उसमें लाओत्से का कसूर नहीं है।

फिर कुछ बातें हैं, जो तब तक आपको पता नहीं चलेंगी, जब तक आपके अनुभव का हिस्सा न बन जाएं। एक छोटा बच्चा है। उससे हम कुछ ऐसी बातें करें, जो उसके अनुभव का हिस्सा नहीं हैं। सुन लेगा, बहरे की तरह; भूल जाएगा। वे उसकी स्मृति में भी टंकेंगी नहीं। क्योंकि स्मृति में वही टंक सकता है, जो अनुभव से मेल खा जाए। भूल जाएगा। हमारा अनुभव भी तो कहीं मेल खाना चाहिए!

अब लाओत्से जो भी कहता है, हमारा अनुभव कहीं भी मेल नहीं खाता। बस लाओत्से की किताब बची है, यही क्या कम है! हमारे अनुभव में कहीं मेल नहीं खातीं ये बातें। अब लाओत्से कहता है, बिना कुछ किए जो करने में समर्थ है, वही ज्ञानी है; बिना बोले जो कह देता है, वही सत्यवक्ता है। जो हिलता-डुलता नहीं, और सब कर लेता है! जिसके ओंठ नहीं खुलते, और संदेश संवादित हो जाते हैं!

अब हमारे अनुभव में यह कहीं भी तो नहीं आता। हम तो चिल्ला-चिल्ला कर थक जाते हैं, फिर भी संदेश संवादित नहीं होता। तो हम कैसे मानें कि बिना बोले संवादित हो जाएगा? बोल-बोल कर संवादित नहीं होता। वही-वही बात कहते जिंदगी बीत जाती है, और कोई संवाद नहीं होता। इतना इंतजाम करते हैं, कुछ इंतजाम नहीं हो पाता। आखिर में भिखारी के भिखारी ही मर जाते हैं। इतनी दौड़-धूप मचाते हैं, इतनी व्यवस्था, इतना मैनेजमेंट, और आखिर में भिखारी के भिखारी ही मर जाते हैं। और लाओत्से कहता है, मैनेज ही मत करो,

व्यवस्था करो ही मत, बस मौजूद हो जाओ, व्यवस्था हो जाएगी। हम कहेंगे, पागल हो! तुम्हारे साथ हम पागल होने को राजी नहीं हैं।

लाओत्से के साथ तो जाने को जो लोग राजी होंगे, वे वे ही हो सकते हैं, जो हमारी तथाकथित मनुष्यता के पागलपन से भलीभांति परिचित हो गए हैं; जो हमारे होने से इस बुरी तरह से विषाद से भर गए हैं; जो हमारे होने के ढंग को इतना व्यर्थ जान गए हैं; जिन्होंने देख लिया भलीभांति कि जिसको हम समझदारी कहते हैं, वह नासमझी है; और जिन्होंने देख लिया कि जिसको हम बुद्धिमानी कहते हैं, वह सिर्फ बुद्धूपन है; जिनको यह साफ-साफ ख्याल में आ गया, वे ही केवल लाओत्से के साथ कदम उठाने को राजी होंगे।

और लाओत्से के साथ कदम उठाना खतरे में कदम उठाना है। क्योंकि सुरक्षा का तो कोई आश्वासन लाओत्से नहीं देता। लाओत्से तो ऐसी खतरनाक राह बताता है, जहां आप खो जाएंगे, बचेंगे नहीं। लाओत्से तो कहता है, खोने का ही मार्ग है यह, मिट जाने की ही गैल है यह। अब उसके साथ, उसके साथ जाने को वही राजी होगा, जो यह पक्का समझ ले कि पाकर जब कुछ नहीं पाया, तो खोकर देख लें! दौड़ कर जब नहीं पाया, तो अब खड़े होकर देख लें! और जब बुद्धिमानी से नहीं मिला, तो अब पागल होकर देख लें!

तो बहुत कम लोग उतना साहस कर पाते हैं। इसलिए बहुत कम लोग उस यात्रा पर जा पाते हैं।

आज इतना ही, शेष कल।

आठवां प्रवचन

स्वामित्व और श्रेय की आकांक्षा से मुक्त कर्म

Chapter 2 : Sutra 4

All things take their rise, but he does not turn away from them; He gives them life, but does not take possession of them; He goes through these processes, but does not take possession of them; He acts, but does not appropriate; It is because he lays no claim to credit that the credit cannot be taken away from him.

अध्याय 2 : सूत्र 4

सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, परंतु वे उनसे विमुख नहीं होते; उन्हें वे जीवन प्रदान करते हैं, किंतु अधिकृत नहीं करते। वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, परंतु इनके स्वामी नहीं बनते; कर्तव्य निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते। चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।

इसलिए ज्ञानी निष्क्रिय भाव से अपने कार्यों की व्यवस्था तथा निःशब्द द्वारा अपने सिद्धांतों का संप्रेषण करते हैं। इसके बाद के सूत्र में लाओत्से कहता है, "सभी बातें अपने आप घटित होती हैं।"

ताओ के आधारभूत सिद्धांतों में एक यह हैः सभी बातें अपने आप घटित होती हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे घटित करने के लिए हमारी जरूरत होती हो; हमारे बिना ही सब कुछ घटित होता है। नींद आती है, भूख लगती है, जन्म होता है, मृत्यु होती है, वह सब अपने आप घटित होता है।

लेकिन जो अपने आप घटित होता है, उसे भी हम मान कर चलते हैं कि हम घटित करते हैं। लाओत्से की दृष्टि में सबसे बड़ी भ्रांति मनुष्य की यही है कि जो घटित होता है, उसका वह कर्ता बन जाता है। जो घटित होता है, उसका कर्ता बन जाना ही बड़े से बड़ा अज्ञान है।

लाओत्से यह भी नहीं कहता कि तुम चोरी छोड़ दो; लाओत्से यह भी नहीं कहता कि तुम बेईमानी छोड़ दो। लाओत्से कहता है, न तो तुम कुछ कर सकते हो और न तुम कुछ छोड़ सकते हो। क्योंकि छोड़ने की बात तो तभी हो सकती है, जब हम कुछ करते हैं। यदि मैंने कुछ किया है, तो मैं कुछ छोड़ भी सकता हूं। यदि मैं करता ही नहीं हूं, तो छोड़ने का कोई उपाय भी नहीं है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि त्यागवादी सारी धारणाएं लाओत्से के इस सिद्धांत के विपरीत खड़ी हैं। त्यागवादी मानता है कि मैं छोड़ सकता हूं। लाओत्से कहता है, तुम जब कर ही नहीं सकते, तो तुम छोड़ कैसे सकोगे? लाओत्से कहता है, कर्म में न तो करने की संभावना है, न छोड़ने की। हां, तुम कर्ता बन सकते हो। बस, इतनी स्वतंत्रता है तुम्हें! और तुम कर्ता न बनो, इसकी स्वतंत्रता है तुम्हें। जो घटित हो रहा है, वह घटित होता चला जाएगा।

लाओत्से के समय से प्रचलित चीन में एक मजाक है। एक युवा अपनी प्रेयसी के साथ समुद्र के तट पर गया है। चांदनी रात है। और समुद्र में जोर से लहलहा कर लहरें आ रही हैं तट की तरफ। वह युवक आकाश की तरफ मुंह उठा कर सागर से कहता है, हे सागर! लहरा, जोर से लहरा! अपनी पूरी शक्ति से लहरों को उठा!

इतनी सुंदर रात और लहरें तो उठ ही रही हैं, लहरें उठ कर तट की तरफ आ ही रही हैं। उसकी प्रेयसी कहती है, आश्चर्य, तुम्हारी इतनी सामर्थ्य! मुझे कभी पता न था कि सागर तुम्हारी मानता है। वह प्रेयसी कहती है, तुम्हारी इतनी सामर्थ्य! मुझे कभी पता ही नहीं था कि सागर तुम्हारी इतनी मानता है। तुमने कहा, लहरें उठो, और लहरें उठने लगीं! और तुमने कहा, लहरें आओ तट की तरफ, और लहरें तट की तरफ आने लगीं!

लाओत्से के समय से वह मजाक प्रचलित है। और लाओत्से कहा करता था, जिंदगी में सब ऐसा ही है। लहरें उठ ही रही हैं, तट के किनारे खड़े होकर हम कहते हैं, लहरें उठो! और अपने मन में यह भ्रांति पाल लेते हैं कि लहरें हमने उठा दी हैं।

लाओत्से कहता है, न तो तुम कर्ता बन सकते हो, न तुम त्यागी बन सकते हो। तुम सिर्फ इतने ही सत्य से अगर परिचित हो जाओ कि वस्तुएं अपने से घटित होती हैं, किसी की भी उनके घटित होने के लिए आवश्यकता नहीं है। वस्तुओं का स्वभाव घटित होना है, ऐसी प्रतीति हो जाए। तो लाओत्से कहता है, ज्ञानी उसे कहता हूं मैं, सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, ऐसा जो जानता है। परंतु वे उनसे विमुख नहीं होते। क्योंकि जब अपने से ही घटित होती हैं, तो ज्ञानी उनसे विमुख नहीं होते। विमुख होने का सवाल तो तभी है, त्याग करने का सवाल तो तभी है, वैराग्य का सवाल तो तभी है, जब मैं उन्हें घटित कर रहा हूं।

समझें। भूख लगती है, तो अज्ञानी ज्यादा खा लेता है। सोचता है, मैं खा रहा हूं। ज्यादा तो वह भी नहीं खा सकता।

नसरुद्दीन के जीवन में उल्लेख है कि अपने एक शिष्य के साथ वह यात्रा पर है, तीर्थ-यात्रा पर। वह रोज देखता है कि शिष्य जब भोजन करता है, तो भोजन करने के बाद अपने शरीर को हिलाता है, हिला कर फिर भोजन करता है। वह रोज देखता है यह, महीनों हो गए। एक दिन उसने कहा कि देख, यह मामला क्या है? तू भोजन करता है, फिर हिलता है, फिर भोजन करता है, फिर हिलता है। उस युवक ने कहा कि आपको शायद पता नहीं कि जरा हिल कर मैं फिर शरीर के भीतर जगह बना लेता हूं, फिर थोड़ा भोजन कर लेता हूं। नसरुद्दीन ने उसे बहुत जोर से चांटा मारा और कहा, बेईमान, यह सोच कर मन को कितनी पीड़ा होती है कि कितना भोजन जो मैं कर सकता था, नहीं कर पाया! तूने पहले क्यों न बताया? यह तो मुझे भी शक था कि जितना भोजन मैं करता हूं, वह भोजन करने की सीमा नहीं है। यह तो मुझे भी शक था कि जितना मैं भोजन करता हूं, वह भोजन करने की सीमा नहीं है। और यह मुझे भी पता है कि भोजन की आखिरी सीमा पेट का फट जाना है। पूरा भोजन किया जाए तो पेट फट जाए, वहां तक।

अज्ञानी सोचता है, मैं भोजन कर रहा हूं। एक दूसरा अज्ञानी है, जो सोच सकता है कि मैं उपवास कर रहा हूं। लाओत्से दोनों को अज्ञानी कहेगा। क्योंकि दोनों ही अपने को कर्ता मानते हैं। एक करने में, एक छोड़ने में। लाओत्से कहेगा, ज्ञानी तो वह है, जो विमुख नहीं होता। जो भोजन को, मैं करता हूं, ऐसा नहीं मानता। भूख करती है। देखता रहता है। भूख लगती है, भोजन कर लेता है; नहीं लगती है, नहीं करता है। भूख नहीं लगती है, तो उपवासा रह जाता है; भूख लगती है, तो भोजन कर लेता है। न तो भूख से हटता है, न भूख को आग्रहपूर्वक भरता है। भूख के साथ कोई छेड़खानी नहीं करता। भूख की प्रक्रिया का साक्षी-भाव से व्यवहार करता है।

ताकुआन नाम के फकीर के पास कोई गया है। और पूछता है ताकुआन से कि तुम्हारी साधना क्या है?

तो ताकुआन कहता है, मेरी और कोई साधना नहीं है। मेरे गुरु ने तो इतना ही कहा है कि जब नींद आए, तब सो जाना; और जब भूख लगे, तब भोजन कर लेना। तो जब मुझे नींद लगती है, मैं सो जाता हूं। और जब नींद टूटती है, तब उठ आता हूं। जब भूख लगती है, तब भोजन ले लेता हूं; जब नहीं लगती है, तब नहीं लेता हूं। जब बोलने जैसा होता है, तो बोल देता हूं; और जब मौन रहने जैसा होता है, तो मौन रह जाता हूं।

तो वह आदमी कहता है, यह भी कोई साधना है! यह कोई साधना है?

पर ताकुआन कहता है, पता नहीं यह साधना है या नहीं। क्योंकि मेरे गुरु ने कहा कि साध सकते हो तुम, यही अज्ञान है। साध सकते हो तुम, यही अज्ञान है। तो मैं कुछ साध नहीं रहा हूं। अब तो जो होता है, उसे देखता रहता हूं। पता नहीं, यह साधना है या नहीं! इतना तुमसे कहता हूं कि जब से ऐसा स्वीकार किया है नींद को, भूख को, उठने को, सोने को, जागने को, तब से मैं परम आनंद में हूं, तब से दुख मेरे ऊपर नहीं आया है। क्योंकि मैंने सभी स्वीकार कर लिया है। अगर दुख भी आया है, तो अब मैं उसे दुख करके नहीं पाता हूं, क्योंकि स्वीकार कर लिया है। सोचता हूं कि घट रहा है ऐसा।

ध्यान रहे, दुख भी तभी दुख मालूम पड़ता है, जब हम अस्वीकार करते हैं। दुख का जो दंश है, वह दुख में नहीं, हमारी अस्वीकृति में है। दुख में पीड़ा नहीं है, पीड़ा हमारे अस्वीकार में है कि ऐसा नहीं होना चाहिए था, और हुआ, इसलिए पीड़ा है। अगर मैं ऐसा जानूं कि जो हुआ, वैसा ही होता, वैसा ही होना चाहिए था, वही हो सकता था, तो दुख का कोई दंश, दुख की कोई पीड़ा नहीं रह जाती। सुख के छिन जाने में कोई पीड़ा नहीं है। सुख नहीं छिनना चाहिए था, मैं बचा लेता, बचा न पाया, उसमें पीड़ा है। अगर मैं जानूं कि सुख आया और गया; जो आता है, वह चला जाता है; अगर मेरे मन में यह ख्याल न हो कि मैं बचा सकता था, तो पीड़ा का फिर कोई सवाल नहीं है।

तो ताकुआन कहता है, मुझे पता नहीं कि साधना क्या है। इतना मैं जानता हूं कि जब से मैंने ऐसा जाना और जीया है, तब से मैंने दुख को नहीं जाना।

लाओत्से कहता है, वे विमुख नहीं होते हैं। वे जानते हैं कि चीजें अपने आप घटित होती हैं।

इस बात को समझने के लिए महावीर को थोड़ा सा समझना बहुत उपयोगी होगा।

महावीर का एक सूत्र इसके बहुत करीब है। और कीमती सूत्र है। महावीर जहां-जहां धर्म शब्द का प्रयोग करते हैं, जहां-जहां, वहां उनका अर्थ धर्म से कभी भी मजहब या रिलीजन नहीं होता। महावीर का धर्म से अर्थ होता है, वस्तुओं का स्वभाव। महावीर का सूत्र है धर्म के लिए: वत्थू सहाओ धम्म। जो वस्तु का स्वभाव है, वही धर्म है। आग जलाती है, यह उसका स्वभाव है। पानी गड्ढे की तरफ जाता है, यह उसका स्वभाव है। बच्चा जवान होता है, यह उसका स्वभाव है। सुख आता है, जाता है, यह उसका स्वभाव है। कोई चीज ठहरती नहीं जगत में, यह जगत का स्वभाव है। आदमी जन्मता है और मरता है, यह नियति है, यह स्वभाव है। महावीर कहते हैं, यह सब स्वभाव है। इसे अगर तुम ठीक से जान लेते हो कि यह स्वभाव है, तो तुम मुक्त हो--इसी क्षण।

स्वभाव के विपरीत लड़ कर ही हम परेशान हैं। हम सब लड़ रहे हैं, स्वभाव से लड़ रहे हैं। शरीर बूढ़ा होगा, हम लड़ेंगे; शरीर रुग्ण होगा, हम लड़ेंगे। वह सब स्वभाव है। इस जगत में जो भी होता है, वह सब स्वाभाविक है।

लाओत्से कहता है, सभी बातें अपने आप घटित होती हैं, परंतु वे जो ज्ञानी हैं उनसे विमुख नहीं होते। विमुख होने का कोई कारण नहीं है। विमुख होने में तो फिर वही बात मन में आ जाएगी कि मैं विमुख हो सकता हूं।

नहीं, लाओत्से तो कहता है, ज्ञानीजन मुक्त होने की भी चेष्टा नहीं करते। ज्ञानीजन चेष्टा ही नहीं करते। क्योंकि सब चेष्टाएं बांध लेने वाली सिद्ध होती हैं। ज्ञानीजन कामना नहीं करते कि ऐसा हो। क्योंकि जो भी ऐसी कामना करेगा कि ऐसा हो, वह दुख में पड़ेगा। क्योंकि यह जगत किसी की कामनाओं को मान कर नहीं चलता, यह जगत अपने नियम से चलता है। कभी आपकी कामना उसके अनुकूल पड़ जाती है, तो आपको भ्रम होता है कि सागर की लहरें आपकी मान कर उठ रही हैं। और कभी जब सागर की लहरें नहीं उठ रही होती हैं, और आप पुरानी कविता दोहराए चले जाते हैं कि उठो लहरो, चलो लहरो। वे नहीं चलतीं, तो आप दुखी होते हैं। सागर न तो आपकी मान कर चलता है, न आपकी सुन कर रुकता है। यह संयोग की बात है कि आपकी कामना कभी सागर की लहरों से मेल खा जाती और कभी मेल नहीं खाती।

कभी आप जीतते चले जाते हो, तो आप सोचते हो, मैं जीत रहा हूं। और कभी आप हारते चले जाते हो, तो आप सोचते हो, मैं हार रहा हूं। लेकिन सच्चाई कुल इतनी है कि वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि कभी संयोग होता है कि आपको जीतने का भ्रम पैदा होता है; और कभी संयोग होता है कि आपको हारने का भ्रम पैदा होता है। कभी आप जो भी पांसा फेंकते हो, वही ठीक पड़ जाता है; और कभी आप जो भी पांसा फेंकते हो, कोई भी ठीक नहीं पड़ता है। कुल सवाल इतना ही है कि वस्तुओं के स्वभाव के अनुकूल हो गया, तो ठीक पड़ जाता है; प्रतिकूल हो गया, तो ठीक नहीं पड़ता है।

सुना है मैंने कि एक व्यक्ति वर्षों से बाजार में नुकसान खा रहा है। वह जो भी ढंग से सौदा करता, नुकसान पाता है। अरबपति था। करोड़ों रुपए उसने नुकसान में गंवाए। उसके सब मित्र उसके नुकसान होने की इस नियमितता से परिचित हो गए थे। इसलिए जो भी वह करता था, उसके मित्र उससे उलटा कर लेते थे, और सदा फायदे में रहते थे। यह बात इतनी जाहिर हो गई थी कि पूरा मार्केट उसको देख कर चलता था कि वह क्या कर रहा है। वह जो कर रहा है, वह भर भूल कर नहीं करना।

वर्षों के बाद एक दिन अचानक मामला उलटा हो गया। उसने कुछ किया। उसके मित्र नियमित अनुसार, जैसा सदा करते थे, उससे उलटा किए। और सब हारे। उसने पूरे मार्केट पर कब्जा कर लिया। मित्र उसके पास गए और कहा, चमत्कार कर दिया, बात क्या है? ऐसा कभी नहीं हुआ!

उस आदमी ने कहा कि मैं वर्षों से हार रहा हूं। आज अपने वर्षों का हिसाब-किताब देख रहा था, तब मुझे ख्याल आया कि अब जो मेरा सिद्धांत कह रहा है, करो, वह न करूं इस बार। जिस सिद्धांत से मैं चलता हूं। तो इस बार मैं अपने खिलाफ चला हूं। जैसा तुम मेरे खिलाफ सदा चलते रहे हो, इस बार मैं अपने खिलाफ चला हूं। मेरा सिद्धांत तो कह रहा था कि खरीद करो, मैंने बेचा।

उसको बेचते देख कर सारे लोगों ने खरीद की, क्योंकि वह जो करे, उससे उलटा करने में सदा फायदा था। उस आदमी ने कहा कि मुझे पहली दफे ख्याल आया कि मैं चीजों के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल ही चलता रहा हूं सदा से, अपनी जिद्द ठोकता रहा हूं। मुझे पता नहीं कि सही क्या है। लेकिन एक बात पक्की थी कि मैं गलत होऊंगा--इतने पांच-दस साल का जो अनुभव है। इसलिए अपने से उलटा चल कर देखा। आज मैं कह सकता हूं, उस आदमी ने कहा कि मैं हार रहा था, यह कहना भी गलत है; मैं जीत रहा था, यह कहना भी गलत है। वस्तुओं के स्वभाव के अनुकूल जब आदमी पड़ जाता है, तो जीत जाता है। प्रतिकूल जब पड़ जाता है, तो हार जाता है।

और इस सत्य को अगर कोई ठीक से देख ले, तो लाओत्से कहता है, वह विमुख नहीं होता। वह जिंदगी में खड़ा रहता है। जैसी है जिंदगी, वैसे ही खड़ा रहता है। वह भाग कर भी कहीं नहीं जाता, क्योंकि वह यह नहीं मानता कि जिंदगी से भागना संभव है। और अगर भागना आ जाए, तो रुकता भी नहीं है।

इसको समझ लेना आप, नहीं तो गलती होगी। नहीं तो गलती होगी। अगर भागना घटित हो जाए, तो वह रुकता भी नहीं है, वह भागने के भी साथ हो जाता है। अपनी तरफ से वह कुछ नहीं करता है, जो घटित होता है उसमें बहता है। ऐसा समझें कि वह तैरता नहीं है, बहता है। वह हाथ-पैर नहीं मारता नदी की धारा में, वह नदी की धारा में अपने को छोड़ देता है। और धारा से कहता है, जहां ले चलो, वही मेरी मंजिल है। निश्चित ही, ऐसी स्थिति में रहने वाले व्यक्ति के जीवन में जो घटित होगा, वह अभूतपूर्व होगा। उस अभूतपूर्व का ब्यौरा दिया है उसने।

"उन्हें वे जीवन प्रदान करते हैं, किंतु अधिकृत नहीं करते।"

ज्ञानी जिस चीज के संपर्क में आता है, उसी को जीवन प्रदान करता है। किंतु अधिकृत नहीं करता, उसका मालिक नहीं बनता है। जीवन देता है, सब दे देता है जो उसके पास देने को है, लेकिन फिर भी अधिकार स्थापित नहीं करता। क्योंकि लाओत्से कहता है, जिस पर तुमने अधिकार स्थापित किया, उसे तुमने बगावत के लिए भड़काया; जिस पर तुमने मालकियत कायम की, उसको तुमने दुश्मन बनाया; जिसकी तुमने स्वतंत्रता छीनी, उसे तुमने स्वच्छंद होने के लिए उकसाया।

अधिकृत नहीं करता ज्ञानी। जो भी है, दे देता है, लेकिन देने के साथ लेने की कोई शर्त नहीं बनाता। अगर प्रेम देता है, तो नहीं कहता कि प्रेम वापस लौटाओ। लौट आता है, तो स्वीकार कर लेता है; नहीं लौट आता, तो स्वीकार कर लेता है। लौट आने पर भिन्नता नहीं है; नहीं लौट आए, तो भेद नहीं है। कोई अधिकार स्थापित नहीं करता।

सब अधिकार वापसी की मांग करते हैं। अधिकार का अर्थ ही क्या होता है? अधिकार का अर्थ यह होता है, कुछ मैंने किया है, अब मैं अधिकारी हुआ वापस कुछ पाने का; प्रत्युत्तर पाने का मैं अधिकारी हुआ। अगर नहीं मिलेगा, तो दुख पाऊंगा। और मजे की बात है कि जिस-जिस बात का हम अधिकार कर लेते हैं। मिले तो सुख नहीं मिलता, न मिले तो दुख मिलता है। अगर मैंने समझा कि किसी को मैंने प्रेम दिया है, तो जब मैं मुसीबत में होऊंगा तो मुझे उसकी सहायता मिलेगी। मिले तो मेरे मन में धन्यवाद नहीं उठेगा। क्योंकि अधिकार जब है, तो यह तो होना ही चाहिए, वही हो रहा है। धन्यवाद का कोई सवाल नहीं है। जो होना चाहिए, वही हो रहा है। मुझे कोई सुख भी नहीं मिलेगा, क्योंकि जब टेकेन फार ग्रांटेड, कोई चीज स्वीकृत ही है, तो उससे कभी सुख नहीं मिलता।

मैं राह पर चलता हूं और मेरी पत्नी मुझे, मेरा रूमाल गिर जाए, उठा कर दे दे, तो कोई सुख का सवाल नहीं है। लेकिन अजनबी स्त्री उठा कर दे दे, तो सुखद है। उसे धन्यवाद भी मैं दूंगा। उससे कोई अपेक्षा न थी। मेरी मां रात भर बैठ कर मेरा सिर दबाती रहे, तो कोई सवाल नहीं है। लेकिन कोई और स्त्री सिर दबा दे घड़ी भर, तो शायद जीवन भर उसे मैं न भूलूं। जहां अधिकार है, वहां चीजें जैसी होनी चाहिए, उसकी अपेक्षा है। अगर हों, तो कोई सुख नहीं मिलता; अगर न हों, तो बड़ा दुख मिलता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि अधिकार सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं लाता। सुख तो लाता ही नहीं, क्योंकि सुख स्वीकार कर लिया गया है कि होना ही चाहिए। नहीं हो, तो दुख आता है।

लाओत्से कहता है कि ज्ञानी जीवन प्रदान करते हैं, अधिकृत नहीं करते।

असल में, ज्ञानी सुख का राज जानता है, रहस्य जानता है। जो हम करते हैं, उससे उलटी है उसकी स्थिति। चूंकि वह अधिकार नहीं करता, इसलिए अगर कोई कर जाता है, तो सुख पाता है; अगर कोई नहीं कर जाता, तो दुख का कोई कारण नहीं है, क्योंकि अपेक्षा कोई थी ही नहीं कि कोई करे।

ध्यान रखें, हमसे ठीक उसकी उलटी स्थिति है। अगर कोई उसे खाने के लिए पूछ लेता है, तो वह परम सौभाग्यशाली अनुभव करता है, अनुगृहीत होता है, ग्रेटिट्यूड मानता है। क्योंकि यह उसने कभी सोचा ही नहीं था कि कोई दो रोटी के लिए पूछेगा। अनुगृहीत होता है कि परम कृपा है कि किसी ने दो रोटी के लिए पूछा। कोई न पूछे, तो वह दुखी नहीं होता। क्योंकि उसने कभी अपेक्षा न की थी कि कोई पूछेगा। अपेक्षा के पीछे दुख है; अधिकार के पीछे दुख है। मालकियत के पीछे सिवाय नर्क के और कुछ भी नहीं है।

इसलिए जहां-जहां मालकियत है, वहां-वहां नर्क है। वह मालकियत किसी भी शक्ल में हो--वह पति की पत्नी पर हो, पत्नी की पति पर हो, मित्र की मित्र पर हो, बाप की बेटे पर हो, गुरु की शिष्य पर हो--वह मालकियत कहीं भी हो, किसी भी शक्ल और किसी भी रूप में हो, जहां मालकियत है उसी की आड़ में नर्क पनपता है। और जहां मालकियत नहीं है, उसी खुले आकाश में स्वर्ग का जन्म होता है।

तो जहां-जहां आपको नर्क दिखाई पड़े, वहां-वहां तत्काल समझ लेना कि मालकियत खड़ी होगी। उसके बिना नर्क कभी नहीं होता है। जहां-जहां दुख हो, वहां जान लेना कि यह मालकियत दुख दे रही है।

लेकिन हम बहुत अजीब हैं। हम कभी ऐसा अनुभव नहीं करते कि हमारी मालकियत की वजह से दुख आता है। हम समझते हैं, दूसरे की गलतियों की वजह से दुख आता है। और इसलिए इससे उलटा भी हम कभी नहीं समझ पाते कि हमारी गैर-मालकियत की वजह से सुख आता है। वह भी हम नहीं समझ पाते।

लेकिन जहां भी सुख है, वहां गैर-मालकियत है, वहां अधिकार का भाव नहीं है। और जहां भी दुख है, वहां अधिकार का भाव है। और ज्ञानी तो वही है; अगर इतना भी ज्ञान में ज्ञान नहीं है कि वह नर्क से अपने को ऊपर उठा सके, तो ज्ञान का कोई मूल्य ही नहीं है।

लाओत्से कहता है, "वे जीवन प्रदान करते हैं।"

वे जीवन भी दे देते हैं। प्रेम ही नहीं, सब कुछ, जो दे सकते हैं, दे देते हैं। लेकिन लौट कर कोई मांग नहीं करते।

"वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, परंतु इनके स्वामी नहीं बनते।"

वे जीवन के सब रूपों से गुजरते हैं, सब प्रक्रियाओं से, एवरी प्रोसेस। वे बचपन में बच्चे होते हैं, जवानी में जवान होते हैं, बुढ़ापे में बूढ़े हो जाते हैं। जवानी से गुजरते वक्त वे जवानी के मालिक नहीं बनते। मालिक जो बनेगा जवानी का, बुढ़ापा आने पर रोएगा, पछताएगा, चिल्लाएगा; मालकियत छिनी। वे जवानी से गुजरते हैं ज्ञानी, लेकिन मालकियत नहीं करते। इसलिए जब बुढ़ापा आता है, तो वे उसका भी स्वागत करते हैं। वे जीवन से गुजरते हैं, लेकिन जीवन के मालिक नहीं बनते। इसलिए जब मौत आती है, तो उन्हें दरवाजे पर आलिंगन फैलाए हुए पाती है। वे जीवन की कोई मालकियत नहीं करते, इसलिए मृत्यु उनसे कुछ छीन नहीं सकती।

ध्यान रहे, छीना तभी जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए। आपकी चोरी तब की जा सकती है, जब स्वामित्व का भाव जग जाए। आपको लूटा तब जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए। आपको धोखा तब दिया जा सकता है, जब आप में स्वामित्व का भाव जग जाए।

ज्ञानी को धोखा नहीं दिया जा सकता। ज्ञानी से कुछ छीना नहीं जा सकता। ज्ञानी से कुछ चुराया नहीं जा सकता। ज्ञानी का कुछ मिटाया नहीं जा सकता। क्योंकि उस सबका जो मूल सूत्र है, वह कभी उस मूल सूत्र को ही नहीं जमने देता है। वह मालिक ही नहीं बनता है।

इसे थोड़ा समझें कि मालकियत हमारे कष्टों का आधार है। और हमें पता ही नहीं चलता। हम इतने चुपचाप मालिक बन जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। नहीं, हम ऐसी चीजों के मालिक तो बन ही जाते हैं, जिन पर हमें मालकियत की सुविधा दिखाई पड़ती है; जहां कोई सुविधा नहीं होती, वहां भी हम मालकियत का भाव पैदा कर लेते हैं। जहां कोई उपाय नहीं होता, वहां भी हम मालकियत का भाव पैदा कर लेते हैं। हमें जरा सा मौका भर मिल जाए कहीं बैठने का कि हम मालिक हो जाते हैं। कई बार तो ऐसी जगह हम मालिक हो जाते हैं, जहां कि कल्पना भी नहीं हो सकती थी मालिक होने की। पूरी जिंदगी हमारी ऐसी मालकियतों से भरी है। अगर आप मेरे पास दो क्षण आए हों और मैंने आपको प्रेम से बिठाया है, तो आपको पता हो या न हो, आप मुझ पर भी मालकियत करना शुरू कर देंगे।

मुझे लोग पत्र लिखते हैं। नियमानुसार मैं उनके पहले पत्र का उत्तर देता हूं। फिर मेरा पत्र पहुंचा कि दूसरा पत्र तत्काल, तीसरा पत्र तत्काल! जब तक मेरी सुविधा होती है, मैं उन्हें उत्तर देता हूं। लेकिन तब शीघ्र ही मैं पाता हूं कि अब उन्हें लिखने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ मेरा पत्र पाने को वे कुछ भी लिखे जा रहे हैं। तब मैं रुकता हूं। मैं दो-चार पत्रों का उत्तर नहीं देता कि उनका गाली-गलौज से भरा हुआ पत्र आ जाता है। तब मैं थोड़ा हैरान होता हूं। सोचता हूं कि क्या, हुआ क्या होगा!

मैंने दो पत्रों का उत्तर दिया, मालकियत उन्होंने स्थापित कर ली कि उनके पत्र के उत्तर मिलते हैं। अब अगर मैं नहीं दे रहा हूं पत्र का उत्तर, आठ दिन देरी कर दी है, नहीं दिया, तो उनका उत्तर आ जाता है, जिसमें क्रोध साफ जाहिर होता है कि आपने अभी तक उत्तर क्यों नहीं दिया? वे दुख पा रहे होंगे, इसलिए क्रोध है। वे पीड़ा पा रहे होंगे, इसलिए क्रोध है। लेकिन आपको हक है पत्र लिखने का, लेकिन आपने पत्र लिखा, इससे अनिवार्यता हो गई कि मैं उत्तर दूं? मैं आपको पत्र लिखूं, यह मेरा हक है कि मैं पत्र लिखूं। लेकिन उत्तर आना ही चाहिए, यह तो कोई अनिवार्यता नहीं है। अगर लिखने को मैं स्वतंत्र हूं, तो न लिखने को भी आप स्वतंत्र हैं। नहीं, पर मन ऐसी सूक्ष्म जगह पर भी इंतजाम कर लेता है मालकियत का। और फिर बहुत दुख पाता है।

लाओत्से कहता है, वे इन समस्त प्रक्रियाओं से गुजरते हैं।

जिसे हम जीवन कहें, वह प्रक्रियाओं का एक लंबा फैलाव है। प्रतिपल कोई प्रक्रिया चल रही है--चाहे प्रेम की, चाहे घृणा की, चाहे धन की, चाहे मित्रता की--कोई न कोई प्रक्रिया प्रतिपल चल रही है। श्वास चल रही है, नींद आ रही है, भोजन कर रहे हैं, आ रहे हैं, जा रहे हैं। लेकिन इस सारी प्रक्रियाओं के जाल में ज्ञानी इनका स्वामी नहीं बनता है। इसलिए उसे कभी कोई च्युत नहीं कर सकता; उसके स्वामित्व से कभी कोई उसे नीचे नहीं उतार सकता।

लाओत्से कहता है, "वे कर्तव्य निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते।"

जो करने योग्य मालूम होता है, वह कर देते हैं; लेकिन कभी श्रेय नहीं लेते। वे कभी यह नहीं कहते कि तुम मानो कि हमने ऐसा किया, कि स्वीकार करो कि हमने ऐसा किया था।

नसरुद्दीन एक नदी में नहा रहा है। गहरी नदी है। उसे अंदाज नहीं, आगे बढ़ गया और डूबने की हालत हो गई। एक आदमी ने उसे निकाल कर बचाया। फिर वह आदमी जहां भी मिल जाता उसे--रास्ते में, बाजार में,

मस्जिद में--वह कहता, याद है, मैंने ही तुम्हें बचाया था! नसरुद्दीन परेशान आ गया। कोई मौका न चूके वह आदमी। जहां भी मिल जाए, वह कहे, नसरुद्दीन याद है, मैंने तुम्हें नदी में डूबते से बचाया था।

एक दिन नसरुद्दीन ने उसका हाथ पकड़ा और उसे कहा कि याद है, जल्दी मेरे साथ आओ। उसने कहा, कहां ले जाते हो? उसने कहा, जल्दी तुम मेरे साथ आओ। नदी के किनारे खड़े होकर नसरुद्दीन कूद पड़ा। जितने गहरे पानी में उसने बचाया था, उसमें खड़े होकर कहा कि मेरे भाई, अब तू जा, बचाना मत। वह बहुत मंहगा पड़ गया था। तू जा! अब हम बच सकेंगे तो बच जाएंगे, मरेंगे तो मर जाएंगे। बाकी तू मत बचाना। तू देख ले कि अब हम बिल्कुल उतने ही पानी में आ गए हैं न, जितने पानी से तूने निकाला था! अब तू जा।

हम जो भी थोड़ा सा कर लेते हैं, तो उसका ढिंढोरा पीटते फिरते हैं। वह ढिंढोरा पीटना ही बताता है कि वह हमारे लिए कर्तव्य नहीं था; वह सौदा था। उस करने में हमने कोई आनंद नहीं पाया था। उसमें भी हमने कोई बार्गेन किया था। उसमें भी हमने कोई सौदा किया था; उसमें भी हम... हम उसमें भी अर्थशास्त्र के बाहर नहीं थे।

लाओत्से कह रहा है, कर्तव्य तो वे निभाते हैं, पर श्रेय नहीं लेते। काम पूरा हो जाता है कि चुपचाप हट जाते हैं। बात निपट जाती है, तो चुपचाप विदा हो जाते हैं। इतनी देर भी नहीं रुकते कि आप उन्हें धन्यवाद दे दें। इतनी देर भी नहीं रुकते कि आप उन्हें धन्यवाद दे दें। और अक्सर ऐसा होता है कि ज्ञानी जो करता है, वह इतनी शांति से करता है कि आपको पता ही नहीं चलता कि उसने किया; और अक्सर कोई और ही उसका श्रेय लेता है। अक्सर कोई और ही उसका श्रेय लेता है। वह इतना चुपचाप करके कोने में सरक जाता है! श्रेय लेने वाला कब बीच में आकर सामने खड़ा हो जाता है!

ज्ञानी अक्सर ही चुपचाप, करते वक्त सामने होता है, श्रेय लेते वक्त पीछे हट जाता है। क्यों? क्योंकि ज्ञानी का मानना यह है कि कर्तव्य में ही इतना आनंद है; कर्तव्य अपने में पूरा आनंद है। श्रेय तो वे लेना चाहते हैं, जिन्हें कर्तव्य में आनंद नहीं मिलता।

एक मां अपने बेटे को बड़ा कर रही है। अगर उसे बड़ा करने में आनंद है, तब वह कहती हुई नहीं फिरेगी कि मैंने बेटे को बड़ा किया है। और अगर कभी वह कहती हुई फिरती है कि मैंने बड़ा किया और नौ महीने पेट में रखा और इतना श्रम उठाया, तो जानना चाहिए कि वह मां के आनंद से वंचित रह गई। उसने नर्स का काम किया होगा; वह मां नहीं हो पाई। क्योंकि मां होना तो इतना आनंदपूर्ण था कि सचाई तो यह है कि अगर सच में मां होने का उसे पूरा आनंद आ गया होता, तो अब इस बेटे से कुछ और लेने का सवाल नहीं उठता। जितना आनंद मिल गया है, वह उसके कर्तव्य से बहुत ज्यादा है।

तो अक्सर ऐसा होगा कि ज्ञानी आपको धन्यवाद दे देगा कि आपने अवसर दिया कि उसे थोड़ा सा आनंद मिल सका। आपसे धन्यवाद की अपेक्षा नहीं करेगा।

"चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।"

लाओत्से आखिरी वचन कहता है कि चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता। वंचित तो उसी को किया जा सकता है, जो दावेदार है। दावे का खंडन हो सकता है। लेकिन जिसने दावा ही नहीं किया, उसका खंडन कैसे होगा? जिसने कहा ही नहीं कि मैंने कुछ किया है, कैसे आप उससे कहिएगा कि तुमने नहीं किया है। जिसने कभी घोषणा ही नहीं की, उसके इनकार करने का सवाल नहीं उठता है।

तो लाओत्से कहता है, जो अपने श्रेय का दावा नहीं करते, उन्हें कभी श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता। वंचित उन्हीं को किया जा सकता है, जो दावा करते हैं। और मजा यह है कि दावा वे ही करते हैं, जो पहले से ही वंचित हैं, जिन्हें कुछ मिला ही नहीं। दावे की इच्छा ही इसलिए पैदा होती है कि कोई आनंद कृत्य में तो उपलब्ध नहीं हुआ, अब श्रेय पाने में उपलब्ध हो जाए। और दावे की इच्छा इसलिए भी पैदा होती है कि वस्तुतः अगर आपने कर्तव्य न किया हो, तो दावे की इच्छा पैदा होती है। क्योंकि कर्तव्य अपने आप में इतना टोटल, इतना संपूर्ण है कि उसके ऊपर कोई दावे का सवाल नहीं उठता। लेकिन जिसने पूरा नहीं किया, उसके भीतर पश्चात्ताप, रिपेंटेंस, उसके पीछे कुछ ग्लानि सरकती रहती है कि मैं नहीं कर पाया। वह यह नहीं कर पाया, इस कीड़े को दबाने के लिए, मैंने किया, इसकी उदघोषणा करता है।

जो मां अपने बेटे के लिए कुछ न कर पाई हो, वह घोषणा करेगी कि उसने क्या-क्या किया। और जो मां अपने बेटे के लिए बहुत कुछ कर पाई हो, वह सदा कहेगी कि वह क्या-क्या नहीं कर पाई। उसको सदा खलेगा वही जो वह नहीं कर पाई, जो कि किया जाना था, नहीं कर पाई। और जब कोई मां इस बात की याद करती है कि वह अपने बेटे के लिए क्या-क्या नहीं कर पाई, तो वह खबर देती है कि वह मां है। और जब कोई मां इस बात की खबर देती है कि उसने अपने बेटे के लिए क्या-क्या किया, तो वह खबर देती है कि वह मां नहीं है।

जीवन में दावा सिर्फ ग्लानि से पैदा होता है।

मनोवैज्ञानिक भी अब इस सत्य से स्वीकृति देते हैं। विशेषकर एडलर, इस युग के तीन बड़े मनोवैज्ञानिकों में एक, वह लाओत्से की इस बात को बहुत गहनता से स्वीकार करता है। एडलर कहता है कि जो आदमी दावा करता है, वह दावा इसीलिए करता है कि उसे भीतर अनुभव होता है कि वह दावे के योग्य नहीं है। और जो आदमी हीन होता है, वह महत्वाकांक्षी हो जाता है। और जो आदमी भीतर भयभीत होता है, वह बाहर से बहादुरी के आवरण बना लेता है। और जो आदमी भीतर निर्बल होता है, वह सबलता की घोषणाएं करता फिरता है। जो आदमी भीतर अज्ञानी होता है, वह बाहर ज्ञान की पर्तों को निर्मित कर लेता है। एडलर कहता है, जो आदमी भीतर होता है, उससे उलटी घोषणा करता है। ठीक उससे उलटी घोषणा करता है! क्योंकि वह जो भीतर है, वह कष्ट देता है। वह अपने ही भीतर को अपनी ही उलटी घोषणा से पोंछना, मिटाना, समाप्त करना चाहता है।

इसमें बहुत दूर तक सचाई है। इसमें बहुत दूर तक सचाई है। जो लोग हीन-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स से पीड़ित होते हैं, वे ऐसी कोशिश में लग जाते हैं कि दुनिया को दिखा दें कि वे कुछ हैं। जब तक वे दुनिया को न दिखा पाएं कि वे कुछ हैं, तब तक वे अपनी ही हीनता की ग्रंथि के बाहर नहीं हो पाते। जिस दिन दुनिया मान लेती है कि हां, तुम कुछ हो, उस दिन उनको भी मानने में सुविधा हो जाती है कि मैं कुछ हूं। हालांकि वह जो भीतर ना-कुछपन है, वह तो मौजूद ही रहेगा। वह ऐसे मिटने वाला नहीं है। लेकिन फिर भी धोखा, सेल्फ-डिसेप्शन, आत्मवंचना हो जाती है।

लाओत्से की यह बात कि वे श्रेय का दावा नहीं करते... ।

असल में, जो असली दावेदार हैं, वे कभी दावा नहीं करते। इसे ऐसा समझें। जो असली दावेदार हैं, वे कभी दावा नहीं करते। उनका दावा इतना प्रामाणिक है कि उसके करने की कोई जरूरत नहीं है। उनका दावा इतना आधारभूत है कि स्वयं परमात्मा भी उसे इनकार नहीं कर पाएगा। इसलिए किसी आदमी को मनवाने की कोई भी जरूरत नहीं है।

जीसस को सूली लगी। तो जीसस के शिष्यों को ख्याल था कि सूली पर जीसस को मारा नहीं जा सकेगा। क्योंकि वे चमत्कार दिखला देंगे, वे मिरेकल कर देंगे, सूली बेकार जाएगी और जीसस को मारा नहीं जा सकेगा। जीसस के शिष्यों को यह ख्याल था। क्योंकि ईश्वर का बेटा अगर ऐसे मौके को भी चूक जाएगा और दावा नहीं करेगा--यह तो मौका था, दुश्मन खुद मौका दे रहा था।

और दुश्मन का भी कहना यह था कि अगर तुम सचमुच ईश्वर के बेटे हो, तो सूली पर तय हो जाएगा। अगर ईश्वर अपने बेटे की भी रक्षा नहीं कर सकता, तो फिर और किसकी रक्षा करेगा? और अगर ईश्वर के बेटे को भी साधारण आदमी फांसी पर लटका देते हैं और ईश्वर कुछ नहीं कर पाता, बेटा कुछ नहीं कर पाता, तो सब दावे बेकार हैं। जीसस के दुश्मन भी जीसस को सूली पर ले गए थे इस ख्याल से कि अगर वह सच में ईश्वर का बेटा है, तो दावा हो जाएगा। वह जाहिर हो जाएगी बात, हम सूली न दे पाएंगे।

जीसस के शिष्यों को भी यही ख्याल था कि सूली पर सब निर्णय हो जाएगा--डिसीसिव, आखिरी बात का फैसला हो जाएगा। चमत्कार देखना चाहते हो? दिख जाएगा!

लेकिन जीसस चुपचाप मर गए; एक साधारण आदमी की तरह मर गए। जब जीसस के हाथ में खीलियां ठोंकी जा रही हैं, तब शिष्य भी उत्सुकता से देख रहे हैं, कि अब चमत्कार होता है! अब चमत्कार होता है! दुश्मन भी आतुरता से देख रहे हैं कि शायद चमत्कार होगा! शायद! पता नहीं, यह आदमी हो ही ईश्वर का बेटा! लेकिन दुश्मन भी निराश हुए, मित्र भी निराश हुए। जीसस ऐसे मर गए, जैसे कोई भी अ, ब, स मर जाता। भारी सदमा लगा।

शत्रुओं को तो सदमा का कोई कारण नहीं था। उन्होंने कहा कि ठीक है, हम तो पहले ही कहते थे कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। यह सरासर झूठी बात है कि ईश्वर का बेटा है। यह बढ़ई का लड़का है। यह कोई ईश्वर वगैरह का बेटा नहीं है। आखिर मर गया! सिद्ध हो गई बात! शिष्यों को भारी सदमा लगा। लगना ही था। अपेक्षा थी, वह टूट गई। डिसइल्यूजनमेंट हो गया। एक भ्रम खंडित हो गया।

दो हजार साल तक जीसस को प्रेम करने वाले लोग इस पर विचार करते रहे हैं कि बात क्या हुई! जीसस को सिद्ध करना चाहिए था। अगर लाओत्से को वे समझ सकें, तो बात समझ में आ जाएगी, अन्यथा जीसस को कभी नहीं समझा जा सकेगा।

जीसस सच में ही इतना बेटा हैं ईश्वर के, दावा इतना प्रामाणिक है, कि उसे करने की कोई जरूरत नहीं है। अगर जीसस ने कोई चमत्कार दिखाया होता, तो मेरी दृष्टि में तो वे ना-कुछ हो जाते। उसका मतलब ही यह होता कि वे आदमियों के सामने सिद्ध करने को बहुत आतुर हैं। उनका ऐसा चुपचाप निरीह आदमी की तरह मर जाना इस बात की घोषणा है कि वह आदमी साधारण न था। साधारण आदमी भी थोड़े हाथ-पैर मारता। साधारण आदमी भी थोड़े हाथ-पैर मारता।

नहीं, उन्होंने कुछ किया ही नहीं, हाथ-पैर मारने की बात अलग। वह सूली काफी वजनी थी। तो जो उसे ढो रहे थे, उनसे ढोते नहीं बनती थी। तो जीसस ने कहा, मेरे कंधे पर रख दो, मैं अभी जवान हूं। जो मजदूर ढो रहे थे, वे बूढ़े थे। तो जीसस अपनी सूली को लेकर पहाड़ पर चढ़े। सूली पर चढ़ गए सरलता से, और मर गए चुपचाप!

दावा इतना गहन रहा होगा, ईश्वर की सन्निधि इतनी निकट रही होगी कि उसे सिद्ध करना व्यर्थ था। अगर जीसस ने कोशिश करके उसे सिद्ध किया होता, तो वे साफ सबूत दे देते कि वे दावेदार पक्के नहीं थे। असल में जो दावेदार है, वह दावा करता ही नहीं। मगर ईसाइयत न समझा पाई अब तक इस बात को। क्योंकि

लाओत्से का तो ईसाइयत को कोई ख्याल नहीं। और सच यह है कि जो भी जीसस को समझना चाहते हैं, वे बिना लाओत्से को समझे नहीं समझ सकते हैं। क्योंकि यहूदी धर्म के पास जीसस को समझाने का कोई सूत्र नहीं है। और जीसस के पहले उनके मुल्क में जो लोग भी पैदा हुए, उनमें से किसी से भी जीसस का कोई तालमेल नहीं है। जीसस बिल्कुल फारेन एलीमेंट थे, एकदम विजातीय तत्व हैं।

असल में, जीसस को जो भी खबरें मिलीं, वे भारत, चीन और इजिप्त से मिलीं। उनका जो शिक्षण हुआ, वह इन तीन मुल्कों में हुआ। और वह जो भी सारभूत पूरब में था, जो भी निचोड़ था पूरब के सारे प्राणों का, वह जीसस के पास था। इसलिए जो जानते हैं, वे तो, जीसस ने चमत्कार नहीं दिखलाया, इसी को चमत्कार मानते हैं। यह बड़ा चमत्कार है, यह बड़ा मिरेकल है। छोटा-मोटा आदमी भी कुछ न कुछ दिखलाने की कोशिश करता। कुछ भी कोशिश नहीं की। बात इतनी सिद्ध थी कि उसका दावा क्या करना था? किसके सामने दावा करना था? अगर ईश्वर के सामने ही दावा साफ है, तो आदमियों के सामने दावा करने की जरूरत कहां है! आदमियों के सामने तो सिद्ध करने वही जाता है, जो ईश्वर के सामने सिद्ध नहीं है।

"चूंकि वे श्रेय का दावा नहीं करते, इसलिए उन्हें श्रेय से वंचित नहीं किया जा सकता।"

इसलिए मैं कहता हूं कि चूंकि जीसस ने दावा नहीं किया, इसलिए उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता। वे ईश्वर के बेटे सिद्ध हो गए--उस, उस गैर-चमत्कार में, जब उन्होंने कोई चमत्कार नहीं किया। नहीं तो आदमी का मन कुछ करके दिखाने का होता है। और जहां इतना तनाव रहा होगा, सूली पर लटकाए गए, एक लाख आदमी इकट्ठे थे उस पहाड़ी पर, लोग प्रतीक्षारत थे, कुछ दिखला दो! मित्र भी यही चाहते थे, शत्रु भी यही चाहते थे, कुछ हो जाए! वे सब खाली हाथ लौटे। जीसस चुपचाप मर गए!

और यह वही आदमी है, जिसने मुर्दों को छुआ और वे जिंदा हो गए। और यह वही आदमी है, जिसने बीमारों को छुआ और उनकी बीमारियां विलीन हो गईं। और यह वही आदमी है कि सूखे वृक्ष के नीचे बैठ गया, तो उस पर पत्ते आ गए। और यह वही आदमी है, जो कि सागर तूफान कर रहा हो, तो इसके इशारे से शांत हो गया।

लेकिन यह मरते वक्त गैर-दावे में मर गया! हैरान हुए शत्रु भी कि यह आदमी कुछ तो जानता ही था। नहीं रहा हो ईश्वर का बेटा, तो भी कुछ तो जानता ही था। क्योंकि ये मरीजों को ठीक होते देखा है, मुर्दों को भी उठते देखा है। शत्रु भी इतने ख्याल में नहीं थे कि कुछ भी न होगा। कुछ तो होगा ही। सूली टूट पड़ती, खीले ठोंके जाते और न ठुंकते; आर-पार हो जाते और खून न बहता! कुछ तो हो ही सकता था! और ये कोई बहुत बड़ी बातें न थीं! इसके लिए ईश्वर का बेटा होने की जरूरत नहीं है। एक साधारण सा योगी भी, हाथ में ठोंकी जाए खीली तो खून को गिरने से रोक सकता है। साधारण योगी, जिसको थोड़ा सा प्राणायाम का गहन अभ्यास है, वह खून की गति को रोक सकता है। इसमें कोई बड़ी अड़चन न थी। कुछ भी न हुआ! बड़ी क्लाइमेक्स पर लोग थे एक्सपेक्टेशन के कि कुछ होगा। कुछ भी न हुआ उस पहाड़ पर।

यह आदमी अदभुत रहा होगा! इसका ऐसा चुपचाप मर जाना एक मिरेकल है, एक चमत्कार है। पर लाओत्से को समझेंगे, तो यह बात समझ में आएगी। और बहुत से वचन हैं जीसस के, जो लाओत्से को बिना समझे समझ में नहीं आएंगे।

जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे लोग, जिनके पास कुछ भी नहीं, क्योंकि वे स्वर्ग के राज्य के मालिक होंगे।

लाओत्से को समझे बिना समझना मुश्किल है।

जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे लोग, जो विनम्र हैं। जिन्होंने कोई दावा नहीं किया, जो विनम्र हैं, जिन्होंने कोई दावा नहीं किया, वे ही प्रभु के राज्य के हकदार हैं। धन्य हैं वे, जो आत्मा से दरिद्र हैं, क्योंकि परमात्मा की सारी समृद्धि उनकी है।

ये वचन सिवाय लाओत्से के कहीं से आने वाले नहीं हैं। यहूदी परंपरा में इन वचनों की कोई जगह नहीं है। क्योंकि यहूदी परंपरा कहती है कि जो तुम्हारी एक आंख फोड़े, तुम उसकी दोनों फोड़ देना। और अगर किसी ने किसी की एक आंख फोड़ी है, तो परमात्मा उसको सजा देगा और उसकी दूसरी आंख फोड़ देगा। वहां इस लड़के का अचानक पैदा होना और इस लड़के का यह कहना, जीसस का यह कहना कि जो तुम्हारा कोट छीने, उसे कमीज भी दे देना; पता नहीं, संकोचवश कमीज वह न छीन पाया हो; और जो तुमसे कहे कि दो मील तक मेरा बोझ ढोओ, तुम तीन मील तक ढो देना, क्योंकि हो सकता है संकोच में हो और आगे के लिए न कह पाया हो। यह जो हवा है, यह जो दृष्टि है, यह लाओत्सियन है।

श्रेय मत लेना, और तब तुमसे कभी श्रेय छीना न जा सकेगा। और तुमने मांगा श्रेय, और उसी वक्त छीनने वाले लोग मौजूद हो जाएंगे। इधर तुमने दावा किया, उधर खंडन करने वाले लोग इकट्ठे हो जाएंगे। क्योंकि लाओत्से कहता है, विपरीत तत्काल पैदा होता है। अगर तुमने चाही प्रशंसा, तो निंदा मिलेगी। अगर तुमने चाहा आदर, तो अनादर सुनिश्चित है। तुमने खोजा सिंहासन, तो आज नहीं कल तुम धूल में गिरोगे। लाओत्से कहता है, वहां बैठो, जहां से नीचे कोई और गिरने की जगह ही नहीं। फिर तुम्हें कोई न गिरा सकेगा। फिर तुम सिंहासन पर हो।

लाओत्से कहता है, सिंहासन पर वही है, जिसे हटाया न जा सके। और कौन सिंहासन पर है? तुम उस जगह बैठो, जहां से और नीची कोई जगह नहीं है। फिर तुम्हें कोई न उठा सकेगा। फिर तुम सिंहासन पर हो, क्योंकि तुम्हें हटाने का कोई सवाल नहीं उठता।

लाओत्से ने ज्ञान का भी कभी दावा नहीं किया। अगर लाओत्से के पास कोई जाता और पूछता कि मैंने सुना है, आप ज्ञानी हो। तो लाओत्से कहता है, जरूर तुमने कुछ गलत सुना है। मेरी मानो, दूसरों ने जो कहा, उन्हें इतना पता न होगा, जितना मेरे बाबत मुझे पता है। मैं बड़ा अज्ञानी हूं।

जो नहीं जानते थे, वे मान कर लौट आते कि नाहक परेशान हुए। जो जानते थे, वे लाओत्से का पैर पकड़ लेते कि अब हम न जाएंगे, क्योंकि हमें पता है कि जो ज्ञानी है, वही अज्ञान का ऐसा स्वीकार कर सकता है, अन्यथा नहीं। अज्ञानी तो सदा ज्ञान का दावा करते मिलते हैं। अज्ञानी ही ज्ञान का दावा करता मिलता है। सिर्फ ज्ञानी ही हो सकता है, जो कह दे कि मुझे कुछ पता नहीं है, तुम कहीं और खोजो। तुम्हें कुछ गलत लोगों ने खबर दे दी है।

संत फ्रांसिस का एक संप्रदाय है। और संत फ्रांसिस एक विनम्र लोगों में एक था, ईसाइयत में जो पैदा हुए। तो जो फ्रांसिसवादी फकीर होते हैं... । संत फ्रांसिस तो अदभुत रूप से विनम्र था। उसकी विनम्रता का तो कोई हिसाब नहीं है। पर अनुयायी और वादी तो विनम्र होना बड़ा मुश्किल है। तो एक जगह ईसाइयों के सभी संप्रदाय के लोगों का एक सम्मेलन हो रहा है। तो वहां एक फ्रांसिस का अनुयायी फकीर कहता है कि हम कैथलिकों जैसे परंपरा के धनी नहीं हैं, यह सच है; और हम ट्रैपिस्ट--एक संप्रदाय है ईसाइयों का--उसके जैसे बुद्धिसंपन्न नहीं हैं, यह भी सच है; और हम क्वेकर--ईसाइयों का दूसरा संप्रदाय--उसके जैसे प्रार्थना में कुशल नहीं हैं, यह भी सच है; बट इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप! वह कहता है, पर विनम्रता में हम तो सबसे ऊपर हैं।

सब गड़बड़ हो गया। इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप! ह्युमिलिटी का मतलब ही क्या होता है? विनम्रता में तो हम सर्वश्रेष्ठ हैं, सर्वोपरि हैं! उसमें हमारा कोई मुकाबला नहीं! हम फ्रांसिस के अनुयायी हैं।

विनम्रता में सर्वोपरि! विनम्रता का मतलब ही यह होता है कि किसी के ऊपर न होने का भाव--किसी के ऊपर। सबसे पीछे होने का भाव!

जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े हैं, क्योंकि मेरे स्वर्ग के राज्य में वे ही प्रथम होंगे।

मगर यह सारी की सारी धारा, यह हवा लाओत्सियन है। श्रेय का दावा मत करना।

मगर अज्ञान में तो दावा होगा ही। यहां तक हो सकता है, जैसा इस फ्रांसिसियन फकीर के साथ हुआ कि इन ह्युमिलिटी वी आर एट दि टॉप। ऐसा भी हो सकता है कि हम श्रेय का दावा बिल्कुल नहीं करते। लेकिन तब दावा हो गया। और चित्त की सूक्ष्म जटिलताओं में यही सबसे बड़ा खेल है कि चित्त यह भी कह सकता है कि हम श्रेय का दावा नहीं करते। तब दावा हो गया। और चित्त यह भी कह सकता है कि चूंकि ज्ञानी कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं, इसलिए हम भी कहते हैं कि हम अज्ञानी हैं। लेकिन तब कोई बात हाथ न आई। फिर तो हम घूम कर वही करने लगे। और मन घूम कर वही कर लेता है।

लाओत्से की दृष्टि, जीवन का जो जटिलता का चक्र है, उसको ही छिन्न-भिन्न कर देने की है। वह जटिलता का चक्र क्या है? वह चक्र यह है कि जिस बात की हम कोशिश करते हैं, उसी को हम चूक जाते हैं। करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे कोई नींद लाने की कोशिश करे और चूक जाए, कोशिश से नींद न आए। और कोई कोशिश न करे और नींद आ जाए!

लाओत्से कहता है, श्रेय का दावा किया, तो वंचित हो जाओगे। दावा न किया, तो श्रेय मिला ही हुआ है। मालकियत जमानी चाही, तो गुलामी में पड़ जाओगे। अन्यथा मालकियत को छीनता कौन है! अगर मांगा, तो दुख पाओगे। क्योंकि मांगने से जगत में कुछ भी नहीं मिलता। नहीं मांगा, तो सब मिला ही हुआ है।

उलटे दिखाई पड़ने वाले ये सूत्र उलटे नहीं हैं। मगर हम उलटे हैं, इसलिए हमें उलटे दिखाई पड़ सकते हैं, हम उलटे हैं। हमें जो भी दिखाई पड़ता है, वह उलटा दिखाई पड़ सकता है। लाओत्से हमें उलटा दिखाई पड़ेगा कि सिर के बल खड़ा है यह आदमी। श्रेय पाना हो, तो सीधा सूत्र है कि श्रेय पाने की कोशिश करो। यश पाना हो, यश पाने की चेष्टा करो। सुख पाना हो, सुख पाने की चेष्टा करो। सीधा सूत्र है। हम जो सब अपने पैर पर खड़े हैं, लाओत्से हमें सिर पर खड़ा हुआ, शीर्षासन करता हुआ मालूम पड़ेगा! कि यह क्या बातें कर रहे हो कि सुख पाना है, तो सुख पाने की चेष्टा मत करो, तो फिर सुख कैसे मिलेगा? हमें तो चेष्टा कर-करके भी नहीं मिल रहा है। तुम कहते हो, चेष्टा मत करो। तब तो गए। तब तो बिल्कुल ही नहीं मिलेगा।

ध्यान रखें, हमारे मन का तर्क हमें कहां भटकाता है? वह कहता है, इतनी चेष्टा करके जब नहीं मिल रहा, तो बिना चेष्टा किए कैसे मिलेगा? लेकिन लाओत्से कहेगा कि चेष्टा कर रहे हो इतनी, इसीलिए नहीं मिल रहा। एक बार बिना चेष्टा किए हुए भी देखो!

फिर चेष्टा करके देख चुके हो। जन्मों-जन्मों तक चेष्टा करके आदमी देख चुका है। कुछ मिलता नहीं। फिर भी हमारी चेष्टा जारी रहती है। क्योंकि मन कहता है कि और थोड़ी चेष्टा की कमी रह गई होगी, इसलिए नहीं मिल रहा। और थोड़ी चेष्टा! और थोड़ी चेष्टा! यह मन का तर्क कभी थकता ही नहीं। और युक्तिपूर्ण लगता है कि ठीक है, अगर अभी तक नहीं पहुंच पाए पहाड़ पर, तो थोड़ा और श्रम करना पड़ेगा।

लेकिन लाओत्से कहता है कि तुम्हारी चेष्टा ही तुम्हें रोक रही है। तुम छोड़ दो चेष्टा।

क्या कारण होगा ऐसा? ऐसा लाओत्से क्यों कह पाता है?

ऐसा इसलिए कहता है कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह हमें सदा से ही मिला हुआ है। चेष्टा की वजह से हम इतने व्यस्त और परेशान हैं कि हम उसे देख नहीं पाते। कई बार, जो हमारे पास हो चीज, अगर आप बहुत जल्दी में उसे खोजने लग जाएं और बहुत बेचैन हो जाएं, तो खो जाती है। जो बिल्कुल मिली हुई थी, वह खो जाती है। बहुत बार ऐसा होता है कि आप किसी का नाम याद कर रहे हैं और कहते हैं, जबान पर रखा है। मगर इतनी जल्दी है याद करने की, वह आदमी सामने खड़ा है। वह पूछता है, पहचाना कि नहीं! अब बड़ी बेचैनी है। जानते हैं कि पहचानते हैं, सो यह भी नहीं कह सकते कि नहीं। सब जाना हुआ आदमी है, चेहरा पहचाना है, नाम भी पता है। पर इतनी जल्दी है अब लाने की उस नाम को कि लगता है जबान पर रखा है, और फिर भी नहीं आता है।

वह आदमी चला गया है। आप अपने अखबार पढ़ने में लग गए हैं, कि चाय पीने में लग गए हैं, और अचानक वह नाम आपकी जबान पर आ गया है। जब कोशिश कर रहे थे, तब वह खो गया था; और जब बिल्कुल कोशिश नहीं कर रहे हैं, वह आ गया है।

इस सदी के जो बड़े से बड़े वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं, उन सभी आविष्कारकों का यह अनुभव है कि जिसे वे खोज रहे थे, उसे वे तब तक न खोज पाए, जब तक खोजने का मन रहा। बड़े से बड़े आविष्कार इस सदी के जो हैं, जिन बड़े-बड़े आविष्कारों पर नोबल पुरस्कार मिले हैं, उन अधिकतम पुरस्कृत लोगों का यह अनुभव है कि जो हमने जाना, वह कोशिश से नहीं जान पाए। किसी क्षण में जब कोई कोशिश न थी, कोई चीज भीतर से उठी और जवाब आ गया।

मैडम क्यूरी ने तो रात सोते वक्त अपने गणितों के उत्तर लिखे। दिन भर थक गई है, परेशान हो गई है, नहीं उत्तर आते हैं। सो गई है। रात नींद में उत्तर आ गया है। उठ कर उत्तर लिख लिया है। सुबह पाया कि उत्तर सही है। और उत्तर बिना प्रोसेस के आया है, क्योंकि रात सिर्फ उत्तर लिखा है। फिर प्रोसेस में कभी तो दिनों लग गए पूरी करने में। उत्तर तो मिल गया है।

यह उत्तर कहां से आया?

जो मनुष्य के अंतरतम को जानते हैं, वे कहते हैं, जो भी जाना जा सकता है, वह मनुष्य जाने ही हुआ है। जो भी इस जगत में कभी भी जाना जाएगा, उसे आप इस क्षण भी जान रहे हैं। सिर्फ आपको पता नहीं है। मनुष्य की अंतस चेतना में वह सब छिपा है, जो कभी भी प्रकट होगा। वृक्ष में जो पत्ते हजार साल बाद प्रकट होंगे, वे भी बीज में छिपे थे। अन्यथा वे प्रकट नहीं हो सकते हैं। हजार साल बाद आदमी जो जानेगा, आदमी आज भी जानता है। पर जानता नहीं कि जानता है। बाहर खोज-बीन में उलझा हुआ है।

जितने भी आविष्कार के क्षण हैं, वे रिलैक्स्ड, विश्राम के क्षण हैं। न्यूटन बैठा है वृक्ष के तले और सेव गिर गया। विश्राम का क्षण था; कोई प्रयोगशाला नहीं थी वह।

एक मजाक मैंने सुना है। एक वैज्ञानिक अपने विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में समझा रहा है कि बुद्धि पर जोर डालो, थोड़ी शर्म खाओ। पता नहीं तुम्हें कि न्यूटन वृक्ष के नीचे बैठा था, और फल गिरा और उसने कितना बड़ा आविष्कार कर लिया! और तुम इतनी मेहनत करके भी कुछ नहीं कर पा रहे हो। एक युवक खड़े होकर कहता है कि हमें भी वृक्ष के नीचे बैठने दो, तो शायद फल गिरे और कोई आविष्कार हो जाए! लेकिन इस प्रयोगशाला के तनाव में न्यूटन भी कुछ न कर पाता। यह खोजने की इतनी जो चेष्टा है, इतना जो तनाव और टेंशन है, शायद न्यूटन भी कुछ न कर पाता। न्यूटन भी सोच नहीं रहा था उस वक्त; बिना सोचे बैठा था।

इस जगत में जो बड़े से बड़ी खोजें घटित होती हैं, वे उन क्षणों में होती हैं, जब मन होता है विश्राम में और निर्विचार।

लाओत्से का आधारभूत दर्शनः मनुष्य चेष्टा न करे, प्रयास न करे, कर्ता न बने, दावेदार न हो, तो उसे वह सब संपदा मिल जाएगी, जिसकी तलाश है। तलाश से नहीं मिलेगी।

यह किसी दिन जब आपको ख्याल में आ जाएगा। और जरूरी नहीं है कि जब मैं समझा रहा हूं, तब ख्याल में आ जाए। हो सकता है, किसी वृक्ष के नीचे जब आप बैठे हों, कोई फल गिरे और लाओत्से समझ में आ जाए। क्योंकि जब मैं समझा रहा हूं, तब आप समझने को आतुर होते हैं, उत्सुक होते हैं। तब आप समझने के लिए तने होते हैं, तब समझने की चेष्टा चल रही होती है। वही चेष्टा बहुत बार बाधा बन जाती है। निश्चेष्ट जब आप पड़े हों।

अभी स्कैंडिनेविया, स्वीडन, स्विटजरलैंड एक नई शिक्षा की पद्धति पर काम चल रहा है। वह पद्धति को मैं लाओत्सियन कहूंगा। वह पद्धति बहुत नई है। वह पद्धति यह है कि बच्चों को सिखाओ मत, बच्चों को सीखने पर जोर मत डालो।

अभी कक्षा है, तो बच्चे तने हुए बैठे रहते हैं। अगर कोई बच्चा दोनों पैर टेबल पर फैला कर और सिर टिका कर बैठ जाए, तो शिक्षक कहता है, अशिष्टता है। यह तुम क्या कर रहे हो? सम्हल कर बैठो, सीधे बैठो, रीढ़ तनी हुई रखो।

लेकिन अभी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इससे हम बहुत ज्यादा नहीं सिखा पा रहे हैं। तो नया प्रयोग चल रहा है। कक्षा में इस तरह की व्यवस्था है कि बच्चे बिल्कुल विश्राम में बैठ सकें; कोई नियम का आग्रह नहीं है कि वे कैसे बैठें। जो उनका शरीर रुचिकर मानता हो, वैसे बैठ जाएं। जिसको लेटना हो, वह लेट जाए; जिसको बैठना है, बैठ जाए; जिसको खड़ा होना है, खड़ा हो जाए; जिसको फर्श पर पैर पसार लेने हैं, वह फर्श पर पैर पसार ले। शिक्षक जब बोले, तो बच्चे आंख बंद रखें। उलटा है बिल्कुल। शिक्षक जब बोले, बच्चे आंख बंद रखें। बच्चे समझने की कोशिश न करें, केवल सुनें। समझने की कोशिश ही न करें कि शिक्षक क्या कह रहा है; केवल सुनें। शिक्षक को ही न सुनें अकेला; बाहर झींगुर की आवाज आ रही है और मेंढक वर्षा में बोल रहे हों, उनको भी सुनें। हवा का सर्राटा आ रहा है, हवा की आवाज हो रही है, उसको भी सुनें। खुद के हृदय की धड़कन मालूम पड़ रही है, उसको भी सुनें। सुनें! रिलैक्स्ड, विश्राम में पड़े हुए सुनते रहें।

और बड़ी हैरानी की बात हुई है कि जो कोर्स दो साल में हो सकता है, वह तीन महीने में हो जाता है। जो शिक्षण पुरानी व्यवस्था और पद्धति से दो साल लेता है, वह तीन महीने लेता है इस पद्धति से। और उस पुराने शिक्षण में दो साल में बच्चे के बहुत से मानसिक तंतु टूट जाते हैं।

सच तो यह है कि विश्वविद्यालय से निकलने के बाद शायद ही कोई हो जो पढ़ता-लिखता हो। वह इतना ऊब गया होता है, इस बुरी तरह थक गया होता है कि जीवन भर का काम निपट गया होता है। जब कि असलियत यह है कि विश्वविद्यालय सिर्फ पढ़ने की क्षमता देता है, अभी पढ़ना शुरू होना चाहिए। सिर्फ समझने की क्षमता देता है, समझना शुरू होना चाहिए। तो हम समझते हैं, अंत आ गया। आ ही जाएगा, क्योंकि हम इतना थका डालते हैं, इतना तनाव दे देते हैं; सीखने जैसा तो कुछ बहुत नहीं हो पाता, लेकिन सीखने की चेष्टा बहुत चलती है।

इस नई पद्धति में, इसको वे कहते हैं, सब्लिमिनल जो कांशसनेस है, जो हमारी इस ऊपर की चेतना के नीचे दबी हुई जो चैतन्य की धारा है, उस धारा को सीधी शिक्षा। बीच में आपको हम नहीं लेते। आपको तनाव करने की जरूरत नहीं, आप पड़े रहो।

रूस हिप्नोपेडिया पर बहुत से प्रयोग कर रहा है--रात्रि-शिक्षण पर--कि विद्यार्थी सो रहा है, उसके कान के पास छोटा सा यंत्र लगा है। वह यंत्र, जब उसकी गहरी नींद शुरू हो जाएगी घंटे भर के बाद, तब वह यंत्र बोलना शुरू कर देगा। और दो घंटे रात में शिक्षा होगी। समझो कि बारह से दो के बीच। दो बजे वह यंत्र घंटी बजाएगा। विद्यार्थी उठेगा और उसे जो भी याद आता हो, इस दो घंटे में जो नींद में उसने सीखा, उसे नोट कर लेगा, फिर सो जाएगा। फिर सुबह चार से छह, उसको दो घंटे फिर पुनरुक्ति होगी।

और बड़ी हैरानी की बात है कि जो महीनों श्रम करके हम नहीं समझा सकते, वह सात दिन की हिप्नोपेडिया से, सम्मोहनशिक्षा से पूरा हो जाता है। क्योंकि उस वक्त कोई चेष्टा नहीं, कोई तनाव नहीं, बच्चा नींद में तैर रहा है। कोई बात सीधी चली जाती है, हृदय तक पहुंच जाती है। फिर वह उसे कभी नहीं भूलता है। बुद्धि कोई श्रम नहीं करती है।

यह सब लाओत्सियन है। अगर इसको हम ठीक से समझें, तो जो मैं परसों आप से कह रहा था कि लाओत्से दुनिया के कोने-कोने में बहुत तरह से हमला कर रहा है। अनेकों को पता भी नहीं है कि यह दृष्टि लाओत्सियन है। क्योंकि लाओत्से कहता है, सीखोगे तो क्या खाक सीख पाओगे! सीखो मत। सीखने की चेष्टा बाधा है। तुम तो सिर्फ गुजर जाओ शांति से; जो सीखने योग्य है, वह सीख जाओगे। तुम मौन गुजर जाओ; तुम सिर्फ ग्राहक भर रहो, तुम सिर्फ रिसेप्टिव गुजर जाओ। तुम चेष्टा मत करो। चेष्टा बंद कर देती है, रिसेप्टिविटी को कम कर देती है। बंद हो जाता है, क्लोज्ड हो जाता है।

अनेक आयामों में जो उसने कहा है, वह यही है कि आदमी कुछ करता है, यह भ्रांति है; चीजें घटित होती हैं। आदमी न करे, तो बहुत कुछ जान पाएगा। क्योंकि करने का जो तनाव है, वह उसकी जानने की क्षमता को क्षीण कर देता है। आदमी जो-जो मांगता है, वह उसे कभी नहीं मिलता। भिखारियों को कभी कुछ नहीं मिलता; सम्राटों को सब कुछ मिल जाता है। जो नहीं मांगता, सब कुछ उसका है।

अधिकार नहीं करता ज्ञानी, स्वामित्व निर्मित नहीं करता। करता है, जो करने योग्य जीवन में घटित होता है। श्रेय नहीं लेता, और सारा श्रेय उसका है।

प्रश्नः ओशो, लाओत्से के ऐसे जीवन-दर्शन में साधना का क्या स्थान होगा? और जो केवल बहने पर निर्भर होता है, तैरने पर नहीं, वह अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंच सकता है? क्या लक्ष्य तक पहुंचने के लिए भी यत्न की आवश्यकता नहीं है? लाओत्से का कुछ न करना, निष्क्रिय होना भी एक प्रकार का लक्ष्य जान पड़ता है। अबोध, अनजान धाराओं पर अपने आपको छोड़ देना ज्ञान है, ज्ञानी का लक्षण है? अथवा अज्ञान और अज्ञानी का?

लाओत्से साधना में भरोसा नहीं करता। चूंकि लाओत्से कहता है, जो भी साध कर मिलेगा, वह स्वभाव न होगा। इसे थोड़ा समझ लें। जो भी साध कर मिलेगा, वह स्वभाव न होगा। जिसे साधना पड़ेगा, वह आदत ही होगी। स्वभाव तो वही है, जो बिना साधे मिला है। जो है ही, वही स्वभाव है। जिसे निर्मित करना पड़े, वह स्वभाव नहीं, वह आदत ही होगी।

एक आदमी सिगरेट पीने की आदत बना सकता है; एक आदमी प्रार्थना करने की आदत बना सकता है। जहां तक आदत का संबंध है, दोनों आदतें हैं। सब आदतें स्वभाव के ऊपर आच्छादित हो जाती हैं, जैसे जल के ऊपर पत्ते छा जाएं। स्वभाव नीचे दब जाता है।

लाओत्से कहता है, साधना नहीं है कुछ। जो मिला ही हुआ है, जो पाया ही हुआ है, जो तुम हो, उसी को जानना है। इसलिए कोई नई आदत मत बनाओ। लाओत्से योग, साधना, किसी के पक्ष में नहीं है। लाओत्से कहता है, कोई आदत ही मत बनाओ। तुम तो निपट उसे जान लो, जो तुम जन्म के पहले थे और मृत्यु के बाद भी रहोगे। तुम तो उसे खोज लो, जो गहरे में अभी भी मौजूद है। फिर तुम जो भी साधोगे, वह परिधि पर होगा। कोई साधना केंद्र पर नहीं हो सकती। साधेगा जो आदमी, वह परिधि पर साधेगा। तुम जो रंग-रोगन करोगे, वह शरीर पर होगा। बहुत से बहुत जो तुम मेहनत उठाओगे, वह मन पर होगी। लेकिन स्वभाव शरीर और मन दोनों के पार है। उस स्वभाव को जानने के लिए तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, कुछ भी न करना बहुत बड़ा करना है। कुछ भी न करना छोटी बात नहीं है। इसलिए जब हम सुनते हैं, कुछ भी न करना, तो हमारे मन में होता है कि हम तो कुछ कर ही नहीं रहे हैं, तो बिल्कुल ठीक है। तो लाओत्से यही कह रहा है, जैसे हम हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं।

लाओत्से आपके लिए नहीं कह रहा है। आप तो बहुत कुछ कर रहे हैं। आप अगर परमात्मा को नहीं साध रहे हैं, तो आप संसार को साध रहे हैं। साधना आपकी जारी है। अगर आप परमात्मा को खोजने नहीं जा रहे हैं, तो खोने जा रहे हैं, लेकिन पूरी ताकत लगा रहे हैं।

तो आप यह मत सोचना कि आप कुछ नहीं कर रहे हैं, यही लाओत्से कह रहा है। आपका कुछ न करना कुछ न करना नहीं है। आपका कुछ न करना संसार की दिशा में सब कुछ करना है, सिर्फ परमात्मा की दिशा में कुछ न करना है।

तो एक आप हैं। आपके भी खिलाफ है लाओत्से। वह कह रहा है कि नहीं। एक आप में से कोई संसारी कभी-कभी छोड़ कर संसार, परमात्मा को साधने लग जाता है। लेकिन उसकी मेथोडोलाजी वही होती है, उसकी विधि वही होती है। जिस ढंग से वह धन कमाता था, वैसे ही वह धर्म कमाता है। और जिस ढंग से वह शरीर पर मेहनत और तनाव डाल कर इस जगत में कुछ पाना चाहता था, वैसे ही वह उस जगत में पाने की कोशिश में लग जाता है। लाओत्से कहता है, वह भी गलत है और आप भी गलत हो। क्योंकि जिसे पाना है, अगर वह भविष्य में मिलने वाली चीज हो, तब तो कुछ करना पड़ेगा। लेकिन वह मिली ही हुई है। उसको सिर्फ अनकवर करना है, डिस्कवर करना है, उसे उघाड़ना है। और सब साधना उसे ढांकेगी, उघाड़ेगी नहीं। सब साधना उसे ढांकेगी, उघाड़ेगी नहीं।

तो आप पूछ सकते हैं कि फिर जो साधना के पंथ हैं, वे क्या करते हैं? क्या वे गलत हैं?

लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल गलत हैं। लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल गलत हैं। क्योंकि लाओत्से कहता है, कुछ मत साधो, सब छोड़ दो, और तुम जान लोगे। लेकिन आपके हिसाब से वे पंथ बड़े सही हैं। क्योंकि आप सिर्फ करने की भाषा ही समझ सकते हैं। न करने की भाषा का मतलब ही आप नहीं समझ सकते।

लाओत्से जो कह रहा है, कभी करोड़ में एक आदमी ठीक से समझ पाता है--न करना। और जो न करना समझ लेता है, वह उसी क्षण मुक्त हो गया। उसके लिए दूसरे क्षण भी रुकने की जरूरत नहीं। लेकिन बाकी लोग नहीं समझ पाते हैं। बाकी लोग नहीं समझ पाते, उनके लिए क्या करना है? या तो लाओत्से अपनी बात कहे चला जाए, बाकी लोग जो करते हैं, वह करते चले जाएं।

नहीं, बाकी जो लोग नहीं समझ पाते हैं, करना ही समझ पाते हैं, उनसे कुछ करवाना पड़ता है। और उनसे इतना करवाना पड़ता है कि वे कर-करके थक जाएं और छोड़ दें। लेकिन घटना तभी घटती है, जब वे छोड़ते हैं। ध्यान रखें, घटना लाओत्से के पहले घटने वाली नहीं है। उनको कर-करके थकाना होता है। उनसे इतना करवाना होता है कि वे इतने तनाव में आ जाएं कि और तनाव का उपाय न रह जाए और तनाव छूट जाए।

तनाव के नियम हैं। या तो आप तनाव को छोड़ दें इसी वक्त--समझपूर्वक। एक तो रास्ता है, समझपूर्वक तनाव का छोड़ देना। मेरी यह मुट्ठी बंधी है। एक रास्ता तो यह है कि आपने मुझसे कहा कि बंधा होना मुट्ठी का स्वभाव नहीं है, इसलिए तुम थक जाओगे। आपने मुझसे कहा, बंधा होना मुट्ठी का स्वभाव नहीं है, इसलिए तुम नाहक थक जाओगे। क्योंकि बांधने में तुम्हें शक्ति लगानी पड़ रही है और व्यर्थ तुम कष्ट पा रहे हो। तो मैं आपसे पूछूं कि मुट्ठी को कैसे खोलूं? क्या उपाय करूं? क्या साधना करूं कि मुट्ठी खोलूं? तो आप कहेंगे, फिर समझे नहीं। क्योंकि साधना करनी पड़ेगी मुट्ठी खोलने के लिए! मुट्ठी बांधने के लिए श्रम करना पड़ रहा है। समझ आ गई, तो मुट्ठी खुल जानी चाहिए। पूछना ही नहीं चाहिए।

लेकिन आप पूछते हैं, क्या करें? क्या दूसरी मुट्ठी बांधें? कि सिर के बल खड़े हों? क्या करें?

आप कहते हैं, समझ में आ गया। यद्यपि आपकी समझ में नहीं आया है। अगर समझ में आ गया, तो मुट्ठी खुल जानी चाहिए। वही सबूत होगा कि समझ में आ गया। आपको कहना नहीं पड़ेगा कि समझ में आ गया। क्योंकि बांधने के लिए मेहनत करनी पड़ती है, खोलने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। सिर्फ बांधना जो हम कर रहे थे, वह भर न करें, मुट्ठी खुल जाती है।

खुली मुट्ठी के लिए आपको कुछ नहीं करना पड़ता, यह आपने कभी ख्याल किया? खुली मुट्ठी स्वभाव है। इसलिए खुली मुट्ठी पर कोई श्रम नहीं होता, भार नहीं पड़ता, तकलीफ नहीं होती। आपको कुछ नहीं करना पड़ता, मुट्ठी खुली रहती है। बांधने में कुछ करना पड़ता है।

मोक्ष मनुष्य का स्वभाव है; संसार मनुष्य का विभाव है।

संसार बंधी हुई मुट्ठी जैसा है; मोक्ष खुली हुई मुट्ठी जैसा है।

लाओत्से कहता है, तुम पूछते हो कि खोलने के लिए क्या करें! बांधने के लिए कोई पूछता है क्या करें, तो समझ में आता है। खोलने के लिए कुछ नहीं करना है, सिर्फ खोल दो। जस्ट ओपन इट।

हमको बहुत कठिनाई लगती है कि सिर्फ खोल कैसे दो! असल कारण यह है कि हम खोलना नहीं चाहते। ख्याल है कि मुट्ठी में कोहनूर बंधा है। और लाओत्से कहता है, बस खोल दो। तो वह कोहनूर गिर जाएगा। वह हम छिपाए रखते हैं। वह हम लाओत्से को भी नहीं बताते कि हमारी मुट्ठी में कोहनूर बंधा है। उससे हम पूछते हैं, कैसे खोलें? खोलना बहुत कठिन है, कुछ अभ्यास बताएं! अभ्यास वगैरह तरकीब है पोस्टपोनमेंट की कि तुम जब तक अभ्यास बताओ, तब तक हम वह कोहनूर को तो पकड़े रहें। पहले ठीक से खोलना आ जाए तब खोलेंगे।

लाओत्से को भी हम नहीं बताते कि हमारी मुट्ठी में कोहनूर है। और लाओत्से बड़ा हैरान होता है कि खोलने के लिए तो कुछ भी नहीं करना पड़ता मित्र, खोल दो! पर उसे पता नहीं कि खोलने के लिए कुछ करना पड़ेगा। क्योंकि यह आदमी मुट्ठी के भीतर कुछ बांधने के ख्याल में है। हम ऐसे ही तनाव से थोड़े ही भरे हैं, हम सब बड़े मतलब से तनाव से भरे हैं। हम सोचते हैं, तनाव छोड़ दें, तो वे सब कोहनूर छूट जाएंगे।

जहां-जहां तनाव की मुट्ठी है, वहां-वहां कुछ-कुछ हमने पकड़ा है। मालकियत छोड़ दो। तो हमारी सारी मालकियत का ही तो सारा खेल है! फिर कल बेटा सुबह उठ कर जाने लगा तो? कल पत्नी ने कहा कि अच्छा

नमस्कार, फिर? सारा मालकियत का तो खेल है, वह कल सुबह बिखर जाएगा। हम कहते हैं, बात बिल्कुल समझ में आ गई, लेकिन यह तनाव को छोड़ें कैसे? कोई विधि बताओ!

यह विधि हम पूछते हैं पोस्टपोनमेंट के लिए, स्थगन के लिए। तुम्हारी विधि बताओ, हम साधेंगे, कोशिश करेंगे, फिर देखेंगे। जब खुलेगी, तो खोल लेंगे। अभी तो खुलती नहीं है।

लाओत्से की समझ में बिल्कुल नहीं पड़ता कि तुम बात कैसी कर रहे हो! मुट्ठी खोलने के लिए कुछ करना पड़ेगा? कोई मंत्र-तंत्र? कुछ नहीं करना पड़ेगा। स्वभाव तुम्हारा जो है, उसके लिए कुछ नहीं करना पड़ेगा। तुम बस खोल दो। तुम्हें करना पड़ रहा है बांधने के लिए।

अब एक और मजे की बात है। अगर आप नहीं खोलते हैं इस भांति, तो फिर एक दूसरा उपाय है, जो दूसरे हैं। दो ही मार्ग हैं जगत में: करके न करने में पहुंचो, या न करने में सीधे उतर जाओ। छलांग ले लो, या सीढ़ियां चढ़ जाओ।

अगर आप राजी नहीं होते अभी मुट्ठी खोल देने को, तो फिर आपके लिए रास्ते खोजने पड़ते हैं। तो फिर आपसे कहा जाता है, जोर से मुट्ठी को बांधो। इतना बांधो, बांधते चले जाओ, जितनी ताकत हो उतना बांधो!

क्या आपको पता है कि एक सीमा आ जाएगी आपके बांधने की, उसके आगे आप मुट्ठी न बांध सकेंगे! और अचानक आप पाएंगे कि मुट्ठी खुल रही है और कोहनूर गिर रहा है। लेकिन तब आप बांध भी न पाएंगे, क्योंकि सारी तो शक्ति लगा चुके, अब शक्ति बची नहीं है बांधने को।

तो जो मेथड के मार्ग हैं, विधि के मार्ग हैं, वे कहते हैं, बांधो। वे आपको जान कर कहते हैं। आपकी नासमझी इतनी प्रकट है कि आपको जान कर कहते हैं। आपको भलीभांति पहचानते हैं कि आपसे खुलेगी नहीं। आपसे तो खुलेगी तब, जब बंध न सकेगी। इस बात को ठीक से समझ लें। जब आपसे बंधेगी ही नहीं, जब आप अचानक पाएंगे कि सारी कोशिश कर रहे हैं भीतर, लेकिन ताकत साथ नहीं देती है, अब बंधती ही नहीं है, अब खुली जा रही है। जब आपसे बंधेगी ही नहीं, तब खुलेगी।

तो फिर आपको बंधवाने का उपाय करना पड़ता है। सारी विधियां आपकी मुट्ठी को उस सीमा तक ले जाने की हैं, टेंशन टु दि क्लाइमेक्स, आखिरी शिखर तक तनाव, कि उसके बाद बिखराव आ जाता है। सब झटक कर गिर जाता है। अचानक आप पाते हैं कि हाथ खुला है और कोहनूर वगैरह है नहीं। कोहनूर था नहीं कभी। पर खोल कर तक नहीं देखा कि कहीं गिर न जाए। कोहनूर मुट्ठी में है या नहीं, इसको कभी खोल कर भी नहीं देखा। क्योंकि कहीं खोल कर देखें, गिर जाए या पड़ोसी देख ले! तो बांधे चले जाते हैं, बांधे चले जाते हैं। जिस दिन खुलती है मुट्ठी, उस दिन पता चलता है, कोहनूर तो नहीं है। इतनी मेहनत व्यर्थ चली जाती है।

विधि कहती है, बांधो। अविधि का मार्ग, लाओत्से का, कहता है, खोले बिना पाओगे नहीं। तो तुम चाहे अभी खोल लो। लाओत्से कहता है, अभी ही खोल लो। लाओत्से को पता है कि हाथ में कोई कोहनूर नहीं है। पर आपको पता नहीं है। इसलिए हमें अड़चन होती है। दूसरे मार्ग भी यही करवाते हैं, जो लाओत्से करवा रहा है। लेकिन आपको समझ कर चलते हैं। लाओत्से वही कह रहा है, जो वह खुद को समझ कर कह रहा है। अक्सर वह आपके सिर पर से निकल जाएगा।

दूसरे मार्ग आपको समझ कर चलते हैं। वे कहते हैं, ठीक है, आपसे नहीं होगा छोड़ना तो बांधो। हम कुछ विधियां बताते हैं। इनको पकड़ो जोर से। इन पर मेहनत करो। मेहनत करो इतनी कि एक क्षण आ जाए--हालांकि वे यह आपसे नहीं कहेंगे, वे कहेंगे, मेहनत करते जाओ, करते जाओ। एक क्षण आ ही जाएगा, जब सब

मेहनत चुक जाएगी, आप असहाय होकर छोड़ दोगे। वे कहते हैं, तैरो जोर से। अब कब तक तैरोगे? यह सागर का कोई किनारा नहीं है, जहां लग जाओगे तैर कर।

लाओत्से कहता है, मत मेहनत उठाओ, क्योंकि कोई किनारा होता, तो तैर कर पहुंच भी जाते। कोई किनारा है नहीं। मत मेहनत उठाओ, बह जाओ। लाओत्से कहता है, कोई मंजिल नहीं है; यह सागर ही मंजिल है। कहीं कोई मंजिल नहीं है, जिस में तुम तैर कर पहुंच जाओगे। यह सागर ही मंजिल है, इसमें ही निमज्जित हो जाना है। इसी में एक हो जाना है। तैरोगे तो लड़ते रहोगे। लड़ते रहोगे तो एक कैसे होओगे? सागर से अलग बने रहोगे।

तैरने वाला सागर से एक कभी नहीं होता। वह लड़ रहा है। तैरने का मतलब है फाइट। वह है लड़ाई। वह यह है कि हम सागर को डुबाने न देंगे, सागर को हम मिटाने न देंगे; हम बचेंगे। सागर की लहरों से हम टक्कर लेंगे। हम किनारा खोजेंगे, हम मंजिल पर जाएंगे। हम हमारी दिशा है; वहां हमें पहुंचना है। लक्ष्य है, जिसे हमें पाना है।

बहने वाला कहता है कि नहीं। लाओत्से कहता है, न कोई मंजिल है सिवाय इस सागर के; न कोई किनारा है सिवाय इस मझधार के; न कहीं पहुंचना है सिवाय वहीं जहां तुम हो। इसलिए छोड़ दो, तैरो मत। बह जाओ, बहना ही मंजिल है। तुम इसी वक्त पा लोगे, अगर तुमने छोड़ दिया तैरना। तो तुम सागर से एक हो जाओगे। दुश्मनी टूट जाएगी, मित्रता सिद्ध हो जाएगी।

लेकिन हम कहते हैं, ऐसा कैसे छोड़ दें? कोई किनारा है। उसे अगर हम ऐसा बहने लगे, तो पता नहीं, उस जगह पहुंच पाएं, न पहुंच पाएं, जहां पहुंचना था। तो हम तो तैरेंगे। तो वे विधियां जो हैं, वे कहती हैं, तैरो! फिर जोर से तैरो। वह रही मंजिल सामने, तैरो। जितनी ताकत लगाओ, तैरो। जन्म-जन्म तैरो। एक दिन तैर-तैर कर इतने थक जाओगे--सागर तो नहीं थकेगा, आप थक जाओगे--एक घड़ी आएगी, हाथ-पैर निढाल हो जाएंगे। एक घड़ी आएगी, सांसें जवाब दे देंगी। फेफड़े कहने लगेंगे, बहुत हो गया, न कोई किनारा मिलता, न कोई पार मिलता, न कोई मंजिल है। जहां जाते हैं, यही सागर है। तैर-तैर कर जहां पहुंचते हैं, यही सागर है। किनारा दिखता है दूर से; पास जाते हैं, लहरें ही मिलती हैं। मंजिल दिखती है दूर से; पास पहुंचते हैं, पता चलता है, सागर है। जन्म-जन्म तैर कर पाते हैं, सागर है, सागर है, सागर है, और कुछ भी नहीं! थक गए अब, छोड़ते हैं।

उस छोड़ने में वही घटना घट जाती है, जो लाओत्से आप से कई जन्मों पहले कहा था कि छोड़ दो। और जिस दिन आप छोड़ोगे, उस दिन आपके मन को होगा कि बड़ी भूल की कि लाओत्से की पहले न मान ली। लेकिन शायद, आप जैसे आदमी थे, पहले माना नहीं जा सकता था। आप जैसे आदमी थे, होशियार, पहले नहीं माना जा सकता था। होशियार आदमी तो जब तक पूरी होशियारी न कर ले, तब तक नहीं मानता है। हां, जब होशियारी थक जाती है, टूट जाती है, बिखर जाती है, तब। पर किसी भी स्थिति में घटना तो तभी घटती है, जो लाओत्से कहता है, तभी! आप थक कर वहां पहुंचोगे कि समझ कर?

समझ कर जो काम अभी हो सकता है, थक कर वह जन्मों में होता है। बस, एक टाइम गैप का फर्क पड़ता है। और कोई फर्क नहीं पड़ता है।

प्रश्नः कृष्णमूर्ति यही कहते हैं?

उनकी अलग चर्चा करनी पड़ेगी। जल्दी ही उन पर चर्चा रखेंगे तो ख्याल में आएगा।

नौवां प्रवचन

महत्वाकांक्षा का जहर व जीवन की व्यवस्था

Chapter 3 : Sutra 1

Action Without Action

Not to value and employ men of superior ability
is the way to keep the people from rivalry
among themselves; not to prize articles which are difficult to procure is the way to keep them
from becoming thieves; not to show them
what is likely to excite their desires is the way
to keep their minds from disorder.

अध्याय 3 : सूत्र 1

निष्क्रिय कर्म

यदि योग्यता को पद-मर्यादा न मिले, तो न तो विग्रह हो
और न संघर्ष। यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व नहीं दिया जाए,
तो लोग दस्यु-वृत्ति से भी मुक्त रहें।
यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकर्षित
न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।

मनुष्य की चिंता क्या है? मनुष्य की पीड़ा क्या है? मनुष्य का संताप क्या है?

एक मनुष्य चिंतित हो, थोड़े से लोग परेशान हों, तो समझा जा सकता है, उनकी भूल होगी। लेकिन होता उलटा है। कभी कोई एक मनुष्य निश्चिंत होता है, कभी कोई एक मनुष्य स्वस्थ होता है; बाकी सारे लोग अस्वस्थ, अशांत और पीड़ित होते हैं। बीमारी नियम मालूम पड़ती है; स्वास्थ्य अपवाद मालूम पड़ता है। अज्ञान जीवन की आत्मा मालूम पड़ती है; ज्ञान कोई आकस्मिक घटना, कोई सांयोगिक घटना मालूम पड़ती है। ऐसा लगता है कि मनुष्य होना ही बीमार होना है, चिंतित, परेशान होना है। कभी कोई, न मालूम कैसे, हमारे बीच निश्चिंतता को उपलब्ध हो जाता है। या तो प्रकृति की कोई भूल-चूक है, या परमात्मा का कोई वरदान है। लेकिन नियम यही मालूम पड़ता है जो हम हैं: रुग्ण, पीड़ित, परेशान।

लाओत्से का यह सूत्र बड़ा अदभुत है। लाओत्से यह कहता है कि इतने अधिक लोगों की परेशानी का कारण निश्चित ही मनुष्य के मन की बनावट, मनुष्य की संस्कृति के आधार, हमारे सभ्यता के सोचने के ढंग, हमारे समाज का ढांचा है। हम प्रत्येक व्यक्ति को इस भांति खड़ा करते हैं कि बीमार होना अनिवार्य है।

पश्चिम में नवीनतम खोजें यह कहती हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीनियस की तरह पैदा होता है, प्रतिभाशाली पैदा होता है, लेकिन हम सब मिल कर ऐसी व्यवस्था करते हैं कि उसकी प्रतिभा को हम सब तरह से कुंठित और नष्ट कर देते हैं।

स्वामी राम ने संस्मरण लिखा है कि वे जब जापान गए, तो उन्होंने वहां देवदार के आकाश को छूने वाले वृक्षों को एक-एक बालिश्त का देखा, एक-एक बित्ते का देखा। वह बहुत हैरान हुए। वृक्ष छोटे पौधे नहीं थे, सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ वर्ष पुराने थे। लेकिन उनकी ऊंचाई एक बालिश्त थी।

तो उन्होंने मालियों से पूछा कि इसका राज क्या है?

तो मालियों ने गमले उलटा कर बताया। नीचे से गमले टूटे हुए थे। और नियमित रूप से वृक्षों की जड़ें काट दी जाती थीं। नीचे जड़ें नहीं बढ़ पाती थीं, ऊपर वृक्ष नहीं बढ़ पाता था। वृक्ष पुराना होता जाता, बूढ़ा हो जाता, लेकिन बालिश्त से ऊपर न उठ पाता। क्योंकि उठने के लिए जड़ों का नीचे जाना जरूरी है, जमीन में प्रवेश करना जरूरी है। वृक्ष उतना ही ऊपर जाता है, जितना नीचे उसकी जड़ें चली जाती हैं। अब अगर माली यह तय कर ले कि जड़ों को नीचे पहुंचने ही नहीं देना है, काटते चले जाना है, तो वृक्ष बूढ़ा होता जाएगा, लेकिन बड़ा नहीं होगा।

मनुष्य को बड़ा करने की हमारी जो व्यवस्था है, वह जड़ों को काटने वाली है। इसलिए जितने लोग हमें दिखाई पड़ते हैं जमीन पर, वे बालिश्त भर ऊंचे उठ पाए। वे लोग आकाश को भी छू सकते थे। जहर हम जड़ों में डाल देते हैं।

लेकिन इतने जमानों से जहर डाला जा रहा है कि कभी स्मरण नहीं आता। फिर हर पीढ़ी डाल जाती है। आपके बुजुर्ग आपकी जड़ों में जहर डाल जाते हैं। और जो आपके बुजुर्गों ने आपके साथ किया था, वह आप अपने बच्चों के साथ कर देते हैं। स्वभावतः, हर पिता अपने बेटे के साथ वही दुहराता है, जो उसके बाप ने उसके साथ किया था। एक वीसियस सर्किल है, फिर एक दुष्चक्र की भांति बात दुहरती चली जाती है।

इस जहर के लिए ही लाओत्से ने कुछ बातें कही हैं।

इन बातों को समझने के लिए सबसे पहले यह समझ लेना होगा कि मनुष्य के मन में जो जहर सबसे ज्यादा डाला गया है, वह महत्वाकांक्षा का, एंबीशन का है। हमारी सारी समाज की व्यवस्था महत्वाकांक्षा पर खड़ी है। छोटे से बच्चे को भी हम महत्वाकांक्षी बनाते हैं। उसे एक दौड़ में लगाते हैं, एक ऐसी दौड़ में, जहां उसे हर स्थिति में प्रथम आने के लिए उद्विग्न किया जाता है। चाहे वह पढ़ता हो स्कूल में, चाहे खेलता हो, चाहे आचरण सीखता हो, चाहे वस्त्र पहनता हो, वह जो भी कर रहा है या जो भी हम उससे करवाना चाहते हैं, उसके करवाने का एक ही सूत्र है कि हम उसे महत्वाकांक्षा में जकड़ दें, हम उसे प्रतिस्पर्धा में और काम्पिटीशन में बांध दें।

महत्वाकांक्षा का अर्थ है, हम उसके अहंकार को दूसरे लोगों के अहंकार की प्रतियोगिता में खड़ा कर दें। हम उससे कहें कि दूसरे बच्चे आगे न निकल जाएं! तेरा पीछे रह जाना, तेरे अहंकार के लिए फिर कोई गुंजाइश न रहेगी। तो कहीं भी तू हो, तुझे प्रथम होने की कोशिश में लगे रहना है।

यह प्रथम होने की कोशिश हमारा जहर है। वस्त्र पहनते हों तो, व्यवहार करते हों तो, शिक्षित होते हों तो, धन कमाते हों तो--कुछ भी करते हों--पूजा और प्रार्थना करते हों तो, त्याग और तप करते हों तो, निरंतर यह ख्याल रखना है कि मैं किन्हीं और की तुलना में सोचा जा रहा हूं। सदा मुझे यह देखना है कि दूसरों को देखते हुए मैं कहां खड़ा हूं? पंक्ति में मेरा स्थान क्या है? मैं पीछे तो नहीं हूं?

अगर मैं पीछे खड़ा हूं, तो पीड़ा फलित होगी। अगर मेरे पीछे लोग खड़े हैं, तो मैं प्रफुल्लित हूं। जो प्रफुल्लित होते हैं, वे भी तभी प्रफुल्लित होते हैं, जब वे दूसरों को पीछे करने का दुख दे पाते हैं। अन्यथा उनकी प्रफुल्लता नहीं है। और पृथ्वी इतनी बड़ी है कि कोई कभी बिल्कुल आगे नहीं हो पाता। और जीवन इतना जटिल है कि इसमें प्रथम होने का कोई उपाय नहीं है। जटिलता अनेकमुखी है।

एक आदमी धन बहुत कमा लेता है, तब वह पाता है कि स्वास्थ्य में कोई उससे आगे खड़ा है। सड़क पर भीख मांग रहा है आदमी, कपड़े फटे हुए हैं, लेकिन शरीर उसका बेहतर है। एक आदमी स्वास्थ्य बहुत कमा लेता है, तो पाता है, सौंदर्य में कोई दूसरा आगे खड़ा है। एक आदमी धन कमा लेता है, तो पाता है, बुद्धिमानी में कोई आगे है। और एक आदमी बहुत बड़ा बुद्धिमान हो जाता है, तो पाता है कि खाने को रोटी भी नहीं है, किसी ने बहुत बड़ा महल बना लिया है।

जीवन है बहुमुखी, मल्टी डायमेंशनल; और हर दिशा में मुझे प्रथम होना है। आदमी अगर पागल न हो जाए--और कोई उपाय नहीं है। जो पागल नहीं हो पाते, वे चमत्कार हैं। यह पूरा का पूरा ढांचा पागल करने वाला है। जहां भी हम खड़े हैं, वहीं पीड़ा होगी--आगे किसी को हम पाएंगे कि कोई आगे खड़ा है।

महत्वाकांक्षा का अर्थ है, कभी यह मत सोचना कि तुम कौन हो, सदा यह सोचना कि तुम दूसरे की तुलना में कौन हो। सीधे कभी स्वयं को मत देखना, सदा तुलना में, कंपेरिजन में देखना। कभी यह मत देखना कि तुम कहां खड़े हो; वहां सुख है या नहीं, इसे मत देखना। तुम सदा यह देखना कि तुम दूसरे लोगों के मुकाबले कहां खड़े हो! दूसरे लोग तुमसे ज्यादा सुख में तो नहीं खड़े हैं! यह भी फिक्र मत करना कि तुम दुख में खड़े हो; सदा यह देखना कि दूसरे लोग अगर तुमसे ज्यादा दुख में खड़े हों, तो कोई हर्जा नहीं, तुम प्रसन्न हो सकते हो।

सुना है मैंने, गांव में एक पूर आ गया, बाढ़ आ गई। और एक बूढ़े किसान से उसका पड़ोसी कह रहा है। वह बूढ़ा किसान बहुत चिंतित और परेशान बैठा है। उसके सब खेत डूब गए, उसके गाय-भैंस खो गए, उसकी बकरियां नदी में बह गईं। और पड़ोसी उससे, बूढ़े से कह रहा है कि बाबा, बहुत चिंतित मालूम पड़ते हो; तुम्हारी सारी बकरियां नदी में बह गईं। वह बूढ़ा पूछता है, गांव में किसी और की तो नहीं बचीं? वह कहता है, किसी की भी नहीं बचीं। वह बूढ़ा पूछता है, तुम्हारी भी बह गईं? वह युवक कहता है, हमारी भी बह गईं। तो बूढ़ा कहता है, फिर जितना मैं चिंतित हो रहा हूं, उतना चिंतित होने का कारण नहीं है। यह सवाल नहीं है बड़ा कि मेरी बह गईं, अगर सबकी बह गई हैं, तो फिर इतना चिंतित होने का कोई कारण नहीं है।

सुख हो या दुख, विचार सदा करना है कि हम कहां खड़े हैं? पंक्ति में कहां खड़े हैं? पंक्तिबद्ध चिंतन है हमारा। मुक्त व्यक्ति की तरह हम क्या हैं, यह नहीं। पंक्ति में, कतार में हम कहां खड़े हैं? क्यू में हमारी जगह कहां है? और क्यू ऐसा है कि गोल है, वर्तुल है, सरकुलर है। उसमें हम आगे बढ़ते चले जाते हैं। कई दफा हमें लगता है, एक को पार किया, दो को पार किया, तीन को पार किया। आशा बड़ी बंधती है कि तीन को पार कर लिया तो जल्दी ही प्रथम हो जाएंगे, लेकिन हर बार पार करके पाते हैं कि आगे अभी लोग मौजूद हैं।

क्यू गोल है। वह सीधी रेखा में नहीं है कि कोई उसमें आगे पहुंच जाए। और अक्सर तो ऐसा होता है कि बहुत दौड़-दौड़ कर आगे पहुंचने वाला अचानक पाता है कि वह बहुत पीछे पहुंच गया। अगर कोई गोल घेरे में

खड़े हुए क्यू में बहुत आगे पहुंचने की कोशिश करेगा, तो किसी दिन पाएगा, जिन्हें वह छोड़ गया था पीछे, वे अचानक आगे आ गए हैं।

इसलिए सफलता के शिखर पर पहुंचे लोग अक्सर विपन्न हो जाते हैं। सफलता के शिखर पर पहुंच गए लोग अक्सर फ्रस्ट्रेटेड हो जाते हैं। वह फ्रस्ट्रेशन क्या है? वह विपन्नता क्या है? वह विपन्नता यह है कि आखिर में वे पाते हैं कि शिखर पर नहीं पहुंचे; जिन्हें पीछे छोड़ गए थे, वे आगे खड़े हैं। क्यू जो है, गोलाकार है।

इसलिए लाओत्से का यह सूत्र इस संदर्भ में समझें।

लाओत्से कहता है, "यदि योग्यता की पद-मर्यादा न बढ़े, तो न विग्रह हो, न संघर्ष।"

लाओत्से कहता है, योग्यता को पद क्यों बनाएं हम? योग्यता को स्वभाव क्यों न मानें!

इस फर्क को समझ लें, इस फर्क पर बड़ी बातें निर्भर होंगी। योग्यता को हम स्वभाव क्यों न मानें! योग्यता को हम पद क्यों बनाएं? एक आदमी गणित में कुशल है, यह कुशलता उसका स्वभाव है। और एक आदमी संगीत में कुशल है, यह कुशलता उसका स्वभाव है। और एक आदमी गणित में कमजोर है, यह कमजोरी उसका स्वभाव है। जो गणित में कुशल है, उसकी कोई खूबी नहीं, क्योंकि गणित की कुशलता उसे प्रकृति से मिलती है। और जो गणित में कुशल नहीं है, उसका कोई दुर्गुण नहीं, क्योंकि गणित की यह अकुशलता उसे उसी तरह प्रकृति से मिलती है जैसे कुशलता वाले को कुशलता मिलती है।

झेन फकीर रिंझाई एक व्यक्ति को बता रहा है झोपड़े के बाहर, कि देखते हो आकाश को छूने वाले बड़े-बड़े वृक्ष? और देखते हो छोटी-छोटी झाड़ियां? और फिर रिंझाई कहता है कि मुझे वर्षों हो गए इन वृक्षों के पास रहते, कभी मैंने झाड़ियों को यह सोचते नहीं देखा कि बड़े वृक्ष बड़े क्यों हैं। और न कभी मैंने बड़े वृक्षों को अकड़ते देखा कि ये झाड़ियां छोटी हैं और हम बड़े हैं।

तो आदमी पूछता है, इसका राज क्या है?

तो रिंझाई कहता है, इसका राज सिर्फ इतना है कि झाड़ियां प्रकृति से झाड़ियां हैं, वृक्ष प्रकृति से वृक्ष हैं। बड़े होने में कोई पद नहीं, छोटे होने में कोई पदहीनता नहीं। जो प्रकृति वृक्षों को बड़ा बनाती है, वही प्रकृति घास के पौधे को छोटा बनाती है। और जरूरी नहीं है कि जो ऊंचा है, वह हर स्थिति में ऊंचा हो। जब तूफान आते हैं, तो बड़े वृक्ष नीचे गिर जाते हैं और छोटे पौधे बच जाते हैं।

नेपोलियन की ऊंचाई छोटी थी, बहुत लंबा नहीं था। और अक्सर ऐसा हो जाता है कि बहुत छोटी ऊंचाई के लोग बड़े पदों पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। अपनी लाइब्रेरी में एक दिन किताब निकाल रहा था, लेकिन अलमारी ऊंची थी। और हाथ उसका पहुंचता नहीं था। तो उसके साथ जो उसका पहरेदार था, वह तो कोई सात फीट ऊंचा आदमी था, उसने कहा कि महानुभाव, अगर कुछ अनुचित न हो और मैं आपके आगे बढ़ कर निकालने की आज्ञा पाऊं, तो मुझे आज्ञा दें। नो वन इ.ज हायर दैन मी इन योर आर्मी--मुझसे ऊंचा तुम्हारी सेना में कोई भी नहीं है। नेपोलियन ने बहुत क्रोध से देखा और कहा कि नॉट हायर बट लांगर--ऊंचा मत कहो, सिर्फ लंबा। तुमसे लंबा फौज में कोई भी नहीं है, ऊंचे तो बहुत हैं। ऊंचा तो मैं ही हूं।

नेपोलियन को चोट लगनी स्वाभाविक है। कहे हायर! इसमें भाषा ही की भर भूल नहीं थी, भूल भारी थी। नेपोलियन ने फौरन सुधार कर दिया कि कहो लांगर, कहो लंबा।

ऊंचा और लंबे में क्या फर्क किया नेपोलियन ने? लंबा तो सिर्फ प्राकृतिक घटना है। ऊंचे के साथ पद-मर्यादा है। ऊंचे के साथ वैल्युएशन है। लंबे के साथ कोई मूल्य नहीं है। तुम लंबे हो सकते हो; लंबाई के साथ कोई

मूल्य नहीं है। लंबाई स्वभाव है। ठीक है कि तुम सात फीट लंबे हो, दूसरा पांच फीट लंबा है; इसमें कोई खास गुण की बात नहीं है। लेकिन ऊंचाई! ऊंचाई में हमने गुण जोड़ा है, वैल्युएशन जोड़ा है।

लाओत्से कहता है, यदि योग्यता के साथ पद-मर्यादा न जुड़े, तो न तो जगत में विग्रह हो और न संघर्ष।

काश, हम चीजों को ऐसा देखना शुरू करें कि प्रत्येक अपने स्वभाव के अनुकूल वर्तन करता है, और जैसा उसका स्वभाव है, उसके लिए वह जिम्मेवार नहीं। हम कभी अंधे आदमी को जिम्मेवार नहीं ठहराते कि तुम अंधे होने के लिए जिम्मेवार हो। एक आदमी जन्म से अंधा है, हम कभी ठहराते नहीं कि तुम जिम्मेवार हो। वरन हम दया करते हैं।

अभी मेरे पास एक युवक कोई दो साल पहले मिलने आया--डेढ़ साल, दो साल हुआ। श्रीनगर में महावीर के ऊपर शिविर था। जब हम सब चले आए, तब उस युवक को पता चला होगा, अंधा था। तो वह वहां से जबलपुर मेरे पास आया उतनी यात्रा करके।

तो मैं उससे पूछा कि तू अंधा है, तुझे बड़ी तकलीफ हुई होगी, इतनी दूर की यात्रा तूने की है!

उसने कहा कि नहीं, अंधा होने से मुझे बड़ी सुविधा है; सभी मुझे सहायता कर देते हैं। कोई मेरा हाथ पकड़ लेता है, कोई मुझे टिकट दे देता है, कोई मुझे रिक्शे में बिठा देता है। अब यहां भी रिक्शा वाला मुझे मुफ्त ले आया है और वह बाहर राह देख रहा है कि मैं आप से मिल कर जाऊं, तो वह मुझे स्टेशन वापस छोड़ देगा। अंधे होने से मुझे बड़ी सुविधा है। आंख होतीं, तो इतनी सुविधा मुझे नहीं हो सकती थी।

अंधे पर हम दया कर देते हैं। क्योंकि हम मानते हैं, उसका कसूर क्या! लेकिन बुद्धि मंद हो किसी की तो हम दया नहीं करते। हम कहते हैं, मूर्ख हो! कभी हम नहीं पूछते कि इसमें उसका कसूर क्या? एक आदमी मूढ़ है, तो कसूर क्या? अपराध क्या?

नहीं, उस पर हमें दया नहीं उठती। वह जगत में निंदित होगा, पीड़ित होगा, परेशान होगा। जगह-जगह ठुकराया जाएगा, पीछे किया जाएगा। कोई उस पर दया नहीं करेगा। क्यों? क्योंकि बुद्धि को हमने महत्वाकांक्षा का सूत्र बना लिया। बिना बुद्धि के महत्वाकांक्षा में गति नहीं है। इसलिए बुद्धि का जो माप है, आई.क्यू. जो है, बुद्धि का जो अंक है, वह बड़ा महत्वपूर्ण हो गया।

उसमें भी बात क्या है? एक आदमी आइंस्टीन की तरह पैदा होता है, इसमें आइंस्टीन की गुणवत्ता क्या है? लाओत्से यह कहता है, इसमें आइंस्टीन का हाथ क्या है? और एक आदमी एक महामूढ़ की तरह पैदा होता है, इसमें उसका कसूर क्या है?

लाओत्से यह कह रहा है कि प्रकृति इसे ऐसा बनाती है और उसे वैसा बनाती है। हम चूंकि इस प्रकृति को स्वीकार नहीं कर पाते और एक के साथ पद-मर्यादा जोड़ देते हैं और दूसरे के साथ पदहीनता जोड़ देते हैं, तो हम विग्रह और कलह और संघर्ष को जन्म देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हम कभी यह नहीं देख पाते कि प्राकृतिक क्या है, स्वाभाविक क्या है। हम अपनी आकांक्षाओं को प्रकृति पर थोप कर विचार करते हैं।

लाओत्से है प्रकृतिवादी, वह है स्वभाववादी। ताओ का अर्थ होता है, स्वभाव। वह कहता है, हम ऐसे हैं। और ऐसा अपने को ही नहीं कहता, वह दूसरे को भी कहता है कि दूसरा ऐसा है। पर हम कहेंगे, ऐसी बात को मानने का तो अर्थ यह होगा कि जगत में फिर चोर हैं, बेईमान हैं, बुरे लोग हैं; अगर हम ऐसा मानें कि सब प्रकृति है और स्वभाव है, तो प्रकृति ने एक को चोर बनाया, तो फिर हम क्या करें? प्रकृति ने एक को बेईमान बनाया, तो फिर हम क्या करें? बेईमान को स्वीकार करें और बेईमानी चलने दें?

लाओत्से के साथ नीतिवादी का यही संघर्ष है। नीतिवादी कहेगा, यह सूत्र खतरनाक है। समझ लें, इतने दूर तक भी मान लें कि एक आदमी मूढ़ है और एक आदमी बुद्धिमान है, तो ठीक है, चलो प्रकृति है। लेकिन एक आदमी बेईमान है, एक आदमी चोर है, एक आदमी हत्यारा है, तो हम क्या करें? स्वीकार कर लें? समझ लें कि प्रकृति ने ऐसा बनाया?

लाओत्से से अगर पूछें, तो लाओत्से कहेगा कि तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने कितने हत्यारों को गैर-हत्यारा बना पाए? तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने कितने बेईमानों को ईमानदार बनाया? तुमने स्वीकार नहीं किया, तुमने दंड दिए, तुमने अपराधी करार दिया, तुमने फांसियां लगाईं, तुमने कोड़े मारे, तुमने जेलों में बंद किया, तुमने जीवन भर की सजाएं दीं। तुम कितने लोगों को बदल पाए?

लाओत्से कहता है, सचाई तो यह है कि तुम जिसे दंड देते हो, तुम उसे उसकी बेईमानी में और थिर कर देते हो। और तुम जिसे सजा देते हो, उसे तुम उसके अपराध से कभी मुक्त नहीं करते, तुम उसे और निष्णात अपराधी बना देते हो। और जो व्यक्ति एक बार कारागृह में होकर आता है, वह व्यक्ति धीरे-धीरे कारागृह का पंछी हो जाता है। क्योंकि कारागृह में उसे सत्संग मिलता है। कारागृह से वह बहुत कुछ सीख कर वापस लौटता है। कारागृह से वह वैसे ही वापस नहीं लौटता जैसा गया था। कारागृह में उसे गुरु मिल जाते हैं, और बड़े जानकार मिल जाते हैं, अनुभवी मिल जाते हैं।

और एक बार तुम्हारा निर्णय कि फलां व्यक्ति अपराधी है और चोर है, उसके ऊपर सील-मुहर लग जाती है। उसको ईमानदार होने का अब उपाय नहीं रह जाता। अब वह ईमानदार होना भी चाहे, तो कोई स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

लाओत्से कहता है कि तुम एक बेईमान को ईमानदार नहीं बना पाए।

इंग्लैंड में कोड़े की सजाएं थीं चोरों के लिए। डेढ़ सौ साल पहले बंद की गईं। क्योंकि सड़क के चौराहे पर खड़े करके कोड़े मारते थे नग्न, ताकि सैकड़ों लोग देख लें। देख लें और प्रभावित हों और दूसरे लोग चोरी न करें। लेकिन डेढ़ सौ साल पहले ऐसा हुआ कि भीड़ खड़ी थी, और दो आदमी उस भीड़ में जेब काट रहे थे। और एक आदमी को नग्न करके बीच में कोड़े मारे जा रहे थे। भीड़ तो देखने में संलग्न थी। किसी को ख्याल न था कि कोई जेब काट लेगा। वहां अनेक लोगों की जेबें कट गईं।

तो इंग्लैंड की पार्लियामेंट में विचार चला कि यह तो हैरानी की बात है। हम सोचते हैं कि कोड़े मारे जाएं सड़क पर कि लोग चोरी न करें। हैरानी मालूम होती है, जहां कोड़े मारे जा रहे थे, वहां लोगों की जेबें कट गईं! क्योंकि लोग इतने तल्लीन थे देखने में कोड़े, और किसी को ख्याल न था कि यहां चोरी हो जाएगी।

आदमी को हम इतनी सजाएं देकर भी जरा नहीं बदल पाए। आदमी रोज-रोज और बुरा होता चला गया है। जितने कानून बढ़ते हैं, लाओत्से के हिसाब से, उतने अपराधी बढ़ जाते हैं। हर नया कानून नए अपराधी पैदा करने का सूत्र बनता है। हर दंड नए जुर्म पैदा कर जाता है।

तो लाओत्से कहता है, तुम भला कहते हो कि क्या होगा दुनिया का, अगर तुम न बदलोगे तो! हालांकि तुम बदल किसी को भी नहीं पाए। दुनिया की इतनी अदालतें और इतने कारागृह और इतनी दंड-संहिताएं, कोई किसी को नहीं बदल पाए।

पर ऐसा मालूम होता है कि कुछ लोगों का निहित स्वार्थ है। एक चोर पर मैंने सुना है कि तीसरी बार सजा हो रही है। और यह आखिरी है, क्योंकि अब उसे आजीवन कारावास मिल रहा है। और मजिस्ट्रेट उससे आखिरी वक्त पूछता है कि तू पैदा हुआ, तूने मनुष्यता के साथ कौन सा सदव्यवहार किया?

उस चोर ने कहा, आपको पता नहीं, न मालूम कितने मजिस्ट्रेट, न मालूम कितने पुलिस वाले, न मालूम कितने डिटेक्टिव मेरी वजह से एंप्लायड हैं! मेरे कारण चौबीस घंटे काम में लगे हुए हैं। मेरे बिना न मालूम कितने लोग बिल्कुल बेकार हो जाएंगे। तुम सड़क पर भीख मांगते नजर आओगे! तुम मेरी वजह से काम पर हो।

यह मजाक ही नहीं है। यह सचाई है और गहरी सचाई है। अगर जमीन पर एक चोर न हो, तो मजिस्ट्रेट कैसे होगा? यह इतना बड़ा इंतजाम प्रतिष्ठा का, कानून का, वकीलों का, यह सब का सब चोरों पर, बेईमानों पर, बदमाशों पर निर्भर है। और अगर कभी कोई बहुत गहरे में देख पाए, तो उसे दिखाई पड़ेगा कि यह सारा का सारा व्यवस्थापक वर्ग जो है, लाओत्से की बात सुन कर राजी नहीं होगा। कहेगा, इसका मतलब है कि चोर को स्वीकार कर लो कि चोर चोर है। कुछ मत करो। तो फिर ये जो करने वाले हैं, इनका क्या होगा?

और बहुत मजे की बात है कि ऐसा अनुभव है मनोवैज्ञानिकों का, ऐसा निरंतर शोध है, कि आमतौर से कानून को व्यवस्था देने वाले वे ही लोग होते हैं कि अगर कानून न हो तो वे कानून को तोड़ने वाले होंगे। असल में, चोर को डंडा मारने में चोर को ही मजा आता है।

सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक दुकान पर काम कर रहा है। लेकिन ग्राहकों से उसका अच्छा व्यवहार नहीं है। तो उसे निकाल दिया गया है। जिस दुकान के मालिक ने उसे निकाल दिया है कह कर कि तुम्हारा ग्राहकों से व्यवहार अच्छा नहीं। ध्यान रखो, कानून, नियम यही है दुकान के चलाने का कि ग्राहक सदा ठीक--दि कस्टमर इ.ज ऑलवेज राइट। तो यहां यह नहीं चल सकता कि तुम नौकर होकर दुकान के और तुम अपने को ठीक करने की सिद्ध करो कोशिश और ग्राहक को गलत करने की।

पंद्रह दिन बाद उसने देखा कि नसरुद्दीन पुलिस का सिपाही हो गया है, चौरस्ते पर खड़ा है। उसने कहा, नसरुद्दीन, क्या सिपाही की नौकरी पर चले गए? नसरुद्दीन ने कहा, हां, मैंने फिर बहुत सोचा। दिस इ.ज दि ओनली जॉब, व्हेयर कस्टमर इ.ज आलवेज रांग; जहां ग्राहक सदा गलत होता है। और धंधा अपने को नहीं जमेगा।

लाओत्से की बात कठिन मालूम पड़ेगी। कानून की जो नियामक शक्तियां हैं, उनको ही नहीं, साधु-संन्यासियों को भी बहुत अप्रीतिकर लगेगा। क्योंकि साधु अपनी साधुता को स्वभाव नहीं मानता, अपना अर्जित गुण मानता है। साधु कहता है, मैं साधु हूं बड़ी चेष्टा से, बड़ी मुश्किल से; बहुत आर्डुअस था मार्ग, बड़ी तपश्चर्या की है, तब मैं साधु हूं। और तुम साधु नहीं हो, क्योंकि तुमने कुछ नहीं किया।

लाओत्से की साधुता परम है। वह कहता है कि अगर मैं साधु हूं, तो इसमें मेरा कोई गुण नहीं। इस परम साधुता को समझें। लाओत्से कहता है, अगर मैं साधु हूं, तो इसमें मेरा कोई गुण नहीं। इसमें सम्मान की कोई बात नहीं। अगर तुम साधु नहीं हो, तो इसमें कोई अपमान नहीं। तुम्हारा न साधु होना स्वाभाविक है, मेरा साधु होना स्वाभाविक है। और जहां स्वभाव आ जाता है, वहां हम क्या करेंगे? तो तुम मुझसे नीचे नहीं, मैं तुमसे ऊपर नहीं।

लेकिन हमारे साधु का तो सारा इंतजाम ऊपर होने में है। वह अगर हमसे ऊपर नहीं है, तो उसका सब बेकार है। और ध्यान रहे, अगर हम साधु को ऊपर बिठाना बंद कर दें, तो हमारे सौ में से निन्यानबे साधु तत्काल विदा हो जाएं। उनको रुकाए रखने का कुल एक ही आधार और कारण हैः उनकी साधुता उनकी महत्वाकांक्षा के लिए, उनके अहंकार और अस्मिता के लिए भोजन है। साधु होने में भी बड़ा मजा है। और जब समाज बहुत असाधु हो, तब तो साधु होने में बड़ा ही रस है। क्योंकि आप अपनी अस्मिता को, अपने अहंकार को जितना पुष्ट कर पाते हैं, और किसी तरह न कर पाएंगे।

लाओत्से से साधु भी राजी न होगा। इसलिए लाओत्से ने जब ये बातें कहीं, तो चीन में बड़ी क्रांतिकारी बातें थीं। अभी भी क्रांतिकारी हैं ढाई हजार साल बाद! और शायद अभी ढाई हजार साल और बीत जाएं, तब भी क्रांतिकारी रहेंगी। क्योंकि लाओत्से से और बड़ी क्रांति क्या होगी? लाओत्से कहता है कि मैं जो हूं, ऐसे ही जैसे कि नीम में कड़वा पत्ता लगता है, इसमें नीम का क्या कसूर? और आम में मीठा फल लगता है, इसमें आम का क्या गुण? नीम क्यों कर पीछे और नीचे हो और आम क्यों कर ऊपर बैठ जाए? भला आपके लिए उपयोगी हो, तो भी। आपकी उपयोगिता ऊंचाई-नीचाई का कोई आधार नहीं है। साधु का, न्यायविद का, नीतिशास्त्री का जो विरोध होगा, वह समझ लेना चाहिए। वह विरोध यह होगा कि समाज तो पतित हो जाएगा। लेकिन कोई भी यह नहीं देखता कि समाज इससे ज्यादा पतित और क्या होगा? समाज पतित है; हो जाएगा नहीं। और जब समाज पतित है, तो नीतिशास्त्री कहता है कि अगर हम लाओत्से जैसे लोगों की बात मान लें, तो और बिगड़ जाएगी हालत।

लेकिन लाओत्से का कहना यह है कि तुम्हीं ने बिगाड़ी है यह हालत। चोर को तुम निंदित करके सुधार तो नहीं पाते हो, निंदित करके उसके बदलने की जो संभावना है, उसका द्वार बंद कर देते हो। असल में, जैसे ही हम तय कर लेते हैं निंदा और प्रशंसा, वैसे ही हम सीमाएं बांधना शुरू कर देते हैं। और जैसे ही हम निंदा और प्रशंसा के घेरे बनाने लगते हैं और किन्हीं को बुरा और किन्हीं को अच्छा कहने लगते हैं, तो जिस व्यक्ति को हम बुरा कहते हैं, धीरे-धीरे हम उसे बुरा होने को मजबूर करते हैं; और जिस व्यक्ति को हम अच्छा कहते हैं, धीरे-धीरे हम उसे उसकी अच्छाई में भी पाखंड निर्मित करवा देते हैं।

क्यों? क्योंकि जिसे हम अच्छा कहते हैं, उसे हम बुरे होने की सुविधा नहीं छोड़ते। और कोई आदमी इतना अच्छा नहीं है कि उसमें बुराई हो ही नहीं। और कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि उसमें अच्छाई हो ही नहीं। लेकिन हम चीजों को दो टुकड़ों में तोड़ देते हैं। हम कहते हैं, यह आदमी अच्छा है, इसमें बुराई है ही नहीं। और जब उसकी जिंदगी के भीतर की बुराई का कोई हिस्सा प्रकट होना शुरू होगा, तो उस आदमी को धोखा देना पड़ेगा। वह छिपाएगा, दबाएगा। जो उसके भीतर है, उसे प्रकट नहीं करेगा; और जो उसके भीतर नहीं है, उसे प्रकट करेगा। हमारी यह चेष्टा, अच्छाई की प्रशंसा की चेष्टा, अच्छाई को पाखंड और हिपोक्रेसी बना देती है। इसलिए जिसे हम अच्छा आदमी कहते हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत पाखंडी होते हैं। लेकिन एक बार हमने अच्छाई का लेबल उन पर लगा दिया है, तो वे अपने लेबल की रक्षा के लिए जीवन भर कोशिश करते हैं।

जिसको हम बुरा कह देते हैं, उसको हम अच्छे होने का द्वार बंद कर देते हैं। क्योंकि जब हम उसे इतना बुरा कह चुके होते हैं, वह इतनी बार सुन चुका होता है कि बुरा है, तो धीरे-धीरे अच्छे होने की जो आकांक्षा है, जो संभावना है, जो एडवेंचर है, वह उसके प्रति असमर्थ अपने को पाने लगता है। वह सोचता है, यह होने वाला नहीं है; मैं बुरा हूं, निंदित हूं, यह मुझसे होने वाला नहीं है। तब धीरे-धीरे मैं बुरे में ही कैसे कुशल हो जाऊं, यही उसकी जीवन-यात्रा बन जाती है।

लाओत्से कहता है, बुरे को बुरा मत कहो, भले को भला मत कहो; लेबलिंग मत करो; पद मत बनाओ। इतना ही जानो कि सब अपने स्वभाव से जीते हैं।

इसका क्या अर्थ होगा? इसका अर्थ होगा कि समाज में कोई कैटेगरी नहीं है, समाज में कोई हायरेरकी नहीं है, समाज में कोई ऊंचा और नीचा नहीं है। क्या इसका मतलब कम्युनिज्म होगा? यह थोड़ा सोचने जैसा

है। लाओत्से जिस मनुष्य की व्यवस्था की बात कर रहा है, अगर वैसी स्वीकृत हो, तो सभी मनुष्य असमान होंगे और फिर भी सभी अपने स्वभाव में होंगे। इसलिए कोई असमानता का बोध नहीं होगा।

लाओत्से यह कह रहा है कि एक आदमी धन कमा सकता है, तो कमाएगा। और एक आदमी गंवा सकता है, तो गंवाएगा। और एक आदमी भीख मांग सकता है, तो भीख मांगेगा। लेकिन भीख मांगने वाला महल बनाने वाले से नीचा नहीं होगा, क्योंकि महल बनाने को हम कोई पद-मर्यादा नहीं देते। हम कहते हैं, यह उस आदमी का स्वभाव है कि वह बिना महल बनाए नहीं रह सकता, तो वह बनाता है। यह इस आदमी का स्वभाव है कि इसके हाथ में पैसा हो तो बिना लुटाए नहीं रह सकता। यह इसका स्वभाव है। हम कोई पद-मर्यादा नहीं बनाते, हम स्वभाव को स्वीकार करते हैं। और हम हर तरह के स्वभाव को स्वीकार करते हैं। असल में, साधुता का जो परम लक्षण है, वह सब तरह की स्वीकृति, हर तरह के स्वभाव की स्वीकृति है।

और अगर ऐसी संभावना हो सके कि हम सब तरह के स्वभाव को स्वीकार करें, तो लाओत्से कहता है, फिर कोई विग्रह नहीं है, फिर कोई संताप नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई पीड़ा नहीं, कोई कलह नहीं है।

एक मित्र से कल ही मैं बात कर रहा था। पत्नी और उनके बीच कलह है। स्वभावतः, उनको ऐसा ही ख्याल था, जैसा सभी को ख्याल होता है। सभी को यह ख्याल होता है कि अगर यह स्त्री न होती, कोई दूसरी स्त्री होती, तो कलह न होती। दूसरी स्त्री का कोई अनुभव नहीं है। वह दूसरी स्त्री काल्पनिक है। वह कहीं भी नहीं है। स्त्री को भी यही ख्याल होता है कि इस आदमी के साथ जुड़ गया, यह भूल हो गई। कोई दूसरा पुरुष होता, तो यह उपद्रव जीवन में न होता। तो दूसरा कौन सा पुरुष? वह काल्पनिक है। वह कहीं है नहीं। लेकिन सभी पुरुषों का हमें अनुभव नहीं हो सकता, सभी स्त्रियों का अनुभव नहीं हो सकता; इसलिए भ्रम बना रहता है।

नहीं, उन मित्र से मैंने कहा कि यह सवाल इस स्त्री और उस स्त्री का नहीं है; स्त्री और पुरुष के स्वभाव का है। उस स्वभाव में कलह है। स्त्री और पुरुष के बीच हमने जो व्यवस्था की, उस व्यवस्था का है। उस व्यवस्था में कलह है। जहां भी मालकियत होगी, वहां कलह होगी। और जहां भी हम संबंधों को निश्चित करेंगे सदा के लिए, वहां कलह होगी। क्योंकि चित्त बहुत अनिश्चित है और संबंध बहुत निश्चित हो जाते हैं।

आज मैं किसी से कहता हूं कि तुमसे सुंदर कोई भी नहीं है। कल सुबह कहूंगा, यह जरूरी कहां है? कल सुबह ऐसा मुझे लगेगा, यह भी जरूरी कहां है? और इसका यह अर्थ नहीं है कि मैंने जो आज कहा कि तुमसे सुंदर कोई भी नहीं, यह झूठ था। इसका यह अर्थ नहीं, बिल्कुल सच था। यह मेरे क्षण का सत्य था, इस क्षण मुझे ऐसा ही लगता था। लेकिन यह क्षण मेरे सारे भविष्य को बांधने वाला नहीं हो सकता। कल सुबह मुझे लगेगा कि नहीं, वह भूल थी। वह भी सत्य होगा उस क्षण का। और तब मैं क्या करूंगा? या तो इस पुराने सत्य का धोखा दूंगा, पाखंड खड़ा करूंगा। और पाखंड खड़ा करूंगा, तो कलह होगी। मैं खुद ही अपनी आंखों में नीचे गिरता मालूम पड़ूंगा कि कल मैंने क्या कहा और आज मैं क्या करता हूं!

जहां हम संबंध थिर करेंगे, वहां अथिर मन कष्ट लाएगा। जहां मांग होगी, वहां संघर्ष होगा। जहां ऊंचा-नीचा होगा कोई, वहां जो ऊंचा है, वह ऊंचे रहने की अपनी पूरी चेष्टा करेगा, इसलिए संघर्ष में रहेगा; जो नीचा है, वह ऊपर आने की चेष्टा करेगा, इसलिए संघर्ष में रहेगा। हमारी सारी की सारी चिंतना जो है, वह कलह की है। कलह-शून्य तो तब हो सकता है मनुष्य, जब वह चीजों के स्वभाव को स्वीकार करता हो।

अब जैसे चीजों का स्वभाव क्या है?

चीजों का स्वभाव यह है कि अगर मैं किसी व्यक्ति को प्रेम करूंगा, उस व्यक्ति से सुख पाऊंगा, तो उस व्यक्ति से दुख भी पाऊंगा। जिस व्यक्ति से सुख पाएंगे, उससे दुख भी पाना पड़ेगा। सुख हमें मिलता ही उससे है, जिससे दुख मिल सकता है। सुख का दरवाजा हम खोलते नहीं कि साथ ही दुख का दरवाजा भी खुल जाता है। वे एक ही दरवाजे से दोनों आते हैं। मैं जब सुख ही चाहता हूं और दुख नहीं लेना चाहता, तो मैं चीजों का स्वभाव अंगीकार नहीं कर रहा। मैं कह रहा हूं, सुख तो ठीक, दुख मैं नहीं लूंगा।

अब जिस व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं, उस व्यक्ति पर मैं क्रोध भी करूंगा। जो व्यक्ति मुझ पर प्रेम करता है, वह मुझ पर क्रोध भी करेगा। लेकिन हम सोचते हैं कि जिस पर हम प्रेम करते हैं, उस पर कभी क्रोध नहीं करना है। प्रेम जहां होगा, वहां क्रोध पैदा होगा; जहां राग होगा, वहां क्रोध होने ही वाला है। और अगर क्रोध न होगा, तो प्रेम की क्वालिटी बिल्कुल और हो जाएगी, उसका गुण-तत्व बदल जाएगा। वह फिर प्रेम नहीं, करुणा हो जाएगा। लेकिन करुणा से तृप्ति न मिलेगी आपको, क्योंकि करुणा बिल्कुल शांत प्रेम है, अनाग्रह से भरा हुआ प्रेम है। आपको तृप्ति तो तब मिलती है, जब कि पैसोनेट, सक्रिय, आक्रामक प्रेम आपकी तरफ आता है। तभी आपको लगता है, जब कोई आपको जीतने आता है।

अब यह बड़े मजे की बात है, जब कोई आपको जीतने आता है, तो आपको बड़ा सुख मालूम पड़ता है। लेकिन जब कोई आपको जीत लेता है, तो बड़ा दुख मालूम पड़ता है। जब कोई जीतने आता है, तो इसलिए सुख मालूम पड़ता है कि मैं जीतने योग्य हूं; नहीं तो कोई जीतने क्यों आएगा! और जब कोई जीत लेता है, तब पीड़ा शुरू होती है कि मैं किसी का गुलाम हो गया। और दोनों बातें संयुक्त हैं।

अगर हम स्वभाव को देखें, तो यह कलह न हो, यह विग्रह न हो।

लाओत्से कहता है, न विग्रह और न संघर्ष।

संघर्ष क्या है? संघर्ष पूरे क्षण यही है, संघर्ष पूरे क्षण यही है कि मैं अपने स्वभाव के अन्यथा होने की कोशिश में लगा हूं। जो मैं नहीं हो सकता, उसकी कोशिश चल रही है। और दूसरे के साथ भी यही कोशिश चल रही है कि जो वह नहीं हो सकता, वह उसको बना कर रहना है।

एक स्त्री को मैं प्रेम करूं। तो उस प्रेम को मैं कर ही तब सकता हूं, जब स्त्री मुझे प्रीतिकर है। इसीलिए कर सकता हूं। लेकिन वह स्त्री खुश होगी कि मैं उसे प्रेम कर रहा हूं। लेकिन वह नहीं जानती कि मैं स्त्री को प्रेम कर रहा हूं, कोई दूसरी स्त्री को भी कर सकता हूं। मेरे लिए स्त्री में अभी रस है, तो ही मैं उसे प्रेम कर रहा हूं। मैं कल दूसरी स्त्री को भी प्रेम कर सकता हूं। वह खुश होगी, क्योंकि मैंने उसे प्रेम किया। लेकिन कल पीड़ा शुरू होगी, क्योंकि मैं किसी दूसरी स्त्री को प्रेम कर सकता हूं।

इसलिए हर स्त्री जिससे आप प्रेम करेंगे, प्रेम के बाद तत्काल आपके पहरे पर हो जाएगी कि आप किसी और की तरफ प्रेम में तो नहीं झुक रहे हैं। क्योंकि उसे पता तो चल गया कि आपका मन स्त्री के प्रति प्रेम से भरा हुआ है। और मन कोई व्यक्तियों को नहीं जानता, मन तो केवल शक्तियों को जानता है। मन अ नाम के पुरुष को, ब नाम की स्त्री को नहीं जानता; मन तो स्त्री और पुरुष को जानता है।

अब वह स्त्री कोशिश करेगी कि आपके मन में स्त्री का प्रेम न रह जाए। लेकिन जिस दिन स्त्री का प्रेम चला जाएगा, उसी दिन यह स्त्री भी मन से चली जाएगी। अब संघर्ष भयंकर है। अब इसकी चेष्टा यह होगी कि स्त्री से तो प्रेम रहे, लेकिन मेरे भीतर जो स्त्री है, उसी से रह जाए। अब एक संघर्ष है, जो इम्पासिबल है, जो असंभव है, जो हो नहीं सकता, जो कभी पूरा नहीं हो सकता, जिसमें सिवाय विषाद के और कुछ हाथ नहीं लगेगा।

सब तरफ ऐसा होता है। सब तरफ ऐसा होता है।

वोल्तेयर ने लिखा है कि एक वक्त था कि रास्ते से मैं गुजरता था तो सोचता था कि कोई मुझे नमस्कार करे। पर लोग नहीं करते थे। लोग जानते ही नहीं थे। तो बड़ी पीड़ा होती थी। बड़ी मेहनत करके वोल्तेयर उस जगह पहुंचा, जहां कि गांव से निकलना मुश्किल हो गया। तो वोल्तेयर ने लिखा है कि दुष्टों ने नींद हराम कर दी है। अकेला घूमने नहीं निकल सकता हूं; कोई न कोई मिल जाएगा, नमस्कार करके, साथ होकर बात करने लगता है।

तो वोल्तेयर ने अपनी डायरी में लिखा है कि अब मुझे ख्याल आता है कि यह उपद्रव मैंने ही मोल लिया है। ये तो बेचारे पहले नमस्कार करते ही नहीं थे। मैं निकल जाता था, तब इसकी पीड़ा होती थी कि कोई नमस्कार करने वाला नहीं! और अब बाजार इकट्ठा हो जाता है जहां निकलता हूं, तो पीड़ा होती है कि ये दुष्ट पीछा कर रहे हैं।

आदमी का मन! जिन बीमारियों को हम निमंत्रण देते हैं, जब वे आ जाती हैं, तब परेशान होते हैं। पहले आदमी चाहता है कि यश मिल जाए। और यश मिलते ही आइसोलेशन चाहता है। पहले चाहता है, यश मिल जाए। यश का मतलब है, भीड़ मिल जाए। भीड़ मिलते ही भीड़ से घबराहट होती है। हिटलर पूरी कोशिश करता है कि भीड़ मिल जाए। जब भीड़ मिल जाती है, तो फिर भीड़ से बचने की कोशिश करनी पड़ती है। बड़े मजे की बात है, जिन्हें भीड़ नहीं मिली, वे परेशान हैं; जिन्हें भीड़ मिल गई, वे परेशान हैं।

लाओत्से कहता है, स्वभाव को हम स्वीकार नहीं करते, इससे कठिनाई है। और यह नहीं देखते कि हर चीज के साथ बहुत सी चीजें और जुड़ी हुई हैं। वे साथ ही चली आती हैं। उनको बचाया नहीं जा सकता। कोई मुझे अपमान न करे, हम चाहते हैं। और सब हमें सम्मान करें, यह भी हम चाहते हैं। और जहां सम्मान आया, वहां अपमान अनिवार्य है, इस स्वभाव को हम नहीं देख पाते। यह स्वभाव हमें दिखाई पड़ जाए... । तो लाओत्से कहता है, अपमान नहीं चाहते, तो सम्मान भी मत चाहो। सम्मान चाहते हो, तो अपमान के लिए भी राजी रहो। फिर कोई कठिनाई नहीं है, फिर कोई विग्रह नहीं है। फिर भीतर कोई कांफ्लिक्ट नहीं है, फिर भीतर कोई संघर्ष नहीं है।

और जब एक-एक व्यक्ति के भीतर संघर्ष होता है, तो पूरे समाज में संघर्ष होगा ही। जब एक-एक व्यक्ति चौबीस घंटे लड़ाई में लगा हुआ है... । जिसे हम जीवन कहते हैं, उसे जीवन कहा नहीं जा सकता। क्योंकि हम चौबीस घंटे कर क्या रहे हैं? न मालूम कितनी तरह की लड़ाइयां लड़ रहे हैं! बाजार में आर्थिक लड़ाई लड़ रहे हैं। घर पर पारिवारिक लड़ाई लड़ रहे हैं। मित्रों में लड़ाई चल रही है, पालिटिक्स चल रही है। अगर एक आदमी की हम सुबह से लेकर रात तक, सो जाने तक की पूरी चर्या देखें, तो सिवाय मोर्चे बदलने के और क्या है? इधर मोर्चा बदलता है, उधर मोर्चा। इधर आकर एक दूसरे फ्रंट पर लग जाता है। इधर से किसी तरह छूटता है, तो एक दूसरी लड़ाई पर लग जाता है। लड़ाइयां बदलने में थोड़ी राहत जो मिल जाती है, वह मिल जाती होगी। बाकी लड़ाई चल रही है। कहीं कोई उपाय नहीं है जहां लड़ाई के बाहर हो सके। रात सो जाता है, तो भी सपने लड़ाई के हैं! वही संघर्ष सपनों में लौट आता है।

संघर्ष से भरी हुई यह चित्त की दशा क्यों है? क्यों है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम आदमी की जड़ें ही विषाक्त कर रहे हैं जिससे यह होगा ही? यही है। हम जड़ें विषाक्त कर रहे हैं। और हमारी जड़ें विषाक्त करने का जो योजनाबद्ध कार्य है, वह इतना पुराना है कि हमारे कलेक्टिव माइंड, हमारे पूरे समूह मन का हिस्सा हो गया है। हम और किसी तरह अब जी नहीं सकते, ऐसा मालूम पड़ता है। यह हमारा जाल है। और अगर चौबीस घंटे आपको शांति मिल जाए और कोई संघर्ष का मौका न मिले, तो आप इतने बेचैन हो जाएंगे, जितने आप संघर्ष

से कभी न हुए थे। आपको लगता है, लोग कहते हैं कि शांति चाहिए। क्योंकि उन्हें पता नहीं कि शांति क्या है। अगर उन्हें सच में ही शांति दे दी जाए, तो वे चौबीस घंटे में कहेंगे कि क्षमा करिए, यह शांति नहीं चाहिए; इससे तो अशांति बेहतर थी। क्योंकि शांति के क्षण में आपका अहंकार नहीं बच सकेगा।

अहंकार बचता है कलह में, संघर्ष में, जीत में, हार में। हार भी बेहतर है; उसमें भी अहंकार तो बना ही रहता है। ना-कुछ से हार बेहतर है; उसमें अहंकार तो बना ही रहता है। लेकिन अगर पूरी शांति हो, तो आपका अहंकार नहीं बचेगा, आप नहीं बचोगे। पूरी शांति में शांति ही बचेगी; आप नहीं बचोगे। वह बहुत घबड़ाने वाली होगी! उससे आप निकल कर बाहर आ जाओगे। आप कहोगे, ऐसी शांति नहीं चाहिए; इससे तो नर्क बेहतर है। कुछ कर तो रहे थे! कुछ हो तो रहा था! होता या न होता, होता हुआ मालूम होता था। व्यस्त थे, लगे थे। और मन में एक ख्याल था कि बड़े भारी काम में लगे हैं।

जितना बड़ा संघर्ष होता है, उतना लगता है कि बड़े भारी काम में लगे हैं। इसलिए लोग छोटे-मोटे संघर्ष छोड़ कर बड़े संघर्ष खोज लेते हैं; छोटी-मोटी मुसीबतें छोड़ कर बड़ी मुसीबतें खोज लेते हैं। अपने घर की काफी नहीं पड़तीं, तो पास-पड़ोस की खोज लेते हैं। समाज की, देश की, राष्ट्र की, मनुष्यता की बड़ी तकलीफें खोज लेते हैं। छोटी तकलीफें उनके काम की नहीं हैं।

एक युवक अभी मेरे पास आया था। वह अमरीकन शांतिवादियों के दल का सदस्य है। और भारत में उनके चार सौ लोग शांति की कोशिश करते हैं। वह यहां आकर संन्यास लिया, तो मैं उससे पूछा कि तू कहीं अपनी अशांति से बचने के लिए तो दूसरों की शांति के लिए कोशिश नहीं कर रहा है?

वह बहुत चौंका! उसने कहा, क्या आप कहते हैं? बात तो यही है। पर आपको पता कैसे चला? घर में इतनी अशांति है, पिता से बनती नहीं, मां से बनती नहीं, भाई से बनती नहीं। और हालात ऐसे हो गए थे कि अगर मैं रुक जाऊं घर में, तो खून-खराबा हो जाएगा। या तो मैं मार डालूं पिता को, या पिता मुझे मार डालें। इसलिए घर से भागना जरूरी था। यह जब मैंने सुना कि भारत में शांति की जरूरत है, तो मैं यहां आ गया। यहां मैं शांति की उसमें लगा हुआ हूं।

जितने समाज-सेवक हैं, समाज-सुधारक हैं, नेता हैं, उनको छोटी अशांति काफी नहीं पड़ती। थोड़ा बड़ा विस्तार चाहिए, फैलाव चाहिए; और मसले ऐसे चाहिए, जो कभी हल न होते हों। हल हो जाने वाले मसलों पर आप ज्यादा देर नहीं जी सकते। हल हो जाएंगे, फिर नया मसला खोजो। तो स्थायी मसले चाहिए, जो कभी हल नहीं होते। पर ये हम सारे लोग, जिन्हें शांति के कोई सूत्र का ही पता नहीं है, जिनका सारा बनाव अशांति का है, जो उठेंगे, बैठेंगे, चलेंगे, बोलेंगे, तो सबसे अशांति खड़ी करेंगे। जो अगर चुप भी रह जाएं... ।

नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बात कर रहा है। पत्नी आधा घंटे बोल चुकी है। नसरुद्दीन कहता है, देवी, तुझे आधा घंटा हो गया और मैं हां-हूं भी नहीं कर पा रहा हूं।

उसकी पत्नी कहती है, तुम चुप रहो, लेकिन तुम्हारे चुप बैठने का ढंग इतना खतरनाक है, सो एग्रेसिव! तुम चुप बैठे जरूर हो, लेकिन तुम इस ढंग से बैठे हो कि आई कैन नॉट स्टैंड इट!

आदमी शांत भी इस ढंग से बैठ सकता है कि आक्रामक लगे। आपके चुप होने का ढंग भी ऐसा हो सकता है कि उससे गाली देना भी बेहतर हो। हमारे होने की व्यवस्था कलह की है। उसमें अगर हम चुप भी बैठते हैं... । अब एक आदमी कहता है, मैं तो चुप ही रहता हूं, मैं तो कुछ बोल ही नहीं रहा हूं। लेकिन उनका न बोलना भी काम करता है। आप अक्सर नहीं तभी बोलते हैं, जब आपको बोलने से भी ज्यादा खतरनाक बात कहनी होती

है। तब आप चुप रह जाते हैं। क्योंकि जितने वजन के शब्द चाहिए, वे नहीं मिलते। गाली देनी है कोई वजनी, वह नहीं मिलती है। चुप रह जाते हैं। ऐसा लेकिन क्यों है?

लाओत्से के हिसाब से ऐसा इसलिए है कि हमने स्वभाव को स्वीकृति नहीं दी। और हमने स्वभाव के साथ एक खिलवाड़ किया है। और वह खिलवाड़ है पद-मर्यादा का। हम कहते हैं, फलां नीचा है, फलां ऊंचा है। यूटिलिटी की वजह से। जिस चीज की हमें उपयोगिता ज्यादा मालूम पड़ती है, हम उसे ऊंचा कहने लगते हैं। लेकिन जब उपयोगिता बदलती है, तो आपको पता है, ऊंचे-नीचे की व्यवस्था बदलती है।

एक जमाना था, पुरोहित सबसे ऊंचा था, प्रीस्ट। क्यों? उसकी यूटिलिटी थी। उसकी उपयोगिता थी। आकाश में बादल गरजते और बिजली चमकती, तो कोई भी कुछ नहीं जानता था। वह पुरोहित ही जानता था कि इंद्र देवता नाराज हैं। अब इंद्र देवता को कैसे प्रसन्न किया जाए, इसका सूत्र भी उसे ही पता था। मंत्र उसके पास था। तो राजा भी उसके पैर में बैठता था जाकर। और इसलिए पुरोहित ने हजारों-हजारों साल तक, वह जो जानता है, उसे और लोग न जान लें, इसकी भरसक चेष्टा की। क्योंकि उसकी मोनोपॉली उस जानकारी पर ही थी। कुछ बातें थीं, जो वह जानता था और कोई नहीं जानता था। सम्राट भी उसके पास पूछने आते। उनको भी उसके पैर छूने पड़ते। तो दुनिया में पुरोहित सबसे ऊपर था।

लेकिन आज! आज वह सबसे ऊपर नहीं है। बीस वर्षों में वैज्ञानिक उस जगह बैठ जाएगा, जहां दो हजार साल पहले पुरोहित था। आज एक वैज्ञानिक की इतनी कीमत है, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि एक वैज्ञानिक पर सब कुछ निर्भर करता है, सारा भाग्य। एक आदमी जर्मनी से चोरी चला जाए, तो पूरा भाग्य बदल जाता है। एक आदमी रूस से खिसक जाए, तो पूरी किस्मत डांवाडोल हो जाती है। आज अगर अमरीका इतना संपन्न और व्यवस्थित दिख रहा है, तो उसका कारण है। सारी दुनिया के, सारे इतिहास के नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक आज अमरीका में हैं। इसलिए आप कुछ कर नहीं सकते। और एक इंतजाम है कि वैज्ञानिक कहीं भी पैदा हो, खिंचा हुआ, जैसे पानी सागर में चला आता है नदियों का, ऐसा वैज्ञानिक अमरीका खिंच जाता है। कहीं भी पैदा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पूरा इंतजाम है। वह कहीं भी पैदा हो, वह खिंचता हुआ चला जाएगा।

इंग्लैंड में अभी एक बड़ी कांफ्रेंस चिंतकों की हुई और उन्होंने कहा कि हमें किसी तरह अपने विचारक को अमरीका जाने से रोकना चाहिए। नहीं हम मर जाएंगे।

लेकिन आप रोक नहीं सकते। आप कैसे रोकेंगे? न आप लेबोरेटरी दे सकते हैं उतनी बड़ी, न आप उतनी तनख्वाह दे सकते हैं, न आप उतना इंतजाम दे सकते हैं, न उतनी स्वतंत्रता दे सकते हैं, न उतनी सुविधा दे सकते हैं। आप रोक भी लेंगे, तो कुछ मतलब का नहीं होने वाला वह आदमी। वह अमरीका ही चला जाएगा।

जो लोग जानते हैं, वे अगर आंख खोल कर देख लें कि वैज्ञानिक इस वक्त कहां इकट्ठा हो रहा है, उसी मुल्क का भविष्य है। बाकी मुल्क तो डूब जाएंगे। क्योंकि आज ताकत उसके हाथ में है।

और आज अमरीका में दिखता भला हो कि राजनीतिज्ञ के हाथ में ताकत है। ज्यादा देर नहीं रहेगी। पीछे से ताकत हट गई है। पीछे से ताकत किसी और के हाथ में चली गई है। उसके इशारे पर सब कुछ हो रहा है। राजनीतिज्ञ लाख कहते रहें कि चांद पर पहुंचने का क्या फायदा है? लोग भूखे मर रहे हैं! वैज्ञानिक को चांद पर जाना है, वह जा रहा है। और राजनीतिज्ञ को उसकी व्यवस्था जुटानी पड़ रही है। वह कितना ही कहता रहे कि क्या फायदा है चांद पर जाने से! उसको समझ में भी नहीं आता फायदा। उसकी बुद्धि भी इतनी नहीं है कि समझ में आ जाए। लेकिन उसका कोई मूल्य भी नहीं है।

आज अगर अमरीका के पांच बड़े वैज्ञानिक इनकार कर दें कि हम हट जाते हैं, तो अमरीका अभी रूस के पैरों पर पड़ जाएगा। पांच आदमियों के हाथ में इतनी ताकत है! सारी मिलिट्री खड़ी रह जाएगी, सब खड़ा रह जाएगा। पांच आदमी कह दें कि बस ठीक है।

यूटिलिटी बदल गई। पुरोहित नहीं है अब ऊपर, अब वैज्ञानिक है ऊपर। बीच में क्षत्रिय ऊपर था। तलवार मजबूत थी। उसके हाथ में ताकत थी। वह ऊपर था। जहां उपयोगिता बदलती है, ऊपर-नीचे की सारी व्यवस्था बदल जाती है। आज बुद्धि की कीमत है, क्योंकि बुद्धि से आप ऊपर चढ़ सकते हैं। लेकिन कल अगर ऐसी व्यवस्था हो गई दुनिया में--और हो जाएगी--कि लोगों को काम करने की जरूरत न रह जाए, मशीनें काम कर दें, ऊपर चढ़ने का कोई उपाय न रह जाए, तो आप हैरान होंगे, जो बांसुरी बजा सकते हैं, मछली मार सकते हैं, ताश खेल सकते हैं, वे अचानक टॉप पर आ गए। क्योंकि वह... आप एकदम खड़े रह गए! आप बड़ा बाजार चलाते थे और बड़ी दुकान करते थे, आपको कोई नहीं पूछ रहा है। लोग उसको पूछ रहे हैं, जो ताश खेल सकता है। क्योंकि वह फुर्सत का आदमी कीमती हो जाएगा बीस-पच्चीस साल में। अमरीका में तो वह हालत आ जाएगी कि जो आदमी फुर्सत में आनंदित हो सकता है, वह ऊंचाई पर आ जाएगा। क्योंकि काम करने वाले की कीमत उसी दिन खत्म हो जाएगी, जिस दिन काम करना मशीन के हाथ में चला जाएगा।

अब एक बड़ा वैज्ञानिक है, बड़े गणित कर रहा है। लेकिन एक कंप्यूटर से बड़े गणित नहीं कर सकेगा जल्दी ही। वह छह महीने लगाएगा, कंप्यूटर सेकेंड में कर देगा। उसकी कीमत खतम हो जाएगी। एक वैज्ञानिक के पीछे कौन पड़ेगा? एक कंप्यूटर घर में खरीद कर रख लेगा, अपना काम कर लेगा। उसकी कोई स्थिति नहीं रह जाएगी। तत्काल पूरी स्थिति बदल जाएगी। दूसरे लोग टॉप पर आ जाएंगे, और ही तरह के लोग। मनोरंजन करने वाले!

आज आप देखते हैं कि फिल्म एक्टर अचानक ऊंचाई पर पहुंच गया, जो कभी नहीं था। दुनिया में अभिनय करने वाला आदमी सदा था, लेकिन ऊंचाई पर कभी नहीं था। अप्रतिष्ठित था, प्रतिष्ठा भी नहीं थी उसकी। वह कोई बहुत आदरणीय काम भी न था। लोग उसको अनादरणीय काम समझते थे। लेकिन अचानक सारी दुनिया में फिल्म अभिनेता, फिल्म कलाकार ऊपर पहुंच रहा है। रोज पहुंचता जाएगा। और उसका भविष्य आगे और है। क्योंकि वह मनोरंजन का काम कर रहा है। और जैसे-जैसे लोग खाली होते जाएंगे, वैसे-वैसे उनके मनोरंजन की जरूरत पड़ेगी। जैसे-जैसे लोग खाली होंगे, फुर्सत में होंगे, कोई काम न होगा, तो उनको इंगेज रखने के लिए जरूरत पड़ेगी कि कोई नाच कर उनको, कोई गीत गाकर, कोई कथा, कोई नाटक, कोई व्यवस्था जिससे कि वह उनका खाली समय भरा रहे। वह ऊपर होता चला जाएगा। दुनिया ने कभी भी अभिनेता को ऐसी जगह न दी थी, जैसी बीसवीं सदी ने दी है आकर। और वह बढ़ती जाएगी। नेता बहुत जल्दी पीछे पड़ जाएगा। अभी भी पीछे पड़ गया है। पर क्यों?

यह सब यूटिलिटी की वजह से है। और नहीं तो हंसी-मजाक की बात थी। एक आदमी अगर चेहरा बना लेता था और थोड़ा नाच-कूद लेता था, तो लोग समझते थे, ठीक है। गांव में एकाध-दो आदमी हर गांव में ऐसे होते थे। लेकिन कोई नहीं सोचता था कि यह आदमी चार्ली चैपलिन हो जाएगा कि गांधी जी भी मिलने के लिए उत्सुक हों। चार्ली चैपलिन हो जाएगा यह आदमी! गांव में हंसी-मजाक करता था, ठीक था गांव में। बेकार आदमी हर गांव में होते थे, जो इस तरह के कुछ काम करते थे। और गांव उनको कभी-कभी, बेमौके-मौके उनकी तलाश भी कर लेता था। शादी-विवाह होती, कुछ होता, गांव में जलसा होता, वे आदमी कुछ लोगों को मजा

देते थे। बाकी वे प्रतिष्ठित न थे, वह काम कोई अच्छा काम न था। लेकिन इतने जोर से वह प्रतिष्ठित हो जाएगा?

लोगों के काम का मूल्य गिर जाएगा, मनोरंजन का मूल्य बढ़ेगा, तो प्रतिष्ठा बदल जाएगी। कौन ऊपर होगा, कौन नीचे होगा, यह सिर्फ उपयोगिता से होता रहता है। लेकिन स्वभाव से कोई ऊंचा और नीचा नहीं है।

लाओत्से कहता है, स्वभाव से तुम जैसे हो, वैसे हो। और यदि हम इसको स्वीकार कर लें, तो फिर कोई विग्रह नहीं है, फिर कोई कलह नहीं है, फिर कोई संघर्ष नहीं है--भीतर भी और बाहर भी।

"यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए, तो लोग दस्यु-वृत्ति से भी मुक्त रहें।"

हम निरंतर निंदा करते हैं, लेकिन हम कभी सोचते नहीं। चोर की निंदा करते हैं, डाकू की निंदा करते हैं, बेईमान की निंदा करते हैं, धोखेबाज की निंदा करते हैं, पर कभी सोचते नहीं कि वह धोखेबाज, वह चोर, वह बेईमान किस चीज को पाने के लिए लगा है? और हम, जिस चीज को पाने के लिए वह लगा है, उसका तो हम मूल्य बढ़ाए चले जाते हैं और इसकी निंदा करते चले जाते हैं। बहुत अजीब खेल है! और बहुत जालसाजी है खेल में।

हम एक तरफ आदर दिए चले लाते हैं कोहनूर को और दूसरी तरफ कोहनूर को पाने वाले की जो कोशिश चल रही है, उसको हम कहते हैं कि ठीक नहीं है। और कोहनूर एक है। और तीन-चार अरब आदमी हैं। और सभी कोहनूर चाहते हैं। अब एक ही है कोहनूर, सभी को मिल सकता नहीं। इसलिए नीति-नियम से कोहनूर को खोजना संभव नहीं है। और फिर रोज दिखाई पड़ता है कि जो नीति-नियम की सब व्यवस्था छोड़ कर घुस पड़ता है, वह कोहनूर पा लेता है। जब रोज दिखाई पड़ रहा हो, तो जो लोग क्यू बनाए हुए खड़े हैं, कब तक खड़े रहेंगे?

और जो खड़े रहते हैं क्यू बनाए, पाने वाला उनसे कहता है, तुम बुद्धू हो! तुमसे कहा किसने कि तुम क्यू बनाए खड़े रहो? यह तो हमारी तरकीब है, जिनको क्यू तोड़ कर आगे पहुंचना है, बाकी लोगों को क्यू में लगा देते हैं। उनको हम समझा देते हैं कि तुम क्यू मत तोड़ना, इससे बहुत पाप होता है।

सुना है मैंने, एक अदालत में एक चोर से मजिस्ट्रेट ने पूछा है कि तुम्हें शर्म न आई इतने ईमानदार और भले आदमी को धोखा देते! उस आदमी ने कहा कि महाशय, बेईमान को तो धोखा दिया ही नहीं जा सकता। ईमानदारी तो आधार है। ईमानदार को ही धोखा दिया जा सकता है। बेईमान को तो धोखा दिया नहीं जा सकता। तो उस आदमी ने कहा, हम भी यही चाहते हैं कि प्रचार जारी रहे कि ईमानदार होना अच्छा है, अन्यथा हम धोखा न दे पाएं। ईमानदारी जारी रहे, तो बेईमानी काम कर पाए। नहीं तो बेईमानी काम न कर पाए।

मैक्यावेली या चाणक्य, जो कि लाओत्से से ठीक उलटे लोग हैं। अगर लाओत्से का विपरीत छोर खोजना हो, तो मैक्यावेली और चाणक्य ऐसे लोग हैं। मैक्यावेली कहता है कि लोगों को समझाओ कि भले रहो, क्योंकि तुम्हारी बुराई तभी सफल हो सकती है कि लोग भले रहें। लोगों को समझाओ कि सादगी से जीओ। लोगों को समझाओ कि सरल रहो। लोगों को कहो कि धोखा मत देना। तो तुम्हारा धोखा सफल हो सकता है।

मैक्यावेली ने लिखा है अपनी किताब प्रिंस में, राजाओं को जो उसने सलाह दी है उसमें उसने लिखा है कि राजा ऐसा होना चाहिए, जो नीति की बातें लोगों को समझाए, लेकिन नीति से कभी जीए नहीं। क्योंकि अगर खुद ही तुम नीति से जीने लगे, तो तुम बुद्धू हो! फिर तो फायदा क्या है समझाने का? लेकिन समझाते रहना कि लोग नीति से रहें, तब तुम्हारी अनीति सफल हो सकेगी। और अगर तुम ही जीने लगे, तो कोई और

दूसरा तुम पर सफल हो जाएगा। इसलिए इस तरह का धोखा जारी रखना कि नीति अच्छी है। और इस तरह का अपना चेहरा भी बनाए रखना कि तुम बड़े नैतिक हो। लेकिन भूल कर भी इस जाल में खुद मत पड़ जाना, इससे बाहर खड़े रहना और सदा होशियार रहना कि जगत में सफल तो अनीति होती है। लेकिन अनीति की सफलता का आधार नीति का प्रचार है। नहीं तो अनीति सफल नहीं हो सकती।

इसलिए मैक्यावेली कहता है कि खूब नीति का प्रचार करो। बच्चों को स्कूल में, कालेज में शिक्षा दो कि नैतिक रहो। लेकिन खुद इस भूल में मत पड़ जाना। इससे बचे रहना। चेहरा बनाए रखना, तो तुम्हारी सफलता की कोई सीमा न रहेगी।

यह लाओत्से से ठीक उलटा आदमी है। बहुत बुद्धिमान आदमी है। और एक लिहाज से, मैं मानता हूं कि आदमी की शक्ल को ठीक-ठीक पेश कर रहा है, जैसा आदमी है। मैक्यावेली आदमी को गहरे में पहचानता है। और आदमी के संबंध में वह जो कह रहा है, वह बहुत दूर तक सच है। निन्यानबे मौके पर बिल्कुल ही सच है। और वह कहता है, मैं उनको सलाह नहीं दे रहा हूं, जो अपवाद हैं। मैं तो उनको सलाह दे रहा हूं, जो नियम हैं। जैसा नियम है, वह मैं सलाह दे रहा हूं।

एक ओर हम दुर्लभ पदार्थों के लिए मोह बढ़ाए चले जाते हैं। अब कोहनूर पत्थर ही है। और अगर कोई... हम ऐसे समाज की कल्पना कर सकते हैं, एक ऐसे आदिवासी समाज की कल्पना कर सकते हैं, जहां कोहनूर सड़क पर पड़ा रहे और बच्चे खेलें और फेंकते रहें और कोई उसको उठाए न। क्योंकि कोहनूर में कोई इंट्रिंजिक वैल्यू नहीं है, कोई भीतरी मूल्य नहीं है। कोहनूर में जो मूल्य है, वह दिया हुआ मूल्य है, आरोपित मूल्य है। कोहनूर के भीतर कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि न उसको खा सकते हैं, न उसको पी सकते हैं, वह किसी काम पड़ नहीं सकता। वह बिल्कुल बेकाम है। लेकिन उसकी सिर्फ एक ही खूबी है कि वह रेयर है, ज्यादा नहीं है। अकेला है। बहुत थोड़ा है। न्यून है। अगर न्यून चीज को हम ऊपर से मूल्य दे दें, तो दुनिया उसके लिए पागल हो जाएगी। अब यह हालत हो सकती है कि एक आदमी अपना जीवन गंवा दे कोहनूर को पाने में और कोहनूर किसी काम में न आए। लेकिन दुर्लभ पदार्थ को दी गई प्रतिष्ठा, समाज में चोरी, बेईमानी और प्रतियोगिता और संघर्ष पैदा करती है। हमारा सब... ।

सोना है। उसमें कोई इंट्रिंजिक मूल्य नहीं है। कोई भीतरी कीमत नहीं है उसमें। क्योंकि जीवन को पूरा करने वाली कोई कीमत नहीं है। अगर एक जानवर के सामने आप एक रोटी का टुकड़ा रख दें और एक सोने की डली रख दें, वह रोटी का टुकड़ा खाकर अपने रास्ते पर हो जाएगा। रोटी के टुकड़े में इंट्रिंजिक वैल्यू है, भीतरी मूल्य है। सोने के टुकड़े में कोई मूल्य नहीं है। और जानवर इतना नासमझ नहीं कि वह सोने की डली मुंह में ले ले और रोटी छोड़ जाए। पर अगर आदमी के सामने यह विकल्प हो, तो हम रोटी छोड़ देंगे और सोने की डली चुन लेंगे।

और मजा यह है कि सोने की डली आदमी को छोड़ कर जमीन पर कोई चुनने को राजी नहीं होगा। क्योंकि सोने की डली में कोई भीतरी मूल्य नहीं है। उसकी कोई भीतरी उपयोगिता नहीं है। उसकी उपयोगिता दी गई है। हमने दी है। हमने माना है। माना हुआ मूल्य है। हमने माना है कि मूल्यवान है, इसलिए मूल्यवान है। अगर हम तय कर लें कि मूल्यवान नहीं है, तो मूल्यवान नहीं रह जाए।

सारी दुनिया में पच्चीसों तरह की मूल्य की व्यवस्थाएं हैं। अलग-अलग चीजें मूल्य रखती हैं, जो आपके ख्याल में न आएं कि यह कैसे, इसमें क्या मूल्य हो सकता है!

अब एक अफ्रीकन औरत है। तो उसको पूरे हाथ पर चूड़ियां पहननी हैं हड्डी की। वह आपकी स्त्री के हाथ को देख कर मानती है कि नंगा है हाथ। जैसे आपकी स्त्री पश्चिम की आज कोई लड़की को देख कर मानती है कि यह क्या बात है, न नाक में कुछ, न कान में कुछ, बिल्कुल नंगापन मालूम पड़ता है, खाली मालूम पड़ता है। दिया हुआ मूल्य है। और अजीब-अजीब दिए हुए मूल्य हैं।

अगर कोई समाज मान लेता है कि स्त्रियों के बड़े बाल सुंदर हैं, तो बड़े बाल सुंदर हो जाते हैं। कोई समाज मान लेता है कि छोटे बाल सुंदर हैं, छोटे बाल सुंदर हो जाते हैं। कोई समाज मान लेता है कि सिर घुटा हुआ सुंदर है, तो ऐसी स्त्रियां हैं जमीन पर अभी भी, जहां घुटा हुआ सिर सुंदर है। आपको भले ही कितनी घबड़ाहट हो, लेकिन जहां है सुंदर, वहां सुंदर है अभी भी। आज भी सैकड़ों कबीले स्त्रियों के सिर घोंट देते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक बाल न कटें, तब तक चेहरे का सच-सच सौंदर्य पता नहीं चलता। बाल धोखा देते हैं। असली सुंदर स्त्री बाल घुट कर सुंदर होगी। जो नकली है, वह उखड़ जाएगा, उसका साफ पता चल जाएगा कि गड़बड़ है।

आप मतलब समझ रहे हैं? उनके जांचने का ढंग, वे कहते हैं, असली सुंदर स्त्री बाल घुटे पर भी सुंदर होगी। वह तो स्त्री का सौंदर्य हुआ। और बाल की बनावट से जो सौंदर्य दिख रहा है, उसमें धोखा है। तो जो स्त्री बाल घुटा कर, बिल्कुल सिर घुटे हुए स्थिति में सुंदर होती है, वे कहते हैं, वही सुंदर है। धोखा बिल्कुल नहीं है।

दिए हुए मूल्य हैं। हमें कठिनाई लगती है कि सिर घुटा कैसे सुंदर होगा? हमें कठिनाई लगती है, क्योंकि हमारा एक मूल्य है, वह हमने बांध कर रखा हुआ है।

अफ्रीका में एक कबीला है, जो अपने ओंठ को खींच-खींच कर बड़ा करता है। लकड़ी के टुकड़े ओंठ और दांतों के बीच में फंसा कर ओंठ को लटकाने की कोशिश की जाती है। जितना ओंठ लटक जाता है, उतना सुंदर हो जाता है! तो जो स्त्रियां लटके हुए ओंठ से पैदा होती हैं अफ्रीका में उनका बड़ा मूल्य है। जन्मजात सौंदर्य है! बाकी को कोशिश करके वैसा करना पड़ता है। हमारे मुल्क में अगर कोई लटका हुआ ओंठ पैदा हो जाए, तो कुरूपता है।

कुरूपता क्या है और सौंदर्य क्या है? हमारा दिया हुआ मूल्य है। किस चीज को हम मूल्य दे रहे हैं? हम एक पत्थर को मूल्य देते हैं, वह पत्थर मूल्यवान हो जाता है। धातु को मूल्य देते हैं, धातु मूल्यवान हो जाती है। निश्चित ही लेकिन हम उन्हीं चीजों को मूल्य देते हैं, जो न्यून हैं। क्योंकि न्यून नहीं हैं, तो हम कितना ही मूल्य दें, अगर सभी को उपलब्ध हो सकती हैं तो मूल्यवान नहीं हो पाएंगी। न्यूनता मूल्य बनती है।

लाओत्से कहता है, "यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए, तो लोग दस्यु-वृत्ति से मुक्त रहें।"

फिर कोई चोर न हो, बेईमान न हो। ध्यान रहे, जिंदगी चलाने के लिए बेईमानी जरूरी नहीं, लेकिन ऊंचा उठने के लिए बेईमानी जरूरी है। मात्र जिंदगी चलाने के लिए ईमानदारी पर्याप्त है। और अगर सभी लोग मात्र जीने के लिए श्रम कर रहे हों, तो बेईमानी की जरूरत ही न पड़े। लेकिन अगर मात्र जीने के ऊपर जाना है, रोटी नहीं, कोहनूर भी पाना है, तो फिर ईमानदारी काफी नहीं है। ईमानदारी से कोहनूर नहीं पाया जा सकेगा, बेईमान होना पड़ेगा।

अब यह मजे की बात है कि जितनी न्यून चीज होगी, उसे पाने के लिए उतना ही ज्यादा बेईमान होना पड़ेगा--जितनी कम! जैसे यहां है, अगर सभी लोगों को अपनी-अपनी जगह बैठना है, तो कोई झगड़े की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर यह मेरी कुर्सी पर ही सभी को बैठना है, तो कलह-उपद्रव हो जाएगा। और उसमें यह

आशा रखना कि सीधा-सादा आदमी आकर यहां बैठ जाएगा, गलती ख्याल है, बिल्कुल गलती ख्याल है। वह तो जो इस संघर्ष में ज्यादा उपद्रव मचाएगा, वह प्रवेश कर जाएगा।

अगर हम यह तय कर लें कि इसी छोटी सी कुर्सी पर सभी को होना जीवन का लक्ष्य है, तो फिर इस कमरे में कलह और संघर्ष और बेईमानी के सिवाय कुछ भी नहीं होगा। जो यहां बैठा होगा, वह भी बैठ नहीं पाएगा, क्योंकि दस-पच्चीस उसके पांव खींचते रहेंगे। कोई उसे धक्का देता रहेगा। वह भी बैठ नहीं पाएगा यहां, बैठा हुआ मालूम भर होगा। उसको भी लगेगा कि कब गए, कब गए, कुछ पता नहीं है। और जिन रास्तों से वह आया है, उन्हीं रास्तों से दूसरे लोग भी आ रहे होंगे!

लाओत्से, बहुत गहरी दृष्टि है उसकी, वह कहता है, दुर्लभ पदार्थों को महत्व न दिया जाए। दुर्लभ पदार्थों में से अर्थ है, जो भी न्यून है, उसे महत्व न दिया जाए, तो लोग बेईमान न हों, चोर न हों। चोरों को दंड देने से चोरी नहीं रुकेगी, और दस्युओं को मार डालने से दस्यु नहीं मरेंगे, और बेईमानों को नर्क में डालने का डर देने से बेईमानी बंद न होगी। वह कहता है, न्यून पदार्थों को मूल्य न दिया जाए, दुनिया से बेईमानी समाप्त हो जाएगी।

जरा सोचें। आपने कभी भी, जब भी बेईमानी की है, चोरी की है, करना चाही है, सोची है, तब आपने महज जीने के लिए नहीं। जीने से कुछ ज्यादा! भला आप कहते हों, अपने मन को समझाते हो कि वह जीवन के लिए अनिवार्य है, लेकिन जीने से कुछ ज्यादा! एक अच्छी कमीज मिल जाए, उसके लिए की होगी। तन ढंकने के लिए बेईमानी आवश्यक नहीं है। और जो आदमी तन ढंकने के लिए ही राजी है, वह बेईमानी नहीं करेगा। और वैसा आदमी किसी दिन अगर तन उघाड़ा भी हो, तो उसके लिए भी राजी हो जाएगा, लेकिन बेईमानी के लिए राजी नहीं होगा। लेकिन अगर तन ढंकना पर्याप्त नहीं है, किस कपड़े से ढंकना, वह जरूरी है, तो फिर अकेली ईमानदारी काफी सिद्ध नहीं होगी।

लाओत्से के इस सूत्र का अर्थ यह है कि जीवन, मात्र जीवन के लिए बेईमानी आवश्यक नहीं है। मान्यता है, जरूरी नहीं है। लेकिन जीवन में जो हम न्यून चीजों को मूल्य देते हैं, उससे सारी बेईमानी का जाल फैलता है।

इसलिए ध्यान रखें, जितना पिछड़ा हुआ समाज जिसे हम कहते हैं, वह उतना कम बेईमान होता है। उसका और कोई कारण नहीं है। उसका कुल कारण इतना है कि जिन चीजों को वह समाज मूल्य देता है, वे सर्वसुलभ हैं। एक आदिवासी समुदाय है। खाना है, एक लंगोटी है, नमक चाहिए, केरोसिन आयल चाहिए, वह सभी को मिल जाता है। कभी इतना फर्क पड़ता है, किसी के घर में दो लालटेन जल जाती हैं, किसी के घर में एक लालटेन जलती है। लेकिन जिसके घर में एक लालटेन जलती है, वह भी कोई इससे परेशान नहीं है। क्योंकि एक लालटेन से उतना ही काम हो जाता है, जितना दो से होता होगा। इससे बड़ी कोई आकांक्षा नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है, जिसे पाने के लिए स्वयं को बेचना जरूरी हो।

ध्यान रहे, न्यून चीजों को पाने के लिए स्वयं को बेचना पड़ता है। श्रम से नहीं मिलेंगी वे। कोई नहीं सोच सकता कि मैं रोज आठ घंटे ईमानदारी से श्रम करूं, तो किसी दिन मेरी पत्नी के गले में कोहनूर का हीरा होगा। यह बुद्ध भी नहीं सोच सकते, महावीर भी नहीं सोच सकते, कोई नहीं सोच सकता। दुनिया का भले से भला आदमी भी यह दावा नहीं कर सकता कि सादगी और सरलता से जीवन चलाते हुए किसी दिन कोहनूर हीरा मेरी पत्नी के गले में पहुंच जाएगा। यह उपाय ही नहीं है कोई कोहनूर के गले में पहुंचने का। कोहनूर तो उसके गले में पहुंचेगा, जो लाखों गलों को काटने को तैयार हो। क्योंकि एक हीरा और चार अरब लोगों के मन में आकांक्षा जग आई हो, तो यह सरल नहीं हो सकती बात।

लेकिन हम न्यून चीजों को ही मूल्य देते हैं। हमारा सारा मूल्य का जो ढंग है, वह न्यून को है। जितनी कम है कोई चीज, उतनी कीमती है। हालांकि इसका कोई संबंध नहीं है। हालत तो उलटी होनी चाहिए।

सुना है मैंने कि अब्राहम लिंकन ने एक रात एक स्वप्न देखा। स्वप्न देखा कि बड़ी भीड़ है और लिंकन उस भीड़ से गुजर रहा है। और अनेक लोग कानाफूसी कर रहे हैं कि इसकी शक्ल तो बड़ी साधारण है, इसको अमरीका का प्रेसीडेंट बनाने की क्या जरूरत थी! शक्ल में तो कुछ खास बात नहीं, बहुत साधारण है। बेचैनी होती है लिंकन को। कुछ सूझता नहीं कि क्या करे, क्या न करे! लोग खुसर-फुसर कर रहे हैं। आस-पास ही बात चल रही है और उसे सुनाई पड़ रही है--सपने में। उसे सुनाई पड़ रही है कि लोग कह रहे हैंः कितनी साधारण शक्ल का आदमी! और इसको अमरीका का प्रेसीडेंट बनाने की क्या जरूरत है! कोई और खूबसूरत आदमी नहीं मिल सका? थोड़ा शक्ल पर तो ख्याल करना था।

वह बड़ा बेचैन है। घबड़ाहट में उसकी नींद खुल जाती है। वह रात भर सो नहीं पाता। सुबह वह अपनी डायरी में लिखता है सपना और अपना उत्तर, जो वह सपने में नहीं दे पाया। वह उत्तर में लिखता है कि मैं मानता हूं कि मुझे चुनने का कुछ कारण है। क्योंकि परमात्मा विशेष शक्लें बहुत कम पैदा करता है; लगता है, पसंद नहीं करता। साधारण शक्लें बहुत तादाद में पैदा करता है; लगता है, पसंद करता है। डायरी में लिखता है कि परमात्मा साधारण शक्लों के लोग इतने ज्यादा पैदा करता है कि मालूम होता है कि उसकी पसंदगी साधारण शक्ल की है। असाधारण शक्ल तो, मालूम होता है, भूल-चूक से पैदा होती है। नहीं तो बहुत ज्यादा पैदा कर सकता है।

यह तो मजाक में लिंकन ने लिखा। लेकिन जो भी बड़ी मात्रा में पैदा हो रहा है, वही जीवन का आधार होना चाहिए। लेकिन हम आधार उलटा बनाते हैं। जैसे नाक-नक्श सब के पास हैं, उनकी कोई कीमत नहीं। नाक-नक्श ऐसा हो, जो सबके पास नहीं, वह कीमती हो जाएगा। फिर हम कलह को पैदा करते हैं। फिर हम संघर्ष को पैदा करते हैं। फिर हम असाधारण की दौड़ शुरू होती है, जिसमें हम सब पागल हो जाते हैं। और उस दौड़ का कोई अंत नहीं है। एक चीज में नहीं, सभी चीजों में।

"यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।"

अगर लोगों के हृदय को हम उसके प्रति आकर्षित न करें, जो स्पृहा के योग्य है, जो पाने के लिए तृष्णा को जगाता है, उसकी ओर आकर्षित न करें, तो लोगों के हृदय अनुद्विग्न रहें; उनके हृदय में अशांति के तूफान न उठें; उनके हृदय शांत, मौन रहें।

लेकिन हम प्रत्येक को कहते हैं कि पाओ उसे, वह जो गौरीशंकर के शिखर पर है। जमीन पर, समतल भूमि पर कहीं कुछ पाने योग्य है! पाओ उसे, जिसे कभी कोई हिलेरी या तेनसिंग पाता है। पहुंचो वहां, गाड़ो झंडा गौरीशंकर पर। तभी कुछ तुम्हारे जीवन का उपयोग और अर्थ है। अन्यथा बेकार तुम जीए।

पर बड़ी हैरानी की बात है, गौरीशंकर पर झंडा गाड़ कर कौन सी सार्थकता जीवन में आ जाती है? और कल जब सभी लोग गौरीशंकर पर उतर सकेंगे हवाई जहाज से, तब आप मत सोचना कि आपके झंडा गाड़ने का कोई मूल्य होगा। न्यून का मूल्य है; न गौरीशंकर का कोई मूल्य है, न झंडा गाड़ने का कोई मूल्य है। जिस दिन सारे लोग गौरीशंकर पर उतर सकेंगे, उस दिन... ।

अभी चांद पर कोई आदमी उतर जाता है, आर्मस्ट्रांग, तो सारी दुनिया के अखबार चर्चा में संलग्न हो जाते हैं। एक क्षण में आदमी वहां पहुंच जाता है, जहां सीधे रास्ते से कोई प्रतिष्ठा पाने की कोशिश करे, तो पचास-साठ वर्ष लगते हैं। अखबार के पहले सुर्खी तक पहुंचने के लिए सीधी मेहनत कोई करता रहे--सीधी वह भी

काफी टेढ़ी है--तो पचास-साठ साल लगते हैं। फिर भी सुनिश्चित नहीं है। लेकिन एक आदमी चांद पर उतर जाता है, तो क्षण भर में ऐतिहासिक पुरुष हो जाता है।

लेकिन आप यह मत सोचना कि जिस दिन आप चांद पर उतरेंगे, उस दिन आप भी ऐतिहासिक पुरुष हो जाएंगे। नहीं होंगे। क्योंकि आप उसी दिन उतरेंगे, जिस दिन यात्री उतरने लगेंगे। जापान की एक कंपनी तो उन्नीस सौ पचहत्तर के टिकट बेच रही है। उन्नीस सौ पचहत्तर, एक जनवरी, उसका दावा है कि वह चांद पर यात्रियों को... तो एडवांस बुकिंग उसका उन्होंने शुरू किया हुआ है। लोग ले रहे हैं। मगर वे इस ख्याल में न रहें कि वे आर्मस्ट्रांग हो जाएंगे। क्योंकि मूल्य न चांद का है, न चांद पर उतरने का है, मूल्य तो न्यून का है। आर्मस्ट्रांग पहली दफे उतर रहा है, बस इतना मूल्य है। और तो कोई मूल्य नहीं है।

सब तरफ हम, जो बहुत कम है, उसको कीमत देते हैं। उसको कीमत देकर हम संघर्ष को जन्माते हैं। सारे लोग उसे पाने में लग जाते हैं, पाने की दौड़ में उद्विग्न हो जाते हैं। जो पा लेते हैं, वे पाकर पाते हैं कि कुछ नहीं पाया। क्योंकि चांद पर खड़े हो जाएंगे, तो क्या पाएंगे? कोई जमीन से बहुत भिन्न न पाएंगे। खड़े ही हो जाएंगे, क्या पाएंगे? मिल क्या जाएगा? कौन सी आंतरिक उपलब्धि होगी?

कोई उपलब्धि नहीं हो जाएगी। जो नहीं पहुंच पाएंगे, उनके जीवन नष्ट हो जाएंगे। उनकी उद्विग्नता उनको खा जाएगी कि जब तक चांद पर न पहुंचे, तब तक सब बेकार है। अपनी जिंदगी किसी काम की नहीं। यों ही अकारण, अकारथ पैदा हुए और मरे। चांद पर तो पहुंचे ही नहीं। बचपन से पहला बीज हमारे मन में जो डाला जाता है, वह चांद पर पहुंचने वाला बीज है।

और कठिनाई यह है कि वहां पहुंच जाओ, तो कुछ नहीं मिलता; और न पहुंच पाओ, तो परेशानी भारी झेलनी पड़ती है। जो पहुंचते हैं, वे भी बड़े संघर्ष और कठिनाई से पहुंचते हैं। जो नहीं पहुंच पाते, वे भी भारी संघर्ष करते हुए जीते और मरते हैं। पहुंच कर कुछ मिलता नहीं, लेकिन पहुंचने की कोशिश में बहुत कुछ खो जाता है। खो जाता है जीवन का अवसर, जिसमें आनंद की किरण फूट सकती थी।

लाओत्से का यह सारा आग्रह इसलिए है--सिर्फ निगेटिव नहीं है, यह सिर्फ इसलिए नहीं है कि आप अनुद्विग्न कैसे न हों, ऐसा नहीं है मतलब--मतलब ऐसा है कि अगर आप उद्विग्न न हों, तो वह जो अनुद्विग्न स्थिति आपकी होगी, वह एक पाजिटिव, एक विधायक आनंद का द्वार खोलेगी। इस दौड़ में पड़ा हुआ, न्यून को पाने की दौड़ में, स्पर्धा में, स्पृहा में पड़ा हुआ व्यक्ति उसे पाने से चूक ही जाता है, जो सभी को मिल सकता था।

शायद हम परमात्मा को इसीलिए नहीं खोजते, क्योंकि संत कहते हैं, वह सब जगह है। वह स्पृहणीय नहीं रह जाता। क्योंकि वे कहते हैं, वह रत्ती-रत्ती, कण-कण में छिपा है। वे कहते हैं, वह चारों तरफ वही है।

बेकार है, अगर चारों तरफ है तो। अगर कहीं एक जगह हो, जहां कोई एक पहुंच सके, तो अभी सारी मनुष्यता दौड़ने लग जाए कि ठीक है, हम ईश्वर को पाकर रहेंगे!

तो संत अपने हाथ से ही उसको लोगों की स्पृहा के बाहर कर देते हैं। कहते हैं, सब जगह है। वही-वही है, जहां देखो वही है, जहां पाओ वही है। वे कहते हैं, न पाओ, तो भी वही मौजूद है। तुम जानो तो, न जानो तो, वह तुम्हें घेरे हुए है, जैसे मछली को सागर घेरे है। तो फिर मन हमारा होता है कि ऐसी बेकार चीज को पाने से क्या होगा! यानी ऐसी बेकार चीज पाने योग्य ही नहीं रह गई, जो सब तरफ है, हर कहीं है, पाओ तो, न पाओ तो, मिली हुई है। सोओ तो, जागो तो, खोते ही नहीं। भागो, कहीं भी जाओ, वह तुम्हारे साथ है।

तो हम कहते हैं, ठीक है, अब जो साथ ही है तो रहो। हम न खोजेंगे।

हम तो उसे खोजने जाएंगे, जो सब जगह नहीं है। जो कहीं-कहीं है, मुश्किल से है, और कभी किसी को मिलती है। और जिसको मिलती है, धन्यभाग उसके, इतिहास में नाम अमर हो जाता है। इस भगवान को पाकर क्या करेंगे?

अगर पा भी लिया, तो बुद्ध कहेंगे, इसमें क्या किया? वह मिला ही हुआ था। अगर पा भी लिया, तो महावीर कहेंगे, इसमें क्या हुआ? वह तो स्वभाव था। अगर पा भी लिया, तो लाओत्से कहेंगे, कुछ अखबार में नाम छपवाने की जरूरत नहीं है। हजारों को मिल चुका है, हजारों को मिलता रहेगा। कुछ गौरव मत करो। कुछ दीवाने मत हो जाओ। कुछ झंडा गाड़ने का कारण नहीं है। यह मिलता ही रहा है। और जिनको नहीं मिला है, उनके पास भी है, पता भर नहीं है उनको। पता चल जाएगा, उनको भी मिल जाएगा।

तो ऐसी चीज स्पृहा नहीं बनती। परमात्मा अगर हमारी खोज नहीं बनता, तो उसका कारण है कि वह हमारी स्पृहा नहीं बनता है। हमारे मन में कहीं ऐसी उद्विग्नता पैदा नहीं होती उसके पाने के लिए कि दूसरे से छीन कर पा लेंगे। एक और खराबी है, कि मजा तो तभी है किसी चीज को पाने का कि दूसरे से छीन कर पा लें। नहीं तो कोई मजा नहीं है। अब परमात्मा ऐसी चीज है कि आप कितना ही पा लो, किसी का कुछ नहीं छिनेगा। ऐसा नहीं है कि आप पा लोगे तो मुझे पाने में कुछ दिक्कत पड़ेगी, कि आपने पा लिया, तो अब मैं कैसे पाऊं? कि जब आप ही पा चुके, तो अब बात खतम हो गई।

नहीं, आप कितना ही पा लो, मुझे पाने के लिए उतना ही खुला रहेगा। आपका कोई कब्जा, मुझसे छीनने वाला नहीं है। आपका पा लेना, कुछ मेरे अधिकार पर चोट नहीं है। आप कितना ही पाओ, इससे मेरे पाने में फर्क नहीं पड़ता। संत कहते हैं, अनंत है वह। कोई कितना ही पा ले, वह सदा उतना ही शेष है।

और भी प्राण निकल जाते हैं कि बेकार ही है, कोई स्पर्धा ही नहीं है। किसी से छीनने का कोई मजा नहीं है।

छीनने का सुख है! जब हमें छीनने में सुख आता है, तो ध्यान रखना, वस्तु में सुख नहीं होता, छीनने में सुख होता है। दूसरे को दुख देने में सुख होता है।

अचानक ऐसा हो कि कोहनूर घर-घर में बरस जाए, सड़क-सड़क पर गिर जाए, जहां भी निकलें, पैर में वही पड़े! तो जो महारानी उसको पहने हुए है, जल्दी निकाल कर फेंक दे, क्योंकि बेकार है। क्योंकि भिखमंगे पैरों में डाल रहे हैं उसको, उसका कोई मतलब न रहा। जिस पर कोहनूर है, वह उसको छिपा दे फौरन कि किसी को पता न चल जाए कि मैंने गले में पहना था। क्योंकि वह गले में पहनने का सुख ही यह था कि छीना था। लाखों गले देख कर पीड़ित हो जाएं कि नहीं है उनके पास, और है किसी के पास, वही उसका सुख है।

स्पृहा हम जगाते हैं। और स्पृहा जगाई जा सकती है न्यून के लिए।

इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है कि जैसा मैंने कहा कि लाओत्से से पहले सूत्र में नीतिशास्त्री और साधु-महात्मा, न्यायविद विरोध करेंगे। ऐसा इस दूसरे सूत्र में इकोनॉमिस्ट, अर्थशास्त्री विरोध करेंगे। अगर ठीक से हम समझें, तो अर्थशास्त्री कहते हैं कि इकोनॉमिक्स का अर्थ ही यह है कि वह न्यून के लिए संघर्ष है; वह जो कम है, उसके लिए संघर्ष है। असल में, वह उसी चीज की इकोनॉमिक वैल्यू है, जो न्यून है।

इसलिए हवा का कोई मूल्य नहीं है। गांव में पानी का कोई मूल्य नहीं है। थोड़े ही जमाने पहले जमीन का कोई मूल्य नहीं था। थोड़े ही जमाने बाद हवा का मूल्य हो जाएगा। क्योंकि हवा कम पड़ती जाती है। उसमें आक्सीजन क्षीण होती चली जाती है। लोग बढ़ते चले जाते हैं। इतनी भीड़ बढ़ती जाती है कि कल पचास साल बाद जिनकी क्षमता होगी, वे ही अपनी-अपनी आक्सीजन का बक्सा अपने साथ लटका कर घूमेंगे। जो गरीब

होंगे, वे देखेंगे कि ठीक है, जो मिल जाए हवा में इधर-उधर, उससे काम चलाएंगे। भीख मांगने की हालत हो जाएगी।

कोई आश्चर्य नहीं है कि पचास साल बाद कोई आदमी आपके दरवाजे पर आकर कहे कि थोड़ी आक्सीजन मिल जाए! बस जरा सी अपनी आक्सीजन के डिब्बे पर मुझे भी मुंह रख लेने दें, बहुत तड़प रहा हूं। क्योंकि न्यूयार्क की हवा में इतनी आक्सीजन कम है अभी भी कि वैज्ञानिक कहते हैं, हम चकित हैं कि आदमी जिंदा कैसे है! और विषाक्त गैसेस की इतनी मात्रा हो गई है कि डर है कि यह मात्रा में ज्यादा देर जीया नहीं जा सकेगा।

तो कल हवा की कीमत हो जाएगी। पानी की कभी कीमत न थी। अभी एक पचास साल पहले गांव में दूध की कोई कीमत न थी। न्यून होती है चीज और कीमत हो जाती है। सारा अर्थशास्त्र न्यून पर खड़ा होता है। अगर ठीक समझें, तो वैल्यू का मतलब ही होता है, वह जो न्यून है, उसकी कीमत। कीमत का मतलब, कितनी न्यून है! जितनी न्यून हो जाएगी, उतनी कीमत बढ़ जाएगी। जितनी ज्यादा हो जाएगी, उतनी कीमत कम हो जाएगी। इसलिए उन्नीस सौ तीस में अमरीका को अपनी लाखों गठरियां कपड़े की समुद्र में फेंक देनी पड़ीं। क्योंकि कपड़ा हो गया ज्यादा और बाजार में कीमत इतनी गिर जाएगी कि मर जाएंगे। तो उसको सागर में फेंक दिया, ताकि बाजार में कपड़ा अधिक न हो जाए। अधिक हो जाए, तो कीमत खतम हो जाए। बाजार में कीमत बनी रहे, तो कपड़े को सागर में डुबा दिया। और जमीन पर लाखों लोग नंगे हैं। लेकिन इकोनॉमिक्स की धुरी नहीं चलती, वह टूट जाए फौरन।

लाओत्से का बस चले, तो दुनिया में कोई इकोनॉमिक्स न हो। लाओत्से का बस चले, तो दुनिया में अर्थशास्त्र नहीं होगा। क्योंकि लाओत्से यह कहता है, न्यून को कीमत ही क्यों देते हो? जो ज्यादा है, उस पर ध्यान दो। जो पर्याप्त है, उस पर ध्यान दो। जो सबको मिल सकती है, उसको आदरणीय बनाओ। जो कम को मिल सकती है, उसकी बात छोड़ दो। कोई कोहनूर लटकाए फिरे, तो लटकाए फिरने दो। खबर कर दो कि यह आदमी पागल हो गया है। यह देखते हो, कितना बड़ा पत्थर लगाए हुए है गले में! स्कूल-स्कूल, घर-घर में बच्चों को समझा दो कि यह आदमी पत्थर लटकाता है, इसका दिमाग खराब है। तो हम इस जगत को अनुद्विग्न, मनुष्य के चित्त को अशांति के पार एक शांति के अलग जगत में ले जा सकते हैं।

लाओत्से ने कहा है कि मैंने सुना है कि मेरे बाप-दादों के जमाने में नदी के उस पार हमें रात में कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी। उस तरफ कोई गांव है। कभी-कभी खुला आकाश होता, तो उस गांव के मकानों में जलते हुए चूल्हों का धुआं भी दिखाई पड़ता था। लेकिन सुना है मैंने कि कोई कभी नदी के पार जाकर उस गांव को देखने नहीं गया कि वहां रहता कौन है। लोग इतने शांत थे कि व्यर्थ की अशांतियां नहीं लेते थे। अब इससे क्या मतलब है, कोई रहता होगा! कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी रात, तो मालूम होता था, कोई रहता होगा। कभी-कभी धुआं दिखाई पड़ता था मकानों का उठता आकाश में, तो लगता था, कोई रहता होगा। लेकिन कोई नदी पार करके जाने के लिए फिक्र में नहीं पड़ा कि जाकर देख आए, कौन रहता है।

और हमें चैन न मिलेगी, जब तक हम सारे ग्रह-उपग्रह पर न पहुंच जाएं कि कौन रहता है; कि कोई नहीं रहता, तो भी पता लगा लें कि कोई रहता तो नहीं है!

गहरे में यह सारी की सारी अनुद्विग्न या उद्विग्न स्थितियों पर निर्भर बात है। उद्विग्न जो है, वह भागा हुआ रहेगा, कोई भी बहाने से भागा हुआ रहेगा। जो अनुद्विग्न है, वह किसी भी बहाने से बैठा हुआ रहेगा। किसी भी

बहाने से शांत रहेगा, थिर रहेगा। उसमें व्यर्थ के बवाल नहीं उठेंगे, और व्यर्थ के भंवर नहीं उठेंगे, और व्यर्थ के तूफानों को वह आकर्षित नहीं करेगा, और व्यर्थ की जिज्ञासाओं में नहीं जाएगा।

सारा शिक्षा का आधार लाओत्से के हिसाब से और होना चाहिएः स्पृहा-मुक्त! नॉन-एंबीशस! महत्वाकांक्षा नहीं। किसी से गणित बन जाती है, तो ठीक है। और नहीं बन जाती है, तो भी ठीक है। उतना ही ठीक है। जिससे गणित नहीं बन जाती, उससे क्या बन सकता है, इसकी फिक्र करो, बजाय यह फिक्र करने के कि उससे गणित बने ही। उसको नष्ट मत करो। उससे क्या बन सकता है, इसकी फिक्र करो। कुछ जरूर बन सकता होगा। कुछ तो बन ही सकता होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर काम कर रहा है। लेकिन झपकी लग-लग जाती है उसको। सब काउंटरों पर बिठा कर परेशान हो गया मालिक उसे। वह जहां भी बैठता है, वहीं सो जाता है। आखिर मालिक ने कहा कि मुल्ला, क्या करें हम? तुम्हें कहां बिठाएं? तुम्हीं कुछ सुझाव दो।

उसने कहा कि वह जो पाजामा का काउंटर है, वहां मुझे बिठा दें। और एक तख्ती मेरे गले पर लगा दें कि हमारे पाजामे इतने सुखद हैं कि बेचने वाला भी सो जाता है। अनिद्रा का उपाय है हमारा पाजामा! और तो अब मैं क्या सलाह दे सकता हूं, मुल्ला ने कहा।

मुल्ला ने कहा कि मैं क्या करूं? सवाल नींद नहीं है, सवाल यह है कि जागने योग्य कोई उत्तेजना नहीं है।

आप ऐसे ही थोड़े जागे हुए हैं। अकारण थोड़े ही जागे हुए हैं। और रात अकारण, ऐसा तो नहीं है कि अकारण नहीं सो पाते हैं। वह नसरुद्दीन कह रहा है, असली बात यह है कि सड़क पर कौन गुजर रहा है, देखने की कोई उत्तेजना नहीं है। कौन भीतर गया, कौन बाहर गया, इसकी उत्तेजना नहीं है।

वह कहा करता था कि एक आदमी ने मेरे खीसे में हाथ डाल दिया, तो भी मैंने हाथ बढ़ा कर नहीं देखा कि यह क्या कर रहा है। क्योंकि मैंने कहा कि अगर खीसे में कुछ होगा, तो पहले ही कोई निकाल चुका होगा। मैंने कहा कि इतनी देर तक कहां बचेगा! अगर खीसे में कुछ होगा, तो अब तक कहां बचेगा! कोई निकाल ही चुका होगा।

रात एक चोर उसके घर में घुस गया। उसकी पत्नी ने उसे उठाया है कि उठो, घर में चोर है! तो मुल्ला ने कहा, उसको गलती अपनी खुद ही खोजने दो। हम क्यों साथ दें? उसकी गलती वह खुद ही खोज ले।

एक बार और उसके घर में चोर घुसा है, तो वह आलमारी में छिप गया। चोर सब मकान खोज डाले, कुछ न मिला। मकान का मालिक भी नहीं मिला। दरवाजा भी अंदर से बंद है, मालिक तो कम से कम होना ही चाहिए। जब कुछ भी न मिला, तो वह मालिक में उत्सुक हो गया कि इस आदमी को भी तो देखो, इस मकान में रहता है, कुछ भी नहीं है। तो सब जगह खोजा तो एक आलमारी का दरवाजा खोला, तो वह पीठ किए हुए, दीवार की तरफ मुंह किए हुए खड़ा था। उन्होंने कहा, अरे! तुम यहां क्या कर रहे हो? तो उसने कहा, मैं सिर्फ शर्म के मारे छिपा हूं कि तुम क्या कहोगे कि घर में कुछ भी नहीं है!

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे इसलिए नींद आ जाती है कि जगाने का कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। मैं किसलिए जगा रहूं? और अगर आपको रात नींद नहीं आती, तो उसका कारण यह है कि रात भी आपको कारण बने रहते हैं, जो जगाए रखते हैं। कैसे सो जाएं! रास्ता दिखाई ही पड़ता रहता है। रास्ते पर चलते लोग दिखाई ही पड़ते रहते हैं। दूकान पर आते ग्राहक दिखाई ही पड़ते रहते हैं। दिन में दी गई गालियां, की गई बातचीत सुनाई ही पड़ती रहती है। वह जारी ही रहती है उत्तेजना, इसलिए नहीं सो पाते। और मुल्ला ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं! कोई उत्तेजना नहीं, जो मुझे जगाए। नींद आ ही जाती है।

यह जो लाओत्से कह रहा है जिस अनुद्विग्न चित्त की बात, बिल्कुल दूसरा ही आदमी है वह जो अनुद्विग्न है। कुछ पाने की दौड़ नहीं है। जो मिला है, काफी है। जो मिला है, काफी से ज्यादा है। जो मिला है, वह धन्य है उसे पाकर। जो मिला है, वह कृतार्थ है। जो मिला है, वह अनुगृहीत है। जो मिला है, वह बहुत है, जरूरत से ज्यादा है। जो नहीं मिला है, वह उसके मन की दौड़ नहीं। जो नहीं मिला है, वह उसकी स्पृहा नहीं, वह उसकी मांग नहीं, वह उसकी अपेक्षा नहीं। जो नहीं मिला है, वह नहीं मिला है। उसकी बात ही नहीं है। वह उसके चित्त का हिस्सा ही नहीं है।

लेकिन हमारे चित्त का ढंग और है। जो मिला है, उसके प्रति हम अंधे हैं। और जो नहीं मिला है, उसके प्रति बहुत सजग हैं। जो मिला है, उसे हम भूल जाते हैं। जो नहीं मिला है, उसे हम याद रखते हैं। अगर मेरे पास आप सात दिन रहे, और सात दिन मैं कितना ही आपको दूं और एक दिन तेज आंख से देख दूं; सात दिन जो दिया, वह भूल जाएगा; वह जो तेज आंख है, फिर जिंदगी भर न भूलेगी। कोई व्यक्ति आपको कितना ही प्रेम दे वर्षों तक और एक दिन चूक जाए, वे वर्ष बेकार हो गए। जो नहीं मिला उस दिन, वह भारी कीमती हो गया। जो नहीं मिलता, जो नहीं है, हम उसी को ही पकड़ पाते हैं। हमारी सारी की सारी अटेंशन, सारा ध्यान अभाव पर लगा हुआ है।

मेरे दो हाथ हैं, दो पैर हैं, इन पर मेरा ध्यान नहीं है। एक अंगुली मेरी टूट जाए, बस मेरी जिंदगी बेकार हुई। हालांकि उसके होने से, जब तक वह थी, मुझे कोई मतलब न था। मैंने उसका कोई उपयोग न किया था। अंगुली थी मेरे पास, तब मैंने कभी भगवान को धन्यवाद न दिया था कि यह अंगुली आपने दी है। कोई प्रयोजन न था। जब तक थी, तब तक पता ही न चला। जब न रही, टूट गई, तब से मुझे पता चला। और तब से दुखी हूं, और तब से परेशान हूं, और तब से निंदा कर रहा हूं। तब से भगवान से विवाद चल रहा है कि मेरी अंगुली तोड़ कर बहुत अन्याय हो गया। देकर कभी कोई धन्यता न हुई थी; लेकर बड़ा अन्याय हो गया है।

और थी, तब मैंने उससे कुछ किया न था। उस अंगुली से मैंने कोई चित्र न बनाए थे। न कोई वीणा पर संगीत छेड़ा था। न उस अंगुली से किसी गिरते को सहारा दिया था। उस अंगुली से मैंने कुछ भी न किया था। वह थी या न थी, बराबर थी। मुझे पता ही न था उसके होने का। वह तो जिस दिन नहीं रही, उस दिन मैंने जाना कि बड़ा अभाव हो गया। और मजे की बात है, जिस अंगुली से मैंने कभी कुछ न किया था, उसके न होने से मैं परेशान क्यों हूं? क्योंकि कुछ भी तो खतम नहीं हो रहा, कुछ भी तो बंद नहीं हो रहा, कुछ तो छिन नहीं रहा है। लेकिन हमारे मन का ढंग यह हैः जो नहीं है, वह हमें दिखाई पड़ता है बहुत भारी होकर; और जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से कहता है, स्पृहा से मुक्त अगर हम चित्त निर्मित करें; यदि उसकी ओर, जो स्पृहणीय है, उनका ध्यान आकृष्ट न किया जाए, तो उनके हृदय अनुद्विग्न रहें।

हम आकृष्ट कर रहे हैं। पुराने जमाने में सारी दुनिया में जिनके पास धन होता, समाज का आग्रह होता था, धन का प्रदर्शन न करें। धन होना काफी है। कृपा करके उसका प्रदर्शन न करें, उसे दिखाते न फिरें, उसे उछालते न फिरें। क्योंकि उसका उछालना, उसका दिखाना न मालूम कितने लोगों के उद्विग्न होने का कारण हो जाए। इसलिए धनी आदमी का एक ही सबूत था, वह जो आदमी धन को उछालता नहीं फिरता था, वह सबूत था कि वह आदमी धनी है। गरीब ही धन को उछालते थे। जिनके पास कुछ नहीं था, वे कुछ दिखाना चाहते थे कि उनके पास कुछ है। जिनके पास सब था, वे ऐसे चुप होते थे, जैसे नहीं है।

एक सूफी कहानी मैंने सुनी है। सम्राटों की एक परंपरा में एक बेटा भिखारी है। कई पीढ़ियों से भीख मांगी जा रही है। लेकिन परंपरा सम्राटों की है। घर में कथा है कि कभी बाप-दादे किसी पीढ़ी में बड़े सम्राट थे, बड़े खजाने थे उनके पास। पर यह कुछ पता नहीं चलता कि वे खजाने कहां खो गए। कभी वे हारे, इसका पता नहीं चलता। कभी लूटे गए, इसका पता नहीं चलता। फिर यह भिखमंगापन कैसे आया? हुआ क्या? कुछ पता नहीं चलता। पीढ़ियों तक पता नहीं चला। फिर एक पीढ़ी में एक दिन अचानक एक फकीर घर पर आया और उसने उस घर के जवान लड़के को कहा कि अब तुम वह आदमी हो, जिसको खजानों की खबर दी जा सकती है। वी आर दि गार्जियंस!

उस युवक ने कहा, तुम कौन से गार्जियंस हो, हमें कुछ पता नहीं।

हमारे पास तुम्हारे बाप-दादे छोड़ गए हैं। हमारे पास, मतलब हमारे गुरु के पास, उनके गुरु के पास, फकीरों के पास छोड़ गए हैं कि जब हमारे घर में ऐसा आदमी पैदा हो, जो धन को प्रदर्शन करने में उत्सुक न हो, तब यह खजाना वापस सौंप देना। तो तुम वह आदमी हो। मैं तुम्हें खजाना सौंपने आया हूं।

उस युवक ने कहा, लेकिन मुझे कुछ सोचने का मौका दें।

उस फकीर ने कहा कि बिल्कुल ठीक, तुम्हीं वह आदमी हो, जिसकी तलाश थी।

धन के खजाने की कोई खबर देता, तो आप बैठे रहते? आप खड़े हो गए होते--कहां है? भीख मांग रहा था परिवार। उस युवक ने कहा, सोचने का मौका दें। जिम्मेवारी भारी है। और गरीबी में जीना उतना जटिल नहीं, धन पास हो और बिना प्रदर्शन किए रह जाना बहुत मुश्किल है। थोड़ा सोचने का मौका दें। ऐसी जल्दी भी क्या है? इतने दिन से आप सम्हाल ही रहे हैं, और थोड़े दिन सम्हालें। उस फकीर ने कहा, उठो! क्योंकि हम भी कब तक सम्हालते रहें? और तुम्हीं वह आदमी हो, क्योंकि लक्षण पूरे हो गए। क्योंकि हमारे पास जो दस्तावेज है उसमें कहा गया है कि जब भी कोई परिवार का हमारा आदमी कहे, सोचने का मौका दो, उसे तुम दे आना। हम हर पीढ़ी में आते रहे। लेकिन जिससे भी हमने पूछा, वह उठ कर खड़ा हो गया।

वह धन उसे सौंप दिया गया। सारे गांव में, आस-पास, दूर-दूर तक खबर पहुंच गई कि धन वापस मिल गया है। लेकिन भीख मांगनी तो जारी रही। सम्राट ने बुलाया उस युवक को और कहा कि पागल तो नहीं हो? या तो अफवाह है यह! हमने सुना है कि तुम्हें पुश्तैनी धन वापस मिल गया है। खजाना सौंप दिया गया है। फिर यह भीख क्यों मांग रहे हो? उस युवक ने कहा कि पहले तो भीख मांगना एक मजबूरी थी, अब एक कर्तव्य है। नाउ इट इ.ज ए ड्यूटी। क्योंकि इसी शर्त पर वह धन मुझे सौंपा गया है कि उसका प्रदर्शन न हो। और आज मैं घर बैठ जाऊं और भीख मांगने न जाऊं, तो इससे बड़ा प्रदर्शन और क्या होगा? उसने कहा कि यानी मामला ही खतम हो गया, और प्रदर्शन और ज्यादा क्या हो सकता है? लोग अगर मुझे घर में बैठा देख लें कि आज भीख मांगने नहीं गया--क्योंकि रोज जो मिलता है, उसी से तो काम चलता है--तो प्रदर्शन तो हो जाएगा।

धन जब प्रदर्शन बनता है, तो स्पृहा पैदा होती है। लेकिन धन तो हम कमाते ही इसलिए हैं कि प्रदर्शन कर सकें। अगर प्रदर्शन ही न करना हो, तो कमाने की जरूरत क्या है? जो वस्त्र पहनने ही न हों, उनको बनवाने की क्या जरूरत है? और जिन मकानों में रहना ही न हो, उनको खड़ा क्या करना है? जिसका कभी प्रदर्शन ही न करना हो, उसको रखने का भी क्या उपयोग है? हम कहेंगे ऐसा।

लेकिन लाओत्से कहता है कि अगर हम लोगों के ध्यान आकर्षित न करें, तो लोग परम शांति में जी सकते हैं। और ये जो एक्झिबीशनिस्ट, प्रदर्शनकारी हैं, रुग्ण हैं। क्योंकि जो तुम्हारे पास है, उसे भोगना तो स्वस्थ है, उसे दिखाना रुग्ण है। इसे थोड़ा समझ लें। जो मेरे पास है, उसे अनुग्रहपूर्वक भोगना तो स्वस्थ है; लेकिन उसे

दिखाए फिरना रुग्ण है, बीमार है। असल में, दिखाता वही फिरता है, जो भोग नहीं पाता। जो भोग लेता है, उसे दिखाने की जरूरत नहीं रह जाती। जिस चीज को आप भोग सकते हैं, उसे आप दिखाते नहीं फिरते। जिसको आप भोग नहीं सकते, उसे आप दिखाते फिरते हैं। सभी तलों पर एक्झिबीशन जो है... ।

मनोविज्ञान में एक्झिबीशनिस्ट एक खास तरह के लोगों को कहा जाता है। ऐसे लोग, जो कहीं भी, मौके-बेमौके अपनी जननेंद्रियों को दूसरों को दिखा दें, उनको एक्झिबीशनिस्ट कहते हैं वे। बड़ा वर्ग है दुनिया में एक्झिबीशनिस्ट का। व्यवस्था से भी चलता है वह वर्ग, अव्यवस्था से भी चलता है। व्यवस्था से चलता है, तब तो हम एतराज नहीं उठाते, क्योंकि वह व्यवस्था के भीतर चलता है। जब अव्यवस्था से कोई करता है, तब हम एतराज उठाते हैं। पर बड़ी हैरानी मनोवैज्ञानिकों को थी कि इससे क्या प्रयोजन है कि एक आदमी अचानक, आप सड़क से चले जा रहे हैं, और आदमी नंगा खड़ा होकर आपको अपनी नग्नता दिखा दे! इससे क्या मिलेगा?

पर जैसे-जैसे इसकी खोज चलती है, वैसे-वैसे पता चलता है कि वही आदमी इस तरह के प्रदर्शन में संलग्न होता है, जिसने कभी यौन का कोई सुख नहीं पाया। जिसने यौन को कभी भोगा नहीं, वह एक्झिबीशनिस्ट हो जाता है। अब वह दिखाने का ही सुख ले रहा है, हालांकि दिखाने से कोई सुख मिलने का प्रयोजन नहीं है। कोई अर्थ नहीं है। आप अपने शरीर को नग्न किसी को दिखा दें, इससे कोई मतलब नहीं है। न आपको कुछ मिलता, न दूसरे को कुछ मिलता। न कोई प्रयोजन हल होता है। लेकिन इस दिखाने वाले का कोई न कोई प्रयोजन हल होता है।

और आप हैरान होंगे जान कर कि एक्झिबीशनिस्ट ने क्या-क्या तरकीबें निकाली हैं! यूनान में पुरुषों ने बहुत चुस्त कपड़े निकाले थे कि उनकी जननेंद्रिय अलग दिखाई पड़ती रहे। उतने ही से तृप्ति नहीं मिली एक्झिबीशनिस्ट को, तो उन्होंने चमड़े की जननेंद्रियां बनवा ली थीं, जिनको कि वे कपड़ों के अंदर पहने रखते थे। वे दिखाई पड़ें।

हमें आज हैरानी मालूम होगी। लेकिन स्त्रियां सारी दुनिया में यही, अपने स्तनों के साथ यही कर रही हैं। लेकिन वह हमारी व्यवस्था में है, इसलिए हमको दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा ही यूनान में दो हजार साल पहले किसी को दिखाई नहीं पड़ता था। अब हमको समझ में आता है, क्या पागलपन की बात थी! अभी जब एथेंस के म्यूजियम में रखी हैं चमड़े की जननेंद्रियां, तो लोग चकित होते हैं कि कैसे पागल थे! इसकी क्या जरूरत थी? लेकिन दो हजार साल बाद--शायद दो हजार साल भी ज्यादा देर है, और जल्दी--स्त्रियां भी अपने स्तनों को दिखाने का जो-जो इंतजाम सारी दुनिया में किए हुए हैं, वह भी एक्झिबीशन में, म्यूजियम में रखा होगा। और आने वाली भविष्य की स्त्रियां हैरान होंगी कि स्तनों को इतना दिखाने की क्या जरूरत थी? क्या प्रयोजन था?

कोई भी प्रयोजन नहीं है। लेकिन कहीं कोई बात है, कहीं कुछ मामला है। और वह मामला यह है कि जिस चीज को हम भोगने में असमर्थ होते चले जाते हैं, उसको हम प्रदर्शन करने लगते हैं। जिस चीज को हम भोग लेते हैं, उसको हम प्रदर्शन नहीं करते। जो आदमी बहुत मजे से, आनंद से खाना खा लेता है और पचा लेता है, वह चर्चा नहीं करता फिरता कि उसके घर में आज क्या बना। वह पार्टियां नहीं देता कि लोग देखें।

नसरुद्दीन एक दफा सम्राट के घर निमंत्रित हुआ है। सम्राट का नियम है कि वह हर वर्ष अपने जन्मदिन पर देश के सभी खास-खास लोगों को बुलाता है। नसरुद्दीन भी बुलाया गया, पहली दफा। कोई पांच सौ मेहमान हैं। थालियां सजती जाती हैं, लेकिन खाना कुछ शुरू नहीं होता। थालियां लगती चली जाती हैं एक से एक सुंदर। और ऐसी प्रचलित बात है कि वह सम्राट हर बार नई से नई चीजें बनवाता है। सुगंध से भर गया है

हॉल। भोजन आते जा रहे हैं, लगते जा रहे हैं। नसरुद्दीन बड़ा बेचैन है। उसकी भूख काबू के बाहर होती चली जा रही है। आखिर वह चिल्लाया कि भाइयो, यह हो क्या रहा है? भोजन देखने के लिए है या करने के लिए?

उसके पड़ोस के लोगों ने कहा कि ठहरो, तुम अशिष्टता कर रहे हो। इससे पता चलता है कि तुम किसी भूखे घर से आते हो। सब लग जाने दो, शांति से देखो, दूसरी बातें करो। इसकी तरफ तो देखो ही मत। खाने के वक्त भी पूरा मत खा लेना, छोड़ देना। नहीं तो लोग समझेंगे, तुम गरीब आदमी हो, तुम्हारे पास खाने को नहीं है।

नसरुद्दीन ने कहा, यह बताना बेहतर है कि मेरे पास भोजन है या यह बताना कि मेरे पास भूख है!

भोजन तो वह आदमी बताता है, जिसके पास भूख नहीं रह जाती। जब भूख नहीं रह जाती, तब भोजन दिखाना पड़ता है। जब तक भूख है, तब तक भोजन दिखाया नहीं जाता, किया जाता है। तो जो हम प्रदर्शन करते हैं, वह सब उन्हीं-उन्हीं चीजों का प्रदर्शन है, जिन्हें हम बिल्कुल नहीं भोग पाते। रुग्ण चित्त का लक्षण है।

लाओत्से कहता है, ध्यान आकृष्ट न किया जाए लोगों का उस तरफ, जो न्यून है, जो व्यर्थ है, जिसका कोई आंतरिक मूल्य नहीं, तो लोग उद्विग्न न हों, अनुद्विग्न रहें।

और लोग अनुद्विग्न रह जाएं, तो उनके जीवन में दूसरी ही यात्रा शुरू हो जाती है। उद्विग्नता ले जाती है संसार में, अनुद्विग्नता ले जाती है परमात्मा में। उद्विग्नता बनती है यात्रा संसार की, संताप की; अनुद्विग्नता बनती है यात्रा मुक्ति की, मोक्ष की, सत्य की।

दूसरे सूत्र पर कल बात करेंगे।

दसवां प्रवचन

भरे पेट और खाली मन का राज--ताओ

Chapter 3 : Sutra 2

Therefore, the Sage, in exercise of his Government empties their minds, fills their bellies, weakens their wills and strengthens their bones.

अध्याय 3 : सूत्र 2

इसलिए संत और प्रबुद्ध अपनी शासन व्यवस्था में उनके
उदरों को भरते हैं, किंतु उनके मनों को शून्य करते हैं।
वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते हैं, परंतु उनकी
इच्छा-शक्ति को निर्बल करते हैं।

लाओत्से की सभी बातें उलटी हैं। उलटी हमें दिखाई पड़ती हैं। और कारण ऐसा नहीं है कि लाओत्से की बात उलटी है, कारण ऐसा है कि हम सब उलटे खड़े हैं।

लाओत्से का एक शिष्य च्वांगत्से मरने के करीब था। अंतिम क्षणों में उसके मित्रों ने पूछा, तुम्हारी कोई इच्छा है? तो उसने कहा, एक ही इच्छा है मेरी कि इस पृथ्वी पर मैं पैरों के बल खड़ा था, उस परलोक में मैं सिर के बल खड़ा होना चाहता हूं। शिष्य बहुत परेशान हुए। और उन्होंने कहा, हमारी कुछ समझ में नहीं आता। क्या आप परलोक में उलटे खड़े होना चाहते हैं? तो च्वांगत्से ने कहा, जिसे तुम सीधा खड़ा होना कहते हो, उसे इतना उलटा पाया कि आने वाले जीवन में उलटा खड़े होकर प्रयोग करना चाहता हूं, शायद वही सीधा हो।

लाओत्से की यह बात कि जो जानते हैं, जो जागे हुए हैं, वे अपनी शासन-व्यवस्था में लोगों के पेटों को तो भरते हैं, उदर को तो भरते हैं, उनकी भूख को तो पूरा करते हैं, लेकिन उनके मन को शून्य करते हैं। उनकी शरीर की तो सारी जरूरतें पूरी हों, इसका ध्यान रखते हैं; लेकिन उनका मन महत्वाकांक्षी न बने, इस दिशा में प्रयास करते हैं।

साधारणतः हम शरीर कितना ही कटे, कट जाए; गले, गल जाए; शरीर को कुर्बान करना पड़े, हो जाए; लेकिन मन की आकांक्षा पूरी हो, मन की वासनाएं पूरी हों। और मन की वासनाओं की वेदी पर हम शरीर को चढ़ाने को सदा तत्पर हैं, चढ़ाते हैं। हमारा पूरा जीवन मन की वासनाओं को पूरा करने में शरीर की हत्या है। और साधारणतः इसे ही हम बुद्धिमानी कहेंगे। लेकिन लाओत्से कहता है कि पेट तो लोगों के भरे हुए हों, लेकिन मन खाली।

मन के खाली होने का क्या अर्थ है? और पेट के भरे होने का क्या अर्थ है? लोग शरीर से तो स्वस्थ हों, शरीर तो उनका भरा-पूरा हो, शरीर तो उनका बलशाली हो, लेकिन मन उनका बिल्कुल कोरा, खाली, शून्य, एम्पटी हो। और परम स्वास्थ्य की अवस्था वही है, जब शरीर भरा होता और मन खाली होता।

लेकिन हम सब मन को बहुत भर लेते हैं। हमारी पूरी जिंदगी मन को भरने की कोशिश है। विचारों से, वासनाओं से, महत्वाकांक्षाओं से मन को हम भरते चले जाते हैं। धीरे-धीरे शरीर तो हमारा बहुत छोटा रह जाता है, मन बहुत बड़ा हो जाता है। शरीर तो सिर्फ घसिटता है मन के पीछे।

लाओत्से कहता है, मन तो हो खाली! लाओत्से ने जगह-जगह जो उदाहरण लिए हैं, वे ऐसे हैं। लाओत्से कहता है कि जैसे बर्तन होता खाली। किस चीज को आप बर्तन कहते हैं? लाओत्से बार-बार पूछता है, किस चीज को बर्तन कहते हैं? बर्तन की दीवार को या उसके भीतर के खालीपन को?

आमतौर से हम बर्तन की दीवार को बर्तन कहते हैं। लाओत्से कहता है, दीवार तो बिल्कुल बेकार है। वह जो भीतर खाली जगह है, वही काम में आती है। भरे हुए बर्तन को तो कोई न खरीदेगा।

मकान आप दीवार को कहते हैं कि दीवार के भीतर जो खाली जगह है उसको? हम आमतौर से मकान दीवारों को कहते हैं। और जब हम मकान बनाने की सोचते हैं, तो दीवारें बनाने की सोचते हैं। लाओत्से कहता है, बड़ी उलटी तुम्हारी समझ है। मकान तो वह है, जो दीवारों के भीतर खाली जगह है। क्योंकि कोई आदमी दीवारों में नहीं रहता, खाली जगह में रहता है। और यह खाली जगह अगर भरी हो, तो मकान बेकार है।

तो शरीर तो सिर्फ दीवार है। वह तो मजबूत होनी चाहिए। वह भीतर जो मन है, वही महल है, वह खाली होना चाहिए। और उस महल के भीतर भी जो मनुष्य की चेतना है, आत्मा है, वह निवासी है। अगर मन खाली हो, तो ही वह निवासी ठीक से रह पाए, तो ही स्पेस और जगह होती है। मन अगर बहुत भर जाता है, तो अक्सर हालत ऐसी होती है कि मकान तो आपके पास है, लेकिन इतना कबाड़ से भरा है कि आप मकान के बाहर ही सोते हैं, बाहर ही रहते हैं। क्योंकि भीतर जगह नहीं है।

अगर हम एक ऐसे आदमी की कल्पना करें, जिसके पास बड़ा महल है, लेकिन सामान इतना है कि भीतर जाने का उपाय नहीं है, तो बाहर बरामदे में ही निवास करता है। हम सब वैसे ही आदमी हैं। मन तो इतना भरा है कि वहां आत्मा के रहने की जगह नहीं हो सकती, बाहर ही भटकना पड़ता है। जब भी भीतर जाएंगे, तो आत्मा नहीं मिलेगी, मन ही मिलेगा। कोई विचार, कोई वृत्ति, कोई वासना मिलेगी। क्योंकि इतना भरा है सब। घर के भीतर जाते हैं, तो फर्नीचर तो मिलता है, मालिक नहीं मिलता।

लाओत्से कहता है, जो ज्ञानी हैं, वे कहते हैं, शरीर तो भरा-पूरा हो, पुष्ट हो, मन खाली हो। मन ऐसा हो, जैसे है ही नहीं। और लाओत्से कहता है, मन के खाली होने का अर्थ है, अ-मन हो, नो माइंड हो, जैसे है ही नहीं। जैसे मन की कोई बात ही नहीं है भीतर। उस खाली मन में ही जीवन की परम कला का आविर्भाव होता है और जीवन के परम दर्शन होने शुरू होते हैं।

"वे उनकी हड्डियों को दृढ़तर बनाते हैं, परंतु उनकी इच्छा-शक्ति को निर्बल करते हैं।"

हड्डियों को मजबूत बनाते हैं, लेकिन उनके विल को, उनके संकल्प को कमजोर करते हैं, क्षीण करते हैं। हम सब तो संकल्प को मजबूत करते हैं। हम तो किसी व्यक्ति से कहते हैं कि क्या तुममें कोई विल-पावर ही नहीं? तुममें कोई संकल्प की शक्ति नहीं? अगर संकल्प की शक्ति नहीं, तो तुम बिना रीढ़ के आदमी हो! तुम आदमी ही नहीं! और लाओत्से कहता है, ज्ञानी संकल्प की शक्ति को क्षीण करते हैं। अजीब बात है। हम तो एक-

एक बच्चे को सिखा रहे हैं कि विल बढ़नी चाहिए। इस सदी के जो बहुत बुद्धिमान लोग हैं, उन सभी का ख्याल है कि आदमी में संकल्प बढ़ना चाहिए।

नीत्शे ने बहुत अदभुत किताब लिखी हैः विल टु पावर! नीत्शे का ख्याल है कि आदमी के पूरे जीवन का एक ही लक्ष्य है कि शक्ति का संकल्प। शक्ति कैसे मिले, इसका संकल्प। और जो आदमी जितना संकल्पवान है, उतना महान है। कारलाइल या इमर्सन, ये सारे के सारे पश्चिम के विचारक संकल्प पर जोर देते हैं कि संकल्प मजबूत हो। तुम्हारी इच्छा-शक्ति ऐसी होनी चाहिए कि अटल पत्थर की दीवार; कि जगत हिल जाए, लेकिन तुम न हिलो। टूट जाओ, मिट जाओ, झुको मत।

लाओत्से कहता है कि हड्डियां हों मजबूत, संकल्प-शक्ति बिल्कुल क्षीण हो, हो ही नहीं। क्यों? क्योंकि मनुष्य के सामने दो चीजों के बीच चुनाव हैः या तो संकल्प या समर्पण। जो संकल्प करेगा, उसका अहंकार मजबूत होगा। जो समर्पण करेगा, उसका अहंकार गलेगा और मिटेगा। जो संकल्प के रास्ते से चलेगा, वह अपने पर पहुंचेगा। और जो समर्पण के रास्ते से चलेगा, वह परमात्मा पर पहुंचता है। परमात्मा तक पहुंचना हो, तो छोड़ देना पड़ेगा अपने को। और स्वयं के मैं को मजबूत करना हो, तो फिर पकड़ लेना पड़ेगा अपने को।

तो शरीर चाहे मिट जाए, हड्डियां चाहे टूट जाएं, संकल्प न टूटे। ऐसी हम सब की व्यवस्था है। इसको हम सीधी व्यवस्था कहते हैं। क्योंकि हम कहते हैं, कैसे कमजोर आदमी हो? लड़ नहीं सकते, जूझ नहीं सकते, शक्ति नहीं तुममें कोई। और लाओत्से कहता है, यह शक्ति होनी ही नहीं चाहिए। नहीं, ऐसा नहीं कि तुम टूट जाओ लेकिन झुको मत; लाओत्से कहता है, तुम ऐसे होओ कि तुम्हें पता ही न चले कि तुम कब झुक गए। हवा को पता भी न चले कि तुमने रेसिस्ट किया, कि तुमने थोड़ा भी प्रतिरोध किया। हवा आए कि तुम पहले ही झुक जाओ, जैसे घास के छोटे-छोटे तिनके झुक जाते हैं। अड़ियल वृक्ष अकड़ कर खड़े रह जाते हैं, तूफान से टक्कर लेते हैं; छोटे पौधे झुक जाते हैं। और बड़ा मजा यह है कि छोटे पौधे तूफान को जीत लेते हैं और बड़े पौधे तूफान से मर जाते हैं।

लाओत्से कहता है, अगर तुम लड़ोगे, तो हारोगे। क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, तुम्हें पता नहीं, वह कौन है। एक-एक व्यक्ति जब भी लड़ रहा है, तो अनंत शक्ति से लड़ रहा है। हमारे चारों ओर जो अनंत निवास कर रहा है, हम उससे ही लड़ रहे हैं। लाओत्से कहता है, लड़ो मत, लड़ो ही मत। लड़ने का सवाल ही न उठे, तुम अपने को इतना अलग ही मत मानो कि तुम्हें लड़ना भी है। तुम गिर जाओ। तुम तूफान के साथ ही हो जाओ। कोआपरेट विद इट, उसका सहयोग करो। तूफान पता ही नहीं चलेगा कि तुम्हारे पास से कैसे गुजर गया। और तूफान के गुजर जाने के बाद तुम पाओगे कि तुम्हें तूफान ने छुआ भी नहीं। और तुम पाओगे, तुम्हारी शक्ति का इंच भर भी नष्ट नहीं हुआ। क्योंकि तुम लड़े ही नहीं। और हारने का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि जिसका तूफान है, उसी के तुम हो।

वह जो लड़ने आया था, तुम्हें लगा था कि लड़ने आया है। वह लड़ने आया नहीं था। तुम्हारे संकल्प की वजह से तुम्हें लगा था कि लड़ने आया है। तुम लड़ने को उत्सुक थे, इसलिए तुमने उसे शत्रु की तरह व्याख्या कर ली। अन्यथा कोई व्याख्या की जरूरत न थी।

इसे थोड़ा समझें। सच में कोई शत्रु होता है? या हम व्याख्या करते हैं कि वह शत्रु है। और व्याख्या हम क्यों करते हैं? हम व्याख्या इसलिए करते हैं कि हम लड़ना चाहते हैं। अगर मैं लड़ना ही नहीं चाहता, तो एक बात निश्चित है कि मैं शत्रु की व्याख्या नहीं करूंगा कि कोई शत्रु है। लड़ना चाहता हूं, तो शत्रु को निर्मित करूंगा। सब शत्रुता संकल्प से निर्मित होती है। सब संघर्ष संकल्प से निर्मित होता है।

लाओत्से कहता है, तुम तो ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं। जैसे तलवार हवा से निकल जाती है। हवा कहीं कटती नहीं, क्योंकि हवा रेसिस्ट नहीं करती। पानी से तलवार गुजार देते हो, पानी कटता नहीं। तलवार काट भी नहीं पाती कि पानी जुड़ जाता है। क्योंकि पानी रेसिस्ट नहीं करता, वह प्रतिरोध नहीं करता। तुम भी लड़ो मत। लाओत्से कहता है, तुम भी हवा-पानी जैसे हो जाओ। काटने वाली शक्ति को गुजर जाने दो। तुम अगर न लड़ोगे, तुम उसके गुजरते ही पाओगे कि जुड़ गए हो। तुम टूटे ही नहीं, तुम खंडित ही नहीं हुए। अगर तुम लड़े, तो तुम टूट जाओगे।

संकल्प को हम जैसा आदर देते हैं, लाओत्से ठीक उससे विपरीत उसकी व्याख्या करता है। हम आदर देंगे, क्योंकि हमारा सारा जीवन का ढांचा अहंकार पर निर्मित है, महत्वाकांक्षा पर खड़ा है। दौड़ना है, कहीं पहुंचना है, कुछ पाना है। धन, यश, पद, मर्यादा, कुछ उपलब्ध करना है। किन्हीं से कुछ छीनना है; किन्हीं को, कुछ हमसे न छीन लें, इस से रोकना है। जीवन हमारा एक संघर्ष है। हमारे देखने का ढंग संघर्ष का ढंग है, झुकना नहीं है। झुके, तो भारी ग्लानि होगी।

लाओत्से कहता है, यह जीवन के सोचने का ढंग बीमारी में ले जाता है, रुग्णता में ले जाता है। तुम ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं।

यह जो न होने जैसा होना है, वहां संकल्प न होगा। जापान में जूडो या जुजुत्सु की पूरी कला लाओत्से के इसी सूत्र पर खड़ी है। उसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। उससे समझ में आ जाएगा कि लाओत्से क्या कहता है।

अगर मैं आपको घूंसा मारूं, तो जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया मालूम होती है, वह यह है कि आप मेरे घूंसे का विरोध करें। विरोध दो तरह का होगा। अगर आपको मौका मिला, तो आप मेरे घूंसे को रोकेंगे या घूंसे के जवाब में घूंसा उठाएंगे। अगर मौका न मिला, फिर भी घूंसा जब आपके शरीर पर पड़ेगा, तो आपके शरीर के रग-रेशे से प्रतिरोध उठेगा। आपकी मांस-पेशियां, आपके स्नायु, सब सख्त होकर घूंसे को रोकेंगे कि भीतर तक चोट न पहुंच जाए। आपकी हड्डियां कड़ी हो जाएंगी। आपका शरीर भिंच जाएगा, खिंच जाएगा, ताकि सख्ती से आप दीवार बना लें और घूंसे की चोट भीतर न पहुंच पाए।

जूडो की कला इससे बिल्कुल उलटी है। और जूडो की कला से बड़ी कोई कला नहीं है युद्ध के मामले में। और जूडो का थोड़ा सा जानकार भी आपके बड़े से बड़े पहलवान को क्षण भर में चित्त कर देगा। और चित्त कर देगा इस तरकीब से कि लड़ेगा नहीं। जूडो की कला यह कहती है कि जब तुम्हें कोई घूंसा मारे, तो तुम घूंसे को पी जाओ। कोआपरेट विद इट। तुम उससे लड़ो मत। जब तुम पर कोई घूंसा मारे, तो तुम ऐसे हो जाओ, जैसे कि तुम एक तकिए जैसे हो। घूंसा तुम पर लग गया और तुम पी गए।

फर्क समझ लें, घूंसे के विरोध में प्रतिरोध और घूंसे को पी जाने का। घूंसा आपके ऊपर मारा गया है, आप सहयोग करो और घूंसे को पी जाओ। उससे कहीं भी लड़ो मत, किसी तल पर भी।

और जूडो कहता है, घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जाएगा। घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जाएगा। क्योंकि घूंसा मारने वाला बहुत शक्ति और बहुत संकल्प से मार रहा है। और अगर आपने बिल्कुल जगह दे दी, तो उसकी हालत ठीक वैसी हो जाएगी, जैसे एक रस्सी को पकड़ कर आप खींच रहे हैं और मैं खींच रहा हूं, और मैंने रस्सी छोड़ दी; मैंने खींचा ही नहीं, मैंने प्रतिरोध न किया; मैंने कहा, आप खींचते हो, ले जाओ। तो आप गिर पड़ोगे।

जूडो की कला कहती है, मारो मत। जब कोई मारे, तो उसके सहयोगी हो जाओ, उसको दुश्मन मत मानो। मानो कि जैसे वह अपने ही शरीर का एक हिस्सा है। और तब थोड़ी ही देर में मारने वाला थक जाएगा

और परेशान हो जाएगा। उसकी शक्ति क्षीण होगी। क्योंकि हर घूंसे में शक्ति बाहर फेंकी जा रही है। और आपकी शक्ति क्षीण नहीं होगी। बल्कि जूडो कहता है कि उसके घूंसे से जो शक्ति निकल रही है, वह भी आप पी जाओगे, वह भी आपको मिल जाएगी। पांच मिनट के भीतर जूडो का ठीक से जानने वाला आदमी किसी भी तरह के आदमी को परास्त कर देता है। परास्त करना नहीं पड़ता, वह परास्त हो जाता है।

एक बहुत प्रसिद्ध कथा है जूडो की। एक बहुत बड़ा तलवारबाज है, एक बड़ा सोड्र्समैन है। वह इतना बड़ा तलवारबाज है कि जापान में उसका कोई मुकाबला नहीं है। एक रात वह अपने घर लौटा है, दो बजे हैं। जब वह अपने बिस्तर पर लेटने लगा, तो उसने देखा, एक बड़ा चूहा निकला है दीवार से। उसे बड़ा क्रोध आया। उसने चूहे को डराने-धमकाने की कोशिश की अपने बिस्तर पर से ही, लेकिन चूहा अपनी जगह पर बैठा रहा। उसे बड़ी हैरानी हुई। वह बड़े-बड़े लोगों को धमका दे, तो भाग खड़े होते हैं! चूहा! उसको क्रोध इतना आ गया कि उसके पास में ही उसकी सीखने की लकड़ी की तलवार पड़ी थी, उसने उठा कर जोर से चूहे पर हमला किया। हमला उसने इतने क्रोध में किया, चूहा जरा इंच भर सरक गया और उसकी तलवार जमीन पर पड़ी और टुकड़े-टुकड़े हो गई, और चूहा अपनी जगह बैठा रहा। तब जरा उसे घबराहट पैदा हो गई। चूहा कोई साधारण नहीं मालूम होता। उसके वार को चूक जाना, उसका वार चूक जाए, इसकी कल्पना भी नहीं थी।

वह अपनी असली तलवार लेकर आ गया। लेकिन जब चूहे को मारने के लिए कोई असली तलवार लेकर आता है, तो उसकी हार निश्चित है। असली तलवार लेकर आ गया जब वह, तभी हार निश्चित हो गई। चूहे को मारने के लिए असली तलवार एक योद्धा को लानी पड़े! चूहे से डर तो गया वह बहुत। और चूहा असाधारण है। हाथ उसका कंपने लगा। और उसे लगा कि अगर असली तलवार टूट गई, तो फिर इस अपमान को सुधारने का कोई उपाय न रह जाएगा। उसने बहुत सम्हल कर मारा। और जो जानते हैं, वे कहते हैं, जितना सम्हल कर आप निशाना लगाएंगे, उतना ही चूक जाएगा। क्योंकि सम्हलने का मतलब है कि भीतर डर है, भीतर घबड़ाहट है, कंपन है। अगर भीतर कोई डर नहीं, घबड़ाहट नहीं, तो आदमी सम्हल कर काम नहीं करता। काम करता है और हो जाता है। उसने तलवार मारी उसे। जिंदगी में उसने बहुत बार तलवार उठाई और चलाई और वह कभी चूका नहीं था। एक क्षण उसका हाथ बीच में कंपा और जब तलवार नीचे पड़ी, तो टुकड़े-टुकड़े हो गई। चूहा जरा सा हट गया था।

उस तलवारबाज की समझ के बाहर हो गई बात। उसने होश खो दिया। कहानी कहती है कि उसने गांव में खबर की कि किसी के पास कोई जानदार बिल्ली हो, तो ले आओ। और दूसरे दिन गांव में जो बड़े से बड़ा धनपति था, उसने अपनी बिल्ली भेजी। वह कई चूहों को मार चुकी थी। लेकिन तलवारबाज डरा हुआ था। और जिस धनपति ने अपनी बिल्ली भेजी थी, वह भी डरा हुआ था। क्योंकि जब तलवारबाज की तलवार टूट गई हो, तो बिल्ली कहां तक सफल होगी, यह भय है। और बिल्ली को भी खबर मिल गई थी। और तलवारबाज बहुत बड़ा था। बिल्ली ने बहुत चूहे मारे थे, लेकिन इस चूहे से आतंकित हो गई थी। रात भर सो न पाई। सुबह जब चली, तो पूरी तैयारी से चली। रास्ते में पच्चीस योजनाएं बनाईं। कभी-कभी उसके मन को भी हुआ, मैं यह क्या कर रही हूं! चूहे तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं। मैं योजना कर रही हूं! लेकिन योजना कर लेनी उचित थी। चूहा असाधारण मालूम होता था।

बिल्ली दरवाजे पर आई। एक क्षण उसने भीतर देखा, चूहे को देख कर कंप गई। चूहा बैठा था। तलवार टुकड़े-टुकड़े पड़ोस में पड़ी थी। इसके पहले कि बिल्ली आगे बढ़े, चूहा आगे बढ़ा। बिल्ली ने बहुत चूहे देखे थे। लेकिन कोई चूहा बिल्ली को देख कर आगे बढ़ेगा! बिल्ली एकदम बाहर हो गई।

तलवारबाज की हिम्मत बिल्कुल टूट गई कि अब क्या होगा! सम्राट को खबर की गई कि आपके राजमहल की बिल्ली भेज दी जाए, अब कोई और उपाय नहीं है। सम्राट के पास जो बिल्ली थी, वह निश्चित ही देश की श्रेष्ठतम, कुशल बिल्ली थी। लेकिन वही हुआ जो होना था। सम्राट की बिल्ली ने चलते वक्त सम्राट से कहा, आपको शर्म आनी चाहिए, ऐसे छोटे-मोटे चूहों को मारने को मुझे भेजते हैं। मैं कोई साधारण बिल्ली नहीं हूं!

लेकिन यह भी उसने अपनी रक्षा के लिए कहा था। खबरें पहुंच गई थीं कि चूहा आगे बढ़ा, कि बिल्ली वापस लौट गई, कि तलवार टूट गई, कि योद्धा हार गया है, कि चूहे का आतंक पूरे गांव पर छाया हुआ है, चूहा साधारण नहीं है। लेकिन बचाव के लिए उसने राजा से कहा कि इस साधारण से चूहे के लिए मुझे भेजते हैं! सम्राट ने कहा, चूहा साधारण नहीं है। और आतंकित मैं भी हूं कि तू लौट तो न आएगी!

जो होना था, वही हुआ। बिल्ली गई। उसने जोर से झपट्टा मारा। लेकिन चूक गई। दीवार से उसका मुंह टकराया, लहूलुहान होकर वापस लौट गई। चूहा अपनी जगह था।

गांव में एक फकीर के पास और एक बिल्ली थी। इस सम्राट की बिल्ली ने ही कहा कि अब और कुछ रास्ता नहीं है, सिर्फ उस फकीर के पास एक बिल्ली है जो हम सब की गुरु है और जिससे हमने कला सीखी है। शायद उसे कुछ पता हो। वह मास्टर कैट थी। उस बिल्ली को बुलाया गया। सारे गांव की बिल्लियां इकट्ठी हो गईं। कोई पांच सौ बिल्लियों ने भीड़ लगा ली मकान के आस-पास, क्योंकि यह चमत्कार का मामला था। और अगर फकीर की बिल्ली हारती है, तो फिर बिल्ली सदा के लिए चूहों से हार जाएगी।

चूहा अपनी जगह बैठा था। फकीर की बिल्ली जब भीतर जाने लगी, तो सभी बिल्लियों ने सलाह दी कि देखो ऐसा करना, कि देखो ऐसा करना, कुछ ऐसा कर लेना! उस फकीर की बिल्ली ने कहा, नासमझो, अगर योजना बनाओगी चूहे को पकड़ने की, तो चूहे को कभी न पकड़ पाओगी। क्योंकि जिस बिल्ली ने योजना बनाई, वह हार गई। योजना बनाने का मतलब ही यह है कि चूहे से डर गए तुम। चूहा ही है न! पकड़ लेंगे। कोई पकड़ने में कला की जरूरत नहीं है, बिल्ली होना ही हमारी कला है। हम पकड़ लेंगे। योजना मैं नहीं बनाऊंगी।

योद्धा ने भी कहा कि थोड़ा सोच लो, क्योंकि यह आखिरी मामला है। अगर तू भी लौट गई, तो मुझे घर छोड़ कर भाग जाना पड़ेगा। क्योंकि भीतर इस कमरे के मैं अब नहीं जा सकता हूं। वह चूहे को देखना भी ठीक नहीं है अब। वह वहीं बैठा है अपनी जगह पर। उस बिल्ली ने कहा, ये भी कोई बातें हैं! सब शांत रहें।

वह बिल्ली भीतर गई और चूहे को पकड़ कर बाहर आ गई। बिल्लियों की भीड़ लग गई। उन सब ने पूछा कि चूहे को तुमने पकड़ा कैसे? क्या है तरकीब? उस बिल्ली ने कहा, मेरा बिल्ली होना काफी है। मैं बिल्ली हूं और यह चूहा है। और चूहे सदा से कोआपरेट करते रहे, सदा से सहयोग करते रहे। बिल्लियां सदा से पकड़ती रहीं। यह हम दोनों का स्वभाव है कि मैं बिल्ली हूं और यह चूहा है। यह पकड़ा जाएगा और मैं पकड़ लूंगी। तुमने योजना बनाई, इसी से भूल हो गई। तुम बुद्धि को बीच में लाए, इसी से परेशान हुए।

झेन फकीर इस कहानी को सैकड़ों साल से कहते रहे हैं। यह बिल्ली गरीब फकीर की बिल्ली थी। सम्राट की बिल्ली के बराबर इसके पास शरीर भी न था, ताकत भी न थी। इसके हाथ में तलवार भी न थी। यह साधारण बिल्ली थी। पर उस बिल्ली ने कहा कि मेरा स्वभाव, यह चूहे का स्वभाव, इसमें कोई अनहोना नहीं हुआ है।

जुजुत्सु या जूडो सिखाने वाले लोग कहते हैं कि प्रकृति का एक नियम और एक स्वभाव है। अगर कोई घूंसा आपकी तरफ मारा जाए, अगर आप प्रतिरोध करें, तो दोनों शक्तियां लड़ती हैं और दोनों शक्तियों में संघर्ष

होता है। दोनों शक्तियां क्षीण होती हैं। अगर आप प्रतिरोध न करें, तो एक ही तरफ से शक्ति आती है, दूसरी तरफ खाली गड्ढा बन जाता है। शक्ति आत्मसात हो जाती है। दूसरा व्यक्ति परेशान हो जाता है। वह योजना करके हमला करता है। और आप अनायोजित, बिना किसी प्लानिंग के चुपचाप हमले को पी जाते हैं। अगर ऐसा शून्य भीतर बन जाए कि किसी हमले का कोई प्रतिरोध न हो--क्योंकि भीतर कोई प्रतिरोध करने वाला संकल्प ही न रहा--तो उस शून्य में जगत की महानतम शक्ति का आविर्भाव होता है।

लाओत्से कहता है, संकल्प क्षीण हो। उसका अर्थ है कि संकल्प शून्य हो। भीतर शून्यवत हो जाओ; कुछ होने की कोशिश मत करो। उस बिल्ली ने कहा कि तुम सब बिल्लियां बिल्ली होने की कोशिश कर रही हो! बिल्ली होने की कोई कोशिश करनी पड़ती है? तुम बिल्ली हो। तुम्हारी कोशिश ही तुम्हें तकलीफ में डाल रही है। तुम हमला बनाने की योजना में पड़ी हो।

जूडो का शिक्षक सिखाता है कि हमला मत करना, सिर्फ हमले की प्रतीक्षा करना। और जब हमला आए, तो तुम एक ही बात का ध्यान रखना कि तुम उसे आत्मसात कर जाओ।

और अगर कोई गाली दे और आप गाली को आत्मसात कर जाएं, तो जिसने गाली दी है, वह कमजोर हो जाता है। करें और देखें! और जिसने गाली चुपचाप पी ली है--पी ली, दबाई नहीं--दबाना नहीं है, पी ली, जैसे कोई ने प्रेम का उपहार दिया, ऐसा पी ली है, आत्मसात कर ली, समा ली अपने में, एब्जार्ब कर ली, गड्ढा बन गया। तो गाली देने में जितनी शक्ति उस व्यक्ति की व्यय हुई, उतनी शक्ति इस व्यक्ति को मिल गई।

और जब गाली देने वाला पाता है कि विरोध में गाली नहीं उठी, तो इतना परेशान हो जाता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। जब आप विरोध में गाली दे देते हैं, तो परेशान नहीं होता। क्योंकि ठीक है, अपेक्षा यही थी कि आप गाली देंगे उत्तर में। लेकिन जब आप गाली नहीं देते हैं, तब परेशान हो जाता है। और दुगुने वजन की गाली खोज कर लाता है, और जोर से हमला करता है। लेकिन अगर आपको कला है पीने की, तो आप उसके हमले को पीते चले जाते हैं और उसे निर्बल करते चले जाते हैं। वह अपनी ही निर्बलता से गिरता है।

जूडो कहता है कि दुश्मन अपनी ही निर्बलता से गिर जाता है, तुम्हें गिराने की कोई जरूरत ही नहीं है।

लाओत्से के इन्हीं सूत्रों से जूडो का विकास हुआ। और लाओत्से के इन्हीं सूत्रों से और बुद्ध के विचार के सम्मिलन से झेन का जन्म हुआ। बुद्ध का विचार भारत से चीन पहुंचा। और चीन में लाओत्से के विचार की पर्त वातावरण में थी। इन दोनों के संगम से एक बहुत ही नई तरह की चीज दुनिया में पैदा हुई--झेन। बुद्ध ने भी कहा था--बहुत और अर्थों में, किसी और तल पर--कि मैं अपने भीतर के शत्रुओं से लड़-लड़ कर हार गया और न जीत पाया; और जब मैंने भीतर के शत्रुओं से लड़ना ही बंद कर दिया और जीतने का ख्याल ही छोड़ दिया, तो मैंने पाया कि मैं जीता ही हुआ हूं। और जब लाओत्से के इन सूत्रों से बुद्ध के इन विचारों का तालमेल बना, तो एक बिल्कुल ही नया विज्ञान पैदा हुआ। वह विज्ञान है बिना लड़े जीतने का। वह विज्ञान हैः लड़ना ही नहीं और जीत जाना! संघर्ष नहीं और विजय! संकल्प नहीं और सफलता!

हम सोच ही नहीं सकते। क्योंकि हम तो सोचते हैं, जहां भी संकल्प होगा, वहीं सफलता है; जहां संघर्ष होगा, वहीं विजय है। जहां युद्ध होगा, वहीं तो पुष्पहार पहनाए जाएंगे जीत के। लाओत्से उलटा मालूम पड़ेगा। वह कहता है, हड्डियां तो मजबूत हों, लेकिन संकल्प शून्य हो।

क्यों? हड्डियों और संकल्प में क्यों फर्क कर रहा है?

अगर आपके ऊपर मैं हमला करूं, तो हड्डियां इतनी मजबूत होनी चाहिए कि हमले को पी सकें। हड्डियों का मतलब है, आपके पास जो भी पीने की संरचना है, स्ट्रक्चर है, वह इतना मजबूत होना चाहिए कि पी जाए। लेकिन भीतर कोई प्रतिरोध करने वाला अहंकार नहीं होना चाहिए कि लड़ पड़े।

ध्यान रहे, लड़ने के लिए उतने मजबूत शरीर की जरूरत नहीं है, जितना लड़ाई पीने के लिए मजबूत शरीर की जरूरत है। कमजोर शरीर वाला भी लड़ सकता है। और अक्सर ऐसा होता है कि कमजोर हो शरीर और दिमाग हो पागल, तो खूब लड़ सकता है। कोई शरीर की कमजोरी से लड़ने में बाधा नहीं पड़ती। शरीर की कमजोरी लड़ने में बाधा नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि कमजोर शरीर लड़ने को बहुत आतुर होता है।

सुना है मैंने कि हांगकांग में पहली दफा जो अमरीकन उतरा, उसने हांगकांग के बंदरगाह पर दो चीनियों को लड़ते देखा। लाओत्से की परंपरा से ही जुड़ी हुई अनेक परंपराएं चीन में विकसित हुईं। वह दस मिनट तक खड़ा होकर देखता रहा कि वे बिल्कुल एक-दूसरे के मुंह के पास मुंह ले आते हैं, घूंसा उठाते हैं, एक-दूसरे की नाक तक घूंसा ले जाते हैं, बड़ी गालियां देते हैं, बड़ी चीख-पुकार मचाते हैं; लेकिन हमला नहीं होता। दस मिनट में वह थोड़ा हैरान हुआ कि यह किस प्रकार की लड़ाई है! उसने अपने गाइड को पूछा कि यह क्या हो रहा है? क्योंकि उसको समझ में नहीं आया कि यह लड़ाई हो रही है। क्योंकि लड़ाई कैसी? इतने निकट घूंसे पहुंच जाते हैं और वापस लौट जाते हैं। यह कोई खेल हो रहा है! उस गाइड ने कहा कि यह चीनी ढंग की लड़ाई है--ए चाइनी.ज वे ऑफ फाइटिंग!

उसने कहा कि लेकिन फाइट तो हो ही नहीं रही, लड़ाई तो हो ही नहीं रही। दस मिनट से मैं देख रहा हूं, इतने निकट दुश्मन हो और घूंसा इतने करीब आ जाता हो, फिर वापस क्यों लौट जाता है?

तो उस गाइड ने कहा कि ढाई हजार साल से इस मुल्क में एक ख्याल है कि जो पहले हमला करे, वह कमजोर, वह हार गया। तो ये दोनों प्रतीक्षा कर रहे हैं। जो पहले हमला करे, वह कमजोर, वह हार गया। उसने काबू पहले खो दिया। वह कमजोरी का लक्षण है। तो यह सब भीड़ भी खड़े होकर यह देख रही है कि देखें, कौन हारता है। और हार का लक्षण यह हुआ कि हमला हुआ कि भीड़ हट जाएगी। बात खत्म हो गई। फलां आदमी हार गया, जिसने हमला किया पहले। और ये दोनों एक-दूसरे को उकसा रहे हैं कि हमला करो। अब इसमें कौन हारता है, यह देखना है। और हार का बड़ा अजीब सूत्र हैः वह जो हमला करेगा, वह हार गया।

यह लाओत्से की धारणा है कि कमजोर हमला पहले कर देता है।

मैंने कल मैक्यावेली का नाम लिया आपसे। और मैक्यावेली और लाओत्से में बड़ी समानांतर बातें हैं। मैक्यावेली कहता है, सुरक्षा का सबसे बड़ा उपाय पहले हमला कर देना है--दि बेस्ट वे टु डिफेंड इ.ज टु अटैक फर्स्ट। अगर सुरक्षा चाहते हो, तो पहले ही हमला कर दो।

वह ठीक कह रहा है। वह ठीक इसलिए कह रहा है कि इतनी देर मत करो, हमला पहले ही कर दो। अगर कमजोर भी पहले हमला कर दे, मैक्यावेली के हिसाब से, तो उसके जीतने की संभावना बन जाएगी। वह आगे हो गया। और मैक्यावेली जो संदेश दे रहा है, वह कमजोरों के लिए दे रहा है। असल में, सुरक्षा कमजोर के लिए ही ख्याल है।

लाओत्से कहता है कि हमला आए, तो पी जाओ। हमला करने का तो सवाल ही नहीं; पहले क्या, पीछे भी करने का सवाल नहीं है। उसे आत्मलीन कर लेना है।

ऐसा हो सके कि शरीर हो स्वस्थ, मन हो शून्य, हड्डियां हों मजबूत, मकान की दीवारें हो सुदृढ़ और भीतर मालिक हो जैसे नहीं है, तो लाओत्से कहता है, परफेक्ट मैन, पूर्ण आदमी का जन्म होता है, पूर्ण मनुष्य का जन्म होता है।

यह धारणा उलटी है। हमारे सब के हिसाब में यह धारणा उलटी है। और यह उलटी इसलिए दिखाई पड़ती रहेगी कि हमारे सोचने के सारे मापदंड लाओत्से से बिल्कुल विपरीत हैं। हम कहेंगे, यह कमजोरी है, कायरता है कि कोई हमला करे और तुम जवाब न दो। हम कहेंगे, यह कायरता है कि कोई हमला करे और तुम जवाब न दो, जिंदगी पुकारे लड़ाई के लिए और तुम खड़े रह जाओ, कि तूफान चुनौती दें और तुम लेट जाओ, कि नदी बहाने लगे तुम्हें और तुम बह जाओ और उलटे न बहो।

नसरुद्दीन को खबर दी है उसके घर के आस-पास के पड़ोसियों ने कि तू भाग जल्दी, तेरी पत्नी नदी में गिर पड़ी है! पूर है तेज, वर्षा के हैं दिन, धार है कड़ी और डर है कि पत्नी शीघ्र ही सागर में पहुंच जाएगी। तू भाग!

नसरुद्दीन भागा। तट पर बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई। वह नदी में कूदा और उलटी धार की तरफ तैरने लगा। उलटी तरफ! सागर की तरफ दौड़ रही है नदी, वह उलटी तरफ, नदी के उदगम की तरफ जोर से तैरने लगा। तेज है धार, तैर भी नहीं पा रहा। लोगों ने चिल्लाया, पागल नसरुद्दीन, कोई नदी में गिर जाए, तो उलटी तरफ नहीं बहता। तेरी पत्नी नीचे की तरफ गई होगी! उन्होंने कहा कि माफ करो, मेरी पत्नी को मैं तुमसे अच्छी तरह जानता हूं। वह सदा उलटे काम करती रही है। वह कभी नीचे की तरफ नहीं बह सकती। उसे मैं भलीभांति पहचानता हूं। तीस साल का हमारा-उसका सत्संग है। अगर तुम यह कहते हो कि सभी लोग नदी में गिर कर नीचे की तरफ बहते हैं, तो मेरी पत्नी ऊपर की तरफ बही होगी।

लाओत्से और हमारे बीच ऐसे ही उलटे नाते हैं। इसलिए लाओत्से को समझना मुश्किल हो जाता है। लाओत्से को समझना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि हमारे तर्क की व्यवस्था में और उसकी तर्क की व्यवस्था में बड़ा उलटापन है। हम कहते हैं कायरता, और लाओत्से कहता है शक्ति। वह कहता है, जितनी बड़ी शक्ति है, उतनी ही लड़ने की आतुरता कम होगी। अगर शक्ति पूर्ण है, तो लड़ाई होगी ही नहीं।

ऐसा समझें हम, परमात्मा के द्वार पर जाकर हम गाली दे रहे हैं। कोई उत्तर नहीं मिलता। और नास्तिक हजारों साल से खंडन करते रहे हैं। एक भी बार ऐसा नहीं हुआ कि परमात्मा एकाध बार तो कह देता कि मैं हूं। इतने दिन से लंबा विवाद चलता है। एकाध बार तो उसको इतना तो ख्याल आ जाना चाहिए था कि यह बड़ी कायरता होगी, एक दफे तो कह दूं कि मैं हूं। नहीं, वह चुप है।

लाओत्से कहता है, वह इसलिए चुप है कि वह परम शक्ति है। प्रतिरोध वहां नहीं है। अगर नास्तिक कहता है, तुम नहीं हो, तो परमात्मा से भी प्रतिध्वनि आती है कि नहीं हूं। कोआपरेट कर जाता है, उसके साथ भी सहयोग कर देता है। उससे भी विरोध नहीं है। जितनी बड़ी ऊर्जा, उतना ही प्रतिरोध नहीं होता।

सुना है मैंने, एक स्कूल में एक पादरी बच्चों को बाइबिल का पाठ सिखा रहा है। और उनसे कह रहा है कि कल मैंने तुम्हें क्षमा के लिए सारी बातें समझाई थीं। अगर कोई तुम्हें मारे, तो तुम उसे क्षमा कर सकोगे? एक छोटे से लड़के को उसने खड़े करके पूछा कि तेरा क्या ख्याल है? अगर कोई लड़का तुझे घूंसा मार दे, तो तू उसे क्षमा कर सकेगा? उस लड़के ने कहा, कर तो सकूंगा, अगर वह मुझसे बड़ा हो। उसने कहा, कर तो सकूंगा, अगर वह मुझसे बड़ा हो। छोटे को करना जरा मुश्किल पड़ जाएगा।

असल में, हम सब की मनोदशा ऐसी ही है। जिसको हम दबा सकते हैं, हम दबा देते हैं। जिसको हम सता सकते हैं, उसे हम सता देते हैं। जिसको हम चोट पहुंचा सकते हैं, उसे हम चोट पहुंचा ही देते हैं। जिसे हम नहीं पहुंचा सकते, तब हम बड़े सिद्धांतों की बात कर लेते हैं।

लाओत्से कह रहा है कि तुम्हारे भीतर वह बिंदु ही न रह जाए, जो छोटे-बड़े को सोचता है। इसके साथ, उसके साथ, सोचता है। इस स्थिति में क्या करूं, उस स्थिति में क्या करूं, सोचता है। वह बिंदु ही न रह जाए। तुम्हारे भीतर संकल्प ही न रह जाए।

लाओत्से को अगर एक छोटा बच्चा भी चांटा मार दे, तो भी जवाब नहीं देगा। और एक सम्राट भी हमला बोल दे, तो भी जवाब नहीं देगा।

अगर इस सूत्र को ठीक से ले लें, तो साधना का बड़ा सूत्र है। कभी छोटा सा प्रयोग करके देखें एक सात दिन के लिए, अप्रतिरोध का, नान-रेसिस्टेंस का, कि कुछ भी होगा, पी जाएंगे। प्रयोगात्मक, एक सात दिन के लिए, कुछ भी होगा, पी जाएंगे। जिन-जिन चीजों में कल प्रतिरोध किया था, प्रतिरोध नहीं करेंगे। या जिन-जिन चीजों में कल दबाना पड़ा था, दबाएंगे नहीं, पी जाएंगे। और एक सात दिन में आप पाएंगे कि आप इतनी शक्ति अर्जित कर लेते हैं, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। आपके पास इतनी ऊर्जा, इतनी इनर्जी इकट्ठी हो जाती है, जिसका हिसाब नहीं। तब मुश्किल हो जाएगा, उसके बाद, इस ऊर्जा को व्यर्थ डिसिपेट करना।

हम सब डिसिपेट कर रहे हैं, फेंक रहे हैं। सड़क से गुजर रहे हैं, एक छोटा सा बच्चा सड़क के किनारे खड़े होकर हंस दे, और आपमें प्रतिरोध शुरू हो गया। प्रतिरोध शुरू हो गया।

लाओत्से पर किसी ने एक गांव में हमला कर दिया था। लाओत्से ने तो लौट कर भी नहीं देखा कि वह आदमी कौन है। वह चलता ही गया। उस आदमी को बड़ी बेचैनी हुई। उसने लौट कर भी नहीं देखा कि पीछे से लकड़ी किसने मारी है। वह आदमी भागा हुआ आया और उसने लाओत्से को रोका और कहा कि लौट कर तो देख लो! अन्यथा हमारा मारना बिल्कुल बेकार ही गया। कुछ तो कहो!

लाओत्से ने कहा, कभी भूल-चूक से अपना ही नाखून हाथ में लग जाता है, तो क्या करते हैं! कभी राह चलते अपनी ही भूल से गिर पड़ते हैं, घुटने टूट जाते हैं, तो क्या करते हैं!

लाओत्से ने कहा, एक बार ऐसा हुआ कि मैं नाव में बैठा था और एक खाली नाव आकर मेरी नाव से टकरा गई, तो मैंने क्या किया! लेकिन अगर उस दूसरी नाव में कोई मल्लाह बैठा होता, तो? तो झगड़ा हो जाता। तो झगड़ा हो जाता। खाली नाव थी, तो कुछ न किया। कोई मल्लाह बैठा होता, तो झगड़ा हो जाता। लेकिन उसी दिन से मैंने समझ लिया कि जब खाली नाव को कुछ नहीं किया, तो मल्लाह भी बैठा हो तो क्या फर्क पड़ता है? तुमने अपना काम कर लिया, तुम जाओ। मुझे मेरा काम करने दो।

वह आदमी दूसरे दिन पुनः आया और उसने कहा, मैं रात भर सो नहीं सका। तुम आदमी कैसे हो? तुम कुछ तो करो, तुम कुछ तो कहो, ताकि मैं निश्चिंत हो जाऊं।

स्वभावतः, उसके मन में बहुत कुछ कठिनाई चलती रही होगी। हम सब अपेक्षाओं में चलते हैं। अगर मैं गाली देता हूं, तो मैं मान कर चलता हूं कि गाली लौटेगी। लौट आती है, तो नियमानुसार सब हो रहा है। नहीं लौटती है, तो बेचैनी होती है। बेचैनी उतनी हो जाती है कि मैं अगर प्रेम करता हूं, तो मान कर चलता हूं कि प्रेम लौटेगा; नहीं लौटता है, तो जैसी बेचैनी हो जाती है। हम सब के लेन-देन के सिक्के तय हैं।

लाओत्से कहता है, ये सिक्कों को बदल डालो। भीतर हो जाओ शून्यवत; संकल्प को हटा दो; और जो होता है, होने दो।

हम कहेंगे, तब तो मौत आ जाएगी, बीमारी आ जाएगी, कोई लूट ही लेगा। सब बर्बाद ही हो जाएगा। हम हजार दलीलें खोज लेंगे जरूर। लेकिन हमारी दलीलों का बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि जिन चीजों को बचाने के लिए हम दलीलें खोज रहे हैं, उनमें से हम कुछ भी नहीं बचा पाते, सभी छूट जाता है। न तो मौत रुकती, न बीमारी रुकती, कुछ रुकता नहीं, सभी नष्ट हो जाता है। और उसको बचाने की चेष्टा में हम कभी उसे पा ही नहीं पाते, जो ऐसा था कुछ कि मिल जाता, तो कभी नष्ट नहीं होता है।

एक बार सात दिन का छोटा सा प्रयोग करके देखें।

मेरे लिए तो संन्यास का अर्थ यही है, जो लाओत्से कह रहा है। यही अर्थ है संन्यास का कि ऐसा व्यक्ति, जिसने संकल्प छोड़ दिया, जिसने समर्पण स्वीकार कर लिया, जिसने इस जगत के साथ संघर्ष छोड़ दिया और सहयोगी हो गया। जो कहता है, मेरी शत्रुता नहीं; हवाएं जहां ले जाएं, मैं चला जाऊंगा। जो कहता है, मेरी अपनी कोई आग्रह की बात नहीं कि ऐसा हो; जो हो जाएगा, वही मुझे स्वीकार है। ऐसी कोई मंजिल नहीं, जहां मुझे पहुंचना है; जहां पहुंच जाऊंगा, कहूंगा यही मेरी मंजिल है। ऐसा व्यक्ति संन्यासी है। और ऐसी संन्यास की भाव-दशा में जीवन का जो परम धन है, उसका द्वार, उस खजाने का द्वार खुल जाता है।

लाओत्से कहता है, "संत, जो जानते हैं, वे प्रज्ञावान पुरुष अपने शासन में... ।"

यह भी शब्द सोचने जैसा है। क्योंकि संत का कोई शासन नहीं होता। संत की क्या गवर्नमेंट होती? सेजेज इन देयर गवर्नमेंट! संत अपने शासन में! संतों की तो कोई सरकार दिखाई पड़ती नहीं। लेकिन यह बड़ा पुराना शब्द है, बड़ा पुराना शब्द है। और वक्त था ऐसा जब कि संत का ही शासन था। कोई गवर्नमेंट नहीं थी उसकी, कोई शासन-व्यवस्था न थी, कोई स्ट्रक्चर न था। लेकिन शासन उसी का था।

जैन परंपरा में अभी भी, महावीर का शासन, ऐसा ही शब्द प्रयोग किया जाता है। जो शासन दे, उसको शास्ता कहा जाता है। इसलिए महावीर को या बुद्ध को शास्ता कहते हैं। शास्ता, जिसने शासन दिया। और वह शास्ता ने जो कहा, जहां संगृहीत हो, उसको शास्त्र कहा जाता है। शासन का अर्थ है, ऐसे नियम जिनसे आदमी चल सके और पहुंच सके।

तो लाओत्से कहता है, संत अपने शासन में, अपनी सूचनाओं में, मनुष्य को चलाने के लिए जो शास्त्र वे निर्मित करते हैं उसमें, आदमी के मन को तो खाली करने की कोशिश करते हैं, शरीर को भरने की कोशिश करते हैं। संकल्प को तोड़ते हैं, हड्डियों को मजबूत कर देते हैं।

सारे हठयोग की पूरी प्रक्रियाएं हड्डी को मजबूत करने की प्रक्रियाएं हैं। भीतर से संकल्प को हटा कर समर्पण को... । यह ख्याल में आ जाए, तो व्यक्तित्व का एक दूसरा ही रूप है; जैसे हम हैं, फिर वैसे नहीं। देखने का और ही ढंग, एक दूसरा गेस्टाल्ट।

और जैसा हम देखना शुरू करते हैं, वैसी ही चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। अगर आपने तय कर रखा है, सजग रहना है हर वक्त, हमला हो तो हमले से उत्तर देना है, हमला न हो तो पहले से तैयारी रखनी है, तो आप रोज दुश्मन को खोज लेंगे। जगत बहुत बड़ा है और हर आदमी की जरूरतें पूरी कर देता है। अगर आप दुश्मन को खोजने निकले हैं, तो आप दुश्मन को प्रतिपल खोज लेंगे।

यह खोज करीब-करीब वैसी ही है, जैसे कभी पैर में चोट लग जाए, तो फिर दिन भर पैर में उसी जगह चोट लगती मालूम पड़ती है। और कभी-कभी हैरानी भी होती है कि मामला क्या है? इतना बड़ा शरीर है, कहीं चोट नहीं लगती, वहीं चोट लगती है जहां चोट लगी है! नहीं, चोट तो रोज वहां ही लगती थी, पता नहीं

चलती थी। आज वहां चोट लगी है, इसलिए पता चलती है। आपका वह हिस्सा संवेदनशील है, सेंसिटिव है, इसलिए पता चलता है। दूसरे हिस्से पर पता नहीं चल रहा है। वह संवेदनशील नहीं है।

तो हम जिस-जिस चीज के लिए संवेदनशील हो जाते हैं, वही-वही हमें पता चलता है। अगर हम आक्रमण के प्रति संवेदनशील हैं, अगर हमें लग रहा है कि सारा जीवन एक संघर्ष, युद्ध है, तो फिर हम रोज, हर घड़ी उन लोगों को खोज लेंगे जो शत्रु हैं, उन स्थितियों को खोज लेंगे जो संघर्ष में ले जाएं।

लाओत्से दूसरा गेस्टाल्ट, देखने का दूसरा ढंग, दूसरी सेंसिटिविटी दे रहा है। वह दूसरी संवेदनशीलता दे रहा है। वह कह रहा है कि सहयोग को खोजो। और जो आदमी उस भाव से खोजने निकलेगा, उसे मित्र मिलने शुरू हो जाते हैं। उसकी संवेदनशीलता दूसरी हो जाती है। वह मित्र को खोजने लगता है। और हम जो खोजते हैं, वह हमें मिल जाता है। या हम ऐसा कहें कि जो भी हमें मिलता है, वह हमारी ही खोज है। इस जगत में हमें वह नहीं मिलता, जो हमने नहीं खोजा है। इसलिए जब भी आपको कुछ मिले, तो आप समझ लेना कि आपकी अपनी ही खोज है।

लेकिन हम ऐसा कभी नहीं मानते। अगर दुश्मन मिलता है, तो हम सोचते हैं, हमारी क्या खोज है? दुश्मन है, इसलिए मिल गया! नहीं, दुश्मन होने के लिए आप संवेदनशील हैं, आप तैयार हैं। खोज ही रहे हैं।

सहयोग की यह व्यवस्था, कोआपरेशन और कांफ्लिक्ट।

क्रोपाटकिन ने एक किताब लिखी है। और क्रोपाटकिन इस सदी में... कांफ्लिक्ट की सदी है हमारी तो, हमारा तो पूरा युग संघर्ष का है, जहां मार्क्स से लेकर और माओ तक सारा विचार संघर्ष और कलह का है। वहां एक आदमी जरूर--रूस में ही हुआ वह आदमी भी क्रोपाटकिन--वह कोआपरेशन, सहयोग, संघर्ष नहीं। और उसने एक बहुत बड़ी कीमती बात प्रस्तावित की, हालांकि इस सदी में सुनी नहीं गई। क्योंकि यह सदी उसके लिए संवेदनशील नहीं है।

डार्विन ने सिद्ध करने की कोशिश की कि यह सारा जगत जीवन के लिए संघर्ष है, स्ट्रगल है, स्ट्रगल टु सरवाइव। अपने-अपने को बचाने के लिए हर एक लड़ रहा है। और उसने यह भी सिद्ध किया कि इसमें वही बच जाता है, जो फिटेस्ट है। और फिटेस्ट का मतलब यह, जो युद्ध में सर्वाधिक कुशल है वही बच जाता है।

डार्विन से लेकर फिर इन तीन सौ सालों में सारे जगत में संघर्ष का विचार परिपक्व होता चला गया। और मजे की बात है कि इस संघर्ष के परिपक्व विचार ने हमें संघर्ष के लिए और उन्मुख बनाया। और जब इस सिद्धांत को हमने स्वीकार कर लिया कि जीवन एक संघर्ष है, हर एक लड़ रहा है सिर्फ। बाप बेटे से लड़ रहा है, बेटा बाप से लड़ रहा है, पति पत्नी से लड़ रहा है। सब लड़ रहे हैं। ऐसा नहीं है कि नौकर मालिक से ही लड़ रहा है। संघर्ष ही चल रहा है पूरे समय। यह सारा जीवन एक संघर्ष का ही रूप है। यह डार्विन से लेकर माओ तक सारा ख्याल संघर्ष का है। कलह, वर्ग-कलह, फिर कलह बढ़ती चली जाती है। तो सभी तलों में प्रवेश कर जाती है। फिर एक-एक आदमी अकेला है और सारी दुनिया से लड़ रहा है।

क्रोपाटकिन ने कहा कि संघर्ष आधार नहीं है, सहयोग आधार है। और मजे की बात उसने यह कही कि संघर्ष भी करना हो, तो भी सहयोग जरूरी है। जिससे लड़ना है, उसका भी सहयोग चाहिए--लड़ाई के लिए भी। अगर वह लड़ने में भी असहयोगी हो जाए, नॉन-कोआपरेटिव हो जाए और कह दे कि नहीं लड़ते, तो लड़ने का भी कोई उपाय नहीं है। यह बहुत मजे की बात क्रोपाटकिन ने कही कि संघर्ष के लिए सहयोग अनिवार्य है, लेकिन सहयोग के लिए संघर्ष अनिवार्य नहीं है। फाउंडेशनल, बुनियादी सहयोग है, क्योंकि संघर्ष भी बिना सहयोग के नहीं हो सकता।

अगर मैं आपसे लड़ना भी चाहूं, तो किसी न किसी रूप में आपके सहयोग की जरूरत है। अगर आप बिल्कुल कोआपरेट ही न करें, तो लड़ाई भी नहीं चल सकती। लड़ाई भी बड़ा सहयोग है। और दो आदमी जब लड़ते हैं, तो बहुत-बहुत ढंगों से एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। लेकिन सहयोग के लिए किसी संघर्ष की जरूरत नहीं है। इसका अर्थ यह होता है कि सहयोग ज्यादा गहरे में है।

और क्रोपाटकिन ने कहा कि डार्विन ने जाकर देख लिया जंगल में कि शेर इस जानवर को खा रहा है, वह जानवर उस जानवर को खा रहा है। लेकिन क्रोपाटकिन का कहना है कि चौबीस घंटे में अगर एक बार शेर एक जानवर पर हमला करता है, तो बाकी तेईस घंटों में हजारों जानवरों के साथ सहयोग कर रहा है। उसे कभी डार्विन ने देखा नहीं। जंगल के जानवर चौबीस घंटे लड़ नहीं रहे हैं। सच बात यह है कि आदमी से ज्यादा लड़ने वाला कोई भी जानवर जंगल में नहीं है।

एक सूफी फकीर हुआ है, जलालुद्दीन। वह अपने ध्यान में बैठा है। और उसके एक शिष्य ने आकर उससे कहा कि उठिए, उठिए, बड़ी मुश्किल हो गई! एक बंदर के हाथ में तलवार पड़ गई है; कुछ न कुछ खतरा होकर रहेगा। जलालुद्दीन ने कहा, बहुत परेशान मत हो, आदमी के हाथ में तो नहीं पड़ी है न! फिर कोई फिक्र की बात नहीं है, फिर कोई चिंता की बात नहीं है। आदमी के हाथ में पड़ गई हो, तो फिर उठना पड़े। फिर कुछ उपद्रव होकर रहेगा।

जंगल में इतना संघर्ष नहीं है, जैसा हमें ख्याल है। और हम सबको ख्याल है कि जंगल एक संघर्ष है, कांफ्लिक्ट है, हिंसा है। बड़ा सहयोग है। लेकिन आदमी ने जो जंगल बनाया है, जिसका नाम सभ्यता है, समाज है, वह बिल्कुल संघर्ष है। और दिखाई बिल्कुल नहीं पड़ता। और पूरे समय एक-दूसरे की दुश्मनी में सारा का सारा जाल फैलता चला जाता है।

क्रोपाटकिन वही कह रहा है, जो लाओत्से ने किसी दूसरे तल पर, और गहरे तल पर कहा था। लाओत्से कहता है, सहयोग। लेकिन सहयोग वे ही लोग कर सकते हैं, जिनके भीतर संकल्प क्षीण हो। कलह वे ही लोग कर सकते हैं, जिनके भीतर संकल्प मजबूत हो। संकल्प जितना ज्यादा होगा, कलह उतनी ज्यादा होगी। संकल्प कलह का सूत्र है। संकल्प क्षीण होगा, शून्य होगा, कलह विदा हो जाएगी। लड़ने वाला तत्व ही नहीं रह जाएगा, जो लड़ सकता था।

इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें। और लाओत्से की सारी चीजें प्रयोग करने जैसी हैं। और प्रयोग करेंगे, तो ख्याल में ज्यादा गहरा आएगा। मुझे सुन लेंगे, उतने से बात बहुत साफ नहीं होगी। मुझे सुन कर लगेगा भी कि समझ गए, तो भी समझ में नहीं आएगा। यह समझ ऐसी ही होगी, जैसे अंधेरे में थोड़ी सी बिजली कौंध जाए। एक क्षण को लगे कि सब दिखाई पड़ने लगा, और फिर क्षण भर बाद अंधेरा हो जाए। क्योंकि आपका जो अपना तर्क है, वह तर्क लंबा है। वह जन्मों-जन्मों का है। जन्मों-जन्मों का जो तर्क है, वह तो कलह का है, संघर्ष का है। इस संघर्ष के तर्क की लंबी यात्रा में जरा सी बिजली कौंध जाए कभी सहयोग की किसी की बात से, तो वह कितनी देर टिकेगी? जब तक कि आप सहयोग के लिए भी कोई प्रयोग न करें, जब तक कि आपके संघर्ष के अनुभव के विपरीत सहयोग का अनुभव भी खड़ा न हो जाए।

उसे थोड़ा प्रयोग करें। एक सात दिन का नियम। किसी भी सूत्र को समझने के लिए कम से कम सात दिन का नियम ले लें कि कल सुबह से सात दिन तक सहयोग करूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए। जहां-जहां संघर्ष की स्थिति बनेगी, वहां-वहां सहयोग करूंगा। और इस सूत्र का राज खुल जाएगा।

इन सब सूत्रों का राज व्याख्या से नहीं, प्रतीति से खुलता है। व्याख्या से समझ में आ जाए इतना ही कि प्रयोग करने जैसा है, उतना काफी है। जिससे लड़े थे, उससे सहयोग कर लें। जिससे लड़े होते, उससे सहयोग कर लें। जिस परिस्थिति में अकड़ कर खड़े हो गए होते, उस परिस्थिति में लेट जाएं, बह जाएं। और देखें, सात दिन में आप मिटे या बने? देखें, सात दिन में आप कमजोर हुए कि शक्तिशाली हुए? देखें, सात दिन में आप खो गए कि बचे? देखें, सात दिन में कि आप बीमार हैं या स्वस्थ?

और एक बिल्कुल ही नए तरह के स्वास्थ्य का गुण अनुभव में आना शुरू हो सकता है।

आज इतना ही। फिर कल बात करेंगे।

ग्यारहवां प्रवचन

कोरे ज्ञान से इच्छा-मुक्ति व अक्रिय व्यवस्था की ओर

Chapter 3 : Sutra 3

He constantly tries to keep them without knowledge and without desire, and where there are those who have knowledge, to keep them from presuming to act (on it). When there is this abstinence from action, good order is universal.

अध्याय 3 : सूत्र 3

वे उन्हें कोरे ज्ञान और इच्छादि से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं। और जहां ऐसे लोग हैं, जो निपट जानकारी से भरे हैं, उन्हें ऐसी जानकारी के उपयोग से बचाने की यथाशक्य चेष्टा करते हैं। जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तब जो सुव्यवस्था बनती है, वह सार्वभौम होती है।

जो जानते हैं, वे लोगों को कोरे ज्ञान से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं।

साधारणतः हम सोचते हैं कि अज्ञान बुरा है, अशुभ है; और ज्ञान अपने आप में शुभ है। लाओत्से ऐसा नहीं सोचता। न ही उपनिषद के ऋषि ऐसा सोचते हैं। और न ही पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी परम ज्ञान को पाया है, उनकी ऐसी धारणा है।

उपनिषदों में एक सूत्र है कि अज्ञानी तो अंधकार में भटक ही जाते हैं, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।

अकेला जान लेना न जानने से भी खतरनाक है। अज्ञानी विनम्र होता है। उसे कुछ पता नहीं है। और जिसे कुछ पता नहीं है, उसे अहंकार को निर्मित करने का आधार नहीं होता। उसे यह भ्रम भी नहीं होता कि मैं जानता हूं। इसलिए मैं को मजबूत करने की सुविधा भी नहीं होती। समझ लेना जरूरी है कि धन भी अहंकार को उतना मजबूत नहीं करता, पद भी नहीं करता, जितना ज्ञान करता है। यह ख्याल कि मैं जानता हूं, जितने दंभ से, जितनी ईगो से आदमी को भर जाता है, उतनी कोई और चीज नहीं भरती है।

इसलिए पंडितों से ज्यादा अहंकारी व्यक्ति खोजना कठिन है। और इसलिए यह भी घटना घटी है कि ज्ञान के दंभ से जो भरा है, वह सड़क पर भीख मांगने को राजी हो सकता है, नंगा रहने को राजी हो सकता है, भूखा मरने को राजी हो सकता है। उसे महल नहीं चाहिए। उसे बड़े राज-सिंहासन नहीं चाहिए। लेकिन वह जो जानता है, अगर उसे प्रतिष्ठा मिलती हो, तो वह सब त्याग करने को तैयार हो सकता है।

धन को छोड़ देना आसान है, पद को छोड़ देना आसान है। जानकारी को, ज्ञान को, नालेज को छोड़ देना अति कठिन है। हम सब छोड़ कर जा सकते हैं--परिवार को, प्रियजनों को--लेकिन जो हमने जाना है, उसे हम छोड़ कर नहीं हट सकते। क्योंकि वह हमारा प्राण है। जो हम जानते हैं, अगर वही हमसे हटा लिया जाए, तो

हम शून्य हो जाते हैं। जानकारी ही हमारी सब कुछ संपदा है। वही है हमारा मन, हमारा माइंड, जो हम जानते हैं, उसका जोड़ है, एक्यूमुलेशन है। अगर जानते नहीं हैं कुछ, हटा दिया जाए, तो हम खाली और रिक्त और कोरे हो जाते हैं।

अभी मैं एक सूफी किताब देख रहा हूं। पहली दफा प्रकाशित हुई है। किताब तो एक हजार साल पुरानी है। एक हजार साल में बहुत दफे सोचा गया कि उसे प्रकाशित किया जाए। लेकिन फिर प्रकाशित नहीं किया जा सका। क्योंकि कोई प्रकाशक, कोई पब्लिशर उसे छापने को राजी न हुआ। बात क्या थी कि कोई पब्लिशर उसे छापने को राजी न हुआ? बात यह है कि उस किताब में कुछ लिखा हुआ नहीं है। दो सौ पृष्ठ की किताब है कोरी! उस किताब की कहानी जरूर लंबी है। और सूफियों के हाथ में वह किताब पीढ़ी दर पीढ़ी दी जाती रही है। और कब किसने उस किताब को पढ़ कर क्या कहा, उसका भी इतिहास निर्मित हो गया है। पढ़ने को उसमें कुछ है नहीं। लेकिन जब एक सूफी गुरु ने दूसरे को उसे दिया, तो उसने पढ़ कर जो वक्तव्य दिया, वह संगृहीत हो गया है।

अभी वह किताब प्रकाशित हुई है। पर वह पब्लिशर भी सीधी किताब छापने को राजी नहीं हुआ। उसने कहा कि पहले वे जो-जो बातें किताब के बाबत कही गई हैं, वे भी लिखी जाएं, तो कुछ छापने जैसा हो। ये दो सौ पेज खाली! तो दो सौ पेज खाली छापे हैं और नौ पन्ने आगे लिखित छापे हैं। वे किताब के हिस्से नहीं हैं। वह किताब के संबंध में लोगों ने जो कहा है वह है।

जिस व्यक्ति ने यह किताब पहली दफा दी अपने शिष्य को, उसने कहा कि ठीक से पढ़ लेना, क्योंकि जो भी जानने योग्य है, वह सब मैंने इसमें लिख दिया है। आल दैट इ.ज वर्थ नोइंग! शिष्य ने किताब खोली, और उसमें तो कुछ भी नहीं था। उसने अपने गुरु को कहा, लेकिन इसमें तो कुछ भी नहीं है। तो उसके गुरु ने कहा कि दैट मीन्स नथिंग इ.ज वर्थ नोइंग। इसका अर्थ है कि कुछ जानने योग्य नहीं है। इसमें मैंने वह सब लिख दिया है जो जानने योग्य है। और जिस दिन तू इस किताब को पढ़ने में समर्थ हो जाएगा, उस दिन तू सब किताबों से मुक्त हो जाएगा।

इसलिए इस किताब का नाम हैः दि बुक ऑफ दि बुक्स, शास्त्रों का शास्त्र। इसमें कुछ है नहीं।

फिर जब दूसरे शिष्य को वह किताब दी गई, तो उसने किताब खोली ही नहीं। उसके गुरु ने कहा, खोल कर पढ़ भी! पर उसने कहा कि पढ़ने से कभी कुछ नहीं मिलेगा, यह मैं जानता हूं। इसे भी पढ़ने से कुछ न मिलेगा। तो उसके गुरु ने कहा कि इसीलिए तुझे मैंने योग्य समझा कि यह किताब तुझे दे दूं, क्योंकि जो पढ़ने वाले हैं, उनके यह किसी काम की नहीं है। कथा है कि उस शिष्य ने किताब जिंदगी भर नहीं खोली।

बड़ी कठिन बात है। किताब आपके हाथ में हो और जिंदगी भर न खोली हो, बड़ी कठिन बात है। मरते वक्त अपने जिस शिष्य को उसने सौंपा, उसे उसने कहा कि ध्यान रख, मैंने इसे कभी पढ़ा नहीं। और मेरे गुरु ने मुझे यह इसीलिए दी थी कि वे जानते थे कि पढ़ने में मेरी उत्सुकता नहीं, जानने में मेरी उत्सुकता है। मैं तुझे सौंपता हूं, इसी आशा में कि तू भी जानने की चेष्टा में लगेगा, पढ़ने की चेष्टा में नहीं।

पढ़ने से जो ज्ञान मिल जाएगा, वह सिर्फ ज्ञान जैसा प्रतीत होता है। धोखा होता है। सूडो नालेज होती है। दिखाई पड़ता है कि ज्ञान है; वह ज्ञान होता नहीं।

लाओत्से जो कह रहा है, यह कह रहा है कि जो जानते हैं--अब बड़ी मजेदार बात है--जो जानते हैं, वे लोगों को जानने से रोकते हैं। क्योंकि वे यह जानते हैं कि लोगों के भटकने का जो सुगमतम मार्ग है, वह जानकारी है।

हमारे ही मुल्क में यह घटना घटी है। और पृथ्वी पर इतने सघन रूप से कहीं भी नहीं घटी है। हमारे मुल्क में जितना हम जानते हैं सत्य के संबंध में, पृथ्वी पर कोई भी नहीं जानता; और जितने असत्य में हम जीते हैं, उतना भी कोई नहीं जीता। धर्म के संबंध में हमारी जितनी जानकारी है, इतनी जानकारी सारी दुनिया की भी इकट्ठी मिला दें, तो हमारा पलड़ा भारी रहेगा। लेकिन अधर्म जैसा हमें सरल है, ऐसा पृथ्वी पर किसी को भी नहीं है। बात क्या है? भूल कहां हो गई होगी? हमें तो दुनिया में सबसे ज्यादा धार्मिक लोग होना चाहिए था। और हमारे जीवन से तो सत्य का प्रकाश ही निकलता। और परमात्मा की छबि ही हमारे चारों तरफ हमें दिखाई पड़ती। वह तो हमें दिखाई नहीं पड़ती। हां, बात हम सर्वाधिक करते हैं। ईश्वर के संबंध में जितनी बात हम करते हैं, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन ईश्वर से हमारी कोई पहचान नहीं होती।

वह वही भूल हो गई है, जो लाओत्से कह रहा है, जानकारी जानने से रोक देती है। लाओत्से के शिष्य च्वांगत्से ने कहा है कि इफ यू वांट टु नो, बिवेयर ऑफ नालेज। अगर जानना चाहो, तो ज्ञान से सावधान!

ये वाक्य कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ते हैं, स्वविरोधी मालूम पड़ते हैं। क्योंकि च्वांगत्से कहता है, जानना चाहो, तो जानने से सावधान! क्यों? जानना चाहो और जानने से सावधान! हां, कोई कहता, न जानना चाहो और जानने से सावधान, तो संगत, तर्कयुक्त बात मालूम होती।

च्वांगत्से कहता है, जानना चाहो, तो जानकारी से सावधान। क्योंकि जिसे जानकारी मिल जाती है, वह जानने से वंचित रह जाता है।

क्यों? क्योंकि जानकारी होती है उधार, किसी और ने जाना। कोई रामकृष्ण कहते हैं कि परमात्मा है, कोई रमण कहता है कि परमात्मा है। हमने सुना, माना और हमने भी कहना शुरू किया कि परमात्मा है। यह जानकारी है। हमने जाना नहीं है। किसी और ने जाना है; उधार है।

और ध्यान रहे, ज्ञान उधार नहीं हो सकता। इस जगत में सब चीजें उधार मिल सकती हैं। एक चीज उधार नहीं मिलती, वह ज्ञान है। इस जगत में सभी चीजें दूसरों से पाई जा सकती हैं, एक चीज दूसरों से नहीं पाई जा सकती, वह ज्ञान है। जानने में और जानकारी में यही फर्क है। जानना होता है स्वयं का और जानकारी होती है किसी और से। कोई और कह देता है। कबीर को सुन लेता है कोई। नानक को सुन लेता है कोई। और जो सुना, वह जानकारी बन जाती है। लेकिन जानकारी से ज्ञान का भ्रम पैदा होता है। अगर हम पुनरुक्त करते जाएं, जानकारी को बार-बार दोहराते जाएं, दोहराते जाएं, तो हम यह भूल ही जाते हैं कि यह हमारा जाना हुआ नहीं है। बार-बार दोहराने से लगता है कि मैं जानता हूं।

सुना है मैंने कि नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला। चोरी का मुकदमा है। और अदालत में मजिस्ट्रेट ने कहा... बड़ी मुश्किल से, मजिस्ट्रेट सख्त था बहुत, बहुत मुश्किल से ही नसरुद्दीन का वकील नसरुद्दीन को बचा पाया। जब अदालत के बाहर निकलते थे, तो वकील ने पूछा कि नसरुद्दीन, सच तो बताओ, चोरी तुमने की भी थी या नहीं? नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हें सुन-सुन कर महीनों तक, मुझे भी शक आने लगा है कि मैंने चोरी की थी? मुझे भी शक होने लगा है। यू हैव कनविंस्ड मी सो मच! नसरुद्दीन ने कहा, इतना तुमने मुझे भरोसा दिलवा दिया, मजिस्ट्रेट ही राजी नहीं हुआ, मैं भी राजी हो गया हूं। अब तो मुझे भी शक आता है कि सच में मैंने चोरी की थी या नहीं की थी।

एक बात बार-बार सुन कर कठिनाई हो जाती है। और दूसरे से सुन कर नहीं, जब आप खुद ही दोहराते रहते हैं। बचपन से दोहराते रहते हैं, ईश्वर है, ईश्वर है, ईश्वर है। खून के साथ मिल जाती है बात। हड्डियों में समा जाती है। मांस-पेशियों में घुस जाती है। रोएं-रोएं से बोलने लगती है। होश नहीं था, तभी से पता चलता है

कि ईश्वर है। फिर दोहराते-दोहराते-दोहराते-दोहराते याद ही नहीं रह जाता कि कोई क्षण था जब मैंने सवाल उठाया हो कि ईश्वर है? लगता है, सदा से मुझे मालूम है कि ईश्वर है।

अब यह जानकारी आत्मघाती है। अब जब हमें पता ही है कि ईश्वर है, तो खोजने क्यों जाएं? जो मालूम ही है, उसकी तलाश क्यों करें? जो पता ही है, उसके लिए श्रम क्यों उठाएं? इसलिए पूरा मुल्क अध्यात्म की चर्चा करते-करते गैर-आध्यात्मिक हो गया। अगर इस मुल्क को कभी धार्मिक बनाना हो, तो एकबारगी समस्त धर्मशास्त्रों से छुटकारा पा लेना पड़े। एक बार जानकारी से मुक्ति हो, तो शायद हम फिर तलाश पर निकल सकें, खोज पर निकल सकें।

तो लाओत्से कहता है, जो जानते हैं, वे लोगों को ज्ञान से बचाते हैं।

ज्ञान से बचाने का एक तो कारण यह है कि ज्ञान उधार होता है। लाओत्से उस ज्ञान की बात नहीं कह रहा है, जो भीतर, अंतःस्फूर्त होता है। अगर ठीक से समझें, तो दोनों में बड़े फर्क हैं। जो भीतर से जन्मता है, जो स्वयं का होता है, वह नालेज कम और नोइंग ज्यादा होता है। ज्ञान कम और जानना ज्यादा होता है। असल में, जो ज्ञान भीतर आविर्भूत होता है, वह ज्ञान की तरह संगृहीत नहीं होता, जानने की क्षमता की तरह विकसित होता है। जो ज्ञान बाहर से इकट्ठा होता है, वह संग्रह की तरह इकट्ठा होता है, भीतर इकट्ठा होता जाता है। आप अलग होते हैं, ज्ञान का ढेर अलग लगता जाता है। आप ज्ञान के ढेर के बाहर होते हैं। वह आपको छूता भी नहीं। आप अलग खड़े रहते हैं।

जैसे आप अपने कमरे में खड़े हैं और आपके चारों तरफ रुपए का ढेर लगा दिया जाए। इतना ढेर लग जाए कि रुपए में आप बिल्कुल डूब जाएं, सब तरफ रुपए आपको घेर लें, गले तक आप दब जाएं--आकंठ। लेकिन फिर भी आप रुपया नहीं हो गए हैं। आप अभी भी अलग हैं। और एक झटका देकर आप बाहर हो सकेंगे। और नहीं हैं बाहर, तब भी बाहर हैं। आप रुपया नहीं हो गए हैं।

एक तो ज्ञान है, जो बाहर से इसी तरह इकट्ठा होता है, हमारे चारों तरफ इकट्ठा होता है। एराउंड एंड एराउंड, चारों ओर, लेकिन भीतर नहीं। जो भी बाहर से आता है, वह धूल की तरह इकट्ठा होता जाता है, वस्त्रों की तरह इकट्ठा होता जाता है।

जो भीतर से जन्मता है, वह ज्ञान संग्रह की तरह इकट्ठा नहीं होता, वह आपकी चेतना की तरह विकसित होता है। इट इ.ज मोर नोइंग एंड लेस नालेज। वह आपकी चेतना बन जाती है। ऐसा नहीं कि आप ज्यादा जानते हैं; आपके पास ज्यादा जानने की क्षमता है।

नानक या कबीर या बुद्ध या लाओत्से ज्यादा नहीं जानते हैं। और आप में से कोई भी उनको परीक्षा में परास्त कर सकता है। उनकी जानकारी बहुत नहीं है, लेकिन जानने की क्षमता बहुत है। अगर एक ही चीज पर आप और वे, दोनों जानने में लगें, तो वे इतना जान लेंगे, जितना आप न जान सकोगे। अगर एक पत्थर बीच में रख दिया जाए, तो वे उस पत्थर से परमात्मा को भी जान लेंगे। आप पत्थर को भी न जान पाओगे। हो सकता है, पत्थर के संबंध में जानकारी आपकी ज्यादा हो, लेकिन पत्थर में गहराई आपकी ज्यादा नहीं हो सकती। जानकारी सुपरफीशियल होती है, धरातल पर होती है, और जानना अंतःस्पर्शी होता है।

ध्यान रहे, अगर आपके चारों तरफ ज्ञान है, तो आप चीजों से परिचित होते रहेंगे।

बर्ट्रेंड रसल ने दो भेद किए हैं ज्ञान के--करीब-करीब ठीक ऐसे। एक को वह कहता है एक्वेनटेंस, परिचय; और दूसरे को वह कहता है नालेज। जो परिचय है वह हमारे पास इकट्ठा हो जाता है; और जो ज्ञान है वह हमारे

पास इकट्ठा नहीं होता, वह हम को ही रूपांतरित कर जाता है। ज्ञान और ज्ञानी में फर्क नहीं होता; जानकारी में और जानने वाले में फासला होता है, डिस्टेंस होता है, स्पेस होती है, जगह होती है।

तो लाओत्से कहता है कि जो जानते हैं, वे लोगों को जानकारी से बचाएंगे। इसीलिए बचाएंगे, ताकि कभी लोग भी उस दुनिया में प्रवेश कर सकें, जहां जानने की घटना घटती है। इसलिए समस्त ज्ञानियों ने ज्ञान पर जोर नहीं दिया, ध्यान पर जोर दिया। ध्यान से क्षमता बढ़ती है जानने की, और ज्ञान से तो केवल संग्रह बढ़ता है।

यह फर्क आप ख्याल में ले लें: संग्रह और क्षमता।

महावीर ने तो कहा कि जिस दिन परम ज्ञान होता है, उस दिन न जानने वाला बचता है, न जाने जाने वाली वस्तु बचती है, न जानकारी बचती है; बस केवल ज्ञान ही बच रहता है, सिर्फ जानना ही बच रहता है। न पीछे कोई जानने वाला होता, न आगे कुछ जानने को शेष होता; जस्ट ए नोइंग, सिर्फ जानना मात्र रह जाता है।

जैसे एक दर्पण हो, जिसमें कोई प्रतिबिंब न बनता हो, क्योंकि उसके आगे कुछ भी नहीं है; दर्पण हो, उसमें कोई रिफ्लेक्शन न बनता हो, क्योंकि आगे कोई आब्जेक्ट नहीं है, कोई वस्तु नहीं है जिसका बने। फिर भी दर्पण तो दर्पण होगा। लेकिन देन इट इ.ज जस्ट ए मिरर। और भी ठीक होगा कहना, देन इट इ.ज जस्ट ए मिररिंग। कुछ भी तो नहीं बन रहा है उसमें, लेकिन अभी दर्पण तो दर्पण है।

महावीर कहते हैं, जब सच में ही आंतरिक ज्ञान का आविर्भाव होता है अपनी पूर्णता में, तो व्यक्ति सिर्फ जानने की एक क्षमता मात्र रह जाता है; जानकारी बिल्कुल नहीं बचती। और ध्यान रहे, जानकारी जहां खत्म होती है, वहीं जानने वाला भी खत्म हो जाता है।

इसलिए लाओत्से के जोर का दूसरा हिस्सा भी ख्याल में ले लें कि जानकारी जानने वाले को मजबूत करती है और ज्ञान जानने वाले को मिटा डालता है। ये फर्क हैं। आप जितना ज्यादा जानने लगेंगे, उतना आपका मैं सघन, क्रिस्टलाइज्ड हो जाएगा। आपकी चलने में अकड़ बदल जाएगी; आपके बोलने का ढंग बदल जाएगा। आपके भीतर कोई एक बिंदु निरंतर, मैं जानता हूं, खड़ा रहेगा। जानकारी जितनी बढ़ती जाएगी, उतना ही यह मैं भी मजबूत होता चला जाएगा।

इससे उलटी घटना घटती है, जब ज्ञान विकसित होता है, आविर्भाव होता है भीतर से, जानने की क्षमता का जन्म होता है, तो बड़े मजे की बात है, वह जो मैं है, एकदम शून्य होते-होते विलीन हो जाता है। जिस दिन पूरी तरह मैं विलीन होता है, उसी दिन वह जिसे महावीर केवल ज्ञान, अकेला ज्ञान कह रहे हैं, वह फलित होता है।

पंडित और ज्ञानी में यही फर्क है।

लाओत्से के पास कनफ्यूशियस गया था। और कनफ्यूशियस ने लाओत्से से कहा था, मुझे कुछ उपदेश दें, जिससे कि मैं अपने जीवन का निर्धारण कर सकूं। लाओत्से ने कहा कि जो दूसरे के ज्ञान से अपने जीवन का निर्धारण करता है, वह भटक जाता है। मैं तुम्हें भटकाने वाला नहीं बनूंगा।

बड़ी दूर की यात्रा करके कनफ्यूशियस आया था। और कनफ्यूशियस बुद्धिमान से बुद्धिमान लोगों में से एक था; बहुत जानते हैं जो लोग, उनमें से एक था। कनफ्यूशियस ने कहा, मैं बहुत दूर से आया हूं, कुछ तो ज्ञान दें।

लाओत्से ने कहा, हम ज्ञान को छीनने का काम करते हैं; देने का अपराध हम नहीं करते।

यह हमें कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन सच ही आध्यात्मिक जीवन में गुरु ज्ञान को छीनने का काम करता है। वह आपकी सब जानकारी झड़ा डालता है। पहले वह आपको अज्ञानी बनाता है। ताकि आप ज्ञान की तरफ जा सकें। पहले वह आपकी जानकारी गिरा डालता है और आपको वहां खड़ा कर देता है जो आपका निपट अज्ञान है।

सच में ही क्या हम जानते हैं? अगर ईमानदारी से हम पूछें, जानते हैं ईश्वर को? लेकिन कहे चले जाते हैं। न केवल कहे चले जाते हैं, लड़ सकते हैं, विवाद कर सकते हैं। है या नहीं, संघर्ष कर सकते हैं। जानते हैं हम आत्मा को? लेकिन सुबह-शाम उसकी बात किए जाते हैं। आम आदमी नहीं, राजनीतिज्ञ कहता है कि उसकी आत्मा बोल रही है। अंतरात्मा की आवाज आ रही है राजनीतिज्ञ को। कोरे शब्द! आपको छाती के भीतर किसी आत्मा का कभी भी कोई पता चलता है? कोई स्पर्श कभी हुआ है उसका जिसे आत्मा कहते हैं? कोई स्पर्श नहीं हुआ, कोई संपर्क नहीं हुआ, एक किरण भी उसकी नहीं मिली है। पर कहे चले जाते हैं।

तो गुरु पहले तो यह सारी जानकारी को झड़ा डालेगा, काट डालेगा एक-एक जगह से, कि पहले तो वहां खड़ा कर दूं जहां तुम हो। क्योंकि यात्रा वहां से हो सकती है जहां आप हैं, वहां से नहीं जहां आप समझते हैं कि आप हैं। अगर मुझे किसी यात्रा पर निकलना है और मैं इस कमरे में बैठा हूं, तो इसी कमरे से मुझे चलना पड़ेगा। लेकिन मैं सोचता हूं कि मैं आकाश में बैठा हुआ हूं। तो मैं सोचता भला रहूं, लेकिन कोई भी यात्रा उस आकाश से शुरू नहीं हो सकती। मैं जहां हूं, वहां से यात्रा का पहला कदम उठाना पड़ता है। मैं सोचता हूं जहां हूं, वहां से कोई यात्रा नहीं होती। और अगर मैं जिद्द में हूं कि मैं वहीं से यात्रा करूंगा जहां कि मैं हूं नहीं, सोचता हूं कि हूं, तो मैं कभी यात्रा पर नहीं जाने वाला हूं।

तो पहले तो गुरु ज्ञान को छीन लेता है; अज्ञानी बना देता है। बड़ी घटना है! आदमी इस जगह आ जाए कि सचाई और ईमानदारी से अपने से कह सके कि मैं अज्ञानी हूं, मैं नहीं जानता हूं; मुझे कुछ भी पता नहीं है। अगर कोई व्यक्ति पूरी सचाई से अपने समक्ष इस सत्य को उदघाटित कर ले, तो वह ज्ञान के मंदिर की पहली सीढ़ी पर खड़ा हो जाता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी, जो जानते हैं, वे लोगों को जानकारी नहीं देते, उनसे जानकारी छीन लेते हैं।

इसलिए आपको असली गुरु प्रीतिकर नहीं लगेगा। आप तो गुरु के पास भी कुछ लेने को जाते हैं। और असली गुरु तो, जो भी है आपके पास, उसको भी छीन लेगा। आप तो जाते हैं सत्संग में कि कुछ शब्द सुन लेंगे और आप उन शब्दों के संबंध में गपशप कर सकेंगे; कुछ जानकारी ले आएंगे और किसी और के सामने गुरु बनने का आनंद ले सकेंगे; किसी के सामने अकड़ कर खड़े हो जाएंगे और बता सकेंगे कि जानते हैं कुछ।

इसलिए असली गुरु बहुत अप्रीतिकर लगता है। वह आपको सब जगह से काटता है। वह जो-जो आप जानते हैं वहां-वहां से आपकी जड़ें हिलाता है। इसलिए असली गुरु के पास जाने में बड़ी घबड़ाहट होती है। क्योंकि वह आपको नग्न करेगा, वह आपके एक-एक वस्त्र को निकाल कर अलग फेंक देगा, वह आपके सब आवरण अलग कर देगा। वह आपको वहीं खड़ा कर देगा, जहां आप हैं।

बहुत दुखद है वहां खड़ा होना, जहां आप हैं; इसे वह भी जानता है। बहुत अरुचिकर है यह बात जाननी कि मुझे कुछ भी पता नहीं है; यह वह भी जानता है। लेकिन वह यह भी जानता है कि इसे जाने बिना जानने के जगत में कोई यात्रा नहीं हो सकती। इसलिए लाओत्से ठीक कहता है।

लाओत्से की यह किताब बहुत प्रचलित नहीं हो पाई; लाओत्से के ये वचन बहुत व्यापक नहीं हो पाए। क्योंकि कौन अज्ञानी बनने को राजी है? ज्ञानी बनने को हम सब राजी हैं। हमारे विश्वविद्यालय, हमारे स्कूल, हमारे कालेज, हमारे पंडित-पुरोहित, हमारे महात्मा-साधु, सब ज्ञान बांट रहे हैं। और मजा यह है कि इतना ज्ञान बंटता है, और इतना ही अज्ञान बढ़ता चला जाता है। जरूर इस ज्ञान के पीछे कहीं कोई भूल हो रही है। यह ज्ञान अज्ञान को तोड़ने वाला नहीं, बढ़ाने वाला सिद्ध हो रहा है। तो लाओत्से की बात तो कठिन मालूम पड़ेगी।

साथ ही, वह कहता है, "वे उन्हें कोरे ज्ञान और इच्छादि से मुक्त रखने का प्रयास करते हैं।"

इच्छाओं से मुक्त करने की बात तो हम सुनते हैं। साधारण साधु-संत भी इच्छाओं से मुक्त होने की बात करते हैं। इसलिए लगेगा कि लाओत्से की इस बात में तो कोई नई बात नहीं, ठीक है।

नहीं, लाओत्से की इस बात में भी कुछ नई बात है। क्योंकि लाओत्से मानता है कि इच्छाएं सिर्फ संसार की नहीं होतीं, मोक्ष की इच्छाएं भी इच्छाएं हैं। इसलिए ज्ञानी लोगों को इच्छाओं से मुक्त रखने की कोशिश करता है। अगर हमारा साधारण साधु कह रहा होता, तो वह कहता, सांसारिक इच्छाओं से मुक्त रखने की कोशिश करता है। यह सांसारिक विशेषण जरूर ही जुड़ा होता है। इसका मतलब है कि असांसारिक इच्छाएं भी हो सकती हैं। जब मंदिरों में बैठ कर साधु लोगों को समझाते रहते हैं कि सांसारिक इच्छाएं छोड़ो, तब उनका मतलब साफ है कि असांसारिक इच्छाएं भी हो सकती हैं। निश्चित ही, मोक्ष पाना है, परमात्मा के दर्शन करने हैं, जन्म-मरण से छुटकारा पाना है, ये तो असांसारिक इच्छाएं हैं।

लेकिन लाओत्से को अगर समझना है, तो आपको समझना पड़ेगा, लाओत्से कहता है, इच्छा संसार है। सांसारिक इच्छाएं नहीं होतीं, इच्छा में होना ही संसार में होना है। ऐसा नहीं है कि कुछ इच्छाएं ऐसी भी हैं कि उनके द्वारा कोई आदमी मुक्त हो जाए। क्योंकि लाओत्से कहता है, इच्छा ही बंधन है। वह कोई भी इच्छा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इच्छा की क्वालिटी में, गुण में कोई भेद नहीं होता।

मैं धन चाहता हूं, तो क्या होता क्या है मेरे मन के भीतर? इस मैकेनिज्म को थोड़ा समझ लें। मैं धन चाहता हूं, तो मेरे भीतर क्या होता है? चाह होती है अभी, धन तो अभी नहीं होता। धन होगा भविष्य में--कल, परसों, कभी। अभी तो नहीं, कभी। मैं हूं अभी, धन होगा कभी। और मेरा जो अभी होना है, वह कभी जो हो सकता है धन, उसको चाहने की वजह से खिंचेगा और तनाव से भरेगा। जितने दूर होगा वह, उतना ही तनाव होगा। वर्ष भर बाद मिलेगा, तो वर्ष भर का तनाव होगा। मेरे मन को आज से वर्ष भर तक फैल जाना पड़ेगा; और वर्ष भर बाद जो धन है, उसको सपने में छूना और पकड़ना पड़ेगा। इच्छा का मतलब यह है।

मोक्ष और भी दूर है। परमात्मा और भी दूर मालूम पड़ता है। अगर मुझे परमात्मा को पाना है, तो एक जन्म काफी नहीं मालूम होगा; अनंत जन्म लेने पड़ेंगे, तब मिलेगा। तो अनंत जन्मों तक मेरी इच्छा की बांह को मुझे फैलाना पड़ेगा--परमात्मा को पकड़ने के लिए। खिंच गया मैं, तन गया। इच्छा का अर्थ है, तनाव की प्रक्रिया।

लाओत्से कहता है, ज्ञानी लोगों को इच्छादि से मुक्त करते हैं। उसका अर्थ है कि वे उनको तनाव से मुक्त करते हैं। ज्ञानी कहते हैं, अभी रहो--अभी, यहीं। कल को भूल जाओ। कल के धन को भी, कल के धर्म को भी, कल के यश को भी, कल के प्रभु को भी। क्योंकि अगर कल कुछ भी तुम्हारा है, तो इच्छा रहेगी, और तुम तने रहोगे। और तुम तने रहोगे और इच्छा बनी रहेगी, तो तुम बंधे रहोगे--अशांत, पीड़ित, परेशान। लाओत्से कहता है, इच्छादि से। इच्छाओं में कोई विश्लेषण नहीं करता कि कौन सी इच्छाओं से।

अगर आप साधारण धर्मग्रंथ पढ़ने जाएंगे, तो तत्काल फासला किया जाता है कि किन इच्छाओं से मुक्त हो जाओ--बुरी इच्छाओं से! अच्छी इच्छाओं से भर जाओ। सांसारिक इच्छाएं छोड़ दो; पारलौकिक इच्छाओं को निमंत्रण करो। इस जगत में पाने का इरादा छोड़ दो; यहां कुछ न मिलेगा। अगर पाना है, तो परलोक में! बल्कि ये सारे के सारे लोग जो इस तरह की बातें समझाते हुए रहते हैं, ये बड़े मजे की दलीलें देते हैं। वे कहते हैं कि यहां तुम जो भी पा रहे हो, यह क्षणिक है। और हम तुम्हें जो बता रहे हैं, वह शाश्वत है।

बड़ा मजे का प्रलोभन है। यह लोभ को उकसाना है। वे यह कह रहे हैं कि तुम नासमझ हो, धन के पीछे दौड़ रहे हो। हम समझदार हैं, हम धर्म के पीछे दौड़ रहे हैं। और देखना कि तुम धन पा भी लोगे, तो तुमसे छूट जाएगा। और हम जब धर्म को पा लेंगे, तो हमसे कोई छुड़ा न पाएगा।

तो इन दोनों आदमियों में जो फर्क है, वह होशियारी और चालाकी का है या इच्छा का है? यह जो दूसरा आदमी है, जो पारलौकिक इच्छा की बात कर रहा है, मोर कनिंग, ज्यादा चालाक मालूम होता है; मोर कैलकुलेटिंग, ज्यादा होशियार और गणित लगाने वाला मालूम होता है। वह कहता है कि इस जगत की स्त्रियों को पाकर क्या करोगे? इनका सौंदर्य अभी है और अभी नहीं हो जाएगा। स्वर्ग में अप्सराएं हैं, उन्हें पाओ! उनका सौंदर्य कभी स्खलित नहीं होता। यहां सुख पा रहे हो? क्षणभंगुर है सुख; पानी के बबूले जैसा है; हाथ छुओगे, लगाओगे कि टूट जाएगा। हम तुम्हें उस सुख का रास्ता बताते हैं, जो शाश्वत है। यह जो मन बोल रहा है, वासनाग्रस्त है। और इस बात को समझ कर जो चल पड़ेगा, वह वासना से ही चल पड़ा है।

लाओत्से बिना किसी शर्त के कहता है, इच्छादि से मुक्त। कौन सी इच्छा नहीं, इच्छा से मुक्त। कल की मांग नहीं, आज का जीवन! कल का भरोसा नहीं, आज के साथ जीवन! भविष्य में कोई सपनों का फैलाव नहीं, इसी क्षण जो है, उसी में मौजूदगी!

इच्छारहितता का अर्थ है, टु बी प्रेजेंट इन दि प्रेजेंट। वासनारहितता का अर्थ है, अभी जो है, वहीं होना। वासनारहितता का अर्थ है, यह क्षण पर्याप्त है; मैं इस क्षण के बाहर न जाऊंगा। जो है, उसके साथ ही जीऊंगा। दुख है तो दुख के साथ; सुख है तो सुख के साथ; अंधेरा है तो अंधेरा और रोशनी है तो रोशनी; और दिन है तो दिन और रात है तो रात। जो है अभी, उसके साथ मैं जीऊंगा। इसके पार मैं अपनी इच्छाओं के सपनों में नहीं खोऊंगा। इसका अर्थ है, सत्य के साथ जीना, तथ्य के साथ जीना; जो है, उसके साथ जीना।

लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त करते हैं वे, जो जानते हैं। वे नई-नई इच्छाओं का प्रलोभन नहीं देते। वे कहते हैं, यह इच्छा छोड़ो और दूसरी पकड़ लो, ऐसा नहीं। क्योंकि उससे क्या फर्क पड़ेगा?

लेकिन हमें बहुत कठिनाई होगी। हमें आसानी रहती है; कोई कहता है, धन छोड़ो, धर्म पकड़ लो। तकलीफ होती है थोड़ी, लेकिन फिर भी पकड़ने को हमें वह कुछ देता है। सामान बदलता है, लेकिन मुट्ठी नहीं खुलती। मुट्ठी के भीतर हमने धन पकड़ा था। वह कहता है, धन छोड़ो, इसमें कोई सार नहीं है। और उसकी बात कोई ऐसी कठिन नहीं है बहुत समझ लेनी। हम को भी समझ में आ ही जाएगी किसी न किसी दिन कि कोई सार नहीं है। धन में कोई सार नहीं है, यह मूढ़ से मूढ़ आदमी को भी एक दिन समझ में आ जाता है, बहुत बुद्धिमान होने की जरूरत नहीं है। या है? धन में सार नहीं है, यह बुद्धिहीन से बुद्धिहीन को समझ में आ जाता है।

अगर नहीं आता, तो उसका कुल कारण इतना ही होता है कि उसके पास धन नहीं होगा। और कोई कारण नहीं होता। बुद्धिहीनता बाधा नहीं डालती। धन न हो, तो समझ में आना मुश्किल होता है। क्योंकि जो है

ही नहीं, वह बेकार है, यह कैसे समझ में आएगा? लेकिन धन हो, तो बुद्धू को भी समझ में आ जाता है कि बेकार है; कुछ पाया नहीं। तब खुद ही मन होने लगता है कि कुछ और पाऊं, यह तो बेकार गया।

तभी कोई नई वासनाओं को जगाने वाला अगर आपसे कहता है, धन को छोड़ो, धर्म को पकड़ो, तो तत्काल आप धन छोड़ कर धन पकड़ लेते हैं। मुट्ठी फिर कायम हो जाती है।

और ध्यान रहे, धन बेकार है, यह समझने में बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, लेकिन धर्म बेकार है, इसे समझने में बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत है। मैंने कहा कि बुद्धू से बुद्धू भी समझ लेगा एक दिन कि धन बेकार है, और बुद्धिमान से बुद्धिमान भी नहीं समझ पाता कि धर्म भी बेकार है। असल में, बेकार का मतलब यह है कि जिस चीज पर भी मुट्ठी बांधनी पड़ती है वह बेकार है। क्योंकि जिस चीज पर आप मुट्ठी बांधते हैं, उसी के आप गुलाम हो जाते हैं। क्लिंगिंग, वह जो मुट्ठी का बांधना है, गुलामी शुरू हो जाती है।

आप जब किसी चीज पर मुट्ठी बांधते हैं, तो आप सोचते होंगे, मालिक हो गए! क्योंकि मुट्ठी आपकी बंधी है, चीज तो अंदर है; मालिक आप हैं। लेकिन आपको पता नहीं कि वह जो चीज भीतर है, आप उसके गुलाम हो गए। वह चीज तो आपकी बिना मुट्ठी के भी रह सकती है, लेकिन अब आपकी मुट्ठी उस चीज के बिना नहीं रह सकती। अगर आप धन को छोड़ देंगे मुट्ठी से, तो वह धन यह नहीं कहेगा कि ऐसा क्यों कर रहे हो? मुझे बड़े दुख में डाल रहे हो! लेकिन आप से कोई धन छीन लेगा, छुड़ा लेगा, तो आपकी मुट्ठी रोएगी, आपके प्राण भटकेंगे और चिंतित होंगे। तो गुलाम कौन हो गया है वहां?

और हम जिस चीज पर भी मुट्ठी बांधते हैं, उसी के बंधन को स्वीकार कर लेते हैं। और जिस चीज को भी हम चाहते हैं कि वह हमें कल मिले, वह हमारे आज को नष्ट कर जाती है। और मजा यह है कि जब वह कल हमें मिलेगी, तब भी हम उसे भोगने को कल न होंगे। क्योंकि इस बीच हमारी जो निरंतर की आदत हो गई है कल की, वह कल भी साथ रहेगी। क्योंकि कल जब आएगा, तो वह आज हो जाएगा। और आज को जीने का आपने कभी कोई अनुभव नहीं किया; आज में आप कभी जीए नहीं। आपका चिरंतन अभ्यास है कल में जीने का। यह जो आज, जिसे हम आज कह रहे हैं, यह भी तो कल कल था। जैसे ही आज बनता है, आपके लिए बेकार हो गया। आपका मन कल पर चला गया।

यह तो बड़ी मजेदार बात है। जब भी कल आएगा, आज हो जाएगा। और जब भी वह आज हो जाएगा, तभी आप उसके लिए बेखबर हो जाएंगे। और हो सकता है, वर्षों उसकी प्रतीक्षा की हो। और हो सकता है, वर्षों तड़पे हों। वर्षों चाहा हो, मांगा हो, प्रार्थना की हो। और जब वह आएगा, तब आप वहां नहीं होंगे। क्योंकि वर्षों प्रार्थना करने वाला चित्त संस्कारित हो गया। यह तो कल में ही मांग करता रहेगा। यह फिर और आगे कल की मांग करने लगेगा।

हम रोज ही ऐसा करते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे किसी आदमी की आंख में खराबी हो और वह पास न देख पाता हो; दूर का ही दिखाई पड़ता हो उसे। उसे दूर एक हीरा पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, वह भागता है। लेकिन जब तक वह हीरे के पास पहुंचता है, तब तक--उसकी आंख तो दूर ही देख सकती है, उसकी आंख पास नहीं देख सकती--जब तक वह हीरे के पास पहुंचता है, तब तक हीरा ओझल हो जाता है। क्योंकि उसकी आंख फारसाइटेड है, वह फिर दूर देखने लगता है। और इस आदमी को कभी ख्याल भी नहीं आता कि हर हीरे के साथ यही किया मैंने अब तक। यह फिर दौड़ेगा, क्योंकि फिर कोई चमकदार चीज इसे दिखाई पड़ने लगी। और ऐसे यह जिंदगी भर दौड़ेगा। और कभी इसे ख्याल न आएगा कि मेरे पास जो आंख है, वह फिक्स्ड है। वह पचास फीट के पार ही देखती है। पचास फीट के भीतर मैं अंधा हो जाता हूं, ब्लाइंड स्पाट आ जाता है।

हम सब ऐसे ही ब्लाइंड स्पाट में जीते हैं। आज जो है, वह अंधेरे में हो जाता है; और कल पर हमारी रोशनी पड़ती रहती है। कल बड़ा चमकदार दिखता है, जो नहीं है। कुछ कर नहीं सकते आप, सिर्फ चमकदार होना उसका सोच सकते हैं--स्वप्न। कुछ कर नहीं सकते, कल में कुछ भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह है ही नहीं। आदमी की इम्पोटेंसी, आदमी की जो नपुंसकता है, उसके व्यक्तित्व का जो रिक्त रूप है, वह इस कारण है। कल में कुछ किया नहीं जा सकता, और आज कुछ कर नहीं सकते हैं। आज में कुछ किया जा सकता है, लेकिन आज में आप मौजूद नहीं हैं। और कल में कुछ किया नहीं जा सकता और आप सदा कल में मौजूद हैं। तो पूरी जिंदगी रिक्त हो जाती है।

यह जो आज हर आदमी को लगता है कि एक एम्पटीनेस है, एक खालीपन है। शून्य-शून्य सब, कहीं कुछ भराव नहीं, कोई फुलफिलमेंट नहीं। जो भी पाते हैं, वही बासा सिद्ध होता है; जो भी हाथ में आता है, वही फेंकने जैसा मालूम पड़ता है। जिसको भी खोज लेते हैं, उसकी ही सारी अर्थवत्ता खो जाती है।

लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त कर देते हैं।

ज्ञानी यह नहीं कहता कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ। यह भी ध्यान रखें। क्योंकि अगर ज्ञानी आपसे यह कहे कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ, तो आप फौरन पूछेंगे, किसलिए? फार व्हाट? और तब ज्ञानी को बताना पड़ेगा कि मोक्ष के लिए, शाश्वत आनंद के लिए, परमात्मा के लिए, स्वर्ग के लिए। फिर तो इच्छा का जाल शुरू हो गया। जो भी आपको कहेगा, इच्छाओं से मुक्त हो जाओ, वह आपको नई इच्छा जनमाएगा। क्योंकि आप उससे पूछेंगे, क्यों?

नहीं, लाओत्से जैसा ज्ञानी पुरुष यह नहीं कहता, इच्छाओं से मुक्त हो जाओ। वह सिर्फ इच्छा क्या है, इसे जाहिर कर देता है। बता देता है, यह रही इच्छा। दिस इ.ज दि फैक्ट, यह है तथ्य। वह बता देता है कि यह रही दीवार, इससे निकलोगे तो सिर टूट जाएगा। वह यह नहीं कहता कि सिर मत तोड़ो। क्योंकि आप पूछोगे, क्यों न तोड़ें? आप पूछेंगे, क्यों न तोड़ें? वह यह नहीं कहता कि इस दीवार से मत निकलो। क्योंकि आप पूछेंगे, क्यों न निकलें? कोई प्रलोभन है कहीं और से जाने का?

ध्यान रहे, वह आपको कोई पाजिटिव डिजायर नहीं देता कि इसलिए ऐसा मत करो; वह तो इतना ही बता देता है कि ऐसा करोगे तो ऐसा होता है।

बुद्ध के वचनों में बहुत बढ़िया एक तर्कसंगत प्रक्रिया है। बुद्ध निरंतर कहते थे, ऐसा करोगे तो ऐसा होता है। डू दिस एंड दिस फालोज। बुद्ध से कोई पूछता कि हम क्या करें? तो बुद्ध कहते हैं, यह तुम मुझसे मत पूछो। तुम मुझसे यह पूछो कि तुम क्या करना चाहते हो। मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम यह करोगे तो यह होगा, यह करोगे तो यह होगा; इससे ज्यादा मैं कुछ न कहूंगा। मैं तुमसे नहीं कहता कि यह करो। मैं इतना ही कहता हूं कि दीवार से निकलोगे, सिर टूट जाता है; दरवाजे से निकलोगे, बिना सिर टूटे निकल जाओगे। फिर तुम्हारी मौज! तुम दीवार से निकलो, तुम दरवाजे से निकलो! मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम दीवार से मत निकलो।

फर्क समझ रहे हैं आप? एक तो यह है कि स्पष्ट आपसे कहा जाए, यह आप करो। लेकिन जब भी आपसे कोई पाजिटिवली कहेगा, डू दिस! आप पूछेंगे, क्यों? इसलिए लाओत्से या बुद्ध या महावीर, इन सभी का चिंतन जो है, गहरे अर्थों में निगेटिव है। वे कहेंगे, ऐसा करोगे तो ऐसा होता है। इच्छाओं में पड़ोगे तो दुख फलित होता है। वे यह नहीं कहते कि इच्छाओं में नहीं पड़े तो सुख मिलेगा। क्योंकि अगर वे ऐसा आप से कहें, तो आप कहेंगे, अच्छा हमको सुख चाहिए; कैसे मिलेगा, बताओ। अब यह नई इच्छा निर्मित हो जाएगी।

यह बारीक है थोड़ा; लेकिन इसे समझ लेना चाहिए। अगर बुद्ध कहते हैं कि सुख... इसलिए बुद्ध ने तो ईश्वर, मोक्ष, इनकी बात ही नहीं उठाई। लाओत्से ने भी नहीं उठाई। लाओत्से ने भी नहीं उठाई। और लाओत्से का जब पहले दफे ख्याल पश्चिम में पहुंचा, तो लोगों ने कहा, इसको धर्मग्रंथ कहने की जरूरत क्या है? न तो इसमें मोक्ष की बात है, न ईश्वर की बात है, न पाप-पुण्य से छुटकारे की बात है। यह आदमी बातें क्या कर रहा है!

बुद्ध से लोग पूछते थे, ईश्वर है? बुद्ध चुप रह जाते। बुद्ध कहते, इतना ही पूछो कि संसार क्या है? बुद्ध से लोग पूछते कि मोक्ष में क्या होगा? बुद्ध चुप रह जाते। फिर तो बाद में बुद्ध ने तेरह प्रश्न तैयार करवा लिए, और जिस गांव में जाते, वहां डुग्गी पिटवा देते कि ये तेरह प्रश्न कोई न पूछे, क्योंकि इनके जवाब मैं नहीं देता।

बुद्ध के जो विरोधी थे, उन्होंने तो खबरें उड़ा दीं, कि यह जवाब नहीं देता, क्योंकि इसको मालूम नहीं है। मालूम हो, तो जवाब दो; अगर मालूम है, तो जवाब दो। अगर मालूम नहीं है, तो कह दो कि मालूम नहीं है।

अब बुद्ध की तकलीफ आप समझ सकते हैं। इस जगत में ज्ञानी की तकलीफ सदा से यही रही है। बुद्ध को मालूम है और जवाब नहीं देना है। बुद्ध यह भी नहीं कहते कि मुझे मालूम है। क्योंकि बुद्ध अगर यह कहें कि मुझे मालूम है, तो लोग पूछते, फिर बताएं! बुद्ध कहते हैं, मैं बस चुप रह जाता हूं। मैं इस संबंध में कुछ नहीं कहता; यह भी नहीं कहता कि मुझे मालूम है। क्योंकि मेरा इतना कहना भी तुम्हारे भीतर वासना को जनमाएगा कि अगर आपको मालूम है, तो हमको कैसे मालूम हो।

बुद्ध कहते हैं, मैं यह नहीं बताता कि खुला आकाश कहां है, मैं तो इतना ही बताता हूं कि तुम्हारे हाथ में जो जंजीरें हैं, वे क्यों हैं! तुम्हारे हाथ में जंजीरें पड़ी हैं और मैं तुम्हें आकाश के, खुले आकाश के, मुक्त आकाश के विवरण दूं--तुम जंजीरों में ही पड़े मुक्त आकाश के सपने देखने शुरू कर दोगे। वे सपने जंजीरें तोड़ने में सहयोगी नहीं, बाधा बनेंगे। और इस बात का भी डर है कि कारागृह में ही कोई आदमी इतना गहरा सपना देखने लगे कि भूल जाए कि कारागृह में है। और इस बात का भी डर है कि वह आकाश को पाने के लिए इतना उत्तेजित और परेशान और चिंतित हो जाए कि जंजीरों को तोड़ने के लिए जितनी शांति चाहिए वह उसके पास न बचे।

बुद्ध कहते थे, आकाश का मुझसे मत पूछो। मैं तुम्हें बताता हूं कि तुम्हारे हाथ में जंजीरें क्यों हैं, और क्या करो तो जंजीरें टूट जाएं। मैं तुमसे यह भी नहीं कहता कि तुम क्यों तोड़ो। तुम्हें तोड़ना हो, तो यह रहा मार्ग, यह रही व्यवस्था, यह है विधि। ऐसे तुम तोड़ ले सकते हो।

लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त करते हैं। ऐसा कहते नहीं फिरते कि इच्छाओं से मुक्त हो जाओ! इच्छाओं से मुक्त करने के लिए कुछ करते हैं। वह करना दो तरह का है। एक तो इच्छाओं के स्वरूप को उघाड़ कर रख देते हैं, यह रहा। और दूसरा, स्वयं इच्छारहित जीवन जीते हैं।

मैंने कहा कि कनफ्यूशियस मिलने गया। बड़ा उदास लौटा। लाओत्से उसे झोपड़े के द्वार तक छोड़ने आया था। बहुत उदास देख कर--क्योंकि वह मीलों पैदल चल कर आया था--लाओत्से ने कहा, तुम्हें उदास देख कर अच्छा नहीं लगता है। कनफ्यूशियस ने कहा, उदास तो जाऊंगा ही, क्योंकि मैं उपदेश लेने आया था। तो लाओत्से ने कहा, लौट कर एक बार मुझे और गौर से देख लो। अगर मुझे देखना उपदेश बन जाए, तो तुम खाली हाथ नहीं लौटोगे।

बुद्ध या लाओत्से जैसे व्यक्ति जीवंत उपदेश हैं।

लेकिन कनफ्यूशियस ने लौट कर देखा, लेकिन ऐसा नहीं मालूम पड़ता है कि उसे उपदेश मिला। क्योंकि उसने लौट कर अपने शिष्यों को कहा कि सिर पर से निकल गईं बातें, समझ नहीं आया। आदमी तो अदभुत

मालूम होता है, सिंह की तरह। डर लगता है पास खड़े होने में उसके। लेकिन बातें सब सिर पर से निकल गईं, कुछ समझ में नहीं आया। और बहुत जोर मैंने दिया, तो उस आदमी ने इतना ही कहा कि मुझे देख लो।

तो ऐसा लगता नहीं कि कनफ्यूशियस समझ पाया। क्योंकि देखने के लिए भी आंख चाहिए। और कनफ्यूशियस ज्ञान लेने आया था--इच्छा से भरा हुआ। और लाओत्से मौजूद था--अभी, यहीं। कनफ्यूशियस था भविष्य में--कुछ मिल जाए, कुछ जिससे आगे रास्ता खुले; कोई मोक्ष मिले, कोई आनंद, कोई खजाना अनुभूति का। यह जो आदमी मौजूद था सामने निपट, इस पर उसकी नजर न थी। इस आदमी से कुछ लेना था जो भविष्य में काम पड़ जाए। इसलिए शायद ही वह लाओत्से को देख पाया हो।

हम भी चूक जाते हैं। ऐसा नहीं है कि कनफ्यूशियस चूक जाता है, हम भी चूक जाते हैं। आप भी बुद्ध या लाओत्से या महावीर के पास से निकलेंगे, तो सौ में एक मौका है इस बात का कि आपको पता चले।

बहाउद्दीन एक सूफी फकीर हुआ। जिस महानगरी में वह था, उसका सबसे बड़ा धनी व्यक्ति बहाउद्दीन के पास आता था और कहता था कि तुम सूर्य हो पृथ्वी पर! अंधेरा तुम्हें देख कर दूर हट जाता है! बहाउद्दीन हंसता था। जब भी वह आता, वह इसी तरह की बातें कहता कि तुम चांद की तरह शीतल हो, तुम अमृत की भांति हो। बहाउद्दीन हंसता। एक दिन जब वह आदमी चला गया, तो बहाउद्दीन के एक शिष्य ने कहा कि हमें बड़ी अजीब सी लगती है यह बात। वह आदमी कितने आदर के वचन बोलता है और आप ऐसा हंस देते हैं, मैनरलेस; यह शिष्टता नहीं मालूम पड़ती। वह आदमी इतने शिष्टाचार से सिर रखता है पैर पर, कहता है सूर्य हो आप, और आप एकदम हंस देते हैं, जैसे कोई गलती बात कह रहा हो।

बहाउद्दीन ने उस आदमी का हाथ पकड़ा और कहा, मेरे साथ चल। वे उस धनपति की दूकान पर गए। बहाउद्दीन ने सिर्फ अपनी टोपी बदल ली थी, और कुछ न बदला था। उसकी दूकान पर गए सामान खरीदने। सामान खरीद कर लौट आए। रास्ते में बहाउद्दीन ने अपने शिष्य से कहा, देखा! उसको ख्याल भी नहीं आया है कि मैं सूरज हूं। उसी से सामान खरीद कर लौट रहे हैं। पंद्रह मिनट उससे बातचीत भी हुई। और उसने ठग भी लिया और माल भी कम दिया है। पर उसके शिष्य ने कहा, भूल हो सकती है; काम में व्यस्त था।

दूसरे दिन फिर बहाउद्दीन ने कहा कि चल। बहाउद्दीन तो अपनी तरह का आदमी था। तीन सौ पैंसठ दिन, पूरे साल... वह शिष्य घबड़ा गया, वह कहने लगा, अब बस करो, समझ गए, मान गए। पर उसने कहा कि नहीं। तीन सौ पैंसठ दिन पूरे रोज बहाउद्दीन उसकी दूकान पर जाता किसी शक्ल में, कुछ खरीद कर लाता। और वह शिष्य को भी घसीटता। तीन सौ पैंसठ दिन! और इस बीच भी वह आदमी आता रहा दस-पांच दिन में और कहता, तुम सूरज हो! अंधेरे में रोशनी हो जाती है! तुम अमृत हो! तुम्हारी किरण मिल जाती है एक, तो मृत्यु का कहीं पता नहीं चलेगा!

तीन सौ पैंसठ दिन के बाद बहाउद्दीन ने कहा कि बंद कर बकवास! तीन सौ पैंसठ दिन रोज तेरे द्वार पर आया हूं। सूरज तो बहुत दूर, दीया भी दिखाई नहीं पड़ा। तूने इतना भी न कहा कि आप एक टिमटिमाते दीए हैं। कुछ भी तूने नहीं कहा। तू सरासर झूठ बोल रहा है। तुझे सिर्फ इतना मतलब है कि बहाउद्दीन बड़ा आदमी है।

तो अगर आपको महावीर मिल जाएं, तख्ती सहित कि मैं महावीर हूं, तब तो आप फौरन झुक कर नमस्कार कर लें कि तीर्थंकर से मिलन हुआ। और नहीं तो पुलिस को आप खबर दे दें कि यह आदमी नग्न खड़ा हुआ है। यह आदमी नग्न खड़ा हुआ है बंबई में, यह बात ठीक नहीं है।

अभी पीछे यहां संन्यासी इकट्ठे थे। तो एक संन्यासी हैं मेरे जो नग्न रहने के शौकीन हैं। फिर भी हमने उनको कहा था कि बंबई में तुम नग्न मत घूमना, तो वे बेचारे एक लंगोटी लगा कर यहां वुडलैंड में आए होंगे। तो मुश्किल हो गई, और एक व्यक्ति ने मुझे आकर शिकायत की कि यह तो बहुत अजीब सी बात है। यह ठीक बात नहीं है कि एक आदमी लंगोटी लगाए यहां चला आए। और चमत्कार तो यह है कि वह आदमी भी दिगंबर जैन हैं, जिन्होंने मुझे शिकायत की। मैंने उनसे कहा, महावीर अगर आ जाएं वुडलैंड में, तो क्या करोगे? यह तो बेचारा कम से कम लंगोटी लगाए था। वह कहने लगे, महावीर की बात और।

पहचानोगे कैसे? कोई तख्ती, बोर्ड लेकर चलेंगे वे? और कितने लोग महावीर के वक्त महावीर को पहचाने?

हम भी करीब से गुजर जाते हैं बहुत बार। पर आंख हमारी बहुत और चीजों पर लगी है। वह जो निकट पड़ता है, वह दिखाई नहीं पड़ता। और कई बार तो ऐसा होता है कि निकट होता है, इसीलिए दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से कहता है, इच्छादि से मुक्त कर देते हैं ज्ञानी। वह इसीलिए, ताकि जो निकटतम है, निकट से भी निकटतम है, वह जो परमात्मा है, वह दिखाई पड़ जाए। लाओत्से यह नहीं कहता कि मोक्ष नहीं है; लाओत्से कहता है, मोक्ष की इच्छा नहीं हो सकती। लाओत्से यह नहीं कहता कि परमात्मा नहीं है; लाओत्से इतना ही कहता है, परमात्मा को चाहा नहीं जा सकता। जब कोई चाह नहीं होती, तब जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है।

बुद्ध यह नहीं कहते कि मोक्ष नहीं है। बुद्ध इतना ही कहते हैं कि तुम चाहो मत। तुम कुछ न चाहो, मोक्ष भी मत चाहो। फिर तुम मोक्ष में हो।

इस फर्क को समझ लें। मोक्ष को आप अपनी डिजायर का आब्जेक्ट, विषय नहीं बना सकते। मोक्ष आपकी विषय-वासना का आधार नहीं बन सकता। वह आपकी चाह का बिंदु नहीं हो सकता। वह आपका निशान नहीं बन सकता, आपकी चाह का तीर लग जाए उसमें। नहीं, जब आप मय तीर-कमान सब चाह को नीचे गिरा देते हैं, तो आप पाते हैं कि मोक्ष में आप खड़े हैं। असल में, आप सदा से मोक्ष में खड़े थे, लेकिन चाह की वजह से आप दूर-दूर भटकते थे। इच्छा के कारण आप कहीं और भटकते थे। और मोक्ष है यहीं और परमात्मा है यहां निकट, और इच्छा है दूर। इसलिए इच्छा और परमात्मा का मिलन नहीं हो पाता। इच्छा है दूर और परमात्मा है पास। इच्छा है भविष्य में और परमात्मा है वर्तमान में। इच्छा है कल और परमात्मा है आज।

इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञान से और इच्छादि से वे मुक्त करते हैं।

"और जहां ऐसे लोग हैं, जो निपट जानकारी से भरे हैं, उन्हें ऐसी जानकारी के उपयोग से भी बचाने की यथाशक्य चेष्टा करते हैं।"

और जो लोग जानकारी से भरे ही हैं--रोकने की कोशिश करेंगे, लेकिन लोग तो भरे ही हैं--उन जानकारी से भरे हुए लोगों के लिए वे क्या करेंगे? उनको यथाशक्य कोशिश करेंगे कि अपनी जानकारी पर न चल पाएं।

अब यह बहुत अजीब बात है। सभी साधु-संत तो यह कोशिश कर रहे हैं कि देखो, जो हमने समझाया, उस पर चलने की कोशिश करना। साधु अपने प्रवचनों के बाद कहते हैं कि देखो, जो हमने समझाया, उसे यहीं मत छोड़ जाना। ऐसा न हो कि एक कान से जाए और दूसरे कान से निकल जाए। सम्हाल कर रखना और आचरण करना। और कसम खाओ कि जो समझे, उस पर चलोगे।

और लाओत्से कह रहा है कि वे उनको, जानकारी पर चले न जाएं वे कहीं, इससे बचाने की कोशिश करते हैं। लाओत्से यह कह रहा है कि कोई आदमी अपनी जानकारी के अनुसार चलने न लगे। क्योंकि जानकारी है उधार। दूसरों के पंखों को लेकर जैसे कोई पक्षी उड़ने की कोशिश करे तो जो गति हो, वही गति उस आदमी की हो जाती है जो जानकारी को आचरण बनाने की कोशिश करता है।

यह बड़ा मजा है, जानकारी को आचरण बनाना पड़ता है और ज्ञान आचरण बन जाता है। यही फर्क है। ज्ञान को आचरण नहीं बनाना पड़ता। जिस क्षण आपको ज्ञान होता है, उसी क्षण आचरण शुरू हो जाता है। यू आर नॉट टु प्रैक्टिस इट। ज्ञान का भी आचरण करना पड़े, तो ज्ञान तो दो कौड़ी का हो गया।

अब मुझे पता है कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है। यह जानकारी हो सकती है। तो मुझे हाथ को रोकना पड़ेगा कि आग में कहीं डाल न दूं। और अगर यह ज्ञान है कि आग में डालने से हाथ जलता है, तो क्या मुझे कोई चेष्टा करनी पड़ेगी कि आग में मैं हाथ डाल न दूं? नहीं, फिर कोई चेष्टा न करनी पड़ेगी। आग में हाथ जाएगा नहीं। इसके बाबत सोचना ही नहीं पड़ेगा। यह बात समाप्त हो गई। आग और अपना मिलन अब न होगा।

मुझे पता है कि जहर पी लेने से मैं मर जाता हूं। तो क्या मंदिर में जाकर प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि अब मैं कसम खाता हूं कि जहर कभी न पीऊंगा? और अगर कोई आदमी किसी मंदिर में कसम खा रहा हो कि मैं प्रतिज्ञा लेता हूं आजीवन, जहर का कभी भी अब पान नहीं करूंगा! तो आप क्या कहेंगे उस आदमी को सुन कर? कि इस आदमी का डर है, यह कभी न कभी जहर पी लेगा। इसको पता कुछ भी नहीं है। क्योंकि पता हो, तो प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है!

जितने लोग प्रतिज्ञाएं लेते हैं, व्रत लेते हैं, कसमें खाते हैं, ऐसा करेंगे और ऐसा नहीं करेंगे, वे वे ही लोग हैं, जो जानकारी पर चलने की कोशिश कर रहे हैं। किसी ने कहा कि क्रोध बुरा है; अब आप कोशिश कर रहे हैं कि क्रोध न करें। और किसी ने कहा कि वासना बुरी है; और आप कोशिश कर रहे हैं कि वासना न करें।

लाओत्से कहता है, ज्ञानी लोगों को उनकी जानकारी पर चलने से यथाशक्य... ।

यथाशक्य ही कर सकते हैं, क्योंकि जबरदस्ती रोकने का तो कोई उपाय नहीं है। कह ही सकते हैं कि गड्ढा है, गिर जाओगे। लेकिन जिस आदमी ने कसम खाई है कि वह जानकारी पर आचरण करके रहेगा, वह आदमी धीरे-धीरे फाल्स, झूठा आदमी होता चला जाता है। और ऐसी घड़ी आ सकती है कि वह अपने ही आचरण में इतना घिर जाए कि उसे कभी पता ही न चले कि उसका सारा आचरण झूठा है, नकली सिक्के हैं।

अगर एक आदमी ने तय कर लिया कि क्रोध बुरा है--पढ़ कर, सुन कर, समझ कर--दूसरों से! जान कर नहीं, क्योंकि जान कर तय नहीं करना पड़ता कि क्रोध बुरा है। जिसने जाना कि क्रोध बुरा है, वह क्रोध के बाहर हो गया। जिस चीज को आपने जान लिया कि विषाक्त है, उससे आप बाहर हो गए। तो ज्ञानी क्या करेगा? ज्ञानी आपसे कहेगा, क्रोध करो और जानो कि क्या है। तय मत करो शास्त्र को पढ़ कर कि क्रोध बुरा है। वह यह नहीं कह रहा कि शास्त्र में जो लिखा है, वह गलत है। वह जिसने जाना होगा, उसने ठीक ही लिखा होगा। लेकिन वह जानने वाले ने लिखा है; और न जानने वाला उसको जानकारी बना कर जब चलेगा, तो सब उलटा हो जाने वाला है।

ज्ञानी कहेगा कि जो-जो है, उसे जानो, जीयो, पहचानो। और जो-जो बुरा है, वह गिर जाएगा; और जो-जो भला है, वह बच जाएगा। अज्ञानी शिक्षक लोगों को समझाते हैं, बुरे को छोड़ो, भले को पकड़ो। ज्ञानी शिक्षक लोगों से कहते हैं, जानो क्या बुरा है और क्या भला। भले को जानना, बुरे को जानना। जो बच जाए

जानने पर, उसको भला समझ लेना; और जो गिर जाए जानने पर, उसको बुरा समझ लेना। बुरा वह है, जो जानकारी में बचता है, जानने में गिर जाता है; भला वह है, जानकारी में लाने की कोशिश करनी पड़ती है, ज्ञान में आ जाता है--ज्ञान के पीछे छाया की तरह।

आपने कभी भी अगर कोई चीज जानी हो, तो आप मेरी बात समझ जाएंगे। लेकिन कठिनाई यही है कि हमने कभी कोई चीज नहीं जानी है। हमने सुना है।

अब यह कितने आश्चर्य की घटना है! एक आदमी अगर पचास साल जीया है, तो हजारों बार क्रोध कर चुका है। लेकिन अभी भी उसने क्रोध को जाना नहीं है। अभी भी वह किताब पढ़ता है, जिसमें लिखा है, क्रोध बुरा है। और किताब पढ़ कर तय करता है कि अब कसम खा लेते हैं कि अब क्रोध न करेंगे। हजार दफे जो आदमी क्रोध करके नहीं जान पाया, वह कागज पर लिखे गए दो शब्दों से, कि क्रोध बुरा है, जान लेगा? तब तो चमत्कार है।

हजार बार मैं इस मकान में आकर गया और नहीं जान पाया कि इस मकान में जाना बुरा है। एक किताब में पढ़ कर मैं जान लूंगा कि इस मकान में जाना बुरा है? और कसम खा लूंगा कि अब कभी न जाऊंगा, कसम खाता हूं! लेकिन कसम यह बताती है कि जाने का मन बाकी है। क्योंकि कसम खानी किसके खिलाफ पड़ती है? कोई तुमसे कह रहा है कि क्रोध करो? जब हम कसम लेते हैं, तो किसके खिलाफ? अपने खिलाफ। कोई तो नहीं कह रहा है कि क्रोध करो। सारी दुनिया तो कह रही है, क्रोध छोड़ो। कहीं कोई स्कूल नहीं, कोई विद्यापीठ नहीं, जहां हम लोगों को क्रोध करने की ट्रेनिंग दे रहे हों। लोग क्रोध किए चले जा रहे हैं। और मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे और चर्च, सब समझाए जा रहे हैं कि क्रोध मत करो।

सुना है मैंने कि एक चर्च में एक पादरी लोगों को समझा रहा है। लोगों को समझा रहा है कि कैसी भी स्थिति हो, सदभाव रखना चाहिए। तभी एक मक्खी उसकी नाक पर आकर बैठ गई। उसने कहा, फॉर इग्जाम्पल, उदाहरण के लिए, यह मक्खी मेरे नाक पर बैठी है, लेकिन इसको मैं दुश्मन नहीं मानता, और इसे मैं दुश्मन की तरह हटाता भी नहीं हूं। मक्खी को भी परमात्मा ने बनाया; यह भी उसकी सुंदरतम कृति है। और तभी अचानक उसने कहा कि धत तेरे की! ऐसी की तैसी, मक्खी नहीं है, मधुमक्खी है!

सब गड़बड़ हो गया। वह मक्खी थी भी नहीं। लेकिन मधुमक्खी को भी परमात्मा ने ही बनाया हुआ है। लेकिन वह सज्जन मक्खी के भ्रम में उपदेश दिए जा रहे थे।

सब जगह समझाया जा रहा है, क्रोध मत करो, यह मत करो, वह मत करो। और हम वही तो कर रहे हैं। किसके खिलाफ हम कसम लेंगे फिर? कसम अपने खिलाफ है। और अपने खिलाफ कोई कसम बचेगी नहीं।

और ध्यान रखें, कसम हमेशा आपका कमजोर हिस्सा लेता है। यह भी ख्याल रख लें, जब भी आप कसम लेते हैं, आपके भीतर दो हिस्से हो गए। यू हैव डिवाइडेड योरसेल्फ। और जो हिस्सा कसम लेता है, वह कमजोर है, माइनर है। क्योंकि मजबूत हिस्से को कसम कभी लेनी नहीं पड़ती, वह बिना ही कसम के काम करता है। उसको जरूरत ही नहीं है कसम लेने की। आपको कसम लेनी पड़ती है कि क्रोध जारी रखेंगे? आपको कसम लेनी पड़ती है कि ब्रह्ममुहूर्त में कभी न उठेंगे?

कोई कसम नहीं लेनी पड़ती। वह जो मेजर हिस्सा है आपका, वह बिना कसम के चलता है। वह आपके कसम-वसम की लेने की उसको कोई जरूरत नहीं है। नब्बे-निन्यानबे प्रतिशत वह है। उसे क्या कसम लेनी? कसम जब भी आप लेते हो, तो माइनर पार्ट, कमजोर हिस्सा कसम लेता है। और कमजोर हिस्सा कितनी देर टिकेगा मजबूत हिस्से के सामने! वह ज्यादा देर टिकने वाला नहीं है। वह नई तरकीब निकाल लेगा कसम को

तोड़ने की। वह कहेगा, मधुमक्खी है, मक्खी नहीं है। वह मक्खी के लिए समझा रहा था; मधुमक्खी के लिए समझा भी नहीं रहे थे।

सुना है मैंने कि एक ईसाई फकीर नियम से जीसस के वचनों का पालन करता था। एक आदमी ने उसके गाल पर एक चांटा मारा, तो उसने दूसरा गाल कर दिया। क्योंकि जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा कर देना। मगर वह आदमी भी जिद्दी था। उसने दूसरे गाल पर भी चांटा मारा।

यह इसने सोचा नहीं था। और जीसस ने यह कहा भी नहीं है कि वह दूसरे पर भी मारेगा। इतना ही कहा है कि तुम दूसरा कर देना, तो वह तो पिघल जाएगा, पैरों पर गिर पड़ेगा। इसने कहा, हद्द हो गई। उसने दूसरे पर भी दुगुनी ताकत से चांटा मारा। अब इसकी समझ में भी न आया, क्योंकि ईसा का कोई वचन नहीं है कि तीसरा गाल कर देना, तीसरा कोई गाल भी नहीं है। तो उसने उठा कर तीसरा चांटा उसको मारा।

पर उस आदमी ने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं? जीसस को भूल गए?

उसने कहा, नहीं, भूले नहीं। लेकिन दो ही गाल हैं। और तीसरे के बाबत कोई इंस्ट्रक्शन नहीं है। अपनी ही बुद्धि से चलना पड़ेगा। मेरी बुद्धि यह कहती है कि अब मारो।

यह बुद्धि तब भी मौजूद थी, जब दो गाल पर चांटा मारा गया। यही असली बुद्धि है, यह इस आदमी की अपनी बुद्धि है। वक्त पर यही काम पड़ेगी, जब मुसीबत आएगी। वह जो हमारा कमजोर हिस्सा है, वह केवल शब्दों से जीता है। सुने हुए वचन, पढ़े हुए वचन मस्तिष्क में बैठ जाते हैं। फिर हम उन्हीं को आधार बना कर कसमें खाते हैं, आचरण को बनाते हैं।

लाओत्से कहता है कि वह उनको उनकी जानकारी पर चलने से रोकते हैं। वे कहते हैं, जानकारी पर मत चलो, ज्ञान को पा लो। फिर चलना तो हो जाएगा।

"जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तब जो सुव्यवस्था बनती है, वह सार्वभौम है।"

अक्रियता की! नॉन-एक्शन की! ज्ञान अक्रिय है। ज्ञान कोई क्रिया नहीं है, अवस्था है। जब कोई व्यक्ति अंतर-ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो वह एक अवस्था है, एक ज्योतिर्मय अवस्था। सब भर गया प्रकाश से, साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा। अंधेरे हट गए, धुआं नहीं रहा आंखों में। दृष्टि स्वच्छ हो गई। चीजें पारदर्शी हो गईं, ट्रांसपैरेंट। सब साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा। यह अवस्था है; कोई क्रिया नहीं है इसमें, यह अवस्था है। आचरण के तक के लिए कोई क्रिया नहीं, क्योंकि अब आचरण की कोई क्रिया की जरूरत न रही। अब यह जो अवस्था है प्रकाश की, यह वहीं चलाएगी, जो चलने योग्य है। अब पैर वहीं उठेंगे, जहां मंदिर है। अब पैरों को वेश्यालय से लौटाना न पड़ेगा।

सुना है मैंने कि नसरुद्दीन एक दिन कसम ले लिया कि अब मधुशाला में पैर न रखेंगे। ताकतवर आदमी था, कसम खा ली। सांझ को निकला। मधुशाला सामने पड़ी; आंख बंद कर ली। कहा कि ऐसा नहीं हो सकता, आज ही कसम ली है सुबह ही। बिल्कुल नहीं हो सकता। आंख बंद कर ली, तेजी से दौड़ने लगा। पचास कदम के बाद उसने खड़े होकर कहा, शाबाश नसरुद्दीन, तू भी बड़े संकल्प का आदमी है! मधुशाला को पचास कदम पीछे छोड़ आया। नाउ कम बैक, आई विल ट्रीट यू। चलो वापस, मधुशाला में थोड़ा तुम्हें पिलाएं। क्योंकि इतना गजब का काम तूने किया नसरुद्दीन! बड़े संकल्प का आदमी है। हिम्मत देख तेरी, शाबाश, चल वापस!

वापस लौट कर शराब पी रहा है। लेकिन अब वह नसरुद्दीन को शराब पिला रहा है। यह सब रेशनलाइजेशन है। अब वह यह नहीं कह रहा कि मैं शराब पी रहा हूं, कि मैंने कोई वचन तोड़ा; वचन तो पूरा

किया, पचास कदम आगे तक चला गया। लेकिन जिसने इतना वचन पूरा किया, उसकी कुछ सेवा-खातिर भी तो करनी चाहिए।

ज्ञान तो अक्रिय है। कोई आचरण की लहर भी उठानी नहीं पड़ती। जैसे जल बिल्कुल शांत हो, कोई लहर भी न उठती हो, नदी बहती भी न हो। सब शून्य हो, ऐसी अवस्था है ज्ञान की।

लाओत्से कहता है, जब अक्रियता की ऐसी अवस्था उपलब्ध हो जाए, तो जो सुव्यवस्था, तब जो आर्डर, तब जो अनुशासन निर्मित होता है, वह सार्वभौम है, वह यूनिवर्सल है। उसका फिर अपवाद नहीं होता।

तीन बातें हैं। एक तो ज्ञान अक्रियता की अवस्था है। करने का उतना सवाल नहीं, जितना जानने का है। डूइंग की उतनी बात नहीं, जितनी बीइंग की है। क्या करूं, ऐसा नहीं; क्या हो जाऊं! यह सवाल नहीं है कि मैं क्या करूं जिससे ज्ञान मिल जाए। यह सवाल है कि मैं कैसा हो जाऊं कि ज्ञान प्रकट हो जाए; मैं किस अवस्था में खड़ा हो जाऊं, जहां से दृष्टि सरल, सीधी और साफ और निर्मल हो। क्या करूं का सवाल नहीं है कि आचरण को बदलूं, चोरी छोडूं, बेईमानी छोडूं। नहीं, यह सवाल नहीं है छोड़ने-पकड़ने का। मैं किस भांति देखूं जीवन को! वह दृष्टि। जानकारी की फिक्र न करूं, जानकारी से बचूं। अज्ञान को स्वीकार करूं। जीवन को अनुभव करूं। इच्छाओं में कल भटकूं न। आज, अभी, यहीं जाग कर जीऊं। तो वह अक्रिय अवस्था निर्मित होने लगती है, जहां व्यक्ति एक शांत झील की तरह हो जाता है।

उस शांत झील के क्षण में जीवन से सब अव्यवस्था अपने आप गिर जाती है। उसे व्यवस्थित नहीं करना होता, वह गिर जाती है। वह जो-जो गलत था, छूट जाता है; उसे छोड़ने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। वह जो जीवन में लगता था अशुभ है, वह अचानक पाया जाता है कि नहीं है। जैसे किसी ने अंधेरे में दीया जला दिया हो, और अंधेरा नहीं है। उस अंधेरे को निकालना नहीं पड़ता, धकाना नहीं पड़ता, हटाना नहीं पड़ता। बस दीया जल गया, और वह अंधेरा नहीं है। यह जो सुव्यवस्था है, यह और है।

एक व्यवस्था है जो आयोजित है, कल्टीवेटेड है। एक बंदर को भी हम डंडे के जोर से बिठा दे सकते हैं बिल्कुल कि वह मालूम पड़े कि बुद्ध की प्रतिमा बना बैठा है। बंदर को भी हाथ वगैरह लगा कर पद्मासन लगा कर बिठा दिया जा सकता है। और डंडा अगर सामने हो, और वह धीरे-धीरे आंख खोल कर देखता रहे कि डंडा है, तो वह बैठा रहेगा। मगर वह बुद्ध नहीं हो गया है। और अनेक आदमी बंदरों की तरह ही पद्मासन लगा कर बैठे रहते हैं, भीतर कहीं कुछ नहीं होता। कोई डंडे का डर--कोई नर्क, कोई पाप, मौत, दुख, चिंता, बीमारी, सब चारों तरफ घेरे हैं, सारा डर--तो उन्हें... ।

नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा है कि रात प्रार्थना करके तो सोते हो?

नसरुद्दीन ने कहा, नियमित, कभी चूक नहीं करता।

उस आदमी ने पूछा, सुबह भी प्रार्थना करते हो?

नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, क्यों? सुबह प्रार्थना की क्या जरूरत है? अंधेरे में मुझे डर लगता है, सुबह तो कोई जरूरत नहीं है। सुबह क्या जरूरत? अंधेरे में मुझे डर लगता है, आई एम स्केयर्ड ऑफ डार्कनेस। रात तो प्रार्थना नियमित करता हूं। सुबह क्या जरूरत है? सुबह हम किसी से डरते ही नहीं।

भय लगता है, प्रार्थना जन्म ले लेती है। डंडा रखा है सामने, पद्मासन लग जाता है। आंखें बंद हो जाती हैं, माला चलने लगती है, सरकने लगती है। पूजा-पाठ शुरू हो जाते हैं। सब भय से।

नसरुद्दीन को एक दफा तैमूरलंग ने बुलाया। तैमूर तो खतरनाक आदमी था। सुना उसने कि नसरुद्दीन की बड़ी प्रसिद्धि है, बड़ा ज्ञानी है। और अजीब ही तरह का ज्ञानी था। और ज्ञानी जब भी होते हैं, थोड़े अजीब तरह

के ही होते हैं। क्योंकि ज्ञानी का कोई पैटर्न नहीं होता, कोई ढांचा नहीं होता। तैमूरलंग ने बुलाया और कहा कि मैंने सुना है नसरुद्दीन कि तुम बड़े ज्ञानी हो!

नसरुद्दीन ने सोचा कि यह तैमूरलंग, वह नंगी तलवार लिए बैठा है। नसरुद्दीन ने कहा कि अगर हां कहें, तो तुम क्या करोगे? उसने कहा, पहले पक्का तो पता चल जाए। अगर न कहें, तो तुम क्या करोगे?

तैमूरलंग ने कहा, क्या करूंगा? सारे लोग कहते हैं कि तुम ज्ञानी हो। हो ज्ञानी कि नहीं? अगर नहीं हो, तो अब तक तुमने खंडन क्यों नहीं किया? तो तुम्हारी गर्दन कटवा देंगे। अगर हो, तो हां बोलो।

नसरुद्दीन ने कहा कि हां, हूं। उसने कहा कि गर्दन कटने का डर है।

तो तुम्हारे ज्ञान का प्रतीक क्या है? क्या सबूत कि तुम ज्ञानी हो?

नसरुद्दीन ने नीचे देखा और कहा कि मुझे नर्क तक दिखाई पड़ रहा है। ऊपर देखा और कहा, मुझे स्वर्ग, सात स्वर्ग दिखाई पड़ रहे हैं।

तैमूरलंग ने पूछा, लेकिन इसके देखने का राज क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा, ओनली फियर। कोई दिखाई-विखाई नहीं पड़ रहे हैं। यह आप तलवार लिए बैठे हो, नाहक झंझट कौन करे? सिर्फ भय! इस मेरे ज्ञान का इतना ही आधार है। ये सात नर्क और सात स्वर्ग जो मैं देख रहा हूं। तुम तलवार नीचे रखो और आदमी की तरह आदमी से बातचीत हो। नहीं तो इसमें तो आप जो कहोगे, हम वही चमत्कार बताने को राजी हो जाएंगे कि भय है, क्या है। जान तो अपनी बचानी है।

भय आपसे कुछ भी करवा लेता है। भय आपसे बहुत कुछ करवा रहा है। सारी जिंदगी भय से भरी है। नहीं, इससे जो व्यवस्था आती है, भय से, वह कोई व्यवस्था नहीं है। भीतर तो ज्वालामुखी उबलता रहता है।

लाओत्से जैसे लोग कहते हैं कि एक और व्यवस्था है, ए डिफरेंट क्वालिटी ऑफ आर्डर। एक और ही गुण है; एक और ही नियमन है जीवन का; एक और ही अनुशासन है। और वह अनुशासन व्यवस्था से नहीं आता, थोपा नहीं जाता, आयोजित नहीं किया जाता। न किसी भय के कारण, न किसी इच्छा के कारण, न किसी प्रलोभन से; बल्कि ज्ञान की निष्क्रिय वह जो प्रकाश फैलता है, उससे अपने आप घटित हो जाता है। और जब वैसी व्यवस्था होती है, तो सार्वभौम, यूनिवर्सल होती है।

सार्वभौम का अर्थ है कि उस नियम का, उस व्यवस्था का कहीं भी फिर खंडन नहीं है। नो एक्सेप्शन! फिर उसका कोई अपवाद नहीं है। फिर वह निरपवाद है। फिर वह हर स्थिति में है। जैसे सागर के पानी को हम कहीं से भी चखें और वह नमकीन है, ऐसा ही फिर ज्ञान से जिस व्यक्ति का जीवन निर्मित हुआ, उसको हम कहीं से भी चखें, उसका कहीं से भी स्वाद लें, उसे सोते से जगा कर पूछें, उसे किसी भी स्थिति में देखें और पहचानें, सार्वभौम है। उसकी जो व्यवस्था है वह सदा है। उसमें फिर कोई अपवाद नहीं है। उसमें नियम का कहीं कोई स्खलन नहीं है; क्योंकि नियम ही नहीं है।

इसको ठीक से समझ लें। आप सोचते होंगे, इतना मजबूत नियम है कि स्खलन नहीं है। नहीं, कितना ही मजबूत नियम हो, स्खलन हो जाता है। लाओत्से कहता है कि उसका कहीं स्खलन नहीं होता, क्योंकि वहां कोई नियम ही नहीं है। टूटेगा कैसे? उस आदमी ने कोई नियम तो बनाया नहीं; ज्ञान से आचरण आया है। कोई मर्यादा तो बनाई नहीं; ज्ञान से मर्यादा फलित हुई है। किसी प्रलोभन और लोभ के कारण तो वह सच नहीं बोला; सच बोल ही सकता है, और अब कोई उपाय नहीं है।

सच ही बोल सकता है, ऐसा कहना भी शायद ठीक नहीं। ऐसा कहना ठीक है कि जो भी बोलता है, वह सच ही है। बोलना और सच अब दो चीजें नहीं हैं। झूठ का कोई उपाय नहीं है। इसलिए नहीं कि सच बोलने की

पक्की कसम है, कि सच बोलने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया है। ये शब्द बड़े गलत हैं। और हमेशा कमजोर आदमी इनका उपयोग करते हैं। कहते हैं, मैंने सच बोलने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। सच बोलने का दृढ़ निश्चय? उसका मतलब है कि असत्य बोलने की बड़ी दृढ़ स्थिति भीतर होगी।

नहीं, असत्य गिर गया; सत्य ही बचा है। जो बोला जाता है, वह सत्य है; जो जीया जाता है, वह शुभ है; जो होता है, वही सुंदर है। इसलिए सार्वभौम!

आज इतना, कल आगे का सूत्र लेंगे।

बारहवां प्रवचन

वह परम शून्य, परम उदगम, परम आधार--ताओ

Chapter 4 : Sutra 1

Character Of Tao

The Tao is like the emptiness of a vessel;
and in our employment of it we must be on
our guard against all fullness. How deep and
unfathomable it is, as if it were the
Honored Ancestor of all things; (or like
the fountain head of all things.)

अध्याय 4 : सूत्र 1

ताओ का स्वरूप

ताओ घड़े की रिक्तता की भांति है।
इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से
सावधान रहना अपेक्षित है। यह कितना
गंभीर है, कितना अथाह, मानो यह सभी
पदार्थों का उदगम या उनका सम्मानित पूर्वज हो!

ताओ है शून्य, रिक्तता; घड़े की रिक्तता की भांति।

कुछ भी भरा हुआ न हो, तो ही ताओ उपलब्ध होता है। शून्य हो चित्त, तो ही धर्म की प्रतीति होती है। व्यक्ति मिट जाए इतना, कि कह पाए कि मैं नहीं हूं, तो ही जान पाता है परमात्मा को। ऐसा समझें। व्यक्ति होगा जितना पूर्ण, परमात्मा होगा उतना शून्य; व्यक्ति होगा जितना शून्य, परमात्मा अपनी पूर्णता में प्रकट होता है।

ऐसा समझें। वर्षा होती है, तो पर्वत-शिखर रिक्त ही रह जाते हैं; क्योंकि वे पहले से ही भरे हुए हैं। गड्ढे और झीलें भर जाती हैं, क्योंकि वे खाली हैं। वर्षा तो पर्वत-शिखरों पर भी होती है। वर्षा कोई भेद नहीं करती। वर्षा कोई जान कर झील के ऊपर नहीं होती। वर्षा तो पर्वत-शिखर पर भी होती है। लेकिन पर्वत-शिखर स्वयं से ही इतना भरा है कि अब उसमें और भरने के लिए कोई अवकाश नहीं है, कोई जगह नहीं है, कोई स्पेस नहीं

है। सब जल झीलों की तरफ दौड़ कर पहुंच जाता है। उलटी घटना मालूम पड़ती है। जो भरा है, वह खाली रह जाता है; और जो खाली है, वह भर दिया जाता है। झील का गुण एक ही है कि वह खाली है, रिक्त है। और शिखर का दुर्गुण एक ही है कि वह बहुत भरा हुआ है। टू मच।

लाओत्से कहता है, धर्म है रिक्त घड़े की भांति। ताओ यानी धर्म। धर्म है रिक्त घड़े की भांति। और जिसे धर्म को पाना हो, उसे सभी तरह की पूर्णताओं से सावधान रहना पड़ेगा।

यह बहुत अदभुत बात है--सभी तरह की पूर्णताओं से। नहीं कि घड़े में धन भर जाएगा, तो बाधा पड़ेगी। घड़े में ज्ञान भर जाएगा, तो भी बाधा पड़ेगी। घड़े में त्याग भर जाएगा, तो भी बाधा पड़ेगी। घड़े में कुछ भी होगा, तो बाधा पड़ेगी। घड़ा बस खाली ही होना चाहिए।

लेकिन हम सब तो जीवन में न मालूम किन-किन द्वारों से पूर्ण होने की कोशिश में लगे होते हैं। हमें लगता ही ऐसा है कि जीवन इसलिए है कि हम पूर्ण हो जाएं। किसी न किसी माध्यम से, किसी न किसी मार्ग से पूर्णता हमारी हो, मैं पूरा हो जाऊं। उपदेशक समझाते हैं, माता-पिता अपने बच्चों को कहते हैं, शिक्षक अपने विद्यार्थियों को कहता है, गुरु अपने शिष्यों को कहते हैं कि क्या जीवन ऐसे ही गंवा दोगे? अधूरे आए, अधूरे ही चले जाओगे? पूरा नहीं होना है? पूर्ण नहीं बनना है? अकारथ है जीवन, अगर पूरे न बने। कुछ तो पा लो। खाली मत रह जाओ।

और लाओत्से कहता है कि जिसे धर्म को पाना है, उसे सभी तरह की पूर्णताओं से सावधान रहना पड़ेगा। नहीं, उसे पूर्ण होना ही नहीं है। उसे अपूर्ण भी नहीं रह जाना है। उसे शून्य हो जाना है।

इसे इस तरह हम देखेंगे तो आसान हो जाएगा। हम जहां भी होते हैं, अपूर्ण होते हैं। रिक्त हम कभी होते नहीं, पूर्ण हम कभी होते नहीं। हमारा होना अधूरे में है। बीच में, मध्य में है। हम जहां भी होते हैं, बीच में होते हैं, अपूर्ण होते हैं। न तो एम्पटी और न परफेक्ट, इन दोनों के बीच में--सदा, सभी।

यह किसी एक व्यक्ति के लिए बात नहीं है। अस्तित्व में जो भी हैं, वे सभी मध्य में होते हैं। एक तरफ शून्यता और एक तरफ पूर्णता, और बीच में हमारा होना है। हमारी सारी व्यवस्था इस बीच से पूर्ण की तरफ बढ़ने की है। और लाओत्से का कहना है, इस बीच से शून्य की तरफ जाना है।

हम सबकी कोशिश यह है कि अधूरे तो हम हैं, अब हम पूरे कैसे हो जाएं? भर कैसे जाएं? हमारे जीवन की पीड़ा यही है कि फुलफिलमेंट नहीं है, कुछ भराव नहीं है। प्रेम है, वह अधूरा है। ज्ञान है, वह अधूरा है। यश है, वह अधूरा है। कुछ भी पूरा नहीं है। कुछ तो पूरा मिल जाए! प्रेम ही पूरा मिल जाए, इतना भर जाऊं कि और मांग न रह जाए। कहीं से भी हम पूरे हो जाएं, तो फुलफिलमेंट हो जाए। लगे कि हम भी हैं भरे हुए!

लेकिन जितना हम पूर्ण होने की कोशिश करते हैं--यह मैं आपसे कहना चाहूंगा--जितना हम पूर्ण होने की कोशिश करते हैं, उतना हमें अपनी रिक्तता का बोध जाहिर होता है, पूर्ण हम होते नहीं। इसलिए जो सदी पूर्णता के प्रति जितनी आतुर, उत्सुक, अभीप्सु होती है, वह सदी उतनी ही एम्पटीनेस को अनुभव करती है।

पहली दफा पश्चिम पूरी तरह शिक्षित हुआ है। जमीन पर, ज्ञात इतिहास में, पश्चिम ने पहली दफे शिक्षा के मामले में बहुत विकास किया है। लेकिन साथ ही मजे की बात है कि पश्चिम का मन जितना एम्पटी अनुभव करता है, उतना कोई और मन नहीं करता। जितना खाली अनुभव करता है।

अमरीका ने पहली दफे धन के मामले में उस दूरी को छुआ है, जिसे हम पूर्णता के निकटतम कहें। निकटतम ही कह सकते हैं, पूर्ण तो कभी कुछ होता नहीं। हम अपनी पीछे की दरिद्रता को देखते हैं, तो लगता है अमरीका ने धन को छूने में बड़ी दूर तक कोशिश की है--निकटतम, एप्रॉक्सीमेटली। निकटतम का मतलब आपके

ख्याल में हो जाना चाहिए। पूर्ण तो हम हो नहीं सकते, सदा बीच में ही होते हैं, कहीं भी हों। लेकिन अतीत से तुलना करें आदमियों के और समाजों की। अब जंगल में बसा आदिवासियों का एक समूह है, या बस्तर में बसा हुआ गरीबों का एक गांव है, और न्यूयार्क है। तो इस तुलना में न्यूयार्क करीब-करीब पहुंचता है।

सुना है मैंने, एक दिन एक बच्चा अपने घर आया। बहुत खुशी में स्कूल से वह कुछ पुरस्कार लेकर आया है। और उसने अपनी मां को आकर कहा कि आज मुझे पुरस्कार मिला है, क्योंकि मैंने एक जवाब सही-सही दिया। उसकी मां ने पूछा, क्या सवाल था? उस बेटे ने कहा, सवाल यह था कि गाय के पैर कितने होते हैं? उसकी मां बहुत हैरान हुई। तुमने क्या जवाब दिया? उसने कहा, मैंने कहा तीन। उसने कहा, पागल, गाय के चार पैर होते हैं। उसने कहा, वह तो मुझे भी अब पता चल चुका है। लेकिन बाकी बच्चों ने कहा था दो। सत्य के मैं निकटतम था, इसलिए पुरस्कार मुझे मिल गया है।

बस निकटतम का इतना ही अर्थ है। अगर धन की पूर्णता के कोई निकटतम हो सकता है, तो तीन टांगें अमरीका ने पैदा कर ली हैं। वह चार टांगों के करीब-करीब है। चार टांगें कभी नहीं होंगी। वे हो नहीं सकतीं। ह्यूमन सिचुएशन में वह संभव ही नहीं है। आदमी का होना अधूरा है। इसलिए आदमी जो भी करेगा, वह पूरा नहीं होता। अधूरा करने वाला हो, तो पूरी कोई चीज कैसे हो सकती है! अगर मैं ही अधूरा हूं, तो मैं जो भी करूंगा, वह अधूरा होगा। वह एप्रॉक्सीमेटली हो सकता है, किसी और की तुलना में।

तो अमरीका, धन के भरने में करीब-करीब अमरीका का घड़ा पूरा का पूरा भर गया, तीन-चौथाई, तीन पैर भर गया। लेकिन आज अमरीका में जितनी दीनता और जितनी हेल्पलेसनेस और असहाय अवस्था मालूम पड़ती है। और आज अमरीका के जितने चिंतक हैं, वे एक ही शब्द के आस-पास चिंतन करते हैं। वह शब्द है एम्पटीनेस, मीनिंगलेसनेस। अर्थहीन है, सब खाली है, कुछ भरा हुआ नहीं है। और भराव के करीब-करीब हैं वे! बात क्या है?

पूर्ण आदमी हो नहीं सकता; अपूर्ण होना उसकी नियति है। आदमी के होने का ढंग ऐसा है कि वह अपूर्ण ही होगा, कहीं भी हो। और अपूर्ण चित्त की आकांक्षा पूरे होने की होती है। वह भी मनुष्य की नियति है, वह भी उसके भाग्य का हिस्सा है कि अपूर्णता चाहती है कि पूर्ण हो जाए। अपूर्णता में पीड़ा मालूम पड़ती है, हीनता मालूम पड़ती है, दीनता मालूम पड़ती है। लगता है, पूरे हो जाएं। तो पूरे होने की कोशिश अपूर्णता से पैदा होती है। और अपूर्णता से जो भी पैदा होगा, वह पूर्ण हो नहीं सकता। वह बाइ-प्रॉडक्ट अपूर्णता की होगी।

अब मैं ही तो पूर्ण होने की कोशिश करूंगा, जो कि अपूर्ण हूं। मेरी कोशिश अपूर्ण होगी। मैं जो फल लाऊंगा, वह अपूर्ण होगा। क्योंकि फल और प्रयास मुझसे निकलते हैं। मुझसे बड़े नहीं हो सकते मेरे कृत्य। मेरा कर्म मुझसे बड़ा नहीं हो सकता। मेरी उपलब्धि मुझसे पार नहीं जा सकती। मेरी सब उपलब्धियां मेरी सीमा के भीतर होंगी। कोई संगीतज्ञ अपने से अच्छा नहीं गा सकता। और न कोई गणितज्ञ अपने से बेहतर सवाल हल कर सकता है। या कि कर सकता है? हम जो हैं, हमारा कृत्य उससे ही निकलता है। हम अपने से बेहतर नहीं हो सकते; हालांकि हम अपने को अपने से बेहतर करने की सब चेष्टा में लगे होते हैं। इससे विषाद पैदा होता है। चेष्टा बहुत होती है, परिणाम तो कुछ आता नहीं। परिणाम में वही अपूर्णता, वही अपूर्णता खड़ी रहती है। घूम-घूम कर हमारी अपने से ही मुलाकात हो जाती है। दौड़ते हैं इस कोशिश में कि कभी कोई पूर्ण मिल जाएगा। लेकिन खोजने वाला जब अपूर्ण हो, तो जिसे वह पाएगा, वह अपूर्ण ही होने वाला है। हम अपने से ज्यादा कुछ भी नहीं पा सकते।

यह स्थिति है। मध्य में हम हैं--अपूर्ण, अधूरे। अधूरे मन की आकांक्षा है कि भर जाऊं, पूरा हो जाऊं। अपूर्णता से वासना पैदा होती है पूर्ण होने की। यह ध्यान रहे, पूर्णता में पूरण होने की वासना नहीं पैदा हो सकती, क्योंकि कोई अर्थ न होगा। अपूर्णता में पूर्ण होने की वासना पैदा होती है। वासना हमेशा विपरीत होती है। जो हम होते हैं, वासना उससे विपरीत होती है। हम गरीब होते हैं, तो अमीर होने की वासना होती है। हम रुग्ण होते हैं, तो स्वस्थ होने की वासना होती है। हम अधूरे हैं, तो पूरे होने की वासना होती है।

वासना बिल्कुल ही तर्कयुक्त है, क्योंकि अधूरे मन में पूरे होने का ख्याल पैदा होगा। बिल्कुल तर्कयुक्त है वासना, लेकिन परिणति कभी नहीं होने वाली है। क्योंकि अपूर्ण कभी पूर्ण नहीं हो सकता--किसी प्रयास से, किसी चेष्टा से, कैसे ही अभ्यास से, किसी साधना से। क्योंकि सब साधनाएं, सब अभ्यास, सब प्रयास अपूर्ण से ही निकलेंगे। और अपूर्ण की छाप उन पर लगी रहेगी। और अगर अपूर्ण आदमी पूर्ण उपलब्ध को कर ले, तो वह अपूर्ण था ही नहीं। अपूर्ण होने का कोई अर्थ ही नहीं रहा।

यह स्थिति है। और मनुष्य की सारी की सारी दौड़--आयाम कोई भी हो, दिशा कोई भी हो--पूर्ण होने की है। लाओत्से कहता है, शून्य हो जाओ। और लाओत्से कहता है, पूर्ण होने के किसी भी ख्याल से बचना। क्योंकि वही जाल है; वही है उपद्रव, जिसमें नष्ट होता है आदमी। इसलिए समझा लेना अपने को, समझ जाना कि पूर्ण होने के किसी उपद्रव में मत पड़ना। शून्य हो जाओ। और मजा यह है कि जो शून्य हो जाता है, वह पूर्ण हो जाता है। क्योंकि शून्य जो है, वह इस जगत में पूर्णतम संभावना है।

ऐसा समझें, एक घड़ा भरा हो, तो क्या आप ऐसी कल्पना कर सकते हैं घड़े के भरे होने की कि एक बूंद पानी उसमें और न जा सके? न कर सकेंगे। घड़ा बिल्कुल भरा है। आप कहते हैं, पूरा भरा है। लेकिन अगर एक बूंद पानी भी मैं उसमें डाल दूं, तो कहना पड़ेगा, अधूरा था। आप घड़े के कितने ही भरे होने की कल्पना करें, वह पूर्ण नहीं होगी। उसमें एक बूंद पानी अभी बन सकता है।

नानक अपनी यात्राओं में एक गांव के बाहर ठहरे थे। और एक फकीर, जिसकी पूर्णता के संबंध में बड़ी खबर थी, वह पहाड़ी पर अपने आश्रम में जो एक किले के भीतर था, उसमें था। नानक रुके थे, लोगों ने कहा कि वह व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हो गया है। नानक ने खबर भिजवाई कि मैं भी मिलना चाहूंगा और जानना चाहूंगा, कैसी पूर्णता! तो उस फकीर ने एक प्याले में पानी भर कर--पूरा पानी भर कर, एक बूंद पानी और न जा सके--नानक को नीचे भिजवाया भेंट कि मैं इस तरह पूर्ण हो गया हूं। नानक ने एक छोटे से फूल को उसमें तैरा दिया और वापस लौटा दिया। छोटे फूल को उस प्याली में डाल दिया और वापस लौटा दिया।

वह फकीर दौड़ा हुआ आया, पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, मैं तो सोचता था, पूर्ण हो गया हूं।

नानक ने कहा, आदमी पूर्ण होने की कोशिश में जो भी करे, उसमें जगह खाली रह ही जाती है। एक फूल तो तैराया ही जा सकता है। और एक फूल कोई छोटी बात नहीं है।

अगर हम घड़े को पूरा भरे होने की भी कल्पना करें, तो भी एक बूंद पानी तो उसमें डाला ही जा सकता है। लेकिन समझें कि घड़ा बिल्कुल खाली है। क्या और खाली कर सकेंगे? नहीं; घड़ा बिल्कुल खाली है। अगर उस फकीर ने एक खाली घड़ा भेज दिया होता, तो नानक मुश्किल में पड़ जाते। क्योंकि उसको और खाली करना मुश्किल हो जाता। और भरे को और भरा जा सकता है, खाली को और खाली नहीं किया जा सकता।

इसलिए भराव में कभी पूर्णता नहीं होती, और खाली में सदा पूर्णता हो जाती है। जो एम्पटीनेस है, वह परफेक्ट हो सकती है; जो रिक्तता है, वह पूर्ण हो सकती है। इसलिए मनुष्य के अस्तित्व में एक ही पूर्णता है संभव, और वह है पूर्ण रिक्तता, पूरा खाली हो जाना।

लाओत्से कहता है, ताओ है खाली घड़े की भांति, भरे घड़े की भांति नहीं। खाली घड़े की भांति। और इसलिए जिसे भी ताओ की या धर्म की उत्सुकता है, उस यात्रा पर जो जाने को आतुर हुआ है, उसे सभी तरह की पूर्णताओं के प्रलोभन से बचना चाहिए। सभी तरह के प्रलोभन!

अहंकार पूरे होने की कोशिश करेगा। अहंकार की सारी साधना यही है कि पूर्ण कैसे हो जाऊं! और ताओ तो उसे मिलेगा, जो खाली हो जाए; जहां अहंकार बचे ही नहीं।

आदमी रिक्त हो सकता है। उसके भी कारण हैं। जो हमारे पास नहीं है, शायद उसे न पाया जा सके; लेकिन जो हमारे पास है, उसे छोड़ा जा सकता है। जो हमारे पास नहीं है, उसे शायद न पाया जा सके; क्योंकि उस पर हमारा क्या बस है! लेकिन जो हमारे पास है, उसे छोड़ा जा सकता है। उस पर हमारा बस पूरा है।

मैंने कहा, आदमी है बीच में। इस तरफ शून्य है, उस तरफ पूर्ण है। आदमी है अधूरा। कुछ उसके पास है, कुछ उसके पास नहीं है। अब दो उपाय हैं। जो उसके पास नहीं है, वह भी उसके पास हो जाए, तो वह पूर्ण हो जाए। और एक उपाय यह है कि जो उसके पास है, वह भी छोड़ दे, तो वह शून्य हो जाए। लेकिन जो हमारे पास नहीं है, वह हमारे पास हो, यह जरूरी नहीं है। यह हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन जो हमारे पास है, वह छोड़ा जा सकता है। वह हमारे हाथ में है। उसके लिए किसी से भी पूछने जाना नहीं पड़ेगा।

अब यह बहुत मजे की बात है। अगर पूर्ण होना है, तो परमात्मा से प्रार्थना करनी पड़ेगी। तब भी नहीं हो सकते। और अगर शून्य होना है, तो किसी परमात्मा की सहायता की जरूरत न पड़ेगी। आप काफी हो। कोई मांग नहीं करनी पड़ेगी।

इसलिए जिन धर्मों ने शून्य होने की व्यवस्था की, उनमें प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। जिन धर्मों ने शून्य होने की व्यवस्था की, जैसे बुद्ध ने या लाओत्से ने, उनमें प्रार्थना की कोई जगह नहीं है। प्रेयर का कोई मतलब ही नहीं है। क्योंकि मांगना हमें कुछ है ही नहीं, तो क्या प्रार्थना करनी है! किससे प्रार्थना करनी है! जो हमारे पास है, उसे छोड़ देंगे; और झंझट खतम हो जाती है।

जो हमारे पास नहीं है, उसे मांगना पड़ेगा। उसमें किसी के द्वार पर हाथ जोड़ कर खड़ा होना पड़ेगा। उसके लिए कुछ करना पड़ेगा।

अब इसमें और देखने जैसी बात है। जो हमारे पास नहीं है, उसे पाने में समय की जरूरत लगेगी। टाइम विल बी नीडेड। क्योंकि जो हमारे पास नहीं है, वह आज ही नहीं मिल जाएगा। कल मिलेगा, परसों मिलेगा, अगले जन्म में मिलेगा--कब मिलेगा--समय लगेगा। लेकिन जो मेरे पास है, वह इसी वक्त छोड़ा जा सकता है, इंसटैनटेनियसली। उसके लिए समय की कोई भी जरूरत नहीं है। कल छोडूंगा, परसों छोडूंगा, यह सब बेकार की बात है। क्योंकि जो मेरे पास है, उसे मैं अभी छोड़ सकता हूं। और अगर कल पर टालता हूं, तो मेरे सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं है। लेकिन जो मेरे पास नहीं है, अगर वह मुझे अभी न मिले, तो मैं ही जिम्मेवार नहीं हूं। क्योंकि मैं सारी कोशिश कर लूं, तब भी न मिले। क्योंकि हजार चीजों पर निर्भर होगा कि वह मुझे मिले कि न मिले।

आप तो चाह सकते हैं कि आकाश आपके आंगन में आ जाए। आप तो चाह सकते हैं कि सूरज आपके घर में बैठे। पर आपकी चाह ही है, चाह ही सकते हैं; यह होगा कि नहीं, यह हजार बातों पर निर्भर करेगा। यह अकेले आप पर निर्भर नहीं करेगा। इसके लिए सहारे मांगने पड़ेंगे।

लाओत्से ने प्रार्थना के लिए कोई जगह नहीं है। लाओत्से कहता है, कोई सवाल ही नहीं है; तुम्हारे पास जितना है, उतना छोड़ दो।

एक और मजे की बात है। और यह पूरा गणित समझ लेने जैसा है। मेरे पास दस रुपए हैं। समझ लें कि लाख रुपया अगर परफेक्शन मान लिया जाए, पूर्णता मान ली जाए। मेरे पास दस रुपए हैं और लाख रुपया पूर्णता का अंक है, तो मुझे बड़ी लंबी यात्रा करनी है। और आपके पास अगर नब्बे हजार रुपए हैं, तो आपको बड़ी छोटी यात्रा करनी है। और अगर आपके पास सिर्फ पांच रुपए की कमी है लाख में, तो आपकी यात्रा तो बहुत निकट है। और मेरी यात्रा उतनी ही दूर है, मेरे पास पांच रुपए हैं या दस रुपए हैं। अगर हम पूर्णता की तरफ चलें, तो हम सब एक ही जगह नहीं हैं। देन वी आर नॉट ईक्वल। किसी के पास पांच रुपए, किसी के पास दस, किसी पर दस हजार, किसी पर पचहत्तर हजार, किसी पर नब्बे हजार, किसी पर निन्यानबे हजार, किसी पर निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे। तो बड़ा फासला है। पूर्णता का अगर हम ध्येय रखें, तो आदमी समान नहीं हैं।

लेकिन आपके पास निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे रुपए हैं और मेरे पास एक रुपया है; अगर शून्यता की तरफ जाना है, हम दोनों एक ही साथ जा सकते हैं। ईक्वलिटी पूरी है। मैं एक रुपया छोड़ दूं, आप अपने रुपए छोड़ दें। मैं शून्य हो जाऊंगा, आप शून्य हो जाएंगे। सिर्फ शून्य की तरफ जो यात्रा है, वह मनुष्य को ईक्वलिटी में खड़ा कर सकती है। अन्यथा नहीं कर सकती।

तो जो परफेक्शन ओरिएंटेड सोसायटीज हैं--सभी हैं--वे कभी समान नहीं हो सकती हैं। सिर्फ शून्य की तरफ जिन समाजों की यात्रा है, वे समान हो सकती हैं। क्योंकि शून्य के समक्ष, आपके पास पंचानबे हजार हैं, इससे फर्क न पड़ेगा। और मेरे पास पांच रुपए हैं, इससे फर्क न पड़ेगा। मैं पांच रुपए छोड़ कर वहीं पहुंच जाऊंगा, जहां आप पंचानबे हजार छोड़ कर पहुंचेंगे। कुछ ऐसा न होगा कि आपको बड़ा शून्य मिल जाएगा और मुझे छोटा मिलेगा। हमारी रिक्तता बराबर होगी। जिस घड़े में पूरा पानी भरा था, वह भी उलट कर खाली हो जाएगा। मेरे घड़े में एक ही बूंद थी, वह भी उलट कर खाली हो जाएगा। मेरे घड़े के खालीपन में और आपके घड़े के खालीपन में कोई हायरेरकी नहीं होगी। बस हम खाली होंगे।

लेकिन पूर्णता की अगर दृष्टि हो, तो समानता असंभव है। असंभव है। और फिर यात्रा अलग-अलग होगी। और कब पूरी होगी, नहीं कहा जा सकता। समय की जरूरत पड़ेगी। और जिस धर्म को पाने में समय की जरूरत पड़े, वह धर्म समय से कमजोर होता है, स्वभावतः। जिस धर्म को पाने के लिए शर्त हो यह कि इतना समय लगेगा, वह धर्म बेशर्त न रहा, अनकंडीशनल न रहा। उस धर्म की शर्त हो गई कि इतना समय लगेगा।

अगर ठीक से समझें, तो वह धर्म टाइम-प्रॉडक्ट हो गया, समय से उत्पन्न हुआ। और जो समय से उत्पन्न होता है, वह कालातीत नहीं होता। जिस चीज को समय के द्वारा पैदा किया जाता है, वह समय में ही नष्ट हो जाती है। ध्यान रखें, जो चीज समय के भीतर जन्मती है, वह समय के भीतर ही मर जाती है। जिसका एक छोर समय में है, उसका दूसरा छोर समय के बाहर नहीं हो सकता।

लेकिन शून्यता तत्क्षण हो सकती है--इसी वक्त, अभी। यह तत्क्षण कहना भी गलत है। असल में, शून्यता क्षण के बाहर घटित होती है। भराव समय के भीतर होता है; रिक्तता समय के बाहर होती है। रिक्त होते ही समय के बाहर हैं आप। और रिक्त होने के लिए समय की कोई जरूरत नहीं है।

इसलिए अगर लाओत्से के पास कोई जाकर पूछे कि मैंने बहुत पाप किए हैं, बहुत बुराइयां की हैं, मैं बहुत बुरा आदमी हूं, मेरी मुक्ति में कितनी देर लगेगी? तो लाओत्से कहता है, अभी हो सकती है, यहीं हो सकती है। लाओत्से कह सकता है, अभी हो सकती है, यहीं हो सकती है। क्योंकि वह कहता है, सवाल यह नहीं है। तुम्हें कुछ होना नहीं है; तुम जो हो, उसको भी छोड़ देना है।

इसलिए लाओत्से ने कोई ख्याल नहीं दिया इस बात का कि कितने जन्म तुम्हें लगेंगे, कितना वक्त लगेगा। नहीं, लाओत्से कहता है, अभी और यहीं। इसलिए लाओत्से ने जिस निर्वाण की बात की है, वह सडन एनलाइटेनमेंट है। अभी हो सकता है। इसमें क्षण भी गंवाने की जरूरत नहीं है। हां, तुम्हीं न चाहते होओ, तो बात अलग है। और कोई बाधा नहीं है। लाओत्से कहता है, और कोई बाधा नहीं है। तुम्हीं न चाहो, तो बात अलग है। और कोई बाधा नहीं है। और सब बहाने हैं।

यह समझना बहुत कठिन होगा मन को कि मोक्ष को रोकना भी हमारा बहाना है। निर्वाण को न पाना भी हमारी तरकीब है। कोई पाप नहीं रोक रहा है। सिर्फ हम नहीं चाहते; और इसलिए हम एक्सप्लेनेशंस खोजते हैं कि किन-किन वजह से रुक रहा है मोक्ष।

लाओत्से की दृष्टि में समय का कोई व्यवधान नहीं है। अभी हो जाएं खाली; यहीं खोल दें मुट्ठी।

लाओत्से यह भी कहता है कि भराव कभी भी शांत नहीं हो सकता। आधा घड़ा भरा है, आवाज होती है; पौना घड़ा भरा है, आवाज होती है। लाओत्से कहता है, कितना ही घड़ा भरा हो, आवाज होती ही रहेगी। सिर्फ खाली घड़ा शांत हो जाता है। क्यों?

आप कहेंगे, कभी तो ऐसा हो सकता है कि घड़ा बिल्कुल ही भरा हो और आवाज न हो।

लेकिन लाओत्से नहीं मानता। लाओत्से कहता है कि घड़ा भरा हो, तो एक बात तय हो गई कि दो चीजें हैं: घड़ा है, और जो चीज भरी है। और जहां द्वैत है, वहां पूर्ण शांति नहीं हो सकती।

इसको ठीक से समझ लें। जहां घड़े में कुछ भरा है, वहां घड़ा है और कुछ भरा है। तो वहां द्वैत कायम रहेगा। इसलिए पूर्णता को उत्सुक आदमी द्वैत से भरा रहेगा, द्वंद्व से भरा रहेगा, कांफ्लिक्ट जारी रहेगी। सिर्फ शून्य में खड़ा हुआ आदमी कांफ्लिक्ट के बाहर होगा, क्योंकि दूसरा बचता ही नहीं है। घड़ा खाली है, आवाज कौन करेगा? कोई टकराने को भी नहीं है। घड़े में कुछ है ही नहीं; घड़ा अकेला है। ध्यान रहे, अद्वैत में ही शांति संभव है, क्योंकि टकराने को कोई नहीं है। जहां दो हैं, वहां टकराव होता ही रहेगा।

अब यह बहुत मजे की बात है और इसकी अपनी तर्क-सरणी है। जब भी आप अपने को किसी चीज से भरेंगे, तो पक्का आप समझ लेना कि वह आप न होंगे जिससे आप भरेंगे, वह कुछ और होगा। वह चाहे धन हो, यश हो, ज्ञान हो, त्याग हो, भगवान हो, कुछ भी हो। ध्यान रहे, जिससे भी आप अपने को भरेंगे, वह आप न होंगे। कुछ और होगा। समथिंग एल्स। और दूसरे से भर कर कहीं शांत हो सकते हैं?

अब यह तो पक्का समझ में आता है न कि घड़ा घड़े से ही कैसे अपने को भरेगा! पानी से भरेगा, तेल से भरेगा, दूध से भरेगा, जहर से, अमृत से भर लेगा; बाकी भरेगा किसी और से। अब घड़ा घड़े से ही कैसे अपने को भरेगा? घड़े को अगर घड़ा ही होना है, तो शून्य होना ही उसका उपाय है। अगर घड़े को सिर्फ घड़े से ही भरा होना है, तो शून्य होना ही उसकी विधि है। नहीं तो घड़ा किसी और से भर जाएगा। वह नाम कुछ भी रख लेगा; नाम रखने से अंतर नहीं पड़ता। हमको धोखा जरूर होता है कि नाम रख लेने से अंतर पड़ जाता है।

लिंकन के पास एक बहुत बड़ा धर्मशास्त्री मिलने गया था। तो वह बड़ी-बड़ी बातें कर रहा था--ईश्वर, स्वर्ग, नर्क! लिंकन ने कहा कि मैं यह पूछना चाहता हूं कि ये सिर्फ नाम ही तो नहीं हैं? उसने कहा कि नहीं, नाम नहीं हैं। लिंकन ने कहा, इसे छोड़ें। मैं एक बात पूछूं, गाय के कितने पैर होते हैं? उसने कहा कि यह भी कोई पूछने की बात है! कहां मैं मोक्ष, परमात्मा, स्वर्ग-नर्क की बात कर रहा हूं और आप गाय के पैर पूछते हैं? फिर भी लिंकन ने कहा, कृपा करके। उसने कहा कि यह कोई बात है, गाय के चार पैर होते हैं। लिंकन ने कहा, अगर

हम गाय की पूंछ को भी एक पैर कहें, पैर मान लें, तो गाय के कितने पैर होते हैं? उसने कहा कि फिर पांच पैर होते हैं।

लिंकन ने कहा, यहीं तुम्हारी गलती है। तुम चाहे पूंछ को पैर कहो, तो भी पूंछ पैर नहीं हो जाती। तुम्हारे कहने से क्या होगा? तुम्हारे कहने से क्या पूंछ पैर हो जाएगी? तुम पूंछ भला कहो, तख्ती लगा दो, फिर भी पूंछ पैर नहीं हो जाती। पूंछ पूंछ ही होती है। तुम्हारे लेबल से कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि पैर सिर्फ नाम नहीं है, पैर कुछ काम है। वह पूंछ नहीं कर सकती। तुम नाम कितना ही दे दो उसको।

हम नामों के भ्रम में बहुत रहते हैं। आदमी के बड़े से बड़े भ्रम जो हैं, वे लेबलिंग और नाम के हैं।

सूफियों की एक कहानी है कि एक गिलहरी एक वृक्ष के नीचे बैठी है और एक लोमड़ी गुजरती है। तो वह लोमड़ी गिलहरी से कहती है कि नासमझ, मुझे देख कर भी तू भाग नहीं रही है! तुझे पता है, मैं लोमड़ी हूं, तुझे अभी दो टुकड़े कर सकती हूं।

गिलहरी ने कहा कि कोई प्रमाणपत्र है? हैव यू गॉट एनी सर्टिफिकेट? तुम लोमड़ी हो, इसका कोई लिखित प्रमाणपत्र है?

लोमड़ी बड़ी हैरानी में पड़ी, क्योंकि ऐसा गिलहरियों ने कभी पूछा ही नहीं था। यह बड़ी अनहोनी घटना थी। गिलहरी भाग जाती थी लोमड़ी को देख कर। किसी गिलहरी ने कभी कोई यह जुर्रत ही नहीं की थी कि लोमड़ी से पूछे कि कोई प्रमाणपत्र है तुम्हारे पास? यह कैसे हम मानें कि तुम लोमड़ी हो, कुछ लिखित है? लोमड़ी को पसीना आ गया, यह कभी ऐसा इतिहास में नहीं हुआ था। उसने कहा, तू ठहर, मैं अभी प्रमाणपत्र लेकर आती हूं।

वह सिंह के पास गई और उसने कहा कि कृपा करो एक लिखित प्रमाणपत्र दो। इज्जत बेइज्जत हुई जाती है। एक साधारण सी गिलहरी मुझसे--यह उसके मन में चल रहा है--इज्जत बेइज्जत हुई जाती है। एक साधारण सी गिलहरी। यह उसने सिंह से नहीं कहा। उसने इतना ही कहा कि मुझे प्रमाणपत्र दे दो। मन में उसके यह चल रहा है कि हद हो गई। हद हो गई, ऐसा कभी इतिहास में भी नहीं सुना था।

सिंह ने उसे लिख कर एक प्रमाणपत्र दिया। वह लेकर वापस लौटी। गिलहरी अपनी जगह बैठी थी। उसने प्रमाणपत्र पढ़ कर सुनाया, जहां सिंह ने चर्चा की थी कि यह लोमड़ी है और बहुत खतरनाक जानवर है, और गिलहरी को इससे सावधान होना चाहिए, और इस तरह की बातें नहीं करनी चाहिए। उसने यह प्रिफेस, यह भूमिका सुन कर ही गिलहरी तो नदारद हो गई। उसने सोचा कि है तो पक्का। वह तो भाग गई। लेकिन लोमड़ी पढ़ने में इतनी तल्लीन हो गई थी और खुद की प्रशंसा पढ़ने में इतने धीरे-धीरे पढ़ रही थी कि उसने जब पूरा पढ़ पाई प्रमाणपत्र, तब देखा कि गिलहरी जा चुकी है।

वह वापस लौटी। जब वह पहुंची सिंह के पास, तो देख कर हैरान हुई कि एक हिरण वहां खड़ा हुआ था और वह सिंह से कह रहा था, कोई लिखित प्रमाणपत्र है आपके पास? हम कैसे मान लें कि आप सिंह हो? लोमड़ी ने कहा, हद हो गई! अब यह सिंह बेचारा क्या करेगा? हम तो खैर प्रमाणपत्र ले गए।

सिंह ने उस हिरण से कहा कि देख, अगर मुझे भूख लगी हो, तो तुझे प्रमाणपत्र लेने की फुर्सत भी नहीं मिलेगी। सिद्ध हो जाएगा। और अगर मुझे भूख न लगी हो, तो आई डोंट केयर। इससे कोई मतलब ही नहीं है कि तू मानता है मुझे सिंह कि नहीं मानता। अगर मुझे भूख नहीं लगी, तो मैं तेरी चिंता नहीं करता कि तू क्या मानता है। और अगर मुझे भूख लगी है, तो तुझे फुर्सत भी न मिलेगी इस बात की फिकर करने की कि मैं कौन हूं।

लोमड़ी ने कहा कि महाराज, यह मुझसे क्यों न कहा? मुझे क्यों सर्टिफिकेट दे दिया? एक साधारण सी गिलहरी, मैं भी उसको ठीक कर देती। सिंह ने कहा, लेकिन तूने मुझे बताया ही नहीं था कि गिलहरी ने सर्टिफिकेट मांगा है। मैं तो समझा कि सम स्टुपिड ह्यूमन बीइंग, कोई मूढ़ आदमी ने मांगा होगा। इधर कुछ देर से ये जंगली जानवर भी आदमी की बेवकूफी में पड़ने लगे हैं, सर्टिफिकेट मांगते हैं।

आदमी की बुनियादी नासमझियों में से नेमिंग, लेबलिंग, नामकरण बुनियादी नासमझियों में से है। नाम देकर बड़ी सुविधा हो जाती है। आदमी कहता है, मैं परमात्मा से अपने को भर रहा हूं। तब वह भूल जाता है कि यह द्वैत है। यह भी द्वैत है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि किससे तुम भर रहे हो। एक बात तय है कि तुम घड़े हो और किसी से भरे जा रहे हो। वह संसार है, कि परमात्मा है, कि प्रेम है, कि प्रार्थना है, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम नहीं हो। तुम तो भरने वाले हो, या जिसमें भरा जा रहा है, वह हो। फिर जो भी भरा जा रहा है, उसका कोई भी नाम हो--उसको संसार न कह कर मोक्ष कहने लगेंगे, तो फर्क नहीं पड़ने वाला है--द्वैत जारी रहेगा।

असल में, दूसरे से ही हम भरे जा सकते हैं। अगर अपना ही होना, शुद्ध अपने ही होने में थिर होना है, तो सिवाय शून्य होने के और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "ताओ है रिक्त घड़े जैसा। इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है।"

इसके उपयोग में, अगर धर्म का उपयोग करना है, तो पूर्णता के उपद्रव से, समस्त पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है। यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। उपयोग शब्द के भीतर थोड़ा उतरें तो ख्याल में आएगा।

धर्म अगर कुछ है तो जीवन का परम उपयोग है, वह जीवन की आत्यंतिक अर्थवत्ता है। अगर ताओ का या धर्म का उपयोग करना है, तो एक ही सूचन देता है लाओत्से कि समस्त तरह की पूर्णताओं से, पूर्णता की आकांक्षा से सावधान रहना। और धर्म का उपयोग शुरू हो जाएगा। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति शून्य होता है, वैसे ही धर्म सक्रिय हो जाता है, डायनैमिक हो जाता है। और जैसे ही कोई व्यक्ति भर जाता है किन्हीं चीजों से, धर्म अक्रिय हो जाता है, बोझ से भर जाता है, दब जाता है। नष्ट तो होता नहीं धर्म।

इस कमरे में खाली जगह है, एम्पटी स्पेस है। इस कमरे में लाकर हम सामान भर दें, इतना सामान भर दें कि कमरे में इंच भर जगह न रह जाए। इसका क्या अर्थ हुआ? क्या इसका यह अर्थ हुआ कि पहले जो खाली जगह थी, वह नष्ट हो गई? क्या हम उसे नष्ट करने में सफल हो गए? या इसका यह मतलब है कि पहले जो खाली जगह थी, वह छोड़ कर इस कमरे के बाहर हट गई और कमरा भर गया? इस कमरे के बाहर खाली जगह जा नहीं सकती। क्योंकि खाली जगह कोई चीज नहीं है कि चली जाए। और जाएगी कहां? बाहर खाली जगह पहले से ही काफी मौजूद है। इस कमरे की खाली जगह को सम्हालने के लिए कहीं भी तो कोई जगह नहीं है इस अंतरिक्ष में, जहां यह इस कमरे की इतनी खाली जगह अगर बाहर निकल जाए, तो यह कहां रुकेगी?

खाली जगह को आप नष्ट कैसे करेंगे? फिर दूसरा उपाय यह है कि नष्ट हो गई होगी; हमने सामान भर दिया, खाली जगह नष्ट हो गई। लेकिन नष्ट कोई चीज हो सकती है, खालीपन नष्ट नहीं हो सकता। वस्तु नष्ट हो सकती है, शून्य नष्ट नहीं हो सकता। शून्य का मतलब ही यह है कि जो नहीं है। उसको नष्ट कैसे करिएगा? नष्ट करने के लिए किसी चीज का होना जरूरी है।

तो आप इस कमरे को कितना ही भर दें, ठोस सीमेंट से बंद कर दें पूरा का पूरा, तो भी खाली जगह यहीं की यहीं होगी। न नष्ट हो सकती है, न बाहर जा सकती है। तो क्या फिर हमें खाली जगह किसी दिन इस कमरे

में लानी हो--रहने का मन हो जाए, इस कमरे में बसना हो, बैठना हो, सोना हो--तो हम क्या करेंगे, खाली जगह कहीं बाहर से लाएंगे? खाली जगह पैदा करने के लिए कुछ मैन्युफैक्चर करेंगे? खाली जगह को पैदा करने के लिए कोई कारखाना बनाएंगे?

नहीं, सिर्फ इस कमरे में जो चीज भरी है, उसे बाहर कर देंगे। खाली जगह अपनी जगह ही रहेगी। चीज खाली जगह को सिर्फ छिपा देती है। आप हटा देंगे वस्तुओं को, खाली जगह प्रकट हो जाएगी।

हम भी ऐसे ही हैं। खालीपन हमारा स्वभाव है। वह हमारा धर्म है। वह ताओ है। हम उसमें भरते जाते हैं चीजें। इतना भर लेते हैं कि वह खाली जगह दब जाती है। दब जाती है, ऐसा कहना पड़ता है। दबा तो हम उसको नहीं सकते। लेकिन अप्रकट हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती, अदृश्य हो जाती है। क्या करें अब?

लाओत्से कहता है, यह पूरे होने की जो आकांक्षा है, इससे सावधान रहना। और पूरे होने की आकांक्षा छोड़ देना। तो पूरे होने के लिए जो इंतजाम तुमने घर में कर रखा है, वह तुम खुद ही उठा कर फेंक दोगे। वह तो इंतजाम है सिर्फ पूरे होने का। और जिस दिन उसे उठा कर फेंक दोगे और भीतर रिक्तता उपलब्ध होगी, उसी दिन ताओ में स्थिति हो जाती है।

और ताओ बड़ा सक्रिय है, बहुत डायनैमिक फोर्स है शून्य। और उस शून्य का बड़ा उपयोग है। असल में, उपयोग ही शून्य का होता है। उपयोग का अर्थ है कि जैसे ही कोई व्यक्ति शून्य हो जाता। जो अधूरापन था, उसने फेंक दिया। पूरण होने की कोशिश न की, क्योंकि पूर्ण होने की कोशिश में चीजें बढ़ानी पड़ती थीं। उसने चीजें उठा कर फेंक दीं। उसने पूर्ण होने का, मकान बनाने का ख्याल ही छोड़ दिया। अब जब वह अपूर्ण नहीं रहा, तो उसे क्या कहिएगा? अपूर्णता का सब इंतजाम उसने उठा कर फेंक दिया, अब वह अपूर्ण नहीं रहा। अब उसे क्या कहिएगा?

शून्य तो हम सिर्फ इसलिए कहते हैं ताकि दृष्टि शून्य होने की तरफ लग जाए। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर से सब साज-सामान फेंक देता है, पूर्ण होने की सब योजनाएं, प्लानिंग फेंक देता है, सब इंतजाम छोड़ देता है, खाली हो जाता है, उस दिन पूर्ण हो जाता है। अपूर्णता से मुक्त हो जाना पूर्ण हो जाना है।

यह अलग परिभाषा हुई। अपूर्णता को विकसित करके, छांट-छांट कर पूर्ण होने की जो कोशिश है, वह एक। और एक अपूर्णता को छोड़ कर खड़े हो जाने पर जो शेष रह जाती है स्थिति, वह दो। वह भी पूर्ण है।

और वह पूर्णता फिर आपकी नहीं है। क्योंकि आप तो, जो चीजें छोड़ीं, उसी में बह जाएंगे। वह पूर्णता फिर समष्टि की है, वह पूर्णता फिर सर्व की है। वह पूर्णता फिर परमात्मा की है। और यह परमात्मा बड़ा सक्रिय है। और इस परमात्मा से सारा सृजन है, सारी क्रिएटिविटी है। चाहे बीज में अंकुर फूटता हो और चाहे आकाश में एक तारा निर्मित होता हो और चाहे एक फूल खिलता हो और चाहे एक व्यक्ति पैदा होता हो--यह सारा विराट का जो आयोजन है, उसी परम शून्य से है। वह शून्य महासक्रियशाली है। उस शून्य में बड़ी ऊर्जा है। हम अपने ही हाथ दीन बन जाते हैं पूर्ण होने की कोशिश में। शून्य होते ही हम परम सौभाग्यशाली हो जाते हैं, परम धन के मालिक हो जाते हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, इसके उपयोग में सभी प्रकार की पूर्णताओं से सावधान रहना अपेक्षित है। यह कितना गंभीर है! यह शून्य! यह शून्य कितना गंभीर है! यह शून्य कितना अथाह है, मानो यह सभी पदार्थों का उदगम हो! जिससे सभी कुछ पैदा हुआ हो, जिससे सभी कुछ निकला हो, जिससे सभी कुछ जन्मा हो। जैसे यह सम्मानित पूर्वज है, सब का पिता है, सब की जननी है, सब का उदगम-स्रोत है।

लेकिन बड़े अदभुत शब्द उसने उपयोग किए हैं, जो कि कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेंगे, विरोधाभासी मालूम पड़ेंगे। क्योंकि पहले तो वह कहता है, रिक्त घड़ा है धर्म। और फिर कहता है, कितना अथाह है!

अब थाह तो हम हमेशा चीजों की लेते हैं। शून्य नदी को आप अथाह न कह सकेंगे। भरी हुई नदी को, बहुत भरी हुई नदी को कहेंगे, अथाह है। बहुत होगा पानी, नाप में न अटता होगा, तो कहेंगे, अथाह है। सूनी नदी को, जिसमें जल ही न हो, कोई अथाह कहेगा, तो पागल कहेंगे।

लाओत्से उसी नदी को अथाह कह रहा है, जहां जल है ही नहीं। क्यों? बहुत मजेदार है। लाओत्से कहता है कि जिसमें जल है, उसे तुम चाहे न नाप पा रहे हो, वह नापा जा सकता है। इट कैन बी मेजर्ड, मेजरेबल है। कितनी ही तकलीफ पड़े, लेकिन इम्मेजरेबल नहीं है, अथाह नहीं है। थाह तो मिल ही जाएगी। थोड़ी और दूर होगी, थोड़ी और दूर होगी, थाह तो होगी ही। क्योंकि वस्तु अथाह नहीं हो सकती। हां, वह नदी अथाह हो सकती है, जिसमें जल न हो। क्योंकि अब तुम कैसे नापोगे? जो नहीं है, उसे नापने का कोई उपाय नहीं है। जो है, वह नापा जा सकता है। इसलिए जल वाली नदी कभी अथाह नहीं हो सकती; निर्जल नदी अथाह हो जाएगी।

लाओत्से कहता है, घड़ा कितना ही भरा हो, अथाह नहीं होगा; खाली घड़ा अथाह है। खाली घड़ा अथाह है, क्योंकि जो शून्य है, उसको नापने का उपाय नहीं है। उसके नापने की कोई मेजरमेंट की विधि, व्यवस्था, तराजू, कोई नाप, कोई गज, कुछ भी नहीं है। एक छोटे से शून्य को भी नहीं नापा जा सकता, और एक बड़े विराट जगत को भी नापा जा सकता है।

हिंदू दर्शन के पास एक शब्द है, माया। माया का मतलब होता है, जो मापा जा सकता है, दैट व्हिच इ.ज मेजरेबल। माया का मतलब इल्यूजन नहीं होता, माया का मतलब भ्रम नहीं होता। माया का मतलब होता है, जो मापा जा सकता है, जो मेय है, मेजरेबल है। जो मेय है, वह माया है। और चूंकि नापा जा सकता है, इसलिए इल्यूजन है। माया का अर्थ नहीं होता भ्रम। जो नापा जा सकता है, वह सत्य नहीं है। क्योंकि सत्य अमाप है, वह इम्मेजरेबल है, वह अमेय है। उसको हम माप न सकेंगे।

लाओत्से कहता है, "कितना अथाह!"

अब इसे भी थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि लाओत्से जैसे व्यक्ति रत्ती भर शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं; इंच भर भी वाणी अकारण नहीं होती है। क्योंकि बड़ी मुश्किल से बोलते हैं। बोलना कोई लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए कोई सुख नहीं है। बड़ी पीड़ा है, बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो कहने चलते हैं वे, वह कहने के बिल्कुल बाहर है। उसमें एक भी शब्द वे ऐसा उपयोग नहीं करते।

अब इसमें बड़ा मजेदार है। लाओत्से कहता है, कितना अथाह! कितना नहीं कहना चाहिए। कितना नहीं कहना चाहिए, क्योंकि कितने में माप शुरू हो जाता है। कितना शब्द माप की सूचना देने लगता है--कितना अथाह! फिर लाओत्से क्यों कितने का उपयोग करता होगा? अगर लाओत्से इतना कहे कि अथाह, तो तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा। लेकिन कहता है, कितना अथाह! कितने में तो माप की शुरुआत हो जाती है।

पर लाओत्से एक शब्द अकारण नहीं बोलता। फिर से सोच लें। अगर लाओत्से कहे अथाह, तो माप हो गया। अगर लाओत्से कहे अथाह, दिस वर्ल्ड इ.ज इम्मेजरेबल। तो कोई भी कह सकता है, यू हैव मेजर्ड।

अगर मैं यह कहूं कि अथाह है यह जगत, तो इसका मतलब हुआ कि मैंने तो कम से कम नाप-जोख कर ली; मैं तो कोने तक पहुंच गया; मैंने तो पूरा देख डाला, और लौट कर कहा, अथाह है। मैं जल में गया और मैंने लौट कर कहा, अथाह है। दो ही बातें हो सकती हैं। या तो मैं यह कहूं कि मैं थाह तक नहीं पहुंच पाया। तो मुझे

अथाह कहने का हक नहीं है। मुझे इतना ही कहना चाहिए कि मैं थाह तक नहीं पहुंच पाया। क्योंकि हो सकता है, जहां तक मैं गया, उसके एक हाथ नीचे ही थाह हो। नदी के बाहर आकर मैं कहता हूं, अथाह। तो दो ही बातें हो सकती हैं। या तो मैं पहुंच नहीं पाया थाह तक। तब मुझे अथाह कहना नहीं चाहिए। मुझे इतना ही कहना चाहिए कि जहां तक मैं गया, वहां तक थाह न थी, बस। आगे हो सकती है। आगे का मैं कुछ कह नहीं सकता। और या इसका यह मतलब हुआ कि मैं आखिर तक पहुंच गया और मैंने पाया कि अथाह है। लेकिन यह एब्सर्ड है। अगर मैं आखिर तक पहुंच गया, तो मैं थाह तक पहुंच गया। और लौट कर अगर मैं कहता हूं कि मैं बिल्कुल आखिर तक देख कर आ रहा हूं, थाह नहीं है, यह तो बिल्कुल गलत बात है। क्योंकि आखिर तक तुमने देखा कैसे अगर थाह नहीं है? अगर तुम पहुंच गए आखिर तक, तो थाह है।

इसलिए लाओत्से कहता है, कितना अथाह! अथाह को भी सीधा नहीं देता है वक्तव्य। क्योंकि सीधे देने में तो लगेगा, नापा जा चुका। कम से कम लाओत्से ने तो नापा। कम से कम लाओत्से को तो पता चल गया कि अथाह है। लेकिन लाओत्से कहता है, कितना अथाह! इसमें लाओत्से इतना ही कहता है, कितना ही नापो, कितना ही नापो, नापते ही चले जाओ--कितना अथाह! तुम नापते हो, और नाप के बाहर। तुम नापते हो, और नाप के बाहर। तुम जहां तक पहुंचते हो, वहीं से आगे। तुम जहां तक पहुंच जाते हो, वहीं किनारा नहीं। जहां तक पहुंच जाते हो, वहीं थाह नहीं मिलती। अनंत-अनंत तरह से तुम जाकर देखते हो और पाते हो, कितना अथाह! अथाह को भी सीधा नहीं कह देता। सीधा कहने में तो बात नापी हुई हो जाएगी।

इस कारण बहुत से वक्तव्य कंट्राडिक्टरी टर्म्स में दिए जाते हैं, विरोधी टर्म्स में दिए जाते हैं। अथाह सीधा कह देने से थाह वाला शब्द हो जाता है; नापा-जोखा हो जाता है। कितना अथाह! और तब अथाह में भी लेयर्स हो जाती हैं। तब अथाह में भी मल्टी डायमेंशंस हो जाते हैं, बहुआयाम हो जाते हैं। अकेला अथाह कहने से वन डायमेंशनल शब्द है। कितना अथाह कहने से मल्टी डायमेंशनल हो गया।

महावीर से तुलना में ख्याल में आ सकेगा।

महावीर जब भी बोलते हैं, तब वे सिर्फ अनंत नहीं कहते सत्य को। वे कहते हैं अनंतानंत। जब भी वे कहते हैं, सत्य कैसा, तो वे यह नहीं कहते कि अनंत, इनफिनिट। वे कहते हैं, इनफिनिटली इनफिनिट, अनंत-अनंत। कोई उनसे पूछने लगा कि यह क्या बात है? अनंत कहने से काम चल जाएगा। दो-दो अनंत जोड़ने से क्या मतलब?

और गलत भी है दो-दो अनंत जोड़ना, क्योंकि अनंत तो एक ही हो सकता है। अगर दो अनंत होंगे, तो एक-दूसरे की सीमा बना देंगे। अगर इस जगत में हम कहें कि दो अनंत हैं, तो दोनों ही अनंत न रह जाएंगे; दोनों सांत हो जाएंगे। क्योंकि दो एक-दूसरे की सीमा... । अनंत का तो मतलब यह है कि जिसका कोई अंत नहीं। लेकिन जहां से दूसरा शुरू होगा, वहां से पहले का अंत हो जाएगा। अनंत तो एक ही हो सकता है।

इसलिए महावीर के पहले तक अनंत शब्द का सीधा उपयोग चलता था। उपनिषद अनंत का उपयोग करते हैं। लेकिन अनंत वन डायमेंशनल है। और महावीर को लगा कि अनंत कहने से नाप हो जाती है, जैसे कि पता चल गया, जैसे कि जान लिया गया। जो आदमी कहता है अनंत, जैसे उसे पता हो गया, उसे मालूम है।

तो महावीर कहते हैं, अनंतानंत। इतना अनंत है कि अनंत कहने से भी चुकता नहीं। हमें उसके ऊपर और--अनंत स्क्वायर, अनंत-अनंत। इतना अनंत है कि अनंत कहने से नहीं चुकता, तो इनफिनिट स्क्वायर। तब मल्टी डायमेंशनल हो गया, बहुआयामी हो गया। और यह बहुआयामी जब भी कोई शब्द होता है, तो बड़ा जीवंत हो

जाता है; और जब एक आयामी होता है, तो मुर्दा हो जाता है। लाओत्से कह सकता था, अथाह; लेकिन वह कहता है, कितना अथाह! वह अनंत-अनंत जैसे शब्द का प्रयोग कर रहा है।

वह कहता है, "कितना गंभीर!"

शून्य और गंभीर! शून्य तो बिल्कुल खाली होगा; उसमें कैसी गंभीरता? शून्य तो बिल्कुल खाली होगा; उसमें कैसी गंभीरता? नदी में बहुत जल है, तो हम कहते हैं, कैसा गंभीर प्रवाह! नदी में दो तरह के प्रवाह होते हैं। एक छिछला प्रवाह होता है; छोटी-मोटी नदियों में होता है। कंकड़-पत्थर दिखाई पड़ते रहते हैं, पर नदी शोरगुल बहुत करती है। बित्ता भर पानी होता है, लेकिन शोरगुल बहुत होता है। उसको कहते हैं छिछला प्रवाह; गंभीर नहीं। नदी शोरगुल बहुत करती है, बातचीत बहुत करती है।

फिर एक नदी है कि इतना गहरा है जल कि नीचे अगर चट्टानें भी पड़ी हों, तो उनसे भी नदी की छाती पर कोई उथल-पुथल पैदा नहीं होती। नदी बहती भी है, तो पता नहीं चलता तट पर खड़े होकर कि बह रही है। बहना भी इतना सायलेंट है। तब कहते हैं, नदी की धारा बड़ी गंभीर; आवाज भी नहीं है जरा।

लाओत्से कहता है, कितना गंभीर! वहां तो कोई जल की धारा ही नहीं है; सब शून्य है।

पर वही कारण है। लाओत्से कहेगा, कितने ही धीमे बहती हो नदी, तुम्हारे कान पकड़ पाते हों कि न पकड़ पाते हों, जहां प्रवाह होगा वहां शोर तो होगा ही। कम होगा, सूक्ष्म होगा। न सुनाई पड़े, ऐसा होगा। लेकिन जहां प्रवाह है, वहां घर्षण है। और जहां घर्षण है, वहां शोर है। तो लाओत्से कहता है, सिर्फ शून्य ही गंभीर हो सकता है, क्योंकि वहां कोई शोर नहीं होगा। वहां कोई प्रवाह ही नहीं है। वहां कोई घर्षण नहीं है। कहीं जाना नहीं है, कहीं आना नहीं है। सब चीजें अपने में थिर हैं।

तो कहता है, कितना गंभीर! कितना गहरा!

लेकिन कितना जोड़ता है। और जोड़ने का कारण है कि कोई भी शब्द उथला न हो जाए; और कोई भी शब्द ऐसी खबर न दे कि बात पूरी हो गई। इस शब्द पर बात पूरी हो गई, ऐसी खबर न दे। सब शब्द आगे की यात्रा को खोलते हों; कोई शब्द क्लोजिंग न हो, सब शब्द ओपनिंग हों। लाओत्से जैसे लोगों के सारे शब्द ओपन होते हैं। उनके हर शब्द से और कहीं द्वार खुल जाता है; आगे के लिए खुलाव मिलता है। पंडित जब बोलता है, उसके सब शब्द क्लोज्ड होते हैं; उसका कोई शब्द आगे के लिए इशारा नहीं देता। उसका शब्द चारों तरफ सीमा खींच देता है, और कहता है, यह रहा सत्य! जानकारी, तथाकथित ज्ञान कहता है, यह रहा सत्य! वास्तविक ज्ञान इशारे करता है। और ऐसे इशारे करता है जो फिक्स्ड नहीं हैं, गतिमान हैं।

इशारे भी दो तरह के हो सकते हैं। एक इशारा जो कि थिर होता है, फिक्स्ड होता है। अगर कोई चांद को बताए फिक्स्ड इशारे से, तो थोड़ी देर में चांद तो हट चुका होगा, इशारा वहीं रह जाएगा। अगर किसी को सच में ही चांद को बताए रखना है, तो अंगुली को बदलते जाना पड़ेगा, इशारे को जीवंत होना पड़ेगा, और चांद के साथ उठना पड़ेगा।

लाओत्से जैसे लोग सत्य को कोई मृत इकाई नहीं मानते, कोई डेड यूनिट नहीं मानते। डायनैमिक, लिविंग फोर्स मानते हैं। एक जीवंत प्रवाह है। तो उनके सब इशारे जीवंत हैं। उनका हाथ उठता ही चला जाता है।

कितना! इस कितने में कहीं सीमा नहीं बनती; यह कितना सब इतनों के पार चला जाता है। और एक डेप्थ और एक इशारा जो सदा ट्रांसेंड करता है शब्द को। महावीर जब कहते हैं अनंत-अनंत, तब भी उस शब्द में इतना ट्रांसेंडेंस नहीं है, जितना लाओत्से कहता है, कितना! ट्रांसेंडेंस और भी ज्यादा है, अतिक्रमण और भी ज्यादा है। क्योंकि महावीर अनंत शब्द को फिर से दोहरा देते हैंः अनंत-अनंत! लेकिन शब्द फिर फिक्स्ड सा हो

जाता है। शब्द की ध्वनि भी फिक्स्ड हो जाती है; एक सीमा बन जाती है। ऐसा लगता है कि शब्द की सीमा है, परिभाषा है; समझ पाएंगे। लेकिन जब कोई कहता है, कितना अथाह! तो वह कितना जो है, उसकी कोई सीमा नहीं बनती।

लाओत्से कहता है, "कितना गंभीर, कितना अथाह, मानो यह सभी पदार्थों का उदगम हो।"

वह भी कहता है मानो, एज इफ। सत्य को जिन्हें बोलना है, उन्हें एक-एक पांव सम्हाल कर रखना होता है। वह यह नहीं कहता कि सभी पदार्थों की जननी है।

वाहिंगर ने एक किताब लिखी हैः दि फिलासफी ऑफ एज इफ। अदभुत किताब है। पश्चिम ने पिछले सौ वर्षों में जो दस-पांच कीमती किताबें पैदा कीं, उसमें वाहिंगर की किताब है, दि फिलासफी ऑफ एज इफ। वह कहता है कि जगत में जिन्होंने भी कहा, सत्य ऐसा है, उन्होंने गलत कहा। क्योंकि आदमी इतना ही कह सकता है, एज इफ। इससे ज्यादा आदमी कहे, तो सीमाओं के पार जाता है। वह आदमी की अस्मिता है और अहंकार है।

तो वाहिंगर नहीं कहता कि गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड; वह कहता है, एज इफ गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड। यानी दुनिया इतनी खूबसूरत है कि मानो ईश्वर ने बनाई हो। क्योंकि कौन और बनाएगा? वाहिंगर यह नहीं कहता कि ईश्वर ने बनाई यह दुनिया, मैं सिद्ध कर दूंगा। क्योंकि वाहिंगर कहता है कि यह मैं सिद्ध करूंगा, जो इस दुनिया का एक हिस्सा हूं! तो फिर कोई असिद्ध भी कर देगा। और अगर मैं हकदार हूं सिद्ध करने का, तो कोई हकदार है असिद्ध करने का। अगर इस जगत का एक हिस्सा कह सकता है ईश्वर है और प्रमाण जुटा सकता है, तो दूसरा हिस्सा कह सकता है कि नहीं है और प्रमाण जुटा सकता है। और जब कोई कहता है नहीं है, तो हमें यह नहीं कहना चाहिए कि वह सीमा के बाहर जा रहा है; क्योंकि है वाले ने यात्रा शुरू करवा दी, वह सीमा के बाहर चला गया।

इस जगत में पहले सीमा के बाहर आस्तिक चले गए। उन्होंने जो वक्तव्य दिए, वे मनुष्य की सीमा के बाहर हैं। नास्तिकों ने तो सिर्फ उनका अनुगमन किया। एक आदमी कहता है, मैं सिद्ध करता हूं कि ईश्वर है। यह बाहर हो गई बात। ईश्वर को भी तुम्हारे सिद्ध करने की जरूरत पड़ती है?

वाहिंगर कहता है कि नहीं, इतना ही कह सकता हूं मैं, जितना सोचता हूं, जितना खोजता हूं, तो पाता हूं, एज इफ गॉड क्रिएटेड दि वर्ल्ड। मानो कि... । कोई गणित का सत्य नहीं है यह; वह कहता है, यह मेरे हृदय का भाव है, ऐसा मुझे लगता है कि मानो। एक छोटे से फूल को भी देखता हूं, तो वह कहता है, मुझे ऐसा लगता है कि मानो किसी ईश्वर ने इसे निर्मित किया होगा। मेरा मन नहीं होता मानने का कि यह यों ही पत्थर के बीच जमीन से फूट आया है। इसलिए मैं कहता हूं, एज इफ।

लाओत्से कहता है, मानो वह जो अथाह, गंभीर, कितना अथाह, कितना गंभीर वह जो शून्य है, वह जो घड़ा है रिक्त, उससे ही सब पदार्थों का जन्म हुआ हो।

यह एज इफ, यह मानो जोड़ देना बड़ा मूल्यवान है। यह लाओत्से की बहुत सेंसिटिविटी का, बहुत संवेदनशील चित्त का लक्षण है। यानी वक्तव्य इतना संवेदनशील है, यों ही नहीं बोल दिया गया है। किसी विवाद की गर्मी में नहीं कहा गया है, कुछ सिद्ध करने की चेष्टा में नहीं कहा गया है, किसी को कनविंस करने के लिए नहीं कहा गया है। उदगार है, ऐसा लगा है। ऐसा अनुभव हुआ है, ऐसी प्रतीति बनी है, ऐसा अहसास है।

इसलिए लाओत्से ने कहीं कहा है... । उसके शिष्यों ने बहुत से वक्तव्य लाओत्से के इकट्ठे किए हैं। च्वांगत्से कहता है, लाओत्से ने कहीं कहा है कि जितना बड़ा ज्ञानी, उतना ही ज्यादा झिझकता है। अज्ञानी बिना झिझके वक्तव्य दे देते हैं--बड़े वक्तव्य, जो हमारे ओंठों पर शोभा भी न दें--कि जगत को परमात्मा ने बनाया। यह वक्तव्य

परमात्मा से बड़ा कर देता है वक्तव्य देने वाले को। कि यह कृत्य पाप है। कौन सा कृत्य पाप है, कौन सा कृत्य पुण्य है, बड़ा अनिर्णीत है। और जो जानता है, वह हेजिटेट करेगा, वह झिझकेगा, वह वक्तव्य देने से बचेगा।

जीसस ने कहा है, जज यी नॉट, तुम तो निर्णय ही मत करो। जज यी नॉट दैट यी शुड नॉट बी जज्ड, तुम निर्णय ही मत लो, नहीं तुम्हारा निर्णय होगा फिर। किसी दिन तुम झंझट में पड़ोगे।

तुम निर्णय ही मत लो। क्योंकि चीजें बहुत जटिल हैं और बहुत रहस्यपूर्ण हैं। क्या है पाप? क्या है पुण्य? यहां पुण्य पाप बन जाता है; यहां पाप पुण्य बन जाते हैं। यहां जो पाप की तरह शुरू होता है, उसमें पुण्य के फूल खिल जाते हैं। यहां जो पुण्य की तरह यात्रा शुरू करता है, पाप की मंजिल पर पहुंच जाता है। यहां जो अभी उजाला है, थोड़ी देर में अंधेरा हो जाता है। अभी जो अंधेरा था, वह थोड़ी देर में उजाला हो जाता है। अभी सुबह थी, सांझ हो गई। अभी जो सुंदर था, वह कुरूप हो गया है। क्या है सुंदर?

नसरुद्दीन से उसकी पत्नी पूछ रही है एक दिन कि इधर कुछ दिनों से मुझे शक होता है कि तुमने मुझ पर प्रेम कम कर दिया है। क्या मैं तुमसे पूछ सकती हूं कि जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? नसरुद्दीन ने कहा कि पूजूंगा, तेरे चरणों की धूल सिर पर लगाऊंगा। लेकिन ठहर, तू अपनी मां जैसी तो न हो जाएगी? अगर तेरी मां जैसी हो जाए, तो हाथ जोड़ लूं। तू ऐसी ही तो रहेगी न!

किसको सौंदर्य कहेंगे हम? किसको जवानी? जवानी का हर कदम बुढ़ापे में पड़ता चला जाता है। किसको सौंदर्य कहते हैं? हर सौंदर्य की लहर थोड़ी ही देर में कुरूप हो जाती है। यहां चीजें रहस्यपूर्ण हैं, संयुक्त हैं, विभाजित नहीं हैं। जगत ऐसा नहीं है कि हम कह सकें, यह अंधेरा है और यह उजाला है; जगत ऐसा है कि सब धुंधलका है, सांझ है। न कह सकते उजाला है; न कह सकते अंधेरा है।

लाओत्से कहता है, झिझकते हैं वे, जो ज्ञानी हैं। और लाओत्से के सभी वक्तव्य झिझक से भरे हुए हैं, बहुत हेजिटेटिंग हैं। अज्ञानी पढ़ेगा, तो उसको लगेगा, शायद पता नहीं होगा लाओत्से को। नहीं तो ऐसा क्यों कहना कि मानो कि। अगर मालूम है, तो कहो; नहीं मालूम है, तो कहो। साफ बात करो। नहीं मालूम, तो कह दो कि हमें पता नहीं कि जगत कहां से पैदा हुआ; मालूम है, तो कहो कि इससे पैदा हुआ। ऐसा क्यों कहते हो, मानो कि! इससे तुम्हारे अज्ञान का पता चलता है।

असल में, अज्ञानी चीजों के रहस्य को कभी नहीं देख पाते। फिक्स्ड कंसेप्ट में आसानी पड़ती है। कह दिया कि यह आदमी पापी है, बात खतम हो गई। लेकिन पापी पुण्य कर सकते हैं। कह दिया, यह आदमी पुण्यात्मा है, बात खतम हो गई। लेकिन पुण्यात्मा पाप कर सकता है। तो क्या मतलब तुम्हारे कहने से हुआ? अगर पुण्यात्मा पाप कर सकता है और अगर पापी पुण्य कर सकता है, तो तुम्हारे लेबल लगाने खतरनाक हैं। क्यों लगाए? कोई मतलब न था उनका।

पर हमें सुविधा हो जाती है, हम निश्चिंत हो जाते हैं। कैटेगराइज कर लेते हैं; एक-एक खाने में रख दिया आदमियों को उठा कर, निश्चिंत हो गए! हालांकि हमारी वजह से कुछ रुकता नहीं; हमारी वजह से कुछ फर्क नहीं पड़ता; जिंदगी गतिमान रहती है।

लाओत्से बहुत हेजिटेटिंग है। और जगत में बहुत थोड़े से लोग हुए हैं, जो लाओत्से जैसे हेजिटेटिंग हैं। हिंदुस्तान में सिर्फ बुद्ध के पास इतना हेजिटेशन है। लेकिन वह भी इतना नहीं। क्यों? क्योंकि मैंने कल आपसे कहा कि बुद्ध ने कह दिया, इन सवालों के मैं जवाब न दूंगा। यह भी काफी सुनिश्चित बात हो गई। एक सुनिश्चित

बात तो यह है कि ये जवाब हैं; एक सुनिश्चित बात यह हो गई कि इनके जवाब ही नहीं हैं। बट दि आंसर इ.ज डेफिनिट, इनके जवाब नहीं हैं। कोई अनिश्चय नहीं है मामले में।

लाओत्से कहता है, मानो कि। हाइपोथेटिकल है, कल्पना करो कि, दौड़ाओ अपनी भावना को, शायद तुम्हें ख्याल में आ जाए, जैसे इसी शून्य से सब पैदा हुआ है।

हुआ है, इसी शून्य से पैदा हुआ है; लेकिन इसे सुनिश्चित रूप से कह देना कि इसी शून्य से पैदा हुआ है, अतिक्रमण है, ट्रेसपासिंग है। क्योंकि तब शून्य इतना छोटा हो गया कि हमने उसको सामने रख कर देख लिया कि इसी से सब पैदा हुआ है। शून्य बहुत छोटा हो गया, विराट न रहा। अथाह न रहा, गहरा न रहा, असीम न रहा, बहुत छोटा हो गया। हमने अपने सामने रख लिया अपनी प्रयोगशाला की टेबल पर, और कहा कि इसी से सब पैदा हुआ है। यह रहा शून्य, इससे सब पैदा हुआ है। मिस्ट्री न रही, रहस्य न रहा बात में।

लाओत्से कहता है, मानो कि जैसे यही हो जननी!

लाओत्से से लोग अगर पूछें कि ईश्वर है? तो लाओत्से नहीं कोई हां-न में जवाब देता। लाओत्से जैसे लोग ईश्वर की इतनी सन्निधि में जीते हैं कि हां-न में जवाब नहीं दे सकते हैं।

नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला है एक अदालत में। और मजिस्ट्रेट ने कहा है कि नसरुद्दीन, तुम लफ्फाज हो, तुम शब्दों को ऐसे टर्न देते हो कि हमें बड़ी कठिनाई होती है। तुम हां और न में जवाब दो। नहीं तो यह मुकदमा कभी खतम न होगा। तुम ऐसी गोल-मोल बातें कर देते हो कि हम उसमें घूमते हैं और कहीं पहुंचते नहीं। तुम हां और न में जवाब दो, तो ही हल हो सकता है।

नसरुद्दीन ने कहा कि लेकिन जो भी बातें जवाब देने योग्य हैं, वे हां और न में नहीं दी जा सकती हैं। और जो बातें जवाब देने योग्य नहीं हैं, वे हां और न में दी जा सकती हैं। फिर तुमने मुझे कसम खिलाई सत्य बोलने की, वह वापस ले लो! फिर मैं हां और न में जवाब दे दूंगा। तुमने मुझे कसम दिलाई सत्य बोलने की, आई एम ऑन ओथ! और सत्य ऐसा नहीं है कि हां और न में जवाब दिया जा सके।

मजिस्ट्रेट ने कहा, अच्छा तो तुम कोई एक ऐसा उदाहरण दो, जिसका जवाब हां और न में न दिया जा सके।

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं पूछता हूं महानुभाव, आपने अपनी पत्नी को पीटना बंद कर दिया? हैव यू स्टॉप्ड बीटिंग योर वाइफ? आप हां और न में जवाब दे दें।

मजिस्ट्रेट थोड़ी दिक्कत में पड़ा। अगर वह कहे हां, तो उसका मतलब वह पीटता था पहले; अगर वह कहे न, तो उसका मतलब वह अभी पीट रहा है।

नसरुद्दीन ने कहा, कहिए, क्या ख्याल है? मेरी ओथ हटा लें, सच बोलने की झंझट मुझ पर न हो, तो मैं हां और न में जवाब दे सकता हूं। लेकिन बहुत चीजें हैं, नसरुद्दीन ने कहा, जिनका हां और न में कोई जवाब नहीं हो सकता है।

और ईश्वर जहां आता है, वहां तो हां और न बिल्कुल बेकार हो जाते हैं। वहां नास्तिक भी मूढ़ और आस्तिक भी मूढ़ हो जाते हैं। वहां हां और न में जवाब देने वाले निपट मूढ़ हैं। वहां चीजें बहुत तरल हो जाती हैं, और एक-दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं।

इसलिए लाओत्से बहुत-बहुत झिझकता हुआ कहता है, मानो कि इसी शून्य से सब पैदा हुआ हो।

शेष कल। दो सूत्र बचे हैं, तो दो दिन में सूत्र हो जाएंगे; और तीसरा दिन एक और हमारे पास बचेगा, तो जो भी आपके सवाल इस बीच हुए हों, वे तीसरे दिन।

तो अपने-अपने सब सवाल तैयार कर लें, जिसको भी पूछना हो।

तेरहवां प्रवचन

अहंकार-विसर्जन और रहस्य में प्रवेश

Chapter 4 : Sutra 2

We should blunt its sharp points, and unravel its complications; We should attemper its brightness and submerge its turmoil. Yet dark like deep water it seems to remain.

अध्याय 4 : सूत्र 2

इसकी तेज नोकों को घिस दें; इसकी ग्रंथियों को सुलझा दें;
इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए;
इसकी उद्वेलित तरंगें जलमग्न हो जाएं;
फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।

धर्म है रिक्त चेतना की अवस्था, खाली घड़े की भांति।

लेकिन कोई खाली घड़ा कैसे हो पाए? शून्य कोई होना भी चाहे तो कैसे शून्य हो? मिटना कोई चाहे भी तो मिटने की प्रक्रिया क्या है?

कल हमने समझने की कोशिश की कि पूर्ण होने की चेष्टा से ज्यादा कोई नासमझी की बात नहीं। लेकिन पूर्ण होने का विज्ञान उपलब्ध है। एक-एक कदम पूर्ण होने की सीढ़ियां उपलब्ध हैं। पूर्ण होने का शास्त्र है। और जिन्हें पूर्ण होना है, उनके लिए विद्यापीठ हैं, जहां वे शिक्षित हो सकते हैं कि किसी दिशा में पूर्ण कैसे हों। लेकिन शून्य होने का क्या शास्त्र है? और शून्य होने का विद्यापीठ कहां? और शून्य होने के लिए शिक्षक कहां मिलेगा? और कौन सा अनुशासन है जिससे व्यक्ति शून्य हो?

कुछ भी होना हो, तो प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। तो पूर्ण होने की प्रक्रियाएं तो मनुष्य ने विकसित की हैं। अहंकार को मजबूत करने के मार्ग बनाए हैं, यात्रा-पथ निर्मित किए हैं, क्रमबद्ध सोच-विचार किया है। लेकिन शून्य! शून्य होने के लिए क्या किया जा सकता है?

तो लाओत्से कुछ बातें कहता है। वह कहता है, "तेज नोकों को घिस दें।"

व्यक्तित्व में तेज नोकें हैं बहुत। जहां-जहां आप किसी को चुभते हैं, वहां आप में तेज नोक होती है। लेकिन एक मजा है नोक का कि जब दूसरा आपको चुभता है, तब उसकी नोक आपको पता चलती है; लेकिन जब आप किसी दूसरे को चुभते हैं, तो आपको अपनी नोक पता नहीं चलती। अगर छुरे को मैं आपके शरीर में चुभाऊं, तो आपको पता चलता है, छुरे को पता नहीं चलता। मेरी तेज नोक किसी में गड़ती है, तो उसे पता चलता है, मुझे पता नहीं चलता। हां, किसी और की नोक मुझमें गड़ जाए, तो मुझे पता चलता है।

इससे जगत में बड़ी भ्रांति होती है, बहुत कनफ्यूजन है। जगत की सारी कलह इस कारण ही है कि हमें दूसरे की नोक ही पता चलती है, अपनी नोक कभी पता नहीं चलती। आपको कभी अपनी नोक पता चली है? इसलिए जीवन भर हम दूसरों की नोकों को झड़ाने में लगे रहते हैं।

तो पहली बात तो यह ख्याल में ले लें कि हमें अपनी नोकों का पता नहीं चलता, दूसरे की नोकों का ही पता चलता है, क्योंकि वे हमें चुभती हैं। हमारी नोकें दूसरों को चुभती हैं, उनका हमें पता नहीं चलता। दूसरी बात, चूंकि उनका हमें पता ही नहीं चलता, इसलिए जाने-अनजाने हम उनकी जड़ों को मजबूत किए चले जाते हैं। और दूसरे की नोक हमें चुभती है, इसलिए दूसरे की नोक को तोड़ने की हम चेष्टा करते हैं।

और एक मजे की बात कि जितना हम दूसरे की नोक को तोड़ने की चेष्टा करते हैं, उतना ही हमें अपनी नोक मजबूत करनी पड़ती है। क्योंकि दूसरे की नोक तोड़नी हो, तो हमारी नोक के अलावा और कोई उपकरण नहीं है, जिससे हम उसे तोड़ें। तो दूसरे की नोक को तोड़ने की कोशिश गहरे में अपनी नोक को बढ़ाने की, चमकाने की, धार देने की कोशिश है। दूसरा भी यही कर रहा है। तब दुष्टचक्र ख्याल में आ जाएगा, विसियस सर्किल ख्याल में आ जाएगा। प्रत्येक यही कर रहा हैः दूसरे की नोकें तोड़ने की कोशिश कर रहा है; दूसरों की नोकें तोड़ने में अपनी नोकों को धार दे रहा है। दूसरा भी यही कर रहा हैः इसकी नोकें तोड़ने की कोशिश कर रहा है; इसकी नोकें तोड़ने के लिए अपनी नोकों को जहर पिला रहा है, पाय.जन दे रहा है। हम नोकें ही नोकें रह जाते हैं। धीरे-धीरे हम में सिवाय इन नोकों के और कुछ भी नहीं बचता।

ज्यादा से ज्यादा हमारी नोकें हमें एक तरह से चुभती हैं सिर्फ। वह भी ख्याल में ले लेना जरूरी है। अपनी ही नोक हमें सिर्फ एक तरफ से चुभती है। जब हमारी नोक दूसरों को बहुत चुभने लगती है, तब वे सभी हमें नोकें चुभाने को उत्सुक हो जाते हैं। बस, इसी तरह से नोक हमें पता चलती है। तब हम ज्यादा से ज्यादा जो करते हैं, वह यह करते हैं कि अपनी नोकों के ऊपर वस्त्र पहना देते हैं--स्किन डीप। एक पर्त चमड़ी की हमारी नोकों पर हो जाती है। मृदुता और विनम्रता और शिष्टता और सज्जनता, उसका हम अपने चारों तरफ एक लेप कर लेते हैं। लेकिन वह जरा सी ही चोट से उखड़ जाता है। हम करते ही उसे इतना हैं कि जरा सी चोट लगे और हमारी नोक बाहर आ जाए।

लाओत्से कहता है, सब नोकों को झड़ा दें।

तो करना क्या होगा? पहले तो यह जानना होगा कि हम में नोकें कहां-कहां हैं? और कहीं ऐसा तो नहीं कि हम जन्मों-जन्मों की यात्रा में सिर्फ नोकें ही रह गए हैं? हमने बाकी सब हिस्से काट डाले हैं अपने और सिर्फ उन हिस्सों को बचा लिया है। और हम में नोकें हैं, तब हमें उनका कैसे पता चले?

सदा दूसरे की जगह खड़े होकर देखें, तो पता चल सकता है। जब भी आपसे कोई पीड़ित होता है, तो हमारा मन कहता है कि उसकी भूल है कि वह पीड़ित हो रहा है। और जब हम किसी से पीड़ित होते हैं, तो हमारा मन कहता है कि किसी ने हमें सताया है, इसलिए हम पीड़ित होते हैं। डबल बाइंड है। अगर आप मुझ पर क्रोधित होते हैं, तो मैं कहता हूं, आपका स्वभाव खराब है। और अगर मैं क्रोधित होता हूं, तो मैं कहता हूं, स्थिति ऐसी है; स्थिति ही ऐसी है कि मुझे क्रोध करना पड़ेगा। और दूसरा क्रोध करता है, तो मैं कहता हूं, उसके स्वभाव की विकृति है; परिस्थिति तो जरा भी न थी कि क्रोध किया जाए, लेकिन वे आदमी ही विषाक्त थे। यह हमारा तर्क है। और इस तर्क में हमारी सारी नोकें छिप जाती हैं और उनका हमें कभी पता नहीं चलता।

जीसस ने कहा है, जो तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ किया जाए, वही तुम दूसरे के साथ करना। लेकिन यह तो दूर की बात है। जो तुम दूसरे के साथ सोचते हो, कम से कम उतना अपने साथ सोचना। या जो तर्क तुम

अपने लिए देते हो, कम से कम दूसरे के साथ भी न्याय बरतना, उतना तर्क देना। अगर मैं कहता हूं कि जब मैं क्रोधित होता हूं तो परिस्थिति ऐसी होती है, तो कम से कम इतना न्याय करूं कि जब मुझ पर कोई क्रोधित हो तो मैं कहूं कि परिस्थिति ऐसी है कि तुम्हें क्रोधित होना पड़ रहा है। डबल बाइंड जो लॉजिक है हमारा, वह तोड़ना पड़ेगा। नहीं तो नोकों का कभी पता नहीं चलेगा।

वह डबल बाइंड लॉजिक जो है, दोहरा तर्क--अपने लिए और, दूसरे के लिए और--वह नोकों को बचाने के लिए है। उसमें हमें कभी पता ही नहीं चलता कि हम कौन हैं। हम क्या हैं, उसका हमें बोध ही नहीं हो पाता। और चीजें इस तरह आगे बढ़ती चली जाती हैं। और इसी एक तर्क के सहारे सारा जीवन नष्ट हो जाता है।

इसलिए अगर समस्त धर्मों का सार किसी वचन में आ जाता हो, तो वह जीसस के इस वचन में आ जाता हैः डू अनटू अदर्स एज यू वुड लाइक टु बी डन विद यू। बस सारे धर्म का सार इस एक सूत्र में आ जाता हैः दूसरे के साथ वही करो जो तुम चाहोगे कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। यह एक वचन काफी है। सारे वेद और सारे शास्त्र और सारे पुराण और सारे कुरान और सारी बाइबिल, इस एक छोटे से वचन में समाहित हो जाते हैं।

इतना कोई कर ले तो और कुछ करने को बाकी नहीं रह जाता। लेकिन यह करना बहुत दुष्कर है। क्योंकि इसको करने के लिए सारी नोकें झड़ा देनी पड़ेंगी। और नोकें हममें हैं।

तो पहले तो यह जो दोहरा तर्क है, इसके प्रति सजग हो जाना चाहिए। एक-एक पल इसके प्रति सजग होना पड़ेगा कि मैं दूसरे को भी उतना ही मौका दूं, वही तर्क का लाभ दूं, जो मैं अपने को देता हूं। और तब आपको अपनी नोकें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी। तब बहुत मजेदार स्थिति बनती है। जिस दिन यह तर्क हम छोड़ देते हैं और दूसरे को भी वही मौका देते हैं, उस दिन स्थिति बिल्कुल बदल जाती है। अभी हम कहते हैं कि दूसरे का स्वभाव विकृत है, इसलिए वह क्रोधी है; और मेरी तो परिस्थिति ऐसी थी, इसलिए मैंने क्रोध किया। जिस दिन यह तर्क बदल जाता है, उस दिन अनूठा अनुभव होता है। उस दिन पता चलता है कि मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैंने क्रोध किया और दूसरे की परिस्थिति ऐसी थी कि उसने क्रोध किया। जिस दिन यह तर्क बदलता है, उस दिन यह पूरी स्थिति उलटी हो जाती है।

और जब आपको यह दिखाई पड़ने लगता है कि मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैंने क्रोध किया, मेरी आदत ऐसी है कि मैंने क्रोध किया, दूसरे की परिस्थिति ऐसी थी कि उसने क्रोध किया, तो आप दूसरे को न क्षमा करने में और अपने को क्षमा करने में असमर्थ हो जाते हैं। और जो अपने को क्षमा करने में बहुत सुगमता पाता है, वह नोकों को कभी भी न झड़ा पाएगा।

लेकिन हम बड़े कुशल हैं स्वयं को क्षमा कर देने में। स्वयं के प्रति हमारी क्षमा का कोई अंत ही नहीं है। अगर कभी मैं पूछूं या कभी हम ऐसा सोचें कि क्या आपके जैसा ही ठीक आदमी आपको साथ रहने के लिए दे दिया जाए, कितने दिन उसके साथ रह पाइएगा? जस्ट ए कॉपी ऑफ यू, ठीक आपकी ही नकल एक आदमी आपको दे दिया जाए, कितने दिन उसके साथ रह पाइएगा? चौबीस घंटे भी रहना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन आप अपने साथ तो कई जन्मों से रह रहे हैं। जरूर कोई तर्क होगा ऐसा, जिससे आप अपने को जानने से बचे रहते हैं। ख्याल ही नहीं आता कि मैं क्या हूं; पता ही नहीं चलता कि मैं क्या हूं; होश ही नहीं आता कि मैं क्या हूं।

तो पहले तो नोकों का बोध--वे जो हममें चारों तरफ भाले लगे हैं, भालों के फलक लगे हैं। कहीं से हम निकलें, तो किसी न किसी को जरूर कुछ न कुछ चोट पहुंच जाती है। और अगर आप बिना चोट पहुंचाए निकल जाएं, तो आपको लगता है, आप निकले ही नहीं। ऐसा लगता है कि आपकी तरफ किसी ने कोई ध्यान ही नहीं

दिया। ध्यान ही कोई तभी आपको देता हुआ मालूम पड़ता है, जब उसको किसी तरह आप चोट पहुंचाना शुरू करते हैं।

चोटों के बहुत ढंग हैं, उन पर हम बात करेंगे, कि हम कितनी तरह से चोटें पहुंचा सकते हैं, और हम कितने तर्क निकाल सकते हैं।

एक सुबह नसरुद्दीन की बैठक में कुछ मित्र इकट्ठे हैं। और नसरुद्दीन ने अपने एक शिष्य से कहा कि जा, यह मिट्टी का घड़ा है, कुएं से पानी भर ला। लेकिन ध्यान रख, घड़ा मिट्टी का है, टूट न जाए। जरा मेरे पास आ। उसे पास बुला कर उसने दो चांटे रसीद किए। वह युवक तो तिलमिला गया; वे बैठे लोग भी घबड़ा गए। एक बूढ़े ने कहा भी कि मुल्ला, बेकसूर को मारना, कुछ समझ में नहीं आता। अभी तो घड़ा टूटा भी नहीं, तोड़ा भी नहीं, और सजा दे दी! नसरुद्दीन ने कहा कि मैं उन नासमझों में से नहीं हूं कि घड़ा टूट जाए, फिर चांटा मारूं। फिर फायदा क्या? फिर फायदा ही क्या है? जब घड़ा ही टूट जाएगा, तो मारने से क्या फायदा है?

नसरुद्दीन को आप जवाब न दे पाएंगे। बात तो बड़ी मतलब की कह रहा है। कि मारना है तो अभी, तो कुछ अर्थ भी है। पीछे तो कोई अर्थ भी न रह जाएगा। आदमी इतना कुशल है, कसूर के पहले भी दंड दे सकता है। नसरुद्दीन की मजाक में वही बात है। और उसके लिए भी रेशनलाइजेशन खोज सकता है; उसके लिए भी तर्क खोज सकता है। तर्क खोजने की कुशलता हम में है।

लेकिन तर्क की कुशलता से कभी भी कोई आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं होता, क्योंकि तर्क की सारी व्यवस्था स्वयं को छिपाने के काम आती है। तर्क से नहीं चलेगा काम, अंतर्दृष्टि से चलेगा। और अंतर्दृष्टि का अर्थ है कि अपने को दूसरे की जगह में रखने की क्षमता होनी चाहिए। रोज ऐसा होता है, लेकिन कभी हमें यह ख्याल नहीं आता। रोज हममें से हरेक को लगता है कि दूसरे ने हम पर जो क्रोध किया, वह बिल्कुल अनजस्टीफाइड था, वह बिल्कुल न्यायसंगत नहीं था। प्रत्येक को लगता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है--और अगर कहीं मिल जाए, तो वह बहुत अनूठा फूल है--ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसे दिन में पच्चीसों बार ऐसा नहीं लगता कि उसके साथ अन्याय हो रहा है। उसने तो कुछ ऐसा किया ही नहीं जिस पर क्रोध हो!

हम सब की प्रतीति यह है कि हम सब अन्याय से पीड़ित हैं, विक्टिम हैं, शिकार हैं अन्याय के चौबीस घंटे। लेकिन क्या हमने कभी, जब दूसरे पर क्रोध किया है, तो ऐसा सोचा है कि वह अन्याय का शिकार तो नहीं होगा? जब हम पर क्रोध करते वक्त किसी आदमी को पता नहीं चलता कि वह हम पर अन्याय कर रहा है, तो क्या हमें यह ख्याल नहीं आ सकता कि हम भी जब दूसरे पर क्रोध करते हों, हमें पता ही न चलता हो कि हम अन्याय कर रहे हैं!

यह इनसाइट है, यह अंतर्दृष्टि है। यह तर्क नहीं है, यह एक प्रतीति है। मनुष्य का स्वभाव करीब-करीब एक जैसा है। और जो मैं सोचता हूं, करीब-करीब वैसे ही सारे लोग सोचते हैं। जैसा मैं अनुभव करता हूं, करीब-करीब सारे लोग वैसा ही अनुभव करते हैं। इसलिए बहुत कठिनाई नहीं है इस बात में कि मैं अपने को दूसरे की जगह रख कर देख लूं। इसमें भी बहुत कठिनाई नहीं है कि दूसरे को अपनी जगह रख कर देख लूं। और जो व्यक्ति दूसरे की जगह अपने को रखने में या दूसरे को अपनी जगह रखने में सफल हो जाता है, उसको अंतर्दृष्टि मिलनी शुरू होती है, उसको इनसाइट मिलनी शुरू होती है। और तब उसे दिखाई पड़ता है कि कितनी नोकें हैं! कितनी नोकें हैं!

महावीर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, या बुद्ध परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन बुद्ध सुबह प्रार्थना करते हैं, तो रोज तो वे क्षमा मांगते हैं समस्त जगत से। एक दिन बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप परम

ज्ञान को उपलब्ध हो गए, आपसे अब किसी को चोट नहीं पहुंचती, पहुंच ही नहीं सकती, आप क्षमा किस बात की मांगते हैं?

बुद्ध ने कहा कि मुझे अपने अज्ञान के दिनों की याद है। कोई मुझे चोट नहीं भी पहुंचाता था, तो पहुंच जाती थी। यद्यपि मैं किसी को चोट नहीं पहुंचा रहा, लेकिन बहुतों को पहुंच रही होगी। मुझे अपने अज्ञान की अवस्था का ज्ञान है। कोई मुझे चोट नहीं पहुंचाता था, तो भी पहुंच जाती थी। तो मैं जानता हूं कि वह जो अज्ञान चारों तरफ मेरे है, वह जो अज्ञानियों का समूह है चारों तरफ, मेरे बिना पहुंचाए भी अनेकों को चोट पहुंच रही होगी। फिर मैंने पहुंचाई या नहीं पहुंचाई, इससे क्या फर्क पड़ता है? उनको तो पहुंच ही रही है। उसकी क्षमा तो मांगनी ही चाहिए।

पर जिसने पूछा था, उसने कहा, आप तो कारण नहीं हैं पहुंचाने वाले!

बुद्ध ने कहा, कारण तो नहीं, लेकिन निमित्त तो हूं। अगर मैं न रहूं, तो मुझसे तो नहीं पहुंचेगी। मेरा होना तो काफी है न, इतना तो जरूरी है, उनको चोट पहुंचे। तो मैं क्षमा मांगता रहूंगा। यह क्षमा किसी किए गए अपराध के लिए नहीं, हो गए अपराध के लिए है। और हो गए अपराध में मेरा कोई हाथ न हो, तो भी।

हमारी स्थिति ऐसी है कि लगता है कि सारी दुनिया हमें सता रही है। एक हम इनोसेंट, निर्दोष हैं; और सारी दुनिया शरारतियों से भरी हुई है। वे सब सता रहे हैं। जैसे सारा शड्यंत्र आपके खिलाफ चल रहा है। आप अकेले और यह इतना बड़ा जाल संसार का आपको परेशान करने को चारों तरफ से खड़ा है।

यह हमारी दृष्टि है। इस दृष्टि में आपको अपनी नोकें कभी दिखाई न पड़ेंगी। इसमें आप सदा ही अपने को बचाते रहेंगे। और जो अपने को बचाएगा, वह अपने को नहीं जान पाएगा। और बचा तो पाएगा ही नहीं। क्योंकि जो अपने को जानता ही नहीं, वह बचाएगा कैसे?

तो पहली बात तो यह है कि देखें कि चौबीस घंटे में कितनी चोटें आप अपने चारों तरफ फैला रहे हैं--बोल कर, न बोल कर, उठ कर, बैठ कर, इशारे से, आंख से, मुस्कुरा कर, ओंठ से--कितनी चोटें आप अपने चारों तरफ फैला रहे हैं! अकारण भी! तब आपको लगेगा कि यह आपका स्वभाव है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। एक आदमी केले के छिलके पर फिसल पड़ा और गिर पड़ा। नसरुद्दीन खिलखिला कर हंसा। हंसने में भूल गया और उसका पैर भी दूसरे छिलके पर पड़ा और वह भी गिर पड़ा। गिर कर उठ कर खड़ा हुआ और उसने कहा, परमात्मा, तेरा धन्यवाद! अगर हम पहले ही न हंस लिए होते, तो हंसने का मौका ही न मिलता। अगर हम पहले ही न हंस लिए होते, एक-दो क्षण चूक गए होते, तो चूक गए थे। क्योंकि अब तो दूसरे हंस रहे हैं, अब तो कोई अपने हंसने की बात न रही।

हम सब जब दूसरे पर हंस रहे हैं, तब हमें ख्याल नहीं है; जब हम दूसरे पर क्रोधित हो रहे हैं, तब भी ख्याल नहीं है; जब हम दूसरे की निंदा कर रहे हैं, तब भी हमें ख्याल नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं। थोड़ी ही देर में हम उस जगह हो जा सकते हैं। लेकिन नसरुद्दीन तो आदमी के प्राणों से बोलता है। वह यह कह रहा है कि अच्छा ही किया कि हंस लिए, नहीं तो फिर मौका ही न मिलता। वह खुश है। वह पूरी आदमियत का व्यंग्य है; वह जैसे हम सब का सार-निचोड़ है।

एक-एक इशारे को जांचना पड़ेगा कि उसमें धार तो नहीं है? जहर तो नहीं है? आप किसी को चुभते तो नहीं हैं, चुभते तो नहीं चले जाते हैं? आप दूसरे को चुभें, इसमें रस तो नहीं लेते? सुखद तो नहीं मालूम होता? डामिनेट करें किसी की, मालकियत करें किसी की, किसी के ऊपर कब्जा दिखाएं, किसी को आज्ञा दें, इसमें रस तो नहीं आता?

नसरुद्दीन अपने बेटे पर नाराज है। और वह बेटा बहुत खड़े होकर शोरगुल कर रहा है। वह उससे कहता है, बैठ जा बदमाश! वह लड़का है नसरुद्दीन का, वह कहता है, नहीं बैठते! तो नसरुद्दीन कहता है, खड़ा रह, लेकिन आज्ञा मेरी माननी ही पड़ेगी। या तो बैठ या खड़ा रह, लेकिन आज्ञा मेरी माननी ही पड़ेगी। मेरी आज्ञा से तू नहीं बच सकता।

हमारा मन पूरे समय इस कोशिश में है कि हम किसी को दबा पाएं। क्यों? क्योंकि जब हम किसी को दबाते हैं, तभी हमको लगता है कि हम कुछ हैं। हमें पता ही नहीं चलता अपने होने का तब तक, जब तक हम किसी को दबाते नहीं हैं। तो मेरी मुट्ठी में जितने लोगों की गर्दन हो, तो उतना ही मैं बड़ा आदमी हो जाता हूं। बड़े आदमी का और कोई नापने का हिसाब नहीं है। कितने आदमियों की गर्दन उस आदमी के हाथ में है? अगर वह जोर से मुट्ठी कस दे, तो कितने लोगों की गर्दन दब जाएगी?

हम सब इस कोशिश में हैं कि कितनी गर्दनें हमारे हाथ में हो जाएं। और ऐसा नहीं कि दुश्मन ही गर्दन हाथ में डालता है; जिनको हम मित्र कहते हैं, वे भी गर्दन पर हाथ कसे रहते हैं। एक बार दुश्मन का हाथ तो दूर भी होता है, मित्र का हाथ बिल्कुल गर्दन पर होता है। जिनको हम संबंधी कहते हैं, वे भी एक-दूसरे की गर्दन पर हाथ कसे रहते हैं। वे भी जांच-पड़ताल करते रहते हैं कि गर्दन दूर तो नहीं कर रहे हो! जरा गर्दन दूर हुई तो चिंता शुरू हो जाती है कि कहीं मेरे हाथ से बाहर तो नहीं हो जाएगा! ये सब हमारी नोकें हैं। यह हमारी हिंसा है।

लाओत्से कहता है, इनकी तेज नोकों को घिस डालें। अगर शून्य की तरफ जाना है, तो ये सब नोकें घिस डालें, ये गिरा दें, ये हटा दें।

लेकिन कौन हटा पाएगा नोकों को? नोकों को वही हटा पाएगा, जो इनसिक्योरिटी में रहने को राजी है, जो असुरक्षा में रहने को राजी है। दरवाजे पर हम एक बंदूक रखे हुए आदमी को खड़ा करते हैं, इसलिए कि सुरक्षा चाहिए। वह जो बंदूक पर लगी हुई संगीन है, वह जो हाथ में तलवार लिए हुए खड़ा हुआ पहरेदार है, वह ऐसे ही नहीं खड़ा है। वह सुरक्षा के लिए है। सूक्ष्म रूप में हम अपने व्यक्तित्व के चारों तरफ नोकें रख लेते हैं।

मैं एक मित्र के घर में कोई आठ साल तक रहता था। मैं बहुत हैरान हुआ। वह आदमी बहुत भले थे। मुझे जब भी मिलते, बड़े प्रेम से मिलते। जब भी मिलते, उनके चेहरे पर मुस्कुराहट होती। लेकिन न तो मैंने उनको पत्नी के सामने उनकी मुस्कुराते देखा, न उनके बेटे के सामने मुस्कुराते देखा, न उनके नौकरों के सामने मैंने उन्हें कभी मुस्कुराते देखा। मैं थोड़े दिन में चिंतित हुआ। जब वह अपने नौकरों के सामने निकलते, तो उनकी चाल देखने जैसी होती थी। वह ऐसे जाते थे, जैसे कोई है ही नहीं आस-पास।

मैंने उनसे पूछा कि बात क्या है?

उन्होंने कहा कि सजग रहना पड़ता है। अगर नौकर के सामने मुस्कुराओ, कल ही वह कहता है तनख्वाह बढ़ाओ; पत्नी के सामने मुस्कुराए कि झंझट में पड़े, कि वह कहती है एक साड़ी आ गई। चेहरे को सख्त रखना पड़ता है, पहरे पर रहना पड़ता है। उन्होंने कहा कि मुस्कुरा कर मैं बहुत नुकसान उठा चुका हूं। जब मुस्कुराए, तभी झंझट खड़ी हो जाती है। बेटा भी देख ले कि बाप मुस्कुरा रहा है, तो उसका हाथ जेब में चला जाता है।

तो उन्होंने कहा, मैंने तो एक पूरा चेहरा बना रखा है सख्ती का। यह मजबूरी है, इसमें बहुत कष्ट होता है, लेकिन यह सुरक्षा है। बेटा पास आने में डरता है; कमरे में बैठे होते हैं, तो नौकर नहीं गुजरता; किसी की हिम्मत नहीं है कि उनके सामने कोई खड़ा हो जाए।

पर मैंने कहा, इस सुरक्षा से क्या बचेगा और खोएगा क्या, इसका कुछ हिसाब किया? यह सुरक्षा हो गई, मान लिया। मर जाओ बिल्कुल, फिर नौकर बिल्कुल नहीं घुसेगा कमरे में। और मर जाओ, पत्नी को कितनी ही साड़ी की जरूरत हो, तो भी नहीं कहेगी कि साड़ी चाहिए। और मर जाओ, और बेटे को कितनी ही इच्छा हो, जेब में हाथ नहीं डालेगा। आपकी लाश को घर के बाहर फेंक आएगा। जिंदा रहोगे, तो असुरक्षित रहोगे; मर जाओगे, तो सुरक्षित हो जाओगे। मुर्दे से ज्यादा सुरक्षित और कोई भी नहीं, क्योंकि अब मौत भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। बीमारियां नहीं आ सकतीं, कुछ नहीं किया जा सकता अब। अब आप उसके साथ कुछ कर ही नहीं सकते; वह आपके करने के बाहर हो गया।

जितने हम सुरक्षित होते हैं, उतनी हमें नोकें बनानी पड़ती हैं। नोकें जो हैं, वह हमारे चारों तरफ सिक्योरिटी अरेंजमेंट है, व्यवस्था है। डर है, आक्रमण है चारों तरफ; हमलावर हैं इकट्ठे। आदमी नहीं, दुश्मन हैं चारों तरफ। उन दुश्मनों से अपने को बचाना है।

नसरुद्दीन अपनी पत्नी से बचने के लिए शराब पीने लगा। इतनी ज्यादा, कि मित्र चिंतित हो गए। मित्र इतने चिंतित हो गए कि वह आदमी अब बच नहीं सकेगा। नसरुद्दीन से जब भी उन्होंने कहा, तो उसने कहा कि लेकिन जब मैं शराब पीकर घर जाता हूं, तभी घर जा पाता हूं। दरवाजे पर मेरा पैर कंपने लगता है, अगर मैं होश में जाऊं। और ऐसे-ऐसे प्रश्नों के उत्तर मैं तैयार करने लगता हूं, जो कभी किसी ने किसी से नहीं पूछे होंगे; लेकिन मेरी पत्नी पूछ सकती है। शराब पीकर जाता हूं, तो निश्चिंत प्रवेश कर जाता हूं। यह मेरी सुरक्षा है।

पर बात इतनी बढ़ गई कि मित्रों ने कहा, कुछ करना पड़ेगा, अन्यथा यह मौत आ जाएगी। एक मित्र ने सुझाव दिया कि जब यह पत्नी से इतना डरता है और डरने की वजह से ही शराब पीता है, तो और बड़ा डर अगर लाया जाए तो शायद यह शराब छोड़ दे। अब पत्नी से बड़ा और डर क्या हो? एक मित्र ने कहा, एक काम करो कि आज रात जब यह लौटे, वह आधी रात जब घर लौटने लगे, तो झाड़ पर एक आदमी शैतान बन कर बैठ जाए, डेविल बन जाए। सींग लगा ले, काले कपड़े पहन ले, नकाब पहन ले, घबड़ाने की हालत कर दे और चिल्ला कर कूद पड़े नीचे। तो यह कंपेगा, हाथ-पैर जोड़ेगा। तो उस वक्त इससे वचन करवा ले कि शराब नहीं पीना, नहीं तो मैं तेरा पीछा करूंगा, छोडूंगा नहीं।

मित्र बाकी छिप गए। एक मित्र डेविल बन कर ऊपर झाड़ पर चढ़ गया। नसरुद्दीन बेचारा लौट रहा है कोई दो बजे रात। आहिस्ता से चला आ रहा है। ऊपर से वह आदमी कूदा। सब इंतजाम पूरा था। बड़ी चीख-पुकार बाकी मित्रों ने जो झाड़ियों में छिपे थे लगाई, जैसे भयंकर खतरा आ गया। और वह आदमी नीचे उतरा, सामने नसरुद्दीन के खड़ा हो गया, नसरुद्दीन की गर्दन पकड़ ली।

नसरुद्दीन ने उसकी तरफ देखा। उस आदमी ने कहा कि वचन दो कि शराब छोड़ दोगे!

नसरुद्दीन ने कहा, पहले यह तो बताओ महानुभाव कि आप हो कौन? हू आर यू?

इसके यह पूछने से उसको थोड़ी गड़बड़ तो हो ही गई, क्योंकि यह डरा नहीं ज्यादा। उसने पूछा, हू आर यू?

उसने कहा, मैं शैतान हूं! आई एम दि डेविल!

तो नसरुद्दीन ने कहा, बड़ी खुशी हुई मिल कर, आई एम दि गाय हू हैज मैरीड योर सिस्टर। मैं वह आदमी हूं जिसने आपकी बहन से शादी की है। बड़ा अच्छा हुआ, चलिए आपकी बहन से मुलाकात करवा दें।

सब मामला खराब हो गया। सब मामला पूरा खराब हो गया। वे मित्र बाहर आ गए। उसने मित्रों से कहा कि देखिए, बहुत मुश्किल से मिले हैं, इनको मैं इनकी बहन से मिला दूं। इनकी भी हिम्मत नहीं पड़ रही है जाने की, ये भागने की कोशिश कर रहे हैं।

हमारी सारी की सारी योजना, हमारे शब्द, हमारी भाषा, हमारे सिद्धांत, हमारी शराबें, हमारे सिनेमागृह, हमारे नाचघर, हमारे मनोरंजन, बहुत गहरे में सुरक्षा के आयोजन हैं। सब तरह से। हमारे मंदिर, हमारी मस्जिदें, गुरुद्वारे, वह सब हमारे सुरक्षा के आयोजन हैं। डरे हैं, कहीं कोई इंतजाम कर लिया है। और जब भी कोई डरता है, तो उसको धारें रखनी पड़ती हैं अपने चारों तरफ कई तरह की।

इन नोकों को कौन तोड़ सकता है? इन नोकों को वही तोड़ सकता है, जो इनसिक्योरिटी में रहने को राजी है।

लाओत्से की दृष्टि को समझ कर अलेन वाट ने एक किताब लिखी है। किताब का नाम हैः विजडम ऑफ इनसिक्योरिटी, असुरक्षा की बुद्धिमत्ता। सुरक्षा बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। क्योंकि हम सुरक्षित कुछ नहीं कर पाते; कोशिश में खुद मर जाते हैं और मिट जाते हैं। असुरक्षित रहने की बुद्धिमत्ता! नहीं, हम कोई नोक खड़ी न करेंगे, हम कोई पहरा न बनाएंगे। और जिंदगी आक्रमण करेगी, तो हम स्वागत कर लेंगे।

और बड़ा मजा यह है कि जो आदमी इस भांति राजी हो जाता है कि जो भी आक्रमण होगा, हम पी जाएंगे, स्वीकार कर लेंगे, एक्सेप्ट कर लेंगे, राजी हो जाएंगे, कहेंगे यही नियति है, नहीं कोई उपाय करेंगे, उस आदमी पर आक्रमण होना असंभव हो जाता है। क्योंकि आक्रमण का भी अपना तर्क है।

अगर आपका पड़ोसी आपको देखता है कि आप दंड-बैठक लगा रहे हैं, तो वह डरता है। वह सोचता है, पता नहीं, क्या करे! वह भी दंड-बैठक लगाना शुरू करता है। और जब आप देखते हैं अपनी खिड़की से कि अरे, मामला पक्का है। तो आप एक तलवार ले आते हैं। और फिर ऐसा चलता है। और ऐसा नहीं कि छोटे-मोटे पड़ोसियों में चलता है। रूस और अमरीका और चीन और हिंदुस्तान और पाकिस्तान, सब में ऐसा चलता है। एक की सेनाएं सीमा पर गश्त लगाने लगती हैं, दूसरे के प्राण कंप जाते हैं। वह दुगुनी सेनाएं गश्त करने के लिए लगा देता है। और जब यह दुगुनी खड़ी करता है, तो निश्चित जो तर्क तुम्हारा है, वही पड़ोस वाले का भी है। वह भी सोचता है, कुछ गड़बड़ हो रही है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अब तक के युद्ध निन्यानबे प्रतिशत मिसइंटरप्रिटेशन से हुए हैं, सिर्फ गलत व्याख्या से कि दूसरा तैयारी कर रहा है हमें मारने की; अगर हमने तैयारी न की, तो मर जाएंगे। और जब आप तैयारी करते हैं, तो यही दूसरे का भी तर्क है कि अब तैयारी यह कर रहा है, किसलिए कर रहा होगा? अगर पाकिस्तान अमरीका से अस्त्र-शस्त्र लाता है, तो किसलिए लाता होगा? हमीं को मारने के लिए। और आप अगर एटामिक कमीशन बनाते हैं, तो किसलिए बनाते हैं? पाकिस्तान को मारने के लिए। सब की हमारी बुद्धि इस भांति चलती है कि दूसरा क्या कर रहा है, वही हम और जोर से करें। और दोनों तरफ एक जैसी बुद्धियां हैं। इस प्रतिफलन में, एक-दूसरे के बीच जो बिंब-प्रतिबिंब बनते हैं, इनका जो अंतिम परिणाम होता है, उसमें आदमी का कुछ बस ही नहीं रह जाता, ऐसा लगता है कि करीब-करीब सब यांत्रिक घटित हो रहा है।

लाओत्से कहता है कि असुरक्षित हो जाओ। और ऐसे भी सुरक्षा क्या कर पाओगे? अगर यह पृथ्वी आज टूट जाए, तो कौन सा इंतजाम है? और यह सूरज आज ठंडा हो जाए, तो क्या करोगे? और यह सूरज आज दूर

निकल जाए इस पृथ्वी से, तो कौन सा उपाय है इसे पास ले आने का? कभी यह पृथ्वी बिल्कुल शून्य थी, कोई आदमी न था। कभी यह फिर सूनी हो जाएगी। जिस दिन सूनी हो जाएगी, उस दिन क्या करिएगा? किससे शिकायत करने जाइएगा? अनंत-अनंत ग्रहों पर जीवन रहा है और नष्ट हो गया। यह पृथ्वी भी सदा हरी-भरी नहीं रहेगी; यह नष्ट हो जाएगी। इंतजाम क्या है आपके पास? क्या बचाव कर लेंगे?

लेकिन ऐसा ही है कि एक चींटी है और मुंह में एक शक्कर का दाना लिए वर्षा का इंतजाम करने अपने घर की तरफ लौटी चली जा रही है, और आपका पैर उसके ऊपर पड़ जाता है। आपको तो पता ही नहीं चलता। सब व्यवस्था, सब सुविधा--न मालूम कितने सपने होंगे, न मालूम क्या-क्या सोच कर चली होगी, घर न मालूम किन-किन बच्चों को वायदा कर आई होगी कि अभी आती हूं--वह सब नष्ट हो गया! अब चींटी उपाय भी क्या करेगी आपके पैर से बचने का? सोच सकते हैं कुछ उपाय, क्या करेगी?

आप क्या सोचते हैं, आपकी कोई बड़ी हैसियत है? चींटी को दबा लेते हैं, इसलिए सोचते हैं कोई बड़ी हैसियत है? इस विराट जगत में कौन सी स्थिति है मनुष्य की?

एक महासूर्य पास से गुजर जाए, सब राख हो जाए। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई तीन अरब वर्ष पहले कोई महासूर्य पास से निकलने का मतलब है, कई अरब मील के फासले से निकल गया--उसी वक्त, उसके धक्के में, उसके आकर्षण में चांद जमीन से टूट कर अलग हुआ। ये जो पैसिफिक और हिंद महासागर के जो गड्ढे हैं, यह चांद जो हिस्सा टूट गया जमीन से, उसकी खाली जगह हैं।

कभी भी निकल सकता है। इस विराट जगत में जहां कोई चार अरब सूर्यों का वास है, वहां सब कुछ हो रहा है। वहां कोई हम से पूछने आएगा? कोई आपकी सलाह लेगा? जरा सा कोई अंतर, और जीवन इस पृथ्वी पर विदा हो जाएगा। जीवन! आप नहीं, जीवन ही विदा हो जाएगा। करोड़ों जातियों के पशु मिले हैं, जो कभी थे और अब उनका एक भी वंशज नहीं है। कोई मनुष्य के साथ कोई विशेष नियम लागू नहीं होता।

लेकिन हम बड़ा इंतजाम करते हैं। हमारा इंतजाम चींटी जैसा इंतजाम है। मैं नहीं कहता, इंतजाम न करें। न लाओत्से कहता है, इंतजाम न करें। यह नहीं कहता कि वर्षा के लिए घर में दो दाने न रखें; जरूर रख लें। लेकिन जान लें भलीभांति कि हमारा सब इंतजाम चींटी जैसा इंतजाम है। और जिंदगी के विराट नियम का जो पहिया घूम रहा है, उस पर हमारा कोई वश नहीं है।

यह ख्याल में आ जाए, तो फिर सुरक्षा की चिंता छूट जाती है। सुरक्षा जारी रहे, सुरक्षा की चिंता टूट जाए, सुरक्षा का पागलपन छूट जाए, तो फिर नोकें गिराने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती; क्योंकि नोकें तो हैं इसलिए कि हम अपने को बचा सकें। बचाने की कोई जरूरत न रही; हम राजी हैं, जो हो जाएगा। मौत आएगी, तो मौत के लिए राजी हो जाएंगे। इस राजीपन में फिर आपको क्रोध की और हिंसा की और घृणा की और शत्रुता की और वैमनस्य की और ईर्ष्या की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। तो ही टूट सकती हैं नोकें।

"उसकी ग्रंथियों को सुलझा दें।"

वह जो हमारा चित्त है, वह जो हमारा व्यक्तित्व है, वह एक ग्रंथि ही हो गया है, एक कांप्लेक्स। जैसे कि धागे उलझ गए हों; और कहीं से भी खींचो, और उलझ जाते हों; ऐसी हमारी चित्त की दशा है। एक तरफ से सुलझाओ, तो दूसरी तरफ से उलझन हो जाती है, ऐसा लगता है। कितना ही सुलझाओ, लगता है, सुलझाना मुश्किल है।

लाओत्से कहता है, "इसकी ग्रंथियों को सुलझा दें।"

कैसे सुलझाएंगे इसकी ग्रंथियों को? हम सब सुलझाने की कोशिश करते हैं। एक आदमी आता है, वह कहता है, मैं क्रोध नहीं करना चाहता, खुद नहीं चाहता करना; मुझे कोई बताएं कि मैं कैसे क्रोध न करूं।

हैरानी होती है कि अगर आप क्रोध नहीं करना चाहते, तो फिर करने का सवाल ही क्या है? मत करें।

वह कहता है कि यह नहीं है सवाल; क्रोध नहीं करना चाहता, लेकिन क्रोध आता है।

तो इसका मतलब यह हुआ कि क्रोध तो सिर्फ एक धागा है, और भी धागे जुड़े हैं आस-पास। यह इस धागे से तो मुक्त होना चाहता है, लेकिन इसी धागे से जुड़े किसी दूसरे धागे को जोर से पकड़े हुए है। जैसे इस आदमी से कहें कि ठीक है, अगर क्रोध नहीं करना चाहते, तो अपमान में आनंद लो, सम्मान की चिंता मत करो। तो वह कहेगा, यह कैसे हो सकता है? स्वाभिमान तो होना ही चाहिए।

आदमी बड़ा कुशल है। हम अभिमान थोड़े ही करते हैं, स्वाभिमान! अभिमान दूसरे करते हैं। तो सेल्फ रिस्पेक्ट तो होनी ही चाहिए। नहीं तो आदमी क्या कीड़ा-मकोड़ा हो जाएगा! अब वह कहता है, क्रोध मुझे करना नहीं और अभिमान मुझे बचाना है। और अभिमान के साथ क्रोध का धागा सिर्फ जुड़ा ही हुआ हिस्सा है; वह अभिमान से अलग हो नहीं सकता। स्वाभिमान तो दूर, स्व को भी जो बचाएगा, उसका भी क्रोध बच जाएगा।

स्व भी खो जाए, सेल्फलेसनेस हो--सेल्फिशलेसनेस नहीं, सेल्फलेसनेस--स्वार्थ का अभाव नहीं, स्व का ही अभाव हो, तो ही क्रोध जाता है। हमारी हालतें कुछ ऐसी हैं कि हम एक डंडे के एक छोर को बचाना चाहते हैं और दूसरे को हटाना चाहते हैं। बड़ी मुश्किल में जिंदगी बीत जाती है; कुछ हटता नहीं। और इस जाल को कभी हम देखते नहीं कि सब चीजें भीतर जुड़ी हैं।

अब एक आदमी कहता है कि मुझे, शत्रु तो बिल्कुल मुझे चाहिए नहीं; मैं तो सभी से मित्रता चाहता हूं।

लेकिन ध्यान रहे, मित्रता बनाने में ही शत्रुताएं पैदा होती हैं। खैर, क्रोध और अभिमान तो ख्याल में आ जाता है, लेकिन मित्रता बनाने में ही शत्रुताएं निर्मित होती हैं, यह ख्याल में नहीं आता। जो आदमी मित्रता बनाने को उत्सुक है, वह शत्रुता बना ही लेगा। क्योंकि मित्रता बनाने का जो ढंग है, जो प्रक्रिया है, उसी की बाइ-प्रॉडक्ट... । जैसे कि कोई कारखाने में बाइ-प्रॉडक्ट हो जाती है। अब आप लकड़ी जलाएंगे, तो कोयला घर में बच जाएगा, राख घर में बच जाएगी। आप कहेंगे, आग तो हम जलाना चाहते हैं, ईंधन जलाने की तो बहुत जरूरत है, लेकिन राख न बचे घर में। वह राख बाइ-प्रॉडक्ट है, वह बचेगी ही। जिससे भी मित्रता करेंगे, उससे शत्रुता निर्मित हो जाएगी। और मित्रता बनाने के लिए उत्सुक आदमी अनेक तरह की शत्रुताओं के चारों तरफ अड्डे खड़े कर देगा।

सच तो यह है कि आप मित्रता बनाना ही क्यों चाहते हैं? अगर गहरे में खोजें, तो आप मित्रता इसलिए बनाना चाहते हैं कि आप शत्रुता से भयभीत हैं। वह भी इंतजाम है। मित्र होने चाहिए।

नसरुद्दीन बहुत मुसीबत में है। उसका घाटा लगा है बड़ा। एक मित्र उसे कहता है कि दस हजार मैं तुम्हें देता हूं, ले जाओ। नसरुद्दीन सोच में पड़ जाता है, आंख बंद कर लेता है। वह मित्र कहता है, इसमें सोचने की क्या बात है! ले जाओ; जब हों, तब लौटा देना। नसरुद्दीन सोच ही रहा है। मित्र थोड़ा हैरान हुआ कि वह इतनी तकलीफ में है कि दस हजार उसके काम पड़ेंगे। नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, रहने दो। उसने कहा, लेकिन बात क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा कि ये रुपए ले-लेकर ही मैंने बाकी मित्र खोए। तुमसे लिया कि तुम भी गए। और तुम्हीं अकेले बचे हो। और मित्रता तुम्हारी कीमती है, और दस हजार में न खोना चाहूंगा। दस हजार में न खोना चाहूंगा!

मित्र और शत्रु एक ही, एक ही चीज के छोर हैं। जो मित्र है, वह कभी भी शत्रु हो सकता है। जो शत्रु है, वह कभी भी मित्र हो सकता है। मैंने पीछे कहा कि मैक्यावेली दूसरा छोर है लाओत्से का। दोनों छोरों पर बड़ी बुद्धिमानी है। मैक्यावेली ने अपनी किताब में लिखा है, मित्रों से भी वह बात मत कहना, जो तुम शत्रुओं से न कहना चाहो। क्योंकि कोई भी मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु के खिलाफ भी वे शब्द मत बोलना, जो तुम मित्र के खिलाफ न बोलना चाहो। क्योंकि कोई भी शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है।

मैक्यावेली होशियारी की बात कह रहा है। होश से बोलना! मित्र से भी वह बात मत बताना, जो तुम शत्रु को बताने से डरते हो। क्योंकि कोई भरोसा है, मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और तब मंहगा पड़ जाएगा। और शत्रु के संबंध में भी वे बातें मत कहना, जो तुम मित्र के संबंध में न कहना चाहो। क्योंकि वे कभी भी मंहगी पड़ सकती हैं; शत्रु कभी भी मित्र हो सकता है।

हम चाहते हैं, मित्र तो बहुत हों, शत्रु कोई भी न हो। बस, जाल भारी है।

लाओत्से कहता है, सब ग्रंथियां सुलझा लो। लेकिन कैसे सुलझेंगी ये ग्रंथियां? जब भी हम सुलझाने चलते हैं, तो एक छोर सुलझाते हैं, दूसरा उलझ जाता है। हमें सिखाया जाता है कि क्रोध मत करो, क्षमा करो। उलझन खड़ी हो जाएगी। हमें कहा जाता है, घृणा मत करो, प्रेम करो। हमें कहा जाता है, हिंसा मत करो, अहिंसा करो। हमें कहा जाता है, झूठ मत बोलो, सच बोलो। लेकिन इन सब में ग्रंथियां उलझेंगी। एकदम दिखाई नहीं पड़ता ऊपर से सतह पर से खोजने पर कि कैसे ग्रंथियां उलझेंगी! जो आदमी सच बोलने के लिए पक्का किए हुए है, उसमें क्या ग्रंथि उलझेगी?

बहुत ग्रंथियां उलझेंगी। जिस आदमी ने तय किया कि सच बोलूंगा, उलझन शुरू हुई। एक तो उसे प्रतिपल झूठ का स्मरण करना पड़ेगा; झूठ क्या है, इसका प्रतिपल ख्याल रखना पड़ेगा। अगर झूठ का उसे ख्याल मिट जाए, तो सच को बांध कर रखना मुश्किल हो जाएगा। बच्चे इसीलिए झूठ बोल देते हैं, क्योंकि अभी उन्हें झूठ का ख्याल नहीं है। इतने सरल हैं कि अभी उन्हें डिस्टिंकशन नहीं है, क्या सच है और क्या झूठ है।

सुना है मैंने, एक छोटा बच्चा अपने घर लौटा है। और अपनी मां से कह रहा है कि गजब हो गया, रास्ते पर इतना बड़ा कुत्ता देखा, जैसे हाथी हो! उसकी मां ने कहा, बबलू, करोड़ बार तुम से कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत किया करो; डोंट इग्जैजरेट। करोड़ बार! मां कहती है, करोड़ बार तुम से कह चुकी हूं कि अतिशयोक्ति मत किया करो। लेकिन तुम सुनते ही नहीं।

अब इसमें जो बच्चा कह रहा है, वह झूठ नहीं है। क्यों? क्योंकि हमें कभी ख्याल ही नहीं होता कि बच्चे के प्रपोरशन अलग होते हैं। बच्चे के प्रपोरशन आपके प्रपोरशन नहीं हैं। बच्चे को एक छोटा कुत्ता, जो आपको छोटा लगता है, हाथी की तरह लग सकता है। अभी उसके गणित दूसरे हैं। जो बच्चे को दिखाई पड़ता है, वह आपको दिखाई नहीं पड़ता। जो आपको दिखाई पड़ता है, वह बच्चे को नहीं दिखाई पड़ता।

किसी भी बच्चे से आदमी की तस्वीर बनवाएं, तो पेट छोड़ देगा। दो टांगें लगा देगा, दो हाथ लगा देगा, सिर लगा देगा, बीच का हिस्सा बिल्कुल छोड़ देगा। सारी दुनिया में! तो यह एक-आध बच्चे की भूल नहीं हो सकती। मनोवैज्ञानिक पीछे इसमें उत्सुक हुए कि एक-आध बच्चा यह भूल करे, लेकिन सारी दुनिया में, चाहे वह चीन में पैदा हो, और चाहे अफ्रीका में पैदा हो, और चाहे अमरीका में पैदा हो, बच्चा क्या गड़बड़ करता है? यह

बीच का हिस्सा क्यों छोड़ जाता है? कुछ तो बनाए। बीच का हिस्सा छोड़ ही देता है। दो टांगें लगा देता है, दो हाथ लगा देता है, सिर बना देता है, इसमें भूल-चूक नहीं करता है।

तब अध्ययन किए गए और पता चला कि बच्चे को बीच के हिस्से का बोध ही नहीं है। उसके लिए आदमी का मतलब दो हाथ, दो पैर, सिर; बाकी बीच का हिस्सा उसके बोध में नहीं है, उसकी अवेयरनेस में नहीं है। उसमें उसका कोई ध्यान नहीं गया। उस पर उसका ध्यान ही नहीं है।

तो एक बच्चे को कुत्ता हाथी जैसा दिख सकता है। लेकिन एक मां कह रही है कि एक करोड़ बार तुझसे कह चुकी! अब यह एक करोड़ बार अतिशयोक्ति है स्पष्ट। और यह जो अतिशयोक्ति है, यह है अतिशयोक्ति। वह बच्चा जो कह रहा है, वह नहीं है।

उसकी मां ने उसे बहुत डांटा और उससे कहा, जाओ, भगवान से प्रार्थना करके माफी मांगो कि ऐसा झूठ अब कभी नहीं बोलोगे। वह बच्चा गया, उसने भगवान से प्रार्थना की। वह थोड़ी देर बाद बाहर आया। उसकी मां ने कहा कि माफ कर दिया? उस बच्चे ने कहा, माफ क्या, भगवान ने कहा जब पहली दफे मैंने उस कुत्ते को देखा था, तो मुझे भी हाथी जैसा मालूम पड़ा था; इसमें बबलू, तेरी कोई गलती नहीं है। लुक सेकेंड टाइम, दुबारा देख जाकर, फिर वह तुझे कुत्ते जैसा दिखाई पड़ेगा।

अब यह जो बच्चा है, यह कोई झूठ नहीं गढ़ रहा है। हमें लगेगा कि यह तो बिल्कुल सरासर झूठ है। कौन भगवान इससे कहेगा? लेकिन हमें बच्चे के माइंड का कुछ पता नहीं है। क्योंकि बच्चा खुद सवाल उठा सकता है और दूसरी तरफ से जवाब भी दे सकता है। इसका हमें पता नहीं है, इसका हमें पता नहीं है कि बच्चा सवाल भी उठा सकता है और दूसरी तरफ से जवाब भी दे सकता है। उसने कहा होगा कि यह क्या मामला है, मुझे दिखाई पड़ा! और भगवान की तरफ से उसने ही जवाब दिया है कि मुझे भी ऐसा ही दिखाई पड़ा था। पहली दफे ऐसा ही होता है। मैं खुद ही भूल में पड़ गया था कि यह कुत्ता है या हाथी!

यह झूठ जरा भी नहीं बोल रहा है, क्योंकि इसे झूठ का अभी बोध ही नहीं है। यह सच भी नहीं बोल रहा है, इसे सच का भी बोध नहीं है। इसे जो हो रहा है, यह बोल रहा है। अगर ठीक से समझें, तो जो हो रहा है, वही बोलना सच है। लेकिन आपका सत्य नहीं, जिसमें कि झूठ का बोध है। इसे जो हो रहा है, वही बोल रहा है। इसे कुत्ता हाथी की तरह दिखाई पड़ा, यह वही बोल रहा है। यह कोई बना कर नहीं आ गया है कहानी बीच में से; इसको दिखाई पड़ा है। यह वही बोल रहा है, जो दिखाई पड़ा है। इसे सुनाई पड़ा कि परमात्मा ने कहा कि मुझे भी पहली बार ऐसा ही हुआ था। यह वही बोल रहा है।

सत्य का एक और आयाम है, जहां न सच रहता है, न झूठ; जहां जो है, है। लेकिन वहां असत्य का बोध भी नहीं है। और इसलिए कई बार सच और झूठ में रहने वाले लोगों को उसमें कई बातें असत्य मालूम पड़ेंगी। कई बातें! जैसे हमको मालूम पड़ेगी कि सरासर झूठ है कि हाथी के बराबर दिखाई पड़े कुत्ता। कैसे दिखाई पड़ सकता है? झूठ है! यह झूठ की हमारी व्याख्या है और हमारे बाबत खबर है; यह बच्चे के मन के बाबत कोई सूचना नहीं है इसमें। और सच पूछा जाए तो जब हम बच्चे से यह कह रहे हैं कि यह झूठ है, तब हम उसे पहली दफे झूठ सिखा रहे हैं।

नसरुद्दीन के गांव में एक नया पुरोहित आया है। मस्जिद में वह बोला है पहले ही दिन। बूढ़ा नसरुद्दीन है, लौटते वक्त मस्जिद से उसने सोचा, इस बूढ़े से पूछे लें कि कैसा लगा प्रवचन। पूछा उसने कि मुल्ला, कैसा लगा प्रवचन? तो मुल्ला ने कहा, बहुत अदभुत था, वंडरफुल! वी नेवर न्यू व्हाट सिन इ.ज बिफोर यू केम! हमें पता

ही नहीं था कि पाप क्या है। तुम्हारे आने के पहले हमें पता ही नहीं था कि पाप क्या है। जब से तुम आए, पाप का पता चला। पाप का पता चलने के लिए भी तो पाप की व्याख्या साफ होनी चाहिए!

नसरुद्दीन एक दिन अदालत के बाहर अपने वकील को पकड़ा है और जाकर कहा कि सुनो, तलाक का क्या नियम है? डायवोर्स कैसे किया जाए? उस वकील ने कहा, क्या मतलब नसरुद्दीन, क्या हो गया? नसरुद्दीन ने कहा, मेरी पत्नी को कोई शिष्टाचार नहीं आता; टेबल मैनर्स तो बिल्कुल ही नहीं हैं। सारे घर की बदनामी हो रही है। गांव भर में प्रतिष्ठा धूल में मिली जा रही है। तलाक लेना जरूरी है। वकील ने पूछा, शादी हुए कितने दिन हुए? नसरुद्दीन ने कहा, कोई तीस साल हुए। उस वकील ने कहा, तीस साल से... । तो तीस साल से तुम यह अशिष्टाचार सह रहे हो, तो अब क्यों परेशान हो गए? नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल से पता नहीं था; आज ही एक किताब में पढ़ा। आज ही एक किताब में पढ़ा, एक एटीकेट की किताब हाथ में लग गई; उसमें देखा कि सब बर्बाद हो गया, पत्नी में बिल्कुल टेबल मैनर्स ही नहीं हैं।

हमें पता कब चलता है? व्याख्याएं! लाओत्से ने कहा है, ए इंच डिस्टिंक्शन, एंड हेवन एंड हेल आर सेट एपार्ट। एक इंच भर का फासला किया तुमने विचार में, और स्वर्ग और नर्क की दूरी पैदा हो जाती है। लाओत्से कहता था, डिस्टिंक्शन ही मत बनाना। लाओत्से कहता था, मत कहना कि यह ठीक है और यह गलत है। क्योंकि तुमने जैसे ही भेद किया, वैसे ही सब नष्ट हो जाता है। अभेद में जीना।

ये ग्रंथियां कैसे सुलझेंगी?

हमारा ढंग है सुलझाने का कि एक-एक ग्रंथि को बदलें, उसकी विपरीत चीज लाएं। अगर क्रोध ज्यादा है, तो क्षमा लाओ पकड़ कर। अगर हिंसा ज्यादा है, तो अहिंसा की प्रतिज्ञा ले लो। अगर लोभ ज्यादा है, तो त्याग करो, थोड़ा दान कर दो। हम इस तरह सुलझाते हैं। इस तरह कुछ भी नहीं सुलझता।

लाओत्से की दृष्टि में सुलझाव का अर्थ है, इस पूरी स्थिति को देखो। ये सब उलझाव तुम्हारे डिस्टिंकशन से बने हैं। यह तुमने जो भेद किया है पाप और पुण्य का, यह तुमने भेद किया है सत्य और असत्य का, यह तुमने भेद किया है प्रेम और घृणा का, इससे सारे के सारे उलझाव हैं। सारा भेद छोड़ दो और सरलता में जीओ, स्वभाव में जीओ, जो हो। स्वभाव में जीओ, बहो; कोई भेद मत करो। फिर कोई उलझन नहीं है।

लाओत्से से कोई पूछे अगर कि तूने कभी किसी पाप का प्रायश्चित्त किया? तो लाओत्से कहेगा, नहीं, क्योंकि मुझे पता नहीं पाप क्या है। यह नहीं कि मैंने पाप न किया हो। लाओत्से कहता है, मुझे पता नहीं कि पाप क्या है। कोई लाओत्से से पूछे कि तूने पुण्य किए, बहुत उसके फल पाएगा! लाओत्से कहता है कि नहीं, मुझे पता नहीं कि पुण्य क्या है; फल मिल भी सकते हैं, मुझे पता नहीं। मैंने लेखा-जोखा नहीं रखा, मैंने हिसाब नहीं रखा। जो सहज मुझसे हुआ है, वह मैंने किया है। न कभी पछताया और न कभी आत्म-प्रशंसा में अपनी पीठ ठोंकी। वे दोनों काम मैंने नहीं किए हैं।

गुत्थियां सुलझेंगी, अगर हम गुत्थियों को पैदा करने की कीमिया जो है हमारे भीतर, वह समझ जाएं। कीमिया क्या है? हर चीज को हम दो में तोड़ कर चलते हैं। पहले तोड़ते हैं, फिर कदम उठाते हैं। और तब हमारी दिक्कतें वैसी हो जाती हैं, जैसे यूनान में एक विचारक हुआ, झेनो। एक कीमती विचारक हुआ ग्रीक। और यूनान ने कुछ थोड़े से जो बहुत बुद्धिमान आदमी दिए हैं, झेनो उनमें एक है। झेनो के पैराडॉक्सेस बहुत प्रसिद्ध हैं।

झेनो कहता है, एक मील का रास्ता है; पहले तुम आधा मील चलो, और हर बार आधा-आधा चलो, तो तुम कभी एक मील का रास्ता पूरा न कर पाओगे। कभी! अनंत काल में भी!

एक मील का रास्ता कोई बड़ा रास्ता नहीं है। पंद्रह मिनट में आप पार कर जाएंगे, पैदल घसिटते हुए चलें तो भी। झेनो कहता है, पहले आधा पार करो। क्योंकि बुद्धि बांट कर चलती है; इट डिवाइड्स। पहले आधा बांटो, आधा पार करो। फिर जो बचे, उसको आधा बांटो, उसको पार करो। फिर जो बचे, उसको आधा बांटो। और हमेशा कुछ बचेगा, उसको आधा बांटते चले जाना। और हमेशा कुछ बचेगा, उसको आधा बांटते चले जाना। तुम अनंत काल में एक मील का रास्ता पार न कर पाओगे।

गणित के हिसाब से बात ठीक है। गणितज्ञ इसका जवाब नहीं दे सकता। यह पार हो नहीं सकता।

झेनो कहता है, एक तीर तुमने अपनी प्रत्यंचा पर खींचा और चलाया। तीर के चलने के लिए जरूरी है... समझें कि बारह बजे तीर चला। तो बारह बजे अ नाम की जगह पर तीर है; बारह बज कर एक मिनट पर उसे कहां होना चाहिए? ब नाम की जगह पर होना चाहिए। बारह बज कर दो मिनट पर स नाम की जगह पर होना चाहिए। तभी तो चल पाएगा। झेनो कहता है कि बारह बजे अ नाम की जगह पर है, तो ठहरा हुआ है। बारह बजे अ नाम की जगह पर ठहरा हुआ है, बारह बज कर एक मिनट पर ब नाम की जगह पर ठहरेगा। बीच का फासला पार कैसे करेगा? अ से ब तक जाएगा कैसे? झेनो कहता है, जा नहीं सकता। झेनो कहता है, गणित के हिसाब से कोई तीर कहीं नहीं गया।

झेनो चलता है, झेनो तीर भी चलाता है। झेनो से लोग पूछते हैं कि तुम चलते भी हो, पहुंच भी जाते हो, तीर भी चलाते हो। झेनो कहता है, पता नहीं; लेकिन गणित में तो कोई तीर चल नहीं सकता। क्योंकि चलने का मतलब है, उसे एक बार तो अ पर होना पड़ेगा। जब वह अ पर होगा, तब ब पर नहीं होगा। फिर ब पर होना पड़ेगा। और जब तक वह अ पर है, ब पर कैसे जाएगा? और या फिर ऐसा मानो कि उसी समय अ पर भी रहेगा और ब पर भी रहेगा, तो सब गड़बड़ हो जाएगी।

तो झेनो ने पैराडॉक्सेस लिखे हैं। और दो हजार साल लग गए, झेनो के पैराडॉक्सेस का उत्तर देने की बहुत कोशिश की गई, बहुत लोगों ने उत्तर दिए; लेकिन उत्तर नहीं हो पाते। क्योंकि उत्तर हो नहीं सकते। उत्तर हो नहीं सकते, क्योंकि बुद्धि तोड़ कर सोचती है और तीर तो बिना तोड़े चला जाता है। दिक्कत जो है, वह यह है, तीर पता ही नहीं रखता कि अ कहां है और ब कहां है! बुद्धि तोड़ कर चलती है, पैर तो बिना तोड़े चले जाते हैं। पैर तोड़ते थोड़े ही हैं कि यह आधा मील, फिर यह आधा मील, फिर यह आधा मील; पैर तो बिना तोड़े चले जाते हैं। और बुद्धि तोड़ कर जाती है। पैर और बुद्धि में तालमेल नहीं रह जाता।

बुद्धि का नियम है, तोड़ो। तोड़ने का परिणाम है, उलझो। अगर उलझाव से बचना है, तो पीछे लौटो, तोड़ो मत। तोड़ना नहीं है, तो बुद्धि को छोड़ो। और बुद्धि छूटी कि अभेद निर्मित हो जाता है और सब गुत्थियां गिर जाती हैं; सब ग्रंथियां गिर जाती हैं।

महावीर के नामों में से एक नाम है निर्ग्रंथ। उसका अर्थ है, वह आदमी जिसकी सब ग्रंथियां गिर गईं, वह आदमी जिसके सब उलझाव गिर गए।

ध्यान रहे, उलझाव के गिरने पर जोर है, सुलझाव के होने पर नहीं है जोर। मेरे हाथ में एक उलझी हुई गुत्थी है धागों की। सुलझाने का मतलब है, इन धागों को मैं सुलझा-सुलझा कर, लपेट कर एक रेखाबद्ध कर लूं। उलझाव के गिर जाने का अर्थ है, ये धागे मेरे हाथ से गिर जाएं, मैं इस उलझाव को ही भूल जाऊं। यह बात ही खतम हो गई। मेरे हाथ खाली हो गए। जोर उलझाव के गिर जाने पर है।

लाओत्से कहता है, सारे उलझावों को हटा दो। महावीर कहते हैं, निर्ग्रंथ हो जाओ, सब ग्रंथियां छोड़ दो।

अभी मनोविज्ञान ने कांप्लेक्स शब्द पर बहुत काम करना शुरू किया है। क्योंकि पूरब में तो ग्रंथि शब्द बहुत पुराना है। मन के जो उलझाव हैं, उनको हम ग्रंथि कहते रहे हैं। पश्चिम ने अभी पिछले पचास-साठ वर्षों में कांप्लेक्स शब्द का उपयोग करना शुरू किया है। उसका अर्थ है ग्रंथि। और मन में बड़े कांप्लेक्स हैं। और मनोविज्ञान बहुत कोशिश करता है कि इनसे सुलझाव हो जाए। लेकिन अभी पचास साल की निरंतर कोशिश से यह अनुभव में आया कि चाहे वर्षों की साइको एनालिसिस कोई करवाए, तो भी कांप्लेक्स सुलझते नहीं हैं। केवल वह आदमी उनके साथ रहने को राजी हो जाता है, बस।

एक आदमी में क्रोध है। वह परेशान है कि क्रोध को कैसे हटाऊं! अगर मनोवैज्ञानिक के पास जाएगा, तो दो-तीन साल की लंबी प्रक्रिया के बाद वह इस स्थिति में आ जाएगा कि वह राजी हो जाएगा कि नहीं हटता है, रहने दो। राजी हैं, अब हटाने की भी कोशिश नहीं करते। इससे ज्यादा कहीं पहुंचते नहीं हैं वे। सुलझाने की कोशिश में आप यहीं तक पहुंच सकते हैं कि उलझी हुई ग्रंथि को ही सुलझा हुआ समझ कर, दबा कर सो जाएं। वह सुलझने वाली नहीं है। उसका स्वभाव उलझा होना है।

मन ग्रंथि है। माइंड इ.ज दि कांप्लेक्स। ऐसा नहीं है कि कुछ और कांप्लेक्स हैं जिनको हल कर दिया, तो पीछे माइंड बचेगा। वह मन ही गांठ है। उसको सुलझाने का जो उपाय लाओत्से जैसे लोग सुझाते हैं, वह यह है कि इस मन की जो आधारशिला है, भेद--अपना-पराया, अंधेरा-उजाला, मित्र-शत्रु, जीवन-मृत्यु, शरीर-आत्मा, स्वर्ग-संसार--ये जो भेद हैं, इनको गिरा दो।

नसरुद्दीन एक कार से टकरा गया। उसको भारी चोट पहुंची है, जितनी पहुंच सकती है। दोनों पैर की हड्डियां टूट गई हैं, एक हाथ टूट गया है, गर्दन टूट गई है, कई पसलियां टूट गई हैं। सिर पर बहुत चोट हैं। सब पर पट्टियां बंधी हैं। वह अस्पताल में पड़ा है।

सुलतान नगर से गुजर रहा है। खबर मिली कि गांव का सबसे बूढ़ा आदमी और बड़ा जाहिर आदमी अस्पताल में है, तो वह देखने गया है। देख कर उसकी समझ में न आया, क्या कहे। क्योंकि सिर्फ नसरुद्दीन का मुंह दिखाई पड़ता है और दो आंखें दिखाई पड़ती हैं, बाकी सब पट्टियां बंधी हैं। भारी चोट पहुंची है। आदमी बचेगा भी कि नहीं बचेगा! सुलतान कुछ कहना चाहता है, लेकिन कहां से शुरू करे, यह ही समझ में नहीं आता। सहानुभूति भी क्या बताए, मामला ही बिल्कुल गड़बड़ है। सहानुभूति बताने लायक भी नहीं है। फिर भी कुछ कहना चाहिए, तो वह कहता है कि बहुत ज्यादा चोट पहुंची; पैर टूट गया, हाथ टूट गया, सिर पर चोट पहुंची, मुंह पर चोट पहुंची, पसलियां टूट गईं, बड़ी पीड़ा होती होगी नसरुद्दीन! बहुत ज्यादा दुख, बहुत ज्यादा दर्द होता होगा! नसरुद्दीन कहता है, नहीं, वैसे तो नहीं होता; होता है, व्हेन आई लाफ। उसने कहा कि जब मैं हंसता हूं, तब थोड़ा होता है, ऐसे नहीं होता।

वह सुलतान तो समझ ही नहीं सका कि ऐसी हालत में कोई आदमी हंसेगा काहे के लिए। उसको ख्याल में ही नहीं आया, कल्पना ही के बाहर था कि यह हंसेगा। वह नसरुद्दीन बोला, नहीं, ऐसे कोई तकलीफ नहीं हो रही; जरा हंसता हूं, तो थोड़ी तकलीफ होती है। सुलतान की हिम्मत न पड़ी कि अब और कुछ आगे क्या कहे। फिर भी उसने कहा, आ ही गया हूं तो अच्छा ही हुआ, एक सवाल पूछ कर चला जाऊं। क्या नसरुद्दीन, ऐसी हालत में भी हंस पाते हो? नसरुद्दीन ने कहा, अगर ऐसी हालत में न हंस पाऊं, तो हंसना सीखा ही नहीं। यानी और हंसने का क्या मतलब हो सकता है! और हंसने का मौका क्या हो सकता है! और हंसता हूं इसलिए कि अब तक कई बार ऐसा भ्रम होता था, लेकिन पक्का पता नहीं था, सोचा बहुत बार था, अब पता चला कि नसरुद्दीन हड्डियां कितनी ही टूट जाएं, नसरुद्दीन नहीं टूटता। इधर भीतर हंस लेता हूं कि बड़ा मजा है! सब टूट गया है।

जो आ रहा है, वही दया दिखला रहा है; लेकिन मुझको खुद दया नहीं आ रही है। सब टूट गया है, सब फूट गया है; अब इसमें कुछ है नहीं ज्यादा बचने वाला। हंसी आ रही है इससे। और लोग मुझसे आकर पूछते हैं, कैसे हो नसरुद्दीन? नसरुद्दीन बिल्कुल ठीक है; नसरुद्दीन बिल्कुल ठीक है।

ये जो ग्रंथियां हैं मन की, इनके बीच में अगर आप अलग दिख जाएं, तो ग्रंथियां तत्काल गिर जाती हैं। फिर आप बिल्कुल ठीक हैं। वे सारी पट्टियां बंधी रहेंगी, आपकी सब ग्रंथियां उलझी रहेंगी, चारों तरफ सब उपद्रव बना रहेगा, सब बाजार खड़ा रहेगा; आप अचानक बाहर हो जाते हैं। यू ट्रांसेंड इट। अतिक्रमण है। अतिक्रमण में ही सुलझाव है। गुत्थियां सुलझाई नहीं जा सकतीं, इन गुत्थियों के पार होने में सुलझाव है।

घाटी में रह कर अंधेरा नहीं मिटाया जा सकता, लेकिन शिखर पर चढ़ जाता है एक आदमी, सूरज पर पहुंच जाता है; खुली रोशनी है, धूप है। घाटी में अंधेरा है; है वह घाटी में, पड़ा है। लेकिन अब यह आदमी घाटी में नहीं है।

हमारी सब की कोशिश यह है कि दीया जलाओ, आग जलाओ, घाटी को उजाला करो; मगर रहो घाटी में, वहां से हटो मत। जहां बीमारी है, वहीं रहो, वहीं उलझे रहो और वहीं सुलझाने की कोशिश करते रहो; बीमारी के पार न जाओ। लाओत्से की कीमिया, लाओत्से जैसे सभी लोगों का दर्शन पार का दर्शन है। अतीत हो जाओ, हट जाओ। जहां है उपद्रव, वहां से थोड़ा दूर हो जाओ। फासला करो बीच में, देखो जरा दूर होकर, तो हंसी आ जाती है। फिर कोई उलझाव बांधता नहीं है।

लाओत्से जब कहता है कि गुत्थियों को हटा दो, ग्रंथियों को सुलझा दो, इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए... ।

यह जो हमारे भीतर अस्मिता है, जो अहंकार है, यह अभी एक लपट की तरह है, जलाती है। इसकी जो जगमगाहट है, वह आंखों को पीड़ा देने वाली है। आभा नहीं है इसमें, आग है।

लाओत्से कहता है, "इसकी जगमगाहट मृदु हो जाए।"

तुम जरा सुलझाओ अपनी ग्रंथियों को, तुम जरा घिस दो अपनी नोकों को, और तुम पाओगे कि तुम्हारा अहंकार अहंकार नहीं हुआ, अस्मिता हो गया। इन दो शब्दों को थोड़ा समझना अच्छा होगा।

संस्कृत के पास बड़े समृद्ध शब्द हैं। जैसे अहंकार, ईगो; लेकिन एक और शब्द है संस्कृत के पास, अस्मिता। उसके लिए अंग्रेजी में अनुवाद करना असंभव है। उसको हिंदी में भी अनुवाद करना असंभव है। अहंकार का अर्थ है ऐसा मैं, जिससे दूसरों को चोट पहुंचती है; अस्मिता का अर्थ है ऐसा मैं, जिससे किसी को चोट नहीं पहुंचती। इतना मृदु, जिसमें कोई नोक न रह गई! शब्द की ध्वनि भी चोट वाली है--अहंकार! अस्मिता। अस्मिता में एक भाव है, कोई तूफान शांत हो गया, लहरें गिर गईं। झील अब भी है। लेकिन तूफानों का, आंधियों का, लहरों का विक्षिप्त रूप नहीं है। झील अब भी है। झील में वे ही लहरें अब भी सो रही हैं, जो कल उठ गई थीं और तूफान में नाचने लगी थीं और विकराल हो गई थीं। और जिन्हें देख कर प्राण कंप जाते, और नौकाएं डगमगातीं और डूब जातीं। तट कंपते, घबड़ाते। वह अब नहीं है। लेकिन वही लहरें अभी भी हैं, सो गई हैं, शांत हो गई हैं।

अस्मिता का अर्थ है ऐसा अहंकार, जिसमें से दंश चला गया, जिसमें ज्वाला न रही, आभा रह गई। आभा! सुबह सूरज निकलता है, उसके पहले जो प्रकाश होता है, वह आभा है। सूरज निकल आया, फिर तो ज्वाला शुरू हो जाती है। सूरज नहीं निकला अभी, क्षितिज के नीचे पड़ा है। सुबह हो गई, रात अब नहीं है, दिन अभी नहीं आया। बीच का क्षण है। वह बीच की संधि में आभा फैल गई है, जिसको हम भोर कहते हैं। अभी सूरज उपस्थित नहीं है।

अहंकार जब ढल जाता है, तो मैं की वह जो आंखों को चुभने वाली ज्वाला है, वह मिट जाती है, अहंकार डूब जाता है। तब एक आभा रह जाती है भीतर--होने की। तब भी मैं होता हूं; ऐसा नहीं कि मैं नहीं होता हूं। तब भी मैं होता हूं; लेकिन उसमें मैं-पन कहीं नहीं होता। तब भी मैं होता हूं; लेकिन बस होता हूं, उसमें आई का, मैं का कोई तूफान नहीं होता। कहीं कोई शोरगुल नहीं होता, कहीं कोई घोषणा नहीं होती। कोई मुझसे पूछेगा, तो कहूंगा, मैं हूं; लेकिन कोई अगर न पूछेगा, तो मुझे पता ही नहीं चलेगा कि मैं हूं। यह मैं किसी के प्रश्न का उत्तर होगा। यह किसी ने पूछा होगा, तो यह मैं शब्द काम में आएगा। अन्यथा कोई नहीं पूछेगा, तो यह मैं कहीं नहीं बनेगा।

लेकिन आपने देखा, अहंकार, कोई पूछे या न पूछे, कोई हो या न हो, होता है। आप अकेले में खड़े हैं, तो भी अहंकार होता है। कोई नहीं है, तो भी होता है।

सुना है मैंने कि एक जहाज डूब गया। और उस पर एक बहुत बड़ा समृद्ध व्यापारी था, वह किसी तरह एक निर्जन द्वीप पर लग गया। वह न केवल बड़ा व्यापारी था, एक बड़ा मूर्तिकार, एक बड़ा आर्किटेक्ट, एक बड़ा स्थापत्य का जानकार भी था। अकेला क्या करेगा? तो उसने मूर्तियां बनानी शुरू कीं; उसने मकान बनाने शुरू किए। लकड़ियां काटीं, पत्थर जमाए; उसने अपने को व्यस्त कर लिया। वर्षों पर वर्ष बीतने लगे, उसकी बस्ती बसने लगी। अकेला था। पत्थरों पर पत्थर जमा कर, लकड़ियां काट कर, वृक्षों को काट कर रास्ते बनाए। करीब-करीब बिल्कुल गैर-जरूरी, लेकिन जो-जो उसकी जरूरत की चीजें थीं, सब उसने बनाईं--गैर-जरूरी।

उसने वह दूकान बनाई जो उसके गांव में थी, जिससे वह सामान खरीदा करता था। उसने वह होटल बनाई, जिसमें वह भोजन किया करता था। उसने वह स्टेशन बनाया, जहां से वह ट्रेन पकड़ा करता था। हालांकि यहां कोई ट्रेन न थी; और यहां कोई, इस होटल में कोई चलाने वाला न था; और इस दूकान पर कोई दूकानदार न था और न कोई चीजें बिकने को थीं। लेकिन सुबह वह निकलता और दूकानदार को नमस्कार करता, कभी-कभी जाकर होटल में विश्राम करता। वह अकेला ही था। उसने मंदिर बनाया। उसने सारा इंतजाम किया।

कोई बीस वर्ष बाद एक जहाज आकर लगा। और जहाज के लोगों ने उससे उतर कर कहा कि हम तो सोचते थे तुम समाप्त हो गए, लेकिन तुम हो तो चलो। पर उसने कहा, इसके पहले कि मैं चलूं, मैं तुम्हें अपनी बस्ती बता दूं। यह जो बस्ती मैंने इन बीस सालों में बना ली। उसने बताया कि देखो यह दूकान है, जहां से मैं सामान वगैरह खरीदता था। यह होटल है, जहां कभी-कभी थक जाता, तो विश्राम के लिए जाता था। वह जो दूर तुम्हें दिखाई पड़ता है शिखर, वह मेरे चर्च का है, जिसमें मैं जाता था।

पर उन लोगों ने कहा कि लेकिन चर्च दो दिखाई पड़ते हैं; एक उसके सामने भी है।

उसने कहा, हां, वह वह चर्च है, जिसमें मैं नहीं जाता था। गांव में दो चर्च थे; एक में मैं जाता था और एक में नहीं जाता था। यानी एक मेरा चर्च था और एक दुश्मन का चर्च था। यह मेरा चर्च है, जिसमें मैं जाता हूं; और वह वह चर्च है, जिसमें मैं नहीं जाता हूं।

यह तो कुछ समझ में नहीं आया कि तुमने वह चर्च किसलिए बनाया? जिसमें तुम्हें जाना ही नहीं है, जिस चर्च में तुम जाते ही नहीं हो, वह तुमने किसलिए बनाया?

उसने कहा कि उसके बिना अपने चर्च का कोई मजा ही न था। यानी उसको होना चाहिए। वह उसके कंट्रास्ट में ही तो... । और देखते हो अपने चर्च की शान और उसकी हालत! देखते हो अपने चर्च की शान! और उसकी हालत देखते हो, वर्षों से रंग-रोगन भी नहीं हुआ है! और मैंने तो कभी नहीं देखा कि कोई वहां जाता हो। अक्सर लोग इसी में जाते हैं।

वह अकेला ही है। अहंकार अकेला भी होगा, तो अपने पास एक दुनिया निर्मित करेगा। वह उस चर्च को भी बना लेगा, जिसमें नहीं जाता। अहंकार अकेला नहीं हो सकता; उसके लिए दूसरे की जरूरत है। वह अदर ओरिएंटेड है। दूसरे के बिना उसका कोई मतलब नहीं है। अस्मिता अकेली ही है; उसे दूसरे का कोई लेना-देना नहीं है। वह मेरा होना है, माई बीइंग। अहंकार आपके खिलाफ मेरी लड़ाई है। अस्मिता मेरा अस्तित्व है; आपसे कुछ लेना-देना नहीं है। और जब अहंकार मजबूत होता है, तो अस्मिता भीतर दब जाती है। और जब अहंकार विदा हो जाता है, तो अस्मिता प्रकट हो जाती है। अहंकार में जलन है, क्योंकि वह दूसरे को जलाने की ही उत्सुकता में पैदा होता है। अस्मिता मृदु है।

तो लाओत्से कहता है, जगमगाहट को मृदु हो जाए ऐसा कुछ करो; कि यह तुम्हारे जो मैं की जगमगाहट है, यह तुम्हारे होने का जो तीव्र और कटु और विषाक्त रूप है, यह हलका हो जाए, मृदु हो जाए, शांत हो जाए। आभा रह जाए, प्रकाश मात्र रह जाए; कहीं कोई आग न बचे।

ध्यान रहे, आग और प्रकाश एक ही चीज हैं; लेकिन आग जलाती है, प्रकाश जलाता नहीं। एक ही चीज हैं; आग जलाती है, प्रकाश जलाता नहीं। आग मौत को ला सकती है; प्रकाश जीवन को लाता है। और एक ही चीज हैं। आग में एक जलन है, एक त्वरा है, और प्रकाश में एक मृदुता है। हौले-हौले, पगध्वनि भी नहीं सुनाई पड़ती है प्रकाश की।

"इसकी उद्वेलित तरंगें जलमग्न हो जाएं।"

यह जो विक्षिप्त अहंकार है, यह जो पूर्ण होने की विक्षिप्त आकांक्षा है, इसकी उद्वेलित तरंगें, इसकी विक्षिप्त तरंगें, इसकी पागल हो गई लहरें जलमग्न हो जाएं! झील में सो जाएं!

"और फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।"

और जब यह सब हो जाएगा, तब भी सब एक रहस्य है। तब भी सब हल हो जाएगा, यह मत समझना। तब भी सब उत्तर मिल जाएंगे... यह बहुत कीमती है, अंतिम जो पंक्ति है।

"फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।"

जैसे अथाह हो जल! जल जितना कम हो, उतना शुभ्र मालूम होता है; जितना ज्यादा हो जाए, उतना नीलवर्ण का हो जाता है। और अथाह हो जाए, तो काला हो जाता है। अगर ठीक से समझें, तो डार्कनेस जो है, वह रहस्य का सिंबल है। ध्यान रहे, प्रकाश में रहस्य नहीं है, रहस्य तो अंधकार में है। प्रकाश एक अर्थ में छिछला है। अंधेरे में बड़ी गहराई है, बड़ी डेप्थ है, एबिसिमल डेप्थ है, ओर-छोर नहीं है। पूरी पृथ्वी प्रकाश से भरी हो, तो भी प्रकाश का दायरा छोटा है; और एक छोटा सा कमरा भी अंधकार से भरा हो, तो अनंत है।

इसको थोड़ा ख्याल में ले लें। यह पूरी पृथ्वी प्रकाश से भरी हो, तो भी सीमित है। सीमा बनाता है प्रकाश। यह छोटा सा कमरा अंधकार से भरा हो, तो कमरे की कोई सीमा नहीं है; असीम है। छोटा सा अंधकार भी असीम है; बड़े से बड़ा प्रकाश भी असीम नहीं है।

लाओत्से कहता है, यह सब हो जाएगा, फिर भी यह अथाह जल की तरह तमोवृत्त सा रहता है।

यह जो अस्तित्व है, यह अथाह जल जैसे अंधकार में डूबा हो, असीम, रहस्य से आवृत, कहीं ओर-छोर का कोई पता न चलता हो।

ईसाई फकीर हुए हैं। और सिर्फ दुनिया में ईसाई फकीरों ने ही परमात्मा को डार्कनेस, अंधकार का प्रतीक दिया है, एक खास ईसाइयों के फिरके ने। ईसा से भी पुराना वह फिरका है। ईसा से भी पहले इजिप्त में इसेन फकीरों का एक समूह था, जिसके बीच ईसा ने शिक्षा ली।

इसेन फकीर कहते हैं, हे परमात्मा, तू परम अंधकार है! दि एब्सोल्यूट डार्कनेस! दुनिया में बहुत लोगों ने परमात्मा के लिए प्रतीक खोजे हैं। और प्रकाश के प्रतीक तो आम हैं। वेद कहते हैं, उपनिषद कहते हैं, कुरान कहती है, परमात्मा प्रकाश है। लेकिन बड़े अदभुत लोग रहे होंगे इसेन फकीर! कहते हैं, परमात्मा, तू परम अंधकार है। और प्रयोजन केवल इतना है कि अंधकार असीम है। प्रकाश की कितनी ही कल्पना करो, सीमा आ जाती है।

और एक मजा है कि प्रकाश को जलाओ, बुझाओ, प्रकाश क्षणभंगुर है। अंधेरा शाश्वत है। न जलाओ, न बुझाओ। आपके करने का कोई प्रयोजन नहीं है। आप आओ, जाओ, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीया जले, बुझे; सूरज निकले, डूबे; अंधकार अपनी जगह है--अछूता, अस्पर्शित, कुंवारा। प्रकाश को गंदा किया जा सकता है; अंधेरे को गंदा नहीं किया जा सकता। उसको छुआ ही नहीं जा सकता।

लाओत्से कहता है, अथाह जल, अंधकार में डूबा हो, रहस्य में डूबा हो!

रहस्य का अर्थ है, जिसे हम जानते भी हों और जानते हों कि नहीं जानते हैं। रहस्य का अर्थ है--ख्याल ले लें--रहस्य का इतना ही अर्थ नहीं है कि जिसे हम न जानते हों। जिसे हम न जानते हों, वह अज्ञान है, रहस्य नहीं। जिसे हम जानते हों, वह ज्ञान है। ज्ञान में भी कोई रहस्य नहीं है; अज्ञान में भी कोई रहस्य नहीं है। अज्ञानी कहता है, मैं नहीं जानता। रहस्य जैसा कुछ भी नहीं है, न जानना बिल्कुल साफ है। ज्ञानी कहता है, मैं जानता हूं। रहस्य कुछ भी नहीं बचता, जानना बिल्कुल साफ है।

रहस्य का अर्थ है, जानता हूं कि नहीं जानता। जानता भी हूं किसी अर्थ में और किसी अर्थ में कह भी नहीं सकता कि जानता हूं। कोई अर्थ में लगता है मुझे, प्रतीत होता है, कि पहचाना, जाना, निकट आया। और तत्काल लगता है कि जितना निकट आता हूं, उतना दूर हुआ जाता हूं। जितना हाथ रखता हूं, लगता है, हाथ में आ गई बात, उतना ही पाता हूं कि हाथ ही उस बात में चला गया। सागर में कूद पड़ता हूं; लगता है, मिल गया सागर, पा लिया; लेकिन जब गौर करता हूं, तो पाता हूं, सागर के एक क्षुद्र से किनारे पर हूं। अनंत पड़ा है सागर, अनजाना, अछूता; उसे कभी पा न सकूंगा।

अज्ञानी स्पष्ट है, नहीं जानता है। ज्ञानी स्पष्ट है कि जानता है। इसलिए ज्ञानी और अज्ञानी में एक कॉमन एलीमेंट है--स्पष्टता का। रहस्यवादी अलग; न वह ज्ञानी से मेल खाता, न अज्ञानी से, या वह दोनों से एक साथ मेल खाता है। वह कहता है, किसी अर्थ में जानता भी हूं और किसी अर्थ में नहीं भी जानता। मेरे ज्ञान ने मेरे अज्ञान को प्रकट किया है। जितना मैंने जाना, उतना मैंने पाया कि जानने को बाकी है।

लाओत्से कहता है, सब हल हो जाएगा, उसी दिन तुम पाओगे कि कुछ भी हल नहीं हुआ। सब तमोवृत्त, गहन अथाह जल है अंधकार में डूबा हुआ!

इस बात से, जो चिंतक तरह के लोग हैं, सोच-विचार वाले लोग हैं, उनको अड़चन होती है। उनको अड़चन होती है, इतना श्रम शून्य होने का, इतना श्रम ग्रंथियां काट डालने का, इतना श्रम सब! और अंत में, अंत में कुछ स्पष्ट बात हाथ न लगे, तो बेकार गई मेहनत। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि जब भी स्पष्ट बात हाथ में लगती है, तभी यात्रा बेकार जाती है। क्योंकि जब भी आप सुनिश्चित होकर कुछ पा लेते हैं, तभी वह बेकार हो जाता है। दैट व्हिच इ.ज एचीव्ड कंप्लीटली एंड टोटली बिकम्स यूजलेस, मीनिंगलेस।

जब आप पाकर भी पाते हैं कि नहीं पाया जा सका, जब पहुंच कर भी पाते हैं कि मंजिल शेष है, जब डूब कर भी पाते हैं कि अभी ऊपर ही हैं, सतह पर ही हैं, जब तलहटी में भी बैठ कर पाते हैं कि अभी तो यात्रा शुरू

हुई, तब किसी ऐसी जगह पहुंचे हैं, जहां से अर्थ कभी भी रिक्त न होगा, जहां से अर्थ कभी खोएगा न, जहां का काव्य कभी समाप्त न होगा, और जहां का रोमांस शाश्वत है।

तो रिलीजन जो है, धर्म जो है, वह शाश्वत रोमांस है, इटरनल रोमांस। हम जितने ही उस प्रेमी के पास पहुंचते हैं, उतने ही हम पाते हैं कि पर्दों पर पर्दे हैं, द्वार पर द्वार हैं। जितने पास जाते हैं, पाते हैं, और द्वार हैं। अंतहीन मालूम होते हैं द्वार। और इसलिए यह यात्रा अनंत रूप से सार्थक है। और यात्रा के हर कदम पर रहस्य और विस्मय है। और यात्रा के हर कदम को मंजिल भी माना जा सकता है और यात्रा की हर मंजिल को नया यात्रा का कदम और पड़ाव भी माना जा सकता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, यह सब हो जाए, फिर भी--यह फिर भी बहुत अर्थपूर्ण है--फिर भी ऐसा नहीं कि मंजिल आ ही जाती है और कोई कह देता है कि बस पहुंच गए।

सिर्फ उथले लोग पहुंचते हैं। नहीं पहुंचते, वही पहुंचने की बात करते हुए मालूम पड़ते हैं। यह जीवन इतना गहन है कि कोई कह न पाएगा कि पहुंच गए।

उपनिषदों में कथा है कि एक पिता ने अपने पांच बेटों को भेजा सत्य की खोज पर। वे गए। वर्षों बाद वे लौटे। पिता मरणासन्न है। वह पूछता है अपने बेटों से, सत्य मिल गया? ले आए? जान लिया?

पहला बेटा जवाब देता है, वेद की ऋचाएं दोहराता है। दूसरा बेटा जवाब देता है, उपनिषद के सूत्र बोलता है। तीसरा बेटा जवाब देता है, वेदांत की गहन बातें कहता है। चौथा बेटा बोलता है, जो भी सारभूत धर्मों ने पाया है, सब कहता है।

लेकिन जैसे-जैसे बेटे जवाब देते हैं, वैसे-वैसे बाप उदास होता चला जाता है। चौथे के जवाब देते-देते वह वापस बिस्तर पर लेट जाता है। लेकिन पांचवां चुप ही रह गया। बाप फिर उठ आया है। और उसने पूछा कि तूने जवाब नहीं दिया? शायद सोचा हो कि मैं लेट गया, थक गया। तेरा जवाब और दे दे; क्योंकि मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में जी रहा हूं। वह बेटा फिर चुप है। बाप कहता है, तू बोल। वह बेटा फिर चुप है। उसने आंख बंद कर ली हैं। वह बाप कहता है, तो मैं फिर निश्चिंतता से मर सकता हूं। कम से कम एक जान कर लौटा है, जो चुप है।

बोधिधर्म वापस लौटता है--चीन दस वर्ष काम करके। अपने शिष्यों को इकट्ठा करता है और पूछता है, मुझे बताओ, धर्म का राज क्या है? रहस्य क्या है? संदेश क्या है बुद्ध का? मैंने तुम्हें क्या दिया?

वह जांच कर लेना चाहता है जाने के पहले।

एक शिष्य उत्तर देता है कि संसार और निर्वाण एक हैं, सब अद्वैत है।

बोधिधर्म उसकी तरफ देखता है और कहता है, तेरे पास मेरी चमड़ी है।

वह युवक बहुत हैरान हो जाता है, चमड़ी? अद्वैत की बात, और कहता है चमड़ी! बात जब सिर्फ अद्वैत की होती है, बात ही जब अद्वैत की होती है, तो चमड़ी ही होती है, कुछ और नहीं होता। बात तो उसने बड़ी ऊंची कही थी, पूरे अद्वैत की, कि संसार और ब्रह्म एक, संसार और मोक्ष एक, द्वैत है ही नहीं।

दूसरे से पूछता है। वह दूसरा कहता है, कठिन है कहना, अनिर्वचनीय है। बहुत मुश्किल है।

बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।

पूछता है युवक, सिर्फ हड्डियां?

बोधिधर्म कहता है, हां! क्योंकि तू कहता तो है अनिर्वचनीय, लेकिन कहता जरूर है। तू कहता है अनिर्वचनीय, नहीं कहा जा सकता, फिर भी कहता है। हड्डियां ही तेरे पास हैं।

और तीसरा युवक कहता है, न तो कहा जा सकता अनिर्वचनीय उसे, न कहा जा सकता अद्वैत उसे, शब्द नहीं वहां काम करते, वहां तो मौन ही सार्थक है।

बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मेरी मज्जा है। मस्तिष्क में खोपड़ी को घेरे हुए जो है, वह तेरे पास है।

पर और इससे गहरी क्या बात होगी?

वह चौथे युवक की तरफ देखता है। वह चौथा युवक उसके पैरों में गिर पड़ता है और सिर उसके पैरों में रख देता है। वह उसे उठाता है। उसकी आंखें शून्य हैं, उसकी आंखों में जैसे कोई प्रतिबिंब नहीं दौड़ता; जैसे आकाश में कभी कोई बादल न चलता हो, ऐसा खाली।

वह उसे हिलाता है कि तूने मेरा प्रश्न सुना या नहीं? मैं तुझसे कुछ पूछता हूं, तुझ तक पहुंचा या नहीं?

शून्य आंखें शून्य ही बनी रहती हैं, बंद ओंठ बंद ही बने रहते हैं, वह दुबारा झुक कर सिर चरणों पर बोधिधर्म के रख देता है। वह उसे फिर उठाता है; वह कहता है, मुझे तू बोल!

नहीं बोलता, वह चुप है।

और बोधिधर्म कहता है, तेरे पास मैं हूं; अब मैं जाता हूं। वह वापस लौट आता है। तेरे पास मैं हूं!

रहस्य का अर्थ है, उसे कभी पाया हुआ नहीं कहा जा सकता, जाना हुआ नहीं कहा जा सकता; न जाना हुआ भी नहीं कहा जा सकता। ज्ञात नहीं, अज्ञात नहीं। इतना बड़ा है सब कि हमारा कुछ भी कहना सार्थक नहीं होता।

इसलिए लाओत्से कहता है, फिर भी, स्टिल, तुम सब हल कर लोगे, तुम सब राज खोल लोगे, तुम सब ग्रंथियां सुलझा लोगे, तुम्हारी सब बीमारियां गिर जाएंगी, फिर भी जगत का रहस्य नहीं खुल जाएगा। रहस्य और सघन हो जाएगा, जैसे अथाह जल तमोवृत्त सा!

अगला सूत्र कल बात करेंगे।

चोदहवां प्रवचन

प्रतिबिंब उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था

Chapter 4 : Sutra 3

I do not know whose son it is, may be an image of what existed before God.

अध्याय 4 : सूत्र 3

नहीं जानता मैं कि किसका पुत्र है यह, शायद यह प्रतिबिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।

शून्य हो जाने पर, घड़े की भांति रिक्त हो जाने पर--चित्त की सारी नोकें झड़ जाएं, सारी ग्रंथियां सुलझ जाएं, व्यक्ति स्वयं को पूरा उघाड़ ले और जान ले--फिर भी, जो आधारभूत है, आत्यंतिक है, अल्टिमेट है, वह अनजाना ही रह जाता है। वह रहस्य में ही छिपा रह जाता है।

इस अंतिम सूत्र में लाओत्से उसकी तरफ इशारा करता है और कहता है, "नहीं जानता मैं, किसका पुत्र है यह।"

यह जो सब जान लेने पर भी अनजाना ही रह जाता है, यह जो सब उघड़ जाने पर भी अनउघड़ा ही रह जाता है, यह जो सब आवरण हट जाने पर भी आवृत ही रह जाता है, ढंका हुआ ही रह जाता है, ज्ञान भी जिसके रहस्य को नष्ट नहीं कर पाता, यह कौन है?

"नहीं जानता मैं, किसका पुत्र है यह।"

यह किससे जन्मा? और कहां से आया? कौन से मूल स्रोत से इसका उदगम है?

"शायद यह बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।"

यह जो शून्य उदघाटित होता है, यह जो रहस्य साक्षात होता है, यह शायद बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।

बहुत सी बातें इस सूत्र में समझने जैसी हैं।

पहली तो बात लाओत्से कहता है, "नहीं जानता मैं।"

कल मैंने कहा, अस्मिता और अहंकार। अहंकार जब तक है, तब तक ज्ञान का उदय नहीं होता; अहंकार जब तक है, तक तक अज्ञान ही होता है। रहस्यवादियों ने अज्ञान को और अहंकार को पर्यायवाची कहा है। टु बी ईगो-सेंटरिक एंड टु बी इग्नोरेंट आर दि सेम। ये दो बातें नहीं हैं। अहंकार-केंद्रित होना और अज्ञानी होना एक ही बात है। अज्ञान और अहंकार एक ही स्थिति के दो नाम हैं।

अहंकार जब गिर जाता है, अज्ञान जब गिर जाता है, तब अस्मिता का बोध शुरू होता है। अस्मिता और ज्ञान एक ही बात है। जैसा मैंने कहा, अहंकार और अज्ञान एक ही बात है, ऐसा अस्मिता और ज्ञान एक ही बात है। अहंकार के साथ होता है बाहर अज्ञान, अस्मिता के साथ होता है बाहर ज्ञान। अस्मि का अर्थ होता है, जस्ट

टु बी। अस्मिता का अर्थ होगा, जस्ट टु बी नेस! बस होना मात्र! विशेषणरहित, आकाररहित, मात्र होना, शुद्ध अस्तित्व! यह जो अस्मिता रह जाएगी, इसके साथ होगा ज्ञान।

यहां जब लाओत्से कहता है, नहीं जानता मैं, तो यह मैं अस्मिता का सूचक है। अहंकार तो मिट गया; अब कोई ऐसा भाव नहीं रहा कि मैं जगत का केंद्र हूं। अब ऐसा कोई भाव नहीं रहा कि जगत मेरे लिए है। अब ऐसा भी कोई भाव नहीं रहा कि मैं बचूं ही। ये सब भाव चले गए; फिर भी मैं हूं। इस मैं में सारे के सारे रहस्य खुल गए। लेकिन इस मैं को भी कोई पता नहीं कि यह जो शून्य है, यह कहां से जन्मता है। अज्ञान को तो कोई पता ही नहीं है कि जगत कहां से जन्मता है; ज्ञान को भी कोई पता नहीं है कि जगत कहां से जन्मता है। अज्ञान तो बता ही न सकेगा कि जीवन का रहस्य कहां से उदभूत होता है, कहां है वह गंगोत्री जहां से अस्तित्व की गंगा निकलती है; अज्ञान तो बता ही न सकेगा, ज्ञान भी नहीं बता सकता है।

लाओत्से यहां जो कह रहा है, नहीं जानता हूं मैं, वह यह कह रहा है कि सब जान कर भी, स्वयं को सब भांति पहचान कर भी--अब कोई ग्रंथियां न रहीं, अब कोई अंधकार न रहा, प्रकाश पूरा है--फिर भी मैं नहीं जानता कि यह जो शून्य है, यह जो उदघाटित हुआ मेरे आंखों के सामने, यह कौन है? यह शून्य कहां से आता है? इसका क्या यात्रा-पथ है? यह क्यों है? इस ज्ञान से भरी अस्मिता को भी कोई पता नहीं है।

लाओत्से का मैं ज्ञानी का मैं है; उसे भी पता नहीं है। अज्ञानी के मैं को तो कुछ भी पता नहीं, ज्ञानी के मैं को भी कुछ पता नहीं है। यह फासला ख्याल में ले लेने की जरूरत है। और इसके पार नहीं जाया जा सकता। अस्मिता तक जाया जा सकता है। जहां अस्मिता भी खो जाती है, उसके पार तो आप शून्य के साथ एक हो जाते हैं। फिर तो शून्य को अलग से खड़े होकर जानने का कोई उपाय नहीं रह जाता।

सागर के तट पर खड़ा है; वह अज्ञानी है। सागर में कूद पड़ा, सागर में डूब गया; वह ज्ञानी है। लेकिन अभी भी सागर से पृथक है। सागर ही हो गया; वह फिर ज्ञान के भी पार चला गया। लेकिन अज्ञानी नहीं जान पाता, क्योंकि वह तट पर खड़ा है, सागर से दूर है। ज्ञानी सागर में डूबा है बिल्कुल, फिर भी नहीं जान पाता, क्योंकि सागर में डूब कर भी सागर से एक नहीं हो गया है। ज्ञानी के भी पार जो दशा है, वहां तो सागर के साथ एक हो गया है; लेकिन तब जानने वाला नहीं बचता कोई।

जानने वाला सबसे ज्यादा होता है अज्ञान में। इतना ज्यादा होता है दि नोअर, इतना घना होता है कि जो नोन है, जिसे जानना है, वह होता ही नहीं। दि नोअर इ.ज टू मच। इसलिए जिसे जानना है, वह होता ही नहीं। अस्मिता में नोअर और नोन बिल्कुल बराबर हो जाते हैं; जानने वाला और जिसे जानना है, वे दोनों समतुल हो जाते हैं। तराजू बिल्कुल ठहर जाता है। लेकिन अभी भी एक रेखा दूर करती है--ज्ञान की, जानने की। इसके आगे फिर जो अवस्था है, उसे हम चाहें तो कहें परम अज्ञान, चाहें तो परम ज्ञान; उसे हम कोई भी नाम दे सकते हैं। उस अवस्था में जानने वाला बचता ही नहीं। वह शून्य ही हो जाता है।

अज्ञान में जानने वाला बहुत होता है। परम ज्ञान में जानने वाला होता ही नहीं। ज्ञान में दोनों बराबर होते हैं।

लाओत्से जहां से बोल रहा है अभी, नहीं जानता मैं, यह ज्ञान की अवस्था है, जहां अस्मिता बाकी है। इसलिए लाओत्से कहता है, मैं नहीं जानता, किसका पुत्र है यह। यह शून्य कहां से जन्मा? शायद यह बिंब है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था। परमात्मा के पहले!

आदमी की जो कल्पना है, चिंतन है, वह परमात्मा तक गया है। परमात्मा के पार आदमी का चिंतन नहीं गया। आदमी के चिंतन की सीमा-रेखा है परमात्मा। अब तक जो बड़ी से बड़ी उड़ान ली गई है विचार की, वह

परमात्मा तक जाती है। और लाओत्से कहता है कि यह जो है, यह बिंब मालूम पड़ता है, रिफ्लेक्शन मालूम पड़ता है उसका, जो कि परमात्मा के भी पहले था।

यहां लाओत्से दो-तीन बातों की सूचना देता है।

एक तो यह कि चिंतन की जो सीमा है, अंतिम, वह सत्य की पहली सीमा भी नहीं है। चिंतन की जो अंतिम रेखा है, वह सत्य का पहला कदम भी नहीं है। दर्शन जहां तक पहुंचाता है, परमात्मा तक, वहां तक सागर शुरू भी नहीं हुआ है।

इसलिए शंकर ने--शंकर से यहां लाओत्से को समझना आसान पड़ेगा--शंकर ने ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है। ईश्वर को भी माया का हिस्सा कहा है, ब्रह्म का हिस्सा नहीं कहा। क्योंकि ईश्वर की जो धारणा है, वह हमारे मन की आखिरी धारणा है। और जहां तक मन जाता है, वहां तक माया चली जाती है। माया का अर्थ है मन का ही फैलाव। तो अगर आदमी ने ईश्वर को खोज लिया, तो आदमी के मन की खोज है वह। और आदमी का मन जो भी खोज लेगा, वह माया की सीमा होगी।

इसलिए शंकर ने बहुत हिम्मत की बात कही है कि ईश्वर भी माया का ही हिस्सा है। ब्रह्म तो माया के भी पार है, ईश्वर के भी पार है।

वही लाओत्से कह रहा है। वह कह रहा है, परमात्मा के भी पहले जो था; सृष्टि के तो पहले था ही जो, स्रष्टा के भी पहले जो था; जो बना हुआ दिखाई पड़ रहा है, उसके तो पहले था ही, जिसने बनाया है--ऐसा जैसा हम सोचते हैं कि इसने बनाया है--उस बनाने वाले के भी पहले जो था। लेकिन वह यह नहीं कहता कि यह वही है। यहीं उसकी कला है।

लाओत्से कहता है, उसका यह प्रतिबिंब--मानो, जैसे कि यह उसका प्रतिबिंब है।

यह नहीं कहता, वही है। क्योंकि मन उसे नहीं जान पाएगा। अहंकार तो जान ही नहीं पाएगा, अस्मिता भी नहीं जान पाएगी। अस्मिता भी ज्यादा से ज्यादा रिफ्लेक्शन को जान सकती है।

रिफ्लेक्शन का मतलब यह हुआ कि नदी के किनारे एक वृक्ष खड़ा है और नदी में उस वृक्ष की छाया बन रही है। एक मछली नदी में तैर रही है। उस मछली को तट पर खड़ा वृक्ष तो दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन पानी में बनने वाला प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। ऐसा समझ लें कि उस मछली को पानी में बनने वाले वृक्ष का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। वृक्ष के पास से उड़ते हुए पक्षियों की कतार दिखाई पड़ती है--प्रतिबिंब। वृक्ष के पास उगे हुए चांद की छाया बनती है, वह दिखाई पड़ता है। चांद के ऊपर तैरती हुई बदलियां दिखाई पड़ती हैं। रिफ्लेक्शन में, जल के दर्पण में बन गई ये तस्वीरें उस मछली को दिखाई पड़ती हैं।

मन, अस्मिता वाला मन भी ज्यादा से ज्यादा रिफ्लेक्शन को जानने का सामर्थ्य कर सकता है।

इसलिए लाओत्से नहीं कहता कि यह वही है, जो परमात्मा के पहले था। लाओत्से कहता है, शायद यह उसका प्रतिबिंब है, जो परमात्मा के भी पहले था।

असल में, आदमी जो भी जान सकता है--आदमी ही क्यों, जो भी जाना जा सकता है--वह प्रतिबिंब ही होगा। क्योंकि सत्य को हम तभी जानते हैं, जब हम सत्य के साथ एक हो गए होते हैं, जानने वाला अलग नहीं बचता। जब पतंगा उड़ कर जल जाता है दीए के साथ, तभी दीए को जानता है। जब नमक की डली गल जाती है सागर में, तभी सागर को जानती है। लेकिन तब वह बचती नहीं। और तब वह किसी को कहना चाहे लौट कर, तो कहने का उपाय नहीं, क्योंकि वह बची नहीं। जब तक जानना है, तब तक हम ज्यादा से ज्यादा जो

श्रेष्ठतम जान सकते हैं, वह प्रतिबिंब होगा। और निश्चित ही, प्रतिबिंब के साथ परहेप्स, शायद लगा रहना चाहिए।

यहां महावीर से थोड़ी सी कल्पना लाओत्से को समझने में आसान होगी। महावीर ने परहेप्स का जितना उपयोग किया है इस पृथ्वी पर, दूसरे आदमी ने नहीं किया है। महावीर कुछ भी बोलते थे, तो उसमें स्यात लगा कर ही बोलते थे। वे कहते थे, शायद! वे कभी नहीं कहते थे, ऐसा ही। इसलिए महावीर के चिंतन का नाम हैः स्यातवाद, परहेप्स-इज्म। महावीर से कुछ भी पूछिएगा, तो वे कहेंगे परहेप्स, शायद। जो बिल्कुल सुनिश्चित तथ्य है, महावीर जिसे बहुत निश्चित रूप से जानते हैं, उसको भी वे कहेंगे स्यात। क्यों? अगर महावीर को ठीक-ठीक पता है, अगर बिल्कुल सही पता है, तो उन्हें साफ कहना चाहिए, ऐसा ही है।

लेकिन महावीर कहते हैं, जब भी कोई ऐसा दावा करता है, ऐसा ही है, तभी असत्य हो जाता है। महावीर कहते हैं, मन इतना ही कर सकता है, ऐसा भी है। ऐसा ही है, ऐसा नहीं; ऐसा भी हो सकता है। जब हम कहते हैं, ऐसा ही है, तो हम और सारे सत्य की संभावनाओं को नष्ट कर देते हैं। दावा हमारा पूर्ण हो जाता है और अंधा हो जाता है। जब हम कहते हैं कि ऐसा भी हो सकता है, तो इसके विपरीत भी होने की हम संभावनाओं को कायम रखते हैं। और अगर चित्त में बनने वाली सारी स्थितियां प्रतिबिंब हैं... ।

इसे और एक तरह से समझ लें तो और आसानी पड़ जाएगी; तो फिर स्यात बहुत स्पष्ट हो जाएगा। मैं आपको दिखाई पड़ रहा हूं। आपको कभी ख्याल न आया होगा कि आप ने मुझे कभी भी नहीं देखा है, और न देखने का कोई उपाय है। आप सिर्फ मेरे प्रतिबिंब को देखते हैं। आपकी आंख पर बनती है मेरी तस्वीर, और उस तस्वीर की खबर पहुंचती है आपके मस्तिष्क को। आप जो देखते हैं, वह आपकी आंख पर बनी हुई तस्वीर है; मुझे आप नहीं देखते। मुझे देखने का कोई उपाय नहीं है; क्योंकि बिना आंख के आप मुझे नहीं देख सकते हैं। और आंख का मतलब यह है कि प्रतिबिंब बनाने वाली व्यवस्था। वह बाहर जो है, उसका रिफ्लेक्शन बना देती है, उसका प्रतिबिंब बना देती है। और पीछे जो मन है, उस प्रतिबिंब को देखता है।

जब आप मुझे सुनते हैं, तो जो मैं बोल रहा हूं, वह आप नहीं सुनते; उस बोलने की जो भनक आपके कानों में पड़ती है, उस भनक को आप सुनते हैं। आपके और मेरे बीच में आपका कान रिफ्लेक्शन का काम करता है। जब मैं आपका हाथ छूता हूं, तब भी मेरा हाथ आपको छू रहा है, ऐसा आप कभी नहीं जानते। जब मैं आपका हाथ छूता हूं, तो आपकी चमड़ी पर स्पर्श बनता है और उस स्पर्श को आप जानते हैं। आपके और मेरे बीच में एक पर्दा सदा ही खड़ा रहता है।

इसलिए इमेनुअल कांट, जर्मनी के एक बहुत अदभुत विचारक ने, इस आधार पर यह कहा कि वस्तु जैसी स्वयं में है, थिंग इन इटसेल्फ, वह अननोएबल है, वह जानी नहीं जा सकती। कोई वस्तु जैसी अपने में है, नहीं जानी जा सकती। हम सिर्फ उसके प्रतिबिंब ही जानते हैं।

और अगर हम प्रतिबिंब ही जानते हैं, तो ध्यान रहे, जो हम जानते हैं, उसमें हमारी प्रतिबिंब बनाने की क्षमता सम्मिलित हो जाती है। इसलिए पीलिया का एक मरीज वहां पीला रंग देख सकता है, जहां पीला रंग नहीं है। कलर ब्लाइंड आदमी होते हैं, उन्हें कोई रंग नहीं दिखाई पड़ता तो नहीं दिखाई पड़ता। थोड़े नहीं, काफी लोग होते हैं। दस में करीब-करीब एक आदमी किसी न किसी कलर के मामले में थोड़ा ब्लाइंड होता है--दस में एक! हम यहां अगर सौ आदमी हैं, तो इनमें कम से कम दस आदमी, ठीक से जांच-पड़ताल की जाए, तो किसी न किसी छोटे-मोटे रंग के प्रति अंधे होंगे।

बर्नार्ड शॉ साठ साल की उम्र तक उसे पता ही नहीं था कि उसे पीला रंग दिखाई नहीं पड़ता। उसे हरे और पीले में कोई फर्क नहीं मालूम होता था। साठ वर्ष तक पता नहीं चला। पता चले भी कैसे? साठवीं वर्षगांठ पर किसी ने उसे एक वस्त्र उपहार में भेजे हैं; वे हरे रंग के हैं। तो टाई लेने बाजार गया। टाई उसने नहीं भेजी है। तो वह पीले रंग की टाई खरीद लाया। उसकी जो सेक्रेटरी थी, उसने कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं! यह बहुत बेहूदी लगेगी। अगर मेल ही मिलाना है, तो हरे रंग की ही खरीद लें। पर बर्नार्ड शॉ ने कहा कि कौन कहता है यह हरा रंग नहीं है! यह हरा रंग है।

तब पहली दफे पता चला कि वह कलर ब्लाइंड है! उसे पीले रंग और हरे रंग में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। वे दोनों उसे एक से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन साठ साल तक उसे कोई पता नहीं चला।

तो जो हमें दिखाई पड़ता है, उसमें हमारे देखने की क्षमता सम्मिलित हो जाती है।

अब एक मछली पानी में तैर रही है। और अगर पानी नीले रंग का है, तो जो चांद उसको प्रतिबिंब पानी में बना हुआ दिखाई पड़ेगा, वह नीले रंग का दिखाई पड़ेगा। और कोई उसके पास जानने का उपाय नहीं है कि जिस चांद का यह प्रतिबिंब है, वह नीला नहीं होगा।

महावीर कहते हैं कि जो भी हम जानते हैं, हमें निरंतर ही उसमें स्यात लगा कर बोलना चाहिए। उससे इस बात की खबर मिलती है कि हम सत्य के पूर्ण होने का दावा नहीं करते, सिर्फ प्रतिबिंब होने का दावा करते हैं। हम कहते हैं कि ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। ऐसा है, ऐसा हम नहीं कहते; ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। यह गलत भी हो सकता है, इससे भिन्न भी हो सकता है। इससे विपरीत दिखाई पड़ने वाले में भी सत्य हो सकता है।

लाओत्से कहता है, शायद यह जो शून्य प्रकट हुआ है, यह प्रतिफलन है उसका, प्रतिबिंब है उसका, वह जो परमात्मा के भी पहले था; जहां से परमात्मा भी पैदा हुआ होगा।

ताओइस्ट परंपरा में ओरिजिनल फेस के बाबत बहुत काम हुआ है। साधक से कहा जाता है कि तुम्हारा मूल चेहरा क्या है, व्हाट इ.ज योर ओरिजिनल फेस, उसका पता लगाओ।

आप कहेंगे कि मेरा जो चेहरा है, वही मेरा ओरिजिनल फेस है। लेकिन अगर आप अपने दस साल के चित्र उठा कर देखें, तो आपको पता चल जाएगा कि आपका चेहरा दस दफे बदल गया है।

स्टेनबैक की पत्नी--एक जर्मन लेखक, उसकी पत्नी अपने बेटे को, छोटे बेटे को अपने पति के बचपन से लेकर अभी तक के चित्र दिखा रही है। जब उसका विवाह हुआ अपने पति से, तब वह तीस साल का जवान था। घुंघराले उसके बाल थे; सुंदर उसका चेहरा था। तो वह छोटा बेटा, स्टेनबैक का बेटा, अपनी मां से पूछने लगा कि यह घुंघराले बालों वाला सुंदर जवान कौन है? तो उसकी मां ने कहा, पागल, तू पहचान नहीं पा रहा! ये तेरे पिता हैं। तो उस लड़के ने कहा, अगर ये मेरे पिता हैं, तो वह गंजे सिर का जो आदमी अपने घर में रहता है, वह कौन है? अब तो साठ साल का है स्टेनबैक। तो वह कौन है, वह जो गंजे सिर का आदमी अपने घर में रहता है, अगर ये मेरे पिता हैं तो! मैं तो उन्हीं को अभी तक पिता समझ रहा था। अब उस बच्चे को समझाना जरूर बहुत मुश्किल पड़ा होगा।

कौन सा चेहरा ओरिजिनल है? वह कौन सा चेहरा आपका है? वह जो तीस साल में प्रकट होता है? वह जो तीन महीने में प्रकट होता है? वह जो मां के पेट में, गर्भ में प्रकट होता है? वह जो मरते वक्त, वह जो बुढ़ापे में? कौन सा चेहरा आपका है, आथेंटिक, जिसको आप कह सकें, यह मेरा चेहरा है।

ताओ परंपरा में साधक को वे कहते हैं, ध्यान करो और पता लगाओ, तुम्हारा मूल चेहरा क्या है। साधक थोड़े दिन में परेशान हो जाते हैं और आकर गुरु को पूछते हैं कि मूल से मतलब क्या? तो वे कहते हैं कि जब तुम

नहीं पैदा हुए थे, तब तुम्हारा जो चेहरा था, उसका पता लगाओ। या जब तुम मर जाओगे, और तब भी तुम्हारा जो चेहरा होगा, उसका पता लगाओ। प्रकट होने के पहले भी जो तुम्हारे साथ था, अप्रकट हो जाने पर भी जो तुम्हारे साथ होगा, वही आथेंटिक है। बाकी तो बीच के वस्त्र हैं, जो लिए गए, दिए गए, ओढ़े गए, अलग किए गए।

लाओत्से कहता है, परमात्मा के भी पहले जो था! वही ओरिजिनल फेस है सत्य का, जो परमात्मा के भी पहले है। जब कुछ भी न था प्रकट, सब अप्रकट था।

उपनिषदों ने या वेद ने तीन अवस्थाएं मानी हैं अस्तित्व की। एक अवस्था, जब अस्तित्व मैनिफेस्टेशन में अभिव्यक्त हुआ। फूल खिल रहे हैं, पक्षी उड़ रहे हैं, लोग जमीन पर हैं, तारे हैं, सूरज है, जगत है--अभिव्यक्त! प्रकट! प्रकट होता जा रहा है, फैलता जा रहा है। दूसरी अवस्था, उपनिषद कहते हैं, प्रलय की। जब जगत सिकुड़ रहा है, नष्ट हो रहा है। फूल झड़ गए, पक्षी मर गए, वाणियां खो गईं, तारे फीके पड़ गए, सूरज बुझ गए; सब सिकुड़ रहा है। एक, जब अस्तित्व सृजन हो रहा है, युवा हो रहा है; और एक, जब अस्तित्व बूढ़ा हो रहा है, समाप्त हो रहा है।

तो सृजन और प्रलय, जैसे कि श्वास बाहर जाए और भीतर आए, भीतर आए और बाहर जाए, ऐसा हिंदू तत्वचिंतन ने कहा है कि अस्तित्व का सृजन परमात्मा की भीतर आती श्वास है, और अस्तित्व का विनाश परमात्मा की बाहर जाती श्वास है, आउटगोइंग ब्रेथ। और ब्रह्मा की एक श्वास--वह माइथोलॉजी है, पर समझने जैसी है--ब्रह्मा की एक श्वास सृजन है और दूसरी श्वास प्रलय है।

लेकिन इन दोनों के पार भी कोई अवस्था है, जब न श्वास भीतर आती है और न बाहर जाती है। वह तीसरी अवस्था है--न प्रलय है, न सृष्टि है। कुछ तो ऐसा होना ही चाहिए, जो प्रलय में नष्ट होता है, सृजन में बनता है और दोनों के पार है। वह ओरिजिनल फेस, वह मूल चेहरा होगा।

लाओत्से कहता है, परमात्मा के भी पहले जो था, उसका प्रतिबिंब।

लेकिन बहुत... लाओत्से की अभिव्यक्ति इतनी कदम-कदम विचारणीय है कि वह यह नहीं कहता कि वही। वह कहता है, प्रतिबिंब। क्योंकि जहां देखने वाला है, जहां बोलने वाला है, जहां मैं हूं--अहंकार नहीं, अस्मिता ही भले--जहां मैं हूं, वहां प्रतिबिंब ही होगा। पर इतना क्या कम है, सत्य हमें दर्पण में भी दिखाई पड़ जाए! सत्य हमें दर्पण में भी दिखाई पड़ जाए, इतना भी क्या कम है! लेकिन लाओत्से ख्याल रखता है कि वह कहे कि यह दर्पण में देखा गया सत्य है। देखा गया सत्य, दर्पण में देखा गया सत्य ही होगा।

और दूसरी बात वह कहता है, शायद।

यह अनाग्रह की बात है। यह बहुत विचारणीय है कि जितना ज्यादा असत्य हमारे मन पर होता है, उतने हमारे वक्तव्य आग्रहपूर्ण होते हैं। जितना अहंकार होता है, वक्तव्य में उतना आग्रह होता है। हमारे जो विवाद जगत में चलते हैं, वे विवाद सत्य के लिए नहीं होते, आग्रह के लिए होते हैं। जब मैं कहता हूं कि यही ठीक है, तो असली सवाल यह नहीं होता कि यही ठीक है या नहीं, असली सवाल यह होता है कि मैं ठीक हूं और तुम गलत हो। जो विवाद है, कभी प्रकट ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि मैं ठीक हूं और तुम गलत हो; विवाद ऐसा मालूम पड़ता है कि सत्य के लिए चल रहा है। पीछे अगर गौर करेंगे, तो हर सत्य, तथाकथित सत्य के पीछे मैं खड़ा रहता है। मेरा सत्य ठीक होना चाहिए! क्योंकि मेरे सत्य के ठीक होते मैं ठीक होता हूं; मेरे सत्य के गलत होते मैं गलत हो जाता हूं। और मैं ठीक हूं।

यह मेरे ठीक होने का जो आग्रह है, वह अहंकार के साथ ही विलीन हो जाता है। इसलिए जहां-जहां अस्मिता से सत्य पैदा हुए हैं, जैसे बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट या मोहम्मद या लाओत्से--ये सब अस्मिता से निकले हुए वक्तव्य हैं, अहंकार से निकले हुए नहीं--ये सब अनाग्रहपूर्ण हैं। बड़ा अनाग्रह है! कह देने पर जैसे इति है। कोई माने, कोई राजी किया जाए, कोई न माने तो उसे मनवाया जाए, ऐसा कोई भाव नहीं है। जैसे बात कह दी और समाप्त हो गई।

फिर भी सोच-विचार कर, कंसीडर्डली, शायद लगा देना बहुत हिम्मत की बात है। क्योंकि जो मुझे सत्य जैसा लगता हो, उसमें शायद लगाने का स्मरण भी नहीं रहता। हम तो असत्य में भी शायद नहीं लगाते। हम तो असत्य में भी शायद नहीं लगाते, और लाओत्से जैसे लोग सत्य में भी शायद लगाते हैं।

हम असत्य में शायद लगा भी नहीं सकते, क्योंकि असत्य के प्राण ही निकल जाएंगे शायद लगाने से। अगर अदालत में पूछा जाए कि क्या आपने चोरी की है? और आप कहें, शायद। असत्य के लिए तो आग्रहपूर्ण होना पड़ेगा कि नहीं की है। सब गवाहियां जुटानी पड़ेंगी, प्रमाण जुटाने पड़ेंगे। दावा! और जितनी मजबूती से दावा किया जा सके, उतना ही! क्योंकि असत्य में अपने कोई प्राण नहीं होते; कितने आप आग्रह से उसमें प्राण डालते हैं, उतने ही होते हैं। असत्य अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता, आपके आग्रह की शक्ति पर ही खड़ा होता है।

लेकिन सत्य तो बिना आपके आग्रह के खड़ा हो सकता है। इसलिए लाओत्से या महावीर जैसे लोग शायद भी लगा सकते हैं। शायद! अगर महावीर से पूछें कि आत्मा है? तो महावीर कहेंगे, शायद। अब महावीर से ज्यादा सुनिश्चित कौन जानता होगा कि आत्मा है! इतना सुनिश्चित जानने वाला आदमी इतना अनिश्चय से कहेगा, शायद! और उसका कारण यह है कि महावीर मानते हैं कि आत्मा का होना इतना स्वयं-सिद्ध है, सेल्फ-इवीडेंट है, कि मेरे आग्रह की कोई जरूरत नहीं है। मैं अपने को अलग काट सकता हूं, तो भी आत्मा है।

जब वे कह रहे हैं शायद, तो उनका मतलब यह है कि मुझ पर भरोसा मत करना; मेरे बिना भी आत्मा है। मैं अपने पर शायद लगा रहा हूं; मेरा जानना गलत भी हो सकता है। मैं गलत भी हो सकता हूं।

हम असत्य में भी शायद नहीं लगा सकते; लाओत्से जैसे लोग सत्य में भी शायद लगा कर ही बोलते हैं। कारण? हमारे आग्रह में ही सब कुछ है! हम जो बोल रहे हैं, उसमें कोई प्राण नहीं है।

एक बड़े वकील, डाक्टर हरि सिंह गौड़ ने, जिन्होंने वकालत से इतना पैसा कमाया कि हिंदुस्तान में शायद ही किसी आदमी ने कमाया। सागर विश्वविद्यालय उनकी वकालत से कमाए गए पैसे से खड़ा हुआ। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब मैं अपने गुरु को छोड़ने लगा, जिनसे मैंने वकालत की शिक्षा पाई और कला सीखी, तो उन्होंने मुझसे आखिरी जो मुझे सलाह दी, वह यह थी कि यदि सत्य तुम्हारे पक्ष में हो, देन हैमर ऑन दि फैक्ट्स; अगर अदालत में सत्य तुम्हारे पक्ष में हो, तो हथौड़े की चोट पर तथ्यों पर चोट करो। अगर सत्य तुम्हारे पक्ष में न हो, देन हैमर ऑन दि लाज; अगर सत्य तुम्हारे पक्ष में न हो, तो कानून पर हथौड़े की चोट करो।

और डाक्टर हरि सिंह ने लिखा है, मैंने उनसे पूछा कि न सत्य का पता हो, न तथ्य का पता हो, और न कानून साफ-साफ समझ में आ रहा हो, तो? तो उसके गुरु ने कहा, देन हैमर ऑन दि टेबल; तब जोर से टेबल पर घूंसेबाजी करो। लेकिन घूंसेबाजी करो। हैमरिंग असली चीज है। तुमने कितने जोर से हिला दिया अदालत को, उतना ही पता लगेगा कि तुम जो कह रहे हो, वह सत्य है।

ये बिल्कुल नॉन-हैमरिंग लोग हैं--लाओत्से, महावीर! ये हथौड़ी लेकर चोट नहीं करते कि यही सत्य है। ये जो बिल्कुल सत्य है, उसको भी कहते हैं, यह भी हो सकता है। इनसे विपरीत आदमी आकर कह दे, तो उसको भी सुनते हैं और कहते हैं, यह भी हो सकता है।

महावीर ने सत्य को वक्तव्य देने की जो प्रक्रिया की है तैयार, उसमें सात स्यात हैं, एक नहीं। इसलिए महावीर का वक्तव्य बहुत जटिल हो जाता था। छोटा सा वक्तव्य महावीर को देना हो, तो वे सात वचनों में देंगे। अगर आपने पूछा कि यह घड़ा है? तो महावीर कहेंगे, स्यात है; परहेप्स इट इ.ज। घड़ा, आप कहेंगे, यह सामने रखा हुआ है। लेकिन महावीर कहते हैं कि कोई यह भी कह सकता है कि यह मिट्टी है, घड़ा नहीं है। तो झगड़ा क्या करोगे! तो महावीर कहेंगे कि एक वक्तव्य तो मैं यह देता हूं कि शायद घड़ा है। दूसरा वक्तव्य तत्काल देता हूं, ताकि कोई भूल-चूक न हो जाए, कि शायद घड़ा नहीं है, मिट्टी है।

लेकिन इस बात की भी संभावना है कि कोई दोनों को इनकार कर दे और कोई तीसरी बात कहे। तो महावीर कहते हैं, मैं तीसरा वक्तव्य यह देता हूं कि शायद घड़ा है भी और शायद घड़ा नहीं भी है। क्योंकि घड़ा मिट्टी भी है और घड़ा घड़ा भी है; और मिट्टी मिट्टी भी है और मिट्टी घड़ा नहीं भी है। तो मैं तीसरा वक्तव्य यह देता हूं।

और महावीर कहते थे, लेकिन और भी अगर कोई वक्तव्य देने वाला हो, तो वह यह भी कह सकता है कि जिस चीज के मामले में साफ नहीं कि यह घड़ा है, कि मिट्टी है, कि दोनों है, कि दोनों नहीं है, जिस चीज के मामले में बहुत साफ नहीं, तो कहना चाहिए, अनिर्वचनीय है। तो महावीर कहते हैं, मैं चौथा वक्तव्य यह देता हूं कि शायद जो है, वह अनिर्वचनीय है, नहीं कहा जा सकता है।

फिर और तीन उनके और जटिल हो जाते हैं। सात! और सात कुल कांबिनेशंस होते हैं। सात से ज्यादा कांबिनेशंस नहीं होते। एक चीज के संबंध में ज्यादा से ज्यादा सात वक्तव्य हो सकते हैं। इसलिए महावीर ने पूरे सात दे दिए। मतलब, आठवां तो होता ही नहीं; सात में सब पूरे हो जाते हैं। एक चीज के संबंध में, हम सोचते हैं, दो ही वक्तव्य होते हैं। वह गलत ख्याल है। आपको पूरे तर्क का ख्याल नहीं है। हम सोचते हैं, ईश्वर है और ईश्वर नहीं है, वक्तव्य पूरे हो गए। नहीं, महावीर कहते हैंः ईश्वर है शायद; शायद ईश्वर नहीं है; शायद ईश्वर है भी और नहीं भी है; और शायद ईश्वर अनिर्वचनीय है; शायद ईश्वर है और अनिर्वचनीय है; शायद ईश्वर नहीं है और अनिर्वचनीय है; और शायद ईश्वर है, नहीं भी है, और अनिर्वचनीय है। ये सात वक्तव्य हुए।

और महावीर कहते हैं कि सात पर लॉजिक पूरा हो जाता है। आठवां वक्तव्य नहीं होता, लॉजिकली आठवां वक्तव्य संभव नहीं है। जितना कहा जा सकता है, वह सात में पूरा हो जाता है।

इसलिए महावीर का जो न्याय है, वह सप्तभंगी न्याय है। सेवन-फोल्ड लॉजिक! सात उसकी पर्त हैं।

यह जो लाओत्से कह रहा है शायद, यह यह कह रहा है कि मैं आग्रह नहीं करता, मैं दावा नहीं करता, मैं कहता नहीं कि मान ही लो, मैं यह भी नहीं कहता कि जो मैंने जाना, वह सत्य होगा ही, मैं इतना ही कहता हूं कि ऐसी मेरी प्रतीति है। और मुझ साधारणजन की प्रतीति का क्या मूल्य है! इसलिए शायद लगाता हूं। क्या मूल्य मेरी प्रतीति का? इस विराट सत्य के समक्ष, इस महाशून्य के समक्ष, इस छोटे से शून्य घड़े का क्या मूल्य है? इसलिए मैं कहता हूं शायद। यह सब गलत भी हो सकता है। यह सब जो मैं कह रहा हूं, मेरी कल्पना भी हो सकती है। यह सब मैं जान रहा हूं, स्वप्न भी हो सकता है। हम तो अपने स्वप्न को भी सत्य कहने का आग्रह रखते हैं, और लाओत्से अपने सत्य को भी स्वप्न कहने का साहस रखता है। बड़ा मजा यह है कि यह साहस आता ही तब है, जब सत्य आता है। जब सत्य आता है, तभी यह साहस आता है। जब तक सत्य नहीं होता, तब तक यह

साहस नहीं होता। जरा भी हमें डर होता है कि जो हम कह रहे हैं वह सत्य है या नहीं, तो हम बहुत जोर से कहते हैं। उस जोर के द्वारा हम सत्य की कमी को पूरा करते हैं। वह सब्स्टीट्यूट है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव में ठहरा है, जहां की वह भाषा नहीं समझता। और लैटिन में उस गांव के पंडितों का समाज जुड़ता है और बातें करता है। मुल्ला भी रोज सुनने जाता है। लोग बड़े चिंतित हुए हैं कि वह समझता क्या खाक होगा! मगर वह नियमित सबसे पहला पहुंचने वाला और सबसे बाद में उठने वाला! आखिर लोगों की बेचैनी बढ़ गई और उन्होंने पूछा कि मुल्ला, तुम लैटिन समझते नहीं हो, एक शब्द तुम्हें आता नहीं, तुम ऐसी तल्लीनता से सुनते हो; क्या तुम समझ पाते होगे!

मुल्ला ने कहा, और तो मैं कुछ नहीं समझता, लेकिन यह मैं समझ जाता हूं कि कौन आदमी कितने जोर से चिल्ला रहा है, वह जरूर असत्य बोल रहा होगा। कौन आदमी बोलने में क्रोध में आ रहा है, मैं समझ जाता हूं कि वह असत्य बोल रहा होगा। कौन आदमी शांति से बोल रहा है, कौन आदमी बोलने में आग्रहहीन है।

तो मुल्ला ने कहा कि अगर मैं भाषा समझता होता, तो मुझे यह समझना इतना आसान न पड़ता। मैं भाषा में उलझ जाता। मैं भाषा समझता ही नहीं हूं, तो मैं चेहरा, आंखें, और सब चीजें देखता हूं, भाषा को छोड़ कर। और मुझे बड़ा आनंद आ रहा है। मुझे बड़ा आनंद आ रहा है। यह मैं बिल्कुल नहीं समझ पाता, क्या कहा जा रहा है, लेकिन यह मैं समझता हूं कि कहने वाला कहां से कह रहा है--जान कर कह रहा है, बिना जाने कह रहा है।

हम जो भी कहते हैं, हमारा गेस्चर, हमारे कहने की एंफेसिस, जोर, हमारा आग्रह, सब बताता है। और ध्यान रहे, जितना हम असत्य कहते हैं, उतने आग्रह से कहते हैं; जितना सत्य कहते हैं, उतना आग्रहशून्य हो जाता है। सत्य अपने आप में पर्याप्त है। मेरे आग्रह की कोई भी जरूरत नहीं है; मेरे बिना भी वह खड़ा हो सकता है।

एक यहूदी विचारक है, सादेह। सादेह से बहुत दफे कहा गया कि तुम अपना जीवन प्रकाशित करो, अपने जीवन के बाबत कुछ कहो, ताकि हमें आसानी हो समझने में कि तुम जो कहते हो, वह क्या है! तो सादेह ने कभी अपना जीवन नहीं लिखवाया, न यह बताया कि उसके जीवन में कोई घटना भी घटी है। सादेह कहता था कि जो मैं कह रहा हूं, अगर वह सत्य है, तो मेरे बिना सत्य रहेगा। मेरे जीवन को जानने की क्या जरूरत है?

जब उस पर बहुत जोर डाला गया, तो उसने एक वक्तव्य में कहा कि अगर जीसस का हम जीवन देखें और फिर बाइबिल पढ़ें, तो बाइबिल कोई पढ़ेगा ही नहीं। पहले अगर जीवन देखें! तो जीसस का जीवन क्या है? एक घुड़साल में वह पैदा हुए। गांव भर में कहीं जगह न मिली जीसस की मां को, पिता को, तो एक जहां घोड़े बंधते थे, उस घुड़साल में वह पैदा हुए।

कथाएं कहती हैं कि वह कुंआरी मरियम से पैदा हुए। यह संदिग्ध बात है, क्योंकि कुंआरी स्त्री से कोई पैदा हो सकता है? तो सादेह कहता है कि साफ बात तो यह है कि जीसस के पिता के बाबत संदेह है कि कौन पिता था। किस स्कूल में पढ़े, इसका कुछ पता नहीं है। पढ़े, इसका भी पता नहीं है। शराबियों, वेश्याओं के घरों में ठहरते रहे, इसका पता है। निम्न वर्ग के लोगों से दोस्ती बांधी, इसका पता है। उनके घरों में रुकते थे, मेहमान बनते थे, जिनके घरों में कोई सज्जन आदमी कदम न रख सके।

तैंतीस साल की उम्र में सूली पर चढ़ाए गए। जिस दिन सूली पर चढ़ाए गए, उस दिन दो चोरों के बीच में सूली लगाई गई। तीन लोगों को सूली दी गई, दो तरफ चोर थे, बीच में जीसस थे। जिन लोगों ने सूली लगाई, उन लोगों ने यह समझ कर कि या तो यह आदमी पागल है, या शरारती है, सूली लगाई।

जिसके बाप का पता नहीं, जिसकी शिक्षा का कोई हिसाब नहीं, जिसके खून का कुछ पक्का नहीं कि वह किस कुलीन घर से आता है कि नहीं आता, घुड़साल में जो पैदा हुआ हो, वेश्याओं के घर में टिका हो, शराबखोरों के बीच में रहा हो, जुआरियों के घर में रात सोता हो, और तैंतीस साल की उम्र में जिस आदमी को दो चोरों के बीच में फांसी की सजा लगा दी जाए, क्या इसका यह जीवन जान कर कोई बाइबिल पढ़ने को राजी होगा? और यह जीवन जान कर क्या बाइबिल पढ़ने जैसी लगेगी?

नहीं लगेगी। वह तो हम पहले उलटा करते हैं। पहले बाइबिल पढ़ लेते हैं; तो फिर इस जीवन में दिक्कत नहीं मालूम पड़ती। अगर इसको ही पढ़ कर--यह इंट्रोडक्शन में लिखा हो और फिर किसी से कहा जाए अब पढ़ो, आगे इस महापुरुष के वचन संगृहीत हैं, फिर कोई नहीं पढ़ेगा।

तो सादेह ने कहा कि मेरे जीवन को छोड़ो। इससे क्या फर्क पड़ता है कि सादेह सिगरेट पीता है कि नहीं पीता, कि सादेह शराब पीता है कि नहीं पीता। और जो सादेह कहता है, अगर वह सच है, तो सादेह की सिगरेट पीना उसके सच को झूठ न कर पाएगी। और सादेह जो कहता है, वह अगर झूठ है, तो वह अगर सिर्फ शुद्ध पानी ही पीता हो और कुछ न पीता हो, तो भी वह सच न हो पाएगा। तो उसने कहा, मुझे छोड़ो। मेरे बीच में आने की कोई जरूरत नहीं है। जो कहा है, उसे सीधा देख लो।

यह शायद स्वयं को हटाने की प्रक्रिया है। यह शायद लगा कर यह आदमी यह कह रहा है कि मुझे अब छोड़ा जा सकता है। मैं कोई आग्रह नहीं करता, इसलिए विवाद में मैं नहीं हूं। यह सीधा सत्य रख देता हूं सामने, मैं हट जाता हूं। जब मैं कहता हूं, यही सत्य है, तो मैं विवाद में खड़ा रहूंगा। क्योंकि अगर किसी ने कहा नहीं है, तो यह जिम्मा मुझ पर होगा कि मैं सिद्ध करूं कि है। मैं कहता हूं, शायद यह सत्य है। मैं विवाद से बाहर हो गया। अब यह सत्य अकेला रहेगा। यह अगर राजी कर ले, तो काफी है। और अगर न राजी कर पाए, अगर सत्य ही राजी न कर पाए, तो फिर और कौन राजी कर पाएगा?

इसलिए लाओत्से जैसे लोग शायद से उस सत्य को कहते हैं जो उनके लिए पूरी तरह है, जिसके लिए वे पूरी तरह आश्वस्त हैं। यह बड़ी उलटी बात है। झूठ बोलने वाले शायद से कभी शुरू नहीं करते; सत्य बोलने वाले अक्सर शायद से शुरू करते हैं। झूठ बोलने वाले बहुत आग्रहपूर्ण होते हैं; सत्य बोलने वाले का कोई आग्रह नहीं होता।

जीसस सूली पर लटकाए जा रहे हैं। तब पाइलट ने, जिसने उन्हें सूली की सजा दी, उसने उनसे पूछा है कि मरने के पहले युवक, एक बात मुझे बता दोः व्हाट इ.ज ट्रुथ? यह सत्य क्या है, जिसके लिए तुम परेशान हुए और जिसके लिए लोग तुम्हें सूली दे रहे हैं? जीसस ने कोई जवाब नहीं दिया; चुप रह गए। पाइलट ने दुबारा पूछा। जीसस ने आंखें उठा कर देखा, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। दो हजार साल हो गए। दो हजार साल में नहीं तो दो हजार लोगों ने सवाल उठाया होगा कि जीसस को अगर पता था, तो पाइलट को कहना चाहिए था। या कि जीसस को पता नहीं था? पाइलट ने क्या सोचा होगा, इस युवक को पता है?

नहीं सोचा होगा। क्योंकि एक कथा है--प्रमाणित तो नहीं, लेकिन प्रचलित है--एक कथा है कि तीस साल बाद जब पाइलट रिटायर हो गया, क्योंकि पाइलट गवर्नर था, रोमन गवर्नर था। उन दिनों जीसस जिस इलाके में पैदा हुए, वह रोमन साम्राज्य में था। पाइलट तो वाइसराय था। तीस साल बाद जब वह सब काम से मुक्त हो गया, रिटायर हो गया, तीस साल बाद बूढ़े पाइलट से किसी ने पूछा कि तुम्हें ख्याल है कि तीस साल पहले तुमने एक आदमी को सूली की सजा दी थी, जीसस नाम के युवक को? पाइलट ने सिर पे हाथ लगाया और

उसने कहा कि कुछ याद नहीं पड़ता, क्योंकि हजारों लोगों को सजाएं दी हैं। कौन था यह जीसस? यह कौन आदमी था?

जिस जीसस के नाम के पीछे किसी दिन आधी दुनिया पागल हो गई, उसको सूली देने वाला तीस साल बाद भूल गया था। उसको पता भी नहीं था कि यह कौन आदमी था। तो यह समझना आसान है कि पाइलट ने समझा होगा, इसको क्या पता, कुछ पता नहीं है। छोकरा है, दिमाग खराब हो गया, फिजूल की बातें कहता रहा, मुश्किल में पड़ गया। दया-भाव से देखा होगा।

लेकिन जीसस का कोई जवाब न देना बड़ा विचारणीय है।

ऐसा भी नहीं है कि जीसस जवाब देने में कमजोर थे। क्योंकि इसके पहले उन्होंने बहुत जवाब दिए हैं और बड़े कीमती जवाब दिए हैं। वह उतने कीमती जवाब तो दे ही सकते थे। पर बिल्कुल चुप रह गए! थोड़ा सा तो... यह तो मौका भी था। यह तो बहुत बड़ा मौका था कि अगर जीसस का जवाब पाइलट को जंच जाए, तो शायद अभी सूली भी बच जाए। इस मौके पर तो जवाब देना ही था। सब कुछ बदल सकता था। अगर पाइलट को समझ में आ जाए कि जीसस ठीक कहते हैं, तो मुक्त हो सकते थे।

शायद इसीलिए जीसस ने जवाब नहीं दिया। क्योंकि सत्य की ओट में अपने को बचाने की कोई संभावना उचित नहीं है। कहीं इस कारण ही बात न बदल जाए! नहीं तो सदा लोग यही कहेंगे कि जीसस ने जवाब दिया, पाइलट को समझा लिया, सूली से बच गए। क्योंकि यह जीसस से सड़क पर लोग रोक कर पूछ लेते थे, यह जवाब देता था। आधी रात में लोग जवाब लेने आ जाते थे और जवाब देता था। इसने कभी जवाब देने से मना नहीं किया। यह पहला ही मौका है कि सूली पर इससे पूछा गया, सत्य क्या है? और यही तो इसकी जिंदगी भर की देशना थी कि सत्य क्या है! यह तो उसे बोल ही देना था। कुछ तो बोल ही देना था। यह चुप रह जाना बहुत हैरानी का है।

लेकिन जो लोग जीसस को समझ सकते हैं, जो जीसस को भीतर से समझ सकते हैं, वे कहेंगे, इस मौके पर जीसस का चुप रह जाना केवल इसी कारण से है कि इस वक्त कुछ भी सत्य के लिए बोलना व्यक्ति को बचाने की बात होती। उसमें आग्रह हो जाता; वह सत्य अनाग्रह नहीं हो सकता था। उसमें ऐसा हो जाता कि शायद मैं अपने को बचा लूं इसकी ओट में। इसलिए वह चुप रह गए हैं।

लाओत्से कहता है, शायद यह उसका प्रतिबिंब मात्र है।

प्रतिबिंब कहने में बड़ी दूर-दृष्टि है। प्रतिबिंब कहने की दूर-दृष्टि यह है कि अगर कुछ भी भूल-चूक हो तो वह लाओत्से की हो जाएगी, सत्य की नहीं होगी। और जब हम कहते हैं, यही सत्य है, तो फिर कुछ भी भूल-चूक हो तो वह सत्य की हो जाएगी। सदा से जानने वालों का यह ढंग रहा कहने का कि जो भी भूल-चूक हो, वह हमारी। अगर सत्य को समझने में आप कहीं विकृत कोई व्याख्या कर लें, तो सत्य को समझाने वाला कहेगा, वह भूल-चूक मेरी है। मेरे कहने में ही कहीं कोई भूल हो गई होगी। मेरे समझाने में ही कहीं कोई भूल हो गई होगी। सत्य में तो भूल नहीं होती, भूल मेरी हो सकती है। लाओत्से यह कह कर कि यह प्रतिबिंब है, प्रतिफलन है, सत्य को मैंने ऐसे देखा जैसे दर्पण में किसी की तस्वीर को हम देखें, उसमें भूल-चूक हो सकती है।

दर्पण तस्वीर को लंबा करके बता सकता है, छोटा करके बता सकता है। आपने दर्पण देखे होंगे, जिनमें आप बहुत बड़े हो गए। दर्पण देखे होंगे, जिसमें बहुत छोटे हो गए। और एक बात तो पक्की है कि आपकी बाईं आंख दाईं तरफ दिखती है और दाईं आंख बाईं तरफ दिखती है दर्पण में। चीजें वैसी ही नहीं दिखतीं जैसी हैं, उससे उलटी हो जाती हैं। वह तो आपको ख्याल में नहीं आता, क्योंकि आपको खुद ही पक्का पता नहीं, कौन सी

आपकी बाईं आंख है और कौन सी आपकी दाईं आंख है। इसलिए दर्पण में आपको कभी खड़े होकर ख्याल नहीं आता कि उलटे दिखाई पड़ रहे होंगे। तो किताब का पन्ना दर्पण के सामने करिएगा, तब आपको पता चलेगा कि अरे ये सब अक्षर उलटे हो गए! आप भी हो गए हैं। पर आपको अपने सीधे होने का पता ही नहीं है, तो उलटे होने का कैसे पता चल सकता है? एक किताब को दर्पण के सामने करिएगा, तब आपको पता चलेगा कि क्या गड़बड़ हुई जा रही है। ये तो सब अक्षर उलटे हो गए। आप भी इतने ही उलटे हो जाते हैं।

अभी एक लोगों के चेहरों पर काम करने वाले वैज्ञानिक ने खोज-बीन की है, और सही है बहुत दूर तक, कि आपके चेहरे के दोनों हिस्से एक जैसे नहीं होते हैं। अगर आपकी नाक की बिल्कुल सीध में रेखा खींच कर दो हिस्से कर दिए जाएं... । उस वैज्ञानिक ने जो प्रयोग किए हैं, वे ये हैं कि आपकी एक तस्वीर लेगा, उसको ठीक बीच से काट कर दो टुकड़े कर देगा। आपकी एक दूसरी तस्वीर लेगा, ठीक वैसी पहली जैसी। उसको भी काट कर दो टुकड़े कर देगा। फिर इसका बायां टुकड़ा उसके बाएं टुकड़े से जोड़ देगा, इसका दायां टुकड़ा उसके दाएं टुकड़े से जोड़ देगा।

और आप हैरान होंगे कि दो अलग आदमियों की तस्वीरें बन जाएंगी, एक आदमी की नहीं। क्योंकि आपका आधा हिस्सा बिल्कुल अलग होता है, दूसरा आधा हिस्सा बिल्कुल अलग होता है। अगर आपके इस आधे हिस्से को इस आधे हिस्से से अलग कर दिया जाए और इसी जैसा आधा हिस्सा इसमें जोड़ दिया जाए, तो बिल्कुल दूसरी, दूसरे आदमी की शक्ल बनती है। और अगर ये दोनों की शक्लें आपके पास रख दी जाएं, तो आप कभी न कहेंगे कि यह एक ही आदमी का चेहरा है। आप कहेंगे, ये दो आदमी हैं।

इतना रूपांतरण हो जाता है आईने में! लेकिन आपको पता नहीं चलता।

लेकिन प्रतिबिंब कहने का अर्थ यह है कि सत्य जिस माध्यम में प्रतिफलित होगा, वह माध्यम बहुत कुछ कर जाएगा; उसकी जिम्मेवारी सत्य की नहीं है। लेकिन हम माध्यम में ही सत्य को जान सकते हैं।

एक माध्यम है अहंकार। अहंकार अंधेरे जैसा माध्यम है। जैसे अंधेरे में कोई सत्य को जाने, कुछ जान नहीं पाता, टटोल भी नहीं पाता; ग्रोपिंग इन दि डार्क--अंधेरे में। फिर भी हम अंधेरे में भी सत्य के बाबत बातें तय कर लेते हैं। कुछ पता नहीं होता, फिर भी हम तय कर लेते हैं। लोग बातें कर रहे हैंः आत्मा है, ईश्वर है, नर्क है, मोक्ष है, स्वर्ग है। वे सब अंधेरे में बातें कर रहे हैं। उन्हें कुछ पता नहीं है।

नसरुद्दीन एक मस्जिद में बैठा हुआ है। और पुरोहित ने कहा है--बहुत समझाने के बाद स्वर्ग के बाबत कि लोग एकदम आतुर हो गए हैं स्वर्ग जाने के लिए--पुरोहित ने जोर से चिल्ला कर कहा कि जिनको स्वर्ग जाना हो, वे खड़े हो जाएं! सारे लोग खड़े हो गए, एक मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़ कर।

पुरोहित थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि मुल्ला, क्या तुम्हारे इरादे स्वर्ग जाने के नहीं हैं?

मुल्ला ने कहा कि जो बात बहुत साफ न हो, उसके लिए खड़े होने की झंझट भी हम नहीं करते। अभी हमें बैठना साफ है। और फिर मुल्ला ने कहा कि जिस स्वर्ग में खड़े होकर जाना पड़े, हम न जाएंगे। क्या बैठे-बैठे नहीं जाया जा सकता? एक तो साफ नहीं पक्का कि कहां जा रहे हैं, कोई है जगह जाने की कि नहीं है जगह। अकारण खड़े हो गए हैं ये लोग। और मुल्ला ने कहा कि देखता हूं कि अगर ये खड़े होने वाले पहुंच गए, तो मैं बैठा-बैठा पहुंच जाऊंगा। तो कौन जाता है, देखते हैं।

स्वर्ग कितना महत्वपूर्ण मालूम पड़ने लगता है मन को! मोक्ष की बड़ी आकांक्षा होने लगती है। सत्य को पाने की बड़ी वासनाएं जगने लगती हैं। बिना कुछ साफ हुए कि किस चीज को... सब अंधेरे में हैं। अंधेरे में आंख

बंद करके सपना देखने लगते हैं। अहंकार अंधेरे जैसा है। उसमें जो सत्य हम बनाते हैं, वे बिल्कुल मनोकल्पित हैं। अपने ही भीतर निर्मित हैं, उनका सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है।

अस्मिता प्रकाश जैसी है। लेकिन अस्मिता के प्रकाश में भी जो सत्य दिखाई पड़ते हैं, वे भी प्रतिफलन से ज्यादा नहीं हैं। वे भी रिफ्लेक्शंस हैं। जहां न अहंकार रह जाता और न अस्मिता, जहां मैं बचता ही नहीं हूं, वहीं वह जाना जाता है, जो प्रतिबिंब नहीं है, स्वयं है। लेकिन तब कहने वाला नहीं होता।

लाओत्से आखिरी सीमा से कह रहा है, सीमांत से। आखिरी सीमा से, जहां अस्मिता भी खो जाएगी। जहां अहंकार खो गया, अब जहां मैं का आखिरी, शुद्धतम रूप बचा है, वह भी बुझ जाएगा, वहां से वह कह रहा हैः नहीं जानता मैं, कहां से जन्मा यह सब, कौन है इसका जन्मदाता, किसका है यह पुत्र, शायद यह प्रतिबिंब है उसका जो कि परमात्मा के भी पहले था। ये आखिरी वक्तव्य हैं, जो सीमाओं पर दिए जाते हैं--सीमांत वक्तव्य। इसके पार आदमी खो जाता है।

फिजिकली भी लाओत्से के बाबत सच है कि इस किताब को लिखने के बाद लाओत्से खो गया--फिजिकली भी! मैं तो मेटाफिजिकली कह रहा हूं कि इस सीमांत के बाद आदमी खो जाता है, लेकिन लाओत्से के तो फिर शरीर का भी पता नहीं चला इस किताब लिखने के बाद। लाओत्से कहां गया? लाओत्से बचा कि मरा? किसी खाई-खड्ड में गिरा? लाओत्से की कब्र कहां? लाओत्से को किसने दफनाया? वह किस क्षण, किस घड़ी, किस वर्ष में समाप्त हुआ, इस पृथ्वी को छोड़ा, फिर कुछ भी पता नहीं है। यह किताब आखिरी है और यह किताब पहली है।

मुल्ला नसरुद्दीन को किसी मित्र ने कहा है, जो कि नया-नया पायलट हो गया है, हवाई जहाज उड़ाना सीख गया है, उसने मुल्ला को कहा कि तुम बैठो, तुम्हें मैं जरा घुमा दूं। मुल्ला को उसने घुमाया और जब वापस उतारा, तो मुल्ला ने कहा, थैंक यू फॉर योर टू ट्रिप्स! तुम्हारी दो ट्रिप्स के लिए धन्यवाद! उसने कहा कि दो? एक ही थी। मुल्ला ने कहा, माई फर्स्ट एंड लास्ट। उसने कहा, दो--मेरी पहली और आखिरी। नमस्कार!

यह लाओत्से की पहली और आखिरी किताब है। यह पहला और आखिरी वक्तव्य है। इसके पहले उसने कुछ लिखा नहीं। इसके बाद उसका पता नहीं कि वह आदमी कहां गया। यह सीमांत वक्तव्य है। यह उसने उस जगह से, जहां जीवन फिर बादलों में खो जाता है, अस्मिता भी जहां शून्य में लीन हो जाती है, आखिरी क्षण, जहां से उस खाई में छलांग लग जाती है, फिर जहां से कोई लौटना नहीं है, जहां से फिर कोई आवाज भी चिल्लाए, चीखे-पुकारे, तो हम तक नहीं पहुंचती है, यह आखिरी बार्डरलैंड से कही गई बात है। शारीरिक रूप से भी, आध्यात्मिक रूप से भी।

और शायद शारीरिक रूप से लाओत्से का तिरोहित हो जाना इसी बात की खबर देने के लिए है कि इस सीमा के बाद फिर रुकने का कोई मतलब नहीं है। शारीरिक रूप से भी तिरोहित हो जाना इसी बात की सूचना के लिए है कि इसके बाद बचने का कोई अर्थ ही नहीं होता। इस किताब को सौंप कर लाओत्से जो विदा हुआ, फिर किसी को दिखाई नहीं पड़ा।

मैंने आपको कहा था, यह चीन की सीमा पर एक चुंगी चौकी पर बैठ कर लिखी गई किताब है--आखिरी सीमा पर। चुंगी चौकी के अफसर को तीन दिन में यह किताब लिख कर, सौंप कर लाओत्से जो बाहर गया... । वह चुंगी चौकी का आफिसर जब तक किताब देख रहा था कि क्या लिखा है--बड़ी किताब नहीं है यह, बहुत छोटी सी किताब है, तीन दिन में ही लिखी है--जब तक वह इस किताब के पन्ने उलटा रहा था और बाहर लौट कर आकर उसने पूछा कि कहां गया वह आदमी? किसी ने, कोई बता नहीं सका कि किसी ने उसको देखा भी

कमरे से निकलते हुए। जो दो-चार लोग थे, उन्होंने कहा, हमें पता नहीं कौन कमरे से बाहर निकला और कौन कहां गया। चरण-चिह्न खोजे गए, वे कहीं मिले नहीं। आदमी दौड़ाए गए कि वह कहां गया लाओत्से? यह बहुत अदभुत किताब रख गया है लिख कर! इस आदमी को पकड़ो!

पर इस आदमी का फिर कोई पता नहीं लग सका। चीन के सम्राट ने बड़ी खोज-बीन करवाई कि लाओत्से का कुछ पता लगे। क्योंकि वह जो दे गया है, हमें पता ही नहीं था। यह आदमी अस्सी साल तक वहां था, हमें पता ही नहीं था। क्योंकि हम आदमी को नहीं पहचानते, हम शब्दों को पहचानते हैं। फिर इसकी बहुत खोज-बीन की गई, लेकिन इस आदमी का कोई पता न लगा।

शायद वह इसी सूचना के लिए है। क्योंकि ऐसे जो व्यक्ति हैं, वे कहते हैं जो, सिर्फ कहते ही नहीं, वैसा अपने जीवन, अपने व्यक्तित्व से भी इशारा कर देते हैं। इसका तिरोहित हो जाना इस बात की खबर है कि अस्मिता भी जहां से शून्य हो जाती है, वहां दिए गए वक्तव्य हैं। और वहां भी वह कह रहा है, प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं।

काश, हम पहचान पाएं कि क्या स्वप्न हैं, तो आसान हो जाता है पहचानना कि सत्य क्या है! काश, हम पहचान पाएं कि क्या प्रतिबिंब है, तो आसान हो जाता है पहचानना कि मूल क्या है! लेकिन हम अगर प्रतिबिंब को ही सत्य समझें और स्वप्न को ही यथार्थ समझें, तो फिर पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन हम तो ऐसे गहरे स्वप्न में खोए होते हैं, ऐसे गहरे प्रतिबिंबों में खोए होते हैं कि हमें तथ्यों का ही पता नहीं होता, सत्यों की तो बात बहुत दूर है।

आज दोपहर एक मित्र आए थे। वह एक रूसी पद्धति है फिल्म डायरेक्शन की, उसके विशेषज्ञ हैं। ध्यान के संबंध में वह मुझ से बात करते थे। तो वह कहने लगे कि आप ध्यान के लिए जो कहते हैं, करीब-करीब हमारी जो पद्धति है फिल्म डायरेक्शन की, उसमें बड़ा तालमेल है। वह कहने लगे कि यह जो पद्धति है, रूसी पद्धति है, अभिनेताओं को तैयार करने की, वह ऐसी है कि अभिनेता की सेंसिटिविटी जो है, संवेदनशीलता जो है, वह इतनी प्रखर हो जानी चाहिए कि अगर अभिनेता कागज का फूल हाथ में रख कर कह रहा है कि यह गुलाब का फूल है, तो उसे सुगंध गुलाब की आनी चाहिए। अगर उसे सुगंध साथ में न आ जाए, अगर वह इतना तल्लीन न हो जाए कि इस कागज के फूल से उसे गुलाब की सुगंध न आने लगे, तो उसके चेहरे पर वे भाव नहीं आ सकते जो कि गुलाब के पास आने चाहिए थे। और अगर उसके चेहरे पर वे भाव लाने हैं जो कि गुलाब के पास आते हैं, तो उसमें इतनी संवेदना होनी चाहिए कि वह इस कागज के फूल को गुलाब का फूल जान ले, स्वीकार कर ले। यह गुलाब का फूल हो जाए, तो उसके नासापुट कंपने लगें, उसकी आंखें गुलाब की सुर्खी लेने लगें, उसके गालों पर गुलाब का रंग दौड़ जाए! वह गुलाब जीवित हो जाए, तो ही वह एक्ट कर पाएगा, अभिनय कर पाएगा।

तो मैंने उनसे कहा कि ध्यान इसके बिल्कुल विपरीत है। यह जो रूसी पद्धति है, यह ध्यान की पद्धति नहीं है। अगर ठीक समझें, तो इसकी जो प्रक्रिया और प्रशिक्षण है, वह ट्रेनिंग फॉर इमेजिनेशन है, कल्पना की प्रशिक्षा है। अगर एक व्यक्ति अपनी कल्पना को इतना प्रगाढ़ कर ले कि कागज का फूल उसे गुलाब का असली फूल मालूम होने लगे, तो भी गुलाब का फूल नहीं हो जाता वहां, कागज का ही फूल रहता है। पर इसे कैसे मालूम होता है?

यह इतना प्रोजेक्ट करता है, यह अपने मन के गुलाब के फूल को इस कागज के फूल पर ऐसा आरोपित करता है कि कागज का फूल तो विदा हो जाता है और कल्पना का स्वप्न-फूल प्रकट हो जाता है। उससे ही इसे

सुगंध आ सकती है, कागज के फूल से तो आ नहीं सकती। इसकी कल्पना इतनी स्थापित हो जाए इस फूल में कि यह गुलाब का फूल बन जाए! मगर यह इमेजिनेशन है, मेडिटेशन नहीं है। यह कल्पना है, ध्यान नहीं है।

ध्यान का तो अर्थ यह है कि प्रक्षेपण बिल्कुल न हो। अगर यह कागज का फूल है, तो जिस कागज का फूल है, उसकी ही गंध आनी चाहिए। जिस कागज का फूल, क्योंकि कागजों में गंध होती है। अगर आप रूसी कागज की किताब देखें, तो आपको गंध अलग मिलेगी। क्योंकि रूस का वृक्ष और चीड़, जिनसे वह कागज बनता है, अलग हैं। अगर आप जापानी किताब देखें, उसमें गंध अलग होती है। मैं तो किताबों को देखते-देखते ऐसा हैरान हुआ कि अगर आंख बंद करके मेरी नाक के पास किताब लाई जाए, तो मैं कह सकता हूं किस देश की है। उनकी गंध अलग है। क्योंकि हर मुल्क की लकड़ी की गंध अलग है, जिससे वे बनते हैं कागज, वे सब के भिन्न हैं।

तो कागज का फूल किस कागज का बना है, इसकी गंध अगर आ जाए, तो मैं कहूंगा वह आदमी ध्यान में है। तथ्य को वैसा ही जान लेना जैसा वह है, उसमें कुछ अपनी तरफ से न जोड़ना।

लेकिन हम सब जोड़ते हैं। यह कोई अभिनेता ही जोड़ता है, ऐसा नहीं। हम सब जोड़ते हैं। हम सब वह देखते हैं, जो नहीं है। हम सब कागज के फूलों में गुलाब के फूल देखने में कुशल हैं--हम सब!

जब कोई व्यक्ति किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तो जो देखता है, वह है नहीं कहीं। जब कोई व्यक्ति किसी की घृणा में पड़ जाता है, तो जो वह देखता है, वह है नहीं कहीं। और तटस्थ तो हममें से कोई कभी होता नहीं। कुछ न कुछ में हम पड़े होते हैं, या तो प्रेम में, या घृणा में। या तो इधर, या उधर। हम कोई पक्ष लिए होते हैं। इसीलिए तो यह दुर्घटना घटती है कि जितने बड़े प्रेम से विवाह हो, उतनी ही जल्दी असफल हो जाता है। उसका कारण है। क्योंकि इतना बड़ा गुलाब का फूल देखा जाता है, फिर वह पाया नहीं जाता। भारतीय विवाह कभी असफल नहीं हो सकता, क्योंकि हम कोई कल्पना ही नहीं करते! हम कोई प्रेम ही नहीं करते! हम तो कागज के फूल से ही शुरू करते हैं। अब इससे ज्यादा और क्या होगा? इससे बदतर क्या होने वाला है? इससे बदतर कुछ हो नहीं सकता।

प्रेम का अर्थ है रूमानी आंख। वह कुछ ऐसी चीजें देख लेती है, जो कहीं भी नहीं हैं। फिर धीरे-धीरे जो नहीं है, उसके साथ जैसे-जैसे रहिएगा, वह विदा होता जाएगा; और जो है, वह प्रकट होने लगेगा। और जब वह प्रकट होगा, तब आपको लगेगा कि कोई चीटिंग हो गई, कोई धोखा हो गया। बाकी धोखा कुछ नहीं हुआ है। आपने कुछ प्रोजेक्ट किया था, आपने कुछ डाला था, जो था नहीं वस्तुओं में।

हम एक अर्थ में, यह जो डालने की कला है, उससे ही जी रहे हैं। हर चीज में हम वह देखते हैं, जो वहां नहीं है। और तब हम एक ऐसी दुनिया अपने आस-पास निर्मित कर लेते हैं, जो बिल्कुल सपनों की है। इसलिए रोज रोना पड़ता है, क्योंकि सपने जरा ही टकरा जाते हैं कहीं और कांच की तरह चकनाचूर हो जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन घर आ रहा है बहुत से कांच के सामान लेकर। कुछ ख्याल में थे, सब गिर पड़ा, चकनाचूर हो गया। रास्ते पर टुकड़े बिखर गए। मुल्ला खड़े होकर देख रहा है उनको। भीड़ लग गई। लोग भी सकते में हैं कि वह कुछ बोल भी नहीं रहा। कुछ कहता भी नहीं। सब चीजें टूट-फूट कर पड़ी हैं।

फिर मुल्ला ने ऊपर नजर उठाई और उसने कहा, व्हाट इ.ज दि मैटर? क्यों यहां खड़े हो? यू ईडियट्स, यहां किसलिए खड़े हो? हैव नॉट यू सीन एनी फूल बिफोर? मुल्ला ने कहा, क्या तुमने किसी मूरख को पहले नहीं देखा? हम एक मूरख हैं कि हम ये सब चीजें तोड़ कर खड़े हैं; आप किसलिए खड़े हैं? क्या तुमने कोई मूरख पहले नहीं देखा?

घर मुल्ला लौटा है खाली हाथ। पत्नी ने कहा कि वह सब सामान? मुल्ला ने कहा, कांच का था, जितनी दूर चला, उतना ही काफी है। घर तक आने का क्या भरोसा की बात कर रही है? जितनी दूर चला, उतना काफी है। सामान ही कांच का था।

हम सब जिंदगी के आखिरी पड़ाव में ऐसा ही पाते हैं। रोज चीजें टूटती चली जाती हैं, रोज चीजें टूटती चली जाती हैं। आज एक टूटती है, कल दूसरी टूटती है, परसों तीसरी टूटती है। फिर भी हमें ख्याल नहीं आता कि जो सामान हम लेकर चल रहे हैं, वह कांच का है। सपने, प्रोजेक्शंस, ख्याल--वे टूटते हैं रोज। घर बनाते हैं ताश के पत्तों के, बिखर जाते हैं। जरा सा हवा का झोंका। और कैसे अजीब हैं हम लोग कि हवा के झोंके पर नाराज होते हैं! और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि औरों के महलों पर चलाओ ये हवाएं, कम से कम हमारे महल को तो बचाओ! कितनी प्रार्थनाएं कर रहे हैं! लेकिन कोई प्रार्थना कागज के बनाए गए मकानों को नहीं बचा सकती है और कोई परमात्मा नहीं बचा सकता।

नावें बना लेते हैं कागज की और यात्रा पर निकल जाते हैं अनंत सागर की खोज में। हैरानी यह नहीं है कि आप कभी पहुंचते नहीं, हैरानी यह है कि दो-चार कदम भी आपकी नाव चल जाती है। मिरेकल है! वही तो मुल्ला ने कहा कि इतनी दूर चला, इट इ.ज इनफ! वही मैं चकित हुआ, मुल्ला ने कहा, कि इतनी दूर तक कैसे आ गया! कांच का सामान है।

लाओत्से कह रहा है कि सत्य की प्रतीति उसे जो हो रही है, वह भी एक स्वप्न है। दैट टू इ.ज ए ड्रीम। वह भी स्वप्न में देखा गया। वह भी वह नहीं कह रहा कि सत्य है। वह कह रहा है कि जब तक मैं बचा हूं, थोड़ा सा भी मैं बचा हूं, तो मैं स्वप्न देख ही लूंगा। मेरा होना स्वप्न के देखने की क्षमता है। मैं बचा हूं, तो मैं प्रतिबिंब बना लूंगा। मैं उसे न देख पाऊंगा, जो है। क्योंकि जो है, उसे देख कर हालत वही होती है, जो पतंगे की होती है। दौड़ता है और लौ में जल जाता है और नष्ट हो जाता है। लौ ही हो जाता है।

बड़े से बड़ा सत्य भी प्रतिबिंब है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा कोई सत्य नहीं है, जो प्रतिबिंब के बाहर हो। ऐसा सत्य है। उसी की खोज में ये सारे वक्तव्य हैं! लेकिन प्रतिबिंब मिटेंगे आपके मिटने के साथ।

ऐसा समझें, एक फिल्म चल रही है पर्दे पर। आप सब आकर्षित होकर पर्दे पर देखते रहते हैं। भूल ही जाते हैं कि पर्दे पर कुछ भी नहीं है; प्रोजेक्टर, वह जो पीछे है। प्रोजेक्टर तो पीछे है। उसे तो कोई देखता भी नहीं लौट कर। लौट कर कभी आप धन्यवाद भी नहीं देते कि धन्यवाद प्रोजेक्टर! बहुत बढ़िया फिल्म थी! प्रोजेक्टर की कोई बात ही नहीं करता। लेकिन आपको पता होना चाहिए कि पर्दा बिल्कुल खाली है; सब खेल प्रोजेक्टर का है। और प्रोजेक्टर पीछे है, उसकी तरफ पीठ किए बैठे रहते हैं। और जिस तरफ आंख किए बैठे हैं, वहां कुछ भी नहीं है।

लाओत्से जैसे लोगों का जानना है कि वह जो हमारा अहंकार है, अस्मिता है, वह जो हमारा मैं है--कितना ही शुद्ध हो--वह प्रोजेक्टर है। वह ड्रीम्स पैदा करता है, वह स्वप्न पैदा करता है। वह चीजों को वैसा दिखा देता है, जैसा हम देखना चाहते हैं।

लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। मैं देखता हूं, कोई ध्यान करे। कोई दो दिन ध्यान करता है, वह आकर कहता है कि क्या ख्याल हैं आपके, मुझको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है! यह ठीक है न? गति तो ठीक हो रही है? इनको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है; गति ठीक हो रही है? कि मुझे एक सफेद बिंदु दिखाई पड़ रहा है प्रकाश का; उपलब्धि बड़ी है कि छोटी? कि मुझे जरा रीढ़ में थोड़ी सी सरसराहट मालूम पड़ती है; कुंडलिनी जाग रही है कि नहीं? रोज दो घंटे एक आदमी बैठ जाता है आंख बंद करके--उसमें भी कई दफे बीच-बीच में

खोल कर देख लेता है--सोचता है कि सत्य बिल्कुल हाथ में आ गया; क्योंकि रीढ़ में थोड़ी सी सरसराहट मालूम होती है।

और एक लाओत्से है! वह कह रहा है कि शून्य सामने खड़ा है, सब खो गया, फिर भी यह नहीं कहता कि यह सत्य है; कहता है, प्रतिबिंब है शायद। शायद जो परमात्मा के भी पहले था, उसका प्रतिफलन है, सिर्फ एक उसकी छवि है, एक छाया है।

यह इतना ही आर्डुअस है मार्ग! इतना ही तपश्चर्यापूर्ण है! इतने ही सजग होने की बात है।

मन लुभाने की बहुत बातें करता है। वह कहता है, जरा सा कुछ चिंदी मिल जाए, तो ऐसा लगता है कि पूरी कपड़े की मिल हाथ लग गई। और मन मानने का करता है। और अगर ऐसे आदमी से कह दो कि यह कुछ नहीं, तो फिर दुबारा नहीं आता। वह आप पर नाराज हो जाता है। वह मैंने करके देखा। फिर मैंने कहा, वह बेकार है; वह आता ही नहीं फिर दुबारा। वह नाराज ही हो जाता है। वह कहता है कि क्या! इतना ऊंचा सत्य लेकर गए कि हमने कहा कि भीतर हमको लाल रंग दिखाई पड़ रहा है, आकाश में बादल चलते दिखाई पड़ते हैं, और आपने कह दिया यह कुछ भी नहीं है! वह दूसरे गुरु की तलाश में गया, जो कहेगा कि यह कुछ है।

मैंने यह अनुभव किया वर्षों कि अगर किसी को कह दो कि यह कुछ भी नहीं है, तो फिर वह आता ही नहीं। वह इसलिए नहीं आया था कि उसे कुछ खोजना है; वह इसलिए आया था कि आप गवाह बन जाएं कि यह कुछ है। क्षुद्रतम मन की कल्पनाएं भारी मालूम पड़ती हैं।

अदभुत लोग हैं लाओत्से जैसे लोग!

बुद्ध ने कहा है, जब तक मुझे कुछ भी दिखाई पड़ता रहेगा, तब तक मैं मानूंगा कि अभी सत्य तक नहीं पहुंचा। जब तक कुछ भी दिखाई पड़ता रहेगा, तब तक मैं मानूंगा, अभी तक मैं सत्य तक नहीं पहुंचा। जहां तक दृश्य होगा, वहां तक नहीं ठहरूंगा। मुझे वह जगह चाहिए, जहां दृश्य न रह जाए, जहां कुछ भी दिखाई न पड़े, जहां कुछ भी न बचे, जहां निखालिस खाली होना मात्र बचे, उसके पहले नहीं।

इसलिए बुद्ध छह साल तक भटके। जिस गुरु के पास जाते... कोई गुरु उनको प्रकाश का दर्शन करा देता। बुद्ध कहते, हो गया प्रकाश का दर्शन, लेकिन अब? इसके आगे?

अब और आगे क्या है! प्रकाश का दर्शन हो गया, बहुत हो गया।

पर बुद्ध कहते, प्रकाश का दर्शन हो गया, लेकिन कुछ भी तो नहीं हुआ। हुआ क्या? ठीक है, प्रकाश का दर्शन हो गया। अब? मैं तो वहीं के वहीं खड़ा हूं।

तो गुरु उनको हाथ जोड़ने लगे। उनसे कहने लगे, अब तुम किसी और के पास जाओ। हम तो जो जानते थे, वह हमने करवा दिया।

छह साल बुद्ध एक-एक गुरु, जो बिहार में उपलब्ध था उस वक्त, उसके पास गए। जो उसने कहा, वह किया। करके बताया कि यह हो गया। अब? अभी कोई सत्य तो दिखाई नहीं पड़ता।

हरे, पीले, लाल रंग दिखाई पड़ने से कोई सत्य दिखाई पड़ जाएगा? कि आपके भीतर एक दीए की ज्योति दिखाई पड़ने लगी, तो आप समझे... । पर लोग मुझे पत्र लिखते हैं कि नदी-नाले दिखाई पड़ रहे हैं, पहाड़ दिखाई पड़ रहे हैं; प्रगति ठीक हो रही है?

अब नदी-नालों और पहाड़ों ने आपका क्या बिगाड़ा है? और सत्य से उनका क्या लेना-देना है?

लेकिन वे जो हमारे भीतर छिपे हुए कल्पना के जाल हैं, वे प्रोजेक्टर का काम करना शुरू कर देते हैं। जब आप खाली बैठते हैं, खाली बैठे नहीं कि वह मन जो दिन-रात ताने-बाने बुनता रहता है, वह शुरू कर देता है,

वह शुरू कर देता है अपना बुनाव। वह अपना बुनाव शुरू कर देता है--किसी को जरा संगीत में रुचि है, तो उन्हें कुछ गीत की कड़ियां दोहरने लगती हैं; किन्हीं को अगर रंगों में थोड़ा रस है, तो रंग फैलने लगते हैं--वह सब शुरू हो जाता है।

लाओत्से की हिम्मत देखने जैसी है! आखिरी क्षण में भी वह कहता है, प्रतिबिंब ही होगा यह; क्योंकि अभी मैं बाकी हूं। सत्य तो वहां है, जहां मैं भी नहीं हूं।

ये सूत्र इस अध्याय के पूरे हो जाते हैं।

कल की बैठक, आपके जो भी सवाल हों इन छह दिनों में, लाओत्से ने जो बातें कही हैं, उनके संबंध में जो भी सवाल हों, वे सभी अपने सवाल लिख लाएं या सोच लाएं। कल सवालों पर बात करेंगे।

पंदरहवां प्रवचन

समझ, शून्यता, समर्पण व पुरुषार्थ

प्रश्नः लाओत्से कहते हैं कि समझ, अंडरस्टैंडिंग, काफी है; समझ के साथ ही क्रांति घटित हो जाती है। हमें ऐसा लगता है कि कोई बात पूरी समझ में आती तो है, लेकिन कोई क्रांति उससे घटित नहीं होती। इसका कारण क्या है, कृपया समझाइए!

लाओत्से कहता है, बात समझ में आ जाए, तो करने को कुछ बाकी नहीं रह जाता। समझ ही फिर करवा देती है, जो करने योग्य है। और जो करने योग्य नहीं है, वह गिर जाता है, झड़ जाता है, जैसे सूखे पत्ते वृक्ष से गिर जाएं। जो न करने योग्य है, उसे रोकने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता; जो करने योग्य है, उसे करने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता। जो करने योग्य है, वह होने लगता है; जो न करने योग्य है, वह नहीं होना शुरू हो जाता है।

यह समझ क्या चीज है? क्योंकि पूछते हैं कि समझ में आता हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन जिस क्रांति की बात कहता है लाओत्से, वह तो घटित नहीं होती। तो इससे दो ही मतलब हो सकते हैंः या तो लाओत्से जो कहता है, वह गलत कहता है; और या फिर जिसे हम समझ समझ लेते हैं, वह समझ नहीं है।

लाओत्से तो गलत नहीं कहता। लाओत्से तो इसलिए गलत नहीं कहता कि उसने जो कहा है, वह अकेले उसने ही नहीं कहा है; इस पृथ्वी पर जितने भी जानने वाले लोग हुए हैं, उन सबने वही कहा है। जिन्हें लाओत्से का पता भी नहीं है--चाहे यूनान में सुकरात कहता हो, तो यही कहता है; चाहे बुद्ध कहते हों भारत में, यही कहते हैं--जहां भी कभी कोई जानने वाले ने कुछ कहा है, उसने यही कहा है कि समझ काफी है।

इसमें कई बातें हैं, वे ख्याल में ले लें। और तब यह समझ में आ सकेगा कि अगर क्रांति घटित नहीं होती, तो जिसे हम समझ समझ रहे हैं, वह समझ नहीं है।

पहली बात तो यह है कि जो गलत है, वह हमसे क्यों होता है? जो सही है, वह हमसे क्यों नहीं होता? इसके पीछे कारण नासमझी है या कोई और? अगर नासमझी ही कारण है, तो समझ से मिट जाएगा। अगर नासमझी से भी अलग कोई कारण है, तो समझ से नहीं मिटेगा। असली सवाल यही है कि जो हमसे होता है, उसमें हमारा अज्ञान ही कारण है, तब तो ज्ञान से मिट जाएगा।

इस कमरे में से मैं निकलता हूं और दीवार में मेरा सिर टकराता है। इसका कारण कमरे में अंधेरे का होना ही अगर है, तो प्रकाश होते से ही यह सिर का टकराना रुक जाएगा। रुक ही जाना चाहिए। अगर प्रकाश हो जाने पर भी मैं वैसा ही टकराता हूं दीवार से, जैसा अंधेरे में टकराता था, तो उसके मतलब दो ही हुए। उसका या तो मतलब यह हुआ कि प्रकाश हुआ नहीं है; मैंने समझा है, है नहीं। और या उसका यह अर्थ हुआ कि दीवार से टकराने का कोई संबंध अंधेरे से न था। कोई और ही बात थी, अंधेरे और प्रकाश से कोई लेना-देना न था।

अगर और कोई बात है, जो ज्ञान से भी नहीं मिटती, तो फिर तो कभी नहीं मिटेगी। जो चीज ज्ञान से नहीं मिट सकती है, फिर वह किस चीज से मिटेगी? फिर उसे कौन मिटाएगा? क्योंकि ज्ञान से ऊपर हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। ज्ञान से श्रेष्ठ हमारे भीतर कुछ भी नहीं है। अगर ज्ञान से भी नहीं मिटता है कुछ, तो हम

कहते हैं, कर्म से मिटेगा। तो कर्म कौन करेगा? वह तो अज्ञानी करेगा कर्म। अगर ज्ञान से नहीं मिटता है, तो अज्ञानी के कर्म से कैसे मिटेगा?

लेकिन यह सवाल ठीक है। क्योंकि समझ, हमें लगती है कि हो गई पूरी; और फिर भी क्रांति घटित नहीं होती। वह ट्रांसफार्मेशन, वह रूपांतरण नहीं होता।

तो अब यह समझना पड़ेगा कि समझ भी दो तरह की हो सकती है। एक समझ, जो सिर्फ प्रतीत होती है, एपरेंटली मालूम पड़ती है कि समझ है। हमारे पास समझ का एक यंत्र है--बुद्धि। बुद्धि के द्वारा हम किसी भी चीज को तर्कयुक्त रूप से समझ सकते हैं। अगर ठीक तर्कबद्ध विचार प्रस्तुत किया जाए, उसमें कोई तर्क की भूल न हो, तो बुद्धि समझ लेती है कि ठीक है, समझ में आ गया। लेकिन बुद्धि की समझ से रूपांतरण नहीं होता, क्रांति नहीं होती। क्योंकि बुद्धि बहुत छोटा सा हिस्सा है व्यक्तित्व का; और व्यक्तित्व बहुत बड़ी बात है। और बुद्धि जिसे समझ लेती है, उसका यह अर्थ नहीं है कि आपका व्यक्तित्व, आपका प्राण, आप उसे समझ गए।

इस सदी के पहले तक पश्चिम को यह ख्याल नहीं था साफ-साफ कि जिसे हम मनुष्य की बुद्धि कहते हैं, उससे नौ गुनी ताकत का अचेतन मन, अनकांशस माइंड भीतर बैठा हुआ है। आपको मैंने समझाया कि क्रोध बुरा है, आपकी समझ में आ गया। लेकिन जिस बुद्धि की समझ में आया, उसने कभी क्रोध किया ही नहीं है। उस बुद्धि के पीछे जो नौ हिस्से पर्त हैं अचेतन के, अनकांशस के, क्रोध वहां से आता है।

ऐसा समझ लें कि मैं एक मकान में रहता हूं। दरवाजे पर एक पहरेदार खड़ा है। उस बेचारे ने कभी क्रोध किया नहीं है। और जब भी दरवाजे पर कोई उपद्रव होता है, तो वह घर के भीतर जो मालिक रहता है, वह बंदूक लेकर दरवाजे पर आकर उपद्रव करता है। और जब भी कोई उपदेशक समझाने आता है, तो उस पहरेदार को पकड़ कर समझाता है कि क्रोध बहुत बुरी चीज है, झगड़ा वगैरह नहीं करना चाहिए। वह कहता है कि मेरी भी समझ में आता है। मैं भी देखता हूं कि जब उपद्रव होता है, वह मालिक भीतर से आता है, तो भारी खून-खराबा हो जाता है। मैं बिल्कुल समझता हूं; मेरी समझ में बिल्कुल आता है।

मगर यह उपदेशक को पता नहीं है कि जिसको वह समझा रहा है, उसने कभी उपद्रव किया नहीं; और जिसने उपद्रव किया है, इस पहरेदार से उसका कोई कम्युनिकेशन नहीं है। इससे कभी उसकी मुलाकात ही नहीं होती। और जब वह मालिक बंदूक लेकर आता है, तब यह पहरेदार हाथ-पैर जोड़ कर, सिर झुका कर उसके चरणों में पड़ जाता है, क्योंकि वह मालिक है। और जब वह चला जाता है, तब पहरेदार अपनी कुर्सी पर बैठ कर झपकी खाता रहता है और सोचता है कि बहुत बुरी बात है, क्रोध होना नहीं चाहिए।

आप जिस बुद्धि से समझ रहे हैं, अगर हम आपके मन के दस खंड कर दें, तो एक खंड समझ का है और नौ खंड अंधेरे में पड़े हैं। जीवन का सारा उपद्रव अंधेरे खंडों से आता है। जब आपके भीतर कामवासना पैदा होती है, तो आपके उन नौ हिस्सों से आती है। और जब ब्रह्मचर्य की आप किताब पढ़ते हैं, तो वह एक हिस्सा पढ़ता है--पहरेदार। आप ब्रह्मचर्य की किताब पढ़ कर रख देते हैं, बिल्कुल जंच जाती है कि बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन उस जंचने से कुछ नहीं होता। जब वे भीतर के नौ हिस्से कामवासना से भरते हैं, तब इस एक हिस्से की कोई ताकत नहीं है। वे इसको एक तरफ हटा कर बाहर आ जाते हैं।

इसके जिम्मे एक ही काम है कि जब वक्त मिले, तो समझने का काम करे; और जब फिर वक्त मिले, तो पश्चात्ताप करे। यह जो एक हिस्सा मन है, इसकी कोई सुनवाई नहीं है।

ध्यान रहे कि मन में जितना गहरा हिस्सा होता है, उतना ताकतवर होता है। परिधि पर, सर्कमफरेंस पर ताकत नहीं होती; ताकत सेंटर में होती है। जिसको हम बुद्धि कहते हैं, वह हमारी सर्कमफरेंस है, परिधि है, घर

के बाहर का परकोटा है; वहां कोई खजाने नहीं रखता। खजाने तो उस तिजोरी में दबे होते हैं, जो घर का भीतरी से भीतरी अंतरंग है। तो हमारे जीवन की ऊर्जा तो अंतरंग में छिपी है। और बुद्धि हमारे दरवाजे पर खड़ी है। इसी बुद्धि से पढ़ते हैं, इसी बुद्धि से सुनते हैं, इसी बुद्धि से समझते हैं।

तो लाओत्से जब कहता है, समझ में आ जाए तो रूपांतरण हो जाता है, तो वह कह रहा है, उस सेंटर की समझ में आ जाए--वह जो आपके भीतर, अंतरस्थ बैठा हुआ, अंतिम, मालिक है, उसकी समझ में आ जाए--तो क्रांति हो जाती है।

अब हमारी कठिनाई भी स्वाभाविक है, वास्तविक है, कि हमें लगता है समझ में आ गया, फिर क्रांति तो होती नहीं। हम वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं। और इस तथाकथित समझ से और एक उपद्रव शुरू होता है। वह उपद्रव यह होता है कि अब हम द्वैत में बंट जाते हैं। मन भीतर से कुछ करवाता है, हम कुछ करना चाहते हैं। वह कभी होता नहीं। होता वही है, जो भीतर से आता है। और फिर आखिर में पश्चात्ताप और दीनता और हीनता मन को पकड़ती है। और अपनी ही आंखों में आदमी गिरता चला जाता है। उसे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं, किसी कीमत का नहीं हूं।

तो यह जो समझ है हमारी, लाओत्से इसके संबंध में नहीं कह रहा है। यह इंटलेक्चुअल जो अंडरस्टैंडिंग है, यह धोखा है समझ का। यह ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि अगर वृक्ष को जल मिल जाए, तो उसमें फूल आ जाते हैं। हम जाकर वृक्ष के पत्तों पर जल छिड़क आएं। फिर फूल न आएं, तो हम कहें कि हमने तो जल छिड़का, फूल नहीं आए; जाहिर है कि जिसने कहा था, गलत था। और या फिर हमने जो जल छिड़का, वह जल न था। स्वभावतः हमारे सामने सवाल उठेगा, फूल तो नहीं आए।

लेकिन जिसने कहा था, वृक्ष को जल मिल जाए तो फूल आ जाते हैं, उसने कहा था वृक्ष की जड़ों को, रूट्स को। यह मजे की बात है कि वृक्ष के पत्ते को आप जल दें, तो जड़ों तक नहीं पहुंचता; जड़ों को जल दें, तो पत्ते तक पहुंच जाता है। क्योंकि पत्तों के पास कोई यंत्र नहीं है कि जल को रूट्स तक पहुंचा दे, जड़ों तक पहुंचा दे जल को। जड़ों के पास यंत्र है। जड़ें केंद्र हैं वृक्ष की, पत्ते तो परिधि हैं। इसलिए पत्ते रहें कि गिर जाएं, नॉन-एसेंशियल हैं। दूसरे पत्ते आ जाएंगे। लेकिन जड़ें चली जाएं, तो दूसरी जड़ें लाना बहुत मुश्किल है, असंभव है।

तो दो बात समझ लें। एक तो यह कि जिसको आप समझ कहते हैं, वह केवल तार्किक, शाब्दिक, बौद्धिक है; आंतरिक नहीं, आत्मिक नहीं, समग्र नहीं। आपके प्राणों तक वह जाती नहीं। और इसलिए रूपांतरण नहीं होता। बात बिल्कुल समझ में आ जाती है, और आप वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं, कहीं कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो अब क्या करें? वह समझ हम कैसे लाएं जो समझ जड़ों तक जाए?

हमारी सारी शिक्षा और दीक्षा एक ही समझ की है, यह तथाकथित जो समझ है। गणित सीखते हैं इसी बुद्धि से; भाषा सीखते हैं इसी बुद्धि से। काम चल जाता है। काम इसलिए चल जाता है कि आपके भीतर के केंद्र का कोई विपरीत गणित नहीं है; नहीं तो काम नहीं चलता। आपके इनरमोस्ट सेंटर का अपना अगर कोई मैथेमेटिक्स होती, तो आपके स्कूल-कालेज सब दो कौड़ी हो जाते। लेकिन उसके पास कोई मैथेमेटिक्स नहीं है। इसलिए आप स्कूल में गणित सीख लेते हैं; भीतर से कोई विरोध नहीं होता। आप दो और दो चार जोड़ते रहें, जोड़ते रहें; भीतर कोई कहने वाला नहीं कि दो और दो पांच होते हैं। अगर भीतर का मन कहने को होता कि दो और दो पांच होते हैं, तो सारी यूनिवर्सिटीज कचरे में पड़ जातीं, आप दो और दो चार नहीं जोड़ पाते। जब भी जोड़ने जाते, पांच लिखते।

इसलिए विश्वविद्यालय सफल है कामचलाऊ दुनिया के लिए। क्योंकि गणित हमारी ईजाद है, भाषा हमारी ईजाद है; जो भी हम सिखा रहे हैं स्कूल में, वह आदमी की ईजाद है। अगर हम आदमी को न सिखाएं, तो वह आदमी में होगा ही नहीं। अगर हम एक बच्चे को भाषा न सिखाएं, तो वह बच्चा अपने आप भाषा नहीं बोल पाएगा। लेकिन एक बच्चे को क्रोध सिखाने की जरूरत नहीं है; वह अपने आप क्रोध सीख लेगा। अगर हम एक बच्चे को गणित न सिखाएं, तो दुनिया में कोई उपाय नहीं है कि वह गणित सीख ले। लेकिन सेक्स या कामवासना सिखाने के लिए किसी विद्यापीठ की जरूरत नहीं पड़ेगी। उसे जंगल में डाल दो, खड्ड में, वहां भी वह सीख लेगा। सीख लेने का सवाल नहीं है; वह भीतर से आएगा।

तो इसका मतलब यह हुआ कि जीवन में जो चीज भी भीतर से आती है, उसी के मामले में अड़चन में पड़ते हैं आप। जो भीतर से नहीं आती, बाहर की है, उसमें अड़चन में नहीं पड़ते। आप कोई भी भाषा सीख लेते हैं। वह ऊपर का काम है, भीतर का मन उसके विरोध में नहीं है। चल जाता है। तो स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आपको जो शिक्षा देते हैं, मन का ऊपरी हिस्सा ट्रेंड कर देते हैं वे। कठिनाई तब शुरू होती है, जब आप जिंदगी को भीतर से बदलना चाहते हैं, तब भी इसी ऊपरी हिस्से का उपयोग करते हैं। बस वहीं अड़चन हो जाती है।

सोचते हैं, क्रोध न करूं। यह आप उसी हिस्से से सीखते हैं, जिससे गणित सीखा था। यह क्रोध का मामला बहुत दूसरा है, गणित का मामला बहुत दूसरा है। गणित आदमी की ईजाद है, क्रोध अगर किसी की ईजाद है तो वह प्रकृति की है, आदमी की नहीं। इसी से हम समझ का काम लाते हैं, तब अड़चन हो जाती है और काम नहीं होता। अब उस भीतर तक समझ को ले जाना हो, तो उसकी प्रक्रिया है। प्रक्रिया का अर्थ यह हुआ कि आपको यह समझ भी कैसे मिली है? यह भी एक प्रशिक्षण है आपको। यह आपको एक बीस-पच्चीस साल के प्रशिक्षण के द्वारा यह संभव हुआ है कि दो और दो चार होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अचानक अपने रास्तों पर देखा गया कि बहुत शानदार कपड़े पहने हुए है, हाथ में हीरे की अंगूठी लगाई हुई है। लोग चकित हुए। लोगों ने घेर लिया कि मुल्ला, क्या हुआ? उसने कहा कि एक लाटरी हाथ लग गई। पर कैसे लगी? मुल्ला ने कहा कि तीन रात तक लगातार सपना देखा, जिसमें मुझे सात का आंकड़ा दिखाई पड़ता था। तीन रात! तो मैंने सोचा, सात तिया अट्ठाइस। मैंने नंबर लगा दिया। पर लोगों ने कहा, अरे मुल्ला, क्या कह रहे हो, सात तिया अट्ठाइस! सात तिया इक्कीस होते हैं। मुल्ला ने कहा, होते होंगे, लेकिन लाटरी अट्ठाइस पर मिली। यानी इससे कोई... लाटरी मिल गई अट्ठाइस पर।

दो और दो चार की भी ट्रेनिंग है। दो और दो चार ऐसी कोई बात नहीं है कि आपके भीतर से आ गई है। उसकी ट्रेनिंग है। सीखना पड़ता है, सीख कर हल हो जाता है। अब यह जो अंतरस्थ मन है, इस तक समझ को पहुंचाने के लिए भी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़े।

लाओत्से ने जब ये बातें कही हैं, तब आदमी बहुत सरल था। अब बहुत से फर्क पड़ गए हैं, जो मैं आपको ख्याल दिला दूं, जिससे अड़चन है। लाओत्से ने जब ये बातें कही हैं, आदमी बहुत सरल था। उसकी इंटलेक्चुअल ट्रेनिंग नहीं थी, उसकी कोई बौद्धिक पर्त नहीं थी। लाओत्से बोल रहा था गांव के ग्रामीण जनों से। वे सीधे-सादे लोग थे। उनके पास कोई बौद्धिक खजाना नहीं था। प्रकृति के सीधे करीब थे, निर्दोष थे। लाओत्से उनसे बोल रहा था। लाओत्से अगर आपसे बोले, तो सबसे पहला सवाल यही होगा, जो विजय ने पूछा है। यही सवाल होगा कि समझ में तो हमारे आपकी बात आ गई... । लाओत्से जिनसे बोल रहा था, वे यह सवाल कभी नहीं उठाए। लाओत्से और च्वांगत्से के हजारों संस्मरणों में यह सवाल एक आदमी ने नहीं उठाया है कि हमारी समझ

में तो आ गया, लेकिन जिंदगी नहीं बदलती। हां, यह सवाल बहुत लोगों ने उठाया है कि हमारी समझ में नहीं आता। समझाएं!

फर्क समझ रहे हैं? यह सवाल उठाते हैं बहुत लोग कि हमारी समझ में नहीं आया, आप फिर से समझा दें! तो लाओत्से फिर से समझाएगा। एक बार ऐसा हुआ कि एक आदमी रोज सुबह आया, इक्कीस दिन तक आया। और रोज सुबह आकर वह कहता लाओत्से से कि तुमने जो कहा था, वह मैं भूल गया। तुमने जो कल कहा था, फिर से समझा दो। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन। फिर लाओत्से के एक शिष्य मातसु को हैरानी हुई। उसने उस आदमी को जब पांचवें दिन फिर आते देखा, तो उसने उसको झोपड़े के बाहर रोका और कहा कि क्या मामला है?

उसने कहा, वह मैं भूल गया। वह जो कल समझाया था, मैं फिर समझने आया हूं।

तो उसने कहा, तू भाग जा, अब तू भीतर मत जा। क्योंकि एक पागल तू है, और दूसरा पागल हमारे पास लाओत्से है। तू अगर जिंदगी भर भी आता रहा, तो वह समझाता रहेगा। पांच दिन से, चार दिन से मैं भी देख रहा हूं कि तू वही का वही सवाल ले आता है और वह वही का वही सवाल समझाने बैठ जाता है।

जब यह बात ही चल रही थी मातसु के साथ, तभी लाओत्से बाहर आ गया। और उसने कहा, आ गया भाई! अंदर आ जा। भूल गया, फिर से सुन ले!

वह इक्कीस दिन रोज आ रहा है। बाईसवें दिन नहीं आया। तो कहानी कहती है कि लाओत्से उसके घर पहुंच गया। कहा, क्या तबीयत खराब है? क्या हुआ? उस आदमी ने कहा, समझ में आ गया। और कुछ? उसने कहा कि कुछ नहीं; मैं दूसरा आदमी हो गया।

लेकिन फर्क आप समझ रहे हैं? अगर हम इक्कीस दफा जाते लाओत्से के घर पर, तो हम समझने न जाते। हम कहते, समझ में तो पहले दिन ही आ गया, जिंदगी नहीं बदली। वह आदमी यह कहता ही नहीं है कि जिंदगी नहीं बदली। क्योंकि वह आदमी यह कहता है कि आप कहते हो, समझ में आ जाएगा तो जिंदगी बदल ही जाएगी, वह बात खतम हो गई। अब समझ में ही आ जाए।

बुद्ध जब भी बोलते थे--तो अभी जब बुद्ध के ग्रंथों को संपादित किया गया है, तो बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि बुद्ध एक-एक पंक्ति को तीन बार से कम दोहराते नहीं थे। तीन बार कहेंगे। अब तीन बार छापो, तो नाहक तीन गुनी किताब हो जाती है। और पढ़ने वाले को भी कठिनाई होती है। तो राहुल सांकृत्यायन ने जब पहली दफा हिंदी में विनय पिटक का पूरा संग्रह किया, तो हर पंक्ति के बाद निशान लगाए उन्होंने। और निशान बाहर सूची बना दी, फिर से वही, उसका निशान है; फिर से वही, उसका निशान है; फिर से वही, डिट्टो। पूरी किताब निशान से भरी हुई है। क्या, बात क्या थी? बुद्ध क्यों इतना दोहरा रहे हैं?

अगर समझाना हो, तो तर्क देना पड़ता है। और अगर भीतर तक पहुंचाना हो, तो उस पुराने जमाने में लोग इतने सरल थे कि उसे केवल बार-बार दोहराने से वह मंत्र बन जाता, वह सजेस्टेबल हो जाता, और भीतर प्रवेश कर जाता था। सिर्फ बार-बार दोहराना काफी था। जितनी बार दोहराया जाए, उतना भीतर प्रवेश करने लगता है।

लेकिन बुद्धि तो एक ही दफे में समझ जाती है, इसलिए दुबारा दोहराने की जरूरत नहीं रह जाती। अगर दुबारा दुहराओ, तो वह आदमी कहेगा, आप क्यों हमारा समय जाया कर रहे हैं! समझ गए, अब दूसरी बात करिए।

आज भी जो लोग अनकांशस माइंड के साथ काम करते हैं, वे सिवाय दोहराने के और कुछ नहीं करते। जैसे कि अभी पेरिस में कुछ वर्षों पहले एमाइल कुए नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक था, जिसने लाखों लोगों को ठीक किया। पर वह एक ही बात दोहराता था कि तुम बीमार नहीं हो! अब वह घंटे भर लिटाए है उस आदमी को और दोहरा रहा है कि तुम बीमार नहीं हो! तुम बीमार नहीं हो!

वह आदमी कह सकता है कि समझ गए एक दफा, अब इसको बार-बार कहने का क्या प्रयोजन है? पर एमाइल कुए कहता है कि तुमसे मुझे मतलब नहीं है। तुम तो समझ गए, तुम तो पहले ही समझ रहे हो। तुम्हारे जो भीतर, गहरे और गहरे में, वहां तक! वह दोहराए चला जाएगा। थोड़ी देर में यह ऊपर की जो बुद्धि है--जो यह ऊपर की बुद्धि है, यह नए में रस लेती है, पुराने में रस नहीं लेती--यह थोड़ी देर में कहेगी कि ठीक है, सुन लिया, सुन लिया, सुन लिया। यह सो जाएगी। हिप्नोसिस का कुल इतना ही मतलब है; यह सो जाएगी। यह ऊपर की जो बुद्धि है, ऊब जाएगी। यह परेशान हो जाएगी कि क्या कहे चले जा रहे हो कि तुम बीमार नहीं हो! यह थोड़ी देर में सो जाएगी।

लेकिन कुए कहता चला जाएगा। और जब यह सो जाएगी, तो इसके पीछे की जो पर्त है, वह सुनने लगेगी। थोड़ी देर में वह भी ऊब जाएगी, वह भी सो जाएगी। तो उसके पीछे की जो पर्त है, वह सुनने लगेगी। और यह कुए दोहराए चला जाएगा। यह तब तक दोहराए चला जाएगा, जब तक आपके भीतरी केंद्र तक यह खबर न पहुंचा दे कि तुम बीमार नहीं हो। और अगर यह भीतरी केंद्र तक खबर पहुंच जाए, वह केंद्र अगर मान ले कि मैं बीमार नहीं हूं, तो बीमारी समाप्त हो गई।

अब इसके लिए मंत्रों का, ध्यान का, तंत्र का, न मालूम कितना-कितना आयोजन करना पड़ा! बाद में करना पड़ा, जब कि लोग ज्यादा सोफिस्टीकेटेड हो गए। लाओत्से के वक्त में कोई जरूरत न थी। लाओत्से के वक्त तक कोई जरूरत न थी। लोग सरल थे। और उनके अंतरस्थ मन का द्वार इतना खुला था और बुद्धि का कोई पहरेदार न था कि कोई भी बात लाओत्से जैसा आदमी कहता, तो वह भीतर प्रवेश कर जाती। इस सब का इंतजाम था। लाओत्से के पास जाता ही कोई तब था, जब वह श्रद्धा करने को राजी हो। लाओत्से के पास अगर कोई जाता और तर्क करने को उत्सुक होता, तो लाओत्से कहता कि अभी तू फलां गुरु के पास जा, थोड़े दिन वहां रह!

अभी मैं एक सूफी फकीर का जीवन पढ़ता था। अजनबी, एक सूफी फकीर था। गांव का एक बहुत बड़ा पंडित, एक बड़ा व्याकरण का ज्ञाता अजनबी को सुनने आया, तो उसने देखा कि वह व्याकरण वगैरह जानता नहीं, ठीक से भाषा उसे आती नहीं। तो उस पंडित ने कहा कि पहले तो लोगों को, जिनको आप समझा रहे हैं, ठीक से भाषा समझाइए, व्याकरण समझाइए। प्रारंभ से ही प्रारंभ करिए। यह आप क्या कर रहे हैं? आप इतनी ऊंची बातें कर रहे हैं! लेकिन न भाषा का ठिकाना, न व्याकरण का।

तो उस सूफी फकीर ने कहा कि तू रुक जा यहां। उस फकीर के चमत्कारों की बड़ी कथाएं थीं। वह पंडित रुक गया। सूफी ने उससे कहा कि बाहर झोपड़े के जो कुत्ते और बिल्लियां सांझ को इकट्ठे होते हैं, तू उनको व्याकरण सिखाना शुरू कर दे।

उसे लगा तो कि यह पागलपन की बात है; लेकिन यह फकीर कह रहा है। और यह चमत्कारी है, शायद कोई राज होगा। शायद ये कुत्ते और बिल्लियां साधारण न हों, कुछ खूबी के हों। या फिर इसका कोई मतलब होगा। शायद इन्हें सिखाते-सिखाते मुझे कुछ सीखने को मिल जाए। बात तो कुछ होगी ही, रहस्य इसमें कुछ होगा ही। उसने बेचारे ने सिखाना शुरू कर दिया।

सरल से सरल पाठ सिखाता था, लेकिन कुत्ते-बिल्ली थे कि नहीं सीखते थे। छह महीने बीत गए, वह भी थक गया। फकीर कई बार पूछा कि कोई प्रगति? कोई प्रगति तो नहीं हो रही है। फकीर ने कहा, बिल्कुल प्रारंभ से ही प्रारंभ किया है न? बिल्कुल प्रारंभ से ही प्रारंभ किया है! इससे और आगे प्रारंभ भी नहीं होता कुछ। कुछ भी सिखा पाए? उसने कहा कि एक कदम ही नहीं उठ रहा आगे। उस फकीर ने कहा, क्या, कठिनाई क्या है? उस पंडित ने कहा, वे भाषा ही नहीं जानते हैं, बोलना ही नहीं जानते। बोलना जानते हों, तो मैं व्याकरण भी सिखा दूं।

वह फकीर कहने लगा कि मैं जिस दुनिया की बातें कर रहा हूं, तुझे उस दुनिया की न भाषा का पता है और न व्याकरण का पता है। तुझे उसका पता हो, तो मैं भी शुरू कर सकता हूं। तेरे साथ भी शुरू कर सकता हूं।

पुराने युगों में यह नियमित व्यवस्था थी कि गुरु अगर देखता कि कोई तर्क करने आ गया, तो उसे उस जगह भेज देता, जहां तर्क ही चलता था। ताकि वह तर्क से थक जाए, परेशान हो जाए। और इतना ऊब जाए कि एक दिन आकर वह कहे कि तर्क बहुत कर लिया, कुछ मिला नहीं; अब कोई ऐसी बात कहें, जिससे कुछ हो जाए।

तब लाओत्से जैसे आदमी बोलते हैं।

एक सूफी फकीर के बाबत... । दो फकीर सामने रहते हैं। एक फकीर का शिष्य है, वह अपने गुरु को आकर कहता है कि सामने वाला जो सूफी है, यह आपके बाबत बहुत गलत-सलत बातें प्रचारित करता है। यह कुछ गंदी-गंदी बातें भी आपके संबंध में गढ़ता है, अफवाहें उड़ाता है। आप इसे ठीक क्यों नहीं कर देते? कुछ बोलते क्यों नहीं? तो उस फकीर ने कहा, तू ऐसा कर, तू उसी से जाकर पूछ कि राज क्या है! पर ऐसे जल्दी मत पूछना, क्योंकि कीमती बातें अजनबियों को नहीं बताई जाती हैं। और राहगीर चलते आकर कुछ पूछ लें, तो उनको उत्तर जो दिए जाते हैं, वे रास्ते की ही कीमत के होते हैं। तो उसने कहा, मैं क्या करूं? कहा कि साल भर उसकी सेवा कर; निकट पहुंच। और जब आंतरिकता बन जाए, तब किसी दिन क्षण का ख्याल रख कर, समय का बोध रख कर, अवसर खोज कर उससे पूछना।

तो साल भर उसने सेवा की। बहुत निकटस्थ हो गया, आत्मीय हो गया। एक दिन पैर दाब रहा था रात, तब उसने अपने गुरु को पूछा कि आप गालियां देते हैं, सामने वाले गुरु के खिलाफ सब कुछ कहते हैं, इसका राज क्या है? तो उसने कहा, तू पूछता है, किसी को बताना मत। मैं उसका शिष्य हूं। और राज बताने की मनाही है, तू जाकर उसी से पूछ ले। पर ये बातें अजनबियों को नहीं बताई जाती हैं, राह चलतों को नहीं बताई जाती हैं। जरा निकट हो जाना।

उसने कहा, अच्छी मुसीबत में पड़े! हम तुम्हें दुश्मन समझ कर साल भर मेहनत किए, तुम शिष्य निकले! उसके ही शिष्य हो! वहीं वापस जाना पड़ेगा।

दो साल गुरु की पुनः सेवा की लौट कर। एक क्षण सुबह स्नान कराते वक्त--कोई नहीं था, गुरु को वह स्नान करा रहा था--पूछा कि आज मुझे बता दें, यह राज क्या है?

तो उसके गुरु ने कहा कि वह मेरा ही शिष्य है। और उसे वहां इसलिए रख छोड़ा है कि वह मेरे संबंध में गलत बातें उड़ाता रहे। जिनको उन गलत बातों पर भरोसा आ जाए, वे ताकि मेरे पास न आ सकें, वे गलत लोग हैं। उनके साथ मेरा समय नष्ट न हो। मेरा समय कीमती है। मैं उन्हीं पर खर्च करना चाहता हूं, जो सत्य की तलाश में आए हैं। और जो अफवाहों से लौट सकते हैं, उनकी कोई तलाश नहीं है। वह आदमी अपना है। और

उसने इतनी सेवा की है मेरी इन बीस वर्षों में, जिसका हिसाब नहीं है। सैकड़ों फिजूल के लोगों से उसने मुझे बचाया है।

यह नियमित व्यवस्था थी। और जब कोई श्रद्धा से भर जाए--श्रद्धा से भरने का अर्थ है, जब कोई हृदय को सीधा खोलने को तैयार है।

अभी साइकोलॉजिस्ट या साइकोएनालिस्ट क्या कर रहे हैं? वे इतना ही कर रहे हैं। एक मरीज पर तीन साल तक साइकोएनालिसिस चलती है। कोच पर लिटाया है मरीज को; घंटों, हजारों घंटों, उससे चर्चा होती है। मरीज कहता जाता है, चिकित्सक सुनता जाता है। किसलिए? वह सिर्फ इसलिए कि कहते-कहते, कहते-कहते मरीज, बुद्धि की ऊपरी बातें थोड़े दिन में चुक जाएंगी, तब वह भीतर की बातें कहना शुरू कर देता है। फिर वे भी चुक जाती हैं, तो और आंतरिक बातें कहने लगता है। ओपनिंग हो जाती है। वर्ष भर निरंतर चिकित्सक के पास कहते-कहते, कहते-कहते वह आंतरिक चीजों को बाहर निकालने लगता है। और जब चिकित्सक देखता है कि अब वे चीजें बाहर निकलने लगीं जो बहुत गहरी हैं, तब वक्त आया, यह आदमी सजेस्टेबल हुआ, इसको अब कोई सुझाव डाला जा सकता है। अब इसके भीतर का दरवाजा खुल गया, अब इसके भीतर कोई बीज डाल दिया जाए, तो वृक्ष बन जाएगा।

समझ का अर्थ है, आपके भीतरी तल तक पहुंच जाए कोई बात। लेकिन तर्क कभी न पहुंचने देगा। और हम तर्क से ही समझना चाहते हैं। और तर्क ही उपद्रव है; वही पहरेदार है। वह कहता है, पहले मुझे समझाओ। अगर मुझे समझाओ, तो मैं मालिक से मिला दूं। और अगर मुझे ही नहीं समझा पाते हो, तो मैं मालिक से क्या मिलाऊं? और फिर कठिनाई यह है कि जब वह समझ जाता है, तो वह समझता है, समझ गए, मालिक हो गए।

फिर वह देखता है, समझ तो हो गई, लेकिन कुछ हल नहीं होता। क्योंकि कोई, जिसको हम बुद्धि कहते हैं, उसके पास कोई भी शक्ति नहीं है। जिसको हम कहें कोई भी फोर्स टु एक्ट, बुद्धि के पास नहीं है। और फोर्स टु एक्ट जो है, शक्ति काम करने की, वह बुद्धि के पीछे किसी और छिपे तल में है। इसलिए यह व्यवधान पड़ता है।

तो अगर उस तक पहुंचना है, तो फिर अगर नहीं पहुंचता सीधा--किसी को पहुंच जाता हो, तब तो कोई सवाल नहीं--अगर नहीं पहुंचता सीधा, तो पहले इस बुद्धि के पहरे को तोड़ने के लिए उपाय करने पड़ते हैं। कुछ ध्यान करना पड़े; इस बुद्धि के पहरे को तोड़ना पड़े। और ध्यान की कोई ऐसी प्रक्रिया उपयोग में लानी पड़े, जो आपको निर्बुद्धि बना दे, इररेशनल बना दे।

जैसे मैं जो ध्यान का प्रयोग करता हूं, वह बिल्कुल बुद्धिहीन है। तो बुद्धिमान उसको देख कर ही भाग जाएगा। वह कहेगा, यह क्या हो रहा है कि लोग नाच रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, कूद रहे हैं। पागल हैं! लेकिन जो आदमी नाच रहा है, कूद रहा है, वह बुद्धि के तल से नीचे उतर गया। क्योंकि बुद्धि तो सेंसस का काम करती है। वह कहती है, क्यों हंस रहे हो? अभी कोई हंसने की बात ही नहीं। पहले हंसने की बात तो होने दो, फिर हंसना। कहती है, क्यों रो रहे हो? अभी कोई रोने की बात ही नहीं। क्यों कूद रहे हो? कोई जमीन में आंच लगी है, आग लगी है कि तुम कूद रहे हो! ये क्यों घूंसे तान रहे हो हवा में? पहले किसी को गाली देने दो, फिर घूंसा उठाना।

बुद्धि पूरे समय यह कह रही है कि जो तुम कर रहे हो, वह तर्कयुक्त हो। लेकिन जिंदगी में कभी भी कुछ तर्कयुक्त किया है? जब किसी से प्रेम हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? और जब किसी से क्रोध हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? और जब किसी को मारने का मन हो जाएगा या मरने का मन हो जाएगा, तब बुद्धि कहां होगी? तो जिंदगी की जहां असली जरूरतें हैं, वहां तो बुद्धि होगी नहीं। और उन गहरे बिंदुओं तक आप कभी उतर न पाएंगे, बुद्धि की बात मान कर चलेंगे तो।

ध्यान के सब प्रयोग आपकी बुद्धि की पर्त को तोड़ने के प्रयोग हैं! वह आपकी एक दफा पर्त टूट जाए, तो आप एकदम सरल हो जाते हैं। और जब आप सरल हो जाते हैं, तो आपके पास एक अंतर्दृष्टि होती है, जहां से चीजें साफ दिखाई पड़ती हैं। तब यह सवाल कभी नहीं उठता कि मेरी समझ में आ गया और क्रांति नहीं हुई। समझ में आ जाना ही क्रांति है। टु नो इ.ज टु बी ट्रांसफार्म्ड। नालेज इ.ज ट्रांसफार्मेशन। यह सवाल फिर नहीं उठता।

लेकिन यह उठता है। और मैं यह नहीं कहता कि गलत उठता है। हम जैसे हैं आज, उसमें यह सवाल उठेगा। हम दो हिस्सों में बंटे हुए हैं। जिस हिस्से से समझते हैं, उसका कोई संबंध नहीं है उस हिस्से से, जिससे करते हैं। करने का हिस्सा अलग, समझने का हिस्सा अलग। घर डिवाइडेड है, दो टुकड़ों में बंटा हुआ है। जिसके हाथ में ताकत है करने की, वह समझने नहीं आता; जिसके हाथ में करने की कोई ताकत नहीं है, वह समझने आता है। इन दोनों के बीच कभी कोई मेल नहीं होता। अब इसमें क्या किया जाए?

इसमें एक ही उपाय है कि आप इस समझने की जो पर्त है, इसको तोड़ कर थोड़ा नासमझी की दुनिया में उतरें; और थोड़ा नासमझ होकर देखें। तो आपके इन दोनों विभाजनों के बीच की दीवार धीरे-धीरे गिरेगी और आप दोनों में आना-जाना आपका शुरू हो जाएगा। और तब आप इंटिग्रेटेड होंगे, इकट्ठे होंगे, एक होंगे। और वह जो एक आदमी है, वह जो भी समझ लेता है, वही उसकी जिंदगी में फलित हो जाता है।

हम दो हैं। और इसलिए हमारा जो सवाल है, वह जिंदगी-जिंदगी तक उलझता चला जाता है। और हर जिंदगी के बाद ज्यादा उलझ जाएगा, क्योंकि विभाजन बढ़ता ही चला जाता है। इस विभाजन को कहीं से तोड़ें।

पिछले आबू के शिविर में एक मित्र--पढ़े-लिखे, बड़े सरकारी एक पद पर--वे देखने आए थे। दो दिन तो वे देख रहे थे। मुझ से आकर कहा कि यह तो मैं न कर पाऊंगा। यह जो लोग कर रहे हैं, यह मैं न कर पाऊंगा। तो मैंने कहा कि यह आप कैसे कहते हैं कि न कर पाएंगे? करके देख कर कह रहे हैं, बिना करे कह रहे हैं? या सिर्फ इस भय से कह रहे हैं कि भीतर डर है कि हो तो यह भी मुझसे जाएगा? किस वजह से कह रहे हैं?

वे कुछ थोड़े डरे। पत्नी उनके साथ थी, उसकी तरफ देखा। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि तुम जाओ। तुम्हारे सामने शायद वे अपनी बुद्धिमानी न छोड़ पाएं। तुम हटो। वे कहने लगे, डर से ही कह रहा हूं। मुझे भी ऐसा लगता है कि अगर मैं भी कूद पड़ूं, तो बहुत उपद्रव मचाऊंगा।

फिर मैंने कहा, उसे मचाओ। एक दफे उसे मचा कर देखो। तुम अपनी नई ही सूरत से परिचित होओगे। वही तुम्हारी असली सूरत है। वक्त-बेवक्त पर वह निकल कर बाहर आ जाती है। लेकिन तब तुम उसके मालिक नहीं हो सकते। क्योंकि वह क्षण भर को आती है, फिर छिप जाती है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, क्रोध जो है, वह टेम्प्रेरी मैडनेस है--टेम्प्रेरी! है तो मैडनेस पूरी, टेम्प्रेरी है। थोड़ी देर रहती है, इसलिए आपको पता नहीं चलता। फिर निकल गई। परमानेंट हो जाए, आप पागल हो गए। लेकिन जो टेम्प्रेरी है, वह कभी भी परमानेंट हो सकता है।

मैंने उनसे कहा, आप करें।

उन्होंने कहा, हिम्मत जुटाऊं, कोशिश करूं।

मैंने कहा, कोशिश-हिम्मत की बात नहीं है। आप तो आंख पर पट्टी बांध कर और खड़े हो जाएं। और जब आने लगे, तब भूल जाएं कि आप बड़े अधिकारी हैं और बड़े पढ़े-लिखे हैं और समझदार हैं।

तीसरे दिन वे कूद रहे थे। वह दूसरा ही व्यक्तित्व था। लौट कर उन्होंने मुझे कहा कि मैं इतना हलका हो गया हूं कि उड़ जाऊं। इतना हलका हो गया हूं! भीतर से न मालूम कितनी बीमारी बाहर निकल गई है। और अब मैं आपकी बात ज्यादा ठीक से समझ सकूंगा कि आप क्या कह रहे हैं।

तो हमारे दिमाग पर जो बैठा हुआ एक पहरा है तथाकथित समझदारी का, उसे तोड़ना पड़े तो आपके भीतर वह समझ आ सकेगी। तो पहले यह तथाकथित समझ को तोड़ने के लिए कुछ करें।

जुन्नैद नाम का सूफी फकीर था। उसके पास कोई साधक आता, तो पहले उससे वह कोई पागलपन करवाता। कोई पागलपन करवाता! उससे कहता कि जाओ बाजार में, सड़क पर खड़े हो जाओ और लोगों से कहो कि जो मुझे एक जूता मारेगा, उसको मैं एक आशीर्वाद दूंगा! और जो जूता मुझे नहीं मारेगा, सम्हल कर जाए, एक अभिशाप! वह आदमी कहता, आप यह क्या कह रहे हैं? पर वह कहता, पहले तुम एक बस्ती का चक्कर लगाओ; फिर हमारी-तुम्हारी बात हो सकेगी। तुमसे हमारा मामला नहीं चलेगा। तुम जरा दो-चार-दस जूते खाकर आओ। फिर--इसको गिर जाने दो, जो तुम्हारे ऊपर बैठा है--फिर जरा हम भीतर से सीधी-सीधी बात हो सकेगी।

समझ की भीतरी गहराई के लिए कहता है लाओत्से। वह ठीक कहता है कि डालो कांटा समझ का, तो क्रांति की मछली पकड़ में आएगी। लेकिन आप अपने घर की बालटी में बैठे हैं कांटा डाले। उसमें नहीं आएगी। आपको खुद ही पता है कि इस बालटी में कोई मछली ही नहीं है। आप जिस बुद्धि में पकड़ने चल रहे हैं क्रांति को, वहां कोई क्रांति नहीं है। जिसको आप बुद्धि कहते हैं, वह सब से ज्यादा कन्फरमिस्ट हिस्सा है, सब से ज्यादा आर्थोडाक्स हिस्सा है आपके व्यक्तित्व का। वहां कुछ पकड़ में नहीं आएगा।

उससे गहरे में, जहां जीवन की धारा बहती है, जहां तरलता है, जहां चीजें जन्म लेती हैं, अराजकता है जहां, जहां केऑस है अस्तित्व का; भीतर गहरे में, जहां हृदय में, जहां सारी ऊर्जा उठती है; जहां से काम आता है, क्रोध आता है, प्रेम आता है, घृणा आती है, दया, करुणा आती है--वहां। यह गणित और भाषा जहां चलती है, वहां से नहीं; यह भूगोल और इतिहास जहां पढ़ा जाता है, वहां से नहीं; केमिस्ट्री और फिजिक्स की जानकारी जहां से होती है, वहां से नहीं। जहां से प्रेम पैदा होता है, जहां से घृणा पैदा होती है, जहां जीवन के मूल स्रोत बहते हैं, वहां जब कांटा डलता है समझ का, तो क्रांति की मछली पकड़ में आती है। उसके बिना नहीं आती है।

अब अगर कभी हजार में कोई एकाध ऐसा सरल आदमी होता है, तो तत्काल हो जाता है। आज तो वह हालत कम होती चली जाएगी। आज तो हमें कुछ उपाय, कुछ डिवाइस करनी पड़ेगी, जिससे तोड़ें। पहले तोड़ें, फिर भीतर प्रवेश हो सकता है। और तब, तब समझ और क्रांति दो चीजों के नाम नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

दूसरा सवाल पूछा है कि लाओत्से अगर कहता है, कुछ न करो, तो पुरुषार्थ का क्या होगा?

क्या तुम समझते हो, कुछ न करना कोई छोटा-मोटा पुरुषार्थ है?

कुछ न करना इस जगत में सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। न करने की ताकत इस जगत में सबसे बड़ी मालकियत है। करना तो बच्चे भी कर लेते हैं। करने में कोई बड़ा पुरुषार्थ नहीं है। करना तो बिल्कुल सहज, साधारण सी घटना है। जानवर भी कर रहे हैं। न करना तो बहुत बड़ी बात है। तो यह मत सोचना कि लाओत्से जब कहता है कि न करो, इन-एक्टिविटी, तो इससे तो पुरुषार्थ खतम हो जाएगा।

समर्पण जो है, वह सबसे बड़ा संकल्प है। अब यह बहुत उलटा, ख्याल में आता नहीं है न हमें। हमें लगता है कि समर्पण, किसी के चरणों में सिर रख दिया, तो हम तो मिट गए। लेकिन पता है कि किसी के चरणों में सिर रखना साधारण आदमी की हैसियत की बात नहीं है! और किसी के चरणों में सचमुच सिर रख देना, पूरी तरह अपने को छोड़ देना, उसकी ही सामर्थ्य की बात है जो पूरी तरह अपना मालिक हो। छोड़ोगे कैसे? सिर पैर पर रख देने से थोड़े ही रख जाता है! इतनी मालकियत भीतर हो कि कह पाएं कि ठीक, छोड़ते हैं पूरा। लेकिन छोड़ेगा कौन? आप छोड़ सकते हैं? जो क्रोध नहीं छोड़ सकता, जो सिगरेट पीना नहीं छोड़ सकता, वह पूरा छोड़ देगा स्वयं को?

एक आदमी सिगरेट पीना छोड़ता है, तो वह कहता है, हम बड़ा पुरुषार्थ कर रहे हैं। वह भी छूटती नहीं। तो पूरा अपने को समर्पित करना! वह छोटा पुरुषार्थ नहीं है; बड़े से बड़ा पुरुषार्थ है। अंतिम पुरुषार्थ है। उसके आगे और कोई पुरुषार्थ नहीं है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं कि कोई चीज पूर्ण नहीं हो सकती। तो फिर शून्य की पूर्णता भी कैसे मिलेगी?

शून्य की पूर्णता आपको अगर पानी होती, तब तो वह भी न मिल सकती। वह है! वह है! आप सिर्फ भरने का उपाय न करें, आप अचानक पाएंगे कि आप शून्य हैं। पूर्णता तो इस जगत में कोई भी नहीं हो सकती। आदमी के किए कुछ भी नहीं हो सकती।

मुल्ला नसरुद्दीन पर एक दफा सुलतान, जिसके घर वह काम करता था, नाराज हो गया। और उसने कहा, यू आर ए परफेक्ट डोप; तुम बिल्कुल पूर्ण गधे हो।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, डोंट फ्लैटर मी, नोबडी इ.ज परफेक्ट! खुशामद मत करो, कोई है ही नहीं पूर्ण। पूर्ण गधा भी कैसे हो सकता हूं! खुशामद मत करो मेरी बेकार, कोई पूर्ण है ही नहीं।

पूर्णता तो कोई भी नहीं हो सकती। लेकिन शून्यता अगर आपको लानी होती, तो वह भी पूर्ण नहीं हो सकती थी। लेकिन शून्यता आपका स्वभाव है। वह आपको लानी नहीं है, वह है। हां, आप चाहें तो इतना कर सकते हैं कि जो है, उसको ढांक सकते हैं, छिपा सकते हैं, भूल सकते हैं। फारगेटफुलनेस हो सकती है, बस। मिटा तो नहीं सकते, भूल सकते हैं। विस्मरण कर सकते हैं। शून्यता की पूर्णता आपको पानी नहीं है। आपको सिर्फ पूर्ण होने के सब प्रयास छोड़ देने हैं। और आप पाएंगे कि शून्य हो गए।

उन्हीं मित्र ने पूछा है कि घड़ा शून्य होगा, तो घड़ा भी मिट जाएगा न!

अब इसमें समझने जैसा है कि लाओत्से किसको घड़ा कहता है और आप किसको घड़ा कहते हैं। हम दोनों की भाषा में फर्क है। हम कहते हैं मिट्टी की दीवार को घड़ा। और जब हम बाजार से खरीद कर लाते हैं, तो हम वह जो चार पैसे चुका कर आते हैं, वह जो मिट्टी की दीवार कुम्हार ने बनाई है, उसके ही चुका कर आते हैं। घड़े का हमारे लिए मतलब है, वह जो मिट्टी की दीवार है। और लाओत्से का मतलब है, वह जो मिट्टी की दीवार के भीतर खालीपन है, वह है घड़ा। और लाओत्से कहता है कि हम तो वह घड़ा खरीद कर लाते हैं। यह मिट्टी की

दीवार तो केवल सीमा है; वह जो भीतर शून्य है, वह है घड़ा। घड़ा तो वही है। उस शून्य की यह सिर्फ सीमा-रेखा है।

और यह सीमा-रेखा भी इसीलिए रखनी पड़ती है हमें, क्योंकि हमें घड़े को भरना है। अगर खाली ही रखना हो, तो इस सीमा-रेखा की कोई जरूरत नहीं है।

ख्याल करें, इस सीमा-रेखा को हमें क्यों बनाना पड़ता है? यह कुम्हार इस शून्य के चारों तरफ यह मिट्टी का एक गोल घेरा क्यों बनाता है? ताकि हम कुछ भर सकें। क्योंकि शून्य में तो कुछ न भरा जा सकेगा। तो शून्य को चारों तरफ से घेर देते हैं पदार्थ से, ताकि फिर भरा जाए। भरा तो जाएगा शून्य में ही, लेकिन फिर उसमें तलहटी बनानी पड़ेगी। नहीं तो वह गिर जाएगा। इसलिए घड़े की दीवार बनाते हैं, क्योंकि भरना है।

लेकिन अगर खाली ही करना है, तो आप बाजार में घड़ा खरीदने जाएंगे? क्योंकि हमें घड़ा खाली करना है! खाली घड़ा कोई खरीदने जाएगा? खाली घड़े को कोई सम्हाल कर रखेगा?

अगर भरना नहीं है, तो दीवार बेकार हो गई। उसका कोई प्रयोजन, उसका प्रयोजन ही भरने के लिए था। तो जैसे ही कोई व्यक्ति सूना रहने के लिए राजी हो गया, रिक्त रहने के लिए राजी हो गया, शरीर की जो दीवार है, वह छूट जाती है। उसी को हम पुनः देह का निर्मित न होना कहते हैं। इसे ऐसा समझ लें कि हमारे भीतर एक शून्य है, जो हमारी आत्मा है। और हमारा शरीर एक घड़ा है--दीवार मिट्टी की। जब तक हमें भरना है अपने को, किन्हीं इच्छाओं को पूरा करना है, कहीं पहुंचना है, कुछ पाना है, कोई यात्रा करनी है, कोई लक्ष्य है, कोई वासना है, कोई इच्छा है, तब तक बार-बार कुम्हार हमारे घड़े को बनाता चला जाएगा।

बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ, बुद्ध ने कहा, हे मेरे मन के कुम्हार, अब तुझे घड़ा बनाने की जरूरत न पड़ेगी। यह आखिरी बार। और तुझे धन्यवाद देता हूं, तूने मेरे लिए बहुत घड़े बनाए। हे राज, अब तुझे मेरे लिए घर न बनाना पड़ेगा। क्योंकि अब तो रहने वाले की मर्जी ही रहने की न रही। अब मेरे लिए किसी घर की कोई जरूरत न पड़ेगी।

हर बार, हमारी वासना जो भरने की है, उसी की वजह से हम शरीर निर्मित करते हैं। और जिस दिन हम शून्य होने को राजी हो जाएंगे, उसी दिन फिर इस शरीर को बनाने की कोई जरूरत न रह जाएगी।

लेकिन जो भूल हम घड़े के साथ करते हैं, वही भूल अपने साथ करते हैं। घड़े की दीवार को समझते हैं घड़ा है, अपनी दीवार को समझते हैं मैं हूं। न भीतर के शून्य को हम कभी पहचानते कि कौन है और न घड़े के भीतर के शून्य को पहचानते कि कौन है। वह जो घड़े के भीतर आकाश है, वही है मूल्यवान। क्योंकि उसी में चीजें समाएंगी। आप जब बाजार से खरीद कर लाते हैं, तो असली में उसी शून्य के लिए खरीद कर लाते हैं। लेकिन चूंकि भरने की आतुरता है, इसलिए दीवार अनिवार्य होती है। इसलिए कुम्हार आपकी सेवा करके दीवार बना देता है।

यह जो शून्य होने का समर्पण हो जाए, तो फिर कोई दीवार न बचेगी, कोई घड़ा न बचेगा। और घड़े के गिर जाने से और तो कुछ नहीं होने वाला है। भीतर का जो आकाश था घड़े का, वह बाहर के आकाश से एक हो जाएगा। बीच में कोई व्यवधान नहीं है, कोई बैरियर नहीं है, कोई बाधा नहीं है। वह जो छोटी सी आत्मा है घिरी हुई घड़े के भीतर, वह परमात्मा के साथ एक हो जाएगी। उसे हम मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, या कुछ और कहना चाहें तो कहें। फिर घड़े की कोई जरूरत नहीं है। घड़े की जरूरत भरने के लिए है। इसलिए जब आपको कुछ भरना होता है, तब आप घड़ा खरीद कर लाते हैं; भरना ही नहीं होता, तो कोई घड़ा नहीं खरीदता। जब

भरना होता है कुछ, तो हम शरीर की मांग करते हैं; और जब भरना ही नहीं होता, तो शरीर का कोई सवाल ही नहीं है।

लाओत्से कह रहा है कि वह शून्य आपको पैदा नहीं करना है। आप तो सिर्फ घड़ा ही पैदा करते हैं। कुम्हार भीतर के शून्य का निर्माण नहीं करता; सिर्फ शून्य के चारों तरफ एक दीवार का निर्माण करता है। इसलिए फिर चार पैसे में मिल जाता है। नहीं तो उतना शून्य तो आप सारी मनुष्य-जाति की संपत्ति लगा दें, तो भी नहीं मिल सकता। वह जो घड़े के भीतर जो खाली आकाश है, सारी मनुष्य-जाति की सब संपत्ति और सब प्राण लग जाएं, तो भी हम उतना सा खाली आकाश पैदा नहीं कर सकते हैं। वह तो है ही। कुम्हार उसको पैदा नहीं करता, कुम्हार तो एक सिर्फ घड़े की दीवार निर्मित करता है; मिट्टी का एक घेरा बना देता है।

आप मिट्टी के घड़े को उठा कर जहां भी ले जाइए, आप इस भ्रम में मत रहना कि वही आकाश उसके भीतर रहता है, जो कुम्हार के घर था। आप घड़े को लेकर चलते हैं, आकाश बदलता चलता है। आपके घड़े का आकाश साथ थोड़े ही चला आता है। सिर्फ घड़ा आप कहीं भी ले जाइए, इतना पक्का है कि इतना आकाश उसमें कहीं भी होगा। कहीं भी घड़े को फोड़ दें, वह आकाश परम आकाश में लीन हो जाता है।

इसलिए बुद्ध ने एक बहुत कीमती बात कही, जो नहीं समझी जा सकी। और कीमती बातें नहीं समझी जा सकती हैं। बुद्ध ने कहा, तुम यह भी मत सोचना कि तुम्हारे भीतर वही आत्मा चलती है। इसलिए बुद्ध को नहीं समझा जा सका। जैसे मैंने कहा कि कुम्हार ने घड़ा बनाया; घड़े को आप बाजार से लेकर चले; आप एक इंच हटते हैं कि दूसरा आकाश उस घड़े के भीतर प्रवेश करता है; आप घर आते हैं, तब दूसरा आकाश, आपके घर का आकाश उसमें प्रवेश करता है। आप वही आकाश लेकर नहीं आते। लेकिन आपको मतलब भी नहीं है आकाश से, आपको भरने से मतलब है। कौन सा आकाश, कोई भी आकाश काम देगा।

बुद्ध ने जब यह बात कही, तो बहुत कठिन हो गई। क्योंकि हम सब को ख्याल रहा है कि एक आत्मा हमारे भीतर बैठी है, वही आत्मा। बुद्ध कहते हैं, नहीं, वह तो तुम यात्रा करते जाते हो और आत्मा बदलती चली जाती है। तुम तो घड़े हो, यात्रा करते हुए; आत्मा तो भरा हुआ आकाश है।

इसलिए बुद्ध ने कहा कि जैसे दीया सांझ हम जलाते हैं, सुबह बुझाते हैं, तो कहते हैं, वही दीया बुझा दो जो सांझ जलाया था। कहने में ठीक है। लेकिन सांझ जो ज्योति जलाई थी, वह कभी की बुझ चुकी। प्रतिपल दूसरी ज्योति उसकी जगह आती चली जाती है। इसीलिए तो धुआं बनता है। पिछली ज्योति धुआं होकर उड़ जाती है, दूसरी ज्योति उसके पीछे चली आती है। मगर इतनी तेजी से आती है पिछली ज्योति और पहली ज्योति के जाने और दूसरे के आने में इतना कम अंतराल है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता कि एक ज्योति चली गई और दूसरी आ गई। मगर सुबह जब आप बुझाते हैं, तो बुद्ध कहते हैं, अगर ठीक कहना हो तो इतना ही कहो कि उस ज्योति को बुझा दो, जो हमने सांझ जलाई थी उसकी जगह जो अब जल रही हो। संतति हो उसकी, उसकी धारा में बह रही हो। वही ज्योति तो अब नहीं बुझाई जा सकती, वह तो बुझ गई कई दफा।

मगर फिर भी यह ज्योति उसीशृंखला में बह रही है। तो बुद्ध कहते हैं, आत्मा एकशृंखला है। ए सिरीज ऑफ एक्झिस्टेंसेस, यूनिट ऑफ एक्झिस्टेंस नहीं। इकाई नहीं। एकशृंखला। आप पिछले जन्म में जो आत्मा आपके पास थी, ठीक वही आत्मा आपके पास नहीं है, सिर्फ उसी धारा में है। निश्चित ही, मेरे पास और आपके पास जो आत्मा है, वे अलग हैं। लेकिन भेद दो सीरीज का है।

इसको समझ लें। दो दीए हमने जलाए। रात भर दीए जलते रहे। दोनों की ज्योति बुझती चली गई। सुबह जब हम एक दीए को बुझाते हैं, अ को, तो ब नहीं बुझ जाएगा। और अ और ब के बीच फासला है, फर्क है। फिर भी अ वही नहीं है, जो सांझ हमने जलाया था। और तब भी अ ब नहीं है। ध्यान रहे, अ वही नहीं है जो हमने सांझ जलाया था। अगर हम सांझ जलाने वाली ज्योति को कहें अ एक, तो सुबह जिस दीए को बुझा रहे हैं, वह है अ एक हजार। अगर हम ब को कहें ब एक, तो सुबह जिस दीए को बुझा रहे हैं, वह है ब एक हजार। ब कीशृंखला अपनी है, अ कीशृंखला अपनी है।

हमारे जन्म की धाराशृंखला है। बुद्ध ने पहली दफा इस जगत को जीवंत, प्रवाहमान आत्मा का भाव दिया--डायनैमिक, रिवर-लाइक, सरित-प्रवाह जैसी। जिस दिन भी घड़ा टूटेगा, उस दिन वही आत्मा मुक्त नहीं होगी, जिसने मुक्ति चाही थी। उसीशृंखला में कोई चेतना की धारा मुक्त होगी।शृंखला एक है। इकाई नहीं है, प्रवाह है। और अब जब कि वैज्ञानिक पदार्थ के जगत में भी इस सत्य के करीब पहुंच रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, अब एटम कहना ठीक नहीं, ईवेंट कहना ठीक है। अब! अब यह कहना कि अणु है, गलत है। घटना, अणु नहीं। और अब यह कहना कि वस्तु है, ठीक नहीं है--वस्तु-प्रवाह, बहाव, क्वांटम!

लाओत्से कहता है, शून्य हो जाओ। तो जैसे ही शून्य होने की घटना घटेगी, वैसे ही घड़ा व्यर्थ हो जाएगा। फिर भी घड़ा थोड़े दिन जी सकता है, क्योंकि घड़े के अपने नियम हैं। आप एक घर में घड़ा ले आए, भरने लाए थे, लेकिन घर लाते-लाते आप बदल गए और अब आप नहीं भरना चाहते। तो आपके नहीं भरने भर से घड़ा नहीं फूट जाएगा। घड़े का अपना अस्तित्व है। घड़े को आप रख दें, खाली वह रखा रहेगा, रखा रहेगा, जीर्ण-शीर्ण होगा, टूटेगा। दस वर्ष लगेंगे, गिरेगा। जिस दिन आपने तय किया कि अब घड़े में कुछ नहीं भरना है, एक बात पक्की हो गई कि अब दुबारा आप घड़ा खरीद कर न लाएंगे। लेकिन यह घड़ा जो आप खरीद कर ले आए हैं, यह घड़ा आपके निर्वासना होने से ही नहीं टूट जाएगा। इसकी अपनी धारा रहेगी; इसका मोमेंटम अपना है।

इसलिए बुद्ध को ज्ञान हुआ चालीस वर्ष की उम्र में, मरे तो वे अस्सी वर्ष की उम्र में। चालीस साल घड़ा तो था। महावीर को ज्ञान हुआ कोई बयालीस साल की उम्र में, मरे तो वे भी कोई चालीस साल बाद। तो चालीस साल तक घड़ा तो था। लेकिन अब घड़ा गैर-भरा था। और अब सिर्फ प्रतीक्षा थी कि घड़ा अपने ही नियम से बिखर जाए, टूट जाए।

कोई पूछ सकता है, हम घड़े को फोड़ तो सकते हैं! जब भरना ही नहीं है, तो फोड़ कर फेंक दें। कोई पूछ सकता है। और ठीक सवाल है कि एक घड़े को मैं खरीद कर लाया; अब भरना ही नहीं है, तो फोड़ कर फेंक दूं। तो बुद्ध या महावीर फिर चालीस साल क्यों जीते हैं? जब कि शून्य हो गया सब, अब कुछ वासना न रही, अब ये चालीस साल क्यों जीते हैं?

अगर हम बुद्ध और महावीर से पूछें, तो वे कहेंगे कि फोड़ना भी एक वासना है। इतनी भी वासना न रही कि अब घड़े को भी फोड़ दें। अब जो हो रहा है, होगा। वह भी वासना है, क्योंकि कुछ करना पड़ेगा न। घड़े को फोड़ने के लिए कुछ करना पड़ेगा। वह करना भी, घड़े के प्रति अभी किसी तरह का लगाव बाकी रह गया है, इसकी खबर है। अभी घड़े से संबंध जारी है। यू आर इन रिलेशनशिप! अभी तुम घड़े को फोड़ते हो; अभी तुम घड़े को मानते हो। अभी घड़े से कोई संबंध, लेन-देन जारी है।

नहीं, तो बुद्ध या महावीर कहते हैं कि ठीक है, हम खाली हो गए, अब घड़ा आयु-कर्म से, जो उसकी आयु है, जैसा हमने मांगा था पिछले जन्म में कि ऐसा घड़ा मिल जाए कि अस्सी साल रहे। बाजार खरीदने गए थे, कुम्हार से कहा था, ऐसा घड़ा दो कि दस साल चल जाए। चुकाए दाम, दस साल चलने वाला घड़ा ले आए।

लेकिन पांच साल में ज्ञान हुआ और लगा कि कुछ नहीं भरना है। पर यह घड़े का अभी आयु-कर्म पांच साल का शेष है। हमने ही चुकाया था उसके लिए। इसको फोड़ेंगे भी नहीं। इसको चलने देंगे। इससे कोई दुश्मनी भी नहीं है। यह जब गिर जाएगा अपने आप, तो गिर जाएगा। इसको बचाने की भी कोई चेष्टा नहीं होगी।

इसलिए बुद्ध को दिया गया है भोजन, वह विषाक्त है, वे चुपचाप कर गए। मुंह में कड़वा मालूम पड़ा, जहर था बिल्कुल। पीछे लोगों ने कहा कि आपने कैसा पागलपन किया! आप जैसा बुद्धिमान, आप जैसा सजग पुरुष, कि जो रात सोते में भी जागता है, उसे पता न पड़ा हो जहर पीते वक्त, यह हम नहीं मान सकते हैं। बुद्ध ने कहा, पूरा पता पड़ रहा था। पहला कौर मुंह में रखा था, तभी जाहिर हो गया था। विषाक्त था, जहर था।

तो थूक क्यों न दिया? मना क्यों न किया? और कौर क्यों ले लिए?

बुद्ध ने कहा, वह जिसने खाना बनाया था, उसे पीड़ा होती। उसे अकारण पीड़ा होती; उसे अकारण दुख होता। वह बहुत दीन और गरीब था। उसकी हंडी में सब्जी भी इतनी ही थी, मेरे लायक। और वह इतना आनंदित था कि उसके आनंद को विषाक्त करने का कोई भी तो कारण नहीं था।

पर लोगों ने कहा, आप यह क्या कह रहे हैं! आपकी मृत्यु घटित हो सकती है।

तो बुद्ध ने कहा, मैं तो उसी दिन मर गया अपनी तरफ से, जिस दिन वासना क्षीण हुई, जिस दिन तृष्णा समाप्त हुई। आयु-कर्म है। वह घड़ा जब तक चल जाए!

तो अगर इस घर में रखे घड़े को कोई आकर डंडे से फोड़ता होगा, तो भी नहीं रोकेगा। फोड़ने भी नहीं जाएगा; इसे कोई डंडे से फोड़ता होगा, तो भी नहीं रोकेगा। पर यह आखिरी है, क्योंकि अब दुबारा घड़ा खरीदने इस तरह की चेतना नहीं जाती। दुबारा उसका जन्म नहीं है। जन्म-मरण से मुक्ति का इतना ही अर्थ है कि जिसने शून्य होने का तय कर लिया, अब उसे पुनः घड़ों को खरीदने का प्रयोजन नहीं रह गया है।

एक सवाल और ले लें।

कोई पूछता है, मन ही एक बाधा है, उसके कारण ही स्वयं का साक्षात्कार नहीं हो पाता। इस मन को कैसे खाली किया जाए?

सदा ही हम ऐसा सवाल पूछते हैं। सवाल गलत है। और गलत होने की वजह से जो भी उत्तर मिलते हैं, वे हमारे काम नहीं पड़ते। ठीक सवाल पूछना बड़ी मुश्किल बात है। ठीक जवाब पाने से ज्यादा मुश्किल है! क्योंकि ठीक सवाल उठ जाए, तो ठीक जवाब बहुत दूर नहीं होता।

हम सदा यही पूछते हैं कि मन को कैसे रोका जाए? कैसे शून्य किया जाए?

नहीं, हमें पूछना सिर्फ इतना ही चाहिए कि मन को कैसे न भरा जाए? हाऊ नॉट टु फिल इट! हम पूछते हैं, हाऊ टु एम्पटी इट? उसे कैसे खाली करें? पूछना चाहिए कि कैसे हम इसे न भरें? क्योंकि खाली तो वह है ही। जिसको आप खाली करने के लिए पूछ रहे हैं, वह खाली है। खाली आपको करना ही नहीं है। आपकी इतनी कृपा काफी होगी कि आप न भरें।

लेकिन हम सदा पूछते हैं, कैसे खाली करें? और तब हम ऐसी विधियां खोज लाते हैं, जो और भरने वाली सिद्ध होती हैं। क्योंकि आप कुछ भी करेंगे, पूछते हैं, कैसे खाली करें? तो आप कुछ और साज-सामान ले आएंगे खाली करने का; उसको भी इसी में भर लेंगे। नहीं, पूछें कि कैसे हम न भरें?

हम चौबीस घंटे भर रहे हैं। और मजा यह है कि यह भराव करीब-करीब ऐसा है कि अगर हम दस मिनट भी न भरें, तो हजारों साल हमने जो भरा है, वह खाली हो जाए। यह मामला ऐसा है कि जिसमें हम भर रहे हैं, वह शून्य है। चूंकि हम सतत भरते हैं, इसलिए भरे होने का भ्रम बना रहता है। अगर हम दस मिनट को भी रुक जाएं और न भरें, तो वह जो जन्मों-जन्मों का भरा है, वह नीचे गिर जाए और घड़ा खाली हो जाए अभी। क्योंकि नीचे बॉटमलेस है। आपका जो मन है, उसमें नीचे कोई तलहटी नहीं है।

मगर सतत भरते रहते हैं। वह करीब-करीब ऐसा है, जैसा कि आटे की चक्की वाला ऊपर से गेहूं डालता जाता है और नीचे से आटा गिरता चला जाता है। अब वह कहता है, इस आटे को कैसे रोकें? वह यह नहीं पूछता कि वह गेहूं को डालना कैसे बंद करें? वह गेहूं डालता चला जाता है उधर से और इधर से कहता है, इसको कैसे रोकें! अब वह इसको रोकने की कोशिश करता है, तो और झंझट होती है। क्योंकि वह गेहूं पीछे से डाला जा रहा है। तो एक पांच मिनट रोक दो, तुम्हें इस आटे को रोकने के लिए कुछ न करना पड़ेगा। यह चक्की अपने से खाली हो जाएगी।

असली सवाल यह है कि हम कैसे भर रहे हैं, उसे जरा देख लें। चौबीस घंटे भर रहे हैं। एक दिन ऐसा नहीं जाता जिस दिन हम नई वासनाएं निर्मित न करते हों। अगर आप पुरानी वासनाओं के साथ ही रुक जाएं एक दिन, तो उसी दिन आप पाएं कि खाली हो गए। कल आपने जो-जो वासनाएं की थीं, कृपा करके चौबीस घंटे उतने पर रुक जाइए। यह कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है कि कल जितना किया था वासना, उतने पर ही रुकूंगा। कल अगर दस रुपए चाहे थे, तो दस रुपए आज ही चाहूंगा। आज भी दस ही चाहूंगा, कल पर रुक जाता हूं।

तो ये चौबीस घंटे में आप मुश्किल में पड़ जाएंगे; और पाएंगे, खाली होने लगे। अगर आपको दस रुपए की चाह बचानी है, तो आज आपको बीस चाहने पड़ेंगे, तो बचेगी। आपको आज चाह जारी रखनी पड़ेगी, उसको पोषण देना पड़ेगा, उसे बढ़ाते रहना पड़ेगा, उकसाते रहना पड़ेगा। उसको भोजन और खाद और पानी देते रहना पड़ेगा।

अगर आप एक क्षण भी रुके, तो यह करीब-करीब मामला ऐसा है, जैसे कोई साइकिल चलाता है, पैडल रोके कि गिरे। पिछले पैडल पर ही रुक जाएं, ज्यादा देर साइकिल चलने वाली नहीं है। चढ़ाव पर हुए, तो उसी वक्त गिर जाएगी; उतार पर हुए, तो थोड़ी दूर चल सकती है। मगर गिरेगी। कांसटेंट पैडलिंग जरूरी है साइकिल चलाने के लिए। करीब-करीब मन के चक्र को चलाने के लिए भी कांसटेंट पैडलिंग। उसमें एक क्षण की भी रुकावट खतरनाक है, साइकिल गिर जाएगी।

रोज हम नई वासना निर्मित करते हैं, रोज। किसी का कपड़ा दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। कोई मकान दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। किसी का चेहरा दिखाई पड़ा, वासना निर्मित हुई। हिलते-डुलते भी नहीं जरा, जरा हिले-डुले कि वासना निर्मित हुई। उठे-बैठे कि वासना निर्मित हुई।

इस पर सजग हों। भरने के मामले में सजग हों। खाली की फिक्र छोड़ दें। खाली आपसे न हो सकेगा। खाली कभी किसी से नहीं हुआ। भरने की भर फिक्र छोड़ें। और एक दिन आप अचानक पाएंगे कि भरना बंद है और नीचे से आटा आना चक्की से बंद हो गया है, वह खाली पड़ी है। भरने का ख्याल रखें, कहां-कहां से भर रहे हैं! पहले सजग हों; जल्दी न करें रोकने की; पहले सजग हों कि कहां-कहां से भरते हैं! किस-किस भांति भरते हैं! और आदमी ऐसा है कि आखिरी दम तक भरे जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन को एक पागल कुत्ते ने काट लिया। दो-चार दिन उन्होंने कोई फिक्र ही न की। लोगों ने कहा भी कि पागल कुत्ते का मामला है, जाकर डाक्टर को दिखा लो। जब दिखाया, तब तक जहर फैल चुका था। चिकित्सकों ने बैठक की और उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन को सीधा-सीधा कह देना जरूरी है। कह दिया कि हाइड्रोफोबिया हो गया। अब सीमा के बाहर है। पागल होकर आप रहोगे। बहुत देर कर दी आने में।

सोचा था, नसरुद्दीन घबड़ा जाएगा। नसरुद्दीन ने कहा, कोई हर्ज नहीं। एक कलम-कागज ले आओ। कलम-कागज! सोचा डाक्टर ने कि शायद वसीयत लिखता होगा; या सोचा कि शायद मित्रों को, पत्नियों को चिट्ठी-पत्री लिखता होगा। लेकिन चेहरे पर कोई चिंता नहीं है, कोई घबड़ाहट नहीं है। कागज-कलम दे दिया। नसरुद्दीन जब लिखने लगा, तो घंटे भर तक सिर न उठाया। डाक्टर भी हैरान हुआ कि कितना लिख रहा है! जब लिख कर सिर उठाया, डाक्टर ने पूछा, क्या वसीयत लिख रहे हैं इतनी बड़ी? या पत्र लिख रहे हैं घर?

नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, मैं उन लोगों के नाम लिख रहा हूं, जिनको काटूंगा। पागल हो जाऊंगा न! लिस्ट बना रहा हूं। एक दफा पागल हो गए, फिर लिस्ट न बना पाए। जब पागल होने ही जा रहे हैं! और उसने डाक्टर से कहा, डोंट फील जेलस, यू विल नॉट बी डिप्राइव्ड। तुम्हारा नाम इसमें मैंने रखा है। पहला नंबर तुम्हारा ही रखा है।

यह जो नसरुद्दीन है, यह आदमी के भीतर की बड़ा ठीक खबर देने वाला आदमी है। अगर पागल कुत्ता काट जाए, तो पहले यही ख्याल आएगा कि किसको काटें। अब जो हो गया, हो गया। किसको काटें? मरते दम तक वासना निर्मित होती चली जाती है। क्या कर लेना है अब? उसकी योजना बना लो; वह लिस्ट तैयार कर रहा है। वक्त रहते लिस्ट तो तैयार कर लो।

भरने की तरफ ख्याल रखें कि हम प्रतिपल भर रहे हैं। और जितना सजग हो जाएंगे भरने के प्रति, उतना ही धीरे-धीरे पाएंगे कि भरना बिल्कुल फिजूल है। जिंदगी भर भर कर तो भर नहीं पाए! अनेक जन्मों भर कर नहीं भर पाए! इधर से भरते हैं, इधर से सब निकल जाता है। लेकिन भरने का भ्रम कभी छूटता नहीं, क्योंकि भरने पर हम ध्यान ही नहीं देते।

नसरुद्दीन की एक कहानी और। फिर मैं बात पूरी करूं। एक युवक उसके पास आया है और उसने कहा कि कैसे कहते हो नसरुद्दीन कि मन को खाली करें? कैसे? नसरुद्दीन ने कहा कि अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा हूं, तू मेरे पीछे आ, और बीच में सवाल मत पूछना। अगर सवाल पूछा, तो भगा दूंगा। लौट कर जवाब दूंगा।

नसरुद्दीन ने दो बालटियां उठाईं और भागा कुएं पर। वह युवक साथ-साथ गया। नसरुद्दीन ने एक बालटी तो रखी कुएं के पाट पर। युवक थोड़ा हैरान हुआ, जब उसने बालटी को रखा जाते देखा। देखा कि उसमें कोई नीचे तलहटी थी ही नहीं। खाली ड्रम था। दोनों तरफ कुछ न था। पर उसने कहा कि इस मूरख ने कहा है कि बीच में सवाल न पूछना। फंस गए! यह तो कभी भरने वाली नहीं है। अब बुरे फंस गए। और जब तक, यह बोलता है, भर न जाए, घर न लौटूं, तब तक सवाल-जवाब कुछ होगा नहीं। और यह कब भरेगी? यह भर ही नहीं सकती। मगर उसने सोचा, थोड़ा तो साहस रखो। एक मिनट, दो मिनट देखो तो, यह करता क्या है।

नसरुद्दीन ने नीचे बालटी डाली। पानी खींच कर उस खाली ड्रम में डाला। जब तक उन्होंने डाला, तब तक वह निकल गया। उन्होंने दूसरी बालटी नीचे डाली। दो-तीन बालटी निकल चुकीं।

उस युवक ने कहा कि ठहरो महानुभाव, अब मुझे पूछना भी नहीं है। अगर आप जवाब भी देते हों लौट कर, हमको पूछना नहीं है। लेकिन एक सलाह आपको दे दें।

नसरुद्दीन ने कहा कि चुप! अक्सर मैं देखता हूं कि जो लोग सीखने आते हैं, वे जल्दी से सिखाना शुरू कर देते हैं। यू केम एज ए डिसाइपल एंड नाऊ यू हैव बिकम मास्टर। अब तुम हमको एडवाइस दे रहे हो। गुस्ताख, इस तरह की बात दुबारा नहीं करना। खड़ा रह अपनी जगह पर!

उस आदमी ने कहा कि लेकिन यह भरेगी कब, जरा ख्याल तो करिए! आप तीन बालटियां डाल चुके हैं। कुछ भी पानी एक बूंद नहीं बचा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि दुनिया में जब कोई भी ख्याल नहीं कर रहा है, तो मैंने ही ठेका लिया है गलत बातों का ख्याल करने का? जन्म-जन्म से भर रहे हैं लोग, और नहीं भरा। और ख्याल नहीं कर रहे हैं। तो हमने तो अभी तीन ही बालटी डाली हैं। ऐसा तो कुछ... । तू चुप रह!

वह थोड़ी देर और खड़ा रहा। नसरुद्दीन ने और दस-पांच बालटियां डालीं। उसने कहा कि थोड़ा तो ख्याल करिए। एक सीमा होती है। जरा ऊपर नजर तो डालिए।

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे इससे प्रयोजन नहीं है कि बालटी भरती है या नहीं भरती है। मैं अपना पुरुषार्थ पूरा करके रहूंगा। हम भर कर रहेंगे। हम बालटी से पूछने नहीं जाएंगे। हम तो भर कर रहेंगे। हमारा काम भरना है। बालटी न भरेगी? देखें, कैसे नहीं भरती है!

उस युवक ने कहा, मैं जाता हूं, नमस्कार! वह चला गया।

लेकिन रात उसे नींद न आई कि यह आदमी! क्या मतलब रहा होगा इसका? बार-बार जितना सोचा, उतना उसे लगा कि भूल हो गई। थोड़ा रुकना था। पता नहीं, वह अभी भी भर रहा है या क्या कर रहा है? वह तो जैसे ही वह आदमी गया था, नसरुद्दीन अपने घर अपनी बालटी लेकर चले गए थे। वह आधी रात उठ कर कुएं पर पहुंचा, देखा कि जा चुका है। नसरुद्दीन के घर पहुंचा, देखा कि वह सो रहा है। उसे उठाया और कहा कि क्या हुआ? वह बालटी भरी कि नहीं?

नसरुद्दीन ने कहा, पागल, वह तेरे लिए रखी थी।

हम अपने मन को भर रहे हैं जन्मों-जन्मों से। और जन्मों को छोड़ दें, क्योंकि इतना पुराना है, वह हमें भूल गया। इस जन्म में भी हम भर रहे हैं। कभी ख्याल किया कि जिस चीज से आपने भरा है, उसमें से रत्ती भर भी भीतर बचा है? कितनी बार क्रोध किया, कितना बचा है? कितनी बार भोग किया, कितना बचा है? क्या-क्या किया, उसमें से बचा क्या है? आपकी संपदा क्या है उसमें से? बालटी खाली है। और हम पूछते हैं कि बालटी को खाली कैसे करें? मजा यह है कि बालटी खाली है। वह भरी ही नहीं है। आपको खाली करने की जरूरत नहीं है। कृपा करके आप उसे भरने की जो पागलपन में लगे हैं, देख ही नहीं रहे हैं खाली बालटी की तरफ, कुएं में डाल रहे हैं, भर रहे हैं, डाल रहे हैं... ।

जैसे नसरुद्दीन किसी से पूछे कि यह जो ड्रम रखा है कुएं के पाट पर, इसको खाली कैसे करें, वैसे ही हमारा पूछना है। मन भरा कहां है? किसको खाली करने की बात है? मन खाली है। लेकिन इतने जोर से हम भरते चले जाते हैं कि पता ही नहीं चलता कि यह मन खाली है।

इस भरने पर थोड़ा ध्यान रखें। और जो-जो भरा हो अब तक और कुछ भी न भर पाया हो, उससे थोड़े सजग हों। एक चौबीस घंटे के लिए कोई राजी हो जाए कि नहीं भरूंगा! वह पाएगा, यह मन सदा से खाली है, इसमें कभी कुछ भरा ही नहीं जा सका है।

तो उलटा मत पूछें। गलत सवाल न उठाएं। गलत सवाल गलत जवाबों में ले जाते हैं। ठीक सवाल ठीक जवाब में ले जाता है। ठीक सवाल यह है कि हम जो भर रहे हैं, यह कैसे न भरें?

और कैसे न भरें का इतना ही मतलब है, थोड़ा सजग हो जाएं। अगर आपको पता चल जाए कि यह ड्रम दोनों तरफ से टूटा है, तो फिर आप भरेंगे? हाथ से बालटी छूट जाएगी; हंसेंगे और घर लौट जाएंगे।

उस शून्य को लाना नहीं है, वह शून्य हमारे भीतर है। चमत्कार तो यह है कि हमने उस शून्य को भी भरा हुआ जैसा बना रखा है। ऐसा लगता है कि सब भरा हुआ है। इस भ्रम के प्रति जागना पर्याप्त है।

कुछ और सवाल रह गए हैं। अगली बार जब बैठक होगी तब उनको चर्चा कर लेंगे।

सोलहवां प्रवचन

निष्पक्ष हैं तीनों--स्वर्ग, पृथ्वी और संत

Chapter 5 : Sutra 1

Nature

Heaven and Earth do not act from (the impulse of) any wish to be benevolent;
They deal with all things as the dogs of grass are dealt with.
The sage does not act from (any wish to be) benevolent;
They deal with the people as the dogs of grass are dealt with.

अध्याय 5 : सूत्र 1

प्रकृति

स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की
कामना उत्प्रेरित नहीं करती;
वे सभी प्राणियों के साथ वैसा ही
व्यवहार करते हैं, जैसे कोई घास-निर्मित कुत्तों
से व्यवहार करता है।
तत्वविद (संत) भी सदय नहीं होते।
वे सभी मनुष्यों के साथ वैसा ही व्यवहार
करते हैं, जैसा घास-निर्मित कुत्तों से किया जाता है।

पृथ्वी पर जितने जानने वाले लोग हुए हैं, उन सब में लाओत्से बहुत अद्वितीय है।

कृष्ण की गीता में कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी कुछ जोड़ना चाहे तो जोड़ सकता है। महावीर के वचनों में या बुद्ध और क्राइस्ट के वक्तव्यों में कुछ भी मिश्रित किया जा सकता है। और पता लगाना बहुत कठिन होगा। क्योंकि उनके वक्तव्य ऐसे हैं कि साधारण मनुष्य की नीति और समझ के प्रतिकूल नहीं पड़ते। और इसलिए दुनिया के सभी शास्त्र प्रक्षिप्त हो जाते हैं; इंटरपोलेशन हो जाता है। दूसरी पीढ़ियां उनमें बहुत कुछ जोड़ देती हैं। उन शास्त्रों को शुद्ध रखना असंभव है।

लेकिन लाओत्से की किताब जमीन पर बचने वाली उन थोड़ी सी किताबों में से एक है, जो पूरी तरह शुद्ध है। इसमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। न जोड़ने का कारण यह है कि जो लाओत्से कहता है, लाओत्से की हैसियत का व्यक्ति ही उसमें कुछ जोड़ सकता है। क्योंकि लाओत्से जो कहता है, वह साधारण समझ से इतनी प्रतिकूल बातें हैं, सो मच अपोज्ड टु दि कामन सेंस, कि साधारण आदमी उसमें कुछ भी जोड़ नहीं सकता। किसी को कुछ जोड़ना हो, तो लाओत्से होना पड़े। और लाओत्से होकर जोड़ने में फिर कोई हर्ज नहीं है।

यह वक्तव्य भी ऐसा ही वक्तव्य है। यह आपने कभी भी न सुना होगा कि संत दयावान नहीं होते हैं। संतों के संबंध में जो भी आपने सुना होगा, जरूर ही जाना होगा कि वे परम दयालु होते हैं। और लाओत्से कहता है कि संत सदय नहीं होते। इस वक्तव्य में जोड़ना बहुत मुश्किल है। लाओत्से कहता है कि जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ हम व्यवहार करते हैं, संत ऐसा ही व्यवहार हमारे साथ करते हैं। बहुत अजीब सी बात मालूम पड़ती है; इसलिए समझने जैसी भी है। और लाओत्से जितनी भलीभांति संतों को जानता है, शायद ही कोई और जानता हो। असल में, हम संतों के संबंध में जो कहते हैं, वह हमारी समझ है। और लाओत्से जो संतों के संबंध में कह रहा है, वह संतों की समझ है।

इस सूत्र को शुरू से समझें।

"स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की कामना उत्प्रेरित नहीं करती।"

प्रकृति बिल्कुल ही दया-शून्य है। चाहे वह प्रकृति पृथ्वी पर प्रकट होती हो और चाहे स्वर्ग-आकाश में, चाहे वह शरीर के तल पर प्रकट होती हो और चाहे आत्मा के तल पर, प्रकृति सदय नहीं है। इसका यह अर्थ आप न लेना कि प्रकृति कठोर है। साधारणतः ऐसा ही समझ में आएगा कि जो दयावान नहीं है, वह क्रूर होगा, कठोर होगा।

नहीं, जो कठोर हो सकता है, वह दयावान भी हो सकता है। जो दयावान होता है, वह कठोर भी हो सकता है। लेकिन प्रकृति दोनों नहीं है। न तो वह किसी पर दया करती है और न किसी पर कठोर होती है। असल में, प्रकृति आपकी चिंता ही नहीं लेती। आप हैं भी, आपका अस्तित्व भी है, प्रकृति को इससे भी प्रयोजन नहीं है। कल आप नहीं होंगे, तो आकाश रोएगा नहीं और पृथ्वी आंसू नहीं गिराएगी। और कल आप नहीं थे, तो पृथ्वी को आपके न होने का कोई पता नहीं था। और आज आप हैं, तो प्रकृति को आपके होने का कोई पता नहीं है।

आपके होने और न होने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। वर्षा इसी तरह होती रहेगी, सूरज इसी तरह निकलता रहेगा, फूल ऐसे ही खिलेंगे। जिस दिन आप मरे होंगे, उस दिन भी फूल ऐसे ही खिलेंगे, जैसे वे सदा खिलते रहे हैं। चांद ऐसे ही निकलेगा और उसकी चांदनी की शीतलता में जरा भी कमी न होगी। और आकाश में दौड़ती हुई बदलियां वैसी ही दौड़ती रहेंगी; उनकी उत्फुल्लता में कोई अंतर न पड़ेगा। आपका होना और न होना इररेलेवेंट है, असंगत है। प्रकृति को पता ही नहीं कि आप हैं।

लेकिन हम ऐसी प्रकृति को नहीं जानते। हम तो जिस प्रकृति को जानते हैं, वह भी हमारा ख्याल है। अगर मैं दुखी हूं, तो चांदनी मुझे उदास मालूम पड़ने लगती है। चांदनी उदास नहीं होती; क्योंकि उसी रात में कोई अपने प्रेमी को मिल गया होगा और गीत गा रहा होगा। वही चांदनी किसी के लिए आनंद होगी और वही चांदनी मेरे लिए उदास है। हो सकता है, दीवार के इस तरफ चांदनी में मुझे आंसू मालूम पड़ते हैं और दीवार के ठीक उस पार चांदनी में फूल खिलते हों।

लेकिन चांदनी में न फूल खिलते हैं और न चांदनी उदास होती है। चांदनी को न मेरा पता है, न किसी और का पता है। हम न भी होते, तो भी चांदनी ऐसी ही होती। हम नहीं होंगे, तब भी ऐसी ही होगी।

जब लाओत्से कहता है कि प्रकृति सदय नहीं है, तो वह यह कह रहा है कि व्यर्थ दया की भीख मांगने मत जाना। न जमीन पर दया मिल सकती है और न आकाश में। हाथ मत जोड़ना किसी मंदिर और मस्जिद के सामने। किसी परमात्मा की प्रार्थना इसलिए मत करना कि प्रार्थना से कुछ भेद पड़ जाएगा। नहीं, प्रशंसा से कोई भेद न पड़ेगा परमात्मा की तरफ से; स्तुति कुछ फर्क न ला सकेगी, क्योंकि गालियां भी कोई अंतर नहीं लाती हैं। स्तुति वहीं सार्थक होती है, जहां गालियां भी सार्थक हो सकती हैं। अगर परमात्मा को दी गई मेरी गाली बेचैन करती हो, तो मेरी स्तुति भी सार्थक हो सकती है। और परमात्मा, अगर मैं प्रार्थना न करूं, और नाराज और कठोर हो जाए, तो मेरी स्तुति उसे पिघला सकती है, परसुएड कर सकती है, फुसला सकती है और राजी कर सकती है। अगर परमात्मा को मैं दयावान होने के लिए राजी कर सकता हूं, तो फिर परमात्मा को कठोर होने के लिए भी राजी किया जा सकता है। उस हालत में परमात्मा परमात्मा नहीं रह जाता, हमारे हाथ की कठपुतली हो जाता है।

लाओत्से कहता है, उलटी है बात; हम उसके हाथ की कठपुतलियां हैं, वह हमारे हाथ की कठपुतली नहीं है। अगर वह सदय हो, तो हम उसके साथ भी खेल कर सकते हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। कठोर है, ऐसा नहीं कहता। कठोर से कठोर आदमी भी दयावान होता है। कितना ही कठोर आदमी हो, चाहे वह तैमूर हो, चाहे वह चंगेज हो, चाहे वह हिटलर हो, कठोर से कठोर आदमी भी दयावान होता है। उसके हृदय के भी कमजोर कोने होते हैं। किसी को वह प्यार भी करता है और किसी की पीड़ा से दुखी भी होता है। मात्रा के फर्क होंगे। कठोर आदमी की दया की सीमा छोटी होगी, कठोरता की ज्यादा होगी। और दयावान आदमी की दया की सीमा बड़ी होगी और कठोरता की छोटी होगी। लेकिन दयावान से दयावान आदमी भी कठोर होता है। उसकी भी कठोरता की सीमा होती है। इसलिए बड़े से बड़े दयालु आदमी के पास जाकर भी आप पाएंगे कि कुछ हिस्सा बहुत कठोर है; कहीं, कहीं पत्थर भी है हृदय में!

यह अनिवार्य है। क्योंकि इस जीवन में जो भी हम जानते हैं, वह द्वंद्व है, डुएल है, दोहरे में बंटा हुआ है। जो आदमी प्रेम करेगा, वह घृणा भी करेगा ही। और जो आदमी क्रोध करेगा, वह क्षमा भी करेगा ही। और जैसे सुबह होती है और सांझ होती है, ठीक ऐसे ही आदमी के मन पर द्वंद्व का आना और जाना होता है।

लाओत्से कहता है, प्रकृति निर्द्वंद्व है। लाओत्से यह कहता है कि वहां एक-रस नियम है। उस एक-रस नियम में कोई फर्क नहीं पड़ सकता। न तो वह दया करेगा, और न वह कठोर होगा। न तो वह बुरे के लिए गर्दन काट देगा और न भले के लिए सिंहासन का इंतजाम करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि जो भी हम करते हैं और जो भी हम पाते हैं, वह अपना ही किया हुआ और अपना ही पाया हुआ है। उसमें प्रकृति कोई हाथ नहीं बंटाती।

अगर मेरे पैर में कांटे गड़ जाते हैं, तो इसलिए नहीं कि प्रकृति मेरे पैर में कांटे गड़ाने को उत्सुक है; बल्कि इसलिए कि मैं उन रास्तों पर चलने के लिए उत्सुक हूं, जहां कांटे हैं। और अगर मेरे सिर पर फूलों की वर्षा हो जाती है, तो इसलिए नहीं कि आकाश के देवता मेरे ऊपर फूल बरसाने को आतुर हैं, बल्कि सिर्फ इसलिए कि मैं उन वृक्षों की खोज कर लिया हूं, जिनके नीचे बैठने से फूल बरस जाते हैं। यह संयोग है। यह मेरी ही खोज है, चाहे वह कांटे की हो और चाहे फूल की, और चाहे मुझे गालियां मिलें और चाहे मुझे प्रेम मिले, और चाहे मैं नर्क में सड़ूं और चाहे स्वर्ग का संगीत मेरे चारों ओर गूंजने लगे, यह मेरी ही खोज है।

लेकिन प्रकृति निरपेक्ष है। नहीं, प्रकृति जरा भी उत्सुक नहीं है। होनी भी नहीं चाहिए; क्योंकि अगर प्रकृति इसमें उत्सुक हो, तो अव्यवस्था हो जाए।

लाओत्से कहता है, यही प्रकृति की व्यवस्था है कि वह आप में बिल्कुल उत्सुक नहीं है। आप में उत्सुकता हो, तो आप प्रकृति के नियमों का दुरुपयोग शुरू कर दें। आप में उत्सुकता हो, तो आप प्रकृति को आदमी के हाथ के भीतर रख दें।

लेकिन प्रकृति आप में उत्सुक नहीं है; इसलिए सदा आपके हाथ के बाहर है। और कभी अगर आपकी प्रार्थनाएं पूरी हो जाती हैं, तो इसलिए नहीं कि किसी ने उन्हें सुना, बल्कि इसलिए कि आपने उन प्रार्थनाओं को पूरा करने के लिए कुछ और भी किया। अगर आपकी प्रार्थनाएं पूरी नहीं होतीं, तो इसलिए नहीं कि परमात्मा नाराज है, बल्कि इसलिए कि आप बिल्कुल कोरी प्रार्थनाएं कर रहे हैं और उनके पीछे कुछ भी नहीं है। अगर प्रार्थनाओं से बल भी आता है, तो आप में ही आता है और आपका ही आता है। अगर मंदिर के सामने हाथ जोड़ कर आपने प्रार्थना की है और लौटते वक्त पाया है कि प्राणों में ताकत ज्यादा है, संकल्प ज्यादा सजग है, पैर ज्यादा मजबूत हैं, तो यह कहीं और से आ गई ताकत नहीं है; यह मंदिर के सामने खड़े होकर प्रार्थना करने के ख्याल का परिणाम है। यह आपका अपना है। और ऐसे मंदिर के बाहर भी हो सकता है, जहां मंदिर में कुछ भी न हो।

और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि पत्थर भी आपकी प्रार्थनाओं को पूरा करने में सफल हो जाते हैं। और कई बार ऐसा हो जाता है कि बुद्ध और महावीर और लाओत्से की हैसियत का आदमी सामने खड़ा हो और आपकी प्रार्थना अधूरी की अधूरी रह जाती है।

नहीं, दूसरी तरफ बात नहीं है, आपकी ही तरफ बात है। इसको साफ करने के लिए लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है।

एक लिहाज से यह बहुत कठोर है बात, क्योंकि हम बेसहारा हो जाते हैं। हमारे हाथ की सारी की सारी क्षमता टूट जाती है, अगर कोई कह दे कि प्रकृति सदय नहीं है। अगर मैं गड्ढे में गिर रहा होऊंगा, तो प्रकृति से कोई आवाज न आएगी कि रुक जाओ। यह कठोर लगती है बात और मन को धक्का भी लगता है।

इस धक्के की वजह से ही लाओत्से बहुत अधिक लोगों की समझ के बाहर पड़ा। क्योंकि उसने आपकी किसी कमजोरी को पूरा करने का कोई वचन नहीं दिया है। लाओत्से के पीछे धर्म बनाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि धर्म तो तभी बनता है, जब आपकी कमजोरी का शोषण किया जा सके। जो आप चाहते हैं वही कहा जाए कि परमात्मा भी चाहता है, जो आप पाना चाहते हैं वही देने को परमात्मा भी राजी हो, तो धर्म निर्मित होते हैं।

लाओत्से के पीछे कोई धर्म निर्मित नहीं हो सका। लाओत्से की हैसियत का आदमी वह अकेला है, जिसके पीछे कोई धर्म निर्मित नहीं हो सका, कोई चर्च नहीं खड़ा हो सका। कैसे खड़ा होगा? क्योंकि लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। प्रार्थना कट गई, स्तुति कट गई, परमात्मा कट गया; आप अकेले रह गए। और अकेले रहने में हमें इतना डर लगता है कि झूठा भी साथ मिल जाए, तो मन को राहत होती है। नहीं हो कोई साथ, मेरी नाव बिल्कुल खाली है और मैं हूं; आंख बंद करके भी सपना देख लूं कि कोई साथ है नाव पर, अकेला नहीं हूं, तो भी राहत मिलती है। शायद इसीलिए आदमी सपने देखता है। और सपने सोकर ही देखता हो, ऐसा नहीं; जाग कर भी देखता है।

जिन्हें हम धर्म कहते हैं, वे हमारे फैलाए गए बड़े-बड़े स्वप्न हैं। जिनमें हमने वही देख लिया है, जो हम चाहते हैं। और बड़े सस्ते में देख लिया है। चूंकि एक आदमी एक बार भोजन करता है, या एक आदमी एक लंगोटी पहनता है, या एक आदमी नग्न खड़ा हो जाता है, या एक आदमी रोज मंदिर की घंटियां बजा देता है, तो वह सोचता है, मोक्ष सुनिश्चित हुआ, निश्चित हुआ स्वर्ग।

नहीं, प्रकृति सदय नहीं है।

लेकिन दया की भीख कौन मांगते हैं? दया की भीख सदा ही गलत लोग मांगते हैं। ठीक आदमी दया की भीख नहीं मांगेगा। मिलती भी हो, तो इनकार करेगा। क्योंकि जो दया करके पाया जाता है, वह कभी पाया ही नहीं जाता। जो दया से मिलता है, वह कभी मिल ही नहीं पाता, वह हमारे प्राणों का कभी हिस्सा नहीं हो पाता। जो हमारे श्रम से ही आविर्भूत होता है, वही केवल हमारी संपदा है।

लाओत्से कहता है, प्रकृति सदय नहीं है। कठोर है? कठोर भी नहीं है। प्रकृति सिर्फ आपके प्रति निरपेक्ष है। आपके प्रति प्रकृति का कोई भाव नहीं है, निर्भावी है। पक्ष-विपक्ष नहीं है। हम सदा तोड़ कर सोचते हैं, प्रकृति मित्र है या शत्रु है। नहीं प्रकृति मित्र है, नहीं प्रकृति शत्रु है। प्रकृति आपका कोई लेखा-जोखा नहीं रखती। आप एकाउंटेबल ही नहीं हैं। आपका कोई हिसाब नहीं रखा जाता है। आप न होते, तो कुछ कमी नहीं होती। आप होते हैं, तो कुछ बढ़ नहीं जाता है। पानी पर खींची गई लकीरों जैसा हमारा होना है; पानी को कोई अंतर नहीं पड़ता। लकीर खिंच भी नहीं पाती कि मिट जाती है और बुझ जाती है। सदय नहीं है, इसका अर्थ? इसका अर्थ है, आपके प्रति कोई भाव नहीं है।

यह एक दृष्टि से कठोर, दूसरी दृष्टि से बहुत ही आनंदपूर्ण बात है। क्योंकि अगर प्रकृति भी भाव रखती हो, तो वहां भी पक्षपात हो ही जाएगा। फिर कोई वहां भी धोखा देने में समर्थ हो जाएगा। फिर वहां कोई पाप भी करेगा और स्वर्ग भी पहुंच जाएगा, और कोई पुण्य भी करेगा और नर्क में सड़ेगा। अगर कोई भी भाव है अस्तित्व के पास, तो चुनाव शुरू हो जाएगा।

इसलिए सारे दुनिया के धर्म, जो कि चुनाव पर ही खड़े हैं और प्रकृति के सदय होने की धारणा पर खड़े हैं, निर्णय करते हैं। अगर हम मुसलमान से पूछें कि गैर-मुसलमान का क्या होगा? तो मुसलमान को लगता है, भटकेगा दोजख में, कोई उपाय नहीं है गैर-मुसलमान के लिए। ईसाई से पूछें, गैर-ईसाई का क्या होगा? तो जो ईसा के पीछे नहीं है, वह अंधेरे में भटक जाएगा! परमात्मा ने तो अपना बेटा भेज दिया। अब जो उसके बेटे के साथ हो जाएंगे, वे बच जाएंगे। जो उसके बेटे के साथ नहीं होंगे, वे मिट जाएंगे।

अगर परमात्मा का कोई बेटा है, तो उपद्रव होगा। और अगर परमात्मा के बेटे के पक्ष में होने की सुविधा है और अस्तित्व भी उसके पक्ष में हो जाएगा, तो फिर कठिनाई है।

नहीं, लाओत्से कहता है, प्रकृति का कोई बेटा नहीं। प्रकृति का कोई अपना नहीं, क्योंकि प्रकृति का कोई पराया नहीं है। प्रकृति किसी को स्वीकार नहीं करती, क्योंकि प्रकृति किसी को इनकार नहीं करती है। प्रकृति का कोई पक्ष नहीं है; प्रकृति पक्षधर नहीं है।

यह आनंद की बात है एक अर्थ में। इसलिए जिसकी जितनी सामर्थ्य और जिसका जितना बल, वही हो जाएगा। कोई पक्षपात नहीं होगा। अगर नर्क होगा, तो मेरा अर्जन। और अगर स्वर्ग होगा, तो मेरा अर्जन। न मैं किसी को दोषी ठहरा पाऊंगा और न किसी को उत्तरदायी। न मैं किसी को धन्यवाद दे पाऊंगा और न किसी को गालियां दे पाऊंगा कि तुम्हारी वजह से सब गड़बड़ हो गई है।

लाओत्से के इस वचन का अर्थ है, अल्टीमेटली आई एम दि रिस्पांसिबल; अल्टीमेट रिस्पांसिबिलिटी इ.ज विद मी। आत्यंतिक रूप से मैं ही दायित्व का भागीदार हूं, कोई और नहीं।

इसलिए लाओत्से का दूसरा वचन और भी कठोर मालूम पड़ता है। कहता है, "स्वर्ग और पृथ्वी को सदय होने की कामना उत्प्रेरित नहीं करती। वे सभी प्राणियों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसे कोई घास-निर्मित कुत्तों से व्यवहार करे।"

घास-निर्मित कुत्ते से आप कैसा व्यवहार करेंगे? अगर घास-निर्मित कुत्ता पूंछ हिलाने लगे, तो आप प्रसन्न होंगे? आप कहेंगे, घास का कुत्ता है। अगर घास-निर्मित कुत्ता भौंकने लगे, तो आप भयभीत होंगे, भागेंगे? आप कहेंगे, घास का कुत्ता है। घास का कुत्ता आपको किसी भी दिशा में उत्प्रेरित न कर सकेगा। न तो आप भागेंगे और न आप प्रसन्न होंगे।

लेकिन अगर ख्याल भी आ जाए कि घास का कुत्ता असली है, तो आप उत्प्रेरित हो जाएंगे। झूठा भी, घास का ही हो कुत्ता, लेकिन आपको पता न हो और समझें कि असली है, तो उसकी हिलती पूंछ आपके भीतर भी कुछ हिला जाएगी। कुछ भीतर प्रसन्न हो जाएगा, गदगद!

कुत्ता आदमी इसीलिए पालता है, क्योंकि आदमी खोजना मंहगा काम है जो आपके पीछे पूंछ हिलाए। सभी एफोर्ड नहीं भी कर सकते हैं, मंहगा है। जो कर सकते हैं, वे कर लेते हैं। एक आदमी एक कुत्ते को पाल लेता है। घर लौटता है आदमी थका हुआ, पत्नी का तो कोई भरोसा नहीं कि पूंछ हिलाएगी। पत्नी होने के बाद बिल्कुल ही भरोसा नहीं; पहले हो भी सकता था। लेकिन एक कुत्ता दरवाजे पर रहेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के एक मित्र ने उससे एक दिन कहा है, बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। शादी जब तक नहीं की थी, घर लौटता था, तो कुत्ता भौंकता था, पत्नी चप्पल उठा कर लाती थी। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। पत्नी भौंकती है, कुत्ता चप्पल उठा कर लाता है। नसरुद्दीन ने कहा, लेकिन मैं कोई फर्क नहीं देखता। दि सेम सर्विसेज! परेशान क्यों हो? काम पूरा हो रहा है; वही काम पूरा हो रहा है; करने वाले बदल गए हैं, इससे तुम परेशान क्यों हो? चप्पल भी मिल जाती है; भौंकना भी मिल जाता है।

आदमी कुत्ते की पूंछ से भी प्रसन्न होता है। उसके भौंकने से भयभीत भी होता है। घास के कुत्ते से भी यही हो सकता है, अगर पता न हो। क्योंकि हम असलियत से नहीं जीते, हम अपनी धारणाओं से जीते हैं। मेरी धारणा ही मेरे असलियत का जगत है।

लाओत्से कहता है, प्रकृति ऐसा व्यवहार करती है, जैसे हम सब घास के कुत्ते हों। वह हमसे उत्प्रेरित नहीं होती। इसमें बड़ी गहराई है, बड़ी गहरी अंतर्दृष्टि है। प्रकृति के लिए हम घास के कुत्ते हैं ही। मेटाफोरिकली ही नहीं, प्रतीकात्मक ही नहीं, वस्तुतः। प्रकृति के लिए हम घास के कुत्ते से ज्यादा होंगे भी क्या?

जहां तक हमारा संबंध है, वहां तक हम घास के भरे हुए पुतले ही हैं। आप में से घास निकाल लिया जाए, पीछे कुछ भी नहीं बचता फिर। शरीर हमारा सिर्फ घास है। भोजन है, पानी है, हड्डी-मांस-मज्जा है। वह सब हमारा शरीर का जोड़ है। और हमें तो जरा भी पता नहीं है कि शरीर से ज्यादा भी हमारे भीतर कुछ है। शरीर ही हम हैं। इस शरीर को खोल कर देखें, तो सिवाय घास के और कुछ भी न मिलेगा।

वैज्ञानिक कहते हैं, कोई चार-पांच रुपए का सामान है आदमी के भीतर। कुछ एल्युमिनियम है, कुछ तांबा है, कुछ लोहा है, कुछ फासफोरस है। ज्यादा तो पानी है, कोई अस्सी प्रतिशत से ऊपर। फिर मिट्टी है। और यह सब घास से ही बना है। जिसे हम जीवन कहते हैं आज, अगर हम वैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है, यह सब घास का ही विकास है, वेजिटेबल। यह उसका ही विकास है। और आज भी हम उसी पर जीते हैं। एक आदमी

साल भर में एक टन घास शरीर में डालता है, तब जी पाता है। चौबीस घंटे घास डालनी पड़ती है। अपनी-अपनी घास अलग-अलग हो सकती है। उससे हम जीते हैं। वही हमारा ईंधन है। वही हमारा अस्तित्व और हमारा शरीर है।

तो लाओत्से अगर कहता है, प्रकृति हमें घास के कुत्तों से ज्यादा नहीं जानती, तो नाराज होने की जरूरत नहीं है। हम भी नहीं जानते हैं कि हम इससे ज्यादा हैं। प्रकृति ऐसा ही जाने, यह उचित है; लेकिन हम भी ऐसा ही जानें, यह उचित नहीं है। पर हमें कोई पता नहीं हैः हमारे भीतर के शरीर के अलावा भी कुछ हम में है? कुछ मिट्टी को छोड़ कर भी? सुनते हैं आत्मा की बात, समझ तो नहीं पाते हैं। क्योंकि समझ हम वही पा सकते हैं, जो हमारा जानना बन जाए!

लेकिन और अर्थों में भी हम घास के जैसे ही हैं। कभी आपने देखा, खेत में झूठा आदमी बना कर खड़ा कर देते हैं। घास भर देते हैं और हंडी सिर पर टांग देते हैं। जानवरों को भगाने के काम आ जाता है। जानवरों को सच्चा ही मालूम पड़ता है, इसीलिए उत्प्रेरित हो जाते हैं, डर जाते हैं, भयभीत हो जाते हैं। कभी रात अंधेरी हो और अपरिचित जगह हो, तो आपको भी डरा सकता है घास का पुतला खेत में खड़ा हुआ। आपकी भावना ही प्रोजेक्ट होती है, उस घास के पुतले पर सवार हो जाती है। घास के पुतले को देख कर हम उत्प्रेरित हो सकते हैं।

अभी भी हम जो उत्प्रेरित होते हैं, वह घास के पुतले को देख कर ही उत्प्रेरित होते हैं। अगर एक सुंदर शरीर मुझे आकर्षित कर लेता है, तो क्या मैंने कभी सोचा है कि घास मुझे उत्प्रेरित कर रहा है? अगर एक आदमी के शरीर की हत्या करने को मैं आतुर हो जाता हूं, तो क्या कभी मैंने सोचा है कि मैं घास को काटने के लिए, घास में छुरा भोंकने के लिए आतुर हो रहा हूं? किसी का होना मुझे खुशी देता है और किसी का न होना मुझे दुख से भर जाता है, तो क्या मैंने कभी सोचा है कि घास के पुतले की इतनी मौजूदगी, गैर-मौजूदगी इतना अंतर मुझमें डाल देती है?

लाओत्से कहता है, प्रकृति को प्रयोजन नहीं है। वह आपको घास के कुत्तों जैसा जानती है। आप नहीं हैं, सिर्फ ताश का घर हैं।

लेकिन प्रकृति के संबंध में हम समझने को राजी भी हो जाएं, लाओत्से और भी कठिन बात कहता है। वह कहता है, तत्वविद भी सदय नहीं होते। वे जो जानते हैं संत, वे भी सदय नहीं होते।

संत तो सदा ही सदय होते हैं। हम तो कहते हैं, वे महा दयावान हैं। महावीर के भक्त कहते हैं, वे परम क्षमावान हैं। बुद्ध के भक्त कहते हैं, वे परम कारुणिक हैं। जीसस के भक्त कहते हैं कि उनका आना ही इसलिए हुआ कि लोगों को दया करके वे उनके दुख से छुटकारा दिला दें। कृष्ण के भक्त कहते हैं कि जब भी दुख होगा तब वे दया करके आएंगे और लोगों को मुक्त कर लेंगे। हम तो यही जानते रहे हैं अब तक कि संत सदय होते हैं।

लेकिन लाओत्से कहता है, संत भी सदय नहीं होते। क्योंकि संत वही है, जिसने प्रकृति के आंतरिक तत्व के साथ अपनी एकता साध ली है। नहीं तो वह संत नहीं है। अगर प्रकृति ऐसी है, अगर अस्तित्व ऐसा है कि सदय नहीं है, तो संत कैसे सदय हो सकते हैं! संत का अर्थ ही है, जो अस्तित्व के सत्य को उपलब्ध हो गया, जिसने सत्य के साथ एकता साध ली। अगर सत्य ही सदय नहीं है, तो संत कैसे सदय हो सकते हैं! क्योंकि संत का अर्थ ही यह है कि जो सत्य के साथ एक हो गया।

संत सदय नहीं होते! तत्काल हमारे मन में द्वंद्व खड़ा हो जाता है, कठोर होते होंगे।

नहीं, कठोर भी नहीं होते। न कठोर होते हैं, न विनम्र होते हैं; द्वंद्व के बाहर होते हैं। वे जो करते हैं, इसलिए नहीं कि आपके ऊपर कठोर हैं; इसलिए भी नहीं कि आपके ऊपर उनकी दया है; वे वही करते हैं, जो

उनकी प्रकृति उनसे चुपचाप कराए चली जाती है--स्पांटेनियस और सहज। अगर आप एक संत के चरणों में जाकर सिर रख देते हैं और वह आपके सिर पर हाथ रखता है, तो इसलिए नहीं कि उसको दया है आप पर। ऐसा भी हो सकता है कि वह सिर पर हाथ न रखे, धक्का मार दे और हटा दे। तो भी जरूरी नहीं कि वह कठोर है आपके प्रति।

रिंझाई जब सबसे पहले अपने गुरु के पास गया, तो उसका गुरु बहुत ही कठोर आदमी था, ऐसी लोगों में खबर थी। लोगों की खबरें आमतौर से गलत होती हैं। न उन्हें इसका पता है कि संत सदय होते हैं या कठोर होते हैं। उन्हें संत का ही पता नहीं है। रिंझाई जब जाने लगा, तो गांव के लोगों ने कहा कि मत जाना उस बूढ़े के पास, वह आदमी कठोर है। रिंझाई ने कहा, लोगों ने मुझसे कहा फलां संत बहुत दयावान है, मैं उनके पास भी जाकर देखा। मैंने पाया, उनमें कोई दया नहीं। अब तुम कहते हो, यह आदमी कठोर है; इसके पास भी जाकर देखूं। बहुत संभावना यही है कि तुम भी गलत होओगे। तुम सदा ही गलत होते हो। उस आदमी ने हंस कर कहा, लौट कर तुम खुद ही कहोगे। यह तुम पहले आदमी नहीं हो, जिसको मैंने यह खबर दी है। और जिनको भी मैंने खबर दी, उन्होंने लौट कर कहा कि ठीक कहते थे, अच्छा होता हम न गए होते।

रिंझाई गया। उसका गुरु द्वार पर बैठा था हाथ में एक डंडा लिए। झेन फकीर एक डंडा अपने हाथ में रखते रहे हैं सदा से। पता नहीं, शंकर ने अपने संन्यासियों को डंडा क्यों दिया? कम से कम हिंदुस्तान को तो पता नहीं है। शायद उसका ठीक-ठीक डंडे का कभी उपयोग शंकर के संन्यासी ने किया नहीं। क्योंकि हिंदुस्तान में संन्यासी के बाबत हमारी धारणा सदय होने की है। वह दंडीधारी संन्यासी तो कहलाता है, लेकिन उस डंडे का उपयोग सिर्फ एक फकीरों के वर्ग ने किया है जापान में, झेन फकीरों ने। गुरु डंडा लिए बैठा था। रिंझाई उसके सामने जाकर झुकता था।

गुरु ने कहा, रुक! मैं सभी को पैर नहीं छूने देता। पहले मेरी बात का जवाब दे दे, फिर तू पैर छू सकता है।

रिंझाई ने कहा, क्या है सवाल?

उसके गुरु ने कहा, सवाल पीछे बताऊंगा, पहले तुझे यह बता दूं कि तू हां में जवाब दे, तो भी यह डंडा तेरे सिर पर पड़ेगा; तू न में जवाब दे, तो भी यह डंडा तेरे सिर पर पड़ेगा। असल में, तू कोई भी जवाब दे, डंडा तो पड़ेगा ही। तू पहले सोच ले।

रिंझाई ने कहा, तो मैं पहले पैर पड़ लूं और आप डंडा मार लें; जवाब-सवाल पीछे हो जाएगा। जब डंडा पड़ना ही है, तो इसकी चिंता को निपटा देना उचित है। इसे पहले निपटा लें, पीछे हम बात कर लेंगे। उसने सिर चरणों में रखा और गुरु को कहा, वह डंडा मार लें, ताकि यह डंडे का काम समाप्त हो जाए। फिर आप पूछ लें।

उसके गुरु ने डंडा नीचे रख दिया और उसने कहा, तो शायद तुझे मारने की जरूरत मुझे नहीं पड़ेगी।

रिंझाई ने पूछा, बात क्या है?

उसके गुरु ने कहा, जो भी मेरे पास दया की भीख मांगते आते हैं, मेरा अस्तित्व उनके प्रति कठोर हो जाता है। मैं नहीं होता, बस ऐसा हो जाता है। उस तरफ भीख, और इधर मैं कठोर हो जाता हूं! उस तरफ मालकियत, इधर मैं सदय हो जाता हूं! लेकिन असली बात यह है, उस बूढ़े फकीर ने कहा कि मैं दोनों के बाहर हो गया हूं। अपनी तरफ से कुछ भी नहीं होता। जो हो जाता है, उसके लिए मैं राजी हो जाता हूं। अगर मेरा हाथ डंडा उठा लेता है, तो मैं डंडा मारता हूं। अभी हाथ ने डंडा छोड़ दिया, तो मैंने डंडा छोड़ दिया है।

असल में, संत सहज होते हैं। सहज का अर्थ आप समझ लें। अकारण, जो भीतर से उनका अस्तित्व करता है, वे उसी के साथ बहते हैं। च्वाइसलेस फ्लोइंग! कोई चुनाव उनका नहीं है। सदय वे नहीं हो सकते, दया वे

नहीं कर सकते। कठोर भी वे नहीं हो सकते। लेकिन कभी वे दयावान मालूम होते हैं, वह हमारी समझ है। और कभी वे कठोर मालूम होते हैं, वह भी हमारी समझ है। और हमारी समझ पागल की समझ है। हम जो समझते हैं, वैसा शायद ही कभी होता है।

एक मित्र दो महीने पहले मेरे पास आए। कोई पांच वर्ष से आते हैं। सदा आकर वह मुझे कहते हैं कि आपको दो-चार दिन नहीं देख पाता, आपके दर्शन नहीं कर पाता, तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है। ऐसा उन्होंने इतनी बार कहा है कि मुझे मान लेना चाहिए कि वे ठीक कहते होंगे। आपके दर्शन नहीं कर पाता हूं दो-चार दिन, तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है, यह उन्होंने इतनी बार कहा है कि कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि इससे भिन्न कोई बात होगी। बहुत बार उनसे कहना चाहा, लेकिन मैंने नहीं कहा। इस बार दो महीने पहले आए थे, तो मैंने उनसे कहा कि एक बात पूछूं, इतने दिन से आप आते हैं, कहते हैं, आपका दर्शन न करूं तो मन बड़ा बेचैन हो जाता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आप मुझे दर्शन नहीं दे पाते दो-चार दिन तो मन बेचैन हो जाता हो?

उन्होंने कहा, आप कैसी बात कर रहे हैं? कभी नहीं, ऐसा ख्याल ही मुझे कभी नहीं उठा।

ख्याल न भी उठा हो; ख्याल का उठना जरूरी नहीं है। हम अपने को धोखा देने में इतने कुशल हैं!

मैंने कहा, फिर भी सोचना।

उन्होंने कहा, सोचने का कोई सवाल ही नहीं है। आपको नहीं देख पाता, आपकी चर्चा नहीं कर पाता, आपका प्रवचन नहीं सुन पाता, आपकी किताब नहीं पढ़ पाता जिस दिन, उस दिन मन बड़ा बेचैन हो जाता है।

पंद्रह दिन बाद वे फिर आए। चार मित्रों के साथ आए थे। मैंने तीन को देखा, उनको नहीं देखा। तीन से बात की, उनसे बात नहीं की। तीन को माना कि वे कमरे में हैं, उनको नहीं माना कि वे कमरे में हैं। उन्होंने पैर छुए, मेरी तरफ देखा। मैंने ऐसे देखा, जैसे वहां कोई नहीं है। बेचैन हो गए। एक कोने में बैठ गए। मैंने देखा कि वे आज दूसरे आदमी हैं। सब बदल गया है। मुझे पूछना चाहिए था, पत्नी कैसी है? बेटी कैसी है? बेटा कैसा है? तो वे समझते थे कि मेरा दर्शन करने आए हैं। दर्शन तो आज भी मेरा हुआ, लेकिन उनका दर्शन मैंने नहीं किया। जाते वक्त पैर छूकर वे नहीं गए। जाते वक्त उन्होंने जब दरवाजा लगाया, तो मैं समझा कि यह दरवाजा सदा के लिए लगा गए हैं, अब इस दरवाजे के भीतर नहीं आएंगे।

नहीं आए। किताबें मेरी फेंक दी हैं, किसी ने मुझे खबर दी। अब मेरे बिना काम मजे से चल रहा है। इतना ही नहीं, अब जब तक वे दिन में दो-तीन घंटे लोगों के पास जाकर मुझे गालियां नहीं दे लेते, तब तक उनको चैन नहीं पड़ती है। क्या हो गया? वे वर्षों से कहते थे कि आपके दर्शन के बिना चैन नहीं पड़ती। मैं जानता था कि मेरा दर्शन नहीं है असली बात।

लेकिन ऐसा मैं न कहूंगा कि वे जान कर ऐसा कर रहे थे। नहीं, उन्हें पता ही नहीं था। हम इतने धोखेबाज हैं, खुद को भी पता नहीं होने देना चाहते हैं। खुद को भी पता नहीं होने देते हैं कि हमारे भीतर क्या है। उस दिन जब मैंने उनको दस मिनट तक ध्यान ही नहीं दिया, तब कितना कचरा और कितना घास उसी वक्त उसी कमरे में उनसे गिर गया, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। उनके जाने के बाद कमरा बोझिल और भारी हो गया।

अभी एक घटना घटी है। एक महिला मुझसे मिलने आई। दस मिनट--उसके मन में बहुत कुछ था, किसी के प्रति क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य--वह सब उसने निकाला। वह तो हलकी होकर चली गई। ठीक उसके पीछे एक युवक प्रवेश किया। उस युवक ने कमरे के भीतर आकर बेचैनी से देखा और उसने कहा कि आई फील वेरी स्ट्रेंज,

बात क्या है? मैंने उससे कहा, तू घबड़ा मत, थोड़ी देर बैठ। अभी एक महिला थोड़ी सा घास यहां गिरा गई है; थोड़ी हवा भारी है। अभी उसका रोग चारों तरफ प्रतिध्वनित है। एक पांच मिनट बिखर जाने दे, फिर ठीक हो जाएगा।

कचरा हमारे शरीर में ही नहीं है, मन में और भी ज्यादा है। और शरीर से ही मल-मूत्र का त्याग होता हो, ऐसी भूल में मत पड़ना, मन से भी मल-मूत्र का दिन-रात त्याग करना पड़ता है। इसलिए आप किसी के प्रति चौबीस घंटे प्रेम से भरे नहीं रह सकते। नहीं तो मल-मूत्र का त्याग कहां करिएगा? उसके प्रति घृणा आपको बतानी पड़ेगी। जैसे हर घर में हमें गुसलखाने का इंतजाम करना पड़ता है, हर मन में घृणा का भी इंतजाम करना पड़ता है। वहां कचरा इकट्ठा हो जाता है; फिर वह कहां निकलेगा?

इसलिए पति और पत्नी में ही डायवोर्स नहीं होते, गुरु और शिष्य में भी डायवोर्स चलते हैं। कोई ख्याल नहीं लेता उसका, लेकिन चलते हैं। चलेंगे ही। मित्र और मित्र में भी चलते हैं। बाप और बेटे में चलते हैं। चलेंगे ही। क्योंकि जिसके प्रति हमने प्रेम दिखाया, हम उसके लिए बिना गुसलखाने के हो गए। हमारा पूरा घर बैठकखाना हो गया उसके लिए। गुसलखाना कहां जाएगा? उसे हमें छिपा कर रखना पड़ेगा। धीरे-धीरे बैठकखाना छोटा होता जाएगा, गुसलखाना बड़ा होगा; क्योंकि बढ़ता जाएगा, बढ़ता जाएगा। एक दिन बैठकखाना बिल्कुल सिकुड़ जाएगा और सारे घर में मल-मूत्र फैल जाएगा। यह होगा, यह मन के द्वंद्व के साथ अनिवार्य है।

लाओत्से कहता है, वे संत द्वंद्व में नहीं जीते। वे न किसी को प्रेम करते हैं, और इसलिए ही वे किसी को घृणा नहीं करते।

इसे ठीक से समझ लें। हमारा तर्क और है। हम कहते हैं, चूंकि मैं आपको प्रेम करता हूं, इसलिए आपको घृणा नहीं करता। यह तर्क बिल्कुल ही गलत है। जब भी कोई आपसे कहे कि मैं आपको प्रेम करता हूं, तब दूसरा हिस्सा जो वह छोड़ रहा है वह यह कि इसलिए मैं आपको घृणा करूंगा। वह दूसरा हिस्सा अनिवार्य तर्क है। लेकिन उसे हम छिपा जाते हैं। फिर उसका फल भोगना पड़ता है।

लाओत्से कहता है, वे किसी को प्रेम नहीं करते, क्योंकि वे किसी को घृणा नहीं करते। वे किसी पर दया नहीं करते, क्योंकि वे किसी के प्रति क्रूर और कठोर नहीं हैं। वे किसी को कभी क्षमा नहीं करते, क्योंकि वे कभी क्रोध नहीं करते हैं। इस द्वंद्व को ठीक से समझ लें। ये एक ही सिक्के के दो पहलू साथ ही साथ चलते हैं, चाहे आप एक पहलू को छिपा लें। कितनी देर छिपाइएगा? फिर बोरडम पैदा होती है। जिसको छिपाते हैं, उसे देखने की जिज्ञासा जगती है। और जिसे बहुत देखते हैं, उससे हटने का मन होता है। फिर पहलू बदलना पड़ता है। प्रेमी का अनिवार्य परिणाम यही है कि वह घृणा से भर जाए। और मित्रता अगर पक्की है, तो शत्रुता पैदा होगी। पक्की है तो। कच्ची है, तो चल सकती है।

इसलिए मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, फलां व्यक्ति आपको इतना प्रेम करता था, इतनी श्रद्धा करता था, वह आपके खिलाफ क्यों हो गया? मैं कहता हूं, इसीलिए। यह उनके ख्याल में नहीं आता इसीलिए; क्योंकि वे तो यह ख्याल लेकर आए हैं कि जो इतना प्रेम करता था, उसे तो खिलाफ होना ही नहीं चाहिए। और मैं तो इतना प्रेम आपको नहीं भी करता हूं, वह मुझे कहता है, मैं खिलाफ नहीं हुआ। तो मैं कहता हूं, इसीलिए।

यह इसीलिए को ठीक से देख लें तो लाओत्से समझ में आ जाएगा। वह कहता है, संत द्वंद्व के बाहर हैं। इसलिए अगर आप समझते हैं कि महावीर आप पर दया करते हैं, यह आपकी ही समझ है। इसमें महावीर कहीं भी जिम्मेवार नहीं हैं। और अगर आप समझते हैं, महावीर की आंख आप पर तेज है और कठोर है, यह आपकी

ही समझ, आपका इंटरप्रिटेशन, आपकी व्याख्या है; महावीर का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। संत द्वंद्व में अपने को विभाजित नहीं करता।

लेकिन यह लाओत्से कहता है, "वे भी सभी मनुष्यों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ किया जाता है।"

संत और लोगों के साथ ऐसा व्यवहार, जैसे घास-निर्मित कुत्तों के साथ! संत तो सब के भीतर परमात्मा देखता है। संत और किसी के भीतर घास-निर्मित कुत्ते को देखेगा! घास-निर्मित कुत्ते में भी उसको घास-निर्मित कुत्ता नहीं देखना चाहिए। कुत्ते में भी उसको परमात्मा ही दिखाई पड़ता है, ऐसा हमने सुना है। लाओत्से क्या कह रहा है? यह बिल्कुल उलटी बात कह रहा है।

लेकिन यह उलटी बात नहीं है। यह उसी बात का दूसरा हिस्सा है। जो आदमी सब में परमात्मा देखता है, वह आप में घास-निर्मित कुत्ता देखेगा। इसे थोड़ा समझ लें। आप में--जो आदमी सब में परमात्मा देखता है, वह आप में घास-निर्मित कुत्ता देखेगा--आप में कह रहा हूं। अस्तित्व में तो उसे परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। लेकिन आप अस्तित्व नहीं हो, सिर्फ घास-निर्मित एक गठरी, एक गांठ, एक कांप्लेक्शन हो! आप आदमी नहीं हो। आप सिर्फ एक गांठ हो बीमारियों की। और आदमी तो गांठ के पीछे छिपा है।

जब संत कहते हैं उन्हें सब में परमात्मा दिखाई पड़ता है, तो वे गांठ को बाद देकर कह रहे हैं, आपको हटा कर कह रहे हैं। आपसे नहीं कह रहे हैं। आपके पार जो बैठा है, जिससे आपकी कोई मुलाकात नहीं हुई कभी, उससे कह रहे हैं। सुनते हो आप; समझते हो, आपसे कही गई बात। आप सिर्फ गांठ हो बीमारियों की; एक ग्रंथि! उस ग्रंथि को संत घास-निर्मित कुत्ते की तरह ही देखते हैं। वह ग्रंथि है हमारा अहंकार। वही हम हैं। उसी से लगता है, मैं हूं। उसे वे इससे ज्यादा मूल्य नहीं देते। लेकिन वह अहंकार बड़े रास्ते खोजता है कि कहीं से मूल्य मिल जाए। वह संतों के चरणों में जा सकता है और बाहर अकड़ कर निकल सकता है कि संत के चरणों तक पहुंचने का मुझे मौका मिला--मुझे! जब दूसरे पीछे खड़े रह गए थे, तब भी मैं चरणों तक पहुंच गया! और जब संत ने दूसरों की तरफ देखा भी नहीं, तब मेरी तरफ देखे कैसी उनकी प्यार से भरी आंख थी!

यह आंख किसी भी दिन पत्थर की हो जाएगी। यह आंख आपका निर्माण है।

इसलिए लाओत्से जैसे लोग बहुत बड़ी भीड़ को प्रभावित नहीं कर पाते। क्योंकि भीड़ तो उनसे प्रभावित होती है, जो उनके अहंकार को फुसलाने की कला जानते हों। सेल्समैनशिप, आदमी के साथ सारा काम कला का है। अमरीका में हजारों किताबें लिखी जाती हैं इधर इन बीस वर्षों में, जो लोगों को सिखाती हैं कि हाऊ टु इनफ्लुएंस पीपुल, हाऊ टु विन फ्रेंड्स! कैसे जीतें लोगों का दिल, पतियों को कैसे पकड़ें, पत्नियों को कैसे फंसाएं, ग्राहक को कैसे माल बेचें! हजार-हजार रास्ते समझाती हैं। सब रास्तों का सार एक है कि दूसरे आदमी के अहंकार को कैसे फुसलाएं।

अगर एक कुरूप से कुरूप स्त्री भी आपके अहंकार को फुसलाने में समर्थ हो जाए, तो मुमताज और नूरजहां दो कौड़ी की हो जाती हैं। सौंदर्य स्त्री के शरीर में कम, उसके परसुएशन में है। इसलिए कई दफा कुरूप स्त्रियां चमत्कार पैदा कर देती हैं और सुंदर स्त्रियां पीछे क्यू में खड़ी रह जाती हैं। कई बार साधारण बुद्धि का आदमी प्रभावशाली नेता हो जाता है और असाधारण बुद्धि के आदमी को कोई पूछने वाला नहीं मिलता। राज क्या है? वह जानता है कि दूसरे के अहंकार को कैसे फुसलाएं।

इस जगत में कोई चीज नहीं बिकती और न कोई चीज कब्जा की जा सकती है, जब तक आप दूसरे के अहंकार पर तरकीबें न सीख लें। और दूसरे के अहंकार को फुसलाने से आसान क्या है! बहुत आसान है। क्योंकि

दूसरा फिसलने को राजी ही है। सदा तैयार है, इसी उत्सुकता में है कि आप फिसलाओ। आप एक कदम सरकाओ, वह दस कदम गिरने को तैयार है!

लाओत्से जैसा आदमी प्रभावी नहीं हो सकता, क्योंकि वह कहता है, तुम्हारा अहंकार सिवाय घास-निर्मित कुत्ते के और कुछ भी नहीं।

कनफ्यूशियस लाओत्से को मिलने आया, तो वहां कोई बैठने की जगह न थी, कोई कुर्सी न थी, कोई ऊंचा आसन न था। कनफ्यूशियस तो बहुत नियमविद आदमी था। उसने चारों तरफ कमरे के देखा बैठने के पहले, कहां बैठे। लाओत्से ने कहा, कहीं भी बैठ जाओ, कमरे को तुम्हारी कोई भी फिक्र नहीं है। कमरा कोई चिंता न लेगा; कहीं भी बैठ जाओ। मैं यहां बहुत देर से बैठा हूं; कमरे ने मेरी तरफ देखा ही नहीं।

कनफ्यूशियस बैठ तो गया। लेकिन बेचैन हो गया। कभी ऐसा जमीन पर नहीं बैठा था। लाओत्से ने कहा, शरीर तो बैठ गया है; तुम भी बैठ जाओ। वह अहंकार अभी पीछे खड़ा था। लाओत्से ने कहा, जब बैठ ही गए हो, तो अब तुम भी बैठ जाओ। शरीर तो बैठ ही गया है।

बैठ तो गया, लेकिन कनफ्यूशियस सुन नहीं पाया कि लाओत्से ने क्या कहा। अगर आपसे सौ शब्द बोले जाएं, तो निन्यानबे नहीं सुने जाते हैं। नेपोलियन हिल, अमरीका के एक कुशल विचारक ने कहा है कि अगर दूसरे आदमी के भीतर प्रवेश करना हो, तो सबसे पहले उसके अहंकार को थोड़ी सी खुशामद दो। तब वह सुनने को राजी होता है। नहीं तो वह सुनता भी नहीं। सुनता भी नहीं!

आप यहां आए। अगर आते ही मैं आपसे पूछता कि आपके मन में कौन सा विचार चल रहा है? तो आप सब अगर ईमानदारी से अपने विचार बताएं, तो सबके मन में कुछ न कुछ चल रहा होगा। अगर मुझे आपसे बात करनी है, तो मुझे आपके भीतर की अंतर्धारा तोड़नी पड़ेगी। तो ही मेरी बात प्रवेश करेगी; अन्यथा आपके कान मुझे सुनते रहेंगे, आंखें मुझे देखती रहेंगी, भीतर की अंतर्धारा जारी रहेगी।

वह नेपोलियन हिल कहता है, अगर दूसरे की अंतर्धारा तोड़नी है, तो पहले उसके अहंकार को फुसलाओ। तब वह सुनने को एकदम राजी हो जाता है। उसने अपना एक संस्मरण लिखा है। उसका ख्याल है कि आदमी चार चीजों के आस-पास, इर्द-गिर्द घूमता हैः यश, धन, वासना, जीवेषणा। इनके इर्द-गिर्द घूमता रहता है। ये सब अहंकार के ही हिस्से हैं। उनको चार, आठ कितना ही कोई कहे। अगर किसी आदमी को आपको राजी करना है, तो हिल जैसे लोग कहते हैं कि इन चार में से कहीं से प्रवेश करो।

वह एक बस में चढ़ा है। बस तेजी से भागी जा रही है। जोर की वर्षा है। और उसको पचपन नंबर के स्टैंड पर उतर जाना है। ड्राइवर से उसने कहा कि ख्याल रखना, मुझे पचपन नंबर के स्टैंड पर याद दिला देना कि पचपन नंबर आ गया। कहीं ऐसा न हो कि मैं आगे-पीछे चला जाऊं। रात अंधेरी है और वर्षा बहुत हो रही है।

ड्राइवर ने कहा, मैं किस-किस को याद दिलाऊंगा! और वर्षा की वजह से मुझे खुद भी ठीक दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कौन सा नंबर निकला जा रहा है। अपना ख्याल रखना। और भी लोगों ने मुझसे कहा है। फिर मैं ट्रैफिक पर ध्यान रखूं कि नंबरों का ख्याल रखूं?

दूसरा आदमी होता, चुपचाप पीछे चला जाता। नेपोलियन हिल ने सोचा, प्रयोग करना उचित है। उसने कहा कि और इसलिए और भी कह रहा हूं कि पचपन नंबर के स्टैंड के पास जमीन में गड्ढा खुदा है, सड़क खोदी जा रही है; जरा होश से चलाना!

वह पीछे जाकर खड़ा हो गया। और सबके नंबर भूल गए ड्राइवर को, पचपन नंबर नहीं भूला। पचपन नंबर पर गाड़ी धीमी करके उसने कहा, लेकिन वह गड्ढा कहां है? नेपोलियन हिल ने उससे कहा, गड्ढा वगैरह कोई भी नहीं है; लेकिन तुम्हारे भीतर जो अंतर्धारा है, उसको तोड़ कर पचपन नंबर डालना जरूरी है।

अगर मौत का ख्याल आ जाए, तो अहंकार को धक्का लग जाता है। धन का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। वासना का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। यश का ख्याल आ जाए, तो धक्का लग जाता है। धारा टूट जाती है; ओपनिंग हो जाती है। वहां से भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

लाओत्से जैसे लोग कैसे प्रवेश करें आपके भीतर? क्योंकि न वे धन की बात करेंगे, न यश की बात करेंगे, न पद की बात करेंगे, न वासना की बात करेंगे। वे कोई बात न करेंगे। वे आपसे कह रहे हैं, तुम कुत्ते हो घास-निर्मित। इनकी कोई सुनेगा? कनफ्यूशियस ने लौट कर अपने शिष्यों से क्या कहा, आपको पता है?

उसने कहा, उस बूढ़े के पास कोई मत जाना कभी। वह आदमी क्या है, सिंह मालूम पड़ता है, किसी को खा जाएगा। इतना कठोर आदमी मैंने नहीं देखा। मैं उसके सामने एकदम घबड़ा गया। उसने जो भी कहा, मुझे पता नहीं, क्या कहा। मैंने सुना भी ठीक से नहीं, मैं सुन भी नहीं सका। उस आदमी की तरफ आंख उठाना बहुत कठिन है।

लाओत्से सदय भी नहीं है, कठोर भी नहीं है। लेकिन कनफ्यूशियस को कठोर लगा होगा। क्योंकि कनफ्यूशियस जैसा महा विचारक, प्रतिष्ठा थी उसकी लाओत्से से ज्यादा। लाओत्से को कम लोग जानते थे, कनफ्यूशियस को ज्यादा। और ढाई हजार साल में लाओत्से ने नहीं चीन के मन को निर्मित किया, कनफ्यूशियस ने निर्मित किया। तो कनफ्यूशियस ज्यादा प्रतिष्ठित था। सम्राट उसको सम्मान देते थे। सम्राट उठ कर उसको बैठने को कहते थे। और एक बूढ़े फकीर ने उससे कहा, बैठ भी जा, कमरे को तेरी कोई फिक्र नहीं है। उसका मन और बंद हो गया होगा।

संत सदय नहीं हैं। संत इतने एकात्म को उपलब्ध हो गए हैं अस्तित्व से कि अस्तित्व ही उनके भीतर से बोलता, अस्तित्व ही उनके भीतर से व्यवहार करता, अस्तित्व ही उनके भीतर से चलता-उठता है; संत नहीं। यह स्मरण रहे, तो लाओत्से का यह बहुत अजीब सा दिखने वाला सूत्र आसान हो जाएगा। और काश, हम संतों को इस भांति देख सकें, तो संतों के संबंध में हमारी सारी दृष्टि और हो जाएगी। हम और ढंग से देख पाएंगे, सोच पाएंगे।

लेकिन संत के पास भी हम अपनी दृष्टि लेकर जाते हैं। हम संत को समझने नहीं जाते, हम अपनी दृष्टि का आंकलन करने जाते हैं। यदि हम सुनते भी हैं संत को, तो हम इस हिसाब से सुनते हैं कि कौन सी बात इसमें सही है। सही का मतलब क्या होता है? आपसे कौन सी बात मेल खाती है। सत्य का क्या मतलब होता है? जिसको आप सत्य मानते हैं, वह अगर मेल खाता हो, तो आदमी ठीक है। अगर वह मेल न खाता हो, तो आदमी गलत है। आप अपने को मापदंड बना कर घूम रहे हैं। आपका संत से मिलना भी नहीं हो सकेगा कभी।

लाओत्से जिस संत की बात कर रहा है, वह आपको न मिलेगा। हां, कोई रेवड़ी बांटने वाला संत आपको मिल सकता है। आपकी जीभ पर एक रेवड़ी रख देगा, बहुत खुशी होगी। वह घास का जो कुत्ता है, बहुत प्रसन्न होगा; और कहेगा, बिल्कुल ठीक! सिर पर पानी छिड़क देगा और कहेगा कि आशीर्वाद! जा, सभी में सफलता मिलेगी! तंत्र-मंत्र दे देगा कुछ, अदालत में मुकदमा जीतो, हारा हुआ प्रेम बाजी बदल दो, कहीं किसी लाटरी में नंबर लगा दो! वे आदमी आपको मिल जाएंगे। लाओत्से का संत आपको नहीं मिलेगा।

नहीं मिलेगा इसलिए कि आप उसको तभी खोज सकते हैं, जब आप अपने को घास का कुत्ता जानने को राजी हों। तभी आप उसको खोज सकते हैं। और जो आदमी अपने को घास का कुत्ता जानने को राजी हो जाए, उस आदमी को उसके दरवाजे पर वैसा संत आकर मिल जाएगा, उसे जाने की भी शायद जरूरत न पड़े। क्योंकि जैसी हमारी तैयारी है, वैसे ही अस्तित्व प्रकट करने लगता है अपने राज, अपने रहस्य! हमारी तैयारी पर सब कुछ निर्भर होता है।

हमारी तैयारी का सब से अनिवार्य अंग जो है, उसके लिए लाओत्से इशारा कर रहा है। यह इशारा केवल मेटाफिजिकल नहीं है, यह कोई दार्शनिक तत्वज्ञ मात्र की बात नहीं है। लाओत्से इशारा इसलिए कर रहा है, ताकि हम समझ सकें कि अगर संत को खोजना हो, तो हमें क्या करना पड़ेगा। हमें अपने संबंध में साफ हो जाना पड़ेगा कि हम क्या हैं। यदि स्पष्ट मुझे बोध हो जाए कि मैं क्या हूं, तो वह जो गांठ हमारे ऊपर लदी हुई है, उसके टूट जाने में जरा भी देर नहीं लगती, उसके गिर जाने में भी जरा देर नहीं लगती। लेकिन हमें स्मरण ही नहीं होता।

अभी एक मां मेरे पास आई हुई थी अपनी बेटी को लेकर, दूर न्यूयार्क से। क्योंकि मां और बेटी में बड़ी कलह थी। और मां का ख्याल है कि अपनी बेटी को बहुत प्रेम करती है। दो महीने पहले भी आई थी। और तब उसने कहा कि मैं अपने बच्चों को इतना प्रेम करती हूं कि मैं उनके लिए जान दे सकती हूं। मैंने उससे कहा कि तू फिर एक दफा सोच, क्योंकि यह स्वाभाविक नहीं है। उसने कहा, मैं अपनी लड़कियों को इतना प्रेम--तीन लड़कियां ही हैं उसकी--इतना प्रेम करती हूं कि आप भरोसा नहीं कर सकते। मैंने उससे कहा कि तू फिर एक दफा सोचना।

तो वह रोने लगी, चीखने लगी, छाती पीटने लगी। और उसने मुझसे कहा कि आप बहुत कठोर हैं, आप अपने शब्द वापस ले लें, मैं अपने बच्चों को सच में ही प्रेम करती हूं।

वह जितनी ही चीखने लगी, उतना ही मैंने उससे कहा, यह चीख मार कर तू किसको समझाने की कोशिश कर रही है--मुझे या स्वयं को? अगर करती है प्रेम, तो खतम हो गई बात। इसमें चीख मारना और रोना और छाती पीटने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन तू इतनी चीख मारती है, छाती पीटती है, रोती है, तो मैं तुझसे कहता हूं कि तू अपने को समझाने की कोशिश कर रही है। तेरे रोने से मुझ पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन शायद तुझे स्वयं पर पड़ेगा कि मैं इतनी रोई, इतनी छाती पीटी, देखो कितना प्रेम करती हूं!

प्रेम करना हो, तो छाती पीटना और रोना जरूर आना चाहिए। नहीं तो आपका पता ही नहीं चलेगा किसी को कि आप प्रेम भी करते हैं। ज्यादा जोर से छाती पीटना और रोना आता हो, तो आप प्रेम करते हैं। इसलिए स्त्रियां बहुत जल्दी सिद्ध कर देती हैं कि वे प्रेम करती हैं। पुरुष सिद्ध नहीं कर पाते कि वे प्रेम करते हैं। सिद्ध करने का उपाय ही नहीं हाथ में लाते।

मैंने उसे कहा कि नहीं, इस सब से कुछ मेरे सामने नहीं होगा।

तो इस बार वह अपनी लड़की को लेकर आई है, अपनी बड़ी लड़की को लेकर आई है। और उसने कहा कि अब आप देखें। और मैंने देखा। और पंद्रह दिन में, इस जमीन पर जितनी दुश्मनी हो सकती है किन्हीं दो व्यक्तियों में, उतनी उन दोनों के बीच दुश्मनी पूरी प्रकट हो गई है।

मां और बेटी के बीच होती है दुश्मनी। समाज छिपाता है, परिवार छिपवाता है। लड़की जैसे-जैसे जवान होने लगती है, मां दुश्मन होने लगती है। वह बिल्कुल स्वाभाविक है। वह हमारा एनीमल हेरिटेज है; वह जो जानवरों से हमें मिला है, वह है। बेटा जैसे जवान होने लगता है, बाप ईर्ष्या से भरने लगता है। मगर ये बातें

कहने की नहीं हैं। सब बाप जानते हैं, सब बेटे जानते हैं। बेटा जैसे जवान होने लगता है, बाप को हटाने और सरकाने की कोशिश करने लगता है। निश्चित ही, जगह बनानी पड़ती है। जवान लड़की को देख कर मां को याद आना शुरू हो जाता है, वह भी कभी जवान थी। और यह भी याद आना शुरू हो जाता है, इन बच्चों के कारण उसकी जवानी खो गई। किसी के कारण खोती नहीं, बिना बच्चों के भी खो जाती है। लेकिन यह ख्याल आने लगता है। और अब घर में कोई भी आदमी प्रवेश करता है, तो पहले जवान लड़की पर उसका ध्यान जाता है, पीछे बूढ़ी मां पर। पीड़ा भारी हो जाती है।

अगर लड़कियों को विवाह के बाद उनके पतियों के घर भेजने की योजना किसी की होगी, तो वह माताओं की है। और चूंकि माताएं सदा जीत जाती हैं, इसलिए बाप हार गया। बेटे को घर में रखने के लिए उसको राजी होना पड़ा; बेटियों को बाहर करना पड़ा। अगर बाप भी अपनी बेटी के प्रति ज्यादा उत्सुकता ले, जो कि बिल्कुल स्वाभाविक है वह लेगा, तो मां को तकलीफ और ईर्ष्या हो जाती है। फिर बेटी बेटी नहीं दिखाई पड़ती, धीरे-धीरे निपट स्त्री दिखाई पड़ने लगती है।

मैंने पंद्रह दिन उन दोनों की सारी बीमारियों को उभारने की पूरी कोशिश की, दोनों को उकसाया। उन दोनों की बीमारियां इतनी बढ़ गईं कि एक-दूसरे की गर्दन घोंट डालें। और जब मैंने उनको सामने बिठा कर दोनों को कहा कि अब तुम अपना दिल खोल दो, जो-जो तुम्हारे भीतर है! तो जो रोग बाहर दिखाई पड़े, वह कोई मां कल्पना नहीं करती, कोई बेटी कल्पना नहीं करती; लेकिन हर बेटी और हर मां के भीतर होते हैं। पर हम दबाए चले जाते हैं, छिपाए चले जाते हैं। उनके ऊपर और अच्छी पर्तें, मुलम्मे लगाए चले जाते हैं। फूल की कतार सजा लेते हैं और भीतर गंदगी को छिपा देते हैं।

लाओत्से कहता है, तुम यही जोड़ हो--इसी सब छिपी हुई गंदगी का। इसे हम घास के कुत्ते से ज्यादा नहीं मानते। और न हम इस पर दया करते हैं, न इसकी क्षमा करते हैं, न हम इस पर कठोर हैं। हम सिर्फ इतना कहते हैं, यह बिल्कुल व्यर्थ है, इररेलेवेंट है, असंगत है। इसका कोई मूल्य नहीं है। और जब तक यह गांठ न फिंक जाए, तब तक वह जो मूल्यवान है, उसका आविर्भाव नहीं होता। और जब तक यह कचरा न हट जाए, तब तक भीतर वह जो स्वर्ण छिपा है, वह कभी निखरता नहीं।

यह हैरानी होगी जान कर कि पंद्रह दिन इन मां और बेटी ने एक-दूसरे के साथ इतनी ईर्ष्या, इतनी घृणा और इतनी गालियां दीं कि कभी-कभी तो मैं भी दिक्कत में पड़ा और मुझे लगा कि कहीं यह हल न हो पाया--क्योंकि उन्हें जल्दी वापस लौटना है--तो उपद्रव हो जाएगा। फिर मुझे सामने बिठा कर उनके घृणा के निकालने के प्रयोग करवाने पड़े। एक ही प्रयोग में, जो किसी लड़की ने अपनी मां को कभी नहीं कहा होगा, किसी मां ने अपनी कभी लड़की को नहीं कहा होगा--लेकिन दोनों ने सदा-सदा सोचा है काल-काल, युग-युग में--वह उन दोनों ने कहा। कल्पना के बाहर! मां कह सकी अपनी बेटी से कि तू मेरी दुश्मन है और मेरे साथ जो भी किसी का प्रेम बनता है, तू उसे छीनने की कोशिश करती है। और लड़की कह सकी अपनी मां से कि तू सिर्फ एक वेश्या है। और जब मां ने पूछा कि तू मुझे घृणा करती है? तो उसने कहा कि हां, मैं तुझे सिर्फ घृणा करती हूं, एट लीस्ट राइट दिस मोमेंट, मैं तुझे घृणा करती हूं। मां कह सकी, तू मेरी कोई भी नहीं है; मैं तुझे देखना भी बर्दाश्त नहीं कर सकती।

और यह सारी गाली घंटे भर जब निकल गई, और मैंने उन दोनों से कहा, अब आंख बंद करके तुम चुप हो जाओ। पांच मिनट वे चुप बैठ कर रोती रहीं; फिर एक-दूसरे के गले लग गईं। रात वे एक ही बिस्तर में सोईं।

और दूसरे दिन मां ने मुझसे कहा कि हमारी हनीमून की रात थी! वर्षों के बाद मैं इस लड़की को फिर से प्रेम कर पाई। लेकिन मैंने उसे कहा कि ध्यान रखना, यह प्रेम फिर घृणा को इकट्ठा करने लगेगा।

द्वंद्व जहां है, वहां हम विपरीत को इकट्ठा कर लेते हैं।

लाओत्से कहता है, संत विपरीत के पार हैं, दोनों के बाहर हैं। वे न कठोर, न वे सदय।

आज इतना ही। कल हम दूसरा सूत्र लेंगे।

सतरहवां प्रवचन

विरोधों में एकता और शून्य में प्रतिष्ठा

Chapter 5 : Sutra 2

May not the space between Heaven and
Earth be compared to a bellows.
It is emptied, Yet it loses not its power;
It is moved again, and sends forth air the more.
Much speech to swift exhaustion lead we see;
Your inner being guard, and keep it free.

अध्याय 5 : सूत्र 2

स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का आकाश कैसा धौंकनी की तरह है!
इसे रिक्त कर दो, फिर भी इसकी शक्ति अखंडित रहती है;
इसे जितना ही चलाओ, उतनी ही हवा निकलती है।
शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है।
इसलिए अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है।

जीवन बहुत से विरोधी आधारों पर निर्मित होता है। जैसा दिखाई पड़ता है, वैसा ही नहीं; दिखाई पड़ने वाले तत्वों के पीछे न दिखाई पड़ने वाले तत्व होते हैं, जो बिल्कुल ही विपरीत होते हैं।

विपरीत का हमें स्मरण भी नहीं आता। यदि हम जन्म देखते हैं, तो मृत्यु की हमें कोई सूचना नहीं मिलती। और अगर जन्म के क्षण में कोई मृत्यु का ख्याल करे, तो हम उसे पागल कहेंगे। लेकिन जन्म के पीछे मृत्यु छिपी रहती है। और जो जानता है, वह जन्म में मृत्यु को तत्क्षण देख लेता है। ऐसा ही जब कोई मर रहा हो, तो उसकी मरणशय्या के पास खड़े होकर हमें उसके जन्म का कोई भी ख्याल नहीं आता।

लेकिन हर मृत्यु के पीछे जन्म की यात्रा शुरू हो जाती है। और जब कोई सुंदर होता है, तो हमने कभी नहीं सोचा कि कुरूप हो जाएगा। और जब कोई युवा होता है, तो हमने युवा के सौंदर्य में वार्धक्य के पदचाप नहीं सुने। और जब कोई सफल होता है, तो असफलता निकट है, यह हमारे स्मरण में नहीं आता। और जब कोई राज-सिंहासनों पर प्रतिष्ठित होता है, तो पृथ्वी पर गिर जाने की और धूल-धूसरित हो जाने की घड़ी बहुत निकट है, इसका हमें कोई स्मरण नहीं होता है।

जीवन विपरीत को अपने में छिपाए हुए है। इसलिए ज्ञानी वह है जो प्रतिपल विपरीत को भी देखने में समर्थ है। जो जीवन में मृत्यु को देख लेता है और अंधकार में प्रकाश को और सफलता में असफलता को और

सौंदर्य में कुरूप को और जो प्रेम में घृणा के बीज देख लेता है और जो प्रशंसा में निंदा की यात्रा देख लेता है, वही ज्ञानी है।

लाओत्से इस सूत्र में इस विरोध की तरफ सबसे गहरी खबर देता है। इस विरोध का सबसे गहरा तल क्या है? कभी आपने लुहार की दुकान पर धौंकनी देखी है? लाओत्से उसका उदाहरण लेता है। वह कहता है, जब धौंकनी बिल्कुल खाली हो जाती है, रिक्त, तब ऐसा मत समझना कि वह शक्तिहीन हो गई। सच तो यह है कि खाली धौंकनी में ही शक्ति होती है, भरी धौंकनी में शक्ति नहीं होती। लुहार धौंकनी को खाली इसीलिए करता है, ताकि वह शक्तिशाली हो जाए। फिर उसी शक्ति, उस खालीपन की शक्ति से, पावर ऑफ एम्पटीनेस से और हवा भीतर खींची जाती है। भरी हुई धौंकनी हवा को भीतर नहीं खींच सकती। भरी हुई धौंकनी इतनी भरी हुई है कि अब उसमें और कुछ भरा नहीं जा सकता। भरी हुई धौंकनी भरे होने की आखिरी सीमा पर है। उसमें अब और शक्ति नहीं बचती। वह निर्वीर्य हो गई, वह निःशक्त हो गई। अब उससे कुछ काम नहीं लिया जा सकता। लेकिन जब लुहार की धौंकनी खाली होती है, तब शक्तिशाली होती है। अब उसे फिर भरा जा सकता है।

मृत्यु के क्षण में आदमी की धौंकनी दब गई, खाली हो गई। अब फिर जीवन प्रकट हो सकता है। मृत्यु के क्षण में, जो हवा थी आपके भीतर, निकल गई। अब आप फिर जीवन की हवाओं को भीतर भर सकेंगे। कभी आपने सोचा कि जब आपकी श्वास बाहर जाती है, तभी आप जीवन को भीतर अपशोषित करने में समर्थ हो पाते हैं! जब श्वास आपके बाहर होती है, तब आप शक्तिशाली होते हैं, खाली नहीं। श्वास से खाली होते हैं, लेकिन जीवन को खींचने की क्षमता आपकी प्रगाढ़ हो जाती है।

लाओत्से कहता है कि धौंकनी जब खाली हो लुहार की, तो ऐसा मत समझना कि शक्तिहीन हो गई। खींचेगी वायु को भीतर, फेंकेगी वायु को बाहर। वह जो खालीपन है, वह भरे होने की तरफ एक कदम है। लेकिन हमें खालीपन में सिर्फ खालीपन दिखाई पड़ता है, और भरेपन में सिर्फ भरापन दिखाई पड़ता है।

लाओत्से कहता है, खालीपन भरेपन की तरफ एक कदम है और भरापन खाली होने की पुनः तैयारी है। और जीवन के ये दाएं और बाएं पैर हैं। एक पैर से जीवन नहीं चलता। श्वास भीतर आती है, वह भी जीवन का एक पैर है। और श्वास बाहर जाती है, वह भी जीवन का एक पैर है। अगर दो श्वास को देखें, तो ख्याल में आ जाएगा कि बाहर जाती श्वास मौत जैसी है, भीतर आती श्वास जन्म जैसी है। जो लोग श्वास के विज्ञान को गहराई से जानते हैं, वे कहते हैं, हर श्वास पर हम मरते हैं और पुनर्जीवित होते हैं।

लेकिन मृत्यु का अर्थ शक्तिहीन हो जाना नहीं है। मृत्यु का अर्थ केवल इतना ही है कि हम पुनः शक्तिशाली होने के लिए तैयार हो गए; हमने पुराने को फेंक दिया और नए को भरने की हमारी क्षमता फिर स्पष्ट हो गई है।

लाओत्से कहता है कि स्वर्ग और पृथ्वी के बीच भी अस्तित्व धौंकनी की भांति चलता है। स्वर्ग और पृथ्वी के बीच भी अस्तित्व धौंकनी की भांति चलता है। पूरे जगत को हम जाती और आती हुई श्वास की व्यवस्था में समझ सकते हैं--पूरे जगत को! अगर सुबह सूरज का निकलना भरती हुई श्वास है, तो सांझ सूरज का डूब जाना फिर रिक्त होती श्वास है। पूरा जगत श्वास से स्पंदित है--धौंकनी की भांति।

और अभी--लाओत्से को तो ख्याल में भी नहीं हो सकता था--अभी आइंस्टीन और उसके साथियों की सतत खोज का जो परिणाम है, वह यह है कि एक नवीनतम ख्याल फिजिक्स ने जगत को दिया। और वह है एक्सपैंडिंग यूनिवर्स का। अब तक हम सोचते थे कि जगत थिर है। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं, जगत एक्सपैंडिंग है, विस्तार होता हुआ है। जैसे कि कोई बच्चा अपने रबर के गुब्बारे में हवा भर रहा हो और गुब्बारा बड़ा होता जाए, ऐसा जगत रोज बड़ा हो रहा है। जितनी देर हम यहां बोलेंगे, उस बीच जगत बहुत बड़ा हो

चुका होगा। प्रति सेकेंड लाखों मील की रफ्तार से जगत बड़ा हो रहा है। उसकी जो बाहरी परिधि है, वह आगे फैलती जा रही है। तारे एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। जैसे कि एक छोटा रबर का फुग्गा है। उसको हम फुलाएंगे, तो उसकी परिधि पर दो बिंदु अगर बने हों, तो जैसे-जैसे फुग्गा फूलता जाएगा, दोनों बिंदु दूर होते जाएंगे। फुग्गा बड़ा होता जाएगा, बिंदु दूर होते जाएंगे। सब तारे एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं; केंद्र से परिधि दूर होती जा रही है।

लेकिन एक बड़ी कठिनाई में आइंस्टीन ने पश्चिम के विज्ञान को डाल दिया। और वह यह कि इसका अंत क्या होगा? और यह कहां होगा समाप्त? यह एक्सपैंशन कहां जाकर बंद होगा? और बंद होगा, तो इसके बंद होने के कारण क्या होंगे? अभी तक पश्चिम के पास दूसरी बात का ख्याल नहीं है। लाओत्से से मिल सकता है, उपनिषदों से मिल सकता है। वह दूसरा ख्याल यह है कि यह जगत का फैलाव भरती हुई श्वास है। लेकिन जो चीज फैलती है, फिर वह सिकुड़ती है। फिर लौटती हुई श्वास भी होगी। पश्चिम का विज्ञान अभी फैलती हुई श्वास के ख्याल पर पहुंच गया है; अभी लौटती हुई श्वास का ख्याल और आना जरूरी है।

पूरब के मनीषी कहते रहे हैं कि उस फैलते हुए एक्सपैंशन को हम कहते हैं सृष्टि, और जब सिकुड़ती है सृष्टि, श्वास जब बाहर जाने लगती है, तो हम उसे कहते हैं प्रलय। जब जगत पूरा फैल जाता है, तो अनिवार्यतया वापस लौटना शुरू हो जाता है। जैसे आपने श्वास भर ली और आपके फेफड़े फैल गए; और फिर श्वास निकलनी शुरू होगी और फेफड़े सिकुड़ जाएंगे।

भारत ने तो बहुत अदभुत बात कही है। उसने तो एक सृष्टि के काल को ब्रह्मा की एक श्वास कहा है। उसे हम यूं कह सकते हैं, अस्तित्व की एक श्वास। जब ब्रह्मा श्वास लेता है, तो जगत खिल जाता है, फैल जाता है। और जब ब्रह्मा श्वास छोड़ता है, तो सब सिकुड़ कर अपने बीज में चला जाता है।

लाओत्से कहता है, पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में ऐसी ही धौंकनी के श्वास का खेल है। और पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में जितनी वस्तुएं हैं, सभी इस द्वंद्व से घिरी रहती हैं--फैलना, सिकुड़ना।

लाओत्से यह क्यों कहना चाहता होगा? लाओत्से इसलिए कहना चाहता है कि अगर आप फैलने के लिए बहुत आतुर हैं, तो सिकुड़ने की तैयारी रखना। अगर आप जीवन को पाने के लिए बहुत उत्सुक हैं, तो मरने की तैयारी रखना। अगर सुंदर होने की बहुत चाह है, तो कुरूप होने के आप बीज बो रहे हैं। अगर सफल आप होना चाहते हैं, तो असफलता की सीढ़ियां आप निर्मित कर रहे हैं।

लाओत्से से किसी ने कहा है जाकर एक दिन सुबह कि लाओत्से, तुमने कभी दुख जाना? तो लाओत्से हंसने लगा। उसने कहा, नहीं जाना; क्योंकि मैंने सुख को जानने की कभी कामना नहीं की।

दुख तो हम भी चाहते हैं कि न जानें। लेकिन हम इसीलिए चाहते हैं कि दुख न जानें, ताकि सुख को जानते रहें। हम भी चाहते हैं, दुख न हो; लेकिन इसीलिए ताकि सुख बना रहे। लाओत्से कहता है, मैंने दुख नहीं जाना, क्योंकि मैंने सुख को जानने की कोई आकांक्षा नहीं की।

हम दुख जानते ही रहेंगे, क्योंकि सुख को बोते समय ही दुख के बीज बो दिए जाते हैं। सुख की चाह से ही दुख का जन्म होता है। भीतर आती श्वास ही बाहर जाती श्वास बन जाती है। फैलाव ही सिकुड़ने का रास्ता है। और प्रकाश ही अंधेरे का द्वार बन जाता है। वह विपरीत हमारे ख्याल में नहीं है। और पूरे समय लुहार की धौंकनी की तरह जीवन अपने विपरीत के बीच डोलता रहता है।

लाओत्से को हराया नहीं जा सकता, क्योंकि लाओत्से कहता है, मैंने कभी जीतना नहीं चाहा। और लाओत्से कहता था कि मेरा कभी अपमान कोई नहीं कर पाया, क्योंकि मैंने कभी कोई सम्मान की व्यवस्था नहीं

की। और जब मैं कभी सभाओं में गया, तो मैं वहां बैठा जहां लोग जूते उतारते थे, क्योंकि वहां से और पीछे हटाए जाने का कोई उपाय न था। लाओत्से कहता था, मैं सदा नंबर एक रहा, क्योंकि नंबर दो मुझे कोई भी नहीं रख सकता। क्योंकि मैं आखिरी नंबर पर ही खड़ा रहा हूं। मैं कतार में सबसे पीछे ही खड़ा था। उससे पीछे करने का कोई उपाय न था। इसलिए मुझे कभी कोई पीछे करने में समर्थ नहीं हो सका।

यह बड़ी उलटी बात लगती है। लेकिन ठीक यही है। जो पीछे ही खड़ा है, उसे पीछे करने का कोई उपाय नहीं हो सकता। लेकिन जो आगे खड़ा है, उसके आगे खड़े होने में ही उसने वह सब व्यवस्था कर रखी है, जो उसे पीछे कर देगी। असल में, आगे खड़े होने के लिए जिन सीढ़ियों का उसने उपयोग किया है, उन्हीं सीढ़ियों का उपयोग उसे पीछे करने के लिए कोई और करेगा।

मुल्ला नसरुद्दीन सुबह एक नदी के किनारे मछलियां पकड़ रहा है। उसने कुछ केंकड़े भी पकड़ लिए हैं। एक छोटी सी बालटी में उसने चार-छह केंकड़े भी डाल दिए हैं। गांव के तीन-चार बड़े राजनीतिज्ञ सुबह-सुबह घूमने निकले हैं। उन्होंने नसरुद्दीन को मछलियां पकड़ते बैठे देखा और उसकी टोकरी में, बालटी में केकड़ों को चलते देखा। तो उनमें से एक ने कहा, मुल्ला, अपनी बालटी को ढांक दो तो अच्छा; अन्यथा ये केंकड़े निकल भागेंगे। नसरुद्दीन ने कहा, ढांकने की कोई जरूरत न पड़ेगी। दीज क्रैब्स आर बॉर्न पोलिटीशियंस। ये जो केंकड़े हैं, जन्मजात राजनीतिज्ञ हैं। एक चढ़ता है, तो दूसरे उसे खींच कर नीचे गिरा लेते हैं; ये भाग नहीं सकते। चढ़ जाते हैं, भाग नहीं पाते। क्योंकि वे तीन इनके पीछे पड़े हैं पूरे समय। जब उन तीन में से कोई चढ़ता है, तो बाकी तीन हमेशा खींचने को पीछे हैं। मुल्ला ने कहा, पहले मैं भी टोकरी को ढांकता था। लेकिन फिर मैंने पाया, बेकार है। ये तो जन्मजात राजनीतिज्ञ हैं; इन्हें ढांकने की कोई भी जरूरत नहीं है।

असल में, जब भी आप चढ़ने लगते हैं ऊपर, तब आप न मालूम कितने लोगों को आपको पीछे खींच लेने के लिए उत्सुक कर देते हैं। आपके चढ़ने में ही वह कीमिया छिपा है। असल में, चढ़ने का मजा ही तब है, जब कोई आपको खींचने को उत्सुक हो जाए। इसे थोड़ा समझ लें। अगर कोई खींचने को उत्सुक न हो, तो आपको चढ़ने में कोई मजा न आए। या आए? आप एक सिंहासन पर बैठ जाएं और कोई आपको नीचे उतारने को उत्सुक न हो, तो सिंहासन बेकार हो जाए।

सिंहासन का मूल्य यही है कि जब उस पर कोई चढ़ेगा, तो लाखों लोग उतारने को, धकाने को, उसकी जगह बैठने को आतुर हो जाएंगे। नहीं तो उसे कौन सिंहासन कहेगा? जिस पर बैठे हुए आदमी को कोई उतारने को उत्सुक नहीं है। आप बैठते ही इसलिए हैं कि वह जगह ऐसी है, जहां न मालूम कितने लोग बैठना चाहते हैं। आपके बैठने में जो रस है, वही रस दूसरों को आपको नीचे उतार लेने का रस है। वह साथ-साथ, संयुक्त है।

और लाओत्से कहता है, तुम हमें नीचे न उतार पाओगे, क्योंकि हम वहां बैठे हैं, जिसके नीचे और कोई जगह ही नहीं होती। हमारा सिंहासन सुरक्षित है।

यह लाओत्से उलटी बात को जानता है। और उलटी बात को जान लेना इस जगत में परम ज्ञान का सूत्र है। अगर हम प्रथम होना चाहते हैं, तो हम प्रथम ही होना चाहते हैं। यह उलटी बात का हमें कोई पता नहीं कि अंतिम ही प्रथम हो सकता है। और अगर हम भरना चाहते हैं, तो हम भरना ही चाहते हैं। हमें उलटी बात का कोई भी पता नहीं कि जो शून्य है, खाली है, वही केवल भरा जाता है। अगर हम सम्मान पाना चाहते हैं, तो हम सीधे ही सम्मान पाने चल पड़ते हैं। हमें पता ही नहीं है कि यह अपमान को पाने का इंतजाम है। लेकिन विपरीत को देख लेना तो बड़ी कुशलता की बात है, विपरीत हमें दिखाई नहीं पड़ता।

मुल्ला नसरुद्दीन से मिलने कोई आया है उसके घर। जैसे ही भीतर आया, नसरुद्दीन ने उससे कहा, बैठें! कुर्सी ले लें! लेकिन वह आदमी नाराज हो गया, क्योंकि वह कोई साधारण आदमी न था। वह बहुत बड़ा धनपति था। और ऐसे साधारण भाव से कहा जाना कि बैठें, कुर्सी ले लें, उसे पीड़ादायी हुआ। उसने कहा, नसरुद्दीन, तुम जानते हो, मैं कौन हूं? हम सभी बताने को उत्सुक हैं कि मैं कौन हूं! नसरुद्दीन ने कहा, बड़ी कृपा होगी, बताएं। उस आदमी ने कहा कि तुम्हें पता है कि इस नगर में मुझसे बड़ा धनशाली कोई भी नहीं? नसरुद्दीन ने कहा, क्षमा करें, मुझे पता नहीं था; देन यू कैन टेक टू चेयर्स। तब आप दो कुर्सियों पर बैठ जाएं। और मैं क्या कर सकता हूं!

दो कुर्सियों पर तो बैठा भी नहीं जा सकता, चाहे आप कितने ही बड़े आदमी हों। लेकिन दो कुर्सी पर बैठने का मन होता है। तब एक तरकीब है। कुर्सी के ऊपर कुर्सी रख कर बैठा जा सकता है।

उस आदमी ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो नसरुद्दीन! दो कुर्सी पर मैं कैसे बैठूंगा? नसरुद्दीन ने कहा, मैं तरकीब भी बताता हूं। आप एक कुर्सी के ऊपर दूसरी कुर्सी रख लें, उस पर चढ़ कर बैठ जाएं।

सिंहासन कई कुर्सियां हैं एक के ऊपर एक। बहुत कुर्सियों पर बैठना हो, इस हॉल में जितनी कुर्सियां हैं, सब पर बैठना हो, तो बहुत मुश्किल है। फिर एक के ऊपर एक कुर्सी रखी जा सकती हैं--वर्टिकल। सिंहासन का मतलब है, हजारों कुर्सियां जिसके नीचे हैं, लाखों कुर्सियां जिसके नीचे हैं।

लेकिन जितने लोग उन कुर्सियों पर दब जाएंगे, वे आपकी ऊपर की कुर्सी को फेंकने की कोशिश में लगे ही रहेंगे। खाली कुर्सियों पर बैठने में कोई भी मजा नहीं है। आदमी, असल में, आदमी के ऊपर बैठना चाहता है। खाली कुर्सी पर बैठने से क्या फायदा होगा! आदमी आदमी के ऊपर बैठना चाहता है।

लेकिन जितनी आपकी कुर्सी ऊपर होती जाती है, उतने आप खतरे में पड़ते जाते हैं। क्योंकि उतने ही लोग आपके नीचे दबते चले जाते हैं। वे आपको फेंक कर रहेंगे। इसलिए दुनिया में पहली कुर्सी सुरक्षित नहीं है, सबसे ज्यादा असुरक्षित जगह है।

लाओत्से कहता है, लेकिन हमारा सबका मन चीजों को सीधे पाने का होता है, क्योंकि हमें विपरीत का कोई भी पता नहीं है। अगर विपरीत का पता हो, तो हम उस महान कला को जान जाते हैं, जिसका नाम धर्म है।

धर्म कहता है, अगर तुम परम जीवन पाना चाहते हो, तो तुम परम मृत्यु के लिए राजी हो जाओ। डाई दिस वेरी मोमेंट, इसी क्षण मर जाओ, और परम जीवन तुम्हारा है! और धर्म कहता है, अगर तुम्हें ऐसा धन पाना है जिसे चोर न चुरा सकें, तो तुम बिल्कुल निर्धन होने को ही अपना धन मान लो। और अगर तुम्हें ऐसी प्रतिष्ठा चाहिए जिसके विपरीत कोई उपाय नहीं है, तो तुम अपने ही हाथ से अप्रतिष्ठित हो जाओ।

जापान में एक फकीर हुआ है, लिंची। जब वह मरा, तब वर्षों बाद लोगों को पता चला कि उसने अपने ही बाबत बहुत सी गलत खबरें जाहिर कर रखी थीं। लोगों को उसने राजी कर रखा था कि उसके संबंध में गलत खबरें उड़ाते रहें। लिंची बिल्कुल अप्रतिष्ठित मरा। मरते वक्त जो मित्र उसके पास थे, उनसे उसने कहा कि तुम्हारी कृपा कि तुमने मेरे संबंध में बहुत सी खबरें उड़ा दीं; मैं भीड़-भाड़ के पागलपन से बच गया। मैं निश्चिंत मर रहा हूं। मैं इतना अप्रतिष्ठित हो गया कि मेरी प्रतिष्ठा को हिलाने के लिए भी कोई नहीं आता।

अप्रतिष्ठित को कौन हिलाने आता है? लेकिन प्रतिष्ठित को लोग हिलाने पहुंच जाते हैं। उसकी प्रतिष्ठा ही आकर्षण बन जाती है कि हिलाने को आओ।

लाओत्से कहता है, इस अस्तित्व में विरोधी श्वास चल रही है, जैसे धौंकनी चलती हो लुहार की। इसमें वह एक बात पर जोर देता है कि जब धौंकनी खाली हो--इसे रिक्त कर दो, फिर भी इसकी शक्ति अखंडित रहती है--जब धौंकनी बिल्कुल रिक्त होती है, तब यह मत समझना कि उसकी शक्ति टूट गई; उसकी शक्ति अखंडित होती है, पूर्ण होती है। शून्य के पास पूर्ण की शक्ति होती है।

शून्य के पास पूर्ण की शक्ति?

फिजिक्स कहती है कि हम जब एटम को तोड़ते हैं, तब कुछ भी नहीं बचता, शून्य रह जाता है। लेकिन इस जगत में शक्ति का सब से बड़ा स्रोत अणु के विस्फोट से होता है। हिमालय उतना बड़ा शक्तिशाली नहीं है, जितना एक छोटा सा--इतना छोटा कि आंख से दिखाई न पड़े! अगर हम एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखें, तो आदमी के बाल की मोटाई के बराबर होते हैं। एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक राशि लगा दें, तब एक बाल की मोटाई होती है। बाल का लाखवां हिस्सा अगर हम कर सकें, बारीक, तो अणु होगा। बाल की खाल निकालने की बात हमने सुनी है; लेकिन इसको तो बाल की खाल की खाल की, ऐसा कई बार कहना पड़े, तब खाल आएगी।

मुझे एक घटना याद आती है। नसरुद्दीन का एक मित्र गांव से आया है, देहात से। और एक बतख भेंट कर गया है। बतख आई घर में, तो नसरुद्दीन ने उसका शोरबा बनाया, मित्र को खिलाया। फिर पंद्रह दिन बाद एक आदमी आया, नसरुद्दीन ने उसे बिठाया। और उसने कहा कि मैं उस मित्र का मित्र हूं जो बतख लाया था। नसरुद्दीन ने उसे भी शोरबा पिलाया।

मगर मेहमान आते ही चले गए। फिर मित्र का मित्र का मित्र आया, फिर मित्र का मित्र का मित्र का मित्र आया; ऐसी कतार बढ़ती चली गई। छह महीने में नसरुद्दीन घबड़ा गया। और जो भी आया, उसने कहा कि मैं उस आदमी के मित्र का मित्र का मित्र का मित्र का मित्र हूं जो बतख लाया था। नसरुद्दीन के भी सामर्थ्य की सीमा आ गई। वह गरम पानी भीतर से लाया और उसने कहा, शोरबा पीएं। उस आदमी ने कहा कि यह शोरबा है? गरम पानी है!

नसरुद्दीन ने कहा कि वह जो बतख लाया था, उस बतख के शोरबे के शोरबे का शोरबा का शोरबा है। छह महीने हो गए बतख आए हुए; अब तुम अगर बतख का शोरबा चाहते हो, तो बड़ी गलती बात है। जितनी यात्रा मित्र से तुम्हारी हो गई, उतनी ही बतख से इस शोरबे की हो गई है। अगली बार आओगे, ठंडा पानी मिलेगा, गरम भी नहीं रह जाएगा; क्योंकि यात्रा लंबी होती जा रही है।

अगर हम अणु को सोचें, तो वह बाल की खाल भी नहीं है। बहुत लंबी यात्रा है। एक लाख बार हम बाल को छीलते चले जाएं, तब जो बचेगा! बचेगा कुछ? अब तक अणु को देखा नहीं जा सका है। नहीं, खाली आंख से ही नहीं, यंत्र की आंख से भी अणु को देखा नहीं जा सका है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु के संबंध में हम जो कुछ कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है, जैसा पुराने धार्मिक लोग ईश्वर के संबंध में कहते थे। हमने देखा नहीं है, लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं, जो कि अणु को मानने से हल हो जाती हैं। इसलिए हम मानते हैं।

ऐसा ही धार्मिक लोग कहते थे। ईश्वर को देखा नहीं है, लेकिन उसके बिना बहुत सी बातों के सवाल मिलने मुश्किल हो जाते हैं। उसको मान लेते हैं, तो सवाल मिल जाते हैं। एजम्शन है। या ऐसा कह सकते हैं कि ईश्वर तो दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं।

ऐसा ही वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु तो हमने नहीं देखा, लेकिन विस्फोट दिखाई पड़ता है। हिरोशिमा राख हो जाता है; एक लाख आदमी राख हो जाते हैं। यह परिणाम है। इस परिणाम को झुठलाया नहीं जा

सकता, यह सत्य है। यह दिखाई पड़ता है। लेकिन जिसके भीतर से यह परिणाम होता है, वह बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। हम सिर्फ कल्पना करते हैं कि कोई चीज टूट गई है, जिसके परिणाम में इतनी ऊर्जा का जन्म हुआ है। उस कल्पित चीज का नाम अणु है। लेकिन अणु जैसी कल्पित और छोटी चीज, अति सूक्ष्म, अति विराट की जन्मदात्री है!

धर्म निरंतर यह कहता रहा है कि अगर विराट को पाना है, तो सूक्ष्म को पाना पड़ेगा। धर्म सदा उलटी बात बोलता रहा है। अब विज्ञान ने भी थोड़ी समझ शुरू की है। धर्म कहता है, विराट को पाना है, तो सूक्ष्म पाना पड़ेगा। परमात्मा को पाना है, तो भीतर जो आत्मा का अणु छिपा है, उसे पाना पड़ेगा। जो आदमी परमात्मा को सीधे खोजने जाएगा, वह कभी नहीं खोज पाएगा। अपने को खो दे भला, परमात्मा को कभी नहीं खोज पाएगा। जिस आदमी को परमात्मा को खोजना है, उसे परमात्मा को तो भूल ही जाना चाहिए; स्वयं के भीतर वह जो छोटा सा अणु छिपा है जीवन का, उसे खोज लेना चाहिए। उसे खोजते ही परमात्मा मिल जाता है। अणु को पकड़ लेना विराट को पकड़ लेना है।

लेकिन उलटा हमें दिखाई नहीं पड़ता। और अणु तो बिल्कुल शून्य है; कहें, न के बराबर है। उस शून्य में इतनी ऊर्जा! लेकिन वह भी पूर्ण शून्य नहीं है। लाओत्से जिस शून्य की बात कर रहा है, वह पूर्ण शून्य है। अगर अणु, जो कि पूर्ण शून्य नहीं है, उससे इतनी ऊर्जा पैदा होती है, तो पूर्ण शून्य में कितनी ऊर्जा होगी?

ऋषि सदा कहते रहे हैं, इस जगत का जन्म शून्य से हुआ है। तभी इतने विराट का फैलाव हो सकता है! इतने चांद-तारे, अरबों-अरबों चांद-तारे शून्य से ही पैदा हो सकते हैं।

हमारा गणित उलटा है। हम सोचते हैं, कोई भी चीज पैदा होगी तो वहीं से पैदा होगी, जहां पहले से मौजूद हो। हम सोचते हैं, भरी हुई स्थिति से ही कुछ निकल सकता है। शून्य से क्या निकलेगा? क्योंकि हमें विरोधी गणित का कोई अंदाज नहीं है। लाओत्से उसी विरोधी गणित का जगत में सबसे बड़ा प्रस्तोता है। वह कहता है, वह शून्य की जो स्थिति है, अखंड शक्ति उसमें छिपी है।

यह वह क्यों कहने को उत्सुक है? वह इसलिए कहने को उत्सुक है कि अगर तुम्हें भी अखंड शक्ति के मालिक हो जाना है, तो शून्य हो जाना पड़ेगा--उस धौंकनी की भांति, जिसमें हवा बिल्कुल नहीं रह गई, जिसमें भीतर कुछ भी न बचा, वैक्यूम हो गया। जैसे ही भीतर वैक्यूम हो जाता है, शून्य हो जाता है, धौंकनी बिल्कुल खाली हो जाती है, परम जीवन का आविर्भाव हो जाता है। उसी शून्य में परम अखंडित शक्ति के दर्शन शुरू हो जाते हैं।

लेकिन हम अपने को भरने की कोशिश करते हैं। जैसे कोई पागल लुहार अपनी धौंकनी में चीजें भर ले, फिर धौंकनी काम न आए, ऐसे हम सब पागल लुहार हैं। हम अपने जीवन की धौंकनी को भर लेते हैं। उसकी रिक्तता को भर देते हैं--क्षुद्र चीजों से, व्यर्थ की चीजों से। कभी धन से, कभी पद से, कभी मकान से, कभी फर्नीचर से, कभी मित्रों से, पत्नी से, पति से, बच्चों से, भर देते हैं। शून्य भीतर का भर जाता है। फिर हम एक कबाड़ी की दुकान की तरह हो जाते हैं। हिलना-डुलना भी भीतर मुश्किल होता है। जरा हिले कि फर्नीचर से टकरा जाते हैं। फिर अपने को सम्हाल कर किसी तरह जी लेते हैं। अखंड ऊर्जा हमारे पास नहीं होती।

महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति शून्य हो जाए, वह अनंत ऊर्जा का मालिक हो जाता है। अनंत, इनफिनिट इनर्जी का मालिक हो जाता है!

लेकिन यह शून्य कैसे हम हो सकें, इसे लाओत्से आगे कहेगा। अभी वह इतना ही कहता है कि शून्य की महिमा को समझ लेना जरूरी है; भरने के पागलपन को समझ लेना जरूरी है। शून्य की महिमा को समझ लेना

जरूरी है। जगत में जितनी भी गहरी प्रक्रियाएं पैदा हुई हैं--चाहे उन्हें कोई योग कहे, चाहे ध्यान कहे, चाहे तंत्र कहे, चाहे प्रार्थना कहे, पूजा कहे--वे सभी पद्धतियां आदमी को रिक्त करने की पद्धतियां हैं। आदमी खाली कैसे हो जाए! और आदमी बहुत छोटी चीजों से भर जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की सम्राट से दोस्ती थी अपने देश के। नसरुद्दीन की ज्ञानियों में गिनती थी। सुलतान ने उससे एक दिन पूछा, मुल्ला, तुम जब प्रार्थना करते हो, तो मन शून्य हो पाता है या नहीं? मुल्ला ने कहा, बिल्कुल हो जाता है। सम्राट को भरोसा न आया। उसने कहा, सच! तो इस शुक्रवार तुम नमाज करके सीधे मस्जिद से मेरे पास आ जाना। और तुम्हारे ईमान का भरोसा करूंगा। सच-सच मुझे बता देना। अगर तुमने सच-सच बता दिया, तो तुम्हें--वह अपने गधे पर बैठ कर आया था--तुम्हें फिर आगे से गधे की सवारी न करनी पड़ेगी। मेरे अस्तबल का जो सबसे शानदार जानवर है, सबसे शानदार घोड़ा है, वह मैं तुम्हें भेंट कर दूंगा।

नसरुद्दीन ने कहा, जरा देख सकते हैं उस घोड़े को? नसरुद्दीन ने घोड़े को देखा। तबीयत उसकी लार-लार हो गई। उसने कहा कि बड़ी मुश्किल में डाल दिया। खैर, शुक्रवार हाजिर हो जाऊंगा।

प्रार्थना करके नसरुद्दीन आया। दरवाजे पर सम्राट ने घोड़ा बांध रखा था। और नसरुद्दीन से कहा, ईमानदारी से कहो, प्रार्थना में कोई विचार तो नहीं आए? खाली थे तुम? नसरुद्दीन ने कहा, बिल्कुल खाली था। आखिर-आखिर में जरा एक झंझट आई। सम्राट ने पूछा, वह झंझट क्या थी?

नसरुद्दीन ने कहा, वह यह थी कि घोड़ा तो दोगे सही, कोड़ा भी दोगे कि नहीं? साथ में कोड़ा भी दोगे कि नहीं? बस इस कोड़े ने मुझे परेशान कर दिया। लाख उपाय किया अल्लाह को याद करने का, लेकिन कोड़े के सिवाय कुछ याद न आया। बस एक ही बात पकड़े रही कि घोड़ा तो दे दोगे, लेकिन घर तक जाने के लिए कोड़े की भी जरूरत पड़ेगी, वह दोगे कि नहीं?

एक छोटा सा कोड़ा भीतर परमात्मा को हटा सकता है। कोड़ा कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। लेकिन एक छोटे से कोड़े का ख्याल परमात्मा को भीतर से हटा सकता है। यह कुछ ऐसा है कि एक छोटा सा तिनका आंख में पड़ जाए, तो सारी दुनिया अंधेरी हो जाती है। और अगर हिमालय दिखाई पड़ता था, तो एक छोटे से तिनके के आंख में पड़ जाने से हिमालय फिर दिखाई नहीं पड़ता। एक छोटे से तिनके की आड़ में पूरा पर्वत छिप जाता है। छोटा सा विचार भीतर से शून्य को खाली कर देता है। शून्य को भरने के लिए क्षुद्रतम चीज भी काफी है।

और हम सब भीतर भरे हुए हैं। वह हमारा भीतर भरा होना ही हमारे दरिद्र और भिखारी होने का कारण है। भीतर जो शून्य हो जाता है, वह सम्राट हो जाता है। सम्राट होने का एक ही उपाय है कि भीतर हम शून्य हो जाएं, खाली, रिक्त आकाश की तरह स्पेस रह जाए। और जितना बड़ा भीतर आकाश होता है, उतनी ही महान ऊर्जा का जन्म होता है। इस जगत में जो भी महान घटनाएं घटती हैं, वे शून्य से घटती हैं।

मैडम क्यूरी को कोई पूछता था कि तुमने--वह पहली महिला थी जिसने नोबल प्राइज पाई--तुम्हें नोबल प्राइज मिल सकी, तुमने इसके लिए क्या किया? तो क्यूरी ने कहा, जब तक मैंने कुछ किया, तब तक नोबल प्राइज तो दूर, मुझे कुछ भी नहीं मिल पाया। और जो नोबल प्राइज मुझे मिली है, वह मेरे करने से नहीं मिली; मेरे भीतर शून्य में से कुछ हुआ। मैडम क्यूरी को जिस गणित के आधार पर नोबल प्राइज मिली, वह उसने रात आधी नींद में उठ कर कागज पर लिखा था। वह वर्षों से मेहनत कर रही थी और सफल नहीं हो पाई थी। थक गई थी; उस सांझ उसने तय किया कि अब यह बात ही छोड़ देनी चाहिए। और आधी रात उसकी नींद टूट गई, वह नींद में उठी, उसने टेबल पर कुछ लिखा, वापस सो गई। सुबह उसे याद भी नहीं था कि वह रात कब उठी!

उसने क्या लिखा! लेकिन सुबह जब टेबल पर उसने सवाल का हल पाया, तो चकित रह गई। वह नहीं कह पाई जीवन में कि यह मेरे द्वारा किया गया है। यह भीतर के शून्य से आया है।

आइंस्टीन ने मरने के पहले अपने वक्तव्यों में बार-बार कहा है कि जो भी मैंने जाना, वह जब तक मैंने जानने की कोशिश की, मैं नहीं जान पाया। जब मैंने कोशिश छोड़ दी, तो पता नहीं, भीतर के स्पेस से, भीतर के आकाश में वह आविर्भूत हुआ।

जिस व्यक्ति ने नोबल प्राइज पाई अणुओं कीशृंखला के ऊपर, वहशृंखला उसे रात सपने में प्रकट हुई। उसे भरोसा भी नहीं आया कि सपने में अणुओं कीशृंखला की कड़ी दिखाई पड़ सकती है। वह उसे सपने में ही दिखाई पड़ी। इस जगत में आज तक जो भी श्रेष्ठतम घटित हुआ है, वह शून्य से घटित हुआ है--चाहे बुद्ध में, चाहे महावीर में, चाहे लाओत्से में, या चाहे आइंस्टीन में।

निजिंस्की कहा करता था कि जब मैं नाचता हूं, जब तक मैं नाचता हूं, तब तक नाचना साधारण होता है, और जब मेरे भीतर का शून्य नृत्य को पकड़ लेता है, तब नाचना असाधारण हो जाता है। एक दिन घर लौट कर उसकी पत्नी ने निजिंस्की को कहा कि आज तुम ऐसे नाचे हो कि मैं रो रही हूं अपने मन में कि तुम ही एक अभागे आदमी हो कि तुमने भर निजिंस्की का नाच नहीं देखा! आज तुम ऐसे नाचे हो कि तुम अकेले अभागे आदमी हो।

निजिंस्की ने कहा, तू गलती में है। मैंने भी देखा।

उसकी पत्नी ने कहा, मैं कैसे मानूं, तुम कैसे देख सकोगे?

निजिंस्की ने कहा कि जब तक मैं नाचता हूं, शुरू के थोड़े क्षणों में, तब तक मैं नहीं देख पाता। लेकिन फिर भीतर का शून्य नृत्य को पकड़ लेता है, तब तो मैं दूर खड़े होकर आब्जर्वर हो जाता हूं; फिर तो मैं देख पाता हूं।

निजिंस्की दुनिया का अकेला नर्तक था, जिसको--ऐसा लोगों का ख्याल है--ग्रेविटेशन का असर नहीं पड़ता था। जब वह नाचता था, तो अनेक बार हवा में उछल जाता था। और वह अकेला नर्तक था जो जमीन तक लौटने में बड़े आहिस्ते आता था, जैसे कोई पंख गिर रहा हो, कोई पक्षी का पंख गिर रहा हो। आदमी की तरह नहीं गिरता था, पक्षी के पंख की तरह! चकित थे लोग और निजिंस्की से पूछते थे कि यह असंभव है बात, क्योंकि शरीर पर तो ग्रेविटेशन काम करता है। शरीर तो किसी का हो, जमीन खींचेगी।

निजिंस्की कहता था, जब तक मैं होता हूं, तब तक काम करता है। लेकिन जब शून्य पकड़ लेता है, तब ग्रेविटेशन का मुझे पता नहीं चलता। मैं जमीन पर ऐसे उतरने लगता हूं, जैसे हलका हो गया हूं, वेटलेस।

भीतर एक शून्य है। जब भी कोई महान नृत्य पैदा हुआ है, तो उससे; कोई महान काव्य पैदा हुआ है, तो उससे; कोई महान अंतर्दृष्टि उपलब्ध हुई है, तो उससे। विज्ञान जन्मता है उस शून्य से, धर्म जन्मता है उस शून्य से, कला पैदा होती है उस शून्य से।

लेकिन हम अहंकार से भरे लोग उस महान के निकट कभी भी नहीं पहुंच पाते, किसी भी द्वार से नहीं। क्योंकि हम कभी शून्य ही नहीं हो पाते। हम कभी आकाश में उड़ नहीं पाते, क्योंकि हम इतने पत्थर से भरे हैं अपने ही भीतर कि वह पत्थरों का वजन हमें जमीन पर कसे रखता है।

लाओत्से कहता है, शून्य अखंड ऊर्जा है।

लाओत्से निरंतर एक कहानी कहा करता था। वह कहा करता था कि मैंने उस संगीतज्ञ का नाम सुना, जिसने वर्षों से कोई गीत नहीं गाया। तो मैं उस संगीतज्ञ की खोज में गया, क्योंकि ऐसे आदमी को लोग संगीतज्ञ

क्यों कहते हैं जिसने वर्षों से कोई गीत नहीं गाया! और जब मैं उस संगीतज्ञ के पास पहुंचा, तो न तो उसके पास कोई साज था, न कोई सामान था। वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था। और मैंने उस संगीतज्ञ से पूछा, सुना है मैंने कि तुम बहुत बड़े संगीतज्ञ हो, लेकिन कोई साज-सामान नहीं दिखाई पड़ता?

उस संगीतज्ञ ने कहा, साज-सामान की तभी तक जरूरत थी, जब तक संगीत खुद पैदा न होता था और मुझे पैदा करना पड़ता था। अब संगीत खुद ही पैदा होता है। गाता था तब तक, जब तक गीत स्वयं न आते थे। अब गीत स्वयं आ जाते हैं। लाओत्से ने कहा, लेकिन मुझे सुनाई नहीं पड़ता! संगीतज्ञ ने कहा, रुकना पड़ेगा। मेरे पास रुको, धीरे-धीरे सुनाई पड़ने लगेगा।

और लाओत्से संगीतज्ञ के पास रुका। और संगीत सुन कर लौटा। जब उसके शिष्यों ने पूछा कि सुना संगीत? कैसा था संगीत? लाओत्से ने कहा, वह संगीत शून्य का था। वहां शब्द नहीं थे। वहां शून्य का सन्नाटा था। और आज मैं तुमसे कहता हूं कि जिस संगीत में शब्द होते हैं, वह संगीत नहीं, केवल शोरगुल है; संगीत तो वह है जहां शब्द शून्य हो जाते हैं, मौन सन्नाटा ही रह जाता है। शोरगुल है जहां, शब्द है वहां।

पर आपको ख्याल में न होगा। संगीत... अभी आप सितार सुनते थे। अगर आप समझते हों कि जब सितार पर एक ध्वनि उठती है, तब संगीत होता है, तो आप गलती में हैं। जब सितार पर एक ध्वनि उठती है और दूसरी ध्वनि उठती है, और तीसरी ध्वनि उठती है, उनके बीच जो गैप होते हैं, संगीत वहीं है। वे जो खाली जगह होती हैं। इसलिए जो ध्वनियों को सुनता है, वह संगीत नहीं सुनता; वह केवल स्वर सुन रहा है। जो दो स्वरों के बीच में खाली जगह को सुनता है, वह संगीत को सुनता है। जितना महान संगीत होता है, उतना खाली जगह पर निर्भर होता है।

सुबर्ट के संबंध में मैंने सुना है कि वह अपना वायलिन बजा रहा था। सुबर्ट जब भी बजाता था, तो बीच में लंबे इंटरवल होते थे। एक संगीत का शिक्षक--शिक्षक जैसे दयनीय होते हैं, वैसा ही। शिक्षकों को सब कुछ पता होता है, जो बेकार है वह। नियम उन्हें पूरे पता होते हैं; नियम के बाहर जो सार्थक है, उसका उन्हें कोई पता नहीं होता। शिक्षक सामने ही बैठा था। सुबर्ट ने बजाना शुरू किया। फिर सुबर्ट रुक गया। हाथ उसके ठहर गए और तार मौन हो गए। क्षण, दो क्षण, तीन क्षण! उस शिक्षक को लगा कि शायद यह आदमी भूल गया, अटक गया। उसने कहा, जो आता हो, वह बजाओ। शिक्षक ने कहा, जो आता हो, वह बजाओ। छोड़ो जो न आता हो।

सुबर्ट ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पहली दफे मुझे पता चला कि मैं किन लोगों के सामने बजा रहा हूं। क्योंकि जो मैं बजा रहा था, वह तो केवल द्वार था। जब मैं रुक गया था, तब संगीत था। लेकिन वह शिक्षक बोला, अगर न आती हो यह--यह गीत, यह लय न आती हो--तो दूसरा शुरू करो। कहते हैं, सुबर्ट ने उस दिन वहीं अपना साज पटक दिया और घर लौट गया। और दुबारा उसने साज हाथ में नहीं लिया। लाखों लोगों ने प्रार्थना की। उसने कहा कि नहीं, किनके सामने बजाता हूं! इन्हें संगीत का कोई पता ही नहीं है। ये समझते हैं स्वरों के शोरगुल को संगीत। वह तो केवल प्रारंभ है। वह तो केवल आपको जगाने के लिए है कि आप सो न जाएं। फिर जब आप जाग गए, तब वह चुप हो जाना चाहिए, फिर मौन में सरक जाना चाहिए।

बुद्ध कहते थे कि जो मैं कह सकता था, वह मैंने कहा; लेकिन वह असली बात नहीं है। जो मैं नहीं कह सकता था, वह मैंने नहीं कहा है; वही असली बात है। इसलिए जो मेरे कहने को सुनते रहे हैं, वे मुझे नहीं समझ पाएंगे; जिन्होंने मेरे न कहने को भी सुना है, वही मुझे समझ सकते हैं।

न कहने को जिन्होंने सुना है! न कहना भी सुना जा सकता है?

निश्चित सुना जा सकता है। असल में, कहने की सार्थकता यही है कि दोनों तरफ कहने का किनारा बन जाए और बीच में न कहने की नदी बह सके। स्वर का उपयोग यही है कि दोनों तरफ तट बन जाएं और बीच में संगीत की गंगा बह सके। वह तट बनाने के लिए है। लेकिन तट को जिसने गंगा समझा, वह गंगा को नहीं समझ पाएगा। वह गंगा तक कभी पहुंच भी नहीं पाएगा।

लाओत्से कहता है, पृथ्वी और स्वर्ग के बीच धौंकनी की तरह शून्य आकाश है, और वही अखंड ऊर्जा है। इसे जितना ही चलाओ, इस शून्य को जितना ही चलाओ, उतनी ही ऊर्जा पैदा होती है। शून्य को चलाओ जितना ही, उतना ही प्राण जन्मता है। लेकिन हम शून्य को चलाना नहीं जानते। हम शून्य होना भी नहीं जानते।

इस शून्य को होना और शून्य को चलाने का उपाय लाओत्से कहता है, "शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है।"

जितने ज्यादा शब्द भीतर, उतनी बुद्धि क्षीण हो जाती है। उतनी बुद्धि पर जंग लग जाती है।

लेकिन शब्द ही तो हमारी बुद्धि है। शब्द का जोड़ ही तो हमारी संपत्ति है। पश्चिम में तो हर चीज स्टैटिस्टिक्स हो गई है। तो पश्चिम के अंकविद कहते हैं कि जितना बड़ा सफल आदमी है, उसके पास उतनी ही शब्द की संपदा होती है। वे कहते हैं कि आदमी के पास कितनी शब्द की संपदा है, उससे हम पता लगा सकते हैं कि जीवन में उसने सफलता के कितने सोपान पार किए होंगे। वह कितनी पायरियां सफलता की चढ़ गया होगा, उसके शब्द की सामर्थ्य पर तय होता है।

वे ठीक कहते हैं एक लिहाज से। राजनीतिज्ञ की सामर्थ्य क्या है? राजनीतिज्ञ की सामर्थ्य है कि वह कुछ शब्दों से खेल सकता है। धर्मगुरु की सामर्थ्य क्या है? कि वह कुछ और शब्दों से खेल सकता है। साहित्यकार की सामर्थ्य क्या है? कि वह कुछ और शब्दों से खेल सकता है। हम जिन्हें सफल कहते हैं, वे कौन लोग हैं? राजनीतिज्ञ हैं, धर्मगुरु हैं, साहित्यकार हैं। कौन लोग हैं? शब्द! शब्द पर जो जितना ज्यादा बाहुल्य, शक्ति रखता है, वह हमारी दुनिया में उतना सफल हो जाता है। इसलिए हम शब्द को सिखाने के लिए पागल होते हैं। और हमारी सारी शिक्षा शब्द को सिखाने की शिक्षा है। जितना ज्यादा शब्द आ जाए आदमी को, उतनी आशा है कि वह सफलता पा लेगा।

लेकिन लाओत्से कहता है, शब्द-बाहुल्य बुद्धि को क्षीण करता है। जितने शब्द भीतर बढ़ जाते हैं, उतनी ज्यादा बुद्धि कमजोर हो जाती है।

उलटी बात कहता है। हमारी सारी चेष्टा यही होती है कि शब्द कैसे बढ़ जाएं। एक भाषा आदमी जानता हो, तो दूसरी सीखता है, तीसरी सीखता है, चौथी सीखता है। हम बड़ी प्रशंसा में कहते हैं कि फलां आदमी दस भाषाएं जानता है। एक आदमी पंडित है, हम कहते हैं, उसे वेद कंठस्थ हैं, उपनिषद मुखाग्र हैं, गीता पूरी दोहरा सकता है। क्यों? शब्द की संपत्ति है उसके पास।

लेकिन शब्द का कोई मूल्य है बड़ा? शब्द का कोई अर्थ है बड़ा? शब्द में कुछ सब्सटेंस है, शब्द में कुछ सार है? इतना ही सार है, जैसे प्यास लगी हो और शब्द पानी से कोई प्यास को बुझाने की कोशिश करे। इतना ही सार है कि भूख लगी हो और शब्द भोजन से कोई पेट को भरने की कोशिश करे। इतना सार है। थोड़ी-बहुत देर अपने को भुलावा लेकिन दिया जा सकता है। अगर आपको प्यास लगी है और मैं इतना भी कहूं कि बैठिए पानी आता है, तो थोड़ी सी प्यास को राहत मिलती है। ऐसा नहीं कि नहीं मिलती। पानी का भरोसा भी काफी राहत लाता है। भूख लगी है। मकान के भीतर किचन में बर्तनों की आवाज आने लगती है, तो भी पेट को कुछ

सहारा मिलता है। रात सपने में भूख लगी है, तो सपने में भोजन कर लेता है आदमी तो कम से कम नींद नहीं टूटती। सुबह तक गुजर जाता है समय।

शब्द सहारे देते हैं। धोखा भी देते हैं। अगर यहां जोर से अभी कोई आवाज लगा दे कि आग लग गई, तो हम पर परिणाम वही होगा, जो आग लगने पर होता है। शब्द! जल नहीं सकेंगे; भाग सकेंगे, दौड़ सकेंगे। गिर सकते हैं, चोट खा सकते हैं। आग लग गई है, इस शब्द का वही परिणाम होगा, जो आग लग गई होती तो होता--भागने, दौड़ने, चिल्लाने-चीखने में। जल नहीं सकेंगे, क्योंकि शब्द आग आग नहीं है। लेकिन एक बात तय है कि आदमी पर शब्द का प्रभाव भारी है। और अगर दस-पांच दफे इस तरह चिल्लाया जाए कि आग लग गई, आग लग गई, और फिर आग लग जाए और कोई चिल्लाए आग लग गई, तो हम पर फिर असर नहीं होगा।

एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक बहुत धन कमा लिया, तो सोचा उसने कि अब विश्राम करें। तो एक छोटे गांव में उसने जमीन ले ली--शौकिया। खेती-बाड़ी करके कुछ कमाने का सवाल न था। कमाई पूरी हो चुकी थी। जरूरत से ज्यादा हो चुकी थी। इस समय सबसे बड़ी कमाई उनकी ही हो सकती है, जो लोगों के पागलपन को राहत देते हैं। क्योंकि जमीन पर आज सर्वाधिक पागल लोग हैं। इस वक्त सबसे बड़ी कमाई की जो संभावना है, वह हीरे की खदानों में नहीं है, आदमी की खोपड़ी में है। आदमी पागल हुआ जा रहा है। और मनोवैज्ञानिक कुछ पागलों को ठीक कर पाते हों, ऐसा प्रमाण अब तक मिला नहीं। हां, इतना हो पाता है कि पागल को आश्वस्त कर पाते हैं। अगर दो साल किसी साइकियाट्रिस्ट के पास कोई पागल जाए, तो ऐसा नहीं कि दो साल बाद वह ठीक हो जाता है, बल्कि ऐसा कि दो साल बाद वह कहने लगता है, यह पागलपन स्वाभाविक है।

काफी धन कमा लिया था। अब कमाने की कोई जरूरत न थी। फसल बोने का मौका आ गया था। जमीन लेकर उसने फसल बोनी शुरू की। खड़े होकर जमीन पर उसने जमीन खुदवा डाली, बक्खर चलवा दिए, दाने फेंके। लेकिन सारे गांव के कौवे आकर उसके खेत के दाने चुनने लगे। एक दिन दाने फेंके, कौवे चुन गए। दूसरे दिन दाने फेंके, कौवे चुन गए। तीसरे दिन दाने फेंके... । फिर उस मनोवैज्ञानिक को संकोच भी लगा, किसी से पूछे; संकोच भी लगा, साधारण बुद्धिहीन किसान, उनसे पूछे कि क्या है राज! कोई उपाय न देख कर पड़ोस के एक किसान से, जो रोज उसको देखता था और हंसता था, उसने पूछा कि बात क्या है?

वह किसान आया। उसने दाने फेंकने का इशारा किया। जैसे दाने फेंके, ऐसे उसने हाथ घुमाए; लेकिन फेंका कुछ नहीं। कौवे आए, बड़े नाराज हुए। चीखे-चिल्लाए, वापस उड़ गए। दूसरे दिन उसने फिर मुद्रा की दाने फेंकने की। कौवे फिर आए, आज थोड़े कम आए। नाराज हुए, आज थोड़े कम नाराज हुए। चले गए। तीसरे दिन उसने फिर वही किया। चौथे दिन उसने दाने फेंके। कौवे नहीं आए। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, अदभुत! राज क्या है? उस किसान ने कहा, जस्ट प्लेन साइकोलॉजी। एवर हर्ड? छोटा सा मनोविज्ञान। कभी सुना है नाम मनोविज्ञान का? खाली हाथ तीन दिन, कौवे भी समझ गए कि खाली हाथ है।

लेकिन आदमी बहुत अदभुत है। जन्म-जन्म तक शब्दों में जीता है। जस्ट प्लेन साइकोलॉजी, कि शब्द खाली हैं, समझ में नहीं आता। शब्द के भीतर कुछ भी नहीं है, समझ में नहीं आता। कोई आपसे कह देता है, नमस्कार! मन मान लेता है कि श्रद्धा मिली है।

श्रद्धा इतनी आसान चीज नहीं है, नमस्कारों से मिल जाए। अक्सर तो यह होता है कि श्रद्धा को छिपाने का ढंग है नमस्कार। कहीं चेहरे का असली भाव पता न चल जाए, आदमी हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लेता है। या हाथ जोड़ने में वह दूसरा आदमी चूक जाता है असली आदमी को देखने से कि असली आदमी क्या सोच रहा

था। मन में सोच रहा था, इस दुष्ट की शक्ल सुबह-सुबह कहां दिखाई पड़ गई! नमस्कार करने में उस आदमी को धोखा हो जाता है, नमस्कार देख कर अपने रास्ते पर चला जाता है।

आप रास्ते पर रोज निकलते हैं और एक आदमी आपको प्रीतिकर लगता है। जब भी आप कहते हैं हलो, वह भी जोर से हलो करके जवाब देता है। आज सुबह उसने जवाब नहीं दिया। पता है, आपको क्या होगा? आपका सब रुख बदल जाएगा। आपने कहा हलो, उस आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया; वह चला गया। आप उस आदमी का इतिहास फिर से लिखेंगे अपने भीतर कि अच्छा, तो एक मकान खरीद लिया तो अकड़ आ गई! यह मकान बहुत पहले खरीद चुका है। इसका आपको कभी ख्याल न आया था। गाड़ी खरीद ली, तो पर लग गए! मरते वक्त कीड़ियों को पर आ जाते हैं। अब इस आदमी को आप, फिर से इसका जीवन-चरित्र आप निर्मित करेंगे। आपको उसका पुराना जीवन-चरित्र हटाना पड़ेगा। वह एक हलो कह देता, तो पुराना जीवन-चरित्र चलता, काम देता। एक छोटा सा हलो इतना फर्क लाता है! शब्द इतना मूल्यवान है आदमी को!

हम शब्द से ही जीते हैं, शब्द ही खाते हैं, शब्द में ही सोते हैं। इसको पश्चिम में लोग समझ गए हैं। तो वे कहते हैं कि चाहे उचित हो या न उचित हो, आदमी कुछ करे या न करे, तुम थैंक यू तो उसे कह ही देना। यह कोई सवाल नहीं है। हम अपने मुल्क में अभी शब्द के बाबत इतने समझदार नहीं हैं। अगर पत्नी पति के लिए चाय ले आती है, तो पति धन्यवाद या शुक्रिया नहीं करता। करना चाहिए। क्योंकि सब इतिहास बदल जाता है भीतर शुक्रिया से। बिल्कुल करना चाहिए। बिना शक्कर की चाय मीठी मालूम पड़ती है शुक्रिया से। कड़वी हो जाती है, शक्कर कितनी ही पड़ी हो, शुक्रिया पीछे न हुआ एकदम कड़वी हो जाती है। सब बात ही बदल जाती है।

आप सोचते होंगे, पत्नी तीस साल से मेरे साथ है, इसे भी क्या शुक्रिया की जरूरत है? आप गलती में हैं, इसे ज्यादा जरूरत है। यह तीस साल में आपको इतना जान चुकी है कि इसे ज्यादा जरूरत है, हालांकि यह कहेगी कि क्या जरूरत है! नहीं, मत कहिए, शुक्रिया की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन आप इस पर भरोसा मत कर लेना। यह सिर्फ इसीलिए कहा जा रहा है कि आप दुबारा भी कहो। यह सुखद है, यह सुखद है।

शब्द हमारा जीवन बन गया है। वही कोई कह देता है, बहुत प्रेम करता हूं आपको। सब कुछ बदल जाता है भीतर! अंधेरी रात एकदम पूर्णमासी हो जाती है। किसी ने कह दिया, बहुत प्रेम करता हूं आपको! और हो सकता है, वे किसी फिल्म का डायलाग ही दोहराते हों!

क्या, शब्द के साथ हमारा इतना अंतर्संबंध क्यों है? हमारा अंतर्संबंध इसीलिए है कि हमारे पास शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमारे पास सत्व जैसा कुछ भी नहीं है। हम बिल्कुल खाली हैं। खाली लाओत्से के अर्थों में नहीं, शून्य के अर्थों में नहीं, खाली दरिद्र और दीन के अर्थों में। खाली उस अखंड शक्ति के अर्थों में नहीं, खाली उस अर्थों में, जिनके हाथ में कुछ भी नहीं है, शून्य भी जिनके हाथ में नहीं है। इस तरह हम खाली हैं, शब्द से ही जीते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक सड़क पर गिर पड़ा है। धूप है तेज। भीड़ इकट्ठी हो गई। नसरुद्दीन दम साधे पड़ा है। किसी ने कहा कि भागो, दौड़ो, एक प्याली अगर शराब मिल जाए तो काम हो जाए। नसरुद्दीन ने एक आंख खोली और कहा, एक प्याली! कम से कम दो प्याली तो कर दो। पर लोगों ने कहा, मत जाओ, कोई जरूरत नहीं, नसरुद्दीन होश में आ गया है। शराब शब्द ने ही काम कर दिया है, शराब नहीं लानी पड़ी।

नसरुद्दीन को अनुभव था यह। फर्स्ट एड की ट्रेनिंग ले रहा था। तो जब ट्रेनिंग उसकी पूरी हो गई तो उसके शिक्षक ने पूछा कि अगर रास्ते पर कोई अचानक गिर जाए तो तुम क्या करोगे? तो उसने कहा, एक प्याली

शराब बुलाऊंगा। लेकिन उस अधिकारी ने पूछा कि अगर शराब न मिल सके, तो तुम क्या करोगे? तो उसने कहा, मैं कान में, आई विल प्रामिस, उसके कान में प्रामिस करूंगा कि पीछे पिलाऊंगा, फिलहाल उठ आ। क्योंकि ऐसा एक दफे मेरे साथ हो चुका है। सिर्फ शब्द सुन कर मुझे होश आ गया था।

शब्द से हम जी रहे हैं। इन शब्दों को कहता है लाओत्से कि केवल हमारी बुद्धि क्षीण होती है। यद्यपि लाओत्से को भी कहना पड़ता है, तो शब्दों से ही कहना पड़ता है। लाओत्से भी बोलता है, तो शब्द से ही बोलता है। इससे एक बड़ी भ्रांति होती है। वह भ्रांति यह होती है कि लाओत्से भी तो शब्द से ही बोलता है और शब्द के खिलाफ बोलता है।

निश्चित ही, अगर हमें दूसरे से कुछ कहना है, तो शब्द का उपयोग है। लेकिन हम इतने पागल हो गए हैं कि हमें अपने से भी कुछ कहना है, तो भी हम शब्द का ही उपयोग करते हैं। अपने से कहने के लिए तो शब्द की कोई भी जरूरत नहीं है। हम भीतर अपने से ही बोलते रहते हैं। चौबीस घंटे आदमी बोल रहा है। जब दूसरे से बोल रहा है, तब तो बोल ही रहा है; जब किसी से नहीं बोल रहा है, तो अपने से ही बोल रहा है। अपने को ही बांट कर बोलता रहता है। यह चौबीस घंटे बोलना भीतर जंग पैदा कर देता है। और चौबीस घंटे बोलते-बोलते, बोलते-बोलते शब्द इतने इकट्ठे हो जाते हैं कि शब्दों के बीच में वह जो आत्मा में छिपा हुआ शून्य है, उसकी हमें कोई खबर नहीं रह जाती। शब्द की इस ऊपरी पर्त को हटाना पड़े, तो ही हम भीतर के शून्य से परिचित होते हैं।

लाओत्से कहता है, "शब्द-बाहुल्य से बुद्धि निःशेष होती है। इसलिए अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है।"

अपने केंद्र में! क्योंकि केंद्र शून्य है। शब्द केवल परिधि है। जैसे नदी की ऊपर सतह पर पत्ते छा गए हों और नदी ढंक गई हो, काई छा गई हो और नदी का पानी दिखाई न पड़ता हो, ऐसे ही हमारे ऊपर शब्दों का बाहुल्य है। भीतर शून्य छिप गया है। उस शून्य को लाओत्से केंद्र कहता है। वह कहता है, वही है हमारे प्राण का केंद्र। लेकिन हम परिधि पर भटकते रहते हैं। और परिधि हमें इतने जोर से पकड़ लेती है कि हम कभी भीतर पहुंच नहीं पाते। परिधि--एक शब्द दूसरे शब्द को पकड़ा देता है, दूसरा तीसरे को पकड़ा देता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हम एसोसिएशन से जीते हैं। अगर आपको हम एक शब्द दे दें, दे दें कुत्ता, और आपसे कह दें बस चल पड़िए, तो आप भीतर चल पड़ेंगे। कुत्ता स्टार्ट करवा देगा। भीतर आपकी बंदूक का घोड़ा खींच दिया गया। अब आप कुत्ते से यात्रा शुरू कर देंगे। भीतर शब्द आ जाएंगे। तत्काल कुत्ते के पीछे क्यू खड़ा हो जाएगा। कोई कुत्ता आपको पसंद है; कोई कुत्ता आपको नहीं पसंद है। किसी कुत्ते का क्या नाम है; किसी कुत्ते का क्या नाम नहीं है। यात्रा शुरू हो गई। किस मित्र के पास कुत्ता है; और अब आप बढ़ चले। और उस मित्र की पत्नी कैसी है। और पत्नी आपको देख कर प्रीतिकर लगती है, अप्रीतिकर लगती है। आप चल पड़े। एक कुत्ते ने सिर्फ यात्रा शुरू की, पता नहीं आप किस रोमांस में यात्रा का अंत करें। कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक छोटा सा शब्द, और आपके भीतर तत्काल यात्रा शुरू हो जाती है। आप भीतर तैयार बैठे हैं। शब्द मिल जाए, और आप जुगाली करने लगेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि आपको समझने की फुर्सत कभी न मिलेगी। शब्द मिला कि आप चल पड़ते हैं! समझ तो वह सकता है, जो शब्द के साथ शून्य होकर खड़ा हो जाता है।

मैंने कोई बात कही, आप तभी समझ पाएंगे, जब आपके सामने शून्य खड़ा हो। मैं एक बात कहूं और आपके भीतर शून्य उसका सामना करे, जैसे दर्पण के सामने मैं आ जाऊं, तो दर्पण मेरी तस्वीर को देख ले। अगर आपका हृदय शून्य हो, तो जो मैं कहूं, वह भी आपको सुनाई पड़ जाए; और जो मैंने नहीं कहा, वह भी सुनाई

पड़ जाए। जो मैं दिखाई पड़ता हूं, वह भी दिखाई पड़ जाए; और जो मैं दिखाई नहीं पड़ता हूं, वह भी दिखाई पड़ जाए। लेकिन आपके भीतर इतने शब्द भरे हैं कि जब भी मैं कुछ कहूंगा, आप मुझे सुनने को नहीं रुकेंगे। आपने सुना भी नहीं कि आप जा चुके यात्रा पर। आपके भीतर शब्दों की कतारबंध यात्रा शुरू हो गई। आप सोचने लगे, गीता में भी यही कहा है, कुरान में भी यही कहा है। यह तो मेरे धर्म के खिलाफ हो गया; यह बात मैं नहीं मान सकता हूं।

एक दिन एक छोटी सभा में मैं बोल रहा था। एक ही आदमी मुसलमान था, वह मेरे सामने ही बैठा था। थोड़े ही लोग थे, कोई पचास लोग थे। मैं जो भी बोलता था, वे मुसलमान मित्र बिल्कुल सिर हिलाते थे कि बिल्कुल ठीक! वे मेरे सामने ही बैठे थे। बिल्कुल ठीक! जो भी मैं बोलता था, वे सिर हिलाते, बिल्कुल ठीक! मैंने कहा कि क्या ऐसी भी कोई बात कह सकता हूं, जिसमें कि इनका सिर न हिले। मैंने सिर्फ उनका सिर देखने के लिए कहा कि कुरान किताब तो अदभुत है, लेकिन बहुत ग्रामीण है, जैसे कि गांव के लोगों ने लिखी हो। उनका सिर बिल्कुल हिलने लगा कि नहीं। वे बोल नहीं रहे, अपनी कुर्सी पर बैठे हैं। उनसे मेरा कोई लेना-देना नहीं। लेकिन मैं जो कहता हूं, हां और न वे उसमें करते जाते हैं। जैसे ही मैंने कहा कि ग्रामीण, उन्होंने कहा कि बिल्कुल नहीं। और इसके बाद वे अकड़ गए। फिर कुर्सी पकड़ कर बैठे रहे। फिर उनसे मेरा संबंध टूट गया। वह एक शब्द ग्रामीण, मेरा संबंध उनसे टूट गया! फिर सारे लोग उस कमरे में थे, वे एक मित्र उस कमरे में नहीं रह गए। एक छोटा शब्द, ग्रामीण; उनके मन में, पता नहीं, उठा होगा गंवार या क्या! मैंने कहा ग्रामीण, उनके मन में आया होगा गंवार कह रहा हूं। उनके भीतर एक यात्रा शुरू हो गई। वे सख्त हो गए। बाद उनके दरवाजे बंद हो गए।

असल में, जब मैं कह रहा था, तब पूरे समय भीतर वे एक चर्चा चला रहे थे; हां और न कर रहे थे। हमारी बॉडी लैंग्वेज होती है। बहुत कुछ जो हम मुंह से नहीं कहते, अपने शरीर से कह देते हैं। अभी पश्चिम में एक नया विज्ञान खड़ा हो रहा है बॉडी लैंग्वेज पर कि आदमी के शरीर को समझा जाए कि वह क्या कहता है!

अगर आप किसी स्त्री से मिलते हैं और वह आपको पसंद नहीं करती, तो वह पीछे की तरफ गिरती हुई हालत में खड़ी रहती है। पूरे वक्त डरी है कि कहीं आप और आगे न बढ़ आएं। उसका जो एंगल है, वह पीछे की तरफ झुका रहता है। अगर एक क्लबघर में पचास जोड़े बात कर रहे हैं, तो बराबर बताया जा सकता है कि इनमें से कितने जोड़े एक-दूसरे के प्रेम में गिर जाएंगे--सिर्फ इनकी बॉडी लैंग्वेज को देख कर। और कितने जोड़े सिर्फ बचने की कोशिश कर रहे हैं, एक-दूसरे से भागने की कोशिश कर रहे हैं। अगर स्त्री आपको प्रेम करती है, तो आपके पास और ढंग से बैठेगी; अगर प्रेम नहीं करती है, तो और ढंग से बैठेगी।

अगर आप किसी को प्रेम करते हैं, तो उसके पास जब आप बैठते हैं तो आप रिलैक्स्ड बैठते हैं। उससे कोई खतरा नहीं है। अगर आप उससे प्रेम नहीं करते, तो आप सजग बैठते हैं; उससे खतरा है। स्ट्रेंजर, अजनबी आदमी है। अजनबी आदमी के पास आप और ढंग से बैठते हैं। अगर मेरी बात आपको ठीक लग रही है, तो आप और ढंग से बैठते हैं। अगर ठीक नहीं लग रही है, आपकी बॉडी लैंग्वेज फौरन बदल जाती है। अगर आपको मेरी बात में जिज्ञासा है, तो आपकी रीढ़ आगे झुक आती है। अगर आपको जिज्ञासा नहीं है, आप अपनी कुर्सी से टिक जाते हैं। कुर्सी से टिक कर आप यह कह रहे हैं कि ठीक, हम सो चुके, हमसे अब कुछ लेना-देना नहीं, बात समाप्त हो गई।

आदमी बाहर से भी अपने भीतर चलने वाले शब्दों की खबर देता रहता है। बाहर से भी! आपका चेहरा कहता है कि आप हां कह रहे हैं भीतर, कि न कह रहे हैं भीतर। दूकान पर सेल्समैन आपके चेहरे को देखता रहता है। अगर आप टाई खरीद रहे हैं, पच्चीस टाई आपके सामने खड़ी हैं, तो जो सेल्समैन समझदार है वह टाई

नहीं देखता--टाई तो आपको देखने देता है--वह आपका चेहरा देखता है। किस टाई पर ज्यादा देर आपकी आंख रुकती है, उसकी कीमत बढ़ जाती है। बढ़ जानी चाहिए।

आपकी आंख हर जगह ज्यादा देर नहीं रुकती। आंख के रुकने की सीमाएं हैं। अगर आप किसी आदमी को जरा ही ज्यादा देर घूर कर देखें, तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। क्योंकि इस आंख की सीमा है। जब आप सिर्फ देखते हैं, जस्ट लुकिंग, एक फिंकती हुई नजर, उसका कोई मतलब नहीं होता। लेकिन जब आप रुक कर देखते हैं, उसका मतलब होता है, पसंदगी शुरू हो गई। दूसरा आदमी बेचैन हो जाता है।

आप जब भीतर बोल रहे हैं, आपके भीतर जब यंत्र चल रहा है शब्दों का, तब बाहर भी आपके शरीर, आपकी आंख, सब तरफ से प्रकट होता रहता है। लेकिन जब आप भीतर शून्य हो जाते हैं, तो बाहर शरीर भी शून्य हो जाता है। बुद्ध की प्रतिमा देखी या महावीर की प्रतिमा देखी? यह प्रतिमा बाहर से बिल्कुल शून्य है। यह बाहर से इसीलिए शून्य है कि भीतर सब शून्य हो गया है। इसमें कोई हलन-चलन नहीं है। सब ठहर गया है। जैसे पानी बिना तरंग के हो गया हो! जैसे हवा न चलती हो कमरे में और दीए की लौ ठहर जाए! ऐसे जब आप शून्य होते हैं, तब केंद्र पर पहुंचते हैं।

और लाओत्से कहता है, अपने केंद्र में स्थापित होना ही श्रेयस्कर है। शब्दों में भटकना नहीं, शून्य में ठहर जाना ही श्रेयस्कर है।

आज इतना ही। शेष हम कल। लेकिन अभी जाएंगे नहीं। एक पांच मिनट, कीर्तन शायद आपको शून्य में पहुंचा दे। शायद आपको परिधि से धका दे और अपने केंद्र पर पहुंचा दे।

अठारहवां प्रवचन

घाटी-सदृश, स्त्रैण व रहस्यमयी परम सत्ता

Chapter 6 : Sutra 1 & 2

The Spirit Of The Valley

1. The Valley Spirit dies not, ever the same.
The Female Mystery thus do we name.
It"s gate, from which at first they issued forth,
Is called the root from which grew Heaven
and Earth.
2. Long and unbroken does its power remain,
Use gently and without the touch of pain.

अध्याय 6 : सूत्र 1 व 2

घाटी की आत्मा

1. घाटी की आत्मा कभी नहीं मरती, नित्य है।
इसे हम स्त्रैण रहस्य, ऐसा नाम देते हैं।
इस स्त्रैण रहस्यमयी का द्वार
स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत है।
2. यह सर्वथा अविच्छिन्न है;
इसकी शक्ति अखंड है;
इसका उपयोग करो,
और इसकी सेवा सहज उपलब्ध होती है।

जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु भी होगी। जो प्रारंभ होगा, वह अंत भी होगा। वही केवल मृत्यु के पार हो सकता है, जिसका जन्म न हो। और वही केवल अनंत हो सकता है, जो अनादि हो।

प्रकाश जन्मता है, मिट जाता है। अंधकार सदा है। शायद इस भांति कभी न सोचा हो। सूर्य निकलता है, सांझ ढल जाता है। दीया जलता है, बाती चुक जाती है, बुझ जाती है। जब दीया नहीं जला था, तब भी अंधकार था। जब दीया जला, अंधकार हमें दिखाई नहीं पड़ा। दीया बुझ गया, अंधकार अपनी जगह है। अंधकार का

बाल भी बांका नहीं होता। और अंधकार कभी बुझता नहीं। और अंधकार का कभी अंत नहीं आता, क्योंकि अंधकार का कभी प्रारंभ नहीं होता। प्रकाश का प्रारंभ होता है, इसलिए प्रकाश का अंत होता है।

और भी मजे की बात है, प्रकाश को हम पैदा कर सकते हैं, इसलिए प्रकाश को हम मिटा भी सकते हैं। अंधकार को हम पैदा नहीं कर सकते, इसलिए अंधकार को हम मिटा भी नहीं सकते। अंधकार की शक्ति अनंत है। प्रकाश की शक्ति अनंत नहीं है।

लाओत्से कहता है, घाटी की आत्मा अमर है। दि वैली स्पिरिट डाइज नॉट। नहीं, कभी घाटी की आत्मा नहीं मरती। एवर दि सेम, वही बनी रहती है। जैसी है, वैसी ही बनी रहती है।

यह घाटी की आत्मा क्या है?

जहां भी पर्वत-शिखर होंगे, वहां घाटी भी होगी। लेकिन पर्वत पैदा होते हैं और मिट जाते हैं; घाटी न पैदा होती, न मिटती। घाटी का अर्थ है, दि निगेटिव, वह जो निषेधात्मक है, अंधकार। पहाड़ का अर्थ है, पाजिटिव, विधायक, जो है। ठीक से समझें तो घाटी क्या है? घाटी किसी चीज का अभाव है। पहाड़ किसी चीज का भाव है, किसी चीज का होना है। प्रकाश किसी चीज का होना है। अंधकार अभाव है, एब्सेंस है, अनुपस्थिति है।

मैं इस कमरे में हूं, तो मुझे बाहर निकाला जा सकता है। जब मैं इस कमरे में नहीं हूं, तो मेरी अनुपस्थिति, माई एब्सेंस इस कमरे में होगी। उसे आप बाहर नहीं निकाल सकते। अनुपस्थिति को छूने का कोई उपाय नहीं है। अगर मैं जिंदा हूं, तो मेरी हत्या की जा सकती है। लेकिन अगर मैं मर गया, तो मेरी मृत्यु के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो नहीं है, उसके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो है, उसके साथ कुछ किया जा सकता है। इसलिए अंधेरे को हम बना भी नहीं सकते और मिटा भी नहीं सकते।

घाटी की आत्मा लाओत्से का पारिभाषिक शब्द है--दि वैली स्पिरिट। क्या है घाटी की आत्मा? घाटी होती नहीं, दो पर्वतों के बीच में दिखाई पड़ती है। पर्वत खो जाते हैं, घाटी तो बनी रहती है। घाटी कहीं जाती नहीं, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती पर्वत के खो जाने पर। जब दो पर्वत खड़े होते हैं, घाटी फिर दिखाई पड़ने लगती है। अंधेरा कहीं जाता नहीं; जब आप दीया जलाते हैं, तब सिर्फ छिप जाता है। प्रकाश की वजह से दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश चला जाता है, अंधेरा अपनी जगह है। शायद अंधेरे को पता भी नहीं है कि बीच में प्रकाश जला और मिट गया।

लाओत्से का समस्त चिंतन, लाओत्से का समस्त दर्शन निगेटिव पर खड़ा है, नकारात्मक पर खड़ा है; शून्य पर खड़ा है। और इसलिए लाओत्से ने कहा है, "दि फीमेल मिस्ट्री दस डू वी नेम; हम इसे स्त्रैण रहस्य का नाम देते हैं।"

इसे समझ लेना जरूरी है। और इसमें थोड़ा गहरे उतरना पड़ेगा। क्योंकि यह लाओत्से के तंत्र का मूल आधार है। फेमिनिन मिस्ट्री, स्त्री का रहस्य क्या है? वही घाटी का रहस्य है। और जो स्त्री का रहस्य है, वही अंधकार का रहस्य है। और जो स्त्री का रहस्य है, वह अस्तित्व में बहुत गहरा है।

इसलिए दुनिया के जो प्राचीनतम धर्म हैं, वे परमात्मा को पुरुष के रूप में नहीं मानते थे, स्त्री के रूप में मानते थे। और उनकी समझ परमात्मा को फादर या पिता मानने वाले लोगों से ज्यादा गहरी थी। लेकिन पुरुष का प्रभाव भारी हुआ और तब हमने ईश्वर की जगह भी पुरुष को बिठाना शुरू किया। लेकिन ईश्वर की जगह गॉड दि फादर बहुत नई बात है, गॉड दि मदर बहुत पुरानी बात है।

सच तो यह है, फादर ही नई बात है, मदर पुरानी बात है। पिता को जन्मे हुए पांच-छह हजार वर्ष से ज्यादा नहीं हुआ। पिता से पुराना तो काका या चाचा या अंकल है। शब्द भी अंकल पुराना है फादर से, पिता से। पशुओं में, पक्षियों में पिता का तो कोई पता नहीं चलता, लेकिन मां सुनिश्चित है। इसलिए पिता की जो संस्था है, वह मनुष्य की ईजाद है। बहुत पुरानी भी नहीं है। पांच हजार साल से ज्यादा पुरानी नहीं है। लेकिन जब हमने मनुष्य में पिता को बना लिया, तो हमने बहुत शीघ्र परमात्मा के सिंहासन से भी स्त्री को हटा कर पुरुष को बिठाने की जल्दी की। और तब जिन धर्मों ने परमात्मा की जगह पिता को रखा, उनके हाथ से फेमिनिन मिस्ट्री के सूत्र खो गए; वह जो स्त्रैण रहस्य है, उसका सारा राज खो गया।

और लाओत्से उस समय की बात कर रहा है, जब कि गॉड दि फादर का कोई ख्याल ही नहीं था दुनिया में। और यह बहुत अर्थों में सोच लेने जैसी बात है। इसे कई तरफ से देखना पड़ेगा, तभी आपके ख्याल में आ सके।

एक बच्चे का जन्म होता है। पिता बच्चे के जन्म में बहुत एक्सीडेंटल है, उसका कोई बहुत गहरा भाग नहीं है। और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि पिता के बिना भी चल जाएगा, बहुत ज्यादा दिन जरूरत नहीं रहेगी। पिता का हिस्सा बहुत ही न के बराबर है। जन्म तो मां से ही मिलता है। तो जीवन को पैदा करने की जो कुंजी है और रहस्य है, वह तो मां के शरीर में छिपा है। पिता के शरीर में वह कुंजी और रहस्य नहीं छिपा हुआ है। इसलिए पिता को कभी भी गैर-जरूरी सिद्ध किया जा सकता है। उसका काम एक इंजेक्शन भी कर देगा।

और अगर मैं आज से दस हजार साल बाद किसी बच्चे का पिता बनना चाहूं, तो बन सकता हूं। लेकिन कोई मां अगर आज तय करे, तो दस हजार साल बाद मां नहीं बन सकती है। क्योंकि मां की मौजूदगी अभी जरूरी होगी, मेरी मौजूदगी जरूरी नहीं है। मेरे वीर्य-कण को संरक्षित रखा जा सकता है, डीप फ्रीज किया जा सकता है। दस हजार साल बाद इंजेक्शन से किसी भी स्त्री में वह जन्म का सूत्र बन सकता है। मेरा होना आवश्यक नहीं है। इसलिए बहुत जल्दी पोस्थुमस चाइल्ड पैदा होंगे। पिता मरे दस हजार साल हो गए, उसका बच्चा कभी भी पैदा हो सकता है। क्योंकि पिता का काम प्रकृति बहुत गहरा नहीं ले रही थी। गहरा काम तो मां का था। सृजनात्मक काम तो मां का ही था।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इसीलिए स्त्रियां दुनिया में कोई क्रिएटिव काम नहीं कर पाती हैं। क्योंकि वे इतना बड़ा क्रिएटिव काम कर लेती हैं कि और कोई सब्स्टीट्यूट खोजने की जरूरत नहीं रह जाती है--एक जीवित बच्चे को जन्म देना! लेकिन पुरुष ने दुनिया में बहुत सी चीजें पैदा की हैं, स्त्री ने नहीं पैदा की हैं। पुरुष चित्र बनाता है, मूर्तियां बनाता है, विज्ञान की खोज करता है, गीत लिखता है, संगीत बनाता है। यह जान कर आप हैरान होंगे कि स्त्रियां सारी दुनिया में खाना बनाती हैं, लेकिन अच्छे खाने की खोज सदा ही पुरुष करता है। नए खाने की खोज पुरुष करता है। और दुनिया का कोई भी बड़ा होटल या कोई बड़ा सम्राट स्त्री-रसोइए को रखने को राजी नहीं है, पुरुष-रसोइए को रखना पड़ता है। चाहे चित्र बनता हो दुनिया में, चाहे कविता पैदा होती हो, चाहे एक उपन्यास लिखा जाता हो, चाहे एक नई मूर्ति गढ़ी जाती हो, वह सब काम पुरुष करता है। बात क्या है?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष ईर्ष्या अनुभव करता है; स्त्री के समक्ष हीनता भी अनुभव करता है। वह भी कुछ पैदा करके दिखाना चाहता है, जो स्त्री के समक्ष सामने खड़ा हो जाए और कहा जा सके, हमने भी कुछ बनाया है, हमने भी कुछ पैदा किया है। और स्त्री कुछ पैदा नहीं करती, क्योंकि वह इतनी बड़ी चीज पैदा करती है कि उसके मन में फिर और पैदा करने की कोई कामना नहीं रह जाती। और एक स्त्री अगर मां बन गई है, तो

कितना ही अच्छा चित्र बनाए, वह उसके बेटे या उसकी बेटी के सामने सदा फीका और निर्जीव होगा। इसलिए बांझ स्त्रियां जरूर कुछ-कुछ कोशिश करती हैं पुरुषों जैसी। वे जरूर पुरुष के साथ कुछ निर्माण करने की प्रतियोगिता में उतरती हैं। लेकिन एक स्त्री अगर सच में मां बन जाए, तो उसका जीवन बहुत आंतरिक गहराइयों तक तृप्त हो जाता है। स्त्री को प्रकृति ने सृजन का स्रोत चुना है।

निश्चित ही, स्त्री के शरीर में, वह जिसे लाओत्से कह रहा है स्त्रैण रहस्य, उसे हमें समझना पड़ेगा, तो ही हम अस्तित्व में स्त्रैण रहस्य को समझ पाएंगे। और हमारी कठिनाई ज्यादा बढ़ जाती है, क्योंकि सारी कोशिश जीवन को समझने की पुरुष ने की है। और सारी फिलासफीज, सारे दर्शन पुरुष ने निर्मित किए हैं। अब तक एक भी धर्म किसी स्त्री पैगंबर, स्त्री तीर्थंकर के आस-पास निर्मित नहीं हुआ है। सब शास्त्र पुरुषों के हैं। इसलिए लाओत्से को साथी खोजना मुश्किल हो गया, क्योंकि उसने स्त्रैण रहस्य की तारीफ की।

पुरुष जो भी सोचेगा और जो भी करेगा, उसमें पुरुष जहां खड़ा है, वहीं से सोचता है। और पुरुष को स्त्री कभी समझ में नहीं आ पाती है। इसलिए पुरुष निरंतर अनुभव करता है कि स्त्री बेबूझ है, समथिंग मिस्टीरियस। कुछ है जो छूट जाता है। वह क्या है जो छूट जाता है? निश्चित ही, पुरुष और स्त्री साथ-साथ जीते हैं। पुरुष स्त्री से पैदा होता है, स्त्री के साथ जीता है, प्रेम करता है, जन्म, पूरा जीवन बिताता है। फिर भी क्या है जो स्त्री के भीतर पुरुष के लिए अनजान और अपरिचित रह जाता है? वही अनजान और अपरिचित तत्व का नाम लाओत्से कह रहा है, फेमिनिन मिस्ट्री। घाटी का रहस्य, अंधकार का रहस्य, निषेध की खूबी। क्या है स्त्री के भीतर?

अगर एक स्त्री आपके प्रेम में पड़ जाए, तो भी आक्रमण नहीं करती है। प्रेम में भी आक्रमण नहीं करती है। प्रेम में भी प्रतीक्षा करती है। आक्रमण का मौका आपको ही देती है। आप कभी किसी स्त्री से ऐसा न कह सकेंगे कि तूने मुझे प्रेम में उलझा दिया, कि तूने मुझे विवाह में डाल दिया। स्त्रियां ही डालती हैं। लेकिन कभी आप किसी स्त्री से ऐसा न कह सकेंगे कि तूने मुझे प्रेम में उलझा दिया। क्योंकि इनीशिएटिव वे कभी नहीं लेतीं, पहल वे कभी नहीं करतीं। वही उनका रहस्य हैः खींचना बिना किसी क्रिया के, बिना किसी कर्म के आकर्षित करना, सिर्फ होने मात्र से आकर्षित करना। जिसको कृष्ण ने गीता में इन-एक्शन कहा है, अकर्म कहा है, स्त्री का रहस्य वही है।

वह अगर प्रेम में भी गिर जाए, तो उसकी तरफ से इशारा भी नहीं मिलता कि वह आपके प्रेम में गिर गई है। उसकी मौजूदगी आपको खींचती है, खींचती है। आप ही पहली दफा कहते हैं कि मैं प्रेम में पड़ गया हूं। स्त्री कभी किसी से नहीं कहती कि मैं तुम्हारे प्रेम में पड़ गई हूं। पहल कभी नहीं करती, क्योंकि पहल आक्रामक है, एग्रेसिव है, पाजिटिव है। जब मैं किसी से कहता हूं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, मैं अपने से बाहर गया। मैंने कहीं जाकर आक्रमण किया। मैंने ट्रेसपासिंग शुरू की। मैं दूसरे की सीमा में प्रवेश कर रहा हूं। स्त्री कभी किसी की सीमा में प्रवेश नहीं करती। फिर भी स्त्री आकर्षक है। उसका रहस्य क्या है?

निश्चित ही, उसका आकर्षण इन-एक्टिव है, एक्टिव नहीं है। पुकारती है, लेकिन आवाज नहीं होती उस पुकार में; हाथ फैलाती है, लेकिन उसके हाथ दिखाई नहीं पड़ते; निमंत्रण दिया जाता है, लेकिन निमंत्रण की कोई भी रूप-रेखा नहीं होती। कर्म पुरुष को करना पड़ता है। कदम उसे उठाना पड़ता है। जाना उसे पड़ता है। प्रार्थना उसे करनी पड़ती है। और फिर भी स्त्री इनकार किए चली जाती है। और जब भी कोई स्त्री किसी के प्रेम में जल्दी हां भर देती है, तब समझना चाहिए, उस स्त्री को भी स्त्रैण रहस्य का कोई पता नहीं है। क्योंकि जैसे ही स्त्री हां भरती है, वैसे ही व्यर्थ हो जाती है। उसका निषेध, उसका इनकार, उसका इनकार किए चले जाना ही

उसका अनंत रस का रहस्य है। लेकिन उसकी नहीं कुछ ऐसी है, जैसी नहीं पुरुष कभी नहीं बोल सकता। क्योंकि जब पुरुष बोलता है नहीं, कहता है नो, इट मीन्स नो! और जब स्त्री कहती है नो, इट मीन्स यस। अगर स्त्री को नो ही कहना है, तो वह नो भी नहीं कहेगी। क्योंकि उतना कहना भी बहुत ज्यादा कहना है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक युवती के प्रेम में पड़ गया है। बहुत परेशान है। घर आकर अपने पिता को कहा है... । चिंतित, उदास है। तो पिता ने पूछा है, इतना चिंतित क्यों है नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। जिस स्त्री के पीछे मैं नौ महीने से चक्कर लगा रहा हूं, आज उसने सब बात ही तोड़ दी। पिता ने कहा, तू नासमझ है! स्त्री जब कहे नहीं, तो उसका अर्थ नहीं नहीं होता। नसरुद्दीन ने कहा, वह तो मैं भी जानता हूं। लेकिन उसने नहीं नहीं कहा, उसने कहा कि तू कुत्ता! नहीं उसने कहा ही नहीं। अगर वह नहीं कहती, तो अभी मैं और नौ वर्ष चक्कर लगा सकता था। उसने नहीं भी नहीं कहा है। उतना भी रास्ता नहीं छोड़ा है।

स्त्री जब हां करती है, तब वह पुरुष की भाषा बोल रही है। इसलिए स्त्री के मुंह से हां बहुत ही छोछा, उथला और गहरे अर्थों में अनैतिक मालूम पड़ता है। उतना भी आक्रमण है। स्त्री का सारा रहस्य और राज तो इसमें है, उसकी मिस्ट्री इसमें है कि वह नहीं कहती है और बुलाती है। नहीं बुलाती और निमंत्रण जाता है। अपनी ओर से कभी कोई कमिटमेंट स्त्री नहीं करती। सब कमिटमेंट पुरुष करता है। सब प्रतिबद्धताएं पुरुष की हैं।

और इस भ्रांति में कोई पुरुष न रहे कि स्त्री ने कुछ भी नहीं किया है। स्त्री ने बहुत कुछ किया है। लेकिन उसके करने का ढंग निषेधात्मक है, घाटी की तरह है, अंधेरे की तरह है। निषेध ही उसकी तरकीब है। दूर हटना ही पास आने का निमंत्रण है। उसकी बचने की कोशिश ही बुलावा है। यह फेमिनिन मिस्ट्री है। और इसमें और गहरे उतरेंगे, तो बहुत सी बातें ख्याल में आएंगी। स्त्री संभोग की दृष्टि से भी निषेधात्मक है, पैसिव है। इसलिए दुनिया में स्त्रियों के ऊपर कोई बलात्कार का जुर्म नहीं रखा जा सकता। किसी स्त्री ने लाखों वर्ष के इतिहास में किसी पर बलात्कार नहीं किया है। स्त्री के व्यक्तित्व में बलात्कार असंभव है।

पुरुष बलात्कार कर सकता है, करता है। और सौ में नब्बे मौके पर पुरुष जो भी करता है, वह बलात्कार ही होता है। सौ में नब्बे मौके पर! उन मौकों पर नहीं, जो अदालत में पकड़े जाते हैं; पति अपनी पत्नी के साथ भी जो संबंध निर्मित करता है, उसमें नब्बे मौके पर बलात्कार होता है। क्योंकि स्त्री चुप है। उसकी चुप्पी हां समझी जा सकती है। और जो हमने व्यवस्था की है समाज की, पति के प्रति हमने उसका कर्तव्य बांधा हुआ है। पति उससे प्रेम मांगे, तो वह चुप होकर दे देती है। लेकिन अगर उसके भीतर उस क्षण प्रेम नहीं था, तो पति का यह प्रेम बलात्कार होगा। लेकिन पुरुष बलात्कार कर सकता है, क्योंकि पुरुष का पूरा व्यक्तित्व आक्रामक, एग्रेसिव है, हमलावर है।

स्त्री का व्यक्तित्व रिसेप्टिव, ग्राहक है। यह न केवल व्यक्तित्व है, बल्कि शरीर की संरचना भी प्रकृति ने ऐसी ही की है कि स्त्री का शरीर केवल ग्राहक है। पुरुष का शरीर आक्रामक है। लेकिन सृजन होता है स्त्री से, जन्म होता है स्त्री से। आक्रमण करता है पुरुष, जो कि बिल्कुल सांयोगिक है, जिसके बिना चल सकता है। और जन्म होता है स्त्री से, जो केवल ग्राहक है।

वैज्ञानिक कहते हैं, जब भी कहीं जन्म होता है, तो अंधेरे में; बीज फूटता है, तो जमीन के अंधेरे में। रोशनी में ले आओ, और बीज फूटना बंद कर देता है। एक व्यक्ति जन्मता है, तो मां के गर्भ के अंधकार में, निपट गहन अंधकार में। प्रकाश में ले आओ, जन्म मृत्यु बन जाती है। जीवन में जो भी पैदा होता है सूत्र रहस्य का, वह सदा

अंधकार में, गुप्त और छिपे हुए जगत में होता है। और गुप्त वही हो सकता है, जो एग्रेसिव न हो, आक्रामक न हो। जो आक्रामक है, वह गुप्त कभी नहीं हो सकता।

इसलिए पुरुष के व्यक्तित्व में सतह बहुत होती है, गहराई नहीं होती उतनी। स्त्री के व्यक्तित्व में सतह बहुत कम होती है, गहराई बहुत ज्यादा होती है। और यही कारण है कि पुरुष जल्दी थक जाता है और स्त्री जल्दी नहीं थकती। आक्रमण थका देगा। इसलिए पुरुष-वेश्याएं नहीं हो सकीं, क्योंकि कोई पुरुष वेश्या नहीं हो सकता। एक संभोग, थक जाएगा। स्त्री वेश्या हो सकी; क्योंकि पचास संभोग भी उसे नहीं थका सकते। वह सिर्फ रिसेप्टिव है, वह कुछ करती ही नहीं। इसलिए एक अनोखी घटना घटी कि पुरुष वेश्याएं नहीं हो सके, स्त्रियां वेश्याएं हो सकीं। पुरुष बलात्कारी हो सके, स्त्रियां बलात्कारी नहीं हो सकीं। पुरुष गुंडे हो सके, स्त्रियां गुंडे नहीं हो सकीं। लेकिन स्त्रियां वेश्याएं हो सकीं, पुरुष वेश्याएं नहीं हो सके। और कारण कुल इतना है कि पुरुष का सारा व्यक्तित्व आक्रामक है। जो आक्रमण करेगा, वह थक जाएगा।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब बच्चे पैदा होते हैं, तो सौ लड़कियां पैदा होती हैं तो एक सौ सोलह लड़के पैदा होते हैं। प्रकृति संतुलन को कायम रखती है। क्योंकि पुरुष कमजोर है। हम सब यही सोचते हैं कि पुरुष बहुत शक्तिशाली है। वह सिर्फ पुरुष का ख्याल है। पुरुष कमजोर है। इसलिए एक सौ सोलह लड़के पैदा करने पड़ते हैं और सौ लड़कियां। क्योंकि चौदह वर्ष के होते-होते सोलह लड़के मर जाते हैं, और लड़के और लड़कियों का अनुपात बराबर हो जाता है। सोलह लड़के एक्सट्रा, अतिरिक्त, स्पेयर प्रकृति को पैदा करने पड़ते हैं। क्योंकि पता है कि सोलह लड़के सौ में से चौदह वर्ष की उम्र पाते-पाते मर जाएंगे।

स्त्रियों की औसत उम्र पुरुषों से ज्यादा है पांच वर्ष। अगर पुरुष सत्तर साल जीता है, तो स्त्रियां पचहत्तर साल जीती हैं। और स्त्रियां जितना श्रम उठाती हैं शरीर से! क्योंकि एक बच्चे को जन्म देने में जितना श्रम है, उतना एक एटम बम को जन्म देने में भी नहीं है। एक स्त्री बीस बच्चों को जन्म दे और फिर भी पुरुष से पांच साल ज्यादा जीती है। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। और जो बीमारियां स्त्रियों को हैं, वे स्त्रियों की नहीं, पुरुषों ने जो समाज निर्मित किया है, उसकी परेशानी की वजह से हैं। स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। फिर भी जितनी बीमार पड़ती हैं, उसमें भी कोई सत्तर प्रतिशत कारण, पुरुषों ने जो व्यवस्था की है वह है, स्त्रियां नहीं। क्योंकि सारी व्यवस्था पुरुष की है, मैन-डामिनेटेड है। और पुरुष अपने ढंग से व्यवस्था करता है। उसमें स्त्री को एडजस्ट होना पड़ता है। वह उसकी बीमारी का कारण है।

हिस्टीरिया पुरुषों के समाज में स्त्रियों को एडजस्ट होने का परिणाम है। अगर स्त्रियों का समाज हो और पुरुषों को उसमें एडजस्ट होना पड़े, तो हिस्टीरिया इससे पांच गुना ज्यादा होगा। करीब-करीब सारे पुरुष पागल हो जाएंगे। वह स्त्रियों का रेसिस्टेंस है, प्रतिरोधक शक्ति है कि वे सब पागल नहीं हो गई हैं। फिर भी स्त्रियां आपको क्रोधी दिखाई पड़ती हैं, ईर्ष्यालु दिखाई पड़ती हैं, उपद्रव-कलह चौबीस घंटे वे जारी रखती हैं। उसका कुल कारण इतना है कि वे जो होने को पैदा हुई हैं, समाज उनको वह नहीं होने देता और कुछ और करवाने की कोशिश करता है। उससे उनकी सृजनात्मक शक्ति विध्वंस की तरफ, परवर्शन की तरफ, विकृति की तरफ चली जाती है।

और पुरुषों ने स्त्रियों को इतना दबाया और इतना सताया, तो आमतौर से लोग समझते हैं--स्त्रियां भी यही समझती हैं--कि स्त्रियां कमजोर थीं, इसलिए पुरुषों ने इतना सताया।

मैं आपसे कहना चाहता हूं, जो जानते हैं वे कुछ और जानते हैं। वे यह जानते हैं कि स्त्रियां इतनी शक्तिशाली थीं कि अगर न दबाई गई होतीं, तो पुरुषों को उन्होंने कभी का दबा डाला होता। उनको बचपन से

ही दबाने की जरूरत है; नहीं वे खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। स्त्रियों को सारी दुनिया में दबाए जाने का जो असली कारण है, वह असली कारण यह है कि वे इतनी शक्तिशाली सिद्ध हो सकती हैं, अगर बिना दबाई छोड़ दी जाएं, कि पुरुष बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा। इसलिए उन्हें सब तरफ से रोक देना जरूरी है। और बचपन से रोक देना जरूरी है।

और रुकावट करीब-करीब वैसी है, जैसे चीन में हम स्त्रियों को लोहे के जूते पहना देते थे। फिर उनका पैर बड़ा नहीं हो पाता था। फिर वे स्त्रियां दौड़ नहीं सकती थीं, चल नहीं सकती थीं ठीक से, भाग नहीं सकती थीं। सच तो यह है, उन्हें सदा ही पुरुष के कंधे के सहारे की जरूरत थी। और फिर पुरुष उनसे कहता थाः नाजुक, डेलिकेट। और नाजुक होने को पुरुष ने एक मूल्य बना दिया, एक वैल्यू बना दिया। क्योंकि स्त्री नाजुक हो, तो ही उस पर काबू किया जा सकता है।

स्त्री पुरुष से ज्यादा मजबूत सिद्ध हो सकती है, अगर उसको पूरा विकसित होने दिया जाए। क्योंकि प्रकृति ने उसे जन्म की शक्ति दी है। और जन्म की शक्ति सदा उसके पास होती है, जो ज्यादा शक्तिशाली है। अन्यथा गर्भ को खींच लेना असंभव हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, इस स्त्रैण रहस्य को ठीक से समझ लें। यह घाटी की जो आत्मा है, इसे ठीक से समझ लें। यह घाटी की आत्मा कभी थकती नहीं। यह कभी मरती नहीं। यह जो निषेध है, यह जो न करने के द्वारा करने की कला है, यह जो बिना आक्रमण के आक्रमण कर देना है, यह बिना बुलाए बुला लेने का जो राज है, इसे ठीक से समझ लें। क्योंकि लाओत्से कहता है, इस राज को समझ कर ही कोई जीवन के परम सत्य को उपलब्ध कर सकता है। हम पुरुष की तरह परम सत्य को कभी नहीं पा सकते, क्योंकि परम सत्य पर कोई आक्रमण नहीं किया जा सकता। कोई हम बंदूकें और तलवारें लेकर परमात्मा के मकान पर कब्जा नहीं कर लेंगे।

परमात्मा को केवल वे ही पा सकते हैं, जो स्त्रैण रहस्य को समझ गए, जिन्होंने अपने को इतना समर्पित किया, इतना छोड़ा, लेट गो, कि परमात्मा उनमें उतर सके। ठीक वैसे ही, जैसे स्त्री पुरुष के प्रेम में अपने को छोड़ देती है; कुछ करती नहीं, बस छोड़ देती है; और पुरुष उसमें उतर पाता है।

एक बहुत अनूठी बात जो इधर दस वर्षों में ख्याल में आनी शुरू हुई। क्योंकि वास्तविक स्त्री खो गई है दुनिया से। और जो स्त्री है, वह बिल्कुल सूडो है, वह पुरुष के द्वारा बनाई गई है, वह बिल्कुल बनावटी है। जिसको हम आज स्त्री कह कर जानते हैं, वह पुरुष के द्वारा बनाई गई गुड़िया से ज्यादा नहीं है। वह स्वाभाविक स्त्री नहीं है, जैसी होनी चाहिए।

अभी पश्चिम में एक छोटा सा वैज्ञानिकों का प्रयोग चलता है, जिसमें वे यह कोशिश करते हैं कि क्या यह संभव है! और तंत्र ने इस पर बहुत पहले काम किया है--बहुत पहले, कोई दो हजार साल पहले--और यह अनुभव किया है कि यह हो सकता है। स्त्री और पुरुष के संभोग में चूंकि पुरुष सक्रिय होता है। अगर पुरुष सक्रिय न हो पाए, तो संभोग असंभव है। अगर पुरुष कमजोर हो जाए, वृद्ध हो जाए, उसके जनन-यंत्र शिथिल हो जाएं, तो संभोग असंभव है। लेकिन अभी पश्चिम में दस वर्षों में कुछ प्रयोग हुए हैं गहरे, जिनमें वे कहते हैं कि अगर पुरुष की जननेंद्रिय बिल्कुल शिथिल और क्षीण, शक्तिहीन हो जाए, तो भी फिक्र नहीं। स्त्री अगर उस पुरुष को प्रेम करती है, तो सिर्फ स्त्री-जननेंद्रिय के पास पहुंच जाने पर स्त्री की जननेंद्रिय पुरुष की जननेंद्रिय को चुपचाप अपने भीतर खींच लेती है। पुरुष को प्रवेश की भी जरूरत नहीं है। अगर स्त्री का प्रेम भारी है, तो उसका शरीर ऐसे खींच लेता है, जैसे खाली जगह में हवा खिंच कर आ जाए।

यह बहुत हैरानी का तथ्य है। और अगर ऐसा नहीं होता, तो उसका कुल कारण इतना है कि स्त्री प्रेम नहीं करती है उस पुरुष को। इसलिए उसका शरीर उसे खींचता नहीं। और इसलिए पुरुष जो भी कर रहा है, वह बलात्कार है। अगर स्त्री प्रेम करती है, तो खींच लेगी। उसका पूरा बायोलॉजिकल, उसका जैविक यंत्र ऐसा है कि वह व्यक्ति को अपने भीतर खींच लेगी।

लाओत्से कहता है, यह स्त्री का रहस्य है कि बिना कुछ किए वह कुछ कर सकती है। बिना कुछ किए! पुरुष को कुछ भी करना हो, तो करना पड़ेगा। धर्म का रहस्य भी स्त्रैण है। अगर कोई परमात्मा को पाने जाए, तो कभी न पा सकेगा। और कोई केवल अपने हृदय के द्वार को खोल कर ठहर जाए, तो परमात्मा यहीं और अभी प्रवेश कर जाता है। दूर-दूर खोजे कोई, अनंत की यात्रा करे कोई, भटके जन्मों-जन्मों तक, तो भी परमात्मा को नहीं पा सकेगा। क्योंकि परमात्मा को पाने का राज ही यही है कि हम रिसेप्टिव हो जाएं, एग्रेसिव नहीं। हम अपने को खुला छोड़ दें। हम सिर्फ राजी हो जाएं कि वह आता हो तो हमारे द्वार-दरवाजे बंद न पाए। हमारा प्रेम इतना ही करे कि वह एक पैसिव अवेटिंग, एक निष्क्रिय प्रतीक्षा बन जाए।

स्त्री जन्म-जन्म तक अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर सकती है; पुरुष नहीं कर सकता। पुरुष प्रतीक्षा जानता ही नहीं है। पुरुष के मन की जो व्यवस्था है, उसमें प्रतीक्षा नहीं है। उसमें अभी और यहीं, इंसटैंट सब चाहिए। इंसटैंट काफी भी, इंसटैंट सेक्स भी। अभी! इसलिए पुरुष ने विवाह ईजाद किया। क्योंकि विवाह के बिना इंसटैंट सेक्स, अभी, संभव नहीं है। पुरुष प्रतीक्षा बिल्कुल नहीं कर सकता। आतुर है, व्यग्र है, तनावग्रस्त है। लेकिन स्त्री प्रतीक्षा कर सकती है, अनंत प्रतीक्षा कर सकती है।

इसलिए जब इस मुल्क में हिंदुओं ने पुरुषों को विधुर रखने की व्यवस्था नहीं की और स्त्रियों को विधवा रखने की व्यवस्था की, तो यह सिर्फ स्त्रियों पर ज्यादती ही नहीं थी, यह स्त्रियों की प्रतीक्षा के तत्व की समझ भी इसमें थी। एक स्त्री अपने प्रेमी के लिए पूरे जन्म, अगले जन्म तक के लिए प्रतीक्षा कर सकती है। यह भरोसा किया जा सकता है। लेकिन पुरुष पर यह भरोसा नहीं किया जा सकता।

इसलिए भारत ने अगर स्त्रियों को विधवा रखने की व्यवस्था दी और पुरुषों को नहीं दी, तो सिर्फ इसलिए नहीं कि यह व्यवस्था पुरुष के पक्ष में थी। जहां तक मैं समझ पाता हूं, यह पुरुष का बहुत बड़ा अपमान था, यह स्त्री का गहनतम सम्मान था। क्योंकि इस बात की सूचना थी कि हम स्त्री पर भरोसा कर सकते हैं कि वह प्रतीक्षा कर सकती है। लेकिन पुरुष पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। पुरुष पर भरोसा नहीं किया जा सकता, इसलिए विधुर को रखने के लिए आग्रह नहीं रहा। कोई रहना चाहे, वह उसकी मर्जी! लेकिन स्त्री पर आग्रह था।

और आग्रह इसलिए था कि उसकी प्रतीक्षा में ही उसका वह जो स्त्रैण तत्व है, वह ज्यादा प्रकट होगा। उसे जितना अवसर मिले निष्क्रिय प्रतीक्षा का, उसके भीतर की गहराइयां उतनी ही गहन और गहरी हो जाती हैं। और उसके आंतरिक रहस्य मधुर और सुगंधित हो जाते हैं।

एक बहुत हैरानी की बात मैं कभी-कभी पढ़ता रहा हूं। कभी मेरे ख्याल में नहीं आती थी कि बात क्या होगी। कैथोलिक प्रीस्ट के सामने लोग अपने पापों की स्वीकृतियां करते हैं, कन्फेशन करते हैं। अनेक कैथोलिक पुरोहितों का यह अनुभव है कि जब स्त्रियां उनके सामने अपने पापों की स्वीकृति करती हैं, तो स्वभावतः वे भी मनुष्य हैं और केवल ट्रेंड प्रीस्ट हैं।

ईसाइयत ने एक दुनिया को बड़े से बड़ी जो बुरी बात दी है, वह यह, प्रशिक्षित पुरोहित दिए। कोई प्रशिक्षित पुरोहित नहीं हो सकता। प्रशिक्षित डाक्टर हो सकते हैं, प्रशिक्षित वकील हो सकते हैं, लेकिन

प्रशिक्षित पुरोहित नहीं हो सकता; उसी तरह, जैसे प्रशिक्षित पोएट, कवि नहीं हो सकता। और अगर आप कविता को सिखा दें और ट्रेनिंग दे दें और सर्टिफिकेट दे दें कि यह आदमी ट्रेंड है कविता में, तो वह सिर्फ तुकबंदी करेगा। कविता उससे पैदा नहीं हो सकती। पुरोहित भी जन्मजात क्षमता है, साधना का फल है। उसे कोई प्रशिक्षित नहीं कर सकता। लेकिन ईसाइयत ने प्रशिक्षित किए। ट्रेंड पुरोहित हैं, उनके पास डिग्रियां हैं, उनमें कोई डीड़ी. है, डाक्टर ऑफ डिविनिटी है। डाक्टर ऑफ डिविनिटी कोई नहीं होता, क्योंकि सर्टिफिकेट पर जो डिविनिटी तय हो जाएगी, वह डिविनिटी नहीं हो सकती है। वह क्या दिव्यता होगी जो एक स्कूल-सर्टिफिकेट देने से तय हो जाती हो!

तो पुरोहित के पास जब स्त्रियां अपने पापों का कन्फेशन करती हैं, तो यह कन्फेशन बहुत टेंपटिंग हो जाता है। स्वाभाविक! जब कोई स्त्री अपने पाप का स्वीकार करती है, और एकांत में करती है, तो पुरोहित के लिए बड़ी बेचैनी हो जाती है। स्त्री तो हलकी हो जाती है, पुरोहित भारी हो जाता है। लेकिन कैथोलिक पुरोहितों का एक वक्तव्य मुझे सदा हैरान करता था, वह यह कि विधवा स्त्रियां ज्यादा आकर्षक और टेंपटिंग सिद्ध होती हैं। मैं बहुत हैरान था कि यह क्या कारण होगा?

असल में, विधवा अगर सच में विधवा हो, तो उसके सौंदर्य में बहुत बढ़ती हो जाती है। क्योंकि प्रतीक्षा उसके स्त्रैण रहस्य को गहन कर देती है। कुंवारी लड़की में जो रहस्य होता है, वह प्रतीक्षा का है। इसलिए सारी दुनिया में जो समझदार कौमें थीं, उन्होंने तय किया कि कुंवारी लड़की से ही विवाह करना। क्योंकि सच तो यह है कि जो लड़की कुंवारी नहीं है, उससे विवाह करने का मतलब है कि आपको स्त्री के रहस्य को जानने का मौका ही नहीं मिलेगा। वह रहस्य पहले ही खंडित हो चुका। वह स्त्री छिछली हो गई। उसने प्रतीक्षा ही नहीं की है इतनी, जितनी प्रतीक्षा पर वह भीतर का पूरा का पूरा रहस्यमय फूल खिलता है।

इसलिए जिन समाजों ने स्त्री के कुंवारे रहने पर और विवाह पर जोर दिया, उन्होंने पुरुष के कुंवारेपन की बहुत फिक्र नहीं की है। उसका कारण है कि पुरुष के कुंवारेपन या न कुंवारेपन से कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन स्त्री के कुंवारेपन से फर्क पड़ता है। कुंवारी स्त्री में एक सौंदर्य है जो विवाह के बाद उसमें खो जाता है।

वह सौंदर्य उसमें फिर से जन्मता है, जब वह मां बनना शुरू होती है। क्योंकि अब वह एक और बड़े रहस्य के द्वार पर, और एक और बड़ी प्रतीक्षा के द्वार पर खड़ी हो जाती है। उसे गर्भवती देख कर पति चिंतित हो सकता है। और पति चिंतित होते हैं। और उनकी चिंता स्वाभाविक है। क्योंकि उनके लिए प्रतीक्षा नहीं, केवल एक और इकोनॉमिक, एक आर्थिक उपद्रव उनके ऊपर आने को है। लेकिन मां मधुर हो जाती है। असल में, मां का गर्भ जैसे बढ़ने लगता है, उसकी आंखों की गहराई बढ़ने लगती है; उसके शरीर में नए कोमल तत्वों का आविर्भाव होता है। गर्भिणी स्त्री का सौंदर्य स्त्रैण रहस्य से बहुत भारी हो जाता है। यह क्या होगा रहस्य?

यह पैसिविटी इ.ज दि सीक्रेट। अब मां बनने के लिए कुछ उसे करना तो पड़ता नहीं। बेटा उसके पेट में बड़ा होने लगता है; उसे सिर्फ प्रतीक्षा करनी होती है। उसे कुछ भी नहीं करना होता। असल में, उसे सब करना छोड़ देना होता है; सिर्फ प्रतीक्षा ही करनी होती है। जैसे-जैसे उसके बेटे का या उसकी बेटी का, उसके गर्भ का विकास होने लगता है, वैसे-वैसे सब काम उसे छोड़ देना पड़ता है। वह सिर्फ प्रतीक्षा में रह जाती है, वह सिर्फ स्वप्न देखने लगती है। इसलिए अगर सारा काम स्त्री छोड़ दे बच्चे के जन्म के करीब, तो वह वे स्वप्न देख सकती है, जो उसके बच्चे के भविष्य की सूचनाएं होंगे। इसलिए महावीर या बुद्ध की मां के स्वप्न बड़े मूल्यवान हो गए। महावीर या बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि जब वे पैदा हुए, तो उनकी मां ने स्वप्न देखे। वे स्वप्न रोज मां के सामने प्रकट होते गए। उन स्वप्नों में बुद्ध या महावीर के जीवन की सारी रूप-रेखा प्रकट हो गई।

अगर मां सच में ही मां हो और आने वाले भविष्य में जो जन्म लेने वाला प्राण है उससे, उसके साथ पूरी पैसिविटी में हो, तो वह अपने बच्चे की जन्मकुंडली खुद ही लिख जा सकती है। किसी पुरोहित, किसी पंडित को दिखाने की जरूरत नहीं है। और मां जिसकी जन्मकुंडली न लिख सके, उसकी कोई पुरोहित और पंडित न लिख सकेगा। क्योंकि इतना तादात्म्य, इतना एकात्म फिर कभी किसी दूसरे से नहीं होता है। पति से भी नहीं होता है इतना तादात्म्य पत्नी का, जितना अपने बेटे से होता है। बेटा उसका ही एक्सटेंशन है, उसका ही फैलाव है।

लेकिन मां बनने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ता; पिता बनने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। मां बनने के लिए कुछ भी नहीं करना होता। मां बनने के लिए केवल मौन प्रतीक्षा करनी होती है। इस मौन प्रतीक्षा में दो चीजों का जन्म होता हैः एक तो बेटे का जन्म होता है और एक मां का भी जन्म होता है।

इसलिए पूरब के मुल्क, जिन्होंने फेमिनिन मिस्ट्री को समझा, उन्होंने स्त्री को जो चरम आदर दिया है, वह मां का, पत्नी का नहीं। यह बहुत हैरानी की बात है।

मुझसे लोग पूछते थे कि आप संन्यासियों को स्वामी कहते हैं, लेकिन संन्यासिनियों को मां क्यों कहते हैं, जब कि अभी उनका विवाह भी नहीं हुआ? उनका बच्चा भी नहीं हुआ?

असल में, मां का संबंध स्त्री की चरम गरिमा से है। वह अपनी चरम गरिमा पर सिर्फ मां के क्षण में होती है। उसका जो पीक एक्सपीरिएंस है, वह पत्नी होना नहीं है, प्रेयसी होना नहीं है--प्रेयसी और पत्नी होना केवल चढ़ाई की शुरुआत है--उसका जो पीक एक्सपीरिएंस है, जो शिखर-अनुभव है, वह उसका मां होना है।

इसलिए जिन समाजों में भी स्त्रियों ने तय कर लिया है कि पत्नी होना उनका शिखर है, उन समाजों में स्त्रियां बहुत दुखी हो जाएंगी; क्योंकि वह उनका शिखर है नहीं। यद्यपि पुरुष राजी है कि वे पत्नी होने को ही अपना शिखर समझें। क्योंकि पुरुष को पति होने पर शिखर उपलब्ध हो जाता है। पिता होने पर उसे शिखर उपलब्ध नहीं होता। उसे प्रेमी होने पर शिखर उपलब्ध हो जाता है। लेकिन स्त्री को उपलब्ध नहीं होता।

स्त्री का यह जो मातृत्व का राज है, इसे लाओत्से कहता है, यह अंधेरे जैसा है।

इसमें और बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी हैं। जब पुरुष पैदा होता है, जब एक बच्चा पैदा होता है, लड़का पैदा होता है, तो उसके पास अभी सेक्स हारमोन होते नहीं, बाद में पैदा होने शुरू होते हैं। उसका वीर्य बाद में निर्मित होना शुरू होता है। लेकिन यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब लड़की पैदा होती है, तो वह अपने सब अंडे साथ लेकर पैदा होती है। उसके जीवन भर में जितने अंडे प्रति माह उसके मासिक धर्म में निकलेंगे, उतने अंडे वह लेकर ही पैदा होती है। स्त्री पूरी पैदा होती है। उसके पास पूरा कोश होता है उसके एग्स का। फिर उनमें से एक-एक अंडा समय पर बाहर आने लगेगा। लेकिन वह सब अंडे लेकर आती है। पुरुष अधूरा पैदा होता है।

और अधूरे पैदा होने की वजह से लड़के बेचैन होते हैं और लड़कियां शांत होती हैं। एक अनइजीनेस लड़के में जन्म से होती है। लड़की में एक एटईजनेस जन्म से होती है। लड़की के शरीर का, उसके व्यक्तित्व का जो सौंदर्य है, वह उसकी शांति से बहुत ज्यादा संबंधित है। अगर लड़की को बेचैन करना हो, तो उपाय करने पड़ते हैं। और लड़के को अगर शांत करना हो, तो उपाय करने पड़ते हैं; अशांत होना स्वाभाविक है।

बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि उसका कारण है कि स्त्री जिस अंडे से बनती है, उसमें जो अणु होते हैं, वे एक्स-एक्स होते हैं। दोनों एक से होते हैं। और पुरुष जिस क्रोमोसोम से बनता है, उसमें एक्स-वाई होता है; उसमें एक एक्स होता है, एक वाई होता है; वे समान नहीं होते। स्त्री में जो तत्व होते हैं, वे एक्स-एक्स होते हैं, दोनों समान होते हैं। इसलिए स्त्री सुडौल होती है, पुरुष सुडौल नहीं हो पाता। स्त्री के शरीर में जो कर्व्स का सौंदर्य है,

वह उसके एक्स-एक्स दोनों संतुलित अंडों के कारण है। और पुरुष के शरीर में वैसा संतुलन नहीं हो सकता, क्योंकि एक्स-वाई, उसके एक और दूसरे में समानता नहीं है। स्त्री के व्यक्तित्व को बनाने वाले अड़तालीस अणु हैं; वे पूरे हैं चौबीस-चौबीस। पुरुष को बनाने वाले सैंतालीस हैं। और बायोलॉजिस्ट कहते हैं कि वह जो एक अणु की कमी है, वही पुरुष को जीवन भर दौड़ाती है--इस दुकान से उस दुकान, जमीन से चांद--दौड़ाती रहती है। वह जो एक कम है, उसकी खोज है। वह पूरा होना चाहता है।

यह जो स्त्री का संतुलित, शांत, प्रतीक्षारत व्यक्तित्व है, लाओत्से कहता है, यह जीवन का बड़ा गहरा रहस्य है। परमात्मा स्त्री के ढंग से अस्तित्व में है; पुरुष के ढंग से नहीं। इसलिए परमात्मा को हम देख नहीं पाते हैं। उसे हम पकड़ भी नहीं पाते हैं। वह मौजूद है जरूर; लेकिन उसकी प्रेजेंस स्त्रैण है, न होने जैसा है। उसे हम पकड़ने जाएंगे, उतना ही वह हमसे छूट जाएगा, उतना ही हट जाएगा। उतनी ही उसकी खोज मुश्किल हो जाएगी।

अस्तित्व स्त्रैण है। इसका अर्थ यह है कि अस्तित्व में जो भी प्रकट होता है, अस्तित्व में पहले से छिपा है--एक। जैसा मैंने कहा, स्त्री में जो भी पैदा होगा, वह सब पहले से ही छिपा है। वह अपने जन्म के साथ लेकर आती है सब। उसमें कुछ नया एडीशन नहीं होता। वह पूरी पैदा होती है। उसमें ग्रोथ होती है, लेकिन एडीशन नहीं होता। उसमें विकास होता है, लेकिन कुछ नई चीज जुड़ती नहीं। यही वजह है कि वह बड़ी तृप्त जीती है। स्त्रियों की तृप्ति आश्चर्यजनक है। अन्यथा इतने दिन तक उनको गुलाम नहीं रखा जा सकता था। उनकी तृप्ति आश्चर्यजनक है; गुलामी में भी वे राजी हो जाती हैं। कैसी भी स्थिति हो, वे राजी हो जाती हैं। अतृप्ति उनमें बड़ी मुश्किल से पैदा की जा सकती है; बड़ी कठिन है। और तभी पैदा की जा सकती है, जब कुछ बायोलॉजिकल कठिनाई उनके भीतर पैदा हो जाए। जैसा पश्चिम में लग रहा है कि कठिनाई पैदा हुई है। तो उनमें पैदा की जा सकती है बेचैनी।

और जिस दिन स्त्री बेचैन होती है, उस दिन उसको चैन में लाना फिर बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह बिल्कुल अप्राकृतिक है उसका बेचैन होना। इसलिए स्त्री बेचैन नहीं होती, सीधी पागल होती है। यह आप जान कर हैरान होंगे कि स्त्री या तो शांत होती है या पागल हो जाती है; बीच में नहीं ठहरती, ग्रेडेशंस नहीं हैं। पुरुष न तो शांत होता है इतना, न इतना पागल होता है; बीच में काफी डिग्रीज हैं उसके पास। अशांति की डिग्रीज में वह डोलता रहता है। बड़ी से बड़ी अशांति में भी वह पागल नहीं हो जाता; और बड़ी से बड़ी शांति में भी वह बिल्कुल शांत नहीं हो जाता।

नीत्शे ने बहुत विचार की बात कही है। उसने कहा है कि जहां तक मैं समझता हूं, बुद्ध जैसे व्यक्ति में स्त्रैण तत्व ज्यादा रहे होंगे। बुद्ध को वूमेनिश कहा है नीत्शे ने। और मैं मानता हूं कि इसमें एक गहरी समझ है। सच यह है कि जब कोई पुरुष भी पूरी तरह शांत होता है, तो स्त्रैण हो जाता है। हो ही जाएगा। हो जाएगा इसलिए कि इतना शांत हो जाएगा कि वह जो पुरुष की अनिवार्य बेचैनी थी, वह जो अनिवार्य अशांति थी, अनिवार्य तनाव था, वह जो टेंशन था पुरुष के अस्तित्व का, वह खो जाएगा।

यही वजह है कि हमने भारत में प्रतीकात्मक रूप से कृष्ण की, बुद्ध की, महावीर की दाढ़ी-मूंछ नहीं बनाई। ऐसा नहीं कि नहीं थी; थी। लेकिन नहीं बनाई; क्योंकि वह सांकेतिक नहीं रह गई। सांकेतिक नहीं रह गई। वह बुद्ध के भीतर की खबर नहीं देती, इसलिए उसे हटा दिया। सिर्फ एक मूर्ति पर बुद्ध की दाढ़ी है, इसलिए लोग उस मूर्ति को कहते हैं वह झूठ है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि किसी मूर्ति पर दाढ़ी नहीं है। महावीर

की एक मूर्ति पर मूंछ है, तो लोग कहते हैं कि वह कुछ किसी जादूगर ने उन पर मूंछ उगा दी है। तो उस पूरे मंदिर का नाम मुछाला महावीर है, मूंछ वाले महावीर। क्योंकि महावीर तो मूंछ वाले थे नहीं।

लेकिन महावीर में मूंछ न हो, बुद्ध में मूंछ न हो, कभी एकाध दफा ऐसी घटना घट सकती है; क्योंकि कुछ पुरुष होते हैं, जिनमें हारमोन्स की कमी की वजह से दाढ़ी-मूंछ नहीं होती। लेकिन जैनों के चौबीस तीर्थंकर और किसी को दाढ़ी न हो, जरा कठिन है! इतना बड़ा संयोग मुश्किल है।

लेकिन वह प्रतीकात्मक है। वह इस बात की खबर है कि हमने यह स्वीकार कर लिया था कि यह व्यक्ति अब स्त्रैण रहस्य में प्रवेश कर गया, दि फेमिनिन मिस्ट्री में।

ध्यान रहे, जब मैं स्त्रैण रहस्य कह रहा हूं, तो कोई ऐसा न समझे कि मेरा मतलब स्त्री से ही है। स्त्री भी, हो सकती है, स्त्रैण रहस्य में प्रवेश न करे; और पुरुष भी प्रवेश कर सकता है। स्त्रैण रहस्य तो जीवन का एक सूत्र है।

लाओत्से इसलिए कहता है कि दि फीमेल मिस्ट्री दस डू वी नेम। हम इस तरह नाम देते हैं। नाम देने का कारण है। क्योंकि यह नाम अर्थपूर्ण मालूम पड़ता है। हम उस रहस्य को पुरुष जैसा नाम नहीं दे सकते; क्योंकि वह रहस्य परम शांत है। वह इतना शांत है कि उसकी उपस्थिति की भी खबर नहीं मिलती। क्योंकि उपस्थिति की भी खबर तभी मिलती है, जब कोई खबर दे।

इसलिए सच्ची प्रेयसी वह नहीं है जो अपने प्रेमी को अपने होने की खबर चौबीस घंटे करवाती रहती है। करवाते रहते हैं लोग। अगर पति घर आया है, तो पत्नी हजार उपाय करती है। बर्तन जोर से छूटने लगते हैं हाथ से। खबर करवाती है कि मैं हूं, इसे स्मरण रखना; मैं यहीं आस-पास हूं। पति भी पूरे उपाय करता है कि तुम नहीं हो। अखबार फैला कर, जिसे वह दस बार पढ़ चुका है, फिर पढ़ने लगता है। वह अखबार दीवार है, जिसके पार बजाओ कितने ही बर्तन, कितनी ही करो आवाज, बच्चों को पीटो, शोरगुल मचाओ, रेडियो जोर से बजाओ, नहीं सुनेंगे। हम अखबार पढ़ते हैं!

लेकिन प्रेयसी सच में वही है, जिस स्त्री को स्त्रैण रहस्य का पता चल गया। वह अपने प्रेमी के पास अपनी उपस्थिति को पता भी नहीं चलने देगी।

एक बहुत अदभुत घटना मैं आपसे कहता हूं। वाचस्पति मिश्र का विवाह हुआ। पिता ने आग्रह किया, वाचस्पति की कुछ समझ में न आया; इसलिए उन्होंने हां भर दी। सोचा, पिता जो कहते होंगे, ठीक ही कहते होंगे। वाचस्पति लगा था परमात्मा की खोज में। उसे कुछ और समझ में ही न आता था। कोई कुछ भी बोले, वह परमात्मा की ही बात समझता था। पिता ने वाचस्पति को पूछा, विवाह करोगे? उसने कहा, हां।

उसने शायद सुना होगा, परमात्मा से मिलोगे? जैसा कि हम सब के साथ होता है। जो धन की खोज में लगा है, उससे कहो, धर्म खोजोगे? वह समझता है, शायद कह रहे हैं, धन खोजोगे? उसने कहा, हां। हमारी जो भीतर खोज होती है, वही हम सुन पाते हैं। वाचस्पति ने शायद सुना; हां भर दी।

फिर जब घोड़े पर बैठ कर ले जाया जाने लगा, तब उसने पूछा, कहां ले जा रहे हैं? उसके पिता ने कहा, पागल, तूने हां भरा था। विवाह करने चल रहे हैं। तो फिर उसने न करना उचित न समझा; क्योंकि जब हां भर दी थी और बिना जाने भर दी थी, तो परमात्मा की मर्जी होगी।

वह विवाह करके लौट आया। लेकिन पत्नी घर में आ गई, और वाचस्पति को ख्याल ही न रहा। रहता भी क्या! न उसने विवाह किया था, न हां भरी थी। वह अपने काम में ही लगा रहा। वह ब्रह्मसूत्र पर एक टीका लिखता था। वह बारह वर्ष में टीका पूरी हुई। बारह वर्ष तक उसकी पत्नी रोज सांझ दीया जला जाती, रोज

सुबह उसके पैरों के पास फूल रख जाती, दोपहर उसकी थाली सरका देती। जब वह भोजन कर लेता, तो चुपचाप पीछे से थाली हटा ले जाती। बारह वर्ष तक उसकी पत्नी का वाचस्पति को पता नहीं चला कि वह है। पत्नी ने कोई उपाय नहीं किया कि पता चल जाए; बल्कि सब उपाय किए कि कहीं भूल-चूक से पता न चल जाए, क्योंकि उनके काम में बाधा न पड़े।

बारह वर्ष जिस पूर्णिमा की रात वाचस्पति का काम आधी रात पूरा हुआ और वाचस्पति उठने लगे, तो उनकी पत्नी ने दीया उठाया--उनको राह दिखाने के लिए उनके बिस्तर तक। पहली दफा बारह वर्ष में, कथा कहती है, वाचस्पति ने अपनी पत्नी का हाथ देखा। क्योंकि बारह वर्ष में पहली दफा काम समाप्त हुआ था। अब मन बंधा नहीं था किसी काम से। हाथ देखा, चूड़ियां देखीं, चूड़ियों की आवाज सुनी। लौट कर पीछे देखा और कहा, स्त्री, इस आधी रात अकेले में तू कौन है? कहां से आई? द्वार मकान के बंद हैं, कहां पहुंचना है तुझे, मैं पहुंचा दूं!

उसकी पत्नी ने कहा, आप शायद भूल गए होंगे, बहुत काम था। बारह वर्ष आप काम में थे। याद आपको रहे, संभव भी नहीं है। बारह वर्ष पहले, ख्याल अगर आपको आता हो, तो आप मुझे पत्नी की तरह घर ले आए थे। तब से मैं यहीं हूं।

वाचस्पति रोने लगा। उसने कहा, यह तो बहुत देर हो गई। क्योंकि मैंने तो प्रतिज्ञा कर रखी है कि जिस दिन यह ग्रंथ पूरा हो जाएगा, उसी दिन घर का त्याग कर दूंगा। तो यह तो मेरे जाने का वक्त हो गया। भोर होने के करीब है; तो मैं जा रहा हूं। पागल, तूने पहले क्यों न कहा? थोड़ा भी तू इशारा कर सकती थी। लेकिन अब बहुत देर हो गई।

वाचस्पति की आंखों में आंसू देख कर पत्नी ने उसके चरणों में सिर रखा और उसने कहा, जो भी मुझे मिल सकता था, वह इन आंसुओं में मिल गया। अब मुझे कुछ और चाहिए भी नहीं है। आप निश्चिंत जाएं। और मैं क्या पा सकती थी इससे ज्यादा कि वाचस्पति की आंख में मेरे लिए आंसू हैं! बस, बहुत मुझे मिल गया है।

वाचस्पति ने अपने ब्रह्मसूत्र की टीका का नाम भामति रखा है। भामति का कोई संबंध टीका से नहीं है। ब्रह्मसूत्र से कोई लेना-देना नहीं है। यह उसकी पत्नी का नाम है। यह कह कर कि अब मैं कुछ और तेरे लिए नहीं कर सकता, लेकिन मुझे चाहे लोग भूल जाएं, तुझे न भूलें, इसलिए भामति नाम देता हूं अपने ग्रंथ को। वाचस्पति को बहुत लोग भूल गए हैं; भामति को भूलना मुश्किल है। भामति लोग पढ़ते हैं। अदभुत टीका है ब्रह्मसूत्र की। वैसी दूसरी टीका नहीं है। उस पर नाम भामति है।

फेमिनिन मिस्ट्री इस स्त्री के पास होगी। और मैं मानता हूं कि उस क्षण में इसने वाचस्पति को जितना पा लिया होगा, उतना हजार वर्ष भी चेष्टा करके कोई स्त्री किसी पुरुष को नहीं पा सकती। उस क्षण में, उस क्षण में वाचस्पति जिस भांति एक हो गया होगा इस स्त्री के हृदय से, वैसा कोई पुरुष को कोई स्त्री कभी नहीं पा सकती। क्योंकि फेमिनिन मिस्ट्री, वह जो रहस्य है, वह अनुपस्थित होने का है।

छुआ क्या प्राण को वाचस्पति के? कि बारह वर्ष! और उस स्त्री ने पता भी न चलने दिया कि मैं यहीं हूं। और वह रोज दीया उठाती रही और भोजन कराती रही। और वाचस्पति ने कहा, तो रोज जो थाली खींच लेता था, वह तू ही है? और रोज सुबह जो फूल रख जाता था, वह कौन है? और जिसने रोज दीया जलाया, वह तू ही थी? पर तेरा हाथ मुझे दिखाई नहीं पड़ा!

भामति ने कहा, मेरा हाथ दिखाई पड़ जाता, तो मेरे प्रेम में कमी साबित होती। मैं प्रतीक्षा कर सकती हूं।

तो जरूरी नहीं कि कोई स्त्री स्त्रैण रहस्य को उपलब्ध ही हो। यह तो लाओत्से ने नाम दिया, क्योंकि यह नाम सूचक है और समझा सकता है। पुरुष भी हो सकता है। असल में, अस्तित्व के साथ तादात्म्य उन्हीं का होता है, जो इस भांति प्रार्थनापूर्ण प्रतीक्षा को उपलब्ध होते हैं।

"इस स्त्रैण रहस्यमयी का द्वार स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत है।"

चाहे पदार्थ का हो जन्म और चाहे चेतना का, और चाहे पृथ्वी जन्मे और चाहे स्वर्ग, इस अस्तित्व की गहराई में जो रहस्य छिपा हुआ है, उससे ही सबका जन्म होता है। इसलिए मैंने कहा, जिन्होंने परमात्मा को मदर, मां की तरह देखा, दुर्गा या अंबा की तरह देखा, उनकी समझ परमात्मा को पिता की तरह देखने से ज्यादा गहरी है। अगर परमात्मा कहीं भी है, तो वह स्त्रैण होगा। क्योंकि इतने बड़े जगत को जन्म देने की क्षमता पुरुष में नहीं है। इतने विराट चांद-तारे जिससे पैदा होते हों, उसके पास गर्भ चाहिए। बिना गर्भ के यह संभव नहीं है।

इसलिए खासकर यहूदी परंपराएं, ज्यूविश परंपराएं--यहूदी, ईसाई और इसलाम, तीनों ही ज्यूविश परंपराओं का फैलाव हैं--उन्होंने जगत को एक बड़ी भ्रांत धारणा दी, गॉड दि फादर। वह धारणा बड़ी खतरनाक है। पुरुष के मन को तृप्त करती है, क्योंकि पुरुष अपने को प्रतिष्ठित पाता है परमात्मा के रूप में। लेकिन जीवन के सत्य से उस बात का संबंध नहीं है। ज्यादा उचित एक जागतिक मां की धारणा है। पर वह तभी ख्याल में आ सकेगी, जब स्त्रैण रहस्य को आप समझ लें, लाओत्से को समझ लें। अन्यथा समझ में न आ सकेगी।

कभी आपने देखा है काली की मूर्ति को? वह मां है और विकराल! मां है और हाथ में खप्पर लिए है आदमी की खोपड़ी का! मां है, उसकी आंखों में सारे मातृत्व का सागर। और नीचे? नीचे वह किसी की छाती पर खड़ी है। पैरों के नीचे कोई दबा है। क्योंकि जो सृजनात्मक है, वही विध्वंसात्मक होगा। क्रिएटिविटी का दूसरा हिस्सा डिस्ट्रक्शन है। इसलिए बड़ी खूबी के लोग थे, जिन्होंने यह सोचा! बड़ी इमेजिनेशन के, बड़ी कल्पना के लोग थे। बड़ी संभावनाओं को देखते थे। मां को खड़ा किया है, नीचे लाश की छाती पर खड़ी है। हाथ में खोपड़ी है आदमी की, मुर्दा। खप्पर है, लहू टपकता है। गले में माला है खोपड़ियों की। और मां की आंखें हैं और मां का हृदय है, जिनसे दूध बहे। और वहां खोपड़ियों की माला टंगी है!

असल में, जहां से सृष्टि पैदा होती है, वहीं प्रलय होता है। सर्किल पूरा वहीं होता है। इसलिए मां जन्म दे सकती है। लेकिन मां अगर विकराल हो जाए, तो मृत्यु भी दे सकती है। और स्त्री अगर विकराल हो, तो बहुत खतरनाक हो जाती है। शक्ति उसमें बहुत है। शक्ति तो वही है, वह चाहे क्रिएशन बने और चाहे डिस्ट्रक्शन बने। शक्ति तो वही है, चाहे सृजन हो, चाहे विनाश हो। जिन लोगों ने मां की धारणा के साथ सृष्टि और विनाश, दोनों को एक साथ सोचा था, उनकी दूरगामी कल्पना है। लेकिन बड़ी गहन और सत्य के बड़े निकट!

लाओत्से कहता है, स्वर्ग और पृथ्वी का मूल स्रोत वहीं है। वहीं से सब पैदा होता है। लेकिन ध्यान रहे, जो मूल स्रोत होता है, वहीं सब चीजें लीन हो जाती हैं। वह अंतिम स्रोत भी वही होता है।

"यह सर्वथा अविच्छिन्न है।"

यह जो स्त्रैण अस्तित्व है, यह जो पैसिव अस्तित्व है, यह जो प्रतीक्षा करता हुआ शून्य अस्तित्व है, इसमें कभी कोई खंड नहीं पड़ते। अविच्छिन्न है, कंटीन्युअस है, इसमें कोई डिसकंटीन्यूटी नहीं होती। जैसा मैंने कहा, दीया जलता है, बुझ जाता है; अंधेरा अविच्छिन्न है। जन्म आता है, जीवन दिखता है; मृत्यु अविच्छिन्न है। वह चलती चली जाती है। पहाड़ बनते हैं, मिट जाते हैं; घाटियां अविच्छिन्न हैं। पहाड़ होते हैं, तो वे दिखाई पड़ती हैं; पहाड़ नहीं होते, तो वे दिखाई नहीं पड़तीं। लेकिन उनका होना अविच्छिन्न है।

"सर्वथा अविच्छिन्न है। इसकी शक्ति अखंड है।"

कितनी ही शक्ति इस शून्य से निकाली जाए, वह चुकती नहीं है, वह समाप्त नहीं होती है। पुरुष चुक जाता है, स्त्री चुकती नहीं है। पुरुष क्षीण हो जाता है, स्त्री क्षीण नहीं होती।

साधारणतया जिसे हम स्त्री कहते हैं, वह भी पुरुष से कम क्षीण होती है। और अगर किसी स्त्री को स्त्रैण होने का पूरा राज मिल जाए, तो वह अपने वार्धक्य तक अपरिसीम सौंदर्य में प्रतिष्ठित रह सकती है। पुरुष का रहना बहुत मुश्किल है। पुरुष तूफान की तरह आता है और विदा हो जाता है। स्त्री को अगर उसका ठीक मातृत्व मिल जाए, तो वह अंतिम क्षण तक सुंदर हो सकती है। और पुरुष भी अंतिम क्षण तक तभी सुंदर हो पाता है, जब वह स्त्रैण रहस्य में प्रवेश कर जाता है। कभी! कभी-कभी ऐसा होता है।

इसलिए मैं एक दूसरा प्रतीक आपसे कहूं। हमने बुद्ध, राम, कृष्ण या महावीर के बुढ़ापे के कोई भी चित्र नहीं बनाए हैं। सब चित्र युवा हैं।

यह बात एकदम झूठ है। क्योंकि महावीर अस्सी वर्ष के होकर मरते हैं; बुद्ध अस्सी वर्ष के होकर मरते हैं; राम भी बूढ़े होते हैं, कृष्ण भी बूढ़े होते हैं। लेकिन चित्र हमारे पास युवा हैं। कोई बूढ़ा चित्र हमारे पास नहीं है। वह जान कर; वह प्रतीकात्मक है।

असल में, जो व्यक्ति इतना लीन हो गया अस्तित्व के साथ, हम मानते हैं, अब वह सदा ही यंग और फ्रेश, ताजा और युवा बना रहेगा। भीतर उसके युवा होने का सतत सूत्र मिल गया। अब वह अविच्छिन्न रूप से, अखंड रूप से अपनी शक्ति में ठहरा रहेगा।

"इसका उपयोग करो।"

लाओत्से कहता है, इस अखंड शक्ति का उपयोग करो। इस स्त्रैण रहस्य का उपयोग करो।

"और इसकी सहज सेवा उपलब्ध होती है।"

तुम्हें पता भर होना चाहिए, हाऊ टु यूज इट; एंड यू गेट इट। सिर्फ पता होना चाहिए, कैसे उपयोग करो; और सहज सेवा उपलब्ध होती है। क्योंकि यह द्वार जो है स्त्रैण, यह तैयार ही है अपने को देने को; तुम भर लेने को राजी हो जाओ।

"यूज जेंटली एंड विदाउट दि टच ऑफ पेन, लांग एंड अनब्रोकेन डज इट्स पावर रिमेन।"

थोड़ी भद्रता से, यूज जेंटली, थोड़े भद्र रूप से इसका उपयोग करो।

ध्यान रहे, जितने आप भद्र होंगे, उतने आप स्त्रैण हो जाएंगे। जितने आप पुरुष होंगे, उतने अभद्र हो जाएंगे। इसलिए अगर पुरुष बहुत भद्र होने की कोशिश करेगा, तो उसमें पुरुष का तत्व कम होने लगेगा। इसलिए एक बड़ी अदभुत बात घटती है; जैसे अमरीका में आज हुआ है। आज अमरीका में नीग्रो, काली चमड़ी वाले आदमी से सफेद चमड़ी वाले आदमी को जो भय है, वह भय सिर्फ आर्थिक नहीं है, वह भय सेक्सुअल और भी ज्यादा है। सफेद चमड़ी का आदमी इतना भद्र हो गया है कि वह जानता है कि अब सेक्सुअली अगर नीग्रो और उसके सामने चुनाव हो, तो उसकी पत्नी नीग्रो को चुनेगी। जो घबड़ाहट पैदा हो गई है, वह घबड़ाहट यह है। क्योंकि वह नीग्रो ज्यादा पोटेंशियली सेक्सुअल मालूम पड़ता है। वह अभद्र है, जंगली है। जंगली पुरुष में एक तरह का आकर्षण होता है पुरुष का। वाइल्ड, तो एक रोमांटिक, एक रोमांचकारी बात हो जाती है। बिल्कुल भद्र पुरुष को... बिल्कुल भद्र पुरुष स्त्रैण हो जाता है।

अगर बुद्ध के आस-पास एक प्रेम की फिल्म-कथा बनानी हो, तो बड़ी मुश्किल पड़े, बड़ी मुश्किल पड़ जाए। प्रेम की कथा के लिए एक अभद्र नायक चाहिए। और जितना अभद्र हो, उतना रोचक, उतना पुरुष मालूम

पड़ेगा। इसलिए अगर पश्चिम का डायरेक्टर, फिल्म का डायरेक्टर किसी अभिनेता को चुनता है, तो देखता है, छाती पर बाल हैं या नहीं! हाथों पर बाल हैं या नहीं! स्त्री को देखता है, तो बाल बिल्कुल नहीं होने चाहिए। थोड़ा जंगली दिखाई पड़े, रॉ, थोड़ा कच्चा दिखाई पड़े, तो एक सेक्सुअल अट्रैक्शन, एक कामुक आकर्षण है।

नीग्रो से भय पैदा हो गया है। वह भय आर्थिक कम, मानसिक ज्यादा है। जैसे ही कोई पुरुष भद्र होगा, जितना भद्र होगा, उतना स्त्रैण हो जाएगा, उतना कोमल हो जाएगा। और बड़े मजे की बात है, जितना कोमल हो जाएगा, उतना कम कामुक हो जाएगा। जितना पुरुष कोमल होता जाता है, उतना कम कामुक होता चला जाता है। और यह उसकी जो कम कामुकता है, उसे जीवन के परम रहस्य की तरफ ले जाने के लिए मार्ग बन जाती है।

लाओत्से कहता है, यूज जेंटली, भद्ररूपेण अगर उपयोग किया। एंड विदाउट दि टच ऑफ पेन।

ध्यान रहे, यह थोड़ा समझने जैसा है। पुरुष जब भी स्त्री को छूता है, तो बहुत तरह के दर्द उसको देना चाहता है, बहुत तरह के पेन। असल में, पुरुष का जो प्रेम है, मेथडोलॉजिकली--विधि की दृष्टि से--स्त्री को सताने जैसा है। अगर वह ज्यादा प्रेम करेगा, तो ज्यादा जोर से हाथ दबाएगा। अगर चुंबन ज्यादा प्रेमपूर्ण होगा, तो वह काटना शुरू कर देगा। नाखून गड़ाएगा। पुराने कामशास्त्र के जो ग्रंथ हैं, उनमें नखदंश की बड़ी प्रशंसा है, कि वह पुरुष ही क्या जो अपनी स्त्री के शरीर में नख गड़ा-गड़ा कर लहू न निकाल दे! प्रेमी का लक्षण है, नखदंश। फिर प्रेमी अगर बहुत कुशल हो, जैसा कि मार्कस-डी सादे था। तो नाखून काम नहीं करते, तो वह साथ में छुरी-कांटे रखता था। जब किसी को प्रेम करे, तो थोड़ी देर नाखून; और फिर नाखून जब काम न करे, तो छुरी-कांटे!

पुरुष का जो प्रेम का ढंग है, उसमें हिंसा है। इसलिए वह जितना ज्यादा प्रेम में पड़ेगा, उतना हिंसक होने लगेगा। इस बात की संभावना है कि अगर पुरुष अपने पूरे प्रेम में आ जाए, तो वह स्त्री की हत्या कर सकता है--प्रेम के कारण। ऐसी हत्याएं हुई हैं। और अदालतें बड़ी मुश्किल में पड़ गईं, क्योंकि उन हत्याओं में कोई भी दुश्मनी न थी। अति प्रेम कारण था। इतने प्रेम से भर गया वह, इतने प्रेम से भर गया कि दबाते-दबाते कब उसने अपनी प्रेयसी की गर्दन दबा दी, वह उसे पता नहीं रहा।

लाओत्से कहता है, यूज जेंटली। यह परम सत्य के संबंध में वह कहता है कि बहुत भद्रता से व्यवहार करना। एंड विदाउट दि टच ऑफ पेन। और तुम्हारे द्वारा अस्तित्व को जरा सी भी पीड़ा न पहुंचे। तो ही तुम, तो ही तुम स्त्रैण रहस्य को समझ पाओगे।

स्त्री अगर पुरुष को प्रेम भी करती है, अगर स्त्री पुरुष के कंधे पर भी हाथ रखती है, तो वह ऐसे रखती है कि कंधा छू न जाए। और वही स्त्री का राज है। और जितना उसका हाथ कम छूता हुआ छूता है, उतना प्रेमपूर्ण हो जाता है। और जब स्त्री भी पुरुष के कंधे को दबाती है, तो वह खबर दे रही है कि उस स्त्रैण जगत से वह हट गई है और पुरुष की नकल कर रही है। वह सिर्फ अपने को छोड़ देती है, जस्ट फ्लोटिंग, पुरुष के प्रेम में छोड़ देती है। वह सिर्फ राजी होती है, कुछ करती नहीं। वह पुरुष को छूती भी नहीं इतने जोर से कि स्पर्श भी अभद्र न हो जाए!

लेकिन अभी पश्चिम में उपद्रव चला है। अभी पश्चिम की बुद्धिमान स्त्रियां--उन्हें अगर बुद्धिमान कहा जा सके तो--वे यह कह रही हैं कि स्त्रियों को ठीक पुरुष जैसा एग्रेसिव होना चाहिए। ठीक पुरुष जैसा प्रेम करता है, स्त्रियों को करना चाहिए। उतना ही आक्रामक।

निश्चित ही, उतना आक्रामक होकर वे पुरुष जैसी हो जाएंगी। लेकिन उस फेमिनिन मिस्ट्री को खो देंगी, लाओत्से जिसकी बात करता है। और लाओत्से ज्यादा बुद्धिमान है। और लाओत्से की बुद्धिमत्ता बहुत

पराबुद्धिमत्ता है। वह जहां विजडम के भी पार एक विजडम शुरू होती है, जहां सब बुद्धिमानी चुक जाती है और प्रज्ञा का जन्म होता है, वहां की बात है।

पर यह पुरुष-स्त्री दोनों के लिए लागू है, अंत में इतना आपको कह दूं। यह मत सोचना, स्त्रियां प्रसन्न होकर न जाएं, क्योंकि उनमें बहुत कम स्त्रियां हैं। स्त्री होना बड़ा कठिन है। स्त्री होना परम अनुभव है। पुरुष परेशान होकर न जाएं, क्योंकि उनमें और स्त्रियों में बहुत भेद नहीं है। दोनों को यात्रा करनी है। समझ लें इतना कि हम सत्य को जानने में उतने ही समर्थ हो जाएंगे, जितने अनाक्रामक, नॉन-एग्रेसिव, जितने प्रतीक्षारत, अवेटिंग, जितने निष्क्रिय, पैसिव, घाटी की आत्मा जैसे! शिखर की तरह अहंकार से भरे हुए पहाड़ की अस्मिता नहीं; घाटी की तरह विनम्र, घाटी की तरह गर्भ जैसे, मौन, चुप, प्रतीक्षा में रत!

तो उस पैसिविटी में, उस परम निष्क्रियता में अखंड और अविच्छिन्न शक्ति का वास है। वहीं से जन्मता है सब, और वहीं सब लीन हो जाता है।

आज इतना ही। फिर हम कल बात करें। लेकिन अभी जाएं न। अभी हम कीर्तन में चलेंगे, हो सकता है यह कीर्तन स्त्रैण रहस्य को समझने का द्वार बन जाए। सम्मिलित हों।

उन्नीसवां प्रवचन

स्त्रैण-चित्त के अन्य आयामः श्रद्धा, स्वीकार और समर्पण

प्रश्नः ओशो, कल आपने अस्तित्व के स्त्रैण रहस्य पर चर्चा की है। इस विषय में कुछ और विस्तार से प्रकाश डालने की कृपा करें।

अस्तित्व के सभी आयाम स्त्रैण और पुरुष में बांटे जा सकते हैं।

स्त्री और पुरुष का विभाजन केवल यौन-विभाजन, सेक्स डिवीजन नहीं है। लाओत्से के हिसाब से स्त्री और पुरुष का विभाजन जीवन की डाइलेक्टिक्स है, जीवन का जो द्वंद्वात्मक विकास है, जो डाइलेक्टिकल एवोल्यूशन है, उसका अनिवार्य हिस्सा है।

शरीर के तल पर ही नहीं, स्त्री और पुरुष मन के तल पर भी भिन्न हैं। अस्तित्व जिन-जिन अभिव्यक्तियों में प्रकट होता है, वहां-वहां स्त्री और पुरुष का भेद होगा। लेकिन जो बात ध्यान रखने जैसी है लाओत्से को समझते समय, वह यह है कि पुरुष अस्तित्व का क्षणिक रूप है और स्त्री अस्तित्व का शाश्वत रूप है। जैसे सागर में लहर उठती है। लहर का उठना क्षणिक है। लहर नहीं थी, तब भी सागर था; और लहर नहीं होगी, तब भी सागर होगा। स्त्रैणता अस्तित्व का सागर है। पुरुष का अस्तित्व क्षणिक है।

इसलिए यहूदी परंपराओं ने जो मनुष्य के विकास की कथा लिखी है, वह लाओत्से के हिसाब से बिल्कुल ही गलत है। यहूदी धारणा है कि परमात्मा ने पुरुष को पहले बनाया और फिर पुरुष की ही हड्डी को निकाल कर स्त्री का निर्माण किया। लाओत्से इससे बिल्कुल ही उलटा सोचता है। लाओत्से मानता है, स्त्रैण अस्तित्व प्राथमिक है। पुरुष उससे जन्मता है और उसी में खो जाता है। और लाओत्से की बात में गहराई मालूम पड़ती है।

पहली बात, स्त्री बिना पुरुष के संभव है। उसकी बेचैनी पुरुष के लिए इतनी प्रगाढ़ नहीं है। इसलिए कोई स्त्री चाहे तो जीवन भर कुंवारी रह सकती है; कुंवारापन भारी नहीं पड़ेगा। लेकिन पुरुष को कुंवारा रखना करीब-करीब असंभव जैसा है। और पुरुष को कुंवारा रखना बहुत आयोजना से हो सकता है। सरल बात नहीं है, सुगम बात नहीं है।

इधर मैं देख कर हैरान हुआ हूं। साधु मुझे मिलते हैं, तो साधुओं की आंतरिक परेशानी कामवासना है; लेकिन साध्वियां मुझे मिलती हैं, तो उनकी आंतरिक परेशानी कामवासना नहीं है। सैकड़ों साध्वियों से मिल कर मुझे हैरानी का ख्याल हुआ कि जो स्त्रियां साधना के जगत में प्रवेश करती हैं, उनकी परेशानी कामवासना नहीं है; लेकिन जो पुरुष साधना के जगत में प्रवेश करते हैं, उनकी परेशानी कामवासना है। असल में, पुरुष की कामवासना इतनी सक्रिय, इतनी क्षणिक है कि प्रतिपल उसे पीड़ित करती है और परेशान करती है। स्त्री की कामवासना इतनी क्षणिक नहीं है, बहुत थिर और बहुत स्थायी है।

यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि सारे पशुओं की कामवासना पीरियाडिकल है, वर्ष के किन्हीं महीनों में पशुओं को कामवासना परेशान करती है; बाकी समय में पशु कामवासना को भूल जाते हैं, जैसे वह थी ही नहीं। सिर्फ मनुष्य अकेला प्राणी है, जिसकी कामवासना चौबीस घंटे और वर्ष भर मौजूद होती है। उसका कोई पीरियड नहीं होता। लेकिन अगर मनुष्य में भी हम स्त्री और पुरुष का ख्याल करें, तो बहुत हैरानी होती है। स्त्री की वासना, मनुष्य में भी, पीरियाडिकल होती है। महीने के सभी दिनों में उसमें कामवासना नहीं होती।

लेकिन पुरुष को सभी दिनों में होती है। अगर स्त्री पर हम छोड़ दें, तो स्त्री फिर भी पीरियाडिकल है। एक क्षण है, तब उसके मन में कामवासना होती है; बाकी उसके मन में कामवासना नहीं होती। और उस क्षण में भी, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर पुरुष स्त्री की कामवासना को न जगाए, तो स्त्री बिना कामवासना के जी सकती है। उसका अस्तित्व ज्यादा थिर है। पुरुष का अस्तित्व ज्यादा बेचैन है।

और इसलिए पुरुष, किसी गहरे अर्थ में, स्त्री के आस-पास ही घूमता रहता है। चाहे वह कितने ही प्रयास करे यह दिखलाने के कि स्त्री उसके आस-पास घूम रही है, पुरुष ही स्त्री के आस-पास घूमता रहता है। वह चाहे बचपन में अपनी मां के पास भटक रहा हो और चाहे युवावस्था में अपनी पत्नी के आस-पास भटक रहा हो; उसका भटकाव स्त्री के आस-पास है। स्त्री के बिना पुरुष एकदम अधूरा है। स्त्री में एक तरह की पूर्णता है। यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं, ताकि स्त्रैण अस्तित्व को समझा जा सके। स्त्रैण अस्तित्व बहुत पूर्ण है, सुडौल है। वर्तुल पूरा है।

लाओत्से कहता है, जितनी ज्यादा पूर्णता हो, उतनी स्थायी होती है। और जितनी ज्यादा अपूर्णता हो, उतनी अस्थायी होती है। इसलिए वह कहता है कि हम जीवन के परम रहस्य को स्त्रैण रहस्य का नाम देते हैं।

मन के संबंध में भी, जैसे शरीर के संबंध में स्त्री और पुरुष के बुनियादी भेद हैं, वैसे ही मन के संबंध में भी हैं। पुरुष के चिंतन का ढंग तर्क है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी होगा, क्योंकि लाओत्से के सारे विचार का आधार इस पर है। पुरुष के सोचने का ढंग तर्क है, उसका मेथड तर्क है। स्त्री के सोचने का ढंग तर्क नहीं है। उसके सोचने का ढंग बहुत इल्लॉजिकल है, बहुत अतार्किक है। उसे हम अंतर्दृष्टि कहें, इंट्यूशन कहें, कोई और नाम दें, लेकिन स्त्री के सोचने के ढंग को तर्क नहीं कहा जा सकता। तर्क की अपनी व्यवस्था है। इसलिए जहां भी पुरुष सोचेगा, वहां गणित, तर्क और नियम होगा। और जहां भी स्त्री सोचेगी, वहां न गणित होगा, न तर्क होगा; सीधे निष्कर्ष होंगे, कनक्लूजंस होंगे। इसलिए स्त्री और पुरुष के बीच बातचीत नहीं हो पाती।

और सभी पुरुषों को यह अनुभव होता है कि स्त्री से बातचीत करनी मुश्किल है, क्योंकि वह इल्लॉजिकल है। जब वह तर्क देता है, तब वह सीधे निष्कर्ष देती है। अभी वह तर्क भी नहीं दे पाया होता है और वह कनक्लूजंस पर पहुंच जाती है। स्त्री-पुरुष के बीच कम्युनिकेशन नहीं हो पाता, संवाद नहीं हो पाता। हर पति को यह ख्याल है कि स्त्री से बात करनी बेकार है; क्योंकि आखिरी निर्णय उसके ही हाथ में हो जाने को है। और वह कितने ही तर्क दे, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि स्त्री तर्क सुनती ही नहीं। इसलिए कई बार पुरुष को बहुत परेशानी भी होती है कि वह बात ठीक कह रहा है, तर्कयुक्त कह रहा है, फिर भी स्त्री उसकी सुनने को राजी नहीं है। उसे क्रोध भी आता है। लेकिन स्त्री के सोचने का ढंग ही तर्क नहीं है। इसमें स्त्री का कोई कसूर नहीं है।

दो तरह से सोची जाती है; जगत में कोई भी बात दो ढंग से सोची जा सकती है। या तो हम एक-एक कदम विधिपूर्वक सोचें और फिर विधि के माध्यम से निष्कर्ष को निकालें। और या हम एकदम से छलांग लें और निष्कर्ष पर पहुंच जाएं; कोई बीच की सीढ़ियां न हों। अंतर्दृष्टि, इंट्यूशन का ढंग सीधी छलांग लेने का है।

हम सब में भी किन्हीं क्षणों में अंतर्दृष्टि होती है। एक आदमी आपको दिखाई पड़ता है, और अचानक आपके मन में निष्कर्ष आ जाता है कि इस आदमी से बच कर रहना ही ठीक है। आपके पास कोई तर्क नहीं होता। आपके पास कोई कारण नहीं होता। अभी इस आदमी से आपका परिचय भी नहीं हुआ है। लेकिन इस आदमी को देखते ही आपकी चेतना एक निष्कर्ष लेती है। यह निष्कर्ष बिल्कुल सडन फ्लैश लाइट, जैसे बिजली कौंध गई हो, ऐसा है।

और अगर अब ठीक से ख्याल करेंगे, तो अक्सर सौ में निन्यानबे मौके पर यह जो बिना विचारा, सीधा निष्कर्ष आपमें कौंध जाता है, सही होता है। जो लोग अंतर्दृष्टि पर काम करते हैं, वे कहते हैं कि अगर अंतर्दृष्टि शुद्ध हो, तो सदा ही सही होती है। तर्क गलत भी हो सकता है; अंतर्दृष्टि गलत नहीं होती।

इसलिए पुरुष की और परेशानी होती है। क्योंकि वह तर्क भी देता है, ठीक बात भी कहता है, लेकिन फिर भी वह अचानक पाता है कि स्त्री बिना तर्क के जो कह रही है, वह भी ठीक है। इससे क्रोध और भारी हो जाता है। जिन लोगों ने भी स्त्री के संबंध में चिंतन किया है और लिखा है, उन सब को एक भारी क्रोध है। और वह क्रोध यह है कि वह न तर्क देती, न वह व्यवस्था से विचार करना जानती; फिर भी वह जो निष्कर्ष लेती है, वे अक्सर सही होते हैं।

उसके निष्कर्ष इंट्यूटिव हैं, उसके पूरे अस्तित्व से निकलते हैं। पुरुष के जो निष्कर्ष हैं, वे उसकी बुद्धि से निकलते हैं, पूरे अस्तित्व से नहीं निकलते। पुरुष सोच कर बोलता है। जो सोच कर बोला जाता है, वह गलत भी हो सकता है। इंट्यूशन को थोड़ा समझ लेंगे, तो ख्याल में आ जाएगा।

जापान में एक साधारण सी चिड़िया होती है, घरों के बाहर, आम गांव में। भूकंप आता है, तो चौबीस घंटे पहले वह चिड़िया गांव को खाली कर देती है। अभी तक वैज्ञानिकों ने भूकंप को पकड़ने के लिए जो यंत्र तैयार किए हैं, वे भी छह मिनट से पहले भूकंप की खबर नहीं देते। और छह मिनट पहले मिली हुई खबर का कोई उपयोग नहीं हो सकता। लेकिन जापान की वह साधारण सी चिड़िया चौबीस घंटे पहले किसी न किसी तरह जान लेती है कि भूकंप आ रहा है। जापान में हजारों साल से उस चिड़िया पर ही अंदाज रखा जाता है। जब वह चिड़िया गांव में नहीं दिखाई पड़ती--और बहुत कामन है, बहुत ज्यादा संख्या में है--जैसे ही गांव में चिड़िया दिखाई नहीं पड़ती, गांव को लोग खाली करना शुरू कर देते हैं। क्योंकि चौबीस घंटे के भीतर भूकंप अनिवार्य है।

लेकिन उस चिड़िया को भूकंप का पता कैसे चलता है? क्योंकि उसके पास कोई तर्क की व्यवस्था नहीं हो सकती। उसके पास कोई गणित नहीं है। और कोई अरिस्टोटल और कोई प्लेटो उसे पढ़ाने के लिए नहीं हैं। कोई विश्वविद्यालय नहीं है, जहां वह तर्कशास्त्र को पढ़ पाए। लेकिन उसे कुछ प्रतीति तो होती है। उस प्रतीति के आधार पर वह व्यवहार करती है। सारे जगत में पशु इंट्यूटिव हैं। पशु बहुत से काम करते हैं, जो बिल्कुल ही इंट्यूशन से चलते हैं, अंतर्दृष्टि से चलते हैं, जिसमें कोई तर्क नहीं होता। लेकिन सारा पशु-जगत अंतर्दृष्टि से काम करता है और ठीक काम करता है। यह अंतर्दृष्टि क्या है? अस्तित्व से हमारा जुड़ा होना। अगर वह चिड़िया अपने आस-पास के सारे वातावरण से एक है, तो उस वातावरण में आते हुए सूक्ष्मतम कंपन भी उसको एहसास होंगे। वह प्रतीति बौद्धिक नहीं है। उसका पूरा अस्तित्व ही उन कंपनों को अनुभव करता है।

जब पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, तो उसका प्रेम भी बौद्धिक होता है। वह उसे भी सोचता-विचारता है। उसके प्रेम में भी गणित होता है। स्त्री जब किसी को प्रेम करती है, तो वह प्रेम बिल्कुल अंधा होता है। उसमें गणित बिल्कुल नहीं होता। इसलिए स्त्री और पुरुष के प्रेम में फर्क पाया जाता है। पुरुष का प्रेम आज होगा, कल खो सकता है। स्त्री का प्रेम खोना बहुत मुश्किल है।

और इसलिए स्त्री-पुरुष के बीच कभी तालमेल नहीं बैठ पाता। क्योंकि आज लगता है प्रेम करने जैसा, कल बुद्धि को लग सकता है न करने जैसा। और आज जो कारण थे, कल नहीं रह जाएंगे। कारण रोज बदल जाएंगे। आज जो स्त्री सुंदर मालूम पड़ती थी, इसलिए प्रेम मालूम पड़ता था; कल निरंतर परिचय के बाद वह सुंदर नहीं मालूम पड़ेगी। क्योंकि सभी तरह का परिचय सौंदर्य को कम कर देता है। अपरिचित में एक आकर्षण

है। लेकिन स्त्री कल भी इतना ही प्रेम करेगी, क्योंकि उसके प्रेम में कोई कारण न था। वह उसके पूरे अस्तित्व की पुकार थी। इसलिए स्त्री बहुत फिक्र नहीं करती कि पुरुष सुंदर है या नहीं। इसलिए पुरुष सौंदर्य की चिंता नहीं करता।

यह जान कर आप हैरान होंगे। हम सबको ख्याल में आता है कि स्त्रियां इतना सौंदर्य की क्यों चिंता करती है? इतने वस्त्रों की, इतनी फैशन की, इतने गहने, इतने जवाहरातों की? तो शायद आप सोचते होंगे, यह कोई स्त्री-चित्त में कोई बात है। बात उलटी है। उलटी बात है; उलटी ऐसी है कि स्त्री-चित्त यह सारा इंतजाम इसीलिए करता है, क्योंकि पुरुष इससे ही प्रभावित होता है। पुरुष का कोई और अस्तित्वगत आकर्षण नहीं है। इसलिए स्त्री को पूरे वक्त इंतजाम करना पड़ता है। और पुरुष एक से ही कपड़े जिंदगी भर पहनता रहता है। उसे चिंता नहीं आती, क्योंकि स्त्री कपड़ों के कारण प्रेम नहीं करती। और पुरुष हीरे-जवाहरात न पहने, तो कोई अंतर नहीं पड़ता है। स्त्री हीरे-जवाहरात देखती ही नहीं। पुरुष सुंदर है या नहीं, इसकी भी स्त्री फिक्र नहीं करती। उसका प्रेम है, तो सब है। और उसका प्रेम नहीं है, तो कुछ भी नहीं है। फिर बाकी चीजें बिल्कुल मूल्य की नहीं हैं।

लेकिन पुरुष के लिए बाकी चीजें बहुत मूल्य की हैं। सच तो यह है कि जिस स्त्री को पुरुष प्रेम करता है, अगर उसका सब आवरण और सब सजावट अलग कर ली जाए, तो नब्बे प्रतिशत स्त्री तो विदा हो जाएगी। और इसलिए अपनी पत्नी को प्रेम करना रोज-रोज कठिन होता चला जाता है, क्योंकि अपनी पत्नी बिना सजावट के दिखाई पड़ने लगती है। नब्बे प्रतिशत तो मेकअप है, वह विदा हो जाता है, जैसे ही हम परिचित होना शुरू होते हैं।

स्त्री ने कोई मांग नहीं की है पुरुष से। उसका पुरुष होना पर्याप्त है। और स्त्री का प्रेम है, तो यह काफी कारण है। उसका प्रेम भी इंट्यूटिव है; इंटलेक्चुअल नहीं है, बौद्धिक नहीं है।

और दूसरी बात, उसके प्रेम के इंट्यूटिव होने के साथ-साथ उसका प्रेम पूरा है। पूरे का अर्थ है, उसके पूरे शरीर से उसका प्रेम जन्मता है। पुरुष के पूरे शरीर से प्रेम नहीं जन्मता; उसका प्रेम बहुत कुछ जेनिटल है। इसलिए जैसे ही पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करता है, प्रेम बहुत जल्दी कामवासना की मांग शुरू कर देता है। स्त्री वर्षों प्रेम कर सकती है बिना कामवासना की मांग किए। सच तो यह है कि जब स्त्री बहुत गहरा प्रेम करती है, तो उस बीच पुरुष की कामवासना की मांग उसको धक्का ही देती है, शॉक ही पहुंचाती है। उसे एकदम ख्याल भी नहीं आता कि इतने गहरे प्रेम में और कामवासना की मांग की जा सकती है!

मैं सैकड़ों स्त्रियों को, उनके निकट, उनकी आंतरिक परेशानियों से परिचित हूं। अब तक मैंने एक स्त्री ऐसी नहीं पाई, जिसकी परेशानी यह न हो कि पुरुष उससे निरंतर कामवासना की मांग किए चले जाते हैं। और हर स्त्री परेशान हो जाती है। क्योंकि जहां उसे प्रेम का आकर्षण होता है, वहां पुरुष को सिर्फ काम का आकर्षण होता है। और पुरुष की जैसे ही काम की तृप्ति हुई, पुरुष स्त्री को भूल जाता है। और स्त्री को निरंतर यह अनुभव होता है कि उसका उपयोग किया गया है--शी हैज बीन यूज्ड। प्रेम नहीं किया गया, उसका उपयोग किया गया है। पुरुष को कुछ उत्तेजना अपनी फेंक देनी है। उसके लिए स्त्री का एक बर्तन की तरह उपयोग किया गया है। और उपयोग के बाद ही स्त्री व्यर्थ मालूम होती है। लेकिन स्त्री का प्रेम गहन है, वह पूरे शरीर से है, रोएं-रोएं से है। वह जेनिटल नहीं है, वह टोटल है।

कोई भी चीज पूर्ण तभी होती है, जब वह बौद्धिक न हो। क्योंकि बुद्धि सिर्फ एक खंड है मनुष्य के व्यक्तित्व का, पूरा नहीं है वह। इसलिए स्त्री असल में अपने बेटे को जिस भांति प्रेम कर पाती है, उस भांति प्रेम

का अनुभव उसे पति के साथ कभी नहीं हो पाता। पुराने ऋषियों ने तो एक बहुत हैरानी की बात कही है। उपनिषद के ऋषियों ने आशीर्वाद दिया है नवविवाहित वधुओं को और कहा है कि तुम अपने पति को इतना प्रेम करना, इतना प्रेम करना, कि अंत में दस तुम्हारे पुत्र हों और ग्यारहवां पुत्र तुम्हारा पति हो जाए।

उपनिषद के ऋषि यह कहते हैं कि स्त्री का पूरा प्रेम उसी दिन होता है, जब वह अपने पति को भी अपने पुत्र की तरह अनुभव करने लगती है। असल में, स्त्री अपने पुत्र को पूरा प्रेम कर पाती है; उसमें कोई फिर बौद्धिकता नहीं होती। और अपने बेटे के पूरे शरीर को प्रेम कर पाती है; उसमें कोई चुनाव नहीं होता। और अपने बेटे से उसे कामवासना का कोई रूप नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए प्रेम उसका परम शुद्ध हो पाता है। जब तक पति भी बेटे की तरह न दिखाई पड़ने लगे, तब तक स्त्री पूर्ण तृप्त नहीं हो पाती है।

लेकिन पुरुष की स्थिति उलटी है। अगर पत्नी उसे मां की तरह दिखाई पड़ने लगे, तो वह दूसरी पत्नी की तलाश पर निकल जाएगा। पुरुष मां नहीं चाहता, पत्नी चाहता है। और भी ठीक से समझें, तो पत्नी भी नहीं चाहता, प्रेयसी चाहता है। क्योंकि पत्नी भी स्थायी हो जाती है। प्रेयसी में एक अस्थायित्व है और बदलने की सुविधा है। पत्नी में वह सुविधा भी खो जाती है।

स्त्री का चित्त समग्र है, इंटिग्रेटेड है। स्त्रियों का नहीं कह रहा हूं। जब भी मैं स्त्री शब्द का उपयोग कर रहा हूं, तो स्त्रैण अस्तित्व की बात कर रहा हूं, लाओत्से जिसे स्त्रैण रहस्य कह रहा है। स्त्रियां ऐसी हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। स्त्रियां ऐसी हों, तो ही स्त्रियां हो पाती हैं। पुरुष भी ऐसा हो जाए, तो जीवन की परम गहराइयों से उसके संबंध स्थापित हो जाते हैं।

अब तक इस जगत में जितने परम ज्ञान की बातों का जन्म हुआ है, वे कोई भी बातें तर्क से पैदा नहीं हुईं; वे सभी बातें अंतर्दृष्टि से पैदा हुई हैं। चाहे आर्किमिडीज अपने टब में बैठ कर स्नान कर रहा हो; और अचानक, बिना किसी कारण के, उसको ख्याल आ गया उस बात का, जो वह खोज रहा था! वह इतना आंदोलित हो उठा खुशी से कि अपने टब से नग्न ही दौड़ता हुआ सड़क पर आ गया और चिल्लाने लगाः यूरेका! यूरेका! मिल गया!

लोगों ने उसे पकड़ा और कहा कि पागल हो गए हो! वह भागा राजमहल की तरफ नग्न ही, क्योंकि राजा ने उसे एक सवाल दिया था हल करने को। वह हल नहीं कर पा रहा था। उसने सारी गणित की कोशिश कर ली थी, वह हल नहीं होता था। लेकिन टब में बैठा हुआ था, विश्राम कर रहा था, तब सोच भी नहीं रहा था; अचानक इंट्यूटिव, जैसे बिजली कौंध गई, सवाल हल हो गया। आर्किमिडीज ने वह सवाल हल नहीं किया। वह सवाल जैसे भीतर से हल होकर उसके सामने आ गया। उसमें कोई तर्क की विधि उपयोग में नहीं लाई गई थी, सोच-विचार नहीं था; सीधे अस्तित्व में ही साक्षात हुआ था।

अब तक विज्ञान की विगत दो हजार वर्षों में जो भी खोज-बीन है, बड़े से बड़े वैज्ञानिक का कहना यही है कि जब मैं शिथिल होता हूं, रिलैक्स्ड होता हूं, तब न मालूम कैसे निष्कर्ष आ जाते हैं। कभी-कभी आपको भी अनुभव होता है। कोई नाम खो गया, स्मरण नहीं आता है। बहुत कोशिश करते हैं, नहीं आता है। फिर छोड़ देते हैं, कुर्सी पर लेट जाते हैं, सिगरेट पीने लगते हैं, अखबार पढ़ने लगते हैं, या रेडियो खोल लेते हैं, या बगीचे में निकल कर जमीन खोदने लगते हैं। और अचानक जैसे भीतर से वह नाम, जो इतनी परेशानी से खोजते थे और याद नहीं आता था, भीतर से आ जाता है। यह बुद्धि का काम नहीं है। बुद्धि ने कोशिश कर ली थी; यह नहीं आ सका था।

अमरीका में एक आदमी था, कायसी। वह बेहोश हो जाता था। और किसी भी मरीज को उसके पास बिठा दिया जाए, तो वह बेहोशी में उसकी बीमारी का निदान कर देता था। न तो वह चिकित्सक था, न उसने

कोई मेडिकल अध्ययन किया था। और होश में वह किसी तरह की बात नहीं कर सकता था दवा या इलाज के बाबत। लेकिन उसने अपने जीवन में चालीस हजार मरीजों का निदान किया, डायग्नोसिस की। बस वह आंख बंद करके ध्यानस्थ हो जाता था। मरीज को बिठा दें, फिर वह बोलना शुरू कर देता था कि इसे क्या बीमारी है। और न केवल यह, वह बोलना शुरू करता था, कौन सी दवा से यह आदमी ठीक होगा। उन दवाओं का उसे होश में पता भी नहीं था। और उसका निदान सदा ही सही निकला। होश में आने पर वह खुद भी कहता था कि मैं नहीं जानता कि इस दवा से फायदा होगा कि नहीं; मैंने इस दवा का नाम कभी सुना नहीं।

कई बार तो ऐसा हुआ कि... एक बार तो उसने एक दवा का नाम एक मरीज के लिए कहा। वह पूरे अमरीका में खोजी गई, वह दवा नहीं मिली। एक वर्ष बाद वह दवा मिल सकी, क्योंकि तब दवा कारखाने में बनाई जा रही थी, अभी बाजार में आई ही नहीं थी। और उसका नाम भी अभी तक तय नहीं हुआ था। और कायसी ने उसका नाम पहले ले दिया था--साल भर पहले। साल भर बाद वह दवा मिली और तभी वह मरीज ठीक हो सका।

एक दवा के लिए सारी दुनिया में खोज की गई, वह कहीं भी नहीं मिल सकी। तब सारे दुनिया के अखबारों में विज्ञापन दिए गए कि इस नाम की दवा दुनिया के किसी भी कोने में उपलब्ध हो, तो एक मरीज बिल्कुल मरणासन्न है और कायसी कहता है, इसी दवा से ठीक हो सकेगा। स्वीडन से एक आदमी ने पत्र लिखा कि ऐसी दवा मौजूद नहीं है, लेकिन मेरे पिता ने छब्बीस साल पहले इस तरह की दवा पेटेंट कराई थी। यद्यपि कभी बनाई नहीं और बाजार में वह कभी गई नहीं; लेकिन फार्मूला मेरे पास है। वह फार्मूला मैं भेज सकता हूं, आप चाहें तो बना लें। वह दवा बनाई गई और वह मरीज ठीक हुआ।

कायसी को जो प्रतीति होती थी, वह इंट्यूटिव है; यह स्त्रैण-चित्त का लक्षण है। सोच-विचार से नहीं, निर्विचार में निष्कर्ष का प्रकट हो जाना! समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इसी दिशा में ले जाती हैं।

लाओत्से कहता है, सोचोगे तो भटक जाओगे। मत सोचो, और निष्कर्ष आ जाएगा। सोचना छोड़ दो और प्रतीक्षा करो, और निष्कर्ष आ जाएगा। तुम सिर्फ प्रतीक्षा करो; प्रश्न तुम्हारे भीतर हो और तुम प्रतीक्षा करो; उत्तर मिल जाएगा। सोचो मत। क्योंकि जब तुम सोचोगे, तुम क्या पा सकोगे? तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है? जैसे कोई एक लहर सोचने लगे जगत की समस्याओं को, क्या सोच पाएगी? अच्छा है कि सागर पर छोड़ दे और प्रतीक्षा करे कि सागर ही उत्तर दे दे।

स्त्रैण-चित्त का लाओत्से से प्रयोजन है, छोड़ दो तुम और अस्तित्व को ही उत्तर देने दो। तुम अपने को बीच में मत लाओ। क्योंकि तुम जो भी लाओगे, उसके गलत होने की संभावना है। अस्तित्व जो देगा, वह गलत नहीं होगा।

लुकमान के संबंध में कहा जाता है कि वह--जैसा मैंने कहा कायसी के बाबत कि वह मरीज के पास बेहोश हो जाता था और दवा बता देता था--लुकमान पौधों के पास जाकर ध्यान लगा कर बैठ जाता था और कह देता था पौधों से कि तुम किस काम में, किस बीमारी के काम में आ सकते हो, वह तुम मुझे बता दो! लुकमान ने कोई एक लाख पौधों के संबंध में वक्तव्य दिया है। कोई बड़ी प्रयोगशाला नहीं थी, जिसमें लुकमान जांच-पड़ताल कर सके।

आयुर्वेद के ग्रंथों को भी जब निर्माण किए गए, तब भी कोई बड़ी प्रयोगशालाएं नहीं थीं कि जिनके माध्यम से इतने बड़े निर्णय लिए जा सकें। लेकिन निर्णय आज भी सही हैं। वे निर्णय इंट्यूटिव हैं। वे निर्णय किसी व्यक्ति के ध्यान में लिए गए निर्णय हैं। सर्पगंधा आयुर्वेद की एक पुरानी जड़ी है। कोई पांच हजार वर्षों से

आयुर्वेद का साधक सर्पगंधा का उपयोग करता रहा है नींद लाने के लिए। अभी पश्चिम को प्रयोगशालाओं में सिद्ध हुआ कि सर्पगंधा से बेहतर नींद लाने के लिए कोई ट्रैंक्वेलाइजर नहीं हो सकता है। अब जो पश्चिम में सर्पेन्टिना नाम से चीज उपलब्ध है, वह सर्पगंधा का ही अर्क है। लेकिन अब तो हमारे पास बहुत सूक्ष्म साधन हैं, जिनसे हम जान सकें। लेकिन जिस दिन सर्पगंधा खोजी गई थी, इतने सूक्ष्म साधन नहीं मालूम पड़ते हैं कि थे। उसकी खोज का रास्ता कुछ और रहा होगा।

वह खोज का रास्ता स्त्रैण-चित्त का ढंग था। और अब जो हम प्रयोगशाला में खोज कर रहे हैं, वह पुरुष-चित्त का ढंग है। लाओत्से ने कहा है कि स्त्रैण-चित्त का अलग विज्ञान होता है और पुरुष-चित्त का अलग विज्ञान होता है। हमारा जो विज्ञान है, आज पश्चिम में जो विज्ञान हमने विकसित किया है, वह पुरुष-चित्त की खोज है। तर्क, काटना-पीटना, डिसेक्शन, तोड़ना-फोड़ना, विश्लेषण, उसकी विधि है। तोड़ो चीजों को, काटो चीजों को, तर्क करो, विचार करो, गणित से हिसाब लगाओ और निष्कर्ष लो!

लेकिन वे निष्कर्ष रोज बदलने पड़ते हैं। विज्ञान का कोई भी निष्कर्ष छह महीने भी टिक जाए तो सौभाग्य की बात है। क्योंकि छह महीने में काटने-पीटने के साधन और बढ़ गए होते हैं। तर्क की नई व्यवस्थाएं आ गई होती हैं। गणित में और सूक्ष्म उतरने के उपाय मिल गए होते हैं। पुराना हिसाब गलत हो जाता है। आज पश्चिम में वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई बड़ी किताब लिखनी कठिन हो गई है। क्योंकि बड़ी किताब जब तक लिखो, तब तक जो तुम उसमें लिख रहे हो, वह गलत हो चुका होता है। तो विज्ञान पर छोटी-छोटी किताबें लिखी जाती हैं! किताब ही बंद हुई जा रही हैं, विज्ञान पर पीरियाडिकल्स होते हैं, मैगजीन्स होती हैं। उनमें अपना वक्तव्य दे दो; तुम्हारा वक्तव्य छप जाए, इसके पहले कि गलत हो जाए! क्योंकि छह महीने प्रतीक्षा, साल भर प्रतीक्षा संभव नहीं है।

लेकिन इंट्यूशन से, अंतर-अनुभूति से जो निष्कर्ष पाए गए हैं, उन्हें हजारों साल में भी बदलने की कोई जरूरत नहीं पड़ी। उपनिषद के सत्य आज भी वैसे ही सत्य हैं। और ऐसी कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती कि कभी भी भविष्य में ऐसा कोई समय होगा, जिस दिन उपनिषद के सत्यों को बदलने की जरूरत पड़ेगी। क्या बात है आखिर? उपनिषद के सत्य में ऐसी क्या बात है कि उसको बदलने की कोई जरूरत नहीं है?

लाओत्से जो कह रहा है, यह कितने ही दूरी पर कल्पना की जाए, तो भी सही रहेगा। इसमें भेद पड़ने वाला नहीं है। तो लाओत्से के पाने की पद्धति जरूर कुछ और रही होगी। क्योंकि हम तो जो भी पाते हैं, वह दूसरे दिन गलत हो जाता है। पुरुष के द्वारा जो भी खोज की जाती है, वह चूंकि तर्क-निर्भर है; वह साक्षात प्रतीति नहीं है, केवल मन का अनुमान है; इसलिए अनुमान तो कल बदलने पड़ेंगे, क्योंकि अनुमान सत्य नहीं होते। इसलिए विज्ञान कहता है कि हम जो भी कहते हैं, वह एप्रॉक्सीमेटली ट्रू, सत्य के करीब-करीब है; सत्य बिल्कुल नहीं है।

अगर आप उपनिषद पढ़ें, तो बहुत और तरह की दुनिया है वहां। लाओत्से को पढ़ें, लाओत्से कोई तर्क नहीं देता। वह कहता है, दि वैली स्पिरिट डाइज नॉट, एवर दि सेम। दिस इ.ज ए मियर स्टेटमेंट, विदाउट एनी रीजनिंग। वह यह नहीं कह रहा है कि क्यों घाटी की आत्मा नहीं मरती है! वह कहता है, घाटी की आत्मा नहीं मरती है, वह हमेशा वैसी ही रहती है। यह तो सीधा वक्तव्य है। इसमें कोई तर्क नहीं है। उसको बताना चाहिए, क्यों नहीं मरती? क्या कारण है? पक्ष में दलीलें दो, गवाह उपस्थित करो। लेकिन लाओत्से कहता है, गवाह केवल वे ही उपस्थित करते हैं, जिन्हें अनुभूति नहीं होती। गवाह की जरूरत नहीं है।

कहते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा चला है। और अदालत में नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी पत्नी ने कैंची उठा कर मेरे चेहरे पर हमला कर दिया और मेरे चेहरे को ऐसा काट डाला, जैसे कोई कपड़े के टुकड़े-टुकड़े कर दे। मजिस्ट्रेट बहुत हैरान हुआ; क्योंकि चेहरे पर कोई निशान ही नहीं मालूम पड़ते! मजिस्ट्रेट ने पूछा, यह कब की बात है? नसरुद्दीन ने कहा, यह कल ही रात की बात है। मजिस्ट्रेट और अचंभे में पड़ा। उसने कहा, नसरुद्दीन, कुछ सोच कर कहो। तुम्हारे चेहरे पर जरा सा भी निशान नहीं है चोट का और तुम कहते हो, कैंची से इसने टुकड़े-टुकड़े कर दिए तुम्हारे चेहरे की चमड़ी के! नसरुद्दीन ने कहा कि चेहरे पर निशान की कोई जरूरत नहीं है। मैं बीस गवाह मौजूद किए हुआ हूं। चेहरे पर निशान की कोई जरूरत ही नहीं है। आई हैव गॉट दि विटनेसेस, ये बीस आदमी खड़े हैं। ये कहते हैं कि जो मैं कहता हूं, ऐसा हुआ है।

असल में, विटनेस को हम खोजने तभी जाते हैं, जब स्वयं पर भरोसा नहीं होता। जब स्वयं पर भरोसा होता है, तो तर्क को भी विटनेस की तरह खड़े करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

उपनिषद के ऋषि कहते हैं, ब्रह्म है। वे यह नहीं कहते, क्यों है। वे यह नहीं कहते कि जो कहते हैं नहीं है, वे गलत कहते हैं। उसके लिए भी कोई दलील नहीं देते। सीधे वक्तव्य हैं कि ब्रह्म है। अगर उपनिषद के ऋषि से आप पूछें कि दलील क्या है? तो वे कहते हैं, कोई दलील नहीं है, हम जानते हैं! और अगर तुम जानना चाहो, तो हम रास्ता बता सकते हैं; दलील हम नहीं बताते। लाओत्से कहता है कि हम रास्ता बता सकते हैं कि वह घाटी की आत्मा अमर है, इसका क्या अर्थ है! वह स्त्रैण रहस्य क्या है, हम तुम्हें उसमें उतार सकते हैं। लेकिन हम कोई दलील नहीं देते; हम कोई तर्क नहीं देते। क्योंकि हम जानते ही हैं।

जिन लोगों ने भी तर्क दिए हैं कि ईश्वर है, उन लोगों को ईश्वर के होने का कोई पता नहीं है। इसलिए जिन लोगों ने ईश्वर के होने के तर्क दिए हैं, उन्होंने केवल नास्तिकों के हाथ मजबूत किए हैं। क्योंकि तर्कों का खंडन किया जा सकता है। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है, जिसका खंडन न किया जा सके। सभी तर्कों का खंडन किया जा सकता है।

नसरुद्दीन अपने बेटे को कह रहा था कि तू यूनिवर्सिटी जा रहा है, तो तर्कशास्त्र जरूर पढ़ लेना। पर उसके बेटे ने कहा कि जरूरत क्या है तर्कशास्त्र को पढ़ने की? तर्कशास्त्र सिखा क्या सकता है? नसरुद्दीन ने कहा, तर्कशास्त्र में बड़ी खूबियां हैं; वह तुझे आत्यंतिक रूप से बेईमान बना सकता है। और अगर बेईमान होना हो, तो तर्क जानना बिल्कुल जरूरी है। ईमानदारी बिना तर्क के हो सकती है; बेईमानी बिना तर्क के नहीं हो सकती है।

उसके बेटे ने कहा, मुझे कुछ समझाएं; क्योंकि मुझे तर्क का कुछ भी पता नहीं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि समझ, एक मकान में किचेन की चिमनी से दो आदमी बाहर निकलते हैं। एक आदमी के कपड़े बिल्कुल शुभ्र, सफेद हैं। उन पर जरा भी दाग नहीं लगा है। और दूसरा आदमी बिल्कुल गंदा हो गया है, काला पड़ गया है। सारे कपड़े और चेहरे पर चिमनी की कालिख लग गई है। मैं तुझसे पूछता हूं कि उन दोनों में से कौन स्नान करेगा?

स्वभावतः, उसके बेटे ने कहा कि जो गंदा और काला हो गया, वह स्नान करेगा। नसरुद्दीन ने कहा, गलत। यही तो तर्क जानने की जरूरत है। क्योंकि जो आदमी गंदा है, उसे अपनी गंदगी नहीं दिखाई पड़ेगी, उसे दूसरे आदमी के सफेद कपड़े पहले दिखाई पड़ेंगे। और जब वह सोचेगा कि दूसरे आदमी के सफेद कपड़े हैं, तो मेरे भी सफेद होंगे। लड़के ने कहा, मैं समझा आपकी बात, मैं समझ गया। जिस आदमी के सफेद कपड़े हैं, वह स्नान पहले करेगा। क्योंकि वह गंदे आदमी को देखेगा; वह सोचेगा, जब यह इतना गंदा हो गया, तो मैं कितना गंदा नहीं हो गया होऊंगा। एक ही चिमनी से दोनों निकले हैं। मैं समझ गया। नसरुद्दीन के बेटे ने कहा, मैं समझ

गया, पिताजी, आपकी बात! पहले वह आदमी स्नान करेगा, जो बिल्कुल सफेद कपड़े पहने हुए है। नसरुद्दीन ने कहा, गलत! उसके बेटे ने कहा, हद हो गई, दोनों बातें गलत! नसरुद्दीन ने कहा, गलत! क्योंकि जो तर्क जानता है, वह यह कहेगा कि जब एक ही चिमनी से दोनों निकले, तो एक सफेद और एक गंदा कैसे निकल सकता है? नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दुनिया में सबको गलत सिद्ध करना हो, तो तर्क जानना जरूरी है।

हां, तर्क से, क्या सही है, यह कभी सिद्ध नहीं होता; लेकिन क्या गलत है, यह सिद्ध किया जा सकता है। तर्क से, क्या गलत है, यह सिद्ध किया जा सकता है; लेकिन तर्क से यह कभी पता नहीं चलता कि क्या सही है। सही का अनुभव करना पड़ता है। और जब सही का तर्क से पता ही नहीं चलता, तो तर्क से जिसे हम गलत सिद्ध करते हैं, वह भी पूरी तरह गलत सिद्ध हो नहीं सकता है। क्योंकि जब हमें सही का पता ही नहीं है, तो वह सिर्फ सिद्ध करने का खेल है।

पश्चिम में जो विज्ञान विकसित हुआ है, वह लॉजिक, तर्क से विकसित हुआ है। अरस्तू उसका पिता है। और जहां तर्क होता है, वहां काट-पीट होती है। क्योंकि तर्क टुकड़ों में तोड़ता है। तर्क की विधि एनालिसिस है, तोड़ो-काटो। इसीलिए विज्ञान की विधि एनालिसिस है, एनालिटिकल है, विश्लेषण करो। इसलिए वे अणु पर पहुंच गए तोड़ते-तोड़ते, आखिरी टुकड़े पर पहुंच गए।

स्त्रैण-चित्त सिंथेटिकल है। वह तोड़ता नहीं, जोड़ता है। वह कहता है, जोड़ते जाओ! और जब जोड़ने को कुछ न बचे तो जो हाथ में आए, वही सत्य है। इसलिए स्त्रैण-चित्त ने जो निर्णय लिए हैं, वे विराट के हैं, अणु के नहीं। उसने कहा, सारा जगत एक ही ब्रह्म है। वैज्ञानिक कहता है, सारा जगत अणुओं का एक ढेर है; और प्रत्येक अणु अलग है, दूसरे अणु से उसका कोई जोड़ नहीं है। जुड़ भी नहीं सकता, चाहे तो भी नहीं जुड़ सकता। दो अणुओं के बीच गहरी खाई है, कोई अणु जुड़ नहीं सकता। सारा जगत, जैसे रेत के टुकड़ों का ढेर लगा हो, ऐसा सारा जगत अणुओं का ढेर है।

जगत अणुओं का ढेर है? या विज्ञान की पद्धति ऐसी है कि अणुओं का ढेर मालूम पड़ता है?

स्त्रैण-चित्त, अनुभूति से चलने वाला व्यक्ति कहता है, जगत में दो ही नहीं हैं। अनेक की तो बात ही अलग; दो भी नहीं हैं, द्वैत भी नहीं है। जगत एक ही विराट है। वह जोड़ कर सोचता है। जोड़ता चला जाता है। जब जोड़ने को कुछ नहीं बचता, और सारा जगत जुड़ जाता है।

स्त्री जोड़ने की भाषा में सोचती है। पुरुष तोड़ने की भाषा में सोचता है--यह पुरुष-चित्त! स्त्री-चित्त जोड़ने की भाषा में सोचता है। और जहां जोड़ना है, वहां नतीजे दूसरे होंगे। और जहां तोड़ना है, वहां नतीजे दूसरे होंगे। ध्यान रहे, जहां तोड़ना है, वहां आक्रमण होगा। इसलिए पश्चिम के वैज्ञानिक कहते हैं, वी आर कांकरिंग नेचर, हम प्रकृति को जीत रहे हैं। लेकिन पूरब में लाओत्से जैसे लोग कभी नहीं कहते कि हम प्रकृति को जीत रहे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, हम प्रकृति के बेटे, हम प्रकृति को जीत कैसे सकेंगे? यह तो मां के ऊपर बलात्कार है!

लाओत्से कहता है, प्रकृति को हम जीत कैसे सकेंगे? यह तो पागलपन है। हम केवल प्रकृति के साथ सहयोगी हो जाएं, हम केवल प्रकृति के कृपापात्र हो जाएं, हमें केवल प्रकृति की ग्रेस और प्रसाद मिल सके, तो पर्याप्त है। प्रकृति का वरदान हमारे ऊपर हो तो काफी है।

इसलिए लाओत्से ने जो बात कही है, उस पर अभी पश्चिम में फिर से पुनर्विचार शुरू हुआ है। पश्चिम में अभी एक अदभुत किताब लिखी गई है, वह पहली किताब है इस तरह की, दि ताओ ऑफ साइंस। और अभी पश्चिम के कुछ वैज्ञानिकों ने यह खबर दी है, जोर से चर्चा चलाई है कि पश्चिम का जो अरिस्टोटेलियन विज्ञान है, अरस्तू के आधार पर बना जो विज्ञान है, उसे हटा देना चाहिए; और हमें लाओत्से के आधार पर नए विज्ञान

की इमारत खड़ी करनी चाहिए। क्यों? क्योंकि यह हारने और जीतने की भाषा हिंसा की भाषा है। और प्रकृति को जीता नहीं जा सकता। और प्रकृति को जीतने की कोशिश वैसा ही पागलपन है, जैसा मेरे हाथ की एक अंगुली मेरे पूरे शरीर को जीतने की कोशिश करे। वह कभी जीत नहीं पाएगी। हां, लड़ने में और परेशान होगी। जीत तो कभी नहीं सकती है। और आदमी बहुत परेशान हो गया है। और जब आदमी प्रकृति से जीतने की भाषा में सोचता है, तो आदमी और आदमी भी लड़ने की भाषा में सोचते हैं, लड़ना उनके चिंतन का ढंग हो जाता है।

लाओत्से के हिसाब से जब तक दुनिया में स्त्रैण-चित्त प्रभावी नहीं होता, तब तक दुनिया से युद्ध समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। और यह बात थोड़ी सच मालूम पड़ती है। स्त्रियां युद्ध में बिल्कुल भी उत्सुक नहीं हैं। कभी नहीं रहीं। अगर पुरुष ने उन्हें समझा-बुझा कर भी युद्ध पर जाते वक्त टीका लगवाने को राजी कर लिया, तो उनकी जो मुस्कुराहट थी टीका लगाते वक्त, वह झूठी थी। और उनकी मुस्कुराहट के पीछे सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं था। और पुरुष को विदा करके सिवाय स्त्रियों ने रोने के और कुछ भी नहीं किया है। क्योंकि युद्ध में कोई भी हारे और कोई भी जीते, स्त्री तो अनिवार्य रूप से हारती ही है। युद्ध में कोई भी जीते, कोई भी हारे, स्त्री तो हारती ही है। युद्ध में कोई भी मरे और कोई भी बचे, स्त्री तो हारती ही है। या उसका बेटा मरता है, या उसका पति मरता है, या उसका प्रेमी मरता है, कोई न कोई उसका मरता है--इधर या उधर, कहीं भी स्त्री अनिवार्य रूप से हारती है। युद्ध पुरुष को भला कितनी ही उत्तेजना ले आता हो, लेकिन स्त्री को जीवन में घातक संघात पहुंचा जाता है। स्त्रियां सदा युद्ध के विपरीत रही हैं। लेकिन स्त्रियों का कोई प्रभाव नहीं है; स्त्रैण-चित्त का कोई प्रभाव नहीं है। और जब तक पुरुष-चित्त प्रभावी है, दुनिया से युद्ध नहीं मिटाए जा सकते। पुरुष के सोचने का ढंग ऐसा है कि अगर उसे युद्ध के खिलाफ भी आंदोलन चलाना हो, तो भी उसका ढंग युद्ध का ही होता है। अगर वह शांति का आंदोलन भी चलाता है, तो भी उसकी मुट्ठियां भिंची होती हैं और डंडे उसके हाथ में होते हैं। वे कहते हैं, शांति लेकर रहेंगे! शांति स्थापित करके रहेंगे! लेकिन उसका जो ढंग है, वह शांति स्थापित करने भी जाए, जुझारू ही बना रहता है।

मुल्ला नसरुद्दीन पर एक और मुकदमा है। दो व्यक्तियों में झगड़ा हो गया और उन दोनों ने एक-दूसरे के सिर तोड़ दिए हैं कुर्सियों से। नसरुद्दीन वहां मौजूद था। उसे गवाह की तरह अदालत में बुलाया गया। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, तुम खड़े देखते रहे, तुम्हें शर्म नहीं आई! ये तुम्हारे दोनों मित्र हैं, तुमने बचाव क्यों न किया? नसरुद्दीन ने कहा, तीसरी कुर्सी ही वहां नहीं थी। दो कुर्सियां थीं, इन दोनों ने ले लीं। अगर तीसरी कुर्सी होती, तो बचाव करके दिखा देता। लेकिन कोई उपाय ही नहीं था। मुझे खड़े रहना पड़ा।

वह जिसको बचाव करना है बीच में, उसके हाथ में भी बंदूक तो चाहिए ही। आदमी बिना बंदूक के सोच नहीं सकता। आप चकित होंगे जान कर, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी ने जो भी अस्त्र-शस्त्र विकसित किए हैं, वे बहुत कुछ उसकी जननेंद्रियों का विकास हैं। चाहे बंदूक हो, चाहे तलवार हो, चाहे छुरी हो; वह दूसरे में भोंक देने का उपाय है। वह सब फैलिक है, वह लैंगिक है--मनुष्य के सारे शस्त्र।

स्त्रियों ने कोई शस्त्र विकसित नहीं किए हैं। लड़ने का ख्याल ही स्त्री के लिए बेमानी है। युद्ध अर्थहीन है। जीतने की बात ही प्रयोजन की नहीं है। स्त्रैण-चित्त असल में जीतने की भाषा में नहीं सोचता, समर्पण की भाषा में सोचता है। इसे ठीक से समझ लें। स्त्री के चित्त का जो केंद्र है, वह समर्पण, सरेंडर है। पुरुष के चित्त का जो केंद्र है, वह संकल्प, संघर्ष, विजय, इस तरह की बातें है। अगर पुरुष ईश्वर को भी पाने जाता है, तो वह ऐसे ही जाता है जैसे आक्रमण कर रहा है। ईश्वर को पाकर रहेगा! उसका जो ढंग होता है। वह सत्य को खोजने भी

निकलता है, तो ऐसे ही जैसे दुश्मन को खोजने निकला है। खोज कर ही रहेगा! वह प्रार्थना नहीं है मन में वहां, वहां कब्जे का सवाल है।

आगे जब हम लाओत्से को समझेंगे, तब हमारे ख्याल में आएगा कि वह कहता है, जो समर्पण कर सकता है, छोड़ सकता है, सरेंडर कर सकता है, वही विराट सत्य को पाने के लिए अपने भीतर जगह बना सकता है। तर्क पुरुष का लक्षण है, संघर्ष उसका लक्षण है। समर्पण और तर्कहीन आस्था, या कहें श्रद्धा, स्त्रैण-चित्त का लक्षण है। वह जो अंतर्दृष्टि है, इंट्यूशन है, वह श्रद्धा के बीच पैदा होती है; भरोसे के, ट्रस्ट के बीच पैदा होती है। अगर पुरुष को श्रद्धा भी करनी पड़े, तो वह करनी पड़ती है, वह उसके लिए सहज नहीं है। वह कहता है कि अच्छा, बिना श्रद्धा के नहीं हो सकेगा, तो मैं श्रद्धा किए लेता हूं। लेकिन की गई श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं है। और जब कोई श्रद्धा करता है, तो भीतर संदेह बना ही रहता है। की गई श्रद्धा का अर्थ ही यह होता है कि संदेह भीतर मौजूद है। गहरे में संदेह होगा, ऊपर श्रद्धा होगी।

नसरुद्दीन अपने बेटे को जीवन की शिक्षा दे रहा है। वह उससे कहता है कि इस ऊपर की सीढ़ी पर चढ़ जा! वह बेटा पूछता है, कारण? क्या जरूरत है? नसरुद्दीन कहता है, ज्यादा बातचीत नहीं, श्रद्धापूर्वक ऊपर चढ़! वह लड़का बेचैनी से ऊपर चढ़ता है। ऊपर जब वह पहुंच जाता है सीढ़ी पर, तो नसरुद्दीन कहता है, ये मेरी बांहें फैली हैं, तू कूद जा! वह कहता है, लेकिन मतलब, जरूरत? नसरुद्दीन कहता है, श्रद्धा रख, घबड़ा मत! मैं तेरा बाप हूं, हाथ फैलाए खड़ा हूं! कूद जा! लड़का कूद जाता है। नसरुद्दीन जगह छोड़ कर खड़ा हो जाता है। लड़का जमीन पर गिरता है; दोनों पैरों में चोट लगती है। वह रोता है। नसरुद्दीन कहता है, देख, जिंदगी के लिए तुझे एक शिक्षा देता हूंः किसी का भरोसा मत करना। अपने बाप का भी मत करना। अगर जिंदगी में जीतना है, भरोसा मत करना। भरोसा किया कि हारा।

पुरुष की सारी शिक्षा यही है। न मालूम कितने रूपों से अपने चारों तरफ वह जो दुनिया बनाता है, वह गैर-भरोसे की दुनिया है। उसमें संघर्ष है। उसमें हर एक दुश्मन है और प्रतियोगी है। स्त्रैण-चित्त के लिए भरोसा बहुत सहज है। लेकिन स्त्री की भी शिक्षा हम पुरुष के द्वारा दिलवाते हैं। और स्त्री को भी जो सूत्र सिखाए जाते हैं, वे पुरुषों की पाठशाला में सिखाए जाते हैं। इसलिए स्त्री को भी पता नहीं कि स्त्रैण-चित्त क्या है।

और इसलिए कई बार जब स्त्री पुरुष की शिक्षा में शिक्षित हो जाती है, तो पुरुष से भी ज्यादा संदेहशील हो जाती है। नया मुसलमान जैसा मस्जिद की तरफ ज्यादा जाता है, वैसे ही स्त्री जो पुरुष की शिक्षा में दीक्षित हो जाती है, वह पुरुष से भी ज्यादा संदेहशील हो जाती है। अन्यथा संदेह स्त्री का स्वभाव नहीं है। सहज स्वीकार उसका स्वभाव है। ऐसा उसे करना नहीं पड़ता, ऐसी उसकी प्रकृति है। ऐसा भरोसे में जीना उसका ढंग ही है, उसके जीवन का ढंग ही है। दि वेरी वे ऑफ लाइफ! उसके खून और उसकी हड्डी और मांस-मज्जा में भरोसा है।

स्त्रैण रहस्य में ये बातें ख्याल रखनी जरूरी हैं कि लाओत्से जिस तरफ इशारा कर रहा है, वह श्रद्धा का जगत है। समर्पण का, संघर्षहीन, प्रकृति के साथ सहयोग का, विरोध का नहीं। प्रकृति के साथ बह जाने का, प्रकृति के साथ संघर्ष का नहीं। नदी में तैरने जैसा नहीं, नदी में बह जाने जैसा है; कि कोई आदमी ने भरोसा कर लिया हो नदी पर और बह गया। तैरता भी नहीं है; किसी किनारे पर पहुंचने की आकांक्षा भी नहीं है। नदी जहां पहुंचा दे, वही मंजिल है। ऐसे भरोसे से भरा हुआ बहा जाता है।

लाओत्से कहता था, जब तक मैंने सत्य को खोजा, तब तक पाया नहीं। जब मैंने खोज बंद कर दी और बहना शुरू कर दिया, उसी दिन मैंने पाया कि सत्य सदा मेरे पास था। मैं खोजने में अटका था; इसलिए दिखाई

नहीं पड़ता था। लाओत्से कहता था, मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया। हवा जहां ले जाती, वहीं जाने लगा। बस उसी दिन से मेरे अहंकार को कोई जगह न रही। उसी दिन से मैंने जान लिया, परम सत्य क्या है। उस दिन के बाद कोई अशांति नहीं है। सब अशांति खोजने की अशांति है। सब अशांति कहीं पहुंचने की अशांति है। सब अशांति कुछ होने की अशांति है। श्रद्धावान, जो है, उससे राजी है; जहां है, उससे राजी है; जैसा है, उससे राजी है।

ऐसा नहीं कि उसकी यात्रा नहीं होती, यात्रा उसकी भी होती है। लेकिन वह यात्रा सारे अस्तित्व के साथ है, अस्तित्व के विरोध में नहीं है। नदी में बहता हुआ तिनका भी सागर पहुंच जाता है। जरूरी नहीं है कि नाव लेकर ही नदी में सागर की तरफ यात्रा की जाए। वह बहता हुआ तिनका भी सागर पहुंच जाता है। लेकिन नदी पहुंचाती है उसे, वह खुद नहीं पहुंचता। और पहुंचने की व्यर्थ झंझट से बच जाता है।

लाओत्से कहता है, यदि हम छोड़ सकें अपने को, जैसा स्त्री छोड़ देती है प्रेम में, ऐसा ही अगर हम जगत अस्तित्व के प्रति, परमात्मा के प्रति, ताओ के प्रति अपने को छोड़ दें, जैसे हम उसके आलिंगन में छूट गए हों, तो हम जीवन के सत्य के निकट सरलता से पहुंच जा सकते हैं।

एक-दो बातें और। जैसा मैंने कहा, पुरुष की बुद्धि और स्त्री की बुद्धि में फर्क है; ऐसे ही पुरुष के जीने का जो डायमेंशन है, वह टाइम है, समय है। पुरुष समय में जीता है। दो डायमेंशन हैं अस्तित्व केः एक टाइम और एक स्पेस; स्थान और काल। पुरुष काल में जीता है। वह पीछे का हिसाब रखता है, आगे का हिसाब रखता है। समय में उसकी दौड़ चलती रहती है। घड़ी के कांटे की तरह जीता है। जैसा मैंने कहा कि पश्चिम में विज्ञान जिस दिन से सफल हुआ, उसी दिन से घड़ी सफल हुई। पूरब में घड़ी नहीं बन सकी। नहीं बनने का कारण था; क्योंकि पूरब ने कभी पुरुष के चित्त के ढंग से सोचा नहीं। पूरब ने कभी समय का हिसाब नहीं रखा।

हमारे पास कोई तारीख नहीं है, राम कब पैदा हुए, कब मरे। कृष्ण कब जनमे, कब मरे, हमारे पास कोई तारीख नहीं है, कोई हिसाब नहीं है। लाओत्से कब पैदा होता है, कब मरता है, कोई हिसाब नहीं है। यह भी पक्का करना मुश्किल होता है कि कौन पहले हुआ, कौन पीछे हुआ। हमने कोई टाइम क्रॉनिकल हिसाब नहीं रखा कभी। असल में, समय का जो बोध है, टाइम कांशसनेस है, वह पूरब को नहीं रही कभी। कोई बोध ही नहीं रहा समय का। क्यों? क्योंकि समय के बोध के लिए पुरुष-चित्त चाहिए। समय का बोध बढ़ता है तनाव के साथ। जितना तनाव बढ़ता है, समय का बोध बढ़ता है। तो जितनी एंग्जायटी बढ़ती है, उतनी टाइम कांशसनेस बढ़ती है।

पश्चिम में आज टाइम कांशसनेस इतनी ज्यादा है, एक सेकेंड का हिसाब है। और वह हिसाब कई दफे बिल्कुल पागलपन में ले जाता है। एक आदमी जाएगा भागा हुआ हवाई जहाज से इसलिए कि घंटा भर बच जाए। घंटा बच जाएगा; लेकिन उसने कभी यह सोचा ही नहीं, उस घंटे को बचा कर करना क्या है! उस घंटे को वह दूसरे घंटे बचाने में उपयोग में लाएगा। और उन घंटों को और घंटे बचाने में उपयोग में लाएगा। और आखिर में मर जाएगा बचाते-बचाते, उपयोग उनका कभी भी नहीं कर पाएगा। क्योंकि उपयोग करने के लिए तनाव नहीं चाहिए। और समय में तनाव है, तीव्र तनाव है। कल बहुत महत्वपूर्ण है; आज महत्वपूर्ण नहीं है।

स्त्रियों के लिए आज बहुत महत्वपूर्ण है--अभी और यहीं। इसलिए बहुत मजे की बात है कि स्त्रियां उन चीजों में ज्यादा रस लेती हैं जो अभी और यहीं घटित होती हैं। आप जान कर हैरान होंगे कि स्त्रियों को कोई लंबी फिक्र नहीं होती। कोई स्त्री इसकी फिक्र नहीं करती कि सन दो हजार में क्या होगा। कोई फिक्र नहीं करती।

कोई स्त्री चिंता नहीं करती कि तीसरा महायुद्ध होगा कि नहीं होगा, कि वियतनाम में क्या होगा, कि बंगाल में क्या होगा। इसकी चिंता नहीं करती। टाइम के लिए उसके मन में कोई जगह नहीं है बहुत।

दूर की भी चिंता नहीं करती कि चीन में क्या हो रहा है, और पेकिंग में क्या हो रहा है, और वाशिंगटन में क्या हो रहा है। पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, यह स्त्री के लिए महत्वपूर्ण है। वाशिंगटन में क्या हो रहा है, यह बिल्कुल बेकार बात है। हो रहा होगा! लेकिन पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, वह दीवार में कान लगा कर सुन रही है। इमीजिएट कांशसनेस है। दूर से मतलब नहीं है--अभी और यहां! क्षुद्र सी कोई बात हो रही होगी। क्योंकि जो वाशिंगटन में हो रहा, वह तो पड़ोसी के घर में नहीं हो रहा होगा। वियतनाम में जो हो रहा, वह तो पड़ोसी के घर में नहीं हो रहा होगा। पति-पत्नी की कोई कलह हो रही होगी, कुछ मां बेटे को डांट रही होगी, कुछ हो रहा होगा, क्षुद्र होगा। लेकिन वह निकट है--अभी। स्त्री के लिए क्षुद्रतम भी मूल्यवान है, अगर वह अभी है। और पुरुष के लिए बहुमूल्य से बहुमूल्य भी मूल्यवान नहीं है, अगर वह अभी है। वह दूर हो जितना, उतना उसके चित्त को फैलाव का मौका मिलता है। असल में, जितना दूर हो, उतना ही चिंतन की सुविधा है। जितना निकट हो, चिंतन की कोई जरूरत नहीं है। जितना पास हो, तो सोचना क्या है? जितना दूर हो, उतना सोचने के लिए उपाय है, तर्क के लिए उपाय है, योजनाएं बनाने के लिए उपाय है।

तो पुरुष दूर में बहुत उत्सुक है, दि डिस्टेंट। स्त्री निकट में बहुत उत्सुक है। और निकट में उत्सुक होना, सत्य की खोज के लिए, दूर में उत्सुक होने से ज्यादा मूल्यवान है। यह नहीं कह रहा हूं कि पड़ोसी के घर में क्या हो रहा है, इसमें उत्सुक बने रहें। निकट की उत्सुकता मूल्यवान है; क्योंकि निकट ही है जीवन। दूर तो सिवाय सपनों के और कल्पनाओं के कुछ भी नहीं है। निकट ही है जीवन। जितना निकट अस्तित्व की प्रतीति हो, उतनी ताजी और जिंदा होगी। दूर सब बासा और पुराना पड़ जाता है। धूल रह जाती है या भविष्य की कल्पनाएं और सपने रह जाते हैं।

पुरुष समय में जीता है। स्त्री स्थान में, स्पेस में जीती है। यह संयोग आपको ख्याल में शायद न आया हो कि घर पुरुष ने नहीं बनाया, स्त्री ने बनाया। अगर पुरुष का वश चले, तो घर को कभी न बनने दे। क्योंकि घर के साथ पुरुष सदा ही बंधा हुआ अनुभव करता है निकट से। दूर की यात्रा कमजोर हो जाती है। पुरुष जन्मजात खानाबदोश है, आवारा है। जितना दूर भटक सके! इसलिए पुरुष के मन में भटकने की बड़ी तीव्र आकांक्षा है।

अब स्त्रियों की समझ में नहीं आता कि चांद पर जाकर क्या करिएगा! न वहां कोई शॉपिंग सेंटर है; शॉपिंग भी नहीं की जा सकती, चांद पर जा किसलिए रहे हैं? क्या आपको पता है कि आज अमरीका में जो एस्ट्रोनॉट्स हैं, अंतरिक्ष यात्री हैं, वे सर्वाधिक प्रतिष्ठित लोग हैं; लेकिन आपको पता भी नहीं होगा, ख्याल में भी नहीं आया होगा कि एस्ट्रोनॉट्स की पत्नियों का डायवोर्स रेट डबल है आम नागरिक से अमरीका में। आम नागरिक जितना डायवोर्स करता है, उससे दुगुना डायवोर्स एस्ट्रोनॉट्स की पत्नियां कर रही हैं। क्यों? क्योंकि जो इतने दूर में उत्सुक हैं, वे पत्नियों में उत्सुक नहीं रह जाते। जिनकी उत्सुकता चांद में है... ।

पत्नी को अखबार तक से पीड़ा होती है कि तुम अखबार पढ़ रहे हो उसकी मौजूदगी में! दूर चले गए। पत्नियां किताबों की दुश्मन हो जाती हैं। पत्नियां खेलों की दुश्मन हो जाती हैं कि पति ने उठाया बल्ला और चल पड़ा मैदान की तरफ! भारी पीड़ा होती है। निकट पत्नी मौजूद है और वह दूर। लेकिन चांद पर कोई चला जा रहा है! स्त्री उसमें उत्सुक नहीं रह जाएगी। और लौट कर वह आएगा भी, तो भी वह स्त्री में बहुत उत्सुक नहीं दिखाई देगा। इतने बड़ी दूर की उसने उत्सुकता पैदा कर ली है कि इतने निकट उसकी उत्सुकता नहीं होगी।

पुरुष सदा यात्रा पर है। घर स्त्रियों ने बनाए। इसलिए घरवाली वही कहलाती है, चाहे पैसा आप खर्च करते हों; उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। घर की मालकिन वही है। घर उसने बनाया; खूंटी उसने गाड़ी। आप सिर्फ उसमें बंधे हुए अनुभव करते हैं।

मैं अभी एक व्यक्ति का आत्म-चरित पढ़ता हूं। उसने लिखा है कि मेरी बड़ी मुसीबत है। मैं तय नहीं कर पाता था, विवाह करूं या न करूं। क्योंकि विवाह करूं, तो बंध जाता हूं; फिर वहां से हिल नहीं सकता। विवाह न करूं, तो यात्रा जारी रह सकती है; लेकिन फिर ठहरने का कहीं उपाय नहीं, फिर कहीं विश्राम की कोई सुविधा नहीं।

पुरुष का बस चले तो भटकता रहे, भटकता रहे। जो खानाबदोश कौमें होती हैं, उस तरह भटकता रहे। इसलिए आपने कभी ख्याल किया कि खानाबदोश कौमों की जो स्त्रियां हैं, वे करीब-करीब पुरुषों से भी ज्यादा पुरुष हो जाती हैं। बलूची स्त्रियों पर आपने ख्याल किया? क्योंकि उनको पुरुष के साथ भटकना पड़ता है। और भटकने की जो अनिवार्यता है, उन पर भी फलित हो जाती है। क्योंकि स्त्री का स्वभाव भटकना नहीं है। अगर वह भटकेगी, तो उसको पुरुष जैसा स्वभाव निर्मित करना पड़ेगा। इसलिए बलूची स्त्री पुरुष से भी ज्यादा पुरुष हो जाती है। वह छुरा भोंक सकती है आपकी छाती में। उससे छेड़छाड़ नहीं कर सकते हैं आप। वह आपका हाथ पकड़ ले, तो छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा।

अगर बलूची की स्त्री पुरुष जैसी हो जाती है, तो हमारा पुरुष स्त्री जैसा हो जाता है, यह ख्याल रखना। क्योंकि घर में बंधा-बंधा उसको स्त्री के गुण के साथ जीना पड़ता है। इसलिए सर्वाधिक क्रोध उसे स्त्री पर आता है, क्योंकि वह उसकी जंजीर बन गई मालूम पड़ती है। यह प्रणय-बंधन में लोग बंधते हैं, वह शब्द बहुत अच्छा है। लोग निमंत्रण-पत्रिकाएं छपवाते हैं कि मेरे पुत्र और पुत्री विवाह-बंधन में बंधने जा रहे हैं। बिल्कुल ठीक जा रहे हैं! विवाह बंधन ही है पुरुष के लिए। वह वहां बंध कर, जड़ें जमा कर बैठ जाता है। वहीं से उसकी कुंठा शुरू हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन को सुबह-सुबह घर के बाहर निकलते ही डाक्टर मिल गया। और डाक्टर ने पूछा नसरुद्दीन से कि नसरुद्दीन, पत्नी की तबीयत अब कैसी है? नींद आई?

नसरुद्दीन ने कहा, क्या गजब की दवा दी आपने! बहुत अच्छी नींद आई और बड़ी तबीयत ठीक है।

डाक्टर ने पूछा, और कुछ तो नहीं पूछना?

नसरुद्दीन ने कहा, यही पूछना है कि नींद कब खुलेगी? क्योंकि पांच दिन हो गए हैं; बड़ी शांति है, और बड़ी स्वतंत्रता है, पत्नी बिल्कुल सो रही है।

डाक्टर ने कहा, पांच दिन हो गए हैं! पागल, तूने खबर क्यों न की? क्या दवा ज्यादा दे दी?

नसरुद्दीन ने कहा, ज्यादा बिल्कुल नहीं दी। आपने कहा था, चवन्नी पर रख कर देना। घर में चवन्नी न थी, चार इकन्नियां थीं; उन पर रख कर दे दी। बड़ी शांति है, और बड़ी स्वतंत्रता है। कहीं आओ-जाओ, सब सन्नाटा है। विवाह के बाद ऐसी शांति और स्वतंत्रता मैंने नहीं जानी। पत्नी सो रही है।

पुरुष को लगता है बंधा होना। और वहां से भागे तो अशांति पैदा होती है, न भागे तो बंधा हुआ मालूम पड़ता है। पुरुष का चित्त दूर में उत्सुक है। और ऐसा नहीं कि वह वहां पहुंच जाएगा तो फिर और दूर में उत्सुक नहीं होगा। वहां पहुंच कर तत्काल और दूर में उत्सुक हो जाएगा। चांद पर हम उतरे भी नहीं थे कि हमारे वैज्ञानिकों ने मंगल पर उतरने की योजनाएं बनानी शुरू कर दीं। चांद बेकार हो गया। जैसे यह बात पूरी हो गई कि चांद पर उतर गए, बात समाप्त हो गई। अब मंगल पर उतरना जरूरी है--बिना यह पूछे कि क्यों?

लाओत्से या उपनिषद के लोग, भारत में या पूरब के मुल्कों में, बिल्कुल ही टाइम कांशसनेस से मुक्त थे। उन्हें समय की कोई धारणा न थी। न दूर की कोई धारणा थी। लाओत्से ने कहा है कि मेरे गांव के पार, सुना है मैंने अपने बुजुर्गों से कि नदी के उस तरफ गांव था। कुत्तों की आवाज सुनाई पड़ती थी कभी रात के सन्नाटे में। कभी सांझ को उस गांव के मकानों पर उठता हुआ धुआं भी हमें दिखाई पड़ता था। लेकिन हमारे गांव में से कभी कोई उत्सुक नहीं हुआ जाकर देखने को कि उस तरफ कौन रहता है।

एक कैथोलिक संन्यासी का जीवन मैं पढ़ता था। ट्रैपिस्ट, ईसाइयों का एक संप्रदाय है संन्यासियों का। शायद दुनिया में सबसे ज्यादा कठोर संन्यास की व्यवस्था ट्रैपिस्ट संन्यासियों की है। एक नया संन्यासी दीक्षित हुआ। ट्रैपिस्ट मोनास्ट्री में, उनके आश्रम में आदमी प्रवेश करता है, तो आमतौर से जीवन भर बाहर नहीं निकलता; जब तक गुरु उसे बाहर ही न निकाल दे। दरवाजा बंद होता है, तो अक्सर सदा के लिए बंद हो जाता है। और आदमी मर जाता है तभी बाहर निकलता है।

एक नया संन्यासी दीक्षित हुआ। गुरु ने उससे कहा कि यह दरवाजा सदा के लिए बंद हो रहा है। उसको कोठरी दे दी गई। और ट्रैपिस्ट उस मोनास्ट्री का नियम यह था कि संन्यासी सात साल में एक ही बार बोल सकते हैं। इसको कोठरी दे दी गई। इसको साधना के नियम बता दिए गए। फिर सात साल तक बात समाप्त हो गई।

सात साल बाद वह संन्यासी अपने गुरु के पास आया और उसने कहा, और सब तो ठीक है; लेकिन जो कोठरी आपने दी है, उसका कांच टूटा हुआ है। और सात साल में मैं एक दिन नहीं सो पाया। वर्षा अंदर चली आती है, कीड़े-मकोड़े अंदर घुस जाते हैं, मच्छर अंदर आ जाते हैं। पर सात साल में एक ही दफे की आज्ञा थी; इसलिए निवेदन करता हूं, वह कांच ठीक कर दिया जाए। गुरु ने कहा, ठीक! वह कांच ठीक करने लोग भेज दिए गए।

सात साल बाद फिर--यानी चौदह साल बाद--वह संन्यासी गुरु के चरणों में आया और उसने कहा, और सब तो ठीक है, कांच तो आपने ठीक करवा दिया; लेकिन सात साल की वर्षा की वजह से, जो चटाई मुझे आपने सोने को दी थी, वह अकड़ कर बिल्कुल लक्कड़ हो गई है। सात साल से सो नहीं पाया। तो कृपा करके वह चटाई बदलवा दें। गुरु ने कहा, ठीक है! वह फिर चला गया।

फिर सात साल बाद, यानी इक्कीस साल बाद वह वापस आया। गुरु ने उससे पूछा कि सब ठीक है? उसने कहा, और सब तो ठीक है; लेकिन वह चटाई बदलने जो लोग भेजे थे आपने, जब वे पुरानी उस सूख गई चटाई को लेकर निकलने लगे, तो वह कांच फिर टूट गया। सात साल से सो नहीं पाया। पानी अंदर आ रहा है। गुरु ने कहा कि निकल, तू दरवाजे के बाहर हो जा! इक्कीस साल में सिवाय शिकायत के तूने कुछ भी नहीं किया। दरवाजे से बाहर! ऐसे आदमी को हम संन्यास नहीं देते। इक्कीस साल में सिवाय शिकायतों के तेरा कोई काम ही नहीं।

ये एक दूसरी दुनिया के लोग हैं! इक्कीस मिनट सहना हमें मुश्किल हो जाता, इक्कीस साल तो बहुत बड़ी बात है। सात साल में बेचारा एक शिकायत लेकर आता है; वह भी कहता है गुरु बहुत ज्यादा है। सात साल वह प्रतीक्षा करता रहता है कि ठीक सात साल बाद दिन आएगा। टाइम कांशसनेस बिल्कुल नहीं होगी। नहीं तो सात मिनट मुश्किल हो जाते।

समय की चेतना बढ़ती है पुरुष-चित्त के साथ; स्त्रियों को समय की कोई धारणा नहीं है। इसलिए रोज आप हर घर के सामने झगड़ा देखते हैं। वह झगड़ा स्त्रैण और पुरुष चित्त का है। पुरुष बजा रहा है हॉर्न दरवाजे

पर खड़ा हुआ और पत्नी अपनी सजावट किए चली जा रही है। गाड़ी चूक गए हैं, या फिल्म में पहुंचे देर से हैं, हॉल बंद हो गया! और वह पति चिल्ला रहा है कि इतनी देर लगाने की क्या जरूरत थी? असल में, स्त्री को टाइम कांशसनेस नहीं है। उसमें कसूर नहीं है। यह कोई फर्क ही नहीं पड़ता। आधा घंटे, घंटे से क्या फर्क पड़ता है? ऐसा क्यों परेशान हो रहे हो? काहे के लिए हॉर्न बजाए जा रहे हो?

मैंने सुना है, एक स्त्री की सड़क पर कार रुक गई है और वह उसे स्टार्ट नहीं कर पा रही है। पीछे का आदमी आकर हॉर्न बजा रहा है। तो वह स्त्री बाहर निकली, उसने उस आदमी से जाकर कहा, महानुभाव, गाड़ी मेरी स्टार्ट नहीं होती; आप जरा स्टार्ट करिए; हॉर्न बजाने का काम मैं किए देती हूं।

जल्दबाजी नहीं है; व्यक्तित्व में नहीं है।

लाओत्से कहता है, स्त्रैण-चित्त का यह जो रहस्य है--यह गैर-जल्दबाजी, अधैर्य बिल्कुल नहीं, समय का बिल्कुल बोध नहीं--ये सत्य की दिशा में बड़े सहयोगी कदम हैं। ध्यान इतना ही रखना कि जब भी मैं स्त्रैण-चित्त की बात कर रहा हूं, तो स्त्रैण-चित्त की बात कर रहा हूं, स्त्री की नहीं। स्त्रैण-चित्त पुरुष के पास हो सकता है। जैसे बुद्ध जैसे आदमी के पास स्त्रैण-चित्त है; समय का कोई बोध नहीं है।

बुद्ध जब मरे, चालीस साल हो चुके थे उन्हें ज्ञान उपलब्ध हुए। किसी ने उनसे मरने के दिन कहा है कि अपरंपार थी तुम्हारी कृपा, अनुकंपा तुम्हारी अपार थी! तुम्हें जीने की कोई भी जरूरत न थी ज्ञान हो जाने के बाद। तुम दीए की तरह बुझ जा सकते थे अनंत में, निर्वाण को उपलब्ध हो सकते थे। हम पर कृपा करके तुम चालीस साल जीए! बुद्ध ने कहा, चालीस साल? आनंद, पास में बैठे भिक्षु से कहा, क्या इतना समय व्यतीत हो गया? समय का कोई बोध नहीं है। चालीस साल? बुद्ध ने कहा, क्या इतना समय व्यतीत हो गया मुझे ज्ञान उपलब्ध हुए? कोई हिसाब नहीं है।

स्पेस में जीती है स्त्री। उसका चित्त जो है, वह स्थान में जीता है। स्थान अभी और यहीं फैला हुआ है। समय भविष्य और अतीत में फैला हुआ है। स्थान वर्तमान में फैला हुआ है, अभी और यहीं! इसलिए स्थान का स्त्री को बहुत बोध है। और स्त्री ने जो कुछ भी थोड़ा-बहुत काम किया है, वह सब स्थान में है। चाहे वह घर बनाए, चाहे फर्नीचर सजाए, चाहे कमरे की सजावट करे, चाहे शरीर पर कपड़ा डाले, चाहे गहने पहने--यह सब स्पेसियल है, यह सब स्थान में है। इनका रूप-आकार स्थान में है। समय में इनकी कोई स्थिति नहीं है।

पुरुष इन बातों में बहुत रस नहीं ले पाता। ये उसे ट्रिवियल, क्षुद्र बातें मालूम पड़ती हैं। उसका रस समय में है। वह सोचता है, कम्युनिज्म कैसे आए! अब मार्क्स सौ साल पहले बैठ कर ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में अपना पूरा जीवन नष्ट कर देता है--इस ख्याल में कि कभी कम्युनिज्म कैसे आए! मार्क्स उसे देखने को नहीं बचेगा। कोई कारण नहीं है उसके बचने का। लेकिन वह योजना बनाता है कि कम्युनिज्म कैसे आए! कोई और लाएगा, कोई और देखेगा; आएगा, नहीं आएगा; इससे मतलब नहीं है। लेकिन मार्क्स इतनी मेहनत करता है, कोई स्त्री नहीं कर सकती।

मार्क्स ब्रिटिश म्यूजियम से तब हटता था, जब बेहोश हो जाता था पढ़ते-पढ़ते और लिखते-लिखते। अक्सर उसे बेहोश घर ले जाया गया है। और उसकी पत्नी हैरान होती थी कि तुम पागल हो! तुम कर क्या रहे हो? इसे लिख कर होगा क्या? उसकी किताब भी कोई छापने को तैयार नहीं था। स्त्री सोच ही नहीं सकती थी, इससे फायदा क्या है! यह किताब बिक भी नहीं सकती। उलटे मंहगा पड़ रहा था। मार्क्स ने कैपिटल लिखी, तो जितने में उसकी किताब बिकी, उससे ज्यादा की तो वह सिगरेट पी चुका था उसे लिखने में। तो मंहगा पड़ रहा था। और बेहोश घर उठा कर लाया जाता। लाइब्रेरी से धक्के देकर निकाला जाता; क्योंकि लाइब्रेरी बंद हो गई

और वह हटता ही नहीं है, वह अपनी कुर्सी पकड़े हुए बैठा है। चपरासी कह रहे हैं, हटिए! और वह कह रहा है, थोड़ा और लिख लेने दो।

यह किसलिए? यह भविष्य की कोई कल्पना है कि कहीं किसी दिन साम्यवाद आएगा! इसमें कोई स्पेसियल बोध नहीं है, स्थान का कोई बोध नहीं है। कोई स्त्री यह नहीं कर सकती। अभी और यहीं! यहीं कुछ हो सकता हो, तो! उसके अंतर में ही समय की प्रतीति नहीं है।

लाओत्से मानता है कि समय की प्रतीति खो जाए, तो आप स्त्रैण-चित्त के हो जाएंगे।

इसलिए दुनिया के समस्त साधकों ने यह कहा है कि जब समय मिट जाएगा, तभी ध्यान उपलब्ध होगा। व्हेन देयर इ.ज नो टाइम। जीसस से किसी ने पूछा है कि तुम्हारे स्वर्ग में खास बात क्या होगी? तो उन्होंने कहा, देयर शैल बी टाइम नो लांगर। खास बात जीसस ने बताई कि वहां समय नहीं होगा। समय होगा ही नहीं। और सब कुछ होगा, समय नहीं होगा। क्योंकि समय के साथ ही चिंताएं आती हैं। समय के साथ ही दौड़ आती है। समय के साथ ही वासना आती है। समय के साथ ही इच्छा का जन्म होता है। समय के साथ ही फल की आकांक्षा पैदा होती है। समय के साथ ही यहां नहीं, कहीं और हमारे सुख का साम्राज्य निर्मित हो जाता है।

इसलिए स्त्रैण-चित्त के ये गुण भी ख्याल में रखेंगे, तो अगले सूत्र को कल समझना हमें आसान हो सकेगा।

आज इतना ही। कीर्तन में पांच मिनट सम्मिलित हों। जो लोग वहां कीर्तन में सम्मिलित होना चाहें, भयभीत न हों। पास-पड़ोस के लोगों को भूल जाएं और कीर्तन में डूबें।

बीसवां प्रवचन

धन्य हैं वे जो अंतिम होने को राजी हैं

Chapter 7 : Sutra 1 & 2

Living For Others

1. Heaven is long enduring and Earth continues long.
The reason why heaven and earth are
able to endure and continue thus long is:
Because they do not live of, or for, themselves.
This is how they are able to continue and endure.

2. Therefore the sage puts his person last and
yet it is found in the foremost place; He treats
his person as if it were foreign to him and yet
that person is preserved.
Is it not because he has no private and
personal ends; that therefore such ends
are realized.

अध्याय 7 : सूत्र 1 व 2

सर्व-मंगल हेतु जीना

1. स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं।
इनकी नित्यता का कारण है
कि ये स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त नहीं जीते;
इसलिए इनका सातत्य संभव होता है।
2. इसलिए तत्वविद (संत) अपने व्यक्तित्व
को पीछे रखते हैं;
फिर भी वे सबसे आगे पाए जाते हैं।
वे निज की सत्ता की उपेक्षा करते हैं,

फिर भी उनकी सत्ता सुरक्षित रहती है।

चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता,

इसलिए उनके लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

जीवन दो प्रकार का हो सकता है। एक, इस भांति जीना, जैसे मैं ही सारे जगत का केंद्र हूं। इस भांति, जैसे सारा जगत मेरे निमित्त ही बनाया गया है। इस भांति कि जैसे मैं परमात्मा हूं और सारा जगत मेरा सेवक है। एक जीने का ढंग यह है। एक जीने का ढंग इससे बिल्कुल विपरीत है। ऐसे जीना, जैसे मैं कभी भी जगत का केंद्र नहीं हूं, जगत की परिधि हूं। ऐसे जीना, जैसे जगत परमात्मा है और मैं केवल उसका एक सेवक हूं।

ये दो ढंग के जीवन ही अधार्मिक और धार्मिक आदमी का फर्क हैं। अधार्मिक आदमी स्वयं को परमात्मा मान कर जीता है, सारे जगत को सेवक। और जैसे सारा जगत उसके लिए ही बनाया गया है, उसके शोषण के लिए ही। और धार्मिक आदमी इससे प्रतिकूल जीता है; जैसे वह है ही नहीं। जगत है, वह नहीं है।

इन दोनों तरह के जीवन का अलग-अलग परिणाम होगा।

लाओत्से कहता है, स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं, शाश्वत। बहुत लंबी उनकी आयु है। क्या है कारण उनके इतने लंबे होने का? उनके नित्य होने का क्या कारण है? क्योंकि वे स्वयं के लिए नहीं जीते हैं!

जो जितना ही स्वयं के लिए जीएगा; उतना ही उसका जीवन तनावग्रस्त, चिंता से भरा हुआ, बेचैन और परेशानी का जीवन हो जाएगा। जो जितना ही अपने लिए जीएगा, उतनी ही परेशानी में जीएगा, उतनी ही जल्दी उसका जीवन क्षीण हो जाता है। चिंता जीवन को क्षीण कर जाती है। जो जितना ही अपने लिए कम जीएगा, उतना ही मुक्त, उतना ही निर्भार, उतना ही तनाव से शून्य, उतना ही विश्राम को उपलब्ध जीएगा।

कुछ बातें हम समझें तो ख्याल में आ सके।

मां के पेट में बच्चा होता है, तो नौ महीने तक सोया रहता है। पैदा होता है, तो फिर तेईस घंटे सोता है; एक घंटा जागता है। फिर बाईस घंटे सोता है; दो घंटे जागता है। फिर बीस घंटे सोता है। फिर धीरे-धीरे उसकी नींद कम होती जाती है और जागरण बड़ा होता जाता है। मध्य वय में आठ घंटे सोता है। फिर छह घंटे सोता है, फिर चार घंटे। फिर बुढ़ापे में दो घंटे की ही नींद रह जाती है। शायद आपने कभी न सोचा होगा कि बच्चे को सोने की ज्यादा जरूरत क्यों है? और बूढ़े को नींद की जरूरत क्यों कम हो जाती है?

जब जीवन निर्माण करता है, तो स्वयं का बिल्कुल ही स्मरण नहीं चाहिए। स्वयं का स्मरण जीवन के विकास में बाधा बनता है। बच्चा निर्मित हो रहा है, तो उसे चौबीस घंटे सुलाए रखती है प्रकृति; ताकि बच्चे को मेरे होने का ख्याल न आ पाए, वह ईगो-कांशसनेस न आ पाए। जैसे ही बच्चे को ख्याल आया कि मैं हूं, वैसे ही उसके विकास में बाधा पड़नी शुरू हो जाती है। वह मैं जो है, वह जीवन के ऊपर बोझ बन जाता है। जैसे-जैसे मैं बड़ा होगा, वैसे-वैसे नींद कम होती जाएगी। और बुढ़ापे में नींद बिल्कुल ही विदा हो जाएगी; क्योंकि फिर मृत्यु करीब आ रही है। अब जीवन को निर्मित होने की कोई जरूरत नहीं है, अब जीवन विसर्जित होने के करीब है। अब बूढ़ा आदमी पूरे समय जाग सकता है। अब जागने की कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन बच्चा नहीं जाग सकता।

चिकित्सक कहेंगे कि अगर कोई आदमी बीमार है और साथ ही उसकी नींद भी खो जाए, तो उसकी बीमारी को ठीक करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए पहली फिक्र चिकित्सक करेगा कि बीमारी की हम पहले चिंता न करेंगे, पहले उसकी नींद की चिंता करेंगे। पहले उसे नींद आ जाए, तो बीमारी को दूर करना बहुत कठिन नहीं होगा। क्यों? क्योंकि नींद में वह मैं को भूल जाएगा और जितनी देर मैं को भूल जाए, उतनी ही देर

के लिए जीवन निर्भार हो जाता है। और उसी बीच जीवन की सारी क्रियाएं अपना पूरा काम कर पाती हैं। अगर बीमार आदमी न सो सके, तो बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक उसका जागना हो जाएगा। क्योंकि चिंता चौबीस घंटे उसके सिर पर बनी रहेगी।

आप रात आठ घंटा सोने के बाद सुबह ताजा अनुभव करते हैं अपने को, प्रसन्न अनुभव करते हैं। उसका कोई और कारण नहीं है। क्योंकि छह घंटे के लिए अहंकार से छुटकारा हुआ था। अगर मनुष्य-जाति हजारों-हजारों साल से शराब में, बेहोशी की और मादक द्रव्यों में रस लेती रही है, तो उसका एक ही कारण है। क्योंकि आदमी इतना चिंता और इतने अहंकार से भरा हुआ है कि उसका जीना मुश्किल हो जाता है, अगर वह अपने को न भूल पाए। इस पृथ्वी से शराब अलग न हो सकेगी, जब तक पूरी पृथ्वी ध्यान में डूबने को तैयार न हो। तब तक शराब को दूर करने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि दो ही उपाय हैं अहंकार से मुक्त होने के: या तो आप इतने ध्यान में उतर जाएं, जैसा लाओत्से कहता है कि आप अपने लिए जीना ही बंद कर दें; और या दूसरा उपाय यह है कि जबरदस्ती केमिकल ड्रग से अपने को बेहोश कर लें। मैं मिटेगा नहीं शराब से, लेकिन भूल जाएगा। और जितनी देर भूल जाएगा, उतनी देर अच्छा लगेगा। लेकिन जब होश आएगा वापस, तो वही मैं दुगुनी ताकत इकट्ठी करके खड़ा हो जाएगा। इतनी देर दबा रहा; उसका भी बदला, उसका भी रिवेंज लेगा।

जैसे-जैसे मनुष्य का अहंकार बढ़ा है, वैसे-वैसे दुनिया में बेहोश होने की व्यवस्था में बढ़ती करनी पड़ी है। जितना सभ्य मुल्क, उतनी ज्यादा शराब! और अब हमें और नई चीजें खोजनी पड़ी हैं। मारिजुआना है, मेस्कलीन है, एल एस डी है। आदमी किसी तरह अपने को भूल पाए।

आखिर आदमी अपने को याद इतना रख कर क्यों परेशानी में पड़ता है?

लाओत्से कहता है, यह प्रकृति इतनी शाश्वत है इसीलिए कि इसे पता ही नहीं है कि मैं हूं। यह आकाश इतना नित्य है इसीलिए कि यह अपने लिए नहीं है, दूसरों के लिए है।

हम सब अपने लिए हैं। और जो आदमी जितना ज्यादा अपने लिए है, उतना परेशान होगा, विक्षिप्त हो जाएगा, पागल हो जाएगा। जितना हमारा बड़ा घेरा होता है जीने का, उतनी ही विक्षिप्तता कम हो जाती है। जो जितने ज्यादा लोगों के लिए जी सकता है, उतना ही हलका हो जाता है। उसमें पंख लग जाते हैं, वह आकाश में उड़ सकता है। और अगर कोई व्यक्ति अपने मैं को बिल्कुल ही भूल जाए, तो उसके जीवन पर किसी तरह के ग्रेविटेशन का, किसी तरह की कशिश का कोई प्रभाव नहीं रह जाता। उसकी जमीन में कोई जड़ें नहीं रह जातीं; वह आकाश में उड़ सकता है मुक्त होकर। पूरब ने इसी तरह के व्यक्तियों को मुक्त व्यक्ति कहा है, जिनका जीवन मैं-केंद्रित, ईगो-सेंट्रिक नहीं है।

यह मैंने आपसे कहा कि नींद आपको हलका कर जाती है इसीलिए कि उतनी देर के लिए आप अपने मैं को भूल जाते हैं। मैंने आपसे कहा कि बुढ़ापे में नींद की जरूरत कम हो जाती है, क्योंकि मैं इतना सघन हो जाता है कि नींद को आने भी नहीं देता। वह इतना भारग्रस्त हो जाता है मन कि नींद के लिए जो शिथिलता और रिलैक्सेशन चाहिए, वह असंभव हो जाता है।

लेकिन एक और तरह के आदमी के बाबत हम जानते हैं, जिसकी नींद की भीतरी जरूरत समाप्त हो जाती है। कृष्ण ने गीता में कहा है कि वैसा जागा हुआ पुरुष नींद में भी जागता है। बुद्ध ने भी कहा है कि अब मैं सोता हूं जरूर, लेकिन वह नींद मेरे शरीर की ही नींद है, मेरी नहीं। महावीर ने कहा है, जब तक नींद जारी रहे, तब तक जानना कि तुम्हारे भीतर आत्मा का अनुभव शुरू नहीं हुआ है।

एक और जागरण भी है, जब कि भीतर किसी नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि कोई अहंकार नहीं रह जाता, जिसे उतारने के लिए नींद की, बेहोशी की आवश्यकता हो। कोई भीतर अहंकार नहीं रह जाता, तो कोई तनाव नहीं रह जाता। तनाव नहीं रह जाता, तो नींद की कोई जरूरत नहीं रह जाती। शरीर थकेगा, सो लेगा; लेकिन भीतर चेतना जागती ही रहेगी। भीतर चेतना देखती रहेगी कि अब नींद आई; और अब नींद शरीर पर छा गई; और अब नींद समाप्त हो गई; और शरीर नींद के बाहर हो गया। भीतर कोई सतत जाग कर इसे भी देखता रहेगा।

कभी आपने सोचा न होगा, कभी आपने अपनी नींद को आते हुए देखा है या कभी जाते हुए देखा है? अगर देखा हो, तो आप एक धार्मिक आदमी हैं। और अगर न देखा हो, तो आप एक धार्मिक आदमी नहीं हैं। आप कितने मंदिर जाते हैं, इससे कोई संबंध नहीं है। और कितनी गीता और कुरान पढ़ते हैं, इससे भी कोई संबंध नहीं है। जांच की विधि और है। और वह यह है कि क्या आपने अपनी नींद को आते देखा है? क्योंकि नींद को आते वही देख सकता है, जो भीतर नींद के आने पर भी जागा रहे। अन्यथा कैसे देख सकेगा? नींद आएगी, आप सो चुके होंगे। नींद जाएगी, तब आप जागेंगे। इसलिए आपने अपनी नींद को कभी नहीं देखा है। जब नींद आ गई होती है, तब आप मौजूद नहीं रह जाते। देखेगा कौन? और जब नींद जाती है, तब आप सोए होते हैं। देखेगा कौन? नींद और आपका मिलन कभी नहीं होता। उसका अर्थ यह हुआ कि आप ही नींद बन जाते हैं। जब नींद आती है, तो आप इतने बेहोश हो जाते हैं कि भीतर का कोई कोना अलग खड़े होकर देख नहीं सकता कि नींद आ रही है।

और जिस व्यक्ति ने अपने भीतर आती नींद नहीं देखी, वह व्यक्ति अपने भीतर आते क्रोध को भी नहीं देख पाएगा। क्योंकि क्रोध के पहले भी निद्रा की स्थिति शरीर में फैल जाती है। वह जरूर देख पाएगा पीछे, बाद में, जब क्रोध जा चुका होगा, या क्रोध अपना काम कर चुका होगा। तब वह पछताएगा और कहेगा, बुरा हुआ, क्रोध नहीं करना था। लेकिन जब क्रोध आएगा, उस पहले चरण में वह नहीं देख पाएगा। और जो व्यक्ति क्रोध को पहले चरण में देख ले, वह क्रोध से मुक्त हो जाता है। कामवासना, सेक्स भीतर उठेगा, तो पहले चरण में नहीं दिखाई पड़ेगा। जो व्यक्ति पहले चरण में देख ले, वह वासना से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जीवन की सारी व्यवस्था, जैसे जीवन में हम हैं, वह मूर्च्छा से चलती है। और हमारी मूर्च्छा का जो केंद्र है, ओरिजिनल सोर्स है, वह हमारा अहंकार है।

लाओत्से कहता है, यह नित्य है प्रकृति, क्योंकि यह अपने लिए नहीं जीती।

अपने लिए वही नहीं जीएगा, जिसको अपना ख्याल ही नहीं है। हम सब अपने लिए ही जीते हैं। उपनिषद में एक बहुत अदभुत वचन है कि पति पत्नी को प्रेम नहीं करता; पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। बाप बेटे को प्रेम नहीं करता; बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। मां बेटे को प्रेम नहीं करती; बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। उपनिषद का यह वचन कहता है कि हम जब कहते भी हैं कि हम दूसरे को प्रेम करते हैं, तब भी हम केवल उसके माध्यम से अपने को ही प्रेम करते हैं। हम अगर कहते भी हैं कि हम दूसरे के लिए जीते हैं, तो भी वह हमारा कहना वास्तविक नहीं है, उसमें भ्रांति है। क्योंकि जिसके लिए हम कहते हैं कि तुम्हारे लिए जीते हैं, कल हम उसी की हत्या करने को भी तैयार हो सकते हैं।

अगर मैं कहता हूं कि मैं अपने बेटे के लिए जीता हूं; और बेटा कल अगर मुझे नाराज कर दे और मेरी इच्छाओं के प्रतिकूल चला जाए, तो मैं उसी बेटे के लिए सब तरह की बाधाएं, उसके जीवन में सब तरह की मुसीबतें खड़ी कर सकता हूं। और मैं कहता था, मैं उसी के लिए जीता हूं! जब तक वह मेरा बेटा था, मेरे अनुकूल

चलता था, मेरी छाया था, मेरे अहंकार की तृप्ति करता था, मेरे ही अहंकार का विस्तार और एक्सटेंशन था, तब तक मैं उसके लिए कहता था कि मैं जीता हूं। मैं उस पत्नी को कह सकता हूं कि तेरे लिए जीता हूं, जो मेरी तृप्ति का साधन हो, मेरी वासनाओं की पूर्ति बने, जो मेरे लिए चारों तरफ छाया बन कर जीए। उससे मैं कह सकता हूं कि मैं तेरे लिए जीता हूं। लेकिन इससे कोई भ्रांति पैदा न हो। यह मैं तभी तक जीता हूं, जब तक उसकी उपयोगिता है। जिस दिन मेरे लिए उपयोगिता नहीं, मेरे अहंकार के लिए वह व्यर्थ है, उसे मैं वैसे ही उठा कर फेंक दूंगा, जैसे घर में काम आ गई चीज को हम व्यर्थ समझ कर वापस बाहर फेंक देते हैं। वह सब कचरा होकर बाहर फिंक जाता है।

हम लेकिन दावा करते हैं कि हम दूसरे के लिए जीते हैं। दूसरे के लिए हम तब तक नहीं जी सकते, जब तक हमारा अहंकार भीतर शेष है। तब तक हम कितना ही कहें, हम अपने लिए ही जीएंगे।

एक आदमी कहता है कि मैं देश के लिए जीता हूं और देश के लिए मरता हूं। वह भी कोई आदमी देश के लिए न जीता और न देश के लिए मरता है। मेरे देश के लिए मरता है और उस मरने में भी मेरे अहंकार की तृप्ति है। अगर मैं हिंदू हूं, तो मैं हिंदू जाति के लिए मर सकता हूं। लेकिन मैं आखिरी क्षण में, मरने फांसी की सजा पर खड़ा हूं, और फांसी के तख्ते पर चढ़ गया हूं, और मुझे कोई आकर बता दे कि तुम भ्रांति में रहे कि तुम हिंदू हो, थे तो तुम मुसलमान ही, लेकिन तुम्हारे मां-बाप ने तुम्हें हिंदू के घर में केवल बड़ा किया था! उसी क्षण मुझे पता चलेगा कि सब फांसी व्यर्थ हो गई, उसी क्षण मेरा सारा का सारा रूप बदल जाएगा। मैं हिंदू के लिए नहीं मर रहा था। मैं हिंदू था, मेरा अहंकार हिंदू था और हिंदू के लिए मरने में भी मेरे अहंकार की तृप्ति थी, तो मर रहा था। आज तृप्ति नहीं है, तो बात समाप्त हो जाएगी। आज मैं पछताऊंगा कि यह मैंने क्या पागलपन किया है!

जब तक अहंकार है, तब तक हम जो भी करेंगे, अहंकार ही उनका मालिक रहेगा। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम बहुत से काम करते हैं यह सोच कर कि इससे अहंकार का कोई संबंध नहीं है। लेकिन हम जो भी करेंगे, जब तक भीतर अहंकार है, वह उससे ही संबंधित होगा। हम विनम्रता भी आरोपित कर सकते हैं अपने ऊपर; वह भी हमारे अहंकार का ही आभूषण बन कर समाप्त हो जाएगी। मैं आपके चरणों में भी गिर सकता हूं, धूल हो सकता हूं चरणों की, लेकिन फिर भी मेरा अहंकार घोषणा करता रहेगा कि मुझसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं है। मैं चरणों की धूल हूं! वह मेरा मैं इस विनम्रता का भी शोषण करेगा और इस विनम्रता से भी मजबूत होगा। अहंकार त्याग भी कर सकता है, सब छोड़ सकता है, लेकिन स्वयं बच जाता है। उसका कोई अंत नहीं होता।

तो जब लाओत्से जैसा व्यक्ति कहता है कि तभी शाश्वत और नित्य जीवन उपलब्ध होगा, जब दूसरों के लिए जीना शुरू हो... । लेकिन दूसरों के लिए मैं तभी जी सकता हूं, जब मेरा भीतर मैं न रह जाए, या मेरा मैं ही दूसरों के भीतर मुझे दिखाई पड़ने लगे। ये दोनों एक ही बात हैं। मेरा मैं ही मुझे सबके भीतर दिखाई पड़ने लगे, तो भी एक ही घटना घट जाती है। या मेरे भीतर मैं शून्य हो जाए, तो भी वही घटना घट जाती है।

दूसरे के लिए मैं तभी जी सकता हूं--यह वाक्य मेरा पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा, लेकिन इसे जोर से मैं दोहराना चाहता हूं--दूसरे के लिए मैं तभी जी सकता हूं, जब दूसरा मेरे लिए दूसरा न रह जाए। जब तक दूसरा मेरे लिए दूसरा है, तब तक मैं दूसरे के लिए नहीं जी सकता। तब तक मैं अपने लिए ही जीए चला जाऊंगा। अगर मुझे इतनी भी प्रतीति होती है कि दूसरा दूसरा है, तो वह प्रतीति मेरे अहंकार की प्रतीति है। अन्यथा मैं कैसे जानूंगा कि दूसरा दूसरा है! दूसरा मुझे दूसरा मालूम न पड़े, तो ही मैं दूसरे के लिए जी सकता हूं।

इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि मैं इतना फैल जाऊं कि सभी मुझे मेरे ही रूप मालूम पड़ने लगें। तो मैं जी सकता हूं। और ऐसा जीवन निश्चिंत जीवन है। और ऐसा जीवन निर्भार जीवन है। और ऐसा जीवन परम स्वातंष्य का जीवन है। और ऐसे जीवन के साथ ही शाश्वत के साथ संबंध जुड़ने शुरू होते हैं। अन्यथा हमारे जो संबंध हैं, वे सामयिक के साथ हैं, शाश्वत के साथ नहीं। हमारे जो संबंध हैं, वे क्षणभंगुर के साथ हैं। क्योंकि अहंकार से ज्यादा क्षणभंगुर और कोई चीज नहीं है। तो अहंकार केवल क्षणभंगुर से ही संबंधित हो सकता है।

अहंकार करीब-करीब ऐसा है। अगर हम बुद्ध के प्रतीक को लें, तो समझ में आ सके। क्योंकि बुद्ध ने अहंकार और आत्मा का एक ही अर्थ किया है। बुद्ध कहते थे, आत्मा या अहंकार ऐसा है जैसे सांझ हम दीया जलाते हैं और सुबह हम दीया बुझाते हैं, तो हम यही समझते हैं कि जो दीया हमने सांझ जलाया था, वही सुबह हमने बुझाया। वह गलत है। क्योंकि दीए की ज्योति तो प्रतिपल बुझती जाती है और नई होती चली जाती है। हम देख नहीं पाते गैप। एक ज्योति धुआं होकर आकाश में चली जाती है; उसकी जगह दूसरी ज्योति स्थापित हो जाती है। दोनों के बीच का जो अंतराल है, वह इतनी तीव्रता से भरता है कि हमारी आंखें उसे पकड़ नहीं पातीं। अगर हम किसी तरह स्लो मोशन कर सकें, ज्योति को धीमे चला सकें या हमारी आंख की गति को बढ़ा सकें, तो हम बराबर देख सकेंगे कि एक ज्योति बुझ गई और दूसरी ज्योति आ गई, दूसरी बुझ गई और तीसरी आ गई। रात भर ज्योतियों की एक सीरीज, एकशृंखला जलती-बुझती है। जो ज्योति हमने सांझ को जलाई, वह सुबह हम नहीं बुझाते। सुबह हम उसीशृंखला में एक ज्योति को बुझाते हैं, जो सांझ बिल्कुल नहीं थी।

बुद्ध कहते थे, अहंकार एक सीरीज है। एक वस्तु नहीं है, एकशृंखला है। लेकिन इतनी तीव्रता सेशृंखला चलती है कि हमें लगता है कि मैं एक अहंकार हूं। जोर से। कभी आपने फिल्म में अगर पीछे प्रोजेक्टर धीमा चल रहा हो और फिल्म धीमी चलने लगी हो, तो आपको ख्याल में आया होगा, स्लो मोशन हो जाता है। एक आदमी अगर फिल्म की तस्वीर पर अपने हाथ को नीचे से ऊपर तक उठाता है, तो इतना हाथ उठाने के लिए हजार तस्वीरों की जरूरत पड़ती है। हजार पोजीशंस में तस्वीरें उठानी पड़ती हैं। थोड़ी नीचे, फिर थोड़ी ऊपर, फिर थोड़ी ऊपर। और वे हजार तस्वीरें एक तेजी से घूमती हैं इसलिए हाथ आपको ऊपर उठता हुआ मालूम पड़ता है।

अभी भी मोशन पिक्चर हम नहीं लेते। अभी भी पिक्चर तो हम सब लेते हैं, वह स्टेटिक है। अभी भी जो चित्र हम लेते हैं फिल्म में, वह कोई मूवी नहीं है। अभी भी सब चित्र थिर हैं, ठहरे हुए हैं। लेकिन ठहरे हुए चित्रों को हम इतनी तेजी से घुमाते हैं, एक-दूसरे के ऊपर इतने जोर से प्रोजेक्ट करते हैं, बीच की खाली जगह हम को दिखाई नहीं पड़ती, हाथ हमें उठता हुआ मालूम पड़ता है।

इसलिए आपने अगर फिल्म की टुकड़न देखी हो, तो आप हैरान हुए होंगे--एक से चित्र हजारों मालूम पड़ते हैं। जरा-जरा सा फर्क होता है। अगर हम एक आदमी को सीढ़ी से उतरते वक्त उसका पूरा मोशन का पिक्चर ले लें, जैसा कि अगर आप में से किसी ने पिकासो के चित्र देखें हों--जैसे सीढ़ी से उतरते हुए एक आदमी का चित्र है पिकासो का--तो आप पहचान भी नहीं पाएंगे कि आदमी कहां है। हजारों पैर सीढ़ी से उतर रहे हैं, हजारों हाथ सीढ़ी से उतर रहे हैं, हजारों सिर। वे सब मिश्रित हो गए हैं। अगर हम इतनी तेजी से देख सकें, तो आदमी हम को नहीं दिखाई पड़ेगा, सिर्फ मूवमेंट्स दिखाई पड़ेंगे। अगर मेरा हाथ नीचे से ऊपर तक उठता है, अगर आप पूरी गति को देख सकें, तो आपको हाथ तो दिखाई ही नहीं पड़ेगा, अनेक आकृतियां नीचे से ऊपर तक दिखाई पड़ेंगी, जिनमें कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। हम बीच के अंतराल को नहीं देख पाते, इसलिए हाथ दिखाई पड़ता है।

अहंकार तीव्रता से घूमती हुई फिल्म है। और प्रतिपल अहंकार पैदा होता है, जैसे प्रतिपल दीए की ज्योति पैदा होती है। इसलिए आपके पास एक ही अहंकार नहीं होता, चौबीस घंटे में हजार दफे बदल गया होता है। और उसके हजार रूप होते हैं। अगर आप थोड़ा ख्याल करें और अपने माइंड के प्रोजेक्टर को थोड़ा स्लो मूवमेंट दें, थोड़ी धीमी गति दें, तो आप पहचान पाएंगे।

आप कमरे में बैठे हैं; आपका मालिक कमरे के भीतर आता है। तब जरा ख्याल करें, आपके अहंकार की क्या वही स्थिति है, जैसा सुबह जब नौकर आपके कमरे में आया था! जब नौकर आपके कमरे में आता है, तब आपके अहंकार की स्थिति और होती है। सच तो यह है कि नौकर दिखाई ही नहीं पड़ता कि कमरे में कब आया और गया। नया हो तो दिखाई भला पड़ जाए; अगर पुराना नौकर है और एडजस्टमेंट हो गया है, तो नौकर का पता ही नहीं चलता, कमरे में कब आया और कब गया। और एक लिहाज से अच्छा है, क्योंकि नौकर का बार-बार आना पता चले तो तकलीफदेह होगा। नौकर आता है, बुहारी लगाता है, चला जाता है, आपको पता ही नहीं चलता। आप जैसे कुर्सी पर बैठे थे, वैसे ही बैठे रहते हैं। आपके गेस्चर में, आपकी मुद्रा में कोई फर्क नहीं पड़ता। नौकर न आता तो जैसे आप होते, वैसे ही आप हैं।

लेकिन आपका मालिक भीतर आ जाता है, सब कुछ बदल जाता है। आप वही आदमी नहीं होते। उठ कर खड़े हो जाते हैं, स्वागत की तैयारी करते हैं। मुद्रा बदल जाती है; उदास थे, तो हंसने लगते हैं।

आपका अहंकार दूसरा रूप लेता है मालिक के साथ। नौकर के साथ दूसरा रूप लेता है। मित्र के साथ तीसरा रूप लेता है। शत्रु के साथ चौथा रूप लेता है। अजनबी के साथ और रूप लेता है। चौबीस घंटे आपके अहंकार को बदलना पड़ रहा है। लेकिन वह इतनी तेजी से बदल रहा है कि आपको भी कभी ख्याल नहीं आता कि बदलाहट इतनी तीव्रता से हो रही है। क्षण भर में बदल जाता है।

अहंकार कोई वस्तु नहीं है। अहंकार प्रतिपल संबंधों के बीच पैदा होने वाली एक घटना है--ईवेंट, नॉट ए थिंग। अहंकार एक घटना है, वस्तु नहीं। और इसलिए अगर आपको जंगल में अकेला छोड़ दिया जाए, तो आपके पास वही अहंकार नहीं रह जाता जो शहर में था। क्योंकि उस अहंकार को पैदा करने वाली स्थिति नहीं रह जाती। अगर आपको जंगल में बिल्कुल अकेला छोड़ दिया जाए, तो आप वही आदमी नहीं रह जाते जो आप बस्ती में थे। क्योंकि बस्ती में जो स्थिति थी, जो अहंकार पैदा होता था, वह जंगल में पैदा नहीं हो सकता।

इसलिए अनेक लोगों को जंगल में जाकर लगता है, बड़ी राहत मिलती है, शांति मिलती है। वह शांति जंगल की नहीं है। वह आपके भीतर अहंकार पैदा होने की जगह वहां नहीं है इसलिए है। जंगल शांति नहीं देता। जो आदमी अहंकार से बचने की व्यवस्था बंबई में कर ले सकता है, वह बंबई की चौपाटी पर भी अहंकार के बाहर हो जाएगा। लेकिन आपको जंगल जाना पड़ता है या हिमालय जाना पड़ता है, क्योंकि वहां आप इस सारी व्यवस्था से टूट जाते हैं। यह जो तेल आपको मिलता था अहंकार को, वहां नहीं मिलता।

लेकिन कितनी देर नहीं मिलेगा? आप पुराने आदी हैं। अहंकार की आदत है। आप नए अहंकार पैदा कर लेंगे। जेलखाने में जो कैदी बहुत दिन तक रह जाते हैं, वे अपने से ही बातचीत शुरू कर देते हैं। वे अपने को ही दो हिस्सों में बांट लेते हैं। ऐसे कैदियों के बाबत खबर है कि जो छिपकलियों से बात करने लगते हैं, मकड़ियों से बात करने लगते हैं। उनका नाम भी रख लेते हैं। उनकी तरफ से जवाब भी देते हैं।

आपको हंसी आएगी। लेकिन आपको पता नहीं, आप भी यही करेंगे। क्योंकि अकेले में अहंकार को बचाना मुश्किल हो जाएगा। एक मकड़ी की भी सहायता ली जा सकती है। महल की ही सहायता से अहंकार खड़ा होता हो, ऐसा नहीं; लंगोटी का तेल भी अहंकार की ज्योति को जला सकता है। जरूरत पड़ जाए, तो लंगोटी से भी

काम ले लेगा। और मेरी लंगोटी में उतना ही मजा आ जाएगा, जितना मेरे साम्राज्य में आता था; कोई अंतर नहीं पड़ेगा। क्वालिटेटिव कोई अंतर नहीं पड़ेगा; क्वांटिटेटिव अंतर तो पड़ता है। लेकिन गुणात्मक कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

सुना है मैंने कि अकबर यमुना के दर्शन के लिए आया था। यमुना के तट पर जो आदमी उसे दर्शन कराने ले गया था, वह उस तट का बड़ा पुजारी, पुरोहित था। निश्चित ही, गांव के लोगों में सभी को प्रतिस्पर्धा थी कि कौन अकबर को यमुना के तीर्थ का दर्शन कराए। जो भी कराएगा, न मालूम अकबर कितना पुरस्कार उसे देगा! जो आदमी चुना गया, वह धन्यभागी था। और सारे लोग ईर्ष्या से भर गए थे। भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी।

अकबर जब दर्शन कर चुका और सारी बात समझ चुका, तो उसने सड़क पर पड़ी हुई एक फूटी कौड़ी उठा कर पुरस्कार दिया उस ब्राह्मण को, जिसने यह सब दर्शन कराया था। उस ब्राह्मण ने सिर से लगाया, मुट्ठी बंद कर ली। कोई देख नहीं पाया। अकबर ने जाना कि फूटी कौड़ी है और उस ब्राह्मण ने जाना कि फूटी कौड़ी है। उसने मुट्ठी बंद कर ली, सिर झुका कर नमस्कार किया, धन्यवाद दिया, आशीर्वाद दिया।

सारे गांव में मुसीबत हो गई कि पता नहीं, अकबर क्या भेंट कर गया है। जरूर कोई बहुत बड़ी चीज भेंट कर गया है। और जो भी उस ब्राह्मण से पूछने लगा, उसने कहा कि अकबर ऐसी चीज भेंट कर गया है कि जन्मों-जन्मों तक मेरे घर के लोग खर्च करें, तो भी खर्च न कर पाएंगे।

फूटी कौड़ी को खर्च किया भी नहीं जा सकता। खबर उड़ते-उड़ते अकबर के महल तक पहुंच गई। और अकबर से जाकर लोगों ने कहा कि आपने क्या भेंट दी है? दरबारी भी ईर्ष्या से भर गए। क्योंकि ब्राह्मण कहता है कि जन्मों-जन्मों तक अब कोई जरूरत ही नहीं है; यह खर्च हो ही नहीं सकती। जो अकबर दे गया है, वह ऐसी चीज दे गया है, जो खर्च हो नहीं सकती।

अकबर भी बेचैन हुआ। क्योंकि वह तो जानता था कि फूटी कौड़ी उठा कर दी है। उसको भी शक पकड़ने लगा कि कुछ गड़बड़ तो नहीं है। उस फूटी कौड़ी में कुछ छिपा तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैंने सड़क से उठा कर दे दी; उसके भीतर कुछ हो! बेचैनी अकबर को भी सताने लगी। एक दिन उसकी रात की नींद भी खराब हो गई। क्योंकि सभी दरबारी एक ही बात में उत्सुक थे कि उस आदमी को दिया क्या है? उसकी पत्नियां भी आतुर हो गईं कि ऐसी चीज हमें भी तुमने कभी नहीं दी है। उस ब्राह्मण को तुमने दिया क्या है?

वह ब्राह्मण निश्चित ही कुशल आदमी था। आखिर अकबर को उस ब्राह्मण को बुलाना पड़ा।

वह ब्राह्मण बड़े आनंद से आया। उसने कहा कि धन्य मेरे भाग्य, ऐसी चीज आपने दे दी है कि कभी खर्च होना असंभव है। जन्मों-जन्मों तक हम खर्च करें, तो भी खर्च नहीं होगी। अकबर ने कहा कि मेरे साथ जरा अकेले में चल, भीतर चल! अकबर ने पूछा, बात क्या है? उसने कहा, बात कुछ भी नहीं है। आपकी बड़ी अनुकंपा है! अकबर कोशिश करने लगा तरकीब से निकालने की; लेकिन उस ब्राह्मण से निकालना मुश्किल था जो आधी कौड़ी पर इतना उपद्रव मचा दिया था। वह कहता कि आपकी अनुकंपा है, धन्य हमारे भाग्य! सम्राट बहुत हुए होंगे, लेकिन ऐसा दान कभी किसी ने नहीं दिया है। और ब्राह्मण भी बहुत हुए दान लेने वाले, लेकिन जो मेरे हाथ में आया है, वह कभी किसी ब्राह्मण के हाथ में नहीं आया होगा। यह तो घटना ऐतिहासिक है।

आखिर अकबर ने कहा, हाथ जोड़ता हूं तेरे, अब तू सच-सच बता दे, बात क्या है? तुझे मिला क्या है? मैंने तुझे फूटी कौड़ी दी थी! उस ब्राह्मण ने कहा, अगर अहंकार कुशल हो, तो फूटी कौड़ी पर भी साम्राज्य खड़े कर सकता है। हमने फूटी कौड़ी पर ही साम्राज्य खड़ा कर लिया। तुम्हारे मन में तक ईर्ष्या पैदा हो गई कि पता नहीं, क्या मिल गया है! और तुम भलीभांति जानते हो कि फूटी कौड़ी ही थी।

अहंकार कुशल है। हो ऐसा नहीं; है ही। और अहंकार फूटी कौड़ी पर भी साम्राज्य खड़े कर लेता है। हम सबके पास अहंकार के नाम पर कुछ भी नहीं है; फूटी का.ैडी भी शायद नहीं है। पर साम्राज्य हम खड़ा कर लेते हैं।

अगर हम हट जाएं अपने रिलेशनशिप्स के जगत से, वह जो हमारे अंतर्संबंधों का जगत है, तो दो-चार दिन के लिए खालीपन रहेगा। पहाड़ पर यही होता है; एकांत में यही होता है। लेकिन दो-चार दिन के बाद ही हमारा मन नए इंतजाम कर लेगा, नए संबंध बना लेगा, नया तेल जुटा लेगा, बाती फिर जलने लगेगी।

लेकिन एक बात ध्यान रख लेनी जरूरी है कि अहंकार हमें चौबीस घंटे पैदा करना पड़ता है। वह कोई ऐसी चीज नहीं है, जो है। वह करीब-करीब ऐसा है, जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता है। पैडल मारता रहे, तो साइकिल चलती है; पैडल बंद कर दे, साइकिल बंद हो जाती है। कोई इस भ्रम में न रहे कि पैडल बंद रहेंगे और साइकिल चलती रहेगी। थोड़ी देर चल भी सकती है पुराने मोमेंटम से। या उतार हो, तो थोड़ी-बहुत देर चल सकती है। लेकिन चल नहीं पाएगी, गिर ही जाएगी।

अहंकार भी ठीक चौबीस घंटे चलाइए, तो चलता है। मिटाने की कोई भी जरूरत नहीं है अहंकार को, सिर्फ चलाना बंद कर देना पर्याप्त है। लेकिन आमतौर से लोग पूछते हैं, अहंकार को कैसे मिटाएं? अगर आपने कैसे मिटाया, तो आप मिटाने के लिए पैडल चलाने लगते हैं। उससे मिटता नहीं। अगर आपने मिटाने का पूछा, तो आप समझे ही नहीं। लेकिन शिक्षक समझाए जाते हैं लोगों को कि अहंकार को मिटाओ, क्योंकि लाओत्से जैसे लोगों को पढ़ लेते हैं। पढ़ लेना बहुत आसान है; उन्हें समझना बहुत मुश्किल है। पढ़ लेते हैं, तो एक ही ख्याल आता है कि अहंकार को कैसे मिटाएं! क्योंकि लाओत्से कहता है, अहंकार मिट जाए तो जीवन शाश्वत हो जाए, अमृत को उपलब्ध हो जाए। हमारे मन में भी लोभ पकड़ता है--लोभ, ज्ञान नहीं--लोभ पकड़ता है कि हम भी अमृत को कैसे उपलब्ध हो जाएं! कैसे वह जीवन हमें मिल जाए, जहां कोई मृत्यु नहीं है, कोई अंधकार नहीं है! कैसे हम शाश्वत चेतना को पा जाएं! लोभ हमारे मन को पकड़ता है--ग्रीड! और वह लोभ हमसे कहता है कि लाओत्से कहता है, अहंकार न रहे तो। तो वह लोभ हमसे कहता है, अहंकार कैसे मिट जाए!

फिर हम मिटाने की कोशिश में लग जाते हैं। कोई घर छोड़ता है, कोई पत्नी को छोड़ता है, कोई धन छोड़ता है, कोई वस्त्र छोड़ता है, कोई गांव छोड़ कर भागता है। फिर हम छोड़ कर भागने में लगते हैं कि शायद यह छोड़ने से मिट जाए। छोड़ने की भ्रांति इसलिए पैदा होती है कि लगता है, जिससे हमारा अहंकार बड़ा हो रहा है, उसे छोड़ दें। महल है आपके पास, तो लगता है महल की वजह से मेरा अहंकार बड़ा है। और जब मैं झोपड़ी वाले के सामने से निकलता हूं, तो मेरा अहंकार मजबूत होता है, क्योंकि मेरे पास महल है।

इसलिए अहंकार कम करने वाले जो नासमझ हैं--मैं दोहराता हूं, अहंकार कम करने वाले जो नासमझ हैं--वे कहेंगे कि महल छोड़ दो, तो अहंकार छूट जाएगा।

लेकिन आपको पता नहीं कि महल को छोड़ कर जब कोई झोपड़ी के सामने से निकलता है, तब उसके पास महल वाले अहंकार से भी बड़ा अहंकार होता है। तब वह झोपड़ी में रहने वाले को ऐसा देखता है, जैसे पापी! सड़ेगा नर्क में! झोपड़ी भी नहीं छोड़ पा रहा और मैं महल छोड़ चुका हूं! वह महल छोड़ कर चला हुआ आदमी नया तेल जुटा लेता है। वह उस तेल से फिर अपनी बाती को जगा लेता है। अंतर नहीं पड़ता।

महल से किसी का अहंकार नहीं है। हां, अहंकार से महल खड़े होते हैं। लेकिन महलों से कोई अहंकार खड़ा नहीं होता। अहंकार किसी भी चीज का सहारा लेकर खड़ा हो जाता है। इसलिए असली सवाल यह है कि अहंकार प्रतिपल जो पैदा होता है, वह कैसे पैदा न हो। कोई अहंकार की संपदा नहीं है, जिसे नष्ट करना है।

अहंकार प्रतिपल पैदा होता है। उसमें हम रोज तेल डालते हैं, पानी सींचते हैं, उसकी जड़ों को गहरा करते हैं। उसमें रोज पत्ते आते चले जाते हैं। वह हमारी रोज की मेहनत है।

इसलिए नींद में हम सो जाते हैं, तो सुबह हलकापन लगता है। क्योंकि रात भर कम से कम हम अहंकार को पोषित नहीं कर पाते। पैडल छूट जाते हैं रात भर के लिए; सुबह हम हलके उठते हैं। सुबह आदमी अलग होता है। इसलिए सुबह आदमी की शक्ल अलग मालूम पड़ती है। अगर आदमी से कोई भले काम की आशा हो, तो सुबह ही उससे प्रार्थना कर लेनी चाहिए। दोपहर तक तो सब गड़बड़ हो गया होता है।

इसलिए भिखारी सुबह भीख मांगने आते हैं, शाम को नहीं आते। वे जानते हैं आपको भलीभांति कि सुबह शायद नींद आई हो आदमी को अच्छी तो थोड़ा अपने को भूल जाए, तो दो पैसे इससे छूट सकें। सांझ को कोई आशा नहीं है आपसे; क्योंकि सांझ तक, दिन भर आपने इतना पैडल मारे हैं कि अहंकार काफी मजबूत होगा।

रात्रि अक्सर आदमी लड़ते-लड़ते सोते हैं, चाहे वे अपनी पत्नियों से लड़ रहे हों या चाहे किसी और से लड़ रहे हों। अक्सर रात सोते-सोते जो आखिरी घटना है, वह लड़ाई है, वह किसी तरह का वैमनस्य है। क्योंकि दिन भर अहंकार मजबूत होता है; बहुत धुआं इकट्ठा हो जाता है उसके आस-पास। अगर यह बहुत ज्यादा हो जाए, तो रात नींद भी नहीं आ सकती; क्योंकि इसका तनाव रात भर पकड़े रहेगा। इसका तनाव भीतर प्रवेश कर जाएगा। स्नायु शिथिल नहीं हो पाएंगे, उनमें खून दौड़ता ही रहेगा। जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता है, उतना-उतना अहंकार और उतनी-उतनी ही निद्रा क्षीण होती चली जाती है।

अहंकार वस्तु नहीं है। लाओत्से के हिसाब से अहंकार एक घटना है। और घटना भी कहना ठीक नहीं, ज्यादा ठीक होगाः ए सीरीज ऑफ ईवेंट्स, घटनाओं का एक क्रम। कहीं से भी क्रम तोड़ दिया जाए, तो घटना अभी टूट सकती है। सच बात यह है कि हम उसे नई गति और नई शक्ति न दें।

हम उसे शक्ति और गति देते कैसे हैं? हमारी व्यवस्था क्या है?

हमारी व्यवस्था यह है कि हम चौबीस घंटे इसी कोशिश में रहते हैं, कैसे अहंकार को ज्यादा तेल मिल जाए। तेल देने के कई रास्ते हैं। जो बड़े से बड़ा रास्ता है, वह यह है कि लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो। अहंकार के लिए जो बड़े से बड़ा तेल है, वह है लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो, लोग मेरी तरफ देखें। इसलिए राजनीति इतनी प्रभावी हो जाती है। और दुनिया इतनी धीरे-धीरे राजनैतिक होती चली जाती है। उसका कारण है कि राजनीति जितने जोर से चित्त को लोगों को आकर्षित करवा लेती है, उतनी और कोई चीज आकर्षित नहीं करवा पाती।

ढेर लोग अदालतों में बयान दिए हैं कि उन्होंने सिर्फ इसलिए हत्या की कि अखबारों में पहले नंबर पर उनका नाम छप जाए बड़े हेडिंग में। और कोई आकर्षण न था। कोई आदमी हत्या कर सकता है इसलिए कि अखबार में सुर्खी उसके नाम की हो! अखबार में चित्र तो एक दफा छप जाए उसका! सारी दुनिया उसे देख ले!

लोगों के देखने में ऐसा क्या रस होता होगा? जब हजार आंखें आपको देखती हैं, तो आपके अहंकार को बड़ा तेल मिलता है। दूसरों का ध्यान आपके अहंकार का तेल बनता है। बहुत सटल, बहुत सूक्ष्म मादकता है दूसरों की आंखों में। वे अगर आपको देखते हैं, तो उससे आपके अहंकार को रस उपलब्ध होता है, गति उपलब्ध होती है।

अगर अहंकार को विसर्जित करना है, तो दूसरा उपाय हैः दूसरे पर ध्यान दें। इसलिए जब भी आप कभी दूसरे पर ध्यान देते हैं, तो आपको बहुत हलकापन लगता है। जिसको हम प्रेम कहते हैं, वह कुछ और नहीं है, वह दूसरे पर ध्यान देना है। जब आप किसी के प्रेम में होते हैं, तो मन बहुत हलका मालूम पड़ता है। जिसको आप

प्रेम करते हैं, वह आपके पास होता है, तो आप बिल्कुल निर्भार हो गए होते हैं। पंख लग जाते हैं, आकाश में उड़ जाएं, फैल जाएं। क्यों? क्योंकि जिसे आप प्रेम करते हैं, उसको आप ध्यान देते हैं। स्थिति बदल जाती है। आप ध्यान देते हैं। एक नए तरह की केयरिंग, एक दूसरे की तरफ ध्यान देने की चिंता पैदा होती है।

मां जब अपने बेटे पर ध्यान दे रही होती है, तब अपने को बिल्कुल भूल गई होती है। क्योंकि ध्यान जो है, वह वन वे ट्रैफिक है। या तो आप अपने पर ध्यान दे सकते हैं, या दूसरे पर ध्यान दे सकते हैं। जब आप दूसरे पर देते हैं, तो आप भूल गए होते हैं। जब अपने पर दे रहे होते हैं, तो दूसरा भूल गया होता है।

और हम सब इस कोशिश में रहते हैं कि लोग हम पर ध्यान दें। हम हजार तरह के उपाय करते हैं इस बात के लिए कि लोग ध्यान दें। कोई आदमी सम्राट होना चाहता है इसलिए कि लोग ध्यान दें। कोई आदमी राष्ट्रपति होना चाहता है इसलिए कि लोग ध्यान दें। अगर ये उपाय उपलब्ध न हों, तो आदमी बुरा भी हो जाता है। अगर भला मार्ग न मिले, तो आदमी बुरा भी हो जाता है। हत्यारा हो जाता है, गुंडा हो जाता है कि लोग ध्यान दें। स्कूल में विद्यार्थी शैतानी करने लगते हैं कि लोग ध्यान दें; मिसचीवियस हो जाते हैं कि लोग ध्यान दें।

इसलिए शिक्षकों के हाथ की एक पुरानी तरकीब है कि जो विद्यार्थी ज्यादा से ज्यादा उपद्रव कर रहा हो, उसे अगर कैप्टन बना दिया जाए, तो उपद्रव करना बंद कर देता है। कोई और कारण नहीं है; क्योंकि जिस वजह से वह उपद्रव कर रहा था, वह कैप्टन बनाने से पूरी हो जाती है। वह ध्यान आकर्षित कर रहा था। वह कह रहा था, मैं भी यहां हूं। मैं ऐसा निगलेक्टेड नहीं जी सकता हूं। इस कमरे में मेरी प्रतीति सबको एहसास होनी चाहिए कि मैं यहां हूं। मेरा होना सबको पता होना चाहिए। वह ठीक मार्ग भी चुन सकता है, अगर मार्ग उपलब्ध हों। अगर मार्ग उपलब्ध न हों, तो वह गलत मार्ग भी चुन सकता है।

अमरीका में आज हिप्पी हैं, बीटल और पच्चीस तरह के नए उपद्रव हैं। उन उपद्रवों का सबसे महत्वपूर्ण कारण यही है कि अमरीका में जो हायरेरकी खड़ी हो गई है पद की, धन की, व्यवस्था की, नए युवकों को कोई भी आशा नहीं है कि वे इस हायरेरकी पर चढ़ सकेंगे। नए युवक को कोई भरोसा नहीं बैठता कि वह निक्सन की जगह पहुंच पाएगा, या फोर्ड हो सकेगा, या मार्गन, या राकफेलर हो सकेगा। कोई फिक्र नहीं। लेकिन वह सड़क पर उलटे-सीधे कपड़े पहन कर तो खड़ा हो ही सकता है। बिना स्नान किए गंदगी में जी तो सकता है। और तब निक्सन को भी उस पर ध्यान देना पड़ता है। तब मजबूरी हो जाती है, उस पर ध्यान देना ही पड़ेगा। लेकिन वह जो भी कर रहा है, वह केवल ध्यान आकर्षित करने की व्यवस्था और कोशिश है। अहंकार ध्यान मांगता है। ठीक न मिले, गलत ढंग से मांगता है।

लेकिन इतना समझ लेना जरूरी है कि जब भी आप ध्यान मांगते हैं, तब आप अपने अहंकार को पैडल दे रहे हैं। यह आपको स्मरण रख लेना जरूरी है, जब भी आप ध्यान मांगते हैं! आप घर के भीतर प्रवेश किए हैं और आपके बेटे ने उठ कर नमस्कार नहीं किया। आपके मन में जो पीड़ा होती है, वह पीड़ा इसलिए नहीं है कि बेटा असंस्कृत हो गया है, अशिष्ट हो गया है। यह सब रेशनलाइजेशन है। पीड़ा यह है कि बेटा भी ध्यान नहीं दे रहा है, अब कौन ध्यान देगा! सारा जगत गिरता हुआ मालूम पड़ता है; क्योंकि बेटा तक ध्यान नहीं दे रहा है!

हिंदुस्तान में माता-पिता बड़े तृप्त रहे हैं सदा। क्योंकि उन्होंने बड़ा अच्छा इंतजाम कर लिया था। बेटा उठ कर सुबह से ही उनके पैर पड़ लेता था। दिन भर के लिए उनके हृदय की शांति हो जाती थी। अच्छा था। टेक्निकल था। व्यवस्था में आ जाता था, रूटीन हो जाती थी। न बेटे को उससे कोई तकलीफ होती थी, न कोई करना पड़ता था खास; लेकिन पिता दिन भर के लिए शांत हो जाता था।

पश्चिम के पिता को कुछ न कुछ रास्ता खोजना पड़ेगा। क्योंकि पश्चिम में आदर प्रकट करने के लिए कोई ठीक इंतजाम नहीं किया उन्होंने। और आदर की मांग तो है ही। और आदर प्रकट करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। तो अड़चन होती है। आदर की मांग तो है ही। बाप चाहता है, जब वह घर में प्रविष्ट हो, तो बेटा उसे स्वीकार करे कि बाप घर में आ रहा है, घर का मालिक भीतर आ रहा है। मां भी यही चाहती है। बेटा भी यही चाहता है। सब यही चाहते हैं। छोटे से छोटे एक बच्चे का भी अहंकार यही चाहता है।

सुना है मैंने कि नसरुद्दीन छोटा है और एक रास्ते पर बैठ कर सिगरेट पी रहा है। एक बूढ़ी औरत, भली, भद्र औरत रुकी और उसने नसरुद्दीन से कहा कि बेटे, तुम्हारी मां को पता है कि तुम सिगरेट पीते हो? नसरुद्दीन ने सिगरेट के धुएं का एक छल्ला छोड़ते हुए कहा, और तुम्हारे पति को पता है कि तुम सड़क पर रुक कर अजनबी आदमियों से बातचीत करती हो? अजनबी आदमी, स्ट्रेंज मैन! तुम्हारे पति को पता है कि एकांत में, निर्जन स्थान में, सड़क पर अजनबी आदमी से रुक कर बातचीत करती हो?

छोटे से छोटे बच्चे में भी आकांक्षा है कि सब उसकी तरफ देखें। इसलिए माताएं सदा परेशान रहती हैं कि घर में मेहमान नहीं होते, तो बच्चे बड़े शांत रहते हैं; लेकिन घर में कोई मेहमान प्रवेश किया कि बच्चों ने उपद्रव शुरू किया। वह क्या वजह होगी? क्योंकि घर में मेहमान न हों तब बच्चे ऊधम करें, तो मां को भी चिंता नहीं है। लेकिन घर में कोई न हो, तो बच्चे शांत अपने काम में लगे रहते हैं। घर में कोई आए कि बच्चे गड़बड़ शुरू कर देते हैं।

असल में, घर में किसी के आते ही से बच्चे भी कहते हैं, हम पर भी ध्यान दो, हम भी यहां हैं। मैं भी यहां हूं, इसकी घोषणा बच्चे कैसे करें? वे चीजें पटक कर कर देते हैं। शोरगुल कर देते हैं, रोने लगते हैं, खाने की मांग करने लगते हैं। अभी घड़ी भर पहले उनकी मां कह रही थी कि कुछ खा लो; वे कहते थे, कोई जरूरत नहीं है। और अभी बस एक आदमी घर में प्रवेश किया, और उन्हें भूख लग आई। वह भूख नहीं लगी है। उनका अहंकार अभी से पैडलिंग सीख रहा है। वे कोशिश में लगे हैं कि कोई देख ले कि हम यहां हैं। मैं यहां हूं।

बच्चे से लेकर बूढ़े तक यही बचपना है। इसका स्मरण रखें, तो लाओत्से का सूत्र ख्याल में आ सके। दूसरे से ध्यान न मांगें। जो दूसरे से ध्यान मांगेगा, वह क्षणिक अहंकार को पैदा कर लेगा। लेकिन उसका क्षणभंगुर ही जीवन है। वह शाश्वत की निधि उसकी कभी भी अपनी न हो सकेगी।

दूसरे पर ध्यान दें। जब लाओत्से कहता है कि सर्वमंगल के हेतु जीएं, लिविंग फॉर अदर्स, जब लाओत्से कहता है, तो उसका मतलब यह है कि ध्यान दूसरे पर दें। और जैसे ही आप दूसरे पर ध्यान देते हैं, आपकी जिंदगी में क्रांति शुरू हो जाती है। क्योंकि तब आप हंस सकते हैं, दूसरे की नासमझियां आपको दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपके ध्यान देते ही से आप देखते हैं, उसका अहंकार कैसा प्रज्वलित होकर जलने लगा। यही कल तक आपके साथ हो रहा था। लेकिन अब आप दया कर सकते हैं।

दूसरे पर ध्यान देते ही आपको पता चलता है कि जितना ही आप गहरा ध्यान देते हैं दूसरे पर, उतने ही आप मिट गए होते हैं। और जब भीतर बिल्कुल शून्य होता है--जैसे ही ध्यान दूसरे पर गया, भीतर शून्य हो जाता है--तब आपके जीवन में पहली दफा पता चलता है कि गैर-तनाव की स्थिति क्या है।

फ्रायड से किसी ने पूछा, जब वह काफी बूढ़ा हो गया, उससे किसी ने पूछा कि तुम इतने लोगों की मानसिक बीमारियों का अध्ययन करते हो, सुबह से सांझ तक इतने पागलों से तुम्हारा वास्ता पड़ता है, तुम्हारा दिमाग खराब नहीं हो गया?

फ्रायड ने कहा, अपने पर ध्यान देने की सुविधा ही न मिली। अपने पर ध्यान दिए बिना पागल होना बहुत मुश्किल है। सुबह से लग जाता हूं दूसरे की चिंता में, रात दूसरे की चिंता करते सो जाता हूं। अपने पर ध्यान देने का अवसर न मिला।

इसलिए बड़े वैज्ञानिक अक्सर शांत हो जाते हैं; क्योंकि सारा ध्यान देते हैं किसी और चीज पर। प्रयोगशाला में किसी परखनली पर, टेस्ट ट्यूब पर उनका सारा ध्यान लगा रहता है। आइंस्टीन के साथ दिक्कत थी। आइंस्टीन को अपना स्मरण नहीं रह जाता था। तो कभी-कभी वह छह-छह घंटे अपने बाथरूम में टब में बैठा रह जाता था, छह-छह घंटे! पत्नी दस-पच्चीस दफा आकर दस्तक दे जाती। लेकिन उसकी भी हिम्मत न पड़ती जोर से दस्तक देने की कि पता नहीं, वह किस ख्याल में खोया हो!

डाक्टर राम मनोहर लोहिया मिलने गए थे। तो उनकी पत्नी ने लोहिया को कहा कि आपको मैं समय तो दे देती हूं; लेकिन इस समय पर मिलना हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, यह कुछ नहीं कहा जा सकता। पर लोहिया ने कहा कि मेरे पास ज्यादा समय नहीं है, मैं मुश्किल से घंटे भर का समय निकाल कर आऊंगा। अगर मिलना न हो सका, तो बड़ी अड़चन होगी। उसकी पत्नी ने कहा, हम कोशिश करेंगे; लेकिन आइंस्टीन भरोसे के नहीं हैं।

और वही हुआ। जब लोहिया पहुंचा, तो पत्नी ने कहा, आप बैठें, अब मैं कोशिश करती हूं। दरवाजे पर दस्तक दे रही हूं, वे अपने बाथरूम में चले गए हैं। कब निकलेंगे, कहना मुश्किल है। वे पांच घंटे बाद ही निकले। पूछा लोहिया ने कि इतनी देर आप करते क्या थे? आइंस्टीन ने कहा, एक सवाल में उलझ गया।

तो सवाल पर ध्यान अगर बहुत चला जाए, तो आइंस्टीन भी मिट गए, वह बाथरूम भी मिट गया। वे कहां हैं, यह बात भी समाप्त हो गई। ध्यान किसी भी चीज पर चला जाए, तो यहां भीतर अहंकार तत्काल कट जाता है। इसलिए बड़े वैज्ञानिक अक्सर निरहंकारी हो जाते हैं, बड़े चित्रकार निरहंकारी हो जाते हैं, बड़े नर्तक निरहंकारी हो जाते हैं। और बड़े त्यागी कभी-कभी नहीं हो पाते; क्योंकि त्यागी पूरा ध्यान अपने पर देता है। यह न खाऊं, यह न पीऊं, यह न पहनूं, यह पहनूं, इस जगह सोऊं, उस जगह उठूं! कहने को वह त्यागी होता है; लेकिन टू मच ईगो कांशस पूरे वक्त--मैं यह करूं और न करूं--सारा ध्यान मैं पर होता है।

इसलिए अक्सर यह दुर्घटना घटती है कि त्यागी अहंकार से मुक्त नहीं हो पाते और कभी-कभी साधारण, जिनको हम भोगी कहें, वे अहंकार से मुक्त हो जाते हैं। लेकिन सीक्रेट, राज एक ही है। आपका ध्यान आप पर कम जाए, तो आपके अहंकार को तेल नहीं मिलता। आपका ध्यान आपसे बाहर जाए! कितने अपने ध्यान को आप बाहर पहुंचा सकें, वही आपके निरहंकार होने की यात्रा है।

तो लाओत्से का यह वचन, "स्वर्ग और पृथ्वी दोनों ही नित्य हैं। इनकी नित्यता का कारण है कि ये स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त नहीं जीते। इसलिए इनका सातत्य संभव है।"

इसलिए ये सदा रह सकते हैं, इनके मिटने की कोई जरूरत नहीं है। मिटता केवल अहंकार है। इस जगत में मिटने वाली चीज केवल अहंकार है। केवल एक ही चीज है, जो मॉर्टल है। इसे थोड़ा कठिन होगा ख्याल में लेना।

इस जगत में न तो पदार्थ मिटता कभी, न आत्मा मिटती कभी, सिर्फ मिटता है अहंकार। शरीर कभी नहीं मिटता। मेरा यह शरीर, मैं नहीं था, तब भी था। इसका एक-एक कण मौजूद था। इसमें कुछ नया नहीं है। इस शरीर में जो कुछ भी है, वह सब मौजूद था। जब मैं नहीं था, तब भी। जब मैं नहीं रहूंगा, तब भी मेरे शरीर का एक कण भी मरेगा नहीं, सब मौजूद रहेगा। शरीर तो शाश्वत है, कुछ मरने वाला नहीं है उसमें।

वैज्ञानिक कहते हैं कि हम एक छोटे से कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। कुछ भी नष्ट नहीं किया जा सकता। शरीर में सब कुछ जो है, वह शाश्वत है। जल जल में मिल जाएगा; आग आग में खो जाएगी; आकाश आकाश से एक हो जाएगा। लेकिन सब शाश्वत है। आकार खो जाएगा; लेकिन जो भी उस आकार में छिपा है, वह सब मौजूद रहेगा। मेरी आत्मा भी नहीं मरती। फिर मरता कौन है? मरना घटता तो है! मृत्यु होती तो है!

सिर्फ मेरे शरीर और आत्मा का संबंध टूटता है। और उसी संबंध के बीच में वह जो एक अहंकार है, दोनों के मेल से जो रोज-रोज मैं पैदा कर रहा हूं, वह अहंकार टूटता है। लेकिन अगर मैं जान लूं कि वह अहंकार नहीं है, तो मेरे भीतर मरने वाला फिर कुछ भी नहीं है। और जब तक मैं जानता हूं, मैं अहंकार हूं, तब तक मेरे भीतर अमृत का मुझे कोई भी पता नहीं है। न हो सकता है पता। कोई उपाय भी नहीं है। आइडेंटिफाइड विद दि ईगो, पूरे हम एक हैं मैं के साथ, तो मृत्यु के सिवाय कुछ और होने वाला नहीं है। क्योंकि जिस चीज के साथ हमने अपने को जोड़ा है, वह अकेली चीज इस जगत में मरणधर्मा है।

यह बहुत हैरानी का वक्तव्य मालूम पड़ेगा। इस पूरे जगत में एक ही चीज मरने वाली है, वह अहंकार है। बाकी कोई चीज मरती नहीं। क्योंकि एक ही चीज पैदा होती है, वह अहंकार है। बाकी कोई चीज पैदा होती नहीं। बाकी सब चीजें हैं। सिर्फ अहंकार पैदा होता है, वह बाई-फिनामिना है। जैसे मैं रास्ते पर चलता हूं, सूरज था। मैं जब नहीं चल रहा था रास्ते पर, सूरज था। भरी दोपहर है, सूरज ऊपर है, रास्ता है। मैं अपने घर में बैठा हूं; मैं भी हूं, सूरज भी है। फिर मैं सूरज की रोशनी में आया, तब एक नई चीज पैदा होती है, वह मेरी छाया है। वह नहीं थी। जब मैं घर के भीतर था, वह नहीं थी। जब मैं घर के भीतर था, तब वह सूरज के नीचे भी नहीं थी। वह घर के भीतर भी नहीं थी, सूरज के नीचे भी नहीं थी। मैं सूरज के प्रकाश में आया, तो मेरे और सूरज के संबंध से पैदा हुई एक बाइ-प्रॉडक्ट है। वह मेरे पीछे बन गई छाया है। वह छाया मरणधर्मा है। जैसे ही मैं हट जाऊंगा या सूरज हट जाएगा, वह छाया खो जाएगी। अभी भी वह है नहीं। और अगर मैं समझ लूं कि मैं छाया हूं, तो मैं मुश्किल में पड़ूंगा; उसी मुश्किल में पड़ूंगा, जैसा मैंने सुना है कि एक लोमड़ी पड़ गई थी।

सुबह निकली थी। सूरज निकल रहा था। देखी उसने छाया, बड़ी लंबी थी! सोचा, आज भोजन के लिए कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि अपनी छाया को देख कर ही तो पता चलता है कि कितने बड़े हम हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है। लोमड़ी को पता भी कैसे चले कि कितनी बड़ी है। छाया! जब उसने देखा, इतनी बड़ी मेरी छाया है, तो मेरे बड़े होने में संदेह क्या! सोचा, एक ऊंट से कम में आज पेट न भरेगा। खोज पर निकली भोजन की। दोपहर होने आ गई। खोजती रही; ऊंट तो मिला नहीं। मिल भी जाता तो किसी प्रयोजन का न था। भूख बहुत बढ़ गई, भोजन मिला नहीं। दोबारा उसने झांक कर देखा कि छाया की क्या हालत है। सूरज सिर पर आ गया था। छाया सिकुड़ कर बहुत छोटी हो गई थी। उसने सोचा, अब तो, अब तो छोटा-मोटा एक खरगोश भी मिल जाए, तो काम चल सकता है। अब तो छोटे-मोटे खरगोश से भी काम चल सकता है।

छाया से जो जीएगा, वह ऐसी ही मुश्किल में पड़ता है। कभी छाया बहुत बड़ी मालूम पड़ती है, संयोग की बात है। जवानी में सभी को छाया बड़ी मालूम पड़ती है। तब सूरज निकल रहा होता है।

नसरुद्दीन कहता था कि मैं जब जवान था, मैंने तय किया था कि करोड़पति होकर रहूंगा। यह मेरा पक्का संकल्प था। लेकिन जब वह कह रहा था, तब वह एक भिखारी से कह रहा था, मित्र से। दोनों भीख मांगते थे। यह मेरा संकल्प था जवानी में कि करोड़पति होकर ही मरूंगा। उसके मित्र भिखारी ने गौर से देखा। उसने कहा,

फिर क्या हुआ तुम्हारे संकल्प का? नसरुद्दीन ने कहा, बाद में मैंने पाया, करोड़पति होने की बजाय संकल्प को बदल लेना ज्यादा आसान है। संकल्प बदल लिया।

बाद में सभी ऐसा पाते हैं। उसका कारण यह नहीं है। छाया छोटी हो गई होती है। खरगोश से भी काम चल जाता है। बूढ़े होते-होते-होते-होते-होते आदमी पाता है कि ठीक है। जवानी में छाया बड़ी मालूम पड़ती है, वह सांयोगिक है। बुढ़ापे में सब सिकुड़ जाता है, छोटा हो जाता है। लेकिन जो जानते हैं, वे जवानी में भी जानते हैं कि छाया छाया है, वह मैं नहीं हूं।

ठीक ऐसी ही एक अंतर-छाया है, जिसका नाम अहंकार है। उसे हम कहें, इनर शैडो। जीवन के संबंधों से एक भीतर भी छाया निर्मित होती है, जो मेरा अहंकार है; जिससे मैं तौलता हूं कि मैं कौन हूं। और वह रोज हमें बदलना पड़ता है; क्योंकि वह भी संयोग पर निर्भर करता है।

एक आदमी सुबह आता है और कहता है कि आप! आप जैसा आदमी जमीन पर कभी पैदा ही नहीं हुआ! एकदम छाया बड़ी हो जाती है भीतर। आखिर खुशामद का सारा रहस्य इसी पर है। और बड़े मजे की बात यह है कि कभी कोई नहीं पहचान पाता कि यह खुशामद है। कभी कोई नहीं पहचान पाता कि यह खुशामद है। यह आदमी खुशामद कर रहा है, कोई नहीं पहचान पाता। नहीं पहचान पाएगा; क्योंकि खुशामद बड़ी सुखद है, छाया को बड़ी करती है। जिसको हम मेहनत से भी बड़ा नहीं कर पाते, खुशामद उसे एकदम फुला देती है।

कहते हैं कि नसरुद्दीन को हिंदुस्तान भेजा गया था; उसके सुलतान ने भेजा था। बड़ी मुश्किल में पड़ गया नसरुद्दीन। हिंदुस्तान आया; सम्राट की तरफ से आया था, सम्राट के दरबार में आया था।

हिंदुस्तान के सम्राट के पास जाकर उसने कहा कि धन्य हैं आप, हे पूर्णमासी के चांद!

जो राजदूत था, जिस मुल्क से नसरुद्दीन आया था, उसने फौरन अपने सम्राट को खबर की कि यह आदमी आपने कैसा भेजा है? इसने यहां के सम्राट को पूर्णमासी का चांद कहा है। आपकी बेइज्जती हो गई।

जब नसरुद्दीन पहुंचा, तो सम्राट बहुत नाराज था। उसने कहा कि मैंने सुना है, तुमने कहा कि पूर्णमासी का चांद! मुझे छोड़ कर और भी कोई पूर्णमासी का चांद है?

नसरुद्दीन ने कहा, आप? आप दूज के चांद हैं। लेकिन पूर्णमासी के बाद अमावस ही आती है। आपका अभी बहुत विकास संभव है। आप समझे नहीं, नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने क्यों पूर्णमासी का चांद कहा। अब मौत करीब है उस आदमी की, मरेगा। आप दूज के चांद हैं!

वह यहां से भी सम्मान लेकर गया, पुरस्कार लेकर गया; उसने वहां भी सम्मान और पुरस्कार लिया। यहां उसने पूर्णिमा का चांद कह कर अहंकार को फुसला दिया; वहां उसने दूज का चांद कह कर अहंकार को फुसला दिया। और आदमी ऐसा कमजोर है कि दूज के चांद से भी फुसल जाता है और पूर्णमासी के चांद से भी फुसल जाता है। हम तैयार ही बैठे हैं कि कोई कहे। साधारण सी स्त्री को कोई कह देता है कि तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है! फिर वह आईने में अपनी शक्ल ही नहीं देखती, वह भरोसा ही कर लेती है।

नसरुद्दीन अपनी प्रेयसी के पास बैठा है समुद्र के किनारे। उसकी प्रेयसी कहती है कि समुद्र और तुममें बड़ी समानता है। जब भी मैं समुद्र को देखती हूं, तुम्हारी याद आती है; और जब भी तुमको देखती हूं, समुद्र की याद आती है। नसरुद्दीन फूल गया। नसरुद्दीन ने कहा, निश्चित ही! निश्चित ही समानता इसीलिए मालूम पड़ती होगी, बिकाज दि सी इ.ज आल्सो सो वास्ट, सो रॉ, सो वाइल्ड, सो रोमांटिक! जैसा कि मैं हूं, ऐसा ही विस्तार यह सागर का, ऐसा ही जंगली इसका रुख, ऐसी ही कच्ची इसकी आवाजें और ऐसा ही रूमानी है! जरूर इसीलिए तुम्हें मेरी और इसके साथ याद आती होगी।

उसकी प्रेयसी ने कहा, क्षमा करो, यू बोथ मेक मी सिक! और कोई बात नहीं है। तुम दोनों ही को देख कर मुझे मितली आती है, और कुछ नहीं होता। यही समानता है।

किसी से भी कुछ कह दो, वह मानने को राजी है। कैसी-कैसी बातों पर लोग राजी हो गए हैं! स्त्रियां राजी हैं कि उनकी आंखें मछलियों की तरह हैं! किसी की आंखें नहीं हैं मछली की तरह। उनके ओंठ गुलाब की पंखुड़ियों की तरह हैं! किसी के ओंठ गुलाब की पंखुड़ियों की तरह नहीं हैं। उनके शरीर से इत्रों की सुगंध आती है! किसी के शरीर से कभी नहीं आती। मगर सब राजी हैं! कवि राजी हैं कहने को, सुनने वाले राजी हैं, स्वीकार करने वाले राजी हैं। कहानियां पुरानी, पिटी हुई, कविताएं पुरानी, मरी हुई रोज कही जाती हैं और चलती चली जाती हैं। क्यों? वह इनर जो शैडो है, वह जो भीतर की अहंकार की छाया है, वह एकदम तृप्त होती है। कांटे से भी कहो कि तुम फूल हो, वह राजी हो जाता है। वह राजी हो जाता है।

सजग होना पड़े! इस अंतर-छाया के प्रति जागरूक होना पड़े। तो लाओत्से कहता है कि इस अंतर-छाया के प्रति जो जागरूक हो जाए, सातत्य जिस सत्य का है, उससे उसके संबंध हो जाते हैं। जो इस अंतर-छाया से बंधा रह जाए, उसके संबंध, जो क्षणभंगुर है, उससे ही होते हैं। इस सूत्र को दूसरे सूत्र में लाओत्से ने फैलाया है।

"इसलिए तत्वविद अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं।"

दोज हू नो, जो जानते हैं, वे अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं। जीसस ने कहा है, धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं! क्यों जीसस का यह वक्तव्यः क्योंकि धन्य हैं वे, जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं? क्योंकि जीसस कहते हैं, तुम्हें पता हो या न पता हो, जो अपने को अंतिम खड़ा कर लेता है, वह प्रथम खड़ा हो गया। क्योंकि इससे बड़ी और कोई गरिमा नहीं है। और इससे बड़ी कोई उपलब्धि नहीं है। जिसने अपनी अंतर-छाया के अहंकार को खो दिया, उसको अब द्वितीय करने का कोई भी उपाय नहीं है। वह प्रथम हो गया। बिना हुए प्रथम हो गया। अब उसे प्रथम खड़े होने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

अगर महावीर और बुद्ध ने सम्राट होने का पद छोड़ा, तो इसलिए नहीं कि सम्राट का पद छोड़ने से कोई अहंकार छूट जाएगा; बल्कि इसलिए कि जिनका अहंकार छूट गया, उन्हें अब सम्राट होने की कोई भी जरूरत नहीं है। अब वे सम्राट हैं। अब वे किस दशा में हैं और कहां हैं, इससे कोई भी भेद नहीं पड़ता। इररेलेवेंट! अब बुद्ध जो हैं, भिक्षा का पात्र लेकर भीख मांग सकते हैं; लेकिन बुद्ध की आंखों में भिखारी खोजे से भी नहीं मिलेगा। कम से कम भिखारी अगर कोई आदमी इस जमीन पर हुआ है, तो वह बुद्ध है। और सबसे ज्यादा भीख उसने मांगी है। हाथ में भिक्षा का पात्र है।

असल में, अब वह इतना निश्चिंत है अपने सम्राट होने के प्रति कि भिखारी का पात्र कोई फर्क नहीं लाता है। ख्याल रखना, इतना निश्चिंत है! अपने सम्राट होने की बात इतनी पक्की हो गई है अब कि अब भीख मांगने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम अगर डरते हैं भीख मांगने में, तो उसका कारण यह नहीं है कि हम भीख मांगने में डरते हैं। उसका कारण यह है कि हम भीख मांगें, तो हम भिखारी ही हो जाएंगे। भीतर के सम्राट का तो हमें कोई भी पता नहीं है। भीख मांगी कि भिखारी हो गए। जो हम करते हैं, वही हम हो जाते हैं। महावीर और बुद्ध भीख मांग सके शान से सम्राट की। उसका कारण था। इतने आश्वस्त हो गए; जिस दिन अंतिम अपने को खड़ा किया, उसी दिन प्रथम होना स्वभाव हो गया।

लाओत्से कहता है, "इसलिए तत्वविद अपने व्यक्तित्व को पीछे रखते हैं, फिर भी वे सब से आगे पाए जाते हैं।"

पोंछ डालते हैं अपने को, सब तरफ से हटा लेते हैं अपने को; फिर भी अचानक इतिहास पाता है कि वे सबसे आगे खड़े हो गए।

आपको पता है? बुद्ध के समय में जो सम्राट थे बिहार में, उनमें से एकाध का नाम भी आपको पता है? खो गए। राजनीतिज्ञ थे, उनका नाम पता है? किसी को कोई पता नहीं है। और एक भिखारी सामने आकर खड़ा हो गया। बुद्ध के पिता ने बुद्ध को कहा था, तू पागल है। लोग जन्म भर मेहनत करते हैं, जीवन भर, तब भी ऐसे महल उपलब्ध नहीं होते। और यह साम्राज्य इतना बड़ा हमारी पीढ़ियों ने निर्मित किया है! और तू पागल की तरह इसे छोड़ कर जा रहा है। लेकिन बुद्ध के पिता का नाम अगर किसी को याद है, तो सिर्फ इसलिए कि बुद्ध, उनका लड़का, घर छोड़ कर गया था। अन्यथा बुद्ध के पिता का नाम इतिहास में कभी भी स्मरण नहीं हो सकता था। कोई कारण नहीं था। कोई जानता भी नहीं। क्योंकि बुद्ध के पिता जैसे सैकड़ों लोग सिंहासनों पर बैठ चुके और खाली कर चुके हैं। अगर आज बुद्ध के पिता का नाम मालूम है, तो सिर्फ एक वजह से कि एक लड़का भीख मांगने चला गया था।

बुद्ध अपने राज्य को छोड़ कर चले गए; क्योंकि उस राज्य में रोज-रोज लोग आकर हाथ-पैर जोड़ते और कहते कि वापस लौट चलो। पड़ोसी के राज्य में चले गए। सोचा, वहां कोई नहीं सताएगा। लेकिन पड़ोसी सम्राट को पता चला, वह भागा हुआ आया। उसने कहा कि तू नासमझ है। अगर पिता से नाराज है, तो कोई फिक्र नहीं। तू मेरे घर चल। मैं तुझे अपनी लड़की से विवाह कर देता हूं। राज्य तेरा ही होगा; क्योंकि मेरी लड़की ही है सिर्फ। तू फिक्र मत कर। अगर पिता से नाराज है, मेरे घर चल।

बुद्ध ने कहा, मैं नाराज किसी से नहीं हूं। मैं केवल बचता फिर रहा हूं। उधर पिता से बच रहा था, इधर आप पिता की तरह मिल गए। मुझ पर कृपा करो। मुझे अकेला छोड़ दो। क्योंकि तुम जो देना चाहते हो, उसका मेरे लिए अब कोई भी मूल्य नहीं है।

बुद्ध का वचन बहुत कीमती है। बुद्ध ने कहा, जब तक मुझे मेरे भीतर के मूल्य का कोई पता नहीं था, तब तक सब चीजें मूल्यवान मालूम पड़ती थीं। अब जब भीतर का हीरा मिल गया, तो अब बाहर के सब हीरे फीके हो गए हैं।

लाओत्से कहता है, "फिर भी वे सब के आगे पाए जाते हैं।"

इतिहास की इतनी भीड़-भड़क्कम है, सब लोग आगे होने को उत्सुक और आतुर हैं। और अचानक, अचानक राजनीतिज्ञ खो जाते हैं, सम्राट खो जाते हैं, धनपति खो जाते हैं; और न मालूम कैसे लोग, जिन्होंने अपने को पीछे खड़ा कर दिया था, वे आगे खड़े हो जाते हैं!

लाओत्से को हुए कोई ढाई हजार वर्ष हो गए। ढाई हजार वर्ष में कितने लोग आए होंगे! लेकिन लाओत्से के आगे कोई भी आदमी खड़ा नहीं हो सका। और यह आदमी ऐसा था कि बिल्कुल पीछे खड़ा हो गया था। इसके पीछे खड़े होने का हिसाब लगाना मुश्किल है।

कहा जाता है कि लाओत्से मरने के पहले चीन को छोड़ दिया; सिर्फ इसीलिए कि कोई उसकी समाधि न बना दे। मरने के पहले चीन छोड़ दिया, क्योंकि मरेगा तो कहीं कोई समाधि बना कर एक पत्थर न खड़ा कर दे। क्योंकि जब मैंने कोई निशान नहीं बनाए, तो मेरे मरने के बाद कोई निशान क्यों हो! लेकिन जो इस तरह अपने को पोंछ कर हट गया, उसे हम पोंछ नहीं पाए। सदियां बीत जाएं, लाओत्से को हम पोंछ नहीं सकते। वह ठीक कहता है कि तत्वविद अपने को पीछे रखते हैं, फिर भी वे सदा आगे पाए जाते हैं।

यह सदा आगे पाए जाने के लिए पीछे मत रख लेना। ऐसा नहीं होता। कि कोई सोचे कि चलो, ठीक है, तरकीब हाथ लगी; पीछे रख लो, आगे हो जाओ। नहीं, जो पीछे हो जाते हैं, वे आगे पाए जाते हैं। लेकिन अगर किसी ने अपने को आगे होने के लिए पीछे रखा, तो वह पीछे ही हो जाता है; आगे होने का कोई उपाय नहीं है।

तो इसमें कॉजल नहीं है, इसमें कोई कार्य-कारण संबंध नहीं है; कांसीक्वेंस है। यह ख्याल रखना, नहीं तो भूल होती है। नहीं तो भूल होती है। लोग कहते हैं, अच्छी बात है। उनके मन को तृप्ति मिलती है। अहंकार कहता है, यह तो बहुत बढ़िया बात है। बिना आगे हुए आगे होने की तरकीब हाथ लगती है, तो हम पीछे हुए जाते हैं। लेकिन आगे हो जाएंगे? नहीं, पीछे हो जाता है अगर कोई आगे होने के लिए, तो पीछे होता ही नहीं। पीछे होने का मतलब ही है कि आगे का ख्याल ही न रहा।

इसलिए दूसरा जो वाक्य है, इट इ.ज नॉट लिंक्ड कॉजली। यह पहले वाक्य के परिणाम की तरह नहीं है कि आग में हाथ डालो तो हाथ जलता है। ऐसा नहीं है। यह कांसीक्वेंस है, यह परिणाम है। इसको गणित की तरह मत सोचना कि पीछे खड़े हो जाएं, तो आगे पाए जाएंगे। कभी न पाए जाएंगे। पीछे खड़ा हो जाए कोई, तो आगे पाया जाता है। लेकिन पीछे खड़े होने का मतलब यह है कि आगे का जिसे ख्याल ही छूट गया है। उसे फिर पता ही नहीं चलता कि मैं आगे खड़ा हूं, पीछे खड़ा हूं। मैं कहां हूं, यह उसे पता ही नहीं चलता है।

"वे निज की सत्ता की उपेक्षा करते हैं, फिर भी उनकी सत्ता सुरक्षित रहती है।"

वे अपने को बिल्कुल ही उपेक्षित कर देते हैं, भूल ही जाते हैं, अपनी चिंता ही छोड़ देते हैं; फिर भी उनकी सुरक्षा में कोई अंतर नहीं पड़ता। असल में, जैसे ही कोई व्यक्ति अपना बोझ छोड़ देता है, परमात्मा उसका बोझ खींचने को तैयार हो जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति कह देता है कि ठीक है, अब मैं चिंता न करूंगा अपनी, वैसे ही सारा अस्तित्व उसकी चिंता करने लगता है। और जैसे ही कोई आदमी कहता है कि मैं अपनी चिंता, अपनी चिंता... । सारा अस्तित्व उसकी चिंता छोड़ देता है। और वह एलियनेटेड हो जाता है; वह इस पूरे जगत के बीच एक अजनबी हो जाता है, जो नाहक ही अपना बोझ ढोता है।

"चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं, इसलिए उनके लक्ष्यों की पूर्ति हो जाती है।"

ये मनुष्य के इतिहास में बोले गए सबसे ज्यादा पैराडाक्सिकल वचन हैं, और सबसे मूल्यवान। इन एक-एक वचन से एक-एक बाइबिल निर्मित हो सकती है। लाओत्से कहता है कि चूंकि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं, उनके सब स्वार्थ पूरे हो जाते हैं। वह कह यह रहा है कि स्वार्थ, जीवन का जो परम आनंद है, वही जीवन का स्वार्थ है। जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है, वह परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है। और जो व्यक्ति अहंकार को छोड़ देता है, उसके लिए भय समाप्त हो जाता है। क्योंकि अहंकार के साथ भय है कि मैं मिट न जाऊं, नष्ट न हो जाऊं, हार न जाऊं, असफल न हो जाऊं। ये सब भय समाप्त हो गए। जहां भय नहीं है, वहां सुरक्षा है।

हम तो उलटा करते हैं। जितनी सुरक्षा करते हैं, उतने असुरक्षित हो जाते हैं। और जितने बचना चाहते हैं, उतने भयभीत हो जाते हैं। और जितना सोचते हैं कि अपने को बचा लें, बचा लें, बचा लें, उतना ही पाते हैं कि अपने को खोते चले जा रहे हैं, खोते चले जा रहे हैं।

एक आखिरी बात, फिर हम कल बात करेंगे।

अगर कभी नदी में आपने भंवर पड़ते देखे हों; नदी में कभी-कभी जोर से गोल भंवर पड़ते हैं। अगर भंवर में आप कोई चीज डाल दें, तो शीघ्र ही भंवर उसे घुमा कर नीचे ले जाता है। अगर आपको भंवर में गिरा दिया जाए और अगर आप लाओत्से को नहीं जानते, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ेंगे। अगर जानते हैं, तो भंवर से बच सकते हैं।

अगर भंवर में आप गिर जाएं और भंवर ताकतवर हो, तो स्वभावतः आप पहले बचने की कोशिश करेंगे कि भंवर कहीं मुझे स्क्रू डाउन न कर दे। तो आप बचने की पूरी ताकत लगाएंगे। आप जितनी ताकत लगाएंगे, उतनी ही आपकी ताकत टूटेगी। क्योंकि भंवर की विराट ताकत आपकी ताकत के खिलाफ है; वह आपको तोड़ डालेगा। थोड़ी देर में आप थक जाएंगे, मुर्दा हो जाएंगे। तब भंवर आपको नीचे ले जाएगा। फिर बचना बहुत मुश्किल है।

लाओत्से कहता है, अगर कभी भंवर में फंस जाओ, तो पहला काम यह करना, भंवर से लड़ना मत, भंवर के साथ डूबने को राजी हो जाना। तो तुम्हारी ताकत जरा भी नष्ट न होगी। और भंवर शीघ्रता से आदमी को नीचे ले जाता है। भंवर ऊपर बड़ा होता है, नीचे छोटा होता जाता है। स्क्रू की तरह नीचे छोटा होता जाता है। नीचे से बच कर निकलने में जरा भी कठिनाई नहीं है। अपने आप आदमी निकल जाता है। लेकिन ऊपर जो लड़ता है, वह नीचे बचता है, तब तक ताकत नहीं रहती। डूब जाना भंवर के साथ, नीचे निकल आना बाहर। कुछ करना न पड़ेगा।

इसे ऐसा समझें। आपने देखे होंगे जिंदा आदमी पानी में डूबते और मुर्दा आदमियों को तैरते देखा होगा। कभी सोचा कि बात क्या है? मुर्दे तैर जाते हैं, जिंदा डूब जाते हैं। बड़ी पैराडाक्सिकल बात है। आखिर मुर्दे को कौन सी तरकीब पता है जिससे वह पानी पर तैर जाता है। और जिंदा को कौन सी तरकीब पता है कि डूब जाते हैं और मर जाते हैं। जिंदा को एक ही तरकीब पता है कि बचने की बड़ी कोशिश करते हैं। वे बचने की कोशिश में ही थकते हैं, थक कर ही डूबते हैं। सागर नहीं डुबाता, पानी नहीं डुबाता, भंवर नहीं डुबाती। आप थक कर डूब जाते हैं। लेकिन मुर्दा लड़ता ही नहीं। मुर्दा कहता है, ले चलो, जहां ले चलना है। सागर उसे ऊपर उठा देता है। वह लड़ता ही नहीं, तैर जाता है ऊपर!

जो लोग भी तैरना जानते हैं, वे असल में, एक अर्थ में, मुर्दे की कला सीख लेते हैं। और जो होशियार तैराक हैं, वे अपने को मुर्दे की तरह पानी पर छोड़ देते हैं, हाथ-पैर भी नहीं हिलाते, और पानी उन्हें डुबाता नहीं। कोई उनके बीच समझौता नहीं है, पानी और उनके बीच कोई कंप्रोमाइज नहीं है, किसी तरह का कोई शड्यंत्र नहीं है। बस एक तरकीब जानने की जरूरत है कि वह मुर्दे की तरह पड़ जाए। मुर्दे की तरह पड़ने का क्या मतलब है? मरने का भय छोड़ दे; या मान ले कि मर गए। तो पानी पर तैर जाता है।

लाओत्से कहते हैं, सुरक्षित हैं वे, जिन्हें सुरक्षा की कोई चिंता न रही। अभय हो गए वे, जिन्होंने भय को अंगीकार कर लिया, भय से जो बचते नहीं। आगे आ गए वे, जो पीछे खड़े होने को राजी हो गए। और जो मिटने को तैयार, मरने को तैयार, अमृत उनकी उपलब्धि है।

अगला सूत्र हम कल लेंगे। कीर्तन में सम्मिलित हों। मुर्दे की तरह! ऐसे बैठे न रहें, मुर्दे की तरह बहें उसमें। अकड़ कर रोके न रहें कीर्तन में अपने को। कीर्तन भी, सम्मिलित हुआ जा सके, तो गहरे निर-अहंकार में ले जाने का कारण बन सकता है।

इक्कीसवां प्रवचन

जल का स्वभाव ताओ के निकट है

Water

1. The highest excellence is like (that of) water.
The excellence of water appears in its befitting all
things, and in its occupying, without striving
(to the contrary) the low place which all men dislike.
Hence (its way) is near to (that of) the Tao.

2. The excellence of a residence is in (the suitability of) the place;
That of the mind is in abysmal stillness;
That of association is in their being with the virtuous;
That of government is in its securing good order;
That of (the conduct) of affairs is in its ability;
And that of (initiation of) any movement is in its timeliness.

3. And when (one with the highest excellence) does not
wrangle (about his position) no one finds fault with him.

अध्याय 8 : सूत्र 1, 2 व 3

जल

1. सर्वोत्कृष्टता जल के सदृश होती है।

जल की महानता पर-हितैषणा में निहित होती है, और उस विनम्रता में होती है, जिसके कारण वह अनायास ही ऐसे निम्नतम स्थान ग्रहण करती है, जिनकी हम निंदा करते हैं। इसीलिए तो जल का स्वभाव ताओ के निकट है।

2. आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में होती है, मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में, संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में, शासन की श्रेष्ठता अमन-चैन की स्थापना में, कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में, और किसी आंदोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।

3. और जब तक कोई श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी निम्न स्थिति के संबंध में कोई वितंडा खड़ा नहीं करता, तब तक वह समादृत होता है।

श्रेष्ठता का आवास कहां है?

साधारणतः जब भी हम सोचते हैं, कोई व्यक्ति श्रेष्ठ है, तो हम सोचते हैं उसके पद के कारण, उसके धन के कारण, उसके यश के कारण। लेकिन सदा ही हमारे कारण उस व्यक्ति के बाहर होते हैं। यदि पद छिन जाए, धन छिन जाए, यश छिन जाए, तो उस व्यक्ति की श्रेष्ठता भी छिन जाती है।

लाओत्से कहता है, जो श्रेष्ठता छिन सके, उसे हम श्रेष्ठता न कहेंगे। और जो श्रेष्ठता किसी बाह्य वस्तु पर निर्भर करती हो, वह उस वस्तु की श्रेष्ठता होगी, व्यक्ति की नहीं। अगर मेरे पास धन है, इसलिए श्रेष्ठ हूं, तो वह श्रेष्ठता धन की है, मेरी नहीं। मेरे पास पद है; वह श्रेष्ठता पद की है, मेरी नहीं। मेरे पास ऐसा कुछ भी हो जिसके कारण मैं श्रेष्ठ हूं, तो वह मेरी श्रेष्ठता नहीं है। अकारण ही अगर मैं श्रेष्ठ हूं, तो ही मैं श्रेष्ठ हूं।

लाओत्से यह कहता है कि श्रेष्ठता व्यक्ति की निजता में होती है। उसकी उपलब्धियों में नहीं, उसके स्वभाव में। क्या उसके पास है, इसमें नहीं; क्या वह है, इसमें। उसके पजेशंस में नहीं, उसकी संपदाओं में नहीं; स्वयं उसमें ही श्रेष्ठता निवास करती है। लेकिन इस श्रेष्ठता को नापने का हमारे पास क्या होगा उपाय? धन को हम नाप सकते हैं, कितना है। पद की ऊंचाई नापी जा सकती है। त्याग कितना किया, नापा जा सकता है। ज्ञान कितना है, प्रमाणपत्र हो सकते हैं। सम्मान कितना है, लोगों से पूछा जा सकता है। आदमी भला है या बुरा है, गवाह खोजे जा सकते हैं। लेकिन निजता की श्रेष्ठता के लिए क्या होगा प्रमाण?

अगर कोई बाह्य कारण से व्यक्ति श्रेष्ठ नहीं होता... और नहीं होता है, लाओत्से ठीक कहता है। सच तो यह है कि जो लोग भी बाहर श्रेष्ठता खोजते हैं, वे निकृष्ट लोग होते हैं। जब कोई व्यक्ति धन में अपनी श्रेष्ठता खोजता है, तो एक बात तो तय हो जाती है कि स्वयं में श्रेष्ठता उसे नहीं मिलती है। जब कोई राजनीतिक पद में खोजता है, तो एक बात तय हो जाती है कि निज की मनुष्यता में उसे श्रेष्ठता नहीं मिलती है। श्रेष्ठता जब भी कोई बाहर खोजता है, तो भीतर उसे श्रेष्ठता से विपरीत अनुभव हो रहा है, इसकी खबर देता है।

पश्चिम के एक बहुत बड़े मनस्विद एडलर ने इस सदी में ठीक लाओत्से को परिपूर्ण करने वाला, सब्स्टीट्यूट करने वाला सिद्धांत पश्चिम को दिया है। और वह यह हैः जो लोग भी सुपीरियर होने की चेष्टा करते हैं, वे भीतर से इनफीरियर होते हैं। जो लोग भी श्रेष्ठता की खोज करते हैं, वे भीतर से हीनता से पीड़ित होते हैं। और इसलिए एक बहुत मजे की बात घटती है कि अक्सर जिन लोगों को हीनता का भाव बहुत गहन होता है, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स भारी होती है, वे कोई न कोई पद, कोई न कोई धन, कोई न कोई यश उपलब्ध करके ही मानते हैं। क्योंकि वे बिना सिद्ध किए नहीं मान सकते कि वे अश्रेष्ठ नहीं हैं, वे भी श्रेष्ठ हैं। और उनके पास एक ही उपाय है, आपकी आंखों में जो दिखाई पड़ सके।

मैंने एक मजाक सुना है। सुना है कि एडलर को मानने वाला एक बड़ा मनोवैज्ञानिक एक राजधानी में व्याख्यान करता है। वह कहता है कि जो लोग भीतर से दरिद्र होते हैं, वे लोग धन की खोज करते हैं और धनी हो जाते हैं। जो लोग भीतर से कमजोर होते हैं, भयभीत होते हैं, डरपोक होते हैं, वे अक्सर बहादुरी की खोज करते हैं और बड़े बहादुर भी हो जाते हैं। जो लोग हीन होते हैं, वे श्रेष्ठता की खोज करते हैं।

नसरुद्दीन भी उस सभा में मौजूद था। उसने खड़े होकर पूछा कि मैं यह जानना चाहता हूं, क्या वे लोग, जो मनोवैज्ञानिक हैं, मानसिक रूप से कमजोर होते हैं? दोज हू आर साइकोलॉजिस्ट्स, आर दे मेंटली इनफीरियर? जो लोग मन पर ही अपनी सारी प्रतिष्ठा को निर्भर कर देते हैं, क्या वे मानसिक रूप से कमजोर होते हैं?

इस बात की भी संभावना है। यह मजाक ही नहीं, इस बात की संभावना भी है। इस बात की संभावना है कि जो लोग दूसरों के मनों के संबंध में जानने को बहुत आतुर होते हैं, भीतर इनके मन में भी कोई पीड़ा और ग्लानि का भाव बहुत होता है। असल में, हम जो भी बाहर करने जाते हैं, उसके कारण कहीं हमारे भीतर ही होते हैं।

लाओत्से कहता है, श्रेष्ठता निजता में होती है, स्वयं में होती है, स्वभाव में होती है।

पर उस श्रेष्ठता को हम जानेंगे कैसे? उसकी पहचान क्या है? क्योंकि यह जिसको हम अब तक श्रेष्ठता कहते रहे हैं, इसकी तो पहचान है। लेकिन वह पहचान लाओत्से की दृष्टि से सिर्फ इस व्यक्ति को भीतर हीन सिद्ध करती है, श्रेष्ठ सिद्ध नहीं करती।

लाओत्से कहता है, उसकी पहचान हैः "दि हाईएस्ट एक्सीलेंस इ.ज लाइक दैट ऑफ वाटर!"

यह उसकी पहचान है कि वह जो परम श्रेष्ठता है, वह पानी के स्वभाव जैसी होती है।

पानी का स्वभाव यह है कि वह बिना किसी प्रयास के निम्नतम स्थान में प्रवेश कर जाता है। बिना किसी प्रयास के, अनायास ही, स्वभाव ही उसका ऐसा है कि वह नीचे की तरफ बहता है। आप पहाड़ पर छोड़ दें, थोड़े ही दिन में आप उसे घाटी में पाएंगे। इस घाटी तक पहुंचने के लिए उसे कोई सायास चेष्टा नहीं करनी पड़ती। इसके लिए वह सोचता भी नहीं, इसके लिए वह अपने को समझाता भी नहीं। इसके लिए वह साधना भी नहीं करता, तप भी नहीं करता, अपने मन को भी नहीं मारता। बस यह उसका स्वभाव है कि जहां गड्ढा हो, नीचा हो स्थान, वहीं वह प्रवेश कर जाता है। अगर उस गड्ढे से भी नीचा गड्ढा उसे मिल जाए, तो वह तत्काल उसमें प्रवेश कर जाता है।

लाओत्से कहता है कि जो परम श्रेष्ठता है, वह जल के सदृश होती है।

श्रेष्ठतम व्यक्ति गड्ढे खोज लेता है, शिखर नहीं खोजता। क्यों? यह लक्षण बहुत अजीब मालूम पड़ता है! और इससे बेहतर लक्षण ढाई हजार साल में फिर नहीं बताया जा सका। लाओत्से ने जो लक्षण बताया है, वह परम रेखा हो गई, अल्टीमेट। उसके बाद फिर कोई लक्षण नहीं खोजा जा सका इससे बेहतर। क्या बात है?

इसे अगर हम दूसरी तरफ से देखें, तो समझ में आ जाएगा।

हीन आदमी प्रयास करता है ऊंचे स्थान की तरफ जाने का। हीन आदमी को मौका मिले ऊपर चढ़ने का, तो वह छोड़ेगा नहीं। मौका न भी मिले, तो भी जद्दोजहद करता है। उसका पूरा जीवन एक ही कोशिश में होता हैः और ऊपर, और ऊपर, और ऊपर। वह आयाम कोई भी हो--धन का, यश का, पद का, ज्ञान का, त्याग का--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, और ऊपर! वह आयाम अंत में यह भी हो सकता है कि निकृष्ट और हीन आदमी यह कहे कि मैं बिना ईश्वर को पाए तृप्त नहीं होऊंगा। जब तक मैं घोषणा न करूं अहं ब्रह्मास्मि की, तब तक मेरी तृप्ति नहीं है।

लाओत्से के हिसाब से अपने को ईश्वर की अंतिम स्थिति तक पहुंचाने की जो आकांक्षा है, वह आकांक्षा विपरीत है जल के स्वभाव के। उसे हम ऐसा समझ लें कि वह अग्नि का स्वभाव है, उदाहरण के लिए। अग्नि ऊपर की तरफ भागती है। उसे कितना ही दबाओ, वह छूटते ही ऊपर की तरफ भागती है। अग्नि नीचे की तरफ नहीं

जाती। अगर हम दीए को उलटा भी कर दें, तो दीया उलटा हो जाता है, लेकिन ज्योति उलटी होकर ऊपर की तरफ भागने लगती है। बुझ जाए भला, लेकिन ज्योति नीचे की तरफ जाने को राजी नहीं होती। उसे अगर नीचे की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। उसे बहुत दबाना पड़ेगा। अगर अहंकार को नीचे की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। लेकिन जल नीचे की तरफ सहज जाता है। अगर उसे ऊपर की तरफ ले जाना हो, तो बड़े प्रयास की जरूरत है। कुछ पंपिंग का इंतजाम करना पड़े, मशीनें लगानी पड़ें, तब हम उसे ऊपर चढ़ा सकते हैं। फिर भी मौका पाते ही पानी नीचे भाग आएगा।

यह नीचे की तरफ जाने की बात को लाओत्से श्रेष्ठता का परम लक्षण कहता है। क्योंकि नीचे जाने को वही राजी हो सकता है, जिसकी श्रेष्ठता इतनी सुनिश्चित है कि नीचे जाने से नष्ट नहीं होती है। ऊपर वही जाने को उत्सुक होता है, जिसे पता है कि अगर वह नीचे रहा, तो निकृष्ट समझा जाएगा। वह खुद भी अपने को निकृष्ट समझेगा। ऊपर पहुंच जाए, तो दूसरे भी उसे श्रेष्ठ समझेंगे। और दूसरों की आवाज सुन कर वह भी अपने को श्रेष्ठ समझने की व्यवस्था बना पाएगा। भीतर जो निकृष्टता का भाव है, वह ऊपर की तरफ जाने की प्रेरणा देता है। भीतर अगर श्रेष्ठता हो, तो आदमी पीछे, नीचे गड्ढे में समा जाना चाहता है। क्यों? आखिर यह गड्ढे में अनायास उतर जाने की भी बात क्यों? यह इसलिए कि वहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, वहां कोई संघर्ष नहीं है, वहां जाने को कोई राजी ही नहीं है।

सुना है मैंने कि एक नए आदमी ने नसरुद्दीन से उसके गांव में निवास के लिए पूछा और कहा कि मैं तुम्हारे गांव में आकर बहुत ईमानदारी से धंधा करना चाहता हूं। नसरुद्दीन ने कहा, तुम बिल्कुल आ जाओ, देयर इ.ज नो काम्पिटीशन। अगर ईमानदारी से धंधा करना है, तो बिल्कुल आ जाओ, कोई काम्पिटीशन ही नहीं है। क्योंकि सभी धंधे वाले बेईमान हैं। तुम मजे से आ जाओ, कोई झगड़ा नहीं है। हम सभी खुश होंगे। कोई प्रतिस्पर्धा ही नहीं है।

लाओत्से कहता है कि वह जो श्रेष्ठता है आंतरिक, वह उस जगह खड़ी हो जाती है, जहां कोई संघर्ष नहीं है। और संघर्ष अंतिम स्थिति पर भर नहीं है। बाकी सब स्थितियों पर है। इसलिए श्रेष्ठता अंतिम को खोज लेती है। वह उसकी सुरक्षा का कवच है।

लाओत्से के पीछे चीन का सम्राट वर्षों तक पड़ा रहा कि वह वजीर हो जाए। उस जैसा ज्ञानी आदमी खोजना मुश्किल था। सिर्फ उसके वजीर होने की स्वीकृति से सम्राट की प्रतिष्ठा में हजार चांद जुड़ जाते। लाओत्से के पीछे उसके वजीर घूमते रहे। जहां-जहां लाओत्से को पता चले कि उसे पता लगाते लोग आ रहे हैं, वह उस गांव से विदा हो जाए। गांव में जब वजीर पहुंचें, वे पूछें, तो वे कहें कि रात ही लाओत्से यहां से चल पड़ा।

बामुश्किल लाओत्से को पकड़ पाए। एक नदी के किनारे वह बैठा था और मछलियां मार रहा था। वजीर ने हाथ-पैर जोड़े और कहा कि तुम पागल हो, तुम हमसे बचते फिर रहे हो और तुम्हें पता नहीं कि हम तुम्हें किसलिए खोज रहे हैं। सम्राट ने आदेश दिया है कि तुम्हें परम सम्मान के पद पर बिठा दिया जाए। तुम राष्ट्र के बड़े वजीर हो जाओ! लाओत्से चुपचाप बैठा रहा। उस वजीर ने समझा कि शायद उसने सुना नहीं। उसने उसे हिलाया और कहा कि हम तुमसे क्या कह रहे हैं, तुमने सुना?

पास में ही एक गड्ढे में कीचड़ में कोई लोट रहा है। लाओत्से ने कहा, देखो उस गड्ढे को, उसमें तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है? कीचड़ है, गड्ढे में कोई हलन-चलन है। वजीर और उनके साथी गड्ढे के पास गए। देखा, एक कछुआ कीचड़ में लोटता है। उन्होंने कहा, एक कछुआ कीचड़ में लोट रहा है।

लाओत्से ने कहा, मैंने सुना है कि तुम्हारे राजमहल में एक सोने से मढ़ा हुआ कछुआ है। वह चीन का, उस समय के सम्राट का राज्य-चिह्न था। और मैंने सुना है कि हर वर्ष, वर्ष के प्रथम दिन पर उसकी पूजा होती है। और लाखों रुपए खर्च होते हैं। उन्होंने कहा, तुमने ठीक सुना है।

लाओत्से ने कहा, मैं तुमसे यह पूछता हूं, अगर तुम इस कीचड़ में लोटते हुए प्राणी से कहो, कछुए से कहो कि चल, हम तुझे राजमहल में बिठा कर सोने से मढ़ कर रख देंगे और हर वर्ष तेरी पूजा होगी, तो यह राजमहल जाना पसंद करेगा? या इसी गड्ढे में कीचड़ में लोटना पसंद करेगा?

उस वजीर ने कहा कि अगर यह पागल होगा, तो राजमहल में सोने में मढ़ने को राजी होगा; क्योंकि वह मौत है। वह पूजा तो मिलेगी, लेकिन मर कर मिलेगी। सोना तो मढ़ जाएगा, लेकिन भीतर से प्राण उड़ जाएंगे। अगर इस कछुए में थोड़ी भी समझ है, तो यह अपनी कीचड़ में ही लोटना पसंद करेगा।

लाओत्से ने कहा, मुझमें कम से कम इस कछुए के बराबर समझ तो है। तुम जाओ! मेरी कीचड़ भली। सोने में मुझे मत मढ़ो। क्योंकि मढ़ कर तुम मुझे मार डालोगे।

असल में, सोने से मढ़ना और मरना एक ही बराबर है। बिना मरे कोई सोने से मढ़ा नहीं जा सकता। जितने बड़े पद पर जाना हो, उतना मुर्दा होना पड़ता है। जितने बड़े धन के ढेर पर बैठना हो, उतना मुर्दा हो जाना पड़ता है। मरे बिना ऊपर चढ़ना मुश्किल है। वह चढ़ने में ही प्राण कट जाते हैं। सब चढ़ाव आत्मघात हैं, सुसाइडल हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, परम श्रेष्ठता तो वह है, जो अनायास, जल के सदृश, उन स्थानों को खोज लेती है, जिन स्थानों में जाने के लिए हम कभी भी राजी न हों, जिनकी हमारे मन में बड़ी निंदा है।

"जल की महानता हितैषणा में निहित है और उस विनम्रता में, जिसके कारण वह अनायास ऐसे निम्नतम स्थान ग्रहण करता है, जिनकी हम निंदा करते हैं। इसलिए तो जल का स्वभाव ताओ के निकट है।"

लाओत्से कहता है, ताओ का अर्थ है धर्म। ताओ का अर्थ है स्वभाव। ताओ का अर्थ है स्वरूप। जीवन का जो परम नियम है, उसका नाम है ताओ। लाओत्से कहता है, जल की यह व्यवस्था ठीक ताओ के निकट है। ताओ को उपलब्ध व्यक्ति भी इसी तरह, सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति भी इसी तरह नीचे, पीछे और दूर हट जाता है। छाया में, जहां उसे कोई देखे भी नहीं। भीड़ की अंतिम कतार में, जहां कोई संघर्ष न हो। और जब भी कोई वहां मौजूद हो, तब वह पीछे हटता चला जाता है।

दो तरह के लोग हैंः आगे बढ़ते हुए लोग और पीछे हटते हुए लोग। पीछे हटते हुए लोग कभी-कभी पैदा होते हैं। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई लाओत्से, कभी कोई क्राइस्ट। आगे बढ़ते हुए लोगों की बड़ी भीड़ है।

एक सभा में नसरुद्दीन गया है। जरा देर से पहुंचा है, तो आगे जगह खाली नहीं रही है। दरवाजे के पास ही उसे बैठना पड़ा है। उसे बड़ी बेचैनी हुई है। सभापति के आसन पर बैठने की उसकी आदत है। उसने पीछे बैठ कर गपशप करनी शुरू कर दी। उसने कुछ लतीफे सुनाने शुरू कर दिए। कुछ लोग उसकी बातों में उत्सुक हो गए। उन्होंने सभापति की तरफ पीठ कर ली और नसरुद्दीन की बातें सुनने लगे। थोड़ी देर में पूरी सभा नसरुद्दीन की तरफ हो गई। सभापति का चेहरा लोगों की पीठ हो गई। सभापति चिल्लाया कि नसरुद्दीन, तुम यह क्या कर रहे हो? सभापति के पद पर मैं हूं!

नसरुद्दीन ने कहा, हम कोई पद नहीं जानते; हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद होता है। सभा दो ही हालत में चल सकती है, या तो मैं सभापति रहूं और या फिर सभा नहीं चल सकेगी। सभापति तो मैं रहूंगा ही।

बुलाना पड़ा नसरुद्दीन को, सभापति के पद पर बिठालना पड़ा। तब सभा आगे चल सकी।

नसरुद्दीन ने कहा, हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद होता है। यह हम सब की आकांक्षा है। न भी हों सभापति के पद पर, तो भी हम जहां होते हैं, वहीं सभापति का पद है, ऐसा हम सब का भाव है। सारी दुनिया के सेंटर पर हम हैं। सब चांद-तारे हमारा चक्कर लगा रहे हैं। इसलिए जब पहली दफा गैलीलियो ने कहा कि नहीं, सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता, तो समस्त मनुष्य-जाति को धक्का जो पहुंचा वह यह नहीं था कि हमारी धारणा गलत हो गई। इससे क्या फर्क पड़ता है कि सूरज चक्कर लगाता है या नहीं लगाता है! कि पृथ्वी चक्कर लगाती है! नहीं, गहरा आघात आदमी को पहुंचा कि उसकी पृथ्वी, उसकी पृथ्वी जगत का सेंटर नहीं रह गई। आदमी को सदा ख्याल था कि पृथ्वी जगत का सेंटर है, केंद्र है। सूरज और चांद-तारे सब जमीन का चक्कर लगाते हैं। मेरी जमीन! आदमी की जमीन! गैलीलियो ने बड़ा धक्का पहुंचाया। उसने कहा कि नहीं, सूरज चक्कर लगाता नहीं, पृथ्वी ही चक्कर सूरज का लगाती है। और यह सूरज भी किसी महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। हम केंद्र पर नहीं हैं।

फिर भी आदमी को डार्विन तक भरोसा था कि आदमी को परमात्मा ने अपनी ही शक्ल में बनाया--ही क्रिएटेड मैन इन हिज ओन इमेज। आदमी ने किताबें लिखी हैं। अगर गधे किताबें लिखें, तो वे लिखेंगे कि परमात्मा ने हमको उसकी ही शक्ल में बनाया। क्योंकि गधे यह मानने को राजी न होंगे कि परमात्मा आदमी को अपनी शक्ल में बनाता है। आदमी ने किताबें लिखी हैं, आदमी ने लिखा है कि ईश्वर ने हमें बनाया जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी।

डार्विन ने बहुत मुश्किल खड़ी कर दी। उसने कहा कि परमात्मा का कोई पता नहीं चलता पीछे, पता यह चलता है कि आप बंदर से पैदा हुए हैं। भारी धक्का लगा अहंकार को। कहां आदमी परमात्मा से पैदा होता था, कहां अचानक बंदर से पैदा होना पड़ा! डार्विन का जो विरोध हुआ, वह इसलिए नहीं कि वह गलत कहता था, वह इसलिए कि आदमी के अहंकार को और एक सीढ़ी से नीचे गिरा दिया गया।

और फ्रायड ने इस सदी में तीसरा बड़ा धक्का दिया। आदमी सदा से सोचता था कि मैन इ.ज ए रेशनल बीइंग, बुद्धिमान प्राणी है आदमी। फ्रायड ने कहा कि आदमी से ज्यादा निर्बुद्धि प्राणी खोजना मुश्किल है। आदमी जो भी करता है, वह बिल्कुल बिना बुद्धि के करता है। सिर्फ होशियार इतना है कि उस पर बुद्धि का मुलम्मा चढ़ाता है। रेशनलाइजेशन करता है, रीजन बिल्कुल नहीं है। तो जो करना चाहता है, उसके लिए कारण खोज लेता है। जो करना चाहता है, उसके लिए कारण खोज लेता है। अगर युद्ध करना है; तो कारण खोज लेता है। युद्ध नहीं करना है; तो कारण खोज लेता है। प्रेम करना है; तो कारण खोज लेता है। घृणा करनी है; तो कारण खोज लेता है। और हमेशा कारण खोज लेता है। लेकिन जो करना है, वह कारण के पहले करता है।

हम सब यही करते हैं। अगर मैं कहता हूं कि आप मुझे अच्छे नहीं मालूम पड़ते, तो मैं बराबर कारण बताऊंगा कि क्यों अच्छे नहीं मालूम पड़ते। लेकिन अच्छा नहीं मालूम पड़ना बिना कारण के पहले घटित हो जाता है मेरे इमोशंस में। फिर मैं कारण खोजता हूं, पीछे वजह खोज लेता हूं। एक आदमी मुझे अच्छा लगता है, तो मैं कहता हूं, वह सुंदर है इसलिए अच्छा लगता है। फ्रायड कहता है कि नहीं, आपको अच्छा लगता है इसलिए आप सुंदर कहते हैं। अच्छा पहले लग जाता है, फिर आप कहते हैं सुंदर है। लेकिन पीछे जब आप बताते

हैं, तो आप कहते हैं कि अच्छा इसलिए लगता है, क्योंकि सुंदर है। चांद सुंदर है, इसलिए अच्छा लगता है? कि आपको अच्छा लगता है, इसलिए सुंदर मालूम पड़ता है? आपका दिवाला निकल गया हो; चांद वही का वही होता है, फिर सुंदर नहीं मालूम पड़ता। फिर ऐसा लगता है कि चांद से आंसू टपक रहे हैं। चांद बैंक्रप्ट हो गया है। आपका भाव ही चांद पर आरोपित हो जाता है। आप जो भीतर अनुभव करते हैं, वह बाहर फैला देते हैं।

लेकिन आदमी कुशल है। वह अपने अंधे भावों के लिए भी तर्कयुक्त व्याख्याएं करता है। वह कहता है कि हमारी व्याख्याएं ये हैं। ऐसे ही हम चांद को पसंद नहीं करते; चांद सुंदर है, इसलिए पसंद करते हैं। फलां आदमी है, हम उसको आदर यों ही नहीं देते; उसमें सदगुण हैं, इसलिए आदर देते हैं। सचाई और है। आप किसी आदमी को आदर पहले दे देते हैं; सदगुण वगैरह की खोज पीछे होती है। और जब आप किसी आदमी से आदर छीनते हैं और उसकी निंदा करते हैं, तब भी आप सोचते हैं कि हम निंदा इसलिए करते हैं कि हमें उसके दुर्गुण मिल गए। फिर आप गलती करते हैं। निंदा आपके मन में पहले आ जाती है; दुर्गुण आप पीछे से खोज लाते हैं।

लेकिन आदमी सदा फ्रायड के पहले ऐसा ही मानता था कि वह जो भी करता है, बुद्धि से, तर्क से करता है। लेकिन इधर पचास वर्षों की साइकोएनालिसिस ने बहुत प्रमाणित कर दिया है कि आदमी बुद्धि से कुछ भी करता हुआ मालूम नहीं पड़ता। सैकड़ों प्रयोग हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने एक उल्लेख किया है। बर्ट्रेंड रसेल ने उल्लेख किया है कि एक साबुन की फैक्टरी को बर्ट्रेंड रसेल ने राजी किया कि वह दस ब्रिटेन के बड़े से बड़े डाक्टरों का वक्तव्य ले अपनी साबुन के संबंध में। ब्रिटेन के दस बड़े वैज्ञानिक चिकित्सकों का वक्तव्य लेकर उस साबुन के मालिक ने अपना विज्ञापन अखबारों में दिया, जिनमें देश के चोटी के दस वैज्ञानिकों ने वक्तव्य दिए थे कि यह श्रेष्ठतम साबुन है। और दूसरे साबुन के मालिक को तैयार किया, जिसका साबुन बिल्कुल ही हेठा था, इस साबुन के मुकाबले बिल्कुल नहीं था, जिसको एक भी डाक्टर कहने को राजी नहीं था कि यह साबुन श्रेष्ठ है। एक सस्ती, दो कौड़ी की फिल्म अभिनेत्री को राजी किया कि वह कहे कि मेरा सौंदर्य इसी साबुन की वजह से है। फिल्म अभिनेत्री वाला साबुन बिका, दस डाक्टरों वाला साबुन नहीं बिका।

आदमी बुद्धिमान प्राणी है! बहुत बुद्धिमान प्राणी है! वे दस चोटी के वैज्ञानिक किसी मतलब के नहीं हैं। लेकिन एक नाचने वाली लड़की ज्यादा मतलब की है। क्योंकि चोटी के वैज्ञानिक बुद्धि से बात करते हैं, नाचने वाली लड़की बुद्धि के पीछे, जहां से आप चलते हैं, उसको छूती है, उसको टिटिलेट करती है।

अब सबको समझ में आ गया है दुनिया में। इसलिए कुछ भी बेचना हो, लड़की को खड़ा करो और दलीलें देने की कोई भी जरूरत नहीं है। कुछ भी बेचना हो; इससे कोई संबंध नहीं है कि क्या बेचना है आपको। कुछ भी बेचना हो, लड़की को खड़ा करो अर्धनग्न; वह चीज बिकेगी। आप दुनिया भर के वैज्ञानिकों की दलीलें ले आओ, सब महात्माओं के वक्तव्य ले आओ; वह चीज नहीं बिकेगी। एक नाचने वाली लड़की सबको हरा देगी। क्योंकि आदमी बुद्धिमान प्राणी है, ऐसी भ्रांति है। है नहीं। आदमी चलता है किन्हीं और कारणों से। उसके भीतर जो चलने की व्यवस्था है, वह बौद्धिक नहीं है, रेशनल नहीं है। इम्मोशनल है, भावुक है, इंसटिंक्टिव है, वृत्तियों से चलता है। लेकिन मानने को मन नहीं होता।

आदमी सदा अपने को जगत के केंद्र में, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, परमात्मा से सीधा उपजा हुआ--ऐसा मानता रहा है। इधर डेढ़ सौ वर्षों में जो मनुष्य को बहुत धक्के लगे हैं, जिनसे मनुष्य का बिल्कुल सारा का सारा भवन अहंकार का गिर गया है... ।

लाओत्से कहता है कि यह भवन बनाने की जरूरत ही नहीं है। किस पागल ने तुमसे कहा? लाओत्से ईश्वर का नाम भी नहीं लेता अपने पूरे वक्तव्यों में--जान कर। क्योंकि वह कहता है, ईश्वर का नाम लेते ही आदमी

कोशिश करता है कि अपने अहंकार को ईश्वर से जोड़ ले। वह नाम भी नहीं लेता ईश्वर का। वह परम पद की बात ही नहीं करता। वह मोक्ष की बात ही नहीं करता। वह कहता है, अंतिम पद! आखिरी पद! पीछे खड़े हो जाओ! वही मोक्ष है।

कोई राजी नहीं होता पीछे खड़े होने को। आप आगे खड़े होने को किसी भी काम में राजी कर सकते हैं आदमी को--किसी भी काम में! कितना ही एब्सर्ड और कितना ही मूढ़तापूर्ण हो, आगे खड़े होने के लिए आप आदमी को किसी भी चीज के लिए राजी कर सकते हैं। पीछे खड़े होने के लिए, अगर परमात्मा भी मिलता हो पीछे खड़े होने से, तो आदमी को आप राजी नहीं कर सकते हैं। पीछे खड़े होने की तैयारी ही हमारी भीतर की निकृष्टता नहीं दिखा पाती; भीतर श्रेष्ठता हो, तो ही संभव है कि कोई पीछे खड़े होने को राजी हो जाए। और मजा यह है कि प्रथम केवल वे ही पहुंच पाते हैं, जो पीछे खड़े हो जाते हैं। और मोक्ष की अंतिम ऊंचाई उनको उपलब्ध होती है, जो जल की भांति वादियों और घाटियों की अंतिम नीचाई को खोजने के लिए राजी हो जाते हैं।

यह जो विपरीत का नियम है, इसे ध्यान में रख कर लाओत्से कहता है कि मैं एक ही सूचना देता हूं, जल के सदृश जो हो जाए, वह ताओ को उपलब्ध हो जाता है।

"आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में है।"

हमारे लिए नहीं। ये वक्तव्य कोई भी हम पर लागू नहीं होंगे। लाओत्से कहता है, स्थान की श्रेष्ठता उसकी उपयुक्तता में है। हमारे लिए नहीं। अगर हम एक मकान खरीदते हैं, तो इसलिए नहीं कि वह मकान रहने के लिए उपयुक्त है। मकान हम इसलिए खरीदते हैं कि वह हमारे अहंकार को प्रोजेक्ट करने के लिए कितना उपयुक्त है। इसलिए कई बार आप ऐसे मकान में रहने को राजी हो जाएंगे जहां अमीरों के घर हैं, चाहे वह मकान रहने के उपयुक्त न हो। और उस इलाके में रहने को आप राजी न होंगे जहां गरीबों के घर हैं, चाहे मकान रहने को ज्यादा उपयुक्त हो। उपयुक्तता से हमें प्रयोजन नहीं है। हमारे लिए तो एक ही प्रयोजन है कि अहंकार किससे तृप्त हो।

कई बार हम बड़ी कठिनाइयां झेलते रहते हैं अहंकार की तृप्ति के लिए। अगर अहंकार टाई बांधने से तृप्त होता हो, तो हम पसीना झेल सकते हैं, लेकिन टाई हटा नहीं सकते। अगर रिस्पेक्टबिलिटी जूते पहनने में ही हो, तो चाहे जूतों में आग पड़ रही हो, लेकिन हम नंगे पैर नहीं चल सकते हैं।

चीन में स्त्रियां पैर में लोहे के जूते पहन कर पैर छोटे करती रही हैं, क्योंकि वे रिस्पेक्टबल थे। बड़े घर की स्त्री की पहचान उसका छोटा पैर थी। और इसीलिए चीन में पैर जो था, वह सेक्स-सिंबल बन गया था। जैसे आज स्तन सारी दुनिया में सेक्स-सिंबल बन गया है। चीन में पांच हजार साल तक स्तन पर कोई ध्यान नहीं देता था स्त्री के, पैर पर ध्यान देता था। छोटा पैर दिखा कि आदमी एकदम दीवाना हो जाता था। अभी कोई दीवाना नहीं होता। पैर से संबंध टूट गया, ख्याल मिट गया। कंडीशनिंग थी पांच हजार साल की।

तो जिसका पैर बड़ा था, वह स्त्री इतनी बेचैन और दुखी होती थी, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। पैर की वजह से नहीं; क्योंकि पैर बड़ा हो, इससे दुख का क्या संबंध है? बड़ा पैर तो और भी जमीन पर ढंग से रखा जाता है। चलने की क्षमता बड़े पैर में ज्यादा होती है। दौड़ने की क्षमता भी ज्यादा होती है। बलशाली भी होता है। शरीर को सम्हालने के उपयुक्त भी होता है। लेकिन नहीं, वह सवाल नहीं था। स्थान की उपयुक्तता उपयुक्तता में नहीं है, अहंकार की तृप्ति में है। तो जो स्त्री बिना किसी के कंधे का सहारा लेकर चलती थी, वह

कुलीन घर की नहीं थी, यह सिद्ध होता था। सहारा चाहिए, कंधे पर किसी के हाथ चाहिए; क्योंकि पैर इतने छोटे कर लेते थे कि वे बड़े शरीर को सम्हालने के योग्य नहीं रह जाते थे। स्त्रियां चल नहीं सकती थीं।

आज भी वही हालत है; कोई फर्क नहीं पड़ गया। सिंबल्स बदल जाते हैं, प्रतीक बदल जाते हैं, हालत वही होती है। आप हजार तरह की मुसीबत झेलने को तैयार होते हैं, अगर अहंकार उससे तृप्त होता हो। और आप हजार तरह के आनंद छोड़ सकते हैं, अगर अहंकार तृप्त न होता हो। तो आप छोड़ सकते हैं। आदमी के ऊपर बढ़ने की यात्रा में कैसा भी कष्ट उसे मिले, वह शहीद होने को सदा तैयार है। हमारे पहनने के ढंग, हमारे कपड़े, हमारे जेवर, हमारा मकान, हमारी कारें, उनमें कोई में भी इस बात की फिक्र नहीं है कि वे उपयुक्त हैं। हमारा भोजन, उसमें भी कोई फिक्र नहीं है कि वह उपयुक्त है। फिक्र इस बात की है कि वह रिस्पेक्टबल है, अहंकार को तृप्ति देता है।

आपके घर एक मेहमान आता है, तो आप इसकी फिक्र नहीं करते कि मेहमान को जो भोजन दिया जाए, वह स्वास्थ्यप्रद हो। कोई फिक्र नहीं करता। इसलिए तो हर मेहमान लौट कर फिर बीमार पड़ता है। मेहमान को बीमार पड़ना ही चाहिए; नहीं तो आपकी प्रतिष्ठा नहीं है। अगर मेहमान बिना बीमार पड़े घर चला जाए, तो उसका मतलब यह है कि स्वागत-सत्कार नहीं हुआ। आपने भी नहीं किया और मेहमान भी समझेगा कि स्वागत-सत्कार ठीक से नहीं हुआ है। सीधा मेजबान के घर से डाक्टर की एंबुलेंस पर जाना पड़े!

तो हम कोशिश तो पूरी करते हैं। बच जाए, उसकी किस्मत! नहीं, स्वास्थ्य की फिक्र नहीं है कि उसे जो भोजन मिले, वह स्वास्थ्यप्रद हो। नहीं, उसे वह भोजन दिया जाए जिसका कोई अहंकार से संबंध है। वह जाने कि वह ऐसी चीज खाकर लौटा है, जो कहीं और नहीं मिल सकती है।

स्त्रियां गहने लादे रही हैं, वजनों, इतना वजन कि अगर उनसे कहा जाए कि इतना झोला उठा कर तुम दो घर चलो, तो वे इनकार कर दें। लेकिन सेर-सेर, दो-दो सेर सोना वे लाद कर चल सकी हैं। बहुत नाजुक स्त्रियां, जिनको नाजुक होने का ख्याल है, वे भी सोने के वक्त बिल्कुल नाजुक नहीं रह जातीं। सोने को ढोया जा सकता है। हालांकि सोने में और लोहे में तराजू पर कोई फर्क नहीं होता। जो वजन तराजू पर सोने का पता चलेगा, वही लोहे का पता चलेगा। लेकिन ईगो के तराजू पर फर्क है। तो अगर लोहा उठाना पड़े, तो हाथ दुखते हैं। लेकिन अगर सोना उठाना पड़े, तो पैरों में पर लग जाते हैं। बात क्या है? हो क्या जाता है?

अफ्रीका में औरतें हैं, गले में हड्डियों का इतना सामान पहनती हैं कि गला जो है, वह करीब-करीब ऊंट जैसा हो जाता है। लेकिन वह चलेगा, उसमें कोई तकलीफ नहीं है। अगर हम ऐसे किसी आदमी के गले को फंसाएं, तो वह कहेगा, आप फांसी लगा रहे हैं मेरी। लेकिन अगर वह सौंदर्य का प्रतीक हो, तो चल सकता है। कुछ भी चल सकता है।

अभी अमरीका में नई पीढ़ी के लड़के और लड़कियां हैं; वे सब तरह की गंदगी में जी रहे हैं। क्योंकि हिप्पीज ने गंदगी को एक मूल्य दे दिया, जो कभी नहीं था। हिप्पीज ने कहा कि ये स्वच्छता की जो बातें हैं, बुर्जुआ! ये बैठे-ठाले मुफ्तखोर लोगों की बातें हैं। यह जो स्वच्छता की--साबुन है, और पाउडर है, और डियोडरेंट है--यह सारी जो स्वच्छता है, स्नान है, ये सब झूठी बातें हैं। ये सब मुफ्तखोर लोगों की, बुर्जुआ लोगों की बातें हैं। असली आदमी इन बातों में नहीं पड़ता। तो आज गंदगी को एक नई वैल्यू हिप्पीज ने दे दी है। अब अगर किसी को हिप्पी के समाज में आदृत होना है, तो वह रिस्पेक्टबिलिटी का हिस्सा है कि उसको गंदा रहना चाहिए। वह जितना गंदा रहे, उतना महान हिप्पी है। आस-पास के हिप्पी, अगर आप पहुंच जाएं ठीक से बाल-

वाल कटा कर, साफ-सुथरे, पुराने ढंग के साफ-सुथरे आदमी बन कर, तो सारे हिप्पी कहेंगे, स्क्वायर आ गया, यह पोंगा-पंथी आ गया! देखो, कैसा क्लीन शेव किया हुआ है!

हिप्पीज ने नया मूल्य बना लिया, तो आज हिप्पी लड़के और लड़कियां उस नए मूल्य के लिए भी राजी हैं। उसके लिए भी राजी हैं। गंदगी में रहने के लिए राजी हैं। उनके शरीर से बदबू निकले, तो वह मूल्य हो गया। और ऐसा नहीं कि ऐसा पहले हुआ है। हम सब ऐसे मूल्य देते रहे हैं। जैन साधु स्नान नहीं करता है। तो अगर जैन साधु को जो जानते हैं, वे उसके पास जाएं और पसीने की बदबू न आए, तो उन्हें शक हो जाए कि मामला कुछ गड़बड़ है। दातुन नहीं करता है। तो जब जैन साधु बात करे, तो उसके मुंह से बास आनी चाहिए। वह उसकी साधुता की प्रामाणिकता का सबूत है! अगर न आए, तो भक्त चिंता में पड़ जाएगा कि जरूर टूथपेस्ट कहीं छिपाया हुआ है। यद्यपि छिपाया हुआ है, आज तो छिपाया हुआ है।

अब उस जैन साधु की बड़ी तकलीफ है। उसकी तकलीफ यह है कि उसके पास एक रिस्पेक्टबिलिटी का मूल्य है दो हजार साल पुराना। और अभी वह जो पढ़ता-सुनता है, और चारों तरफ देखता है, वह टूथपेस्ट का मूल्य भी है। उसकी नजर में दोनों का मूल्य है। वह बड़ी कनफ्यूजन में पड़ गया है। वह बड़े धोखे में पड़ गया है। वह दोनों काम एक साथ करता है। अपनी पोटली में टूथपेस्ट भी छिपाए रहता है और ऐसे भी दिखाए रखता है कि वह दातुन नहीं करता है। स्पंज से स्नान भी करता रहता है... ।

एक जैन साध्वी मुझे मिलने आई। तो मैंने पूछा कि तेरे शरीर से बास नहीं आ रही! तो उसने कहा, आप से तो मैं सच कह सकती हूं कि बर्दाश्त नहीं होता पसीना। तो मैं तो गीला कपड़ा भिगा कर स्पंज कर लेती हूं। लेकिन आप किसी को बताना मत। नहीं तो मेरी सब साधुता गई। क्योंकि वह सब साधुता इसमें है कि वह कितनी स्नान नहीं करती है। क्योंकि एक मूल्य था जैनों के मन में। वह मूल्य यह था कि जो आदमी स्नान करता है, वह शरीरवादी है। शरीर को स्वच्छ करना, शरीर को सजाना-संवारना, यह शरीरवादी का लक्षण है। आत्मवादी को शरीर की फिक्र ही नहीं करनी चाहिए।

इसमें आगे जैनियों से भी पहुंच गए कुछ लोग, जिनको हम परमहंस कहते रहे हैं। वे पाखाना करके बैठ जाएंगे और वहीं खाना खाएंगे। अगर परमहंस ऐसा न करे, तो लोग कहेंगे, कैसा परमहंस! अगर परमहंस होना हो, तो वहीं मल-मूत्र करो, वहीं बैठ कर खाना खाओ। तब लोग कहेंगे, यह है परमहंस! जिन-जिन के नाम के पीछे परमहंस पुराने दिनों में लगा है, वे ऐसे लोग हैं। जिस चीज को भी हम मूल्य दे दें और अहंकार की तृप्ति का रास्ता बता दें, आदमी वही करने को राजी हो जाता है। आदमी बड़ा अजीब है।

आप जब ये बातें सुन रहे हैं, तो आपको लगता होगा, ये दूसरों के बाबत हो रही हैं। ऐसी भ्रांति में मत पड़ना आप। आप अपनी तरफ खोजेंगे, तो खुद भी पा लेंगे कि आप क्या-क्या कर रहे हैं। जो आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है, सुख भी नहीं आता, शांति भी नहीं आती; लेकिन चारों तरफ उसकी रिस्पेक्टबिलिटी है, उसका आदर है, तो आप वह कर रहे हैं। चारों तरफ पड़ोसियों के ऊपर सिक्का जमाना है, तो एक आदमी ऐसी कार खरीद लेता है, जिसकी उसकी हैसियत नहीं है खरीदने की। लेकिन पड़ोसी पर सिक्का जमाना है।

नसरुद्दीन की पत्नी ने एक दिन उससे कहा है कि अब दो ही उपाय हैंः या तो बड़ी कार खरीद लो, या मुहल्ला बदल लो; जो भी तुम्हें सस्ता लगे। क्योंकि पड़ोसी ने एक बड़ी कार खरीद ली है। अब दो ही उपाय हैंः या तो बड़ी कार खरीद लो, या पड़ोस बदल लो।

नसरुद्दीन ने कहा कि बड़ी कार ही खरीद लेना सस्ता पड़ेगा; पड़ोस बदलना बहुत मंहगा काम है। और फिर इस पड़ोसी की तो सब चीजों को हम जवाब दे चुके हैं; नए पड़ोसियों की चीजों को फिर जवाब देने की शुरुआत करनी पड़ेगी। और पता नहीं, नए पड़ोसियों के पास किस तरह की चीजें हों, उनको जवाब देना पड़ेगा।

सब एक-दूसरे को जवाब दे रहे हैं। इसकी उन्हें कोई फिक्र नहीं कि उनकी जरूरत क्या है! खुद की जरूरत क्या है!

लाओत्से कहता है, "आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में है।"

और कभी यह हो सकता है कि महल उपयुक्त न हो, वृक्ष के नीचे बैठ जाना उपयुक्त हो। और कभी यह हो सकता है कि कीमती से कीमती वस्त्र उपयुक्त न हों और एक लंगोटी लगा कर धूप में लेट जाना उपयुक्त हो। लेकिन हम मजेदार लोग हैं, हम लंगोटी लगा कर भी धूप में लेट सकते हैं; लेकिन वह तभी, जब वह रिस्पेक्टबल हो जाए। तब फिर गैर-जरूरी लोग भी लेटे रहते हैं। मोटी औरतें दुबला होने का प्रयास करती रहती हैं, दुबली औरतें मोटा होने का प्रयास करती रहती हैं। ऐसी औरत खोजना मुश्किल है, जो कोई प्रयास न कर रही हो। अगर मोटी है, तो दुबला होने का प्रयास कर रही है। अगर दुबली है, तो मोटा होने का प्रयास कर रही है।

अमरीका में अगर बाल उसके काले नहीं हैं, तो वह काले बालों के लिए दीवानी है। और अगर बाल काले हैं, तो वह विपरीत बालों के लिए दीवानी है। मगर दीवानगी जारी है। क्योंकि किसी को इससे मतलब नहीं है कि उपयुक्त क्या है। मतलब इससे है कि चारों तरफ क्या हवा कह रही है। और हवा रोज बदल जाती है। और हवा को चलाने वाले बहुत और लोग हैं, जिनका आपको पता ही नहीं है।

वैंस पैकार्ड ने एक किताब लिखी हैः दि हिडेन परसुएडर्स! छिपे हुए फुसलाने वाले लोग! उनका धंधा इस पर निर्भर है कि आपको फुसलाते रहें। हिडेन परसुएडर्स हैं चारों तरफ। जब एक कपड़ा फैशन में छह महीने चल चुका होता है, तो वे हिडेन परसुएडर्स दूसरे कपड़े को गतिमान करते हैं। क्योंकि अन्यथा मिलें कैसे चलेंगी? धंधा कैसे चलेगा? कपड़ा तो एक चल सकता है सदा-सदा; लेकिन मिल एक कपड़े से नहीं चल सकती। और जब एक साबुन चल जाती है, तो एक साबुन काम कर सकती है। बड़े मजे की बात है कि सभी साबुन करीब-करीब एक से मैटेरियल से बनती हैं। लेकिन एक साबुन चल जाए, तो फैक्ट्री नहीं चलेगी। तो हिडेन परसुएडर्स हैं, छिपे हुए फुसलाने वाले लोग हैं। जैसे ही एक साबुन गति पकड़ती है, तत्काल खबर आती है कि वह आउट ऑफ फैशन हो गई। और सब आदमियों को फैशन में होना परम धर्म है। फैशन के बाहर होना मतलब आप जिंदा ही नहीं हैं। फैशन के बीच होना चाहिए। फैशन के बीच होने के लिए सब आपको बदलना पड़ता है।

अब अमरीका में इस वक्त बड़े से बड़ा जो प्रश्न है, वह यह है कि पुरानी कारों के ढेर लगते जा रहे हैं, जिनके लिए जगह नहीं है। लेकिन हर छह महीने में मॉडल बदल जाना चाहिए। पहले साल में बदलता था, अब वे छह महीने में बदलने लगे हैं। और अब जो हिडेन परसुएडर्स हैं... अब एक साल में कार का मॉडल बदलने की कोई जरूरत नहीं है, जहां तक कार का संबंध है। जहां तक अहंकार का संबंध है, हर महीने बदला जाए तो ठीक है। रोज बदला जाए तो और भी ठीक है। लेकिन हर साल कार का मॉडल बदलने से भी काम नहीं चलता। फैक्ट्रियां ज्यादा हैं। तो अब अमरीका का जो हिडेन परसुएडिंग विभाग है, वह लोगों को समझा रहा है कि एक कार तो गरीब आदमी के पास भी होती है; बड़े आदमी के पास दो कार होनी चाहिए। इसलिए अब बड़ा आदमी वह है, जिसके पास दो कार हैं। बड़ा आदमी वह है, जिसके पास दो मकान हैं। एक मकान तो गरीब आदमी के पास भी होता है। इससे कोई आपकी प्रतिष्ठा नहीं है। तो अब अमरीका में हर आदमी को दो मकान चाहिए। एक

मकान जिसमें वह रहेगा और एक मकान जिसमें उसका अहंकार रहेगा। वह तो नहीं रह पाएगा दो में एक साथ। एक में उसका अहंकार रहेगा कि वह बड़ा आदमी है, वह खाली रखेगा।

एक बड़े आदमी के घर में मैं ठहरा था। सौ कमरे हैं। अकेले पति और पत्नी हैं। मैंने पूछा कि इन सौ कमरों का करते क्या होंगे? उन्होंने कहा, इनका कुछ नहीं करते हैं, यही इनका मूल्य है। गरीब आदमी अपने कमरे का कुछ करता है, हम इनका कुछ नहीं करते हैं। बस ये हैं। इनकी सफाई करवाते हैं, इनकी सजावट करवाते हैं। और ये हैं। इनका हम करेंगे क्या! हम दो ही हैं, पति-पत्नी। बेटा भी नहीं है। फिर इन पति-पत्नी का काम तो एक कमरे में चल जाता है। पुराने ढंग के पति-पत्नी, नहीं तो दो कमरे की जरूरत पड़ती; एक में ही चल जाता है। बाकी ये निन्यानबे कमरे का क्या हो रहा है? ये हैं। इनमें कौन रहता है?

इनमें भी कोई रहता है, वह हमारा अहंकार है। आदमी एक कमरे में रह जाए, अहंकार तो निन्यानबे कमरों को भी कम पाता है। स्थान की उपयुक्तता से हमें प्रयोजन नहीं।

"मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में है।"

लाओत्से कहता है कि मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में है। और हमारे मन की श्रेष्ठता? उसकी गहन वाचालता में है। जो आदमी अपने मन में जितने शब्दों, जितने विचारों से भरा हो, उतना हमें श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। और लाओत्से कहता है, अतल निस्तब्धता में, जहां मन बिल्कुल शून्य और चुप हो जाता है, वहीं मन की श्रेष्ठता है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं सत्य से मिलन है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं शांति से मिलन है। क्यों? क्योंकि जहां मन शून्य होता है, वहीं दुख का अंत है। जितना मन चलता है, उतना दुख होगा। मन की जितनी यात्रा, दुख की उतनी बड़ी मंजिल उपलब्ध होगी।

लेकिन हमारी सारी कोशिश यह है कि आप कितना जानते हैं, कितना सोचते हैं, कितना विचारते हैं, कितने शब्दों के धनी हैं। जो आदमी बोल नहीं सकता, ज्यादा शब्दों का उपयोग नहीं कर सकता, ज्यादा विचारों का उपयोग नहीं कर सकता, वह ग्रामीण हो जाता है। वह ग्राम्य हो जाता है, वह गंवार हो जाता है। जरूरी नहीं है कि गंवार आप से कम बुद्धिमान हो; अक्सर तो आपसे ज्यादा बुद्धिमान होता है। लेकिन एक बात पक्की है कि वह आपसे कम बोल सकता है, कम सोच सकता है, इसीलिए गंवार है। आप शब्दों को मैनिपुलेट कर सकते हैं, आप शब्दों के साथ खेल सकते हैं।

हमारी सभ्यता में जो लोग सफल हैं, वे वे ही लोग हैं, जो शब्दों के संबंध में खेल करने में कुशल हैं। तो हम तो सिखाते हैं अपने बच्चों को कि शब्द सीखे, भाषा सीखे, साहित्य सीखे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि साहित्य न सीखे। कह यह रहा हूं कि यह मन की परम उत्कृष्टता नहीं है। अगर कुछ भी इससे मिलता होगा, तो वह बाहर की उत्कृष्टताएं मिल जाती होंगी। इससे भीतर की उत्कृष्टता नहीं मिलती। अब तक जगत में जिन लोगों ने भीतर के आनंद को जाना है, वे वे ही लोग हैं, जो शब्द के कचरे को बाहर छोड़ कर भीतर चले गए हैं।

"संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है।"

संसर्ग की श्रेष्ठता, सत्संग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है! कभी आपने सोचा कि आप संसर्ग की श्रेष्ठता कब अनुभव करते हैं? अगर किसी गवर्नर के पास खड़े होकर चित्र उतर जाए, तब लगता है, सत्संग हुआ। या किसी फिल्म अभिनेता के पास खड़े होकर अगर चित्र उतर जाए, तो समझो कि सत्संग हुआ।

एक हंसोड़ अमरीका का अभिनेता दूसरे महायुद्ध में युद्ध के मैदान पर गया--सैनिकों के मनोरंजन के लिए। बॉब उसका नाम है। मैकार्थर, जनरल मैकार्थर जहां मौजूद थे, वहां भी उसने आकर सैनिकों को हंसाने का कुछ कार्यक्रम किया। और वह बड़ा आनंदित हुआ कि उसे मैकार्थर के पास फोटो उतरवाने का मौका मिला। वह

बड़ा आनंदित हुआ कि उसे मैकार्थर के पास फोटो उतरवाने का मौका मिला। फोटो उतर जाने के बाद मैकार्थर ने उससे कहा, बॉब, एक कापी मुझे भी भेज देना।

वह बॉब थोड़ा हैरान हुआ कि मैकार्थर को मेरे साथ के चित्र का क्या प्रयोजन होगा! लेकिन उसने कापी भेज दी। और बाद में उसने पत्र लिखा मैकार्थर को कि मैं जानना चाहता हूं कि मुझ गरीब अभिनेता के साथ उतरवाए चित्र का आपके लिए क्या मूल्य होगा! मैकार्थर ने कहा कि जब मेरे बेटे ने तुम्हारे साथ चित्र देखा, तो उसने कहा, पिताजी, पहली दफे आप किसी शानदार और जानदार और प्रसिद्ध आदमी के साथ खड़े हुए हैं। उसके बेटे ने कहा। क्योंकि बेटे को मैकार्थर का क्या मूल्य! बेटे को बाप का कोई मूल्य नहीं होता। लेकिन बॉब, फिल्म अभिनेता, उसके साथ मैकार्थर खड़ा है, तो बेटे ने कहा कि यह चित्र शानदार है आपका। मैंने बहुत चित्र देखे, न मालूम किस-किस के साथ आप खड़े रहते हैं। यह आदमी है, सेलिब्रिटी! यह है एक।

आपने कभी सोचा कि अगर आपको चित्र उतरवाने का मौका मिले, तो कभी मन में आंख बंद करके थोड़ा कंटेम्प्लेट करना कि किसके साथ उतरवाना चाहेंगे? सौ में निन्यानबे मौके तो ये हैं कि वह कोई अभिनेत्री या अभिनेता होगा। सौ में दस मौके ये हैं कि वह कोई राजनैतिक नेता होगा। क्या कोई एकाध मौका भी ऐसा है कि कोई पुण्यात्मा होगा? संदेह है। भला ऊपर से आप कह दें कि नहीं-नहीं, मैं नहीं ऐसा करूंगा। लेकिन भीतर!

एक यूनिवर्सिटी में एक धर्मगुरु ने आकर विद्यार्थियों को कुछ पर्चे बांटे। एक क्वेश्चनेयर था। और उसमें पूछा कि तुम दुनिया की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक कौन सी समझते हो? तो किसी ने लिखा शेक्सपियर की किताब, किसी ने लिखा बाइबिल, किसी ने लिखा कुरान, किसी ने लिखा झेंदावेस्ता, किसी ने लिखा गीता। जिसको जो पसंद थी। सारे इकट्ठे करके उसने उन विद्यार्थियों से पूछा कि तुमने जो-जो किताबें लिखीं, इनको तुमने पढ़ा? उन्होंने कहा, पढ़ा हमने नहीं है। ये श्रेष्ठ किताबें हैं, इन्हें पढ़ता कोई भी नहीं। जो किताबें हम पढ़ते हैं, वे दूसरी हैं। पर उनके बाबत आपने जानकारी नहीं चाही थी। आपने पूछा था, दुनिया की श्रेष्ठ किताबें।

असल में, श्रेष्ठ किताब की परिभाषा यही है कि जब उस किताब का नाम सब को पता हो जाए और कोई उसे न पढ़ता हो, तो समझना कि वह श्रेष्ठ किताब है। जब तक उसे कोई पढ़ता हो, तब तक वह श्रेष्ठ नहीं है, पक्का समझना। कुछ न कुछ गड़बड़ होगी।

पुण्यात्मा के संसर्ग में, लाओत्से कहता है, संसर्ग की श्रेष्ठता है। और इस जगत में बड़ी से बड़ी श्रेष्ठता संसर्ग की श्रेष्ठता है। किसी पुण्यात्मा के साथ होने का क्षण इस जगत में स्वर्ण-क्षण है। लेकिन पुण्यात्मा के साथ होने का क्षण शारीरिक क्षण नहीं है। हो सकता है, आप बुद्ध के पास खड़े कर दिए जाएं और फिर भी पुण्यात्मा से संसर्ग न हो। क्योंकि पुण्यात्मा से संसर्ग होने के लिए आपकी तैयारी चाहिए। तैयारी कैसी? वही पानी के जैसी, नीचे बहने वाली तैयारी चाहिए! तो ही पुण्यात्मा का संसर्ग हो सकता है। अगर आप ऊपर चढ़ने के आदी हैं, तो पुण्यात्मा का संसर्ग नहीं हो सकेगा।

इसलिए सत्संग का नियम था पुराना कि जब कोई किसी गुरु के पास जाए, तो उसके चरणों में सिर रख दे। वह खबर दे कि मैं पानी की तरह होने को तैयार हूं। वह सत्संग का अनिवार्य हिस्सा हो गया था--चरणों में सिर रख देना। सभी चीजें धीरे-धीरे औपचारिक, फॉर्मल हो जाती हैं। लेकिन इससे उनका मूल्य समाप्त नहीं होता। लेकिन जिस आदमी ने आकर चरणों में सिर रख दिया है, वह इस बात की खबर देता है, वह अपने बॉडी-गेस्चर से, अपने शरीर की भाषा से कहता है कि मैं चरणों में सिर रखने को तैयार हूं, अगर मुझे कुछ प्रसाद मिल जाए। मैं सब छोड़ने को, अपने अहंकार को गिराने को लिटाने को तैयार हूं, अगर मुझे कुछ प्रसाद मिल जाए।

संसर्ग पुण्यात्मा से अभूतपूर्व क्षण है।

बुद्ध का जन्म हुआ, तो हिमालय से एक महा तपस्वी उतर कर बुद्ध के घर आया। बुद्ध के पिता उसे स्वागत से भीतर ले गए। उन्होंने लाकर एक छोटे से बच्चे को, नवजात बच्चे को उसके चरणों में रखा। वह महा तपस्वी कोई सौ वर्ष का बूढ़ा था। उसकी आंख से झर-झर आंसू गिरने लगे।

बुद्ध के पिता बहुत घबड़ा गए। उन्होंने कहा, आप हैं महा तपस्वी, आप रोते हैं मेरे बेटे को देख कर। कोई अपशकुन! यह आप क्या कर रहे हैं? यह खुशी का क्षण है, आप आनंदित हों और आशीर्वाद दें। आपको कुछ दुर्घटना दिखाई पड़ती है?

उस बूढ़े तपस्वी ने कहा, नहीं, इस बच्चे के लिए नहीं; दुर्घटना मेरे लिए है। क्योंकि यह बच्चा बुद्ध होने को पैदा हुआ है। लेकिन मैं तब इसके संसर्ग को मौजूद न रहूंगा। यह मैं रो रहा हूं अपने लिए कि यह बच्चा बुद्ध होने को पैदा हुआ है और इसके चरणों में एक क्षण बैठ कर भी मैं वह पा लेता, जो मैंने अनंत जन्मों में चल कर नहीं पाया। लेकिन वह क्षण मुझे नहीं मिलेगा। मेरे मरने की घड़ी तो करीब आ गई। और इसके बुद्धत्व के फूल खिलने में अभी तो वक्त लग जाएगा, कोई चालीस साल लग जाएंगे। जब इसका फूल खिलेगा, तब मैं मौजूद नहीं रहूंगा। इसलिए मैं रो रहा हूं।

लेकिन यह एक आदमी है, जो बुद्ध को देख कर रोता है कि चालीस साल बाद मौजूद नहीं रहेगा। ऐसे लोग थे कि बुद्ध उस गांव में जाएं, तो वे गांव छोड़ कर भाग जाएं। गांव छोड़ कर भाग जाएं! गौतमी नाम की एक महिला की कथा है कि वह बुद्ध जिस गांव में जाएं, वहां से भाग जाती थी। क्योंकि वह कहती थी, इस आदमी के संसर्ग में न मालूम कितने लोग बिगड़ गए। जो भी इसकी बातों में पड़ता है, झंझट में आ जाता है। न मालूम कितने लोग संन्यासी हो गए, न मालूम कितने लोग भिक्षु हो गए, न मालूम कितने लोग आंख बंद करके ध्यान में डूब गए। धन की फिक्र छोड़ दी, पद की फिक्र छोड़ दी। लोग न मालूम पागल हो जाते हैं! यह आदमी हिप्नोटिक है, यह आदमी सम्मोहक है। इससे बचना चाहिए।

लेकिन एक दिन बड़ी भूल हो गई। बुद्ध अचानक एक गांव में पहुंच गए। और कृशा गौतमी रास्ते से गुजर रही थी। उसे कुछ पता न था। बुद्ध का मिलना हो गया। भागती थी वर्षों से। बुद्ध के ही उम्र की थी और बुद्ध के ही गांव की थी। भागती थी वर्षों से; जहां बुद्ध जाएं, वहां छाया से बचती थी। लेकिन इतना जो भागता है, उसका रस तो है ही। इतना जो बचता है, उसका भय तो है ही। और बुद्ध की प्रतिभा का ख्याल भी तो है ही। वह अचानक रास्ते पर बुद्ध का आगमन हो गया। वह निकलती थी, उसने खड़े होकर देखा। एक क्षण रुकी और उसने कहा, क्या तुम कोई दूसरे बुद्ध आ गए? क्योंकि तुम मुझे खींचे लिए ले रहे हो! बुद्ध ने कहा, मैं वही हूं, जिससे तू भागती फिरती है। आज अचानक मिलना हो गया। वह उसी क्षण चरणों में गिर पड़ी, उसी क्षण उसने दीक्षा ली। बुद्ध ने कहा, लेकिन तू इतने दिन से भागती थी! उसने कहा, भाग-भाग कर भी मन में एक ख्याल तो बना ही था कि एक बार इस आदमी को देख लूं। शायद इसीलिए भागती थी कि डरती थी कि देखा कि मैं गई। और आज आकस्मिक हो गया है।

बुद्ध को भी भागने वाले लोग हैं। महावीर को सुनते कान में आवाज न पड़ जाए, तो कान में अंगुलियां डाल कर गुजरने वाले लोग हैं। जीसस को मार डालो, ताकि जीसस की बात लोगों तक न पहुंचे, ऐसे लोग हैं।

और लाओत्से कहता है, संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है। और पुण्यात्मा कौन है? किसे कहें पुण्यात्मा? कौन है पुण्यात्मा? क्या हमारे पास कोई कसौटी है कि हम नाप सकें कि कौन पुण्यात्मा है और कौन पापी है? नहीं, बस एक ही कसौटी हैः जिसके पास, जिसके संसर्ग में आप अपने को खुला छोड़ कर बैठ

पाएं और जिसके पास आनंद और जिसके पास शांति और जिसके पास प्रकाश की प्रतीति होती हो, वही पुण्यात्मा है!

आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या खाता है और क्या पीता है। आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या पहनता है और क्या नहीं पहनता। आप इसकी फिक्र मत करना कि वह क्या बोलता है और क्या नहीं बोलता। आप इसकी भी फिक्र मत करना कि लोग उसके बाबत क्या कहते हैं और क्या नहीं कहते। आप खुद ही प्रयोग कर लेना। लेकिन प्रयोग करने के लिए आपको पहले अपने पर प्रयोग करना पड़े। वह पानी की तरह होना पड़े। पानी की तरह जो हो जाए, उसे पुण्यात्मा का तत्काल पता चल जाता है, संसर्ग का क्षण उपलब्ध हो जाता है। फिर सारा जगत कुछ भी कहे, फिर कोई भेद नहीं पड़ता है।

लेकिन संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में है, शासन की श्रेष्ठता सुव्यवस्था में है। और यह सुव्यवस्था लाओत्से की बड़ी अदभुत है। लाओत्से कहता है, सुव्यवस्था मैं उसे कहता हूं, जहां व्यवस्था की कोई जरूरत न हो। लाओत्से बहुत अजीब आदमी है! आई काल इट आर्डर, व्हेन नो आर्डर इ.ज नीडेड। अगर सम्राट यहां प्रवेश करे और लोगों को चिल्ला-चिल्ला कर कहना पड़े कि सम्राट आ रहा है, शांत हो जाइए, तो लाओत्से कहता है, यह अव्यवस्था है। सम्राट यहां प्रवेश करे, लोग चुप होने लगें; लोगों को चुप जान कर लोग कहें कि मालूम होता है, सम्राट प्रवेश कर गया, क्योंकि लोग चुप हुए जा रहे हैं, यह व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, जहां व्यवस्था जरूरी नहीं है।

अगर गुरु को कहना पड़े कि मुझे आदर दो और तब कोई आदर दे, तो यह अनादर के ही बराबर है। यह कोई व्यवस्था नहीं है। लाओत्से कहता है, गुरु वह है, जिसे तुम्हें आदर देना ही पड़ता है। अचानक, तुम्हें भी पता नहीं चलता, कब तुमने आदर दे दिया। जब तुम सिर उठा रहे होते हो चरणों से, तब पता चलता है कि अरे, यह सिर झुका! तो लाओत्से कहता है आदर है।

लाओत्से उलटा आदमी है। यह कहता है, जहां व्यवस्था की जरूरत है, वहां कोई व्यवस्था नहीं है। जहां पुलिस की जरूरत है चोरी रोकने के लिए, वह समाज चोरों का है। और जहां कारागृहों की जरूरत है अपराध रोकने के लिए, वह अपराधियों की जमात है। लेकिन जहां कोई कारागृह की जरूरत नहीं है; और जहां कोई पुलिस वाला खड़ा नहीं करना पड़ता; और जहां साधु-संन्यासी पुलिस वाले के दूसरे हिस्से की तरह लोगों को समझाते नहीं फिरते कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, यह मत करो, वह मत करो, जहां इसकी चर्चा ही नहीं चलती, वहीं व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, शासन की श्रेष्ठता है व्यवस्था में।

"कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में है।"

और कर्म की कुशलता से लाओत्से का वही अर्थ है, जो कृष्ण का अर्थ है। कर्म में कुशल वही है, जिसका कर्ता खो जाए, जिसका करने वाला न रहे, बस कर्म ही रह जाए। क्योंकि वह कर्ता बीच-बीच में आकर कर्म की कुशलता में बाधा डाल देता है।

कभी आपने देखा है कि कार चलाते वक्त अगर आप चूक जाते हैं, एक्सीडेंट होने की हालत आ जाती है, तो वह वही क्षण होता है, जब ड्राइविंग की जगह ड्राइवर बीच में आ जाता है--तभी। अगर अकेली ड्राइविंग हो, तो एक्सीडेंट की कोई संभावना नहीं है। आपकी तरफ से तो नहीं है; दूसरे की तरफ से हो, तो वह दूसरी बात है। लेकिन जब ड्राइवर बीच में आ जाता है, तब गड़बड़ हो जाती है। ड्राइवर का मतलब है, जब आप बीच में आ जाते हैं। जब सिर्फ ड्राइविंग ही नहीं होती, आप भी बीच में आकर गड़बड़ करने लगते हैं, सोच-विचार चल

पड़ता है, या अकड़ आ जाती है कि मुझसे कुशल और कोई ड्राइवर नहीं, तभी एक्सीडेंट हो सकता है। जहां कर्ता है, वहां कर्म की कुशलता खो जाती है।

कार्य की पद्धति की श्रेष्ठता है कर्म की कुशलता में, कर्ताहीन कर्म में। और कर्ताहीन कर्म तभी होता है, जब फल की कोई आकांक्षा नहीं होती। जब फल की आकांक्षा होती है, तो कर्ता मौजूद होता है। जब फल की कोई आकांक्षा नहीं होती, तो कर्म ही काफी होता है। इनफ अनटू इटसेल्फ! कर्म कर लिया, बात पूरी हो गई! इसलिए हम जो काम बिना किसी फल की आकांक्षा के करते हैं, उनमें हमारी कुशलता बड़ी श्रेष्ठ होती है। अगर आप शौकिया बागवानी करते हैं, तो आपकी बागवानी में जो कुशलता होगी, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। अगर आप शौकिया चित्र बनाते हैं, तो चित्र बनाने में जो आपकी लीनता होगी, वह ध्यान बन जाएगी। अगर आप शौकिया सितार बजाते हैं--व्यवसायी नहीं, प्रोफेशनल नहीं, वह आपका धंधा नहीं है, आपका आनंद है--तो सितार बजाने में आप उस कुशलता को उपलब्ध हो जाएंगे, जिसकी लाओत्से बात करता है।

इसलिए आपको अपनी हॉबी में जितना आनंद आता है, उतना अपने काम में नहीं आता। क्योंकि काम में आपका कर्ता मौजूद होता है; हॉबी में कर्ता की कोई जरूरत नहीं होती, कोई फल का सवाल नहीं होता, करना ही आनंद होता है।

"और किसी भी आंदोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।"

कोई भी आंदोलन, कोई भी विचार, कोई भी संगठन, कोई भी धर्म सफल होता है सामयिक होने के कारण। टाइमलीनेस! वह अपने समय की जरूरत पूरा करता है, तो सफल होता है।

लेकिन यही उसका खतरा भी है। क्योंकि सभी आंदोलन समय से बंधे होते हैं; लेकिन समय तो बीत जाता है, आंदोलन छाती पर बैठे रह जाते हैं।

अब दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। इनकी कोई जरूरत नहीं है, तीन सौ धर्मों की। आज एक धर्म काफी हो सकता है। लेकिन हो नहीं सकता, क्योंकि ये तीन सौ धर्म तीन सौ अलग-अलग समय में पैदा हुए। समय तो जा चुका, धर्म का ढांचा कायम है। और जो उसको पकड़े हुए हैं, वे कहते हैं कि हम इसको छोड़ेंगे नहीं। हमारे पुरखों ने... । उन्हें पता ही नहीं कि उसकी सफलता ही यही थी कि वह उस समय के उपयुक्त था। आज वही उसकी असफलता बनेगी, क्योंकि आज वह समय के उपयुक्त नहीं है। उसकी उपयुक्तता ही यही थी कि उस दिन के वह काम का था।

बुद्ध ने जो कहा है, वह पच्चीस सौ साल पुराने काम का है। अगर आज उसे ठीक वैसा ही कोई कहे चला जाए, तो उसे जीवन के तर्क का कोई पता नहीं है। महावीर ने जो कहा है, वह पच्चीस सौ साल पहले की भाषा है। वह सफल हुआ इसीलिए कि उन्होंने सामायिक भाषा का उपयोग किया।

यह लाओत्से खुद सफल नहीं हुआ; इसका आंदोलन सफल नहीं हुआ। बिकाज ही स्पोक इन दि लैंग्वेज ऑफ टाइमलेसनेस, इसलिए सफल नहीं हुआ यह आदमी; यह ऐसी भाषा बोला, जो शाश्वत है। जब कोई शाश्वत भाषा बोलेगा तो आंदोलन नहीं चला सकता। आंदोलन चलाना हो तो समय की भाषा बोलनी पड़ती है, उस समय के लिए जो समझ में आ सके। लेकिन लाओत्से जैसे लोग आंदोलन नहीं चला सकते। ठीक वह जानता जरूर है लेकिन कि आंदोलन की सफलता उसकी सामयिकता में है। और लाओत्से भलीभांति जानता है कि उसके वश के बाहर है कोई आंदोलन चलाना। वह जो बोल रहा है, वह शाश्वत है।

इसलिए एक मजे की बात है कि जो आंदोलन सफल होते हैं, वे ही अंत में आदमी के लिए गले पर गांठ बन जाते हैं। लेकिन दूसरी बात भी है, लाओत्से जैसे लोग आदमी के गले पर कभी गांठ नहीं बनते, लेकिन वे

कभी सफल ही नहीं होते। लाओत्से जैसे लोग कभी आदमी को गलत जगह नहीं ले जाते, क्योंकि वे सही ले जाने के लिए भी कोई सामयिक भाषा नहीं बोलते हैं। बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट और मोहम्मद सफल हुए। उसका कारण है कि उन्होंने समय की भाषा बोली। लेकिन वही बंधन हो गया। अब चाहिए कि कोई उनकी समय की भाषा को बिखरा दे और समय की भाषा के पीछे छिपा हुआ जो कालातीत तत्व है, उसको उघाड़ कर बाहर रख दे। लेकिन वह अनुयायी मुश्किल करता है। वह कहता है, बोलो तो ठीक कुरान की पूरी आयत; उसको जरा इधर-उधर मत करना।

औरंगजेब ने एक आदमी को सूली दी, सरमद को, सिर्फ एक छोटी सी बात पर। और वह बात इतनी थी कि सरमद एक आयत को पूरा नहीं बोलता था। एक आयत है, मुसलमान जिसको निरंतर दोहराता है, और बड़ी कीमती हैः कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। लेकिन सरमद कहता था सिर्फ इतना हीः कोई अल्लाह नहीं। आधा ही बोलता थाः कोई अल्लाह नहीं। पुरोहित परेशान हो गए, औरंगजेब को जाकर कहा। सरमद को बुलाया गया। सरमद से कहा गया कि बोलो, सुना है कि तुम कुछ गलत बातें बोलते हो। उसने कहा, गलत नहीं बोलता; जो वचन है, वही बोलता हूं। सिर्फ आधा बोलता हूं। तो क्यों आधा बोलते हो? वचन पूरा बोलो! क्योंकि पूरे का मतलब और ही है। कोई अल्लाह नहीं है, सिवाय एक अल्लाह के। इसका तो मतलब और ही हुआ कि एक ही अल्लाह है, और कोई अल्लाह नहीं। लेकिन सरमद कहता, मैं आधा ही बोलता हूं, कोई अल्लाह नहीं। इसका तो मतलब हुआ, देयर इ.ज नो गॉड, कोई अल्लाह नहीं।

सरमद ने कहा, इतना ही मुझे अभी तक पता चला है; दूसरा हिस्सा मुझे पता नहीं चला। अभी तक मेरे अनुभव ने इतना ही कहा है, कोई अल्लाह नहीं। जिस दिन मुझे पता चलेगा दूसरा हिस्सा भी, कि सिवाय एक अल्लाह के, उस दिन वह भी बोलूंगा। जब तक मुझे पता नहीं, मैं नहीं बोलूंगा।

निश्चित ही, यह आदमी काफिर है। नास्तिक है। इससे और ज्यादा नास्तिक क्या होगा? गर्दन कटवा दी गई। बड़ी मीठी कथा है। चश्मदीद गवाह थे हजारों उस घटना के। इसलिए कथा न भी कहें, तो भी चलेगा; ऐतिहासिक तथ्य भी है। जिस दिन दिल्ली की मस्जिद के सामने सरमद का गला काटा गया, उसकी गर्दन कट कर गिरी सीढ़ी पर, लहू की धारा बही और आवाज निकलीः कोई अल्लाह नहीं, सिवाय एक अल्लाह के। कटी हुई गर्दन से!

सरमद को प्रेम करने वाले कहते हैं, जब तक कोई अपनी गर्दन न कटाए, तब तक उस अल्लाह का कोई पता नहीं चलता है, जो एक है। लेकिन कुरान की भाषा को पकड़ेंगे, तो सरमद नास्तिक मालूम होगा। लेकिन सरमद ही आस्तिक है। और औरंगजेब जब मरा, तो उसके मन में जो सबसे बड़ी पीड़ा थी आखिरी मरते क्षण तक, वह सरमद को मरवा देने की थी। आखिरी जो प्रार्थना थी औरंगजेब की, वह यह थी कि मैंने कितने ही पाप किए हों, उनकी मुझे फिक्र नहीं है; लेकिन इस एक सरमद को मार कर जो मैंने किया है, यह काफी है। इससे ज्यादा और कोई पाप की जरूरत नहीं है। यह काफी पाप हो गया है। अगर यह मेरा माफ हो जाए, तो सब माफ। अगर यह मेरा माफ न हो, तो मेरे लिए कोई उपाय नहीं है।

स्वभावतः लेकिन सब आंदोलन, सब भाषाएं, सब अभिव्यक्तियां सामयिक होती हैं। वही उनकी सफलता है। वही उनकी अंत में असफलता भी बनती है। इसलिए बुद्धिमान जगत रोज-रोज समय की राख को झाड़ देता है और समय के अतीत, ट्रांसेंडेंटल जो है, कालातीत जो है, उसे उघाड़ कर निखारता चलता है। लेकिन इतनी

बुद्धिमानी अनुयायियों में कभी भी नहीं होती। अन्यथा वे अनुयायी ही न होते। इतनी बुद्धिमानी जिस दिन इस जगत में होगी, उस दिन हम किसी भी बहुमूल्य पदार्थ को, किसी भी बहुमूल्य सत्य को कभी भी खोएंगे नहीं।

अंतिम बातः "और जब तक कोई सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति अपनी निम्न स्थिति के संबंध में कोई वितंडा खड़ा नहीं करता, तब तक ही वह समादृत होता है।"

यह आखिरी शर्त लाओत्से जोड़ देता है कि यह भी हो सकता है कि आप अंत में खड़े हो जाएं और फिर लोगों से कहते फिरें कि देखो, पापी तो आगे खड़े हैं और पुण्यात्मा पीछे खड़ा है! और दुष्ट तो देखो सफल हुए जा रहे हैं और सीधा-सरल आदमी हारता जा रहा है! देखो, बेईमान अखबारों में हैं और मुझ ईमानदार की कोई भी खबर नहीं! चारों तरफ ऐसे लोग हैं, चारों तरफ, जो यही कह रहे हैं कि देखो, फलां आदमी ने बेईमानी की और सफल हो गए। यह कैसा न्याय है? यह परमात्मा के जगत में यह कैसा न्याय है कि चोर सफल हो जाते हैं और हम अचोर हैं और असफल हुए जा रहे हैं!

लाओत्से कहता है, अगर कभी भी तुमने अपनी आखिरी स्थिति के संबंध में वितंडा किया, तो जानना कि तुम श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं हो। तुम्हारा समादर उसी क्षण समाप्त हो जाएगा। तुम्हारी श्रेष्ठता इसी में है कि तुम्हें जो भी उपलब्ध हो, वह तुम्हें परम भाव से स्वीकार है, अहोभाव से स्वीकार है। अगर तुम्हें पीछे खड़े होने से असफलता मिले, तो वही तुम्हारी सफलता है; अनादर मिले, वही तुम्हारा समादर है; अपमान मिले, वही तुम्हारा सम्मान है; गालियां तुम पर बरसें, वही तुम्हारे ऊपर फूलों की वर्षा है। लेकिन तुम वितंडा खड़ा मत करना। एक जरा सा वितंडा का शब्द, और सब नष्ट हो जाता है। जरा सी शिकायत, और श्रेष्ठता खो जाती है।

असल में, श्रेष्ठ व्यक्ति कभी भी शिकायत नहीं करता--कभी भी! उसकी कोई शिकायत ही नहीं है। क्योंकि जो भी उसे मिलता है, वह उसके लिए ही परमात्मा का अनुगृहीत है।

शेष हम कल बात करेंगे। एक पांच मिनट कीर्तन में डूबें। आप में भी जिनको खड़े होने की मौज आ जाती है, वे बीच की खाली जगह में खड़े हो जाएं। बीच में भी मौज आ जाए, तो दूसरों की फिक्र छोड़ दें और नाच में सम्मिलित हो जाएं।

बाईसवां प्रवचन

लाओत्से सर्वाधिक सार्थक--वर्तमान विश्व-स्थिति में

प्रश्नः एक मित्र पूछते हैंः ओशो, वे क्या आशाएं व दूर-दृष्टियां हैं, जिनके कारण लाओत्से की पच्चीस सौ वर्ष पुरानी धर्मशिक्षाओं को आज पुनर्जीवित करने की प्रेरणा आपको हुई है?

दूसरे मित्र ने पूछा हैः पच्चीस सौ वर्ष पहले दी गई लाओत्से की प्रकृतिवादी, सहज, सरल जीवन में लागू होने वाली साधना-पद्धति का उपयोग आज के जटिल और असहज हो गए व्यक्ति के लिए किन दिशाओं में उपयोगी होगा, इस पर कृपया प्रकाश डालें।

एक और मित्र ने पूछा है कि सदा ही सभी साधकों की ऊर्ध्वगमन की अभीप्सा रही है; लेकिन लाओत्से ने साधना के लिए अधोगमन के प्रतीक जल को आदर्श कहा है। और धर्म है जीवन का ऊर्ध्व विकास। इसलिए जल के प्रतीक से होने वाले आध्यात्मिक ऊर्ध्वगमन को अधिक स्पष्ट करने की कृपा करें!

एक चौथा प्रश्न हैः प्रथम दिन के प्रवचन में आपने कहा है कि मनुष्य का अहंकार एक रोग है और प्रकृति तथा संत हमारे अहंकार से घास के कुत्ते जैसा व्यवहार करते हैं। कृपया समझाएं कि अहंकार भी तो प्रकृति का ही हिस्सा है। फिर अस्तित्व तथा संत उसके साथ घास के कुत्ते जैसा, अस्तित्व से भिन्न जैसा व्यवहार क्यों करते हैं?

लाओत्से ने जो भी कहा है, वह पच्चीस सौ साल पुराना जरूर है, लेकिन एक अर्थों में इतना ही नया है, जैसे सुबह की ओस की बूंद नई होती है। नया इसलिए है कि उस पर अब तक प्रयोग नहीं हुआ। नया इसलिए है कि मनुष्य की आत्मा उस रास्ते पर एक कदम भी अभी नहीं चली। रास्ता बिल्कुल अछूता और कुंवारा है।

पुराना इसलिए है कि पच्चीस सौ साल पहले लाओत्से ने उसके संबंध में खबर दी। लेकिन नया इसलिए है कि उस खबर को अब तक सुना नहीं गया है। और आज उस खबर को सुनने की सर्वाधिक जरूरत आ गई है, जितनी कि कभी भी नहीं थी। क्योंकि मनुष्य ने पुरुष-चित्त का प्रयोग करके देख लिया है। यह पच्चीस सौ वर्ष का पिछला इतिहास पुरुष-चित्त के प्रयोग का इतिहास है--तर्क का, संघर्ष का, हिंसा का, आक्रमण का, विजय की आकांक्षा का। यह पच्चीस सौ वर्ष में हमने प्रयोग करके देखा है। आदमी रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा दुखी हुआ है। जो हम पाना चाहते थे, वह मिला नहीं; जो हमारे पास था, वह भी खो गया है। यह पुरुष-चित्त के आधार पर हमने प्रयोग करके देख लिया, और हम असफल हो गए हैं।

लाओत्से ने जब कहा था, तब पुरुष-चित्त पर इतनी बड़ी असफलता नहीं हुई थी। इसलिए लाओत्से को सुना नहीं गया। अच्छा हो कि हम ऐसा कहें कि लाओत्से अपने समय के पच्चीस सौ वर्ष पहले पैदा हो गया। यह उसकी भूल थी। उसे आज पैदा होना चाहिए था। आज उसकी बात सुनी जा सकती थी।

ऐसा समझें कि जैसे बीमारी पैदा न हुई हो और चिकित्सक पैदा हो गया हो। और उसने औषधि की बात की हो, लेकिन किसी ने ध्यान न दिया हो! क्योंकि अभी वह बीमारी ही पैदा नहीं हुई है, जिसके लिए वह औषधि बता रहा है। लेकिन पच्चीस सौ साल में हमने वह बीमारी पैदा कर ली है, जिसकी औषधि लाओत्से है। पुरुष-चित्त का प्रयोग असफल हो गया। उसने लेकर हमें पहुंचा दिया है टोटल वार पर, पूर्ण युद्ध पर। और उसके आगे कोई गति दिखाई नहीं पड़ती। उसके आगे कोई मार्ग नहीं है। या तो मनुष्य-जाति समाप्त हो और या

मनुष्य-जाति किसी नए मार्ग पर चलना शुरू करे। इसलिए आज लाओत्से की बात करने की सार्थकता है। आज लाओत्से चुना जा सकता है; चुनना ही पड़ेगा। अगर आदमी को बचना है, तो स्त्रैण-चित्त की जो खूबियां हैं, उनको स्थापित किए बिना बचने का अब कोई उपाय नहीं है।

पुरुष हार चुका यह कोशिश करके कि हम सिर्फ पुरुष के आधार पर दुनिया को निर्मित कर लें। लेकिन पुरुष से ज्यादा गहरा तत्व स्त्री है; और उसे हम काट कर जीवन को निर्मित नहीं कर पाए। हमने सारी जमीन को एक पागलखाना जरूर बना लिया है; हम उसे एक परिवार नहीं बना पाए। वह स्त्री केंद्र पर न हो, तो कोई भी घर पागलखाना हो जाएगा। वह स्त्री केंद्र पर हो, तो हमारे हजार तरह के तनावों को विसर्जित करने का काम करती है। अगर संस्कृति के केंद्र पर भी स्त्री हो, तो हमारे हजार तरह के तनाव विसर्जित हो जाते हैं। स्त्रैण-चित्त को हमें संस्कृति के निर्माण में बुनियादी आधार देना पड़ेगा। और वक्त आ गया है कि हमें आने वाले तीस-चालीस वर्षों में निर्णय करना है। इसलिए मैंने लाओत्से पर बात शुरू करनी उचित समझी।

निश्चित ही, आज लाओत्से बिल्कुल उलटा दिखाई पड़ता है। आदमी बहुत जटिल है, और लाओत्से सरलता की बात करता है। और आदमी बहुत अहंकारी है, और लाओत्से विनम्रता की बात करता है। और आदमी शिखर चढ़ना चाहता है चांद-तारों के, और लाओत्से खाइयों और गड्ढों के नियम की बात करता है। आदमी प्रथम होना चाहता है, और लाओत्से कहता है, अंतिम हुए बिना कोई और जीवन के आनंद को पाने का उपाय नहीं है। तो लग सकता है कि ऐसे उलटे युग में लाओत्से की बात कौन सुनेगा?

लेकिन मैं आपसे कहूं, जब हम एक अति पर पहुंच जाते हैं, तभी दूसरी अति पर बदलने की हमारी तैयारी शुरू होती है। जटिलता की हम अति पर पहुंच गए हैं। अब उसके आगे कोई उपाय नहीं है। और विपरीत बात हमारी समझ में आ सकती है। जैसे कोई आदमी बहुत श्रम करके थक गया हो, तभी उसे नींद की बात समझ में आ सकती है। निद्रा श्रम के बिल्कुल विपरीत है।

लेकिन कोई थका ही न हो, जैसा कि अक्सर होता है। जिनके पास सुविधा है, वे दिन में श्रम करने से बच जाते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि रात उन्हें नींद नहीं आती। सुविधा है, श्रम करने से बच जाते हैं, तो वे सोचते हैं कि उन्हें और भी गहरा विश्राम उपलब्ध होना चाहिए। लेकिन वे गलती में हैं। क्योंकि विश्राम केवल उसी को उपलब्ध होता है, जो गहरे श्रम में गया हो। गहरे श्रम में जाने के बाद ही विश्राम में जाने की सुविधा बनती है। और गहरे विश्राम में जाने के बाद ही पुनः श्रम में उतरने की शक्ति अर्जित होती है। जीवन सदा ही विपरीत तटों के बीच में बहती हुई नदी की धार जैसा है।

हमने पुरुष के किनारे पर काफी जी लिया। और अब वक्त आ गया है कि हम स्त्री के किनारे पर सरक जाएं। और उस सरकने से एक संतुलन और एक बैलेंस और एक सम्यक स्थिति निर्मित हो सकती है। यह बदलाहट का वक्त है। इसलिए मैं ऐसा नहीं देखता कि जटिल आदमी हैं, इसलिए कैसे हम लाओत्से की बात समझेंगे! मैं ऐसा देखता हूं कि चूंकि आदमी इतना जटिल हो गया है कि अब और जटिलता की बात उसकी समझ में नहीं आ सकेगी, अब विश्राम की बात ही समझ में आ सकती है।

असल में, आदमी वहां पहुंच गया है, जहां पुरुष-चित्त अपनी पूरी अभिव्यक्ति में है। अब और आगे उपाय नहीं है। तनाव पूरा हो जाए, तो विश्राम उपलब्ध हो जाता है। और आदमी दौड़ता रहे, दौड़ता रहे, और पूरी तरह दौड़ ले, तो गिर जाता है और रुक जाता है। कभी आपने सोचा कि दौड़ने की अंतिम मंजिल क्या होती है? दौड़ने की अंतिम मंजिल गिरने के सिवाय और कुछ भी नहीं होती। विपरीत आ जाता है अंत में हाथ।

लाओत्से अभी हाथ में आया जा सकता है। अपने समय में लाओत्से की बात लोगों की समझ में नहीं आई, क्योंकि लोग इतने जटिल नहीं थे कि लाओत्से उनके लिए चिकित्सक बन सकता। लोग इतने परेशान भी नहीं थे कि लाओत्से की बात उनके ख्याल में आती। लोग अभी प्रथम खड़े ही नहीं हुए थे कि अंतिम खड़े होने का सूत्र समझ पाते। लेकिन हम प्रथम खड़े हो गए हैं। लोगों के पास इतना धन भी नहीं था कि निर्धनता की मौज, निर्धनता का आनंद भी उनके ख्याल में आ सकता। लेकिन अब इतना धन जमीन पर इकट्ठा हुआ जा रहा है कि निर्धनता, स्वतंत्रता किसी भी दिन मालूम पड़ सकती है।

एक घटना मुझे याद आती है। कनफ्यूशियस एक गांव से गुजरता है; और देखता है, एक बूढ़ा आदमी अपने बगीचे में अपने बेटे को अपने साथ जोते हुए कुएं से पानी खींच रहा है। कनफ्यूशियस चकित हुआ। और कनफ्यूशियस ने बूढ़े आदमी के पास जाकर कहा कि क्या तुम्हें पता नहीं है कि अब लोग घोड़ों या बैलों से पानी खींचने लगे हैं! और राजधानी में तो कुछ मशीनें भी बना ली गई हैं, जिनके द्वारा पानी खींचा जाता है! उस बूढ़े आदमी ने कनफ्यूशियस को कहा कि जरा धीरे बोलो, कहीं मेरा बेटा न सुन ले। तुम थोड़ी देर से आना।

कनफ्यूशियस बहुत हैरान हुआ। जब वह थोड़ी देर बाद पहुंचा, तो उस बूढ़े ने, जो वृक्ष के नीचे लेटा था, कनफ्यूशियस से कहा कि ये बातें यहां मत लाओ। यह तो मुझे पता है कि अब घोड़े जोते जाने लगे हैं। घोड़ा जोत कर मैं बेटे का समय तो बचा दूंगा; लेकिन फिर बेटे के उस समय का मैं क्या करूंगा? और घोड़ा जोत कर मैं बेटे की शक्ति भी बचा दूंगा; लेकिन उस शक्ति का मेरे पास कोई उपयोग नहीं है। तुम अपनी मशीन और अपने घोड़े को शहर में रखो, यहां उसकी खबर मत लाओ।

लेकिन यह खबर रुक नहीं सकती थी। यह पहुंच गई। एक बाप के पास नहीं, दूसरे बाप के पास पहुंच गई होगी। और धीरे-धीरे सब जगह आदमी को हटा कर मशीन आ गई। यह जो बूढ़ा था, यह लाओत्से का अनुयायी था। लेकिन कनफ्यूशियस जीत गया। लेकिन आज फिर लाओत्से वापस जीत सकता है। क्योंकि जहां-जहां मशीन पूरी तरह आ जाएगी, वहीं-वहीं सवाल उठेगा कि आदमी समय का अब क्या करे? शक्ति का क्या करे? और जिस शक्ति और समय का हम उपयोग नहीं कर पाते, उसका हमें दुरुपयोग करना पड़ता है; क्योंकि बिना किए हम नहीं रह सकते। करना तो कुछ पड़ेगा ही। जां पाल सार्त्र ने कहा है कि चुनाव तुम कर सकते हो, लेकिन न चुनाव करने के चुनाव की कोई स्वतंत्रता नहीं है। यू कैन चूज, बट यू कैन नॉट चूज नॉट चूजिंग। चुनना तो पड़ेगा ही। करना तो कुछ पड़ेगा ही। अगर ठीक नहीं करोगे, तो गलत करना पड़ेगा। शक्ति का तो उपयोग करना ही पड़ेगा। अगर सृजनात्मक न हुआ, तो विध्वंस में हो जाएगा।

पच्चीस सौ साल तक लाओत्से की बात बीज की तरह पड़ी रही कि ठीक वक्त आए, तो उसमें अंकुर आ जाएं। वह वक्त आ गया है। अब हम लाओत्से की बात समझ सकते हैं कि इसके पहले कि तुम आदमी को मशीन दो, आदमी की शक्ति का सृजनात्मक उपयोग पहले बता दो। और इसके पहले कि तुम आदमी के हाथ में एटम बम रखो, आदमी की आत्मा इतनी बड़ी बना दो कि एटम बम उसके हाथ में रखा जा सके। अन्यथा एटम बम उसके हाथ में मत रखो। छोटे आदमी के हाथ में एटम बम खतरनाक होगा। अज्ञानी के हाथ में शक्ति खतरनाक हो जाती है। अच्छा है कि अज्ञानी अशक्त हो। तो कम से कम कोई दुरुपयोग नहीं होता है।

लाओत्से अब समझा जा सकता है, क्योंकि हम वह सारा रास्ता चल कर देख लिए, जिसके लिए लाओत्से कहता है कि अंत में सिर्फ बीमारियां पैदा होती हैं। इसलिए मैंने लाओत्से को चुना कि हम पच्चीस सौ साल पुरानी उसकी बात--लेकिन बिल्कुल कुंवारी, क्योंकि उस पर कभी नहीं चला गया--उसकी फिर चर्चा चलाएं, शायद आदमी अब राजी हो जाए।

कहता हूं, शायद! क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि हम मरने को राजी हो जाते हैं, लेकिन बदलने को नहीं। क्योंकि मरना ज्यादा आसान मालूम पड़ता है बजाए बदलने के। इसलिए कहता हूं, शायद आदमी राजी हो जाए। जरूरी नहीं है कि आदमी राजी हो ही। आदमी मरने को भी राजी हो सकता है। बदलाहट में बड़ा कष्ट होता है। और मरने को हम शहीदगी भी समझ सकते हैं कि हम शहीद हुए जा रहे हैं। और बदलाहट में अहंकार को चोट लगती है कि हमें बदलना पड़ा। आदमी एक कदम रख ले जिस दिशा में, पीछे लौटने में संकोच करता है कि लोग क्या कहेंगे!

सुना है मैंने कि एक रात मुल्ला नसरुद्दीन शराबघर से बाहर निकला--पीया हुआ, डूबा हुआ। सुनसान निर्जन रास्ता है। अंधेरी रात में सिर्फ बिजली का खंभा ही एकमात्र रास्ते पर उसका गवाह है। चला रास्ते पर सोच कर कि कहीं बिजली के खंभे से न टकरा जाऊं। बिजली के खंभे से टकरा गया। क्योंकि जो आदमी किसी चीज से टकराने से बचेगा, वह उससे जरूर टकरा जाएगा। क्योंकि बचने के लिए उसे उसी का ध्यान रखना पड़ता है। देखता रहा बिजली के खंभे को कि कहीं टकरा न जाऊं, देखता रहा कि कहीं भूल-चूक न हो जाए। जिसको देखता था, उसी तरफ चलता चला गया और खंभे से टकरा गया। टकरा तो गया, उठा; पांच कदम फिर पीछे गया। और फिर उसने वही किया कि अब दुबारा न टकरा जाऊं, तो अब उसने और भी बिजली के खंभे पर ध्यान रखा। क्योंकि तर्क सीधा यही कहता है कि अगर बचना हो, तो अब पूरा ध्यान रखो। मालूम होता है, पिछली बार थोड़ा तुमने कम ध्यान रखा। अब वह पूरे रास्ते को भूल गया। अब वह बिजली का खंभा ही बस उसकी दृष्टि में रह गया, एकदम एकाग्र कि कहीं टकरा न जाऊं! और उसके कदम फिर चले और वह फिर जाकर टकराया। सिर फूट गया, लहूलुहान हो गया।

उठा और बोला कि बड़ी मुश्किल में हूं। आंख में आंसू आ गए। फिर तीसरी बार कोशिश की। लेकिन रास्ता नहीं बदला। इतना बड़ा रास्ता था। उस पर कहीं और भी जा सकता था। वह नहीं किया। किया उसने वही जो दो बार किया था। तीसरी बार फिर किया, अब की बार और ताकत लगा कर किया। अब जब जाकर वह सिर के बल गिरा, तो सिर उसका घूम गया और एक बिजली के खंभे कई बिजली के खंभे मालूम होने लगे। अब वह और भी घबड़ाया। आखिरी समय उसने ताकत लगा कर अपने को इकट्ठा किया और भगवान के भरोसे उसने कहा, एक और कोशिश करके देखूं। फिर उसने वही किया पूरी ताकत लगा कर। और जब वह चौथी बार जाकर गिरा, तो उसने कहा, हे भगवान! निकलने का कोई रास्ता नहीं मालूम होता। ऐसा मालूम होता है कि चारों तरफ बिजली के खंभों से घेर दिया गया हूं। जहां जाता हूं, वहीं बिजली का खंभा मिल जाता है।

वह कहीं जा नहीं रहा है, वह एक ही जगह जा रहा है। और बिजली का खंभा एक ही है। और अंधा आदमी भी बिना टकराए निकल सकता है। लेकिन वह आंख वाला आदमी, लेकिन बेहोश, नहीं निकल पाता है।

हम सब आंख वाले आदमी हैं, लेकिन बेहोश। और हमारी बड़ी से बड़ी बेहोशी को लाओत्से जो नाम देता है, वह अहंकार है। वह कहता है, अहंकार हमारी बेहोशी है, क्योंकि वह हमें जगत के प्रति तथ्यात्मक नहीं होने देती। हमारे प्रोजेक्शंस को ही वह जगत पर थोप देती है। हमको नहीं देखने देती कि जगत कैसा है। हम अपने को ही जगत पर थोप लेते हैं। हम सब वही देखते रहते हैं, जो हमारा अहंकार हमें दिखलाता है। वही सोचते रहते हैं, जो सोचने के लिए मजबूर करता है। वही मान लेते हैं, जो अहंकार हमसे कहता है, मान लो। तथ्य को हम देखने नहीं जाते। और तथ्य को केवल वही देख सकता है, जिसके भीतर अहंकार का प्रोजेक्टर विदा हो गया हो।

एक मित्र ने पूछा है कि यह अहंकार भी तो प्रकृति से ही पैदा होता है, तो इसको हटाने की क्या जरूरत है?

लाओत्से नहीं कहता कि हटाओ। और लाओत्से यह भी नहीं कहता कि अहंकार प्रकृति से पैदा नहीं होता है। सब बीमारियां भी प्रकृति से ही पैदा होती हैं। जो कुछ भी पैदा होता है, प्रकृति से पैदा होता है। लाओत्से इतना ही कहता है कि अगर अहंकार की बीमारी को पकड़ोगे, तो दुख पाओगे। अगर दुख पाना हो, तो मजे से पकड़ो।

लेकिन आदमी अदभुत है। वह पकड़ता अहंकार को है और पाना चाहता है आनंद। तब लाओत्से कहता है, तुम गलत बात कर रहे हो। एक आदमी को मरना है, तो जहर पी ले। जहर भी प्रकृति से ही पैदा होता है। लेकिन वह आदमी कहे कि जहर प्रकृति से पैदा होता है, जहर तो मैं पीऊंगा, क्योंकि प्रकृति से पैदा होता है; लेकिन मरना मैं नहीं चाहता। तब फिर वह कठिनाई में पड़ेगा।

लाओत्से कहता है, मरना हो, तो मजे से जहर पी लो और मर जाओ। न मरना हो, तो फिर जहर मत पीओ। मरने की घटना भी प्राकृतिक है, जहर का पीना भी प्राकृतिक है। लेकिन निर्णय तुम्हारे हाथ में है कि तुम मरना चाहते हो कि नहीं मरना चाहते।

अहंकार प्राकृतिक है। लेकिन उसकी पीड़ा, उसके नर्क को भोगना हो, तो आदमी भोग सकता है। न भोगना हो, न भोगे। आदमी के हाथ में है कि वह अहंकार के प्राकृतिक बीज को वृक्ष बनाए या न बनाए। लाओत्से नहीं कहता कि अहंकार को हटा दो। वह आपसे कहता है कि अगर दुख न चाहते हो, तो अहंकार से हटना होगा। अगर दुख चाहते हैं, तो अहंकार को और बढ़ाओ। हम उलटे हैं। हम चाहते वह हैं जो अहंकार से नहीं मिलेगा और अहंकार को भी नहीं हटाना चाहते हैं। इस दुविधा में हमारे प्राण संतापग्रस्त हो जाते हैं।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि सदा ही साधकों ने ऊर्ध्वगमन की बात कही है, ऊपर जाने की। और लाओत्से नीचे जाने की बात करता है!

लाओत्से नीचे जाने की बात इसीलिए करता है कि नीचे जाए बिना कोई ऊपर नहीं जाता। जिन्होंने ऊपर जाने की बात कही है, उन्होंने लक्ष्य की बात कही है, साध्य की। और लाओत्से नीचे जाने की बात करके साधन की बात कर रहा है। ऊपर जाना हो, तो नीचे जाना पड़ेगा। यह उलटा दिखता है। नीत्से ने लिखा है कहीं कि जिस वृक्ष को बहुत ऊपर जाना हो, उसको अपनी जड़ें नीचे जमीन में गहरे पहुंचानी पड़ती हैं। जिस वृक्ष को आकाश में जितना ऊंचा उठना हो, उसे पाताल की तरफ अपनी जड़ों को उतना ही गहरा पहुंचाना पड़ता है।

अब वृक्ष से हम दो बातें कह सकते हैं। हम कह सकते हैं कि तुझे ऊपर जाना है, तो जड़ों को नीचे फैला! हम उसे यह भी कह सकते हैं कि तू जड़ों को नीचे फैला, ऊपर जाने की घटना घट जाएगी। लेकिन अगर कोई वृक्ष ऊपर ही जाने की कोशिश में लग जाए और नीचे जाने की कोशिश बंद कर दे, जड़ों को नीचे जाने की कोशिश बंद कर दे, तो ऊपर तो जा ही नहीं पाएगा। कोई उपाय नहीं ऊपर जाने का।

लाओत्से कहता है, ऊपर जाना हो, तो नीचे जाने की व्यवस्था तुम्हें करनी पड़ेगी। ऊपर को तुम भूल ही जाओ। वह प्रकृति के ऊपर छोड़ दो। तुम सिर्फ अपनी जड़ों को नीचे पहुंचा दो। प्रकृति तुम्हारे फूलों को आकाश में खिला देगी। उसकी तुम्हें चिंता भी करने की जरूरत नहीं; क्योंकि उतनी चिंता करने से भी तुम्हारी जड़ें

कमजोर रह जाएंगी। तुम अपनी सारी चिंता ही जड़ों पर लगा दो; फूल अपने आप खिल जाएंगे। जहां जड़ें होती हैं, वहां फूल खिल ही जाते हैं। जड़ें जितनी मजबूत हों, उतने ही बड़े फूल खिल जाते हैं।

लाओत्से कहता है, अंतिम जगह खोज लो, जैसे पानी अंतिम जगह खोज लेता है। और तुम्हारे शिखर तुम्हारे पास चले आएंगे। तुम झील बन जाओ, और तुम गौरीशंकर बने हुए पाओगे अपने को। तुम गौरीशंकर होने की फिक्र ही छोड़ दो। क्योंकि लाओत्से कहता है, नियम ऐसा है, जो ऊपर पहुंचना चाहता है, वह नीचे पहुंचा दिया जाता है; और जो नीचे पहुंचने को राजी हो जाता है, उसकी ऊंचाई के लिए कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती।

नियम उसका समझ लें। कठिनाई क्या है कि कुछ नियम जो विपरीत होते हैं, हमारी समझ में नहीं आते। क्योंकि हम स्ट्रेट लॉजिक में भरोसा करते रहे हैं। वही पुरुष का चित्त है। सीधे तर्क में हमारा भरोसा है। हमें पता नहीं कि जिंदगी सीधे तर्क नहीं मानती। जिंदगी उलटे तर्क मानती है। हमारा भरोसा सीधे तर्क में है। हम ऐसे चलते हैं, जैसे कोई आदमी एक हाई-वे पर चलता है। सीधा रास्ता है। लेकिन जिंदगी पर कोई हाई-वे नहीं होते। जिंदगी पहाड़ पर चढ़ने वाले रास्तों जैसी है। सब गोल घुमावदार रास्ते होते हैं। अभी मैं जिस रास्ते पर खड़ा हूं पहाड़ के, ऐसा लगता है कि अगर इस पर सीधा चला जाऊं, तो चांद पर पहुंच जाऊंगा। चांद सामने दिखाई पड़ रहा है। लेकिन दो घड़ी बाद पता चलता है, रास्ता घूम गया और चांद की तरफ पीठ हो गई। जिंदगी गोल रास्ते हैं, घुमावदार रास्ते हैं। उसमें कोई चीज सीधी नहीं है। और हम सब सीधे होते हैं।

जैसे उदाहरण के लिए, अगर कोई आपसे कहे कि मैं सुबह घूमने जाता हूं और मुझे बहुत आनंद मिलता है, तो आप कहें, आनंद तो मैं भी चाहता हूं, तो मैं भी कल सुबह से घूमने जाऊंगा।

अगर आप आनंद पाने ही घूमने गए, तो आप सिर्फ थक कर वापस लौटेंगे, आनंद आपको मिलेगा ही नहीं। क्योंकि पूरे वक्त, एक-एक कदम चल कर आप नजर रखेंगे कि अभी तक आनंद मिला नहीं! अभी तक मिला नहीं! पता नहीं कब मिलेगा? दो मील हो गए चलते हुए, अब तक आनंद मिला नहीं! आपका ध्यान आनंद मिलने पर रहेगा, चलने पर नहीं। चलना तो जबरदस्ती रहेगा। जल्दी आनंद मिल जाए, तो घर वापस लौट जाएं। चलना तो एक मजबूरी रहेगी। अगर आनंद घर ही बैठे मिलता, तो आप न चले होते। चले हैं आप इसलिए कि किसी ने कहा कि आनंद चलने से मिलेगा। आप लौट कर कहेंगे कि गलत बात कही है। आनंद चलने से मुझे जरा भी नहीं मिला। चार मील भटक कर आ गया हूं, आनंद की कोई खबर नहीं है।

लेकिन जिसने खबर दी है, गलत खबर नहीं दी। चलने से आनंद मिल सकता है; लेकिन उसको ही, जिसे आनंद की फिक्र ही न हो। चलने का ही जिसे ध्यान हो, आनंद की फिक्र ही न हो। आनंद बाइ-प्रॉडक्ट है। जब कोई चलने में इतना तल्लीन हो जाता है कि चलने वाला मिट जाता है और चलने की क्रिया ही रह जाती है, तब आनंद का फूल खिलता है।

जीवन घुमावदार है। अगर आप सोचते हैं कि किसी को प्रेम करने से आनंद मिलेगा, तो आपको कभी न मिल सकेगा। यद्यपि प्रेम करने से आनंद मिलता है। लेकिन वह उसे ही मिलता है जो प्रेम में डूब जाता है और आनंद की जिसे चिंता ही नहीं है। जिसे आनंद की चिंता है, वह प्रेम तो करता है, लेकिन ध्यान आनंद पर रखता है। पाता है कि प्रेयसी का हाथ भी हाथ में ले लिया, अब तक आनंद मिला नहीं। वह कहीं नहीं मिलने वाला है। फिर भी जो कहते हैं कि प्रेम से आनंद मिलता है, वे ठीक ही कहते हैं। असल में, प्रेम और आनंद में संबंध ऐसा नहीं है, जैसे हम पानी को गर्म करते हैं और वह भाप हो जाता है। कॉजल लिंक नहीं है। पानी को गर्म करिएगा, तो पानी भाप बनेगा ही। जीवन में जितने गहरे उतरिएगा, उतनी ही कॉजेलिटी, कार्य-कारण कम हो जाते हैं

और उतने ही ज्यादा सहज परिणाम सघन हो जाते हैं। जीवन की जितनी गहरी बातें हैं, वे सब सहज परिणाम हैं।

आप कहीं संगीत सुनने गए हैं। अब आप बैठे हैं बिल्कुल रीढ़ को उठा कर, आसन साधे हुए कि आनंद मिलना चाहिए। आप सिर्फ थक जाएंगे, कोई आनंद नहीं मिलेगा।

विश्राम को उपलब्ध हो जाइए, आंख बंद कर लीजिए, आनंद की बात ही छोड़ दीजिए, संगीत में डूबिए। अगर आप संगीत में इतने डूब गए कि आपको आनंद का भी ख्याल न रहा, आप आनंद से भरे हुए घर लौट जाएंगे। यह आनंद का जो फूल है, आपके तनाव में नहीं खिलता, आपके विश्राम में खिलता है। और जो लोग भी साध्य के प्रति बहुत उत्सुक होते हैं, वे कभी विश्राम को उपलब्ध नहीं होते।

इसलिए लाओत्से कहता है, ऊपर की तुम फिक्र छोड़ो, तुम पानी की तरह हो जाओ। तुम नीचे बह जाओ, तुम गड्ढों में भर जाओ। शिखर तो उपलब्ध हो ही जाते हैं। वह उनकी बात ही नहीं करता। वे हो ही जाते हैं, उनकी चर्चा की भी जरूरत नहीं है।

लेकिन हम उलटे लोग हैं। अगर हम लाओत्से की बात भी सुनेंगे, तो भी हम इसीलिए सुनेंगे कि लाओत्से कहता है कि पहुंच जाओगे ऊपर, अगर नीचे गए। तो हम भरोसा कर लेना चाहते हैं कि पक्का है यह गणित कि हम नीचे चले जाएं और ऊपर न पहुंचें! तो उलटे और नीचे चले गए और ऊपर पहुंचने से वंचित हुए। पक्का है कि नीचे जाएंगे, तो ऊपर पहुंचेंगे! हम बिल्कुल पक्का करके जाते हैं।

हम नीचे तो पहुंच जाएंगे, ऊपर हम नहीं पहुंचेंगे। क्योंकि वह ऊपर पहुंचना जो था, वह पक्का करके जाने वालों के हाथ की बात नहीं है। उसके लिए कोई गारंटी नहीं है। और जहां गारंटी है, वहां वह नहीं होगा। वह घटना ही नहीं घटेगी। इस जीवन के विपरीत तर्क को समझ लेने की जरूरत है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, शांति चाहिए। मैं उनसे कहता हूं, शांति को भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे कहते हैं कि ध्यान करेंगे, तो शांति मिल जाएगी? मैं उनसे कह रहा हूं, शांति को तुम भूल जाओ, तुम सिर्फ ध्यान करो। वे कहते हैं कि अगर ध्यान करेंगे, तो शांति मिल जाएगी? मैं उनसे कहता हूं, तुम शांति को छोड़ो। क्योंकि तुम इतने दिन से शांति पाने की कोशिश कर रहे हो, नहीं मिली। अब तुम इसको छोड़ दो, अब तुम ध्यान करो। वे कहते हैं, क्या शांति का ख्याल छोड़ देने से शांति मिल जाएगी? वह बात वहीं अटकी रहती है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब सौ वर्ष का हुआ, तो अचानक गांव के लोगों ने देखा कि वह इतना संतुष्ट, इतना आनंदित, इतना कंटेंटेड हो गया है कि लोग चकित हुए। क्योंकि उससे ज्यादा डिसकंटेंटेड आदमी खोजना मुश्किल था। बहुत असंतुष्ट आदमी था। हर चीज से परेशान आदमी था। हर चीज की शिकायत थी। एकदम आनंदित हो गया है।

तो गांव के लोग इकट्ठे हो गए। और सारे गांव के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, चमत्कार है! तुम और शांत हो गए! हम कभी सोच ही नहीं सकते थे। यह चमत्कार हो गया। इसका राज क्या है?

नसरुद्दीन ने कहा कि मैंने निन्यानबे साल गंवाए शांत होने की कोशिश में। आज मैंने तय किया कि अब अशांति के साथ ही जी लेंगे। इतना ही राज है। आज मैंने तय कर लिया कि अब शांति नहीं चाहिए, अब अशांति के साथ ही जी लेंगे। हो गया बहुत। निन्यानबे साल कोशिश कर ली। शांति नहीं मिली। अब हम छोड़ते हैं। और सच, मैं एकदम शांत हो गया हूं।

क्योंकि जो अशांति के साथ जीने को राजी है, उसकी शांति में क्या कमी रह जाएगी? जो दुख के साथ जीने को राजी है, उसके सुख को कौन छीन सकता है? और जो नीचे उतर कर आखिरी गड्ढे में पड़े रहने को तैयार है, उसके शिखर के छीनने का किसी के हाथ में कोई शक्ति नहीं है। जो ना-कुछ होने को तैयार है, वह सब कुछ हो जाएगा। और जो मिटने को राजी है, परमात्मा की संपदा, सारी संपदा उसकी है।

तो लाओत्से इस सूत्र की बात कर रहा है। उसका यह मतलब नहीं है कि लाओत्से कहता है, अधोगामी हो जाओ। लाओत्से यह कहता है, ऊर्ध्वगामी होने का एक ही उपाय है कि तुम अंतिम खड़े होने को तैयार हो जाओ।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से स्त्रैण-चित्त की इतनी गहराई की बात करता है, लेकिन स्त्रैण-चित्त से अब तक एक तीर्थंकर, एक अवतार, एक पैगंबर, कोई एक जीसस, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण पैदा नहीं हुआ। होना तो उलटा ही चाहिए था। अगर स्त्रैण-चित्त की ऐसी गरिमा है, तो इस जगत के सारे धर्म स्त्रैण-चित्त से निकलने चाहिए थे। लेकिन सभी धर्म पुरुषों से निकले हैं। ऐसा क्यों है? उन्होंने पूछा है।

यह जरूर समझ लेने जैसी बात है। ऐसा होने का कारण है। जैसा मैंने आपसे कहा है, बायोलॉजिकल स्त्री और पुरुष का जो संबंध है, जगत में जो चीज भी पैदा होती है, उसमें भी स्त्री-पुरुष का वैसा ही संबंध है। जब बच्चा पैदा होता है, तो पुरुष सिर्फ एक्सीडेंटल, सांयोगिक काम करता है। क्षण भर का उसका सहयोग है बच्चे को पैदा करने में। लेकिन शुरुआत वही करता है, इनीशिएट वही करता है, प्रारंभ वही करता है। क्षण भर का उसका काम है, लेकिन बच्चे के जन्म की यात्रा उसी से शुरू होती है। शेष सारा काम मां करती है। उस बच्चे को नौ महीने पेट में रखेगी, उसे खून देगी, उसे जीवन देगी, उसे श्वास देगी। फिर नौ महीने पर भी समाप्त नहीं हो जाता सब कुछ। फिर उसे बड़ा करेगी, पालेगी-पोसेगी, वह सब करेगी।

इस जगत में और चीजें भी जो पैदा होती हैं, वे भी ऐसे ही पैदा होती हैं। आप चकित होंगे जान कर कि महावीर जरूर धर्म को जन्म देते हैं, जीसस धर्म को जन्म देते हैं, बुद्ध... । लेकिन इस जगत में कोई भी धर्म बिना स्त्रियों के बचता नहीं। स्त्रियां ही उसे बचाती हैं, बड़ा करती हैं और फैलाती हैं। यह आपके ख्याल में नहीं होगा; यह आपके ख्याल में नहीं होगा। जाकर मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में झांक कर देखें। वहां कौन है? वहां पुरुष नदारद हैं। और अगर कोई पुरुष पहुंच भी गया है, तो सिर्फ अपनी पत्नी के भय की वजह से वहां हाजिर है। ये सारे मंदिर, सारे चर्च, सारे गिरजे स्त्रियां चला रही हैं।

धर्म को जन्म तो पुरुष दे जाता है, लेकिन उसकी देख-भाल, उसकी सम्हाल, उसको गर्भ में रखना और सम्हालना, और उसको बड़ा करना, स्त्रियां करती हैं। मनसविद कहते हैं कि दुनिया में कोई भी धर्म बच नहीं सकता, जिस धर्म में स्त्रियां दीक्षित न हों। वह धर्म बच नहीं सकता, क्योंकि उस धर्म को गर्भ नहीं मिलेगा।

क्या आपको पता है कि महावीर ने जब लोगों को दीक्षा दी, तो हर एक पुरुष के मुकाबले चार स्त्रियों ने दीक्षा ली? और महावीर के भिक्षुओं में, संन्यासियों में, साधुओं में, तेरह हजार पुरुष थे, तो चालीस हजार स्त्रियां थीं। जीसस को पुरुषों ने सूली लगाई; लेकिन जिसने सूली से नीचे उतारा था, वह एक वेश्या थी। जब जीसस के सारे शिष्य, पुरुष शिष्य भाग गए थे भीड़ में, तब भी तीन स्त्रियां उनकी लाश के पास खड़ी थीं। अंतिम सांस जीसस ने स्त्रियों के बीच छोड़ी। और जिन्होंने उन्हें सूली से उतारा, वे स्त्रियां थीं। और जब पुरुष भाग गए थे, तब भी स्त्रियां वहां तैयार थीं। खतरा था उनकी भी मौत का।

जन्म तो सब पुरुषों ने दिया; क्योंकि बायोलॉजिकल जो है, वही साइकोलॉजिकल भी है। सब धर्मों को जन्म पुरुषों ने दिया है, लेकिन सब धर्मों को गर्भ स्त्रियों ने दिया है। यह अगर ख्याल में आ जाएगा, तो यह शिकायत आपके मन में नहीं उठेगी। और आज भी अगर जमीन पर धर्म जिंदा हैं, तो वह पुरुषों की वजह से नहीं। जन्म भला वे देते हों, लेकिन उनको जिंदा रखने के लिए स्त्रियों के सिवाय कोई उपाय नहीं है। किसी भी चीज को जन्म पुरुष देने की पहल कर सकता है, लेकिन उसको गर्भ नहीं दे सकता। और जन्म देने ही से किसी चीज को जन्म नहीं मिलता, गर्भ देने से ही वस्तुतः जन्म मिलता है। क्योंकि हाड़-मांस, खून-मांस-मज्जा, वह स्त्रियां देती हैं। इसलिए ख्याल में नहीं आता। इसलिए ख्याल में नहीं आता। सुरक्षा, विस्तार, संरक्षण, स्त्रैण-चित्त का हिस्सा है। पहल, प्रारंभ, पुरुष-चित्त का हिस्सा है। लेकिन पुरुष पहल करने के बाद ऊब जाता है, दूसरे काम में लग जाता है।

अगर महावीर को फिर से जन्म मिले, तो एक बात पक्की है कि वे जैन धर्म की बात अब नहीं करेंगे। वे किसी दूसरे धर्म को जन्म दे देंगे। पुरुष रोज नए को जन्म देने के लिए उत्सुक होता है। स्त्री पुराने को सम्हालने के लिए आतुर होती है। एक अर्थ में प्रकृति इन दोनों से जीवन को स्थिर करती है। क्योंकि सिर्फ नए को जन्म देना काफी नहीं है, पुराने को सम्हालना भी उतना ही जरूरी है। अन्यथा जन्म देने का कोई अर्थ ही न रह जाएगा।

इसलिए पुरुष अगर ठीक पुरुष-चित्त का हो, तो सदा ही प्रगतिशील होता है। पुरुष अगर ठीक पुरुष-चित्त का हो, तो सदा ही प्रगतिशील होता है। स्त्री अगर ठीक स्त्री-चित्त की हो, तो सदा ही परंपरावादी होती है। परंपरा का इतना ही अर्थ हैः जिसको जन्म दिया जा चुका है, उसको सम्हालना है। और प्रगतिशीलता का इतना ही अर्थ है कि जिसको जन्म नहीं दिया गया है, उसे जन्म देना है। लेकिन जन्म देकर क्या करोगे, अगर कोई सम्हालने वाला उपलब्ध न हो! तो गर्भपात ही होंगे, और कुछ न होगा। एबॉर्शन्स हो जाएंगे। अगर पुरुष के ही हाथ में कोई चीज हो, तो एबॉर्शन ही होगा, और कुछ नहीं हो सकता। उसकी उत्सुकता उतनी ही देर तक है, जब तक उसने जन्म की प्रक्रिया को जारी नहीं कर दिया। प्रक्रिया जारी हो गई, वह दूसरे जन्म की प्रक्रिया पर हट जाता है। लेकिन वहीं से जीवन की असली बात शुरू होती है। वहां से स्त्री उसे सम्हाल लेती है।

पुरुष-चित्त और स्त्री-चित्त दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं। इसलिए स्त्रियों ने कोई धर्म को जन्म नहीं दिया; लेकिन स्त्रियों ने ही सारे धर्मों को बचा कर रखा है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या जितने भी ज्ञानी हैं, उनका चित्त स्त्रैण हो जाएगा?

हो ही जाएगा। लेकिन स्त्रैण से मतलब नहीं है यह कि वे स्त्रियां हो जाएंगे। स्त्रैण से मतलब यह है कि उनका चित्त एग्रेसिव की जगह रिसेप्टिव हो जाएगा, आक्रामक की जगह ग्राहक हो जाएगा। यह ग्राहकता ही जब होती है पैदा, तभी कोई व्यक्ति परमात्मा के लिए अपने भीतर द्वार खोल पाता है।

उन्होंने पूछा है, इसका अर्थ यह हुआ कि मोहम्मद तो ज्ञान के बाद भी तलवार लेकर लड़ने जाते हैं?

निश्चित ही जाते हैं। लेकिन मोहम्मद की तलवार पर आपको पता है, क्या लिखा है? मोहम्मद की तलवार पर लिखा हैः शांति के अतिरिक्त यह तलवार और कहीं नहीं उठेगी। तलवार पर खुदा है यह। आपको

पता है, इसलाम शब्द का अर्थ ही होता है शांति! अगर मोहम्मद को तलवार भी उठानी पड़ती है, तो मोहम्मद के कारण नहीं, आस-पास की परिस्थितियों के कारण। लेकिन मोहम्मद जिन पर तलवार उठाते हैं, उन पर भी क्रोध और आक्रमण और हिंसा नहीं है। उन पर भी दया है।

मोहम्मद को बहुत कम समझा जा सका है। इस जगत में जिन लोगों के साथ बहुत अनाचार हुआ है, उनमें एक मोहम्मद हैं। और उनकी तलवार की वजह से बहुत अनाचार हो गया। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि मोहम्मद की तलवार ठीक सर्जिकल है, ठीक सर्जन के हाथ में जैसे तलवार हो, ऐसी है! और कभी ऐसी जरूरत निश्चित हो जाती है कि किसी ऐसे व्यक्ति को भी तलवार उठानी पड़ती है, जिसके हाथ में तलवार की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। मोहम्मद के हाथ में तलवार की कोई कल्पना करने की जरूरत नहीं है। मोहम्मद के पास जो हृदय है, वह अत्यंत कोमल से कोमल हृदय है। लेकिन मोहम्मद के चारों तरफ जो स्थिति है, अगर इस कोमल हृदय को कुछ भी काम करना है, तो इसे हाथ में तलवार लेनी पड़ेगी।

लेकिन इसका दुष्परिणाम होता है। वह मोहम्मद के हाथ में तलवार लेने से नहीं होता, वह पीछे होता है; क्योंकि तब बहुत से ऐसे लोग मोहम्मद के पीछे खड़े हो जाते हैं, जिनका मजा केवल तलवार हाथ में लेने का है। वे उपद्रव खड़ा करते हैं। उन्होंने मोहम्मद को बदनाम किया। उन्होंने इसलाम को भी विकृत किया।

मोहम्मद तलवार लेते हैं, क्योंकि जरूरत है। कृष्ण युद्ध की सहायता में खड़े हो जाते हैं, युद्ध करवाते हैं; क्योंकि उसकी जरूरत है। असल में, इस जगत में चुनाव जो है, वह एक बात समझ लेंगे, तो ख्याल में आ जाएगा। हम जगत में सब चीजों को दो में तोड़ देते हैंः अंधेरी और सफेद, व्हाइट एंड ब्लैक। जब कि वस्तुतः जगत में कोई चीज व्हाइट और ब्लैक नहीं होती, सभी चीजें ग्रे होती हैं; डिग्रीज होती हैं, डिग्रीज ऑफ ग्रे। थोड़ी ज्यादा सफेद और थोड़ी कम सफेद, थोड़ी ज्यादा काली और थोड़ी ज्यादा काली। जब भी हम कहते हैं कि यह ठीक और यह गलत, तो हम भूल जाते हैं कि हम जिंदगी की बात नहीं कर रहे हैं।

मोहम्मद तलवार उठाते हैं इसलिए कि उनका न उठाना और भी बुरा होगा। इसको ठीक से समझ लें। लेसर ईविल यही है कि मोहम्मद तलवार उठा लें। क्योंकि तलवार तो उठेगी ही। और मोहम्मद नहीं उठाएंगे, तो जिसके हाथ में भी तलवार उठेगी, वह ग्रेटर ईविल होगा। मोहम्मद जिस स्थिति में हैं, उसमें उन्हें प्रतीत होता है कि उन्हें ही तलवार उठा लेना उचित होगा।

कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू लड़! इसलिए नहीं कि कृष्ण की लड़ने में कोई उत्सुकता है। कृष्ण से ज्यादा स्त्रैण-चित्त का आदमी खोजना तो बहुत मुश्किल होगा। इसलिए हमने तो उनका चित्र भी बिल्कुल स्त्रियों जैसा बनाया है। इतना स्त्रैण चित्र हमने किसी का नहीं बनाया। कृष्ण को जितना हमने स्त्री जैसा चित्रित किया है, वैसा हमने बुद्ध-महावीर को भी नहीं किया, लाओत्से को भी नहीं किया। कृष्ण को तो हमने बिल्कुल स्त्रैण बनाया है। सब साज-संवार उनका स्त्रियों जैसा है। कपड़े-लत्ते स्त्रियों जैसे हैं। सारा ढंग उनका स्त्रियों जैसा है। उनका नाच, उनका गीत, सब स्त्रियों जैसा है। यह आदमी, जो इतना स्त्रैण हमने चित्रित किया है, यह अर्जुन को, जो कि बहुत बहादुर पुरुष था, भाग रहा था, उसको लड़वाने के लिए प्रेरणा देने वाला बना। आखिर कृष्ण को इतनी-इतनी-इतनी आग्रह करने की क्या जरूरत है कि अर्जुन लड़े?

जरूरत इसलिए है कि कृष्ण को एक बात साफ हैः अर्जुन नहीं लड़ता है, तो भी जो बुराई है, वह होकर रहेगी; लेकिन बहुत बुरे हाथों से होकर रहेगी। अर्जुन उन सबसे बेहतर है। और अर्जुन युद्ध से भागना चाहता है, इस वजह से कृष्ण को और भी स्पष्ट हो गया कि यह आदमी बेहतर है और युद्ध इसी के द्वारा करवा लेना ठीक होगा। युद्ध तो होकर रहेगा। युद्धखोर करेंगे। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि अगर अर्जुन की जगह भीम के रथ पर

कृष्ण बैठे होते, तो शायद गीता पैदा न होती। क्योंकि भीम इतना आतुर होता कि जल्दी बढ़ाओ, आगे ले चलो। हो सकता है, कृष्ण खुद ही कहते कि क्षमा कर, यह युद्ध ठीक नहीं है। यह अर्जुन इसमें कारगर है, अर्जुन भागने की कहने लगा। उसने सिद्ध कर दी एक बात तो कि वह आदमी भला है, एकदम भला है। कृष्ण को पक्का हो गया कि इस भले आदमी के हाथ में तलवार दी जा सकती है।

असल जो सारी-सारी बात है, वह यह है कि तलवार भले आदमी के हाथ में ही दी जा सकती है। और तलवार अक्सर बुरे आदमी के हाथ में होती है। और भला आदमी तलवार छोड़ देता है और बुरा आदमी तलवार उठा लेता है। इसलिए भला आदमी बुराई को करवाने का कारण बन जाता है। जगत में जब चुनाव करना पड़ता है, तो विकल्प ऐसा नहीं होता कि यह अच्छा है और यह बुरा है। विकल्प ऐसा होता है कि यह कम बुरा है, यह ज्यादा बुरा है। जीवन में सब चुनाव ऐसे ही हैं। यहां ऐसा नहीं है कि यह अमृत है और यह जहर है। यहां ऐसा है कि यह कम जहर है और यह ज्यादा जहर है। कम जहर को चुनना पड़ता है। यही अमृत का चुनाव है।

मोहम्मद और कृष्ण उस कम जहर को चुनते हैं। परिस्थितियां उनकी भिन्न हैं।

थोड़ा सोचें कि कृष्ण मर गए होते पहले ही इस महाभारत के युद्ध के, तो हमारी कल्पना में कभी ख्याल ही न आता कि कृष्ण भी युद्ध करवा सकते हैं। आता? कभी ख्याल न आता। जरा और इस तरह सोचें कि बुद्ध और जीए होते बीस वर्ष और महाभारत जैसी स्थिति आ गई होती, तो हमारी कल्पना में भी नहीं आता कि बुद्ध भी युद्ध के लिए हां कह सकते थे। हमारे देखने के पर्सपेक्टिव सीमित होते हैं। जो हो गया, वही हम देखते हैं। जो हो सकता था, वह हम नहीं देखते हैं। अगर कृष्ण मर जाते दस साल पहले महाभारत के, तो हमें कभी भी ख्याल न आता कि यह आदमी, जो बांसुरी बजाता था, जो प्रेम के गीत गाता था, जो इतना माधुर्य से भरा था, यह युद्ध के लिए गीता जैसा संदेश दे सकता है!

मेरी दृष्टि में गीता से ज्यादा युद्ध के लिए प्रेरणा देने वाली और कोई धर्म-पुस्तक जगत में नहीं है।

लेकिन इसका कारण यह नहीं है कि ये पुरुष-चित्त हैं। इसका कारण, इसका कारण यह है कि चित्त तो बिल्कुल स्त्रैण हैं, बहुत रिसेप्टिव हैं, बहुत ग्राहक हैं, लेकिन जिस स्थिति में ये खड़े हैं, उस स्थिति में इनका ग्रहणशील चित्त परमात्मा को पूरी तरह ग्रहण करके जो कहता है, उसी को करने में ये संलग्न हो जाते हैं।

यह मोहम्मद की तलवार परमात्मा के लिए उठी तलवार है। एग्रेसिव मोहम्मद बिल्कुल नहीं हैं, आक्रामक बिल्कुल नहीं हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मोहम्मद के पीछे आक्रामक लोग इकट्ठे नहीं हुए। लेकिन पीछे इकट्ठे होने वालों की जिम्मेवारी मोहम्मद पर नहीं जाती, किसी पर भी नहीं जाती।

महावीर जितना साहस का आदमी खोजना मुश्किल है। लेकिन कोई सोच भी नहीं सकता था कि महावीर के पीछे कमजोर और कायर इकट्ठे हो जाएंगे। वे इकट्ठे हुए। क्योंकि उनको आड़ मिल गई। जीवन बड़ा अजीब है। महावीर ने अहिंसा की बात की और महावीर ने कहा, अहिंसा को वही उपलब्ध हो सकता है, जिसके चित्त में भय बिल्कुल नहीं रहा। लेकिन भयभीत आदमी ने सोचा कि अहिंसा अच्छा धर्म है, इसमें कोई किसी को मारता-पीटता नहीं। न हम किसी को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा। वह जो भयभीत आदमी था, उसको अहिंसा परम धर्म मालूम पड़ा। इसलिए नहीं कि अहिंसा परम धर्म था, बल्कि इसलिए कि उसके भय को लगा कि अगर सारी दुनिया अहिंसा मान ले, तो बड़ी निर्भयता से रहने का मजा आ जाए। तो जितने भयभीत आदमी थे, वे महावीर के पीछे इकट्ठे हो गए।

इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि महावीर के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ, वह एकदम इंपोटेंट, एकदम नपुंसक है। उसने जिंदगी में सब तरफ से अपने को सिकोड़ लिया। वह सिर्फ केवल बनिए के धंधे को पकड़ कर

जी रहा है पच्चीस सौ साल से। क्या कारण है? उसको कोई धंधा नहीं समझ में आया; क्योंकि सब धंधे में खतरा लगा। सिर्फ एक धंधा उसको लगा कि यह ठीक है। इसमें ज्यादा झंझट नहीं, झगड़ा नहीं। और न कुछ पैदा करता है, न कहीं जाता है। बीच के मध्यस्थ का काम करता है, दलाल का काम कर रहा है। कोई सोच ही नहीं सकता कि महावीर जैसे हिम्मतवर आदमी के पीछे इतने गैर-हिम्मतवर लोग इकट्ठे होंगे, जो कुछ न कर सकें सिवाय दलाली के। दलाली भी कोई धंधा है? दलाली से भी कोई इनर पोटेंशियल, जो भीतर छिपी हुई शक्तियां हैं, वे जग सकती हैं? लेकिन यह सब से ज्यादा सुविधापूर्ण मालूम पड़ा भयभीत आदमी को। अजीब बात है, महावीर के पीछे कायर लोग इकट्ठे हो गए।

मोहम्मद अत्यंत दयालु व्यक्ति हैं। और दया के कारण ही तलवार उठाई। अगर दया थोड़ी भी कम होती, तो यह आदमी तलवार नहीं उठाता। लेकिन उनके पीछे खूंखार और जंगली आदमी इकट्ठे हो गए। क्योंकि तलवार दिखी, उन्होंने कहा, बड़े मजे की बात है, धर्म और तलवार दोनों का जोड़ हो गया, सोने में सुगंध आ गई। अब हमसे कोई यह भी नहीं कह सकता कि तुम मार रहे हो। अब हम धर्म के नाम पर मारेंगे और काटेंगे। तो मध्य एशिया की जितनी बर्बर कौमें थीं, तातार थे, हूण थे, तुर्क थे, वे सब इसलाम में सम्मिलित हो गए। क्योंकि तलवार को पहली दफा अपराधी के जगह से हटा कर मंदिर का रुतबा मिला। वे सब पीछे खड़े हो गए तलवार लेकर। उन्होंने सारी दुनिया रौंद डाली। आज जो दुनिया में इसलाम का इतना प्रभाव है, यह मोहम्मद की वजह से नहीं है; यह जो इतनी संख्या है, मोहम्मद की वजह से नहीं है। यह इन दुष्टों की वजह से है, जो पीछे इकट्ठे हो गए। इन्होंने रौंद डाली सारी दुनिया। लेकिन इसलाम मार डाला इन्होंने। शांति का धर्म सबसे ज्यादा अशांति का धर्म बन गया।

लेकिन मोहम्मद जिम्मेवार नहीं हैं। मोहम्मद क्या कर सकते हैं? महावीर क्या कर सकते हैं? महावीर सोच ही नहीं सकते कि मेरे पीछे वणिकों की एक कतार खड़ी हो जाएगी। कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन जीवन के तर्क बड़े अजीब हैं, बहुत अजीब हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता। और एक तर्क, जो कि लाओत्से को समझने में भी उपयोगी होगा, वह यह है कि अक्सर आप विरोधी आदमी से प्रभावित होते हैं, दि अपोजिट। जैसा सेक्स में होता है, वैसा ही सब चीजों में होता है। आप अपने से विपरीत आदमी से प्रभावित होते हैं। यह बड़ी खतरनाक बात है; लेकिन यह होता है। महावीर बहादुर से बहादुर हैं; इसीलिए उनको महावीर नाम मिला। यह उनका नाम तो नहीं है। नाम तो उनका वर्द्धमान है। महावीर का नाम दिया, क्योंकि उनकी वीरता का कोई मुकाबला ही नहीं है। सच में नहीं है। ये महावीर के पीछे जो लोग प्रभावित हुए, वे कायर होंगे, यह सोचा भी नहीं जा सकता।

लेकिन हमेशा ऐसा होता है। वीरता से कायर ही प्रभावित होते हैं, वीर प्रभावित नहीं होते। वीर क्या प्रभावित होंगे! कि होओगे वीर, तो ठीक है, अपने घर के होओगे। लेकिन कायर एकदम प्रभावित हो जाता है कि यह रहा महावीर! इसके चरणों में सिर रखें! यह है आदमी असल में! क्यों? क्योंकि यह कायर भी सोचता रहा है, कभी हम भी ऐसे हो जाएं। हो तो नहीं सकते। यह आइडियल है, यह आदर्श है। लेकिन इसके चरणों में सिर तो रख सकते हैं। इसका यशगान तो कर सकते हैं! इसकी जय-जयकार तो बोल सकते हैं। यह उनका आदर्श बन जाता है; क्योंकि भीतर इससे विपरीत उनके आदमी छिपा है। वे इकट्ठे हो जाते हैं। वे अड़चन डाल देते हैं।

सदा ऐसा होता है कि हम अपने से विपरीत से आकर्षित हो जाते हैं। और तब बड़ी कठिनाई होती है। हम जिस वजह से आकर्षित होते हैं, हम उससे उलटे होते हैं। और फिर ये आकर्षित हुए लोग ही पीछे संप्रदाय निर्मित करेंगे, संस्था चलाएंगे, संगठन बनाएंगे। संप्रदाय होगा, वह इनके हाथ में होगा। फिर ये सारी व्याख्या

बदलेंगे, फिर ये रि-इंटरप्रीट करेंगे, नई व्याख्याएं करेंगे। और सारी चीज और ही हो जाएगी। सारी चीज और ही हो जाएगी।

अगर इतिहास का यह ढंग हमारे ख्याल में आ जाए, तो शायद भविष्य में हम आदमी को सचेत कर सकें कि तुम जरा सोच-समझ कर... । अभी मनसविद कहते हैं कि जब भी कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रभावित होता है, तो वह उन गुणों से प्रभावित होता है, जो उसमें नहीं हैं। स्त्री उन गुणों से प्रभावित होती है, जो उसमें नहीं हैं। जो हममें नहीं है, उससे हम प्रभावित होते हैं। जो हममें है, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते। क्योंकि वह तो हममें है ही। उससे प्रभावित होने का कोई कारण नहीं है। चूंकि विपरीत गुणों से लोग प्रभावित होते हैं, और विपरीत जितने गुण होते हैं, उतना ज्यादा रोमांच, उतना ज्यादा रोमांस, उतना प्रेम पैदा होता है। लेकिन फिर विवाह में वे ही विपरीत गुण कलह का कारण भी बनते हैं। अब यह मुश्किल है।

इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जितने बड़े प्रेम से विवाह होगा, उतने ही खतरे में ले जा सकता है। क्योंकि प्रेम का मतलब यह होता है कि बड़ा ही विपरीत आकर्षण था। जो बहुत कठोर आदमी है, वह नाजुक से प्रभावित होगा। लेकिन जब दोनों साथ रहेंगे, तो नाजुक और कठोर में कोई तालमेल पड़ेगा नहीं। झंझट रोज आएगी। अगर कोई बहुत इंटलेक्चुअल, बहुत बुद्धिमान आदमी है, तो वह बुद्धिमान स्त्री से प्रभावित नहीं होगा, कभी नहीं होगा। वह एक ऐसी स्त्री खोजेगा, जिसमें बुद्धि नाम मात्र को न हो। वह उससे प्रभावित होगा। लेकिन फिर अड़चन आएगी। क्योंकि जब दोनों साथ रहेंगे, तो वह पाएगा, कहां की जड़बुद्धि से पाला पड़ गया।

अब इसमें किसी का कसूर नहीं है। यह सिर्फ जीवन का विपरीत का तर्क दिक्कत डालता है। विपरीत से हम प्रभावित होते हैं, लेकिन विपरीत के साथ रह नहीं सकते। इसलिए हमारी आखिरी दिक्कत यह होती है कि जिससे हम प्रभावित होते हैं, उसके साथ रह नहीं सकते; और जिसके साथ हम रह सकते हैं, उससे हम कभी प्रभावित नहीं होते।

इसलिए पुराने लोग ज्यादा होशियार थे, या कहें, चालाक थे। तो वे कहते थे, विवाह किसी और से करना और प्रेम किसी और से करना। ये दोनों काम कभी एक साथ मत करना। विवाह उससे करना, जिसके साथ रह सको। और प्रेम उससे करना, जिससे प्रभावित हो। और इनको कभी घोल-मेल मत करना, इनको कभी एक साथ मत लाना।

अभी अमरीका के जो श्रेष्ठतम चिंतनशील लोग हैं, वे कहते हैं कि अमरीका को अगर बचाना है, तो हमें यह पुरानी चालाकी वापस लौटानी पड़ेगी। क्योंकि अमरीका ने एक गलती कर ली है--गलती अब लगती है--कि वे कहते हैं कि जिससे प्रेम हो, उससे ही विवाह करना। वह है तो बात बहुत अदभुत, लेकिन वह घट नहीं पाती। क्योंकि प्रेम उससे हो जाता है, जो विपरीत है। फिर उसके साथ रहने में मुसीबत खड़ी हो जाती है। जिन-जिन चीजों ने प्रभावित किया था, वे ही कलह का कारण बन जाएंगी। क्योंकि उनसे आपका तालमेल तो बैठ नहीं सकता।

ठीक जैसा पति-पत्नी के बीच घटता है, वैसा ही गुरु-शिष्य के बीच घटता है। यह गुरु-शिष्य का भी बड़ा रोमांस है! विपरीत से प्रभावित होकर लोग चले आते हैं; फिर साथ रहना भी मुश्किल हो जाता है। इसलिए जिंदा गुरु के साथ रहना बहुत कठिन पड़ता है; मरे गुरु के साथ दिक्कत नहीं आती। क्योंकि दूसरा मौजूद ही नहीं होता; आपकी जो मर्जी हो, माने चले जाओ।

अब जीसस ने तो कहा है कि जो तुम्हारे गाल पर चांटा मारे, दूसरा गाल उसके सामने कर देना। और ईसाइयत ने इतनी हत्याएं की हैं, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह क्या बात है? यह जीसस जैसे आदमी

के पास ये लोग कैसे इकट्ठे हो गए? ये प्रभावित हुए, यह दुष्ट वर्ग प्रभावित हुआ एकदम। इसने कहा कि बात तो यही सच है। हम नहीं कर पाते, कोई हर्ज नहीं। लेकिन कम से कम हम जय-जय जीसस की तो कर ही सकते हैं, जयकार तो कर ही सकते हैं। वह इकट्ठा हो गया। उसने लोगों की गर्दनें काट दीं, यह शिक्षा समझाने के लिए कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। उसने लाखों लोगों की गर्दनें काट दीं। क्योंकि यह सिद्धांत समझाना बिल्कुल जरूरी है, इस सिद्धांत के बिना दुनिया का हित नहीं होगा।

ऐसा विपरीत हो जाता है। इसलिए मोहम्मद आक्रामक नहीं हैं, न कृष्ण आक्रामक हैं। और मोहम्मद या कृष्ण के पास जैसे ही अनुभूति का सागर खुलता है, वैसे ही स्त्रैण-चित्त के द्वार खुल जाते हैं। स्त्रैण-चित्त से अर्थ केवल इतना ही है कि उस क्षण में आदमी जीवन के प्रति आक्रामक न होकर, जीवन की धाराओं के प्रति ग्राहक हो जाता है। वह एक गर्भ बन जाता है और जीवन को अपने भीतर समा लेने को तैयार हो जाता है। वह स्वीकार करने लगता है, अस्वीकार करना बंद कर देता है। उसकी स्थिति टोटल एक्सेप्टबिलिटी की, तथाता की हो जाती है। वह राजी हो जाता है। यह राजीपन, परिपूर्ण राजीपन ही स्त्रैण-चित्त का लक्षण है।

एक आखिरी सवाल। आखिरी सवाल एक छोटा सा, एक मित्र ने पूछा है कि क्या निरहंकारिता की क्षमता साधारण आदमी को भी मिल सकती है?

उनके प्रश्न से ऐसा लगता है कि बेचारे साधारण आदमी को कैसे मिलेगी? जब कि सच्चाई यह है कि असाधारण को मिलनी बहुत कठिन है। क्योंकि असाधारण का मतलब ही अहंकारी होता है। साधारण को ही मिल सकती है। लेकिन साधारण साधारण को नहीं; एक्स्ट्राआर्डिनरिली आर्डिनरी, असाधारण रूप से जो साधारण होता है।

साधारण साधारण मैं किसको कहता हूं? साधारण साधारण उसको कहता हूं, जिसको सब तो साधारण कहते हैं, लेकिन वह खुद साधारण नहीं मानता। असाधारण रूप से साधारण मैं उसको कहता हूं, जिसको दुनिया चाहे असाधारण कहती हो, लेकिन वह अपने को साधारण मानता है।

मैं दस-बारह वर्ष पूरे मुल्क में घूमा। लाखों लोग मुझे मिले। सैकड़ों लोगों ने मुझसे आकर कहा कि आप जो बातें कहते हैं, वह साधारण आदमी की समझ में कैसे आएंगी?

मैंने उनसे पूछा, आपकी समझ में आती हैं?

उन्होंने कहा, मेरी तो समझ में आती हैं; लेकिन साधारण आदमी की समझ में कैसे आएंगी?

मैंने कहा, मुझे घूमते बारह साल हो गए, लाखों लोग मैंने देखे, सैकड़ों लोगों ने यह सवाल मुझसे किया, अब तक मुझे साधारण आदमी नहीं मिला, जिसने कहा हो कि मैं साधारण आदमी हूं, मेरी समझ में यह कैसे आएगा। तो मैंने उनसे कहा कि वह साधारण आदमी कहां है? मुझे उससे मिला दो, एक दफा उसके दर्शन करने जैसे हैं।

कोई आदमी अपने को साधारण नहीं मानता। सभी आदमी अपने को असाधारण मानते हैं। यही अहंकार है। और आदमी अपने को साधारण जान ले और मान ले, तो अहंकार विदा हो गया। और सभी आदमी साधारण हैं। सभी आदमी साधारण हैं। असाधारण कोई भी नहीं है। सिर्फ एक ही आदमी को असाधारण हम कह सकते हैं, जो इस साधारणता को जान ले; बस। और किसी को असाधारण नहीं कह सकते।

मन हमारा करता नहीं यह मानने को कि मैं और साधारण! कितने-कितने उपाय से हम समझाते हैं कि मेरा जैसा आदमी कभी नहीं हुआ, कभी नहीं होगा। हालांकि कभी इस पर सोचते नहीं कि ऐसा कहने का क्या कारण है? क्या ऐसी विशेषता है? क्या ऐसी खूबी है? कुछ भी ऐसी खूबी नहीं, कुछ भी ऐसी विशेषता नहीं। लेकिन मन यह मानने को नहीं करता कि मैं साधारण हूं। क्योंकि जैसे ही हम यह मानें कि मैं साधारण हूं, वैसे ही ऊपर चढ़ने की यात्रा बंद होती है।

असल में, असाधारण मानने का कारण है। जब मैं मानता हूं कि मैं असाधारण हूं, तो मैं जहां भी हूं, वह जगह मेरे योग्य नहीं रहती। मेरे योग्य जगह तो ऊपर है, जहां मैं नहीं हूं। दुनिया को पता नहीं है और दुनिया बाधाएं डाल रही है। अन्यथा मैं ठीक जगह पर अपनी पहुंच जाऊं। पहुंच कर मैं रहूंगा। ठीक जगह मेरी सदा मुझ से ऊपर है। जहां मैं हूं, वह मेरे योग्य जगह नहीं है। इसलिए मैं अपने को असाधारण मानता हूं कि मैं अपनी ठीक जगह को पा लूं। वह ठीक जगह मुझे कभी नहीं मिलेगी, क्योंकि जहां मैं पहुंच जाऊंगा, वह जगह साधारण हो जाएगी; और मेरी असाधारण जगह और ऊपर उठ जाएगी। अहंकार अगर चढ़ता है ऊपर, तो तभी चढ़ पाता है, जब वह मानता है कि ऊपर ही मेरी जगह है, नीचे मेरी जगह नहीं है। यह अहंकार की दौड़ की कीमिया है, केमिस्ट्री है।

लाओत्से कहता है कि अगर तुम जान लो कि तुम साधारण हो, नोबडी हो, ना-कुछ हो, तो फिर ऊपर न चढ़ सकोगे। साधारण का ख्याल आते ही तुम्हें लगेगा कि शायद जिस जगह मैं खड़ा हूं, यह भी तो अनधिकार चेष्टा नहीं है। शायद यह भी मेरी योग्यता न हो। तुम और पीछे हट जाओगे। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां और आगे हटने को कोई जगह नहीं बचती। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां हटने को कोई भी राजी नहीं होता। तुम एक दिन वहां हट जाओगे, जहां कोई प्रतिस्पर्धा नहीं करता कि यहां से हटो। लाओत्से कहता है, उसी दिन तुम असाधारण जीवन को उपलब्ध हो जाओगे। क्योंकि इतना जो विनम्र हो गया, अगर उसको भी परमात्मा नहीं मिलता, तो फिर परमात्मा की सारी बातचीत बकवास है। इतना जो शून्य हो गया, अगर उसको भी पूर्ण का साक्षात्कार नहीं होता, तो फिर पूर्ण का साक्षात्कार होता ही नहीं होगा।

यह जो साधारण हो जाने की अपनी तरफ से चेष्टा है--समझ, साधना, जो भी हम कहें--ऐसा मत सोचें कि साधारण आदमी यह कैसे करेगा? प्रत्येक आदमी साधारण है और प्रत्येक यह कर सकता है। लेकिन प्रत्येक को वहम है कि वह असाधारण है। उस वहम को तोड़ना जरूरी है।

लाओत्से यह नहीं कहता कि आप तोड़िए ही। वह यह कहता है कि अगर नहीं तोड़िएगा, तो दुख पाइएगा। और दुख आप पाना नहीं चाहते। लेकिन जिस चीज से दुख पाते हैं, उसको सम्हाल कर चलते हैं। करीब-करीब ऐसा मामला है कि हम अपनी बीमारियों को सम्हाल कर चलते हैं, कहीं बीमारी छूट न जाए। और दुख पाते हैं। और शोरगुल मचाते रहते हैं कि बहुत दुख है, बहुत दुख है। लेकिन जिस चीज से दुख मिल रहा है, उसे हम छोड़ना नहीं चाहते। अहंकार की गांठ हमारे सब दुखों की जड़ है। और अपने को साधारण जान लेना सब दुखों की औषधि है।

चौबीस घंटे के लिए कभी प्रयोग करके देखें--छोड़ें, ज्यादा की फिक्र नहीं करें--चौबीस घंटे के लिए साधारण हो जाएं। चौबीस घंटे एक ही स्मरण रख लें एक बार चौबीस घंटे कि मैं साधारण आदमी हूं, ना-कुछ। और चौबीस घंटे के बाद आप फिर कभी असाधारण न हो सकेंगे, न होना चाहेंगे। क्योंकि साधारण होने में आपको ऐसे आनंद की झलक मिल जाएगी, जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

लेकिन वह झलक मिलती नहीं, क्योंकि ऐसे अकड़े हुए हैं असाधारण होने में कि वह झलक मिले कैसे? द्वार-दरवाजे बंद करके बैठे हैं असाधारण होने में। अपने सिंहासन से नीचे उतरें। स्वर्ण-सिंहासनों पर, अहंकार के, जीवन का रहस्य नहीं है। विनम्रता के साधारण धूल-धूसरित मार्गों पर भी बैठ जाने से जो मिल जाएगा, वह भी अहंकार के स्वर्ण-मंडित शिखरों पर बैठने से नहीं मिलता है।

इतना ही। कोई जाएगा नहीं। आज आखिरी दिन है, तो दस मिनट पूरे कीर्तन में डूब कर जाएं। शायद कीर्तन आपको साधारण बना दे। लेकिन उसमें भी आप अकड़े बैठे रहते हैं कि कोई देख न ले कि इतना असाधारण आदमी और ताली बजा रहा है! जिनको नाचना हो, वे बीच में खड़े हो जाएं। बीच में भी नाचने का ख्याल आ जाए, बाहर आ जाएं। बिल्कुल साधारण हैं। पंद्रह मिनट के लिए तो कम से कम साधारण हो जाएं। और देखें कि साधारण कोई भी हो सकता है।

प्रवचन-क्रम

23. सफलता के खतरे, अहंकार की पीड़ा और स्वर्ग का द्वार 2
24. शरीर व आत्मा की एकता, ताओ की प्राण-साधना व अविकारी स्थिति 19
25. उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण भरा भाव व नमनीय मेधा 36
26. ताओ की अनुपस्थित उपस्थिति 54
27. अनस्तित्व और खालीपन है आधार सब का 75
28. ऐंद्रिक भूख की नहीं--नाभि-केंद्र की आध्यात्मिक भूख की फिक्र 91
29. ताओ की साधना--योग के संदर्भ में 107
30. एक ही सिक्के के दो पहलू: सम्मान व अपमान, लोभ व भय 126
31. अहंकार-शून्य व्यक्ति ही शासक होने योग्य 141
32. अदृश्य, अश्राव्य व अस्पर्शनीय ताओ 157
33. अक्षय व निराकार, सनातन व शून्यता की प्रतिमूर्ति 173
34. संत की पहचान: सजग व अनिर्णीत, अहंशून्य व लीलामय 189
35. विश्रांति से समता व मध्य मार्ग से मुक्ति 211
36. तटस्थ प्रतीक्षा, अस्मिता-विसर्जन व अनेकता में एकता 228
37. निष्क्रियता, नियति व शाश्वत नियम में वापसी 243
38. ताओ का द्वार--सहिष्णुता व निष्पक्षता 260
39. श्रेष्ठ शासक कौन? --जो परमात्मा जैसा हो 278
40. ताओ के पतन पर सिद्धांतों का जन्म 293
41. सिद्धांतों व आचरण में नहीं, सरल-सहज स्वभाव में जीना 312
42. आध्यात्मिक वासना का त्याग व सरल स्व का उदघाटन 335
43. धर्म है--स्वयं जैसा हो जाना 353

तेईसवां प्रवचन

सफलता के खतरे, अहंकार की पीड़ा और स्वर्ग का द्वार

Chapter 9 : Sutra 1 & 2

The Danger Of
Overweening Success

1. It is better to leave a vessel unfilled,
than to attempt to carry it when it is full.
If you keep feeling a point that has been sharpened,
the point can not long preserve its sharpness.
2. When gold and jade fill the hall,
their possessor can not keep them safe.
When wealth and honour lead to arrogance,
this brings evil on itself.
When the work is done and one"s name is becoming distinguished,
to withdraw into obscurity is the way of Heaven.

अध्याय 9 : सूत्र 1 व 2

आशातीत सफलता के खतरे

1. किसी भरे हुए पात्र को ढोने की कोशिश करने की अपेक्षा उसे अधजल छोड़ना ही श्रेयस्कर है।
यदि आप तलवार की धार को बार-बार महसूस करते रहें,
तो दीर्घ अवधि तक उसकी तीक्ष्णता नहीं टिक सकती।
2. सोने और हीरे से जब भवन भर जाता है,
तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है।
जब समृद्धि और सम्मान से घमंड उत्पन्न होता है,
तब वह स्वयं के लिए अमंगल का कारण बन जाता है।
कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल बना लेना ही स्वर्ग का मार्ग है।

जीवन एक गणित नहीं है; गणित से ज्यादा एक पहेली है। और न ही जीवन एक तर्क-व्यवस्था है; तर्क-व्यवस्था से ज्यादा एक रहस्य है।

गणित का मार्ग सीधा-साफ है। पहेली सीधी-साफ नहीं होती। और सीधी-साफ हो, तो पहेली नहीं हो पाती। और तर्क की निष्पत्तियां बीज में ही छिपी रहती हैं। तर्क किसी नई चीज को कभी उपलब्ध नहीं होता। रहस्य सदा ही अपने पार चला जाता है।

लाओत्से इन सूत्रों में जीवन के इस रहस्य की विवेचना कर रहा है। इसे हम दो तरह से समझें।

एक तो हम कल्पना करें कि एक व्यक्ति एक सीधी रेखा पर ही चलता चला जाए, तो अपनी जगह कभी वापस नहीं लौटेगा। जिस जगह से यात्रा शुरू होगी, वहां कभी वापस नहीं आएगा, अगर रेखा उसकी यात्रा की सीधी है। लेकिन अगर वर्तुलाकार है, तो वह जहां से चला है, वहीं वापस लौट आएगा। अगर हम यात्रा सीधी कर रहे हैं, तो हम जिस जगह से चले हैं, वहां हम कभी भी नहीं आएंगे। लेकिन अगर यात्रा का पथ वर्तुल है, सरकुलर है, तो हम जहां से चले हैं, वहीं वापस लौट आएंगे।

तर्क मानता है कि जीवन सीधी रेखा की भांति है। और रहस्य मानता है कि जीवन वर्तुलाकार है, सरकुलर है। इसलिए पश्चिम, जहां कि तर्क ने मनुष्य की चेतना को गहरे से गहरा प्रभावित किया है, जीवन को वर्तुल के आकार में नहीं देखता। और पूरब, जहां जीवन के रहस्य को समझने की कोशिश की गई है--चाहे लाओत्से, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध--वहां हमने जीवन को एक वर्तुल में देखा है। वर्तुल का अर्थ है कि हम जहां से चलेंगे, वहीं वापस पहुंच जाएंगे। इसलिए संसार को हमने एक चक्र कहा है, दि व्हील। संसार का अर्थ ही चक्र होता है। यहां कोई भी चीज सीधी नहीं चलती, चाहे मौसम हों, चाहे आदमी का जीवन हो। जहां से बच्चा यात्रा शुरू करता है जीवन की, वहीं जीवन का अंत होता है। बच्चा पैदा होता है, तो पहला जीवन का जो चरण है, वह है श्वास। बच्चा श्वास लेता पैदा नहीं होता, पैदा होने के बाद श्वास लेता है। कोई आदमी श्वास लेता हुआ नहीं मरता, श्वास छोड़ कर मरता है। जिस बिंदु से जन्म शुरू होता है, जीवन की यात्रा शुरू होती है, वहीं मृत्यु उपलब्ध होती है। जीवन एक वर्तुल है। इसका अगर ठीक अर्थ समझें, तो लाओत्से की बात समझ में आ सकेगी।

लाओत्से कहता है, सफलता को पूरी सीमा तक मत ले जाना, अन्यथा वह असफलता हो जाएगी। अगर सफलता को तुम पूरा ले गए, तो तुम अपने ही हाथों उसे असफलता बना लोगे। और अगर यश के वर्तुल को तुमने पूरा खींचा, तो यश ही अपयश बन जाएगा।

यदि जीवन एक रेखा की भांति है, तो लाओत्से गलत है। और अगर जीवन एक वर्तुल है, तो लाओत्से सही है। इस बात पर निर्भर करेगा कि जीवन क्या है, एक सीधी रेखा?

इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा। पश्चिम ने इतिहास लिखा है। क्योंकि पश्चिम मानता है कि जो घटना एक बार घटी है, वह दुबारा नहीं घटेगी, अनरिपीटेबल है। प्रत्येक घटना अद्वितीय है। इसलिए जीसस का जन्म अद्वितीय है, दुबारा नहीं होगा। और जीसस पुनरुक्त नहीं होंगे। इसलिए सारा इतिहास जीसस से हिसाब रखता है। जीसस के पहले और जीसस के बाद, सारी दुनिया में इतिहास को हम नापते हैं। ऐसा हम राम के साथ नहीं नाप सकते। हम ऐसा नहीं कह सकते कि राम के पूर्व और राम के बाद। क्योंकि पहली तो बात यह है कि हमें यह भी पक्का नहीं कि राम कब पैदा हुए। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम, जो राम का पूरा जीवन बचा सकते थे, वे उनके जन्म की तिथि नहीं बचा सकते थे। यह बहुत समझने जैसी बात है। पूरब ने कभी इतिहास लिखना नहीं चाहा, क्योंकि पूरब की दृष्टि यह है कि कोई भी चीज अद्वितीय नहीं है, सभी चीजें वर्तुल में वापस-

वापस लौट आती हैं। राम हर युग में होते रहे और हर युग में होते रहेंगे। नाम बदल जाए, रूप बदल जाए, लेकिन वह जो मौलिक घटना है, वह नहीं बदलती। वह पुनरुक्त होती रहती है।

इसलिए एक बहुत मीठी कथा है और वह यह कि वाल्मीकि ने राम के जन्म के पहले कथा लिखी; पीछे राम हुए। ऐसा दुनिया में कहीं भी सोचा भी नहीं जा सकता। राम हुए बाद में, वाल्मीकि ने कथा लिखी पहले। क्योंकि राम का होना, पूरब की दृष्टि में, एक वर्तुलाकार घटना है। जैसे एक चाक घूमता है, तो उस चाक में जो हिस्सा अभी ऊपर था, अभी नीचे चला गया, फिर ऊपर आ जाएगा, फिर ऊपर आता रहेगा। जैन कहते हैं कि हर कल्प में उनके चौबीस तीर्थंकर होते रहेंगे। नाम बदलेगा, रूप बदलेगा, लेकिन तीर्थंकर के होने की घटना पुनरुक्त होती रहेगी।

इसलिए पूरब ने इतिहास नहीं लिखा; पूरब ने पुराण लिखा। पुराण का अर्थ हैः वह जो सारभूत है, जो सदा होता रहेगा, बार-बार होता रहेगा। इतिहास का अर्थ है कि जो दुबारा कभी नहीं होगा। अगर जीवन एक वर्तुल में घूम रहा है, तो फिर यह बार-बार हिसाब रखने की जरूरत नहीं कि राम कब पैदा होते हैं और कब मर जाते हैं। राम के होने का क्या अर्थ है, इतना ही याद रखना काफी है। राम का सारभूत व्यक्तित्व क्या है, इतना ही याद रखना काफी है। फिर ये बातें गौण हैं कि शरीर कब श्वास लेना शुरू करता है और कब बंद कर देता है। ये बातें अर्थपूर्ण नहीं हैं। हम उन्हीं चीजों को याद रखने की कोशिश करते हैं, जो दुबारा नहीं दुहरती हैं। जो रोज ही दुहरने वाली हैं, उनको याद रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

तो पूरब की समझ जीवन को एक वर्तुलाकार देखने की है। और यह समझ महत्वपूर्ण भी है। क्योंकि इस जगत में जितनी गतियां हैं, सभी वर्तुलाकार हैं। गति मात्र वर्तुल में है--चाहे चांद-तारे घूम रहे हों, चाहे पृथ्वी घूम रही हो, चाहे मौसम घूम रहा हो, चाहे व्यक्ति का जीवन घूम रहा हो--इस जगत में ऐसी कोई भी गति नहीं है, जो सीधी हो। इस जगत में जहां भी गति है, वहां वर्तुल अनिवार्य है। तो अकेला जीवन के संबंध में अपवाद नहीं होगा।

लेकिन वर्तुल का अपना तर्क है; और वर्तुल का अपना रहस्य है। और वह यह है कि जहां से हम शुरू करते हैं, वहीं हम वापस पहुंच जाते हैं। और जब हमारा मन होता है कि हम और जोर से आगे बढ़े चले जाएं, तो हमें पता नहीं होता कि हमारे आगे बढ़े जाने में एक जगह से हमने पीछे लौटना शुरू कर दिया है। एक लिहाज से जवानी बुढ़ापे के बहुत विपरीत है। लेकिन एक अर्थ में बहुत विपरीत नहीं है, क्योंकि जवानी सिर्फ बुढ़ापे में ही पहुंचती है, और कहीं पहुंचती नहीं। तो जितना आदमी जवान होता जा रहा है, उतना बूढ़ा होता जा रहा है।

और यह बात लाओत्से कहता है, "किसी भरे हुए पात्र को ढोने की कोशिश करने की बजाय उसे अधभरा ही छोड़ देना श्रेयस्कर है।"

क्योंकि जब भी कोई चीज भर जाती है, तो अंत आ जाता है। वह कुछ भी हो, अकेला पात्र ही नहीं, पात्र तो केवल विचार के लिए है। कोई भी चीज जब भर जाती है, तो अंत आ जाता है। अगर प्रेम भी भर जाए, तो प्रेम का अंत आ जाता है। जो चीज भी भर जाती है, वह मर जाती है। असल में, भर जाना मर जाने का लक्षण है। पक जाना गिर जाने की सूचना है। फल जब पक जाएगा, तो गिरेगा ही। तो जब भी हम किसी चीज को पूरा कर लेते हैं, तभी समाप्त हो जाती है।

तो लाओत्से कहता है कि जीवन के सत्य को अगर समझना हो, तो ध्यान रखना, किसी पात्र को भरने की बजाय अधभरा रखना ही श्रेयस्कर है।

लेकिन बड़ा कठिन है, अति कठिन है, क्योंकि जीवन की सभी प्रक्रियाएं भरने के लिए आतुर हैं। जब आप अपनी तिजोरी भरना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। तिजोरी तो दूर है, जब आप अपने पेट में भोजन डालना शुरू करते हैं, तब भी आधे पर रुकना मुश्किल है। जब आप किसी को प्रेम करना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। जब आप सफल होना शुरू करते हैं, तो आधे पर रुकना मुश्किल है। महत्वाकांक्षा आधे पर कैसे रुक सकती है? सच तो यह है, जब महत्वाकांक्षा आधे पर पहुंचती है, तभी प्राणवान होती है। और तभी आशा बंधती है कि अब जल्दी ही सब पूरा हो जाएगा। और जितनी तीव्रता से हम पूरा करना शुरू करते हैं, उतनी ही तीव्रता से नष्ट होना शुरू हो जाता है। तो जिस बात को भी पूरा कर लेंगे, वह नष्ट हो जाएगी।

लाओत्से कहता है, आधे पर रुक जाना।

आधे पर रुक जाना संयम है। और संयम अति कठिन है। जीवन के समस्त नियमों पर आधे पर रुक जाना संयम है। पर आधे पर रुकना बहुत कठिन है, बड़ा तप है। क्योंकि जब हम आधे पर होते हैं, तभी पहली दफा आश्वासन आता है मन में कि अब पूरा हो सकता है। अब रुकने की कोई भी जरूरत नहीं है। जब आप बिल्कुल सिंहासन पर पैर रखने के करीब पहुंच गए हों सारी सीढ़ियां पार करके--सीढ़ियों के नीचे रुक जाना बहुत आसान था, पहला कदम ही न उठाना बहुत आसान था। क्योंकि आदमी अपने मन में समझा ले सकता है कि अंगूर खट्टे हैं। और लंबी यात्रा का कष्ट उठाने से भी बच सकता है। आलस्य भी सहयोगी हो सकता है। प्रमाद भी रोक सकता है। संघर्ष की संभावना और संघर्ष के साहस की कमी भी रुकावट बन सकती है। आदमी पहला कदम उठाने से रुक सकता है। लेकिन जब सिंहासन पर आधा कदम उठ जाए और पूरी आशा बन जाए कि अब सिंहासन पर पैर रख सकता हूं, तब लाओत्से कहता है, पैर को रोक लेना। क्योंकि सिंहासन पर पहुंचना सिंहासन से गिरने के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जाता। सिंहासन पर पहुंचने के बाद करिएगा भी क्या? फल पक जाएगा और गिरेगा। सफलता पूरी होगी और असफलता बन जाएगी। प्रेम पूरा होगा और मृत्यु घट जाएगी। जवानी पूरी होगी और बुढ़ापा उतर आएगा।

जैसे ही कोई चीज पूरी होती है, वर्तुल पुरानी जगह वापस लौट आता है। हम वहीं आ जाते हैं, जहां से हमने शुरू किया था। बूढ़ा आदमी उतना ही असहाय हो जाता है, जितना असहाय पहले दिन का बच्चा होता है। और जीवन भर की सफलता की यात्रा पुनः बच्चे की असफलता में छोड़ जाती है। एक अर्थ में शायद बच्चे से भी ज्यादा असहाय होता है। क्योंकि बच्चे को तो सम्हालने को उसके मां-बाप भी होते हैं और बच्चे को असहाय होने का पता भी नहीं होता। लेकिन बूढ़े के लिए सहारा भी नहीं रह जाता और असहाय होने का बोध भारी हो जाता है। और यह सारे जीवन की सफलता है! और सारे जीवन आदमी यही कोशिश कर रहा है कि मैं किसी तरह अपने को सुरक्षित कैसे कर लूं! सारे जीवन की सुरक्षा का उपाय और अंत में आदमी इतना असुरक्षित हो जाता है जितना कि बच्चा भी नहीं है, तो जरूर हम किसी वर्तुल में घूमते हैं, जिसका हमें ख्याल नहीं है।

"तलवार की धार को बार-बार महसूस करते रहें, तो ज्यादा समय तक उसकी तीक्ष्णता नहीं टिक सकती।"

यह भी उसी पहेली का दूसरा हिस्सा है। पहली बात कि किसी भी चीज को उसकी पूर्णता पर मत ले जाना, अन्यथा आप उसी बात की हत्या कर रहे हैं। जिसको आप पूर्ण करना चाहते हैं, आप उसके हत्यारे हैं। रुक जाना। आधे में रुक जाना। इसके पहले कि चाक वापस लौटने लगे, ठहर जाना। उसी पहेली का दूसरा हिस्सा लाओत्से कहता है कि किसी चीज को बार-बार महसूस करने से उसकी तीक्ष्णता मर जाती है। अगर तलवार पर

धार रखी है और बार-बार उसकी धार को महसूस करते रहें कि धार है या नहीं, तो धार मर जाएगी। रही भी हो, तो भी यह बार-बार परीक्षा करने से मर जाएगी।

लेकिन जिंदगी में हम यह भी करते हैं। अगर मेरा किसी से प्रेम है, तो दिन में मैं चार बार पता लगा लेना चाहता हूं कि प्रेम है या नहीं है। पूछ लेना चाहता हूं, उपाय करता हूं कि कह दिया जाए कि हां, प्रेम है। लेकिन जिस चीज को बार-बार महसूस किया जाता है, उसकी धार मर जाती है। प्रेमी ही एक-दूसरे के प्रेम की हत्या कर डालते हैं। और यह प्रेम के लिए ही नहीं, जीवन के समस्त तत्वों के लिए लागू है। अगर आपको बार-बार ख्याल आता रहे कि आप ज्ञानी हैं, तो आप अपनी धार अपने हाथ से ही मार लेंगे। अगर आपको बार-बार यह स्मरण होता रहे कि मैं श्रेष्ठ हूं, तो आपकी श्रेष्ठता आप ही अपने हाथ से पोंछ डालेंगे।

जिस चीज को भी हम बार-बार एहसास करते हैं, वह क्यों इतनी जल्दी मिट जाती है?

उसके कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हम उसी चीज को बार-बार एहसास करना चाहते हैं, जिसका हमें भरोसा नहीं होता। भीतर हम जानते ही हैं कि वह नहीं है। वह जो भीतर भरोसा नहीं है, उसी को पूरा करने के लिए हम जांच करते हैं। लेकिन जांच करने की कोई भी चेष्टा निरंतर, जिसकी हम जांच करते हैं, उसकी तीक्ष्णता को भी नष्ट करेगी ही। क्योंकि तीक्ष्णता होती है तीव्र पहले अनुभव में। और जितनी पुनरुक्ति होती है अनुभव की, उतनी ही तीक्ष्णता कम हो जाती है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान में हमें बहुत गहरा अनुभव पहली बार हुआ, लेकिन अब वैसा नहीं हो रहा है। अब वैसे अनुभव को वे रोज-रोज लाने की कोशिश में लगे हैं। तलवार की धार भी तीक्ष्णता खो देती है; ध्यान की धार भी तीक्ष्णता खो देगी। असल में, जिस अनुभव को हम पुनरुक्त करना चाहते हैं, पुनरुक्त करने के कारण ही वह अनुभव बासा हो जाता है। बासे होने के कारण उसकी संवेदना क्षीण हो जाती है।

अगर आप एक ही इत्र का उपयोग करते हैं रोज, तो सारी दुनिया को भला पता चलता हो आपकी इत्र की सुगंध का, आपको पता चलना बंद हो जाता है। तीक्ष्णता मर जाती है। रोज की पुनरुक्ति, और आपके नासापुट संवेदना खो देते हैं। सुंदरतम रंग भी, अगर आप रोज-रोज देखते रहें, तो रंगविहीन हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि वे रंग खो देते हैं, बल्कि इसलिए कि आंखें उनके साथ संवेदना का संबंध छोड़ देती हैं। इसलिए जो हमें मिल जाता है, उसे हम धीरे-धीरे भूल जाते हैं।

इसका यह अर्थ हुआ कि जीवन उतना ही बासा हो जाएगा, जितना हम पुनरुक्ति की कोशिश करेंगे। और एक ही चीज को बार-बार अहसास करने की चेष्टा करेंगे, जीवन धीरे-धीरे मृत और बासा हो जाएगा। और हम सबका जीवन बासा और मृत हो जाता है। फिर न ही जीवन में कहीं कोई सुबह मालूम पड़ती है; न कोई सूरज की नई किरण फूटती है; न कोई नया फूल खिलता है; न कोई नए गीत का जन्म होता है; न कोई नए पक्षी आकाश में पर फैला कर उड़ते हैं। सब बासा हो जाता है।

इस बासेपन का कारण क्या है? इस बासेपन का कारण है कि जो भी हमें अनुभव होता है, उसे हम बार-बार अनुभव करने की कोशिश करके उसकी तीक्ष्णता को मार डालते हैं। अगर मैंने आज प्रेम से आपका हाथ अपने हाथ में लिया, कल फिर आप प्रतीक्षा करेंगे कि वह हाथ मैं अपने हाथ में आपका लूं। और अगर मुझे भी लगा कि बहुत सुखद प्रतीति थी, तो मैं भी कल कोशिश करूंगा कि वह हाथ फिर अपने हाथ में लूं। और हम दोनों मिल कर ही उस सुख की अनुभूति को बासा कर देंगे। कल हाथ हाथ में आएगा और तब लगेगा कि कहीं कुछ धोखा हो गया। क्योंकि वैसा सुख, जो पूर्व में जाना था, अब नहीं मिलता है। तब हम और पागल की तरह हाथों को पकड़ेंगे। और ज्यादा पकड़ेंगे और कोशिश करेंगे कि उस सुख का हमें अनुभव हो जाए। वह सुख खो

जाएगा। हमारी चेष्टा ही उस सुख का अंत बन जाएगी। हम सभी सुख को नष्ट करते रहते हैं। क्योंकि जो हमें मिलता है, हम उसे पागल की तरह पाने की कोशिश करते हैं। उसमें ही वह खो जाता है।

जिंदगी बहुत अदभुत है। अदभुत इस अर्थों में है कि यहां उलटी घटनाएं घटती हैं। जो आदमी पाए सुख को पाने की दुबारा कोशिश नहीं करता, उसे वह सुख रोज-रोज मिल जाता है। और जो अपनी धार की तीक्ष्णता की फिक्र ही नहीं करता बार-बार जांच करने की, उसकी धार, उसकी तलवार की धार सदा ही तीक्ष्ण बनी रहती है।

मैंने सुना है कि रूस के एक थियेटर में एक दिन बड़ी मुश्किल हुई थी। बड़ा नाटक चल रहा था। और उस नाटक में एक हकलाने वाले आदमी का काम था। वह हकलाने वाला आदमी अचानक बीमार पड़ गया, जो हकलाने का अभिनय करता था। और ऐन वक्त पर खबर आई, और पर्दा उठने के करीब था। और मैनेजर और मालिक घबड़ाए, क्योंकि उसके बिना तो सारी बात ही खराब हो जाती। वही हास्य था उस पूरे नाटक में। उसी की वजह से रंग था। कोई उपाय नहीं था, और किसी आदमी को इतनी जल्दी हकलाने का अभ्यास करवाना भी मुश्किल था। लेकिन तभी किसी ने कहा कि हमारे गांव में एक हकलाने वाला आदमी है, हम उसे ले आते हैं। उसे सिखाने की कोई जरूरत नहीं है। आप उससे कुछ भी कहो, वह हकलाता ही है। और सब तरह के इलाज हो चुके हैं, बड़े चिकित्सक उसको देख चुके हैं। उसका कोई इलाज अब तक सफल नहीं हुआ है। वह धनपति का लड़का है।

उसे ले आया गया। और बड़ा चमत्कार हुआ, उस दिन वह नहीं हकला सका। पहली बार जिंदगी में, नाटक के मंच पर खड़ा होकर, वह युवक नहीं हकला सका। क्या हुआ? मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर इतना सचेतन कोई हो जाए, तो कोई भी चीज खो जाती है। कोई भी चीज खो जाती है।

मैं एक नगर में था और एक युवक को मेरे पास लाया गया। युवक विश्वविद्यालय का स्नातक है। और बड़ी तकलीफ में है। तकलीफ उसकी यह है कि चलते-चलते अचानक वह स्त्रियों जैसा चलने लगता है। मनोचिकित्सा हो चुकी है, मनोविश्लेषण हो चुका है। दवाइयां हो चुकी हैं, सब तरह के उपाय किए जा चुके हैं। लेकिन दिन में दो-चार बार वह भूल ही जाता है। और अब एक कालेज में अध्यापक का काम करता है, तो बड़ी कष्टपूर्ण बात हो गई है।

मैं उस युवक को कहा कि मैं एक ही इलाज समझता हूं और वह यह कि जब भी तुम्हें ख्याल आ जाए, तब तुम जान कर स्त्रियों जैसा चलना शुरू कर दो। रोको मत। अब तक तुमने रोकने की कोशिश की है। और गैर-जाने में तुम स्त्रियों जैसा चलने लगते हो और जान कर पुरुष जैसे चलते हो। अब तुम इसे उलट दो। अब तुम्हें जब भी ख्याल आए, तुम जान कर स्त्रियों जैसा चलो। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मैं वैसे ही मुसीबत में पड़ा हूं। बिना जाने ही मुसीबत में पड़ा हूं। और अब जान कर भी चलूंगा, तब तो चौबीस घंटे स्त्रियों जैसा ही चलता रहूंगा। मैंने उससे कहा, तुम मेरे सामने ही चल कर बता दो। उसने बहुत कोशिश की, वह नहीं चल पाया।

चेतना का एक नियम है, जिस चीज की आप बहुत कोशिश करते हैं, उसकी धार मिट जाती है। उसकी धार को पाना मुश्किल है। हम सभी सुख की धार को मार लेते हैं। और बड़े मजे की बात है कि दुख में हमारे धार बनी रहती है। हम इतना दुख जो पाते हैं, इसका कारण जगत में बहुत दुख है ऐसा नहीं, हमारे जीने के ढंग में बुनियादी भूल है। दुख को हम कभी छूना नहीं चाहते, इसलिए उसमें धार बनी रहती है। और सुख को हम छूते-छूते रहते हैं निरंतर, उसकी धार मर जाती है। आखिर में हम पाते हैं, दुख ही दुख रह गया हाथ में और

सुख की कोई खबर नहीं रही। तब हम कहते हैं कि सुख तो मुश्किल से कभी मिला हो मिला हो, सपना मालूम पड़ता है। सारा जीवन दुख है।

लेकिन दुख की यह धार हमारे ही कारण है। इससे उलटा जो कर लेता है, उसका नाम तप है। वह दुख की धार को छूता रहता है और सुख की फिक्र छोड़ देता है। धीरे-धीरे दुख की धार मिट जाती है और सारा जीवन सुख हो जाता है। जिस चीज को आप छुएंगे, वह मिट जाएगी। जिस चीज को आप मांगेंगे, वह खो जाएगी। जिसके पीछे आप दौड़ेंगे, उसे आप कभी नहीं पा सकेंगे।

इसलिए जीवन गणित नहीं, एक पहेली है। और जो गणित की तरह समझता है, वह मुश्किल में पड़ जाता है। जो उसे एक रहस्य और एक पहेली की तरह समझता है, वह उसके सार राज को समझ कर जीवन की परम समता को उपलब्ध हो जाता है।

लाओत्से कहता है, "सोने और हीरे से जब भवन भर जाए, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है।"

ये उलटी बातें मालूम पड़ती हैं, कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ती हैं, विरोधाभासी मालूम पड़ती हैं। लाओत्से कहता है, जब सोने और हीरे से भवन भर जाए, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है। असल में, मालिक तभी तक रक्षा कर सकता है अपनी संपत्ति की, जब तक गरीब हो; जब तक इतनी संपत्ति हो कि जिसकी रक्षा वह स्वयं ही कर सके। गरीब ही कर सकता है। जिस दिन संपत्ति की रक्षा के लिए दूसरों की जरूरत पड़नी शुरू हो जाती है, उसी दिन तो आदमी अमीर होता है। और जिस दिन से दूसरों के द्वारा सुरक्षा की जरूरत आ जाती है, उसी दिन से भय प्रवेश कर जाता है। क्योंकि दूसरों के हाथ में संपत्ति कहीं सुरक्षित हो सकती है? इसलिए इस जमीन पर एक अनूठी घटना घटती है कि गरीब यहां कभी-कभी अमीर जैसा सोया देखा जाता है और अमीर यहां सदा ही गरीब जैसा परेशान देखा जाता है। भिखारी यहां कभी-कभी सम्राट की शान से जी लेते हैं और सम्राट यहां भिखारियों से भी बदतर जीते हैं। क्योंकि जो हमारे पास है, उसकी रक्षा का उपाय भी दूसरे के हाथ में देना पड़ता है।

चंगीजखान की मृत्यु हुई। वह मृत्यु महत्वपूर्ण है। चंगीजखान जैसा आदमी स्वभावतः मृत्यु से भयभीत हो जाएगा। और अपनी मृत्यु न आए, इसके लिए उसने लाखों लोगों को मारा। लेकिन जितने लोगों को वह मारता गया, उतना ही भयभीत होता गया कि अब कोई न कोई उसे मार डालेगा। अपनी रक्षा के लिए उसने जितने लोगों की हत्या की, उतने शत्रु पैदा कर लिए। रात वह सो नहीं सकता था। क्योंकि रात अंधेरे में कुछ भी हो सकता है। और संदेह उसके इतने घने हो गए कि अपने पहरेदारों पर भी वह भरोसा नहीं कर सकता था। तो पहरेदारों पर पहरेदार, और पहरेदारों पर पहरेदार, ऐसी उसने सात पर्तें बना रखी थीं। उसके तंबू के बाहर सात घेरों में एक-दूसरे पर पहरा देने वाले लोग थे। और जब किसी पहरेदार पर इतना भी भरोसा न किया जा सके और उसके ऊपर भी बंदूक रखे हुए दूसरा आदमी खड़ा हो और उस दूसरे आदमी पर भी तीसरा आदमी खड़ा हो, तो ये पहरेदार मित्र तो नहीं हो सकते हैं। यह चंगीजखान को भी समझ में आता था। लेकिन तर्क जो करता है, वह यही कि वह पहरेदारों की संख्या बढ़ाए चला जाता था कि अगर इतने से नहीं हो सकता, तो और बढ़ा दो।

और एक रात, दिन भर का थका-मांदा, उसे झपकी लग गई। रात सोता नहीं था। अपनी तलवार हाथ में लिए बैठा रहता था। कभी भी खतरा हो सकता था। चंगीज सिर्फ दिन में सोता था, भरी दुपहरी में। जब रोशनी होती चारों तरफ, तब सो पाता था। उस दिन झपकी लग गई। पास में बंधे हुए घोड़ों में से कोई घोड़ा छूट गया

रात। भाग-दौड़ मची। लोग चिल्लाए। घबरा कर चंगीज उठा। अंधेरे में उसने समझा कि दुश्मन ने हमला कर दिया। तंबू के बाहर भागा। तंबू की खूंटी में पैर फंस कर गिरा। तंबू की खूंटी ही उसके पेट में धंस गई।

यह तंबू सुरक्षा के लिए था! यह खूंटी रक्षा के लिए थी! ये पहरेदार, ये घोड़े, यह सब इंतजाम था, व्यवस्था थी। कोई मारने नहीं आया था। किसी ने मारा भी नहीं चंगीज को। चंगीज मरा अपने ही भय से। सुरक्षा के उपाय के लिए भागा था।

पूरे जीवन में ऐसी घटना घटती है। आदमी मकान बनाता है; फिर मकान पर पहरेदार बिठाने पड़ते हैं। धन इकट्ठा करता है; फिर धन की सुरक्षा करनी पड़ती है। और यह जाल बढ़ता चला जाता है। और यह बात ही भूल जाती है कि मैंने जिस आदमी के लिए यह सब इंतजाम किया था, वह अब सिर्फ एक पहरेदार रह गया है, और कुछ भी नहीं।

अमरीका के अरबपति एंड्रू कारनेगी ने अपने आत्म-संस्मरण में लिखवाया है। मरने के दो दिन पहले उसने अपने सेक्रेटरी को पूछा कि मैं तुझसे यह पूछना चाहता हूं कि अगर दुबारा हम दोनों को जन्म मिले, तो तू मेरा सेक्रेटरी होना चाहेगा या तू एंड्रू कारनेगी होना चाहेगा और मुझे अपना सेक्रेटरी बनाना चाहेगा?

एंड्रू कारनेगी मरा, तो दस अरब रुपए छोड़ कर मरा।

उसके सेक्रेटरी ने कहा, माफ करिए, आपको मैं इतना जानता हूं कि कभी भी परमात्मा से ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता कि मैं एंड्रू कारनेगी होना चाहूं। काश, आपका मैं सेक्रेटरी न होता, तो शायद इस कामना से भी मर सकता था कि भगवान मुझे भी एंड्रू कारनेगी बना दे। कारनेगी ने पूछा, तेरा क्या मतलब? तो उस सेक्रेटरी ने कहा कि मैं देखता हूं रोज जो हो रहा है। आप सबसे ज्यादा गरीब आदमी हैं। न आप ठीक से सो सकते हैं, न आप ठीक से बैठ सकते हैं, न आप ठीक से बात कर सकते हैं। न आपको अपनी पत्नी से मिलने की फुर्सत है, न अपने बच्चों के साथ बात करने की फुर्सत है। और देखता हूं कि दफ्तर में आप सुबह साढ़े आठ बजे पहुंच जाते हैं; चपरासी भी साढ़े नौ बजे आते हैं; क्लर्क साढ़े दस बजे आते हैं; मैनेजर बारह बजे आता है; डायरेक्टर्स एक बजे पहुंचते हैं। डायरेक्टर्स तीन बजे चले जाते हैं; मैनेजर चार बजे चला जाता है; साढ़े चार बजे क्लर्क भी चले जाते हैं; पांच बजे चपरासी भी चले जाते हैं; मैंने आपको सात बजे से पहले कभी घर लौटते नहीं देखा।

चपरासी भी पहले चले जाते हैं। क्योंकि चपरासी दूसरे की सुरक्षा कर रहे हैं, अपनी नहीं। एंड्रू कारनेगी अपनी ही सुरक्षा कर रहा है।

यह लाओत्से कहता है कि जब सोने और हीरे से भवन भर जाता है, तब मालिक उसकी रक्षा नहीं कर सकता है। और जब मालिक रक्षा नहीं कर सकता, तो मालिक मालिक नहीं रह जाता है। वह सोने और हीरों का गुलाम हो जाता है।

हम अपनी संपत्ति के कब गुलाम हो जाते हैं, हमें पता ही नहीं चलता। मालिक होने के लिए ही कोशिश करते हैं। भूल ही जाते हैं कि जिसका हमने मालिक होना चाहा था, हम बहुत पहले ही उसके गुलाम हो चुके हैं। असल में, इस दुनिया में कोई भी आदमी यदि मालिक बनने की कोशिश करेगा, तो गुलाम हो जाएगा। असल में, हम जिसके भी मालिक बनना चाहेंगे, उसका हमें गुलाम होना ही पड़ेगा। बिना गुलाम बने मालिक बनने का कोई उपाय नहीं है। इसीलिए जीवन एक रहस्य है। यहां मालिक तो केवल वे ही लोग बन पाते हैं, सच्चे मालिक, जो किसी के मालिक ही नहीं बनते हैं, जो किसी पर अपनी मालकियत ही स्थापित नहीं करते हैं।

आदमी की तो हम बात छोड़ दें। चीजों पर भी अगर आपने मालकियत स्थापित की, तो चीजें आपकी मालिक हो जाती हैं। जब आपको एक मकान छोड़ना पड़ता है, तो मकान नहीं रोता आपके लिए कि आप जा

रहे हैं, आप रोते हैं। आपसे एक कमीज भी छीन ली जाए, तो कमीज जरा भी परेशान नहीं होती, आप परेशान होते हैं। वस्तुएं भी मालिक हो जाती हैं; दि पजेसर बिकम्स दि पजेस्ड। वह जो मालिक है, वह गुलाम हो जाता है। और जिसका मालिक है, उसी का गुलाम हो जाता है।

"जब समृद्धि और सम्मान से घमंड उत्पन्न होता है, तो वह स्वयं के लिए अमंगल का कारण है। और कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल कर लेना ही स्वर्ग का रास्ता है।"

और जब कोई काम सफल हो जाए, तो इसके पहले कि अहंकार का जन्म हो, कर्ता को ओझल हो जाना चाहिए। अन्यथा सफलता से बड़ी असफलता नहीं है। अन्यथा सफलता से बड़ा नर्क नहीं है। अन्यथा अपनी ही सफलता अपने लिए जहर बन जाती है। मकड़ी जैसे अपने ही भीतर से जाले को निकाल कर बुनती है, वैसे ही हम भी अपने चारों तरफ अपने जीवन का उलझाव बुन लेते हैं खुद ही। और कई बार ऐसा हो जाता है कि उस जाले में फंस कर हम ही चिल्लाते हैं कि कैसे मुक्ति हो! कैसे छुटकारा मिले! कैसे स्वतंत्रता संभव हो! यह गुलामी कैसे टूटे! और यह सारी गुलामी हमारा ही निर्माण है। लेकिन निर्माण कुछ ऐसे ढंग से होता है कि जब तक हो ही न जाए, हमें पता नहीं चलता। तो उस सूत्र को हमें समझ लेना चाहिए कि यह अनजानी गुलामी कैसे निर्मित हो जाती है और हम स्वयं ही कैसे निर्मित कर लेते हैं।

पहली बात, इस पृथ्वी पर एक ही मालकियत संभव है--ऐसा स्वभाव है, ऐसा नियम है--और वह मालकियत अपनी है। अपने अतिरिक्त और किसी की मालकियत संभव नहीं है। और जब भी कोई अपने सिवाय किसी और पर मालकियत करने जाएगा, तो गुलाम हो जाएगा। अगर महावीर या बुद्ध अपने राजमहल को और अपने राज्य को छोड़ कर निकल जाते हैं, तो आप सदा यही सोचते होंगे कि कितना महान त्याग है कि राज्य को, धन को, संपदा को, इतने राजमहलों को छोड़ कर निकल जाते हैं! तो आप गलती में हैं। महावीर और बुद्ध सिर्फ अपनी गुलामी को छोड़ कर निकल जाते हैं। यह बात उन्हें साफ हो जाती है कि अपने सिवाय और सभी तरह की मालकियत गुलामी है। तो फिर जितनी बड़ी यह मालकियत होगी, उतनी बड़ी गुलामी हो जाती है।

इसलिए यह मजे की बात है, आपने कभी सुना अब तक इतिहास में कि कोई भिखारी अपने भिखमंगेपन को छोड़ कर और त्यागी हो गया हो? किसी भिखारी ने अपना भिक्षा-पात्र छोड़ दिया हो और त्यागी हो गया हो? क्या बात है कि भिखारी भिक्षा-पात्र नहीं छोड़ पाता और कभी कोई सम्राट अपना साम्राज्य छोड़ देता है? सम्राट तो बहुत हुए हैं साम्राज्य को छोड़ देने वाले, लेकिन भिखारी अब तक इतने साहस का नहीं हो सका कि अपना भिक्षा-पात्र छोड़ दे। बात क्या है? असल में, भिखारी की गुलामी ही इतनी छोटी होती है कि उसे पता ही नहीं चलता कि मैं गुलाम भी हूं। सम्राट की गुलामी इतनी बड़ी हो जाती है और इतनी आत्मघाती हो जाती है कि उसे पता चलता है कि मैं गुलाम हूं। सम्राट के पास साम्राज्य एक कारागृह की तरह खड़ा हो जाता है। भिखारी का भिक्षा-पात्र कारागृह मालूम नहीं पड़ता, क्योंकि अभी भी भिखारी अपने भिक्षा-पात्र को लेकर कहीं भी चल पड़ता है। अभी कारागृह इतना छोटा है कि हाथ में टांगा जा सकता है। लेकिन एक सम्राट अपने कारागृह को लेकर कहीं भी नहीं जा सकता, कारागृह में ही उसे होना पड़ता है। सम्राट छोड़ सके, क्योंकि गुलामी इतनी बड़ी हो गई कि अपनी मालकियत का भ्रम छूट गया। भिखारी नहीं छोड़ पाता, गुलामी इतनी छोटी है कि मालकियत का भ्रम कायम बना रहता है।

इसलिए मैं जानता हूं जैसा, वह ऐसा है कि जब तक आपको भ्रम बना रहे कि आप अपनी चीजों के मालिक हैं, तब तक आप समझना कि आप गरीब आदमी हैं। चीजें इतनी कम हैं कि अभी आपको पता नहीं चल

रहा है। जिस दिन आपको पता चलना शुरू हो जाए कि अब चीजें मालिक हैं, उस दिन आप समझना कि आप अमीर हो गए हैं। अमीर का एक ही लक्षण है कि पता चलने लगे कि चीजों का गुलाम हो गया हूं मैं। और गरीब का एक ही लक्षण है कि उसे अभी पता नहीं चलता कि चीजें उसकी मालिक हैं। अभी भी मालकियत का भ्रम उसे कायम रहता है।

लाओत्से कह रहा है कि अगर सच में ही तुम मालिक होना चाहो, तो इस तरह के मालिक मत बन जाना कि तुम्हारी चीजों की रक्षा की भी जरूरत पड़ जाए। क्योंकि तब तुम पहरेदार हो जाओगे। और लाओत्से कह रहा है कि जब किसी भी काम में तुम सफल हो जाओ, तो इसके पहले कि कर्ता का भाव सघन हो, तुम ओझल हो जाना; कोई जान भी न पाए कि तुमने किया है।

लाओत्से का स्वयं का नाम जब चीन में पहुंच गया गांव-गांव और घर-घर में, और लोग लाओत्से को खोजते हुए आने लगे और रास्ता पूछने लगे कि लाओत्से कहां है, और हजारों मील की यात्रा करके लोगों का आना शुरू हो गया, तो लाओत्से एक दिन ओझल हो गया। फिर लाओत्से का कोई पता नहीं चला उस दिन के बाद। लाओत्से कब मरा और कहां मरा, इसकी कोई खबर नहीं है। बस एक दिन ओझल हो गया।

वही सलाह वह दूसरों को भी दे रहा है। वह कह रहा है, जब तुम्हारा कार्य पूर्ण हो जाए, सफलता हाथ आ जाए, तो तुम चुपचाप सरक जाना।

लेकिन बड़ी कठिन होगी यह बात। क्योंकि हम उसी क्षण की तो प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब सफलता पूर्ण हो जाए। हम भी सरकते हैं कभी, आंख से हम भी ओझल होते हैं, लेकिन सफलता के क्षण में नहीं; असफलता के क्षण में आंख से ओझल होते हैं। जब हार जाते हैं, टूट जाते हैं, पराजित हो जाते हैं, तब हम भी ओझल होते हैं। दुख में, पीड़ा में हम भी भाग जाना चाहते हैं, छिप जाना चाहते हैं। विषाद में, संताप में आत्मघात भी कर लेते हैं। आत्मघात का मतलब ही इतना है कि हम इस बुरी तरह ओझल हो जाना चाहते हैं कि नाम-रेखा भी पीछे न रह जाए। लेकिन अगर कोई आदमी सफलता के क्षण में ओझल हो जाए, तो उसके जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। असफलता के क्षण में ओझल हो जाना तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है। मन की चेष्टा ही यही है कि भाग जाओ, अभी छिप जाओ, किसी को पता न चले कि तुम असफल हो गए हो। क्योंकि असफलता अहंकार को पीड़ा देती है, और सफलता अहंकार को तृप्ति देती है और पोषण देती है।

तो जब आदमी सफल होता है, तब तो वह सीना निकाल कर चारों तरफ घूमना चाहता है। तब तो जिनसे वह कभी नहीं मिला था, उनसे भी मिलना चाहता है। जिन्होंने उसे कभी नहीं जाना था, उन्हें भी चाहता है कि वे भी जान लें। तब वह सारे जग में ढिंढोरा पीट देना चाहता है कि मैं सफल हो गया हूं। यह सफलता की खबर के लिए ही तो इतनी चेष्टा, इतना प्रयास था। और यह लाओत्से पागल मालूम पड़ता है। वह कहता है, जब सफल हो जाओ, तो आंख से ओझल हो जाना। क्योंकि सफलता के क्षण में अगर अहंकार निर्मित हो जाए, तो वही तुम्हारा नर्क बन जाएगा। और सफलता के क्षण में अगर तुम ओझल हो सको, तो लाओत्से कहता है, यही स्वर्ग का द्वार है।

"कार्य की सफल निष्पत्ति के अनंतर जब कर्ता का यश फैलने लगे, तब उसका अपने को ओझल बना लेना ही स्वर्ग का रास्ता है।"

तो नर्क का अर्थ हुआ अहंकार और स्वर्ग का अर्थ हुआ अहंकार-शून्यता। कोई और स्वर्ग नहीं है, कोई और नर्क भी नहीं। एक ही नर्क है, मैं जितना सघन हूं, उतने गहन नर्क में हूं। मैं जितना विरल हूं, जितना तरल हूं,

उतना स्वर्ग में हूं। मैं जितना हूं, उतना नर्क में हूं। मैं जितना नहीं हूं, उतना स्वर्ग में हूं। मेरा होना ही मेरी पीड़ा और मेरा न होना ही मेरा आनंद है।

इसे थोड़ा समझें। जब भी आपने दुख पाया है, संताप झेला है और नर्क की आग में अपने को तड़पते पाया है, तब कभी आपने ख्याल किया कि यह पीड़ा क्या है? यह पीड़ा क्यों हो रही है? इस पीड़ा का मौलिक आधार कहां है? यह कोई और मुझे पीड़ा दे रहा है? या मेरे जीने का ढंग या मेरे अहंकार की सघन करने की चेष्टाएं, वे ही मेरी पीड़ा का कारण बन गई हैं? या जब भी आपने कभी आनंद की क्षण भर को भी पुलक पाई हो, तो कभी भीतर झांक कर देखा हो, तो पता चला होगा कि वहां आप मौजूद नहीं होंगे। जब भी आनंद की पुलक होती है, तो भीतर मैं मौजूद नहीं होता। और जब भी नर्क की पीड़ा होती है, तभी भीतर सघन मैं मौजूद होता है। मैं की छाया ही पीड़ा है। लेकिन हमारी सबकी चेष्टा यह है कि मैं को बचा कर मैं स्वर्ग में प्रवेश कर जाऊं; मैं बच जाऊं और आनंद उपलब्ध हो जाए। मैं बचूं, तो आनंद उपलब्ध नहीं होगा। क्योंकि मैं ही दुख है।

तो जीवन की जो साधारण व्यवस्था है, उसे कहीं से तोड़ देने और कहीं से उसमें जाग जाने की जरूरत है। लाओत्से कहता है, सफलता के क्षण में ओझल हो जाओ। इससे दूसरी बात भी हम समझ सकते हैं कि जब असफलता का क्षण हो, तब ओझल मत होना। जब हारे रहो, जब पराजित हो जाओ, तब राजधानी की सड़कों को मत छोड़ना। और जब जीत जाओ, तब हट जाना कि कोई देखने को भी न हो। विजय के क्षण में जो हट सकता है, उसका अहंकार तत्क्षण तिरोहित हो जाता है, एवोपरेट हो जाता है। पराजय के क्षण में जो टिक सकता है, उसका भी अहंकार तिरोहित हो जाता है। इससे विपरीत दो स्थितियां हैं: पराजय के क्षण में छिप जाओ और विजय के क्षण में प्रकट हो जाओ, तो अहंकार मजबूत होता है। अहंकार के कारण ही हम छिपना चाहते हैं--हारी हुई हालत में। और अहंकार के कारण ही हम प्रकट होना चाहते हैं--जीती हुई हालत में।

इस अहंकार की व्यवस्था और इस अहंकार के निर्माण होने के ढंग को जो ठीक से समझ ले, वह अहंकार के साथ भी खेल खेल सकता है। अभी तो अहंकार हमारे साथ खेल खेलता है। और जो व्यक्ति अहंकार के साथ खेल खेलने को राजी हो जाए, समर्थ हो जाए, वह आदमी अहंकार से मुक्त हो जाता है।

गुरजिएफ न्यूयार्क में था। और बड़ी प्रगाढ़ सफलता गुरजिएफ के विचारों को मिल रही थी। उसके एक शिष्य ने लिखा है कि हम गुरजिएफ को कभी न समझ पाए कि वह आदमी कैसा था। क्योंकि जब कोई चीज सफल होने के पूरे करीब पहुंच जाए, तभी वह कुछ ऐसा करता था कि सब चीजें असफल हो जातीं। ठीक ऐन मौके पर वह कभी नहीं चूकता था चीजों को बिगाड़ने में। और बनाने के लिए इतना श्रम करता था जिसका कोई हिसाब नहीं।

उसने बहुत से साधना-आश्रम निर्मित किए। एक साधना-आश्रम पेरिस के पास निर्मित किया। वर्षों मेहनत की, अथक श्रम उठाया, सैकड़ों लोगों को साधना के लिए तैयार किया। और फिर एक दिन सब विसर्जित कर दिया। जिन्होंने इतनी मेहनत उठाई थी, उन्होंने कहा, तुम पागल मालूम पड़ते हो, क्योंकि अब तो मौका आया कि अब कुछ हो सकता है। इसी दिन के लिए तो हमने वर्षों तक मेहनत की थी। तो गुरजिएफ ने कहा कि हम भी इसी दिन के लिए वर्षों तक मेहनत किए थे। अब हम विसर्जित करेंगे--इसी विसर्जन के लिए। न्यूयार्क में फिर दुबारा एक बड़ी व्यवस्था और एक बड़ी संस्था निर्मित होने के करीब पहुंचने को आई। वर्षों मेहनत की शिष्यों ने और गुरजिएफ ने। और एक दिन सारी चीज उखाड़ कर वह चलता बना। निकटतम साथी उसे छोड़ते चले गए। क्योंकि धीरे-धीरे लोगों को अनुभव हुआ कि यह आदमी निपट पागल है। सफलता का क्षण जब करीब होता है, हाथ के करीब होता है कि फल हाथ में आ जाए, तब यह आदमी पीठ मोड़ लेता है। और जब फल

आकाश की तरह दूर होता है, तब यह इतना श्रम करता है जिसका कोई हिसाब नहीं। निश्चित ही, यह पागल आदमी का लक्षण है।

लेकिन लाओत्से इस पागल आदमी को ज्ञानी कहता है। लाओत्से कहता है कि जब सफलता हाथ में आ जाए, तब तुम चुपचाप ओझल हो जाना।

इसे अगर भीतर से समझें, तो जो ट्रांसफार्मेशन, जो क्रांति घटित होगी, वह ख्याल में आ जाएगी। इसे कभी प्रयोग करके देखें। सफलता तो बहुत दूर की बात है, अगर रास्ते पर कोई आदमी चलता हो और उसका छाता गिर जाए, तो हम उसे उठा कर खड़े रह कर दो क्षण प्रतीक्षा करते हैं कि वह धन्यवाद दे। और अगर वह धन्यवाद न दे, तो चित्त को बड़ी निराशा और बड़ी उदासी होती है। एक धन्यवाद भी हम छोड़ कर नहीं हट सकते हैं। एक धन्यवाद भी हम ले लेना चाहते हैं।

तो लाओत्से जो कह रहा है कि जब काम बिल्कुल सफल हो जाए और जीवन सिद्धि के करीब पहुंच जाए और मंजिल सामने आ जाए, तब तुम पीठ मोड़ लेना और चुपचाप तिरोहित हो जाना। बड़े इंटिग्रेशन, बड़ी भीतर सघन आत्मा की जरूरत पड़ेगी। वह जो सघनता है भीतर की, उस सघनता का जो परिणाम होता है, वह बहुत अलौकिक है। जो व्यक्ति मंजिल के पास पीठ मोड़ लेता है, मंजिल उसके पीछे चलनी शुरू हो जाती है। और जो व्यक्ति सफलता के बीच से ओझल हो जाता है, उसके लिए असफलता का जगत में नाम-निशान मिट जाता है। वह आदमी फिर असफल हो ही नहीं सकता।

असल में, उस आदमी ने वह कीमिया पा ली, वह कला पा ली, जिससे वह आदमी आदमी नहीं रह जाता, परमात्मा ही हो जाता है। क्योंकि सफलता को जो छोड़ सके, मंजिल के सामने पीठ मोड़ सके, वह आदमी नहीं रह गया। आदमी की सारी कमजोरी क्या है? आदमी की सारी कमजोरी अहंकार की है। वह कमजोरी न रही।

लाओत्से तिरोहित हो गया। उसका एक शिष्य उसका दूर तक गांव तक पीछा किया। लाओत्से ने उस शिष्य को बहुत कहा कि तू मेरे पीछे मत आ, क्योंकि अब मैं तिरोहित होने जा रहा हूं। और तू पीछे रुक, क्योंकि वहां बड़ी संभावना है सफलता की। वहां लोग हजारों आ रहे हैं पूछने मुझे।

उस शिष्य को भी यह समझ में आया। और आदमी कैसे रेशनलाइजेशन करता है! और आदमी कैसे अपने को तर्क दे लेता है! आखिर में उसने लाओत्से से कहा कि आपके ही काम के निमित्त मैं वापस जाता हूं। आप वहां नहीं होंगे और इतने लोग आएंगे आपको पूछते; तो नहीं, उतना तो मैं नहीं समझा सकूंगा जो आप समझा सकते थे, लेकिन फिर भी कुछ तो समझा सकूंगा। आपके ही निमित्त मैं वापस जाता हूं।

उसके मन में भी मोह पकड़ना शुरू हुआ कि अब इस लाओत्से के साथ भटकना बेमानी है। इसे अब कोई जानता भी नहीं। जिन गांवों से यह गुजर रहा है, इसे कोई पहचानता भी नहीं। और अब यह कहां जाकर समाप्त होगा, पता नहीं। और इसकी जिंदगी भर की मेहनत! इसने जिंदगी भर तो वहां सुगंध फैलाई, अब लोग आने शुरू हुए हैं सुगंध के कारण, और यह भाग गया! तो वह शिष्य एक रात लौट गया वापस।

लाओत्से जिस दिन चीन की सीमा छोड़ कर चीन के बाहर निकला, आखिरी बार उस सीमा पर सीमा-अधिकारी ने उसे देखा। उसके बाद उसका कोई पता नहीं चल सका कि वह कहां गया। परंपरा चीन में कहती है कि लाओत्से जिंदा है! क्योंकि ऐसा आदमी मर कैसे सकता है? मरता तो सिर्फ अहंकार है। और जिस आदमी ने अहंकार इकट्ठा ही न किया हो; और जब सम्राट उसके चरणों में आकर सिर रखने को आतुर हो रहे थे, तब अपने झोपड़े से भाग गया हो; ऐसा आदमी मर कैसे सकता है?

तो लाओत्से के संबंध में दो अनूठी बातें कही जाती हैं। एक तो यह कि वह बासठ साल की उम्र में पैदा हुआ। मां के पेट में बासठ साल वह था; बूढ़ा पैदा हुआ। और लाओत्से को प्रेम करने वाले लोग कहते हैं कि ऐसे लोग बूढ़े ही पैदा होते हैं।

हममें से अधिक लोग मरते दम तक भी बचकाने ही रहते हैं। अगर हम अपनी तरफ देखें, तो लाओत्से की बात बहुत उलटी नहीं मालूम पड़ेगी। अस्सी साल के आदमी को भी अगर देखें, तो खिलौनों से खेलता हुआ मालूम पड़ेगा। खिलौने बदल जाते हैं; बाकी खिलौने जारी रहते हैं।

एक बच्चा है, वह अपनी दूध की बोतल मुंह में दिए चूस रहा है। एक बूढ़ा है, वह अपना चुरुट पी रहा है। मनोवैज्ञानिक कहते, दोनों एक ही काम कर रहे हैं। लेकिन बूढ़ा अगर अपनी दूध की बोतल मुंह में दे, तो बेहूदा मालूम पड़ेगा। इसलिए उसने तरकीबें ईजाद कर ली हैं। इसीलिए सिगरेट से या चुरुट से जो धुआं आपके भीतर जाता है, वह ठीक वैसी ही गर्म धारा भीतर ले जाता है जैसा मां का दूध। और वह धारा के जाने का ढंग ठीक वैसा ही है। और वह सुखद मालूम होता है। वह गर्मी सुखद मालूम होती है, उष्णता सुखद मालूम होती है। उष्णता की धार भीतर जा रही है, वह सुखद मालूम होती है। अब इस बूढ़े में और बच्चे में बहुत फर्क नहीं है। और अगर फर्क है, तो और ज्यादा नासमझी का फर्क है। बच्चा कम से कम दूध ही पी रहा है, ठीक ही कर रहा है।

अगर हम बूढ़े की भी जिंदगी को देखें सामान्यतया, तो हमें पता चलेगा कि वह... कहां, बचपन नहीं बदल पाता, रूप बदल जाते हैं, ढंग बदल जाते हैं, बचपन जारी रहता है। उन्हीं छोटी बातों पर क्रोध आता है। उन्हीं छोटी बातों पर अहंकार घना होता है। उन्हीं छोटी बातों का लोभ लगता है। उतना ही भय है, उतनी ही वासना है। सब उतना ही जारी रहता है। कहीं कोई अंतर नहीं है।

तो अगर हम लाओत्से की तरफ से समझें, तो उसका मतलब हुआ कि हममें से अधिक लोग बच्चे ही मरते हैं। और लाओत्से बूढ़ा पैदा होता है, बासठ वर्ष का पैदा होता है, ऐसी कथा है। कथा मीठी है। और पूरब ने मीठी कथाएं पैदा की हैं, जो बड़ी अर्थपूर्ण हैं। क्योंकि लाओत्से तब तक पैदा ही नहीं होता, जब तक प्रौढ़ नहीं हो जाता। जब प्रौढ़ हो जाता है, तभी पैदा होता है।

और दूसरी बात लाओत्से के बाबत है कि उसका पता नहीं कि वह कभी मरा। मरा ही नहीं। ऐसा आदमी मरता भी नहीं। क्योंकि हमारे भीतर मरने वाली जो चीज है, वह हमारे अहंकार के अलावा और कुछ भी नहीं। हम नहीं मरते; पर हमारा निर्मित अहंकार मरता है। जब हम मरते हैं, तब भी हमारा अहंकार ही मरता है; हम नहीं मरते। और हमें जो पीड़ा होती है, वह हमारे मरने की पीड़ा नहीं है, वह हमारे अहंकार के मरने की पीड़ा है। मरते वक्त जो-जो हमने इकट्ठा किया है, वह छिनता है; जो-जो हमने बनाया है, वह छूटता है; जो-जो हमने पाया है, वह छीना जाता है। एक बात तो तय है कि हमने अपने को नहीं बनाया। और एक बात तय है कि हम मरने में भी नहीं छीने जाते हैं।

आपको याद है कि आप जन्म के पहले थे? नहीं है याद, क्योंकि हमें अहंकार के अतिरिक्त और कोई चीज याद ही नहीं है। और अहंकार तो जन्म के बाद सघन होता है। इसलिए हमारी जो याददाश्त है, मनसविद कहते हैं कि वह तीन साल की उम्र के पहले नहीं जाती। ज्यादा से ज्यादा तीन साल की हमें याद आती है। पहली से पहली जो याद है, वह करीब तीन और पांच साल के बीच की होती है। क्यों? हम तीन साल भी तो थे, कोई याद नहीं बनती। क्योंकि तीन साल हमारे अहंकार को निर्मित होने में लग जाते हैं।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि बच्चे अक्सर झूठ बोलने में और चोरी करने में जरा भी तकलीफ अनुभव नहीं करते। उसका कुल कारण, उसका कारण यह नहीं है कि वे चोर हैं और झूठे हैं। उसका कुल कारण इतना है

कि अभी वह अहंकार निर्मित नहीं हुआ जो मेरे और तेरे का फासला कर पाए। इसलिए जिसको हम चोरी समझ रहे हैं, बच्चे के लिए शुद्ध समाजवाद है। अभी फासला नहीं है कि यह मेरा है और यह तेरा है। अभी मैं निर्मित नहीं हुआ है। इसलिए हम जिसे चोरी कह रहे हैं, वह हमारे अहंकार के कारण कह रहे हैं। और बच्चे के लिए अभी सभी चीजें, जो उसकी पसंद पड़ जाए, उसकी है। अभी पसंद सब कुछ है। अभी वह अहंकार निर्णय करने वाला नहीं बना कि जो कहे, यह मेरा है और यह तेरा है।

बच्चे को झूठ और सच में भी अभी फर्क नहीं है, क्योंकि बच्चे को सपने में और सच्चाई में फर्क नहीं है। तो अक्सर बच्चे सुबह उठते हैं और रात सपने में जो खिलौना उनका टूट गया, उसके लिए सुबह रोते मिल जाते हैं। या सपने में जो खिलौना खो गया, उसके लिए वे सुबह रो सकते हैं और तड़प सकते हैं कि वह खिलौना कहां गया! क्योंकि अभी स्वप्न में और सत्य में भी फासला नहीं है। असल में, रात के सपने में और दिन की सचाई में फर्क करने के लिए भी अहंकार की जरूरत है।

इसलिए एक मजे की घटना घटती हैः बच्चे को सपने में और सुबह की सचाई में फर्क नहीं होता; और जब लाओत्से जैसा आदमी अहंकार को छोड़ कर जगत को देखता है, तब उसको सपने में और सच्चाई में कोई फर्क नहीं होता फिर दुबारा। इसलिए शंकर जैसा आदमी कह पाता है, जगत माया है। उसका और कोई मतलब नहीं, उसका कुल मतलब इतना है कि अब एक दूसरे अर्थ में जगत भी सपने जैसा हो गया। एक दिन सपना भी जगत जैसा था--अहंकार के पूर्व। फिर अहंकार आया और जगत और सपने में फासला मालूम पड़ने लगा। वह फासला मेरे मैं के ही कारण है। फिर वह मैं दुबारा गिर गया। अब, अब जगत भी सपने जैसा मालूम होने लगा।

मृत्यु के क्षण में हमारा निर्मित मैं टूटता है, बिखरता है। एक-एक जगह से उसकी खूंटियां उखड़ने लगती हैं। वे उखड़ती खूंटियां ही हमारी पीड़ा हैं। लेकिन काश, हमें याद आ सके कि जब मैं नहीं था हमारे भीतर तब भी मेरा होना था, तो मृत्यु में भी हम उतने ही आनंद से प्रवेश कर सकते हैं, जितने आनंद से हम जीवन में प्रवेश करते हैं। और जितने आनंद से रात हम निद्रा में प्रवेश करते हैं, उतने ही आनंद से हम मृत्यु की महानिद्रा में प्रवेश कर सकते हैं।

लेकिन कोई मृत्यु के क्षण में अचानक यह बात घट नहीं सकती है। जिसने पूरे जीवन सफलता को संजोया हो, असफलता को त्यागा हो; जिसने पूरे जीवन अहंकार निर्मित करने का एक भी मौका न चूका हो, झूठा भी निर्मित होता हो तो भी न चूका हो... ।

इसलिए खुशामद इतनी हमें प्रीतिकर मालूम होती है। और खुशामद करने वाला जानता है कि झूठ है और सुनने वाला भी जानता है कि झूठ है, फिर भी स्तुति कोई कर रहा हो, तो मना करने की हिम्मत नहीं होती। कोई आपकी खुशामद कर रहा हो और आपसे कह रहा हो कि आपसे सुंदर मैंने व्यक्ति नहीं देखा, आपको भी आईने के सामने कभी ऐसा ख्याल नहीं आया है, लेकिन फिर भी उस स्तुति के क्षण में मान लेने का मन होता है। दूसरे की निंदा मान लेने का मन होता है; स्वयं की स्तुति मान लेने का मन होता है। दूसरे की निंदा को हम कभी इनकार नहीं करते। वह कितनी ही बेबूझ मालूम पड़े, तो भी इनकार नहीं करते। और अपनी स्तुति को हम कभी इनकार नहीं करते, वह भी कितनी ही असंगत मालूम पड़े। स्वयं की स्तुति सदा ही स्वीकृत मालूम पड़ती है। स्वयं की स्तुति में कभी भी ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि कोई चीज सीमा के बाहर जा रही है। सभी चीजें सीमा के भीतर होती हैं। दूसरे की निंदा में सभी चीजें सीमा के भीतर होती हैं। सभी कुछ मानने योग्य होता है।

तो दूसरे की निंदा में रस लिया हो, स्वयं की प्रशंसा में आनंद पाया हो, सफलता के क्षण में पैर जमा कर खड़े हो गए हों बीच चौराहे पर, असफलता के क्षण में अंधेरे में छिप गए हों; सम्मान को खोजा हो, तलाशा हो, असम्मान की तरफ पीठ किए हुए भागते रहे हों; तो मरते क्षण में एकदम से कोई अहंकार को नहीं छोड़ सकता।

लेकिन जिसने इससे उलटा किया हो, दूसरे की निंदा में संदेह पैदा किया हो, अविश्वास पैदा किया हो, अनास्था दिखाई हो; स्वयं की स्तुति में संदेह पैदा किया हो, स्वयं की स्तुति में अनास्था दिखाई हो, स्वयं की स्तुति को मान न लिया हो; सम्मान जब कोई देने आया हो, तो हजार बार सोचा हो; असम्मान जब कोई देने आया हो, चुपचाप स्वीकार कर लिया हो; असफलता में प्रकट हो गया हो, सफलता में छिप गया हो; ऐसा व्यक्तित्व अगर चलता रहे, तो मृत्यु के क्षण में मुक्ति संभव हो पाती है। और ऐसे व्यक्ति के लिए नर्क के द्वार तो बंद ही हो गए; क्योंकि चाभी ही खो गई, जिससे नर्क के द्वार खोले जा सकते थे। और ऐसे व्यक्ति के लिए स्वर्ग का द्वार खुल गया। स्वर्ग का अर्थ हैः ऐसे व्यक्ति के लिए सतत सुख का द्वार खुल गया। ऐसा व्यक्ति कहीं भी हो, कैसा भी हो, सुख पा ही लेगा। ऐसे व्यक्ति से सुख छीनने का उपाय ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति हमेशा ही सुखद पहलू को खोज लेगा और दुखद पहलू को उसकी आंख पकड़ ही नहीं पाएगी। ऐसा व्यक्ति कंकड़-पत्थरों में भी हीरे देख लेगा। और ऐसे व्यक्ति को कांटों में भी फूल खिल जाते हैं। और ऐसे व्यक्ति के लिए अंधेरा भी प्रकाश हो जाता है और मृत्यु परम जीवन।

इसलिए मैंने कहा कि जीवन गणित नहीं, एक पहेली है। गणित इसलिए नहीं कि गणित में दो और दो चार होते हैं। पहेली में इतना आसान हिसाब नहीं होता। पहेली में गणित कहीं चलता है, परिणाम कुछ होते हैं। पहेली में परिणाम विपरीत हो जाते हैं। लेकिन पहेली का भी अपना सूक्ष्म गणित है। लाओत्से उसी की बात कर रहा है। और जो इस पहेली को समझाना चाहे, उसे उस सूक्ष्म गणित को समझ लेना चाहिए।

जैसे समझें कि अगर कोई शिकारी पक्षियों को तीर मारने की कला सीख रहा है, तो पक्षियों को, आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को तीर मारने में एक सूक्ष्म गणित का उपयोग करना पड़ता है। क्योंकि पक्षी जहां है, अगर आपने वहां तीर मारा, तो आपका तीर कभी भी नहीं लगेगा। पक्षी जहां होगा कुछ क्षण बाद, वहां आपको तीर मारना पड़ेगा। पक्षी अभी आकाश में मेरे आंख के सामने है। अगर मैं सीधा वहीं तीर मारूं, तो पक्षी तो तब तक हट चुका होगा जब तक मेरा तीर पहुंचेगा। मुझे तीर वहां मारना पड़ेगा, जहां पक्षी अभी नहीं है और मेरे तीर पहुंचने पर होगा। इसलिए धनुर्विद्या की कला यह कहेगी कि अगर चलते हुए जीवन, उड़ते हुए पक्षी को तीर मारना हो, तो वहां मारना जहां पक्षी न हो। अगर वहां मारा जहां पक्षी है, तो तीर व्यर्थ चला जाएगा। यह उसकी पहेली हुई। अगर मृत पक्षी बांध कर रखा हो वृक्ष में, तो वहीं तीर मारना जहां पक्षी है।

मृत गणित सीधा चलता है। जीवन का गणित सीधा नहीं चल सकता।

लाओत्से कहता है, अगर सफलता चाहिए हो, तो सफलता से बचना; असफलता चाहिए हो, तो सफलता को आलिंगन कर लेना। लाओत्से कहता है, अगर मिटना हो, मरना हो, तो जीवन को जोर से पकड़ना; और अगर जीना हो, तो जीवन को छोड़ देना, पकड़ना ही मत। और इस जगत में अगर सुख पाना हो, तो सुख की तलाश ही मत करना और सुख को टटोलते मत रहना। अगर ऐसा किया, तो दुख मिलेगा। अगर सुख पाना हो, तो दुख को टटोलना और दुख को खोजना। जो सुख को खोजेगा है, वह सुख को खो देता है; जो दुख को खोजता है, वह दुख को खो देता है। जो सुख को खोजता है, वह दुख को पा लेता है; और जो दुख को खोजने निकल पड़ता है, उसे दुख कभी मिलता ही नहीं है।

इसे हम ऐसा देख पाएं, तो हमारे जीवन का पूरा रास्ता और ढंग का हो जाए; और हमारे कदम और ढंग से उठें; और हमारे देखने की, सोचने की, हमारा पूरा दर्शन, हमारी पूरी दृष्टि और हो जाए। ऐसी दृष्टि जब किसी की हो जाए, तो उसे मैं संन्यासी कहता हूं।

लेकिन हम तो जिसे संन्यासी कहते हैं, वह भी संसारी के गणित से सोचता है। वह भी परमात्मा को खोजने निकलता है। ध्यान रहे, जो परमात्मा को खोजने निकला, जितनी ताकत से खोजने निकलेगा, उतना ही पाना मुश्किल है। यह गणित सिर्फ धन के लिए ही लागू नहीं होता, यह धर्म के लिए भी लागू होता है। परमात्मा कोई ऐसी चीज नहीं है कि आप उठाए लकड़ी, रखे कंधे पर और निकल पड़े। तो आपके हाथ में लकड़ी ही रह जाने वाली है; परमात्मा नहीं मिलेगा। परमात्मा कोई वस्तु नहीं है कि आप खोजने निकल पड़े। परमात्मा एक अनुभव है; जब आप नहीं होते, खोजने वाला नहीं होता, तब प्रकट होता है। तो जो खोजने निकला है, वह मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि खोजने में तो खोजने वाला मौजूद ही रहता है।

इसलिए संन्यासी का अहंकार बहुत सघन हो जाता है, भयंकर हो जाता है। परमात्मा को खोज रहा है! अगर आप उससे कहेंगे, तो वह कहेगा, तुम क्या हो, तुच्छ! संसार की चीजें खोज रहे हो, दो कौड़ी की! हम अमोलक रतन खोज रहे हैं। और तुम क्षणभंगुर सुखों में पड़े हुए पापी हो! और हम मोक्ष खोज रहे हैं। तो स्वाभाविक उसकी अकड़ तेज हो जाए, वह आपके साथ न बैठ सके, उसे सिंहासन पर बिठाना पड़े। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक है इसलिए कि संसार का ही गणित काम कर रहा है अभी भी। अभी भी वही काम कर रहा है।

मैं एक जापानी फकीर तातासुसु के जीवन को पढ़ता था। तातासुसु को आकर अगर कोई उसकी स्तुति करे, तो तातासुसु सुन ले सारी बात और फिर कहे कि मालूम होता है तुम किसी और आदमी के पास आ गए। क्योंकि तुमने जितनी बातें बताईं, इनमें से कोई भी बात मुझमें नहीं है। मालूम होता है तुम किसी और से मिलने निकले थे और किसी और के पास आ गए। मैं वह आदमी नहीं हूं।

और वह इतनी निष्ठा से कहता कि कई बार अपरिचित आदमी तो मान ही लेते--कि माफ करिए, तो आप वह नहीं हैं, तातासुसु आप नहीं हैं! हम तो तातासुसु समझ कर ही आपके चरणों में आ गए। तो तातासुसु कहता कि नहीं, तुम्हें किसी ने गलत रास्ता बता दिया।

अगर तातासुसु की कोई निंदा करते आता और ऐसी बातें भी कहता जिनसे उसका कोई संबंध नहीं, तो तातासुसु स्वीकार कर लेता। वह कहता कि ठीक ही कहते होंगे।

तातासुसु के मरने के बाद ही पता चला कि उसने न मालूम कितनी झूठी निंदाओं में हां भर दी थी। और यह भी पता चला कि वह निंदा करने वाले को कहीं ऐसा न लगे कि इसने झूठी ही हां भर दी है, तो वह सब तरह के उपाय भी करता था कि निंदा करने वाला तृप्त होकर जाए कि निंदा उसने की तो ठीक ही की है।

एक आदमी आया है तातासुसु के पास और वह कहता है कि मैंने सुना है कि तुम बहुत क्रोधी आदमी हो! तो तातासुसु के पास में एक डंडा पड़ा है, वह डंडा उठा लेता है और आगबबूला हो जाता है और उसकी आंखों से आग निकलने लगती है। उसके साथी-शिष्यों ने, संगियों ने कभी उसे जिंदगी में क्रोध से भरा नहीं देखा था। वे भी चकित हो गए हैं। और उस आदमी ने कहा, तो बिल्कुल ठीक ही है। अब और प्रमाण की क्या जरूरत है? तातासुसु ने कहा कि बिल्कुल ठीक ही है। वह आदमी चला गया।

तातासुसु के शिष्य पूछते हैं कि हमने कभी आपको क्रोध में नहीं देखा। तो तातासुसु ने कहा कि तुमने कभी मुझे मौका ही नहीं दिया। तुम अगर आकर मुझे कहते, तो मैं प्रमाण जुटा देता। क्योंकि अकारण वह

आदमी इतने दूर से चल कर आया यह बात कहने के लिए कि तुम क्रोधी हो, तो उसके लिए इतना सा करने में हर्ज भी क्या है! वह संतुष्ट होकर गया है। और अब उसे दुबारा तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। प्रमाण भी हाथ में है।

लाओत्से इस तरह के व्यक्ति की बात कर रहा है। और इस तरह के व्यक्ति का नाम ही संन्यासी है। तो जीवन में एक दूसरा आयाम खुलना शुरू होता है।

इस दूसरे आयाम पर हम आगे सूत्रों में बात करेंगे।

पांच मिनट बैठेंगे; कीर्तन में सम्मिलित हों, और फिर जाएं।

चौबीसवां प्रवचन

शरीर व आत्मा की एकता, ताओ की प्राण-साधना व अविकारी स्थिति

Chapter 10 : Sutra 1

Embracing The One

When the intelligent and animal souls are held together in one embrace, they can be kept from separating.

When one gives undivided attention to the (vital) breath, and brings it to the utmost degree of pliancy, he can become as a (tender) babe.

When he has cleansed away the most mysterious sights (of his imagination), he can become without a flaw.

अध्याय 10 : सूत्र 1

अद्वय की स्वीकृति

यदि बौद्धिक और ऐंद्रिक आत्माओं को एक ही आलिंगन में आबद्ध रखा जाए, तो उन्हें पृथक होने से बचाया जा सकता है।

जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे, तो वह व्यक्ति शिशुवत कोमल हो जाता है।

जब वह कल्पना के अतिशय रहस्यमय दृश्यों को झाड़-पोंछ कर साफ कर लेता है, तो वह निर्विकार हो जाता है।

अद्वैत की हम बात सुनते हैं: एक ही है सत्य। लेकिन फिर भी, अद्वैत की भी जो बात करते हैं, वे भी शरीर और आत्मा को दो हिस्सों में बांट कर चलते हैं। जो अद्वैत का विचार रखते हैं, वे भी अपने शरीर और अपनी आत्मा के बीच पृथकता मानते हैं। और जब शरीर और आत्मा में भेद होगा, तो जगत और परमात्मा में भेद अनिवार्य हो जाता है। भेद की जरा सी स्वीकृति द्वैत को निर्मित कर देती है।

इसलिए एक बहुत विरोधाभासी स्थिति लोगों की है। अद्वैत को मानने वाला भी अपने जीवन में द्वैत को ही मान कर चलता है।

लाओत्से इसमें अद्वैत की आधारशिला निर्मित कर रहा है। लाओत्से कहता है कि जगत और परमात्मा एक नहीं हो सकते, जब तक शरीर और आत्मा के बीच एक गहरा आलिंगन न हो। जब तक कि शरीर और आत्मा के बीच ऐक्य का अनुभव न हो, तब तक पदार्थ और चेतना के बीच भी एकता निर्मित नहीं हो सकती है।

तथाकथित धार्मिक आदमी को बहुत कठिनाई मालूम पड़ेगी। लेकिन व्यक्ति अगर अपने ही भीतर विभाजित है, तो अस्तित्व को अविभाज्य नहीं मान सकेगा। अपने भीतर जो अविभाजित है, वही जगत को अविभाजित जान सकेगा। क्योंकि जगत फैला हुआ शरीर है और चेतना विराट परमात्मा है। अगर मेरी चेतना मेरे शरीर से भिन्न है, तो फिर परमात्मा की चेतना भी जगत के शरीर से भिन्न ही होगी। लाओत्से कहता है, यदि शरीर और आत्मा को एक रखा जा सके, तो ही अद्वैत की संभावना है, तो ही अद्वैत का फूल खिल सकता है।

लेकिन यह शरीर और आत्मा अलग कैसे हो जाते हैं, इसे हम समझ लें, तो शायद एक रखने की बात भी समझ में आ जाए। बच्चा जब पैदा होता है, तो उसे कोई भेद का पता नहीं होता। शरीर और चेतना में कोई भी रेखा भी भेद की नहीं होती। शरीर और चेतना एक ही अस्तित्व की तरह बड़े होते हैं। लेकिन जीवन की जरूरतें--सभ्यता, संस्कृति, सुरक्षा--शरीर और चेतना में भेद को निर्मित करना शुरू कर देती हैं। बच्चे को अगर भूख लगी है, तो भी हमें उसे सिखाना पड़ता है कि जब भूख लगी हो तभी भोजन मिले, यह जरूरी नहीं है; भूख को रोकना भी आवश्यक है। यह जीवन की अनिवार्य व्यवस्था है। जब नींद आ जाए तभी सोना भी मिल जाए, यह आवश्यक नहीं; और जब प्यास लगे तभी पानी भी मिल जाए, यह भी जरूरी नहीं। तो नियंत्रण रखना भी सीखना पड़ता है। और जैसे ही बच्चे को नियंत्रण की क्षमता आती है, वैसे ही उसे यह भी बोध हो जाता है कि मैं अलग हूं और शरीर अलग है। क्योंकि शरीर को भूख लगती है और मैं भूख को रोक लेता हूं। शरीर को नींद आती है और मैं नींद को रोक लेता हूं। मैं रोक सकता हूं जिसे, उससे अलग हो जाता हूं।

तो जैसे-जैसे बच्चे में नियंत्रण, कंट्रोल विकसित होता है, वैसे-वैसे उसकी चेतना और शरीर में एक दरार पड़नी शुरू हो जाती है। वह दरार रोज-रोज बड़ी होती चली जाती है। वह दरार जितनी बड़ी हो जाती है, उतना ही अस्तित्व के साथ एक होना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि जो अपने शरीर के साथ भी एक होना जिसे मुश्किल हो गया है, उसे विराट जगत के शरीर के साथ एक होना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

यह गहरा द्वैत जीवन की अनिवार्यता में से पैदा होता है। जरूरी है, लेकिन सत्य नहीं है। उपयोगी है, लेकिन तथ्य नहीं है। और जो भी उपयोगी होता है, जरूरी नहीं कि सत्य हो। और कभी ऐसा भी होता है कि असत्य भी बहुत उपयोगी होते हैं। यह एक उपयोगी असत्य है। और इसे विकसित करना ही पड़ता है। लेकिन अगर इससे ही हमारा चित्त सदा के लिए बंध जाए और हम इससे छूट न सकें, तो यह उपयोगी असत्य आत्मघाती हो जाता है।

नियंत्रण सिखाना ही पड़ेगा। संयम सिखाना ही पड़ेगा। जरूरतें खड़ी होंगी और मांग को रोकने की क्षमता भी जुटानी ही पड़ेगी। धीरे-धीरे जिसमें जरूरतें पैदा होती हैं, वह अलग मालूम होने लगता है; और जो जरूरतों पर नियंत्रण करता है, वह अलग मालूम होने लगता है। बुद्धि अलग और वासना अलग मालूम होने लगती है। बुद्धि और वासना जैसे ही अलग मालूम होने लगती हैं, हमारे भीतर ही दो हिस्से हो गए। फिर हम पूरी जिंदगी इन दो हिस्सों के संघर्ष में ही परेशान होते हैं। सारी जिंदगी एक अंतर्द्वंद्व बन जाती है। पूरे समय वासना अपनी मांग करती है और बुद्धि अपना नियंत्रण स्थापित करना चाहती है। धीरे-धीरे हमारे भीतर सब तरफ से विभाजन हो जाता है।

मनोविद कहते हैं कि हमारा जो नीचे का हिस्सा है शरीर का, नाभि से नीचे का हिस्सा, उसे हम नीचा हिस्सा मानना शुरू कर देते हैं। केवल नीचे होने के कारण नहीं, निम्न होने के कारण भी। ऊपर के हिस्से के साथ हम अपना आत्मसात करते हैं और शरीर के नीचे के हिस्से को हम अलग तोड़ कर रख देते हैं। कमर के नीचे का शरीर आपको ऐसा मालूम पड़ता है आपका नहीं है। कमर के ऊपर का शरीर ही बस आपका है। क्योंकि कमर के नीचे का हिस्सा धीरे-धीरे वासना से जुड़ जाता है। और कमर के ऊपर का हिस्सा धीरे-धीरे बुद्धि से जुड़ जाता है। और अंततः तो बुद्धि सिर में केंद्रित हो जाती है। इसलिए आप अपने चेहरे से ही अपने को पहचानते हैं। बाकी सारे शरीर को तो हम छिपाए रखते हैं। उसके छिपाने का कारण सिर्फ ठंड और गर्मी और शीत से बचाव ही नहीं है। उसके छिपाने का बुनियादी कारण है कि हमारी आइडेंटिटी, हम अपना तादात्म्य केवल चेहरे से करना चाहते हैं, बाकी शरीर से नहीं। क्योंकि बुद्धि हमारी प्रतीत होती है कि हमारी खोपड़ी में निर्भर है। और इसलिए चेहरा काफी है।

यह बहुत मजे की बात है कि अगर आपका चेहरा काट कर रख दिया जाए, तो आप पहचाने जा सकते हैं। लेकिन आपका पूरा शरीर अगर रखा हो सिर्फ चेहरा न हो, तो आप खुद भी न पहचान सकेंगे कि यह शरीर आपका है। दूसरे तो पहचान ही नहीं सकेंगे, आप भी नहीं पहचान सकेंगे। हमारी पहचान बुद्धि से जुड़ गई और हमने पूरे शरीर को वासनाग्रस्त मान कर अलग छोड़ रखा है। इसके गहरे परिणाम हुए हैं। उन गहरे परिणामों पर हम बात करेंगे।

लाओत्से इस पहले सूत्र में कह रहा है कि यदि बौद्धिक और ऐंद्रिक आत्माओं को एक ही आलिंगन में आबद्ध रखा जाए, तो उन्हें पृथक होने से बचाया जा सकता है।

अगर मेरी बुद्धि और मेरी इंद्रियां एक गहरे आलिंगन में आबद्ध रहें, तो मेरे भीतर द्वंद्व को और द्वैत को पैदा होने से रोका जा सकता है। और अगर ये आबद्ध न रहें, अगर मैं बुद्धि को और वासना को अपने भीतर अलग तोड़ लूं और दोनों के बीच सब सेतु नष्ट कर दूं, तो फिर मेरे भीतर खंडित होने की स्थिति को नहीं रोका जा सकता। जिसे मनोवैज्ञानिक स्कीजोफ्रेनिक कहते हैं, खंडित व्यक्ति कहते हैं, वह हम सभी थोड़े-बहुत हैं। जब कोई ज्यादा खंडित हो जाता है, तो पागल हो जाता है। हम किसी तरह से अपने को मैनेज कर लेते हैं, हम किसी तरह से अपने को चला लेते हैं और पागल नहीं हो जाते। लेकिन हमारे भीतर पागलपन की क्षमता प्रतिपल घटती-बढ़ती रहती है। हम अपने ही भीतर एक गहरे संघर्ष में हैं, आलिंगन में नहीं। एक तालमेल नहीं है भीतर, एक संगीत नहीं है, एक लयबद्धता नहीं है भीतर। भीतर एक संघर्ष, एक द्वंद्व, एक विरोध, एक शत्रुता है। प्रत्येक चीज के साथ संघर्ष है।

अभी पश्चिम में एक नया आंदोलन चलता है--विशेषकर अमरीका में--संवेदनशीलता को बढ़ाने का। क्योंकि अमरीका को अनुभव होना शुरू हुआ है कि आदमी की संवेदनशीलता समाप्त हो गई है, सेंसिटिविटी समाप्त हो गई है। हम छूते हैं, लेकिन छूना हमारा बिल्कुल मुर्दा है। हम देखते हैं, लेकिन आंखें हमारी पथराई हुई हैं। हम सुनते हैं, लेकिन कानों पर आवाज ही पड़ती है, हृदय तक कोई संवेदन नहीं पहुंचता। हम प्रेम भी करते हैं, हम प्रेम की बात भी करते हैं, लेकिन प्रेम हमारा बिल्कुल निष्प्राण है। हमारे प्रेम के हृदय में कोई धड़कन नहीं है। हमारा प्रेम बिल्कुल कागजी है। हम सब कुछ करते हैं, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि हमारे किसी भी करने में कोई संवेदना नहीं रह गई है। संवेदनाशून्य, जड़, यंत्रवत हम उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, सब हम कर लेते हैं। संवेदना वापस लाई जानी जरूरी है। तो मनसविद कह रहे हैं कि अगर हम आदमी की संवेदना वापस न ला सके, तो हम आदमी को पृथ्वी पर इस सदी के आगे बचा नहीं सकेंगे। अभी तक व्यक्ति पागल होते रहे थे;

अब समूहगत रूप से लोग पागल हो जाएंगे। संवेदना वापस लौटानी पड़ेगी। लेकिन संवेदना वापस कैसे लौटे? और संवेदना खो क्यों गई है?

आपको भी याद होगा--अगर आपको बचपन की कोई स्मृति है तो आपको याद होगा--अगर बगीचे में फूल खिल गया है, तो जैसा बचपन में वह आपको दिखाई पड़ा था खिलता हुआ, वैसा अब भी फूल खिलता है लेकिन आपको दिखाई नहीं पड़ता। सूरज बचपन में भी उगता था, वही सूरज अब भी उगता है; लेकिन अब सूरज के उगने से हृदय में कोई नृत्य पैदा नहीं होता। चांद अब भी निकलता है, अब भी आप आंख उठा कर कभी चांद को देख लेते हैं, लेकिन चांद आपको स्पर्श नहीं करता। क्या हो गया है?

लाओत्से जो कह रहा है, आलिंगन टूट गया है। बुद्धि और ऐंद्रिक तल दो हो गए हैं। इंद्रियों में संवेदना होती है, बुद्धि संवेदना को अनुभव करती है। अगर दोनों टूट जाएं, तो संवेदना होनी बंद हो जाती है। इंद्रियां जड़ हो जाती हैं और बुद्धि तक कोई खबर नहीं पहुंचती। और जीवन का काव्य और जीवन का संगीत और जीवन का रस, सभी कुछ सूख जाता है।

बच्चे एक स्वर्ग में रहते हुए मालूम पड़ते हैं, इसी जमीन पर, जहां हम हैं। लेकिन उनके स्वर्ग में रहने का कोई और कारण नहीं है, सिर्फ इतना ही कारण है कि अभी उनकी इंद्रिय-आत्मा और उनकी बुद्धि-आत्मा में फासला नहीं पड़ा है। अभी जब वे भोजन करते हैं, तो शरीर ही भोजन नहीं करता, उनकी पूरी आत्मा भी उस भोजन से आनंदित होती है। अभी जब वे नाचते हैं, तो सिर्फ शरीर ही नहीं नाचता, उनकी आत्मा भी नाचती है। अभी जब वे दौड़ते हैं, तो उनका शरीर ही नहीं दौड़ता, उनकी आत्मा भी दौड़ती है। अभी वे संयुक्त हैं। अभी उनके भीतर भेद पड़ना शुरू नहीं हुआ। अभी वे अद्वैत में हैं। अभी वे दो नहीं हुए, अभी एक हैं।

इसलिए बच्चा जिन आनंद को अनुभव कर पाता है, उनको हम अनुभव नहीं कर पाते। और बच्चा जिस प्रेम को अनुभव कर पाता है, उस प्रेम को हम अनुभव नहीं कर पाते। होना तो उलटा चाहिए कि हम ज्यादा अनुभव कर सकें, क्योंकि हमारी अनुभव की क्षमता और हमारे अनुभव का संग्रह बड़ा है। लेकिन हम अनुभव नहीं कर पाते, क्योंकि अनुभव करने की जो प्रक्रिया है, वही हमारी टूट गई है। संवेदना तो होती है शरीर पर। जब मैं आपके हाथ को छूता हूं, तो मेरा हाथ ही आपके हाथ को छूता है। अगर मेरा हाथ ही जड़ है... ।

महात्मा गांधी के तीन गुरुओं में से एक का नाम है हेनरी थारो। हेनरी थारो के संबंध में कहा जाता है कि लोग जब उसका हाथ छूते थे, तो उन्हें लगता था कि जैसे वे किसी मुर्दा आदमी का हाथ छू रहे हैं। मित्रों ने उल्लेख किया है अपने संस्मरणों में कि हेनरी थारो के हाथ को अगर आंख बंद करके छुओ, तो कहना मुश्किल है कि तुम लकड़ी का हाथ छू रहे हो कि असली हाथ छू रहे हो। हेनरी थारो को शायद ज्यादा हो गया होगा यह हाथ संवेदनशून्य, लेकिन हमारा भी ऐसा ही है।

हाथ में संवेदना हो, हाथ जीवंत हो और हाथ का रोआं-रोआं और हाथ का अणु-अणु और हाथ का कोष्ठ-कोष्ठ बिजली से भर जाए छूते समय, तो ही बुद्धि ग्रहण कर सकती है इस स्पर्श के आनंद को। अगर हाथ ही मुर्दा पड़ा रहे, तो बुद्धि तक कोई खबर ही नहीं पहुंचती। और बुद्धि तक खबर न पहुंचे, तो बुद्धि के पास सीधा कोई उपाय नहीं है। इंद्रियां बुद्धि के द्वार हैं और शरीर आत्मा का साधन है, शरीर आत्मा का फैलाव है स्थूल जगत में। और अगर हम शरीर से दुश्मनी कर लें, तो हम जगत से अपना संबंध तोड़ लेते हैं। जिस मात्रा में हमारा अपने शरीर से संबंध टूटता है, उसी मात्रा में हमारा अस्तित्व से संबंध टूट जाता है। फिर हम जीते हैं, लेकिन हमारे और अस्तित्व के बीच एक फासला बना रहता है। हम कहीं भी चले जाएं, हम अस्तित्व से दूर ही बने रहते हैं।

हम प्रेम भी करें, तो फासला होता है। हम करुणा भी करें, तो फासला होता है। हम मित्रता भी बनाएं, तो एक फासला होता है, जिसके आर-पार हम खड़े रहते हैं और आर-पार पहुंचना बहुत मुश्किल है।

लाओत्से कहता है, यह द्वैत हमारे भीतर पैदा होता है हमारी बुद्धि और हमारी इंद्रियों के बीच फासले के निर्माण से।

लेकिन यह फासला उपयोगी है। एक समय निर्मित होना चाहिए। और एक समय यह फासला टूट भी जाना चाहिए। इसे एक सीढ़ी की तरह उपयोग करना उचित है। इसलिए जीसस ने कहा है कि वे ही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे, जो बच्चों की भांति हो जाएंगे। पुनः बच्चों की भांति। पुनः उतने संवेदनशील, जितने बच्चे हैं। एक-एक अनुभव जिनके लिए प्राणों तक उतर जाए, ऐसे जो हो जाएंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।

बच्चे के पास एक अद्वैत है, लेकिन अज्ञान से भरा। ज्ञानी के पास यही अद्वैत पुनः चाहिए, ज्ञान से भरा! बच्चे में एक निर्दोषिता है, एक इनोसेंस है, लेकिन अज्ञानपूर्ण, इग्नोरेंट इनोसेंस। ज्ञानी में यही निर्दोषिता पुनः चाहिए, लेकिन प्रज्ञापूर्ण। जानता हुआ, जागा हुआ निर्दोष भाव पुनः स्थापित होना चाहिए।

बच्चे का अद्वैत टूटेगा, क्योंकि वह बच्चे की उपलब्धि नहीं है। परिस्थिति और संघर्ष उसके अद्वैत को तोड़ देंगे। लेकिन आवश्यक नहीं है कि अद्वैत टूटा हुआ ही व्यक्ति मर जाए। मरने के पहले यह अद्वैत पुनः स्थापित हो सकता है। और जब यह पुनः स्थापित होता है, तो पहले वाले अद्वैत से ज्यादा समृद्ध होता है। क्योंकि अनुभव इसमें हजार गरिमाएं जोड़ जाता है। क्या किया जा सके कि हमारे भीतर एक अद्वैत आबद्ध हो जाए? हम कैसे भीतर एक हो जाएं? लाओत्से की साधना-पद्धति में भीतर होने के बड़े सुगम उपाय हैं। एक उपाय की हम पहले बात करें और फिर उसकी गहरी साधना पर चर्चा।

लाओत्से मानता था, तुम जो भी करो--उठो या बैठो, भोजन करो या सोओ--जो भी करो, उसमें पूरे संयुक्त और एक और लीन हो जाओ। अगर रास्ते पर चल रहे हो, तो चलना ही बन जाओ। इतना भी फासला मत रखो कि मैं चल रहा हूं। साक्षी की जिस साधना की हम चर्चा करते रहे हैं, लाओत्से कहता है, साक्षी भी अद्वैत पर नहीं ले जा सकेगा। एक सीमा पर साक्षी को भी छोड़ देना जरूरी है। कृष्णमूर्ति अवेयरनेस की, जागरूकता की बात करते हैं। वह भी अद्वैत पर नहीं ले जा सकेगी। एक जगह जाकर उसे भी छोड़ देना जरूरी है। लाओत्से कहता है, न जागरूकता, न साक्षी, वरन एकता, लीनता। तुम जो कर रहे हो, वही हो जाओ। चल रहे हो, तो चलने की क्रिया ही हो जाओ; चलने वाला न बचे। और भोजन कर रहे हो, तो भोजन करना ही हो जाओ; भोजन करने वाला न बचे। और अगर देख रहे हो, तो आंख ही बन जाओ; देखने वाला न बचे। और अगर सुन रहे हो, तो कान ही बन जाओ। जो भी कर रहे हो, उसमें इतनी समग्रता से एक हो जाओ कि भीतर कोई फासला न रहे। भीतर कोई भी फासला न रहे। और अगर भीतर का फासला क्रियाओं में टूटता चला जाए, तो बुद्धि और वासना के बीच, इंद्रिय और विवेक के बीच, आत्मा और शरीर के बीच सेतु निर्मित हो जाता है। वे दोनों आलिंगन में आबद्ध हो जाते हैं।

इस आलिंगन को ही तंत्र ने आंतरिक मैथुन कहा है, जब भीतर की चेतना भीतर की वासना से एक हो जाती है। बुद्धि कहा है तंत्र ने पुरुष को और शरीर की प्रकृति को स्त्री कहा है। और जब भीतर की स्त्री भीतर के पुरुष से एक हो जाती है, आलिंगन में बद्ध हो जाती है, तो परम समाधि फलित होती है।

उसी आलिंगन की बात लाओत्से कर रहा है। जो भी किया जाए, उस करने में मेरे भीतर दो मौजूद न हों। क्षुद्र से क्षुद्र काम भी मुझे पूरा ही डुबा ले। क्षुद्र से क्षुद्र क्रिया में भी मेरी लीनता परिपूर्ण हो जाए। मैं पीछे न बचूं। मेरा बचना ही द्वंद्व है। मेरा पूरी तरह एक हो जाना ही निर्द्वंद्व हो जाना है। तो आलिंगन फलित होगा।

लेकिन यह प्रक्रिया तो पूरे जीवन पर फैलानी पड़े। और अभी फैलानी कठिन है, क्योंकि अभी हमारे भीतर कुछ शारीरिक व्यवस्थागत अनिवार्य फासले हो गए हैं। और जब तक वे फासले न टूट जाएं, तब तक इस लीनता की साधना को साधना मुश्किल है। उन फासलों को हम समझ लें। वे फासले यांत्रिक हो गए हैं, मैकेनिकल हो गए हैं। और जब तक हम यांत्रिक व्यवस्था को ही न तोड़ डालें, और नया न कर लें, तब तक केवल लीनता के प्रयोग से कुछ भी न होगा। बल्कि यह भी हो सकता है कि जब आप कोई काम करें, तो आपका यह लीनता का ख्याल कि मैं पूरी तरह लीन होकर ही काम करूंगा, द्वैत का कारण बन जाए। यह लीनता का ख्याल ही आपको लीन न होने दे। भोजन करते वक्त अगर आप यह ख्याल रख कर भोजन करें कि मैं भोजन में पूरा डूबा रहूं, तो आप डूबे नहीं रह सकेंगे। क्योंकि यह ख्याल आपको बाहर ही किए रहेगा। हमारे भीतर यंत्रगत भूलें हो गई हैं। और यंत्रगत भूलों को समझ लेना जरूरी है।

अगर आप एक छोटे बच्चे को अपने झूले पर सोता हुआ देखें, तो जो एक बात ख्याल में आपको नहीं आती होगी, आनी चाहिए, वह यह होगी कि बच्चे का पेट आप ऊपर-नीचे होते देखेंगे, छाती नहीं। बच्चा श्वास ले रहा है, तो उसका पेट ऊपर-नीचे हो रहा है। लेकिन छाती उसकी बिल्कुल विश्राम में पड़ी है। हम, हम उलटी ही श्वास ले रहे हैं। हम जब श्वास लेते हैं, तो छाती ऊपर-नीचे होती है।

लाओत्से का कथन है--और बहुत कीमती, और अब विज्ञान भी लाओत्से से सहमत है--कि जैसे ही व्यक्ति के भीतर ऐंद्रिक और बुद्धिगत चेतनाओं में फासला पड़ता है, वैसे ही श्वास नाभि से न आकर सीने से आनी शुरू हो जाती है। यह फासला जितना बड़ा होता है, श्वास उतने ही ऊपर से आकर लौट जाती है। तो जिस दिन बच्चे की श्वास पेट से हट कर और सीने से चलने लगती है, जान लेना कि बच्चे के भीतर ऐंद्रिक आत्मा में और बुद्धिगत आत्मा में फासला पड़ गया। बड़ी उम्र में भी, आप भी जब रात सो जाते हैं, तब आपके पेट से ही श्वास चलने लगती है, सीना शांत हो जाता है। क्योंकि नींद में आप अपने फासलों को बचा नहीं सकते। बेहोशी में फासले खो जाते हैं और श्वास की स्वाभाविक प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

श्वास का जो प्राथमिक स्रोत है, जापानी भाषा में उसके लिए एक शब्द है। हमारी भाषा में कोई शब्द नहीं है। वह शब्द है उनकाः तांदेन, ढरपवशप। नाभि से दो इंच नीचे, ठीक श्वास चलती हो तो नाभि से दो इंच नीचे, जिसे जापानी तांदेन कहते हैं, उस बिंदु से श्वास का संबंध होता है। और जितना तनावग्रस्त व्यक्ति होगा, तांदेन से श्वास का बिंदु उतना ही दूर हटता जाता है।

तो जितने ऊपर से आप श्वास लेते हैं, उतने ही तनाव से भरे होंगे। और जितने नीचे से श्वास लेते हैं, उतने ही विश्राम को उपलब्ध होंगे। और अगर तांदेन से श्वास चलती हो, तो आपके जीवन में तनाव बिल्कुल नहीं होगा। बच्चे के जीवन में तनाव न होने का जो व्यवस्थागत कारण है, वह तांदेन से श्वास का चलना है। जब आप भी कभी विश्राम में होते हैं, तो अचानक ख्याल करना, आपकी श्वास तांदेन से चलती होगी। और जब आप तनाव से भरे हों, बहुत मन उदास, चिंतित, परेशान हो, व्यथित हो, बेचैनी में हो, तब आप ख्याल करना, तो श्वास बहुत ऊपर से आकर लौट जाएगी। यह श्वास का ऊपर से आकर लौट जाना इस बात का सूचक है कि आप अपनी मूल प्रकृति से बहुत दूर हो गए हैं।

लेकिन कुछ कारण हैं जिनकी वजह से हम लोगों को शिक्षा देते हैं कि पेट से श्वास मत लेना। एक तो एक पागलपन का ख्याल सारी दुनिया में फैल गया है और वह यह है कि छाती फूली हुई होनी चाहिए, छाती बड़ी होनी चाहिए। तो छाती जितनी बड़ी करनी हो, उतनी श्वास छाती में भरनी चाहिए, नीचे नहीं; और छाती से ही वापस लौटा देनी चाहिए। तो छाती को बड़ा करने का पागलपन व्यक्ति के भीतर एक भयंकर उत्पात को निर्मित कर देता है।

अगर आपने कभी जापानी या चीनी फकीरों की तस्वीरें देखी हैं, या लाओत्से की तस्वीर अगर आपने कभी देखी है, तो आपको थोड़ी हैरानी होगी। चीन और जापान में तो बुद्ध की भी जो तस्वीरें और मूर्तियां बनाई हैं, वे भी देख कर हमें हैरानी होगी। क्योंकि हमने जो बुद्ध की मूर्तियां बनाई हैं, उनसे उनका मेल नहीं है। हमारी जो बुद्ध की मूर्तियां हैं, उनमें पेट बहुत छोटा है, पीठ से लगा हुआ है; और छाती बड़ी है। और जापान और चीन में बुद्ध की भी जो मूर्तियां हैं, उनमें पेट बड़ा है, ठीक बच्चे जैसा है। बच्चे की छाती तो विश्राम में होती है; पेट थोड़ा सा बड़ा होगा, क्योंकि श्वास पेट पर आएगी-जाएगी।

तो छाती को बड़ा करने का ख्याल भीतर एक खतरनाक स्थिति को पैदा करता है। और वह खतरनाक स्थिति हैः ऐंद्रिक और बौद्धिक... । तीन केंद्र ताओ मानता हैः एक तांदेन--नाभि केंद्र, दूसरा हृदय केंद्र और तीसरा बुद्धि का मस्तिष्क केंद्र। नाभि केंद्र अस्तित्व का सबसे गहरा केंद्र है। फिर उसके बाद उससे कम गहरा केंद्र हृदय का है। और सबसे कम गहरा केंद्र बुद्धि का है।

इसलिए बुद्धिवादी अस्तित्व से सबसे ज्यादा दूर होता है। उससे तो निकट वे लोग भी होते हैं, जो हृदयवादी हैं। तथाकथित ज्ञानियों से भक्त भी कहीं ज्यादा अस्तित्व के निकट होते हैं। जिसने केवल बुद्धि को ही सब कुछ जाना है, वह आदमी सतह पर जीता है। हिसाब उसका पूरा होता है; गणित उसका साफ होता है; तर्क उसके स्पष्ट होते हैं। लेकिन कभी भी गहराई में वह नहीं उतरता; क्योंकि गहराई में सदा खतरा है। क्योंकि तर्क भी खो जाते हैं, हिसाब भी खो जाता है। वह सतह पर जीता है, जहां सब साफ-सुथरा है। हृदय में उतरे कि तर्क और गणित और सब साफ-सुथरी दुनिया खो जाती है। इसलिए बुद्धिवादी हृदय की बात से भयभीत होता है। क्योंकि हृदय के साथ ही अराजकता, अतर्क्य, राग का जन्म हो सकता है। प्रेम पैदा हो सकता है। भक्ति आ सकती है। कुछ हो सकता है, जिसके लिए तर्क देना मुश्किल पड़े। इसलिए बुद्धिवादी बुद्धि से जीता है। और बुद्धि से नीचे प्रवेश नहीं करता।

जितना बुद्धिवादी आदमी होगा, श्वास उतनी ऊपर से चलेगी। श्वास की ऊंचाई और नीचाई को जान कर आदमी का टाइप जाना जा सकता है। जितना हृदयवादी व्यक्ति होगा, श्वास उतनी गहरी चलेगी।

लेकिन लाओत्से कहता है, हृदय भी आखिरी गहराई नहीं है। और गहरे उतरना जरूरी है। और उसको वह तांदेन कहता है। नाभि से श्वास चलनी चाहिए। नाभि से जिसकी श्वास चल रही है, वह अस्तित्व के साथ वैसा ही जुड़ गया है, जैसे छोटे बच्चे जुड़े होते हैं।

"जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता के द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे, तो वह व्यक्ति शिशुवत कोमल हो जाता है।"

अपनी श्वास को नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा दे! नमनीयता का अर्थ है, तनावशून्य तरलता को पहुंचा दे। अगर आप तनावमुक्त हों, शून्य हों, तो श्वास आपकी अनिवार्य रूप से नाभि केंद्र पर पहुंच जाएगी। कभी शिथिल होकर, शांत होकर, कुर्सी पर बैठ कर देखें, आपको फौरन पता चलेगाः श्वास नाभि से चलने लगी। लेकिन ढीला छोड़ें अपने को।

लेकिन ढीला हम छोड़ते नहीं हैं। क्या इसका कारण केवल इतना ही होगा कि हम सीने को बड़ा करना चाहते हैं? नहीं, इतना ही नहीं है। कारण और भी गहरे हैं। सबसे बड़ा कारण, जो आपको ख्याल में भी नहीं होगा, लेकिन आप समझेंगे तो शीघ्र ख्याल में आ जाएगा।

बच्चे को अपने शरीर का बोध सबसे पहले कब होता है?

फ्रायड की खोजें बहुत मूल्यवान हैं इस संबंध में। फ्रायड कहता है, बच्चे को अपने शरीर का सबसे पहले बोध तभी होता है, जब वह अपनी काम-इंद्रिय को स्पर्श करता है। तभी मां-बाप उसको रोकते हैं कि ठहरो, मत करो, मत छुओ। अगर बच्चा अपनी नाक छूता है, अपनी आंख छूता है, अपना हाथ हिलाता है, तो मां बहुत प्रसन्न होती है। पैर हिलाता है, तो मां बहुत आनंदित होती है। लेकिन बच्चा अगर अपनी जननेंद्रिय छूता है, तो मां बेचैन और परेशान हो जाती है। बच्चे को पहली दफे पता चलता है कि शरीर में कोई हिस्सा भी है जो छूने योग्य नहीं है, और शरीर में कोई हिस्सा है जो खतरनाक है, और शरीर में कोई हिस्सा है जो अपराध है। यह मां और बाप की आंखों को देख कर बच्चे को पता चलता है। यह अपराध मां और बाप को अपने मां-बाप से पता चला था। यह अपराध परंपरागत है। अपराध कहीं है नहीं। लेकिन बच्चे के शरीर में एक भेद शुरू हो गया। और बच्चे को यह बात धीरे-धीरे मां-बाप के इशारे बता देंगे, उनकी निंदा, उनकी आलोचना, उनका क्रोध बता देगा कि शरीर में कोई हिस्सा ऐसा भी है जो अपना नहीं है। इसलिए आप बूढ़े भी हो जाएंगे, तो भी आपकी जननेंद्रिय आपके शरीर का हिस्सा नहीं बन पाती। बन नहीं सकती। उसके साथ एक फासला बना ही रहेगा।

और जननेंद्रिय के साथ फासला पैदा होते ही जननेंद्रिय से नीचे का जो हिस्सा है, वह वर्जित हो गया। जननेंद्रिय के ऊपर का हिस्सा स्वीकृत हो गया और नीचे का हिस्सा अस्वीकृत हो गया। जैसे ही हमारे भीतर यह भेद घटित होता है, वैसे ही श्वास ऊपर से चलने लगेगी। उसके कारण हैं। क्योंकि तांदेन का जो बिंदु है, अगर उस तक श्वास जाए, तो जननेंद्रिय पर उसका असर पड़ता है। इसलिए जैसे ही हमको यह ख्याल आ गया कि जननेंद्रिय हमारा हिस्सा नहीं है, तो हमारा तांदेन सिकुड़ जाता है, सप्रेस्ड हो जाता है। और हम डरे हुए जीने लगते हैं कि कहीं जननेंद्रिय तक श्वास न चली जाए!

क्या आपको पता है कि रात सोते समय हर पुरुष को कम से कम बारह से अठारह बार जननेंद्रिय पर इरेक्शन होता है--नींद में। फ्रायड का ख्याल था कि यह इसलिए होता है कि लोगों की कामवासना अतृप्त रह जाती है, तो जब वे कामवासना के स्वप्न देखते हैं तो जननेंद्रिय अकड़ जाती है। लेकिन अभी जितनी खोज गहरी गई है, तो पता चलना शुरू हुआ कि लाओत्से ज्यादा ठीक कहता था।

लाओत्से का कहना यह है कि नींद में जननेंद्रिय पर, तांदेन पर श्वास की चोट पड़ती है, इसलिए जननेंद्रिय खड़ी हो जाती है। जरूरी नहीं है कि कोई कामवासना से संबंधित स्वप्न भीतर चल रहा हो। चल रहा हो, तो खड़ी हो जाएगी; नहीं चल रहा हो, तो भी खड़ी हो सकती है। और बारह से अठारह बार प्रत्येक पुरुष की सामान्यतया होगी। उसका कारण कुल इतना है कि श्वास की जो चोट... नींद में श्वास पूरी चलेगी, पूरी चलने से तांदेन पर चोट पड़ती है। तांदेन का बिंदु और वीर्य-ऊर्जा का बिंदु निकट हैं, सीमांत पर हैं। श्वास की चोट ही वीर्य को सक्रिय करती है। इसीलिए संभोग के समय में आप छाती से श्वास नहीं ले सकते। संभोग के क्षण में आपको पेट से ही श्वास लेनी पड़ती है। इसलिए श्वास तेजी से चलने लगती है और श्वास जोर से भीतर धक्के मारने लगती है।

अगर आप श्वास को शांत रख सकें, तो वीर्य-स्खलन रुक जाएगा। इसलिए तंत्र में प्रयोग हैं कि श्वास को शांत रखा जा सके, तो बिना वीर्य-स्खलन के संभोग किया जा सकता है। और संभोग को घंटों लंबा भी किया जा सकता है। लेकिन श्वास फिर तांदेन तक नहीं पहुंचनी चाहिए।

तो जैसे ही बच्चे को यह ख्याल में आ जाता है कि जननेंद्रिय अस्वीकार करनी है, निंदित है, पाप है, वैसे ही उसकी श्वास ऊपर से चलने लगती है। क्योंकि तांदेन पर चोट पहुंचते ही बच्चे की जननेंद्रिय पर संवेदना होती है; और वह संवेदना सुखद है। वह संवेदना सुखद है; उस सुखद संवेदना के कारण वह जननेंद्रिय के प्रति आतुर और उत्सुक होता है। लेकिन मां-बाप की आंखें और समाज की आंखें बहुत दुखद हैं। और तब एक फासला उसके भीतर पैदा होना शुरू होता है। अंततः तो सुख भी पाप हो जाता है। और सुख लेते वक्त हम सब अपने को अपराधी अनुभव करते हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि जब भी आप अपने को सुखी पाएंगे, तो भीतर अपराध का भाव पाएंगे। इसलिए कुछ लोग तो दुखी होने में बड़ा गौरव मानने लगते हैं, क्योंकि वे अपराधी नहीं हैं। सुखी आदमी को थोड़ा सा अपराध मालूम पड़ता है, क्योंकि उसके पहले सुख के अनुभव के साथ अपराध का भाव जुड़ गया। और इसलिए हम जीते हैं, लेकिन बंटे हुए जीते हैं।

अगर तांदेन तक श्वास न पहुंचे, तो नपुंसकता तक भी फलित हो सकती है। ताओ को मानने वाले चिकित्सकों का ख्याल है कि अनेक पुरुषों की नपुंसकता केवल श्वास के तांदेन तक न पहुंचने से पैदा होती है। इसलिए बहुत मजे की बात आपसे कहूं, अक्सर पहलवान नपुंसक हो जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि पहलवान छाती से श्वास लेता है; और इतनी श्वास छाती से लेता है और पेट को भीतर ले जाता है कि तांदेन तक श्वास के पहुंचने की संभावना ही बंद हो जाती है। इसलिए पहलवान दिखता तो बहुत विराइल है, दिखता तो बहुत पुरुष है, लेकिन पुरुषत्व बहुत कम हो जाता है। पुरुषत्व के और उसके बीच श्वास का संबंध टूट जाता है।

श्वास अगर तांदेन से चले, तो वह तभी चल सकती है, जब आपने अपनी कामवासना को भी स्वीकार किया हो। अगर अस्वीकार किया है, तो श्वास तांदेन से नहीं चल सकेगी। असल में, जब तक आपने अपनी पूरी वासना को भी समग्रीभूत अंगीकार न कर लिया हो, शिशुवत स्वीकार न कर लिया हो, तब तक आपके भीतर अद्वैत निर्मित नहीं हो सकता है। और यह बहुत आनंद की अदभुत बात है कि जैसे ही कोई व्यक्ति अपनी वासना को उसकी समग्रता में स्वीकार कर लेता है, वैसे ही वासना से मुक्त हो जाता है। द्वंद्व में वासना बढ़ती है, घटती नहीं। तड़पती है, तृप्त भी नहीं होती। संतप्त होती है, संतुष्ट कभी नहीं। पीड़ा बन जाती है, नर्क बन जाती है, लेकिन उससे छुटकारा कभी नहीं हो पाता। और तर्क हमसे कहेगा कि जिस चीज में हम इतने उलझ गए हैं, उससे और दूर हटते चले जाएं। जितने दूर हम हटते हैं, उतना फासला भीतर बड़ा होता चला जाता है।

लाओत्से कहता है कि आलिंगनबद्ध हो जाओ, अपनी ऐंद्रिकता को समग्र रूप से स्वीकार कर लो। स्वीकार करते ही तुम उसके मालिक हो जाओगे। स्वीकार करते ही द्वंद्व मिट जाएगा। और स्वीकार करते ही निष्पत्ति, निष्कर्ष हाथ में आ जाता है। जो बुद्धि अपनी वासना को पूरे रूप से स्वीकार कर लेती है, वह बुद्धि अपनी वासना के पार निकल जाती है। लेकिन यह पार निकलना संघर्ष से संभव नहीं होता, द्वंद्व से भी संभव नहीं होता। यह निर्द्वंद्व स्वीकार-भाव से संभव होता है। प्राणवायु को नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचाना पहला प्रयोग है। ताओ की साधना में जो उतरते हैं, उनका पहला काम यह है कि वे श्वास को फेफड़ों से लेना बंद कर

दें, नाभि से लेना शुरू करें। इसका अर्थ हुआ कि जब आपकी श्वास भीतर जाए, तो पेट ऊपर उठे; और जब श्वास नीचे गिरे, तो पेट नीचे गिरे। और सीना शिथिल रहे, शांत रहे।

शायद पुरुष राजी भी हो जाएं, क्योंकि सभी पुरुषों को पहलवान होने का पागलपन नहीं है। स्त्रियां और भी मुश्किल से राजी हो सकती हैं। क्योंकि स्त्रियों को उससे भी बड़ा पागलपन सवार हुआ है। और वह है स्तन को सुदृढ़, सुडौल और बड़े बनाने का। तो स्त्रियां कभी नाभि से श्वास लेने को तैयार नहीं होतीं।

इसलिए ताओइस्ट फकीर तो मिल जाएंगे, स्त्रियां मिलना बहुत मुश्किल हैं। ताओ को मानने वाले पुरुष मिल जाएंगे, उसकी साधना से उतर कर जिन्होंने परम आनंद को उपलब्ध किया है, ऐसे पुरुष मिल जाएंगे, लेकिन स्त्रियां खोजनी मुश्किल हैं। और उसका कुल एक कारण है कि स्त्री को एक रोग की तरह एक बात पकड़ गई है कि स्तन बड़े होने चाहिए। प्राकृतिक जरा भी नहीं है। और सच तो यह है कि जितना गोल और जितना सुडौल स्तन हो, बच्चे को दूध पीने में उतनी ही कठिनाई होती है। इसलिए यह बायोलॉजिकल नहीं है। क्योंकि जितना सुडौल स्तन हो, बच्चा जब दूध पीता है, तो उसकी नाक स्तन से भिड़ जाती है और सफोकेशन, और उसे घबड़ाहट शुरू होती है।

मनसविद कहते हैं कि स्त्रियों के सुडौल स्तन देख कर पुरुषों को भी घबड़ाहट शुरू होती है, उसका मौलिक कारण बचपन में हुआ अनुभव है सफोकेशन का। अगर आपके सामने एकदम स्त्री के सुडौल स्तन आ जाएं, तो आपकी श्वास गड़बड़ा जाती है। इतनी घबड़ाहट का कोई कारण नहीं मालूम होता। लेकिन अगर सुडौल स्तन पर बच्चा दूध पीए, तो उसकी नाक--स्वभावतः गोल स्तन हो तो उसकी नाक में अड़ जाएगा और घबड़ाहट उसे होगी। और वह घबड़ाहट गहरी बैठ जाती है। लेकिन स्त्रियों को स्तन बड़े दिखाने का मनोवैज्ञानिक बहुत कारण खोजते हैं। कारण जो भी हों, लेकिन उसका व्यापक और गहरा परिणाम जो हुआ है, वह यह हुआ है कि कोई स्त्री नाभि से श्वास लेने को तैयार नहीं है। और अगर नाभि से श्वास न ली जा सके, तो बच्चों जैसी सरलता असंभव है। वह उस श्वास के साथ ही बच्चे जैसी नमनीयता और तरलता पैदा होती है।

तो पहला कि आपकी श्वास नाभि से चलने लगे। चलें, उठें, बैठें, ख्याल रखें कि नाभि से श्वास चल रही है। तो ताओ की साधना के तीन हिस्से हैं प्राण-साधना के। पहला, श्वास नाभि से चले। और आप एक तीन सप्ताह का प्रयोग करके भी दंग रह जाएंगे कि अगर श्वास नाभि से चले, तो आपके न मालूम कितने क्रोध विलीन हो गए; और आपकी न मालूम कितनी ईर्ष्या खो गई; और आपके न मालूम कितने तनाव अब नहीं हैं; और आपकी नींद गहरी हो गई; और आपका व्यक्तित्व संतुलित होने लगा। श्वास साधारण बात नहीं है, सारे प्राण की व्यवस्था उससे जुड़ी है। तो जैसी श्वास होगी, वैसी ही आपके प्राणों में व्यवस्था या अव्यवस्था पैदा होती है। आप क्रोध के समय में लयबद्ध श्वास नहीं ले सकते। और अगर लयबद्ध श्वास लें, तो क्रोध नहीं कर सकते। श्वास का उखड़ जाना जरूरी है क्रोध के क्षण में। तो ही शरीर उत्तप्त हो पाता है, तो ही शरीर की ग्रंथियां जहर छोड़ पाती हैं।

तो पहला सूत्र है, श्वास को धीरे-धीरे नाभि पर ले आना। सीने का काम ही न रह जाए।

दूसरा ताओ प्राण-साधना का हिस्सा है कि सदा श्वास बाहर जाए, उस पर ध्यान देना; भीतर आती श्वास पर बिल्कुल ध्यान नहीं देना। और जब श्वास बाहर जाए, तो जितने जोर से श्वास को उलीचा जा सके, उलीच देना; और भीतर कभी श्वास अपनी तरफ से नहीं लेना। जितनी आए आ जाने देना। आने की प्रक्रिया परमात्मा पर छोड़ देनी; और भेजने की प्रक्रिया जितनी हमसे उलीचते बन सके, उलीच देना। इसके अदभुत परिणाम होते हैं।

हम सभी लोग श्वास लेने में तो बहुत उत्सुकता दिखाते हैं, छोड़ने में नहीं। अगर आप ध्यान करेंगे, तो हमारी एम्फेसिस सदा छोड़ने पर कभी नहीं होती, सदा लेने पर होती है। और यह सिर्फ श्वास का ही सवाल नहीं है; हमारा पूरा जीवन ही लेने पर निर्भर होता है, देने पर कभी निर्भर नहीं होता। जो व्यक्ति श्वास को छोड़ने पर जोर देगा और लेने पर नहीं, उसके पूरे व्यक्तित्व में दान और देना अपने आप गहन हो जाएगा और लेना कम हो जाएगा।

एक आदमी की हम श्वास की जांच करके कह सकते हैं कि यह आदमी लेने में रस लेता होगा कि देने में। अनिवार्यरूपेण! श्वास को आप धोखा नहीं दे सकते। कंजूस आदमी कभी भी श्वास छोड़ने में सुख अनुभव नहीं करता। सिर्फ लेने में! मनसविद कहते हैं कि कंजूस व्यक्ति सिर्फ धन को ही नहीं रोकता, सब कुछ रोकने लगता है। कंजूस कांस्टीपेशन में जीता है, सब तरह के कांस्टीपेशन में। सभी चीजों को रोक लेता है। सौ में से नब्बे मौकों पर कब्जियत आपके चित्त की कंजूसी का परिणाम होती है। सभी चीजों को रोकने का मन होता है, तो मल तक को रोक लेता है। श्वास को भी रोक लेता है। देते में डरता है। बस लेने भर को आतुर होता है।

लेकिन जीवन का नियम हैः जितना ज्यादा देंगे, उतना मिलता है। अगर आपने श्वास छोड़ने में कंजूसी दिखाई, तो आप पा नहीं सकेंगे। क्योंकि पाएंगे कहां से? सिर्फ गंदी श्वास भीतर इकट्ठी हो जाएगी। सिर्फ कार्बन डाय आक्साइड भीतर इकट्ठा हो जाएगी। कोई छह हजार छिद्र हैं आपके श्वास के यंत्र में। हम ज्यादा से ज्यादा डेढ़ हजार, दो हजार छिद्रों तक श्वास लेते हैं। चार हजार छिद्र सदा ही कार्बन डाय आक्साइड से भरे रहते हैं। हम उन्हें कभी खाली ही नहीं करते हैं। हम गंदगी को अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं। और हम ऊपर ही ऊपर जीते रहते हैं। और भीतर गंदगी की पर्तें इकट्ठी होती चली जाती हैं।

ताओ का मानना है कि श्वास को उलीचें और लेने की आप फिक्र न करें। क्योंकि लेना तो अपने आप हो जाएगा, उलीचना भर काफी है। और जितनी आप श्वास को उलीच देंगे, उतनी ताजी श्वास भीतर चली आएगी। और यह उलीचने पर जोर देने का कारण है, क्योंकि इस जोर की बदलाहट से, इस उलीचने की तरफ जोर बढ़ने से आपके पूरे जीवन में देने की संभावना बढ़ने लगेगी। हमारा सारा क्रोध इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारी सारी घृणा इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारी ईर्ष्या इसीलिए है कि हम देना नहीं चाहते, लेना चाहते हैं। हमारे जीवन का सारा उलझाव क्या है? कि देने की हमें जरा भी इच्छा नहीं है और लेना हम बहुत चाहते हैं। जो दे नहीं सकता, उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। और जो दे सकता है, उसे हजार गुना सदा मिल जाता है। और जो हम देते हैं, अगर हम लोहा देते हैं, तो सोना मिल जाता है। कार्बन डाय आक्साइड उलीचिए और प्राणवायु भीतर भर जाती है, आक्सीजन भीतर भर जाती है। यही पूरे जीवन का सूत्र है।

तो लाओत्से का दूसरा सूत्र हैः सदा श्वास को फेंकिए; लेने को भूल ही जाइए। लेने का आपको काम ही नहीं करना है, वह तो प्रकृति स्वयं कर लेती है। आप सिर्फ उलीच दें, फेंक दें, हटा दें। खाली जगह छोड़ दें, वह भर जाएगी। और अगर आपका जोर छोड़ने पर हो और लेने पर बिल्कुल न हो, तो चित्त एकदम नमनीय हो जाएगा। क्योंकि लेने में तनाव होता है, जबर्दस्ती होती है। छोड़ने में तो सिर्फ हलकापन आता है। छोड़ने में सिर्फ निर्भार होते हैं। भरना तो एक भार है। छोड़ना निर्भार होना है। छोड़ना तो वजन कम कर देता है।

तो दूसरा सूत्र हैः छोड़ें, श्वास को लें मत।

और तीसरा सूत्र है लाओत्से का--केंद्र नाभि हो जाए, छोड़ने पर जोर हो जाए और तीसरा--यह जो श्वास का आना-जाना है, इससे अपने को पृथक न समझें। जब श्वास बाहर जाए, तो समझें कि मैं बाहर चला गया; और जब श्वास भीतर आए, तो समझें कि मैं भीतर आ गया। प्राण के साथ एक हो जाएं।

हम क्या करते हैं? हम कहते हैं, श्वास मुझमें आई, श्वास मुझसे बाहर गई। लाओत्से कहता है इससे बिल्कुल उलटी बात। वह कहता है, श्वास के साथ मैं बाहर गया, श्वास के साथ मैं भीतर आया। मैं ही बाहर हूं, मैं ही भीतर हूं। श्वास के साथ इस शरीर में भीतर आता हूं, श्वास के साथ इस शरीर के बाहर विराट शरीर में जाता हूं। चलते, उठते, बैठते, अगर यह ख्याल रख सकें कि श्वास के साथ मैं बाहर गया और श्वास के साथ मैं भीतर आया। इसका जप निर्मित हो जाए। यह धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जप की भांति आपके भीतर गूंजने लगे कि श्वास में बाहर गया, श्वास में भीतर आया। तो श्वास की यह सतत क्रिया अगर जप बन जाए बाहर और भीतर आने की, तो अद्वैत फलित होता है, तो अद्वैत का अनुभव होता है।

और अगर ये तीन बातें ध्यानपूर्वक हो जाएं, तो लाओत्से कहता है, "जब कोई अपनी प्राणवायु को अपनी ही एकाग्रता के द्वारा नमनीयता की चरम सीमा तक पहुंचा देता है, तो वह शिशुवत कोमल हो जाता है।"

तो फिर बच्चे की भांति कोमल हो जाता है। यह कोमलता जितनी ज्यादा हो, उतना ज्यादा जीवन। यह कोमलता जितनी कम हो, उतनी ज्यादा मृत्यु। सख्त हो जाना ही मौत का दरवाजा और कोमल बने रहना ही जीवन का द्वार है। तो कोमल, जैसे कि नया-नया उगा हुआ अंकुर होता है। दिखता है कमजोर, लेकिन वही उसकी शक्ति है। बूढ़ा दिखता हो भला ताकतवर, लेकिन बच्चे से ज्यादा ताकतवर नहीं है। क्योंकि मौत करीब आती चली जा रही है। जितना सख्त होता चला जाता है, उतना मृत्यु के करीब पहुंचता चला जाता है। बच्चा बिल्कुल कमजोर दिखता है, लेकिन अपनी कमजोरी में भी महा शक्तिशाली है, क्योंकि जीवन अभी उसमें फैलेगा और बड़ा होगा।

नमनीयता! लेकिन यह श्वास पर प्रयोग के बिना संभव नहीं है। और श्वास पर अगर यह संभव हो जाए, तो फिर जीवन के सभी पहलुओं पर संभव हो जाती है। और हमारी श्वास हमारे व्यक्तित्व को सब तरफ से प्रभावित करती है। आपकी श्वास आपका पूरा दर्पण है। आप श्वास के साथ क्या कर रहे हैं, उससे पता चल जाएगा कि आप अपने साथ क्या कर रहे हैं। आप कैसी श्वास लेते हैं, पता चल जाएगा, आप कैसे व्यक्ति हैं।

लाओत्से के पास कोई आता था साधना के लिए, तो लाओत्से कहता था कि एक सप्ताह मेरे पास रुक जाओ, जरा मैं देख तो लूं कि तुम कैसी श्वास लेते हो, कैसी श्वास छोड़ते हो। खोजी आया हो, अगर ज्ञानी हो, तो हैरान होगा कि हम ब्रह्मज्ञान लेने आए, सत्य का पता लगाने आए और यह आदमी कह रहा है कैसी श्वास लेते हो, कैसी छोड़ते हो। सात दिन लाओत्से देखेगा उस आदमी को अनेक हालतों में--सोते में, जगते में, काम करते, चलते वक्त, क्रोध में, प्रेम में--और देखेगा, उसकी श्वास की व्यवस्था क्या है। और जब तक वह श्वास की व्यवस्था न समझ ले, तब तक साधना का कोई सूत्र न देगा। श्वास के साथ ही साधना पूरी की पूरी व्यवस्थित की जा सकती है।

तो ये तीन सूत्र ख्याल रखें। आपने सुना होगा जापानी शब्द हाराकिरी। हाराकिरी का हम अनुवाद करते हैं आत्मघात, स्युसाइड। लेकिन जापानी शब्द का अर्थ और ज्यादा है। हारा का अर्थ होता है केंद्र, परम केंद्र--जहां से जीवन पैदा होता है। उसी केंद्र में छुरा मार कर अगर कोई मरता है, तो उसको हाराकिरी कहते हैं। इसलिए हर कोई हाराकिरी नहीं कर सकता। आप चाहें कि हाराकिरी कर लें, तो आप नहीं कर सकते। हाराकिरी करने के लिए हारा को पहचानना जरूरी है कि वह केंद्र कहां है।

अभी मैंने आपसे कहा तांदेन, नाभि से दो इंच नीचे, अगर आप श्वास को नाभि से लेते रहें, तो धीरे-धीरे आपको नाभि से दो इंच नीचे एक जगह पर स्मरण होने लगेगा केंद्र का। वही केंद्र जब इतना स्पष्ट हो जाता है कि आपको लगता है पूरा शरीर परिधि है और वही केंद्र है, पूरा शरीर एक वर्तुल है और वही केंद्र है, जिस दिन आप सोते-जागते, उठते-बैठते सतत उस केंद्र के स्मरण से भरे रहते हैं और दीए की एक ज्योति की तरह वह केंद्र आपके भीतर जलने लगता है, तब उसका नाम हारा है। और जिस व्यक्ति का वह केंद्र दीए की ज्योति की तरह जलने लगता है भीतर, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है।

तो हाराकिरी का मतलब होता है, शरीर को केंद्र से तोड़ देना। तो वह ज्योति परम ज्योति में विलीन हो जाएगी।

यह जो हारा है, यह जो केंद्र है, यह आपकी बुद्धि में नहीं है। यह आपके हृदय में भी नहीं है। यह आपकी नाभि के पास है। और इसीलिए मां से बच्चे की खोपड़ी नहीं जुड़ी रहती उसके पेट में और न हृदय जुड़ा रहता है; उसकी नाभि जुड़ी रहती है। नाभि से बच्चा जुड़ा रहता है। लेकिन यह चमत्कार की बात है कि बच्चा न तो श्वास लेता मां के पेट में, न उसके हृदय में धड़कन होती, सिर्फ नाभि से मां से जुड़ा रहता है और जीवित रहता है। इसका अर्थ साफ है कि न तो हृदय अनिवार्य है जीवन के लिए और न बुद्धि अनिवार्य है जीवन के लिए। हृदय की धड़कन के बिना भी बच्चा जीवित रहता है और श्वास के बिना चले भी जीवित रहता है, लेकिन नाभि के बिना जीवित नहीं रह सकता।

इसलिए मां से बच्चे के अलग होते ही पहला काम हम नाभि से संबंध तोड़ने का करते हैं। क्योंकि जब तक नाभि से संबंध न टूट जाए, बच्चा अपनी श्वास नहीं ले सकेगा। व्यक्तित्व नहीं पैदा होगा उसका, अलग खड़ा नहीं होगा। वह मां से जुड़ा है, मां से संबंध तोड़ना पड़ेगा। जब हम मां से संबंध तोड़ देंगे, तब उसके शरीर को पहली दफे जरूरत पैदा होगी कि वह श्वास ले, हृदय धड़के, खून बहे। बच्चा अपने पैरों पर जीवन को चलना शुरू करे।

ठीक इसे ऐसा समझें कि मां से नाभि से हमारा जो धागा जुड़ा है, यह एक धागा है; और ठीक नाभि से दूसरा धागा हमारा परमात्मा से जुड़ा है, अस्तित्व से जुड़ा है। वह जिस जगह से हमारा धागा जुड़ा है, नाभि के दूसरे छोर को हम समझें, दूसरे पहलू को, जहां से हम अस्तित्व से जुड़े हैं, उसका नाम हारा है। और ताओ कहता है कि उस हारा को जो पा लेता है, उस केंद्र को जो पा लेता है, वह सरल हो जाता है। फूल की तरह, आकाश के तारों की तरह, बच्चों की तरह, पशुओं की आंखों की तरह तरल और सरल हो जाता है।

यह तरलता और सरलता अगर पानी हो, तो तीसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, "जब वह कल्पना के अतिशय रहस्यमय दृश्यों को झाड़-पोंछ कर साफ कर लेता है, तो निर्विकार हो जाता है।"

श्वास नमनीय हो जाए, केंद्र पर आ जाए और कल्पना का सारा जाल तोड़ कर फेंक दिया जाए!

कल्पना के जो हमने जाल बना रखे हैं, न मालूम कितने-कितने प्रकार के। संसार के नाम पर ही नहीं, धर्म के नाम पर भी न मालूम कितने जाल हमने अपनी कल्पना के बना रखे हैं। न मालूम कितने ईश्वर, न मालूम कितने देव, न मालूम कितने स्वर्ग-नर्क कल्पना से बना रखे हैं। जाना हमने नहीं है; पहचान हमारी कुछ भी नहीं है; सिर्फ अपनी कल्पना को भर रखा है। हमारी कल्पना एक पुस्तकालय है, जिस पुस्तकालय में जमाने भर की कल्पनाएं संगृहीत हो गई हैं। जन्मों-जन्मों में न मालूम कितनी कल्पनाओं के जाल हमने इकट्ठे कर लिए हैं और उन सब जालों के बीच में हम घिरे जीते हैं।

लेकिन ये सारे के सारे जाल बुद्धि में हैं। और अगर किसी व्यक्ति ने बुद्धि से ही इन जालों को तोड़ने की कोशिश की, तो वह नहीं तोड़ पाएगा। जरूरी है कि बुद्धि से नीचे चला जाए, गहरा चला जाए, अस्तित्व के केंद्र

पर खड़ा हो जाए! और जैसे ही कोई व्यक्ति नाभि के पास आ जाता है, वैसे ही सशक्त हो जाता है कि कल्पनाओं को तोड़ कर फेंक दे। कुछ लोग बुद्धि से ही बुद्धि से लड़ने की कोशिश में लगे रहते हैं। बुद्धि के एक तर्क को आप दूसरे तर्क से काट सकते हैं, लेकिन ध्यान रखिए, दूसरा तर्क आपको पकड़ लेगा। बुद्धि की एक कल्पना को आप दूसरी कल्पना से काट सकते हैं, लेकिन तब दूसरी कल्पना आपको पकड़ लेगी। यह कठिनाई ऐसी है कि जिससे आप काटने चले हैं, वह बुद्धि ही कटनी चाहिए, अन्यथा कुछ भी नहीं कटेगा।

तो लोग काटने में लगे रहते हैं। एक धर्म को दूसरे धर्म से बदल लेते हैं। एक गुरु को दूसरे गुरु से बदल लेते हैं। एक सिद्धांत को दूसरे सिद्धांत से बदल लेते हैं। एक शास्त्र को दूसरे शास्त्र से बदल लेते हैं। और कुछ लोग तो इतनी कठिनाई में पड़ जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि उन्होंने सब शास्त्र छोड़ दिए; और तब वे अपना ही शास्त्र निर्मित कर लेते हैं, जो कि और भी गरीब होने वाला है। उससे तो बेहतर किसी और का भी बेहतर था।

कृष्णमूर्ति के साथ और उनके शिष्यों के साथ ऐसी कठिनाई खड़ी हुई है। कृष्णमूर्ति ने कहा, सारी कल्पनाओं के जाल तोड़ दो। अच्छा लगता है, प्रीतिकर लगता है--तोड़ दो। लेकिन आदमी तब अपने को ही केंद्र में खड़ा कर लेता है और अपनी ही कल्पना के जाल बुनने शुरू कर देता है। जब तक आप कल्पना के केंद्र से ही न हट जाएं, तब तक आप कल्पना के जाल बुनते ही रहेंगे। और कल्पना इतनी अदभुत है कि नकारात्मक रूप से भी अपने को भर लेती है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कोई गुरु नहीं है, तो सुनने वाला कहता है कि किसी गुरु को नहीं मानेंगे; और कृष्णमूर्ति को गुरु मानना शुरू कर देता है बहुत गहरे में। उसका उसे भी पता नहीं चलता।

एक मित्र अभी आए थे कुछ समय पहले। और मुझसे कहने लगे, हम किसी गुरु वगैरह को नहीं मानते हैं, क्योंकि हम कृष्णमूर्ति को सुनते हैं। क्योंकि हम कृष्णमूर्ति को सुनते हैं, हम किसी गुरु वगैरह को नहीं मानते। मैंने उनसे पूछा कि यदि कृष्णमूर्ति को सुन कर ही यह ख्याल पैदा हुआ है, तो गुरु तो हो गए। यह ख्याल तुम्हारा नहीं है। पहले तुम दूसरों के ख्याल मानते रहे, अब भी दूसरे का ही ख्याल मान रहे हो। कहने लगे कि नहीं, हम कृष्णमूर्ति को गुरु नहीं मानते। तो मैंने कहा, फिर अब सुनने किसलिए जाते हो? अब सुनने की क्या जरूरत रही? कहा उन्होंने कि सुनने जाते हैं समझने के लिए। तो मैंने कहा, गुरु का और मतलब ही क्या होता है? कि जिससे हम समझते हैं। और गुरु का क्या मतलब होता है? कि जिसके पास हम समझने जाते हैं।

आदमी अगर बुद्धि की ही जगह खड़ा रहे, तो बुद्धि के विपरीत बातों को भी बुद्धि से ही पकड़ेगा। इसमें कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, स्वाभाविक है। नहीं, असली सवाल सिर्फ बुद्धि से ही जाल को काटने का नहीं है, क्योंकि बुद्धि नए जाल बना लेगी; बुद्धि से हट जाने का है। कैसे एक छलांग लगे कि हम बुद्धि से हट जाएं?

तो इस बुद्धि से हटने के दो प्रयोग किए गए हैं। एक प्रयोग है कि आदमी विचार छोड़ दे, भाव में पड़ जाए। जैसे मीरा है; तो मीरा विचार नहीं करती, भाव में पड़ गई है। नाचती है, गाती है, कीर्तन करती है।

लेकिन भाव भी बहुत गहरे नहीं ले जाता। बुद्धि से तो गहरे ले जाता है, इसलिए बुद्धि से तो बेहतर है। बुद्धि से तो कुछ भी बेहतर हो सकता है। गहरे ले जाता है। लेकिन लाओत्से जो कह रहा है, वह और गहरे ले जाता है। वह कहता है, भाव भी आखिर बहुत कुछ बुद्धि के पास है। हम तो वहां चलते हैं, जहां भाव भी नहीं रह जाता, विचार भी नहीं रह जाता। न बुद्धि और न हृदय, न ज्ञान और न भक्ति। हम वहां चलते हैं, जहां चित्त निर्विकार हो जाता है, जहां शुद्ध अस्तित्व रह जाता है।

इस शुद्ध अस्तित्व के लिए सारी कल्पनाओं का कचरा झाड़-पोंछ कर अलग कर देना जरूरी है।

लेकिन यह कौन करेगा? अगर बुद्धि से ही आपने यह काम लिया, तो आप गलती में पड़ जाएंगे। बुद्धि इसे झाड़ कर अलग कर देगी, लेकिन नए जाल बना कर खड़े कर देगी। और ध्यान रहे, पुराने जालों से नए जाल

ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि पुरानों को तो छोड़ने का मन भी होता है, नए को पकड़ने का और सम्हालने का मन होने लगता है। पुराने गुरुओं से नए गुरु खतरनाक हो जाते हैं। और पुराने शास्त्रों से नए शास्त्र खतरनाक हो जाते हैं। क्योंकि नए में नएपन का भी आग्रह और मोह है। और अगर किसी को यह ख्याल आ गया कि मैं समर्थ हो गया हूं सारे जाल को काटने में, तो यह अहंकार बुद्धि के केंद्र पर खड़ा होकर सबसे बड़ा जाल बन जाता है।

नहीं, इससे नीचे हटना पड़ेगा। यह बहुत मजे की बात है कि अगर आप नाभि से श्वास लेने लगें, तो आप अहंकारी नहीं रह जाएंगे। आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा कि अहंकार छोड़ने जाएं। नहीं, आप नहीं रह जाएंगे। क्योंकि नाभि पर अहंकार के टिकने का उपाय नहीं है। अहंकार इतना बड़ा तनाव है कि नाभि से श्वास चलती हो, तो नहीं टिक सकता। इतना शांत हो जाता है भीतर सब।

तो लाओत्से अपने शिष्यों की परीक्षाएं लिया करता था। वह उनको सवाल देता, वे ठीक जवाब ले आते और लाओत्से फाड़ कर फेंक देता। क्योंकि उनके पेट पर हाथ रख कर देखता और कहता, सवाल बेकार गया, जवाब गलत है। एक युवक आया हुआ था और उसने लाओत्से से कहा, तुम पागल तो नहीं हो! तुमने जो समझाया था, ठीक वही-वही लिख कर लाया हूं। लाओत्से ने कहा, वह तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन जो लिख कर लाया है, उसकी श्वास! उसकी श्वास नाभि से नहीं चल रही है। और यह जवाब तो तभी आ सकता है भीतर से, जब श्वास नाभि से चल रही हो। तुम मुझे सुन कर ले लाए हो। यह बुद्धि से सुना गया था, बुद्धि से दे दिया गया है। तुम्हारे भीतर इसका कोई भी अनुभव नहीं है।

च्वांगत्से जब उसके पास पहुंचा, उसका सबसे बड़ा शिष्य, तो लाओत्से ने उसे सब समझाया और उसने सब सुना। और जब उसकी परीक्षा का वक्त आया, तो जैसे कि सभी शिष्य अपने कागजात लेकर आते थे जवाब देने के लिए, वह बिना कागजात खाली हाथ आकर बैठ गया। लाओत्से ने कहा कि आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है और मैं कुछ पूछूंगा; जवाब लिखने के लिए कुछ लाए नहीं? च्वांगत्से ने कहा कि अगर मैं जवाब नहीं हूं, तो मेरे लिखे हुए जवाबों का क्या उपयोग होगा! उसने अपने कपड़े उतार दिए और नग्न होकर सामने लेट गया। उसने कहा कि तुम मेरी श्वास देख लो।

और ध्यान रहे, अगर नाभि से सच्ची श्वास नहीं चलने लगी है और आप सिर्फ कोशिश करके चलाते रहे हैं, तो जब कोई आपके पेट पर हाथ रखेगा, फौरन श्वास सीने से चलने लगेगी। फौरन! जैसे ही आप कांशस हो जाएंगे, श्वास आपकी सीने से चलने लगेगी। वह तो बच्चे जैसे सरल ही न हो गए हों कि कोई पेट पर हाथ रखे या कुछ भी करे, श्वास वहीं से चलती ही है। डाक्टर जब आपका हाथ अपने हाथ में लेकर नाड़ी नापता है, तो आप कभी यह मत सोचना कि नाड़ी उतनी ही होती है जितनी डाक्टर को पता चलती है। डाक्टर को भी कम से कम थोड़ा उसे घटा लेना चाहिए; उतनी नहीं होती। वह डाक्टर के पकड़ने से बढ़ती है। बढ़ेगी ही, क्योंकि आप सचेतन हो गए, आप कांशस हो गए। घबड़ाहट आ गई। तनाव बढ़ गया। तो बीमारी जब डाक्टर जांचता है तो उसे यह नहीं समझना चाहिए बीमारी इतनी ही होगी, थोड़ी ज्यादा मालूम होती है। क्योंकि उतनी घबड़ाहट भी बढ़ गई होती है भीतर।

च्वांगत्से लेट गया और उसने कहा, मेरी श्वास देख लो। तो उसका पेट ऊपर-नीचे गिर रहा है। वह एक छोटे बच्चे की तरह लेटा है। और लाओत्से कहता है कि तू उत्तीर्ण हो गया है। अब मुझे कुछ पूछना नहीं है। क्योंकि जो जवाब दे सकता है, अब तेरे भीतर मौजूद है।

बुद्धि से हटाना है चेतना को और नाभि की तरफ ले आना है।

हमारा सारा संस्कार, हमारी सारी शिक्षा, सारा समाज चेतना को बुद्धि की तरफ ले जाने की कोशिश में लगा रहता है। उपयोग है उसका, जैसा मैंने कहा। लेकिन एक दिन हमें उस उपयोग से वापस लौट आना जरूरी है। मूल केंद्र को खो देना किसी भी कीमत पर खतरनाक है। और किसी भी कीमत पर मूल केंद्र को पा लेना सस्ता है।

तो लाओत्से के इस सूत्र को साधना का सूत्र समझें। अपनी श्वास का ध्यान रखें और श्वास के रूपांतरण की कोशिश करें। श्वास की बदलाहट आपकी बदलाहट हो जाएगी। श्वास में क्रांति आपके स्वयं के व्यक्तित्व की क्रांति हो जाएगी। और जैसे-जैसे श्वास गहरी होने लगेगी, आपकी गहराई बढ़ने लगेगी, आपका उथलापन समाप्त हो जाएगा। और जिस दिन श्वास केंद्र पर होगी, उस दिन आप सारे जगत के साथ एक अद्वैत के बिंदु पर मिल जाएंगे।

अपने केंद्र पर जो आ गया, वह जगत के केंद्र पर आ जाता है। स्वयं के केंद्र पर जो डूब गया, वह विराट के केंद्र से एक हो जाता है। तो एक परम आलिंगन अद्वैत का फलित होता है। और जैसे-जैसे आपकी श्वास गहरी और भीतर-भीतर उतरने लगती है, वैसे-वैसे रहस्य के नए पर्दे और सत्य के नए द्वार खुलने शुरू हो जाते हैं। जो मनुष्य के भीतर छिपा है, वही विराट में विस्तीर्ण होकर फैला हुआ है। जो अपने भीतर गहरे उतर आता है, वह परम के भीतर ऊंचा उठ जाता है।

ईसाई फकीरों ने कहा है, ऐज एबव, सो बिलो; जैसा ऊपर, वैसा नीचे। भारतीय संतों ने कहा है, जो पिंड में छिपा है, वही ब्रह्मांड में। प्लोटिनस ने कहा, मैन इ.ज दि मेजर ऑफ आल थिंग्स; सभी चीजों का माप-तौल, मापदंड आदमी है। और आदमी अगर अपने भीतर उतर जाए, तो वह विराट के भीतर उतर गया। आदमी एक छोटा सा विराट है, मिनिएचर, छोटा सा विराट। विराट में जो भी है, सब उसके भीतर है। सब! अपने ही केंद्र पर पहुंच जाने से व्यक्ति विश्व के केंद्र को पा लेता है।

तो लाओत्से कहता है, ये तीन बातें जो व्यक्ति पूरी कर ले प्राण की साधना में... ।

ध्यान रहे, लाओत्से की प्राण की साधना भारतीय प्राणायाम से भिन्न है। क्योंकि भारतीय प्राणायाम बौद्धिक है। और भारतीय प्राणायाम आयोजित है, चेष्टित है। और भारतीय प्राणायाम में प्राण को बुद्धि के द्वारा व्यवस्था दी जाती है। और लाओत्से का प्राणायाम नैसर्गिक है। बुद्धि के द्वारा व्यवस्था नहीं देनी है, वरन बुद्धि ने जो व्यवस्था दी है अब तक, उसको भी तोड़ डालना है और नैसर्गिक प्राण की गति को खोज लेना है। जो सहज गति है, जो जन्म से हमारे साथ थी, उसे खोज लेना है। तो भारतीय प्राणायाम और लाओत्से की प्राण-साधना में बुनियादी अंतर है। और लाओत्से की प्राण-साधना ज्यादा गहरी है प्राणायाम से। क्योंकि प्राणायाम फिर आखिर मनुष्य का हिसाब है। कि बाईं नाक को रोक कर तीन दफे, फिर दाईं नाक को रोक कर तीन दफे, फिर इतनी देर भीतर रोकना, फिर इतनी देर बाहर छोड़ना, फिर इतना रेचक, फिर इतना कुंभक, यह सबका सब बुद्धिगत है। इसके उपयोग हैं और इसके फायदे हैं। लेकिन इसके उपयोग और फायदे शरीर तक ही हैं। और इसके उपयोग और फायदे से व्यक्ति सुंदरतम स्वास्थ्य को उपलब्ध हो सकता है। और इस साधना के द्वारा शक्ति को भी उपलब्ध हो सकता है। लेकिन लाओत्से की प्राण-साधना बिल्कुल भिन्न है। उससे व्यक्ति निसर्ग को उपलब्ध होता है, प्रकृति को--जो है हमारे सब सोच-विचार के पहले और जो बचेगा हमारे सब सोच-विचार के खो जाने के बाद।

इसलिए प्राण-योग, भारतीय प्राणायाम बिना गुरु के खतरनाक हो सकता है। क्योंकि उसमें आयोजना है, व्यवस्था है, डिसिप्लिन है। लाओत्से की प्राण-साधना गुरु के बिना बड़े मजे से चल सकती है; कोई कारण नहीं

है। क्योंकि लाओत्से की प्राण-साधना में सीखना कम है, भूलना ज्यादा है। हम जो सीख गए हैं गलत, उसे सिर्फ छोड़ देना है। और जो स्वाभाविक है, वह प्रकट हो जाएगा। कुछ नई अनुशासन-व्यवस्था थोपनी नहीं है; सब अनुशासन तोड़ देना है और निसर्ग को मौका देना है कि वह जैसा चलना चाहे चले।

लेकिन जैसा मैंने आपसे कहा, जब तक आप अपने शरीर को स्वीकार नहीं करते--और शरीर को स्वीकार करने का अर्थ है, जब तक आप अपने यौन को स्वीकार नहीं करते--तब तक आप कभी भी शरीर के साथ संवेदना को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। और जब तक आप अपने भीतर किसी चीज की निंदा ही किए चले जाते हैं, तो आलिंगन कैसे करेंगे? और जब अपने ही भीतर आपने दीवारें बना रखी हैं, तो दूसरे से मिलने की तो बात ही छोड़ दें, अपने से ही मिलना नहीं हो पा रहा है। और जो अपने से भी मिलने में डर रहा है, वह परमात्मा से मिलने में निर्भय होगा, इसे मानने का कोई भी कारण नहीं है।

स्वीकार करें जो है भीतर; उसे परमात्मा की देन की तरह स्वीकार कर लें। निंदा को छोड़ दें। कुछ पाप नहीं है, कुछ अपराध नहीं है। जो भीतर है, वह प्रभु का हिस्सा है। उसे स्वीकार कर लें। और जैसे ही आपके भीतर सर्व-स्वीकृति आती है, वैसे ही शरीर के और आपकी चेतना के बीच की सब बाधाएं टूट जाती हैं और शरीर और चेतना एक तरल धारा हो जाते हैं। तब शरीर आपका ही हिस्सा है--बाहर फैला हुआ। और आत्मा आपका ही शरीर है--भीतर गया हुआ। तब शरीर ठोस आत्मा है और आत्मा तरल शरीर है। तब शरीर दृश्य आत्मा है और आत्मा अदृश्य शरीर है। तब ये एक ही चीज के दो छोर हैं। और जिस दिन ऐसा अनुभव होता है, उसी दिन यह सारा जगत एक हो जाता है। उस दिन पत्थर में और परमात्मा में फर्क नहीं रह जाता।

जिन लोगों ने परमात्मा की मूर्तियां पत्थर से बनाईं, वे बड़े होशियार थे। उन्होंने एक सूचना दी है कि जब तक तुम्हें पत्थर परमात्मा न दिखाई पड़ने लगे, तब तक तुमने कुछ भी नहीं पाया, इसे ठीक से जानना। पत्थर की मूर्ति बनाने का और कोई प्रयोजन नहीं है। एक इंगित कि पत्थर भी जब परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, तभी तुम जानना कि तुमने परमात्मा को जाना।

लेकिन जिनको अपना जीवित शरीर भी परमात्मा नहीं दिखाई पड़ रहा, उन्हें पत्थर परमात्मा दिखाई पड़ेगा, यह कैसे कहा जा सकता है? शायद उन्हें पत्थर इसीलिए परमात्मा मालूम पड़ता है कि पत्थर में कोई वासना नहीं, कोई इंद्रिय नहीं। पत्थर बिल्कुल मरा हुआ, मुर्दा है; इसलिए उनको पत्थर में थोड़ा परमात्मा शायद नजर आ जाए! लेकिन परमात्मा अगर जिंदा उनको मिल जाए, तो वे पच्चीस संदेह उठाएंगेः अरे, आप खाना भी खाते हैं? आपको भूख भी लगती है? सर्दी में आप ठिठुरते भी हैं? आपको भी गर्मी में पंखे की जरूरत है?

भगवान खतम हुआ, परमात्मा विनष्ट हुआ! हम अपने घर लौट आएंगे आश्वस्त होकर कि गलती थी बात। नाहक इस आदमी के पास गए थे!

पत्थर में कोई वासना नहीं दिखाई पड़ती, इसलिए हमको परमात्मा दिखाई पड़ता है। लेकिन जिन्होंने पत्थर की मूर्ति बनाई थी, उनका कारण दूसरा था। उनका ख्याल यह था कि जब तुम्हें पत्थर में भी दिख जाएगा, तो ऐसी कौन सी जगह बचेगी जहां तुम्हें नहीं दिखाई पड़ेगा! जीवन का सर्व-स्वीकार धार्मिक व्यक्ति का पहला लक्षण है। और सर्व-स्वीकार से आती है शांति। सर्व-स्वीकार से आता है विश्राम। सर्व-स्वीकार से आती है बाल-सुलभ निर्दोषिता। उसी निर्दोष आंख के लिए जगत ब्रह्म हो जाता है।

आज इतना ही।

अब एक पांच मिनट हम कीर्तन में बाल-सुलभ हो जाएं और फिर विदा हों!

पच्चीसवां प्रवचन

उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण भरा भाव व नमनीय मेधा

Chapter 10 : Sutra 2

Embracing The One

In loving the people and ruling the state, cannot he proceed without any (purpose) of action?

In the opening and shutting of his gates of heaven, cannot he do so as a female bird?

While his intelligence reaches in every direction, cannot he (appear to) be without knowledge?

अध्याय 10 : सूत्र 2

अद्वय की स्वीकृति

जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में और शासन के व्यवस्थापन की प्रक्रिया में क्या वह सोद्देश्य कर्म के बिना अग्रसर नहीं हो सकता?

क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे (नासारंध्र) को खोलने और बंद करने में एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता?

जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तब क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?

विचारशील मनुष्य निरंतर ही पूछता हैः जीवन का उद्देश्य क्या? जीएं क्यों? किसलिए? और ऐसा आज नहीं, सदा से ही विचारशील मनुष्य ने पूछा है। समस्त धर्मों का जन्म और समस्त दर्शनों का जन्म इस प्रश्न के आस-पास ही निर्मित हुआ हैः उद्देश्य क्या है? प्रयोजन क्या है? लक्ष्य क्या है? अंत क्या है? और जो ऐसा नहीं पूछते हैं, विचारशील लोग सोचते रहे हैं कि वे विचारहीन हैं, अज्ञानी हैं। जो ऐसे ही जीए चले जाते हैं, बिना लक्ष्य को पूछे, उन्हें विचारशील लोग सदा से अज्ञानी समझते रहे हैं।

लाओत्से की बात बहुत हैरान करेगी। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जिसने उद्देश्य से जीना चाहा, उद्देश्य तो कभी मिलेगा ही नहीं, जीवन जरूर खो जाएगा। जिसने किसी लक्ष्य के लिए जीने की कोशिश की, वह लक्ष्य को तो पा ही नहीं सकेगा, जीवन को जरूर नष्ट कर लेगा। जी तो वही सकता है, जो निष्प्रयोजन जीने की कला

जान ले। जीने की सघनता में तो वही उतर सकता है, जिसका कोई उद्देश्य नहीं है इस क्षण के बाहर। तो इसे थोड़ा एक-एक कदम समझना पड़े, क्योंकि शायद यह कठिनतम बात है हमारे मन की पकड़ में आने के लिए। और कठिन इसीलिए है कि मन तो बिना उद्देश्य के एक क्षण भी नहीं जी सकता। हम तो जी सकते हैं, लेकिन मन बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता। अगर उद्देश्य नहीं है कोई, तो मन बिखर जाएगा। इसलिए मन को बहुत कठिनाई होगी यह बात जानने के लिए, समझने के लिए। असल में, मन जीवन से विपरीत घटना है। तो जितना ज्यादा मन होता है हमारे पास, उतना ही कम जीवन हो जाता है।

इसे बहुत पहलुओं से समझना पड़े। एक, कि उद्देश्य की सारी की सारी चर्चा और विचारणा बड़ी अर्थहीन है। अर्थहीन उस बात को कहते हैं कि हम चाहे कोई भी उत्तर खोज निकालें, जिस प्रश्न के लिए हमने उत्तर खोजा था, वह अगर पुनः वैसा ही खड़ा रहे, तो सारी चेष्टा व्यर्थ हो जाती है।

जैसे लोग पूछते हैं कि जगत को किसने बनाया? तो यह अर्थहीन प्रश्न है। यह अर्थहीन इसलिए है कि यदि हम उत्तर दे पाएं कि जगत को अ ने बनाया, तो प्रश्न फिर खड़ा हो जाता है कि अ को किसने बनाया? और हम कितने ही उत्तर खोजते चले जाएं--ब, स, और अंतहीन--लेकिन हर उत्तर के बाद प्रश्न अपनी जगह ही खड़ा पाया जाएगा। क्योंकि प्रश्न में हमने एक बात मान ली थी कि कोई चीज बिना बनाए नहीं हो सकती। वहीं भ्रांति हो गई। अब वही भ्रांति हमारा पीछा करेगी। अगर कोई कहेगा ईश्वर ने बनाया, तो प्रश्न उठेगा, ईश्वर को किसने बनाया? और आप अब यह न कह सकेंगे कि ईश्वर बिना बनाया हुआ है। क्योंकि अगर आप यही कहते हैं, तो पहला प्रश्न ही गलत था। फिर संसार ही बिना बनाया हो सकता है। तो यह प्रश्न जो है, इनफिनिट रिग्रेस में ले जाता है, अंतहीन व्यर्थ उत्तरों में ले जाता है। तो जिस प्रश्न का उत्तर प्रश्न को समाप्त न करता हो और प्रश्न उत्तर के बाद भी ठीक वैसा ही खड़ा रहता हो जैसा पहले था, तो वह प्रश्न व्यर्थ है।

ठीक जीवन के उद्देश्य के संबंध में भी वही भ्रांति होती है। जब हम पूछते हैं, जीवन का उद्देश्य क्या? तब हम यह मान ही लेते हैं कि कोई चीज बिना उद्देश्य के नहीं हो सकती। यह हमारा इंप्लीकेशन है, यह हमने भीतर स्वीकार कर लिया। लेकिन हम भूलते हैं; हम कुछ भी उद्देश्य बताएं, पुनः यह पूछा जा सकता है कि जो हमने बताया, उसका उद्देश्य क्या? जैसे धार्मिक आदमी कहेगा, जीवन का उद्देश्य ईश्वर को पा लेना है। लेकिन क्या यह नहीं पूछा जा सकता कि ईश्वर को पा लेने का उद्देश्य क्या है? पाकर भी क्या करेंगे? पा भी लिया, फिर क्या होगा? पा लेने के बाद भी ईश्वर को यह प्रश्न तो संगत रूप से पूछा ही जा सकता है कि इस ईश्वर को पा लेने का उद्देश्य क्या? धार्मिक व्यक्ति कह सकते हैं कि जीवन का लक्ष्य मोक्ष को पा लेना है। लेकिन मोक्ष का लक्ष्य?

तो यह व्यर्थ प्रश्न है। व्यर्थ इसलिए है कि कोई भी उत्तर इसे खंडित नहीं करेगा। कोई भी उत्तर, ध्यान रखें! ऐसा मत सोचें कि कोई उत्तर तो होगा ही, जो इसे खंडित कर देगा। आपका उत्तर मुझे पता नहीं है, तो भी मैं कहता हूं, कोई भी उत्तर आप खोज लाएं, वह व्यर्थ होगा। क्योंकि यह प्रश्न पुनः सार्थक रूप से पूछा जा सकता है कि आप जो भी खोज लाए हैं एक्स, वाई, जेड, उसका उद्देश्य क्या है? इस बात को कहने के लिए कि यह प्रश्न व्यर्थ है, आपके उत्तर को जानना मेरे लिए जरूरी नहीं है। यह प्रश्न ही व्यर्थ है, क्योंकि इसका सार्थक रूप से कोई भी उत्तर नहीं दिया जा सकता। क्योंकि हर दिए गए उत्तर के बाद यह पुनः अपना सिर वैसे ही खड़ा कर लेता है।

लेकिन जिसको हम बुद्धिमान आदमी कहते हैं, विचारशील आदमी कहते हैं, समझदार कहते हैं, वह निरंतर लोगों को समझाते हुए पाया जाता है कि व्यर्थ मत जीओ। जीवन में उद्देश्य लाओ। किसी चीज के लिए

जीओ। देश के लिए जीओ, धर्म के लिए जीओ, सेवा के लिए जीओ, सत्य के लिए जीओ, परमात्मा के लिए जीओ। एक भूल भर मत करना, जीवन के लिए भर मत जीना; और सब चीजों के लिए जीना। क्योंकि वैसा आदमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि जीवन अपना ही उद्देश्य है, पर्याप्त अपने में ही, उसे बाहर किसी उद्देश्य को खोजने की जरूरत नहीं है। क्योंकि वैसा आदमी कहेगा कि तब तो जीवन व्यर्थ हो गया; क्योंकि इसमें कोई प्रयोजन नहीं, कोई लक्ष्य नहीं। तब तो जीवन एक ऐसा रास्ता हो गया, जिसकी कोई मंजिल नहीं। क्योंकि उस आदमी ने मान ही रखा है कि रास्ते की मंजिल होनी ही चाहिए। यात्रा भी मंजिल हो सकती है, यात्रा ही मंजिल हो सकती है, ऐसा उसकी बुद्धि नहीं पकड़ पाती। और इसलिए वह मंजिल निर्मित करता चला जाता है। लेकिन कोई भी मंजिल मंजिल नहीं हो सकती, क्योंकि हम पुनः पूछ सकते हैं कि यह मंजिल किसलिए? यह मंजिल भी किस मंजिल को पाने के लिए?

सोद्देश्य जीवन, प्रयोजन-सहित जीवन मन के लिए प्रीतिकर है, अहंकार के लिए भी। क्योंकि अहंकार अगर बिना उद्देश्य के जीए, तो अपने को भर नहीं सकता। इसलिए जितना बड़ा उद्देश्य होगा, उतना बड़ा अहंकार होगा। अगर आप अपने परिवार के लिए ही जी रहे हैं, तो आपके पास बहुत बड़ा अहंकार नहीं हो सकता। अगर आपको बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरे राष्ट्र के लिए जीएं। तब आपके पास विराट अहंकार होगा। अगर और बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरी मनुष्यता के लिए जीएं। अगर और बड़ा अहंकार चाहिए, तो पूरे ब्रह्मांड का केंद्र आप ही बन जाएं और पूरे ब्रह्मांड के लिए जीएं। तो जितना बड़ा उद्देश्य होगा, उतना बड़ा अहंकार हो सकता है; जितना छोटा उद्देश्य होगा, उतना छोटा अहंकार होगा।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि जो आदमी धन खोज रहा है, वह कभी उतना बड़ा अहंकारी नहीं हो सकता, जितना वह आदमी अहंकारी हो सकता है, जो ज्ञान खोज रहा है। जो आदमी पद खोज रहा है, वह उतना बड़ा अहंकारी नहीं हो सकता, जितना बड़ा वह हो सकता है, जो सेवा खोज रहा है। जितना बड़ा हो लक्ष्य! और बड़े लक्ष्य का अर्थ होता है कि जितनी बड़ी परिधि बनाता हो वह लोगों के आस-पास। और बड़े का यह भी अर्थ होता है कि जितना नॉन-काम्पिटीटिव हो, जितनी प्रतियोगिता कम हो।

अगर आप धन खोज रहे हैं, तो बहुत प्रतियोगिता होगी, क्योंकि और लोग भी धन खोज रहे हैं। अगर आप सेवा खोज रहे हैं, तो कम प्रतियोगिता होगी, क्योंकि बहुत कम लोग सेवा खोज रहे हैं। अगर आप अपने लिए ही इज्जत चाहते हैं, तो प्रतियोगिता बहुत होगी, क्योंकि प्रत्येक अपने लिए इज्जत चाहता है। लेकिन अगर आप अपने राष्ट्र के लिए, अपने धर्म के लिए, अपनी जाति के लिए प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो प्रतिस्पर्धा बहुत कम होगी। दूसरे राष्ट्रों की प्रतिस्पर्धा होगी, आपके राष्ट्र के भीतर कोई स्पर्धा नहीं होगी। आपका अहंकार सुगमता से निर्मित हो सकता है।

तो जितना बड़ा लक्ष्य हो, उतनी सुगमता है अहंकार को मजबूत होने के लिए, बड़ा होने के लिए। अहंकार उद्देश्य की भाषा बोलता है। इसलिए हम एक-एक बच्चे को अहंकार की भाषा सिखाते हैं। बच्चे तो निरुद्देश्य जीते हैं; उद्देश्य हम सिखाते हैं। अगर एक बच्चा खेल रहा है, और हम उससे पूछें, किसलिए खेल रहे हो? तो बच्चे को हमारा प्रश्न समझ में ही नहीं आता। क्योंकि किसलिए का कोई अर्थ ही नहीं है; खेलना पर्याप्त है। हम तो खेलते भी हैं, तो किसलिए भीतर होता है कि किसलिए खेल रहे हैं। बच्चा खेल रहा है, तो खेलना अपने में इतना काफी है कि खेलने के बाहर कोई लक्ष्य नहीं है। खेलना ही आनंद है। खेलने से कुछ और मिलेगा, ऐसा नहीं, खेलने में ही मिल जाएगा। खेलना ही मिलना भी है। साधन और साध्य अलग नहीं हैं, एक ही हैं।

लेकिन ऐसे बच्चे को जीवन के संघर्ष में नहीं उतारा जा सकता। तो ऐसे बच्चे को हमें खेल के बाहर निकालना पड़ेगा और सोद्देश्य क्रिया में लगाना पड़ेगा। उसे पढ़ना सिखाना पड़ेगा। पढ़ना इसलिए कि कल नौकरी मिल सकेगी। और पढ़ना इसलिए कि कल धन मिल सकेगा। हमें उसके जीवन को उस पटरी पर चलाना पड़ेगा, जहां लक्ष्य सदा कल होता है और काम आज। जहां साधन और साध्य अलग हो जाते हैं। साध्य सदा भविष्य में और साधन सदा वर्तमान में। तो फिर वह लड़का कल गणित पढ़ेगा। तब वह यह नहीं कह सकेगा कि मैं आनंद ले रहा हूं। वह कहेगा कि झेल रहा हूं तकलीफ, लेकिन कल आनंद मिलेगा उस आशा में। परीक्षा की तैयारी कर रहा हूं, क्योंकि परीक्षा के पार जीवन के संघर्ष में उतरने में सुविधा होगी।

तो प्रत्येक बच्चे को हमें निकालना पड़ता है निरुद्देश्य जीवन से सोद्देश्य जीवन में। हमारी सारी शिक्षा की प्रक्रिया वही है। यह मजबूरी है, करना ही पड़ेगा। जीवन की जरूरत है यह। और अगर हम बच्चे को सोद्देश्य जीवन में न खींच पाएं, तो वह समाज का अंग नहीं बन पाएगा और शायद अपने को बचा भी नहीं पाएगा। शायद इस बचने की जो भयंकर प्रतियोगिता चल रही है, इसमें वह हार ही जाएगा, पराजित हो जाएगा, टूट जाएगा। इसमें वह बच नहीं सकता। इसलिए उसे खींचना पड़ेगा। यह जो सरवाइवल के लिए, बचने के लिए इतना युद्ध चल रहा है, उस युद्ध में उसको खड़े होने को भी कोई जगह नहीं है।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है कि क्यों तुम फिक्र करते हो रोटी की! फूलों को देखो; पक्षियों को देखो। न रोटी की चिंता है, न रोटी कमाने का कोई उपाय है; लेकिन भोजन तो मिलता है। इन खेत में खिले हुए लिली के फूलों को देखो! और खुद सम्राट सोलोमन भी अपनी श्रेष्ठतम वेशभूषा में इतना सुंदर न था। लेकिन ये न तो वस्त्र के लिए धागा बुनते हैं, न कपास उगाते हैं। फिर भी ये काफी सुंदर हैं। और निर्वस्त्र नहीं हैं।

यह जीसस बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। जीसस वही बात कह रहे हैं, जो लाओत्से कह रहा है।

लेकिन मजबूरी है। आदमी को खेत के लिली के फूलों की तरह नहीं छोड़ा जा सकता। और पक्षियों की तरह उसे अनाज भी नहीं मिल सकता। आदमी ने पशुओं के जगत से अपना संबंध तोड़ लिया है। उसने जिम्मेवारी ले ली है। उसे संघर्ष में जाना ही पड़ेगा।

इसलिए यह बात सच है कि जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है, फिर भी हमें प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का उद्देश्य सिखाना पड़ता है। वह एक असत्य है, जो जीवन के लिए जरूरी है। एक नेसेसरी ईविल, एक अनिवार्य बुराई है, जो हमें आदमी को सिखानी पड़ती है। लेकिन उस बुराई के बाहर निकला जा सकता है। और पुनः उस बुराई के बाहर निकलना जीवन को बहुत गहन रूप से समृद्ध कर जाता है। फिर से बच्चे हो जाना जीवन को बहुत समृद्ध कर जाता है। और तब यह सारी दौड़ एक अभिनय हो जाती है। और भीतर गहरे में हम जानते हैं कि जीवन निरुद्देश्य है।

निरुद्देश्य का अर्थ? निरुद्देश्य का अर्थ है कि जीवन का प्रतिपल अपना उद्देश्य है। जहां हैं हम, जो हैं हम, वहीं परिपूर्णता जीवन की है। हम कल के लिए न जीएं, क्योंकि कल के लिए जीने में हम सिर्फ आज को खोते हैं। और जिस आज को हम खोते हैं, उसे हम पुनः फिर न पा सकेंगे। और जिस व्यक्ति को आज को खोने की आदत बन गई, वह कल को भी खो देगा। क्योंकि कल जब आज बनेगा, और ध्यान रहे, कल जब भी आएगा मेरे हाथ में, वह आज की शक्ल में आएगा। कल की शक्ल में तो कोई कल आता नहीं। जब कल मेरे पास आएगा, तो वह आज होगा। और आज को मैंने सदा ही कल के लिए कुर्बान करने की आदत बना ली है। तो मैं पूरे जीवन को कुर्बान करता जाऊंगा। और आखिर में पाऊंगा कि मौत के अतिरिक्त मेरे हाथ में कुछ भी नहीं बचा।

हम सभी अपने जीवन को ऐसे ही खोते हैं। जिसे हम आज कह रहे हैं, यह भी तो कल कल था। लेकिन कल के दिन को हमने खोया था आज के लिए। आज को हम खोते हैं कल के लिए। कल को हम खोएंगे और आगे के लिए। और ऐसे हम समय को खोते चले जाएंगे। और एक दिन हम पाएंगे कि सिवाय आशाओं की राख के हमारे हाथ में कुछ भी छूट नहीं गया है। उद्देश्य तो कुछ पूरा नहीं हुआ, जीवन खो गया।

एक क्षण से ज्यादा हमें उपलब्ध नहीं है। दो क्षण किसी को भी नहीं मिलते हैं एक साथ। एक क्षण मिलता है, बारीक क्षण। और वह क्षण भी कोई स्थिर बात नहीं है। दौड़ती हुई, भागती हुई, निरंतर शून्य में खोती हुई प्रक्रिया है। हाथ में आता नहीं कि छूट जाता है। उस क्षण को, लाओत्से कहता है, अगर हमने किसी भी साध्य के लिए समर्पित किया, तो हम जीवन से वंचित हो जाएंगे। वह साध्य कोई भी हो, चाहे क्षुद्र धन हो और चाहे श्रेष्ठ धर्म हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चाहे इसी जमीन पर एक महल बनाने का लक्ष्य हो और चाहे स्वर्ग में महल को पा लेने की कामना हो! और चाहे यहीं किसी बड़े पद पर बैठ जाने की आकांक्षा हो और चाहे मोक्ष में सिद्धशिला पर विराजमान होने की वासना हो! इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। कल की आकांक्षा जहर है, क्योंकि आज के जीवन को समाप्त कर जाती है।

यह क्षण क्या अपने में ही नहीं जीया जा सकता? क्या यह क्षण अपने में ही पूरा नहीं माना जा सकता?

इसका यह अर्थ नहीं है कि कल आपको ट्रेन पकड़नी है, तो आपको आज ही पकड़नी पड़ेगी। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि आप कल पकड़ने वाली ट्रेन का टाइम-टेबल आज नहीं देख सकते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि एक वर्ष में आपकी फैक्ट्री बन कर पूरी होगी, तो आज उसकी आप योजना नहीं कर सकते हैं। लोगों के मन में ऐसे सवाल उठते हैं कि फिर क्या होगा! कल का तो तय आज करना पड़ेगा कि कल सुबह मुझे पांच बजे उठ कर ट्रेन पकड़नी है। लेकिन इसे थोड़ा समझें, तो ख्याल में आ जाएगा।

जब आप इसे तय कर रहे हैं, तब तय करने की प्रक्रिया वर्तमान की प्रक्रिया है। अभी इस क्षण में तय कर रहे हैं। तो इस तय करने में इतना आनंद लें, जितना तय करने में लिया जा सकता है। और किसी भी चीज को तय करना अपने आप में आनंद है। किसी भी चीज को डिसीजन तक ले जाना अपने आप में आनंद है। इस आनंद को अभी लें कि आप कल सुबह पांच बजे उठने वाले हैं। यह इसी क्षण का निर्णय है। और इसको, इसी क्षण के निर्णय को पूरा हो जाने दें। कल सुबह पांच बजे उठने का आनंद लेना। आज के क्षण में पांच बजे उठने के निर्णय का आनंद लें।

लेकिन आज का क्षण इसलिए परेशानी में बीत जाए कि कल सुबह पांच बजे उठना है और कल पांच बजे सुबह उठ कर और आगे की परेशानियां होंगी, हर क्षण आगे आने वाली परेशानी में बीत जाए, तो हम अस्तित्व से कभी संयुक्त नहीं हो पाते।

नहीं, वर्तमान में रहने का यह अर्थ नहीं कि आप योजना न कर पाएंगे। वर्तमान में रहने का अर्थ इतना ही है कि योजना आपका जीवन नहीं है, जीना ही आपका जीवन है। और जीना अभी और यहीं, इसी क्षण संभव है, और किसी क्षण संभव नहीं है।

तो एक तो है निरुद्देश्य जीवन उस आदमी का, जिसे हम मूढ़ कहते हैं। जो पड़ा है, धक्के खा रहा है, जहां भी जीवन धक्का दे दे, वहां चला जाएगा। प्रमाद से भरा हुआ, आलस्य में डूबा हुआ। जीवन को अपने हाथ में जिसने लिया ही नहीं है, जो हवा में उड़ते हुए एक पत्ते की भांति है। एक तो वह आदमी है, उसे हम कहें निरुद्देश्य जीवन।

एक वह आदमी है, जो चौबीस घंटे दौड़ रहा है उद्देश्य को पाने के लिए। जिसको हम बुद्धिमान, समझदार आदमी कहते हैं। वह है सोद्देश्य जीवन, जो प्रतिपल खो रहा है आगे पल के लिए। जो हमेशा इनवेस्ट किए चला जा रहा है। आज के क्षण को कल के लिए लगा रहा है। कल के क्षण को परसों के लिए लगा रहा है। और आखिर में मर जाता है; दौड़ते-दौड़ते मर जाता है। शायद इस आदमी की बजाय तो वह जो निरुद्देश्य आदमी था, उसने भी कुछ झलक जानी हो।

लेकिन लाओत्से उस आदमी के लिए नहीं कह रहा है। लाओत्से एक तीसरे आदमी की बात कर रहा हैः उद्देश्य-मुक्त जीवन। वह एक तीसरा ही आदमी है। न तो वह आलसी है, न वह प्रमादी है। न वह जीवन से पलायन कर रहा है, न वह मुर्दे की भांति पड़ा हुआ है और जीवन की धारा उसके ऊपर से गुजरी जा रही है। नहीं, न तो वह पहले आदमी की तरह है, न वह दूसरे आदमी की तरह है कि पागल की तरह दौड़ रहा है। वह एक तीसरा ही आदमी है। जो दौड़ता भी है, तो किसी मंजिल के लिए नहीं; दौड़ने का हर कदम उसके लिए आनंद है। जो अगर दौड़ता भी है, तो दौड़ने में ही उसका आनंद है। जो कहीं पहुंचने के लिए नहीं दौड़ रहा है।

इस तीसरे तरह के आदमी को कभी असफलता नहीं मिल सकती। यह कभी विफल नहीं हो सकता। और यह कभी संताप को उपलब्ध नहीं होगा। फ्रस्ट्रेशन, विषाद जिसे कहें, इसे कभी फलित नहीं होगा, क्योंकि इसने कभी कोई आशा ही नहीं बांधी है। इसने तो प्रत्येक क्षण को उसकी पूर्णता में जी लिया था, निचोड़ लिया था। यह किसी मंजिल के लिए नहीं दौड़ा, इसलिए कभी यह नहीं कहेगा खड़े होकर कि मेरी जिंदगी बेकार चली गई, मैं पहुंच नहीं पाया। क्योंकि इसने पहुंचने की कभी कोई कोशिश नहीं की।

यह आदमी कहेगा, मैंने जीवन का क्षण-क्षण जी लिया है; पूरी तरह निचोड़ लिया है जीवन का रस। यह आदमी मृत्यु को भी आनंद से गले लगा लेगा। यह आदमी मृत्यु को भी जी सकेगा। इस आदमी के लिए मृत्यु भी जीवन की एक घटना होगी, जीवन का अंत नहीं। यह मृत्यु का भी रस, और मृत्यु का भी आलिंगन कर सकेगा। क्योंकि जो भी इसके सामने रहा है, इसने उसे जीया है। जो भी इसे मिल गया है, इसने उसे पूरा का पूरा भोगा है। इसने रत्ती भर उसे छोड़ा नहीं, आगे-पीछे का इसने हिसाब नहीं रखा है। दौड़ा यह भी बहुत, शायद उनसे ज्यादा दौड़ा, जो मंजिल बना कर दौड़ रहे थे। क्योंकि आपको ख्याल हो, जब मंजिल का बोझ हो सिर पर, तो पैर भी भारी हो जाते हैं। और जब किसी लक्ष्य को बना कर कोई चलता है, तो चलना एक थकान हो जाती है।

कभी आपने ख्याल किया? आप सुबह जिस रास्ते पर घूमने निकलते हैं, दोपहर उसी रास्ते से दफ्तर के लिए भी जाते हैं। पैर भी वही होते हैं, रास्ता भी वही होता है, आकाश भी वही होता है। लेकिन सुबह जब आप घूमने निकले होते हैं, तो पैरों का नृत्य अलग होता है और प्राणों के गीत में भेद पड़ता है। उसी रास्ते से दोपहर आप दफ्तर के लिए जाते हैं। पैर भी वही, रास्ता भी वही। लेकिन अब एक मंजिल और है, कहीं पहुंचना है। सुबह घूमने गए थे, तब कहीं पहुंचना नहीं था, चलना ही काफी था।

वह चलने का जो सुख था सुबह, वह इसी रास्ते पर दोपहर को क्यों नहीं मिल पाता है? और हो सकता है, आपके बगल में कोई आदमी चल रहा हो जो घूमने निकला हो, तो उसे अभी भी वही रस मिल रहा है। लेकिन सुबह घूमने में भी अगर किसी ने इसको रिलीजस ड्यूटी बना रखा हो, एक धार्मिक कृत्य बना रखा हो कि पांच बजे उठ कर घूमना ही है, अन्यथा पाप हो जाएगा, तो यह आदमी घूमने में भी सुख को खो देगा। इसका घूमना भी एक कर्तव्य है, करना है। यह घूमेगा भी ऐसे, जैसे दफ्तर जा रहा है, दूकान जा रहा है। यह घूमने से लौटेगा भी ऐसे कि ठीक है, एक काम से छुटकारा मिला, एक काम पूरा कर लिया है।

जहां उद्देश्य है, वहां भार हो जाता है। जहां उद्देश्य नहीं है, वहां निर्भार दशा उत्पन्न हो जाती है। और जितना निर्भार हो व्यक्ति, उतनी आनंद की संभावना बढ़ती है। और जितना भारग्रस्त हो, उतना जीवन एक बोझ और किसी तरह गुजारने जैसा हो जाता है। हम प्रत्येक चीज को कर्तव्य बना लेते हैं, खेल नहीं। और लाओत्से को समझेंगे, तो लाओत्से यह कह रहा है कि पूरा जीवन एक खेल है। हम खेल को भी कर्तव्य बना लेते हैं। हम अगर खेलने भी बैठते हैं, तो हमारी आंखें और हमारे चेहरे पर जो सिकुड़न होती हैं, वे काम की होती हैं।

इसलिए अगर दो लोग ताश खेलते हैं, तो अकेले ताश खेलने में सुख नहीं आता, जब तक वे कुछ रुपए दांव पर न लगा लें, थोड़े ही सही। क्योंकि रुपए लगाते से ही खेल काम बन जाता है; रुपए लगाते से ही उद्देश्य आ जाता है खेल में। चाहे वह करोड़पति क्यों न हो, वह एक रुपया लगा कर उद्देश्य पैदा कर लेगा। एक रुपया मिलने से कुछ मिलने वाला नहीं, लेकिन फिर भी उद्देश्य हो गया। अब खेल में रस आ जाएगा, जान आ जाएगी। खेल अपने में काफी नहीं था। एक रुपए ने आकर खेल को भी प्राण दे दिए। रुपया हमारी इतनी भारी आत्मा हो गई है कि उसे खेल में भी न डालें, तो खेल भी बेकार है। धंधा बन जानी चाहिए हर चीज।

उद्देश्य का अर्थ है कि प्रत्येक काम किसी और चीज के लिए किया जा रहा है। रस उस चीज के पाने में है; यह काम तो एक मजबूरी है। अगर बिना काम किए वह मिल जाए, तो हम इस काम को तत्क्षण छोड़ देंगे। चूंकि बिना काम किए लक्ष्य नहीं मिलता, इसलिए काम हमें करना पड़ता है। तो हम खेल को भी व्यवसाय बनाते हैं। हम प्रेम को भी काम में रूपांतरित कर लेते हैं। मां अपने बेटे की सेवा कर रही है, तो उसको भी कर्तव्य बना लेती है। पति अपनी पत्नी के लिए अगर श्रम कर रहा है, तो उसको भी कर्तव्य बना लेता है।

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, गृहस्थी है, कर्तव्य को निभाना है।

अगर कर्तव्य को निभाना है, तो गृहस्थी है कहां? घर नहीं है, वहां भी दूकान है। घर का तो मतलब ही यह होता है कि वह हमारा आनंद है। अगर पति इसलिए काम कर रहा है कि ठीक है, एक पत्नी पाल ली है पीछे, तो कर्तव्य है। और मां अगर बेटे को इसलिए दूध पिला रही है कि ठीक है, भाग्य में था, पैदा हो गया है, तो काम पूरा कर लेना है। लेकिन हमारे जो सोद्देश्य ढंग हैं जीवन के, वे सभी चीजों पर ऐसी काली छाया डाल देते हैं। कुछ भी चीज खेल नहीं है। किसी भी चीज में हम इतने मुग्ध नहीं हो जाते कि पार की चिंता छोड़ दें। एक क्षण को भी हम वहां नहीं हो पाते जहां हम हैं; सदा मन कहीं और होता है।

लाओत्से कहता है, "जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने, शासन की व्यवस्था की प्रक्रिया में, अनुशासन में, सोद्देश्य कर्म के बिना क्या अग्रसर नहीं हुआ जा सकता है?"

वह कहता है, एक सम्राट भी शासन की व्यवस्था को क्या एक खेल नहीं बना सकता है? बना तो भिखारी भी नहीं पाता। लाओत्से कह रहा है, एक सम्राट भी चाहे तो शासन के विराट कर्म को भी एक खेल बना सकता है। उद्देश्य को छोड़ दे।

हमें तत्काल लगता है कि अगर उद्देश्य को छोड़ दें, तो हम बैठ जाएंगे। फिर हम कुछ करेंगे ही क्यों? उद्देश्य को हमने छोड़ा कि हमें लगता है करना ही खो जाएगा। क्योंकि हमने सदा ही उद्देश्य के लिए किया है। निरुद्देश्य हमने जीवन में कभी कुछ नहीं किया। या अगर कभी कुछ किया हो, कभी कोई छोटा सा कृत्य भी निरुद्देश्य किया हो, तो लौट कर उसका स्मरण करें।

निरुद्देश्य! कोई नदी में डूबता हो, और आपने घाट पर खड़े होकर इतना भी न सोचा हो कि जीवन को बचाना मेरा कर्तव्य है, कूद पड़े हों क्षण में, बिना सोचे, बिना विचारे, बिना किसी उद्देश्य के, बिना सोचे कि हिंदू है कि मुसलमान है, बचाएं कि न बचाएं, अपना है कि पराया है, कि पीछे काम पड़ेगा कि नहीं काम पड़ेगा,

कुछ भी न सोचा हो, बस कोई डूबता था और सहज-स्फूर्त आपके प्राणों में छलांग लग गई हो और आप कूद कर उसे बचा लिए हों, तो आपको एक झलक मिल सकती है आनंद की।

लेकिन हम ऐसे हैं कि अगर ऐसा कोई मौका भी मिल जाए, तो हम उसे बहुत शीघ्र नष्ट कर लेंगे, बहुत शीघ्र नष्ट कर लेंगे। अगर हम एक आदमी को किसी तीव्र प्रेरणा के क्षण में, सहज क्षण में कूद कर बचा भी लें, तो बचाते से ही हम उद्देश्य में पड़ जाएंगे। बचाते से ही, किनारे पर लगते से ही हम सोचने लगेंगे कि यह आदमी धन्यवाद दे रहा है कि नहीं दे रहा है? अखबार में खबर छपेगी कि नहीं छपेगी? कोई देखने वाला आस-पास है या नहीं है? काश, हम थोड़ी देर को भी बिना उद्देश्य के किसी कर्म में डूब जाएं, तो वही कर्म ध्यान बन जाता है।

लेकिन हम तो ध्यान भी करते हैं, तो उद्देश्य से करते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करने से जीवन में सफलता तो मिलेगी न!

जीवन की सफलता और ध्यान?

वे पूछते हैं कि आर्थिक हालत खराब जा रही है, ध्यान करने से प्रभु की कृपा तो उपलब्ध होगी न!

तो ध्यान भी एक इनवेस्टमेंट है। और ध्यान भी उनके धंधे का एक हिस्सा है। ध्यान भी! हम सोच ही नहीं सकते कि उद्देश्य से ध्यान का कोई संबंध नहीं है। यह भी कहना गलत है कि ध्यान से आनंद मिलेगा। यह भी कहना गलत है। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं कि ध्यान से आनंद नहीं मिलता है। ध्यान से ही आनंद मिलता है। लेकिन यह भी कहना गलत है कि ध्यान से आनंद मिलेगा। क्योंकि जो आनंद के लिए ध्यान करेगा, वह ध्यान कर ही नहीं पाएगा। ध्यान के लिए ही जो ध्यान करेगा, उसे आनंद जरूर मिल जाता है। कर्म के लिए ही जो कर्म में उतर जाता है, प्रत्येक कृत्य को ही जो उस क्षण में पूरा बना लेता है और स्वयं को पूरा डुबा देता है, पीछे कोई बचता ही नहीं है, उसका पूरा जीवन ही ध्यान हो जाता है।

लाओत्से कहता है, एक सम्राट भी चाहे तो विराट जनसमूह के प्रति प्रेम, बड़े राज्य की व्यवस्था, इसको भी खेल बना सकता है। इसको भी बिना उद्देश्य के जी सकता है। लेकिन वह प्रश्नवाचक उसका वक्तव्य है।

वह कहता है, "जनसमूह के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने में और शासन के व्यवस्थापन की प्रक्रिया में क्या वह सोद्देश्य कर्म के बिना अग्रसर नहीं हो सकता? क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे (नासारंध्र) को खोलने और बंद करने में एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता? जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तो क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?"

ये प्रश्न इसलिए उठा रहा है लाओत्से, वह जो कहना चाहता है, वह बहुत स्पष्ट है, लेकिन प्रश्न के साथ कहना चाहता है। क्योंकि हम जैसे हैं, बहुत संदिग्ध मालूम पड़ता है लाओत्से को भी कि हम निरुद्देश्य हो सकेंगे। लेकिन हो सकते हैं। होने का रास्ता क्या है? और होने से क्या फलित होगा? होने से क्या घटित होता है?

तो तीन बातें समझ लें।

एकः जीवन अपने में ही अपना लक्ष्य है; जीवन के पार कोई भी लक्ष्य नहीं है। कितना ही हमारे मन को कठिनाई होती हो यह बात स्वीकार करने में, यह तथ्य है। इसलिए ऐसा सोचें ही मत कि किसलिए जीएं; ऐसा सोचें कि कैसे जीएं। और जैसे ही उद्देश्य हटता है, प्रश्न बदल जाते हैं। जब तक उद्देश्य होता है, हम पूछते हैं, किसलिए जीएं? जैसे ही यह समझ में आ जाए कि जीवन ही अपना लक्ष्य है, वैसे ही प्रश्न का रुख बदल जाएगा। तब हम यह नहीं पूछेंगे, किसलिए जीएं? हम पूछेंगे, कैसे जीएं?

कैसे से विज्ञान का जन्म होता है--हाऊ? कैसे से योग का जन्म होता है। किसलिए जीएं, इससे हवाई दर्शनशास्त्र, मेटाफिजिक्स का जन्म होता है। फिर हजारों लोग उत्तर देने वाले मिल जाते हैं कि इसलिए जीएं, क्योंकि जीवन के पार एक मोक्ष है और जीवन के पार एक परमात्मा। लेकिन तब सब चीजें जीवन के पार होती हैं; यहां कुछ भी नहीं होता। तब सभी चीजें कब्र के बाद होती हैं; यहां कुछ भी नहीं होता। और जिस व्यक्ति के भी जीवन में कब्र के बाद की तस्वीर बहुत महत्वपूर्ण हो जाए, उसका यह जीवन एक लंबी कब्र बन जाएगा। क्योंकि इस जीवन में कुछ पाने योग्य बचता नहीं, कुछ पाने योग्य बचता नहीं।

इस सारी जमीन पर तथाकथित धर्मों के कारण एक जीवन-निषेध का अंधकार फैल गया; एक लाइफ-निगेशन का। जीवन बेकार है। पार कहीं लक्ष्य है, उसे पाना है। और हमें पता नहीं कि यह उद्देश्य पूछने वाले लोगों को अगर मोक्ष भी मिल जाए, तो एकाध दिन भला ही ये यहां-वहां टहल कर दर्शन करें मोक्ष का, तत्काल पूछेंगे कि उद्देश्य क्या है? इस मोक्ष में भी होने से क्या होगा? क्योंकि जिन्होंने सदा यही पूछा है, वे मोक्ष से भी यही सवाल उठाएंगेः कि मान लिया कि यहां शांति है, सुख है; लेकिन फायदा क्या है? इससे मिलेगा क्या? यह क्रानिक क्वेश्चनिंग है, यह जो बीमारी है, स्थायी है। इसको बदल नहीं सकते। यह आदमी कहीं भी पहुंच जाए, यह पूछेगा ही।

मैंने सुना है, मार्क ट्वेन की आदत थी कि जब भी उससे कोई सवाल करे, तो वह जवाब हमेशा सवाल में ही देता था। आप कुछ पूछें, तो वह जो उत्तर देगा, वह एक सवाल होगा। अगर आप उससे पूछें कि आपका नाम क्या है? तो वह नाम नहीं बताएगा, वह पूछेगा कि नाम पूछने का प्रयोजन क्या है? सवाल से सदा ही दूसरे सवाल को वह उठाता था। सुना है मैंने कि अमरीकी प्रेसीडेंट से वह मिलने गया था। अमरीकी प्रेसीडेंट ने उससे पूछा कि मार्क ट्वेन, सुना है मैंने कि तुम हर सवाल के जवाब में पुनः सवाल खड़ा करते हो! मार्क ट्वेन ने कहा, क्या अब भी मैं ऐसा करता हूं? क्या अब भी मैं ऐसा करता हूं, उसने पूछा। क्रानिक! उसे भी पता नहीं कि वह क्या कह रहा है। उसे भी शायद बाद में ही पता चला होगा कि मैंने फिर सवाल ही खड़ा किया है।

यह जो उद्देश्य को पूछने वाली वृत्ति है, यह रुग्ण है। सच तो यह है कि हमारे रोगी चित्त की गवाह है। जब जीवन में आनंद होता है, तो हम नहीं पूछते कि किसलिए?

कभी आपने ख्याल किया है, हम सदा पूछते हैं, लोग पूछते हैं, मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, एक बच्चा जन्म से ही अंधा पैदा हुआ, क्यों? वे यह कभी नहीं कहते मुझसे आकर कि इतने बच्चे जन्म से ही अंधे पैदा नहीं हुए, क्यों? अगर कोई आदमी बीमार होता है, तो वह पूछता है, बीमारी क्यों है? स्वस्थ होता है, तो कभी नहीं पूछता कि स्वास्थ्य क्यों है? एक आदमी जब भी सुख में होता है, तो कभी नहीं पूछता कि जगत में सुख क्यों है? और जब दुख में होता है, तो पूछता है, जगत में दुख क्यों है? पांच हजार साल के लिखित प्रश्न हमारे पास हैं उपलब्ध। एक भी आदमी ने नहीं पूछा कि जगत में सुख क्यों है? बुद्ध भी यही पूछते हैं कि जगत में दुख क्यों है? और हर आदमी यही पूछता है कि जगत में दुख क्यों है?

तो जब भी कोई आदमी पूछता है कि जीवन का उद्देश्य क्या है, तो वह यह पूछ रहा है कि जीवन क्यों है? इसका मतलब ही यह है कि सारा जीवन उसने दुख से भर लिया है। अन्यथा वह कभी न पूछता कि जीवन का उद्देश्य क्या है? जीवन क्यों है? वह जीता; और जीना पर्याप्त होता। लेकिन स्थिति ऐसी है कि जीवन हमने दुख से भर लिया है; इसलिए यह सवाल उठता है।

लाओत्से कहता है कि क्या एक सम्राट भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता? क्योंकि सम्राट को तो, जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह मिल गया है। इसलिए वह सम्राट की बात कर रहा है। अगर एक भिखारी से कहे,

तो भिखारी कहेगा, बिना उद्देश्य के कैसे जी सकता हूं? अभी एक मकान भी मेरे पास नहीं। इसलिए उसकी बात छोड़ दे रहा है। एक सम्राट की बात उठा रहा है, कि क्या एक सम्राट भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता? उसके पास सब है, जो भी मिल सकता था। लेकिन वह भी बिना उद्देश्य के नहीं जी सकता। क्यों? क्योंकि चीजों से उद्देश्य का कोई संबंध नहीं है। उद्देश्य से जीने की बीमारी हमारे मन की बीमारी है। सब मिल जाए, तो भी मन पूछता है कि क्यों? किसलिए? पूछता ही चला जाता है।

इसलिए बहुत अजीब घटना घटती है। गरीब आदमी इतना दुखी कभी नहीं होता, जितना अमीर आदमी दुखी हो जाता है। और अगर अमीर होकर भी कोई दुखी न हुआ हो, तो समझना कि अभी गरीब है। अमीर होने का लक्षण ही यही है कि आदमी इतना दुखी हो जाए कि दुख से बचने का कोई उपाय न सूझे। अमीर होने का मतलब ही यही है कि वे सब चीजें मिल गईं जिनसे आशा थी कि सुख मिलेगा, और सुख नहीं मिला। सब चीजें इकट्ठी हो गईं और आदमी बीच में खड़ा है। और अब कुछ पाने को भी नहीं बचा। और जो पाना चाहा था, वह मिला भी नहीं। तब दुख का जन्म होता है। गरीब आदमी कष्ट में रहता है, दुख में कभी नहीं। कष्ट का मतलब होता है, कोई चीज की कमी है। कष्ट हमेशा अभाव से होता है। रोटी नहीं है, पेट खाली है, तो कष्ट होता है। दुख होता है, जब पेट भरा होता है और भरेपन का बिल्कुल अनुभव नहीं होता। सोने को बिस्तर नहीं है, तो कष्ट होता है। दुख तब होता है, जब बिस्तर तो श्रेष्ठतम उपलब्ध है और सोना मुश्किल हो गया। कष्ट होता है अभाव से, दुख होता है भाव से। कष्ट होता है किसी चीज की कमी से, और दुख होता है किसी चीज के होने से। कष्ट गरीब आदमी का हिस्सा है, दुख अमीर आदमी का हिस्सा है। तो जब दुख हो तो समझना चाहिए आदमी अमीर हुआ।

यह दुख क्या है? यह दुख यही है कि जब तक हम दौड़ते रहते हैं, दौड़ते रहते हैं, लगता है कोई चीज पाने को मंजिल है, तो जीवन में रस मालूम होता है। इसलिए गरीब आदमी की जिंदगी में एक रस होता है। क्योंकि उद्देश्य दूर होते हैं--कल, भविष्य में, जन्म के बाद। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि परलोक की कल्पना गरीब का संतोष है। थोड़ी दूर तक सच है। क्योंकि गरीब को अगर जीना हो, तो परलोक की कल्पना के बिना वह जी नहीं सकेगा। दौड़ेगा कैसे? उठेगा कैसे? चलेगा कैसे? और अगर परलोक हटा दो, तो फिर कोई समाजवाद, कोई साम्यवाद, कोई उटोपिया, इसी जमीन पर; लेकिन कल। नहीं तो गरीब आदमी जीएगा कैसे? कोई न कोई कल चाहिए, चाहे परलोक में हो वह सपने का लोक, और चाहे जमीन पर हो; लेकिन कल। तो गरीब आदमी दौड़ लेता है--लक्ष्य, उद्देश्य। लेकिन अगर सभी उद्देश्य पूरे हो जाएं और सभी लक्ष्य उपलब्ध हो जाएं, तो पहली दफे पता चलेगा कि यह तो दौड़ बिल्कुल बेकार हो गई। उद्देश्य सब पूरे हो गए, मंजिल सामने आ गई; और हाथ में कुछ भी नहीं है।

इसलिए आज अगर समृद्ध देशों में समृद्ध देशों के दार्शनिक अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस की बात करते हैं, तो विचारणीय है। चाहे सार्त्र, चाहे कामू, चाहे कोई और, हाइडेगर, वे सभी पश्चिम के विचारशील लोग एक ही बात कर रहे हैं कि जीवन बिल्कुल अर्थहीन है। यह अर्थहीनता जीवन की नहीं है, यह हमने अर्थहीनता अपने हाथ से पैदा की है। क्योंकि हमने जीवन को सोद्देश्य जीने की कोशिश की है। अब उद्देश्य पूरे हो गए हैं और अर्थ हाथ में नहीं आया, इसलिए हम परेशान हैं।

जब भी कोई आदमी कहता है मैं बिल्कुल निराश हो गया, तो समझना कि उसकी आशा के कारण ही हुआ है। जिस आदमी ने आशा नहीं बांधी, वह निराश कभी नहीं होता। आप मुझे आकर कभी निराश नहीं कर सकते, क्योंकि मैं आपसे कोई आशा ही नहीं बांधता। तो आप कुछ भी करें, कुछ भी व्यवहार करें, आप मुझे

निराश नहीं कर सकते। क्योंकि मैंने पहली भूल ही नहीं की, आपके हाथ में वह ताकत ही नहीं दी। मैंने कभी आपसे कोई आशा नहीं बांधी। लेकिन मैं आपसे आशा बांध लूं, छोटी, सस्ती आशा बांध लूं कि रास्ते पर निकलेंगे तो कम से कम हाथ जोड़ कर नमस्कार करेंगे, तो भी आप मुझे निराश कर सकते हैं। आप मेरे मालिक हो गए। आज निकले रास्ते पर और आपने मुंह दूसरी तरफ कर लिया और नमस्कार नहीं किया, तो मेरी छाती में छुरे का घाव हो जाएगा। निराश हो गया मैं। तब मैं कहूंगा, जीवन बिल्कुल बेकार है। इस आदमी पर इतना भरोसा किया था और यह नमस्कार तक नहीं कर रहा है! अगर आशा बांधी, तो निराशा हाथ लगती है; अगर उद्देश्य बनाया, तो एक दिन निरुद्देश्यता के गड्ढे में गिर जाना पड़ता है।

लाओत्से कहता है, बनाओ ही मत, जीवन को जीओ बिना उद्देश्य के। और तब विषाद तुम्हारे भाग्य में कभी भी फलित नहीं होगा। तब तुम प्रतिक्षण ताजे और नए और आनंद से भरपूर हो सकोगे।

तो पहली तो बात, बड़ा विरोध लाओत्से का है उद्देश्य से। छोड़ दो उद्देश्य। मांगो ही मत भविष्य से कुछ। फिर भविष्य जो भी दे देगा, अनुग्रह है। मांगो ही मत। मांगा कि उपद्रव शुरू हो जाता है। और हम सब मांगते हैं। इसलिए हमारा पूरा जीवन एक उपद्रव हो जाता है। संबंध हों, तो हम मांगते हैं। अगर मैं किसी से प्रेम करूं, तो मांगता हूं। कल सुबह से फिर ललचाई आंखों से देखता हूं कि उसका प्रेम मुझे मिले। तब सब दुख हो जाता है। आदर, तो आदर मांगने लगता हूं। दया, तो दया मांगने लगता हूं। जो भी मेरी मांग है, वही फिर मुझे विषाद में गिराती चली जाती है।

और विषाद में गिर कर मैं मांगना बंद नहीं करता; मजे की बात यह है। अगर मैं आपसे नमस्कार मांगता था और आपने नहीं दी, तो इससे मैं यह नहीं सोचता कि मांगना ही बंद कर दूं। क्यों गुलाम बनता हूं? नहीं, मैं किसी दूसरे से मांगना शुरू कर देता हूं। कि यह आदमी गलत साबित हुआ, तो कोई दूसरा आदमी सही साबित होगा। लेकिन मेरी पुरानी आदत जारी रहती है। अगर मेरा प्रेम एक जगह असफल होता है, तो मैं दूसरे व्यक्ति से प्रेम करना शुरू कर देता हूं। अगर एक सीढ़ी पर मुझे रास्ता नहीं मिलता, तो मैं दूसरी सीढ़ी से अहंकार की खोज कर लेता हूं। अगर एक तरफ महत्वाकांक्षा टूटती है, तो मैं दूसरे मार्ग खोज लेता हूं। लेकिन मैं यह कभी नहीं सोचता कि क्या ऐसा भी नहीं हो सकता--लाओत्से यही कहता है--क्या ऐसा नहीं हो सकता कि बिना उद्देश्य के कोई जीए?

हो सकता है। कठिन है, क्योंकि हमारा सारा शिक्षण उद्देश्य का है। कठिन है, क्योंकि हमारी पूरी संस्कृति उद्देश्य सिखाती है। कठिन है, क्योंकि समाज हमें बनाता ही उद्देश्य के लिए है। बाप के जो-जो उद्देश्य अधूरे रह गए, वह अपने बेटे की छाती में आरोपित कर जाता है। मां के जो-जो उद्देश्य अधूरे रह गए, वह उसकी बेटी में बीज डाल जाती है। मनसविद कहते हैं कि हर बेटा अपने बाप की निराशाओं-आशाओं का फिर से विस्तार करता है। हर बाप मरते दम तक, आखिरी दम तक इसी कोशिश में रहता है कि जो काम वह नहीं कर पाया, उसका बेटा पूरा कर जाए। आशाएं हमारी टूटती नहीं हैं। हम उन आशाओं को शाश्वत करना चाहते हैं।

इसलिए पुराने शास्त्र तो कहते हैं कि जिसका बेटा नहीं हुआ उसका जीवन बेकार है। बड़े मजे की बात है। जीवन अपना है, लेकिन बेटे के न होने से बेकार हो जाएगा। क्यों? क्योंकि अगर बेटा न हुआ, तो तुम्हारी अधूरी आकांक्षाओं का क्या होगा? तुम किसके कंधे पर सवार होकर शाश्वत की यात्रा पर निकलोगे? इसलिए बेटा तो होना ही चाहिए। तो अपना भी न हो, तो उधार भी लिया जा सकता है, गोद भी लिया जा सकता है। लेकिन मेरी अधूरी, दुष्पूर आकांक्षाओं को कोई तो अपने कंधे पर लेकर चले! मैं नहीं रहूंगा, लेकिन मेरी आशाएं--आश्चर्य है, मैं भी नहीं रहूंगा, फिर भी मेरी आशाएं बनी रहें।

लाओत्से कहता है, तुम भले रहो, आशाओं को जाने दो। और हम ऐसे हैं कि हम भला मिट जाएं, लेकिन हमारी आशाएं न मिटें।

बेटों को मरते वक्त बाप कह जाते हैं कि ध्यान रखना अपने वंश की परंपरा का। उसी के अनुसार चलना। जो नहीं हम कर पाए, तुम करके दिखाना। आश्चर्य है, तुम भी कोरे गए, तुम व्यर्थ गए, तुम बेटे को भी व्यर्थ किए जा रहे हो! लेकिन हर बाप अपने रोगों को अपने बेटे को दे जाता है। हर पीढ़ी अपनी बीमारियां बड़ी सुविधा से, बड़ी व्यवस्था से नई पीढ़ी को सौंप जाती है धरोहर में। और इसलिए हर नई पीढ़ी और ज्यादा बीमार होती चली जाती है।

लोग कहते हैं, कलियुग कैसे आया? कलियुग आने का ढंग है यह। अगर दस हजार साल से हर बाप अपनी बीमारी बेटे को देता चला जा रहा है, तो बीमारियां तो बढ़ती चली जा रही हैं। और बेटे की ताकत! तो बीमारियों का ढेर होता चला जा रहा है। यह कलियुग आता है तुम्हारे सतयुग की सारी बीमारियों का संग्रह है। दशरथ राम को दे गए होंगे। राम लव-कुश को दे गए होंगे। और चला आ रहा है। तो एक-एक बेटे की छाती पर भारी पहाड़ इकट्ठे हो गए हैं। और उन पहाड़ों के नीचे वह दबा जा रहा है। लेकिन बाप देना चाहता है, क्योंकि अधूरी आशा अभी भी टिमटिमाती रहती है कि शायद कोई पूरा कर ले, मेरे खून का कोई हिस्सा पूरा कर ले।

लाओत्से कहता है कि क्या यह नहीं हो सकता कि तुम उद्देश्य से जीयो ही मत; तुम सिर्फ जीओ!

तथाकथित महात्मागण कहेंगे, वैसा जीवन तो पशुओं जैसा हो जाएगा, तो पशुओं जैसा हो जाएगा। एक अर्थ में वे ठीक कहते हैं और एक अर्थ में गलत कहते हैं। एक अर्थ में पशुओं जैसा हो जाएगा, क्योंकि पशु क्षण में ही जीते हैं। कल का उन्हें पता नहीं। टाइम कांशसनेस तो पशु को समय की कोई कल्पना नहीं होती। इसलिए वह जोड़ भी नहीं सकता। अतीत का भी स्मरण नहीं रख सकता ज्यादा। भविष्य का भी बहुत ख्याल नहीं रख सकता। बहुत छोटा सा उसका समय का दायरा है। वह उसी में जीता है।

एक अर्थ में तो वे ठीक कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति, जो निरुद्देश्य जीता है, पशु की तरह हो जाएगा। लेकिन एक अर्थ में बिल्कुल गलत कहते हैं। क्योंकि ऐसा जो व्यक्ति है, वह इसलिए नहीं क्षण में जीता कि उसे कल का पता नहीं है। उसे कल का पूरी तरह पता है, आपसे ज्यादा पता है; इसीलिए वह क्षण में जीता है। उसे पता है कि कल सिवाय विषाद के कुछ भी नहीं लाता। उसे पता है कि कल तक खींचने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए नहीं कि उसे समय का पता नहीं है, कि उसकी कोई समय की धारणा में कमी है। सच तो यह है कि समय का उसे इतना पता है कि समय उसे धोखा नहीं दे सकता। तो एक अर्थ में तो वह पशु जैसा जीएगा, पशु जैसा सरल हो जाएगा। वैसे आदमी की आंख में गाय की आंख जैसी झलक आ जाएगी। एक अर्थ में तो वह ऐसा हो जाएगा। और दूसरे अर्थ में वह परमात्मा जैसा हो जाएगा, क्योंकि समय उसे धोखा नहीं दे सकता।

लेकिन कठिनाई है। मैं अभी एक जैन मुनि विद्यानंद की एक छोटी सी किताब देख रहा हूं--समय का मूल्य। तो जैसा साधारण बुद्धि कहती है, एक क्षण को भी व्यर्थ मत खोओ, क्योंकि समय बहुत मूल्यवान है। इसलिए व्यर्थ मत खोओ, उस समय से कुछ कमाओ, अर्जित करो। दुकानदार ऐसी बात कहे, समझ में आता है। दुकानदार लिखे ही रहता है, टाइम इ.ज वेल्थ; वह लिखे रहता है, समय धन है। लेकिन एक मुनि भी यही कहता है कि समय धन है, खोओ मत। इसको मोक्ष पाने में लगाओ, इसको आत्मा की खोज में लगाओ, इसको पुण्य में लगाओ। देखो, समय खो न जाए! क्योंकि समय लौट कर नहीं आएगा। लेकिन किसी चीज को पाने में लगाओ, अन्यथा खो गया, मतलब यह है। किसी चीज को पाने में लगाओ, अन्यथा खो गया। अगर कुछ न पाया, तो खो गया।

लाओत्से जो कह रहा है, वह गहरी धार्मिक बात है। वह दुकानदार की भाषा नहीं है।

और असल में, जो साधु दुकानदारों को प्रभावित कर पाते हैं, उसका कारण कुल इतना ही होता है कि भाषा दोनों की एक ही होती है। नहीं तो प्रभावित भी नहीं कर सकते। दुकानदार भी सिर हिलाता है कि बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, टाइम इ.ज वेल्थ, समय धन है, बिल्कुल है। अब रह गई बात इतनी कि उस धन की परिभाषा क्या करें। इसी जमीन में तिजोरी भरने को धन कहें कि पुण्य को धन कहें, यह परिभाषा की बात है। लेकिन समय धन है। और जिसने गंवाया, वह बेकार गया। कमाओ, समय को नियोजित करो और कुछ कमाओ, किसी उद्देश्य पर समर्पित करो, तो ही तुम धनी हो पाओगे। चाहे तिजोरी वाले धनी, चाहे पुण्य वाले धनी, लेकिन धनी तुम तब ही हो पाओगे, जब समय को तुम धन में बदल लो।

लाओत्से कहता है, समय को बदलना ही मत धन में। समय जीवन है, तुम उसे जी लो। तुम उसमें डूब जाओ। तुम उसमें नहा लो। तुम उससे कुछ आगे पाने की चेष्टा मत करो। अभी, अभी इसी समय तुम उसमें इतने लीन हो जाओ कि तुम और तुम्हारे समय में कोई फासला न रह जाए। समय धन नहीं है, समय जीवन है। और समय से कुछ भी नहीं कमाया जा सकता, क्योंकि समय स्वयं ही अपना लक्ष्य है। जो समय से कमाने जाएगा, वह दरिद्र भिखारी की तरह मरेगा। जो समय को जीएगा अभी और यहीं, वह सम्राट हो जाएगा। सम्राट हो जाएगा इसलिए कि हर क्षण जीकर जीवन की संपदा, जीवन का रस, जीवन की अनुभूति प्रगाढ़ हो जाएगी। वह जीवंत से जीवंत होता चला जाएगा, उसका जीवन निखरता चला जाएगा। हर क्षण समय का उसके जीवन की तलवार पर और धार रख जाएगा। और उसके जीवन की सुरा और सघन, और गहन हो जाएगी। और उसके जीवन का नृत्य और कुशल, और आनंदपूर्ण हो जाएगा। लेकिन यह हो जाएगा यहीं और अभी--एक।

और दूसरा, लाओत्से कहता है कि क्या वह स्वर्ग के अपने दरवाजे को खोलने और बंद करने की प्रक्रिया में एक स्त्रैण पक्षी की तरह काम नहीं कर सकता?

इसे थोड़ा समझना पड़े। एक तो पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है और एक स्त्रैण चित्त के काम करने का ढंग है। लाओत्से स्त्रैण चित्त के पक्ष में है। एक पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है; पुरुष चित्त के काम करने का ढंग है आक्रमण, एग्रेशन। पुरुष से मतलब नहीं है, यह सिर्फ प्रतीक है। आक्रमण की जो व्यवस्था है, किसी चीज को पाना हो तो एक ढंग हैः आक्रमण करो और पा लो। इसे लाओत्से कहता है, यह पुरुष चित्त का ढंग है। एक दूसरा हैः आक्रमण मत करो, सिर्फ प्रतीक्षा करो और निमंत्रण दो। आक्रमण नहीं, निमंत्रण। एग्रेशन नहीं, इनवीटेशन। इसे लाओत्से स्त्रैण चित्त की व्यवस्था कहता है।

अगर हम उद्देश्यपूर्ण जीवन जीते हैं, तो हम पुरुष चित्त की तरह जीएंगे। क्योंकि जिसे उद्देश्य को पूरा करना है, उसे प्रतिपल आक्रमण करना पड़ेगा। रोज उसे आक्रमण करना पड़ेगा कल पर, क्योंकि उद्देश्य कल है। और आक्रमण की तैयारी करनी है। तो वह रोज आक्रमण की तैयारी और आक्रमण करता रहेगा। हमलावर होगा वह। जिंदगी के साथ उसका संबंध दोस्ती का नहीं, दुश्मनी का होगा। जैसा पश्चिम में लोग कहते हैं कि प्रकृति पर विजय पानी है! उसकी भाषा विजय की होगी। जो भी चीज है, उसको जीतना है।

लाओत्से कहता है, यह जीतने वाला चित्त सब कुछ हार जाता है। जिंदगी की पहेली में जो जीतने चलता है, वह हार जाता है। क्योंकि जीतना तो सदा भविष्य में ही हो सकता है, कल ही हो सकता है। आज तो तैयारी में ही बिताना पड़ता है, आज तो तैयारी ही करनी पड़ती है। कल के लिए तैयारी करनी पड़ती है। प्रेम तो अभी हो सकता है, लेकिन युद्ध अभी नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम के लिए किसी तैयारी की जरूरत नहीं है, युद्ध के

लिए तैयारी की जरूरत है। ख्याल करते हैं आप? प्रेम तो अभी हो सकता है, यहीं, इसी क्षण। लेकिन युद्ध अभी नहीं हो सकता। युद्ध के लिए तैयारी करनी पड़ती है।

इतिहासविद कहते हैं कि अब तक इतिहास ने दो तरह के समय जाने हैंः युद्ध का समय और युद्ध की तैयारी का समय। शांति तो अब तक जानी नहीं। दस-पंद्रह साल एक मुल्क को युद्ध की तैयारी करनी पड़ती है, फिर युद्ध करना पड़ता है; फिर तैयारी करनी पड़ती है, फिर युद्ध करना पड़ता है। आक्रमण पुरुष चित्त का लक्षण हैः जीतो, युद्ध करो, संघर्ष करो। जगत एक शत्रु है। और अस्तित्व और हमारे बीच कोई मैत्री नहीं है। निमंत्रण तो मित्र को देना पड़ता है, प्रेमी को। आक्रमण शत्रु पर करना होता है।

स्त्रैण चित्त का अर्थ लाओत्से लेता है, वह जो ग्राहकता की क्षमता है।

पुरुष और स्त्री की जो यौन-व्यवस्था है, उसमें बुनियादी फर्क है। पुरुष की यौन-व्यवस्था आक्रमण की है। इसलिए कोई स्त्री बलात्कार नहीं कर सकती। उसकी यौन-व्यवस्था से बलात्कार घटित नहीं हो सकता। अगर स्त्री को बलात्कार भी करना हो, तो पुरुष की सहायता की जरूरत है। स्त्री बलात्कार करवा सकती है, कर नहीं सकती। क्योंकि पुरुष अगर सहयोग न दे, तो स्त्री बलात्कार कैसे करे? लेकिन पुरुष बलात्कार कर सकता है, स्त्री के सहयोग की अनिवार्यता नहीं है। बल्कि कुछ लोगों को बलात्कार के सिवाय प्रेम में रस ही नहीं आता, क्योंकि बलात्कार में ही आक्रमण का पूरा रस मिलता है।

इसलिए जो स्त्री उपलब्ध हो जाती है, पुरुष को उसमें रस नहीं आता। क्योंकि जीत का काम ही समाप्त हो गया। जो स्त्री उपलब्ध नहीं होती, उसमें उसे रस आता है। तो जितनी अनुपलब्ध स्त्री हो, पुरुष के लिए उतना रस का कारण होती है। जितनी दूर हो, उतना रस का कारण होती है। क्योंकि उसे पाना मुश्किल है, तो पाने के लिए संघर्ष और युद्ध और आक्रमण और तैयारी करनी पड़ती है। उसमें उसके पुरुष चित्त को, आक्रामक चित्त को रस मिलता है।

स्त्री काम-व्यवस्था से भी आक्रमण नहीं कर सकती और उसका चित्त भी आक्रामक नहीं है। वह ग्राहक है, रिसेप्टिव है। वह सिर्फ स्वीकार करती है, वह सिर्फ अंगीकार करती है। उसके अंगीकार में ही जगत के प्रति, जीवन के प्रति एक सदभाव है।

लाओत्से के हिसाब से अस्तित्व से हमारे दो तरह के संबंध हो सकते हैंः एक संबंध आक्रमण का; और एक संबंध मैत्री का, प्रेम का, निमंत्रण का। तो वह कहता है, एक स्त्रैण पक्षी की तरह, एक स्त्रैण चित्त की तरह, क्या यह नहीं हो सकता कि तुम अपने स्वर्ग के दरवाजे को भी इस तरह ठोंको-पीटो मत, धकाओ मत।

स्वामी राम कहा करते थे कि दरवाजे दो तरह से हो सकते हैं। एक तो दरवाजा जिसमें पुश लिखा रहता है--धक्का दो! और एक दरवाजा जिस पर पुल लिखा रहता है--अपनी तरफ खींचो!

स्त्रैण चित्त का जो दरवाजा है, उस पर है पुल--खींचो। स्त्री सिर्फ खींचती है। जाती नहीं, सिर्फ बुलाती है। पुरुष का चित्त जो है, वह धक्के देता है। यह जो धक्के देने की चेष्टा है, क्या स्वर्ग के दरवाजे खोलने में भी तुम आक्रामक की तरह प्रवेश करोगे? क्या एक नेपोलियन और एक सिकंदर और एक हिटलर की तरह स्वर्ग के दरवाजे पर भी पहुंच जाओगे? क्या वहां भी तुम हमला करोगे? परमात्मा पर भी हमला करोगे?

पुरुष परमात्मा पर भी हमला करने ही निकलता है। जब कोई पुरुष परमात्मा को खोजने निकलता है, तो उसका भाव ऐसा होता है कि देखें, कहां है? खोज कर रहेंगे! वह मीरा की तरह नाचता हुआ नहीं जाता परमात्मा की तरफ, एग्रेसिव होता है। उसकी सारी चेष्टा ऐसी होती है कि खोज कर रहेंगे। शायद इसीलिए पुरुष... । पुरुष से मतलब पुरुष ही नहीं, क्योंकि पुरुष भी मीरा की तरह जा सकते हैं, एक कबीर नाचता हुआ

जा सकता है। और मीरा भी चाहे तो पुरुष की तरह जा सकती है। ये सिर्फ प्रतीक हैं, ख्याल रखना। पुरुष से मतलब पुरुष का ही नहीं, स्त्री से मतलब स्त्री का ही नहीं। स्त्री पुरुष की तरह व्यवहार कर सकती है, पुरुष स्त्री की तरह व्यवहार कर सकता है।

स्त्रैण चित्त खोजने भी जाता है, तो निमंत्रण की तरह। और अगर स्त्रैण चित्त को न मिले, तो वह यह नहीं कहेगा कि तू कसूरवार है, कहां छिपा है कि मुझे मिलता नहीं? स्त्रैण चित्त इतना ही कहेगा कि जरूर मेरे निमंत्रण में कमी रह गई और मेरी प्रतीक्षा की पुकार पूरी नहीं थी। तू तो यहीं कहीं है। लेकिन मैं अपने द्वार नहीं खोल पाया। मेरे द्वार अधखुले या बंद रह गए।

इस फर्क को समझ लें। ईश्वर को खोजने का जो ज्ञानी का ढंग है, वह पुरुष का ढंग है। ईश्वर को खोजने का जो भक्त का ढंग है, वह स्त्री का ढंग है। इसलिए भक्त अगर ऐसा कहने लगे तो वह प्रतीक भाषा थी कि कृष्ण के सिवाय कोई पुरुष नहीं। वह सिर्फ प्रतीक भाषा थी, क्योंकि बाकी सब खोजने वाले हैं, तो उन्हें स्त्री होना ही चाहिए। इसका कोई और मतलब नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि बाकी सब स्त्रियां हैं।

कुछ नासमझ वैसा भी समझे। तो बंगाल में एक संप्रदाय है, सखी संप्रदाय। तो सखी संप्रदाय को मानने वाला पुरुष भी कृष्ण की मूर्ति रात छाती से लगा कर बिस्तर में सोता है, सखी बन कर।

अब मैं मानता हूं कि यह भला कितना ही सखी बन रहा हो, लेकिन एक बात पक्की है कि कृष्ण की मूर्ति यही उठा कर अपनी छाती से लगाता है। और यही रात उसको छाती से दबा कर सोता होगा; कृष्ण की मूर्ति इसकी छाती को नहीं दबाती होगी। यह भला अपने को सखी कह रहा हो, लेकिन इसका सारा ढंग पुरुष का है। यही कर रहा है कुछ, कृष्ण बिल्कुल इसमें अपराधी नहीं हैं, इसमें बिल्कुल निर्दोष हैं। अगर कभी मुकदमा चले, तो यही फंसेगा। असल में, पुरुष छोड़ नहीं सकता अपने को, कुछ करके रहेगा। किए बिना उसे चैन नहीं है।

लाओत्से कहता है, छोड़ दो, लेट गो। विश्राम में हो जाओ, चीजों को घटित होने दो। घटाने की इतनी आतुरता मत करो। इतनी जल्दबाजी और इतना आग्रहपूर्ण रुख मत रखो कि ऐसा ही हो। जो हो जाए, उसे स्वीकार करने की क्षमता रखो। और द्वार खुले रखो, और राजी रहो, जो हो जाए। और इस जगत से, अस्तित्व से शत्रुता मत लो। एक मैत्री का भाव रखो, तो जगत जो भी करवाए, वह ठीक होगा। ऐसी एक छिपी हुई सदभावना, ऐसी एक निकटता अस्तित्व के साथ कि अस्तित्व जो भी करेगा, वह ठीक होगा। इस भाव के साथ जीने का नाम स्त्रैण ढंग है।

और तीसरा सूत्र है, "जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, तो क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख सकता?"

और जब ज्ञान परिपूर्ण हो, तब भी क्या ज्ञानी होने का दंभ बचाने की जरूरत है? और जब मेधा अपनी पूरी ज्योति में जलती हो, तब भी क्या बताना पड़ेगा कि मैं ज्ञानी हूं?

असल में, जब तक कोई कहता रहता है मैं ज्ञानी हूं, तब तक जानना कि अज्ञान शेष है। क्योंकि ज्ञान कैसे दावा करेगा? ज्ञान दावेदार नहीं होता, सब दावे अज्ञान के हैं। ज्ञान कैसे कहेगा कि मैंने जान लिया? क्योंकि सच तो यह है कि जैसे ही कोई जानता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि जानना असंभव है। जैसे ही कोई जानता है, उसे यह भी पता चल जाता है कि कितना ही जानो, जानने को सदा शेष है। जैसे ही कोई जानता है, उसे पता चल जाता है कि मैंने अपने हाथ में जो चुल्लू भर पानी ले लिया है, वह उस सागर का हिस्सा है जो अनंत है और मेरी मुट्ठी में समाने वाला नहीं है। सच तो यह है कि जानता वही है, जिसकी मुट्ठी ही खो जाती है।

जानता वही है, जिसकी पकड़ ही खो जाती है। जो सागर में ऐसे लीन हो जाता है, जैसे कोई नमक की डली को डाल दे और नमक एक हो जाए, सागर के साथ एक हो जाए। बचता कहां है जानने वाला!

तो जिसे जानने की यात्रा पर निकलना है, उसे मिटने की यात्रा पर निकलने की तैयारी चाहिए। उद्देश्य जहां है, वहां मिटना नहीं हो सकता। वहां तो अहंकार मजबूत होता है। लेकिन जहां कोई उद्देश्य नहीं है, वहां अहंकार के बचने का कोई कारण नहीं। मैं अभी मिट गया, अगर मुझे कल की कोई चिंता नहीं है। अगर आने वाले क्षण में क्या होगा इसकी मेरी कोई योजना नहीं है, अगर मैंने आने वाले क्षण के साथ आग्रह नहीं रखा है कि यही होगा तो ही मैं सुख पाऊंगा अन्यथा दुखी हो जाऊंगा, तो मैं मिट गया, अभी मिट गया। क्षण आएगा, मेरा अस्तित्व भी होगा, लेकिन मेरा मैं नहीं होगा। मैं हमारी आग्रहपूर्ण योजनाओं का जोड़ है। तो जितना हमारा भविष्य से आग्रह है, उतना हमारा मैं है।

लाओत्से कहता है कि क्या जान लेने के बाद भी ऐसा नहीं जीया जा सकता कि जैसे नहीं जानता हूं?

लाओत्से से कोई पूछता सवाल, तो कभी-कभी तो लाओत्से घंटों चुप रह जाता था। पूछने वाला सवाल भूल जाता। तब लाओत्से फिर से पूछता, क्या पूछा था? वह आदमी कहता, अब तो मैं भी भूल गया, अब मैं फिर कभी आऊंगा। वह आदमी कहता कि लेकिन जब मैंने पूछा था, तब आपने जवाब नहीं दिया! तो लाओत्से कहता, मुझे जवाब पता होता, तो मैं दे देता। मैं रुका, ठहरा, मैंने प्रतीक्षा की कि शायद जवाब आ जाए, शायद जवाब आ जाए। इसलिए तुमसे फिर पूछता हूं कि तुम्हारा सवाल क्या था?

लाओत्से जिंदगी भर कुछ भी नहीं लिखा। यह छोटी सी किताब आखिरी किताब है--आखिरी और पहली। उसने कोई और किताब लिखी नहीं। जिंदगी भर शिष्य उसके कहते रहे, कुछ लिखो। लाओत्से कहता, लेकिन मैं जानता कहां हूं? और अज्ञान तुम्हारे हाथ में दे जाऊं, तो खतरनाक है। लेकिन जितना लाओत्से इनकार करता गया, इनकार करता गया, उतना लाखों लोग उस पर दबाव डालने लगे कि कुछ लिख जाओ। फिर भी लाओत्से एक रात निकल भागा बिना कुछ लिखे। वह तो सीमा पर पकड़ लिया गया मुल्क की। मुल्क छोड़ते वक्त चुंगी नाके पर पकड़ लिया गया। और चुंगी का जो आफिसर था, उसने कहा, बाहर न जाने दूंगा, जब तक कुछ लिख कर न दे दो। इस मजबूरी में लिखी है यह किताब। उसने कहा कि तीन दिन रुक जाओ यहां, अन्यथा सीमा के पार नहीं निकलने दूंगा। तो जो तुम जानते हो, वह लिख जाओ।

लाओत्से बड़ी मुश्किल में पड़ा। जिंदगी भर जो चुप रहा, चुप्पी को जिसने साधन बनाया, ज्ञान की जिसने कभी घोषणा न की, उसको लिखने की मजबूरी खड़ी हो गई; क्योंकि वह निकलने देने की बात थी। उसे जाना था मुल्क के बाहर। उसे जाना था पर्वतीय एकांत में लीन होने को सदा को। और यह आदमी जाने नहीं देगा। तो तीन रात सोया नहीं, तीन रात में यह किताब, इसको अगर किताब कह सकें तो, उसने लिखी। लेकिन पहली बात यही लिखी कि जो जाना जाता है, वह कहा नहीं जा सकता; और जिसे शब्द कहते हैं, वह सत्य नहीं है। यह उसने पहले लिखा। फिर पीछे किताब शुरू की।

तो वह कहता है कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो जान ले, वह न जानने जैसे भाव में प्रतिष्ठित हो जाए?

हो नहीं सकता, ऐसा होता ही है। ऐसा होता ही है। लेकिन इस बात को भी एक डॉगमेटिक एसर्शन, एक रूढ़ वक्तव्य न बन जाए, इसलिए झिझकते हुए लाओत्से प्रश्न के रूप में कहता है। वह कहता है, जब उसकी मेधा सभी दिशाओं की ओर अभिमुख हो, जब वह सब कुछ जानने की स्थिति में खड़ा हो जाए, जब सब द्वार उसके लिए खुल गए हों और सभी आयाम से प्रकाश उस पर पड़ता हो, तो क्या वह ज्ञानरहित होने जैसा नहीं दिख

सकता? प्रश्न में इसलिए रखता है, ताकि एक झिझक, जो कि परम ज्ञानी का लक्षण है। झिझक परम ज्ञानी का लक्षण है, बेझिझक अज्ञानी वक्तव्य देते हैं। झिझक ज्ञानी का लक्षण है।

महावीर से कोई पूछता था, तो वे स्यात लगाए बिना वक्तव्य नहीं देते थे। कोई उनसे पूछता, ईश्वर है? तो महावीर कहते, स्यात। परहेप्स, शायद है। कभी कहते, स्यात नहीं है। कभी कहते, शायद दोनों ही बातें सच हैं।

परम ज्ञानी गणित जैसे वक्तव्य नहीं दे सकता कि दो और दो चार होते हैं। क्योंकि जीवन इतनी बड़ी पहेली है, इतना बड़ा रहस्य है कि जिसने बहुत साफ-साफ वक्तव्य दिए, वह ठीक से समझ ले कि बहुत कुछ उसे छोड़ देना पड़ेगा। वक्तव्य को साफ बनाने के लिए बहुत कुछ छोड़ देना पड़ेगा। वह भी जीवंत था। और जो हमने छोड़ दिया है, वह आज नहीं कल बदला लेगा।

इसलिए लाओत्से ऐसा नहीं कहता, क्योंकि वह कहना भी बहुत अथारिटेटिव, बहुत आप्त हो जाता। लाओत्से ऐसा भी कह सकता था--इस फर्क को समझें--लाओत्से यह भी कह सकता था कि जो ज्ञानी है, उसे अज्ञानी जैसा व्यवहार करना चाहिए। बात यही होती, लेकिन यह वक्तव्य अज्ञानपूर्ण हो जाता। यह वक्तव्य अज्ञानपूर्ण हो जाता।

मैंने सुना है, सुकरात के पास उस जमाने का एक बहुत बड़ा तर्कनिष्ठ, एक सोफिस्ट मिलने आया।

सुकरात तो बहुत झिझकता था। सुकरात का चित्त लाओत्से जैसा रहा होगा। अगर पश्चिम में कोई एक आदमी हुआ है जो लाओत्से के निकट पहुंचे, तो वह सुकरात है। सुकरात लोगों से सवाल पूछता था, लेकिन खुद कभी जवाब नहीं देता था। तो लोग तो... इसीलिए उसको जहर देने में एक कारण यह भी था कि लोगों को उसने बहुत परेशान कर दिया। सवाल हमेशा पूछेगा और जवाब कभी नहीं देगा। क्योंकि सुकरात कहता, मैं जानता कहां हूं? अज्ञानी हूं, इसलिए सवाल तो पूछने का मुझे हक है। लेकिन ज्ञान नहीं है, इसलिए जवाब मैं क्या दूं? और ऐसे आदमी से आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे, जो जवाब न दे और सवाल पूछे। क्योंकि सवाल तो अंतहीन पूछे जा सकते हैं। और जो खुद जवाब न दे, उससे आप एक भी सवाल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उसने कभी कोई जवाब नहीं दिया जिस पर सवाल उठाए जा सकें।

तो पूरा एथेंस सुकरात से परेशान हो गया था। रास्ते पर लोग उसे देख कर गली से बच कर निकल जाते थे कि अगर वह मिल गया और कुछ सवाल पूछ लिया, तो भीड़ इकट्ठी हो जाएगी और झंझट खड़ी हो जाएगी। क्योंकि आप जितनी बातें जानते हुए मालूम पड़ते हैं, उनमें से एक का भी आपको पता कहां है? वह तो कोई पूछता नहीं है, इसलिए आप मजे से अपने ज्ञान में थिर रहते हैं। अगर कोई पूछ ले, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। पूछते भी लोग इसीलिए नहीं हैं कि जो आपसे पूछे, वह भी झंझट में पड़ेगा। उसको भी अपना ज्ञान बचाना है। आपको अपना बचाना है। एक म्यूचुअल कांस्पिरेसी है; अज्ञानियों का एक शड्यंत्र है सामूहिक। क्योंकि अगर आपसे कोई पूछे कि ईश्वर है? तो आप ही मुश्किल में नहीं पड़ेंगे, उस आदमी से भी आप पूछ सकते हैं कि आपका क्या मानना है? वह भी कुछ मानता है। आत्मा है? वह कठिनाई खड़ी होगी। इसलिए हम अज्ञान एक-दूसरे का छेड़ते ही नहीं। अपने अज्ञान में हम ज्ञानी, आप अपने अज्ञान में ज्ञानी! हम एक-दूसरे का ज्ञान सम्हालते हैं। अशिष्टाचार है इस तरह की बातें उठाना।

यह सुकरात अशिष्ट था। सुकरात को जहर देने के पहले मजिस्ट्रेट ने कहा है कि अगर तुम यह सत्य बोलने का काम बंद कर दो, तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं। सुकरात ने कहा, लेकिन यह मेरा धंधा है। मैं सत्य बोलना बंद

कैसे कर सकता हूं? क्योंकि मैं जो बोलता हूं, वह सत्य ही होता है। तुम तो यह कह रहे हो कि मैं बोलना ही बंद कर दूं। तो फिर जीकर भी, ऐसी परतंत्रता में जीकर भी क्या होगा?

सुकरात जवाब नहीं देता, सवाल पूछता है। यह एक तर्कनिष्ठ, सोफिस्ट सुकरात को मिलने आया है। तो वह तो तर्कवादी है। उसने अपने तर्क का एक सिद्धांत सुकरात को कहा। उसने सुकरात को कहा कि इस जगत में कोई भी चीज निरपेक्ष नहीं है, एब्सोल्यूट नहीं है। कोई भी चीज इस जगत में पूर्ण नहीं है। न कोई मनुष्य पूर्ण है, न कोई सत्य पूर्ण है, न कोई सिद्धांत पूर्ण है; इस जगत में कोई भी चीज पूर्ण नहीं है। सुकरात ने उससे पूछा कि तुम्हारा यह वक्तव्य पूर्ण सत्य है या नहीं? जोश में था तर्कशास्त्री, वह भूल ही गया कि फंसा जा रहा है। उसने कहा, यह पूर्ण सत्य है। सुकरात ने कहा, अब मुझे कहने को कुछ भी नहीं बचता है। बात समाप्त हो गई। अब तुम सोचना।

जब भी हम किसी चीज की पूर्णता का दावा करते हैं, तब हमें पता नहीं कि यह जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है, दो और दो जैसा नहीं है कि चार हो जाए। कुछ छूट गया, वही हमारी मौत बनेगा। इस आदमी ने अगर ऐसा कहा होता कि जगत में कुछ सत्य पूर्ण हैं, कुछ सत्य पूर्ण नहीं हैं; इस आदमी ने ऐसा कहा होता कि शायद जगत में कोई सत्य पूर्ण नहीं है, तो सुकरात इसको दिक्कत में नहीं डाल सकता था। लेकिन इस आदमी ने कहा कि जगत में कोई सत्य पूर्ण नहीं है। इसने इसी वक्त कह दिया कि कम से कम मेरा सत्य पूर्ण है। यह इसमें अपूर्णता को कहीं गुंजाइश ही नहीं बची, कोई गुंजाइश नहीं बची। कम से कम एक बात पूर्ण है, यह तो इसने घोषणा कर ही दी। और वह एक बात भी अगर पूर्ण है, तो इसका वक्तव्य गलत हो गया।

जब भी हम घोषणाएं करते हैं रूढ़बद्ध और विपरीत को भूल जाते हैं, तो विपरीत बदला लेता है। इसलिए लाओत्से ऐसा नहीं कहता कि वह आदमी अज्ञानी है जो ज्ञान का दावा करता है, क्योंकि यह भी तो ज्ञान का दावा हो जाएगा--यह भी। इसलिए लाओत्से कहता है, क्या ऐसा नहीं हो सकता, क्या ऐसा संभव नहीं है कि जिसके सब द्वार ज्ञान के खुल गए हों, वह अज्ञानी जैसा व्यवहार कर सके? एक प्रश्न में रखता है इस बात को बहुत झिझक के साथ। यह लाओत्से की जो नमनीय प्रज्ञा है, वह जो कोमल प्रज्ञा है, वह जो तरल चेतना है, उसका लक्षण है।

ये तीन सूत्र--उद्देश्य-मुक्त जीवन, आमंत्रण से भरा हुआ भाव, ज्ञानरहित होने की तैयारी, साहस--जिस व्यक्ति में हों, उस व्यक्ति को वह जीवन का जो परम लक्ष्य है, परम जीवन जो है, वह अभी और यहीं उपलब्ध हो जाता है। उसके लिए फिर कल के लिए बाट नहीं जोहनी पड़ती। उसे फिर कल के लिए स्थगित भी नहीं करना पड़ता। फिर ऐसे व्यक्ति का मोक्ष मृत्यु के बाद नहीं, अभी और यहीं है। और ऐसे व्यक्ति का परमात्मा किसी दूसरे लोक में वास नहीं करता, अभी और यहीं, चारों तरफ से उसे घेरे हुए है। और ऐसे व्यक्ति को पाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह जाता, क्योंकि जीवन की सारी संपदा के द्वार अभी और यहीं खुल जाते हैं।

शेष हम कल बात करें।

पांच मिनट बैठेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों। जिन मित्रों को यहां नीचे खड़े होकर कीर्तन में सम्मिलित होना हो, वे भी आगे आ जाएं।

छब्बीसवां प्रवचन

ताओ की अनुपस्थित उपस्थिति

Chapter 10 : Sutra 3

Embracing The One
(continued)

The Tao produces all things and nourishes them;
it produces them, and does not claim them
as its own.
It does all, and yet does not boast of it.
It presides over all, and yet does not control them.
This is what is called
The mysterious quality of the Tao.

अध्याय 10 : सूत्र 3

अद्वय की स्वीकृति
(क्रमशः)

ताओ सभी पदार्थों को जन्म देता है और भरण-पोषण करता है; वह उनका जन्मदाता है, फिर भी अपने मालिक होने का दावा नहीं करता।

वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दंभ नहीं है; वह सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा (अध्यक्ष) है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।

इसे ही ताओ की रहस्यमयी विशेषता कहते हैं।

अस्तित्व में जो जितना ही सूक्ष्म है, उतना ही अदृश्य है; जितना स्थूल है, उतना दृश्य है। जो दिखाई पड़ता है, वह उथला है; जो नहीं दिखाई पड़ता, वही गहरा है। इसलिए जो लोग परमात्मा को देखने निकल पड़ते हैं, वे बुनियादी भूल में पड़ जाते हैं। ईश्वर-दर्शन शब्द ही असंगत है। जो दिखाई पड़ सकता है, वह ईश्वर नहीं होगा। जो दिखाई पड़ जाए, वह दिखाई पड़ जाने के कारण ही ईश्वर नहीं रह जाएगा।

आंख जिसे देख सकती है, वह पदार्थ है। हाथ जिसे छू सकते हैं, वह पदार्थ है। कान जिसे सुन सकते हैं, वह पदार्थ है। मन जिसे जान सकता है, वह पदार्थ है। असल में, जिसे भी हम जान लेते हैं, उसकी सीमा, आकार

और रूप बंध जाता है। हमारे सारे जानने के पार भी जो सदा शेष रह जाता है; हम जिसे स्पर्श करना भी चाहें, तो भी नहीं कर पाते; हम जिसे देखना भी चाहें, तो भी देख नहीं पाते; और फिर भी हम नहीं कह सकते कि वह नहीं है, उसका नाम ही परमात्मा है।

तीन बातें हैं। एक, जो दिखाई पड़ता है, वह है। इंद्रियां जिसका अनुभव करती हैं, वह है। प्रत्यक्ष का यही अर्थ है कि जो आंखों के सामने है। उसे ही हम कहते हैं वह सत्य है, यथार्थ है। जिसे हम नहीं देख पाते, जिसे हम नहीं छू पाते, स्वभावतः हमारा मन कहता है वह नहीं है। क्योंकि होता, तो हम देख पाते, छू पाते, जान पाते! तो दूसरी कोटि है, जो नहीं है। उसे हम देख भी नहीं पाते, छू भी नहीं पाते, जान भी नहीं पाते।

अगर ये दो ही कोटियां हैं अस्तित्व की, तो परमात्मा की कोई भी जगह नहीं है, तो धर्म का कोई उपाय नहीं है, तो आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, तो प्रेम की कोई भी संभावना नहीं है और सब प्रार्थनाएं झूठी हैं। लेकिन एक तीसरी कैटेगरी, एक तीसरी कोटि भी है। दो मैंने कहीं। एक, जिसे हम देख पाते, छू पाते, समझ पाते, वह है। जो नहीं है, उसे हम देख नहीं पाते, समझ नहीं पाते, छू नहीं पाते। इन दोनों से अलग एक कोटि और भी है, कि जो है, लेकिन जिसे हम छू नहीं पाते, समझ नहीं पाते, स्पर्श नहीं कर पाते, और फिर भी उसे हम इनकार नहीं कर सकते। यह तीसरी कोटि ही ईश्वर है। लाओत्से इसी तीसरी कोटि को ताओ कहता है।

ताओ का अर्थ है धर्म, ताओ का अर्थ है नियम, ताओ का अर्थ है परम सत्ता का आधार, परम सत्ता, दि अल्टीमेट रियलिटी। यह तीसरा--जिसे ताओ कह रहा है लाओत्से--चाहे ईश्वर कहें, चाहे आत्मा कहें, चाहे सत्य कहें, नाम हमारे दिए हुए हैं, नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता। बुद्ध ने इसे निर्वाण कहा है, शून्य कहा है। बुद्ध ने चूंकि इसे शून्य कहा, न समझने वाले लोगों ने समझा कि बुद्ध कह रहे हैं कि वह नहीं है। अगर बुद्ध को यही कहना होता कि वह नहीं है, तो शून्य भी कहने की जरूरत न थी। बुद्ध ने कहा, वह शून्य है। उसके होने को इनकार नहीं किया; नाम उसे शून्य का दिया। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि शून्य, दोनों ही बातें समाहित हैं शून्य में। शून्य है भी और नहीं भी है। वह कुछ ऐसा है जैसे कि न हो। उसकी मौजूदगी गैर-मौजूदगी जैसी है। उसके होने में भी वह प्रगाढ़ होकर प्रकट नहीं होता। उसका होना ठोस नहीं है। इसलिए जो बहुत ठोस ढंग से उसे पकड़ना चाहें, वे वंचित रह जाते हैं। और जो इस आशा में घूमते रहते हैं कि हम किसी तरह जैसे और वस्तुओं को जानते हैं, इसी ढंग से उसे भी जान लें, तो वे उसे कभी भी नहीं जान पाते हैं। उसे जानने का ढंग ही बदलना होगा।

इसे हम कुछ तरह से समझें। मैं कहता हूं कि मेरे हृदय में आपके लिए प्रेम है। लेकिन मेरे हृदय को काट कर मेरे प्रेम को किसी भी तरह समझा नहीं जा सकता। और जो मेरे हृदय को काट कर देखने चलेगा, वह इस नतीजे पर पहुंचेगा कि मैं झूठ बोल रहा था। क्योंकि प्रेम कहीं मिलेगा नहीं।

प्रेम कोई वस्तु नहीं है, जिसे हम खोज पाएं। प्रेम कोई पदार्थ नहीं है, जिसे प्रयोगशाला में पकड़ा जा सके और जिसे यंत्र परीक्षा कर लें। और अगर चिकित्सक सब तरह से जांच-पड़ताल करेगा, शरीर-शास्त्री सब तरह खोजेगा, तो और बहुत चीजें हाथ में लगेंगी, जिनका शायद प्रेमी को पता भी नहीं था--हड्डियां लगेंगी, मांस-मज्जा लगेगी, मांस-पेशियां लगेंगी हाथ, फेफड़े लगेंगे, फुफ्फस लगेगा हाथ--सब कुछ लगेगा, प्रेमी को जिसका पता भी नहीं था। जब उसने हृदय पर हाथ रख कर कहा था कि मेरा हृदय प्रेम से भरा है, तो जिस चीज को वह कह रहा है, वही भर शरीर-शास्त्री के हाथ नहीं लगेगी; और बहुत कुछ लगेगा, जिसका उसे पता भी नहीं है। और शरीर-शास्त्री अपनी टेबल पर फैला कर रख देगा सब कुछ। लेकिन उसमें प्रेम कहीं भी नहीं होगा। निश्चित ही शरीर-शास्त्री कहेगा, प्रेम जैसी कोई भी बात नहीं है, यह आदमी या तो झूठ बोलता था या भ्रांति में था। दो

ही उपाय हो सकते हैंः कि या तो यह जान कर झूठ बोल रहा था या अनजाने झूठ बोल रहा था, क्योंकि स्वयं भ्रांति में पड़ गया था।

लेकिन एक आश्चर्य की बात है कि शरीर-शास्त्री से अगर हम यह पूछें कि यह भी मान लिया जाए कि प्रेम नहीं था, भ्रांति थी, तो भ्रांति भी तो तुम्हारी पकड़ में कहीं नहीं आती! यह आदमी प्रेम में नहीं था, भ्रांति में था, तो भ्रांति भी तो तुम्हारी टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आती! यह आदमी भ्रांति में नहीं था, असत्य बोल रहा था, तो भी वह असत्य प्रेम जो यह बोल रहा था, जो असत्य इसके भीतर घटित हो रहा था, वह भी तुम्हारी टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आता! असल में, शरीर-शास्त्री को कहना चाहिए कि यह आदमी था ही नहीं जो बोल रहा था, क्योंकि वह आदमी ही कहीं पकड़ में नहीं आता है। और जो पकड़ में आता है, वहां बोलने वाला कोई भी नहीं है। लेकिन यह तो शरीर-शास्त्री भी नहीं कह पाएगा, क्योंकि वह भी बोल रहा है।

तो प्रेम को हमें कहना पड़ेगा कि प्रेम का अस्तित्व है, लेकिन वस्तुओं जैसा अस्तित्व नहीं है। कुछ भिन्न अस्तित्व है। ए डिफरेंट डायमेंशन ऑफ एक्झिस्टेंस! कोई दूसरा ही आयाम है प्रेम का। प्रेम होता है, लेकिन वस्तुओं जैसा नहीं है। इसलिए ध्यान रखें, प्रेम जितना अनुपस्थित होता है, उतना गहन होता है। और जितना उपस्थित हो जाता है, उतना क्षुद्र हो जाता है। जब कोई किसी से कहता है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तब वह प्रेम को क्षुद्र किए दे रहा है। क्योंकि इतना कह कर भी हम प्रेम को इंद्रियों की पकड़ में ला देते हैं। कम से कम कान तो सुन लेते हैं।

इसलिए बुद्ध जैसा व्यक्ति तो किसी से यह भी नहीं कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। क्योंकि यह कहना भी प्रेम की हत्या है। अगर प्रेम है, तो उसको इतना भी उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। और अगर वह है, तो वह अनुभव में आएगा। और अगर वह गैर-उपस्थित हुए अनुभव में नहीं आ सकता, तो उसके अनुभव में आने का कोई प्रयोजन भी नहीं है।

लेकिन क्या कभी आपने ऐसा अनुभव किया है, कोई ऐसा प्रेम, जो कहा न गया हो, बोला न गया हो, प्रेमी ने आपका हाथ स्पर्श न किया हो, प्रेमी ने आपको गले से न लगाया हो, प्रेमी ने कोई उपाय ही न किया हो प्रेम के प्रकट करने का और अचानक आपने पाया हो कि किसी गंगा में आप नहा गए हैं! अचानक आपने अनुभव किया हो कि कोई फूलों की वर्षा आप पर हो गई है! अचानक आपने अनुभव किया हो कि कोई संगीत किसी अनजाने कोने से आपके भीतर बज उठा है! अंगुलियां नहीं हैं, लेकिन वीणा को किसी ने छेड़ दिया है! कोई पास नहीं आया, लेकिन कोई बिल्कुल अंतरतम में प्रवेश कर गया है! अगर ऐसा प्रेम आपने अनुभव किया हो एक क्षण को भी, तो लाओत्से जो कह रहा है, उसे समझने में आसानी हो जाएगी। क्योंकि परमात्मा का स्वभाव प्रेम जैसा है।

लेकिन अभागे हैं हम, क्योंकि हम प्रेम को ही नहीं जानते। और जो प्रेम को नहीं जानता है, वह परमात्मा को कभी भी नहीं जान पाएगा। क्योंकि प्रेम उसकी ही हलकी किरण का अनुभव है। फिर परमात्मा उन्हीं किरणों का विराट जोड़ है, सूरज है।

लाओत्से का पहला सूत्र है, ताओ सभी को जन्म देता है और सभी का पोषण भी करता, वह सबका जन्मदाता, फिर भी उसकी मालकियत का कोई दावा नहीं करता है। वह कोई मालिक नहीं है।

मनुष्य की चेतना ने हजारों बार हाथ उठा कर आकाश की तरफ उसे धन्यवाद दिया है। मनुष्य की चेतना ने हजारों बार उसके चरणों में सिर रखा है। मनुष्य की चेतना में हजारों बार पुकार उठी है, अनुभव हुआ है, आस्था निर्मित हुई है। लेकिन परमात्मा की तरफ से कोई जवाब कभी नहीं दिया गया। मनुष्य कहता है, तुम

हमारे पिता हो। लेकिन उसने कभी नहीं कहा कि तुम हमारे पुत्र हो। मनुष्य कहता है कि तुमने निर्माण किया, तुमने सृजन किया। उसने कभी घोषणा नहीं की कि मैं निर्माता हूं, मैं स्रष्टा हूं। अघोषित, मौन उसका अस्तित्व है।

असल में--इसे थोड़ा समझें--जो भी दावा करता है, वह दावा करके ही कह देता है कि दावेदार नहीं है। अगर एक पिता को अपने बेटे से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा पिता हूं, एक प्रेमी को अपनी प्रेयसी से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, एक गुरु को अपने शिष्य से कहना पड़े कि आदर करो मेरा, मैं तुम्हारा गुरु हूं, तो बात ही सब व्यर्थ हो गई। क्योंकि जिस दिन गुरु को कहना पड़े कि मैं तुम्हारा गुरु हूं, आदर करो, चरण छुओ मेरे, उसी दिन गुरुता खो गई। असल में, गुरुता जब खो जाती है या होती ही नहीं, तभी दावा होता है। इसलिए किसी गुरु ने कभी नहीं कहा है कि आदर करो। गुरु हम उसे कहते हैं, जिसे आदर किया ही जाता है। जिसे कहना पड़े कि मुझे आदर करो, वह भी भलीभांति जानता है कि गुरु नहीं है।

एक विश्वविद्यालय में मैं था। और वहां शिक्षकों के एक सम्मेलन में किसी ने मुझे पूछा कि गुरुओं का लोग आदर क्यों नहीं करते हैं? आज का विद्यार्थी गुरु का आदर क्यों नहीं करता है? तो मैंने कहा कि गुरु है कहां? क्योंकि गुरु का अर्थ ही होता है, जिसका लोग आदर करते हैं, जिसे आदर करना ही पड़ता है, जो मांगता नहीं और जिसे आदर मिलता है, जिसकी तरफ आदर ऐसे ही बहता है, जैसे पानी सागर की तरफ बहता है।

किसी दिन सागर अगर कहने लगे कि नदियां अब मेरी तरफ क्यों नहीं बहतीं, तो हमें सागर को कहना होगा कि तुम भ्रांति में हो, तुम कोई ताल-तालाब होओगे, सागर नहीं हो। क्योंकि सागर का मतलब ही इतना होता है कि जिसकी तरफ नदियां बहती हैं, जिसकी तरफ नदियों को बहना ही पड़ता है, अन्यथा कोई गति नहीं है। नदी का अस्तित्व ही सागर की तरफ बहने से निर्मित होता है। नदी बनती ही इसलिए है कि वह सागर की तरफ बहती है। अगर वह सागर की तरफ नहीं बहे, तो वह बन ही नहीं सकती, हो ही नहीं सकती।

तो जिस दिन सागर को कहना पड़े कि नदियो, मेरी तरफ बहो, उस दिन समझना कि सागर नहीं है। सागर को यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती है। उसका होना काफी है। गुरु की तरफ आदर बहता है। प्रेमी की तरफ प्रेम बहता है। लेकिन दावा करना पड़ता है, दावा करना ही इसलिए पड़ता है कि दावेदार मौजूद ही नहीं होते। यह उलटा लगेगा, पैराडाक्सिकल लगेगा, लेकिन ऐसा ही है।

तो जब भी आप दावा करें कि मैं प्रेम करता हूं, तब भीतर टटोलना। प्रेम के धुएं की रेखा भी भीतर नहीं मिलेगी। क्योंकि प्रेम अपने आप में काफी दावा है। उसका होना ही उसकी दावेदारी है। और अतिरिक्त दावा सिर्फ नपुंसकता की घोषणा करता है कि भीतर जिसकी हम चेष्टा कर रहे हैं बताने की, वह नहीं है। परमात्मा दावा नहीं करता, क्योंकि वह दावेदार है।

पश्चिम में एक नास्तिक विचारक हुआ, दिदरो। उसने एक सभा में एक दिन अपनी घड़ी ऊंची उठा कर कहा कि अगर परमात्मा कहीं है, तो एक छोटा सा प्रमाण दे दे, तो मैं मान लूं। यह मेरी घड़ी चलती है, इसी वक्त बंद हो जाए। इतना भी परमात्मा कर दे! क्योंकि तुम कहते हो कि उसने जगत को बनाया, और तुम कहते हो वही निर्माता और वही विनाशक, वही बनाने वाला, वही मिटाने वाला। इतना छोटा सा काम कर दे, यह घड़ी आदमी की बनाई हुई है, इसे वह बंद कर दे इसी वक्त, तो मैं सदा के लिए उसके चरणों में गिर जाऊं।

जो आस्तिक थे उस सभा में, उन्होंने आकाश की तरफ प्रार्थना-भरी आंखों से देखा कि बंद कर दे! इतना सा छोटा सा काम है, यह घड़ी बंद कर दे! तेरे हाथ में क्या नहीं! तेरी कृपा हो जाए, तो लंगड़े पहाड़ चढ़ जाते

हैं, अंधे देखने लगते हैं, मुर्दे जीवित हो जाते हैं। तेरे हाथ में क्या नहीं है? इतनी सी बात कि यह छोटी सी घड़ी, इसे बंद कर दे!

लेकिन घड़ी बंद नहीं हुई। और दिदरो उन आस्तिकों से जीत गया। इसलिए नहीं कि दिदरो की नास्तिकता सही थी, इसलिए कि उन आस्तिकों की आस्तिकता ही सही नहीं थी। वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि तू दिदरो के साथ प्रतिस्पर्धा में उतर जा। वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि यह दावे का मौका है, क्यों छोड़ता है! दावेदार हो जा! इतनी सी छोटी सी बात, करके दिखा दे।

लेकिन अगर दिदरो सच में बुद्धिमान होता या वे आस्तिक बुद्धिमान होते, तो वे समझ पाते। मुझे तो लगता है कि अगर परमात्मा जोश में आ जाता उस दिन, तो सदा के लिए, सदा के लिए अप्रमाणित हो जाता। उस दिन अगर दिदरो की बातों में आ जाता और घड़ी बंद कर देता, तो परमात्मा एकदम क्षुद्र हो जाता। असल में, दावा क्षुद्रता से आता है। दिदरो को भी न सह सके परमात्मा, तो बहुत छोटा हो जाता है। इस चुनौती को भी न सह सके, तो बहुत छोटा हो जाता है। कहीं कुछ भी न हुआ, घड़ी चलती रही, और दिदरो जीत गया। और दिदरो जीवन भर यही सोचता रहा कि जो परमात्मा इतना सा प्रमाण नहीं दे सकता, उसका होना कैसे हो सकता है! क्योंकि हम मानते हैं कि प्रमाण ही होने का सबूत है।

लेकिन वस्तुतः जो चीज है, वह कभी प्रमाण नहीं देती। प्रमाण हम जुटाते ही इसीलिए हैं कि संदेह होता है! अन्यथा हम प्रमाण नहीं जुटाते। इसलिए इस जगत में जो परम आस्तिक हुए हैं, उन्होंने ईश्वर के लिए प्रमाण नहीं दिए। और जिन्होंने दिए हैं, वे आस्तिक नहीं थे। जिन्होंने प्रमाण दिए हैं और जिन्होंने कहा है कि इसलिए परमात्मा है, इसलिए परमात्मा है, इसलिए परमात्मा है, जिन्होंने परमात्मा के होने को तर्क की निष्पत्ति, एक सिलोजिज्म बनाया और जिन्होंने कहा जैसे गणित सिद्ध होता है, ऐसे परमात्मा भी सिद्ध होता है, उनमें से कोई भी आस्तिक नहीं था। वे सभी नास्तिक थे, जो किसी तरह प्रमाण जुटा कर अपने को समझाने की कोशिश कर रहे थे कि परमात्मा है। लेकिन अगर उनके प्रमाण गलत हो जाएं, तो उनका परमात्मा भी गलत हो जाता है। जो परमात्मा प्रमाणों पर निर्भर है, ध्यान रहे, प्रमाण उस परमात्मा से बड़े हो जाते हैं।

तरतूलियन ने कहा है कि मैं भरोसा करता हूं तुम में, क्योंकि तुमने कभी प्रमाण नहीं दिए। यह आदमी आस्तिक रहा होगा। तरतूलियन ने कहा है कि मैं विश्वास करता हूं तुम में, क्योंकि तुम बिल्कुल असंभव मालूम पड़ते हो। सब तरह से सोचता हूं, पाता हूं कि तुम नहीं हो सकते, इसीलिए भरोसा करता हूं कि तुम हो। क्योंकि अगर मेरे प्रमाणों से तुम हो सको, तो मैं तुमसे बड़ा हो जाता हूं। अगर मेरे प्रमाण से परमात्मा सिद्ध हो जाए, तो मेरे ही प्रमाण से असिद्ध भी हो जाएगा। अगर मेरी बुद्धि निर्णय कर सके कि परमात्मा है, तो फिर मेरी बुद्धि निर्णायक हो जाती है। वह यह भी निर्णय कर सकेगी कि परमात्मा नहीं है। मेरी बुद्धि बड़ी हो जाती है।

लाओत्से कहता है कि वह निर्माता, स्रष्टा, पोषक; लेकिन दावेदार नहीं है। उसने कभी घोषणा नहीं की कि मैं मालिक हूं।

असल में, वह इतना निश्चिंत रूप से मालिक है, इतना आश्वस्त रूप से मालिक है कि घोषणा की जरूरत नहीं पड़ी। आपको मालकियत की घोषणा करनी पड़ती है, क्योंकि आप आश्वस्त नहीं हैं। रोज-रोज घोषणा करते हैं, तो अपने लिए आश्वासन जुटा लेते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जिस चीज के संबंध में आप आश्वस्त होते हैं, उस संबंध में आप घोषणा नहीं करते।

रामकृष्ण के पास विवेकानंद गए और विवेकानंद ने उनका हाथ पकड़ कर हिलाया और कहा कि मैं जानना चाहता हूं, ईश्वर है? विवेकानंद और लोगों से भी पूछ चुके थे यह। तर्क देने वाले, विचारशील लोग मिले

थे, जिन्होंने तर्क दिए; जिन्होंने कहा, है! मैं सिद्ध करके बता सकता हूं। ज्ञानी मिले, जिन्होंने शास्त्र खोले और विवेकानंद को कहा कि देखो, यह लिखा है कि है। लेकिन विवेकानंद को आश्वासन नहीं मिला। क्योंकि जिसका परमात्मा शास्त्र में छिपा हो, उसे असली परमात्मा का कोई भी पता नहीं है। और जिसका परमात्मा तर्क में छिपा हो, उसका परमात्मा कभी भी खंडित किया जा सकता है। क्योंकि तर्क दुधारी तलवार है। जिसका सहारा तर्क पर हो, तर्क खींचते ही वह बेसहारा होकर जमीन पर गिर जाएगा।

विवेकानंद ने रामकृष्ण से भी पूछा है कि क्या ईश्वर है?

रामकृष्ण ने कहा, बेकार की बातें मत पूछो; यह पूछो कि तुम्हें देखना है, जानना है, उससे मिलना है।

यह पहला मौका था कि कोई आश्वस्त आदमी सामने था। उसने यह नहीं कहा कि है, मैं सिद्ध कर दूंगा। मैं तुम्हें बताऊंगा कि है, समझाऊंगा कि है। उसने कहा कि तुम्हें मिलना हो, तो बोलो, हां या न में जवाब दो।

विवेकानंद ने बाद में कहा है कि मैंने प्रश्न पूछ कर दूसरों को झिझक में डाल दिया था। रामकृष्ण ने मुझे ही झिझक में डाल दिया। क्योंकि मैंने अभी खुद भी तय नहीं किया था कि मैं उससे मिलने को राजी हूं या नहीं हूं! मैं तो एक कुतूहलवश पूछने चला आया था। पर विवेकानंद ने कहा कि एक बात तय हो गई कि यह आदमी तर्क से नहीं जानता है, किन्हीं प्रमाणों से नहीं जानता है, बस जानता है; निपट, शुद्ध जानता है। किसी कारण से नहीं, बस जानता है। और जानने में इतना आश्वस्त है कि दूसरे से भी कहता है कि तुम्हें जानना हो, तो बोलो। यह बात इतनी आसान मालूम पड़ रही है इस आदमी को जैसे कोई कहे कि क्या बात करते हो सूरज है या नहीं! मेरा हाथ पकड़ो और चलो, बाहर निकल आओ घर के और सूरज को देख लो। इसकी चर्चा करनी ही फिजूल है कि सूरज है या नहीं; आओ, बाहर आओ और देख लो। इतनी सरलता से जो कह रहा है। पर इस कहने में एक गहन आश्वासन है।

जहां आश्वासन है, वहां दावा नहीं है। जहां आश्वासन नहीं है, वहां दावा है। और अगर परमात्मा भी आश्वस्त न हो, तो कौन आश्वस्त होगा? इसलिए परमात्मा ने अब तक कोई दावा नहीं किया।

लोग कहते हैं कि बाइबिल परमात्मा की किताब है, और कुरान परमात्मा की किताब है, और वेद परमात्मा की किताबें हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, परमात्मा की कोई भी किताब नहीं है। सब किताबें उन आदमियों की हैं, जिन्होंने परमात्मा की झलक पाई। क्योंकि परमात्मा कोई किताब प्रकट करे, तो अपने में बहुत हीन अनुभव करता होगा तभी। और परमात्मा घोषणा करे कि मैं हूं, तो उसे अपने होने पर शक हो तभी।

परमात्मा की कोई किताब नहीं है, क्योंकि परमात्मा का कोई वक्तव्य नहीं है। परमात्मा समझाना भी चाहे, तो किसे? कहना भी चाहे, मालिक भी बनना चाहे, तो किसका? मालिक वह है। यह मालकियत इतनी स्वाभाविक है और इस मालकियत का कोई प्रतियोगी, प्रतिस्पर्धी भी नहीं है कि यह घोषणा पागल परमात्मा ही कर सकता है कि मैं मालिक हूं। क्योंकि ध्यान रहे, मालिक की घोषणा भी तभी करनी होती है, जब प्रतिस्पर्धी का डर होता है।

एक पति अपनी पत्नी से कहता है कि मैं तेरा मालिक हूं। एक पत्नी अपने पति से कहती है कि मैं तेरी मालिक हूं। क्योंकि प्रतिस्पर्धी चारों ओर हैं और मालकियत छीनी जा सकती है। मालिक कोई और भी हो सकता है। एक मकान का आप दावा करते हैं द्वार पर तख्ती लगा कर कि मकान मेरा है, क्योंकि इस मकान का दावा अगर आप चूक जाएं समय पर करने से, कोई और भी कर सकता है। लेकिन परमात्मा दावा भी किसके सामने करे?

इसलिए लाओत्से कहता है, वह अपने मालिक होने का दावा नहीं करता। ताओ या परमात्मा या धर्म दावेदार नहीं है, क्योंकि उसका दावा सुनिश्चित है, स्वाभाविक है। वह है ही।

"वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई अहंकार नहीं है।"

जब भी हम कुछ करते हैं मजबूरी में, जबर्दस्ती में, चेष्टा से, तभी अहंकार निर्मित होता है। जब हम कुछ करते हैं सहज, स्वभाव से, तो अहंकार निर्मित नहीं होता। बहुत से काम हम भी करते हैं जिनसे अहंकार निर्मित नहीं होता। रात आप सोते हैं, दिन भर आप श्वास लेते हैं, लेकिन इससे अहंकार निर्मित नहीं होता। आप ऐसी घोषणा करके, छाती पीट कर बाजार में खड़े होकर नहीं कहते कि आज मैंने इतनी हजार श्वास लीं। थोड़ी-बहुत नहीं लेते, कई हजार श्वास लेते हैं। जीवन भर में अरबों श्वास लेते हैं। अगर हिसाब लगाएं, तो दावा कर सकते हैं कि मैंने अपने जीवन में इतनी श्वास लीं! बीस साल तो मैं सोया ही रहा साठ साल में! इतनी बार सुबह उठा, इतनी बार सांझ सोया!

नहीं, इनका हम दावा नहीं करते, क्योंकि ये स्वाभाविक क्रियाएं हैं। हालांकि आदमी दावा करता है। एक रुपया भी उसके खीसे में हो, तो दावा करता है। करोड़ हो, तो करता ही है; एक पैसा हो, तो भी करता है। हालांकि एक श्वास के लिए करोड़ों रुपए देने को तैयार हो सकता है, लेकिन श्वास का दावा नहीं करता। अगर मरते हुए आदमी से हम कहें कि एक श्वास और मिल सकती है, सारी संपत्ति दे दो, तो वह सारी संपत्ति दे देगा और एक श्वास ले लेगा। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है, उस क्षुद्र संपत्ति का उसने जीवन भर दावा किया और इस श्वास का कभी दावा न किया, और करोड़ों श्वास लीं।

श्वास स्वभाव थी, इसलिए दावा नहीं किया। धन स्वभाव नहीं था, चेष्टा करके पाया गया था, इसलिए दावा किया। जिसमें चेष्टा होती है, वहां अहंकार निर्मित होता है। जिसमें चेष्टा नहीं होती, वहां अहंकार निर्मित नहीं होता। यह परमात्मा संसार को बना रहा है, अगर इसमें चेष्टा हो वैसी ही, जैसे हम धन को बनाते हैं, तो अहंकार निर्मित होगा। लेकिन अगर यह निश्चेष्ट प्रक्रिया हो वैसे ही, जैसे हम श्वास लेते हैं, तो दावे का प्रश्न नहीं, अहंकार का प्रश्न नहीं। इसलिए जो जानते हैं, वे ऐसा कहना पसंद नहीं करते कि परमात्मा ने संसार को बनाया। वे ऐसा ही कहना पसंद करते हैं कि परमात्मा संसार बन गया है। इतना भी फासला नहीं है। वृक्ष उगते हैं, तो परमात्मा इन्हें बनाता, ऐसा नहीं; परमात्मा वृक्षों में निर्मित होता और बनता है। आकाश में बादल चलते हैं, तो परमात्मा इन्हें चलाता, ऐसा नहीं; परमात्मा ही इन बादलों में सरकता और चलता है। आदमी को परमात्मा बनाता है, ऐसा नहीं; परमात्मा ही आदमी बनता है।

इसे हम ऐसा समझें। एक चित्रकार एक चित्र बनाता है। तो बनाते ही चित्र अलग हो जाता है, चित्रकार अलग हो जाता है। परमात्मा ऐसा नहीं है कि अस्तित्व को बनाता है और अलग हो जाता है। क्योंकि उसके अलग होने का कोई उपाय नहीं, उससे अलग होने की कोई जगह नहीं। परमात्मा जगत के साथ इस तरह जुड़ा है, जैसे नर्तक अपने नृत्य से जुड़ा होता है। एक नृत्य करने वाला नाच रहा है। नाच और नर्तक अलग नहीं होते, एक ही हैं। नर्तक रुक जाएगा, तो नृत्य भी रुक जाएगा। आप नर्तक से यह नहीं कह सकते कि तू चला जा और तेरा नृत्य छोड़ जा।

इसलिए हमने परमात्मा की जो मूर्ति बनाई है, वह नर्तक की तरह बनाई है, नटराज की तरह बनाई है। उसका कारण है। क्योंकि नृत्य और नर्तक एक हैं। इसलिए नर्तक के रूप में परमात्मा की बात सर्वाधिक ठीक से समझी जा सकती है। जगत और परमात्मा एक हैं। और जगत में जो भी घटित हो रहा है, वह परमात्मा का सहज स्वभाव है।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई दंभ नहीं है।

दंभ होता ही उन्हें है, जो जोर-जबर्दस्ती कुछ करते हैं। क्या हमें जीवन में ऐसे किसी कृत्य का पता है, जो हमने बिना दंभ के किया हो? अगर पता हो, तो वैसे कृत्य का नाम ही पुण्य है। यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम तो पुण्य भी करते हैं, तो दंभ निर्मित होता है। सच तो यह है कि अगर दंभ निर्मित न करवाया जा सके, तो कोई पुण्य करने को राजी ही नहीं होता है।

अगर मैं आपसे कहूं कि यह मंदिर बनाना है, इसके लिए धन दे दें, तो आप कहते हैं कि मेरी तख्ती कहां लगेगी? और अगर मैं कहूं कि तख्ती इस मंदिर में लगने वाली ही नहीं है, तो आप पक्का मान लें यह मंदिर बनने वाला नहीं है। क्योंकि लोग मंदिर नहीं बनाते, तख्तियां बनाते हैं। और मंदिरों पर तख्तियां लगाते हैं, ऐसा नहीं; तख्तियों पर मंदिर लगाते हैं। तख्तियां महत्वपूर्ण हैं, मंदिर गौण हैं। क्योंकि बिना मंदिर के तख्ती अच्छी नहीं लगेगी, इसलिए मंदिर के साथ लगाते हैं। लेकिन तख्ती ही आधार है। अगर आपसे कहा जाए कि आप यह जो धन दान कर रहे हैं, इससे आपको प्रशंसा नहीं मिलेगी, तो फिर दान असंभव है। इसलिए शास्त्र समझाते हैं कि जो दान करेगा, उसे कितनी प्रशंसा मिलेगी लोक में, परलोक में; कितना पुण्य मिलेगा, कितना फल मिलेगा, कितना सुख, कितना आनंद। यहां एक पैसा दान करो, तो शास्त्र कहते हैं, वहां परलोक में करोड़ गुना उपलब्ध होगा। एक पैसे का दान करवाना हो, तो करोड़ गुना दंभ का आश्वासन देना पड़ता है।

लेकिन पुण्य का अर्थ ही कुछ और है। पुण्य का अर्थ है ऐसा कृत्य जिससे दंभ निर्मित न हो। जिससे दंभ निर्मित हो, वही पाप है। इसलिए परमात्मा ने आज तक कोई पाप नहीं किया, हम कह सकते हैं, क्योंकि उसके कोई दंभ की खबर नहीं मिली। उसने अब तक यह भी नहीं कहा कि मैं हूं। इसलिए उसने जो भी किया है, वह पुण्य है। आप भी जो भी करते हैं, वह पुण्य हो जा सकता है, यदि उससे अहंकार निर्मित न होता हो, यदि पीछे ईगो और मैं सघन न होता हो। कृत्य हो जाता हो और मेरे मैं में कुछ जुड़ता न हो, तो कृत्य पुण्य हो जाता है। और मेरे मैं में कुछ जुड़ जाता हो, तो कृत्य पाप हो जाता है।

इसलिए सवाल यह नहीं है कि कौन सा कृत्य पुण्य है और कौन सा कृत्य पाप है। लोग पूछते हैं, कौन सा काम पुण्य है और कौन सा काम पाप है? गलत ही सवाल पूछते हैं। यह सवाल कृत्य का नहीं है, यह सवाल करने वाले का है। पूछना चाहिए कि किस भांति कृत्य तो हो जाए और करने वाला मजबूत न हो? तो पुण्य हो जाता है। और कृत्य न भी किया जाए और करने वाला मजबूत हो जाए, तो पाप हो जाता है। जरूरी नहीं है करना।

एक आदमी चोरी नहीं कर रहा है, लेकिन सिर्फ सोच रहा है। एक आदमी हत्या नहीं कर रहा है, सिर्फ सोच रहा है। एक आदमी चुनाव नहीं लड़ रहा है, सिर्फ सोच रहा है। और सोचने में ही अहंकार की सीढ़ियां चढ़ता जा रहा है। सब्स्टीट्यूट हैं, सभी लोग असली सीढ़ियां नहीं चढ़ पाते। असली सीढ़ियां चढ़ने का अपना कष्ट, अपनी पीड़ा, अपनी मुसीबत है। लेकिन सभी लोग सपने तो देख ही सकते हैं। सभी लोग सम्राट नहीं हो पाते, लेकिन सभी लोग सपनों में तो सम्राट हो ही सकते हैं। तो सपने से हम अपने मन को समझा-बुझा लेते हैं।

लेकिन सपने में भी कभी आपने ख्याल किया, आराम-कुर्सी पर बैठ कर अगर सोच रहे हों कि चुनाव जीत गए हैं--न लड़े हैं, न जीते हैं, सिर्फ सोच रहे हों कि जीत गए हैं--तो आपने कभी ख्याल किया कि भीतर अहंकार चार सीढ़ियां ऊपर चढ़ जाता है। उसे देर नहीं लगती। वह ठीक थर्मामीटर के पारे की तरह आपकी जांच-परख रखता है; कि जहां भी आपने कृत्य में मजा लिया, वहीं तत्काल पारा ऊपर चढ़ जाता है। नहीं किया हो कृत्य,

तो भी। ठीक इससे उलटी घटना भी घटती है। किया हो कृत्य, तो भी अगर अस्मिता निर्मित न हो, अहंकार निर्मित न हो, तो पारा नीचे गिरता जाता है।

"ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दंभ नहीं; सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।"

यह सूत्र बहुत बारीक है।

"सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता।"

लोग पूछते रहे हैं सदियों से कि यदि परमात्मा है और यदि उसके किए ही सब कुछ होता है, तो एक चोर को चोरी क्यों करने देता है? और एक हत्यारे को हत्या क्यों करने देता है? और एक बेईमान को बेईमानी क्यों करने देता है? और जब किसी निर्बल को कोई सताता है, तो वह खड़ा देखता क्यों रहता है?

यह सवाल संगत है और पूछने जैसा है। और विचारशील मनुष्यों ने पूछा है बार-बार। सच तो यह है कि विचारशील मनुष्यों को परमात्मा के होने पर जो सबसे बड़ा संदेह है, वह यही सवाल है।

बर्ट्रेंड रसेल पूछता है कि एक बच्चा पैदा होते से ही अंधा पैदा हो रहा है, लूला पैदा हो रहा है, लंगड़ा पैदा हो रहा है, कैंसर-सहित पैदा हो रहा है; अगर तुम्हारा परमात्मा है, तो यह कैसे हो रहा है? और तुम कहते हो सभी वही करता है, सर्वेसर्वा है। बर्ट्रेंड रसेल कहता है कि यह सब देख कर शक होता है कि कोई परमात्मा नहीं है। जो हो रहा है, यह देख कर शक होता है कि कोई परमात्मा नहीं है। जीवन जैसा नर्क बना हुआ है, यह देख कर शक होता है कि यहां कोई परमात्मा नहीं हो सकता। और अगर कोई परमात्मा है, तो उसको परमात्मा कहना व्यर्थ है; उसको शैतान कहना बेहतर होगा, क्योंकि जो हो रहा है उसे देख कर।

यह संगत प्रश्न है कि अगर परमात्मा सभी कुछ कर रहा है, तो इस जगत में बुराई क्यों है? ईविल क्यों है?

एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि मुझे सबसे बड़ा सवाल यही है कि संसार में बुराई क्यों है? बुराई होनी ही नहीं चाहिए, अगर परमात्मा है।

तो वे ठीक कह रहे हैं। क्योंकि इन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। इतनी बुराई का इस परमात्मा से कैसे संबंध जोड़ें? मैंने उनसे कहा, एक क्षण को दूसरी तस्वीर पैदा करिए। आप कब मानेंगे कि परमात्मा है? उन्होंने कहा, जब संसार में कोई बुराई न हो। मैंने उनसे कहा कि सारी बुराई संसार से हटा देते हैं; कैसा संसार होगा, आप थोड़ा सोच कर मुझे बताएं। क्योंकि जिस क्षण बुराई हटेगी, उसी क्षण भलाई भी हट जाएगी। भलाई अकेली नहीं जी सकती। भलाई जीती ही इसलिए है कि बुराई है। जिस दिन अंधेरा बिल्कुल हट जाएगा, तो प्रकाश नहीं जी सकता। प्रकाश जीता ही इसलिए है कि अंधेरा है।

ऐसा समझें कि जिस दिन हम सारी ठंडक हटा लें जगत से, तो क्या गरमी जी सकेगी? गरमी और ठंडक एक ही चीज की मात्राएं हैं। ऐसा समझ लें कि हम जीवन हटा लें जगत से, मृत्यु हटा लें जगत से, तो क्या दूसरा बच सकेगा? मृत्यु को हटाएंगे, तो जीवन खो जाएगा। जीवन को हटाएंगे, तो मृत्यु खो जाएगी। क्योंकि अगर जगत में जीवन न हो, तो मृत्यु कैसे होगी? या मृत्यु न हो जगत में, तो जीवन कैसे होगा?

जगत जीता है विपरीत, दि पोलर अपोजिट, वह जो ध्रुवीय विपरीत है, उसके सहारे जीता है। जगत के, अस्तित्व के होने का जो ढंग है, वह विपरीत के बीच संगीत है। अगर विपरीत को हटा लें, तो दोनों समाप्त हो जाते हैं। पुरुष को हटा लें जगत से, स्त्री खो जाएगी। स्त्री को हटा लें, पुरुष खो जाएगा। बुढ़ापे को हटा लें, जवानी खो जाएगी। हालांकि जवान का मन होता है कि कुछ ऐसा हो जाए कि बुढ़ापा न हो। उसे पता नहीं कि

जवानी और बुढ़ापा इतने संयुक्त हैं कि एक हटा तो दूसरा खो जाएगा। हमारा मन होता है कि जगत में कोई चीज असुंदर न रह जाए। पर हमें पता नहीं कि असुंदर खोया कि सुंदर खो जाता है। ऐसे जगत की कल्पना करें, जहां असुंदर बिल्कुल न हो, तो ध्यान रखना, उससे ज्यादा असुंदर जगत नहीं होगा। क्योंकि वहां सुंदर कुछ नहीं होगा। दोनों खो जाएंगे।

तो मैंने उन मित्र से पूछा कि समझ लें बुराई की सख्त मनाही है, कोई बुराई कर ही नहीं सकता। उस दुनिया से भलाई तिरोहित हो जाएगी। और उस दुनिया की शक्ल एक बड़े कारागृह की शक्ल होगी। क्योंकि जहां बुराई करने की स्वतंत्रता न हो, वहां कोई भी स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

असल में, स्वतंत्रता में बुराई करने की स्वतंत्रता भी छिपी है। अगर मैं किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो इस स्वतंत्रता का कोई अर्थ होगा? किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो स्वतंत्रता कहना फिजूल है; कहना चाहिए, तुम्हें अच्छे होने की परतंत्रता है। तब कहना चाहिए, यू आर कंडेम्ड टु बी गुड; नॉट टु बी फ्री टु बी गुड। क्योंकि जब हम कहते हैं कि आप स्वतंत्र हैं अच्छा करने को, तो दूसरी स्वतंत्रता भी भीतर प्रवेश कर जाती है--बुरा करने की।

परमात्मा सर्वेसर्वा है, फिर भी नियंत्रण नहीं करता। इसका मतलब है कि परमात्मा निर्मित करता है, लेकिन स्वतंत्रता निर्मित करता है। परमात्मा बनाता है, लेकिन स्वतंत्रता बनाता है, परतंत्रता नहीं। इसलिए दुनिया में आदमी बुरे से बुरा होने को स्वतंत्र है--परमात्मा के होते हुए। क्योंकि इस बुरे होने की स्वतंत्रता में ही स्वतंत्रता छिपी है। और अगर स्वतंत्रता नहीं है, तो आदमी आदमी नहीं होगा, मशीन होगा। मशीन बुरा करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। हम उससे जो करवाना चाहें, करवा ले सकते हैं। इसीलिए वह मशीन है। आदमी, चैतन्य, चेतना स्वतंत्रता के बिना असंभव है।

लाओत्से कहता है कि बनाने वाला वही है, लेकिन नियंत्रण नहीं करता है। ही इ.ज दि क्रिएटर, बट नॉट दि कंट्रोलर। स्रष्टा है, लेकिन जेलर नहीं है। हमारा कारागृह बना कर द्वार पर संतरी की तरह खड़ा हुआ नहीं है।

बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग कहते हैं कि इसी से शक होता है कि परमात्मा नहीं है; और मैं आपसे कहता हूं कि इसी से प्रमाणित होता है कि परमात्मा है। क्योंकि जिस जगत में स्वतंत्रता न हो, उस जगत में परमात्मा नहीं हो सकता। स्वतंत्रता ही परमात्मा के होने का आधारभूत प्रमाण है। वह है, क्योंकि हम इतने स्वतंत्र हैं। वह है...।

इसे हम ऐसा समझें कि सागर है और मछलियां सागर में घूमती हैं। उन्हें पता भी नहीं चलता कि सागर है। लेकिन उस सागर में होने के कारण ही वे हैं। और सागर में जो भी गति हो रही है, जो भी स्वतंत्रता है उन्हें घूमने की, वह भी सागर के कारण है। सागर सूख जाए, और मछलियां शून्य हो जाएंगी, मृत हो जाएंगी। उनकी सारी स्वतंत्रता खो जाएगी। सागर ही उनके लिए जगह है स्वतंत्रता की।

परमात्मा स्वतंत्रता है। इसलिए जिन्होंने गहनतम खोज की, महावीर या बुद्ध ने, तो उन्होंने परमात्मा को मोक्ष ही नाम दिया। महावीर ने तो परमात्मा नाम का उपयोग नहीं किया, ईश्वर नाम का उपयोग नहीं किया, क्योंकि वे कहते थे कि मोक्ष पर्याप्त है। मोक्ष का मतलब होता है, दि फ्रीडम। जगत परिपूर्ण स्वतंत्रता में जी रहा है। और अगर हम गलत कर रहे हैं, तो वह स्वतंत्रता का गलत उपयोग है। और हम चाहें, तो सही कर सकते हैं। लेकिन स्वतंत्रता हमारी नियति है। इसलिए हम पाप की आखिरी सीढ़ी तक उतर सकते हैं और पुण्य के आखिरी शिखर तक चढ़ सकते हैं। नर्क तक जा सकते हैं; स्वर्ग तक जा सकते हैं। अंधेरे के आखिरी गर्त में गिर सकते हैं

और प्रकाश के पूर्ण उज्ज्वल लोक में प्रवेश कर सकते हैं। ये दोनों बातें संभव हैं, क्योंकि हमारी आत्मा का आत्यंतिक स्वभाव स्वतंत्रता है।

सार्त्र ने ठीक कहा है, यू कैन नॉट चूज टु बी फ्री, यू आर फ्रीडम! स्वतंत्र होना आप चुन नहीं सकते, आप स्वतंत्र हैं, आप स्वतंत्रता हैं।

लेकिन स्वतंत्रता का मतलब ही यह होता है कि अगर मैं कारागृह पसंद करूं, तो चुन सकूं। अगर इतनी भी तय हो बात कि मुझे कह दिया जाए कि तुम सब कर सकते हो, सिर्फ जेलखाने में नहीं जा सकते हो, तो भी मैं परतंत्र हो गया। तब यह बड़ी दुनिया मेरे लिए एक परतंत्रता हो जाएगी। स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है पूर्ण स्वतंत्रता, दोनों तरफ जाने की पूरी सुविधा।

तो परमात्मा नियंता नहीं है, निर्माता है। इससे हमें थोड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि हमारा मन यह करता है कि वह नियंता भी हो तो अच्छा। तो हमारे ऊपर जो जिम्मेवारी है, जो उत्तरदायित्व है, जो रिस्पांसबिलिटी है, वह भी न हो। हम सब मशीन होना चाहते हैं। हम सब गुलामी खोजते हैं, क्योंकि स्वतंत्रता का उपयोग करना नहीं जानते। और हमें स्वतंत्रता मिले, तो हम अपना आत्मघात ही कर लेते हैं। हमें स्वतंत्रता जब भी मिलती है, तो हम नर्क की यात्रा कर जाते हैं। तो हम कहते हैं, इससे तो बेहतर था हाथ में जंजीरें होतीं, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते; बेहतर होता कि सब तरफ कारागृह होता, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते। क्योंकि हम स्वतंत्रता में सदा नीचे ही चले जाते हैं। इसलिए हम हमेशा गुलामी खोजते हैं, नए-नए ढंग से खोजते हैं। हमारे गुलामी खोजने के ढंग बहुत अदभुत हैं।

एरिक फ्राम ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः एस्केप फ्राम फ्रीडम; स्वतंत्रता से पलायन। फ्राम का कहना है, हर आदमी स्वतंत्रता से पलायन कर रहा है। जहां भी स्वतंत्रता दिखती है, भाग कर जल्दी किसी गुलामी में अपने को छिपा लेता है।

दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी गुलामी की आदतें इतनी पुरानी हैं कि हमें ख्याल भी नहीं आता कि यह गुलामी है। हमें ख्याल भी नहीं आता कि यह गुलामी है। अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह सत्य खोजने नहीं जाता, तत्काल शास्त्र को खोलता है। उसे पता नहीं कि यह गुलामी है। वह सत्य भी उधार ही चाहता है, कोई उसे दे दे। अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह अपने पैरों पर दो कदम नहीं चलता। वह जल्दी किसी गुरु के चरण पकड़ लेता है और कहता है कि बस, आप ही सब कुछ हो, आप ही मुझे दे दो। मुझ पापी से क्या होगा? हालांकि सब पाप उससे हो रहे हैं। क्योंकि पापी होने के लिए काफी करने की जरूरत पड़ती है। वह कहता है, मुझ पापी से क्या होगा? इतने पाप उससे हो सके हैं कि वह कहता है मैं पापी हूं। लेकिन वह कहता है, मुझ पापी से क्या होगा? वह असल में यह कह रहा है कि किसी तरह मेरी स्वतंत्रता से मुझे बचाओ, सेव मी फ्राम माई फ्रीडम। तुम मेरे जेलर बन जाओ। तो कल अगर मैं नर्क में भी पड़ूं, तो मैं कह सकूं कि तुम थे मेरे गुरु। और कल मुझे अगर स्वर्ग भी मिल जाए, तो मैं कह सकूं, आखिर मैंने ही तो तुम्हें गुरु चुना था। मैंने ही समर्पण किया था तुम्हारे चरणों में, सब कुछ छोड़ दिया था। तो गुरु पकड़ेगा, शास्त्र पकड़ेगा, नेता को पकड़ेगा।

हिटलर या स्टैलिन या मुसोलिनी या माओ ऐसे ही पैदा नहीं हो जाते, पूरा मुल्क गुलाम होना चाहता है। पूरा मुल्क चाहता है कि कोई जोर से कह दे कि मुझे पता है ठीक क्या है, और हम उसके चरणों में पड़ जाएं। यह झंझट हम पर मत डालो कि ठीक क्या है। साफ-साफ हमें बता दो कि यह करो और यह मत करो।

इसलिए हम नीतिशास्त्रियों के पीछे पड़ते हैं, साधु-महात्माओं के हाथ-पैर जोड़ते हैं कि बताओ ठीक क्या है, गलत क्या है। जिनसे हम पूछ रहे हैं, उन्होंने किसी और से पूछा है। उन्हें भी कुछ पता नहीं है कि ठीक क्या है, गलत क्या है। लेकिन जब हमें पूछते लोग देखते हैं, तो बताने वाले लोग भी मिल जाते हैं। वे हमें बता देंगे कि यह ठीक है और यह गलत है। कोई हमसे बोझ ले ले; स्वतंत्रता बड़ी बोझिल मालूम पड़ती है। होना तो चाहिए उलटा कि स्वतंत्रता पंख बन जाए आकाश में उड़ने के लिए, लेकिन स्वतंत्रता मालूम पड़ती है जंजीरों से भी ज्यादा बोझिल। क्योंकि कुछ सूझता नहीं, क्या करें?

झेन फकीर हुआ है नान-इन। वह अपने गुरु के पास था। एक दिन रात देर हो गई। अंधेरी रात है, वह वापस लौटने को है। उसने गुरु से कहा कि रास्ता बहुत अंधेरा है। तो गुरु ने कहा कि मैं तुम्हें दीया दिए देता हूं। और गुरु ने दीया जलाया और नान-इन के हाथ में दीया रखा। और जैसे ही नान-इन पहली सीढ़ी पर पैर रख कर नीचे उतरने लगा, गुरु ने दीया फूंक कर बुझा दिया। नान-इन ने कहा, ऐसी कैसी मजाक करते हैं, रास्ता बहुत अंधेरा है। गुरु ने कहा, लेकिन दूसरे के दीए के सहारे जो प्रकाश मिलता है, उससे अपना ही अंधेरा बेहतर है। खोजो रास्ता अंधेरे में। अंधेरे में रास्ता खोजने से तुम्हारे भीतर का दीया जलेगा। रास्ता खोजोगे, खोजने से निखार आता है। टकराओगे, गिरोगे, हाथ-पैर टूटेंगे, कोई फिक्र नहीं; लेकिन आत्मा निर्मित होगी। मेरे दीए के सहारे हाथ-पैर तो बच जाएंगे, लेकिन आत्मा खो जाएगी। इसलिए बुझा देता हूं।

नान-इन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं उस आदमी को अब तक नहीं भूल पाया। यद्यपि उसने मेरे हाथ का दीया छीन लिया था और जला हुआ दीया बुझा दिया था; लेकिन वह वही आदमी था जिसने मुझे अंधेरे में धक्का दिया और मेरे भीतर के दीए को जलने की सुविधा बनाई। तो आज जब मेरे भीतर का दीया जल रहा है, तो मैं उसे ही धन्यवाद देता हूं।

स्वतंत्रता! परमात्मा भी आपके हाथ में दीया दे सकता है। और तब आप दीए के सहारे कीड़े-मकोड़ों की तरह जी सकते हैं। कभी न गिरेंगे, कभी न भटकेंगे, नर्क कभी न आएगा, सीधे स्वर्ग में पहुंच जाएंगे। लेकिन जो स्वर्ग दूसरे के सहारे मिलता है, वह नर्क से भी बदतर है। क्योंकि वह स्वर्ग भी परतंत्रता होगी। जो शुभ अपना ही नहीं है, स्वयं का खोजा और जीया हुआ नहीं है, उस शुभ का होना अशुभ से भी अशुभ है।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ निर्मित करता है सब, लेकिन नियंत्रण नहीं करता। इशारा नहीं करता कि ऐसे चलो। चलने की शक्ति देता है, चलने के आयाम देता है, लेकिन कहता नहीं कि ऐसे चलो। चलने की शक्ति उसकी, चलने का आकाश उसका, चलने के मार्ग उसके, अंधेरा उसका, प्रकाश उसका, चलने वाला उसका, लेकिन फिर भी इशारा नहीं करता कि बाएं चलो कि दाएं चलो। जीवन देता है, लेकिन मुक्ति जीवन का आधार बना देता है। चाहें तो यही हमारे जीवन का कष्ट हो जाएगा और चाहें तो यही हमारे जीवन का सौभाग्य हो सकता है। इस स्वतंत्रता से हम चाहें तो बड़ा सृजन हो जाए; और हमारे भीतर छिपा जो परम है, वह प्रकट हो जाए। और चाहें तो इस स्वतंत्रता को हम अपना ही अंधेरा बना लें, अपना ही नर्क; और इसमें खो जाएं और विनष्ट हो जाएं।

लेकिन एक बात तय है कि जगत में परम स्वतंत्रता है। और यह परम स्वतंत्रता परमात्मा के अस्तित्व की अघोषित घोषणा है। यह मौन वक्तव्य है उसका कि मैं हूं। लेकिन हम सबको यह स्वतंत्रता का ख्याल ही नहीं है। हम डरते हैं, जैसा मैंने कहा, क्योंकि स्वतंत्रता का अर्थ होता है दायित्व, स्वतंत्रता का अर्थ होता है रिस्पांसबिलिटी। स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि सभी कृत्यों के लिए अंततः मैं ही जिम्मेवार हो गया। नर्क जाऊंगा, तो किसी को दोष न दे सकूंगा। मैं ही जिम्मेवार हूं। इस जिम्मेवारी से घबड़ाहट होती है। हम सब

जिम्मेवारी टालते हैं एक-दूसरे पर। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक-दूसरे की जिम्मेवारी हम एक-दूसरे पर रख देते हैं। पत्नी पति पर रख देती है, पति पत्नी पर रख देता है। दोनों निश्चिंत हो जाते हैं कि कोई और जिम्मेवार है। उन्हें पता नहीं कि वे कैसा खेल खेल रहे हैं।

एरिक बर्न ने एक किताब लिखी हैः गेम्स दैट पीपुल प्ले। उसमें सारे खेलों की चर्चा है, जो आदमी खेल रहा है। यह भी एक खेल है कि हम एक-दूसरे पर जिम्मेवारी टाल देते हैं। और जिस पर हम जिम्मेवारी रख रहे हैं, वह भी हम पर जिम्मेवारी रख देता है।

अब मजे की बात यह है कि जो अपनी जिम्मेवारी भी नहीं ढो सका, वह दूसरे की कैसे ढो पाएगा? लेकिन उसे पता ही नहीं है कि आपने जिम्मेवारी उस पर रखी है; आपको पता नहीं है कि उसने आप पर रखी है। इसलिए दोनों जीवन भर एक-दूसरे को दोष देते रहेंगे, बिना यह जाने हुए कि आप दोनों एक से भिखारी हैं और एक-दूसरे के सामने भिक्षा-पात्र फैलाए खड़े हैं। दोनों एक-दूसरे से मांग रहे हैं; देने वाला उनमें कोई भी नहीं है।

स्वतंत्रता से भय होता है। इसलिए हम किसी तरह की गुलामी चाहते हैं। हमारा जो तथाकथित परमात्मा है--लाओत्से का नहीं--हमारा जो तथाकथित परमात्मा है, वह भी गुलामी है। वह भी हमारी गुलामी है। वह भी हम उस पर ही छोड़ देते हैं रात कि अब तू ही सम्हाल। उस पर हम छोड़ना चाहते हैं कि तू ही सम्हाल।

इसलिए बड़े मजे की बात है, जब आदमी सुख में होता है, तो परमात्मा का स्मरण नहीं करता; जब दुख में होता है, तभी करता है। क्योंकि दुख में ही जिम्मेवारी दूसरे पर टालने का सवाल उठता है, सुख में तो हम खुद ही ले सकते हैं। जब सुख आता है, तो हम खुद ही जिम्मेवार होते हैं; हमारे कारण ही आता है। और जब दुख आता है, तब दूसरे के कारण आता है। तब हम परमात्मा की तरफ अंगुली उठाना चाहते हैं कि तेरे रहते और हम ऐसा दुख पा रहे हैं! तेरा रहना ही फिजूल है! तेरा होना बेकार है! तू अगर है, तो सबूत दे कि हमारे दुख को मिटा दे।

एक आदमी मेरे पास आया था, वह कह रहा था कि मुझे परमात्मा पर पक्का भरोसा आ गया; क्योंकि मैंने कहा कि पंद्रह दिन के भीतर अगर मेरे लड़के की नौकरी नहीं लगती है, तो फिर कभी तुझ पर भरोसा नहीं कर सकूंगा; और नौकरी लग गई। मैंने कहा, परमात्मा ने तुमसे बड़ा कच्चा सौदा किया है, किसी भी दिन टूटेगा। मैंने कहा, अब दुबारा ऐसी शर्त कभी मत रखना, नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। उसने कहा, क्या कहते हैं आप! अब तो मुझे पक्का भरोसा आ गया कि परमात्मा है। मैंने कहा, यही भरोसा तुझे दिक्कत में और तेरे परमात्मा को भी दिक्कत में डालेगा। क्योंकि यह सिर्फ संयोग की बात है कि तेरे लड़के की नौकरी लग गई। इस अहंकार में मत पड़ कि तेरे लड़के की नौकरी लगाने के लिए परमात्मा को उत्सुकता लेनी पड़ेगी। इस अहंकार में मत पड़। नहीं तो तू ज्यादा महत्वपूर्ण, तेरा लड़का ज्यादा महत्वपूर्ण, तेरे लड़के की नौकरी ज्यादा महत्वपूर्ण। परमात्मा तो एक सेवक की हैसियत का हो जाता है। और अब दुबारा ऐसी सेवा मत लेना, क्योंकि संयोग सदा नहीं लगेगा।

दो महीने बाद वह आदमी आया और कहने लगा, आपने कैसा वचन बोल दिया, सब गड़बड़ हो गया है। मैंने कहा, मैंने कोई वचन नहीं बोला। उसने कहा कि क्या! कैसी आपने बात कह दी! उस दिन से तीन-चार दफे कोशिश कर चुका, हर बार असफलता हाथ लग रही है। परमात्मा ने मुझसे पीठ मोड़ ली है।

न परमात्मा पीठ मोड़ रहा है, न आपकी तरफ चेहरा किए हुए खड़ा है। न उसकी कोई पीठ है, न उसका कोई चेहरा है। न आपकी आवाज, न आपके निवेदन, न आपकी प्रार्थनाएं, न आपके आग्रहों का कोई अर्थ है। आपका मूल्य है। लेकिन आपका मूल्य उसी अर्थ में है, जिस अर्थ में आप अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर पाते हैं सृजनात्मक। हाऊ टु यूज दि फ्रीडम क्रिएटिवली, बस वही आपका मूल्य है।

साधना का यही अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग। साधना का यही अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग। संसारी आदमी का अर्थ होता हैः स्वतंत्रता का विध्वंसात्मक उपयोग। अपनी ही हत्या किए चला जाता है। अपनी ही स्वतंत्रता को अपने ही प्राणों के लिए बाधा बनाए चला जाता है। आखिर में खुद की स्वतंत्रता खुद की सूली बन जाती है।

तो दुख में हम याद करते हैं, क्योंकि दुख में हम जिम्मेवारी डालना चाहते हैं। सुख में हम बिल्कुल याद नहीं करते। इसलिए रसेल ने लिखा है कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा कि परमात्मा सच में है या नहीं और उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा कि दुनिया में कोई आस्तिक है या नहीं, जिस दिन दुनिया में कोई दुख न होगा, उस दिन पता चलेगा।

रसेल ठीक कह रहा है। जहां तक हमारी आस्तिकता का संबंध है, हमारी आस्तिकता वर्षा में कच्चे रंगों की तरह बह जाएगी। अगर दुनिया में कोई दुख न हो--थोड़ा सोचें एक क्षण को--दुनिया में कोई दुख न हो, क्या कोई भी आदमी परमात्मा को याद करेगा? क्या मंदिर की घंटियां बजेंगी और चर्च के दीए जलेंगे? क्या नमाज या अजान सुबह उठती हुई मस्जिद से सुनाई पड़ेगी?

दुख! ये सब मंदिर और मस्जिद, अजान और प्रार्थना और पूजा, ये सब यज्ञ-हवन, यह सब हमारा दुख बोल रहा है। और मजा यह है कि न मस्जिद मिटा सकती है दुख को, न मंदिर, न पूजा, न पाठ। दुख बनाते हम हैं, मिटा हम सकते हैं। दुख हमारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग है।

लेकिन स्वतंत्रता से ही हम बचना चाहते हैं। सच में कभी सोचें इसको एक क्षण को, कोई दुख न हो, तो परमात्मा का ख्याल भी कहां उठेगा? क्यों उठेगा? परमात्मा तो ठीक वैसे ही है, जैसे बीमारी में दवाई का ख्याल उठता है। जब बीमारी ही नहीं है, तो कोई पागल है जिसको दवाई का ख्याल उठे? परमात्मा एक दवाई है, एक मेडिसिनल उपयोग है उसका, औषधि की भांति। दुख होता है, परमात्मा की औषधि ले लेते हैं। दुख नहीं होता, औषधि की बोतल को कचरे में फेंक देते हैं। दुख में हम अपना दायित्व किसी के कंधे पर रखना चाहते हैं, सिर्फ इसलिए।

लेकिन परमात्मा के कंधे पर कोई दायित्व नहीं रखा जा सकता, क्योंकि परमात्मा आपको परतंत्र नहीं बनाता है। आप स्वतंत्र हैं। और परमात्मा से ज्यादा स्वतंत्रता का प्रेमी होना बहुत मुश्किल है। स्वतंत्रता इतनी गहन है, इसीलिए इतनी असमानता है।

समाजवादी, साम्यवादी भी परमात्मा के संबंध में जो आलोचना करता है, वह यही करता है कि यदि परमात्मा है तो इतनी असमानता क्यों है? व्हाई दिस इनइक्वालिटी? और उसका तर्क, जिन्होंने कभी सोचने-समझने में मेहनत नहीं की, उन्हें ठीक भी लगता है कि अगर परमात्मा है, तो इतना वैषम्य क्यों है? लोग समान होने चाहिए!

लेकिन ध्यान रहे, स्वतंत्रता और समानता विपरीत स्थितियां हैं। अगर समानता चाहते हैं, तो स्वतंत्रता नहीं रह सकती; अगर स्वतंत्रता चाहते हैं, तो समानता नहीं रह सकती। सभी को समान बनाया जा सकता है, लेकिन तब परतंत्र बनाना पड़ेगा। जेलखाने के अतिरिक्त कहीं भी समानता नहीं हो सकती। और जेलखाने में भी

अगर थोड़ी-बहुत सुविधा होगी, तो असमानता पैदा हो जाएगी। सख्त! इतनी सख्ती होनी चाहिए कि असमान होने का जरा भी मौका न मिले किसी को, तो ही समानता हो सकती है। पूर्ण समानता पूर्ण परतंत्रता में ही संभव है। इसलिए अगर कम्युनिज्म कभी दुनिया में पूरी तरह सफल हो जाए, तो पूरी दुनिया एक बड़ा कारागृह हो जाएगी। और अगर पूरी तरह सफल न हो, तो कम्युनिज्म कभी हो नहीं सकता। कारागृह न हो, तो साम्यवाद नहीं हो सकता।

स्वतंत्रता का अर्थ ही है यह कि जो जैसा होना चाहे, होने के लिए स्वतंत्र है। फिर असमानता हो ही जाएगी। फिर असमानता अनिवार्य है। और अगर समानता रखनी हो, तो फिर ठोंक-पीट कर एक-एक आदमी को वहीं रखना पड़ेगा, जहां वह समान रहे।

एक और मजे की बात है। जितनी ज्यादा समानता होगी, उतना चेतना का तल नीचा हो जाएगा। जितनी ज्यादा समानता होगी, उतना चेतना का तल नीचा हो जाएगा।

इसमें खूबियां हैं। समझें एक तीस बच्चों का क्लास है। उसमें जो तीसवें नंबर का बच्चा है, उसको जबर्दस्ती पहले नंबर का नहीं बनाया जा सकता, लेकिन पहले नंबर वाले को जबर्दस्ती तीसवें नंबर का बनाया जा सकता है। तीसवें नंबर के लड़के को जबर्दस्ती पहले नंबर का नहीं बनाया जा सकता, लेकिन पहले नंबर के बच्चे को पहले नंबर तक पहुंचने से रोका जा सकता है और तीसवें की कतार में खड़ा रखा जा सकता है।

अगर वस्तुतः समानता चाहिए, तो निम्नतम तल पर होगी। क्योंकि निम्नतम को आप खींच कर श्रेष्ठ नहीं बना सकते, लेकिन श्रेष्ठ को आप रोक कर निम्न रख सकते हैं। यह आसान नहीं है कि अस्पताल में जो बीमार पड़े हैं, उन सबको स्वस्थ की, श्रेष्ठतम स्वस्थ की कतार में लाया जा सके। लेकिन यह बिल्कुल आसान है कि जो स्वस्थ हैं, उनको अस्पताल की खाटों पर लिटाया जा सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। पीछे खींचना सदा आसान है, आगे ले जाना सदा कठिन है। इसलिए जितनी बड़ी समानता होगी, उतना नीचे का तल होगा; जितनी बड़ी स्वतंत्रता होगी, उतनी चेतनाएं आकाश को छू सकेंगी। लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है कि जो छूना चाहेगा, वह छुएगा; जो नहीं छूना चाहेगा, वह नहीं छुएगा। जो नहीं उठना चाहेगा, वह बैठा रहेगा अपनी जगह पर। जो चलना चाहेगा, वह दूर की यात्रा पर भी पहुंच जा सकता है।

तो जो लोग कहते हैं कि समानता क्यों नहीं है जगत में, अगर परमात्मा है? क्योंकि मार्क्स ने परमात्मा को इनकार इसीलिए किया कि जगत में इतनी असमानता क्यों है? परमात्मा नहीं हो सकता! और मैं कहता हूं कि परमात्मा के होने का यह भी एक सबूत है कि इतनी असमानता है, क्योंकि इतनी स्वतंत्रता है।

अक्सर लोग स्वतंत्रता-समानता का नारा एक साथ लगाते हैं। बल्कि एक तीसरा नारा और लगाते हैं, जो और भी हैरानी का है। फ्रेंच-क्रांति में जो नारा था, वह थाः जस्टिस, फ्रीडम, इक्वालिटी। यह बिल्कुल पागलपन का नारा है। न्याय, स्वतंत्रता, समानता। पर ख्याल में नहीं आता, क्योंकि हम शब्दों के मोहजाल में पड़ जाते हैं, कभी उनके भीतर नहीं उतर कर देखते। अगर समानता होगी, तो स्वतंत्रता नहीं बचेगी। अगर स्वतंत्रता होगी, तो समानता नहीं बचेगी। और अगर न्याय चाहिए, तो दो में से एक को चुनना पड़ेगा। अगर न्याय चाहिए, तो दोनों को नहीं चुना जा सकता। और जो स्वतंत्रता को चुनेगा, तो न्याय दूसरे ढंग का होगा। और जो समानता को चुनेगा, तो न्याय दूसरे ढंग का होगा। अगर समानता को चुनते हैं, तो असमान होने की कोशिश ही अन्याय होगी। और अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो असमान होने की सुविधा ही न्याय होगी। अगर समानता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को बांध कर रखना ही न्याय होगा। अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को

असमान हो जाने की सुविधा, व्यवस्था, मार्ग देना ही न्याय होगा। कोई किसी के असमान होने में बाधा पड़े, तो अन्याय है। ये तीनों बड़ी उलटी बातें हैं। और स्वतंत्रता और समानता तो भारी सवाल है।

इसलिए मार्क्स ने ईश्वर को इनकार कर दिया। उसे ईश्वर से ऐसे कोई ज्यादा प्रयोजन नहीं था। क्योंकि ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं था। लेकिन एक बात उसे समझ में आई और वह यह कि अगर ईश्वर है, तो स्वतंत्रता नष्ट नहीं की जा सकती। अगर ईश्वर है, तो यह जो असमानता है, यह जारी रहेगी। तो अगर हमें असमानता नष्ट करनी हो, स्वतंत्रता नष्ट करनी हो, तो स्वतंत्रता का जो केंद्रीय सिद्धांत है ईश्वर, उसे हमें विदा कर देना चाहिए।

इसलिए कम्युनिज्म अकारण अनीश्वरवादी नहीं है। उसका कारण है, और गहरा कारण है। इसलिए कोई आदमी कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ-साथ हो, तो असंभव है। यह नहीं हो सकता। कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ-साथ हो, तो असंभव है। यह नहीं हो सकता। नास्तिक होना अनिवार्य है। क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह होता है कि नियंत्रण नहीं। यह जो लाओत्से कह रहा है, यह तो मार्क्स से ढाई हजार साल पहले कहा है। नियंत्रण नहीं, तो ही स्वतंत्रता हो सकती है। और स्वतंत्रता हो, तो ही विकास की संभावना है।

लेकिन तब दायित्व हमारे ऊपर है। और दायित्व से अगर हम बचना चाहते हैं, तो हम कोई न कोई गुलामी तत्काल चुन लेंगे। अगर परमात्मा न मिले हमें गुलाम बनाने को, गुरु न मिलें, तो हम राज्य को, स्टेट को मालिक बना लेंगे। अंतर नहीं पड़ेगा। कोई चाहिए जो हमारे गले में लगाम डाल दे और हमें जानवरों की तरह चलाए। हम खुद नहीं चल सकते; कोई हमें घसीटे, कोई हमें धक्का दे। तब हम ज्यादा आश्वस्त होते हैं। तब हमें लगता है कि अब ठीक जा रहे हैं। अब भूल का कोई कारण नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, यही बड़ी से बड़ी भूल है। दूसरी और कोई भूल हो नहीं सकती। बड़ी से बड़ी भूल एक है; और वह अपनी स्वतंत्रता को खोकर हम कुछ भी करें, तो भूल हो जाएगी, पाप हो जाएगा, अपराध हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, "इसे ही ताओ की रहस्यमयी विशेषता कहते हैं। दिस इ.ज दि मोस्ट मिस्टीरियस क्वालिटी ऑफ दि ताओ।"

यही उसकी सबसे रहस्यपूर्ण विशेषता है। है भी, होना उसका है, और फिर वह किसी की परतंत्रता नहीं है। इसे थोड़ा सोचें। अगर परमात्मा यहां खड़ा हो जाए अभी, इसी वक्त, तो आप स्वतंत्र नहीं रह जाएंगे। कुछ करे नहीं, सिर्फ खड़ा हो जाए, सिर्फ परमात्मा यहां मौजूद हो जाए, तो आप सब परतंत्र हो जाएंगे तत्काल। क्यों? क्योंकि उसकी मौजूदगी आपके लिए आत्म-निंदा बन जाएगी। उसकी मौजूदगी में आप घबड़ा जाएंगे, आपके सारे पाप आपके सामने दिखाई पड़ने लगेंगे।

इसलिए धार्मिक आदमी लोगों को समझाते रहे हैं कि वह सब तरफ से देख रहा है, उसकी हजार-हजार आंखें हैं। यह तरकीब है। उसकी आंख बिल्कुल नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि वह अंधा है। वह बिना आंख के देख सकता है। लेकिन धार्मिक आदमी समझाता रहा है, वह सब तरफ से देख रहा है। अगर तुम चोरी कर रहे हो, तो ध्यान रखना, भला पुलिस वाला वहां न हो, मजिस्ट्रेट वहां न हो, मकान-मालिक वहां न हो, लेकिन परमात्मा वहां मौजूद है। उसकी मौजूदगी आपमें भय पैदा करवाने के लिए समझाई जाती रही है। इसलिए कहीं भी जाओ, कुछ भी करो, एक तो देख ही रहा है। हजार आंखें आप पर लगी हैं।

तो अगर सच में किसी आदमी को इस पर पक्का भरोसा आ जाए, तो पाप करना मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि अगर हजार आंखें, सर्चलाइट की आंखें, परमात्मा की आंखें, एकदम छेद देंगी सब तरफ, एक्सरे की आंखें

होंगी, हड्डी-हड्डी तक पार कर जाएंगी। चोरी करिएगा कैसे? एक पैसा उठा रहे हैं और हजार आंखें देख रही हैं! पसीना-पसीना हो जाएगी--शरीर नहीं, आत्मा। आत्मा पसीना-पसीना हो जाएगी। हाथ से पैसा छूट जाएगा, आप भाग खड़े होंगे।

लेकिन इस तरह जो पाप से बचा, वह पाप से बचा नहीं, सिर्फ भय में गिरा। पाप तो हो गया, दोहरा हो गया--चोरी भी हो गई और भय भी हो गया।

मैंने सुना है कि एक कैथोलिक नन बाथरूम में भी पकड़े पहन कर नहाती थी। तो उसकी और साध्वियों ने पूछा, नन्स ने, कि तू पागल हो गई है! बाथरूम में कपड़े पहन कर नहाने की क्या जरूरत है? उसने कहा, क्या तुमने पढ़ा नहीं कि परमात्मा सब जगह मौजूद है। बाथरूम में भी मौजूद है।

पर उस पागल को किसी ने बताया नहीं कि जो बाथरूम में देख सकता है, वह कपड़े के भीतर भी देख ही लेगा। अगर वह सभी जगह मौजूद है, तब तो कहीं भी नग्न होने की सुविधा है, क्योंकि वह देख ही रहा है। अब कोई उपाय नहीं।

लेकिन यह भय, फियर कांप्लेक्स को खड़ा करने की चेष्टा की गई, इसके दुष्परिणाम हुए। आदमी अच्छा नहीं बना, सिर्फ भयभीत बना। और भयभीत आदमी कभी अच्छा नहीं हो सकता। सिर्फ अभय आदमी ही अच्छा हो सकता है। लेकिन ये धर्मगुरुओं ने परमात्मा को मौजूद करने की कोशिश की, जगह-जगह मौजूद करने की कोशिश की। यद्यपि परमात्मा स्वयं बिल्कुल गैर-मौजूद है, एब्सेंट है टोटली, बिल्कुल गैर-मौजूद है। वह भी उसकी स्वतंत्रता का हिस्सा है। अगर वह मौजूद हो जाए, तो हम स्वतंत्र हो ही नहीं सकते, हम हो ही नहीं सकते। उसके खड़े होते ही हम परतंत्र हो जाएंगे। क्योंकि उसकी मौजूदगी ही हमारे भीतर अंतःकरण के लिए पीड़ा बन जाएगी। उसके सामने कैसे होगी चोरी? उसके सामने कैसे होगा पाप? उसके सामने कैसे होगी हिंसा? वह असंभव हो जाएगा।

इसलिए परमात्मा की अनिवार्य स्वतंत्रता का हिस्सा है उसकी गैर-मौजूदगी, उसकी एब्सेंस। वह ऐसे है, जैसे है ही नहीं। क्लास लगी है और शिक्षक गैर-मौजूद है। तो जिसको जो सूझ रहा है, जिसको जो लग रहा है, वह कर रहा है। स्वतंत्र है प्रत्येक करने को। यह उसकी गहनतम रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और गैर-मौजूद है। है और उपस्थित नहीं है। सब जगह है। रत्ती भर जगह उससे खाली नहीं है, इंच भर जगह उससे खाली नहीं है; रोएं-रोएं में, धड़कन-धड़कन में, कण-कण में वही है; और फिर भी गैर-मौजूद है, और फिर भी पता नहीं चलता कि वह है भी। और लोग पूछते हैं कि क्या ईश्वर है? कहां है?

यही उसकी रहस्यमयी विशेषता हैः है और हम पूछ सकते हैं कि कहां है? सब जगह है और हम पूछ सकते हैं, कहां है? वही है और हम पूछ सकते हैं कि दिखाई नहीं पड़ता, हम नहीं मान सकते। क्योंकि कहीं होता, तो दिखाई तो पड़ जाता। किसको कब दिखाई पड़ा है? और जो कहता भी है कि मैं जानता हूं, वह भी कहां बता सकता है दूसरों को? हम कह सकते हैं, पागल हो गया, सपने देख रहा है, मस्तिष्क खराब हो गया है, कल्पना में डूब गया है, प्रक्षेप में पड़ गया है। क्योंकि हजार हैं कहने वाले कि दिखाई नहीं पड़ता और कभी कोई एक कहता है कि है। मालूम पड़ता है वह एक इतना अकेला पड़ जाता है। बहुत अकेला पड़ जाता है।

बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट या मोहम्मद बहुत अकेले हैं। असल में, इनसे ज्यादा एकाकी आदमी जमीन पर दूसरे नहीं हुए। इतनी बड़ी भीड़ में ये रहते हैं, महावीर को हजारों लोग घेरे रहते हैं, लेकिन बिल्कुल अकेले हैं। क्योंकि महावीर जिस बात को कह रहे हैं, इनमें से कोई भी नहीं जानता। और इनमें से कोई भी नहीं मानता। यह लाओत्से जो कह रहा है, इसके पास हजारों की भीड़ लगी रही है, बाकी यह आदमी अकेला है।

यह हैरानी की बात है कि लाखों की भीड़ से घिरे हुए ये लोग नितांत अकेले हैं। क्योंकि ये जो कह रहे हैं, हम सबको शक है कि हो नहीं सकता। दिखाई तो पड़ता नहीं है। पर ये आदमी प्यारे हैं, मैग्नेटिक हैं, इनके प्राणों में कोई चुंबक है कि इनकी बात पर भरोसा भी नहीं आता और फिर भी इनके पीछे हमें चलना पड़ता है। इनमें कुछ जादू है, हिप्नोटिक हैं, पकड़ लेते हैं, फिर छोड़ते नहीं हैं। मानने का मन नहीं होता, इनकार करने की इच्छा होती है। हजार बार भागते हैं, इनके खिलाफ सोचते हैं, इनसे बचने की कोशिश करते हैं। और फिर भी कुछ है कि वापस ये आदमी खींच लेते हैं। पर ये आदमी अकेले हैं! क्योंकि ये उसकी बात कर रहे हैं, जो इन्हें मौजूद मालूम पड़ता है और हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद है। हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद है।

रामकृष्ण विवेकानंद से कहते हैं कि सुना है मैंने तू कई दिन से भूखा है। पागल, तो तू जाकर अंदर मां से मांग क्यों नहीं लेता तुझे क्या चाहिए? विवेकानंद बुद्धिमान युवक, सोच-समझ वाला। ये किस तरह की बातें रामकृष्ण करते हैं कि भीतर जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता! कहां है मां? कौन है मां? लेकिन यह रामकृष्ण आदमी इतने भरोसे से कह रहा है कि इसके सामने यह भी हिम्मत नहीं पड़ती कहने की कि कहां है? कौन है?

कर्ज है। पिता मर गए हैं। कर्ज चुकता नहीं है। मां भूखी रहती है। इतना खाना किसी दिन बनता है कि एक ही खा सकता है, या तो मां खा ले या विवेकानंद खा लें। तो विवेकानंद कहते हैं कि फलां मित्र के घर आज मेरा निमंत्रण है, मैं वहां चला जाता हूं। ताकि मां खाना खा ले। क्योंकि एक ही खा सकता है, इतना ही खाना है। घूम कर, रास्तों पर चक्कर भूखे लगा कर हंसते हुए घर लौट आते हैं, पेट पर हाथ फेरते हैं, डकार लेते हैं कि बहुत अच्छा हुआ, मित्र के घर चला गया, अच्छा भोजन मिला, ताकि मां निश्चिंत रहे। रामकृष्ण को पता चलता, तो वे कहते, तू पागल है! कितना है कर्ज तेरा? तू जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता है?

यह पागल है रामकृष्ण! कौन मां? कौन देगा? भरोसा नहीं आता, विश्वास नहीं होता।

रामकृष्ण पुजारी हुए हैं। तो आठ दिन बाद ही जिस समिति ने उनको पुजारी बनाया है, जिस ट्रस्टी मंडल ने पुजारी बनाया है, उसने उन पर मुकदमा चला दिया आठवें दिन ही। बुलाए गए, कहा कि तुम आदमी कैसे हो? क्योंकि हमने सुना है कि तुम भोग लगाने के पहले खुद चख लेते हो! तो भोग पहले लगाना होता है कि पहले खुद चखना होता है? जूठा भोग लगता है?

रामकृष्ण ने कहा कि मेरी मां जब मुझे खाना खिलाती थी, तो बना कर पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। तो मैं मां को बिना चखे नहीं दे सकता। पता नहीं, खाने योग्य बना भी हो कि न बना हो।

वह जो मंडल ट्रस्टियों का है, वह अपना सिर ठोंकता है--कैसी मां? मंदिर उनका है, मां की मूर्ति उन्होंने खड़ी की है। इस पुजारी को तो पकड़ लाए हैं, पागल को। अठारह रुपए महीने की कुल जमा इसकी हैसियत है। लाखों का वह मंदिर है, बनाने वाले वे हैं। और यह पुजारी उनसे कह रहा है कि बिना चखे मैं मां को चढ़ा नहीं सकता, क्योंकि पता नहीं, भोजन करने योग्य बना हो, न बना हो। तो नौकरी छोड़ने को राजी हूं; लेकिन भोजन तो पहले चखूंगा, फिर भोग लगाऊंगा। फूल पहले सूंघूंगा, फिर चढ़ाऊंगा। अगर सुगंध ही नहीं है, तो चढ़ाने से फायदा क्या है? ट्रस्टी लोग एक-दूसरे की तरफ देखते हैं, यह आदमी क्या कह रहा है? पागल हो गया है? मंदिर हमने बनवाया, वह मूर्ति हमने खड़ी की। कहां की मां है! कहां का क्या है! सब हमारा खेल है, नाटक है। पुजारी पागल है। भरोसा हमें कभी आता नहीं इन लोगों का। लेकिन रामकृष्ण की आंख में देखते हैं, तो मानना भी पड़ता है कि शायद ठीक ही कहता होगा, शायद इसको दिखाई पड़ता हो। शक तो पूरा है।

ये व्यक्ति अकेले हैं। और इनके अकेले होने का सबसे बड़ा कारण परमात्मा की यह रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और अनुपस्थित, एज इफ ही इ.ज नाट। ही इ.ज, एज इफ ही इ.ज नाट। पूरी तरह है, पर यह एज

इफ, यही उसका रहस्य है कि बिल्कुल गैर-मौजूद है। इसलिए जो गैर-मौजूदगी में देखने की कला खोज लेते हैं, वे ही उसे देख पाते हैं। जो बिना आंखों के देखने की कला खोज लेते हैं, वे उसे देख पाते हैं। जो बिना हाथों के उसके आलिंगन में उतर जाते हैं, वे उसके आलिंगन में उतर पाते हैं। यह रहस्यमयी विशेषता न तो नास्तिक मानते हैं, न आस्तिक मानते हैं। इसको समझ लें।

नास्तिक तो कहता हैः छोड़ो, बकवास है। जो नहीं है, वह नहीं है। इतना उलटा घूम कर कान को पकड़ने की जरूरत क्या है? सीधा पकड़ लें; नहीं है, नहीं है; है, है। नास्तिक का तर्क सीधा-साफ है, गणित को मानता है, व्यवस्थित है। वह कहता है कान को पकड़ते हैं सीधा, इतना उलटा जाने की क्या जरूरत है कि एज इफ ही इ.ज नाट। कहो सीधा, ही इ.ज नाट। बात खतम हो गई। यह एज इफ का इतना लंबा चक्कर क्या? जैसे कि! जैसे कि क्या जरूरत है जोड़ने की? नहीं है, तो नहीं है। है, तो है। नास्तिक भी कहता है कि अगर है, तो प्रकट होना चाहिए है के रूप में। तो हम स्वीकार कर लें।

आस्तिक को भी यही दिक्कत है। आस्तिक भी मुश्किल में पड़ता है। उसको भी, एज इफ उसको भी पकड़ में नहीं आता--कि जैसे नहीं है ऐसा है। तो फिर वह तरकीबें खोजता है। उसकी तरकीबें जाहिर हैं। उसकी एक तरकीब तो यह है कि वह प्रतीक बनाता है। इसी को प्रकट करने के लिए, इस रहस्यमयी विशेषता को समाप्त करने के लिए, तर्क सीधा करने के लिए वह प्रतीक बनाता है। एक मूर्ति खड़ी करता है। परमात्मा की बात छोड़ता है, मूर्ति के चरण पकड़ता है। अब मूर्ति कम से कम है। और तब वह कहता है कि अब कुछ है जो हाथ में आता है। कुछ हाथ में आता है। तब किसी राम को, तब किसी बुद्ध को, तब किसी कृष्ण को, उनके चरण पकड़ता है। और कहता है कि छोड़ो, वह रहस्यमयी होगा, वह परम ब्रह्म होगा, जो होगा; तुम हो, और तुम भी काफी हो। मगर यह भी तर्क नास्तिक का ही है। नास्तिक की ही बात है यह भी। नास्तिक से वह जीत नहीं पाता, तो वह कहता है, नहीं होगा परमात्मा, राम तो हैं! राम परमात्मा हैं। कृष्ण तो हैं, कृष्ण परमात्मा हैं।

फिर वह राम और कृष्ण के आस-पास चमत्कारों की कथाएं इकट्ठी करता है। क्योंकि वह नास्तिक कहता है कि अगर राम के पैर में भी कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो हममें और राम में फर्क क्या है? अगर महावीर के भी पैर में कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो महावीर और हममें फर्क क्या है? और अगर गर्दन काटो, और महावीर भी मर जाएं और हम भी मर जाएं, तो कैसे परमात्मा हैं?

तो फिर इस आस्तिक को इनके आस-पास चमत्कार जोड़ने पड़ते हैं। फिर आस्तिक को कहना पड़ता है कि नहीं, तुम काटो महावीर को, तलवार कट जाए, महावीर नहीं कटते। जीसस को मारो, तुम समझ रहे हो कि मार लिया, दूसरे दिन जीसस रिसरेक्ट, फिर पुनरुज्जीवित हो जाते हैं। फिर दिखाई पड़ते हैं, फिर हैं। उनको तुम मार नहीं सकते। तब वह कथाएं जोड़ता चला जाता है। यह सिर्फ हमारी नासमझी का फल है। इस रहस्यमयी विशेषता को न समझने के कारण हमको ये सब उपद्रव जोड़ने पड़ते हैं।

एक मित्र कल ही आए थे। समझदार हैं, विचारशील हैं, मुझे वर्षों से प्रेम करते हैं। वे मुझसे कहने लगे, आप भी कुछ साईंबाबा जैसा क्यों नहीं करते? कोई एकाध चमत्कार! तो अभी लाखों लोग आ जाएं।

पर उन लाखों लोगों को बुला कर क्या करना है? उनको बुला कर भी क्या करिएगा? निश्चित ही, चमत्कार से वे जरूर आ जाते हैं। लेकिन चमत्कार से आते हैं, साईंबाबा से नहीं आते। एक भी आए, साईंबाबा के कारण आए, तो कुछ फल है। चमत्कार से आए, तो कुछ भी फल नहीं है। क्योंकि चमत्कार से जो आता है, वह आस्तिक नहीं है। आस्तिक तो वह है, जो कहता है, इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है। इस जगत में ऐसा कुछ है ही नहीं, जो चमत्कार न हो। एक बीज वृक्ष बन रहा है, आकाश में बादल चल रहे हैं, सूरज रोज निकल रहा

है, तारे हैं, आदमी हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, हर चीज चमत्कार है। जिसको हर चीज चमत्कार नहीं दिखती, वह कहता है, हाथ में से राख निकल रही है, बड़ा चमत्कार हो रहा है! इस जगत में जहां सूरज निकल रहे हैं, चमत्कार नहीं हो रहा इस अंधे को। इसको हाथ में से जरा सी राख निकल रही है, यह कह रहा है, चमत्कार हो रहा है।

यह राख को मानने वाली जो बुद्धि है, यह बुद्धि परमात्मा की तरफ जाने वाली बुद्धि नहीं है। तो यह लाख की भीड़ तो इकट्ठी हो सकती है, लेकिन यह भीड़ मदारी के डमरू को सुन कर इकट्ठी हुई भीड़ है। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मुसीबत है। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या राम या क्राइस्ट या मोहम्मद, इनके आस-पास जो कथाएं गढ़ी जाती हैं, वे सरासर झूठ हैं। वे झूठ इसलिए हैं... ।

लेकिन भक्त की मजबूरी है। वह न जोड़े, तो भगवान नहीं मालूम पड़ते हैं। वह अगर न जोड़े, तो साधारण आदमी रह जाते हैं। तो उसे कहना पड़ता है कि मोहम्मद जब चलते हैं, तो कितनी ही सख्त धूप हो, एक बदली उनके ऊपर चलती है। उसे कहना पड़ता है, उसकी मजबूरी है। मजबूरी वही है, क्योंकि तर्क उसका भी नास्तिक का है, बुद्धि उसकी भी नास्तिक की है। हृदय उसके पास भी नहीं है आस्तिक का, जो कहे कि चमत्कार को क्या खोजने जाएं, इस जगत में ऐसी कोई चीज ही नहीं है जो चमत्कार न हो! कोई एकाध चीज ऐसी खोज लाएं जो चमत्कार न हो, तब मैं समझूं। इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है।

आप हैं, यह कोई छोटा चमत्कार है! आपके होने का कोई भी तो कारण नहीं है, कोई भी तो वजह नहीं है। आप न होते, तो कोई शिकायत कर सकते थे? पर आप हैं, पूरे हैं। और कभी आपको ख्याल नहीं आता कि एक बड़ा चमत्कार घटित हुआ है कि मैं हूं। मेरे होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं न होऊं, तो कुछ हर्ज नहीं होता। मैं नहीं था, तब भी दुनिया चलती थी। मेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है, फिर भी मैं हूं। और मेरा यह होना एक क्षण में अगर टूट जाए, तो मैं शिकायत नहीं कर सकता किसी से कि मुझे नहीं क्यों कर दिया। मैं हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है! मैं नहीं हो जाता हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है! इतना बड़ा चमत्कार प्रतिपल घटित हो रहा है आपके होने में ही, और आप जा रहे हैं कि एक हाथ से थोड़ी सी राख गिर रही है, तो भारी चमत्कार हो रहा है।

बुद्धिहीनता ही चमत्कार मालूम पड़ती है। बुद्धि की कमी से ही चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि हो, तो सारा जगत ही चमत्कार हो जाता है।

फिर आस्तिक को तरकीबें खोजनी पड़ती हैं सिद्ध करने की कि राम भगवान हैं, कि कृष्ण भगवान हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वे भगवान नहीं हैं। मैं यह कह रहा हूं कि यहां सभी कुछ भगवान है। यहां सभी कुछ भगवत्ता है। यहां ऐसा कुछ भी नहीं है, जो भगवान नहीं है। इसलिए अकारण इसको सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है कि राम भगवान हैं। यह तो व्यर्थ की बकवास है। यहां कुछ है ही नहीं, जो भगवान नहीं है। तो राम तो भगवान होंगे ही। यहां तो होना मात्र ही भगवान का है। लेकिन फिर हमें कोशिश करनी पड़ती है। फिर अकेले सीधे-सादे आदमी से तो भगवान नहीं होता। तो फिर हमें तरकीबें खोजनी पड़ती हैं कि ये-ये कारण हैं, जिनसे वे भगवान हैं। फिर हम उनको सामने खड़ा कर लेते हैं। फिर सामने खड़ा करके हम निश्चिंत हो जाते हैं। फिर यह जो रहस्यमयी विशेषता है परमात्मा की, इसको हमने भुलाया, हमने इसको छुड़ाया, अलग किया अपने से। हमने अपना भगवान खड़ा कर लिया। फिर हम मूर्ति बनाते, अवतार बनाते, तीर्थंकर बनाते और इनके आस-पास हम घूमते। क्योंकि हमारे तर्क में ये तो समझ में आते हैं, यह लाओत्से की मिस्टीरियस क्वालिटी ऑफ दि ताओ, यह रहस्यमयी विशेषता हमारी समझ में नहीं आती।

लेकिन जब तक यह समझ में न आए, तब तक जानना कि धर्म के द्वार पर आपका प्रवेश नहीं हुआ है। जिस दिन इस रहस्यमयी विशेषता को समझ में लाने की आप क्षमता जुटा लें, उसी दिन प्रभु के मंदिर की आपको पहली झलक मिलेगी। उसके पहले कोई भी झलक नहीं मिल सकती। उसके पहले के बनाए गए परमात्मा आपके गृह-उद्योग के फल हैं, होम मेड। उसके पहले निर्मित अवतार, तीर्थंकर आपकी कुशलता, आपकी कला के सबूत हैं।

अगर परमात्मा में प्रवेश करना है, तो इस रहस्यमयी विशेषता को स्मरण रखना। ही इ.ज प्रेजेंट, एज इफ ही इ.ज नाट; ही इ.ज एब्सेंट, यट ही इ.ज प्रेजेंट। अनुपस्थित है वह, और मौजूद; और मौजूद है सब जगह, और ऐसे जैसे कि नहीं है। इसे अगर सतत स्मरण रख सकें और यह श्वास-श्वास में प्रवेश कर जाए, तो आपके जीवन में धर्म का उदघाटन, उसका पर्दा उठना शुरू हो जा सकता है।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकेंगे; और बैठे न रहें, जब कीर्तन यहां चलता है तो कीर्तन में आप भी ताली बजा कर सम्मिलित हो जाएं। जिन मित्रों को नाचना हो, वे नीचे भी आ जाएं।

सत्ताईसवां प्रवचन

अनस्तित्व और खालीपन है आधार सब का

Chapter 11 : Sutra 1

The Utility Of Not-Being

The thirty spokes unite the one nave; but it is on the empty space (for the axle), that the use of the wheel depends.

Clay is fashioned into vessels; but it is on their empty hollowness, that their use depends.

The door and windows are cut out (from the walls) to form an apartment; but it is on the empty space (within), that its use depends.

Therefore, what has a (positive) existence serves for the profitable adaptation, and what has not that for (actual) usefulness.

अध्याय 11 : सूत्र 1

अनस्तित्व की उपयोगिता

पहिए की तीसों तीलियां उसके मध्य भाग में आकर जुड़ जाती हैं, किंतु पहिए की उपयोगिता धुरी के लिए छोड़ी गई खाली जगह पर निर्भर होती है।

मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है, किंतु उसकी उपयोगिता उसके शून्य खालीपन में निहित है।

दरवाजे और खिड़कियों को, दीवारों में काट कर प्रकोष्ठ बनाए जाते हैं, किंतु कमरे की उपयोगिता उसके भीतर के शून्य पर अवलंबित होती है।

इसलिए, वस्तुओं का विधायक अस्तित्व तो लाभकारी सुविधा देता है, परंतु उनके अनस्तित्व में ही उनकी वास्तविक उपयोगिता है।

जो व्यक्ति जीवन को ऊपर से ही देख लेते हैं और जीवन की सतह को ही सब कुछ समझ लेते हैं, उन्हें शून्य का उपयोग दिखाई नहीं पड़ेगा। जो तर्क तक ही अपने को सीमित रखते हैं और सोच-विचार से ज्यादा गहराई में कभी नहीं उतरते, उन्हें भी, जो उपस्थित नहीं है वह भी जीवन का आधार है, ऐसा कभी दिखाई नहीं पड़ेगा। जो गणित की भाषा में सोचते हैं, उन्हें जीवन विधायक मालूम होगा, पाजिटिव मालूम होगा। लेकिन

जीवन की विधायकता निगेटिव के अभाव में, नकारात्मक के अभाव में एक क्षण भी नहीं टिक सकती, यह उन्हें दिखाई नहीं पड़ेगा।

इसे हम थोड़े उदाहरण से समझें, तो ख्याल में आ सके। यह लाओत्से के मौलिक सूत्रों में से एक है। मौलिक सूत्र यह है कि जीवन द्वंद्व पर आधारित है। और जीवन अपने विपरीत का विरोध नहीं करता, वरन विपरीत के सहयोग से ही चलता है। साधारणतः देखने में ऐसा लगता है कि अगर आपका शत्रु मर जाए, तो आप ज्यादा सुख में होंगे। लेकिन शायद आपको पता न हो कि आपके शत्रु के मरते ही आपके भीतर भी कुछ मर जाएगा, जो आपके शत्रु के कारण ही आपके भीतर था। इसलिए बहुत बार ऐसा होता है कि मित्र के मरने पर इतनी हानि नहीं होती, जितनी शत्रु के मरने पर हो जाती है। क्योंकि वह जो विरोध कर रहा था, वही आपके भीतर चुनौती भी जगा रहा था। वह जिसके विरोध और संघर्ष में आप सतत रत थे, वही आपका निर्माण भी कर रहा था।

इसलिए लाओत्से ने कहा है कि मित्र तो कोई भी चल जाएंगे, लेकिन शत्रु सोच कर चुनना। क्योंकि मित्र इतने प्रभावित नहीं करते हैं जीवन को, जितना शत्रु प्रभावित करता है। क्योंकि मित्र की तो उपेक्षा भी की जा सकती है, शत्रु की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। और मित्र को भूला भी जा सकता है, शत्रु को कोई कभी नहीं भूलता है।

लेकिन क्या शत्रु भी जीवन को इतना प्रभावित करता है, यह हमारे साधारण विचार में नहीं आता। भारत में अंग्रेजी राज्य न हो और महात्मा गांधी को पैदा करें, तो समझ में आएगा। महात्मा गांधी में कुछ भी बचेगा नहीं। या जो भी बचेगा, वह महात्मा गांधी की तरह पहचाना न जा सकेगा। वह जो ब्रिटिश का विरोध है, वह जो शत्रुता है, वह निन्यानबे प्रतिशत उन्हें पैदा करती है। इसलिए जब कोई देश संकट में होता है, तब वहां महापुरुष अपने आप पैदा हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि संकट में महापुरुष को पैदा होना पड़ता है, संकट महापुरुष को पैदा करता है। संकट की घड़ी, तनाव की घड़ी महापुरुष को पैदा करती है।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि बिना किसी बड़े युद्ध के कोई बड़ा नेता नहीं हो सकता। इसलिए बड़ा नेता होना हो, तो युद्ध बहुत जरूरी है, एकदम जरूरी है। आप ऐसे एक भी बड़े नेता का नाम नहीं बता सकते, जिसे शांति के समय ने पैदा किया हो। सभी बड़े नेता युद्ध की वजह से पैदा होते हैं। इसलिए जिसको बड़ा नेता बनना हो, उसे युद्ध का इंतजाम करना पड़ता है। बिना युद्ध का इंतजाम किए कोई बड़ा नहीं हो सकता।

जीवन विपरीत के सहयोग से चलता है। विपरीत के विरोध से दिखाई पड़ता है, लेकिन सहयोग से चलता है। इसे हम और पहलुओं से भी समझें, तो ख्याल में आ जाएगा। अगर हम रावण को हटा दें रामायण से, तो अकेले राम से कथा निर्मित नहीं होती। ऐसा तो हो भी सकता है कि रावण न हो और राम पैदा हों; लेकिन राम का कहीं भी पता नहीं चलेगा। क्योंकि राम के व्यक्तित्व का सारा निखार रावण के विरोध से उभरता है। राम जितने महिमाशाली दिखाई पड़ते हैं, उस महिमा में रावण का बड़ा कंट्रीब्यूशन है, बड़ा दान है। राम अकेले निर्मित नहीं हो सकते हैं रावण के बिना; रावण भी निर्मित नहीं हो सकता है राम के बिना। वे एक-दूसरे के सहारे बड़े होते हैं। सत्य तो यही है। लेकिन ऊपर से जो देखता है, वह देखता हैः वे एक-दूसरे की शत्रुता में हैं, एक-दूसरे के विरोध में हैं। लेकिन जीवन का गहन सत्य यही है कि वे साझेदार हैं। उन्हें भी पता न हो; जरूरी नहीं है कि उन्हें पता हो कि एक बहुत सूक्ष्म तल पर एक साझेदारी है, एक मैत्री है, एक सहयोग है।

जीवन निर्मित ही नहीं होता, विकसित ही नहीं होता, जब तक विपरीत न हो। विपरीत अनिवार्य है।

फ्रायड ने इस सदी में एक बहुमूल्य सत्य की खोज की, और वह यह कि हम जिसको भी प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं। बहुत चौंकाने वाली बात थी! खुद फ्रायड को भी चौंकाने वाली थी। और लोगों को बहुत सदमा लगा, खास कर प्रेमियों को बहुत सदमा लगा। क्योंकि प्रेमी कभी मान नहीं सकता कि हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे घृणा भी करते हैं। लेकिन सभी प्रेमी जानते हैं, मानते भला न हों। इसलिए फ्रायड को इनकार बहुत किया गया, लेकिन इनकार किया नहीं जा सका। और धीरे-धीरे सत्य को स्वीकार करना पड़ा।

हम जिसे प्रेम करते हैं, उसे हम घृणा भी करते हैं; क्योंकि प्रेम बिना घृणा के खड़ा नहीं रह सकता। इसलिए अगर आपने किसी को प्रेम किया है और अगर आप ईमानदार हों और विश्लेषण करें, तो आप पाएंगे, सुबह घृणा की है, दोपहर प्रेम किया है, सांझ घृणा की है, रात प्रेम किया है। घृणा और प्रेम पीरियाडिकल बदलते रहे हैं। जिससे सुबह कलह की है और सोचा है इसके साथ क्षण भर जीना असंभव है, सांझ उससे सुलह की है और सोचा है इसके बिना क्षण भर भी जीना असंभव है।

पुराने प्रेम के जानकारों ने कहा था कि प्रेम पूर्ण तभी होता है, जब उसमें कलह न हो। और फ्रायड कहता है कि जितना पूर्ण प्रेम होगा, उतनी ही पूर्ण उसमें कलह होगी। अगर दो प्रेमियों में झगड़ा नहीं हो रहा है, तो उसका कुल मतलब इतना है कि दो प्रेमी सिर्फ धोखा दे रहे हैं, प्रेम नहीं है, फ्रायड कहता है। अगर आप और आपकी पत्नी में कोई कलह नहीं हो रही, तो उसका मतलब यह है कि पति और पत्नी होना बहुत पहले समाप्त हो गया, अब कलह की भी कोई जरूरत नहीं रह गई है। जितना गहन प्रेम होगा, तथाकथित जिसे हम प्रेम कहते हैं, किसी आध्यात्मिक प्रेम की बात फ्रायड नहीं कर रहा है। जिसे हम प्रेम कहते हैं और जिसे हम जानते हैं, आध्यात्मिक प्रेम को हम जानते भी नहीं। जिस प्रेम को हम जानते हैं, उस प्रेम में कलह, कांफ्लिक्ट अनिवार्य हिस्सा है।

लेकिन प्रेमी भी चाहेगा, प्रेयसी भी चाहेगी, पति भी चाहेगा, पत्नी भी चाहेगी कि कलह बंद हो जाए, तो प्रेम में बड़ा आनंद आए। उन्हें जीवन के सत्य का पता नहीं है। जिस दिन कलह पूरी तरह बंद होगी, उस दिन प्रेम पूरी तरह समाप्त हो चुका होगा। असल में, कलह बंद हो ही नहीं सकती उससे, जिससे हमारा प्रेम चल रहा है। कलह का मतलब ही यही है कि अपेक्षा है, बड़ी अपेक्षा है। और जितना बड़ा प्रेम है, उतनी बड़ी अपेक्षा है। और जितनी बड़ी अपेक्षा है, उतनी ही विफलता लगती है, उतना फ्रस्ट्रेशन होता है, हाथ में कुछ लगता नहीं। फिर कलह होती है। अगर कोई अपेक्षा न रह जाए, कोई एक्सपेक्टेशन न हो, कोई मांग न हो, कोई आशा न बचे, किसी सपने के पूरे होने का कोई ख्याल न हो, तो कलह बंद हो जाती है। तब हम जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लेते हैं।

तो फ्रायड कहता है कि बड़े प्रेमी शांति से रह ही नहीं सकते हैं।

एक बहुत अनूठे आदमी दि सादे ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि प्रेम एक तरह की बीमारी है। और बीमारी इसलिए कहा है कि प्रेम को तो हम निमंत्रण देते हैं और घृणा हाथ आती है। वे दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जिससे भी प्रेम होगा, उससे घृणा का खेल चलेगा।

अकेली घृणा भी नहीं टिक सकती। इसलिए अगर आप सोचते हों कि फलां व्यक्ति से मेरी सिर्फ घृणा है, तो आप भूल में हैं। क्योंकि अकेली घृणा नहीं टिक सकती। जिस व्यक्ति से आपका प्रेम शेष हो अभी, उससे घृणा टिक सकती है। अन्यथा घृणा भी नहीं टिक सकती है। अगर आपकी किसी से दुश्मनी गहरी है और घृणा भारी है, तो आप खोज-बीन करना, भीतर अभी भी प्रेम का सूत्र कहीं न कहीं बंधा है। अगर प्रेम का सूत्र बिल्कुल टूट गया हो, तो घृणा का सूत्र भी टूट जाता है।

इसलिए मित्र और शत्रु, दोनों से हम बंधे होते हैं। मित्र से ऊपर से प्रेम होता है, नीचे से घृणा होती है। शत्रु से ऊपर से घृणा होती है, नीचे से प्रेम होता है। लेकिन बंधन दोनों से बराबर होते हैं। यह थोड़ा कठिन लग सकता है, क्योंकि प्रेम के संबंध में हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती हैं। लेकिन हम और जीवन के दूसरे पहलू से समझें।

दिन भर एक आदमी श्रम करता है। तो होना तो यह चाहिए, जिस आदमी ने दिन भर श्रम किया है, वह रात विश्राम न कर सके। क्योंकि जिसका दिन भर का श्रम का अभ्यास है, उसे रात में नींद नहीं आनी चाहिए। लेकिन जिसका जितना श्रम का अभ्यास है, वह उतनी गहरी नींद में उतर जाता है। जिस आदमी ने दिन भर विश्राम किया है, होना तो यह चाहिए कि रात उसे गहरा विश्राम मिले, गहरी नींद आ जाए। क्योंकि दिन भर विश्राम का अभ्यास है उसका। लेकिन जिसने दिन भर विश्राम किया है, वह रात सो ही नहीं पाता। असल में, जिसने श्रम किया है, उसने श्रम का जो दूसरा विपरीत पहलू है विश्राम, वह अर्जित कर लिया। और जिसने विश्राम किया है, उसने जो विश्राम का दूसरा पहलू है श्रम, वह अर्जित कर लिया। इसलिए जिसने दिन भर विश्राम किया है, वह रात भर करवटें बदल कर श्रम करेगा। वह रात सो नहीं सकेगा।

वह जो विपरीत है, उससे हम बच नहीं सकते। वह विपरीत सदा वहां खड़ा हुआ है। अगर रात विश्राम चाहिए, तो दिन में श्रम करना पड़ेगा। और जितना ज्यादा होगा श्रम, उतना विश्राम होगा ज्यादा। इसलिए मजे की बात है, जो बहुत श्रम में जीते हैं, जिन्हें विश्राम की फुर्सत नहीं मिलती, वे गहरे विश्राम को उपलब्ध होते हैं। और जिन्हें विश्राम की पूरी सुविधा है, उन्हें विश्राम ही एक समस्या हो जाती है, क्योंकि विश्राम उपलब्ध होता नहीं है।

हम जीते हैं ऊपरी तर्क के सहारे। हम कहते हैं, अगर रात विश्राम चाहिए, तो दिन भर विश्राम करो। यह सीधा तर्क है। लेकिन जीवन का इससे कोई संबंध नहीं है। यह वही तर्क है कि अगर हम चाहते हैं किसी से प्रेम करो, तो कलह बिल्कुल मत करो। वही तर्क है यह भी। लेकिन उलटा है जीवन। ठीक वैसा ही उलटा है, जैसे कि बिजली के निगेटिव और पाजिटिव छोर होते हैं, ऋणात्मक और धनात्मक विद्युत के छोर होते हैं। उन दोनों के होने से ही विद्युत की गति है और जीवन है। इसमें से एक को हम काट दें, तो दूसरा भी खो जाता है।

लेकिन विपरीत को स्वीकार करना बड़ा कठिन है। और जो विपरीत को स्वीकार कर लेता है, उसे मैं संन्यासी कहता हूं, उसे लाओत्से ज्ञानी कहता है--जो विपरीत को स्वीकार कर लेता है।

विपरीत को स्वीकार करने का मतलब यह है कि अगर आज आप मुझे सम्मान देने आए हैं, तो मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए कि किसी तल पर आपके भीतर मेरे लिए अपमान भी इकट्ठा होगा ही। इससे बचा नहीं जा सकता। और अगर मैं आपका सम्मान स्वीकार कर रहा हूं, तो मुझे तैयारी कर लेनी चाहिए कि आज नहीं कल मुझे आपका अपमान भी सहना पड़ेगा। अगर इस जानकारी के साथ मैं आपके सम्मान को स्वीकार करता हूं, तो आपका सम्मान मुझे सुख न दे पाएगा और आपका अपमान मुझे दुख न दे पाएगा। क्योंकि मैं आपके सम्मान के भीतर गहरे में देख लूंगा कि वह भी अपमान है और आपके अपमान में भी गहरे में देख लूंगा कि वह भी सम्मान है। क्योंकि एक आदमी अगर मेरे ऊपर जूता फेंक जाए, तो यह भी अकारण वह क्यों करेगा? इतना श्रम उठाता है, तो मुझसे कुछ लगाव तो है ही। मुझसे कुछ संबंध तो है ही। और एक माला जो डाल जाता है, शायद माला सस्ती भी होती, जूता उससे थोड़ा मंहगा ही है। लगाव उसका भारी है, बेचैनी उसकी तीव्र है। वह मेरे लिए कुछ न कुछ करेगा ही।

अगर मैं उसके अपमान में उसके सम्मान को भी देख लूं कि वह मेरे लिए कुछ कर रहा है, श्रम उठा रहा है, तो उसके अपमान का दंश खो जाता है। और अगर मैं सम्मान में भी देख लूं कि आज नहीं कल दूसरा पहलू

भी प्रकट होगा, तो सम्मान का जो इल्यूजन है, जो भ्रम है, जो स्वप्न है, वह तिरोहित हो जाता है। और तब सम्मान और अपमान एक ही सिक्के के दो पहलू हो जाते हैं। और जिस व्यक्ति को सम्मान और असम्मान एक ही सिक्के के दो पहलू दिखाई पड़ते हैं, वह दोनों के बाहर हो गया।

जीवन सब दिशाओं से विपरीत से बंधा हुआ है। लेकिन जब हम एक पहलू को देखते हैं, तो दूसरे को बिल्कुल भूल जाते हैं। वही भूल हमारे जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जब हम एक को देखते हैं, तो दूसरे को बिल्कुल विस्मृत कर जाते हैं। जब हम कांटे देखते हैं, तो हम फूल नहीं देखते। जब हम फूल देखते हैं, तो हम कांटे नहीं देखते। और फूल और कांटे एक ही वृक्ष पर लगे हैं। और फूल और कांटों के भीतर जो रस बह रहा है, वह एक ही रस है। वह एक ही शाखा दोनों को प्राण दे रही है। और एक ही जड़ दोनों को जीवन-दान कर रही है। और एक ही सूरज दोनों पर किरणें बरसा रहा है। और एक ही माली ने दोनों को जल दिया है। और एक ही अस्तित्व से दोनों का आगमन हुआ है। वे दोनों एक हैं गहरे में। लेकिन जब हमें फूल दिखाई पड़ते हैं, तो फूल हमारी आंखों को इस बुरी तरह छा देते हैं कि कांटों को हम भूल जाते हैं। और जितने ज्यादा आप भूलेंगे, उतने जल्दी कांटे चुभ जाएंगे, देर नहीं लगेगी। लेकिन जब कांटे चुभते हैं, तो हमें फिर चुभन ही याद रह जाती है, फूल हमें बिल्कुल भूल जाते हैं। हम यह भी भूल जाते हैं कि फूलों के लगाव में ही यह चुभन हमने कमाई है। फूलों में रस लिया था, इसीलिए यह फल भी भोगा है। लेकिन जब कांटा दिखाई पड़ता है, तो फूल तिरोहित हो जाता है।

हमारी दृष्टि सदा आंशिक है, पार्शियल है। आंशिक दृष्टि ही अज्ञान है। आंशिक दृष्टि गलत नहीं है। वह भी सत्य को तो देखती है, लेकिन अधूरे सत्य को देखती है। और शेष जो दूसरा हिस्सा है, वह इतना विपरीत मालूम पड़ता है कि हम दोनों में कोई संगति भी नहीं जोड़ पाते। कैसे संगति जोड़ें?

जो आदमी आज गले आकर लग गया है और जिसने कहा है कि तुम्हारे सिवाय मेरा कोई भी नहीं, और तुम्हीं मेरी खुशी और तुम्हीं मेरे गीत हो, हम कैसे कल्पना करें कि यही आदमी कल छाती में छुरा भी भोंक सकता है? संगति नहीं, कंसिस्टेंट नहीं मालूम होता। तर्क कंसिस्टेंसी चाहता है, संगति चाहिए। इसमें कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। यह आदमी कैसे छुरा भोंक सकता है?

यही आदमी छुरा भोंक सकता है। जीवन की जो गहराई है, वह यही है। जीवन की जो गहराई है, वह यही है। क्योंकि जिससे इतना संबंध न हुआ हो, वह छाती में छुरा भोंकने भी कभी नहीं आता। क्या आप किसी आदमी को बिना मित्र बनाए शत्रु बना सकते हैं? और क्या ऐसा हो सकता है कि मित्र तो वह छोटा रहा हो और शत्रु बड़ा हो जाए? नहीं, यह नहीं हो सकता। अनुपात! जितना मित्र रहा हो, उतना ही शत्रु हो सकता है। रत्ती भर ज्यादा शत्रु नहीं हो सकता।

मैक्यावेली ने अपनी सलाह में दि प्रिंस में सम्राटों के लिए लिखा है कि जितने घनिष्ठ तुम्हारे मित्र हों, उतने ही उनसे सावधान रहना! यह सलाह तो चालाकी की है, लेकिन इसमें सत्य है। जितनी घनिष्ठ हो मित्रता, उतने ही सावधान रहना; क्योंकि उतना ही बड़ा खतरा भी निकट है। मैक्यावेली ने लिखा है कि अगर चाहते हो कि शत्रुओं को सत्य का पता न चले, तो मित्रों को पता मत चलने देना। शत्रुओं को पता न चले सत्य का, तो मित्रों को पता मत चलने देना। और यह भी लिखा है कि किसी भी शत्रु के साथ ऐसा व्यवहार मत करना कि किसी दिन वह मित्र हो जाए तो पछतावा हो, क्योंकि कोई भी शत्रु किसी भी दिन मित्र हो सकता है।

और जीवन प्रतिपल बदलता रहता है। यहां कुछ भी थिर नहीं है। एक अति से दूसरी अति पर जीवन डोलता रहता है। जीवन की गहराई में विरोध संयुक्त हैं; और जीवन की सतह पर विरोध वियुक्त हैं, अलग-

अलग हैं। जो सतह को देखता है, वह लाओत्से को नहीं समझ पाएगा। क्योंकि लाओत्से जो अल्टीमेट पोलैरिटी है, जो आखिरी ध्रुवीयता है जीवन की, उसकी बात कर रहा है।

वह कहता है, "पहिए की तीसों तीलियां उसके मध्य भाग में आकर जुड़ जाती हैं, किंतु पहिए की उपयोगिता धुरी के लिए छोड़ी गई खाली जगह पर निर्भर है।"

चाक देखें बैलगाड़ी का। आरे, तीलियां जुड़ी हैं केंद्र से। लेकिन बड़ी अदभुत बात है कि चाक चलता है, तीलियां घूमती हैं; लेकिन चाक के बीच में एक खाली जगह है, एम्पटीनेस है, उसी खाली जगह पर यह सारा चाक का घूमना है। उस खाली जगह में कील है। और एक मजे की बात है कि चाक तो चलता है और कील खड़ी रहती है। खड़ी हुई कील पर चक्के का चलना घूमता है। अगर कील भी चल जाए, तो चाक न चल पाए। चाक चल सकता है, क्योंकि कील नहीं चलती। अचल है कील। अचल कील पर चलता हुआ चाक घूमता है। और जितनी अचल हो कील, चाक उतनी ही कुशलता से घूम सकता है। यह विपरीत का नियम है। और खाली जगह है, चाक के बीच में खाली जगह है, उसी में तो कील आकर बैठेगी।

वह जो खाली जगह है चाक की, लाओत्से कहता है, शायद तुम्हें दिखाई भी न पड़े कि वही खाली जगह चाक का असली राज है। क्योंकि वही सेंटर है, वही केंद्र है। उस खाली जगह के बिना चाक नहीं हो सकता। इसका मतलब यह हुआ कि जहां-जहां भरापन दिखाई पड़ता हो, वहां गहरे में खालीपन भी मौजूद होगा। इसे हम थोड़ा समझ लें।

अगर आपको रास्ते पर चलते हुए भिक्षा-पात्र लिए हुए बुद्ध मिल जाएं, तो एकदम खाली आदमी मालूम पड़ेंगे। उनके पास कुछ भी नहीं है। एक भिक्षा-पात्र है, कुछ भी नहीं है। कोई धन नहीं, कोई पद नहीं, कोई प्रतिष्ठा नहीं, कोई महल नहीं। एक दिन था। अगर उस दिन आपको बुद्ध मिले होते, तो उनके पास सब कुछ था। धन था, महल था, राज्य था, साम्राज्य था; बड़ी शक्ति थी, बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह सब था उनके चारों तरफ। एक दिन उनके पास सब था, लेकिन बुद्ध को लगा कि मैं भीतर खाली हूं। बाहर सब भरापन था, और बुद्ध को लगा कि भीतर मैं खाली हूं। चाक पूरा भरा था और कील बिल्कुल खाली थी। और बुद्ध को लगा, बाहर यह सब भरा हुआ रहा आए, इससे क्या मिलेगा, जब तक मैं भीतर खाली हूं! तो बुद्ध ने वह सब छोड़ दिया। फिर एक दिन वे भिखारी की तरह सड़क पर जा रहे हैं। अब आप अगर उनको देखेंगे, तो बाहर सब खालीपन है; लेकिन भीतर वह आदमी बिल्कुल भरा हुआ है।

त्याग की, तपश्चर्या की सारी धारणा इसलिए पैदा हुई, क्योंकि इस रहस्य को समझ लिया गयाः अगर आप बाहर भरने में लगे रहेंगे, तो भीतर खाली रह जाएंगे। क्योंकि हर भरेपन के भीतर खाली अनिवार्य है। और अगर आप भीतर भरना शुरू करते हैं, तो बाहर आपको खाली होने के लिए राजी होना पड़ेगा। क्योंकि दोनों बातें एक साथ नहीं सम्हाली जा सकतीं। आप चाहें कि बाहर भी भरा हो, भीतर भी भरा हो, यह संभव नहीं है। क्योंकि जीवन विपरीत के नियम को मान कर चलता है। तो आपको पोलैरिटी को समझना पड़ेगा। अगर आपको भीतर भरे हुए मनुष्य होना है, चाहते हैं कि भीतर परमात्मा भर जाए, तो बाहर संसार के भराव की आपको चिंता छोड़ देनी पड़ेगी। यह बाहर की पकड़ छोड़ देनी पड़ेगी, यह क्लिंगिंग छोड़ देनी पड़ेगी। तो भीतर की पकड़ उपलब्ध होगी; लेकिन बाहर? बाहर खालीपन फैल जाएगा।

बुद्ध से मिलने एक सम्राट आया है। और उसने बुद्ध से कहा है कि तुम्हारे पास सब था, और तुम छोड़ कर क्यों चले आए? अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। किसी दुख में, किसी चिंता में, कभी ऐसी भूल हो जाती है। तुम्हारे पिता मेरे मित्र हैं, मैं उन्हें समझा ले सकता हूं और तुम्हारे घर तुम्हें वापस लौटा दे सकता हूं। अगर

तुम्हारा पिता से ऐसा कुछ विरोध हो गया हो कि तुम घर जाना ही न चाहो, तो मैं भी कोई पराया नहीं, तुम्हारे पिता जैसा ही हूं। तुम मेरे घर आ जाओ। फिर तुम सोचते होओ कि किसी का एहसान लेना ठीक नहीं, तो मेरी एक ही लड़की है, मेरा कोई पुत्र नहीं, मैं तुम्हारा विवाह किए देता हूं। मेरी सारी संपत्ति, सारे साम्राज्य के तुम मालिक हो जाओ।

इस बीच जब वह ये सारे प्रपोजल्स, ये सारे प्रस्ताव दे रहा है, तब उसने एक बार भी बुद्ध की तरफ नहीं देखा कि वे हंस रहे हैं। जब वह अपनी पूरी बात कह चुका और उसने कहा कि क्या इरादे हैं? तो बुद्ध ने कहा, तुम मुझे सोचते हो कि मेरे पास कुछ नहीं है और मैं सोचता हूं कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। ऐसे तुम भी ठीक सोचते हो, मैं भी ठीक सोचता हूं; सिर्फ हमारे सोचने के क्षेत्र अलग-अलग हैं। तुम्हारे पास बाहर सब कुछ है, मेरे पास बाहर कुछ भी नहीं। इसलिए स्वभावतः तुम्हें दिखाई पड़ता हैः बेचारा! गरीब! इसे किसी तरह वापस समृद्धि में लौटा दो। मैं भी देखता हूं, मेरे भीतर सब कुछ है, तुम्हारे भीतर कुछ नहीं है। मेरा मन होता हैः बेचारा! गरीब! इसे भीतर किसी तरह भर दो। तो बुद्ध ने उस सम्राट से कहा कि मैं दोनों जान चुका हूं। जो तुम मुझे दे सकते हो, वह सब मेरे पास था। जो तुम मुझे आश्वासन दे सकते हो, उससे बहुत ज्यादा मेरे पास था। उसे मैं छोड़ कर आया हूं। और मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पास अब सब कुछ है और तब मेरे पास कुछ भी नहीं था। और तुम्हें एक ही अनुभव है, सब कुछ होने का, जिसे तुम सब कुछ समझ रहे हो। तुम मेरी मानो, और यह भिक्षा-पात्र हाथ में लो और संन्यास में दीक्षित हो जाओ।

एक विपरीतता है कहीं भी। तो लाओत्से कहता है, बैलगाड़ी का चाक चलता है। चाक की तीलियां भरी हुई हैं, लेकिन चाक अपने केंद्र पर शून्य है। उसी शून्य पर चलता है। लेकिन वह शून्य हमें दिखाई नहीं पड़ता। शून्य का मतलब ही यह होता है कि जो दिखाई नहीं पड़ता। दृश्य सदा अदृश्य के ऊपर निर्भर होता है। यह पोलैरिटी सभी तरफ रहेगी। दृश्य अदृश्य पर निर्भर होगा; शब्द मौन से पैदा होता है; जीवन मृत्यु के साथ टिका हुआ है। लेकिन वह दूसरा दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से उसे समझाने के लिए फिर कहता है, "मिट्टी से घड़े का निर्माण होता है, किंतु उसकी उपयोगिता उसके शून्य खालीपन में निहित है।"

एक घड़ा हम बनाते हैं मिट्टी का। लेकिन अगर ठीक से पूछें, तो घड़ा कहां है? उस मिट्टी में या मिट्टी के भीतर जो खालीपन है, उसमें? जब आप बाजार से घड़ा खरीद कर लाते हैं, तो आप घड़े के लिए घड़ा खरीद कर लाते हैं कि वह जो खालीपन है भीतर, उसके लिए घड़े को खरीद कर लाते हैं? क्योंकि पानी घड़े में नहीं भरा जा सकेगा, खालीपन में भरा जा सकेगा। खाली जितना होगा घड़ा, उतना ही उपयोगी है। बाहर की मिट्टी की दीवार की उपयोगिता है, क्योंकि वह एक खालीपन को घेरती है और सीमा बना देती है, बस। लेकिन असली घड़ा तो खालीपन है।

लेकिन दिखाई तो हमें पड़ता है घड़ा, खालीपन तो कोई देखता नहीं। और आप बाजार में खालीपन खरीदने नहीं जाते, घड़ा खरीदने जाते हैं। आप दाम खालीपन के नहीं चुकाते, घड़े की मिट्टी के चुकाते हैं। बड़ा घड़ा होगा तो ज्यादा दाम चुकाएंगे; छोटा घड़ा होगा तो थोड़े दाम चुकाएंगे। मिट्टी पर निर्भर करेगा कि दाम कितने हैं। मिट्टी पर निर्भर करेगा कि दाम कितने हैं, खालीपन पर निर्भर नहीं करेगा। यद्यपि घड़े की परम उपयोगिता उसके खालीपन में है। घर जाकर पता चलेगा कि मिट्टी कितनी ही प्यारी रही हो, लेकिन अगर भीतर का खालीपन नहीं है, तो घड़ा बेकार हो गया। मिट्टी कितनी ही सुंदर रही हो, लेकिन अगर भीतर घड़ा बंद है और उसमें खालीपन नहीं है, मिट्टी ही भरी है, तो घड़ा बेकार हो गया, लाना व्यर्थ हो गया।

खालीपन की उपयोगिता है।

लाओत्से कहता है, हम एक मकान बनाते हैं... ।

हम यहां बैठे हुए हैं, हम कहते हैं हम मकान में बैठे हुए हैं। लेकिन अगर लाओत्से से पूछें, तो वह कहेगा, हम खालीपन में बैठे हुए हैं। मकान तो ये दीवारें हैं, जो चारों तरफ खड़ी हैं। इन दीवारों में कोई भी बैठा हुआ नहीं है। ये दीवारें केवल बाहर के खालीपन को भीतर के खालीपन से अलग करती हैं, बस। इनका उपयोग सीमांत का है। बाहर के आकाश को भीतर के आकाश से विभक्त कर देती हैं। इसकी सुविधा है, इसकी जरूरत है। बस दीवार का उपयोग इतना है। लेकिन दीवार में कोई बैठता नहीं, बैठते तो हम खाली आकाश में हैं। इस भवन के भीतर उपयोग हम वस्तुतः किसका करते हैं? खालीपन का। तो जितना खालीपन हो, उतना यह उपयोगी हो जाता है। जितना खालीपन हो, उतना उपयोगी हो जाता है।

"मकान की उपयोगिता उसके खालीपन पर है। दरवाजे व खिड़कियों को दीवारों में काट कर हम प्रकोष्ठ बनाते हैं, कमरे बनाते हैं; किंतु कमरे की उपयोगिता उसके भीतर के शून्य पर अवलंबित होती है।"

लाओत्से यह कह रहा है कि जहां उपयोगिता दिखाई पड़ती है, वहां नहीं, उससे विपरीत में निर्भर होती है। जब आप मकान बनाते हैं, तो आपने कभी सोचा कि आप एक शून्य बना रहे हैं? एक खालीपन बना रहे हैं? नहीं, आप जब मकान बनाते हैं, तो दीवार का नक्शा तैयार करते हैं, दरवाजों के नक्शे तैयार करते हैं। शून्य का तो आप कोई नक्शा तैयार नहीं करते। लेकिन ठीक देखा जाए, तो दरवाजों और दीवारों के द्वारा आप शून्य का ही नक्शा तैयार करते हैं। वह जो शून्य है, उसको आकार देते हैं। लेकिन आकार ऊपर से दिखाई पड़ता है मूल्यवान, भीतर तो मूल्यवान शून्य ही है। और इसलिए कभी यह भी हो सकता है कि एक झोपड़ा भी बड़ा हो एक महल से। इस पर निर्भर करता हैः भीतर कितना शून्य है, कितनी स्पेस है।

अक्सर मैंने पाया है कि अगर एक गरीब आदमी से कहो कि एक मित्र आए हैं, उन्हें अपने घर में ठहरा लो; तो वह कहता है, ठीक है, ठहरा लेंगे। अगर मैं किसी बड़े आदमी को कहता हूं कि एक मित्र आए हैं, उन्हें ठहरा लो; वे कहते हैं कि स्थान नहीं है। उनके पास स्थान ज्यादा है। लेकिन वे कहते हैं, स्थान नहीं है। क्या, हुआ क्या है? गरीब के पास वस्तुतः नापने जाएं, तो स्थान कम है। अमीर के पास स्थान ज्यादा है। लेकिन अमीर का स्थान इतनी चीजों से भरा हुआ है--भरा ही हुआ है, स्थान नहीं के बराबर है।

मैं एक करोड़पति के घर में ठहरा हुआ था। उनकी बैठक देख कर मुझे लगा कि वह बैठक नहीं कही जा सकती, क्योंकि उसमें बैठने की जगह ही नहीं थी। वह कोई म्यूजियम मालूम होता था। उन्होंने न मालूम कितने ढंग का फर्नीचर वहां इकट्ठा कर रखा था। वह फर्नीचर ऐसा नहीं था कि बैठने के लिए हो, वह फर्नीचर ऐसा था, देखने के लिए था। सदियों पुराना! वे कहते थे कि यह तीन सौ साल पुराना फ्रेंच फर्नीचर है, यह इतने सौ साल पुराना फलां फर्नीचर है। मैंने उन्हें कहा कि यह सब ठीक है, लेकिन इसमें बैठक कहां है? फर्नीचर ही था, उसमें बैठ कहीं सकते नहीं थे। जगह भी, वहां मूव करने की जगह भी नहीं थी, कि उस कमरे में से निकलना हो, तो आपको बच कर निकलना पड़े। वे उसमें भरते चले गए थे; जो भी उन्हें पसंद आता था, वे लाते चले गए थे। जब मैंने उनसे कहा कि इसमें बैठक कहां है, तो वे बहुत चौंके। उन्होंने कहा, यह तो मुझे खुद भी ख्याल नहीं रहा! जब शुरू किया था, तो बैठक की तरह ही इसको शुरू किया था। फिर धीरे-धीरे सब भरता चला गया। अब तो सिर्फ कोई आता है मेहमान, तो उसे हम दिखा देते हैं लाकर। अब इसमें बैठक नहीं बची है।

ऐसा बाहर तो बहुत आसानी से घट जाता है, भीतर भी इतनी ही आसानी से घट जाता है। जब आप एक आदमी के शरीर को प्रेम करते हैं, तब आप भूल जाते हैं कि वह भीतर जो स्पेस है, जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह

भीतर जो जगह है रिक्त, वह भी है या नहीं? तो जैसे एक आदमी घड़े को खरीद लेता है ऊपर की हालत देख कर, कारीगरी देख कर, यह भूल ही जाता है कि भीतर पानी भरने की जगह भी है? वैसे ही आदमी एक शरीर को देख कर प्रेम में पड़ जाता है। यह भूल ही जाता है कि भीतर आत्मा, स्पेस जैसी कोई चीज भी है? भीतर कोई जगह है, जहां मैं प्रवेश कर सकूंगा?

नहीं, चमड़ी को देख कर, शरीर को देख कर, हड्डियों के उतार को देख कर एक आदमी प्रेम में पड़ जाता है। फिर पीछे बहुत पछताता है। फिर वह पीछे कहता है कि मैं कैसी भूल में पड़ गया! लेकिन कोई भूल नहीं, भूल इतनी है केवल कि आदमी भी शरीर से महत्वपूर्ण नहीं होता। शरीर जरूरी है। आदमी भी भीतर जितना आकाश होता है उसके, जितनी रिक्तता होती है, जितना खालीपन, विस्तार होता है, जितनी स्पेस होती है, उससे महत्वपूर्ण होता है।

उसी स्पेस का नाम आत्मा है। जब हम कहते हैं कि कितनी आत्मा है आपके भीतर, तो उसका मतलब है कि कितना समा सकते हो भीतर? कितनी जगह है? अगर एक कोई जरा सी गाली दे देता है, तो भीतर नहीं समा सकती है। तो आत्मा बहुत कम है। जरा सी गाली, अगर भवन भीतर बड़ा होता, तो शायद गूंज भी न पहुंचती, पता भी न चलता कि कोई गाली दी गई है। एक जरा सा कोई पत्थर मार देता है, तो भीतर कोई जगह नहीं कि उस पत्थर को भी विश्राम मिल जाए। नहीं, तत्काल भीतर से पत्थर दो गुना बड़ा होकर वापस लौट आता है। अगर हम एक खालीपन में पत्थर फेंकें, तो खालीपन पत्थर को वापस नहीं भेजेगा। अगर हम एक दीवार में पत्थर फेंकें, तो दीवार पत्थर को वापस भेज देगी। जो आदमी प्रतिक्रियाओं में जीता है, रिएक्शंस में, उसका मतलब है भीतर खाली नहीं है। इधर हमने फेंका, वहां से वापस लौटा। वहां कोई चीज समा नहीं सकती है। वहां कोई स्थान नहीं है।

लेकिन प्रेम का वास्तविक फूल तो इसी स्थान में खिलता है। फ्रायड वाले प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं अब। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसे हम जानते ही नहीं हैं। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसमें हमारा प्रेम भी नहीं होता और हमारी घृणा भी नहीं होती। अब उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जहां फूल और कांटे दोनों ही नहीं होते। जहां तो केवल फूल और कांटों के नीचे बहने वाली रस की धार ही रह जाती है। लेकिन वह भीतर का रिक्तपन कहां हम देखते हैं? भीतर का रिक्तपन हम नहीं देखते।

लाओत्से के पास अगर कोई नमस्कार भी करता था, तो कभी-कभी ऐसा होता था कि उसने नमस्कार की और घंटे भर बाद लाओत्से जवाब देगा कि नमस्कार! वह आदमी अब तक भूल ही चुका था कि नमस्कार भी उसने की थी। अब तक वह न मालूम कितनी बातें लाओत्से के खिलाफ सोच चुका था कि यह आदमी ठीक नहीं है। मैं नमस्कार कर रहा हूं, इसने अब तक जवाब भी नहीं दिया।

लाओत्से के एक मित्र ने एक दिन लाओत्से को कहा कि यह भी कोई ढंग है! यह भी कोई शिष्टाचार है कि एक आदमी नमस्कार करता है और तुम घंटे भर बाद जवाब देते हो!

लाओत्से ने कहा, कम से कम उसका नमस्कार मुझ तक तो पहुंच जाए! मेरे हृदय में मैं उसे से लूं! मेरे हृदय में वह विश्राम कर ले! इतनी जल्दी लौटा देना अशिष्टता होगी। इतनी जल्दी लौटा देना, इतना इम्पेशेंस, इतना अधैर्य, कि किसी ने कहा नमस्कार, हमने कहा नमस्कार! न हमें कोई प्रयोजन है, न उसे कोई प्रयोजन है। यह सिर्फ निपटारा है, बात समाप्त हो गई। यह झंझट खतम हुई।

ऊपर से देखने पर लगेगा कि लाओत्से कैसी बात कर रहा है! लेकिन नमस्कार करने वाला भूल चुका है और लाओत्से अभी नमस्कार का जवाब दे रहा है, तो इस घंटे भर वह नमस्कार के साथ रहा। इस घंटे भर यह

नमस्कार उसके प्राणों में गूंजी। यह सिर्फ प्रतिक्रिया नहीं है। यह बटन दबाई और पंखा चल गया, ऐसी यांत्रिक घटना नहीं है। यह जीवंत रिस्पांस है, रिएक्शन नहीं।

रिएक्शन तत्काल हो जाता है। प्रतिक्रिया का मतलब होता है वह यांत्रिक है। यहां हमने बटन दबाया, बिजली जली; बटन दबाया, बिजली बुझ गई। बिजली यह नहीं कह सकती कि तुम दबाते रहो बटन, मैं थोड़ी देर से बुझती हूं। वह यांत्रिक है। एक आदमी ने गाली दी, आपके भीतर क्रोध की लपट जग गई। वह उतनी ही यांत्रिक है। एक आदमी ने प्रेम की बात कही, आप गदगद हो गए, आपकी छाती फूल गई। वह उतनी ही यांत्रिक है। बटन कोई दबा रहा है, और आप फूल रहे हैं, सिकुड़ रहे हैं।

इसलिए चौबीस घंटे आपको कितनी मुसीबत से गुजरना पड़ता है, इसका हिसाब नहीं। कि हर कोई बटन दबा रहा है और वही आपको होना पड़ रहा है। एक आदमी ने गाली दी, और आप गए। एक आदमी ने मुस्कुरा कर देखा, और आपकी जिंदगी में बहार आ गई। और एक आदमी ने आपकी तरफ नहीं देखा, और आपके दीए बुझ गए और सब अमावस की रात हो गई। चौबीस घंटे आपको गिरगिट की तरह पूरे समय रिएक्ट करना पड़ रहा है। आपके पास कोई आत्मा नहीं है, भीतर कोई जगह नहीं है। इसलिए सतह ही से सब चीजें लौट जाती हैं।

भीतर जगह का अर्थ होता है धैर्य। भीतर जगह का अर्थ होता है एक प्रतिसंवेदन। भीतर की जगह का अर्थ होता है कि कोई बात मेरे भीतर जाएगी तो समय लेगी, यात्रा करनी पड़ेगी उसे मुझ तक पहुंचने को।

तो लाओत्से कहता है, मुझ तक पहुंचे उसका नमस्कार, मेरे प्राणों में गूंजे। फिर उसका प्रत्युत्तर निर्मित हो, फिर मैं प्रेम से उसके प्रत्युत्तर को वापस निवेदन करूं। समय लग जाएगा।

जब हम किसी व्यक्ति के शरीर के प्रेम में पड़ते हैं, तो हमें ख्याल में नहीं होता कि भीतर की स्पेस, भीतर के आकाश का भी पता कर लें, फिक्र कर लें। हम घड़े को खरीद लाते हैं, भीतर की खाली जगह को भूल जाते हैं।

रवींद्रनाथ ने एक बौद्ध भिक्षु पर एक गीत लिखा है। एक बौद्ध भिक्षु गुजरता है एक राह से और नगर की जो नगरवधू है, जो नगर की वेश्या है... ।

यह वेश्या शब्द बहुत अच्छा नहीं है। पुराने लोग बहुत समझदार थे, उन्होंने शब्द दिया था नगरवधू, पूरे गांव की पत्नी। अब तो हालत बिल्कुल बदल गई है। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। अब तो जो आपकी पत्नी है, वह भी निजी वेश्या है--व्यक्तिगत। अब हालत बिल्कुल बदल गई है। क्योंकि अगर आज आप पश्चिम के मनोवैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहता है, कोई फर्क नहीं है वेश्या में और पत्नी में। वह सामूहिक है और स्थिर नहीं है। कोई स्थायी लाइसेंस नहीं है उसके साथ। समय का फर्क है, रात भर के लिए उसे खरीदते हैं। पत्नी के साथ जीवन भर का सौदा है, जीवन भर के लिए खरीदते हैं। लेकिन पूरब के लोग उसे कहते थे नगरवधू।

वह नगरवधू, झांक कर उसने देखा है नीचे और इस भिक्षु को देखा है।

और स्वभावतः, संन्यासी के पास एक और तरह का सौंदर्य पैदा होना शुरू हो जाता है, जिसे गृहस्थ कभी नहीं जान पाता। उसके कारण हैं। क्योंकि संन्यासी के साथ पैदा होती है एक स्वतंत्रता, एक बंधनमुक्त अवस्था। उस बंधनमुक्तता में एक अनूठा सौंदर्य पैदा होने लगता है। संन्यासी के साथ पैदा होता है भीतर का रिक्त आकाश, एक आत्मा। वह प्रतिक्रियाओं से अब नहीं जीता, वह अपने ढंग से जीना शुरू करता है। दूसरे उसे जीने के लिए मजबूर नहीं करते, वह अपना ही मार्ग चुनता है। वह अपना ही जीवन चुनता है। वह अपने जीवन का एक अर्थ में स्वयं नियंता और मालिक है। तो एक अनूठा सौंदर्य, एक इंटिग्रेशन, एक समग्रता उसके भीतर पैदा होनी शुरू हो जाती है। एक और ही गरिमा और गौरव, एक और ही सौंदर्य!

वेश्या ने देखा है और वह मोहित हो गई है। उसने नीचे आकर भिक्षु को कहा कि मेरे घर आज की रात मेहमान हो जाओ। भिक्षु ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहा, अभी तो तेरे चाहने वाले और भी बहुत होंगे। सुंदर है तू, युवा है तू। अभी मैं न भी आऊं, तो तेरी रात खाली नहीं जाएगी। किसी दिन जब तेरा कोई चाहने वाला न हो और किसी दिन जब यह गांव तुझे बाहर फेंक दे--और यह गांव फेंक ही देगा--और किसी दिन जब तू चिल्लाती हो और कोई आवाज का उत्तर भी देने वाला न हो, तब मैं आ जाऊंगा। वेश्या को दुख हुआ; अपमानित हुई। यह पहला मौका था। लोग उसके द्वार पर खटखटाते थे और वह इनकार करती थी। आज पहला मौका था कि उसने किसी के द्वार पर खटखटाया और इनकार हो गया। पीड़ा भारी थी। वह लौट गई।

कोई बीस वर्ष बाद, एक अंधेरी रात, और रास्ते के किनारे कोई चिल्ला रहा है जोर से। राह से गुजरता भिक्षु उसके पास जाकर रुका है। हाथ उसके चेहरे पर फेरा है, पूछा है उससे। प्यास उसे लगी है और पानी चाहिए। वह पास के गांव से जाकर पानी लेकर और एक दीया लेकर आया है। कोढ़ फूट गया है पूरे शरीर पर उस वेश्या के। वही वेश्या है। गांव ने उसे बाहर फेंक दिया है। कोढ़ी को भीतर रखने का कोई उपाय नहीं है। आज उसे कोई पानी देने को भी राजी नहीं है। उस भिक्षु ने कहा कि आंख खोल और देख, प्रभु की कृपा कि मैं अपना वचन पूरा कर सका हूं! मैं आ गया! बीस साल पहले तूने जो निमंत्रण दिया था, वह अब मुझ तक पहुंच गया। मैं आ गया हूं। और समय भी आ गया।

वेश्या ने आंखें खोलीं और उसने कहा कि नहीं, अब तुम न ही आते तो अच्छा था। अब आने से प्रयोजन भी क्या है? उस दिन ही आना था। उस दिन मैं युवा थी, सुंदर थी।

उस भिक्षु ने कहा, लेकिन आज, आज तुम ज्यादा अनुभवी हो, आज तुम ज्यादा ज्ञानी हो। जीवन को तुमने देखा--उसकी पीड़ा, उसके अनुभव, उसके दुख, उसका विषाद। और आज मैं समझता हूं कि तुम्हारे पास शरीर तो नहीं है, लेकिन थोड़ी आत्मा है। शरीर तो चला गया; लेकिन आज आत्मा है। उस दिन आत्मा बिल्कुल नहीं थी। उस दिन शरीर ही शरीर था।

भीतर भी कुछ है, जो हमारे शरीर से विपरीत है और फिर भी संयुक्त है। शरीर की वह जो भीतर विपरीतता है, उसे अगर हम ध्यान में रख सकें, तो लाओत्से का सूत्र हमारे ख्याल में आ जाए। घड़े की तो बात है समझाने के लिए। लेकिन गहरे में तो आदमी की ही बात है।

अस्तित्व के संबंध में वह कहता है, "इसलिए वस्तुओं का विधायक अस्तित्व तो लाभकारी सुविधा देता ही है, परंतु उनके अनस्तित्व में ही उनकी वास्तविक उपयोगिता है।"

जब चीजें होती हैं, तब तो उनसे सुविधा मिलती ही है; लेकिन उनके न होने की भी एक और गहरी उपयोगिता है। जैसे जब जवानी होती है, तो जवानी का एक उपयोग है। लेकिन जब जवानी खो जाती है, तब उसके खो जाने का और भी गहरा उपयोग है। उसके शून्य हो जाने का और भी गहरा उपयोग है। लेकिन उस उपयोग को हम जान नहीं पाते, क्योंकि हममें से बहुत से लोग सिर्फ शरीर से बूढ़े हो जाते हैं, उनकी चेतना में प्रौढ़ता नहीं उपलब्ध हो पाती। चेतना से वे बचकाने ही बने रहते हैं। इसलिए बूढ़ा आदमी भी चेतना से बचकाना ही बना रहता है।

एक मजे की बात है, बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी जब सपना देखता है, तो सपने में सदा अपने को जवान देखता है। सदा! हजारों सपनों के अध्ययन किए गए हैं, लेकिन अब तक ऐसा सपना नहीं पकड़ा जा सका कि किसी बूढ़े आदमी ने अपने को सपने में बूढ़ा देखा हो। इसका मतलब है साफ। वासना उसकी अभी भी जवान ही अपने को मानती है। मजबूरी है कि शरीर साथ नहीं देता। मजबूरी है कि शरीर धोखा दिए जाता है। मजबूरी है

कि शरीर जराजीर्ण हो गया। लेकिन भीतर, भीतर वह जो मन है, वह अभी भी अपने को जवान माने चला जाता है। सपने में तो वह जो भीतर मन मानता है, वही प्रकट होता है।

यदि कोई व्यक्ति जवानी को ही उपयोगी समझे और जब जवानी खो जाए और उसको उपयोगिता न दिखे, तो उसे निषेध का मूल्य पता नहीं चल पाया। और अगर उसे निषेध का मूल्य पता चल जाए, तो बुढ़ापा जवानी से बहुत ज्यादा सुंदर हो जाता है। क्योंकि जवानी के सौंदर्य में भी उत्तेजना तो रहेगी ही। और जहां उत्तेजना रहेगी, वहां सौंदर्य में गहराई नहीं हो सकती, डेप्थ नहीं हो सकती। तेजी हो सकती है, त्वरा हो सकती है, गति हो सकती है, लेकिन गहराई नहीं हो सकती। इसलिए जवानी का सौंदर्य उथला होगा, ओछा होगा। अगर, जवानी जब खो जाती है, उसके खोने में भी कोई समझ पाए उपयोगिता, तो बुढ़ापे को एक सौंदर्य मिलता है, जो जवान को कभी भी नहीं मिल सकता। और ठीक भी है, क्योंकि बुढ़ापा जवानी से आगे है। ठीक भी है, ज्यादा विकासमान है। तो बुढ़ापे में एक गरिमा, एक गहराई, एक अनंत गहराई उपलब्ध हो जाती है। लेकिन वह जवानी के अभाव का उपयोग है।

जीवन में तो है ही रहस्य। लेकिन जिसने जीवन में ही रहस्य को पकड़ा और मृत्यु के रहस्य को नहीं जाना, वह पूरे रहस्य को नहीं जान पाया। जीवन में मृत्यु के सामने कुछ भी नहीं है, मृत्यु के समक्ष कुछ भी नहीं है। मृत्यु अभाव है, अनस्तित्व है।

लाओत्से कहता है, विधायक अस्तित्व, पाजिटिव एक्झिस्टेंस की उपयोगिता है। लेकिन निगेटिव एक्झिस्टेंस की तो बात ही और है। वह महा उपयोगिता है। उसका अर्थ ही और है।

लेकिन हम जीवन में तो देख पाते हैं अर्थ, मृत्यु में हमें कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। मृत्यु हमारे लिए सिर्फ एक अंत है, समाप्त हो जाना है। प्रारंभ नहीं, एक नया उदघाटन नहीं, एक नए द्वार का खुलना नहीं, सिर्फ पुराने द्वारों का अचानक बंद हो जाना है। खुलना नहीं है कुछ भी। तो हमें मृत्यु का कोई पता नहीं। इस सबका कारण एक ही है कि हम पाजिटिव से बंधे हुए हैं। वह जो विधायक है, वह हमें परेशान किए जा रहा है। निगेटिव की हमने कभी कोई खबर नहीं ली। तो इस निगेटिव को हम थोड़ी तरफ से समझें, तो फिर यह अनस्तित्व हमारे ख्याल में आ जाए।

दिन में जागते हैं, तो हम जागने का हिसाब रखते हैं। और आदमी की चेष्टा होती है कि जितनी कम नींद से काम चल जाए, बेहतर। तो पश्चिम में बहुत से वैज्ञानिक विचार करते हैं कि आज नहीं कल हमें कोई इंतजाम करना चाहिए कि आदमी को सोना न पड़े। क्योंकि न सोना पड़े, तो उसकी जिंदगी में बीस साल और बढ़ जाएं। अगर आप साठ साल जीएंगे, तो बीस साल सोने में खो जाएंगे। तो बजाय इसके कि आपकी जिंदगी को बीस साल लंबा करके अस्सी साल किया जाए, क्या यह उचित न होगा कि आपके बीस साल सोने के, जो व्यर्थ जाते मालूम पड़ते हैं दिन, उनको हम बचा लें और आप साठ साल पूरा जी लें? तो वैज्ञानिक सोचते हैं कि कभी ऐसा उपाय हो जाएगा कि आदमी को सोने की जरूरत न रह जाए।

लेकिन उन्हें पता नहीं है, यह विधायक पर अति जोर का परिणाम है। जो आदमी सोना भूल जाएगा, उसका जागना बिल्कुल उदास और अर्थहीन हो जाएगा। कभी आपने ख्याल किया है कि सांझ जब आप बिस्तर पर सोने जाते हैं, तो आंखें आपकी बुझ चुकी होती हैं; और सुबह जब उठते हैं, तो आंखों के दीए फिर से जगमगा जाते हैं। रात सिर्फ व्यर्थ नहीं गुजर जाती, रात अनस्तित्व के द्वारा शक्ति को पाने का उपाय है। निद्रा का अर्थ है निगेटिव में, नकार में, शून्य में डूब जाना, ताकि शून्य हमें पुनः शक्ति दे दे।

इसलिए चिकित्सक कहते हैं कि आदमी की बीमारी ठीक नहीं हो सकती, कोई भी बीमारी ठीक नहीं हो सकती, अगर साथ ही नींद असंभव हो। तो फिर बीमारी ठीक नहीं हो सकती। कोई इलाज ठीक नहीं कर पाएगा। क्योंकि आदमी अगर अपने भीतर से शक्ति पाने की समस्त संभावनाएं बंद कर दे, तो ऊपर से दी गई दवाएं कुछ कर न पाएंगी। चिकित्सक अब स्वीकार करते हैं कि हम केवल बीमारी के ठीक होने में सहयोगी हो सकते हैं, सिर्फ सहयोगी। मूल रूप से तो बीमार स्वयं ही अपने को ठीक करता है। लेकिन वह ठीक कर सकता है तभी, जब सारी विधायकता को छोड़ कर रात के अंधेरे में, शून्य में खो जाए।

शून्य में खोते ही हम प्राणों के गहरे तल पर पहुंच जाते हैं, जहां जीवन का आधार है, जहां जीवन का मूल स्रोत है; वहां से हम शक्ति को वापस पा लेते हैं। वही शक्ति सुबह हमारी आंखों में ताजगी बन कर दिखाई पड़ती है। वही सुबह पक्षियों का गीत बन जाती है। वही सुबह फूलों का खिलना हो जाती है। वही शक्ति! रात वृक्ष भी सो जाते हैं, पक्षी भी सो जाते हैं, प्राणी भी सो जाते हैं, आदमी भी सो जाता है। लेकिन कुछ आदमी हैं, जो अब नहीं सो पाते हैं। और धीरे-धीरे ऐसा लगता है कि शायद पूरी आदमियत नहीं सो पाएगी। जिस दिन आदमियत नहीं सो पाएगी, उसी दिन समझना कि पूरी आदमियत पागल हो गई। फिर हम कभी स्वस्थ नहीं हो सकते। क्योंकि हमने निषेध को छोड़ दिया।

लाओत्से कहता है, सोना प्रथम है, जागना द्वितीय। क्योंकि निषेध पहले है। विश्राम पहले है, श्रम पीछे। और जितना गहरा होगा विश्राम, उतने गहरे श्रम में उतर जाओगे।

इस निषेध को, इस अनस्तित्व को समझना पड़ेगा। इसे हम कई तरफ से समझें। जैसे मैंने कहा कि नींद है, वह अनस्तित्व है। और जागरण हमारा विधायक है, नींद हमारा निषेध है। जागने में हम सक्रिय होते हैं, नींद में हम शून्य हो जाते हैं। इसलिए जो आदमी रात भर सपने देखता रहता है, वह आदमी सुबह अनुभव करता है कि नींद नहीं हो पाई। क्योंकि स्वप्न निषेध और विधेय के बीच का हिस्सा है। सोए भी हैं और सो भी नहीं पा रहे हैं, ऐसी स्थिति है। जागे भी हैं और जागे नहीं हैं, ऐसी स्थिति है। तो बीच में डोलता है मन, तो क्रिया जारी रहती है। और कई बार तो लोग सुबह उठ कर जितने थके उठते हैं, उतने सांझ थके नहीं सोते।

मैंने सुना है कि एक ग्रामीण अपने मित्र के घर देश की राजधानी में आया। जब वह राजधानी से वापस लौटा, तो उसके मित्रों ने और गांव के लोगों ने पूछा कि गांव और शहर में तुमने क्या फर्क पाया?

तो उसने कहा, मैंने फर्क पायाः गांव में लोग सांझ थके हुए होते हैं और सुबह ताजे उठते हैं। और शहर में लोग सांझ ताजे मालूम पड़ते हैं और सुबह थके उठते हैं।

रात, सांझ शहर जगा हुआ मालूम पड़ता है--ताजा। क्लब हैं, होटलें हैं, सिनेमागृह हैं, सब आदमी ताजे मालूम पड़ते हैं। सुबह? जरा उठें, जाएं, एक काल्पनिक आंख बंद करके यात्रा करें लोगों के शयनकक्षों की, बेडरूम्स की। लोग उठ रहे हैं, मुर्दा; नहीं उठना चाहते हैं, किसी तरह उठ रहे हैं। मजबूरी है, इसलिए उठ रहे हैं। दफ्तर है, इसलिए उठ रहे हैं। दुकान है, इसलिए उठ रहे हैं। लेकिन जैसे खींचे जा रहे हैं, कोई भीतर से प्राण नहीं है, जो उठ रहा हो। मुर्दे की भांति उठाए जा रहे हैं। उठ जाएंगे, बिना रीढ़ के खड़े हो जाएंगे, चल पड़ेंगे। क्या, हुआ क्या है?

नींद का जो निषेध है, वह खो गया है। नींद का जो नकार है, अनस्तित्व है, वह खो गया है। सुबह से सांझ तक हम बात कर रहे हैं, रात भी सपने में बात कर रहे हैं। रात भी लोग बड़बड़ाते रहते हैं। रात भी बोलते रहते हैं। भीतर नहीं, तो बाहर भी बोलते रहते हैं। चौबीस घंटे बोल रहे हैं। मौन अनस्तित्व है, शब्द अस्तित्व है। शब्द विधायक है, साइलेंस शून्य है। लेकिन जो व्यक्ति शब्दों में खो जाएगा और जिसके भीतर कभी भी शून्य घटित

नहीं होता, और जिसको कभी भीतर शून्य का पता नहीं चलता, और जिसे कभी भीतर मौन की एक संधि नहीं मिलती--शब्द ही शब्द, शब्द ही शब्द--वह आदमी धीरे-धीरे जीवन की गहराइयों से वंचित हो जाता है।

शब्द उपयोगी है, लेकिन शब्द काफी नहीं है। शब्द जरूरी है, लेकिन बस शब्द ही पर्याप्त नहीं है। शब्द चाहिए, लेकिन उससे भी ज्यादा निःशब्द चाहिए, उससे भी ज्यादा मौन चाहिए।

इसलिए ध्यान रखें, जिन लोगों के शब्दों में वजन होता है और जिन लोगों के शब्दों में प्राण होते हैं, वे वे ही लोग होते हैं जिनके पास मौन की क्षमता होती है। इस जगत में जो विराट शब्द पैदा हुए हैं, जो महाशब्द पैदा हुए हैं, वे उन लोगों से पैदा हुए हैं जो शून्य होने की कला जानते हैं। कोई बुद्ध जब बोलता है, तो उसके बोलने में एक-एक शब्द का जादू और है। कोई महावीर जब बोलता है, तो ऐसे ही नहीं बोलता जैसे हम बोल देते हैं। उसके एक-एक शब्द में सघन मौन समाया हुआ है। जब मोहम्मद बोलते हैं, तो वर्षों के मौन के बाद। जब जीसस बोलते हैं, तो तीस साल का लंबा... । पता ही नहीं है कि तीस साल जीसस क्या करते रहे। महावीर बारह वर्षों तक जंगल में चुपचाप खड़े रहे। बारह वर्ष तक नहीं बोले, इसलिए जब जो बोले, उसका गुण ही और है, उसकी खूबी ही और है, उसकी शक्ति ही और है। तब एक-एक शब्द प्रगाढ़ हो गया मौन के अर्थ से। तब मौन से यह जो शब्द पैदा हुआ, इस शब्द का वजन, इसकी कीमत, इसका मूल्य और है।

शब्द वही आप भी बोल सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि महावीर ने कोई नए शब्द नहीं बोले। बुद्ध या क्राइस्ट ने या कृष्ण ने कोई नए शब्द नहीं बोले। कृष्ण ने जो भी गीता में बोला है, वे सभी शब्द अर्जुन भलीभांति समझता था। उसने एक भी जगह ऐसा नहीं कहा कि आपके शब्द मेरी समझ में नहीं आते हैं। सब शब्द वह समझता था। वही शब्द वह भी बोल सकता था। लेकिन कृष्ण जब उसी शब्द को बोलते हैं, तो उसका मूल्य और हो जाता है। अर्जुन उसी शब्द को बोले, उसका मूल्य वही नहीं रह जाता।

तो शब्द का अर्थ एक तो भाषा-कोश में लिखा हुआ है, डिक्शनरी में लिखा हुआ है। वह एक अर्थ है। और एक और अर्थ है, जो भीतर के मौन से शब्द में प्रवेश करता है। इसलिए कोई व्यक्ति है कि वह कुछ भी बोले, तो उसके बोलने में काव्य हो जाता है। और कोई व्यक्ति है, वह कविता भी पढ़े, तो भी सब बेरौनक, सब बासा। उसके ओंठ में आकर ही शब्द जैसे मर जाते हैं। किसी के ओंठ पर आते ही शब्द अमृत हो जाते हैं, यात्रा पर निकल जाते हैं विराट की। ये वे ही ओंठ हैं, जिनके भीतर सघन मौन की क्षमता है। उसी मौन में जब कोई शब्द पलता है और बड़ा होता है, प्रिगनेंट होता है, उस मौन के गर्भ में ही जब कोई शब्द बड़ा होता है... ।

अगर हम इसको इस तरह समझ लें, तो आसानी पड़ेगी। अगर एक मां के शरीर में गर्भ निर्मित हो इसी क्षण और इसी क्षण गर्भ बाहर आ जाए और नौ महीने के मौन में न डूबा रहे, तो वह गर्भपात होगा, जन्म नहीं। वह एबॉर्शन होगा और उससे प्राण नहीं निकलेगा, उससे मृत घटना घटेगी। लेकिन नौ महीने के मौन में, नौ महीने के अंधकार में, नौ महीने के निषेध में बच्चा बड़ा होता है और जीवन को उपलब्ध होता है। ठीक वैसे ही जब किसी व्यक्ति के भीतर मां के गर्भ जैसा मौन होता है और उसमें एक शब्द पलता है, पलता है, बड़ा होता है, पोषण पाता है और कभी जन्मता है, तब उसमें प्राण होते हैं।

हमारे शब्द सब गर्भपात होते हैं, एबॉर्शन होते हैं। अखबार पढ़ा, पढ़ कर भागे कि किसी को बता दें अखबार में खबर क्या है। किताब पढ़ी कि अब बेचैन हुए कि लड़का कब स्कूल से लौटे कि उसको उपदेश दें। एबॉर्शन! शब्द को जरा भी मौन में जीने की सुविधा नहीं है। हम सब एबॉर्टिव हैं दिमाग में बिल्कुल। तो एक-दूसरे पर अपना-अपना गर्भपात किए चले जाते हैं। और उस पर वह जल्दी दूसरे पर फेंक रहा है, दूसरा तीसरे पर फेंक रहा है, फेंके चले जा रहे हैं।

झेन फकीर बोकोजू के पास जब कोई आता था, तो फकीर बोकोजू कहता था कि अगर शब्द से सीखना हो, तो कहीं और जाओ। अगर शून्य से सीखना हो, तो यहां रुको। हम भी शब्द का उपयोग करते हैं, लेकिन बस इतना ही--शून्य की तरफ इशारा करने को, इंगित करने को। हम भी कभी-कभी शब्द का उपयोग करेंगे, लेकिन बस इतना ही--शून्य की तरफ इशारा करने को। लेकिन असली चीज शून्य है। असली चीज मौन है।

मौन अनस्तित्व है, शब्द अस्तित्व है। और जीवन के हर पहलू पर वह जो हमें दिखाई नहीं पड़ता, वही गहन है। वह जो हमारे स्मरण में नहीं आता, हमारी प्रतीति में नहीं पकड़ता, हमारे अनुभव में नहीं पकड़ में आता, वही मूल्यवान है। जो व्यक्ति विधायक, पाजिटिव को, जो दिखाई पड़ता है, पकड़ में आता है, इंद्रियां जिसे पहचान लेती हैं, उसकी फिक्र कम करता है और उसकी फिक्र ज्यादा करने लगता है, जो अनस्तित्व है, शून्य है, नकार है, मौन है, वह व्यक्ति जीवन के परम सत्य की यात्रा पर निकल जाता है।

तो लाओत्से कहता है कि सदा खोज लेना गहराई को, सतह से मत उलझ जाना। और सदा खोज लेना उस विपरीत को, जो कि सबका मूल आधार है। सदा उसकी फिक्र कर लेना। क्योंकि उसी से जीवन का रस और उसी से जीवन का सौंदर्य और उसी से जीवन की शक्ति और ऊर्जा उपलब्ध होती है। कहीं भी, निरंतर दूसरा भी गहरे में मौजूद है। उस गहरे का ख्याल रखना, तो जीवन की पूरी की पूरी दृष्टि दूसरी हो जाती है। जिसको प्रेम में भी घृणा दिखाई पड़ने लगे, वह दोनों से मुक्त हो जाता है। और तब एक अनूठे ही प्रेम का जन्म होता है। वह प्रेम हमारे लिए बिल्कुल अपरिचित और अनजान है। वह प्रेम एक संबंध नहीं, वह प्रेम एक स्वभाव है।

उसी प्रेम को क्राइस्ट कहे कि वह प्रेम ईश्वर है। उसी प्रेम को महावीर ने अहिंसा कहा, बुद्ध ने करुणा कहा। लाओत्से ने उसे नाम ही नहीं दिया, क्योंकि लाओत्से ने कहा कि सभी नाम दूषित हो गए हैं। प्रेम कहो, तो लोग समझेंगे उनका प्रेम; करुणा कहो, तो लोग समझेंगे उनकी करुणा; कुछ भी कहो, लोगों के सभी शब्द दूषित हो गए हैं, विकृत हो गए हैं। सभी शब्द बीमार हो गए हैं। क्योंकि बीमार आदमियों ने इतना उनका उपयोग किया है, संक्रामक हो गए हैं। सभी शब्दों में आदमियों की बीमारियां प्रवेश कर गई हैं। एक भी शब्द अनकंटेमिनेटेड नहीं है। ऐसा शब्द खोजना मुश्किल है, जिसको हम कह सकें कि इसमें आदमियों की बीमारियों के रोगाणु नहीं पड़ गए हैं। सभी शब्द रुग्ण हो गए हैं। कोई शब्द शुद्ध नहीं है। इसलिए लाओत्से ने कहा कि मैं कोई शब्द नहीं देता। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि जहां दोनों नहीं रह जाते, वहां जो रह जाता है, वही, वही पाने योग्य है।

अगर शब्द और शून्य का ख्याल आ जाए, तो शब्द के पीछे शून्य छिपा है--एक बात आपको अंत में इशारा कर दूं--शब्द और शून्य का अगर ख्याल आ जाए, तो शब्द के पीछे शून्य छिपा है; लेकिन जो शून्य शब्द के पीछे छिपा है, वह भी शब्द से जुड़ा हुआ है। एक और शून्य है, महाशून्य है, जहां शब्द भी नहीं और शून्य भी नहीं। लेकिन उसके लिए कोई शब्द देना मुश्किल है। अस्तित्व द्वंद्व है, दो में बंटा है, विपरीत में बंटा है और विपरीत के सहारे काम करता है। लेकिन अस्तित्व की गहराई निर्द्वंद्व है, अद्वैत है, वहां दोनों खो जाते हैं। तब यह कहना मुश्किल है कि वहां एक रह जाता है। क्योंकि हमारी भाषा जैसा मैंने कहा, जब भी हम कहें एक, तब हमें तत्काल दो का ख्याल आता है। सोचना कभी बैठ कर घंटे भर कि एक का ख्याल करना और दो का ख्याल न आए, तो आप समझ पाएंगे कि जो मैं कह रहा हूं वह एक। लेकिन हम जब भी एक कहेंगे, तत्काल दो का ख्याल आ जाएगा। हमारा एक दो कीशृंखला का हिस्सा है, पार्ट, उसका अंश है। हमारे एक का कोई मतलब ही नहीं होता।

इसलिए हिंदुओं ने परमात्मा को एक नहीं कहा, अद्वैत कहा। निषेध का उपयोग किया। यह नहीं कहा कि वह एक है, कहा कि वह दो नहीं है। अद्वैत का मतलब होता है, दो नहीं है। सीधी सी बात कह सकते थे कि एक है। लेकिन एक कहने में तत्काल दो का ख्याल आता है; इसलिए उन्होंने बड़ी होशियारी की बात कही, बड़ी बुद्धिमानी की, कि वह दो नहीं है। जब कहा कि दो नहीं है, तो इशारा तो किया कि एक है, लेकिन एक का उपयोग नहीं किया। सिर्फ ख्याल आ जाए, भनक पड़ जाए कि वह एक है--बिना शब्द का उपयोग किए।

तो द्वंद्व को जो जान लेगा, पहचान लेगा, समझ लेगा, वह द्वंद्व के पार हो जाता है। अस्तित्व द्वंद्व है, जहां हम खड़े हैं वहां। लेकिन हमें तो द्वंद्व का भी एक ही हिस्सा दिखाई पड़ता है।

तो तीन बातें हैं। एक, हमें द्वंद्व का एक ही हिस्सा दिखाई पड़ता है, दूसरा हिस्सा भी दिखाई नहीं पड़ता। तो पहला काम तो यह है कि हमें पूरा द्वंद्व दिखाई पड़े। जब हमें पूरा द्वंद्व दिखाई पड़ेगा, तब हमें तीसरी चीज दिखाई पड़ेगी, जो द्वंद्व के पार है। हम जहां खड़े हैं, वहां हमें प्रेम दिखाई पड़ता है, घृणा दिखाई नहीं पड़ती। अगर घृणा दिखाई पड़ती है, तो प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। अगर ये दोनों हमें दिखाई पड़ने लगें, तो हमें तीसरा दिखाई पड़ेगा, जो दोनों नहीं है, दोनों के पार है।

अद्वैत सत्य की उपलब्धि द्वंद्व की पूरी-पूरी सार्थकता को समझ लेने से संभव होती है। और द्वंद्व की पूरी सार्थकता समझनी हो, तो लाओत्से कहता है कि जहां भी पाजिटिव हो, विधायक हो, वहां निगेटिव को खोजना, नकारात्मक को खोजना। और तुम पाओगे कि नकारात्मक पर ही सारा विधायक खड़ा हुआ है। और जब दोनों ही खो जाएं, तो वह उपलब्ध होता है, जिसे उपलब्ध करने के बाद फिर कुछ और उपलब्ध करने को शेष नहीं रह जाता है।

आज इतना ही।

पाच मिनट रुकेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों। और बैठे न रहें, सम्मिलित हों, भागीदार बनें।

अट्ठाईसवां प्रवचन

ऐंद्रिक भूख की नहीं--नाभि-केंद्र की आध्यात्मिक भूख की फिक्र

Chapter 12 : Sutra 1

The Senses

Colour's five hues from the eyes their sight will take; Music's five notes the ears as deaf can make; The flavours five deprive the mouth of taste;

The chariot course, and the wild hunting waste Make mad the mind; and objects rare and strange, sought for, men's conduct will be evil change.

Therefore, the sage seeks to satisfy (the craving of) the belly, and not the (insatiable longing of the) eyes.

He puts from him the later, and prefers to seek the former.

अध्याय 12 : सूत्र 1

पंचेंद्रियां

पंच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर जाते हैं;

पंच स्वर उसके कानों को बहरा कर जाते हैं;

पंच स्वाद उसकी रुचि को नष्ट कर देते हैं;

घुड़दौड़ और शिकार उसके मन को पागल कर देते हैं;

दुर्लभ और विचित्र पदार्थों की खोज उसके आचरण को भ्रष्ट कर देती है।

इस कारण संत बहिर नेत्रों की दुष्पूर आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं, वरन उस भूख की चिंता करते हैं, जो नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है।

संत एक का निषेध और दूसरे का समर्थन करते हैं।

जहां हम जीते हैं, जैसे हम जीते हैं, उस जीवन का अंतिम फल मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। कहा जा सकता है कि हम सिर्फ जीने के नाम पर रोज-रोज मरते हैं। और मृत्यु एक दिन अचानक नहीं आती। अचानक इस जगत में कुछ भी नहीं होता है। जिन्हें हम घटनाएं समझते हैं, वे भी घटनाएं नहीं होतीं। वे भी लंबी प्रक्रियाएं होती हैं। मृत्यु भी अचानक नहीं उतर आती। मृत्यु भी रोज-रोज विकसित होती है। इट इ.ज नॉट

एन ईवेंट, बट ए प्रोसेस; घटना नहीं, एक प्रक्रिया। जन्म से ही हम मरना शुरू हो जाते हैं। मृत्यु के दिन वह मरने की प्रक्रिया पूरी होती है।

तो एक तो मृत्यु अचानक नहीं घटती, एक विकास है। इसलिए मृत्यु भविष्य में घटेगी, ऐसा नहीं; अभी भी घट रही है। हम घंटे भर यहां होंगे, तो मृत्यु घंटे भर घट चुकी होगी। हम घंटा भर और मर चुके होंगे। जीवन एक घंटा और रिक्त हो जाएगा। दूसरी बात कि मृत्यु कोई बाहरी घटना नहीं है कि आपके ऊपर बाहर से आ जाती हो। हम सब इसी तरह सोचते हैं, जैसे मौत कहीं बाहर से आ जाती है, यमदूत उसे ले आते हैं, कोई मृत्यु का संदेशवाहक आ जाता है और हमारे प्राणों को खींच कर ले जाता है। गलत है वह दृष्टि। वह दृष्टि भी इसीलिए है कि हम सदा ही दुख कोई दूसरा लाता है, इस दृष्टि से बंधे हैं, इसलिए मृत्यु भी कोई लाता होगा।

नहीं, कोई मृत्यु लाता नहीं। मृत्यु भी आंतरिक घटना है; आपके भीतर ही घटित होती है। मृत्यु कहीं बाहर से आपके भीतर प्रवेश नहीं करती; आप ही भीतर मिट जाते हैं, बिखर जाते हैं। वह जो यंत्र था आपका, वह बिखर जाता है, और मौत घट जाती है।

तो एक तो मृत्यु एक प्रक्रिया है लंबी, जन्म से शुरू होती, मृत्यु पर समाप्त होती। दूसरा, बाहर से नहीं आती, भीतर ही विकसित होती है; अंतर-घटना है। यह बात ख्याल में आ जाए, तो हमें पता चलेगा कि हमारा पूरा जीवन रोज-रोज अनेक रूपों में मरता है। आंख देख-देख कर मिटती है और नष्ट होती है। कान सुन-सुन कर मिटते हैं और नष्ट होते हैं। स्वाद, स्वाद ले-ले कर टूटता चला जाता है, बिखर जाता है। मरते हैं हम जी-जी कर। जीना ही हमारे मरने का इंतजाम है। उसी में हम घिस जाते हैं। यंत्र बिखर जाता है, टूट जाता है, उखड़ जाता है।

लाओत्से कहता है, "पंच रंग मनुष्य की आंखों को अंधा कर जाते हैं।"

कभी इस तरह सोचा न होगा आपने कि रंग और आंख को अंधा कर जाएं! रंग तो आंख का हमें जीवन मालूम होते हैं। रंग देखने के लिए ही तो आंख जीती है और चमकती है। रंग और रूप तो हमारी आंख का भोजन हैं। और लाओत्से कहता है, वे हमारी आंख की मृत्यु हैं।

दो अर्थों में हैं। एक तो, देख-देख कर ही आंख थकती, नष्ट होती, उपयोग की नहीं रह जाती है। बुढ़ापे के कारण बूढ़े की आंख कम देखती है, ऐसा नहीं है। बहुत देख चुकी होती है, इसलिए अब कम देखती है। देख-देख कर थक गई होती है, यंत्र घिस गया होता है। बूढ़े के कान बूढ़े होने के कारण नहीं सुनते, ऐसा नहीं है। सुन चुके होते हैं, काम कर चुके होते हैं, थक गए होते हैं। विश्राम का क्षण आ गया होता है। यंत्र अपनी उपयोगिता पूरी कर चुका। अगर इस तरह देखें, तो इसका अर्थ हुआ कि जितना हम देखते हैं, उतनी ही आंख मरती है। और जितना हम सुनते हैं, उतने ही कान बधिर हो जाते हैं। और जितना हम छूते हैं, उतना ही स्पर्श नष्ट होता है। जितना हम स्वाद लेते हैं, उतनी ही रुचि विनष्ट होती है।

इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक इंद्रिय अपनी मृत्यु की कोशिश में लगी है। और हमारा पूरा जीवन आत्मघाती है, स्युसाइडल है। कभी सिनेमागृह से लौटते वक्त आपको लगा होगा कि आंख थक गई। आपने ख्याल नहीं किया होगा कि आंख तो आप वैसे भी खोले रखते हैं, सिनेमागृह में भी खोले रखे; तीन घंटे बाहर होते, तो वहां भी खोले रखते, सिनेमागृह में भी खोले रखे; पर ज्यादा क्यों थक गई है? तो अब दुबारा जब आप जाएं, तो ख्याल करना। सिनेमागृह में देखते समय आपकी आंख का पलक झपना बंद हो जाता है।

वह जो आंख बीच-बीच में झपक लेती है, उससे ताजी हो जाती है। वह झपकना जो है, आंख के देखने के सिलसिले को तोड़ता जाता है। लेकिन जब भी आप कहीं इतनी त्वरा से देखने लगते हैं कि झपकना भूल जाते हैं

आंख का, तो आंख थक जाती है। इसलिए सिनेमागृह से लौटा हुआ आदमी एकदम से सो भी नहीं पाता। आंख तीन घंटे अपलक खुली रहने के बाद एकदम से बंद भी नहीं हो पाती। और आंख बंद भी हो जाए, तो भी सिनेमागृह में जो उसने देखा है, वह भीतर के पटल पर चलता चला जाता है।

अक्सर ऐसा होता है, अक्सर ऐसा होता है कि पेंटर, चित्रकार जल्दी अंधे हो जाते हैं। होना नहीं चाहिए। जिनकी आंखों ने इतना देखा है, उनकी आंखें तो और ताजी हो जानी चाहिए। लेकिन रंगों में जी-जी कर अक्सर, देख-देख कर अक्सर अंधे हो जाते हैं। जिस इंद्रिय का हम ज्यादा उपयोग करते हैं, वही थक जाती है और मर जाती है।

एक तो यह अर्थ हुआ। इसका प्रयोजन यह है लाओत्से का कि हम अपनी इंद्रियों को मरते क्षण तक भी ताजा और युवा रख सकते हैं। और जिस व्यक्ति ने अपनी इंद्रियों को मरते क्षण तक ताजा और युवा रखा हो, वह मृत्यु का भी स्वाद ले सकता है। मृत्यु का भी रंग देख सकता है। वह मृत्यु का भी स्पर्श कर सकता है। वह मृत्यु को भी अनुभव कर सकता है। लेकिन मरने के पहले ही हमारे अनुभव की सब क्षमताएं टूट जाती हैं। इसलिए हम कई बार मर चुके हैं, लेकिन हमें मृत्यु का कोई अनुभव नहीं है। इसकी अड़चन है।

हम सब कई बार मर चुके हैं। लेकिन यदि हम किसी से पूछें कि मृत्यु क्या है, तो वह कहेगा मैं नहीं जानता हूं। वह भी मरा है, बहुत बार मरा है। पर उसे कुछ भी याद नहीं है। क्योंकि याद तो तभी हो सकती है, जब इंद्रियां इतनी सजग रही हों कि उन्होंने अनुभव लिया हो और अनुभव स्मृति में प्रवेश कर गया हो। मरते क्षण तक अधिक लोग, मरने की घटना बाद में घटती है, उनकी सब इंद्रियां पहले ही मर चुकी होती हैं। इसलिए मेमोरी, स्मृति निर्मित नहीं हो पाती।

इसलिए मजे की बात है कि अक्सर जिन लोगों को पिछले जन्म का स्मरण होता है, सौ में निन्यानबे मौकों पर वे लोग पिछले जन्म में युवा या बच्चे ही मर गए होते हैं। उसका कारण है। निन्यानबे मौकों पर उनका पिछला जन्म अचानक, आकस्मिक रूप से, कम उम्र में, जब सब ताजा था, इंद्रियां ताजी थीं, स्मृति ताजी थी, बुद्धि ताजी थी, तब मौत घट गई। तो वह जो इम्पैक्ट है, वह जो संस्कार है मृत्यु का, वह भूलता नहीं, वह याद रह जाता है। अभी तक ऐसी घटना नहीं घटी है कि पिछले जन्म के स्मरण करने वाले ने किसी ने कहा हो कि पिछले जन्म में मैं नब्बे वर्ष का होकर मरा। ऐसा नहीं है कि ऐसा नहीं घट सकता, ऐसा घट सकता है। लेकिन ऐसा घटने का मौका नहीं आता, क्योंकि मरने के पहले ही उसके भीतर के सब यंत्र मर चुके होते हैं।

जो साधक अमृत की खोज पर निकला है, जिसने जीवन के परम ताओ को, परम ऋत, परम धर्म को खोजना चाहा है, उसे अपनी इंद्रियों को प्रतिपल ताजा और युवा रखना जरूरी है। तो मृत्यु का अनुभव हो सकेगा--और जीवन का भी।

यह भी बड़े मजे की बात है कि जो लोग दिन-रात रंग को देखते रहते हैं, उनके रंग की आंख ही नहीं मरती, रंग का स्वाद भी मर जाता है, रंग की प्रतीति भी मर जाती है। बोथली हो जाती है, धार नहीं रह जाती। इसलिए बच्चा जब पहली दफे जगत को देखता है, तो जैसा रंगीन होता है, वैसा जगत फिर हम कभी भी नहीं देख पाते। बच्चा जब जगत को छूता है, तो स्पर्श में जैसी पुलक अनुभव होती है, वैसी फिर हमें कभी अनुभव नहीं हो पाती। बच्चा जब स्वाद लेता है, तो स्वाद जैसा उसके रोएं-रोएं को आंदोलित और आनंदित कर जाता है, वैसा फिर हम कभी नहीं कर पाते। कारण क्या है? कारण इतना ही है कि बच्चे की सभी इंद्रियां अभी ताजी हैं। और अभी वे जो भी ग्रहण करती हैं, वह समग्र रूप से प्रवेश कर जाता है।

अमरीका में सेंसिटिविटी के लिए आंदोलन चलता है, और बहुत से केंद्र हैं। एक बड़ा केंद्र कैलिफोर्निया में है--बिगसोर में। संभवतः इस सदी का महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण प्रयोग बिगसोर में चल रहा है। वह प्रयोग है कि लोगों की इंद्रिय की क्षमता को वापस लाया जाए। इक्कीस दिन के प्रयोग पर लोग जाते हैं। इक्कीस दिन में उन्हें फिर से चीजों को देखना, स्पर्श करना, स्वाद लेना सिखाया जाता है; प्रशिक्षित करना होता है।

आप जब खाना खाने बैठते हैं--सिर्फ उदाहरण के लिए कह रहा हूं--तो आपको पता नहीं होगा, अगर आपकी आंख बंद कर दी जाए और आपकी नाक बंद कर दी जाए, और आपके मुंह में सेव का टुकड़ा डाला जाए और प्याज का टुकड़ा, तो आप फर्क नहीं बता सकेंगे कि प्याज में और सेव में कोई फर्क है। क्योंकि फर्क का बड़ा हिस्सा स्वाद से ही नहीं आता, आंख से भी आता है, गंध से भी आता है। तो अगर नाक और आंख बंद हैं, तो आप प्याज में और सेव में फर्क नहीं कर पाएंगे। फर्क बहुत है। अगर सिर्फ स्वाद में ही फर्क होता, तो आप कर भी लेते; लेकिन आप नहीं कर पाएंगे, क्योंकि बड़ा फर्क गंध और आंख से था।

तो बिगसोर में वे खाने के लिए देते हैं, तो वे कहते हैं, पहले खाने को स्पर्श करो, उसके रंग को देखो, उसके रूप को देखो, उसे हाथ से छुओ, उसे गाल पर लगा कर छुओ, आंख बंद करके स्पर्श करो, उसकी गंध लो, आंख से देखो, फिर मुंह में उसे डालो, फिर उसका स्वाद लो। और यह सारा सचेतन रूप से करो।

इक्कीस दिन के प्रयोग में आप भोजन में नए स्वाद, नई गंध और नए स्पर्श शुरू कर देते हैं। और उनके साथ ही आपके भोजन की पूरी प्रक्रिया बदल जाती है। क्योंकि तब उतने स्वाद, उतनी गंध और उतने रूप के द्वारा बहुत थोड़ा सा भोजन भी बहुत ज्यादा तृप्तिदायी हो जाता है।

हम सब अधिक भोजन कर रहे हैं। उसका कारण यह है कि भोजन तो हम डालते चले जाते हैं, तृप्ति बिल्कुल नहीं होती। और तृप्ति की तलाश है! तो हम सोचते हैं कि इतने भोजन से नहीं हुई, तो थोड़ा और डाल लें, उससे हो जाए। थोड़ा और डाल लें। लेकिन हमें पता नहीं, जितना हम ज्यादा डालते हैं, उतनी ही हमारी तृप्ति को अनुभव करने की जो संवेदना है, वह क्षीण होती चली जाती है। एक दिन हमारा मुंह कुछ अनुभव ही नहीं करता, वह सिर्फ डालने का स्थान रह जाता है, चीजों को हम डालते चले जाते हैं। और तब हमें उत्तेजक चीजें डालनी पड़ती हैं। एक आदमी कहता, बिना मिर्च के स्वाद ही नहीं आता। उसका कुल कारण इतना है कि मिर्च जैसा तीव्र स्वाद हो, तो ही थोड़ा-बहुत आता है। स्वाद इतना मर गया है। स्वाद इतना मर गया है कि जब तक जहर ही न डाला जाए, तब तक हमें पता ही नहीं चलता कि कुछ हो रहा है।

आसाम में, बिहार के कुछ हिस्सों में, बंगाल में, जहां तंत्र की पुरानी साधनाओं के सूत्र अब भी प्रचलित हैं, वहां साधक, तंत्र के साधक... उनकी साधना का एक हिस्सा है कि समस्त तरह के नशों को लेने के बाद भी होश कायम रहना चाहिए। तो शराब तंत्र की साधना का एक अंग है। वे इतनी शराब पीने के अभ्यस्त हो जाते हैं कि शराब तो फिर उन्हें पानी जैसी हो जाती है। किसी तरह का कोई परिणाम नहीं होता। इतना गांजा पीने लगते हैं, इतनी अफीम खाने लगते हैं कि कोई परिणाम ही नहीं होता। और तब उनको अपने पास सांप पाल कर रखने होते हैं। उनसे जीभ पर कटा लेते हैं, तब उन्हें थोड़ा सा नशे का मजा आता है। तो सांप पाल कर रखना पड़ता है। उससे कम में काम नहीं चलता। फिर उसमें भी जो और आगे निकल जाते हैं, उनको छोटे-मोटे सांप भी काम नहीं देते। फिर तो भयंकर जहरीले सांप चाहिए, जो दूसरे कोई को काट लें, तो आदमी मर जाए। लेकिन ये साधक इस जगह भी पहुंच जाते हैं कि सांप काटते ही मर जाता है। तभी उनको थोड़ा सा स्वाद होता है।

हम अपनी इंद्रियों को इतना भी मार सकते हैं। हम सब ने थोड़ी-बहुत दूर तक मारा हुआ है। इसलिए जिनको हम शिष्ट अनुभव कहें, उदार अनुभव कहें, वे हमें होते ही नहीं। वे हमें होते ही नहीं। तीव्र अनुभव चाहिए। अगर बहुत मधुर वीणा बजती हो, तो हमें कुछ अनुभव नहीं होता, जॉज! जब पूरी हुड़दंग हो और पूरा पागलपन हो, तब थोड़ा सा हमें होश आता है कि कुछ आवाज हो रही है। सब मर गया है भीतर।

लाओत्से कहता है, रंग मार जाते आंखों को, स्वर कानों को बहरा कर देते, स्वाद रुचि को नष्ट कर जाते...।

यह हमारी इंद्रियों की जो मृत्यु है, यह हमारे मरने के पहले ही हमें एक कब्र में बिठा देती है। फिर हम जीते चले जाते हैं, लेकिन ताबूत के भीतर, मरे हुए, अपनी-अपनी कब्र को ढोते हुए, अपनी-अपनी लाश को घसीटते हुए। अगर हम सोचेंगे अपने को तो पता चलेगा।

इसके दोहरे दुष्परिणाम हैं। पहला तो मैंने कहा कि जीवन का जो अनुभव है, वह क्षीण हो जाता; अस्तित्व की जो प्रतीति है, वह अवरुद्ध हो जाती। और मृत्यु का जो महा अनुभव है, जो होना ही चाहिए, जिसने मृत्यु का अनुभव नहीं लिया, वह जीवन के गहरे अनुभव से वंचित रह गया। उसे जीवन का सत्य दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उसने सिर्फ जीवन की परेशानी जानी और जीवन का परम विश्राम अनजाना रह गया। उसने दौड़ तो जानी, लेकिन विश्राम का क्षण नहीं जाना। तो मृत्यु से हम अपरिचित रह जाते हैं। यह तो एक दुष्परिणाम होता है, जो बहुत स्पष्ट है।

दूसरा दुष्परिणाम और भी गहन है। और वह यह है कि हमारी प्रत्येक इंद्रिय, कहें कि द्विमुखी है। हमारी आंख बाहर भी देखती है और हमारी आंख के भीतर वह आंख भी है जो भीतर भी देखती है। हमारे कान बाहर भी सुनते हैं और हमारे कान के पास वह अंतर-इंद्रिय भी है जो भीतर भी सुनती है।

कान बिल्कुल बंद कर दें, बिल्कुल बंद कर दें कि बाहर से जरा सी भी आवाज न आए, तो भी हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती रहेगी। अब यह बाहर से नहीं आ रही, क्योंकि बाहर तो हथौड़े भी पड़ रहे हैं, तो सुनाई नहीं पड़ रहा है। अब यह भीतर से आ रही है। आंख बिल्कुल बंद कर लें, सारे चित्र बाहर से जो पैदा हुए हैं, उनको भी छोड़ दें, सब रूप-आकार बंद हो जाएं, तब भी भीतर नए अनुभव दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। नए रंग, जो इंद्रधनुष में नहीं हैं। नया प्रकाश, जो हमने बाहर नहीं जाना। नया अंधकार, इतना गहन, जितना बाहर कभी घटित नहीं होता। इनकी यात्रा भीतर शुरू हो जाती है। ठीक प्रत्येक इंद्रिय अपने भीतर भी अनुभव करने में सक्षम है। लेकिन चूंकि हम बाहर इतने उलझे रहते हैं कि हम धीरे-धीरे यही भूल जाते हैं कि भीतर की इंद्रिय के अनुभव का भी एक जगत था, जो बिना खुला ही रह गया।

तो लाओत्से दूसरी बात इसलिए कह रहा है कि जो लोग रंगों को देख-देख कर आंखों को अंधा कर लेंगे, उनकी बाहर की आंख तो अंधी होगी ही, भीतर की आंख बिना खुली ही रह जाएगी। बाहर की आंख को जो विश्राम देगा, उसकी भीतर की आंख सक्रिय होती है। बाहर के कान को जो विश्राम देगा, उसके भीतर नाद के अनुभव का द्वार खुलता है। बाहर के स्वाद से जो बचेगा, छुट्टी लेगा, थोड़े समय के लिए बाहर के स्वाद को बिल्कुल भूल जाएगा, कबीर ने कहा है, उसे भीतर के अमृत का अनुभव शुरू होता है, उसे भीतर अमृत बरसने लगता है। भीतर भी एक मिठास है; पर इसे जरा पहचानना कठिन है।

कभी आपने ख्याल किया कि जब आप क्रोध में होते हैं--पर शायद ख्याल नहीं किया होगा--कि क्रोध का कोई स्वाद भी होता है! क्रोध का भी स्वाद होता है। अगर आप बहुत क्रोध में भरे हों, तो एक क्षण क्रोध को भूल कर जरा आप आंख बंद कर लें और स्वाद लेने की कोशिश करें। तो आपका मुंह सूखा हुआ होगा। तिक्त, बासापन

पूरे मुंह में फैल गया होगा। मधुरता का कहीं कोई पता नहीं चलेगा। जब कभी आप प्रेम में हों, तब एक क्षण आंख बंद कर लें, प्रेम का भीतर स्वाद अनुभव करने की कोशिश करें। प्रेम का अपना स्वाद है। तब एक मधुरिमा भीतर घुलती हुई मालूम होगी। एक अपरिचित, अनजान, अदृश्य मिश्री भीतर घुल गई हो।

इसका क्रोध से और इस प्रेम के स्वाद का अंतर आपको स्पष्ट दिखाई पड़ेगा। तब आप प्रत्येक भाव-दशा का स्वाद अनुभव कर सकते हैं। ध्यान का भी एक स्वाद है। तनाव का भी एक स्वाद है। और जब समस्त विचार खो जाते हैं और समस्त इंद्रियां शांत हो जाती हैं, तो जो ध्यान का स्वाद आता है, उसका नाम अमृत है।

उसका अमृत दो कारण से नाम है। एक तो उससे मधुर कोई स्वाद नहीं। और दूसरा इस कारण भी कि उस स्वाद के मिलते ही पता चलता है कि मेरी कोई मृत्यु नहीं, मैं नहीं मर सकता हूं। मृत्यु मेरी असंभव है। उस स्वाद का अनुभव ही तय कर जाता है कि मृत्यु असंभव है। जो मरता है, वह केवल यंत्र है; मैं पुनः-पुनः शेष रह जाता हूं।

लेकिन अगर हमने अपनी सारी शक्ति बाहर की इंद्रियों में ही व्यतीत कर दी हो, अगर हमने अपनी सारी शक्ति बाहर की इंद्रियों में ही व्यय कर दी हो, और हम थक गए हों, तो हमें भीतर की इंद्रियों का तो कभी ख्याल ही नहीं आता। और शक्ति भी नहीं बचती।

हम सभी को पता है, निरंतर यह होता है, अगर कोई आदमी अंधा होता है, तो उसके कान ज्यादा तीव्र हो जाते हैं। वह ज्यादा सुन पाता है। अंधे आदमी आपके पैर की आवाज से पहचान लेते हैं कि कौन आ रहा है। आंख वाला नहीं पहचान सकता। अंधा पहचानने लगता है कि कौन आ रहा है। अंधा आवाज से जानने लगता है कि कौन बोल रहा है। अंधा आवाज के द्वारा दिशा का ज्ञान कर लेता है। अंधा सड़क पर चल भी सकता है, क्योंकि लोगों के पैर की आवाज उसे अनुभव होने लगती है।

अंधे का स्पर्श-बोध भी बढ़ जाता है। अंधा दीवार के थोड़ा करीब आता है, तो उसे एहसास होने लगता है कि टक्कर होने वाली है। आपको नहीं होगा। अंधा अभी दीवार से दूर है, लेकिन दीवार के करीब आने के पहले ही उसके भीतर कोई गहन स्पर्श होने लगता है कि दीवार करीब है और टक्कर होगी। अंधे को आप चलते हुए देखें, तो ऐसे वह चलता जाएगा, दीवार जैसे ही करीब आएगी, उसकी लकड़ी उठ जाएगी और वह टटोलना शुरू कर देगा। दीवार के पास सघनता का हवा में उसे कुछ स्पर्श हो रहा है, जिसका हमें कोई पता नहीं चलता।

अगर आप किसी आंख वाले आदमी से मुस्कुराते रहें और उसका हाथ हाथ में ले लें, तो आप उसे धोखा दे सकते हैं। हो सकता है भीतर आपके बिल्कुल मुस्कुराहट न हो, जरा भी प्रेम न हो, यह सिर्फ दिखावा हो; लेकिन वह आदमी आपका चेहरा देख कर धोखे में आ जाएगा। अंधे आदमी को आप धोखा नहीं दे सकते। अंधा आदमी आपके हाथ से पहचान लेगा कि यह आदमी प्रेमपूर्ण है या नहीं है। आंखों वालों के धोखे आंखों वालों के ही काम आ सकते हैं। अंधे आदमी को आप धोखा नहीं दे सकते उतनी आसानी से। क्योंकि उसके जांचने के ढंग अलग हैं और आपके धोखा देने के ढंग अलग हैं, दोनों कहीं मिलते नहीं। इसलिए अंधा आदमी अक्सर प्रज्ञावान हो जाता है। प्रज्ञावान इसीलिए हो जाता है कि उसके पास कुछ ऐसी समझ होती है, जो हमारे पास नहीं होती।

लेकिन क्यों ऐसा होता है? ऐसा होने का कुल कारण इतना है कि आंख से जो शक्ति व्यय होती थी, वह दूसरी इंद्रियों को मिल जाती है, ट्रांसफर हो जाती है। अगर सभी इंद्रियां बंद कर दी जाएं और एक इंद्रिय शेष रह जाए, तो वह इंद्रिय इतनी तीव्र हो जाएगी कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इसीलिए पशुओं की इंद्रियां हमसे ज्यादा तीव्र हैं। क्योंकि उनके पास हमसे कम इंद्रियां हैं। जितना हम पशु जगत में पीछे लौटेंगे--अगर तीन इंद्रिय वाला पशु है, तो उसकी इंद्रियां हमसे तेज होंगी। अगर दो इंद्रिय

वाला है, तो उसकी और तेज होंगी। अगर एक इंद्रिय वाला है, तो उस एक ही इंद्रिय से पांच इंद्रियों की सारी शक्ति उसकी बहती है। तो अमीबा है, जो कि सिर्फ स्पर्श करता है, उसके पास और कोई इंद्रिय नहीं। तो उसके स्पर्श का अनुभव हम कभी नहीं पा सकते कि वह स्पर्श कितनी प्रगाढ़ता से करता है।

लेकिन आप कभी प्रयोग करें। कान बंद कर लें, आंख बंद कर लें, ओंठ बंद कर लें और फिर किसी को छुएं। तब आप पाएंगे कि आपके छूने में कुछ और ही अनुभव हो रहा है, आपके छूने में कोई नई विद्युत प्रवाहित हो गई है। अंधे आदमी की आंख की ताकत दूसरी इंद्रिय को मिल जाती है। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि हमारी जो इंद्रियां हैं, अगर ये बाहर नष्ट न हों, व्यतीत न हों, तो इनकी ताकत भीतर की इंद्रियों को मिल जाती है। अगर हम बाहर की इंद्रियों का बहुत संयत उपयोग करें, दुरुपयोग न करें... ।

हम जो भी कर रहे हैं, वह दुरुपयोग है। रास्ते पर आप जा रहे हैं और दीवारों के पोस्टर पढ़ रहे हैं। अगर आप न पढ़ते होते, तो कोई मेहनत करके उन्हें लिखता भी नहीं। लिखने वाले भलीभांति जानते हैं कि यहां से गुजरने वाले न्यूरोटिक हैं, वे बिना पढ़े रह ही नहीं सकते। उनको पता है कि पागल गुजरते हैं यहां से, वे पढ़ेंगे ही। और आप अगर सोचते हों कि नहीं, हम चाहें तो नहीं पढ़ेंगे, तो आप कोशिश करके देखना। आप जितनी कोशिश करेंगे, पता चलेगा भीतर कोई पागल बैठा है, वह कहता है चूको मत, पता नहीं क्या लिखा हो, पढ़ ही लो! कुछ भी नहीं लिखा है, किसी को वोट देना है कि नहीं देना है, कोई साबुन बिकनी है कि नहीं, कि कोई फिल्म देखनी है कि नहीं, वह सब लिखा हुआ है। वह हजार दफे आपने देखा है, रोज उसी सड़क से निकले हैं। फिर आज देखेंगे, फिर आज पढ़ेंगे। अब तो पढ़ने की जरूरत भी नहीं पड़ती, देखा और पढ़ लिया जाता है। और आप आगे बढ़ जाते हैं। इतना अभ्यास है।

लेकिन कभी आपने सोचा कि जो आप पढ़ रहे हैं, उसमें से कितना छोड़ा जा सकता है? जो आप सुन रहे हैं, उसमें से कितना छोड़ा जा सकता है? जो आप देख रहे हैं, उसमें से कितना कम देखें तो चल सकता है?

अगर आप इस पर थोड़ा ध्यान करेंगे, तो आप पाएंगे, जो शक्ति आपकी बच जाएगी, वह आपकी भीतर की इंद्रिय को मिलनी शुरू हो जाएगी। अब एक आदमी मेरे पास आता है, वह कहता है, हम आंख बंद करके बैठते हैं, लेकिन भीतर कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

दिखाई पड़ने के लिए कुछ ऊर्जा भी बचनी चाहिए! चुक गए हैं बिल्कुल, चला हुआ कारतूस जैसा होता है, वैसे हैं। अब बंदूक में भर कर उसको चला रहे हैं। वे कहते हैं, कुछ आवाज नहीं निकलती, धुआं तक नहीं निकलता। वह नहीं निकलेगा। चला हुआ कारतूस है, उसमें से क्या निकलेगा?

हम सब करीब-करीब चले हुए कारतूस हो जाते हैं। इतना चला रहे हैं, उसमें कुछ बचता नहीं। थके-मांदे रात लौटते हैं, कहते हैं कि ध्यान करने बैठे हैं। एकाध दफे राम भी नहीं कह पाते कि नींद लग जाती है। सुबह कहते हैं, पता नहीं क्यों, जब भी ध्यान करते हैं तो नींद आ जाती है।

आएगी ही। नींद भी आती है, यह भी चमत्कार है। इतनी भी शक्ति आपकी बच जाती है कि आप सो लेते हैं, यह भी काफी है। क्योंकि चिकित्सक कहते हैं, विशेषकर पूर्वीय चिकित्सक कहते हैं कि अक्सर अस्सी साल तक कोई आदमी जिंदा बच जाए, तो फिर मरना मुश्किल होता है। क्योंकि मरने के लिए भी एक खास शक्ति चाहिए, मरने के लिए भी! अगर अस्सी साल तक कोई बच जाए, तो फिर वह मरने में बड़ी देर लगाता है। फिर वह खाट पर पड़ा रहेगा; सब तरह की बीमारियां उसको पकड़े रहेंगी; चिकित्सक सोचेंगे, आज मरेगा, कल मरेगा, परसों मरेगा; वह है कि चलता ही चला जाता है। असल में, मरने के लिए भी, आखिरी भभक के लिए

भी, तेल तो चाहिए ही कि आखिरी भभक हो और दीया बुझ जाए। उतना भी नहीं बचा है। अब वह इतने मिनिमम पर जी रहा है कि मर भी नहीं सकता। इतने न्यूनतम पर जी रहा है।

इसलिए बहुत हैरानी की बात है कि स्वस्थ आदमी अक्सर पहली ही बीमारी में मर जाता है। अगर एक आदमी जिंदगी भर बीमार न पड़ा हो और पहली दफे बीमार पड़े, तो पहली बीमारी मौत बन जाती है। लेकिन जिन्होंने जिंदगी भर बीमारी का रस लिया, उनको मारना इतना आसान नहीं है। उनको मारना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वे इतने मिनिमम पर जीने के आदी हो गए हैं कि मौत के लिए भी जितनी शक्ति की जरूरत पड़ेगी, उतनी भी वहां नहीं है। वे जीए चले जाएंगे। टिमटिमाते रहेंगे। न बुझेंगे, न जलेंगे; लेकिन टिमटिमाते रहेंगे।

नींद के लिए भी ऊर्जा तो चाहिए। ये बहुत लोग नहीं भी सो पा रहे हैं आज, उसका भी कारण यही है। इतनी भी ऊर्जा नहीं बचती कि आप रिलैक्स हो सकें, इतना कि शिथिल भी हो सकें। इतनी भी ऊर्जा नहीं बचती। तने के तने ही रह जाते हैं; खिंचे के खिंचे रह जाते हैं।

लाओत्से कहता है और समस्त पूर्वीय योग जानता रहा है कि हम अगर भीतर की इंद्रियों के जगत में प्रवेश करना चाहते हैं, तो बाहर की इंद्रियों को इतना ज्यादा व्यय करना अनुचित है। इसी का नाम संयम है। संयम का और कोई अर्थ नहीं होता। संयम का केवल इतना ही अर्थ हैः जितना जरूरी है, उतना बाहर व्यय करना, शेष भीतर की यात्रा के लिए बचाना। जितना जरूरी हो, उतना बाहर देख लेना, बाकी देखने की क्षमता को बचाना। क्योंकि भीतर एक और विराट जगत मौजूद है। और जब यह जगत छिन जाएगा, तब भी वह जगत आपका होगा। और जब यह मकान और ये द्वार और दरवाजे और ये मित्र और प्रियजन, पति और पत्नी और बच्चे और धन, यह सब छिनने लगेगा, तब भी एक संपदा भीतर होगी। लेकिन तब हमारे पास उसे देखने की आंख नहीं होती।

बाहर जो हमने जाना है, वह कुछ भी नहीं है उसके समक्ष जो भीतर है। जो स्वर हमने सुने हैं बाहर, जब हम भीतर की वीणा सुन पाते हैं, तब पता चलता है कि वह सिर्फ शोरगुल था जो हमने बाहर सुना। अगर बाहर भी वीणा के स्वर प्रीतिकर लगते हैं, तो अंतर के रहस्यों को जानने वालों का कहना है कि वे इसीलिए प्रीतिकर लगते हैं कि कुछ न कुछ भीतर के स्वरों की भनक उनमें है, बस इसीलिए। अंतर-संगीत की कुछ भनक उनमें है, इसीलिए। अगर बाहर प्रकाश अच्छा लगता है, तो अंतर-प्रकाश की कुछ झलक उसमें है, इसीलिए। और अगर बाहर के स्वाद अच्छे लगते हैं, तो थोड़ी सी मिठास का एक कण उसमें है, उस मिठास का कण जो भीतर भरी है अनंत, इसीलिए। अगर बाहर का संभोग भी अच्छा लगता है, तो सिर्फ इसीलिए कि अंतर-संभोग की एक किरण, एक झलक, एक प्रतिफलन, एक ईको, एक प्रतिध्वनि उसमें मौजूद है, बस इसीलिए। लेकिन उस पर अपने को चुका मत डालना; उस अनुभव पर अपने को समाप्त मत कर देना। अभी भीतर बड़े अनुभवों के द्वार खुल सकते हैं।

तो लाओत्से कहता है, "घुड़दौड़ और शिकार मन को पागल कर जाते हैं। दुर्लभ और विचित्र पदार्थों की खोज आचरण को भ्रष्ट कर देती है।"

घुड़दौड़ या शिकार, या हम नए पागलपन जोड़ सकते हैं, ये लाओत्से के जमाने के पागलपन हैं। अब तो बहुत पागलपन हैं। उस वक्त उसे दो बातें पागलपन की दिखाई पड़ी होंगीः घुड़दौड़ पर लोग दांव लगा रहे हैं, शिकार पर लोग जा रहे हैं। आज तो बहुत हैं। आज तो करीब-करीब जो भी हम कर रहे हैं, वह सभी घुड़दौड़ है और सभी शिकार है। पागल कर जाते हैं मन को।

असल में, जो व्यक्ति अपने से बाहर दांव लगाना सीख लेगा, वह पागल हो जाएगा। जिसने अपना जुआ अपने से बाहर खेलना शुरू किया, वह पागल हो जाएगा। क्योंकि वह एक ऐसी चीज के लिए दांव लगा रहा है, जो मिल नहीं सकती। स्वभावतः जिसका मिलना असंभव है, जो नहीं मिल सकती। मिल भी जाए, तो भी नहीं मिलती। कितनी ही मिल जाए, तो भी छिन जाती है।

लाओत्से का शिष्य था लीहत्जू। लीहत्जू ने लाओत्से से छुट्टी ली कि मैं कुछ दिन यात्रा पर जाना चाहता हूं। लाओत्से ने कहा, जाओ, लेकिन सम्हल कर जाना। क्योंकि यात्रा पर जाना तो आसान, लौटना बहुत मुश्किल है। लीहत्जू को कुछ समझ में नहीं आया। कम ही सौभाग्यशाली लोग हैं कि लाओत्से जैसे लोगों की बातें उनकी समझ में आ जाएं। सुन लेना एक बात, समझ लेना बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन लीहत्जू भी जानता तो था कि समझ गया, क्योंकि शब्द तो सरल थे। शब्दों की सरलता बड़ी मुश्किल में डाल देती है; क्योंकि सरल होने से लगता है समझ गए। और सरल शब्दों को समझना इस जमीन पर सबसे ज्यादा कठिन है। क्योंकि उनका अर्थ भाषाकोश में नहीं होता, उनका अर्थ हमारे भीतर की जागरूकता में होता है। उसने लौट कर भी न पूछा लीहत्जू ने कि क्या मतलब? समझा कि कहता है लाओत्से कि जाना आसान, लौटना मुश्किल। समझ गए।

लेकिन दस दिन बाद ही लीहत्जू लौट आया। और लीहत्जू से लाओत्से ने पूछा, बड़े जल्दी लौट आए? लीहत्जू ने कहा कि जैसे-जैसे जाने लगा, वैसे-वैसे समझ में आने लगा कि जितने कदम आगे बढ़ेंगे, उतना ही पीछे लौटना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए मैंने सोचा, इसके पहले कि फंसूं, लौट चलूं। लाओत्से ने कहा, ऐसी क्या फंसावट आ गई? तो लीहत्जू ने कहा कि पहली सराय में ठहरा, सराय के मालिक ने मुझे बड़ा आदर दिया। फकीर था। पहली कुर्सी पर बिठा कर भोजन करवाया। नंबर एक उसकी सेवा की। नंबर एक के कमरे में उसे ठहराया।

लाओत्से ने कहा, तो इसमें क्या तकलीफ हुई?

लीहत्जू ने कहा, तकलीफ हुई? रात भर मैं सो न सका! अकड़ पैदा हो गई भीतर कि मैं भी कुछ हूं, मैं भी कुछ हूं। नंबर एक भोजन, नंबर एक के कमरे में ठहरना, सराय के मालिक का पैर छूना, और उसके छूते ही सारे यात्री मेरे प्रति आदर से भर गए। पता नहीं, उनका क्या हुआ, मैं रात भर नहीं सो सका।

दूसरी सराय में पहुंचा। तो सराय के बाहर ही मैंने अपने कपड़े वगैरह ठीक कर लिए, तैयार हो गया हाथ-मुंह साफ करके। मेरी चाल बदल गई। जब मैं भीतर प्रवेश किया, तो मैं वही आदमी नहीं था, जो तुम्हारे चरणों को छोड़ कर गया था। दूसरा ही आदमी था। मैं खड़े होकर देख रहा था कि जल्दी सराय का मालिक आए, पैर छुए, पहले नंबर बिठाए, पहले नंबर के कमरे में ठहराए। कोई नहीं आया। भारी पीड़ा हुई। तृतीय श्रेणी के कमरे में ठहरने को मिला। फिर भी रात भर न सो सका।

तब मुझे बड़ी हैरानी हुई। प्रथम श्रेणी में ठहरा, तब न सो सका; तृतीय श्रेणी में सोया, तब न सो सका। मैंने सोचा, लौट चलना उचित है। खतरे में उतर रहा हूं। हालांकि मन कहता था कि एक सराय में और भी तो कोशिश करके देखो। हो सकता है, यह आदमी न पहचाना हो, अज्ञानी हो। दूसरी सराय में कोई पहचान ले। तभी तुम्हारे शब्द मुझे सुनाई पड़े कि जाना तो बहुत आसान यात्रा पर, लौटना बहुत मुश्किल है। तब मैं एकदम भागा, मैंने कहा अब रुकना खतरनाक है। कहीं ऐसा न हो कि मैं उतरता ही चला जाऊं।

हम सब ऐसे ही उतर जाते हैं। दौड़ अनेक तरह की है। वह हमें बुलाती चली जाती है। और जितने हम उतरते हैं, उतने हम फंसते चले जाते हैं। फिर लौटने के दरवाजे ही धीरे-धीरे भूल जाते हैं, रास्ता भी भूल जाता

है कि कहां से हम आए थे। फिर एक ही रास्ता दिखाई पड़ता हैः इस पड़ाव से दूसरा पड़ाव, दूसरे पड़ाव से तीसरा पड़ाव। और पीछे लौटने में विषाद भी मालूम पड़ता है; कोई भी लौटना नहीं चाहता।

यह बड़े मजे की बात है। कोई भी लौटना नहीं चाहता। सब आगे जाना चाहते हैं। क्योंकि आगे जाने में अहंकार को तृप्ति मिलती है। लौटना शब्द ही मन को विषाद से भर देता है। और कोई कहे, लौट आए? तो ऐसा लगता है कि समाप्त, जिंदगी बेकार चली गई। बढ़ो, तो अहंकार रोज नई पुकार देता है और नई मृग-मरीचिका दिखाई पड़ने लगती है, उसे पाना है। फिर आदमी दौड़ता चला जाता है। यह दौड़, बाहर कुछ भी पाने की दौड़ अंततः मनुष्य को पागल कर जाती है।

पागल होने का मतलब ही इतना है कि ऐसा आदमी जो अपने से इतना बाहर चला गया कि अब अपने पास, अपने भीतर ही लौटने का उसे कुछ पता नहीं रहा। वह अपना घर ही भूल गया कि मेरा घर कहां है? अब उसे एक ही बात पता है कि वह दौड़ सकता है, रुक नहीं सकता। अब उसे एक ही बात पता है कि अगर यह चीज नहीं मिली, तो दूसरी चीज पाने को दौड़े। अगर मिल गई, तो भी दूसरी चीज पाने को दौड़े। अब वह दौड़ ही सकता है। अब उसका चित्त एक फीवर, एक ज्वर से भरा है, एक रोग से भरा है। और दौड़े बिना उसको कोई चारा नहीं। रुक नहीं सकता, ठहर नहीं सकता है।

एक मेरे मित्र हैं। मिलिटरी में कर्नल हैं। उनकी पत्नी मुझे सुनने आती थीं। मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारे पति कभी-कभी मुझे मिलने तो आते हैं, कभी-कभी तुम्हें छोड़ने भी आते हैं, लेकिन कभी उन्हें मैंने बैठा नहीं देखा कि कभी उन्होंने सुना हो बैठ कर। उनकी पत्नी ने कहा, वे बैठ नहीं सकते। कर्नल हैं, वे चलते रहते हैं। वे आपको बहुत सुनना चाहते हैं। टेप करके मैं ले जाती हूं, वे लगा लेते हैं टेप और कमरे में टहलते रहते हैं, तो सुन पाते हैं। वे इतना घंटे भर एक कुर्सी पर बैठ नहीं सकते। और फिर आपके सामने उनको अच्छा भी नहीं लगता कि वे करवट बदलते रहें पूरे वक्त। और वे दस-पांच दफे बीच में उठ कर बाहर जाएं, भीतर आएं, तो वह उन्हें अशोभन भी लगता है। लेकिन वे बैठ नहीं सकते।

हम सबका चित्त ऐसी ही हालत में हो जाता है। बैठ नहीं सकता, रुक नहीं सकता, विश्राम नहीं कर सकता। और-और-और, हम भागे चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, मन पागल हो जाता है।

पागल का एक ही अर्थ है कि जो विश्राम करने में असमर्थ हो गया। अगर आप विश्राम करने में समर्थ हैं, तो आप समझना कि आप पागल नहीं हैं। अगर विश्राम के आप मालिक हैं, तो समझना कि आप पागल नहीं हैं। और अगर आप विश्राम करने में समर्थ नहीं हैं और अपनी मौज से विश्राम नहीं कर सकते, तो समझना कि पागलपन की कोई न कोई मात्रा आपके भीतर है। मात्रा का फर्क हो सकता है, लेकिन मात्रा है। अगर आप इतने भी मालिक अपने नहीं हैं कि लेट जाएं और कहें कि शरीर को छोड़ दिया विश्राम में और शरीर विश्राम में छूट जाए, अगर आप इतने भी मालिक नहीं हैं कि आंख बंद कर लें और आंखों से कह दें कि सो जाओ तो आंखें सो जाएं, तो आपके भीतर पागलपन की एक मात्रा है।

मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है। मात्रा कभी भी बढ़ सकती है। और चौबीस घंटे में घटती-बढ़ती रहती है। किसी दिन आसानी लगती है विश्राम करने में, किसी दिन बहुत मुश्किल हो जाता है। घटनाएं चारों तरफ घटती रहती हैं। किसी दिन ऐसी घटना घटती है कि पागलपन ज्यादा तेजी से दौड़ने लगता है। किसी ने इतना ही कह दिया कि पता है तुम्हें कि नहीं, कोई कहता था कि तुम्हारे नाम लाटरी खुल गई है! मन एकदम दौड़ पड़ेगा पूरे पागलपन से। खरीद लेगा चीजें, जो कभी नहीं खरीदनी चाहीं। न मालूम क्या-क्या कर डालेगा! फिर उस रात

नींद नहीं आ सकती। लाटरी अभी मिली नहीं, लेकिन उस रात नींद नहीं आ सकती। अब विश्राम के आप मालिक न रहे। लाटरी ने बड़ी दौड़ को गति दे दी।

चित्त को चौबीस घंटे चारों तरफ कुछ घट रहा है, जो बुलाता है, दौड़ाता है। आप दौड़ने को सदा तत्पर हैं। विश्राम तो आपको तभी होता है, जब सौभाग्य से बाहर कोई दौड़ नहीं होती।

मगर वह आपके हाथ में नहीं है। वह आपके हाथ में नहीं है। वह बिल्कुल नियति है, कहें कि भाग्य है। रास्ते पर चलता एक आदमी गाली दे जाए, दौड़ हो जाएगी शुरू। वह आपके हाथ में नहीं है। करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। लोग ही नहीं हैं, पड़ोसी का कुत्ता ही जोर से भौंकने लगे, तो रात उसका भी विचार चलता है कि क्यों भौंक रहा था! घर आएं और घर का कुत्ता पूंछ ही न हिलाए, तो भी चिंता हो जाती है कि आज कुत्ते ने पूंछ नहीं हिलाई! उससे भी हमारे संबंध बन जाते हैं। हमारा अहंकार उससे भी रस लेने लगता है। अगर कुत्ते ने पूंछ नहीं हिलाई, तो गड़बड़ हो गई, सारी जिंदगी बेकार है। घर आता है आदमी, तो देखता आता है कि कुत्ता पूंछ हिला रहा कि नहीं हिला रहा। तरह-तरह के कुत्ते हैं, तरह-तरह की पूंछें हैं। छोटी सी बात, लेकिन चित्त पागल है, तो पागल हो सकता है। कोई भी बहाना काफी है, कोई भी बहाना काफी है।

लेकिन इसके पागल होने का जो सीक्रेट, जो राज है, वह एक ही है। जब तक आप अपने से बाहर किन्हीं चीजों के लिए दौड़ रहे हैं, तब तक आप अपने को पागल किए चले जाएंगे। और जितने आप पागल हो जाएंगे, उतने ही दुखी, उतने ही संताप से भर जाएंगे, उतने ही बड़े नर्क में आपका निवास हो जाएगा।

"दुर्लभ पदार्थों की खोज आचरण को भ्रष्ट कर जाती है।"

असल में, आचरण बड़ी गहरी चीज है। आचरण का ऐसा मतलब नहीं है कि एक आदमी सिगरेट नहीं पीता, तो बड़ा आचरणवान है। ऐसा कुछ मतलब नहीं है। क्योंकि कभी-कभी तो ऐसा हो सकता है कि सिगरेट न पीने के कारण वह जो कर रहा हो, वह और भी बड़ी आचरणहीनता हो। क्योंकि हमको सब्स्टीट्यूट खोजने पड़ते हैं, विकल्प खोजने पड़ते हैं।

इसलिए आपने अनुभव किया होगा कि अक्सर जो लोग सिगरेट पीते हैं, पान खाते हैं, चाय पीते हैं, काफी पीते हैं, कभी थोड़ी शराब भी पी लेते हैं, वे ज्यादा मिलनसार आदमी होते हैं। जो इनमें से कुछ भी नहीं करते, उनसे दोस्ती बनानी तक मुश्किल है, वे मिलनसार होते ही नहीं। बहुत अकड़े हुए होते हैं। क्योंकि वे सिगरेट नहीं पीते, चाय नहीं पीते, तो उनकी रीढ़ बिल्कुल अकड़ जाती है, झुकती ही नहीं। वे दूसरे की तरफ ऐसे देखते हैं, जैसे वे आसमान पर खड़े हैं, दूसरा कीड़ा-मकोड़ा है। उनको आदमी नहीं दिखाई पड़ते। आपने सिगरेट पी, गए! आप आदमी नहीं रहे, कीड़े-मकोड़े हो गए। आप पान खा रहे हैं, आप गए। आपकी कोई स्थिति न रही। तो इससे तो बेहतर था यह आदमी सिगरेट पी लेता। सिगरेट पीने से इतना कुछ नुकसान न था। यह जो अहंकार पी रहा है, यह बहुत खतरनाक है, जहरीला है।

इसलिए तब तक मैं किसी आदमी को भला नहीं कहता, जब तक इतना भला न हो कि दूसरे की बुराई को पाप मानने की प्रवृत्ति में न पड़े। तब तक कोई आदमी भला नहीं है, तब तक आचरणवान नहीं है। आचरण का एक ही अर्थ है कि इतना भला है कि दूसरे की बुराई को भी बुराई नहीं देखता। दूसरे की निंदा करने की क्षमता का खो जाना आचरण है। तब तो हमारे तथाकथित साधु-संन्यासी आचरण में नहीं टिक सकेंगे, हैं भी नहीं। आपके और उनके आचरण में भेद नहीं है; सिर्फ चीजों का भेद है। जो आप कर रहे हो, उसकी वजह से आप पापी हो; वही वे नहीं कर रहे हैं, इसलिए पुण्यात्मा हैं। लेकिन टिके दोनों ही सिगरेट पर हैं; वे नहीं पी रहे हैं, आप पी रहे हो। लेकिन दोनों का आचरण सिगरेट से बंधा है।

अगर आप अपने साधु की साधुता पूछने जाएं, तो पता क्या चलेगा? वह यह नहीं खाता, यह नहीं पीता, यह नहीं पहनता, यह उसकी साधुता है! और आपको वह साधु लगता भी है। लगना स्वाभाविक भी है, क्योंकि आप यह खाते हैं, यह पहनते हैं, यह पीते हैं। तो यह भेद है आपके आचरण का। और अक्सर यह जो साधु है, यह खतरनाक हो जाता है। क्योंकि यह आदमी आपकी ही हैसियत का है। अगर यह सिगरेट पीता, तो आप ही जैसा होता। यह सिगरेट नहीं पीता है, तो सिगरेट न पीने का जो कष्ट उठा रहा है, जो पीड़ा झेल रहा है, उसको यह तप कहता है, उसको तपश्चर्या कहता है।

अब सिगरेट न पीना कोई तपश्चर्या है? सच तो यह है कि सिगरेट पीना ही तपश्चर्या है। धुएं को डालना और निकालना काफी तप है। साधु-संन्यासी पुराने धूनी रमा कर बैठते थे। आप अपनी धूनी साथ में लिए, पोर्टेबल धूनी अपनी साथ लिए घूम रहे हैं, तप कर रहे हैं। आग और धुआं दोनों मौजूद हैं। और जहर पी रहे हैं। एक आदमी यह नहीं पी रहा है, वह तपस्वी है! वह आपके सिर पर खड़ा हो जाएगा। वह जब भी आपकी तरफ देखेगा, तो उसकी आंखों में नर्क की तरफ का इशारा रहेगा कि सीधे नर्क जाओगे। और कहीं कोई उपाय नहीं है।

आचरण इन क्षुद्र चीजों से निर्मित नहीं होता। कम से कम लाओत्से जैसे व्यक्ति की धारणा आचरण की यह नहीं है। लाओत्से की आचरण की धारणा बड़ी अदभुत है। लाओत्से कहता है, जो लोग बाहर की वस्तुओं को पाने में दौड़ते रहते हैं, दुर्लभ, विचित्र वस्तुओं को पाने में दौड़ते रहते हैं, उनका आचरण भ्रष्ट हो जाता है। तो इसका मतलब यह हुआ कि जो बाहर की वस्तुओं को पाने के लिए नहीं दौड़ते, वे आचरण को उपलब्ध हो जाते हैं। तो आचरण का अर्थ हुआ, जो इतने तृप्त हैं अपने भीतर कि बाहर की कोई चीज उन्हें पुकारती नहीं। एक अंतःतृप्ति का नाम आचरण है। एक सेल्फ कंटेंटमेंट का नाम आचरण है। इतना तृप्त है कोई व्यक्ति अपने भीतर कि बाहर की कोई चीज उसके लिए दौड़ नहीं बनती--कोई चीज दौड़ नहीं बनती। इसका मतलब हुआ कि कोई चीज उसे दौड़ा नहीं सकती है। कोई चीज इतनी महत्वपूर्ण नहीं है कि उसे दौड़ना पड़े। जो इतना थिर है अपने में कि जगत की कोई चीज उसे दौड़ा नहीं सकती। लाओत्से कहता है कि उसके पास आचरण है, करेक्टर है। उसके पास वर्च्यू है, उसके पास गुण है।

निश्चित ही, अगर कोई व्यक्ति अपने में इतना भरा-पूरा है, कहीं कोई कमी अनुभव नहीं करता कि किसी चीज से भरी जाए, तो उसके पास एक आत्मा होगी, एक इंटिग्रेटेड विल, उसके पास एक समग्रीभूत संकल्प होगा। उसके पास एक भीतर व्यक्तित्व होगा, एक स्वर होगा, एक ढंग होगा। उसका जीवन एक ऐसी ज्योति की तरह होगा, जिसे हवा के झोंके हिला नहीं सकते।

हमारी ज्योति ऐसी है कि हवा के झोंके भी न हों, तो भी कंपती रहती है। असल में, हवा के झोंके न हों, तो हमको बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है कि कोई क्या कहेगा, बिना ही झोंके के कंप रहे हैं। हम झोंकों को बुलाते रहते हैं कि आओ! ताकि कम से कम यह बहाना तो रहे कि हम नहीं कंप रहे हैं, ये हवा के झोंके से हम कंप रहे हैं।

अगर आदमी को चौबीस घंटे एक कमरे में बंद कर दिया जाए, तो बड़ी हैरानी की बात कि अकेला रह कर भी वह बीच-बीच में क्रोधित हो जाता है--अकेला रह कर! तीन महीने अगर आपको बंद कर दिया जाए, तो आपको पहली दफे पता चलेगा कि क्रोध के लिए किसी दूसरे की जरूरत ही नहीं है। और जिंदगी भर आप यही सोचते रहे कि फलां आदमी ने यह कह दिया, इसलिए मैं क्रोधित हो गया। नहीं तो मैं क्यों क्रोधित होता? यह सिर्फ हवा का बहाना ले रहे हैं आप।

कभी अकेले तीन महीने रह कर देखें और नोट करें, तो आप पाएंगे कि अचानक क्रोधित होते हैं, अचानक कामवासना से भर जाते हैं। तब आपको पता चलेगा कि यह सुंदर स्त्री जो दरवाजे से निकल गई, इसने हवा का झोंका नहीं भेजा था। आप तैयार ही थे, बहाना ही खोज रहे थे कि कोई हवा का झोंका आ जाए, तो मैं कह सकूं कि इसमें मेरा क्या कसूर है? यह सुंदर स्त्री यहां से निकली क्यों? यह सुंदर क्यों है? इसने ऐसा साज-शृंगार क्यों किया? अब मैं क्या कर सकता हूं?

नहीं, आप तीन महीने अकेले बंद हों, तब आपको पता चलेगा। बहुत संभावना तो यह है कि कोई स्त्री नहीं निकलेगी और सुंदर स्त्रियां आप अपनी कल्पना में ही मौजूद कर लेंगे। और उन्हीं को आस-पास घुमाने लगेंगे। और फिर आप कंपित होने लगेंगे। यह हवा आपकी ही बनाई हुई है। यह लौ के आस-पास अपनी ही हवा के झोंके आप पैदा कर रहे हैं।

तीन महीने, वैज्ञानिक कहते हैं, एक आदमी को अगर बिल्कुल ही डिप्राइव कर दिया जाए उसके सब अनुभव से, तो वह सभी अनुभवों को खुद पैदा कर लेगा। वह बातें करने लगेगा उन लोगों से... ।

अपने घर में आप अकेले चुप नहीं बैठते हैं और लोगों से यही कहते हैं कि क्या करें, मित्र आ गए, इसलिए बातचीत करनी पड़ी। हालांकि आप प्रतीक्षा करते हैं! जिस दिन मित्र नहीं आते, उस दिन प्रतीक्षा करते हैं कि अब तक क्यों नहीं आए! तीन महीने आपको बंद कर दिया जाए, तो आप काल्पनिक मित्र पैदा कर लेंगे और उनसे बातचीत शुरू हो जाएगी। दोनों काम आप करेंगेः अपनी तरफ से भी बोलेंगे, उनका जवाब भी देंगे। यह हो जाएगा।

यह मैं यह कह रहा हूं कि हमारे चित्त की जो दशा है, हमारे आचरण की जो दशा है, वह डांवाडोल है। कंपन हमारा स्वभाव हो गया है। वही हमारा आचरण है।

लाओत्से कहता है, कंपित होना ही आचरण का नष्ट हो जाना है; अकंप होना ही आचरण है।

अकंप का क्या अर्थ हुआ? अकंप का क्या यह अर्थ हुआ कि यह खाना मत खाओ, वह पीना मत पीओ, यह कपड़े मत पहनो? नहीं! लेकिन कोई कपड़ा ऐसा न हो कि जो कंपित करे। और कोई खाना ऐसा न हो, जो कंपित करे। क्या अकंप होने का यह मतलब है कि किसी के साथ मत रहो? नहीं, साथ सबके रहो, लेकिन किसी का साथ कंपित न करे। और अगर किसी का साथ खो जाए, तो कंपन का पता भी न चले। अकंप का अर्थ होता है भाग जाना नहीं। अकंप का अर्थ होता है, ये सारे तूफान चलते रहें, चलते रहें, मेरी चेतना की लौ धीरे-धीरे थिर हो जाए।

यह हो जाती है। अगर हमने लाओत्से की सलाह मानी और इंद्रियों को विश्राम दिया, ताजा रखा, भीतर की इंद्रियों को जगाया, अगर हम पागलपन की चीजों के पीछे न दौड़े, अगर हमने व्यर्थ की चीजों के संग्रह को अपना मोह न बनाया, अगर हम वस्तुओं के लिए दीवाने न हुए, तो धीरे-धीरे वह आचरण उपलब्ध होता है, जो कि भीतर चेतना को थिर कर जाता है।

यह आचरण की थिरता, यह ठहर जाना चेतना का बड़ी और बात है! और जब किसी की चेतना ऐसी ठहरती है, तो वह आपको निंदा से नहीं देखता। और वह यह भी नहीं देखता कि आप यह खा रहे हैं, यह पी रहे हैं, इसलिए पापी हो गए हैं। यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं, इसलिए पापी हो गए हैं। नहीं, वह तो एक ही पाप जानता है कि आप चौबीस घंटे कंपित हो रहे हैं, बस। इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप किस चीज से कंपित हो रहे हैं। चीजें बदल सकती हैं। कंपन जारी रह सकता है। कंपन नहीं हो जाना चाहिए, शून्य हो जाना चाहिए।

"इस कारण संत बहिर-नेत्रों की दुष्पूर आकांक्षाओं की तृप्ति नहीं करते।"

इसमें शब्द देखने जैसे हैं।

"इस कारण संत बहिर-नेत्रों की--बाहर की इंद्रियों की--दुष्पूर आकांक्षाओं की... ।"

ऐसी आकांक्षाओं की जो कभी पूरी ही नहीं होतीं, जो स्वभाव से दुष्पूर हैं, जिनके पूरे होने की नियति में ही कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसा नहीं है कि हमारे श्रम की कमी है, कि हमारी दौड़ की क्षमता नहीं है। नहीं, वस्तु ही दुष्पूर है। जैसे कि कोई आदमी एक मरुस्थल में प्यास से भरा हुआ देखता है सामने भरा हुआ सरोवर। भागता है, दौड़ता है, पहुंचता है वहां, लेकिन सरोवर वहां नहीं है--और आगे दिखाई पड़ने लगा। इसमें इस आदमी के दौड़ने में कोई कमी नहीं है, इस आदमी की प्यास में कोई कमी नहीं है, इस आदमी के श्रम, उद्योग में कोई कमी नहीं है। लेकिन जिसके पीछे यह दौड़ रहा है, वह है ही नहीं। इसलिए दुष्पूर है, यह कभी पहुंचेगा नहीं। हमेशा दौड़ सकता है और हमेशा मान सकता है कि आगे अगर थोड़ा और दौड़ जाऊं, तो मिल जाएगा। जो भी हम जीवन में पा रहे हैं, वह वैसा ही दुष्पूर है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने पहली शादी की। तो उसने अपने नगर की जो सुंदरतम स्त्री थी, उससे विवाह किया। लेकिन दो साल बाद फिर वह नई पत्नी की तलाश में घूमने लगा। तो उसके मित्रों ने कहा कि अब क्या मामला है? तुमने सुंदरतम स्त्री को ब्याहा, अब तो गांव में उससे सुंदर कोई भी नहीं! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अब मैं सबसे कुरूप स्त्री से विवाह करना चाहता हूं। क्योंकि सुंदर को देख लिया। जो पाया, वह सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। तो अब मैं सबसे कुरूप स्त्री से विवाह करना चाहता हूं। लोगों ने कहा, पागल हुए हो! जब सुंदर से सुख न मिला, तो कुरूप से क्या खाक मिलेगा! पर नसरुद्दीन ने कहा कि जरा विपरीत स्वाद, शायद! यह ढोल सुहावना सिद्ध हुआ, लेकिन ढोल निकला। अब जरा हम विपरीत को खोजें।

नहीं माना, ढूंढ कर उसने एक कुरूप स्त्री से शादी कर ली। दो साल बाद वह फिर तलाश में था। मित्रों ने कहा, क्या पागल हो गए हो? अब तो तुमने दोनों अनुभव ले लिए, जो कि बड़े असंभव हैं जगत में। सुंदरतम और कुरूपतम को, तुमने दोनों को पा लिया। अब तुम किसकी तलाश कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा कि अब की बार जब मैं आऊंगा विवाह करके, तभी तुम देखना।

बड़ी सनसनी रही गांव में। ऐसे सनसनी का आदमी था, अब यह क्या करेगा?

एक दिन आखिर बैंड-बाजा बजाता हुआ, घर के सामने पालकी लेकर हाजिर हो गया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। नसरुद्दीन बड़ी अकड़ से अपने घोड़े पर बैठा हुआ है। दूल्हे का पूरा साज बना रखा है। लोग एकदम दीवाने और उतावले हुए जा रहे हैं कि डोली उतारी जाए, देखी जाए, किससे विवाह कर लाया है! डोली उतारी गई, खोली गई, वह खाली थी। उसमें कोई भी नहीं था। नसरुद्दीन ने कहा कि अब खाली डोली से विवाह कर आया हूं। हर बार भर कर डोली लाया, दुख उठाया। अब इस बार खाली डोली ले आया हूं।

और कहते हैं कि नसरुद्दीन अपनी वसीयत में लिख गया है कि जो उन दो स्त्रियों से नहीं पाया, वह खाली डोली से पाया। बड़ी शांति मिली; बड़ा सुख पाया।

खाली डोली से मिल सकता है। खाली डोली से मिल सकता है। क्योंकि जो खाली डोली को विवाह करने गया, उसकी मृग-मरीचिका टूट गई।

हम बदलते रहते हैं एक आब्जेक्ट से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा। हर बार बदल लेते हैं वस्तु को, विषय को। लेकिन दौड़ जारी रहती है। यह दौड़ दुष्पूर है। यह कभी भर नहीं सकती। ऐसा नहीं है कि किसी और के साथ भर जाती, यह भर नहीं सकती। यह वासना का स्वभाव ही दुष्पूर है।

"लेकिन संत उस भूख की चिंता करते हैं, जो कि नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है।"

उस भूख की चिंता करते हैं, जो कि नाभि के अंतरस्थ केंद्र में निहित है! मैंने पीछे आपको कहा कि लाओत्से, अस्तित्व का मूल केंद्र नाभि के निकट मानता है। और ठीक मानता है। तो एक तो हमारे बाहर इंद्रियों का फैलाव है। इन इंद्रियों का सारा का सारा संबंध मस्तिष्क से है। ध्यान रहे, आंख तो मस्तिष्क में है ही, तो उसका संबंध है; कान भी मस्तिष्क में है, उसका संबंध है; लेकिन आप जान कर हैरान होंगे कि जननेंद्रिय, सेक्स की वासना तो सिर में नहीं जुड़ी है, लेकिन वह भी मन से ही संबंधित है। इसलिए मन में जरा सी कामवासना उठे कि कामवासना का केंद्र सक्रिय हो जाता है--जरा सी वासना! तो समस्त इंद्रिय और वासनाएं मस्तिष्क में ही संयुक्त हैं। और हमारी चेतना को भी हम मस्तिष्क में ही बिठाए हुए हैं।

लाओत्से कहता है, इसे नीचे उतारो, इसे हृदय के पास लाओ। हृदय के पास आकर भी वासनाओं में रूपांतरण हो जाता है। और नीचे उतारो, नाभि के पास लाओ। तो वासनाएं शून्य हो जाती हैं और एक नई भूख का अनुभव होता है। उस भूख का नाम ही अध्यात्म है। एक नई भूख का अनुभव होता है। नाभि के पास जैसे ही चेतना आती है, एक नई भूख का अनुभव होता है। तब यह सवाल नहीं होता कि मैं क्या पा लूं, क्या हो जाऊं। तब यह सवाल नहीं होता। तब यही सवाल होता है कि जो मैं हूं, उसे जान लूं। हो जाऊं नहीं; जो मैं हूं, उसे जान लूं। यह एक नई भूख। वस्तुतः जो मेरा सत्य है, वही मेरे सामने प्रकट हो जाए। मुझे कुछ पाना नहीं, मुझे कुछ होना नहीं। मैं जो हूं सदा से, उसे ही जान लूं, उसका ही उदघाटन हो जाए। पर्दा उठ जाए और मैं पहचान लूं कि मैं हूं कौन! यह है भूख नाभि की। जैसे ही चेतना को कोई नाभि के पास लाता है, वैसे ही उसके जीवन में एक नया प्रश्न खड़ा होता है कि मैं कौन हूं?

समस्त अध्यात्म इस भूख का उत्तर है। समस्त योग, समस्त साधनाएं, इस भूख का उत्तर हैं। इस प्रश्न को खोज लेने, इसके उत्तर को पा लेने की विधियां हैं।

पर हमारी और सब तरह की भूख हमें पता है। हमें पता है कि एक बड़ा मकान, उसकी हमें भूख है; एक बड़ी संपदा की राशि, उसकी हमें भूख है; एक यश, उसकी हमें भूख है; प्रतिष्ठा, नाम, उसकी हमें भूख है। सब तरह की भूख हैं। एक भूख का हमें कोई भी पता नहीं--कि मैं कौन हूं, उसे भी जान लूं! मैं क्या हूं, उसे भी जान लूं!

यह अंतरस्थ नाभि की भूख है। और जिस व्यक्ति में यह भूख पैदा हो जाती है, उसका जीवन एक नई खोज पर निकल जाता है। क्योंकि भूख के बिना खोज नहीं। भूख न हो, तो खोज कोई क्यों करे? जिसकी भूख होती है, उसकी हम खोज करते हैं।

तो लाओत्से कहता है कि संत इस कारण न तो रंग की भूख से भरते, न स्वाद की, न ध्वनि की, न स्पर्श की। वे इंद्रियों की भूख से अपने को आपूरित नहीं करते। वे अपनी चेतना को हटाते हैं उस भूख की तरफ, जो नाभि के अंतरस्थ केंद्र पर छिपी है--स्वयं को जानने की भूख, स्वयं होने की भूख, स्वयं को पाने की भूख।

"संत पहली का निषेध और दूसरी का समर्थन करते हैं।"

संत नहीं कहते कि तुम समस्त भूख छोड़ दो। वे कहते हैं, कुछ भूखें हैं, जिनको तुम कितना ही भरो, वे कभी पूरी न होंगी। वे तात्कालिक हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। हमारी समस्त इंद्रियों की भूखें तात्कालिक हैं। आज आपने भोजन दिया है पेट को, चौबीस घंटे भर बाद भोजन फिर देना पड़ेगा। क्योंकि भोजन चौबीस घंटे में चुक जाएगा। वह ठीक वैसा ही है जैसे अपनी कार में आपने पेट्रोल डाला है, आप चलाएंगे कार को, वह चुक जाएगा; फिर पेट्रोल डालना पड़ेगा। लेकिन तब आप कार से कोई जद्दोजहद नहीं करते कि तू कैसी कार है, अभी आठ घंटे पहले पेट्रोल दिया था, अब

फिर वही बात! तब आप संयम भी नहीं करते कि अब हम बिना ही पेट्रोल डाले कार को चलाएंगे, उपवास पर रखेंगे। आप जानते हैं कि कार की जरूरत है। अगर कार में पेट्रोल नहीं डालना है, तो कृपा करके कार से नीचे उतर जाइए। अगर शरीर को भोजन नहीं देना है, तो कृपा करके शरीर से बाहर हो जाइए, छोड़िए। शरीर की चौबीस घंटे की जरूरतें हैं, वह चौबीस घंटे में पुनरुक्त मांग करेगा।

तो शरीर की जरूरतें तो मांग पैदा करती चली जाएंगी, क्योंकि शरीर तो एक यंत्र है। इसलिए रोज उसको भर दें, वह रोज खाली हो जाएगा। कभी आप शरीर के भरेपन से उस भरेपन को नहीं पा सकेंगे, जो फिर खाली न हो।

लेकिन इसमें कुछ चिंतित होने की बात भी नहीं है। यह ठीक ही है। इसमें परेशान होने की भी जरूरत नहीं है। इसलिए कुछ नासमझ शरीर के दुश्मन हो जाते हैं। वे कहते हैं, शरीर को देने से क्या फायदा, क्योंकि यह तो फिर मांगने लगता है। लेकिन शरीर को रखना है अगर... । और शरीर को वे रखे ही चले जाते हैं। खाना कम देने लगते हैं, पानी कम देने लगते हैं, विश्राम कम देने लगते हैं। सोचते हैं कि वे शरीर के साथ कोई बड़ी भारी विजय-यात्रा पर लगे हैं।

वे सिर्फ नासमझी में लगे हैं। असल में, उनकी भी आकांक्षा यही थी कि शरीर को एक दफे तृप्त कर दें और वह सदा के लिए तृप्त हो जाए। वह नहीं हुआ, इसलिए वे परेशान हैं। आपकी नासमझी यह है कि आप सोचते हैं कि रोज-रोज तृप्त करके एक दिन ऐसी जगह पहुंच जाएंगे कि फिर तृप्त करने की जरूरत न रहेगी। उनकी भी नासमझी यही थी। लेकिन वे आपसे विपरीत हो गए। वे कहते हैं, अब हम तृप्त ही न करेंगे। क्योंकि यह तृप्ति तो पूरी होती नहीं। लेकिन दोनों की उलझन एक है। एक शरीर को तृप्त करके सोच रहा है कि परम तृप्ति पा लूंगा। एक शरीर की तृप्ति रोक कर सोच रहा है कि परम तृप्ति पा लूंगा। लेकिन दोनों को उस परम भूख का ही पता नहीं है, जो परम रूप से तृप्त हो सकती है।

ध्यान रखें, क्षुद्र भूख क्षुद्र समय के लिए ही तृप्त होगी। जब पेट में भूख लगती है, तो यह कोई अल्टीमेट, कोई परम भूख तो नहीं है। जब प्यास लगती है, तो यह प्यास कोई चरम प्यास तो नहीं है। जितनी प्यास की हैसियत है, दो बूंद पानी डाल देते हैं, वह तृप्त हो जाती है। लेकिन दो बूंद की जितनी हैसियत है, उतनी देर में वह वाष्पीभूत होकर उड़ जाता है, प्यास फिर लग आती है। क्षुद्र भूख हो, तो क्षुद्र ही परिणाम होगा।

परम भूख का हमें पता ही नहीं है। परम भूख एक ही है--अस्तित्व को जानने की, अस्तित्व के साथ एक होने की, अस्तित्व के उदघाटन की। उसे सत्य कहें, उसे परमात्मा कहें, जो नाम देना चाहें दें। लेकिन वह परम भूख लाओत्से कहता है, इंद्रियों से हटाएं अपनी चेतना को, डुबाएं चेतना को नाभि के निकट, मस्तिष्क से नीचे उतारें। और जिस दिन नाभि के पास आप पहुंच जाएंगे, उसी दिन उदघाटन होगा--एक नई प्यास!

उसी प्यास का नाम प्रार्थना है, उसी प्यास का नाम ध्यान है। और उसी प्यास से जो खोज है, वह खोज धर्म है। और उस प्यास से चल कर जब आदमी उस सरोवर पर पहुंचता है जहां वह प्यास तृप्त होती है, तो उस सरोवर का नाम परमात्मा है।

आज इतना ही।

अब रुकें, जाएं न पांच मिनट। और कुछ लोग सम्मिलित होना चाहते हैं ऐसा लगता है, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाते। वे भी नीचे आ जाएं और सम्मिलित हों। और इतनी हिम्मत न हो, तो बैठ कर वहीं ताली दें, वहीं से सम्मिलित हों।

उन्तीसवां प्रवचन

ताओ की साधना--योग के संदर्भ में

बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। एक प्रश्न दो-तीन मित्रों ने पूछा है और स्वाभाविक है कि आपके मन में भी उठे।

योग ऊर्ध्वगमन की पद्धति है, ऊर्जा को, शक्ति को ऊपर की ओर ले जाना है। और लाओत्से की पद्धति ठीक विपरीत मालूम पड़ती है--ऊर्जा को नीचे की ओर, नाभि की ओर लाना है। तो प्रश्न उठना बिल्कुल स्वाभाविक है कि इन दोनों पद्धतियों में कौन सी पद्धति सही है?

हमारे मन में ऐसे प्रश्न इसीलिए उठते हैं कि हम चीजों को तत्काल विपरीत में तोड़ लेते हैं, विरोध में तोड़ लेते हैं। और हमारे मन में ख्याल ही नहीं आता कि विपरीत के बीच भी एक सामंजस्य है। लाओत्से उसी की ही बात कर रहा है। इसे ऐसा समझें, यह विपरीतता दिखाई पड़ती है। लाओत्से कहता है कि मस्तिष्क से जीवन-ऊर्जा को वापस नाभि के पास ले आना है। नाभि के पास आते ही अस्तित्व से मिलन हो जाएगा। योग कहता है, ऊर्जा को काम-केंद्र से, मूलाधार से उठा कर सहस्रार तक, मस्तिष्क तक लाना है। और सहस्रार के पार जाते ही विराट से मिलन हो जाएगा। ये दो अतियां हैं। और दोनों अतियों से छलांग हो सकती है। लेकिन मध्य से कहीं भी छलांग नहीं हो सकती। ये दो छोर हैं। या तो बिल्कुल नीचे के केंद्र पर समस्त ऊर्जा को ले आएं, तो आप छलांग लगा सकते हैं। या फिर सबसे ऊपर के केंद्र पर ऊर्जा को ले जाएं, तो भी छलांग लगा सकते हैं।

लेकिन एक बात में योग और लाओत्से दोनों सहमत हैं कि ऊर्जा बुद्धि पर नहीं रुकनी चाहिए। या तो बुद्धि से नाभि पर आ जाए, या बुद्धि से सहस्रार पर चली जाए। बुद्धि पर नहीं रुकनी चाहिए; बीच में ऊर्जा नहीं रुकनी चाहिए। और दोनों ही अतियों से जिस जगत में छलांग लगती है, वह एक ही है।

तो तीन बातें हैं। एक तो जो विरोध हमें दिखाई पड़ता है वह हमें इसीलिए दिखाई पड़ता है कि हम, विरोध के बीच भी एक सामंजस्य है, इसे समझ नहीं पाते हैं। पानी को हम पानी से छुटकारा दिलाना चाहें, तो या तो उसे शून्य डिग्री के नीचे तक ठंडा कर देना चाहिए, ताकि वह बर्फ बन जाए; और या सौ डिग्री तक गरम कर देना चाहिए, ताकि वह भाप बन जाए। दोनों ही स्थितियों में पानी पानी नहीं रह जाएगा। दोनों स्थितियों में छलांग लग जाएगी; पानी कुछ और हो जाएगा। या तो मनुष्य की ऊर्जा पहले केंद्र पर आ जाए या अंतिम पर; दोनों से छलांग लग जाएगी।

और ज्यादा कठिन होगा समझना यह कि ऊर्जा वर्तुलाकार होती है, सरकुलर होती है। जगत में कोई भी इनर्जी सीधी नहीं चलती, वर्तुल में चलती है। असल में, ऊर्जा के चलने का मार्ग ही सदा वर्तुलाकार होता है। अगर हम एक वर्तुल खींचें, तो जिस बिंदु से मैं वर्तुल को शुरू करूं, वही बिंदु अंतिम भी होगा जब वर्तुल पूरा होगा। तो जहां नाभि केंद्र से छलांग लगा कर व्यक्ति पहुंचता है, वहीं सहस्रार से भी छलांग लगा कर पहुंचता है।

नाभि केंद्र से वर्तुल शुरू होता है, सहस्रार पर वर्तुल पूरा होता है। दोनों से छलांग लगा कर व्यक्ति वर्तुल के बाहर हो जाता है। इसलिए नाभि और सहस्रार बिल्कुल दूर दिखाई पड़ते हैं हमें, क्योंकि हमारे लिए नाभि पेट में है कहीं और सहस्रार मस्तिष्क में है कहीं। और दोनों के बीच सीधी रेखा खींचें, तो बड़े फासले पर हैं।

लेकिन इस शरीर की चर्चा ही नहीं हो रही है। इससे जो सूक्ष्म शरीर है, उस सूक्ष्म शरीर में नाभि और सहस्रार निकटतम बिंदु हैं। अगर हम वर्तुल बना लें, तो निकटतम हो जाएंगे। अगर हम सीधी रेखा खींचें, तो दूर हो जाएंगे। इस शरीर में हम सीधी रेखा खींचते हैं, तो दूर मालूम पड़ते हैं। लेकिन सूक्ष्म शरीर में वर्तुल निर्मित हो जाता है। सूक्ष्म शरीर ऊर्जा-शरीर है। पदार्थ नहीं, शक्ति का शरीर है। वहां वर्तुल निर्मित हो जाता है। ये दोनों छोर निकटतम हैं।

लाओत्से कहता हैः पहले छोर पर लौट आओ। योग कहता हैः अंतिम छोर पर चले जाओ। और दो तरह के व्यक्ति हैं; इसलिए दोनों ही बातें उपयोगी हैं। कुछ लोग हैं, जो पहले छोर पर लौटना बहुत मुश्किल पाएंगे; विशेषकर पुरुष चित्त वाले लोग पहले पर लौटना बहुत मुश्किल पाएंगे। इसलिए लाओत्से स्त्रैण व्यक्तित्व की बात करता है। पुरुष आगे बढ़ना चाहेगा, पीछे नहीं लौटना चाहेगा। लेकिन पुरुष के लिए मार्ग नहीं है सत्य तक पहुंचने का, ऐसा नहीं है। उसका मार्ग भी है। लाओत्से उस मार्ग का प्रस्तोता नहीं है। लाओत्से स्त्रैण व्यक्तित्व का प्रस्तोता है।

वह कहता है, पीछे लौट आओ। जब छलांग ही लगानी है, तो आगे बढ़ने का श्रम भी क्या करना? यह श्रम तो पीछे लौट कर भी हो सकता है। और ध्यान रखें, पीछे लौटने में श्रम नहीं पड़ता, आगे जाने में श्रम पड़ता है। पीछे लौटने में कोई श्रम नहीं पड़ता। क्योंकि आगे जाने के लिए शक्ति लगानी पड़ती है। पीछे लौटने के लिए तो हम सिर्फ शक्ति लगाना बंद कर दें, हम तत्काल पीछे लौट आते हैं। जो लोग सरल हो सकते हैं बिना साधना किए, लाओत्से का मार्ग उनके लिए है। जो सरल भी नहीं हो सकते बिना साधना किए, योग का मार्ग उनके लिए है।

इसलिए जान कर हैरानी होगी कि भारत ने योग की इतनी बड़ी परंपरा पैदा की, विराट परंपरा पैदा की, बड़ी साधना के सूत्र खोजे, लेकिन भारत में इतनी लंबी परंपरा के बीच भी स्त्रैण चित्त की कोई चिंता नहीं की गई। यह अधूरी है बात। और इसीलिए जैनों के चौबीस तीर्थंकर पुरुष हैं, हिंदुओं के अवतार पुरुष हैं, बुद्ध पुरुष हैं। हिंदुस्तान में एक भी स्त्री अवतार और तीर्थंकर नहीं है। वरन मान्यता तो ऐसी बन गई धीरे-धीरे--और बन ही जाएगी--अगर पुरुष के चित्त का हम मार्ग चुनेंगे, तो यह मान्यता बन ही जाएगी कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं हो सकता। इसलिए जैन मानते हैं कि स्त्री की देह से मोक्ष नहीं हो सकता। स्त्री को पहले एक जन्म पुरुष का लेना पड़ेगा और तब ही मोक्ष हो सकता है।

इस तरह का ख्याल है, मुझे तो लगता है एकदम ठीक है कि जैनों में एक तीर्थंकर मल्लीनाथ पुरुष नहीं थे, स्त्री थे। मल्लीबाई उनका नाम था। लेकिन जैन यह मान ही नहीं सकते हैं कि स्त्री भी मोक्ष पा सकती है। इसलिए मल्लीबाई का नाम मल्लीनाथ कर दिया। स्त्री को पुरुष कर दिया। श्वेतांबरों और दिगंबरों में बुनियादी झगड़ों में एक झगड़ा यह भी है, श्वेतांबर मानते हैं कि वे मल्लीबाई ही थीं और दिगंबर मानते हैं वे मल्लीनाथ थे। यह झगड़ा बहुत अनूठा है, एक व्यक्ति के संबंध में झगड़ा कि वह स्त्री था या पुरुष था! लगता ऐसा है कि वे स्त्री ही रहे होंगे। लेकिन जो परंपरागत दृष्टि है, वह यह स्वीकार नहीं कर सकी कि स्त्री के शरीर से मुक्ति कैसे हो सकती है! असल में, सारी धारा पुरुष के चित्त की है।

लाओत्से स्त्रैण चित्त की बात कर रहा है। लाओत्से कहता है, साधना करके अगर सरल होना पड़े, तो वह सरलता बड़ी जटिल हो गई। अगर मुझे सरल होने के लिए भी प्रयास करना पड़े, तो वह सरलता सरलता न रही। सरलता का मतलब ही यह है कि जो मुझे कुछ न करना पड़े और उपलब्ध हो जाए। सहज का अर्थ ही यही

होता है कि मुझे कुछ करना न पड़े और उपलब्ध हो जाए। अगर करके उपलब्ध हो, तो सहज कहना व्यर्थ है। तो लाओत्से दूसरी अति का पोषक है।

ये दोनों अतियां अधूरी हैं। लेकिन दोनों अतियां सत्य पर पहुंचा देती हैं। छलांग अति से ही लगती है। दि एक्सट्रीम प्वाइंट, वहीं से छलांग लगती है। अगर आप पुरुष की ही यात्रा में पड़ गए हैं, तो फिर पूरी तरह पुरुष ही हो जाएं। तो पुरुषार्थ को उस जगह तक ले जाएं कि जिसके आगे जाने की जगह न रहे। वहां से छलांग हो जाएगी। अगर आप सहजता के ही आनंद को अनुभव करते हैं, तो इतने सहज हो जाएं कि साधना मात्र व्यर्थ हो जाए। तो उसी सहजता से छलांग लग जाएगी।

जो लोग पुरुषार्थ का मार्ग पकड़ेंगे, ऊर्ध्वगमन उनकी भाषा होगी, ऊपर उठना वे कहेंगे। इसलिए वे जो प्रतीक चुनेंगे, वह प्रतीक होगा लपट का, आग का। आग सदा ऊपर उठती चली जाती है। कुछ भी करो, कहीं भी जलाओ, आग भागती है ऊपर की तरफ। इसलिए भारतीय प्रतीक है अग्नि।

लाओत्से ने जो प्रतीक चुना है, वह है जल का। वह कहता है, पानी की भांति हो जाओ--नीचे, और नीचे, सबसे आखिरी गड्ढा चुन लो। जिसके नीचे कोई जगह न हो, वहां बैठ जाओ।

सहजता अंत में बैठ कर ही उपलब्ध हो सकती है। जो आदमी ऊपर उठना चाह रहा है, वह सहज नहीं हो सकता। ऊपर उठने में संघर्ष होगा, प्रतियोगिता होगी। पीछे बैठने की कोई प्रतियोगिता नहीं है। अगर आप कहते हैं, मैं सबसे पीछे बैठना चाहता हूं, तो कोई शायद ही आपसे प्रतियोगिता करने आए।

लाओत्से कहता है, ऐसे हो जाओ कि लोगों को पता ही न चले कि तुम हो भी। तो अंतिम गड्ढा खोज लो। निम्नतम जो जगह हो, जहां कोई जाने को राजी न हो, जहां लोग जूते उतार देते हों, वहीं बैठ रहो। किसी पद की खोज ही मत करो। ऊपर जाने की बात ही मत सोचो। वह भाषा ही गलत है।

लाओत्से ठीक कहता है। जो लोग पानी की भांति हो सकते हैं, वे भी वहीं पहुंच जाएंगे। असल में, प्रथम और अंतिम मिल जाते हैं एक जगह, एक बिंदु पर। प्रथम भी अनंत का छोर है और अंतिम भी अनंत का छोर है। प्रथम और अंतिम एक ही चीज के दो नाम हैं। यात्रा पर निर्भर करता है! अगर आप पीछे लौट कर आए, तो उसे कहेंगे प्रथम; अगर आप घूम कर, पूरा चक्कर लगा कर आए, तो कहेंगे अंतिम। तो योग कहेगा ऊपर और लाओत्से कहेगा नीचे। योग और लाओत्से में, योग और ताओ में वह जो जीवन का परम द्वंद्व है, वह जो जीवन की पोलर डुआलिटी है, उसकी अभिव्यक्ति है।

इसलिए इसमें चिंता न लें। जो प्रीतिकर लगे, वह चुन लें--जो प्रीतिकर लगे! और सदा ध्यान रखें कि जो आपको प्रीतिकर लगे, वही आपका मार्ग है। कोई कितना ही कहे, जो आपको प्रीतिकर न लगे, वह आपका मार्ग नहीं है। अपने मार्ग पर भटक जाने से भी आदमी पहुंच जाता है; दूसरे के मार्ग पर न भटके, तो भी कभी नहीं पहुंचता है। उसका कारण है। क्योंकि जो हमारा स्वभाव है, हम उसी से पहुंच सकते हैं। तो दूसरे का कभी आकर्षक भी लगे, प्रभावित भी करे, तब भी भीतर पूछ लेना चाहिए कि मेरे अनुकूल है या नहीं! क्योंकि कई बार प्रतिकूल बातें भी आकर्षक लगती हैं, अनुकूल न हों तो भी। कई बार तो इसीलिए आकर्षक लगती हैं कि प्रतिकूल हैं, अनजानी हैं, अपरिचित हैं। सदा अपनी प्रकृति को ध्यान में रख लेना जरूरी है। अगर आपको लगता है कि मैं अंतिम बैठने में भी राजी हो सकता हूं, जरा भी पीड़ा न होगी, यही मेरे लिए सुगम है; अगर आपको लगता है कि बिना आक्रमण किए, ग्राहक होकर भी मैं सत्य को पा लूंगा, मैं सत्य को खोजने न जाऊंगा, सिर्फ अपने द्वार खोल कर बैठ जाऊंगा, प्रतीक्षा करूंगा; अगर इतना धैर्य हो--धैर्य स्त्रैण गुण है, अधैर्य पुरुष का गुण है-

-अगर इतना धैर्य हो कि द्वार खोल कर प्रतीक्षा की जा सके, अनंत तक प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य हो, तो इसी क्षण द्वार पर सत्य उपस्थित हो जाएगा।

लेकिन अगर प्रतीक्षा करने का बिल्कुल साहस ही न हो और दरवाजे पर बैठ कर भी अधैर्य ही जाहिर करना हो, तो उससे बेहतर यात्रा पर निकल जाना है। क्योंकि दरवाजे पर भी खड़े रहे और अधैर्य भी जाहिर करते रहे और प्राण बेचैन रहे, तो एक भीतरी यात्रा भी चलती रही और यात्रा नहीं की, तो एक भीतर कष्ट और संघर्ष और दुविधा बन जाएगी। इसलिए प्रत्येक को समझ लेना चाहिए। और दो ही विराट मार्ग हैं। एक मार्ग है, जिसे लाओत्से स्त्रैण मार्ग कहता है। और एक मार्ग है, जिसे वह पुरुष का मार्ग कहता है। लाओत्से की अपनी पसंद स्त्रैण मार्ग की है। और उन सभी लोगों की पसंद होगी, जिन्हें अहंकार में रस नहीं है। उनकी सभी की पसंद होगी।

इसलिए अगर लाओत्से का अनुयायी मिलेगा, तो हमारे योगी जैसा अकड़ा हुआ नहीं मिलेगा, अति विनम्र होगा। उसकी विनम्रता लेकिन सहज होगी; वह भी थोपी हुई नहीं होगी, वह भी चेष्टित नहीं होगी। हमारा योगी अगर विनम्रता भी दिखाए, तो वह आरोपित होगी। उसका कारण है कि उसका मार्ग ही असल में, अहंकार का है। और विनम्रता वह नाहक थोप रहा है, वह झंझट में पड़ रहा है, विपरीत मार्ग की बात सोच रहा है। आग की तरह का रास्ता चुना है और पानी की तरह होने की कोशिश कर रहा है। वह दिक्कत में पड़ेगा। उसकी विनम्रता झूठी होगी। उसने मार्ग चुना है अहं ब्रह्मास्मि का। वह उस यात्रा पर निकला है कि एक दिन कह सके कि मैं ब्रह्म हूं। लाओत्से का मार्ग है--एक दिन कह सके कि मैं हूं ही नहीं।

यह साफ ख्याल में हो, तो कोई भी मार्ग पहुंचा देगा। या तो अहंकार को इतना बड़ा करो कि एक्सप्लोड हो जाए। इतना फुलाओ फुग्गे को कि फूट जाए। हालांकि फुलाने वाला यह सोच कर नहीं फुलाता है कि फूटेगा। वह सोचता है बड़ा कर रहा हूं। लेकिन फुग्गे को फुलाए चले जाओ, फुलाए चले जाओ, उसकी एक सीमा है। तुम फुलाने के लिए ही फुला रहे होओगे, कोई फिक्र नहीं। लेकिन फुग्गा अपनी सीमा पर आएगा और फूट जाएगा, और हाथ खाली रह जाएंगे। तो कोई हर्ज नहीं है, अगर अहंकार में ही रस है, तो फिर छोटे-मोटे अहंकार से राजी मत होना। फिर अहंकार को इतना फुलाना कि पूरा ब्रह्मांड बन जाए। तो फूट जाएगा। जिस दिन कोई कह सके, अहं ब्रह्मास्मि, उसी दिन अहंकार फूट जाएगा।

और या फिर अहंकार को भरो ही मत। उसमें जो थोड़ी-बहुत और हवा हो, उसको भी निकाल दो। लाओत्से कहता है, पीछे लौट आओ। ख्याल ही छोड़ दो इसे भरने का, क्योंकि जो फूट ही जाना है, उसके लिए मेहनत क्या करनी? लेकिन कुछ लोग हैं, जो बिना मेहनत किए राजी न होंगे।

लाओत्से का एक शिष्य हुआ, लीहत्जू। लीहत्जू से किसी ने जाकर पूछा, कि हमने सुना है कि बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठ कर और ज्ञान को उपलब्ध हो गए। और हमने सुना है कि कोई योगी मंत्र का जाप करके और वृक्ष के नीचे बैठ कर जाप से सत्य को उपलब्ध हो गया। लीहत्जू, तुम्हारा क्या ख्याल है? तो लीहत्जू ने कहा, जहां तक हम समझते हैं, मंत्र करना, साधना करनी, योगासन करना, ये उन लोगों के काम हैं, जो बिना किए नहीं रह सकते हैं। लेकिन असली बात यह नहीं है कि बुद्ध साधना करके पहुंच गए; बुद्ध बैठ गए, इसलिए पहुंच गए। असली बात, बैठ गए, इसलिए पहुंच गए। कोई योगी मंत्र पढ़ता रहा और पहुंच गया; मंत्र असली चीज नहीं है, बैठ गया, इसलिए पहुंच गया। मंत्र तो बहाना है; क्योंकि वह खाली नहीं बैठ सकता, इसलिए मंत्र पढ़ता रहा।

लीहत्जू यह कह रहा है कि जो भी पहुंचे हैं, वे इसलिए पहुंचे हैं कि वे सब छोड़ कर बैठ गए। अब कुछ लोग हैं, जो बिल्कुल छोड़ कर बैठ सकते हैं, जो मंत्र भी न पढ़ेंगे। क्योंकि मंत्र भी अंततः व्यर्थ है। नाहक परेशानी उठा रहे हैं। उसको भी पढ़ने की जरूरत नहीं है। सिर्फ बैठ जाएं, कुछ भी न करें।

लेकिन बड़ा कठिन है कुछ भी न करना। वह लाओत्से का ख्याल समझ में आ जाए, तो कुछ न करना इतनी सरल जैसी बात मालूम पड़ती है, इतनी सरल नहीं है, सर्वाधिक कठिन है। मंत्र तो बच्चे भी पढ़ सकते हैं। असल में, बच्चों को अगर मंत्र न दिया जाए, तो उनको बिठाया ही नहीं जा सकता है। मंत्र कुछ भी हो, चाहे खिलौना हो, चाहे कुछ हो, मंत्र कुछ देना पड़े उनको, तो वे बैठ सकते हैं। नहीं तो बैठ भी नहीं सकते। बेचैनी इतनी ज्यादा है। तो हम भी... एक आदमी माला लेकर फेरने बैठ जाता है। यह सिर्फ बैठने का बहाना है। माला तो सिर्फ इसलिए है कि आप बिना माला के नहीं बैठ सकते। अब यह भीतर का बच्चा है, वह बेचैन है। वह कहता है, कम से कम गुरिए ही फिराएं। कुछ होना तो चाहिए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करेंगे, लेकिन कुछ बताइए कि करें क्या? अगर उनसे कहो कि कुछ भी मत करो, यही ध्यान है; तो वे कहते हैं कि यह कैसे होगा? कुछ तो सहारा चाहिए! सहारा का मतलब यह है कि उन्हें कुछ करने को बहाना चाहिए। राम-राम जपें, माला फेरें, कुछ भी करें! करें तो वे बैठ सकते हैं।

लीहत्जू कहता है, असली उपलब्धि तो बैठने से होती है। यह तो बहाना है, आप खाली नहीं बैठ सकते, तो हम कुछ पकड़ा देते हैं कि इसको करके बैठे रहो। अगर बिना ही कुछ किए बैठ जाते, तो इतनी भी मेहनत न उठानी पड़ती और उपलब्धि हो जाती। लेकिन बैठना, सिर्फ बैठ जाना, बड़ी घटना है, बड़ी हैपनिंग है--बड़ी हैपनिंग है! एक क्षण को भी कोई सिर्फ बैठा रह जाए, उसका मतलब है कोई गति न रही मन में, कोई चंचलता न रही, कोई यात्रा न रही, कोई गंतव्य न रहा। शक्ति अपने में ठहर गई और रुक गई। सब मौन और शांत हो गया भीतर। जहां से हम आए थे, उसी केंद्र पर वापस पहुंच गए। विलीन हो गए अपने में ही।

एक क्षण को भी यह घटना घट जाए, तो वही क्षण सत्य का क्षण है--दि मोमेंट ऑफ ट्रुथ! वही क्षण! यह दो तरह से घट सकता है। यह आप पर निर्भर करता है कि आप कहां से छलांग लेंगे। योग भी मार्ग है, ताओ भी।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से द्वारा अंतरस्थ केंद्र व उसकी भूख का विकास साधक कैसे करे, इस पर कुछ कहें!

एक तो, कभी आंख बंद करके बैठें और ख्याल करें कि मेरे शरीर का केंद्र कहां है? व्हेयर इ.ज दि सेंटर ऑफ दि बॉडी? आप इतने दिन जी लिए हैं, लेकिन आपने अपने शरीर का केंद्र कभी खोजा नहीं होगा। और यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हमें अपने शरीर के केंद्र का भी पता न हो। हमारा शरीर, उसकी कील कहां है?

अधिक लोगों को यह कील खोपड़ी में मालूम पड़ेगी। क्योंकि वहीं चलता रहता है कारोबार चौबीस घंटे। दुकान वहां खुली रहती है। बाजार वहां भरा रहता है। अधिक लोगों को ऐसा लगेगा कि कहीं खोपड़ी में ही।

लेकिन खोपड़ी बहुत बाद में विकसित होती है। मां के पेट में जिस दिन बच्चे का निर्माण होता है, उस दिन मस्तिष्क नहीं होता। फिर भी जीवन होता है। इसलिए जो बाद में आता है, वह केंद्र नहीं हो सकता।

कुछ लोगों को, जो भावपूर्ण हैं--स्त्रियां हैं, कवि हैं, चित्रकार हैं, मूर्तिकार हैं--उनको लगेगा कि हृदय केंद्र है। क्योंकि उन्होंने जब भी कुछ जाना है, सौंदर्य, प्रेम, तो उन्हें हृदय पर ही उसका आघात लगा है। इसलिए जब

भी लोग प्रेम की बात करेंगे, तो हृदय पर हाथ रख लेंगे। प्रेम में चोट खाएंगे, तो हृदय पर हाथ रख लेंगे। तो जिन लोगों का भावना से भरा हुआ चित्त है, वे हृदय को केंद्र बताएंगे।

लेकिन हृदय भी जन्म के साथ नहीं धड़कता। बच्चा जब पैदा हो जाता है, तब पहली श्वास लेता है और हृदय की धड़कन होती है। नौ महीने तो हृदय धड़कता ही नहीं। मां के हृदय की धड़कन को ही बच्चा सुनता रहता है, अपना उसके पास कोई हृदय नहीं होता। और इसलिए बच्चे को टिक-टिक की कोई भी आवाज आप सुना दें, वह जल्दी से सो जाता है। क्योंकि नौ महीने वह सोता रहा और टिक-टिक की आवाज, मां के हृदय की धड़कन, उसे सुनाई पड़ती रही। इसलिए टिक-टिक की आवाज किसी को भी नींद ला देती है। पानी टपक रहा हो टीन पर आपके मकान के, टप-टप-टप, नींद आनी शुरू हो जाती है। कमरे में कुछ न हो, सिर्फ घड़ी की आवाज आ रही हो, आप घड़ी की आवाज सुनते रहें, नींद आ जाएगी। नींद की सलाह देने वाले लोग कहते हैं कि घड़ी की आवाज सुनना काफी ट्रैंक्वेलाइजिंग है। और उसका कुल कारण इतना है कि नौ महीने तक बच्चा सोया रहा और टिक-टिक की आवाज, मां की धड़कन, उसको सुनाई पड़ती रही। कोई हृदय भी बच्चे के पास नहीं है, लेकिन फिर भी जीवन है।

इसलिए लाओत्से कहता हैः नाभि केंद्र है, न तो हृदय और न मस्तिष्क। नाभि से ही बच्चा मां से जुड़ा होता है। इसलिए जीवन की पहली झलक नाभि है। और वह ठीक है। वह वैज्ञानिक रूप से ठीक है। तो अपने भीतर खोजें। और लाओत्से कहता है, साधना की पहली बात यह है कि खोजते-खोजते नाभि के पास अपने केंद्र को ले आएं। जिस दिन आपका असली केंद्र और आपकी धारणा का केंद्र एक हो जाएगा, उसी दिन आप इंटिग्रेटेड हो जाएंगे। जिस दिन फोकस मिल जाएगा, आपके चित्त का केंद्र, सोचने का केंद्र और आपका असली केंद्र जिस दिन करीब आकर मिल जाएंगे, उसी दिन आप पाएंगे कि आपकी जिंदगी बदल गई। आप दूसरे आदमी हो गए। ए न्यू ग्रेविटेशन, एक नई कशिश आपकी दुनिया में आ जाएगी।

लाओत्से को मानने वाले एक छोटा सा प्रयोग सदियों से करते रहे हैं। और वह प्रयोग बड़ा बढ़िया है। वे कहते हैं कि जब तक आपके भीतर केंद्र का ही आपको पता नहीं है, यू कैन नॉट ग्रो, तब तक आपमें कोई विकास नहीं हो सकता। तो वे एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। दो छोटे से आप हौज बना लें और पानी भर दें। बराबर एक मात्रा के हौज, एक सा पानी। एक हौज में एक लोहे का डंडा लगा दें बीच में केंद्र पर। और एक हौज में डंडा न लगाएं, खाली रखें, बिना केंद्र का। दो मछलियां, एक ही उम्र की, उन दोनों में छोड़ दें। आप हैरान होंगे, जिसमें डंडा लगा हुआ है, उसकी मछली जल्दी बढ़ेगी; और जिसमें डंडा नहीं लगा है, उसकी मछली जल्दी नहीं बढ़ेगी।

जिसमें डंडा लगा हुआ है, वह मछली उसका चक्कर लगाती रहेगी दिन-रात। केंद्र है और केंद्र के आस-पास वह घूमती चली जाती है, घूमती चली जाती है। जिस हौज में डंडा नहीं लगा है, उसकी मछली इधर-उधर भटकती रहेगी। कहीं कोई केंद्र नहीं है, जिसके आस-पास घूम सके। उसकी ग्रोथ नहीं होगी, वह स्वस्थ नहीं होगी, बीमार रह जाएगी। यह हजारों साल से चलता हुआ प्रयोग है और सदा इसका एक ही परिणाम होता है कि जिसमें केंद्र है जिस हौज में, उसकी मछली स्वस्थ, जल्दी विकसित होती है, ज्यादा ताजी, ज्यादा जीवंत होती है।

लाओत्से को मानने वाले कहते हैं कि जिस व्यक्ति को अपने केंद्र का पता चल जाता है, उसकी चेतना उस केंद्र का इसी मछली की तरह चक्कर लगाने लगती है। और तब चेतना में विकास शुरू हो जाता है। जिनको केंद्र का ही पता नहीं है, वे उस मछली की तरह रह जाएंगे--बेजान, लोच, निर्जीव। क्योंकि कोई केंद्र नहीं है, जिसके

आस-पास वे घूम सकें और विकसित हो सकें। उनको दिशा ही नहीं मालूम पड़ेगी--कहां जाएं? क्या करें? क्या हो जाएं? भटकेंगे वे भी। एक ही परिधि पर निरंतर परिभ्रमण से चेतना विकसित होती है।

तो लाओत्से कहता है कि यह जो नाभि का केंद्र है, आपको पता चल जाए, तो आपकी चेतना को एकाग्र गति मिल जाती है--ए कनसनट्रेटेड मूवमेंट। आपकी चेतना फिर वहीं घूमती रहती है।

लाओत्से कहता है, चलो, लेकिन ध्यान नाभि का रखो। बैठो, ध्यान नाभि का रखो। उठो, ध्यान नाभि का रखो। कुछ भी करो, लेकिन तुम्हारी चेतना नाभि के आस-पास घूमती रहे। एक मछली बन जाओ और नाभि के आस-पास घूमते रहो। और शीघ्र ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्तिशाली चेतना का जन्म हो गया।

इसके अदभुत परिणाम हैं। और इसके बहुत प्रयोग हैं। आप यहां एक कुर्सी पर बैठे हुए हैं। लाओत्से कहता है कि आपके कुर्सी पर बैठने का ढंग गलत है। इसीलिए आप थक जाते हैं। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर मत बैठो। इसका यह मतलब नहीं कि कुर्सी पर मत बैठो, नीचे बैठ जाओ। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो, लेकिन कुर्सी पर वजन मत डालो। वजन अपनी नाभि पर डालो।

अभी आप यहीं प्रयोग करके देख सकते हैं। एम्फेसिस का फर्क है। जब आप कुर्सी पर वजन डाल कर बैठते हैं, तो कुर्सी सब कुछ हो जाती है, आप सिर्फ लटके रह जाते हैं कुर्सी पर, जैसे एक खूंटी पर कोट लटका हो। खूंटी टूट जाए, कोट तत्काल जमीन पर गिर जाए। कोट की अपनी कोई केंद्रीयता नहीं है, खूंटी केंद्र है। आप कुर्सी पर बैठते हैं--लटके हुए कोट की तरह।

लाओत्से कहता है, आप थक जाएंगे। क्योंकि आप चैतन्य मनुष्य का व्यवहार नहीं कर रहे हैं और एक जड़ वस्तु को सब कुछ सौंपे दे रहे हैं। लाओत्से कहता है, कुर्सी पर बैठो जरूर, लेकिन फिर भी अपनी नाभि में ही समाए रहो। सब कुछ नाभि पर टांग दो। और घंटों बीत जाएंगे और आप नहीं थकोगे।

अगर कोई व्यक्ति अपनी नाभि के केंद्र पर टांग कर जीने लगे अपनी चेतना को, तो थकान--मानसिक थकान--विलीन हो जाएगी। एक अनूठा ताजापन उसके भीतर सतत प्रवाहित रहने लगेगा। एक शीतलता उसके भीतर दौड़ती रहेगी। और एक आत्मविश्वास, जो सिर्फ उसी को होता है जिसके पास केंद्र होता है, उसे मिल जाएगा।

तो पहली तो इस साधना की व्यवस्था है कि अपने केंद्र को खोज लें। और जब तक नाभि के करीब केंद्र न आ जाए--ठीक जगह नाभि से दो इंच नीचे, ठीक नाभि भी नहीं--नाभि से दो इंच नीचे जब तक केंद्र न आ जाए, तब तक तलाश जारी रखें। और फिर इस केंद्र को स्मरण रखने लगें। श्वास लें तो यही केंद्र ऊपर उठे, श्वास छोड़ें तो यही केंद्र नीचे गिरे। तब एक सतत जप शुरू हो जाता है--सतत जप। श्वास के जाते ही नाभि का उठना, श्वास के लौटते ही नाभि का गिरना--अगर इसका आप स्मरण रख सकें... ।

कठिन है शुरू में। क्योंकि स्मरण सबसे कठिन बात है। और सतत स्मरण बड़ी कठिन बात है। आमतौर से हम सोचते हैं कि नहीं, ऐसी क्या बात है? मैं एक आदमी का नाम छह साल तक याद रख सकता हूं।

यह स्मरण नहीं है; यह स्मृति है। इसका फर्क समझ लें। स्मृति का मतलब होता है, आपको एक बात मालूम है, वह आपने स्मृति के रिकार्डिंग को दे दी। स्मृति ने उसे रख ली। आपको जब जरूरत पड़ेगी, आप फिर रिकार्ड से निकाल लेंगे और पहचान लेंगे। स्मरण का अर्थ है: सतत, कांसटेंट रिमेंबरिंग।

आप जरा कोशिश करें, एक पांच मिनट के लिए प्रयोग करें कि मैं अपने पेट के उठने और गिरने का ख्याल रखूंगा, भूलूंगा नहीं। दो सेकेंड बाद आप पाएंगे, आप भूल चुके हैं, कुछ और कर रहे हैं। फिर घबड़ाहट आएगी कि यह तो मैं भूल गया, दो सेकेंड भी याद नहीं रख सका! श्वास अभी भी चल रही है, पेट अब भी हिल रहा है;

लेकिन आप कहीं गए। फिर लौटा लाएं अपने स्मरण को। अगर आप निरंतर प्रयास करें, तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, सेकेंड-सेकेंड आपका स्मरण बढ़ेगा। और जिस दिन आप कम से कम तीन मिनट सतत, मुतवातिर, एक क्षण को भी बिना चूके--तीन मिनट कोई लंबा वक्त नहीं है, लेकिन जब प्रयोग करेंगे, तब आपको पता चलेगा कि तीन साल से भी लंबा मालूम पड़ेगा--एक दफे भी चूकें नहीं, तीन मिनट केवल! तो आपको पता चलेगा कि अब आपको केंद्र का ठीक-ठीक अनुभव होना शुरू हो गया। और तब सब शरीर अलग और केंद्र अलग झलकने लगेगा।

और यह केंद्र ऊर्जा का केंद्र है। इससे जो संयुक्त है, उसकी महिमा अपार है। क्योंकि वह निरंतर अनंत ऊर्जा को उपलब्ध कर रहा है।

तो एक तो सतत स्मरण रखें नाभि के केंद्र का और उसके आस-पास ही अपनी चेतना को परिभ्रमण करने दें। वही मंदिर है, उसकी ही परिक्रमा जारी रखें। कुछ भी हो जाए--क्रोध हो, घृणा हो, वैमनस्य हो, ईर्ष्या हो, दुख हो, सुख हो--लाओत्से कहता है, हर हालत में, कुछ भी हो, पहला काम नाभि पर लौटने का करें, फिर दूसरा काम कुछ भी करें। किसी ने खबर दी कि प्रियजन मर गए, तो पहले नाभि पर जाएं और फिर इस खबर को ग्रहण करें। और तब, लाओत्से कहता है, कोई भी मर जाए, चित्त पर कोई चोट नहीं पहुंचेगी।

कभी आपने ख्याल न किया हो, लेकिन शायद कभी ख्याल आया भी हो, या पीछे लौट कर प्रत्यभिज्ञा हो जाए, जब भी आपको कोई बहुत गहरी खबर सुनाता है, खुशी की या दुख की, तो चोट नाभि पर लगती है। रास्ते पर आप चले जा रहे हैं, साइकिल पर या कार में और एकदम एक्सीडेंट होने की हालत आ गई, आपने ख्याल किया है कि पहली चोट नाभि पर लगती है, धड़ से नाभि पर चोट जाती है। नाभि कंपित होती है, तभी सब कुछ कंपित होता है।

लाओत्से कहता है, जब भी कुछ हो, तो आप सचेतन रूप से पहले नाभि पर जाएं। पहला काम नाभि, फिर दूसरा कोई भी काम। तो न सुख आपको सुखी कर पाएगा इतना कि आप पागल हो जाएं, न दुख आपको दुखी कर पाएगा इतना कि आप दुख से एक हो जाएं। तब आपका केंद्र अलग और परिधि पर घटने वाली घटनाएं अलग रह जाएंगी। और आप साक्षी मात्र रह जाएंगे। योग कहता है, साक्षी की साधना करो। लाओत्से कहता है, सिर्फ नाभि को सतत स्मरण रखो, साक्षी की घटना फलित हो जाएगी, घटित हो जाएगी।

यह जो नाभि का केंद्र है, जिस दिन ठीक-ठीक पता चल जाए, उसी दिन आप मृत्यु और जन्म के बाहर हो जाते हैं। क्योंकि जन्म के पहले यह नाभि का केंद्र आता है; और मृत्यु के बाद यही बचता है, बाकी सब खो जाता है। तो जो व्यक्ति भी इस केंद्र को जान लेता है, वह जान लेता है, न तो मेरा जन्म है और न मेरी मृत्यु है। वह अजन्मा और अमृत हो जाता है।

सतत स्मरण रखें। केंद्र को खोजें, सतत स्मरण रखें। पहली बात, केंद्र को खोज लें। दूसरी बात, स्मरण रखें। तीसरी बात, बार-बार जब स्मरण खो जाए, तो स्मरण खोता है इसका भी स्मरण रखें। वह थोड़ा कठिन पड़ेगा।

जैसे कि आप किसी चीज पर ध्यान दे रहे हैं। तो लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, हमने नाभि पर ध्यान दिया, लेकिन वह खो जाता है। फिर क्या करें? तो उनसे मैं कहता हूं, खो गया, इसको भी स्मरण रखें कि अब खो गया। इसको भी ध्यान का हिस्सा बनाएं। बी अटेंटिव ऑफ दि इनअटेंशन आल्सो। वह जो घटना घट रही है खोने की, उसको भी ध्यानपूर्वक! उसको भी गैर-ध्यानपूर्वक मत खोने दें। जब भी चूक जाएं, तत्काल स्मरण करें

कि चूक गया। वापस लौट जाएंगे, कुछ और करने की जरूरत नहीं, सिर्फ इतना स्मरण कि चूक गया, स्मरण वापस लौट आएगा, धारा फिर जुड़ जाएगी।

और चौथी बात, जब स्मरण पूरा हो जाए, केंद्र स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे, अनुभव होने लगे, तो सब कुछ केंद्र के लिए समर्पित कर दें, सरेंडर कर दें। उस केंद्र को ही कह दें कि तू ही मालिक है, अब मैं छोड़ता हूं। और यह आसान हो जाता है।

समर्पण बहुत कठिन है, जब तक केंद्र का पता न हो। लोग कहते हैं, परमात्मा के लिए समर्पण कर दो। लेकिन परमात्मा का कोई पता नहीं। जिसका पता नहीं, उसके लिए समर्पण कैसे कर दो? और परमात्मा आ भी जाए, तो भी समर्पण आपको करना हो, तो मालिक तो आप ही बने रहते हैं समर्पण के भी। अगर कल दिल नाराज हो जाए और लगे कि यह परमात्मा कुछ अपनी मनपसंद का नहीं, तो अपना समर्पण वापस ले ले सकते हैं कि छोड़ो, हमने अपना समर्पण वापस लिया। देने वाले हम थे, ले भी हम सकते हैं। क्या, परमात्मा करेगा क्या? अगर आप अपना समर्पण वापस ले लें, तो परमात्मा करेगा क्या? तो जो समर्पण वापस भी लिया जा सकता है, वह समर्पण तो नहीं है। वह दिया ही नहीं गया कभी।

लाओत्से की प्रक्रिया अलग है। लाओत्से कहता है, जिस दिन इस केंद्र का पता चलता है, उस दिन समर्पण करना नहीं पड़ता, आपको अनुभव होने लगता है कि केंद्र मालिक है ही, मेरे बिना केंद्र सब कुछ कर रहा है। श्वास ले रहा है, छोड़ रहा है; जीवन की धारा चल रही है; नींद आ रही है, जागरण आ रहा है; जन्म हो रहा है, मृत्यु हो रही है; सब केंद्र कर रहा है मेरे बिना कुछ किए। तो अब समर्पण का क्या सवाल है? समर्पण हो जाता है।

तो चौथी, आखिरी जो घटना है इस साधना में, वह है केंद्र के प्रति समर्पण को अनुभव कर लेना। फिर अहंकार के बचने का कोई उपाय नहीं--कोई उपाय ही नहीं। ऐसी समर्पित अवस्था में व्यक्ति परम सत्ता को उपलब्ध हो जाता है।

एक और मित्र ने पहले प्रश्न जैसा ही प्रश्न पूछा है कि लाओत्से अक्रिया पर जोर दे रहा है और कृष्ण ने कर्म पर जोर दिया, तो इन दोनों में कोई विपरीतता है या समानता है?

ये दो छोर हैं। लाओत्से यह नहीं कहता कि कर्म मत करो। लाओत्से कहता है, कर्म करो, लेकिन ऐसे जैसे कि नहीं कर रहे हो। एज इफ यू आर नॉट डूइंग इट, रादर इट इ.ज हैपनिंग। हो रहा है। जैसे श्वास चल रही है; लो मत, छोड़ो मत, चलने दो। ठीक ऐसा ही जीवन। तुम अक्रिया में हो जाओ, क्रिया जितनी होती है, होने दो। कृष्ण भी वही कहते हैं दूसरे छोर से। वे कहते हैं, कर्म करो, कर्म से भागो मत, लेकिन कर्ता को छोड़ दो। यह भाव छोड़ दो कि मैं करने वाला हूं। परमात्मा करने वाला है।

लाओत्से की व्यवस्था में परमात्मा की कोई जगह नहीं है, क्योंकि वह कहता है, इतना इशारा भी करना द्वैत है। लाओत्से कहता है, यह भी कहना कि परमात्मा करने वाला है, इसमें कोई फर्क न पड़ा, अपना अहंकार परमात्मा में स्थापित किया। लेकिन कर्ता कोई रहा--हम न रहे, परमात्मा रहा।

लाओत्से कहता है, कर्ता कोई भी नहीं है, क्रिया हो रही है।

यह थोड़ा कठिन है। हमें आसानी पड़ती है कि हम कर्ता नहीं, कोई हर्ज नहीं, परमात्मा कर्ता है। लॉजिक हमारा जारी रहता है, तर्क हमारा जारी रहता है कि हम न रहे कर्ता, वह है कर्ता। लेकिन लाओत्से कहता है,

उसको भी कर्ता बनाने के उपद्रव में क्यों डालते हो? जब तुम कर्ता नहीं बनना चाहते, जब तुम कर्ता बनने से कष्ट में पड़ते हो, तो परमात्मा को भी क्यों कष्ट में डालते हो? कोई कर्ता नहीं है, क्रिया हो रही है। हवा के झोंके आते हैं और पत्ता हिल रहा है। हवा के झोंके आते हैं, और सागर की लहर उठ रही है और गिर रही है। यह जगत जो है, क्रियाओं का एक समूह है, कर्ता कोई भी नहीं।

अगर यह समझ में आ जाए, तो क्रियाएं होने दो। करने वाले भी तुम नहीं हो, छोड़ने वाले भी तुम नहीं हो। जो हो रहा है उसे होने दो और देखते रहो। तो वही स्थिति बन जाएगी, कृष्ण ने जो कही है।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू सब छोड़! शायद अर्जुन उतनी योग्यता का व्यक्ति नहीं था, जितनी योग्यता का व्यक्ति लाओत्से का शिष्य होने के लिए जरूरी है। तो कृष्ण को कहना पड़ा कि तू परमात्मा पर छोड़ दे, वही सब कर रहा है, तू बीच में मत आ! तू समझ कि वही करने वाला है, तू तो निमित्त मात्र है।

और ध्यान रहे, अगर लाओत्से होते कृष्ण की जगह, तो अर्जुन को इतना लंबा उपदेश मिलने वाला नहीं था। लाओत्से पहली तो बात बोलता ही नहीं। अगर बिना बोले अर्जुन समझ जाता, तो ठीक था।

लीहत्जू कहता है कि मैंने सुना है कि वे शिक्षक हैं, जो बोल कर समझाते हैं; और वे शिक्षक भी हैं, जो बिना बोले समझाते हैं। हमारा जो शिक्षक है, वह दूसरी तरह का शिक्षक है।

लीहत्जू वर्षों तक लाओत्से के पास था। न उसने कभी सवाल पूछा और न लाओत्से ने कभी जवाब दिया। कभी कोई आकर पूछता था, तो लीहत्जू एक कोने में बैठ कर सुनता रहता था। वर्षों बाद लाओत्से ने खुद लीहत्जू से पूछा कि तुझे कुछ पूछना नहीं है?

लीहत्जू ने कहा, आपकी आज्ञा हो तो पूछूं।

तो लाओत्से ने कहा, इतने दिन तक तू चुपचाप बैठा रहा!

तो लीहत्जू ने कहा कि आपके पास चुपचाप बैठ कर इतना समझने को मिल रहा था कि बोल कर मैंने बाधा न डालनी चाही। बोलता, तो बाधा पड़ती।

लाओत्से ने कहा कि इसलिए अब मैं तुझसे कहता हूं कि तू पूछ सकता है। जिसको बोलने से बाधा पड़ने लगी, वह बोलने की बीमारी से मुक्त हो गया। अब बातचीत हो सकती है। अब शब्द दिक्कत न देगा। जिसने शून्य में रहने का आनंद पा लिया, अब उसे शब्द मार्ग से न हटा सकेगा। अब हम शब्द का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

लेकिन कृष्ण के सामने जो शिष्य है, वह बहुत दूसरी तरह का है। और क्षण भी बहुत और है। युद्ध का क्षण है; यहां बारह साल चुपचाप बैठा भी नहीं जा सकता। पूरी परिस्थिति और है। और अर्जुन को अगर लाओत्से कहे कि कोई करने वाला नहीं है, जो हो रहा है, हो रहा है, तो अर्जुन भाग जाएगा। वह कहेगा, जब कोई करने वाला नहीं है, तो कोई भागने वाला भी नहीं है। वह भाग ही जाएगा, वह भाग जाएगा। यद्यपि वह भूल होगी उसकी, क्योंकि भागने में वह भागने वाला है। वह उसकी भूल है, वह सिर्फ अपने को धोखा दे रहा है।

हम सब अपने को धोखा दे सकते हैं। हम बड़े कुशल हैं। हम बड़े कुशल हैं। हम सब अपने को धोखा दे सकते हैं। अगर हमें भागना हो, तो हम कहेंगे, भागने में हमारा हाथ ही क्या है? क्रिया हो रही है, हम सिर्फ साक्षी हैं। और हम भागेंगे; क्रिया नहीं हो रही है। क्रिया नहीं हो रही है! अर्जुन की जैसी मनोदशा है, उसमें अगर वह भागेगा भी तो कर्ता रहेगा। असल में, वह कर्ता होने के कारण ही उसको ख्याल आ रहा है भागने का, कि ये मेरे प्रियजन हैं, इनको मार डालूंगा तो पाप लगेगा, मुझे पाप लगेगा। इसलिए भागना चाहता है।

इसलिए कृष्ण जो लड़ रहे हैं अर्जुन से, वे इसलिए लड़ रहे हैं, वे यह कह रहे हैं कि तेरा यह जो ख्याल है कि तू कुछ करने वाला है, यह गलत है। और मैं जानता हूं कि अगर अर्जुन उस स्थिति में आ जाए और मैं को

छोड़ दे और फिर धनुष-बाण को रख कर चला जाए, तो कृष्ण आखिरी मनुष्य होंगे उसे रोकने वाले। लेकिन वह जाना बड़े और ढंग का है।

मुझे एक लाओत्से के अनुयायी का एक स्मरण आता है। रांग कांग उनेजी नाम का एक बहुत बड़ा धनुर्विद हुआ। अर्जुन की वजह से मुझे याद आ गया। बहुत बड़ा धनुर्विद हुआ; लाओत्से का अनुयायी था। वह कहता था, तीर तो तुम चलाओ, लेकिन हाथ की मसल न हिले। अगर मसल हिल गई, तुम कर्ता हो गए। तीर तो तुम चलाओ, लेकिन हाथ की मसल न हिले। क्योंकि मसल हिल गई, तो तुम कर्ता हो गए। फिर तुमने तीर चलाया।

बड़ी मुश्किल बात थी। सम्राट को खबर मिली। और उसने कहा कि उस उनेजी को बुला कर लाओ। यह क्या पागलपन की बात है! इतना हम समझ सकते हैं कि एक आदमी चलाते वक्त यह भाव रखे कि मैं निमित्त मात्र हूं। यह भी हम समझ सकते हैं कि एक आदमी तीर चलाते वक्त अपने को कर्ता न माने, क्रिया का साक्षी रहे। लेकिन जब तीर चलेगा और धनुष उठेगा और प्रत्यंचा पर तीर चढ़ेगा और छूटेगा, तो मसल तो हिलेगी ही।

उनेजी बुलाया गया। उनेजी ने आकर अपना धनुष-बाण जब रखा, तो सम्राट की पूरी सभा में कोई उस धनुष-बाण को उठा भी नहीं सका। वह इतना वजनी था। कहते हैं वह अकेला आदमी था पूरे चीन में, जो उस धनुष-बाण को उठा सकता था। उसने धनुष-बाण उठा लिया, उसने बाण चढ़ाया। सम्राट ने आकर उसकी मसल देखी। वह ऐसी थी, जैसे छोटे बच्चे का हाथ हो। उसमें कहीं कोई मसल नहीं थी। उनेजी ने कहा, इसलिए मैं कहता हूं कि मैं तीर नहीं चला रहा हूं, तीर चल रहा है।

अर्जुन अगर ऐसी हालत में आ जाए और कह दे कि देखो, मैं नहीं जा रहा हूं, यह जाना हो रहा है, तो कृष्ण भी उसे रोकेंगे नहीं। लेकिन वह उस हालत में न था। असल में, लाओत्से के शिष्य होने की अर्जुन की योग्यता न थी। वह था क्षत्रिय, पक्का पुरुष। और लाओत्से की सारी शिक्षा है स्त्रैण चित्त के लिए। हम मान सकते हैं कि अर्जुन प्रतीक पुरुष है। जैसा पुरुष होना चाहिए, वैसा पुरुष है। इसलिए कृष्ण तक उसको जोश चढ़ाने के लिए कहते हैं कि क्या तू नपुंसकों जैसी बात कर रहा है! वह पुरुष को पूरा कंपाने के लिए। कि क्या लोग तुझे कायर कहेंगे! पीढ़ियां-दर-पीढ़ियां लोग तुझे कहेंगे कि तू कायर था, नपुंसक था, क्लीव था! ये सब चोटें उसके पुरुष के लिए हैं। कि उसका पुरुष खड़ा हो जाए और वह कहे, क्या बात करते हो? वह अपना गांडीव उठा ले और युद्ध पर उतर जाए!

लाओत्से की सारी शिक्षा स्त्रैण चित्त के लिए है। तो इस शिक्षा का जो शिष्य है, वह बुनियादी रूप से अलग है। पर बात वही है--चाहे कोई अपने अहंकार को परमात्मा के लिए विसर्जित कर दे, कर्म करता रहे और कर्ता न रह जाए; या लाओत्से कहता है, अक्रिया को समझ ले कि सब क्रियाएं हो रही हैं, मैं करने वाला हूं ही नहीं। तो लाओत्से यह भी नहीं कहता कि कर्म करता रहे। यह भी क्या कहना? कर्म होता रहे, होता हो तो होता रहे, न होता हो तो न हो, रुकता हो तो रुक जाए, चलता हो तो चलता रहे। मैं कोई हूं ही नहीं बीच में पड़ने वाला।

लेकिन इससे यह मतलब नहीं है कि लाओत्से को मानने वाले कर्म से भाग ही जाएंगे। और इसका यह भी मतलब नहीं है कि कृष्ण को मानने वाले कर्म में लगेंगे ही। हम दोनों को जानते हैं भलीभांति। लाओत्से को मानने वाले भी कर्म पर गए हैं, युद्ध पर गए हैं। अब यह उनेजी है, यह धनुर्विद्या का पारंगत है, कुशलतम व्यक्ति है। और हम हिंदुस्तान में संन्यासियों को भी जानते हैं, जो गीता बगल में दबाए हुए संसार को छोड़ कर भाग रहे हैं। और वे कहते हैं कि गीता प्राण है उनका।

आप क्या करोगे, यह न तो कृष्ण के हाथ में है और न लाओत्से के। यह सदा आपके हाथ में है, सदा आपके हाथ में है। असल में, शिक्षक कुछ भी नहीं कर सकते, जब तक आपका सहयोग न हो। और शिक्षक भी उतना ही कर सकते हैं, जितने दूर आप चलने को राजी हैं। दोनों की बातें एक हैं, बहुत अलग बिंदुओं से कही गईं। एक पुरुष के चित्त की बात है; एक स्त्रैण चित्त की बात है।

एक मित्र का फिर करीब ऐसा ही प्रश्न है कि आपके प्रवचन से लगता है कि लाओत्से अयात्रा की महिमा बताता था, फिर भी उसने साधना के सूत्र बताए हैंः नाभि केंद्र, श्वास की प्रक्रिया, इत्यादि। क्या इन दोनों में विरोध नहीं मालूम पड़ता है?

विरोध मालूम पड़ता है। क्योंकि जब भी हम कहें साधना, तो लगता है कुछ करना पड़ेगा। यह हमारी भाषा की भूल है। असल में, भाषा में अक्रिया के लिए कोई शब्द नहीं है। अक्रिया के लिए कोई शब्द नहीं है। सब शब्द क्रियाओं के हैं।

अगर हम एक आदमी को कहते हैं कि अच्छा, अब सो जाओ, तो मतलब होता है कि अब सोना पड़ेगा, सोने के लिए कुछ करना पड़ेगा। सोना एक क्रिया है। लेकिन हम सब जानते हैं कि सोना क्रिया नहीं है। और कोई भी कोशिश करके सो नहीं सकता है। या किसी दिन कोशिश करके देखें! जितनी कोशिश करेंगे, उतनी ही नींद मुश्किल हो जाती है। तो सोना क्रिया तो नहीं है, लेकिन भाषा में क्रिया है। सोने का मतलब भी वैसे ही होता है कि एक काम है; जैसे चलना, उठना, खाना, पीना, ऐसे ही सोना। लेकिन कोई आदमी क्रिया करके सो नहीं सकता। सोना होता ही तब घटित है, जब सब क्रिया बंद हो जाती है।

इसलिए जिनको नींद नहीं आती, उनकी सबसे बड़ी मुसीबत यही है कि कैसे सोएं, वे पूछते हैं कि कैसे सोएं? और कैसे जो है वह सोने का दुश्मन है। कैसे का मतलब है, व्हाट टु डू? क्या करें? और करना जो है वह नींद का दुश्मन है। आप कुछ भी करें, जो भी आप करेंगे, उससे नींद आने में देर लगेगी। तो क्या हम उससे कह दें कि कोई उपाय ही नहीं है तुम्हारे लिए? क्या हम उससे कह दें कि कोई उपाय ही नहीं है तुम्हारे लिए? जिसको नींद नहीं आती, क्या उससे हम कह दें कि कोई उपाय नहीं है, मरो! तुम ऐसे ही रहोगे, कोई उपाय नहीं है। क्योंकि नींद तो लाई नहीं जा सकती। आ जाए तो ठीक, न आ जाए तो ठीक।

यह तो बहुत क्रूर होगा और बुद्धिमानीपूर्ण भी न होगा। क्योंकि जिसे नींद नहीं आती, उसे भी नींद लाने में सहायता पहुंचाई जा सकती है। तब उसे ऐसी क्रियाएं बतानी होंगी, जो क्रियाएं इतनी उबाने वाली हैं कि अपने आप छूट जाती हैं। जैसे उससे कहा जाए कि तुम कुछ न करो, एक से लेकर सौ तक गिनती गिनो, फिर सौ से वापस लौटो एक तक, फिर एक से सौ तक जाओ--ऐसा करो।

अब यह उबाने वाली क्रिया है, बोर्डम की क्रिया है। अगर एक आदमी एक, दो से लेकर सौ तक जाए और फिर सौ, निन्यानबे, अट्ठानबे फिर वापस लौटे, यह करता रहे, थोड़ी देर में मन ऐसा ऊब जाएगा, इतना ऊब जाएगा कि इसे छोड़ने की भी याद न रहेगी। यह छूट जाएगा। इसके छूटते ही नींद घटित हो जाएगी। वह नींद इसके कारण नहीं आई; फिर भी इससे सहायता मिली। इससे सहायता मिली।

लाओत्से ने जो भी साधना-प्रक्रियाएं बताई हैं, वे सब साधना-प्रक्रियाएं निगेटिव हैं, इसी तरह की नकारात्मक हैं। वह जो भी कह रहा है, वह कह रहा है, अपने केंद्र को खोजो। अब केंद्र है; खोजने की जरूरत नहीं है वस्तुतः। और हम न भी खोज पाएं, तो भी केंद्र है। हमें न भी पता हो, तो भी है। और हमें पता नहीं है,

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, केंद्र केंद्र ही है। हम चाहे बुद्धि में जीएं और चाहे हृदय में जीएं, जीवन नाभि में केंद्रित है। ये हमारी भ्रांतियां हैं। लाओत्से कहता है, जरा खोजो, शायद खोजने से भ्रांतियों से चित्त हट जाए, शायद खोजते-खोजते अचानक तुम करीब आ जाओ और उदघाटन हो जाए।

चीनी कथा है कि एक सम्राट पागल हो गया। और अपने महल को छोड़ कर, महल के नीचे जो तलघरा था, कबाड़खाना था--फिजूल की चीजें, महल के काम की नहीं होती थीं, डाल दी जाती थीं--उसमें रहने लगा। पहले तो वजीरों ने समझा कि वह कोई साधना करता होगा। पहले-पहले पागल साधक मालूम पड़ते हैं और आखिर-आखिर में साधक पागल मालूम पड़ने लगते हैं। कोई साधना करता होगा, क्योंकि गुफा में नीचे चला जाता है।

लेकिन धीरे-धीरे उसने ऊपर आना बंद कर दिया। तब थोड़ा शक होना शुरू हुआ। फिर वह राज्य वगैरह की बात ही भूल गया। फिर वजीर कुछ पूछने भी जाते, तो वह सुनता रहता, वह कुछ जवाब भी न देता। फिर शक पैदा हुआ। फिर वह वहीं रहने लगा, महल में आना भी उसने बंद कर दिया। तब उसे लोग समझाने लगे कि तुम ऊपर चलो। तो वह कहता था, लेकिन महल तो यही है। ऊपर जाकर क्या करेंगे! क्या यह महल नहीं है? तो वजीर इसका भी उत्तर नहीं दे पाते थे सीधा कि नहीं है; क्योंकि था तो वह भी महल ही, वह था तो महल का ही हिस्सा। तो जब वह सम्राट पूछता था कि मुझे कहो स्पष्ट कि क्या यह महल नहीं है? और अगर गलत बोले, तो गर्दन कटवा दूंगा। तो वे वजीर बड़ी मुश्किल में पड़ते थे; क्योंकि यह भी नहीं कह सकते थे कि यह महल नहीं है; था तो महल का ही हिस्सा। फिर भी महल बिल्कुल नहीं था। कबाड़खाना था, कचराघर था।

परेशान हो गए। फिर गांव के एक फकीर को जाकर कहा कि कोई रास्ता खोजें--कोई रास्ता! क्योंकि सम्राट पूछता है, क्या यह महल नहीं है? और हम कुछ जवाब नहीं दे सकते। वह आदमी खतरनाक है, वह कहता है, गर्दन कटवा देंगे अगर गलत सिद्ध हुआ। और गलत सिद्ध हो सकता है, क्योंकि यह महल का ही हिस्सा है। है सिर्फ कचराघर। और वह उसी में रह रहा है। वह कहता है, यह भी महल है, तो दूसरे महल में जाने की क्या जरूरत है? उस फकीर ने कहा, मैं चलता हूं।

उस फकीर ने कहा कि क्या तुम समझते हो यह महल है? सम्राट से उसने पूछा कि क्या तुम समझते हो यह महल है? और अगर गलत बोले, तो ऐसा अभिशाप दूंगा कि यहीं श्वास बंद हो जाएगी। सम्राट ने चारों तरफ गौर से देखा कहने के पहले, सिवाय कचरा-कबाड़ के वहां कुछ भी नहीं था। उसको भी लगा कि इसको कैसे महल कहें? इसे महल कैसे कहें, यह महल है? और झूठ भी नहीं बोल सकते। और ऐसे तो यह भी महल का हिस्सा है। उसने फकीर से कहा कि तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। फकीर ने कहा, हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, हम वही तर्क का उपयोग कर रहे हैं, जिससे तुम अपने वजीरों को मुश्किल में डालते रहे। अब तुम कृपा करके एक काम करो, यह महल है या नहीं, कुछ तय नहीं होता। क्योंकि वजीर जवाब नहीं दे पाते; तुम भी जवाब नहीं दे पाते। तुम मेरे साथ ऊपर आओ। हम उस पूरी जगह को देख लें, जिसके संबंध में दावा है महल होने का। फिर पीछे निर्णय कर लेंगे।

लाओत्से यही कह रहा है। वह यह नहीं कह रहा है कि केंद्र आपका कहां है, यह कोई तय करना है! वह तय ही है। लेकिन जरा आप नीचे उतर आओ और एक बार उस केंद्र को देख लो। फिर कुछ तय नहीं करना पड़ेगा कि केंद्र कहां है और क्या है। और यह नीचे उतर आना एक वापसी है, जस्ट ए कमिंग बैक, बैक टु होम। घर की तरफ वापसी है। तो लाओत्से कहता है, यह कोई साधना भी क्या है! अपने घर वापस लौट रहे हैं, जो सदा से अपना है। यह कोई क्रिया भी नहीं है।

लेकिन फिर भी आदमी जैसा है, जिस उलझन में है, वहां उसे किसी क्रिया के बहाने की जरूरत है। कोई बहाना उसे मिल जाए। वह फकीर बहाना बन गया। सम्राट ऊपर चला गया। और उसने फिर नीचे जाने से इनकार कर दिया। और उसने कहा कि सारी दुनिया उसे कहे कि महल है, अब मैं वहां वापस जाने को नहीं हूं। मैं भूल ही गया था कि महल ऊपर है; मैं भूल ही गया था।

सिर्फ विस्मरण है। सिर्फ विस्मरण है। एक मौका चाहिए स्मरण का। एक सुविधा चाहिए। उस सुविधा का नाम साधना है। वह नकारात्मक है।

आपको किसी मित्र का नाम याद नहीं आ रहा। आप सिर पचाए डाल रहे हैं, सिर ठोंक रहे हैं, माथा रगड़ रहे हैं, नाम याद नहीं आ रहा। मैं आपसे कहता हूं कि ऐसा करो, जरा इसे छोड़ो। मैं तुम्हें एक साधना बताता हूं, जिससे मित्र का नाम याद आ जाएगा। वह पूछता है, क्या साधना? तो मैं उससे कहता हूं, तुम जरा अपनी खुरपी उठा लो और जाकर बगीचे में थोड़ी मिट्टी खोदो। वह भी कहेगा कि आप पागल हो गए हैं, क्योंकि बगीचे में जाकर मिट्टी खोदने से और मित्र के नाम के याद आने का क्या संबंध है? मैं उससे कहता हूं, तुम फिक्र छोड़ो, तुम जाकर मिट्टी खोदो।

वह मिट्टी खोदने लगता है--अचानक मित्र का नाम याद आ जाता है। क्या खुरपी और मिट्टी खोदने से मित्र का नाम याद आ गया? इ.ज देयर एनी कॉजल लिंक? कोई कार्य-कारण का संबंध है?

नहीं, लेकिन फिर भी संबंध है। असल में, जब वह मिट्टी खोदने में लग गया, तो एक स्थिति पैदा हुई, जिसमें मन का तनाव चला गया। जब वह कोशिश कर रहा था कि नाम याद आए, तो वह इतना तन गया था, इतना संकरा हो गया था कि उसमें से नाम आ भी नहीं सकता था।

हम अनेक बार कहते हैं कि जीभ पर रखा हुआ है। अब जब जीभ पर ही रखा हुआ है, तो अब और क्या दिक्कत है, निकालिए! लेकिन आप कहते हैं, जीभ पर रखा हुआ है, और निकल नहीं रहा। आपकी जीभ पर रखा है या किसी और की जीभ पर रखा है? और आपको पक्का पता है; आप कहते हैं, मुझे पता है कि बिल्कुल जीभ पर रखा हुआ है, याद आ रहा है। फिर भी क्या गड़बड़ हो रही है? इतने तन गए हैं आप, इतने तनाव से भर गए हैं कि चेतना का रूप बिल्कुल संकरा हो गया है। उसमें से एक नाम भी नहीं निकल पा रहा। वह नाम रखा हुआ है, आपको बिल्कुल उसकी धड़कन मालूम पड़ रही है, वह नाम आपको छू रहा है। आपको सब कुछ मालूम पड़ रहा है कि वह नाम यह रहा। लेकिन जरा सा, इंच भर का फासला आपके और उसके बीच में है। और उस बीच में आप इतने तन गए हैं कि जगह नहीं है। आपसे कहा, खुरपी लेकर बगीचे में लग जाओ। आप खुरपी में उलझ गए, बगीचे में उलझ गए। वह तनाव हट गया, वह जो बीच में ग्रंथि बन गई थी, वह हट गई। नाम ऊपर आ गया।

अब सवाल यह है कि खुरपी और मिट्टी खोदने से इस नाम के आने का कोई भी संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है, कोई भी संबंध नहीं है। फिर भी संबंध है। और संबंध नकारात्मक है। मिट्टी खोदने ने सिर्फ आपके ध्यान को दूसरी तरफ हटा दिया। बस, आप भीतर शिथिल हो गए, शांत हो गए, विश्राम मिल गया। उस विश्राम में बबलिंग, भीतर का बबूला ऊपर आ गया। और नाम आपको याद आ गया।

इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आपको सब पता रहता है जब तक आपसे कोई पूछे न। पूछा किसी ने कि सब गड़बड़ हो जाता है। इंटरव्यू के पहले, बाहर कतार में खड़ा हुआ वह जो आदमी इंटरव्यू देने आया है, उसको सब पता होता है। दरवाजे के भीतर पैर रखा कि सब खो जाता है। लौट कर जब वह दरवाजे के बाहर

फिर पैर रखता है, वह कहता है, हद हो गई! यह इतने से दरवाजे में क्या हो जाता है? यह आदमी वही का वही है। इसकी बुद्धि को हो क्या जाता है?

असल में, बुद्धि इतनी तनाव से भर जाती है कि काम करने में असमर्थ हो जाती है, लोच खो जाती है, फ्लेक्सिबिलिटी खो जाती है, सोचने की क्षमता खो जाती है। बस अटक जाता है। वह जो अटकाव है, वह बाहरी नहीं है, भीतर की व्यवस्था का अटकाव है। इस व्यवस्था को तोड़ने के उपाय हैं। सब साधनाएं इस व्यवस्था को तोड़ने के उपाय हैं।

झेन फकीर अपने साधकों से कहते रहे हैं, जब भी कोई साधक आएगा, तो झेन फकीर उससे कहते हैं कि तू ब्रह्म और आत्मा की बात मत कर। कुछ दिन हम तुझसे जो कहते हैं, वह कर। लकड़ी फाड़, पानी भर कर ला, गड्ढा खोद, खाना बना, गाय का दूध दुह, बगीचे की सम्हाल कर, खेती-बाड़ी कर। ब्रह्मज्ञान कुछ दिन बंद! और कई बार ऐसा होता है कि साल भर वह आदमी सिर्फ लकड़ी फाड़ता रहता है, पानी ढोता रहता है, जानवर चराने चला जाता है--साल भर! वह था किसी यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि लकड़ी काटनी पड़ेगी और घास छीलना पड़ेगा। लेकिन साल भर वह यह करता रहता है।

साल भर में वह जो प्रोफेसरपन था, वह जो पागलपन था, वह छिटक जाता है। लकड़ी काटते में अब क्या करेगा? प्रोफेसर हो भी कैसे सकता है आदमी लकड़ी काटता रहे! कोई जरूरत भी नहीं है; कोई इसमें कोई बुद्धिमानी की, कोई डिग्री की, कोई ज्ञान की कोई भी जरूरत नहीं है। लकड़ी ही काट रहा है। आरा चलता रहता है, लकड़ी भी कटती रहती है, प्रोफेसर भी कटता जाता है। लकड़ी भी गिरती जाती है, प्रोफेसर भी गिर जाता है। साल भर बाद वह निपट आदमी हो जाता है, सरल आदमी।

उसका गुरु उससे कहता है, अब तू पूछ! अब तू सुन सकेगा, समझ सकेगा; क्योंकि अब तू खुला है। अब तू एक खुले आकाश की भांति हो गया है। जब तू आया था, तू एक बंद घर था, जिसमें कोई द्वार-दरवाजे नहीं थे।

तो सारी साधना का उपाय, लाओत्से की नकारात्मक साधना का उपाय इतना ही है कि हम किस भांति उस अवस्था को पैदा कर लें, जिसमें हमारे भीतर जो ब्लाकिंग, जो जगह-जगह अटकाव खड़े हो गए हैं, वे टूट जाएं, वे बिखर जाएं--बस। समझ लें कि नदी की एक धार है और बर्फ जम गई है, और अब धार नहीं बहती। क्या करें? सुबह की थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़े, सूरज निकले, नई परिस्थिति हो, सूरज की धूप पड़े--धार पिघल जाए, फिर बहने लगे। हम भी बस फ्रोजन, कहीं-कहीं धार बिल्कुल अटक गई है, रुक गई है। तो परिस्थिति बदलनी पड़े कि पिघल जाए धार और बह जाए! इसलिए परिस्थिति का परिवर्तन कभी बड़े अदभुत परिणाम लाता है, अदभुत परिणाम लाता है।

गुरजिएफ के पास एक लेखिका, कैथरिन मैंसफील्ड--बड़ी लेखिका, नोबल प्राइज विनर--वह साधना के लिए आई। अब नोबल प्राइज विनर लेखिका हो, तो जरा ढंग की, सोच-समझ कर साधना देनी चाहिए। पर गुरजिएफ जैसे लोग बिल्कुल बेढंगे होते हैं। गुरजिएफ ने उससे कहा कि बस तू अब एक काम कर कि सामने जो सड़क है, उसको कूट! उसके गिट्टी-पत्थर निकल गए हैं, उनको बिल्कुल जमा डाल! उसने सड़क देखी, उसके प्राण के छक्के छूट गए। लंबी सड़क थी। उसने पूछा कि यह कितने समय मुझे करना पड़ेगा? गुरजिएफ ने कहा, जब तक मैं आवाज न दूं, तब तक तू अपना जारी रखा कर। जब मैं आवाज दे दूं कि बस बंद, तो तू बंद कर दिया कर। और ध्यान रखना, अगर आधी रात सोते में भी मैं कहूं कि उठ और शुरू कर, तो फिर शुरू कर देना है! और उसने कहा कि यह कितने दिन में पूरी होगी? गुरजिएफ ने कहा, उसकी फिक्र मत कर, क्योंकि कई लोग इसको

उखाड़ने की साधना में भी लगते हैं। इसकी तू फिक्र ही मत कर; यह सड़क कभी सुधरती नहीं। इसे इधर तू जमाती रहेगी, उधर दूसरा तेरे सामने ही उखाड़ता रहेगा।

और जब दूसरे दिन वह सुबह साधना में लगी, तो हैरान हो गई--वह जमा नहीं पाती है कि दूसरे उसको उखाड़ रहे हैं! वह सड़क वैसी की वैसी है। पसीना-पसीना हो जाती है। कई बार देखती है कि गुरजिएफ उसको आवाज दे। मगर वह अपना मजे से बैठा हुआ सिगरेट पीता रहता है। वहीं बैठ हुआ है आरामकुर्सी पर और अपना धुआं उड़ा रहा है। और उसका पसीना-पसीना चू रहा है, कभी उसने जिंदगी में पत्थर नहीं कूटे, कभी सड़क नहीं बनाई। हाथ में फफोले आ गए हैं, लहूलुहान हुई जा रही है। कई बार वह आवाज निकालती है कि शायद उसकी आह सुन ले। मगर वह अपना धुआं उड़ाता चला जाता है। वह उसकी तरफ भी नहीं देखता कि वह वहां है भी। वह अपने हाथ देखती है, आह करती है, कि किसी तरह हाथ देख ले, कि फफोले पड़ गए। वह देखता ही नहीं उसकी तरफ। सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा। और वह है कि बैठा हुआ है; और वह अपना कर रही है।

कोई आठ बजे उसने आवाज दी कि बस मैंसफील्ड! वह आई अंदर, तो आशा रखती है कि वह कहेगाः बहुत मेहनत की, पसीने-पसीने डूब गई, हाथ में खून आ गया है! लेकिन वह कुछ नहीं बोलता। वह कुछ बोलता ही नहीं। और रात दो बजे जाकर उसको फिर बिस्तर से उठा देता है कि वापस काम पर चलो! मैंसफील्ड कहती है कि मैं कितने दिन टिक पाऊंगी! यहां जिंदा रहना मुश्किल मालूम पड़ता है। गुरजिएफ ने कहा कि तुझे मिटाने का ही हम उपाय कर रहे हैं। और अगर तू राजी रही, तो तू तो मिट जाएगी, लेकिन उसको जान लेगी जो कभी नहीं मिटता है।

और तीन महीने बाद जब मैंसफील्ड लौटी, तो उसने वक्तव्य दिया कि वह आदमी अजीब है। उसने मेरा सब पुराना नष्ट कर दिया। मैं बिल्कुल नई होकर लौटी हूं। और उसकी बड़ी कृपा थी, क्योंकि मैं सोचती थी कि शायद वह मुझे कुछ अपनी किताबों के काम में लगाएगा, कुछ साहित्य के काम में लगाएगा। अगर उसने मुझे साहित्य और किताब के काम में लगाया होता, तो मैं, मैं की मैं वापस लौट आती। उसने मुझे ऐसे विपरीत काम में डाल दिया कि मेरा सब नोबल प्राइज, और मेरी सारी प्रतिष्ठा, और सारी इज्जत, सब मिट्टी में मिल गई।

तीन महीने वह सड़क ही कूट रही थी--और उस सड़क को, जिसको वह सुबह पाएगी कि सब उखड़ी पड़ी है, फिर वहीं से काम शुरू कर देना है। बड़ा निराशाजनक काम था। सफलता तो मिल ही नहीं सकती थी उसमें। सड़क कभी पूरी हो नहीं सकती थी। लेकिन बिल्कुल विपरीत था और चित्त को तोड़ने में सहयोगी था। तीन महीने में वह भूल गई। तीन महीने में वह भूल गई; तीन महीने बाद उसने लिखा है कि उसी रास्ते से लोग गुजरते थे; जिस दिन पहले दिन मैं सड़क खोद रही थी, तो मुझे पता था कि मैं नोबल प्राइज विनर लेखिका हूं; तीन महीने बाद लोग वहां से गुजरते थे, मुझे यह भी पता नहीं था कि मैं कौन हूं। मैं राजी हो गई थी कि मैं एक सड़क पर गिट्टी जमाने वाली औरत हूं, और कुछ भी नहीं हूं। और उसने मेरे सारे अहंकार को पिघला दिया।

तो सवाल कुल इतना है कि कैसे हमारे भीतर जो इकट्ठा हो जाता है, वह पिघल जाए; और हम तरल हो जाएं, लिक्विड हो जाएं, फिर बहने में समर्थ हो जाएं।

एक दो-तीन छोटे-छोटे सवाल हैं। एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से के हिसाब से भलाई और बुराई रात-दिन की तरह जगत में हैं; और परमात्मा ने आदमी को स्वतंत्र बनाया, इसलिए वह बुरा भी कर सकता है, भला

भी कर सकता है। लेकिन उन्होंने पूछा है कि प्रकृति क्यों बुराई कर रही है? नदी में बाढ़ आ जाती है, निर्दोष लोग डूब कर मर जाते हैं। या आग लग जाती है; या कुछ हो जाता है।

हमारी कठिनाई यह है कि बुराई को हम स्वीकार नहीं कर पाते कि वह भलाई के साथ अनिवार्य है। और उसी नदी के किनारे जब बाढ़ नहीं आती और खेतों में गेहूं फलते हैं, तब? और जब उसी आग पर रोटी सिंकती है, तब? और जब उसी आग से मकान जल जाता है, तब हम कहते हैं, यह बुराई प्रकृति क्यों कर रही है? लेकिन आपको पता है कि अगर प्रकृति ऐसा इंतजाम कर दे कि आग जला न सके, तो आग से जो भलाई होती है, वह भी नहीं हो सकेगी। और प्रकृति ऐसा इंतजाम कर दे कि नदी में पानी न आए, तो फिर ठीक है, फिर भलाई भी नहीं होगी, बुराई भी नहीं होगी।

हमारी कठिनाई यह है कि हम अपने को जगत के केंद्र में रख कर सोचते हैं कि हमारे हित में जो हो रहा है, वह भलाई; और हमारे अहित में जो हो रहा है, वह बुराई। लेकिन हम यह नहीं सोचते कि जिस कारण से हित हो रहा है, उसी कारण से अहित होता है। और कारण को अगर हटाना है, तो दोनों चीजें बंद हो जाएंगी। नदी में पानी न बहे, तो कभी बाढ़ न आएगी; और आग ठंडी हो जाए, तो कभी कोई मकान नहीं जलेगा। बिल्कुल ठीक है। लेकिन तब आपको पता है, पूरी जिंदगी ठंडी हो जाएगी आग के ठंडे होने के साथ ही। दोनों चीजें एक साथ घटित होती हैं, एक बात। इसलिए जब भी हम किसी चीज को स्वीकार करते हैं, तब हमें उसके बुराई के हिस्से को भी स्वीकार कर ही लेना चाहिए। जो नहीं करता, वह अप्रौढ़ है, बचकाना है।

जब मैं किसी को प्रेम करता हूं, तो मुझे जान ही लेना चाहिए कि प्रेम टूट भी सकता है। टूटेगा ही। जो जुड़ता है, वह टूटता है। जो बनता है, वह मिटता है। जब मैं एक बेटे को जन्म देता हूं और बैंड-बाजे बजाता हूं, तो मुझे घर में अरथी भी तैयार कर लेनी चाहिए। क्योंकि कल अरथी भी उठेगी ही; जो जन्मता है, वह मरता है। लेकिन जिसने बैंड-बाजे खूब बजाए और अरथी को बिल्कुल भूल गया, वह छाती पीट कर कल रोएगा कि बड़ी बुराई हो रही है जगत में--आदमी मरता क्यों है? वह कभी नहीं पूछता कि आदमी जन्मता क्यों है? जन्मने को हम बिल्कुल स्वीकार किए बैठे हैं और मरने की बड़ी तकलीफ उठा रहे हैं।

अब यह भी इनको बुराई क्यों मालूम पड़ती है मित्र को कि नदी आ जाती है, निर्दोष लोग मर जाते हैं। इनका मतलब यह है कि दोषी मरें, तो चलेगा। दोषी कौन है? दोषी कौन है, जिसने आपकी पार्टी को वोट नहीं दिया? कि जो आपकी मस्जिद में नहीं आता? कि जो आपके मंदिर का भक्त नहीं है? कि जो गीता नहीं पढ़ता? कौन आदमी दोषी है? वह आदमी जो शराब पीता है? आपने ठेका लिया है कि कौन आदमी क्या पीए? आप निर्णायक हैं? कौन आदमी दोषी है? और कौन तय करेगा? दोषी मर जाएं, तो चलेगा। मगर आप उसी गांव में पूछें कि दोषी कौन है, तो करीब-करीब पूरा गांव दोषी होगा--अलग-अलग लोगों से पूछना पड़ेगा--पूरा गांव दोषी सिद्ध होगा। अगर एक ही आदमी के हाथ में निर्णय न दें और पूरे गांव से पता लगा लें, तो एक भी आदमी बचने योग्य नहीं मिलेगा। पूरा गांव तय हो जाएगा कि--कोई किसी के लिए तय होगा, कोई किसी के लिए तय होगा--लेकिन पूरा गांव मरेगा।

दोषी कौन है और निर्दोष कौन है? किसको निर्दोष कहते हैं आप? क्या मापदंड है आपके पास तौलने का कि यह आदमी जो मर गया, यह निर्दोष था?

और अगर कोई रास्ता भी हो जानने का कि कौन दोषी है और निर्दोष कौन है, यह आपको कैसे पता चलता है कि मरना एक बुराई है? यह कैसे आपको पता चलता है? देख कर तो ऐसा लगता है कि सब बुराइयां

जीवन में घटित होती हैं। मरने में तो कोई बुराई घटित होती देखी नहीं जाती। किसी मरे आदमी को कोई बुराई करते देखा है? अगर बुराई है, तो जिंदगी बुराई होगी। मौत ने तो अब तक कोई बुरा नहीं किया। मौत ने कोई बुरा किया है आज तक?

लेकिन जिंदगी से हमारा मोह भारी है। इसलिए हम कहते हैं मौत बड़ी बुरी चीज है। यह मौत की बुराई हम नहीं बताते, हमारी जिंदगी का मोह बताते हैं। यह खबर इस बात की है कि हम जीना चाहते हैं, बस। जीना हमारा ऐसा पागल भाव है कि मौत भर नहीं होनी चाहिए। तो हम सड़ते रहें, गलते रहें, तो भी हम जीना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते। सड़ा हुआ जीवन भी हम पसंद करेंगे स्वस्थ मौत की बजाय। क्यों? क्योंकि बस मौत बुराई है, मौत बुरी है। उसमें हम... । क्या, ऐसा क्या बुरा है? मौत ने आपको कभी सताया है, याद है? मौत ने आपको कौन सी तकलीफ दी है आज तक, पता है? जिंदगी में सब बीमारियां घटती हैं। मौत के बाद कोई बीमारी भी नहीं घटती। जिंदगी में सब उपद्रव होते हैं--मुकदमे चलते हैं, अदालतें होती हैं, चोरी होती हैं, दंगे-फसाद होते हैं, हिंदू-मुस्लिम दंगे होते हैं--यह सब होता है। मौत तो परम शांति है। फिर मौत से इतनी घबड़ाहट क्या है आपको?

जो मर गए, वे नुकसान में पड़े, इसका आपको पक्का पता है? कभी मुर्दा लोगों ने कहा है कि हम नुकसान में पड़े, तुम बड़े फायदे में हो? कौन जाने, मुर्दे सोचते हों कि ये बेचारे निर्दोष लोग बच गए और नदी में नहीं बह गए! कई निर्दोष बच गए। इन्होंने क्या बिगाड़ा था कि परमात्मा ने इनको न मारा?

यह सब दृष्टिकोण की बात है, दृष्टिकोण की बात है। और अपनी दृष्टि को जो भी अस्तित्व पर थोपेगा, वह नासमझ है। अस्तित्व आपकी दृष्टियों की फिक्र नहीं करता। आप जिस सागर में एक छोटी सी लहर हैं, आप उस पूरे सागर के संबंध में जब भी निर्णय थोपने जाते हैं, तभी नासमझी करते हैं। इसलिए ज्ञानी वह है, जो अस्तित्व के बाबत निर्णय नहीं करता। जीता है, बिना किसी निर्णय के, बिना किसी वक्तव्य के, बिना किसी भाव के। मौत है, तो मौत को देख लेता है; जीवन है, तो जीवन को देख लेता है। जानता है कि जीवन भी एक रहस्य है और मौत भी एक रहस्य है, और निर्णायक कोई भी नहीं है। इसीलिए तो जीवन एक मिस्ट्री है कि निर्णायक कोई भी नहीं है।

क्या है बुरा? क्या है भला? इतना आसान अगर होता, जितना हम सोचते हैं और जैसा हम दिन-रात कहे चले जाते हैं। हम सिर्फ अपने अज्ञान को जाहिर करते हैं। हम छोटी सी बात में कह देते हैं कि यह बुराई है, यह भलाई है। और बुराई और भलाई क्या है, अब तक निर्णीत नहीं है। अब तक निर्णीत नहीं है और कभी निर्णीत नहीं होगी।

इसका यह मतलब नहीं है कि मैं आपसे कह रहा हूं कि जो मौज में आए, करें; क्योंकि कुछ निर्णीत नहीं है। तो जाएं, दो-चार आदमियों की हत्या कर दें; क्योंकि पता नहीं भला कर रहे हों। यह मैं आपसे नहीं कह रहा हूं। अगर आपको यह भाव समझ में आ जाए, यह गहन बोध आपके भीतर उतर आए कि निर्णायक हम नहीं हैं, तो आप हत्या तो कर ही नहीं सकेंगे। क्योंकि हत्या तो निर्णय से होती है। हम मान लेते हैं कि यह आदमी बुरा है, मार डालो। इसलिए जिसको हम जितना बुरा मान लेते हैं, उतना ही मारने में आसानी हो जाती है।

इसलिए अदालतें जितने मजे से मारती हैं, उतना कोई नहीं मार सकता। क्योंकि अदालतें बिल्कुल निर्णीत हैं कि यह आदमी बुरा है। उन्होंने तीन साल मुकदमा चलाया, सब एवीडेंस इकट्ठे कर लिए, सब तय हो गया मामला। इसलिए मजिस्ट्रेट जितनी आसानी से हत्या करता है, उतनी इस दुनिया में कोई हत्यारा भी नहीं कर सकता। क्योंकि मजिस्ट्रेट के पक्ष में निर्णय पूरा है; साबित हो गया कि यह आदमी बुरा है।

अभी परमात्मा इस आदमी को जिंदा रखे जा रहा था, अभी उसके सामने भी साबित नहीं था कि यह आदमी बुरा है। लेकिन एक आदमी ने एक मंच पर बैठ कर, काला चोगा पहन कर और दस-पांच और अपने ही जैसे नासमझों की कतार खड़ी करके एक फैसला तय कर लिया कि यह आदमी बुरा है। यह आदमी खतम हो गया, यह मार डाला जाएगा। और इस आदमी की बुराई क्या थी? हो सकता है इसकी बुराई यह थी कि कहा जाता है कि इसने किसी की हत्या की है।

अब यह बड़े मजे की बात है। इसने किसी की हत्या की है, इसलिए यह आदमी बुरा हो गया, इसलिए हम इसकी हत्या करने के हकदार हो गए। लेकिन अदालत आसानी से हत्या कर सकती है, क्योंकि अदालत के हाथ में ज्यादा ताकत है, राज्य की ताकत है। और मजिस्ट्रेट मजे से रात जाकर सो जाएगा निश्चिंत, क्योंकि उसे ऐसा नहीं लगता कि वह जिम्मेवार है। जहां कोई भी जिम्मेवार नहीं होता, वहां हम कुछ भी कर सकते हैं। क्योंकि गैर-जिम्मेवारी सबसे बड़ा उपद्रव है। एक मजिस्ट्रेट बिल्कुल गैर-जिम्मेवार है। वह कहता है, कानून की किताब यह कहती है, बयान यह कहते हैं, गवाह यह कहते हैं, मामला तय हो गया। मैं तो कुछ हूं नहीं, मैं तो सिर्फ बीच का हिसाब लगाने वाला हूं। मैंने हिसाब लगा कर बता दिया कि दो और दो चार होते हैं। इस आदमी की फांसी होनी चाहिए। वह बाहर है। वह घर जाकर सांझ गीत गाएगा, रेडियो सुनेगा, ताश खेलेगा, खाने पर मित्रों को बुलाएगा, गपशप करेगा, रात प्रेम करेगा, सो जाएगा। वह सब करेगा। उसे बिल्कुल कोई मतलब नहीं है, क्योंकि वह जिम्मेवार नहीं है।

वादलेयर ने कहा है कि जब कोई आदमी पक्के भलाई के हिसाब से बुराई करता है, तो उससे बड़ी बुराई कभी भी नहीं होती। तो अगर आपको कोई सच में ही बड़ी बुराई करनी हो, तो पहले आपको सब हिसाब जुटा लेना चाहिए भलाई सिद्ध करने के। फिर आप बुराई कर सकते हैं। फिर कोई कठिनाई नहीं होती।

इस दुनिया में सब युद्ध ऐसे होते हैं, सब राजनीति ऐसी होती है। पहले सिद्ध कर लेना होता है कि यह बुराई है, फिर आप काटिए मजे से, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। फिर किसी को भी काटिए। और फिर मजा यह है कि जिसको आपने काटा है, कल वह आपको काटना शुरू करेगा, तब उसको भी कोई बुराई नहीं दिखती। तब कोई बुराई नहीं दिखती। एक दफा तय हमने कर लिया कि यह भलाई है, फिर हमें स्वतंत्रता मिल जाती है।

पर मैं यह कहता हूं कि धार्मिक आदमी तय ही नहीं करता। वह कहता है कि हम असहाय हैं और हम अज्ञान में हैं। और जगत इतना विराट है कि हम क्या तय करें कि क्या भला है और क्या बुरा है! इस निर्णय को ही नहीं करता। और तब ऐसा व्यक्ति एक गहन संतत्व को उपलब्ध होता है। जिसमें कोई कंडेमनेशन, कोई निंदा, कोई प्रशंसा, दोनों ही नहीं होतीं। ऐसा व्यक्ति एकदम बालवत, लाओत्से ने कहा है, कमनीय, कोमल हो जाता है; बच्चे की भांति सरल हो जाता है।

जो जरूरी प्रश्न थे, वह मैंने आपसे बात कर ली। एक-दो प्रश्न छोड़ देने पड़े हैं, क्योंकि वे सीधे संबंधित नहीं हैं। तो जिन मित्रों के हैं, वे मुझसे अलग आकर बात कर लेंगे तो उचित होगा।

और एक प्रश्न ऐसा भी छोड़ना पड़ा है, जो संबंधित है, लेकिन बहुत बड़ा है। वह पुनर्जन्म के संबंध में है। उसे हम किसी अगली चर्चा में उठा सकेंगे।

अभी बैठेंगे, जाएंगे नहीं। पांच-सात-दस मिनट, आज अंतिम दिन है, तो जितने आनंद से कीर्तन में डूब सकें, डूब जाएं। और जिन मित्रों को सम्मिलित होना हो, वे भी यहां आ जाएं। और मंच पर जो लोग खड़े रहते हैं, वे खड़े न रहें। जिनको खड़े होना है, वे नीचे आ जाएं। मंच पर तो सिर्फ जो नाचें पूरी तरह, वही हों।

तीसवां प्रवचन

एक ही सिक्के के दो पहलू: सम्मान व अपमान, लोभ व भय

Chapter 13 : Part 1

Praise And Blame

Favour and disgrace cause one dismay; what we value and what we fear are as if within the self.

What is meant by speaking thus of favour and disgrace?

Disgrace is being in a low position (after the enjoyment of favour).

The getting (of a favour) leads to the apprehension of losing it, and the losing of it leads to the fear of still greater calamity.

This is what is meant by saying that favour and disgrace cause one dismay.

अध्याय 13 : खंड 1

निंदा और प्रशंसा

सम्मान और अपमान, दोनों से हमें निराशा मिलती है;
हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं,
वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं।
सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का क्या अर्थ है?

सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना ही अपमान है। सम्मान की उपलब्धि से उसे खोने का भय पैदा होता है; और उसे खोने पर और अधिक संकटों के भय का जन्म होता है।

निंदा और प्रशंसा, सम्मान और अपमान, दोनों से हमें निराशा मिलती है। हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं। सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का क्या अर्थ है? सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना ही अपमान है। और सम्मान की उपलब्धि से उसे खोने का भय भी पैदा होता है। और उसे खोने पर और अधिक संकटों के भय का जन्म होता है।"

इस सूत्र को समझने के पहले इस सूत्र के आस-पास और इस सूत्र की प्रतिध्वनि में छिपी बहुत सी बातों को समझ लेना जरूरी है।

सबसे पहली बात तो यह समझ लेना जरूरी है कि न तो सम्मान तथ्य है और न असम्मान। न तो प्रशंसा तथ्य है और न निंदा। प्रशंसा तब हमें अनुभव होती है, जब हमारे अहंकार को कोई फुसलाए, सहलाए। और निंदा हमें तब मालूम होती है, जब हमारे अहंकार को कोई गिराए, चोट पहुंचाए।

सम्मान और अपमान, दोनों ही अहंकार के अनुभव हैं। और अहंकार एक असत्य है। अहंकार जीवन में सबसे बड़ा झूठ है। जो हम हैं, उसका हमें कोई भी पता नहीं है। जो हम हैं और जिसका हमें पता नहीं, उसी को हम आत्मा कहेंगे। और जो हम नहीं हैं और मानते हैं कि हम हैं, उसी का नाम अहंकार है। अहंकार एक काल्पनिक इकाई है। इसके बिना हम जी नहीं सकते, क्योंकि वास्तविक इकाई हमारे पास नहीं है। यह परिपूरक इकाई है। हमारा असली मालिक तो हमें पता नहीं, इसलिए हमने एक झूठा मालिक निर्मित कर लिया है। हमारे असली केंद्र का तो हमें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन बिना केंद्र के जीना बहुत मुश्किल है, असंभव है। इसलिए हमने एक झूठा केंद्र निर्मित कर लिया है। और उसी के पास हम अपने को चलाए रखते हैं, जिलाए रखते हैं।

इस झूठे केंद्र का नाम अहंकार है। इस झूठे केंद्र को जिन बातों से आनंद मिलता है, उन बातों को हम प्रशंसा कहेंगे; और जिन बातों से दुख मिलता है, उन्हें हम निंदा कहेंगे। क्योंकि अहंकार स्वयं ही एक असत्य है, उससे होने वाले सभी अनुभव असत्य हैं।

तो लाओत्से कहता है, जब कोई प्रशंसा करता है, तब हमें लगता है सुख मिल रहा है; और जब कोई निंदा करता है, तो लगता है कि दुख मिल रहा है। और ऐसा लगता है कि कोई दूसरा सुख दे रहा है, या कोई दूसरा दुख दे रहा है। लेकिन सुख और दुख का मूल कारण हमारे भीतर है--वह हमारा अहंकार है। जिस व्यक्ति का कोई अहंकार नहीं है, उसे न तो कोई सुख दे सकता है और न कोई दुख। और जिसे कोई भी सुख-दुख नहीं दे सकता, वही व्यक्ति आनंद में स्थापित हो जाता है।

हमें तो कोई भी सुख दे सकता है और कोई भी दुख। हम तो दूसरों के हाथों में कैद हैं। हम तो दूसरों के हाथों में बंधे हैं। हमारी लगाम सब दूसरों के हाथों में है। जरा सा इशारा, और दुख पैदा हो जाता है। और जरा सा इशारा, हम सुखी हो जाते हैं। जरा सी बात, और आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। और जरा सी बात की बदलाहट, कि चेहरे पर मुस्कान फैल जाती है। हमारे आंसू, हमारी मुस्कान, बाहर से कोई संचालित करता है।

लेकिन लाओत्से कहता है, यह जो बाहर से संचालन हो रहा है, इसका भी गहरा कारण हमारे भीतर है। वह हमारा अहंकार है। अहंकार के कारण ही हम दूसरों से प्रभावित होते हैं। चाहे मित्र, चाहे शत्रु, चाहे प्रशंसा करने वाले और चाहे निंदा करने वाले, दूसरा हमें प्रभावित कर लेता है, क्योंकि हमारे पास अपनी कोई वास्तविक आत्मा नहीं है, एक झूठा केंद्र है, एक सूडो सेंटर है, एक मिथ्या केंद्र है। उस मिथ्या केंद्र की बनावट ही ऐसी है कि वह दूसरे के कब्जे में रहेगा।

इसे थोड़ा समझ लें। अहंकार आपके कब्जे में नहीं है। यह सुन कर हैरानी होगी, क्योंकि हम सब सोचते हैं कि अहंकार मेरा है तो मेरे कब्जे में है। इस भ्रांति में कभी आप मत पड़ना। अहंकार आपके कब्जे में नहीं है। अहंकार दूसरों के कब्जे में है। इसलिए दूसरे के एक-एक शब्द का मूल्य है। रास्ते पर चार लोग नमस्कार कर लेते हैं, तो आपकी छाती फूल जाती है। और चार लोग गालियां दे देते हैं, तो छाती सिकुड़ जाती है। चार लोग आपकी तरफ देख लेते हैं प्रशंसा की आंखों से, तो आपके भीतर फूल खिल जाते हैं। और चार लोग आपकी तरफ प्रशंसा की आंखों से नहीं देखते, निंदा की आंखों से देख लेते हैं, आपके भीतर की सब खुशी मर जाती है, सब सुगंध दुर्गंध हो जाती है, सब फूल कुम्हला कर गिर जाते हैं। यह अहंकार आपके भीतर है, लेकिन आपके हाथों में नहीं है। अहंकार दूसरों के हाथों में है। इसलिए अहंकार सदा दूसरों पर निर्भर है। इसलिए अहंकार सदा ही

दूसरों की खोज करता है। अहंकार अकेला नहीं रह सकता। अगर जंगल के एकांत में आपको घबड़ाहट होती है, तो वह आपकी घबड़ाहट नहीं, वह आपके अहंकार की घबड़ाहट है। अगर कमरे के एकांत में आपको घबड़ाहट होती है और चेष्टा होती है कि साथी खोजें, तो वह आपकी घबड़ाहट नहीं, आपके अहंकार की घबड़ाहट है। एकांत में अहंकार को मुश्किल हो जाता है जीना। अहंकार को प्रतिपल सहारा चाहिए।

और यह मजे की बात है, अहंकार निंदा सह सकता है, एकांत नहीं सह सकता। अहंकार निंदा में भी जी सकता है, एकांत में नहीं जी सकता। अहंकार को प्रशंसा मिले, तब तो कहना क्या! लेकिन अगर प्रशंसा न मिले, तो निंदा भी बेहतर है। लेकिन एकांत एकदम खतरनाक है। क्योंकि निंदा में भी दूसरा आपको मूल्य तो देता ही है। अगर कोई मुझे गाली देता है, तो भी मुझे स्वीकार तो करता ही है। और अगर वह मुझे गाली दिए ही चला जाता है, तो मेरी महत्ता को भी अंगीकार करता है--मैं कुछ हूं! अगर अखबार में एक अपराधी की तरह भी मेरा नाम छपता है, तो भी अहंकार जी सकता है। अगर सड़क से मेरे हाथों में जंजीरें डाल कर मुझे कारागृह ले जाया जाता है, तो भी मेरा अहंकार जी सकता है। लेकिन अकेले में अहंकार नहीं जी सकता।

मोहम्मद, महावीर या बुद्ध या जीसस के एकांत में जाने का जो मौलिक कारण है, वह इस बात की खोज है कि उनके भीतर अहंकार अभी भी बचा है या नहीं। अगर वे अकेले में जी सकते हैं और उन्हें दूसरे की कोई याद नहीं आती, तो उसका अर्थ है, अहंकार विसर्जित हो गया।

महावीर बारह वर्षों तक एकांत में थे। साधारणतः महावीर को मानने वाले सोचते हैं कि समाज को छोड़ कर गए थे। वह बहुत ऊपरी नजर है। समाज से महावीर को कुछ लेना-देना नहीं। महावीर बारह वर्ष इस परख के लिए एकांत में थे कि मेरे भीतर अब भी कोई अहंकार का केंद्र है या नहीं, जो समाज के लिए तड़पता हो, जो मांग करता हो दूसरे की। जब बारह वर्ष के निरंतर परीक्षण से उन्हें ख्याल में आ गया कि अब उनके भीतर दूसरे की कोई मांग नहीं है, तब वे वापस समाज में लौट आए। अब उनके पास अपनी आत्मा थी। अब सड़कों पर कोई फूलमालाएं उनके ऊपर फेंके, या पत्थर मारे, इससे उनके भीतर कोई भी फर्क नहीं पड़ सकता। अब वे अपने मालिक थे।

इसलिए महावीर ने कहा है कि अब मैं जिन हो गया। जिन का अर्थ है, अब मैंने अपने को जीत लिया। अब तक मैं गुलाम था दूसरों का, अब मैं जीता हुआ आदमी हूं। अब तुम कुछ भी करो, तुम मेरे भीतर कोई फर्क न कर पाओगे। मैं तुम्हारी पकड़ के बाहर हूं।

इसे हम ऐसा समझें। आपके भीतर जो अहंकार है, वह आपके चारों तरफ के लोगों के हाथ हैं आपके भीतर फैले हुए। समाज के हाथ हैं आपके भीतर फैले हुए। इसलिए समाज हर आदमी में अहंकार को पैदा करवाता है। यद्यपि मजे की बात है, सभी समाज लोगों को सिखाते हैं विनम्र होने के लिए, लेकिन सभी समाज अहंकार की शिक्षा देते हैं। और मजे की बात यह है कि विनम्रता भी समाजों के द्वारा अहंकार की ही एक व्यवस्था है।

बाप अपने बेटे से कहता है, विनम्र रहो, तो ही तुम्हें सम्मान मिलेगा। गुरु अपने शिष्यों को समझाते हैं, तुम जितने विनम्र रहोगे, जितने सरल रहोगे, उतने प्रशंसा के पात्र बनोगे। यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि प्रशंसा का पात्र तो अहंकार बनता है। विनम्रता को भी हम अहंकार का ही आभूषण बनाते हैं। हम उस आदमी को समाज में प्रतिष्ठा देते हैं, जो विनम्र है। और प्रतिष्ठा देते हैं, इसलिए उसे विनम्र होने में सुविधा भी मिलती है। क्योंकि विनम्रता अहंकार का आभूषण बन जाती है।

समाज बिना अहंकार को परिपुष्ट किए नहीं जी सकता। क्योंकि समाज चाहता है, आपके भीतर समाज के हाथ होने चाहिए। अगर समाज के हाथ आपके भीतर नहीं हैं, तो आप समाज से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए छोटे से बच्चे से लेकर बूढ़े तक, हम हर आदमी को अहंकार सिखा रहे हैं--बहुत-बहुत रूपों में। भले आदमी का अहंकार है, बुरे आदमी का अहंकार है। साधु का अहंकार है, असाधु का अहंकार है। और हम भीतर एक केंद्र निर्मित कर रहे हैं, जिस पर हमारा कब्जा होगा--बाहर के लोगों का।

लाओत्से कहता है कि प्रशंसा हो या निंदा, बाहर से आती मालूम पड़ती है, लेकिन उसका मौलिक कारण हमारे भीतर होता है। जब कोई मुझे गाली देता है, तो उसकी गाली नहीं अखरती; मुझे देता है, इसलिए अखरती है। और जब कोई प्रशंसा करता है, तो उसकी प्रशंसा से मेरा क्या प्रयोजन है? मेरी प्रशंसा करता है, इसलिए प्रयोजन है। प्रशंसा हमारा भोजन है। निंदा भी नकारात्मक भोजन है।

बर्नार्ड शॉ ने कहा है--मजाक में ही सही, लेकिन हम सबके भीतर ऐसा भाव है--बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि मैं स्वर्ग को भी इनकार कर दूंगा, अगर मुझे नंबर दो का स्थान मिले। मैं नर्क जाना भी पसंद करूंगा, अगर मैं नंबर एक होऊं। आप भी अपने मन से पूछें कि स्वर्ग में नंबर दो जगह मिलती है, तो पसंद करिएगा? कि नर्क में नंबर एक जगह मिलती हो, तो पसंद करिएगा? तो आपके भीतर से भी वही बात ख्याल में आएगी कि नंबर एक होना ही बेहतर है, चाहे वह नर्क ही क्यों न हो।

और ऐसा नहीं है कि यह कोई काल्पनिक सवाल है। जिंदगी में हम सब यही कर रहे हैं। नंबर एक होने की कोशिश में पूरा नर्क पैदा कर रहे हैं। लेकिन नंबर एक होना जरूरी है। तो नर्क को हम झेल लेते हैं। एक आदमी धन कमा रहा है, वह कितना नर्क अपने आस-पास पैदा कर लेता है! एक आदमी राजनीति की सीढ़ियां चढ़ रहा है, वह कितना नर्क अपने आस-पास पैदा कर लेता है! लेकिन वह नर्क दिखाई नहीं पड़ता। एक ही बात दिखाई पड़ती है कि मैं नंबर एक कैसे हो जाऊं?

लेकिन लाओत्से कहता है कि नंबर एक भी हो जाओ, प्रशंसा भी मिल जाए, सम्मान भी मिल जाए, तो भी दुख के बाहर न जा सकोगे। क्यों? क्योंकि जितनी प्रशंसा मिलती है, उतनी ही अहंकार की मांग बढ़ जाती है। जितनी प्रशंसा मिलती है, उतनी तो मैं स्वीकार कर लेता हूं, वह टेकेन फॉर ग्रांटेड हो जाती है। जितना सम्मान मुझे मिल जाता है, उतना तो मैं मान लेता हूं कि मिलना ही चाहिए था। आदमी ही मैं ऐसा हूं। मांग आगे चली जाती है।

आज तक दुनिया में ऐसा आदमी नहीं हुआ, जिसे ऐसा अनुभव हुआ हो कि जितना सम्मान उसे मिलता है, वह उसके लिए काफी हो। सदा लगता है कि मैं तो बहुत ज्यादा हूं, लोग अभी समझ नहीं पा रहे हैं। जब लोग पूरा समझेंगे, तब! मेरी अपनी प्रतिमा मेरी अपनी आंखों में सदा उन सब प्रतिमाओं के जोड़ से बड़ी होती है, जो दूसरों की आंखों में दिखाई पड़ती हैं। और मेरी यह प्रतिमा कोई स्थिर बात नहीं है। जितना इसे बढ़ावा मिलता है, उतनी यह बढ़ती चली जाती है। जितनी इसे प्रशंसा मिलती है, उतना इसे पानी मिलता है, खाद मिलती है। और यह प्रतिमा बड़ी होती चली जाती है। एक बात निश्चित है कि जो भी इस प्रतिमा को दिया जाए सम्मान, यह प्रतिमा उसे आत्मसात कर लेती है। और आगे की मांग शुरू हो जाती है।

यह मजे की बात है कि जितना भी सम्मान मुझे मिले, उससे मुझे आनंद तो नहीं मिलेगा, क्योंकि उसे मैं स्वीकार कर लूंगा; उससे मुझे दुख जरूर मिलेगा, अगर फिर उतना सम्मान मुझे न मिले। आज आपने नमस्कार की और कल मुझे नमस्कार नहीं की। तो आज जब नमस्कार आप करेंगे, तब तो मैं मान लूंगा कि मैं आदमी ही ऐसा हूं कि नमस्कार आपको करनी पड़ी। लेकिन कल जब आप नमस्कार नहीं करेंगे, तब मैं दुख जरूर पाऊंगा।

अहंकार से, जो मिलता है, उससे तृप्ति नहीं होती; और जो नहीं मिलता, उससे दुख होता है। जो मिलता है, उसे तो अहंकार स्वीकार कर लेता है, राजी हो जाता है। फिर जो नहीं मिलता, उससे पीड़ा आनी शुरू होती है।

फिर जो मिल जाता है, उसे बचाने का भी बड़ा भारी आकर्षण पैदा होता है। जितनी प्रशंसा मुझे मिल जाए, कम से कम उतनी प्रशंसा मिलती रहे, इसकी फिर सतत चेष्टा शुरू हो जाती है। और तब भय पैदा होता हैः कहीं छिन न जाए! जो आदर मुझे आज मिल रहा है, कल मिले न मिले! तो जो मिल जाता है, उसे बचाना है, सुरक्षा करनी है। फिर भय पकड़ता है। और अगर वह न मिले तो दुख आता है।

तो लाओत्से कहता है, सम्मान मिल जाए तो भी शांति तो नहीं मिलती, और अशांत हो जाता है मन, और दुखी हो जाता है मन। और निंदा मिले, तब तो पीड़ा होती ही है। निंदा तो पीड़ा देगी ही। यह भी थोड़ा समझ लेना चाहिए कि निंदा भी उसी मात्रा में पीड़ा देती है, जिस मात्रा में सम्मान की अपेक्षा होती है।

चौदह सौ साल पहले बोधिधर्म चीन में प्रवेश किया, एक भारतीय भिक्षु। लाखों लोग उसे लेने के लिए चीन की सीमा पर इकट्ठे हुए थे। चीन का सम्राट भी उसके चरणों में सिर रख कर लेटा था। लेकिन जब उसने आंख उठा कर देखा, तो सम्राट हैरान हुआ। और वे लाखों लोग भी परेशानी में पड़ गए। बोधिधर्म एक जूता अपने पैर में पहने था और एक जूता अपने सिर पर रखे हुए था। सम्राट वू ने कहा कि मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि यह आपने एक जूता अपने सिर पर क्यों रख लिया है?

बोधिधर्म ने कहा, संतुलन की दृष्टि से। मुझे पता चला कि सम्राट मेरे चरणों में सिर रखेगा, तो संतुलित कर लेना उचित है। कहीं संतुलन खो न जाए, इसलिए एक जूता मैंने अपने सिर पर रख लिया। तुम्हारे सम्मान को मैं अपने ही हाथों अपनी निंदा करके पोंछ डालता हूं। तुमने जो सम्मान दिया है, उसे मैं ही मिटाए डालता हूं। यह लेन-देन पूरा हो गया। मैंने तुम्हारी प्रशंसा स्वीकार नहीं की। और तुम भलीभांति जान लो कि अगर कल तुम मेरे सिर पर जूता भी मार दोगे, तो निंदा से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। यह जूता रख कर मैं प्रवेश ही कर रहा हूं।

हमारी अपेक्षा ही हमारी निंदा का वजन है। मैं जितनी अपेक्षा करता हूं सम्मान की, उतनी ही निंदा में पीड़ा होगी। अगर मेरी कोई भी अपेक्षा नहीं, तो निंदा में कोई भी पीड़ा नहीं रह जाती। इसलिए इसे ऐसा भी समझ लेंः निंदा की पीड़ा निंदा में नहीं है, निंदा की पीड़ा सम्मान की अपेक्षा में है। जब आप मुझे गाली देते हैं, तो आपकी गाली में पीड़ा नहीं है। मैंने सोचा था कि आप नमस्कार करेंगे और गाली मिली, इसलिए पीड़ा है। सम्मान दुख देता है, भय देता है। और सम्मान की अपेक्षा निंदा में वजन ला देती है, निंदा को भारी कर देती है।

लाओत्से कहता है, सम्मान-अपमान दोनों से हमें निराशा मिलती है। निंदा से तो मिलेगी ही, क्योंकि अहंकार के पैर उखड़ जाते हैं। सम्मान से भी निराशा मिलती है, क्योंकि वही निंदा का भी मूल कारण है। लाओत्से ने कहा है कि अगर तुम चाहो कि कोई तुम्हारी निंदा न करे, तो तुम किसी से सम्मान मत मांगना। वहां बड़ी कठिनाई होती है मन को। यह तो हम भी चाहते हैं कि कोई निंदा न करे; लेकिन दूसरी शर्त मानने का मन नहीं होता। यह कौन नहीं चाहता कि निंदा न की जाए? लेकिन लाओत्से कहता है, अगर चाहते हो कि कोई तुम्हारी निंदा न करे, तो सम्मान की अपेक्षा मत करना। यह दूसरी शर्त मानने का मन नहीं होता। मगर इस दूसरी शर्त पर ही सब कुछ निर्भर है। जरा सी इंच भर आकांक्षा सम्मान की, और हजार इंच निंदा का उपाय हो जाता है।

लाओत्से ने कहा है, तुम सिंहासन पर बैठना ही मत; नहीं तो नीचे गिराए जाओगे। और लाओत्से ने कहा है, असफल होने में भी राजी हो जाना; फिर तुम्हें कोई असफल न कर सकेगा। और हार को ही जीत समझ

लेना; फिर इस जगत में तुम्हें हराने की किसी की क्षमता नहीं है। लेकिन यह शर्त कठिन है। लेकिन यह शर्त मौलिक जरूर है, गहरी जरूर है, जड़ों की बात है। अगर निंदा न चाहिए हो, तो सम्मान मत मांगना।

हम भी कोशिश करते हैं कि निंदा न मिले। हम किस तरह से कोशिश करते हैं? हमारी कोशिश आत्मघाती है। निंदा न मिले, इसकी हमारी कोशिश यह होती है कि हम सम्मान की और व्यवस्था कर लें। निंदा न मिले, इसका मतलब यह होता है कि सम्मान की जितनी-जितनी जरूरतें हैं, वे हम पूरी कर दें। लोग जिस ढंग से सम्मान देते हैं, हम उस ढंग के आदमी हो जाएं। लोग जिस आचरण को सम्मान देते हैं, वैसा हमारा आचरण हो जाए। लोग जिस तरह के ढोंग को सम्मान देते हैं, वैसा ढोंग हम भी आरोपित कर लें। लोग जो चाहते हैं, वह हम पूरा कर दें, ताकि सम्मान मिले।

लेकिन लाओत्से कहता है कि जितनी तुमने यह व्यवस्था की, उतनी ही तुम कठिनाई में पड़ जाओगे। क्योंकि पहली तो बात यह है कि दूसरों के हिसाब से कोई भी व्यक्ति अपने को कभी निर्मित नहीं कर सकता। सब इस भांति का निर्माण अभिनय हो जाता है, थोथा पाखंड हो जाता है। और भीतर से असली आदमी बार-बार प्रकट होता रहता है। फिर दूसरों की इच्छा से जो अपने को निर्मित करता है, वह अगर सम्मान भी पा ले, तो भी अहंकार के अतिरिक्त और कोई तृप्ति नहीं होती। और अहंकार की कोई तृप्ति नहीं है। अहंकार भिखारी का पात्र है। उसे हम कितना ही भरें, वह भरता नहीं। उसकी मांग आगे बढ़ जाती है।

"हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर मौजूद हैं।"

हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं!

प्रलोभन और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा हम आमतौर से देखते नहीं; ऐसा हमें सीधा-सीधा ख्याल नहीं आता। लेकिन जो आदमी लोभ से भरा है, वह आदमी भय से भी भरा हुआ होगा। लोभी भयभीत न हो, ऐसा असंभव है। और जो आदमी भयभीत है, वह बिना लोभ के भयभीत नहीं हो सकता। इसलिए भयभीत आदमी के भीतर लोभ न हो, यह असंभव है। फिर वह भय कोई भी क्यों न हो।

अगर एक आदमी परमात्मा से भी भयभीत है, तो उसका कारण लोभ है। कुछ धर्मों ने आदमी को भयभीत करके ही परमात्मा की तरफ ले जाने की कोशिश की है। ईश्वर-भीरु, गॉड-फियरिंग हम धार्मिक आदमी को नाम देते हैं। गलत है वह नाम। ईश्वर का भय! तो जरूर किसी लोभ के कारण ही होगा। कुछ पाने का लोभ, कुछ खो न जाए, इस बात का लोभ ही भय पैदा करेगा। कहीं नर्क में न डाल दिया जाऊं, कहीं जन्मों-जन्मों तक दुख न झेलना पड़े, इस भय से, कि ईश्वर नाराज न हो जाए, इस भय से--ये सब लोभ के ही रूप हैं। ईश्वर के भय से ही जो संचालित हो रहा है, वह लोभ से ही संचालित हो रहा है। और लोभी का ईश्वर से कोई संबंध नहीं हो सकता। भीरु का भी कोई संबंध नहीं हो सकता।

ईश्वर से तो संबंध उसका हो सकता है, जिसके भीतर लोभ और भय का कोई उपाय न रहा हो। और मैंने जैसा कहा, अहंकार हमारे लोभ और भय का आधार है। लोभ और भय जिसके भीतर नहीं हैं, उसके और ईश्वर के बीच कोई दीवार न रही। इसी क्षण द्वार खुल जा सकता है।

लेकिन लोभ और भय को हम एक ही शक्ल में नहीं देखते, एक ही चीज के दो पहलू की तरह नहीं देखते। लोभ विधायक हिस्सा है और भय निषेधात्मक हिस्सा है। किसी को हम पुरस्कार की बात करते हैं, वह लोभ है। और किसी को दंड की बात करते हैं, वह भय है। और जहां भी पुरस्कार है, वहां दंड है। और जहां भी दंड है, वहां पुरस्कार है। स्वर्ग पुरस्कार है, नर्क दंड है। सम्मान पुरस्कार है, अपमान दंड है।

समाज आपकी लगाम को इसी लोभ और भय के आधार पर संचालित करता है। समाज देगा सम्मान उस व्यक्ति को, जो समाज की माने। समाज देगा दंड उस व्यक्ति को, समाज की जो न माने। समाज सम्मानित करेगा, अगर आप समाज की छाया बन जाएं। समाज अपमानित करेगा, अगर आप समाज से भिन्न और ऊपर होने की चेष्टा करें। इसलिए समाज सुकरात को या जीसस को या महावीर को या मोहम्मद को कष्ट देगा ही। वह कष्ट बिल्कुल स्वाभाविक है; क्योंकि ये व्यक्ति समाज से ऊपर होने की चेष्टा कर रहे हैं। समाज से ऊपर होने की चेष्टा का अर्थ है लोभ और भय से ऊपर होने की चेष्टा। समाज का तो सारा ताना-बाना लोभ और भय से निर्मित है। जो भी व्यक्ति इन दोनों के ऊपर होना चाहेगा, समाज को खतरा दिखाई पड़ेगा।

महावीर कहते हैं, मैंने सब लोभ छोड़ दिया। और महावीर कहते हैं, मैंने सब भय भी छोड़ दिया। यह कब संभव है? यह लोभ और भय का छूटना कब संभव है? यह तभी संभव है जब मुझे दूसरे से कोई मांग न रह जाए--कोई भी मांग न रह जाए। जब मैं अपने भीतर इतना आप्तकाम हो जाऊं, जब अपने भीतर इतना पूरा हो जाऊं कि मुझे पूरा करने के लिए किसी की भी जरूरत न रहे। फिर मैं जीऊं या मर जाऊं, लेकिन मेरी पूर्णता मेरे भीतर हो, तो मेरा लोभ और भय विसर्जित हो जाए।

लेकिन हम तो हर छोटी-बड़ी बात में दूसरे पर निर्भर हैं। अगर कोई प्रेम से मेरी तरफ देख लेता है, तो मेरे भीतर दीया जल जाता है। कोई घृणा से देख लेता है, दीया बुझ जाता है। मेरे पास कोई अपनी रोशनी नहीं है। मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब दूसरों से मिला हुआ, उधार है। मैं एक उधारी हूं, जिसमें दूसरों ने कुछ दान दिया है। इसलिए भयभीत ही रहना पड़ता है। कभी भी अपनी ईंटें वे खींच लें, तो मेरा भवन गिर जाए। इसलिए जिन्होंने मुझे दिया है, उनसे मुझे भयभीत रहना पड़ता है। और जो उन्होंने अभी मुझे नहीं दिया है, उसके लोभ से भरा रहता हूं कि वह भी मुझे मिल जाए। इस भांति कभी अपने को सोचने की कोशिश करें कि आप भी एक मकान हैं, जिसमें दूसरे लोगों ने दान दिया है।

कुछ पुरानी यहूदी बस्तियों में एक नियम था कि जब भी कोई नया यहूदी बस्ती में आए, तो सारा गांव एक-एक रुपया उसे भेंट कर दे--प्रत्येक व्यक्ति। तो अगर दस हजार लोग होते तो दस हजार रुपए उसे मिल जाते। उसकी जिंदगी गतिमान हो जाती। मकान बन जाता, उसकी दूकान खुल जाती। फिर दुबारा कभी कोई नगर में नया आदमी आएगा, तो इस आदमी को भी उसे एक रुपया देना होगा।

यह बढ़िया सामाजिक व्यवस्था थी। गांव में कोई आदमी गरीब नहीं रह सकता था। लेकिन इस घटना को मैं किसी दूसरे प्रयोजन से कह रहा हूं। हम भी इस जिंदगी में आते हैं और चारों तरफ से थोड़े-थोड़े टुकड़े हमें दिए जाते हैं। उन्हीं टुकड़ों के आधार पर हम भीतर अहंकार का भवन निर्माण करते हैं। कुछ पिता देते हैं, कुछ मां देती है, कुछ भाई-बहन देते हैं, कुछ संगी-साथी, गांव के लोग, पड़ोस के लोग देते हैं। और उन सबसे हमारे भीतर अहंकार का भवन निर्मित होता है। फिर भय बना रहता है--कोई भी कभी एक ईंट खींच ले! इसलिए जिनसे हमें मिलता है, उनसे हमें भय भी लगा रहता है, डर भी लगा रहता है। कभी भी, जो दिया है, वह वापस लिया जा सकता है। और जो नहीं दिया है, उस पर आंख भी लगी रहती है कि वह भी हमें मिल जाए।

ये लोभ और भय हमारे भीतर हैं। और इस लोभ और भय से हम जो भी संबंध निर्मित करते हैं जीवन में, वे सभी हमें दुख लाएंगे। उनसे किसी से भी सुख आने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि परतंत्रता गहरे से गहरा दुख है। और अगर मेरी आत्मा भी उधार है और केवल दूसरों के टुकड़ों से निर्मित हुई है... ।

पिकासो ने एक राजनीतिज्ञ का बहुत समय पहले एक चित्र बनाया था। वह चित्र खूबी का था। उस चित्र में उसने रंगों का उपयोग नहीं किया था, केवल अखबार की कतरनों का उपयोग किया था। अखबार के टुकड़े काट-काट कर कैनवास पर चिपका दिए थे और राजनीतिज्ञ का चित्र बना दिया था।

गहरी बात है! राजनीतिज्ञ के पास अखबार की कतरन के अलावा कुछ होता भी नहीं है। वही उसकी आत्मा है। कभी आपने ख्याल किया है, एक राजनीतिज्ञ पद से उतर जाता है, अखबारों में उसकी खबर छपनी बंद हो जाती है, तब आपको यह भी पता लगाना मुश्किल है कि वह आदमी कहां खो गया! आपको अब आखिरी बार उसकी खबर तभी लगेगी, जब वह मरेगा। इस बीच आपको यह भी पता लगाना मुश्किल है कि वह आदमी जिंदा है या मर गया! अब एक ही खबर और छपेगी उसकी। अखबार के टुकड़ों का जोड़ है वह।

लेकिन राजनीतिज्ञ ही ऐसा है, ऐसा नहीं। हम भी सब इसी तरह के जोड़ हैं। अगर मैं आपसे कह दूं कि आप सुंदर नहीं दिखाई पड़ते मुझे, तो आपको इतनी पीड़ा क्यों हो जाती है? या मैं कह दूं कि आप कुरूप हैं, तो आपको इतनी पीड़ा क्यों हो जाती है?

आपको आपके सौंदर्य का कोई भी पता नहीं है। लोगों ने जो कहा है, वही आपका सौंदर्य है। मैं अपनी ईंट वापस खींच लेता हूं, मैं कहता हूं कि नहीं, मुझे आप सुंदर नहीं मालूम पड़ते। और आपके भवन में दरार पड़ जाती है। और भय पैदा हो जाता हैः आज एक आदमी ने खींचा है, कल दो आदमी खींच लेंगे, परसों तीन आदमी खींच लेंगे। सौंदर्य का क्या होगा?

मैं आपको बुद्धिमान मानता हूं, तो आप बुद्धिमान हैं। और अगर मैं आपको बुद्धू कह दूं, तो आप बुद्धू हो जाते हैं। नाराजगी क्यों पैदा होती है? नाराजगी इसलिए पैदा होती है कि आप मेरे ही सहारे बुद्धिमान हैं। अगर बुद्ध को कोई कह दे कि बुद्धिमान नहीं हो, तो बुद्ध हंस कर उस गांव से निकल जाएंगे। क्योंकि बुद्ध किसी और के कारण बुद्धिमान नहीं हैं; अपने ही कारण हैं, जो भी हैं।

हमारी पीड़ा क्या है निंदा में? हमारी पीड़ा यही है कि हम अपने भीतर कुछ भी नहीं हैं। दूसरों ने जो बनाया है, वही हैं। तो चार आदमियों के मत पर निर्भर है हमारा होना। यह हमारा अहंकार लोगों के मतों से तय हुआ है। लोग कहते हैं। इसलिए हम बहुत डरते हैं इस बात से कि लोग क्या कहेंगे! क्योंकि हम और कुछ हैं ही नहीं।

ध्यान करने लोग मेरे पास आते हैं, तो वे कहते हैं कि अगर हमने ऐसा किया, तो लोग क्या कहेंगे?

ये लोग कौन हैं? ये लोग वे ही हैं, जिन्होंने आपका अहंकार निर्मित किया है। आपको भय है उनका, कहीं वे अपने ख्याल न बदल दें, कहीं वे यह न कहने लगें कि अब तुम पागल मालूम पड़ते हो। यह तुम क्या कर रहे हो? तो हमारी आत्मा उनके हाथ उधार रखी है। वे जो कहेंगे, वही हम हो जाएंगे। वे जो कह रहे हैं, वही हम हैं।

हमारा अपना कोई होना है? हमारी कोई प्रामाणिक सत्ता, कोई आथेंटिक एक्झिस्टेंस है? या सिर्फ हम कागज की कतरन हैं? लोगों के मतों का संग्रह हैं?

लेकिन अभी जैसे हम हैं, वह हमारी स्थिति यही है। इसलिए निंदा पीड़ा देती है। क्योंकि निंदा हमें चुभती है, हमारे भवन को गिराती है। प्रशंसा सुख देती मालूम पड़ती है, क्योंकि भवन मजबूत होता है।

मैंने सुना है, बैनिटो मुसोलिनी एक रात एक सिनेमागृह के पास से गुजरता था। सहज ही ख्याल हो आया; फिल्म तो शुरू हो चुकी थी, अंधेरे में ही जाकर वह सिनेमागृह में बैठ गया। जब फिल्म समाप्त हुई, तो

मुसोलिनी को सम्मान देने के लिए इटली की फिल्मों में आखिर में मुसोलिनी का चित्र आता था और सारे लोग खड़े होकर मुसोलिनी का जय-जयकार करते थे--सारे लोग खड़े होकर मुसोलिनी का जय-जयकार किए।

स्वभावतः, मुसोलिनी तो बैठा रहा, बहुत प्रसन्न हुआ कि सारे लोग जय-जयकार कर रहे हैं। पड़ोस के व्यक्ति से उसने पूछा कि बहुत आनंद तुम्हें आ रहा है जय-जयकार करने में? उस आदमी ने कहा कि बेहतर होगा कि तुम भी खड़े होकर आनंद मनाओ। क्योंकि आनंद न मनाना बहुत मंहगा और खतरनाक है। भीतरी इच्छा तो मेरी भी यही है कि जिस शान से तुम बैठे हो, उसी शान से मैं भी बैठा रहूं। लेकिन तुम हो कौन? तुम्हें शायद पता नहीं कि तुम इटली में हो और मुसोलिनी का जय-जयकार किए बिना जीना मुश्किल है। इच्छा तो मेरी भी यही होती है कि जैसे तुम शान से पैर पसारे बैठे हो, मैं भी बैठा होता।

एक और मुझे स्मरण आता है कि चर्चिल बोलने जा रहा था पार्लियामेंट में। उसकी गाड़ी बिगड़ गई है रास्ते पर। उसने एक टैक्सी ली। लेकिन टैक्सी वाले ने कहा कि मैं नहीं ले जा सकूंगा; क्योंकि अभी-अभी रेडियो पर, चर्चिल का व्याख्यान पार्लियामेंट में हो रहा है, वह आने वाला है। मैं खुद उसको सुनने के लिए रुका हूं। चर्चिल के प्राण स्वभावतः फूल गए होंगे, खुशी का अंत न रहा, कि ड्राइवर इनकार कर रहा है ले जाने से सवारी को! चर्चिल ने एक बड़ा नोट निकाल कर उसके हाथ में दिया और कहा कि खुश हूं तुम्हारी बात से, लेकिन चलना जरूरी है। उस आदमी ने चर्चिल को बिठा कर गाड़ी शुरू कर दी। चर्चिल ने पूछा कि व्याख्यान का क्या करोगे? तो उस आदमी ने कहा, भाड़ में जाए चर्चिल!

एक क्षण पहले इस आदमी ने चर्चिल को जैसा फुला दिया होगा, एक क्षण बाद...। लेकिन शायद चर्चिल को भी ख्याल में न आया हो कि यह आत्मा का फूल जाना और सिकुड़ जाना एक टैक्सी ड्राइवर के हाथ में है। यह कुंजी चर्चिल के अपने हाथ में नहीं है। यह टैक्सी ड्राइवर के हाथ में है।

हमारी सब कुंजियां बदल गई हैं। सब कुंजियां बदल गई हैं। और जिसे हम मालिक कहते हैं, वह भी अपने गुलामों के हाथ में अपनी कुंजियां दिए हुए है।

यह जो स्थिति है, इस स्थिति के लिए ही यह सूत्र हैः "हम जिसे मूल्यवान समझते हैं और जिससे भयभीत होते हैं, वे दोनों ही हमारे स्वयं के भीतर हैं। सम्मान और अपमान के संबंध में ऐसा कहने का यह अर्थ है कि सम्मान-प्राप्ति के बाद निम्न स्थिति में होना अपमान है।"

अपमान का अर्थ ही क्या है? तुलनात्मक है, रिलेटिव है। अगर कोई व्यक्ति सम्मान की एक स्थिति में रहा है, तो फिर उससे नीचे की स्थिति में उसका अपमान है। तो जब भी हम कोई स्थिति खोज रहे हैं, हम साथ ही अपमान की स्थिति भी खोज रहे हैं। जब भी हम ऊपर चढ़ रहे हैं, तब हम नीचे गिरने की स्थिति भी खोज रहे हैं। जब भी हम किसी भी दिशा में, किसी भी मार्ग से, किसी भी ढंग से अपने अहंकार को भर रहे हैं, तभी हम इसके विपरीत भी रास्ता निर्मित कर रहे हैं।

वह जो विपरीत रास्ता निर्मित होता है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। जब मैं सम्मान के सिंहासनों पर चढ़ता हूं, तो मुझे यह दिखाई नहीं पड़ता कि मैं अपने गिरने का उपाय भी कर रहा हूं। मैं ही कर रहा हूं। और जब मैं गिरूंगा, तब मैं जिम्मेवारी दूसरों पर रखूंगा। और जब मैं चढ़ रहा था, तब जिम्मेवारी मेरी थी।

हर ऊंचाई के बाद नीचाई है। और हर पहाड़ के बाद खाइयां हैं। और हर शिखर, खाइयों के बिना कोई भी शिखर खड़ा नहीं हो सकता। जब कोई पहाड़ बहुत ऊंचा होने की कोशिश कर रहा है, तब उसके पास खाई निर्मित होती चली जाती है। जब कोई सफलता का शिखर चढ़ता है, तो अपने चारों तरफ असफलता की खाई

भी खोद लेता है। वह प्रतिपल चल रही है। इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। इससे बचने का एक ही उपाय है कि शिखर पर चढ़ने की बात ही न हो। जो गिरने से बचना चाहता हो, वह चढ़े ही नहीं।

यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि चढ़ना हम सब चाहते हैं, गिरना हम नहीं चाहते। दूसरे हिस्से को हम स्वीकार नहीं करते। जन्म होता है, तो हम मृत्यु को स्वीकार नहीं करते। जन्म के साथ ही मृत्यु मौजूद हो गई। जन्म लिया, उसी दिन मैंने मरने को भी स्वीकार कर लिया। लेकिन जीवन भर मैं कोशिश करूंगा कि मौत न हो। मेरी कोशिश से कोई फल होने वाला नहीं है। क्योंकि जन्म के साथ ही मौत घट गई। वह भविष्य की घटना नहीं है अब। वह भी अतीत का ही हिस्सा हो गई। मौत हो ही चुकी। क्योंकि एक छोर नहीं हो सकता, दूसरा छोर भी होगा ही। सफलता के साथ ही असफलता भी घटित होती है और सम्मान के साथ ही निंदा भी।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि जितने ज्यादा लोग सम्मानित होते हैं, ठीक उसी अनुपात में निंदा चारों तरफ व्याप्त हो जाती है। कोई और उपाय नहीं है। संतुलन है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है इस जगत में, जिसने प्रशंसा ही पाई हो और निंदा नहीं। सम्राटों को छोड़ दें, राजनीतिज्ञों को छोड़ दें, धनपतियों को छोड़ दें, उन्हें तो निंदा मिलती है। लेकिन महावीर, बुद्ध या कृष्ण और क्राइस्ट को ही सोचें। चाहे उन्होंने सम्मान न चाहा हो और चाहे उन्हें निंदा से कोई भी फर्क न पड़ा हो, लेकिन लोगों ने सम्मान दिया, तो लोगों ने अपमान भी दिया। और उन दोनों की मात्रा बराबर थी। उस मात्रा में कमी नहीं हो सकती।

इसलिए कृष्ण को अगर एक तरफ भगवान मानने वाले लोग हुए, तो एक तरफ कृष्ण को नर्क में डालने वाले लोग भी होंगे ही। अगर एक ओर बुद्ध को लोग कहेंगे परम ज्ञानी, तो बुद्ध को परम अज्ञानी कहने वाले लोग भी होंगे ही। और अगर एक तरफ जीसस को लोग ईश्वर का पुत्र कहेंगे, तो ठीक दूसरी तरफ जीसस को सूली पर लटका देने वाले लोग भी होंगे ही।

और जब जीसस को सूली पर लटकाया, तो लटकाने वालों ने दो और लोगों को भी साथ में सूलियां दी थीं--दो चोरों को। जीसस को बीच में लटकाया था, दोनों चोरों को दोनों तरफ लटकाया था। चोरों के साथ सूली दी थी, ताकि यह भी वहम न रह जाए कि जीसस को हम कोई पैगंबर मान कर सूली नहीं दे रहे हैं। एक आवारा, समाज-बहिष्कृत, एक उपद्रवी, एक विक्षिप्त आदमी समझ कर सूली दे रहे हैं।

और लाओत्से से अगर कोई पूछेगा, तो लाओत्से कहेगा कि यह होना ही था; यह होगा ही। जीसस को कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिए जीसस सुखी और दुखी नहीं होते। लेकिन जीसस के शिष्य बहुत दुखी हुए जब जीसस को सूली लगी। क्योंकि जीसस के शिष्यों का ख्याल था, ईश्वर का पुत्र! उसको सूली कैसे लग सकती है? लेकिन उन्हें पता नहीं था कि जब उन्होंने ईश्वर का पुत्र घोषित किया, तभी दूसरा वर्ग भी संतुलन करने को जगत में निर्मित हो जाता है।

जगत एक गहन संतुलन है। यहां प्रत्येक चीज हमेशा संतुलित होती रहती है। असंतुलन कभी भी नहीं हो पाता। क्या है उपाय?

लाओत्से के हिसाब से एक ही उपाय है। और वह उपाय यह है कि जो हमारी खोज है, उसमें हम विपरीत को भी देख लें। और जब आप सम्मान खोजते हों, तो ठीक से समझ लें कि आप अपमान भी खोज रहे हैं। जब आप लोभ करते हों, तब ठीक से सोच लें कि भय को पैदा कर रहे हैं। जब आप प्रेम पाने चलते हों, तो ठीक से समझ लें कि आपने घृणा की भी मांग उपस्थित कर ली। जब आप जीवन को जोर से पकड़ें, तब समझ लेना कि अब आप मौत को जोर से पकड़ रहे हैं।

विपरीत का दर्शन लाओत्से का बुनियादी सूत्र है। लाओत्से कहता है, हर घड़ी वह जो विपरीत है, उसे भी देख लेना। एक को ही मत देखना। जीवन द्वंद्व है। दूसरे को भी ठीक से देख लेना। और वह दूसरे से बच न सकोगे। जिसने एक को चुना, उसने दोनों को चुन लिया। और जिसको दोनों से बचना हो, उसे एक को भी नहीं चुनना चाहिए।

लाओत्से को उसके मुल्क का सम्राट प्रधानमंत्री बना लेना चाहता था। लाओत्से भागता फिरता था एक गांव से दूसरे गांव। जब दूसरे गांव में सम्राट के लोग पहुंचते, तो पता चलता कि वह तीसरे गांव चला गया। सम्राट भी हैरान था। प्रधानमंत्री बनाने के लिए उत्सुकता थी उसकी। और यह आदमी भाग क्यों रहा है? आखिर सम्राट ने एक संदेशवाहक भेजा और लाओत्से से कहा, व्यर्थ मत भागो, परेशान मत होओ। इतना ही मुझे बता दो कि मैं तुम्हें एक महान सम्मान के पद पर बिठाना चाहता हूं, इस राष्ट्र का बड़े से बड़ा सम्मान कि तुम्हें मैं प्रधानमंत्री बनाना चाहता हूं, तुम भाग क्यों रहे हो? लाओत्से ने खबर भिजवाई कि सम्मान से मैं नहीं भाग रहा हूं। मैं उस अपमान से भाग रहा हूं, जो हर सम्मान के पीछे छिपा है।

लेकिन वह दूसरा हमें दिखाई नहीं पड़ता। उस दूसरे को देख लेना ही बुद्धिमत्ता है। हर जगह--कोई एक आयाम में नहीं, सभी आयाम में दूसरा सदा मौजूद है। अगर कोई व्यक्ति जीवन को ऐसा बना ले कि उसे हर जगह यह द्वंद्व दिखाई पड़ जाए... । और ध्यान रहे, अगर द्वंद्व का दर्शन हो जाए, तो वासना क्षीण हो जाएगी।

बहुत लोग समझाते हैं कि वासना छोड़ दो, इच्छा छोड़ दो। लेकिन लाओत्से का सूत्र बहुत गहरा है। वह नहीं कहता इच्छा छोड़ दो। वह कहता है, इच्छा के जो विपरीत है, उसको भी ठीक से देख लो। इच्छा छूट जाएगी। अगर मुझे सच में यह दिखाई पड़ जाए कि मित्र बनाना शत्रु बनाने का उपाय है, अगर यह सच में मुझे दिखाई पड़ जाए, इसमें धोखा न हो, यह बौद्धिक समझ न हो, यह ऊपरी-ऊपरी न हो, यह गहरा और प्राणों में उतर जाए और मुझे दिखाई पड़ जाए कि मित्र बनाना शत्रु बनाने का पहला चरण है, तो मित्र न बनाऊं, ऐसी कोई चेष्टा न करनी पड़ेगी।

इस संबंध में एक मजे की बात ख्याल में लेनी चाहिए।

मित्र बनाना मेरे हाथ में है, शत्रु न बनाना मेरे हाथ में नहीं है। अगर मैंने पहला कदम उठा लिया, तो दूसरा कदम मेरे हाथ में नहीं है। पहला कदम हम सब उठा लेते हैं। और चाहते हैं, दूसरा कदम उठने से रुक जाए। वह हमारे हाथ में नहीं है। सफलता मैंने मांग ली। वह मैं न मांगता, वह मेरे हाथ में थी। लेकिन असफलता फिर मेरे हाथ के बाहर है। सम्मान मैंने चाह लिया, वह मेरे हाथ में था। दूसरी चीज मेरे हाथ में नहीं है।

बुद्ध ने बहुत मजे की बात कही है। बुद्ध ने कहा है, मृत्यु की फिकर छोड़ो, जन्म से बचने की कोशिश करो। क्योंकि जन्म ले लिया, तो फिर मृत्यु हाथ में नहीं है। तो बुद्ध के पास एक ब्राह्मण आया है। और वह ब्राह्मण कह रहा है, मुझे जन्म-मरण से कैसे छुटकारा मिले? तो बुद्ध ने कहा, मरण तो तू मरण पर छोड़; तू जन्म से ही छुटकारा पा ले।

आमतौर से हम कहते हैं, जन्म-मरण से कैसे छुटकारा मिले? मरण आपके हाथ में नहीं है। उससे आप छुटकारा नहीं पा सकते। आपके हाथ में पहला सूत्र है--जन्म। उससे आप छुटकारा पा सकते हैं। और जन्म न हो, तो मरण का कोई उपाय नहीं रह जाता। जन्म होगा, तो ही मृत्यु हो सकती है।

तो बुद्ध ने उससे कहा, तू यही फिक्र कर कि जन्म कैसे न हो। जन्म क्यों होता है?

उस आदमी की समझ में नहीं आया। क्योंकि वह जो कह रहा था, जन्म-मरण से छुटकारा हो, उसमें जन्म का उसे ख्याल ही नहीं था। असल में, मरण से ही छुटकारा चाहता था। उसने कहा कि मृत्यु से बहुत भय लगता है, बड़ी घबड़ाहट होती है, इसीलिए तो छुटकारा चाहता हूं।

वह आदमी जन्म से छुटकारा नहीं चाहता, वह असल में ऐसा जन्म चाहता है, जहां फिर मृत्यु न हो। वह ऐसा जीवन चाहता है, जिसमें मृत्यु न हो। वह जन्म से छुटकारा नहीं चाहता, वह मृत्यु से छुटकारा चाहता है।

हम भी, हमारे सब के सोचने का यही भ्रांत ढंग है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, दुख से कैसे छुटकारा हो? नहीं हो सकता उनका, जब तक कि वे मुझसे पूछने न आएं कि सुख से कैसे छुटकारा हो? क्योंकि सुख चुनाव है; दुख परिणाम है। सुख मेरे हाथ में है; दुख मेरे हाथ में नहीं है।

ऐसा समझें कि मैं दौड़ूं और फिर मैं कहूं कि मेरे पीछे जो छाया दौड़ती है, वह न दौड़े। इस छाया के दौड़ने से कैसे छुटकारा हो? तो मैं कहूंगा, मेरा दौड़ना न दौड़ना मेरे हाथ में है, लेकिन मेरी छाया का दौड़ना न दौड़ना मेरे हाथ में नहीं है। मैं न दौड़ूं, छाया न दौड़ेगी। मैं दौड़ूं, तो फिर छाया को नहीं रोका जा सकता।

दुख छाया है; सुख चुनाव है। सम्मान चुनाव है; अपमान छाया है, परिणाम है। हम सभी परिणाम से बचना चाहते हैं। हम बीज बोते हैं, पानी डालते हैं, खाद डालते हैं। और पौधा अंकुरित न हो, इसकी चेष्टा में लगे रहते हैं। सारी चेष्टा करते हैं कि पौधा अंकुरित हो और मन में रहता है कि पौधा अंकुरित न हो। बोते हैं सुख। दुख उसका ही अंकुर है। लेकिन ये दोनों इकट्ठे नहीं दिखाई पड़ते। जिसे दिखाई पड़ते हैं, वह आदमी धार्मिक हो जाता है। धार्मिक की मेरी परिभाषा यही है कि जिसे द्वंद्व में दो नहीं दिखाई पड़ते, एक ही दिखाई पड़ने लगता है। सुख और दुख एक ही चीज के छोर हो जाते हैं। सम्मान-अपमान एक ही चीज के छोर हो जाते हैं।

और ध्यान रहे, यह जैसे ही दिखाई पड़ता है, वैसे ही मुझे पता चल जाता है कि मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता हूं! कहां तक मेरी सामर्थ्य है और कहां से मेरी सामर्थ्य समाप्त हो जाती है!

मैं अपने हाथ में एक धनुष-बाण लिए खड़ा हूं। जब तक तीर मैंने नहीं छोड़ा है, मेरे हाथ में है। छोड़ देने के बाद फिर मेरे हाथ में नहीं है। मेरे भीतर एक शब्द घना हुआ। जब तक मैंने नहीं बोला है, तब तक मैं मालिक हूं। मैंने बोल दिया, फिर मेरी मालकियत खो गई।

पहला कदम सुख, सम्मान, सत्ता के चुनाव का है। दूसरा कदम अनिवार्य है। फिर दूसरे कदम से नहीं बचा जा सकता।

लाओत्से कहता है कि अगर ये दोनों दिखाई पड़ जाएं, तो क्या होगा परिणाम?

अगर ये दोनों एक साथ दिखाई पड़ जाएं, एक ही दिखाई पड़ जाएं, तो जीवन से वासना तिरोहित हो जाएगी। क्योंकि कोई भी दुख नहीं चाहता, हालांकि सभी को दुख मिलता है। और कोई भी दुख नहीं चाहता। सभी सुख चाहते हैं, और किसी को सुख मिलता नहीं है। और आदमी बहुत अदभुत है, गणित भी नहीं लगाता। कोई दुख नहीं चाहता जगत में, और सभी दुखी हैं। और सभी सुख चाहते हैं, और कोई आदमी छाती पर हाथ रख कर नहीं कह पाता कि मैं सुखी हूं। तो जरूर कहीं न कहीं कोई बुनियादी भूल हो रही है। और वह बुनियादी भूल एक से नहीं हो रही है, शायद सभी से हो रही है।

वह भूल यही हैः दुख को कोई भी नहीं चाहता, सुख को सभी चाहते हैं। सुख को चुनते हैं, और दुख परिणाम बन जाता है। सुख की तरफ दौड़ते हैं, और दुख हाथ में आता है। जिसे दुख से बचना है, उसे सुख से बचना सीखना पड़े। यही साधना है। और सुख से बचना सीखना बड़ा कठिन मालूम पड़ेगा। लेकिन इतना कठिन

नहीं है जितना दुख। जब रास्ते पर मुझे कोई नमस्कार करे, तभी मुझे बच जाना चाहिए। तभी मुझे देख लेना चाहिए कि कहीं कोने-किनारे पर गाली भी खड़ी होगी। तभी उस नमस्कार में मुझे उसकी प्रतिध्वनि भी सुन लेनी चाहिए, जो विपरीत है, तो मैं बच जाऊंगा। जरूरी नहीं है कि गाली न मिले, गाली फिर मिल सकती है। लेकिन तब मेरे लिए अर्थहीन है। मेरे भीतर उससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। तब गाली देने वाले की और नमस्कार करने वाले की क्रियाएं होंगी, वे उनकी ही होंगी; उनसे मेरा कोई संबंध नहीं जुड़ेगा। मेरा संबंध न जुड़े, तो मैं मुक्त हो गया। और ऐसी मुक्ति में ही आनंद की धारा अवतरित होती है।

तो लाओत्से बहुत गहराई में मनुष्य के बंधन की चर्चा कर रहा है। यदि मुझे इन दोनों में--सुख और दुख में, सम्मान और अपमान में, प्रशंसा और निंदा में--एक का ही दर्शन होने लगे, जन्म और मृत्यु में एक की ही झलक मिलने लगे, तो जगत के प्रति दौड़ती हुई वासना के लिए कोई गति नहीं रह जाएगी।

एलिस नाम की लड़की स्वर्ग में पहुंच गई है--परियों के देश में। रानी के पास खड़ी है वृक्ष के नीचे। खड़ी कहना ठीक नहीं, दोनों दौड़ रही हैं। रानी भी दौड़ रही है, एलिस भी दौड़ रही है। घंटों दौड़ने के बाद एलिस ऊपर देखती है--वृक्ष जहां था, वहीं है। और वे दोनों भी जहां थीं, वही हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ। और पसीने-पसीने हो गई हैं। तो एलिस रानी से पूछती है, दिन भर हो गया दौड़ते-दौड़ते, थक गए हम, अजीब है तुम्हारा मुल्क, इतना दौड़ कर भी और कहीं पहुंचना नहीं हो रहा है! वृक्ष वहीं के वहीं, हम वहीं के वहीं। तो रानी उससे कहती है, इतने दौड़ने के कारण ही वहीं के वहीं हैं; अगर न दौड़ते, तो सोच, क्या हालत होती? इतना दौड़ने के कारण ही वहीं के वहीं हैं; सोच, न दौड़ते, तो क्या हालत होती?

हम सारे लोग भी दौड़ते हैं जिंदगी भर और वहीं के वहीं खड़े रहते हैं। और हमारे मन में भी यही तर्क होता है कि इतना दौड़ कर भी जब वहीं के वहीं खड़े हैं; अगर न दौड़ते, तो और फजीहत होती। इतनी सम्मान की कोशिश की, तब भी इतना अपमान मिला; अगर सम्मान की कोशिश न करते, तो क्या हालत होती! इतना धन खोजा, फिर भी निर्धन के निर्धन बने हैं; अगर खोजते ही न, तब तो नर्क में पड़ जाते।

लेकिन लाओत्से से अगर एलिस पूछती, तो लाओत्से कहता कि मत दौड़, और रुक कर देख! क्योंकि जब दौड़ कर भी यहीं की यहीं बनी है और कहीं पहुंचना नहीं होता, तो रुक कर भी देख लेना चाहिए।

सारी दुनिया में बस दो ही तरह के तर्क हैं। एक तो यह एलिस को परियों की रानी ने जो तर्क दिया। यह सामान्य बुद्धि का तर्क है, जो सदा यही कहती है। वह यही कहती है कि इतनी मेहनत उठा कर, इतना दौड़ कर ये कंकड़-पत्थर हाथ लगे हैं; अगर बिल्कुल न दौड़ें, तो बहुत मुसीबत हो जाएगी। दौड़ते तो रहो। दूसरा तर्क बुद्ध और महावीर और लाओत्से का है। वे कहते हैं, रुक कर भी देखो! दौड़ो ही मत।

रानी से एलिस फिर पूछती है, तो इस वृक्ष से आगे जाने के लिए क्या किया जाए? रानी ने बहुत मजेदार बात कही। और वह बात यह है, रानी ने उससे कहा कि जितनी तुममें ताकत हो, जितनी तुम दौड़ सकती हो, अगर उतनी ताकत से तुम दौड़ो, तो इस वृक्ष के नीचे बने रहने के लिए काफी है। जितनी तुममें ताकत है, अगर उतनी पूरी ताकत लगा कर दौड़ो, तो तुम इस वृक्ष के नीचे बनी रहोगी। अगर इससे आगे जाना है, तो उससे दुगुनी ताकत से दौड़ना जरूरी है।

लेकिन उससे दुगुनी ताकत हो कैसे सकती है? रानी ने कहा कि जितनी तुममें ताकत है, अगर पूरी ताकत से दौड़ो, तो इस वृक्ष के नीचे बनी रहोगी। अगर इससे आगे जाना है, तो दुगुनी ताकत से दौड़ना जरूरी है। एब्सर्ड है, बेमानी है, कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि दुगुनी ताकत का कोई प्रयोजन न रहा। जब पूरी ताकत से दौड़

कर यहीं बने रहोगे, तो दुगुनी ताकत कहां से आएगी? लेकिन एलिस को भी तर्क जंचा। और उसने कहा, यह बात ठीक है। तो हम दुगुनी ताकत से दौड़ने की कोशिश करें।

हमको भी यही जंचता है। जब हम इस जीवन में सम्मान की बहुत कोशिश करते हैं और सम्मान नहीं मिलता, तो हम सोचते हैं, और दुगुनी ताकत से कोशिश करें। यश चाहते हैं और नहीं मिलता, तो सोचते हैं, और पूरी ताकत लगा दें; शायद ताकत कम लगाई जा रही है। लेकिन ध्यान रहे कि जितनी ज्यादा ताकत यश के लिए लगाई जाएगी, उतना ज्यादा अपयश मिलेगा। और जितनी सत्कार और सम्मान के लिए चेष्टा की जाएगी, उतना ही असम्मान और असत्कार मिलेगा। क्योंकि जीवन द्वंद्व के बीच एक संतुलन है।

तो क्या हम खड़े रह जाएं? क्या हम रुक जाएं इस दौड़ से?

लाओत्से नहीं कहता कि रुक जाएं। यह थोड़ी बारीक बात है, इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लेना चाहिए कि लाओत्से नहीं कहता कि हम रुक जाएं। क्योंकि लाओत्से कहता है कि अगर हम रुकेंगे भी, तो वह भी हमारी एक दौड़ होगी, किसी लोभ के कारण रुकेंगे। अगर हम रुकेंगे भी, तो इस वजह से कि ठीक है, फिर निंदा नहीं मिलेगी, अपमान नहीं मिलेगा, असफलता नहीं मिलेगी। अगर हम रुकेंगे भी, तो हमारे मन में वही लोभ सम्मान का, यश का, प्रतिष्ठा का, सफलता का, धन का, अमरत्व का बना रहेगा।

लाओत्से कहता है, मैं रुकने के लिए नहीं कहता। मैं तो दौड़ने की व्यर्थता को देखने के लिए कहता हूं। उसके परिणाम में रुकना हो जाता है; रुकने के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती।

बुद्ध से कोई पूछता है, क्या हम इच्छाओं को छोड़ दें, तो शांति मिलेगी? तो बुद्ध कहते हैं, यह एक नई इच्छा है। यह एक नई इच्छा है। तो बुद्ध कहते हैं, मैं तुम्हें इच्छाएं छोड़ने को नहीं कहता, इच्छाओं को समझने को कहता हूं। क्योंकि अगर तुम समझ लोगे, तो तुम इच्छा नहीं कर पाओगे। तब तुम ऐसा नहीं पूछोगे कि क्या मैं इच्छाएं छोड़ दूं, तो मुझे शांति मिलेगी? यह शांति भी इच्छा का एक विषय बन जाती है। इच्छा जब नहीं होती, तब जो होता है, उसका नाम शांति है। और जब सुख-दुख की कोई खोज नहीं होती, तब जो होता है, उसका नाम आनंद है।

लाओत्से का सूत्र बहुमूल्य है। और इस सूत्र को प्रयोग करने के लिए न तो किसी विशेष साधना में लगने की जरूरत है, न किसी क्रियाकांड में पड़ने की जरूरत है। इस सूत्र को तो आप चलते, उठते, बैठते, काम करते, सोते, खाना खाते, बाजार में निकलते, दुकान पर बैठते पूरा कर सकते हैं। सिर्फ इतना ही ख्याल रखें: पहला कदम आप न उठाएं, तो दूसरा कदम कभी नहीं उठेगा। पहले कदम पर सजग हो जाएं, दूसरे कदम से छुटकारा हो जाएगा। पहले कदम उठाने से अपने को देख लें कि कहां आप जा रहे हैं।

च्वांगत्से के घर बच्चा पैदा हुआ--वह लाओत्से का शिष्य था--च्वांगत्से के घर बच्चा पैदा हुआ। और च्वांगत्से बाहर अपने दरवाजे पर बैठ कर छाती पीट कर रोने लगा। गांव के लोग धन्यवाद देने आए थे। उन्होंने कहा, च्वांगत्से, यह तुम क्या कर रहे हो? तो च्वांगत्से ने कहा कि मेरे गुरु ने कहा है, पहला कदम ही जब उठे, तभी सम्हल जाना। मैंने जन्म में मृत्यु देख ली, इसलिए रो रहा हूं।

फिर उस च्वांगत्से की पत्नी मरी, कई वर्षों बाद। सम्राट आया। तब वह अपने झाड़ के नीचे बैठ कर ढपली बजा कर गीत गा रहा था। सम्राट शोक प्रकट करने आया है। उसने कहा कि पागल हो च्वांगत्से! दुखी मत हो, इतना ही काफी है। लेकिन गीत गाने का यह कोई मौका है? च्वांगत्से ने कहा, एक बार मैंने जन्म में मृत्यु देखी थी, इस बार मैंने मृत्यु में जन्म को भी देख लिया।

इस सूत्र को जीवन के सारे पहलुओं पर हम देखते रहें। और धीरे-धीरे आप पाएंगे कि बहुत कुछ बिना छोड़े छूट गया, बहुत कुछ बिना प्रयास के ही गिर गया। और एक दिन अचानक आदमी पाता है कि वह खड़ा है, दौड़ बंद हो गई। और एक दिन अचानक पाता है, वह अहंकार, जो दूसरों के सहारे निर्मित था, बिखर गया। और उसके बिखरते ही उसकी प्रतीति शुरू होती है, जो हमारा वास्तविक अस्तित्व, हमारी आत्मा है।

आज इतना ही। लेकिन अभी पांच मिनट रुकेंगे। सब कीर्तन करेंगे। फिर आप जाएं। जिन मित्रों को भी कीर्तन में आना है, वे ऊपर आ जाएं। और आप लोगों में से भी कोई सम्मिलित होना चाहें, तो नीचे मंच के नीचे आ जाएं। बैठे मत रहें कोई, ताली बजाएं और कीर्तन में साथ दें।

इकत्तीसवां प्रवचन

अहंकार-शून्य व्यक्ति ही शासक होने योग्य

Chapter 13 : Sutra 2

Praise And Blame

What does it mean to say that,
What we value and what we fear are as if within the self?
We have fear because we have a self.
When we do not regard that self as the self,
what have we to fear?
Therefore he who values the self as he does
his own self--
May then be entrusted with the government
of the world;
And he who loves the world as his self--
To his care may the world then be entrusted.

अध्याय 13 : सूत्र 2

प्रशंसा और निंदा

इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान दोनों ही
स्वयं के भीतर हैं?
हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है।
जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते,
तो डर किस बात का होगा?
इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना कि स्वयं को, तो ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है।
और जो संसार को उतना ही प्रेम करे, जितना स्वयं को,
तो उसके हाथों में संसार की सुरक्षा सौंपी जा सकती है।

कल के सूत्र के संबंध में एक प्रश्न है। प्रश्न महत्वपूर्ण है, मात्र जिज्ञासा के कारण नहीं, बल्कि साधना की दृष्टि से भी।

पूछा है, सुख की कामना का त्याग ही दुखों से निवृत्ति है। सुख का, सम्मान का, जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है। दुख, अपमान तथा मृत्यु परिणाम मात्र हैं, उनसे बचना हमारे बस की बात नहीं है। जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है, यह कैसे संभव है? यह जानना चाहता हूं। मुझे इतना ही जानना है कि मेरा पुनर्जन्म न हो, यह मेरे हाथ में कैसे है?

इस संबंध में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए। पहली तो बात यह, सुख की कामना का त्याग, ऐसा मैंने नहीं कहा। कल के सूत्र को समझाते समय आपकी बहुतों की समझ में ऐसा ही आया होगा कि मैंने कहा है, सुख की कामना का त्याग। ऐसा मैंने नहीं कहा, ऐसा लाओत्से का प्रयोजन भी नहीं है। ऐसा बुद्ध और महावीर का भी अर्थ नहीं है। ऐसा क्राइस्ट का भी अभिप्राय नहीं है। लेकिन क्राइस्ट हों, कि बुद्ध, कि लाओत्से, जब भी वे इस तरह की बात कहते हैं, तो हमारी समझ में यही आता है। तो पहली बात तो यह समझ लें कि बुद्ध क्या कहते हैं, वह अक्सर हमारी समझ में नहीं आता। और जो हमारी समझ में आता है, वह अक्सर बुद्ध का कहा हुआ नहीं होता।

सुख की कामना का त्याग, ऐसा लाओत्से का अभिप्राय नहीं है। सुख को दुख की तरह जान लेना, ऐसा लाओत्से का अभिप्राय है। इन दोनों में फर्क है। क्योंकि त्याग भी आदमी तभी करता है, जब कुछ मिलने का प्रयोजन हो। त्याग भी एक सौदा है। और त्याग के गहरे में भी लोभ छिपा है।

एक आदमी संसार का त्याग कर सकता है मोक्ष पाने के लिए। लेकिन उस आदमी से कहो, मोक्ष है ही नहीं, मोक्ष मिलेगा नहीं; फिर संसार का त्याग? फिर संसार का त्याग असंभव है। एक आदमी सुख का त्याग कर सकता है आनंद पाने के लिए। लेकिन सुख का त्याग आनंद पाने के लिए सुख का त्याग ही नहीं है। क्योंकि आनंद में हमारी समस्त वासना पुनः शेष रह गई; सिर्फ और नए आयाम में प्रवेश कर गई। सुख का त्याग नहीं; सुख दुख है, ऐसा जान लेना। और जब कोई ऐसा जान लेता है कि सुख दुख है, तो त्याग करना नहीं पड़ता, त्याग हो जाता है।

त्याग करना और त्याग हो जाना, बुनियादी रूप से भिन्न बातें हैं। जो करता है, वह तो लोभ के कारण ही करता है, किसी और सुख की कामना में ही करता है। इसलिए कर ही नहीं पाता। लेकिन हो जाए, तब फिर बिना कामना के हो जाता है। मेरे हाथ में कंकड़-पत्थर रखे हुए हूं मैं। अगर कोई मुझसे कहे कि इनका त्याग करो, तो मैं जरूर पूछूंगा, किसलिए? क्योंकि त्याग का कोई अर्थ ही नहीं है, अगर किसलिए का उत्तर न दिया जा सके। इसलिए तथाकथित धार्मिक साधु-संन्यासी, संत, लोगों को समझाते रहते हैं कि छोड़ो, और तत्काल बताते रहते हैं कि किसलिए।

लाओत्से यह नहीं कह रहा है। मेरा भी अभिप्राय यह नहीं है। हाथ में कंकड़-पत्थर हैं। लाओत्से कहता है, जानो कि ये कंकड़-पत्थर हैं, पहचानो कि ये पत्थर हैं। लाओत्से नहीं कहता कि त्यागो। क्योंकि त्याग की बात उठाते ही प्रश्न उठेगा, क्यों?

लेकिन हाथ में कंकड़-पत्थर हैं, उन्हें मैं हीरे-जवाहरात समझ रहा हूं। हीरे-जवाहरात समझ रहा हूं, इसलिए पकड़े हुए हूं। अगर कंकड़-पत्थर दिख जाएं, तो उन्हें मुझे छोड़ना नहीं पड़ेगा, मेरी मुट्ठी खुल जाएगी। उन्हें छोड़ने के लिए मुझे रंच-मात्र भी चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी। उनके छोड़ने की नई वासना भी नहीं बनानी पड़ेगी कि इन्हें छोडूं, त्याग करूं। नहीं, कोई प्रयत्न नहीं होगा। अप्रयास, एफर्टलेसली, निष्प्रयत्न, पत्थर पत्थर दिखाई पड़ जाए, तो मुट्ठी खुल जाएगी। पत्थर नीचे गिर जाएगा। और अगर पत्थर इस भांति नीचे गिरा हो, तो क्या मैं पीछे किसी से कह सकूंगा कि मैंने पत्थरों का त्याग कर दिया? अगर पत्थर ही थे, तो त्याग का कोई सवाल न रहा। और अगर मैं पीछे कहता हूं कि मैंने त्याग कर दिया, तो मुझे वे पत्थर अभी भी स्वर्ण ही थे, हीरे-जवाहरात ही थे।

भोगी और त्यागी की दृष्टि में बहुत फर्क होता नहीं। भोगी और त्यागी एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े रहते हैं, उनकी दृष्टि में कोई फर्क नहीं होता। भोगी भी मानता है कि हीरे-जवाहरात हैं, इसलिए पकड़े हुए हूं। त्यागी भी मानता है कि हीरे-जवाहरात हैं, इसलिए छोड़ रहा हूं। अगर हीरे-जवाहरात नहीं हैं, तो छोड़ने का कोई मूल्य नहीं रह गया। लेकिन त्यागी भी कहता फिरता है कि मैंने कितना त्याग किया। त्यागी भी हिसाब रखता है उतना ही, जितना भोगी रखते हैं। भोगी हिसाब रखता है, कितने लाख मेरे पास हैं। त्यागी हिसाब रखता है, कितने लाख मैंने छोड़े। लेकिन वे लाख अभी लाख हैं, इसमें कोई भेद नहीं है। मूल्यवान हैं, इसमें भी कोई भेद नहीं है।

बल्कि सच तो यह है कि भोगी कभी भी वस्तुओं को उतना मूल्य नहीं देता, जितना त्यागी देता है--तथाकथित त्यागी। क्यों? क्योंकि भोगी तो पीड़ित भी रहता है मन में कि वस्तुओं को पकड़े हूं, भोग रहा हूं, अज्ञानी हूं, पापी हूं। त्यागी भी वस्तुओं को ही भोगता है, त्याग के नाम से। क्या-क्या उसने छोड़ा है, वह उसके अहंकार का हिस्सा हो जाता है। लेकिन अब पाप का, अब अहंकार को चोट पहुंचने का भी कोई कारण नहीं। त्यागी के पास जो सिक्के हैं, वे और भी चमकदार हो जाते हैं। भोगी के सिक्के तो चोर भी चुरा ले, त्यागी के सिक्के कोई भी चुरा नहीं सकता। भोगी की संपदा में तो कोई भागीदार भी बन जाए, त्यागी की संपदा में कोई भागीदार नहीं बन सकता। त्यागी की संपदा बहुत सुरक्षित है।

नहीं, लाओत्से का यह अर्थ नहीं है कि सुख की कामना का त्याग करें। लाओत्से कह रहा है कि सुख क्या है, इसे जानें। जानते ही सुख छूट जाता है, त्याग हो जाता है। जो त्याग करते हैं, वे अज्ञानी हैं। जिनसे त्याग हो जाता है, वे ज्ञानी हैं।

ज्ञानियों ने कभी भी कोई त्याग नहीं किया है। यह सुन कर थोड़ी कठिनाई होगी मन को। क्योंकि हमारे सोचने का ढंग यह हो गया है कि हम सोचते हैं, त्याग करने से आदमी ज्ञानी होता है। बात उलटी है, ज्ञानी होने से त्याग घटित होता है। ज्ञानियों ने त्याग कभी नहीं किया। ज्ञानियों से त्याग होता है सहज।

इसलिए उसकी कोई पीछे रूप-रेखा भी नहीं छूट जाती, कोई घाव भी नहीं छूट जाता। जैसे सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता है, ऐसे ज्ञानी के पास जो व्यर्थ है, वह गिर जाता है। सूखे पत्ते के गिरने की खबर वृक्ष को होती ही नहीं; क्योंकि घाव कोई छूटता नहीं। पता ही नहीं चलता, कब पत्ता गिर गया।

लेकिन कच्चा पत्ता तोड़ें वृक्ष से, तो वृक्ष को भी चोट पता चलती है। जिसको भी त्याग का पता चलता हो, जान लेना कि अभी वह त्याग की स्थिति में पहुंचा नहीं था। जिसे ख्याल भी आता हो कि मैंने त्याग किया, समझ लेना, अभी भोग के वर्तुल से बाहर वह नहीं हुआ है।

लाओत्से कहता है, सुख में देख लेना दुख को, जन्म में देख लेना मृत्यु को, सम्मान में अपमान को। विपरीत की झलक को खोजना। मिल जाएगी; वहीं मौजूद है, छिपी है। जरा आंख गड़ा कर देखने की बात है, जरा ध्यानपूर्वक खोजने की बात है। सुख दुख हो जाएगा। फूल के पीछे कांटा निकल आएगा। फिर छोड़ना नहीं पड़ेगा। छोड़ने की बात ही लाओत्से नहीं करता। छोड़ने की भी कोई बात करनी है! अगर फूल में कांटा निकल आए, तो छूट गया।

इसलिए पहली बात तो यह समझ लें कि सुख की कामना का त्याग ही दुखों से निवृत्ति है, ऐसा नहीं। सुख को दुख जान लेना ही--दुखों से निवृत्ति है, ऐसा नहीं--सुख-दुख दोनों से निवृत्ति है।

हमारा मन बहुत अदभुत है। हम सुख को भी छोड़ने को तैयार हो सकते हैं, अगर दुख से निवृत्ति मिलती हो। लेकिन ध्यान रखें, दुख से निवृत्ति अकेली नहीं होती, सुख और दुख दोनों से निवृत्ति होती है। दुख को छोड़ने को तो कोई भी तैयार है। दुख को छोड़ने के लिए कोई प्रश्न ही नहीं है। हम सुख को भी छोड़ने को तैयार हो जाते हैं कभी, अगर दुख से निवृत्ति मिलती हो। लेकिन वह भी दुख को ही छोड़ने की चेष्टा है। सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--ऐसा जो जानेगा, वह यह भी जान लेगाः या तो दोनों बचेंगे, या दोनों छूट जाएंगे। निवृत्ति होगी, तो दोनों से; और प्रवृत्ति रहेगी, तो दोनों की।

तीसरी बात, "मुझे तो इतना ही जानना है कि मेरा पुनर्जन्म न हो।"

लेकिन क्यों? पुनर्जन्म क्यों न हो? क्योंकि जीवन में दुख है, जीवन में पीड़ा और संताप है, इसलिए पुनर्जन्म न हो? सुख की दौड़ जारी ही बनी रहती है। और पुनर्जन्म न हो, यह भविष्य की आकांक्षा हो गई। और वासना सदा ही भविष्य में होती है। किसी भी तरह की वासना हो, सदा भविष्य में होती है। कल मुझे कुछ हो! वासना सदा कल के बाबत होती है।

कभी आपने सोचा कि वासना वर्तमान में हो नहीं सकती। वासना का वर्तमान में होने का उपाय नहीं है। क्योंकि वासना को जगह चाहिए, स्पेस चाहिए। वर्तमान में कोई जगह तो नहीं होती, एक क्षण आपके हाथ में होता है। वह इतना कम होता है और वासना आपके पास इतनी होती है, उसमें नहीं फैल सकती। इसलिए वासना भविष्य खोजती है--कल, परसों, आने वाले वर्ष। लेकिन यह तो हद्द हो गई वासना की--आने वाला जन्म! तो बहुत भविष्य का विस्तार है।

न; आने वाला जन्म न हो, यह भी वासना है। और जब तक वासना है, तब तक जन्म होता ही रहेगा।

यही दुविधा है धर्म की। धर्म की गहरी से गहरी दुविधा यही है कि हम जब भी धर्म को समझते हैं, तब तत्काल अपनी वासनाओं की भाषा में रूपांतरित कर लेते हैं। धर्म ऐसा नहीं कहता कि पुनर्जन्म न हो, इसकी कोशिश करो। धर्म ऐसा कहता है कि जीवन क्या है, इसे समझ लो, तो पुनर्जन्म नहीं होगा। वह सिर्फ कांसीक्वेंस है, परिणाम है। फल नहीं, परिणाम! फल की तो कामना करनी होती है, परिणाम की कामना नहीं करनी होती। कुछ और करना होता है, परिणाम घटित हो जाता है।

बुद्ध का पुनर्जन्म नहीं होता; इसलिए नहीं कि बुद्ध जीवन भर यह चेष्टा करते रहे कि मेरा पुनर्जन्म न हो। अगर यह चेष्टा होती, तो बुद्ध का पुनर्जन्म होता ही। क्योंकि जिसका मन भविष्य में दौड़ रहा है, उसका मन वासना में दौड़ रहा है। अगर ठीक से समझें, तो भविष्य का कोई अस्तित्व जगत में नहीं है--सिवाय मनुष्य की वासना के। भविष्य समय का हिस्सा नहीं है, मनुष्य की वासना का हिस्सा है। इसलिए जब भी कोई व्यक्ति वासनाशून्य हो जाता है, उसके लिए भविष्य मिट जाता है। भविष्य ही नहीं, समय ही मिट जाता है।

जीसस से कोई पूछता है, तुम्हारे स्वर्ग में सबसे खास बात क्या होगी?

तो जीसस कहते हैं, देयर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा।

जिसने पूछा था, वह पूछ रहा था, कल्पवृक्ष होंगे? वह पूछ रहा था, अप्सराएं होंगी? वह पूछ रहा था, सुख ही सुख होगा? शराब के झरने, चश्मे होंगे? कुछ ऐसी बात पूछ रहा था कि क्या होगी खास बात, जिसके लिए यह सब छोड़ने का उपद्रव मुझे करना पड़े? उसको जीसस की बात बिल्कुल न जंची होगी कि देयर शैल बी टाइम नो लांगर--समय नहीं होगा। न केवल नहीं जंची होगी, बल्कि बहुत भयभीत भी कर गई होगी। क्योंकि जहां समय नहीं होगा, वहां कोई वासना नहीं हो सकती, कोई कल्पवृक्ष नहीं हो सकता। हम तो स्वर्ग भी बनाते हैं, तो हमारी वासना का ही विस्तार है। हम तो जो भी करते हैं--हमारा धर्म, हमारा मोक्ष, हमारा स्वर्ग--हमारी वासना का विस्तार है। वे सब हमारे संसार के ही परिशिष्ट हैं। उनमें बहुत भेद नहीं है।

मित्र पूछते हैं, मेरा पुनर्जन्म न हो।

क्यों? क्यों न हो पुनर्जन्म? यही कारण न कि जीवन में दुख है! अगर जीवन में दुख है, तो पुनर्जन्म की फिक्र छोड़ें; जीवन के पूरे दुख को समझ लें। जीवन के दुख को जो समझेगा, उसके भीतर धीरे-धीरे वासना क्षीण होने लगेगी। क्योंकि सब ओर दुख है, चाहूं भी तो क्या चाहूं? चाहने योग्य कुछ भी नहीं है। सब चाह दुख में ले जाती है।

सब चाह दुख की ही चाह जिस दिन मालूम पड़ने लगे, जिस दिन कहीं से भी यात्रा करूं और दुख में पहुंच जाऊं, कुछ भी सोचूं और दुख में गिर जाऊं, कुछ भी चाहूं और दुख में पहुंच जाऊं, जिस दिन सब तरफ से सब यात्रा-पथ दुख में ही ले जाने वाले दिखाई पड़ने लगें, उस दिन क्या मैं चाहूंगा कि पुनर्जन्म न हो? फिर वह भी एक चाह होगी; और सभी चाह दुख में ले जाती हैं। क्या मैं चाहूंगा कि परमात्मा मुझे मिल जाए? वह भी एक चाह होगी; और सभी चाहें दुख में ले जाती हैं।

नहीं, तब मैं चाहूंगा ही नहीं। बस इतना ही होगा कि मैं कुछ भी न चाहूंगा। जिस क्षण कोई भी चाह नहीं, उसी क्षण समय मिट जाता है, भविष्य टूट जाता है, अतीत बिखर जाता है। यह वर्तमान का क्षण ही रह जाता है सब कुछ। उस क्षण में अस्तित्व तो है, जीवन नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें। उस क्षण में अस्तित्व तो है, जीवन नहीं है। और जिस व्यक्ति ने जीवन में छिपे अस्तित्व को जान लिया, उसका फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि पुनर्जन्म जीवन का है। इसे हम ऐसा समझें कि जीवन है समस्त वासनाओं का जोड़। अस्तित्व के ऊपर, बीइंग के ऊपर जो वासनाओं का जोड़ है, वही जीवन है। पुनर्जन्म आपके इसी जीवन का सिलसिला है। वह कोई नई बात नहीं है। शरीर नया है, आपकी वासना पुरानी है। और वासना इतनी तीव्र है अभी भी कि उसे नए शरीर की जरूरत पड़ती है। इसलिए नया शरीर मिल जाता है।

जिस क्षण कोई भी वासना न रही, उस क्षण नए शरीर की जरूरत न रही। तो पुनर्जन्म असंभव हो जाता है। लेकिन पुनर्जन्म न हो, ऐसी चाह मत बनाएं। अन्यथा वह कभी भी असंभव न होगा। चाह को समझें, चाह के तथ्य को पहचानें और चाह के तथ्य में गहरे उतरें, तो पाएंगे कि चाह ही दुख है।

इसलिए मैंने कहा कि जीवन का चुनाव हमारे हाथ में है। पुनर्जन्म हमारे हाथ में नहीं है। अगर हम जीवन में चुनाव करते चले जाते हैं, वासना को जगाते चले जाते हैं, तो पुनर्जन्म होगा ही। उसका कोई उपाय नहीं है। अगर मैं सुख को पकड़े चला जाता हूं, तो दुख आएगा ही। अगर मैं सम्मान मांगे चला जाता हूं, तो अपमान निष्पत्ति बनेगी ही। दूसरी बात के संबंध में सोचना व्यर्थ है। पहली ही बात मेरे हाथ में है।

उसका अर्थ हुआ कि अगर मैंने चाह की, तो मैं दुख पाऊंगा ही। अगर मैंने चाह ही न की... । लेकिन ख्याल रखना, बारीक बात है थोड़ी सी, वहीं भूल हो जाती है। तो हम सोचते हैं कि चलो, अब हम ऐसा करें कि चाह न करें। तब हमारी यही चाह बन जाती हैः तो चलो, अब हम चाहें उस स्थिति को जहां कोई चाह नहीं होती। इच्छारहित हो जाऊं, यही चाह बन जाती है। तब हम पुनः चक्कर के भीतर खड़े हो गए।

नहीं, सिर्फ समझें, सिर्फ पहचानें, अपनी एक-एक चाह के पीछे चल कर देख लें। दुख उठाएं, अनुभव करें। और किसी दिन जब यह अनुभव गहरा उतर जाएगा और सब चाहें व्यर्थ हो जाएंगी, उस क्षण नई चाह पैदा नहीं होगी कि मैं अचाह कैसे हो जाऊं। उस दिन कोई चाह न होगी। अचाह चाहों का अभाव है, नई चाह नहीं। मुक्ति नया बंधन नहीं है, समस्त बंधनों का व्यर्थ हो जाना है। चाह है जीवन, अचाह है मुक्ति। और यह हमारे हाथ में है। यह जाग जाना हमारे हाथ में है। यह जब भी कोई चाहे, तब जाग सकता है। मजे की बात है कि चाह तो हमें बहुत दुख देती है; फिर भी हम नहीं चाहते, इसलिए नहीं जागते। चाह बहुत दुख देती है। सब सुख दुख देते हैं। और सभी फूल कांटे की तरह छाती में चुभ जाते हैं और घाव बन जाते हैं। लेकिन हम उनकी तरफ देखते भी नहीं; हम नए फूलों की तलाश में लग जाते हैं उनको भूलने के लिए। एक जगह से दुख मिलता है, तो हम सुख का दूसरा दरवाजा खोलने लगते हैं। एक दरवाजे से नर्क खुलता है, तो हम दूसरा दरवाजा स्वर्ग का खोजने लगते हैं।

हम फिक्र ही नहीं करते कि जहां नर्क का दरवाजा खुला, एक क्षण रुकें और सोचें कि कल इस दरवाजे को भी स्वर्ग का समझ कर ही खोला था। यह नर्क हो गया। और भी पहले जो-जो दरवाजे स्वर्ग के समझ कर खोले थे, वे नर्क हो गए। अब मैं फिर नए स्वर्ग के दरवाजे को खोलने चला। अगर यह मुझे दिखाई पड़ जाए। यह मेरे कहने से नहीं दिखाई पड़ सकता आपको। लाओत्से के कहने से आपको दिखाई नहीं पड़ सकता। यह आपके ही जीवन का निरंतर दुख का अनुभव ही गहन हो, तो दिखाई पड़ सकता है।

लेकिन हमारे मन की तरकीब यह है कि हम दुख को भूलना चाहते हैं और सुख को याद रखना चाहते हैं। हम दुख को भूलना चाहते हैं। लोग शराब पी रहे हैं, सिनेमागृह में बैठे हुए हैं, संगीत सुन रहे हैं, नाच देख रहे हैं। पूछें, क्या? तो वे कहते हैं कि भुला रहे हैं। कुछ भुला रहे हैं; दुख भुला रहे हैं।

दुख भुलाने योग्य नहीं है, दुख ठीक से जानने योग्य है। जो दुख को ठीक से जान लेता है, वह सुख से छूट जाता है। जो दुख को ठीक से जान लेता है, वह चाह से छूट जाता है। जिसकी कोई चाह नहीं, उसका फिर कोई जन्म नहीं है। अस्तित्व होगा उसका--शुद्धतम। वही शुद्धतम अस्तित्व आनंद है।

लेकिन भूल मत करना आप। उस आनंद का आपके सुख से कोई भी संबंध नहीं है। उस आनंद में दुख तो खो ही जाते हैं, सुख भी खो जाता है। इसलिए बुद्ध ने तो उस शब्द का प्रयोग करना भी पसंद नहीं किया, आनंद शब्द का। क्योंकि आनंद से सुख का आभास मिलता है। अगर शब्दकोश में जाएंगे खोजने, तो आनंद का कुछ भी अर्थ किया जाए, उसमें सुख रहेगा ही। पारलौकिक सुख होगा, अनंत सुख होगा, शाश्वत सुख होगा, लेकिन सुख होगा ही। तो शब्दकोश ज्यादा से ज्यादा इतना ही भेद कर सकता है कि यह क्षणभंगुर सुख है, वह शाश्वत होगा। लेकिन होगा सुख। बुद्ध ने शब्द ही छोड़ दिया था। बुद्ध कहते थे शांति, आनंद नहीं। वे कहते थे, सब शांत हो जाएगा, सब शांत हो जाएगा। उस शांत क्षण को आप जो भी चाहें कहें। उस शांत क्षण में कोई भविष्य नहीं, कोई यात्रा नहीं है। अस्तित्व के केंद्र-बिंदु से मिलन है।

यह हाथ में है। यह हाथ में इसलिए है कि समझ आपके पास है। यह हाथ में इसलिए है कि समझ की धारा को आप चाहें तो अभी दुख पर केंद्रित कर सकते हैं। उसी का नाम ध्यान है। समझ की धारा को दुख पर

फोकस करने का नाम ध्यान है। और जो भी व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों पर अपनी समझ की धारा को नियोजित कर लेता है, वह त्याग को उपलब्ध हो जाता है, और उस स्थिति को, जहां फिर कोई पुनरागमन नहीं है।

आज का सूत्रः "इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान, दोनों ही स्वयं के भीतर हैं? हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है। जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते, तो फिर डर क्या?"

यह सूत्र थोड़ा कठिन है। इसे थोड़ा दो-तीन दिशाओं से समझना पड़े।

लाओत्से किसी व्यक्तिगत आत्मा में भरोसा नहीं रखता, वह ठीक बुद्ध जैसा है। और यह मजे की बात है; इसीलिए बुद्ध के पैर हिंदुस्तान में न जम सके, लेकिन लाओत्से के चीन में जम गए। बुद्ध के पैर हिंदुस्तान में न जमे। बुद्ध ने गहरी से गहरी बात कही, जो किसी मनुष्य ने कभी कही हो। लेकिन बात इतनी गहरी हो गई कि हम किनारे पर खड़े लोगों को बिल्कुल भी समझ में न आई। वह इतनी गहरी आवाज हो गई कि वह आवाज हमारे पास तक न पहुंची। और पहुंची, तो बिल्कुल विकृत हो गई। और हमने जो अर्थ निकाले, वे हमारे अर्थ थे।

बुद्ध ने कहा कि यह आत्मा की बातचीत भी बंद करो; क्योंकि यह ख्याल भी कि मैं आत्मा हूं, मुझे अस्तित्व से तोड़ देता है और अलग कर देता है।

कठिन हुआ। क्योंकि अगर आत्मा भी नहीं है, तो हमें तो लगा कि सब खो गया। बुद्ध से लोग जाकर पूछते थे कि अगर आत्मा भी नहीं है, तो फिर किसलिए शील? और किसलिए समाधि? और किसलिए साधना? और यह इतना उपाय किसलिए? अगर आत्मा है, तो समझ में आता है कि आत्मा को पाने के लिए। वही लोभ की भाषा हमारी काम करती है। आत्मा को पाने के लिए एक आदमी त्याग कर रहा है, तपश्चर्या कर रहा है, समझ में आता है। बुद्ध से लोग पूछते हैं कि आत्मा भी नहीं है, तो फिर त्याग किसलिए? तपश्चर्या किसलिए? बुद्ध से लोग पूछते हैं, अगर आत्मा भी नहीं है, तो मोक्ष किसका होगा? और अगर मुक्त भी हो गए और आत्मा ही नहीं है, तो बचेगा क्या?

लोगों का पूछना भी ठीक है, क्योंकि लोग लोभ की भाषा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं समझ सकते।

बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा होना ही तुम्हारा दुख है; तुम हो, तब तक तुम दुखी रहोगे।

यह बहुत कठिन हो गया। चाह छोड़ देना भी समझ में आ सकता है। कम से कम मैं तो बचूंगा। चाह भी छोड़ दूं, मैं तो बचूंगा, चाहने वाला तो बचेगा। सब छोड़ दूं, लेकिन कम से कम मैं तो बचूंगा। और बुद्ध कहते हैं कि तुम अगर बचे, तो सब बच गया। क्योंकि तुम्हारे होने में ही सारा संसार है। तुम हो ही चाहों का एक जोड़!

कभी सोचा आपने कि अगर आप अपनी सब चाहें निकाल कर अलग-अलग रख दें, तो क्या आपकी हालत वैसी न हो जाएगी, जैसे प्याज के छिलके कोई छीलता चला जाए। अपनी सब चाहें अलग रख दें, आप बचेंगे पीछे? एक बात पक्की है कि आप जो भी अपने को समझते हैं, वह तो नहीं बचेगा। और जो बचेगा, उसका आपको कोई भी पता नहीं है। आपकी तरफ से तो शून्य ही बचेगा। आप तो खो जाएंगे।

इसलिए भारत में भी बुद्ध की बात की गहराई में जड़ें नहीं पकड़ पाईं। क्योंकि जब बुद्ध ने आत्मा को ही इनकार कर दिया और कह दिया कि आत्मा भी नहीं है--तुम हो ही नहीं, यही जान लेना ज्ञान है, बुद्ध ने कहा--तो कठिन हो गया। चीन में लाओत्से के कारण ही, बुद्ध की बात जब पहुंची लाओत्से के बाद, तो चीन पकड़ पाया। क्योंकि लाओत्से ने बीज बोए थे, जिसमें लाओत्से ने कहा थाः हम इस कारण ही भयभीत हैं, इस कारण

ही लोभ से भरे हैं कि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है। यह जो मेरे भीतर मैं का भाव है, मैं हूं, यही हमारे दुख, लोभ, भय का कारण है।

वस्तुतः मैं नहीं हूं; सब है। उसमें मैं भी हूं, मैं की तरह नहीं। जैसे एक लहर सागर में है, उस तरह। लहर है सागर में; अलग नहीं, भिन्न नहीं। फिर भी भिन्न दिखाई पड़ती है, फिर भी भिन्न है। लहर जुड़ी है सागर से भीतर, फिर भी बाहर से आकृति अलग मालूम पड़ती है। यह जानते हुए भी कि लहर सागर है, फिर भी लहर को हम अलग ही जानते हैं। मैं लहर हूं। लेकिन अगर कोई लहर समझ ले कि मैं अलग हूं, तो कष्टों की यात्रा शुरू हो गई। अगर लहर समझ ले कि मैं अलग हूं, तो फिर लहर का जन्म महत्वपूर्ण हो गया, फिर लहर की मृत्यु महत्वपूर्ण हो गई। और अब लहर के सिवाय कौन बचाएगा उसे मृत्यु के भय से?

लहर देखेगी चारों तरफः लहरें गिर रही हैं, मिट रही हैं, समाप्त हो रही हैं। कब्रें बनती जा रही हैं उसके चारों तरफ। वह भी जानती है कि मेरी कब्र करीब है, मैं भी मिटने के करीब हूं। जब लहर आकाश को छूने के उद्दाम वेग से भरी है, तब भी उसे पता है कि पैर खिसके जा रहे हैं, जमीन मिटी जा रही है, जल्दी ही कब्र मेरी बन जाएगी। चारों तरफ कब्रें बनती चली जा रही हैं। अभी जो लहर आकाश छूती मालूम पड़ती थी, वह खो गई और मिट गई। मैं भी मिटूंगी। यह लहर को मिटने का जो डर है, यह मौत का जो भय है, यह किस कारण है?

यह इस कारण नहीं है कि लहर मिटेगी। यह इस कारण है कि लहर ने अपने को सागर से अलग जाना। अगर लहर अपने को सागर से एक जाने, तो फिर कैसा मिटना? फिर तो जब लहर नहीं थी, तब भी थी; और जब नहीं रहेगी, तब भी होगी। फिर तो यह बीच का जो खेल है, यह खेल ही हो गया। इसे गंभीरता से लेने की कोई जरूरत न रही। लहर सागर है, अगर ऐसा जानें, तो फिर कोई भय नहीं है।

भय तो एक ही बात का है कि मैं अलग हूं। तो फिर मुझे बचाना पड़ेगा, इंतजाम करना पड़ेगा। लड़ना पड़ेगा मृत्यु से। और लड़-लड़ कर भी तो आदमी मिट ही जाएगा। बचने का तो कोई उपाय नहीं है।

तो लाओत्से कहता है, "इसका क्या अर्थ है कि सम्मान और अपमान, दोनों ही स्वयं के भीतर हैं? हम इस कारण भयभीत होते हैं, क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना होना समझ लिया है।"

अच्छा हो कि हम इसको कहें, अंग्रेजी का वाक्य ज्यादा बेहतर हैः वी हैव फियर्स, बिकाज वी हैव ए सेल्फ। हम भयभीत होते हैं, क्योंकि हमें लगता है कि हम आत्मा हैं। व्हेन वी डू नॉट रिगार्ड दि सेल्फ एज दि सेल्फ--और जब हम आत्मा को आत्मा नहीं मानते, जब मैं मैं को मैं नहीं मानता--व्हाट हैव वी टु फियर? और तब भय कहां? फिर भयभीत होने की क्या जगह रही? मैं हूं, यही हमारे भय का आधार है।

क्यों? क्योंकि अगर मैं हूं, तो मुझे मेरे मिटने का डर समा ही जाएगा। अगर मैं हूं, तो नहीं हो सकता हूं, यह बात मौजूद हो गई। इसे थोड़ा समझें। अगर मैं हूं, तो मैं नहीं भी हो सकता हूं। फिर भय पकड़ेगा।

बुद्ध कहते हैं कि तुम नहीं ही हो, ऐसा जान लो; फिर इस जगत में कोई भय नहीं है। क्योंकि मिटने का ही भय एकमात्र भय है। और सारे भय उससे ही पैदा होते हैं, उसकी ही उप-उत्पत्तियां हैं, उसके ही शाखा-पल्लव हैं। बुद्ध कहते हैं कि तुम हो ही नहीं, इसे जान लो। फिर कैसा भय? और लाओत्से भी यही कहता हैः आत्मा है, अस्मिता है, अहं है, मैं हूं, तो भय है। और अगर तुम नहीं ही हो, तो फिर कैसा भय?

यहां फिर एक बात ख्याल में ले लें। यह क्या हम मान लें कि मैं नहीं हूं?

मानने से कुछ भी न होगा। कौन मानेगा? जो मानेगा, वह तो पीछे बचा रहेगा। अगर मैं मान ही लूं कि मैं नहीं हूं, तो भी मैं हूं। कौन मानता है? यह भी मेरी मान्यता है।

इसलिए बुद्ध ने कहा, मानने की बात नहीं है। इसे खोजो कि सच में तुम हो? इसे खोजो, कहां हो तुम? शरीर में हो, तो शरीर में खोजो। विचार में हो, तो विचार में खोजो। भाव में हो, तो भाव में खोजो। खोजो भीतर अथकः कहां हो तुम? और बुद्ध कहते हैं, तुम खोज-खोज कर पाओगे कि तुम खो गए, तुम नहीं हो।

यह न होना मान्यता और विश्वास और सिद्धांत नहीं है। यहीं भूल हुई। भारत के पंडित को बुद्ध को समझने में भूल हुई; क्योंकि भारत के पंडित ने कहा, यह सिद्धांत है बुद्ध का कि आत्मा नहीं है। तो भारत के पंडित ने कहा कि हम सिद्ध कर सकते हैं कि आत्मा है। बुद्ध के लिए यह सिद्धांत नहीं था, यह गहन अनुभूति थी। अगर यह सिद्धांत है, तो यह गलत है।

नागार्जुन ने, बुद्ध के एक शिष्य ने, मूल माध्यमिक कारिका नाम का अपना शास्त्र लिखा। अनूठा है। संभवतः पृथ्वी पर वैसी दूसरी कोई किताब नहीं है। नागार्जुन जैसा आदमी भी खोजना पृथ्वी पर दुबारा मुश्किल है। नागार्जुन ने उसमें सिद्ध किया है कि कुछ भी नहीं है। न मैं हूं, न तुम हो, न संसार है, कुछ भी नहीं है। स्वभावतः नागार्जुन बड़ी दिक्कत में पड़ गया; क्योंकि उसको गलत करना तो बहुत आसान है। कोई भी आकर गलत कर देता कि अगर कुछ भी नहीं है, तो यह किताब किसके लिए लिखी है? अगर तुम भी नहीं हो, तो कौन लिखता है ये बातें? कौन विवाद करता है? और यह सुनने वाला भी नहीं है, तो तुम किसको समझा रहे हो?

नागार्जुन की कठिनाई है। नागार्जुन जो कह रहा है, वह एक गहन अनुभव है। वह असल में यह कह रहा है कि व्यक्तिशः कोई भी नहीं है। एज इंडिविजुअल नथिंग एक्झिस्ट्स--व्यक्तिशः कुछ भी नहीं है। लहर की भांति कुछ भी नहीं है; सागर है। लेकिन जब हम कहते हैं सागर है, तब सागर की भी सीमा बन जाती है। इसलिए नागार्जुन कहता है, जो है, उसके लिए कोई भी शब्द हम उपयोग करेंगे तो उसकी सीमा बन जाएगी। तो नागार्जुन कहता है कि हम, जो-जो नहीं है, वह बता देंगे; और जो है, उसे छोड़ देंगे। तो नहीं-नहीं-नहीं को जान लेना, पहचान लेना। और जब नहीं की पूरी यात्रा समाप्त हो जाए, तो जो बच रहे, जो बच रहे--दि रिमेनिंग--वही है, बाकी कुछ भी नहीं है।

लाओत्से कहता है, हमारा भय क्या है? हमें निंदा अप्रीतिकर क्यों लगती है? और प्रशंसा प्रीतिकर क्यों लगती है? प्रशंसा का मतलब है, कोई कह रहा है कि तुम बड़ी लहर हो। निंदा का अर्थ है, कोई कह रहा है, क्षुद्र सी लहर! और लाओत्से कह रहा है कि तुम हो ही नहीं। लहर तुम हो ही नहीं। जब तक तुम लहर मानोगे अपने को, तब तक प्रशंसा सुख देती मालूम पड़ेगी; निंदा दुख देगी। मित्र होंगे, जो तुम्हारी लहर को बचाएं। शत्रु होंगे, जो तुम्हारी लहर को मिटाएं।

बुद्ध को भूल से अंतिम जीवन के क्षणों में किसी ने जहर दे दिया--भूल से। किसी गरीब आदमी ने निमंत्रण किया था। और बिहार में कुकुरमुत्ते को लोग बरसात में इकट्ठा कर लेते हैं। लकड़ी पर, गीली लकड़ी पर जो फूल उग आते हैं, उनको इकट्ठा कर लेते हैं, सुखा लेते हैं। कभी-कभी वे विषाक्त हो जाते हैं। गरीब आदमी ने निमंत्रण दिया था। विषाक्त फूल थे; बुद्ध ने खा लिए। जहर था कडुवा; लौट कर आए, तो खून में जहर फैल गया। फूड पायजन से बुद्ध की मृत्यु हुई। मित्रों ने कहा कि आप कह तो देते कि कड़वा है! बुद्ध ने कहा, कड़वा तो था, लेकिन कहता कौन? लोगों ने कहा, ये बातें मत करिए। यह जीवन और मृत्यु का सवाल है! बुद्ध ने कहा, अगर मैं होता, तो मर भी सकता था। मैं हूं ही नहीं। मैं हूं ही नहीं, इसलिए मृत्यु का कोई सवाल नहीं है।

अगर हैं, तो मरेंगे। मगर क्या इसे हम मान लें? यहीं सारी कठिनाई है। मान भी सकता है कोई आदमी। करोड़ों-करोड़ों बौद्ध बुद्ध को मान कर ही चल रहे हैं कि नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई बुद्धत्व उपलब्ध नहीं होता। कितने करोड़ हैं! करोड़ों बौद्ध हैं जमीन पर, वे मान कर ही चल रहे हैं कि नहीं है। वे ऐसे

ही मान कर चल रहे हैं कि नहीं है, जैसे कोई मान कर चल रहा है कि है। यह नहीं है और है, दोनों मान्यताएं हैं। इनका कोई मूल्य नहीं।

जानना है। प्रवेश करें भीतर, खोजें◌ः मैं हूं? जैसे-जैसे खोज गहरी होगी, सतह पर तो लगता है मैं शरीर हूं। आत्मवादी लोगों को समझाते हैं कि अपने को शरीर मत मानो, समझो कि तुम आत्मा हो। एक कदम ले जाते हैं। मनसविद हैं, या मन तक मानने वाले लोग हैं, वे कहते हैं, आत्मा तो कुछ पता नहीं चलती। शरीर नहीं है, यह ठीक है। मैं मन हूं, यहां तक बात जाती मालूम पड़ती है। बुद्ध आखिरी कदम उठाते हैं। लाओत्से भी आखिरी कदम उठाता है। ये मनुष्य-जाति के अत्यधिक हिम्मतवर लोग हैं।

साधारणतः आदमी मानता है मैं शरीर हूं। उसको हम नास्तिक कहते हैं। जो मानता है मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं, उसको हम आस्तिक कहते हैं। बुद्ध कहते हैं, जो मानता है कि मैं हूं, उसे अभी कुछ पता ही नहीं--चाहे शरीर, चाहे आत्मा। जो जानता है कि मैं हूं ही नहीं!

फिर भी होना तो है! जब मैं कहता हूं मैं नहीं हूं, तब भी होना तो है। पर उस होने का मैं से कोई जोड़ नहीं है। जब मैं कहता हूं लहर नहीं है, तब भी लहर तो है। लेकिन उस लहर का लहर होने का कोई आग्रह नहीं है। वह सागर है। अगर एक लहर खोज में निकले, अपने भीतर जाए और पता लगाए कि मैं हूं? तो जल्दी ही पाएगी कि लहर तो खो गई, सागर मिल गया। जब भी कोई अपने भीतर प्रवेश करता है, तो बहुत जल्दी पाता है कि व्यक्ति तो खो गया और परमात्मा मिल गया।

लाओत्से उसे परमात्मा का नाम भी नहीं देता। क्योंकि वह नाम भी आदमी की भाषा में बहुत जूठा हो गया है। और हमने इतने-इतने ओंठों से परमात्मा का नाम लिया है, और इतनी-इतनी नासमझियों से उस नाम को जोड़ा है और उस नाम के लिए हमने इतने उपद्रव किए हैं कि लाओत्से चुप ही रह जाता है, परमात्मा का नाम नहीं लेता। वह कहता है, इतना ही जान लो कि तुम नहीं हो, तो फिर तुम्हें प्रशंसा भी नहीं छुएगी। क्योंकि किसकी प्रशंसा? फिर तुम्हें निंदा भी नहीं छुएगी। क्योंकि किसकी निंदा? फिर तुम्हें जीवन भी नहीं छुएगा। किसका जीवन? तुम अछूते, अस्पर्शित सागर के साथ एक हो जा सकोगे।

जब हम अहंकार को ही अपनी आत्मा नहीं मानते, तो फिर भय किस बात का है? भय का अर्थ हुआ, अपने को आत्मा, अहंकार, अस्मिता, ईगो, अपने को अलग-थलग मानना ही भय है।

"इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना कि स्वयं को... ।"

और यह कब होगा? यह तभी होगा, जब मेरे भीतर कोई अहंकार न हो, कोई आत्मा का भाव न हो। अगर मैं हूं, तो मैं आपको उतना ही सम्मान नहीं दे सकता जितना अपने को। क्यों?

नीत्शे ने कहा है और ठीक कहा है। अजीब से शब्दों में कहा है, लेकिन सच कहा है। नीत्शे ने कहा है कि अगर कहीं भी कोई ईश्वर है, तो मुझसे नंबर दो ही हो सकता है। क्योंकि मैं अपने से ऊपर किसी को कैसे रख सकता हूं?

यह बहुत मजेदार बात है। आप चाहें भी, तो भी नहीं रख सकते। आप चाहें भी किसी को अपने से ऊपर रखना, तो भी नहीं रख सकते हैं। उपाय नहीं है। भीतरी असुविधा है। और अगर आप रख भी लें किसी को अपने से ऊपर, तो भी वह आपके द्वारा ही ऊपर रखा गया है। और जिसके द्वारा ऊपर रखा गया है, वह सदा ऊपर रह जाता है। अगर मैं किसी के चरणों में जाकर सिर भी रख दूं और कहूं कि मैं समर्पण करता हूं सब अपना, तो भी समर्पण मैं ही करता हूं। समर्पण का मालिक मैं हूं। समर्पण मेरा कृत्य है। और कल अगर मैं चाहूं, तो अपना पूरा समर्पण वापस ले सकता हूं। कौन रोकेगा? तो जिसके चरणों में मैंने अपना सिर भी रखा है, वह भी मेरा ही

निर्णय है। अंततः मैं ही निर्णायक हूं। और कल सिर उठा लूं, तो कोई उपाय तो नहीं है रोकने का। समर्पण में भी संकल्प तो मेरा है। तो मैं किसी को, चरणों में सिर रख कर भी, अपने से ऊपर नहीं रख सकता। इसकी दुविधा भीतरी है। यह असंभावना है।

लेकिन क्या इसका यह अर्थ हुआ कि कभी समर्पण इस जगत में घटित नहीं हुआ है?

समर्पण घटित हुआ है। लेकिन वह तब घटित होता है, जब मुझे पता चलता है कि मैं हूं ही नहीं। जब तक मैं हूं, तब तक तो समर्पण भी मेरा संकल्प है।

बुद्ध के बड़े भाई, चचेरे भाई आनंद ने बुद्ध से दीक्षा ली। तो बुद्ध से कहा कि दीक्षा के बाद तो फिर मैं नहीं बचूंगा। तुम्हारी आज्ञा मेरे लिए अंतिम आज्ञा होगी। लेकिन अभी अज्ञानी हूं, अभी तुम्हारा बड़ा भाई हूं। दीक्षा के पहले तुमसे दो-चार वचन ले लेता हूं। दीक्षा के पहले, बड़े भाई की हैसियत से छोटे भाई के दिए गए वचन हैं; इनका तुम पालन करना। और उसने तीन वचन ले लिए बुद्ध से। बहुत प्यारी घटना है। और जिसने दीक्षा ली थी, आनंद ने, उनके चचेरे भाई ने, वह बहुत अदभुत आदमियों में से एक था। बुद्ध ने उससे कहा, इतनी भी क्या जल्दी है! पीछे भी तुम कहोगे, तो मैं मान लूंगा। लेकिन आनंद ने कहा, मैं बचूंगा कहां? कहेगा कौन? अभी ही तय कर लेना उचित है। अभी मैं हूं।

वचन मांग लिए। बुद्ध ने वचन दे दिए; जीवन भर उन तीन वचनों का बुद्ध ने पालन किया। और बड़े आश्चर्य की बात है कि आनंद इसके बाद चालीस वर्ष तक बुद्ध के पीछे छाया की तरह रहा। बुद्ध के सर्वाधिक निकट वही था। उतना निकट कोई दूसरा व्यक्ति कभी नहीं रहा। फिर बुद्ध की मृत्यु हो गई। फिर बुद्ध के वचन संगृहीत करने के लिए संघ बैठा। तो आनंद सर्वाधिक निकट बुद्ध के रहा था। सबसे ज्यादा प्रामाणिक वक्तव्य उसका ही था कि बुद्ध ने कब किससे क्या कहा। रात बुद्ध के कमरे में ही वह सोता था। चौबीस घंटे उनके साथ रहता था। ऐसी कोई भी घटना नहीं घटी थी चालीस वर्षों में, जो आनंद के सामने न घटी हो। सबसे ज्यादा प्रामाणिक आदमी वही था। लेकिन संघ ने आनंद को भवन के भीतर लेने से इनकार कर दिया, भिक्षुओं ने। उन्होंने कहा कि अभी आनंद को ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ। आनंद गिड़गिड़ाता है दरवाजे पर, लेकिन भिक्षुओं ने द्वार बंद कर दिए। और अन्य भिक्षुओं ने कहा कि आनंद को ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ। कारण? आनंद ने पूछा, कारण? तो पता चला कि वे जो तीन वचन तुमने बुद्ध से लिए थे, वह तुम्हारे अहंकार की जरा सी रेखा--जरा सी रेखा! मिटने के पहले भी, मिटने के पूर्व जरा सी तुमने जो रेखा खींच ली थी, वह बाधा बन गई है।

और आनंद ने स्वीकार किया कि वह बाधा है और मैं योग्य नहीं कि भीतर आ सकूं। जब मैं योग्य हो जाऊंगा, तब मैं द्वार खटखटाऊंगा।

चौबीस घंटे आनंद ध्यान में बैठा रहा। भीतर सभा चलती रही, वक्तव्य संगृहीत किए जाते रहे। चौबीस घंटे बाद आनंद ने द्वार खटखटाया। दरवाजा खोल दिया गया। पूछा भिक्षुओं ने, आनंद, तुम बिल्कुल बदल कर आ रहे हो! तुम्हारे चेहरे की आभा और, तुम्हारे पैर की भनक और, तुम्हारे चलने का ढंग और। चालीस साल से तुम्हें देखा है, लेकिन यह तुम आदमी ही दूसरे हो!

तो आनंद ने कहा, इस ध्यान में मुझे पता चला कि कैसा छोटा भाई, कैसा बड़ा भाई! कैसा वचन, कैसा आश्वासन! मेरा समर्पण भी सशर्त था। उसमें जरा सी शर्त थी, एक कंडीशन थी! आज मैंने क्षमा मांग ली है। और आज मैंने वह शर्त छोड़ दी है। और आनंद ने कहा कि अब मेरा कोई आग्रह नहीं है। भीतर आने दो तो ठीक, भीतर न आने दो तो ठीक। मैं बाहर ही बैठा रहूंगा।

तो संघ ने कहा कि अब तुम्हें भीतर आने में कोई बाधा न रही। वह तुम्हारा पहले आग्रह--कि मुझे भीतर लो, क्योंकि मैं ही प्रामाणिक व्यक्ति हूं, चालीस साल मैं ही निकट था--उसी कारण हमें दरवाजे बंद करने पड़े थे। अब तुम भीतर आ सकते हो, क्योंकि बाहर और भीतर में अब कोई फर्क नहीं है।

समर्पण भी अगर शर्त से हो, समर्पण में भी अगर कृत्य हो, तो मालिक तो मैं ही बना रहता हूं। यह जो मेरा होना है, इसके द्वारा समर्पण नहीं होता। यह नहीं हो, तो जो होता है, उसी का नाम समर्पण है।

लाओत्से कहता है कि यह मेरा होना ही मेरे सारे दुख की जड़ है।

लेकिन कैसे, इसे मिटाएं कैसे? बहुत लोग इसे मिटाने की कोशिश करते हैं। मिटा तो नहीं पाते, यह और मजबूत हो जाता है। जो है ही नहीं चीज, उसे मिटाया नहीं जा सकता। एक बात पक्की समझ लें: अगर हो, तो मिटाया भी जा सके; जो नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। जो मिटाने चलेगा, वह भूल में पड़ेगा। उसे जाना जा सकता है, खोजा जा सकता है--कहां है?

महर्षि रमण के ध्यान की पद्धति थी, जिसमें वे साधकों को कहते थे, पूछो: मैं कौन हूं? हू एम आई?

अगर हम लाओत्से की ध्यान की पद्धति बनाना चाहें, तो उसमें हमें कहना पड़ेगा: मैं कहां हूं? व्हेयर एम आई? "हू" बेमानी है, कौन का कोई मतलब नहीं है। अगर लाओत्से की ध्यान की पद्धति बनानी पड़े, तो पूछा जाएगा भीतर: व्हेयर एम आई? व्हेयर? कहां हूं मैं? मैं कौन हूं, इसमें यह तो मान ही लिया गया कि मैं हूं। अब रह गया कि कौन हूं, यह जानना है।

लाओत्से कहता है, पहले यह तो खोजो कि तुम हो? तो खोजो--कहां हो? एक-एक इंच अपने भीतर प्रवेश करो और एक-एक इंच पर पूछो कि कहां हूं?

और मजे की बात है, वह मैं कहीं भी नहीं पाया जाता। और जब आदमी अपने भीतर सब खोज लेता है--शरीर, मन, प्राण, आत्मा--और कहीं भी नहीं पाता कि मैं हूं, तब भी पाता तो है कुछ है। कुछ है, यह तो पाता है; लेकिन मैं को नहीं पाता। वह जो कुछ है, एक्स, अज्ञात, वह सागर है। और अगर हम पा लेते हैं कि मैं यह हूं, तो वह लहर है, चाहे वह कितनी ही गहरी हो।

कोई कहे मैं शरीर हूं, तो भी नास्तिक। कोई कहे मैं मन हूं, तो भी नास्तिक। कोई कहे मैं आत्मा हूं, तो भी नास्तिक। लाओत्से और बुद्ध के हिसाब से एक कदम और: मैं हूं ही नहीं। सब कट जाए, नेति-नेति हो जाए। कुछ भी न बचे, तब जो बच रहता है! बच तो रहता ही है। उस कुछ अज्ञात का नाम नहीं है। और उस अज्ञात में प्रवेश करते ही फिर भय नहीं है। फिर कोई प्रलोभन भी नहीं है।

"इसलिए जो व्यक्ति संसार को उतना ही सम्मान दे, जितना स्वयं को... ।"

कब? संसार को उतना ही सम्मान तभी दिया जा सकता है जितना स्वयं को, जब स्वयं का होना बिल्कुल खो गया हो। स्वयं के रहते मैं सदा ही मूल्यवान रहूंगा। कोई कितना ही मूल्यवान हो, मैं भी खुद कहूं कि तुम मुझ से बहुत मूल्यवान, मैं तुम्हारे चरणों की धूल, तो भी मैं ही मूल्यवान रहूंगा। मेरा कोई भी वक्तव्य मेरे मूल्य का खंडन नहीं कर सकता। मेरा खुद का ही वक्तव्य कि मैं जमीन की धूल हूं तुम्हारे चरणों की, मेरे तुमसे ऊपर होने के आधार को मिटा नहीं सकता। मैं ऊपर रहूंगा ही। मैं का होना अनिवार्यतया ऊपर होना है। मैं है, तो सर्वोपरि है। वह कितनी ही घोषणाएं करे, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। मैं की घोषणा अनिवार्यरूपेण सर्वोपरि घोषणा है।

तो किस दिन यह घटना घट सकती है जब कि मैं संसार को उतना ही सम्मान दूं जितना स्वयं को?

उसी दिन, जिस दिन मेरा मैं न हो। उस दिन संसार और मेरे बीच फासला न रहा। उस दिन ऐसा कहें कि मैं ही फैल कर सबके भीतर प्रकट होने लगा। या सब मेरे भीतर बढ़ कर प्रकट होने लगे। उस दिन मेरे और तू के बीच कोई दीवार न रही। उस दिन सब का होना ही मेरा होना है। उस दिन सम्मान हो सकता है सबका समान। उस दिन सम्मान हो सकता है, उतना ही जितना मैं अपने को दूं। जीसस ने कहा है, पड़ोसी को उतना ही प्रेम, जितना तुम स्वयं को करते हो। लेकिन जब तक स्वयं है, तब तक पड़ोसी को उतना ही प्रेम नहीं हो सकता। स्वयं मिटे, तो ही पड़ोसी को उतना ही प्रेम हो सकता है जितना मैं स्वयं को करता हूं।

"तो ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है।"

बड़ी मुश्किल है। लाओत्से की व्यवस्था बड़ी कठिन है। लाओत्से कहता है, ऐसे व्यक्ति के हाथ में संसार का शासन सौंपा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति के हाथ में शक्ति खतरनाक नहीं होगी। लेकिन ऐसा व्यक्ति शक्ति चाहता नहीं। और जैसे व्यक्ति शक्ति चाहते हैं, उनके हाथ में अनिवार्य रूप से खतरनाक होती है।

बहुत प्रसिद्ध उक्ति है बेकन कीः पावर करप्ट्स। शक्ति, सत्ता लोगों को व्यभिचारी बनाती है।

यह अधूरी है। शक्ति व्यभिचारी इसलिए बनाती है कि सिर्फ व्यभिचारी ही शक्ति को खोजते हैं। शक्ति करप्ट नहीं करती है, लेकिन करप्टेड शक्ति को खोजते हैं। हां, अगर आपके भीतर व्यभिचार है, तो शक्ति के बिना प्रकट नहीं हो सकता। इसलिए जब शक्ति मिल जाती है, तो व्यभिचार प्रकट होता है।

इसलिए लोग अक्सर चमत्कृत होते दिखाई पड़ते हैं, कि बड़े आश्चर्य की बात है, जो आदमी इतना बड़ा सेवक था, वह सत्ता में पहुंच कर ऐसा विकृत हो गया! सत्ता सभी को खराब कर देती है।

ऐसा नहीं है। वह सेवक तभी तक था, जब तक कमजोर था। वह सेवक होना कोई भीतरी गुण न था, वह सिर्फ कमजोरी थी। सत्ता में पहुंचते ही पता चलता है कि वह आदमी असली क्या था। इसलिए जिस आदमी का असली चेहरा देखना हो, उसे सत्ता दिए बिना नहीं पता चल सकता। सत्ता मिलते ही उसे स्वतंत्रता मिलती है अब वही होने की, जो वह होना चाहता है। अब उसे दिखावा करने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए सत्ता नहीं करप्ट करती किसी को, व्यभिचारी नहीं बनाती; लेकिन सत्ता व्यभिचारी को मुक्त कर देती है प्रकट होने के लिए।

लाओत्से कहता है, ऐसा व्यक्ति ही इस योग्य है कि संसार का शासन उसे सौंपा जा सके, जिसके भीतर मैं विसर्जित हो गया। क्योंकि मैं और सत्ता का जोड़ हो जाए, तो व्यभिचार फलित होता है। अगर भीतर मैं खो जाए, तो सत्ता व्यभिचार पैदा नहीं कर सकती है। क्योंकि जो व्यभिचारी हो सकता है, वह मैं है, वह अहंकार है।

"और जो संसार को उतना ही प्रेम करे जितना स्वयं को, तो उसके हाथों में संसार की सुरक्षा सौंपी जा सकती है।"

लेकिन यहीं कठिनाई है। ऐसा व्यक्ति सत्ता न चाहे। और ऐसे व्यक्ति के हाथ में सत्ता सौंपी जा सकती है। लाओत्से क्या कहना चाहता है? लाओत्से यह कहना चाहता है, जो सत्ता चाहे, उसके हाथ में सत्ता नहीं सौंपी जा सकती। जो आदर चाहे, उसके हाथ में आदर देना खतरनाक है। जो प्रतिष्ठा चाहे, उसे प्रतिष्ठा देना उसकी बीमारी को पानी सींचना है। प्रतिष्ठा उसे देना, जो प्रतिष्ठा न चाहे। और सत्ता उसे सौंप देना, जिसके भीतर सत्ता को पकड़ने और पीने वाला अहंकार न रह गया हो। तो ही... ।

इस सूत्र के संदर्भ में दो-तीन बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं।

विगत ढाई हजार वर्षों में, लाओत्से के बाद, सारी दुनिया में सैकड़ों तरह की क्रांतियां हुईं; और सभी क्रांतियां असफल हो जाती हैं। हर क्रांति दावा करती है कि सत्ता अब ठीक हाथों में जाएगी। लेकिन सत्ता जिन हाथों में भी जाती है, वे गलत हाथ सिद्ध होते हैं। जरूर कहीं न कहीं मामला क्रांति का नहीं है। क्रांति से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि सब क्रांतियां असफल हो गईं। अब तक कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी। और होगी भी नहीं। क्योंकि लाओत्से का सूत्र कोई भी क्रांति पूरा नहीं कर पाती। सत्ता चाहने वाले के हाथ में ही सत्ता आती है।

इसलिए कुछ लोग तो इतने पीड़ित और परेशान हो गए, जैसे क्रोपाटकिन या बाकुनिन, वे कहते हैं कि अब सत्ता चाहिए ही नहीं, किसी के भी हाथ में नहीं। अराजकता चाहिए, अनार्की चाहिए। क्योंकि बहुत देख ली सत्ताएं, सभी सत्ताएं मंहगी पड़ जाती हैं। और सभी सत्ताओं को उलटने के लिए पुनः-पुनः क्रांति करनी पड़ती है। क्रांति से जिन सत्ताओं को निर्मित करते हैं, उनको भी मिटाने के लिए कल क्रांति करनी पड़ती है। जिन्हें आज बड़ी मेहनत से सिंहासन पर चढ़ाते हैं, कल उतनी ही मेहनत से उन्हें सिंहासन से उतारना पड़ता है

और लोग ढाई हजार साल से--आगे का नहीं कहता, क्योंकि उसके पहले का इतिहास साफ नहीं है--ढाई हजार साल से दुनिया की जनता एक ही काम कर रही है। सही आदमियों को चढ़ाती है सिंहासन तक; सिंहासन पर पहुंचते ही पता चलता है कि गलत आदमी चढ़ गया, फिर उसे उतारना पड़ता है। यह वर्तुल चलता ही रहता है।

लाओत्से कहता है, यह वर्तुल क्रांतियों से मिटने वाला नहीं है। यह वर्तुल व्यक्तियों से मिटेगा, क्रांतियों से नहीं। लेकिन ऐसे व्यक्ति के हाथ में जिस दिन भी जगत की सत्ता हो सके--किसी भी दिशा की, किसी भी आयाम की--उसी दिन सत्ता खतरनाक और मंहगी नहीं होती।

शायद परमात्मा के हाथ में सारे जगत की सत्ता इसीलिए मंहगी और खतरनाक नहीं है। क्योंकि वह इस भांति है, जैसे हो ही नहीं। परमात्मा की मौजूदगी कहीं पता चलती है? गैर-मौजूद होना ही उसकी मौजूदगी है। अनुपस्थित होकर ही वह उपस्थित है। कितनी दफे लोगों ने चिल्ला कर नहीं कहा है कि अगर हो, तो एक दफा प्रकट होकर बता दो! कितनी चुनौतियां नहीं लोगों ने दी हैं! लेकिन कोई चुनौती उस तक नहीं पहुंचती। क्योंकि जो चुनौती सुन सके, वह अस्मिता, वह केंद्र वहां नहीं है। इसलिए परमात्मा गैर-मौजूद बना रहता है, अनुपस्थित बना रहता है। यह सारा विराट उसके हाथ से संचालित होता रहता है, सिर्फ इसीलिए कि वहां कोई संचालक नहीं है। वहां कोई अहंकार नहीं है।

और लाओत्से जैसे लोगों की कल्पना रही है यह कि मनुष्य-जाति उसी दिन उस व्यवस्था को उपलब्ध हो सकेगी जिसकी सतत चेष्टा रही है, वह व्यवस्था उस दिन फलित हो सकती है जिस दिन हम ऐसे व्यक्ति के हाथ में सत्ता दें।

लेकिन यहां तो और प्रयोजनों से भी उसने कहा है। बड़ा प्रयोजन उसने यह कहा है कि जिसके भीतर कोई अहंकार नहीं है, उसे संसार के सबसे बड़े सिंहासन पर भी बिठा दें, तो अंतर नहीं पड़ता है। वह धूल में पड़ा रहे तो और सिंहासन पर बैठ जाए तो, भीतर अंतर नहीं पड़ता है। अगर इस बात को ख्याल में ले लें, तो फिर अपने भीतर अंतर को जरा देखते रहना चाहिए, कब-कब पड़ता है। और उसे धीरे-धीरे जागरूक होकर पहचानते जाना चाहिए।

एक आदमी ने गाली दी है और एक आदमी ने फूलमाला पहना दी है। भीतर इतनी छलांग से टेंपरेचर में अंतर पड़ता है--इतनी छलांग से--कि जिसका कोई हिसाब नहीं। उसे थोड़ा देखना चाहिए। और जिस दिन आपको फूलमाला और भेंट की गई गालियां, दोनों एक सी मालूम पड़ने लगें... ।

लाओत्से के साधना-सूत्रों में एक गुप्त सूत्र आपको कहता हूं, जो उसकी किताबों में उल्लिखित नहीं, लेकिन कानों-कान लाओत्से की परंपरा में चलता रहा है। वह सूत्र है लाओत्से की ध्यान की पद्धति का। वह सूत्र यह है। लाओत्से कहता है कि पालथी मार कर बैठ जाएं और भीतर ऐसा अनुभव करें कि एक तराजू है, बैलेंस, एक तराजू। उसके दोनों पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं और उसका कांटा ठीक आपकी दोनों आंखों के बीच, तीसरी आंख जहां समझी जाती है, वहां उसका कांटा है। तराजू की डंडी आपके मस्तिष्क में है। दोनों उसके पलड़े आपकी दोनों छातियों के पास लटके हुए हैं। और लाओत्से कहता है, चौबीस घंटे ध्यान रखें कि वे दोनों पलड़े बराबर रहें और कांटा सीधा रहे।

लाओत्से कहता है कि अगर भीतर इस तराजू को साध लिया, तो सब सध जाएगा।

लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। जरा इसका प्रयोग करेंगे, तब आपको पता चलेगा। जरा सी श्वास भी ली नहीं कि एक पलड़ा नीचा हो जाएगा, एक पलड़ा ऊपर हो जाएगा। अकेले बैठे हैं, और एक आदमी बाहर से निकल गया दरवाजे से। उसको देख कर ही, अभी उसने कुछ किया भी नहीं, एक पलड़ा नीचा, एक ऊपर हो जाएगा।

लाओत्से ने कहा है कि भीतर चेतना को एक संतुलन! दोनों विपरीत द्वंद्व एक से हो जाएं और कांटा बीच में बना रहे।

लाओत्से का शिष्य लीहत्जू मर रहा था, मृत्युशय्या पर पड़ा था। लोग बहुत इकट्ठे थे अंतिम विदा के लिए। लीहत्जू लाओत्से की परंपरा के खास-खास लोगों में, दो-चार लोगों में एक है। दो ही लोगों में! च्वांगत्से और लीहत्जू उसके दो बड़े शिष्य हैं। लीहत्जू मर रहा है। लोग इकट्ठे हैं। कोई सवाल पूछता है, लीहत्जू जवाब देता है। लेकिन बीच में ही आंख बंद कर लेता है, फिर मुस्कुराता है, फिर जवाब देता है। फिर किसी ने पूछा कि लीहत्जू, यह वक्त कम है, समय थोड़ा है, मौत करीब मालूम पड़ती है, तुम बीच-बीच में आंख बंद मत करो, तुम हमारी पूरी बातों का जवाब दे दो।

लीहत्जू ने कहा कि तुम्हारी बातें तो ठीक हैं; तुमने जिंदगी भर ये सवाल पूछे और जिंदगी भर मैंने जवाब दिए, फिर भी तुम्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ा। मरते वक्त मुझे मेरे तराजू पर तो ध्यान रखने दो।

तो वह बीच-बीच में आंख बंद करके अपना तराजू देख लेता है कि वे दोनों पलड़े बराबर हैं या नहीं। और हंस लेता है कि बिल्कुल ठीक। फिर वह जवाब देने लगता है। तो एक आदमी ने पूछा कि इस वक्त, तुम्हारा तराजू तो सदा से सध गया है, अभी जांच का कोई मौका भी कहां है? न कोई तुम्हें गाली दे रहा है, न कोई सम्मान कर रहा है। मौत करीब है और हम जिज्ञासु हैं।

लीहत्जू ने कहा कि वही, तुम्हारे चेहरे मेरे पहचाने हुए हैं। पचास साल, साठ साल से कोई मुझे सुनता है। मैं अपने तराजू को देखता हूं कि कोई हलचल तो नहीं होती कि पचास साल से जो बहरे सुन रहे हैं, वे फिर पूछ रहे हैं, उनको मैं फिर जवाब दे रहा हूं। कहीं भीतर मेरा तराजू तो नहीं हिलता इस बात से कि इन नासमझों को समझाना कि नहीं समझाना। तराजू नहीं हिलता है, मुझे बड़ी हंसी आती है। फिर मैं तुम्हें जवाब दे देता हूं। लेकिन तुम्हारी तरफ देखता हूं, तो मुझे ख्याल आता है--एक दफे तराजू को फिर देखूं, वह हिलता तो नहीं है!

जीवन में सुख हो या दुख, सम्मान या अपमान, अंधेरा या उजाला, भीतर के तराजू को साधते चला जाए कोई, तो एक दिन उस परम संतुलन पर आ जाता है, जहां जीवन तो नहीं होता, अस्तित्व होता है; जहां लहर नहीं होती, सागर होता है; जहां मैं नहीं होता, सब होता है।

इतना ही आज। लेकिन पांच मिनट बैठें; कीर्तन संन्यासी करेंगे, उनके साथ सम्मिलित हों।

बत्तीसवां प्रवचन

अदृश्य, अश्राव्य व अस्पर्शनीय ताओ

Chapter 14 : Part 1

Pre-Historic Origins

Looked at, but cannot be seen--
That is called the invisible (yi).
Listened to, but cannot be heard--
That is called the inaudible (hsi).
Grasped at, but cannot be touched--
That is called the Intangible(wei).
These three elude all our inquiries
and hence blend and become one.

अध्याय 14 : खंड 1

पूर्व-ऐतिहासिक स्रोत

उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है;
इसीलिए उसे अदृश्य कहा जाता है।
उसे सुनें, फिर भी वह अनसुना रह जाता है;
इसीलिए उसे अश्राव्य कहा जाता है।
उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है;
इसीलिए उसे अस्पर्शनीय कहा जाता है।

इस प्रकार वह अदृश्य, अश्राव्य और अस्पर्शनीय हमारी जिज्ञासा की पकड़ से छूट जाता है; और वह दुर्ग्राह्य बना रहता है।

अस्तित्व के परम रहस्य के संबंध में यह सूत्र है।

जिन शब्दों में उस रहस्य को कहा जाता है, वे सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं। न केवल छोटे, बल्कि जो कहना चाहते हैं हम, उससे विपरीत उन शब्दों से प्रकट होता है। इसे दो-तीन दिशाओं से समझना जरूरी होगा।

एक, मनुष्य के सभी शब्द अधूरे हैं। कोई शब्द पूरा नहीं है। और कोई शब्द पूरा हो भी नहीं सकता। क्योंकि शब्द जिस बुद्धि से निर्मित होते हैं, वह बुद्धि अस्तित्व का एक छोटा सा अंश मात्र है। और अंश से जो भी निर्मित होगा, वह पूर्ण नहीं होता। हमारे जीवन का भी बुद्धि एक छोटा सा हिस्सा है। बुद्धि से ज्यादा हैं हम। बुद्धि से बड़े हैं हम। बुद्धि से विराट हैं हम। हमारा जो होना है, उसमें बुद्धि भी एक बूंद है। लेकिन वह हमारा पूरा सागर नहीं। शब्द निर्मित होते हैं बुद्धि से। अंश से जो भी निर्मित होता है, वह पूर्ण नहीं होता, अंश ही होता है। इसलिए बुद्धि से निर्मित सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं।

दूसरी बात, हमारे सभी शब्द इंद्रियों से प्रभावित होते हैं। अगर हम कहें कि वह परम सत्य देखा जाता है, तो उसका अर्थ हुआ कि आंखें उसे पकड़ने में समर्थ हैं। अगर हम कहें वह परम सत्य सुना जाता है, तो उसका अर्थ हुआ कि कान उसे पकड़ने में समर्थ हैं। अगर हम कहें कि वह स्पर्श किया जा सकता है, तो उसका अर्थ हुआ हाथ उसके अनुभव में समर्थ हैं। हाथ स्पर्श करता है, कान सुनते हैं, आंख देखती है। लेकिन आंख जो भी देखेगी, वह सीमित होगा। आंख की अपनी सीमा जो है। हाथ जो भी छुएगा, वह सीमित होगा। हाथ असीम नहीं है, इसलिए। और कान जो भी सुनेगा, वह क्षुद्र होगा। क्योंकि कान स्वयं क्षुद्र है। इंद्रियां सीमित हैं, इंद्रियों के अनुभव सीमित हैं। और जब हम विराट असीम को सोचने चलते हैं, तो हमारी इंद्रियों से प्रभावित सभी शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि वे सभी शब्द सीमाओं की खबर देते हैं। और असीम पर सीमाएं लगाना उसकी प्रकृति को ही नष्ट कर देना है।

तीसरी बात, जब भी हम विचार से किसी वस्तु को सोचते हैं, तो द्वंद्व निर्मित हो जाता है। विचार विभाजन की प्रक्रिया है। विचार चीजों को तोड़ कर देखने का ही प्रयोग है। जैसे कोई सूरज की किरण को कांच के प्रिज्म से निकाले, तो वह सात टुकड़ों में बंट जाती है। वे ही हमारे सात रंग हैं। प्रिज्म किरण को सात हिस्सों में तोड़ देता है, तो सात रंग दिखाई पड़ते हैं। किरण रंगहीन है, टूट कर सात रंग हो जाते हैं। सात रंगों को जोड़ दें, तो फिर सफेद निर्मित हो जाता है। सफेद रंग नहीं है। कांच के टुकड़े में से जो सात रंग दिखाई पड़ते हैं, वे कांच के टुकड़े से गुजर कर दिखाई पड़ते हैं। सातों रंग जुड़ जाते हैं तो सफेद दिखाई पड़ता है, कोई रंग नहीं रह जाता।

ठीक बुद्धि भी प्रत्येक चीज को दो हिस्सों में तोड़ देती है। कहते हैं--ठंडा और गर्म। यह बुद्धि की प्रक्रिया से टूट गई स्थिति है। क्योंकि जिसे हम ठंडा कहते हैं, वह गरमी का ही एक माप है। और जिसे हम गर्म कहते हैं, वह भी ठंडक का एक माप है। ठंडा और गर्म दो चीजें नहीं हैं। ठंडा और गर्म तापमान की दो स्थितियां हैं--एक ही तापमान की। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ देती है। बुद्धि मानने को राजी न होगी कि ठंडा और गर्म एक ही चीज है। तब तो बर्फ और आग हमें एक दिखाई पड़ने लगे!

हम कहेंगे, बर्फ और आग एक कैसे हो सकती है?

लेकिन बर्फ आग के ही तापमान का कम अंश है। और आग भी बर्फ के ही तापमान का हिस्सा है। एक ही तापमान की डिग्रियां हैं। एक छोर पर बर्फ है, दूसरे छोर पर आग है। लेकिन तापमान एक है। तो थर्मामीटर दोनों को नाप लेगा, आग को भी और बर्फ को भी। अगर आग और बर्फ दो चीजें होतीं, तो हमें दो थर्मामीटर की जरूरत पड़ती। एक ही थर्मामीटर दोनों को नाप लेता है; क्योंकि दोनों एक ही चीज कीशृंखला हैं। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ लेती है।

घृणा और प्रेम! ठंडक और गर्मी को समझना तो बहुत आसान हो जाएगा। इतना कठिन नहीं, क्योंकि हमसे बहुत दूर है। घृणा और प्रेम भी एक ही चीज की दो स्थितियां हैं। मन मानने को राजी न होगा। कहां घृणा,

कहां प्रेम? कहां क्षमा, कहां क्रोध? कहां भोग, कहां त्याग? कहां संसार की आकांक्षा, कहां मोक्ष की? लेकिन एक ही थर्मामीटर नापने में समर्थ है। घृणा और प्रेम एक ही चीज के दो छोर हैं।

इसलिए कोई भी प्रेम कभी भी घृणा बन सकता है और कोई भी घृणा कभी भी प्रेम बन सकती है। अक्सर होता ही है। प्रेम घृणा बन जाता है; घृणा प्रेम बन जाती है। मित्र शत्रु हो जाते हैं; शत्रु मित्र हो जाते हैं। अगर घृणा और प्रेम एक ही न होते, तो मित्र के शत्रु होने का कोई उपाय न था। शत्रु फिर मित्र कैसे होता?

मैक्यावेली ने अपनी अदभुत किताब दि प्रिंस में सलाह दी है सम्राटों को कि मित्र से भी वह मत कहना जो शत्रु से कहने में डर हो। क्योंकि मित्र कभी भी शत्रु हो सकता है। और शत्रु के भी साथ वैसा व्यवहार मत करना जैसे व्यवहार के करने से मित्र के प्रति दुर्भावना प्रकट हो। क्योंकि जो आज शत्रु है, कभी मित्र हो सकता है। जो शत्रु है, वह बीज रूप से मित्र है, पोटेंशियली, आज भी। कभी भी मित्र हो सकता है। शत्रुता और मित्रता एक ही संबंध के दो छोर हैं।

बुद्धि सब चीजों को दो में तोड़ लेती है। जन्म और मृत्यु को तोड़ लेती है।

जन्म और मृत्यु एक ही जीवन के दो छोर हैं। एक तरफ जन्म है, दूसरी तरफ मृत्यु है। और इन दोनों में कहीं भी बीच में कोई व्याघात नहीं पड़ता, कोई गैप नहीं आता। जन्म ही तो मृत्यु बन जाता है। तो इनको दो कहना सिर्फ नासमझी है। जन्म और मृत्यु के बीच में कहीं कोई खाली जगह है, जहां जन्म समाप्त होता है और मृत्यु शुरू होती है? जन्म ही तो बढ़ते-बढ़ते मृत्यु बन जाता है। तो जन्म मृत्यु का ही एक छोर है। एक तरफ से देखते हैं जीवन को, तो जन्म मालूम पड़ता है; दूसरी तरफ से देखते हैं, तो मृत्यु मालूम पड़ती है। लेकिन वे एक ही चीज के दो हिस्से, एक ही चीज के दो नाम, दो छोर हैं।

बुद्धि हर चीज को दो में तोड़ लेती है। और दो में तोड़ने के कारण बुद्धि जो भी वक्तव्य देती है वह अधूरा होता है। अगर हम ईश्वर को कहें कि वह प्रकाश है, जैसा कि बहुत शास्त्रों ने कहा है, कुरान ने कहा है, उपनिषदों ने कहा है, बाइबिल ने कहा है, ईश्वर को प्रकाश कहा है। वह हमारी आकांक्षा को प्रकट करता है, वहां तक तो ठीक है। वह हमारे भाव को प्रकट करता है, वहां तक तो ठीक है। काव्य की तरह तो ठीक है; लेकिन तथ्य की तरह झूठ है। क्योंकि फिर अंधेरा कौन होगा? अगर ईश्वर ही सब कुछ है, तो अंधेरा कौन होगा?

ईश्वर प्रकाश और अंधेरा दोनों है। असल में, प्रकाश और अंधेरा एक ही चीज के दो छोर हैं। ऐसा कोई भी अंधेरा नहीं है, जहां प्रकाश मौजूद न हो। अंधेरा प्रकाश की ही एक अवस्था है। और ऐसा कोई प्रकाश नहीं है, जहां अंधेरा मौजूद न हो। ऐसा कोई जन्म नहीं, जहां मृत्यु न हो। ऐसी कोई मृत्यु नहीं, जहां जन्म न हो। एक के ही दो छोर हैं। लेकिन बुद्धि दो में तोड़ लेती है। तो फिर अंधेरे को हम शैतान के हिस्से में दे देते हैं, प्रकाश को परमात्मा के हिस्से में। शुभ और अशुभ है--बुराई अलग, भलाई अलग। बुद्धि कहेगी, परमात्मा शुभ है। फिर अशुभ का क्या होगा? सचाई यह है कि शुभ और अशुभ अस्तित्व में दो नहीं, एक हैं। बुद्धि जब भी किसी चीज को देखती है, तो दो हो जाते हैं। यह बुद्धि के देखने के ढंग के कारण!

इसे ठीक से समझ लें। यह बुद्धि के देखने का ढंग है, जो चीजों को दो कर देता है। चीजें दो नहीं हैं। अगर हम बुद्धि को हटा दें, इस पृथ्वी से बुद्धि को हटा लें, एक क्षण को सोचें कि पृथ्वी से मनुष्य विलीन हो गया, तब कोई चीज कुरूप होगी और कोई चीज सुंदर होगी?

नहीं, कोई चीज कुरूप नहीं होगी, कोई चीज सुंदर नहीं होगी। चीजें होंगी; लेकिन सुंदर और कुरूप नहीं होंगी। क्योंकि सुंदर और कुरूप बुद्धि का विभाजन था। बुद्धि के हटते ही विभाजन खो जाएगा। सुंदर और कुरूप

एक ही हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। वे रह जाएंगे। लेकिन विभाजन करने वाला प्रिज्म बीच से अलग हो गया, तो सब किरणें एक हो जाएंगी, रंगहीन हो जाएंगी।

यह मजे की बात है कि सब किरणें मिल कर रंगहीन हो जाती हैं और टूट कर रंग वाली हो जाती हैं। बिल्कुल विपरीत! इकट्ठे होकर सातों रंग सफेद बन जाते हैं, टूट कर सात रंग बन जाते हैं। बिल्कुल विपरीत! तो जिसने प्रिज्म से किरण को देखा है, वह सोच भी तो नहीं पा सकता कि प्रिज्म के बाहर किरण कैसी होती होगी।

इंद्रधनुष बनता है आकाश में। किरणें तो सदा आकाश में आर-पार होती रहती हैं। लेकिन इंद्रधनुष तब बनता है, जब पानी की बूंदें प्रिज्म का काम करती हैं। पानी की बूंदों से गुजर कर सूरज की किरण सात रंगों में टूट जाती है, इंद्रधनुष बन जाता है। जिसने इंद्रधनुष देखा है और किरण का और कोई रूप नहीं देखा, वह जो भी कहेगा किरण के संबंध में वह गलत होगा। कभी वह कहेगा वह किरण लाल है, कभी वह कहेगा नीली है, कभी कहेगा हरी है। जो उसको प्रीतिकर होगा रंग, वही चुन लेगा। लेकिन वह किरण रंगहीन है, यह उसे ख्याल भी न आएगा। सात रंगों में से किसी एक रंग की हो सकती है, यह तो ख्याल आएगा; लेकिन रंगहीन है, यह ख्याल नहीं आएगा।

यही तकलीफ बुद्धि की भी है। बुद्धि से गुजर कर चीजें दिखाई पड़ती हैं। तो कोई प्रकाश मान सकता है ईश्वर को, कोई अंधेरा मान सकता है।

जीसस जिस छोटे से रहस्यवादियों के संप्रदाय में सबसे पहले दीक्षित हुए, वह था इजिप्त का इसेन संप्रदाय। वह अकेला संप्रदाय है जगत में, जिसने ईश्वर को अंधकार रूप माना है। ईश्वर परम अंधकार है, टोटल डार्कनेस। वह भी काव्य है। और अंधकार की भी अपनी कविता है। और कोई कारण नहीं है कि प्रकाश से ही उस कविता को प्रकट किया जा सके। और कभी तो ऐसा लगता है कि इसेनी साधकों ने परम अंधकार कह कर ईश्वर को जो गहराई दी, वह प्रकाश कहने वाले कोई भी लोग कभी नहीं दे सके। क्योंकि प्रकाश में एक तरह की उत्तेजना है और अंधकार में परम शांति है। और प्रकाश की तो सीमा होती है, अंधकार असीम है। और प्रकाश तो आता है, जाता है; अंधकार सदा बना रहता है। और प्रकाश को तो पैदा करना पड़ता है किसी स्रोत से; अंधकार स्रोतहीन है। तो प्रकाश तो कहीं दीए से पैदा होता है, कहीं सूरज से पैदा होता है; लेकिन किसी चीज से पैदा होता है। ईंधन की भी जरूरत पड़ती है, चाहे दीए में हो और चाहे सूरज में। वैज्ञानिक कहते हैं, सूरज का ईंधन भी चुकता जाता है। कोई तीन-चार हजार साल में वह ठंडा हो जाएगा। तो प्रकाश तो चुक सकता है; अंधकार चुकता ही नहीं।

इसलिए इसेनी फकीरों ने जो धारणा की कि ईश्वर परम अंधकार है, उसमें बड़ी सूझ है। हमें नहीं पकड़ में आती, उसकी वजह है कि हमें अंधकार से डर लगता है। इसलिए सारे भयभीत लोगों ने ईश्वर को प्रकाश कहा है, वह भय के कारण। अंधेरे में हमें लगता है डर, तो ईश्वर को अंधकार तो हम मान नहीं सकते। क्योंकि फिर अंधकार को प्रेम करना पड़ेगा। प्रकाश में भय कम लगता है।

तो हम ईश्वर को परम प्रकाश मानते हैं। ये हमारी आकांक्षाएं हैं। लेकिन कोई असुविधा नहीं है, कोई ईश्वर को अंधकार माने तो अड़चन नहीं है। लेकिन वह मानना भी उतना ही भ्रांत है, जितना प्रकाश। क्योंकि हम एक को छोड़ेंगे। इसेनी फकीर की भी तकलीफ है--अगर वह अंधकार मानता है, तो फिर प्रकाश नहीं मान सकता। क्योंकि बुद्धि कहेगी, दोनों एक साथ कैसे? जो प्रकाश मानते हैं, वे कहेंगे, अंधकार फिर नहीं हो सकता ईश्वर। दोनों एक साथ कैसे? बुद्धि ने तोड़ दिया दो में, फिर एक ही हो सकता है।

ईश्वर शुभ है; सब श्रेष्ठतम, सुंदरतम, शुभतम गुण हमने उसमें स्थापित कर दिए। फिर अशुभ की कठिनाई हो जाती है। लेकिन ईश्वर को अशुभ मानने वाले लोगों का भी वर्ग रहा है। शैतान को भी पूजने वाले लोगों का वर्ग रहा है। और अभी अमरीका में बीसवीं सदी का पहला एक बड़ा चर्च निर्मित हुआ है--फर्स्ट चर्च ऑफ शैतान। उसके मानने वाले हैं कोई हजारों की संख्या में। वे शैतान को ही ईश्वर मानते हैं। अशुभ ही ईश्वर है। और तर्क में उनके भी बल है। क्योंकि वे कहते हैं, शुभ है कहां? सिर्फ धारणा है। तथ्य तो अशुभ है। भलाई है कहां? सिर्फ कल्पना है। बुराई तो मौजूद है। जो मौजूद है, वही परमात्मा है। जो कल्पना है, सपना है, उसके परमात्मा होने की क्या बात करनी? तो अहिंसा होगी स्वप्न में, हिंसा मौजूद है।

तो शैतान ईश्वर है। उसके पुरोहित हैं, उसके चर्च हैं। छिपे हैं, क्योंकि जो शुभ मानने वाले लोग हैं ईश्वर को, वे भी इतने शुभ नहीं हैं कि ये चर्च अगर प्रकट हो जाएं, तो इनको बचने दें। इनकी हत्या कर डालें! वही तो शैतान को ईश्वर मानने वाले लोगों का कहना है कि ये जो भला मान रहे हैं ईश्वर को, इन्होंने इतनी बुराई की है कि जिससे सिद्ध होता है कि असली ईश्वर तो बुराई है। और भलाई का बहाना लेकर भी वही बुराई प्रकट होती है। भलाई का बहाना लेकर भी बुरा ही जब प्रकट होता हो, तो असलियत बुराई ही है। क्यों न इसे स्वीकार कर लें?

शैतान को ईश्वर मानने वालों का कहना यह है कि आदमी कमजोर है, इसलिए बुराई को स्वीकार नहीं कर पाता। अन्यथा बुराई है। उससे बच-बच कर भी बचना कहां हो पाता है? उसे हम स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, हम उसे पूजते हैं, हम अंगीकार करते हैं।

जो शैतान मान ले ईश्वर को, उसको भलाई को इनकार करना पड़ेगा जगत से, है ही नहीं। जो भलाई मान ले ईश्वर को, उसे बुराई को इनकार करना पड़ेगा कि बुराई है ही नहीं। और बुद्धि दो में तोड़ कर देखती है और एक को चुन लेती है।

इसलिए तीसरी बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि उस परम सत्य के लिए जो सब है एक साथ, सातों किरण एक साथ, रंगहीन है। उसे लाल कहें, तो गलती हो जाती है; पीला कहें, तो गलती हो जाती है; नीला कहें, तो गलती हो जाती है। और हमारी आंखें रंग ही देख पाती हैं। वह जो रंगहीन अस्तित्व है, वह हमें नहीं दिखाई पड़ता है।

इस सूत्र को अब हम समझने की कोशिश करें।

"उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है।"

उसे देखना तो हो सकता है, क्योंकि देखना मेरे हाथ में है। लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता है। मैं आंखें गड़ा कर उसे खोज सकता हूं। फिर भी मेरी आंखें जिस दिन उस पर पहुंचती हैं, उस दिन कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। एक महान रिक्तता ही दिखाई पड़ती है।

इसलिए परम गोपनीय सूत्र है साधकों का कि जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता रहे, तब तक समझना कि ईश्वर नहीं दिखाई पड़ा। ध्यान में भी जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता रहे, तब तक समझना कि ईश्वर दिखाई नहीं पड़ा। प्रकाश दिखाई पड़े, आनंद दिखाई पड़े, कुछ भी दिखाई पड़े--राम दिखाई पड़ें, कृष्ण दिखाई पड़ें, जीसस, बुद्ध दिखाई पड़ें--जब तक तुम्हें कुछ दिखाई पड़े, तब तक जानना कि वह अभी दिखाई नहीं पड़ा है।

यह बड़े मजे की बात है। यह तो सूत्र बड़ा विरोधी है! क्योंकि जब तक कुछ दिखाई पड़े, तब तक जानना कि वह दिखाई नहीं पड़ा है। तब फिर वह दिखाई कब पड़ेगा?

जब कुछ भी दिखाई न पड़े, सिर्फ देखना मात्र रह जाए। और रिक्तता रह जाए चारों ओर, शून्य रह जाए। आंखें देखती हों और देखने को कोई आब्जेक्ट, कोई विषय न बचे, कोरा आकाश रह जाए। तब जानना कि वह दिखाई पड़ा है। वह सदा अनदिखा रह जाता है।

"देखें, फिर भी वह अनदिखा रह जाता है। लुक्ड एट, बट कैन नॉट बी सीन।"

लुक्ड एट, उसकी तरफ देखा जा सकता है; लेकिन वह कभी दिखाई नहीं पड़ता।

लेकिन जो महत्वपूर्ण घटना घटती है, वह उसके दिखाई पड़ने से नहीं घटती, उसको देखने से घटती है। जो क्रांति घटित होती है, वह मेरी देखने की चेष्टा से घटित होती है, उसके दिखाई पड़ने से नहीं। इसलिए जब किसी ने कहा है कि हो गया उसका दर्शन, तो उसने यह नहीं कहा है कि वह दिखाई पड़ गया, उसने यही कहा है कि मेरी देखने की क्षमता शुद्ध हो गई और अब शून्य में भी मैं देख सकता हूं। दर्पण पूरा शुद्ध हो गया। अब उसमें कोई झलक नहीं बनती; खाली है। कोई आकार नहीं बनता, कोई प्रतिबिंब नहीं बनता; शून्य है। दर्पण जब इस शून्य की अवस्था में है, तो वह जिसका प्रतिबिंब बन रहा है उसमें--शून्य का--वही अनदिखा, अदृश्य सत्य है।

अगस्तीन ने कहा है, पूछो मत; क्योंकि जब तक तुम पूछते नहीं, मैं उसे जानता हूं। जैसे ही तुम पूछते हो, मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं। पूछो मत। देखा है मैंने उसे; लेकिन तस्वीर उसकी मैं न बना सकूंगा।

स्वभावतः, कोई भी पूछेगा कि अगर देखा है, तो तस्वीर तो बनाओ! थोड़ी कमोबेश होगी, नहीं पूरी बनेगी; लेकिन कुछ तो खबर मिलेगी!

तो सूफियों की किताब हैः दि बुक ऑफ दि बुक, किताबों की किताब। वह कोरी किताब है, उसमें कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। दो सौ पन्नों की किताब है, बिल्कुल खाली है। उसमें तस्वीर खींचने की कोशिश की गई है।

उसको कोई प्रकाशक छापने को तैयार नहीं था। क्योंकि क्या छापिएगा? तो कोई हजार, डेढ़ हजार साल से वह किताब अप्रकाशित थी। अभी किसी एक हिम्मतवर प्रकाशक ने उसे प्रकाशित की। पर वह भी तभी प्रकाशित करने को राजी हुआ, जब एक सूफी फकीर उस पर दस पन्ने की भूमिका लिखने को राजी हुआ। अन्यथा उसको छापिएगा क्या? तो दस पन्ने की जो भूमिका है, वह उसका इतिहास है। सबसे पहले किसने वह किताब लिखी; फिर उसने किसको दी; फिर किसने उसे पढ़ी--पढ़ी!

आप पढ़ सकते हैं उसे, यद्यपि पढ़ा कुछ भी न जाएगा। लेकिन करने जैसा प्रयोग है--कभी दो सौ खाली पेज पढ़ने की कोशिश! ठीक उतनी ही निष्ठा से, उतने ही भाव से, जैसे कोई दो सौ पन्नों के शब्द पढ़े। एक-एक लाइन, आंख गड़ा कर समझने की चेष्टा से! दो सौ पेज। आपका मन होगा कि उलटा दो शीघ्रता से। लेकिन इतिहास कहता है कि फलां फकीर ने उसे पढ़ा; बार-बार पढ़ा; लौट-लौट कर पढ़ा। किसी फकीर ने उसे जीवन में पचास बार पढ़ा। कोई फकीर उसे रोज सुबह जब तक पूरी न पढ़ लेता, तब तक भोजन न करता। क्या पढ़ते रहे होंगे वे लोग!

उस सूने खाली कागज पर, अगर कोई दो सौ पन्नों तक आंख को गड़ा कर देखता रहे, तो आंखें भी सूनी और कोरी हो जाएंगी। वह ध्यान का एक प्रयोग हो गया। क्या पढ़िएगा? लेकिन अगर पढ़ेंगे ही, तो धीरे-धीरे भीतर के शब्द खो जाएंगे। धीरे-धीरे भीतर कुछ भी न बचेगा। जैसे कोरे पन्ने हैं, वैसा ही कोरा मन हो जाएगा।

तो सूफियों में चलती रही है बात। लोग पूछते हैंः कुरान पढ़ा, ठीक है; बाइबिल पढ़ी, ठीक है; किताबों की किताब पढ़ी या नहीं? वह किताबों की किताब है।

अगस्तीन कहता है कि उसे देखता तो हूं; लेकिन जब तुम पूछते हो, कैसा है? तो मुश्किल में पड़ जाता हूं।

यह सूत्र कहता है, "उसे देखें, फिर भी वह अनदिखा बना रहता है।"

इसे ख्याल रखें कि वह कभी दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि जो साधक भी उसे देखने की चेष्टा में लग जाते हैं, बहुत जल्दी अपनी कोई कल्पना पर ही समाप्त हो जाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कुछ तो सहारा! राम का, कृष्ण का, बुद्ध का, कोई तो सहारा दें। किस पर ध्यान करें? अगर उनसे कहो कि सिर्फ ध्यान करो, किसी पर नहीं, तो कठिन हो जाती है बात। किस पर ध्यान करें? किसे देखें? कहां आंखें गड़ाएं? कोई जगह चाहिए। कोई रूप, कोई आकार।

आंख आकार पर तो टिक जाती है। लेकिन जब तक आंख निराकार पर टिकना न सीखे, तब तक उसका कोई अनुभव न होगा--उसका, जो परम रहस्य है। तब तक जो भी हम जानेंगे, वे हमारी बुद्धि की ही आकृतियां हैं, वे हमारे ही खिलौने हैं। कितने ही पवित्र और कितने ही पूज्य, राम हों कि कृष्ण, कितने ही आकाश में हम उन्हें बिठा दें, वे हमारे मन के ही आखिरी छोर हैं। जहां तक मन आकार बना पाता है, वहां तक उससे कोई मिलन नहीं होता, जो निराकार है।

"इसीलिए उसे अदृश्य कहा जाता है। उसे सुनें, फिर भी वह अनसुना रह जाता है।"

सब सुनाई पड़ता है जगत में। प्रत्येक वस्तु की ध्वनि है, प्रत्येक वस्तु की ध्वनि-तरंग है; सब सुनाई पड़ता है। सिर्फ परमात्मा सुनाई नहीं पड़ता। उसकी कोई ध्वनि-तरंग नहीं मालूम होती। उसे कहीं से भी पकड़ा नहीं जा सकता कि क्या है उसका संगीत! क्या है उसका स्वर! सुनें जरूर लेकिन उसे। तो क्या होगा उपाय सुनने का?

एक ही उपाय है उसे सुनने का कि धीरे-धीरे आपके कान और सब सुनना छोड़ते चले जाएं, सब ध्वनियां छोड़ते चले जाएं। एक घड़ी ऐसी आए कान की कि कान निर्ध्वनि हो जाएं, कुछ भी सुनाई न पड़ता हो, शून्य सुनाई पड़ता हो। सन्नाटा रह जाए, कोई ध्वनि पकड़ में न आती हो। तब जो सुनाई पड़ेगा--कहना पड़ता है कि जो सुनाई पड़ेगा--वह वही है, जो सदा अश्राव्य है, जो कभी सुना नहीं जाता।

श्वेतकेतु अपने घर वापस लौटा सब शास्त्र पढ़ कर। पिता ने उसके पूछा कि तू वह तो समझ कर आ गया जो सुना जा सकता है, तूने वह भी सुना जो अश्राव्य है?

श्वेतकेतु बहुत अकड़ कर घर आ रहा था। समस्त वेदों का ज्ञाता हो गया था। जो भी ज्ञान था, सब उसकी मुट्ठी में था। आ रहा था बड़ी आशा से कि पिता बहुत आनंदित होंगे और कहेंगेः श्वेतकेतु, तू सब पाकर आ गया। लेकिन पिता ने पहला ही प्रश्न पूछा कि तूने वह सुना जो अश्राव्य है? श्वेतकेतु ने कहा, ऐसा कोई शास्त्र ही नहीं था। सभी शास्त्र श्राव्य हैं। तो जो भी मैंने पढ़ा वह सब सुना जा सकता है।

इसलिए शास्त्रों का जो भारतीय नाम है, वह है श्रुति और स्मृति--जिसे सुना जा सके और जिसे याद रखा जा सके। इसलिए शास्त्र में परमात्मा नहीं हो सकता, वह अश्राव्य है। शास्त्र तो सुने जा सकते हैं, स्मरण रखे जा सकते हैं। वह उनसे दूर रह जाएगा।

तो श्वेतकेतु ने कहा, वह तो नहीं सुना। तो पिता ने कहा, वापस जा! तू सब जो सीख कर आया वह व्यर्थ है। उससे आजीविका तो मिल सकती है, जीवन नहीं। और मैंने तुझे ब्राह्मण होने के लिए भेजा था, पुरोहित होने के लिए नहीं। ऐसे तो तू ब्राह्मण का बेटा है ही, तो आजीविका तो तुझे मिल जाएगी, लेकिन जीवन? और ब्राह्मण तू उसी दिन होगा, जिस दिन वह अश्राव्य सुना जा सके। ब्रह्म को सुना जा सके, देखा जा सके, तभी कोई ब्राह्मण होता है। तू वापस जा!

श्वेतकेतु वापस चला गया। वर्षों बाद लौट सका। क्योंकि जब उसने अपने गुरु को जाकर कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। आपने तो कहा थाः जो भी जाना जा सकता है, सब बता दिया। लेकिन मेरे पिता ने पहले ही प्रश्न में मेरी सारी की सारी असफलता सिद्ध कर दी। मेरे पिता ने पूछा कि जो अश्राव्य है, वह सुना? मेरे पिता ने पूछा कि जो जाना नहीं जा सका, जाना नहीं जा सकता है, उसे जाना?

तो गुरु ने कहा कि मैं तो वही बता सकता था, जो बताया जा सकता है। मैं तो वही कह सकता था, जो कहा जा सकता है। पागल, कहने से वह कैसे कहा जाएगा, जो सुना नहीं जा सकता?

पर श्वेतकेतु ने कहा, अब तो मेरे घर लौटने का कोई उपाय नहीं, जब तक कि मैं उसे न सुन लूं।

तो गुरु ने कहा, फिर तू ऐसा कर! ये गाएं हैं आश्रम की, इनको तू लेकर गहन जंगल में चला जा। और जब तक ये हजार न हो जाएं, तब तक वापस मत लौटना।

श्वेतकेतु ने पूछा, वहां मैं करूंगा क्या?

तो गुरु ने कहा, तू गायों की चिंता करना और अपनी चिंता भूल जाना। खुद को तू भूल ही जाना कि तू है। बस इन गायों की सेवा करना। और जब ये हजार हो जाएं--चार सौ गाएं थीं, कब होंगी हजार? तब तू लौट आना!

श्वेतकेतु चला गया। स्वयं को छोड़ गया गुरु के आश्रम में ही। गायों के साथ चला गया। स्वयं को छोड़ गया। अपनी सब चिंता छोड़ गया। क्योंकि गुरु ने कहाः अपनी चिंता मत करना; नहीं तो जो अश्राव्य है, वह सुना नहीं जा सकता। तू गायों की चिंता में लगा रहना। इनकी फिक्र कर लेना, इनको पानी जुटा देना, भोजन जुटा देना, इनका विश्राम करा देना। बस तू अपने को भूल जाना। एक ही ख्याल रखना कि जब गाएं हजार हो जाएं, तब तू आ जाना!

श्वेतकेतु गायों की सेवा करता रहा, करता रहा, करता रहा। वर्ष आए और गए। रात तारे निकल आते, वह देखता हुआ सो जाता। सुबह सूरज उगता, वह देखता हुआ उठ आता। गाएं थीं, कोई बात की चर्चा का उपाय न था। कोई खबर न थी। गायों की खाली कोरी आंखें थीं।

हिंदुओं के गाय को मां मानने के बहुत गहरे कारणों में गाय की आंख भी एक रही है। वह समस्त पशुओं में उस जैसी निराकार और शून्य आंख खोजनी मुश्किल है। वैसी ही आंख जब किसी व्यक्ति की हो जाती है, तो वह ध्यान को उपलब्ध हो जाता है।

तो गायों की आंखों में झांकता था। अपने को भूलता गया, भूलता गया, भूलता गया। फिर कठिनाई खड़ी हो गई। गाएं बड़ी मुश्किल में पड़ गईं; क्योंकि गाएं हजार हो गईं और श्वेतकेतु को गिनती का ख्याल ही न रहा। कौन गिनती करे? तो बड़ी मीठी कथा है कि गायों ने एक दिन इकट्ठे होकर कहा, श्वेतकेतु! हम हजार हो गए; वापस लौटने का वक्त आ गया।

तो श्वेतकेतु गायों को लेकर वापस लौट आया। जब वह गुरु के आश्रम में प्रवेश कर रहा था, तो गुरु भागे हुए आए, श्वेतकेतु को गले लगाया और श्वेतकेतु से कहा, अब कुछ पूछने को नहीं है। तू अपने पिता के पास वापस लौट जा सकता है। श्वेतकेतु ने पूछा कि आपको कैसे पता चला कि मैंने सुन लिया वह, जो नहीं सुना जा सकता? तो गुरु ने कहा कि मैंने देखा कि एक हजार एक गाएं आ रही हैं।

एक हजार तो गाएं थीं, एक वह श्वेतकेतु था। वह बिल्कुल गाय हो गया था। उसकी आंखों में शून्य आ गया था। गायों के बीच में वह ऐसे चला आ रहा था, जैसे वह भी एक गाय हो। तो गुरु ने कहा, अब कुछ कहने को नहीं है। तू जा सकता है।

बड़ी अदभुत घटना घटी। जब श्वेतकेतु अपने गांव की तरफ आया और पिता ने खिड़की से श्वेतकेतु को आते देखा, तो उसने अपनी पत्नी से कहा--श्वेतकेतु की मां को--कि अब मैं भाग जाऊं यहां से; क्योंकि श्वेतकेतु ब्राह्मण होकर आ रहा है और मेरे पैर छुएगा तो बड़ी अड़चन होगी। मैं खुद अभी ब्राह्मण नहीं हूं। मैंने वह नहीं सुना, अभी वह मैंने नहीं सुना जो सुना नहीं जा सकता है। इसलिए पिता पीछे के दरवाजे से भाग गया।

श्वेतकेतु जब भीतर पहुंचा, तो उसने अपनी मां से पूछा कि पिता कहां हैं? तो उसकी मां ने कहा कि वे ब्राह्मण होने चले गए हैं। वे अब तभी लौटेंगे, जब वे भी उसे सुन लें, जिसे तू सुन कर आ रहा है।

यह जो अश्राव्य है, यह उस दिन सुनाई पड़ता है, जब कान सारी ध्वनियां सुनना छोड़ देते हैं। यह जो अदृश्य है, उस दिन दिखाई पड़ता है, जब आंखों में सब दृश्य खो जाते हैं, सब सपने खो जाते हैं। सत्य मिलता है उसे, जिसके सब सपने खो जाते हैं, जिसकी आंखों में फिर कोई चित्र नहीं बनते, कोई स्वप्न नहीं उभरते, आंखें कोरी और खाली हो जाती हैं।

"उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"

कितना ही समझें उसे, कितना ही पकड़ें उसे, कितनी ही मुट्ठी बांधें, सच तो यह है कि जितनी मुट्ठी बांधते हैं, उतना ही वह मुट्ठी के बाहर हो जाता है। हवा की तरह है। नहीं बांधते, तो हवा मुट्ठी में होती है; बांधते हैं, तो हवा मुट्ठी के बाहर हो जाती है।

समझ भी भीतर बुद्धि की मुट्ठी है। इसलिए समझदार आदमी तनाव से भरा रहता है; क्योंकि उसकी बुद्धि मुट्ठी बनी रहती है। जिनको हम समझदार कहते हैं, वे बहुत तने हुए लोग होते हैं। उनकी खोपड़ी के भीतर बुद्धि मुट्ठी बनी रहती है। वे पकड़े रहते हैं सारी समझ को। और जितने जोर से पकड़ते हैं, उतनी ही बुद्धि कम होती चली जाती है। इसलिए पंडित और बुद्धिमान एक साथ आदमी नहीं हो पाता। बहुत मुश्किल है। क्योंकि पंडित का मतलब है बंधी हुई मुट्ठी और बुद्धिमान का मतलब है खुली हुई मुट्ठी। खुला हो हाथ, तो सारी दुनिया की हवा हाथ पर होती है। और हाथ बंद हो, तो हाथ के भीतर की हवा भी बाहर हो जाती है।

पकड़ें उसे, और छूट जाता है। कोई पकड़ उसे पकड़ नहीं पाती। क्योंकि पकड़ हमारी बहुत छोटी है, वह बहुत बड़ा है। तो अगर हम पकड़ की जिद्द करेंगे, तो आखिर में पकड़ ही हमारी पकड़ में रह जाएगी। तो जो मुट्ठी बांधता है, मुट्ठी ही उसके हाथ में रह जाती है।

तो पंडित के पास खोपड़ी ही रह जाती है हाथ में, बंधी हुई। वह भी खुली हुई नहीं; सब द्वार-रंध्र बंद हो जाते हैं। ज्ञानी के हाथ में कुछ भी नहीं रह जाता; ज्ञानी खाली हाथ हो जाता है। और इसलिए सब कुछ उसके हाथ में आ जाता है।

यह सूत्र कहता है, "समझें उसे, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"

समझने की बात को थोड़े गहरे में उतरना चाहिए। समझने में हम करते क्या हैं? जब हम किसी चीज को समझते हैं, तो करते क्या हैं? क्या है समझ की प्रक्रिया?

अगर आपके सामने एक नया जानवर खड़ा कर दिया जाए और आपसे कहा जाए समझें, तो आप क्या करेंगे? पहाड़ों में नीलगाय होती है। वह गाय नहीं है; लेकिन गाय से मिलती-जुलती है। तो अगर पहाड़ की गाय आपके सामने खड़ी कर दी जाए, तो आप कहेंगे, गाय जैसी है। क्योंकि गाय को आप जानते हैं। और जो सामने खड़ा है जानवर, उसे आप जानते नहीं।

एक मेहमान मेरे घर आए हुए थे। उनके साथ एक छोटा बच्चा था। बगीचे में फूल थे। तो उस बच्चे की मां ने उसे मना कर दिया था, यहां फूल मत तोड़ना। उसकी मां तो मुझसे बातचीत में लग गई। तभी बगीचे का

माली कुछ काम करता होगा, कुछ फूल काटता होगा, कुछ पत्ते निकालता होगा। उस लड़के ने दौड़ कर भीतर आकर कहा कि एक बहुत बड़ा लड़का फूल तोड़ रहा है!

लड़के से उसका परिचय है। इस आदमी को वह क्या कहे? बहुत बड़ा लड़का! यह बच्चा समझने की कोशिश कर रहा है कि जो फूल तोड़ रहा है, वह कौन है।

समझ की प्रक्रिया का पहला हिस्सा हैः जो ज्ञात है, उसको हम अज्ञात पर बिठाते हैं। जो हमें पता है, उसको हम उससे जोड़ते हैं, जो हमें पता नहीं है। समझ का मतलब ही यही है कि हम अज्ञात को ज्ञात की भाषा में अनुवादित करते हैं--दि अननोन रिड्यूस्ड टु दि लैंग्वेज ऑफ दि नोन। यही हम कोशिश कर रहे हैं पूरे समय। और जब हम अज्ञात को ज्ञात की भाषा में पकड़ लेते हैं, तो हम कहते हैं समझ गए।

लेकिन यह जो परमात्मा है, यह अगर अज्ञात होता, अननोन होता, तो इसे समझने का उपाय हो सकता था। वह अननोन नहीं है, अननोएबल है। वह अज्ञात नहीं है, अज्ञेय है। यहीं तकलीफ है।

विज्ञान दो चीजें मानता हैः नोन और अननोन, ज्ञात और अज्ञात। ये दो विभाजन हैं जगत के। अज्ञात का मतलब है, जो अभी अज्ञात है, आज नहीं कल ज्ञात हो जाएगा। समझ कर रहेंगे उसे हम। मतलब यह है कि जो हमें ज्ञात है, इसकी सीमा को हम बड़ा करेंगे और अज्ञात को इसी की परिधि में ले आएंगे। जब इतना ज्ञात हो सका है, तो जो अज्ञात है, वह भी ज्ञात हो जाएगा। यह समय की ही बात है। आज नहीं कल, आज नहीं कल अज्ञात कम होता जाएगा, ज्ञात बढ़ता जाएगा। एक दिन ऐसा आएगा कि हम कहेंगे, सब ज्ञात हो गया है।

धर्म तीन कोटियां मानता हैः ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय। विज्ञान दो कोटियां मानता हैः ज्ञात और अज्ञात। यही फर्क है धर्म और विज्ञान में। धर्म एक नई कोटि मानता है--अननोएबल। वह कहता है, कुछ ज्ञात है, कुछ अज्ञात है। ये दो विभाजन हैं, ये बुद्धि के विभाजन हैंः ज्ञात-अज्ञात, प्रकाश-अंधेरा, जन्म-मृत्यु। इनके पीछे जो छिपा है, वह अननोएबल है। अविभाजित, बुद्धि के पार जो है, वह अज्ञेय है। वह कभी नहीं जाना जा सकेगा। तुम ज्ञात को अज्ञात बनाते रहो, अज्ञात को ज्ञात बनाते रहो; लेकिन इसका जो मौलिक आधार है, वह सदा ही अज्ञेय बना रहेगा, वह कभी भी जाना नहीं जा सकेगा।

यही धर्म का विज्ञान से भेद है। यही झगड़ा भी है। विज्ञान कहता है, अज्ञात हम मानने को तैयार हैं। अगर तुम कहो कि तुम्हारा ईश्वर अज्ञात है, तो हम मानते हैं। तो फिर हम आज नहीं कल उसको ज्ञात कर लेंगे। लेकिन धर्म कहता है, ईश्वर अज्ञेय है। तुम कभी भी उसे ज्ञात न कर सकोगे। अज्ञेय का मतलब है, जिसे ज्ञात की भाषा में रूपांतरित नहीं किया जा सकता। जीवन का जो परम सत्य है, वह अज्ञेय रहेगा ही।

उसका कारण है। उसका कारण यह है कि उस परम सत्य में मेरा होना एक परमाणु का होना है। मैं हूं जानने वाला। और जिसे मुझे जानना है, वह यह विराट विस्तार है, अनंत विस्तार है, असीम विस्तार है। मैं हूं जानने वाला, एक परमाणु, जिसका जानना बड़ी साधारण सी बातों पर निर्भर है। एक अफीम की गोली दे दी जाए, और जिसका जानना समाप्त हो जाता है। एक इंजेक्शन दे दिया जाए मार्फिया का, और जानना खतम हो जाता है। मार्फिया के एक इंजेक्शन से जो जानना खो जाता है, वह जानने की क्षमता कितनी बड़ी है? सिर पर एक पत्थर मार दिया जाए, और चेतना खो जाती है। इस विराट अस्तित्व को जानने चले हैं हम उस सिर से, जो एक छोटे से पत्थर से विनष्ट हो जाता है, एक छोटी सी अफीम की गोली जिसे बेहोश कर देती है। जानने की तो बात और, एक जरा सा इंजेक्शन जिसे जीवन के पार हटा देता है। एक छुरी छाती में घुस जाती है और जीवन तिरोहित हो जाता है। इस अत्यल्प शक्ति से हम जानने चले हैं इस विराट को!

धर्म कहता है, हम नहीं जान सकेंगे। और धर्म का कहना वैज्ञानिक मालूम पड़ता है, तर्कसंगत मालूम पड़ता है। क्षमता कितनी है हमारी जानने की?

फिर इस जानने को भी अगर हम और थोड़े गौर से देखें। तो बच्चा मां के पेट में नौ महीने बिल्कुल बेहोश होता है, कुछ भी नहीं जानता। पैदा होता है, तो बाईस घंटे सोता है, बीस घंटे सोता है, अठारह घंटे सोता है। सोता रहता है। बड़ा भी हो जाता है, तो भी हम अगर साठ साल जिंदा रहें, तो बीस साल सोते हैं। तब हम कुछ नहीं जानते, बेहोश पड़े रहते हैं। बाकी जो चालीस साल हम सोचते हैं कि हम जानने की अवस्था में होते हैं, अगर उसमें भी खोजबीन करने जाएं, तो चालीस क्षण भी अगर मिल जाएं जानने के तो बहुत हैं। वह भी नींद में ही गुजरता है वक्त। वह भी नींद में ही गुजरता है वक्त। जानने के लिए जितना होश चाहिए, वह एक क्षण को भी हम नहीं जुटा पाते। बेहोशी में ही हम सरकते हैं। इस बेहोश चित्त से, इस नींद से भरे चित्त से विराट को जानने हम चलते हैं।

अगर आपसे कहा जाए कि इस दीए की लौ पर पांच मिनट ध्यानपूर्वक रुके रहें, कि आपका मन और कहीं न जाए, पांच मिनट यह दीए की लौ ही आपके लिए एकमात्र अस्तित्व रह जाए, तो आपको पता चलेगा कि कितना कठिन है। पांच मिनट इस दीए की लौ को भी सतत नहीं जाना जा सकता। बीच में हजार बाधाएं आ जाती हैं, हजार विचार आ जाते हैं। झपकी आ जाती है। मन कहीं और चला जाता है। एक क्षण को दीए की लौ भूल जाती है; कुछ और स्वप्न साकार हो जाता है। पांच मिनट दीए की लौ को सतत नहीं जाना जा सकता, तो इस विराट जीवन के विस्तार को, जो अनादि और अनंत फैला हुआ है, उसे जानने की कहां से क्षमता जुटाएंगे? कैसे?

फिर मैं आज हूं, कल नहीं था, कल फिर नहीं हो जाऊंगा। और यह अनंत विस्तार सदा से है और सदा रहेगा। मैं नहीं था, तब भी था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी होगा। इस सबको मैं कैसे जानूंगा? मेरा होना इतना क्षणिक है! एक लहर छलांग लगाती है आकाश में और सोचती है उस बीच कि सागर को जान लूं। जब तक वह सोच भी नहीं पाती, छलांग समाप्त हो गई। लहर विसर्जित हो गई, नीचे गिर गई। आदमी की चेतना ऐसी ही एक छलांग है। जानना कैसे हो पाएगा?

लेकिन क्या धर्म यह कहता है कि अज्ञान आत्यंतिक है, जानना हो ही नहीं सकेगा?

नहीं; धर्म यह कहता है, जब तक जानने की चेष्टा है, तब तक जानना नहीं हो सकेगा। क्योंकि जानने की चेष्टा में अहंकार है, मैं है। जब तक मुट्ठी बांधने की कोशिश है, तब तक जानना नहीं हो सकेगा। क्योंकि मुट्ठी क्षुद्र है। खोलते ही मुट्ठी विराट हो जाती है। खोलते ही मुट्ठी की कोई सीमा नहीं रह जाती। बुद्धि को खोल दें, उसके द्वार-दरवाजे तोड़ दें, उसे विराट आकाश के साथ मिल जाने दें, कोई सीमा न रखें; तो जानना घटित होगा।

लेकिन फिर भी यह सूत्र कहता है, समझें, फिर भी वह अछूता रह जाएगा। जानना घटित हो जाएगा, समझ भी आएगी, फिर भी यह ख्याल में साथ आएगा कि वह अस्पर्शित रह गया। क्यों?

अनेक कारणों से। पहला कारण तो यह है, कबीर ने कहा है, मैं खोजते-खोजते खुद खो गया। खोजने की प्रक्रिया ऐसी है कि उसमें खोजने वाला मिट जाता है। तो जब खोजने वाला मिट जाएगा, तो छुएगा कौन? स्पर्श किससे होगा? यह बड़ी अदभुत घटना है कि कभी भी कोई साधक का ईश्वर से मिलन नहीं हो पाया। होगा भी नहीं कभी। क्योंकि जब ईश्वर सामने होता है, तो साधक खो जाता है। और जब तक साधक होता है, तब तक ईश्वर सामने नहीं होता। साधक की जो होने की व्यवस्था है, अहंकार, मैं, वही तो बाधा है।

निकोडेमस ने जीसस से जाकर पूछा कि मैं क्या छोड़ दूं कि मैं परमात्मा को पा लूं? तो जीसस ने कहा, और कुछ छोड़ने से नहीं चलेगा, निकोडेमस को ही छोड़ना पड़े। तुझे स्वयं को ही छोड़ना पड़े। निकोडेमस ने कहा, और सब तो मैं छोड़ सकता हूं, लेकिन स्वयं को कैसे छोडूंगा? और सब तो मैं छोड़ कर भाग सकता हूं, लेकिन स्वयं को छोड़ कर कहां भागूंगा? मैं तो अपने साथ ही पहुंच जाऊंगा। तो जीसस ने कहा, वही कला सीखनी पड़ेगी। जिस दिन तू भागे और निकोडेमस पीछे रह जाए, उस दिन ही मिलन हो सकता है।

जिस दिन समझने वाला न हो भीतर, उस दिन समझ आ जाएगी। और जिस दिन जानने वाला न हो भीतर, उस दिन ज्ञान प्रकट हो जाएगा। और जिस दिन बांधने वाली मुट्ठी न हो, उस दिन सारा आकाश हाथ में है।

लेकिन अहंकार बहुत कंजूस है, बहुत कृपण है--सभी दिशाओं में। और जब तक अहंकार को पक्का भरोसा न आ जाए कि मुट्ठी में कोई चीज है, तब तक वह नहीं मानता। इसीलिए तो लोग पूछते देखे जाते हैं कि जब तक मैं ईश्वर को न देख लूं, तब तक मैं कैसे मानूं? जब तक मेरी मुट्ठी में न आ जाए!

कार्ल मार्क्स ने कहा है कि जब तक प्रयोगशाला की टेबल पर डिसेक्शन न हो जाए ईश्वर का, हम उसकी चीर-फाड़ न कर लें, तब तक हम न मान सकेंगे। लेकिन ईश्वर को प्रयोगशाला की टेबल पर लिटाना बहुत मुश्किल पड़ेगा। कम से कम ईश्वर से बड़ी तो प्रयोगशाला की टेबल चाहिए ही होगी। और मार्क्स को भी बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि उतनी बड़ी टेबल पर लेटा हुआ ईश्वर! मार्क्स बड़ा छोटा पड़ जाएगा किनारे खड़ा। जांच-पड़ताल कर नहीं पाएगा। बहुत छोटा पड़ जाएगा। जैसे हिमालय के पास कोई मच्छर खोजबीन करता हो।

फिर भी मच्छर और हिमालय में जो अनुपात है, वह बहुत भेद का नहीं है, बहुत बड़ा भेद नहीं है। मच्छर और एवरेस्ट में भी अनुपात है, वह बहुत बड़ा नहीं है। बहुत बड़ा फासला नहीं है। लेकिन मार्क्स और ईश्वर में जो अनुपात है, उसमें तो कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। एवरेस्ट के सामने मच्छर भी काफी बड़ा है, ईश्वर के सामने मार्क्स मच्छर भी नहीं हो सकता है।

लेकिन मार्क्स कहता है, जब तक हम चीर-फाड़ न कर लें टेबल पर रख कर, तब तक हम न मान पाएंगे।

यह मार्क्स ही कहता तो ठीक था, हमारा सब का मन भी यही कहता है कि हम विराट को भी तभी मानेंगे, जब हमारे क्षुद्र की मुट्ठी में वह हो। जब तक मैं न कहूं कि वह है, तब तक वह है ही नहीं। उसके होने के लिए भी मेरी गवाही की जरूरत है।

लाओत्से कहता है, "उसे समझें, फिर भी वह अछूता रह जाता है।"

क्योंकि जो छू सकता था, वह खो चुका होता है।

"इसलिए उसे अस्पर्शनीय कहा है।"

उसे छुआ नहीं जा सकता, क्योंकि छूने के पहले ही छूने वाला पिघल जाता है और खो जाता है। छू ही तब पाते हैं हम उसे, जब हम खो गए होते हैं, पिघल गए होते हैं। मिटे बिना उसे जानने का कोई उपाय नहीं है।

हमारे जीवन की सारी धारा होने की है। और धर्म की सारी धारा मिटने की है, न होने की है। इसीलिए तो धर्म से हमारा कोई संबंध नहीं जुड़ पाता; क्योंकि हमारे चिंतन की पूरी प्रक्रिया होने की है।

डार्विन ने कहा है कि आदमी का पूरा जीवन--न केवल आदमी का, पूरी मनुष्य-जाति का--एक शब्द में कहा जा सकता हैः स्ट्रगल फॉर सरवाइवल, बचे रहने का संघर्ष।

ठीक डार्विन कहता है। लेकिन बुद्ध को नहीं समझाया जा सकता इस बचे रहने के संघर्ष से। और अगर एक भी आदमी नहीं समझाया जा सकता, तो यह बचे रहने का संघर्ष पूरा सिद्धांत नहीं है। क्योंकि बुद्ध को अगर हम समझाएं तो हमें कहना पड़ेगाः न हो जाने का संघर्ष, न हो जाने की चेष्टा, मिट जाने की चेष्टा, खो जाने की चेष्टा।

हम सब की चेष्टा है बने रहने की, और हो जाने की, और ज्यादा हो जाने की। बुद्ध की चेष्टा है न हो जाने की, रिक्त, शून्य, खो जाने की। हम अगर पानी हैं, तो हम बर्फ होना चाहते हैं--सख्त, मजबूत, सुरक्षित। बुद्ध अगर बर्फ हैं, तो पिघल कर पानी हो जाना चाहते हैं--तरल। और बस चले उनका, तो भाप हो जाना चाहते हैं। कोई आकार भी न रहे। और बस उनका चले, तो भाप भी नहीं रह जाना चाहते हैं। क्योंकि उसका भी कहीं न कहीं अस्तित्व में कोई न कोई आकार तो है।

धर्म है मिटने का दुस्साहस। इसलिए जो आदमी भी धर्म की तरफ जाता है, उसे ठीक से समझ लेना चाहिए कि मिटने की तैयारी है? होने का दुख ख्याल में आ गया है? होने का नर्क समझ में आ गया है? तो ही धर्म की तरफ कदम बढ़ते हैं।

लेकिन हमारे भी कदम बढ़ते हैं धर्म की तरफ। वह धर्म झूठा हो जाता है--हमारे कदमों की गलती के कारण। क्योंकि हम धर्म की तरफ भी और होने के लिए बढ़ते हैं--स्वर्ग कैसे मिल जाए? कि मोक्ष कैसे मिल जाए? कि इस जीवन के पार की भी सुरक्षा कैसे कर लूं? यहां तो मौत दिखाई पड़ती है; ऐसा जीवन कैसे पा जाऊं जहां कोई मौत न हो? यह तो फिर सरवाइवल ही है। यह तो फिर बचने का ही उपाय चल रहा है।

इसलिए धर्मगुरु लोगों को समझाते दिखाई पड़ते हैं कि जो हमारे साथ होगा, वही बचेगा। जो हमारे साथ नहीं होगा, वह नहीं बचाया जाएगा। कयामत के दिन, आखिरी निर्णय के दिन, हम ही गवाह होंगे तुम्हारे कि बचाए जाओगे कि नहीं बचाए जाओगे। और ऐसे गुरुओं को बड़ी संख्या में लोग मिल जाते हैं। क्योंकि सभी की आकांक्षा बचने की है। उस आकांक्षा का शोषण किया जा सकता है।

बुद्ध जैसे गुरु को शिष्य मिलना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बुद्ध कहते हैंः मिटो, खो जाओ, बचो ही मत। तुम्हारा होना ही तुम्हारा संताप है। शून्य हो जाओ।

लाओत्से कहता है, "इसलिए उसे अस्पर्शनीय कहा जाता है।"

क्योंकि छूने वाला बचता नहीं। जब वह सामने आता है, तब हम खो जाते हैं। जब तक हम होते हैं, छू सकते हैं, पकड़ सकते हैं, तब तक वह नहीं होता है। इन दोनों का कहीं मिलन नहीं है। यह मिलन असंभव है।

फिर भी मिलन होता है, लेकिन किसी दूसरे आयाम में। मेरे न होने का और उसके होने का मिलन होता है। मेरे होने का और उसके होने का कोई मिलन नहीं होता। जब तक मैं हूं, तब तक वह नहीं है। और जब मैं नहीं हो जाता हूं, तब पूरा अस्तित्व रूपांतरित हो जाता है, तब वह हो जाता है। मेरा न होना ही उसके देखने की आंख बनती है, उसके छूने का हाथ बनता है। मेरा न होना ही वह जगह बनती है, जहां वह प्रकट होता है। मेरा न होना ही सिंहासन है उसके लिए। जब तक अपने सिंहासन पर मैं ही काफी भरा हुआ बैठा हूं, उसके लिए कोई जगह नहीं है।

झेन फकीरों ने कहा है, मेहमान घर में आता है, तो हम जगह बनाते हैं, कमरा खाली करते हैं--उसके ठहराने के लिए। उस परम मेहमान को जो बुलाने गया है, उसे तो बिल्कुल खाली कर देना होगा अपने को। जरा भी भीतर स्वयं का होना न बचे।

"इसलिए वह अस्पर्शनीय कहा जाता है।"

"इस प्रकार वह अदृश्य, अश्राव्य, अस्पर्शनीय और हमारी जिज्ञासा की पकड़ के बाहर, हमारी जिज्ञासा से छूट-छूट जाता है और दुर्ग्राह्य बना रहता है।"

हमारी जिज्ञासा से छूट-छूट जाता है। इसे आखिरी बात समझ लें: इंक्वायरी, जिज्ञासा से वह छूट-छूट जाता है।

अभी मैंने आपको कहा कि विज्ञान और धर्म में एक फर्क है--कैटेगरीज का। विज्ञान दो कोटियां मानता है अस्तित्व की, धर्म तीन। वह तीसरी कोटि ही धर्म का आधार है।

जिज्ञासा दर्शनशास्त्र का स्रोत है। इंक्वायरी, पूछताछ, प्रश्न फिलासफी का आधार है। दुनिया में कोई फिलासफी, कोई दर्शन नहीं होगा, जिज्ञासा अगर समाप्त हो जाए। लेकिन जिज्ञासा धर्म का आधार नहीं है।

इसलिए पश्चिम के लोग तो कहते हैं कि हिंदुस्तान में फिलासफी जैसी कोई चीज ही नहीं है। वे थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। वे थोड़ी दूर तक ठीक कहते हैं। जिस अर्थों में यूनान में फिलासफी रही और पश्चिम में है, उस अर्थों में भारत में फिलासफी कभी नहीं रही। क्योंकि भारत में जिज्ञासा से उसे पाया ही नहीं जा सकता। चीन में भी, पूर्व में, समस्त पूर्वीय चिंतना में जिज्ञासा से उसे नहीं पाया जा सकता, जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है। हम जो प्रश्न उठा सकते हैं, वे प्रश्न उसके चरणों तक नहीं पहुंच पाते। हमारे प्रश्न छोटे पड़ जाते हैं।

हम प्रश्न भी क्या पूछ सकते हैं? प्रश्न भी तो अनुभव से उठते हैं। ध्यान रखें, प्रश्न अनुभव से उठते हैं। हम पूछते हैं कि ईश्वर को जब तक मैं आंख से न देख लूं, तब तक कैसे मानूं? क्योंकि हमारा अनुभव यह है कि जो चीज हम आंख से देख लेते हैं, वह मानने योग्य हो जाती है। फिर उसके झूठ होने का कोई सवाल न रहा।

लेकिन इस पर हमने बहुत खोजबीन नहीं की है। सपना भी हम आंख से ही देखते हैं। और जब सपना देखते हैं, तब वह पूरा सत्य मालूम पड़ता है। सुबह उठ कर पता चलता है कि वह नहीं था। जिस जिंदगी को हम जिंदगी कहते हैं, किसी दिन उससे भी उठ कर अगर पता चले कि जो हमने देखा, वह एक लंबा सपना था! एक आदमी सत्तर साल तक सपने में सोया रखा जा सकता है। उसे सत्तर साल में कभी पता नहीं चलेगा कि जो वह देख रहा है, वह असत्य है।

आंख पर हमारा भरोसा जरूरत से ज्यादा है। रेगिस्तान में कभी जाएं तो दिखाई पड़ता है कि दूर पानी का सरोवर है। आंख बिल्कुल खबर देती है। आंख इतनी पक्की खबर देती है कि सरोवर ही नहीं दिखाई पड़ता, उसके किनारे खड़े हुए वृक्षों की छाया भी उसमें दिखाई पड़ती है।

लेकिन वह केवल किरणों का धोखा है। और जब पास पहुंचेंगे, तो वृक्ष तो उस किनारे खड़े मिलेंगे, सरोवर नहीं मिलेगा। मगर इतना साफ दिखाई पड़ रहा था--उसमें लहरें उठ रही थीं! तरंगें उठ रही थीं! पास खड़े वृक्षों का प्रतिबिंब बन रहा था! आंख ने पूरा कहा था। पर आंख धोखा दे गई।

हम अगर ईश्वर के संबंध में प्रश्न उठाते हैं, तो हमारे प्रश्न आंख से ही बंधे होते हैं। हम पूछते हैं, दिखाई पड़े, छू लूं हाथ से, कान से सुन लूं। हमारे प्रश्न क्या हैं? हमारी इंद्रियों के अनुभव से उठते हैं। और ध्यान रहे, इंद्रियों के अनुभव से जो प्रश्न उठते हैं, वे उसके किनारे भी नहीं पहुंच पाएंगे; क्योंकि वह अतींद्रिय है। कहीं भी उसे छू नहीं पाएंगे। हमारा अनुभव हमारे प्रश्न का आधार है। और जो हमने जाना ही नहीं है, उसके संबंध में हमारे प्रश्नों का मूल्य क्या है? यह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ेगी। जिसे हम जानते ही नहीं, उसके संबंध में हम जिज्ञासा भी क्या कर सकते हैं?

समझें, किसी अपरिचित देश में आप जाएं, जहां गुलाब का फूल न होता हो। फूल ही न होता हो। और लोगों से आप गुलाब के फूल की चर्चा करें, तो वहां के लोग पूछें, प्रश्न उठाएं--उनके अपने अनुभव से। आप कहें

बहुत सुंदर होता है, तो वे एक हीरा आपके सामने रख दें और कहें ऐसा सुंदर? तो आपको कठिनाई शुरू होगी। और अगर आप कहें ऐसा सुंदर नहीं, तो वे कहें कि फिर सौंदर्य का मतलब ही क्या रहा? और आप कहें कि हां, थोड़ी दूर तक कह सकते हैं कि ऐसा ही सुंदर, तो वे पूछेंगे, वह नष्ट तो नहीं होता? क्योंकि हीरा तो टिकता है। आप कहें, नहीं, वह सुबह खिलता है, सांझ समाप्त हो जाता है। तो वे कहें, यह भी कोई बात हुई? यह भी कोई सौंदर्य हुआ?

आप लाख सिर मारें और उनसे कहें कि यह कुछ भी सौंदर्य नहीं है, क्योंकि यह हीरा तो मुर्दा है, मरा हुआ है; फूल जिंदा सौंदर्य है, जीवित होता है; पर आप उनको न समझा सकेंगे। और उनके जितने प्रश्न होंगे, उनके अपने अनुभव से उठे होंगे।

ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं, जो भाषा में संगत मालूम पड़ें, अस्तित्व में व्यर्थ हों। मैं पूछ सकता हूं आपसे कि हरे रंग की सुगंध क्या होती है? भाषा में बिल्कुल संगत है। अगर किसी आदमी ने रंग न देखा हो, अंधा आदमी हो, लेकिन सुगंध का प्रेमी हो और आप उससे कहें कि हरा रंग बड़ा सुंदर होता है, तो वह आदमी पूछे कि हरे रंग में सुगंध कौन सी होती है? उसका अनुभव सुगंध का है, उसका प्रेम सुगंध से है। आंख का अंधा है, हरा रंग उसने देखा नहीं। उसका प्रश्न गलत नहीं है; क्योंकि वह अपने ज्ञात से आपके अज्ञात का संबंध बना रहा है। यही तो जानने की और समझने की प्रक्रिया है। वह पूछता है, हरे रंग की सुगंध कैसी होती है?

आप कहेंगे, इररेलेवेंट पूछते हो, असंगत पूछते हो। हरे रंग का सुगंध से क्या लेना-देना? तो वह आदमी कहेगा, जब सुगंध से ही लेना-देना नहीं, तो हरे रंग से हमारा क्या लेना-देना? उसका अनुभव सुगंध का है। तो वह पूछ सकता है कि क्या हरे रंग में दुर्गंध होती है?

उसकी जिज्ञासाएं संगत हैं, फिर भी जिज्ञासाएं हैं।

लाओत्से कहता है, वह हमारी जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है; क्योंकि जिज्ञासा तो उठेगी ज्ञात से।

तो जिज्ञासा उपयोगी है, अगर अज्ञात की खोज करनी हो। अज्ञेय की खोज करनी हो, तो जिज्ञासा व्यर्थ है। इसलिए जिज्ञासा दर्शन का आधार है, विज्ञान का भी। लेकिन जिज्ञासा धर्म का आधार नहीं है।

तो हमने अपने मुल्क में एक नया शब्द खोजा है। वह है मुमुक्षा, जिज्ञासा नहीं। वह धर्म की आधारशिला है। हम प्रश्न पूछते नहीं; क्योंकि प्रश्न तो हमारे अनुभव से आते हैं। और वह हमारे अनुभव के बाहर है अब तक। उसके संबंध में हमारे प्रश्न असंगत हैं। हम उसके संबंध में कुछ भी नहीं पूछते। हम अपने संबंध में कुछ पूछते हैं। तब मुमुक्षा शुरू हो जाती है। इसे थोड़ा समझ लें।

अंधा आदमी है। वह पूछता है कि क्या हरे रंग में सुगंध होती है? यह जिज्ञासा है। अंधा आदमी पूछता है कि मुझे तो दिखाई नहीं पड़ता, मुझे दिखाई कैसे पड़ सकता है, ताकि तुम जिस रंग की बात कर रहे हो उसे मैं जान पाऊं? यह मुमुक्षा है--मुझे दिखाई कैसे पड़ सकता है? हरा रंग कैसा है, यह जिज्ञासा है। मैं कैसा हूं और कैसा हो जाऊं, ताकि हरा रंग मुझे दिखाई पड़ सके, जिसकी तुम खबर लाए हो? यह मुमुक्षा है।

जिज्ञासा विचार में ले जाती है, मुमुक्षा साधना में। जिज्ञासा चिंतन को जन्म देती है, मुमुक्षा ध्यान को। जिज्ञासु विचारों में ही भटकता रह जाता है, जहां तक धर्म का संबंध है। मुमुक्षु उस मंजिल पर पहुंच जाता है, जो जिज्ञासा की पकड़ के बाहर है। जो विचार से ही सत्य को समझने चलेगा, वह असफल होगा। जो विचार से ही सत्य को जानने की चेष्टा करेगा, वह कुछ भी न जान पाएगा। क्योंकि विचार हमारा अंधापन है। जो निर्विचार हो सकेगा, उसके लिए, वह जो दुर्ग्राह्य है, तत्क्षण प्रकट हो जाता है, निकट हो जाता है, भीतर-बाहर सब तरफ मौजूद हो जाता है।

आज इतना ही। पर पांच मिनट रुकें, कीर्तन में सम्मिलित हों और फिर जाएं।

तैंतीसवां प्रवचन

अक्षय व निराकार, सनातन व शून्यता की प्रतिमूर्ति

Chapter 14 : Part 2

Pre-Historic Origins

Neither by its rising is there light,
Nor by its sinking is there darkness.
Unceasing, continuous, it can not be defined.
And it reverts again to the realm of nothingness.
That is why it is called the form of the Formless; The image of nothingness.
That is why it is called the elusive,
Meet it, and you do not see its face;
Follow it, and you do not see its back.
He who holds fast to the Tao of old,
In order to manage the affairs of now,
Is able to know the primeval beginnings,
Which are the continuity (tradition) of Tao.

अध्याय 14 : खंड 2

पूर्व-ऐतिहासिक स्रोत

न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश,
न उसके डूबने पर होता अंधेरा।
ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य,
जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।
और पुनः-पुनः वह शून्यता के आयाम में प्रविष्ट हो जाता है।
इसीलिए निराकार ही उसका आकार कहा जाता है।
वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है।
इन सब कारणों से उसे दुर्गम्य भी कहा जाता है।
उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता;

उसका अनुगमन करो, फिर भी उसकी पीठ दिखाई नहीं पड़ती।

वर्तमान कार्यों के समापन के लिए जो व्यक्ति पुरातन व सनातन ताओ को सम्यकरूपेण धारण करता है, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है जो कि ताओ का सातत्य है।

बह फूल खिलते हैं, सांझ मुरझा जाते हैं। सुबह सूरज निकलता है; सांझ ढल जाता है। जन्म है और मृत्यु में समाप्ति हो जाती है। प्रत्येक घटना शुरू होती है और अंत होती है। लेकिन अस्तित्व सदा है। अस्तित्व की न कोई सुबह है, न कोई सांझ। अस्तित्व का न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। लाओत्से इस सूत्र में अस्तित्व की इस जन्म-मरणहीन, अनादि, अनंत सातत्य के संबंध में सूचना दे रहा है।

जो भी हम जानते हैं, उसे हम सीमाओं में बांध सकते हैं। कहीं होता है प्रारंभ और कहीं अंत हो जाता है। और जो भी इस सीमा में बंध सकता है, उसकी परिभाषा हो सकती है। परिभाषा का अर्थ ही है कि जिसे हम विचार की परिधि में घेर लें। लेकिन जो शुरू न होता हो, अंत न होता हो, उसकी परिभाषा असंभव है। क्योंकि हम विचार की परिधि में उसे घेर न पाएंगे। कहां से खींचें रेखा? कहां करें रेखा का अंत? इसलिए अस्तित्व की कोई परिभाषा नहीं हो सकती। अस्तित्ववान वस्तुओं की परिभाषा हो सकती है, स्वयं अस्तित्व की नहीं।

इसे हम ऐसा समझें। और यह सूत्र कठिन है; तो बहुत-बहुत दरवाजों से इसके रहस्य को खोलना पड़े। एक फूल दिखाई पड़ता है; कहते हैं सुंदर है। चांद निकलता है; कहते हैं सुंदर है। कोई चेहरा प्रीतिकर लगता है; कहते हैं सुंदर है। कोई कविता मन को भाती है; कहते हैं सुंदर है। कोई संगीत हृदय को स्पर्श करता है; कहते हैं सुंदर है। लेकिन क्या कभी आपने सौंदर्य को देखा? कोई गीत सुंदर होता है, कोई चेहरा सुंदर होता है, कोई आकाश में तारा सुंदर होता है, कोई फूल सुंदर होता है। आपने वस्तुएं देखीं जो सुंदर हैं, लेकिन कभी आपने सौंदर्य को देखा?

तब एक बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जाएगी। अगर आपने सौंदर्य को कभी नहीं देखा, तो आप किसी वस्तु को सुंदर कैसे कहते हैं?

फूल में आपको सौंदर्य दिखता है; लेकिन आपने सौंदर्य को कभी नहीं देखा। फूल का सौंदर्य सुबह खिलता है, सांझ खो जाता है। एक चेहरे में सौंदर्य दिखता है। आज है, कल तिरोहित हो जाता है। जो आज तक था और कल खो जाएगा, जो सुबह दिखा था और सांझ विसर्जित हो जाएगा, उसे आपने कभी वस्तुओं से अलग देखा? कभी आपने शुद्ध सौंदर्य देखा है?

आपने सुंदर चीजें देखी हैं, सौंदर्य नहीं देखा। तो फूल की परिभाषा हो सकती है। उसकी सीमा है, आकार है, पहचान है। लेकिन सौंदर्य की परिभाषा नहीं हो सकती। उसकी कोई सीमा नहीं, उसका कोई आकार नहीं, उसकी कोई पहचान नहीं। और फिर भी हम पहचानते हैं! नहीं तो फूल को सुंदर कैसे कहिएगा?

अगर फूल ही सुंदर है, तो फिर रात का चांद सुंदर न हो सकेगा। फूल और चांद में क्या संबंध है? और अगर चांद ही सुंदर है, तो फिर किन्हीं आंखों को सुंदर न कह सकिएगा। आंख और चांद में क्या लेना-देना है? सौंदर्य कुछ है, जो फूल में भी है, चांद में भी है, आंख में भी है। सौंदर्य कुछ अलग है; फूल से भिन्न है, चांद से भिन्न है, आंख से भिन्न है। और आंख जो अभी सुंदर मालूम पड़ रही थी, क्रोध से भर जाए और असुंदर हो जाएगी। घृणा से भर जाए और असुंदर हो जाएगी। आंख वही रहेगी, लेकिन कुछ खो जाएगा।

तो निश्चित ही सौंदर्य न तो फूल है, न चांद है, न आंख है। सौंदर्य कुछ और है। लेकिन सौंदर्य को कभी देखा? आमने-सामने कभी देखा सौंदर्य को? कभी सौंदर्य से मुलाकात हुई?

सौंदर्य से कोई मुलाकात नहीं हुई। सौंदर्य को कभी जाना नहीं, देखा नहीं। सौंदर्य की परिभाषा असंभव है। फिर भी सौंदर्य को हम पहचानते हैं। और जब फूल में उतरता है वह रहस्य, वह रहस्य का लोक जब फूल में समाविष्ट होता है, तो हम कहते हैं फूल सुंदर है। वही रहस्य जब किन्हीं आंखों में समाविष्ट हो जाता है, तो हम कहते हैं आंखें सुंदर हैं। वही रहस्य किसी गीत में प्रकट होता है, तो हम कहते हैं गीत सुंदर है।

लेकिन सौंदर्य क्या है?

फूल की परिभाषा हो सकती है कि फूल क्या है; चांद की परिभाषा हो सकती है कि चांद क्या है; आंख की परिभाषा हो सकती है कि आंख क्या है। लेकिन सौंदर्य क्या है? वह अपरिभाष्य है, इनडिफाइनेबल है। क्यों? उसकी परिभाषा क्यों नहीं हो पाती? पहचानते हम उसे हैं। किसी अनजान रास्ते से उससे हमारा मिलना भी होता है। किसी अनजान रास्ते से हमारे हृदय के भीतर भी वह प्रविष्ट हो जाता है। किसी अनजान रास्ते से हमारी आत्मा उससे आंदोलित होती है। लेकिन क्या है? जब बुद्धि उसे पकड़ने जाती है, तो हम पाते हैं वह खो गया।

करीब-करीब ऐसे है, जैसे कि अंधेरा भरा हो इस कमरे में। और हम प्रकाश लेकर जाएं खोजने कि अंधेरा कहां है, और अंधेरा खो जाए! शायद जहां भी असीम शुरू होता है, वहीं बुद्धि को लेकर जब हम जाते हैं, तो असीम तिरोहित हो जाता है। क्योंकि बुद्धि सीमित को पहचान सकती है। बुद्धि सीमित को ही पहचान सकती है। जहां बुद्धि तय कर सके कि यहां होती है बात शुरू और यहां होती है समाप्त, रेखा खींच सके, एक परिधि बना सके, खंड अलग निर्मित कर सके, तो फिर बुद्धि पहचान पाती है।

इसलिए बुद्धि रोज-रोज छोटे से छोटे खंड निर्मित करती है। जितना छोटा खंड हो, बुद्धि की पकड़ उतनी गहरी हो जाती है। इसलिए विज्ञान चीजों को तोड़ता है। क्योंकि विज्ञान बुद्धि की खोज है। और इसलिए विज्ञान परमाणु पर पहुंच गया। परमाणु पर उसकी पकड़ गहरी है। विराट पर बुद्धि की पकड़ नहीं बैठती। जितना छोटा हो, जितना छोटा हो, जितना टुकड़ा हो, बुद्धि उसे ठीक से घेर लेती है।

परमाणु को भी तोड़ लिया गया है, अब इलेक्ट्रान पर या न्यूट्रान पर बुद्धि की पकड़ गहरी है। और बुद्धि की कोशिश यह है कि न्यूट्रान से भी नीचे उतरा जा सके, इलेक्ट्रान से भी नीचे उतरा जा सके। जितना छोटा हो खंड, उतना परिभाष्य, डिफाइनेबल हो जाता है। हम उसे रख सकते हैं आंख के सामने। जितना हो विराट, जितना हो असीम, हमारी आंखें ओर-छोर खोजती हैं, कहीं कोई सीमा नहीं मिलती, हम भटक जाते हैं। बुद्धि नाप नहीं पाती और कठिनाई हो जाती है।

लाओत्से कहता है, "न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा; ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"

वह सदा है। सूरज उगते रहते हैं और डूबते रहते हैं। फूल खिलते हैं और बिखरते रहते हैं। जीवन पैदा होता है और लीन हो जाता है। सृष्टियां बनती हैं और विसर्जित हो जाती हैं। विश्व निर्मित होता है और प्रलय को उपलब्ध हो जाता है। वह सदा है। कुछ है--हम उसे कोई भी नाम दें--कुछ है, जो पैदा नहीं होता, मरता नहीं; जो सदा है। वह है शुद्ध अस्तित्व, प्योर एक्झिस्टेंस।

जैसे मैंने सौंदर्य के लिए कहा, वह सिर्फ इसीलिए कहा ताकि आप अस्तित्व को समझ सकें। हमने कभी अस्तित्व नहीं देखा। कभी हमने एक दरख्त देखा है, जिसका अस्तित्व है। कभी एक नदी देखी, जिसका अस्तित्व है। कभी एक आदमी देखा, जिसका अस्तित्व है। कभी एक सूरज देखा, जिसका अस्तित्व है। लेकिन अस्तित्व हमने कभी नहीं देखा। वस्तुएं देखी हैं, जो हैं।

लेकिन जो वस्तुएं हैं, वे खो जाएंगी। हम कहते हैं, टेबल है। इसे थोड़ा समझें। दर्शन के लिए गहनतम प्रश्नों में से एक है। और मनुष्य की प्रतिभाओं में जो श्रेष्ठतम शिखर थे, उन्होंने इसके साथ बड़ा ऊहापोह किया है। एक टेबल है; हम कहते हैं, है। एक आदमी है; हम कहते हैं, है। एक मकान है; हम कहते हैं, है। जैसे मैंने कहाः फूल सुंदर है, तारा सुंदर है, चेहरा सुंदर है; टेबल है, मकान है, आदमी है, सूरज है। यह "है", अस्तित्व क्या है? क्योंकि टेबल में भी है, सूरज में भी है, आदमी में भी है। हमने आदमी देखा, सूरज देखा, टेबल देखी; लेकिन वह जो है-पन है, इ.जनेस, वह जो अस्तित्व है, वह हमने कभी नहीं देखा।

समझें, टेबल को हमने नष्ट कर दिया। हमने कहा था, टेबल है। दो चीजें थींः टेबल थी और होना था। हमने टेबल को नष्ट कर दिया। क्या हमने होने को भी नष्ट कर दिया? फूल था। कहते थे, है; अब कहते हैं, नहीं है। फूल को हमने मिटा दिया। लेकिन फूल के भीतर जो होना था, अस्तित्व था, क्या उसे भी हमने मिटा दिया?

अस्तित्व को हमने कभी देखा नहीं। हमने सिर्फ चीजें देखी हैं। एक आदमी है, मर गया। तो आदमी है, इसमें दो चीजें थीं। आदमी थाः हड्डी, मांस-मज्जा थी, शरीर था, मन था। और होना था, अस्तित्व था। हड्डी टूट गई, शरीर गल गया; मिट्टी हो गई। लेकिन "है", वह जो होना था, क्या वह खो गया? क्या वह होना भी मिट गया?

जब हम एक फूल को मिटा देते हैं, तो ध्यान रखना, हम केवल फूल को मिटाते हैं, सौंदर्य को नहीं। जिस सौंदर्य को हमने देखा नहीं, उसे हम मिटा कैसे सकेंगे? जिस सौंदर्य को हम कभी पकड़ नहीं पाए, उसे हम मिटा कैसे सकेंगे? जिस सौंदर्य को हमने कभी छुआ भी नहीं, उसकी हम हत्या कैसे कर सकेंगे? जो सौंदर्य हमारी इंद्रिय की किसी भी पकड़ में कभी नहीं आया, उसे हम इंद्रियों के द्वारा समाप्त कैसे कर सकेंगे?

हम फूल को मिटा सकते हैं। हम एक आंख को फोड़ डाल सकते हैं। लेकिन उस सौंदर्य को नहीं, जो आंख से झलका था। वह आंख से अलग है। हम अस्तित्व को नहीं मिटा पाते हैं। सूरज बनते हैं, बिखर जाते हैं। सृष्टियां आती हैं, खो जाती हैं। आदमी पैदा होते हैं, कब्रें बन जाती हैं। लेकिन उनके भीतर जो होना था, जो अस्तित्व था; वह सदा, वह सदा ही प्रवाहित बना रहता है।

लाओत्से कहता है, न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा। क्योंकि न वह प्रकट होता है और न वह डूबता है। जो डूबता है, जो प्रकट होता है, इससे उसे मत पहचानना। वह इससे गहरा है। सूरज के प्रकट होने पर भी जो प्रकट नहीं होता और सूरज के डूबने पर भी जो नहीं डूबता, वही है। फूल के होने पर भी जो होता नहीं और फूल के न हो जाने पर भी जो मिटता नहीं, वही है। जन्म के साथ जिसका जन्म नहीं होता और मृत्यु के साथ जिसकी मृत्यु नहीं होती, वही है।

जन्मता है एक व्यक्ति, तो हम सीमा-रेखा खींच सकते हैं जन्म की। राम नाम का व्यक्ति पैदा हुआ, तो हमने सीमा खींची--इस दिन पैदा हुआ। फिर वह व्यक्ति मरा, तो हमने सीमा खींची--इस दिन मरा। यह राम नाम के व्यक्ति की सीमा है, लेकिन जीवन की नहीं।

इसमें थोड़ा हम गहरे उतरें, तो शायद हमें पता चले।

किस दिन को आप जन्म-दिन कहते हैं? इसमें झगड़े हैं। जिस दिन बच्चा पैदा होता है वह जन्म-दिन है या जिस दिन बच्चे का गर्भाधान होता है वह जन्म-दिन है? आमतौर से जिस दिन बच्चा मां के पेट से बाहर आता है, हम कहते हैं जन्म-दिन है। लेकिन जिस दिन बच्चा मां के पेट में आता है वह? तो थोड़ा पीछे हटें। ठीक जन्म-दिन तो वही है जिस दिन बच्चा मां के पेट में आता है। जन्म तो उसी दिन हो गया।

लेकिन थोड़ा और गहरे प्रवेश करें। मां के पेट में जिस दिन बच्चे का निर्माण होता है, पहला कोश जब निर्मित होता है, तो उसमें का आधा हिस्सा तो पिता में जिंदा था बहुत पहले से और आधा हिस्सा मां में जिंदा था बहुत पहले से। उन दोनों के मिलने से जन्म की शुरुआत हुई विज्ञान के हिसाब से। तो यह जन्म की घटना दो जीवन, जो पहले से ही मौजूद थे, उनके मिलन की घटना है। यह शुरुआत नहीं है, यह प्रारंभ नहीं है। क्योंकि जीवन दोनों मौजूद थे; एक पिता में छिपा था, एक मां में छिपा था। उन दोनों के मिलने से यह जीवन शुरू हुआ। इस जीवन की, राम नाम के जीवन की शुरुआत होगी यह। लेकिन जीवन की शुरुआत नहीं है। क्योंकि जीवन पिता में छिपा था, मां में छिपा था, मौजूद था। पूरी तरह जीवित था। तो यह प्रकट हुआ, मिलने से प्रकट हुआ। लेकिन मौजूद था।

लेकिन और पीछे चलें। जो पिता में छिपा है, वह पिता के मां और पिता में छिपा था। और चलते जाएं पीछे। जो मां में छिपा है, वह मां के पिता और मां में छिपा था। यह जीवन कब शुरू हुआ? आपका जन्म आपका जन्म हो सकता है, लेकिन आपके भीतर जो जीवन है, उसका जन्म नहीं है। उसे हम लौटाए जाएं पीछे, तो समस्त इतिहास, ज्ञात-अज्ञात, समाविष्ट हो जाएगा। अगर कभी कोई पहला आदमी जमीन पर रहा होगा, तो आप उसके भीतर जिंदा थे। लेकिन वह पहला आदमी भी कैसे हो सकता है? पहले आदमी के होने के लिए भी जरूरी है कि जीवन उसके पहले रहा हो। तो जीवन एक सातत्य हो गया।

विज्ञान के हिसाब से थोड़ी सरल है बात; धर्म के हिसाब से और थोड़ी जटिल है। क्योंकि धर्म कहता है कि मां और पिता से मिल कर जो परमाणु निर्मित हुआ, वह तो केवल देह का जीवन है; और आत्मा प्रवेश करेगी उसमें।

इसलिए बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध से कहा कि मैंने तुझे पैदा किया, तो बुद्ध ने कहा कि आपसे मैं पैदा हुआ, आपने मुझे पैदा नहीं किया। मैं आपसे आया हूं, आप मेरे लिए द्वार बने, मार्ग बने; लेकिन मैं आपसे पैदा नहीं किया गया हूं। आप नहीं थे, तब भी मैं था। आपने मेरे लिए मार्ग दिया, मैं प्रकट हुआ हूं। लेकिन मेरी यात्रा बहुत भिन्न है।

पिता नाराज थे। पिता नाराज थे, क्योंकि बुद्ध भिक्षा मांग रहे थे उस गांव में, जो उनकी संपदा थी; राज्य उनका था, उस गांव में भिक्षा-पात्र लेकर भिक्षा मांग रहे थे। तो बुद्ध के पिता ने कहा था कि सिद्धार्थ, हमारे परिवार में कभी किसी ने भिक्षा नहीं मांगी। बुद्ध ने कहा था, आपके परिवार का मुझे कुछ पता नहीं; लेकिन जहां तक मुझे अपनी पिछली यात्राओं का पता है, मैं बहुत पुराना भिखारी हूं। मैं इस जन्म के पहले भी भीख मांगा हूं, उस जन्म के पहले भी भीख मांगा हूं, जहां तक मुझे मेरा पता है, मैं बहुत पुराना भिखारी हूं। आपका मुझे कुछ पता नहीं है।

वे अलग-अलग बातें कर रहे थे, जिनका कहीं मेल नहीं होगा। बुद्ध के पिता वैज्ञानिक बात कर रहे थे; बुद्ध धार्मिक बात कर रहे थे।

अगर धर्म से देखें, तो जीवन की जो घटना मां के पेट में घट रही है आज, वह भी अनंत है। और आत्मा की जो घटना उस जीवन में प्रविष्ट हो रही है, वह भी अनंत है। दो अनंत का मिलन हो रहा है मां के गर्भ में। मैं सदा था इस अर्थ में। मेरे शरीर का कण-कण सदा था। मेरी आत्मा का कण-कण सदा था। ऐसा कोई भी क्षण नहीं था इस अस्तित्व में, जब मैं नहीं था या जब आप नहीं थे। रूप कुछ भी रहे हों, आकृतियां कुछ भी रही हों, नाम कुछ भी रहे हों; ऐसा कोई क्षण कभी नहीं था अस्तित्व में, जब आप नहीं थे; और ऐसा भी कोई क्षण कभी नहीं होगा, जब आप नहीं होंगे। लेकिन बहुत बार जन्मे आप, बहुत बार मरेंगे।

लाओत्से कहता है, "न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा; ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"

आपकी परिभाषा हो सकती है कि आपका नाम क्या, आपका गांव क्या, आपका पता-ठिकाना क्या, आपकी परिभाषा हो सकती है। लेकिन उसकी कैसे होगी परिभाषा, जो आप में प्रकट हो रहा है--शाश्वत, अनंत। उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती--क्या होगा उसका गांव! क्या होगा उसका नाम!

बुद्ध से कोई पूछता है कि आपका नाम क्या है? वे घर छोड़ कर चले गए हैं। अपना राज्य छोड़ दिया है, ताकि पहचानने वाले लोग न मिलें। अपरिचित स्थानों में भटक रहे हैं। कोई भी उन्हें देख कर आकर्षित हो जाता है। अप्रतिम उनका सौंदर्य है। भिखारी भी हों, तो भी उनका सम्राट होना छिप नहीं सकता। वह हर तरह से प्रकट हो जाता है। कोई भी राहगीर उत्सुक हो जाता है पूछने को कि आपका नाम क्या? कौन हैं आप?

तो बुद्ध कहते हैं, किस जन्म का नाम तुम्हें बताऊं? किस जन्म का तुम पूछते हो? क्योंकि मेरे हुए बहुत जन्म और बहुत रहे मेरे नाम। किस जन्म की तुम खबर पूछते हो? कभी मैं आदमी भी था, और कभी मैं पशु भी था, और कभी मैं वृक्ष भी था। कौन सी तुम्हें खबर दूं?

स्वभावतः पूछने वाला आदमी समझेगा कि पागल से पूछ लिया। लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं, किस जन्म की खबर दें? किस नाम की खबर दें? जिसे जीवन का बोध शुरू हो जाए, उसे बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी, क्योंकि फिर कोई परिभाषा काम नहीं करती। कोई परिभाषा काम नहीं करती। जैसे अनंत होने लगती है व्यवस्था, वैसे ही परिभाषाएं टूटने लगती हैं।

अक्षय है जीवन, कभी क्षीण नहीं होता। घटनाएं घटती हैं, बिखर जाती हैं; अस्तित्व, अस्तित्व बना रहता है। पहली बात। परिभाष्य क्यों नहीं है? क्योंकि असीम है। ओर-छोर खोजना संभव नहीं है। इसलिए नहीं कि हमारी खोजने की व्यवस्था कमजोर है, इसलिए कि ओर-छोर हैं ही नहीं।

ईसाइयत ने इस पृथ्वी के जन्म का ऐतिहासिक सूत्रपात माना है। खोजियों ने, ईसाई खोजियों ने तय ही कर रखा कि चार हजार साल पहले, ईसा से चार हजार चार साल पहले, इस पृथ्वी की शुरुआत हुई। और जिन्होंने मेहनत की उन्होंने यह भी तय कर दिया कि सुबह नौ बजे चार हजार चार साल पहले। और जिन्होंने खोज की उन्होंने मिनट और सेकेंड भी तय कर दिए।

लेकिन विज्ञान से फिर बड़ी कठिनाई हुई। ईसाइयत को पश्चिम में जो बड़े से बड़ा नुकसान पहुंचा, वह उसकी इन डेफिनीशंस, परिभाषाओं की वजह से पहुंचा, ये सीमाओं की वजह से पहुंचा। क्योंकि विज्ञान ने सिद्ध किया कि यह तो बचकानी बात है। यह पृथ्वी बहुत पुरानी है, कम से कम चार अरब वर्ष पुरानी है। फिर सारे प्रमाण इकट्ठे हो गए कि चार हजार साल की तो बात बिल्कुल ही बेकार है। और दिन-तारीख और समय तय करना सब नासमझियां हैं। ईसाइयत को बहुत धक्का पहुंचा इस बात से, हालांकि धर्म का इससे कोई संबंध न था।

अगर धर्म को हम ठीक से खोजने चलें, तो धर्म कभी भी तय नहीं कर सकता कि कहां चीजें शुरू होती हैं और कहां समाप्त होती हैं। धर्म तो मानता ही यह है कि जो है, वह न शुरू होता और न समाप्त होता। अस्तित्व अनादि है और अनंत है। इसलिए ताओ से, लाओत्से के विचार से विज्ञान का कोई विरोध नहीं हो सकता। क्योंकि लाओत्से यह कह रहा है कि हम अक्षय अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। यह कभी शुरू नहीं हुआ और कभी समाप्त नहीं होगा। चार हजार चार साल पहले दुनिया शुरू हुई, यह तो बचकानी बात हो गई। लेकिन जो कहते

हैं कि चार अरब वर्ष पहले शुरू हुई, यह भी बचकानी बात है। सिर्फ समय को लंबा कर देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। चार हजार साल हो कि चार अरब वर्ष हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लाओत्से तो कहेगा कि चीजें इस जगत में शुरू हो ही नहीं सकतीं। अस्तित्व सदा है। हां, रूप बदल सकते हैं। रूप बदल सकते हैं। रूप नए हो सकते हैं; पुराने हो सकते हैं। आकृतियां बदल सकती हैं। लेकिन वह जो छिपा है आकृतियों के भीतर, वह सदा है, वह सतत है।

"और पुनः-पुनः वह शून्यता के आयाम में प्रविष्ट हो जाता है।"

जटिलता और बढ़ जाती है परिभाषा की। क्योंकि अस्तित्व, जैसा हम आमतौर से समझते हैं, अस्तित्व का मतलब होता है होना। लाओत्से के लिए न होना भी अस्तित्व है। लाओत्से के लिए होना और न होना अस्तित्व के दो पहलू हैं। तो जब लाओत्से या बुद्ध जैसे लोग कहते हैं नथिंगनेस, न होना, तो हमें बड़ी भ्रांति हो जाती है। हम समझते हैं उनका मतलब है कि जब वे कहते हैं नथिंगनेस, न होना, तो उसका मतलब है कि कुछ भी नहीं है। भूल हो जाती है। बुद्ध या लाओत्से जैसे व्यक्तियों के लिए न-होना अस्तित्व का एक ढंग है। प्रकट होना, अप्रकट होना एक ही चीज की दो व्यवस्थाएं हैं।

मैं बोलता हूं; फिर मैं मौन हो जाता हूं। अगर हम बुद्ध से पूछें तो बुद्ध कहेंगे, बोलना और मौन होना एक ही शक्ति के दो ढंग हैं। वह शक्ति कभी बोलती और कभी मौन हो जाती। मौन होने में वह शक्ति मिट नहीं जाती जो बोलती थी, सिर्फ मौन हो जाती है। न होना होने का अप्रकट हो जाना है, मिट जाना नहीं।

इसे ठीक से समझ लें तो बहुत सी बातें साफ हो सकेंगी। न होना मिट जाना नहीं है। क्योंकि लाओत्से की दृष्टि है कि जगत में मिट तो कुछ भी नहीं सकता। मिट कहां सकता है?

अब तो विज्ञान भी कहता है कि कोई भी चीज मिटाई नहीं जा सकती। कैसे मिटाइएगा? एक रेत के छोटे से कण को मिटाने लगिए, तब आपको पता चलेगा कि आप मिटा नहीं सकते। आप पीस डालेंगे। तो जो इकट्ठा था, वह टुकड़ों में मौजूद हो जाएगा। आप जला डालेंगे। तो जो अभी अनजला था, वह जल कर राख हो जाएगा; लेकिन मौजूद रहेगा। आप मिटाइएगा कैसे? आप एक रूप को मिटा कर दूसरा रूप कर देंगे। और कुछ भी न कर पाएंगे। पानी है, तो बर्फ हो सकता है। बर्फ है, तो भाप हो सकती है। नदी सागर हो सकती है। सागर आकाश के बादल बन सकता है। बादल फिर नदियां बन जाएंगे। लेकिन आप मिटा नहीं सकते। पानी की एक बूंद भी मिटाई नहीं जा सकती है। मिटाना असंभव है।

यह बहुत मजे की बात है कि विज्ञान कहता है कि जब से अस्तित्व है, न तो एक कण इसमें बढ़ा है और न एक कण घटा है। क्योंकि घटेगा कैसे? और बढ़ेगा कैसे? इतना परिवर्तन होता रहता है, लेकिन टोटल, समग्र उतना का ही उतना है। कितना विराट है अस्तित्व! कितना उपद्रव चलता है! तारे बनते हैं, मिटते हैं, बिखरते हैं। पृथ्वियां आती हैं, खो जाती हैं। कितने लोग, कितने जीवन आते हैं, चले जाते हैं। कितने महल, कितनी कब्रें, कितना शोरगुल, फिर कितना सन्नाटा! कितनी जीवन की उथल-पुथल और फिर कितनी मृत्यु की शांति! लेकिन इस जगत में एक कण न घटता है और न बढ़ता है। बढ़ेगा कहां से?

इस जगत का अर्थ हैः सब कुछ। इसके बाहर कुछ भी नहीं है। तो बढ़ेगा कहां से? और इस जगत का अर्थ हैः सब कुछ। तो घटेगा कैसे? क्योंकि इसमें से एक कण भी तो कहीं गिर नहीं सकता। जगत की समग्रता, टोटल, जोड़ सदा वही का वही है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। रूप बदलते रहते हैं; जो रूपायित है, वह वही का वही है। चीजें खो जाती हैं, विलीन हो जाती हैं, फिर भी अस्तित्व उतना का ही उतना है।

लाओत्से कहता है, "और वह पुनः-पुनः शून्यता के आयाम में प्रविष्ट होता है।"

यह जो अस्तित्व है, इसके दो आयाम हैंः इसके प्रकट होने का अर्थ है रूप में होना, इसके शून्य में होने का अर्थ है अरूप हो जाना। एक गीत मैं गाऊं, क्षण भर पहले तक वह गीत नहीं था। फिर मैंने गाया। वह गीत हुआ। फिर क्षण भर बाद सब खो गया। वह गीत फिर शून्य में समाविष्ट हो गया। एक फूल खिला। क्षण भर पहले वह नहीं था। सौंदर्य आया। सूरज की किरणों ने उस फूल को नहलाया। वह फूल आनंद से नाचा। उस फूल ने अपने जीवन का गीत गाया। उस फूल ने सुगंध छोड़ी। फिर सांझ कुम्हला गया। फिर गिर गया। फिर खो गया।

प्रत्येक वस्तु होती है और नहीं हो जाती है। लेकिन नहीं हो जाने का अर्थ मिट जाना नहीं है। नहीं हो जाने का अर्थ है लीन हो जाना, खो जाना वापस शून्य में। शून्य का अर्थ है अप्रकट हो जाना, अनमेनिफेस्ट हो जाना। मेनिफेस्टेशन और अनमेनिफेस्टेशन, होना और न होना अस्तित्व के दो पहलू हैं।

एक बहुत अदभुत घटना है। लाओत्से से कोई मिलने आया है। वह नास्तिक है। और वह कहता है कि ईश्वर नहीं है। और लाओत्से के पास पहले से ही कोई उसका शिष्य बैठा है। वह आस्तिक है। वह कहता है, ईश्वर है। लाओत्से कहता है, तुम दोनों सही हो; क्योंकि तुम दोनों ही ईश्वर के एक-एक रूप की चर्चा कर रहे हो। तुममें कोई विवाद नहीं है। तुममें कोई विरोध नहीं है। ईश्वर का एक रूप है होना और एक रूप है न होना। नास्तिक न होने की चर्चा कर रहा है, आस्तिक होने की चर्चा कर रहा है। और तुम दोनों सही हो और दोनों गलत; क्योंकि तुम दोनों ही अधूरी बातें कर रहे हो।

लाओत्से कहता है, ईश्वर है और ईश्वर नहीं है; यह दोनों एक साथ सत्य है। क्योंकि ये दोनों उसके होने के ढंग हैं। तो लाओत्से हमारे लिए मुश्किल हो जाता है। परिभाषा कठिन हो जाती है। कोई कहे, ईश्वर है; तो परिभाषा हो गई। कोई कहे, नहीं है; तो भी परिभाषा हो गई। दोनों निश्चित हैं। लाओत्से कहता है, ईश्वर है और नहीं है, दोनों। तो परिभाषा मुश्किल हो गई।

लेकिन लाओत्से ठीक कह रहा है। लाओत्से ठीक कह रहा है। न होना भी होने का एक ढंग है--विरोध नहीं, विपरीत नहीं। यह अगर दिखाई पड़े, तो जन्म भी मेरे होने का एक ढंग है और मृत्यु भी मेरे होने का एक ढंग है। जन्म में मैं प्रकट होता; मृत्यु में मैं लीन होता। जागना भी मेरे होने का एक ढंग है; नींद भी मेरे होने का एक ढंग है। जागने में मैं गतिमान होता; नींद में मैं गतिशून्य हो जाता। जागने में मैं बाहर चलता; नींद में मैं भीतर चलने लगता। होश भी मेरे होने का एक ढंग है और बेहोशी भी मेरे होने का एक ढंग है। होश में मेरे भीतर हलन-चलन होता; बेहोशी में सब शांत हो जाता, होश भी शांत हो जाता।

हमारे मन में होने और न होने के बीच जो विरोध है, उसे तोड़ देना जरूरी है। तो ही लाओत्से समझ में आए। दोनों में कोई विपरीतता नहीं है, कोई शत्रुता नहीं है। दोनों एक ही बात के दो ढंग हैं। तब परिभाषा और कठिन हो गई। क्योंकि पुनः-पुनः वह शून्य में प्रविष्ट हो जाता है। अगर वह सदा बना रहे, तो भी हम उसकी परिभाषा कर सकते हैं। लेकिन वह कभी-कभी खो जाता है, न हो जाता है। तो परिभाषा और मुश्किल हो जाती है।

"इसीलिए उसे निराकार रूप में वर्णित किया जाता है। दैट्स व्हाय इट इ.ज काल्ड दि फार्म ऑफ दि फार्मलेस।"

इसीलिए निराकार ही उसका आकार कहा जाता है। उसका आकार ही निराकार होना है। वह इस ढंग से है कि आकार, रूप उसमें नहीं हैं। यह भी थोड़ा कठिन पड़ेगा; क्योंकि हमारे सोचने के सभी ढंग चीजों को विपरीत कर लेते हैं। और लाओत्से के सोचने, देखने का ढंग सभी चीजों को जोड़ लेना है।

हम जानते हैं उन लोगों को, जो सगुण ईश्वर को मानते हैं। वे कहते हैं, वह आकारवान है, रूपवान है। हम जानते हैं उन लोगों को, जो निर्गुण ईश्वर को मानते हैं। जो कहते हैं, निराकार है, उसकी कोई आकृति नहीं। और कितना विवाद है उनमें!

इस्लाम निराकार को मानता है। तो उसने सारी दुनिया से आकार तोड़ने की कोशिश की। जहां-जहां मूर्ति हो, मिटा दो; क्योंकि ईश्वर का कोई आकार नहीं है। आकार मानने वाले लोग हैं। इस्लाम ने, मक्का के मंदिर में तीन सौ पैंसठ मूर्तियां थीं, उनको तोड़ डाला। वे तीन सौ पैंसठ मूर्तियां प्रत्येक दिन के लिए एक ईश्वर का आकार था। पूरे वर्ष के लिए आकार थे। प्रत्येक दिन ईश्वर का एक आकार था। बड़े कल्पनाशील लोग थे, जिन्होंने वह मंदिर बनाया होगा। प्रत्येक दिन के लिए ईश्वर की एक आकृति स्वीकृत थी। उस दिन उस आकृति की पूजा करते थे, दूसरे दिन दूसरी आकृति की, तीसरे दिन तीसरी आकृति की। बड़ी कीमत की बात थी। कीमत यह थी कि आकार में पूजते थे, फिर भी निराकार को मानते रहे होंगे। नहीं तो रोज आकार बदलेगा कैसे? रोज आकार उसी का बदल सकता है, जो निराकार हो। जिसका आकार है, उसका रोज आकार कैसे बदलेगा? और जो रोज आकार बदल लेता है, उसका अर्थ ही यह हुआ कि उसका कोई निश्चित आकार नहीं है। इसलिए कोई भी आकार में वह प्रकट हो सकता है।

हमारे मुल्क में हिंदुओं ने हजारों आकार निर्मित किए हैं ईश्वर के। एक वृक्ष के नीचे रखे हुए अनगढ़ पत्थर से लेकर खजुराहो की सुंदरतम मूर्तियों तक बहुत आकार निर्मित किए हैं। तैंतीस करोड़ देवताओं की कल्पना इस मुल्क में रही है। अनंत आकार निर्मित किए हैं।

आकार वालों में और निराकार वालों में बड़ा विरोध है। क्योंकि निराकार वाला सोच नहीं सकता कि जिसका कोई आकार नहीं, उसकी मूर्ति कैसे होगी? और आकार वाला यह नहीं सोच सकता कि जो सब इतने आकारों में प्रकट हुआ है, वह मूर्ति में क्यों प्रकट नहीं होगा? इतने आकारों में जो प्रकट हो रहा है, अनंत-अनंत आकारों में, तो वह मेरी पत्थर की मूर्ति में प्रकट होने में उसे क्या बाधा है? और पत्थर भी उसी का आकार है; अन्यथा पत्थर भी होगा कैसे? इसलिए बहुत बाद में आकार वालों ने मूर्तियां गढ़नी शुरू कीं। पहले तो कोई भी पत्थर पर सिंदूर लगा कर मूर्ति निर्मित हो जाती थी। सभी पत्थरों में वही है, सिंदूर लगाने से भक्तों के लिए प्रकट हो गया था। इसलिए अगर गांव में जाएं और अनगढ़ पत्थरों पर सिंदूर पुता देखें, तो ख्याल में नहीं आता कि यह देवता कैसे बन गया है? शायद गांव के लोग आकार न बना सकते होंगे, मूर्ति न खोद सकते होंगे। नहीं, ऐसा नहीं है। कोई भी पत्थर का कोई भी आकार वस्तुतः उसी का आकार है। सब आकार उसके हैं, तो कोई भी आकार काम दे देगा।

इन दोनों विचारों में विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमें निराकार और आकार विपरीत शब्द मालूम पड़ते हैं। लाओत्से के लिए कहीं भी विरोध नहीं है। लाओत्से की मौलिक दृष्टि जीवन में अविरोध को देखना है--सभी जगह। गुण भी उसी के हैं; निर्गुण भी वही है। आकार भी वही है; निराकार भी वही है।

इसलिए बहुत बढ़िया वचन है यह, "दैट्स व्हाय इट इ.ज काल्ड दि फार्म ऑफ दि फार्मलेस।"

हम निराकार को ही उसका आकार कहते हैं। हम निर्गुणता को ही उसका गुण कहते हैं। न होने को भी हम उसका होना कहते हैं। उसकी अनुपस्थिति उसके उपस्थित होने का एक ढंग है। हिज एब्सेंस इ.ज जस्ट ए वे ऑफ हिज प्रेजेंस। तब परिभाषा और कठिन हो जाती है। क्योंकि अगर हम शब्दों की विपरीतता मानें, तो सीमाएं खींची जा सकती हैं। अगर हम कहें वह गुणवान है, तो निर्गुण से अलग कर सकते हैं। अगर हम कहें वह आकार वाला है, तो निराकार से अलग कर सकते हैं। या हम कहें कि वह निराकार है, तो आकार को काट सकते

हैं और सीमा खींच सकते हैं। लेकिन अगर वह दोनों है, तो सीमा और भी धुंधली होकर खो जाती है। फिर परिभाषा और भी कठिन है।

"वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है।"

मूर्ति तो सदा ही वस्तुओं की होती है। शून्यता की कैसे मूर्ति होगी? मूर्ति का तो अर्थ ही होता है आकार; निराकार की कैसे मूर्ति होगी? लेकिन लाओत्से कहता है, वह शून्यता की प्रतिमूर्ति है। विपरीत को आत्यंतिक रूप से जोड़ने की चेष्टा है। नहीं है वह, यह भी उसके होने का आयाम है।

हमें कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमें साफ है, एक चीज है और एक चीज नहीं है। लेकिन कुछ चीजें हमारे अनुभव में भी हैं, जो हैं और जिनको होने की किसी भी भाषा में नहीं रखा जा सकता। आपके हृदय में प्रेम जाग आए किसी के प्रति। है, लेकिन बिल्कुल न होने जैसा है। यही तो प्रेमी की तकलीफ है कि जो वह अनुभव करता है, उसे कह भी नहीं पाता। जो वह अनुभव करता है, उसे बता भी नहीं पाता। जो वह अनुभव करता है, अगर प्रमाण मांगे जाएं, तो कोई भी प्रमाण नहीं है।

अगर पूछें किसी प्रेमी से कि तू जिस प्रेम की इतनी बातें करता है, रातों जिसका चिंतन करता है, श्वास-श्वास जिससे तेरी भर गई है, रोएं-रोएं में जिसका तू कंपन अनुभव करता है, उसका प्रमाण कहां है? कहां है वह प्रेम? तो प्रेमी के पास कोई उपाय नहीं है कि वह बता सके कि प्रेम कहां है। और जिन बातों से वह बताने की कोशिश भी करता है, वे कितनी अधूरी हैं! और इसलिए प्रेमी अनुभव करता है कि कितनी असमर्थता है! कैसे प्रकट करे? गले से किसी को लगा लेता है, लेकिन कुछ भी तो प्रकट नहीं होता। हड्डियां हड्डियों को छूती हैं और अलग हो जाती हैं। प्रेमी को भीतर अनुभव होता हैः नहीं, प्रकट नहीं हो पाया जो प्रकट करना था। प्रेमी अपनी जान भी दे दे, तो भी कुछ प्रकट नहीं हो पाता। जान ही दी जाती है, और भीतर लगता है कि जो प्रकट करना था, वह तो अप्रकट रह गया। प्रेम है; पर ऐसा है, जैसे न हो। प्रेम के होने का ढंग ठीक वैसा ही है, जैसा परमात्मा के होने का ढंग है।

इसलिए जीसस ने परमात्मा की परिभाषा में ही प्रेम शब्द का प्रयोग किया और कहा कि लव इ.ज गॉड।

इसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा प्रेमी है। यह भ्रांति हुई। यह भ्रांति हुई और ईसाइयत ने परिभाषा की कि परमात्मा बहुत प्रेमपूर्ण है। नहीं, ईसा का यह मतलब नहीं है। क्योंकि परमात्मा को प्रेमपूर्ण कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि जहां कोई घृणा न हो, वहां प्रेमपूर्ण कहने का कोई भी अर्थ नहीं है।

परमात्मा प्रेम है, इसका अर्थ यह है कि इस अस्तित्व में प्रेम ही एकमात्र हमारे पास प्रमाण है, जिसमें होना और न होना एक साथ संयुक्त है। है प्रेम; पूरे वजन से है। और एक आदमी अपने प्रेम के लिए अपने जीवन तक को खोने को तैयार है, तो उस आदमी को प्रेम अपने जीवन से भी ज्यादा वास्तविक मालूम पड़ता है, तभी। लेकिन उस प्रेम को है की परिभाषा में कहीं भी रखने का कोई उपाय नहीं। उसे कहीं भी बताया नहीं जा सकता कि यह है। इसलिए ईश्वर को जीसस ने प्रेम कहा, सिर्फ इसलिए कि आपके अनुभव से एक सूत्र जुड़ सके।

लेकिन हमें तो प्रेम का ही कोई पता नहीं होता। तो फिर बहुत कठिनाई हो जाती है। बहुत कठिनाई हो जाती है।

इसलिए जो चिंतन-प्रक्रियाएं प्रेम से जितनी दूर होती हैं, उतनी ही ईश्वर को इनकार करने वाली हो जाती हैं। जैसे गणित, गणित ईश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि प्रेम से बहुत दूर की व्यवस्था हो गई। विज्ञान, विज्ञान ईश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि प्रेम से विज्ञान का क्या लेना-देना?

काव्य ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि काव्य प्रेम के निकट है। नृत्य ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि नृत्य प्रेम के निकट है। संगीत ईश्वर को स्वीकार कर सकता है; क्योंकि संगीत प्रेम के निकट है।

जो व्यवस्थाएं प्रेम के निकट हैं, वे ईश्वर को स्वीकार करने की तरफ पैर उठा सकती हैं। जो व्यवस्थाएं प्रेम से जितनी दूर हैं, उतनी ही सख्त होती चली जाती हैं और ईश्वर को मानना उन्हें कठिन होता चला जाता है। क्योंकि उनके लिए न होना और होना एक साथ कैसे हो सकते हैं, यह बात ही ग्राह्य नहीं होती।

लाओत्से कहता है, शून्यता ही जैसे उसकी मूर्ति है। नहीं है, यही उसका होना है।

"इन सब कारणों से उसे दुर्गम्य कहा जाता है।"

ये सब कारण हैं कि वह समझ में नहीं आता, ऐसा कहा जाता है।

"उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता; उसका अनुगमन करो, फिर भी उसकी पीठ दिखाई नहीं पड़ती।"

यह वचन बहुत गहन हैः "उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता।"

वह मिल भी जाए, तो भी उसका चेहरा दिखाई नहीं पड़ता। उसका कोई चेहरा नहीं है। उसका चेहरा हो भी नहीं सकता। सभी चेहरे चूंकि उसके हैं, कोई भी चेहरा उसका नहीं हो सकता। अगर उसका भी अपना कोई चेहरा है, तो फिर सभी चेहरे उसके नहीं हो सकते।

लाओत्से की प्रसिद्ध पंक्तियां हैंः ही इ.ज नो व्हेयर, बिकाज ही इ.ज एवरी व्हेयर। ही इ.ज नो वन, बिकाज ही इ.ज एवरी वन। कहीं भी नहीं है वह, क्योंकि सब जगह वही है। कोई भी नहीं है वह, क्योंकि सभी में वही है।

उसका कोई चेहरा नहीं हो सकता; उससे मिलन हो सकता है। इसलिए जो लोग चेहरों से आविष्ट हो जाते हैं, वे उससे कभी भी नहीं मिल पाते। कोई राम से जकड़ जाता है। कोई कृष्ण से जकड़ जाता है। कोई जीसस से जकड़ जाता है। ये चेहरे हैं। इन चेहरों में भी वही है, लेकिन ये कोई भी चेहरे उसके नहीं या सभी चेहरे उसके हैं। इसे ध्यान रखना जरूरी है; अन्यथा भूल हो जाती है। तो राम का भक्त राम के चेहरे को ही खोजता रहता है। और वह चेहरा-मुक्त है, फेसलेस है। यह चेहरा ही फिर बाधा बन जाता है। एक सीमा तक राम का चेहरा सहयोगी होता है, क्योंकि राम के चेहरे में उसकी झलक हमें मिली। फिर एक सीमा के बाद राम का चेहरा बाधा बन जाता है, क्योंकि अब चेहरा महत्वपूर्ण हो गया और झलक गैर-महत्वपूर्ण हो गई।

श्री अरविंद ने कहा है कि थोड़ी दूर तक जो सीढ़ियां हैं, थोड़ी देर के बाद बाधाएं बन जाती हैं। थोड़ी दूर तक जो मार्ग था, थोड़ी दूर के बाद वही भटकाव है।

इसलिए हर मार्ग को चुनना ध्यान रख कर कि कब तक वह मार्ग है। और यह बहुत कठिन है, यह बहुत कठिन है। हर सीढ़ी को चढ़ना तब तक, जब तक वह सीढ़ी हो। और जब रोकने लगे, तब उससे हट जाना।

राम का चेहरा सहयोगी है, क्योंकि राम के चेहरे में जितनी सरलता से उसका शून्य चेहरा प्रकट हुआ है, वैसे कम चेहरों में प्रकट हुआ है। राम का चेहरा उपयोगी है, क्योंकि राम के चेहरे से वह शून्य प्रकट हुआ है। लेकिन फिर चेहरा महत्वपूर्ण होता चला जाएगा। और धीरे-धीरे चेहरा इतना महत्वपूर्ण हो जाएगा कि उस चेहरे से फिर शून्य प्रकट नहीं होगा।

ऐसा निरंतर होता है। बुद्ध के पास जब कोई पहली दफा जाता है, तो बुद्ध के चेहरे से कोई लगाव तो नहीं होता, बुद्ध की आंखों से कोई लगाव नहीं होता। लगावरहित अवस्था होती है। उस क्षण में बुद्ध की आंखों से वह दिखाई पड़ जाता है, जो बुद्ध के पार है। फिर लगाव शुरू होता है। फिर लगाव घना होता है। फिर आसक्ति

निर्मित हो जाती है। फिर धीरे-धीरे वह जो पार है, वह दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। फिर तो बुद्ध का चेहरा ही हाथ में रह जाता है। इसलिए बुद्ध ने मरते वक्त कहा कि मेरी मूर्तियां मत बनाना। कारण यह नहीं था कि बुद्ध मूर्ति के विपरीत थे। कारण कुल इतना था कि बुद्ध को दिखाई पड़ा कि वह जो पीछे था, वह तो खोता जा रहा है। मेरा चेहरा महत्वपूर्ण होता जा रहा है। और धीरे-धीरे मेरा चेहरा ही हाथ में रह जाएगा।

लेकिन बुद्ध का चेहरा इतना प्यारा था कि बुद्ध की भी लोगों ने फिक्र नहीं की। कहा था उन्होंने, मेरी मूर्ति मत बनाना; लेकिन जितनी बुद्ध की मूर्तियां बनीं पृथ्वी पर उतनी किसी की मूर्तियां नहीं बनीं। इतनी मूर्तियां बनीं कि बहुत सी भाषाओं में मूर्ति के लिए शब्द ही बुद्ध से बन गया। जैसे उर्दू, अरबी, फारसी में बुत। बुत बुद्ध का अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बनीं कि कुछ लोगों ने तो पहली जो मूर्ति देखी, वह बुद्ध की ही थी। इसलिए मूर्ति का मतलब ही बुत हो गया, बुत यानी मूर्ति। और बुत का मतलब है बुद्ध। और जिस आदमी ने कहा था मेरी मूर्ति मत बनाना! लेकिन वह चेहरा ऐसा प्यारा था कि उसे छोड़ना मुश्किल था।

यहां कठिनाई खड़ी होती है। चेहरा सहयोगी हो सकता है, अगर पार का दर्शन होता रहे। चेहरा उपद्रव हो जाता है, अगर पार का दर्शन बंद हो जाए। फिर चेहरा दीवार है। अगर पार दिखाई पड़ता रहे, बियांड दिखाई पड़ता रहे, तो चेहरा द्वार है। तो मूर्ति द्वार हो सकती है, अगर निराकार का स्मरण बना रहे।

लाओत्से कहता है, उससे मिलो, फिर भी उसका चेहरा नहीं दिखाई पड़ता। उसके पीछे चलो, लेकिन उसकी पीठ का कोई पता नहीं चलता।

इसे भी हमें समझना आसान होगा, अगर हम प्रेम से इसे जोड़ें।

अगर आपके जीवन में कभी भी वह सौभाग्य का क्षण आया है, जब आपने किसी को प्रेम किया हो... । यह इसलिए कहता हूं कि बहुत मुश्किल से कभी करोड़ में एकाध बार कोई आदमी किसी को प्रेम करता है। चर्चा करते हैं लोग प्रेम की। और चर्चा इसीलिए करते हैं, क्योंकि प्रेम का कोई अनुभव नहीं। चर्चा से मन को भरते हैं, समझाते हैं। संतुलन खोजते हैं चर्चा से, सांत्वना खोजते हैं। अगर कभी किसी ने किसी को प्रेम किया हो, क्षण भर को भी वह झलक मिली हो, तो एक अनूठा अनुभव होगा कि जिससे आप प्रेम करेंगे, अगर प्रेम के क्षण में आप हों तो आपको उसका चेहरा नहीं दिखाई पड़ेगा। यह बहुत कठिन मामला है। अगर आपने किसी को प्रेम किया है, एक क्षण को भी आपका हृदय प्रेम से भर गया है, तो आपके प्रेमी का, आपकी प्रेयसी का चेहरा खो जाएगा। और आपको अपने प्रेमी में, अपनी प्रेयसी में उसकी झलक मिलेगी, जिसका कोई चेहरा नहीं है।

इसीलिए जिन्होंने गहरा प्रेम किया है, उन्होंने अपने प्रेमियों की ऐसे चर्चा की है जैसे वे ईश्वर की चर्चा कर रहे हों। इसलिए बहुत मुश्किल है, प्रेमियों के वचन खोज कर यह तय करना मुश्किल है कि वे प्रेमी की चर्चा कर रहे हैं कि परमात्मा की चर्चा कर रहे हैं! अगर आपने प्रेम-काव्य पर कभी नजर डाली है, तो आपको निरंतर कठिनाई अनुभव होगी कि यह प्रेमी की चर्चा है या परमात्मा की! यह उमर खय्याम किसकी बात कर रहा है? प्रेयसी की या परमात्मा की? शराब की या समाधि की? बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। इसलिए शराब बेचने वाली दुकानें उमर खय्याम नाम रख लेती हैं।

प्रेमी प्रेम के क्षण में निराकार से संबंधित हो जाता है, आकार खो जाता है। रूप खो जाता है, अरूप प्रकट होता है। प्रेम की कीमिया, प्रेम की अल्केमी यही है कि रूप से उसकी शुरुआत होती है, अरूप पर उसका अंत होता है। पहले तो रूप ही खींचता है। लेकिन रूप खींचता इसीलिए है कि रूप में से कुछ भीतरी स्वर्ण झलकता है, कोई भीतरी दीप्ति, जो रूप की नहीं है। खींचता तो फूल ही है पहले, लेकिन फूल भी इसीलिए खींचता है कि सौंदर्य उसके इर्द-गिर्द आभा बनाए हुए है। रूप ही खींचता है पहले, लेकिन भीतर अरूप की दीप्ति! जैसे कि हम

एक कांच के घर में एक छोटा सा दीया जला दें। दीया कहीं भी दिखाई न पड़े, कांच का घर ही दिखाई पड़े; लेकिन दीए की झलक, दीप्ति बाहर आती हो। दीए की लौ तो दिखाई न पड़ती हो, लेकिन दीए की किरणें बाहर आती हों, हलकी रोशनी बाहर झलकती हो। तो कांच का घर हमें खींचे अपनी तरफ। लेकिन अगर घर पर ही हम रुक जाएं, तो भूल हो गई। घर के भीतर जो छिपा है!

एक सुंदर शरीर खींचता है निकट, कुछ भी बुरा नहीं है, कुछ भी पाप नहीं है। बुराई तो तब शुरू होती है, जब भीतर के दीए का पता ही नहीं चलता और सुंदर शरीर ही सब कुछ हो जाता है। तब उपद्रव शुरू होता है। अगर रूप खींचे और अरूप अनुभव में आने लगे, तो एक क्षण आएगा कि रूप भूल जाएगा और अरूप ही रह जाएगा।

अगर कोई ठीक से प्रेम भी कर ले एक व्यक्ति को भी, तो परमात्मा को और अलग से खोजने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि वही व्यक्ति द्वार बन जाएगा। चूंकि हम प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए हमें प्रार्थना करनी पड़ती है। और चूंकि हम प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए साधना करनी पड़ती है। चूंकि प्रेम नहीं कर पाते हैं, इसलिए फिर बहुत कुछ करना पड़ता है। प्रेम ही कोई कर ले, तो फिर कोई और उपाय, कोई विधि...। तो मीरा कह सकती है कि न कोई उपाय है, न कोई विधि है, न कोई ज्ञान है, न कोई ध्यान है। मीरा कह सकती है; क्योंकि प्रेम की उसे खबर मिल गई है। कबीर कह सकते हैं कि छोड़ो सब यज्ञ-योग, छोड़ो सब जप-तप, छोड़ो सब, उसका नाम ही काफी है।

लेकिन उसका नाम उसके लिए ही काफी है, जिसके भीतर प्रेम की झलक आई हो। नहीं तो नाम बिल्कुल काफी नहीं है। रटते रहो।

यही कठिनाई है कि कबीर कहते हैं, नाम काफी है। क्योंकि प्रेम से लिया गया नाम पर्याप्त है, और क्या चाहिए? फिर लोग सोचते हैं, नाम ही काफी है। और प्रेम का उनके पास कोई अनुभव नहीं है। तो फिर नाम जपते रहते हैं जिंदगी भर। यंत्रवत तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। और कहते हैं, कबीर ने कहा, नानक ने कहा कि नाम काफी है, तो फिर हम नाम जप रहे हैं। नाम काफी है, नाम भी काफी है। नाम से कम और क्या होगा? नाम भी काफी है। लेकिन काफी है उस हृदय को जहां प्रेम है। और प्रेम हो, तो नाम भी गैर-जरूरी है। प्रेम ही काफी है।

लाओत्से कहता है, मिल जाए वह, फिर भी चेहरा दिखाई नहीं पड़ता। अनुगमन करो उसका, पीठ दिखाई नहीं पड़ती। मीट इट, एंड यू डू नॉट सी इट्स फेस; फालो इट, एंड यू डू नॉट सी इट्स बैक।

मिलते ही कोई सीमा नहीं दिखाई पड़ती। किसी भी उपाय से कोई मिले, मिलते ही कोई अनुभव निर्मित नहीं होता। इसलिए कोई अगर कहे कि मैंने ईश्वर को देख लिया, तो समझना कि कोई स्वप्न देखा है, धार्मिक स्वप्न देखा है। प्रीतिकर, सुखद, लेकिन स्वप्न देखा है। कोई कहे कि मैंने उसका चेहरा देख लिया, तो समझना कि कल्पना प्रगाढ़ हो गई है। उसका चेहरा कभी किसी ने नहीं देखा। कभी कोई देख भी नहीं सकेगा। उसका कोई चेहरा नहीं है। उसकी कोई रूप-रेखा नहीं है। अस्तित्व रूप-रेखा शून्य है।

"वर्तमान कार्यों के समापन के लिए जो व्यक्ति इस सनातन ताओ को सम्यकरूपेण धारण करता है, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है जो कि ताओ का सातत्य है।"

अंतिम सूत्र साधक के लिए है। जो बातें पहले कही गईं, वे इशारे हैं उस परम रहस्य की तरफ। उस परम रहस्य को कैसे पाया जा सके, इस आखिरी सूत्र में उसकी तरफ निर्देश है। दो-तीन बातें समझनी पड़ें।

एक, समय मनुष्य की ईजाद है। परमात्मा के लिए समय नहीं है। अतीत, वर्तमान, भविष्य हमारे विभाजन हैं। परमात्मा के लिए अतीत, वर्तमान और भविष्य नहीं हैं। तो परमात्मा के लिए जो शब्द उपयोग किया जा सके समय की जगह, वह सनातन है, पुरातन है, चिरनूतन है, इटरनल है, इटरनिटी है।

समय हमारा विभाजन है। अतीत का अर्थ है, जो अब हमारे लिए नहीं है। भविष्य का अर्थ है, जो अभी हमारे लिए हुआ नहीं। वर्तमान का अर्थ है, जो हमारे लिए है। लेकिन परमात्मा तो सभी को घेरे हुए है। अतीत भी उसके लिए अभी है; भविष्य भी उसके लिए अभी है; और वर्तमान भी उसके लिए अभी है। अगर ठीक से समझें तो परमात्मा के लिए एक ही काल-क्षण है, वह वर्तमान है।

इसे ऐसा समझें कि दीवार में एक छेद कर ले कोई और बाहर से देखे। एक कोने से देखना शुरू करे हाल के भीतर, तो सबसे पहले उसे मैं दिखाई पड़ूं। फिर क्रमशः उसकी नजर आप पर चलती जाए। जब आप उसे दिखाई पड़ें, तो मैं दिखाई पड़ना बंद पड़ जाऊं। फिर और पीछे उसकी नजर जाए, तो आप दिखाई पड़ने बंद हो जाएं। वह पीछे हटता जाए, कतार-कतार, दूसरे चेहरे उसे दिखाई पड़ें। जो नहीं दिखाई पड़ते अब, वे अतीत हो गए। जो अभी दिखाई पड़ेंगे, वे भविष्य हैं। जो दिखाई पड़ रहा है, वह वर्तमान है। लेकिन कोई इस कमरे के भीतर मौजूद है। बाहर के आदमी के लिए तीन हिस्से हो गए; कमरे के भीतर जो मौजूद हैं, उसके लिए एक ही है। सब मौजूद हैं, अभी-यहीं।

परमात्मा अस्तित्व के केंद्र पर मौजूद है, हम परिधि पर। हम जो भी देखते हैं, उसमें हमें बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा। हमारी आंखों की देखने की क्षमता सीमित है। हम चुन कर ही देख सकते हैं। जो छूट जाता है, वह अतीत हो जाता है। जो होने वाला है, वह भविष्य हो जाता है। जो है, वह वर्तमान। और मजे की बात है, परमात्मा के लिए सिर्फ वर्तमान है। कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं। इसलिए वर्तमान शब्द का उपयोग करना ठीक नहीं है उसके लिए। क्योंकि वर्तमान का मतलब ही होता हैः अतीत और भविष्य के बीच में। जिसके लिए कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं, उसके लिए वर्तमान शब्द ठीक नहीं है। इसलिए सनातन, इटरनल, सदा।

इकहार्ट ने कहा हैः इटरनल नाउ, सदा अभी।

उसके लिए सब कुछ वर्तमान है। और हमारे लिए, अगर हम खोजने जाएं, तो कुछ भी वर्तमान नहीं है। हम कहते हैंः वर्तमान, अतीत, भविष्य। लेकिन कभी आपने देखा, आपका अतीत भी काफी बड़ा है। अगर आप पचास साल जीए हैं, तो पचास साल का अतीत है। और अगर आपको पिछले जन्मों की याद आ जाए, तो अरबों-खरबों साल का अतीत है। भविष्य भी अनंत है। अगर आपको अभी पचास साल जीना है, तो पचास साल का। और अगर आपको ख्याल आ जाए पुनर्जन्मों का, तो अनंत भविष्य है। अनंत है अतीत, अनंत है भविष्य--हमारे लिए। और वर्तमान क्या है? एक क्षण भी नहीं। अगर हम बारीकी से खोजने जाएं, तो किस क्षण को आप वर्तमान कहेंगे? जब आप कहेंगे, तब वह अतीत हो चुका होगा। जब तक आप जानेंगे कि यह वर्तमान है, वह अतीत हो चुका होगा। अगर मैं कहूं कि नौ बज कर पैंतीस मिनट पर अभी यह क्षण वर्तमान है; लेकिन मेरे इतना कहने में ही वह क्षण अतीत हो गया। अब वह है नहीं। हमारे पास वर्तमान इतना कम है कि हम उसकी घोषणा भी नहीं कर सकते। घोषणा करें, वह अतीत हो जाता है। सच तो यह है कि हमारे लिए वर्तमान का केवल एक ही अर्थ हैः जहां हमारा भविष्य अतीत होता है, वह बिंदु। व्हेयर फ्यूचर पासेस इनटू पास्ट, जहां भविष्य हमारा अतीत बनता है, बस वह जगह। वर्तमान का हमें कोई पता नहीं है।

परमात्मा के लिए सब कुछ वर्तमान है, हमारे लिए सब कुछ अतीत या भविष्य है। जहां हमारा भविष्य अतीत बनता है, उसी रेखा पर हम मान कर चलते हैं कि वर्तमान है। हमें उसका अनुभव कभी नहीं होता।

अगर उस वर्तमान को हम अनुभव करने लगें, उस वर्तमान को अगर हम पकड़ने लगें, वह वर्तमान अगर हमारी चेतना से संयुक्त होने लगे, इसी का नाम ध्यान है। हम वर्तमान को पकड़ नहीं पाते, क्योंकि चित्त हमारा इतनी तेजी से चल रहा है और समय इतनी तेजी से भाग रहा है कि इन दोनों के बीच मिलना नहीं हो पाता। समय को हम रोक नहीं सकते, वह हमारे हाथ के बाहर है। चित्त को हम रोक सकते हैं, वह हमारे हाथ के भीतर है। अगर चित्त बिल्कुल रुक जाए, तो वह जो वर्तमान का क्षण है, उससे हमारा मिलन हो सकता है। वर्तमान के क्षण से हमारा मिलन ही परमात्मा से हमारा मिलन है। फिर धीरे-धीरे अतीत और भविष्य हमारे लिए भी खो जाते हैं, वर्तमान ही रह जाता है।

लाओत्से या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के लिए कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं; वर्तमान सब कुछ है। जिस दिन कोई व्यक्ति ऐसी अवस्था में आ जाता है कि वर्तमान सब कुछ है, उस दिन वह परमात्मा से एक हो गया, परमात्मा हो गया। अतीत और भविष्य जिस मात्रा में बड़े हैं, उसी मात्रा में हम परमात्मा से दूर हैं; जिस मात्रा में कम हैं, उतने निकट हैं; जिस दिन खो गए, उस दिन हम एक हैं।

अब इस लाओत्से के सूत्र को समझें।

वर्तमान कार्यों के समापन के लिए--रोज दैनंदिन काम में भी, क्षण-क्षण, वर्तमान क्षण में--जो व्यक्ति सनातन ताओ को सम्यक रूप धारण करता है। जो वर्तमान में जीते हुए एक-एक क्षण में भी सनातन को ही धारण करता है और स्मरण रखता है, जिसका न कोई अतीत है, न कोई भविष्य, जो सदा है। दुकान पर बैठा है, बाजार में है, दफ्तर में है, घर में है, भोजन कर रहा है, सो रहा है, लेकिन अतीत का स्मरण नहीं, भविष्य का स्मरण नहीं, सनातन का स्मरण! वह जो सदा है और अभी भी है, दि इटरनल नाउ, सनातन और अभी, उसका जिसे स्मरण है। जो सम्यकरूपेण धारण करता है सनातन को, वह उस आदि स्रोत को जानने में सक्षम हो जाता है, वह उस परम स्रोत को पहचानने में पात्र हो जाता है, जो कि ताओ का सातत्य है।

ताओ का अर्थ--धर्म। ताओ का अर्थ--सत्य। ताओ का अर्थ--नियम, ऋत। ताओ का अर्थ वह परम रहस्य, जहां कोई समय नहीं है। जहां कोई बनना और मिटना नहीं है, जहां कोई सुबह और सांझ नहीं है, जहां कोई जन्म और मृत्यु नहीं है। उस परम सातत्य को उपलब्ध हो जाता है।

समय द्वार है। अगर आप अतीत और भविष्य में डोलते रहते हैं, तो आप संसार में हैं। अगर समय की दृष्टि से हम कहें, तो संसार का अर्थ हैः अतीत धन भविष्य; वर्तमान नहीं। अगर संसार से पार जाना है, तो अतीत और भविष्य जहां मिलते हैं, उस बिंदु से नीचे गिरना पड़े, वहीं से छलांग लगानी पड़े, वहीं से नीचे उतरना पड़े। शुद्ध वर्तमान अर्थात मोक्ष; शुद्ध वर्तमान अर्थात ताओ।

लाओत्से से कोई पूछता है कि तुम्हारा सबसे श्रेष्ठतम वचन कौन सा है? तो लाओत्से कहता है, यही! जो मैं अभी बोल रहा हूं। वानगाग से कोई पूछता है, तुम्हारी श्रेष्ठतम चित्रकृति कौन सी है? कौन सी सबसे श्रेष्ठ तुम्हारी पेंटिंग है? तो वानगाग पेंट कर रहा है और कहता है, यही! जो मैं अभी पेंट कर रहा हूं।

अभी जो हो रहा है, वही सब कुछ है। इस अभी में जो सनातन को स्मरण रख कर जीना शुरू कर देता है, उसे रास्ता मिल गया, उसे सेतु मिल गया। छोड़ें अतीत को, छोड़ें भविष्य को, पकड़ें वर्तमान को। धीरे-धीरे अतीत को विसर्जित करते जाएं।

हम तो उसे ढोते हैं। इसलिए बूढ़े आदमी की कमर झुक जाती है। शरीर से कम, अतीत का वजन बहुत हो जाता है। इतना अतीत हो जाता है, थक जाता है, पहाड़ छाती पर रख जाता है। सब अतीत हो जाता है। बूढ़ा आदमी बैठा हो कुर्सी पर आंख बंद किए, तो आप समझ सकते हैं कि वह क्या कर रहा होगा। वह अतीत को कुरेद रहा होगा। जवानी, बचपन; सफलताएं, असफलताएं; प्रेम, विवाह, तलाक, वह सब खोज रहा होगा। खोज रहा होगा कि क्या हुआ! बोझ बढ़ता जाता है।

उसे हटाते चलें, वह बोझ खतरनाक है। क्योंकि वह सनातन से कभी न जुड़ने देगा।

बच्चे को खोजें, जवान को खोजें, वह क्या कर रहा है? भविष्य! महल जो बनाने हैं, यात्राएं जो करनी हैं, सफलताएं जो पानी हैं--महत्वाकांक्षाएं, सपने। बच्चे को देखें, तो भविष्य का विस्तार है बड़ा। बूढ़े को देखें, तो अतीत का। भविष्य के सपने हैं बच्चे के पास, बूढ़े के पास उन्हीं सपनों की राख। इन दोनों के बीच हम चूक जाते हैं उसको, जो वर्तमान है। जैसा मैंने कहा कि हमारा वर्तमान वह बिंदु है जहां भविष्य अतीत बनता है, और हमारी जवानी भी वह बिंदु है जहां हमारा भविष्य अतीत बनता है, जहां हमारे सपने राख बनते हैं।

कभी आपने कृष्ण की कोई मूर्ति, कोई चित्र देखा, जिसमें कृष्ण बूढ़े हों? बुद्ध का कोई चित्र देखा, जिसमें बुद्ध बूढ़े हों? महावीर की कोई प्रतिमा देखी, जिसमें महावीर बूढ़े हों? बूढ़े तो जरूर हुए थे, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। बुद्ध बूढ़े हुए थे, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। लेकिन चित्र हमने सब उनके जवानी के ही शेष रखे हैं। कारण हैं। कारण हैं, इस खबर को देने के लिए कि बुद्ध के लिए वर्तमान सब कुछ हो गया। जवानी सब कुछ हो गई, युवापन सतत हो गया। बूढ़े हो गए शरीर से, लेकिन चेतना बूढ़ी नहीं हुई। क्योंकि चेतना पर कोई अतीत का बोझ न रहा। यह जो ख्याल है, वर्तमान में अगर कोई सतत जी रहा हो, तो एक सतत युवापन, एक ताजगी, एक प्रतिपल जीवन का नया, नवीन, प्रतिपल ताजा, निर्दोष फूल खिलता चला जाता है। वह कभी बासा नहीं पड़ता।

"न उसके प्रकट होने पर होता प्रकाश, न उसके डूबने पर होता अंधेरा--ऐसा है वह अक्षय और अविच्छिन्न रहस्य, जिसकी परिभाषा संभव नहीं है।"

आज इतना ही। बैठें लेकिन पांच मिनट, कीर्तन में सम्मिलित हों।

चौंतीसवां प्रवचन

संत की पहचान: सजग व अनिर्णीत, अहंशून्य व लीलामय

Chapter 15 : Part 1

The Wise Ones Of Old

The skillful masters (of the Tao) in old times,

with a subtle and exquisite penetration, comprehended its mysteries, and were so deep that they eluded man's knowledge. As they were thus beyond man's knowledge, I will make an effort to describe of what they appeared to be.

Cautious, like crossing a wintry stream;

Irresolute, like one fearing danger all around;

Grave, like one acting as a guest;

Self-effacing, like ice beginning to melt;

Unpretentious, like wood that has not been carved. Vacant like a valley, and dull like muddy water.

अध्याय 15 : खंड 1

प्राचीन समय के संतजन

प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित एवं निष्णात संतजन सूक्ष्म और अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से उसके रहस्यों को समझने में सफल हुए। और वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।

और चूंकि वे मनुष्य के ज्ञान के परे थे, इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है कि वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसा कोई शीत-ऋतु में किसी नाले को पार करते समय हो; वे सतत अनिर्णीत व चौकन्ने रहते हैं, जैसा कि कोई व्यक्ति जो कि सब ओर खतरों से घिरा हो;

वे जीवन में जैसे कि अतिथि हों, ऐसा गंभीर अभिनय करते हैं।

उनकी अस्मिता सतत विसर्जित होती रहती है, जैसे कि प्रतिपल बिखरता हुआ बर्फ हो; वे अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते, जैसे कि वह लकड़ी, जिसे अभी कोई भी रूप नहीं दिया गया है; वे एक घाटी की भांति रिक्त और मटमैले जल की भांति विनम्र होते हैं।

यह सूत्र बहुत अनूठा है। अनूठा इसलिए है कि संतों के संबंध में हमारी जो धारणा है, उसके बिल्कुल प्रतिकूल है। संत के संबंध में जैसा हम सोचते हैं, वैसा लाओत्से नहीं सोचता।

लाओत्से का संत ज्यादा समग्र व्यक्ति है। हमारा संत अधूरा है। हम जिसे संत कहते हैं, आमतौर से उसे संत न कह कर सज्जन कहें, तो उचित हो। दुर्जन और सज्जन हमारी बुद्धि की पकड़ के भीतर होते हैं। जो बुरा कर रहा है, वह दुर्जन है; और जो भला कर रहा है, वह सज्जन है। सज्जन में हम, जो भी शुभ है, उसे जोड़ देते हैं; और दुर्जन में, जो भी अशुभ है, उसे।

लेकिन लाओत्से का संत समग्र व्यक्ति है, इंटिग्रेटेड। वह दुर्जन के खिलाफ नहीं है और मात्र सज्जन नहीं है। वह दोनों है और दोनों के पार है। वह एक साथ दोनों है, इसलिए दोनों के पार होने में समर्थ है।

इस सूत्र को समझने में दो-तीन बातें हम पहले समझ लें। और फिर सूत्र की मौलिक आत्मा में प्रवेश करें।

एक महत्वपूर्ण बात लाओत्से कहता है, "प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित एवं निष्णात संतजन सूक्ष्म और अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से उसके रहस्यों को समझने में सफल हुए। और वे इतने गहरे थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।"

पहली बात, विज्ञान में नए सत्यों का उदघाटन निरंतर होता है। इसलिए विज्ञान के जगत में मौलिक चिंतक होते हैं, जो नई खोज करते हैं। धर्म के जगत में मौलिक चिंतन का कोई अर्थ नहीं होता। धर्म के जगत में नए सत्य की कोई खोज नहीं होती है। धर्म के जगत में सत्य न तो नया है, न पुराना। सनातन है। उसी सत्य का पुनः-पुनः उदघाटन होता है। व्यक्ति के लिए नया हो, क्योंकि उसने पहली बार जाना; लेकिन वह सत्य नया नहीं है। सत्य सदा से है।

इसीलिए विज्ञान के सत्य आज नए होते हैं, कल पुराने पड़ जाते हैं। जो भी नया है, वह पुराना पड़ेगा ही। धर्म के सत्य न तो नए होते और न पुराने पड़ते। क्योंकि जो नया नहीं है, उसके पुराने पड़ने का कोई उपाय भी नहीं है। धर्म निजी खोज है उस सत्य की, जो सदा है। इसलिए चाहे कृष्ण, चाहे क्राइस्ट, चाहे महावीर, चाहे लाओत्से, वे सभी उन ऋषियों की बात करते हैं, जिन्होंने पहले भी इस सत्य को पाया है।

यह थोड़ा विचारणीय है। वैज्ञानिक जब भी किसी सत्य की बात करेगा, तो वह कहेगा कि पहले इसे किसी ने भी नहीं पाया। अगर पहले भी इसे किसी ने पा लिया है, तो वैज्ञानिक की खोज व्यर्थ हो जाती है। अगर न्यूटन को कुछ सिद्ध करना है, तो वह कहेगा कि पहले इसे किसी ने भी नहीं पाया। विज्ञान में यह अनिवार्य है। अगर पहले किसी ने पा लिया है, तो न्यूटन के होने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए विज्ञान में हर चिंतक को सिद्ध करना पड़ता है कि मैं नया हूं, मौलिक हूं, ओरिजिनल हूं।

धर्म की स्थिति बिल्कुल उलटी है। यहां अगर कोई चिंतक यह सिद्ध करने की कोशिश करे कि नया है, तो उसका अर्थ होगा कि वह गलत है। क्योंकि धर्म के सत्य बासे नहीं होते, उधार नहीं होते, मृत नहीं होते, जूठे नहीं होते। और जब भी कोई व्यक्ति उन्हें जानता है, तो वे ताजे और नए होते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसके पहले नहीं जाने गए होते। हजारों लोग इसके पहले भी जान चुके होते हैं। सत्य तो वही है।

इसलिए विज्ञान का सत्य आज सत्य है, कल असत्य हो जाएगा। इसीलिए तो नया हो सकता है। इसे हम ऐसा समझें कि असत्य ही नया हो सकता है; सत्य नया नहीं हो सकता। और असत्य को खोज सकते हैं आप दूसरों से भिन्न; क्योंकि असत्य निजी हो सकते हैं, हर आदमी का अपना असत्य हो सकता है। लेकिन हर आदमी का अपना सत्य नहीं हो सकता। सत्य तो एक ही होगा। और जब भी कोई व्यक्ति अपने हृदय को खोलेगा, तो उस सत्य को उपलब्ध हो जाएगा।

विज्ञान में ऐसा लगता है कि आदमी सत्य का दरवाजा खोलता है। और धर्म में अपने हृदय को सत्य के लिए खोलता है। और हृदय की अंतिम गहराई में जो छिपा है, वह एक ही है। इसलिए कृष्ण भी कहते हैं कि मुझसे पहले भी ऋषियों ने यही कहा। महावीर भी कहते हैं, मुझसे पहले तीर्थंकरों ने यही जाना। क्राइस्ट भी कहते हैं कि मुझसे पहले जो पैगंबर हुए, उन्होंने भी यही कहा। मोहम्मद भी यही कहते हैं। कोई उनमें से दावा नहीं करता कि जो मैं कह रहा हूं, वह नया है।

लाओत्से भी कहता है कि प्राचीन समय में ताओ में प्रतिष्ठित संतजनों ने अति संवेदनशील अंतर्दृष्टि से जीवन के परम रहस्य में प्रवेश किया। लेकिन लाओत्से ने उनमें से किसी का भी नाम नहीं लिया है। यह भी विचारणीय है।

लाओत्से का ख्याल है कि इस जगत में जो लोग जितने गहरे सत्य में प्रविष्ट हुए, इतिहास उनका स्मरण रखने में असमर्थ रहा है। क्योंकि इतिहास केवल उन्हीं लोगों का स्मरण रख सकता है, जो उस समय के आदमियों की समझ में आए हों। इस जगत में बहुत से ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने उस परम रहस्य को जाना। लेकिन वह परम रहस्य इतना गूढ़ था कि जब उन्होंने उसे कहा और जीया, तो लोग उसे समझ नहीं सके। इसलिए उन परम रहस्यदर्शियों का नाम भी विस्मृत होता चला गया। बहुतों के वचन हमारे पास हैं, लेकिन नाम खो गए हैं। बहुतों के नाम हमारे पास हैं, तो वचन खो गए हैं। और बहुतों के नाम और वचन, दोनों ही खो गए हैं।

लाओत्से उन संतों की बात कर रहा है, जिनका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।

मनुष्य की समझ बड़ा छोटा दायरा बनाती है। और मनुष्य की समझ में जो आ पाता है, वह अति क्षुद्र है। जितना विराट हो, जितना महान हो, मनुष्य की समझ के लिए उतनी ही कठिनाई हो जाती है। कई बार तो ऐसा होता है कि जैसे बहुत प्रकाश हो, तो आंखें बंद हो जाती हैं। सूरज के सामने आंखें हों, तो पलक झप जाती हैं। ठीक वैसे ही बहुत बार जिन्होंने परम सत्य को अनुभव किया, उनके सामने हमारी समझ झप जाती है, बंद हो जाती है। हम कुछ भी नहीं समझ पाते हैं। क्या कारण है?

इस संबंध में भी विज्ञान और धर्म के भेद को समझ लेना जरूरी है। अगर विज्ञान को समझना हो, तो आपकी समझ को बढ़ाने की जरूरत नहीं है; सिर्फ आपकी समझ में और जानकारी जोड़ देने की जरूरत है। अगर मैं दस तक गिनती जानता हूं, तो बीस तक गिनती जानने के लिए मेरी समझ को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है। सिर्फ मुझे बीस तक की गिनती से परिचित हो जाना काफी है। मेरी समझ वही रहेगी; मैं बीस तक की गिनती जान लूंगा। हजार तक जान सकता हूं। सिर्फ जोड़ बढ़ता जाएगा। मेरी समझ वही रहेगी; सिर्फ मेरा संग्रह बढ़ता चला जाएगा।

इसलिए मनसविद कहते हैं कि आमतौर से बच्चे की समझ अठारह साल के बाद बढ़ती नहीं। अठारह साल पर समझ तो ठहर जाती है, लेकिन संग्रह बढ़ता चला जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि अठारह साल के बच्चे और अस्सी साल के बूढ़े में फर्क नहीं होगा। फर्क होगा। लेकिन फर्क समझ का नहीं, संग्रह का होगा। बूढ़े के पास ज्यादा संग्रह होगा, जानकारी ज्यादा होगी। अठारह साल के लड़के के पास जानकारी कम होगी। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, समझ में कोई फर्क नहीं पड़ता। समझ तो ठहर जाती है अठारह साल पर। अठारह भी आखिरी आंकड़ा है। समझ और भी पहले अधिक लोगों की ठहर जाती है।

पिछले महायुद्ध में अमरीका में उन्होंने जिन सैनिकों की भर्ती की, उनकी समझ का अंक निकालने की कोशिश की, तो बहुत हैरान हुए। लाखों लोगों के बुद्धि-अंक खोजे गए, तो साढ़े तेरह वर्ष औसत उम्र मिली--उम्र मन की। साढ़े तेरह वर्ष औसत उम्र पाई गई। आदमी, साढ़े तेरह वर्ष पर उसकी समझ रुक जाती है। फिर संग्रह बढ़ता चला जाता है। समझ के लिहाज से साढ़े तेरह वर्ष के आदमी में और अस्सी साल के बूढ़े आदमी में फर्क नहीं होता। संग्रह के हिसाब से बहुत फर्क होता है।

विज्ञान में हम आदमी का संग्रह भर बढ़ाए चले जाते हैं। इसलिए हमारी सारी शिक्षा समझ पर निर्भर नहीं करती, संग्रह पर निर्भर करती है। और हमारी सारी शिक्षा बुद्धि को नहीं बढ़ाती, केवल स्मृति को बढ़ाती है। इसलिए हमारी सारी परीक्षाएं स्मृति की परीक्षाएं हैं, बुद्धि की नहीं।

लेकिन धर्म की स्थिति बिल्कुल दूसरी है। धर्म आपके संग्रह के बढ़ने से समझ में नहीं आता, आपकी समझ बढ़नी चाहिए। आपकी समझ विकसित होनी चाहिए। आपकी समझ जितनी प्रौढ़ हो, उतना ही ज्यादा धर्म को समझना आसान हो जाएगा।

मैंने कहा कि हमारी औसत उम्र साढ़े तेरह वर्ष पर रुक जाती है--बुद्धि की उम्र। लाओत्से के संबंध में बड़ी मीठी कहानी है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ। यह बहुत प्रतीकात्मक है; क्योंकि लाओत्से के पास बचपन से वैसी समझ थी, जैसी सौ साल के बूढ़े आदमी के पास हो, अगर उसकी समझ बढ़ती चली जाए--संग्रह न हो, समझ बढ़ती चली जाए। संग्रह और समझ ही नालेज और वि.जडम का फर्क है। तो ज्ञान तो बुद्धि को बिना बढ़ाए भी बढ़ सकता है, लेकिन बुद्धिमत्ता--वि.जडम--बुद्धि को बदले बिना नहीं बढ़ सकती। और धर्म एक ऐसे लोक की बात करता है कि जब तक हमारी बुद्धि का समस्त रूपांतरण न हो, तब तक वह हमारी समझ के बाहर होगा।

लाओत्से कहता है कि उन सूक्ष्मदर्शी, संवेदनशील संतों ने उस परम रहस्य में प्रवेश किया; लेकिन वे इतने गहन थे कि मनुष्य की समझ के परे थे।

आज भी धर्म मनुष्य की समझ के परे है। और धर्म शायद सदा ही मनुष्य की समझ के परे रहेगा। क्योंकि मनुष्य की समझ वस्तुओं को समझने के लिए योग्य, लेकिन अनुभूतियों को समझने के योग्य नहीं है। मनुष्य की समझ दूसरे को समझने में समर्थ, स्वयं को समझने में अभी भी असमर्थ है। दूसरे को समझना बहुत आसान, खुद को समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हमारे पास वह समझ ही नहीं है जो खुद को समझ ले।

इसे हम ऐसा समझें कि अगर मेरी आंखें खराब हो जाएं और मैं दूर ही देख सकूं और पास न देख सकूं, तो उसका अर्थ होता है कि आंखें दूरी पर फिक्स हो गईं। अब मुझे पास देखना हो तो चश्मे की जरूरत पड़े। और दूर देखना हो तो चश्मे की कोई भी जरूरत नहीं है। पास देखना मुश्किल, दूर देखना आसान। करीब-करीब मनुष्य की समझ दूर पर फिक्स हो गई है, ठहर गई है। दूसरे को देखना आसान, दूसरे को समझना आसान। जितने दूर की बात हो अपने से, उतने हम बुद्धिमान होते हैं। और जितनी पास आने लगे, उतने ही हम बुद्धिहीन होने लगते हैं। और जब हमारा ही सवाल हो, तो हम बिल्कुल ही मूढ़ होते हैं।

इसलिए बहुत मजे की घटना घटती है कि हममें से सभी लोग दूसरों को सलाह देने में जितने कुशल होते हैं, खुद को सलाह देने में उतने कुशल नहीं होते। और अगर किसी आदमी को हम देखें जब वह दूसरे को सलाह दे रहा हो, तो बहुत बुद्धिमान मालूम पड़ेगा। और ठीक उसी स्थिति में वही आदमी जो करेगा, वह बिल्कुल मूढ़तापूर्ण होगा। क्या बात क्या है? दूसरा दूरी पर है। दूरी पर हमारी समझ फोकस हो जाती है। पास, हमारी समझ धुंधली होने लगती है, डगमगाने लगती है। जितने हम पास आते हैं, उतनी कंपित होने लगती हैं आंखें। और बिल्कुल पास जब केंद्र पर खड़े होते हैं, तो सब अंधेरा हो जाता है।

एक और तरह की समझ चाहिए, जो स्वयं पर केंद्रित होना जानती हो। धर्म का अर्थ हैः स्वयं पर केंद्रित होने की क्षमता। एक गहरी सेंटरिंग, अपने पर खड़े हो जाने की। और अपने को ऐसे देखने की क्षमता, जैसे दूसरे को देख रहे हों। अपने को इतने अनासक्त भाव से देखने की क्षमता, जैसे दूसरे को देख रहे हों। जैसे दूसरे को सलाह देते हों, ऐसे अपने को दूरी से देखने की क्षमता। अपने पार होकर, अपने से भिन्न होकर, अपने से अनासक्त होकर, अस्पर्शित होकर दर्शक की तरह स्वयं को देखने की क्षमता धर्म के गूढ़ रहस्य में प्रवेश करवाती है।

हम सब समझदार हैं। जहां तक व्यर्थ की चीजों का संबंध हो, हमारी समझ उतनी ही ज्यादा होती है। जितनी हो व्यर्थ बात, हम उतने ज्यादा समझदार होते हैं। जितनी हो सार्थक बात, उतनी हमारी बुद्धि खोने लगती है। कचरा हो, तो हम जैसे जौहरी खोजना मुश्किल है; हीरा हो, तो हम अंधे हो जाते हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है कि प्रवेश तो किया बहुत लोगों ने; लेकिन आदमी की समझ के वे परे थे। क्यों थे परे, उसके कुछ कारण भी कहता है। और चूंकि वे परे थे मनुष्य की समझ के, उनके संबंध में बड़ी भ्रांतियां पैदा होती हैं। और जब लाओत्से उनके लक्षण निर्देश करेगा, तब हमें भी समझ में आएगा कि हमारी भी भ्रांतियां कितनी गहन हैं।

"और चूंकि वे मनुष्य के ज्ञान के परे थे, इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है।"

ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। उनके संबंध में ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। क्योंकि जिस समझ में हम जीते हैं, उसकी तो भाषा है। और जिस समझ में हम कभी जीए नहीं, उसकी कोई भाषा नहीं है। व्यर्थ को प्रकट करना हो, हमारे पास बड़ी कुशल भाषा है।

कभी आपने ख्याल किया, अगर आपको क्रोध करना हो और गालियां देनी हों, तो आप इतने मुखर हो जाते हैं जिसका हिसाब नहीं। और अगर प्रेम करना हो और प्रार्थना करनी हो, तो आप एकदम मूक हो जाते हैं। क्रोध की भाषा है हमारे पास; प्रेम की हमारे पास भाषा नहीं है। क्योंकि प्रेम की भाषा तो तभी हो सकती है, जब निकट की समझ हो। क्रोध की भाषा तो आसान है, क्योंकि क्रोध दूर के लिए है, पराए के लिए है, और के लिए है। तो गाली हम दे सकते हैं। और गाली हमारी जितनी अभिव्यक्ति देती है, उतना हमारा प्रेम अभिव्यक्ति नहीं देता।

प्रेमी अक्सर पाते हैं कि बोलने को कुछ भी नहीं है। क्या कहें? कैसे कहें? लेकिन वे ही प्रेमी जब क्रोध से भरेंगे और घृणा से, तो कभी नहीं पाएंगे कि क्या कहें, क्या न कहें। कहने को बहुत होगा।

भाषा हमारे पास नहीं है उस निकट को प्रकट करने की।

इसलिए लाओत्से कहता है, "इसलिए उनके संबंध में इस प्रकार कुछ कहने का प्रयास किया जा सकता है।"

ठीक-ठीक कहना कठिन है, सिर्फ प्रयास हो सकता है। टटोल सकते हैं अंधेरे में, थोड़े इशारे कर सकते हैं। लेकिन ख्याल रखें, कोई भी इशारा बहुत मजबूती से पकड़ने जैसा नहीं है। जगत इतना सूक्ष्म है भीतर का और इतना कोमल है, नाजुक है कि जोर से मुट्ठी बांधी, तो उसके प्राण निकल जाते हैं। रहस्य को पकड़ना हो, तो खुली मुट्ठी चाहिए। बहुत जोर से पकड़ने की चेष्टा नहीं चाहिए।

"वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसे कोई शीत ऋतु में किसी नाले को पार करते समय हो।"

बहुत धुंधला चित्र लाओत्से देना चाहेगा, धुंधला जान कर, ताकि हमारी समझ उस रहस्य, उस धुंधलके में प्रवेश करने के लिए ऊपर उठे। बहुत बंधे हुए शब्द नहीं लाओत्से देता, इशारे करता है।

लाओत्से कहता है, जैसे सर्दी के दिन हों, बर्फीला नाला हो, पैर डालते खून जमता हो, उस नाले को कोई पार करे, तो जैसा सजग हो, वैसे वे सजग हैं। इस जीवन को पार करते समय उनकी सजगता ऐसी है, जैसे बर्फीले नाले को कोई पार करते वक्त हो।

थोड़ा ख्याल करें। अगर बर्फीले नाले को पार करना पड़ रहा है आपको, तो रोआं-रोआं जाग जाएगा। कहीं नाले में गिर न पड़ें! एक-एक पैर उठाएंगे, तो उस पैर पर पूरा ध्यान होगा। अतीत भूल जाएगा, भविष्य भूल जाएगा। एक-एक पैर वर्तमान में ही महत्वपूर्ण हो जाएगा।

या ऐसा समझें कि किसी खंदक-खाई के ऊपर से, बहुत संकरे रास्ते से गुजरते हों, जहां जरा पैर चूके तो अतल खाई में गिर जाएं और प्राण खो जाएं। वहां आपको याद रहेंगी अतीत की बातें? वहां आपको ख्याल आएगा बीता हुआ? या वहां सपने आपके मन को घेरेंगे? या वहां भविष्य की योजनाएं आपको पकड़ेंगी? असंभव है। क्योंकि मन जरा सा भी चूक गया वर्तमान से, तो नीचे अतल खाई है। नहीं, वहां आप अत्यंत सजग होकर, जाग कर, शायद जीवन में पहली बार जाग कर चलेंगे। एक-एक कदम आपकी चेतना से भरा होगा, स्मृतिपूर्वक होगा।

इसलिए जापान में झेन फकीरों ने, जिन पर लाओत्से का भारी प्रभाव है, अनेक-अनेक उपाय खोजे हैं आदमी को सजगता सिखाने के। उनमें तलवार चलाने की कला भी एक है। सोचा भी नहीं जा सकता कि ध्यान से तलवार चलाने का क्या संबंध होगा? लेकिन लाओत्से का यह सूत्र ही कारणभूत है।

जापान के फकीरों ने अनुभव किया कि आदमी को बिठा दो और कहो कि शांत हो जाओ, तो वह शांत नहीं होता। बल्कि अशांत हालत में जितना शांत मालूम पड़ता था, ध्यान के लिए बैठ कर उतना भी शांत नहीं रह जाता, और अशांत हो जाता है। जो लोग भी ध्यान में बैठने का कभी प्रयास किए हैं, उन सभी को अनुभव होगा कि मन और अशांत हो जाता है, मन और दौड़ने लगता है, मन और व्यस्त हो जाता है। जो बातें साधारणतया ख्याल नहीं आतीं, वे भी ख्याल आने लगती हैं। और जो विचार कभी नहीं उठे, वे भी मन पर छा जाते हैं। न मालूम भीतर जैसे सब पागलपन प्रकट होना शुरू हो जाता है।

कभी आधा घंटा शांत बैठने की कोशिश करें। तो वह आधा घंटा पागलपन का हो जाएगा। भला बाहर के लोग समझते हों कि आप ध्यान कर रहे हैं, आप भलीभांति समझते हैं कि आप बिल्कुल पागल हो गए हैं। क्या कारण है?

लाओत्से कहता है कि वह सजगता तभी अनुभव हो सकती है, जब जीवन एक खतरा हो, पल-पल खतरा हो। है जीवन पल-पल खतरा। हमें उसका पता नहीं है, इसलिए हम बेहोश चलते हैं। जैसे किसी आदमी की आंख पर पट्टी बंधी हो और उसे पता न हो कि वह खाई के किनारे से गुजर रहा है और अगर एक पैर चूक जाए तो जीवन समाप्त हो जाएगा। तो आंख पर पट्टी बंधा हुआ आदमी खाई के किनारे चलते समय भी अपने विचारों में खोया रहेगा। आंख की पट्टी खोल दें, विचार बंद हो जाएंगे। खतरा दिखाई पड़ेगा।

तो झेन फकीर कहते हैं कि तलवार चलाओ और तलवार चलाने में उस जगह आ जाओ, जहां तलवार ही रह जाए और खतरा इतना तीव्र हो कि तुम्हारे मन को पीछे और आगे जाने का उपाय न रहे। इसी क्षण ठहर

जाए। इसलिए झेन फकीरों के मंदिरों के सामने तलवारों के चिह्न बने हुए हैं। और जहां तलवार सिखाई जाती है, उन कक्षों का नाम ध्यान-कक्ष है।

लाओत्से कहता है, वे पुरुष, वे संतजन सजग हो गए थे, यह पहली लक्षणा।

अगर हमसे कोई पूछे कि कौन आदमी संत है, तो हम कहेंगेः शराब नहीं पीता, मांस नहीं खाता, रात्रि-भोजन नहीं करता, झोपड़े में रहता है, नग्न रहता है। हम कुछ ऐसी परिभाषा करेंगे, जिसका संतत्व से कोई भी संबंध नहीं है। लाओत्से कहता हैः सजगता। और सजगता में वह सब आ गया, जो हम कहते हैं। लेकिन हम जो कहते हैं, उसमें सजगता नहीं आती।

एक आदमी मूर्च्छित ही मांसाहार कर सकता है, मूर्च्छित ही शाकाहार कर सकता है। एक बच्चा मांसाहारी के घर में पैदा होता है, मांसाहार करता रहता है। एक बच्चा शाकाहारी के घर में पैदा होता है, शाकाहार करता रहता है। दोनों मूर्च्छित हैं। न तो शाकाहारी सजग है और न मांसाहारी सजग है। इन दोनों बच्चों को हम बचपन में बदल लेते, तो जो मांसाहारी है, वह शाकाहारी हो गया होता; जो शाकाहारी है, वह मांसाहारी हो गया होता। कोई अड़चन न आती, कोई अड़चन न आती। जितने मजे से एक आदमी दूध पी लेता है, उतने ही मजे से दूसरा आदमी दूसरी व्यवस्था में खून पी लेता है। दूध पीने में भी उतनी ही बेहोशी बनी रहती है, जितनी खून पीने में।

दूध पीने वाला सोचता होगा कि हम बहुत सजगता से पी रहे हैं, तो गलत सोचता है। मांसाहारी सोचता हो कि बहुत सजगता से मांसाहार कर रहा है, तो गलत सोचता है। हमारे जीवन की जो व्यवस्था है, वह बिल्कुल मूर्च्छित है। हम कुछ भी कर सकते हैं उस मूर्च्छा में। उस मूर्च्छा में हमें कुछ भी करने के लिए निष्णात, प्रशिक्षित किया जा सकता है। अगर गैर-मांसाहारी के सामने मांस रख दें, तो उसे उलटी हो जाए। इसलिए नहीं कि उसके पास बहुत बड़ी आत्मा है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि उसके पिछले संस्कार मांसाहार के विपरीत हैं। और कुछ भी नहीं है। अभ्यास नहीं है उसका। मूर्च्छा उसकी उतनी ही है, अभ्यास भिन्न है। ऐसे लोग हैं, जो दूध को भी पीने में मांसाहार ही समझते हैं। तो उनके सामने दूध रखें तो भी वोमिट हो जाएगी। आपको दूध देख कर कभी भी वोमिट नहीं होगी। होगी ही नहीं; दूध तो शुद्ध आहार है। लेकिन ऐसे पंथ हैं, जो मानते हैं कि दूध भी रक्त का ही हिस्सा है। है भी। इसीलिए दूध पीने से इतना रक्त बढ़ जाता है। रक्त में दो तरह के कण हैंः सफेद और लाल। सफेद कण इकट्ठा होकर दूध बन जाते हैं। इसलिए दूध पूर्ण आहार है; क्योंकि पूरा रक्त आपके शरीर को मिल जाता है। जिसको यह ख्याल है और जिसका इसके लिए प्रशिक्षण हुआ है, वह दूध को देख कर भी घबड़ा जाएगा। ऐसे लोग हैं, जो अंडे को शाकाहार समझते हैं। क्योंकि वे कहते हैं, जब तक जीवन प्रकट नहीं हुआ, तब तक शाक-सब्जी ही है। उनको अंडे से कोई तकलीफ नहीं होगी। आपकी सजगता पर यह निर्भर नहीं है। आपके आस-पास की व्यवस्था और संस्कार पर निर्भर है कि आपको क्या सिखाया गया है।

इसलिए लाओत्से जैसे व्यक्ति आपकी व्यवस्था पर जोर नहीं देंगे कि आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, कब सोते हैं, कब उठते हैं। ज्यादा गहरी बात पर उनका जोर है कि आप कुछ भी करते हों, आप जीवन में ऐसे चलते हैं, जैसे शीत ऋतु में सर्द नाले में, बर्फीले नाले में से गुजरता हुआ कोई आदमी सजग चलता है। जो भी आप करते हैं, सजग करते हैं।

और बड़े मजे की बात है, अगर कोई भी व्यक्ति अपने संस्कारों में सजग हो जाए, तो उसका जीवन रूपांतरित हो जाता है। फिर आप क्या खाते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। खाते वक्त आप सजग होते हैं या नहीं, यह महत्वपूर्ण है। और जो सजग है, निश्चित ही जो व्यर्थ है, उससे छूट जाएगा। जो सजग है, उससे जो गलत है,

वह अपने आप छूट जाएगा। जो सजग है, उसके साथ सही ही बचेगा, गलत के बचने का उपाय नहीं है। सही और गलत की परिभाषा ही यही है कि जो सजग होकर भी बच जाए, वह सही; और जो सजग होते ही गिरने लगे, वह गलत। सजग होकर भी मैं जो कर सकूं, वही पुण्य है। और जिसे करने के लिए मुझे मूर्च्छित होना अनिवार्य हो, वही पाप है। मूर्च्छा पाप है और सजगता पुण्य है।

इसलिए पहली संतत्व की परिभाषा में लाओत्से कहता है, वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसे शीत ऋतु में कोई नाले को पार करता हो।

यहां जोर गुण पर है, आचरण पर नहीं। यहां जोर भीतरी बोध पर है, बाहरी व्यवहार पर नहीं। कल्पना में भी सोचें, आप पार कर रहे हैं बर्फीला नाला। हर आदमी अपने ढंग से पार कर सकता है। कोई दौड़ कर करेगा, कोई धीमे करेगा। अपना-अपना ढंग होगा। कोई गीत गाकर करेगा, कोई चुप रह कर करेगा। लेकिन भीतरी एक गुण--सजगता। कौन कैसे करेगा, यह गौण है। सजग रह कर करेगा, बस इतना काफी है।

लाओत्से के समय में एक बहुत प्रसिद्ध फकीर था। फकीर वह था नहीं, सम्राट के घर पशुओं को काटने का बधिक का काम करता था। पूरे तीस वर्ष उसने सम्राट के भोजनगृह के लिए पशुओं को काटा था। बड़ा सम्राट का भोजनगृह था। अनेक पशु रोज कटते थे। लाओत्से ने अनेक बार अपने शिष्यों को कहा कि अगर कभी तुम्हें सजग आदमी देखना हो, तो उस बधिक को जाकर देखना। लोग चौंक जाते थे कि बधिक और सजग!

लाओत्से की मान कर कभी उस बधिक के पास कोई गया। उस बधिक को पशुओं को काटते देखा। एक बात तो सुनिश्चित मालूम पड़ी कि पशुओं को काटने में उसकी कुशलता अनूठी थी। और जो देखने गया था, उसने पूछा उस बधिक को कि तुम इतने पशु काटते हो, यह तुम जिस खंजर से काटते हो, कितने दिन में खराब हो जाता है?

तो उस बधिक ने कहा, मेरे पिता भी इसी से काटते थे, उनके पिता भी इसी से काटते थे, मैं भी इसी से काट रहा हूं। लेकिन हम इतनी सजगता से काटते हैं कि इसकी धार मरती नहीं, रोज नई हो जाती है। हम बेहोशी से नहीं काटते कि हड्डी पर पड़ जाए। हम इतनी सजगता से काटते हैं कि जहां दो हड्डियां मिलती हैं, उनके बीच से यह शस्त्र गुजर जाता है। और वे दोनों हड्डियां इस पर धार रखने के काम आ जाती हैं।

उस आदमी ने उस बधिक से पूछा कि तुम्हें कभी तकलीफ नहीं होती इनको काटते?

तो उस बधिक ने कहा, जो कट सकता है, वही कटता है। जो नहीं कट सकता, उसके कटने का कोई उपाय नहीं है। मैं जिसे काटता हूं, वह मरा ही हुआ है। और जो जीवंत है, उसको किसी अस्त्र-शस्त्र से काटने का कोई भी उपाय नहीं है।

उसने वही कहा, जो कृष्ण ने गीता में कहा है। लेकिन कृष्ण के शब्द हमारी समझ में आ सकते हैं, एक बधिक के शब्द हमारी समझ में आना मुश्किल हो जाएंगे।

वह आदमी लौटा और उसने कहा कि बात तो वह बहुत ज्ञान की करता है, लेकिन आचरण ज्ञानी का नहीं मालूम पड़ता। पता नहीं, बात ही करता हो। तो लाओत्से ने कहा कि तू जा एक तलवार लेकर और उस बधिक का हाथ काट दे। वह आदमी गया और उसने तलवार उठाई, तो बधिक ने अपना हाथ उसके सामने कर दिया और कहा कि ठीक जोड़ पर मारना, नहीं तो तलवार की धार खराब हो जाएगी। तुझे कुछ अंदाज भी नहीं है, नया-नया है। तो ठीक जोड़ पर!

उस आदमी की हिम्मत नहीं पड़ी। वह वापस लौट आया। लेकिन यह जो आदमी है, यह पशुओं को काटते वक्त ही सजग हो, ऐसा नहीं, अपने को कटाते वक्त भी उतना ही सजग है।

सजगता पर जोर है लाओत्से का, आचरण पर नहीं। सजगता है अंतस का गुण, भीतर की घटना, होश, बोध। आचरण है बाहर की व्यवस्था। आचरण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दो संतों के आचरण भी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। होंगे ही। सिर्फ दो जड़बुद्धियों के आचरण एक जैसे हो सकते हैं। दो संतों के आचरण भिन्न-भिन्न होंगे ही। लेकिन हजार संतों की भी जागरूकता भिन्न-भिन्न नहीं होगी, एक ही होगी। और हजार मूढ़ भी इकट्ठे हों, तो उनकी जागरूकता एक सी नहीं होगी। उनके आचरण एक जैसे हो सकते हैं।

इसे हम ऐसा समझें। एक मिलिटरी की पंक्तिबद्ध कतार खड़ी है। उनका आचरण बिल्कुल एक जैसा होगा। बाएं घूमो; तो लाख लोग बाएं घूम जाएंगे। दाएं घूमो; तो लाख लोग दाएं घूम जाएंगे। उनका आचरण हम बाहर से व्यवस्थित कर सकते हैं, यूनिफार्म कर सकते हैं। और मजे की बात है कि सैनिक के शिक्षण में हमें उसके आचरण को इतना यूनिफार्म करना पड़ता है कि उसका व्यक्तित्व बिल्कुल मिट जाए। और जिस मात्रा में आचरण यूनिफार्म हो जाता है, उसी अर्थ में बुद्धि क्षीण हो जाती है। होगी ही।

सैनिक के पास बुद्धि की जरूरत भी नहीं है। अगर हो, तो दुनिया में युद्ध नहीं हो सकते। इसलिए कोई नहीं चाहता कि सैनिक के पास बुद्धि हो। सैनिक जितना निर्बुद्धि हो, उतना कुशल होगा, उतना आज्ञाकारी होगा, उतना समान आचरण-धर्मा होगा।

एक तरफ सैनिकों की, लाख सैनिकों की पंक्ति है, जो एक व्यक्ति की तरह व्यवहार करेगी। दो संतों को भी एक साथ रखें, तो एक सा व्यवहार नहीं होगा। बुद्ध और महावीर को एक साथ बिठा दें, एक सा व्यवहार जरा भी नहीं होगा। लेकिन भीतर सजगता बिल्कुल एक सी होगी।

संत निर्णीत होते हैं सजगता से, साधारणजन निर्णीत होते हैं आचरण से।

चूंकि हम सब आचरण से निर्णीत होते हैं, हम संतों को भी आचरण से ही सोचते हैं। इसलिए समझ मुश्किल हो जाती है। यह दुनिया में जो इतना विवाद है संतों के संबंध में, उसका कुल कारण इतना है। महावीर को जिन्होंने संत मान लिया, वे बुद्ध को कैसे संत मानें? उनके आचरण भिन्न हैं। जिन्होंने बुद्ध को संत मान लिया, वे कृष्ण को कैसे संत मानें? उनके आचरण भिन्न हैं। जिन्होंने कृष्ण को संत मान लिया, उन्हें क्राइस्ट कैसे संत मालूम पड़ेंगे? उनके आचरण भिन्न हैं। महावीर और मोहम्मद को कैसे साथ रखिएगा? कोई उपाय नहीं है। और आचरण को ही हम देख पाते हैं, इसलिए हमारी तकलीफ है।

फिर हम सब के आचरण पर भी बंधी हुई धारणाएं हैं। अगर मैं जैन घर में पैदा हुआ, तो महावीर का आचरण मेरे चित्त पर भारी हो जाएगा। फिर मैं सारे जगत में घूमूंगा उसी आचरण के नक्शे को लेकर। जीसस उसमें नहीं बैठेंगे, तो मैं समझूंगा, जीसस ज्ञानी नहीं हैं। जैन नहीं मानते कि बुद्ध को परम ज्ञान हुआ। क्योंकि परम ज्ञान होता, तो आचरण महावीर जैसा हो जाना चाहिए था।

एक बहुत विचारशील जैन ने एक किताब लिखी। बहुत सदभाव से लिखी और यह सिद्ध करने की कोशिश की कि महावीर और बुद्ध दोनों ही एक ही संदेश दुनिया को देते हैं। लेकिन किताब का नाम रखाः भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। मैंने उनसे पूछा कि यह इतना फर्क कैसा? तो उन्होंने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन बुद्ध उस स्थिति में नहीं पहुंचे थे। तो ज्यादा से ज्यादा महात्मा; महावीर के साथ भगवान की हैसियत में हम उन्हें नहीं रख सकते। मैंने उनसे पूछा कि यह जान कर आपने रखा? उन्होंने कहा कि नहीं, आपने पूछा तो मुझे ख्याल आया; यह अनजाने ही हुआ होगा। यानी साफ मेरे मन में ख्याल नहीं था।

एक ढांचा है फिर। बुद्ध कपड़े पहने हुए हैं। महावीर नग्न हैं अगर, तो नग्न महावीर को मानने वाला सोचेगा, बुद्ध का अभी कपड़े से मोह नहीं छूटा--स्वभावतः। और जब कपड़े ही से मोह नहीं छूटा, तो फिर और

क्या मोह छूटा होगा? तो मान सकते हैं कि अच्छे आदमी हैं, महात्मा हैं, संत हैं, लेकिन महावीर के साथ नहीं रख सकते।

क्राइस्ट को कैसे रखिएगा महावीर के, बुद्ध के, कृष्ण के साथ?

क्राइस्ट को मानने वाले की भी पीड़ा यही है। उसका भी आचरण स्पष्ट है। क्राइस्ट को मानने वाला जानता है कि क्राइस्ट की हैसियत का आदमी अपने को कुर्बान कर देता है सबके लिए। महावीर ने किसके लिए अपने को कुर्बान किया? किसी के लिए नहीं। तो महावीर कितने ही अच्छे हों, स्वार्थी हैं। अपने ही लिए ध्यान है, अपने लिए मोक्ष है। अपने ही लिए सब कुछ है। क्राइस्ट की बात ही और है। अपने जीवन की आहुति दे दी सबके लिए। सब सुखी हो सकें, इसलिए अपने को सूली पर लटकवा दिया। इसलिए जीसस को मानने वाले को महावीर और बुद्ध बहुत पीछे मालूम पड़ते हैं। किसकी सेवा की? किसी की कोई सेवा नहीं की। अपनी ही सेवा की होगी, तो की। अपने ही लिए सब कुछ किया। तो यह तो बहुत गहन स्वार्थ है। और जो अभी अपने स्वार्थ से मुक्त नहीं हुए, वे अहंकार से कैसे मुक्त होंगे? इसलिए जीसस को मानने वाला जानता है कि अहंकार से तो वही मुक्त होगा, जिसने अपने स्वार्थ को छोड़ा और सबके स्वार्थों के लिए बलि दे दी।

लेकिन अगर महावीर के भक्त को पूछें, तो वह कहेगा कि सूली तो कर्मों के फल से लगती है। जरूर पिछले जन्म में कुछ पाप किया होगा। महावीर के पैर में कांटा तो चुभ जाए! सूली तो बात और। तो जैन मानते हैं कि महावीर जब रास्ते पर चलते हैं, तो सीधा कांटा भी पड़ा हो, तो तत्काल उलटा हो जाता है। क्योंकि महावीर जहां से गुजरते हों, पुण्यधर्मा, उनको एक कांटे का दुख भी तो यह जगत क्यों देगा? उन्होंने किसी को कभी कोई दुख नहीं दिया।

ये हमारे आचरण के ढांचे हैं। फिर इसमें कठिनाई शुरू हो जाती है। और सबके पास आचरण का ढांचा है; क्योंकि सब एक संत के आस-पास अपनी पूरी रूप-रेखा निर्मित कर लेते हैं। फिर उस रूप-रेखा को लेकर चलते हैं। वह किसी पर लागू नहीं होगा कभी। किसी पर कभी लागू नहीं होगा। दूसरा संत खोजना मुश्किल है, जो उससे तालमेल खा जाए। फिर हम दीन-दरिद्र हो जाते हैं। फिर सबके अपने चुनाव हो जाते हैं, और शेष सब वर्जित हो जाता है।

लाओत्से इसलिए ऊपरी गुणों की चर्चा नहीं करता। लाओत्से कहता है भीतरी बात। अगर महावीर नग्न हैं और अगर बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। महावीर अपनी नग्नता में जितने सजग हैं, बुद्ध अपने वस्त्र पहने हुए उतने ही सजग हैं। और अगर महावीर अपने ध्यान में लीन हैं और जीसस समस्त के ध्यान में, तो महावीर अपने ध्यान में जितने सजग हैं, जीसस सब के ध्यान में उतने ही सजग हैं। वह सजगता का आंतरिक गुण ही मूल्यवान है। अगर वह आंतरिक गुण नहीं है, तो स्वार्थ भी और परार्थ भी, दोनों अंधे हैं। और अगर वह आंतरिक गुण मौजूद है सजगता का, तो स्वार्थ भी और परार्थ भी, दोनों एक से पुण्यवान हैं। अगर मैं अंधा होकर दूसरे की सेवा में लगा हूं, तो यह अंधापन उतना ही बुरा है, जितना अंधा होकर अपने स्वार्थ में लगा हूं। स्वार्थ बुरा नहीं है; परार्थ भला नहीं है। अंधापन बुरा है; सजगता भली है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें, क्योंकि इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। हमारे सोचने की, जीने की, अनुप्रेरित होने की सारी प्रक्रियाएं इस पर निर्भर करती हैं। अंतस मूल्यवान है, आचरण नहीं। और आचरण अंतस की छाया है। और छाया अलग-अलग होगी, क्योंकि व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। मीरा नाचेगी; बुद्ध नाच नहीं सकते। महावीर के साथ नाचना जोड़िए; बहुत बेहूदा लगेगा। लेकिन महावीर मौन खड़े होकर जितने सजग हैं, मीरा नाचते क्षण उनसे जरा भी कम सजग नहीं है।

अगर नाचने पर जिद्द रखिएगा, तो मीरा का भक्त कहेगा, महावीर भी क्या रूखे-सूखे खड़े हैं, ठूंठ वृक्ष की भांति! एक हरा पत्ता नहीं उनके जीवन में! कोई पक्षी गीत नहीं गाता, कोई फूल नहीं खिलते, कोई सुगंध नहीं! मृतवत खड़े हैं। कहां मीरा, कहां उसकी पायल की झंकार, कहां उसका गीत, कहां उसकी वीणा! यहां जीवन अपनी पूरी प्रफुल्लता में प्रकट हुआ है। तो महावीर रूखे-सूखे लगेंगे।

लेकिन अगर महावीर को मानने वाला है, तो वह मीरा को कहेगा कि यह तो सब राग है, आसक्ति है। यह कृष्ण की हाय-हाय, यह तो दुखी चित्त का लक्षण है। यह कृष्ण की पिपासा, यह मांग, यह तो डिजायर है, इच्छा है, वासना है। यह मीरा का कहना कि कब आओगे मेरी सेज पर सोने, यह सब क्या है? यह तो वासना का ही वेग है, दमित वेग है। यहां-वहां से फूट कर बह रहा है। यह प्रार्थना बन रही है वासना।

आचरण को अगर हमने मूल्यवान समझा और प्राथमिक समझा, तो हम एक संत के साथ तो न्याय कर पाएंगे, जगत के सभी संतों के साथ अन्याय हो जाएगा। और यह रोज हो रहा है। जब तक हम अंतस को मूल्यवान न मानें, तब तक हम जगत के विभिन्न-विभिन्न रूपों में प्रकट हुए संतों को समझ नहीं पा सकते हैं। इसलिए सारे गुण लाओत्से ने भीतरी कहे हैं।

"वे अत्यंत सतर्क व सजग हैं, जैसे सर्दी की ऋतु में किसी नाले को पार करते समय कोई हो।"

भीतर जागा हुआ दीया हो--सतर्क, सजग।

"वे सतत अनिर्णीत और चौकन्ने हैं, जैसे कोई व्यक्ति जो कि सब ओर से खतरों से घिरा हो।"

यह बड़ा कीमती सूत्र है।

"वे सतत अनिर्णीत व चौकन्ने हैं, इररिजोल्यूट, लाइक वन फीलिंग डेंजर आल एराउंड।"

आमतौर से हम समझेंगे कि संत तो रिजोल्यूट होगा, सुनिश्चित होगा। हमारी सभी की धारणा कहेगी कि संत तो दृढ़ निश्चय वाला होगा। लाओत्से कहता है--इररिजोल्यूट, अनिश्चितमना। बड़ी उलटी बात कहता है। इसे थोड़ा समझना कठिन पड़ेगा। कठिन इसलिए पड़ेगा कि हमें जीवन की गहरी समझ नहीं है। समझें इसे।

एक आदमी कहता है कि मैंने दृढ़ निश्चय किया है कि अब मैं झूठ नहीं बोलूंगा।

यह दृढ़ निश्चय वह किसके खिलाफ करता है? अपने ही खिलाफ। और दृढ़ता की इतनी जरूरत क्यों है? क्योंकि उसको पक्का पता है कि भीतर झूठ बोलने वाला इससे भी ज्यादा दृढ़ है। अगर उसके खिलाफ हमने दृढ़ता न रखी, तो झूठ हमसे बोला ही जाएगा। तो वह कहता है, मैं दृढ़ निश्चय कर लिया हूं। और जितना दृढ़ निश्चय करता है, उतनी जल्दी टूट जाता है। जितना टूटता है, फिर उतना ज्यादा दृढ़ निश्चय करता है। लेकिन दृढ़ता किसके खिलाफ? जिसके भीतर विपरीत स्वर न रहा हो, उसके भीतर निश्चय जैसी कोई बात न रह जाएगी।

निश्चय करते हैं हम अपने ही भीतर छिपे हुए विपरीत के प्रति। मैं करता हूं निश्चय कि क्रोध नहीं करूंगा; क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे भीतर क्रोध करने वाला छिपा है। मैं तय करता हूं कि कामवासना में नहीं उतरूंगा; क्योंकि कामवासना मेरे भीतर छिपी बैठी है। मैं कसम खाता हूं ब्रह्मचर्य की; क्योंकि मुझे मालूम है, भीतर ब्रह्मचर्य को छोड़ कर और सब कुछ है। मेरे भीतर विपरीत स्वर हैं। इसलिए विपरीत को दबाने के लिए मुझे बड़ी दृढ़ता से निश्चय करने पड़ते हैं, रिजोल्यूट होना पड़ता है, संकल्पवान होना पड़ता है। दबा-दबा कर मैं अपने को किसी तरह चलाता हूं।

लेकिन जिनके भीतर विपरीत न रहा हो, वे किसके प्रति निश्चय करेंगे? वे निश्चय-शून्य होंगे। इसका मतलब आप यह मत समझ लेना कि वे डगमगाने वाले होंगे। इसका मतलब आप यह भी मत समझ लेना कि उन्हें साफ नहीं है, इसलिए अनिश्चित हैं। उन्हें इतना साफ है कि निश्चित होने की कोई जरूरत नहीं है।

महावीर सुबह उठ कर कसम नहीं लेते कि आज मैं अहिंसा का व्यवहार करूंगा। अहिंसा इतनी सहज है कि इस निश्चय की कोई भी जरूरत नहीं है। अहिंसा होगी ही। महावीर को कोई नींद से उठा ले, तो भी अहिंसा होगी। इसके लिए किसी निश्चय की कोई भी जरूरत नहीं है। बुद्ध कोई निश्चित नहीं करते कि तुम यह पूछोगे, तो मैं यही उत्तर दूंगा। यह तो सिर्फ वे ही लोग निश्चित करते हैं, जिनके पास उत्तर देने की क्षमता नहीं है। तो पहले से तय करना पड़ता है। उत्तर तय होना चाहिए, साफ होना चाहिए। कोई पूछेगा ऐसा, तो ऐसा मैं कहूंगा। लेकिन जिनकी चेतना सजग है, उनके पास कोई निश्चय नहीं होता। पूछा जाता है कुछ, उत्तर आता है। उत्तर आता है, इसके लिए पूर्व-निश्चय नहीं होता। इसके लिए पूर्व-निश्चित होने की कोई जरूरत नहीं होती।

बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा है। बर्नार्ड शॉ बोलने जा रहा है किसी सभा में; और कोई पूछता है कि क्या बोलिएगा, कुछ तय कर रखा है?

बर्नार्ड शॉ ने कहा कि जब मुझे ही तय करना है और मुझी को बोलना है, तो वहीं बोल लेंगे और वहीं तय कर लेंगे। अगर तय किसी और को करना हो और बोलना मुझे हो, तो पहले से तैयारी करवानी पड़ेगी। जब मुझे ही यह काम करना है, तो वहीं ठीक समय पर कर लेंगे।

उस आदमी ने कहा, लेकिन निश्चित होना पहले से ठीक होता; कुछ भूल-चूक हो जाए!

वह आदमी ठीक कह रहा है। अगर उसको बोलना हो, तो वह तय करेगा तो ही बोल सकता है। और मजे की बात यह है कि तय करने वाले अक्सर बोलने में भूल करते हैं। नहीं तय करने वाले से भूल हो नहीं सकती; क्योंकि जो भी निकले, वही बोलना है।

इररिजोल्यूट, अनिश्चित का अर्थ यही है कि क्षण जो भी लाएगा, उसमें मैं पूरी तरह, जो भी मुझसे हो सकेगा, उसके लिए राजी हूं। उसके लिए पूर्व-धारणा नहीं है। मैं आज तय नहीं करता कि कल कैसे जीऊंगा। और जिस आदमी ने आज तय किया कि कल कैसे जीएगा, उसका कल आज ही मर गया। उसका भविष्य आज ही अतीत हो गया। अगर मैंने तय किया कि इस शब्द के बाद कौन सा शब्द मैं बोलूंगा, तो मैं एक यंत्र हो गया, आदमी न रहा। जिस आदमी को अपने पर जितना कम भरोसा है, उतना पूर्व-निश्चय करके जीएगा। कम भरोसे के लोग सब कुछ तय कर लेंगे, तभी चल सकेंगे। जिनका भरोसा पूर्ण है, वे बिल्कुल अनिश्चय से चलेंगे। उनका हर कदम तय करने वाला होगा। उनका हर कदम तय करने वाला होगा।

जीसस से उनके शिष्य पूछते हैं। उस रात जब वे पकड़े गए और दूसरे दिन सुबह जब सूली लगाई गई, तो उनका एक शिष्य पूछता है कि जब सूली लग जाएगी तो आप क्या करिएगा? जीसस ने कहा, कम से कम सूली तो लगने दे। सूली लगने दे। मुझे पता नहीं है; जैसे तू देखेगा कुछ हो रहा है, वैसे ही मैं भी देखूंगा कि कुछ हो रहा है। फिर अभी से निश्चय कैसे किया जा सकता है?

हमारा कमजोर मन सब निश्चय करके चलता है। ध्यान रखना, निश्चय करना कमजोर मन का लक्षण है। आमतौर से हम मानते हैं कि निश्चय करने वाला बहुत मजबूत मन वाला है। ठीक है, कमजोर मन निश्चय करे, तो उन कमजोर मनों से मजबूत हो जाएगा जो निश्चय न करें। कमजोर मन निश्चित करे, तो उन मनों से मजबूत हो जाएगा जो कमजोर हैं और निश्चित न करें।

लेकिन लाओत्से उन संतों की बात कर रहा है, जिनका मन ही न रहा। कमजोर मन की तो बात ही अलग, मन ही न रहा। और मन जब तक रहेगा, कमजोरी रहेगी। मन कमजोरी है। वे क्या निश्चय करें? समय आता है और वे जीते हैं पल-पल, मोमेंट टु मोमेंट। दूसरे पल की कोई आयोजना नहीं है।

जीसस की प्रार्थनाओं में प्रसिद्ध प्रार्थना है कि हे परमात्मा, मुझे आज की रोटी दे; कल की मैं चिंता न करूं। आज काफी है। आज का मतलबः अभी, यही क्षण पर्याप्त है।

वे सतत अनिर्णीत हैं। उनके पास कोई भी निर्णय नहीं है। क्योंकि उनके पास वे स्वयं हैं। जिनके पास स्वयं का होना नहीं है, वे निर्णय के आधार पर जीएंगे।

बुद्ध के पास कोई आता है; बुद्ध एक जवाब देते हैं। वही प्रश्न लेकर दूसरा आदमी आता है; बुद्ध दूसरा जवाब देते हैं। आनंद बहुत बार बुद्ध से कहता है कि आपको ऐसा नहीं लगता कि आप असंगत हैं, इनकंसिस्टेंट हैं! क्षण भर पहले आपने एक आदमी से यह कहा था और क्षण भर बाद ही आपने दूसरे आदमी से यह कहा। और उन दोनों के प्रश्न समान थे। बुद्ध कहते हैं, उन दोनों के प्रश्न समान थे; लेकिन वे दोनों व्यक्ति अलग थे। और एक ने सुबह पूछा था और एक ने दोपहर। सुबह से दोपहर तक गंगा का कितना जल बह जाता है! मैं सुबह से बंधा हुआ नहीं हूं। दोपहर हो गई, अब दोपहर का ही उत्तर होगा। सांझ होगी, सांझ का ही उत्तर होगा।

इसलिए अगर बुद्ध में कोई संगति खोजने जाए, तो बहुत गहरी खोज करनी पड़े; तब संगति मिलेगी। ऊपर तो असंगति मिलेगी। एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य को खंडित करता हुआ मालूम पड़ेगा। सिर्फ क्षुद्र बुद्धि के लोग, मीडियाकर लोग कंसिस्टेंट होते हैं। उनकी जिंदगी भर खोज जाओ, तो जो उन्होंने जब दूध की चम्मच उनके मुंह में थी तब कहा था, जब वे मर रहे होंगे तब भी वही कह रहे होंगे। एकदम कंसिस्टेंट होंगे, संगत होंगे। उसका मतलब यह है कि झूले के बाद वे जीए ही नहीं। झूला ही उनकी कब्र हो गया। जो जीएगा, वह क्षुद्र अर्थों में संगत नहीं हो सकता; एक आंतरिक संगति होगी। उसे खोजना मुश्किल है। उसे वही खोज सकता है, जो आंतरिक संगति पर ध्यान रखे।

बुद्ध एक आदमी से कहते हैं ईश्वर नहीं है, एक से कहते हैं ईश्वर है, तीसरे के संबंध में चुप रह जाते हैं। अब इतना असंगत--ईश्वर है, ईश्वर नहीं है, दोनों। लेकिन भीतर एक संगति है गहरी।

आनंद रात में पूछता है कि मैं सो न पाऊंगा, मैं मुश्किल में पड़ गया। मैंने तुम्हारे तीनों उत्तर सुन लिए। तो बुद्ध कहते हैं, पहली तो बात यह आनंद कि जो तुझे नहीं कहा गया था, वह तुझे सुनना नहीं था। न तूने पूछा था, न तेरा सवाल था, तो तूने जवाब क्यों लिया? ऐसे अगर तू हर जवाब इकट्ठे करेगा, तो कैसे सो पाएगा? और जब मैं देने वाला सो रहा हूं मजे से, तुझे चिंता क्या है?

पर वह आनंद कहता है कि नहीं, आपकी आप जानें; बाकी मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं कि ये सब बातें एक साथ कैसे हो सकेंगी! सुबह आपने कहा ईश्वर नहीं है; दोपहर कहा है; सांझ चुप रह गए, जब किसी ने पूछा। असंगति दिखाई पड़ती है। मुझे थोड़ी शांति दे दें, थोड़ा बता दें, तो मैं सो जाऊं।

तो बुद्ध कहते हैं, असंगत मैं हो कैसे सकता हूं! असंगत तो वह आदमी हो सकता है, जिसका सिद्धांत तय हो। सुबह जो आदमी आया था--मैं तो दर्पण की तरह हूं--उसकी जो शक्ल थी, वह मुझमें बन गई। दोपहर जो आदमी आया, वह दूसरा था। मैं तो दर्पण की तरह हूं। मेरा अपना कोई सिद्धांत बांध कर नहीं बैठा हूं। उसकी जो शक्ल थी, वह मुझमें बन गई। क्या तुम दर्पण से कहोगे कि बड़े असंगत हो! सुबह एक शक्ल दिखाई दी, दोपहर दूसरी, सांझ तीसरी। जो आदमी सुबह आया था पूछते कि ईश्वर है, वह नास्तिक था। वह मानता था कि ईश्वर नहीं है। वह मुझसे पूछने आया था, ताकि मैं भी गवाह बन जाऊं और कहूं कि नहीं है। वह आदमी गलत

था। उसने बिना खोजे मान लिया कि ईश्वर नहीं है। तो मुझे उसे तोड़ना पड़ा और मुझे कहना पड़ा बलपूर्वक कि ईश्वर है। मैंने उसे हिला दिया। अब उसे खोज में लगना पड़ेगा। अब मैं उसका पीछा करूंगा जिंदगी भर। जब भी उसको ख्याल आएगा, ईश्वर नहीं है, तब बुद्ध की शक्ल उसे याद आएगी कि उस आदमी ने कहा था है। अब मैं उसका पीछा करूंगा।

जो आदमी दोपहर आया था, वह आस्तिक है; उसी तरह आस्तिक, जैसे सुबह वाला नास्तिक था। खोजा नहीं है, मान लिया कि है। उसकी आस्तिकता उतनी ही अज्ञानपूर्ण थी, जितनी सुबह वाले की नास्तिकता। मुझे उसे भी हिलाना पड़ा। मुझे उसे भी यात्रा पर भेजना पड़ा। मैंने कहा, ईश्वर? बिल्कुल नहीं है। अब यह आदमी जब मंदिर में पूजा का थाल सजा कर खड़ा होगा, तो कहीं न कहीं मैं इसे दिखाई पड़ता ही रहूंगा--बुद्ध ने कहा है। मुझसे पूछने इसीलिए आया था कि बुद्ध का वजनी सबूत साथ हो जाए। बुद्ध भी कह दें है, तो अपनी पूजा में वह और गहन उतर जाए। लेकिन उसकी पूजा झूठी है; क्योंकि अभी होने का बोध ही उसका असत्य है। अभी उसे कुछ भी पता नहीं है। बिना जाने माना कि है, बिना जाने माना कि नहीं है, ये दोनों एक जैसे हैं। आनंद, यह तुझे लगता है कि यह विपरीत। और इसलिए मुझे इनको विपरीत उत्तर देने पड़े। लेकिन दोनों उत्तरों में एक संगति है। मैं दोनों को उनकी अज्ञान की स्थिति से हिलाना चाहता था।

सांझ जो आदमी आया था, वह न आस्तिक है, न नास्तिक। उसकी जिज्ञासा गवाह को खोजने की जिज्ञासा नहीं थी। वह मुझसे कुछ अपने को सिद्ध करवाने नहीं आया था। उसकी जिज्ञासा बड़ी सरल और निर्दोष थी। उसने पूछा था, ईश्वर है? उसकी कोई मान्यता नहीं थी। बिना मान्यता के उसने पूछा था, ईश्वर है? ऐसे आदमी से अगर मैं कहूं है, तो शायद वह मेरे है के कारण मान ले कि है। ऐसे आदमी से मैं कहूं कि नहीं है, तो शायद मेरे नहीं है के कारण मान ले कि नहीं है। इतना निर्दोष कि उसके सामने शब्द का उपयोग करना खतरनाक था। इसलिए मैं मौन रह गया। और मेरे मौन ने ही उसको भी हिलाया और वह उत्तर लेकर गया है कि अगर ईश्वर को जानना है, तो मत पूछो है या नहीं, मौन हो जाओ।

ये असंगत हैं बातें--ऊपर से देखने पर। भीतर एक संगति का तार है। वह गूढ़ है, वह छिपा है। शब्द में नहीं पकड़ में आएगा।

ऐसे व्यक्ति अनिर्णीत, इररिजोल्यूट, अनिश्चित... कोई सिद्धांत नहीं है उनका। कोई दृढ़ बंधन नहीं है उनका, कोई बंधन नहीं। मुक्त जैसे आकाश में उड़ने को सदा तत्पर। और चौकन्ने। ध्यान रहे, जो जितना निर्णीत होगा, उतना मूर्च्छित हो जाएगा। जितना अनिर्णीत होगा, उतना चौकन्ना होगा। आप निर्णीत होते ही इसीलिए हैं, इसीलिए होना चाहते हैं, ताकि शांति से सो सकें। यह चौकन्नापन न रहे चौबीस घंटे।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि आप पक्का कह दें, ईश्वर है? मैं उनसे कहता हूं, मैं कितना ही पक्का कहूं, इससे तुम्हें क्या होगा? वे कहते हैं कि हमें भरोसा हो जाएगा, निर्णय हो जाएगा कि ईश्वर है।

यह किसलिए कह रहे हैं? इसलिए नहीं कि ईश्वर को खोजना चाहते हैं; इसलिए कि है, ऐसा पक्का हो जाए, तो इनको चौकन्ने होने की जरूरत न रहे, खोजना न पड़े। खोजने में खतरा है। खोजने में श्रम है। खोजने में शक्ति लगेगी। साहस की जरूरत होगी। चुकाना पड़ेगा मूल्य। वह सब झंझट न हो, कुछ करना न पड़े; कोई कह दे। वे कहते हैं मुझसे कि आप कह भर दें। आप क्यों संकोच करते हैं? पक्का कह दें कि है, तो हम निश्चिंत हो जाएं।

निश्चिंत आदमी किसलिए होना चाहता है? ताकि मूर्च्छित हो जाए, सो जाए, कुछ करना न पड़े। जितना अनिर्णीत होगा व्यक्ति, उतना सजग होगा।

कभी आपने ख्याल किया? एक आदमी आपके पड़ोस में, अजनबी, आकर बैठ जाता है; आपकी रीढ़ फौरन कुर्सी को छोड़ कर चौकन्नी हो जाती है। एक अजनबी आदमी बगल में बैठा है, तो आप चौकन्ने हो जाते हैं। फिर आप सिलसिला शुरू करते हैंः नाम? धाम? कितनी तनख्वाह मिलती है? कुछ ऊपर भी मिल जाता है या नहीं? थोड़ी देर में आप अपनी रीढ़ कुर्सी से टिका लेते हैं कि ठीक है जान लिया। अब आप निश्चिंत हो गए। अब कोई इसका भय रखने की जरूरत नहीं है। अपने ही जैसा चोर है, कोई अजनबी नहीं है, ठीक अपने ही जैसा है। अब आप निश्चिंत हो जाते हैं।

हमारी जो इतनी आतुरता होती है परिचय बनाने की, वह इसलिए नहीं होती कि हम दूसरे में उत्सुक हैं। हमारी आतुरता इसीलिए होती है, ताकि हमें निश्चिंत करो, साफ हो जाए कि कौन हो--हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि जैन हो--तो हम पक्का कर लें। एक कैटेगरी हमारे मन में है कि मुसलमान ऐसा होता है, जैन ऐसा होता है, हिंदू ऐसा होता है। तो हम जल्दी से अपने खांचे में तुम्हें बिठाएं और निश्चिंत हो जाएं। यह तुम्हारी वजह से बेचैनी पैदा हो रही है। यह मन पूछता है कि कौन है यह आदमी?

यह जो पूरे समय हम हमेशा सोने की कोशिश कर रहे हैं। हमारा धर्म, हमारे शास्त्र, हमारे तथाकथित साधु-संत, वे सब हमें सोने में सहायता देते हैं, वे सांत्वना देते हैं।

लाओत्से कहता है, अनिश्चित थे वे, अनिर्णीत थे वे, चौकन्ने थे।

कुछ भी निश्चित न था, तो चौकन्ना रहना ही पड़ेगा। सारा जगत अजनबी है। किसी से कोई परिचय नहीं है। सब परिचय झूठा है। तो चौकन्ना रहना पड़ेगा। एक-एक इंच चल रहे हैं, तो अनजान रास्ते पर चल रहे हैं। अनचार्टर्ड, कोई नक्शा नहीं है, समुद्र का कोई पता नहीं है कि कहां ले जाएगा, हाथ में कोई दिशा-सूचक यंत्र नहीं है, तो चौकन्ना रहना ही पड़ेगा। जितना अनिर्णीत होगा व्यक्ति, उतना ही ज्यादा चौकन्ना होगा। जितना निर्णीत होगा, उतना सुरक्षित होगा, उतना मूर्च्छित होगा।

यह भी लाओत्से भीतर की ही बात कर रहा है--अनिर्णीत और चौकन्ने! चौकन्ने का मतलब है अलर्ट। जैसे कि सब ओर से खतरा घिरा हो!

कभी आपने किसी हिरन को देखा है जंगल में? जरा सी आवाज होती है कहीं, पत्ता सरकता है, हिरन जैसा अलर्ट, चौकन्ना होकर खड़ा हो जाता है। उसका रोआं-रोआं सुनने लगता है, कहां क्या हो रहा है। उसका पूरा व्यक्तित्व एक जागरूकता बन जाता है। खतरा चारों तरफ है। एक छोटा सा खरगोश भी जरा सी आवाज सुन कर--कभी उसे देखें--कैसा चौकन्ना हो जाता है! बिल्ली सो रही हो आपके घर में, जरा सी आवाज हो, एकदम चौकन्नी हो जाती है। नींद से एकदम छलांग जागरूकता में लग जाती है। खतरा!

आदमी सबसे सुरक्षित जानवर है। और आदमी ने इतनी सुरक्षा कर ली है कि जानवर जैसा चौकन्नापन भी उसके पास नहीं है। सुरक्षित है। मकान है, दरवाजा है, ताला है, सब सुरक्षा है। घर में पैसा था, वह भी बैंक में है। सब सुरक्षित है। कहीं कोई खतरा नहीं है। मर भी जाए, तो लाइफ इंश्योरेंस है। मर भी गए, तो भी कोई खतरा नहीं है, कोई खतरा नहीं है। मरने में भी कोई डर नहीं है। क्योंकि पैसा तो मिलने ही वाला है। यह सारी सुरक्षा, भीतर के चौकन्नेपन को खतम कर दिया। हमसे पशु भी ज्यादा चौकन्ने हैं।

लाओत्से कहता है, संत ऐसा ही चौकन्ना होता है भीतर से। कोई सुरक्षा नहीं बनाता। कोई इंतजाम नहीं बनाता। चारों तरफ जैसे खतरा हो प्रतिपल, उस खतरे में जीता है।

खतरा है भी। हम कितना ही इंतजाम करें, खतरा मिटता नहीं। खतरा है ही। मौत तो हर वक्त मौजूद है, चारों तरफ मौजूद है। किसी भी क्षण। लेकिन हम उसे टालते रहते हैं, स्थगित करते रहते हैं। हम मानते रहते हैं

मन में कि मरते होंगे दूसरे लोग, यह कोई अपना काम नहीं है। मौत हमेशा दूसरे की होती है, इतना तो पक्का ही है, अपनी कभी नहीं होती। जब भी देखते हैं, कोई और मरता है। निश्चिंत रहते हैं कि हमेशा और ही कोई मरता है। हम तो कभी नहीं मरते। लेकिन वे जो मर रहे हैं, वे भी इतने ही निश्चिंत थे। मौत है चारों तरफ। किसी भी क्षण सब खो जा सकता है। ख्याल करें, एक आदमी आपकी छाती पर छुरा रख दे और कहे कि बस, एक सेकेंड! जो भी सोचना हो, सोच लें। सोचना बंद हो जाएगा। एक सेकेंड ही बचा, तो सोचना क्या है? सोचना एकदम बंद हो जाएगा। सब सुरक्षा टूट गई। सोच-विचार कुछ न रहा। यही क्षण सब कुछ हो गया; क्योंकि मौत खड़ी है। चौकन्ने हो जाएंगे।

तो बुद्ध तो अपने भिक्षुओं को मरघट भेजते थे कि तुम तब तक ध्यान में न जा सकोगे, जब तक तुम मौत की निकटता अनुभव न करो। तो जाओ, मरघट पर बैठो, जलते हुए लोगों को देखो। लाशें गलती हुई देखो। जानवर लाशों को तोड़ रहे हैं, खींच ले जा रहे हैं, वह देखो। हड्डियां, खोपड़ियां बिखरी हुई देखो। रहो मरघट पर। जब तुम्हें मौत ऐसा मालूम पड़ने लगे कि चारों तरफ है; सुबह उठते हो, और लाश जल रही है; दोपहर उठते हो, और लाश जल रही है; रात उठते हो, और लपटें उठ रही हैं; जहां भी जाते हो, हड्डियां हैं; जहां भी हिलते हो, खोपड़ियां हैं; तुम्हें मौत चारों तरफ मालूम होने लगे।

मोग्गलायन जब बुद्ध के पास पहले गया, तो बुद्ध ने कहा, तू मरघट जा मोग्गलायन, वहीं तू चिंतन कर। मोग्गलायन ने कहा, आप मौजूद हैं, तो आपके पास ही चिंतन करूं। मरघट से क्या होगा? बुद्ध ने कहा, तू अभी चिंतन न कर सकेगा; क्योंकि मैं भी तेरे लिए एक सुरक्षा हूं कि बुद्ध के पास है। क्या डर? पहले तू जा, पहले मौत को अपने पास देख! जिस दिन मौत तेरे पास होगी, उसी दिन मैं भी तेरे पास हो सकता हूं, उसके पहले नहीं।

मोग्गलायन ने कहा कि मरघट पर तो बहुत डर लगता है। मैं तो आपके पास ही ठीक हूं।

हम संतों के पास भी जाते हैं, तो सुरक्षा के लिए। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में जाते हैं--सुरक्षा के लिए। इंतजाम कर रहे हैं हम। और आगे तक का इंतजाम कर रहे हैं। कहीं कोई खतरा न हो, सब तरफ व्यवस्था बिठा ले रहे हैं। लोग आते हैं, वे पूछते हैं, आत्मा तो निश्चित ही अमर है! निश्चित ही! अनिश्चय उनके भीतर साफ है। डरते हैं वे भी कहने में कि आत्मा अमर है।

एक महिला मेरे पास आई थी। वह कुछ अनुसंधान करती है आत्मा की अमरता के संबंध में, पुनर्जन्म के संबंध में। पर मैं थोड़ा हैरान हुआ; क्योंकि वह पुनर्जन्म और आत्मा की अमरता के सिद्धांतों की बात करती है, लेकिन बहुत भयभीत है। हाथ-पैर उसके कंपते हैं। जब वह आत्मा की अमरता की बात भी करती है, तब भी हाथ कंपता रहता है। वह मेरे पास आई थी, तो मैंने उससे कहा कि हाथ तू ऊंचा कर और फिर तू बात कर, ताकि मैं तेरे हाथ को देखता रहूं। उसने कहा, क्या मतलब?

एक कागज पड़ा था, मैंने उसे कागज दे दिया कि यह कागज तू हाथ में पकड़ ले, ताकि तेरे हाथ का कंपन मुझे कागज में साफ दिखाई पड़े। फिर तुझे जो बात करनी है, कर। उसने कहा, हाथ तो मेरे कंपते हैं और पसीना भी बहुत आता है, नर्वसनेस मुझे बहुत है। लेकिन आत्मा अमर है! शरीर ही मरता है; आत्मा कभी नहीं मरती।

मैंने कहा, तुझे अनुसंधान की यह प्रेरणा कैसे मिली? तूने कुछ अध्ययन किया, कुछ ध्यान किया, आत्मा की तुझे कोई झलक मिली? उसने कहा कि नहीं, बचपन में ही मेरी मां मर गई। फिर मेरे पिता मर गए। और मृत्यु मेरे ऊपर भारी हो गई। नहीं, लेकिन मृत्यु तो सब शरीर की है। आत्मा तो अमर है।

भय मृत्यु का है, आत्मा की अमरता की पकड़ है यह भय से सुरक्षा के लिए--कोई भरोसा दिला दे! तो अब वह अनुसंधान में लगी है; इसलिए नहीं कि आत्मा अमर है, इससे किसी को कुछ लाभ होगा; अगर सिद्ध हो जाए, तो वह जो मृत्यु का भय पीछा कर रहा है, वह छूट जाए।

बुद्ध ने मोग्गलायन से कहा कि पहले तू मौत को अनुभव कर, तभी तू चौकन्ना हो सके! और चौकन्ना हो सके, तो ध्यान में जा सके; नहीं तो ध्यान में कभी नहीं जा सकेगा।

ध्यान का अर्थ ही हैः एक चौकन्नापन, एक ताजगी, सतत जागरूकता। एक क्षण को भी भीतर मूर्च्छा नहीं।

जैसे चारों तरफ व्यक्ति खतरों से घिरा हो, ऐसे वे चौकन्ने और अनिर्णीत थे!

"वे जीवन में जैसे कि अतिथि हों, ऐसे गंभीर अभिनय में रत थे।"

अतिथि आपके घर आता है, मेहमान आपके घर आता है। आप मेजबान होते हैं, आतिथेय होते हैं, होस्ट होते हैं। अतिथि घर में आता है, नया हो, तो गंभीर अभिनय उसे करना पड़ता है। जैसे-जैसे पुराना होने लगता है, वैसे-वैसे गंभीर अभिनय छोड़ने लगता है। आतिथेय भी नया होता है, तो पहले गंभीर अभिनय करता है। कुर्सियां पड़ोस की उठा लाता है। घड़ी दीवार पर टांग देता है किसी की मांग कर, रेडियो लाकर रख देता है। टेलीफोन, जिसमें कोई कनेक्शन नहीं, उसे जमा देता है। फिर मेहमान परिचित होने लगता है, तो ये सामान धीरे-धीरे हटा दिए जाते हैं। और जब मेहमान बहुत परिचित हो जाता है, तो मेहमान को हटाने की कोशिश शुरू हो जाती है।

अपरिचय में एक अभिनय है। तो अपरिचित आदमी से जब हम मिलते हैं, तो हम नहीं मिलते सिर्फ हमारे बनावटी चेहरे मिलते हैं। इससे बड़ी भ्रांति होती है। अगर दो व्यक्ति मित्र बन जाते हैं, तो पहली दफा जो मुलाकात होती है, वह उन दोनों की नहीं होती, वह दो झूठे चेहरों की होती है। दो-चार घंटे में--वे चेहरे कब तक चल सकते हैं--वे सरक जाते हैं, असली चेहरा बाहर आ जाता है। और तब हमें ऐसा लगता है बड़ा धोखा हुआ, क्या समझा था इस आदमी को और क्या निकला!

कोई धोखा नहीं हुआ है, कोई धोखा नहीं हुआ है। जीवन में अपरिचय हो, तो लोग एक-दूसरे के प्रति गंभीर भाव रखते हैं, ताकि वही प्रकट हो जो होना चाहिए--शिष्ट, आचरणपूर्वक, व्यवस्थित, अनुशासित। फिर जब निकटता बढ़ती जाती है, तो अनुशासन छूट जाता है। दो मित्रों की गहरी मित्रता का मतलब ही यह होता है कि अब मजे से एक-दूसरे को गाली देते हैं और बुरा नहीं मानते। गंभीरता चली गई है।

लाओत्से कहता है कि वे जीवन में ऐसे जीते हैं, जैसे अतिथि हों--पूरा जीवन। पूरा जीवन, हर स्थिति में वे इस जगत में एक आउटसाइडर हैं, अतिथि हैं। इस जगत को कभी अपना घर नहीं मान पाते। संतजन इस जगत को कभी अपना घर नहीं मान पाते, कभी एट-होम इस संसार में वे अनुभव नहीं कर पाते।

कोलिन विल्सन ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी हैः दि आउटसाइडर। उस किताब में उसने बड़ी मेहनत ली है कि इस जगत के जो भी महत्वपूर्ण लोग हैं, वे सब आउटसाइडर्स हैं। बुद्ध हों, कि सुकरात हो, कि लाओत्से हो, सब आउटसाइडर्स हैं। यहां वे ऐसे रहते हैं, जैसे एक अपरिचित घर में अतिथि की तरह हों। और यह अतिथिपन उनका कभी नहीं टूटता, क्योंकि अजनबीपन कभी नहीं टूटता।

यह बड़े मजे की बात है, हम अपने से जितने कम परिचित होते हैं, उतना ही हमें लगता है कि हम दूसरों से ज्यादा परिचित हैं। और जब अपने से परिचय बढ़ता है, तो दूसरे से अपरिचय बढ़ने लगता है। इसे ऐसा समझें कि जो आदमी समझता है कि मैं इतने लोगों को जानता हूं, एक बात पक्की समझना कि अपने को नहीं

जानता होगा। और जो आदमी अपने को जान लेता है, तत्क्षण उसे पता चलता है कि मैं किसी को भी नहीं जानता। अतिथि की भांति वैसा आदमी जीता है।

लेकिन लाओत्से बहुत मजे की बात इसमें कह रहा है कि वे जीवन में ऐसे होते हैं, जैसे अतिथि हों--ऐसा गंभीर अभिनय करते हैं। अतिथि की तरह होते हैं; और जो कुछ भी वे करते हैं वह एक अभिनय है, वास्तविकता नहीं है। थोड़ा उदाहरण लें, तो ख्याल में आ सके।

बुद्ध वर्षों के बाद घर लौटे हैं। तो आनंद ने बुद्ध से एक प्रतिज्ञा ली थी दीक्षा के पहले कि मैं सदा साथ रहूंगा। बुद्ध राजमहल में आ गए हैं। राजधानी के द्वार पर सारे नगर ने स्वागत किया। सिर्फ यशोधरा, पत्नी नहीं आई। बुद्ध ने आनंद से कहा, देखते हो आनंद, यशोधरा दिखाई नहीं पड़ती।

आनंद को बड़ी चिंता हुई, कि बुद्ध होकर और अभी भी पत्नी का ख्याल! बारह वर्ष, इतने परम ज्ञान को पाया, अभी भी पत्नी का ख्याल! पर आनंद ने धीरज रखा कि देखेंगे, समय पर पूछ लेंगे।

फिर बुद्ध महल पहुंचे हैं। द्वार पर भी पत्नी नहीं है। फिर महल के भीतर प्रविष्ट हुए हैं। तो बुद्ध ने आनंद से कहा कि आनंद, तुझे मैंने आश्वासन दिया है कि तू जहां भी मेरे साथ रहना चाहेगा, रहेगा। अभी भी मैं अपना वचन नहीं तोडूंगा, लेकिन फिर भी तुझसे प्रार्थना करता हूं कि पत्नी बारह वर्ष से नाराज बैठी है; छोड़ कर मैं उसे भाग गया था। कोई और उपाय न था, कोई और उपाय न था। और अब अगर पहली दफा बारह वर्ष के बाद भी मैं किसी को लेकर भीड़-भड़क्के में उससे मिलूं, तो उसकी नाराजगी नहीं टूटेगी। उसे थोड़ा मौका दे कि वह नाराज हो ले, चिल्ला ले, जो उसने बारह वर्ष में इकट्ठा किया हो, वह निकाल ले। तो अच्छा हो कि तू थोड़ा पीछे रुक जा! मैं उससे अकेले में ही जाकर मिल लूं।

आनंद और भी घबड़ाया। पत्नी से अकेले में मिलने की क्या बुद्ध को जरूरत है?

लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं। और बुद्ध का अकेले मिलना परिणामकारी हुआ। और यशोधरा ने उनको अकेले आते देख कर निश्चित ही क्रोध निकाला, चिल्लाई, नाराज हुई, सब लांछनाएं दीं कि तुमने धोखा दिया! और तुमने इतना भी भरोसा न किया मेरा कि तुम मुझसे पूछ तो लेते!

बुद्ध चुपचाप खड़े होकर सुनते हैं। क्रोध निकल गया, नाराजगी निकल गई, फिर वह रोने लगी। फिर बारह वर्ष की पीड़ा है और बारह वर्ष का दुख है, वह सब निकला। फिर उसके आंसू सूखे। बुद्ध चुपचाप खड़े हैं। वह सब कहे चली जा रही है। फिर उसने आंखें ऊपर उठाईं, बुद्ध की तरफ देखा। और तब यशोधरा ने कहा कि तुम अकेले आए, इस बात ने ही मुझे बदल दिया। अगर तुम भीड़-भड़क्का साथ लेकर आते, तो मैं मानती कि मेरे लिए तुम्हारे मन में कोई भी जगह नहीं है। बुद्ध फिर भी चुपचाप खड़े हैं। पत्नी उनके पैरों पर गिर पड़ी है। नाराजगी निकल गई, दुख निकल गया; वह क्षमा मांग रही है। बुद्ध ने उसे कहा कि मैं जो लेकर आया हूं, एक ही आकांक्षा मेरे मन में रही है कि तुझे भी वह कब मिल जाए!

यह सब अभिनय है। बुद्ध के तल पर यह सब अभिनय है। लेकिन पत्नी दीक्षित हो गई। वह भिक्षुणी हो गई। और पांच साल गुजर गए, ध्यान में गहरी उतर गई। तब एक दिन यशोधरा ने बुद्ध से कहा, तुमने खूब अभिनय किया! कितनी मैं पुलकित हुई उस दिन जान कर कि नगर के द्वार पर आकर तुमने पूछा, आनंद से कहा, यशोधरा नहीं दिखाई पड़ती। बारह वर्ष का दुख मेरा छूट गया। कितनी पुलकित हुई उस दिन जान कर कि तुम अकेले आए हो, आनंद को बाहर रोक कर। तुम्हारे बाबत जितनी नाराजगी थी, सब बह गई। लेकिन अब मैं जानती हूं कि तुमने खूब अभिनय किया। तुम्हारा अभिनय ही मुझे बदलने का कारण हो सका।

लाओत्से कहता है, ऐसे व्यक्ति इस जगत के भीतरी हिस्से कभी नहीं हो पाते; लेकिन निरंतर अभिनय करते रहते हैं कि इस जगत के भीतरी हिस्से हैं। ऐसे व्यक्ति इस जगत में कोई संबंध निर्मित नहीं कर पाते; लेकिन निरंतर अभिनय करते रहते हैं कि सब संबंध बहुत गहरे हैं। और यह अभिनय बड़ा गंभीर है। होगा ही गंभीर, अन्यथा अभिनय टिकेगा नहीं। अभिनय गंभीर न हो, तो टिक नहीं सकता। एक तो अभिनय और फिर गंभीर न हो, तो टिकेगा नहीं।

संत का यह भी एक भीतरी लक्षण कि जगत में वह बाहरी होकर भीतरी की तरह जीएगा, अतिथि की तरह जीएगा और एक गहन अभिनय में संलग्न होगा। कर्ता वह नहीं है अब। अब तो जो भी है, वह बाहर है और खेल है। वह रामलीला में राम का पात्र भर, राम का अभिनय भर कर रहा है। वह असली राम नहीं है।

और अगर हम असली राम का भी पता लगाने जाएं, तो फिर बहुत मजा आएगा। अगर असली राम का भी हम पता लगाने जाएं, तो वे भी रामलीला में एक अभिनय के पात्र से ज्यादा नहीं थे। और वही उनकी खूबी है। इसलिए जिस सीता को खोजने के लिए जिंदगी दांव पर लगाएं, उस सीता को एक नासमझ धोबी के कुछ कहने से जंगल छोड़ दें! जिस राज्य को जीतने के लिए अथक श्रम लें, फिर उसे ऐसा ही दान कर दें! अगर राम के लिए यह सब वास्तविक हो, तो बहुत कठिन हो जाए। यह वास्तविक नहीं है। एक बड़े अभिनय का हिस्सा है।

और राम अति गंभीर हैं। अन्यथा इस छोटी सी बात के लिए, धोबी की बात के लिए सीता को छोड़ने का कोई अर्थ न था। लेकिन अति गंभीर हैं। अभिनय को पूरा कर रहे हैं। इसलिए हमने अच्छे शब्द खोजे हैं; हम इसे कहते हैंः रामलीला। यह राम का अभिनय है कि राम रो रहे हैं। सीता खो गई है; छाती पीट रहे हैं। जंगल में दरख्तों से पूछ रहे हैं कि मेरी सीता कहां है? और मजा यह है कि एक सोने के हिरन के पीछे भागे हैं। हमको भी पता है कि सोने का हिरन नहीं होता। राम को भी पता होगा ही। सोने के हिरन के पीछे भागे हैं। वह एक बड़े अभिनय का हिस्सा है। सोने के हिरन के पीछे भागे हैं, फिर लक्ष्मण को चिल्लाए हैं कि बचाओ!

सीता ने भी बहुत मजे की बात कही है। लक्ष्मण जाने को तैयार नहीं है छोड़ कर। पहरे पर उसे खड़ा किया है। और राम कह गए हैं कि हटना मत। लेकिन राम की जिंदगी खतरे में है, कुछ उपद्रव हुआ है। और चिल्लाहट आती है कि मुझे बचाओ लक्ष्मण, भागो! लेकिन लक्ष्मण हट नहीं सकते। तो सीता लक्ष्मण से कहती है कि मुझे पता है भलीभांति कि तुम चाहते हो तुम्हारा भाई मर जाए, तो तुम मुझे पा लो।

यह बड़ी तीखी बात है। और सीता इसे तभी कह सकती है, जब यह अभिनय का हिस्सा हो। अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं है। मगर लक्ष्मण बेचारा फंस जाता है। उसे क्रोध आ जाता है कि हद हो गई बात की। मैं इसलिए नहीं जा रहा हूं कि राम मुझे कह गए हैं कि पहरा देना और सीता यह कह रही है कि मैं जानती हूं पहले से कि तुम्हारी नजर मुझ पर है। तो राम भूल गए लक्ष्मण के ख्याल से, सीता भूल गई। क्रोध भयंकर हो गया। अहंकार को भारी चोट लग गई। लक्ष्मण सीता को छोड़ कर चला जाता है।

यह एक बड़े अभिनय का हिस्सा है। सीता के मुंह से ये वचन बहुत लोगों को बहुत कष्टपूर्ण हुए हैं। बहुत कष्टपूर्ण हुए हैं! लेकिन उन्हीं को होंगे, जो इस लीला की पूरी व्यवस्था को न समझें, जो इसे बहुत वास्तविक समझ लें। उन्हें सीता के शब्द अभद्र मालूम होंगे और व्यवहार कठोर मालूम होगा। और यह बात ओछी मालूम होगी। लेकिन यह अभिनय, मात्र अभिनय का हिस्सा है।

लेकिन लक्ष्मण को यह स्थिति नहीं है। लक्ष्मण को यह स्थिति नहीं है। लक्ष्मण के लिए सभी कुछ वास्तविक है। इस पूरे खेल में राम को हमने प्रमुख माना और रामलीला नाम दिया, उसका कारण है। ऐसे कोई चाहे तो भरत को भी प्रमुख मान सकता था। और कोई कमी न होती; वह नायक कुछ कम नहीं है राम से।

रावण को भी प्रमुख माना जा सकता था; क्योंकि उसके बिना भी यह घटना नहीं घट सकती। और सीता तो केंद्रीय है ही; क्योंकि सारा जाल उसके आस-पास फैलता और बड़ा होता है। लेकिन हमने सब का नाम छोड़ कर राम को नायक माना। क्योंकि उस पूरे खेल में खेल ही जानने वाले वे अकेले ही व्यक्ति गहरे हैं। उनको यह सारे का सारा खेल है, यह सारी लीला है।

"उनकी अस्मिता सतत विसर्जित होती रहती है, जैसे कि प्रतिपल बिखरता हुआ बर्फ हो।"

जैसे बर्फ पिघल रहा हो धूप में, ऐसे संत की अस्मिता, आत्मा, होने का भाव कि मैं हूं, वह पिघलता चला जाता है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। यही फर्क गहरा है। संत तब तक संत कहा जाएगा, जब तक उसकी अस्मिता का कुछ हिस्सा अभी और भी पिघलने को शेष रह गया है। जिस दिन अस्मिता बिल्कुल पिघल जाएगी, उस दिन संत संत भी नहीं रह जाएगा। उस दिन वह परमात्मा ही हो गया। अस्मिता, आत्मा का भाव... ।

अब इसे हम दो तरह से ले लें। हमारे भीतर अहंकार है--मैं हूं। यह बिल्कुल झूठा मैं है। यह पिघल जाए, तो संतत्व पैदा होगा। संतत्व में मैं पर तो जोर नहीं रहेगा, हूं पर जोर रहेगा। मैं हूं, आई एम। हमारा जोर मैं पर है। हूं सिर्फ एक पूंछ है, छाया है। संत का मैं गिर जाएगा, तभी वह संत होगा। लेकिन हूं रह जाएगा--हूं, अस्मिता। अहंकार--मैं, ईगो। एमनेस, अस्मिता--सिर्फ होने का भाव। लेकिन यह भी उसका पिघलता चला जाएगा बर्फ की तरह। और जिस दिन यह भी पिघल जाएगा, जिस दिन मैं भी नहीं बचेगा, हूं भी नहीं बचेगी, उस दिन, उस दिन संत भी गया। उस दिन सिर्फ ईश्वर रहा, अस्तित्व रहा।

तो लाओत्से कहता है कि उनकी अस्मिता पिघलती रहती है प्रतिपल, प्रतिपल, जैसे बर्फ पिघल रही हो। यह भी भीतरी घटना है, यह भी भीतरी घटना है। अगर हम बुद्ध, महावीर, या कृष्ण या क्राइस्ट को निकट से देखें, तो कहीं भी होने पर पकड़ नहीं मालूम पड़ेगी।

महावीर गुजर रहे हैं एक रास्ते से। लोग कहते हैं, वहां से मत जाएं, वहां एक भयंकर सर्प है। वहां से कोई जाता नहीं। राह निर्जन हो गई है। सर्प बहुत भयंकर है और हमले करता है। दूर से फुफकार मार देता है, तो आदमी मर जाता है। तो महावीर कहते हैं, जब वहां से कोई भी नहीं जाता, तो सर्प के भोजन का क्या होगा?

अगर आपसे किसी ने कहा होता कि उस रास्ते पर सर्प है, सर्प को छोड़ें, चूहा है, उधर से मत जाएं, चूहा बड़ा खतरनाक है, तो आपको जो पहला ख्याल आता वह अपना आता कि जाना कि नहीं। महावीर को पहला ख्याल सर्प का आया कि भूखा तो नहीं होगा। यह अस्मिता गल गई, गली जा रही है। यहां मैं का ख्याल ही नहीं आता; उसका ख्याल आ रहा है कि फिर तो जाना ही पड़ेगा। महावीर ने कहा, भला किया कि तुमने बता दिया। जाना ही पड़ेगा। अगर मैं न जाऊंगा, तो फिर कौन जाएगा?

तो महावीर उस सर्प को खोजते हुए पहुंचते हैं। मीठी कथा है कि सर्प ने उनके पैर में काट लिया, तो कथा है कि खून नहीं निकला, दूध निकला। दूध निकल सकता नहीं पैर से। लेकिन यह काव्य-प्रतीक है, यह काव्य-प्रतीक है। दूध प्रेम का प्रतीक है, मां का प्रतीक है। सिर्फ मां के पास संभावना है कि खून दूध हो जाए। और मनसविद कहते हैं कि अगर मां प्रेम से बिल्कुल क्षीण हो जाए, तो उसके भीतर भी खून दूध में परिवर्तित नहीं होगा। वह परिवर्तन भी इसीलिए संभव है कि उसका अति प्रेम ही उसके अपने खून को अपने प्रेमी के लिए, अपने बच्चे के लिए दूध बनाता है, भोजन बना देता है। यह सिर्फ प्रतीक है कि महावीर के पैर में काटा सांप ने, तो वह दूध हो गया। इस प्रतीक को पूरा तभी समझ सकेंगे, जब समझें कि महावीर ने कहा कि सांप भूखा होगा। और मैं नहीं जाऊंगा, तो कौन जाएगा? यह ठीक मां जैसी पीड़ा है, जैसे बच्चा भूखा हो। इसलिए यह प्रतीक है

कि उनके पैर से दूध बहा। दूध तो बहेगा नहीं; लेकिन महावीर के पैर से खून भी बहा हो, तो वह ठीक वैसा ही दूध जैसा बहा जैसे मां का प्रेम बहता हो भूखे बच्चे के प्रति। यह अस्मिता का विसर्जन है, मैं का भाव नहीं है।

बुद्ध को खबर मिली है कि इस रास्ते से मत जाएं। वहां अंगुलीमाल है। वह लोगों को काट देता है। उसने नौ सौ निन्यानबे अंगुलियों की माला बना ली है। एक आदमी को और मारना है। और वह इतना पागल है कि सुनते हैं अगर कोई न मिला, तो आज रात वह अपनी मां के घर पर जाकर मां की हत्या करके उसकी अंगुली की माला पहन लेगा। उसे एक हजार आदमियों की अंगुलियां चाहिए। नौ सौ निन्यानबे पूरे हो गए। तीन महीने से कोई वहां से निकलता नहीं; क्योंकि वह बिल्कुल पागल है। बुद्ध ने यह सुना और वे उस रास्ते पर चल पड़े। साथियों ने, संगियों ने, अनुयायियों ने कहा, आप क्या कर रहे हैं? वहां जाने की कोई जरूरत नहीं है। जो अपनी मां को काटने को तैयार है, वह आपको भी छोड़ेगा नहीं। बुद्ध ने कहा, मां को छोड़ सके, मुझे ले ले; इसीलिए जाता हूं।

यह अस्मिता गल रही है। यह भीतर से अब होने का भी भाव खो रहा है।

मैं तो गया, तब आदमी संत बनता है। और जब हूं भी चला जाए, तब परमात्मा हो जाता है। संत की अस्मिता गलती रहेगी; वह धीरे-धीरे परमात्मा में बिखर कर एक हो रहा है।

"वे अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते, जैसे कि वह लकड़ी जिसे अभी कोई रूप नहीं दिया गया हो।"

आप एक लकड़ी पर बैठे हैं, वह कुर्सी है। एक लकड़ी तख्त बन गई है। एक लकड़ी दरवाजा बन गई। एक लकड़ी मूर्ति बन गई। इन लकड़ियों ने घोषणा कर दी कि हम क्या हैं--एक लकड़ी मूर्ति है, एक कुर्सी है, एक दरवाजा है। लाओत्से कहता है, संत अपने संबंध में कोई घोषणा नहीं करते। वे उस लकड़ी की भांति हैं, जिसे अभी कोई रूप न दिया गया हो; जो कोई घोषणा न कर सके कि मैं कौन हूं। अभी जंगल से कटी हुई लकड़ी है, ताजी। अभी कुछ बनी नहीं है, अरूप है। बन सकती है कुछ भी; लेकिन बनी कुछ भी नहीं है।

लाओत्से कहता है कि संतजन सदा ही अनबने होते हैं। उनकी कोई घोषणा नहीं कि हम यह हैं।

ध्यान रहे, जैसे ही घोषणा हुई, वैसे ही सीमा आ जाती है। अघोषित असीम होगा। और असीम जो है, उसे अघोषित रहना पड़ेगा। वह घोषणा नहीं कर सकता कि मैं कौन हूं। कोई घोषणा नहीं होती। हम सब घोषणा करते हैं कि कौन हैं। कोई कहता है, मैं मजिस्ट्रेट हूं; कोई कहता है, मैं डाक्टर हूं; कोई कहता है, मैं नेता हूं; कोई कहता है, मैं यह हूं, वह हूं। हम सब घोषणाएं करते हैं। संत से पूछो कि तुम कौन हो, तो उसकी कोई घोषणा नहीं हो सकती कि मैं कौन हूं।

बोधिधर्म से जब पूछा चीन के सम्राट वू ने कि तुम कौन हो? तो बोधिधर्म ने कहा, आई डू नॉट नो, मुझे कुछ भी पता नहीं। वू तो बहुत हैरान हो गया। उसने कहा कि मैं तो सोचा था कि तुमसे आत्म-ज्ञान की शिक्षा लूंगा; तुमको खुद ही पता नहीं कि तुम कौन हो।

बोधिधर्म को समझना मुश्किल है। यही लाओत्से कहता है कि हमारी समझ के परे हैं। बोधिधर्म ने जब कहा कि मुझे पता नहीं, तो वू यही समझा, जैसा कोई साधारण आदमी कहता है कि मुझे पता नहीं।

बोधिधर्म हंसने लगा और उसने कहा कि तुम थोड़ा उन लोगों के पास रहो, जो और तरह की भाषा बोलते हैं, ताकि तुम मेरी भाषा समझ सको।

बोधिधर्म का यही मतलब था--अघोषणा। क्योंकि मैं क्या कहूं कि कौन हूं? कैसे कहूं कि कौन हूं? बोधिधर्म ने कहा, मुझे कुछ भी पता नहीं है। संत अघोषित हैं। और असंत का मन बहुत घोषणाएं करना चाहेगा

कि मैं यह हूं, यह हूं, यह हूं। उसे पूरे वक्त डर बना है। अगर घोषणा न की तो कौन जाने, कोई पहचाने न पहचाने। संत आश्वस्त है। जो भी है--अघोषित, मौन।

"वे एक घाटी की भांति हैं--रिक्त।"

एक पहाड़ की भांति नहीं। एवरेस्ट के शिखर की भांति नहीं; आकाश में उठे हुए नहीं, घोषणा करते हुए नहीं। एक घाटी की भांति, छिपे हुए, अंधेरे में, जिसकी कोई भी घोषणा नहीं है। आड़ में, अंधेरे में, गुप्त, मौन!

और सबसे अदभुत बात कही है, "मटमैले जल की भांति। वैकेंट लाइक ए वैली एंड डल लाइक मडी वाटर।"

संत की सोच सकते हैं आप कल्पना मटमैले पानी की भांति? बरसात में जो पानी मटमैला होकर बहता है, वैसे हैं। स्वच्छ होने तक की घोषणा नहीं, पवित्र होने तक की घोषणा नहीं, संत होने तक की घोषणा नहीं--लाइक मडी वाटर, मटमैले जल की भांति। गंगा के पवित्र जल होने की घोषणा नहीं; मटमैले जल की भांति। कोई घोषणा नहीं है। नालियों में से भी बह सकते हैं, गंगा में से भी बह सकते हैं। कोई अंतर नहीं पड़ता। निम्नतम के साथ उसी तरह जी सकते हैं, जैसे श्रेष्ठतम के साथ। स्वर्ग में हों कि नर्क में, कोई भेद नहीं।

आखिरी बात। जापान का एक सम्राट संत की खोज में था लाओत्से को पढ़ कर कि ऐसा संत कहां मिले, लाइक मडी वाटर, लाइक ए वैकेंट वैली। गहन खाई की तरह शून्य, मटमैले पानी की तरह, कहां मिले? मंदिरों में गया, जिन पर स्वर्ण-शिखर थे। वहां संत मिले, वे शिखरों की भांति थे। लेकिन वह सम्राट पूछता कि खाई की भांति, घाटी की भांति, मटमैले जल की भांति!

वह खोजता रहा। उसे कहीं भी संत नहीं मिले, जैसे संत की वह तलाश में था। जब वह अपने गांव वापस लौट रहा था, राजधानी, तो गांव के नगर-द्वार पर ही एक भिखारी भीख मांगता था। उसने चिल्ला कर उस सम्राट को कहा कि बहुत बार तुम्हें घोड़े पर आते-जाते यहां से वहां देखता हूं, किसकी खोज कर रहे हो? सम्राट ने कहा, मैं उसकी खोज कर रहा हूं, उस संत की, जो खाई की भांति होता है लाओत्से ने कहा है; मिट्टी से मिले जल की भांति। तो वह फकीर खूब हंसने लगा और उसने कहा कि जाओ भी। सम्राट ने कहा कि तुमने पूछा और फिर कहा जाओ भी! उस फकीर ने कहा कि तुम अब जाओ ही।

सम्राट को बड़ी हैरानी हुई। और जब गौर से उस फकीर की तरफ देखा, तो उसे खाई दिखाई पड़ी उस फकीर की आंखों में। पर उसने कहा कि तुम तो भिखारी हो और तुम्हारी आंखों में खाई दिखाई पड़ती है! मैं तो इसीलिए तुम्हारी तरफ कभी न देखा कि एक भिखारी है, कुछ मांगने न लगे। और मैं जगह-जगह खोजता फिरा। तो उस फकीर ने कहा कि तुम खोजते थे वहां, जहां शिखर ही हो सकते हैं। तुमने वहां खोजा ही नहीं। लेकिन किसी को बताना मत। हम भीख मांग कर किसी तरह अपने को छिपाए हैं। किसी को बताना मत, किसी को खबर मत करना।

सम्राट तो महल आया भागा हुआ कि खबर कर दे। ले गया दरबारियों को। लेकिन फकीर फिर नहीं खोजा जा सका। दूसरे भिखारियों ने खबर दी कि वह इतना कह गया है कि मेरे गुरु की आज्ञा थी कि घोषणा मत करना और भूल से मुझसे घोषणा हो गई। सम्राट से मैंने बात कर ली। और सम्राट मेरी आंखों में झांक लिया। मेरे गुरु ने कहा था, आंखें झुका कर रखना कि कोई तेरी खाई को न देख ले। और मेरे गुरु ने कहा था कि भिखारी के वस्त्रों में रहना, ताकि मटमैले जल की भांति!

लाओत्से ने ये आंतरिक संकेत दिए।

आज इतना ही। शेष कल। लेकिन पांच मिनट बैठें। कीर्तन के बाद ही जाएं।

पैंतीसवां प्रवचन

विश्रांति से समता व मध्य मार्ग से मुक्ति

Chapter 15 : Part 2

The Wise Ones Of The Old

Who can find repose in a muddy world?
By lying still it becomes clear.
Who can maintain his calm for long?
By activity, rest comes back to life.
He who embraces this Tao,
Guards against being overfull;
Because he guards against being overfull,
He is beyond wearing out and renewal.

अध्याय 15 : खंड 2

पुराने समय के संत

इस अशुद्धि व अशांति से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है?
जो स्थिरता में रुक कर अशुद्धियों को बह जाने देता है।
कौन अपनी समता व शांति को सतत बनाए रख सकता है?
जो प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज को जान लेता है।
अतः जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है,
वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाता है।
और चूंकि वह अति पूर्णता से बचा रहता है,
इसलिए वह क्षय और पुनर्जीवन के पार चला जाता है।

कल के सूत्र की अंतिम पंक्तियां अधूरी रह गई हैं। उनसे ही हम शुरू करें।

संत के लक्षण में अंतिम बात लाओत्से ने कही, घाटी की भांति रिक्त और मटमैले पानी की भांति विनम्र।

जैसे हम जीते हैं, जो हमारा ढंग है, वह खाली होने का नहीं, भरने का है। चाहे धन से कोई अपने को भरे और चाहे यश, पद, प्रतिष्ठा से, चाहे कोई ज्ञान से अपने को भरे और चाहे कोई त्याग से, चाहे कोई संसार की

संपदा इकट्ठी करे और चाहे कोई स्वर्ग की, लेकिन हम सभी भरने को आतुर हैं। हम सभी अपने को भर लेना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि भीतर इतना खालीपन है कि वह खालीपन हमें खाए जाता है। उसे किसी भी तरह भर लेना है, ताकि खालीपन मिट जाए, रिक्तता मिट जाए, हम भरे हुए मालूम पड़ें, खाली न रह जाएं।

एक बात कि हम जीवन भर भरने की कोशिश करते हैं। और दूसरी बात कि हम अंततः खाली के खाली रह जाते हैं। कोई कभी अपने को भर नहीं पाता। चाहे दिशा हो कोई और चाहे वस्तुएं हों कोई--संसार की या पार की--हम खाली ही रह जाते हैं। सिकंदर भी मरता है, तो खाली। बड़े से बड़ा ज्ञानी भी, आइंस्टीन भी मरेगा, तो खाली। बड़ा चित्रकार, बड़ा मूर्तिकार, बड़ा राजनीतिज्ञ, बड़ा धनी मरेगा, तो खाली।

बचपन से ही दौड़ते हैं भरने के लिए और जीवन भर भरने की कोशिश भी करते हैं; फिर भी खाली मरते हैं! जो असफल हो जाते हैं इस दौड़ में, वे तो खाली मरते ही हैं। जो सफल हो जाते हैं, वे और भी ज्यादा खाली मरते हैं। क्योंकि जो असफल होता है, उसे तो एक आशा भी बनी रहती है कि यदि सफल हो जाता तो भर जाता। सुविधा नहीं थी, संयोग नहीं मिला, भाग्य ने साथ नहीं दिया, लोग विपरीत थे, परिस्थितियां अनुकूल नहीं थीं, इसलिए खाली रह गया। लेकिन जो सफल हो जाते हैं, उनके लिए यह बहाना भी नहीं बचता। वे यह भी नहीं कह सकते कि भरने का मौका नहीं मिला, इसलिए खाली रह गए। सिकंदर कैसे कहेगा कि भरने का मौका नहीं मिला, इसलिए मैं खाली रह गया। भरने का पूरा मौका मिला, भरने की पूरी चेष्टा की, अथक; फिर भी खाली रह गए।

शायद जिसे हम भरने चले हैं, उसका स्वभाव खाली होना है। इसलिए हम उसे नहीं भर पाते हैं।

लाओत्से संत की परिभाषा में आधारभूत और अंतिम बात कहता है, घाटी की भांति खाली। संत वह है, जिसने अपने खालीपन को स्वीकार कर लिया और उसके भरने की बात बंद कर दी--किसी निराशा से नहीं, किसी विषाद से नहीं, किसी हारे हुए होने के कारण नहीं। हिंदी के प्रतिष्ठित कवि दिनकर ने अभी-अभी एक किताब लिखी हैः हारे को हरिनाम। जो हार जाता है, उसके लिए हरिनाम बचता है, और कुछ भी नहीं। और जो हार कर हरिनाम लेता है, वह हरिनाम कभी ले नहीं पाता। यह उसकी मजबूरी है, विवश है। हरिनाम ही ले सकता है अब, और कुछ ले नहीं सकता। हारे हाथ में और कुछ बचता नहीं।

लेकिन यह तो हमारी समझ में भी आ जाए, भरे हुए हाथ में भी कुछ नहीं बचता! भरा हुआ हाथ भी खाली ही सिद्ध होता है! क्योंकि हमारे भीतर जो स्वभाव है, वह स्वभाव ही खाली है। हम उसे भर नहीं सकते। जैसे हम सूरज को अंधेरा नहीं कर सकते, उसका स्वभाव ही प्रकाश है। स्वभाव के विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। जो विपरीत करने की कोशिश करते हैं, वे असफल होंगे। असफल होंगे, विषाद से भरेंगे, दुख से भरेंगे, पीड़ा से भरेंगे। जो प्रतिकूल कोशिश करेंगे स्वभाव के, हारेंगे, अहंकार को घाव लगेगा, चोट लगेगी, अहंकार विजित होगा, आहत होगा, टूटेगा। सब बिखरेगा, प्राण संकट में पड़ेंगे।

संत का अर्थ लाओत्से यह नहीं कहता कि जिन्होंने हार कर, कोई उपाय न देख कर हरि का नाम लिया; कोई उपाय न देख कर जिन्होंने कहा ठीक है, संतोष के लिए यही उचित है कि हम जैसे हैं, हैं। नहीं, लाओत्से यह नहीं कहता। लाओत्से यह कहता है कि संत जान लेते हैं कि यह स्वभाव है--विषाद से नहीं--तथाता से, स्वीकार से, अनुभव से। और स्वभाव के प्रतिकूल जाने का कोई अर्थ नहीं है, मूढ़ता है। यह कोई पराजय नहीं है; यह ज्ञान है। यह कोई विवश होकर अपने सूनेपन को स्वीकार नहीं किया है। अनुभव से, प्रौढ़ता से, विकास से, जीवन को जान कर पहचाना है कि भीतर जो आत्मा है, भीतर जो अस्तित्व है, रिक्त होना उसका स्वभाव है, रिक्तता उसका गुण है।

और ध्यान रहे, रिक्तता ही असीम हो सकती है। भरी हुई कोई भी चीज असीम नहीं हो सकती। जहां कोई चीज भरेगी, वहीं सीमा आ जाएगी। और ध्यान रहे, रिक्तता ही स्वयं में प्रतिष्ठित हो सकती है। भराव तो सदा पराए से होता है। एक घड़ा खाली है। खाली घड़े का अर्थ हैः घड़ा सिर्फ घड़ा है। और घड़ा भर गया, तो अब वह किसी और चीज से भरेगा--पानी से भरे, कि सोने से भरे, कि मिट्टी से भरे, कि पत्थर से, कि हीरे-जवाहरात से। घड़ा जब तक खाली है, तब तक घड़ा है। जब भरेगा, तो पानी से भरेगा, पत्थर से भरेगा, हीरे-जवाहरात से भरेगा--पराए से भरेगा।

स्वयं अगर हमें होना है, तो खाली ही हो सकते हैं। भरे हुए होंगे, तो पराए से होंगे, दूसरे से होंगे। स्व का शुद्धतम रूप खाली ही होगा, क्योंकि स्वयं के अतिरिक्त वहां कुछ भी नहीं है। और जब भी हम भरेंगे, तो दूसरा मौजूद हो जाएगा। वही हमारी पीड़ा है। दूसरे से भरते हैं; मित्र से, प्रिय से, पत्नी से, प्रेमी से, धन से, पद से, किसी से भरते हैं। दूसरा वहां प्रवेश नहीं कर सकता; बाहर ही बाहर रह जाता है। दौड़ हो जाती है, थक जाते हैं, गिर पड़ते हैं, मुंह से लहू गिरने लगता है, मौत करीब आ जाती है; और पाते हैं कि भीतर सब खाली रह गया, वह भरा नहीं जा सका है।

लाओत्से कहता है, संत अपने खालीपन में जीता है। वह दूसरे से अपने को नहीं भरता--पराए से, दि अदर, चाहे वह कोई भी हो, उससे अपने को नहीं भरता।

लाओत्से कहता है, संत तो ईश्वर से भी अपने को नहीं भरता; धर्म से भी अपने को नहीं भरता; पुण्य से भी अपने को नहीं भरता। खाली होना ही उसका धर्म है; खाली होना ही उसका पुण्य है; खाली होना ही उसका ईश्वर है। क्योंकि खाली होना ही ताओ है, नियम है।

यह खालीपन हमें तो भयभीत करेगा। हम तो अकेले होने से भयभीत होते हैं। कोई दूसरा न हो, तो डर लगना शुरू हो जाता है। कोई दूसरा न हो, तो लगता है, जिंदगी बेकार हुई। दूसरा चाहिए ही। यह बहुत मजे की बात है कि हम में से कोई भी अपने साथ रहने को राजी नहीं। हम दूसरे के साथ रह सकते हैं; हम अपने साथ नहीं रह सकते।

और बड़ा मजा यह है कि जो हम अपने साथ नहीं रह सकते, वे भी सोचते हैं कि दूसरे हमारे साथ रहें तो आनंदित हों। हम अपने साथ नहीं रह सकते अकेले में, आनंदित नहीं हो सकते अपने साथ, और आकांक्षा यह होती है कि दूसरे भी हमारे साथ रह कर हमसे आनंदित हों। और दूसरे की भी हालत यही है। वह भी अपने को बर्दाश्त नहीं कर सकता अकेले में। और हम आशा करते हैं कि हम उसके साथ होकर आनंदित होंगे। वह खुद अपने साथ आनंदित नहीं हो सका है।

हम सब एक-दूसरे पर निर्भर होकर जी रहे हैं। और यह निर्भरता ऐसी नासमझी से भरी है कि जिन पर हम निर्भर हैं, वे हम पर निर्भर हैं। हम उनके बल से जी रहे हैं; वे हमारे बल से जी रहे हैं। हम सब निर्बल हैं। लेकिन धोखा इससे हो जाता है। जिंदगी का अवसर बीत जाता है।

संतत्व सत्य को देखने की चेष्टा है। जैसा भी है सत्य, उसे वैसा ही देखने की चेष्टा है। और जो व्यक्ति भी सत्य को देखने को राजी हो जाता है, वह शीघ्र ही सत्य के आनंद का भी अनुभव शुरू कर देता है। जिन्होंने भी इस बात को पहचान लिया कि भरे होने की, भरने की, भरे जाने की सारी दौड़ नर्क है, उन्होंने अपने को भरना छोड़ दिया। और उन्होंने अपने को खाली होना ही जाना, कि मैं खाली ही हूं।

यह बहुत मजे की बात है कि विगत दो सौ वर्षों में पश्चिम ने सर्वाधिक भराव पैदा किया है आदमी के लिए। चीजों से घर भर गए हैं। यांत्रिक नई ईजादों से जमीन भर गई है। हर आदमी के पास इतना है जितना कि

कभी भी किसी आदमी के पास नहीं था। बड़े से बड़े सम्राट के पास जो नहीं था, वह आज एक साधारण जन के पास पश्चिम में है। सब तरफ भराव है। और पश्चिम में दो सौ साल से जिस बात की प्रगाढ़तम अनुभूति हो रही है, वह है एम्पटीनेस। अगर पश्चिम का इन दो सौ वर्षों का सबसे महत्वपूर्ण शब्द हम खोजें, तो वह है एम्पटीनेस, खालीपन, रिक्तता। कामू, सार्त्र, हाइडेगर, पोर्तेगा वाइगासिथ, वे सभी रिक्तता की बात करते हैं। वे कहते हैं, जिंदगी बिल्कुल रिक्त है, खाली है। और बड़ी बेचैनी है, क्योंकि जिंदगी भरती ही नहीं।

कभी किसी गरीब समाज को इतना अनुभव नहीं हुआ था रिक्तता का। क्योंकि पेट खाली था, तो आत्मा के खाली होने का पता चलना ही नहीं हो पाता था। पेट खाली हो, तो और बड़े खालीपन दिखाई ही नहीं पड़ते। पेट को भरने में ही सारा समय व्यतीत हो जाता है। आज पश्चिम का पेट भर गया है, शरीर भर गया है; चीजें चारों तरफ इकट्ठी हो गई हैं। और आदमी को भीतर अनुभव हो रहा है, सब खाली है। कुछ भी नहीं है भीतर।

यह खालीपन, लाओत्से कहता है, इसके साथ हम दो काम कर सकते हैं। या तो इसे भरने में लग जाएं, जो कि कभी भरेगा नहीं। एक और उपाय हैः या हम इसे भुलाने में लग जाएं। आदमी दो ही उपाय करता हैः या तो भरने की कोशिश करता है; और जब नहीं भर पाता, तो भुलाने की कोशिश करता है। पहले सिकंदर भरने की कोशिश करेगा। और जब पाएगा कि असफल हुआ, तो शराब में भुलाएगा अपने को, नग्न स्त्रियों के नृत्य में भुलाएगा अपने को, ताकि अब खालीपन पता न चले। भरो या भुलाओ।

लेकिन लाओत्से कहता है, न भरने से भरता है और न भुलाने से भूलता है।

जिंदगी के बड़े अदभुत नियम हैं। जिस चीज को जितना भुलाओ, उतनी ही याद आती है। चाह कर इस जगत में कुछ भी भुलाया नहीं जा सकता। भुलाएं! और जितना भुलाएंगे, उतना ही पाएंगे, याद आता है। असल में, भुलाने की कोशिश में भी याद तो करना ही पड़ता है। जब एक आदमी अपने भीतर के खालीपन को डुबाने को, भुलाने को शराब पी रहा है, तब भी वह गहन रूप से याद कर रहा है। होश में आएगा, तब भी गहन रूप से याद करेगा कि शराब व्यर्थ हो गई, शरीर को खराब कर गई; वह जो घाव था, वह अपनी जगह फिर खड़ा है--और भी गहरा होकर, और भी रिक्त होकर दिखाई पड़ रहा है। न तो कोई भर सकता है और न कोई भुला सकता है।

लाओत्से कहता है, संत वे हैं जो दोनों ही काम नहीं करते। वे खाली होने को राजी हो जाते हैं। वे कहते हैं, हम खाली हैं; बात समाप्त हो गई। न हम भरेंगे, न हम भुलाएंगे। और बड़ा आश्चर्य और बड़ा चमत्कार जो इस जगत में घटता है, वह यह है कि जो अपने खालीपन से राजी हो जाता है, उसका खालीपन मिट जाता है।

यह थोड़ा कठिन लगेगा। असल में, खालीपन अनुभव इसलिए होता है कि हम भरने के लिए आतुर हैं। हमारी आतुरता के कारण खालीपन है। जितने हम आतुर हैं, उतना हमें खालीपन मालूम होता है। जब हम राजी ही हो गए, जब हमने भरने की दौड़ ही छोड़ दी, जब हमने भरने का स्वप्न ही तोड़ दिया, जब हमने भुलाने के भी आयोजन नहीं किए, जब हम राजी ही हो गए और जब हमने कहा कि खालीपन मेरे भीतर है ऐसा नहीं, मैं ही खालीपन हूं, तो खालीपन खो जाता है। क्योंकि खालीपन के होने के लिए पृष्ठभूमि में भरे होने की आकांक्षा चाहिए। जैसे काले तख्ते पर सफेद खड़िया से हम कुछ लिख देते हैं। फिर काले तख्ते को कोई पीछे से खींच ले, सफेद लिखा हुआ खो जाए; क्योंकि सफेद लिखा हुआ दिखाई पड़ता था काले तख्ते के कारण।

विपरीत चाहिए अनुभव के लिए। खालीपन का अनुभव होता है, क्योंकि विपरीत हमारे भीतर महत्वाकांक्षा है भरे होने की। भरे होने की आकांक्षा नहीं है, खालीपन का अनुभव खो जाता है। हमें दुख का अनुभव होता है, क्योंकि सुख की आकांक्षा है। सुख की आकांक्षा नहीं, दुख का अनुभव खो जाता है। मृत्यु हमें

डराती है, क्योंकि जीवन पर हमारी पकड़ है। जीवन पर पकड़ न हो, मृत्यु की बात समाप्त हो जाती है। अपमान हमें कांटे की तरह चुभता है, क्योंकि सम्मान के फूल पाने के लिए हम पागल हैं। सम्मान के फूल पाने की बात खो जाए, अपमान का कांटा उसके साथ ही तिरोहित हो जाता है।

विपरीत चाहिए अनुभव के लिए। अगर आपको रिक्तता अनुभव होती है, तो सबूत है कि आप भरे होने की आकांक्षा में लगे हैं। अगर आपको दुख अनुभव होता है, तो सबूत है कि आप ने सुख की मांग कर रखी है। अगर आपको अपमान पीड़ा देता है, तो आप सम्मान के लिए विक्षिप्त हैं।

अगर यह दिखाई पड़ जाए, तो लाओत्से का सूत्र समझ में आ जाए कि संत का आत्यंतिक गुण हैः रिक्त हो जाना। और उसके बाद उसने कहा है कि विनम्र, मटमैले पानी की भांति।

विनम्रता दो प्रकार की है। इसे थोड़ा समझ लें। विनम्रता दो प्रकार की है। एक तो ऐसी विनम्रता है, जो सिर्फ अहंकार का आभूषण है। अगर हम उसके लिए प्रतीक चुनना चाहें, तो हम कहेंगे, गंगा के पवित्र जल की भांति। विनम्र--गंगा के पवित्र जल की भांति। पवित्रता का भी एक अहंकार है। और विनम्रता का भी एक अहंकार है। ऐसा विनम्र आदमी घोषणा करता फिरता है सब तरह से कि मैं बिल्कुल विनम्र हूं, मैं आपके पैरों की धूल हूं, मैं कुछ भी नहीं। उसकी आंखों में झांकें, उसके उठने में, उसके बैठने में; और दिखाई पड़ेगा, वह सब कुछ है। और अगर उस आदमी को आप कह दें कि आपसे भी ज्यादा विनम्र आदमी का आगमन गांव में हो गया है, तो वह आदमी उतना ही पीड़ित होगा, जैसा कोई और अहंकारी पीड़ित हो। उसकी विनम्रता नंबर एक है। नंबर दो का विनम्र वह न होना चाहेगा।

विनम्रता भी नंबर एक हो सकती है? और अगर विनम्रता भी शिखर बनती है, तो विनम्रता कहां रही? शिखर तो अहंकार बनता है। तो जिसे विनम्रता का पता है, वह विनम्र नहीं है। जिसे बोध है कि मैं विनम्र हूं, वह अहंकारी है। क्योंकि बिना विपरीत के विनम्रता का बोध भी नहीं होगा। जो घोषणा करता है कि मैं विनम्र हूं, वह अहंकारी है। जो कहता है चरणों की धूल हूं, वह अहंकारी है। अन्यथा यह बोध भी नहीं होगा। इस बोध का भी कोई उपाय नहीं है। अहंकार विनम्र होने का धोखा दे सकता है; देता है। क्योंकि हम सिखा रहे हैं।

मैं एक विश्वविद्यालय में गया था। वहां मैंने तख्ती लगी देखी वाइस चांसलर के कमरे में--कि जो विनम्र हैं, वे ही सम्मान को प्राप्त होंगे। विद्यार्थियों के लिए लगाई होगी--कि जो विनम्र हैं, वे सम्मान को प्राप्त होंगे। लेकिन यह बड़े मजे की बात है। आधा हिस्सा, पिछला हिस्सा पहले हिस्से के विपरीत है। जो विनम्र हैं, वे सम्मान को प्राप्त होंगे। तो जो सम्मान पाना चाहते हैं, वे विनम्र होने की कोशिश शुरू करें।

निश्चित ही, हमारे अहंकार से भरे समाज में जिसे भी सम्मान चाहिए, उसे विनम्र होना चाहिए। नहीं तो सम्मान नहीं मिलेगा। हम उसी को सम्मान देते हैं, जो विनम्र हो जाए। और बड़े मजे की बात है कि हमें इसका ख्याल नहीं कि वह इसीलिए विनम्र हो रहा है कि सम्मान मिले। सम्मान की आकांक्षा अगर विनम्र बना दे, हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर खड़ा करवा दे... । राजनीतिक नेतागण द्वार-द्वार खड़े रहते हैं। उनकी विनम्रता गहन अहंकार की तृप्ति की दौड़ है।

तो एक तो विनम्रता ऐसी है, जिसे विनम्रता की पवित्रता का, श्रेष्ठता का बोध है। दूसरी विनम्रता की लाओत्से बात कर रहा है। दूसरी विनम्रता ऐसी है, जिसे अपनी पवित्रता का, अपनी श्रेष्ठता का, अपनी साधुता का भी कोई पता नहीं। इसलिए लाओत्से ने प्रतीक उपयोग किया हैः मटमैले जल की भांति, मडी वाटर। कहीं भी बह रहा है, किसी भी जमीन पर, मिट्टी से भरा हुआ। कोई बोध नहीं है पवित्रता का, श्रेष्ठता का, गंगाजल का। संत को अगर बोध हो कि मैं संत हूं, तो वह संत नहीं रहा।

लेकिन यहीं तरकीब है। तो आप संत के पास जाएं और उससे कहें कि आप बहुत बड़े महात्मा हैं, तो वह कहेगाः नहीं, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। उसको भी पता है। खेल के नियम सभी को पता हैं। आपको भी पता है कि संत अगर खुद कहे कि हां, मैं संत हूं, तो कहेंगेः क्या संत रहा! उसे भी पता है कि अगर मैं कहूं कि हां, मैं संत हूं, तो यह आदमी दुबारा नहीं आएगा। वह कहता हैः मैं संत? मैं कहां! मुझ सा पापी तो है ही नहीं। जो मैं खोजने निकला, तो मुझ सा पापी मैंने कोई भी नहीं पाया। तब आप चरण छूकर घर लौटते हैं कि संत उपलब्ध हुआ।

लेकिन ये एक ही खेल के दो हिस्से हो सकते हैं।

लाओत्से का संत यह भी नहीं कहेगा कि मैं सबसे भला हूं और यह भी नहीं कहेगा कि मैं सबसे बुरा हूं। क्योंकि ये दोनों ही अहंकार की घोषणाएं हैं। लाओत्से का संत अघोषित रहेगा। वह कुछ भी नहीं कहेगा। अपने संबंध में कोई वक्तव्य नहीं देगा। शायद आप उसके पास से बहुत निराश लौटें। क्योंकि दो में से कोई भी बात आपके मन को तृप्ति देती। वह कह देता कि हां, मैं महान संत हूं, तो भी आप कुछ निर्णय करके लौटते। वह कह देता कि मैं तो कुछ भी नहीं, ना-कुछ हूं, नाचीज हूं, तो भी आप कुछ निर्णय लेकर लौटते। लेकिन लाओत्से का संत कुछ भी नहीं कहेगा। क्योंकि लाओत्से कहता है कि स्वयं के बाबत कोई भी बोध विपरीत के कारण होता है। इसलिए कोई बोध नहीं होगा।

लाओत्से से खुद कोई पूछने आया है कि सुना है हमने, आप परम ज्ञानी हैं! लाओत्से सुनता रहा। उस आदमी ने कहा, कुछ कहिएगा नहीं? लाओत्से चुप रहा। और तभी एक और आदमी आया और उसने लाओत्से से कहा कि सुना है हमने कि तुम अज्ञान का प्रसार कर रहे हो! ऐसी बातें कह रहे हो, जिससे जगत भ्रष्ट हो जाए और भटक जाए! लाओत्से सुनता रहा। उस आदमी ने कहा, कुछ कहिएगा नहीं?

लाओत्से ने कहा कि तुम दोनों आपस में बैठ कर तय कर लो। यह आदमी कहता है कि महा ज्ञानी और तुम कहते हो महा अज्ञानी। मुझे कुछ भी पता नहीं। तुम दोनों जानकार हो, तुम दोनों मिल कर तय कर लो। और मुझ पर कृपा करो। मुझे हिसाब के बाहर रखो। तुम दोनों काफी जानकार हो। जिन बातों का मुझे पता नहीं, उनका तुम्हें पता है। तुम निर्णय कर लो। और मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं है।

यह अघोषित व्यक्तित्व संतत्व है।

अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"इस अशुद्धि से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है? जो ठहर कर अशुद्धियों को बह जाने देता है।"

इस संबंध में बुद्ध की एक कहानी मुझे सदा प्रिय रही है, वह मैं आपसे कहूं। यह सूत्र उस पूरी कथा का शीर्षक है।

"हू कैन फाइंड रिपोज इन ए मडी वर्ल्ड? बाई लाइंग स्टिल इट बिकम्स क्लियर।"

बुद्ध एक पहाड़ के पास से गुजरते हैं। धूप है तेज। गर्मी के दिन। उन्हें प्यास लगी। आनंद से उन्होंने कहा, आनंद, तू पीछे लौट कर जा; अभी-अभी हमने एक नाला पार किया है, तू पानी भर ला!

आनंद भिक्षा-पात्र लेकर पीछे गया। कोई दो फर्लांग दूर वह नाला था। जब बुद्ध और आनंद वहां से निकले थे, तो नाला बड़ा स्वच्छ था। जलधार धूप में मोतियों जैसी चमकती थी। छिछला था नाला; कंकड़-पत्थरों पर शोर-गुल की आवाज करता बहता था। पहाड़ी नाला था; स्वच्छ, ताजा जल उसमें था। लेकिन जब आनंद वापस पहुंचा, तो देखा कि कुछ बैलगाड़ियां उसके सामने ही उसमें से गुजर रही हैं और नाला गंदा हो

गया। धूल और कीचड़ ऊपर उठ आई। सूखे पत्ते दबे जो जमीन में पड़े थे, वे फैल गए। सारा पानी गंदा हो गया; पीने योग्य न रहा।

आनंद वापस लौटा। आनंद के मन में हुआः बुद्ध इतने महा ज्ञानी हैं, उन्हें यह भी पता न चला कि जब मैं जाऊंगा, तो दो गाड़ियां वहां से निकल जाएंगी, सब पानी गंदा हो जाएगा! आनंद वापस लौटा और उसने बुद्ध से कहा कि वह पानी गंदा हो गया है। गाड़ियां उस पर से गुजर गईं। अब वह पीने योग्य नहीं है। तो मैं आगे जाता हूं। तीन मील दूर आगे नदी है; वहां से पानी ले आऊं। बुद्ध ने कहा कि नहीं, पानी तो उसी नाले का मुझे पीना है। तू वापस जा! आनंद को बड़ी कठिनाई हुई कि पहले तो समझ लो कि न जानते हुए बुद्ध ने भेजा था; अब जान कर! आनंद को ठिठकते देख कर बुद्ध ने कहा, तू जा भी!

आनंद फिर गया। लेकिन उस पानी को पीने के योग्य माना नहीं जा सकता था। पानी बिल्कुल गंदा था। आनंद बड़ी मुश्किल में पड़ा। उस गंदे पानी को बुद्ध के पीने के लिए लाए भी कैसे? फिर वापस लौटा; बुद्ध से कहा, क्षमा करें, वह पानी लाने योग्य बिल्कुल नहीं है। बुद्ध ने कहा, तू एक बार और मेरी मान और जा! आनंद का मन हुआ कि इनकार कर दे। लेकिन बुद्ध ने इतने अनुनय के स्वर से कहा कि वह फिर वापस लौटा। जाते वक्त बुद्ध ने उससे कहा, आनंद, और अब लौटना मत। किनारे पर बैठ रहना। जब तक पानी तुझे पीने योग्य न लगे, तब तक बैठे रहना।

आनंद गया। किनारे पर बैठ गया। बैठ कर देखता रहा, देखता रहा, देखता रहा। थोड़ी देर में सूखे पत्ते बह गए, मिट्टी के कण नीचे बैठ गए, धूल हट गई। पानी पुनः स्वच्छ हो गया। पानी भर कर आनंद नाचता हुआ लौटा। बुद्ध के चरणों में गिर कर उसने कहा कि तुम्हारी अनुकंपा अपार है! क्या तुमने मुझे उस पानी की धार से कुछ संदेश दिया? मैं नासमझ क्या-क्या सोचता रहा! मुझे समझ आ गया उस नदी के, उस झरने के किनारे बैठ कर कि यह मन भी ऐसा ही गंदगी से भरा है। क्या मन के किनारे भी हम ऐसे ही बैठ कर प्रतीक्षा करें, तो यह गंदगी बह जाएगी?

बुद्ध ने कहा, इसीलिए तुझे तीन बार मुझे वापस भेजना पड़ा।

लाओत्से का सूत्र उसका शीर्षक है। हू कैन फाइंड रिपोज इन ए मडी वर्ल्ड? इस मटमैली, गंदी दुनिया में, कीचड़ से भरी दुनिया में, कौन पा सकेगा विश्रांति? बाई लाइंग स्टिल इट बिकम्स क्लियर। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। इस संसार में प्रतीक्षा से शांत होकर बैठ जाना काफी है। सब स्वच्छ हो जाता है अपने से।

आनंद से बुद्ध ने बाद में पूछा कि आनंद, तुझे कभी ऐसा उस झरने के किनारे नहीं हुआ कि कूद पड़ूं और साफ कर दूं? आनंद ने कहा, हुआ ही नहीं, मैंने किया भी। लेकिन पानी और भी गंदा हो गया था।

मन के साथ हम भी सब यही करते हैं। कूद कर साफ करने की कोशिश करते हैं। जबर्दस्ती मन को साफ करने की कोशिश करते हैं। हमारी जबर्दस्ती, हमारा झरने में उतर जाना पानी को और गंदा कर जाता है।

इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी जो मंदिरों में बैठ कर ध्यान और पूजा और प्रार्थना करते रहते हैं, कहीं उनके मन में झांकने का आपको अवसर मिले, तो आपको पता चले कि वे मंदिर में जरूर बैठे हैं, मंदिर से उनके मन का कोई भी संबंध नहीं है। मन उनका इतनी गंदगी से इतना भर गया है जितना कि दुकान पर बैठ कर भी नहीं भरता। क्योंकि दुकान पर भी एक एकाग्रता रहती है धन पर, मंदिर में उतनी एकाग्रता भी नहीं रह जाती। और क्यों नहीं रह जाती?

सभी को यह अनुभव हुआ होगा, जो भी मन को शांत करने की कोशिश करेगा, उसे पता चला होगा कि शांत करने जाओ, तो और अशांत हो जाता है। क्योंकि शांत करने जाएगा कौन? आप अशांत हैं और आप शांत

करने जा रहे हैं! तो अशांति दुगुनी हो जाएगी। बहुगुनी भी हो सकती है। तो अगर कोई बहुत ज्यादा शांत करने की कोशिश करे, तो पहले अशांत था, पीछे विक्षिप्त हो सकता है। फिर रास्ता क्या है?

लाओत्से का रास्ता ख्याल में रखने जैसा है। यह परम मार्ग है। लाओत्से कहता है, मन की धारा के पास चुपचाप बैठ जाएं, लाइंग स्टिल, लेट जाएं। बहने दें धार को, होने दें गंदगी; मटमैली है धार, रहने दें। शांत बैठ जाएं, सिर्फ प्रतीक्षा करें। और कुछ न करें। कोशिश न करें शांत करने की।

कौन आदमी इस जगत में शांति को उपलब्ध हो सकता है? वही जो अशांति को मिटाने की चेष्टा से बचे। यह बहुत अजीब लगेगा--जो अशांति को मिटाने की चेष्टा से बचे। क्योंकि सब अशांति हमारी चेष्टाओं का फल है। और अब हम शांत होने की भी चेष्टा करें, तो हम और गहन अशांति पैदा कर लेंगे।

बोकोजू अपने गुरु के पास गया। गुरु से उसने जाकर कहा कि मेरा मन बड़ा अशांत है, मुझे शांत करने का उपाय दें। क्या मैं ध्यान करूं? क्या मैं उपवास करूं? क्या मैं तप करूं? उसके गुरु ने कहा, तू इतना कर-करके अभी करने से थका नहीं? तू जिंदगी भर करता ही रहा। उस करने का ही यह तेरी अशांति फल है। और अभी भी तू करने को उत्सुक है! तो फिर मेरे दरवाजे के भीतर मत आना। क्योंकि यह न करने वालों का घर है। अगर तू यहां न करने को राजी हो, तो भीतर आ; अन्यथा अभी और भटक!

बोकोजू की कुछ समझ में नहीं पड़ा। उसने कहा, अशांति बहुत है। आपको पता नहीं मेरी पीड़ा का। इसे शांत करना ही है। उसके गुरु ने कहा, यह तेरा कहना कि इसे शांत करना ही है, और दोहरी अशांति को जन्म दे रहा है। तू कुछ मत कर; तू यहां रह! तू सिर्फ मेरे पास बैठ!

बोकोजू एक साल तक अपने गुरु के पास बैठता था। दो, चार, आठ दिन में पूछता था कि अब कुछ बताएं करने को! क्योंकि बिना किए मन मानता नहीं। कुछ तो करवाएं। कोई मूढ़तापूर्ण कृत्य भी दे दें कि चलो, माला ही फेरो। तो कुछ तो करवाएं! कोई मंत्र, कोई नाम, कुछ तो पकड़ा दें कि मैं लगा रहूं। बोकोजू का गुरु कहता है कि तू काफी कर चुका। अब कुछ दिन कुछ भी नहीं करना है। महीना, पंद्रह दिन बीतता है कि बेचैनी बढ़ जाती है उसकी। कहता है, कुछ! क्या मैं पात्र नहीं हूं? क्या अपात्र हूं? आप मुझे कुछ बताते क्यों नहीं? गुरु कहता है, तू बस बैठ!

जापान में एक शब्द है झाझेन, जिसका मतलब होता है जस्ट सिटिंग, सिर्फ बैठ। तो गुरु बस उससे, साल में जब भी वह पूछता है, गुरु इतना ही कहता है, झाझेन, तू बैठ। तू कुछ और मत कर!

सिर पच गया। कुछ बताता नहीं है यह आदमी। और बोकोजू को बैठना पड़ा, बैठना पड़ा, बैठना पड़ा। फिर उसने पूछना भी छोड़ दिया, कि इस आदमी से पूछना भी क्या!

लेकिन बैठे-बैठे इस आदमी से, इसके पास, इसकी सन्निधि में, ऐसा लगाव भी बन गया कि अब छोड़ कर जाना भी न हो। इसके पास बैठे-बैठे कुछ चीजें जुड़ गईं भीतर कि अब इस घर के बाहर जाना भी न हो। आखिर जिस दिन चीजें जुड़ गईं भीतर, तो बोकोजू के गुरु ने कहा कि अब अगर तूने पूछा कि कुछ बताओ, तो दरवाजे के बाहर निकलने का ही एकमात्र कर्म बचा है। निकाल दूंगा बाहर। अब तू पूछना मत! जिस दिन बोकोजू के गुरु को लगा कि अब वह जगह आ गई, जहां से यह अब भाग भी नहीं सकता, बैठना ही पड़ेगा। और बैठ भी नहीं सकता; क्योंकि मन भीतर कहता हैः कुछ करो, कोई व्यस्तता, कोई आक्युपेशन, कहीं तो उलझे रहो। कुछ तो करने को चाहिए।

कहावत है, हमने सुनी है कि खाली मन शैतान का कारखाना हो जाता है। बात गलत है। शैतान के कारखाने आप हैं। खाली में आपको पता चलता है। खाली की वजह से कोई शैतान का कारखाना नहीं बनता,

शैतान के आप पूरे कारखाने हैं। लेकिन फैक्टरी इतने दिनों से चल रही है कि उसके शोरगुल का पता नहीं चलता। जब बंद होती है, तब पता चलता है।

मुश्किल में पड़ गया बोकोजू। लेकिन अब जा भी नहीं सकता, कुछ कर भी नहीं सकता, बैठा है, बैठा है, बैठा है। और ठीक वही घटना घटी, जो आनंद को उस झरने के किनारे घटी। साल पूरा होते-होते, बैठते-बैठते, बैठे-बैठे-बैठे वही-वही विचार कितनी बार सोचे? कोई उपाय नहीं। वे धीरे-धीरे विचार भी बासे पड़ गए। उनसे भी ऊब होने लगी। वे विचार भी धीरे-धीरे बह गए। मन शांत हो गया।

एक दिन बोकोजू के गुरु ने कहा कि अब अगर तेरा इरादा हो, तो कुछ करने को बताऊं। उसने गुरु के चरण छुए और कहा कि बड़ी मुश्किल से करने से छूटा हूं। अब कृपा करिए। अब भूल कर भी कुछ करने को मत बताइए। बोकोजू के गुरु ने कहा, शांत नहीं होना है? बोकोजू ने कहा कि अब मैं समझ गया, अब मेरा मजाक मत करें। होने की कोशिश ही, कुछ भी होने की कोशिश अशांति है।

होने की कोशिश ही, टु बी समथिंग, होने की कोशिश ही अशांति है। इसलिए शांत होने की कोई कोशिश जगत में नहीं हो सकती। अगर होने की कोशिश ही अशांति है, तो शांत होने की कोई कोशिश जगत में नहीं हो सकती। फिर शांत होने का एक ही मतलब हुआ कि होने की सब कोशिश छूट गई हो, तो जो शेष रह जाता है, वह शांति है।

लाओत्से कहता है, इस अशुद्धि और अशांति से भरे संसार में कौन विश्रांति को उपलब्ध होता है? जो ठहर कर, अपने में रुक कर, अपने में थिर होकर अशुद्धियों को बह जाने देता है।

लड़ना मत भीतर की अशुद्धियों से। लेकिन समस्त धर्म, जैसा हम समझते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि कहता है लड़ो। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि धर्म को जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने नहीं कहा कि लड़ो। क्योंकि लड़ कर कोई भी शांत नहीं हो सकता। और शांत हुए बिना कोई धार्मिक नहीं हो सकता। इसलिए कुछ वक्तव्य तो धार्मिक लोगों के इतने, इतने क्रांतिकारी हैं कि हम उन्हें पचा भी नहीं पाते।

जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नॉट ईविल--बुराई से मत लड़ना। ईसाइयत अभी तक नहीं पचा पाई--दो हजार साल होते हैं। कोई ईसाई चिंतक ठीक से यह बात नहीं कह पाया कि जीसस का क्या... । क्या कहते हैं जीसस, बुराई से मत लड़ो? तो क्रोध से न लड़ें? तो यौन से न लड़ें? तो लोभ से न लड़ें? ये शत्रु!

मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं, इन चार शत्रुओं से छूटने का कोई उपाय बताएं। ये काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, ये चार शत्रु। इनसे छूटने का कोई उपाय बताएं। कैसे इनको नष्ट करें? और जीसस कहते हैं, रेसिस्ट नॉट ईविल, बुराई से लड़ना मत। लाओत्से कहता है, ठहर जाना, बुराई को बह जाने देना। लड़े कि हारे। अगर जीतना हो, तो लड़ना ही मत।

लेकिन तथाकथित सतही धार्मिक चिंतन लोगों से कहता है कि दूसरे से भला मत लड़ो, लेकिन अपने से तो लड़ना ही पड़ेगा। लियो टाल्सटाय ने अपनी डायरी में लिखा है कि हे परमात्मा, दूसरों को मैं क्षमा कर सकूं, ऐसा मुझे बल दे; और अपने को कभी क्षमा न कर सकूं, ऐसा भी। यह सामान्य धार्मिक आदमी की बुद्धि है। दूसरे से तो नहीं लडूं, लेकिन अपने से तो लड़ना ही पड़ेगा।

और जो लड़ेगा, वह आनंद की तरह धार में उतर गया झरने की। और गंदी हो जाएगी धार। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमियों के पास जैसी गंदी बुद्धि हो जाती है, वैसी गंदी बुद्धि अपराधियों के पास भी खोजनी मुश्किल है। सब तरफ उन्हें गंदगी का प्रोजेक्शन, गंदगी का विस्तार दिखाई पड़ने लगता है। कहीं भी,

जहां उनकी आंख जाती है, वहीं उन्हें कुछ गंदगी दिखाई पड़ने लगती है। वह गंदगी उनके भीतर इकट्ठी हो गई है। और अब इतनी इकट्ठी हो गई है कि उसने बाहर भी विस्तार लेना शुरू कर दिया है।

एक फ्रेंच चित्रकार खजुराहो देखने आया था। उन दिनों मेरे एक परिचित मित्र विंध्य प्रदेश में मंत्री थे। उन मित्र को जिम्मा मिला कि वे उस चित्रकार को जाकर खजुराहो की मूर्तियां दिखा दें। वे दिखाने गए। वे बहुत घबड़ाए हुए थे; धार्मिक आदमी हैं। धार्मिक आदमी से मतलब रोज सुबह पूजा करते हैं, जनेऊ पहनते हैं, गीता-रामायण पढ़ते हैं, मंदिर जाते हैं, तिलक-टीका लगाते हैं। सब तरह से धार्मिक हैं। वे बड़े घबड़ाए कि अब ये खजुराहो की नग्न मूर्तियां, यौन भित्ति-चित्र संभोग और मैथुन के, बड़ी मुसीबत हुई। और यह परदेशी क्या सोचेगा कि ये भारतीय कैसे गंदे हैं! ये भी कोई चित्र बनाने का है और वह भी मंदिर के चारों तरफ? मगर मजबूरी थी, दिखाना जरूरी था। आदमी प्रतिष्ठित था और उसे मिनिस्टर से कम हैसियत का आदमी दिखाने ले जाए, यह उचित भी न था। राम-राम करके वे उसके साथ गए।

मुझे कहते थे कि मैं पूरे वक्त मन में यही कहता रहा कि हे भगवान, यह यह न पूछे कि ये अश्लील, ये नग्न चित्र किसलिए बनाए हैं? किसी तरह जल्दी उन्होंने घुमाने की कोशिश की। और वह चित्रकार एक-एक मूर्ति के पास घंटों ठहरा। और वे परेशान हों कि अब चलिए भी। और वे नीचे नजर रखें कि कहीं दिखाई न पड़ जाएं। पूरी यात्रा किसी तरह समाप्त हो गई। उस चित्रकार ने पूछा नहीं। सीढ़ियों पर उनसे ही नहीं रहा गया लौटते वक्त, मिनिस्टर से न रहा गया, उन्होंने कहा कि एक बात आपसे निवेदन कर दूं कि यह मंदिर कोई हमारी भारतीय परंपरा का केंद्रीय हिस्सा नहीं है। इससे आप हमारी संस्कृति के संबंध में कुछ मत सोच लेना। यह किसी विक्षिप्त मस्तिष्क, खराब बुंदेला सम्राट की करतूत है। यह कोई भारतीय संस्कृति का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। अश्लील हैं चित्र, हम जानते हैं। और हमारा वश चले तो इन मंदिरों पर मिट्टी पुतवा दें।

उस चित्रकार ने क्या कहा? उस चित्रकार ने कहा, मुझे फिर से भीतर जाना पड़ेगा; क्योंकि अश्लीलता मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ी। मुझे भीतर ले चलें! मुझे भीतर ले चलें, मुझे दुबारा देखना पड़ेगा; क्योंकि अश्लीलता मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ी। मैंने इतने सुंदर और इतने कलात्मक और इतने सहज और इतने निर्दोष चित्र कहीं देखे ही नहीं।

कौन आदमी धार्मिक है? ये रोज पूजा-प्रार्थना करते हैं। और कैसी धार्मिकता है? इस आदमी ने शायद पूजा-प्रार्थना कभी न की हो, पर इसे मैं धार्मिक कहूंगा। इसके पास एक कचरे से भरा हुआ मस्तिष्क नहीं है। चीजों को सीधा देख पाता है; बीच में कुछ अपनी धारणाओं को नहीं रखता।

जब आपको कोई मूर्ति अश्लील मालूम पड़ती है, तो भीतर खोजना। आपके भीतर कामवासना जोर मार रही होगी; उसकी वजह से मूर्ति अश्लील मालूम पड़ती है। अगर कोई नग्न आदमी खड़ा हो और आपको लगे कि गंदा है, अश्लील है, तो जरा भीतर झांक कर देखना। नग्न आदमी को देखने की इच्छा, वासना ही भीतर कारण है। अन्यथा कोई सवाल नहीं है। अगर कोई व्यक्ति भीतर की बुराइयों से लड़ेगा, तो इस विक्षिप्तता में उतर जाएगा, परवर्शन में।

तीन स्थितियां हैं चित्त की। एक को हम कहें भोग। भोग नैसर्गिक स्थिति है। जो भोग को दबाएगा और लड़ेगा, वह भोग से भी नीचे गिर जाता है। उसको मैं कहता हूं रोग। और जो भोग को बह जाने देगा, वह भोग से ऊपर उठ जाता है। उसे मैं कहता हूं योग। रोग, भोग, योग। भोग नैसर्गिक है। भोग को जिसने विकृत किया, वह रोग की दुनिया में प्रवेश कर जाता है। भोग को जिसने बह जाने दिया सहजता से, स्वीकार से, संघर्ष के बिना--मिट्टी बैठ जाती है, पत्ते बह जाते हैं, गंदगी हट जाती है। योग उपलब्ध होता है।

इस योग की तरफ इशारा है लाओत्से का।

"कौन अपनी समता और शांति को सतत बनाए रख सकता है? जो प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज को जान लेता है।"

हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? वक्तव्य को ठीक से समझना पड़े। बाई एक्टिविटी इट कम्स बैक टु लाइफ रेस्ट। कौन अपनी समता और शांति को सदा बनाए रख सकता है? शांति सभी को मिलती है कभी-कभी। और समता भी सभी को आती है कभी-कभी। सतत कौन बनाए रख सकता है?

तो दो उपाय हैं। एक उपाय तो है कि आदमी बिल्कुल मर जाए, मरा हुआ हो जाए। अशांत होने की भी ताकत न रहे। कुछ लोग इसकी कोशिश करते हैं। अगर मन में वासना उठती है, तो भोजन इतना कम कर दो कि शरीर में शक्ति न रहे कि वासना निर्मित हो। न होगी शक्ति, न उठेगी वासना। लेकिन शक्ति का न होना वासना का न होना नहीं है। वासना प्रतीक्षा करेगी। जब भी शक्ति होगी, तब प्रकट हो जाएगी। और अगर प्रकट होने का मौका भी न दिया, तो छुटकारा नहीं है, मौजूद ही रहेगी। बीज की तरह जमी रहेगी।

अमरीका में उन्होंने एक प्रयोग किया एक विश्वविद्यालय में। तीस विद्यार्थियों को एक महीने तक भूखा रखा। पांच-सात दिन की भूख के बाद कामवासना क्षीण होने लगी। नग्न तस्वीरें रखी रहें, अश्लील चित्र प्रदर्शित किया जाए, कोई आकर्षण नहीं। नग्न से नग्न चित्र रखे हैं सुंदर से सुंदर स्त्रियों के, कोई उठा कर भी नहीं देखता। पंद्रह दिन के बाद कितनी ही काम की चर्चा करो, कोई रस नहीं लेता। तीस दिन में ऐसा लगा कि वासना बिल्कुल तिरोहित हो गई। क्योंकि शक्ति चाहिए, अतिरिक्त शक्ति चाहिए वासना के लिए।

तीस दिन के बाद भोजन दिया। पहले दिन के भोजन के बाद ही रस वापस लौटने लगा। तीन दिन के भोजन के बाद वे चित्र फिर सुंदर हो गए, आकर्षक हो गए। फिर चर्चाएं और मजाक और इशारे और कामवासना की दौड़ शुरू हो गई। अगर इनको जीवन भर उस तल पर रखा जाए, जहां कि ऊर्जा ज्यादा पैदा न हो, तो इनको वहम होगा कि इनके भीतर से वासना मर गई।

अनेक साधु-संत यही करते रहते हैं। वासना मिटती नहीं, केवल शक्ति की अभिव्यक्ति न होने से छिप जाती है।

लाओत्से कहता है, इस भांति अगर कोई अपने को समता में रखना चाहे, तो वह समता नहीं, मृत्यु है। शांति नहीं, मरघट का सन्नाटा है। शांति एक जीवित घटना है, सन्नाटा एक मृत। मरघट पर भी शांति होती है। अगर वैसी ही शांति चाहिए, तो अपने को सिकोड़ना पड़े और नष्ट करना पड़े। उससे कोई आनंद को उपलब्ध नहीं होता। उससे सिर्फ गहरी उदासी में डूब जाता है--इतनी उदासी में जहां जीवन अपने पंख सिकोड़ लेता है और यात्रा बंद कर देता है।

अक्सर साधु-संत दिखाई पड़ते हैं--मुर्दा, सूख गए, रस की धार खो गई। बस इतना ही जीवन बचा है कि चल लेते हैं, फिर लेते हैं। फिर हमें लगता है कि बड़ी ऊंची स्थिति पा ली। यह स्थिति भ्रांत है। जरूर एक ऊंची स्थिति है; लेकिन वह मृतवत नहीं, और भी जीवंत है। उसका राज क्या है?

लाओत्से कहता है, उसका राज यह है। सक्रियता तो आएगी जीवन में, सक्रियता जरूरी है। जीवन का अर्थ सक्रियता है। लेकिन जो व्यक्ति इस राज को समझ लेता है कि सक्रियता भी विश्राम का द्वार है, बल्कि सक्रियता ही विश्राम की जन्मदात्री है। और जो यह समझ लेता है कि सक्रियता विश्राम के विपरीत नहीं, विश्रांति का मार्ग है, वह सदा समता को उपलब्ध हो जाता है।

इसे हम ऐसा समझें। अगर मैं दूकान पर बैठता हूं, तो क्रोध आ जाता है, लोभ आ जाता है। तो दो रास्ते हैं। दूकान छोड़ दूं। तो न होगी दूकान, न होगा क्रोध, न लोभ। पत्नी के साथ रहता हूं, तो कलह हो जाती है, ईर्ष्या आ जाती है। छोड़ दूं पत्नी को। न होगी ईर्ष्या, न कलह। ऐसे हटता जाऊं सब जगह से। जहां-जहां मुझे लगता हो कि गड़बड़ हो जाती है, वहां से हट जाऊं। लेकिन मैं तो मैं ही रहूंगा। चाहे दूकान से हटूं, हिमालय चला जाऊं; चाहे पत्नी को छोडूं, आश्रम में बैठ जाऊं; मैं तो मैं ही रहूंगा।

यह जो आदमी परिस्थितियों से हट रहा है, यह आदमी अपने को बदल नहीं रहा है। अपने को तो वैसा ही बचाए हुए है। यह भी हो सकता था कि विपरीत परिस्थितियां बनी रहतीं, तो शायद इसे कभी अपने को बदलना पड़ता। अब वह भी जरूरत न रहेगी। क्रोध आता ही रहता, तो एक न एक दिन इसको लगता कि क्रोध पागलपन है। अब इसने क्रोध की परिस्थिति से ही अपने को हटा लिया। कलह होती ही रहती, तो एक दिन आदमी कलह से भी ऊब जाता और ऊपर उठता। इसने कलह से अपने को हटा लिया।

यह सब तरफ से अपने को हटा ले सकता है। लेकिन यह क्रांति नहीं है, रूपांतरण नहीं है। यह आदमी वही है। सिर्फ परिस्थितियां इसने क्षीण कर दीं। इसमें कोई गहन अनुभव उपलब्ध नहीं होने वाला है।

लाओत्से कहता है कि दूकान है, तो दूकान पर रहो; बाजार है, तो बाजार; और घर है, तो घर। परिस्थितियों से भागो मत। और क्रिया से हटो मत। करते ही रहो क्रिया। और ध्यान रखो कि क्रिया विश्राम के विपरीत नहीं है, बल्कि ठीक से जो क्रिया करे, वह उतने ही ठीक से विश्राम में प्रवेश करता है।

यह लाओत्से के बुनियादी साधना के सूत्रों में से एक है। इसे थोड़ा हम समझ लें।

मैं सोच सकता हूं कि रात मुझे नींद नहीं आती, तो मैं दिन भर भी सोया रहूं, ताकि रात अच्छी नींद आ सके। तो मैं दिन भर लेटा रहूं। यह तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि रात नींद नहीं आती, दिन भर भी लेट कर विश्राम करो। जितना ज्यादा विश्राम का अभ्यास करोगे, रात उतना ही ज्यादा विश्राम आएगा। लेकिन जो दिन भर लेटा रहेगा, रात नींद बिल्कुल असंभव हो जाएगी। क्योंकि तर्क एक बात और जीवन बिल्कुल दूसरी बात है। और जीवन तर्क को मान कर नहीं चलता। तर्क को जीवन को मान कर चलना हो तो चले, जीवन किसी तर्क को मान कर नहीं चलता है। जीवन की अपनी व्यवस्था है।

और जीवन की व्यवस्था द्वंद्व की व्यवस्था है, डायलेक्टिकल है। जो आदमी दिन में खूब सक्रिय होगा, श्रम करेगा, दौड़ेगा, पत्थर तोड़ेगा, वह आदमी रात गहरी नींद में प्रवेश करेगा। क्योंकि जो जितना सक्रिय होगा, उसकी सक्रियता उतनी ही आयोजना कर देगी भीतर कि वह निष्क्रिय भी हो सके। जो एक छोर को छू लेगा द्वंद्व के, वह दूसरे छोर में अपने आप डोल जाएगा घड़ी के पेंडुलम की तरह। बाएं छू लिया, दाएं चला जाएगा। और जो आदमी रात ठीक से विश्राम कर लेगा और गहरी निद्रा में उतरेगा, तो आप यह मत समझना कि दूसरे दिन वह फिर दिन भर सोया रहेगा। जितनी गहरी नींद होगी, उतनी ही ताजगी से भरा हुआ सुबह वह उठेगा। और जितना गहरा विश्राम लिया होगा, उतने ही श्रम की क्षमता पुनः उपलब्ध हो जाएगी। इसे हम दो-चार तरफ से समझें, तो ख्याल में आए।

एक आदमी सोचता है कि अगर मुझे मौन होना है, तो मुझे बिल्कुल बोलना बंद कर देना चाहिए। जो आदमी ऐसा सोचता है, वह जीवन के द्वंद्व को नहीं जानता। अगर वह बिल्कुल बोलना बंद कर देगा, तो वह चौबीस घंटे भीतर बोलता रहेगा। वह कभी मौन को उपलब्ध होने वाला नहीं है। मौन को तो वही उपलब्ध हो सकता है, जो जब बोलता हो तो इतनी प्रामाणिकता से बोलता हो कि सारे प्राण उसमें समाविष्ट हो जाएं, कुछ बचे न भीतर, सारी आत्मा बोलने लगे। वह आदमी जब बोलना बंद करेगा, परिपूर्ण मौन में प्रवेश कर जाएगा।

जीवन द्वंद्व का नियम है। अगर आप पूरी आथेंटिसिटी से, पूरी प्रामाणिकता से बोल सकते हैं, अपने सारे प्राणों को बोलने में उंडेल दे सकते हैं, तो आप तत्क्षण, बोलना बंद होगा कि विश्राम में, मौन में प्रवेश कर जाएंगे।

लेकिन हम सोचते हैं कि अगर मौन चाहिए, तो बोलना बिल्कुल बंद कर दो। अगर रात में नींद चाहिए, तो दिन में श्रम बिल्कुल बंद कर दो। अगर शांति चाहिए, तो अशांति के सब स्थानों से हट जाओ।

नहीं; शांति चाहिए, जो अशांति के स्थान में पूरी तरह मौजूद हो जाओ, पूरे उपस्थित हो जाओ। भागने की कोई जरूरत नहीं है। जितनी पूर्ण उपस्थिति होगी वहां, उतनी ही शांति की तरफ यात्रा हो जाएगी।

इसलिए लाओत्से कहता है, रहस्य को समझो। हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? लंबे समय तक कौन रह सकेगा शांत? कौन रह सकेगा समता में? बाई एक्टिविटी! उलटी बात कहते हैं।

मेरे साथ एक प्रोफेसर लाओत्से की इस किताब का, ताओ तेह किंग का अध्ययन करते थे। एक दिन उन्होंने मुझे आकर कहा कि मालूम होता है कुछ गलत छप गया है। उन्होंने कहा कि मालूम होता है बाई इन-एक्टिविटी होना चाहिए था, बाई एक्टिविटी छप गया है। उनका लगना ठीक था। क्योंकि अगर हम वचन को फिर से पढ़ेंः हू कैन मेनटेन हिज काम फॉर लांग? बाई इन-एक्टिविटी। ठीक मालूम पड़ेगा। कौन रह सकता है सदा समता में? जो निष्क्रिय हो जाए। लेकिन लाओत्से कहता है कि नहीं, जो सक्रिय हो।

लेकिन सिर्फ सक्रिय होने से नहीं होगा। सक्रिय तो हम सब हैं। कौन सक्रिय नहीं है? सिर्फ सक्रिय होने से नहीं होगा। इसलिए दूसरी शर्त है, यह भी जानें, इट कम्स बैक टु रेस्ट। यह भी जानें कि सब सक्रियता अनिवार्यतया विश्राम में आ जाती है। सब सक्रियताएं अंततः निष्क्रिय हो जाती हैं। इस सत्य को जान कर जो सक्रिय रहे, वह पूर्ण समता को, सदा समता को उपलब्ध हो जाएगा।

अगर बिल्कुल ठहरना हो, तो पूरा दौड़ना आना चाहिए। अगर परम शून्य में प्रवेश करना हो, परम शून्य में ठहर जाना हो, तो पूर्ण दौड़ आनी चाहिए। जो पूरा दौड़ेगा, वह एक क्षण पूर्ण रूप से ठहर जाएगा।

हम सब की तकलीफ यह है कि हमारी पूरी जिंदगी कुनकुनी है, ल्यूकवार्म है। पूरी कहीं भी नहीं है। दौड़ते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए जब ठहरते हैं, तब भी पैर चलते रहते हैं। जागते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए जब सोते हैं, तब भी सपने जगाए रखते हैं। भोजन करते हैं, तो मरे-मरे। इसलिए भोजन से उठ जाते हैं, लेकिन मन से भोजन नहीं उठ पाता। जो भी करते हैं, वह इतना अधूरा है कि वह जो आधा शेष रह जाता है, वह पीछा करता है।

लाओत्से कहेगा, जो भी करें, उसे इतने गहरे में करें कि विपरीत अपने आप आना शुरू हो जाए। और जब इस राज को कोई समझ लेता है, तो फिर भागता नहीं। किसी भी चीज से नहीं भागता। सक्रियता से, कर्म के जगत से नहीं भागता।

लाओत्से के लिए संन्यास का वही अर्थ है, जो कृष्ण के लिए है। लाओत्से के लिए संन्यास का यह अर्थ नहीं है कि कोई छोड़ कर जगत को भाग जाए। लाओत्से के लिए संन्यास का वही अर्थ है जो कृष्ण के लिए है कि जो कर्म में अकर्म को उपलब्ध हो जाए; जो करते हुए इस रहस्य को समझे कि मैं न करने में अभी-अभी प्रवेश कर जाऊंगा; कर लूं पूरा, ताकि न करने में भी पूरा उतर जाऊं।

ऐसा व्यक्ति सतत समता में जी सकेगा। उसकी समता को कोई भी तोड़ नहीं सकेगा। कोई तोड़ने का उपाय नहीं है। क्योंकि असमता से वह भागता नहीं है, असमता में भी जीता है। हिमालय पर जो चला गया है, उस आदमी को क्रोधित कर देना बहुत आसान है। हो सकता है, उसे तीस वर्षों से क्रोध न आया हो। लेकिन क्रोधित कर देना बहुत आसान है। लेकिन जो बाजार में बैठ कर शांत हो गया हो, भला तीस ही दिन केवल उसको शांति के उपलब्ध हुए हों, तो भी उसे क्रोधित करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि क्रोध की सारी स्थितियां

मौजूद हैं, उनके बीच वह शांत हो गया है। जो क्रोध की स्थितियां छोड़ कर शांत हो गया, उसकी शांति धोखा भी हो सकती है। सौ में निन्यानबे मौकों पर होगी। अन्यथा भागने का कोई कारण नहीं था, भयभीत होने का कोई कारण नहीं था।

"अतः जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है, वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाता है।"

अब यह एक और ताओ का बुनियादी नियम है।

"और चूंकि वह अति पूर्णता से बचा रहता है, इसलिए वह क्षय और पुनर्जीवन के पार चला जाता है।"

पहले सूत्र में लाओत्से ने जो कहा, दूसरे सूत्र में जो कह रहा है, वह विपरीत मालूम पड़ेगा। विपरीत नहीं है।

पहले सूत्र में लाओत्से ने कहा कि किसी भी क्रिया की पूर्णता में प्रवेश कर जाना चाहिए। क्रिया की, ध्यान रखना, किसी भी क्रिया की पूर्णता में प्रवेश करना चाहिए--समग्र, टोटल--तो उस क्रिया के विपरीत जो स्थिति है, वह अपने आप चली आती है। इसे स्मरण रख कर जो जीएगा, वह समता को उपलब्ध हो जाता है। दूसरे सूत्र में लाओत्से कहता है, जो व्यक्ति ताओ को उपलब्ध होता है--धर्म को, स्वभाव को, परमात्मा को--वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से बचाए रखता है। कर्म में तो पूर्णता होनी चाहिए, लेकिन स्वयं को--दूसरा सूत्र स्वयं के संबंध में है, पहला सूत्र कर्म के संबंध में है। पहले सूत्र के संबंध में लाओत्से कहता है, द्वंद्व है जगत, एक को पूरा करो, अगर पूरा करो, तो विपरीत में प्रवेश हो जाता है। सहज, कोई कठिनाई नहीं है। और जब ये दोनों चीजें सध जाती हैं, तो समता, संतुलन निर्मित होता है। दूसरे सूत्र में कहता है, लेकिन तुम स्वयं पूर्ण बनने के पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि अगर स्वयं तुम पूर्ण बनना चाहो, तो जो परिणाम होंगे, वे ये होंगे कि तुम क्षय को उपलब्ध हो जाओगे और फिर-फिर तुम्हें जन्म लेना पड़ेगा।

यह बड़ा अजीब मालूम पड़ता है। क्योंकि साधारणतया हम सभी परफेक्शनिस्ट हैं। सारी दुनिया पूर्णतावादी है। हर आदमी पूर्ण होने की कोशिश में लगा है। लाओत्से कहता है, पूर्ण नहीं होना है, समग्र होना है। अंग्रेजी में दो शब्द हैं, वे हमें ख्याल में ले लेने चाहिए। एक शब्द है परफेक्ट और एक शब्द है होल। पूर्ण और समग्र। पूर्ण होने का मतलब है, किसी एक दिशा में शिखर को छू लेना। और समग्र होने का अर्थ है, सभी दिशाओं को संतुलन से स्पर्श कर लेना। ऐसा समझें हम। एक व्यक्ति है। अगर वह ईमानदारी में पूर्ण होना चाहे, पूर्ण ईमानदार होना चाहे, तो उसका जीवन शांत जीवन नहीं होगा। बहुत तनाव से भरा हुआ जीवन हो जाएगा। चौबीस घंटे बेईमानी से लड़ने की ही स्थिति बनी रहेगी। और खींच-खींच कर उसे अपने को शिखर पर रखना पड़ेगा। यह अहंकार होगा, ईमानदार का अहंकार होगा। कठिन भी हो सकता है, कठोर, सख्त भी हो सकता है।

लाओत्से कहता है, ईमानदारी या बेईमानी, बेईमानी में भी पूर्ण होने की जो कोशिश में लगा है वह भी परेशानी में पड़ेगा और ईमानदारी में जो पूर्ण होने की कोशिश में लगा है वह भी परेशानी में पड़ेगा, क्योंकि ईमानदारी और बेईमानी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो अच्छा होने की कोशिश में लगा है वह भी कठिनाई में पड़ेगा, जो बुरा होने की कोशिश में लगा है वह भी कठिनाई में पड़ेगा, क्योंकि दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। और आप सिक्के का एक हिस्सा बचा रहे हैं और दूसरा फेंकने की कोशिश कर रहे हैं। आप कठिनाई में पड़ेंगे।

लाओत्से कहता है, पूर्ण होने की कोशिश ही मत करना, दोनों द्वंद्वों के बीच में ठहर जाना। न बेईमान बनना और न ईमानदार बनना।

यह बड़ी कठिन बात है। ईमानदार बनना आसान है, बेईमान बनना आसान है, दोनों के बीच ठहर जाना बहुत ही कठिन है। क्यों? क्योंकि हमें दोनों बातें समझ में आती हैं। बेईमान बन जाओ, बिल्कुल समझ में आता है। ईमानदार बन जाओ, समझ में आता है। दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। रास्ते साफ मालूम पड़ते हैं।

लाओत्से कहता है, कहीं भी पूर्ण बनने की कोशिश मत करना, बीच में ठहर जाना। ईमानदारी और बेईमानी के, शुभ और अशुभ के, अंधेरे और प्रकाश के, साधुता और असाधुता के बीच में ठहर जाना। क्योंकि जो बीच में ठहर जाएगा, उसके सारे तनाव समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि सब तनाव द्वंद्व से पैदा होते हैं। कर्म में पूरे जाना और स्वयं में हमेशा बीच में ठहर जाना।

यहां लाओत्से और बुद्ध में बड़ा तालमेल है। शायद बुद्ध की बात चीन में इतनी प्रभावी हो सकी, उसका कारण लाओत्से का यह सूत्र था। बुद्ध ने मज्झिम निकाय, दि मिडिल वे की चर्चा की है। और जगत में मज्झिम निकाय के, मध्य मार्ग के बुद्ध सबसे बड़े प्रस्तोता हैं। बुद्ध ने कहा, बीच में! कहीं अति पर मत जाना।

तो बुद्ध के जीवन की एक घटना कहूं, उससे यह ख्याल में आ जाए।

बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हुआ, श्रोण। भोगी था बहुत। फिर त्यागी हो गया बहुत। क्योंकि आदत बहुत की थी। इससे कोई अंतर न पड़ता था कि बहुत क्या था। बहुत भोगी था। छोड़ दिया भोग, बहुत त्यागी हो गया। कहते हैं, कभी खाली पैर जमीन पर न चला था। राह से गुजरता था, तो मखमल पहले बिछाई जाती, तब वह गुजरता था। फिर दीक्षित हुआ, साधु हो गया बुद्ध का। तो भिक्षु पगडंडी पर चलते थे, तो वह कंटकित, कांटे से भरे मार्ग पर चलता था। भिक्षु देख कर चलते थे कि रास्ते पर कांटे न हों; वह देख कर चलता था कि कांटे जरूर हों। पैर उसके घावों से भर गए। भिक्षु छाया में बैठते, तो वह धूप में बैठता। भिक्षु एक दिन में एक बार खाते, तो वह दो दिन में एक बार खाता। बहुत!

यह मजा है। भोग मन छोड़ सकता है, त्याग पकड़ सकता है; लेकिन अति नहीं छोड़ सकता। मन अति में जीता है। मन को अति चाहिए। छह महीने में, उसकी बड़ी सुंदर काया थी, सोने जैसा उसका शरीर था, वह सब काला पड़ गया। सारे शरीर पर फफोले हो गए। सारा शरीर जल गया। बुद्ध को अनेक बार और-और भिक्षुओं ने आकर कहा, श्रोण महा तपस्वी है! हम तो उसके सामने कुछ भी नहीं हैं। बुद्ध हंसते और वे कहते कि तुम्हें पता नहीं, वह महा भोगी रहा, महा तपस्वी होना उसे आसान है।

छह महीने तक बुद्ध ने कुछ भी न कहा। श्रोण अपने को गलाता चला गया, सुखाता चला गया। फिर एक सांझ बुद्ध उसके पास गए। और बुद्ध ने कहा कि श्रोण, मैं कुछ पूछने आया हूं, कुछ बात, जिसकी मुझे कम जानकारी है, लेकिन तुम्हें है, उस संबंध में कुछ जानने आया हूं।

श्रोण चकित हुआ और उसने कहा कि आप और मुझसे जानने आए हैं! क्या?

तो बुद्ध ने कहा, मैंने सुना है कि जब तुम राजकुमार थे, तो तुम बड़े कुशल वीणावादक थे। मैं तुमसे यह पूछने आया हूं कि वीणा के तार अगर बहुत कसे हों, तो संगीत पैदा होता है या नहीं?

तो श्रोण ने कहा, तार बहुत कसे हों, तो टूट जाएंगे; संगीत पैदा नहीं होगा। टूट कर सिर्फ बिखरा हुआ विसंगीत पैदा होगा; संगीत पैदा नहीं होगा। तार टूट जाएंगे।

बुद्ध ने कहा, तो श्रोण, तार अगर बिल्कुल ढीले हों, तो संगीत पैदा होता या नहीं?

तो श्रोण ने कहा, आप भी कैसी बातें पूछते हैं! तार ढीले हों, तो चोट ही नहीं पड़ सकती; संगीत कैसे पैदा होगा?

तो बुद्ध ने कहा, संगीत कब पैदा होता है?

तो श्रोण ने कहा कि तारों की एक ऐसी भी अवस्था है, जब न तो हम कह सकते कि वे कसे हैं और न कह सकते कि ढीले हैं। तार एक ऐसी समता में भी खड़े हो जाते हैं जब न कसे होते हैं और न ढीले होते हैं; तभी संगीत पैदा होता है।

तो बुद्ध ने कहा कि मैं तुमसे यही कहने आया हूं कि जो वीणा में संगीत के पैदा होने का नियम है, वही जीवन में भी संगीत के पैदा होने का नियम है। न तो जीवन के तार ढीले हों भोग की तरफ, तो भी संगीत पैदा नहीं होता। और जीवन के तार विपरीत कस जाएं त्याग की तरफ, तो भी संगीत पैदा नहीं होता। जीवन के तारों की भी एक ऐसी अवस्था है श्रोण, जब तार न ढीले होते और न कसे। एक ऐसा क्षण भी है चेतना का, जब न भोग होता और न त्याग; जब न आदमी इस अति में होता और न उस अति में, बीच में ठहर जाता है; तभी जीवन का परम संगीत पैदा होता है। उस परम संगीत का नाम ही समाधि है। तो तूने जो वीणा के साथ सीखा, जीवन के साथ भी कर। देखता हूं कि पहले तेरे तार बहुत ढीले थे, तब संगीत पैदा नहीं हुआ। अब पागल की तरह तार तूने इतने कस लिए हैं कि अब भी संगीत पैदा नहीं हो रहा है।

लाओत्से कहता है, जो ताओ को उपलब्ध होता है, वह हमेशा स्वयं को अति पूर्णता से, टू मच ऑफ परफेक्शन, वह अति पूर्णता से हमेशा अपने को बचाता है। वह सदा मध्य में रह जाता है। न इस तरफ, न उस तरफ--बीच में।

मन है अति। और जहां कोई अति नहीं होती, वहां मन नहीं होता। मन होता है या तो बाएं, या दाएं; मध्य में कभी नहीं। मन या तो होता है राइटिस्ट, या होता है लेफ्टिस्ट; बीच में कभी नहीं। बीच में मन होता ही नहीं।

अगर हम वीणा की ही बात को ठीक से समझें, तो ऐसा कह सकते हैं कि जब तार बिल्कुल मध्य में होते हैं, तो तार होते ही नहीं। क्योंकि जब तक तार होगा, तब तक संगीत में बाधा देगा। लोग आमतौर से समझते हैं कि वीणा जब बजती है, तो तार से संगीत पैदा होता है। गलत है बात। तार से संगीत पैदा नहीं होता, तार की समता से संगीत पैदा होता है।

इसलिए वीणा बजाना सीखना तो बहुत आसान है, वीणा को ठीक तार की अवस्था में लाना कठिन है। वीणा तो कोई सिक्खड़ भी बजा सकता है, लेकिन साज को बिठाना बहुत कठिन है। क्योंकि साज को बिठाने का मतलब है कि तार को समता में लाने की कला चाहिए। और जब भी कोई कुशल हाथ तार को समता में ले आता है, तो बड़ा काम तो हो गया। संगीत तो पैदा कर लेना फिर बच्चे भी कर सकते हैं। लेकिन उस तार को समता में ले आना! ध्यान रहे, जब तार बिल्कुल सम होता है, तो तार होता ही नहीं, संगीत ही रह जाता है। और तार जब विषम होता है, तो तार ही होता है, संगीत नहीं होता।

मन जब अति में होता है, तो मन होता है। और जब अति खो जाती है, मध्य होता है, तो मन होता ही नहीं। चैतन्य, चेतना, आत्मा ही शेष रह जाती है।

ऐसा जो व्यक्ति है, लाओत्से कहता है, वह क्षय को और पुनर्जीवन को उपलब्ध नहीं होता।

जो इस मध्य में ठहर गया, वह अमृत में ठहर जाता है। दोनों अतियों की मृत्यु है, मध्य की कोई मृत्यु नहीं है। दोनों अतियों पर तनाव है। तनाव है, इसलिए क्षय होगा। तार बहुत कसे हों, तो टूट जाएंगे। और तार बहुत ढीले हों और कोई खींचतान कर संगीत पैदा करने की कोशिश करे, तो भी टूट जाएंगे। तार जितनी समता में होंगे, उतना ही टूटना असंभव है। तनाव नहीं है, तो टूटने का उपाय नहीं है। तनाव ही तोड़ता है।

तो लाओत्से कहता है, "वह क्षय और पुनर्जीवन... ।"

क्षय समाप्त हो जाता है। जहां क्षय समाप्त हो गया, वहां मृत्यु असंभव है। मृत्यु समस्त क्षय का जोड़ है। रोज-रोज क्षय होता है; फिर मृत्यु सब का जोड़ है। जो इस भीतर की समता को अनुभव कर लेता है, वह क्षय को भी उपलब्ध नहीं होता, मृत्यु को भी नहीं।

शरीर तो जाएगा; क्योंकि शरीर अतियों में ही जीता है। जन्म एक अति है, मृत्यु दूसरी। मन भी जाएगा; क्योंकि मन भी अति में जीता है। भोग-त्याग, मित्रता-शत्रुता, प्रेम-घृणा, ऐसा ही जीता है; संसार-मोक्ष, ऐसा ही जीता है। वह भी अति में ही जीता है, वह भी जाएगा। लेकिन भीतर एक तीसरी स्थिति भी है, जो समता की है। सम होते ही उसका पता चलता है। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जहां मृत्यु नहीं, वहां फिर पुनर्जीवन नहीं है।

लाओत्से बिना आवागमन की बात किए इस सूत्र में कहता है कि आवागमन से छूट जाने का यह उपाय है। दो बातें कही हैंः कर्म में समग्रता, ताकि विपरीत अवस्था में सहज प्रवेश हो; स्वयं में मध्यता, ताकि कोई तनाव पैदा न हो। और जीवन में क्षय और मृत्यु असंभव हो जाएं।

आज इतना ही। पांच मिनट बैठेंगे, कीर्तन में सम्मिलित हों।

छत्तीसवां प्रवचन

तटस्थ प्रतीक्षा, अस्मिता-विसर्जन व अनेकता में एकता

पहला प्रश्नः ओशो, जल के निर्मल होने की प्रतीक्षा मैं बारह वर्षों से कर रहा हूं। किंतु परिस्थितियों की गाड़ियां तो गुजरती रहती हैं; और यह आजीवन होता रहेगा। फिर भी क्या प्रतीक्षा करता रहूं?

प्रतीक्षा महत्वपूर्ण है, जरूरी, लेकिन काफी नहीं है। प्रतीक्षा के साथ-साथ मन के किनारे बैठना भी आना चाहिए। अगर नदी की धार में ही बैठ गए और प्रतीक्षा की, तो परिणाम न होगा। नदी की धार में बैठ रहे, तो खुद के होने से भी गंदगी उठती रहेगी। धार के बाहर, तट पर बैठने की कला ही ध्यान है।

प्रतीक्षा ध्यान का अनिवार्य अंग है। लेकिन प्रतीक्षा ही ध्यान नहीं है। जो प्रतीक्षा नहीं कर सकता, वह तो ध्यान कर ही नहीं सकेगा। लेकिन जो प्रतीक्षा को ही ध्यान समझ ले, वह भी भूल में है। ध्यान है किनारे पर बैठने की कला।

मन की धार है, विचार हैं। मन के बीच ही बैठ कर अगर आपने मन को कितनी ही प्रतीक्षा से देखा, तो भी मन के बाहर कभी न हो पाएंगे। और न ही मन की धार कभी शुद्ध हो पाएगी। आपकी मौजूदगी भी मन को अशुद्ध बना रही है। आप मन के बाहर हो जाएं, किनारे से बैठ कर देखें, मन को देखें दूर से। जैसे कोई आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखे, ऐसे ही दूर से अपने विचारों को चलते हुए देखें। जैसे कोई नदी को बहता हुआ देखे, ऐसे ही किनारे बैठ कर अपने मन को भी बहता हुआ देखें। जितनी यह दूरी बढ़ेगी, उतनी ही जल्दी मन शांत और शुद्ध हो जाएगा, एक बात।

दूसरी बात, जीवन की अनंत कथा में बारह वर्ष कुछ भी नहीं हैं। जीवन के अनंत विस्तार में बारह वर्ष का क्या मूल्य है? तो ऐसा मत सोचें कि बारह वर्ष प्रतीक्षा की, तो बहुत बड़ी प्रतीक्षा हो गई। क्योंकि बारह वर्ष प्रतीक्षा की है, तो बारह लाख जन्म उस नदी को गंदा करने का पूरा प्रयास किया है। अनुपात कुछ भी नहीं है। इसलिए मैं कहता हूंः अनंत प्रतीक्षा।

लेकिन अनंत प्रतीक्षा का यह अर्थ नहीं है कि जन्मों-जन्मों प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। करने की तैयारी होनी चाहिए। घटना तो एक क्षण में भी घट सकती है। और जितनी बड़ी होगी तैयारी प्रतीक्षा की, उतनी जल्दी घटना घट जाती है। क्यों? क्योंकि अधैर्य भी मन को आंदोलित करता है। परिस्थितियों की गाड़ियां मन की गंदगी को उतना नहीं उठातीं, जितना खुद का अधैर्य मन की गंदगी को उठा देता है।

प्रतीक्षा का अर्थ है कि मैं अब धैर्य को उपलब्ध हुआ। कभी भी हो घटना, मैं प्रतीक्षा करूंगा जन्मों-जन्मों तक, मेरा कोई अधैर्य नहीं है, मेरी कोई जल्दी नहीं है। जितनी हो जल्दी, उतनी देर लगती है। और जितनी देर तक प्रतीक्षा करने के लिए राजी हो मन, उतनी जल्दी घटना घट जाती है।

तो बारह वर्ष को बहुत बड़ी बात मत समझें। और प्रतीक्षा को काफी न समझें। किनारे पर बैठने, साक्षी होने, जागरूक होने की बात पर ध्यान दें।

दूसरा प्रश्नः लाओत्से कहते हैं कि ताओ में प्रतिष्ठित संतजनों की अस्मिता पिघलते बर्फ की तरह सतत विसर्जित होती रहती है। तो क्या अस्मिता के रहते हुए भी कोई परम सत्य में प्रतिष्ठित हो सकता है? और क्या अस्मिता के रहते भी कोई व्यक्ति संत व ज्ञानी कहा जा सकता है? अस्मिता की स्थिति मानसिक ही है या मन के पार आध्यात्मिक है?

फिर आपने कहा कि अस्मिता के पूर्ण विसर्जन पर संत परमात्मा हो जाता है। तो क्या संत अस्मिता के रहने पर परमात्मा से वियुक्त रहता है?

तीन बातें हैं। दो शब्दों को ठीक से समझ लेना चाहिए। एक है अहंकार और दूसरा है अस्मिता।

अहंकार का अर्थ हैः मैं शरीर से एक हूं। जब शरीर से चेतना जुड़ जाती है, जुड़ा हुआ अनुभव करती है, तादात्म्य कर लेती है, एकता बना लेती है, तो अहंकार निर्मित होता है। जब चेतना शरीर से अपने को अलग जान लेती है, भिन्न पहचान लेती है, तादात्म्य टूट जाता है, तो अहंकार टूट जाता है। लेकिन शरीर से मैं अलग हूं, यह जान लेना जरूरी नहीं है, काफी नहीं है यह जानने के लिए कि मैं परमात्मा से एक हूं। मैं शरीर से अलग हूं, इस भाव में अगर कोई ठहर जाए और परमात्मा के साथ एकता को अनुभव न कर पाए, तो इस स्थिति का नाम अस्मिता है।

मैं शरीर के साथ एक हूं, इस स्थिति का नाम अहंकार। मैं शरीर से अलग हूं, इस स्थिति का नाम अस्मिता। और मैं परमात्मा के साथ एक हूं, यह अस्मिता के भी पार।

लाओत्से कहता है कि संत के लिए एक बात तो अनिवार्य है कि उसका अहंकार टूट जाए; वह जान ले कि मैं शरीर नहीं हूं, मन नहीं हूं। इतना पहचान ले, यह तो संत का लक्षण है। लेकिन संत यहां भी रुक सकता है। बहुत संत यहीं रुक जाते हैं। जिन संतों ने यह कहा है कि परमात्मा नहीं है, बस आत्मा ही है, वे संत इसी वर्ग के हैं। उन्होंने एक कड़ी तो तोड़ दी बंधन की, उन्होंने गलत से तो नाता तोड़ लिया--और यह बड़ी घटना है। उन्होंने क्षुद्र से तो संबंध अलग कर लिया--और यह बहुत बड़ी क्रांति है। लेकिन आधी है क्रांति। अभी एक काम और करना हैः विराट से संबंध जोड़ना है। जब विराट से भी संबंध जुड़ता है, तो अस्मिता भी खो जाती है।

मैंने आपसे कहा, मैं हूं; इसमें दो शब्द हैं। मैं अहंकार है और हूं अस्मिता है। संत का मैं तो गिर जाता है, सिर्फ हूं रह जाता है--एमनेस, हूं। लाओत्से कहता है, यह संत की परिभाषा है कि उसकी अस्मिता अभी है, अहंकार खो गया।

यह अस्मिता अगर सघन होती रहे, मजबूत होती रहे, तो अहंकार वापस लौट सकता है। अगर अस्मिता और जम जाए, गहरी हो जाए, तो अहंकार वापस लौट सकता है। यह अस्मिता पिघलती रहे--इसलिए यह बात भी लाओत्से ने जोड़ी कि संत की अस्मिता बर्फ की तरह पिघलती रहेगी; जैसे धूप में पड़ी बर्फ हो, पिघलती रहेगी--पिघलती रहे, तो एक दिन अस्मिता भी खो जाएगी। मैं तो खो गया; हूं भी एक दिन खो जाएगा। उस दिन शुद्ध अस्तित्व बचेगा। उस दिन, लाओत्से कहता है कि फिर संत भी कहने का कोई अर्थ न रहा। उस दिन वह व्यक्ति, वह लहर सागर के साथ एक हो गई।

संत होना भी तो दूरी है। असंत बहुत दूर होगा; संत निकट होगा। लेकिन निकटता भी एक दूरी है। निकटता भी एकता नहीं है। संत भी दूर है। पास है, बहुत पास है, असंत से बहुत ज्यादा पास है। लेकिन कितने ही पास हो, फासला अभी कायम है। लाओत्से का अंतिम जो लक्ष्य है, वह है जब इतना फासला भी न रह जाए,

पास होना भी मिट जाए। दूर होना तो मिट ही गया, पास होना भी मिट जाए। दूरी तो खो गई, निकटता भी खो जाए। तभी, तभी एकता उपलब्ध होगी।

साधारणतः हमें दिखाई पड़ता हैः दूरी खो गई, तो एकता हो गई। दूरी खोने से एकता नहीं होती, बल्कि सच तो यह है कि जितने निकट आते हैं, उतनी दूरी मालूम पड़ती है। असंत को कभी भी नहीं अखरती ईश्वर की दूरी। ईश्वर की दूरी असंत को अखरती ही नहीं। दूरी इतनी बड़ी है कि उसे पता भी नहीं चलता। वह पूछता है, कहां है ईश्वर? दूरी इतनी बड़ी है कि उसे ईश्वर कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता।

संत की पीड़ा बढ़ जाती है। निकट इतने होता है कि हाथ बढ़ाए और ईश्वर है, श्वास ले और ईश्वर है, हिले और ईश्वर से धक्का लगता है। इतनी निकटता है! और तभी, जिसको संतों ने विरह कहा है... । असंत को विरह पैदा नहीं होता। वह इतने दूर है कि विरह का कोई सवाल नहीं है। संत को विरह पैदा होता है। इतने निकट है, फिर भी एक नहीं हो पाता। वह निकटता भी कष्ट देने लगती है। बहुत झीना सा पर्दा रह जाता है।

लेकिन दीवार हो बीच में, तो हमें दिखाई भी नहीं पड़ता उस पार। आकांक्षा भी नहीं होती; आशा भी नहीं उमड़ती; प्यास भी नहीं जगती। अहंकार पत्थर की दीवार है। अस्मिता बहुत ट्रांसपैरेंट, पारदर्शी कांच की दीवार है। उस पार सब दिखाई पड़ता है, जैसे बीच में कोई दीवार ही न हो। लेकिन जब भी संत बढ़ने की कोशिश करता है, तभी वह दीवार टकराती है। तब पीड़ा भारी हो जाती है और विरह सघन हो जाता है।

संतों ने ही ईश्वर का विरह जाना है। संत भी वियुक्त है, अभी संयुक्त नहीं है। एक पारदर्शी दीवार संत को भी दूर करती है। जिस दिन यह पारदर्शी दीवार भी पिघल जाती है, उस दिन न दूरी रहती है, न निकटता रहती है। उस दिन एकता सधती है। उस दिन संत खो जाता है और परमात्मा ही शेष रह जाता है।

यह जो अस्मिता है, यह आध्यात्मिक स्थिति है या मन की? यह भी पूछा है।

यह मन की अंतिम स्थिति है और अहंकार मन की प्रथम स्थिति है। अहंकार मन की स्थूलतम स्थिति है, अस्मिता मन की सूक्ष्मतम।

हम ऐसा समझें कि मन है बीच में। एक तरफ जगत है और एक तरफ परमात्मा है, और मन है बीच में। जहां मन जगत से जुड़ता है, वहां अहंकार पैदा होता है। और जहां मन परमात्मा से जुड़ता है, वहां अस्मिता खड़ी है। ये दो जोड़ हैं। जहां मन जगत से जुड़ता है, उस जोड़ का नाम है अहंकार। और जहां मनुष्य का मन परमात्मा से जुड़ता है या टूटता है--क्योंकि सब जोड़ तोड़ भी होते हैं; जहां चीजें जुड़ती हैं, वहीं टूटती भी हैं--वह है अस्मिता।

संत लाओत्से कहता है उसे, जिसका पहला जोड़ टूट गया, जगत से संबंध विच्छिन्न हुआ; लेकिन जिसका अभी दूसरा तोड़ कायम है, अभी परमात्मा से एकता नहीं सधी। तो अस्मिता कायम है। अस्मिता मन का सूक्ष्मतम रूप है और अहंकार मन का स्थूलतम। लेकिन दोनों ही मन की घटनाएं हैं।

ध्यान रहे, असंत भी मन है और संत भी। मन के बाहर जाकर तो दोनों नहीं रह जाते। श्रेष्ठतम भी मन के भीतर है और निकृष्टतम भी। क्योंकि मन के पार जाकर तो न श्रेष्ठ रहता है और न निकृष्ट। अशुभ भी मन का है, शुभ भी। बुरा भी मन का है, भला भी। मन के पार जाकर न तो बुरा रह जाता है और न भला। द्वंद्व खो जाते हैं। जब तक द्वंद्व है, तब तक जानना कि मन है। जहां द्वंद्व नहीं, वहां मन नहीं। संत भी द्वंद्व का हिस्सा है। असंत और संत दो छोर हैं द्वंद्व के।

अगर यह ख्याल में आ जाए, तो अंतिम छलांग! पहली छलांग अहंकार से और अंतिम छलांग अस्मिता से। पहली छलांग "मैं" से और अंतिम छलांग "होने" से।

इसलिए बुद्ध अनात्मा की बात कहते हैं। बुद्ध ने अस्मिता की जगह आत्मा शब्द का उपयोग किया है। बुद्ध कहते हैं, अहंकार छूटे और फिर आत्मा भी छूटे; तभी परम सत्य में प्रवेश है।

इस सारी बात में जो कठिनाई हमारे मन में होती है, वह यह कि फिर क्या ऐसे व्यक्ति को हम संत कहेंगे जो अभी मन में ही हो? क्या हम कहेंगे कि उसने परम सत्य को पा लिया?

भाषा में सभी बातें सापेक्ष हैं, रिलेटिव हैं। जब हम कहते हैं, संत ने परम सत्य पा लिया, तो उसका इतना ही मतलब होता है कि जहां हम खड़े हैं, वहां से संत परम सत्य के बहुत निकट पहुंच गया। हमारे और सत्य के बीच पत्थर की दीवार है; उसके और सत्य के बीच कांच की दीवार है, जो दिखाई भी नहीं पड़ती। अब सत्य उसे इतना ही साफ है, जैसे कि दीवार न हो। लेकिन दीवार अभी है।

वह दीवार हमें दिखाई नहीं पड़ेगी, एक बात समझ लें। जो स्वयं संत नहीं हो गए हैं, उन्हें वह दीवार बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगी। वे तो कहेंगे कि संत के लिए अब कोई दीवार न रही। लेकिन जो उस दीवार के पास पहुंच गया है, स्वयं संत, उसे वह दीवार पता चलेगी। क्योंकि दीवार पारदर्शी है; दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन स्पर्श होता है। पार होना चाहो, तो सिर टकराता है। उस पार का सब कुछ दिखाई पड़ता है; लेकिन दिखाई ही पड़ता है, अगर उसमें प्रवेश करना चाहो, तो दीवार बीच में खड़ी हो जाती है।

अस्मिता इतनी सूक्ष्म दीवार है कि सिर्फ संत को दिखाई पड़ती है। संत के भक्तों को भी दिखाई नहीं पड़ सकती। संत के भक्तों को तो लगता है कि संत परमात्मा हो गया। स्वाभाविक! संत के भक्तों ने कांच की कोई दीवार नहीं देखी, पत्थर की दीवारें देखी हैं। लेकिन संत को स्वयं प्रतिपल अनुभव होता है कि एक सूक्ष्म दीवार अभी भी उसे घेरे हुए है। अभी वह मिट नहीं गया है। अभी भी वह है।

लाओत्से संत के अनुभव से कह रहा है कि अस्मिता भी पिघल जाए, पिघल जाए, खो जाए, तभी; उसके पहले नहीं। लेकिन हमारे अनुभव से हम कह सकते हैं कि संत ईश्वर हो गया। सापेक्ष है। हम भी जब संत होंगे, तब हम पाएंगे कि नहीं, अभी एक दीवार और रह गई है। अभी होना भी बाधा है। वह भी खो जाना चाहिए; वह भी मिट जाना चाहिए। जब तक संत की जगह शून्य न आ जाए, तब तक वह दीवार भी नहीं गिरती।

तीसरा प्रश्नः ताओ में निष्णात एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति के लक्षण बताते समय लाओत्से कहता है कि ऐसे व्यक्ति अपने बारे में किसी प्रकार की घोषणा नहीं करते हैं। लेकिन मंसूर कहते हैं, अनलहक! उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि! जीसस कहते हैं, मैं परमात्मा का पुत्र हूं! मेहरबाबा कहते हैं अवतार, भगवान स्वयं को। तो इन सबकी घोषणाओं का लाओत्से के उपरोक्त वचन से क्या संबंध है?

इस सूत्र को समझना हो, तो दो बातें समझनी जरूरी हैं।

पहलाः जीवन को समझने के, जीवन को प्रकट करने के, जीवन को शब्द देने के दो ढांचे हैं। एक विधायक, एक नकारात्मक; एक पाजिटिव, एक निगेटिव। जब भी हम कोई चीज कहना चाहें, तो दो ढंग से कह सकते हैं। इस कमरे में अंधेरा हो, तो हम कह सकते हैं, अंधेरा है; और हम यह भी कह सकते हैं कि प्रकाश नहीं है। एक आदमी जीवित हो, तो हम यह भी कह सकते हैं, वह जीवित है; और हम यह भी कह सकते हैं कि वह अभी मरा नहीं है। विधायक, पाजिटिव अभिव्यक्ति हो सकती है और नकारात्मक, निषेधात्मक, निगेटिव। निर्भर करता है व्यक्तियों के ऊपर।

लाओत्से और बुद्ध नकारात्मक शब्दों को अत्यंत प्रेम करते हैं। किसी भी चीज को कहना हो, तो वे नकारात्मक ढंग से ही कहना उचित मानते हैं। उसके कारण भी हैं। उसके अनेक कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि जैसे बुद्ध को जब अपने अनुभव को कहना पड़ा, तो बुद्ध को अनुभव हुआ कि चारों तरफ विधायक बातें कही गई हैं और उन विधायक बातों को मान कर लाखों लोग भटक गए हैं।

जैसे एक आदमी कहता है कि मैं ईश्वर हूं। इसमें दो संभावनाएं हैं। एक संभावना यह है कि वह जो कहता हो, वह सच हो। इसमें दूसरी संभावना यह है कि वह जो कहता हो, वह झूठ हो और पाखंड हो। ये दोनों बातें संभव हैं। अगर सौ आदमी घोषणा करते हों ईश्वर होने की, तो बहुत संभावना यह है कि निन्यानबे लोग झूठ ही घोषणा करते हों। आदमी का अहंकार इसमें भी मजा ले सकता है कि मैं ईश्वर हूं। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। और अहंकार को इससे ज्यादा मजा और किस बात में आएगा कि मैं ईश्वर हूं?

तो बुद्ध को ऐसा लगा, लाओत्से को भी ऐसा लगा, कि इस संबंध की विधायक घोषणा खतरनाक है। जरूरी रूप से गलत है, ऐसा नहीं। क्योंकि मंसूर जब कहता है अनलहक, तो ठीक ही कहता है। मंसूर की तरफ से इसमें कहीं भी भूल-चूक नहीं है। जब मंसूर कहता है मैं ब्रह्म हूं, तो मंसूर असल में यही कहता है कि मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। और जब उपनिषद के ऋषि कहते हैं अहं ब्रह्मास्मि--मैं ब्रह्म हूं--तो उनका भी यही अर्थ होता है कि मैं अब कहां, ब्रह्म ही है। मैं ब्रह्म हूं, इसका यही अर्थ होता है। लेकिन अगर सत्य हो स्थिति, तब।

लेकिन कोई पागल भी कह सकता है कि अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। और उसको रोका नहीं जा सकता। और डर इस बात का है कि ऐसे लोग भी लोगों को प्रभावित करेंगे। ऐसे लोग भी लोगों को आंदोलित करेंगे। और ऐसे लोग गलत रास्तों पर भटकाने का कारण भी बनेंगे।

तो बुद्ध ने कहा, घोषणा नहीं, घोषणा नहीं। लाओत्से ने भी कहा, घोषणा नहीं। संत घोषणा नहीं करेगा; चुप रहेगा।

लेकिन चुप होना भी घोषणा है। आदमी कुछ भी करे, घोषणा होगी ही। और अगर समझ लें कि यहां जितने लोग बैठे हैं, वे सब यह मानते हों कि संत का लक्षण है कि वह घोषणा न करे, तो जो घोषणा नहीं करेगा उसे वे संत मानेंगे। तो जिसे संत अपने को मनवाना हो, वह घोषणा से बच सकता है।

बुद्ध और लाओत्से ने नकारात्मक का उपयोग किया। लेकिन बहुत शीघ्र दोनों मुल्कों में पाया गया कि अहंकार के रास्ते बड़े अदभुत हैं; वह विधायक से भी शोषण कर सकता है, नकारात्मक से भी शोषण कर सकता है। अगर आप मेरे पास आकर कहते हैं कि फलां व्यक्ति कहता है कि मैं ईश्वर हूं, तो मैं कहूंगाः वह संत नहीं है, क्योंकि संत घोषणा नहीं करते। मुझे देखो, मैं घोषणा नहीं करता।

घोषणा हो गई। घोषणा नकारात्मक भी हो, तो हो जाएगी।

मेहरबाबा कहते हैं, मैं अवतार हूं। यह विधायक घोषणा है। कृष्णमूर्ति कहते हैं, मैं अवतार नहीं हूं। यह नकारात्मक घोषणा है। लेकिन दोनों घोषणाएं हैं। घोषणाओं से बचना मुश्किल है। कैसे बचिएगा? कहां भागिएगा? कुछ भी करिएगा, कुछ मत करिएगा; लेकिन आपका हर कृत्य वक्तव्य है। वक्तव्य से कैसे बचिएगा? मैं चुप रहता हूं, तो भी वक्तव्य देता हूं।

बर्नार्ड शॉ को एक मित्र अपना नाटक दिखाने ले गया था। मित्र ने एक नाटक लिखा है। और नाटक खेला जा रहा है। बर्नार्ड शॉ के बहुत पीछे पड़ा था। बामुश्किल, नहीं माना, तो बर्नार्ड शॉ गया। लेकिन पूरे समय सोया रहा। वह मित्र बहुत बेचैन हुआ। बामुश्किल तो यह आदमी आया और फिर पूरे समय घर्राटे लेता रहा। जब नाटक समाप्त हुआ, तो बर्नार्ड शॉ ने कहा कि बहुत अच्छा नाटक था। उस मित्र ने कहा, मुझे आप धोखा मत

दें। क्योंकि आप पूरे समय सोए रहे, आपको वक्तव्य देने का कोई हक नहीं है। बर्नार्ड शॉ ने कहा, मेरा सोया हुआ होना ही मेरा वक्तव्य था। और जो मैं कह रहा हूं बहुत अच्छा नाटक है, वह इसलिए कह रहा हूं कि नींद बहुत अच्छी आई।

बुद्ध और लाओत्से ने चेष्टा की। चेष्टा बहुत महत्वपूर्ण है। लेकिन चेष्टा सफल नहीं हो सकती। और आदमी किसी भी तरह से धोखे का यंत्र पैदा कर ले सकता है। आत्मा जिन्होंने मानी, जिन्होंने घोषणा की परमात्मा होने की, उन्होंने तो धोखा दिया ही; बुद्ध के बाद बुद्ध के भिक्षुओं ने भी वही किया। उन्होंने कोई घोषणा नहीं की; लेकिन तब भी धोखा दिया। धोखा कहीं से भी दिया जा सकता है। धोखे से बचने का कोई उपाय नहीं है।

फिर इसका अर्थ हुआ कि यह निर्भर करेगा व्यक्ति के अपने रुझान पर कि वह कैसे प्रकट करे। लाओत्से और बुद्ध की रुझान, उनकी पसंदगी नकार की है, नेति-नेति की है। किसी बात को कहना हो, तो वे कहते हैं, वह जो नहीं है, उससे ही कहो। अगर उनका बस चले, तो वे चाहते हैं कि मौन रह कर ही कहो। लेकिन यह निर्भर करेगा। मीरा मौन नहीं रह सकती; मंसूर भी मौन नहीं रह सकता। यह मंसूर और मीरा के व्यक्तित्व में फर्क है। चैतन्य मौन नहीं रह सकते; नाचेंगे, गाएंगे और घोषणा करेंगे। यह घोषणा की नहीं जा रही है, हो रही है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। एक आदमी चुप बैठ सकता है। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो बुद्ध सात दिन तक बोले नहीं। बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वे सात दिन तक चुप रह गए। और बड़ी मीठी कथा है कि देवताओं ने बुद्ध के चरणों पर सिर रखा और प्रार्थना की कि करोड़ों-करोड़ों वर्षों में कभी कोई व्यक्ति इस परम अवस्था को उपलब्ध होता है; जन्मों-जन्मों से न मालूम कितने लोग प्रतीक्षा करते हैं कि कोई बुद्ध हो और बोले; आप बोलें, चुप न रह जाएं। आप चुप रह जाएंगे, तो जो सुनने को आतुर हैं, उनका क्या होगा? जो प्यासे हैं, चातक की तरह जिन्होंने प्रतीक्षा की है जन्मों-जन्मों तक, वे प्यासे ही रह जाएंगे।

लेकिन बुद्ध का तब भी मन न हुआ। बुद्ध ने कहा कि मेरी समझ में नहीं आता कि क्या बोलूं? क्योंकि जो भी मैं कहूंगा, वह गलत होगा। शब्द ही गलत है; मौन ही सही है। तो जो मौन से समझ सकते हों, वे समझ लें।

लेकिन अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो आकाश मौन है। अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो बुद्ध के लिए रुकने की क्या जरूरत? चांद-तारे मौन हैं। अगर मौन से ही लोग समझते हों, तो पहाड़, पत्थर, झीलें, फूल, सब मौन हैं। चारों तरफ मौन का विराट साम्राज्य है। मौन से कहां कौन समझता है! बुद्ध का मौन भी इस मौन को गहरा तो न कर पाएगा।

देवताओं ने कहा कि नहीं, आप बोलें, चाहे बोलने में गलती हो और चाहे लोग न समझ पाएं। अगर सौ सुनें और एक भी समझ जाए, तो भी काफी है, तो भी बहुत है।

बुद्ध ने कहा, कुछ लोग हैं, जो मेरे बोलने से गलत न समझेंगे, ठीक समझेंगे। जो मेरे बोलने को ठीक समझ सकते हैं, वे मेरे बिना बोले भी समझ लेंगे। और कुछ लोग हैं, जो मेरे बोलने से भी गलत समझेंगे। जो मेरे बोलने से भी गलत समझने वाले हैं, उनके लिए तो बोलने का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम मुझे चुप रह जाने दो।

लेकिन देवताओं ने भी एक तर्क उपस्थित किया। और प्रीतिकर तर्क था। और उन्होंने कहा, आपकी बात ठीक है। अगर जगत में दो ही तरह के लोग होते, तो हम मान जाते। तीसरे तरह के भी लोग हैं, जो दोनों के बीच में हैं। जो आप न बोलेंगे, तो न समझ पाएंगे; आप बोलेंगे, तो समझ जाएंगे। किनारे पर खड़े हैं। आप न बोलेंगे, तो न समझ पाएंगे; आप बोलेंगे, तो समझ जाएंगे। जरा सा धक्का, और उनकी छलांग लग सकती है। उनके लिए बोलें।

स्वभावतः जो आदमी मौन का आग्रह कर रहा था, जब बोलेगा, तो उसका बोलना नकारात्मक होगा। उससे आप पूछें कि ईश्वर क्या है? तो वह बताएगा, ईश्वर यह नहीं है, ईश्वर यह नहीं है, ईश्वर यह नहीं है। मौन का जिसका आग्रह था, निषेध उसकी पसंदगी होगी।

लेकिन चैतन्य हैं, या मीरा है, इनका ज्ञान नृत्य बन गया, अभिव्यक्ति बन गया। इनका ज्ञान गीत बन गया। इनके ज्ञान और इनकी अभिव्यक्ति में क्षण भर का फासला न पड़ा। ये काफी मुखर हैं। मुंह से ही नहीं, शरीर से भी। सारा व्यक्तित्व मुखर है। इन्होंने कभी रुक कर नहीं सोचा कि कहें तो भूल हो जाएगी। इन्हें पता ही नहीं चला कि कब कहना शुरू हो गया है।

यह व्यक्तित्व पर निर्भर है। इनकी भाषा पाजिटिव होगी। मीरा जब बोलेगी, तो वह परमात्मा में यह नहीं कहेगी कि वह क्या नहीं है, वह कहेगी कि वह क्या है। सारे भक्त विधायक भाषा का उपयोग करेंगेः परमात्मा क्या है। इसलिए भक्तों का परमात्मा निर्गुण नहीं बन पाएगा, सगुण! क्योंकि विधायकता का अर्थ है--सगुण, साकार। समस्त ज्ञानी निषेध का उपयोग करेंगे। इसलिए उनका परमात्मा शून्य रह जाएगा--निराकार। उसमें कोई गुण नहीं होंगे। वे इनकार करेंगेः यह नहीं, यह नहीं। भक्त कहेंगेः यह, यह।

ये दोनों ही सही हैं और दोनों ही गलत हैं, क्योंकि दोनों अधूरे हैं। और पूरा अभिव्यक्ति में होने का कोई उपाय नहीं है। अभिव्यक्ति अधूरी होगी ही। जैसे ही शब्द का उपयोग किया, शब्द आधा कहेगा, आधा छूट जाएगा। क्योंकि विपरीत शब्दों को एक साथ कहने का कोई अर्थ नहीं है। ऐसा भी प्रयास हुआ। उपनिषदों ने कहा है, वह दूर से दूर और पास से पास। अब भाषा में यह कहना... ।

पश्चिम में नया स्कूल है दार्शनिकों काः पाजिटिव एनालिस्ट्स, विधायक विश्लेषक। तर्कशास्त्रियों का वर्ग है। वे इस वक्तव्य को कहेंगे नानसेंस; यह वक्तव्य जो है, अर्थहीन है। क्योंकि जब तुम कहते हो दूर से दूर, तो रुको, फिर तत्काल मत कहो कि पास से पास। क्योंकि दोनों एक-दूसरे को काट कर व्यर्थ कर देते हैं।

अगर लाओत्से का वचन सुनें ये पश्चिम के विचारक कि निराकार ही उसका आकार है, तो वे कहेंगे एब्सर्ड। फिर भाषा का कोई मतलब ही नहीं रहा। आकार का मतलब आकार होता है, निराकार का मतलब निराकार होता है। और आप कहते हैं, निराकार ही उसका आकार है। तो फिर कहिए ही मत। जैसे हम कहें कि मरा होना ही उनका जीवन है। कोई अर्थ न हुआ। कि कुरूप होना ही उनका सौंदर्य है; कि अंधा होना ही उनकी आंखें हैं। तो फिर भाषा का उपयोग मत करिए। भाषा पर कृपा करिए। क्योंकि आंखों का मतलब आंखें रहने दीजिए और अंधेपन का मतलब अंधापन। अगर आंख का मतलब अंधापन और अंधेपन का मतलब आंख है, तो फिर बोलिए ही मत।

इस स्कूल के बहुत बड़े विचारक लुडविग विटगिंस्टीन ने कहा है, दैट व्हिच कैन नाट बी सेड, मस्ट नॉट बी सेड। अगर नहीं कह सकते हैं, तो चुप रहिए। जो नहीं कहा जा सकता, उसको कहिए ही मत। लेकिन इस तरह तो मत कहिए कि भाषा ही सब अस्तव्यस्त हो जाए।

तो तीन ही उपाय हैं अब तक। एक, विधायक भाषा का उपयोग करो। विधायक भाषा के खतरे हैं। सीमा बनेगी, परिभाषा बनेगी और विराट संकीर्ण हो जाएगा। दूसरा, निषेध भाषा का उपयोग करो। सीमा नहीं बनेगी, आकार नहीं बनेगा, विराट सीमित नहीं होगा; लेकिन विराट समझ के पार हो जाएगा, बेबूझ हो जाएगा। तीसरा उपाय है, दोनों का एक साथ प्रयोग करो। कहो कि वह है भी और नहीं भी; कहो कि वह बड़ा भी है और छोटा भी। दोनों का एक साथ प्रयोग करो। तब भाषा पहेली हो जाएगी, अभिव्यक्ति नहीं। फिर क्या करो?

चौथा विकल्प है, चुप रह जाओ। उससे भी कुछ हल नहीं होता। जरूरी बुराई है भाषा। और उसमें चुनाव करना होता है। और चुनाव पसंदगी की बात है। लाओत्से की पसंदगी निषेध की है। मंसूर की, जीसस की पसंदगी विधेय की है। कोई नहीं कह सकता कि दोनों में कौन ठीक है। जीसस के लिए जीसस का वक्तव्य ठीक है; लाओत्से के लिए लाओत्से का वक्तव्य ठीक है। यह उनके देखने के ढंग पर निर्भर करता है।

और हमारी यह तकलीफ है कि हम सदा इस कोशिश में रहते हैं कि उन सबके वक्तव्य एक से होने चाहिए, तो ही ठीक होंगे। हमारी तकलीफ है। हमारी तकलीफ यह है कि या तो लाओत्से ठीक है या जीसस ठीक हैं, या तो बुद्ध ठीक हैं या कृष्ण ठीक हैं। दोनों ठीक नहीं हो सकते।

तो मैं आपसे कहता हूं, आप दोनों की चिंता छोड़ दें। आपको जो दो में से ठीक लगता हो, उसके पीछे चुपचाप चल पड़ें, दूसरे की फिक्र छोड़ दें। जिस दिन आप मंजिल पर पहुंचेंगे, उस दिन आपको दोनों ठीक मालूम पड़ेंगे। लेकिन जब तक मंजिल पर नहीं पहुंचे हैं, तब तक जो आपके लिए रुचिकर लगता हो, आपके व्यक्तित्व के अनुकूल लगता हो, उसके साथ चल पड़ें। और कभी भूल कर यह कोशिश मत करें कि जो आपको ठीक लगता हो, वह दूसरे को भी ठीक लगे। इसकी बहुत चेष्टा में मत पड़ें। क्योंकि हो सकता है, दूसरे के व्यक्तित्व के वह अनुकूल न हो। और आप उसकी हत्या के जिम्मेवार हो जाएं।

हम सब एक-दूसरे की हत्या के लिए जिम्मेवार हैं। एक आदमी नाच रहा है, कीर्तन कर रहा है। दूसरा आदमी कहता है, क्या मूढ़ता कर रहे हो? कुछ तो बुद्धि से काम लो! वह असल में यह कह रहा है कि अगर मैं नाचूं, तो वह मूढ़ता का काम होगा। वह यह कह रहा है कि अगर मैं नाचूं, तो वह बुद्धिहीनता होगी। लेकिन वह सीमा से बाहर जा रहा है। वह दूसरे व्यक्ति से कह रहा है कि क्या मूढ़ता कर रहे हो? वह अपने को मापदंड बनाए ले रहा है। वह अपने को मापदंड बनाए ले रहा है।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के लिए मापदंड नहीं है। और जो व्यक्ति सोचता है कि मैं दूसरे के लिए मापदंड हूं, वह बहुत गहन हिंसा का जिम्मेवार है, अपराधी है। हो सकता है, जो मुझे मूढ़ता मालूम पड़ती हो, वह दूसरे के लिए परम आनंद हो। और जो मुझे परम ज्ञान मालूम पड़ता है, दूसरे के लिए मूढ़ता दिखाई पड़ती हो। लेकिन दूसरा विचारणीय नहीं है, सदा मैं ही विचारणीय हूं अपने लिए। मेरे लिए जो आनंद है, वह सारे जगत के लिए भी मूढ़ता हो, तो भी मुझे अपने ही आनंद की तलाश करनी चाहिए।

इसलिए कृष्ण ने कहा है कि स्वयं का धर्म, स्वधर्म ही श्रेयस्कर है। और दूसरे के धर्म से भयभीत होना चाहिए। वह पराए का जो धर्म है, वह भय का कारण है।

लेकिन हमें कोई चिंता नहीं है। हम सब अपना धर्म दूसरे पर थोपने की चेष्टा में संलग्न होते हैं।

लाओत्से उनके लिए समझ में पड़ जाएगा, जो निषेध की रुचि रखते हैं, जो नकार की भाषा में आनंद लेते हैं। लाओत्से उनकी समझ में नहीं पड़ेगा, जो विधायक भाषा में आनंद लेते हैं। पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। आप कहां से चलते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। आप अंततः वहां पहुंच जाएं, जिसकी लाओत्से और कृष्ण दोनों ही चर्चा करते हैं। जिस दिन आप पहुंच जाते हैं, उस दिन सभी रास्ते वहीं आते हुए मालूम पड़ते हैं। जब तक आप नहीं पहुंचते, तब तक आपको एक रास्ता चुन लेना जरूरी है।

एक और खतरा होता है। कुछ लोग हैं, जो बहुत बुद्धिमान हो जाते हैं। बहुत बुद्धिमान का मतलब यह कि वे कहते हैं कि दोनों ठीक हैं। वे कभी चल ही नहीं पाते। क्योंकि दो रास्तों पर दुनिया में कोई भी नहीं चल सकता। चलना तो एक ही रास्ते पर पड़ता है।

इस सदी में ऐसे बुद्धिमानों की संख्या बड़े पैमाने पर बढ़ गई है जो कहते हैं, ईसाइयत भी ठीक, हिंदू भी ठीक, मुसलमान भी ठीक, कुरान भी ठीक, बाइबिल भी ठीक, गीता भी ठीक, सब ठीक हैं। अल्ला ईश्वर तेरे नाम, सब ठीक हैं। ये वे लोग हैं, जो चल ही नहीं पाते। ये वे लोग हैं, जो चल ही नहीं पाते। क्योंकि सब रास्ते ठीक हैं, तो पैर उठते ही नहीं। और एक रास्ते पर चलो, तो लगता है कि दूसरा ठीक है, थोड़ा उस पर चलो। दूसरे पर चलो दो कदम कि तीसरा बुलाता है कि ठीक तो मैं भी हूं, थोड़ा मुझ पर चलो। चलने वाले के लिए सदा एक ही रास्ता ठीक है; सोचने वाले के लिए सब रास्ते ठीक हो सकते हैं। चलने वाले के लिए सदा एक ही रास्ता ठीक है।

हां, पहुंचने वाले को भी सब रास्ते ठीक हो जाते हैं। लेकिन जब तक आप पहुंच नहीं गए हैं, तब तक पहुंचने वाले की भाषा बोलना ही मत। वह मंहगा काम है। खड़े हैं दरवाजे पर और महल के भीतर की भाषा अगर आपकी पकड़ में आ गई, तो आप अभागे हैं, मुश्किल में पड़ेंगे। क्योंकि अभी यात्रा करनी थी वहां तक; अब वह यात्रा भी नहीं होगी। सब ठीक हैं, लेकिन उसके लिए जो पहुंच गया केंद्र पर और उसने केंद्र पर खड़े होकर देखा कि सभी रास्ते चले आ रहे हैं यहीं। लेकिन जो अभी परिधि पर खड़ा है और एक रास्ते पर भी नहीं चला है, वह कहता है सब रास्ते ठीक हैं, वह चलने के लिए अपने हाथ से अपने पैर काटे डाल रहा है। वह चल नहीं पाएगा।

इसलिए कई दफे बड़ी मजेदार घटनाएं घटती हैं। सभी धर्मों ने कहा है कि बाकी सब धर्म गलत हैं। सभी धर्मों ने कहा है। और बड़ा कीमती है उनका वक्तव्य--खतरनाक भी। सभी कीमती चीजें खतरनाक होती हैं। सिर्फ गैर-कीमती चीजें खतरनाक नहीं होतीं। जितना महत्वपूर्ण सत्य हो, उतना ही खतरनाक भी होता है। क्योंकि अगर उसमें जरा भी भूल-चूक हुई, तो खतरा हो जाएगा। सभी धर्मों ने कहा है कि यही धर्म सत्य है। यह खतरनाक वक्तव्य है, बहुत शक्तिशाली वक्तव्य है।

खतरनाक है, अगर आपने इसका मतलब लिया कि दुनिया में मेरे अलावा कोई भी सत्य नहीं। अगर इतना ही मतलब लिया, तो बहुत खतरनाक है। इसका मतलब कुछ और था। इसका मतलब यह था कि जिसे चलना है, उसके लिए एक ही सत्य हो, तो ही चल सकता है। और धर्मों ने फिक्र नहीं की परम सत्य की घोषणा की। क्योंकि जब कोई पहुंच जाएगा, तो वह खुद ही पता चल जाएगा। उसकी जल्दी नहीं है।

हम सब के पास बहुत अबॉर्टिव माइंड हैं; गर्भपात हो गया जिन मस्तिष्कों का, ऐसे मस्तिष्क हैं हमारे पास। पूरा हो नहीं पाता कुछ भी और वक्तव्य हमारे भीतर घने हो जाते हैं। चल नहीं पाते और मंजिल की भाषा पकड़ जाती है। लाओत्से ठीक है और मंसूर भी। लेकिन यह उस दिन पता चलेगा, जब आप पहुंचेंगे। अभी जल्दी न करें। अभी आपको जो ठीक लगे, उसको ठीक मान लें। और जो गलत लगे, उसे बिल्कुल गलत मान लें। लेकिन ठीक मान कर अगर बैठना हो, तो इसका कोई प्रयोजन नहीं है। ठीक मानने का एक ही अर्थ होना चाहिए कि मुझे चलना है।

लोग समझते हैं कि दुनिया में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध के बीच वैमनस्य कम हो रहा है; दुनिया अच्छी हो रही है। मामला ऐसा नहीं है। वैमनस्य इसलिए कम नहीं हो रहा है कि दुनिया अच्छी हो रही है, वैमनस्य इसलिए कम हो रहा है कि अब किसी को भी किसी धर्म पर नहीं चलना है। झगड़े की भी क्या जरूरत है? वैमनस्य इसलिए कम नहीं हो रहा है कि लोग बड़े उदार और भले हो गए हैं। वैमनस्य इसलिए कम हो रहा है कि धर्म की अब उपेक्षा की जा सकती है। वह इतना महत्वपूर्ण ही नहीं है कि उस पर झगड़ा किया जाए। उस पर झगड़ा करने का भी मन नहीं रहा।

अगर कोई आज आदमी कह देता है ईश्वर नहीं है, तो कोई झगड़ा करने का भी मन नहीं होता। ठीक है, नहीं होगा। यह कुछ उदारता बढ़ गई है, ऐसा नहीं है। उपेक्षा बढ़ गई है। उपेक्षा है, कोई मतलब नहीं है, ठीक है। अगर आज कोई कहता है कि गीता और कुरान में एक ही बात लिखी है, तो हम कहते हैं कि होगी। इसका यह मतलब नहीं है कि हमको पता है कि एक ही बात लिखी है। इसलिए कि बेमानी है, क्यों व्यर्थ समय खराब करते हो! होगी, मान लिया, ज्यादा बातचीत न चलाओ।

एक मित्र ने मुझे किताब भेजी है। उन्होंने गीता और बाइबिल दोनों में एक ही संदेश है, इसके लिए बड़ी खोजबीन की है। मैं उनकी पूरी किताब देख गया। खोजबीन बिल्कुल बेकार है। कहीं भी कोई तालमेल वे बिठा नहीं पाए। एक वक्तव्य से भी दूसरे वक्तव्य का कोई मेल नहीं है। लेकिन राधाकृष्णन से लेकर विनोबा तक सबने सम्मतियां दी हैं उनको कि आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। उनकी सम्मतियां देख कर मुझे लगा कि उनमें से किसी ने भी वह किताब नहीं पढ़ी है। सिर्फ यह देख कर कि गीता और बाइबिल को समतल बनाने की कोशिश की है, काम अच्छा है, सब ने सम्मतियां दी हैं। क्योंकि एक भी वक्तव्य का कोई मेल नहीं है।

पर उनको प्रसन्नता हुई होगी; प्रसन्नता--ये सब के वक्तव्य कि बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि सच में कोई बहुत अच्छा काम... । इतनी उपेक्षा है कि होगा बाइबिल में कुछ, होगा गीता में कुछ; किसको प्रयोजन है? किसको लेना-देना है?

दोनों सही हैं--विधायक और निषेधात्मक वक्तव्य--लेकिन उनके लिए ही, जो पहुंच गए हों। आपके लिए, मैं कृष्ण पर भी बात करता हूं। अगर आपको विधायक ठीक लगता हो, विधायक को पकड़ कर चल पड़ें। लाओत्से की बात जान कर कर रहा हूं; क्योंकि निषेध का इतना सुंदर वक्तव्य जगत में दूसरा नहीं है। लाओत्से शिखर है निषेध के वक्तव्य में। तो जिनके मन में भी निषेध के प्रति आकर्षण हो, वे उस मार्ग पर चल पड़ें। वक्तव्य सही क्या है, इसकी चिंता न करें। क्या आपको सही लगता है जिससे आप चल सकें, वही प्राथमिक मूल्य की बात है।

चौथा प्रश्नः कल के अंतिम सूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति प्रत्येक सक्रियता के बाद सहज ही घटित होने वाले विश्राम के राज को जान लेता है, वह अपनी समता को सतत बनाए रख सकता है।

फिर आपने कहा कि सघन सक्रियता के बाद गहन विश्रांति उपलब्ध होती है। लेकिन अनुभव ऐसा है हमारा कि सघन सक्रियता के बाद उपलब्ध होने वाली समता अस्थायी होती है, जो मिल कर पुनः-पुनः बिखर जाती है।

कृपया बताएं कि व्यक्ति स्थायी समता को कैसे उपलब्ध हो सकता है।

हमारे चित्त की दो अवस्थाएं हैंः अशांति और शांति। जब भी हम सक्रिय होते हैं, तो चित्त अशांत होगा। क्रिया पैदा होगी, तनाव पैदा होगा, विचार जगेंगे। काम भीतर भी शुरू होगा, जब बाहर शुरू होगा। जितना बड़ा काम बाहर होगा, उतना ही बड़ा काम, अनुपात में, भीतर भी होगा। वही अशांति है। फिर काम विसर्जित हो जाएगा। अगर काम में, लाओत्से कहता है, समग्रता से प्रवेश किया, तो जैसे ही काम समाप्त होगा, वैसे ही भीतर का काम भी समाप्त हो जाएगा। और शांति उपलब्ध होगी।

हमारी अवस्था ऐसी है कि हम न कभी ठीक से अशांत होते और न कभी ठीक से शांत। और जिसे ठीक से शांत होना है, अगर वह ठीक से अशांत ही न हुआ हो, तो बड़ा मुश्किल है। हमारी अशांति भी पूरी नहीं है।

इसलिए जब अशांति का काम भी चला जाता है, तो जो बच गई अशांति है, वह भीतर सरकती रहती है, सस्पेंडेड हो जाती है।

समझ लें कि मैंने आप पर क्रोध किया। तो मैं क्रोध कभी पूरा नहीं करूंगा, दबा लूंगा कुछ। क्रोध भी करूंगा और पूरा भी नहीं करूंगा। आप भी चले गए, बात भी समाप्त हो गई। जो भीतर अटका रह गया क्रोध, अब चलेगा। अगर मैं पूरा क्रोध कर लूं, तो घटना के साथ ही भीतर भी क्रोध समाप्त हो जाएगा।

जॉर्ज गुरजिएफ अपने शिष्यों को क्रोध करना सिखाता था। इस सदी में अकेला शिक्षक था--समझदार। नासमझ शिक्षकों की तो कोई कमी नहीं है, जो समझा रहे हैं कि क्रोध न करना, यह न करना, वह न करना। वे पिटी हुई बातें दोहरा रहे हैं, जिनका उन्हें भी पता नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं। गुरजिएफ कहता था--अगर कोई क्रोधी आता, तो वह कहता--कि अब तुम पहले ठीक से क्रोध करना सीखो। सुनने वाला भी मुश्किल में पड़ जाता। वह कहता, मैं क्रोध छोड़ने आया हूं आपके पास। क्या कहते हैं, ठीक से क्रोध! मुझसे ठीक से और कौन क्रोध करेगा? उसी में मैं जल रहा हूं।

तो गुरजिएफ कहता, अगर ठीक से क्रोध किया होता, तो उतनी जलन को तुम सह न पाते, बाहर निकल गए होते। जब घर में आग लगती है, तो आदमी कूद कर बाहर निकल जाता है। वह यह भी नहीं पूछता कि रास्ता कहां है? कौन गुरु से रास्ता पूछूं? किसको मानूं? और फिर कोई रास्ता भी बता दे, तो वह बैठ कर विचार नहीं करता कि पहले विचार तो कर लूं--कि तुम ठीक कहते हो कि गलत कहते हो? यह रास्ता ठीक है कि नहीं? इस पर पहले भी महाजन गए हैं कि नहीं गए?

जब घर में आग लगी हो और लपटें पकड़ लें, तो आदमी छलांग लगा कर बाहर हो जाता है। फिर रास्ता नहीं पूछता। जहां आंख पड़ जाती है, वहीं रास्ता बना लेता है। जैसे भी हो, बाहर निकलना महत्वपूर्ण हो जाता है, रास्ता महत्वपूर्ण नहीं रहता। यह ध्यान रखने की बात है, जब तक आपको रास्ता बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, उसका मतलबः घर में आग लगी है, इसका आपको अनुभव नहीं है। जब घर में आग लगती है, तो रास्ता महत्वपूर्ण नहीं होता, निकलना महत्वपूर्ण होता है। कोई भी रास्ता जो सामने पड़ जाए, आदमी उससे निकल जाता है। यह जितनी शांति से बैठ कर हम पूछते हैंः रास्ता क्या है? कहां से जाएं? कैसे जाएं? उसका मतलब यह है कि घर में लगी है आग, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती।

गुरजिएफ कहता था कि पहले तुम ठीक से क्रोध ही कर लो। तो क्रोध सिखाता था कि कैसे क्रोध करो और क्रोध में कैसे पूरे उतर जाओ। कुछ भी मत रोको। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जो भी व्यक्ति पूरे क्रोध में उसके पास उतरना सीख जाता, वह एक दिन आकर कहताः हैरानी की बात है, क्रोध के पीछे बड़ी शांति अनुभव होती है। एकदम सब शांत हो जाता है; जैसे तूफान आए और चला जाए और सब तरफ सन्नाटा हो जाए।

तो पहली तो नैसर्गिक बात समझ लेनी चाहिए, जो लाओत्से कह रहा है। वह यह है कि हर सक्रियता के बाद अनिवार्य विश्राम। लेकिन सक्रियता पूर्ण होनी चाहिए--एक। लेकिन इतना काफी नहीं है समता के लिए। समता इससे भी गहरी बात है और एक अनुभव पर निर्भर है। जब एक आदमी देखता है कि क्रोध के बाद शांति आ जाती है, शांति के बाद क्रोध आ जाता है; सुबह के बाद सांझ आती है, सांझ के बाद सुबह आ जाती है; अंधेरा होता है, प्रकाश होता है, फिर अंधेरा हो जाता है; जब एक आदमी यह अनुभव कर पाता है कि यह द्वंद्व का खेल मेरे चारों तरफ चलता ही रहता है, तब उसे तत्काल एक और नई बात पता चलती है कि मैं इन दोनों से अलग हूं।

अगर मैं देखूं कि मुझ पर क्रोध आया, घना क्रोध आया, और फिर क्रोध चला गया, फिर शांति आई, घनी शांति आई, फिर क्रोध आया, फिर शांति आई, तो यह ठीक वैसे ही हो गया कि मैं एक कमरे में बैठा हूं--सुबह हुई, सूरज निकला, किरणों ने मुझे घेर लिया, फिर सांझ होने लगी, ढल गया सूरज, रात हो गई, अंधेरे ने मुझे घेर लिया। क्या मैं कहूं कि मैं अंधेरा हूं या मैं कहूं कि मैं प्रकाश हूं? मैं कहूंगा, मैं दोनों को देखने वाला हूं। मैंने दोनों अनुभव किए; मैंने दोनों जाने। मैं दोनों का साक्षी हूं। सुबह भी आती है, सुबह चली जाती है। सांझ भी आती है, सांझ भी चली जाती है।

समता का अर्थ शांति नहीं है। समता का अर्थ शांति और अशांति के भीतर तीसरे को जान लेना है। जो आदमी कहता है मुझे शांति चाहिए, वह समता को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि शांति चाहिए का मतलब है, फिर अशांति का क्या होगा? आपको शांति चाहिए, अशांति का क्या होगा? आपको दिन चाहिए, रात का क्या होगा? आपको सूर्योदय चाहिए, सूर्यास्त का क्या होगा? जिसको सूर्योदय चाहिए, उसे सूर्यास्त भी झेलना पड़ेगा। और जिसको शांति चाहिए, उसको अशांति से गुजरना ही पड़ेगा। जिसको जन्म चाहिए, उसे मृत्यु को स्वीकार करना पड़ेगा।

लेकिन हम कहते हैं कि नहीं, जन्म तो चाहिए, मृत्यु नहीं चाहिए। सुबह चाहिए, सांझ नहीं चाहिए। जवानी चाहिए, बुढ़ापा नहीं चाहिए। हम कुछ काट कर चाहते हैं। वह नहीं हो सकता। वह अस्तित्व का नियम नहीं है। तो फिर हम समता को कभी उपलब्ध नहीं होंगे।

शांति तो सभी चाहते हैं। जितने जोर से चाहते हैं, उतनी अशांति सिर पर टूट जाती है। और जो आदमी कहता है कि मुझे सुबह चाहिए, सांझ नहीं चाहिए; वह सुबह से ही चिंतित हो जाता है कि सांझ आ रही है, सांझ आ रही है; कैसे बचूं? वह सुबह को गंवा देता है सांझ से बचने में। और जब सांझ आ जाती है, तो सांझ का दुख भोगता है। और सुबह का सुख कभी नहीं भोग पाता, क्योंकि सांझ तो मौजूद हो जाती है सुबह के साथ।

जो आदमी बहुत शांति चाहने की कोशिश में लगता है, जब शांति होती है, तब वह डरा और भयभीत और चिंतित और घबड़ाया रहता है कि अब टूटी, अब टूटी। अशांति आती ही है। जब अशांति आती है, तब वह शांति चाहता रहता है। और जब शांति आती है, तब वह अशांति से भयभीत प्रतीक्षा करता रहता हैः अब आई, अब आई, अब आई। समता असंभव हो जाती है।

समता कीमती शब्द है। समता का अर्थ हैः अशांति है, तो वह जानता है कि अशांति है; और शांति है, तो वह जानता है कि शांति है। समता का अर्थ हैः वह अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक। अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक, क्योंकि वह जानता है, जीवन का नियम है, सुबह होती है, सांझ होती है। शांति को भी गुजारता है शांतिपूर्वक; अशांति को भी झेलता है शांतिपूर्वक। इस स्थिति का नाम समता है। समता का अर्थ है, न अब अशांति छूती उसे, और न अब शांति छूती उसे। न तो अब वह चाहता है कि अशांति न हो और न चाहता है कि शांति हो। अब वह कुछ भी नहीं चाहता। अब वह देखता रहता है। एक साक्षी! जो होता है, देखता रहता है।

इस साक्षी-भाव में समता घटित होती है। वह समता स्थिर है; क्योंकि अशांति उसे मिटा नहीं सकती और शांति उसे ज्यादा नहीं करती। वह दोनों के बीच स्थिर है। ऐसी समता हो, तो स्थायी हो सकती है। शांति स्थायी नहीं हो सकती; अशांति भी स्थायी नहीं हो सकती। क्योंकि शांति और अशांति एक ही बड़ी घटना के दो हिस्से हैं। समता स्थिर हो सकती है। समता शाश्वत हो सकती है, सदा हो सकती है।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा कि जो लोग ताओ को प्राप्त होते हैं, वे जीवन को प्रतिपल एक खतरे की तरह देखते हैं और गंभीर हो जाते हैं। ऐसे लोग अतिथि की तरह हो जाते हैं, ऐसा उनका स्वभाव हो जाता है। दूसरी तरफ जब आप कृष्ण की बात कहते हैं, तो कहते हैं कि जीवन उनके लिए खेल है, वे हंसते हुए जीवन को पार कर जाते हैं, जो वे करते हैं, वह नृत्य है, मजा है। साथ ही आप कहते हैं, संतों के आचरण की भिन्नता होगी ही। आचरण की भिन्नता की बात तो समझ में आती है, किंतु लाओत्से और कृष्ण के इस स्वभाव की भिन्नता समझ में नहीं आती। कृपया समझाएं।

स्वभाव कृष्ण का आपकी समझ में कभी नहीं आएगा। स्वभाव लाओत्से का आपकी समझ में कभी नहीं आएगा। कृष्ण का स्वभाव कृष्ण की समझ में आता है। लाओत्से का स्वभाव लाओत्से की समझ में आता है। आपको अपना स्वभाव समझ में आएगा। स्वभाव का मतलब ही यही होता है।

जो हमें दूसरे का समझ में आता है, वह आचरण है। दूसरे का आचरण ही दिखाई पड़ता है। स्वभाव कैसे दिखाई पड़ेगा? कृष्ण क्या करते हैं, वह दिखाई पड़ता है। कृष्ण क्या हैं, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? बुद्ध क्या करते हैं, वह दिखाई पड़ता है। क्या बोलते हैं, वह सुनाई पड़ता है। क्या हैं, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? स्वभाव का अर्थ है, जो अप्रकट भीतर छिपा है। वह आपको नहीं दिखाई पड़ेगा। आपको तो आचरण ही दिखाई पड़ेंगे।

अगर बुद्ध शांत बैठे हैं और कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं। तो आपको दिखाई पड़ता है कि कृष्ण बड़े मजे में हैं; क्योंकि बांसुरी बजा रहे हैं। मजा बांसुरी बजने के कारण आप अनुमान कर रहे हैं। बुद्ध मजे में नहीं होंगे, क्योंकि आंख बंद करके बैठे हैं, बांसुरी नहीं बजा रहे हैं। लेकिन स्वभाव आपको दिखाई नहीं पड़ सकता। बुद्ध और कृष्ण एक ही स्वभाव में हैं। लेकिन वह स्वभाव बुद्ध अपने ढंग से प्रकट करेंगे। प्रकटीकरण व्यक्तित्व की बात है।

ऐसा समझ लें कि यहां बिजली के दस बल्ब जल रहे हैं। एक ही बिजली दस में दौड़ती है। एक बल्ब नीला है, और एक लाल है, और एक पीला है। आपको लाल बल्ब से लाल बिजली निकलती हुई बाहर मालूम पड़ती है। नीले से नीली निकलती मालूम पड़ती है। बल्ब व्यक्तित्व है; बिजली एक है।

कृष्ण का शरीर उनका बल्ब है; बुद्ध का शरीर उनका बल्ब है; लाओत्से का शरीर उनका बल्ब है। ये व्यक्तित्व हैं। और भीतर जो स्वभाव है, वह एक है। लेकिन वह आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। वह तो जब आप अपने बल्ब के भीतर प्रवेश करेंगे, और जानेंगे कि वह स्वभाव रंगहीन है, न लाल, न पीला, न हरा।

तो जो बुद्ध दिखाई पड़े थे, वह बुद्ध का व्यक्तित्व था; जो कृष्ण दिखाई पड़े थे, वह कृष्ण का व्यक्तित्व था। व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है, आचरण दिखाई पड़ता है, व्यवहार दिखाई पड़ता है। वह जो भीतर घटित हो रहा है, वह दिखाई नहीं पड़ता। बल्ब बदल दें--जहां लाल बल्ब लगा है, वहां हरा लगा दें; और जहां हरा लगा है, वहां लाल लगा दें--तब आपको पता चलेगा कि अरे, जहां लाल रंग दिखता था, वहां अब हरा दिखता है। हमारे हाथ में अगर संभव हो कि बुद्ध के बल्ब को कृष्ण पर लगा दें, कृष्ण के बल्ब को बुद्ध पर लगा दें, तो आप देखेंगेः बुद्ध बांसुरी बजा रहे हैं और कृष्ण चुप होकर बैठे हैं।

लेकिन वह हमारे हाथ में नहीं है। लेकिन एक बात हमारे हाथ में है कि अपने बल्ब के भीतर हम प्रवेश करके स्वभाव को देखें। तब हम पाएंगे कि उस स्वभाव में सब शांत है, सब मौन है। सब निर्विकार हो गया, सब निराकार हो गया।

लेकिन जब उस निराकार को प्रकट करेंगे, तो इस शरीर का उपयोग करना पड़े, मन का उपयोग करना पड़े। बुद्ध पाली भाषा में बोलते हैं। बोलेंगे ही; वे पाली भाषा जानते हैं। कृष्ण संस्कृत में बोलते हैं। बोलेंगे ही;

वे संस्कृत ही जानते हैं। लेकिन सत्य क्या संस्कृत है या पाली? जीसस हिब्रू में बोलते हैं। बोलेंगे ही। अगर कोई ने ऐसा समझा हो कि सत्य संस्कृत में ही बोला जाता है, तो हिब्रू में बोलने के कारण ही असत्य हो गया। लेकिन क्या जब जीसस को सत्य का अनुभव हुआ, वहां भीतर हिब्रू मौजूद है? या जब कृष्ण ने सत्य को जाना होगा, तो वहां संस्कृत रही होगी भीतर? या बुद्ध ने जब सत्य को अनुभव किया, तो वहां पाली थी?

नहीं, वहां न हिब्रू थी, न संस्कृत थी, न पाली थी। वहां तो सब शब्द खो गए, सब भाषा खो गई; वहां तो विराट मौन था, विराट शून्य था। जब सत्य को कोई जानता है, तो सब भाषा खो जाती है। लेकिन जब सत्य को कोई बोलता है, तो किसी न किसी भाषा का उपयोग करना पड़ता है। बुद्ध हिब्रू का उपयोग नहीं कर सकते। और जीसस संस्कृत का उपयोग नहीं कर सकते। और कृष्ण पाली का नहीं कर सकते। यह व्यक्तित्व का हिस्सा है। भाषा व्यक्तित्व का हिस्सा है। विधायक या नकारात्मक ढंग व्यक्तित्व का हिस्सा है। नाचना या मौन हो जाना व्यक्तित्व का हिस्सा है। लेकिन अनुभव उस स्वभाव का व्यक्तित्व के पार है।

लेकिन वह हमें दिखाई नहीं पड़ेगा। उसे हम नहीं समझ पाएंगे। उसे हम तभी देख पाएंगे, जब हम अपने स्वभाव में उतरें, उसके पहले नहीं। भिन्नता दिखाई पड़ेगी ही; भिन्नता है। क्योंकि जहां हम खड़े हैं, वहां से अभिन्नता का कोई दर्शन नहीं हो सकता। अभिन्नता का दर्शन करना हो, तो अपने उस केंद्र पर खड़े होना पड़ेगा, जहां विभिन्नता पैदा करने वाले, भिन्नता पैदा करने वाले सारे कारण तिरोहित हो जाते हैं। फिर वहां कोई भिन्नता न होगी।

ऐसा समझें कि हम यहां सौ कागज के टुकड़े डाल दें--खाली, कोरे। तो उनमें कोई भिन्नता नहीं है। फिर हम सौ लोगों के हाथों में दे दें, और उनसे कहें कि एक-एक आदमी की तस्वीर बना दें। सौ ही लोग आदमी की तस्वीरें बनाएंगे, लेकिन दो तस्वीरें एक सी नहीं होंगी। सौ तस्वीरें हो जाएंगी। आदमियों की तस्वीरें बनाईं, सौ ने ही बनाईं; सौ भिन्न हो गईं। फिर वे कागज के टुकड़े बड़े भिन्न हो गए।

जिस पर पिकासो ने तस्वीर बनाई होगी, उसकी करोड़ों कीमत हो सकती है। और जिस पर आपने तस्वीर बनाई होगी, उसको कोई रद्दी में भी लेने को तैयार नहीं होगा। अब क्या करिएगा? और ये दोनों कागज थे, अभी क्षण भर पहले दोनों की कीमत बराबर थी। ये दोनों कागज के टुकड़े थे, बराबर कीमत के थे, एक से खाली थे--अपने स्वभाव में थे। अब इन पर व्यक्तित्व आ गया। पिकासो ने जो बनाया, तो उसके व्यक्तित्व की कीमत है। आपने जो बनाया, तो आपका व्यक्तित्व उतरेगा। मैंने जो बनाया, तो मेरा व्यक्तित्व उतरेगा। उसके अनुसार कीमत होगी। कागज अलग-अलग हो गए अब।

बुद्ध और कृष्ण और लाओत्से और जीसस भीतर तो कोरे कागज हैं। लेकिन जैसे ही हम उनको देखते हैं बाहर से--तस्वीर बन गई। वह तस्वीर उनका व्यक्तित्व है। वह अस्तित्व नहीं है, व्यक्तित्व है। यह शब्द व्यक्तित्व बड़ा अच्छा है। इसका मतलब है कि जो छिपा है, वह नहीं; बल्कि माध्यम से जो प्रकट हुआ है, वह।

एक दीया जल रहा है लालटेन के भीतर। थोड़ी सी रोशनी बाहर आ रही है। कांच पर धुआं जम गया है। दूसरी लालटेन है, दीया जल रहा है, कांच साफ है; काफी रोशनी बाहर आ रही है। दोनों के भीतर एक सी रोशनी है। लेकिन दोनों के कांचों में बड़ा फर्क है। व्यक्तित्व अलग हैं। व्यक्तित्व, भीतर से जो आ रहा है, उसे गंदा भी कर देते हैं, स्वच्छ भी कर देते हैं।

अगर कबीर बोलेंगे, तो बोली जुलाहे की होने वाली है। इसलिए कबीर के सब प्रतीक जुलाहे के प्रतीक हैं। जुलाहे वे थे; कपड़ा जिंदगी भर बुनते रहे। तो वे कहते हैंः झीनी-झीनी बुन दीन्ही रे चदरिया। बुद्ध नहीं कह

सकते यह वक्तव्य। कभी बाप-दादे ने चदरिया बुनी नहीं। कोई संबंध नहीं चादर बुनने का। चादर बुनने का ख्याल भी नहीं आ सकता, कि झीनी-झीनी बुन दी। कबीर को आता है; कबीर जुलाहे हैं। जिंदगी चादर बुनने में बीती है।

तो कबीर जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है कि खोपड़ी पर लट्ठ मार दिया। ग्रामीण प्रखरता है वक्तव्य में। बुद्ध लट्ठ भी मारें, तो ऐसा लगेगा, फूल मारा। एक शाही अभिजात्य है। वह व्यक्तित्व का हिस्सा है। इसलिए मोहम्मद या जीसस के वचनों में जो तीव्रता है, त्वरा है, वह न बुद्ध के वचनों में है, न कृष्ण के वचनों में है, न महावीर के वचनों में है। वह त्वरा नहीं है। मोहम्मद और जीसस के वचनों में जो धार है, वह इनमें से किसी के वचनों में नहीं है। उसका कारण है। ये बिल्कुल अपढ़, ठेठ ग्रामीण लोग हैं। तो ग्रामीण के पास भाषा ज्यादा नहीं होती। थोड़े ही शब्द होते हैं उसके पास, लेकिन अनगढ़ होते हैं। बुद्ध और महावीर के पास जो भाषा है, वह ऐसी है जैसे कि तराश कर बनाया गया पत्थर हो--मूर्ति। मोहम्मद और जीसस के पास सीधा पत्थर है। उसमें कोई तराश वगैरह नहीं है।

इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है कि मोहम्मद और जीसस आम जनता के जीवन में ज्यादा दूर तक प्रवेश कर गए और बुद्ध और महावीर बहुत पीछे पड़ गए। आम जनता उनकी बात को समझ पाती है, निकट मालूम पड़ती है। बुद्ध और महावीर बहुत दूर मालूम पड़ते हैं। बहुत शिखर के उनके वचन हैं। वे वचन ऐसे हैं कि हमारे और उनके बीच बहुत फासला है।

ये व्यक्तित्व के भेद हैं। और ध्यान रहे कि अगर महावीर और बुद्ध जीसस की भाषा या मोहम्मद की भाषा हिंदुस्तान में बोलते, तो कोई उनको सुनता भी नहीं। क्योंकि जिन दिनों में उन्होंने वह भाषा बोली, उन दिनों में यह मुल्क अभिजात्य के शिखर पर था। और अगर मोहम्मद भूल करते बुद्ध की भाषा बोलने की, तो कोई सुनने वाला नहीं मिलने वाला था उनको। क्योंकि जिनके बीच वे बोल रहे थे, वे ठीक मरुस्थली, खतरनाक, खूंखार लोग थे। उनके पास तलवार की धार वाली बात चाहिए थी। नहीं तो कोई मतलब न था।

व्यक्तित्व, समय, वे सारी की सारी चीजें हमें दिखाई पड़ती हैं। भीतर का जो अस्तित्व है, वह तो दिखाई नहीं पड़ता। उसकी चिंता न करें। इतना ख्याल में भर आ जाए, तो धीरे-धीरे अपने भीतर के अस्तित्व का पता लगाने में लगें। जिस दिन आपको अपना अस्तित्व अपने व्यक्तित्व से अलग मिल जाएगा, उस दिन आपके लिए द्वार खुल जाएंगे, आप झांक पाएंगे।

बुद्ध भी वस्त्रों का एक ढेर हैं; कृष्ण भी वस्त्रों का एक ढेर हैं; लाओत्से भी वस्त्रों का एक ढेर हैं। वह जो भीतर छिपा है, वह वस्त्रों से बिल्कुल अलग है। वस्त्रों से उसे मत सोचें। लेकिन हम क्या करें? हम अपने को वस्त्र ही मानते हैं। भीतर का हमें कुछ पता नहीं है। अपने वस्त्रों के पार जाकर जो छिपा है, उसे देखें; तो फिर सभी वस्त्रों के पार आपकी आंख पहुंचनी शुरू हो जाएगी।

चार-छह प्रश्न और रह गए हैं, वे अगली लाओत्से की बैठक होगी, तब हम उनकी चर्चा करेंगे। आज के लिए, इस चर्चा के लिए जो जरूरी प्रश्न थे, वे मैंने ले लिए हैं।

आज इतना ही।

अब कीर्तन में सम्मिलित हों। चाहे मूढ़ता ही किसी को मालूम पड़े, पर सम्मिलित हों। और फिर जाएं।

सैंतीसवां प्रवचन

निष्क्रियता, नियति व शाश्वत नियम में वापसी

Chapter 16 : Sutra 1

Knowing The Eternal Law

Attain the utmost in passivity,
Hold firm to the basis of quietude.
The myriad things take shape and rise to activity, But I watch them fall back to their repose.
Like vegetation that luxuriously grows,
But returns to the root (soil) from which it springs. To return to the root is repose;
It is called going back to one's Destiny.
Going back to one's Destiny
is to find the eternal law.
To know the eternal law is Enlightenment.
And not to know the eternal law is to court disaster.

अध्याय 16 : सूत्र 1

शाश्वत नियम का ज्ञान

निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें,
और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।
सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं;
लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं।
जैसे वनस्पति-जगत लहलहाती वृद्धि को पाकर
फिर अपनी उदगम-भूमि को लौट जाता है।
उदगम को लौट जाना विश्रांति है;
इसे ही अपनी नियति में वापस लौटना कहते हैं।
स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना
शाश्वत नियम को पा लेना है।

शाश्वत नियम को जानना ही ज्ञान से आलोकित होना है।

और शाश्वत नियम का अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का जनक है।

अभी आकाश खाली है। जल्दी ही बादलों से भर जाएगा। बादल आएंगे; घने होंगे, वर्षा करेंगे और फिर समाप्त हो जाएंगे। आकाश फिर भी वैसा ही बना रहेगा। आकाश एक निष्क्रियता है, पैसिविटी। बादल एक सक्रियता है, एक्टिविटी। बादल बनते हैं, मिटते हैं; आकाश बनता भी नहीं, मिटता भी नहीं। बादल कभी होते हैं, कभी नहीं होते। आकाश सदा होता है। बादलों का अस्तित्व जन्म और मृत्यु के बीच में है। आकाश के अस्तित्व के लिए न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। आकाश समय के बाहर है। बादल समय के भीतर बनते हैं और बिखर जाते हैं। आकाश शाश्वत है।

इस सूत्र का नाम हैः शाश्वत नियम का ज्ञान--नोइंग दि इटरनल लॉ।

जहां भी सक्रियता है, वहां शाश्वतता नहीं होगी। क्योंकि क्रिया को तो विश्राम में जाना ही पड़ेगा। कोई भी क्रिया, कोई भी एक्टिविटी शाश्वत, सदा नहीं हो सकती। थकेगी; और विश्राम में लीन होना पड़ेगा। सिर्फ निष्क्रियता शाश्वत हो सकती है।

इस सूत्र को समझ लेना बहुत जरूरी है। धर्मों ने कहा है, ईश्वर स्रष्टा है, गॉड इ.ज दि क्रिएटर। लाओत्से राजी नहीं है। लाओत्से कहता है, सृजन तो एक क्रिया है। और अगर ईश्वर स्रष्टा है, तो कभी तो थक ही जाएगी क्रिया। और हर करने से विश्राम लेना ही होता है। करने का अंतिम परिणाम सदा न करना है। तो अगर ईश्वर स्रष्टा है, अगर सृजन ही उसका स्वरूप है, तो ईश्वर शाश्वत नहीं हो सकता। शाश्वत तो सिर्फ आत्यंतिक निष्क्रियता ही हो सकती है। अगर आकाश भी बनता हो, सक्रिय होता हो, आकाश भी अगर कुछ करता हो, तो बादलों की तरह ही कभी न कभी विलीन हो जाएगा। आकाश कुछ भी नहीं करता। बादल कुछ करते हैं। करते हैं, तो रिक्त हो जाते हैं। अभी वर्षा से भरे आएंगे, उमड़ेंगे, घुमड़ेंगे; शोरगुल होगा, बड़ी गति होगी, बिजलियां चमकेंगी। फिर पानी झर जाएगा, बादल रिक्त हो जाएंगे, खो जाएंगे। सभी क्रिया रिक्त हो जाती है। हो ही जाएगी। क्योंकि सभी क्रियाएं प्रारंभ होती हैं। और जो भी प्रारंभ होता है, वह अंत भी होगा। जो प्रारंभ नहीं होता, वही अंत से बच सकता है।

लाओत्से का ईश्वर निष्क्रियता है। इसलिए लाओत्से उसे ईश्वर भी नहीं कहता। वह उसे शाश्वत नियम कहता है--ताओ। जीवन के बहुत पहलुओं में हम इसे देखें, तो फिर स्वयं के भीतर भी देखना आसान हो जाएगा। और तब लाओत्से की साधना हमारे ख्याल में आ जाएगी--वह क्या चाहता है और कैसे आदमी उस परम शाश्वतता को उपलब्ध हो सकता है। एक बीज हम बो देते हैं; वृक्ष जन्म जाता है। शाखाएं-प्रशाखाएं फैलती हैं; फूल खिलते हैं। और फिर एक दिन वह वृक्ष उसी मिट्टी में वापस गिर कर खो जाता है। एक व्यक्ति पैदा होता है। और फिर एक दिन हम उसे कब्र में सुला कर वापस मिट्टी में मिल जाने देते हैं। सुबह आप जागते हैं। सांझ थक जाते हैं और नींद में खो जाते हैं। जन्म भी एक जागना है और मृत्यु भी एक सांझ है। फिर वापस हम वहीं गिर जाते हैं, जहां से हम आते हैं। लेकिन क्या हमारे भीतर भी ऐसा कुछ है, जैसा बादलों के साथ आकाश है?

वृक्ष जन्मा, मिट्टी उठी आकाश की तरफ। मिट्टी वृक्ष के पत्ते बनी। मिट्टी ने वृक्ष में फूल खिलाए। फिर फूल गिर गए, पत्ते गिर गए, वृक्ष गिर गया। मिट्टी वापस मिट्टी में मिल गई। क्या वृक्ष में ऐसा भी कुछ था जो आकाश जैसा था? यह तो बादल जैसा हुआ--वृक्ष का होना, पत्तों का फैलना, सक्रियता। यह तो बादलों जैसा

था। वृक्ष में क्या कुछ ऐसा भी था जो आकाश जैसा था? जो तब भी था जब बीज अंकुरित न हुआ और तब भी है जब वृक्ष वापस मिट्टी में खो गया?

एक आदमी जन्मा; यह एक बादल का जन्म है। उमड़ेगा, घुमड़ेगा, युवा होगा, वासनाएं पकड़ेंगी, दौड़ आएगी, जीवन एक गहन सक्रियता बन जाएगीः चिंता और तनाव और बेचैनी, सफलताएं और असफलताएं। और एक लंबी कथा होगी। और फिर सब मिट्टी में गिर जाएगा। उमर खय्याम ने कहा हैः डस्ट अनटू डस्ट। और फिर मिट्टी वापस मिट्टी में गिर जाएगी। क्या इस आदमी में बादल ही बादल थे या आकाश जैसा भी कुछ था? ये वासनाएं तो बादल हैं। और कभी बहुत भरी होती हैं। एक जवान आदमी को देखें; वह पानी से भरा हुआ बादल है। एक बूढ़े आदमी को देखें; वर्षा हो गई, बादल रिक्त हो गया है। जो भरा था, वह बिखर गया। एक बूढ़ा आदमी सूख गया बादल है। लेकिन क्या इस आदमी की वासनाओं, क्रियाओं, इसकी दौड़, इसकी उपलब्धियों, इन सबके पीछे कुछ आकाश भी है या नहीं?

अगर कोई आकाश पीछे नहीं है, तो कोई आत्मा नहीं है। और अगर पीछे कोई आकाश है, तो ही आत्मा है। जो मानते हैं मनुष्य के भीतर कोई आत्मा नहीं है, वे कह रहे हैं कि बादल तो उठते हैं, लेकिन आकाश नहीं है। लेकिन आकाश के बिना बादल उठ भी नहीं सकते। आकाश तो हो सकता है बादलों के बिना, लेकिन बादल आकाश के बिना नहीं हो सकते। या कि हो सकते हैं? आकाश के होने में कोई भी अड़चन नहीं है। बादल न हों, तो आकाश के होने में जरा भी कमी नहीं पड़ती। न होने से आकाश में कुछ बढ़ती होती है, न न होने से कुछ घटता है। आकाश होता है बादलों के बिना भी। बादल एक दुर्घटना है; या कहें, एक घटना है; आकाश एक अस्तित्व है। बादल सांयोगिक हैं, एक्सीडेंटल हैं, किन्हीं कारणों पर निर्भर हैं।

इसे थोड़ा समझें। आकाश में बादल बनते हैं, तो किन्हीं कारणों पर निर्भर हैं--संयोगात्मक हैं। सूरज निकलेगा, पानी भाप बनेगा, आकाश की तरफ उठेगा, तो बादल बनेंगे। अगर सूरज ठंडा हो जाए, धूप न पड़े, पानी उबले नहीं, तो बादल नहीं बनेंगे। सूरज तपता रहे, आग बरसाता रहे, पानी न हो, तो बादल नहीं बनेंगे। आकाश अकारण है। सूरज हो या न हो, पानी हो या न हो, बादल बनें या न बनें, चांद-तारे रहें या न रहें, पृथ्वी बचे या न बचे, आदमी हो या न हो, आकाश अकारण है, अनकंडीशनल है। उसके होने में कुछ भी अंतर न पड़ेगा।

इसका अर्थ हुआ कि जिन चीजों का भी कारण होता है, वे चीजें बादलों की तरह होती हैं; और जिनका कोई कारण नहीं होता, अकारण, वे चीजें आकाश की तरह होती हैं। आप पैदा हुए, तो आपके पैदा होने में दो हिस्से हैं। एक बादल जैसा। आपके माता-पिता न होते, तो आपको यह शरीर नहीं मिल सकता था। हजार-हजार कारण हैं, जिनसे आपको यह शरीर मिला। लेकिन आप कारण में ही समाप्त अगर हो जाएं, तो फिर आप नहीं हैं, आपके भीतर कोई आकाश नहीं है। आपके माता-पिता भी न होते, आपका शरीर भी न होता, तो भी आप होते, तो ही आपके भीतर आत्मा है। अन्यथा आत्मा का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

लाओत्से कहता है, हमारे सबके भीतर बादल भी हैं और आकाश भी है। और जैसे बादल नहीं हो सकते आकाश के बिना, आपकी वासनाएं भी नहीं हो सकतीं आत्मा के बिना। जैसे आकाश चाहिए बादलों को तैरने के लिए, वैसे ही आत्मा भी चाहिए वासनाओं को तैरने के लिए। आत्मा हो सकती है बिना वासनाओं की; वासनाएं नहीं हो सकतीं बिना आत्मा के।

लेकिन जब आकाश बादलों से घिरा होता है, तो आकाश बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता, बादल ही दिखाई पड़ते हैं। और जब मनुष्य भी वासनाओं से घिरा होता है, तो आत्मा बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ती, वासनाएं ही दिखाई पड़ती हैं।

और हर वासना सक्रियता में ले जाती है। जिन्होंने कहा है कि जब तक आदमी निर्वासना में न पहुंच जाए, डिजायरलेसनेस में न पहुंच जाए, तब तक आत्मा को न पा सकेगा, उनका प्रयोजन यही है। क्योंकि जब तक निर्वासना में न पहुंचें, तब तक निष्क्रियता में न पहुंचेंगे। हर वासना क्रिया का जन्म है। यहां वासना के पैदा होने का अर्थ ही यह है कि आप एक क्रिया की यात्रा पर निकल गए। चाहे स्वप्न में ही सही, चाहे वस्तुतः, आप कुछ करने में संलग्न हो गए। वासना जन्मी कि क्रिया शुरू हो गई, बादल घिर गए।

जितने होंगे ज्यादा बादल, उतना ही आकाश दिखाई नहीं पड़ेगा। बादल बिल्कुल न हों, तब आकाश दिखाई पड़ता है; या दो बादलों के बीच में दिखाई पड़ता है। दो वासनाओं के बीच में जो अंतराल होता है, उसमें कभी भीतर की आत्मा दिखाई पड़ती है। लेकिन हमारी वासनाएं ऐसी हैं कि अंतराल बिल्कुल नहीं है। एक वासना समाप्त नहीं हो पाती, उसके पहले हम हजार पैदा कर लेते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि एक वासना समाप्त हो जाए और दूसरी अभी पैदा न हो और बीच में खाली जगह छूट जाए, जिसमें से हम अपने आकाश में झांक लें। एक वासना पूरी नहीं होती कि हजार को हम बो देते हैं। एक मरती है, तो हजार जन्म जाती हैं। आकाश हमारा सदा ही बादलों से भरा रह जाता है।

इसलिए आदमी अगर अपने को समझने की कोशिश करे, तो पाएगा, मैं सिर्फ क्रियाओं का एक जोड़ हूं। और हम सब ऐसा ही अपने को मानते हैं। अगर कोई आपसे पूछे कि आप क्या हैं, तो आप क्या बताएंगे? बताएंगे कि आप ने क्या-क्या किया है, कितने मकान खड़े किए हैं, कितना धन अर्जित किया है, कितनी उपाधियां इकट्ठी की हैं। आप ने क्या किया है, वही आपका जोड़ है। तो आप अपने को बादल समझ रहे हैं; आकाश का आपको कोई पता नहीं है। क्योंकि आकाश का करने से कोई संबंध नहीं है। आकाश तो सिर्फ है। और उसके होने के लिए आपको कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। उसका होना किसी कर्म पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक घटना में ये दोनों सूत्र एक साथ मौजूद हैंः क्रियाओं का जगत है और निष्क्रियता की आत्मा है।

लाओत्से कहता है, इस निष्क्रियता को जान लेना ही शाश्वत नियम को जान लेना है।

उसके सूत्र को हम समझें।

"निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें; और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।"

अपने ही भीतर निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप कुछ करें नहीं। जीवन है, तो कर्म तो होगा ही। जीवन है, तो कुछ न कुछ तो आप करते ही रहेंगे। अगर आप बिल्कुल ही मूर्तिवत भी बैठ जाएं, तो वह बैठना भी कर्म ही है। और आप मुर्दे की तरह शवासन में लेट जाएं, वह लेट जाना भी कर्म ही है। और आप सब छोड़ कर जंगल में भाग जाएं, वह भाग जाना भी कर्म ही है।

झेन फकीर हुई-हाई के पास एक युवक आया है। और वह उस युवक से कहता है, लाओत्से का यह सूत्र याद रखोः अटेन दि अटमोस्ट इन पैसिविटी, उस चरम को निष्क्रियता में उपलब्ध करो।

वह युवक सब तरह के उपाय करता है। वह दूसरे दिन सुबह आकर बिल्कुल बुद्ध की पत्थर की मूर्ति होकर बैठ जाता है। हुई-हाई उसे हिलाता है और वह कहता है, हमारे मंदिर में पत्थर के बुद्ध काफी हैं। और ज्यादा जरूरत नहीं है। ऐसे नहीं चलेगा। अटेन दि अटमोस्ट इन पैसिविटी, निष्क्रियता में उसकी चरमता में प्रवेश करो। यह तो तुम ही बैठे हुए हो। और इस बैठने में तुम्हें कर्म करना पड़ रहा है।

और आदमी साधारण बैठा हो, तो कम कर्म करना पड़ता है; ठीक बुद्ध जैसा बन कर बैठ जाए, तो बहुत कर्म करना पड़ता है। वह कई तरह के उपाय करता है; सब असफल हो जाते हैं। क्योंकि कोई भी उपाय निष्क्रियता पाने में सफल नहीं हो सकता। उपाय का अर्थ ही है कर्म। तो कर्म अकर्म को पाने में कैसे होगा सफल? कोई रुकना चाहता हो, तो दौड़ने से कैसे रुकने तक पहुंचेगा? और कोई मरना चाहता हो, तो जीवन उसके लिए रास्ता नहीं है। कर्म से कोई कैसे अकर्म को पाएगा?

तो वह युवक परेशान हो गया। उसने हुई-हाई के आश्रम में वृद्धजनों को जाकर पूछा कि मैं क्या करूं? मैं परेशान हो गया। मेरी बुद्धि तो अंत पर आ गई। मेरा तो समाप्त हो गया सोच-समझ सब। सब उपाय करके देख चुका हूं। आप हैं पुराने, आप गुरु के साथ बहुत दिन रहे हैं। और निश्चित ही आप भी इस परीक्षा से गुजरे होंगे। मुझे कुछ सलाह दें। यह मैं निष्क्रियता कैसे प्राप्त करूं? तो जिससे उसने पूछा था, उसने कहा कि जब तक मर ही न जाओ, तब तक निष्क्रियता प्राप्त नहीं होती। जीते जी कैसी निष्क्रियता? जीओगे, तो कर्म तो होगा ही। जीना क्रिया का ही नाम है। जीवन अर्थात सक्रियता। मर ही जाओ, तो ही परीक्षा में पास हो सकते हो। उस युवक ने सोचा, यह भी कोशिश कर ली जाए।

वह दूसरे दिन सुबह जब गुरु के पास गया, तो गुरु ने पूछा कि पा लिया वह सूत्र? वह तत्क्षण वहीं गुरु के सामने गिर कर मर गया। गुरु उसके पास आया और उसने कहा कि जरा एक आंख खोलो। तो उसने एक आंख खोल कर गुरु को देखा। तो गुरु ने कहा कि मरे हुए लोग आंख खोल कर देखा नहीं करते। यह तुम किससे सीख कर आ गए हो? और सिखावन से कोई कभी सत्य को उपलब्ध नहीं होता। तो वह युवक रोने लगा और उसने कहा कि मैं सब उपाय कर चुका, और यह आखिरी उपाय था। अब कुछ करने को बचा नहीं। यह निष्क्रियता कैसे उपलब्ध हो?

उसके गुरु ने कहा कि जब तक तुम पूछते हो कैसे, हाऊ, तब तक तुम कभी उपलब्ध न हो सकोगे। क्योंकि कैसे का मतलब ही क्या होता है? उसका मतलब होता हैः किस प्रकार, किस विधि से, किस प्रयत्न से, किस काम से मैं पा सकूंगा? तुम कर्म को ही पूछे चले जाते हो।

निष्क्रियता, हुई-हाई ने कहा है, पाई नहीं जाती, निष्क्रियता मौजूद है। और निष्क्रियता पाने का कोई उपाय नहीं; वह मौजूद है। सिर्फ सक्रियता से ध्यान निष्क्रियता पर हट जाए। यह सिर्फ ध्यान के हटने की बात है। बादल से ध्यान आकाश पर हट जाए। आकाश को पाना नहीं है, आकाश है। और हमने उसे कभी खोया भी नहीं है। ज्यादा से ज्यादा हम भूल सकते हैं। और आकाश को बनाना भी नहीं है। और हमारे किसी प्रयत्न से वह बन भी न सकेगा। और हमारे प्रयत्न से जो बन जाए, वह आकाश नहीं होगा।

इसलिए आत्मा को पाने के लिए कोई भी प्रयास नहीं है। और आत्मा को पाने के लिए कोई भी साधना नहीं है। सारी साधनाएं और सारे प्रयास, वह जो हमारे भीतर बादलों का जगत है, उस जगत से ध्यान को हटाने के लिए ही हैं।

लाओत्से का यह सूत्र, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें।"

शब्दों के कारण भ्रांति पैदा करता है। इससे लगता है उपलब्ध करें, कुछ पाने को है। लेकिन यह भाषा की मजबूरी है। और लाओत्से पहले ही कह चुका है कि जो मैं कहना चाहता हूं, वह कहा नहीं जा सकता। और जो मैं कहूंगा, उसमें भूल हो जानी अनिवार्य है। हमारी सारी की सारी भाषा क्रिया पर निर्भर है। अगर एक आदमी मर जाता है, तो भी हम कहते हैं वह आदमी मर गया, जैसे मरना उनका कोई काम हो। मरना एक क्रिया है। हम कहते हैं फलां आदमी मर गया, जैसे कि मरने का कोई काम उन्होंने किया हो। मरने के लिए आपको कुछ

करना नहीं पड़ता। लेकिन हमारी पूरी भाषा क्रिया पर चलती है। चलेगी ही। हम जीवन को बादलों से ही जानते हैं। और वहां तो सब कर्म है, गति है। इसलिए जो भी हम... ।

हम किसी को कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, जैसे कि प्रेम कोई कर्म हो। अब तक दुनिया में कोई प्रेम कर नहीं सका है। प्रेम कोई कृत्य नहीं है कि आप कर लें। प्रेम या तो होगा या नहीं होगा; करने का कोई सवाल नहीं है। अगर है तो ठीक; नहीं है तो ठीक। चेष्टा करके आप प्रेम नहीं कर सकते हैं। प्रेम का क्रिया से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन भाषा में प्रेम भी क्रिया है। हम कहते हैं, मां बेटे को प्रेम करती है। मां और बेटे के बीच प्रेम होता है; करती नहीं है। करने का तो कोई उपाय ही नहीं है। हम तो प्रेम जैसी घटना को भी क्रिया बना लेते हैं। ठीक ऐसे ही हमने ध्यान को भी क्रिया बना लिया है। एक आदमी कहता है, मैं ध्यान करता हूं। मजबूरी है। भाषा सभी चीजों को क्रिया में बदल देती है। स्थितियों को भी क्रिया में बदल देती है।

इसलिए बड़ा विपरीत है यह सूत्र, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें।"

उपलब्ध करने में क्रिया है। और निष्क्रियता की स्थिति पानी है। निष्क्रियता पानी है, तो उपलब्धि तो नहीं हो सकती। सब उपलब्धियां क्रियाएं हैं। धन पा सकते हैं आप, धन की उपलब्धि हो सकती है। यश पा सकते हैं, पद पा सकते हैं। वे सब क्रियाएं हैं। लेकिन निष्क्रियता कैसे पाइएगा?

लाओत्से का मतलब है कि हमारे भीतर दो तल हैं। एक तल पर क्रियाएं हैं; बादल हैं, लहरें हैं, तरंगें हैं। और ठीक उसी के नीचे गहराई में आकाश है। उसी आकाश में ये सारे बादल घिरे हैं। और वह आकाश असीम है। और ये बादल बड़े सीमित हैं। इन बादलों को पार करके देखने की क्षमता ही निष्क्रियता की उपलब्धि हो जाती है।

इसलिए दूसरे ही सूत्र में वह कहता है, इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में, "निष्क्रियता की चरम स्थिति को उपलब्ध करें; और प्रशांति के आधार से दृढ़ता से जुड़े रहें।"

और जब आपको दिखाई पड़ जाए आपके ही भीतर कि आकाश भी है, तो फिर बादलों में मत भटकें। और चाहे कितनी ही बादलों में यात्रा करें, लेकिन आकाश से सतत जुड़े रहें। स्मरण आकाश का ही रखें। कितने ही दूर निकल जाएं, लेकिन ध्यान सदा उस आकाश का ही रखें, जो भीतर अनुभव में हुआ है। कितने ही कर्म करें, कितने ही दौड़ते रहें, लेकिन ध्यान उसका ही रखें, जो भीतर नहीं दौड़ रहा है, कभी नहीं दौड़ा, जिसके दौड़ने का कोई उपाय ही नहीं है।

कभी आपने कोशिश की? कभी दौड़ कर देखें। आप ट्रेन पर सवार होते हैं। आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जो ट्रेन पर सवार नहीं होता। ट्रेन चलती है। आप भी ट्रेन के साथ गतिमान होते हैं। आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जिसमें कोई गति नहीं होती। आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं। लेकिन आपके भीतर कुछ ऐसा भी है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। आप कितने ही चलते-फिरते रहें, आपके भीतर एक अचल तत्व भी है।

उस अचल, निष्क्रिय आकाश को ही सदा ध्यान में रखें। आपके ऊपर क्रोध के बादल आ गए, या कामवासना ने मन को धुएं से भर दिया, या लोभ का जहर फैल गया; तब भी इन बादलों के बीच पीछे छिपे आकाश को स्मरण रखें। क्योंकि बादल अभी नहीं थे, अभी हैं, अभी फिर नहीं हो जाएंगे। और जो क्षण भर को आया है और क्षण भर में चला जाएगा, उसके कारण विचलित होने का कोई भी कारण नहीं है। उससे विचलित वही होता है, जो भीतर के शांति के प्रगाढ़ आधार को भूल जाता है।

एक सूफी कथा है। एक सम्राट ब.ूढा हुआ। उसने अपने मंत्रिमंडल को बुलाया और उनसे कहा कि मैं बूढ़ा हुआ और मौत करीब आती है। अब तक मैंने ज्ञान की कोई कभी चिंता नहीं की। लेकिन मौत करीब आती है, तो ज्ञान की भी चिंता पैदा होती है। अगर मौत न होती, तो शायद दुनिया में ज्ञानी ही मुश्किल से होते। अगर मौत न होती, तो शायद धर्मों का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता था। अगर मौत न होती, तो तत्व-चिंतन की कोई जगह नहीं बन सकती थी। उस बूढ़े सम्राट ने कहा कि मन बहुत घबड़ाता है। और अब मैं कोई ऐसा आधार चाहता हूं, जहां इस घबड़ाहट से मैं बच सकूं। और अब तक मैंने जो भी इंतजाम किए, वे सब व्यर्थ हुए जाते हैं। अब तक उनका भरोसा था बहुत। फौजें थीं, तोपें थीं, महल थे, किले थे; सुरक्षित था। लेकिन अब ये फौजें और ये पत्थर की दीवारें कुछ भी न कर पाएंगी। मौत करीब आई चली जाती है। मुझे कोई ऐसा सूत्र चाहिए कि मौत मुझे भयभीत न करे। यह बुढ़ापा द्वार पर दस्तक देता है; बहुत कंपता है मन।

मंत्रियों ने कहा, हम सलाह दे सकते थे कि और बड़ा किला कैसे बनाया जाए; हम सलाह दे सकते थे कि फौजें और बड़ी कैसे की जाएं; लेकिन जिस संबंध में आप पूछ रहे हैं, उस संबंध में तो हमें कुछ भी पता नहीं है।

तो सारे राज्य में खबर, खोजबीन की गई। एक बूढ़े फकीर ने आकर कहा कि मैं एक सूत्र दिए देता हूं, जो वक्त पर काम पड़े। लेकिन जब तक वक्त न आ जाए, तब तक इसे खोल कर देखना मत। वक्त! जब तुम्हें ऐसा लगे कि सब उपाय व्यर्थ हो गए, तुम जो भी कर सकते थे, अब किसी काम का न रहा। जब तक तुम कर सको, तब तक तुम कर लेना। जब तुम पाओ कि तुम्हारी करने की क्षमता चुक गई, अब तुम कुछ भी न कर पाओगे, तभी इस सूत्र को देखना। उसने एक ताबीज में बंद करके वह सूत्र दे दिया।

सम्राट ने वह ताबीज अपनी बांह पर बांध लिया। कई मौके आए, जब मन हुआ कि खोल कर ताबीज देख ले; लेकिन तभी उसे पता चला कि अभी तो मैं कुछ कर सकता हूं।

वर्षों बीत गए। फिर दुश्मन का हमला हुआ और वह राज्य हार गया। और हारा हुआ घोड़े पर भागा जा रहा है, दुश्मन उसके पीछे हैं। तब अचानक उसे ताबीज का ख्याल आया। पर उसे लगा, अभी तो मैं कुछ कर ही सकता हूं। अभी दुश्मन दूर हैं, तेज घोड़ा मेरे पास है, अभी मैं इन सीमाओं के बाहर निकल ही जा सकता हूं। वह भागता रहा। लेकिन अचानक एक ऐसे मोड़ पर पहुंचा पहाड़ के कि आगे रास्ता समाप्त था और गड्ढ आ गया। पीछे लौटने का कोई उपाय न रहा, पीछे दुश्मन हैं। उनके घोड़ों की टाप प्रतिपल बढ़ती चली जाती है। और आगे खड्ड है, और आगे जाया नहीं जा सकता। और रास्ता बस एक छोटी पगडंडी है। आखिरी घोड़े की टाप मालूम पड़ने लगी कि बस अब छाती पर ही पड़ रही है, सिर पर ही पड़ रही है, तब उसने तोड़ कर ताबीज पढ़ा। उसमें एक छोटा सा वाक्य लिखा था। लिखा थाः यह भी बीत जाएगा, दिस टू विल पास। और कुछ भी न था। कोई उपाय भी न था करने का। ताबीज हाथ में लिए वह खड़ा रहा। बुद्धि कुछ साथ न देती मालूम पड़ी। यह भी फकीर ने क्या धोखा दिया! सोचता था, कोई मंत्र होगा, कोई जादू होगा, कोई चमत्कार की ताकत होगी कि कुछ भी कर लूंगा। इसमें कुछ भी न था; एक कागज के छोटे से टुकड़े पर लिखा थाः यह भी बीत जाएगा।

खड़ा रहा शांत। घोड़ों की टापों की आवाजें बढ़ती गईं, बढ़ती गईं, बढ़ती गईं--और फिर धीमी पड़ने लगीं। उन्होंने कोई दूसरा रास्ता पकड़ लिया था। फिर घोड़े दूर निकल गए। फिर उसने ताबीज को वापस बांध लिया। वापस उसकी फौजें जीत गईं। वह अपने राज्य में लौट आया।

लेकिन तब से वह हर घड़ी ताबीज को खोल कर और पढ़ने लगा। हर घड़ी! किसी ने उसे गाली दे दी है, अपमान कर दिया है, और वह कागज को पढ़ लेता और मुस्कुराता और ताबीज को बंद कर लेता। उस दिन से उसे किसी ने चिंतित नहीं देखा। उस दिन से उसे किसी ने दुखी नहीं पाया। उस दिन से किसी ने उसे क्रोधी नहीं

पाया। उस दिन से मौत, जीवन, कोई चिंता उसकी न रह गई। उसके मंत्री उसके आस-पास घूमते थे कि कभी उसके कागज में झांक लें--क्या है मंत्र! आदमी बिल्कुल ही बदल गया। क्या है जादू उस मंत्र में? बस एक छोटा सा सूत्र थाः यह भी बीत जाएगा।

अगर ठीक से समझें, तो जो भी बीत जाता है, वह आपके भीतर बादल है। और जो नहीं बीतता, वही आप हैं। जो भी आता है और बीत जाता है, वह आप नहीं हैं। इस बात की स्मृति गहरी हो जाए, तो आप प्रशांति के आधार से जुड़ गए। वह सम्राट जुड़ गया प्रशांति के आधार से। जो मेरे भीतर नहीं बीतता है कभी, वही मैं हूं। लेकिन मेरी सब क्रियाएं बीत जाती हैं। मैं कुछ भी करूं, वह बीत जाता है। तो मेरे करने से शाश्वत नियम से कोई जोड़ नहीं है। वरन मेरे न करने की जो अवस्था है, वही शाश्वत से संयुक्त है।

"सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं।"

सभी चीजें रूप लेती हैं, सक्रिय हो जाती हैं। बादल रूप लेता है, सक्रिय हो जाता है। वृक्ष रूप लेता है, सक्रिय हो जाता है। वासना आपके भीतर रूप लेती है, सक्रिय हो जाती है।

"सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं; लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं।"

लाओत्से कहता है, सभी कुछ बनता है, निर्मित होता है। फिर हम इन्हें लौटते भी देखते हैं, वापस विश्रांति में गिरते भी देखते हैं। जब सभी बन कर गिर जाता है... । अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि सभी रूप, चाहे वे सुंदर हों या कुरूप, चाहे वे प्रीतिकर हों या अप्रीतिकर, बनते हैं और बिखर जाते हैं; बिखरना अनिवार्य नियम है; बनने का ही हिस्सा है बिखर जाना; जो आज पैदा हुआ है, वह मरने को ही पैदा हुआ है; और जो फूल खिला है, वह गिरने को ही खिला है; वह गिरना, कुम्हलाना, बिखर जाना खिलने का ही दूसरा हिस्सा है; अगर इतना आर-पार दिखाई पड़ना शुरू हो जाए, तो आपके पास धर्म की आंख पैदा हो गई।

बुद्ध कहते थे धर्म-चक्षु इसको। वे कहते थे, सब अनित्य है, सब मरणधर्मा है; कुछ भी टिकेगा नहीं, कुछ भी बचेगा नहीं; जिसका भी आदि है, उसका अंत है; इसे जो देख लेता है, उसे धर्म-चक्षु उपलब्ध हो जाता है। उसे वह आंख मिल जाती है, जिसको हम धर्म की आंख कहें। कुरान को कोई कंठस्थ कर ले, तो वह आंख नहीं मिलती। और न गीता को कंठस्थ करने से मिलती है। वह आंख मिलती है इस अनुभव से।

हमें तो रूप दिखाई पड़ता है। आकाश में एक बादल बना, तो हमें बादल दिखाई पड़ता है, आकाश खो जाता है। जो सदा था और जो अभी भी है और जो आगे भी होगा, वह भूल जाता है; और बादल सब कुछ हो जाता है। और जब बादल होता है, तो हम यह भूल ही जाते हैं कि थोड़ी देर में बादल बिखर जाएगा। यह बादल कुछ भी नहीं है, सिर्फ घनी हो गई भाप है, सिर्फ सघन हो गया धुआं है। यह खो जाएगा। जो व्यक्ति, बादल घिरे हों, तब भी यह देख पाता है; जिस व्यक्ति के लिए, जब बादल घिरे हों, तब भी आकाश स्वच्छ दिखाई पड़ता है, उसे धर्म की आंख उपलब्ध हो गई।

सब रूप निर्मित होते हैं, बिखर जाते हैं। लेकिन रूप मन को बड़ा पकड़ लेते हैं। वास्तविक रूपों को तो हम छोड़ दें; अगर एक सुंदर शरीर की तस्वीर भी है, तो लोग उसको भी छाती से लगाए देखे जाते हैं। कागज के टुकड़े पर स्याही की रेखाएं एक रूप बन जाती हैं। लोग उससे भी आंदोलित होते हैं। लोग उससे भी प्रभावित होते हैं। लोग उससे भी जकड़ जाते हैं। तो जो कागज पर खींची गई रेखाओं से आंदोलित हो जाते हैं, वे अगर मांस-मज्जा और हड्डी की रेखाओं से प्रभावित हो जाते हों तो आश्चर्य तो नहीं है।

लेकिन जो कागज पर खींची रेखाओं से आंदोलित होते हैं, वे अगर थोड़ा गौर से देख पाएं, तो पीछे कोरा कागज ही दिखाई पड़ेगा। और जो हड्डी-मांस-मज्जा से भी प्रभावित होते हैं, वे भी थोड़ा गहरा देख पाएं, तो उन्हें भी पीछे कोरा आकाश ही दिखाई पड़ेगा। सभी रूप स्याही से खींची गई रेखाओं के ही रूप हैं। सभी रूप--चाहे एक वृक्ष निर्मित हो रहा हो, और चाहे एक व्यक्ति निर्मित हो रहा हो, और चाहे एक सूर्य निर्मित हो रहा हो--सभी रूप... ।

बुद्ध ने कहा है, सभी चीजें संघात हैं, जोड़ हैं। सभी जोड़ बिखर जाते हैं।

बुद्ध की मृत्यु करीब आई है। भिक्षु रो रहे हैं। एक भिक्षु बुद्ध से पूछता है कि अब आपका क्या होगा? आप कहां जाएंगे? किस मोक्ष में?

बुद्ध ने कहा, मैं कहीं भी नहीं जाऊंगा। और जिसे तुम समझते थे मेरा होना, वह तो सिर्फ संघात है। वह तो केवल रेखाओं का जोड़ है। वह तुम्हारे सामने बिखर कर यहीं मिट्टी में मिल जाएगा। तुम ही उसे दफना आओगे। जिसे तुम समझते हो मेरा होना, वह तो यहीं मिट्टी में मिल जाएगा। वह रूप तो इसी मिट्टी से निर्मित हुआ है। और जो मैं हूं, उसका कहीं कोई आना-जाना नहीं है। लेकिन उसे तुम नहीं जानते हो।

प्रत्येक रूप के भीतर अरूप छिपा है। बिना अरूप के रूप नहीं हो सकता; जैसे मैंने कहा, बिना आकाश के बादल नहीं हो सकते। अरूप अनिवार्य है रूप के लिए।

लेकिन रूप हमें दिखाई पड़ता है, अरूप हमें दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से कहता है, "सभी चीजें रूपायित होकर सक्रिय होती हैं; लेकिन हम उन्हें विश्रांति में पुनः वापस लौटते भी देखते हैं।"

यही देख लेना धर्म है।

"जैसे वनस्पति-जगत लहलहाती वृद्धि को पाकर फिर अपनी उदगम-भूमि में लौट जाता है।"

एक पौधा निर्मित होता है। फूल खिलते हैं, सुगंध आती है, हवाओं से टक्कर लेता है, सूरज को छूने की आकांक्षा से आकाश की यात्रा पर निकलता है। कितना रंग! कितना रूप! कितनी आकांक्षा! कितना दृढ़ विश्वास! फिर सब खो जाता है। फिर साल-छह महीने बाद वहां जाकर देखें, तो कुछ भी नहीं है। मिट्टी वापस मिट्टी में गिर गई। जैसे एक लहर ने छलांग ली हो और फिर वापस गिर गई हो। लेकिन जब यह पौधा होता है और जब इसमें फूल खिलते हैं, जब यह रूपायित होता है, तब हमें पीछे का खाली आकाश दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से वही कह रहा है, लेकिन सब चीजें वापस लौट जाती हैं।

जिस व्यक्ति को चीजों का वापस लौटना भी दिखाई पड़ने लगता है, वही व्यक्ति निष्क्रियता की चरम सीमा को छू पाएगा। और वही व्यक्ति विश्रांति के आत्यंतिक आधार के साथ जुड़ जाएगा।

"उदगम को लौट जाना विश्रांति है।"

यह तो दृष्टि की बात हुई। यह तो दृष्टि उपलब्ध होनी चाहिए। यह दिखाई पड़ना चाहिए।

एक पौधे को तो हम देख भी सकते हैं आर-पार कि कल यह मिट जाएगा। लेकिन यह पौधे को हम देख रहे हैं। एक बादल को तो हम देख भी सकते हैं कि घड़ी भर बाद बिखर जाएगा। लेकिन यह बादल को हम देख रहे हैं। जिस दिन कोई व्यक्ति इस अंतर्दृष्टि को स्वयं पर भी लागू कर लेता है, जिस दिन वह कहता है कि मुझमें भी जो दिखाई पड़ रहा है--यह मेरी देह, और यह मेरा मन, और ये मेरे विचार, और यह मेरी अस्मिता, मेरा अहंकार, यह मेरी बुद्धि--यह जो कुछ भी मुझे दिखाई पड़ रहा है मुझमें, यह भी वापस उदगम में गिर जाएगा, वैसे ही जैसे सब रूप गिर जाते हैं। जब कोई व्यक्ति इस दृष्टि को अपने पर भी लौटा लेता है, तब लाओत्से कहता

है, उदगम को लौट जाना विश्रांति है। और ऐसे अनुभव में जो भर जाता है, वह लौट गया अपने उदगम को। जिसे यह दिखाई पड़ गया अपने भीतर कि मेरा भी सब जो भी रूपायित है, वह सब बिखर जाएगा; वह आज ही अपनी विश्रांति में लौट गया।

यह वचन बहुत कीमती है, "टु रिटर्न टु दि रूट इ.ज रिपोज।"

वह जो मूल उदगम है, जो जड़ें हैं, वहां लौटने का जो बोध है, वह लौट जाना है। और अपनी जड़ों को, अपने उदगम को पा लेना परम विश्रांति है।

वह जो बुद्ध के चेहरे पर शांति की छाया है, वह किसी ध्यान का परिणाम नहीं है, वह किसी मंत्र-जप का परिणाम नहीं है। अगर एक व्यक्ति मंत्र को जपता रहे, तो भी चेहरे पर एक शांति आनी शुरू हो जाती है--कल्टीवेटेड, चेष्टा से निर्मित। अगर एक व्यक्ति को केमिकली शांत करना हो, तो किया जा सकता है। उसके सारे खून में अगर ट्रैंक्वेलाइजर्स ही डाल दिए जाएं, तो चेहरे पर एक शांति आ जाएगी; लेकिन मुर्दा, मरी हुई, मरघट की शांति! बुद्ध के चेहरे पर जो जीवित शांति है, वह किसी क्रिया का फल नहीं है। वह उस उदगम में लौट जाने से जो रिपोज, जो विश्रांति मिलती है, वही है। बुद्ध को बैठा हुआ देखें, उनकी मूर्ति को देखें। तो जो भी उनकी मूर्ति को गौर से देखेगा, उसे लगेगा जैसे इस मूर्ति के भीतर भी कोई सेंटर है जिस पर यह पूरी मूर्ति उस केंद्र से जुड़ी है। यह पूरी मूर्ति भी जैसे किसी केंद्र से जुड़ी है। कोई केंद्र सब चीजों को सम्हाले हुए है।

अगर आपको कोई देखे चलते, उठते, बैठते, तो ऐसा पता चलेगा कि आपके भीतर कोई केंद्र नहीं है। या बहुत केंद्र एक साथ हैं। एक भीड़ आपके भीतर है। एक बाजार भरा है; उसमें कई तरह के लोग हैं, बड़े विपरीत स्वर हैं। जो बादलों से अपने को जोड़ेगा, उसकी यही हालत हो जाएगी। आकाश तो एक है, बादल अनेक हैं। और जो अभी छोटा बादल है, थोड़ी देर बाद बड़ा हो जाएगा। और जो अभी बड़ा बादल है, थोड़ी देर बाद टुकड़े-टुकड़े में बिखर जाएगा। और बादल के रूपों का भी कोई भरोसा है? अभी जो बादल बहुत सुंदर लग रहा था, क्षण भर बाद कुरूप हो जाएगा। बादल तो धुआं है, वह प्रतिपल रूप बदल रहा है।

तो जो व्यक्ति भी अपने को अपनी क्रियाओं से जोड़ता है, जो व्यक्ति भी अपने को अपनी उपलब्धियों से जोड़ता है, जो व्यक्ति भी अपने भीतर बादलों का ही इकट्ठा अहंकार है, वह व्यक्ति प्रतिपल एक भीड़ में डोल रहा है। जैसे ही किसी व्यक्ति को यह ख्याल में आना शुरू हो जाता है... ।

कठिन है यह ख्याल में आना। और सिर्फ तात्विक चिंतन से नहीं ख्याल में आएगा। मैं यह भी देख सकता हूं कि यह वृक्ष कल गिरेगा; यह देखना बहुत कठिन है कि कल मैं गिरूंगा। सभी लोग जानते हैं कि सभी लोग मरेंगे--सिर्फ स्वयं को छोड़ कर। सभी लोग जानते हैं कि सभी हड्डी-मांस-मज्जा के पुतले हैं--स्वयं को छोड़ कर। स्वयं को हम जोड़ते ही नहीं कभी, वह हिसाब में ही नहीं है। उसे हम बचा कर ही चलते हैं। यह ख्याल में ही नहीं आता कि इस सारे बदलते हुए रूप के जगत में मैं भी एक रूप हूं। बहुत पीड़ा होगी यह ख्याल में लाना। उस पीड़ा को ही तपश्चर्या कहें। यह मानना कि मैं भी हड्डी-मांस-मज्जा हूं, यह जानना कि मैं भी कागज पर खींची गई रेखाओं की एक आकृति हूं, यह अनुभव करना, प्रतिपल इस अनुभव को स्मरण रखना कि धुएं का एक बादल हूं, अति कठिन है। क्योंकि यह अगर ख्याल में रहे, तो अहंकार को खड़े होने की जगह कहां? फिर मैं अपनी प्रतिमा कैसे बनाऊं? मेरा फिर इमेज कहां बने? फिर मैं कौन हूं?

खलील जिब्रान ने कहा है कि जब तक अपने को नहीं जानता था, तब तक समझता था एक ठोस प्रतिमा हूं। और जब अपने को जाना और मुट्ठी खोली, तो पाया कि हाथ में सिर्फ धुएं को मुट्ठी में बंद करके बैठा था।

हम सब की मुट्ठियों में भी धुआं बंद है। लेकिन इसे सुन लेते हैं, शायद बौद्धिक रूप से समझ में भी आ जाए; लेकिन अंतस्तल में प्रवेश नहीं होता। क्यों नहीं होता? क्योंकि हमने जो भी अपने चारों तरफ जिंदगी बना कर रखी है, अगर मैं यह जान लूं कि मैं मुट्ठी में बंद एक धुआं का टुकड़ा हूं, तो मेरे चारों तरफ जो मैंने बना कर रखा है वह अभी बिखर जाए। किसी ने मुझसे कहा है कि आप बहुत सुंदर हैं और मुझे आपसे प्रेम है। और अगर मुझे आज पता चले कि मैं एक धुएं का टुकड़ा हूं, तो मेरे प्रेम का क्या होगा? और किसी से मैंने कहा है कि मेरा प्रेम कोई कथा-कहानियों का प्रेम नहीं है, यह शाश्वत प्रेम है, मैंने किया है तो सदा करूंगा। अगर मुझे पता चले कि जिसने यह आश्वासन दिया है, वह खुद ही धुएं का एक पिंड है, उसके आश्वासनों का कोई भरोसा नहीं है, तो मेरे प्रेम का क्या होगा? मैंने अपने चारों तरफ जो इनवेस्टमेंट किए हैं जिंदगी में, वे सब मुझे कहेंगे कि ऐसी बातें मत सोचो, तुम काफी ठोस हो, तुम्हारे वचनों का अर्थ है, तुम्हारे वक्तव्य टिकेंगे। लोग गीत गाते हैं कि चांद-तारे नहीं रहेंगे, तब भी उनका प्रेम रहेगा। उस सब का क्या होगा? वह जो दूर अनंत पर हमने सपने फैला रखे हैं!

अगर मैं ही धुआं हूं, तो मेरे प्रेम का क्या अर्थ है? और अगर मैं ही धुआं हूं, तो मेरे वचन का क्या मूल्य है? और जब मैं ही मिट जाऊंगा, तो मेरे वचन और मेरे कृत्य, उन सब को किस तराजू पर तौलने का उपाय है? कोई उपाय नहीं है। इसलिए कठिनाई होती है। बात कभी समझ में भी आ जाती है। किन्हीं क्षणों में लगने भी लगता है, ये सब पानी पर खींची गई लकीरें हैं। लेकिन तब भय मन को पकड़ता है; क्योंकि वह चारों तरफ जो जाल हमने फैला कर रखा है, उसका क्या होगा? घबड़ा कर हम वापस, जैसी जिंदगी चलती है, उस ढांचे में उसे चलने देते हैं।

हर ढांचा हमारी दृष्टि पर निर्मित है। अगर हमारी दृष्टि बदलती है, तो पूरा ढांचा बदलना पड़ेगा, पूरा पैटर्न जिंदगी का बदलना पड़ेगा।

लिन यूतांग ने एक संस्मरण लिखा है। चीन से किसी मित्र ने एक जर्मन विचारक को एक छोटी सी लकड़ी की पेटी भेंट की--बहुत खूबसूरत, बहुत कलात्मक, हजारों वर्ष पुरानी। लेकिन जिसने भी उस पेटी को निर्मित किया था, उस पर एक शर्त खुदी थी कि पेटी का मुंह सूरज की तरफ ही होना चाहिए। और हजारों वर्षों में जितने लोग उस पेटी के मालिक रहे थे, उन्होंने उस शर्त को पाला था। चीनी मित्र ने कहा कि मैं यह भेंट तो कर रहा हूं, लेकिन एक शर्त के साथः सूरज की तरफ इस पेटी का मुंह होना चाहिए। इसे किसी हालत में न तोड़ा जाए; यह हजारों वर्ष की वसीयत है। मित्र ने कहा, ऐसी क्या कठिनाई है, इसका हम पालन करेंगे।

लेकिन जब मित्र ने आकर अपने बैठकखाने में पेटी रखी और उसका मुंह सूरज की तरफ किया, तो पूरा बैठकखाना बेजोड़ मालूम पड़ने लगा। तो उसने बजाय पेटी को बदलने के, पूरे बैठकखाने को बदलवा दिया। खर्चीला था काम। सब फर्नीचर फिर से बनाया गया, दीवारों का रुख ठीक किया गया, दरवाजे बदले गए। लेकिन तब बैठकखाना पूरे घर में गैर-मौजूं हो गया। हिम्मतवर आदमी था, उसने पूरे घर को बदलवा कर बैठकखाने के हिसाब से बनवाया। लेकिन तब उसने पाया कि उसका घर पूरे पड़ोस से बेमौजूं हो गया। पर उसने कहा, अब तो मेरी सीमा के बाहर है मामला।

एक छोटी सी बदलाहट चारों तरफ बदलाहट लाना शुरू कर देती है। और दृष्टि की बदलाहट छोटी बदलाहट नहीं है। दृष्टि की बदलाहट गहरी से गहरी बदलाहट है। जैसे ही दृष्टि बदलती है, आप वही आदमी नहीं रहे, जो एक क्षण पहले थे। आपका सब बदलेगा। वह घबड़ाहट कि यह सबको कैसे बदला जाएगा, आदमी को रोक लेती है। और यही साहस न हो, तो आदमी जीवन भर धर्म की बातें सुनता रहे, धार्मिक नहीं हो पाता।

लाओत्से कहता है, "उदगम को लौट जाना विश्रांति है।"

वह जो मूल आकाश है, वह जो शून्य छिपा है भीतर--और आकाश का अर्थ शून्य है, आकाश का अर्थ है नथिंगनेस। आकाश कोई वस्तु तो नहीं है। आकाश है अस्तित्व, वस्तु नहीं। आकाश का कोई रूप तो नहीं है, आकाश में कोई ठोसपन तो नहीं है, फिर भी आकाश है, रिक्त स्थान है आकाश, अवकाश है, स्पेस है। सब कुछ उसी में होता है और मिटता है। और वह अछूता, अस्पर्शित बना रहता है।

"इसे ही अपनी नियति में वापस लौटना कहते हैं।"

लाओत्से कहता है, इस उदगम में गिर जाना, मूल स्रोत में गिर जाना या मूल स्रोत के साथ अपने को एक अनुभव कर लेना ही नियति में वापस लौटना है, स्वभाव में, प्रकृति में। वही हमारी डेस्टिनी है, वही हमारी नियति है। और जब तक कोई व्यक्ति इस मूल उदगम के साथ एक नहीं हो जाता, तब तक भटकता ही रहता है। जन्मों-जन्मों भटक सकता है। जब तक किसी ने रूप के साथ अपने को जोड़ा, आकृति के साथ अपने को जोड़ा, तब तक भटकता ही रहेगा। यह जो जन्मों की इतनी लंबी यात्रा है, यह रूप के पीछे है, आकार के पीछे है।

"स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना शाश्वत नियम को पा लेना है।"

तो जगत में दो नियम हैं। एक जिसे हम जगत कहते हैं, वहां परिवर्तन नियम है, दि चेंज इ.ज दि लॉ। जिसे हम जगत कहते हैं, वहां परिवर्तन नियम है। सब कुछ नदी की तरह बहा जाता है। वहां कुछ भी पुनरुक्त नहीं होता और वहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। विज्ञान इसी परिवर्तन के जगत की खोज है। और इसलिए विज्ञान को रोज अपने नियम बदलने पड़ते हैं।

एक मजाक वैज्ञानिकों में चलता है। जैसा कि बाइबिल में कहा है कि ईश्वर ने कहा कि प्रकाश हो जा, और प्रकाश हो गया! तो वैज्ञानिकों में एक पुराना मजाक था कि जब न्यूटन पैदा हुआ, तो न्यूटन के साथ इतिहास एक नया मोड़ लेता है। विज्ञान के जगत में न्यूटन से ज्यादा कीमती आदमी दूसरा नहीं है। तो वैज्ञानिकों में एक मजाक प्रचलित हुआ कि ईश्वर ने कहा कि न्यूटन हो जा और न्यूटन हो गया! और फिर दुनिया कभी वैसी नहीं हो सकी, जैसी न्यूटन के पहले थी।

फिर हुआ आइंस्टीन, तो किसी ने उस मजाक में थोड़ी बात और जोड़ दी। क्योंकि न्यूटन के साथ पैदा हुआ कानून, नियम। और न्यूटन ने जगत को समझाने के तीन नियम स्थापित किए, और सब चीजें व्यवस्थित हो गईं। न्यूटन पैदा हुआ, और सब चीजें व्यवस्थित हो गईं। तीन नियम सुनिश्चित रूप से निर्धारित हो गए। और सारा जगत न्यूटन के पहले एक केऑस था, एक अराजकता थी, न्यूटन के बाद एक व्यवस्था हो गई। फिर मजाक में किसी और दूसरे ने जोड़ दिया कि फिर ईश्वर न्यूटन से परेशान हो गया, और उसकी व्यवस्था से; क्योंकि सब व्यवस्थाएं उबाने वाली हो जाती हैं। तो ईश्वर ने कहा कि आइंस्टीन हो जा, और आइंस्टीन हुआ! एंड ही ब्राट दि ओल्ड केऑस बैक। और वह जो पुरानी अराजकता थी न्यूटन के पहले, आइंस्टीन ने वापस खड़ी कर दी। उसने सब नियम डगमगा दिए। सब अस्तव्यस्त हो गया। न्यूटन ने बामुश्किल, दो और दो चार होते हैं, यह सिद्ध किया। और आइंस्टीन ने कहा कि दो और दो चार कभी हो ही नहीं सकते। सब अस्तव्यस्त हो गया।

और आइंस्टीन ने भी जो कहा, वह रोज बदलना पड़ता है, रोज बदलना पड़ता है। विज्ञान रोज बदलता रहेगा; क्योंकि विज्ञान जिसकी खोज करता है, वह जगत ही रोज बदलता चला जाता है। जिस चीज की हम खोज कर रहे हों अगर वह रोज बदलती जाती हो, तो उसका कोई भी फोटोग्राफ ज्यादा देर तक काम का नहीं रहेगा। दो-चार दिन बाद हमें पता चलेगा कि यह तो किसी और का चित्र है। चित्र तो ठहर जाएंगे और जगत

चलता चला जाएगा। इसलिए जगत का कोई चित्र आत्यंतिक, अल्टीमेट नहीं हो सकता। आइंस्टीन ने कहा है कि जगत का ज्ञान कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता; क्योंकि वह रोज बदलता चला जा रहा है।

यह मामला कुछ ऐसा है कि आपके गांव का जो रास्ता है, स्टेशन पहुंच जाता है; क्योंकि स्टेशन चलती-फिरती नहीं है। कल आप जिस रास्ते से गए, आज भी जाएंगे, वहीं मिल जाएगी। लेकिन अगर स्टेशन चलती-फिरती हो, तो फिर रास्ते तय नहीं रह जाते। तब कभी गलत रास्ते से चला हुआ आदमी भी पहुंच सकता है और कभी सही रास्ते से चला हुआ आदमी भी न पहुंचे। वह तो स्टेशन थिर है, इसलिए रास्ते तय हैं।

अगर जगत ही एक अथिरता है, एक परिवर्तन है, तो उसके कोई नियम थिर नहीं हो सकते। इसलिए विज्ञान को हर दो, चार, पांच वर्षों में करवट बदल लेनी पड़ती है। तो विज्ञान आज से तीन सौ साल पहले तो कहता था कि सत्य की हमारी खोज है। बर्ट्रेंड रसेल ने अभी कुछ वर्ष पहले कहा था, सत्य की बात बंद कर दो; सिर्फ सत्य के निकट पहुंचने की खोज काफी है। डोंट टाक अबाउट एब्सोल्यूट ट्रुथ, ओनली एप्रॉक्सीमेट ट्रुथ इ.ज इनफ। बस करीब-करीब सत्य।

लेकिन ध्यान रहे, करीब-करीब सत्य कुछ होता है? करीब-करीब प्रेम कुछ होता है? करीब-करीब चोरी कुछ होती है? करीब-करीब सत्य कुछ भी नहीं होता। करीब-करीब सत्य का मतलब यह है, ऐसा असत्य जो अभी काम दे रहा है। कल पता चल जाएगा, काम नहीं देगा। तब दूसरे असत्य से काम लेना पड़ेगा। परसों पता चल जाएगा, फिर तीसरे असत्य से काम लेना पड़ेगा। करीब-करीब सत्य का अर्थ होता है, जो असत्य अभी असत्य सिद्ध नहीं किया जा सका है।

लेकिन यह स्वाभाविक है, यह स्वाभाविक है। क्योंकि जिस विषय से विज्ञान का संबंध है, वही बदलता चला जाता है।

लाओत्से कहता है, एक शाश्वत नियम भी है, एक इटरनल लॉ भी है; वह नहीं बदलता। लेकिन उसके लिए फिर जो-जो बदलता है, उसे छोड़ कर खोजना पड़ेगा। जो भी बदलता है, उसे छोड़ कर खोजना पड़ेगा। इसलिए धर्म के नियम बदलते नहीं।

पश्चिम में कई विचारकों को चिंता जन्मती है। बुद्ध ने कुछ कहा, कृष्ण ने कुछ कहा, या क्राइस्ट ने कुछ कहा। और आज तो हमारे मुल्क में भी बहुत लोगों को पश्चिम का ख्याल महत्वपूर्ण मालूम होगा। कि बुद्ध को मरे ढाई हजार वर्ष हो गए, बुद्ध का सत्य आज भी सत्य कैसे हो सकता है? ठीक है, अगर सौ वर्ष पहले के विज्ञान का सत्य सौ वर्ष बाद सत्य नहीं रह जाता, दस वर्ष पहले का विज्ञान का सत्य दस वर्ष बाद सत्य नहीं रह जाता, तो ढाई हजार साल पहले हुए कृष्ण या बुद्ध या महावीर का सत्य कैसे सत्य रह जाएगा? और उनका कहना ठीक है; क्योंकि जो भी सत्य की तरह वे जानते हैं, वह रोज बदलता चला जाता है। लेकिन उन्हें कृष्ण के सत्य का कोई पता नहीं है। उन्हें लाओत्से के सत्य का कोई पता नहीं है।

लाओत्से उस सत्य की ही बात कर रहे हैं, जहां परिवर्तित होने वाला सब छोड़ दिया गया है। वह शर्त पहले ही पूरी कर दी गई है। जो बदलने की धारा है, उस धारा को छोड़ ही दिया गया है। धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं है। धर्म का तो उससे लेना-देना है, जिसमें यह बदलती धारा बह रही थी। बादलों से कोई प्रयोजन नहीं है; आकाश की खोज है, जिसमें बादल बनते हैं और बिगड़ते हैं।

निश्चित ही, कोई आदमी कह सकता है कि बादल सुबह देखो, दोपहर वही नहीं रह जाते, सांझ वही नहीं रह जाते। और एक से बादल तो दुबारा कभी देखे नहीं जा सकते। यह तुम किस आकाश की बात कर रहे हो? जब बादल बदल जाते हैं, तो आकाश भी बदल जाता होगा। तुम उसी आकाश की बात किए चले जाते हो।

लेकिन आकाश सनातन है। जो भी बदलता है, वह आकाश में है; लेकिन आकाश नहीं है वह। जो भी बदलता है, वह आकाश में ही बदलता है; पर आकाश नहीं बदलता।

इस आकाश की जो खोज है, इस इनर स्पेस की, अंतर-आकाश की जो खोज है, इसे लाओत्से कहता है, जब भी कोई पा लेता है, तो उसने अपनी नियति पा ली। उसने पा लिया, जिसे पाने पर सब मिल जाता है और जिसे न पाने पर कुछ भी नहीं मिलता। उसने अपना घर पा लिया। उसने खोज लिया घर, अब सरायों में ठहरने की जरूरत न रही। अब वह अपने घर आ गया है। अब कहीं जाने का कोई सवाल नहीं है। अब वह जगह मिल गई, जिसकी तलाश थी।

हर आदमी तलाश में है, पता हो उसे, न हो पता। हो सकता है, यह भी पता न हो, क्या खोज रहा है। सच तो यही है कि पता नहीं है कि क्या खोज रहे हैं। अगर कोई आदमी आपसे पूछे कि कहें ईमानदारी से, क्या खोज रहे हैं? तो आपको बड़ी बेचैनी मालूम होगी। और इसीलिए इस तरह के अशिष्ट प्रश्न कोई किसी से पूछता नहीं, क्योंकि ये बेचैनी पैदा करते हैं। और अगर कोई जोर से पूछता ही चला जाए, तो थोड़ी देर में घबड़ाहट शुरू हो जाएगी। आप क्या खोज रहे हैं? दूसरे दिन सुबह बिस्तर से उठना मुश्किल हो जाएगा--किसलिए उठ रहे हैं? क्या है खोज? कुछ पता नहीं है, क्या खोज रहे हैं। लेकिन खोज जरूर रहे हैं कुछ--कुछ अनजान। कोई चीज धकाए चली जाती है।

और फिर ऐसा भी नहीं है कि इस खोज में कुछ मिलता न हो। बहुत कुछ मिलता है; और तृप्ति बिल्कुल नहीं होती। इस जगत का मजा यही है कि यहां जो भी चाहो, वह कोशिश करने से मिल ही जाता है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कोशिश करने से मिल ही जाता है। और जब मिल जाता है, तब पता चलता है कि कोशिश व्यर्थ गई। मिल तो गया; कुछ मिला नहीं। जो आदमी अपनी सब आकांक्षाएं पा ले, उससे ज्यादा दुखी आदमी खोजना फिर मुश्किल है।

थोड़ा सोचें। अगर परमात्मा एकदम प्रकट हो जाए आज इस भवन में, और आपसे कहे कि आपकी सब इच्छाएं पूरी हो गईं! आपसे ज्यादा दुखी आदमी इस पृथ्वी पर फिर दूसरे नहीं होंगे। क्या करिएगा? कहां जाइएगा फिर? श्वास लेने की भी तो जरूरत न रह जाएगी। मरने के सिवाय कोई उपाय न बचेगा। यही होती है हालत। जो भी पा लेता है अपनी आकांक्षाओं को, वह अचानक पाता है कि अब कुछ बचा नहीं है। अब क्या करना है? और तृप्ति बिल्कुल नहीं होगी। सब मिल जाए, तो भी तृप्ति नहीं होगी। क्योंकि अभी तक हमने उसे तो खोजने की शुरुआत ही नहीं की है, जो नियति है। नियति का अर्थ होता है, डेस्टिनी का अर्थ होता हैः जिसे पा लेने पर तृप्ति हो जाए।

इस फर्क को ठीक से समझ लेना आप। उसे नियति नहीं कहते, जिसे आप पाना चाहते हैं। आप जिसे पाना चाहते हैं, वह नियति हो भी सकती है, न भी हो। पता तो तब चलता है, जब वह आपको मिल जाए। जब आपको मिल जाए, तब अगर आपको कोई तृप्ति न हो, तो समझना कि वह नियति नहीं थी। नियति का अर्थ ही यह है कि उस क्षण आप उस परम बिंदु पर पहुंच गए, जहां फिर कोई और इच्छा नहीं है, जहां फिर कोई खोज नहीं है, और तृप्ति है। जहां कोई भविष्य नहीं है, और परम तृप्ति है।

लेकिन हम जो-जो चाहते हैं... । एक आदमी यश चाहता है, यश मिल जाता है एक दिन। और तब वह पाता है कि क्या है मेरे हाथ में, कुछ भी नहीं है। पास-पड़ोस के लोग मेरे संबंध में अच्छा सोचते हैं, बस यही मेरी मुट्ठी में है, और तो कुछ भी नहीं है। एक आदमी धन इकट्ठा कर लेता है। और एक दिन फिर धन को देखता

है और पाता है कि पूरा जीवन चुका दिया इन टुकड़ों को इकट्ठा करने में। अब ये इकट्ठे हो गए। अब इनको गले में बांध कर फांसी ही लगाई जा सकती है, और कुछ नहीं किया जा सकता।

बर्नार्ड शॉ ने लिखा है कि जिन लोगों ने कहा है कि नरक में बहुत सताए जाओगे, वे बहुत कल्पनाशील नहीं थे। बर्नार्ड शॉ ने कहा, अगर मेरे बस में हो नरक की तस्वीर देनी तो मैं दूंगा ऐसी तस्वीर कि जहां तुम जो चाहोगे वह उसी वक्त मिल जाएगा। इससे बड़ा नरक दूसरा नहीं हो सकता। तुमने चाहा नहीं कि मिला नहीं। इधर चाह और उधर पूरी हो गई। और तृप्ति बिल्कुल नहीं होगी, क्योंकि हमारी कोई भी चाह नियति की चाह नहीं है।

हम जो भी चाह रहे हैं, वह शायद हमारी चाह ही नहीं है। एक पड़ोस का आदमी एक कार खरीद लाता है, और आप में भी एक चाह पैदा हो जाती है कि यह कार मेरे पास भी हो जाए। एक पड़ोस का आदमी एक मकान बना लेता है, और आपकी भी चाह हो जाती है कि आप भी एक मकान बना लें। हम उधार जी रहे हैं, चाहें भी हमारी उधार हैं; वे भी हमारी अपनी नहीं हैं।

नियति का अर्थ है, वह चाह जो आपके स्वभाव में है, जिसको आपने किसी से सीख नहीं लिया है।

इसलिए आज भलीभांति, बाजार में जो व्यापार की कला को जानते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि वह पुराना अर्थशास्त्र का नियम गलत है कि जब लोगों में मांग होती है, तो ही तुम चीजें पैदा करो तो वे बिकेंगी। अब तो लोग भलीभांति जानते हैं कि लोगों की कोई मांग तो है ही नहीं, तुम पहले मांग पैदा करवाओ। इसलिए बाजार में दस साल बाद अगर उत्पत्ति आने वाली हो आपकी, आपका सामान आने वाला हो, तो दस साल पहले से एडवरटाइज करो। अभी बाजार में कोई चीज ही नहीं है। पहले वासना पैदा कर दो।

और लोग उधार वासना से जीते हैं। दूसरे उनको पकड़ा देते हैं। फिर वे उसी के पीछे दौड़ने लगते हैं। और जीवन भर आदमी ऐसा दौड़ता रहता है। इसलिए जब आपकी वासना पूरी होती है, तब आप पाते हैंः यह तो कुछ भी न हुआ, यह तो राख हाथ लग गई। अब मैं क्या करूं? लेकिन सोचने की अभी फुर्सत नहीं है। क्योंकि तब तक और लोग कुछ और पकड़ा देते हैं और आप भागे चले जाते हैं।

हर आदमी मरते वक्त जानता है कि मैं न मालूम किन-किन के पीछे दौड़ता रहा, न मालूम किन-किन की इच्छाएं मैं पूरी करने की कोशिश करता रहा! मेरी भी कोई अपनी नियति थी? मैं भी कुछ पाने को इस जगत में था? मेरा भी कोई होने का क्रम था? अवसर तो खो गया, समय तो व्यतीत हो गया--कभी कपड़े जुटाने में, कभी मकान बनाने में, कभी नाम-यश कमाने में। लेकिन मेरी नियति क्या थी? मैं क्या पाने को था?

लाओत्से कहता है, नियति तो उसी दिन उपलब्ध होती है, जिस दिन कोई इस शाश्वत नियम को, इस आकाश को अपने भीतर पा लेता है।

"स्वयं की नियति को पुनः उपलब्ध हो जाना शाश्वत नियम को पा लेना है। शाश्वत नियम को जानना ही ज्ञान से आलोकित होना है। और शाश्वत नियम का अज्ञान ही समस्त विपत्तियों का जनक है।"

यह बादलों के पीछे जो भागने से विपत्तियां पैदा हो रही हैं; यह जो इतना दुख आदमी उठाता है उन सुखों को पाने के लिए, जिनको पाने पर कोई सुख नहीं मिलता; इतना जो दुख उठाता है उन मंजिलों पर पहुंचने के लिए, जहां पहुंच कर सिवाय थकान के कुछ हाथ नहीं लगता; और हर मंजिल एक पड़ाव सिद्ध होती है फिर किसी नई मंजिल की खोज के लिए; यह इतना दुख, लाओत्से कहता है, उस शाश्वत नियम को न जानने का परिणाम है।

काश, हम जान सकें कि हमारे भीतर कोई एक ऐसा तत्व भी है, अपरिवर्तनीय, अमृत, सदा; और हम उसके साथ अपना संबंध जोड़ लें, एक हो जाएं! फिर कितने ही बादल घिरें, और कितनी ही आंधियां उठें, फिर कोई अंतर न पड़ेगा, फिर कोई अंतर न पड़ेगा। फिर जरा सा कंपन भी भीतर पैदा न होगा। बादल आएंगे और चले जाएंगे, तूफान उठेंगे और बिखर जाएंगे, और भीतर सघन शांति बनी रहेगी।

इस सघन शांति के सूत्र को पाने के लिए तीन बातें आखिरी मैं आपसे कहूं।

एक, सदा अपने भीतर और अपने बाहर भी, क्या परिवर्तित हो रहा है, वह, और क्या परिवर्तित नहीं होता, इसमें विवेक को, डिस्क्रिमिनेशन को बनाए रखें। निरंतर यह ख्याल रखें कि महत्वपूर्ण वही है, जो बदलता नहीं है। जो बदल जाता है, वह महत्वपूर्ण नहीं है, वह गैर-महत्वपूर्ण है। अपने भीतर भी जो बदल जाता है, उसका कोई मूल्य नहीं है। जो नहीं बदलता, वही मूल्यवान है।

उठते, बैठते, चलते, उसका ही स्मरण रखें। रास्ते पर चल रहे हैं, तो ध्यान रखें भीतर उसका जो नहीं चलता। जो चल रहा है, वह ठीक है। भोजन कर रहे हैं, ध्यान रखें उसका जो भोजन नहीं करता और जिसे भूख भी नहीं लगती। ठीक है, शरीर को भोजन देना है, उसे देते रहें। रात बिस्तर पर गए हैं सोने को, जानें कि शरीर थक गया है और सोने जा रहा है, लेकिन वह भी है भीतर जो कभी नहीं सोता। हर क्रिया में उसका स्मरण रखें, जो साक्षी है, जो देख रहा है।

भूख लगती है, तो हम तत्काल कहते हैं, मुझे भूख लगी। लेकिन भला बाहर ऐसा कहना पड़े, भीतर ऐसा स्मरण रखें कि मुझे पता चल रहा है कि शरीर को भूख लगी, मुझे पता चल रहा है कि पेट को भूख लगी। अपने को द्रष्टा से ज्यादा नहीं, कर्ता कभी न मानें। क्योंकि जैसे ही कर्ता माना, कर्म से संबंध जुड़ गया। जब आपको भूख लगेगी, तो फिर आपको ही भोजन भी करना पड़ेगा। जब आप जानेंगे कि शरीर को भूख लगी, तो आप भोजन में भी जानेंगे कि शरीर ने ही भोजन किया।

और पीछे एक रिक्त द्रष्टा, एक ऑनलुकर, एक दर्शक, भीतर देखने वाला पैदा हो जाएगा। और तब सारी जिंदगी एक नाटक हो जाती है। तब क्रिया का जगत एक नाटक हो जाता है। और वह निष्क्रियता ही आपका अस्तित्व बन जाती है। निष्क्रियता को उपलब्ध करें, निष्क्रियता को सदा स्मरण रखें। ध्यान को सदा निष्क्रियता पर दौड़ाते रहें। ध्यान जिस चीज पर दें, वह दिखाई पड़ने लगता है।

इस कमरे में हम बैठे हैं। इसको मनोवैज्ञानिक गेस्टाल्ट कहते हैं। इस मकान में हम बैठे हैं। एक बार इस तरह देखें कि यह मकान दीवारों से बना है। ध्यान दीवारों पर दें। बीच-बीच में दरवाजे भी दिखाई पड़ेंगे, लेकिन वे केवल दीवारों के बीच-बीच में होंगे। दीवारें महत्वपूर्ण हैं। ध्यान दीवारों पर दें। फिर अचानक, ख्याल भूल जाएं कि मकान दीवारों से बना है, ख्याल करें कि मकान तो एक रिक्तता है; मकान दरवाजों से बना है, दीवारें बीच-बीच में हैं। और तब आप पाएंगे कि इसी कमरे के भीतर आपको दो तरह के अनुभव होंगे।

शायद यह कठिन मालूम पड़े, तो कुछ ऐसा करें: अपनी तीन अंगुलियां अपनी आंख के सामने कर लें और ध्यान दें कि बीच की अंगुली केंद्र है। बीच की अंगुली पर ध्यान दें, कि वह केंद्र है, दोनों अंगुलियां उसके आजू-बाजू हैं। और देखें, एक-दो मिनट ऐसे देखें। फिर अचानक ध्यान को बदलें, वहीं आंख रखें, दोनों अंगुलियों पर ध्यान दें कि दोनों अंगुलियां महत्वपूर्ण हैं, बीच की अंगुली बस बीच में है। और तब आपको पता चलेगा कि इतने से फर्क से आपके भीतर सब बदलाहट हो जाती है। जब आप बीच की अंगुली पर ध्यान देंगे, तो दोनों अंगुलियां बिल्कुल फीकी, मुर्दा मालूम पड़ेंगी, जैसे हैं ही नहीं। कहीं दूर मालूम पड़ेंगी। जब आप दोनों अंगुलियों पर ध्यान देंगे, तो बीच की अंगुली गौण हो जाएगी।

या ऐसा करें। एक हाथ नीचे रखें, अपना दूसरा हाथ ऊपर रखें और दूसरे हाथ को चलाएं। और ध्यान दें कि मैं, जो हाथ चल रहा है, उसमें हूं। तो आपको दूसरा हाथ बिल्कुल पराया मालूम पड़ेगा, अपना नहीं है। फिर ध्यान को बदल दें और ख्याल करें कि जो हाथ ठहरा हुआ है, वह मैं हूं; और हाथ को चलाएं। तब आप फौरन पाएंगे कि जो हाथ ठहरा हुआ है, वह आप हैं; जो हाथ चल रहा है, वह किसी और का है।

यह इसलिए कह रहा हूं कि ध्यान की बदलाहट सिर्फ फोकस बदलने की बात है, सिर्फ फोकस बदलने की। ये दोनों हाथ मेरे हैं। और आपको पता भी नहीं चलेगा कि मैं इस समय किस हाथ से अपने को जोड़े हुए हूं। जो हाथ ऊपर चल रहा है, अगर मैंने उससे अपने को जोड़ा है, तो नीचे का हाथ पराया हो गया। वह मैं नहीं हूं। और आप बराबर अनुभव करेंगे कि नीचे का हाथ आप नहीं हैं; जो चल रहा है, वह आप हैं। फिर ठहरे हुए के साथ ध्यान को बदल दें। बाहर कोई बदलाहट नहीं हो रही, लेकिन भीतर फोकस बदल गया। ध्यान की धारा ऊपर के हाथ में बह रही थी, वह नीचे के हाथ में चली गई। ऊपर का हाथ दूसरे का मालूम पड़ने लगेगा।

जब आप भोजन कर रहे हैं और सोचते हैं, मैं भोजन कर रहा हूं, तब एक हालत है ध्यान की। और जब आप कहते हैं, अनुभव करते हैं कि भोजन शरीर कर रहा है, मैं देख रहा हूं, तब ध्यान का फोकस बदल गया, ध्यान दूसरा हो गया। जब आप रास्ते पर चलते वक्त सोचते हैं, मैं चल रहा हूं, तो ध्यान एक है। अगर आप ऐसा ध्यान कर पाएं कि मैं देख रहा हूं और शरीर चल रहा है, तत्काल फोकस बदल गया, गेस्टाल्ट बदल गया, पूरा ढांचा बदल गया।

लाओत्से की निष्क्रियता को अगर अनुभव करना हो, तो अपने भीतर जो आकाश है, सदा उस पर ध्यान रखें, और जो-जो बादल हैं, उन पर ध्यान मत रखें। उनको उड़ने दें, चलने दें, लेकिन ध्यान आकाश पर हो।

क्या है आपके भीतर आकाश? भूख लगती है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। क्रोध आता है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। घृणा आती है, यह एक बादल है; प्रेम आता है, यह एक बादल है; आता है, चला जाता है। दुख या सुख, सम्मान या अपमान, कुछ भी आता है, चला जाता है बादल की तरह। कौन है जो इस सबको देखता रहता है? कौन है भीतर जो जाग कर इस सबको देखता रहता है? ध्यान उसका रखें। सारी ध्यान की धारा को उससे जोड़ दें। देखने वाले के साथ एक हो जाएं। करने वाले के साथ संबंध छोड़ दें; द्रष्टा के साथ एक हो जाएं। और तत्काल आप पाएंगे कि आप भीतर उससे जुड़ गए, जो आकाश है--निष्क्रिय। इस निष्क्रिय के साथ जुड़ते ही जीवन के सारे दुख विसर्जित हो जाते हैं; मृत्यु, परिवर्तन, सब स्वप्न हो जाते हैं।

लाओत्से कहता है, यही है शाश्वत नियम।

आज इतना ही। लेकिन बैठें। पांच मिनट कीर्तन करके जाएं। और कीर्तन में भी ख्याल रखें, जो किया जा रहा है, वह आप नहीं हैं; जो हो रहा है, वह आप नहीं हैं।

बैठे रहें! जिनको कीर्तन करना है, वे ऊपर आ जाएं या नीचे आ जाएं।

अड़तीसवां प्रवचन

ताओ का द्वार--सहिष्णुता व निष्पक्षता

Chapter 16 : Sutra 2

Knowing The Eternal Law

He who knows the eternal law is tolerant;
Being tolerant, he is impartial;
Being impartial, he is kingly;
Being kingly, he is in accord with nature;
Being in accord with nature,
he is in accord with Tao;
Being in accord with Tao, he is eternal;
And his whole life is preserved from harm.

अध्याय 16 : सूत्र 2

शाश्वत नियम का ज्ञान

जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है;
सहिष्णु होकर वह निष्पक्ष हो जाता है;
निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है;
इस गरिमा के साथ प्रतिष्ठित हो वह हो जाता है स्वभाव के साथ अनुरूप;
स्वभाव के अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है;
ताओ में प्रविष्ट वह अविनाशी है;
और इस प्रकार उसका समग्र जीवन दुख के पार हो जाता है।

उन्नीस सौ उनसठ में एक बहुत अनूठी नोबल प्राइज दो अमरीकी वैज्ञानिकों को दी गई। एक का नाम है डाक्टर सेग्रेल और दूसरे का नाम है डाक्टर चैंबरलेन। अनूठी इसलिए कि उन्होंने जो खोज की, वह अब तक की सारी वैज्ञानिक व्यवस्था के प्रतिकूल है। और जिस कारण से उन्हें नोबल पुरस्कार मिला, वह कारण, अब तक के विज्ञान का जो भवन है, उस पूरे भवन को भूमिसात कर देता है। उन्होंने जो बात कही, वह लाओत्से के तो

करीब पड़ती है, न्यूटन के करीब नहीं पड़ती। उन्होंने जो खोज की, उससे गीता का मेल बैठ सकता है, मार्क्स का मेल नहीं बैठ सकता।

वह खोज है एंटी-प्रोटोन की। इन दोनों वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि जगत में पदार्थ है, मैटर है, तो एंटी-मैटर भी होना जरूरी है। क्योंकि इस जगत में कोई भी चीज बिना विपरीत के नहीं हो सकती है। यहां प्रकाश है, तो अंधकार है। और जन्म है, तो मृत्यु है। अगर पदार्थ है, मैटर है, तो एंटी-मैटर, पदार्थ के प्रतिकूल भी कुछ होना चाहिए। और उन्होंने जो कहा, वह सिर्फ कहा नहीं, उसे सिद्ध कर लिया। उनका कहना है, इस पदार्थ के बीच भी, जहां प्रोटोन काम कर रहा है, जहां पदार्थ के अन्यतम आधारभूत अणु काम कर रहे हैं, वहां एंटी-प्रोटोन, ठीक उनके विपरीत भी एक शक्ति काम कर रही है।

वह शक्ति हमें साधारणतः दिखाई नहीं पड़ती और उसका हमें कोई अनुभव नहीं होता। लेकिन इस जगत में कोई भी चीज बिना प्रतिकूल के नहीं हो सकती है। दि अपोजिट इ.ज इनएविटेबल। वह जो प्रतिकूल है, वह अनिवार्य है, अपरिहार्य है। उससे बचा नहीं जा सकता। उन प्रतिकूलों से मिल कर ही जगत निर्मित होता है। उसे सेग्रेल और चैंबरलेन ने एंटी-प्रोटोन कहा है, या एंटी-मैटर कहा है। और लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध और क्राइस्ट उसे दूसरे नाम देते रहे हैं--आत्मा कहें, शाश्वत नियम कहें, मोक्ष कहें, परमात्मा कहें। एक बात उन सब की समान है कि वह इस संसार के प्रतिकूल है, इस संसार से बिल्कुल विपरीत है। और समस्त धर्म की अब तक की खोज यही है कि संसार नहीं हो सकता, अगर इसके प्रतिकूल कोई संसार न हो।

बहुत मजे की बात है कि सेग्रेल और चैंबरलेन ने यह भी अनुमान दिया है... ।

यह तो अभी अनुमान है। जो उन्होंने सिद्ध किया, वह मैंने आपसे कहाः एंटी-मैटर के बिना मैटर नहीं हो सकता। उसके उन्होंने वैज्ञानिक प्रमाण दिए। उस पर ही उन्हें नोबल पुरस्कार मिला है। उनकी एक परिकल्पना भी है, जो कभी सही हो सकती है। क्योंकि वह परिकल्पना भी इसी सिद्धांत पर आधारित है, जो कि सिद्ध हो गया है।

उनका कहना है कि जैसे हमारे इस जगत में नियम हैं--जैसे ग्रेविटेशन नीचे की तरफ खींचता है, पानी नीचे की तरफ बहता है, आग ऊपर की तरफ उठती है, प्रोटोन एक खास परिक्रमा में घूमते हैं--इन दोनों वैज्ञानिकों का कहना है कि ठीक इस जगत को बैलेंस करने के लिए कहीं एक जगत और होना ही चाहिए, जो इसके बिल्कुल प्रतिकूल हो, जहां पानी ऊपर की तरफ जाता हो और जहां आग नीचे की तरफ बहती हो और जहां प्रोटोन उलटी परिक्रमा करते हों।

यह तो अभी परिकल्पना है। लेकिन यह सबल है; क्योंकि जिन आदमियों ने कही है, वे कोई मिस्टिक, कोई रहस्यवादी नहीं हैं, कोई कवि नहीं हैं। और उनके कहने का कारण भी है, क्योंकि इस जगत में भी विपरीत के बिना कुछ नहीं चलता। तो इस बात की संभावना हो सकती है कि जिस जगत को हम जानते हैं, इससे विपरीत जगत भी हो, तभी यह पूरा विश्व संतुलित रह सके, तराजू के दोनों पलड़े संतुलित रह सकें। विज्ञान कब उसे सिद्ध कर पाएगा, नहीं कहा जा सकता। लेकिन धर्म सदा से ही यह मानता रहा है कि संसार के प्रतिकूल मोक्ष की संभावना है। ठीक संसार से विपरीत नियम वहां काम करते हैं।

जीसस ने कहा है, जो यहां प्रथम है, वहां अंतिम हो जाएगा; जो यहां अंतिम है, वहां प्रथम हो जाएगा। जो यहां इकट्ठा करेगा, वहां उससे छीन लिया जाएगा; जो यहां बांट देगा, वहां उसे मिल जाएगा।

यह कवि की भाषा में विपरीत की सूचना है कि वहां विपरीत नियम काम करेंगेः जो यहां अंतिम है, वहां प्रथम होगा। वहां यही नियम काम नहीं करेंगे; इनसे ठीक विपरीत नियम काम करेंगे। जीसस की भाषा कवि की

भाषा है। समस्त धर्म काव्य की भाषा में बोला गया है। शायद उचित भी यही है। क्योंकि विज्ञान की भाषा में जीवंतता खो जाती है, सुगंध तिरोहित हो जाती है, लय नष्ट हो जाती है, गीत समाप्त हो जाता है। मुर्दा आंकड़े रह जाते हैं।

और लाओत्से जिसे शाश्वत नियम कह रहा है, उस नियम को हम संक्षेप में ख्याल में ले लें, तो उसके सूत्र में प्रवेश हो जाए।

वह कह रहा है, एक तो जगत है परिवर्तन का, जहां सब चीजें बदलती हैं। लेकिन यही जगत नहीं है काफी। बल्कि इस जगत के होने के लिए भी एक जगत चाहिए, जहां परिवर्तन न हो, इससे विपरीत जहां शाश्वतता हो, जहां इटरनिटी हो, जहां कोई चीज बदलती न हो, जहां कोई चीज तरंगित न होती हो, जहां सब शून्य और परम शांत हो, जहां कोई भी कंपन न हो।

यहां सब चीजें कंपती हुई हैं। अगर हम विज्ञान से पूछें, तो विज्ञान कहेगा, इस जगत में जो कुछ भी है, सभी कुछ वाइब्रेशंस हैं, तरंगें हैं। तरंग का अर्थ है सभी कुछ कंपित है, सब कंप रहा है, हिल रहा है। कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, एक क्षण भी ठहरी हुई नहीं है। जितनी देर में मैं बोलता हूं, उतनी देर में भी वह बदल जाती है। यह जगत एक गहरी बदलाहट है। इसे हम जगत न कहें, एक बदलाहट की प्रक्रिया ही कहें--एक प्रवाह, एक फ्लक्स।

लाओत्से कहता है, ठीक इस जगत के नियम के प्रतिकूल, इसी जगत में छिपा हुआ वह सूत्र भी है, जहां सब सदा ठहरा हुआ है, जहां कुछ भी बदलता नहीं, जहां कोई तरंग नहीं है--निस्तरंग, वेवलेस! उसे वह कहता है शाश्वत नियम! और अगर यह परिवर्तन संभव होता है, तो उसी शाश्वत नियम के संतुलन में। अगर वह शाश्वत नियम नहीं है, तो परिवर्तन भी संभव नहीं है। और हर चीज विपरीत से निर्मित है। तो आपके भीतर शरीर भी है और आपके भीतर अशरीर भी है। मैटर भी और एंटी-मैटर भी, प्रोटोन भी और एंटी-प्रोटोन भी। आपके भीतर परिवर्तन भी है, और वह भी जो शाश्वत है।

लाओत्से कहता है, जो परिवर्तन को ही अपना होना समझ लेता है, वह विक्षिप्त है। वह पीड़ित होगा, दुखी होगा, परेशान होगा। क्योंकि जिससे वह अपने को जोड़ रहा है, वह एक क्षण भी ठहरा हुआ नहीं है। वह उसके साथ घसिटेगा; और जितनी भी आशाएं निर्मित करेगा, सभी धूल-धूसरित हो जाएंगी। क्योंकि परिवर्तन के साथ कैसी आशा? परिवर्तन का कोई भरोसा ही नहीं है। परिवर्तन का अर्थ ही है कि जिसका कोई आश्वासन नहीं है। परिवर्तन का अर्थ ही है कि जहां हम घर नहीं बना सकते--रेत पर घर नहीं बना सकते। वहां सब बदल रहा है। और इसके पहले कि हम घर की बुनियादें रखेंगे, वह भूमि बदल जाएगी जिस पर हमने बुनियादें खोदनी चाही थीं। और जब तक हम बुनियाद के पत्थर रख पाएंगे, तब तक वह आधार तिरोहित हो जाएगा जिस पर हमने सहारा लिया था।

इसलिए जो भी व्यक्ति परिवर्तन के जगत में अपने को जोड़ेगा, दुख उसकी नियति है। दुख का अर्थ हैः उसकी सभी आशाएं टूट जाएंगी और उसके सभी सपने खंडित हो जाएंगे। और जितने भी इंद्रधनुष वह फैलाएगा आशाओं के, अपेक्षाओं के, उतने ही उसके हाथ रिक्त होंगे; और उतनी ही दीनता उसके ऊपर होगी; उतनी ही पीड़ा, उतना ही संताप उसके जीवन का अनिवार्य अंग बन जाएगा। दुख का अर्थ है परिवर्तन से अपने को जोड़ लेना; आनंद का अर्थ है शाश्वत से अपने को संयुक्त कर लेना। दोनों हैं। हमारे ऊपर निर्भर है कि हम किससे अपने को जोड़ लेते हैं।

शाश्वत नियम का अर्थ हैः जो भी परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है, उससे विपरीत; जो भी दिखाई पड़ रहा है, उससे विपरीत। दिखाई पड़ने वाले में जो छिपा है, अदृश्य है। और जब हम छूते हैं, तो जो छूने में आता है, वह नहीं; बल्कि जो छूने में नहीं आता, वह।

एक शब्द मैं बोलता हूं या वीणा का एक तार छेड़ देता हूं, आवाज गूंज उठती है। एक स्वर कंपित होता है, आकाश उससे आंदोलित होता है, आपके कान पर उसका संघात पड़ता है, आपके हृदय में भी उसकी तरंग प्रवेश कर जाती है। फिर थोड़ी देर में वह स्वर खो जाएगा; क्योंकि स्वर परिवर्तन का हिस्सा है। थोड़ी देर पहले नहीं था; अब है; थोड़ी देर बाद फिर नहीं हो जाएगा। थोड़ी देर बाद स्वर खो जाएगा, झंकार लीन हो जाएगी, शब्द शून्य हो जाएगा। फिर सन्नाटा छा जाएगा। तार कंपेगा, ठहरता जाएगा, ठहर जाएगा। हृदय कंपित होगा, रुक जाएगा। स्वर सुनाई पड़ेगा; फिर शांति, सन्नाटा रह जाएगा।

स्वर परिवर्तन है। स्वर के पहले जो शून्यता थी, वह शाश्वतता है। और स्वर के बाद भी फिर जो शून्यता घिर जाएगी, वह शाश्वतता है। और स्वर भी जिस शून्यता में तरंगित हुआ, स्वर भी जिस शून्यता में गूंजा, वह भी शाश्वत है। प्रत्येक घटना शून्य में घटती है। शून्य से ही जन्मती है और शून्य में ही लीन हो जाती है।

लाओत्से कहता है, इस शाश्वत को जान लेना ही ताओ है। इस शाश्वत को जान लेना ही धर्म है।

अब हम उसके सूत्र को समझें।

"जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है। ही हू नोज दि इटरनल लॉ इ.ज टॉलरेंट।"

शायद यह कहना ठीक नहीं कि जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है। कहना यही ठीक होगा कि ही हू नोज दि इटरनल लॉ इ.ज टॉलरेंट। हो जाता है नहीं, जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता सहिष्णु होने के लिए। शाश्वत को जानते ही सहिष्णुता आ जाती है। क्यों? हमारी असहिष्णुता क्या है? हमारा अधैर्य क्या है?

वह जो परिवर्तित हो रहा है, वह कहीं परिवर्तित न हो जाए, यही तो हमारा अधैर्य है। वह जो बदल रहा है, वह कहीं बदल ही न जाए, यही तो हमारा संताप है। वह जो बदल रहा है, वह भी न बदले, यह हमारी आकांक्षा है। इसलिए हम सब बांध कर जीना चाहते हैंः कुछ भी बदल न जाए।

मां का बेटा बड़ा हो रहा है। वह खुद उसे बड़ा कर रही है। लेकिन जैसे-जैसे बेटा बड़ा हो रहा है, मां से दूर जा रहा है। बड़े होने का अनिवार्य अंग है। वह मां ही उसे बड़ा कर रही है; अर्थात मां ही उसे अपने से दूर भेज रही है। फिर छाती पीटेगी, फिर रोएगी। लेकिन बेटे को बड़ा करना होगा। प्रेम बेटे को बड़ा करेगा। और जो प्रेम बेटे को बड़ा करेगा, बेटा उसी प्रेम पर पीठ करके एक दिन चला जाएगा। तो मां जब बेटे को बड़ा कर रही है, तब वह बड़े सपने बांध रही है कि यह प्रेम सदा उस पर बरसता रहेगा! और उसने इतना किया है, यह बेटा भी उसके लिए इतना ही करेगा! हजार-हजार सपने बनाएगी। फिर वे सब सपने पड़े रह जाएंगे और बिखर जाएंगे।

वह जो परिवर्तित हो रहा था, उसके साथ कोई भी आशाएं बांधीं, तो कष्ट होगा। प्रेम भी एक बहाव है। और गंगा एक ही घाट पर नहीं रुकी रह सकती। और प्रेम भी एक ही घाट पर रुका नहीं रह सकता। आज मां के साथ प्रेम है, कल किसी और के साथ होगा। आज मां बांध कर दुखी होगी; कल पत्नी बांधने लगेगी और दुखी होगी। जो भी बांधेगा, वह दुखी होगा। परिवर्तन को बांधने की जो भी चेष्टा करेगा, वह दुखी होगा। फिर असहिष्णुता पैदा होगी, फिर बेचैनी पैदा होगी। फिर सहने की क्षमता बिल्कुल कम हो जाएगी।

हम सब असहिष्णु हैं, हम कुछ भी सह नहीं सकते। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं और मैं जिसे प्रेम करता हूं वह किसी दूसरे की तरफ प्रेम भरी आंख से देख ले, तो मैं विक्षिप्त हो जाता हूं। सह नहीं पाता।

लाओत्से कहता है, जो इस शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु है। क्योंकि वह जानता है, परिवर्तन के जगत में जो भी है, वह सभी परिवर्तित होता है। वहां कुछ भी ठहरता नहीं। वहां प्रेम भी ठहरता नहीं। वहां कोई आशा बांध कर नहीं जीना चाहिए। कोई जीए, तो दुखी होगा।

आप उलटे-सीधे चलेंगे, गिर पड़ेंगे, पैर टूट जाएगा, तो आप ग्रेविटेशन को, गुरुत्वाकर्षण को गाली नहीं दे सकते और न किसी अदालत में मुकदमा चला सकते हैं। और न आप परमात्मा से यह कह सकते हैं कि कैसी पृथ्वी तूने बनाई कि जरा ही संतुलन खोओ कि पैर टूट जाते हैं। यह गुरुत्वाकर्षण न होता तो अच्छा था!

गुरुत्वाकर्षण आपका पैर नहीं तोड़ता; नियम को न जान कर आप जो करते हैं, उससे पैर टूट जाता है। आप सम्हल कर चलते रहें तो गुरुत्वाकर्षण आपके पैर को तोड़ता नहीं, बल्कि सच तो यह है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण ही आप चल पाते हैं। नहीं तो चल ही नहीं सकेंगे।

नियम को जो जान लेता है, वह नियम के विपरीत आशाएं नहीं बांधता। जो जान लेता है कि परिवर्तन का नियम ही कहता है कि कुछ भी ठहरेगा नहीं। इसलिए जहां भी मैं ठहरने की इच्छा करूंगा, वहीं कठिनाई और जिच पैदा हो जाएगी। वहीं ग्रंथि बन जाएगी, वहीं अड़चन खड़ी हो जाएगी। जो व्यक्ति शाश्वत को जान लेता है, वह परिवर्तन को पहचान कर सहिष्णु हो जाता है। आज सम्मान है, कल अपमान है। तो सम्मान को पकड़ कर नहीं बैठता; जानता है कि सम्मान आज है, कल अपमान हो सकता है। आज आदर है, कल अनादर हो सकता है। क्योंकि यहां कोई भी चीज ठहरती नहीं, और आदर थिर नहीं हो सकता। और अनादर भी थिर नहीं होगा। वह भी आज है और कल नहीं हो जाएगा। जब ऐसा कोई देख पाता है, तो असहिष्णुता कैसी?

आप कल मुझे सम्मान दे गए, आज गालियां लेकर आ गए। असहिष्णुता पैदा होती है, क्योंकि मैं सोचता था, आज भी सम्मान लेकर ही आएंगे। आपके कारण नहीं, आपकी गालियों के कारण कोई पीड़ा नहीं पैदा होती; मेरी भ्रांत अपेक्षा टूटती है, इसलिए। क्योंकि मैं सोचता था, मान कर चलता था कि कल जो पैर छू गया, वह आज भी पैर ही छूने आएगा।

किसने कहा था मुझे कि यह आशा मैं बांधूं? और इस बदलते हुए जगत में कौन सा कारण था इस आशा को बांधने का? कल का गंगा का पानी कितना बह गया! कल के आदमी भी सब बह गए! कल का सम्मान-सत्कार भी बह गया होगा। चौबीस घंटे में क्या नहीं हो गया है! कितने तारे बने और बिखर गए होंगे! और कितने जीवन जन्मे और खो गए होंगे! इस चौबीस घंटे में इतना विराट परिवर्तन सारे जगत में हो रहा है, कि एक आदमी जो मेरे पैर छूने आया था, आज गाली लेकर आ गया, इस परिवर्तन को परिवर्तन जैसा कहने की भी कोई जरूरत है? जहां इतना सब बदल रहा हो, वहां इस आदमी का न बदलना ही हैरानी की बात थी। इसके बदल जाने में तो कोई हैरानी नहीं है। यह तो बिल्कुल नियमानुसार है। लेकिन अगर मेरी अपेक्षा थी कि कल भी आदर मिलेगा, तो मेरी अपेक्षा टूटेगी। और वही पीड़ा और वही मेरा दुख बनेगी। और उसके कारण ही असहिष्णुता पैदा होती है।

सहिष्णु का अर्थ हैः जो भी हो रहा है, परिवर्तन के जगत में होगा ही, इसकी स्वीकृति। जो भी हो रहा है। आज जीवन है, कल मृत्यु होगी। अभी सुबह है, अभी सांझ होगी। और अभी सब कुछ प्रकाशित था, और अभी सब कुछ अंधेरा हो जाएगा। और सुबह हृदय में फूल खिलते थे, और सांझ राख ही राख भर जाएगी। यह होगा ही। न तो सुबह के फूल को पकड़ने का कोई कारण है और न सांझ की राख को बैठ कर रोने की कोई वजह है।

परिवर्तन के सूत्र को जो ठीक से जान लेता है और अपने को उससे नहीं जोड़ता, बल्कि उससे जोड़ता है जो नहीं बदलता... । सिर्फ एक ही चीज हमारे भीतर नहीं बदलती है, वह है हमारा साक्षी-भाव। सुबह मैंने देखा था कि फूल खिले हैं हृदय में, सब सुगंधित था, सब नृत्य और गीत था। और सांझ देखता हूं कि सब राख हो गई, सुर-ताल सब बंद हो गए, सुगंध का कोई पता नहीं, स्वर्ग के द्वार बंद हो गए और नरक में खड़ा हूं। सब तरफ लपटें हैं और दुर्गंध है; कुछ भी सुबह जैसा नहीं रहा। सिर्फ एक चीज बाकी हैः सुबह भी मैं देखता था, अब भी मैं देखता हूं। सुबह भी मैंने जाना था कि फूल खिले और अब मैं जानता हूं कि राख हाथ में रह गई है। सिर्फ जानने का एक सूत्र शाश्वत है। एक दिन जवान था, एक दिन बूढ़ा हो गया हूं। एक दिन स्वस्थ था, एक दिन अस्वस्थ हो गया हूं। एक दिन आदर के शिखर पर था, एक दिन अनादर की खाई में गिर गया हूं। एक सूत्र शाश्वत है कि एक दिन आदर जानता था, एक दिन अनादर जाना। जानना भर शाश्वत है; बाकी सब बदल जाता है। सिर्फ द्रष्टा शाश्वत है; विटनेसिंग, चैतन्य शाश्वत है।

तो लाओत्से जब कहता है कि शाश्वत नियम को जो जान लेता है वह सहिष्णु हो जाता है, तो वह यह कह रहा है कि जो साक्षी हो जाता है वह सहिष्णु हो जाता है। साक्षी से इंच भर भी हटे कि पीड़ा और परेशानी का जगत प्रारंभ हुआ। एक क्षण को भी जाना कि परिवर्तन के किसी हिस्से से मैं जुड़ा हूं, एक क्षण को भी तादात्म्य हुआ कि शाश्वत से पतन हो गया।

"जो शाश्वत नियम को जान लेता है, वह सहिष्णु हो जाता है; सहिष्णु होकर वह निष्पक्ष हो जाता है।"

सहिष्णुता का अर्थ हुआः कुछ भी हो, असंतोष का उपाय नहीं है। कुछ भी हो--बेशर्त कुछ भी हो--संतोष मेरी स्थिति है। सहिष्णु का अर्थ हुआ कि मेरा संतोष किन्हीं कारणों पर निर्भर नहीं है।

एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है, क्योंकि बैंक में बैलेंस है। एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है; बच्चे हैं, पत्नी है, भरा-पूरा घर है। एक आदमी कहता है, बड़ा संतोष है; प्रतिष्ठा है, सम्मान है, लोग आदर देते हैं।

ये कोई भी संतोष नहीं हैं। ये कोई भी संतोष नहीं हैं, क्योंकि ये सब सकारण हैं। कल सुबह एक ईंट खिसक जाएगी इस भवन से और असंतोष ही असंतोष हो जाएगा। यह संतोष का धोखा है।

संतोष का अर्थ हैः अकारण। एक आदमी कहता है, मैं संतोषी हूं, संतोष है--कोई कारण से नहीं। शाश्वत को परिवर्तन से पृथक अनुभव करता हूं; शाश्वत में ठहरा हूं, परिवर्तन को पहचान लिया है। कारण हटाया नहीं जा सकता, कारण किसी के हाथ में नहीं है अब--अकारण, अनकंडीशनल, बेशर्त। सहिष्णुता या संतोष बेशर्त घटनाएं हैं।

बुद्ध को किसी ने आकर पूछा है कि आपके पास कुछ दिखाई तो नहीं पड़ता, फिर भी आप बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं! स्वाभाविक है उसका प्रश्न। कुछ दिखाई पड़ता हो, तो प्रसन्नता समझ में आती है। बुद्ध के पास कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। वे एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उनकी प्रसन्नता बेबूझ है। वह आदमी कहता है कि आप क्या मुझे समझाएंगे थोड़ा? सिर्फ पागल आदमी ही बिना कारण के ऐसा आनंदित हो सकता है। आप पागल भी दिखाई नहीं पड़ते। आप कौन हैं? लगता है ऐसा कि जैसे सारी पृथ्वी का साम्राज्य आपका हो। आप कोई सम्राट हैं? बुद्ध ने कहा, नहीं। उस आदमी ने पूछा, फिर क्या आप कोई देव हैं, जो पृथ्वी पर उतर आए? बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं देव भी नहीं हूं। वह आदमी ऐसे पूछता जाता है कि आप यह हैं, आप यह हैं? और बुद्ध कहते जाते हैं, नहीं, मैं यह भी नहीं हूं। नहीं, मैं यह भी नहीं हूं। वह आदमी बेचैन हो जाता है और वह कहता है कि कुछ भी आप नहीं हैं! कुछ तो आप कहें, आप कौन हैं?

तो बुद्ध ने कहा कि कभी मैं पशु भी था। पशु होने के कारण थे। वासनाएं ऐसी थीं कि पशु होना अनिवार्य था। कभी मैं मनुष्य भी था। वासनाएं ऐसी थीं, जो मुझे मनुष्य बनाती थीं। कभी मैं देव भी था। वासनाएं ऐसी थीं, जो मुझे देव बनाती थीं। वे सब कारण-अस्तित्व थे। अब तो मैं सिर्फ बुद्ध हूं। न मैं मनुष्य हूं, न मैं देव हूं, न मैं पशु हूं; मैं सिर्फ बुद्ध हूं।

उस आदमी ने पूछा कि बुद्ध का क्या अर्थ?

तो बुद्ध ने कहा, अब मैं सिर्फ जागा हुआ हूं। अब सिर्फ मैं एक जागी हुई चेतना हूं। अब मैं सिर्फ एक होश हूं, एक चैतन्य हूं। अब मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। क्योंकि व्यक्ति तो निर्मित ही होता है परिवर्तन को पकड़ लेने से, रूप को पकड़ लेने से। कभी मैंने पशुओं के रूप पकड़े, कभी मैंने मनुष्यों के, कभी मैंने वृक्षों के; वे मेरे व्यक्तित्व थे। अब मैं कोई व्यक्ति नहीं हूं। अब मैं सिर्फ एक चैतन्य मात्र हूं--एक ज्योति का दीया।

शाश्वत नियम को उपलब्ध कर लेने का यह अर्थ है कि साक्षीत्व का एक दीया--परिवर्तन मैं नहीं हूं, शाश्वत मैं हूं। फिर कोई असहिष्णुता पैदा नहीं होती। क्योंकि परिवर्तन से कोई लगाव ही न हो, तो लगाव के टूटने का भी कोई उपाय नहीं रह जाता। जो आशा रखते हैं, वे कभी निराश हो सकते हैं। लेकिन जो आशा ही नहीं रखते, उनके निराश होने का उपाय कहां? और जिनके पास संपत्ति है, वे कभी दरिद्र हो सकते हैं। लेकिन जिनके पास कुछ भी नहीं है, जो किसी संपत्ति से अपने को पकड़ नहीं लिए हैं, उनके दरिद्र होने का कोई उपाय नहीं है।

अगर मैंने कुछ पकड़ा नहीं है, तो आप उसे मुझसे छीन न सकेंगे। आपका छीनना संभव हो पाता है मेरे पकड़ने की वजह से। आप छीन सकते हैं, अगर मैं कुछ पकड़े हुए हूं। और अगर मैं कुछ भी पकड़े हुए नहीं हूं, तो आप छीन कैसे सकते हैं?

यह जो साक्षी-भाव है, यह जो शाश्वत नियम का बोध है, यह सारे परिवर्तन के जगत से पकड़ का छूट जाना है। फिर गंगा बहती रहती है और मैं किनारे बैठा हूं। और गंगा के पानी में कभी फूल बहते हुए आ जाते हैं, तो उनको देख लेता हूं। और कभी किसी का अस्थिपंजर बहता हुआ आता है, तो उसे देख लेता हूं। और कभी गंगा गंदे पानी से भर जाती है वर्षा के, मटमैली हो जाती है, तो उसे देख लेता हूं। और कभी ऐसी स्वच्छ हो जाती है कि आकाश के तारे उसमें झलकते हैं, तो उसे देख लेता हूं। लेकिन मैं गंगा नहीं हूं; उसके किनारे बैठा हूं।

परिवर्तन के किनारे जो साक्षी का भाव है, वह थिर हो जाए, तो फिर गंगा में क्या बहता है और क्या नहीं बहता, इससे मेरे भीतर कोई चिंता पैदा नहीं होती। और गंगा के निरंतर प्रवाह को देख कर मैं जानता हूं, आशा नहीं बांधनी चाहिए। इसमें कभी फूल भी आते हैं और कभी राख भी बहती है; इसमें कभी तारे भी झिलमिलाते हैं और कभी यह गंगा बिल्कुल गंदी हो जाती है और कुछ भी नहीं झिलमिलाता। और कभी यह गंगा विक्षिप्त होकर बहती है, बाढ़ तोड़ देती है। और कभी यह गंगा सूख कर दुबली-पतली धारा हो जाती है और शांत मालूम होती है। यह गंगा का होना है; इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। मैं उसके किनारे खड़ा हूं। शाश्वत नियम का बोध, परिवर्तन के किनारे जो साक्षी का भाव है, उसमें थिर हो जाने का नाम है।

लाओत्से कहता है, "जो सहिष्णु हो जाता है, वह निष्पक्ष हो जाता है।"

इसे समझना पड़े। असल में, पक्ष तभी तक हैं, जब तक परिवर्तन में कोई चुनाव है। मैं कहता हूं यह आदमी अच्छा है, क्योंकि यह आदमी मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करता है जैसी मेरी अपेक्षा है। और मैं कहता हूं यह आदमी बुरा है, क्योंकि यह आदमी वैसा व्यवहार करता है जैसी अपेक्षा नहीं है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा ही न हो, तो कौन आदमी अच्छा है और कौन आदमी बुरा है?

मैं कहता हूं यह आदमी संत है और कहता हूं यह आदमी दुष्ट है। जिसे मैं दुष्ट कहता हूं, वह दुष्ट है या नहीं, मुझे पता नहीं; लेकिन मेरी कुछ अपेक्षाएं हैं, जो वह तोड़ता है। और जिसे मैं संत कहता हूं, वह संत है या नहीं, पता नहीं; लेकिन मेरी कुछ अपेक्षाएं हैं, जिन्हें वह पूरी करता है।

अगर आप अपने संतों के आस-पास जाकर देखें और अपने दुष्टों के आस-पास जाकर देखें, तो आपको पता चलेगाः जो आपकी अपेक्षाएं पूरा कर दे, वह साधु। अगर आप मानते हैं कि मुंह पर एक पट्टी बांधने से आदमी साधु होता है, तो मुंह पर पट्टी बांधे मिलेगा तो आप पैर छू लेंगे। वही आदमी कल मुंह की पट्टी नीचे उतार कर रख दे, तो आप उसको घर में नौकरी देने को भी राजी न होंगे। अगर आपकी धारणा है कि... । आपकी धारणा जो भी पूरा कर दे! अगर साधुओं की जांच-पड़ताल करने जाएं, तो आप पाएंगे, उनमें जो आपकी धारणा जितनी पूर्णता से पूरी करता है, उतना बड़ा साधु है। जो थोड़ी-बहुत ढील-ढाल करता है, जो थोड़ा-बहुत इधर-उधर डांवाडोल होता है, वह उतना छोटा साधु है। साधु कौन है? आपकी अपेक्षा जो पूरी कर दे। असाधु कौन है? जो आपकी अपेक्षा तोड़ दे। लेकिन जिसकी कोई अपेक्षा न हो, उसके लिए कौन साधु और कौन असाधु?

लाओत्से यह कहता है, जो शाश्वत को जान लेता है, वह निष्पक्ष हो जाता है। उसके लिए राम और रावण में कोई भी फर्क नहीं है। क्योंकि राम और रावण का जो भी फर्क है, वह हमारी अपेक्षाओं का फर्क है। हम पर निर्भर है वह फर्क। वह हमारा विभाजन है। हमारी धारणाएं काम कर ही हैं। अगर मेरी कोई धारणा नहीं है, तो कोई भी फर्क नहीं है। निष्पक्ष होने का अर्थ है कि अब मेरा कोई चुनाव न रहा। निष्पक्ष होने का यह भी अर्थ है कि अब मैं आपसे नहीं कहता कि आप ऐसे हो जाएं।

एक मेरे मित्र हैं, वृद्ध हैं। उनके बड़े लड़के की मृत्यु हो गई। बड़ा लड़का उनका मिनिस्टर था। और मन ही मन आशाएं थीं कि आज नहीं कल वह मुल्क का प्रधानमंत्री भी हो जाए। जिनके लड़के मिनिस्टर भी नहीं हैं, वे भी अपने लड़कों के प्रधानमंत्री होने की आशा रखते हैं, तो कोई उन पर कसूर नहीं है। उनका लड़का कम से कम मंत्री तो था ही। प्रधानमंत्री भी हो ही सकता था। आशा बांधने में कोई असंगति नहीं थी। फिर लड़का मर गया। वे बहुत रोए-धोए, बहुत पीटे, छाती पीटे। आत्महत्या का सोचने लगे।

मैंने उनसे पूछा, इतनी पीड़ा का क्या कारण है? उन्होंने कहा, मेरा बेटा मर गया! मैंने कहा कि मैं ऐसा समझूं, आपका बेटा चोर होता, बदमाश होता, लफंगा होता, बदनामी का कारण होता और फिर मर जाता; आप उसके लिए आत्महत्या करने को राजी होते? उनके बहते आंसू सूख गए और उन्होंने कहा, क्या आप कहते हैं! ऐसा लड़का तो अगर होता तो मैं चाहता कि यह होते से ही मर जाए। तो मैंने कहा, फिर आप यह मत कहें कि आप लड़के के लिए रो रहे हैं। इस लड़के में कोई महत्वाकांक्षा मर गई, कोई एंबीशन। इस लड़के के कंधे पर चढ़ कर आप कोई यात्रा कर रहे थे। क्योंकि यह लड़का जब प्रधानमंत्री होता, तो यह लड़का ही प्रधानमंत्री नहीं होता, आप प्रधानमंत्री के बाप भी हो जाते। बड़ी महत्वाकांक्षा थी। और जो लड़का चोर होता, डाकू होता, बदनामी लाता, तो लड़का ही चोर-डाकू नहीं होता, आप चोर के पिता भी हो जाते। कोई महत्वाकांक्षा इस लड़के के कारण मर गई है; उसके लिए आप रो रहे हैं।

बड़े नाराज हुए कि मैं इतने दुख में पड़ा हूं और आपको ऐसी बात कहते संकोच नहीं आता! मैंने उनको कहा कि इस दुख में अगर सत्य आपको दिख जाए!

कभी-कभी दुख में सत्य को देखना आसान होता है। क्योंकि जब आपने ताश का घर बनाया हो और घर अभी गिरा न हो, तब मैं कितना ही कहूं कि यह ताश का घर है और गिर जाएगा; दिखाई पड़ना मुश्किल है। हवा का एक झोंका लगे और ताश का घर गिर गया हो, और आप जार-जार रो रहे हों; और तब मैं कहूं कि आप

व्यर्थ रो रहे हैं, यह तो बनाते समय ही जानना था कि ताश का घर है और गिरेगा। यह नाव कागज की है और डूबेगी। लेकिन कागज की नाव भी थोड़ी-बहुत देर तो चल सकती है। चलते समय कागज की नाव को कागज का मानना बहुत मुश्किल है। चलना काफी प्रमाण है। डूबते में ही ख्याल आता है। इस जगत में सत्य का जो अवतरण है, दुख में आसान है। क्या है अच्छा? क्या है बुरा? यह बेटा अच्छा था, यह बेटा बुरा है; इसमें भी परिवर्तन के जगत में मेरी कोई आकांक्षाओं-अपेक्षाओं का जोड़ है, तो ही।

लाओत्से कहता है, जो सहिष्णु हो जाता है, वह निष्पक्ष हो जाता है।

निष्पक्ष का अर्थ है कि जब भीतर कोई अपेक्षा न रही, तो बाहर कोई पक्ष न रहा। लाओत्से से अगर कोई कहे कि फलां आदमी को अच्छा बनाओ, फलां आदमी बुरा है, तो लाओत्से कहेगा कि मेरी कोई अपेक्षा नहीं। कौन बुरा है, मुझे पता नहीं चलता; और कौन अच्छा है, मुझे पता नहीं चलता। और क्या करने से कौन अच्छा हो जाएगा, मुझे पता नहीं चलता। और मुझे अच्छा हो जाएगा, तो दूसरे को भी अच्छा होगा, कहना मुश्किल है। दूसरे की अपेक्षाएं हैं।

इस दुनिया में बुरे से बुरा आदमी भी कुछ लोगों के लिए तो अच्छा होता ही है। इस दुनिया में अच्छा से अच्छा आदमी भी कुछ लोगों के लिए तो बुरा होता ही है। इस दुनिया में शत-प्रतिशत अच्छे होने का कोई उपाय नहीं है। शत-प्रतिशत बुरे होने का कोई उपाय नहीं है। अगर जमीन पर आप अकेले ही हों, तो शत-प्रतिशत कुछ भी हो सकते हैं। लेकिन जमीन पर और लोग भी हैं। और उनकी अपेक्षाएं हैं।

तो जीसस दस-बारह लोगों को अच्छा आदमी था, जब सूली लगी तो। बाकी सब को बुरा आदमी था। क्योंकि जो भी अपेक्षाएं थीं, इसने पूरी नहीं कीं। अच्छे आदमी के लक्षण सदा से जाहिर रहे हैं।

जीसस वेश्या के घर में ठहर गया। अब इससे और ज्यादा बुरे आदमी का क्या लक्षण होगा? तो जिन-जिन के मन में वेश्या के घर जाने की आकांक्षा रही होगी, उन सब को मौका मिला कि इस आदमी पर सारा क्रोध निकाल लिया जाए। जिसको हम अच्छाई से पैदा हुआ क्रोध कहते हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत तो ईर्ष्या होती है। ये वे ही लोग थे जो वेश्या के घर जाना चाहे होंगे; लेकिन लोग बुरा कहेंगे, इसलिए नहीं जा सके। और यह हद हो गई कि एक आदमी जिसको लोग अच्छा कहते हैं, वह वेश्या के घर में ठहर गया। तो अब दो में से एक ही बात रही। या तो तय हो जाए कि यह आदमी बुरा है, तो इनको शांति मिले; या यही तय हो जाए कि अच्छा आदमी भी वेश्या के घर में जा सकता है, यह स्वीकृत हो जाए, तो भी शांति मिले।

यह दूसरी बात बहुत मुश्किल है। इस दूसरी बात का बड़ा जाल है। इस दूसरी बात का भारी इतिहास है। और जब तक विवाह पवित्र है, तब तक वेश्या अपवित्र रहेगी ही। जब तक विवाह ही न मिट जाए जमीन से, तब तक वेश्या तिरोहित नहीं हो सकती। वह उसकी बाई-प्रोडक्ट है। तो इसकी तो लंबी जटिलता है। यह तो हो नहीं सकता। अब एक ही उपाय है कि जीसस बुरा आदमी करार दे दिया जाए। और यह सबको ठीक लगेगा। पिता भयभीत है कि उसका लड़का वेश्या के घर न चला जाए। पत्नी भयभीत है कि उसका पति कहीं वेश्या के घर न चला जाए। सारा समाज भयभीत है। और वेश्या इसी समाज की उत्पत्ति है। इन्हीं सबने मिल कर वेश्या को निर्मित किया है। और ये सभी भयभीत हैं। और ये सभी वेश्या को सहारा दे रहे हैं।

लेकिन वे अंधेरे में फैले हुए हाथ हैं। जीसस की गलती है तो एक कि वे उजाले में वेश्या के घर चले गए। वही उनकी भूल है। वे फांसी से बच सकते थे, थोड़ी कुशलता चाहिए थी। सभी जाते थे वेश्या के घर--ऐसी कोई अड़चन न थी--जिन्होंने सूली दी थी। लेकिन वे ज्यादा कुशल थे, ज्यादा होशियार थे। वे जानते थे, काम करने का एक ढंग होता है। इस आदमी ने गैर-ढंग से किया।

फिर भी उपाय थेः माफी मांगी जा सकती थी, पश्चात्ताप किया जा सकता था, व्रत-नियम लिए जा सकते थे। इसने और जिद्द की। इस आदमी ने कहा कि इसमें पाप कुछ है ही नहीं। और वेश्या होगी वह तुम्हारे लिए, मेरे लिए नहीं है। क्योंकि वेश्या एक संबंध है; व्यक्ति नहीं होता कोई वेश्या। कोई औरत वेश्या नहीं होती, न कोई औरत पत्नी होती है। किसी के लिए वेश्या होती है, किसी के लिए पत्नी हो सकती है--वही औरत। क्योंकि वेश्या होना एक संबंध है दो व्यक्तियों के बीच। जीसस ने कहा, मेरे लिए वह वेश्या नहीं है, तुम्हारे लिए रही होगी। तुम मत जाओ।

लेकिन यह समझ के बाहर थी बात। इस आदमी को सूली लगानी जरूरी हो गई।

जो इसके पीछे चल रहे थे, वे भी सोचते थे कि ऐन वक्त, आखिर में परमात्मा कुछ ऐसा करेगा, चमत्कार दिखाएगा, कि सिद्ध हो जाएगा कि जीसस सही है। शक तो उनको भी होता रहा होगा; क्योंकि वे भी उसी समाज से पैदा हुए थे। उनको भी लगा तो होगा कि लोग ही ठीक कह रहे हैं। लेकिन जीसस का प्रभाव था, जीसस के प्रति प्रेम था, तो पीछे चलते रहे। दस-बारह लोग ही थे। जीसस भलीभांति जानते थे कि ये वक्त पर भाग जाएंगे। और वक्त पर वे सब भाग गए। और जब जीसस की सूली से उनकी लाश उतारी गई, तो वही वेश्या लाश को उतार रही थी, बाकी सब शिष्य भाग गए थे।

निश्चित ही, जीसस के लिए वह वेश्या वेश्या नहीं थी। और उस वेश्या के लिए जीसस सिर्फ एक पुरुष नहीं थे, एक खरीददार नहीं थे। और जब निकटतम शिष्य भाग गए, जो बाद में एपास्टल्स हो गए, जो बाद में बारह महा संत हो गए, वे सब भाग गए थे, तब एक वेश्या ने उन्हें उतारा था। वही आखिर तक खड़ी रही थी उस भीड़ में।

कौन भला है, कौन बुरा है, कौन तय करे? कैसे तय करते हैं हम? क्या है क्राइटेरियन? क्या होता है मापदंड तय करने का? एक ही मापदंड होता है सदाः आपकी अपेक्षाओं के लिए जो अनुकूल पड़ता है; आपकी अपेक्षाओं के जो प्रतिकूल पड़ता है। लेकिन अगर किसी व्यक्ति की कोई अपेक्षा ही नहीं है, तो वह निष्पक्ष हो जाता है। जीसस जैसे लोगों की यही मुसीबत है। एक वेश्या ने कहा कि चलें और मेरे घर ठहर जाएं आज रात, तो जीसस की कोई भी तो अपेक्षा नहीं है। आप होते तो सोचते कि कल बदनामी होगी, गांव में खबर हो जाएगी, पत्नी क्या कहेगी, बच्चे क्या कहेंगे, क्या होगा, क्या नहीं होगा, आप हजार बातें सोचते। जीसस बस चल पड़े।

बुद्ध के साथ भी ऐसा हुआ। एक दिन एक वेश्या ने आकर सुबह ही निमंत्रण दे दिया भोजन का। उसके ही पीछे रथ पर सवार प्रसेनजित आता है, सम्राट है। और प्रसेनजित आकर कहता है कि मेरे घर पधारें! पर बुद्ध ने कहा, निमंत्रण तो मुझे आपके पहले मिल गया। पर प्रसेनजित ने कहा कि अगर इसकी खबर भी लोगों को हो जाएगी कि आप आम्रपाली वेश्या के घर भोजन करने गए, महा अनर्थ हो जाएगा, प्रतिष्ठा धूल में मिल जाएगी। आप और वेश्या के घर जाएंगे!

पर बुद्ध ने कहा, निमंत्रण उसका ही पहले है और हां भी भरी जा चुकी है। और जिन बातों से आप मुझे भयभीत करते हैं, अगर मैं उनसे भयभीत ही होता हूं, तो फिर मैं बुद्ध ही नहीं हूं। अब तो होगी बदनामी, तो अच्छा। इस जगत में बदनामी होगी। लेकिन अगर वेश्या के घर जाने की बदनामी से डर कर प्रसेनजित, तुम्हारी मैं मान लूं, तो अनंत-अनंत काल में जो बुद्ध हुए हैं, वे मुझ पर हंसेंगे। वहां मेरी बड़ी बदनामी हो जाएगी। तो इस बदनामी को हो जाने दो।

लाओत्से कहता है, निष्पक्ष हो जाता है वैसा व्यक्ति। जीता है--पक्षों से नहीं, सहजता से। कोई निर्णय नहीं लेता--क्या बुरा है और क्या भला है, क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए।

थोड़ी कठिनाई लगेगी; क्योंकि जिनकी नैतिक बुद्धि है और जो सोचते हैं कि जीवन की जो ऊंची से ऊंची बात है, वह नीति है, उनको बहुत कठिनाई होगी। नीति ऊंची से ऊंची बात उनके लिए है, जिनके जीवन अनैतिक हैं। जैसे औषधि उनके काम की है जो बीमार हैं। लेकिन भूल कर भी स्वस्थ लोगों को औषधि मत पिलाने लगना। नीति उनके काम की है, जो अनीति में भरे हैं और पड़े हैं। लेकिन जो धर्म को उपलब्ध होते हैं, उनसे नीति वैसे ही छूट जाती है जैसे अनीति छूट जाती है। पक्ष छूट जाते हैं।

नैतिक चिंतन तो पक्ष करता है। इसलिए नैतिक चिंतन कभी निष्पक्ष नहीं होता। नैतिक चिंतन तो साफ-साफ निर्णय करता है--यह ठीक है और यह गलत है। गणित से चलता है, हिसाब रख कर चलता है। कभी-कभी हिसाब सीमा के बाहर चला जाता है, तो भी हिसाब से ही चलता है। क्या करना है, क्या नहीं करना है, वह सब हिसाब रखता है। धर्म कोई हिसाब नहीं रखता। शाश्वत में प्रतिष्ठा जिसकी हो गई, वह फिर उस प्रतिष्ठा पर ही सब कुछ छोड़ देता है। और वह जहां ले जाए शाश्वत नियम--चाहे पूर्व तो पूर्व और चाहे पश्चिम तो पश्चिम; जहां ले जाए, अंधेरे में या प्रकाश में--वह शाश्वत नियम जहां ले जाए, उस पर ही अपने को छोड़ देता है।

इस फर्क को हम ऐसा समझें कि एक डांड से खेने वाला नाविक है। वह पतवार चलाता है और अपनी नौका को खेता है। सारा श्रम उसे करना होता है। एक और नाविक भी है, जिसने एक नियम खोज लिया कि खुद पतवार चलाने की कोई जरूरत नहीं है; हवाएं, पाल बांध दो, और नाव को ले जाती हैं। तो वह पाल बांध लेता है, पतवार अलग रख देता है, हवाएं उसकी नाव को चलाने लगती हैं।

नैतिक व्यक्ति पतवार से नाव चलाता है पूरे वक्त; बाएं, दाएं, सब उसे हिसाब रखना पड़ता है। पूरे वक्त श्रम उठाना पड़ता है। नाव और नदी के बीच एक संघर्ष है, नाविक और नदी के बीच एक दुश्मनी है। लड़ना पड़ता है। फिर वह भी है, जिसने पाल बांध लिया। अब सिर्फ उसे हवाओं के ऊपर अपने को छोड़ देने की हिम्मत भर जुटानी होती है। फिर हवाएं उसकी नाव को ले जाने लगती हैं।

धार्मिक व्यक्ति दूसरी तरह का व्यक्ति है, जिसने अपना पाल बांध लिया है नाव में और जिसने परमात्मा की या शाश्वतता की हवाओं को कहा कि बस अब जहां ले जाओ। अब जहां पहुंच जाए, वही मुकाम है। और नाव अगर मझधार में डूब जाए, तो वही मंजिल है। अब कोई किनारा नहीं है। अब तो जो मिल जाए, वही किनारा है। अब अपना कोई चुनाव नहीं है कि वहां पहुंचूं; और अगर वहां नहीं पहुंचा, तो दुखी होऊंगा; और वहां पहुंचा, तो सुखी हो जाऊंगा। धार्मिक व्यक्ति कहीं पहुंचने की चेष्टा में नहीं है। पहुंच गया।

नैतिक व्यक्ति कहीं पहुंचने की चेष्टा में लगा है। तो नैतिक व्यक्ति तो पक्षपाती होगा। इसलिए नैतिक व्यक्ति कभी सहिष्णु नहीं हो सकता। और अगर उसकी सहिष्णुता भी होगी, तो थोपी हुई और आरोपित होगी, कल्टीवेटेड होगी। सम्हाल-सम्हाल कर वह सहने की कोशिश कर सकता है। लेकिन सहिष्णुता उसकी सहज नहीं हो सकती। शाश्वत को जान कर जो सहिष्णुता आती है, वह निष्पक्ष कर जाती है।

कठिन है यह बात; क्योंकि हमें तो नैतिक तक होना कठिन है। लाओत्से कहीं और दूर की बात कर रहा है। वह कह रहा है, नैतिकता भी एक बीमारी है। वह कह रहा है कि जब तक द्वंद्व है--यह ठीक और यह गलत--तब तक बेचैनी रहेगी ही। अगर मुझे दिखता है कि यह ठीक और यह गलत, तो बेचैनी रहेगी।

इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी जो हैं, जिन्हें नैतिक आदमी कहना चाहिए, वे बड़े बेचैन रहते हैं। वे कहते हैं, यह गलत हो रहा है, वह ठीक हो रहा है। सारे संसार में जो गलत और ठीक हो रहा है, सबकी चिंता

उन्हीं को होती है। उनकी बेचैनी का कोई अंत नहीं है। रातें उनकी हराम हो जाती हैं, नींद उनकी नष्ट हो जाती है। कहां क्या गलत और कहां क्या सही हो रहा है, सब का हिसाब उनके पास है। और सारे जगत में ठीक होना चाहिए, इसके लिए उनकी चिंता इतनी ज्यादा होती है कि इसी चिंता में घुल-घुल कर वे मर जाते हैं। जगत में कुछ ठीक होता या नहीं होता उनकी चिंता से, वह दिखाई नहीं पड़ता।

लाओत्से की बात समझनी थोड़ी कठिन है। और इसलिए पश्चिम में बहुत नासमझी भी पैदा होती है। लाओत्से जैसे लोगों के विचार जब पश्चिम में पहुंचते हैं, तो उन्हें लगता है, यह तो बहुत इम्मॉरल थिंकिंग है, यह तो बहुत नीतिविहीन चिंतन है। निष्पक्ष? कैसे निष्पक्ष हो सकते हैं हम? जहां इतना संघर्ष है अच्छाई और बुराई में, वहां हम कैसे निष्पक्ष हो सकते हैं? उसका कारण है कि अगर हम परिवर्तन से ही अपने को देखेंगे, तो निष्पक्ष नहीं हो सकते; शाश्वत से देखेंगे, तो निष्पक्ष हो सकते हैं। शाश्वत के तल से देखने पर परिवर्तन का जगत स्वप्नवत हो जाता है।

रात एक सपना देखा। देखा कि राम और रावण में बड़ी कलह चल रही है। पूरी रामायण देखी। अगर नैतिक आदमी हैं, तो राम के साथ तादात्म्य बन जाएगा। अगर अनैतिक आदमी हैं, तो रावण के साथ तादात्म्य बन जाएगा। लेकिन सुबह जाग कर देखा, सपना टूट गया, सुबह जाग कर देखा। सुबह जाग कर, उस रात सपने में राम और रावण का जो संघर्ष था, उसमें क्या कोई भी पक्ष जाग कर रह जाएगा? अगर रह जाए, तो समझना अभी नींद खुली नहीं, सपना जारी है। सुबह अगर हंसी आए और पता चले कि सब ठीक था; और सपने में रावण जीते तो और राम जीतें तो कोई अंतर न पड़े और सुबह पूरी बात पर हंसी आ जाए, तो समझना नींद खुल गई, अब आप निष्पक्ष हो गए।

लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए परिवर्तन का जगत एक स्वप्न है। स्वप्न से ही जो घिरा है, वह पक्ष करेगा। स्वप्न में ही जो बंधा है, वह पक्षपात करेगा। लेकिन जहां पक्षपात है, वहां असहिष्णुता होगी, अधैर्य होगा, असंतोष होगा, संताप होगा। अगर उठना है आनंद तक, तो अभेद और निष्पक्ष हुए बिना कोई रास्ता नहीं है।

"जो निष्पक्ष हो जाता है, निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है। बीइंग इम्पार्शियल ही इ.ज किंगली, निष्पक्ष होकर वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है।"

सम्राटों की भी गरिमा कुछ नहीं है जैसी गरिमा को वह उपलब्ध होता है जो निष्पक्ष हो जाता है। क्योंकि उसकी आंखों की शांति की फिर कोई कल्पना नहीं, कोई तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि उसकी आंख में कहीं कोई पक्ष न रहा, तो आंख ट्रांसपैरेंट हो जाती है, पारदर्शी हो जाती है। जिसका कोई पक्ष न रहा, उसकी गति अकंप हो जाती है। पक्ष के कारण हम झुकते हैं, और हमारा सारा जीवन कंपित होता रहता है।

अभी तो वैज्ञानिक कहते हैं कि हमारी शरीर तक की भाषा में पक्षपात होता है। अभी बॉडी लैंग्वेज पर बहुत काम चलता है; बहुत खोज चलती है शरीर की भाषा पर। आप किसी आदमी के पास किस ढंग से खड़े होते हैं, बताया जा सकता है कि आपका पक्ष क्या है; उस आदमी के पक्ष में हैं कि विपरीत हैं। जब आप किसी आदमी के विपरीत में हैं, तो आप हटे हुए खड़े होते हैं; खड़े भी रहते हैं और भीतर से हटे भी रहते हैं--कहीं पास न आ जाएं। जिस आदमी के आप पक्ष में होते हैं, गिरे हुए होते हैं, निकट आ जाएं। स्त्रियां तो बहुत साफ बता देती हैं उनके शरीर की भाषा से। अगर एक स्त्री को किसी से प्रेम है, तो वह गिरने को बिल्कुल तैयार है। अगर प्रेम नहीं है, तो वह पीछे दीवार खोज रही है कि कहीं टिक जाए, बच जाए, हट जाए। शरीर-भाषाशास्त्री कहते हैं कि अगर स्त्री का आपसे प्रेम है, तो उसके बैठने का ढंग और होगा; अगर नहीं है, तो और होगा। और एक-एक सिंबल, एक-एक संकेत उसके शरीर से मिलेंगे।

शरीर तक, जब आप चलते हैं, उठते हैं, लोगों के बीच घूमते हैं, तो खबर देता है। अगर वेश्यालय पड़ गया, तो आपकी चाल तेज हो जाती है; मंदिर आ गया, तो नमस्कार हो जाता है। अगर वेश्याओं के मुहल्ले से गुजर रहे हैं, तो धड़कन बढ़ जाती है--कहीं कोई देख न ले। आपके पक्ष, आपके विपक्ष पूरे वक्त आपको कंपित किए हुए हैं।

लाओत्से कहता है, जो निष्पक्ष हो जाता है, वह सम्राट की गरिमा को उपलब्ध हो जाता है।

शायद और कोई बेहतर प्रतीक लाओत्से को नहीं सूझा; क्योंकि सम्राट निष्पक्ष नहीं होते। लेकिन कोई और उपाय नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि सम्राटों के पास भी सम्राटों की गरिमा नहीं होती।

जीसस ने कहा है, जीसस ने एक दिन कहा है अपने साथियों को कि देखो लिली के खिले हुए इन फूलों को, सम्राट सोलोमन भी अपनी पूरी गरिमा में इनके सामने फीका है।

फूल जब खिलता है तो जिस गरिमा को उपलब्ध होता है, मनुष्य जब खिलता है तब वह भी उसी गरिमा को उपलब्ध होता है। वह गरिमा अकंपता की गरिमा है। जैसे कि किसी घर में दीया जले, हवा का कोई झोंका न हो, और लौ ठहर जाए, जरा भी कंपित न हो; वैसे ही जब कोई चेतना भी भीतर ठहर जाती है और जरा भी कंपित नहीं होती।

अब इसके दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि पक्ष तो बने रहें, जबर्दस्ती इस चेतना को अकंप कर लिया जाए; जो कि तथाकथित साधु, धार्मिक व्यक्ति करते रहते हैं। पक्ष तो बने रहें कि यह बुरा है और यह ठीक है, और वह सुंदर है और वह कुरूप है, और यह पाने योग्य है और वह नहीं पाने योग्य है, यह तो सब बना रहे; लेकिन अपने को सम्हाल कर और अपनी चेतना को थिर कर लिया जाए। इस तरह जो थिरता आती है, वह जबर्दस्ती थोपी हुई थिरता है, झूठी है। क्योंकि जरा ही रिलैक्स किया, जरा ही शिथिल हुए--पक्ष की तरफ चेतना बह जाएगी, अपक्ष की तरफ से हट आएगी।

एक दूसरी गरिमा है, जिसकी लाओत्से चर्चा कर रहा है। वह कह रहा है, खुद की उतनी फिक्र मत करो; जबर्दस्ती खुद को ठहराने की फिक्र मत करो। शाश्वत नियम को जान लो, परिवर्तन को पहचान लो, और तुम पाओगे कि पक्ष गिर गए। और पक्ष के गिरते ही तुम अकंप हो जाओगे। क्योंकि कोई जगह न रही जहां कंपो; किसी तरफ झुको, वह कोई स्थान न रहा; किसी तरफ से हटो, वह कोई स्थान न रहा। तब जो अकंपता आती है, वह सहज है। उस सहजता के बिना साधुता भी एक जटिलता है, एक जबर्दस्ती है, एक दमन है।

और इसलिए फर्क देखा जा सकता है। जब भी कोई सहजता की साधुता को उपलब्ध होता है, तो एक अपरिसीम सौंदर्य को उपलब्ध होता है। और जब भी कोई जबर्दस्ती साधुता को उपलब्ध होता है, तो एक गहन कुरूपता को उपलब्ध हो जाता है। कुरूपता स्वाभाविक ही आ जाएगी। क्योंकि जहां सब चीजें खींच-तान कर, तनाव से बिठाई जाएंगी, वहां सब चीजें खिंच जाएंगी। सहज साधु खोजना मुश्किल है; यद्यपि सहज ही साधु हो सकता है। लेकिन उसके बड़े चुनाव हैं।

एक साधु मेरे साथ यात्रा करते थे। जिस कार में हमें जाना था, मैं जाकर बैठ गया। वे आए और कहने लगे, ऐसे तो मैं न बैठ सकूंगा; मैं तो सिर्फ चटाई पर बैठता हूं। इसमें कौन सी कठिनाई है, मैंने कहा। जिनके घर मैं मेहमान था, उनसे मैंने कहा कि लाकर एक चटाई कार के सोफा पर बिछा दो।

चटाई बिछा दी गई। साधु बिल्कुल सम्हल कर सोफा पर बैठ गए। बीच में चटाई आ गई; परम शांति उनको मिली। सोफा वही है, कार वही है; लेकिन वे चटाई पर बैठे हैं। उनको देख कर दया ही आ सकती है, और क्या हो सकता है! सोफा पर वे बैठे ही नहीं हैं; कार में वे हैं ही नहीं। वे अपनी चटाई पर हैं। और अपनी सादगी

को उन्होंने सुरक्षित रख लिया है। ऐसी सुरक्षित व्यवस्था से जो जी रहा हो, उसका सब कुछ कुरूप हो जाएगा; सब अपंग, सब पक्षाघात हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, निष्पक्ष जो है, वह सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होता है।

इसमें एक बात और ख्याल लेने जैसी है। सम्राट जैसी गरिमा का अर्थ यह हुआः भागना, छोड़ना, यह नहीं, वह नहीं--उसे कोई अर्थ का नहीं रह जाता; वह जहां है, सम्राट की तरह ही है। उसे महल में खड़ा कर दें तो, और उसे किसी दिन नग्न रास्ते पर खड़ा कर दें तो, उसकी गरिमा में फर्क नहीं लाया जा सकता। महल उसे डराएगा नहीं; वह वहां भी उतनी ही शांति से सो सकेगा। वृक्ष उसे आकर्षित नहीं करेगा; वहां भी उतनी ही शांति से सो सकेगा। न महल आकर्षित करेगा, न वृक्ष विकर्षित करेगा। जो भी हो, जहां भी हो, वह सम्राट जैसी गरिमा में ही जीएगा।

इसलिए बुद्ध जैसे व्यक्ति को महल से हट कर भी हमने देखा, पर उनकी गरिमा में कोई फर्क नहीं पड़ता। शायद गरिमा और बढ़ जाती है। शायद गरिमा और बढ़ जाती है। अगर किसी कुरूप शरीर पर कपड़े पहना दिए जाएं, तो कुरूपता कम हो जाती है। इसलिए दुनिया में जब तक बहुत सौंदर्य नहीं होता, तब तक कपड़े आदमी का बहुत पीछा करेंगे ही। कपड़े सौंदर्य तो नहीं ला सकते, लेकिन कुरूपता को ढांक सकते हैं। नहीं जिनके पास सौंदर्य है, उनके लिए इतना भी क्या कम है कि कुरूपता ढंक जाती है! कुछ तो बहाना सुंदर होने का हो जाता है। लेकिन अगर अन्यतम सुंदर व्यक्ति हो, तो कपड़े हट जाने पर उसका सौंदर्य और पूरी तरह प्रकट होता है। तो जो दीन-दरिद्र हैं, उन्हें महलों में बिठाल दो, तो उनकी दीनता-दरिद्रता छिप जाती है। गरिमा नहीं आ जाती सम्राट की। लेकिन अगर गरिमा सम्राट की हो, तो छीन लो महल, हटा लो ताज-तख्त, तो उस नग्नता में वह और भी जोर से प्रकट हो जाती है।

यह जो सम्राट की गरिमा है, यह एक आंतरिक मालकियत का परिणाम है--एक इनर, एक आंतरिक मालकियत, एक स्वामित्व। जो परिवर्तन से बंधा है, वह हमेशा गुलाम रहेगा। आज इस पर निर्भर रहना पड़ेगा, कल उस पर निर्भर रहना पड़ेगा। परिवर्तन के जगत में हजार-हजार चीजों पर निर्भर रहना पड़ेगा। जो परिवर्तन से हट कर शाश्वत से अपने को जोड़ लेता है, अब वह मालिक हुआ। अब उसे किसी पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। अब वह सारे परिवर्तनों के बीच से मालिक की तरह गुजर सकता है। उसकी मालकियत आंतरिक है।

"सम्राट जैसी गरिमा को उपलब्ध होकर स्वभाव के साथ अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है।"

धर्म के गहनतम लोक में वही प्रविष्ट होते हैं, जो सम्राट की गरिमा से प्रविष्ट होते हैं। दीनता से, रो-पीट कर, मांग कर वहां कोई प्रविष्ट नहीं होता। जीसस ने कहा हैः जिनके पास है, उन्हें और दे दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे और छीन लिया जाएगा।

पागल रहा होगा जीसस! लेकिन यह एंटी-मैटर, वह दूसरे जगत के नियम हैं। बड़ी उलटी बात है। साधारण बुद्धि भी कहेगी, जिनको थोड़ा भी गणित आता है, वह भी कहेगा, जिनके पास नहीं है, उन्हें दो। अगर छीनना ही है, तो उनसे छीन लो, जिनके पास है। और उन्हें दे दो, जिनके पास नहीं है। यह सीधा गणित है। लेकिन जीसस कहते हैं, जिनके पास है, उन्हें और दे दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, सावधान रहें वे, उनसे और छीन लिया जाएगा।

उस जगत में कोई दीन की तरह प्रविष्ट नहीं हो सकता। उस जगत में तो सम्राट की तरह ही कोई प्रविष्ट होता है। असल में, उस जगत की चाबी ही स्वामित्व है। इसलिए हम संन्यासी को स्वामी कहते रहे हैं। सभी

संन्यासी स्वामी होते हैं, ऐसा नहीं। लेकिन संन्यासी को हम स्वामी इसलिए कहते रहे हैं--उस इनर, उस भीतरी मालकियत। वही तो चाबी है उस महल में प्रवेश की, जिसको लाओत्से ताओ कहता है, बुद्ध ने जिसे धम्म कहा है, वेद ने जिसे ऋत कहा है, जीसस ने जिसे किंगडम ऑफ गॉड कहा है। ये सिर्फ शब्दों के फर्क हैं।

"स्वभाव के अनुरूप हुआ वह ताओ में प्रविष्ट होता है। ताओ में प्रविष्ट होकर वह अविनाशी है।"

जब तक हम परिवर्तन से अपने को जोड़े हुए हैं, तब तक हम विनाश से अपने को जोड़े हुए हैं। तब तक हम मिटते ही रहेंगे, मिटते ही रहेंगे। बनेंगे और मिटेंगे। बनेंगे इसीलिए कि मिटें। वहां बनना और मिटना अनिवार्य है। जो आदमी समझ ले कि मैं वस्त्र हूं, तो दो-तीन महीने में उसको मरना पड़ेगा। दो-तीन महीने में वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाएंगे, छोड़ने पड़ेंगे, फिर नए वस्त्र पहनने पड़ेंगे। अगर किसी आदमी ने ऐसा समझ लिया कि मेरे वस्त्र ही मैं हूं, तो हर तीन महीने में मरना और पुनर्जन्म। फिर नए कपड़े, तो फिर नया जन्म। फिर अ ब स से शुरू करेगा वह आदमी।

जितनी परिवर्तनशील चीज से आप अपने को बांधेंगे, उतना ज्यादा विनाश, उतना रोज-रोज सब बदलना पड़ेगा। रोज मरना होगा, रोज जन्मना होगा। हम अपने को वस्त्रों से नहीं बांधते हैं, शरीर से बांधते हैं। इसलिए पचास-साठ साल, सत्तर साल, अस्सी साल में मरना पड़ता है।

क्या ऐसा भी कोई सूत्र है, जो वस्त्र की तरह नहीं है हमारे लिए, अस्तित्व है हमारा? अगर उससे हम अपने को एक जान पाएं, तो फिर कोई विनाश नहीं है। मृत्यु है इसीलिए कि हम मरणधर्मा से अपने को जोड़ लेते हैं। मृत्यु है इसीलिए कि जो मरने वाला है, उसके साथ हम अपने को एक समझ लेते हैं। उसी क्षण मृत्यु विसर्जित हो जाती है, जिस दिन हमने मरणधर्मा के साथ अपना संबंध छोड़ दिया। उस दिन जिससे हमारा संबंध है, उसकी कोई मृत्यु नहीं है।

तो लाओत्से कहता है, "ताओ में प्रविष्ट हुआ वह अविनाशी है। और इस प्रकार उसका समग्र जीवन दुख के पार हो जाता है।"

दुख ही क्या है? मृत्यु की ही छाया है दुख। मृत्यु की ही लंबी हो गई छाया दुख है। जहां-जहां मृत्यु दिखाई पड़ती है, वहीं-वहीं दुख है। और जहां भी हम थोड़ी देर को मृत्यु को भुला पाते हैं, वहीं सुख मालूम पड़ता है।

लेकिन आदमी बड़े दुष्टचक्र में घूमता है। भुलाने से कुछ भूलता तो नहीं है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक सांझ शराब पी रहा है। अपने घर के सामने वृक्ष के नीचे बैठ कर शराब के प्याले पर प्याले ढाले चला जा रहा है। मेहमान एक घर में आया है। वह मुल्ला को कहता है कि नसरुद्दीन, क्यों इतनी शराब पीते हो? तो नसरुद्दीन कहता है, भुलाने के लिए। तो वह मेहमान पूछता है, क्या भुलाने के लिए? तो नसरुद्दीन कहता है, अपनी बेशर्मी, अपना पाप, अपना अपराध। तो वह मेहमान पूछता है, क्या है अपराध? क्या है पाप? क्या है बेशर्मी? नसरुद्दीन कहता है, यही कि यह शराब की लत पड़ी है। पाप यह है कि शराब पीता हूं; इस पाप को भुलाने के लिए शराब पीए चला जाता हूं।

अगर हम अपने जीवन के क्रम को गौर से देखें, तो वह ऐसा ही मिलेगा। उसमें हम एक चक्कर में घूमते रहते हैं। एक चीज से बचने को दूसरी चीज पकड़ते हैं; दूसरी से बचने को तीसरी पकड़ते हैं; और तीसरी से बचने के लिए उसको पकड़ते हैं, जिससे बचने के लिए इन सब को पकड़ा था। और तब हम एक गोल चक्र में वर्तुलाकार घूमते रहते हैं। इससे घूमना तो हो जाता है काफी, यात्रा भी बहुत हो जाती है, पहुंचना नहीं हो पाता। पहुंचने का कोई उपाय भी नहीं है इसमें। दुख यही है कि सुख का तो हमें कोई पता नहीं है, दुख का ही

पता है। और कभी-कभी दुख को भुला लेते हैं, तो उसको हम सुख कहते हैं। और जिन-जिन चीजों से हम दुख को भुलाते हैं, वे सभी चीजें और दुख को लाने वाली हैं। तब हम वर्तुल में फंस जाते हैं।

एक बात बहुत गहरे में समझ लेने की जरूरत है कि जब तक मैं मरने वाला हूं, तब तक मैं कोई भी उपाय करूं, मैं सुखी नहीं हो सकता। मौत वहां खड़ी है और उसकी छाया मेरे ऊपर पड़ रही है। वह मेरे हर सुख को जहर में डुबा देगी। आप भोजन कर रहे हैं, बहुत सुस्वादु भोजन है। और तत्काल आपको खबर मिलती है कि आज ही सांझ आपको फांसी लग जाने वाली है, स्वाद खो जाएगा। आप लाख उपाय करें, स्वाद नहीं आ सकता अब। आप किसी के प्रेम में डूबे हैं, और सोचते हैं, चांद जमीन पर उतर आया है। और अचानक खबर मिलती है कि सांझ आपको फांसी हो जाएगी। आपके पास कौन है, उसका आपको पता भी नहीं रहेगा। सब बेमानी हो गया।

कामू ने कहीं लिखा है कि जब तक मौत है, तब तक कैसे सुख संभव है? इसलिए जानवर थोड़े सुखी मालूम पड़ते हैं; क्योंकि मौत का उन्हें बोध नहीं है। और आदमी सुखी मालूम नहीं पड़ता; क्योंकि मौत का उसे बोध है। जानवर सुखी मालूम पड़ते हैं; क्योंकि मौत का कोई बोध नहीं है, कोई धारणा नहीं है।

इसलिए आदमियों में भी जो जानवरों के थोड़े ज्यादा निकट हैं, वे थोड़े ज्यादा सुखी मालूम पड़ते हैं। वे भी मौत को भुलाए रखते हैंः कि होगी, कोई और मरता है सदा, हम तो कभी नहीं मरते। कभी अ मरता, कभी ब मरता, कभी स मरता; हम तो अभी तक नहीं मरे। और जब अभी तक नहीं मरे, तो मरने का आगे भी क्या कारण है? हमेशा कोई और ही मरा है, हम तो कभी नहीं मरे। सीधा-साफ तर्क है कि हम नहीं मरेंगे।

पशुओं को कोई बोध नहीं है कि मृत्यु है, क्योंकि पशुओं को समय का बोध नहीं है, पशुओं को भविष्य का बोध नहीं है। इसलिए पशु एक अर्थ में सुखी हैं। आदमी को बोध है कि मौत है। तो आदमी ज्यादा से ज्यादा दुखी हो सकता है, या दुख को भुला सकता है; दो ही काम कर सकता है। सुखी नहीं हो सकता--जब तक कि लाओत्से की बात न समझ ले, जब तक कि शाश्वत से एक न हो जाए।

पशु सुखी हो सकते हैं; मौत का भाव नहीं है। आदमी सुखी नहीं हो सकता। पशुओं के ढंग से आदमी सुखी नहीं हो सकता। असल में, उस यात्रा के हम पार आ गए हैं; उस जगह को हम छोड़ चुके हैं। एक जवान आदमी बच्चे के ढंग से सुखी नहीं हो सकता। कितने ही खिलौने उसके चारों तरफ रख दो, कितना ही कहो कि इतने खिलौने हैं, पूरा घर खिलौनों से भर देते हैं; लेकिन एक जवान आदमी बच्चों के ढंग से सुखी नहीं हो सकता। और अगर आप सच में बूढ़े हो गए हैं, वृद्ध हुए हैं, तो जवान के ढंग से आप सुखी नहीं हो सकते। कितनी ही खूबसूरत औरतें चारों तरफ बिठा दी जाएं, और कितना ही नाच-रंग हो जाए, अगर आप सच में वृद्ध हो गए हैं, तो फिर ये खिलौने ही मालूम पड़ेंगे, फिर इनसे सुखी नहीं हो सकते। जहां से चेतना आगे बढ़ जाती है, फिर उस तल के सुख बेमानी हैं।

आदमी सुखी नहीं हो सकता पशु के ढंग से। लेकिन सब आदमी उसी ढंग से सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए सिर्फ दुखी होते हैं। वह कोई उपाय न रहा। चेतना पीछे नहीं लौट सकती। चेतना और आगे जा सकती है।

मृत्यु की छाया जब तक बनी रहेगी, आदमी सुखी नहीं हो सकता। तो क्या किया जाए? एक तो उपाय यह है कि शरीर को जितनी देर तक बचाया जा सके, बचाया जाए; ताकि मृत्यु दूर हटाई जा सके। लेकिन कितना ही हटाओ मौत को दूर, दूर भी हट जाए तो भी खड़ी रहती है। उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चार दिन

और हट जाए, आठ दिन और हट जाए, आदमी अस्सी साल न जीकर सौ साल जीए, कि डेढ़ सौ साल जीए, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। मौत पीछे भी हट जाए, तो भी खड़ी रहती है।

और सच तो यह है, आदमी जितनी ज्यादा देर जीएगा, मौत का बोध उतना सघन हो जाएगा। अगर दस साल का बच्चा मर जाए, तो उसे मौत का कोई खास पता नहीं होता। चालीस साल का जवान मर जाए, तो अभी उसे मौत की थोड़ी-थोड़ी झलक मिलनी शुरू हुई थी। अस्सी साल का बूढ़ा आदमी मरता है, तो मरने के बहुत पहले मौत में काफी बुरी तरह डूब चुका होता है। जिस दिन डेढ़ सौ साल का आदमी मरता है, उस दिन और भी ज्यादा मौत... । अगर हम आदमी को हजार साल जिंदा रखने में सफल हो जाएं, तो मौत की जो छाया है, और सघन हो जाएगी, और भारी हो जाएगी। क्योंकि जितनी उम्र बढ़ेगी, जितना अनुभव बढ़ेगा, उतने ही जीवन के सब खिलौने बेकार होते चले जाएंगे। और एक जगह आएगी कि सिर्फ मौत ही एकमात्र अर्थ रह जाएगा, बाकी सब अर्थ खो जाएगा।

इसलिए हमारे बीच जो सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी है, वह सबसे ज्यादा मौत के प्रति सचेतन हो जाता है। अगर बुद्ध को रास्ते पर मरे हुए आदमी को देख कर ख्याल उठा कि जीवन बेकार है... । आपको नहीं उठता। आपको रोज रास्ते पर मरे हुए आदमी मिलते हैं। आपको इतना ही ख्याल आता हैः बेचारा! उस पर दया आती है, अपने पर नहीं। और मन में थोड़ी प्रसन्नता भी होती है कि चलो, हम तो अभी जिंदा हैं। तो बाजार की तरफ कदम और जोर से बढ़ जाते हैं कि हम तो अभी जिंदा हैं। हर मरा हुआ आदमी आपको सिर्फ इतनी ही खबर देता है कि आप अभी जिंदा हैं। बुद्ध को मरे हुए आदमी को देख कर खबर मिली कि मैं भी मर गया इसके साथ।

आयरिश कवि मुनरो ने लिखा है कि जब भी कोई मरता है, तो मैं ही मरता हूं। और इसलिए कभी बाहर पूछने को मत भेजो कि किसकी अरथी गुजरती है; मेरी ही अरथी गुजरती है।

बुद्ध को मरा हुआ आदमी देख कर लगा कि मैं मर गया; अगर एक आदमी मर गया, तो मैं मर गया। मौत निश्चित है; तो अब जीवन बेकार हो गया।

जितनी सचेतन आत्मा होगी, उतनी जल्दी मौत की छाया पकड़ेगी। आपको बूढ़े होने में अस्सी साल लगते हैं; बुद्ध बीस साल में बूढ़े हो गए।

इससे आप यह मत समझना कि बूढ़े ही आदमी... । भारत में यह धारणा ही रही है सदा से कि वृद्ध को ही संन्यास लेना चाहिए। मेरे पास बहुत लोग आते हैं और वे कहते हैं कि आपको वृद्ध को ही संन्यास देना चाहिए, सत्तर-पचहत्तर साल पार कर जाए! मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें पता नहीं कि आदमी कब वृद्ध हो जाए। पचहत्तर साल में भी कई लोग हैं, जो वृद्ध नहीं होते। कई क्या, बहुत लोग नहीं होते। आसान तो नहीं है वृद्ध हो जाना। बूढ़ा हो जाना बहुत आसान है; वृद्ध हो जाना उतना आसान नहीं। क्योंकि बूढ़ा होना तो सिर्फ उम्र से हो जाता है, वृद्ध होना तो बुद्धि की बात है। कोई आदमी बहुत पहले वृद्ध हो जाता है।

बुद्ध बीस साल में वृद्ध हो गए। जो अस्सी साल के बूढ़े की भी बुद्धि में नहीं आता है, वह बीस साल के बुद्ध की बुद्धि में आ गया, वे वृद्ध हो गए। उन्हें दिखाई पड़ गया कि मौत सुनिश्चित है। अब कब होगी, यह बात गौण है। यह नासमझों पर छोड़ा जा सकता है कि वे तय करें कि कब होगी। मेरे लिए होगी, तो कब होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अब मुझे यही जानना जरूरी हो गया कि क्या मेरे भीतर ऐसा कुछ है, जो अमृत है! अगर नहीं है, तो सब व्यर्थ है। अगर है, तो उसी को खोजने में सार्थकता है।

लाओत्से कहता है, ताओ में जो प्रविष्ट हो जाता है, वह अविनाशी है। वह अमृत हो गया। उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जो अविनाशी है, वह समग्र दुखों के पार हो जाता है। क्योंकि सारे दुख विनाश के दुख हैं। मेरा विनाशी होना ही मेरे दुख का कारण है। अविनाशी हो जाना ही मेरे आनंद का सूत्रपात है।

आज इतना ही। बैठें लेकिन; कोई उठे न। पांच-दस मिनट कीर्तन के बाद जाएं।

उनचालीसवां प्रवचन

श्रेष्ठ शासक कौन? --जो परमात्मा जैसा हो

Chapter 17 : Part 1

Rulers

Of the best rulers
The people do not know that they exist;
The next best they love and praise;
The next they fear;
And the next they revile.
When they do not command the peoples faith,
Some will lose faith in them.
And then they resort to oaths!
But (of the best) when their task is accomplished,
their work is done,
The people all remark: "we have done it ourselves".

अध्याय 17 : खंड 1

शासक

सर्वश्रेष्ठ शासक कौन है?
जिसके होने की भी खबर प्रजा को न हो;
उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है;
उससे भी कम से वह डरती है;
और सब से घटिया शासक की वह निंदा करती है।
जब शासक प्रजा की श्रद्धा के पात्र नहीं रह जाते,
और प्रजा उनमें विश्वास नहीं करती,
तब ऐसे शासक शपथों का सहारा लेते हैं!
लेकिन जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है,
तब प्रजा कहती है: "यह हमने स्वयं किया है।"

पहले एक प्रश्न।

किसी ने पूछा हैः लोग अक्सर कहते सुने जाते हैं, जो होता है ठीक ही होता है। इस ठीक का क्या अर्थ है? क्या यह सिर्फ एक सांत्वना है मन को समझाने के लिए? क्या यह संभव है कि जो भी होता हो, सभी ठीक होता हो? कहीं यह वैसा ही तो नहीं है, जैसा ईसप की कथा में लोमड़ी को अंगूर खट्टे मालूम पड़े; क्योंकि वह उन तक पहुंच नहीं सकी!

श्रेष्ठतम नियम भी निकृष्टतम उपयोग में लाए जा सकते हैं। जीवन की परम रहस्य की बातें भी क्षुद्रताओं को छिपाने का कारण बन सकती हैं। ऐसा ही यह सूत्र भी है, और लाओत्से से संबंधित है, इसलिए इस पर विचार करना उचित है।

लाओत्से कहेगा, जो होता है ठीक ही होता है। इसलिए नहीं कि यह कोई सांत्वना है, कोई कंसोलेशन है; बल्कि इसलिए कि ऐसी ही लाओत्से की दृष्टि है। लाओत्से कहता है, जो गलत है, वह हो ही कैसे सकता है? और जो भी हो सकता है, वह ठीक है।

यहां ठीक से संबंध, जो हो रहा है, उसके संबंध में वक्तव्य नहीं है, बल्कि जो हो रहा है, उसको देखने वाले के संबंध में वक्तव्य है। जब लाओत्से कहता है, जो होता है ठीक होता है, तो वह यह कह रहा है कि अब इस जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मेरे लिए बुरा हो। यह वक्तव्य, जो होता है, उसके संबंध में नहीं है। यह वक्तव्य साक्षी के संबंध में है, लाओत्से के खुद के संबंध में है। लाओत्से यह कह रहा है कि अब ऐसा कुछ भी नहीं है, जो मेरे लिए बुरा हो सके। मैं उस जगह खड़ा हूं, जहां बुराई नहीं छू सकती है। अब सभी कुछ ठीक है। अब इसलिए सभी कुछ ठीक है कि लाओत्से उस आनंद में है, जिस आनंद को नष्ट करने का अब कोई उपाय नहीं है।

आपके लिए सभी कुछ ठीक नहीं हो सकता। आपके लिए वही ठीक होगा, जिससे सुख मिले; और वह गलत होगा, जिससे दुख मिले। जब तक आपको दुख मिल सकता है, तब तक सभी कुछ ठीक नहीं हो सकता। जब तक आप दुखी हो सकते हैं, तब तक सभी कैसे ठीक होगा? छोटा बच्चा आपका पैदा हो प्यारा और मर जाए, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ? जिसे प्रेम करते हों और वह न मिल सके, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ? जीवन भर, जो आप समझते हैं अच्छा है, करते रहें और परिणाम बुरे हों, कैसे कह सकेंगे कि ठीक हुआ?

नहीं कह सकेंगे; क्योंकि आपका सुख कारण-निर्भर है। तो जिन कारणों से सुख सध जाता है, वे ठीक हैं; और जिन कारणों से नहीं सधता, वे ठीक नहीं हैं। जब तक आपको सुख-दुख में फर्क है, तब तक कुछ गैर-ठीक होगा ही। बीमारी को कैसे ठीक कहिएगा? और मौत को कैसे ठीक कहिएगा?

जब तक जीवन की चाह है, तब तक मौत तो बुरी होगी ही। और जब तक स्वास्थ्य की आकांक्षा है, तब तक बीमारी शत्रु है। जब हम किसी चीज को ठीक और गैर-ठीक कहते हैं, तो चीज ठीक या गैर-ठीक है, इससे कोई संबंध नहीं है; हमारी अपेक्षाओं की हम खबर देते हैं।

और अगर ऐसा आदमी कहे कि सब ठीक है, तो यह कंसोलेशन, सांत्वना ही होगी। और इस कहने में कोई आनंद न होगा, सिर्फ एक निराशा, एक उदासी होगी। इस वक्तव्य में कोई विजय की घोषणा नहीं है; इस वक्तव्य में पराजय का स्वीकार है। कुछ नहीं कर पाते हैं, इसलिए समझा लेते हैं अपने को कह कर कि सब ठीक है।

संतोष पराजितों की भी सहायता करता है। लेकिन वह संतोष झूठा होता है। वास्तविक संतोष तो उन्हें ही मिलता है, जो जीवन के विजेता हैं। विजेता इन अर्थों में कि अब कोई उपाय नहीं है उन्हें हराने का; विजेता इन अर्थों में कि अब उन्हें हार भी हार नहीं है। और लाओत्से ने कहा है, तुम मुझे हरा न सकोगे, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ हूं। तुम मुझे मेरे सिंहासन से उतार न सकोगे, क्योंकि मैं जहां बैठा हूं, वह अंतिम स्थान है। उससे नीचे उतारने का कोई उपाय नहीं है। तुम मुझे दुख न दे सकोगे, क्योंकि मैंने सुख की आकांक्षा को ही विसर्जित कर दिया है। इस अर्थ में जो विजेता है, संतोष उसके जीवन में प्रकाश की तरह है।

हम जैसे हारे हुए लोग... । और हम बहुत हारे हुए लोग हैं; क्योंकि जो भी हम चाहते हैं, वह नहीं मिलता। जो भी हम कामना करते हैं, वही कामना टूट जाती है, बिखर जाती है। हम बुरी तरह हारे हुए लोग हैं--सर्वहारा, सब कुछ हारे हुए हैं; कुछ मिलता नहीं है। इस हार में भी संतोष का उपयोग किया जा सकता है। तब वह झूठा है। तब ऊपर से थोपा हुआ, चिपकाया हुआ है। तब भी हम कह सकते हैं, सब ठीक है। तब ईसप की कथा ठीक है।

ईसप की कथा हम सबको ज्ञात है कि लोमड़ी ने बहुत छलांग मारीं, अंगूरों तक नहीं पहुंच सकी। लेकिन अहंकार यह भी तो स्वीकार नहीं कर सकता कि मेरी छलांग छोटी है। अहंकार यही कहेगा कि अंगूर खट्टे हैं।

लेकिन यह कहानी अधूरी है। ईसप दुबारा आए, तो कहानी को पूरा करे। मैं कहानी को पूरा कर देता हूं। जब इस लोमड़ी ने ईसप की कहानी पढ़ी, तो उसने तत्काल एक जिम्नाजियम में जाकर व्यायाम करना शुरू कर दिया। छलांग लगानी सीखी, दवाएं लीं, ताकत के लिए विटामिन्स लिए। और लोमड़ी इतनी ताकतवर हो गई कि वापस गई उसी वृक्ष के नीचे और पहली ही छलांग में अंगूर का गुच्छा उसके हाथ में आ गया। लेकिन जब उसने चखा, तो अंगूर सच में ही खट्टे थे। लेकिन अब लोमड़ी क्या करे? उसने लौट कर लोगों से कहा कि अंगूर बहुत मीठे हैं।

अहंकार है, तो कहीं से भी भर लेगा। न पहुंच पाएं अंगूर तक, तो अंगूर खट्टे हैं। और पहुंच जाएं, तो खट्टे भी हों तो भी मीठे हैं। एक बात ध्यान रख लेनी जरूरी है कि हम जो भी वक्तव्य दे रहे हैं, वह वक्तव्य हमारी पराजय से तो नहीं निकलता है? हार से तो नहीं निकलता है? हारे हुए वक्तव्यों का कोई भी मूल्य नहीं है।

और लाओत्से आपको यह नहीं सिखा रहा है कि आप थोप लें संतोष। लाओत्से यह कह रहा है कि संतोष जीवन के साथ संगीत का संबंध है, पराजय का नहीं। दुश्मनी का नहीं, मैत्री का संबंध है। लाओत्से यह कह रहा है कि जो भी होता है, वह इतनी विराट घटना है और इतने विराट उसके कारण हैं और इतना विराट उसका फैलाव और रहस्य है कि आप बचकानापन करेंगे, अगर आप निर्णय करें कि ठीक है या गलत है। आप निर्णायक नहीं हो सकते।

जगत इतनी बड़ी घटना है कि उसमें जो होता है, वह तो एक फ्रैगमेंट, एक टुकड़ा है। जैसे कि किसी आदमी को एक उपन्यास का एक पन्ना में हाथ लग जाए और वह उस पन्ने को पढ़ कर निर्णय ले कि उपन्यास नैतिक है या अनैतिक है, अश्लील है कि श्लील है, श्रेष्ठ है कि निकृष्ट है, और उस पन्ने पर वह निर्णय करे ठीक या गलत होने का, तो हम उसे नासमझ कहेंगे। हम कहेंगे, पूरी कथा से परिचित हो जाना जरूरी है निर्णय के पहले। लेकिन जगत के संबंध में हम रोज निर्णय लेते हैं। और जगत की पूरी कथा से परिचित होने का कोई भी उपाय नहीं है।

अगर हिटलर मर जाए बचपन में ही, तो उसकी मां सोचेगीः बहुत बुरा हुआ। क्योंकि यह एक टुकड़ा है। लेकिन हिटलर ने जो किया, अगर उसकी मां जिंदा हो, तो सोचेगीः यह पैदा होते ही मर जाता, तो अच्छा था।

लेकिन यह भी एक टुकड़ा है। और अभी इसके वृहत्तर... हिटलर भला समाप्त हो जाए, लेकिन हिटलर ने जो किया है, वह सक्रिय रहेगा। और यह भी हो सकता है कि दुनिया में अब कोई युद्ध न हो, सिर्फ इसलिए कि हिटलर हो गया। तब? तब हिटलर का होना अच्छा होगा या बुरा?

यह हो सकता है कि हिटलर के कारण ही युद्ध रुक जाए। और मुझे दिखता है! बुद्ध और महावीर के कारण युद्ध नहीं रुक सके; हिटलर के कारण रुक सकते हैं। क्योंकि हिटलर ने युद्ध को ऐसा विषाक्त रूप दे दिया, उसको उसकी चरम परिणति तक पहुंचा दिया, बीमारी आखिरी जगह पहुंच गई, कि अगर आदमी अब भी युद्ध करे, तो फिर हमें मानना चाहिए कि आदमी में आदमियत जैसा कुछ भी नहीं है। हो सकता है जगत में अब कोई विराट महायुद्ध न हो। लेकिन तब उसका सारा श्रेय हिटलर पर ही जाएगा।

कौन कह सकता है कि हिटलर का होना अच्छा हुआ या बुरा हुआ?

हम टुकड़े पर निर्णय करते हैं, एक खंड पर निर्णय करते हैं। जीवन अखंड धारा है। और अनंत है, अनादि है। न उसका प्रारंभ है, न उसका कोई अंत है। तो सिर्फ निर्णायक परमात्मा ही हो सकता है। जिस दिन सृष्टि समाप्त हो, उस दिन ही तय हो सकता हैः क्या था ठीक, क्या था गलत। हम कैसे निर्णय ले सकते हैं?

लाओत्से जब कहता है कि सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है कि निर्णय हम ले नहीं सकते। यह निर्णय नहीं है। जब लाओत्से कह रहा है, सब ठीक है, तो यह "सब गलत है," उसके विपरीत निर्णय नहीं है। जब लाओत्से कह रहा है, सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है कि मैं विराट की इच्छा के साथ अपने को एक करता हूं; मेरी अपनी कोई अलग इच्छा नहीं।

जीसस को सूली लग रही है। आखिरी क्षण में एक संदेह जीसस को पकड़ जाता है। जब हाथ पर कीले ठोंक दिए गए हैं, तब जीसस के मुंह से आह निकलती है और वे कहते हैं, हे परमात्मा, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है?

कहीं छिपी कोई आकांक्षा रही होगी, कहीं दूर गहरे में, जिसका जीसस को भी पता न हो। ठोंके गए कीलों ने उसे जगा दिया होगा। कहीं किसी गहरे में प्रसुप्त कोई बीज रहा होगा, यह भरोसा रहा होगा कि ईश्वर मुझे सूली नहीं लगने देगा। कहीं गहरे में ईश्वर के प्रति यह धारणा रही होगी कि सूली तो बुरी है, तो मुझे ईश्वर सूली कैसे लगने देगा! सूली अच्छी है, ऐसा जीसस को ख्याल नहीं रहा होगा। नहीं तो जीसस के मुंह से यह वचन न निकलता कि हे परमात्मा, यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? इसमें ईश्वर पर संदेह तो हो गया। और इसमें सर्व-स्वीकार नहीं रहा। सूली बुरी हो गई। और जो हो रहा है, वह गलत हो रहा है।

लेकिन तत्क्षण जीसस जैसे व्यक्ति को बोध आ गया होगा। तत्क्षण जीसस को लगा होगा, यह भूल हो गई। यह तो भूल हो गई साफ, मैंने ईश्वर से अपने को ज्यादा बुद्धिमान मान लिया। मैंने निर्णय दे दिया कि जो हो रहा है, वह गलत हो रहा है; और जो होना चाहिए था सही, वह नहीं हो रहा है। इस जरा सी आह में मैं नास्तिक हो गया; मेरी श्रद्धा खंडित हो गई। तो तत्क्षण जीसस ने क्षमा मांगी है। उनकी आंखों से आंसू बह गए और उन्होंने कहा, हे परमात्मा, मुझे क्षमा कर! तेरी मर्जी ही मेरी मर्जी है। तेरी मर्जी पूरी हो; क्योंकि तेरी मर्जी ही शुभ है।

लाओत्से जब कहता है, सब ठीक है, तो वह यह कह रहा है, उस शाश्वत नियम के विपरीत हमारे वक्तव्य नासमझी से भरे हुए हैं। वह शाश्वत नियम इतना बड़ा है--होगा ही। हम उससे ही पैदा होते हैं। मेरी मृत्यु होगी कल, तो मैं कहूंगा बुरा हो रहा है। लेकिन जिससे मेरा जन्म हुआ था, उससे ही मेरी मृत्यु हो रही है। और जिस शाश्वत नियम से मैं प्रकट हुआ था, वही शाश्वत नियम मुझे वापस बुला रहा है। अगर उसके भेजने से मैं राजी

था, तो उसके बुलाने से क्यों राजी नहीं हूं? और अगर उसका दिया हुआ जीवन अच्छा था, तो उसकी दी हुई मौत बुरी कैसे हो सकती है? एक ही स्रोत से सब कुछ जन्म रहा है। उसी स्रोत से खिलते हैं फूल और उसी स्रोत से लगते हैं कांटे। अगर उसके फूल भले हैं, तो उसके कांटे बुरे क्यों होंगे?

और लाओत्से यह कह रहा है कि कांटे भी उसी के हैं, फूल भी उसी के हैं, इसलिए सब ठीक है। यह "सब ठीक" वस्तुओं के प्रति वक्तव्य नहीं, स्वयं और शाश्वत के साथ जो संगीत सध गया है, उसकी खबर है। यह कोई सांत्वना नहीं है। क्योंकि सांत्वना का तो अर्थ ही यही होता है कि सब गलत है, और हम अपने को समझा रहे हैं कि सब ठीक है। जो ठीक नहीं है, उसको हम समझा रहे हैं कि सब ठीक है, तब सांत्वना है। लेकिन अगर ऐसी ही प्रतीति है कि सब ठीक है, तो फिर सांत्वना नहीं है।

धर्म का निकृष्ट रूप सांत्वना है, कंसोलेशन है। और धर्म का श्रेष्ठतम रूप संगीत है। व्यक्ति और विराट के बीच जो संगीत है, वह धर्म का श्रेष्ठतम रूप है। व्यक्ति और विराट के बीच जो संघर्ष है, उसमें व्यक्ति की जो पराजय है, उस पराजय में जो सांत्वना खोजी जा रही है, वह धर्म का निकृष्टतम रूप है। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह इस शाश्वत नियम को सांत्वना बनाता है या सत्य। इसे केवल एक मलहम-पट्टी समझता है कि घाव को भीतर छिपा लिया, या एक अनंत संगीत की संभावना--यह व्यक्ति पर निर्भर है। यह आप पर निर्भर है।

अधिक लोग सांत्वना में ही जीते हैं। इसीलिए आदमी दुख में धर्म की तलाश करता है; क्योंकि दुख में सांत्वना की जरूरत है। दुखी आदमी के पैर मंदिर की तरफ बढ़ने लगते हैं। मार्क्स ने तब तो ठीक ही कहा है कि धर्म दुखी आदमी की आह है और धर्म जनता के लिए अफीम है। ठीक ही कहा है। धर्म का जो निकृष्टतम रूप है, वह यही है। और यही बड़ा रूप है। सौ में निन्यानबे लोग इसी भांति धार्मिक हैं। और आश्चर्य नहीं है कि मार्क्स को सौवां आदमी न मिला हो। वह आसान भी नहीं है सौवां आदमी मिलना। निन्यानबे आदमी जगह-जगह मौजूद हैं। अगर मार्क्स को ऐसा लगा हो कि धर्म अफीम का एक नशा है, तो कुछ गलत नहीं लगा।

लेकिन इसमें निंदा भी क्या है? चिकित्सक भी, अगर आप बहुत दर्द में हों, तो नशा देकर आपके दर्द को भुलाता है। मार्फिया देता है। दर्द के साथ एक मजा है कि उसका पता चले, तो ही होता है। पता ही न चले, तो कहां है? दर्द के साथ हम दो काम कर सकते हैंः दर्द को मिटाने का--वह धर्म की श्रेष्ठतम संभावना है; दर्द को भुलाने का--वह धर्म की निकृष्टतम संभावना है। जब दुखी आदमी धर्म की तरफ बढ़ता है, तो वह सांत्वना के लिए जा रहा है। जब सुखी आदमी धर्म की तरफ बढ़ता है, तब वह संगीत के लिए जा रहा है।

इसलिए मैं कहता हूं, जब आप सुख से भरे हों, तब धर्म की तरफ बढ़ना। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। दुख से जब भरे होते हैं, तब बहुत सरल है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि दुखी, दीन, दरिद्र, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाते। उनके लिए धर्म अफीम ही है। समृद्ध, सुखी, संपन्न समाज ही धार्मिक हो पाते हैं। क्योंकि सुख जब व्यर्थ मालूम होता है, तब ठीक और गैर-ठीक की सब धारणाएं गिर जाती हैं। जब सुख ही व्यर्थ मालूम होने लगता है, तो फिर क्या ठीक है और क्या गलत है?

जब तक दुख गलत मालूम होता है, तब तक हम ज्यादा से ज्यादा सांत्वना खोज सकते हैं। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि आप धर्म को सांत्वना बनाते हैं। अगर आप धर्म को सांत्वना बनाते हैं, तो धर्म आपके लिए एक ड्रग, अल्कोहल, इससे ज्यादा नहीं है।

नीत्शे ने कहा है, पश्चिम में दो मादक द्रव्य हैंः क्रिश्चियनिटी और अल्कोहल, शराब और ईसाइयत।

वह ठीक कहा है। अधिक लोग शराब और धर्म से एक ही काम लेते हैं। जो लोग शराब से ले सकते हैं, वे धर्म की फिक्र नहीं करते। जो शराब से लेने में डरते हैं, वे धर्म से वही काम ले लेते हैं। इसलिए जो धार्मिक,

तथाकथित धार्मिक आदमी, जो धर्म से शराब का ही काम ले रहा है, वह शराबियों के बड़े खिलाफ होगा। सजातीय हैं वे। और शराब काम्पिटीटर है उनके धर्म का। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी शराब के बड़ा खिलाफ होगा। क्योंकि उसे पक्का भरोसा है कि अगर शराब ज्यादा चलती है, तो धर्म कम चलेगा। वह काम्पिटीटर है।

ठीक धार्मिक आदमी को शराब से क्या विरोध हो सकता है! बल्कि एक अर्थ में बेहतर है कि आदमी शराब पीकर भुला ले। धर्म पीकर जो भुलाता है, वह ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि धर्म का दुरुपयोग है वह। और शराब का यह सदुपयोग है। शराब की श्रेष्ठतम संभावना यही है कि आपको भुला दे। धर्म की यह निकृष्टतम संभावना है कि भुला दे।

तो जो धर्म का शराब की तरह उपयोग करता है, वह धर्म को भी नुकसान पहुंचाता है। उससे बेहतर है वह शराब ही पी ले। कम से कम रास्ता सीधा, साफ-सुथरा तो है। अपने को धोखा तो नहीं दे रहा है। लेकिन अधिक लोग धर्म को भी विस्मरण के लिए ही काम में लाते हैं। उनके कारण ही पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाती।

यह प्रश्न ठीक है। सर्व-स्वीकार परम आस्तिकता है--टोटल एक्सेप्टबिलिटी। सर्व-स्वीकार में कोई दंश नहीं है। कुछ ऐसा नहीं है कि कोई तकलीफ है, इसलिए सब स्वीकार। बल्कि यह स्मरण आ गया है कि एक लहर अगर सागर को स्वीकार न करे, तो व्यर्थ ही परेशान होगी। एक लहर का होना ही सागर का होना है। सागर का अस्तित्व ही लहर में आंदोलित हो रहा है। अगर लहर अपनी इच्छा निर्मित कर ले, तो दुखी होगी, पीड़ित होगी। लहर सागर पर ही सब छोड़ दे, तो चिंता का भार हट जाएगा।

चिंता हमारी यही है कि हम लहर होकर अपने को सागर समझ लेते हैं, लहर होकर सागर के विपरीत खड़े हो जाते हैं। तब अस्वीकार पैदा होता है। तब यह ठीक है और यह गलत, हम निर्णायक हो जाते हैं।

लाओत्से इतना ही कहता है कि निर्णय लहर क्या लेगी! लहर है ही कहां, जो निर्णय ले सके? उसका अलग होना ही नहीं है, सागर का एक हिस्सा है; सागर से ही जन्मी है, सागर में ही लीन हो जाएगी। जन्म को जिस सदभाव से स्वीकार किया है, उसी भाव से मृत्यु को भी स्वीकार कर लेना जरूरी है। दोनों ही सागर का दान हैं। सुख को जिस भांति माना, वैसे ही दुख को भी मान लेना जरूरी है। दोनों ही सागर के दान हैं। इस अर्थ में सर्व-स्वीकार परम क्रांति है, उससे बड़ी और कोई क्रांति नहीं है। क्योंकि तब व्यक्ति की बूंद खो जाती है, और सागर ही रह जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

निष्क्रियता लाओत्से के लिए परम सत्य है, आत्यंतिक, अल्टीमेट। लेकिन निष्क्रियता का ऐसा अर्थ नहीं है कि वह परिणामकारी नहीं है। लाओत्से कहता है, निष्क्रियता परम परिणामकारी है। उसके होने से ही घटनाएं घट जाती हैं। एक शांत व्यक्ति आपके पास से गुजर जाए--शांत व्यक्ति, कि जिसके भीतर एक भी तरंग नहीं, एक मौन झील, जिसमें सब शांत हो गया है, जिसके भीतर कोई आंदोलन नहीं, वह आपके पास से गुजर जाए--तो जैसे हवा का एक शांत झोंका आपके पास से गुजर गया हो। वह कुछ करता नहीं है। सिर्फ आपके पास मौजूद था, अचानक आप पाएंगे, आपके भीतर कोई शांति की वर्षा हो गई। शायद आपको ख्याल भी न हो कि जो पास से गुजर गया है, उसके कारण। और जो गुजर गया है, उसको तो बिल्कुल ही ख्याल नहीं होगा कि उसके कारण किसी पर शांति की वर्षा हो गई है। उसकी निष्क्रियता भी, उसकी शून्यता भी परिणामकारी है।

लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम परिणाम शून्यता से आते हैं। क्योंकि शून्यता में कोई हिंसा नहीं है। अगर मेरी शांति आपको छू ले और आप शांत हो जाएं, तो मैंने आपको बदला नहीं, आप बदल गए। लेकिन अगर मुझे चेष्टा

करनी पड़े आपको बदलने की और आपको शांत करने के लिए उपाय करने पड़ें, तो मेरे उपाय कितने ही शुभ मालूम हों, उनमें हिंसा होगी ही। क्योंकि जब एक व्यक्ति तय करता है दूसरे को बदलने का, तभी हिंसा शुरू हो जाती है।

इसलिए साधु-महात्मा बड़े सूक्ष्म रूप में हिंसक होते हैं; क्योंकि वे आपको वैसा ही स्वीकार नहीं कर सकते, जैसे आप हैं। वे आपको बदलेंगे। वे आपको अच्छा बनाएंगे। वे आपको शुभ बनाएंगे। वे आपके जीवन से मिट्टी अलग करेंगे और सोना डालेंगे।

बड़े अच्छे उनके ख्याल हैं। लेकिन दूसरे को बदलने का ख्याल ही दूसरे को मिटाने का ख्याल है। दूसरा जैसा है, उसमें रत्ती भर भी फर्क करने का अर्थ है कि हमें दूसरे की स्वतंत्रता स्वीकार नहीं। और हम में से कोई भी दूसरे की स्वतंत्रता बर्दाश्त नहीं करता। बाप बेटे को बदलने में लगा है, बनाने में लगा है; बिना इसकी फिक्र किए कि वह खुद भी बन पाया है या नहीं। हर बाप बेटे के साथ हिंसा करता है। इसलिए दुनिया इतनी बुरी है। फिर बेटे अपने बेटों के साथ निकाल लेते हैं। और सिलसिला जारी रहता है। ऐसी पत्नी खोजनी मुश्किल है, जो पति को बदलने में न लगी हो। अब तक ऐसा पति नहीं हो सका--हो ही नहीं सका, श्रेष्ठतम रहा हो, तो भी--जिसमें पत्नी के लिए बदलाहट का काम बाकी न हो। सुकरात जैसा पति मिल जाए, तो भी पत्नी बदलने की कोशिश करती है। बड़ी भली आशा से, बड़ी अच्छी आकांक्षा से--अच्छा बनाने की।

और एक मजे की बात है, जब आप किसी को अच्छा बनाने की कोशिश में लग जाते हैं, तो आप बड़ी कुशलता से दुष्ट हो सकते हैं। और दुष्टता चूंकि अच्छाई में छिपी होती है, इसलिए उसका विरोध भी नहीं किया जा सकता। इसलिए जो नासमझ दुष्ट हैं, वे सीधे-सीधे दुष्ट होते हैं। जो समझदार और चालाक दुष्ट हैं, वे अच्छाई के नाम पर दुष्ट होते हैं। अगर कोई आदमी आपको ही बदलने के लिए आपकी गर्दन पकड़ ले, तो विरोध भी तो नहीं किया जा सकता, बगावत भी तो नहीं की जा सकती। इसलिए तथाकथित अच्छे आदमियों के साथ में बेचैनी मालूम पड़ती है।

तो मैं आपको सूत्र देता हूंः वही है ठीक अच्छा आदमी, जिसके साथ बेचैनी मालूम न पड़े। अगर किसी अच्छे आदमी के पास बेचैनी मालूम पड़े, तो समझना कि उस अच्छे आदमी से कुछ न कुछ हिंसा आपकी तरफ बहती है। इसलिए महात्माओं के दर्शन किए जा सकते हैं, उनके साथ रहना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि चौबीस घंटे उनकी आंखें आप पर गड़ी हुई हैं--आपने यह तो नहीं खाया, यह तो नहीं पीया, ऐसे तो नहीं बैठे, वैसे तो नहीं सोए। वे चौबीस घंटे आपके पहरे पर हैं। आप जैसे हैं, वह उन्हें स्वीकार नहीं है।

बड़ा मजा है, आप जैसे हैं, परमात्मा को आप बिल्कुल स्वीकार हैं। अब तक मैं नहीं समझता कि बुरे से बुरे आदमी से भी परमात्मा ने शिकायत की हो कि तू थोड़ा अच्छा हो जा! थोड़ा तो सुधर! परमात्मा ने अब तक शिकायत ही नहीं की। और महात्माओं के पास सिवाय शिकायत करने के दूसरा कोई काम नहीं है। ऐसा लगता है कि महात्माओं का धंधा और परमात्मा के धंधे में बुनियादी दुश्मनी है। परमात्मा को सर्व-स्वीकार है।

लाओत्से का यह सूत्र इसी ओर इशारा करने वाला सूत्र है।

लाओत्से कहता है, "सर्वश्रेष्ठ शासक कौन है? जिसके होने की भी खबर प्रजा को न हो।"

पता ही न चले कि वह है भी। क्योंकि होने की भी खबर हिंसा है। अगर बेटे को पता चलता है घर में कि बाप है, तो बाप की तरफ से कोई न कोई हिंसा जारी है। अगर पति को पता चलता है कि घर में पत्नी है और दरवाजे पर सम्हल कर और टाई वगैरह ठीक करके उसको भीतर प्रवेश करना पड़ता है, तो समझना कि हिंसा है। अगर पति के आने से पत्नी ठीक वैसी ही नहीं रह जाती जैसी अकेले में थी, तो समझना कि पति की तरफ से

हिंसा है। होने का पता ही नहीं चलना चाहिए। प्रेम की जो परम अभिव्यक्ति है, वह यही है कि प्रेमी का पता ही न चले, उसकी मौजूदगी कहीं भी चोट न करे।

ध्यान रखें, पता ही चलता है चोट से। संस्कृत में बड़े कीमती शब्द हैं। एक कीमती शब्द है वेदना। वेदना के दोनों अर्थ होते हैं, दुख भी और ज्ञान भी। वेद का अर्थ होता है ज्ञान। उसी विद से बनता है विद्वान, जानने वाला; उसी से बनता है वेदना, दुख। एक ही शब्द के दो अर्थ और बड़े अजीब! अगर वेदना का अर्थ दुख हो और वेदना का अर्थ ज्ञान भी हो, तो समझ में नहीं पड़ता, दुख और ज्ञान में क्या संबंध है? अगर दुख की जगह सुख और ज्ञान होता, तो संबंध भी बन सकता था।

लेकिन संबंध है। आपको दुख का ही ज्ञान होता है, सुख का ज्ञान नहीं होता। इसलिए जिन क्षणों को आप कहते हैं कि बड़े सुख में बीते; वे वे क्षण हैं, जिनके बीतते वक्त आपको उनका बिल्कुल भी पता नहीं चला। दुख का बोध होता है। पैर में कांटा गड़ जाए, तो पैर का पता चलता है; नहीं तो पैर का पता नहीं चलता। सिर में दर्द हो, तो पहली दफे सिर का पता चलता है; नहीं तो सिर का पता नहीं चलता।

तो जिस आदमी को सिर का पता चलता हो, उसे जानना चाहिए कि उसे सिर की कोई बीमारी है। जिस आदमी को शरीर का पता चलता हो, उसका अर्थ है कि वह बीमार है, रुग्ण है। स्वास्थ्य की एक ही परिभाषा है कि शरीर का पता न चले। स्वस्थ आदमी विदेह हो जाएगा, उसे पता ही नहीं चलेगा कि देह भी है। सिर्फ बीमार आदमी के पास शरीर होता है, स्वस्थ आदमी के पास शरीर नहीं होता। और बीमार आदमी के पास बड़ा शरीर होता है। जितनी बीमारियां, उतना बड़ा शरीर। क्योंकि उतना शरीर का बोध होता है।

दुख, बोध एक ही बात है। जिसकी मौजूदगी पता चले, उससे आपको कोई दुख मिल रहा है। जिसकी मौजूदगी पता न चले, उससे ही आनंद मिलता है। अगर दो प्रेमी एक कमरे में बैठे हैं, तो वहां दो व्यक्ति नहीं बैठे हैं। वहां एक-दूसरे से एक-दूसरे को कोई बोध नहीं है। वहां एक ही चेतना रह गई है।

लाओत्से कहता है, सर्वश्रेष्ठ शासक वह है, जिसके होने का पता ही शासितों को न चले।

शायद परमात्मा के अतिरिक्त ऐसा और कोई शासक नहीं है। उसका भर हमें पता नहीं चलता। खोजें, तो भी पता नहीं चलता। पता लगाने जाएं हिमालय में, तो भी पता नहीं चलता। काशी, मक्का, मदीना भटकें, तो भी पता नहीं चलता।

थोड़ा ख्याल करें। आपके मन की एक इच्छा होती है कि आप जहां भी जाएं, वहां लोगों को पता चले कि आप आए हैं। कितना उपाय नहीं करते हैं हम इसका कि लोगों को पता चले कि आप आ गए। आप इस भवन में आएं और किसी को पता न चले, तो आप बड़े पीड़ित हो जाएंगे, बड़े पीड़ित हो जाएंगे।

आसपेंस्की पहली दफा जब गुरजिएफ को मिलने गया, तो बीस लोग बैठे थे। आसपेंस्की बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था, बड़ा गणितज्ञ था, वैज्ञानिक चिंतक था--अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध। गुरजिएफ को कोई जानता भी नहीं था। किसी अचेतन मन में आसपेंस्की ने सोचा होगाः गुरजिएफ उठ कर मिलेगा, जो लोग बैठे होंगे, चमत्कृत होंगे कि आसपेंस्की जैसा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का व्यक्ति अनजान गुरजिएफ से मिलने आया है! वहां बीस लोग बैठे थे और गुरजिएफ भी बैठा था। आसपेंस्की को जब भीतर ले जाया गया, तो आसपेंस्की ऐसा हैरान हुआ, ऐसा मरा हुआ कमरा उसने कभी देखा ही नहीं था। उन बीस में से कोई हिला भी नहीं, किसी ने आंख भी उसकी तरफ न की। उन बीस ने जैसे जाना ही नहीं कि कोई आया। गुरजिएफ वैसा ही बैठा रहा, जैसा बैठा था।

आसपेंस्की जाकर खड़ा हो गया। यह बड़ा अजीब परिचय का क्षण था। यह भी न पूछा--कैसे आए? यह भी न पूछा--कौन हैं? यह भी न कहा--बैठें, कृपा करें। सर्द रात थी। आसपेंस्की ने लिखा है, माथे पर मेरे एक

क्षण में पसीना झलकने लगा। यह मैं कहां आ गया हूं? वहां से पैर भी वापस लौटाने की हिम्मत न रही। वहां मैं जड़ की तरह खड़ा रह गया। कोई कहे कि बैठो, तो बैठ भी जाऊं। लेकिन वहां कोई देखता ही नहीं है। मिनट, दो मिनट... ! आसपेंस्की ने लिखा है, पहली दफे मुझे समय का बोध हुआ कि समय कितनी भारी चीज है। मेरे सिर पर जैसे पहाड़ गुजरने लगा। क्या होगा अंत? जो आदमी दरवाजे पर छोड़ कर गया था, वह दरवाजा बंद करके लौट गया है। क्या होगा अंत? क्या रात भर ऐसे ही बीतेगी? यह तो नरक हो गया। और इतने चुप बैठे हैं वे लोग, इतने मूर्तिवत, कि अपनी तरफ से उस मौन को भंग करना भी अशिष्टता मालूम पड़ती है। आसपेंस्की ने लिखा है कि मैं बिल्कुल नाचीज मालूम पड़ने लगा--नोबडी, जैसे मैं कुछ भी नहीं हूं।

यह कोई पंद्रह मिनट हालत रही। और तब गुरजिएफ ने ऊपर चेहरा उठा कर देखा और कहा, पसीना पोंछ लो, रात ऐसे बहुत सर्द है; बैठ जाओ। जान कर ही हमने यह किया। हम जानना चाहते थे कि तुम कैसे व्यक्ति हो। क्या तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी उपस्थिति अनुभव करें। क्योंकि हम इसे हिंसा मानते हैं। तुम पंद्रह मिनट भी बर्दाश्त न कर सके। तुम पंद्रह मिनट भी ऐसे न हो सके, जैसे मौजूद ही न हो! अगर तुम ऐसे हो सकते, तो फिर मेरे पास तुम्हें सिखाने को कुछ भी नहीं था। लेकिन तुम ऐसे नहीं हो सके, तो मुझे तुम्हें सिखाने को बहुत कुछ है। तुम हिंसक हो।

हम हिंसा बहुत तरह से करते हैं। प्रकार अनेक हो सकते हैं। एक आदमी ऐसे वस्त्र पहन कर आ जाता है कि आपको देखना ही पड़े; कि एक आदमी ऐसी चाल-ढाल से आता है कि आपको देखना ही पड़े। हर आदमी शोरगुल करता आता है, चाहे कितना ही चुप आ रहा हो। और हर आदमी धक्का देता आता है, चाहे कितना ही धक्कों से बचता हुआ आ रहा हो। हर आदमी यह खबर लाता है कि मैं आ गया हूं, मैं यहां हूं।

सिर्फ परमात्मा ऐसी कोई खबर नहीं करता। नास्तिक कहते हैं, वह दिखाई पड़े, तो हम मान लें। नास्तिक यह कहते हैं कि वह भी हमारी ही तरह सूचना दे अपनी मौजूदगी की, तो हम मान लें।

नास्तिकों को पता नहीं कि परमात्मा के होने का जो गुण है, जो गहरा गुण है उसके अस्तित्व का, वह यही है कि वह न होने जैसा हो, उसका कोई पता न चले। जिस दिन परमात्मा का पता चल जाए, उस दिन वह परमात्मा न रहा। और जिस दिन वह स्वयं अपनी घोषणा करने लगे, उस दिन वह परमात्मा न रहा। जिस दिन वह आकर आपकी गर्दन हिला कर आपको कहने लगे कि मैं यहां हूं, देखो, मैं यहीं मौजूद हूं, तुम बिना देखे ही चले जा रहे हो, उस दिन वह परमात्मा न रहा।

परमात्मा का अर्थ ही यह है कि जिसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति में रंच मात्र का फर्क नहीं है। जिसके लिए एब्सेंस और प्रेजेंस, दोनों शब्द पर्यायवाची हैं, एक ही अर्थ रखते हैं। जिसके उपस्थित होने का ढंग ही अनुपस्थिति है।

तो लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम शासक है वही, जिसके होने की खबर भी प्रजा को न हो।

ईश्वर के सिवाय ऐसा कोई शासक नहीं है। कभी अगर कोई शासक इस ईश्वर की स्थिति के निकट पहुंच जाता है, तो ही... । इसलिए पुराने दिनों में, कम से कम लाओत्से के समय के और कोई दो-ढाई हजार वर्ष पहले, ईश्वर का अवतार मानते थे सम्राट को। अब तो ऐसा लगता है कि वह चालबाजी थी। अब तो इधर दो-तीन सौ वर्षों में जो चिंतन चला है, उसने समझाया है कि यह सब शरारत थी, यह पुरोहितों और राजाओं का शड्यंत्र था। बहुत दूर तक यह सही भी है; लेकिन पूरे रूप से सही नहीं है। कभी-कभी कोई राजा ऐसा भी हुआ है, जिसकी उपस्थिति का प्रजा को न के बराबर पता चला। तब उस राजा को लाओत्से जैसे लोगों ने ईश्वरीय

कहा है; जिसके होने का पता ही न चला हो या कम से कम पता चला हो। इतना ही पता चला हो कि वह है, और कोई खबर न मिली हो।

लाओत्से कहता है कि अगर कोई शासक, कोई सम्राट इस तरह अनुपस्थित हो जाए अपने भीतर, तो उसकी मौजूदगी से ही प्रजा का कल्याण हो जाता है।

ये बातें आज समझनी बहुत मुश्किल हो गई हैं। क्योंकि आज तो राजपद की तरफ वही आदमी जाता है, जो बेचैन है अपनी उपस्थिति बताने को। जिसकी एक ही बेचैनी है कि लोग जान लें कि वह कुछ है। इसके लिए वह लोगों के चरणों पर भी सिर रख कर सिंहासन की यात्रा करता है।

लोग बड़े परेशान होते हैं कि कल जो आदमी चरणों में सिर रखने को राजी था एक मत पाने के लिए, अचानक विजेता होकर वही आदमी उनकी तरफ देखता भी नहीं! शायद वही आदमी उनके सिर को भी इस योग्य नहीं मानता कि उस पर चरण रखे।

जनता बेचैन होती है, लेकिन बेचैन बिल्कुल नहीं होना चाहिए। गणित बिल्कुल साफ है। तुम्हारे चरणों पर सिर रखा ही इसलिए गया था, ताकि तुम्हारे सिरों पर चरण रखे जा सकें। सीधा गणित है। इसमें कुछ बेचैन होने जैसा नहीं। इसमें कहीं कुछ गलती नहीं हो रही है। इसमें वही हो रहा है, जो पूर्व नियोजित था। और जब आप इतने प्रसन्न हो गए थे चरणों पर सिर रखते वक्त, तो अब उनको भी प्रसन्न होने दें। यह लेन-देन है।

आज तो राजपद की तरफ वही आदमी जाता है, जो अनुभव करता है कि बिना पद पर हुए कोई अनुभव नहीं करेगा कि मैं भी था। होने का अनुभव अब तो कुर्सी पर ही होकर हो सकता है। इसलिए आज लाओत्से जैसे लोगों की बात समझनी बड़ी कठिन है। लेकिन कभी यह बात भी सार्थक थी और कभी इस पृथ्वी पर वैसे राजा भी हुए हैं, जिनके होने की कोई खबर लोगों को नहीं हुई, या इतनी ही ज्यादा से ज्यादा खबर हो सकी कि वे हैं।

लाओत्से कहता है कि सम्राट का यह गुण है, वही सम्राट है, कि जो अपने भीतर अहंकार को इस तरह पोंछ डाले कि एक शून्य हो जाए। सिंहासन पर अगर शून्य बैठा हो, तो राज्य में मंगल होगा, ऐसा लाओत्से की धारणा है! लेकिन अब तो सिंहासनों पर अहंकार के सघन रूप बैठे हैं। मंगल असंभव है। लाओत्से कहता है, पद पर होने का वही हकदार है, जो मिट ही गया हो, जो हो ही नहीं। जो जितनी ज्यादा मात्रा में है, उतना ही पद पर होने का अधिकारी नहीं है। अहंकार और सिंहासन का जोड़ जहरीला है। अहंकार और शक्ति का जोड़ खतरनाक है। शक्ति वहीं होनी चाहिए, जहां निरहंकार हो। जहां निरहंकार हो, वहीं शक्ति प्रवाहित होनी चाहिए।

इसलिए हमने इस मुल्क में एक अदभुत प्रयोग किया था कि हमने क्षत्रिय के ऊपर भी, राजा के ऊपर भी, ब्राह्मण को रख दिया था। यह अनूठा प्रयोग था मनुष्य-जाति के इतिहास में। असफल गया। जितना बड़ा प्रयास हो, उतनी असफलता की ज्यादा संभावना होती है; जितना क्षुद्र प्रयास हो, उतनी सफलता की ज्यादा संभावना होती है। कम्युनिज्म सफल होकर रहेगा; क्योंकि मनुष्य-जाति के इतिहास में क्षुद्रतम प्रयोग है। असफल नहीं हो सकता। यह प्रयोग असफल हुआ कि हमने ब्राह्मण को ऊपर रख दिया; भिखारी को, जन्मजात भिखारी को, जिसके पास कुछ भी न था, उसे हमने सम्राट के ऊपर रख दिया।

बुद्ध एक गांव में आए हैं। उस गांव का सम्राट अपने मंत्रियों को पूछता है कि क्या यह उचित होगा कि मैं बुद्ध का स्वागत करने गांव के द्वार पर जाऊं? उसका जो प्रधानमंत्री है, उसने यह सुनते से ही अपना इस्तीफा लिख कर उस राजा को दे दिया। और उसने कहा कि मुझे क्षमा कर दें, अब मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता हूं। पर उस सम्राट ने कहा, इसमें अभी ऐसी क्या बात हो गई? उसने कहा, यह पूछना ही कि क्या यह उचित होगा

कि मैं बुद्ध का स्वागत करने जाऊं, आपकी अयोग्यता का प्रमाण है। बात समाप्त हो गई। मैं आपके नीचे नहीं रुक सकता अब। ऐसे आदमी के पास रुकना पाप है। यह पूछना ही हद्द हो गयी अशिष्टता की। सम्राट ने कहा, इसमें... । मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि न जाऊं; पूछता हूं, क्या यह उचित होगा कि एक सम्राट और एक भिखारी का स्वागत करने जाए? उस आमात्य ने, उस वृद्ध मंत्री ने कहा, यही सम्राट की शोभा है। और ध्यान रखें, भूल न जाएं कि वह जो भिखारी की तरह आज गांव में आ रहा है, वह भी कभी सम्राट था। वह साम्राज्य को छोड़ कर भिखारी हुआ है; अभी आप साम्राज्य को पकड़े हुए हैं। आपकी हैसियत उसके मुकाबले नहीं है। वह सम्राट होने योग्य भिखारी है; आप भिखारी होने योग्य सम्राट हैं।

जो ना-कुछ हो गया है, वह श्रेष्ठतम है। जो कुछ भी नहीं है, वही सब कुछ है।

इसलिए लाओत्से कहता है, श्रेष्ठतम शासक कौन? जिसके होने की भी खबर न हो।

"उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है।"

हम सोचेंगे, तो हमें कठिन लगेगा। हमें लगेगा, जो श्रेष्ठतम है, उसे प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है। लेकिन लाओत्से कहता है, वह नंबर दो का शासक है। क्योंकि प्रेम और प्रशंसा पाने के लिए उसे कुछ करना पड़ता है। और प्रजा उसे प्रेम और प्रशंसा इसीलिए देती है कि वह कुछ करता है। जो कुछ भी नहीं करता, जो शून्यवत है, प्रजा को उसका पता ही नहीं चलेगा। यद्यपि बहुत कुछ उससे होगा, लेकिन प्रजा को पता नहीं चलेगा।

वह जो शून्यवत है, उसके संबंध में आखिरी सूत्र में लाओत्से कहता है, "और जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है, तब प्रजा कहती है, यह हमने स्वयं किया है।"

क्योंकि वह कभी घोषणा भी नहीं करता कि यह मैं कर रहा हूं। यह कभी किसी को पता भी नहीं चलता कि यह किसने क्या है। और जब पता नहीं चलता, तो हर आदमी सोचता है, यह मैंने किया है।

उससे कम श्रेष्ठ को प्रजा प्रेम और प्रशंसा देती है, आदर करती है।

आपका आदर पाना हो, प्रशंसा पानी हो, प्रेम पाना हो, तो फिर अपनी मौजूदगी आपको अनुभव करवानी ही पड़ेगी। अच्छे ढंग से, ऐसे ढंग से कि आप प्रशंसा करें, प्रेम करें। लेकिन निष्क्रियता के बिंदु से यह आदमी सक्रियता में उतर आया, कुछ करने में लग गया। और चाहे प्रेम भी किया जाए... ।

प्रेम हो, यह बिल्कुल और बात है। लेकिन साधारणतः जो प्रेम होता है, उसका आपको पता भी नहीं चल सकता। अगर कोई आपको प्रेम करता है, तो उसका पता कैसे चलता है? वह कहे कि आपको प्रेम करता है, कि आभूषण लाकर भेंट करे--कुछ करे कि पता चले कि प्रेम करता है। अगर कोई आपको प्रेम करता है और कभी न कहे, और न कभी कुछ भेंट करे, और उसका प्रेम मौन हो और चुप हो, तो आपको पता भी नहीं चलेगा।

प्रेम का भी पता तब चलता है, जब प्रेम एग्रेसिव, आक्रामक हो जाता है। इसलिए जितना आक्रामक प्रेमी होता है, उतना पता चलता है। जो जितना हमलावर प्रेमी होता है, उतना पता चलता है। जो शांत प्रेमी होता है, उसका पता भी नहीं चलेगा। क्योंकि शांत प्रेम के अनुभव के लिए आपकी चेतना भी इतनी ऊपर उठनी चाहिए कि शांति के संदेश को भी पकड़ पाए। आप हिंसा का संदेश ही पकड़ पाते हैं, आक्रमण को ही पकड़ पाते हैं। इसलिए जो प्रेमी जितना आक्रामक है, वह उतना ज्यादा प्रेमी मालूम पड़ता है।

अगर सम्राट द्वितीय कोटि का है, तो ही, लाओत्से कहता है, प्रजा उसको प्रशंसा और प्रेम दे पाएगी। क्योंकि द्वितीय कोटि का होगा, तो ही प्रजा को पता चलेगा।

प्रेम भी शून्य से नीचे की घटना है। एक प्रेम है, जो शून्य में भी होता है। लेकिन फिर उसका कोई पता नहीं चलता। उसका कोई पता नहीं चलता। परमात्मा के प्रेम का आपको कभी कोई पता चला है? यद्यपि उसके

बिना प्रेम के आपकी श्वास भी नहीं चल सकती। उसके बिना प्रेम के एक फूल भी नहीं खिल सकता। उसके बिना प्रेम के कुछ भी संभव नहीं है। उसका प्रेम ही सब संभावनाओं का स्रोत है। लेकिन उसका कोई पता नहीं चलता। इसलिए परमात्मा को हम प्रेमी नहीं बना पाते। हम एक क्षुद्रतम आदमी को प्रेमी बना लेंगे। उसका प्रेम आक्रामक है, पता चलता है।

इसलिए प्रेम का अभिनय भी किया जा सकता है। क्योंकि आप पता भर चलवा दें, तो प्रेम का अभिनय पूरा हो जाएगा। प्रेम न हो, तो भी आप प्रेमी बन सकते हैं, अगर आप थोड़ा अभिनय कर सकें, प्रकट करने में अभिनय कर सकें। और प्रेम हो, तो भी पता न चलेगा, अगर आप कृत्य तक उसको प्रकट न होने दें। शायद सच्चा प्रेमी कभी भी पता नहीं चल पाता; क्योंकि सच्चा प्रेमी इतना भी आक्रमण नहीं कर सकता कि कहे कि मैं प्रेम करता हूं। पर वह हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है। वैसा शासक, वैसा प्रेमी हमारी सीमा के बाहर छूट जाता है।

"उससे भी कम से प्रजा डरती है, भयभीत होती है।"

और आमतौर से जिससे हम भयभीत होते हैं, उसको हम प्रेम करते हैं। वह तृतीय कोटि का व्यक्तित्व है।

तुलसीदास ने कहा हैः भय बिन होय न प्रीति, बिना भय के प्रेम नहीं होता। निश्चित ही वे इस तीसरी कोटि की बात कर रहे हैं। हम सब ऐसे ही लोग हैं, जिनकी तुलसीदास बात कर रहे हैं। हमको भय हो, तो ही प्रेम होता है। हम परमात्मा से भी प्रेम करते हैं, भय के कारण। जितना परमात्मा हमें डराए या डराता हुआ मालूम पड़े कि नरक में डाल दूंगा, आग में जला दूंगा, पाप किया तो सदा-सदा के लिए, अनंतकाल तक सड़ोगे, ऐसी कोई बातें परमात्मा की तरफ से हमारे लिए कही जाएं, तो हम तत्काल प्रेम से भर जाते हैं, हमारे हाथ प्रार्थना में जुड़ जाते हैं। हम भय को समझ पाते हैं। शून्य को तो हम क्या समझ पाएंगे, हम प्रेम तक को नहीं समझ पाते! हम भय को समझ पाते हैं।

इसलिए जो हमें जितना भयभीत कर दे, वह उतना बड़ा शासक मालूम होता है। अगर हम इतिहास उठा कर देखें, तो हम उन शासकों के ही नाम पाएंगे स्वर्ण-अक्षरों में लिखे, जिन्होंने लोगों को जितनी ज्यादा मात्रा में भयभीत किया है। फिर चाहे वे सिकंदर हों, चाहे नेपोलियन हों, चाहे चंगीज हों, चाहे कोई और हों। हमारा सारा इतिहास भयभीत करने वालों और भयभीत होने वालों का इतिहास है। जो जितना भयभीत कर दे, उतना बड़ा शासक हमें मालूम पड़ता है। क्यों? हमें प्रेम भी, अगर आक्रमण न करे, तो पता नहीं चलता। और प्रेम आक्रमण करना नहीं चाहेगा। भय का हमें पता चलता है, क्योंकि भय शुद्ध आक्रमण है। भय का अर्थ ही है कि किसी ने आपके अस्तित्व को कंपा दिया।

थोड़ा समझें इस बात को। श्रेष्ठतम शासक वह है, जिसके होने का आपको पता नहीं चलता। और निकृष्टतम शासक वह है, जो आपके होने को भी खतरे में डाल देता है। श्रेष्ठतम वह है कि आप उसकी तरफ देखें भी न। निकृष्टतम वह है कि उसकी नजर आपके प्राणों की जड़ों को कंपा दे। आप कंपे हुए हों, भयभीत हों।

भय हमारी सारी स्थिति बदल देता है। चंगीज ने हमला किया है, तो जिस गांव पर चंगीज हमला करता है, उस गांव के बच्चों को कटवा कर भालों पर छिदवा देता है उनके सिरों को। दिल्ली में उसने दस हजार भाले बच्चों के सिरों पर छिदवा दिए। जहां से गुजरता है, वहां गांवों में आग लगा देता है, ताकि उसकी फौजों को प्रकाश मिल सके। चंगीज को आदमियत भूल नहीं सकती। तैमूर को लोग भूल नहीं सकते।

तैमूर ने हमला किया था मुल्ला नसरुद्दीन के गांव पर। खबर मिली तैमूर को कि गांव में एक ज्ञानी है, नसरुद्दीन। पकड़वा भेजा, अदालत में खड़ा किया और कहा कि मैंने सुना है कि तुम एक मिस्टिक हो, एक

रहस्यवादी हो। प्रमाण दो! अन्यथा यह तलवार रखी है। मैं प्रमाण मानता हूं, बातचीत नहीं। नसरुद्दीन ने आंखें बंद की, खुशी से भर गया आकाश की तरफ देखा और कहा कि देखो, देवता मौजूद हैं। नीचे आंख की और कहा, यह सातवां नरक! सब मुझे दिखाई पड़ रहे हैं। तैमूर ने कहा, हद! क्या है इसकी तरकीब, क्या है इसकी विधि जिससे तुम देवता देख लेते हो और नरक देख लेते हो?

नसरुद्दीन ने कहा, विधि? नथिंग बट फियर। वह तुम्हारी तलवार की वजह से सब मुझे दिखाई पड़ रहा है। कुछ और नहीं है विधि, सिर्फ भय। रहस्यवादी वगैरह मैं नहीं हूं। मगर अब क्या कर सकता हूं? भय तो आदमी को कुछ भी दिखा देता है।

आपको आकाश में देवता और स्वर्ग और नरक और ईश्वर वगैरह जो-जो दिखाई पड़ते हैं, वह भी भय ही कारण है। इसलिए बूढ़ा आदमी ज्यादा धार्मिक हो जाता है; क्योंकि बूढ़ा आदमी ज्यादा भयभीत हो जाता है। जवान आदमी को धार्मिक बनाना जरा मुश्किल है; बूढ़े आदमी को धार्मिक बनने से बचाना बहुत मुश्किल है। और लोग कहते हैं कि अभी तुम्हारी उम्र नहीं धार्मिक होने की! उनका मतलब साफ है कि जरा भय बढ़ने दो, फिर तुम्हें स्वर्ग-नरक सब दिखाई पड़ने लगेंगे। मौत जैसे करीब आती है, वैसे आदमी धार्मिक होने लगता है--अनुपात में। जैसे मौत करीब आती है, आदमी धार्मिक होने लगता है। मौत के करीब आने से धार्मिक होने का क्या लेना-देना होगा? भय बढ़ने लगता है, हाथ-पैर कंपने लगते हैं, डर लगने लगता है, घबड़ाहट होने लगती है।

जिससे हम भयभीत होते हैं, वह परमात्मा नहीं है। वह हमारे भय का ही विस्तार है।

लाओत्से कहता है, "उससे भी कम से वह डरती है।"

तृतीय कोटि का जो शासक है। अगर हम सारी दुनिया में शासन को देखें, तो वह तृतीय कोटि का ही होगा। क्योंकि सारा शासन भय पर खड़ा है। कानून, अदालत, सब भय पर खड़े हैं।

"और सबसे घटिया शासक की वह निंदा करती है।"

चौथी कोटि, इस सीमा पर पहुंच जाती है स्थिति कि लोगों को निंदा करनी पड़ती है।

लेकिन एक मजे की बात है। चेस्टरटन ने कहा है कि किसी जगह से मैं गुजरूं, तुम अगर मेरी प्रशंसा न करो, तो कम से कम निंदा तो करो। क्योंकि निंदा करके भी तुम स्वीकार करते हो कि मैं कुछ हूं।

ध्यान रहे, इस जगत में उपेक्षा से बड़ी पीड़ा नहीं है। निंदा भी इतनी बड़ी पीड़ा नहीं है। जब लोग आपकी निंदा भी करते हैं, तब भी आपको स्वीकार करते हैं कि आप कुछ हैं। अगर लोग निंदा भी न करें, प्रशंसा भी न करें, उपेक्षा करें, तो फिर अहंकार को कोई जगह नहीं मिलती खड़े होने के लिए।

चौथे शासक वे हैं, जो आपकी निंदा से भी जीते हैं, आपकी निंदा पर ही जीते हैं। आपको इस हालत में खड़ा कर देते हैं कि आपको सतत उनकी निंदा तो करनी ही पड़ेगी। मगर तब भी ध्यान आपको उन पर ही देना पड़ता है। कोई हर्ज नहीं, बदनामी ही सही, गाली-गलौज ही सही। किसी रास्ते पर फूल मिलें, तो ठीक; पत्थर मिलें, तो भी ठीक। लेकिन किसी रास्ते पर कुछ भी न मिले, कोई देखे ही नहीं; तब बहुत पीड़ा होगी। क्योंकि अहंकार ध्यान मांगता है, आकर्षित करना चाहता है लोगों को।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि दुनिया में इतने ज्यादा अपराधों का कारण? कारण वही है, जिस कारण से लोग साधु होते हैं। कारण में कोई फर्क नहीं है। जो साधु होकर प्रशंसा पा सकता है, वह साधु हो जाता है। जो उतना नहीं कर सकता, वह अपराधी होकर निंदा पा लेता है। लेकिन दोनों अखबार में सुर्खियां बना देते हैं। बुरा

आदमी भी तब तक न मिटेगा दुनिया से, जब तक हम बुराई की निंदा करते हैं। यह बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। यह उलटा गणित है।

जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नॉट ईविल, बुराई का भी विरोध मत करो। क्योंकि विरोध करके भी तुम बुराई को आदर दे रहे हो। और विरोध करके भी तुम बुराई पर ध्यान दे रहे हो। और विरोध करके भी तुम बुराई को प्राण दे रहे हो। बुराई का भी विरोध मत करो। क्योंकि बुरा आदमी भी, जब तुम निंदा करते हो, तो आनंदित होता है।

आप ऐसा मत समझना कि हायरेरकी राजधानियों में ही होती है; जेलखानों में भी होती है। जेलखानों में आप जाएं, तो वहां भी दादा अपराधी होते हैं। साधारण अपराधी भी होते हैं; बड़े, महान अपराधी भी होते हैं। और जब जेल में नया अपराधी पहुंचता है, तो लोग उससे पूछते हैं, पहली दफे ही आ रहे हो? यानी सिक्खड़ हो, नए-नए हो, एमेच्योर! वहां गुरुजन भी होते हैं; वे जो काफी निष्णात हैं, जो कुशल हैं, बहुत बार आए-गए हैं। वहां भी हायरेरकी है। कितने अपराध किए हैं, उससे उतना ही आदर मिलता है जेलखाने में; जैसे मंदिर में कितना दान किया है, उससे मिलता है। कितना आतंक फैला दिया है लोगों में, उससे भी आनंद मिलता है। अहंकार के तृप्त होने के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं।

लाओत्से कहता है, जो चतुर्थ कोटि है, वह सबसे घटिया शासक की है। प्रजा उसकी निंदा करती है। लेकिन वह निंदा से ही जीता है।

"जब शासक प्रजा की श्रद्धा के पात्र नहीं रह जाते और प्रजा उनमें विश्वास नहीं करती, तब ऐसे शासक शपथों का सहारा लेते हैं।"

ईसाइयों का एक संप्रदाय है, क्वेकर। वे शपथ नहीं लेते अदालत में, कसम नहीं खाते; कसम खाने को पाप मानते हैं। इसके लिए उन्होंने बहुत मुसीबत सही; क्योंकि अदालत तो कसम पहले दिलवाएगी कि कसम खाओ बाइबिल को हाथ में लेकर, या ईश्वर को साक्षी रख कर, कि तुम जो कहोगे, वह सच होगा। ईसाई क्वेकर कहते हैं कि जो शपथ मैं लूंगा, अगर मैं असत्य ही बोलने वाला हूं, तो शपथ भी असत्य ली जा सकती है। कम से कम शपथ लेने के पहले तो मैंने कोई शपथ नहीं ली है। जब मैं कहता हूं कि जो मैं बोलूंगा, वह मैं सत्य ही बोलूंगा, इसके पहले मेरी क्या शपथ है? मैं यह भी तो झूठ बोल सकता हूं। और अगर मुझ पर भरोसा है, तो शपथ की कोई भी जरूरत नहीं। और अगर मुझ पर भरोसा नहीं है, तो मेरी शपथ पर भरोसा करने का क्या कारण?

फिर क्वेकर कहते हैं कि हम शपथ खाएं, उसका मतलब यह है कि हम झूठ भी बोलते हैं। मैं कसम खाऊं कि मैं सच ही बोलूंगा अदालत में, उसका मतलब यह है कि मैं झूठ भी बोलता हूं। इसलिए शपथ झूठ बोलने वाला ही खा सकता है। इसलिए जितनी कसमें खाने वाले लोग होते हैं, उनसे जरा सावधान रहना! जो घड़ी-घड़ी कसम खाते हैं, खतरनाक लोग हैं। असल में, कसम खाकर वे आपको और अपने को भरोसा दिलाना चाहते हैं कि आदमी अच्छा हूं, कसम खाता हूं।

जब सम्राट के पास कोई उपाय नहीं रह जाता लोगों में श्रद्धा जगाने का, तब शपथ उतर आती है। अगर सम्राट लोगों में श्रद्धा जगा सकता है, तो कसम खाने का कोई भी सवाल नहीं है।

एक व्यक्ति मेरे पास आए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। आपकी बात मुझे ठीक लगती है, आपके पास मैं आना चाहता हूं; लेकिन मैं पहले एक गुरु बना चुका हूं। और उन गुरु ने मुझे कसम खिला दी है कि अब दुबारा किसी को गुरु मत बनाना।

तो मैंने उनको कहा कि तुम्हारे गुरु को पहले ही शक रहा होगा अपने पर! अपने पर शक रहा होगा, भरोसा न रहा होगा अपनी गुरुता का, इसीलिए तुम्हें शपथ दिला दी है। अगर यह भरोसा होता, तो यह शपथ की कोई जरूरत ही न थी। डर रहा होगा कि आज नहीं कल छोड़ कर तुम किसी और गुरु के पास चले जाओगे। इस भय का उपाय किया है। तो मैंने उनसे कहा, जो गुरु शपथ दिलाता हो, शपथ देने के पहले ही भाग खड़े होना। क्योंकि आज नहीं कल भागोगे ही, यह गुरु भी जानता है। उसे खुद भी भरोसा नहीं है अपने पर कि तुम्हें रोक पाएगा।

श्रद्धा शपथ नहीं दिलाती, सिर्फ संभावना जगाती है। शपथ श्रद्धा के अभाव से पैदा होती है। अदालत, मंदिर में हमें शादी करवा कर कसम दिलवानी पड़ती है पति-पत्नी को कि सदा मैं तुम्हारा रहूंगा, कि सदा मैं तुम्हारी रहूंगी। उसी दिन बात खराब हो गई। वह शपथ ही बता रही है कि मामला टूट चुका है। शादी के पहले तलाक हो गया। यह शपथ किस बात की खबर है? यह इस बात की खबर है कि पक्का पता है कि आज नहीं कल तुम अलग होना चाहोगे। अगर दो व्यक्तियों में प्रेम है, तो यह ख्याल भी नहीं आएगा कि हम कसम खाएं कि हम सदा साथ रहेंगे। यह प्रेम न होने की खबर है। लोग प्रेम के कारण विवाह नहीं करते; प्रेम नहीं है, इस डर से विवाह करते हैं। जमीन पर प्रेम हो, तो शायद विवाह अनावश्यक हो जाए। जब तक प्रेम नहीं है, तब तक विवाह अनिवार्य है। क्योंकि जो हम नहीं कर सकते, वह हम कसमें खाकर आयोजन कर लेते हैं। जो सहज नहीं हो सकता, उसकी हम नियम बना कर व्यवस्था कर लेते हैं।

लाओत्से कहता है, जो शासक श्रद्धा पैदा नहीं करवा पाते... । वे शासक कोई भी हों। चाहे वे राज्य के शासक हों और चाहे धर्मगुरु हों; जिनसे भी शासन मिलता है, डिसिप्लिन मिलती है, जिनसे भी जीवन को दिशा मिलती है, वे सभी शासक हैं। वे चाहे माता-पिता हों, चाहे गुरुजन हों, चाहे वृद्धजन हों; जिनसे भी शासन मिलता है जीवन को, अनुशासन मिलता है और जिनसे भी मार्ग-निर्देश मिलता है, जब वे श्रद्धा नहीं पैदा करवा पाते, तब वे शपथ पर उतर आते हैं।

"लेकिन जब श्रेष्ठ शासक का काम पूरा हो जाता है, तब प्रजा कहती है, यह हमने स्वयं किया है।"

जब श्रेष्ठ गुरु का काम पूरा हो जाता है, तो शिष्य अनुभव करता है, यह मैंने स्वयं पाया है। जब श्रेष्ठ पिता का काम पूरा हो जाता है, तो बेटा अनुभव करता है, यह मेरी अपनी उपलब्धि है। और गुरु का यही आनंद है कि एक दिन शिष्य जान पाए कि जो भी उसने जाना है, उसने ही जाना है। इसका अर्थ यह हुआ कि गुरु ने इतनी भी बाधा नहीं डाली, इतनी भी अड़चन नहीं डाली कि शिष्य को याद रहे कि गुरु ने कुछ किया है।

गुरु के करने के भी ये ही चार ढंग हैं, जो शासक के हैं।

और लाओत्से निष्क्रियता को श्रेष्ठतम मानता है। और जितनी सक्रियता बढ़ती जाती है, उतनी बात निकृष्ट होती जाती है। शून्यता सर्वश्रेष्ठ है। और जितनी शून्यता के बाहर हम आते हैं और आंधी में पड़ते जाते हैं, उतने निकृष्ट होते चले जाते हैं।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

चालीसवां प्रवचन

ताओ के पतन पर सिद्धांतों का जन्म

Chapter 18 : Sutra 1

The Decline Of Tao

On the decline of the great Tao,
The doctrines of humanity and justice arose.
When knowledge and cleverness appeared,
Great hypocrisy followed in its wake.
When the six relationships no longer lived at peace,
There was (praise of) kind parents and filial sons. When a country fell into chaos and misrule,
There was praise of loyal ministers.

अध्याय 18 : सूत्र 1

ताओ का पतन

महान ताओ के पतन पर,
मानवता और न्याय के सिद्धांत का उदय हुआ।
और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ,
तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया।
जब संबंधों के बीच शांति असंभव हो गई,
तब दयालु माता-पिता और आज्ञाकारी पुत्रों की प्रशंसा शुरू हुई।
और जब देश में कुशासन और अराजकता छा गई,
तब स्वामिभक्त मंत्रियों की प्रशंसा होने लगी।

जीवन की अत्यंत कठिन पहेली के संबंध में यह सूत्र है।

लाओत्से, जिन्हें हम बड़े नैतिक सिद्धांत कहते हैं, उनके विपरीत है, उनके विरोध में है। क्योंकि लाओत्से का मौलिक सिद्धांत यही है कि जीवन में एक गहरा संतुलन प्रतिपल स्थापित होता रहता है।

अगर हम साधुता पर जोर देंगे, तो असाधुता बढ़ेगी। अगर हम नैतिकता पर बल देंगे, तो अनैतिकता भी उसी मात्रा में विकसित होगी। अगर हम चाहेंगे कि लोग अच्छे हों, तो हम उसी मात्रा में बुरे लोगों को भी पैदा करने का कारण बनेंगे।

अगर हम जीवन को समझने की कोशिश करें, तो पहली बात तो यह ख्याल में आएगी कि जीवन संतुलन के बिना असंभव है। और यह संतुलन सर्व-व्यापक है--सभी आयामों में, सभी दिशाओं में।

अभी वैज्ञानिक एक अनूठे ख्याल पर पहुंचे हैं। हमें चिंता से भरता है; लेकिन लाओत्से को चिंता से नहीं भरेगा। आज से सौ वर्ष पहले फ्रांस में विनेट नाम के विचारक और मनोवैज्ञानिक ने मनुष्य की बुद्धि को नापने का पहला प्रयोग किया। इन सौ वर्षों में विनेट की विधियां काफी विकसित हो गई हैं। और अब हम मनुष्य का बुद्धि-माप, आई. क्यू., इंटेलीजेंस कोशिएंट जान सकते हैं। एक आदमी के पास कितनी बुद्धि की मात्रा है, वह जानी जा सकती है।

यह जो बुद्धि की मात्रा है, इसके निरंतर अनेक-अनेक प्रयोगों ने, जिसकी कल्पना भी नहीं थी, उस दृष्टि को दिया। और वह यह है कि अगर सौ व्यक्तियों में एक व्यक्ति प्रतिभाशाली होता है, जीनियस होता है, तो एक व्यक्ति ईडियट होता है, महामूढ़ होता है। अगर दस व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि के होते हैं, तो दस व्यक्ति मंद बुद्धि के होते हैं। अगर हम सौ व्यक्तियों को दो हिस्सों में बांट दें, तो जो ऊपर पचास लोग हैं, ठीक उनको संतुलित करते हुए पचास लोग दूसरे छोर पर होते हैं। अगर आपको दस प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा करने हैं, तो आप अनिवार्य रूप से दस मूढ़ व्यक्ति पैदा करने में सफल हो जाएंगे।

यह बहुत हैरानी की बात मालूम पड़ती है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जितने हम लोगों को तीक्ष्ण बुद्धि देंगे, उसी अनुपात में हम कुछ लोगों से बुद्धि छीन भी लेंगे। जीवन सभी आयामों में संतुलन है, इसका अर्थ यह हुआ कि अगर एक मात्रा स्वस्थ लोगों की होगी, तो उसे संतुलित करती उतनी ही मात्रा अस्वस्थ और बीमार लोगों की होगी।

लाओत्से कहता है कि संतुलन से बचा नहीं जा सकता। अगर हम अच्छे लोग दस पैदा कर लेंगे, तो दस बुरे लोग अनिवार्य रूप से पैदा हो जाएंगे। वे अच्छे दस लोगों का दूसरा पहलू है। और जैसे एक सिक्का एक ही पहलू का नहीं हो सकता, वैसे ही इस जीवन के रहस्य में भी एक व्यक्तित्व एक ही पहलू का नहीं हो सकता। तो जब एक साधु पैदा होता है, तो अनिवार्य रूप से एक असाधु पैदा होता है।

यह समझने में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी, क्योंकि साधु से असाधु का क्या लेना?

लेकिन चेतना भी एक विस्तीर्ण भूमि है, ऐसा समझें। तो जब एक पहाड़ खड़ा होता है, तो पास एक खाई भी निर्मित हो जाती है। और हम पहाड़ खड़ा नहीं कर सकते बिना खाई बनाए। अगर हमें घाटियों से बचना है, तो हमें पहाड़ों से भी बच जाना होना। अगर हम पहाड़ की चोटियां चाहते हैं, तो हमें घाटियों की अंधेरी स्थिति को भी स्वीकार कर लेना होगा। क्योंकि पहाड़ का जो शिखर है, वह एक पहलू है; उसके पास ही पैदा हो गया जो गड्ढ है, वह भी उसी का दूसरा पहलू है। वह पहाड़ का ही हिस्सा है। अगर समतल भूमि चाहिए, तो ही हम पहाड़ और घाटियों से बच सकते हैं।

और जैसे यह जमीन के संबंध में सही है, लाओत्से कहता है, चेतना, कांशसनेस के संबंध में भी यही सही है। कांशसनेस भी एक भूमि है। और जब कांशसनेस में, चेतना में एक पहाड़ की तरह व्यक्ति खड़ा होता है, तो तत्क्षण उसको संतुलित करता एक व्यक्ति खाई बन जाता है। जब एक व्यक्ति राम होगा, तो दूसरा व्यक्ति

अनिवार्यरूपेण रावण हो जाएगा। अगर राम चाहिए, तो रावण से बचने का कोई उपाय नहीं है। और अगर रावण से बचना है, तो राम का आकर्षण और मोह छोड़ देना होगा।

यह जटिलता है। रावण से हम बचना चाहेंगे, राम को बचाना चाहेंगे। चाहेंगे कि राम ही राम हों, रावण बिल्कुल न हो। लेकिन हमें ख्याल नहीं है जीवन के संतुलन का। और हमें यह भी ख्याल नहीं है कि अगर पृथ्वी पर राम ही राम हों, तो उससे ज्यादा उबाने वाली और घबड़ाने वाली पृथ्वी दूसरी नहीं हो सकती। अगर सारे लोग राम जैसे हों, तो बहुत बोर्डम और बहुत ऊब पैदा करने वाले होंगे। बीच-बीच में वह रावण भी चाहिए। वह राम से ऊब पैदा नहीं होने देता। वह राम में रस को बनाए रखता है।

रावण भी अकेले नहीं हो सकते। भले आदमी के होने के लिए बुरा आदमी जरूरी है, बुरे आदमी के होने के लिए भला आदमी जरूरी है। सब भले आदमी बुरे आदमियों पर निर्भर होते हैं; सब बुरे आदमी भले आदमियों पर निर्भर होते हैं। इंटर-डिपेंडेंट हैं। न तो भले आदमी स्वतंत्र हैं और न बुरे आदमी स्वतंत्र हैं; एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

यह निर्भरता बड़ी कठिन है समझनी। क्योंकि हजारों-हजारों साल से हमारी आकांक्षा रही हैः भले लोग हों, बुरे लोग न हों; बुद्धिमान लोग हों, बुद्धिहीन लोग न हों; चरित्रवान लोग हों, चरित्रहीन लोग न हों। हम इस कोशिश में लगे हैं कि प्रकाश ही प्रकाश हो, अंधेरा न हो। हम इस कोशिश में लगे हैं कि जीवन ही जीवन हो, मौत न हो। हम इस कोशिश में लगे हैं कि सुख ही सुख हो, दुख न हो।

लाओत्से कहता है, हमारी कोशिश असफल होगी ही। इसलिए मजे की बात है कि जो आदमी जितना सुख चाहेगा, उतना दुखी हो जाएगा। जो आदमी सुख नहीं चाहेगा, वह दुख से बच सकता है। दुख से बचने का एक ही सूत्र है, सुख को न चाहना। दुख बड़ा हो जाएगा, अगर सुख की आकांक्षा प्रबल है।

जीवन एक द्वंद्व है और द्वंद्वों के बीच एक संतुलन है। इस सूत्र को समझने के पहले यह द्वंद्व और संतुलन का ख्याल समझ लेना जरूरी है। विरोध भी है दोनों में और भीतर जोड़ भी है। अब रावण और राम में विरोध साफ है। कौरव और पांडवों में विरोध साफ है; दुश्मनी स्पष्ट है। यह दुश्मनी बहुत ऊपर की बात है। लेकिन गहरे में दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। हम सोचते हैं आमतौर से कि एक तरफ अमीर हो जाते हैं लोग, तो एक तरफ लोग गरीब हो जाते हैं। तो हम अमीरों के खिलाफ हैं; क्योंकि एक तरफ लोग अमीर होते हैं, तो एक तरफ लोग गरीब हो जाते हैं।

लेकिन जब हमें जीवन के और सूत्रों का पता चलेगा, तो हमें पता चलेगा, यह सिर्फ धन के संबंध में ही लागू नहीं है। जार्ज गुरजिएफ का ख्याल था कि ज्ञान की भी सीमित मात्रा है। और इस सदी में बुद्धिमान से बुद्धिमान लोगों में एक था। उसका ख्याल था, ज्ञान भी सीमित है। इसलिए जब कोई आदमी ज्ञान इकट्ठा कर लेता है, तो दूसरा आदमी ज्ञान की दृष्टि से दरिद्र हो जाता है। चेतना भी सीमित है। और जब एक व्यक्ति परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाता है, तो कोई दूसरा व्यक्ति चेतना की दीनता को उपलब्ध हो जाता है। और न केवल सीमित होने के कारण, बल्कि संतुलन के लिए भी आवश्यक है। अन्यथा जीवन की व्यवस्था टूट जाए, सब बिखर जाए।

इसलिए एक अनूठी बात मनुष्य के इतिहास में दिखाई पड़ती है कि जैसे-जैसे सदगुणों की आकांक्षा बढ़ती है, वैसे-वैसे दुर्गुण भी विकसित होते हैं।

लाओत्से कहता है कि एक ऐसी अवस्था भी है प्रकृति की, जब हम द्वंद्व पर ध्यान नहीं देते। वही परम अवस्था है। उसे वह ताओ कहता है, उस स्वभाव की अवस्था को, जब हमें दुर्गुण का भी पता नहीं और सदगुण

का भी पता नहीं। जब हमें यह भी पता नहीं कि साधुता क्या है और असाधुता क्या है। वह परम शांति की अवस्था है। जैसे ही हमें पता चला कि साधुता क्या है, उसका अर्थ हुआ कि असाधुता का हमें बोध हो गया है।

इसलिए एक बहुत मजे की बात है कि साधुओं को पाप की जितनी समझ होती है, असाधुओं को उतनी नहीं होती। और साधु जितनी बारीकी से पाप को जानते हैं, असाधु उतनी बारीकी से नहीं जानते। अगर किसी व्यक्ति को स्वास्थ्य का ख्याल आ गया, तो उसका अर्थ है कि वह बीमार हो गया है। जिन लोगों को जितना स्वास्थ्य का बोध होता है, वे उतने ही बीमार होते हैं। और जो आदमी चौबीस घंटे स्वास्थ्य का ख्याल करता है, वह आदमी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। यह भी एक बीमारी है और गहरी बीमारी है।

लाओत्से कहता है कि ताओ का पतन, वह स्वभाव का पतन कब हुआ।

"महान ताओ के पतन पर मानवता और न्याय के सिद्धांत का जन्म हुआ--ह्यूमैनिटी एंड जस्टिस।"

लाओत्से कहता है, जब मनुष्य मनुष्य न रहे, तब मानवता के सिद्धांत का जन्म हुआ।

हम उलटा ही सोचते हैं। हम सोचते हैं, मानवता के सिद्धांत को मान कर हम चलेंगे, तो मनुष्य हो पाएंगे। और लाओत्से कहता है, जब मनुष्य मनुष्य न रहा, तब मानवता के सिद्धांत का जन्म हुआ। तब हमने कहना शुरू किया लोगों से कि मनुष्य बनो!

मनुष्य तो मनुष्य है ही। बनने की कोई बात नहीं है। बनने का तो मतलब यह हुआ कि गिरना हो चुका है। किसी मनुष्य से यह कहना कि मनुष्य बनो, क्या अर्थ है इसका? इसका यही अर्थ है कि मनुष्यता से गिरना हो चुका है।

लाओत्से कहता है, मानवता का महान सिद्धांत मनुष्य के पतन की स्थिति में पैदा होता है। नहीं तो आदमी सहज ही मनुष्य होता है। न्याय की बात ही तभी उठती है, जब अन्याय शुरू हो जाए।

इसे हम समझ लें। विपरीत के साथ ही बोध शुरू होता है। जब हम कहते हैं, अन्याय नहीं होना चाहिए, न्याय होना चाहिए, तो एक बात साफ है कि अन्याय हो रहा है। और जितनी हम न्याय की पुकार बढ़ाते जाएंगे, उतना ही अन्याय बढ़ता चला जाएगा। हम कहते हैं, ज्ञान चाहिए, क्योंकि अज्ञान घना है। और जितना हम ज्ञान को बढ़ाते चले जाते हैं... ।

अब लाओत्से की यह बात पश्चिम को भी समझ में आनी शुरू हो गई है। और इस समय पश्चिम में ऐसे बहुत से विचारशील लोग हैं, जो सोचते हैं कि हमें अब लाओत्से को केंद्र मान कर अपनी पूरी व्यवस्था को रि-ओरिएंट कर लेना चाहिए, पुनर्निर्मित कर लेना चाहिए।

अभी तक हमने जो व्यवस्था निर्मित की है जगत में, वह हमने लाओत्से के विपरीत निर्मित की है। हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, अच्छाई होनी चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, न्याय होना चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, समानता होनी चाहिए; हमने सुनी उनकी बात, जिन्होंने कहा, मनुष्यता, स्वतंत्रता, समानता, ये सिद्धांत हैं। लेकिन परिणाम क्या है?

अगर हम परिणाम को देखें, तो हमें बहुत बात साफ हो जाएगी। आज जमीन पर जितना ज्ञान है, इतना शायद कभी भी नहीं था। और आज आदमी जितना अज्ञानी है, इतना भी कभी नहीं था। यह पैराडाक्सिकल मालूम होता है। इतना ज्ञान और इतना अज्ञान एक साथ! लाओत्से को मालूम नहीं होता। लाओत्से तो कहता है, तुम जितना ज्ञान बढ़ाओगे, उतना अज्ञान बढ़ेगा। लेकिन हमें मालूम होगा। क्योंकि हमारी धारणा यह रही है कि जितना ज्ञान बढ़ेगा, उतना अज्ञान कम होगा। हमारे सोचने का तर्क यह है कि जितना ज्ञान बढ़ जाएगा, उतनी अज्ञान की राशि कम हो जाएगी।

लेकिन इतिहास हमें गवाही नहीं देता, हमारा प्रमाण नहीं देता। ज्ञान की राशि तो बढ़ी, कोई शक-शुबहा नहीं है। प्रति सप्ताह पांच हजार नए ग्रंथ सारी दुनिया में निर्मित हो जाते हैं। प्रति सप्ताह पांच हजार नए ग्रंथ गतिमान हो जाते हैं। हमारे पुस्तकालय बढ़ते चले गए हैं। हमारे विश्वविद्यालय फैलते चले गए हैं। हमारे ज्ञान की शाखाएं-प्रशाखाएं नई होती चली गई हैं। आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी तीन सौ साठ विषयों में शिक्षण देती है।

हर तरफ हम ज्ञान की राशि को बढ़ाते चले गए हैं। और हर रोज हमें ज्ञान की नई शाखाएं तोड़नी पड़ती हैं। क्योंकि ज्ञान इतना हो जाता है कि एक ही शाखा पर भारी हो जाता है, सम्हाला नहीं जा सकता। आज अगर कोई आदमी सिर्फ छोटी सी आंख के संबंध में भी पूरा विश्व-साहित्य जानना चाहे, तो एक जीवन छोटा है। वह कितना ही जानता चला जाए, छोटी सी आंख के संबंध में भी आज पूरा ज्ञान नहीं हो सकता।

इसलिए हमको बांटते चलना पड़ता है। एक दिन हमारा डाक्टर पूरे शरीर का इलाज करता था। ज्ञान बहुत कम था। एक डाक्टर ही सारे ज्ञान को जान लेता था। फिर ज्ञान बढ़ा, तो हमें स्पेशलिस्ट निर्मित करने पड़े, विशेषज्ञ निर्मित करने पड़े। क्योंकि ज्ञान इतना हो गया कि एक ही डाक्टर पूरे शरीर को नहीं जान सकता। तो फिर हमें अलग अंगों के अलग डाक्टर खोज लेने पड़े।

अब एक-एक अंग का भी इतना ज्ञान है कि एक ही डाक्टर की सीमा के बाहर है जान लेना। इसलिए अब अमरीका में तो ख्याल ही यह है कि भविष्य में ज्ञान इतना होता जा रहा है कि आदमी पर भरोसा नहीं किया जा सकता, कम्प्यूटर ही सहायता करेंगे। तो भविष्य में तो यही स्थिति हो जाने वाली है कि ज्ञानी वह आदमी है, जो कम्प्यूटर का उपयोग करना जानता है। तो डाक्टर को डाक्टरी जाननी जरूरी नहीं है, बल्कि कम्प्यूटर से पूछ सके, फलां बीमारी के लिए कौन सा इलाज होगा--इतनी कुशलता आवश्यक होगी। क्योंकि ज्ञान इतना होता जा रहा है कि आदमी के मस्तिष्क में उसे समाया नहीं जा सकता।

पुस्तकें इतनी होती जा रही हैं कि अब बड़ी लाइब्रेरीज नहीं निर्मित की जा सकतीं, क्योंकि वे सारी जमीन को घेर लेंगी। सिर्फ मास्को की लाइब्रेरी में इतनी किताबें हैं कि अगर हम एक के बाद एक आलमारी को रखते जाएं, तो पूरी जमीन का एक चक्कर हो जाएगा। इन किताबों को कौन पढ़ेगा?

इसलिए माइक्रो बुक्स का ख्याल पैदा हुआ है। छोटी किताबें होनी चाहिए। फिल्म रहेगी छोटी। एक हजार पन्ने की किताब एक पन्ने पर आ जाएगी। वह पन्ना संगृहीत रखा जा सकता है। और जब भी किसी को पढ़ना हो, तो पढ़ने का ढंग पुराना नहीं रह जाएगा। फिल्म और प्रोजेक्टर के द्वारा ही किताब पढ़ी जा सकेगी।

किताबें बढ़ती जाती हैं। ज्ञान बढ़ता जाता है। और अभी तो पश्चिम के वैज्ञानिक चिंतित हो गए हैं कि हम अपने बच्चों को, जितना ज्ञान हमारी पीढ़ी पैदा कर रही है, उसको कैसे ट्रांसफर करें? इसलिए नया ख्याल आ रहा है, वह यह कि शिक्षा बीस-पच्चीस साल में समाप्त नहीं हो जानी चाहिए। कम से कम पचास साल तक अगर हम शिक्षा न दें, तो इस सदी के बाद शिक्षा का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। लेकिन अगर एक व्यक्ति को हम पचास साल तक शिक्षा दें, तो वह जीएगा कब? उसके जीने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।

इसलिए एक नया ख्याल आया है। और वह नया ख्याल यह है मेमोरी ट्रांसप्लांटेशन का, कि जब एक आदमी मरे, तो उसकी हम स्मृति को बचा लें और छोटे बच्चे के ऊपर स्मृति आरोपित कर दें, रिप्लांट कर दें। ताकि छोटे बच्चे को वे बातें न सीखनी पड़ें, जो उसके बाप ने सीखी थीं। बाप की स्मृति उसे सीधी उपलब्ध हो जाए, तो छोटा बच्चा आगे बढ़ सके, कुछ नया सीख सके।

ज्ञान इतना! लेकिन दूसरी तरफ आदमी को हम देखें, तो अज्ञान भयंकर है। चांद-तारों का हमें पता है; अपना हमें कोई पता नहीं है। कैसे पहुंचें मंगल पर, उसकी हम तलाश में हैं और हम रास्ते बना लिए हैं। कैसे

पहुंचें अपने तक, बहुत दूर मालूम पड़ती है यह यात्रा, पहुंचना संभव नहीं मालूम पड़ता। इतना ज्ञान है और आदमी इतना अनाश्वस्त! उसको कोई आश्वासन नहीं है कि कभी अपने को जान सकेगा।

इतना ज्ञान है हमें अब कि हम सब जानते हैं, क्रोध कैसे पैदा होता है, कैसे कार्य करता है। कामवासना कैसे जगती है, कैसे कार्य करती है, क्या उसकी बायो-केमिस्ट्री है, क्या उसके कार्य करने का ढंग है, सब हमें पता है। बुद्ध को इतना पता नहीं था। लेकिन बुद्ध को इतना पता था कि क्रोध उनके भीतर काम नहीं कर पाता था। हमें क्रोध के संबंध में सब कुछ पता है; लेकिन क्रोध पर हमारा रत्ती भर भी कोई वश नहीं है। कामवासना के संबंध में हमें जितना ज्ञात है, मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी किसी को ज्ञात नहीं था। लेकिन कामवासना से जिस बुरी तरह हम पीड़ित हैं, वैसा कभी कोई समय इस बुरी तरह पीड़ित नहीं रहा।

हमारा ज्ञान तो बढ़ता गया है राशि में। और हमारा अज्ञान भी बढ़ता गया है। जितना कंपता हुआ आदमी आज का है--खुद पर उसे कोई भरोसा नहीं है; एक क्षण का कोई विश्वास नहीं है; कोई सुरक्षा नहीं है; जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। तो निश्चित ही जिस तर्क का सहारा लेकर हम चले थे, वह गलत सिद्ध हुआ है।

अरस्तू का तर्क लेकर मनुष्य-जाति चली है। अरस्तू ने कहा था कि ज्ञान बढ़ जाए, तो अज्ञान कम हो जाएगा। यह सीधा गणित है। लाओत्से का गणित तो उलटा मालूम पड़ता है। लाओत्से कहता है, ज्ञान बढ़ेगा, तो अज्ञान भी बढ़ेगा। लाओत्से की कभी किसी ने सुनी नहीं। सुनने जैसी बात भी नहीं थी। बिल्कुल अर्थहीन मालूम पड़ती है, तर्कहीन मालूम पड़ती है। स्वाभाविक बात है कि ज्ञान बढ़े, तो अज्ञान कम हो जाना चाहिए। हमारे मन को समझ में आती है। इसलिए अरस्तू सारी मनुष्य-जाति के लिए केंद्र बन गया। और पश्चिम ने अरस्तू को आधार मान कर सारा विज्ञान विकसित किया।

लेकिन अब जब चीजें विकसित हो गई हैं, तो पता चलता है कि शायद लाओत्से ही सही है। इधर पचास वर्षों में पश्चिम में जो भी बुद्धिमान लोग हैं, उन सब की प्रतीति एक ही है कि जीवन बिल्कुल अर्थहीन हो गया है, मीनिंगलेस हो गया है। कोई अर्थ नहीं सूझता। किसलिए हम जी रहे हैं, कुछ पता नहीं चलता। क्यों यह भाग-दौड़ है, क्यों यह आपाधापी है, कुछ पता नहीं चलता। जीएं ही क्यों, इसका भी कोई कारण नहीं मालूम होता।

सार्त्र ने कहा है, बिना हमारी मर्जी के हमें जीना पड़ता है। बिना हमारी मर्जी के न मालूम क्यों हम पैदा किए जाते हैं! बिना हमारी मर्जी के न मालूम किस दिन हम उठा लिए जाते हैं! सार्त्र ने कहा है कि एक ही बात है जिसमें हम अपनी मर्जी जाहिर कर सकते हैं और वह आत्मघात है, स्युसाइड है। और तो हमारी कोई मर्जी नहीं है। न कोई हमसे पूछता जन्म के समय; न कोई हमसे पूछता मृत्यु के समय। यह जीवन एक दुख-स्वप्न, एक नाइटमेयर मालूम होता है।

इधर पचास वर्षों में न मालूम कितने विचारशील लोगों ने आत्महत्या की है। ऐसा कभी नहीं हुआ था। पचास साल के पहले दुनिया में आत्महत्याएं हुई हैं--विचारहीन लोगों के द्वारा। इन पचास वर्षों में जो आत्महत्याएं हुई हैं, वे हुई हैं विचारशील लोगों के द्वारा। यह गुणात्मक भेद है। पचास साल पहले जो आदमी आत्महत्या करता था, वह कोई बहुत बुद्धिमान आदमी नहीं था। कोई उसे बुद्धिमान नहीं मानता था। और आज हालत ऐसी है, पश्चिम में कम से कम, कि जिसको लोग बुद्धिमान मानते हैं, अगर उसने अब तक आत्महत्या नहीं की है, तो उसकी बुद्धि पर शक होता है। क्योंकि अगर जीवन व्यर्थ है, तो आत्महत्या ही एकमात्र उपाय है। अगर मुझे यह पक्का पता चल जाए कि जीवन में कोई भी सार नहीं है, तो फिर जीने के लिए चेष्टा ही... !

निजिंस्की ने आत्महत्या करने के पहले एक पत्र में लिखा है कि मैं आत्महत्या कर रहा हूं; लेकिन कोई यह न समझे कि मैं कायर हूं। स्थिति उलटी है। तुम अपनी आत्महत्या नहीं कर सकते, कायर हो, इसलिए जीए चले जाते हो। मैं कर सकता हूं; मैं कायर नहीं हूं। इसलिए मैं तुम्हारे इस व्यर्थ जीवन की दौड़-धूप से अपना छुटकारा चाहता हूं।

निजिंस्की की बात एकदम गलत नहीं मालूम पड़ती है। अगर आप भी अपने से पूछेंगे कि क्यों जीए चले जाते हैं, तो शायद कायरता ही कारण हो। मरने की हिम्मत न जुटा पाते हों, तो जीए चले जाते हैं, ढोए चले जाते हैं। यह ढोने का भाव पहली दफा आया है दुनिया में। ज्ञान के बढ़ने के साथ आत्म-अज्ञान बढ़ गया। इधर राशि बढ़ गई बाहर के ज्ञान की, उधर भीतर अज्ञान की राशि बढ़ गई। संतुलन पूरा हो गया।

लाओत्से कहता है कि आत्मज्ञान नहीं जन्म सकता, जब तक इस बाहर के ज्ञान से छुटकारा न हो।

इधर हम देखते हैं, अगर हम तीन सौ वर्ष के मनुष्य के विचार को उठा कर देखें, तो ह्यूमैनिटी, मनुष्यता का सिद्धांत बहुत गति पाया। लेकिन इन तीन सौ वर्षों में हमने जितने युद्ध किए और जिस भयंकर ढंग से युद्ध किए, उनकी कोई तुलना इतिहास में नहीं है। इधर मनुष्यता का ख्याल बढ़ता चला गया और उधर हम हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम भी गिरा दिए। इधर सारी दुनिया में चीख-पुकार चलती है मनुष्यता की और उधर वियतनाम में युद्ध चलता चला जाता है। जो मनुष्यता की बात करते हैं, वे ही युद्ध को चलाए भी चले जाते हैं। अगर मनुष्यता का इतना बोध दुनिया में पैदा हो गया है, तो युद्ध बंद हो जाने चाहिए। लेकिन युद्ध बंद होते नहीं दिखाई पड़ते।

इधर हम न्याय की बड़ी चिंता करते हैं। और अन्याय का कोई हिसाब नहीं है। और न्याय के नाम पर जब भी हम कोई बदलाहट करते हैं, तो अन्याय की एक नई व्यवस्था निर्मित हो जाती है। और कोई फर्क नहीं पड़ता है। हमारी सब क्रांतियां बीमारियों को नष्ट नहीं करतीं, केवल बीमारियों को कंधे बदल देती हैं। और हमारे सब सुधार सिर्फ आशा बंधाते हैं, परिणाम कोई भी नहीं आता।

जो हम चाहते हैं, उससे उलटा परिणाम आता है। सोचते हैं हम कि जितनी अदालतें होंगी, जितना कानून होगा, उतने अपराध कम होंगे। लेकिन आंकड़े उलटी कहानी कहते हैं। जितने कानून बढ़ते हैं, जितनी अदालतें बढ़ती हैं, जितने न्यायाधीश बढ़ते हैं, उतने अपराधी बढ़ते हैं। अपराधी कम नहीं होते। अगर हम दो हजार साल का अपराध का इतिहास देखें, तो ठीक अनुपात में बढ़ती होती है। कानून बढ़ते हैं, अपराधी बढ़ते हैं। अपराधी बढ़ते हैं, तो कानूनविद डरते हैं कि कानून शायद कम हैं, इसलिए अपराधी बढ़ रहे हैं। वे और कानून बढ़ा लेते हैं। अपराधी और बढ़ जाते हैं।

किसी भ्रांत तर्क में मनुष्य का मन घूमता है। जब अपराधी और बढ़ जाते हैं, तो हम और कानून की व्यवस्था जमा लेते हैं। और तब ऐसा मालूम पड़ता है कि अपराधी और न्यायाधीश के बीच एक गहरा संबंध है। और तब ऐसा मालूम पड़ता है कि चोर और पुलिसवाला एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वे दो चीजें नहीं हैं। कहीं भीतर जुड़े हैं। एक बढ़ता है, दूसरा भी बढ़ता है। एक की ग्रोथ दूसरे की ग्रोथ तभी हो सकती है, जब दोनों जुड़े हों। कहीं भीतर जोड़ है। और एक का रस दूसरे को भी मिलता है, और एक का जीवन दूसरे को भी मिलता है।

लाओत्से की दृष्टि बिल्कुल और है। लाओत्से कहता है कि तुम्हारे सब अच्छे सिद्धांत, तुम्हारी सब अच्छी धारणाएं तुम्हारी सारी बुराइयों की जड़ में हैं।

"मानवता और न्याय के सिद्धांत का उदय हुआ, जब ताओ का पतन हुआ। और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ, तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया।"

कभी आपने ख्याल किया कि शिक्षित आदमी को बेईमानी से बचाना बहुत मुश्किल है! लेकिन तब भी हम ऐसा सोचते हैं कि यह शिक्षा की भूल से ऐसा हो रहा है; शायद शिक्षा में कोई कमी है; शायद शिक्षा ठीक नहीं है। अगर ठीक शिक्षा हो, राइट एजुकेशन हो, तो ऐसा नहीं होगा। फिर हम गलती कर रहे हैं।

लाओत्से कहता है कि शिक्षित आदमी को बेईमानी से बचाना असंभव है। असंभव इसलिए है कि शिक्षा होशियारी देती है; होशियारी चालाकी बन जाती है। शिक्षा समझ देती है; हृदय को नहीं बदलती। हृदय तो वही होता है। समझ भर बदल जाती है। हृदय जो कल कर सकता था अशिक्षित होकर, अब और दुगुने वेग से कर सकता है। सिर्फ, एक आदमी के हाथ में तलवार थी; आदमी वही है, हमने उसको एटम बम दे दिया। यह आदमी कल तलवार चलाता, दो-चार को मारता; आज यह लाखों को मार सकता है। इसके भीतर क्रोध वही है। इसके हाथ में पत्थर होता, तो पत्थर फेंक कर मार देता। इसके हाथ में एटम बम है, तो एटम बम फेंक कर मार देगा। यह आदमी वही है।

इधर शिक्षा बढ़ती है, बेईमानी बढ़ती चली जाती है। इमर्सन या और विचारक, जो मानते हैं कि जिस दिन सारा जगत सुशिक्षित हो जाएगा, उस दिन कोई बुराई न रह जाएगी, बुनियादी रूप से गलत हैं। हम देख रहे हैं कि जगत सुशिक्षित होता जा रहा है, और कुछ मुल्क तो पूरी तरह सुशिक्षित हो गए हैं। आज अमरीका तो पूरी तरह सुशिक्षित है। लेकिन उसकी शिक्षा से ही उसकी सारी बीमारियों का जन्म हो गया है। अच्छे लोग भी गलत तर्क को मान कर चलें, तो नुकसान पहुंचाते हैं।

एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने अपना पूरा जीवन आदिवासियों को शिक्षा देने में लगाया। बड़े प्रसन्न हैं कि उन्होंने भारी काम किया, बड़ा त्याग किया। काफी आनंदित हैं। शहीद होने का मजा है, कि मैंने अपनी पूरी जिंदगी लगा दी, एक पैसा नहीं कमाया। मैं क्या नहीं कमा सकता था! जेल गया; आज केंद्रीय मंत्रिमंडल में हो सकता था, पार्लियामेंट में हो सकता था। उस सब पर लात मार दी। आदिवासी बच्चों को शिक्षा देने में मैंने सब जीवन कुर्बान कर दिया।

मैंने उनसे पूछा कि तुम जो शिक्षा दे रहे हो, यह भी तो देखो कि जिन बच्चों को शिक्षा मिल गई है, उनको क्या हुआ है? तुम मर जाओगे शिक्षा दे-दे कर इस ख्याल में कि बड़ा उपकार कर रहे हो, लेकिन दूसरी तरफ भी नजर डालो--जिनको शिक्षा मिल गई है, उनको क्या हो गया है?

अमरीका तो आज शिक्षित मुल्क है। हम आशा कर सकते हैं कि अमरीका सारे जगत का भविष्य है। सब लोग शिक्षित हो जाएंगे, तो सभी मुल्क अमरीका जैसे हो जाएंगे। लेकिन यह पूरी शिक्षा का परिणाम क्या है? अपराध कम नहीं हुए, बढ़ गए। बेईमानी कम नहीं हुई, बढ़ गई। हत्याएं कम नहीं हुईं, बढ़ गईं। पाप कम नहीं हुए, बढ़ गए। जिस मात्रा में शिक्षा बढ़ी, उसी मात्रा में सब बढ़ गया।

इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि हम विपरीत को मिटा नहीं सकते; एक को बढ़ा कर हम उसके विपरीत को मिटा नहीं सकते, सिर्फ बढ़ा सकते हैं।

किसी और पहलू से देखें। आज जमीन पर जितनी दवाएं हैं, कभी भी नहीं थीं। लेकिन बीमारियां कम नहीं हुईं। बीमारियां बढ़ गई हैं। सच तो यह है कि नई-नई मौलिक बीमारियां पैदा हो गईं, जो कभी भी नहीं थीं। हमने दवाओं का ही आविष्कार नहीं किया, हमने बीमारियां भी आविष्कृत की हैं। क्या होगा कारण? दवाइयां बढ़ें, तो बीमारियां कम होनी चाहिए; यह सीधा तर्क है। दवाइयां बढ़ें, तो बीमारियां बढ़नी चाहिए, यह क्या है? यह कौन सा नियम काम कर रहा है?

असल में, जैसे ही दवा बढ़ती है, वैसे ही आपके बीमार होने की क्षमता बढ़ जाती है। भरोसा अपने पर नहीं रह जाता, दवा पर हो जाता है। बीमारी से फिर आपको नहीं लड़ना है, दवा को लड़ना है। आप बाहर हो गए। और जब दवा बीमारी से लड़ कर बीमारी को दबा देती है, तब भी आपका अपना रेसिस्टेंस, अपना प्रतिरोध नहीं बढ़ता। आपकी अपनी शक्ति नहीं बढ़ती। बल्कि जितना ही आप दवा का उपयोग करते जाते हैं, उतना ही बीमारी से आपकी लड़ने की क्षमता रोज कम होती चली जाती है। दवा बीमारी से लड़ती है, आप बीमारी से नहीं लड़ते। आप रोज कमजोर होते जाते हैं। आप जितने कमजोर होते हैं, उतनी और भी बड़ी मात्रा की दवा जरूरी हो जाती है। जितनी बड़ी मात्रा की दवा जरूरी हो जाती है, आपकी कमजोरी की खबर देती है। उतनी बड़ी बीमारी आपके द्वार पर खड़ी हो जाती है। यह सिलसिला जारी रहता है। यह लड़ाई दवा और बीमारी के बीच है; आप इसके बाहर हैं। आप सिर्फ क्षेत्र हैं, कुरुक्षेत्र, वहां कौरव और पांडव लड़ते हैं। वहां बीमारियों के जर्म्स और दवाइयों के जर्म्स लड़ते हैं। आप कुरुक्षेत्र हैं। आप पिटते हैं दोनों से। बीमारियां मारती हैं आपको; कुछ बचा-खुचा होता है, दवाइयां मारती हैं आपको। लेकिन दवा इतना ही करती है कि मरने नहीं देती; बीमारी के लिए आपको जिंदा रखती है।

दवाओं और बीमारियों के बीच कहीं कोई अंतर-संबंध है।

अगर हम लाओत्से से पूछें, तो लाओत्से कहेगा कि जिस दिन दुनिया में कोई दवा न होगी, उसी दिन बीमारी मिट सकती हैं। लेकिन यह बात हमारी समझ में न आएगी। क्योंकि लाओत्से का तर्क ही कुछ और है। वह यह कहता है, कोई दवा न हो, तो बीमारी से तुम्हें लड़ना पड़ेगा। तुम्हारी शक्ति जगेगी। दवा का भरोसा खुद पर भरोसा कम करवाता जाता है। हम देख सकते हैं कि किस भांति हमारे शरीर दवाओं से भर गए हैं। लेकिन कोई उपाय नहीं है। क्योंकि पूरा तर्क... ।

इसे हम ऐसा समझें। जितनी हम सुरक्षा में हो जाते हैं, उतने असुरक्षित हो जाते हैं। जितने असुरक्षित होते हैं, उतने सुरक्षित होते हैं। क्या मतलब हुआ इस पहेली का? इस पहेली का यह मतलब हुआ, जितने आप सुरक्षित होते हैं, उतने कमजोर हो जाते हैं।

हम एक एयरकंडीशंड कमरे में बैठे हुए हैं। अपने एयरकंडीशंड कमरे की खिड़की से आप बाहर एक मजदूर को सड़क पर से धूप में निकलते देखते हैं। आप सोचते हैं, बेचारा कितनी धूप झेल रहा है! लेकिन आप नहीं जानते कि हो सकता है, उसे धूप का पता भी न चल रहा हो। यह धूप का ख्याल आपका है। और यह बात सच है कि आप अगर इस मजदूर की जगह चलेंगे, तो भयंकर धूप होगी। लेकिन एक ही सड़क पर एक सी धूप नहीं होती, क्योंकि अलग-अलग आदमी अलग-अलग धूप का अनुभव करते हैं। धूप सूरज पर ही निर्भर नहीं है, आप पर भी निर्भर है। इसलिए जब आप सड़क पर चल कर पसीने से तरबतर हो जाएंगे, तो आप सोचते हैं, बेचारा मजदूर! यह सिर्फ आप ही बेचारे हैं; बेचारा मजदूर नहीं। मजदूर को, हो सकता है, धूप का पता ही न चल रहा हो। क्योंकि धूप के पता चलने के लिए एयरकंडीशनिंग पहले जरूरी है। वह अनिवार्य है।

इसका मतलब यह हुआ कि जितनी एयरकंडीशनिंग बढ़ेगी, उतनी धूप बढ़ेगी। और जितनी दुनिया को हम शीतल कर लेंगे, उतनी दुनिया गरम हो जाएगी। यह विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन जोड़ हैं भीतर। गहरे जोड़ हैं। जितनी देर आप एयरकंडीशनिंग में हैं, उतनी आपके शरीर की अपनी क्षमता धूप से लड़ने की कम होती जा रही है। स्वभावतः जिस चीज की जरूरत नहीं है, वह क्षमता कम हो जाएगी। आपका शरीर जो काम करता, वह एयरकंडीशनिंग की मशीन कर रही है। तो जब आप अचानक धूप में खड़े हो जाएंगे, आपका शरीर एकदम असुरक्षित हो जाएगा; वह नहीं सह पाएगा। मशीन सह रही थी धूप आपके लिए; आप नहीं सह रहे थे।

तो आपकी अपनी सहने की क्षमता तो कम हो ही जाएगी। धूप में जब आप निकलेंगे, तो भयंकर पीड़ा अनुभव होगी। यह जो पीड़ा का अनुभव है, यह बढ़ गया आपका। जब तक एयरकंडीशनिंग नहीं थी, तब तक दुनिया में धूप का ऐसा कोई अनुभव नहीं था।

इसलिए अब रूस में वे विचार करते हैं कि हमें पूरे नगर को एयरकंडीशन कर लेना चाहिए। लेकिन जिस दिन आप पूरे नगर को एयरकंडीशन कर लेंगे और बच्चे एयरकंडीशनिंग में ही पैदा होंगे और बूढ़े एयरकंडीशनिंग में ही मरेंगे, उस दिन आप समझना कि मनुष्य को अंडरग्राउंड चले जाना पड़ेगा। ऐसी कथाएं हैं कि कभी-कभी सभ्यताएं इस ऊंचाई पर पहले भी पहुंच चुकी हैं। और जो भी सभ्यता आखिरी ऊंचाई पर पहुंची, उसको अंडरग्राउंड, भूमिगत जाना पड़ा है।

दक्षिण अमरीका में एक झील है, टिटीकाका। बहुत अनूठी झील है; और वैज्ञानिक बहुत परेशान रहे हैं। क्योंकि झील में एक नदी गिरती है। करोड़ों गैलन पानी रोज उस झील में गिरता है। और झील से बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं है पानी का। लेकिन झील में कभी इंच भर पानी बढ़ता नहीं। तो वैज्ञानिक बहुत परेशान हुए स्वभावतः। यह सारा पानी जाता कहां है? यह टिटीकाका मिस्टीरियस झील है सारी जमीन पर। इसका पानी जाता कहां है? इतना पानी प्रति सेकेंड गिर रहा है, और उसमें कभी इंच भर बढ़ती नहीं होती! कभी बढ़ती नहीं हुई सैकड़ों वर्षों के रिकार्ड में। पानी उसका उतना ही रहता है।

कुछ रहस्यवादियों का ख्याल है कि टिटीकाका झील के नीचे कभी किसी पुरानी इन्का सभ्यता की बस्ती थी। और यह टिटीकाका झील उस बस्ती में पानी पहुंचाने का उपाय करती थी। वह बस्ती तो नष्ट हो गई है; लेकिन अंडरग्राउंड जो पानी को सोखने की व्यवस्था थी, वह जारी है। तो पानी ऊपर से पहुंचता जाता है और वह नीचे झील पीती चली जाती है। उस झील के नीचे एक बस्ती थी, ऐसा ख्याल है। और अब वैज्ञानिक भी थोड़ा इससे राजी होते चले जाते हैं। इस पर काफी खोज चलती है कि उस बस्ती का कोई पता चल सके।

ऐसा ख्याल है कि जब भी कोई सभ्यता पूरी विकसित होती है, तो वह अंडरग्राउंड हो जाती है। हम जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में सात-सात पर्तें देखते हैं नगरों की, वह जरूरी नहीं है कि विध्वंस के कारण, भूकंप के कारण जमीन के भीतर चली गई हों। बहुत संभावना यह है कि सभ्यता स्वयं भूमिगत हो गई हो। क्योंकि एक-दो पर्त नहीं हैं, मोहनजोदड़ो में सात पर्तें हैं।

तो अब तक वैज्ञानिक कहते थे, भूगर्भशास्त्री कहते थे, स्थापत्यविद कहते थे कि सात बार मोहनजोदड़ो बसा और सात बार भूकंप के कारण भूमिगत हो गया। यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती है। और एक के बाद एक सात सभ्यताएं नगर की जमीन में डूब गईं। ज्यादा ठीक यह बात मालूम पड़ती है कि सभ्यता उस शिखर पर पहुंच गई, जहां भूमिगत हो जाना अनिवार्य हो गया। क्योंकि भूमि के बाहर की कोई भी व्यवस्था को सहने की क्षमता आदमियों में न रही।

दो सौ साल के भीतर अगर हम एयरकंडीशनिंग को बस्तियों पर फैला देते हैं, तो आदमी को जमीन के भीतर जाना पड़ेगा। क्योंकि फिर सूरज की रोशनी में बाहर निकलना ही मौत का कारण हो जाएगा। अगर बच्चा एयरकंडीशनिंग में ही पैदा हो और बड़ा हो, तो सूरज की रोशनी में निकलना ही मृत्यु हो जाएगी। सूरज अब तक जीवन रहा है; कल वह मौत भी हो सकता है।

जैसे-जैसे हम सुरक्षित होते हैं, वैसे-वैसे असुरक्षित हो जाते हैं। जैसे-जैसे हम इंतजाम करते हैं बचने का, वैसे-वैसे हमारे द्वार खतरों के लिए खुल जाते हैं।

लाओत्से कहता है कि जब ज्ञान का जन्म होगा, तो पाखंड पैदा होगा, हिपोक्रेसी पैदा होगी, बेईमानी पैदा होगी, धोखा पैदा होगा। लोग प्रवंचक हो जाएंगे। जानने वाला आदमी ईमानदार हो, यह बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है।

इस संबंध में बाइबिल की कथा स्मरणीय है। और ईसाइयों की कथाओं में अगर कोई कथा मूल्यवान है, तो बस एक यही कि अदम और ईव को ईश्वर ने बगीचे से बाहर कर दिया स्वर्ग के, क्योंकि उन्होंने ज्ञान का फल चख लिया। ईश्वर ने जब अदम और ईव को बनाया, तो उसने कहा कि यह सारा बगीचा तुम्हारा है, सिर्फ एक वृक्ष को छोड़ कर--दि ट्री ऑफ नालेज। ज्ञान के वृक्ष को छोड़ कर सारा बगीचा तुम्हारा है। तुम सब फल चखना, बस इस ज्ञान के फल को मत चखना।

शायद इसी कारण अदम और ईव ज्ञान के फल के लिए बहुत उत्सुक हो गए। और शायद इसी कारण शैतान ईव को समझाने में सफल हो गया। शैतान ने ईव को समझाया कि इस फल का वर्जन इसीलिए किया गया है कि जो भी इसके फल को खा लेगा, वह ईश्वर जैसा हो जाएगा, देवताओं जैसा हो जाएगा। ज्ञान आदमी को देवता बना देता है। और ईश्वर ने तुम्हें सब छुट्टी दे दी है, सिर्फ इससे रोका है; इसीलिए कि तुम देवताओं जैसे न हो जाओ। जो जान लेगा, वह देवता जैसा हो जाएगा।

ईव को उसकी बात जंची। क्योंकि अज्ञान ही तो पतन है; और ज्ञान श्रेष्ठता है। तो ज्ञान का फल वर्जित किया ईश्वर ने, इसका मतलब साफ है कि ईश्वर हमें अपने जैसा नहीं होने देना चाहता। शैतान ने भी ईव को पहले समझाया; क्योंकि किसी पति को सीधा समझाने की कोई जरूरत नहीं है। पत्नी राजी है, तो पति बेचारा राजी ही है। और पत्नी को राजी कर लेना आसान है, क्योंकि ईर्ष्या जगानी आसान है। और शैतान ने ईर्ष्या जगा दी। उसने कहा कि तुम देवताओं जैसे हो जाओगे। आदम ने बहुत कहा कि जब ईश्वर ने मना किया है, तो हम क्यों झंझट में पड़ें? लेकिन जब पत्नी और परमात्मा के बीच चुनना हो, तो पत्नी को ही चुनना पड़ता है। ईव मानने को राजी नहीं थी। और जितना अदम ने रोका, उतना ईव का आकर्षण बढ़ता चला गया। और वह फल चखना पड़ा। उस फल के चखते ही उन्हें स्वर्ग के बगीचे के बाहर कर दिया गया।

ज्ञान आदमी के पतन का कारण बना, बाइबिल में। यह बड़ी हैरानी की बात है। इससे लाओत्से का मेल है। लाओत्से भी यही कहता है कि ज्ञान पतन का कारण है आदमी का। और तब से अदम भटक रहा है, और उस अदम के बेटे आदमी भटक रहे हैं। और तब तक वापस नहीं लौट सकते, जब तक वे ज्ञान को तिलांजलि न दे दें। स्वर्ग का द्वार उनके लिए फिर से खुल सकता है, अगर वे ज्ञान को तिलांजलि दे दें।

एक मजे की बात है कि ज्ञान के तिरोहित होते ही अज्ञान भी तिरोहित हो जाता है। सच बात तो यह है कि अज्ञान है, यह भी ज्ञान के ही कारण पता चलता है। इसलिए जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना अज्ञान का बोध बढ़ता है। अगर आप जमीन पर बिल्कुल अकेले हों, तो आप अज्ञानी होंगे कि ज्ञानी? क्या होंगे आप? आप सिर्फ होंगे। क्योंकि कंपेरिजन की, तुलना की कोई जगह न होगी। किससे तौलेंगे कि आप ज्ञानी हैं कि अज्ञानी? अगर आप अकेले हों जमीन पर, तो चरित्रवान होंगे कि चरित्रहीन? किससे तौलेंगे? साधु होंगे कि असाधु? कैसे जानेंगे? कैसे तौलेंगे? क्या होगा मापदंड?

लाओत्से कहता है कि ताओ की स्थिति वह सरल स्थिति है, जैसे हर आदमी जमीन पर अकेला हो। न कोई तौलने का उपाय है; न कुछ बुरा है, न कुछ भला है; न कुछ ज्ञान है, न कुछ अज्ञान है; न कुछ साधुता है, न कुछ असाधुता है। सिर्फ होना मात्र है--जस्ट बीइंग।

बाइबिल की इस कथा में एक और मजेदार बात है कि जैसे ही फल को चखा ईव ने, उसने जल्दी से पत्ते उठा कर अपने शरीर को ढंका। अब तक वह नग्न थी। ज्ञान के साथ ही पाप का बोध आ गया। ज्ञान के साथ ही, कुछ छिपाना है, इसका ख्याल आ गया। ज्ञान के साथ ही पूरे शरीर की स्वीकृति न रही, कुछ अस्वीकृत हो गया। तब तक अदम और ईव नंगे थे। तब तक वे छोटे बच्चों की तरह निर्दोष थे। ज्ञान के साथ ही दोष शुरू हो गया।

लाओत्से कहता है कि ज्ञान जब तक न खो जाए, तब तक इनोसेंस, निर्दोषिता उपलब्ध नहीं होती।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि परम ज्ञान को वे ही लोग उपलब्ध होते हैं, जो ज्ञान को भी छोड़ने में समर्थ हो जाते हैं। तब वे निर्दोष हो जाते हैं, तब वे सरल हो जाते हैं।

जीसस ने कहा है कि वे ही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेंगे, जो इन छोटे बच्चों की तरह निर्दोष हैं।

पता नहीं, छोटे बच्चे निर्दोष हैं या नहीं। क्योंकि फ्रायड नहीं मानता कि निर्दोष हैं। फ्रायड तो मानता है कि सब दोष उनमें मौजूद हैं; सिर्फ प्रकट होने की देर है। सब उपद्रव मौजूद हैं। आपके सहारे की जरा जरूरत है; सब प्रकट होने लगेंगे। थोड़ा शिक्षित करिए, थोड़ा बड़ा करिए, खिलाइए-पिलाइए, तैयार करिए; सब बीमारियां तैयार हैं, वे प्रकट होने लगेंगी।

लेकिन जीसस का मतलब और है। जीसस का मतलब यह है कि जहां बोध नहीं है, अबोध! अबोध ही निर्दोषिता है।

जैसे ही ज्ञान आया ईव को और अदम को, उन्होंने ढंक लिया अपने को। वे अपने ही प्रति निंदा से भर गए। शर्म मालूम पड़ने लगी। शर्म का अर्थ ही है कि आदमी को दोष का बोध शुरू हो गया। स्त्रियों में हम शर्म को बड़ा गुण मानते हैं; वह गुण है नहीं। लज्जा को हम गुण मानते हैं; वह गुण है नहीं। क्योंकि लज्जा का मतलब यह होता है कि स्त्री को दोष का बोध हो गया। कुछ गलत है, इसका पता चल गया। बिना अनुभव के पता कैसे चलेगा? किसी न किसी रूप में गलत भीतर प्रवेश कर गया है।

निर्दोष व्यक्तित्व में लज्जा भी नहीं है, शर्म भी नहीं है, बेशर्मी भी नहीं है। क्योंकि बेशर्मी के लिए पहले शर्म आ जानी जरूरी है। निर्दोष व्यक्तित्व में लज्जा भी नहीं है, निर्लज्जता भी नहीं है। क्योंकि निर्लज्जता बाई-प्रोडक्ट है; लज्जा के बाद ही! किसी में लज्जा आ जाए और फिर वह लज्जा की फिक्र न करे और जीता चला जाए, तो निर्लज्ज होता है।

लाओत्से कहता है कि एक ऐसी सरल स्थिति भी है जीवन की, जहां अभी द्वंद्व का पता ही नहीं है कि क्या है काला और क्या है सफेद। वह कहता है, वही परम धर्म है। उसके नीचे जितनी बातें धर्म की कही जाती हैं, वे सब पतन की हैं।

कनफ्यूशियस मिलने आया है लाओत्से को। तो कनफ्यूशियस ठीक उलटा आदमी है। वह ठीक अरस्तू से मेल खाता है, हमसे मेल खाता है। कनफ्यूशियस कहता है कि लोगों को सिखाओ कि अच्छाई क्या है। कनफ्यूशियस सदधर्म, नीति, नियम का पक्का पाबंद है। इंच-इंच जीवन को नियम से बांध कर, अनुशासन से बांध कर चलना चाहिए। उठना कैसे, बैठना कैसे, बोलना कैसे, उस सब की उसकी व्यवस्था है। इस जगत में उससे ज्यादा बड़ा अनुशासनविद और अनुशासनप्रेमी नहीं हुआ है। हर चीज का नियम उसने बना दिया है। जीना कैसे, मरना कैसे, सब का नियम है।

कनफ्यूशियस मर रहा है। उसका शिष्य उससे मिलने आया है। तो कनफ्यूशियस उससे पूछता है। क्योंकि कई वर्षों बाद, बीस वर्ष बाद शिष्य वापस आया है मरते गुरु के पास। मरता गुरु और कुछ नहीं पूछता, मरता गुरु यह पूछता है कि तू जिस बैलगाड़ी में बैठ कर आया है, गांव के बाहर उससे नीचे उतर गया था या गांव के

भीतर भी बैठ कर आया? उसके शिष्य ने कहा, आपका शिष्य होकर ऐसी भूल कैसे कर सकता हूं? जिस गांव में मैं पैदा हुआ, उसमें बैलगाड़ी में बैठ कर कैसे आ सकता हूं? गांव के बाहर उतर गया था। कनफ्यूशियस ने कहा, तब ठीक है; मैं शांति से मर सकता हूं।

ऐसा नियमविद! हर चीज को नियम, डिसिप्लिन, कानून, उसमें बांधना।

लाओत्से बिल्कुल उलटा आदमी था। वहां कोई नियम ही न थे। क्योंकि नियम ही लाओत्से के लिए पतन था। नियम का मतलब ही है कि बीमारी आ गई; अब उसे बांधना है, सम्हालना है, किसी तरह चलाना है।

कनफ्यूशियस मिलने गया लाओत्से को। तो कनफ्यूशियस ने कहा कि आपका क्या संदेश है? लोगों को मैं अच्छा बनाना चाहता हूं; आप मुझे कुछ सलाह दें, यह मैं कैसे करूं? तो लाओत्से ने कहा कि तुम अच्छे बनाने की कोशिश भर मत करो। नहीं तो तुम लोगों को बुरा बनाने में सफल हो जाओगे। तुम्हारी इतनी कृपा काफी होगी कि तुम लोगों को अच्छा बनाने की कोशिश मत करो।

कनफ्यूशियस की तो कुछ समझ में न आया; क्योंकि उसके तो चिंतन की एक धारा थी। उसने कहा, यह भी क्या बात है? इससे तो अराजकता फैल जाएगी! इससे तो अनार्की हो जाएगी! अगर हम लोगों को अच्छा न बनाएं, तो सब अराजकता हो जाएगी। लाओत्से ने कहा, राजकता लाने की चेष्टा से अराजकता पैदा होती है। कनफ्यूशियस ने कहा कि लोग बिल्कुल स्वच्छंद हो जाएंगे। लाओत्से ने कहा, नियम के कारण ही लोग स्वच्छंद होते हैं। अगर नियम नहीं, तो कैसी स्वच्छंदता? लोग सहज होंगे। नियम हैं, तो लोग स्वच्छंद हो जाएंगे। और सब नियम सहजता के विपरीत होते हैं; इसलिए सब नियम लोगों को स्वच्छंद होने के लिए मजबूर कर देते हैं।

यह थोड़ा समझने जैसा है, सब नियम लोगों को स्वच्छंद होने के लिए मजबूर कर देते हैं। सहजता तो एक प्रवाह है, और नियम तो एक बांध है।

मैं छोटा था, तो मेरे स्कूल के एक शिक्षक की मृत्यु हुई। उन्हें स्कूल में हम सारे लोग भोले शंकर कह कर चिढ़ाया करते थे। बहुत भोले आदमी थे। सच में ही भोले आदमी थे। और सब तरफ से उन्हें परेशान किया जा सकता था। और सब तरफ से चौबीस घंटे स्कूल में वे परेशान किए जाते थे। उनकी मृत्यु हो गई। सारे स्कूल के बच्चे उनको अंतिम विदा देने गए। उनसे प्रेम भी था, लगाव भी था। उनको इतना परेशान भी किया हुआ था। मैं सामने ही खड़ा था, उनकी अरथी के बिल्कुल पास। उनकी पत्नी बाहर निकली और जोर से उनकी छाती पर गिर पड़ी और उसने कहा, हे मेरे भोले शंकर! तो मुझे हंसी रोकनी बिल्कुल मुश्किल हो गई। यह कभी नहीं सोचा था कि मरने पर और उनकी पत्नी उनको भोले शंकर कहेगी। भोले शंकर कह कर तो हम उन्हें चिढ़ाते थे। तो उनकी मौत की जो गमगीनी थी, वह तो खतम हो गई। वह तो भूल ही गया ख्याल कि वे मर गए हैं और अभी हंसना उचित नहीं है। हंसी इतने जोर से फैली कि करीब-करीब पूरे स्कूल के लड़के हंसने लगे। क्योंकि सभी को पता था कि भोले शंकर! हद हो गई! यह तो मजाक की आखिरी सीमा हो गई।

बहुत डांट-डपट पड़ी। घर लौट कर हर एक के घर पर डांट-डपट पड़ी; और कहा गया कि अब तुम्हें कभी ऐसी जगह नहीं ले जाया जा सकता। आदमी मर गया और तुम हंस रहे हो! कुछ नियम का ख्याल होना चाहिए। फिर इतने जोर से हंसने की क्या बात थी? अगर हंसी भी आ गई थी--और जब बताया कारण, तो सब को समझ में आया कि हंसी का कारण था--तो भी अपने मन में ही। पर कारण जोर से हंसने का यह था कि नियम के ख्याल के कारण सभी ने रोकने की कोशिश की। फिर रोकना इतना असंभव हो गया कि वह इतने जोर से फूटी कि वह एक्सप्लोसिव हो गई। उनकी पत्नी के भी आंसू सूख गए। वह भी घबड़ा कर खड़ी हो गई कि क्या हुआ!

नियम अक्सर विपरीत को शक्ति देते हैं। नियम था साफ था कि नहीं हंसना है। हंसने की कोई बात बिल्कुल ही गैर-मौजूं है। लेकिन जिंदगी नियम नहीं मानती। वहां भीतर तो हंसी आ गई, और वह बिल्कुल सहज थी। कोई दुर्भाव भी न था। लेकिन नियम ने उसे रोका। नियम बांध बनाता है। जो सहज धारा आ गई थी, नियम ने बांध बनाया। और बांध जब टूटेंगे, तो स्वच्छंदता पैदा होती है। बांध के कारण पैदा होती है, नदियों के कारण नहीं। और जब बांध टूटते हैं, तो भयंकर उत्पात हो जाता है।

तो जिन्होंने जीवन को बांध की भाषा में देखा है, जैसे कनफ्यूशियस ने, तो उसने कहा, सब स्वच्छंद हो जाएगा। कोई किसी की मानेगा नहीं, कोई किसी की सुनेगा नहीं। प्रजा राजा की नहीं सुनेगी; बेटे पिता की नहीं सुनेंगे; पत्नियां पतियों की नहीं मानेंगी; नौकर मालिक की नहीं सुनेंगे।

लाओत्से ने कहा कि तुम जितनी कोशिश करोगे कि बेटे पिता की सुनें, बेटे पिता के उतने ही विपरीत होते चले जाएंगे। और लाओत्से सही सिद्ध हुआ है। पांच हजार साल से हम कोशिश कर रहे हैं कि बेटे बाप की सुनें। और परिणाम केवल एक हुआ कि बेटे और बाप के बीच की खाई बड़ी होती चली गई। कोशिश हमारी यही रही है कि नौकर मालिक की सुनें। और परिणाम यह हुआ है कि नौकर ने कहा कि तुम मालिक हो, यह तुमसे कहा किसने? भ्रांति में हो। ज्यादा से ज्यादा हम पार्टनर्स हैं, साझेदार हैं। प्रजा राजा की माने, इसका कुल परिणाम इतना हुआ कि आज जमीन पर राजा नहीं हैं।

यह बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि पांच हजार साल की सतत चेष्टा का यह फल कि प्रजा राजा की माने, परिणाम यह हुआ कि राजा कहीं भी नहीं हैं। और अगर हैं भी, तो उनकी हैसियत नौकरों की हो गई है। आज इंगलैंड की रानी की हैसियत एक नौकर से ज्यादा नहीं है; क्योंकि तनख्वाह भी पार्लियामेंट तय करती है। कम भी कर सकती है, बढ़ा भी सकती है, बंद भी कर सकती है। कोई मूल्य नहीं रह गया। किस वजह से?

कनफ्यूशियस की वजह से। लाओत्से ने उसी दिन कनफ्यूशियस को कहा था कि तुम बर्बाद कर दोगे दुनिया को। तुम नियम थोपोगे, अनियम पैदा हो जाएगा। तुम अनुशासन चाहोगे, अनुशासनहीनता जन्मेगी। लाओत्से ने कहा था, तुम अच्छा करने की कोशिश ही छोड़ दो। अगर तुम अच्छा करने की कोशिश छोड़ दो, तो दुनिया में बुरा होना बंद हो सकता है।

मगर यह बड़ा कठिन है; और बड़ा मुश्किल है; बड़ा मुश्किल है। यह मान कर चलना बड़ा मुश्किल है कि दवा मत दो, तो बीमारी अच्छी हो सकती है।

लेकिन अभी पश्चिम के बहुत से अस्पतालों में प्रयोग चलते हैं। और लाओत्से सही निकलता है--न मालूम कितने-कितने कोनों से। एक आदमी को एलोपैथिक दवा दें, एक आदमी को होमियोपैथिक दवा दें। एक सी बीमारी दोनों की है। एक को नेचरोपैथी करवा दें, एक को किसी बाबा की भभूत दिलवा दें। परिणाम परसेंटेज में बराबर निकलते हैं। सत्तर परसेंट लोग हर हालत में ठीक होते हैं--चाहे एलोपैथी हो, चाहे नेचरोपैथी हो, चाहे होमियोपैथी हो, चाहे बायोकेमी हो, कुछ भी हो। चाहे बाबा की भभूत हो, और चाहे कुछ भी हो, सत्तर परसेंट मरीज तो तय किए बैठे हैं, ठीक होंगे ही।

अभी इस पर बहुत प्रयोग चले, तो फिर यह सोचा कि कुछ होमियोपैथी की दवा भी करती ही होगी, कुछ बायोकेमी की दवा भी करती ही होगी, कुछ नेचरोपैथी की विधियां भी करती ही होंगी। तो फिर शुद्ध पानी मरीजों को देकर देखा गया न मालूम कितने अस्पतालों में। दस मरीज हैं एक ही बीमारी के। पांच को दवा दी जा रही है, पांच को पानी दिया जा रहा है। पानी भी उतना ही काम करता है, जितनी दवा काम करती है।

अब तो वे कहते हैं कि अगर सर्दी-जुकाम है, दवा लो तो सात दिन में ठीक हो जाओगे, दवा न लो तो एक सप्ताह में ठीक हो जाओगे। दवा लो, सात दिन में ठीक हो जाओगे। दवा न लो, एक सप्ताह में ठीक हो जाओगे। क्या होता होगा आदमी को? अभी तक साफ नहीं है।

लाओत्से कहता है, प्रकृति स्वयं ही अपना सुधार कर लेती है। तुम सिर्फ प्रकृति पर छोड़ो। तुम कृपा करो और बीच में दखलंदाजी मत करो। तुम ही उपद्रव हो। तुम जरा दूर रहो और प्रकृति पर छोड़ दो। प्रकृति अपना उपाय कर लेती है। जिसने तुम्हें पैदा किया, जिसने तुम्हें जीवन दिया, जिससे तुम श्वासें ले रहे हो, जिसके कारण तुम चेतन हो, वह विराट है ऊर्जा; वह तुम्हारी बीमारियों को भी बहा ले जाएगी, तुम बीच में मत आओ। वह तुम्हारी बुराई को भी बहा ले जाएगी, तुम बीच में मत आओ। तुम ही उपद्रव हो। तुम बीच में आओ ही मत। तुम इस धारा के साथ सहज एक हो जाओ। यह धारा जो चाहे और जहां ले जाए और जो करवाए! बीमारी आए, तो बीमारी से राजी हो जाओ। प्रकृति को छोड़ दो, जो उसे करना हो।

अगर ऐसा हम समझें, तो लाओत्से ही अकेला प्रकृतिवादी है। अगर ठीक से कहें, तो वह जो कह रहा है, वही सिर्फ नेचरोपैथी है। पेट पर पट्टी बांधे हैं मिट्टी की, या कपड़ा बांधे हुए हैं, या टब में बैठे हुए हैं, या एनिमा ले रहे हैं--कोई भी नेचरोपैथी नहीं है। क्योंकि क्या संबंध है नेचर का एनिमा से?

लाओत्से कहता है, बिल्कुल छोड़ दो प्रकृति पर। जो प्रकृति करना चाहे, होने दो। तुम सिर्फ राजी रहो बहने को। लाओत्से कहता है, तैरो मत, बहो। छोड़ दो नदी पर, जहां ले जाए। और तुम मत कहो कि मेरी मंजिल कौन सी है; नदी पर छोड़ दो। जहां तू पहुंचा दे, वही मेरी मंजिल है। लाओत्से कहता है, ऐसी अवस्था में ही धर्म के फूल खिलते हैं।

"और जब ज्ञान और होशियारी का जन्म हुआ, तब पाखंड भी अपनी पूरी तीव्रता में सक्रिय हो गया। जब संबंधों के बीच शांति असंभव हो गई, तब दयालु माता-पिता और आज्ञाकारी पुत्रों की प्रशंसा शुरू हुई।"

जब हम कहते हैं कि फलां का बेटा बड़ा आज्ञाकारी है, तो उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब है कि वह अपवाद है, एक्सेप्शन है।

लाओत्से कहता है, बेटा होने का अर्थ ही आज्ञाकारी होना होना चाहिए। बेटा आज्ञाकारी, यह पुनरुक्ति है, रिपीटीशन है। अगर हम कहते हैं कि फलां मां कितनी दयालु है, तो उसका मतलब यह हुआ कि मां और दया दो अलग चीजें हैं? कि कभी मां के साथ जुड़ती है और कभी नहीं जुड़ती दया! लेकिन मां होना ही दया है। इसलिए यह कहना कि फलां मां दयालु है, इस बात की खबर है कि अब माताएं भी दयालु नहीं होती हैं। यह अपवाद है। तभी तो हम इसकी प्रशंसा करते हैं, कहते हैं, फलां का बेटा कितना आज्ञाकारी है। इसका मतलब कि अब बेटे आज्ञाकारी नहीं होते; अब पिता दयालु नहीं होते; अब मां ममता से भरी नहीं होती।

लाओत्से कहता है, ये पतन के लक्षण हैं। जब किसी मां की प्रशंसा करनी पड़े कि वह प्रेम से भरी है, यह पतन का लक्षण है। जब पिता को कहना पड़े कि वह दयालु है, यह पतन का लक्षण है। और जब बेटे के लिए आज्ञाकारी होना प्रशंसा का कारण हो जाए, तो समझना चाहिए बीमारी आखिरी सीमा पर पहुंच गई।

यह लाओत्से बिल्कुल उलटा आदमी मालूम होता है। लेकिन यह भी हो सकता है कि हम सब उलटे हों और वह सीधा खड़ा है, इसलिए हमें उलटा मालूम पड़ता है। बात तो उसकी ठीक लगती है। मां के प्रेम की क्या बात करनी है? मां के होने का अर्थ ही प्रेम होता है। यह चर्चा ही नहीं उठानी चाहिए। मां प्रेमी है, यह बात ही बेकार है। बेटा आज्ञाकारी है, यह व्यर्थ पुनरुक्ति है। बेटा होने का फिर अर्थ ही न रहा। बेटे होने का अर्थ ही क्या

है? बेटे होने का अर्थ है कि वह मां और पिता का एक्सटेंशन है, उनका फैलाव है, उनका विस्तार है। उनका ही हाथ है, उनका ही भविष्य है। इसमें आज्ञा और न आज्ञा की बात कहां है?

मैं नहीं कहता कि मेरा हाथ मेरा बड़ा आज्ञाकारी है। लेकिन अगर किसी दिन दुनिया में ऐसी कोई बात चले कि फलां आदमी का हाथ बड़ा आज्ञाकारी है, तो समझ लेना कि दुनिया में सभी लोग पैरालाइज्ड हो गए हैं। क्या मतलब होगा इसका कि अखबार में फोटो छपे कि इस आदमी का हाथ बिल्कुल आज्ञाकारी है! जब पानी उठाना चाहता है, पानी उठा लेता है; जो भी करना हो, करो; इसका हाथ बड़ा आज्ञाकारी है। तो उसका मतलब है कि पैरालिसिस जीवन का सहज हिस्सा हो गई है; सब लोग पैरालाइज्ड हैं; अब हाथ भी अपनी नहीं मानते।

हम जिस दुनिया में रह रहे हैं, वह पैरालाइज्ड है, लकवा खा गई दुनिया है, पक्षाघात से भरी दुनिया है। किसी बाप को भरोसा नहीं है कि बेटा आज्ञा मानेगा। और अगर बेटे आज्ञा मानते मालूम पड़ते हैं, तो वे गोबर-गणेश बेटे होते हैं, बिल्कुल गोबर के गणेश। उनसे कोई तृप्ति भी नहीं होती। उनसे कहो बैठो, तो वे बैठ जाते हैं। जब तक न कहो उठो, तब तक वे उठते ही नहीं। उनसे कोई तृप्ति नहीं मालूम होती। जिन बेटों में थोड़ी बुद्धि दिखाई पड़ती है, वे सुनते नहीं। वे बाप को आज्ञाकारी बनाने की कोशिश करते हैं।

पचास साल पहले अमरीका में, मनोवैज्ञानिक कहते थे कि बेटे घर में घुसते डरते हैं, लड़कियां घर में घुसते डरती हैं। अब हालत उलटी है। बाप-मां घर में घुसते डरते हैं, कि पता नहीं बेटे-बेटियां क्या उपद्रव खड़ा कर दें! पचास साल पहले बेटे और बेटियां अमरीका में मां-बाप से पीड़ित थे, ऑप्रेस्ड थे। अब मां-बाप उनसे ऑप्रेस्ड हैं। हर बात में मां-बाप को डरना पड़ता है कि कोई गलती तो नहीं कर रहे! कहीं कोई कांप्लेक्स बच्चे में पैदा तो नहीं हो जाएगा! कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मनोवैज्ञानिक कहें कि तुमने बच्चे को बीमारी दे दी, इसका मन खराब कर दिया! डरे हुए हैं, घबड़ाए हुए हैं।

यह जो पक्षाघात से ग्रस्त दुनिया है, यह लाओत्से की सलाह न मानने के कारण है। लाओत्से कहता यह है कि जीवन की जो सहजता है, उसको बांधने की चेष्टा मत करो; अन्यथा टूट भी पैदा होगी। आज्ञा मनवाने की चेष्टा मत करो; अन्यथा अवज्ञा पैदा होगी। अनुशासन थोपो मत; अन्यथा दूसरे के भीतर भी अहंकार है, वह अहंकार प्रतिकार करेगा। और जब बाप कहता है कि मैं मनवा कर रहूंगा, तो बेटे का अहंकार भी कहता है कि देखें, कैसे मनवा कर रहेंगे! बाप का अहंकार बेटे का अहंकार पैदा करवा देता है। और जब बाप के मन में मनवाने की कोई आकांक्षा नहीं होती, तो बेटे के मन में भी न मानने का कोई प्रतिरोध पैदा नहीं होता है।

इसे थोड़ा समझ लें। जब बाप सचेत होता है कि ऐसा करवा कर ही रहेंगे, तो बेटा भी सचेत हो जाता है। और ध्यान रहे, अगर बेटे और बाप में लड़ाई होगी, तो अंततः बेटा जीतेगा। क्योंकि बाप तो हारती हुई बाजी है, बाप जीत नहीं सकता। वह कितना ही वहम पाले, वह जीत नहीं सकता। बेटा ही जीतेगा। बेटा है उठती हुई ताकत, और बाप है डूबती हुई ताकत। अगर विरोध खड़ा होगा, तो बेटा जीतेगा, बाप हारेगा। और सारी दुनिया में बाप हार रहे हैं; जगह-जगह उनके पैर उखड़ते जा रहे हैं। और बड़ी हैरानी की बात है कि बाप और बेटों के बीच संघर्ष... ।

तुर्गनेव ने एक किताब लिखी हैः फादर्स एंड संस। कीमती किताब है। बाप और बेटों के संघर्ष की कथा है। हर बाप हर बेटे से लड़ रहा है। हर बेटा हर बाप से लड़ रहा है। लाओत्से कहेगा, इससे ज्यादा रुग्ण और विक्षिप्त अवस्था क्या होगी, जहां बाप और बेटों को लड़ना पड़ता है! तो फिर दुनिया में और क्या उपाय होगा जहां लड़ना न हो!

लेकिन हम देखते हैं कि लड़ाई जारी है। हर घर में लड़ाई जारी है। हर इंच पर लड़ाई जारी है। और हर इंच पर तय करना होता है--कौन जीता, कौन हारा। रोज बाप हारता जाएगा। लेकिन इस बाप के हारने में कोई गहरा नियम काम कर रहा है, जो हमारे ख्याल में नहीं है। और लाओत्से उसी नियम की याद दिलाता है। वह दिलाता है याद कि जब बाप सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि मैं बाप हूं और मेरी मानो, और जब गुरु कहेगा कि मैं गुरु हूं, मेरा आदर करो; तो इसकी जो प्रतिध्वनि है, वह अनादर है। जब गुरु ऐसा होता है कि उसे पता ही नहीं कि उसे भी आदर दिया जाना चाहिए, तब उसे आदर मिलता ही है।

मैं विश्वविद्यालय के शिक्षकों के एक सम्मेलन में था। वहां बड़ी चर्चा यही थी कि शिक्षक का आदर खतरे में है। पूरी चर्चा यही थी। तो है ही खतरे में। खतरे में है, यह भी कहना क्या ठीक है? अब तो खतरा भी बीत चुका। अब तो आदर कहीं बचा भी नहीं है। मरीज मर ही चुका है। अब क्या खतरे में है? लेकिन अभी भी बचाने की कोशिश में लगे हैं। और जितनी बचाने की कोशिश करते हैं, उतना उपद्रव फैलता चला जाता है। हर स्कूल, हर कालेज, हर यूनिवर्सिटी, अनुशासनहीनता से, इनडिसिप्लिन से भर गई है। लेकिन कोई भी यह नहीं सोचता कि इसकी जिम्मेवारी कहां है?

तो मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी यह चिंता कि विद्यार्थी तुम्हें आदर नहीं देते, बड़ी खतरनाक है। इस चिंता का एक ही परिणाम हो सकता है कि विद्यार्थी तुम्हें और भी आदर न दें। तुमसे कहा किसने कि गुरु को आदर मिलना चाहिए? असल में, पुरानी परिभाषा बिल्कुल और है। वह परिभाषा यह है कि जिसको आदर मिलता है, वह गुरु है। गुरु को आदर मिलना चाहिए, इसका कोई संबंध ही नहीं है। गुरु को आदर का सवाल ही नहीं है। जिसको आदर मिलता है, वह गुरु है। नहीं मिलता, वह गुरु नहीं है। बात समाप्त हो गई। अगर तुम्हें विद्यार्थी आदर नहीं देते, तुम गुरु नहीं हो। और हो भी नहीं। व्यर्थ मोह को क्यों खींचे चले जाते हो?

बाप वह है, जिसकी आज्ञा मानी जाती है। अगर बेटा आज्ञा नहीं मानता, तो समझना चाहिए आप बाप नहीं हैं। सिर्फ बायोलाजिकली बाप हैं, और कुछ नहीं हैं। तो बायोलाजिकली होना कोई इतनी महत्ता की बात भी नहीं है। एक इंजेक्शन से, एक इंजेक्शन भी बायोलाजिकली पिता हो सकता है। तो बायोलाजिकली पिता होने की कोई महत्ता भी ऐसी नहीं है कि आपकी आज्ञा मानी जाए।

पिता होना एक आध्यात्मिकता है। एक बात ही अलग है। बच्चे तो बहुत लोग पैदा करते हैं, पिता मुश्किल से कभी कोई हो पाता है। और बच्चे करना कोई गुण है? मक्खियां-मच्छर इतने करते हैं कि उसमें कोई गुणवत्ता समझ में नहीं आती। आपका कोई कृत्य है, ऐसा भी कुछ समझ में नहीं आता।

लेकिन पिता होना एक बड़ी बात है। और ध्यान रहे, मां से बड़ी बात है। क्योंकि मां नैसर्गिक घटना है, पिता एक उपलब्धि है। मां तो प्राकृतिक घटना है; लेकिन पिता नहीं है प्राकृतिक घटना। इसलिए जब कोई व्यक्ति पिता हो पाता है, तो मां बिल्कुल फीकी पड़ जाती है। हालांकि पिता होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि पिता होने के लिए कोई नैसर्गिक इंतजाम नहीं है। पशुओं को तो पिता का कोई पता नहीं होता। और आपको भी पता होता है, तो कितना इंतजाम करना पड़ा वह पता रखने के लिए! शादी करो, पहरे रखो, कानून बनाओ, सारा इंतजाम करो, फिर भी पिता पक्के भरोसे में नहीं होता कि मेरे बेटे का पिता मैं ही हूं। यह पक्का भरोसा हो भी नहीं सकता। इस भरोसे के लिए सती और पतिव्रता और न मालूम कितने सिद्धांत और कितनी नैतिकता--सिर्फ एक बात को पक्का रखने के लिए कि मेरे बेटे का बाप मैं ही हूं। सारा इतना इंतजाम, इतनी घबड़ाहट, इतना डर, इतना भय! और जीवन एक संस्था जैसा बन जाता है--सिर्फ इस इंतजाम के लिए कि मेरी वसीयत,

मेरे धन का जो मालिक हो, वह पक्के रूप से मेरा ही बेटा हो। बस इतने इंतजाम के लिए कितना कष्ट उठाया जाता है और कितनी कलह झेली जाती है!

लेकिन पिता कोई नैसर्गिक घटना नहीं है। अगर बच्चे कल समाज पालने लगे और इंतजाम करने लगे, तो पिता की संस्था खो जाएगी। पिता की संस्था सदा नहीं थी, बहुत बाद में आई है। पर मां नैसर्गिक घटना है। पिता होना एक आध्यात्मिक बात है। इसलिए हमने परमात्मा को पिता कहना पसंद किया, बजाय मां कहने के। क्योंकि मां होना एक नैसर्गिक घटना है; और पिता होना एक आध्यात्मिक उपलब्धि है। पिता होने का अर्थ ही इतना है कि बेटा उसकी मानता है। इस मानने का कहीं पता भी नहीं चलता। इस मनवाने की कहीं कोई चेष्टा भी नहीं है। यह तो पिता की गरिमा ही... ।

पुराना नियम था कि जिस दिन बेटे का विवाह हो जाए, उस दिन से पिता ब्रह्मचारी हो जाए। हो ही जाना चाहिए। जिस घर में बाप भी बेटे पैदा कर रहा हो और बेटा भी बेटा पैदा कर रहा हो, उस घर में बाप का कोई आदर हो नहीं सकता है। ज्यादा से ज्यादा मित्रता हो सकती है थोड़ी-बहुत, कंधे पर हाथ रखा जा सकता है, आदर नहीं हो सकता। क्योंकि बेटा जो मूढ़ता कर रहा है, बाप भी वही मूढ़ता में अभी पड़े हुए हैं, तो बाप होने का हक खो देते हैं।

तो हमने व्यवस्था की थी कि पच्चीस वर्ष में बेटे घर लौटेंगे आश्रमों से, पच्चीस वर्ष के होकर घर लौटेंगे विवाह के लिए; तब तक पिता और मां पचास वर्ष के हो चुके होंगे। जिस दिन बेटे घर में प्रवेश करेंगे, उसी दिन मां-बाप वानप्रस्थ हो गए। उनका मुंह अब जंगल की तरफ हो गया। अब शरीर और वासना और वह सब बच्चों के खेल उनके लिए न रहे। अब बच्चे उन खिलौनों से खेलने लगे, अब उन्हें उनके पार हो जाना चाहिए। इसलिए पचास साल के मां-बाप वानप्रस्थ हो गए। पच्चीस साल बाद बेटों के बेटे गुरुकुल से लौटेंगे। तब तक मां-बाप पचहत्तर साल के हो चुके होंगे। अब उनके बेटों का वक्त आ गया वानप्रस्थ होने का। तब वे संन्यस्त हो जाएंगे। तब बात समाप्त हो गई। अब उनकी दुनिया बिखर गई।

तो बाप के प्रति एक आदर था। और ये जो पचहत्तर साल के बूढ़े थे--बूढ़े नहीं कहना चाहिए, वृद्ध, क्योंकि बुढ़ापा तो उम्र से आता है; वार्धक्य, ज्ञान, अनुभव प्रतीतियों का फल है--ये जो पचहत्तर साल के वृद्ध हैं, ये जाकर गुरुकुलों में गुरु का काम करेंगे। ये जिन्होंने जीवन की इन तीन सीढ़ियों को पार किया, ब्रह्मचर्य को जाना पच्चीस वर्ष तक, पच्चीस वर्ष तक संसार को पहचाना, पच्चीस वर्ष तक संसार के बीच रह कर संसार के बाहर रहने की कला सीखी, ये गुरु होंगे।

इन गुरुओं के प्रति अगर आदर सहज होता, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे जो गांव से इनके पास पढ़ने आएंगे, उनके लिए ये हिमालय के शिखर मालूम पड़ेंगे। इनको छूना भी बहुत दूर की बात है। इनका पैर भी छू लेना परम सौभाग्य होगा। ये इतने फासले पर हैं, इतना डिस्टेंस है, इतनी दूरी है कि कभी इन तक पहुंच पाएंगे, इसकी कल्पना भी बांधनी मुश्किल है। इन गुरुओं को आदर सहज मिल जाता। वे गुरु थे। और गुरु होने के पहले वे पिता थे। पिता होने के पहले वे ब्रह्मचर्य के जीवन में थे। यह सारी एक लंबी प्रक्रिया है, सहज।

लाओत्से कहता है, लेकिन सहज। अगर जीवन अपनी सहज धारा से बहता चला जाए, तो धर्म का फूल खिलता है। और अगर हम बांधें उसे मर्यादाओं में, नियमों में, तो धर्म का फूल खिलना तो मुश्किल है, अगर हम नैतिकता के थोड़े-बहुत कागज और प्लास्टिक के फूल लगाने में सफल हो जाएं, उतना काफी है।

"और जब देश में कुशासन और अराजकता छा गई, तब स्वामिभक्त मंत्रियों की प्रशंसा होने लगी।"

एक ही बात है अलग-अलग पहलुओं पर कि सहजता को छोड़ना ही अधर्म है। साधुता धर्म नहीं है लाओत्से के लिए, सहजता धर्म है। बस यह आखिरी बात ख्याल में ले लें। साधुता धर्म नहीं है लाओत्से के लिए, क्योंकि साधुता असाधुता के विपरीत नियम है। सहजता धर्म है। सहजता किसी के विपरीत नहीं है। असाधु भी सहज अगर जीए, तो साधु हो जाएगा। और साधु भी अगर असहज जीता है, तो सिर्फ छिपा हुआ असाधु है। एक स्पांटेनियस, एक सहज-स्फूर्त जीवन ही लाओत्से के लिए धर्म है। फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं, सूरज उगता है; आदमी भी जिस दिन ऐसा ही सहज होता है, कहीं कोई असहजता नहीं, कोई आरोपण नहीं।

हमें बहुत कठिन लगेगा। क्योंकि सुनते ही हमें लगेगा कि अगर कहीं कोई आरोपण नहीं, तो हम क्या करेंगे अगर हम पर से सब आरोपण उठा लिए जाएं? जरा सोचें कि आप पर कोई नियम नहीं, कोई आरोपण नहीं, पहला काम आप क्या करेंगे? कोई अपने पड़ोसी की पत्नी को ले भागेगा; कोई बैंक पर डाका डाल देगा; कोई किसी की हत्या कर देगा। आपको ख्याल जो आएगा। सोचना आप एक क्षण बैठ कर कि आप पर कोई नियम न रहे, आपने लाओत्से को बिल्कुल मान लिया, क्या करिएगा?

सुना है मैंने, एक दफ्तर में एक मनोवैज्ञानिक की सलाह मान कर मालिक ने एक तख्ती लगा ली। लोग थे अलाल दफ्तर के, कोई काम नहीं करता था। उसने एक तख्ती लगा ली--कि जीवन है छोटा; जो कल करना है, वह आज करो; जो आज करना है, वह अभी करो।

फिर बड़ी मुश्किल में पड़ा। दूसरे दिन ही दफ्तर बंद करना पड़ा। क्योंकि एक क्लर्क दफ्तर की सेक्रेटरी को लेकर भाग गया। कैशियर ने डाका डाल दिया। सोचता था बहुत दिन से डाका डालने का; जो कल करना है, वह आज ही करो। और जो आफिस बॉय था, उसने मालिक की जूतों से पिटाई कर दी। वह भी कई दिन से सोच रहा था; सभी आफिस बॉय सोचते हैं। लेकिन अब तक यह सोचता था कि कर लेंगे कभी, पोस्टपोन करता जा रहा था। जब यह नियम मालूम पड़ा--काल करंते आज कर, आज करंते अब--उसने भी जूते... ।

मालिक ने कहा, वह तख्ती अलग करो!

अगर आप भी लाओत्से का नियम सोचेंगे, तो सोचना थोड़ा, ध्यान करना। उससे लाओत्से के नियम पर कोई बाधा नहीं पड़ेगी, आपको अपने व्यक्तित्व का पता चलेगा कि अगर आप पर कोई नियम न हों तो आप क्या करेंगे, वही आपका असली चरित्र है। आप पर कोई नियम न हों तो आप क्या करेंगे, वही आप हैं। वही आपका असली चरित्र है। नियमों की वजह से जो आप कर रहे हैं, वह आप नहीं हैं। वह आपका चरित्र भी नहीं है। वह आपका अभिनय है। वह जबर्दस्ती है। उसका कोई मूल्य नहीं है।

तो आपको अपने भीतर उतरने में, सेल्फ-आब्जर्वेशन में बड़ी सहायता मिलेगी लाओत्से से। सोच लें, एक दिन चौबीस घंटे के लिए कोई नियम नहीं है आपके लिए। अब आप वही करें, जो सहज हो रहा है। सोचें सिर्फ, अभी करना मत। सिर्फ सोचना। तो पता चलेगा कि मनुष्यता कितनी विकृत हो गई है नियमों के कारण।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं।

इकतालीसवां प्रवचन

सिद्धांतों व आचरण में नहीं, सरल-सहज स्वभाव में जीना

Chapter 19 : Sutra 1

Realize The Simple Self

1. Banish wisdom, discard knowledge,
And the people shall profit a hundredfold;
Banish humanity, discard justice,
And the people shall recover love of their kin;
Banish cunning, discard utility,
And the thieves and brigands shall disappear.

अध्याय 19 : सूत्र 1

स्वयं को जानो

1. बुद्धिमत्ता को छोड़ो, ज्ञान को हटाओ,
और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे;
मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ,
और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे;
चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ,
और चोर तथा लुटेरे अपने आप ही लुप्त हो जाएंगे।

लाओत्से को समझने में जो बड़ी से बड़ी कठिनाई है, वह हमारे चिंतन की कोटियां हैं। चिंतन का जो ढंग हमारा है, लाओत्से को उसी ढंग से पकड़ना बहुत मुश्किल होगा। और लाओत्से का चिंतन का ढंग ही विपरीत है; उसका तर्क ही विपरीत है। वह दूसरे ही आयाम से जीवन को देखता है। इसलिए आप जो प्रश्न भी पूछते हैं, वे लाओत्से से कम संबंधित और आपसे ही ज्यादा संबंधित होते हैं।

लाओत्से की दृष्टि को समझना हो, तो अपनी दृष्टि को थोड़ा छोड़ कर ही देखना पड़ेगा। अगर आप अपनी दृष्टि, अपने शब्द और अपने बंधे हुए ख्यालों से ही लाओत्से को देखेंगे, तो यह निर्णय करना तो बहुत मुश्किल है कि लाओत्से सही है या गलत, आप समझ भी नहीं पाएंगे कि वह क्या कह रहा है।

आपके चिंतन का जो ढंग है, उसे एक तरफ रखें, तो लाओत्से को समझ पाएंगे। फिर निर्णय आपके हाथ में है कि आप तय करें कि वह गलत है या सही। लेकिन समझने के पहले ही तय करना उचित नहीं है। और समझने में अड़चन है। और वह अड़चन यह है कि हमारा एक ढांचा है देखने का; लाओत्से उस ढांचे के बिल्कुल प्रतिकूल है। जैसे हम हाथ से छूते हों और वह आंख से देखता हो; या जैसे हम आंख से देखते हों और वह कान से सुनता हो; और सारी भाषा अलग हो। जैसे मैंने कल कहा कि अगर चेतना बढ़ेगी, तो दूसरी तरफ अचेतना बढ़ जाएगी, मूर्च्छा बढ़ जाएगी। चेतना का जो भी अर्थ हमें पता है वह महावीर, कृष्ण और बुद्ध से हमें मिला है। वह अर्थ लाओत्से के साथ काम नहीं पड़ेगा। तो आपके मन में जो प्रश्न उठ आते हैं, वे प्रश्न आपके नहीं हैं। चिंतन की एक धारा आपके मन में है। तब हमें बड़ी घबड़ाहट होती है, इसका क्या मतलब हुआ?

इसका मतलब हुआ कि अगर एक महावीर चेतना को उपलब्ध हो जाएगा, परम चेतना को, तो महावीर के कारण एक व्यक्ति को परम अचेतना में पड़ना पड़ेगा! तो यह तो हिंसा हो गई। और महावीर को ऐसा करते हम सोच भी नहीं सकते कि उनके कारण कोई अचेतना में पड़ जाए। और यह बात अजीब सी लगती है कि कोई आदमी की चेतना बढ़े, तो किसी दूसरे को अकारण ही अचेतना में पड़ना पड़े, जिसका कोई संबंध नहीं है।

लेकिन अगर हम लाओत्से से पूछें, तो लाओत्से नहीं कहेगा कि महावीर की चेतना बढ़ गई। लाओत्से कहेगा, महावीर चेतना-अचेतना दोनों के पार हो गए। और जब कोई दोनों के पार हो जाता है, तो उसका कोई परिणाम, कोई रेखा जगत पर नहीं छूटती है। लाओत्से से हम पूछें, तो वह यह नहीं कहेगा कि कृष्ण जो हैं, परम चैतन्य पुरुष हैं। अगर वे परम चैतन्य पुरुष हैं, तो परम मूर्च्छित पुरुष उनको संतुलित करेगा ही। लाओत्से के हिसाब में वे चेतना-अचेतना के पार गए पुरुष हैं, अतिक्रमण कर गए, द्वंद्व के बाहर हो गए, द्वंद्वातीत हो गए। तब उनके कारण इस जगत में कहीं भी कोई रेखा नहीं पड़ेगी।

तो जो लोग द्वंद्व के भीतर हैं, वे तो संतुलन करेंगे ही। महावीर को इसलिए लाओत्से साधु नहीं कहेगा। क्योंकि साधु तो असाधु पैदा करेगा ही। साधु-असाधु द्वंद्व है; बुरा-भला द्वंद्व है। लाओत्से कहेगा, महावीर दोनों के पार हो गए। न अब वे बुरे हैं, न अब वे भले हैं। क्योंकि भले होने के लिए भी बुरे से तो जुड़ा ही रहना पड़ता है। भले होने का कोई अर्थ ही नहीं होता, अगर हम बुरे के साथ जोड़ कर न सोचें। भले हैं, क्योंकि झूठ नहीं बोलते; लेकिन झूठ से जोड़ना पड़ेगा। भले हैं, क्योंकि क्रोध नहीं करते; लेकिन क्रोध से जोड़ना पड़ेगा। भले हैं, चोरी नहीं करते; लेकिन चोरी से जोड़ना पड़ेगा। सब भलाई बुराई से जुड़ी हुई होगी। अगर महावीर को हम भला कहते हैं, तो महावीर द्वंद्व के बाहर नहीं हैं। और तब तो उनके द्वारा बुरा भी पैदा होगा। लेकिन महावीर भले नहीं हैं। महावीर बुरे भी नहीं हैं। ये दोनों कोटियां उनके ऊपर लागू नहीं होतीं। वे दोनों के बाहर हो गए।

हमें समझना कठिन पड़ेगा। क्योंकि हमने सोचने की एक धारा बना रखी है। हमने बुरे और भले में सबको बांट रखा है। तीसरी कोई कोटि नहीं है। और तीसरी कोटि ही असली कोटि है। उस तीसरी में जो प्रवेश करता है, वही जीवन की परम अवस्था को, जिसे लाओत्से ताओ कहता है, सहज धर्म को उपलब्ध हो जाता है।

तो हमारी सारी कठिनाई एक ही पड़ेगी बार-बार लाओत्से को समझने में। और वह यह कि आपकी एक बंधी हुई धारणा है। उसे एक तरफ रखें। जरूरी नहीं है कि उसे रखने से आप लाओत्से को सही ही मानें। लेकिन उसे एक तरफ रखें, ताकि लाओत्से को समझ सकें--वह क्या कह रहा है? फिर पीछे तय कर लेना कि वह सही है या गलत है।

और जहां तक मैं समझता हूं, जो समझ पाएगा कि वह क्या कह रहा है, वह कभी भी इस ख्याल का नहीं हो सकता कि वह गलत कह रहा है। और जिसका यह ख्याल हो कि वह गलत कह रहा है, उसका एक ही

मतलब होता है कि वह समझ ही नहीं पाया कि लाओत्से क्या कह रहा है। उसके कहने का ढंग अलग है, उसकी पहुंच अलग है, उसके प्रकट करने का ढंग अलग है। अगर ढंग को आप जोर से पकड़ेंगे, तो मुश्किल में पड़ेंगे। और आदमी हमेशा मुश्किल में पड़ता रहा है। महावीर के कहने का ढंग एक है; बुद्ध का बिल्कुल विपरीत है। कृष्ण एक ढंग से कहते हैं; क्राइस्ट बिल्कुल दूसरे ढंग से कहते हैं। यह सारी दुनिया में इतने धर्मों का जो उपद्रव है, यह कहने के ढंग को न समझ पाने की भूल है। और अब तक मनुष्यता इतनी प्रौढ़ नहीं हो पाई कि हम शैलियों के भेद को, भाषाओं के भेद को सत्य का भेद न समझें।

महावीर से अगर पूछें कोई बात, तो महावीर की अपनी कहने की व्यवस्था है। होगी ही। बुद्ध की अपनी कहने की व्यवस्था है। और सत्य इतना बड़ा है कि बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट, सबके लिए उसमें जगह है। हम सबका ख्याल यह होता है कि सत्य बड़ी छोटी चीज है। जब हम उसमें बैठ गए, तो दूसरा उसमें कैसे बैठेगा? सत्य बहुत बड़ी चीज है, काफी जगह है। आपके जो प्रतिकूल है, उसको भी काफी जगह है वहां होने की। पर हम सबका ख्याल यह होता है कि जब मैं ही बैठ गया सत्य पर, तो अब जगह कहां बची कि कोई दूसरा उस जगह में समा जाए। बाकी जो भी है, वह असत्य होगा। सत्य बड़ी घटना है। विपरीत को भी सत्य समा लेता है।

यह बड़े मजे की बात है कि असत्य बहुत छोटी चीज है, विपरीत को नहीं समा सकता। कभी आपने ख्याल किया, अगर आप एक असत्य बोल रहे हैं, तो उसके विपरीत को आप कभी स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उसको स्वीकार करने का मतलब होगा, आपका असत्य टूट जाएगा। असत्य बड़ी संकीर्ण चीज है। उसमें ज्यादा जगह नहीं है। इसलिए जो असत्य बोलता है, वह किसी दूसरे को स्वीकार नहीं कर सकता। सत्य बहुत बड़ी घटना है। आप जो बोल रहे हैं, उससे बिल्कुल विपरीत भी सत्य हो सकता है। और सत्य में दोनों के लिए जगह है। और परम सत्य को वही उपलब्ध होता है, जो सभी सत्यों के लिए जगह को देख पाता है।

लेकिन हम सब संकीर्ण होते हैं; अपनी दृष्टि से बंधे होते हैं। महावीर ने कहा है कि जब तक तुम दृष्टि से ऊपर न उठो, तब तक दर्शन को उपलब्ध न हो सकोगे। उलटी बात लगती हैः दृष्टि से ऊपर न उठो, तब तक दर्शन को उपलब्ध न हो सकोगे। महावीर ने कहा है, सम्यक-दृष्टि वह है, जिसकी सब दृष्टियों से जो ऊपर उठ गया।

दृष्टि का मतलब होता है, मेरे देखने का ढंग। अगर मैं अपने देखने के ढंग से बंध गया हूं, तो आपके देखने के ढंग को मैं समझ ही न पाऊंगा। और अगर मेरे देखने के ढंग में कोई बंधन नहीं है, तो मैं सभी दृष्टियों को समझ पा सकता हूं। और तब एक दिन मुझे समझ में आ सकता है कि नदियां कितनी ही प्रतिकूल क्यों न बहती हों, वे सभी सागर में पहुंच जाती हैं। और तब मैं यह न कहूंगा कि जो नदी पूर्व की तरफ जा रही है, वह गलत है; क्योंकि मेरी नदी पश्चिम की तरफ जा रही है। तब मुझे सागर दिखाई पड़ेगा सभी नदियों से। लेकिन दृष्टि बंधी हो, तो बहुत कठिनाई हो जाती है। और तब हम समझ ही नहीं पाते। फिर तो सोचने का उपाय नहीं रह जाता।

लाओत्से कठिन है इस लिहाज से। क्योंकि उसकी सोचने की पद्धति, उसके देखने का ढंग, उसके बोलने की व्यवस्था अनूठी है। और इसीलिए उसे समझने में मजा भी है। अगर आप समझ पाए, तो आप विकसित हो जाएंगे, फैल जाएंगे, विस्तार होगा आपके बोध का। अगर आप न समझ पाए, तो संकीर्ण रह जाएंगे।

और सदा अच्छा है अपने से प्रतिकूल भाषा में सोचने वाले को समझना। जो आपकी ही भाषा में सोचता है, वह आपको बदल नहीं पाता, सिर्फ आपका संग्रह बढ़ाता है। आपके पास दस बातें थीं, बारह हो जाती हैं,

पंद्रह हो जाती हैं। लेकिन जो आपसे भिन्न सोचता है, वह आपके लिए नया आकाश खोल देता है। सिर्फ बढ़ती नहीं होती, आपकी चेतना समृद्ध होती है।

तो लाओत्से को समझने के लिए थोड़ा अपनी दृष्टियों को एक तरफ रख देने की जरूरत है। नहीं तो आपकी दृष्टि प्रश्न खड़े करेगी, वे प्रश्न बेमानी हैं। क्योंकि वे समझ कर खड़े नहीं हो रहे हैं।

इस सूत्र को समझें, तो ख्याल में आएगा।

"बुद्धिमत्ता को छोड़ो।"

कठिन लगेगा। बुद्धिमत्ता को खोजो, यह समझ में आता है। बुद्धिमत्ता को छोड़ो! तीन शब्द हैं हमारे पास। एक शब्द हैः इनफरमेशन, सूचना। दूसरा शब्द हैः नालेज, ज्ञान। और तीसरा शब्द हैः विजडम, बुद्धिमत्ता। अधिक लोग तो सूचना को ही ज्ञान समझते हैं, इनफरमेशन को ही नालेज समझते हैं। जितना ज्यादा जानते हैं, सोचते हैं, उतने ज्ञानी हो गए। मात्रा ही उन्हें गुण मालूम होती है, क्वांटिटी को वे क्वालिटी समझते हैं; कि अगर मैं हजार बातें जानता हूं, तो मैं ज्ञानी हो गया।

आप थोड़े बड़े कम्प्यूटर हो गए। आपकी स्मृति ज्यादा हो गई, संग्रह बढ़ गया, आप नहीं बढ़ गए। स्मृति ज्ञान नहीं है। सूचना ज्ञान नहीं है। सूचना बहुत हो सकती है; तब आदमी जानकार होता है, शिक्षित होता है। ज्ञानी नहीं होता।

लेकिन यह बहुत कठिन नहीं है। जगत में बहुत लोगों ने कहा है कि सूचनाओं को छोड़ो, ज्ञान को पाओ। सूचनाओं से कोई सार नहीं है। कितना भी इकट्ठा कर लोगे, उससे क्या होगा! और जो भी इकट्ठा है, वह उधार है। सब सूचनाएं उधार होती हैं। और ज्ञान होता है अपना। इसलिए उधार को छोड़ो और अपने अनुभव को उपलब्ध होओ। यह भी समझ में आ जाएगा।

लेकिन लाओत्से कहता है, ज्ञान भी छोड़ो। यह जानना भी छोड़ो। क्योंकि यह जानना और न जानना एक द्वंद्व है। यह भी एक संघर्ष है। यह भी छोड़ो।

यह भी हम मान ले सकते हैं। बुद्ध ने भी कहा है, जान कर क्या होगा? शास्त्र जान लिए, तो क्या होगा? जानने का सवाल नहीं है, प्रज्ञा बढ़नी चाहिए; अंतर-बोध बढ़ना चाहिए। समझ, अंडरस्टैंडिंग बढ़नी चाहिए। बुद्धिमत्ता ज्ञान का सार है। जैसे फूलों को निचोड़ कर इत्र बन जाए, सार। ऐसे समस्त अनुभव, समस्त ज्ञान का जो सार है, वह बुद्धिमत्ता है। बुद्धिमत्ता एक सुगंध है। हजार ज्ञान निचुड़ें, तो बूंद भर बुद्धिमत्ता बनती है।

लेकिन लाओत्से कहता है, बुद्धिमत्ता भी छोड़ो। तो बहुत कठिन मालूम होता है। सूचना छोड़ें, समझ में आ सकता है; उधार है। ज्ञान भी छोड़ दें, समझ में आ सकता है; क्योंकि द्वंद्व है ज्ञान और अज्ञान का। यह बुद्धिमत्ता भी छोड़ दें, तो तत्काल हमारा मन कहेगा, पत्थर की भांति हो जाएंगे। फिर हममें और जड़ में फर्क क्या होगा? फिर आप जिस कुर्सी पर बैठे हैं, उसमें और आप में फर्क क्या होगा?

लेकिन हमारा यह जो मन सवाल उठाता है, यह लाओत्से को समझने में कठिनाई पैदा करेगा।

लाओत्से कहता है, बुद्धिमत्ता छोड़ो। इसका अर्थ क्या है? लाओत्से कहता है, जो चीज पकड़ी जा सकती है, छोड़ी जा सकती है, वह तुम्हारी है ही नहीं। जो तुम छोड़ ही न सकोगे, वही बुद्धिमत्ता है। बाकी तुम सब छोड़ो। जो तुम छोड़ सकते हो, छोड़ते चले जाओ। एक घड़ी ऐसी आएगी कि तुम कहोगे, अब मेरे पास छोड़ने को कुछ बचा ही नहीं--धन नहीं, मकान नहीं, जानकारी नहीं, स्मृति नहीं, ज्ञान नहीं, कोई बुद्धिमत्ता नहीं, कोई अनुभव नहीं। जिस क्षण तुम कह सकोगे कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है, जिसे मैं छोड़ सकूं; लाओत्से कहता है, इसे शब्द देना उचित नहीं, पर यही बुद्धिमत्ता है।

जिस बुद्धिमत्ता को छोड़ने से आप डरते हैं कि छोड़ने से मैं जड़ जैसा हो जाऊंगा, वह बुद्धिमत्ता है ही नहीं। ठीक से समझें, तो इसका अर्थ यह होता है कि जो छोड़ी ही नहीं जा सकती, वही बुद्धिमत्ता है। इसलिए लाओत्से बेफिक्री से कहता है, बुद्धिमत्ता छोड़ो। क्योंकि जो तुम छोड़ सकोगे, वह बुद्धिमत्ता नहीं थी। बुद्धिमत्ता, लाओत्से के हिसाब से, स्वभाव है। वह छोड़ा नहीं जा सकता। जो भी छोड़ा जा सकता है, वह स्वभाव नहीं है।

लाओत्से कहता है, आत्यंतिक रूप से वही बच जाए, जो मैं हूं। कोई संग्रह मेरे ऊपर न रहे। दूसरे का ज्ञान तो छोड़ ही दो; अपने ज्ञान को भी क्या ढोना, उसे भी छोड़ दो। दूसरे के अनुभव तो उधार हैं ही, अपने अनुभव भी मृत हैं। मैंने जो कल जाना था, वह आज मुर्दा हो गया। मैंने जो कल जाना था, उसका जो सार है, वह मेरी बुद्धिमत्ता है। वह भी अतीत हो गया, व्यतीत हो गया। छोड़ो उसे भी, राख है।

अंगार जलता है, तो राख इकट्ठी होती है। कभी आपने ख्याल किया कि जो अभी राख है, वह भी थोड़ी देर पहले अंगार थी। कहीं बाहर से नहीं आई है, अंगार का ही हिस्सा है। लेकिन अगर अंगार को जलता हुआ रहना है, तो राख को छोड़ते जाना है।

लाओत्से कहता है, तुम्हारी बुद्धिमत्ता भी तुम्हारे स्वभाव पर राख है; तुमसे ही आती है। तुम अंगार हो। राख को भी झाड़ते चले जाओ। सिर्फ प्रज्वलित अग्नि रह जाए; सिर्फ तुम्हारा स्वभाव रह जाए। उस पर कुछ भी न हो। दूसरे के द्वारा डाली गई राख और अपने ही अंगार से पैदा हुई राख में भी क्या फर्क है? क्या इसी कारण कि यह राख मुझसे पैदा हुई है, प्यारी है, और इससे चिपके रहो।

आप पचास साल जीए हैं, तो पचास साल के अनुभव की राख आपके पास इकट्ठी हो गई है। इसमें जो आपने दूसरों से सीखा, वह सूचना है, इनफरमेशन है। इसमें जो आपने अपने से जाना, वह नालेज है, ज्ञान है। ज्ञान और सूचना, सब के तालमेल से जो निचोड़, जो एसेंस, जो सुगंध आपके भीतर पैदा हो गई, वह आपकी बुद्धिमत्ता है। लाओत्से कहता है, इसे भी छोड़ो। तुम सिर्फ वही रह जाओ, जो तुम हो--निपट तुम्हारे स्वभाव में। नेकेड नेचर, शुद्धतम वही रह जाए, जो है। इसको महावीर आत्मा कहते हैं। इसको बुद्ध शून्यता कहते हैं। ये शब्दों के फासले हैं। लाओत्से इसको सिर्फ स्वभाव कहता है; ताओ कहता है।

"छोड़ो बुद्धिमत्ता, ज्ञान को हटाओ! और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे।"

अगर लोग निपट अपने स्वभाव में थिर हो जाएं, तो उनके जीवन से दुख, पीड़ा, बेचैनी, बोझ, तनाव, चिंता, सभी विसर्जित हो जाएंगे; तब वे निर्दोष खिल जाएंगे अपने में। लोग लाभान्वित होंगे, अगर यह सारा ज्ञान, जानकारी, बुद्धिमानी, पांडित्य, यह सारा बोझ हट जाए। यह सारे अनुभव कीशृंखला हट जाए और चेतना, आत्मा--या जो भी नाम हम देना पसंद करें--वह जो हमारे भीतर छिपा है सत्व, वह अपनी निजता में रह जाए, उसके ऊपर कुछ भी न हो, खाली, शुद्ध, जिसको हाइडेगर ने अभी-अभी प्योर बीइंग कहा है, उसकी ही बात लाओत्से कर रहा है, लोग हजार गुना लाभान्वित होंगे।

हम तो सोचते हैं, लोगों का जितना ज्ञान बढ़ेगा, अनुभव बढ़ेगा, जानकारी बढ़ेगी, बुद्धिमानी बढ़ेगी, उतना लाभ होगा। लाओत्से उलटी बात कह रहा है। असल में, जितना ज्ञान बढ़ेगा, जानकारी बढ़ेगी, बुद्धिमानी बढ़ेगी, उतना ही आपके स्वभाव पर पर्त दर पर्त राख इकट्ठी होती चली जाएगी। आपका अंगारा राख की पर्तों में खो जाएगा। खुद तक पहुंचना मुश्किल हो जाएगा। इतने वस्त्र हो जाएंगे शरीर पर कि शरीर तक पहुंचना मुश्किल हो जाएगा।

आमतौर से हर आदमी प्याज की गांठ की भांति है। पर्त-पर्त उखाड़ते चले जाएं, दूसरी पर्त निकल आती है। और उखाड़ें, तीसरी पर्त निकल आती है। आप अनुभव, ज्ञान, जानकारी, समझ, शिक्षा, संस्कार, सभ्यता,

संस्कृति, इन सबकी पर्तों का एक जोड़ हैं। आप कहां खो गए हैं, कुछ पता नहीं है। आदमी अपने वस्त्रों में ही खो जाता है। लाओत्से कहता है, हटा दो सब वस्त्र! रह जाए वही, जिसे तुम हटा ही न सको। बस एक ही उसकी शर्त है कि जिसे तुम हटा ही न सको, वही रह जाए। तब तुम वस्तुतः लाभान्वित होओगे। अन्यथा बड़ी से बड़ी हानि जगत में एक ही है--स्वयं को खो देना।

इस सूत्र का नाम हैः स्वयं को जानो। अंग्रेजी में नाम और भी सुंदर हैः रियलाइज दि सिंपल सेल्फ। "सिंपल" विचारणीय है--सरल, सहज। स्वयं को जानो में थोड़ी सी असहजता है।

जीसस या सुकरात शब्द का उपयोग करते हैंः नो दाई सेल्फ--स्वयं को जानो। उपनिषद उपयोग करते हैंः स्वयं को जानो, आत्मविद बनो। लाओत्से कहता हैः दि सिंपल सेल्फ। अध्यात्मवादियों की आत्मा नहीं, सिद्धांतवादियों की आत्मा नहीं, ज्ञानियों की, पंडितों की आत्मा नहीं, दि सिंपल सेल्फ, वह सरल सी आत्मा जो अज्ञानियों के भीतर भी है। कोई बड़े सिद्धांत की, शास्त्र की बात नहीं, सरलतम तुम जो हो--नग्न, सहज--वही, उसे ही जानो। लेकिन उसे जानना हो, तो तुम जो भी जानते हो, उसे हटाओ। जो भी अब तक जाना है, उसे अलग कर दो। सब प्याज के छिलके अलग निकाल डालो। जब निकालने को कुछ भी न बचे, शून्य रह जाए, तभी तुम जानना कि अब सहज स्वभाव, सिंपल सेल्फ के करीब आए।

"ज्ञान को हटाओ, और लोग सौ गुना लाभान्वित होंगे। मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे।"

अक्सर ऐसा होता है कि जो आदमी किसी को भी प्रेम नहीं कर पाता, वह मानवता को प्रेम करने लगता है। एक आदमी को प्रेम करना बहुत मुश्किल है, मनुष्यता को प्रेम करना बहुत आसान है। पड़ोसी को प्रेम करना बहुत मुश्किल है; मनुष्य-जाति को प्रेम करना बहुत आसान है। एक व्यक्ति को प्रेम करो, तो झंझटें शुरू होती हैं; मनुष्यता को प्रेम करने में कोई भी झंझट नहीं है। मनुष्यता है ही कहां? मनुष्य हैं, मनुष्यता तो कहीं भी नहीं है। और जहां भी जाएंगे, मनुष्य मिलेगा; मनुष्यता तो कहीं मिलेगी नहीं। मनुष्यता तो एक एब्सट्रैक्ट, एक ख्याल है। ख्याल को प्रेम करना बहुत आसान है। भारत-माता को प्रेम करना हो, मजे से करो; अपनी मां को प्रेम करना बहुत मुश्किल है, बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरी तरफ जीवित व्यक्ति है। और किसी भी जीवित व्यक्ति से संबंधित होना हो, तो झंझट है, कलह है, उपद्रव है। बहुत कठिनाई है। शब्द को प्रेम करने में कोई कठिनाई नहीं है।

इसलिए अक्सर जो मानवतावादी हैं, जो कहते हैं पूरी मनुष्यता को प्रेम करते हैं, अगर उनके जीवन में तलाश करें, तो पाएंगे कि वे एक भी व्यक्ति को प्रेम करने में सफल नहीं हो पाए। और तब उन्होंने एक सपने को, एक शब्द को, एक आदर्श को प्रेम करना शुरू कर दिया। उस आदर्श के साथ, उस शब्द के साथ, स्वप्न के साथ कोई अड़चन नहीं है, कोई दुविधा नहीं है, कोई जटिलता नहीं है।

लेकिन एक बड़ा धोखा है; क्योंकि मानवता को प्रेम किया ही नहीं जा सकता, मनुष्यों को ही प्रेम किया जा सकता है। प्रेम तो एक यात्रा है। और प्रेम तो एक निखार है प्रतिपल, कसौटी है, एक आग है, जिसमें से गुजरना है। लेकिन मानवता है, वहां फिर कोई आग नहीं है। दूसरी तरफ कोई है ही नहीं, आप अकेले हैं। उचित हो यह कहना कि हमने प्रेम ही नहीं किया किसी को। मनुष्यता को प्रेम किया, तो धोखा है। नहीं प्रेम किया, इस बात को छिपाने की तरकीब है कि मनुष्यता को प्रेम किया। अक्सर ऐसा होता है कि जो एक व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकते, वे ईश्वर को प्रेम कर लेते हैं। हालांकि व्यक्ति को भी प्रेम करना जिनकी सामर्थ्य नहीं है, वे ईश्वर को प्रेम नहीं कर पाएंगे। ईश्वर का प्रेम व्यक्तियों के प्रेम से बचने का उपाय नहीं है; ईश्वर का प्रेम व्यक्तियों के प्रेम

की ही गहनता का अंतिम फल है। एक व्यक्ति को कोई प्रेम करे और इतना प्रेम करे, इतना प्रेम करे कि व्यक्ति एक द्वार बन जाए और मिट जाए और अनंत व्यक्ति में से झांकने लगे, तो ईश्वर आ गया द्वार पर!

लेकिन हर व्यक्ति तो बंद दरवाजा है। वहां से दीवार है, वहां तो कोई द्वार मिलता नहीं, वहां प्रवेश हो नहीं सकता। एक आदमी आंख बंद करके ईश्वर को प्रेम करता है। यह ईश्वर इस आदमी की कल्पना में ही है, और कहीं भी नहीं। ईश्वर चारों तरफ मौजूद है। लेकिन हम जहां से भी उसे छुएंगे, वहीं व्यक्ति मिलेगा। अगर कोई सोचे कि निर्व्यक्ति ईश्वर को प्रेम करना है, तो वह अपने को धोखे में डाल लेगा। वह प्रेम के अभाव को परमात्मा का प्रेम समझ कर भूल में पड़ सकता है, वंचना में पड़ सकता है।

लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता को, ताकि मनुष्य के प्रति प्रेम हो सके। छोड़ो बड़े सिद्धांत; वह तुम्हारी पात्रता नहीं है। छोड़ो दूर की बातें; ताकि निकट से प्रेम हो सके।

और चलना हो किसी को, तो निकट से चलना पड़ता है। अगर मुझे यात्रा करनी है, तो मुझे पहला कदम तो अपने पास ही उठाना पड़ेगा। हजार मील दूर की मंजिल से तो कदम नहीं उठाए जा सकते; वहां तो मैं हूं नहीं। मैं जहां हूं, वहां से मुझे यात्रा करनी होती है। प्रेम का भी कदम उठाना हो, तो मुझे अपने पास ही उठाना पड़ता है। धर्म का भी कदम उठाना हो, तो मुझे पास ही उठाना पड़ता है।

एक आदमी कहता है कि नहीं, आदमियों को मैं प्रेम नहीं कर सकता, मैं तो मनुष्यता को प्रेम करूंगा। यह मंजिल से यात्रा शुरू कर रहा है। जहां यह है ही नहीं, वहां से यह यात्रा शुरू कर रहा है। एक आदमी कहता है, मैं तो ईश्वर को प्रेम करूंगा। ईश्वर ही मिल गया होता, तो ईश्वर को प्रेम करने की अब कोई जरूरत न थी। और जो मिला ही नहीं है, उसे प्रेम कैसे करिएगा? जिसे जाना नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? लोग कहते हैं कि प्रेम करके हम ईश्वर को जान लेंगे। लेकिन जिसे जाना नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? जिससे कोई परिचय नहीं, जिससे कोई मिलन नहीं, उसे प्रेम कैसे करिएगा? तो हमारा प्रेम कहीं धोखा न हो! जिन्हें हम जानते हैं, उनसे बचने का उपाय न हो! जिन्हें हम प्रेम कर सकते हैं, कहीं उनसे भाग जाने की विधि न हो!

ईश्वर को प्रेम किया जा सकता है; विराट को प्रेम किया जा सकता है; लेकिन यात्रा सदा ही निकट से शुरू करनी पड़ती है। आकाश में भी जाना हो, तो घर की अपनी सीढ़ी पर ही पहला पैर रखना पड़ता है। दूर जिन्हें जाना है, उन्हें समीप से शुरू करना पड़ेगा। अंतिम कदम पहले कदम से ही शुरू होता है। अंतिम कदम से कोई यात्रा शुरू नहीं होती।

लेकिन सिद्धांत हमें अंतिम कदम को पहले पकड़ा देते हैं। हम सबके मन में ऊंचे शब्द हैं। और लाओत्से दुश्मन है शब्दों का। हम सबके मन में बड़े अच्छे सिद्धांत हैं। सिद्धांतों की कोई कमी नहीं है हमारे मन में। हम नरक में हों भला, हमारे पास स्वर्ग के शब्द हैं। और हम इन शब्दों को जोर से पकड़ते हैं। क्योंकि हमें डर भी लगता है कि अगर ये शब्द भी हम से छूट गए, तो नरक, जिसमें हम खड़े हैं, वह साफ-साफ दिखाई पड़ने लगेगा। नरक दिखाई न पड़े, इसलिए हम स्वर्ग के शब्दों की चर्चा में तल्लीन रहते हैं। नरक को भुलाने के लिए हम शब्दों का जाल बिछाए हुए हैं अपने चारों तरफ। नरक में खड़े हुए ईश्वर की बातें करते रहते हैं। वे ईश्वर की बातें सिर्फ भुलावा हैं।

लाओत्से कहता है, छोड़ो इन शब्दों को! छोड़ो यह ज्ञान, छोड़ो ये शास्त्र! अगर प्रेम नहीं है जीवन में, हर्ज नहीं कोई; लेकिन मनुष्यता को प्रेम मत करो।

यह बहुत मजे की बात है, और गहरी है। आदमी बिना प्रेम किए तो रह नहीं सकता। अगर उसे पता चल जाए कि मनुष्यता को मैं प्रेम कर नहीं सकता और मनुष्य को मैं प्रेम कर नहीं पाता हूं, तो उसके जीवन में पहली

दफा क्रांति शुरू होगी। एक इतनी बेचैनी शुरू होगी, एक ऐसा संताप शुरू होगा कि उस संताप से ही, उस अग्नि से ही रूपांतरण हो जाएगा। लेकिन एक आदमी पड़ोसी को तो प्रेम कर नहीं सकता, कर नहीं पाता, ईश्वर को प्रेम करता रहता है। तो खाली जगह पैदा नहीं होती, जिसमें क्रांति हो जाए। ऐसा लगता है कि प्रेम तो कर रहा हूं। अगर यह पता चल जाए कि ईश्वर को प्रेम मैं कर कहां सकता हूं! कर सकता हूं पड़ोसी को, और पड़ोसी को कर नहीं पाता हूं।

इसे थोड़ा ठीक से समझें। अगर पड़ोसी को प्रेम करना हो, तो आपको अपने को बदलना पड़ेगा। ईश्वर को प्रेम करना हो, तो कुछ भी बदलने की जरूरत नहीं है। अगर मनुष्यता को प्रेम करना हो, तो आप जैसे हैं, वैसे ही योग्य हैं। कोई शर्त नहीं है, कोई पात्रता नहीं है। एक छोटे से बच्चे को प्रेम करें, और आपको बदलना पड़ेगा। एक छोटे से बच्चे का प्रेम से हाथ हाथ में ले लें, और आपकी पूरी जिंदगी आपको बदलनी पड़ेगी। आप वही आदमी नहीं हो सकते। प्रेम आग है; वह आपको बदल ही डालेगी। और अगर कोई प्रेम आपको नहीं बदल रहा है, तो उसका मतलब यह है कि आप सिर्फ ख्याल में हैं; कोई प्रेम नहीं है।

लाओत्से कहता है, हटाएं बड़े शब्दों को। मानवता, ईश्वर, विराट--हटा दें। अनुभव करें कि कोई प्रेम आपके जीवन में नहीं है। और ध्यान रहे, लाओत्से की कीमिया, उसकी अल्केमी यही है कि खाली तो प्रेम के बिना आप नहीं रह सकते। अगर आप अपने को धोखा न दें, तो जो निकट है, उसे आपको प्रेम करना ही पड़ेगा।

इसलिए वह कहता है, "मानवता को छोड़ो, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे।"

अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे! आज अपनों को कोई प्रेम करता ही नहीं है।

मैं पढ़ रहा था, फोर्कविथ ने लिखा है कि अंतर्राष्ट्रीयतावादी वह है, जो अपने देश को छोड़ कर और सब देशों को प्रेम करता है। मानवतावादी भी वह है, जो अपने निकट के लोगों को छोड़ कर दूर के लोगों को प्रेम करता है।

दूर में अड़चन ही नहीं है कोई। क्या अड़चन है? आपके दरवाजे पर एक भिखारी भूखा बैठा हो, तो कोई अड़चन नहीं आती; बंगला देश में कोई भूखा है, तो आप बड़े बेचैन होते हैं। बहुत मजेदार बात है। आपकी सड़क पर कोई मरा हुआ पड़ा हो, तो कोई हर्ज नहीं है। वियतनाम में कोई मर गया, तो आप पर बड़ा आध्यात्मिक संकट आ जाता है! क्या, हो क्या गया है आदमी को? यह दूर इतना क्यों आकर्षित करता है?

यह इसलिए आकर्षित करता है कि दूर के लिए सदा आप दूसरों को जिम्मेवार ठहरा सकते हैं। आपकी सड़क पर जो आदमी भूखा मर रहा है, उसके लिए आप जिम्मेवार ठहरेंगे। बंगला देश में कोई मर रहा है, तो भुट्टो होंगे जिम्मेवार, कोई और होगा जिम्मेवार; आप नहीं। वियतनाम में कोई मरता है, तो अमरीका होगा जिम्मेवार, निक्सन होंगे जिम्मेवार; आप नहीं।

टाल्सटाय ने लिखा है कि मेरी मां बड़ी दयालु थी। उसकी दया का अंत नहीं था। शाही परिवार था। टाल्सटाय शाही .जार परिवार का आदमी था। मां काउंटेस थी। टाल्सटाय ने लिखा है कि मां की ऐसी दया की हालत थी कि नाटक देखते वक्त उसकी आंखें सूज जाती थीं रो-रो कर। दो नौकरानियां दोनों तरफ आंसू पोंछने के लिए रूमाल बदलती रहती थीं। उसके हृदय पर ऐसे आघात होते थे नाटक में। नाटक में कोई भूखा मर रहा है, किसी के मकान में आग लग गई, किसी को उसके प्रेम में असफलता मिली, और वह जार-जार हो जाती थी।

और टाल्सटाय ने लिखा है कि बाहर हमारा जो कोच, जिस पर हम बैठ कर बग्घी पर जाते थे, बर्फ पड़ती रहती मास्को में, और अक्सर ऐसा होता कि हमारा जो कोचवान होता, वह बर्फ में गल कर, दब कर मर

जाता। जब बाहर काउंटेस मेरी मां आती, देखती कि कोचवान मर गया, उसको हटा कर, फेंक कर सड़क के किनारे, दूसरा कोचवान रख कर वह कोच चल पड़ती। और मेरी मां अपने आंसू पोंछती रहती--नाटक में जो हुआ था।

टाल्सटाय ने लिखा है कि उसी दिन से मुझे पता चला कि आदमी कैसा धोखा दे सकता है!

निकट बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता। निकट के प्रति एकदम अंधे हैं, बहरे हैं। दूर के प्रति बड़े सचेत हैं। क्या इस टाल्सटाय की मां को यह दिखाई नहीं पड़ता होगा कि यह आदमी मर गया? लेकिन कोचवान भी कहीं आदमी होता है? और जो नाटक में रो सकती थी, बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है कि उसको ख्याल में नहीं आता होगा!

नहीं, ख्याल में नहीं आएगा। असल में, नाटक में रोना एक बचाव है। जो नाटक में रो सकते हैं, वे जिंदगी में बिल्कुल बधिर और अंधे होंगे। असल में, नाटक में रोकर वे अपना रोना निकाल लेते हैं। और वह रोना बिना खर्च के है, सस्ता है। क्योंकि कोचवान के लिए रोना मंहगा पड़ेगा, और कुछ करना पड़ेगा। आदमी ने बड़ी व्यवस्था की है। दूर के प्रति सिद्धांत निर्मित करके वह पास के प्रति जिम्मेवारी से बच गया है। इतनी गहन बेईमानी है इसमें कि जिसका कोई हिसाब नहीं है।

लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता, छोड़ो न्याय; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे। यह जीवन को बिल्कुल दूसरे ही ढंग से देखने की व्यवस्था है। लाओत्से कहता है, छोड़ दो फिक्र दूर की। अगर प्रेम निकट है, तो कभी दूर भी फैल सकता है। एक पत्थर को हम फेंक देते हैं पानी में। लहर उठती हैं पास; फिर फैलती चली जाती हैं दूर। कोई ऐसा पत्थर आपने फेंकते देखा कि लहरें पहले उठें दूर और फिर आती चली जाएं पास? जिस दिन ऐसा आप पत्थर फेंक सकें, उस दिन लाओत्से गलत हो जाएगा। उसके पहले गलत नहीं हो सकता।

जीवन के तो नियम हैं। यहां सभी कुछ पास से शुरू होता है। अगर मेरे हृदय में प्रेम है, तो उसकी पहली लहर मेरे पास के लोगों को छुएगी। अगर मेरे हृदय में तरंग उठी है प्रेम की, तो जो मेरे निकटतम है, वह पहले आंदोलित होगा; उसको मेरा प्रेम पहले छुएगा। और अगर मेरे प्रेम की लहर इतनी बड़ी है कि उसके पार भी जा सके, तो उससे जो दूर है, उसको छुएगी। अगर और बड़ी है, तो और दूर। अगर मेरा प्रेम इतना बड़ा है कि सारे संसार को पार करके परमात्मा तक पहुंच सके, तो ही मेरा प्रेम उसके चरणों में निवेदित हो सकता है। उसके पहले नहीं।

लेकिन मैं हूं कंजूस। मैं सोचता हूं, यहां फालतू आदमियों में प्रेम खर्च करके क्या है सार? बचा कर रखूं; परमात्मा के चरणों में ही सीधा चढ़ा दूंगा। मात्रा भी ज्यादा होगी, लाभ भी ज्यादा मिलेगा।

लेकिन परमात्मा के चरणों तक पहुंचने का उपाय ही नहीं है। और प्रेम कोई संपदा नहीं है कि उसे बचाया जा सके। प्रेम एक ग्रोथ है, एक विकास है; जो जितना करता है, उतना ज्यादा प्रेम हो जाता है। जो जितना करता है, उतना ज्यादा हो जाता है। प्रेम कोई संपत्ति नहीं है कि खर्च हो जाए। प्रेम कोई संपत्ति होती, तो मैं जितना बांट दूं, उतना कम हो जाएगा। परमात्मा के दरवाजे पर पहुंचूंगा भिखारी की तरह। क्योंकि वह तो मैं पहले ही बांट चुका; जो रास्ते में मिले, उन्हीं को दे दिया। तो फिर बचाना जरूरी है।

लेकिन प्रेम संपदा नहीं है। प्रेम तो वैसे ही है, जैसे जीवन की और सब गहन क्रियाएं हैं। आप श्वास लेते हैं। जितनी ज्यादा श्वास लेते हैं, उतने जीवंत हो जाते हैं। जितने पैर चलते हैं, उतनी चलने की क्षमता बढ़ जाती है। जितनी आंख देखती है, उतनी देखने की क्षमता बढ़ जाती है। जितना आप प्रेम करते हैं, उतना प्रेम बढ़ जाता है। ये क्षमताएं हैं--विकासमान। ये कोई जड़ संपदाएं नहीं हैं कि इनमें कुछ कमी हो जाए। ऐसा मत सोचिए कि

दौड़ेंगे, तो फिर आपकी चलने की क्षमता कम हो जाएगी, संपत्ति चुक जाएगी। जो जितना दौड़ेगा, उतना ज्यादा दौड़ सकेगा। जो जितना ज्यादा प्रेम करेगा, उतना ज्यादा प्रेम कर सकेगा। यह हर बार बढ़ता चला जाएगा। और हर बड़ी लहर और बड़ी लहर को जन्म दे जाएगी।

परमात्मा के चरणों तक तो वही आदमी पहुंच पाता है, जो इतना प्रेम करता है, इतना प्रेम करता है कि उसके प्रेम की लहरें उठती ही चली जाती हैं। और कोई उसके प्रेम को चुका नहीं पाता। सबको उसका प्रेम पार करके निकल जाता है। सब उसके प्रेम में नहा जाते हैं। लेकिन उसका प्रेम चुकता नहीं, और बढ़ता जाता है। एक दिन वह प्रेम विराट के चरणों को भी स्पर्श कर लेता है। जो कंकड़ छोटा सा हमने फेंका था सागर में, वह किसी दिन सागर के अनंत तटों को भी स्पर्श कर सकती है उसकी लहर। लेकिन वह कंकड़ डर जाए और सोचे कि छोटा हूं कंकड़, अपनी ताकत कितनी, बिसात क्या, एकाध-दो लहरें उठ भी सकती हैं, बचा कर रखूं; तभी उठाऊंगा, जब तट पर पहुंच जाऊंगा। फिर वे लहरें कभी भी नहीं उठेंगी।

लाओत्से कहता है, छोड़ो मानवता, छोड़ो न्याय।

ध्यान रहे, लाओत्से न्याय के बहुत खिलाफ है, जस्टिस! हैरानी लगती है। क्यों, न्याय के इतने क्यों खिलाफ है? हम तो कहते हैं, फलां आदमी बड़ा न्यायपूर्ण है। और हमें ख्याल भी नहीं है... ।

इसे थोड़ा हम समझें। ईसाई कहते हैं कि ईश्वर न्यायपूर्ण, प्रेमी, दयालु है। लाओत्से बहुत हंसेगा, अगर उसको पता चल जाए। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जो प्रेमी है, वह दयालु नहीं हो सकता। और जो प्रेमी है, वह न्यायविद भी नहीं हो सकता, न्यायी भी नहीं हो सकता।

इसे हम थोड़ा समझें। अगर परमात्मा न्यायपूर्ण है, जस्ट है, तो दयालु नहीं हो सकता। कैसे दयालु होगा? तब जिसको जो दंड मिलना चाहिए, वह मिलना चाहिए; दया का कोई सवाल नहीं है। जिसको नरक में पड़ना चाहिए, पड़ना चाहिए; दया का कोई सवाल नहीं है। और अगर परमात्मा दयालु है और वह आदमी भी स्वर्ग में प्रवेश कर जाता है जिसे नरक में होना चाहिए था, तो फिर जो नरक में पड़ गए हैं, उनके साथ बड़ी अदया हो रही है। तब तो इसका मतलब यह हुआ कि परमात्मा प्रशंसकों को, खुशामदियों को स्वर्ग में जगह दे देता है।

जैनियों ने इसीलिए परमात्मा को बीच से हटा दिया है। वे कहते हैं, सीधा कर्म! नहीं तो बीच में गड़बड़ होगी। तुमने बुरा किया है, बुरा फल मिलेगा; कोई बीच में निर्णायक नहीं है, कर्म स्वयं ही अपना निर्णायक है। क्योंकि वे कहते हैं, अगर बीच में हम किसी व्यक्ति को रखें, तो कठिनाई होगी। क्योंकि व्यक्ति कभी दया भी खा सकता है, कभी प्रेम में भी पड़ सकता है। कभी रहम, कभी बेरहम हो सकता है। अपनों पर, परायों पर कुछ भेद हो सकता है। और जैन कहते हैं कि अगर परमात्मा ऐसा है कि वह दया नहीं करता, कोई प्रेम नहीं करता, तो उसे बीच में रखने की जरूरत भी क्या है? फिर तो कानून काम करता है। आग में हाथ डालोगे, हाथ जल जाएगा। आग दया नहीं करती, प्रेम नहीं करती, न्याय भी नहीं करती। आग का तो एक जड़ नियम है; वह पूरा होता है। तो जैन कहते हैं, कर्म का नियम पूरा होता रहता है; कोई नियंता बीच में नहीं है।

एक लिहाज से ठीक बात है। नियंता को मानते हैं, तो फिर उसमें दो बातें समझ लें। अगर नियंता जस्ट है, न्याय ही उसका जीवन है, तो फिर दया असंभव है। और सब प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं; स्तुति का कोई सार नहीं है। लाख चिल्लाओ ईश्वर के दरवाजे पर कि मुझे क्षमा कर दो, मुझसे भूल हो गई; कोई चीज क्षमा नहीं की जा सकती। अगर न्याय है ईश्वर, तो प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं, कोई सार नहीं है उनमें।

और अगर ईश्वर दया है, तो चरित्र बिल्कुल व्यर्थ है, प्रार्थनाएं काफी हैं। तब सारी ताकत प्रार्थना में लगानी चाहिए। फिर फिजूल की बातों में नहीं पड़ना चाहिए कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, बुरा मत

करो। यह सब नासमझी है। इतनी ताकत से तो परमात्मा की दया ही पाई जा सकती है। यह सब भी करो और प्रार्थना करो।

उमर खय्याम ने कहा है। उमर खय्याम से एक मौलवी ने गांव के कहा है कि उमर खय्याम, अब तुम बूढ़े हो गए, अब बंद करो यह शराब पीना! अब कुछ तो ख्याल करो कयामत का; याद करो उस दिन का, जब जजमेंट होगा, निर्णय होगा और परमात्मा के सामने खड़े होओगे। उमर खय्याम तो पीए था; हाथ में प्याली लिए था। उसने धीमे से आंखें खोलीं और उसने कहा कि मुझे उसके रहमवर होने का पक्का भरोसा है। वह परमात्मा दयालु है। और तुम मरते वक्त मुझमें अश्रद्धा पैदा मत करो। मेरी श्रद्धा मजबूत है। यह छोटा सा प्याला और यह थोड़ी सी शराब और यह तुच्छ सा उमर खय्याम, इसको वह माफ न कर सकेगा, तो बड़े पापियों का क्या होगा? परमात्मा दयालु है।

दया अगर है, तो न्याय असंभव है। अगर न्याय है, तो दया असंभव है। दोनों चीजें साथ नहीं हो सकतीं। और दुनिया के अधिक धर्म परमात्मा को दयालु और न्यायप्रिय इकट्ठा मानते हैं।

लाओत्से कहता है, न्याय को हटाओ, प्रेम काफी है।

यह भी थोड़ी सोचने जैसी बात है कि न्याय आता ही तब है, जब प्रेम नहीं होता। न्याय की पूरी दृष्टि ही प्रेम के अभाव में जन्मती है। इसे हम ऐसा समझें। आप अपने पिता के पैर दाब रहे हैं। आप कहते हैं, ड्यूटी है, कर्तव्य है--पिता हैं। आप बूढ़ी मां की सेवा कर रहे हैं। आप कहते हैं, कर्तव्य है। लेकिन क्या आपने कभी ख्याल किया कि कर्तव्य बहुत कुरूप शब्द है, ड्यूटी बहुत अग्ली शब्द है। क्योंकि कर्तव्य का मतलब यह हुआ कि करने योग्य है, करना चाहिए, इसलिए कर रहा हूं; लेकिन हृदय करने में बिल्कुल नहीं है। मां है, बूढ़ी है, अपनी ही मां है, इसलिए अस्पताल ले जा रहे हैं। कर्तव्य है!

लेकिन जब आप अपनी प्रेयसी को अस्पताल ले जा रहे हैं, तब आप कहते हैं कि कर्तव्य है?

प्रेम है, तो कर्तव्य बिल्कुल नहीं पैदा होगा। प्रेम नहीं है, तो कर्तव्य पैदा होगा। कर्तव्य सब्स्टीट्यूट है। जब प्रेम मर जाता है, तो वे ही चीजें जो प्रेम होता तो करते, वे फिर कर्तव्य के नाम से करनी पड़ती हैं। प्रेम होता, तो करने में होता आनंद। और जब कर्तव्य होता है, तो सिर्फ होता है एक बोझ, जिसे किसी भांति उतार देना है।

लाओत्से कहता है कि न्याय प्रेम का अभाव है। अगर प्रेम है लोगों में, तो अन्याय ही नहीं होगा और न्याय की कोई जरूरत न पड़ेगी। अन्याय होता है, इसलिए न्याय की जरूरत पड़ती है। और लाओत्से कहता है, जब अन्याय होता ही है, तो तुम न्याय से कुछ हल न कर पाओगे। अन्याय न हो! इसे हम ऐसा समझें। दो तरह की दवाएं हो सकती हैं। एक दवा, जिसको हम प्रिवेंटिव कहें। बीमार आप न हों, इसलिए दी जाती है। और एक दवा, जब आप बीमार हो जाते हैं, तब दी जाती है। एक बीमारी के पहले और एक बीमारी के बाद।

लाओत्से कहता है, न्याय बीमारी के बाद की गई दवा है। अन्याय हो रहा है, इसलिए न्याय की जरूरत पड़ती है। लाओत्से कहता है, मैं तो उस धर्म की बात करता हूं कि अन्याय न हो, न्याय की जरूरत ही न रहे। इसलिए कहता है, न्याय को छोड़ो। क्यों? क्योंकि अगर न्याय छोड़ोगे, तो तुम्हें अन्याय दिखाई पड़ेगा। न्याय के धुएं में तुमने अन्याय को अच्छी तरह छिपा लिया है। और न्याय के नाम से अन्याय तो नहीं रुकता, अन्याय दिखाई नहीं पड़ता है।

लाओत्से का एक अनुयायी लीहत्जू कुछ दिनों के लिए एक राज्य का मंत्री हो गया था। पहला ही जो मुकदमा उसके हाथ में आया, एक आदमी ने चोरी की थी। बड़ी चोरी थी, और गांव के सबसे बड़े संपत्तिशाली आदमी के घर हुई थी। लीहत्जू ने मुकदमा सुना; जिसने चोरी की थी, उसे छह महीने की सजा; और जिसके घर

चोरी हुई थी, उसे भी छह महीने की सजा दे दी। अमीर तो बौखला गया। उसने कहा कि लीहत्जू, तुम पागल तो नहीं हो? न्याय की कुछ बुद्धि भी है? कभी सुना है ऐसा अन्याय? और अभी पहले ही दिन तुम बैठे हो न्यायाधीश के पद पर और यह तुम क्या कर रहे हो? सम्राट से शिकायत करूंगा, यह तुम मजाक कर रहे हो! छह महीने की सजा मुझे भी, जिसकी चोरी हुई?

लीहत्जू ने कहा कि तुमने इतना पैसा गांव में इकट्ठा कर लिया कि अब चोर तुम्हारे कारण पैदा होंगे ही। तुम जब तक हो, तब तक चोरी नहीं रुक सकती। और जुर्मी तुम पहले हो; यह तो नंबर दो है। न तुम इतना धन इकट्ठा करते, न यह आदमी चोरी करता। इसकी चोरी में तुम्हारा हाथ है, तुम साझेदार हो। तुम दोनों पार्टनर हो। आधा काम तुमने किया है, आधा इसने किया है। इसलिए मैं तो जड़ से ही अन्याय मिटाऊंगा। अन्याय मिटाने को हम न्याय कहते हैं, लीहत्जू ने कहा।

लेकिन सामान्य न्याय यह होता कि चोर को छह महीने की सजा मिलनी थी, साहूकार को नहीं। यह न्याय होता, जो कि हर अदालत में हो रहा है। लाओत्से कहता है, छोड़ो यह न्याय! क्योंकि तुम सिर्फ अन्याय छिपा रहे हो। तुम्हारी सब अदालतें, तुम्हारे सब कानून, तुम्हारी सब विधान-सभाएं बड़े महत्वपूर्ण, सदा से चलने वाले ऐतिहासिक अन्यायों पर पर्दा डालने के उपाय से ज्यादा नहीं हैं। और उस अन्याय के कारण जो और अन्याय पैदा हो रहे हैं, उनको तुम रोके चले जा रहे हो। लेकिन मूल अन्याय नष्ट नहीं होता।

लीहत्जू को सम्राट के सामने जाना पड़ा। सम्राट ने कहा, ऐसा न्याय हमने भी कभी नहीं सुना। तुम जैसे आदमी को मैं अपना न्याय-मंत्री नहीं रख सकता; क्योंकि आज नहीं कल तुम मुझे सजा दे दोगे। सारी व्यवस्था की बात है। और अगर यह साहूकार जुर्मी है, तो मैं कितनी देर तक जुर्म के बाहर रहूंगा? लीहत्जू ने कहा कि महाराज, यही आपको स्मरण दिलाने के लिए यह सजा दी है।

हम सब अपराधी हैं। लेकिन बड़े अपराधी बच जाते हैं, छोटे अपराधी फंस जाते हैं। बड़े अपराधियों के हाथ में सारी व्यवस्था है; छोटे अपराधियों के हाथ में व्यवस्था नहीं है। इसलिए बड़े अपराधियों के विपरीत जो भी चलता है, वह फंस जाता है।

लीहत्जू ने कहा कि मैं तो न्याय ऐसा ही करूंगा। चाहें तो रहूं, अन्यथा बाहर हो जाऊं। क्योंकि जिसको आप न्याय कहते हैं, मेरे गुरु ने सिखाया है कि वह तो न्याय नहीं है। वह न्याय छोड़ो।

इसे ऐसा हम समझें कि हमारी बहुत अच्छी-अच्छी धारणाओं के नीचे बड़े गहन पाप छिपे हुए हैं, जो हमें दिखाई ही नहीं पड़ते। दिखाई न पड़ने का कारण है, हम अभ्यस्त हो गए हैं। वे इतने पुराने हैं और इतने प्राचीन हैं और इतने परंपरागत हैं और उनकी आदत इतनी गहरी हो गई है कि वे हमें दिखाई नहीं पड़ते। वे हमें दिखाई नहीं पड़ते; हम उनके प्रति बिल्कुल ही बेहोश की तरह जीए चले जाते हैं। हमारे खून और हड्डी में वे मिल गए हैं। अगर कोई हमें बताए, तो हमें बहुत हैरानी होती है कि यह क्या बात है!

अगर यह लीहत्जू कहे कि छह महीने की सजा उसको भी जिसके यहां चोरी हुई है, तो हमें बहुत चौंकाने वाली बात मालूम पड़ती है। लेकिन क्या सच में ही यह चौंकाने वाली बात है? या सिर्फ हमारी एक आदत हो गई है? इसमें चौंकाने वाला क्या है? यह बात तो गहरे में ठीक ही है। लेकिन हमारी धारणा में उसके लिए कोई जगह नहीं है। इसलिए बात एकदम चौंकाने वाली मालूम पड़ती है।

आस्कर वाइल्ड ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मैंने जिंदगी में बहुत तरह से लोगों को चौंकाने के उपाय किए, लेकिन सबसे ज्यादा लोग तभी चौंकते हैं, जब तुम कोई सत्य कह दो। बड़े से बड़ी झूठ भी इतना नहीं चौंकाती, क्योंकि लोग अभ्यस्त हैं; लेकिन सत्य बहुत चौंकाता है।

दो-चार शब्दों को हम देखें, जिनके नीचे हमारे गहरे असत्य छिपे हुए हैं। न्याय एक शब्द है, जिसके अंतर्गत हम न मालूम कितना पाप करते हैं। एक बात, अभी तक हम उन सारे लोगों को, जो भी संपत्ति की व्यवस्था के विपरीत कुछ करते रहे, अपराधी मानते रहे हैं। लेकिन संपत्ति की पूरी व्यवस्था भी अपराधी हो सकती है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। पूरी व्यवस्था ही अपराधी हो सकती है, अगर यह ख्याल में आ जाए, तो फिर जिनको हम अपराधी ठहराते हैं, वे अपराधी न रह जाएंगे।

एक छोटी क्लास है स्कूल की, प्राइमरी स्कूल की। और एक बच्चा अपने पड़ोसी बच्चे की कलम उठा कर अपने खीसे में रख लेता है। यह चोरी है। प्राइमरी स्कूल के शिक्षक से लेकर दिल्ली के प्रेसीडेंट तक सभी उसके खिलाफ हो जाएंगे। लेकिन उस बच्चे की तरफ से हम समझने की कोशिश करें। सब बच्चों के पास रंगीन कलमें हैं; उसके पास नहीं है। रंग उसे आकर्षित करते हैं; सभी बच्चों को करते हैं। वह भी एक रंगीन कलम अपने खीसे में रखना चाहता है, जैसे दूसरे बच्चे रखते हैं। और बूढ़े तक जब चीजें रख कर अकड़ते हैं, तो छोटे बच्चे अगर रख कर अकड़ना चाहें, तो बुराई क्या है? और जब आपके पास नई कार आती है, नए रंग की, तो आपकी चाल बदल जाती है, और जवानी लौट आती है, उम्र दस साल कम हो जाती है। यह छोटा सा बच्चा एक कलम को खीसे में रख कर यह भी अकड़ सके, इसमें ऐसा एतराज क्या है?

लेकिन यह बच्चा अपराधी है। दूसरे बच्चों के पास कलमें क्यों हैं और इस बच्चे के पास कलम क्यों नहीं है? अगर इसके हम पीछे यात्रा करना शुरू करें, तो हम पाएंगे, दूसरे बच्चों के बाप इस बच्चे के बाप से ज्यादा बेईमान सिद्ध हुए, ज्यादा चालाक सिद्ध हुए, ज्यादा होशियार सिद्ध हुए। अगर हम इस कलम का पूरा इतिहास खोजने जाएं, तो हम न मालूम कितने पाप और न मालूम कितने अपराध इस कलम तक पाएंगे, जो इसके पीछे छिपे हैं! लेकिन उनसे कोई संबंध नहीं है। इस बच्चे ने कलम उठा ली, क्योंकि रंग उसे भी पसंद है। जो कलम दूसरे के पास है, वह उसे भी पसंद है। वह भी इस कलम को रख कर शान से चलना चाहता है। इस बच्चे के इस भाव में कहीं भी कुछ पाप नहीं है। ऐसा होना ही चाहिए। यह स्वाभाविक है। इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। ऐसा न हो, तो अस्वाभाविक है। लेकिन यह बच्चा अपराधी है।

और हमारे सारे अपराध ऐसे ही अपराध हैं। फिर इस पर न्याय की व्यवस्था है। समाज एक तरफ अपराध पैदा करवाए चला जाता है, दूसरी तरफ से न्याय बिठाए चला जाता है। इस न्याय से अपराध मिटते नहीं, मिट नहीं सकते। क्योंकि न्याय खुद ही उनको छिपाने और ढांकने की व्यवस्था है। अपराध बढ़ते चले जाते हैं; न्याय की धारणा बढ़ती चली जाती है। लोग न्याय का नारा लगाए चले जाते हैं और अपराध गहरे होते चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, इन थोथे शब्दों को हटाओ; और जीवन की जो सच्चाई है, सीधी-साफ, उसे देखो। हटाओ न्याय की धारणा। अन्याय है, तो अन्याय को देखो, ठीक सीधा। छिपाओ मत। वस्त्रों में ढांको मत।

और अगर अन्याय हमारे सबके सामने प्रकट हो जाए, तो शायद अन्याय बच नहीं सकता। लेकिन अन्याय दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए बच सकता है। बीमारी अगर छिपी हो, तो बच सकती है। अगर उघड़ आए, तो बच नहीं सकती। हम उसे तोड़ ही फेंकेंगे, हटा ही डालेंगे। जो भी अन्याय अन्याय की तरह साफ हो जाए, वह टिकेगा नहीं। आदमी उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। लेकिन अन्याय के ऊपर फूल लगा दो, रंगीन कागज चिपका दो, इत्र छिड़क दो, फिर अन्याय बच जाएगा।

और हम सब कुशल हो गए हैं। समाज के कोढ़ पर रंगीन चीजें चिपकाने में हम कुशल हो गए हैं। अब धीरे-धीरे भीतर सब कोढ़ हो गया है; सिर्फ ऊपर रंगीन चीजें रह गई हैं। कभी यहां से उखड़ जाती हैं, कभी वहां

से। थोड़ी दुर्गंध आती है। फिर यहां से चिपका देते हैं; फिर वहां से बंद कर देते हैं। भीतर एक लाश रह गई है सड़ी हुई।

लाओत्से का अर्थ केवल इतना ही है कि जो है, उसे सीधा देख लो; उसके विपरीत सिद्धांत मत खड़ा करो। हम सबकी आदत क्या है? जो है, उसकी तो हम फिक्र नहीं करते; तत्काल उसके विपरीत सिद्धांत खड़ा करते हैं। और विपरीत सिद्धांत हमारा उपद्रव बन जाता है। भीतर हिंसा है, तो हम तत्काल अहिंसा का सिद्धांत खड़ा कर लेते हैं। हिंसक आदमी अहिंसा परमो धर्मः लिख कर अपनी तख्ती लगा लेता है अपने मकान पर। भीतर हिंसा है, वह कहता है, अहिंसा सिद्धांत है। वह कहता है, आज अहिंसक नहीं हूं, कल अहिंसक हो जाऊंगा, परसों अहिंसक हो जाऊंगा। कोशिश तो कर रहा हूं, अहिंसा को मानता भी हूं। महावीर के चरणों में जाता हूं, बुद्ध को मानता हूं, अहिंसा में मेरी बड़ी आस्था है। कमजोर हूं, अभी हिंसा है। लेकिन सिद्धांत मेरे पास है; आज नहीं कल अहिंसक हो जाऊंगा।

आपको पता है, क्या कर रहा है यह आदमी? हिंसा का जो कोढ़ है, उसको देखने से बचने की तरकीब निकाल रहा है। हिंसा भारी है। और अगर यह अपनी हिंसा को देखे, तो एक दिन भी उस हिंसा में खड़ा हुआ नहीं रह सकता। जैसे घर में आग लग गई हो और पता चल जाए कि आग लग गई है, तो आप फिर एक क्षण रुक नहीं सकते। फिर आप यह भी नहीं पूछने रुकेंगे कि मैं किस गुरु से रास्ता पूछूं बाहर निकलने का? कि सदगुरु कौन है, उसकी ही मान कर निकलूंगा! कि खिड़की से निकलूं, कि दरवाजे से निकलूं, कि छलांग लगाऊं, कि रस्सी लटकाऊं, कि सीढ़ी लगाऊं? आप कुछ न पूछेंगे। इतनी फुर्सत न होगी, इतना समय भी न होगा। सच तो यह है कि आपको पता ही न चलेगा, कब आप बाहर निकल गए हैं। बाहर निकल कर ही पता चलेगा कि मैं बाहर आ गया हूं। तभी आप श्वास लेंगे और विचार शुरू करेंगे।

अगर किसी व्यक्ति को अपने भीतर हिंसा का, अपने कोढ़ का ऐसा ही बोध हो जाए, तो वह यह नहीं कह सकता कि कल निकलूंगा। मकान में आग लगी है, तब आप यह नहीं कह सकते कि कल निकलेंगे, परसों निकलेंगे, अभी सोचने का मौका चाहिए, और फिर जल्दी क्या है, अभी उम्र तो पड़ी है। ये सब बातें नहीं हैं। आग लगी है, तो आदमी निकल जाता है। लेकिन जिंदगी की जो आग है, हमारी बचने की एक तरकीब है गहरी से गहरीः क्रिएट दि अपोजिट, विपरीत को पैदा कर लो, उसको सिद्धांत बना लो। भीतर के कोढ़ पर नजर मत रखो, सिद्धांत पर नजर रखोः अहिंसा परम धर्म है! और सोचो निरंतर कि आज नहीं कल अहिंसक हो जाएंगे। इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में हो जाएंगे। कोशिश जारी रखेंगे; और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अहिंसा आ जाएगी, हिंसा चली जाएगी।

यह अहिंसा कभी भी न आएगी। यह पोस्टपोनमेंट है। यह तरकीब है। यह स्थगित करना है। और मजे की बात यह है कि हिंसा जारी रहेगी। आपके भीतर दो तल हो जाएंगेः आपका असली आदमी हिंसक बना रहेगा, आपका नकली आदमी अहिंसक हो जाएगा। और नकली आदमी नकली अहिंसा के इंतजाम कर लेगा--रात खाना नहीं खाएगा; दिन में पानी छान कर पी लेगा।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पानी छान कर मत पीएं। हाइजिनिक है। लेकिन अहिंसा मत समझें। अच्छा है; लेकिन अहिंसा मत समझें। अहिंसा इतनी सस्ती बात होती कि आप एक कपड़ा खरीद लाए और पानी छान लिया! और कितनी मौज से जब लोग पानी छान कर पीते हैं, तो वे सोचते हैं, स्वर्ग का बिल्कुल पक्का हो गया, अब मोक्ष में कोई बाधा न रही। दिखा देंगे यह कपड़ा, कि देखो पानी छान कर पीया था, और रात कभी खाना नहीं खाया।

मैं देखता हूं। कभी-कभी ऐसे घरों में ठहरने का मुझे मौका मिलता है। भीतर अंधेरा हो गया, तो बाहर बैठ जाते हैं। सूरज तो डूब रहा है, डूबने के करीब है, या डूब भी गया है। बाहर बैठ जाते हैं इस भरोसे में कि अभी सूरज नहीं डूबा है। जल्दी खाना खा रहे हैं कि रात... ।

इनका खाना खाना तक हिंसा है। इतनी तेजी से खा रहे हैं कि वह भी एक प्रेमपूर्ण, आनंदपूर्ण कृत्य नहीं है। वह भी हिंसा है। लेकिन वे जल्दी खाए चले जा रहे हैं। रात हुई जा रही है; रात वे खाना नहीं खाएंगे।

रात लाखों पशु-पक्षी खाना नहीं खाते। अगर वे सब मोक्ष में जा रहे हैं, तो आप मत जाना। यह कोई गुण नहीं है। नहीं खाते, बड़ा अच्छा है; स्वास्थ्यपूर्ण भी है। और आपके हित में है; आपके शरीर के हित में है। आत्मा का कुछ बहुत लेना-देना नहीं है।

झूठा आदमी जो अहिंसक है, ऊपर वह झूठी अहिंसा पैदा कर लेता है। वह कहता है, हरी सब्जी नहीं खाएंगे। अब कितने होशियार लोग हैं! और कितने बेईमान! इन्हीं को लाओत्से कहता है, छोड़ो बेईमानी, छोड़ो होशियारी!

एक घर में मैं रुका था। तो जैनों के पर्यूषण के दिन थे। तो हरी सब्जी नहीं खाएंगे, लेकिन केला खा रहे थे। मैंने कहा, यह क्या हुआ? उन्होंने कहा, यह हरा नहीं है, रंग हरा नहीं है। हरी सब्जी से मतलब रंग हरा! यह होशियारी है, कानूनी होशियारी है। हरे का मतलब होना चाहिए गीला। सूखा खा सकते हैं। लेकिन हरे का मतलब ले लिया है कि रंग हरा न हो बस, फिर कोई बात नहीं है। तो केले का रंग हरा नहीं है; फिर मजे से खा सकते हैं।

कुछ लोग हैं, जो सोचते हैं कि सूखा ही खाना चाहिए। लेकिन महावीर का ख्याल ऐसा था कि जो चीज वृक्ष से अपने आप पक कर गिर पड़ी हो और सूख गई हो; तोड़ी न गई हो। लेकिन सूखा ही खाना चाहिए व्रतों के दिनों में, तो लाकर लोग चीजों को सुखा कर पहले से रख लेते हैं। आप ही सुखा रहे हैं। अभी सुखाते हैं कि आठ दिन बाद सुखा कर खाते हैं, या गीला खाते हैं, क्या फर्क पड़ रहा है? आठ दिन पहले सुखा कर रख लिया है, फिर बाद में खा रहे हैं, क्योंकि सूखी चीज खा रहे हैं।

एक दिन ऐसा हुआ कि बुद्ध का एक भिक्षु भिक्षा मांगने गया। और एक चील आकाश में उड़ती थी और उसके मुंह में मांस का टुकड़ा था और वह भिक्षा के पात्र में गिर गया।

भिक्षु बड़ा मुश्किल में पड़ा। क्योंकि बुद्ध ने कहा था, भिक्षा के पात्र में जो भी मिल जाए, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। अब यह भिक्षा के पात्र में मांस मिल गया!

वह आया लौट कर। उसने बुद्ध से कहा कि अब मैं क्या करूं? आपने कहा है कि भिक्षा के पात्र में जो भी आ जाए! एक चील एक मांस का टुकड़ा मेरे भिक्षा के पात्र में गिरा गई है।

ऐसा बहुत कम उल्लेख है कि बुद्ध ने किसी का उत्तर देते वक्त सोचा हो। लेकिन इस भिक्षु को उत्तर देते वक्त, कहते हैं, सोचा। आंख बंद कर ली; और फिर कहा कि ठीक है, जो भी भिक्षा-पात्र में आ गया है, उसे तू ले ले।

आनंद ने कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? मांस!

तो बुद्ध ने कहा, चीलें रोज-रोज भिक्षा-पात्रों में मांस नहीं गिराएंगी। संयोग की बात है। अब शायद दुबारा ऐसा फिर कभी नहीं होगा इतिहास में भी। लेकिन इस संयोग की बात के लिए अगर मैं यह कहूं कि नहीं, भिक्षु तुम स्वयं चुन लेना कि क्या लेना और क्या नहीं लेना, तो लोग सिर्फ मिठाइयां ही लेंगे और बाकी चीजें

छोड़ देंगे। लोग होशियार हैं आनंद, लोग चालाक हैं। चीलें इतनी चालाक नहीं हैं कि रोज-रोज...। तो मैंने यही सोचा कि चीलें ज्यादा चालाक हैं कि आदमी ज्यादा चालाक हैं; उस हिसाब से नियम बनाना चाहिए।

लेकिन बुद्ध को पता नहीं कि आप कोई भी नियम बनाओ, आदमी की चालाकी में फर्क नहीं पड़ता। और आज चीन और जापान, सब बौद्ध मुल्क मांसाहारी हैं। और हर बौद्ध होटल के ऊपर लिखा रहता है कि यहां मारे गए जानवर का मांस नहीं मिलता, अपने आप मर गए जानवर का मांस मिलता है। क्योंकि मारने में हिंसा है; अब एक जानवर अपने आप ही मर गया, इसमें किसी ने हिंसा तो की नहीं। अब इसका मांस खा लेने में क्या हर्ज है?

इतने जानवर अपने आप मरते भी नहीं। लेकिन वह मारने का काम कोई और करते हैं। होटल में तो मांस ही आता है मरा-मराया। होटल के मैनेजर को इससे कुछ लेना-देना नहीं है। वह खुद भी बौद्ध है, तख्ती लगी हुई है कि मरे हुए जानवरों का ही मांस मिलता है।

सारी दुनिया में बौद्ध मांसाहारी हैं। और कुल कारण इतना है--यह एक छोटी सी घटना कारण बनी। क्योंकि बुद्ध ने कहा कि न तो इस भिक्षु ने किसी को मारा है--मारा होता तो हिंसा होती--इसने न तो मारा है, न चील से यह मांगने गया था। यह संयोग है। तो बौद्ध भिक्षु मांगते नहीं हैं मांस; लेकिन आप डाल दें, तो मजे से स्वीकार करते हैं। मजे से स्वीकार करते हैं।

आदमी विपरीत सिद्धांत को अगर झूठा बना ले, तो रास्ते निकाल लेता है। रास्ते निकालने में कोई कठिनाई नहीं है। नीचे असली आदमी चलता चला जाता है; ऊपर एक झूठा आदमी चलता चला जाता है। यह झूठा आदमी अच्छा आदमी होता है; इसकी सब आशाएं भविष्य में होती हैं। असली आदमी अभी होता है; उसके सब काम वर्तमान में होते हैं। और इन दोनों के बीच धीरे-धीरे इतना फासला हो जाता है कि आपके अच्छे आदमी को ही आपके झूठे आदमी की कोई खबर नहीं रह जाती। आप भूल ही जाते हैं कि आपके नीचे असली आदमी छिपा हुआ है। और वही असली आदमी आप हैं।

लाओत्से कहता है, विपरीत का निर्माण मत करो। तुम जो हो, उसी को जानो, उसी में जीओ। और यह बहुत गहन सूत्र है। अगर मैं अपनी हिंसा में जीऊं और अहिंसा का सिद्धांत निर्मित न करूं, तो एक दिन मैं अहिंसक हो जाऊंगा। अगर मैं अपने क्रोध में जीऊं और अक्रोध का सिद्धांत निर्मित न करूं, तो क्रोध ही मुझे बदल डालेगा। अगर मैं अपनी कामवासना में जीऊं और ब्रह्मचर्य की कोई धारणाएं न बनाऊं, तो मेरी कामवासना ही मुझे बदल जाएगी। जो गलत है, जो दुखदायी है, जो पीड़ा है, उसमें ज्यादा देर रहा नहीं जा सकता। वह आग है। उसमें हम जलेंगे, झुलसेंगे, अनुभव से सीखेंगे और किसी दिन छिटक कर बाहर हो जाएंगे।

लेकिन एक आदमी कीचड़ में खड़ा है, कांटों में खड़ा है, गंदगी में खड़ा है। अगर इसकी आंखें नीचे लगी रहें--गंदगी देखे, कीचड़ देखे, मक्खी हैं, मच्छर हैं, बदबू आ रही है--कितनी देर खड़ा रहेगा? लेकिन यह आदमी एक तरकीब कर सकता है। यह आंखें आकाश की तरफ उठा ले, चांद-तारों का चिंतन करे, भूल जाए नीचे की कीचड़, चांद-तारों में जीने लगे, तो यह जिंदगी भर खड़ा रह सकता है इस कीचड़ में। क्योंकि कीचड़ नहीं है दुखदायी, कीचड़ का बोध दुखदायी है। हिंसा नहीं है दुखदायी, हिंसा की प्रतीति। क्रोध नहीं है दुखदायी, क्रोध की प्रतीति, क्रोध का अनुभव, क्रोध की आग, उसका अहसास।

लाओत्से कहता है, जो है, उसमें ही जीएं। वह अपने से तिरोहित हो जाएगा। क्योंकि अगर वह गलत है, तो बदल जाएगा; अगर सही है, तो बदलने का कोई सवाल नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "छोड़ो मानवता को, न्याय को हटाओ; और लोग अपनों को पुनः प्रेम करने लगेंगे। चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ; और चोर तथा लुटेरे अपने आप ही लुप्त हो जाएंगे।"

चालाकी छोड़ो, उपयोगिता को हटाओ! ये दो बातें भी समझ लेने जैसी हैं।

बड़े मजे की बात यह है कि जब चालाकी आदमी किन्हीं ऐसे कामों में करता है जिन्हें हम बुरा कहते हैं, तब तो हम उसे चालाकी कहते हैं; और वही काम अगर वह उन कामों में करे जिन्हें हम अच्छा कहते हैं, तो फिर हम चालाकी नहीं कहते। फिर हम उसे बुद्धिमानी कहते हैं, होशियारी कहते हैं। यह भी चालाकी का ही एक हिस्सा है। जैसे, चालाकी का अर्थ यह है कि जो भी मैं करूं, वह परिणाम के ध्यान से करूं।

चालाकी का अर्थ क्या होता है? कनिंगनेस का मतलब क्या है?

रास्ते पर आप मिले। अगर मैं नमस्कार भी करूं, तो परिणाम को ध्यान में रख कर करूं कि इस नमस्कार से क्या मिलेगा? यह आदमी किस मिनिस्टर का रिश्तेदार है? या रिश्तेदार का रिश्तेदार है? कहां तक इसकी पहुंच है? या इससे क्या काम निकालना है? इससे क्या मिलेगा? एक नमस्कार भी कैलकुलेशन है, गणित है।

अगर एक नमस्कार भी गणित है, तो चालाकी हो गई। तो फिर जिस दिन इस आदमी से कुछ नहीं मिलेगा, उस दिन बात व्यर्थ हो गई।

तुर्गनेव ने एक कहानी लिखी है। एक होटल के सामने लोग इकट्ठे हैं। और एक कुत्ते को एक आदमी दोनों पैर पकड़ कर पटकने के लिए तैयार है, मार डालने को। क्योंकि उस कुत्ते ने इसे काट लिया है। तभी दो पुलिस वाले वहां आते हैं और एक पुलिस वाला नीचे झांक कर कहता है कि ठीक है, मार ही डालो इस कुत्ते को! यह हम पुलिस वालों को भी बड़ा परेशान करता है; रात भौंकता-भांकता है। पुलिस वालों और कुत्तों के बीच कोई जन्मजात विरोध है। मुझे भी बहुत परेशान करता है, इसको मार ही डालो। तभी बगल वाला पुलिस वाला कहता है, जरा सोच कर कहना, यह हमारे बड़े साहब का कुत्ता मालूम पड़ता है। वह पहला पुलिस वाला फौरन झपट कर उस आदमी की गर्दन पकड़ लेता है जो कुत्ते को पकड़े हुए है, और कहता है कि तू समझता नहीं क्या कर रहा है! यह कुत्ता कोई साधारण कुत्ता है? छोड़ इसको! कुत्ते को छुड़ा कर गोदी में ले लेता है। और अपने दूसरे साथी से कहता है, हथकड़ी डालो इस आदमी को। यह बलवा खड़ा कर रहा है यहां सड़क पर। तभी वह दूसरा साथी कान में कहता है, लेकिन नहीं, यह कुत्ता वह नहीं मालूम होता। तो वह उस कुत्ते को पटक देता है और कहता है, मार डालो इस कुत्ते को! सब गंदा हो गया। स्नान करना पड़ेगा। लेकिन तभी वह साथी कहता है कि नहीं-नहीं, है तो यह साहब का ही कुत्ता। फिर वह कुत्ते को उठा लेता है।

यह कहानी चलती है। और यह सब चालाक लोगों की जिंदगी की कहानी है। पूरे वक्त यह चल रहा है। चालाकी का अर्थ हैः परिणाम महत्वपूर्ण है। कोई हिसाब है पीछे। जो भी हम कर रहे हैं, उसमें हिसाब है। अगर यह बात सच है, तो एक आदमी मंदिर जाकर घंटा बजा रहा है, पूजा कर रहा है--चालाक है। हिसाब है उसका। एक आदमी माला फेर रहा है--चालाक है। वह कहता है, कितनी मालाएं फेरनी हैं? एक लाख माला अगर फेर लीं, तो यह फल होगा। एक लाख दफे अगर माला फेर ली, तो यह फल होगा। इतनी दफे राम का नाम ले लिया।

मैं एक मंदिर में गया। वहां लाखों कापियां रखी हैं अंदर राम-राम लिख-लिख कर। जो आदमी लिखवा रहे हैं राम-राम, वे घूम-घूम कर दिखलाते हैं। सारी अलमारियां भरी हैं। मैंने पूछा, यह क्या, हो क्या रहा है?

तो उन्होंने कहा, मैंने नियम लिया हुआ है कि इतने अरब नाम लिखवा कर रहूंगा।

क्या होगा इससे?

क्या होगा! यह व्रत अगर मेरा पूरा हो गया, तो फिर आवागमन से छुटकारा है।

तुम कापियां खराब करोगे और आवागमन से छुटकारा हो जाएगा? और न मालूम कितने पागलों को लिखवाने में लगाए हुए हो। उनका समय खराब कर रहे हो। मगर उस आदमी का आवागमन से छुटकारा हो रहा है; क्योंकि राम-राम, राम-राम कापियों पर लिखवा रहा है।

मैंने उसको कहा, पागल, अब तो प्रेस है। अब इसकी कोई जरूरत नहीं। तू छपवा ले जितना तुझे छपवाना है, और रख ले और उनके ऊपर बैठ जा।

लेकिन कैलकुलेशन है। राम का नाम भी आदमी लेगा, तो हिसाब है। बेकार हो गई बात। अगर राम का नाम भी हिसाब से लिया, तो राम का नाम लिया ही नहीं। हिसाब चालाकी है। हर चीज में चालाकी है।

बेटा बाप के पैर दाब रहा है। वह देख रहा है कि क्या-क्या मिल सकता है? वसीयत में क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा? कहते हैं कि अमीर बाप के बेटे कभी भी बाप के मरने पर सच में दुखी नहीं होते। हो भी नहीं सकते। होने का कोई कारण भी नहीं है। भीतर शायद खुश ही होते हैं। सम्राटों के बेटे तो अक्सर बाप को मारने का कारण ही बनते हैं। सब तरफ हिसाब है।

लाओत्से कहता है, यह चालाकी जब तक है--और यह सिर्फ गलत चीजों में ही नहीं है, सब चीजों में है यह चालाकी--अगर यह चालाकी है, तो यह जिंदगी कभी भी कृत्रिमता के पार सहजता में प्रवेश नहीं कर सकती। परिणाम में मत जीओ; कृत्य में जीओ। मोमेंट टु मोमेंट लिव इन दि एक्ट, नॉट इन दि कांसीक्वेंस, नॉट इन दि रिजल्ट। वह जो कृत्य है, उस में ही जीओ।

रास्ते पर कोई आदमी मिला है, उससे राम-राम कर लेने का ही काफी मजा है। इसलिए अगर आप छोटे गांव में जाएं, तो आपको बड़ी हैरानी होगी। कोई आपको जानता नहीं, फिर भी लोग राम-राम कर लेंगे। बड़ी बेचैनी होगी, क्योंकि ऐसा कहीं नहीं होता। जब तक जानते न हों, मतलब न हो, कोई हिसाब न हो, यह काहे के लिए राम-राम कर रहे हैं? आपको बेचैनी होगी। पूछने का मन होगा, भई क्यों राम-राम करते हो? क्या मतलब है? विचित्र मालूम होता है। छोटे गांव में जाएं, कोई भी आदमी राम-राम करता है। न आपको कोई जानता, न आपके धन का किसी को पता, न आपके पद का पता। आप क्या कर सकते हैं, इसका भी पता नहीं। लेकिन वे गांव के पुराने लोग बिना हिसाब राम-राम किए जा रहे हैं। उसमें कोई हिसाब नहीं है। उसमें कोई गणित नहीं है कि आप क्या करोगे। आपसे कोई मतलब नहीं है। राम-राम करना आनंदपूर्ण है; कर लिया है।

हम सब तरफ हिसाब से भर गए हैं। हमारा प्रेम एक गणित। हमारी प्रार्थना एक गणित। हमारी दूकान तो है ही चालाकी, हमारा मंदिर भी हमारी चालाकी का विस्तार है। वहां भी हम सब लगा रहे हैं--आगे तक का हिसाब फैला कर रखा हुआ है।

इसे लाओत्से कहता है, यह चालाकी तुम्हें कभी सहज न होने देगी। छोड़ो चालाकी। छोड़ो उपयोगिता, यूटिलिटी।

अब यह ज्यादा गहरा मामला है उपयोगिता का; क्योंकि चालाकी ही इसलिए है कि उपयोगिता पर दृष्टि है हमारी। हर चीज की यूटिलिटी। अगर मैं एक बम बनाऊं, तो अखबारों में खबर छप सकती है; एक नया बम बनाऊं, नोबल प्राइज मिल सकती है। लेकिन एक सुंदर गीत लिखूं, कहीं कोई खबर न छपेगी। क्योंकि गीत की उपयोगिता क्या है? कोई भी पूछेगा, उपयोगिता क्या है आपके गीत की? इससे कितने आदमी मारे जा सकते हैं? इससे कितने लोगों को रोटी मिल सकती है? इससे कितने लोगों को कपड़ा मिलेगा? इसकी उपयोगिता

बताइए। गीत की क्या उपयोगिता है? कोई भी उपयोगिता नहीं है। एक फूल की क्या उपयोगिता है? कोई उपयोगिता नहीं है। बेकार है।

हमारा जो उपयोगितावादी दृष्टिकोण है, अगर ठीक से समझें, तो वही मैटीरियलिज्म है। वह आदमी नहीं है नास्तिक, जो ईश्वर को नहीं मानता। वह आदमी नास्तिक है, जो केवल उपयोगिता को मानता है। और आस्तिक वह है, जो उपयोगिता पर ध्यान ही नहीं देता। उपयोगिता महत्वपूर्ण भी नहीं है। और जीवन में जितनी श्रेष्ठतर चीजें हैं, उतनी गैर-उपयोगी हैं।

गैलीलियो ने जब किताब लिखी अपनी विश्व की व्यवस्था की, तो उसने ईश्वर का एक भी जगह उपयोग नहीं किया, शब्द का। हजारों पृष्ठ की किताब में ईश्वर शब्द का एक भी जगह उपयोग नहीं है। तो उसके मित्रों ने पूछा कि एकाध जगह तो ईश्वर शब्द का उपयोग कर लेते; इतने बड़े ग्रंथ में एक भी जगह ईश्वर का प्रयोग नहीं हुआ। तो गैलीलियो ने जो कहा है वह यह, उसने कहा कि मेरी परिकल्पना में ईश्वर शब्द की कोई भी उपयोगिता नहीं है; नो यूटिलिटी। यह जो मेरी हाइपोथीसिस है, इसमें ईश्वर शब्द की कोई उपयोगिता नहीं है। इसमें कोई सवाल ही नहीं है। ईश्वर बिल्कुल गैर-उपयोगी है। क्या फायदा? उससे क्या करवाऊं? ग्रेविटेशन चीजों को नीचे खींच लेती है। सब नियम उपयोगी अपना काम करते हैं। ईश्वर बिल्कुल गैर-उपयोगी हाइपोथीसिस, एक नॉन-यूटिलिटेरियन हाइपोथीसिस है। गैलीलियो ने कहा कि ईश्वर एक कविता है, इसकी यहां कोई जरूरत नहीं है।

उपयोगिता का ध्यान अगर ठीक हो, तो प्रेम की कोई उपयोगिता है? कोई नहीं है उपयोगिता। क्या उपयोगिता है? आदमी के जीवन में प्रेम की क्या उपयोगिता है? थोड़ी अड़चन पैदा होती है; और तो कोई उपयोगिता नहीं है। थोड़ी परेशानी पैदा होती है। इसलिए जो बहुत होशियार हैं और उपयोगिता से जीते हैं, वे प्रेम वगैरह में कभी भी नहीं उतरते हैं। उस झंझट में वे नहीं पड़ते हैं। रुपए की उपयोगिता है; प्रेम की क्या उपयोगिता हो सकती है? एक मकान की उपयोगिता है; एक कविता में रहिएगा, सोइएगा, बैठिएगा, क्या करिएगा?

एक दृष्टिकोण है जीवन का जिसमें हर चीज एक कमोडिटी है, एक वस्तु है, जिसका उपयोग करना है। पत्नी एक उपयोगिता है। पति एक उपयोगिता है। मां एक उपयोगिता है। पिता एक उपयोगिता है। बेटा एक उपयोगिता है। और ऐसा नहीं कि साधारण लोगों के साथ ऐसा हो; अगर लाओत्से हमारे शास्त्रों को देखे, तो बहुत हैरान हो जाए। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि बेटा होना ही चाहिए पैदा; नहीं तो अंत्येष्ठि कौन करेगा? अब बेटे की उपयोगिता यह है कि जब बाप मरे, तो वह उनकी खोपड़ी तोड़े मरघट पर। इसके लिए वे पैदा किए जा रहे हैं। इसलिए जिनके अपने पैदा नहीं होते, वे गोद लेंगे; क्योंकि बेटा एक उपयोगिता है, मरने के बाद सिर को तोड़ेगा कौन?

हद हो गई। यह चालाक लोगों की बुद्धि है। और फिर बेटे अगर जिंदा में ही खोपड़ी तोड़ दें, जरा जल्दी, तो इतने नाराज क्यों होते हैं? उनका काम ही यही है। कुछ जरा जल्दी कर जाते हैं, कुछ जरा देर से करते हैं। कोई वक्त पर करते हैं, कोई वक्त के पहले कर देते हैं। मगर यह उपयोगिता! किसी के जीवन का अपना कोई सहज मूल्य नहीं है। जीवन अपने आप में मूल्यवान नहीं है। किसी के लिए उपयोगी है।

इजिप्त में ममीज हैं सम्राटों की, फेरोह की। और उनकी पत्नियां, उनके नौकर, सब उनके साथ दफन कर दिए जाते थे; क्योंकि उनकी उपयोगिता यही थी, जब तक सम्राट था। हम हजारों साल तक न मालूम लाखों स्त्रियों को सती करवाए; क्योंकि स्त्री की उपयोगिता पति के लिए थी, और तो उसका कोई मूल्य ही नहीं है। था

मूल्य तो इतना था। जब पति ही नहीं रहा, तो अब उसका क्या मूल्य है? स्त्री का अपना कोई मूल्य ही नहीं है। एक उपयोगिता है वह। एक साधन था पति का। जब पति ही समाप्त हो गया, साधन का क्या करिएगा? उसको दफना दो, पति के साथ ही उसकी हत्या करवा दो।

लेकिन अच्छे शब्दों में हम छिपा सकते हैं हत्या को। हम कहते हैं सती होना। और बड़े मजे की बात यह है कि जो पुरुष इस सब की चर्चा करते रहे, वे एक भी उनमें से सती या सता--जो भी हम कहें--वे कभी नहीं हुए। इतनी स्त्रियां मरती रहीं, एक पुरुष को न सूझा कि हम भी सती हो जाएं। उसका कारण है, पुरुष मालिक है। स्त्री की उपयोगिता पुरुष के लिए है। स्त्री साधन है। पुरुष हजार स्त्रियां खोज लेगा।

जीवन को इस ढंग से जो देखने की आदत है, वह है पदार्थवाद, वह है मैटीरियलिज्म।

प्रत्येक चीज का अपने में मूल्य है। और मूल्य किसी उपयोगिता के कारण नहीं है; होना ही मूल्यवान है। एक स्त्री है। वह अपनी वजह से मूल्यवान है। न तो किसी की मां होने के कारण, और न किसी की पत्नी होने के कारण, और न किसी की बेटी होने के कारण। अपनी वजह से मूल्यवान है। सहज मूल्यवान है। होना ही मूल्य है। कोई उपयोगिता नहीं है। और आपका जीवन भी होने की वजह से मूल्यवान है; किसी कारण से नहीं। आप क्या करेंगे, इसलिए ज्यादा उपयोगी नहीं हो जाएंगे। आपके कृत्यों का जोड़ आपका मूल्य नहीं है। आप क्या हैं, वह काफी है; आपने क्या किया, इससे कोई संबंध नहीं है।

जीवन को ऐसे उपयोगितावाद से मुक्त करने की जो धारणा है, वही धर्म है। और जीवन को उपयोगिता से बांधने की जो दृष्टि है, वही जीवन को बाजार बनाने की है। वहां सब चीजें खरीदी और बेची जाती हैं। सब चीजें बिकती हैं, सब खरीदी जाती हैं। क्योंकि सब चीजों का उपयोग है, सब चीजों की कीमत है।

इमर्सन ने कहीं कहा है कि चीजों का मूल्य तो हमें बिल्कुल पता नहीं, सिर्फ कीमत पता है। वी डोंट नो दि वैल्यू, वी ओनली नो दि प्राइस। कीमत का मतलब होता है, इतनी उपयोगी है, इसलिए कीमत है। मूल्य का अर्थ होता है कि है अपने में--एक विशिष्टता, एक खिलावट जीवन की, एक अस्तित्व के फूल का खिल जाना--वह उसका मूल्य है।

अगर हम बुद्ध की कीमत लगाने जाएं, तो आइंस्टीन से कम लगेगी--कीमत, प्राइस। अगर दोनों को बेचना हो, तो बुद्ध को कौन खरीदेगा? आइंस्टीन को कोई भी खरीदेगा। क्योंकि आइंस्टीन की उपयोगिता है, एटम बम बना सकता है। यह बुद्ध को और उपद्रव बांध लेंगे। बन भी जाए, तो उसको काम में लाने में बाधा डालेंगे। इनको कोई खरीदेगा नहीं। आइंस्टीन की कीमत है। बुद्ध को तो तभी खरीदा जा सकता है, जब लोग मूल्य को समझते हों, वैल्यू को; प्राइस को नहीं। तब तो बुद्ध की खिलावट, उनका खिल जाना मूल्य है कि एक खिला हुआ आदमी है। आइंस्टीन, तो आइंस्टीन एक साधारण आदमी है। उपयोगिता को हटा दें, तो आइंस्टीन उतना ही साधारण है जितना कोई और। कोई और मूल्य नहीं है। वह क्या कर सकता है, उसमें मूल्य है। वह क्या है, इसमें मूल्य नहीं है। होने के मामले में तो दीन है; करने के मामले में वह कुछ कर सकता है। बुद्ध होने के मामले में बड़े समृद्ध हैं! करने के मामले में, करने का कोई सवाल ही नहीं है। वह न-करने में ठहर गए हैं।

लाओत्से कहता है, चूंकि निष्क्रियता परम स्थिति है, इसलिए करने का मूल्य कम करो और होने का मूल्य बढ़ाओ। जोर मत दो कि तुम क्या करते हो, जोर दो कि तुम क्या हो। इसकी फिक्र छोड़ो कि एक आदमी ने क्या-क्या किया; इसकी फिक्र करो कि एक आदमी क्या है। और उसका होना अपने आप में मूल्यवान है, किसी और कारण से नहीं।

अब बुद्ध को अगर हम कोई भी कारण से सोचें, तो मूल्य, कीमत के अर्थों में, हम कहां खोज पाएंगे? कहीं नहीं मिलेगा। लेकिन फिर भी ऐसा लगेगा कि हजार आइंस्टीन न हों और एक बुद्ध हों। क्यों ऐसा लगता है? इस लगने में क्या बात है? यह बुद्ध का होना इंट्रिंजिक वैल्यू है, आंतरिक मूल्य है। इसका बाजार में कोई मूल्य नहीं लग सकता।

ऐसी मजेदार घटना घटी। फरीउद्दीन अत्तार एक सूफी फकीर था। हमला हुआ और अत्तार को पकड़ लिया गया। तैमूर के लोगों ने अत्तार को बंद कर दिया। और जब अत्तार को वे बंद कर रहे थे हथकड़ियों में, तब राह से गुजरते एक आदमी ने पहचान लिया कि यह अत्तार है।

अत्तार बड़ा अदभुत आदमी था। अत्तार उसका नाम ही इसलिए पड़ गया था। एक तो इसलिए कि वह--सूफी फकीर ऐसा करते हैं कि अपने को छिपाने के लिए कुछ काम कर लेते हैं--तो वह इत्र बेचने का काम करता था। वह छिपाने के लिए, ताकि किसी को अकारण पता न चले कि वह क्या है। इतना ही जानें कि अत्तार है--इत्र बेचने वाला है। लेकिन जो उसे जानते थे, वे जानते थे कि वह इत्र है। वह सब फूल वगैरह के बाहर, आखिरी जो निचोड़ बच जाता है जीवन का, वही है।

वह आदमी पहचान गया कि यह तो फरीउद्दीन अत्तार है। तो उसने जाकर, जो लोग उसे कैद कर रहे थे, उनसे कहा कि मैं एक हजार दीनार, एक हजार सोने के सिक्के अभी देता हूं, इस आदमी को छोड़ दो। छोड़ने को वे तैयार हो गए। एक हजार स्वर्ण के सिक्के मिल रहे थे एक साधारण आदमी के।

अत्तार ने कहा, ठहरो! अगर तुम ठहरे, तो ज्यादा कीमत भी मिल सकती है। उन्होंने सोचा कि जब एक आदमी अचानक आकर एक हजार दे रहा है, ज्यादा देने वाले भी मिल सकते हैं। उस आदमी ने कहा कि मैं पांच हजार दे देता हूं, तुम छोड़ दो इस आदमी को। मैं दस हजार दे देता हूं... ।

लेकिन जैसे वह कीमत बढ़ती गई, वैसे उन्होंने समझा कि यह आदमी कोई साधारण नहीं है।

अत्तार ने कहा कि जरा धैर्य रखना, अभी और बड़े खरीददार भी आएंगे। तब तो उन्होंने कहा कि तुम कुछ भी दो, हम छोड़ने वाले नहीं हैं। वह आदमी दस हजार दीनार की बात कह कर चला गया।

फिर एक और आदमी आया। अत्तार ने कहा कि यह आदमी जो आ रहा है, अगर यह कोई भी मूल्य दे, तुम स्वीकार कर लेना। वह आदमी आया। वह एक घसियारा था, घास का एक बंडल लिए जा रहा था। सैनिकों ने उसे बुलाया और कहा कि तुम इस आदमी को खरीदना चाहते हो? उसने देखा; उसने कहा कि अच्छा ठीक है, यह घास का एक गट्ठर तुम ले लो और दे दो।

अत्तार ने कहा कि बिल्कुल दे दो इस आदमी को; यह ठीक उपयोगिता समझ गया है मेरी।

उन सैनिकों ने तो सिर पीट लिया कि तू आदमी पागल तो नहीं है!

अत्तार ने कहा कि वह आदमी मेरा मूल्य जानता था और फिर भी कीमत की बात कर रहा था; इसलिए मैंने रोका। ही निउ माई वैल्यू एंड वा.ज टार्किंग इन टर्म्स ऑफ प्राइस; इसलिए मैंने तुम्हें रोका। और यह आदमी, इसको मूल्य का कोई पता ही नहीं है। यह मुझे एक कमोडिटी समझता है। इसने मेरी तरफ देखा कि हां, घास वगैरह काटने के थोड़े-बहुत काम पड़ सकता है। यह मेरी उपयोगिता जानता है; वह आदमी मेरी उपयोगिता नहीं, उपयोगिता के पार जो मैं हूं, वह जानता था। इसलिए मैंने रोका। उस आदमी से दाम लेना ठीक नहीं। वह मेरी बहुत कम कीमत आंक रहा था। यह आदमी बिल्कुल ठीक कीमत आंक रहा है। ठीक प्राइस यह आदमी आंक रहा है। यही मेरी कीमत है। उपयोग तो मेरा कोई भी नहीं है। घास भी काट सकूंगा कि नहीं

काट सकूंगा, यह इसका अनुमान है। लेकिन वह आदमी मेरी गलत कीमत आंक रहा था, क्योंकि उसे मेरे मूल्य का पता था। वह कितनी ही कीमत तुमको कहता, मैं इनकार करता जाता कि इससे राजी मत होना।

जीवन का एक तो मूल्य है और एक कीमत है। लाओत्से कहता है, मूल्य तब प्रकट होगा, जब कीमतों का बाजार, शोरगुल बंद हो जाए। छोड़ो उपयोगिता, और चोर और लुटेरे अपने आप लुप्त हो जाएंगे।

क्योंकि हमने जिंदगी को एक बाजार बना दिया, एक दुकानदारी बना दी। उसमें सब चीजों की कीमत लगी हुई है। हर आदमी के माथे पर लिखा है, कितना दाम है, खरीद लो। किसी का थोड़ा कम होगा, किसी का थोड़ा ज्यादा होगा। लेकिन हर आदमी बिकाऊ है। हर चीज बिक रही है। यहां चोर और लुटेरे पैदा नहीं होंगे, तो क्या होगा! जहां सब चीजें बिकती हैं, वहां चोर और लुटेरे पैदा नहीं होंगे, तो क्या होगा!

चोर और लुटेरे का मतलब क्या है? चोर और लुटेरे का मतलब यह है कि उपयोगिता तो वे भी मानते हैं चीज की, सिर्फ उनके पास चुकाने को दाम नहीं हैं। तो वे बिना दाम के चीजें ले जाने की कोशिश करते हैं। और जहां सब चीजों के दाम हैं, और कुछ लोगों के पास दाम हैं और कुछ लोगों के पास दाम नहीं हैं, वहां कुछ लोग चोरी भी करेंगे, डाका भी डालेंगे।

लाओत्से कहता है कि बस मूल्य रह जाने दो, दाम हटा दो; फिर चोरी नहीं हो सकेगी। फिर चोरी नहीं हो सकेगी। चीजों का मूल्य रह जाने दो, दाम हटा दो।

इसे हम ऐसा समझें। अगर चीजों का मूल्य रह जाए और दाम हट जाएं, तो हीरे का कोई दाम होगा? मूल्य तो हीरे में बिल्कुल नहीं है। वैल्यू क्या है हीरे की? किसी भी पत्थर की जो वैल्यू है, वह हीरे की वैल्यू है। दाम बहुत है। हीरे की क्या है मूल्यवत्ता? लेकिन दाम बाजार में बहुत है। हीरे की चोरी होगी। जितनी चोरी हीरे की होगी, उतनी किसी चीज की न होगी। हीरा जिसके पास है, वह खतरे में है। चोरी होगी, हत्या होगी। क्यों आखिर?

हीरे में दाम आदमी की ईजाद है। हीरे में क्या है मूल्य? कोई भी मूल्य नहीं है। और अगर जंगल में आप पड़े हों और भूखे पड़े हों, और एक रोटी कोई दे दे, तो आप एक हीरा दे दें। और प्यास लगी हो और मरुस्थल में पड़े हों, और एक गिलास पानी कोई दे दे, तो आप हीरा दे दें। मूल्य तो बिल्कुल नहीं है। कीमत भी आदमी की बनाई हुई है, ईजाद की हुई है। और हमने हर चीज पर कीमत लगा दी है। मूल्यहीन मूल्यवान मालूम होता है। मूल्यवान मूल्यहीन मालूम होता है। हमारी कीमत की वजह से।

लाओत्से कहता है, हटाओ उपयोगिता, छोड़ो चालाकी; और चोर और लुटेरे अपने आप विदा हो जाएंगे।

अगर जीवन सहज हो और अगर जीवन मूल्य पर निर्भर हो, तो लाओत्से बिल्कुल ही ठीक कहता है, चोर और लुटेरे नहीं रह जाएंगे। चोर और लुटेरे पैदा ही इसलिए होते हैं कि हमने सारे जीवन को उपयोगिता की भाषा में बांध दिया। और जब जीवन एक उपयोगिता है, तो चोरी हो सकती है। मूल्य है, तो चोरी नहीं हो सकती। चोरी उन्हीं चीजों की हो सकती है, जो बाजार में हैं। और सारी जिंदगी बाजार में है। पांच हजार, दस हजार साल की निरंतर चेष्टा का परिणाम यह हुआ कि हर चीज बाजार में है। बाजार के बाहर कुछ भी नहीं है। और अगर बाजार के बाहर कुछ भी नहीं है, तो हमें स्वभाव का, सत्य का, आत्मा का कोई भी पता नहीं चल सकता है।

लाओत्से कहता है, गणित को हटा दो, कीमत को हटा दो, होशियारी को हटा दो, ज्ञान को हटा दो। यह न्याय, यह मानवता, यह नीति, यह सिद्धांत--ये हटा दो। और सहज हो जाओ। और जब वह कहता है कि नो दि सिंपल सेल्फ, तो वह यह नहीं कहता कि कोई तुम्हारे भीतर ब्रह्म विराजमान है, उसको जानो। वह कहता है,

इन बातों में मत पड़ो। जो भी सहज तुम्हारे भीतर चेतना की छोटी सी किरण है--जो भी, उसे बड़े नाम मत दो--उसकी तलाश करो, उसको खोज लो। और जिस दिन तुम अपने सहज झरने को पा जाओ जीवन के, तब उसके संगीत में ही लीन रहो। जिस दिन तुम अपने झरने को पा जाओ, तब उसी में बहो। जिस दिन तुम अपने भीतर का द्वार खोल लो, तब वही तुम्हारा मंदिर है।

यह जो भीतर छोटा सा छिपा हुआ राज है, यह जो सीक्रेट है, जिस दिन तुम्हारे हाथ में आ जाए, उस दिन तुम सम्राट की गरिमा को उपलब्ध हो जाते हो। और यह तभी उपलब्ध हो सकेगा, जब यह जो जाल तुमने अपने चारों तरफ खड़ा किया है, इसे तुम तोड़ने में सफल हो जाओ।

यह जाल बड़ा है। और इस जाल को हम रोज बढ़ाए चले जाते हैं, इसे बड़ा करते चले जाते हैं। धीरे-धीरे हमारा जो सहज जीवन का स्वर है, वह बिल्कुल खो जाता है। उसका हमें कोई पता ही नहीं रह जाता है।

आज इतना ही। फिर हम कल बात करेंगे। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और जाएं।

बयांलीसवां प्रवचन

आध्यात्मिक वासना का त्याग व सरल स्व का उदघाटन

Chapter 19 : Sutra 2

Realize Your Simple Self

As these touch the externals and are inadequate;
The people have need of what they can depend upon;
Reveal thy simple self,
Embrace thy original nature,
Check thy selfishness,
Curtail thy desires.

अध्याय 19 : सूत्र 2

स्वयं को जानो

लेकिन ये तीनों ही बाह्य हैं और अपर्याप्त हैं;
लोगों को संबल के लिए कुछ और भी चाहिए:
(इसके लिए) तुम अपने सरल स्व का उदघाटन करो,
अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो,
अपनी स्वार्थपरता त्यागो,
अपनी वासनाओं को क्षीण करो।

बुद्धिमत्ता और ज्ञान, मानवता और न्याय, चालाकी और उपयोगिता, इन सब को छोड़ देना नकारात्मक है। इनका छोड़ना जरूरी है, लेकिन काफी नहीं; आवश्यक है, लेकिन पर्याप्त नहीं। विधायक को भी प्रकट करना होगा, पाजिटिव को भी प्रकट करना होगा।

जैसे कोई बीमारियों को छोड़ दे, इतना स्वस्थ होने के लिए काफी नहीं है; जरूरी है। बीमारियां न हों, तो स्वस्थ होना आसान है। बीमारियां हों, तो स्वस्थ होना मुश्किल है। लेकिन बीमारियों का न होना ही स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य की अपनी विधायक स्थिति है। जैसे बीमारी में एक पीड़ा है, वैसे स्वास्थ्य में एक आनंद है। तो जब बीमारियां न हों, तो आप दुख के तो बाहर हो जाते हैं, लेकिन आनंद में प्रविष्ट नहीं हो जाते।

और दुख के बाहर हो जाना आनंद के साथ एक हो जाना नहीं है। ये दोनों पर्यायवाची नहीं हैं। आनंद एक आंतरिक कल्याण और मंगल और एक आंतरिक प्रफुल्लता का, अकारण प्रफुल्लता का अनावरण है।

लाओत्से ने जिन तीन बातों को कहा, वे बीमारियों की तरह हैं। सब बीमारियां बाहर से आती हैं, और स्वास्थ्य भीतर से। बीमारियां आक्रमण हैं और स्वास्थ्य स्वभाव है। हमारे शब्द स्वास्थ्य का भी मतलब यही होता है। स्वास्थ्य का अर्थ होता हैः स्वयं में स्थित हो जाना। तंदुरुस्ती में वह बात नहीं है और न अंग्रेजी के हेल्थ में वह बात है। स्वास्थ्य एक आध्यात्मिक शब्द भी है। उसका अर्थ है स्वयं में ठहर जाना।

इसे थोड़ा हम समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश बहुत आसान हो जाए। जब बीमारी होती है, तो आप अपने से बाहर चले जाते हैं। पैर में कांटा गड़ता है, तो सारी चेतना पैर के कांटे के पास घूमने लगती है। सिर में दर्द होता है, तो चेतना सिर के पास घूमने लगती है। शरीर में पीड़ा होती है, तो चेतना शरीर के आस-पास मंडराती है। जहां दुख होता है, जहां पीड़ा होती है, वहां चेतना को तत्काल दौड़ कर जाना पड़ता है।

इसलिए बीमार आदमी को समझना बहुत मुश्किल है कि वह शरीर नहीं है। बीमार आदमी को यह समझना बहुत मुश्किल है कि वह आत्मा है, शरीर नहीं। और अगर आप भी न समझ पाते हों, तो जानना कि आप बीमार हैं। इसलिए जो जितना बीमार होता है, उतना कम आत्मवादी रह जाता है, शरीरवादी हो जाता है। क्योंकि शरीर का ही पता चलता है रुग्णता में, आत्मा का कोई पता नहीं चलता। रुग्णता में सारा ध्यान ही रोग पर अटक जाता है, पीड़ा पर अटक जाता है। और रोगी मन की एक ही इच्छा होती है कि किसी तरह पीड़ा से छुटकारा हो जाए। आनंद मिले, ऐसी आकांक्षा नहीं होती; पीड़ा से छुटकारा हो जाए, इतना भी बहुत मालूम पड़ता है।

लेकिन पीड़ा से छूट जाना आनंदित हो जाना नहीं है। जैसे पीड़ा बाहर ले जाती है, ऐसे आनंद भीतर ले जाता है। एक आदमी अपने मकान के बाहर न जाए, रास्तों पर न भटके, दूर पृथ्वी पर न घूमे; लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि वह भीतर प्रविष्ट हो गया। वह अपने द्वार पर भी खड़ा रह जा सकता है। जो आदमी द्वार पर खड़ा है, वह बाहर भी नहीं है, वह भीतर भी नहीं है। जो आदमी दुख में नहीं है, वह द्वार पर खड़ा हो जाता है। दुख में भी नहीं है, आनंद में भी नहीं है। अगर भीतर जाए, तो आनंद में प्रवेश होगा; अगर बाहर जाए, तो दुख में प्रवेश होगा। दोनों के बीच में खड़ा हो जाए, तो सिर्फ उदास हो जाएगा। न वहां दुख का कोई खिंचाव रहेगा, न वहां आनंद का कोई नृत्य रहेगा; सिर्फ एक उदास तटस्थता पैदा हो जाएगी।

लाओत्से कहता है, अगर ये तीन बीमारियां छोड़ दी जाएं, जो कि जरूरी हैं छोड़ देनी, तो फिर भीतर प्रवेश हो सकता है। लेकिन इन तीन को छोड़ कर कोई यह न समझे कि मंजिल आ गई। यह सिर्फ नकार हुआ, निषेध हुआ। जो गलत था, वह हमने छोड़ा। लेकिन अभी सही को नहीं पा लिया। गलत को छोड़ देना ही सही को पा लेना नहीं है। सही का पा लेना अलग ही आयाम है, एक अलग ही यात्रा है। लेकिन जो गलत को पकड़े हैं, वे सही को न पा सकेंगे; हालांकि जिन्होंने गलत को छोड़ दिया, उन्होंने सही को पा लिया, ऐसा भी समझने का कोई कारण नहीं है। गलत को पकड़ा हुआ आदमी तो सही पाएगा ही नहीं; वह तो छोड़ना जरूरी है। लेकिन गलत को छोड़ कर ही कोई अगर ठहर जाए, तो भी सही को नहीं पा सकेगा।

इस सूत्र में लाओत्से जीवन की विधायकता, पाजिटिविटी, वह जो आंतरिक स्वास्थ्य है, उसे प्रकट करने की बात करता है।

"लेकिन ये तीनों ही बाह्य और अपर्याप्त हैं; लोगों को संबल के लिए भी कुछ चाहिए।"

असल में, इन तीनों को लोग पकड़ते ही इसलिए हैं कि लोगों को संबल चाहिए, सहारा चाहिए। और जब हम उनके संबल छीनते हैं, तो उन्हें कठिनाई होती है। क्योंकि बिना सहारे के वे कैसे रहेंगे? एक आदमी ज्ञान इकट्ठा करने के लिए जी रहा है। ज्ञान इकट्ठा होता जाता है; और वह आदमी सोचता है, मैं बढ़ रहा हूं, विकसित हो रहा हूं, कुछ पा रहा हूं। यह उसका संबल है। एक आदमी मानवता, नीति, न्याय, धर्म के लिए जीता है, सेवा करता है; वह उसका संबल है। एक आदमी उपयोगिता के लिए, धन के लिए, यश के लिए, पद के लिए जीता रहता है; वह उसका संबल है। ये सारे लोग एक सहारे को लेकर जी रहे हैं।

और लाओत्से कहता है, तीनों को छोड़ दो। बेसहारा होने की बड़ी कठिनाई है। फिर हमें ऐसा लगेगा, फिर जीएं कैसे? फिर करें क्या? गलत छोड़ दिया, हाथ खाली हो जाते हैं। तो लाओत्से कहता है, इन खाली हाथों को किसी संबल की जरूरत है। लेकिन अगर वह संबल भी बाहर का हुआ, तो इन तीन जैसा ही होगा। वह संबल आंतरिक होना चाहिए। वह अपना ही होना चाहिए, निज का होना चाहिए।

इसलिए कहता है, "इसके लिए तुम अपने सरल स्व को उदघाटित करो, अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो, अपनी स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"

इनमें से एक-एक हिस्से को हम समझें: "अपने सरल स्व को उदघाटित करो।"

जब बाहर से हाथ खाली हो गए हों और चेतना के लिए बाहर कोई विषय, कोई आब्जेक्ट न रह गया हो, तो चेतना की पूरी धारा स्व पर गिराई जा सकती है। जब आंखें बाहर न देखती हों, तो आंखों की देखने की पूरी क्षमता भीतर घुमाई जा सकती है। और जब प्राण बाहर कुछ पाने को आतुर न हों, तो प्राणों की सारी गत्यात्मकता, उनकी सारी ऊर्जा भीतर की यात्रा पर संलग्न की जा सकती है।

स्व के उदघाटन का अर्थ हैः तुम्हारी सारी इंद्रियां जो अब तक बाहर की यात्रा पर थीं, तुम्हारा सारा मन जो अब तक किसी दूर की चीज को पाने के लिए लालायित था, तुम्हारा ध्यान जो अब तक स्वयं को छोड़ कर और सब चीजों के पीछे भागता था, उसे अब अपने पर ही नियोजित करो। इसे हम ऐसा समझें। अगर ये तीन चीजें छूट गई हों, तो ही इसे समझना और करना संभव हो पाएगा।

आंख बंद करके आप बैठते हैं, लेकिन चीजें तो बाहर की ही दिखाई पड़ती रहती हैं। आंख भी बंद है, लेकिन दिखता तो संसार ही है। आंख बंद है, तो भी भीतर तो कुछ नहीं दिखता। बाहर की ही छबियां, बाहर के ही चित्र दिखाई पड़ते रहते हैं। कान भी बंद कर लें, तो भी आवाज बाहर की ही सुनाई पड़ती है। ध्यान को बाहर से खींच लें, तो भी ध्यान बाहर ही भागता रहता है। वह तीन चीजों के कारण! वे जो तीन हमारे बाहर के संबल हैं, वे अभी टूटे नहीं हैं। बार-बार निरंतर अभ्यास के कारण, सतत जन्मों-जन्मों की आदत के कारण मन वहीं-वहीं भाग जाता है।

लाओत्से कहता है, ये तीन टूट जाएं, तो फिर सारी इंद्रियों को भीतर प्रवेश दिलाया जा सकता है।

आंख बंद करके बैठें और एक ही बात ख्याल रखें, बाहर की कोई चीज नहीं देखेंगे। आएंगे चित्र बाहर के, आदत के कारण, तो जानते रहें कि ये चित्र बाहर के हैं और मैं देखने को राजी नहीं। मेरी तैयारी देखने की नहीं है। मेरा कोई रस नहीं है, मेरा कोई आकर्षण नहीं है। अगर आप इतना कर सकें कि भीतर पहले रस का संबंध तोड़ लें बाहर के चित्रों से, तो शीघ्र ही आप पाएंगे, बाहर के चित्र आने कम हो गए। वे आते ही इसलिए हैं कि आप बुलाते हैं।

मन में कोई भी मेहमान बिना बुलाया हुआ नहीं है। मन में कोई भी अतिथि ऐसे ही नहीं आ गया है, जबर्दस्ती नहीं आ गया है। आपका निमंत्रण है। हो सकता है, निमंत्रण देकर आप भी भूल गए हों। हो सकता है,

निमंत्रण देकर आप बदल गए हों। हो सकता है, आपको ख्याल भी न हो कि कब किस अचेतन क्षण में निमंत्रण दिया था। लेकिन आपके मन में जो भी आता है, वह आपका बुलाया हुआ है। और आपके मन में एक भी घटना ऐसी नहीं घटती, जिसके लिए आपके अतिरिक्त कोई और जिम्मेवार हो।

अगर रात सपने में आप हत्याएं करते हैं, बलात्कार करते हैं, तो वे आपने करने चाहे हैं इसीलिए! अपने से भी छिपा लिया होगा, खुद को भी धोखा दे दिया होगा। और सुबह उठ कर आप कहते हैं, सिर्फ सपने थे। सपनों का क्या? लेकिन सपने आपके हैं। और सपने अकारण नहीं हैं। और सपने बुलाए हुए हैं; सपने निर्मित हैं; आपने ही सिरजे हैं। इसलिए सपनों का क्या, ऐसा कभी मत कहना। सपने आपकी झलक हैं, आपकी खबर हैं, आपके मन की पर्तों की खबर हैं। यह मन है आपके पास। दिन में आप इसे झुठला देते हैं, रात यह मन फिर काम करने लगता है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर सपने न आएं, तो आप पागल हो जाएंगे। और ठीक कहते हैं। क्योंकि सपने में, दिन भर में जो-जो आप छिपा लेते हैं, दबा लेते हैं, रात उसका निकास हो जाता है, रेचन, कैथार्सिस हो जाती है। पहले हम सोचते थे कि अगर एक आदमी को ज्यादा दिन तक न सोने दिया जाए, तो वह पागल हो जाएगा। लेकिन अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, असली कारण नींद की कमी के कारण आदमी पागल नहीं होता, नींद न आए तो सपने नहीं देख पाता, इसलिए पागल हो जाता है। और उन्होंने बहुत प्रयोग किए हैं और अब यह एक प्रमाणित सत्य है।

रात में आप कई दफे सपने देखते हैं। कोई बारहशृंखलाएं होती हैं सपनों की रात में। आप बारह बार सपने में प्रवेश करते हैं। बीच-बीच में छोटे-छोटे समय में आप सपने के बाहर होते हैं और नींद में होते हैं। तो वैज्ञानिकों ने इस पर प्रयोग किए हैं सैकड़ों लोगों पर। क्योंकि अब बाहर से जाना जा सकता है कि कब आप सपना देखते हैं और कब आप सपना नहीं देखते; आपकी आंख की गति बता देती है। तो आपकी आंख की गति को नापने का यंत्र लगा रहता है। जब आप सपना देखते हैं, तो आपकी पुतली वैसे ही चलने लगती है जैसे फिल्म को देखते वक्त चलती है। क्योंकि सपना एक फिल्म है। आपकी पुतली की गति बता देती है कि आप देख रहे हैं सपना। जब फिल्म नहीं चलती, सपना नहीं होता, पुतली ठहर जाती है। तो पुतली की गति बता देती है कि कब आदमी सपना देख रहा है, कब सपना नहीं देख रहा है।

तो वैज्ञानिकों ने लोगों को सुला कर महीनों, वर्षों तक प्रयोग किए हैं। जब आदमी सपना देख रहा है, तब उसको रोक देना, जगा देना; जब भी रात में सपना देखे, तब उसे जगा देना। सात दिन में वह आदमी पागल होने के करीब पहुंचने लगता है। जब सपना न देखे, नींद ले रहा हो, तब जगाना सात दिन तक। कोई असर नहीं होता, बिल्कुल स्वस्थ रहता है; कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो वैज्ञानिक कहते हैं कि असली कारण, नींद की कमी से कोई परेशान नहीं होता। परेशान होता है सपने न देख पाने से। क्योंकि दिन भर में जो कचरा आपने इकट्ठा किया है अचेतन में, वह अगर न निकल पाए, इकट्ठा होता चला जाए, तो वही आपकी विक्षिप्तता बन जाएगा।

सपने अकारण नहीं हैं। आपके हैं, आप ही हैं आपके सपनों में। तो अगर आप आंख बंद करते हैं और चित्र आने शुरू हो जाते हैं, तो आपका रस है उनमें, इसलिए आते हैं।

रस को तोड़ दें। पहला काम रस तोड़ने का करें। रस-भंग करना पहला काम है। इस स्व उदघाटन के लिए, रस-भंग पहला काम है। चित्र आएं, देखें, रसहीन हो जाएं, निष्क्रिय हो जाएं, पैसिव हो जाएं। देखते रहें कि ठीक है। जैसे एक आदमी फिल्म देख रहा हो और अभी-अभी डाक्टर ने उसको आकर कहा हो कि तुम्हारी जांच

से पता चला कि कैंसर की ही बीमारी तुम्हें है। अब भी वह फिल्म देखता रहेगा; लेकिन सब रस खो गया। अब भी चित्र की तस्वीर चलती रहेगी पर्दे पर और आंखें देखती रहेंगी; लेकिन भीतर सब खो गया। ऐसे ही जिस व्यक्ति को इन तीन चीजों से अपना तोड़ना हो जाएगा, उसका रस खो जाएगा। पुरानी आदत से चित्र चलेंगे, लेकिन रस नहीं होगा।

विरस हो जाएं चित्रों में। और जैसे ही यह विरसता बढ़ेगी, चित्र कम होते जाएंगे, बीच में गैप और अंतराल आने लगेंगे। और जब अंतराल आएगा, तब आप अचानक पाएंगे कि आपका ध्यान अपने पर पड़ रहा है, आपकी ज्योति स्वयं के ऊपर पड़ रही है, आपका दीया आपको उदघाटित कर रहा है। यह दीया वही है जिसने दूसरों को उदघाटित किया था अब तक। जब दूसरे मौजूद नहीं होते, तो दीए की ज्योति स्वयं पर पड़नी शुरू हो जाती है।

कान बंद करके बैठ जाएं, आवाजें बाहर की ही सुनाई पड़ेंगी, मित्रों से हुई बातचीत के टुकड़े कानों में तैर जाएंगे, कोई गीत की कड़ी गूंज उठेगी। विरस होकर सुनते रहें, रस न लें। कड़ी कान में गूंजे, लेकिन आपके भीतर अनुगूंज न पैदा हो, आप उसे गुनगुनाने न लगें। कान में ही गूंजे, आप न गुनगुनाएं, आप बेरस होकर सुनते रहें। थोड़ी देर में कान शांत हो जाएंगे, थोड़े दिन में कान शांत हो जाएंगे। जिस दिन कान बिल्कुल शांत होंगे, बाहर की कोई आवाज न होगी, उस दिन भीतर का सन्नाटा पहली दफा कानों में सुनाई पड़ने लगेगा।

प्रत्येक इंद्रिय को भीतर की तरफ मोड़ा जा सकता है। सुगंध! भीतर की भी एक सुगंध है, उसका हमें कोई पता नहीं। शायद वही असली सुगंध है। लेकिन बाहर की सुगंधें हमारे नासापुटों को भर देती हैं। फिर हमें याद ही नहीं रहता कि कोई आत्मा की भी सुगंध है, कोई सुवास भीतर की भी है। सारी इंद्रियों का अनुभव भीतर हो सकता है। क्योंकि--इंद्रियों को ठीक से समझ लें--इंद्रियां दोहरे रास्ते हैं, डबल-वे ट्रैफिक हैं। इंद्रिय आपसे भी जुड़ी है भीतर और बाहर संसार से भी जुड़ी है। इसीलिए तो संसार की खबर आप तक लाती है। आपसे न जुड़ी हो, तो संसार की खबर आप तक नहीं आ सकती। लेकिन हम इंद्रियों का उपयोग वन-वे ट्रैफिक की तरह कर रहे हैं। हम सिर्फ संसार की ही खबरें ले रहे हैं। हमने उनसे भीतर की कभी कोई खबर नहीं ली।

लाओत्से कहता है, सहज स्व का उदघाटन करें।

जैसे प्रकृति का उदघाटन हुआ है, जैसे बाहर आकाश दिखाई पड़ा है, चांद-तारे दिखाई पड़े हैं, फूल खिले हैं, बाहर चेहरे दिखाई पड़े हैं, यह विराट विस्तार बाहर का अनुभव हुआ है; ठीक ऐसा ही विराट गहन विस्तार भीतर भी है। ध्यान को रूपांतरित करना पड़े। यह जो बाहर गया ध्यान है, इसे भीतर बुला लेना पड़े--अपने घर की ओर वापसी। उस वापसी यात्रा का जो पड़ाव है आखिरी, वहां स्वयं का बोध, स्वयं का ज्ञान, उदघाटन--जो भी हम कहना चाहें, कहें।

"इसके लिए तुम अपने सहज स्व का उदघाटन करो।"

सहज लाओत्से छोड़ता नहीं। लाओत्से की सहज पर वैसी ही पकड़ है, जैसी कबीर की। कबीर कहते हैंः साधो, सहज समाधि भली। कबीर के सारे गीतों में सहज की वही पकड़ है, जो लाओत्से की सहज पर है। इस सहज शब्द को भी हम ध्यान में ले लें।

स्व की कोई धारणा अगर बना कर कोई भीतर जाए, तो वह सहज स्व न होगा। समझें, मैं आपके पास आऊं मिलने और आपके संबंध में कोई धारणा पहले से बना कर आऊं, तय कर लूं कि भले आदमी हैं, साधु हैं, सज्जन हैं, ऐसी कोई धारणा लेकर आऊं। तो आपको मैं अपनी धारणा की ओट से देखूंगा। और जो भी मुझे आप दिखाई पड़ेंगे, वह आपका सहज रूप न होगा। उसमें मेरी धारणा मिश्रित हो जाएगी। हो सकता है, आप मुझे

बहुत बड़े साधु मालूम पड़ें। वैसे आप हों न, सिर्फ मेरी धारणा की ही अतिशयोक्ति हो। क्योंकि जब मैं तय करके आता हूं कि आप साधु हैं, तो मैं आपमें वही देखता हूं, जो मेरी धारणा को सिद्ध करे। मेरा चुनाव शुरू हो जाता है। आपमें जो गलत है, वह फिर मुझे दिखाई नहीं पड़ेगा। आपमें जो ठीक है, वह दिखाई पड़ेगा। और ठीक को मैं इकट्ठा करता जाऊंगा। और मेरी धारणा मजबूत होगी, फैलेगी, फूल जाएगी। मेरे भीतर आप एक बड़े साधु की तरह प्रकट होंगे। वह आपकी सहजता हो या न हो, यह दूसरी बात है।

मैं पहले से ही तय करके आता हूं कि आप बुरे आदमी हैं, मैं आप में से बुरे को चुन लूंगा। जब हम धारणा से देखते हैं, तो हम चुनाव करते हैं। सत्य फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता। फिर सत्य में से हम चुन लेते हैं, जो हमारे अनुकूल हो। अगर बुद्ध के संबंध में भी कोई आपसे कह दे कि वे आदमी बुरे हैं और आपकी धारणा मजबूत हो जाए, फिर आप बुद्ध के पास जाएं, आपको बुद्ध का कोई पता नहीं चलेगा। आप अपने ही बुरे आदमी को सिद्ध करके वापस लौट आएंगे। मनुष्य की बड़ी से बड़ी कठिनाई यही है कि वह जो मान लेता है, वह सिद्ध भी हो जाता है। वह जो विश्वास कर लेता है, वह तथ्य भी बन जाता है। हमारे विश्वास ही हमें सत्य की तरह प्रतीत होने लगते हैं। और हम सब धारणाएं बना कर चलते हैं। हम अपने संबंध में भी धारणा बना कर चलते हैं।

लाओत्से या कबीर या सहज की जिनकी धारणा है, वे सब कहते हैं कि सहज स्व का उदघाटन का अर्थ है कि तुम इस भीतर के सत्य के संबंध में कोई धारणा बना कर मत जाना। नहीं तो उसी धारणा का तुम अनुभव कर लोगे। एक आदमी सोच कर जाता है कि वहां ऐसा होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा। ऐसा मान कर जाता है। फिर वैसा होने लगेगा। वह होना सत्य नहीं है। वह उसकी अपनी ही धारणा का खेल है। वह उसके अपने मन का ही प्रपंच है। वह उसकी ही लीला, उसका ही विस्तार है।

और हम सभी लोग आत्मा के संबंध में धारणा बना कर बैठे हुए हैं। कोई आदमी मान कर बैठा हुआ है कि आत्मा का ऐसा रूप होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसा रंग होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसा अनुभव होगा; कोई मान कर बैठा है, ऐसी प्रतीति होगी। उन मान्यताओं को लेकर अगर आप अपने भीतर गए, तो आपको जो प्रतीति होगी, वह आत्मा की नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, इस स्व के संबंध में कोई धारणा मत बनाना, कोई कंसेप्शन लेकर मत जाना, खाली जाना। खाली आंख लेकर जाना। आंख पर कोई चश्मा लगा कर मत जाना। अन्यथा आत्मा में वही रंग दिखाई पड़ने लगेगा, जो चश्मे का रंग है।

इसीलिए तो दुनिया में इतने धर्मों के लोग और इतने अलग-अलग तरह के अनुभव को उपलब्ध हो जाते हैं। वे अनुभव वास्तविक नहीं हैं। उनकी आंखों के रंग हैं, वे ही रंग वे देख लेते हैं अपने भीतर भी। और भीतर की एक कठिनाई है कि वहां आप अकेले ही जा सकते हैं। इसलिए कोई के साथ आप चेक नहीं कर सकते, किसी के साथ आप तुलना नहीं कर सकते। और किसी से आप पूछ नहीं सकते कि यह सही है या गलत है। अगर आप बाजार में जाएं और कोई चीज आपको पीली दिखाई पड़ती हो और किसी को पीली न दिखाई पड़ती हो, तो आपको शक हो सकता है कि शायद आपको पीलिया हो गया हो। लेकिन भीतर की दुनिया में आप अकेले हैं; वहां धारणा बड़ी खतरनाक है। क्योंकि दूसरे से कोई तुलना नहीं हो सकती। वहां दूसरा कुछ भी नहीं कह सकता कि आपको क्या दिखाई पड़ता है और क्या दिखाई नहीं पड़ता। वहां आप निपट अकेले हैं।

उस निपट अकेलेपन के कारण रत्ती-रत्ती धारणा को छोड़ कर ही भीतर जाना जरूरी है। नहीं तो वहां फिर भ्रांति को सुधारने का कोई भी उपाय नहीं है। बाहर के जगत में तो हम दूसरों से भी तौल कर सकते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर शराबघर में गया है। दोनों शराब पीते हैं और मुल्ला ज्ञान भी देता जाता है। अपने बेटे से कहता है कि हमेशा रुक जाना चाहिए शराब पीने से। सीमा तुझे बता देता हूं। इस सीमा के आगे कभी मत बढ़ना। देख, उस टेबल पर दो आदमी बैठे हुए हैं। जब वे चार दिखाई पड़ने लगें, तब रुक जाना चाहिए। उसके बेटे ने टेबल की तरफ देखा और उसने कहा, वहां एक ही बैठा हुआ है!

नसरुद्दीन आगे खुद ही जा चुके हैं, एक उन्हें दो दिखाई पड़ने लगा है। और वे बेटे को समझा रहे हैं कि जब दो चार दिखाई पड़ने लगें।

लेकिन यहां उपाय है कि बेटा देख सका कि एक ही आदमी है वहां। बाहर के जगत में उपाय है कि हम तौल सकें, इसलिए विज्ञान नियम निर्धारित कर पाता है। धर्म नियम निर्धारित नहीं कर पाता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अकेला प्रवेश करता है। और ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं इस पृथ्वी पर, जो धारणाशून्य होकर प्रवेश करते हैं। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई लाओत्से, कभी मुश्किल से कोई आदमी धारणाशून्य होकर प्रवेश करता है। नहीं तो हिंदू की तरह ही आप भीतर चले जाते हैं, मुसलमान की तरह भीतर चले जाते हैं, ईसाई की तरह भीतर चले जाते हैं। आप धारणाओं का सारा बोझ लेकर भीतर चले जाते हैं। सारी शिक्षाएं और सारा दृष्टिकोण साथ लेकर चले जाते हैं। फिर आप भीतर वही देख लेते हैं, जो आपकी दृष्टि ने मान रखा है। भीतर भ्रम के बड़े उपाय हैं; क्योंकि दूसरा वहां कोई भी नहीं है।

इसलिए लाओत्से जोर देकर बार-बार कहता हैः सहज स्व। सहज से उसका मतलब हैः धारणारहित देखा गया, धारणाशून्य देखा गया। लाओत्से तो कहेगा, तुम यह भी मान कर भीतर मत जाना कि वहां आत्मा है। इसको भी मान कर मत जाना। क्योंकि यह मानना भी एक धारणा है।

बुद्ध से कोई पूछता है आकर कि आत्मा है या नहीं? तो बुद्ध कहते हैं, तुम जाओ भीतर और जानो। अगर मैं कहूं नहीं है, तो भी गलत होगा; अगर मैं कहूं है, तो भी गलत होगा। उस आदमी ने कहा, दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? दो में से एक गलत हो सकता है। दोनों कैसे गलत हो सकते हैं? बुद्ध ने कहा, दोनों ही गलत होंगे। क्योंकि दोनों ही हालत में मैं तुम्हें एक धारणा दे दूंगा अनुभव के पहले, एक दृष्टि दे दूंगा। अगर तुम मान कर भीतर गए कि आत्मा है, और आत्मा न भी हो, तो तुम अनुभव कर लोगे। और अगर तुम मान कर ही चले कि आत्मा नहीं है, तो आत्मा हो भी, तो तुम्हें उसकी कोई खबर न मिलेगी।

आदमी अपनी ही धारणाओं में बंध जाता है; धारणाओं के कैप्सूल में बिल्कुल बंद हो जाता है। फिर बाहर निकलने का उपाय नहीं रह जाता। बड़े से बड़ा कारागृह धारणाओं का कारागृह है। तो लाओत्से तो कहेगा, बुद्ध कहेंगे कि तुम यह भी मत मानो कि आत्मा है। तुम मानो ही मत कुछ। तुम सिर्फ भीतर जाओ; जो हो, उसे जान लेना; जो मिले, उसे देख लेना। उस अपरिचित को तुम पहले से परिचित मत बनाओ। और उस अज्ञात को तुम ज्ञान के आवरण मत दो। और जो अनजाना है, उसे अनजाना ही रहने दो। इसके पहले कि तुम जानो, उसके संबंध में कुछ भी जानना उचित नहीं है। सहज स्व का यह अर्थ है।

इसलिए बुद्ध ने ईश्वर, आत्मा, इनकी बात ही नहीं की। बहुत लोगों को बुद्ध नास्तिक मालूम पड़े। स्वाभाविक था मालूम पड़ना। लगा कि यह आदमी महा नास्तिक है, क्योंकि आत्मा तक को नहीं मानता। ईश्वर को न माने, तब तक भी चल सकता है, कम से कम आत्मा को तो माने। यह आदमी आत्मा तक को नहीं मानता। बुद्ध कहते थे, मैं सिर्फ शून्य को मानता हूं।

बड़े मजे की बात है, शून्य की आप कोई धारणा नहीं बना सकते। या कि बना सकते हैं? अगर आप शून्य की धारणा बना सकते हैं, तो वह शून्य न होगा। जिसकी धारणा बन जाए, वह वस्तु है। शून्य का कोई आकार है

कि आप धारणा बना लेंगे? आप परमात्मा की धारणा बना सकते हैं। बना ली हैं हमने। इतनी मूर्तियां निर्मित की हैं, इतने आकार निर्मित किए हैं। आत्मा की धारणा आप बना लेंगे।

हमने धारणाएं बनाई हैं और बड़ी मजेदार धारणाएं तक बनाई हैं। कोई मानता है कि आत्मा अंगूठे के आकार की है। कोई मानता है कि आत्मा ठीक शरीर के आकार की है। कोई मानता है कि आत्मा का तरल आकार है। तो जैसे शरीर में प्रवेश करती है, वैसे ही आकार की हो जाती है। जैसे पानी को गिलास में डाला, तो गिलास; और लोटे में डाला, तो लोटे का आकार ले लिया। ऐसे ही आत्मा लिक्विड है। आदमी के शरीर में होती है, तो आदमी के शरीर की होती है; चींटी के शरीर में चली जाती है, तो चींटी के शरीर जैसी हो जाती है; हाथी के शरीर में चली जाती है, तो हाथी के शरीर जैसी हो जाती है।

लेकिन शून्य की क्या धारणा? शून्य का अर्थ ही है कि जिसकी कोई धारणा न बना सके।

तो बुद्ध ने कहा, अगर तुम मेरा भरोसा, मेरा विश्वास, मेरी श्रद्धा ही पूछते हो; तो मेरी श्रद्धा सिर्फ एक चीज में है--शून्यता, एम्पटीनेस। क्यों मेरी आस्था शून्यता में है? क्योंकि तुम इसकी धारणा न बना सकोगे। तो मैं तुमसे कहता हूं कि भीतर तुम्हारे आत्मा है या नहीं, मुझे पता नहीं। शून्य जरूर है। तुम उस शून्य में प्रवेश कर जाओ। मुझसे मत पूछो कि कैसा शून्य? क्योंकि शून्य कैसा नहीं होता। शून्य का अर्थ ही है कि जिसके बाबत कुछ भी न कहा जा सके। जो है ही नहीं, तो कहा कैसे जा सकेगा? जिसका कोई रंग नहीं है, आकार नहीं है, रूप नहीं है।

लाओत्से कहता है, सहज स्व का उदघाटन करो।

छोड़ो धार्मिकों की बातें, जिन्होंने कहा है कि आत्मा ऐसी है और वैसी है। छोड़ो पंडितों की बातें, जिन्होंने निरूपण किया है कि आत्मा कैसी है और कैसी नहीं है। सब धारणाएं छोड़ो। आत्मा के संबंध में जो भी तुम्हारे ख्याल हैं, वे छोड़ दो; और भीतर प्रवेश करो, ताकि जो है, उसका उदघाटन हो सके। और जो है, उसका उदघाटन तभी होता है, जब हम उसके संबंध में कोई बिना विचार लिए भीतर प्रवेश करते हैं।

"तुम अपने सरल स्व का उदघाटन करो, अपने मूल स्वभाव का आलिंगन करो।"

पूछो मत किसी से कि तुम्हारा स्वभाव क्या है? पूछने गए कि भटके। पूछने गए कि किसी ने तुम्हारी धारणा बना दी। पूछने गए कि उलझे। आलिंगन ही करो। पूछने मत जाओ, सोचने मत जाओ, खोजने मत जाओ। उतर ही जाओ भीतर उसमें। स्वाद ही ले लो उसका।

बुद्ध ने कहा है, सागर को कोई कहीं से भी चखे, वह नमकीन है। कोई किसी युग में, किसी काल में, किसी स्थान में सागर को चखे, वह नमकीन है। उस भीतर के शून्य को जब भी कोई चखता है, जब भी उसका स्वाद लेता है, तो उसका स्वाद एक ही है। लेकिन वह स्वाद गूंगे का गुड़ है, उसे कहा भी नहीं जा सकता। क्योंकि आदमी के पास कोई शब्द नहीं है उसे बताने को कि वह स्वाद मीठा है या नमकीन है या कैसा है। वह स्वाद इतना बड़ा है कि हमारे सब शब्द छोटे पड़ जाते हैं। तो पूछने मत जाओ। उतर ही जाओ स्वयं में। जो निकट है, उसका आलिंगन ही कर लो। उसमें डूब जाओ।

लेकिन हम उसे भी खोजने बाहर जाते हैं। अगर हमें आत्मा भी खोजनी है, तो भी हम बाहर जाते हैं। हमें अपने को भी खोजना है, तो भी हम किसी से पूछते हैं। अपना पता भी हमें दूसरे से ही पूछना पड़ता है। अपनी खबर भी हमें दूसरे से ही पूछनी पड़ती है। इससे ज्यादा बेहोशी और क्या हो सकती है?

लेकिन जब भी हम दूसरे से पूछने जाएंगे, हमारे स्व का जो अनुभव है, वह मिश्रित हो जाएगा। और जब भी हम दूसरे को मान लेंगे... । और दूसरे को मानने की बड़ी इच्छा होती है अज्ञान में; क्योंकि सस्ता मिलता है

ज्ञान, मुफ्त मिलता है। कोई दे देता है और हम ले लेते हैं। अपना ज्ञान पाना हो, तब तो श्रम और तप और यात्रा करनी पड़ती है। किसी का कहा हुआ, तो कोई अड़चन नहीं। मुफ्त मिल जाता है, हम स्वीकार कर लेते हैं।

यह जो दूसरे से पूछ-पूछ कर हमने अपने संबंध में जान रखा है, यह काम नहीं पड़ेगा, अगर सत्य की खोज करनी है। इसे हटा ही देना पड़ेगा। निर्भार हो जाना जरूरी है समस्त धारणाओं से। और भीतर ऐसे प्रवेश करना है, जैसे एक अचानक आपकी नौका डूब गई और आप एक अज्ञात द्वीप पर पहुंच गए, जहां का आपको कुछ भी पता नहीं है, कोई नक्शा आपके पास नहीं है। एक-एक कदम रख कर ही खोजना पड़ेगा कि क्या है? जहां का आपको कोई भी पता नहीं है, ऐसे अज्ञात द्वीप पर राबिन्सन क्रूसो की तरह आप गिर गए। एक-एक कदम रख कर ही पता चलेगा--क्या है?

सहज स्व का अर्थ हैः वहां पहुंचें बिना नक्शे लिए, बिना शास्त्र लिए, अज्ञात द्वीप पर पहुंच जाएं और एक-एक कदम चलें और खोजें, तो ही जैसी स्थिति है भीतर, वह प्रतीत होगी, उसका स्वाद मिलेगा। अन्यथा बड़े मजे हैं, स्वाद भी सजेस्ट किए जा सकते हैं। स्वाद भी झूठे हो सकते हैं। स्वाद भी बाहर से निर्मित किए जा सकते हैं।

अगर आपने कभी किसी हिप्नोटिस्ट को प्रयोग करते देखा हो... । न देखा हो, तो घर में अपने बच्चों पर प्रयोग करके देख सकते हैं। एक बच्चे को सुला दें और पांच मिनट उसको कहते रहें कि वह गहरी बेहोशी में डूब रहा है, गहरी बेहोशी में डूब रहा है। बच्चे तो सरल होते हैं; पांच मिनट में वह मान लेगा कि डूब रहा है, डूब रहा है; वह डूब जाएगा। और बच्चे ही नहीं, सौ में से तीस प्रतिशत लोग सरलता से सम्मोहित हो जाते हैं। अगर आप दस आदमियों को पकड़ कर सम्मोहित करें, तो तीन को सम्मोहित करने में कोई भी सफल हो जाएगा। कोई भी। इसमें किसी कला की और किसी शक्ति की कोई जरूरत नहीं है। दस में से तीन आदमी सम्मोहित होने को तैयार ही हैं।

एक बच्चे को लिटा दें और कहें कि बेहोश होता जा रहा है। पांच मिनट में वह बेहोश हो जाएगा। फिर उसके मुंह के पास प्याज ले जाएं और कहें कि एक सेव का टुकड़ा तुम्हारे मुंह में डाल रहे हैं, बहुत स्वादिष्ट है। और प्याज उसके मुंह में डाल दें। और वह बच्चा कहेगा कि बहुत स्वादिष्ट सेव है। उसको प्याज की बास भी नहीं आएगी। उसे स्वाद सेव का ही आएगा।

लेकिन आप सोचते होंगे कि यह तो खैर सम्मोहन की बात हुई। लेकिन आपने जब कभी पहली दफा सिगरेट पी थी, तो आपको कैसा स्वाद आया था, ख्याल है? लेकिन जब इतने लोग पी रहे हैं, तो जरूर स्वाद अच्छा आ ही रहा होगा। यह सम्मोहन है। आपने जब पहली दफा काफी पी थी, तो आपको स्वाद कैसा आया था?

लेकिन स्वाद को पैदा करने वाले कहते हैं कि स्वाद कल्टीवेट करना होता है। काफी पहली दफा पीएंगे, तो तिक्त लगेगी ही, कड़वी लगेगी ही। इसमें काफी का कसूर नहीं है; आप असंस्कृत हैं, अनकल्चर्ड हैं। स्वाद कल्टीवेट हो जाएगा। पीते रहें! महीने, दो महीने में काफी के बिना जीना मुश्किल हो जाएगा। काफी स्वादिष्ट मालूम होने लगेगी। क्या हुआ महीने भर में बार-बार पीकर? आपने अपने को ही सम्मोहित कर लिया। और काफी के एडवरटाइजमेंट करने वालों ने आपको सम्मोहित कर दिया। और आपसे पहले जो सम्मोहित हो चुके हैं, उन्होंने भी आपको दीक्षा में सहायता दी और आपको सम्मोहित कर दिया। अब आपको काफी बड़ी स्वादिष्ट मालूम पड़ती है।

वह जो स्वाद है, झूठा है। वह स्वाद सच्चा नहीं है। भीतर का स्वाद भी झूठा हो सकता है। इसीलिए लाओत्से कहता है कि सहज स्व का आलिंगन करना। भीतर का स्वाद भी झूठा हो सकता है।

आप किसी महावीर के प्रभाव में आ गए। और महावीर जैसे व्यक्तियों का प्रभाव तो है ही। उनसे प्रभावित हो जाना जरा भी कठिन नहीं है। उनसे प्रभावित न होना ही कठिन है। फिर उनका आनंद और उनका संगीत और उनकी सुगंध, उस सब में डूब गए। फिर उनके शब्द, वे पकड़ लिए। फिर उन शब्दों को पकड़ कर आप भीतर गए। आपको भी वही स्वाद आ सकता है। लेकिन वह स्वाद सच्चा नहीं होगा। वह स्वाद काफी का ही स्वाद है। वह सीख लिया है आपने। वे शब्द आपके भीतर गूंज गए हैं। वह महावीर की प्रतिमा आप में प्रतिष्ठित हो गई है। महावीर का भाव आपको पकड़ गया। आप उसी सम्मोहन में जी लेंगे। लेकिन वह अनुभव आत्म-अनुभव नहीं है। महावीर भी कहते हैं कि वह अनुभव आत्म-अनुभव नहीं है। महावीर ने अपने शिष्यों से कहा है कि जब तक तुम मुझे न छोड़ दो, तब तक तुम स्वयं को न पा सकोगे।

मुझे छोड़ने का क्या अर्थ है महावीर का? अर्थ है कि मेरे शब्द तुम्हारे लिए प्रेरणा तो बनें, लेकिन तुम्हारे लिए दृष्टि न बन जाएं। मेरे शब्द तुम्हारी प्यास तो जगाएं, लेकिन मेरे शब्द तुम्हारे लिए जल न बन जाएं। इस फर्क को ठीक से समझ लेना जरूरी है। मेरे शब्द तुम्हारे लिए प्यास तो जगाएं, लेकिन मेरे शब्द तुम्हारे लिए जल न बन जाएं। कहीं ऐसा न हो कि मेरे शब्दों का ही जल लेकर तुम तृप्त हो जाओ। तो तुम अपने जल से वंचित ही रह जाओगे।

तो आध्यात्मिक जीवन में प्रभावित होने का भी मूल्य है और अप्रभावित बने रहने का भी मूल्य है। प्यास जगने के लिए तत्परता भी चाहिए; और शब्द पकड़ न जाएं, शब्द बोझ न बन जाएं, इसकी जागरूकता भी चाहिए।

लाओत्से कहता है, "सजग, सहज अपनी आत्मा का आलिंगन करो। अपनी स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"

यहां स्वार्थपरता का क्या अर्थ होगा? यहां वही अर्थ नहीं है, जो आमतौर से हम सेल्फिशनेस का लेते हैं। क्योंकि उन चीजों को तो वह पहले ही छोड़ने को कह चुका है। जब बुद्धिमत्ता छोड़ने को कह चुका और जब उपयोगिता छोड़ने को कह चुका, तो स्वार्थपरता का अब वही अर्थ नहीं है, जो हम लेते हैं। यहां स्वार्थपरता का गहरा अर्थ है। हमारी स्वार्थपरता तो उपयोगिता में ही छूट गई। वह जो यूटिलिटेरियन, हर चीज में उपयोग देखने की दृष्टि थी, वह छूट गई, तो हमारी स्वार्थपरता छूट गई। यहां सेल्फिशनेस का क्या अर्थ है? अगर हम यहां ठीक से समझें, तो यहां अर्थ हैः सेल्फ-सेंटर्डनेस, स्व-केंद्रितता। स्वार्थपरता अर्थात स्व-केंद्रितता।

साधारण आदमी के जीवन की पीड़ा यही है कि वह हमेशा स्वार्थ से जीता है। अगर वह प्रेम भी करता है किसी को, तो उसका कोई मतलब होता है। उसका मतलब ही उसके जीवन को नष्ट कर देता है। हम सब मतलबी हैं। और हमारे मतलब के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन एक नगर के धनपति के द्वार पर दस्तक दे रहा है। धनपति बाहर आया। मुल्ला ने कहा, एक आदमी बड़ी तकलीफ में है, ऋण से दबा जा रहा है, मरा जा रहा है; कुछ सहायता करो! उस आदमी ने एक रुपया निकाल कर नसरुद्दीन को दिया और कहा कि अच्छे ख्याल हैं, नेक इरादे हैं, जरूर उसकी सहायता करो। मुल्ला जब सीढ़ियां उतर रहा था, तब उस अमीर ने कहा कि एक मिनट, क्या मैं पूछ सकता हूं वह कौन आदमी है जो ऋण से दबा जा रहा है? मुल्ला ने कहा, मैं ही।

पंद्रह दिन बाद मुल्ला ने फिर उसी आदमी के दरवाजे पर दस्तक दी। उसने मुल्ला को बड़े गौर से देखा और व्यंग्य किया कि मालूम होता है, फिर कोई आदमी ऋण से दबा जा रहा है। मुल्ला ने कहा कि बिल्कुल ठीक समझे आप। बहुत गरीब आदमी है, उस आदमी ने कहा। मुल्ला ने कहा, बिल्कुल ठीक समझे आप। उसने कहा, और मैं समझता हूं कि वह ऋण से दबे हुए आदमी तुम ही हो। मुल्ला ने कहा, आप बिल्कुल गलत समझे। इस बार वह आदमी मैं नहीं हूं। उस आदमी ने कहा कि मैं खुश हुआ यह बात सुन कर। और उसने दो रुपए मुल्ला को भेंट किए। और जब मुल्ला फिर सीढ़ियां उतर रहा था, तब उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं कि पिछली बार तो मैं समझ गया कि तुम्हारी उदारता की प्रेरणा कहां से निकली थी; इस बार तुम्हारी इतनी उदारता और इतनी दया और इतनी सेवा का क्या कारण है? मुल्ला ने कहा, इस बार ऋणदाता मैं हूं। ऋणी कोई और है गरीब, ऋणदाता मैं हूं। और वह बिल्कुल चुका नहीं पा रहा है पैसे, उसके लिए पैसे इकट्ठे कर रहा हूं।

आप समझे? पहली दफा मैं था ऋणी, दबा जा रहा था ऋण में, किसी के पैसे चुकाने थे; इसलिए मांगने आया था। इस बार मैं ऋणदाता हूं; कोई और ऋण से दबा जा रहा है। उसको मेरे पैसे चुकाने हैं और चुका नहीं पा रहा है; उसके लिए पैसे इकट्ठे कर रहा हूं।

अगर आदमी की हम सेवाओं के भीतर भी प्रवेश करें, तो हम स्वार्थ पाएंगे। हम जैसे जीते हैं, वह स्वार्थ है।

लेकिन एक आदमी बाजार, संसार, गृहस्थी, सब छोड़ कर हट गया। जंगल में खड़ा है एक वृक्ष के नीचे। उसका क्या स्वार्थ है? उसकी तो कोई सेल्फिशनेस नहीं है। वह तो हट ही गया संसार से। लाओत्से उसके लिए कह रहा है यह सूत्र कि जो आत्मा को खोजने गया है, वह भी मैं अपने को खोज लूं, मैं अपने को पा लूं, मेरा मोक्ष हो जाए, मैं आनंद को उपलब्ध हो जाऊं, मेरे जीवन में दुख न रह जाए, यह भी सेल्फसेंटर्डनेस है। यह भी स्वार्थ है। यह पारलौकिक स्वार्थ होगा; लेकिन यह स्वार्थ नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह आदमी भी स्वार्थी है, यह आदमी भी अपनी ही फिक्र में लगा है।

लाओत्से कहता है, इसको भी छोड़ दो; क्योंकि यह भी स्वयं को जानने में बाधा है।

क्यों बाधा है? अगर स्वयं के जानने में भी मेरा कोई इनवेस्टमेंट है, अगर मुझे लगता है कि स्वयं को जान कर मैं आनंद को पा लूंगा, तो मेरी उत्सुकता स्वयं को जानने में नहीं, आनंद को पाने में है--एक बात। अगर आनंद मुझे स्वयं को बिना जाने मिल जाए, तो मैं इस उपद्रव में कभी नहीं पड़ूंगा। या कोई अगर मुझसे यह कह दे कि स्वयं को तो तुम जान लोगे, लेकिन आनंद नहीं पा सकोगे स्वयं को जानने से... ।

सुना है मैंने, जुन्नून एक सूफी फकीर अपने गुरु के पास गया। उसके गुरु ने पूछा कि तुम किस लिए आए हो, एक प्रश्न में ठीक-ठीक मुझे कह दो। ज्यादा बातचीत मैं पसंद नहीं करता हूं। तुम एक ही प्रश्न में अपनी सारी जिज्ञासा मुझे कह दो। जुन्नून रात भर सोचता रहा। सुबह गुरु ने बुलाया। जुन्नून ने कहा कि मैं अपने को जानना चाहता हूं। जुन्नून के गुरु ने कहा, अगर अपने को जानना अत्यंत कष्टपूर्ण हो, और अपने को जान कर अगर तुम दुख में पड़ जाओ, तो भी तुम अपने निर्णय पर दृढ़ हो? जुन्नून ने कहा, मैं तो आनंद पाने के लिए स्वयं को जानना चाहता हूं। तो उसके गुरु ने कहा, तुम फिर से सोच कर आओ। तब तुम कहो कि मैं आनंद पाना चाहता हूं। स्वयं को जानना चाहता हूं, यह क्यों कहते हो? तुम्हारा लक्ष्य अगर आनंद को पाना है और अगर आनंद बिना स्वयं को जाने मिल सकता हो, तो स्वयं को जानने से तुम्हें क्या प्रयोजन है?

नीत्शे ने तो यहां तक कहा है कि लोग धर्मों के चक्कर में इसीलिए पड़े हैं कि उनको ख्याल है कि धर्म से आनंद मिल जाएगा। न परमात्मा से किसी को मतलब है, न आत्मा से किसी को मतलब है, न सत्य से किसी को

मतलब है। अगर लोगों को पता चल जाए कि परमात्मा और आनंद का कोई लेना-देना नहीं है, तो संसारी और धार्मिक आदमियों में फर्क खोजना मुश्किल हो जाए। जिस तरफ संसारी दौड़ रहे हैं, उसी तरफ धार्मिक भी दौड़ने लगें। अभी अगर वे विपरीत दौड़ते दिखाई पड़ते हैं, तो दिशाओं में फर्क हो, लक्ष्यों में फर्क नहीं है--आनंद! सांसारिक सोचता है, इससे आनंद मिलेगा। एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है; क्योंकि सोचता है, धन इकट्ठा करने से आनंद मिलेगा। एक आदमी प्रार्थना कर रहा है; क्योंकि सोचता है, प्रार्थना करने से आनंद मिलेगा। ये दोनों आदमी कितने ही उलटे खड़े दिखाई पड़ें, ये उलटे नहीं हैं, ये विपरीत नहीं हैं। इन दोनों की बुद्धि बिल्कुल एक सी है। और इनकी यात्रा में जरा भी फर्क नहीं है।

लाओत्से कहता है, स्वार्थपरता छोड़ो। अगर तुम स्वयं को जानना चाहते हो और सरल, सहज स्व का अनुभव करना चाहते हो, तो इस स्वयं को जानने में कोई आकांक्षा न हो कि मैं यह पा लूंगा, कि मैं यह पा लूंगा, कि मैं यह पा लूंगा। इसमें पाने का कोई ख्याल न हो। इसमें तुम्हारा निजी कोई हित का ख्याल न हो।

यह बड़ा कठिन है। हमारे स्वार्थ को संसार से हटा कर मोक्ष पर लगाना कठिन नहीं है। हमारे लोभ को धन से हटा कर धर्म पर लगाना जरा भी कठिन नहीं है। सरल है। बल्कि सच तो यह है कि जितना बड़ा लोभी हो, उतनी जल्दी धार्मिक हो जाता है। क्योंकि बहुत जल्दी उसे समझाया जा सकता है कि यह तुम क्या ठीकरे इकट्ठे कर रहे हो सोने-चांदी के? जब मरोगे, तो ये काम न पड़ेंगे। अगर असली संपदा चाहिए, तो दान करो; जो मरने के बाद भी काम पड़ेगी। अगर आप छोटे-मोटे लोभी हैं, तो आप कहेंगे, चलेगा; मरने तक भी हम तृप्त हैं, मरने के बाद का देखेंगे। अगर आप बड़े लोभी हैं और ग्रीड बड़ी भयंकर है, तो आप जरूर हिसाब लगाएंगे कि मरने के बाद अगर ये काम नहीं पड़ते, तो इनमें से कुछ को उन सिक्कों में बदल लो, जो मरने के बाद काम पड़ते हैं। दान कर दो। बड़े लोभी बड़ी जल्दी धार्मिक हो जाते हैं। कंजूस बड़ी जल्दी धार्मिक हो जाते हैं। इससे उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता; सिर्फ उनके लोभ को एक नया आयाम और मिल जाता है, और विस्तार हो जाता है।

लेकिन धर्म के जगत में वे ही प्रवेश करते हैं, जिनका कोई भी लोभ नहीं है। जिनको इतना भी लोभ नहीं है कि आनंद भी मिलेगा, कि मोक्ष मिलेगा, कि स्वर्ग मिलेगा।

लाओत्से कहता है, स्वार्थपरता छोड़ो।

यहां स्वार्थपरता उस दूसरे तल की है, क्योंकि आत्मज्ञान के साथ इसकी बात की जा रही है। यह भी मत सोचो कि तुम्हें आनंद मिलेगा। कौन जानता है--मिले, न मिले? कौन कह सकता है, क्या मिलेगा? कोई पक्का नहीं है। कोई आश्वासन नहीं दे सकता। कोई सुरक्षा नहीं है, कोई गारंटी नहीं है। तुम सिर्फ इसीलिए जानने चलो कि तुम हो, और अपने को न जानना बड़ी एब्सर्डिटी है, बड़ी बेहूदगी है। मैं हूं और मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! सिर्फ इसीलिए तुम जानने चलो कि तुम्हें पता ही नहीं कि तुम कौन हो और तुम हो। इसमें कोई और स्वार्थ मत जोड़ो। इसमें यह मत कहो कि जान लूंगा, तो आनंद मिलेगा; जान लूंगा, तो अमृतत्व मिल जाएगा; जान लूंगा, तो फिर कोई दुख न रह जाएगा; जान लूंगा, तो मोक्ष की परम शांति मिलेगी; जान लूंगा, तो निर्वाण मिल जाएगा।

न, जानने के साथ कुछ मिलने को मत जोड़ो। क्योंकि जो मिलने को जोड़ रहा है, वह जान ही न पाएगा। क्योंकि जिसकी अभी आकांक्षा कुछ पाने की लगी है, वह अभी अपने से बाहर ही घूमेगा, भीतर नहीं आ सकता। भीतर तो वही आता है, जिसकी कोई आकांक्षा नहीं रह गई।

इसलिए लाओत्से कहता है, "स्वार्थपरता त्यागो, अपनी वासनाओं को क्षीण करो।"

निश्चित ही ये वासनाएं आध्यात्मिक आदमी की वासनाएं हैं। सांसारिक आदमी की वासनाएं तो समाप्त हो गईं पहले सूत्रों में। ये आध्यात्मिक आदमी की वासनाएं हैं। स्प्रिचुअल डिजायर्स, आध्यात्मिक वासनाएं--यह शब्द उलटा मालूम पड़ेगा, कंट्राडिक्टरी मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम कभी सोचते नहीं कि आध्यात्मिक वासना भी होती है!

आध्यात्मिक वासना भी होती है। और जब तक आध्यात्मिक वासना है, तब तक अध्यात्म का कोई जन्म नहीं होता है। जिनको हम संन्यासी कहते हैं, उनमें अधिक लोग सांसारिक वासना छोड़ देते हैं, आध्यात्मिक वासना पकड़ लेते हैं। वास्तविक संन्यासी वही है, जिसकी कोई वासना नहीं है--न सांसारिक, न आध्यात्मिक।

जीसस के मरने की घड़ी करीब आ गई। उस रात वे पकड़े जाने को हैं। आखिरी क्षण है; शिष्य विदा हो रहे हैं। एक शिष्य पूछता है कि आखिरी वक्त है, अब जाते वक्त इतना तो बता दें कि स्वर्ग के राज्य में, जिसका आपने हमें आश्वासन दिया है, किंगडम ऑफ गॉड, उसमें आप तो परमात्मा के बगल में बैठेंगे, हम लोगों की जगहें क्या होंगी? ठीक है, परमात्मा सिंहासन पर होगा, आप उसके बेटे हैं, बगल में होंगे। हम लोग आपके संत हैं, हम लोग कहां बैठेंगे?

शायद ईश्वर के राज्य शब्द को सुन कर ही लोभ के कारण ये लोग जीसस के पास इकट्ठे हो गए हैं। वहां परम आनंद होगा, वही इनकी वासना बन गई है। संसार को ये छोड़ सके हैं एक सौदे की तरह। एक बार्गेन है।

और तथाकथित धार्मिक लोग समझाते रहते हैं चौबीस घंटे कि संसार में क्या रखा है! क्षणभंगुर है। कोई उनसे पूछे कि अगर क्षणभंगुर न हो, तब? तब सब कुछ रखा है? कहते हैं, इस आदमी के शरीर में क्या रखा है! हड्डी-मांस-मज्जा है। कहीं सोना-चांदी हो भीतर, फिर? कि आदमी में क्या रखा है, यह मर जाएगा कल! अगर यह न मरे, तो? वे किस बात को आपके भीतर जगा रहे हैं? वे सिर्फ आपके लोभ को, आपकी वासना को बदल रहे हैं। वे कह रहे हैं, इसमें क्या रखा है! उनका वासना से कोई विरोध नहीं है। जहां आप वासना को लगाए हैं, वह जगह क्षणभंगुर है, वहां से हटाओ, शाश्वत की तरफ लगाओ। लेकिन वासना को नहीं मिटाने की कोशिश है।

लाओत्से जैसे लोग विषय बदलने को नहीं कहते, वासना ही मिटा देने को कहते हैं।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। मैं धन के पीछे दौड़ रहा हूं। कोई मुझे समझाता है, क्या पागलपन कर रहे हो, धन में क्या रखा है? कल मर जाओगे, मौत बड़ी चीज है, धन से भी बड़ी चीज है। धन मिले कि न मिले; मौत का मिलना बिल्कुल पक्का है। वह मुझे डरा देता है। कहता है, कल मर जाओगे, कल का भरोसा नहीं है। और तुम धन के पीछे दौड़ रहे हो। अगर दौड़ना ही है, तो उसके पीछे दौड़ो, जो असली धन है। भगवान के पीछे दा.ैडो। मेरा लोभ डगमगाता है। मुझे भी दिखता है कि धन पा भी लूंगा, तो क्या होगा? मौत तो आएगी। अगर मौत को भी रिश्वत दी जा सके, तो धन काम पड़ सकता है। लेकिन मौत अब तक रिश्वत लेती देखी नहीं गई। तो मौत से बच नहीं सकूंगा, तो फिर क्या करूं? भगवान के लिए दौड़ूं। मगर दौड़ जारी रहेगी। विषय बदल जाएगा, दौड़ जारी रहेगी। लक्ष्य बदल जाएगा, वासना जारी रहेगी।

लाओत्से जैसे लोग कहते हैं, दौड़ो ही मत। यह नहीं कहते कि संसार फिजूल है, इसलिए मत दौड़ो; और परमात्मा सार्थक है, इसलिए दौड़ो। ये तो स्वार्थ की ही बातें हैं। यह तो स्वार्थपरता ही हुई। इसका तो मतलब यह हुआ कि जो ज्यादा चालाक हैं, वे परमात्मा को पाने की कोशिश करते हैं; जो कम चालाक हैं, वे धन को पाने की कोशिश करते हैं। इसका मतलब तो साफ है कि जो गणित में कुशल हैं, होशियार हैं, वे इन छोटी बातों में नहीं पड़ते। जो बच्चे हैं, नासमझ हैं, वे छोटी बातों में पड़ जाते हैं। क्या मकान बना रहे हो जमीन पर, मोक्ष में

बनाओ। वहां टिकेगा चट्टान पर। और यहां रेत है। तो जो रेत में बनाते हैं, वे नासमझ हैं। और जो चट्टानों पर बनाते हैं, वे समझदार हैं। तब तो यह सारा का सारा मामला कम चालाक और ज्यादा चालाक लोगों का हुआ।

इसलिए लाओत्से बहुत जोर देकर कहता है, चालाकी छोड़ो, स्वार्थपरता छोड़ो, वासनाओं को क्षीण करो। आध्यात्मिक अर्थ में, अगर वासना रह गई है किसी भी दिशा में, तो भटकन जारी रहेगी। ठहर जाओ, दौड़ो ही मत।

वासना का अर्थ क्या है? वासना का अर्थ हैः दौड़ना, भागना। वासना का अर्थ हैः पाने को कहीं कुछ दूर है। मैं यहां हूं, पाने को कुछ वहां है; दोनों के बीच फासला है। उस फासले को पूरा करने का नाम वासना है। मैं यहां हूं, आप वहां हैं; मुझे आपको पाना है; मेरे आपके बीच डिस्टेंस है, फासला है। इस फासले को पूरा करना है। कब कर पाऊंगा, पता नहीं। लेकिन मन में अभी कर लेता हूं। मन में अभी कर लेता हूं। महल कब बनेगा, पता नहीं; मन में अभी बना लेता हूं। महल में कब रहूंगा, पता नहीं; मन में अभी रहना शुरू कर देता हूं। वासना फासले को दूर करने का उपाय है। वासना मेरे और मेरी इच्छा का जो लक्ष्य है, उसके बीच सेतु बनाना है। यद्यपि सेतु इंद्रधनुष का सेतु है। दिखता भर है, बनता कभी भी नहीं।

तो जो वासना से भरा है, वह कभी स्वयं में नहीं ठहर सकता। वह हमेशा कहीं और, कहीं और, कहीं और होगा--समव्हेयर एल्स। सिर्फ स्वयं में नहीं हो सकता, और कहीं भी हो सकता है। जहां वासना होगी, वहीं दौड़ा हुआ होगा। अगर कोई वासना न हो, तो आप खड़े हुए होंगे, अपने में होंगे, स्वस्थ होंगे, स्वयं में स्थित हो जाएंगे। अगर आपको कुछ भी पाना नहीं है, एक क्षण को भी ऐसी स्थिति आ जाए कि कुछ पाना नहीं है, तो आप दौड़े कहां होंगे? आप ठहर गए होंगे। वह स्थिति ही समाधि है। वासना है अपने से बाहर दौड़ना। इसलिए निर्वासना स्व-ज्ञान का अनिवार्य आधार है।

लाओत्से कहता है, "वासनाओं को क्षीण करो।"

लेकिन हमें बहुत घबड़ाहट होगी। वासना बदलने को कोई कहे, हम राजी हैं। कोई कहे, छोड़ो, पृथ्वी की स्त्रियों में क्या रखा है? स्वर्ग में अप्सराएं हैं! चित्त बहुत प्रफुल्लित होता है। लेकिन स्त्रियों की जगह अप्सराएं रखना जरूरी है। क्या पी रहे हो यहां साधारण सी शराब? बहिश्त में झरने हैं शराब के! नहाओ, धोओ, डूबो, जो भी करना है, करो। और ध्यान रहे, अगर झरनों में पीना है बहिश्त के, तो यह चुल्लू-चुल्लू पीना छोड़ना पड़ेगा। यह सौदा है। जो चालाक हैं, वे इस सौदे के लिए तैयार हो जाते हैं।

इसलिए कई दफे मैं देखता हूं कि शराबी भी कई दफे भोला दिखाई पड़ता है, लेकिन साधु उतना भोला नहीं दिखाई पड़ता। हैरानी की बात है, होना नहीं चाहिए ऐसा। लेकिन शराबी में एक भोलापन दिखाई पड़ता है। नासमझ है, हिसाब का बिल्कुल पता नहीं है कि क्या कर रहा है। बहिश्त के चश्मे छोड़ रहा है और यहां क्यू लगा कर शराबघर के सामने खड़ा है। जो होशियार हैं, वे यहां क्यू नहीं लगा रहे हैं। वे माला फेर रहे हैं। वे तैयारी कर रहे हैं कि जब कूदना ही है, तो झरने पर ही कब्जा कर लेंगे। यह क्या छोटे-छोटे... ।

मगर यह सौदा है। और सौदे का धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। सौदे की वृत्ति ही स्वार्थ है। और सौदे में वासना छिपी ही हुई है। किसलिए कर रहे हैं पूजा? किसलिए कर रहे हैं ध्यान? किसलिए कर रहे हैं त्याग? किसलिए कर रहे हैं दान? अगर आपके पास कोई भी उत्तर है कि इसलिए, तो आपकी वासना शेष है।

अगर आप कहते हैं कि कोई कारण नहीं है; कोई कारण नहीं है, आगे पाने के लिए कोई सौदा नहीं है। लेकिन प्रार्थना करना अपने आप में ही पर्याप्त आनंद है। आगे कोई पाने की बात नहीं है। प्रार्थना ही आनंद है। देने में सुख है। देने से सुख मिलेगा, तो वासना है। और देने में सुख है, तो धर्म है। देने से सुख मिलेगा कभी, तो

सौदा है। और देना ही सुख है। और आगे कोई लेन-देन नहीं है। इससे हम कोई हिसाब न रखेंगे कि इतना हमने दिया। इससे हम किसी स्वर्ग का आयोजन नहीं करते। और अगर कल नरक में भी डाल दिए जाएंगे, तो हमारे मन में शिकायत न होगी कि मैंने इतना दिया था और मुझे नरक?

दिया था, उसका आनंद देने में ही मिल गया है। हिसाब चुकता हो गया। प्रार्थना की थी; जो प्रार्थना से मिल सकता था, उसी क्षण मिल गया है। और जिसको उस क्षण नहीं मिला है, उसे कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि इस जगत में प्रत्येक कार्य का कारण साथ ही जुड़ा हुआ है। अभी हाथ आग में डालूंगा, अभी जल जाऊंगा। अभी नहीं जला हूं, तो कभी नहीं जलूंगा। प्रार्थना अभी की है, तो जो आनंद बरसना था, वह प्रार्थना करने में ही बरस गया। उस प्रार्थना के कृत्य के बाहर कोई उपलब्धि नहीं है। अगर कोई उपलब्धि की धारणा है, तो प्रार्थना भी एक वासना है। इसे जरा कठिन होगा समझना। और अगर उपलब्धि की कोई धारणा नहीं है, तो प्रत्येक कृत्य प्रार्थना हो जाता है। प्रत्येक कृत्य करने में ही पूरा हो गया है। कोई हिसाब लेकर हम आगे नहीं चलते। जो क्षण बीत गया, उसके साथ हमारे सब संबंध समाप्त हो गए। कोई सौदा बाकी नहीं रहा है। उस क्षण में कुछ ऐसा नहीं है, जो अगले क्षण में हम मांग करें।

सांसारिक आदमी सौदा कर रहा है। इसलिए जो भी आदमी सौदा कर रहा है, वह संसार में है। वह स्वर्ग का सौदा है कि मोक्ष का, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। आध्यात्मिक आदमी सौदा नहीं कर रहा है। जी रहा है एक-एक क्षण को उसकी समग्रता में।

तो लाओत्से कहता है, वासनाओं को क्षीण करो। क्योंकि वासनाएं तुम्हें कभी सौदे की दुनिया के ऊपर न उठने देंगी। तब तुम कुछ भी करोगे, किसी दृष्टि से करोगे कि क्या मिलेगा?

उमर खय्याम से कोई पूछता है कि तुमने इतने गीत गाए--किसलिए? तो उमर खय्याम कहता है, पूछो जाकर, वह जो फूल खिला है गुलाब का, उससे--किसलिए? पूछो रात में उगे हुए तारों से--किसलिए? पूछो हवाओं से कि तुम इतने-इतने जन्मों से बह रही हो--किसलिए?

प्रकृति में कहीं कोई प्रयोजन नहीं है। सिर्फ आदमी की वासना को छोड़ कर कहीं कोई प्रयोजन नहीं है; कहीं कोई परपज नहीं है। और आदमी में तो दो ही तरह के लोग परपजलेस, प्रयोजनमुक्त होते हैं। एक जिनको हम पागल कहते हैं; और एक जिनको हम परमहंस कहते हैं। एक जिनको हम कहते हैं कि इनकी बुद्धि डगमगा गई; एक जिनको हम कहते हैं कि ये बुद्धि के पार चले गए। इसलिए पागलों में और परमहंसों में थोड़ी सी समानता होती है। कोई एक गुणधर्म बराबर होता है। और वह गुणधर्म है परपजलेसनेस, प्रयोजनरिक्तता।

लाओत्से कहता है, छोड़ो स्वार्थपरता, छोड़ो प्रयोजन, छोड़ो सौदा, छोड़ो वासना, तो तुम स्वयं के सहज स्वभाव को आलिंगन कर सकोगे, अपने में प्रतिष्ठित हो सकोगे। और इस प्रतिष्ठा के अतिरिक्त कहीं कोई धर्म नहीं है।

लेकिन हम तो बड़ी से बड़ी चीज को भी एक ही भाषा में सोचते हैं। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? पहली बात, ध्यान से क्या मिलेगा?

उनको क्या कहूं कि ध्यान से क्या मिलेगा? एक ही उत्तर सही हो सकता है कि ध्यान से ध्यान मिलेगा। मगर यह बेकार है। यह तो टोटोलाजी मालूम पड़ेगी। इससे क्या हल हुआ? वे फिर पूछेंगे कि ध्यान से जो ध्यान मिलेगा, उससे क्या मिलेगा? वे कोई नगद रुपए में चाहते हैं उत्तर कि यह मिलेगा।

इसलिए महर्षि महेश योगी की बात पश्चिम में काफी लोगों को प्रभावित की। क्योंकि उन्होंने बहुत नगदी उत्तर दिए। उन्होंने कहा, धन भी मिलेगा, स्वास्थ्य भी मिलेगा, सफलता भी मिलेगी। फिर अमरीका को जंची

बात, सौदा बिल्कुल साफ है। ध्यान से धन भी मिलेगा, सफलता भी मिलेगी। जो भी करोगे, उसी में सफल हो जाओगे। तब फिर इसको बाजार में बेचा जा सकता है।

लाओत्से जैसे आदमियों को बाजार में नहीं बेचा जा सकता। उनसे पूछो, क्या मिलेगा? तो वे कहेंगे कि अभी तुम इस योग्य भी नहीं कि तुम्हें उत्तर दिया जाए। तुम पूछ क्या रहे हो? तुम पूछ रहे हो, प्रेम से क्या मिलेगा? तो तुम प्रेम के संबंध में उत्तर पाने के भी अधिकारी नहीं हो। तुम जाओ और कौड़ियां बीनो और इकट्ठी करो। जो आदमी पूछता है कि प्रेम से क्या मिलेगा, उसको उत्तर देना चाहिए? और क्या उत्तर वह समझ पाएगा? और क्या उत्तर का कोई भी अर्थ निकल पाएगा? व्यर्थ होगा।

लोग पूछते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? प्रार्थना से क्या मिलेगा? धर्म से क्या मिलेगा? उन्हें पता ही नहीं है कि जब कोई व्यक्ति मिलने की भाषा छोड़ता है, तभी धर्म में प्रवेश होता है। जब तक वह पूछता है, क्या मिलेगा, क्या मिलेगा, क्या मिलेगा, तब तक वह संसार में दौड़ता है।

लेकिन हमको अगर कोई भरोसा दिलवा दे कि मिलेगा, वहां भी कुछ मिलेगा, तो फिर हम वहां भी दौड़ने को तत्पर हो जाते हैं। दौड़ चाहिए! ठहरने से मन घबड़ाता है। इसलिए लाओत्से जैसे लोग बहुत भयभीत करवा देते हैं।

कनफ्यूशियस बहुत भयभीत होकर लाओत्से के पास से लौटा था। और जब उसके शिष्यों ने पूछा कि कैसा था यह आदमी? तो कनफ्यूशियस ने कहा, वह कोई आदमी नहीं है। वह एक खतरनाक सिंह की भांति है। उसके पास जाओ, तो रोआं-रोआं कंप जाता है, पसीना आ जाता है। वह कोई आदमी नहीं है, वह एक सिंह है। उस तरफ जाना ही मत। वह भीतर आत्मा तक को कंपा देता है। वह इस ढंग से देखता है। एक क्षण उसकी आंख अगर रुक जाए ऊपर, तो प्राण का रोआं-रोआं कंपने लगता है।

कंपने ही लगेगा; क्योंकि लाओत्से जो कह रहा है, वह आत्यंतिक है, अल्टीमेट है। वह क्षुद्र बातों पर रुकने के लिए राजी नहीं है। वह क्षुद्र बातों के उत्तर भी नहीं देगा। वह यह भी नहीं कहेगा कि तुम्हें ध्यान से शांति मिलेगी। क्या है मूल्य अशांति का? शांति ही चाहिए, तो ट्रैंक्वेलाइजर से मिल जाएगी। क्यों ध्यान के पीछे पड़ते हैं! शांति चाहिए, तो नशा करके लेट जाइए।

लेकिन ध्यान की तलाश में भी लोग आते हैं, कोई शांति के लिए आ रहा है, कोई स्वास्थ्य के लिए आ रहा है। तरह-तरह के लोग, लेकिन वासनाएं लेकर ही आते हैं। मंदिरों को भी हम वेश्यालयों से भिन्न व्यवहार नहीं करते, वहां भी हम वासना लेकर ही पहुंच जाते हैं। और जहां हम वासना लेकर पहुंचते हैं, वहीं वेश्यालय हो जाता है। क्योंकि खरीदने की इच्छा है वहां भी। वहां भी हम मंदिर में भी रुपए को जोर से पटक कर कुछ खरीदने पहुंचे हैं आवाज करके। मंदिर में भी लोग रुपया धीरे से नहीं रखते--देखा आपने? ऐसा जोर से पटकते हैं कि खनक की आवाज सब दीवारें सुन लें और अगर परमात्मा कहीं हो, तो उसको भी पता चल जाए कि एक रुपया फेंका है नगद। अब वहां भी हम खरीदने जा रहे हैं।

बोधिधर्म भारत के बाहर गया। और जब वह चीन पहुंचा, तो वहां के सम्राट ने कहा कि मैंने हजारों विहार बनवाए; लाखों भिक्षुओं को मैं भिक्षा देता हूं रोज; बुद्ध के समस्त शास्त्रों का मैंने चीनी भाषा में अनुवाद करवाया है; लाखों प्रतियां मुफ्त बंटवाई हैं; धर्म का मैंने बड़ा प्रचार किया है; हे बोधिधर्म, इस सब से मुझे क्या लाभ होगा? मुझे क्या मिलेगा इसका पुरस्कार? इसका प्रतिफल क्या है?

उसने गलत आदमी से पूछ लिया। और भिक्षु थे लाखों, जो उसकी भिक्षा पर पलते थे। वे कहते थे, तुम पर परमात्मा की बड़ी कृपा है। तुम्हारा मोक्ष सुनिश्चित है। हे सम्राट, तुम जैसा सम्राट पृथ्वी पर कभी न हुआ

और न कभी होगा। तुम धर्म के परम मंगल को पाओगे। तुम पर आशीष बरस रहे हैं बुद्धों के। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते, देवता फूल बरसाते हैं तुम पर। उसने सोचा कि बोधिधर्म भी ऐसा ही भिक्षु है। गलती हो गई। बोधिधर्म जैसे आदमी कभी-कभी होते हैं, इसलिए गलती हो जाती है।

बोधिधर्म ने कहा, बंद कर बकवास! अगर पहले कुछ मिलता भी, तो अब कुछ नहीं मिलेगा। तूने मांगा कि खो दिया। सम्राट तो बेचैन हो गया। हजारों भिक्षुओं की भीड़ के सामने बोधिधर्म ने कहा कि कुछ भी नहीं मिलेगा। फिर भी उसने सोचा कि कुछ गलती हो गई समझने में बोधिधर्म के या मेरे। उसने कहा, इतना मैंने किया, फल कुछ भी नहीं! बोधिधर्म ने कहा, फल की आकांक्षा पाप है। किया, भूल जा! इस बोझ को मत ढो, नहीं तो इसी बोझ से डूब मरेगा। पाप के बोझ से ही लोग नहीं डूबते, पुण्य के बोझ से भी डूब जाते हैं। बोझ डुबाता है। और पाप से तो आदमी छूटना भी चाहता है; पुण्य को तो कस कर पकड़ लेता है। यह पत्थर है तेरे गले में; इसको छोड़ दे।

लेकिन सम्राट वू को यह बात पसंद न पड़ी। हमारी वासनाओं को यह बात पसंद पड़ भी नहीं सकती। इतना किया, बेकार! सम्राट वू को पसंद न पड़ी, तो बोधिधर्म ने कहा कि मैं तेरे राज्य में प्रवेश नहीं करूंगा, वापस लौट जाता हूं। क्योंकि मैं तो सोच कर यह आया था कि तूने धर्म को समझ लिया होगा, इसलिए तू धर्म के फैलाव में आनंदित हो रहा है। मैं यह सोच कर नहीं आया था कि तू धर्म के साथ भी सौदा कर रहा है। मैं वापस लौट जाता हूं।

और बोधिधर्म वू के साम्राज्य में प्रवेश नहीं किया, नदी के पार रुक गया। वू को बड़ी बेचैनी हुई, सम्राट को। बड़े दिनों से प्रतीक्षा की थी इस आदमी की। यह बुद्ध की या लाओत्से की हैसियत का आदमी था। और उसने इस भांति निराश कर दिया। उसने सब जार-जार कर दिया उसकी आकांक्षाओं को। अगर यह एक सील-मुहर लगा देता और कह देता, हां सम्राट वू, तेरा मोक्ष बिल्कुल निश्चित है; सिद्ध-शिला पर तेरे लिए सब आसन बिछ गया है; तेरे पहुंचने भर की देर है। द्वार खुले हैं; स्वागत के लिए बैंड-बाजे सब तैयार हैं। तो वू बहुत प्रसन्न होता।

हमारी वासनाएं ही अगर हमारी प्रसन्नता हैं, तो धर्म के जगत में हमारे लिए कोई प्रवेश नहीं है। अगर निर्वासना होना ही हमारी प्रसन्नता है, तो ही प्रवेश हो सकता है। निर्वासना धर्म के लिए बहुत विचारणीय है। क्षुद्र वासनाओं के त्याग की बात नहीं है। गहन वासनाएं मन को पकड़े हुए हैं।

बुद्ध के पास एक आदमी आता है और वह कहता है, मैं ध्यान करूं, साधना करूं, आप जैसा कब तक हो जाऊंगा? बुद्ध ने कहा, जब तक तुझे यह ख्याल रहेगा कि मेरे जैसा कब तक हो जाएगा, तब तक होना मुश्किल है। यही ख्याल बाधा है। इस ख्याल को छोड़ दे। ध्यान कर। इस ख्याल से, इस वासना से नहीं कि बुद्ध जैसा कब तक हो जाऊंगा।

बुद्ध से कोई आकर पूछता है कि आपके इन दस हजार भिक्षुओं में कितने लोग ऐसे हैं, जो आप जैसे हो गए? तो बुद्ध कहते हैं, बहुत लोग हैं। तो वह आदमी कहता है, लेकिन उनका कुछ पता नहीं चलता। तो बुद्ध कहते हैं, उनको खुद अपना पता नहीं रहा है। तो वह आदमी पूछता है, लेकिन आपका तो पता चलता है और आप जैसा तो कोई नहीं दिखाई पड़ता! बुद्ध ने बड़े मजे की बात कही। बुद्ध ने कहा कि मैंने शिक्षक होने के लिए कुछ पाप-कर्म पिछले जन्म में किए थे, वे पूरे कर रहा हूं। शिक्षक होने के लिए--टु बी ए टीचर--वे पाप-कर्म मैंने किए थे।

जैनों में तो पूरा सिद्धांत है उसके लिए कि कुछ कर्मों के कारण व्यक्ति को तीर्थंकर का जन्म मिलता है--कुछ कर्मों के कारण। कुछ कर्मों का आखिरी बंधन उसको तीर्थंकर बनाता है। और तब अपना बंधन काटने के लिए उसे लोगों को समझाना पड़ता है।

तो बुद्ध ने कहा, मैंने कुछ कर्म किए थे कि शिक्षक होने का उपद्रव मुझे झेलना पड़ेगा। वह मैं झेल रहा हूं। अपने-अपने किए का फल है। उन्होंने नहीं किया था। वे बिल्कुल खो गए हैं और शून्य हो गए हैं। समझाने के लिए भी उनके भीतर कोई नहीं है कि जो समझाए। सब खो गया है।

और जब इतना सब खो जाता है--वासना नहीं, कोई स्वार्थ नहीं--तब जिस शून्य का उदय होता है, वही स्वभाव है, वही ताओ है।

आज इतना ही। कल हम शेष बात करेंगे। रुकें, पांच मिनट कीर्तन करें।

तरालीसवां प्रवचन

धर्म है--स्वयं जैसा हो जाना

एक मित्र ने पूछा है: क्या रुकने के लिए दौड़ना जरूरी नहीं है?

जरूरी है। लेकिन आप दौड़ ही रहे हैं। आप काफी दौड़ लिए हैं। लंबे जन्मों की दौड़ आपके पीछे है; उसका ही आप परिणाम हैं। अब और दौड़ना जरूरी नहीं है; अब रुकना जरूरी है। लेकिन हमारा मन खुद को धोखा देने के लिए बहुत तरकीबें निकाल लेता है।

एक धर्मगुरु ने छोटे बच्चों को बहुत समझाया कि पाप से मुक्त होना हो, तो प्रायश्चित्त करना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए, परमात्मा के समक्ष अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए, कसम लेनी चाहिए कि दुबारा ऐसा अपराध नहीं करेंगे। बहुत समझाने के बाद उसने बच्चों से पूछा कि पाप से मुक्त होने के लिए क्या जरूरी है?

तो एक छोटे बच्चे ने कहा, पाप करना जरूरी है।

निश्चित ही, पाप से मुक्त होने के लिए पाप करना तो जरूरी है ही। लेकिन पाप करने से ही कोई मुक्त नहीं हो जाएगा। पाप करने के बाद कुछ और भी करना होगा। निश्चित ही, रुकने के लिए दौड़ना जरूरी है। लेकिन दौड़ने से ही कोई नहीं रुक जाएगा। और दौड़ तो चल ही रही है। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह दौड़ है। इसलिए अपने मन को ऐसा मत समझाना कि मैं रुकने के लिए दौड़ रहा हूं। रुकने को हम भविष्य के लिए स्थगित कर सकते हैं--कि अभी दौड़ लें काफी, फिर रुकेंगे। लेकिन दा.ैड हम काफी लिए हैं। देर वैसे ही काफी हो चुकी है।

यह हो सकता है, हमारा मन अभी दौड़ने से न भरा हो। मन कभी भरता भी नहीं। जो भर जाए, वह मन ही नहीं है। मन तो दौड़ाता ही रहेगा। एक दिशा बदलेगा, दूसरी दिशा बदलेगा। एक लक्ष्य बदलेगा, दूसरा लक्ष्य बदलेगा। मन तो दौड़ाता ही रहेगा।

लेकिन अगर यह दौड़ दुख हो, संताप हो, पीड़ा हो? और है। दौड़ सिवाय दुख के और कुछ हो नहीं सकती। लेकिन हमारे मन की तर्कणा यह है कि हम सोचते हैं, दुख इसलिए है कि हम थोड़ा धीमे दौड़ रहे हैं। जरा जोर से दौड़ें, तो पहुंच जाएं मंजिल पर; दुख क्यों हो! या हम सोचते हैं कि दुख इसलिए है कि दूसरे हम से तेज दौड़ रहे हैं, वे पहले पहुंच जाते हैं और हम चूक जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो बिल्कुल ठीक है; रास्ता हमने गलत चुन लिया है, जिस पर हम दौड़ रहे हैं। जो ठीक रास्ता चुन लेते हैं, वे पहुंच जाते हैं। या हम सोचते हैं कि दौड़ तो ठीक ही है, रास्ता भी ठीक है; लेकिन जो हम पाना चाहते हैं, विषय हमारी वासना का, शायद वह गलत है। धन को बदल लें धर्म से, संसार को बदल लें अध्यात्म से, तो फिर दौड़ पूरी हो सकती है।

नहीं होगी। दौड़ ही गलत है। न तो रास्ते गलत हैं, न दौड़ने वाला गलत है, न दौड़ने का ढंग और गति गलत है, और न जिसके लिए हम दौड़ रहे हैं वह लक्ष्य गलत है। दौड़ ही गलत है।

अगर लाओत्से को ठीक से समझें, तो लाओत्से कहता है, सक्रियता ही भूल है। दौड़ ही गलत है। रुक जाना और विश्राम और निष्क्रिय में डूब जाना ही सही है। इसलिए कोई सही दौड़ नहीं होती। लाओत्से के हिसाब से कोई सही दौड़ नहीं होती। दौड़ मात्र गलत है। रुकना मात्र सही है। कोई रुकना गलत नहीं होता; लाओत्से के

हिसाब से कोई रुकना गलत नहीं होता। क्योंकि कोई दौड़ सही नहीं होती। सभी सक्रियताएं गलत हैं। निष्क्रियता ही परम स्वभाव है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आप सांसारिक वासना को और आध्यात्मिक वासना को एक ही कह रहे हैं! सांसारिक वासना तो क्षुद्र चीज है। आध्यात्मिक वासना तो बहुत ऊंची, महत्व की बात है। और आध्यात्मिक वासना पानी हो, तो सांसारिक वासना छोड़नी पड़ती है।

लाओत्से को अगर समझेंगे, तो लाओत्से कहता है, कोई वासना सांसारिक नहीं होती, कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती। वासना संसार है और निर्वासना अध्यात्म है। इसलिए सांसारिक वासना का कोई मतलब नहीं होता। और आध्यात्मिक वासना का भी कोई मतलब नहीं होता। वासना ही संसार है। तो जब तक आप वासना में हैं, तब तक आप संसार में हैं। वह वासना मोक्ष को पाने की हो, तो भी आप सांसारिक हैं। और जब आप वासना में नहीं हैं, तब चाहे आप संसार में ही हों, आप मोक्ष में हैं।

इसे ऐसा समझें कि वासना का संबंध विषयों से, आब्जेक्ट्स से नहीं है। वासना का संबंध, क्या आप मांगते हैं, इससे नहीं है; मांगते हैं, इससे है। आप क्या मांगते हैं, यह असंगत है, इररेलेवेंट है। धन मांगते हैं, धर्म मांगते हैं; यश मांगते हैं कि मोक्ष मांगते हैं; मांगते हैं जब तक, तब तक आप संसार में हैं। जहां आप नहीं मांगते, आप मोक्ष में हैं। इसलिए मोक्ष मांगा नहीं जा सकता। जो नहीं मांगता है, वह मोक्ष को पा जाता है। मोक्ष की वासना नहीं हो सकती। जिसकी वासना छूट जाती है, वह मुक्त हो जाता है।

तो मोक्ष किसी वासना का परिणाम नहीं है। किसी दौड़ की अंतिम मंजिल नहीं है मोक्ष। किसी भी दौड़ में रुक जाने का नाम मोक्ष है। किसी भी दौड़ में कोई ठहर जाए, वह मुक्त हो गया। तो मोक्ष किसी यात्रा का गंतव्य नहीं है, अंत नहीं है। जहां रास्ता समाप्त होता है, वह मंजिल नहीं है मोक्ष। जहां दौड़ नहीं रह जाती, वहीं मोक्ष है। तो जहां भी आप रुक जाएं, रास्ते पर ही इसी वक्त रुक जाएं, वहीं मोक्ष है। जब भी चेतना ठहर जाती है... । और वासना में चेतना कभी नहीं ठहरती। वासना का अर्थ ही है, चेतना दौड़ती रहेगी।

इसलिए लाओत्से सांसारिक और आध्यात्मिक वासनाएं नहीं मानता। इसलिए आध्यात्मिक लोगों को लाओत्से से बड़ी परेशानी होती है; क्योंकि वे अपने मन में मान कर बैठे हैं कि हमने सांसारिक वासना छोड़ दी और ऊंची वासना पकड़ ली। कोई वासना ऊंची नहीं होती। कोई जहर ऊंचा नहीं होता। कोई पाप ऊंचा नहीं होता। जहर बस जहर है। वासना वासना है। हां, एक खतरा है। ऊंचा जहर तो नहीं होता, शुद्ध और अशुद्ध जहर हो सकता है। मिलावट हो, तो अशुद्ध होता है। मिलावट न हो, तो शुद्ध होता है। संसार की वासना अशुद्ध जहर है। मोक्ष की वासना शुद्ध जहर है।

इससे उन मित्र को परेशानी हुई कि आप आध्यात्मिक वासना को सांसारिक वासना से बुरी कह रहे हैं!

कारण है कहने का। क्योंकि संसार और वासना के साथ तो तालमेल है; संसार में वासना तो संगत है। मोक्ष के साथ वासना का कोई तालमेल ही नहीं है; बिल्कुल असंगत है। तो संसार और वासना में तो एक संगीत है; क्योंकि संसार हो ही नहीं सकता वासना के बिना। लेकिन मोक्ष और वासना में तो कोई लेन-देन नहीं है।

इसलिए जो आदमी मोक्ष की वासना में पड़ा है, वह बिल्कुल शुद्ध जहर में पड़ा हुआ है। वहां कुछ है ही नहीं। एक दफा संसार में दौड़ने वाला संसार को पा भी ले, मोक्ष के लिए दौड़ने वाला मोक्ष को कभी नहीं पा

सकता। धन की तरफ दौड़ने वाला, धन की वासना करने वाला धन को पा ले, इसमें कोई बड़ी आश्चर्य की बात नहीं है। सभी पा लेते हैं। लेकिन मोक्ष की तरफ दौड़ने वाले ने कभी मोक्ष नहीं पाया है। वह असंभव है।

इसलिए जो आदमी वासना को मोक्ष की तरफ लगाता है, वह तो बहुत खतरनाक काम कर रहा है। वह तो वासना को ऐसी जगह लगा रहा है कि वह कभी भी सफल नहीं हो सकती। संसार में तो सफल हो भी सकती है। संसार में वासना सफल भी होती है, असफल भी होती है। कोई पा लेता है, कोई नहीं पाता है। मोक्ष में वासना की सफलता का उपाय ही नहीं है। क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही निर्वासना है। मोक्ष और वासना में कहीं कोई संबंध नहीं जुड़ता।

इसलिए सांसारिक उतनी बड़ी भूल में नहीं है जितना तथाकथित आध्यात्मिक भूल में है, क्योंकि वह जो खोज रहा है वह संभव है। और आध्यात्मिक जो खोज रहा है, वह असंभव है। तो एक आदमी अगर बाजार में बैठ कर धन और यश खोज रहा है, असंभव की तलाश नहीं है वह, संभव है। लेकिन एक आदमी मंदिर में बैठ कर परमात्मा को खोज रहा है, एक आदमी वन में बैठ कर मोक्ष को खोज रहा है, वह असंभव को खोज रहा है।

असल में, परमात्मा खोजा नहीं जाता; जब खोज बंद हो जाती है, तो वह यहीं मौजूद है। खोज के कारण ही वह दिखाई नहीं पड़ता। जैसे एक आदमी तेजी से दौड़ रहा हो इस कमरे में और खोज रहा हो, उसकी दौड़ के कारण ही चीज दिखाई न पड़ती हो। उसकी तेज इतनी हो दौड़ कि कुछ दिखाई न पड़ता हो।

जैसे एक आदमी बैलगाड़ी में सफर करता है, तो आस-पास के दृश्य दिखाई पड़ते हैं। फिर हवाई जहाज में सफर करता है, तो डिटेल्स खो जाते हैं। फूल नहीं दिखाई पड़ते, वृक्ष नहीं दिखाई पड़ते; जंगल दिखाई पड़ते हैं। विस्तार खो जाता है। सूक्ष्मताएं खो जाती हैं। फिर एक आदमी राकेट में यात्रा करता है, तब जंगल भी खो जाते हैं, तब कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जितनी हो जाती है तेज गति, उतनी ही दृष्टि अंधी हो जाती है। फिर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जितनी हो जाती है तेज दौड़ वासना की, उतनी ही आंखें अंधी हो जाती हैं। दौड़ का धुआं और दौड़ की धूल इतनी भर जाती है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

और जिसको हम खोज रहे हैं, वह केवल तभी दिखाई पड़ता है जब आंखों पर कोई धुआं न हो, कोई धूल न हो, इतना विश्राम में हो मन कि जरा सी भी चहल-पहल न हो, जरा सी भी तरंग न हो बाधा डालने को। सब हो शून्य, मन बिल्कुल झील की तरह शांत हो; तत्क्षण उसकी तस्वीर, तत्क्षण उसका प्रतिबिंब बन जाता है। तत्क्षण वह दिखाई पड़ने लगता है।

तो लाओत्से कहता है, वासना संसार है। इसलिए कोई वासना आध्यात्मिक नहीं होती। और जो वासना को अध्यात्म का रंग देते हैं, वे अपने को बड़े से बड़ा धोखा दे रहे हैं। सांसारिक क्षम्य हैं, तथाकथित आध्यात्मिक अक्षम्य हैं। क्योंकि उन्होंने संसार की विधि को, और परमात्मा पर लगाया हुआ है। विधि संसार की है, ढंग संसार का है, और आकांक्षा परमात्मा की है। वासना, लोभ सब सांसारिक है, और इच्छा परमात्मा की है।

हम संसार को परमात्मा की तरफ नहीं मोड़ सकते। हम सांसारिक वृत्तियों को अध्यात्म की तरफ नहीं मोड़ सकते। सांसारिक वृत्तियां विलीन हो जाएं तो जो शेष रह जाता है, वही अध्यात्म है।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से ने जिस शुद्ध परम सत्य की चर्चा की है, धारणा मात्र को प्रक्षेप माना है और स्वभाव में ले जाने में धारणा मात्र से बाधा पड़ती है; इस परिप्रेक्ष्य में क्या धर्म या सत्य सदा हम साधारण

लोगों की पहुंच के बाहर ही रहेगा? और क्या लाओत्से कथित सरल, सहज स्वभाव का आलिंगन अति दुर्लभ ही बना रहेगा?

साधारण मनुष्य की पकड़ के बिल्कुल बाहर नहीं है; जिसको असाधारण होने का भ्रम है, उसकी पकड़ के बाहर है। साधारण आदमी बड़ी दुर्लभ बात है। उसे खोजना बहुत मुश्किल है। असाधारण तो सभी हैं। एक-एक से पूछ कर देख लें, सभी असाधारण हैं। ऐसा आदमी कभी आपको मिला है, जो साधारण हो?

और अगर कभी कोई कहता भी है कि मैं साधारण हूं, तो वह कहता है, मैं अति साधारण हूं। अति साधारण का मतलबः साधारणों में भी मैं असाधारण हूं। हर आदमी अपने को असाधारण मान कर चलता है। साधारण कोई भी नहीं अपने को मान कर चलता।

लाओत्से कहता है, साधारण हो जाओ और तुम पा लोगे। तुम्हारा असाधारण होना ही तुम्हारी बाधा है।

असाधारणता क्या है हमारी? कोई आदमी धन ज्यादा कमा लेता है, तो असाधारण है। कोई आदमी ज्ञान ज्यादा इकट्ठा कर लेता है, तो असाधारण है। कोई आदमी त्याग ज्यादा कर लेता है, तो असाधारण है। कभी आपने ख्याल किया, हमारी असाधारणता हमारे करने की मात्रा पर निर्भर होती है। तो जो जितना कर लेता है, उतना असाधारण हो जाता है।

और लाओत्से कहता है, न करने से पाया जाएगा वह सत्य। इसलिए असाधारण तो उसे कभी नहीं पा सकते; क्योंकि असाधारण का अर्थ ही होता है, जिन्होंने कुछ किया है। साधारण उसे पा लेंगे, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया है। लेकिन साधारण आदमी खोजना अति दुर्लभ है। यह बड़े मजे की बात है, सबसे साधारण धारणा यही है कि प्रत्येक आदमी अपने को असाधारण मानता है। कहे, न कहे; बताए, न बताए; अपने भीतर हर आदमी मानता है, वही केंद्र है सारे विश्व का। हर आदमी अपने को मानता है कि वह अपवाद है, नियम नहीं। हर आदमी अपने को गौरीशंकर का शिखर मानता है; और इस शिखर को सिद्ध करने में सक्रिय रहता है। जो सिद्ध नहीं कर पाते हैं, उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, बड़ी ग्लानि, बड़ी दीनता होती है।

एक मित्र ने पूछा है कि आत्महीनता, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स क्यों पैदा होता है?

इसीलिए पैदा होता है, आप मानते तो हैं अपने को गौरीशंकर और सिद्ध नहीं कर पाते। आप मानते तो हैं कि जगत के केंद्र हैं, लेकिन सिद्ध नहीं कर पाते। फिर हीनता पैदा होती है। हीनता पैदा ही उन्हें होती है, जिनके मन में श्रेष्ठ होने का भाव है। उलटा लगेगा; लेकिन हमने जीवन को ऐसा ही उलटा कर लिया है कि उसमें सीधी-साफ बातें कहनी हों, तो उलटी मालूम होती हैं। जिस आदमी को भी श्रेष्ठ होने का भाव है, उसे हीनता का बोध पैदा हो जाएगा। उसे लगेगा मैं कुछ भी नहीं हूं, क्योंकि मानता है वह इतना अपने को और उतना सिद्ध नहीं कर पाता है। फिर पीड़ा पकड़ती है मन को कि मैं कुछ भी न कर पाया।

एक मित्र ने पूछा है कि मुझमें आत्मविश्वास नहीं है; वह कैसे पैदा हो?

पैदा करना ही मत। आत्म-विश्वास पैदा करने का मतलब ही क्या होता है? मैं कुछ हूं! मैं कुछ करके दिखा दूंगा! आत्म-विश्वास का मतलब यह होता है कि मैं साधारण नहीं हूं, असाधारण हूं। और हूं ही नहीं, सिद्ध कर

सकता हूं। सभी पागल आत्म-विश्वासी होते हैं। पागलों के आत्म-विश्वास को डिगाना बहुत मुश्किल है। अगर एक पागल अपने को नेपोलियन मानता है, तो सारी दुनिया भी उसको हिला नहीं सकती कि तुम नेपोलियन नहीं हो। उसका भरोसा अपने पर पक्का है।

आत्म-विश्वास की जरूरत क्या है? क्यों परेशानी होती है कि आत्म-विश्वास नहीं है? क्योंकि तुलना है मन में कि दूसरा आदमी अपने पर ज्यादा विश्वास करता है, वह सफल हो रहा है; मैं अपने पर विश्वास नहीं कर पाता, मैं सफल नहीं हो पा रहा हूं। वह इतना कमा रहा है; मैं इतना कम कमा रहा हूं। वह सीढ़ियां चढ़ता जा रहा है, राजधानी निकट आती जा रही है; मैं बिल्कुल पीछे पड़ा हुआ हूं। पिछड़ गया हूं। आत्म-विश्वास कैसे पैदा हो? कैसे अपने को बलवान बनाऊं? क्या मतलब हुआ? आत्म-विश्वास का मतलब हुआ कि आप दूसरे से अपनी तुलना कर रहे हैं और इसलिए परेशान हो रहे हैं।

आप आप हैं, दूसरा दूसरा है। अगर आप जमीन पर अकेले होते, तो क्या कभी आपको पता चलता कि आत्म-विश्वास की कमी है? अगर आप अकेले होते पृथ्वी पर, तो क्या आपको पता चलता कि मुझमें हीनता का भाव है, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स है? कुछ भी पता न चलता। तब आप साधारण होते। साधारण का मतलब, आपको यह भी पता न चलता कि आप साधारण हैं। सिर्फ होते। जिसको यह भी पता चलता है कि मैं साधारण हूं, उसने असाधारण होना शुरू कर दिया। आप हैं, इतना काफी है। आत्म-विश्वास की जरूरत नहीं है, आत्मा पर्याप्त है। आप हैं। क्यों तौलते हैं दूसरे से?

फिर दिक्कतें खड़ी होंगी। किसी की नाक आपसे बेहतर है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी की आंख आपसे बेहतर है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी की लंबाई ज्यादा है, दीनता पैदा हो जाएगी। किसी ने मकान बड़ा बना लिया, दीनता पैदा हो जाएगी। फिर हजार दीनताएं पैदा हो जाएंगी। फिर जितने लोग आपको दिखाई पड़ेंगे, उतनी दीनताएं आपके भीतर पैदा हो जाएंगी। उनका जोड़ इकट्ठा हो जाएगा। और आपकी मान्यता है कि आप हैं गौरीशंकर! अब बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। आप हैं जगत के सबसे बड़े शिखर; और हर आदमी जो मिलता है, वह बता जाता है कि आप एक खाई हैं, एक खड्ड हैं। तो आपकी यह स्थिति कि खड्ड-खाई चारों तरफ और आपका यह भाव कि मैं हूं गौरीशंकर का शिखर, इन दोनों के बीच जो खिंचाव पैदा होगा, वही आदमी की बीमारी है। वही रोग है, जिसमें हर आदमी सड़ जाता है, मर जाता है, मिट जाता है। दूसरे से तौलते क्यों हैं?

बोकोजू से किसी ने आकर पूछा है कि मैं शांत नहीं हूं, आप शांत हैं। मैं अशांत हूं, आप शांत हैं; मैं कैसे आप जैसा हो जाऊं? बोकोजू ने कहा, अगर मैं भी किसी से पूछता कि मैं कैसे आप जैसा हो जाऊं, तो कभी का अशांत हो गया होता। एक ही तरकीब है मेरी कि मैंने किसी से कभी पूछा नहीं कि मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊं। मैं जैसा हूं, हूं। तुम जैसे हो, तुम हो। इनमें मैंने कभी कुछ और बदलाहट न चाही।

उस आदमी ने कहा कि मुझे ऊंची बातों की जरूरत नहीं; मुझे सीधा रास्ता बता दें। आप हैं शांत, मैं हूं अशांत; मैं शांत कैसे हो जाऊं? बोकोजू ने कहा, तू रुक; जरा लोग चले जाएं, तो तुझे बताऊं। फिर लोग आए, गए; दिन बीत गया, सांझ होने लगी। उस आदमी ने कहा, अब तो बहुत देर भी हो गई; अब जल्दी मुझे बता दें। बोकोजू उसे लेकर बाहर आया और उसने कहा कि देख, मेरे मकान के पीछे एक छोटा वृक्ष है और एक बड़ा वृक्ष है। वर्षों हो गए मुझे इस मकान में रहते, मैंने कभी छोटे वृक्ष को बड़े वृक्ष से पूछते नहीं देखा कि तू बड़ा है, मैं छोटा हूं; मैं बड़ा कैसे हो जाऊं? इसलिए बड़ी शांति है। बड़ा बड़ा है, होगा बड़ा; छोटा छोटा है। और यह भी हम आदमी सोचते हैं कि यह छोटा है और यह बड़ा है। छोटे को छोटे होने का पता नहीं है; बड़े को बड़े होने का

पता नहीं है। इसलिए बड़ा सन्नाटा है; कभी कोई विवाद नहीं, कोई संघर्ष नहीं, कोई उपद्रव नहीं। मैं मैं हूं, तू तू है। और यह तू छोड़ दे ख्याल कि तू दूसरे जैसा कैसे हो जाए।

वह आदमी बोला कि कैसे छोड़ दूं? मैं बहुत अशांत हूं! बोकोजू ने कहा कि तेरी अशांति का कारण मैं तुझे बता रहा हूं। दूसरे से जो अपने को तौलेगा, वह अशांत रहेगा ही।

लाओत्से कहता है, अपने को स्वीकार कर लो। अस्वीकृति में ही सारा उपद्रव है। और हममें से कोई अपने को स्वीकार नहीं करता, कोई नहीं। और जो जितना अपने को अस्वीकार करता है, उतना बड़ा महात्मा मालूम होता है। हममें से कोई अपने को स्वीकार नहीं करता। हम सब अपने दुश्मन हैं। हमारा बस चले, तो हम सब काट-पीट कर अलग कर दें अपने में से।

हम सबको दूसरे स्वीकार हैं, स्वयं की कोई स्वीकृति नहीं है। और जिनको हम स्वीकार कर रहे हैं, जरा उनकी तरफ झांक कर देखो। वे भी अपने को स्वीकार नहीं किए हुए हैं; वे दूसरों को स्वीकार कर रहे हैं। अगर एक-एक आदमी का मन खोल कर सामने रखा जा सके, तो एक ही बीमारी मिलेगी कि कोई अपने को स्वीकार नहीं करता है--कोई! और जो अपने को स्वीकार करता है, उसकी फिर कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि जहां तुलना नहीं है, वहां दीनता कैसी, हीनता कैसी, श्रेष्ठता कैसी? असाधारण कौन, साधारण कौन?

वह तो अच्छा है कि हम आदमियों से ही तुलना करते हैं। नहीं तो गुलाब में गुलाब का फूल खिला है, हम छाती पीटें कि हममें अब तक एक फूल भी नहीं खिला! बड़े हीन हो गए! आकाश में चांद निकला है; हम आंसू बहा रहे हैं कि ऐसी रोशनी कभी हमारे चेहरे से न निकली! वह तो अच्छा है कि हमने अपनी बीमारी आदमी तक ही सीमित रखी है। अगर हम फैला लें, तो हमें कोई भी दीन-हीन कर जाएगा। एक छोटी सी तितली उड़ रही होगी, और उसके पंखों का रंग हमें हीन कर जाएगा। एक हिरण दौड़ रहा होगा, और उसकी गति और उसकी चमक हमें दीन कर जाएगी। सड़क के किनारे एक छोटा सा पत्थर चमक रहा होगा वर्षा में, और उसकी चमक हमें फीका कर जाएगी। तो अच्छा है कि हम आदमियों से ही तौलते हैं।

तौलेंगे, तो दीन हो जाएंगे। दोहरी बीमारी है। खुद को माने बैठे हैं शिखर; और फिर तौलते हैं, तो दीनता पैदा होती है। तो दो स्थितियां तनाव की बन जाती हैं। गड्ढ दिखाई पड़ता है वस्तुतः और कल्पना में दिखाई पड़ता है शिखर। दोनों के बीच कहीं कोई तालमेल नहीं बैठता। जीवन इसी में टूट जाता है।

लाओत्से कहेगा कि साधारण हो, इससे शुभ और कुछ भी नहीं। स्वीकार कर लो अपनी साधारणता।

लेकिन हर कोई हमें समझा रहा है, कुछ बन कर दिखाओ! यह बन जाओ, वह बन जाओ; ऐसे बन जाओ, वैसे बन जाओ। बचपन से मां-बाप पीछे पड़े हैं, कुछ बन कर दिखाओ। शिक्षक पीछे पड़े हैं, कुछ बन कर दिखाओ। क्या साधारण ही रह जाओगे? संसार में आए हो, कुछ करके दिखाओ।

बड़े आश्चर्य की बात है, जिन्होंने करके दिखाया है, वे कब्रों में पड़े हैं वैसे ही। जिन्होंने नहीं करके दिखाया, वे भी विश्राम कर रहे हैं कब्रों में। और कब्रें कोई फर्क नहीं करतीं कि तुमने कुछ करके दिखाया था कि कुछ करके नहीं दिखाया था। और करके जिन्होंने दिखाया है, क्या है उसका परिणाम? सपने में जैसे हम कुछ कर लें, ऐसा ही जीवन में कुछ करना है। सुबह जाग कर सब मिट जाता है। पानी पर खींची गई रेखाओं सा सब खो जाता है। लेकिन हर एक पीछे पड़ा है, कुछ करके दिखाओ। क्योंकि करने को हम मानते हैं कोई गुण है।

लाओत्से कहता है, न करना गुण है।

इसका यह मतलब नहीं कि लाओत्से कहता है, कुछ करो मत। इसका यह मतलब नहीं है कि रोटी कमाने मत जाओ। इसका यह मतलब नहीं है कि नौकरी मत करो। इसका यह मतलब नहीं है कि हाथ-पैर मत

हिलाओ। लाओत्से कहता है कि न करने में ठहरे रहो। न करना तुम्हारा केंद्र रहे। और तुम्हारा जो करना निकले, वह करने की दौड़ से नहीं, न करने की स्वीकृति से निकले। तो तुम्हारी वासनाएं अपने आप कम होंगी। आवश्यकताएं रह जाएंगी, वासनाएं खो जाएंगी। जरूरतें रह जाएंगी। और आदमी की जरूरत इतनी कम है कि जिसका कोई हिसाब नहीं; और आदमी की वासना इतनी ज्यादा है कि जिसका कोई अंत नहीं।

लाओत्से कहता है, अगर तुम साधारण अपने स्वभाव में जीओ, तो तुम उतना कर लोगे जितनी तुम्हारी जरूरत है। पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। आदमी कुछ ऐसा कमजोर नहीं है। वे भी अपने लिए जुटा लेते हैं। लेकिन पशु करने से पीड़ित नहीं हैं। करते जरूर हैं, करने से पीड़ित नहीं हैं। कोई पशु कुछ होने की कोशिश में नहीं लगा है। सभी मोर एक जैसे मोर हैं। सभी तोते एक जैसे तोते हैं। अपना खा लेते हैं, पी लेते हैं, सो लेते हैं, गीत गा लेते हैं, नाच लेते हैं, आकाश में उड़ लेते हैं। कोई साधारण नहीं है, कोई असाधारण नहीं है। कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं है। करते तो वे भी हैं; लेकिन करने में कोई दौड़ नहीं है। और करने के पीछे सब कुछ लगा देने का कोई पागलपन भी नहीं है।

आदमी भर पागल है। आदमी का करना महत्वपूर्ण हो गया है उसके विश्राम से भी ज्यादा। हम करते ही किसलिए हैं? आदमी करता इसलिए है कि कभी विश्राम कर सके। और अंत यह होता है कि विश्राम का मौका ही नहीं आता और करते-करते ही समाप्त हो जाता है। लक्ष्य क्या है?

डायोजनीज विश्राम कर रहा है अपनी रेत में पड़ा हुआ। नग्न है। सिकंदर उससे मिलने गया है। और सिकंदर कहता है कि इतनी मौज! इतना आनंद! फिर भी मैं पूछता हूं कि मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं, तो मुझे कहो।

डायोजनीज ने कहा कि थोड़ा हट कर खड़े हो जाओ। सूरज की रोशनी आती थी, तुम बाधा बन गए हो। और ज्यादा तुम क्या कर सकोगे? हम बड़े मजे में थे, रोशनी पड़ती थी सुबह की ताजी, तुम जरा बीच में आ गए। जरा हट जाओ।

सिकंदर को बड़ी मुश्किल मालूम पड़ी। वह सोचता था कुछ करके दिखाएगा डायोजनीज को। कर सकता था, धन के अंबार लगा सकता था। और डायोजनीज ने क्या मांगा? सिकंदर ने कहा, डायोजनीज, तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं! मैं हूं महान सिकंदर; कुछ मांग ले। डायोजनीज ने कहा, तुम्हारी बड़ी कृपा है कि तुम हट गए। इससे बड़ी और क्या बात हो सकती है कि मेरे और सूरज के बीच अब कोई भी नहीं है।

यह आवश्यकता वाला आदमी है, वासना वाला नहीं। इतनी आवश्यकता थी, इतनी जरूरत थी कि बीच से हट जाओ। बात खतम हो गई। ये पक्षियों जैसा जी रहा है यह आदमी। उतने ही निसर्ग में, उतनी ही सरलता में।

सिकंदर से डायोजनीज पूछता है, क्या इरादे हैं? सिकंदर कहता है, दुनिया जीतूं! दुनिया जीतना चाहता हूं, सारी दुनिया जीतना चाहता हूं। डायोजनीज पूछता है, फिर क्या करोगे? सिकंदर कहता है, फिर विश्राम करूंगा। और डायोजनीज खूब खिलखिला कर हंसता है। सिकंदर पूछता है, क्यों हंसते हो? डायोजनीज ने कहा, हम अभी विश्राम कर रहे हैं। विश्राम करने के लिए दुनिया जीतना, हमें कुछ समझ नहीं आया। अगर विश्राम ही लक्ष्य है, तो डायोजनीज अभी विश्राम कर रहा है। और दुनिया जीतने का इससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन सिकंदर, तुम भूल में हो, विश्राम तुम कर न सकोगे। क्योंकि तुम्हें गणित का ही पता नहीं है। जिसे विश्राम करना है, वह दुनिया जीतने क्यों जाएगा? क्योंकि अगर दुनिया जीत कर ही विश्राम हो सकता होता, तो डायोजनीज विश्राम कैसे करता? कोई संबंध नहीं है, कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है। और मैं तुमसे कहता

हूं कि तुम कभी विश्राम न कर सकोगे। और तुम सिर्फ भ्रम में हो कि विश्राम करूंगा। तुम मर जाओगे ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते।

और सिकंदर ऐसे ही दौड़ते-दौड़ते मर गया।

हम सब भी सोचते हैं, कभी विश्राम करेंगे। सोचते हैं, ये-ये शर्तें पूरी हो जाएं, तो फिर हम विश्राम करेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि वे शर्तें पूरी हो जाएं। लेकिन तब तक काम करना आपके लिए ऐसी विक्षिप्तता हो चुकी होगी कि जिस दिन आपका बिस्तर बन कर तैयार होगा, उस दिन तक आपकी नींद खो गई होगी। और जब तक आप भोजन जुटा पाएंगे, तब तक भूख मर चुकी होगी। क्योंकि भोजन जुटाने में आदमी भूख की कुर्बानी चढ़ा देता है। और अच्छा बिस्तर जुटाने में आदमी नींद को समाप्त कर डालता है; नींद को चढ़ा देता है बलिवेदी पर कि एक अच्छा बिस्तर मिल जाए। और अच्छा बिस्तर इसलिए मिल जाए कि उस पर सो सके। फिर जब बिस्तर मिल जाता है, तो नींद नहीं होती। जब भोजन मिल जाता है, तो भूख नहीं होती।

इस दुनिया में दो तरह के दरिद्र लोग हैं। एक, जिनके पास भूख है, भोजन नहीं। एक, जिनके पास भोजन है, भूख नहीं। बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि दुनिया में दो जातियां हैं--हैव्स एंड हैव नाट्स। गलत है वह बात। दुनिया में दो जातियां हैं--हैव नाट्स एंड हैव नाट्स। क्योंकि किसी के पास भोजन है, तो भूख नहीं है। किसी के पास भूख है, तो भोजन नहीं है। और ध्यान रहे, इन दोनों में दरिद्र वह ज्यादा है, जिसके पास भोजन है और भूख नहीं। क्योंकि भोजन बाहरी चीज है, भूख भीतरी चीज है। और भोजन तो मांगा भी जा सकता है, चुराया भी जा सकता है। भूख मांगी भी नहीं जा सकती, चुराई भी नहीं जा सकती। जिसके पास भोजन है और भूख नहीं, उसके पास भीतर कुछ मर गया है और बाहर कुछ इकट्ठा हो गया है। और मजा यह है कि बाहर यह इकट्ठा उसने किया ही इसलिए था कि वह भीतर जो है, उसका आनंद ले सके। लेकिन उसे ही बेच डाला बाजार में। जिसे बचाने निकले थे, उसे बेच डाला। और आदमी निरंतर इस भूल से गुजरता है।

आवश्यकता रह जाएगी, अगर आदमी निष्क्रियता में प्रवेश कर जाए। सक्रियता नहीं खो जाएगी, लेकिन सक्रियता आवश्यकता के अनुपात में हो जाएगी। उससे ज्यादा नहीं। और यह जो निष्क्रिय को भीतर जान लेने वाला आदमी है, यह साधारण हो जाएगा। यह विक्षिप्तता की बातें छोड़ देगा कि मैं सिकंदर हो जाऊं, कि नेपोलियन हो जाऊं, कि हिटलर हो जाऊं, या बुद्ध हो जाऊं, महावीर हो जाऊं। नहीं, यह कुछ भी नहीं होना चाहेगा। यह जो है, वह काफी है।

मार्टिन लूथर ने मरते वक्त कहा है कि परमात्मा से मिलने जा रहा हूं। जिंदगी भर मैंने कोशिश की कि जीसस क्राइस्ट हो जाऊं। और अब मुझे ख्याल आता है कि परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम जीसस क्राइस्ट क्यों नहीं हो सके? वह मुझसे पूछेगा, तुम मार्टिन लूथर क्यों नहीं हो सके? जीसस क्राइस्ट से क्या लेना-देना था? जीसस क्राइस्ट जीसस क्राइस्ट जाने उनका होना। मैं था लूथर। तो अब मुझे ख्याल आता है कि जिंदगी तो मैंने जीसस जैसा होने में लगाई। परमात्मा मुझसे पूछेगा कि तुम लूथर क्यों न हो सके? जो तुम हो सकते थे, वह तुम क्यों न हो सके? और जो तुम थे ही नहीं, उस होने में तुमने समय क्यों व्यतीत किया?

परमात्मा किसी से भी नहीं पूछेगा कि तुम बुद्ध क्यों नहीं बने, महावीर क्यों नहीं बने, कृष्ण क्यों नहीं बने? वह यही पूछेगा कि तुम जो हो सकते थे, वह भी तुम क्यों न हो सके?

नहीं हो पाते हम, क्योंकि हम कुछ और होने में लगे हैं। जो हम हो सकते हैं, वह हम हो नहीं पाते। और जो हम हो नहीं सकते हैं, वह हम होने में लगे रहते हैं। ऐसे जीवन चूक जाता है। सारा अवसर खो जाता है।

फिर दीनता पैदा होगी, इनफीरिआरिटी कांप्लेक्स पैदा होगी, आत्मग्लानि होगी। लगेगाः मैं कुछ भी नहीं हूं। उदासी घेर लेगी, विषाद पकड़ लेगा। और जिंदगी एक बोझ हो जाएगी, एक नृत्य नहीं।

लाओत्से जो कह रहा है, वह एक नृत्य का जीवन है, लेकिन सहज। और जब मैं कहता हूं कि लाओत्से जो कह रहा है, वह एक नृत्य का जीवन है; तो वह यह नहीं कह रहा है कि तुम निजिंस्की जैसे नाचो, कि तुम कोई बहुत बड़े नृत्यकार, कि तुम कोई उदयशंकर हो जाओ। तुम नाच सको आनंद से, यह काफी है। टेढ़ा-मेढ़ा ही सही तुम्हारा नाच--तुम्हारा हो, आथेंटिक हो, प्रामाणिक हो। जरूरत नहीं है कि तुम्हारे पास कोई तानसेन के स्वर हों। तुम्हारा अपना स्वर हो, अपने ही हृदय से उठा। न हो राग उसमें, न हो काव्य उसमें, कुछ भी न हो; बस एक अस्तित्व की मांग है कि वह तुम्हारा हो, प्रामाणिक रूप से तुम्हारा हो।

और परमात्मा के सारे आनंद की वर्षा उस पर हो जाती है, जो प्रामाणिक रूप से स्वयं है।

तो लाओत्से की सारी चिंतना असाधारण व्यक्ति के लिए नहीं है। और दूसरी धार्मिक परंपराओं में असाधारण व्यक्ति का बड़ा मूल्य है। लाओत्से के लिए तो साधारण व्यक्ति का ही मूल्य है। ऐसे हो जाओ, जैसे हो ही नहीं। तुम्हारा पता भी किसी को क्यों चले?

तो यह प्रश्न सार्थक मालूम पड़ सकता है तथाकथित धार्मिक चिंतनाओं के संदर्भ में, जहां कहा जाता हैः यह हो जाओ, यह हो जाओ, यह हो जाओ। व्यर्थ है तुम्हारा जीवन। तुम्हारा जीवन सदा व्यर्थ है। किसी और का जीवन सार्थक है; तुम वैसे हो जाओ।

लाओत्से कहता है, तुम सार्थकता हो स्वयं! तुम हो; यह काफी है कि परमात्मा ने तुम्हें अंगीकार किया है। तुम हो; यह पर्याप्त है कि परमात्मा तुम्हारे पीछे खड़ा है; उतना ही जितना बुद्ध के, उतना ही जितना लाओत्से के। तुम्हें उतनी ही श्वास देता है, जरा सी भी कंजूसी नहीं है। तुम्हें उतनी ही हृदय की धड़कनें देता है, जरा सा भी भेदभाव नहीं है। तुम पर से सूरज जब गुजरता है, तो ऐसा नहीं कि अपनी किरणें सिकोड़ लेता है। और तुम्हारे पास से हवा जब गुजरती है, तो ऐसा नहीं कि संकोच कर लेती है कि कहां छोटे से आदमी के पास से गुजरना पड़ रहा है! पूरा अस्तित्व तुम्हें उसी तरह अंगीकार करता है, जैसे किसी और को।

लेकिन तुम ही अपने को अंगीकार नहीं करते, तब अस्तित्व भी क्या कर सकता है!

लाओत्से कहता है, असाधारण-साधारण की बात ही बकवास है, तुलना ही व्यर्थ है, कंपेरिजन ही अर्थहीन है। कोई ऐसा है, कोई वैसा है; इनमें नीचे-ऊपर कोई नहीं है। भिन्नताएं हैं, श्रेष्ठताएं नहीं हैं जगत में।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। जगत में श्रेष्ठताएं और हीनताएं नहीं हैं; जगत में भिन्नताएं हैं। बुद्ध तुमसे भिन्न हैं। ऊंचे-नीचे की बात बिल्कुल फिजूल है। और अगर वे खिल सके हैं फूल की भांति, तो इसीलिए कि उनकी किसी से कोई तुलना उनके मन में नहीं है। वे किसी से ऊंचे नहीं होना चाहते, किसी से नीचे नहीं होना चाहते। दूसरा उनकी दृष्टि में ही नहीं है। वे अपने को खोल लिए हैं।

और तुम्हारी तकलीफ यही है कि तुम्हें बुद्ध परेशान कर रहे हैं, महावीर परेशान कर रहे हैं, कृष्ण परेशान कर रहे हैं, क्राइस्ट परेशान कर रहे हैं। कैसे मैं कुछ और हो जाऊं, जो मैं नहीं हूं--यही नरक है। कैसे मैं वही हो जाऊं, जो मैं हूं--यही स्वर्ग है। और जिस दिन यह ख्याल ही मिट जाता है, यह होने की बात ही, बिकमिंग की बात ही मिट जाती है कि मैं कुछ हो जाऊं; जो हूं, हूं; जिस दिन बीइंग ही रह जाती है, उस दिन मोक्ष है।

लाओत्से तो साधारण आदमी के बड़े पक्ष में है। वह महामानवों के पक्ष में नहीं है। वह मनुष्य के पक्ष में है, विशेषणहीन मनुष्य के पक्ष में है; नोबडी, जिस पर कोई विशेषण नहीं, उसके पक्ष में है।

एक मित्र ने पूछा है कि हमारी सारी शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति स्वभाव पर आवरण बन जाते हैं। तो क्या ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती जो हमारे स्वभाव पर आवरण न बने, वरन उसके उदघाटन में सहयोगी हो जाए?

शिक्षा का अर्थ ही होता है, जो बाहर से दी जाए, कोई और दे। संस्कार का अर्थ यह होता है, बाहर से डाले जाएं, कोई डाले। तो गहरे अर्थ में सभी शिक्षाएं और सभी संस्कार स्वभाव पर आवरण बनेंगे। इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण बहुत जटिल हों, कुछ आवरण कम जटिल हों। इतना ही हो सकता है कि कुछ आवरण लोहे के बन जाएं और कुछ आवरण हवा के आवरण हों। आवरण तो होंगे ही।

इस बात को ठीक से समझ लें।

शिक्षा संसार के लिए जरूरी है। अगर संसार में जीना है, संसार में चलना है, वासना में दौड़ना है, सक्रिय होना है, तो शिक्षा जरूरी है। शिक्षा सक्रियता का प्रबंध है। इसलिए जो जितना शिक्षित है, उतना सक्रियता के जगत में सफल होता हुआ मालूम पड़ता है। जो जितना अशिक्षित है, उतने सक्रियता के द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। शिक्षा सक्रियता की टेक्नालाजी है।

लेकिन स्वभाव में जाने के लिए किसी शिक्षा की कोई जरूरत नहीं है। स्वभाव में जाने के लिए तो जो भी शिक्षा मिली हो, उसको छोड़ने का साहस चाहिए। जो भी शिक्षा मिली हो, उसे छोड़ने का साहस चाहिए। इसे हम ऐसा समझें, इस प्रश्न को हम ऐसा रखें, तो ख्याल में आ जाए।

लाओत्से कहता है कि वस्त्र मनुष्य की नग्नता को छिपा लेते हैं। हम पूछ सकते हैं, माना कि वस्त्र नग्नता को छिपा लेते हैं, क्या ऐसे कोई वस्त्र नहीं हो सकते जो नग्नता को न छिपाएं?

वस्त्र तो कैसे भी हों, नग्नता को छिपाएंगे; छिपाने की मात्रा में फर्क हो सकता है। कांच के वस्त्र बनाए जा सकते हैं, ट्रांसपैरेंट; वे बहुत कम छिपाएंगे। लेकिन फिर भी छिपाएंगे। और नग्न किसी को होना हो, तो कैसे भी वस्त्र हों, उसे उतार कर रख देने होंगे। चाहे वे लोहे के हों और चाहे कांच के हों, चाहे उनके पार दिखाई पड़ता हो और चाहे पार दिखाई न पड़ता हो। वस्त्र तो हटा ही देने होंगे, तो ही नग्नता प्रकट होगी।

स्वभाव हमारी आंतरिक नग्नता है। संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा हमारे वस्त्र हैं। उन वस्त्रों में हम दब जाते हैं। धीरे-धीरे वस्त्र इतने उपयोगी सिद्ध होते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि वस्त्रों के अलावा भी हमारा कोई होना है। भीतर की बात तो हम छोड़ दें, बाहर भी ऐसा हो जाता है। अगर आप भी अपने आपको रास्ते में नग्न मिल जाएं, तो पहचान न पाएंगे। या कि आप सोचते हैं पहचान लेंगे? अचानक एक दिन आप अपने दरवाजे से निकलें और आप ही अपने को दरवाजे पर नग्न मिल जाएं! आप नहीं पहचान पाएंगे। हम अपने को भी अपने वस्त्रों से ही पहचानते हैं।

जर्मन कनसनट्रेशन कैंप्स में बड़ी हैरानी अनेक लोगों को अनुभव हुई। क्योंकि जब नाजी लोगों को पकड़ते थे, तो पहला काम यह करते कि उनके सारे वस्त्र, उनके सब सामान छीन लेते। फिर उनके सिर, दाढ़ी, मूंछ सब घोट देते। तो एक मनसविद फ्रैंकेल ने लिखा है... । वह एक बड़ा डाक्टर, बड़ा मनसविद है। वह भी पकड़ा गया, यहूदी है। उसके साथ पांच सौ लोग पकड़े गए, उसके ही गांव के लोग थे। सब परिचित थे; कोई वकील था, कोई जज था, कोई चिकित्सक था, कोई शिक्षक था, कोई कोई था। उन पांच सौ ही लोगों के सिर मूंड़ दिए गए; उनके सब वस्त्र, कपड़े, सब निकाल लिए गए; चश्मा-घड़ी सब सामान अलग कर लिया गया।

फ्रैंकेल ने लिखा है कि जब हम पांच सौ ही नग्न खड़े हुए, तो कोई किसी को पहचान न पाए। समझ में ही न आए कि ये कौन लोग खड़े हैं! और फ्रैंकेल ने लिखा है कि जब मैं खुद आईने के सामने खड़ा हुआ--सिर घुटा, नग्न--तो मुझे भरोसा न आया कि यह मैं ही हूं।

आपकी अपनी जो आइडेंटिटी है, आपका जो अपना तादात्म्य है, वह आपके वस्त्र हैं बाहर भी। जरा देखें, एक मजिस्ट्रेट को और एक चोर को नग्न खड़ा कर दें; फिर बता दें, कौन मजिस्ट्रेट है और कौन चोर है। हो सकता है, नग्न चोर ही शान से खड़ा हो और मजिस्ट्रेट चोर मालूम पड़े। सारी गरिमा खो जाए मजिस्ट्रेट की; क्योंकि वह गरिमा वस्त्रों की है। इसलिए वस्त्रों पर हमारा इतना मूल्य है। एक सम्राट के वस्त्र छीन लें; सब छिन जाता है।

बाहर ही ऐसा होता, तो ठीक था; भीतर भी ऐसा ही है। भीतर के वस्त्र महीन हैं, सूक्ष्म हैं, पता नहीं चलता। शिक्षा है। आपकी शिक्षा छीन लें, तो आप में और आपके नौकर में कहीं कोई फर्क रह जाए? आप दस-पांच साल विश्वविद्यालय में ज्यादा देर बैठे हैं, वह जरा कम देर बैठा है; पर उसने कितना फर्क ला दिया है! आप सुसंस्कृत हैं, वह असभ्य है। आप जहां जाएंगे, लोग नमस्कार करेंगे। वह जहां से भी गुजरेगा, कोई उसे देखेगा भी नहीं।

कभी आपने यह ख्याल किया कि आपके कमरे में एक मेहमान आए, तो एक आदमी भीतर आता है। और जब आपका नौकर उस कमरे में आता है, जाता है, तो आपको पता भी नहीं चलता कि कोई आदमी भीतर आया और गया। नौकर कोई आदमी थोड़े ही है। नौकर कोई आदमी नहीं है। फर्क क्या है आपकी आदमियत में और उसकी आदमियत में? इतना ही कि आप स्कूल की बेंचों पर थोड़ी देर ज्यादा बैठे। इतना ही कि आपके पास जो वस्त्र हैं अपने को छिपाने के, वे जरा कीमती हैं। आपकी नग्नता जरा कीमती वस्त्रों में छिपी है और उसकी नग्नता जरा दरिद्र वस्त्रों में छिपी है।

लाओत्से कहता है, सभी शिक्षा वस्त्र निर्मित करती है--भीतर आत्मा पर, स्वभाव पर। सभी संस्कार, जो मैं हूं, उसको दबा देते हैं। वह कहता है, इन सभी संस्कारों को छोड़ कर स्वयं को जाना जाता है।

निश्चित ही, ऐसी संस्कृति हो सकती है, जो इतने जोर से दबा दे कि छुटकारे का उपाय न छोड़े। ऐसी भी संस्कृति हो सकती है, जो साथ-साथ छुटकारा भी सिखाए। आपको ऐसे कपड़े भी पहनाए जा सकते हैं, जिनको निकालना मुश्किल हो जाए। और ऐसे कपड़े भी पहनाए जा सकते हैं कि आप क्षण में उनके बाहर निकल जाएं।

जो संस्कृति ऐसी शिक्षा देती है और ऐसे संस्कार देती है, जिनके बाहर निकलना जरा भी मुसीबत न हो, वह संस्कृति धार्मिक है। और जो संस्कृति ऐसे वस्त्र देती है कि वे वस्त्र नहीं, चमड़ी की तरह पकड़ जाते हैं, छोड़ते नहीं फिर, छूटना मुश्किल हो जाता है, उनके बाहर निकलने में बड़ी अड़चन हो जाती है, वह संस्कृति अधार्मिक है। धार्मिक संस्कृति वह है, जो स्वयं से छूटने का उपाय भी देती है। धार्मिक संस्कृति वह है, जो आपको संस्कार भी देती है और संस्कार के बाहर जाने का मार्ग भी देती है। लेकिन संस्कार तो सभी बांधेंगे। साथ में बाहर निकलने का मार्ग भी हो सकता है; होना चाहिए। अगर हो, तो संस्कृति धार्मिक हो जाती है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूर्व-धारणा बना कर स्वयं में प्रवेश करने पर सरल स्व का उदघाटन संभव नहीं। बताएं कि पूर्व-धारणा के बिना स्व-बोध के प्रति प्रवृत्ति संभव है क्या? क्या जिज्ञासा का मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व-ज्ञान नहीं है?

इसको ही कहते हैं पूर्व-धारणा। यह प्रश्न पूर्व-धारणा से भरा हुआ है।

जैसे वे कहते हैं, "पूर्व-धारणा बना कर स्वयं में प्रवेश करना संभव नहीं।"

यह माना हुआ हो गया। प्रवेश करके देखा है? यह धारणा बना ली बिना प्रवेश किए कि संभव नहीं। अब संभव बहुत मुश्किल होगा। यह धारणा ही रुकावट डालेगी कि संभव नहीं। जो संभव नहीं है, उसका प्रयास ही क्यों करिएगा। असंभव है, दरवाजा बंद कर लिया। अब कठिन हो जाएगा।

धारणामुक्त होने का अर्थ है कि बिना जाने मन को खुला रखें, बांधें मत। संभव है या असंभव है, ऐसा निर्णय न करें। प्रयोग करें, निर्णय न करें। अनुभव करें, निर्णय न करें। अनुभव से ही निर्णय को आने दें। निर्णय से अनुभव को मत निकालें। क्योंकि अगर पहले ही तय कर लिया, तो फिर प्रयोग की वैज्ञानिकता समाप्त हो गई। आप तो पहले ही तय कर लिए हैं कि क्या होने वाला है। अब जानने को कुछ बचा नहीं। और अब आपका यह जो मन है, पूरी कोशिश करेगा वही सिद्ध करने का जो इसने मान लिया है। हम सब अपने मन को सिद्ध करने में लगे रहते हैं। जो मान लेते हैं, वह सही निकले, बड़ी खुशी होती है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा, गीता में आपको सुना, तब तो मन को बड़ी खुशी हुई। अभी लाओत्से में सुनते हैं, तो उतनी खुशी नहीं होती, बल्कि थोड़ी बेचैनी होती है।

गीता में सुना, तो मन को खुशी हुई होगी; क्योंकि गीता पहले से ही माने बैठे थे। तो लगा होगा कि ठीक वही कह रहे हैं, जो मैं मानता हूं। चित्त को बड़ी शांति मिलती है। मेरे अहंकार में एक और ईंट जुड़ गई। मकान और थोड़ा बड़ा हुआ। अगर कोई ऐसी बात पता चले कि मकान की एक ईंट खिसक गई और नींव हिलने लगी, तो बेचैनी होती है। हम सत्य की तलाश में थोड़े ही हैं; हम अपने ही मन की तलाश में हैं। हमारा मन सिद्ध हो जाए; और सब बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर हमारे गवाही हो जाएं। गवाही, अदालत में जैसे आदमी गवाहियां खड़ी कर देता है कि ये बारह गवाह खड़े हैं मेरे; ऐसा हमारा भी मन है कि महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, हमारे गवाह की तरह खड़े हो जाएं और कहें कि तुम बिल्कुल ठीक हो। तुम ठीक हो, यह सारे लोग कह दें, तो चित्त बड़ा प्रसन्न होता है।

लेकिन ये लोग बड़े गड़बड़ हैं। यह आपको ठीक करने की इन्हें जरा भी चिंता नहीं है। जो ठीक है, वही ठीक है; चाहे उसमें आपको मिटना ही क्यों न पड़े। लेकिन ध्यान रखें, उनकी दया बड़ी है। अगर आपको ठीक कह दें, तो आप बीमार ही बने रहोगे। आपकी बीमारी और बढ़ेगी। समर्थित हो जाएगी, तो और बढ़ेगी। आप कोई भी धारणा जब तय ही कर लेते हैं, तो फिर सत्य की खोज उसी क्षण बंद हो गई। सत्य की तरफ जाने का अर्थ ही है कि मैं निष्पक्ष जा रहा हूं।

लेकिन उन मित्र ने पूछा है कि अगर हम इसको मान ही न लें कि आत्मा भीतर है, तो आत्मा को जानने की प्रवृत्ति ही क्यों पैदा होगी?

उनका ख्याल है कि जिज्ञासा तभी पैदा होती है, जब हमें पता हो कि कुछ है। लेकिन जिज्ञासा यह भी तो हो सकती है कि हमारे मन में ख्याल उठे कि कुछ है या कुछ नहीं है? आप इस कमरे के बाहर से निकले; इस कमरे के भीतर क्या है, इसके जानने की जिज्ञासा हो सकती है बिना यह जाने कि क्या है। सच तो यह है कि अगर आपको पक्का ही पहले से भरोसा हो गया है कि कमरे के भीतर क्या है, तो जिज्ञासा की कोई जरूरत न रह गई। जितना बड़ा भरोसा, उतनी कम जिज्ञासा। और अगर श्रद्धा पूर्ण है बिना जाने, तो जिज्ञासा की कोई आवश्यकता ही न रही।

क्या जरूरत है? अगर आपको पता ही है कि भीतर आत्मा है और महावीर, बुद्ध और सब खोज-खोज कर कह गए, अब हम और किसलिए मेहनत करें? और एक दफा पता चल गया, बात खतम हो गई कि है भीतर, हम दूसरा काम करें। इसी में क्यों समय लगाएं? अगर आपको पक्का ही पता चल गया, तो जिज्ञासा मर जाएगी।

नहीं, आपको कुछ भी पता नहीं कि भीतर क्या है। एक घुप्प अंधकार है। ओर-छोर पता नहीं चलते। कोई पहचान नहीं मालूम होती। क्या है भीतर? है भी कुछ या नहीं है? मृत्यु है या अमृत? वहां कोई है भी या सिर्फ एक शून्य है? तब जिज्ञासा पैदा होती है।

जिज्ञासा का अर्थ हैः जहां आप अवाक खड़े हैं और आपको कुछ भी पता नहीं है। जहां धारणा है, वहां आप अवाक नहीं हैं; आपको पता है ही। इसलिए धारणा वाले लोग जिज्ञासु नहीं होते। जिज्ञासा की तो परिपूर्णता तभी है, जब धारणा की परम शून्यता हो। जिस मात्रा में धारणा, उस मात्रा में जिज्ञासा कम हो जाएगी।

इसलिए बच्चे जिज्ञासु होते हैं, देखा है; बूढ़े जिज्ञासु नहीं होते। क्या कारण है? बच्चे ऐसे प्रश्न पूछते हैं कि बड़े-बड़े बूढ़े भी उनका जवाब नहीं दे पाते। बच्चे जिज्ञासु होते हैं, क्योंकि धारणा उनकी कोई भी नहीं है। बूढ़े की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, धारणा ही धारणाओं का ढेर लग गया होता है, जिज्ञासा बिल्कुल नहीं रह जाती। बूढ़े भी उसी जगत में खड़े होते हैं, बच्चे भी उसी जगत में खड़े हैं; लेकिन बूढ़ों को कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती। सुबह सूरज निकलता है; बूढ़ा भी देखता है, बच्चा भी देखता है। बच्चे को तत्काल जिज्ञासा पैदा होती है--क्या है? पक्षी गीत गाता है। बच्चे को जिज्ञासा होती है--क्या है? बूढ़े को कोई जिज्ञासा नहीं होती। अगर बच्चा पूछता भी है, तो वह कहता है, चुप रहो! जब बड़े हो जाओगे, जान लोगे।

इसको खुद भी बड़े होकर पता नहीं चला है। मगर एक बात इसको पता चल गई है कि बड़े होते-होते जिज्ञासा मर जाती है। पूछेगा ही नहीं, जानने का कोई सवाल नहीं है। यह बेटा भी कल बूढ़ा होकर अपने बेटे से कहेगा कि घबड़ाओ मत, अभी तुम्हारी उम्र कम है, जब उम्र बड़ी हो जाएगी, सब जान लोगे। लेकिन जिनकी उम्र बड़ी है, उनको क्या पता है? कुछ पता नहीं है। सिर्फ उनकी जिज्ञासा मर गई। उनकी जो ताजगी थी पूछने की, वह खो गई। जो खोजने की आकांक्षा थी, वह मर गई। ढेर सिद्धांतों के उनके पास हो गए। हर चीज का उत्तर उनके पास है। प्रश्न उनके पास एक भी नहीं है, उत्तर उनके पास सब हैं। प्रश्न उनके बिल्कुल खो गए हैं। जानकारी बहुत उनके पास हो गई है।

इसलिए बूढ़े के भीतर शरीर ही बूढ़ा हो जाए, यह तो स्वाभाविक है। लेकिन यह आत्मा का बूढ़ा हो जाना है। शरीर तो बूढ़ा हो, यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर किसी बूढ़े के भीतर शरीर बूढ़ा हो और बच्चे जैसी जिज्ञासा जारी रहे, तो बुढ़ापे से ज्यादा सुंदर और घटना जगत में दूसरी नहीं है। क्योंकि तब बच्चे जैसी ताजी ओस सुबह की भीतर होती है। और जिंदगी के अनुभव कचरे की तरह दबा नहीं पाते और जिंदगी की धारणाएं राख नहीं बन पातीं, तो वैसे बूढ़े की आंखों में बच्चा झांकता है। और जिस दिन अनुभव हो बूढ़े का और जिज्ञासा हो बच्चे की, उस दिन व्यक्ति सत्य के निकटतम होता है।

लेकिन हमारी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं कि अगर हमें पहले से पता ही नहीं है, तो हम खोजने ही क्यों जाएंगे?

खोजने जाने का मतलब ही यह होता है कि पता नहीं है, इसलिए हम खोजने जाते हैं। धारणा हत्या है स्वयं की और सत्य से बचने का उपाय है।

कहा है उन्होंने, "क्या जिज्ञासा का मूल कारण वस्तु-तत्व का पूर्व-ज्ञान नहीं है?"

अगर पूर्व-ज्ञान ही है, तो जिज्ञासा तो फिर मूढ़ता होगी। ज्ञान के भी पूर्व ज्ञान कैसे हो सकता है? ज्ञान होगा, तभी! और जब ज्ञान होगा, तो जिज्ञासा खो जाएगी।

खतरा यही है कि बिना ज्ञान हुए भी जिज्ञासा खो सकती है, अगर हम दूसरों के ज्ञान को अपना ज्ञान मान लें। उसे हम पूर्व-ज्ञान कहते हैं। महावीर कहते हैं कि आत्मा है अनंत वीर्य, अनंत आनंद, अनंत ज्ञान; ऐसी है, ऐसी है, ऐसी है। यह उनका ज्ञान है। हमारे लिए यह पूर्व-ज्ञान बन सकता है। इस पूर्व-ज्ञान का मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ, यह महावीर का ज्ञान है; हमें तो कुछ पता नहीं इस आत्मा का। लेकिन महावीर के शब्दों को हम स्वीकार कर लेते हैं।

महावीर के शब्दों को कितने लोग स्वीकार किए हुए हैं; उनमें से कौन महावीर की खोज पर जाता है? बुद्ध को कितने करोड़ों लोग मानते हैं; लेकिन कौन बुद्ध जैसा खोजता है? वह तो भला हो कि बुद्ध को कोई और बुद्ध नहीं मिला पूर्व-ज्ञान देने वाला। खुद ही खोजा, तो पाया। सत्य स्वयं की खोज से मिलता है। इतना सस्ता नहीं है कि दूसरे से मिल जाए।

हां, दूसरे से ज्ञान मिल सकता है। लाओत्से उस ज्ञान को ही कहता है, छोड़ो! यह बुद्धिमत्ता छोड़ो, जो उधार है।

पूछा है, "क्या स्व-बोध आनंद-रूप नहीं है? यदि है, तो स्व-बोध को आनंद-रूप मानने में आपको संकोच क्यों है? श्रुतियां तो आत्मा को स्पष्ट रूप से आनंद-स्वरूप मानती हैं।"

श्रुतियां मानती होंगी। जिन्होंने कहा होगा, उन्होंने जाना होगा। जिन्होंने जाना है, उन सभी ने कहा है कि वह आनंद-रूप है। लेकिन खतरा तो वहां शुरू होता है कि जिन्होंने नहीं जाना वे भी मान लेते हैं कि वह आनंद-रूप है। खतरा जानने वालों का नहीं है, खतरा सुनने वालों के साथ है। आप भी मान कर बैठ जाते हैं कि आनंद-रूप है। आपको न आनंद का पता है कि आनंद क्या है, आनंद-रूप का क्या अर्थ होगा! न आत्मा का पता है कि आत्मा क्या है! न आनंद का पता है कि आनंद क्या है! लेकिन यह वाक्य बड़ा सुरुचिकर लगता है कि आत्मा आनंद-रूप है। इसका अर्थ क्या होगा?

दुख आपने जाना है। सुख की कभी कोई झलक पाई होगी। आनंद की तो कोई झलक आपको नहीं है। तो जब भी आप समझते हैं कि आत्मा आनंद-रूप है, आप सोचते हैं, खूब सुख, सदा सुख रहेगा, ऐसी कुछ होगी। आपके लिए आनंद का अर्थ सुख का ही विस्तार हो सकता है। सघन सुख होगा, कभी समाप्त न होने वाला सुख होगा--यही आपकी धारणा हो सकती है।

आनंद का सुख से उतना ही संबंध है, जितना दुख से। दोनों से कोई संबंध नहीं है। आत्मा का भी पता नहीं, आनंद का भी पता नहीं; लेकिन शब्द सुनते-सुनते लगता है कि पता हो गया--आत्मा आनंद है। इसको दोहराते रहें बैठ करः आत्मा आनंद है, आत्मा आनंद है। उससे कुछ भी नहीं होगा।

लाओत्से की दृष्टि यह नहीं है कि आत्मा आनंद नहीं है। लाओत्से यह कह रहा है कि हम कुछ न कहेंगे कि आत्मा क्या है। तुम्हीं जाओ और जानो। हम इतना ही कहेंगे कि तुम कैसे जा सकते हो। हम यह न कहेंगे कि जाने पर तुम्हें क्या मिलेगा। क्योंकि तुम इतने धोखेबाज हो कि बिना जाए यहीं बैठ कर रटने लगोगे कि आत्मा आनंद है, आत्मा आनंद है। और बार-बार पुनरुक्त करके अपने को ही सम्मोहित कर लोगे और यह भूल ही जाओगे कि तुम पहुंचे नहीं हो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है।

सत्य क्या है, इसे कहने से आपको शब्द सुनाई पड़ते हैं, सत्य सुनाई नहीं पड़ता। शब्द सुनाई पड़ते हैं, और बार-बार सुनने से शब्द परिचित हो जाते हैं। और परिचित शब्द खतरनाक हैं।

यहूदियों में एक प्रथा है और कीमती प्रथा है कि परमात्मा का नाम न लिया जाए। तो यहूदियों ने परमात्मा का जो नाम रखा हैः वह है याहवेह। उस शब्द का इतना ही मतलब होता है कि जिसका कोई नाम नहीं है। क्योंकि नाम बार-बार दोहराने से कहीं ऐसा भ्रम न पैदा हो जाए कि तुम जानते हो। और याहवेह, जिस शब्द का अर्थ इतना ही होता है कि जिसका कोई नाम नहीं, इसका भी उपयोग नहीं करना है। नहीं तो यही नाम बन जाएगा।

आदमी के लिए तकलीफें हैं। और उन तकलीफों को जो समझते हैं, वे नहीं कहेंगे कि क्या है आत्मा; वे इतना ही कहेंगे कि कैसे तुम जा सकते हो, जाओ। अंधे से क्या फायदा है कहने का कि प्रकाश क्या है। इतना ही काफी है कि क्या है इलाज, क्या है औषधि कि आंखें खुल जाएं। और खतरा है यह कि अंधे को आप बता दें कि प्रकाश यह है और अंधा भी सुन ले। क्योंकि अंधा बहरा तो नहीं है, सुनता है। बल्कि सच यह है कि आंख वालों से अंधे ज्यादा सुनते हैं।

ख्याल किया आपने, अंधों के कान तेज हो जाते हैं। आंख की ताकत भी कान को ही मिल जाती है। तो अंधे सुनने में बड़े कुशल हो जाते हैं। अंधों की स्मृति भी ज्यादा होती है आंख वालों से। क्योंकि आंख से बनती हैं हमारी कोई नब्बे प्रतिशत स्मृतियां। वह काम बंद हो जाता है। तो सारी स्मृति की शक्ति कान को मिल जाती है। तो अंधे की स्मृति भी बड़ी तीव्र होती है।

तो अंधे को अगर कोई बता दे कि प्रकाश क्या है, तो वह सुन भी लेगा, समझ भी लेगा, समझेगा कि समझ लिया, कंठस्थ कर लेगा, स्मृति मजबूत हो जाएगी। वह भूल ही जाएगा कि मैं अंधा हूं और प्रकाश से मेरा कोई संबंध नहीं है, और न मेरी प्रकाश से कोई पहचान है, आंख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है। इन मित्र ने लिखा है, श्रुतियां कहती हैं... । आंख वाले कहते हैं कि प्रकाश ऐसा है। आंख वालों के कहने से क्या संबंध है? आंख चाहिए। और खतरा यही है कि अंधे भी कंठस्थ कर लेते हैं।

इसलिए लाओत्से नहीं चर्चा करता कि आत्मा क्या है, क्या नहीं है। वह इतना ही कहता है, कैसे आंख की चिकित्सा हो सकती है। बस वह चिकित्सा हो जाए, तो काफी है।

एक मित्र ने पूछा है, हम धार्मिक ही क्यों हों, जब न आदि का पता है, न अंत का, न ईश्वर-आत्मा का कोई पता है? बुद्ध पुरुष कहते हैं जिस सत्य की बात, यदि वह सत्य है, तो वे सभी को उसका अनुभव क्यों नहीं करवा पाते हैं?

कोई नहीं कहता आपसे कि आप धार्मिक हों। कम से कम लाओत्से तो नहीं कहेगा। क्योंकि धार्मिक लोगों ने इतने उपद्रव किए हैं कि आप न हों, तो अच्छा है। लाओत्से नहीं कहता कि धार्मिक हों। लाओत्से तो इतना ही कहता है कि जो आप हैं, वही हों।

आप पूछ सकते हैं कि वही हम क्यों हों?

क्योंकि वही आप हो सकते हैं। और कुछ होने का उपाय नहीं है। हां, और कुछ होने की आप कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में जीवन व्यर्थ हो सकता है।

लेकिन आप कह सकते हैं कि हम जीवन को व्यर्थ क्यों न करें?

कोई आपको रोक नहीं सकता। और इसीलिए बुद्ध पुरुष भी हार जाते हैं और आपको सत्य का ज्ञान नहीं करवा पाते। क्योंकि आप कहते हैं, हम सत्य का ज्ञान क्यों करें? बुद्ध पुरुष भी क्या कर सकते हैं! कह सकते हैं।

जो आनंद उन्हें उपलब्ध हुआ है, जो शांति उन्होंने पाई है, जो प्रकाश उन्हें मिला है, उसकी प्यास जगाने की चेष्टा कर सकते हैं। वे प्रकाश तो नहीं दे सकते, लेकिन प्यास जगाने की चेष्टा कर सकते हैं।

लेकिन आप यह भी कह सकते हैं कि क्यों हमारी प्यास जगाने की चेष्टा कर रहे हैं?

लेकिन आप थोड़ा समझने की कोशिश करें। अगर आप धार्मिक नहीं होना चाहते हैं, आप यहां पहुंच कैसे गए? आपको यह प्रश्न पूछने का ख्याल क्यों आया? कोई बेचैनी है भीतर, जो आपको यहां तक ले आई, और आपने इतनी कृपा की और प्रश्न लिखा। इतना कष्ट उठाया। कोई बेचैनी है भीतर। एक बात तय है कि आप कुछ खोज रहे हैं। नहीं तो आने का कोई कारण नहीं है, प्रश्न पूछने का कोई कारण नहीं है। कोई खोज है।

आप क्या खोज रहे हैं? बुद्ध उसी को धर्म कहते हैं, लाओत्से उसी को ताओ कहते हैं। आपको पता हो या न पता हो, आप धर्म खोज रहे हैं। आपको यह भी पता नहीं है कि आप क्या खोज रहे हैं।

थोड़ा अपने भीतर जांच-पड़ताल करें: क्या है आकांक्षा? क्या है तलाश? हमें यह भी तो पता नहीं कि हम कौन हैं, क्यों हैं, किस वजह से हैं? हमारा होना बिल्कुल अकारण मालूम होता है। इस पृथ्वी पर जैसे अचानक फेंक दिए गए हैं। क्यों हैं? बेचैनी है भीतर। और वह बेचैनी तब तक समाप्त न होगी, जब तक इस अस्तित्व के भीतर अपनी जड़ों का हमें अनुभव न हो जाए। जब तक हम इस अस्तित्व और अपने बीच एक संबंध को न जान लें, तब तक हमें बेचैनी जारी रहेगी।

धार्मिक होने का और क्या अर्थ है? शब्दों में जाने की कोई जरूरत नहीं है। धार्मिक होने का इतना ही अर्थ हैः वह आदमी जिसने अस्तित्व और अपने बीच संबंध खोज लिया, जिसने विराट और अपने बीच नाता खोज लिया, जो अब इस जगत में एक परदेशी, अजनबी, स्ट्रैंजर नहीं है। यह जगत उसका परिवार हो गया। ये चांद-तारे और सूरज उसका परिवार हो गए। अब वह अपने घर में है। धार्मिक होने का क्या मतलब है? धार्मिक होने का मतलब है कि हम कहीं परदेश में नहीं भटक रहे हैं, हम किन्हीं अजनबी लोगों के बीच में नहीं हैं; यह जगत हमारा घर है।

लेकिन मकान घर नहीं होता। मकान तो सभी हैं। कौन सा मकान घर होता है आपका? जिसके बीच और आपके बीच एक आत्मैक्य स्थापित हो जाता है, जिसके बीच और आपके बीच एक आंतरिक मिलन हो जाता है, तब मकान घर हो जाता है। अधार्मिक आदमी संसार में रहता है और धार्मिक आदमी परमात्मा में। संसार और उसके बीच एक संबंध, गहन संबंध हो जाता है। उसके भीतर के हृदय की वीणा पर जगत की सब चीजें संगीत उठाने लगती हैं। सूरज फिर पराया नहीं है। और चांद-तारे फिर दूर नहीं हैं। सभी कुछ अपना है। और यह सारा विराट ब्रह्मांड अपना घर है। ऐसी जो प्रतीति है, वह धार्मिकता है।

अगर आप इस जगत में एक परिवार को खोज रहे हैं, एक प्रेम को, तो आप धर्म को खोज रहे हैं। अगर आप एक व्यक्ति के भी प्रेम में पड़ते हैं, तो आपने जगत के एक हिस्से को धार्मिक बना लिया। फिर जितना जिसका बड़ा है परिवार, उतना है उसका गहन आनंद।

कुछ लोग ऐसे हैं कि वे ही उनका अकेला परिवार हैं। कहीं उनका कोई नाता-रिश्ता नहीं है। फिर अगर ऐसे लोगों को लगने लगता है कि हम आउटसाइडर हैं... ।

कोलिन विल्सन ने एक किताब लिखी है--दि आउटसाइडर। इस युग के लिए प्रतीक-किताब है। इस युग में हर आदमी को लगता है कि मैं एक अजनबी हूं। क्यों हूं? किससे मेरा क्या संबंध है? कौन मेरा, मैं किसका? कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता जोड़। उखड़े-उखड़े लोग, जैसे वृक्ष को जमीन से उखाड़ दिया हो और हवा में लटका दिया हो, वैसे हम हैं।

धार्मिक होने का अर्थ है, जड़ों की खोज। सिमोन वेल ने एक किताब लिखी है--दि नीड फॉर दि रूट्स। इस सदी में थोड़े से धार्मिक व्यक्तियों में वह महिला भी एक थी। उसने लिखा है कि धर्म जो है, वह जड़ों की तलाश है। यह जो लटका हुआ आकाश में, अधर में लटका हुआ वृक्ष है--सूखता हुआ, कुम्हलाता हुआ, तड़पता हुआ--इसको वापस जगह देनी है जमीन में। इसको फिर इसकी जड़ें मिल जाएं, यह फिर हरा हो जाए, इसमें फिर फूल आने लगें। धार्मिक होने का अर्थ हैः अपनी ही खोज, अपने और जगत के बीच किसी संबंध की खोज। अपने और जगत के बीच किसी गहन प्रेम की खोज।

मैं नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएं। लेकिन इस जमीन पर एक भी ऐसा आदमी नहीं है, जो धार्मिक नहीं होना चाह रहा है, भला वह इनकार ही क्यों न कर रहा हो। एक आदमी ऐसा खोजना मुश्किल है, जो धार्मिक न होना चाह रहा हो। धर्म को वह शब्द क्या देता हो, यह उसकी मर्जी। वह अपनी आकांक्षा को क्या रूप-आकृति देता हो, यह भी उसकी मर्जी। लेकिन मुझे अब तक ऐसा एक आदमी नहीं मिला, जो धार्मिक होने की तलाश में नहीं है। जिसको हम नास्तिक कहते हैं, वह भी तलाश में है।

असल में, आदमी की तलाश ही यही है कि वह इस जगत में कोई असंगत और व्यर्थता तो नहीं है? इस जगत में कोई उखड़ी हुई चीज, व्यर्थ की चीज तो नहीं है? इस जगत में उसके होने की कोई अर्थवत्ता है या नहीं, कोई सिग्नीफिकेंस? वह है, तो इस विराट में उसका कोई मूल्य है? इस जगत में मूल्य की खोज धर्म है। आप हैं, आपका कोई मूल्य है इस जगत में? कीमत हो सकती है; मूल्य कोई है आपका इस जगत में?

अगर आपका कोई मूल्य है, तो उसका अर्थ हुआ कि यह जगत आपके भीतर से विकसित हो रहा है; यह विराट चेतना की धारा आपके भीतर से विकासमान हो रही है। यह पूरा जगत आपको चाहता है; आपके हुए बिना अधूरा होता। आप न होते, तो यह जगत अधूरा होता, कुछ कमी होती, कुछ खाली जगह होती। आपने इस जगत को भरा है। इस जगत और आपके बीच कोई गहरा लेन-देन है। प्रतिपल यह जगत आपको दे रहा है और आपसे ले रहा है। आप और जगत के बीच एक गहरा अंतर्मिलन है। इस अंतर्मिलन की खोज ही धर्म है।

पर मैं नहीं कहता कि आप धार्मिक हो जाएं। दुनिया में कोई किसी के कहने से कभी धार्मिक नहीं हुआ है। बल्कि इतने लोग जो अधार्मिक दिखाई पड़ते हैं, यह बहुत चेष्टा करने का फल है।

चार्ल्स डार्विन ने अपने आत्म-संस्मरणों में एक बड़ी हैरानी की बात लिखी है। उसने लिखा है, कुछ चीजें ऐसी हैं कि जो चेष्टा करने से विपरीत परिणाम लाती हैं। उसने कहीं यह पढ़ा था। वह तो वैज्ञानिक आदमी था डार्विन। उसने सोचा, बिना प्रयोग किए कैसे... !

तो उसने अपने पड़ोस के दस जवान लड़कों को बुलाया। सुंघनी होती है नाक में सूंघने की। वह उन दसों के सामने रखी और उनसे कहा कि मैं तुमसे पूछता हूं, तुमने कभी यह नास, यह सुंघनी सूंघ कर देखी है? उन सब ने कहा, हमें अनुभव है, बड़े जोर से छींकें आती हैं। तो डार्विन ने कहा कि मैंने ये दस नगद सोने के सिक्के रखे हैं। जिसको भी छींक आ जाएगी सुंघनी लेने पर, नगद एक सोने का सिक्का उसे दूंगा।

उन दसों ने सुंघनी ली, बड़ी कोशिश की छींक को लाने की, रुपया सामने रखा था, छींक है कि नहीं आती है। आंख से आंसू बहते हैं, मुंह लाल हो जाता है; लेकिन छींक है कि नहीं आती है। दस में से एक भी सफल नहीं हुआ छींक लाने में।

आप भी सफल न होंगे; छींक लाने की कोशिश करें। छींक आती है, लाई नहीं जाती।

धार्मिक होना होता है; कोई आपको धार्मिक बना नहीं सकता। इसलिए धर्मगुरुओं ने मिला कर पृथ्वी को अधार्मिक बना दिया है। धर्मगुरुओं की चेष्टाओं का फल यह है कि किसी को छींक ही नहीं आती। सब लाने की कोशिश में लगे हैं। लेकिन मेकेनिज्म है। कुछ चीजें हैं, जो सहज हों, तो ही होती हैं। चेष्टा से हों, नहीं होती हैं।

और लाओत्से इसलिए सहज पर जोर देता है। वह कहता है, यह जो परम सत्य है जीवन का, यह सहज होता है। तुम जितने सहज हो जाओगे, यह छलांग लग जाएगी। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतनी यह छलांग असंभव है।

आज इतना ही। रुकें, पांच मिनट कीर्तन करें, और फिर जाएं।

प्रवचन-क्रम

44. धार्मिक व्यक्ति अजनबी व्यक्ति है 2
45. संत की वक्रोक्तियां: संत की विलक्षणताएं 23
46. क्षुद्र आचरण नीति है, परम आचरण धर्म 41
47. ताओ है झुकने, खाली होने व मिटने की कला 61
48. समर्पण है सार ताओ का 80
49. ताओ है परम स्वतंत्रता 99
50. न नया, न पुराना; सत्य सनातन है 115
51. सदगुण के तलछट और फोड़े 132
52. वर्तुलाकार अस्तित्व में यात्रा प्रतियात्रा भी है 152
53. स्वभाव की उपलब्धि अयात्रा में है 172
54. अद्वैत की अनूठी दृष्टि लाओत्से की 190
55. प्रकाश का चुराना ज्ञानोपलब्धि है 207
56. शिष्य होना बड़ी बात है 226
57. श्रद्धा, संस्कार, पुनर्जन्म, कीर्तन व भगवत्ता 245
58. सनातन शक्ति, जो कभी भूल नहीं करती 265
59. संस्कृति से गुजर कर निसर्ग में वापसी 282
60. प्रकृति व स्वभाव के साथ अहस्तक्षेप 298
61. खेदपूर्ण आवश्यकता से अधिक हिंसा का निषेध 322
62. युद्ध अनिवार्य हो तो शांत प्रतिरोध ही नीति है 341
63. विजयोत्सव ऐसे मना जैसे कि वह अंत्येष्टि हो 362
64. मार्ग है बोधपूर्वक निसर्ग के अनुकूल जीना 382

चवालीसवां प्रवचन

धार्मिक व्यक्ति अजनबी व्यक्ति है

Chapter 20 : Part 1

The World And I

Banish learning, and vexations end.
Between "Ah!" and "Ough!"
How much difference is there?
Between "good" and "evil"
How much difference is there?
That which men fear
Is indeed to be feared;
But, alas, distant yet is the dawn (of awakening)!
The people of the world are merry-making
As if partaking of the sacrificial feasts,
As if mounting the terrace in spring;
I alone am mild, like one unemployed,
Like a new-born babe that cannot yet smile,
Unattached, like one without a home.

अध्याय 20 : खंड 1

संसार और मैं

पांडित्य को छोड़ो तो मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं।
हां और न के बीच अंतर क्या है?
शुभ और अशुभ के बीच भी फासला क्या है?
लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए;
लेकिन अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है!
दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं,
मानो वे यज्ञ के भोज में शरीक हों,

मानो वे वसंत ऋतु में खुली छत पर खड़े हों;

मैं अकेला ही शांत और सौम्य हूं, जैसे कि मुझे कोई काम ही न हो,

मैं उस नवजात शिशु जैसा हूं, जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता;

या वह बनजारा हूं, जिसका कोई घर न हो।

गुरजिएफ ने मनुष्य को दो विभागों में बांटा है। एक, जिसे वह कहता है व्यक्तित्व, पर्सनैलिटी; और दूसरा, जिसे वह कहता है आत्मा, एसेंस। व्यक्तित्व वह हिस्सा है, जो हम सीखते हैं। और आत्मा वह हिस्सा है, जो अनसीखा हमारे साथ है। एक तो हमारे जीवन का वह पहलू है, जो हमने दूसरों से सीखा है। और एक हमारे जीवन की वह गहराई है, जो हम लेकर पैदा हुए हैं। एक तो मैं हूं, अंतरतम में छिपा हुआ। और एक मेरी बाहरी परिधि है, मेरे वस्त्र हैं, जो मैंने दूसरों से उधार लिए हैं। व्यक्तित्व उधार घटना है, बारोड; आत्मा अपनी है।

लाओत्से का यह सूत्र आत्मा और व्यक्तित्व के संबंध में है।

लाओत्से कहता है, पांडित्य छोड़ो तो मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं। बैनिश लर्निंग, वह जो सीखा है, उसे छोड़ो; वह जो अनसीखा है, उसे पा लो।

बड़ी कठिनाई होगी लेकिन। क्योंकि हम अगर अपने संबंध में विचार करने जाएं तो पाएंगे कि सभी कुछ सीखा हुआ है। आप जो भी अपने संबंध में जानते हैं, वह सभी कुछ सीखा हुआ है। किसी ने आपको बताया है, वही आपका ज्ञान है। और जो दूसरे ने बताया है, जो दूसरे ने सिखाया है, वह आपका स्वभाव नहीं हो सकता।

स्वयं को जानने के लिए किसी दूसरे की किसी भी शिक्षा की जरूरत नहीं है। हां, स्वयं को ढांकना हो, छिपाना हो, तो दूसरे की शिक्षा जरूरी और अनिवार्य है। स्वयं का होना तो एक आंतरिक, आत्मिक नग्नता है, दिगंबरत्व है। वस्त्र तो उसे छिपाने के काम आते हैं। हमारी सारी जानकारी ज्ञान को छिपाने के काम आती है। लेकिन जो जानकारी को ही ज्ञान मान लेते हैं, वे फिर सदा के लिए ज्ञान से वंचित हो जाते हैं।

एक बच्चा पैदा होता है; जो भी एसेंस है, जो सार है, जो आत्मा है, लेकर पैदा होता है; लेकिन एक कोरी किताब की तरह। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं--शिक्षा, समाज, संस्कृति, सभ्यता। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं। थोड़े ही दिनों में कोरी किताब अक्षरों से भर जाएगी। स्याही के काले धब्बे पूरी किताब को घेर लेंगे। और क्या कभी आपने ख्याल किया है कि जब आप किताब पढ़ते हैं, तो आपको सिर्फ स्याही के काले अक्षर ही दिखाई पड़ते हैं, पीछे का वह जो सफेद कागज है, कोरा, वह दिखाई नहीं पड़ता?

एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक इस पर काम कर रहा था, डाक्टर पर्ल्स इस संबंध में काम कर रहा था। उसने अपने विद्यार्थियों की कक्षा के सामने एक दिन आकर ब्लैक बोर्ड पर एक बड़ा सफेद कागज टांगा, ब्लैक बोर्ड के बराबर। फिर उस बड़े सफेद कागज पर एक छोटा सा स्याही का काला गोल बनाया, एक बिंदु बनाया, अति छोटा। गौर से देखें तो ही दिखाई पड़े। और फिर उसने अपने विद्यार्थियों से पूछा कि तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है?

तो उन्होंने कहा, एक काला गोल बिंदु दिखाई पड़ता है। उस पूरी कक्षा में एक भी विद्यार्थी ने न कहा कि बोर्ड पर टंगा हुआ सफेद कागज का टुकड़ा भी दिखाई पड़ता है।

बहुत बड़ा था सफेद कागज का टुकड़ा, पर वह किसी को दिखाई नहीं पड़ रहा है। दिखाई पड़ रहा है एक काला बिंदु। उसका कारण है। कोरापन हमें दिखाई ही नहीं पड़ता; कोई दाग हो तो दिखाई पड़ता है। जितना स्वच्छ और कोरापन हो, उतना ही अदृश्य हो जाता है। शायद परमात्मा इसीलिए दिखाई हमें नहीं पड़ता। वह

जगत का कोरापन है, इनोसेंस है। वह जगत की निर्दोषिता है। लेकिन दाग हमें दिखाई पड़ते हैं। दाग देखने में हमारी कुशलता का कोई अंत नहीं है।

एक बच्चा तो कोरा पैदा होता है। फिर हम उस पर लिखना शुरू करते हैं। जरूरी है कि हम उस पर कुछ लिखें। जीवन के संघर्ष के लिए उपयोगी है। शायद कोरे कागज की तरह तो वह जी भी न पाएगा। कोरे कागज की तरह शायद वह एक क्षण भी इस जीवन के संघर्ष में सफल न हो पाएगा। लिखना जरूरी है। कहें कि एक जरूरी बुराई है, नेसेसरी ईविल है। फिर हम लिखते जाएंगे। उसका नाम देंगे, उसका रूप देंगे।

आप कहेंगे कि नाम तो ठीक है, रूप तो हर आदमी लेकर पैदा होता है।

वह भी ख्याल गलत है। नाम भी हम देते हैं, रूप भी हम देते हैं। क्यों? क्योंकि जो शक्ल एक मुल्क में सुंदर समझी जाती है, दूसरे मुल्क में असुंदर समझी जाती है। एक ढंग का चेहरा चीन में सुंदर समझा जाता है, ठीक वैसे ही ढंग का चेहरा भारत में सुंदर नहीं समझा जाएगा। चपटी नाक चीन में असुंदर नहीं है, सारी दुनिया में असुंदर हो जाएगी। बड़े और लटके हुए ओंठ नीग्रो के लिए असुंदर नहीं हैं, सारी दुनिया में असुंदर हो जाएंगे। नीग्रो लड़कियां अपने ओंठ को बड़ा करने का सब कुछ उपाय करेंगी। पत्थर बांध कर लटकाएंगी, ताकि ओंठ चौड़ा हो जाए, बड़ा हो जाए। हमारे मुल्क में या जहां भी आर्यों का प्रभाव है, पश्चिम में, पतला ओंठ।

कहना मुश्किल है कि कौन सुंदर है। दोनों के पक्ष और विपक्ष में बातें कही जा सकती हैं। क्योंकि नीग्रो कहते हैं कि ओंठ जितना चौड़ा हो, चुंबन उतना ही विस्तीर्ण हो जाता है। हो ही जाएगा। लेकिन पतले ओंठ को मानने वाले लोग कहते हैं कि ओंठ जितना चौड़ा हो, चुंबन तो विस्तीर्ण हो जाता है, लेकिन फीका हो जाता है। क्योंकि जब भी कोई चीज बहुत जगह फैल जाती है, तो उसका प्रभाव फीका हो जाता है, इंटेंसिटी कम हो जाती है। लेकिन क्या सुंदर है, पतला ओंठ या मोटा ओंठ? समाज सिखाएगा कि क्या सुंदर है।

रूप भी हम देते हैं। नाम भी हम देते हैं, रूप भी हम देते हैं, विचार भी हम देते हैं। फिर व्यक्तित्व की पर्त बननी शुरू हो जाती है। आखिर में जब आप अपने को पाते हैं, तो आपको ख्याल भी नहीं होता कि एक कोरापन लेकर आप पैदा हुए थे, जो पीछे छिप गया है--बहुत सी पर्तों में। वस्त्र इतने हो गए हैं कि आपको अब अपने को खोजना कठिन है। और आप भी इन वस्त्रों के जोड़ को ही अपनी आत्मा समझ कर जी लेते हैं। यही अधार्मिक आदमी का लक्षण है। जो वस्त्रों को ही समझ लेता है कि मैं हूं, वही आदमी अधार्मिक है। जो वस्त्रों के भीतर उसको खोजता है, जो समस्त सिखावन के पहले मौजूद था, और जो समस्त वस्त्रों को छीन लिया जाए तो भी मौजूद रहेगा, उस स्वभाव को, वही व्यक्ति धार्मिक है।

लाओत्से कहता है, छोड़ो सिखावन। जो-जो सीखा है, छोड़ दो, तो तुम स्वयं को जान सकोगे।

लेकिन हम बड़े उलटे लोग हैं। हम तो स्वयं को भी जानना हो तो उसे भी दूसरों से सीखने जाते हैं। स्वयं को खोना हो, तो दूसरे से सीखना अनिवार्य है। स्वयं को जानना हो, तो दूसरों की समस्त शिक्षाओं को छोड़ देना जरूरी है। जगत में कुछ भी जानना हो अपने को छोड़ कर तो शिक्षा जरूरी है। और जगत में स्वयं को जानना हो तो समस्त शिक्षा का त्याग जरूरी है। क्योंकि जगत में कुछ और जानना हो तो बाहर जाना पड़ता है और स्वयं को जानना हो तो भीतर आना पड़ता है। यात्राएं उलटी हैं।

तो धर्म एक तरह की अनलर्निंग है; शिक्षा नहीं, एक तरह का शिक्षा-विसर्जन, एक तरह का शिक्षा का परित्याग। जो भी सीखा है, सभी छोड़ देना है। इसमें धर्म भी आ जाता है; जो धर्म सीखा है, वह भी आ जाता है। जो शास्त्र सीखे हैं, वे भी आ जाते हैं। जो सिद्धांत सीखे हैं, वे भी आ जाते हैं। जो भी सीखा है, सभी कुछ आ जाता है। इसलिए धर्म परम त्याग है। धन को छोड़ना बहुत आसान है; जो सीखा है, उसे छोड़ना बहुत कठिन है।

क्योंकि धन हमारे ऊपर के वस्त्रों जैसा है; जो हमने सीखा है वह हमारी चमड़ी बन गया है। उसे छोड़ना इतना आसान नहीं है। क्योंकि हम अपने सीखे हुए के जोड़ ही हैं।

एक आदमी से पूछें कि तुम कौन हो, वह कहता है, मैं डाक्टर हूं। एक आदमी से पूछो वह कौन है, वह कहता है, मैं शिक्षक हूं। एक आदमी को पूछो वह कौन है, वह कहता है, अ हूं, ब हूं, स हूं। गौर से देखो तो वे सब यह बता रहे हैं कि उन्होंने क्या-क्या सीखा है। एक आदमी ने डाक्टरी सीखी है, इसलिए वह डाक्टर है। एक आदमी ने वकालत सीखी है तो वह वकील है। और एक आदमी ने चोरी सीखी है तो वह चोर है। और हमारे मुल्क में कुछ लोग साधुता सीख लेते हैं, वे साधु हैं।

लेकिन यह सब सिखावन है। यह सीखा हुआ है। सीखे हुए का धर्म से कोई संबंध नहीं है। अनसीखे की खोज! जिसे न कभी हमने सीखा है और न सीख सकते हैं, जो हम हैं ही, जिसमें सिखावन से कुछ जोड़ा नहीं जा सकता, कुछ घटाया नहीं जा सकता, जो हमारी मौजूदगी में ही छिपा है, उसकी खोज।

और लाओत्से कहता है, छोड़ो पांडित्य, मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं। क्योंकि सभी मुसीबतें पांडित्य की मुसीबतें हैं। व्यक्ति की, समाज की सारी मुसीबतें जानकारी की मुसीबतें हैं, पांडित्य की मुसीबतें हैं। जो हम जानते हैं, वही हमारी मुसीबत बन जाता है।

इसे थोड़ा समझना पड़े। जो हम जानते हैं, वह हमारी मुसीबत कैसे बन जाता होगा? क्योंकि जो हम जानते हैं, उसके कुछ अनिवार्य परिणाम होंगे, पहला। जानने के कारण हम कभी भी सहज न हो पाएंगे; हर क्षण असहज होंगे। स्पांटेनियस होना असंभव हो जाएगा।

एक आदमी आपके पड़ोस में बैठा हुआ है। आप शांति से बैठे हुए हैं। आप उससे पूछते हैं, आप कौन हैं? वह कहता है, मैं मुसलमान हूं, या ईसाई हूं, या हिंदू हूं। तत्क्षण आप असहज हो जाएंगे। आदमी तिरोहित हो गया। मुसलमान बैठा है पड़ोस में; और मुसलमान के संबंध में आपने कुछ सीख रखा है। अब ये दो आदमी पड़ोसी नहीं हैं। अब इनके बीच में सिखावन आ गई। अगर आप हिंदू हैं, तो उसने भी हिंदू के संबंध में कुछ सीख रखा है। अब ये दोनों आदमी हजार मील की दूरी पर हो गए। अब इनके बीच फासला बड़ा हो गया। अब इन दोनों के हाथ कितने ही फैलें तो भी मिल नहीं सकते। अभी दो क्षण पहले ये पड़ोसी थे; इनके बीच कोई फासला न था। अब इन दोनों की शिक्षाएं बीच में आ गईं। अब ज्ञान का पहाड़ बीच में आ गया। जो आदमी क्षण भर पहले सिर्फ आदमी था, अब आदमी नहीं है, मुसलमान है। जो क्षण भर पहले आदमी था, अब आदमी नहीं है, हिंदू है।

और मजे की बात यह है कि दो हिंदू एक से नहीं होते और दो मुसलमान एक से नहीं होते। मुसलमान अ और मुसलमान ब के बीच उतना ही फासला होता है, जितना हिंदू और मुसलमान के बीच होता है। दो मुसलमान एक से नहीं होते, दो हिंदू एक से नहीं होते। लेकिन आपके दिमाग में एक धारणा है कि मुसलमान कैसा होता है; वही धारणा आप इस पड़ोसी पर भी लगा देंगे। वह धारणा झूठी है, इस आदमी से उसका कोई संबंध नहीं है। उस धारणा को जिन्होंने बनाया होगा, उनसे भी इसका कोई संबंध नहीं है। यह आदमी बिल्कुल निर्दोष और निरीह है।

लेकिन अब आपके मन में न मालूम कितनी धारणाओं का जाल खड़ा हो गया। और इस आदमी को अब आप एक खाने में रख देंगे, एक कैटेगरी में रख देंगे कि मुसलमान है। हम भलीभांति जानते हैं कि मुसलमान कैसे होते हैं। आपकी पूरी की पूरी चेतना सिकुड़ जाएगी। अब जो भी व्यवहार आप करेंगे, वह व्यवहार इस आदमी से नहीं होगा, वह आपकी धारणा के मुसलमान से होगा। आप असहज हो गए। सहजता समाप्त हो गई। सहजता

का अर्थ तो था कि इस आदमी से संबंध होता। अब आप इससे बात भी नहीं करेंगे। बात भी करेंगे तो आपके मुसलमान से बात होगी, जो आपकी धारणा है।

हमारी जानकारी सब जगह हमें असहज बना देती है। सहज का अर्थ होता हैः क्षण में जो सत्य है, वहां उसके साथ व्यवहार। लेकिन जानकारी व्याख्या बन जाती है; फिर हमारा व्याख्या के साथ व्यवहार होता है।

हम शब्दों में जीते हैं।

मैं एक घर में मेहमान होता था। पड़ोस में एक चर्च था। चर्च बहुत सुंदर था। तो जब भी मैं वहां मेहमान होता था, सुबह उठ कर चर्च में चला जाता। सन्नाटा होता, रविवार को छोड़ कर वहां कोई आता भी नहीं था। मित्र को पता चला, जिनके घर मैं ठहरता था, वे भागे हुए मेरे पीछे आए एक दिन और कहा कि आप, आपको मुझे कहना था, मंदिर ले चलता। चर्च में जाने की क्या जरूरत थी? और मंदिर फिर ज्यादा दूर भी नहीं है। मैं उनसे कुछ बोला नहीं।

दस वर्ष बाद उसी घर में फिर मेहमान था। वह चर्च बिक गया और जिन मित्र के घर मैं ठहरता था, उनके संप्रदाय ने ही उस चर्च की जायदाद खरीद ली थी। मकान वही था, दरख्त वही थे, पक्षी वही थे, सन्नाटा वही था; सिर्फ तख्ती बदल गई थी। अब वह चर्च नहीं था। सुबह ही उठ कर उन्होंने मुझसे कहा--वे तो भूल भी चुके थे कि दस साल पहले उसी मकान से मुझे बाहर निकाल लाए थे--उन्होंने मुझसे कहा, आपको बड़ी खुशी होगी, पड़ोस की जमीन हमने खरीद ली है और अब वहां सिर्फ मूर्ति की स्थापना होने की देर है। मंदिर बन गया है, आप अंदर आइए।

सब वही है; सिर्फ तख्ती बदल गई है। तब वह चर्च था, तब मेरा जाना उन्हें गुनाह मालूम पड़ा था। अब वह मंदिर है, अब मैं न जाऊं तो उन्हें गुनाह मालूम पड़ेगा।

हमारा व्यवहार यथार्थ से नहीं है; शब्दों से है, जानकारियों से है। एक क्षण में, शब्द बदल जाए, हमारा व्यवहार बदल जाता है। लेबल कोई बदल दे, भीतर जो वस्तु थी, वही है। बस ऊपर की तख्ती कोई बदल दे, सब बदल जाता है। इससे जटिलता खड़ी होगी। और हमारा जीवन इस जटिलता का ही परिणाम है। और यह जटिलता न केवल ऐसे ऊपरी जगत में दिखाई पड़ेगी, यह जटिलता भीतर भी प्रवेश कर जाएगी--भीतर भी! फिर हम व्यक्तियों को, उनकी अनुभूतियों को, उनके प्राणों को नहीं देख पाते।

एक आदमी आपसे कह रहा है कि मुझे आपसे बहुत प्रेम है। आप फिर उसकी आंखों में नहीं देख पाते, न फिर उसके चेहरे में झांक पाते, न उसकी आत्मा में उतर पाते। बस, ये शब्द ही आपके हाथ में पड़ते हैं कि मुझे बहुत प्रेम है। इन शब्दों के आधार पर ही फिर आप सब कुछ निर्णय करते हैं। वे निर्णय फिर आपको दुख में ले जाते हैं। एक आदमी आप पर नाराज हो रहा है, बुरा-भला कह रहा है। शब्द ही आप पकड़ लेते हैं; उस आदमी की आंखों में नहीं झांकते। कभी ऐसा भी होता है कि नाराजगी प्रेम होती है। और कभी ऐसा भी होता है कि प्रेम सिर्फ एक धोखा होता है। लेकिन शब्द, जानकारी बड़ी महत्वपूर्ण हो जाती है। फिर हम शब्दों के आसपास ही अपने जीवन का सारा भवन निर्मित करते हैं। वह भवन ताश के पत्तों का भवन है। उसमें रोज दरार पड़ेगी, रोज दुर्घटना होगी, रोज मकान गिरेगा। जरा सा हवा का झोंका आएगा और सब गिर जाएगा। और तब हम यथार्थ को दोष देंगे और हम कहेंगे कि यथार्थ बड़ा कठोर है और जीवन बड़ा दुख है। न तो जीवन दुख है और न यथार्थ बड़ा कठोर है। आप यथार्थ को जानते ही नहीं। आप शब्दों के घरों में रहते हैं। आपने यथार्थ को कभी झांका ही नहीं। जो था, वह आपने देखा नहीं। आप अपनी व्याख्या में ही चल रहे हैं।

इन व्याख्याओं के इर्द-गिर्द फंसे हुए आदमी को लाओत्से कहता है जानकारी में, पांडित्य में उलझा हुआ आदमी। इसे छोड़ो तो विपत्तियां मिट जाती हैं, मुसीबतें समाप्त हो जाती हैं।

क्या होगा छोड़ने से? यथार्थ का साक्षात्कार। और यह बड़े मजे की बात है कि सत्य को जान लेना कभी भी दुखदायी नहीं है। चाहे कितना ही दुखदायी प्रतीत होता हो, सत्य को जानना कभी भी दुखदायी नहीं है। और असत्य चाहे कितना ही प्रीतिकर प्रतीत होता हो, असत्य कभी भी प्रीतिकर नहीं है। सत्य कितना ही चौंका दे, धक्का दे, फिर भी उसके अंतिम परिणाम निरंतर गहरे आनंद में ले जाते हैं। और असत्य कितना ही फुसलाए, समझाए, झुठलाए; असत्य कितनी ही थपकियां दे; और असत्य कितनी ही तंद्रा, नींद में डुबाने की कोशिश करे और कितना ही सुविधापूर्ण मालूम पड़े; प्रतिपल उसकी हर सुविधा अनंत-अनंत असुविधाओं को जन्म देती है।

लेकिन हम तत्काल सुविधा के इच्छुक हैं। लंबी हमारी दृष्टि नहीं। दूर तक देखने की हमारी सामर्थ्य नहीं। बहुत पास देखते हैं हम। और उस पास देखने की वजह से हमें यथार्थ दिखाई ही नहीं पड़ता। हमारे पास तो हमारे ही शब्दों का जाल है। हम उसी में जीते हैं। मुसीबतें सघन होती चली जाती हैं।

जैसे हम सब ने मान रखा है, हमें सब को समझाया गया है, सिखाया गया है कि प्रेम में कोई कलह नहीं है। एक सिखावन है कि प्रेम में कोई कलह नहीं है, सच्चे प्रेम में कोई कलह नहीं है, कोई द्वंद्व नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। इस अपेक्षा को लेकर जो लोग भी प्रेम के जगत में उतरेंगे, वे बहुत दुख में पड़ जाएंगे। क्योंकि यथार्थ कुछ और है। अगर यथार्थ को हम समझें तो प्रेम एक कलह है, एक कांफ्लिक्ट है। प्रेम एक संघर्ष है। सत्य तो यही है कि प्रेमी लड़ते रहेंगे। और जब दो प्रेमियों में लड़ाई बंद हो जाए तो समझ लेना प्रेम भी समाप्त हो गया। लड़ाई प्रीतिकर हो सकती है, वह दूसरी बात है। लेकिन प्रेम एक कलह है। और हमारी धारणाओं में प्रेम एक स्वर्ग है, जहां कोई कलह नहीं है।

इस जगत में सभी चीजें परिवर्तनशील हैं। हमारे मन में बहुत सी धारणाएं स्थायी हैं, शाश्वत हैं। कहते हैं, प्रेम शाश्वत है। इस जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं है। हम ही शाश्वत नहीं हैं, हमारा प्रेम कैसे शाश्वत हो सकेगा? हम मरणधर्मा हैं। हमसे जो भी पैदा होगा, वह मरणधर्मा होगा। सत्य यही है कि इस जगत में सभी चीजें परिवर्तनशील हैं। आकांक्षा है हमारी कि कम से कम कुछ गहरी चीजें तो न बदलें, कम से कम प्रेम तो न बदले। उस आकांक्षा के कारण वह जो परिवर्तनशील प्रेम का आनंद हो सकता था, वह भी जहर हो जाता है। उससे प्रेम स्थायी नहीं हो सकता, सिर्फ वे जो क्षण-स्थायी प्रेम में जो फूल खिल सकते थे, वे भी खिलने असंभव हो जाते हैं। ऐसे ही जैसे कोई घर में बगिया लगाए और फिर आशा करे कि जो फूल खिलें वे शाश्वत हों, वे कभी मुरझाएं न। फूल तो सुबह खिलेंगे, सांझ मुरझा जाएंगे। यही नियति है। लेकिन जो आदमी इस अपेक्षा से भरा हो कि फूल कभी मुरझाएं नहीं, तो वह जो सुबह फूल खिला था, उसका आनंद भी नहीं भोग पाएगा। क्योंकि फूल के खिलते ही मुरझाने का भय विष घोलने लगेगा, जहर डालने लगेगा।

फूल खिलते ही मुरझाना शुरू भी हो जाता है। क्योंकि खिलना और मुरझाना दो प्रक्रियाएं नहीं, एक ही प्रक्रिया का अंग हैं। मुरझाना खिलने की ही अंतिम अवस्था है। मुरझाना पूरा खिल जाना ही है। फल पकेगा तो गिर जाएगा। कोई भी चीज पूरी होगी तो मृत्यु घटित हो जाएगी। पूर्णता और मृत्यु जगत में एक ही अर्थ रखते हैं।

लेकिन जो आदमी सोच रहा है कि शाश्वत फूल खिल जाएं उसकी बगिया में, वह मुश्किल में पड़ेगा। तब एक ही उपाय है कि वह कागज के फूल बना ले, प्लास्टिक के फूल बना ले। वे स्थायी होंगे। वे भी शाश्वत तो नहीं हो सकते, लेकिन स्थायी होंगे। लेकिन वे कभी खिलेंगे भी नहीं। क्योंकि जो मुरझाने से डर गया, जो

मुरझाने से बचना चाहता है, तो फिर खिलने को भी छोड़ देना पड़ेगा। वे कभी खिलेंगे भी नहीं, मुरझाएंगे भी नहीं। लेकिन तब उनमें फूल जैसा कुछ भी नहीं बचा। फूल का अर्थ ही खिलना और मुरझाना है।

ऐसी हमारी जो चित्त की धारणाएं हैं, वे धारणाएं हमें वास्तविक जीवन के साथ संबंधित नहीं होने देतीं। हम अपनी ही धारणाओं को लेकर जीते हैं। यथार्थ कैसा भी हो, यथार्थ के ऊपर हम अपने ही परदे डालते हैं, अपने ही शब्द ओढ़ाते हैं, अपने ही रूप देते हैं। और यथार्थ न हमारे रूपों को मानता है, न हमारे शब्दों को, न हमारे सिद्धांतों को। और तब हर घड़ी यथार्थ में और हमारे ज्ञान में संघर्ष खड़ा होता है। वही संघर्ष हमारी मुसीबत है। हर घड़ी हममें और यथार्थ में तालमेल छूट जाता है। वह तालमेल का छूट जाना ही हमारी आंतरिक अशांति है। प्रतिपल आपकी अपेक्षा है, एक्सपेक्टेशन है, वह पूरा नहीं होता। अपेक्षा छूट जाती है, टूट जाती है। दुख और पीड़ा और कांटे छिद जाते हैं भीतर। वे कांटे आपकी ही अपेक्षा से जन्मते हैं। अपेक्षा हमारी जानकारी से पैदा होती है। हम पहले से ही जाने बैठे हुए हैं।

लाओत्से कहता है, तुम ऐसे जीयो, जैसे तुम कुछ जानते नहीं हो। तुम यथार्थ के पास इस भांति पहुंचो कि तुम्हारे पास कोई पूर्व-निष्कर्ष नहीं हैं, कोई कनक्लूजंस, कोई निष्पत्तियां नहीं हैं। न तुम्हारे पास निष्पत्तियां हैं, न तुम्हारे पास अपेक्षाएं हैं। फूल के पास पहुंचो और जानो कि फूल कैसा है। मत तय करके चलो कि शाश्वत रहे, कभी बदले नहीं, कुम्हलाए नहीं। ये धारणाएं छोड़ कर पहुंचो। फूल जैसा है, उसको वैसा ही जान कर जी लो। तब फूल एक आनंद है। तब उसका जन्म भी एक आनंद है और उसकी मृत्यु भी एक आनंद है। तब उसका खिलना भी एक गीत है और तब उसका बंद हो जाना भी एक गीत है। और तब दोनों में कोई विरोध नहीं; एक ही प्रक्रिया के अंग हैं।

जीवन में दुख नहीं है; दुख पैदा होता है अपेक्षाओं से। और अपेक्षाएं शिक्षाओं का परिणाम हैं। हम सब एक क्षण को भी बिना अपेक्षाओं के नहीं जीते; उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, अपेक्षाओं का एक जगत हमारे चारों तरफ चलता है। लाओत्से कहता है, यही हैं तुम्हारी मुसीबतों के आधार।

"हां और न के बीच अंतर क्या है?"

अगर अपेक्षाएं न हों तो हां और न के बीच कोई अंतर नहीं है। अगर अपेक्षाएं हों तो हां और न के बीच से ज्यादा बड़ा अंतर और कहां होगा? मैं आपसे कुछ मांगता हूं; आप कहते हैं हां, या कहते हैं न। अगर मेरी मांग अपेक्षा से भरी है तो हां और न में बड़ा अंतर होगा। हां मेरा सुख बनेगी, न मेरा दुख हो जाएगा। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं है, अगर मैं पहले से कुछ तय करके नहीं चला हूं कि क्या होगा निष्कर्ष, क्या होगा परिणाम, अगर परिणाम के संबंध में मैंने कुछ धारणा नहीं बनाई है तो आप हां कहें, आप न कहें, इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। हां और न के बीच जो अंतर है, वह दो शब्दों के बीच अंतर नहीं है, वह दो अपेक्षाओं के बीच अंतर है। भाषाकोश में तो हां और न में अंतर होगा, विपरीत हैं दोनों; लेकिन जीवन की गहराई में, जहां व्यक्ति अपेक्षाशून्य चलता है, हां और न में कोई अंतर नहीं है।

एक फकीर एक गांव से गुजर रहा है। उसने एक दरवाजे पर दस्तक दी। आधी रात हो गई है। और वह भटक गया है। और जिस गांव पहुंचना था, वहां न पहुंच कर दूसरे गांव पहुंच गया है। द्वार खुला। घर के लोगों ने कहा, क्या चाहते हैं? उस फकीर ने कहा कि अगर रात भर विश्राम का मौका मिल जाए! मैं भटक गया हूं; और जहां पहुंचना था, नहीं पहुंच पाया हूं। घर के लोगों ने पूछा कि धर्म कौन सा है तुम्हारा?

क्योंकि हम मनुष्यों को तो नहीं ठहराते, धर्मों को ठहराते हैं।

उस फकीर ने अपना धर्म बताया। द्वार बंद हो गए। घर के लोगों ने कहा, क्षमा करें, हम इस धर्म के मानने वाले नहीं; न केवल न मानने वाले हैं, बल्कि हम इसके विरोधी हैं। और इस गांव में आपको कहीं भी जगह न मिलेगी। यह गांव एक ही धर्म मानने वाले लोगों का है। आप व्यर्थ परेशान न हों। उस फकीर ने धन्यवाद दिया और चलने लगा। उस मकान के मालिक ने पूछा, लेकिन धन्यवाद कैसा? हम ठहराने से इनकार कर दिए हैं, धन्यवाद कैसा? उस फकीर ने कहा, तुमने कुछ तो किया। तुम क्या करोगे, इस संबंध में हमारी कोई धारणा न थी। द्वार खुलेगा, हां और न कुछ भी होगा। तुमने स्पष्ट न कहा, इतना भी आधी रात कष्ट उठाया, उसके लिए धन्यवाद!

वह फकीर जाकर गांव के बाहर सो गया। पूर्णिमा की रात थी। और जिस वृक्ष के नीचे सोया था, उस वृक्ष के फूल पूर्णिमा की रात में आवाज करके खुलते हैं। जब भी फूल की आवाज होती है, वह आंख खोल कर ऊपर देखता है--चांद भाग रहा है, फूल खिल रहे हैं, सुगंध बरस रही है।

सुबह फिर उस फकीर ने वापस आकर उस आदमी के द्वार पर दस्तक दी। उस आदमी ने दरवाजा खोला। फकीर ने झुक कर तीन बार पुनः-पुनः कहा, धन्यवाद! धन्यवाद! धन्यवाद! उस आदमी ने कहा, अब धन्यवाद की क्या जरूरत? तुम आदमी पागल मालूम पड़ते हो। रात मैंने मना किया था, तब तुमने धन्यवाद दिया। अब?

उस फकीर ने कहा, अगर तुम रात मुझे मना न करते तो जिस पूर्णिमा की रात का मैंने आनंद लिया है, वह असंभव हो जाता। तुमने अगर हां भर दी होती तो मैं तुम्हारे छप्पर के नीचे सोता। मैं एक वृक्ष के नीचे सोया। और मेरे जीवन में इतने सौंदर्य का क्षण मैंने कभी नहीं जाना। एक बात तुमसे कहने आया हूं, बुरा न मानना; तुम्हारे धर्म का फकीर भी आए, उसे भी मत ठहरने देना।

अगर आपको इस घर से इनकार करके लौटा दिया गया होता तो पूर्णिमा की रात पहली तो बात तत्काल अमावस की रात हो जाती। या नहीं हो जाती? पूर्णिमा की रात तो बच ही नहीं सकती थी, तत्काल अमावस हो जाती। फूल खिल ही नहीं सकते थे। उनकी इतनी धीमी आवाज, आपके भीतर जो तुमुलनाद चलता, सुनाई भी नहीं पड़ती। आपके भीतर जो कोलाहल होता, जो हाहाकार मचता, उसके सामने कोमल फूलों के खिलने की आवाज कहां सुनाई पड़ सकती थी? आप अमावस की रात में सोते। सोते भी कैसे! चिंतित और बेचैन और परेशान होते। हां और न में बड़ा अंतर होता। इस आदमी को हां और न में कोई अंतर न था।

हां और न का अंतर, सुख और दुख का अंतर धारणा का अंतर है, अपेक्षा का अंतर है; यथार्थ का अंतर नहीं है। लेकिन हम सभी कुछ यथार्थ पर थोप देते हैं। हम कहते हैं, उसने ऐसा कहा, इसलिए मैं दुखी हूं; उसने ऐसा व्यवहार किया, इसलिए मैं सुखी हूं। नहीं, कोई संबंध किसी दूसरे से नहीं है सुख और दुख का। उसने कुछ भी किया हो, आप सुखी हो सकते हैं; उसने कुछ भी किया हो, आप दुखी हो सकते हैं। उसका करना असली बात नहीं है। उसने जो किया, उसकी व्याख्या आपने क्या की, उस पर ही सब कुछ निर्भर है। आपकी अपनी व्याख्या ही आपका स्वर्ग और आपका नरक है।

सुना है मैंने, दो मित्र गुरु की तलाश में थे। वे दोनों एक सूफी फकीर के द्वार पर पहुंचे। दोनों ने निवेदन किया, सत्य की उन्हें खोज है, तलाश है प्रभु की; रास्ता कोई बताएं। वह फकीर चुप बैठा रहा, जैसे उसने सुना ही न हो। एक मित्र ने सोचा, इस आदमी से क्या मिलेगा? या तो बहरा मालूम पड़ता है और या फिर बहुत अहंकारी है। हम इतने सत्य के खोजी, इतने दूर से चल कर आए हैं और यह आदमी ध्यान भी नहीं दे रहा है, जैसे हम कोई कीड़े-मकोड़े हों। दूसरे ने सोचा, शायद मेरे प्रश्न में कोई भूल हो गई है। शायद यह पूछने का ढंग

अनुचित है। शायद सत्य की जिज्ञासा इस भांति नहीं की जाती। शायद इतनी जल्दबाजी, इतना अधैर्य दुर्गुण है। दोनों विदा हो गए।

जिसने सोचा था कि यह आदमी अहंकारी है, वह वर्षों बाद भी वैसे का वैसा था। लेकिन जिसने सोचा था कि शायद मेरी जिज्ञासा में, मेरे पूछने के ढंग में, मेरे अधैर्य में ही कोई भूल है, वह अपने को बदलने में लग गया। वर्षों बाद पहला आदमी अपने नरक में ही पड़ा था; और गर्त में हो गया था। दूसरा पूरा शांत हो गया। दूसरा धन्यवाद देने गया गुरु को। और पहला आदमी उस आदमी के खिलाफ वर्षों से गालियां बोल रहा था कि वह आदमी हमारे ऊपर ध्यान भी नहीं दिया; अहंकारी है; अपने को न मालूम क्या समझता है। दूसरा आदमी धन्यवाद देने गया कि आपकी कृपा है, आप उस दिन नहीं बोले; मैं निश्चित समझ गया कि मेरी कोई योग्यता और पात्रता नहीं है। मैं अपने को पात्र बनाने की कोशिश में ही सत्य के दर्शन को उपलब्ध हो गया हूं। मैं धन्यवाद देने आया हूं।

उस गुरु ने कहा, सत्य को पाने का और कोई उपाय नहीं है। पात्र बन जाना काफी है।

हम पर निर्भर है। गुरु तो चुप रहा था। एक ने समझा न, एक ने समझा हां। फासला बड़ा भी हो सकता है। फासला शून्य भी हो सकता है।

लाओत्से कहता है, सब फासले ज्ञान के, पांडित्य के फासले हैं। हां और न के बीच अंतर क्या है?

हां और न लाओत्से के लिए बहुत सी बातों के प्रतीक हैं। हां है जीवन का प्रतीक; न है मृत्यु का प्रतीक। हां है सुख का प्रतीक; न है दुख का प्रतीक। हां है सफलता का प्रतीक; न है असफलता का प्रतीक। हां है पाजिटिव, विधायक का प्रतीक; और न है निगेटिव, नकारात्मक का प्रतीक।

लाओत्से यह कह रहा है कि विधेय में और नकार में अंतर ही क्या है? जन्म और मृत्यु में अंतर ही क्या है?

अंतर बहुत है। जीवन को हम चाहते हैं, मृत्यु को हम नहीं चाहते; फिर अंतर बहुत है। चाह के कारण अंतर है। जीवन और मृत्यु में कोई अंतर नहीं है। जिसकी कोई चाह नहीं, उसे जीवन और मृत्यु में फिर क्या अंतर है? जिस द्वार से हम बाहर निकलते हैं, उसी से हम भीतर आते हैं। जिन सीढ़ियों से हम ऊपर चढ़ते हैं, उन्हीं से हम नीचे उतरते हैं। जब आप ऊपर चढ़ रहे होते हैं तब, और जब आप नीचे उतर रहे होते हैं तब, सीढ़ियों में कोई अंतर होता है? जब आप बाहर जाते हैं तब, और जब आप भीतर आते हैं तब, द्वार में कोई अंतर होता है? वही द्वार है, वे ही सीढ़ियां हैं। वही जन्म है; वही मृत्यु है।

लेकिन हमारी अपेक्षाएं बड़ा अंतर कर देती हैं। हमारी जानकारी बड़ा अंतर कर देती है। हम सबको सिखाया गया है, मृत्यु कुछ बुरी है। यह हमारी सिखावन है। क्योंकि मृत्यु को हम जानते तो नहीं हैं। मृत्यु बुरी है, यह हमें सिखाया गया है। और जीवन शुभ है, यह हमें सिखाया गया है। और जीवन है अहोभाव, धन्यता, और मृत्यु है दुर्भाग्य, यह हमें सिखाया गया है। मृत्यु को हम जानते नहीं, यह तो पक्का ही है। जीवन को भी हम नहीं जानते हैं। वह उतना पक्का नहीं मालूम पड़ता; क्योंकि हमें लगता है कि हम जीवित हैं तो जीवन को तो जानते ही होंगे।

जरूरी नहीं है कि जो जीवित है, वह जीवन को जान ही ले। क्योंकि जो जीवन को जान लेगा, वह मृत्यु को भी जान लेगा। यह एक ही द्वार है; बाहर और भीतर आने का फर्क है। जो जीवन को जान लेगा, वह मृत्यु को भी जान लेगा। क्योंकि मृत्यु कोई जीवन के विपरीत घटना नहीं है। जैसे बायां और दायां पैर हैं, और चलना हो तो दोनों का उपयोग करना होता है; ऐसे ही जो अस्तित्व है, वह जीवन और मृत्यु उसके दोनों पैर हैं। और

अस्तित्व हो ही नहीं सकता; उन दोनों पैरों के कारण ही अस्तित्व की सारी गति है। एक को भी जो जान लेगा, वह दूसरे को जान ही लेगा। क्योंकि दूसरा विपरीत नहीं है, पृथक भी नहीं है। एक ही प्रक्रिया के दो अंग हैं। लेकिन हमें सिखाया गया है।

गुरजिएफ ने लिखा है। गुरजिएफ की आदत थी लोगों को छेड़ने की। इससे न मालूम कितने लोग उससे नाराज थे। एक भोज में गुरजिएफ सम्मिलित था और एक बड़ा बिशप, एक बड़ा धर्मगुरु भी निमंत्रित था। गुरजिएफ के पड़ोस में ही धर्मगुरु को बिठाया गया था। दोनों महत्वपूर्ण व्यक्ति थे।

गुरजिएफ ने बिशप को पूछा, धर्मगुरु को पूछा कि क्या आपका ख्याल है आत्मा के संबंध में? आत्मा अमर है? धर्मगुरु ने कहा, निश्चित ही, इसमें भी कोई संदेह है? आत्मा शाश्वत है, अमर है। उसका कोई अंत नहीं। उसकी कोई मृत्यु नहीं। गुरजिएफ ने तब पूछा, और आप कब तक मरेंगे, इसके संबंध में क्या ख्याल है? और मरने के बाद आप कहां पहुंचेंगे, इस संबंध में क्या ख्याल है?

तत्काल बिशप का चेहरा बिगड़ गया। यह भी कोई बात है? भद्र आदमी ऐसी बातें पूछते हैं? अभद्रता हो गई। कब मरिएगा? मरने के बाद कहां जाइएगा? बिशप ने तेजी से कहा कि कहां जाऊंगा, परमात्मा के राज्य में प्रवेश करूंगा! लेकिन भद्र आदमी ऐसी बातें पूछते नहीं हैं।

गुरजिएफ ने कहा कि अगर आत्मा अमर है तो मृत्यु के संबंध में पूछने में अभद्रता कैसी? और अगर मर कर प्रभु के राज्य में ही प्रवेश करना है तो आपके चेहरे पर मेरे प्रश्न से आ गई यह कालिमा कैसी? आनंद से भर जाना चाहिए कि जल्दी मरेंगे और प्रभु के राज्य में प्रवेश करेंगे।

नहीं, लेकिन दोनों में फर्क है। वह जानकारी है, वह जो बात थी आत्मा के अमर होने की, वह जानकारी है। वह शाब्दिक है, शास्त्रीय है। भय तो भीतर खड़ा है, मर न जाएं। शायद उसी भय के कारण उस जानकारी को भी पकड़ लिया है कि आत्मा अमर है। आत्मा को अमर मानने वाले लोग अक्सर मृत्यु से भयभीत लोग होते हैं। मानने वाले लोग! जानने वालों की बात करनी उचित नहीं है। मानने वाले लोग अक्सर जो मानते हैं, उससे विपरीत उनकी मनोदशा होती है। भय है मृत्यु का, तो आत्मा अमर है, इस सिद्धांत को पकड़ लेने से राहत मिलती है, कंसोलेशन मिलता है। और हमारा धर्म कंसोलेशन, सांत्वना से ज्यादा नहीं है। इसलिए धर्म हमारी ऊपरी पर्त है। वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है। जानते तो हैं कि मरना पड़ेगा। इसको भुलाना चाहते हैं, इस कड़वे सत्य को झुठलाना चाहते हैं। तो बड़े-बड़े अक्षरों में लिख कर रखा हुआ हैः आत्मा अमर है। लेकिन कोई आपसे मृत्यु की पूछे, आपकी मृत्यु की पूछे, तो धक्का लगता है। क्यों? क्योंकि आत्मा अमर है, वह ऊपर चिपकाई हुई बात है। भीतर तो भय मौत का खड़ा है।

कब्रिस्तान हम गांव के बाहर बनाते हैं; मरघट गांव के बाहर बनाते हैं। कोई मर जाए तो माताएं अपने बच्चों को भीतर बुला लेती हैं--भीतर आ जाओ, कोई अरथी गुजरती है। जैसे मृत्यु को हम चाहते हैं कि किसी तरह भूल जाएं, वह दिखाई न पड़े। घर में कोई मर जाए तो घड़ी भर भी उसको रखना मुश्किल हो जाता है। शायद कल उस आदमी से हमने कहा हो कि तुम्हारे बिना हम मर जाएंगे, एक क्षण जी न सकेंगे। अब वह मर गए। अब क्षण भर भी उनको घर में रखना मुश्किल है। क्या है तकलीफ? थोड़ी देर रुकने दें। ऐसे इतने वर्ष तक वह व्यक्ति इस घर में था, दस-पांच दिन और रुके तो हर्ज क्या है?

दस-पांच दिन में आप पागल हो जाएंगे, अगर उसकी लाश रखी रहे तो। क्यों? क्योंकि उसकी लाश हर घड़ी आपको मौत की याद दिलाएगी। हर घड़ी उसका मरा होना आपके अपने मरने की सूचना बन जाएगा। एक घर में एक आदमी की मुर्दा लाश को रख लें, उस घर में फिर कोई आदमी जिंदा नहीं रह सकेगा।

इसलिए जल्दी हम निपटाते हैं। और घर के लोगों को तकलीफ न हो, इसलिए पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे होकर जल्दी निपटाते हैं। क्योंकि ये पड़ोस के लोगों के घर में जब तकलीफ आती है तो दूसरे निपटाते हैं। यह सब एक पारस्परिक समझौता हैः आदमी मरे, तो उसे जल्दी हटाओ; जिंदा लोगों के बीच से हटाओ। क्योंकि मौत को हम कहीं दूर अंत्यज की तरह व्यवहार करते हैं। वह गांव के बाहर रहे; गांव के भीतर, भरे बाजार में उसका कोई पता न चले। हमें एहसास न हो कि मौत जैसी कोई चीज भी है। मजबूरी है कि आदमी मरते हैं; तो हम उन्हें जल्दी से डिसपोज करते हैं, उनको हम निपटाते हैं। क्यों?

तो हमारे लिए जीवन और मृत्यु एक अर्थ नहीं रख सकते। और हमारे लिए हां और न भी एक अर्थ नहीं रख सकते। और सुख और दुख को हम कैसे मानें कि एक ही हैं।

लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि अगर आप नाम न दें तो कई बार आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे बताने में कि यह सुख है या दुख है। नामकरण से बड़ी आसानी हो जाती है। नाम दे देते हैं यह सुख है, तो तत्काल मन मान लेता है कि सुख है। नाम दे देते हैं दुख है, तो मान लेते हैं कि दुख है। कभी आपने ख्याल न किया हो, लेकिन करना चाहिए निरीक्षण कि अगर हम नाम न दें तो कौन सी चीज सुख होगी और कौन सी चीज दुख होगी? और अगर हम नाम देने की जल्दी न करें, सिर्फ अनुभूति पर जीएं, तो एक बड़ी अदभुत बात मालूम होगी कि जिसको हम सुख कहते हैं वह किसी भी क्षण दुख हो जाता है और जिसको हम दुख कहते हैं वह किसी भी क्षण सुख हो जाता है।

आपको मैं प्रेम करता हूं। राह पर आप मिले और मैंने आपको गले से लगा लिया। नाम न दें इसे सुख का या दुख का अभी, कोई नाम न दें। सिर्फ सीधा यह तथ्य कि मैं आपको गले से दबा रहा हूं; मेरी हड्डियां, मेरी चमड़ी आपको स्पर्श कर रही हैं; आपकी हड्डियां और चमड़ी मुझे स्पर्श कर रही हैं। इसको कोई नाम न दें कि यह आलिंगन है, सुख है, दुख है, कोई नाम न दें। सिर्फ यह तथ्य, यह फैक्ट कि क्या घटित हो रहा है। तब आपको बड़ा मुश्किल होगा कहना कि इसे सुख कहें कि दुख कहें।

और अगर आप इसे सुख कहें, कहना चाहें कि नहीं, सुख है, और मैं आपको अपनी छाती से लगाए खड़ा ही रहूं; कितनी देर यह सुख रहेगा? एक क्षण, दो क्षण, पांच क्षण, फिर आसपास भीड़ इकट्ठी होने लगेगी और लोग झांकने लगेंगे कि क्या हो गया? और फिर आप बेचैन होने लगेंगे, और फिर आपके माथे पर पसीना आने लगेगा, और आप छूटना चाहेंगे, बचना चाहेंगे। वह जो सुख था, वह कब दुख बन गया, कभी आपने भीतर परीक्षण किया? किस घड़ी आकर सुख दुख बनना शुरू हो गया? और अगर मैं न ही छोड़ूं?

सुना है मैंने कि नादिरशाह ने ऐसा मजाक एक बार किया था। नादिर का प्रेम था एक युवती से; लेकिन युवती उस पर कोई ध्यान नहीं देती थी। नादिर ने सब उपाय किए थे। चाहता तो वह उठवा कर हरम में डलवा देता। लेकिन पुरुष को सुख मिलता है जीतने में; जबर्दस्ती करने में सारा सुख खो जाता है। चाहता था कि वह स्त्री अपने से आए।

एक दिन अचानक उसे पता चला कि उस स्त्री का, नादिर का जो सिपाही है, उसका द्वारपाल जो है, उससे प्रेम है। नादिर रात पहुंचा और जब उसने अपनी आंख से उन दोनों को आलिंगन में देख लिया तो उसने उनको वहीं बंधवाया, महल बुलवाया। दोनों को नग्न किया, आलिंगन में बांध कर सामने एक खंभे से बंधवा दिया। दोनों आलिंगन में बंधे हैं खंभे से।

बड़ा गहरा मजाक हुआ। और बड़ी कठिन सजा हो गई। ये दोनों प्रेमी एक-दूसरे के पास होने को तड़पते थे। चोरी से कभी मिल पाते थे; क्योंकि नादिर का डर भी था; खतरा भी था। सब खतरे उठा कर मिलते थे क्षण भर को तो स्वर्ग मालूम होता था। अब दोनों नग्न एक-दूसरे की बाहों में खंभे से बंधे खड़े थे।

घड़ी, दो घड़ी के बाद ही एक-दूसरे के शरीर से बदबू आने लगी; एक-दूसरे की तरफ देखने का मन न रहा। जब कहीं बंधा ही हो कोई आदमी किसी के साथ तो फिर देखने को मन नहीं रह जाता। विवाह में यही परिणाम होता है। दो आदमी बंधे हैं एक-दूसरे से। थोड़े दिन में घबड़ाहट हो जाती है शुरू। विवाह बड़ी मजाक है, नादिर जैसी मजाक है। कहते हैं कि पंद्रह घंटे बाद... । पेशाब भी बह गया, मल-मूत्र हो गया, बदबू फैल गई। बहुत भयंकर मजाक हो गई। सब सौंदर्य खो गया। सब स्वर्ग नष्ट हो गया; नरक हो गया। पंद्रह घंटे बाद नादिर ने दोनों को छुड़वा दिया। कहानी कहती है कि वे दोनों फिर कभी एक-दूसरे को नहीं देखे। जो वहां से भागे, उस खंभे से, फिर कभी जीवन में दुबारा नहीं मिले।

क्या हुआ? जिसे सुख जाना था, वह दुख में परिणत हो गया। किसी भी सुख को जरा ज्यादा खींच दो, दुख हो जाएगा; जरा सा ज्यादा खींच दो। लेकिन जो दुख हो सकता है, उसका अर्थ हुआ कि वह दुख रहा ही होगा। नहीं तो हो कैसे जाएगा? क्वांटिटी के बढ़ने से क्वालिटी अगर बदलती हो, परिमाण के बढ़ने से, घटने से अगर गुण बदलता हो तो उसका अर्थ है कि गुण छिपा हुआ रहा ही होगा। आपको प्रतीत नहीं हो रहा था, क्योंकि मात्रा कम थी। मात्रा सघन हो गई, आपको प्रतीत होने लगा। किसी भी दुख की मात्रा को भी बदल दो तो सुख हो जाता है। सुख की मात्रा को भी बदल दो तो दुख हो जाता है। दुख का भी अभ्यास कर लो तो सुख हो जाता है। दुख सुख हो जाते हैं; सुख दुख हो जाते हैं। फासले शायद शब्दों के हैं; यथार्थ का फासला नहीं है।

लाओत्से कहता है, हां और न में कोई फर्क नहीं है।

अगर तुम अपने ज्ञान को एक तरफ रख दो और फिर तुम जीवन के तथ्य में प्रवेश करो तो तुम पाओगे कि हां नहीं हो जाता है और नहीं हां हो जाता है। जिंदगी बड़ी बदलाहट है। यहां जिसे हम कहते हैं विधायक, वह कभी भी बदल जाता है, नकारात्मक हो जाता है। जिसे हम सुबह कहते हैं, वही सांझ हो जाती है। जिसे हम सुख कहते हैं, वही दुख हो जाता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि सुख और दुख यथार्थ से बाहर खींच लिए गए शब्द हैं। यथार्थ दोनों के बीच एक है। हमारा सारा ज्ञान नाम देने का ज्ञान है, चीजों को नाम देने का ज्ञान है। जब हम चीजों को नाम दे देते हैं तो हम समझते हैं ज्ञान हो गया। हम बता देते हैं कि यह दुख है, यह सुख है। हम समझते हैं कि हम सब समझ गए।

नाम के नीचे जो यथार्थ है, उसकी प्रतीति! लेकिन उसकी प्रतीति उन्हें ही हो सकती है जो सब सिखावन को छोड़ने को तैयार हों।

लाओत्से कहता है, "शुभ और अशुभ के बीच भी फासला क्या है?"

हां और न तो ठीक है, लाओत्से कहता है, शुभ और अशुभ, जिसे हम कहते हैं पुण्य और पाप, उसके बीच भी फासला क्या है? क्या है पुण्य, क्या है पाप? कठिन है यह बात थोड़ी। और घबड़ाहट होती है। क्योंकि लाओत्से का चिंतन अति-नैतिक चिंतन है। और गहन जैसे ही चिंतन होगा, अति-नैतिक हो जाएगा।

हम कहते हैं, यह कृत्य शुभ है और यह कृत्य अशुभ है, और ऐसा करना पुण्य है और वैसा करना पाप है। और निश्चित ही हम बांट कर जीते हैं। सुविधा हो जाती है जीने में, अन्यथा बड़ी कठिनाई हो जाए। अन्यथा बड़ी कठिनाई हो जाए। तो हम बांट कर चलते हैं कि दान पुण्य है, चोरी पाप है। दया शुभ है, क्रूरता-कठोरता

अशुभ है। सच बोलना शुभ है, झूठ बोलना अशुभ है। जिंदगी में हम ऐसा बांट कर चलते हैं। जरूरी है, उपयोगी है।

लेकिन लाओत्से गहरे सवाल उठाता है। वह यह कहता है, फर्क क्या है? वह कहता है, कौन सी चीज है जिसको तुम कह सकते हो कि सदा शुभ है? और कौन सी चीज है जिसे तुम कह सकते हो कि सदा अशुभ है? अशुभ शुभ होते देखे जाते हैं; शुभ अशुभ हो जाते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे सुख दुख बदल जाते हैं।

समझें, आप अपने पड़ोसी की सहायता करते चले जाते हैं। दया करते हैं, पैसे से सहायता पहुंचाते हैं, सब तरह से सेवा करते हैं। लेकिन आपने कभी ख्याल किया? शायद कभी ख्याल में भी आया हो तो भी पूरी बात नहीं निरीक्षण हो पाती है। मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमने फलां आदमी के साथ इतना अच्छा किया और वह हमारे साथ बुरा कर रहा है। आम अनुभव है यह कि नेकी का फल बदी से मिलता है। लेकिन तब हम यह समझते हैं कि वह आदमी ही बुरा है। मैंने भला किया, वह बुरा कर रहा है; क्योंकि वह आदमी बुरा है।

लेकिन यह सत्य नहीं है। असल में, जिसके साथ भी आप भला करते हैं, आपका भला करना भी इतना बोझिल हो जाता है, भारी हो जाता है दूसरे पर कि उसे बदला चुकाना जरूरी हो जाता है। जब एक आदमी किसी के साथ भला करता है तो वह उसके अहंकार को चोट पहुंचाता है और खुद के अहंकार को ऊपर करता है। मैं भला कर रहा हूं! दूसरा दीन हो जाता है; मैं श्रेष्ठ हो जाता हूं। तो दूसरा मुझे ऊपर से धन्यवाद देता है कि आपकी बड़ी कृपा है कि आपने इतना मेरे लिए किया; लेकिन भीतर से मेरा अहंकार भी उसको कांटे की तरह चुभता है। वह भी चाहता है कि कभी ऐसा मौका मिले कि हम भी तुम्हारे साथ भला कर सकें; कभी ऐसा मौका मिले कि तुम नीचे और हम ऊपर; कभी हम श्रेष्ठता से छाती फुला कर खड़े हों और तुम हाथ जोड़ कर कहो कि बड़ी कृपा है!

अगर आप उसको ऐसा मौका मिलने ही न दें, आप भला किए ही चले जाएं, उसको भला करने का मौका ही न दें, तो वह आदमी आपसे बुरा भी कर सकता है। क्योंकि आपका भला उस पर इतना बोझिल हो जाए। अब दो ही उपाय हैं उसके पास। या तो वह कुछ भला आपके साथ करे और आपको नीचे बिठा दे; और या फिर अगर आप कोई मौका ही न दें... क्योंकि भला करना महंगा काम है, सभी के लिए सुविधापूर्ण नहीं है; बुरा करना सस्ता काम है, सभी कर सकते हैं।

तो अगर मैं एक आदमी को पैसे की सहायता पहुंचाए चला जा रहा हूं तो जरूरी नहीं है कि कभी ऐसी हालत हो जाए कि मुझे पैसा उससे मांगना पड़े। जरूरी नहीं है। क्योंकि जिनके पास है उनके पास और इकट्ठा होता चला जाता है और जिनके पास नहीं है उनसे और छिनता चला जाता है। वह आदमी भी चाहता है कि कभी मुझे दान करे। वह मौका न मिले तो फिर क्या करे वह आदमी? बुरा कोई भी कर सकता है; बुरा सस्ता काम है। वह कुछ मेरे लिए बुरा करे और मुझे नीचा दिखाए, मेरे संबंध में कुछ अफवाहें उड़ाए, मेरे संबंध में कुछ निंदा चलाए, कोई उपाय करे--कोई उपाय करे कि मैं नीचे हो जाऊं! जिस दिन उपाय करके वह मुझे नीचा दिखा देगा, बैलेंस हो जाएगा। हमारा निबटारा हो जाएगा; लेन-देन बराबर हो जाएगा।

नीत्शे ने बहुत ही कठोर व्यंग्य किया है जीसस पर। क्योंकि जीसस ने कहा है कि तुम्हारे गाल पर जो एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। हम कहेंगे कि इससे ज्यादा श्रेष्ठ सिद्धांत और क्या होगा! नीत्शे ने कहा है, ऐसा अपमान भूल कर मत करना किसी का कि कोई आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा उसके सामने मत कर देना। नहीं तो तुम तो ईश्वर हो जाओगे और वह कीड़ा हो जाएगा। और यह

क्षम्य नहीं है। अच्छा हो कि तुम भी एक करारा चांटा उसको मार देना, तुम कम से कम दोनों आदमी तो रहोगे। दूसरे को भी आदमी होने की इज्जत देना।

जीसस की ऐसी आलोचना किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं की है। लेकिन कोई दूसरा कर भी नहीं सकता। नीत्शे की हैसियत का आदमी चाहिए। वह ठीक जीसस की हैसियत का आदमी है। लेकिन इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ कि शुभ भी अशुभ हो सकता है। आपने मेरे गाल पर चांटा मारा और मैंने दूसरा आपके सामने कर दिया; बड़ा शुभ कार्य कर रहा हूं मैं। लेकिन यह अशुभ हो सकता है, यह अपमानजनक हो सकता है। शायद यही सम्मानपूर्ण होता कि मैं एक चांटा आपको मारता और हम बराबर हो गए होते। उसमें आपकी इज्जत थी।

क्या है शुभ? क्या है अशुभ?

जीसस ने कहा है, कनफ्यूशियस ने भी कहा है, महाभारत में भी वही सूत्र है, सारी दुनिया के धर्मों ने उसको आधार माना है कि तुम दूसरे के साथ वही करना जो तुम चाहो कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। यह शुभ की परिभाषा है। लेकिन नीत्शे ने कहा है कि यह जरूरी नहीं है; स्वाद अलग-अलग भी होते हैं। जरूरी नहीं है, रुचियां भिन्न होती हैं। जरूरी नहीं है कि तुम जो चाहते हो दूसरा तुम्हारे साथ करे, वही तुम उसके साथ करो। क्योंकि उसकी रुचि भिन्न हो सकती है, वह चाहता ही न हो कि कोई उसके साथ ऐसा करे। यह जरा कठिन है; थोड़ा जटिल है।

बर्नार्ड शॉ ने उसको ठीक मजाक पर, सरल ढंग पर रखा है। उसने कहा है कि मैं चाहता हूं कि आप मेरा चुंबन करें, इसलिए मैं आपका चुंबन करूं? तो आपको सिद्धांत समझ में आ जाएगा। जीसस कहते हैं, तुम वही करना दूसरे के साथ, जैसा तुम चाहते हो कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बर्नार्ड शॉ कहता है कि मैं चाहता हूं कि आप मेरा चुंबन करें तो मैं आपका चुंबन करूं? जरूरी नहीं है चुंबन लौटे। फिर क्या होगा?

शुभ और अशुभ इतना आसान नहीं कि बांट कर रखे जा सकें। सब श्रेणियां, जो आदमी ने बनाई हैं, बचकानी हैं। कामचलाऊ हैं, लेकिन बचकानी हैं। गहन चिंतन तो कहता है कि शुभ और अशुभ एक ही बात हैं। और इसलिए जो जानता है--दूसरों से सीख कर नहीं, जो अपने भीतर से जानता है--उसके लिए कोई चीज शुभ और अशुभ नहीं होती। सहज जीता है; उससे जो हो जाता है, वही शुभ है।

इस फर्क को आप समझ लें। एक तो व्यक्ति है, जो दूसरों से सीखता हैः क्या शुभ है, क्या अशुभ है। नियम तय हो जाते हैं कि यह करो, यह मत करो। कमांडमेंट्स हैं, आदेश हैं। धर्मग्रंथ कहते हैं कि यह करना ठीक है, यह करना ठीक नहीं है। आपने याद कर लिया, उसके अनुसार आपने अपना जीवन बना लिया। आप शुभ करते चले जाते हैं; अशुभ से आप बचते चले जाते हैं। लेकिन जरूरी नहीं कि आपका जीवन शुभ हो। क्यों? क्योंकि जीवन एक तरल प्रवाह है। उसमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

अब नीत्शे की बात आपने सुनी। अगर जीसस की ही बात अकेली सुनी हो तो लगेगा कि इससे ज्यादा सही और क्या हो सकता है! लेकिन नीत्शे जो कह रहा है, वह भी सही है। वह भी दूसरा पहलू है।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि नैतिक पुरुष, जिनको हम नैतिक पुरुष कहते हैं, दूसरों के प्रति बहुत अपमानजनक हो जाते हैं। और इसलिए नैतिक व्यक्ति के पास रहने में एक तरह का बोझ मालूम पड़ता है, हलकापन मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि नैतिक व्यक्ति की मौजूदगी ही आपको अशुभ करार दे देती है। नैतिक व्यक्ति की आंख आपको हर क्षण निंदित करती रहती है कि आप गलत कर रहे हैं। वह ठीक कर रहा है, आप गलत कर रहे हैं। छोटी-छोटी बात में भी उसका निर्णय है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। इसलिए नैतिक

व्यक्ति एक तरह का स्ट्रेन खड़ा करता है। इसलिए नैतिक व्यक्ति का साथ-संग कोई पसंद नहीं करता। नैतिक व्यक्ति के साथ होना कठिन मामला है; क्योंकि प्रतिपल छोटी और बड़ी बात पर, हर चीज पर ठीक और गलत होने का लेबल लगा है।

धार्मिक व्यक्ति बहुत और तरह का व्यक्ति है। धार्मिक व्यक्ति के पास होना एक आनंद होगा। क्योंकि धार्मिक व्यक्ति के पास कुछ तय नहीं है कि ठीक और गलत क्या है। धार्मिक व्यक्ति के पास तो एक सहजता है जीवन की। किसी क्षण में कुछ बात ठीक हो सकती है; दूसरी परिस्थिति में वही बात गलत हो सकती है।

जीसस को अगर नीत्शे चांटा मारे और जीसस उत्तर न दें तो अशुभ होगा। क्योंकि नीत्शे निश्चित मानेगा कि यह अपमान किया गया, मुझे इस योग्य भी नहीं समझा गया कि मेरा चांटा वापस किया जाए। और इसके लिए नीत्शे जीसस को कभी माफ नहीं कर सकेगा। यह हद हो गई! यह अपने आपको महामानव दिखाने की चेष्टा--हद हो गई! नीत्शे धन्यवाद भी दे सकता है चांटा खाकर। और तब कह सकता है कि ठीक, आदमी से आदमी की तरह व्यवहार हुआ।

पौरुष हार गया है सिकंदर से। सिकंदर के सामने खड़ा है, जंजीरों में बंधा है। सिकंदर उससे पूछता है अपने सिंहासन पर बैठ कर कि मैं कैसा व्यवहार करूं? तो पौरुष ने कहा कि जैसा एक सम्राट दूसरे सम्राट के साथ करता है। और तब सिकंदर को बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। पौरुष को छोड़ना ही पड़ा, जंजीर तत्काल तुड़वा ही देनी पड़ी। क्योंकि पौरुष ने कहा कि जैसा एक सम्राट दूसरे के साथ करता है, वैसा व्यवहार करो; एक आदमी कैसा दूसरे आदमी के साथ व्यवहार करता है, वैसा व्यवहार करो।

वैसी अवस्था में तो अपने आपको ऊपर रखने की चेष्टा भी अशुभ हो जाएगी। न, तुमसे चांटा मारा ही न जा सके; तुम्हें पता ही न चले और तुम्हारा गाल दूसरा सामने आ जाए; यह तुम्हारी चेष्टा न हो, यह तुम्हारा विचार न हो, यह तुम्हारा सिद्धांत न हो, ऐसा तुमने चेष्टा करके किया न हो, बस ऐसा ही तुमसे हो जाए, तो यह धार्मिक व्यवहार होगा। ऐसा तुमने चेष्टा करके किया हो तो यह नैतिक व्यवहार होगा। और नैतिक व्यवहार में शुभ और अशुभ का फासला होता है। धार्मिक व्यवहार में शुभ और अशुभ का कोई फासला नहीं होता।

धार्मिक व्यक्ति जीता है सहजता से। जो उसे स्वाभाविक है, वैसा प्रवाहित होता है। नैतिक व्यक्ति प्रतिपल तय करता हैः क्या करना और क्या नहीं करना। ध्यान रहे, जिसको तय करना पड़ता है कि क्या करना और क्या नहीं करना, उसके पास अभी आत्मा नहीं है। उसके पास अभी शिक्षाओं का समूह है, नैतिक दृष्टि है; लेकिन धार्मिक अनुभव नहीं है।

लाओत्से कहता है, "शुभ और अशुभ के बीच फासला क्या है?"

तुम्हारा ज्ञान ही बस फासला है।

"लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए। लेकिन अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी बहुत दूर है। कितनी दूर है!"

लाओत्से यह नहीं कह रहा है कि आपको जो मौज आए, करने लगें। कहता है, लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए; क्योंकि लोगों के बीच रहना है। लोग जिसे बुरा मानते हैं, उसे बुरा मानना ही चाहिए। लोग जिसे भला कहते हैं, उसे भला कहना ही चाहिए। मगर यह अभिनय से ज्यादा न हो, यह आत्मा न बने। लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए। ठीक है बिल्कुल। लेकिन उसी को जीवन का परम सत्य मत जान लेना। क्योंकि लोग जिससे डरते हैं, उससे डरो; जो लोग कहते हैं ठीक है, उसे करो; जो लोग कहते हैं कि ठीक नहीं है, उसे मत करो; अगर तुम इसमें पूरे भी उतर गए, परिपूर्ण भी हो गए, तो भी लाओत्से कहता है, लेकिन अफसोस

कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है! तुमने अगर लोगों की नीति के पूरे मापदंड भी पूरे कर दिए; तुमने चोरी न की, हिंसा न की, व्यभिचार न किया; तुमने दया की, दान किया, अहिंसा की; लोगों के समस्त नैतिक मापदंड पूरे कर दिए, तो भी लाओत्से कहता है, अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है! तुम अगर पूरे नैतिक भी हो गए तो भी अभी धर्म की पहली किरण नहीं फूटी है।

इसका यह मतलब नहीं कि लाओत्से कहता है कि नीति को छोड़ देना। वह यही कहता है कि नीति को अंतिम मत समझ लेना। वह यह नहीं कहता कि नीति व्यर्थ है। वह यह कहता है कि नीति अपर्याप्त है। वह यह नहीं कहता कि नीति को छोड़ कर अनैतिक हो जाना। वह कहता है कि नैतिक रहना, लेकिन जानना उसे केवल जीवन की सुविधा, कनवीनिएंस; उसको सत्य मत समझ लेना। और उसको ही पर्याप्त मत समझ लेना कि बात पूरी हो गई। चूंकि मैं चोरी नहीं करता, चूंकि मैं झूठ नहीं बोलता, चूंकि मैं किसी को अपमानित नहीं करता, चूंकि किसी से कलह नहीं करता, इसलिए ठीक है, बात समाप्त हो गई, पहुंच गया मैं परम सत्य को, ऐसा मत समझ लेना।

नीति सामाजिक व्यवस्था है--सिर्फ व्यवस्था। धर्म जागतिक सत्य की खोज है। तो नीति समाज-समाज में अलग-अलग होगी। जो यहां नैतिक है, वह दो गांव छोड़ने के बाद नैतिक न हो। सारी दुनिया में हजार तरह की नीतियां हैं। एक कबीले में जो बात बिल्कुल नैतिक है, दूसरे कबीले में बिल्कुल अनैतिक हो जाती है। एक बात जिसे हम सोच भी नहीं सकते कि कोई करेगा, कहीं दूसरी जगह नैतिक मानी जाती है; करना कर्तव्य समझा जाता है।

एक कबीला है अफ्रीका में। अगर पिता मर जाए तो बड़े बेटे को मां के साथ शादी करना नैतिक है। और अगर बेटा इनकार करे तो अनैतिक है। उनकी भी दलील है। सभी नीतियों की दलीलें होती हैं। वे कहते हैं कि अब मां बूढ़ी हो रही है तो अगर बेटा अपनी जवानी उसके लिए कुर्बान नहीं कर सकता तो कौन करेगा? यह कर्तव्य है। और अगर हम ठीक से सोचें तो बेटा एक जवान लड़की के साथ शादी करना छोड़ कर अपनी मां से शादी करने को तैयार होता है तो त्याग तो निश्चित है। अगर हम उसी कबीले में पैदा होते और हमें कुछ और बाहर की दुनिया का पता न होता तो यही कर्तव्य था। और जो बेटा यह नहीं करेगा, उसको पूरा गांव, पूरा कबीला निंदा करेगा कि यह लड़का अपनी मां का भी समय पर न हो सका।

हमें बहुत बेहूदी लगेगी बात, सोचने के बाहर लगेगी, एकदम अनैतिक लगेगी। इससे ज्यादा अनैतिक और क्या होगा कि बेटा मां से शादी करे? हमारी अपनी नीति है, उनकी अपनी नीति है। नीतियां हजार हैं। धर्म से उसका कोई संबंध नहीं है। अपनी सुविधा है, अपनी व्यवस्था है। नैतिकता अगर कोई पूरी भी निभा ले तो भी उस सत्य की तरफ यात्रा शुरू नहीं होती, जिसकी तलाश है। हां, समाज के साथ एक एडजस्टमेंट, समाज के साथ एक समायोजन हो जाता है। अनैतिक आदमी को समाज के साथ तकलीफ होती है, बेचैनी होती है; क्योंकि पूरा समाज उसके खिलाफ पड़ता है। वह क्या कर रहा है, ठीक है या गलत है, इसका बहुत मूल्य नहीं है। लेकिन असमायोजन होता है, मैल-एडजस्टमेंट हो जाता है; असुविधा होती है, कष्ट होता है। समाज उसको दंड भी देगा; क्योंकि जो आदमी समाज की व्यवस्था के प्रतिकूल चलेगा, वह आदमी खतरनाक है समाज के लिए। अगर ऐसे लोगों को चलने दिया जाए तो समाज की सारी व्यवस्था जीर्ण-शीर्ण हो जाएगी। तो उसे दंड देना जरूरी है। जो समाज की मान कर चलेगा, समाज उसको आदर देगा; स्वभावतः उसको पुरस्कार देगा। लेकिन इससे धर्म का कोई संबंध नहीं है।

लाओत्से कहता है, "लोग जिससे डरते हैं, उससे डरना ही चाहिए।"

नैतिक होना ठीक है।

"लेकिन अफसोस कि जागरण की सुबह अभी भी कितनी दूर है!"

और अगर तुम पूरे नैतिक भी हो गए तो भी जागरण की सुबह बहुत दूर है।

जागरण की सुबह किसे मिलती है?

लाओत्से दूसरे हिस्से में कहता है, "दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं, मानो वे यज्ञ के भोज में शरीक हों। मानो वे वसंत ऋतु में खुली छत पर खड़े हों। मैं अकेला ही शांत और सौम्य हूं, जैसे मुझे कोई काम ही न हो। मैं उस नवजात शिशु जैसा हूं जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता। या वह बंजारा हूं, जिसका कोई घर न हो।"

धार्मिक आदमी को ऐसा प्रतीत होगा। दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं, यह व्यंग्य है गहरा। और लाओत्से तीखे व्यंग्य कर सकता है। वह कह रहा है, दुनिया के लोग मजे कर रहे हैं; दुनिया के लोग जिसे मजा समझते हैं, वह कर रहे हैं। एक अकेला मैं ही अभागा हूं कि मजे के बाहर पड़ गया हूं। वे सब ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे किसी उत्सव के भोज में सम्मिलित हुए हैं। प्रतिपल भोज चल रहा है, उत्सव चल रहा है। ऐसा लगता है कि वसंत की ऋतु है और वे सब खुली छत पर आनंदित हैं, उन पर वसंत बरस रहा है। मैं अकेला ही शांत और सौम्य हूं, जैसे मुझे कोई काम ही न हो। इस बड़े व्यापार में, इस बड़े उत्सव में, इस बड़े जगत में, जहां सब तरफ मौज और मजा चल रहा है, एक मैं बेकाम मालूम पड़ता हूं।

अंग्रेजी के शब्द बहुत कीमती हैंः आई अलोन एम माइल्ड लाइक वन अनएंप्लायड, लाइक ए न्यू बॉर्न बेब दैट कैन नॉट यट स्माइल, अनअटैच्ड लाइक वन विदाउट ए होम। मैं अकेला ही शांत और सौम्य हूं। न तो इस मजे में मुझे कुछ मजा मालूम होता है, न इस उत्सव में मुझे कोई उत्सव दिखाई पड़ता है। और अगर यही लोगों का एकमात्र व्यवसाय है तो मैं अनएंप्लायड हूं। अगर यह मजा करना, यह मौज, यह उत्सव ही अगर एकमात्र धंधा है तो मैं बिल्कुल बिना धंधे के हूं। मेरे पास कोई धंधा नहीं है।

जिसे लोग मजा कह रहे हैं, मौज कह रहे हैं, वह लाओत्से को उनकी समस्त पीड़ाओं का, उनके दुखों का आधार है। लाओत्से देखेगा तो आपके सब सुख और आपके सब दुख उसे जुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। आपको दिखाई नहीं पड़ते हैं। आप समझते हैं, सुख अलग बात है, दुख अलग बात है। आप समझते हैं, सुख इकट्ठा कर लो और दुख को फेंक दो काट कर। लाओत्से जब देखता है तो वह देखता है, तुम जब सुख को इकट्ठा करते हो, तब तुम्हें पता नहीं कि तुम अपने दुख इकट्ठे कर रहे हो। और जब तुम मजा कर रहे हो, तभी तुम्हारी उदासी सघन होती जा रही है। और यह भी संभव है कि तुम मजा सिर्फ इसीलिए कर रहे हो, ताकि तुम अपनी उदासी को भूल सको।

और अक्सर ऐसा है। जो लोग हंसते हुए दिखाई पड़ते हैं, वे वे ही लोग हैं, जिनके भीतर सिवाय रुदन के और कुछ भी नहीं है, आंसुओं के सिवाय कुछ भी नहीं है। मगर वे हंसते हैं खिलखिला कर। हंसते हैं खिलखिला कर, किसी और को धोखा देने के लिए नहीं; अपनी ही खिलखिलाहट की आवाज अपने को ही धोखा दे देती है। कभी आपने देखा है, गली में, अकेले में, अंधेरे में जाते हों तो आदमी खुद ही सीटी बजाने लगता है। अपनी ही सीटी की आवाज अंधेरे में सुनाई पड़ती है, लगता है अकेले नहीं हैं। गाना गाने लगता है। अपनी ही आवाज सुनाई पड़ती है, हिम्मत आ जाती है; लगता है अकेले नहीं हैं।

आदमी धोखा देने में बहुत कुशल है। जब आप हंसते हैं, जरूरी नहीं कि किसी और को धोखा दे रहे हों। और को भी दे रहे हों, दूसरी बात है; लेकिन अपने को भी दे रहे हो सकते हैं। हंसते हैं, हंसी की आवाज सुनाई पड़ती है; लगता है बड़े खुश हैं। लोगों के भीतर झांकें--और दुख के ढेर हैं। और उन दुखों के ढेर पर भी बैठ कर

लोग हंसते रहते हैं। यह चमत्कार है। इसलिए आदमी अकेला होने में डरता है। क्योंकि अकेले में हंसिएगा भी कैसे? दुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। दूसरा हो तो आदमी भुला लेता है; दूसरे के साथ बातचीत में डुबा लेता है अपने को। हंस लेता है। अकेला होता है तो दुख दिखाई पड़ने लगते हैं। सब भीतर की पीड़ाएं उभर कर सामने आ जाती हैं। सब आंसू साफ हो जाते हैं। इसलिए कोई आदमी अकेला नहीं रहना चाहता। अकेले में कोई आदमी अपने साथ रहने को राजी नहीं दिखाई पड़ता है। क्यों? क्योंकि अपने को कैसे हंसिए? कितनी देर हंसिए? जो भीतर है, वह दिखाई पड़ेगा। दूसरे में उलझ जाते हैं, व्यस्त हो जाते हैं, तो खुद को भूलने में आसानी हो जाती है।

हम सब एक-दूसरे को भुलाने के लिए सहयोगी हैं; एक-दूसरे को पारस्परिक सहयोग देते रहते हैं। हम आपका दुख भुलाते हैं, आप हमारा दुख भुलाते हैं। मित्रों का यही लक्षण है। कहते हैं न, मित्र वही जो दुख में काम आए। पता नहीं, और तरह काम आते हैं मित्र कि नहीं, लेकिन एक-दूसरे का दुख भुलाने में काम जरूर आते हैं।

लाओत्से कहता है, दुनिया के लोग मजा कर रहे हैं, मानो किसी यज्ञ के भोज में शरीक हुए हों, या समझो कि वसंत उनके ऊपर ही बरस रहा हो। एक अकेला मैं चुपचाप खड़ा हूं। एक अकेला मैं ही सौम्य मालूम पड़ता हूं। न कोई मजा मुझे दिखाई पड़ता है, न कोई उत्सव मेरी समझ में आता है। एक अकेला मैं ही दूर पड़ गया हूं, भीड़ के बाहर पड़ गया हूं, अजनबी हूं। लगता है जैसे बेकार हूं।

और ऐसा लाओत्से को ही लगता हो, ऐसा नहीं। दूसरे लोग भी ऐसे लोगों से आकर कहते हैं कि क्या जीवन बेकार गंवा रहे हैं! अगर आप चुपचाप बैठे हैं तो लोग पूछते हैं कि क्यों समय गंवा रहे हैं! अगर आप शांत हैं तो लोग समझते हैं दुखी हैं। अगर आप सौम्य हैं तो लोग समझते हैं कि क्या हुआ? कोई कडुवा अनुभव? कोई फ्रस्ट्रेशन? कोई विषाद? अगर आप ध्यान के लिए बैठे हैं तो लोग समझते हैं कि शायद जीवन में सफलता हाथ नहीं लगी, अब ध्यान करने लगे हैं। अगर आप संन्यस्त हो रहे हैं तो लोग समझते हैं कि बेचारा, संसार में कुछ न मिल सका तो अब संन्यास की तरफ जा रहा है।

तो लाओत्से को खुद ही लगा हो, ऐसा नहीं। हजारों लोगों ने लाओत्से से कहा होगा कि क्या निठल्ले, व्यर्थ। कुछ करो! तो लाओत्से ठीक कह रहा है, अनुभव की बात कह रहा है कि एक अकेला मैं ही बेकाम मालूम पड़ता हूं। सारा जगत काम में संलग्न है। सारे लोग कहीं पहुंच रहे हैं, कोई परपज, कोई लक्ष्य उनके सामने है। एक मैं ही बेकार हूं। कहीं मुझे पहुंचना नहीं, कोई मेरी जल्दी नहीं, कोई लक्ष्य नहीं जिसे पूरा करना हो। मेरी हालत ऐसी है, उस नवजात शिशु जैसी, जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता।

यह बड़ी समझने की बात है। बच्चा तभी मुस्कुराना सीखता है--मनसविद इस पर काफी काम करते हैं--जब बच्चा मां को धोखा देना शुरू करता है। उसी दिन से बच्चे में पोलिटीशियन पैदा हो गया, जब बच्चा मुस्कुराता है। बच्चे के पास कुछ देने को नहीं है। कुछ देने को नहीं है; सब कुछ उसे लेना ही लेना है। मां का दूध भी लेना है, मां का प्रेम भी लेना है, मां की गर्मी भी लेनी है। सब कुछ लेना ही लेना है। उसके पास देने को कुछ भी नहीं है। उसके पास कोई सिक्का नहीं है जो वह मां को दे सके।

थोड़े ही दिन में बच्चा खोज लेता है कि उसके चेहरे का खिंच जाना, मुस्कुरा जाना मां के लिए आह्लाद से भर देता है। एक चीज उसके पास मिल गई; वह दे सकता है। अब वह मां को दे सकता है। अब लेन-देन शुरू हुआ। अब वह मां को देख कर मुस्कुरा देगा, और मां आनंदित है। पोलिटीशियन पैदा हुआ; बच्चे ने राजनीति शुरू की। बच्चे को मुस्कुराने का अभी और कोई अर्थ नहीं है, सिर्फ मां को परसुएड करता है। समझ गया है कि जब

मुस्कुराता है तो मां प्रसन्न होती है, मां प्रसन्न होती है तो देती है। इसलिए बच्चा जब नाराज हो, तो मां लाख उपाय करे, मुस्कुराएगा नहीं। अपनी मुस्कान को रोकेगा, बदला लेगा। अगर वह नाराज है तो मुस्कुराएगा नहीं। उसकी मुस्कान का मतलब है, वह राजी है, प्रसन्न है, वह मां के प्रति खुश है।

लाओत्से कहता है, मेरी हालत वैसी है, उस नवजात शिशु जैसी, जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता, जिसे जीवन की राजनीति का कोई भी अनुभव नहीं है, जो अभी पहला सिक्का भी जगत-व्यवहार का नहीं सीखा है।

मुस्कुराना बच्चे का पहला सांसारिक कदम है। वहां से उसने कदम रखना शुरू कर दिया। अब वह और बातें सीखेगा। लेकिन उसने एक बात सीख ली। उसने एक बात सीख ली कि वह दूसरे को सुख दे सकता है। और दूसरे का सुख रोक भी सकता है। अगर वह न मुस्कुराए तो मां को दुखी भी कर सकता है। और अगर मुस्कुराए तो सुखी भी कर सकता है। दूसरे व्यक्ति को संचालित करने की क्षमता उसे आ गई। अब वह बहुत कुछ सीखेगा जिंदगी में।

और सारी जिंदगी हम यही सीखते हैं कि दूसरे को कैसे संचालित करें। और जो आदमी जितने ज्यादा लोगों को संचालित कर सकता है, उतना बड़ा आदमी हो जाता है। अगर आप करोड़ों लोगों को संचालित करते हैं तो आप महानेता हैं। इसलिए मैंने कहा, बच्चे ने राजनीति का पहला पाठ--दूसरे को कैसे संचालित करना, कैसे प्रभावित करना। बच्चा जानता है, घर में अगर मेहमान भी आए हुए हों तो वह घर भर को खुश कर सकता है जरा सा मुस्कुरा कर। वह दुखी कर सकता है। उस पर बहुत कुछ निर्भर है। वह भी कुछ कर सकता है।

लाओत्से कहता है, मेरी दशा वैसी है, उस बच्चे जैसी, जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता। मुझे इस जगत का कोई सिक्का, इस जगत को प्रभावित करने की कोई वृत्ति, इस जगत को संचालित करने की कोई शक्ति--नहीं, यह सब मेरे पास नहीं है। मैं बिल्कुल बाहर पड़ गया हूं। मैं बिल्कुल अजनबी हूं।

"या एक ऐसा बंजारा हूं, जिसका कोई घर न हो।"

चलता हूं, उठता हूं, बैठता हूं; लेकिन न तो कहीं पहुंचना है, न कोई मंजिल है, न कोई घर है। बेघर हूं। ठीक संन्यास का यही अर्थ हैः बेघर! जिसका कोई घर नहीं है।

इसका यह मतलब नहीं है कि जो घर छोड़ कर भाग गया। जिसका घर हो, वह छोड़ कर भाग भी सकता है। जिसका घर न हो, वह छोड़ कर भी कहां भाग जाएगा? बेघर एक आंतरिक दशा है, होमलेसनेस एक आंतरिक दशा है। लेकिन हम हर दशा को धोखा करने के लिए इंतजाम कर लेते हैं। एक घर है, उसे मैं मानता हूं मेरा घर है; वह मान्यता ही गलत है। फिर मैं दूसरी मान्यता खड़ी करता हूं कि अब मैं इस घर का त्याग करता हूं। फिर मैं जाकर प्रचार करता हूं कि मैंने घर का त्याग कर दिया। वह घर, पहली बात, कभी मेरा था ही नहीं।

लाओत्से कहता है, मैं एक बंजारा हूं, जिसका कोई घर नहीं है। यह थोड़ा समझने जैसा है। क्योंकि लाओत्से संन्यासी भी नहीं है। लाओत्से ने कभी कोई संन्यास नहीं लिया। लाओत्से ने कभी कोई संन्यास की घोषणा नहीं की। लाओत्से ने कभी कुछ त्यागा नहीं, छोड़ा नहीं। क्योंकि लाओत्से कहता है, मेरा कुछ हो तो मैं छोड़ भी सकूं, मेरा कुछ हो तो मैं त्याग भी सकूं; मैं तो वैसा हूं, घुमक्कड़, आवारा, खानाबदोश, जिसका न कोई घर है, न कोई ठिकाना है।

इसको अगर हम भीतरी अर्थों में समझें तो इसका अर्थ हुआ कि ऐसा व्यक्ति कहीं पहुंचने के लिए उत्सुक नहीं है; कहीं जाने की कोई त्वरा, कोई आकांक्षा, कोई अभीप्सा, कोई इच्छा नहीं है। कहीं कोई मंजिल नहीं है, जहां पहुंचना है। जहां बैठा है, वहीं उसकी मंजिल है। जहां खड़ा है, वहीं उसका मुकाम है। हट गया तो हटना ही उसकी मंजिल हो गई। ऐसा व्यक्ति प्रतिपल सिद्धावस्था में है। ऐसे व्यक्ति को साधक होने का सवाल ही नहीं है।

तो लाओत्से कहता है कि इस मौज से भरे हुए संसार में... । और यह व्यंग्य है; क्योंकि इस पूरे मौज से भरे संसार में, तथाकथित मौज से भरे संसार में, लाओत्से जैसा एकाध आदमी ही मौज को उपलब्ध होता है; बाकी लोग सिर्फ धोखे में होते हैं। और कहता है कि ऐसे जैसे किसी भोज में शरीक हुए हों। लेकिन सच तो यह है कि इस जगत में हमारे सब भोज सिर्फ वंचनाएं हैं। लाओत्से जैसे लोग ही इस जीवन के भोज में शरीक होते हैं। और कहता है, जैसे उनके ऊपर वसंत बरस रहा हो, ऐसा लगता है। सचाई बिल्कुल उलटी है। सिर्फ लाओत्से जैसे लोग वसंत में जीते हैं। हम सिर्फ ख्याल में होते हैं, सपने में होते हैं। जीते हैं पतझड़ में, सपनों में होते हैं वसंत के। जीते हैं दुख में, मौज का आवरण होता है। लगता है कि बड़ा आनंद ले रहे हैं; और सिर्फ दुख इकट्ठा करते हैं। लगता है कि बड़े व्यस्त हैं काम में, लेकिन सचाई यह है कि हमारी सारी व्यस्तता अपने से भागने का एक उपाय, यह एस्केप है।

मनसविद कहते हैं कि अगर आपसे काम छीन लिया जाए तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। हालांकि आप रोज रोते हैं कि इस काम से छुटकारा हो जाए तो थोड़ी शांति की सांस लें। रोज! लेकिन आपका रोना भी आपका रस है। सांझ आप लौटते हैं दफ्तर से और कहते हैं कि कब होगा छुटकारा! अगर आदमी के पास पेट न होता तो आनंद ही आनंद होता। यह नौकरी, यह धंधा, यह सुबह से सांझ तक का रोना। लेकिन जब आप यह अपनी कथा सुना रहे होते हैं, तब आपको भी पता नहीं कि आप कितनी प्रसन्नता से सुना रहे हैं! आप कितने प्रसन्न हैं, आपको कितना रस आ रहा है।

अगर कल ऐसा हो जाए कि ठीक, आप शांति से घर बैठिए, खाइए, पीजिए, मौज करिए, काम आपसे छीन लेते हैं, तो मनसविद कहते हैं कि इस जमीन पर दस-पांच आदमी खोजने मुश्किल हो जाएंगे जो बिना काम के आनंदित रह सकें। पागल हो जाएंगे आप और एकदम घबड़ा जाएंगे कि अब क्या करें। और फिर अपने ऊपर ही गिर जाएंगे, क्योंकि अब अपने साथ ही रहना पड़ेगा। काम एक छुटकारा है आपको। एक काम से दूसरे में लग जाते हैं, उससे अपने को देखने-परखने का मौका नहीं आता। न इसकी ही चिंता करने की सुविधा समय मिलता है कि हम क्या कर रहे हैं इस जीवन का? अपने साथ क्या कर रहे हैं? क्या हो रहा है? कहां जा रहे हैं? इस सब का मौका नहीं मिलता। व्यस्त--एक दा.ैड से दूसरी दौड़, दूसरी से तीसरी।

अमरीका में लोग कहते हैं कि शनिवार-रविवार लोग छुट्टी मनाते हैं। लेकिन छुट्टी मनाना उनका इतना बड़ा काम है, जितना कि पूरे सप्ताह भी काम नहीं होता। तब वे दूर समुद्रतटों पर या पहाड़ों पर हजारों-सैकड़ों मील की यात्रा करके भागे हुए पहुंचते हैं--सैकड़ों कारों के बीच फंसे हुए। जिनसे वे भाग कर जा रहे हैं, वे सब उनके साथ भागे जा रहे हैं। पूरी बस्ती बीच पर पहुंच गई। सब उपद्रव वहां खड़ा हो गया। घंटे, दो-चार घंटे वहां इस भीड़-भाड़ में घूम-फिर करके फिर वे भाग रहे हैं घर की तरफ। छुट्टी के दिन भी आदमी छुट्टी नहीं मना सकता। बड़ा कठिन है, छुट्टी मनाना बड़ा कठिन है। बड़ा कठिन काम है। तो छुट्टी के दिन भी आप तरकीबें खोज लेते हैं--छुट्टी को मारने की, काटने की। तरकीबें हैं; काम कोई खोज लेंगे, उसमें उलझ जाएंगे।

अमरीका में वे कहते हैं कि दो दिन लोग छुट्टी मनाते हैं; फिर छुट्टी से इतने थक जाते हैं कि दो दिन आराम करते हैं। फिर दो दिन नई छुट्टी कहां मनानी, इसका चिंतन-विचार करते हैं। फिर दो दिन छुट्टी मनाते हैं। और ऐसा उनका सिलसिला चलता रहता है।

फुर्सत आपको हो, आज अमरीका में सर्वाधिक फुर्सत है, लेकिन सबसे कम समय लोगों के पास है। उलटा मालूम पड़ता है। पहली दफे मनुष्य-जाति उस जगह आई है कि अब फुर्सत हो सकती है। सप्ताह में दो दिन की छुट्टी, पांच-छह घंटे का दिन--वह भी आफिशियल रिकार्ड पर; पांच घंटे कौन काम करता है! घंटे, दो घंटे का

काम दिन में; सुविधा, समय। और फिर भी अमरीका में सबसे कम समय आदमी के पास है। एक क्षण खड़े होकर देखने का समय नहीं कि वह कहीं खड़े होकर एक क्षण देख ले। भागा हुआ है।

मनसविद कहते हैं कि आदमी रिटायर होता है, काम से विश्राम को जाता है, तो उसकी उम्र घट जाती है। अगर वह काम में रहता तो दस साल ज्यादा जिंदा रहता। अब वह दस साल कम जिंदा रहेगा। क्या हो गया? जिंदगी भर आदमी सोचता है कि वह दिन कब आए जब सब काम से निवृत्त हो जाएं, शांति से घर बैठें। और जब वह शांति से अपनी आरामकुर्सी में बैठता है, तब उसे पता चलता है कि अब क्या करें! क्योंकि अब न दफ्तर है, न दुकान है, न दफ्तर के कर्मचारी हैं, न नीचे-ऊपर के अफसर हैं, न अब कोई नमस्कार करता सड़क पर, न अब कोई चिंता करता। लोग ऐसे भूल जाते हैं, जो निवृत्त हुआ, निवृत्त हुआ। अब उसका किससे लेना-देना है? बच्चे तब तक बड़े हो गए होते हैं, वे अपने संसार में उलझ गए होते हैं--उसी नासमझी में, जिसमें बाप निवृत्त होकर घर बैठे हैं, वे लग गए होते हैं। उनको समय नहीं है, सुविधा नहीं है। अब यह बाप निवृत्त होकर बैठे हैं; अब यह क्या करें?

तो अमरीका में उन्होंने वृद्ध लोगों के लिए बड़े-बड़े आश्रम स्थापित किए हैं। और बड़े मजे की घटनाएं वहां घट रही हैं। वहां बूढ़े और बूढ़ियां पुनः प्रेम में पड़ जाते हैं। वृद्ध-आश्रम! क्या करेंगे वहां?

मगर एक लिहाज से अच्छा है। हमारे मुल्क में भी वृद्ध-आश्रम खड़े हैं, एक-दो को मैं जानता हूं वृद्ध-आश्रम को। तो हमारे यहां तो वृद्ध स्त्री-पुरुष को भी पास रखना असंभव है। तो यहां एक मुल्क के वृद्ध-आश्रम को मैं जानता हूं। एक मेरे मित्र ने काफी रुपए खर्च करके एक वृद्ध-आश्रम खड़ा किया हुआ है। वे मुझसे कहते हैं कि इसका मुझसे किसी तरह छुटकारा हो जाए इस आश्रम का; क्योंकि कोई सत्तर-पचहत्तर वृद्ध हैं और वे सब इतना उपद्रव मचाते हैं। सोच ही सकते हैं, सत्तर-पचहत्तर वृद्ध! एक ही घर में वृद्ध हो तो आपको पता है कि क्या कर सकता है! उसका भी कोई कसूर नहीं है। काम की आदत है जिंदगी भर की, और अब बेकाम है। तो वह काम तैयार करता है। वह जाल रचता है, शड्यंत्र खड़े करता है बैठे-बैठे। वह हर चीज में निंदा निकालता है, हर चीज में सुझाव देता है, हर चीज में सलाह देता है। वह घर भर के दिमाग को चलाने की कोशिश करता है।

सत्तर-पचहत्तर वृद्ध एक जगह इकट्ठे कर लिए हैं। वे बताते हैं कि हम इतनी मुसीबत में पड़ गए हैं जिसका कोई हिसाब ही नहीं है। फिर बच्चों को डांटा भी जा सकता है, वृद्धों को डांटा भी नहीं जा सकता। वे सब अनुभवी हैं, ज्ञानी हैं, वे कोई मानने वाले नहीं हैं। अमरीका में फिर भी बेहतर है, वे वृद्ध और वृद्धाओं को साथ रख देते हैं तो उपद्रव थोड़े कम हो जाते हैं। वह फिर से जाल शुरू हो जाता है।

आदमी काम के बिना रह नहीं सकता। मरते दम तक काम चाहिए। क्यों? काम हमारे लिए एक पलायन है, अपने से बचने का ढंग है। काम एक नशा है, एक शराब है, जिसको पीकर हम अपने को भूले रहते हैं। नशा छीन लो, मुश्किल में पड़ जाते हैं।

तो लाओत्से कहता है, सब व्यस्त हैं, सारा संसार काम में लगा है; एक मैं ही अकेला बेकाम, अनएंप्लायड, मेरे पास कोई काम नहीं है, कोई धंधा नहीं है। एक नवजात शिशु जैसा, जो अभी मुस्कुरा भी नहीं सकता; एक बंजारा, जिसका कोई घर न हो।

धार्मिक व्यक्ति ऐसा ही अजनबी व्यक्ति है--आउटसाइडर है।

आज इतना ही। फिर कल हम बात करेंगे। रुकें पांच मिनट; कीर्तन करें; उसके बाद जाएं।

पैंतालीसवां प्रवचन

संत की वक्रोक्तियां०: संत की विलक्षणताएं

Chapter 20 : Part 2

The World And I

The people of the world have enough and to spare,
But I am like one left out,
My heart must be that of a fool,
Being muddled, nebulous!
The vulgar are knowing, luminous;
I alone am dull, confused.
The vulgar are clever, self-assured;
I alone, depressed.
Patient as the sea, adrift, seemingly aimless.
The people of the world all have a purpose;
I alone appear stubborn and uncouth.
I alone differ from the other people,
And value drawing sustenance from the Mother.

अध्याय 20 : खंड 2

संसार और मैं

दुनियावी लोग काफी संपन्न हैं, इतने कि दूसरों को भी दे सकें,
परंतु एक अकेला मैं मानो इस परिधि के बाहर हूं,
मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो,
व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ!
जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय दिखते हैं;
मैं ही केवल मंद और भ्रांत हूं।
जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हैं;
अकेला मैं उदास, अवनमित।

समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ--मानो लक्ष्यहीन!
सप्रयोजन हैं दुनिया के सब लोग; अकेला मैं दिखता हूं हठीला और अभद्र!
और अकेला मैं ही हूं भिन्न--अन्यों से,
क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को जो मिलता है सीधा ही माता प्रकृति से।

अरस्तू ने कहा हैः संसार में केवल दो वस्तुएं अनंत हैं--एक आकाश और दूसरी मनुष्य की मूर्खता। ओनली टू थिंग्स आर इनफाइनाइट इन दि वर्ल्ड--वन, स्पेस; एंड सेकेंड, ह्यूमन स्टुपिडिटी।

आइंस्टीन ने अरस्तू को आधा गलत सिद्ध कर दिया है। आइंस्टीन ने सिद्ध किया है कि आकाश असीमित नहीं है। अनंत भी नहीं है; सांत है, फाइनाइट है और सीमित है। अगर आइंस्टीन सही है--और सही मालूम होता है--तो फिर एक ही वस्तु अनंत रह जाती है जगत मेंः ह्यूमन स्टुपिडिटी, यानी मनुष्य की मूर्खता।

और आकाश अनंत नहीं है, यह सिद्ध करना एक आइंस्टीन के लिए भी आसान हुआ। हजार आइंस्टीन भी दूसरी बात सिद्ध न कर सकेंगे कि मनुष्य की मूर्खता अनंत नहीं है। मनुष्य का जो मूढ़ भाव है, वह अनंत भी है, असीम भी है और इतना व्यापक है और इतना सार्वजनीन, यूनिवर्सल है कि उसे पहचानना भी कठिन है।

मेक्सिको में एक छोटी सी पहाड़ी पर एक बहुत अदभुत कबीले का वास है। छोटी सी जाति है। ज्यादा उसकी संख्या नहीं है, कोई तीन सौ, साढ़े तीन सौ के बीच है। ज्यादा संख्या उसकी हो भी नहीं सकती। पहाड़ निर्जन है। यह तीन सौ, साढ़े तीन सौ लोगों की जाति आदिवासियों की, पांच-सात छोटे-छोटे गांवों में आस-पास बसी है। विशिष्टता है इस जाति की कि साढ़े तीन सौ लोग सभी अंधे हैं। बच्चे पैदा तो होते हैं आंख वाले; लेकिन एक मक्खी है उस पहाड़ पर, जैसे मच्छर से मलेरिया होता है, ऐसे ही उस मक्खी के काटने से आंखें चली जाती हैं। अब तक उसका कोई इलाज भी नहीं खोजा जा सका है। तो बच्चे आंख वाले पैदा होते हैं; लेकिन महीने, दो महीने के भीतर अंधे हो जाते हैं। तीन सौ, साढ़े तीन सौ लोग अंधे हैं।

इन अंधे लोगों का जब पहली दफे पता चला सभ्य आदमियों को और आंख वाले आदमी पहले इन अंधों के पास पहुंचे, तो अंधों ने मानने से इनकार कर दिया कि कोई भी हो सकता है जिसके पास आंख हो। न केवल मानने से इनकार किया, बल्कि आंख वाले आदमियों के प्रति अच्छा भाव भी नहीं लिया। सच तो यह है कि उन्होंने समझा कि तुम किसी और ही जाति के प्राणी हो, मनुष्य नहीं। क्योंकि मनुष्य तो अंधे ही होते हैं।

ईसाइयों के एक संप्रदाय ने अपने एक मिशनरी को अंधों के बीच ईसाइयत का प्रचार करने के लिए भेजा। लेकिन अंधे आंख वाले से सुनने और समझने को राजी न हुए। आखिर में किसी ने सुझाया और बात काम कर गई। फिर उन्होंने एक अंधे मिशनरी को भेजा। अंधे मिशनरी को सुनने को जरूर अंधे राजी हुए। अंधे और अंधों के बीच एक तादात्म्य, एक समरसता पैदा हुई। लेकिन आंख वाला आदमी पसंद नहीं किया जा सका--स्वभावतः।

लाओत्से जैसे लोग हम अंधों के बीच आंख वाले लोग हैं--आध्यात्मिक अर्थों में। शायद हम भी जब पैदा होते हैं, तो आंख वाले ही पैदा होते हैं। लेकिन सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति के जीवाणु, इसके पहले कि हमें होश आए, हमें अंधा कर जाते हैं। फिर हमारा, अंधों का, बड़ा समाज है। संख्या बड़ी बात नहीं है। तीन, साढ़े तीन सौ की संख्या है उनकी; हमारी संख्या कोई साढ़े तीन सौ करोड़ की है। सारी पृथ्वी हम अंधों से भरी हुई है। उसमें जब भी लाओत्से जैसा आंख वाला आदमी पैदा होगा तो हम पसंद नहीं करते। दुखद है उसका होना, उसकी

मौजूदगी हमें पीड़ा देती है। क्योंकि उसके कारण हमें पता चलना शुरू होता है कि हम अंधे हैं। और यह पता चलना अच्छा नहीं मालूम होता; वह हमारे अंधेपन के लिए--घाव के लिए--चोट बन जाता है।

लाओत्से के ये सूत्र बहुत व्यंग्य से भरे हैं और बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह एक ऐसे आदमी का वक्तव्य है, जो हमारे बीच अजनबी है; जो पाता है कि हम जो भाषा बोलते हैं, वह नहीं बोल सकता। और जो पाता है कि हम जिस ढंग से जीते हैं, उस ढंग से वह नहीं जी सकता। और वह यह भी देखता है कि हमारे जीने का ढंग, जीने का कम, मरने का ज्यादा है। और हम जो भाषा बोलते हैं, उसमें बोलते कम हैं, छिपाते ज्यादा हैं। हम रुग्ण और बीमार हैं, स्वस्थ नहीं हैं। लेकिन फिर भी हमारी बड़ी संख्या है और हमारा बड़ा बल है। उस बल के कारण ही यह सूत्र लिखा गया है।

लाओत्से कहता है, "दुनियावी लोग काफी संपन्न हैं।"

हम विपन्न लोगों को कहता है संपन्न। जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनको लाओत्से कहता है, ये दुनिया के लोग बड़े संपन्न हैं।

"दि पीपुल ऑफ दि वर्ल्ड हैव इनफ एंड टु स्पेयर।"

न केवल उनके पास काफी है, बल्कि वे दूसरों को भी देने के लिए तत्पर हैं। अपने लिए तो काफी है ही, दूसरों को भी बांटने के लायक हमारे पास है। और हम हैं बिल्कुल दीन-दरिद्र, दूसरों को देने की तो बात ही अलग, हमारे पास कुछ है ही नहीं।

लेकिन यह ख्याल में आना बड़ा मुश्किल है। हम थोड़ा समझें, एक-दो दिशाओं से पहचानें।

हम सब प्रेम देते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि हमारे पास प्रेम है? मां प्रेम देती है; बाप प्रेम देता है; पति, पत्नी, भाई, मित्र प्रेम दे रहे हैं। सारी दुनिया में सभी लोग प्रेम दे रहे हैं। और दुनिया में प्रेम की कहीं एक बूंद दिखाई नहीं पड़ती। सारे लोग प्रेम बरसा रहे हैं; लेकिन किस मरुस्थल में खो जाता है प्रेम? सागर बह जाने चाहिए प्रेम के, इतना प्रेम बह रहा है। एक-एक आदमी हजार-हजार दरवाजों से प्रेम बरसा रहा है। किसी के लिए वह मां है, किसी के लिए पत्नी है, किसी के लिए पिता है, भाई है, मित्र है। कितना-कितना हम प्रेम बहा रहे हैं चारों तरफ! हमारा जगत तो प्रेम का सागर हो जाना चाहिए। लेकिन जगत दिखता है घृणा का सागर। प्रेम उसमें कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इतना प्रेम दिया और लिया जा रहा हो, वहां प्रेम की कहीं एक बूंद नहीं दिखाई पड़ती। जरूर कुछ भूल हो रही है। जो हमारे पास नहीं है, वह हम दे रहे हैं। इसलिए हम देने का मजा भी ले लेते हैं और किसी के पास पहुंचता भी नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने गांव के एक अमीर आदमी के पास गया। सुबह-सुबह ही उसने द्वार खटखटाया। अमीर मुल्ला को देख कर ही समझ गया कि वह कुछ दान मांगने आया होगा--मस्जिद के लिए, मदरसे के लिए। मुल्ला ने कहा, भयभीत न हों, न तो मदरसे के लिए आया हूं, न मस्जिद के लिए। काम ही दूसरा आ गया। अमीर आश्वस्त हुआ। उसने कहा, क्या काम आया है? मुल्ला ने कहा कि थोड़े पैसे की जरूरत है, एक हाथी खरीद रहा हूं। अमीर ने कहा, पागल हो गए हो! हाथी खरीदने के लिए पैसा नहीं है तो हाथी को रखने के लिए कहां से इंतजाम जुटाओगे? मुल्ला ने कहा, माफ करिए, मैं आपसे पैसा मांगने आया हूं, सलाह मांगने नहीं। आई हैव कम टु आस्क फॉर मनी, नाट एडवाइस। और मुल्ला ने कहा, ठीक से आप समझ लें, आपसे वही मांगा जा सकता है, जो आपके पास है। जो आपके पास है ही नहीं, वह आपसे मांगा नहीं जा सकता। जो नहीं है, कृपा करके किसी को देने की कोशिश न करें।

लेकिन हम सभी लोग सलाह दे रहे हैं। और सलाह किसके पास है? सलाह देने का कौन हकदार है? शायद जो हकदार है, वह चुप रह जाता है; और जो हकदार नहीं है, वह सलाह दे देता है। दुनिया में जितनी सलाह दी जाती है, उतनी और कोई चीज नहीं दी जाती। लेकिन किसके पास है? कौन जानता है कि क्या सही है? लेकिन देने से ऐसा भ्रम पैदा होता है कि जो हम दे रहे हैं, वह हमारे पास होगा भी।

हम हैं विपन्न। न हमारे पास प्रेम है, न हमारे पास समझ है। और जिसे हम संपत्ति कहते हैं, वह संपत्ति का धोखा है, संपत्ति नहीं। तो चाहे हम तिजोरियां भर लेते हों और चाहे हम गहनों से अपने घर भर लेते हों, वह संपत्ति नहीं है। धोखा जरूर है। धोखा इसलिए है कि उससे हमें ख्याल पैदा होता है कि संपदा हमारे पास है। कितना सोना है किसके पास, कितने रुपए हैं किसके पास, बैंक में कितना जमा है, उससे हम सोचते हैं हम संपत्ति वाले हो गए हैं।

आदमी ने, अंधे आदमी ने, झूठी संपत्ति पैदा कर रखी है--स्वयं को धोखा देने के लिए। क्योंकि अगर यही संपत्ति होती तो महावीर इसे छोड़ कर भागें नहीं। अगर यही संपत्ति हो तो बुद्ध पागल हैं, हम बुद्धिमान हैं। बुद्ध इसे छोड़ कर न जाएं। अगर यही संपत्ति हो तो लाओत्से को यह व्यंग्य न करना पड़े। हमारे पास संपत्ति जैसी कुछ भी व्यवस्था नहीं है। विपत्ति हमारे पास बहुत है। और जिसे हम संपत्ति कहते हैं, वह भी हमारी विपत्ति ही बन जाती है; और कुछ भी नहीं। बड़ा मजा है, जिनके पास संपत्ति नहीं है, वे विपत्ति में हैं; और जिनके पास संपत्ति है, वे दुगुनी विपत्ति में हैं। संपत्ति को बचाने का भी काम उन्हीं के ऊपर पड़ जाता है; वे पहरेदार बन जाते हैं। वे जिंदगी भर उन चीजों पर पहरा देते हैं, जो उनकी नहीं थीं; उन चीजों के खोने पर दुखी होते हैं, जो उनकी नहीं थीं। और एक दिन मर जाते हैं और वे चीजें किसी और की हो जाती हैं। और कोई उन पर पहरा देने लगता है।

लाओत्से कहता है, "दुनियावी लोग काफी संपन्न हैं।"

हर आदमी यहां, मालूम होता है, मालिक है। और हर आदमी, मालूम होता है, किसी बड़े साम्राज्य का मालिक है। और ऐसा ही नहीं कि मालकियत है, मालकियत इतनी बड़ी है कि हर आदमी दूसरे को भी दे रहा है, दान भी कर रहा है, बांट भी रहा है।

"एक अकेला मैं मानो इस परिधि के बाहर हूं।"

एक अकेला मैं ही विपन्न मालूम पड़ता हूं, जिसके पास कुछ भी नहीं है। सभी के पास बहुत कुछ है।

बुद्ध पहली बार जब काशी आए ज्ञान के बाद, तो काशी के पहले ही गांव के बाहर ही सांझ हो गई और वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को रुक गए। सूरज डूबता था। और तभी काशी के नरेश ने अपने सारथी को कहा कि मैं बहुत उद्विग्न हूं, मुझे गांव के बाहर ले चलो। स्वर्ण-रथ, डूबते हुए सूर्य की किरणों में चमकता हुआ, बुद्ध के पास आकर अचानक रुक गया। सम्राट ने अपने सारथी को कहा, रथ को रोक! यह कौन भिखमंगा सम्राट सा, कौन भिखमंगा सम्राट सा इस वृक्ष के नीचे बैठा है? रोक!

सम्राट बुद्ध के पास आया। और उस सम्राट ने कहा, तुम्हारे पास कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; लेकिन तुम्हारे पास जरूर कुछ होगा; तुम्हारी आंखें कहती हैं। यह डूबता हुआ सूर्य भी तुम्हारे सामने तेजपूर्ण नहीं मालूम हो रहा है। क्या है तुम्हारे पास? कौन सी संपदा है? कौन सा छिपा हुआ खजाना है? मेरे पास सब है जो गिना जा सके, देखा जा सके, पहचाना जा सके, और मैं आत्महत्या के विचार करता हूं।

सम्राट है जिसके पास सब है; और भिखारी है जिसके पास कुछ भी नहीं है। और फिर भी सम्राट भिखारी के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा है कि तुम्हारे पास क्या है, उसकी मुझे खबर दो।

बुद्ध ने कहा है कि तुम्हारे पास जो है, कभी मेरे पास भी था। लेकिन तब मैं भी ऐसा ही विपन्न था। और जो आज मेरे पास है, तुम्हारे पास भी छिपा है। लेकिन जब तक तुम्हारी झूठी संपत्ति तुम्हें झूठी न दिखाई पड़े, तब तक सच्ची संपत्ति की खोज नहीं शुरू होती। जब तक तुम माने ही जाओगे कि तुम सम्राट हो, तब तक तुम उसे न खोज पाओगे, जिसे मैंने खोज लिया है। क्योंकि जो झूठे साम्राज्य को सच्चा मान कर जी रहा हो, वह सच्चे साम्राज्य से वंचित रह जाता है।

स्वभावतः, सीधा गणित है यह। अगर मैं झूठी चीज से मन को बहला रहा हूं, और बहला लिया है मैंने अपने मन को, तो फिर मैं सच्चे की तलाश बंद कर दूंगा।

तो बुद्ध ने कहा, इस भीतरी साम्राज्य की खोज के दो चरण हैं। पहला तो यह कि तुम जिसे साम्राज्य समझे हो उसे साम्राज्य न समझो; और दूसरा कि अब तक तुमने बाहर खोजा है, अब तुम भीतर खोजो। जो तुम्हारे पास है, मेरे भी पास था। और जो आज मेरे पास है, वह अभी भी तुम्हारे पास मौजूद है। सिर्फ तुम्हें उसका पता नहीं है।

लाओत्से कहता है, "दुनिया के लोग काफी संपन्न हैं, इतने कि दूसरों को भी दे सकें। एक अकेला मैं मानो इस परिधि के बाहर हूं। मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो, व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ।"

यहां सभी बुद्धिमान हैं। यहां सभी बुद्धिमान हैं, यहां ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बुद्धिमान न हो। या कि कभी आपको कोई आदमी मिला, जो बुद्धिमान न हो? खोजें, ऐसा आदमी मिल न सकेगा। ऐसा आदमी मिलना मुश्किल है, जो अपने को समझता हो कि मैं बुद्धिमान नहीं हूं; यद्यपि यह बुद्धिमत्ता का पहला लक्षण है। यहां सभी अपने को बुद्धिमान मान कर जीते हैं; इसलिए वास्तविक बुद्धि से वंचित रह जाते हैं। झूठी संपत्ति को समझते हैं संपदा, झूठी बुद्धि को समझते हैं बुद्धिमानी; तो फिर जो वास्तविक है, उससे वंचित रह जाते हैं। उस तरफ पैर ही नहीं उठते, उस मंदिर की तरफ जाना ही नहीं होता, उस राह पर चलना ही नहीं होता। वह खोज का द्वार बंद ही हो जाता है।

हम सब बुद्धिमान हैं। और कोई हमसे पूछे कि हमने क्या बुद्धिमानी की है जिसकी वजह से हम बुद्धिमान हैं? लौटें, अपनी जिंदगी को खोजें, क्या बुद्धिमानी की है जिसकी वजह से हम बुद्धिमान हैं? तो मूढ़ताओं का अंबार मिलेगा, ढेर मिलेगा। लेकिन अहंकार को चोट लगती है यह जान कर कि मैं नासमझ हूं। तो हम अपनी नासमझियों पर भी सोने के पलस्तर चढ़ा लेते हैं। हम अपनी नासमझियों पर भी सुंदर वस्त्र ढांक लेते हैं। हम अपनी व्यर्थताओं पर, अपनी विक्षिप्तताओं पर भी रंग-रोगन कर लेते हैं; रंग-रोगन करके हम व्यवस्था जमाए चलते हैं।

जीसस ने कहा है कि तुम्हारे शुभ्र वस्त्रों में मुझे सिर्फ सफेद पुती हुई कब्र के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

कब्र को कितना ही सफेद पोत दो, इससे क्या फर्क पड़ता है! हम भी अपने को पोते हुए हैं। कभी आपने सोचा कि क्या है बुद्धिमानी जिसके कारण आप कहें कि मैं बुद्धिमान हूं? जो भी किया है, उससे दुख पाया है। जो भी किया है, उससे दुख पाया है। पाप किया तो दुख पाया, पुण्य किया तो दुख पाया। किसी के साथ बुरा किया तो पछताए; किसी के साथ भला किया तो पछताए। मित्रता बांधी तो दुख पाया; शत्रुता बनाई तो दुख पाया। दरिद्र थे, नहीं था पास एक पैसा, तो पीड़ा थी। अमीर हो गए, पैसे का ढेर लग गया, तो और पीड़ा बढ़ गई। बुद्धिमानी, कौन सी बुद्धिमानी की है?

अगर हम जिंदगी को खोजें तो बुद्धिमानी का अर्थ होना चाहिए कि निष्कर्ष आनंद हो तो ही बुद्धिमानी है। बुद्धिमानी की और क्या कसौटी होगी? क्या होगी मापदंड की व्यवस्था? एक ही व्यवस्था है कि बुद्धिमान आदमी निरंतर आनंद को उपलब्ध होगा; कि प्रतिपल उसका आनंद बढ़ता चला जाएगा; कि उसके जीवन की सुगंध, उसके जीवन की सुवास, उसके जीवन की शांति बढ़ती चली जाएगी। प्रतिपल वह और भी प्रकाशोज्ज्वल होता चला जाएगा। प्रतिपल अमृत निकट और मृत्यु दूर होती चली जाएगी।

लेकिन हम, जो अपने को बुद्धिमान मान कर चलते हैं, कौन सी सुवास पा लिए हैं? कौन सा आनंद, कौन सा संगीत, कौन सी किरण हमें मिली है, जिसको हम अपनी परम मुक्ति और अपने परम अमृतमय जीवन का मार्ग बना सकें? कुछ भी हाथ में नहीं है। सच तो यह है कि हमारी पूरी जिंदगी एक खोने की लंबी यात्रा है, जिसमें हम खोते हैं, पाते कुछ भी नहीं। प्रतिपल खोते हैं और खो-खो कर प्रतिपल अपने को और बुद्धिमान माने चले जाते हैं।

अगर यह खोना ही बुद्धिमानी है, तब तो लाओत्से का व्यंग्य गलत है। लेकिन लाओत्से का व्यंग्य गलत नहीं है। क्योंकि हम अपने भीतर झांकें तो हम सिवाय खाली, रिक्त, राख से भरे हुए अपने को पाएंगे। सारी अभिलाषाएं, सारे सपने धीरे-धीरे राख हो जाते हैं भीतर। सारे इंद्रधनुष वासनाओं के, सब टूट कर कीचड़ बन जाते हैं। आखिर में हमारे हाथ इंद्रधनुष नहीं होते, कीचड़ होती है।

लाओत्से कहता है, "मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो।"

जब देखता है अपने चारों तरफ सब बुद्धिमानों को, तो सोचता है कि अब एक ही उपाय है, अगर मैं भी बुद्धिमान हूं तो इन्हीं जैसा हूं। अगर ये बुद्धिमान हैं तो फिर मैं मूर्ख ही हूं; यही उचित है। दो ही उपाय हैं। अगर लाओत्से बुद्धिमान है तो हम बुद्धिमान नहीं हो सकते। अगर हम बुद्धिमान हैं तो लाओत्से बुद्धिमान नहीं हो सकता। इसमें कोई समझौता नहीं है। स्वभावतः, अगर मत से तय करना हो तो लाओत्से मूर्ख है, हम बुद्धिमान हैं। इसीलिए व्यंग्य कर रहा है। इसलिए उसके व्यंग्य में वजन है।

वह यह कह रहा है कि अगर मैं अकेला यह भी कहूं कि तुम सब नासमझ हो, उसका कोई अर्थ न होगा। मैं अकेला तुमसे कहूं कि तुम सब अंधे हो तो मेरी आंखों पर संदेह करोगे। यह भी कर सकते हो कि मेरी आंखें फोड़ दो। उचित यही है कि मैं कहूं कि मैं अंधा हूं तुम सब आंखों वालों के बीच। तुम्हारे पास आंखें अदभुत हैं, तुम्हें पास का ही नहीं, दूर का भी दिखाई पड़ता है; जमीन के ऊपर का ही नहीं, जमीन के नीचे का भी दिखाई पड़ता है। तुम्हारे पास आंखें ऐसी हैं कि तुम्हें जगत का सारा सत्य दिखाई पड़ता है। एक तुम्हारे बीच मैं ही ऐसा हूं, जो अंधा हो।

लाओत्से को हमने इसीलिए सूली पर नहीं चढ़ाया। हम बड़े प्रसन्न हुए होंगे कि आदमी बिल्कुल ठीक ही कह रहा है। जीसस को हमने सूली पर चढ़ाया। जीसस ने व्यंग्य नहीं किया, सीधी-सीधी बात कह दी। सुकरात को हमने जहर दिया। उसने भी व्यंग्य नहीं किया, सीधी-सीधी बात कह दी। सुकरात ने कोशिश की बताने की कि तुम मूर्ख हो। हमें क्रोध आ गया। अदालतें हमारी हैं, कानून हमारा है। सुकरात को जहर देने में क्या अड़चन है हमें! जीसस ने भी हमें सीधी बात कही। पर जीसस और सुकरात थोड़े भोले मालूम पड़ते हैं। लाओत्से जैसे एक बहुत प्राचीन सभ्यता का नवनीत है। हजारों-हजारों वर्षों का अनुभव है जैसे लाओत्से के पीछे। वह उलटा कहता है। कोई लाओत्से पर पत्थर भी नहीं फेंका।

बर्ट्रेंड रसेल ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने एक बार मजाक में एक लेख लिखा राष्ट्रीयता के खिलाफ, नेशनलिज्म के खिलाफ, राष्ट्रवाद के खिलाफ एक लेख लिखा। और उस लेख में व्यंग्य में ऐसा कहा कि

मेरे इस लेख को पढ़ने वाला जो पाठक है, उसको छोड़ कर समस्त राष्ट्र मूढ़ हैं। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि अनेक लोगों के अनेक मुल्कों से मेरे पास पत्र आए कि आप एक ठीक पहचानने वाले आदमी मिले। पोलैंड से एक आदमी ने लिखा कि आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, पोलैंड को छोड़ कर सारे जगत के लोग मूढ़ तो हैं ही।

व्यंग्य को समझने की बुद्धि भी तो बहुत मुश्किल है।

लाओत्से अगर आपसे आकर कहे कि आप सब बुद्धिमानों के बीच मैं ही एक मूढ़ हृदय जैसा। तो हम कहेंगे, हम पहले ही जानते थे। अन्यथा घर बसाते, विवाह करते, दुकान चलाते, कुछ काम की बात करते। अगर बुद्धि होती तुम्हारे पास तो आज जगत में कहीं होते, किसी पद पर होते। सफल होते, कोई स्वर्णपदक होते, कोई राष्ट्रपतियों से दी गई उपाधियां होतीं। कहीं भी तो नहीं हो। वह हम पहले ही जानते थे, सिर्फ शिष्टतावश हमने नहीं कहा था। और लाओत्से हमसे कहेगा कि संसार के लोग इतने संपन्न हैं, सबके पास इतना है कि वे न केवल अपने लिए काफी उनके पास है, दूसरों को भी बांट देते हैं; तो हम कहेंगे, ठीक ही कहते हो।

हम सभी को यह ख्याल है, हम सभी बांट रहे हैं। हम सभी को यह ख्याल है कि हम सभी न मालूम कितनी संपदाएं बांट रहे हैं--प्रेम की, आनंद की, सुख की, मित्रता की, करुणा की। हम कितनी संपदाएं बांट रहे हैं! हम कहेंगे, ठीक ही कहते हो।

लेकिन लाओत्से गहन व्यंग्य कर रहा है। वह कह रहा है कि तुम सब बुद्धिमान हो, इसलिए उचित होगा यही कि मैं कहूं कि मैं तुम्हारे बीच एक मूर्ख हूं। तुम सबके जीवन में बड़ी व्यवस्था है; मैं व्यवस्था-शून्य। तुम्हारा इंच-इंच नपा-तुला है, तुम गणित से चलते हो, तुम्हारे जीवन में एक ढांचा है, योजना है। मैं एक अनायोजित, अनप्लांड, व्यवस्था-शून्य! तुम्हारे पास तर्क है, तुम्हारे पास सोचने का ढंग है, तुम दूर की खोज लाते हो। भविष्य में भी तुम झांक लेते हो। तुम एक-एक कदम नाप कर रखते हो। और तुम्हारी कोई मंजिल है, जहां तुम पहुंच रहे हो। एक मैं हूं कोहरे से भरा हुआ। मेरी बुद्धि में कोई योजना नहीं, कोई गणित नहीं, कोई तर्क नहीं। सब धुंधला-धुंधला है। तुम बिल्कुल साफ हो।

हम सभी को यह ख्याल है कि हम बिल्कुल साफ हैं। और लाओत्से हमें कोहरे से भरा हुआ लगेगा भी। क्या बातें कर रहा है--हां और न में कोई अंतर नहीं? कि पाप और पुण्य सब समान हैं? कि शुभ और अशुभ में भेद क्या है? कोहरे से भरी बातें हैं, मूढ़ ही ऐसी बातें कर सकते हैं! समझदार ऐसी बातें करेंगे कि हां और न में अंतर क्या है, तो फिर समझदारी और नासमझदारी में भी अंतर क्या रह जाएगा?

समझदार साफ-साफ जानते हैं कि हां और न में अंतर है। समझदार तो यहां तक जानते हैं कि एक हां और दूसरे हां में भी अंतर है; एक न और दूसरे न में भी अंतर है। न भी हजार तरह की होती हैं; हां भी हजार तरह की होती हैं। समझदार तो अंतर पर ही जीता है। ठीक से हम समझें तो हमारी सारी समझदारी इस पर निर्भर करती है कि हम कितने अंतर, कितने भेद निर्मित कर पाते हैं। जो आदमी जितने भेद देख पाता है, उतना बुद्धिमान है। जो कहता है अभेद, कोई भेद नहीं है, वह तो अराजक है, उसके पास बुद्धि नहीं है। उसकी बुद्धि कोहरे की भांति है।

लेकिन लाओत्से खुद ही कहता है। और इसलिए हम चूक भी सकते हैं कि उसका प्रयोजन क्या है। वह यह कह रहा है, जो इस जगत में समझदार हैं और व्यवस्था से जीते हैं, वे केवल मरते हैं--जी नहीं सकते। क्योंकि जीवन का सारा रहस्य, जीवन का सारा काव्य कोहरे में है। सुबह जब कोहरा छाया होता है और एक वृक्ष और दूसरे वृक्ष में फर्क करना मुश्किल हो जाता है, दो इंच फासले पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता, सारी प्रकृति जैसे किसी एक ही सागर में कोहरे के डूब जाती है--लाओत्से कहता है कि ऐसे धुंध में जो जीते हैं!

लाओत्से के लिए धुंध और कोहरा रहस्य के प्रतीक हैं। पश्चिम में शब्द है मिस्टिक। मिस्टिक का मतलब यह होता है कि जो कोहरे में जीता है, धुंध में जीता है, रहस्य में जीता है। लेकिन आधुनिक पाश्चात्य जगत में किसी को मिस्टिक कहना गाली देने के बराबर है। और जब लोग किसी की बात को गलत कहना चाहते हैं, तब वे कहते हैं कि तुम मिस्टीफाई कर रहे हो, तुम चीजों को धुंधला कर रहे हो। लाओत्से को पढ़ कर तो बड़ी कठिनाई होती है। लेगे ने, जिसने लाओत्से का अनुवाद किया है, उसने जगह-जगह अपने अनुवाद में लिखा है कि इस वाक्य का अनुवाद नहीं किया जा सकता, यह मेरी समझ में ही नहीं आता। क्योंकि समझ तो फासलों पर जीती है। यह तो सब फासले गिरा देना है, यह तो सब सीमाएं तोड़ कर गड्डु-मड्डु कर देना है। यह तो सब जो भेद थे, सीमांत थे, उनको तोड़ देने का उपाय है। तो फिर अराजकता हो जाएगी।

लाओत्से लेकिन खुद ही कहता है, "मानो मेरा हृदय किसी मूर्ख के हृदय जैसा हो, व्यवस्था-शून्य और कोहरे से भरा हुआ! जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय दिखते हैं; मैं ही केवल मंद और भ्रांत हूं।"

जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय दिखते हैं! गंवार होना और तेजोमय होना बहुत आसान है। गंवार होना और विज्ञ होना बहुत आसान है। विज्ञ होना और विज्ञ होने के ख्याल से भरना बहुत मुश्किल है। असल में, मैं बुद्धिमान हूं, यह गंवारी का ही लक्षण है। बुद्धिमान को यह भाव पैदा भी नहीं हो सकता। बुद्धिमान की तो जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना उसे लगता है कि कितना कम मैं जानता हूं।

न्यूटन ने कहा है कि जैसे सागर के किनारे कुछ सीप बीन ली हों, कुछ रेत पर मुट्ठी बांध ली हो, ऐसा मेरा ज्ञान है। सागर के किनारे अनंत-अनंत बालू-कणों के बीच थोड़ी सी रेत पर मुट्ठी बांध ली है; थोड़े जैसे बच्चों ने सीपें, सागर के शंख बीन लिए हों, ऐसे ही कुछ शंख बीन लिए हैं--ऐसा मेरा ज्ञान है। जो मैं जानता हूं, वे मेरी मुट्ठी के रेत-कण हैं। और जो मैं नहीं जानता हूं, वे इस सागर के रेत-कण हैं।

लेकिन न्यूटन कह सकता है। न्यूटन गंवार नहीं है। न्यूटन जैसे-जैसे जानने लगा, वैसे-वैसे अज्ञान प्रगाढ़ और स्पष्ट होने लगा। लेकिन किसी गंवार को पूछें, वह इतना भी मानने को राजी न होगा कि मेरी मुट्ठी में जितने कण हैं, उतना भी मेरा अज्ञान है। जितने सागर में कण हैं, वह तो मेरा ज्ञान है ही; लेकिन जितने मेरी मुट्ठी में हैं, इतना भी मेरा अज्ञान है, यह भी मानने को राजी न होगा।

इसलिए मूढ़ बड़े सुनिश्चित होते हैं। और इन सुनिश्चित मूढ़ों के कारण जगत में इतना उपद्रव है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। क्योंकि वे बिल्कुल निश्चित हैं। जगत में दो ही कठिनाइयां हैं: मूढ़ों का निश्चित होना, ज्ञानियों का अनिश्चित होना। इसलिए मूढ़ कार्य करने में बड़े कुशल होते हैं। ज्ञानी निष्क्रिय होते मालूम पड़ते हैं। ज्ञानी इतना अनिश्चित होता है, कोहराछन्न होता है, रहस्य में डूबा होता है, इतने काव्य से घिरा होता है कि गणित की भाषा में सोच नहीं सकता। मूढ़ आंख बंद करके वहां प्रवेश कर जाते हैं, जहां देवता भी प्रवेश करने में डरें। मूढ़ काफी सक्रिय होते हैं। उनकी सक्रियता उपद्रव लाती है।

सोचें थोड़ा। लाओत्से को एक तरफ रखें, एक तरफ हिटलर को रखें। हिटलर की सक्रियता का बेचारा लाओत्से क्या मुकाबला करेगा! लेकिन उस दिन होगा सौभाग्य जगत का, जिस दिन हिटलर जैसे मूढ़ निष्क्रिय हो सकें और लाओत्से जैसे बुद्धिमान सक्रिय हो सकें।

लाओत्से कहता है, "जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय दिखते हैं।"

उन्हें कुछ पता नहीं है। इसलिए जो भी थोड़ा-बहुत उन्हें पता है, उस पर वे मजबूती से खड़े होते हैं। उनका थोड़ा सा ज्ञान भी उन्हें महासूर्य जैसा मालूम पड़ता है। ज्ञानी को उसका महाज्ञान भी एक मिट्टी के दीए जैसा लगता है--टिमटिमाता।

"मैं ही केवल मंद और भ्रांत हूं।"

और इन सुनिश्चित लोगों के बीच, मतांध लोगों के बीच, जहां सभी आश्वस्त हैं, निश्चित हैं, पूर्ण हैं, वहां एक मैं ही मंद और भ्रांत मालूम पड़ता हूं।

महावीर किसी गांव में आते हैं। उस गांव का जो बड़ा पंडित है, वह महावीर से मिलने जाता है। वह महावीर से पूछता हैः ईश्वर है? वह महावीर से पूछता हैः आत्मा है? महावीर को बोलने का अवसर भी नहीं है; वह प्रश्न पूछे चला जाता है। जैसे ईश्वर के संबंध में प्रश्न पूछना कुछ ऐसा हो कि दो और दो कितने होते हैं? कि आत्मा के संबंध में प्रश्न पूछना कुछ ऐसा हो कि जैसे कोई भूगोल का सवाल हो कि टिम्बकटू कहां है? स्वर्ग है, मोक्ष है, वह पूछता चला जाता है। महावीर को तो बोलने का भी मौका उसने नहीं दिया है। जब वह सब सवाल पूछ चुकता है--एक सांस में उसने सब पूछ लिया है, जो मनुष्य की चेतना ने अपने पूरे इतिहास में पूछा है; करोड़ों-करोड़ों वर्षों में मनुष्य की चेतना ने जो सवाल पूछे हैं और जिनके उत्तर नहीं पाए, वह आदमी एक क्षण में पूछ लेता है--महावीर उससे कहते हैं कि तुम्हारे पास इतने बड़े सवाल हैं और इतना कम समय मालूम पड़ता है कि उत्तर देना मुश्किल है। तुम्हारे पास सवाल बड़े हैं और समय कम मालूम पड़ता है; क्योंकि तुम एक सवाल पूछ कर रुकते भी नहीं हो। और एक सवाल ही काफी है कि अनंत जीवन लग जाएं उसकी खोज में।

उस आदमी ने कहा कि मैं जरा जल्दी में हूं और फिर ऐसा कोई जरूरी भी नहीं है। आपको कुछ ख्याल हो तो कह सकते हैं संक्षिप्त में। और न हो ख्याल तो कोई हर्जा नहीं है। मैं यहां से गुजरता था, सोचा आप आए हैं, मिलता चलूं। महावीर ने चलते-चलते उस आदमी से कहा, और जहां तक मैं समझता हूं, आपको इनके उत्तर भी मालूम होंगे। उस आदमी ने कहा, निश्चित ही। किसको मालूम नहीं है कि ईश्वर है? मैं आस्तिक हूं, ईश्वर है।

यह जो मूढ़ता है, उस मूढ़ता की तरफ इशारा कर रहा है लाओत्से कि तुम सभी बहुत आश्वस्त हो। पूछो किसी से--ईश्वर है? वह जवाब दे देता है, झिझकता भी नहीं। हां कह देता है, न कह देता है। उसे ख्याल नहीं है, वह क्या बोल रहा है, किस संबंध में बोल रहा है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिससे पूछें ईश्वर के बाबत और वह चुप रह जाए। वह कुछ कहेगा। हिंदू होगा तो हिंदू के ईश्वर की बात कहेगा, मुसलमान होगा तो मुसलमान के ईश्वर की बात कहेगा, कम्युनिस्ट होगा तो ईश्वर के न होने की बात कहेगा, लेकिन कहेगा। सभी आश्वस्त हैं, सभी को पता है। इसीलिए तो इतना विवाद है।

थोड़ा सोचें। जगत में जो इतना विवाद है, वह हमारी मूढ़ता के आश्वस्त होने के कारण है। सभी इतने आश्वस्त हैं कि वे ठीक हैं, सारी दुनिया गलत है। दूसरे को गलत सिद्ध करने में वे इतने उत्सुक हैं कि वे यह भूल ही जाते हैं कि जिस चीज को वे ठीक कह रहे हैं, उसका उन्हें भी पता है या नहीं। इसकी फुर्सत भी नहीं मिलती। दूसरे को गलत करने में इतना श्रम लगता है कि खुद के सही होने का पता लगाने का भी न तो अवसर है, न सुविधा है। और झंझट का काम भी है वह। दूसरे को गलत करना हमेशा आसान है।

लाओत्से कहता है, यहां सभी को सब कुछ पता है, एक मैं ही मंद और भ्रांत मालूम पड़ता हूं।

जो बिल्कुल ही भ्रांत नहीं है, वह हमारे बीच भ्रांत मालूम पड़ता है। जो बिल्कुल ही मंद नहीं है, वह हमारी झूठी प्रतिभाओं के बीच बिल्कुल ही मंद मालूम पड़ता है। यह करीब-करीब ऐसा ही है, जैसे कागज के फूलों के बीच असली फूल को कोई रख दे। निश्चित ही, कागज के फूलों के रंग ज्यादा चटकीले हो सकते हैं, ज्यादा तेजोमय हो सकते हैं। मौत का उन्हें डर नहीं है; ज्यादा आश्वस्त हो सकते हैं। असली फूल तो डगमगाता होगा। एक-एक पल मौत करीब आती होगी। और जो रंग है, वह भी प्रतिक्षण तिरोहित हो रहा है, प्राण-ऊर्जा क्षीण हो रही है। असली फूल कागज के फूलों के बीच बहुत दीन और दरिद्र मालूम होगा। और थोड़ी ही देर में

उसे पता चल जाएगा कि मैं ही एक कमजोर हूं, बाकी सब शक्तिशाली हैं। और हो सकता है मरते वक्त वह फूल कह कर जाए कि एक मैं ही कमजोर था, एक मैं ही था नकली असली फूलों के बीच। असली बचे, नकली खतम हुआ। और कागज के फूल भी इस पर भरोसा करेंगे; क्योंकि यह प्रत्यक्ष है बात कि जो असली थे वे बच गए और जो नकली था वह समाप्त हो गया। जिंदगी बहुत उलटी है। और भीड़ के कारण बड़े भ्रम पैदा होते हैं।

"जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हैं; अकेला मैं उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ--मानो लक्ष्यहीन!"

कभी आपने ख्याल किया, नदियों के पास लक्ष्य है, सागर के पास कोई लक्ष्य नहीं है। छोटे से नाले के पास भी लक्ष्य है, कहीं पहुंचना है। सागर के पास कोई लक्ष्य नहीं है। क्षुद्र सा नाला भी परपजफुल है, प्रयोजन है। इतना बड़ा सागर परपजलेस है--निष्प्रयोजन। पूछो इस सागर से, कहां पहुंचना है तुझे? कहीं पहुंचना नहीं है। तब क्षुद्र नाला भी कह सकता है, क्या व्यर्थ पड़े हो निष्क्रिय? हमारी तरफ देखो! भागते हैं, दौड़ते हैं, व्यवस्था से चलते हैं। पहुंचना है कहीं, कोई मंजिल है, कोई भविष्य है। सागर का है केवल वर्तमान; नाले का भविष्य भी है।

लाओत्से कहता है, जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त हैं। बड़े गणित में कुशल हैं, बड़ा हिसाब रखते हैं। एक-एक इंच, एक-एक पाई की व्यवस्था है और आश्वस्त हैं कि पहुंच कर रहेंगे, बिना इसकी फिक्र किए कि पहुंचने को कहीं कोई जगह है, कोई मंजिल है! उसकी बिना फिक्र किए आश्वस्त हैं कि पहुंच कर रहेंगे। उनका आश्वासन ही उनके लिए पर्याप्त भरोसा है कि मंजिल होगी। हमारे मन में लक्ष्य है तो लक्ष्य जरूर होगा। क्योंकि हम ही तो निर्धारक हैं जगत के, नियंता हम ही हैं।

और लाओत्से कहता है, "अकेला मैं उदास।"

क्योंकि लक्ष्य न हो... हममें जो तेजी आती है, वह लक्ष्य से आती है। ध्यान रखना, ये सारे शब्द व्यंग्य के हैं। लाओत्से कहता है ऐसा समझें कि हम सबको बुखार चढ़ा हो और एक आदमी गैर-बुखार का हो तो बिल्कुल ठंडा मालूम पड़े--कोल्ड। हम कहें कि क्या तुम्हारी जिंदगी है! जरा गर्मी भी नहीं है। थोड़ा गरमाओ, थोड़ी तेजी लाओ, कुछ जीवन का लक्षण दो! थर्मामीटर लगाते हैं, कोई खबर ही नहीं देता कि तुम में कोई गर्मी है।

तो लाओत्से कहता है, और सब भरे हैं बड़ी तेजी से, त्वरा से, ज्वर से; कहीं पहुंचना है, कुछ पाना है, कुछ होना है। एक मैं ही उदास, अवनमित, डिप्रेस्ड--इन सब के मुकाबले, फीवरिश, जो ज्वर से भरे दौड़ रहे हैं।

कभी सन्निपात में किसी को देखा? जैसी तेजी सन्निपात में आती है, वैसी कभी नहीं आती। चार आदमी पकड़ें तो भी आदमी को पकड़ना मुश्किल है। खाट पर सोया हुआ आदमी भी कहता है कि मेरी खाट आकाश में उड़ रही है। सन्निपात में जो गति आ जाती है, वह गति जो ज्वर की तेजी आ जाती है, वैसी तेजी में हम सब हैं।

एक राजनीतिज्ञ को देखें, एक आध्यात्मिक ज्वर चढ़ा हुआ है। उस ज्वर में वह ऐसे काम कर लेता है, जैसा कि सामान्य स्वस्थ आदमी कभी नहीं कर सकता। एक राजनीतिज्ञ को देखें, जब वह किसी देश की रक्षा के लिए लगा हुआ है, किसी देश के निर्माण के लिए या किसी देश के ध्वंस के लिए लगा हुआ है, तब उसकी ज्वर की अवस्था देखें। अगर हमारे पास कभी आध्यात्मिक ज्वर नापने का कोई उपाय हो तो राजनीति एक आध्यात्मिक ज्वर सिद्ध होगी। लेकिन देखें राजनीतिज्ञ को, उसके पैरों की गति को, सुबह से शाम तक उसकी व्यस्तता को! सारे जगत का भार उसके ऊपर है। वह नहीं है तो सारा जगत नहीं है। वह है तो सब कुछ है।

यह जो ज्वर है, लाओत्से कहता है, इन ज्वरग्रस्त लोगों को देख कर यही कहने को रह जाता है कि एक मैं ही उदास, ठंडा, निष्क्रिय हूं। सभी कहीं पहुंच रहे हैं, एक मैं ही सागर की तरह लक्ष्यहीन अपनी जगह ही पड़ा हूं।

"सप्रयोजन हैं दुनिया के सब लोग; अकेला मैं दिखता हूं हठीला और अभद्र।"

जब सारे ही लोग दौड़ रहे हों, तो आपका आहिस्ता चलना हठीला दिखाई पड़ेगा। और जब सारे लोग ही पागल हो रहे हों, तब आपका शांत और सौम्य बना रहना अभद्र मालूम पड़ेगा। जब हिंदू-मुस्लिम दंगे में उतर रहे हों तब आप दूर खड़े देखते रहें, तो लगेगा कि आप आदमी हैं! जब हिंदुस्तान और पाकिस्तान लड़ते हों, हिंदुस्तान और चीन लड़ते हों, या बंगला देश और पाकिस्तान लड़ता हो, या वियतनाम में युद्ध चलता हो, तब आप दूर खड़े चुपचाप देखते रहें, कोई पक्ष में न हों, बंटे हुए न हों, ज्वर के भीतर न हों, तो लोग कहेंगेः क्या हुआ आपको? जीवित हैं या मर गए?

कभी आपने ख्याल किया, जब युद्ध चलता है तब लोग ज्यादा जीवित हो जाते हैं। जो आदमी सुबह आठ बजे भी बिस्तर से उठने में मुश्किल पाता था, वह पांच बजे उठ कर रेडियो खोल कर सुनने लगता है--क्या खबर है? जान में जान आ जाती है। खून तेजी से चलने लगता है। सुबह से आदमी अखबार लेकर बैठ जाता है। लोगों के चेहरों पर रौनक देखें! जब युद्ध चलता है, तब लोगों के चेहरों पर रौनक देखें! जब युद्ध चला जाता है, लोग फिर मंदे हो जाते हैं; फिर धीमे हो जाते हैं; फिर राह देखते हैं कि कुछ हो जाए। कहीं कुछ नहीं हो रहा है, अखबार में कोई खबर नहीं है।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन अपने जीवन के अंत में गांव का काजी, गांव का न्यायाधीश बना दिया गया था। पहले ही दिन जब वह बैठा अदालत में, सुबह से दोपहर होने लगी, कोई मुकदमा न आया। फिर सांझ भी होने लगी, कोई मुकदमा न आया। क्लर्क उदास, बेचैन। पहरेदार बेचैन। सिपाही बाहर-भीतर आते हैं, कोई नहीं आया। वकील बेचैन। आखिर क्लर्क ने कहा कि क्या हो गया, आज ही आप बने हैं न्यायाधीश और कोई आया नहीं।

नसरुद्दीन ने कहा, घबड़ाओ मत, आई हैव स्टिल फेथ इन ह्यूमन नेचर। आदमी की प्रकृति पर मुझे अब भी भरोसा है; कोई न कोई आएगा। कोई न कोई आएगा; घबड़ाओ मत। कोई न कोई अपराध होकर रहेगा। आदमी पर मुझे अब भी भरोसा है।

और जब सांझ होते-होते एक मुकदमा आ गया मार-पीट का, सारी अदालत में रौनक आ गई। लोग अपनी-अपनी जगह बैठ गए। लोगों ने अपने रजिस्टर खोल लिए। वकील खड़े हो गए, सिपाही में जान आ गई। मजिस्ट्रेट में जान आ गई।

अदालत मर जाती है, जिस दिन मुकदमा नहीं आता। डाक्टर की नब्ज ढीली पड़ जाती है, जिस दिन कोई बीमार नहीं होता--स्वभावतः! हमारे जीवन का जो ढंग है, वह ज्वरग्रस्त है। युद्ध होता है तो सबकी रीढ़ तन जाती है।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में, मेन केम्फ में लिखा है कि किसी भी राष्ट्र को बड़ा होना हो तो युद्ध के बिना कभी कोई बड़ा नहीं होता। और जो राष्ट्र बिना युद्ध के बहुत दिन जी जाते हैं, उनकी रीढ़ टूट जाती है।

हो सकता है, यही कारण भारत की रीढ़ के टूट जाने का हो। क्योंकि महाभारत के बाद युद्ध वगैरह से हमने कोई संबंध नहीं रखा। हिटलर ने लिखा है कि अगर कोई युद्ध न भी हो रहा हो तो भी मुल्क में जान बनाए

रखने के लिए युद्ध की अफवाह बनाए रखनी चाहिए कि अब युद्ध हो रहा है, अब युद्ध हो रहा है। सस्पेंशन! तो लोगों का खून तेजी से दौड़ता है, आत्मा जोर से धड़कती है, लोग प्राणवान रहते हैं।

निश्चित ही, ऐसे प्राणवान लोगों के बीच अगर लाओत्से को लगता हो--एक मैं ही हठीला और अभद्र! जहां सभी बीमारी से भरे हैं और ज्वर में भागे जा रहे हैं और सन्निपात में बक रहे हैं, चिल्ला रहे हैं, वहां मेरी आवाज बड़ी धीमी मालूम पड़ती है। निश्चित ही उन सबको लगता है कि तुम हठीले हो; आओ हमारे साथ! दौड़ो हमारे साथ! अभद्र हो तुम, जो सभी कर रहे हैं, वह तुम नहीं कर रहे हो।

सभ्य का मतलब ही क्या होता है? असभ्य का मतलब ही क्या होता है?

सभ्य शब्द का तो यही मतलब होता है। सभ्य शब्द बनता है सभा से। जो सभा के साथ हो, वह सभ्य। जो सबके साथ हो, वह सभ्य। जो सबके साथ न हो, वह असभ्य। सभ्य का मतलब होता है, सभा में बैठने की योग्यता जिसमें हो। भीड़ के साथ खड़े होने की जिसमें योग्यता हो, वह सभ्य। भद्र कौन है? जो हमारे मापदंड के अनुकूल है। अभद्र वही है, जो हमारे मापदंड के अनुकूल नहीं है।

तो लाओत्से कहता है, एक मैं ही दिखता हूं हठीला और अभद्र। लोगों की मानता नहीं। लोग नाराज हैं। भीड़ के साथ चलता नहीं। भीड़ समझती है, मैं विक्षिप्त हूं।

"और अकेला मैं ही हूं भिन्न अन्यों से; क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा ही माता प्रकृति से।"

ये चारों तरफ जो लोग हैं, इनका सारा पोषण, इनके जीवन की सारी ऊर्जा और गर्मी, इनका प्राण सहज स्वभाव और प्रकृति से उपलब्ध नहीं होता। इनका प्राण भविष्य की किन्हीं आशाओं, आकांक्षाओं से उपलब्ध होता है। किन्हीं सिद्धांतों, शब्दों, लक्ष्यों से उपलब्ध होता है। सहज प्रकृति और स्वभाव से नहीं। मैं तो उतना ही जीता हूं, जितना सहज; जितना प्रकृति जिलाती है, उतना जीता हूं। जितना प्रकृति दौड़ाती है, उतनी ही मेरी गति है। प्रकृति रोकती है तो मैं रुक जाता हूं। प्रकृति चलाती है तो मैं चलता हूं। अपनी मेरी कोई दौड़ नहीं है। अपनी मेरी कोई गति नहीं है। मस्तिष्क और बुद्धि से मेरा कोई परिचालन नहीं है।

इस अंतिम वाक्य को हम ठीक से समझ लें। एक तो ढंग है सहज जीवन का। लाओत्से ने कहा है, मैं एक सूखे पत्ते की भांति हूं। हवा पूरब ले जाती है तो पूरब चला जाता हूं; हवा पश्चिम ले जाती है तो पश्चिम चला जाता हूं। हवा जमीन पर गिरा देती है तो मैं विश्राम कर लेता हूं; हवा आकाश में उठा देती है तो मैं बादलों के साथ होड़ कर लेता हूं। लेकिन मेरी अपनी कोई दिशा नहीं है। कहीं जाने की मेरी कोई योजना नहीं है। क्योंकि योजना जैसे ही बनी, वैसे ही संघर्ष शुरू हो जाता है। मैं पूरब जाना चाहता हूं और हवाएं पश्चिम जा रही हैं। और हवाएं मेरी मानने वाली नहीं हैं। मैं कौन हूं? और हवाओं को मुझ से क्या प्रयोजन है?

लाओत्से कहता है, हवाएं जिस तरफ बहती हैं, वही मेरी दिशा है। और अगर हवाएं बीच में अपनी दिशा बदल लेती हैं तो मेरी दिशा भी बदल जाती है। कहता यह है कि मेरी अपनी कोई दिशा नहीं है, जो मैंने बुद्धि से तय की हो। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। प्रकृति का ही अगर कोई लक्ष्य मुझमें हो तो प्रकृति जाने। अगर प्रकृति ही मेरे द्वारा कुछ करवाना चाहती हो तो करवा ले। अगर प्रकृति को मुझसे कुछ न करवाना हो, मेरी कोई योग्यता-पात्रता न हो, तो मैं अकारण अपनी पात्रता सिद्ध करने की व्यर्थता में न पड़ूंगा। लाओत्से के लिए प्रकृति का वही अर्थ है, जो परमात्मा का है। लेकिन लाओत्से परमात्मा शब्द का उपयोग करना पसंद नहीं करता। कारण है। लाओत्से प्रकृति शब्द उपयोग करना पसंद करता है बजाय परमात्मा के। क्योंकि परमात्मा को हमने एक सिद्धांत बना लिया है। और परमात्मा को हमने आगे रख लिया है। और जब भी हम परमात्मा की बात करते हैं

तो परमात्मा से हमारा कम प्रयोजन होता है, हमारे परमात्मा से ज्यादा प्रयोजन होता है। परमात्मा पर दावेदारी भी है। और परमात्मा में हमने वे सब चीजें डाल दी हैं, जो हम चाहते हैं कि हों। हमने परमात्मा से नहीं पूछा है कि तेरी क्या मर्जी है; हमने अपनी मर्जी उस पर रख दी है और कहा है कि यह मर्जी अगर हो तो तू हमारा परमात्मा है।

बाइबिल कहती है कि ईश्वर ने आदमी को अपनी अनुकृति में बनाया--गॉड क्रिएटेड मैन इन हिज ओन इमेज, ईश्वर ने खुद अपनी ही शक्ल में आदमी को बनाया। लेकिन नीत्शे कहता है, इस वाक्य से ज्यादा गलत दूसरा वाक्य खोजना कठिन है। क्योंकि सच्चाई उलटी है। सचाई यह है कि आदमियों ने ईश्वर को अपनी शक्ल में बनाया है। इसीलिए तो इतने ईश्वर हैं; क्योंकि इतने आदमी हैं। काला आदमी ईश्वर को गोरी शक्ल का नहीं बना सकता। गोरा आदमी ईश्वर को काली शक्ल का नहीं बना सकता। और अफ्रीकी का ईश्वर अफ्रीकी की ही अनुकृति होता है। और हिंदू का ईश्वर हिंदू की अनुकृति होता है। हमारे ईश्वर हमारे गढ़े हुए होते हैं। ईश्वर ने हमें गढ़ा या नहीं, वह दूसरी बात है। लेकिन हम ईश्वर को रोज गढ़ते हैं।

और इसलिए हर दो-चार सौ साल में ईश्वर की शक्ल बदल जाती है। क्योंकि दो-चार सौ साल में गढ़ने वाले बदल जाते हैं। उनके ढंग बदल जाते हैं, सोचने की व्यवस्था बदल जाती है। तो फिर नए ईश्वर बनाने पड़ते हैं। आदमी के पास ईश्वर निर्मित करने के बड़े कारखाने हैं। वहां वह उन्हें निर्मित करता रहता है। फैशन बदलती है, ईश्वर को बदलना पड़ता है। फैशन के हिसाब से ईश्वर की भी फैशन होती है। और पुराने ईश्वर कभी-कभी आउट ऑफ डेट पड़ जाते हैं, उनको फेंक देना पड़ता है, नए ईश्वर गढ़ लेने पड़ते हैं। हमसे उनका तालमेल रहना चाहिए।

अगर आप पांच हजार साल का इतिहास उठा कर देखें तो आपको पता चलेगा कि कितने ईश्वर डिसकार्डेड, कितने ईश्वर को हम फेंक चुके हैं उठा कर बाहर। आज हमको ख्याल भी नहीं आएगा कि ये हमारे फेंके हुए ईश्वर हैं! हमने दूसरे गढ़ लिए। वक्त बदलता है, हमें बदलाहट करनी पड़ती है। अगर हम पांच हजार साल पुराने ईश्वर को देखें तो हमको दिक्कत मालूम पड़ेगी कि इसको ईश्वर मानें? हमारी धारणाएं बदल गईं। इसलिए बड़ी अड़चन आती है। हम पुराने ग्रंथों की पूजा करते जाते हैं; लेकिन उनको खोल कर कभी देखते नहीं कि उसमें ईश्वर की शक्ल क्या है। अगर हम पुरानी यहूदी शक्ल को देखें ईश्वर की, तो ईश्वर बड़ा खूंखार मालूम पड़ता है, तानाशाह मालूम पड़ता है। वह कहता है, जो मेरा नाम न लेगा उसको नरकों में सड़ाऊंगा, गलाऊंगा, काटूंगा; आग में डालूंगा; जो मेरे खिलाफ है, उसके बचने का कोई उपाय नहीं है; जो मेरे पक्ष में है, उसी को मैं बचाऊंगा।

अगर आज हमारा ईश्वर ऐसी भाषा बोले तो हमें लगेगा कि यह तो बहुत तानाशाही हो गई। लोकतंत्र की भाषा बोलो--डेमोक्रेटिक! यह तो डिक्टेटोरियल मामला हो गया। ऐसे ईश्वर को आज हम बर्दाश्त न करेंगे। क्योंकि ऐसा ईश्वर तो हमें हिटलर और मुसोलिनी और तोजो की शक्ल का मालूम पड़ेगा। और यह भी कोई ईश्वर हुआ, जो इस तरह की बातें बोलता है! डिसकार्डेड है। यहूदी भी किताब की पूजा कर लेते हैं, लेकिन इस ईश्वर की चर्चा नहीं करते। बिल्कुल इसकी चर्चा नहीं करते।

जीसस ने पूरी धारणा बदल दी। जीसस ने कहा कि ईश्वर है प्रेम--गॉड इ.ज लव। अब ईश्वर जो जीसस का है, उसका, जीसस के पिता का जो ईश्वर था, उससे कोई तालमेल नहीं है।

अगर पीछे हम लौटें, अगर हम वेद के वचन पढ़ें, अगर हम प्रार्थनाएं पढ़ें, तो हमें बड़ी हैरानी होगी कि ये कैसी प्रार्थनाएं हैं? एक किसान प्रार्थना कर रहा है कि हे ईश्वर, मेरे खेत में वर्षा कर देना, लेकिन मेरे दुश्मन के

खेत में वर्षा मत करना। आज हमें लगेगा, यह भी प्रार्थना है? कभी थी। और जब थी, तब किसी को शक नहीं आया था। आज शक आएगा। क्योंकि बुद्ध ने और महावीर ने धारणा बदल दी। उन्होंने कहा, प्रार्थना में अगर वैमनस्य आ गया तो प्रार्थना तो खराब हो गई।

बुद्ध ने कहा है कि ध्यान तुम करना, और ध्यान के बाद प्रार्थना करना कि मेरे ध्यान से जो शांति मुझे मिली, वह सब में बिखर जाए। मुझे चाहे न मिले, लेकिन सब को मिल जाए।

अब बुद्ध बीच में आ गए तो यह वेद की जो प्रार्थना है, मुश्किल में पड़ गई। इसको डिसकार्ड करना पड़ा। वेद की हम पूजा करते चले जाएंगे। लेकिन आज वेद को मानने वाले को भी बड़ी तकलीफ होगी। फिर एक ही रास्ता है कि वह इसके अर्थ बदले। वह बताए कि इसमें यह अर्थ ही नहीं है। अरविंद ने पूरी चेष्टा यही की कि इसमें यह अर्थ ही नहीं है। लेकिन वह चेष्टा ईमानदार नहीं है। क्योंकि एकाध सूत्र ऐसा होता तो हम समझते। वेद में नब्बे प्रतिशत सूत्र ऐसे हैं। और अरविंद जैसी प्रतिभा का आदमी भी कितनी ही तोड़-मरोड़ करे, इसको झुठलाया नहीं जा सकता। लेकिन अरविंद की तकलीफ भी है। तकलीफ यह है कि वे वेद को अप-टू-डेट कर रहे हैं। वह जो वेद पांच हजार साल पीछे पड़ गया, उनका श्रम यह है कि वह उसे आज के योग्य बना दें; वह वेद को नई शक्ल दे दें, ताकि हमारे लिए ग्राह्य हो जाए।

हमको अपने ईश्वर की शक्ल में रोज छेनी का उपयोग करना पड़ता है। रोज उसको बदलना पड़ता है। ईश्वर हमारा बनाया हुआ है।

इसलिए लाओत्से ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं करता। लाओत्से कहता है प्रकृति। प्रकृति शब्द बहुत कीमती है। प्रकृति का मतलब होता हैः बनने के भी जो पूर्व था। प्रकृति का अर्थ होता हैः दैट व्हिच वाज बिफोर क्रिएशन। प्र और कृति, निर्माण के पहले जो था, सब होने के पहले जो था, सब बना, उसके पहले जो था। सबके होने के मूल में जो छिपा है, सबका जो आधार है। रूप जब मिट जाते हैं, तो जिसमें गिरते हैं; और रूप जब उठते हैं, तो जिससे उठते हैं। प्रकृति का अर्थ हैः वह तत्व जो रूप लेने के पहले था।

लाओत्से कहता है, वही मां है, वही मूल स्रोत है; मैं उसी से जीता हूं। मेरा अपना कोई लक्ष्य नहीं है। उस प्रकृति का कोई लक्ष्य मुझसे हो, पूरा हो जाए। न हो, कोई एतराज नहीं है। अगर वह प्रकृति मुझे चाहती है कि मैं बेकार ही रहूं और खो जाऊं तो यही मर्जी पूरी हो। अगर कोई काम उसे लेना हो, काम ले ले। लेकिन मेरी अपनी तरफ से निर्धारित कोई नियति, कोई डेस्टिनी नहीं है।

यही समझने जैसा है। लाओत्से कहता है, छोड़ता हूं अपने को मैं उसी पर, जिससे मैं पैदा हुआ और जिसमें मैं कल खो जाऊंगा। मैं बीच में बाधा क्यों दूं? मैं क्यों कहूं कि मुझे मोक्ष चाहिए? जब मुझे अपने होने का पता नहीं, जब मैं अपने को पैदा नहीं कर सकता, तो मैं अपने को मोक्ष कैसे पहुंचा सकूंगा?

लाओत्से कहेगा कि जितने लोग अपनी चेष्टा से कुछ पाने में लगे हैं, वे ऐसे लोग हैं, जैसे कोई आदमी अपने जूते के बंद पकड़ कर खुद को उठाने की कोशिश में लगा हो। कोशिश कितनी ही करो, परिणाम कुछ न होगा। थोड़ा-बहुत उछलकूद भी कर सकता है आदमी। उछलेगा, कूदेगा, तो लगेगा कि उठता भी हूं बीच-बीच में। फिर जमीन पर पड़ जाएगा। मुझसे जो विराट और बड़ा मुझे घेरे हुए है, अगर उसका ही कोई लक्ष्य है तो ठीक। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। मैं कौन हूं जो बीच में आऊं? न मुझसे मेरे जन्म के समय प्रकृति ने पूछा कि बनाते हैं तुम्हें; क्या इरादा है? न मेरी मौत के वक्त कोई मुझसे पूछेगा कि मिटाते हैं तुम्हें; क्या इरादा है? न प्रकृति मुझसे पूछती है कि तुम्हारे भीतर रखते हैं यह हृदय, किसलिए धड़के तुम तय करना। नहीं, कोई प्रकृति कहती

नहीं। प्रकृति बना देती है, मिटा देती है। बीच में जो हम विचार करना शुरू करते हैं, उससे हम अपने लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं।

लाओत्से कहता है, अपने लक्ष्य निर्धारित करके हम उन नालों की तरह हो जाते हैं, जो चलते बहुत हैं, लेकिन पहुंचते उसी सागर में हैं जो कहीं नहीं जाता। नाले चलते बहुत हैं। और चलते वक्त नाला सागर से कह भी सकता हैः क्या पड़े हो, चलो! हम छोटे-छोटे इतना चल रहे हैं, तुम इतने बड़े हो, चलो! लेकिन ये नाले चल-चल कर पहुंचते कहां हैं? गिरते कहां हैं? खोते कहां हैं? उस सागर में खो जाते हैं, जिससे इन्होंने कहा थाः क्या बेकार पड़े हो!

लाओत्से हम बुद्धिमानों को कहेगा कि तुम व्यर्थ ही दौड़ रहे हो; क्योंकि तुम वहीं पहुंच जाओगे, जहां मैं पड़ा ही हुआ हूं। इसका मतलब समझ लें। तुम वहीं पहुंचोगे, जहां मैं पहुंचा ही हुआ हूं। तुम चल-चल कर पहुंचोगे; बहुत चलोगे, बहुत परेशान, चिंता लोगे, रातें खराब करोगे, निद्रा खो जाएगी, हजार बीमारियां पाल लोगे। सोचें नाले की तकलीफ, सागर तक लंबी यात्रा है! कितने समझौते करने पड़ते हैं, किस नदी में गिरना पड़ता है, किस तरह खुद को बचाना पड़ता है! और बचा कर भी होता क्या है? मजा यह है कि सागर तक अंतिम जो घटना घटने वाली है, वही घटती है--बचाए नाला तो, न बचाए तो। नाला बचाता है कि कहीं रेगिस्तान में न खो जाऊं। रेगिस्तान में भी कोई नाला खो जाएगा तो जाएगा कहां? सूरज की किरणों से चढ़ेगा और सागर में पहुंच जाएगा। नदी में चला जाऊं, बड़ी नदी का सहारा ले लूं। कहीं छोटी नदी के सहारे से, हो सकता है, न पहुंच पाऊं; तो बड़ी नदी का सहारा ले लूं, बड़ा सहारा ले लूं। छोटी नदियां भी वहीं पहुंच जाती हैं, बड़ी नदियां भी वहीं पहुंच जाती हैं। और मजा यह है कि सबकी अंतिम परिणति उस सागर में हो जाती है, जो कहीं जाता ही नहीं।

लाओत्से कहता है, "अकेला मैं उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ--मानो लक्ष्यहीन!"

ऐसा दिखता है कि लहरें यहां आ रही हैं, वहां जा रही हैं--लक्ष्यहीन। कभी आपने ख्याल किया कि सागर में जब आपको लहरें आती-जाती मालूम पड़ती हैं, तो आप एक बड़े भ्रम में होते हैं। सागर के किनारे तट पर खड़े होकर आप देखें तो लगता है, दूर से फेनोज्ज्वल, फेन के शिखर से लदी भागती चली आ रही है लहर। आती है, चली आती है, तट से टकराती है, बिखर जाती है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि लहरें अपनी जगह नहीं छोड़तीं। सागर में जो लहर आपको दिखती है आती हुई, वह सिर्फ आंखों का भ्रम है, इल्यूजन है। एक लहर उठती है, नीचे गड्ढा हो जाता है; एक लहर गिरती है, पास का पानी ऊपर उठ जाता है। वह जो पास का पानी ऊपर उठ जाता है और पहला पानी नीचे गिर जाता है, आपको लगता है पहली लहर आगे आ गई। कोई लहर आगे नहीं आती।

इसीलिए तो स्टेज पर नाटक में आसानी से लहरों का भ्रम पैदा किया जा सकता है; कोई अड़चन नहीं है। आप जो बिजली के बल्बों को देखते हैं शादी-विवाह के मंडप पर लगे हुए, लगते हैं भागे चले जा रहे हैं। वह कोई भाग नहीं रहा है। बल्ब अपनी जगह जलता है, बुझ जाता है। एक बल्ब बुझा, दूसरा जल जाता है; वहम पैदा होता है कि बिजली यात्रा कर गई।

सागर की लहरों में भी वैसा ही वहम है। एक लहर उठती है, नीचे गड्ढा हो जाता है। वह गिरती है, पास का पानी ऊपर उठ जाता है। आपको लगता है लहर यात्रा कर गई। कोई लहर यात्रा नहीं करती; सब अपनी जगह उठती-गिरती रहती हैं। सागर में यात्रा है ही नहीं। सागर थिर है। इसलिए सागर को हमने कहा है धीर।

उसमें अधैर्य है ही नहीं। अधैर्य का मतलब क्या होता है? अधैर्य का मतलब होता है कि कहीं पहुंचना है। जब तक नहीं पहुंचे हैं, तब तक धैर्य कैसे हो? सिर्फ धैर्य में तो वही हो सकता है, जिसे कहीं पहुंचना नहीं है। पहुंचने वाले को तो अधैर्य में जीना ही पड़ेगा। और जितनी जल्दी होगी पहुंचने की, उतना अधैर्य होगा।

पश्चिम में देखते हैं, अधैर्य ज्यादा है पूर्व की बजाय। और कारण? कारण सिर्फ एक छोटा सा है; या बड़ा भी कह सकते हैं। कारण सिर्फ इतना है कि पश्चिम में ईसाइयत, यहूदी और इसलाम, तीनों धर्मों ने एक ही जन्म को स्वीकार किया है। एक ही जिंदगी है, समय बहुत कम है, पहुंचना जल्दी है। भारत में, पूरब में, अधैर्य नहीं है। उसका कारण? उस कारण यह नहीं है कि आप बहुत धीर हैं। आपके पास टाइम एक्सटेंशन ज्यादा है, जन्मों-जन्मों का। इसमें नहीं तो अगले में पहुंच जाएंगे, अगले में नहीं तो और अगले में पहुंच जाएंगे। ऐसी जल्दी क्या है? चूंकि हमने धारणा बनाई है पुनर्जन्मों की, अनंत जन्मों कीशृंखला की, हमारे पास समय बहुत है। इसलिए हमें घड़ी की बहुत चिंता नहीं है। समय इतना ज्यादा है कि नाप-नाप कर भी क्या करना है? सागर को कोई नापता है? सागर को क्या नापिएगा? हमारे पास इतना समय है कि क्या नापना है?

इसलिए हम धीरज में हैं। दौड़ भी रहे हैं, तो बड़े आहिस्ता से, सुस्ताते भी हैं। और कोई जल्दी नहीं है। पश्चिम में बहुत जल्दी पैदा हो गई; क्योंकि ईसाइयत ने एक ही जन्म को स्वीकार किया। यह मौत जो होने वाली है, यह आखिरी है। इसके बाद फिर समय नहीं है। स्वभावतः समय कम पड़ गया, घबड़ाहट बढ़ गई। और पहुंचना है। और चूक गए तो सदा के लिए चूक गए। हमारे मुल्क में चूकने में कोई डर नहीं है। चूकने का मतलब सदा के लिए चूकना नहीं होता। सिर्फ इस बार चूक गए, अगली बार देखेंगे। और परमात्मा अनंत धैर्यशाली है हमारा। वह प्रतीक्षा करेगा, कोई ऐसी जल्दी कहीं भी नहीं है। इसलिए टाइम-कांशसनेस, जो काल-चेतना है, वह पूर्व में पैदा नहीं हो सकी। टाइम-कांशसनेस पश्चिम में पैदा हुई। और टाइम-कांशसनेस पैदा करने में जीसस का हाथ है। क्योंकि एक ही जिंदगी है तो घबड़ाहट हो गई है।

सागर को हम कहते हैं धीर। उसे कहीं पहुंचना ही नहीं है। नदी तो अधीर होगी ही। इसलिए नदी शोरगुल करेगी, भागेगी, तड़पेगी। उसमें बेचैनी दिखाई भी पड़ेगी। सागर बेचैन नहीं है।

लाओत्से कहता है, इन सब भागते हुए लोगों के बीच, जो गंवार हैं, वे विज्ञ और तेजोमय; मैं ही मंद और भ्रांत! जो गंवार हैं, वे चालाक और आश्वस्त; मैं ही उदास, अवनमित, समुद्र की तरह धीर, इधर-उधर बहता हुआ--मानो लक्ष्यहीन। सप्रयोजन हैं दुनिया के सब लोग, अकेला मैं दिखता हठीला और अभद्र। और अकेला मैं ही हूं भिन्न अन्यों से; क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा माता प्रकृति से। वह जो गहनतम स्रोत है जीवन का, उसको ही जीता हूं। और इसलिए भिन्न हूं।

इसको हम एक तरह से और देखें।

जो व्यक्ति लक्ष्य को लेकर जीएगा, भविष्य उसके लिए मूल्यवान है--आगे, कल। जो व्यक्ति आधार को, स्रोत को लेकर जीएगा, उसके लिए भविष्य का कोई मूल्य नहीं है। उसके लिए जड़ें मूल्यवान हैं, स्रोत मूल्यवान है। हम ऐसा समझें कि हम ऐसे लोग हैं या हम ऐसे वृक्ष हैं जो इस आशा में जीते हैं कि फूल लगें। इस आशा में हम जड़ों की सारी चिंता ही छोड़ देते हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि हम सिर्फ जड़ों का फैलाव हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि हम जड़ें ही हैं, जो पृथ्वी के बाहर आ गई हैं। हम यह भूल ही जाते हैं कि हम जड़ें ही हैं, जिन्होंने आकाश को छूने की आकांक्षा की है। हम यह भूल ही जाते हैं कि अगर जड़ों के भीतर ही छिपा है कोई फूल तो निकल आएगा; अगर नहीं छिपा है तो निकालने का कोई उपाय नहीं है। हम ऐसे वृक्ष हैं, जो जड़ों को भूल गए हैं। अब हम सोचते हैं, फूल कैसे हो जाएं?

अगर कोई वृक्ष फूल की चिंता में पड़ जाए कि फूल कैसे हो जाए, तो एक बात पक्की है कि फूल उस वृक्ष में कभी नहीं होंगे। चिंता ही सारे रस को सोख जाएगी, जिससे फूल बनते हैं।

चीनी कहानी है, और लाओत्से के वक्त की ही, कि एक सेंटीपीड, एक शतपदी जानवर, सौ पैर वाला जानवर एक जंगल से गुजर रहा है। एक खरगोश बड़ी चिंता में पड़ गया--सौ पैर! कौन सा पहले रखता होगा, कौन सा बाद में? कैसे हिसाब रखता होगा कि कौन सा उठ गया, कौन सा उठाना है, कौन सा आधा है बीच में, कौन सा जमीन को छू रहा है? सौ पैर! खरगोश पास गया और उसने कहा, चाचा, बड़ी चिंता होती है आपको देख कर। कैसे रखते हैं हिसाब? क्या है गणित? पहले कौन सा पैर उठाते हैं? फिर कौन सा? फिर कौन सा? सौ का हिसाब, सौ की संख्या याद रखनी पड़ती होगी। शतपदी ने कहा, अजीब सवाल पूछा। मैंने कभी ख्याल नहीं किया। चलता तो रहा हूं, मैंने कभी ख्याल नहीं किया। अब मैं ख्याल करके तुझे बताऊं।

शतपदी थोड़ी देर खड़ा रहा। उसके पैर कंपे और वह वहीं गिर गया। खरगोश ने पूछा, क्या हुआ? उस शतपदी ने कहा कि नासमझ, अब यह सवाल किसी और शतपदी से मत पूछना। हम चलना जानते थे, यह हमने कभी सोचा न था कि कौन सा पैर पहले, कौन सा बाद में। सौ का मामला है, सब गड़बड़ हो गया। अब कोई पैर ही नहीं उठता, या कई पैर साथ उठ गए, आपस में उलझ गए। जान पर मुसीबत आ गई है। तूने जो यह सवाल उठाया, यह बहुत कठिन है। और भगवान करे कि मैं जल्दी ही तेरे सवाल को भूल जाऊं। अन्यथा चलना मुश्किल हो जाएगा। चिंता आ जाएगी चलने की जगह।

कोई वृक्ष अगर सोचने लगे कि फूल को कैसे बनाऊं, कैसे कली बने, कितनी पंखुड़ियां रखूं, कैसा रंग हो, कैसी गंध भरूं--उस वृक्ष में फिर फूल नहीं लगेंगे। वृक्ष को फूल की क्या चिंता होनी है? फूल तो छिपे हैं जड़ों में, जड़ें सम्हाल लेंगी। वृक्ष को बढ़ते जाना है, जड़ों पर सब छोड़ देना है भार, कर देना है समर्पित स्रोत पर। स्रोत में ही सब छिपा है, भविष्य भी छिपा है, कल भी छिपा है। जो होगा, वह भी छिपा है।

लाओत्से कहता है, जड़ों पर सब छोड़ दिया है मैंने। और चारों तरफ जो लोग हैं, वे सब अपना-अपना भार उठाए चल रहे हैं। वे कहते हैं, हमारी मंजिल! हमारा लक्ष्य! हमें कुछ होना है! हमें कुछ करके दिखाना है! संसार में आए हैं, तो बिना किए नहीं जाएंगे!

मां-बाप समझाते हैं बच्चों कोः संसार में आए हो, कुछ करके दिखाओ!

कितने लोग संसार में आए, कितना करके दिखा गए, क्या फल है? और न जिन्होंने करके दिखाया, कौन सी असुविधा हो गई है? करके भी क्या दिखाइएगा? लेकिन चिंता पैदा हो जाती है। चिंता सारे के सारे मस्तिष्क को ग्रसित कर लेती है। फिर एक-एक कदम हिलाना मुश्किल हो जाता है। शतपदी की हालत हो जाती है।

आज आदमी करीब-करीब चीनी कहानी के शतपदी की हालत में है। उसे कुछ नहीं सूझता कि क्या करे, क्या न करे? कैसे करे? सब अस्तव्यस्त हो गया है। हो जाएगा। क्योंकि जड़ों से हमने सब छीन लिया है। और उनमें ही सब छिपा है। सब मस्तिष्क में रख लिया है।

और लाओत्से के अनुयायी कहते हैं, खोपड़ी से सोचने से बचना! लाओत्से से अगर आप जाकर पूछते कि तुम्हारा मस्तिष्क कहां है? तो वह अपने पेट पर हाथ रखता; वह कहता, यहां पेट में है। बेली इ.ज माई माइंड। वह कहता कि कहां खोपड़ी में, इतनी दूर स्रोत से कहां जाना? बहुत दूर निकल गए ये। क्योंकि मां से बच्चा जुड़ा होता है नाभि से। वह पहले अस्तित्व की शुरुआत है। नाभि स्रोत है। और नाभि के निकट अस्तित्व है। खोपड़ी, तो बहुत दूर निकल गए, शाखाओं में चले गए, जड़ों से बहुत दूर चले गए।

आदमी की जड़, आपको पता है, नाभि है। वहीं से, मां से जड़ जुड़ी होती है। उसकी मां की जड़ नाभि से जुड़ी थी। इस सारे संसार में मनुष्यों की जड़ें खोजें तो नाभि में वे फैली हुई मिलेंगी। यों तो प्रत्यक्ष, ऊपर से भी नाभि से जुड़ी होती हैं, लाओत्से कहता है, अप्रत्यक्ष भीतर की जड़ें नाभि से ही फैली होती हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, खोपड़ी की फिक्र छोड़ो, नाभि की फिक्र करो। नाभि मजबूत हो, जड़ें गहरी हों प्रकृति में, तो तुम कहीं पहुंचे या न पहुंचे, इससे फर्क नहीं पड़ता। पहुंचे तो, न पहुंचे तो, हर हालत में आनंद है। और अगर तुम मस्तिष्क से जीए, पहुंचे तो, न पहुंचे तो, हर हालत में दुख है।

इसलिए वह कहता है, "एक अकेला मैं भिन्न हूं अन्यों से; क्योंकि देता हूं मूल्य उस पोषण को, जो मिलता है सीधा माता प्रकृति से।"

आज इतना ही। फिर हम कल बात करेंगे। बैठें पांच मिनट, कीर्तन करें।

ताओ उपनिषद भाग तीन

छियालीसवां प्रवचन

क्षुद्र आचरण नीति है, परम आचरण धर्म

Chapter 21

Manifestations Of Tao

The marks of great Character follow alone from the Tao.
The thing that is called Tao is elusive, evasive.
Elusive, evasive, yet latent in it are forms.
Elusive, evasive, yet latent in it are objects.
Dark and dim, yet latent in it is the life-force.
The life-force being very true,
Latent in it are evidences.
From the days of old till now
Its Named (manifested forms) have never ceased,
By which we may view the Father of All Things.
How do I know the shape of Father of All Things?
Through These!

अध्याय 21

ताओ का प्राकट्य

परम आचार के जो सूत्र हैं, वे केवल ताओ से ही उदभूत होते हैं।
और जिस तत्व को हम कहते हैं ताओ, वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य।
दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, तथापि उसमें ही सब रूप छिपे हैं।
दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, तथापि उसमें ही समस्त विषय निहित हैं।
अंधेरा और धुंधला, फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में।
जीवन-ऊर्जा है बहुत सत्य, इसके प्रमाण भी उसमें ही प्रच्छन्न हैं।
प्राचीन काल से आज तक
इसकी नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियों का अंत नहीं आया,
और हम उसमें देख सकते हैं सभी वस्तुओं के जनक को।

लेकिन सभी वस्तुओं के जनक के आकार को मैं कैसे जानता हूं?

इन्हीं के द्वारा, इन्हीं अभिव्यक्तियों के द्वारा।

बर्नार्ड शॉ ने कहीं व्यंग्य में कहा है कि जब तक सारी दुनिया ईमानदार न हो जाए, तब तक मैं अपने बच्चों को कैसे कह सकता हूं कि ईमानदारी ही परम उपयोगी और लाभपूर्ण है। आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी--यह मैं अपने बच्चों को तब तक कैसे कह सकता हूं, जब तक सारी दुनिया ईमानदार न हो जाए। सारी दुनिया ईमानदार हो तो ही ईमानदारी उपयोगी हो सकती है।

बर्नार्ड शॉ जिस नैतिकता की, जिस आचरण की बात कर रहा है, लाओत्से उसे क्षुद्र नीति और क्षुद्र आचरण कहेगा। क्षुद्र आचरण सदा इस बात की फिक्र करता है कि आचरण भी उपयोगी और लाभप्रद होना चाहिए। क्षुद्र आचरण एक सौदेबाजी है, एक बार्गेनिंग है। उसका प्रतिफल क्या मिलेगा, इस पर ही सब कुछ निर्भर है। अगर ईमानदार और सचाई और नेकी से जीने का परिणाम स्वर्ग होता हो तो मैं आचरण कर सकता हूं उनके अनुकूल। पुण्य अगर प्रतिष्ठा देता हो और सदाचरण से अगर रिस्पेक्टबिलिटी, आदर मिलता हो तो मेरे लिए सार्थक मालूम हो सकता है। यह क्षुद्र आचरण की व्यवस्था है। क्षुद्र आचरण में और अनाचरण में बहुत फर्क नहीं है।

इसे हम ठीक से समझ लें। क्षुद्र आचरण में और अनाचरण में बहुत फर्क नहीं है। क्षुद्र नैतिकता में और अनैतिकता में बहुत अंतर नहीं है। अगर ईमानदारी मैं इसीलिए उपयोगी पाता हूं कि उससे मुझे लाभ होता है, तो किसी भी क्षण मैं बेईमानी को भी उपयोगी पा सकता हूं क्योंकि उससे लाभ होता है। अगर दृष्टि लाभ पर है तो ईमानदारी और बेईमानी लक्ष्य नहीं हैं, साधन हैं। जब लाभ ईमानदारी से मिलता हो तो मैं ईमानदार हो जाऊंगा। और जब लाभ बेईमानी से मिलता हो तो मैं बेईमान हो जाऊंगा। अगर लाभ ही लक्ष्य है तो बेईमानी को ईमानदारी और ईमानदारी को बेईमानी बनने में बहुत अड़चन नहीं होगी।

इसलिए हम सब की नैतिकता की कीमत होती है। अगर मैं आपसे पूछूं कि क्या आप चोरी कर सकते हैं? तो इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं है। यह प्रश्न नानसेंस है, अर्थहीन है। मुझे पूछना चाहिए, आप दस रुपए की चोरी कर सकते हैं? शायद आप कहें--नहीं। मुझे पूछना चाहिए, आप दस हजार की चोरी कर सकते हैं? शायद आपकी नहीं डगमगा जाए। मुझे पूछना चाहिए, आप दस लाख की चोरी कर सकते हैं? शायद आपके भीतर से हां उठने लगे।

एक आदमी कहता है कि मैं रिश्वत नहीं लेता हूं। पूछना चाहिए, कितने तक? क्योंकि रिश्वत लेने-देने का कोई अर्थ नहीं होता। सब की सीमाएं हैं। और सब अपनी सीमाओं पर बिक सकते हैं। क्योंकि हमारी नैतिकता कोई परम मूल्य नहीं है, अल्टीमेट वैल्यू नहीं है। हमारी नैतिकता भी साधन है कुछ पाने के लिए। जब वह नैतिकता से मिलता है, तब हम नैतिक होते हैं। जब वह अनैतिकता से मिलता है, तब हम अनैतिक होते हैं।

क्षुद्र नैतिकता का अर्थ हैः नैतिकता भी साधन है किसी लाभ के लिए। और तब नीति और अनीति में बहुत फर्क नहीं होता। तब नैतिक और अनैतिक आदमी में जो अंतर होते हैं, वे डिग्रीज के, मात्राओं के होते हैं, गुण के नहीं होते। तब आप किसी भी अनैतिक आदमी को नैतिक बना सकते हैं और किसी भी नैतिक आदमी को अनैतिक बना सकते हैं। इन दोनों के बीच में कोई गुणात्मक, क्वालिटेटिव भेद नहीं है। इन दोनों के बीच मात्रा के भेद हैं। अगर आप मात्रा की व्यवस्था बदल दें तो उनकी नीति अनीति हो जाएगी, अनीति नीति हो जाएगी।

लाओत्से का यह सूत्र शुरू होता है, "दि मार्क्स ऑफ ग्रेट कैरेक्टर फालो एलोन फ्रॉम दि ताओ--परम आचार के जो सूत्र हैं, वे केवल ताओ से ही उदभूत होते हैं।"

क्षुद्र आचार का अर्थ हैः आचरण अपने आप में मूल्यवान नहीं है, उससे कुछ मिलता है, वह मूल्यवान है। परम आचरण का अर्थ हैः आचरण अपने में ही मूल्यवान है। आचरण स्वयं ही लक्ष्य है, एंड इन इटसेल्फ, वह किसी चीज का साधन नहीं है। आपसे अगर हम पूछें कि आप सत्य क्यों बोलते हैं? अगर आप कहें कि सत्य बोलने से पुण्य होता है, अगर आप कहें कि पुण्य से स्वर्ग मिलता है, अगर आप कहें कि सत्य बोलने से प्रतिष्ठा मिलती है, यश मिलता है--अगर सत्य बोलने का आप कोई भी कारण बताएं--तो आपका सत्य क्षुद्र आचरण होगा। अगर आप कहें कि सत्य बोलना अपने आप में ही पर्याप्त है, किसी और कारण से नहीं, कोई और कारण नहीं है जिससे हम सत्य बोलते हैं, सत्य बोलना अपने में ही आनंद है--तो फिर अगर सत्य बोलने के कारण नरक भी जाना पड़े तो भी हम सत्य बोलेंगे। और फिर सत्य बोलना चाहे पाप भी हो जाए तो भी हम सत्य बोलेंगे। और चाहे सत्य बोलने के कारण सूली मिले तो भी हम सत्य बोलेंगे।

लेकिन तब हमारे क्षुद्र आचरण की बड़ी कठिनाई हो जाएगी। हम सत्य बोलते हैं स्वर्ग जाने के लिए। और इसीलिए चूंकि स्वर्ग संदिग्ध हो गया, सत्य बोलने वाले जगत में कम हो गए। स्वर्ग अब संदिग्ध है। आज से हजार साल पहले संदिग्ध नहीं था। आज जो दुनिया में इतनी अनीति दिखाई पड़ती है और आज से हजार या दो हजार साल पहले जो नीति दिखाई पड़ती थी, उसका यह कारण नहीं है कि लोग ज्यादा अनैतिक हो गए हैं, उसका यह भी कारण नहीं है कि पहले के लोग ज्यादा नैतिक थे, उसका कुल कारण इतना है कि पहले की नीति जिन आधारों पर खड़ी थी, वे संदिग्ध हो गए हैं। जो लाभ हो सकता था दो हजार साल पहले, निश्चित मालूम पड़ता था, आज वह निश्चित नहीं रहा है। और जब लाभ के लिए ही कोई नैतिक होता है और लाभ ही अनिश्चित हो जाए, तो फिर नैतिक होना पागलपन होगा।

दो हजार साल पहले स्वर्ग इतना ही निश्चित था, जितनी यह पृथ्वी है। शायद इससे भी ज्यादा निश्चित था। पृथ्वी तो थी माया, असत्य, स्वप्न; स्वर्ग था सत्य, नरक था सत्य। पृथ्वी के जीवन से भी ज्यादा वास्तविकताएं थीं उनमें। झूठ बोलने का अर्थ नरक था। उसके दुष्परिणाम थे, भयंकर दुष्परिणाम थे। सत्य बोलने का अर्थ स्वर्ग था। उसके बड़े पुरस्कार थे, बड़े लाभ थे। अप्सराएं थीं, स्वर्ग के सुख थे, कल्पवृक्ष थे। वह सब सुनिश्चित था। उस समय जो होशियार आदमी था, कनिंग जिसको ताओ कहेगा, चालाक, वह सत्य बोलता, झूठ नहीं बोलता। क्योंकि जब सत्य से स्वर्ग मिलता हो और झूठ से नरक मिलता हो और नरक और स्वर्ग वास्तविकताएं हों, तो जो चालाक है, वह सत्य ही बोलेगा। यह बड़ी कठिन बात मालूम पड़ेगी। आज से दो हजार साल पहले जो आदमी चालाक था, वह सत्य बोलता था, ईमानदार था। आज जो आदमी चालाक है, वह बेईमान है और झूठ बोलता है। पर वे दोनों ही चालाक हैं। आज वह आदमी झूठ बोल रहा है। क्योंकि वह पाता है कि स्वर्ग और नरक तो हो गए माया, इल्यूजरी; वह जो हाथ में रुपया है नगद, वह ज्यादा वास्तविक है। यह वही आदमी है। इसके हाथ में स्वर्ग के सिक्के वास्तविक थे, अब वे वास्तविक नहीं हैं। उनके लिए इसने नैतिकता को वरण किया था। वे ही खो गए तो नैतिकता भी खो गई। कल का जो नैतिक आदमी था, वही आज अनैतिक है।

यह जरा कठिन मालूम पड़ेगा समझने में। सारी की सारी संभावनाएं बदल गईं। आदमी अनैतिक नहीं हो गया; जो आदमी अनैतिक था, वह अनैतिक ही है। क्षुद्र नैतिक था वह कल तक। क्षुद्रता की नीति टिक नहीं सकती, वह बह गई। उसका सारा ढांचा गिर गया। जिस आधार पर खड़ी थी, वह बिखर गया। नीचे की जमीन

खिसक गई। अब वही क्षुद्र नैतिक जो आदमी था, आज भरपूर अनैतिक है। उसके भीतर कोई फर्क नहीं पड़ा। कल नीति से लाभ मिलता था; आज अनीति से लाभ मिलता है। कल सच बोलने से स्वर्ग मिलता था; आज बिना झूठ बोले स्वर्ग के मिलने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता है। कल ईमानदार होने से प्रतिष्ठा मिलती थी; आज जो ईमानदार है, वह अप्रतिष्ठित है; जो बेईमान है, वह प्रतिष्ठित है। कल धोखा देना अपमानजनक था, ग्लानि पैदा होती थी; आज जो धोखा देने में जितना कुशल है, उतना ही सम्मानपूर्ण पद पर है। तो जो कल ईमानदारी से मिलता था, आज बेईमानी से मिलता हो, लाभ जिनकी दृष्टि में है, वे नीति से अनीति पर सरक जाएंगे।

लाओत्से इस नीति को क्षुद्र आचरण कहता है। हम दो शब्द जानते हैंः आचरण, अनाचरण; नीति, अनीति। लाओत्से एक नया शब्द प्रवेश करवाता है। वह कहता है, आचरण जिसे तुम कहते हो, अनाचरण तुम जिसे कहते हो, उनमें कोई गुणात्मक भेद नहीं है। वह एक दो नए शब्द निर्मित करता है। वह कहता है, परम आचरण और क्षुद्र आचरण। अनाचरण की तो लाओत्से बात ही नहीं करता; क्योंकि क्षुद्र आचरण अनाचरण का ही एक रूप है। आचरण के दो विभाग करता हैः परम आचरण और क्षुद्र आचरण। क्षुद्र आचरण को आचरण कहना नाम मात्र के लिए है। जहां नैतिकता स्वयं ही लक्ष्य है, जहां सत्य अपने में ही आनंद है, और ईमानदारी स्वयं ही मूल्यवान है। उससे कुछ मिलेगा, नहीं मिलेगा, खो जाएगा, ये बातें इररेलेवेंट हैं, असंगत हैं।

मैं सैकड़ों लोगों को जानता हूं। न मालूम कितनी बार कितने लोगों ने मुझे आकर कहा है कि हम नीति से जीवन चला रहे हैं, लेकिन फल क्या है? और जो अनीति से चला रहे हैं, वे सब कुछ पा रहे हैं, सब कुछ उनका है।

यह व्यक्ति क्षुद्र आचरण वाला व्यक्ति होगा। नहीं तो यह सवाल ही नहीं उठना चाहिए कि हम नैतिक जीवन चला रहे हैं तो हमें मिल क्या रहा है! इस आदमी के मन में भी पाना तो वही है जो अनैतिक आचरण से मिल रहा है, लेकिन यह नैतिक आचरण से पाने की कोशिश में पड़ा है। यह सिर्फ समय के बाहर है। इसको पता नहीं है कि वक्त बदल गया। जो पहले नीति से मिलता था, अब अनीति से मिल रहा है। इसको जरा वक्त लगेगा, इसकी बुद्धि थोड़ी कमजोर है। यह नैतिक नहीं है, सिर्फ पिछड़ा हुआ है, बैकवर्ड है। सारी दुनिया समझ गई कि अब स्वर्ग ईमानदारी से नहीं मिलता; इसको अभी इसकी खबर नहीं मिली है। यह सोचता है... ।

इसके सोचने का ढंग, इसकी भाषा, इसके मापदंड वही हैं, जो अनैतिक आदमी के हैं। अनैतिक आदमी ने बड़ा मकान बना लिया, यह भी बड़ा मकान बनाना चाहता है नीति के द्वारा। इसलिए पीड़ित हो रहा है कि मैं झोपड़े में पड़ा हूं और बेईमान बड़े मकान बना रहा है। और मैं गांव में पड़ा हूं और बेईमान राजधानी में निवास कर रहा है। इसको जो पीड़ा हो रही है, वह पीड़ा इसके क्षुद्र आचरण का सबूत है। वह यह कह रही है कि चाहते तो हम भी यही थे; लेकिन इतना हममें साहस नहीं कि हम बेईमानी कर सकें, इतना हममें साहस नहीं कि हम झूठ बोल सकें, तो हम पुरानी नीति से चिपके हुए हैं। लेकिन अनैतिक को जो मिल रहा है, वह हमें भी मिलना चाहिए। तो ऐसा नैतिक आदमी निरंतर भगवान को दोष देता रहता है। वह कहता है, कैसी है तेरी दुनिया, कोई न्याय दिखाई नहीं पड़ता! इससे भगवान का कोई संबंध नहीं है; न्याय का कोई संबंध नहीं है। क्षुद्र आचरण है।

परम आचरण का अर्थ है कि लाओत्से भूखा भी मर रहा हो और बेईमान सारी दुनिया को भी जीत ले तो भी लाओत्से के मन में यह सवाल न उठेगा, यह तुलना न उठेगी कि तेरे पास सारी दुनिया और मेरे पास कुछ भी नहीं। नहीं, लाओत्से तो फिर भी कहेगा कि तू दया का पात्र है; मेरे पास सब कुछ है और तेरे पास कुछ भी नहीं।

लाओत्से के मन में, वे जो अनैतिक रूप से सफल हो रहे हैं, दया के पात्र होंगे, तुलना के पात्र नहीं। ईर्ष्या लाओत्से के मन में पैदा नहीं होगी।

सिकंदर भारत आता है, डायोजनीज से मिलता है। वह नंगा पड़ा है। सिकंदर डायोजनीज को कहता है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ करना चाहता हूं। डायोजनीज खिलखिला कर हंसता है और वह कहता है, तुम अपने लिए ही कुछ कर लो तो काफी है। और तुम मेरे लिए क्या करोगे; क्योंकि मेरी कोई जरूरत न रही। मेरी कोई जरूरत न रही; तुम मेरे लिए क्या करोगे!

उस दिन सिकंदर को लगा पहली दफा कि वह अपने से बड़े सम्राट से मिल रहा है। सिकंदर सम्राटों से मिलने का आदी था। यह नंगा फकीर था डायोजनीज, रेत पर नंगा पड़ा था। पहली दफा सिकंदर को लगा कि वह एकदम फीका हो गया किसी आदमी के सामने, जिससे उसने कहा था कि मैं तुम्हारे लिए क्या करूं, बोलो! और वह सब कुछ कर सकता था--हमारी भाषा में। डायोजनीज कहता कि एक महल, तो एक महल बन जाता। डायोजनीज जो भी कहता, वह हो जाता। सब कुछ सिकंदर कर सकता था। ऐसी कोई इच्छा डायोजनीज जाहिर नहीं कर सकता था, जो सिकंदर न कर पाता। लेकिन डायोजनीज का यह कहना उसे बड़ी मुश्किल में डाल गया कि तुम मेरे लिए क्या कर सकोगे, अपने लिए ही कर लो तो बहुत है। और फिर मेरी कोई जरूरत भी नहीं है; इसलिए कोई करने का सवाल नहीं है।

सिकंदर थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा। और सिकंदर ने कहा, अगर मुझे दुबारा जन्म लेने का अवसर मिले तो परमात्मा से कहूंगा, पहली च्वाइस, पहला चुनाव मेरा है कि मुझे डायोजनीज बना। डायोजनीज ने कहा कि और अगर मुझे मौका मिले तो मैं कहूंगा, मुझे कुछ भी बना देना, सिकंदर मत बनाना।

यह आदमी परम आचरण का आदमी है। सिकंदर से तुलना का तो सवाल ही नहीं उठता; दया का सवाल है। लाओत्से के इस भेद को ठीक से समझ लें तो यह सूत्र समझना आसान होगा।

क्षुद्र आचरण का अर्थ है, किसी प्रयोजन से किया गया आचरण। परम आचरण का अर्थ है, निष्प्रयोजन आचरण। यह निष्प्रयोजन आचरण ताओ से उत्पन्न होता है, स्वभाव के अनुभव से उपलब्ध होता है।

यह दूसरी बात ख्याल में लेनी पड़ेगी। जो क्षुद्र आचरण है, वह सामाजिक मान्यताओं से उत्पन्न होता है। सिखावन से, शिक्षा से, संस्कार से उपलब्ध होता है। आप जो भी आचरण कर रहे हैं, वह आपको संस्कार से उपलब्ध हुआ है। जो अनाचरण भी आप कर रहे हैं, वह भी संस्कार से उपलब्ध हुआ है। सीखा है आपने। और हमारी अड़चन यही है कि हमें दोहरे तरह के मापदंड सीखने पड़ते हैं। डबल बाइंड हमारी पूरी शिक्षा है।

बाप बेटे से कह रहा है--सच बोलना! और बेटा हजार बार जानता है कि बाप झूठ बोलता है। यही बाप, थोड़ी देर बाद घर के द्वार पर कोई दस्तक देता है, तो बेटे से कहता है--जाकर कह दो कि पिता घर पर नहीं हैं। इस बेटे की समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। लेकिन धीरे-धीरे उसकी समझ में आ जाएगा कि जिंदगी में दोहरे चेहरे जरूरी हैं। एक चेहरा, जो सिर्फ चर्चा के लिए है, विचार के लिए है, आदर्शों के लिए है, डींग हांकने के लिए है; आदर्शों का है, सुंदर है, कल्पना का है, सपने का है; उसे पूरा नहीं करना होता। और एक चेहरा है, जिसे पूरा करना होता है। वही वास्तविक है। यह जो आदर्श का चेहरा है, यह वास्तविक को छिपाने का मुखौटा है। क्योंकि वास्तविक कुरूप है, उसको सुंदर से ढांक लेना और अपने मन में माने चले जाना कि मैं सुंदर हूं। लेकिन सुंदर के साथ जीना मुश्किल है। जीने के लिए कुरूप चेहरा चाहिए।

इसलिए हर आदमी बहुत तरह के चेहरों का इंतजाम करके रखता है। और चौबीस घंटे हम अपने चेहरे बदलते रहते हैं। जब जैसी जरूरत होती है, वैसा चेहरा लगा लेते हैं। यही कुशल और सफल आदमी का लक्षण है।

यह जो दोहरी स्थिति है, आचरण-अनाचरण दोनों को एक साथ सीख लेने की, इससे प्रत्येक व्यक्ति विभाजित हो जाता है, स्प्लिट हो जाता है, टुकड़ों में बंट जाता है। उसे दोहरे तलों पर जीना पड़ता है एक साथ। दो नावों में सवार होना पड़ता है एक साथ। दो दरवाजों से निकलना पड़ता है एक साथ। पूरी जिंदगी जो तनाव से भर जाती है, उसका कुल कारण यही है कि हम एक साथ दो नावों पर सवार हैं; तनाव तो होगा ही। और नावें भी ऐसी कि एक पूरब जाती है, एक पश्चिम जाती है।

तब तो बर्नार्ड शॉ ठीक कहता है कि मैं अपने बच्चों को तभी कहूंगा कि ईमानदारी उपयोगी है, जब सारी दुनिया ईमानदार हो जाए; उसके पहले नहीं। मेरे ख्याल से वह ईमानदार है। बच्चे को यही सिखाना उचित है कि डिसआनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। एक ईमानदार बाप यही सिखाएगा। लेकिन बेईमान बाप सिखाएगा कि आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। और अपने आचरण से यह भी सिखाएगा कि तू भी अपने बच्चों को यह वचन सिखा देना, लेकिन व्यवहार कभी मत सिखाना।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है तो उसने अपने बेटे को कहा कि तुझे आखिरी शिक्षा दे देता हूं। व्यवसाय अब तू सम्हालेगा मेरा, दो सूत्र याद रखना। एक, कि वचन का सदा पालन करना। उसके बेटे ने पूछा, और दूसरा? नसरुद्दीन ने कहा, वचन किसी को कभी देना नहीं। इन दो सूत्रों का अगर तूने ख्याल रखा तो सफलता तेरी है।

ये दो सूत्र हमारे समस्त आचरण सूत्रों के साथ जुड़े हुए हैं। करना कुछ, कहना कुछ; होना कुछ, दिखलाना कुछ। जो वास्तविक हो, उसे प्रकट मत होने देना, उसे छिपाए रखना अंधेरे में; और जो वास्तविक न हो, उसे प्रकट करना। इसलिए जब दो आदमी मिलते हैं तो दो आदमी नहीं मिलते, कम से कम छह आदमी मिलते हैं। क्योंकि हर आदमी कम से कम, मिनिमम, तीन चेहरे तो रखता ही है। एक जैसा वह है, जिसका उसे भी अब पता नहीं; क्योंकि इतना लंबा समय हो गया उसका उपयोग किए कि उससे पहचान टूट गई है। एक वह, जैसा वह समझता है कि मैं हूं; जैसा कि वह नहीं है। और तीसरा वह चेहरा, जैसा वह दिखाना चाहता है हमेशा कि मैं हूं। जब दो आदमी मिलते हैं एक कमरे में तो छह आदमी मिलते हैं। अक्सर चर्चा चेहरों के बीच चलती है, आदमी तो चुप ही खड़े रहते हैं। असली आदमियों का मिलना ही नहीं हो पाता।

यह जो नैतिक व्यवस्था हम सीखते हैं खंडित व्यक्तित्व की, यह समाज से मिलती है, दूसरों से मिलती है। उधार है। लाओत्से कहता है, जो परम आचरण के सूत्र हैं, वे केवल ताओ से निष्पन्न होते हैं। ताओ का अर्थ है लाओत्से का स्वभाव से, समाज से नहीं; बाहर से नहीं, भीतर से; दूसरों से नहीं, स्वयं से।

बुद्ध भी सच बोलते हैं। महावीर भी सच बोलते हैं। हम भी सच बोलते हैं। लेकिन हमारे सच और बुद्ध के सच में भेद है। हमारा सच सीखा हुआ सच है। बुद्ध का सच सीखा हुआ सच नहीं है। हम जब सच बोलते हैं तो हमारे भीतर झूठ मौजूद होता है। इसको ठीक से समझ लें। जब हम सच बोलते हैं, हमारे भीतर झूठ मौजूद होता है। हम तौल लेते हैं--कि क्या बोलें? कौन सा फायदे का होगा? कौन सा हितकर होगा? अभी क्या उचित है? हम सदा चुन कर बोलते हैं। विकल्प हमारे सामने होता है। बुद्ध जब सच बोलते हैं, तो विकल्प सामने नहीं होता। चुन कर भी नहीं बोलते। झूठ मौजूद नहीं होता। जो भीतर होता है, वह बाहर निकल आता है। इसलिए हमारा सत्य भी झूठ से मिश्रित होता है। होगा ही। और हम सत्य भी इस ढंग से बोलते हैं कि उससे हम झूठ का ही काम ले लें। और हम सच इस ढंग से भी बोलते हैं कि हम उससे भी हिंसा का काम ले लें। हम सच इस ढंग से

बोलते हैं कि हम उससे भी किसी की छाती में छुरा भोंक दें। कई बार तो ऐसा लगता है कि हमारे सच बोलने से बेहतर होता कि हम झूठ ही बोलते। क्योंकि हमारे झूठ में कभी-कभी मलहम भी होती है; हमारे सच में छुरा ही होता है। नजर हमारी सच बोलने की कम होती है, चोट करने की ज्यादा होती है। चूंकि सच खूब चोट करता है, इसलिए हम सच बोलते हैं।

बर्नार्ड शॉ ने लिखा है एक पत्र में कि अगर लोगों को चोट पहुंचानी हो तो सच बोलने से ज्यादा कारगर दूसरा कोई उपाय नहीं है। किसी की अगर बिल्कुल जड़ें ही काट देनी हों तो सच बोलने से ज्यादा और सुविधापूर्ण कोई शस्त्र नहीं है।

हम सच का भी उपयोग झूठ की तरह करते हैं। झूठ का मतलब? हम उससे भी हिंसा ही करते हैं, उससे भी हम दूसरे को नुकसान और अपने को लाभ पहुंचाते हैं। वह हमारे लिए व्यवसाय का हिस्सा है। बुद्ध सच बोलते हैं तो कोई चुनाव नहीं है। जो भीतर है, वह बाहर आ जाता है। कोई विकल्प नहीं है।

परम आचरण के सूत्रों का अर्थ हैः ऐसा हो जाए भीतर का हृदय कि उससे जो निकले, वह सच हो; उससे जो निकले, वह ईमानदारी हो; उससे जो निकले, वह प्रेम हो; उससे जो निकले, वह करुणा हो। करुणा निकालनी न पड़े, प्रेम निकालना न पड़े, सत्य को खींचना न पड़े। खींचा हुआ सत्य सत्य नहीं रह जाता। और चेष्टा से किया गया प्रेम नाम को ही प्रेम होता है, प्रेम नहीं रह जाता।

इसको थोड़ा प्रयोग करके देखें तो ख्याल में आएगा। सत्य के संबंध में तो मुश्किल है; क्योंकि हमारी आदत सघन हो गई है। प्रेम में प्रयोग करके देखें; कोशिश करके कभी किसी को प्रेम करके देखें। चेष्टा करें प्रेम करने की। और तब आप पाएंगे कि आपकी चेष्टा आपके सारे प्रेम को झुठला रही है। जितनी आप चेष्टा करेंगे, जितना होगा एफर्ट, उतना ही झूठा हो जाएगा प्रेम। यह भी हो सकता है कि दूसरे को आप धोखा दे दें; लेकिन अपने को धोखा न दे पाएंगे। यह भी हो सकता है कि दूसरा मान ले कि प्रेम किया गया; लेकिन आप जानेंगे कि अभिनय से ज्यादा नहीं हुआ। हां, निरंतर चेष्टा से अभिनय में कुशलता आ जाएगी। फिर शायद आप भी भूल जाएं कि जो आप कर रहे हैं, वह अभिनय है, प्रेम नहीं। प्रेम को प्रयास से लाने का कोई उपाय जगत में नहीं है।

कुछ चीजें हैं, जो प्रयास से नहीं आतीं, सहज आती हैं। जैसे रात नींद न आती हो तो कोशिश करके ले आएं। तब आपको पता चलेगा कि जितनी आप कोशिश करेंगे, नींद उतनी मुश्किल हो जाएगी। असल में अनिद्रा की बीमारी कम लोगों को होती है; प्रयास की बीमारी ज्यादा लोगों को होती है। वस्तुतः अनिद्रा से कम लोग परेशान हैं; निद्रा को प्रयास से लाने से बहुत लोग परेशान हैं। नींद का मतलब ही है कि कोई प्रयास न होगा, तब नींद आएगी। अगर आपने प्रयास किया तो आ गई होगी नींद तो भी टूट जाएगी। प्रयास तो नींद को तोड़ेगा।

लोग तरकीबें बताते हैं कि हजार तक गिनती गिन डालो रात में तो नींद आ जाएगी। हजार तक गिनती जो गिनेगा, नींद आनी तो मुश्किल है, थोड़ी-बहुत आ रही होगी, वह भी टूट जाएगी। क्योंकि हजार तक गिनती गिनने के लिए जो तनाव रखना पड़ेगा, वह नींद को तोड़ देगा। नींद प्रयास से नहीं आ सकती। जब आप सब प्रयास छोड़ देते हैं, तब नींद आती है। हां, कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि हजार की गिनती करते-करते आप इतने ऊब जाएं, इतने परेशान हो जाएं कि फिर प्रयास छोड़ कर पड़ रहें कि आए न आए--और आ जाए। वह अलग बात है। लेकिन वह हजार की गिनती से नहीं आ रही है। थकान से आ सकती है। थक गए हों, प्रयास छूट गया हो, तो नींद आ जाए। नींद स्वाभाविक है; आप जब थक गए हैं, अपने आप आ जाती है।

ठीक नींद जैसे बहुत से तत्व हैं जीवन में। और लाओत्से मानता है कि जीवन का जो परम आचरण है, वह नींद जैसा है; प्रयास जैसा नहीं है। स्वभाव से निष्पन्न होता है। तो आदमी क्या करे?

हमारी चेष्टा यह होती है कि झूठ न बोलें, कोशिश से झूठ को रोक दें, कोशिश से सच बोलें। बेईमानी का मन हो रहा हो तो भी दबा दें और ईमानदारी का व्यवहार करें, यह हमारी शिक्षा है। इससे क्षुद्र आचरण पैदा होता है। और क्षुद्र मनुष्य पैदा होते हैं। उनका आचरण हो या अनाचरण, क्षुद्रता बराबर होती है। हमारे साधु और हमारे अपराधियों में क्षुद्रता में कोई भेद नहीं होता।

कठोर लगेगी यह बात, लेकिन हमारे साधु और हमारे अपराधी में क्षुद्रता समान होती है। साधु ईमानदारी से वही पाने की कोशिश कर रहा है, जो अपराधी ने बेईमानी से पाने की कोशिश की थी। लेकिन क्षुद्रता बराबर होगी। लेकिन साधु की क्षुद्रता को हम न पहचान पाएंगे। अपराधी की क्षुद्रता हमें दिखाई पड़ जाती है। लेकिन क्षुद्रता बड़ी गहरी बात है। आप क्या करते हैं, इससे संबंध नहीं है उसका। आप क्या हैं, इससे संबंध है उसका। आप क्या करते हैं, इससे कोई संबंध नहीं है क्षुद्रता का। क्षुद्रता का संबंध, आप क्या हैं, इससे है। आप अपराधी भी हो सकते हैं, साधु भी हो सकते हैं; यह आपके करने का जगत है। लेकिन इनके भीतर क्या छिपा है? आपका बीइंग क्या है? आपकी आत्मा क्या है?

सामान्य नीति का सूत्र साफ है कि जो गलत है, उसे छोड़ो प्रयास से ही; और जो सही है, उसे पकड़ो प्रयास से ही। लाओत्से क्या कहेगा? लाओत्से कहता है, कर्म के जगत में कोई परिवर्तन कारगर नहीं है। सवाल यह नहीं है कि तुम क्या करते हो, सवाल यह है कि तुम क्या हो। इस बात की फिक्र छोड़ो कि बुरा तुमसे न हो और भला तुमसे हो; तुम इस बात की फिक्र करो, तुम इस चिंतना में पड़ो, तुम इस साधना में उतरो कि तुम क्या हो। इसे पहले, इसे पहले आ जाने दो।

जीसस से कोई पूछता है कि मैं क्या करूं? कैसे मैं जीवन के परम आनंद को उपलब्ध करूं? कैसे आएगा सत्य? कैसे आएगा धर्म? क्या है उपाय? और जीसस का वचन बहुत प्रसिद्ध है। जीसस ने कहा, तुम इन सब की फिक्र न करो, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम ऑफ गॉड एंड आल एल्स शैल फालो। पहले तुम प्रभु का राज्य खोज लो और फिर सब अपने से चला आएगा, फिर सब पीछे-पीछे चला आएगा, छाया की भांति चला आएगा।

जीसस के लिए प्रभु के राज्य का वही अर्थ है, जो लाओत्से के लिए ताओ का है।

बुद्ध के पास मौलुंकपुत्त गया, एक युवक। और उसने पूछा कि मैं भी भला होना चाहता हूं, मैं भी अच्छा करना चाहता हूं, क्या करूं? तो बुद्ध ने कहा, करने की तुम चिंता मत करो, पहले तुम यही खोज लो कि मौलुंकपुत्त, तुम्हारे भीतर कौन छिपा है? जिस दिन तुम उसे जान लोगे, तुम से बुरा होना बंद हो जाएगा। तुमसे बुरा होता है, यह सिर्फ लक्षण है, सिंपटम है, बीमारी नहीं है।

इसको हम ठीक से समझ लें। आप से बेईमानी होती है, चोरी होती है, हिंसा होती है, कठोरता होती है। यह बीमारी नहीं है, यह सिर्फ लक्षण है। यह इस बात की खबर है कि अभी तक आपका अपने से संबंध नहीं हो पाया।

एक आदमी को बुखार चढ़ गया। बुखार कोई बीमारी नहीं है। शरीर उत्तप्त हो गया। उत्तप्त हो जाना कोई बीमारी नहीं है; केवल लक्षण है। शरीर में कुछ हो रहा है, कोई गहन बीमारी, शरीर के भीतर कोई संघर्ष, कोई उत्पात खड़ा हो गया है। उस उत्पात के कारण सारा शरीर उत्तप्त हो गया है।

यह जो उत्तप्त हो जाना है, यह केवल बीमारी की खबर है। इसलिए आप भूल कर ऐसा मत करना कि किसी का शरीर गर्म है तो ठंडा पानी डाल कर उसका शरीर ठंडा कर दें, तो ठीक हो जाए। बीमारी तो शायद

ही मिटे, बीमार मिट भी सकता है। क्योंकि आप लक्षण को, सिंपटम को बीमारी समझ रहे हैं। और यह अच्छी बात है कि शरीर पर बुखार आता है। यह स्वस्थ शरीर का लक्षण है।

जब मैं कहता हूं कि यह स्वस्थ शरीर का लक्षण है तो मेरा मतलब समझ लें। भीतर कुछ उपद्रव हो रहा है, स्वस्थ शरीर तत्काल उसकी खबर देगा। बीमार शरीर देर से खबर देगा। क्योंकि खबर देने के लिए स्वस्थ होना जरूरी है। शरीर में जरा सी गड़बड़ होगी तो जितना स्वस्थ शरीर होगा, उतने तत्काल लक्षण प्रकट हो जाएंगे। जितना अस्वस्थ शरीर होगा, उतना संचार में बाधा पड़ेगी। जितना स्वस्थ शरीर होगा, उतना पारदर्शी होगा। कुछ भी, जरा सी गड़बड़ भीतर होगी, शरीर का रोआं-रोआं उसकी खबर देने लगेगा। यह खबर देना बहुत आवश्यक है। यह बीमारी के खिलाफ है खबर। जब आपका शरीर गर्म होता है, फीवरिश हो जाता है, तो बुखार बीमारी नहीं है, बुखार केवल आपके शरीर के द्वारा दी गई सूचना है कि भीतर बीमारी है। जो बुखार को मिटाने में लग जाए, वह पागल है। बीमारी को मिटा देना चाहिए, बुखार अपने से तिरोहित हो जाएगा।

लेकिन मनुष्य के गहन अंतस-जगत में हम यही कर रहे हैं। एक आदमी बेईमान है तो हम उसकी बेईमानी मिटाने में लग जाते हैं। एक आदमी चोर है तो हम उसकी चोरी मिटाने में लग जाते हैं। एक आदमी झूठ बोलता है तो हम उसका झूठ बोलना मिटाने में लग जाते हैं। बिना इसकी फिक्र किए कि एक आदमी झूठ बोलता है, चोरी करता है, बेईमान है, क्यों?

लाओत्से कहता है, बुद्ध कहते हैं, वही व्यक्ति अनैतिक होता है, जिसका अपने से कोई संबंध नहीं। इसे हम उनकी भाषा में कहें तो अनैतिक वही व्यक्ति होता है, जो धार्मिक नहीं है। धार्मिक का मतलब हुआ, जिसका अपने से संबंध है। इसलिए अनैतिकता केवल हमारे अधार्मिक होने की सूचना है, लक्षण है। उन लक्षणों को बदलने से कुछ भी न होगा। क्योंकि जब कोई लक्षण बदलने में लगता है तो बड़ी जटिलताएं पैदा होती हैं। अगर एक बीमारी का लक्षण प्रकट हुआ, आपने उसको दबा दिया, तो दूसरी बीमारी की शक्ल में प्रकट होना शुरू होगा। वहां से दबाएंगे, तीसरी तरफ से शुरू होगा। और ध्यान रखें, हर बार दबाई हुई बीमारी गहन हो जाएगी और शरीर के और ज्यादा तंतुओं में फैल जाएगी। धीरे-धीरे यह हो सकता है कि एक बीमारी हजार बीमारियां बन जाए।

बीमारी जब खबर देती है, तो कारण की तलाश होनी चाहिए। एक आदमी बेईमान है। साफ बात है कि इस आदमी को ईमानदार होने का कोई अनुभव नहीं है, कोई आनंद नहीं है। इसीलिए ईमानदारी को बेच पाता है, दो पैसे में बेच देता है।

कहते हैं, जीसस को जुदास ने तीस रुपयों में बेच दिया। जुदास जीसस का शिष्य है और तीस रुपयों में उसने यहूदियों के हाथ बेच दिया, जहां उनको सूली लग गई।

एक बात पक्की है कि जुदास जीसस का मूल्य नहीं समझ पाया; या तीस रुपए की ही कीमत समझ पाया होगा। जीसस क्या हैं, जुदास को इसकी कोई खबर नहीं हो पाई। तभी उसने तीस रुपए में बेच दिया।

लेकिन जीसस के मर जाने के बाद उसको पहली दफा खबर मिली। वह भी उस भीड़ में छिपा हुआ खड़ा था, जहां जीसस को सूली हुई। सूली पर चढ़े हुए जीसस को जब जुदास ने देखा, तब उसे पहली दफा दिखाई पड़ा यह आदमी कौन है। और जब जीसस ने कहा कि हे परमात्मा, इन सब लोगों को क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं, तब जुदास के भीतर कोई क्रांति घटित हो गई। उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक गई होगी। जिस आदमी को उसने तीस रुपए में बेच दिया, सूली पर लटका हुआ, मृत्यु के कगार पर खड़ा, हाथ में खीले ठुंके, मरता हुआ वह आदमी, जो उसे मार रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं, गालियां बक रहे हैं, उन

लोगों के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हैः हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना; क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं; इसलिए ये कसूरवार नहीं हैं। कसूर तो उसका होता है, जो जानता हो और करता हो। इन्हें तो कुछ पता ही नहीं है कि ये क्या कर रहे हैं; इनको क्षमा कर देना।

जुदास की पूरी कहानी लोगों को पता नहीं है; क्योंकि जीसस की मृत्यु इतनी बड़ी घटना हो गई कि फिर और सब बातें फीकी पड़ गईं। जीसस के मरने के दूसरे दिन जुदास ने आत्महत्या कर ली। यह दूसरी बात ख्याल में नहीं है। इसकी ज्यादा चर्चा भी नहीं होती। इतनी बड़ी घटना थी जीसस की सूली कि फिर सब फीका पड़ गया। लेकिन जुदास ने आत्महत्या कर ली पश्चात्ताप में। यह आदमी, जिसने तीस रुपए में बेचा था, इतनी पीड़ा से भर गया! इसे पता चला पहली दफे कि इसने हीरा बेच दिया है तीस रुपए में--जिसका कोई मूल्य नहीं था, जो अमूल्य था। सारे जगत की संपत्ति भी एक तरफ रखते तराजू पर, तो भी वह तराजू का पलड़ा इसको ऊंचा नहीं उठा पाता, फिर भी यह वजनी होता। यह मैंने क्या कर दिया? और इस आदमी ने मरते वक्त भी यही कहा कि माफ कर देना इन सब को!

हम भी जब बेईमानी करते हैं--और दो पैसे के लिए बेईमानी करते हैं--तो हमें पता नहीं कि हम दो पैसे में भीतर की आत्मा को बेच रहे हैं। यह कोई जीसस को बेचने से कम मामला नहीं है। तब आप जुदास हैं और जीसस को बेच रहे हैं। तब आपको पता चलेगा कि जुदास ने भी भूल नहीं की, तीस रुपए काफी होते हैं--चांदी के थे; और असली चांदी थी। तीस रुपए आपको भी मिलें असली चांदी के, आप भी बेचने को तैयार हैं।

यह कोई जीसस का बिकना एक दिन घट गई घटना नहीं है; हर आदमी की जिंदगी में यह रोज घटती है। यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है कि घट गई और समाप्त हो गई। हम रोज ही जीसस को बेचते हैं। वह जो हमारे भीतर निर्दोष आत्मा है, उसे हम कौड़ियों में रोज बेच देते हैं। लेकिन बेचते हैं तो उसका मतलब इतना ही है कि हमें पता ही नहीं है कि भीतर क्या है। उसका पता हो तो यह बेचना असंभव हो जाए।

इसलिए लाओत्से कहेगा कि जीवन के जो परम आचरण के सूत्र हैं, वे ताओ से ही उदभूत होते हैं। जब तक कोई स्वयं को न जान ले, निजता को न जान ले, स्वभाव को न जान ले, तब तक उसकी नैतिकता का कोई भी--कोई भी--मूल्य नहीं है।

"परम आचार के जो सूत्र हैं, वे केवल ताओ से ही उदभूत होते हैं। और जिस तत्व को हम कहते हैं ताओ, वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य।"

और जिसे हम कहते हैं स्वभाव, अड़चन है बहुत उसे पाने में, कठिनाई है बहुत। पहली तो कठिनाई यह है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते। कुछ चीजें हैं--जैसा मैंने कहा, कुछ चीजें हैं, जो प्रयास से नहीं आतीं--कुछ चीजें हैं, जो पकड़ से छूट जाती हैं। कुछ चीजें हैं, जो पकड़ से हाथ में आती हैं; कुछ हैं, जो पकड़ से छूट जाती हैं।

यह मेरी मुट्ठी खुली है। तो इस मेरी खुली मुट्ठी में हवा भरी है। और इस मुट्ठी को मैं बंद करता हूं, हवा बाहर हो जाती है। मुट्ठी खुली होती है तो भरी होती है और बंद होती है तो खाली हो जाती है। बड़ी उलटी बात है। कोशिश तो मैं करता हूं कि मुट्ठी को बांध लूं तो हवा मेरे हाथ में बंद हो जाए; लेकिन जितने जोर से मैं बांधता हूं, उतनी ही हवा मेरे हाथ के बाहर हो जाती है। हवा दुर्ग्राह्य है, पकड़ के बाहर है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हवा है नहीं। हवा यहां और अभी है। जिसको हवा को पकड़ने का पागलपन आ गया, उसके लिए कठिन हो जाएगा। और जिसने यह राज समझ लिया कि मुट्ठी खुली हो तो हवा हाथ में होती है, जिसको यह समझ में आ गया कि पकड़ छोड़ दो तो पकड़ में आ जाती है, फिर उसके लिए दुर्ग्राह्य नहीं है।

लाओत्से कहता है, ताओ है दुर्ग्राह्य, पकड़ के बाहर। इसका यह मतलब नहीं समझना कि पकड़ नहीं सकेंगे हम उसे। उसके पकड़ने का सूत्र है यह। अगर उसे पकड़ना चाहते हैं तो पकड़ना मत, पकड़ने की कोशिश मत करना। और वह तुम्हारी पकड़ में होगा। और तुमने पकड़ने की कोशिश की, तुम उसके पीछे भागे, वह तुम्हारे हाथ के बाहर हो जाएगा। इसका मतलब यह हुआ कि नॉन-क्लिंगिंग, पकड़ना नहीं, यही उसका सूत्र है।

हम सभी चीजों को पकड़ते हैं। संसार में बिना पकड़े कोई उपाय भी नहीं है। संसार में जो भी पाना हो, पकड़ना पड़ेगा। धन पाना हो, धन पकड़ना पड़ेगा। यश पाना हो, यश पकड़ना पड़ेगा। और जोर से पकड़ना पड़ेगा। अगर आप एक कुर्सी पर बैठे हैं तो इतने जोर से पकड़ना पड़ेगा जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि कई लोग आपकी टांग नीचे से खींच रहे होंगे; क्योंकि उन्हें भी कुर्सी पर होना है।

इसलिए कुर्सी पर जो होता है, उसका ज्यादा से ज्यादा समय कुर्सी पकड़ने में व्यतीत होता है। वह पकड़े रहे। और यह इकहरा काम नहीं है, यह दोहरा काम है--कि अगर अपनी कुर्सी पकड़े रखना है तो ऊपर वाली कुर्सी के पैर को आपको खींचते रहना चाहिए। नीचे जो आपका पैर खींच रहे हैं उनसे बचाव करना चाहिए और ऊपर जो आपसे बचने की कोशिश कर रहे हैं उनका पैर जोर से पकड़े रहना चाहिए; तब आप अपनी कुर्सी पर रह सकते हैं। यह बड़ा डायनामिक प्रोसेस है। यह कोई थिर घटना नहीं है; यह एक प्रक्रिया है, जो चौबीस घंटे जारी रहती है, सोते-जागते।

अगर आप मिनिस्टर हैं तो डिप्टी मिनिस्टर आपके पैर से झूमे रहेंगे; और आप चीफ मिनिस्टर का पैर पकड़े रहेंगे। इस खींचमखांच में आप अपनी कुर्सी भी बचा सकते हैं, और अगर बहुत शोरगुल और बहुत उपद्रव मचाएं तो आगे की कुर्सी पर भी जा सकते हैं। और अगर जरा सुस्ती हो जाए और हाथ छूट जाए तो चारों खाने चित्त नीचे भी पड़ सकते हैं।

अगर जगत में हम देखें तो हम सब पकड़े हुए हैं। और ऐसा नहीं कि यह पकड़ सूक्ष्म है।

हम यहां इतने लोग बैठे हुए हैं। किसी को यह ख्याल नहीं हो सकता कि सब के हाथ एक-दूसरे की जेब में हैं। लेकिन हैं। अगर हम सारी दुनिया की भीतरी व्यवस्था पर नजर डालें, भीतरी इकोनामिक्स पर नजर डालें, तो हर आदमी का हाथ दूसरे की जेब में मिलेगा। मिलेगा ही। और जो बहुत कुशल हैं, वे एक हाथ की जगह हजार हाथ कर लेते हैं, हजार हाथ हजार जेबों में डाल देते हैं। जिसके जितने ज्यादा हाथ हैं, जितनी जेबों में डाल सकता है, जितनी जेबों को पकड़ सकता है, उतना धन उसके पास होगा।

चेस्टरटन एक दिन बगीचे में घूमता था, एक नाटककार। मित्र एक साथ था। चेस्टरटन की सदा आदत थी--अपने खीसों में हाथ डाल कर घूमना। मित्र ने पूछा कि क्या कभी ऐसा भी हो सकता है कि एक आदमी जिंदगी भर अपने खीसों में हाथ डाले बिता दे। चेस्टरटन ने कहा, हो सकता है। हाथ अपने होने चाहिए, जेब दूसरों की। अपनी ही जेब में हाथ डाले जिंदगी बितानी बहुत मुश्किल है।

हम सब के हाथ दूसरों की जेब में फैले होते हैं। आर्थिक संरचना यही है। इसमें जो ढीला करेगा, छोड़ेगा; उसके हाथ से सब छूट जाएगा। स्वभावतः, जिंदगी में सब चीजें पकड़ने से मिलती हैं। तो हम सबको ख्याल होता है कि परमात्मा भी पकड़ने से मिलेगा, आत्मा भी पकड़ने से मिलेगी, ताओ भी पकड़ने से मिलेगा। वहीं तर्क की भूल हो जाती है। बाहर जो भी पाना हो, पकड़ने से मिलेगा। क्योंकि बाहर जो भी है, उसमें कुछ भी आपका नहीं है। जो दूसरे का है, उसकी छीना-झपटी करनी ही पड़ेगी। पकड़ कर रखना पड़ेगा। और तब भी ध्यान रखना, कितना ही पकड़ो, आज नहीं कल छूट जाएगा। मिलेगा पकड़ने से, क्योंकि आपका नहीं है; फिर भी छूट जाएगा। कम से कम मौत तो आपकी मुट्ठी को खोल ही देगी। बाहर पकड़ने से ही मिलेगा।

भीतर सूत्र उलटा हो जाता है। वहां तो जो है, वह हमारा है ही। उसे हम न भी पकड़ें तो भी हमारा है। उसे हम न भी पकड़ें तो भी छूटेगा नहीं। स्वभाव का अर्थ होता है, जिसका हमसे अलग होने का कोई उपाय नहीं है। स्वभाव का अर्थ होता है मौत भी जिसे हमसे अलग न कर सकेगी। जिसका हमसे अलग होने का उपाय नहीं है, जो हम हैं। तो उसे पकड़ने के पागलपन में नहीं पड़ना। उसे पकड़ने की जरूरत ही नहीं है। अगर यह पकड़ने की आदत को लेकर कोई भीतर चला जाए और आत्मा को पकड़ने लग जाए, तो कठिनाई में पड़ता है।

अंग्रेज विचारक ह्यूम ने कहा है कि सुन-सुन कर, पढ़-पढ़ कर बहुत लोगों की बातें कि आत्मा को जानो, नो दायसेल्फ, एक दिन मुझे भी हुआ कि मैं भी देखूं यह आत्मा क्या है। गया भीतर, बड़ी पकड़ने की कोशिश की, बड़ा दौड़ा, सब उपाय किए, सब तरह के व्यायाम लगाए भीतर, लेकिन आत्मा बिल्कुल पकड़ में नहीं आई। पकड़ में दूसरी चीजें आईं; कहीं कोई विचार पकड़ में आया; कहीं कोई भाव पकड़ में आया; कहीं कोई वासना पकड़ में आई; कहीं कोई इच्छा पकड़ में आई। आत्मा बिल्कुल पकड़ में नहीं आई। स्वभावतः, ह्यूम विचारक था, तर्कवादी था, उसने अपनी डायरी में लिखाः जो चीज पकड़ में नहीं आती, वह नहीं है। होने का सबूत है पकड़ में आना।

लाओत्से को अगर ह्यूम मिलता तो लाओत्से कहता, तुम उसे पकड़ने गए थे, और तुम ही हो वही! तुम पकड़ते कैसे? तुम जो भी पकड़ोगे, वह कुछ और होगा, आत्मा नहीं होगी। पकड़ने वाला ही आत्मा है; पकड़ी जाने वाली चीज नहीं।

मैं अपने इस हाथ से सब कुछ पकड़ सकता हूं, सिर्फ इस हाथ को छोड़ कर। इस हाथ को मैं इसी हाथ से नहीं पकड़ सकता हूं, और सब कुछ पकड़ सकता हूं। मेरी आंख से मैं सब देख सकता हूं, सिर्फ इसी आंख को नहीं देख सकता हूं। आत्मा सब कुछ पकड़ सकती है, सिर्फ स्वयं को नहीं पकड़ सकती।

इसलिए लाओत्से कहता है, पकड़ के बाहर, दुर्ग्राह्य है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम हताश हो जाएं। यह सिर्फ समझ लेने की बात है कि पकड़ने की गलत आदत भीतर नहीं ले जानी है; नहीं तो ह्यूम जैसा होगा। भीतर छोड़ने की आदत काम आती है। इसलिए महावीर, बुद्ध, मोहम्मद त्याग पर इतना जोर देते हैं। ध्यान रखना लेकिन, उनके त्याग का वह मतलब नहीं है, जो आपका है। त्याग का मतलब छोड़ने पर इतना जोर देते हैं। इस सूत्र से समझिए तो ख्याल में आ जाएगा। पकड़ने से आत्मा पकड़ में नहीं आती; त्यागने से पकड़ में आती है। लेकिन पकड़ की आदत है हमारी। इस आदत को अगर हम भीतर भी ले गए तो मुसीबत में पड़ेंगे। यह आदत भीतर मत ले जाना। इसलिए महावीर ने कहा कि त्याग पहला सूत्र है--अगर तुम्हें उसे जानना है, जो भीतर है।

लेकिन त्याग से हम क्या मतलब समझते हैं? हमारा मतलब यह होता है कि एक आदमी ने कुछ रुपए का त्याग कर दिया। पूछो उस आदमी से, किसलिए किया त्याग? तो वह कहता है कि संसार में आए हैं तो कुछ तो उपाय कर लें आगे के लिए। तो वह कहता है, जिंदगी ऐसे ही चली जा रही है; आज नहीं कल मरना होगा, मरने के बाद के लिए भी कुछ इंतजाम जरूरी है। वह आदमी जो कुछ भी कहेगा, उसमें आपको दिखाई पड़ जाएगा कि उसने रुपए छोड़े नहीं हैं, इनवेस्ट किए हैं। इनवेस्टमेंट त्याग नहीं है। वह तो नियोजन करना है संपत्ति को, और ज्यादा बड़ा करने के लिए। उस पर ब्याज भी मिलेगा, लाभ भी मिलेगा। और लंबा मामला है; प्लानिंग उसकी बड़ी है। सरकारें तो पांच-पांच साल की योजनाएं बनाती हैं; लोग जन्मों-जन्मों की प्लानिंग करते हैं। स्वर्ग तक फैलाते हैं, मोक्ष तक फैलाते हैं अपनी योजना को। यहां जमीन पर बैठे-बैठे मोक्ष में भी धंधा करते हैं। इसे हम अगर त्याग कहते हों तो गलती है। इससे त्याग का कोई संबंध नहीं है।

त्याग का मतलब है छोड़ने की वृत्ति, छोड़ने की समझ। और जब कोई किसी लिए छोड़ता है, छोड़ता ही नहीं है। त्याग किसी लिए, त्याग ही नहीं है। त्याग का मतलब है सिर्फ छोड़ने की कला। निष्प्रयोजन है। पकड़ कर देख लिया, बहुत कुछ पकड़ में नहीं आता। छोड़ कर देखते हैं कि छोड़ने से क्या आता है। दौड़ कर देख लिया बहुत, अब रुक कर देखते हैं कि रुक कर क्या आता है। बांध कर देख लिया बहुत, अब छोड़ कर देखते हैं कि क्या आता है। त्याग पकड़ने की आदत का एंटीडोट है। वह जो पकड़ने की आदत है, उसको विसर्जित करने की विधि है। त्याग का कोई परिणाम नहीं है; त्याग का कोई लाभ नहीं है। त्याग तो केवल पकड़ने की जो गलत आदत है, उसका विसर्जन है। लेकिन त्याग का अनुभव होते ही, वह जो पकड़ में नहीं आता, तत्काल पकड़ में आ जाता है। वह जो मुट्ठी बंद थी, पता नहीं चलता था, खुलते ही सारा आकाश मुट्ठी में आ जाता है।

तो लाओत्से कहता है, "जिस तत्व को कहते हैं हम ताओ, वह है पकड़ के बाहर और दुर्ग्राह्य। दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, यद्यपि उसमें ही छिपे हैं सब रूप।"

दूर है बहुत, लेकिन पास भी बहुत है। पकड़ में नहीं आता, फिर भी सभी रूप उसमें ही छिपे हैं। जो भी दिखाई पड़ रहा है, उसका ही रूपांतरण है। जो भी आकृतियां हैं, उसका ही खेल हैं।

"दुर्ग्राह्य और पकड़ के बाहर, तथापि उसमें ही समस्त विषय निहित हैं। अंधेरा और धुंधला, फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में।"

अंधेरा और धुंधला! जिनको बाहर देखने की गहन आदत पड़ गई है, भीतर जाकर उन्हें पहले अंधेरा ही दिखाई पड़ेगा। इस प्रतीक के कई अर्थ हैं, वे ख्याल में ले लेने चाहिए।

एक, अगर आप अपने घर के बाहर दोपहरी में बहुत देर रह गए हैं, तो घर में प्रवेश करते ही आपको अंधेरा मिलेगा। अंधेरा वहां है नहीं। आपकी आंखें नियोजित होने में, एडजस्ट होने में थोड़ा समय लेंगी। और अगर आपकी आंखों का फोकस बिल्कुल ही ठहर गया है बाहर के लिए ही तो फिर घर में अंधेरा ही रहेगा। आंख तो पूरे वक्त अपना फोकस बदल रही है। आंख तो एक चलित व्यवस्था है। पूरे समय प्रकाश ज्यादा है तो आंख छोटी हो जाती है; प्रकाश कम है तो आंख बड़ी हो जाती है। आंख पूरे समय समायोजन कर रही है जगत के साथ। अगर आप सूरज की तरफ बहुत देर देखते रहें तो आंख इतनी छोटी हो जाती है कि जब आप भीतर आएंगे कमरे के तो बिल्कुल अंधेरा मालूम पड़ेगा। सूरज की तरफ अगर कोई बहुत ज्यादा देखता रहे तो अंधा भी हो सकता है। अंधे का अर्थ कि उसकी आंख का फोकस अगर जड़ हो जाए... । क्योंकि तंतु बहुत कोमल हैं, सूरज बहुत कठोर है। अगर उन पर बहुत देर अभ्यास किया जाए सूरज को देखने का, तो तंतु सिकुड़ भी सकते हैं, जल भी जा सकते हैं। फिर घर के भीतर अंधेरा ही रहेगा।

अंधेरा, अगर हम ठीक से समझें तो आंख की गत्यात्मकता पर निर्भर है। जिसको हम अंधेरा कहते हैं, उसमें भी कुछ पशु हैं, पक्षी हैं, जो बराबर देखते हैं। उनकी आंख हमसे ज्यादा गत्यात्मक है। उनकी आंख हमसे ज्यादा सरलता से तरल है। वे अंधेरे में भी देख पाते हैं। अंधेरा आंख पर निर्भर करता है। एक बात ठीक से समझ लें, अंधेरा और प्रकाश आंख पर निर्भर करते हैं।

लाओत्से कहता है, अंधेरा और धुंधला! क्योंकि जो जन्मों-जन्मों तक बाहर भटके हैं और जिनकी आंख का फोकस ठहर गया है बाहर के लिए, जिन्होंने भीतर कभी झांक कर नहीं देखा, जब पहली बार झांक कर देखेंगे तो घुप्प अंधेरा पाएंगे।

इसलिए जो लोग भी गहरे ध्यान में जाते हैं, वे लोग एक न एक दिन घबड़ा कर बाहर लौट आते हैं। इतना घनघोर अंधेरा मिलता है कि भय हो जाता है। और किताबों में लिखी हुई है दूसरी ही बात। किताबों में

लिखा है कि महान प्रकाश वहां होगा। यह पढ़ा हुआ है कि महान प्रकाश वहां होगा। और जब भीतर जाते हैं, पाते हैं अंधेरा। तो लगता है, भटक जाएंगे; निकलो बाहर। घबड़ाहट होती है। और बाहर का अंधेरा इतना अंधेरा नहीं मालूम होता, जितना भीतर का अंधेरा अंधेरा मालूम होगा। अपरिचित लोक है बिल्कुल, आंख की बिल्कुल क्षमता वहां देखने की रही नहीं है। फिर बाहर तो अंधेरा कितना ही हो, पता है हमें कि कोई न कोई और बहुत लोग मौजूद हैं। भीतर के अंधेरे में तो आप बिल्कुल अकेले रह जाते हैं। वहां कोई भी मौजूद नहीं है। अकेलेपन का डर भी पकड़ता है। अंधेरा भी घबड़ाता है। घबड़ाहट में बाहर आ जाता है आदमी।

लाओत्से कहता है, भीतर है अंधेरा, धुंधला। यह जो, यह जो अंधेरा है, यह विरोध नहीं है उन सूत्रों का, जिन्होंने कहा है कि भीतर परम प्रकाश है। भीतर तो परम प्रकाश है। लेकिन उस परम प्रकाश को देखने की आंख धीरे-धीरे, धीरे-धीरे विकसित होती है; भीतर जाकर धीरे-धीरे विकसित होती है। थके-मांदे, दोपहरी में बाहर से लौटे हैं, बैठ जाते हैं दो क्षण घर में आकर; धीरे-धीरे, धीरे-धीरे अंधेरा कम हो जाता है, घर प्रकाशित मालूम होने लगता है।

कभी रात के अंधेरे में उठ आएं और शांति से अंधेरे को देखते रहें तो एक चमत्कार दिखाई पड़ेगा। जैसे-जैसे शांति से अंधेरे को देखेंगे, अंधेरा कम होने लगेगा। अगर देखते ही रहें अंधेरे में तो आपके पास चोर की आंखें उपलब्ध हो जाएंगी। चोर धीरे-धीरे अंधेरे में देखते-देखते हमसे ज्यादा अंधेरे में देखने लगता है। आंख का अभ्यास हो जाता है। तो आपके घर में आपको दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन उसे दिखाई पड़ता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुस गए। उसकी पत्नी ने उसे जगाया और कहा, नसरुद्दीन, उठो, चोर मालूम होते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, शांत भी रहो, हमें तो जिंदगी भर इस घर में खोजते हो गया, कुछ मिला नहीं; शायद उन्हें मिल जाए। सुना है, चोरों की आंखें अंधेरे में देख लेती हैं। शांत रहो, कहीं भाग न जाएं। और फिर यह भी हो सकता है, उन्हें कुछ न मिले; घबड़ाहट में उनके पास कुछ हो, छोड़ जाएं। शांत रहो।

ऐसी एक घटना और नसरुद्दीन के जीवन में है। एक रात अकेला ही था घर में, पत्नी भी नहीं थी, और चोर घुस गए। पत्नी थी तो उसके सामने बहादुरी बताने में आसानी थी। पत्नी बड़ी कारगर है पतियों की बहादुरी बताने के लिए। संसार में कहीं तो नहीं दिखा पाते, घर आकर पत्नी के सामने बहादुर हो जाते हैं। हालांकि मजा यह है कि चाहे कितने ही बड़े बहादुर हों, पति को पत्नी कभी बहादुर मानती नहीं। चाहे सिकंदर ही हों आप, पत्नी के सामने कुछ आपकी कीमत नहीं। लेकिन फिर यह एक समझौता है। पिटे-कुटे जिंदगी से लौटते हैं, पत्नी पर थोड़ी अकड़ बता लेते हैं; एक दुनिया निर्मित हो जाती है कि हम भी कुछ हैं।

उस दिन पत्नी भी घर में नहीं थी। मुल्ला बहुत घबड़ा गया; डर के मारे एक अलमारी में घुस गया। पीठ दरवाजे की तरफ करके छिप कर खड़ा हो गया। चोर सब जगह खोजते-खोजते आखिर अलमारी पर भी पहुंचे। अलमारी खोली, मुल्ला की पीठ दिखी। तो चोरों ने कहा, नसरुद्दीन, यह क्या कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, शर्म के कारण यहां छिपा हूं, घर में कुछ भी नहीं है। बड़ी शर्म आती है। आए हो न मालूम कितनी दूर से, घर में कुछ भी नहीं है। कुछ मिल जाए तो मुझे खबर करते जाना। खोजते हमें भी बहुत समय हो गया।

चोर को दिख सकता है अंधेरे में। हमसे तो ज्यादा दिखता है। अभ्यास से सरलता से दिखने लगता है।

भीतर का अंधेरा भी पहले आपको आंख को निर्मित करने की चुनौती है। अगर आप बाहर भाग आते हैं तो चूक जाते हैं। ईसाई साधकों ने तो उसे डार्क नाइट ऑफ दि सोल कहा है; अंधेरी रात आत्मा की। और उसको पार करने की पूरी व्यवस्था और साधनाएं बनाई हैं कि उसे कैसे पार करें। प्रकाश तो मिलेगा, लेकिन अंधेरी रात

को पार करने के बाद। सुबह होती भी नहीं है रात को बिना पार किए। कहीं सूरज निकला है बिना रात को पार किए? तो भीतर भी प्रकाश का अनुभव आता है, लेकिन रात को पार करने के बाद। एक अर्थ!

दूसरा अर्थ, जो ताओ का अपना निज है, लाओत्से का अपना निज है। लाओत्से प्रकाश से अंधेरे को ज्यादा मूल्य देता है। लाओत्से कहता है, प्रकाश तो एक उत्तेजना है, अंधेरा परम शांति है। प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। कभी ख्याल किया? प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। और प्रकाश में तो उत्तेजना है। इसीलिए तो प्रकाश हो तो रात में आप सो नहीं पाते। जितना गहन हो अंधेरा, उतना विश्राम कर पाते हैं। प्रकाश आंखों पर चोट करता रहता है। प्रकाश में थोड़ी हिंसा है, अंधेरा परम अहिंसक है।

लाओत्से कहता है कि प्रकाश तो पैदा करना पड़ता है, फिर भी बुझ-बुझ जाता है; अंधेरा शाश्वत है। उसे पैदा नहीं करना पड़ता; वह है। प्रकाश तो जलाओ--चाहे दीए का प्रकाश हो और चाहे महा सूर्यों का। सूर्य भी चुक जाते हैं, उनका ईंधन भी चुक जाता है।

वैज्ञानिक कहते हैं, हमारा यह सूर्य चार हजार साल से ज्यादा अब नहीं चलेगा। इसका ईंधन चुक रहा है। यह रोज अपनी अग्नि को फेंक रहा है। चार हजार साल में इसकी अग्नि चुक जाएगी; यह ठंडा पड़ जाएगा। अरबों-अरबों वर्ष जल चुका है। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? समय की अनंत धारा में एक दीया रात भर जलता है, एक सूरज अरबों वर्ष जलता है; लेकिन बुझ जाते हैं। प्रकाश बुझता है; अंधेरा कभी बुझता नहीं।

इसलिए लाओत्से तो कहता है कि जो परम प्रकृति है, वह प्रकाश जैसी कम और अंधेरे जैसी ज्यादा है। इस अर्थों में--शाश्वत है, अनंत है, अमृत है, निराकार और अद्वैत है। प्रकाश में भेद पैदा हो जाता है।

यहां हम इतने लोग बैठे हैं। प्रकाश है तो हम सब अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। अभी अंधकार हो जाए, सब भेद खो जाएंगे। सब भेद प्रकाश में दिखाई पड़ रहे हैं। अंधेरे में तो सब अभेद हो जाता है।

तो लाओत्से अंधेरे का और भी अर्थ लेता है साथ में; वह भी हमें ख्याल ले लेना चाहिए। वह कहता है, यह जो ताओ है, यह अंधेरा और धुंधला है। यहां चीजें साफ नहीं हैं। यहां सीमाएं बंटी हुई नहीं हैं। एक-दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं। सीमाएं थिर, ठोस नहीं हैं, तरल हैं, वायवीय हैं, तरंगित हैं। कोई सीमा बंधी हुई नहीं है। एक रूप दूसरे रूप में रूपांतरित होता रहता है। यह एक अद्वैत सागर है।

"फिर भी छिपी है जीवन-ऊर्जा उसी में।"

इस परम शांत, मौन अंधकार में ही जीवन की समस्त ऊर्जा छिपी है। जीवन की सारी शक्ति, लाइफ इनर्जी, जिसे बर्गसन ने एलान वाइटल कहा है, वह इसी अंधकार की गहन पर्त में छिपी है।

इसे हम जरा दो-तीन तरफ से समझ लें। क्योंकि लाओत्से के सारे प्रतीक अत्यंत गहन हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जीवन का जब भी जन्म होता है, तो अंधकार में होता है! चाहे एक बीज फूटता हो जमीन के गर्भ में, और चाहे एक बच्चा निर्मित होता हो मां के गर्भ में, प्रकाश में जन्म नहीं होता; सब जन्म अंधकार में होता है। एक बीज को अगर जन्माना है--छिपा दें अंधेरे में; फूटेगा। एक बच्चे को जन्माना है--वह भी बीज का छिपाना है--छिपाएं मां के अंधकार में, मां के गर्भ में, वहां प्रकाश की किरण भी नहीं पहुंचती। वहां वह बड़ा होगा, निर्मित होगा, विकसित होगा। प्रकाश में तो वह तभी आएगा, जब जो भी आधारभूत है, वह निर्मित हो चुका।

जड़ें अंधेरे में छिपी रहती हैं। निकाल लें प्रकाश में, वृक्ष मुरझा जाएगा, मर जाएगा। जड़ों का तो काम है कि वे अंधेरे में ही छिपी रहें। क्योंकि जीवन की जो गहन ऊर्जा है, वह परम अंधकार में छिपी है।

परम अंधकार का अर्थ है परम रहस्य, एब्सोल्यूट मिस्ट्री। अंधकार बहुत रहस्यपूर्ण है। प्रकाश में तो सब रहस्य खो जाता है। जिस चीज पर प्रकाश पड़ जाता है, उसी का रहस्य खो जाता है। पूरब के लोग बहुत होशियार थे, इसलिए उन्होंने जीवन की जो-जो रसपूर्ण बातें थीं, उन पर पर्दा डाल रखा था। स्त्री सुंदर थी--उतनी सुंदर नहीं, उतनी सुंदर होती ही नहीं, जितनी सुंदर थी--पर्दे के कारण। बेपर्दा होकर पश्चिम की स्त्री कुरूप हो गई। हालांकि मजे की बात यह है कि पश्चिम में आज सुंदरतम स्त्रियां हैं, जैसी पृथ्वी पर कभी भी नहीं थीं। लेकिन फिर भी कुछ बात खो गई। रहस्य खो गया। वह जो पर्दा था, वह जो घूंघट था, वह जो कुछ छिपाता था; वह छिपा हुआ रहस्यपूर्ण हो जाता था। सब उघड़ जाए, रस खो जाता है।

विज्ञान रस का बड़ा दुश्मन है--उघाड़ने में लगा रहता है। धर्म रस का बड़ा प्रेमी है--ढांकने में लगा रहता है। इसलिए लाओत्से के अंधेरे का यह अर्थ ठीक से समझ लें।

जीवन की जो गहनतम ऊर्जा है, वह अंधकार में छिपी है। और वहीं से आती है प्रकाश में; लेकिन जड़ें अंधकार में ही बनी रहती हैं। हम बाहर के जगत में फैलते जाते हैं, हमारी शाखाएं फैलती जाती हैं, पत्ते-फूल; लेकिन हमारी जड़ें अंधकार में बनी रहती हैं।

अंधकार लाओत्से के लिए वैसा प्रतीक नहीं है, जैसा हम सोचते हैं। आमतौर से हमारे मन में अंधेरा मौत का प्रतीक है, प्रकाश जीवन का। इसलिए जब कोई मर जाता है तो हम दुख में काले कपड़े पहन लेते हैं। लाओत्से से पूछें तो वह कहेगा, क्या पागलपन कर रहे हो! अंधेरा तो जीवन की ऊर्जा को छिपाए है; तुम काले कपड़े को, अंधेरे को मृत्यु के साथ जोड़ रहे हो?

हमारे मन में प्रकाश का बड़ा मूल्य है। इसलिए नहीं कि हमें पता है कि प्रकाश का कोई मूल्य है। प्रकाश का हमारे लिए मूल्य है कई कारणों से। वे कारण भी ख्याल में लें तो अंधेरे का भी मूल्य समझ में आ जाए।

एक, प्रकाश में हमें कम भय लगता है। हम भयभीत लोग हैं, डरे हुए लोग हैं। प्रकाश में कम भय लगता है। चीजें साफ-साफ मालूम होती हैं--कौन कहां है, कौन क्या कर रहा है, कौन पास आ रहा है, हाथ में छुरा लिए है कि नहीं लिए है, मित्र है कि दुश्मन है, चेहरा, आंख, ढंग, सब साफ होता है। हम सुरक्षित मालूम होते हैं। प्रकाश में हम सुरक्षित मालूम होते हैं। अंधेरे में असुरक्षित हो जाते हैं; इनसिक्योरिटी हो जाती है। अंधेरे में लगता है कि पता नहीं अब क्या हो रहा है। कुछ भी पता नहीं। अंधेरे में तो वही शांति से सो सकता है, जिसे असुरक्षा का भय न रहा। जिसे सुरक्षा का मोह है, भय है, वह अंधेरे में सो भी नहीं पाएगा।

हिटलर अपने कमरे में अपनी प्रेयसी को भी नहीं सोने देता था। क्योंकि भरोसा किसी का भी नहीं किया जा सकता। भय किसी का भी भरोसा नहीं कर सकता। और इसीलिए उसने अपनी प्रेयसी से मरने तक विवाह भी नहीं किया। क्योंकि विवाह करने के बाद वह मांग करेगी कि कम से कम इस कमरे में सोने तो दो। हिटलर ने विवाह किया--बड़ी मजेदार घटना है--मरने के आधा घंटा पहले। जब बर्लिन पर गिरने लगे बम, और जहां हिटलर छिपा था जब उसके द्वार पर युद्ध होने लगा, तब हिटलर ने अपने साथियों को कहा कि तत्काल कहीं से भी--आधी रात थी--कहीं से भी एक पुरोहित को पकड़ लाओ; कोई भी हो, चलेगा, मुझे विवाह करना है इसी वक्त। क्योंकि अब जीने का कोई उपाय नहीं है। अब मैं मरने के करीब हूं। घड़ी, आधा घड़ी में मुझे आत्महत्या करनी होगी। एक सोते हुए पादरी को जबर्दस्ती उठा कर ले आया गया। विवाह संपन्न हो गया। और हिटलर ने पहली दफा अपने सोने के कमरे में अपनी प्रेयसी को प्रवेश दिया--हत्या के लिए। और दोनों आत्महत्या करके मर गए।

भय कारण है, हमें प्रकाश अच्छा मालूम पड़ता है। अंधेरा घबड़ाहट देता है। पता नहीं, अंधेरे में कौन छिपा है? क्या हो रहा है? रात हमें डर देती है; दिन हमें अभय कर देता है। इस कारण हम प्रकाश को आदर दिए चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, लेकिन जीवन की जो गहनतम जड़ें हैं, वे अंधकार में हैं। और जब तक तुम अंधेरे में जाने के लिए तैयार नहीं हो, तब तक तुम अपने से मिल भी न सकोगे। और जब तक तुम अंधेरे में जाने का साहस नहीं जुटाते, तब तक तुम्हारी स्वयं से कोई मुलाकात न होगी। अंधेरे में कूदने की हिम्मत ही धार्मिक व्यक्ति का पहला कदम है। अंधेरे में कूदने की हिम्मत! अज्ञात, अनजान, अपरिचित में उतरने की हिम्मत!

"जीवन-ऊर्जा है बहुत सत्य, इसके प्रमाण भी उसमें ही प्रच्छन्न हैं।"

लेकिन मुझसे मत पूछो, लाओत्से कहता है, कि क्या है प्रमाण तुम्हारी इस जीवन ऊर्जा का, इस ताओ का, इस रहस्य का, जिसकी तुम बातें करते हो और जिसके लिए तुम प्रलोभित कर लेते हो और मन होने लगता है कि उतर जाएं हम भी इस अंधेरे में। क्या है प्रमाण? लाओत्से कहता है, उसका प्रमाण भी उसमें ही प्रच्छन्न है। तुम जाओ तो ही जान सकोगे। तुम जानने के पहले जानना चाहो, जाने के पहले जानना चाहो, तो कोई उपाय नहीं है।

लाओत्से जैसी हिम्मत की बात बहुत कम धार्मिक लोगों ने कही है। अगर आप साधारण साधु-संत के पास जाए, उससे पूछें कि क्या है प्रमाण ईश्वर का? तो वह दस प्रमाण देना शुरू कर देगा। हालांकि सब प्रमाण व्यर्थ हैं, कोई प्रमाण उसका है नहीं। और जरा सी बुद्धि हो तो इन साधु-संतों के प्रमाणों का खंडन करने में जरा भी अड़चन नहीं है। अब तक धार्मिक एक भी प्रमाण नहीं दे सके हैं, जिसको नास्तिकों ने ठीक से खंडित न कर दिया हो। एक भी ऐसा प्रमाण नहीं है, जिसे नास्तिक ठीक से खंडित नहीं कर देता है। और अगर ठीक बात जाननी हो तो नास्तिक ही विजेता मालूम पड़ेंगे। अगर प्रमाणों से ही ठीक बात जाननी हो! क्योंकि सारे आस्तिकों के तर्क बचकाने हैं, उनके तर्क, उनके प्रमाण, सब बचकाने हैं। नास्तिक उन्हें ऐसे हाथ के इशारे से गिरा देता है।

लेकिन वास्तविक आस्तिक ने कभी प्रमाण दिए ही नहीं हैं। क्योंकि वह कहता है, प्रमाण अनुभव के अतिरिक्त और कोई नहीं है। जानो--वही प्रमाण है। उसके पहले कोई उपाय नहीं है। उसके पहले तो प्रमाण को वही मान लेता है, जो मानना ही चाहता है। वह बात अलग है। जो नहीं मानना चाहता है, वह फौरन इनकार कर देता है।

जब भी आप किसी आदमी को राजी कर लेते हैं, कनवर्ट कर लेते हैं, तो आप यह मत समझाना कि आप जीत गए। वह कनवर्ट होना चाहता था। अन्यथा इस दुनिया में कनवर्ट करने का कोई उपाय नहीं है। वह होना ही चाहता था। आप सिर्फ बहाने हैं। वह तैयार ही था। आपने उसकी ही बात बाहर से कह दी है।

लाओत्से कहता है, उसका और कोई प्रमाण नहीं है। सत्य है बहुत, लेकिन उसके प्रमाण उसमें ही प्रच्छन्न हैं--लेटेंट इन इटसेल्फ। उसी में चले जाओ तो तुम्हें प्रमाण मिल जाएंगे। मैं तुम्हें चलने का मार्ग बता सकता हूं, प्रमाण नहीं दूंगा। अंधा आदमी पूछे, क्या प्रमाण है प्रकाश का? तो लाओत्से कहेगा, तुम्हारी आंख का इलाज बता सकता हूं; प्रमाण क्या दूंगा! आंख ठीक हो जाए, तुम देख लेना! सत्य है बहुत प्रकाश, आंख चाहिए। और आंख न हो तो कोई प्रमाण आंख नहीं बन सकता। और आंख हो तो कोई कितना ही प्रमाणों का खंडन करे, खंडन खंडन नहीं है। हंस सकता है आदमी।

रामकृष्ण के पास लोग जाते थे, तर्क करते थे; और रामकृष्ण हंसते रहते थे। एक दफा केशवचंद्र गए। केशवचंद्र शायद भारत में पिछले सौ वर्षों में, डेढ़ सौ वर्षों में जो बड़े से बड़ा तार्किक पैदा हुआ हो तो केशवचंद्र

थे। वैसी लॉजीशियन, वैसी तर्क की प्रतिभा बहुत मुश्किल होती है। केशवचंद्र रामकृष्ण को पराजित करने ही गए थे। और रामकृष्ण तो गंवार थे। रामकृष्ण तो दूसरी कक्षा भी पास नहीं थे। जानने के नाम पर कुछ भी नहीं जानते थे। होने की बात अलग है। थे बहुत कुछ; जानते बहुत कुछ नहीं थे। केशवचंद्र बहुत जानते थे। होने के नाम पर तो दीन थे। लेकिन प्रकांड थी प्रतिभा उनकी, तर्क की दृष्टि से।

बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी उस दिन। सब लोग सोचते थे, बेचारा रामकृष्ण बुरी तरह पिटेगा! पिटने की नौबत ही थी; कोई उपाय ही न था। रामकृष्ण की हैसियत ही क्या थी? केशवचंद्र के साथ तर्क करना--वह पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में दस-पांच आदमियों के हिम्मत की बात थी। रामकृष्ण का तो कोई सवाल ही न था। वे तो कहीं गिनती में आते नहीं थे। कई लोग तो इसीलिए नहीं आए थे कलकत्ते से कि क्या फायदा! परिणाम पहले से ही जाहिर है, कि रामकृष्ण पिटेंगे। उसमें कुछ है नहीं मामला, जाने की भी जरूरत नहीं है दक्षिणेश्वर तक।

लेकिन उस दिन वहां उलटी हालत हो गई। केशवचंद्र बुरी तरह पिट गए। लेकिन ऐसी घटना कम घटती है। केशवचंद्र ईश्वर के खिलाफ वक्तव्य देने लगे, तर्क देने लगे। और हर तर्क पर रामकृष्ण उठते और नाचने लगते और कहते, क्या सुंदर दलील दी! केशवचंद्र सोच कर आए थे कि रामकृष्ण कहेगा गलत, तो विवाद शुरू होगा। रामकृष्ण ने कहा ही नहीं गलत, तो विवाद का तो कोई उपाय न रहा। और थोड़ी देर में केशवचंद्र को बेचैनी अनुभव होने लगी और भीड़ भी थोड़ी बेचैन होने लगी कि यह क्या हो रहा है! जिस बात के लिए आए थे, वह कुछ होता दिखाई नहीं पड़ता है। केशवचंद्र फीके पड़ते तो रामकृष्ण उनको जोश चढ़ाते कि बहुत सुंदर, क्यों थकते हैं, कहें, बड़ी गजब की बात कह रहे हैं; जंचती है, बिल्कुल ठीक मालूम पड़ती है।

सारे तर्क चुक गए, जल्दी चुक गए। क्योंकि विवाद चलता तो चुकना बहुत मुश्किल था। तो केशवचंद्र ने कहा कि यह सब ठीक है? तो फिर आप मानते हैं कि ईश्वर नहीं है? रामकृष्ण ने कहा कि तुम्हें न देखा होता तो मान भी लेता। तुम्हारी जैसी प्रतिभा जब पैदा होती है तो बिना ईश्वर के कैसे होगी? तुम्हें देख कर तो प्रमाण मिल गया कि ईश्वर है। अपने पास तो छोटी बुद्धि है। रामकृष्ण ने कहा, अपने पास तो बुद्धि बहुत बड़ी नहीं है, उससे ही सोचते थे कि ईश्वर है। तुम्हें देख कर तो पक्का हो गया।

यह जो आदमी है, ऐसे आदमी प्रमाण नहीं देते। केशवचंद्र उस दिन तो चले गए भीड़-भाड़ में, लेकिन रात वापस आ गए। और रामकृष्ण से कहा कि तुम जिस भांति हो गए हो ऐसा होने का मेरे लिए भी कोई उपाय है?

रामकृष्ण ने विवाद किया होता तो केशवचंद्र दुबारा वापस आने वाले नहीं थे। लेकिन क्या खींच लाया होगा रात अंधेरे में? इस आदमी का होना, इस आदमी का बीइंग, इसका अस्तित्व, इसका यह आनंद! यह कुछ जानता है, जो प्रमाणों से टूट नहीं सकता। यह कुछ जानता है, सारी दुनिया कहे गलत तो गलत नहीं हो सकता। इसने कुछ देखा है, इसने कुछ जीया है, इसने कुछ पा लिया है।

लाओत्से कहता है, "उसके प्रमाण उसमें ही प्रच्छन्न हैं। प्राचीन काल से आज तक इसकी नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियों का अंत नहीं आया।"

वह जो प्रकृति है, वह जो ताओ है, वह जो स्वभाव है, वह जो सागर है अस्तित्व का, वह अनंत-अनंत रूपों में अनंत काल से प्रकट होता रहा है। उसकी अभिव्यक्तियों का कोई अंत नहीं है। सतत है धारा उसकी।

"और हम उसमें देख सकते हैं सभी वस्तुओं के जनक को।"

सभी उसमें से पैदा होती हैं, उसी स्वभाव में से, और सभी उसमें लीन हो जाती हैं।

"लेकिन सभी वस्तुओं के जनक के आकार को मैं कैसे जानता हूं?"

लेकिन कैसे बताऊं उसका आकार? कैसे कहूं, क्या है उपाय? तुम अगर मुझसे पूछो कि कैसे जानते हो उसके आकार को तो भी बड़ी कठिनाई है।

लाओत्से कहता है, "इन्हीं के द्वारा, इन्हीं अनंत-अनंत अभिव्यक्तियों के द्वारा उसे जानता हूं।"

यह जो दिखाई पड़ता है, इनके द्वारा ही उसे पहचानता हूं, जो इनके पीछे छिपा है और दिखाई नहीं पड़ता है।

एक कवि को आप कैसे पहचानते हैं? उसके काव्य के द्वारा। और एक चित्रकार को कैसे पहचानते हैं? उसके चित्र के द्वारा। और अगर चित्रकार खो भी जाए, अंधेरे में छिप जाए और चित्र भर मौजूद हो, तो भी हम जानते हैं। जो दिखाई पड़ रहा है, उससे हम उसे जानते हैं जो दिखाई नहीं पड़ रहा है। लेकिन ये सारे आकार उसके हैं, फिर भी उसका कोई आकार नहीं है।

यह आखिरी बात ख्याल में ले लें।

जो सब आकारों में प्रकट होता है, उसका अपना आकार नहीं हो सकता। जिसका अपना आकार होता है, वह सब आकारों में प्रकट नहीं हो सकता। सब आकारों में तो वही प्रकट हो सकता है जो निराकार हो, जिसका अपना कोई निश्चित आकार न हो। जो सिर्फ एक संभावना हो, एक पोटेंशियलिटी हो; अनंत की संभावना हो।

लाओत्से कहता है, लेकिन इसके लिए मैं कोई प्रमाण न दूंगा। अगर प्रमाण देखना है तो चारों तरफ प्रमाण मौजूद है। अगर उसके हस्ताक्षर देखने हैं तो चारों तरफ खुदे हैं। तुम भी उसके ही हस्ताक्षर हो। वृक्ष भी, पत्थर भी, तारे भी, फूल भी, पक्षी भी, सभी उसके हस्ताक्षर हैं। अनंत-अनंत रूपों में वह मौजूद है। लेकिन तुम उसे देख तभी पाओगे, जब तुम कम से कम अपने आकार के भीतर उसका अनुभव कर लो। तब वह तुम्हें सब आकारों में दिखाई पड़ने लगेगा। और इसका कोई प्रमाण, बुद्धिगत प्रमाण नहीं दिया जा सकता। अनुभवगत प्रमाण हो सकता है।

और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर, अपने आकार के भीतर डूबकर उस निराकार को जान लेता है, उस दिन उसके जीवन में जो क्रांति घटित होती है, उस क्रांति का नाम परम आचरण है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने भीतर छिपे हुए उस सत्य को अनुभव कर लेता है, पहचान लेता है, कहें हम परमात्मा, आत्मा, जो नाम देना हो--लाओत्से नाम भी नहीं देता, वह कहता है ताओ, ताओ का अर्थ होता है ऋत, नियम, दि लॉ, वह कहता है कि वह जो नियम है जीवन का आत्यंतिक, वही--उसे जिस दिन कोई जान लेता है, उसके बाद उसका आचरण सदाचरण है। उस दिन के बाद उसके आचरण में चेष्टा नहीं है। उस दिन के बाद वह जो भी कर रहा है, वह सोचा-विचारा, आयोजित, पूर्व-निर्धारित नहीं है। उस दिन के बाद जो भी उससे हो रहा है, वही धर्म है।

हम सोचते हैं, धार्मिक आचरण से धार्मिक आदमी पैदा होता है। लाओत्से कहता है, उलटी है बात; धार्मिक आदमी से धार्मिक आचरण पैदा होता है। हम सोचते हैं, आचरण बदलेंगे तो धार्मिक हो जाएंगे। लाओत्से कहता है, धार्मिक हो जाओ तो आचरण बदल जाएगा। और यह सूत्र सिर्फ भाषा का भेद नहीं है; पूरे जीवन की आमूल दृष्टि अलग हो जाती है। आचरण से जो शुरू करता है, वह परिधि से शुरू करता है, ऊपर-ऊपर भटकता है। जो अंतस से शुरू करता है, वह केंद्र से शुरू करता है।

और ध्यान रखें, केंद्र बदल जाए तो परिधि बदल जाती है; लेकिन परिधि की बदलाहट से केंद्र नहीं बदलता। अगर केंद्र बदल जाए तो परिधि अनिवार्यरूपेण बदल जाती है। क्योंकि परिधि केंद्र का फैलाव है। लेकिन परिधि को बदल दें आप, बिल्कुल भी बदल दें, तो भी केंद्र नहीं बदलता। क्योंकि परिधि निष्प्राण है; केंद्र प्राण है। केंद्र आधार है; परिधि तो केवल बाहरी व्यवस्था है। एक वृक्ष के पत्तों को हम काट दें; वृक्ष नहीं

बदलता। बल्कि एक पत्ते की जगह चार पत्ते निकल आते हैं। हम जो करते हैं आचरण में, वह यही पत्ते काटते रहते हैं। और पत्ते काटने का मतलब आचरण को होता है कलम; कलम कर रहे हैं आप। बेईमानी काटें; दोहरी बेईमानियों के दो पत्ते पैदा हो जाते हैं। चोरी काटें; चोरी नए रास्ते से शुरू हो जाती है। झूठ काटें; पच्चीस नए झूठ जन्म ले लेते हैं।

लाओत्से कहता है, जड़ काटें। फिर पत्ते नहीं काटने पड़ते। फिर कोई फिक्र नहीं है; पत्तों की बात ही छोड़ दो। वे अपने से गिर जाते हैं, और दुबारा नहीं आते। केंद्र को बदलना जड़ को बदलना है।

तो अब मैं दोहरा दूं: क्षुद्र है आचरण वह, जो व्यवहार के परिवर्तन से पैदा होता है। परम है आचरण वह, जो अंतस की क्रांति से जन्मता है। क्षुद्र आचरण उपादेयता पर निर्भर होता है, परम आचरण आनंद पर। परम आचरण सहज है, क्षुद्र आचरण खींचा हुआ, सोचा हुआ, प्रयोजन, प्रयास, यत्न, व्यायाम है। क्षुद्र आचरण और अनाचरण में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। परम आचरण दूसरे ही लोक की बात है। जैसे जमीन पर चलते-चलते कोई आकाश में उड़ने लगे, इतना अंतर है। पंख लग जाएं और यात्रा की सारी भूमि बदल जाए!

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें; कीर्तन करें; फिर जाएं।

सैंतालीसवां प्रवचन

ताओ है झुकने, खाली होने व मिटने की कला

Chapter 22 : Part 1

Futility Of Contention

To yield is to be preserved whole.
To be bent is to become straight.
To be hollow is to be filled.
To be tattered is to be renewed.
To be in want is to possess.
To have plenty is to be confused.
Therefore the Sage embraces the One,
And becomes the model of the world.

अध्याय 22 : खंड 1

संघर्ष की व्यर्थता

झुकना है सुरक्षा।
और झुकना ही है सीधा होने का मार्ग।
खाली होना है भरे जाना।
और टूटना, टुकड़े-टुकड़े हो जाना ही है पुनरुज्जीवन।
अभाव है संपदा।
संपत्ति है विपत्ति और विभ्रम।
इसलिए संत उस एक का ही आलिंगन करते हैं;
और बन जाते हैं संसार का आदर्श।

एक अनूठी घटना दिखाई पड़ती है संसार में। सभी सफल होना चाहते हैं; और सभी असफल हो जाते हैं। नहीं है कोई जो सुख न चाहता हो; और ऐसा भी कोई नहीं है जो चाह-चाह कर भी सिवाय दुख के कुछ और पाता हो। जीना चाहते हैं सभी; और सभी मर जाते हैं। जरूर कहीं कोई जीवन का गहरा नियम अपरिचित रह जाता है; उसका यह दुष्परिणाम है।

एक व्यक्ति असफल होता हो तो जिम्मेवारी उसकी हो सकती है। लेकिन जब जगत में सभी सफलता चाहने वाले असफल हो जाते हों तो जिम्मेवारी व्यक्तियों की नहीं रह जाती। कहीं जीवन का कोई बुनियादी नियम ही चूक रहा है। एक व्यक्ति सुख चाहता हो और दुख में पड़ जाता हो, समझ ले सकते हैं कि उसकी भूल होगी। लेकिन जहां सभी सुख चाहने वाले दुख में पड़ जाते हों, वहां व्यक्तियों पर जिम्मा नहीं थोपा जा सकता। जीवन के नियम को ही समझने में सभी की समान भूल हो रही है। लाओत्से का यह सूत्र इस बुनियादी भूल से संबंधित है।

लाओत्से कहता है, जो जीतने की कोशिश करेगा, वह हारेगा।

हम इसलिए नहीं हारते हैं कि कमजोर हैं; हम इसलिए हारते हैं कि हम जीतने की कोशिश करते हैं। इसे थोड़ा हम समझ लें। क्योंकि मनुष्य-जाति का जो बुनियादी भ्रांत तर्क है, वह इस पर ही निर्भर है। हारता हूं मैं तो सोचता हूं, कमजोर था। तो शक्ति और बढ़ा लूं तो जीत जाऊंगा। तो शक्ति को हम बढ़ाने में लगे रहते हैं। लेकिन कितनी ही शक्ति आ जाए आदमी के हाथ, अंततः हार ही हाथ लगती है; जीत उपलब्ध नहीं हो पाती। सिकंदर हारा हुआ मरता है, नेपोलियन हारा हुआ मरता है; सभी हारे हुए मरते हैं। कमजोर तो हारते ही हैं, शक्तिशाली भी हारे हुए मरते हैं। तो तर्क, कि शक्ति ज्यादा होगी तो हम जीत जाएंगे, गलत है।

लाओत्से कहता है, जीतना चाहोगे तो हारोगे। हार का कारण जीतने की इच्छा में छिपा है, शक्ति की कमी में नहीं। असल में, जो जीतना चाहता है, उसके मन को हम समझें। जो जीतना चाहता है, पहली तो बात एक उसने स्वीकार कर ली कि हारने की भी संभावना है। जो जीतना चाहता है, उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि जीतना बहुत मुश्किल है। जो जीतना चाहता है, उसने यह भी स्वीकार कर लिया कि मेरी जीत दूसरों पर निर्भर करेगी। क्योंकि जीत अपने पर निर्भर नहीं करती; कोई हारेगा तो मैं जीतूंगा। तो जीत में दूसरे की गुलामी छिपी है। सब जीतने वाले हारने वालों के अनुगृहीत होना चाहिए; क्योंकि उनके बिना वे न जीत सकेंगे। और जो जीत दूसरे पर निर्भर है, उसे हम जीत कह सकते हैं? अगर मेरी जीत भी आप पर निर्भर है तो आप मेरी जीत के भी मालिक हो गए। आपकी मुट्ठी में बंद है फिर मेरी चाबी। आप हारेंगे तो मैं जीतूंगा। और यह जगत है विराट और बड़ा। और कितनी ही बड़ी शक्ति हो हमारे पास, सदा क्षुद्र है--इस जगत की शक्तियों को देख कर। और कितने ही हम हाथ-पैर तड़पाएं, हम इस जगत की शक्ति से ज्यादा न हो सकेंगे। हम इसके हिस्से हैं, छोटे से हिस्से हैं। हम हारेंगे ही।

और जैसे ही किसी व्यक्ति ने जीतना चाहने की वासना पैदा की, एक बात उसने और स्वीकार कर ली कि अभी वह हारा हुआ है। मनसविद कहते हैं कि जो हीन-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स से पीड़ित होते हैं, वे ही केवल जीत में उत्सुक होते हैं, महत्वाकांक्षी हो जाते हैं। महत्वाकांक्षा हीन व्यक्ति का लक्षण है। जैसे दवाई की तरफ बीमार आदमी जाता है, ऐसे ही महत्वाकांक्षा की तरफ हीन आदमी जाता है।

इसलिए एक अजीब घटना घटती है। एडलर ने पश्चिम में, इस सदी में, इस संबंध में गहरे से गहरा काम किया है। एडलर का कहना है कि जो लोग भी जीवन में किसी बड़ी कमी से पीड़ित होते हैं, वे लोग उस कमी की परिपूर्ति के लिए कोई कांप्लीमेंटरी रास्ता खोज लेते हैं। जैसे लेनिन कुर्सी पर बैठता था तो उसके पैर जमीन को नहीं छूते थे। पैर बहुत छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बड़ा था। और एडलर का कहना है कि यह घटना ही लेनिन को बड़े से बड़े पद की तलाश में ले गई। बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठ कर उसने दिखा दिया कि पैर चाहे जमीन न छूते हों, लेकिन ऐसी कोई कुर्सी नहीं है जिस पर मैं न बैठ सकूं। कठिनाई उसकी यह थी कि वह किसी भी कुर्सी पर नहीं बैठ सकता था। किसी छोटी सी कुर्सी पर भी बैठता सामान्य किसी के घर में तो उसे बेचैनी शुरू हो

जाती। उसके पैर छोटे थे और लटक जाते थे। एडलर कहता है कि लेनिन के लिए यही कमी उसकी महत्वाकांक्षा बन गई। उसने कहा, कोई फिक्र नहीं, तुम्हारी कुर्सियां बड़ी हैं और मेरे पैर छोटे पड़ते हैं; लेकिन मैं तुम्हें बता दूंगा, जगत को, कि ऐसी कोई भी कुर्सी नहीं है जिस पर मैं न बैठ सकूं। किसी भी कुर्सी पर वह ठीक से बैठ नहीं सकता था, यही अभाव दौड़ बन गई।

एडलर ने, दुनिया के जिनको हम बड़े-बड़े लोग कहते हैं, उनका गहरा अध्ययन किया है। और हर बड़े आदमी में, जिसको हम बड़ा आदमी कहते हैं, उसने वह कमी खोज निकाली है जो उसकी महत्वाकांक्षा का कारण है।

यह स्वाभाविक है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि अंधा आदमी अपने कानों की शक्ति को बढ़ा लेता है। बढ़ा ही लेगा। आंख का काम भी उसे कान से ही लेना है। इसलिए अंधों के पास कान अच्छे हो जाते हैं। और अगर अंधे संगीतज्ञ होते हैं तो कोई और कारण नहीं है; कान अच्छे हो जाते हैं।

यह कभी आपने ख्याल किया कि कुरूप व्यक्ति अपनी कुरूपता को छिपाने के लिए न मालूम कितनी सुंदर चीजों का निर्माण कर लेता है। अगर आप दुनिया के चित्रकारों को देखें, जिन्होंने सुंदरतम रचनाएं रची हैं, तो आप हैरान हो जाएंगे, उनके खुद के चेहरे सुंदर नहीं हैं।

ऐसा हुआ, एक गांव में मैं घर में मेहमान था किसी के और अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन वहां हो रहा था। तो जिन मित्र के घर मैं ठहरा था, उन्होंने कहा, आप भी चलेंगे? भारत भर से कोई बीस महिला कवि इकट्ठी हुई हैं। मैंने कहा, मैं तो नहीं जाऊंगा, एक बात आप ख्याल करके लौटना--बीस महिलाएं जो वहां हैं, उनमें कोई एकाध सुंदर है या नहीं? वे थोड़े हैरान हुए कि मैं उनसे ऐसा पूछूंगा। लेकिन लौट कर वे और हैरान हुए। उन्होंने कहा, आश्चर्य, आपने पूछा तब मैं थोड़ा हैरान हुआ था; वहां जाकर मैं और हैरान हुआ, वे बीस ही महिलाएं कुरूप थीं।

महिला जब सुंदर होती है तो कविता वगैरह करने में नहीं पड़ती। इसलिए दुनिया में सुंदर महिलाओं ने कुछ नहीं किया है। कंपेनसेशन नहीं है। सौंदर्य काफी है; किसी और चीज से पूरा करने का विचार नहीं उठता।

एडलर का कहना है कि इस दुनिया में जो ठीक-ठीक स्वस्थ व्यक्ति हैं, वे किसी महत्वाकांक्षा के पद पर नहीं पहुंच सकते। सिर्फ रुग्ण, बीमार, पंगु व्यक्ति ही महत्वाकांक्षा के पदों पर पहुंच सकते हैं।

इसमें सचाई है। इसमें दूर तक सचाई है। जो कम है हमारे भीतर, उसे हम पूरा करना चाहते हैं, ओवर कंपेनसेट करना चाहते हैं; ताकि सारी कमी ढंक जाए, परिपूर्ति हो जाए। जब कोई व्यक्ति जीतने की आकांक्षा से भरता है तो उसका मतलब है कि वह जानता है गहरे में कि मैं हारा हुआ आदमी हूं। यह उलटा दिखाई पड़ेगा। लेकिन एडलर ने तो अभी खोजा, लाओत्से इसे ढाई हजार साल पहले अपने सूत्र में लिखा है।

लाओत्से कहता है, अगर जीतना चाहते हो तो जीतने की कोशिश मत करना। वह हार की शुरुआत है। अगर जीतना चाहते हो तो जीतने की वासना ही तुम्हारी सबसे बड़ी शत्रु है। वही सिद्ध कर रही है कि तुम जीतने योग्य भी नहीं हो। वही सिद्ध कर रही है कि तुम गहरी हीनता के गड्ढे से भरे हो। वही सिद्ध कर रही है कि तुम रुग्ण हो, पंगु हो; कहीं कोई पक्षाघात है तुम्हारी आत्मा में।

यह किसी और आयाम से भी हम समझें तो ख्याल में आ जाए।

अभी कुछ वैज्ञानिक प्रस्तावित कर रहे हैं कि डार्विन का ख्याल था कि आदमी इसीलिए विकसित हो सका दूसरे पशुओं से, क्योंकि वह ज्यादा बुद्धिमान है, ज्यादा रैशनल है; इसलिए जो संघर्ष है प्रकृति का, उसमें आदमी जीत गया और पशु हार गए। अब तक यह बात ठीक मालूम पड़ती रही है। लेकिन अब नवीनतम शोधें

इस पर संदेह पैदा करती हैं। और वे कहती हैं कि आदमी का यह जो विकसित, तथाकथित विकसित, सो-काल्ड विकसित रूप दिखाई पड़ता है, यह आदमी के ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा श्रेष्ठ होने के कारण नहीं है। बल्कि इसका बुनियादी कारण है कि इस पृथ्वी पर आदमी का बच्चा सब से असहाय पैदा होता है, सब से हेल्पलेस। अगर आदमी के बच्चे को मां और बाप पालें और पोसें नहीं और समाज चिंता न करे तो आदमियत बच ही नहीं सकती। सभी जानवरों के बच्चे आदमी के बच्चे से ज्यादा शक्तिशाली पैदा होते हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का बच्चा अगर जानवर की तरह शक्तिशाली पैदा करना हो तो कम से कम मां के गर्भ में उसे इक्कीस महीने रहना चाहिए। लेकिन तब वह पैदा नहीं हो सकेगा, मां मर जाएगी। क्योंकि वह इतना बड़ा हो जाएगा कि उसके जन्म का उपाय नहीं है। इसलिए अगर ठीक से समझें तो सारे पशुओं को देखते हुए मनुष्य के सब जन्म गर्भपात हैं, एबार्शन हैं। क्योंकि बच्चा अधूरा पैदा होता है, एबार्शन का मतलब यह है। नौ महीने में बच्चा अधूरा पैदा होता है। अभी बहुत सी चीजें, जो उसमें होनी चाहिए, नहीं हैं। अभी वे विकसित होंगी।

और फिर भी अगर हम गौर से देखें तो घोड़े का बच्चा है--पैदा हुआ, और चलने लगा, दौड़ने लगा। आदमी के बच्चे को चलने में अभी वर्षों लगेंगे। पशुओं के बच्चे हैं, उठे और अपने जीवन की तलाश में चल पड़े, आजीविका खोजने लगे। आदमी के बच्चे को आजीविका खोजने में पच्चीस वर्ष लगेंगे।

आदमी का बच्चा जगत में सबसे ज्यादा कमजोर प्राणी है। और चूंकि आदमी कमजोर है, इसलिए उसने ओवर-कंपेनसेट कर डाला, उसने सब जानवरों को पिछड़ा दिया। उसने सब चीजों की परिपूर्ति कर ली। आदमी के नाखून जानवरों के नाखून से तौलें तो पता चलेगा। अगर आप जानवर से सीधा लड़ें तो आदमी से ज्यादा कमजोर जानवर जमीन पर खोजना मुश्किल है। उसके दांत, उसके नाखून आपको क्षण भर में चीर-फाड़ कर रख देंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि नाखून की पूर्ति आदमी ने इतनी दूर तक की--छुरी, तलवार, एटमबम तक चली गई। वह नाखून की पूर्ति है। वह बढ़ाए चला गया अपने नाखूनों को। वह अपने दांतों को बढ़ाए चला गया। कभी आपने देखा है, जब एक टैंक युद्ध की तरफ जाता है तो आपने टैंक के दांत देखे हैं? वे आदमी के दांत हैं, जो जानवरों से कमजोर हैं। ओवर-कंपेनसेशन हो गया। हमने और बड़े दांत मशीन में पैदा करके जानवरों को मिट्टी में मिला दिया।

नवीनतम शोधें यह कहती हैं कि आदमी का जिसको हम विकास कहते हैं, वह शायद उसकी हीनता, कमजोरी, असहाय अवस्था का परिणाम है।

जो हो, एक बात तय है कि ऊपर उठने की आकांक्षा नीचे गिरे होने का सबूत है। जो नीचे गिरा हुआ है ही नहीं, वह ऊपर उठना न चाहेगा। जो अपने में आश्वस्त है, वह किसी दूसरे को आश्वासन दिलाने न जाएगा। जिसका अपने पर भरोसा है, वह अपने भरोसे को पाने के लिए दूसरे को हराने के उपद्रव में न पड़ेगा। हम संघर्ष करते हैं कुछ सिद्ध करने को; लड़ते हैं कुछ सिद्ध करने को कि मैं कुछ हूं। यह इस बात की सूचना है कि मुझे भलीभांति पता है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। वह जो नोबडीनेस का, ना-कुछ होने का भाव है, वही हमारी तड़पन बन जाता है कि हम सिद्ध करें जगत में कि मैं कुछ हूं।

लेकिन कितना ही हम सिद्ध करें, वह जो ना-कुछ होने का भीतर छिपा हुआ बोध है, वह दब जाएगा, नष्ट नहीं हो सकता। और कितना ही हम जीतते चले जाएं, भय बना ही रहेगा कि कोई और शक्तिशाली होगा जो मुझे पराजित कर सकता है। और मुझे अपनी शक्ति बढ़ाते ही रहनी होगी। और किसी भी स्थिति में यह स्थिति

नहीं बन सकती कि मेरा मूल जो भय था, भीतर की हीनता थी, वह मिट जाए। एक चक्कर है, एक दुश्चक्र, एक वीसियस सर्किल है। वह दुश्चक्र ऐसा है कि जो मूल चीज है, उसको तो हम स्वीकार कर लेते हैं; फिर उसके विपरीत कुछ करने में लग जाते हैं।

मेरे पैर में एक घाव है। उसको तो मैं नहीं मिटाता; आपकी आंखों में घाव न दिखाई पड़े, इसलिए मलहम-पट्टी कर लेता हूं। वह मलहम-पट्टी, आपकी आंखों में घाव न दिखाई पड़े, इसलिए है। उस मलहम-पट्टी में वह औषधि नहीं है, जो मेरे घाव को ठीक करे। वह मलहम-पट्टी मैं अपने घाव पर नहीं, आपकी आंखों पर कर रहा हूं। आपको मैं धोखा दे दूंगा; मेरा घाव बढ़ता चला जाएगा। आज नहीं कल, घाव की मवाद पट्टी को फोड़ कर बाहर आ जाएगी। तब और मोटा पलस्तर मुझे करना होगा। धीरे-धीरे मैं पलस्तरों में घिर जाऊंगा और भीतर सब घाव ही घाव हो जाएगा; क्योंकि मेरी पूरी चेष्टा यह है कि किसी को मेरा घाव पता न चले।

लाओत्से जैसे लोग आपके घाव को आमूल रूपांतरित करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि हीनता मिटनी चाहिए; विजय को पाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं कुछ हूं, इसका पता चलना चाहिए; इसे दूसरों के सामने सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है। और कितना ही सिद्ध करो, अगर भीतर मुझे पता नहीं है कि मैं हूं, कुछ हूं, तो मैं कितना ही दूसरों को समझा लूं, आखिर में मैं पाऊंगा कि मैं वहीं का वहीं खड़ा हूं। दूसरे भला राजी हो जाएं, लेकिन मेरे भीतर का कंपन तो कायम रहेगा। जो आदमी सड़क पर खड़ा था कल, आज राष्ट्रपति हो गया हो; तो भी उसके भीतर की घबड़ाहट और हीनता वही की वही रहेगी। आज वह कम प्रकट करेगा, क्योंकि उसके पास शक्ति का आयोजन है चारों तरफ। इसलिए आज वह आपके सामने प्रकट नहीं करेगा, आपके सामने उसकी कमजोरी छिपी रहेगी। लेकिन खुद के सामने तो जाहिर रहेगी।

इसलिए एक बड़ी अजीब घटना घटती है। जब आदमी बहुत धन इकट्ठा कर लेता है, तब उसे पहली दफे पता चलता है कि मैं कितना दरिद्र हूं। और जब आदमी के चारों तरफ फौज-फांटा खड़ा हो जाता है और भारी शक्ति इकट्ठी हो जाती है, तब उसे पता चलता है कि मैं कितना कमजोर हूं। यह और तीव्रता से पता चलता है; क्योंकि कंट्रास्ट मिल जाता है। जैसे किसी ने काली दीवार पर सफेद खड़िए से लकीर खींच दी हो। और भी ज्यादा प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती है कमजोरी।

लेकिन हमारा तर्क यह है कि हम और लोगों को हराएं, और लोगों को मिटाएं, और लोगों को समाप्त कर दें, तो मैं शक्तिशाली और विजेता हो जाऊंगा। मनुष्य के मन की यह बुनियादी भूल है। इस भूल के खिलाफ यह सूत्र है।

"झुकना है सुरक्षा। टु यील्ड इ.ज टु बी प्रिजर्व्ड होल।"

झुकना है सुरक्षा। अगर बचना है तो झुक जाओ।

कभी देखा है, जोर की आंधी आती है--और लाओत्से को मानने वाले चित्रकारों ने इस घटना के बहुत-बहुत चित्र बनाए हैं--जोर की आंधी आती है, बड़ा वृक्ष अकड़ कर खड़ा रह जाता है। न केवल अकड़ कर, बल्कि आंधी से लड़ता है। छोटे-छोटे पौधे, घास के तिनके झुक जाते हैं। क्षण भर बाद आंधी जा चुकी होगी, बहुत से बड़े वृक्ष गिर चुके होंगे, जड़ें उखड़ गई होंगी, छोटे घास के तिनके वापस अपनी जगह खड़े हो गए होंगे।

लाओत्से कहता है, पूछो राज जीवन का छोटे घास के तिनकों से, जिनको बड़ी से बड़ी आंधी उखाड़ नहीं पाती। क्या है उनका राज? पूरे के पूरे सुरक्षित रह जाते हैं। इतने कमजोर कि जरा सा झोंका हवा का उन्हें तोड़ दे; लेकिन भयंकर झंझावात चलता है और उनकी जड़ें भी नहीं हिलतीं। और जरा सी उनकी जड़ें हैं! और बड़े-बड़े वृक्ष, जिनकी गहरी जड़े हैं जमीन में, वे भूमिसात हो जाते हैं। पूछो, उन बड़े वृक्षों की भूल क्या थी? उन

बड़े वृक्षों ने लड़ना चाहा; उन बड़े वृक्षों ने जीतना चाहा; उन बड़े वृक्षों ने झंझावात से युद्ध मोल लिया। उन बड़े वृक्षों ने कहा, हम कुछ हैं। वे छोटे घास के तिनके चुपचाप झुक गए।

"टु यील्ड इ.ज टु बी प्रिजर्व्ड होल।"

झुक गए। उन्होंने कोई झगड़ा ही न लिया। उन्होंने झंझावात को दुश्मन ही न माना। उन्होंने झंझावात को प्रेम से अंगीकार कर लिया। उन्होंने खेल समझा, युद्ध न समझा। उन्होंने कहा, ठीक है, बह जाओ। उन्होंने रास्ता दे दिया।

अगर ठीक से समझें तो बड़े वृक्ष जरूर अपने भीतर हीनता से भरे रहे होंगे। वे रास्ता न दे सके। उन्हें लगा कि यह इज्जत का सवाल है। उनकी इज्जत बड़ी कमजोर रही होगी। उन्हें लगा होगा कि यह झंझावात हमें उखाड़ने आया है। कौन झंझावात किसे उखाड़ने आता है? झंझावात अपनी गति से बहता है। आंधी को कोई प्रयोजन है बड़े से या छोटे से? आंधी अपनी गति से बहती है, अपने ताओ में, अपने स्वभाव में बहती है। किसी को तोड़ने, उखाड़ने, मिटाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन बड़े वृक्ष भीतर हीन रहे होंगे, डरे रहे होंगे। इज्जत का सवाल होगा, रिस्पेक्टबिलिटी का सवाल होगा। लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ लोग क्या हंसी उड़ाएंगे? उन्होंने इसे चुनौती समझा। झंझावात का जो स्वभाव था, इसे अकारण बड़े वृक्षों ने चुनौती समझा, चैलेंज समझा।

झंझावात को किसी के लिए कोई चुनौती नहीं थी। वृक्ष न होते तो भी झंझावात ऐसे ही बहता। यह वृक्ष न होगा, तब भी आंधियां बहेंगी। यह वृक्ष नहीं था, तब भी आंधियां बहती थीं। आंधियों को वृक्षों से क्या लेना-देना? लेकिन वृक्ष का अपना अहंकार आड़ में आ गया। और वृक्ष ने सोचा कि मुझे, जो मैं इतना बड़ा हूं, चुनौती है; लडूंगा, जीत कर बताऊंगा। आंधी टूट कर रहेगी।

कभी कोई आंधी नहीं टूटती, वृक्ष ही टूटता है। फिर बड़ा वृक्ष टकराता है। टकराता है, तो जड़ें हिल जाती हैं। ध्यान रखना, टकराने से हिल जाती हैं, आंधी से नहीं। वह जो रेसिस्टेंस है वृक्ष का, वह जो प्रतिरोध है, वही अपनी जड़ों पर आत्महत्या हो जाती है। वृक्ष गिरता है आंधी के कारण नहीं। क्योंकि छोटे-छोटे पौधे नहीं गिरते तो वृक्ष को गिरने का क्या कारण था? वृक्ष गिरता है प्रतिरोध के कारण, विरोध के कारण, संघर्ष के कारण, लड़ने की वृत्ति के कारण। विजय की आकांक्षा से गिरता है। उखड़ जाती हैं जड़ें, वृक्ष भूमिसात हो जाता है।

और जो लड़ कर गिरता है, वह उठने की क्षमता खो देता है। जो लड़ कर गिरता है, वह उठने की क्षमता खो देता है; क्योंकि जड़ें ही टूट जाती हैं जो फिर उठा सकती थीं। छोटे पौधे झुक जाते हैं। आंधी गुजर जाती है, बड़ी-बड़ी आंधियां गुजर जाती हैं। और छोटे पौधे फिर खड़े हैं, मुस्कुरा रहे हैं--वैसे के वैसे जीवित, शायद और भी जीवित। यह आंधी का जो संस्पर्श है उन्हें, और जीवन दे गया। यह जो आंधी उनके ऊपर से बह गई, उनकी धूल-धवांस भी हटा गई। यह जो आंधी उनके पास से गुजर गई, इसमें वे स्नान कर लिए। सद्यःस्नात, वे पुनः खड़े हो गए हैं। यह आंधी उनके लिए शत्रु न रही, मित्र हो गई। यह आंधी उन्हें जीवन की एक पुलक दे गई, एक जीवन का अनुभव दे गई। यह आंधी उनके ऊपर से गुजरी मित्र की तरह। जैसे कोई रात चादर ओढ़ कर सो जाए, ऐसे वे आंधी को ओढ़ कर सो गए। चुनौती नहीं थी आंधी उनके लिए; संघर्ष नहीं था।

आंधी जा चुकी है, वे छोटे पौधे वापस अपनी जगह खड़े हैं--और भी ज्यादा प्रसन्न, और भी ज्यादा अनुभव से भरे। और उनकी जड़ें और भी मजबूत हो गई हैं। क्योंकि हर अनुभव जड़ों को मजबूत कर जाता है। वे और आश्वस्त हो गए हैं, अपने होने से और आनंदित हो गए हैं। और इस जगत के साथ उन्होंने एक गहरी मैत्री भी साध ली। आंधी भी उनका कुछ बिगाड़ती नहीं; आंधी भी उन्हें बना जाती है, सहला जाती है।

लाओत्से कहता है, "झुकना है सूत्र सुरक्षा का, टु यील्ड इ.ज टु बी प्रिजर्व्ड होल।"

इसे हम और पहलुओं से भी देखें। देखा है, रोज छोटे बच्चे गिर जाते हैं; चोट नहीं खाते हमारे जैसी। हम भी कभी छोटे बच्चों की तरह थे और गिरते थे और चोट नहीं खाते थे। एक बड़े आदमी को एक बच्चे की तरह चौबीस घंटे गिरा कर देखें, तब आपको पता चलेगा। सब हड्डी-पसली टूट जाएगी, जगह-जगह फ्रैक्चर हो जाएंगे। होना तो उलटा चाहिए था। बच्चे की हड्डी तो है कमजोर, कोमल; आपकी हड्डी तो ज्यादा मजबूत, ज्यादा शक्तिशाली है। बच्चा गिरता है, उठता है, खेलने लगता है। आप गिरते हैं, सीधा एंबुलेंस में सवार होते हैं। क्या, फर्क क्या है? अगर शक्ति ही विजय है और शक्ति ही सुरक्षा है तो बच्चे की हड्डियां टूटनी चाहिए, आपकी नहीं।

छोड़ें बच्चे को। कभी देखा है शराबी को रास्ते पर गिर जाते? आप जरा गिर कर देखें। जो शराब नहीं पीते हैं, साधु हैं भले, जरा गिर कर देखें शराबी की तरह रास्ते पर। तब आपको पता चलेगा कि शराबी भी क्या चमत्कार कर रहा है। रोज गिरता है, रोज सुबह घर पहुंच जाता है। न हड्डी टूटती है, न कुछ होता है। इस शराबी में क्या राज है? वह बच्चे वाला ही राज है। यह लाओत्से का ही सूत्र है। असल में बच्चे को पता नहीं है कि वह गिर रहा है। वह झुक जाता है। वह गिरने में राजी हो जाता है; रेसिस्ट नहीं करता। शराबी का भी राज वही है। जब वह गिरता है तो वह बेहोश है, उसे होश ही नहीं है कि वह गिर रहा है। वह मजे से गिर जाता है।

गिरते वक्त आपको होश होता है कि मैं गिरा। आप विरोध करते हैं कि गिरूं न। वह जो जमीन की गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है, ग्रेविटेशन है, वह खींचती है नीचे आंधी की तरह। और आप उठते हैं ऊपर कि नहीं गिरूंगा। इस कशमकश में हड्डियां टूट जाती हैं। रेसिस्टेंस है। वही रेसिस्टेंस, वही प्रतिरोध, जो बड़ा वृक्ष आंधी को देता है, आप भी समझदार होकर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को देते हैं।

लाओत्से कहता है, गिर जाओ। जब गिर ही रहे हो, यील्ड; तब लड़ो मत, तब गिर ही जाओ। अपनी तरफ से गिर जाओ। साथ दो। और हड्डियां नहीं टूटेंगी।

वह बच्चा अनजाने, उसे कुछ पता नहीं क्या हो रहा है, झुक जाता है। बच्चा छोटे पौधे की तरह व्यवहार करता है। शराबी भी छोटे पौधे की तरह व्यवहार करता है। होश नहीं है इसलिए। यही शराबी होश में दोपहर में गिरेगा, तब चोट खाएगा। और यही रात पीकर नाली में पड़ा रहेगा, सड़क पर गिर जाएगा, और चोट नहीं खाएगा।

कई बार ऐसा होता है कि गाड़ी उलट जाती है, कार उलट जाती है, छोटे बच्चे बच जाते हैं। लोग समझते हैं, भगवान बड़ा दयालु है। अगर भगवान दयालु है तो बड़ों को बचाना चाहिए, इन पर ज्यादा मेहनत हो चुकी है, ज्यादा खर्चा हो चुका है। यह धंधा दया का नहीं है। एक बच्चे पर जिस पर अभी पचास साल खर्च होंगे, तब इस लायक हो पाएगा, या नालायक हो पाएगा। जिस पर पचास साल खर्च हो चुके हैं, पहले इसे बचाना चाहिए। इसमें काफी इनवेस्टमेंट है। लेकिन यह मर जाता है। छोटे बच्चे बच जाते हैं। नहीं, भगवान का कुछ इसमें हाथ नहीं है। छोटे बच्चे बच जाते हैं, क्योंकि यील्ड कर जाते हैं; जो भी हो रहा है, उसमें साथी हो जाते हैं; उसके विरोध में खड़े नहीं होते। उसको शत्रुता से नहीं लेते। उसको मित्रता से ले लेते हैं। ले लेते हैं, होश ही नहीं है इसलिए।

संत इसी को होश से करता है। जो बच्चे अनजाने में करते हैं, जो शराबी बेहोशी में करता है, संत इसी को होश में करता है।

चीन और जापान, दोनों मुल्कों में लाओत्से के आधार पर युद्ध की कई कला और कई कौशल विकसित हुए हैं--जुजुत्सु, जूडो। उनका सारा सीक्रेट, सारा राज यही सूत्र है--यील्ड। जब दुश्मन चोट करे, प्रतिरोध मत करो, झुक जाओ। कभी इसका प्रयोग करके देखें। कोई आपको जोर से घूंसा मारे, तब आप घूंसे के खिलाफ बचाव मत करें; घूंसे को आत्मसात करने के लिए तैयार हो जाएं, पी जाएं। और आप पाएंगे, जिसने घूंसा मारा, उसकी हड्डी टूट गई। जिसने घूंसा मारा, उसकी हड्डी टूट गई।

जुजुत्सु की कला कहती है कि अगर तुम प्रतिरोध न करो तो तुम सदा जीते हुए हो। इसलिए अगर जुजुत्सु जानने वाले आदमी से आप पहलवानी करें तो आप हार जाएंगे। हारेंगे ही नहीं, हाथ-पैर तोड़ लेंगे। क्योंकि आप चोट करेंगे और वह सिर्फ चोट को पीएगा। उसकी शक्ति तो जरा भी नष्ट नहीं होगी; आप पांच-सात चोटें करके हीन हो जाएंगे। आपकी शक्ति नष्ट हो रही है। बल्कि जुजुत्सु की गहरी कला यह है कि जब कोई आपको घूंसा मारता है, अगर आप शांति से स्वीकार कर लें तो उसके घूंसे की सारी ऊर्जा आपको उपलब्ध हो जाती है। आप लड़ें न, तो उसके घूंसे में जितनी शक्ति व्यय हुई उतनी शक्ति आपके शरीर में रूपांतरित हो जाती है। आप उसे पी गए। दस-पांच घूंसे उसे मार लेने दें, वह अपने आप थक जाएगा, अपने आप गिर जाएगा।

और यह जो मैं कह रहा हूं, जुजुत्सु कोई अध्यात्म नहीं है। यह तो सीधी-सीधी कला है लड़ने की। और जुजुत्सु की खूबी है कि छोटा बच्चा भी बड़े पहलवान से लड़ सकता है। क्योंकि शक्ति का कोई सवाल नहीं है; यील्ड करने का सवाल है, झुकने का सवाल है, आत्मसात करने का। दो शब्द समझ लेंः प्रतिरोध और अप्रतिरोध, रेसिस्टेंस और नॉन-रेसिस्टेंस। अगर आप प्रतिरोध करते हैं तो आप हार जाएंगे। अगर आप अप्रतिरोध में जीते हैं तो आप नहीं हार सकते। आंधियां निकल जाएंगी, आप वापस खड़े हो जाएंगे।

"झुकना है सुरक्षा।"

लाओत्से कहता है, मुझे कभी कोई हरा न सका, क्योंकि मैं हारा ही हुआ हूं। कैसा मजेदार हो मामला, आप लाओत्से से लड़ने चले जाएं, वह तत्काल चारों खाने चित्त लेट जाएगा। कहेगा, ऊपर बैठ जाएं। जीत गए, गांव में डंका पीट दें। आप बड़े मूढ़ मालूम पड़ेंगे। आप वैसे ही मालूम पड़ेंगे जैसे कभी छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है और बाप नीचे लेट जाता है और छोटा बच्चा ऊपर छाती पर चढ़ जाता है। और छोटा बच्चा चिल्लाता है खुशी में कि जीत गए। और बाप जानता है कि कौन जीत रहा है, कि कौन जिता रहा है।

लाओत्से कहता है, मैं कभी हराया न जा सका, क्योंकि हम हारे ही हुए हैं। तुम आओ, हम तैयार हैं। लाओत्से कहता है, मेरा कभी अपमान नहीं हुआ; क्योंकि मैंने कभी उस जगह कदम भी न रखा, जहां सम्मान की अपेक्षा थी। मुझे कभी किसी सभा से बाहर नहीं निकाला गया; क्योंकि मैं बैठता ही वहां हूं, जहां से और बाहर निकालने का उपाय नहीं है।

एक सभा में लाओत्से गया है। तो जहां लोगों ने जूते उतार दिए हैं, वह वहीं बाहर बैठ गया है। बहुत लोग कहते हैं कि अंदर चलें, मंच पर चलें, भीतर बैठें। लाओत्से कहता है कि नहीं, वहां से मैंने कई को निकाले जाते देखा है। हम यहीं बैठे हैं; तुम हमारा कुछ भी न कर सकोगे।

घटना मुझे याद आती है; मुल्ला नसरुद्दीन एक सभा में गया। सदा उसकी आदत थी नंबर एक होने की। जरा देर से पहुंचा था, जैसा कि बड़े आदमियों को पहुंचना चाहिए। बड़े आदमी जान कर देर से पहुंचते हैं। क्योंकि छोटे आदमियों को अगर राह न दिखलाई जाए थोड़ी-बहुत तो बड़ा आदमी बड़ा ही क्या! थोड़ी देर से पहुंचा था। लेकिन उस दिन कुछ गड़बड़ हो गई। गांव के बाहर से एक विद्वान आ गया था; वह सभा पर बैठा हुआ था; व्याख्यान चल रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन जब पहुंचा तो श्रोता मग्न थे, सुन रहे थे। वह पीछे बैठ गया।

और तो कोई उपाय न था। बैठ कर उसने अपनी कहानियां लोगों से कहनी शुरू कर दीं। थोड़ी ही देर में, उसकी कहानियां ऐसी थीं कि लोग मुड़ते गए। आखिर सभापति को चिल्ला कर कहना पड़ा कि नसरुद्दीन, यह शोभा नहीं देता। तुम्हें ख्याल होना चाहिए कि इस सभा का सभापति मैं हूं। नसरुद्दीन ने कहा, यह ख्याल आपका भ्रम है। मेरी तो सदा की मान्यता यह है कि जहां मैं बैठता हूं, वही जगह अध्यक्ष की जगह है। जहां मैं बैठता हूं, वही जगह अध्यक्ष की जगह है। जो समझदार हैं, वे मुझे पहले ही अध्यक्ष की जगह बैठा देते हैं। जो नासमझदार हैं, उनकी सभा गड़बड़ होती है। इस गांव में मैं ही अध्यक्ष हूं।

हमारा तर्क भी यही है, जो नसरुद्दीन का तर्क है। लाओत्से से हम राजी न होंगे। हमारा मन कहेगा, यह भी कोई बात हुई कि जहां लोगों ने जूते उतार दिए हैं, वहां बैठ गया। होना तो ऐसा चाहिए कि जहां बैठे, वहीं अध्यक्ष का पद आ जाए। हमारा भी मन यही कहेगा। आदमी की नासमझी का वही तर्क है।

लाओत्से के चिंतन का जो मौलिक आधार है, वह यही है कि तुम जीतने जाने की वासना से मत भरना; आखिर में हारे हुए लौटोगे। तुम अपेक्षा ही मत करना प्रशंसा की; अन्यथा तुम निंदा पाओगे। ऐसा नहीं है कि तुम अपेक्षा न करोगे तो लोग निंदा करेंगे ही नहीं। लेकिन तब उनकी निंदा तुम्हें छुएगी नहीं। तुम अपेक्षा नहीं करोगे तो भी लोग निंदा कर सकते हैं। लेकिन तब तुम्हें उनकी निंदा छुएगी नहीं।

छूती क्यों है निंदा? कहां छूती है? प्रशंसा की जहां आकांक्षा होती है, वहीं निंदा छूती है, वहीं घाव है। इच्छा होती है कि नमस्कार करो, और आप एक पत्थर फेंक कर मार गए। सोचा था फूल लाएंगे, और वह पत्थर ले आए। वह जो घाव है, पत्थर से नहीं लगता, ध्यान रखना; वह जो फूल की आकांक्षा थी, उसकी वजह से ही जो कोमलता भीतर पैदा हो गई, उस पर ही घाव बनता है पत्थर का। आकांक्षा न थी फूल की तो कोई पत्थर भी मार जाए तो सिर्फ दया आएगी कि बेचारा क्यों मेहनत कर रहा है! व्यर्थ इसका उपाय है, नाहक की इसकी चेष्टा है।

बुद्ध पर कोई थूक गया है। तो उन्होंने पोंछ लिया अपनी चादर से और उस आदमी से कहा, कुछ और कहना है कि बात पूरी हो गई? आनंद बहुत आगबबूला हो गया, पास में ही बैठा था। उसने कहा, यह सीमा के बाहर है बात। हद हो गई, यह आदमी थूकता है। हमें आज्ञा दें, इस आदमी को बदला चुकाया जाना जरूरी है।

बुद्ध ने कहा, आनंद, तुम समझते नहीं। जब आदमी कुछ कहना चाहता है तो कई बार भाषा बड़ी कमजोर पड़ती है। यह आदमी इतने क्रोध में है कि शब्द और गालियां बेकार हैं; यह थूक कर कह रहा है। यह कुछ करके कह रहा है। जब कोई बहुत प्रेम में होता है, गले लगा लेता है। अब यह भी कहना बेकार है कि मैं बहुत प्रेम में हूं। जब आदमी के शब्द कमजोर पड़ जाते हैं तो कृत्य उसे जाहिर करता है। आनंद, तू नाहक नाराज हो रहा है। इस बेचारे को देख, इसका क्रोध बिल्कुल उबल रहा है।

उबल तो क्रोध आनंद का भी रहा था। बुद्ध ने आनंद से कहा, लेकिन यह आदमी माफ किया जा सकता है, क्योंकि इसे जीवन के रहस्यों का कुछ भी पता नहीं है। तुझे माफ करना मुझे भी मुश्किल पड़ेगा। और फिर मजे की बात आनंद, कि गलती इसने की है--अगर गलती भी की है--लेकिन तू अपने को दंड क्यों दे रहा है? इसका कोई संबंध ही नहीं है। यह आदमी मेरे ऊपर थूका है। गलती भी अगर इसने की है, तो इसने की है। तू आगबबूला होकर अपने को क्यों जला रहा है?

बुद्ध ने कहा है, दूसरों की गलतियों के लिए लोग अपने को काफी दंड देते हैं। दूसरों की गलतियों के लिए।

लेकिन हमारे ख्याल में नहीं बैठता। मुल्ला नसरुद्दीन के पास कोई पूछने आया है। गांव में अकेला लिखा-पढ़ा आदमी है, जैसे कि लिखे-पढ़े होते हैं। खुद भी लिखता है तो पीछे खुद भी ठीक से पढ़ नहीं पाता। मगर गांव में अकेला ही है। और अकेला होने से कोई प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता भी नहीं है। एक आदमी ने आकर पूछा है कि मुझे कोई आदेश दें, कोई धर्म की आज्ञा दें, कोई नियम मुझे बताएं, जिस पर चल कर मैं भी सार्थक हो सकूं। नसरुद्दीन ने बहुत सोचा और फिर जो कहा, वह पिटा-पिटाया एक सिद्धांत था, जो कि विचारक अक्सर सोच-सोच कर कहते रहते हैं। वही, जो हजार दफे कहा गया है। नसरुद्दीन ने बहुत सोच कर उसको कहा कि एक सूत्र पर जीवन को चलाओः डोंट गेट एंग्री, कभी क्रोधित मत होओ।

या तो वह आदमी मूढ़ था, या बहरा था, या उसकी समझ में नहीं पड़ा, या उसने सुना, नहीं सुना। उसने फिर कहा कि वह तो ठीक है; कोई ऐसी चीज बताएं कि जीवन बदल जाए। मुल्ला ने जोर से कहा कि बता दिया एक दफा, ठीक से याद कर लो, डोंट गेट एंग्री, क्रोधित मत होओ।

लेकिन वह आदमी मूढ़ था, कि बहरा था, कि क्या था, कि वह नहीं समझा और उसने कहा कि अब आ ही गया हूं इतनी दूर तो कोई एक ऐसा गोल्डन रूल, कोई ऐसा स्वर्ण-सूत्र कि जिंदगी बदल जाए। मुल्ला ने डंडा उठा कर उसके सिर पर दे दिया और कहा कि हजार दफे कह चुका, डोंट गेट एंग्री।

शायद मुल्ला को ख्याल भी नहीं आया होगा कि क्या हुआ जा रहा है। हमारे खुद के सिद्धांत भी हमारे काम तो नहीं पड़ते। हमारी सलाह हमारे ही काम नहीं पड़ती। सलाह देना बहुत बुद्धिमानी की बात नहीं है। कोई भी दे देता है। अपनी सलाह को भी पूरा करना अति कठिन है।

बुद्ध ने आनंद से कहा कि तू इतने दिन से मेरे साथ है, तू अब तक इतनी सी छोटी बात नहीं समझ पाया! आनंद तो आग से भर गया है। उसने बुद्ध से कहा, अभी आप क्या कहते हैं, मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। जब तक यह आदमी यहां बैठा हुआ है, जिसने आपके ऊपर थूका है, तब तक मैं होश-हवास में नहीं हूं। बुद्ध ने कहा, आनंद, वह भी होश-हवास में नहीं है। नहीं तो थूकता क्यों? तू भी होश-हवास में नहीं है; क्योंकि मैं तुझे कहता हूं, तू कहता है मुझे कुछ समझ में सुनाई नहीं पड़ता। तुम दो पागलों के बीच मेरी क्या गति है, इस पर भी तो सोचो।

जीवन कुछ गहन सूत्रों पर खड़ा है। उनका ख्याल न हो तो कितना ही हम उनको सिद्धांतों की तरह मान लें, हम उनके विपरीत व्यवहार किए चले जाते हैं। लाओत्से का यह सूत्र तो परम सूत्र है, सुरक्षा का अर्थ है झुक जाना। लेकिन यह अति कठिन है। यह बहुत कठिन है। यह क्रोध न करना ही बहुत कठिन पड़ता है, जो कि बहुत साधारण सा सूत्र है। झुक जाना सुरक्षा है, यह तो बहुत उलटा मालूम पड़ता है, पैराडाक्सिकल मालूम पड़ता है। जीतना है तो हार जाओ; सम्मान पाना है तो सम्मान चाहो ही मत। यह तो बहुत उलटा है।

लेकिन जितने गहरे हम जीवन में जाएंगे, उतने उलटे सूत्र हमको मिलेंगे। उसका कारण यह नहीं है कि वे उलटे हैं। उसका कारण है कि हम सिर के बल खड़े हैं; हमें उलटे दिखाई पड़ते हैं। हम सिर के बल खड़े हैं। हमारे पूरे जीवन की चिंतना उलटी है। दुख भी पाते हैं उसके कारण, फिर भी हमें ख्याल नहीं आता कि हम सिर के बल खड़े हैं। और नहीं आने का कारण है कि आस-पास हमारे जो लोग हैं, वे भी सिर के बल खड़े हैं। ऐसा समझें कि किसी गांव में आप पहुंच जाएं महायोगियों के, जहां सभी शीर्षासन कर रहे हों। तो अगर आप में थोड़ी भी बुद्धि हो तो आपको भी उलटा खड़ा हो जाना चाहिए। अन्यथा आप उलटे आदमी मालूम पड़ेंगे।

जीसस के पास कोई आया है और उसने जीसस से कहा कि आपकी बातें उलटी मालूम पड़ती हैं। जीसस ने कहा, मालूम पड़ेंगी ही; क्योंकि तुम सिर के बल खड़े हो।

लेकिन तुम्हें याद भी नहीं आएगा; क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ भी लोग वैसे ही खड़े हैं। पुरानी पीढ़ी मरते-मरते नई पीढ़ी को सिर के बल खड़ा होना सिखा जाती है। संक्रामक है बीमारी, एक-दूसरे को पकड़ती चली जाती है। फिर इन उलटे खड़े लोगों में अगर सफल होना हो तो उलटा खड़ा होना जरूरी है।

इसलिए लाओत्से का सूत्र उलटा दिखाई पड़ता है। अन्यथा सीधा है। अगर प्रशंसा चाही तो निंदा मिलेगी। नहीं चाही प्रशंसा तो भी मिल सकती है; लेकिन छुएगी नहीं। पर क्यों? प्रशंसा चाही तो निंदा क्यों मिलेगी? क्या कारण है? क्या हर्ज है प्रशंसा चाहने में? निंदा क्यों मिलेगी?

उसके कारण हैं; क्योंकि आपके आस-पास जो लोग हैं, उनका भी तर्क यही है। इसे हम थोड़ा समझ लें। मैं भी प्रशंसा चाहता हूं; आप भी प्रशंसा चाहते हैं; आपका पड़ोसी भी प्रशंसा चाहता है; सारा संसार प्रशंसा चाहता है। जहां सभी लोग प्रशंसा चाहते हैं, वहां जो आदमी भी प्रशंसा चाहने की चेष्टा में आगे बढ़ेगा, वे सारे लोग उसकी निंदा शुरू कर देंगे। क्योंकि खुद को जो ऊपर ले जाना चाहते हैं, वे दूसरे को नीचे रखें, यह अनिवार्य है, आवश्यक है। अगर ऐसे हर किसी को मैं ऊपर जाने दूं तो मेरी अपनी संभावनाएं खो रहा हूं।

और इस जगत में ऊपर कम स्थान होते जाते हैं। जितने ऊपर जाइए, उतना स्थान कम। पहाड़ की चोटी है, पिरामिड की तरह है यह जगत। यहां जितने ऊपर जाइए, उतने स्थान कम होते चले जाते हैं। और जितने ऊपर जाइए, उतने दुश्मन बढ़ते चले जाते हैं। जो आदमी बिल्कुल शिखर पर पहुंचता है, सारा संसार उसका दुश्मन हो जाएगा। और सारा संसार चाहेगा कि तुम जमीन पर आओ। और सारा संसार साथी हो जाएगा आपको जमीन पर उतारने में। उन सबके आपस की कलह हैं, वह अलग बात है। लेकिन मैक्यावेली ने लिखा है कि अपने शत्रु का शत्रु अपना मित्र है। ठीक है। जिस आदमी को नीचे गिराना है, सब गिराने वाले इकट्ठे हो जाएंगे। हालांकि बात अलग है, कल यह जब गिर जाएगा, तो ये आपस में फिर लड़ेंगे। क्योंकि फिर सवाल उठेगा कि कौन ऊपर उठे।

देखा, पिछले महायुद्ध में क्या हुआ? जो सदा के दुश्मन थे, वे मित्र हो गए। कोई सोच सकता था कि स्टैलिन और चर्चिल और रूजवेल्ट साथ खड़े हो सकते हैं! कल्पना के बाहर था। लेकिन हिटलर जरा सीमा के बाहर चला जा रहा था। वह बिल्कुल शिखर पर ही होने की कोशिश कर रहा था। तब तो रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टैलिन को साथ खड़े होने में कोई कठिनाई न आई। एकदम मित्र बन गए। लेकिन यह बात जाहिर थी कि हिटलर के मरते ही यह मित्रता तत्क्षण टूट जाएगी। यह मित्रता ज्यादा देर नहीं टिक सकती। यह मित्रता तो सिर्फ हिटलर की वजह से थी। हिटलर के मरते ही खतम हो गई। दूसरे महायुद्ध में जो मित्र थे, युद्ध के हटते ही शत्रु हो गए। रूस और अमरीका फिर शत्रुता में खड़े हो गए।

चीन कम्युनिस्ट है; कोई सोच नहीं सकता कि अमरीका से कैसे मित्रता बन सकती है। लेकिन बिल्कुल सहज है, नियम से है; बनेगी। बननी ही चाहिए। क्योंकि अपने शत्रु का शत्रु। चीन और रूस के बीच जरा सी भी कलह अगर खड़ी होती है तो अमरीका और चीन के बीच मैत्री बन जाएगी।

तो इस जगत में जो आदमी प्रशंसा की आकांक्षा करता है, सभी प्रशंसा चाहने वाले उसके शत्रु हो जाएंगे। वे सब उसको नीचे खींचने की कोशिश करेंगे। वे निंदा करेंगे।

और ध्यान रहे, किसी की प्रशंसा करनी बहुत मुश्किल काम है और निंदा करनी बहुत आसान काम है। क्योंकि जब भी आप किसी की प्रशंसा करो, लोग पूछेंगे, प्रमाण क्या है? लेकिन आप किसी की निंदा करो, कोई प्रमाण नहीं पूछेगा कि प्रमाण क्या है। क्यों? क्योंकि हम चाहते ही हैं कि निंदा सही हो।

अपनी प्रशंसा का हम प्रमाण नहीं मांगते; दूसरे की निंदा का हम प्रमाण नहीं मांगते। अपनी निंदा का हम प्रमाण मांगते हैं; दूसरे की प्रशंसा का प्रमाण मांगते हैं। प्रमाण क्या है? गवाह कौन है?

अगर कोई आपसे आकर कहता है कि फलां आदमी बहुत ईमानदार है, तो आप कहते हैं, प्रमाण क्या है? अभी बेईमानी का मौका न मिला होगा। या तुम्हारे पास सबूत क्या है? और अगर यह आदमी सबूत भी ले आए तो हम सोचेंगे कि यह आदमी खुद भी लाने वाला ईमानदार है या नहीं? या जरूर कोई साजिश होगी, कोई शड्यंत्र होगा, कोई हाथ होगा। नहीं तो कोई किसी की प्रशंसा क्यों करेगा?

कोई आपसे आकर कहे कि फलां आदमी बेईमान है, चोर है। आप कहते हैं, मैं पहले ही जानता था, यह होगा ही। इसके लिए कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

तो जो व्यक्ति प्रशंसा चाहेगा, वह सारे जगत से निंदा को आमंत्रित कर लेगा। अपनी ही तरफ से निमंत्रण बुला रहा है। फिर जितना वह सिद्ध करने की कोशिश करेगा, उतने ही दूसरे लोग भी कोशिश करेंगे कि तुम गलत हो। इस सूत्र का शीर्षक हैः फ्यूटिलिटी ऑफ कनटेंशन, दावे की व्यर्थता। जब आप दावा करोगे तो सारी दुनिया दावा करेगी कि गलत हो। और बड़ा कठिन है दावे को बचा लेना। कोई उपाय नहीं है। वे सिद्ध कर ही देंगे कि आप गलत हो। और एक और बड़े मजे की बात है कि एक बार दावा गलत हो जाए, सही या गलत, फिर उसे कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता।

हमारे हृदय में इच्छा यह है कि मेरे सिवाय कोई भी ठीक नहीं है, यह हम जानते हैं। अरब में वे कहते हैं, ईश्वर हर आदमी को बना कर एक मजाक कर देता है, उसके कान में कह देता है--तुमसे बेहतर आदमी मैंने बनाया ही नहीं। सभी से कह देता है, यही खराबी है। और प्राइवेट में कह देता है, इसलिए कोई दूसरे को पता नहीं है कि दूसरे को भी यही कहा हुआ है। वे सभी यह ख्याल लेकर जिंदगी भर चलते हैं कि मुझसे बेहतर आदमी जगत में दूसरा नहीं है। और सभी यह ख्याल लेकर चलते हैं।

तो लाओत्से का सूत्र हमारे ख्याल में आ सकता है, "झुकना है सुरक्षा। झुकना ही है सीधा होने का मार्ग।"

अगर किसी व्यक्ति को सीधा, सादा, सरल, ऋजु व्यक्तित्व चाहिए हो तो उसे झुकने की कला सीख लेनी चाहिए। हम सब अकड़ने की कला सीखते हैं। हम कहते हैं कि अगर हमें सीधा रहना है, रीढ़ के बल खड़े रहना है, तो झुकना मत, चाहे टूट जाना। सब शिक्षाएं समझाती हैं कि झुकना मत, चाहे टूट जाना। हम बड़ा आदमी उसको कहते हैं कि वह झुका नहीं, भला टूट गया। अहंकार का सूत्र यही है, झुकना मत, टूट जाना।

लेकिन जीवन का यह सूत्र नहीं है। ध्यान है आपको, बच्चों के सब अंग कोमल होते हैं, झुकने वाले होते हैं। बूढ़े के सब अंग सख्त हो जाते हैं, झुकते नहीं हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि बूढ़े के मरने का जो बुनियादी कारण है, वह उम्र नहीं है, अंगों का सख्त हो जाना है। अगर बूढ़े के अंग भी इतने ही कोमल बनाए रखे जा सकें, जैसे बच्चे के, तो मृत्यु का कोई बायोलाजिकल कारण नहीं है।

यह जान कर आपको हैरानी होगी कि अभी तक वैज्ञानिक यह नहीं समझ पाए कि आदमी क्यों मरता है। क्योंकि जहां तक शरीर का संबंध है, ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि आदमी बहुत-बहुत समय तक क्यों न जी सके। सिर्फ एक बात दिखाई पड़ती है कि धीरे-धीरे अंग सख्त होते चले जाते हैं। वह जो नमनीयता है, फ्लेक्सिबिलिटी है, वह खो जाती है। वह नमनीयता का खो जाना ही मृत्यु का कारण बनता है। जितना सख्त हो

जाता है सब भीतर, उतनी ही मौत करीब आ जाती है। जितना भीतर सब होता है नमनीय, तरल, उतनी मृत्यु दूर है।

यह जो शरीर के संबंध में सही है, मनुष्य की अंतरात्मा के संबंध में और भी ज्यादा सही है। जो झुकने के लिए जितना राजी है, उतने अमृत को उपलब्ध हो जाता है। और जो झुकने से बिल्कुल इनकार कर देता है, वह तत्क्षण मृत्यु को उपलब्ध हो जाता है। यह दूसरी बात है कि हम मरे हुए भी जी सकते हैं; और आत्मा मरी-मरी रहे, शरीर ढो सकता है। अकड़ मौत है आध्यात्मिक अर्थों में। नमनीयता जीवन है।

लाओत्से कहता है, "और झुकना है सीधा होने का मार्ग। टु बी बेंट इ.ज टु बिकम स्ट्रेट।"

उलटी बातें हैं न। झुकोगे तो लोग कहेंगे, ऐसे बार-बार झुकोगे, आदत हो जाएगी झुकने की, फिर सीधे कैसे हो सकोगे? इसलिए सीधे रहो, झुको मत। लेकिन ख्याल है आपको, इसको कोशिश करके देखें, झुकें मत, सीधे रहें। एक चौबीस घंटे बिल्कुल न झुकाएं शरीर को, सीधा रखें; और तब आपको पता लगेगा कि बस, अब मौत आती है। नहीं, झुकने से कोई झुकता नहीं है; हर बार झुक कर सीधे होने की ताकत पुनरुज्जीवित होती है।

इसको समझ लें। दिन भर आप जागते हैं। वह तो अच्छा है कि कोई समझाने आपको नहीं आता कि सोएं मत, नहीं तो सुबह जागेंगे कैसे? अगर सो ही गए! और कुछ हैं ऐसे लोग जो सोने से डरते हैं कि सुबह जागेंगे कैसे? मनोवैज्ञानिकों के पास बहुत से लोग पहुंच जाते हैं, जिनको यह भय रहता है। और बीमारी सख्त होती है कभी तब तो अनेक लोग डरते हैं सोने से। क्योंकि लगता है पता नहीं, फिर उठ पाए, न उठ पाए। कम से कम जागते-जागते तो मरें। कहीं सोते में ही मर गए तो पता भी नहीं चलेगा कि मर गए। जिंदा रहने का तो कभी पता चला ही नहीं; यह मरने का भी पता नहीं चलेगा। दोनों ही बातें चूक गईं।

लेकिन कोई आपसे कहता नहीं कि सोओ मत, नहीं तो जागोगे कैसे। हालांकि सोना उलटी प्रक्रिया है; सोना बिल्कुल उलटा है जागने से। लेकिन कभी ख्याल किया कि जो आदमी जितना गहरा सोता है, उतना गहरा जागता है, उतना चैतन्य जागता है। रात जितनी गहरी होती है नींद, सुबह उतना गहरा होता है जागरण।

आपको एक बीमारी का तो पता होगा, अनिद्रा का, कि रात अनेक लोग हैं जो सो नहीं पाते। लेकिन उनको भी यह ख्याल नहीं है कि जब रात वे सो नहीं पाते तो दिन वे जाग भी नहीं पाते हैं। वह दूसरी बात उनके ख्याल में नहीं है। अनिद्रा की जिसको बीमारी है, उसको अजागरण की बीमारी भी होगी। वह ख्याल में नहीं आती उसे। क्योंकि नींद की गहराई पर जागने की गहराई निर्भर है। जितनी गहरी होगी नींद, जितनी तल-स्पर्शी होगी, उतना ही सुबह गहरा जागरण होगा। अगर रात नींद उथली, सुबह जागरण उथला। अगर रात नींद बिल्कुल नहीं, तो सुबह सिर्फ आपकी आंखें खुल गई हैं, आप जागे नहीं हैं।

रात आदमी आंखें बंद कर लेता है; आंखें बंद कर लेने से कोई सोने का संबंध है? हम सब सोचते हैं कि आंख बंद कर ली तो सो गए। नहीं, नींद आती है तो आंख बंद होती है। आंख बंद करने से दुनिया में कोई नहीं सो सकता। आंखें बंद किए पड़े रहिए रात भर। नींद नहीं आती तो आंख बंद करने का नाम नींद नहीं है। तो ठीक दूसरी बात भी ख्याल रख लें, सुबह आंख खोल ली, उसका नाम जागरण नहीं है। क्योंकि जागरण का अनुपात निर्भर करता है नींद की गहराई पर।

इसे और तरह से देखें। एक आदमी दिन भर मेहनत करता है। जितनी उसकी मेहनत होती है, उतना गहरा उसका विश्राम हो जाता है। कई लोग सोचते हैं कि दिन भर विश्राम करते रहें तो विश्राम का अच्छा अभ्यास रहेगा, तो रात काफी गहरा विश्राम हो जाएगा। वे गए, उनको विश्राम कभी नहीं होगा। बल्कि उनको रात बिस्तर पर व्यायाम करना पड़ेगा। क्योंकि जितना व्यायाम करने से बच गए हैं, वह कौन करेगा? और

सुबह वे थके हुए उठेंगे; क्योंकि रात भर जब व्यायाम करेंगे, तो सुबह थके हुए उठेंगे ही। उनकी जिंदगी में दुष्टचक्र पैदा हो गया।

वे सोचते हैं कि विश्राम ज्यादा करेंगे तो ज्यादा विश्राम उपलब्ध हो जाएगा। जिंदगी उलटे, विपरीत के सूत्र से चलती है; वह जो अपोजिट पोलर है, जो ध्रुवीयता है विरोध की, उससे चलती है। अगर गहरा विश्राम चाहिए, गहरा श्रम चाहिए। गहरे श्रम में उतर जाएं, विश्राम अपने आप आ जाएगा। गहरी नींद में चले जाएं, जागरण अपने आप आ जाएगा। ठीक से जाग लें, नींद अपने आप आ जाएगी। अगर आपको रात नींद न आती हो तो मैं नहीं कहूंगा कि नींद लाने का उपाय करें। मैं आपसे कहूंगा दौड़ें और मकान के सौ-पचास चक्कर लगा आएं। नींद न आने का मतलब इतना है कि आपने कोई श्रम नहीं किया, आप जागे नहीं। दौड़ें, एक सौ चक्कर मकान के लगा आएं। फिर आपको नींद लाना न पड़ेगी, आ जाएगी।

लाओत्से कहता है, "और झुकना ही है सीधा होने का मार्ग।"

इस भ्रांति में मत पड़ना कि अकड़ कर खड़े रहें तो सीधे हो जाएंगे। अकड़ जाएंगे, लकवा लग जाएगा, पैरालिसिस हो जाएगी। पैरालिसिस का नाम सीधा होना नहीं है। जो झुकने में जितना कुशल है, उसके खड़े होने में उतनी जीवंतता होती है, स्वास्थ्य होता है। जीवन के समस्त तलों पर झुकना सीखना तो आप खड़े हो जाएंगे।

लेकिन हम हर जगह हर आदमी अकड़ा हुआ है और अपने को बचा रहा है कि कहीं झुकना न पड़े, कहीं झुकना न पड़े। सभी इस कोशिश में लगे हैं, सभी अकड़ गए हैं, फ्रोजन हो गए हैं। अब उनमें खून नहीं बहता। सब अकड़े खड़े हुए हैं। इसलिए एक-दूसरे से मिल भी नहीं सकते, मैत्री भी संभव नहीं है। प्रेम असंभव हो गया है। निकट आना मुश्किल है। यह जो हमारे अकड़े होने की दुर्दशा है आज, उसका कारण वह सूत्र हमारे ख्याल में बैठा हुआ हैः झुकना ही मत, टूट जाना। मिट जाना, लेकिन झुकना मत।

लेकिन ध्यान रहे, हमारा मिटना भी मुर्दा होगा और हमारा टूटना भी सिर्फ विध्वंस होगा।

इस सूत्र में आगे लाओत्से कहता है, "खाली होना है भरे जाना। टु बी हालो इ.ज टु बी फिल्ड।"

वर्षा होती है। पहाड़ों पर भी होती है, खड्डों में भी होती है। पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं, खड्डे झील बन जाते हैं। खड्डे भर जाते हैं, खाली थे इसलिए। और पहाड़ खाली रह जाते हैं; क्योंकि पहले से ही भरे हुए थे। पहाड़ पर भी उतनी ही वर्षा होती है। कोई गड्ढों पर वर्षा विशेष कृपा नहीं करती। सच तो यह है कि गड्ढे पहाड़ पर गिरे पानी को भी खींच लेते हैं, अपने में भर लेते हैं। क्या है उनकी ताकत? खाली होना उनकी ताकत है।

लाओत्से कहता है, जो जितने खाली हैं, इस जगत में जो परमात्मा का प्रसाद है, उतना ही ज्यादा उनमें भर जाएगा। जो अहंकारी हैं, अकड़े खड़े हैं पहाड़ों की तरह, वे खड़े रह जाएंगे। जो खाली हैं, वे भर जाएंगे।

इसका मतलब यह हुआ कि हमें खाली करने की कला आनी चाहिए। भरने की हम फिक्र न करें। हम सब भरने की फिक्र करते हैं। खाली करना, हमें डर लगता है। भरे चले जाते हैं; कूड़ा, कबाड़, कचरा, सब भरे चले जाते हैं। इकट्ठा करे चले जाते हैं, जो मिल जाए। बर्नार्ड शॉ ने कहीं कहा है कि कई चीजें मैं फेंक सकता हूं अपने घर की; लेकिन इसीलिए नहीं फेंकता कि कहीं दूसरे न उठा लें। वह भी फिक्र है। ऐसे बेकार हो गई हैं, कोई मतलब नहीं है; लेकिन दूसरे इकट्ठा कर लें तो उनका ढेर बड़ा हो जाए। तो इकट्ठा करता चला जाता है आदमी।

कभी आपने सोचा है, आप क्या-क्या इकट्ठा करते रहते हैं? क्यों करते रहते हैं? कुछ लोगों को और कुछ नहीं तो वे डाक टिकट इकट्ठी कर रहे हैं, पोस्टल स्टैम्प इकट्ठे कर रहे हैं। पूछें उनको, क्या हो गया है?

लेकिन कोई फर्क नहीं है। एक आदमी रुपए इकट्ठा कर रहा है; उसको हम पागल नहीं कहेंगे। एक आदमी डाक टिकट इकट्ठी कर रहा है; एक आदमी कुछ और इकट्ठा कर रहा है। इकट्ठा करना विचारणीय है; क्या इकट्ठा

कर रहे हैं, यह बड़ा सवाल नहीं है। इकट्ठा करना! हम अपने को भर रहे हैं। खाली न रह जाएं; कहीं ऐसा न हो कि मौत आए और पाए कि बिल्कुल खाली हैं, कोई फर्नीचर ही नहीं पास में। तो हम सब कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा करके मौत के वक्त कहेंगे कि देखो, इतना सब सामान इकट्ठा कर लिया।

लेकिन आप खाली ही रह जाएंगे। यह सब सामान आपको खाली रखने का कारण बनेगा। जिस आदमी को भरना है, उसे अपने को खाली करना आना चाहिए। खाली करने का मतलब यह है कि आदमी के भीतर स्पेस चाहिए, जगह चाहिए। जो भी विराट उतर सकता है, उसको जगह चाहिए। हमारे भीतर अगर परमात्मा आना भी चाहे तो जगह कहां है? है कोई जगह थोड़ी-बहुत जहां उससे कहें कि कृपा करके आप यहां बैठ जाइए? खुद के बैठने की जगह नहीं है, खुद अपने बाहर खड़े हैं, कि भीतर तो कोई जगह है नहीं। अपने बाहर-बाहर घूमते हैं, कि भीतर तो कोई जगह है नहीं। परमात्मा मिल भी जाए और कहे कि आते हैं आपके घर में, तो वहां स्थान कहां है?

जीवन का जो भी परम रहस्य है, वह खुद को खाली करने की कला में निहित है।

इसे हम ऐसा समझें। अगर आप पूछें शरीर-शास्त्री से... और अगर आप लाओत्से से पूछें, तो शरीर-शास्त्री की जो अब की समझ है, वह वही कहती है जो लाओत्से कहता है। आपने कभी ख्याल किया है कि आप श्वास जब लेते हैं तो आप लेती श्वास पर जोर देते हैं कि जाती श्वास पर?

लाओत्से कहता है, खाली करने वाली श्वास पर जोर देना। लेने की फिक्र ही मत करना, वह अपने से आ जाएगी। उसकी आपको क्या चिंता करनी है? आप सिर्फ श्वास को उलीच कर बाहर कर देना। आप श्वास लेना मत अपनी तरफ से। वह काम परमात्मा कर लेगा, वह प्रकृति कर लेगी। आप सिर्फ खाली कर दो।

जीवन में जो परम रहस्य है स्वास्थ्य का, वह इतने से फर्क से भी हल हो जाता है। अगर कोई व्यक्ति सिर्फ श्वास को खाली करे और लेने का काम न करे, आने दे अपने से, तो उसे अपूर्व स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाएगा। आप सीढ़ियां चढ़ते हैं; थक जाते हैं। अब की दफे ऐसा करना कि सीढ़ियां चढ़ते वक्त सिर्फ श्वास छोड़ना, लेना मत। और आप नहीं थकेंगे। सीढ़ियां चढ़ते वक्त सिर्फ श्वास छोड़ना, खाली कर देना बाहर; और लेते वक्त आप फिक्र मत करना, शरीर को लेने देना। और आप पाएंगे, आप कितनी ही सीढ़ियां चढ़ सकते हैं, और नहीं थकेंगे। क्या हो गया? जब आप श्वास लेते हैं तो भीतर की जो गंदी श्वास है वह तो भीतर ही भरी रह जाती है, आप ऊपर से श्वास ले लेते हैं। वह ऊपर से ही वापस चली जाती है। भीतर की गंदी तो भीतर भरी ही रहती है। वह भीतर की गंदी श्वास, वह कार्बन डायआक्साइड ही आपकी हजार बीमारी, कमजोरी और सब चीजों का कारण है।

लेकिन हमारा जोर लेने पर क्यों है? वह हमारी वृत्ति के कारण है। हम हर चीज को लेना चाहते हैं, छोड़ना किसी चीज को भी नहीं चाहते। एक आध्यात्मिक कांस्टीपेशन है। कोई चीज छोड़ना नहीं चाहते, मल-मूत्र भी छोड़ना नहीं चाहते; उसको भी सम्हाल कर रखे हुए हैं।

एक वैज्ञानिक विचारक है पश्चिम में, मेथियास अलेक्जेंडर। उसने सारी जिंदगी लोगों की कब्जियत पर काम किया है। और वह कहता है कि कब्जियत मानसिक कंजूसी का परिणाम है; शारीरिक उसका कारण नहीं है। जो लोग कुछ भी नहीं छोड़ना चाहते, आखिर में वे मल भी नहीं छोड़ना चाहते हैं।

फ्रायड ने तो बहुत अजीब प्रतीक खोजा है; एकदम से कठिन मालूम पड़ता है। वह कहता है, सोने को पकड़ना और मल को पकड़ना एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। और पीला रंग सोने का और मल का पीला रंग, वह कहता है, महत्वपूर्ण है। फ्रायड ने तो बहुत मेहनत की है बच्चों पर। क्योंकि बच्चे... । मां और बाप सब छुड़वाने की कोशिश करते हैं बच्चे से कि जा, शरीर को साफ कर, मल को बाहर निकाल! लेकिन बच्चे को एक बात समझ

में आ जाती है कि एक चीज ऐसी है जिसमें वह मां-बाप का भी विद्रोह शुरू से ही कर सकता है। तो वह नहीं जाता। वह कहता है कि नहीं, कोई ख्याल ही नहीं है। वह रोकता है, वह मां-बाप को बताता है कि तुम क्या समझते हो, एक चीज तो कम से कम मेरे पास भी है जो मैं ही कर सकता हूं और तुम करवा नहीं सकते!

फ्रायड कहता है, ट्रॉमैटिक हो जाती है यह घटना। बच्चे की पहली ताकत उसके पास यही है। और तो कोई ताकत भी नहीं है गरीब पर। और मां-बाप पर सब कुछ है; वे हर कुछ कर सकते हैं। बच्चे के पास एक ताकत है; मां-बाप को प्रसन्न कर सकता है। अगर वह चला जाए पाखाना, मां-बाप को प्रसन्न कर देता है। न जाए, घर भर में चिंता खड़ी कर देता है। वह दो दिन सम्हाल ले, संयमी हो जाए, सब को बेचैन कर डाला उसने। उसके हाथ में एक ताकत आ गई। यह बच्चा सीख रहा है चीजों का रोकना। फिर जिंदगी भर इसका संबंध गहरा होता चला जाएगा; हर चीज को रोकने की वृत्ति होती चली जाएगी।

कंजूस आदमी अक्सर कब्जियत से भरे होंगे। जो आदमी सहज चीजें दे सकता है, बांट सकता है, वह कब्जियत का शिकार नहीं होगा। जुड़े हैं हमारे जीवन में एक आरगैनिक यूनिटी है; सब चीजें जुड़ी हैं, अलग अलग नहीं हैं। छोटी सी चीज भी जुड़ी है, बहुत छोटी सी चीज भी जुड़ी है।

आप खाना खा रहे हैं। लोग भरते चले जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चबाते क्यों नहीं लोग? भरते क्यों चले जाते हैं? चबाएंगे तो देरी लगेगी। भरने की इतनी जल्दी है, भर लेना है। अगर आप ठीक से चबाएं तो आपको कम से कम एक कौर बयालीस बार चबाना ही पड़ेगा। तभी वह ठीक से चबा। लेकिन बयालीस बार एक कौर? सोच कर ऐसा लगेगा कि जिंदगी फिर चबाने में ही चली जाएगी। भर दो। आपको पता ही नहीं है कि पेट के पास फिर कोई दांत नहीं हैं। और पेट सिर्फ एक तरह की चमड़ी है। और पेट के पास उसे पचाने का कोई उपाय नहीं है। ऊपर से भरते चले जाओ, नीचे से निकलने मत दो। और ये दोनों एक साथ होंगी घटनाएं तो आदमी की जिंदगी एक कचरे का ढेर हो जाती है।

यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि सब चीजें जुड़ी हैं। जो आदमी ठीक से नहीं चबाएगा, वह हिंसक हो जाएगा। उसका व्यवहार हिंसक हो जाएगा। क्योंकि जो आदमी ठीक से चबा लेगा, उसकी हिंसा की बड़ी मात्रा चबाने में निकल जाती है। ठीक से चबाने वाले लोग मिलनसार होंगे। ठीक से नहीं चबाने वाले लोग मिलनसार नहीं होंगे। जो ठीक से चबा लेगा, उसका क्रोध कम हो जाएगा। क्योंकि दांत हमारे हिंसा के साधन हैं। जो ठीक से नहीं चबाएगा, वह कहीं और क्रोध निकालेगा, वह किसी और को चबाने के लिए तैयार रहेगा।

और भरने की जल्दी है कि भरते चले जाओ। यह आपको हैरानी होगी जान कर कि यूनान में, जब सभ्य था यूनान, अपनी ऊंचाई पर पहुंचा, तो लोग खाने की टेबल पर साथ में एक पक्षी का पंख भी रखते थे। जैसे दांत साफ करने के लिए हम कुछ लकड़ियां रखते हैं, ऐसे वे हर एक टेबल पर खाने वाले के साथ एक पक्षी का पंख रखते थे। वह था--गटको, फिर पंख को करके वोमिट कर दो, फिर और खा लो। नीरो सम्राट दिन में आठ-दस दफे खाना खाता था। दो डाक्टर रख छोड़े थे। वह खाना खाएगा, डाक्टर उसको उलटी करवा देंगे; वह फिर अपनी टेबल पर आकर खाना खाने बैठ जाएगा। भरते जाओ। क्या कारण है ऐसा हमें भरने का? यह क्या पागलपन है?

मैं घरों में जाता हूं, कभी अमीरों के घर में पहुंच जाता हूं तो वहां समझ में नहीं पड़ता कि वे रहते कहां होंगे! सब भरा हुआ है। सब भरा हुआ है। निकलने का भी रास्ता नहीं है। कैसे निकल कर बाहर आते हैं, कैसे भीतर जाते हैं, कुछ पता नहीं। मगर यह घर का ही सबूत नहीं है, यह भीतर मन का भी सबूत है। क्योंकि हमारे घर हमारे मन हैं। और हमारा मन हमारा घर है, उसका ही फैलाव है।

लाओत्से कहता है, "खाली होना है भरे जाना।"

तुम अपने को भीतर से खाली करने की सोचो; भरने का काम प्रकृति पर छोड़ दो। वह सदा भर देती है। तुम सिर्फ गड्ढे बनाओ, तुम सिर्फ खाली करो, तुम सिर्फ खाली करो।

"और टूटना, टुकड़े-टुकड़े हो जाना है पुनरुज्जीवन।"

और घबड़ाओ मत कि टूट जाऊंगा। और घबड़ाओ मत कि मिट जाऊंगा। और घबड़ाओ मत कि मर जाऊंगा। क्योंकि मरना नए जीवन की शुरुआत है। जन्म शुरुआत है मृत्यु की और मृत्यु पुनः शुरुआत है जन्म की। टूटने से मत घबड़ाओ। टूटने को तैयार रहो। क्योंकि तुम टूट सकोगे तो नए हो जाओगे। नए होने का ढंग एक ही है कि हम बिखरना भी जानें, टूटना भी जानें, समाप्त होना भी जानें।

हम पकड़ कर रखना चाहते हैं अपने को, कि कुछ मिटे न, कुछ टूट न जाए। हम जीवन की प्रक्रिया के विपरीत चल रहे हैं। यह जीवन की पूरी प्रक्रिया एक वर्तुल है। एक नदी सागर में गिरती है। सागर में धूप और सूरज की किरणें भाप बनाती हैं। वह भाप फिर आकर पहाड़ पर वर्षा कर जाती है। फिर गंगोत्री में भर जाता है पानी। फिर गंगा बहने लगती है। फिर गंगा जाकर सागर में गिर जाती है। एक वर्तुल है। गंगा अगर सागर में गिरते वक्त कहे कि अगर मैं सागर में गिरूं और बिखरूं तो नष्ट हो जाऊंगी, गंगा अपने को रोक ले, न जाए सागर में गिरने। उस दिन गंगा मर जाएगी। क्योंकि पुनरुज्जीवन का उपाय नहीं रह जाएगा। गंगा को सागर में खोना ही चाहिए। वही उसके नए होने का उपाय है। फिर ताजी हो जाएगी।

और ध्यान रखें, इतनी यात्रा में गंगा गंदी हो जाती है--स्वभावतः। सागर उसे फिर नया और ताजा कर देता है। बिखर जाती है, सब रूप खो जाता है। फिर निमज्जित हो जाती है मूल में। फिर धूप, फिर बादल बनते हैं। इन बादलों में गंदगी नहीं चढ़ सकती। बादल शुद्धतम होकर आकाश में आ जाते हैं। फिर हिमालय पर बरस जाते हैं। फिर गंगोत्री नई और ताजी है। फिर यात्रा शुरू हो जाती है।

लाओत्से कहता है, जीवन एक वर्तुल यात्रा है। टूटना पुनः होने का उपाय है; मिटना नए जीवन की शुरुआत है; मृत्यु नया गर्भाधान है। इसलिए घबड़ाओ मत कि टूट जाएंगे; टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे; अगर झुकेंगे, मिट जाएंगे; अगर खाली रहेंगे, क्या भरोसा, भरे गए, न भरे गए; किस पर विश्वास करें? अपनी रक्षा अपने ही हाथ करनी है! ऐसा बचाने की कोशिश जिसने की, वह सड़ जाएगा। उसकी गति अवरुद्ध हो जाएगी। गति का सूत्र हैः मिटने की सदा तैयारी। जीवन का महासूत्र हैः प्रतिपल मरने की तैयारी, प्रतिपल मरते जाना, प्रतिपल मरते जाना।

बायजीद रात जब विदा होता अपने शिष्यों से तो रोज नमस्कार करता और कहता, शायद सुबह मिलना हो, न हो मिलना, आखिरी प्रणाम! यह रोज आखिरी नमस्कार! सुबह उठ कर कहता कि फिर एक मौका मिला नमस्कार का। शिष्यों ने कई बार बायजीद को कहा कि आप यह क्या करते हैं रोज रात को? बायजीद कहता कि रोज रात मृत्यु में जाने की तैयारी होनी चाहिए। और तभी तो मैं सुबह इतना ताजा उठता हूं; क्योंकि तुम सिर्फ सोते हो, मैं मर भी जाता हूं। इतना गहरा उतर जाता हूं, सब छोड़ देता हूं जीवन को।

इसलिए बायजीद की ताजगी पाना बहुत मुश्किल है। सुबह बायजीद जब उठता तो वैसे ही जैसे नया बच्चा जन्मा हो। उसकी आंखों में वही निर्दोष भाव होता। क्योंकि सांझ जो मर सकता है, सुबह वह फिर से पुनरुज्जीवित हो जाता है। हम तो रात नींद में भी अपने को पकड़े रहते हैं कि कहीं खिसक न जाएं, सम्हाले रखते हैं कि कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए। तो सुबह हम वैसे ही उठते हैं, जैसे हम रात भर सोते हैं।

"अभाव है संपदा। संपत्ति है विपत्ति और विभ्रम।"

अभाव है संपदा, न होना संपत्ति है। होना विपत्ति है। लाओत्से कहता है, जितना ज्यादा तुम्हारे पास होगा, उतनी तुम अड़चन और मुसीबत में रहोगे। क्योंकि भोग तो तुम उसे पाओगे ही नहीं, सिर्फ पहरा दे पाओगे। और जितना ज्यादा होता जाएगा, उतनी तुम्हारी चिंता का विस्तार होता चला जाएगा। जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह प्रतिपल भारहीन, निर्भार होकर जी पाता है।

पांपेई का नगर जला, सारा गांव भागा। जो-जो बन सका जिससे ले जाते। ज्वालामुखी फूट पड़ा आधी रात। कोई अपनी तिजोरी ले जा रहा है। कोई अपने कागजात ले जा रहा है। कोई अपने बच्चे को, कोई अपनी पत्नी को। जिसको जो, जिस पर सुविधा थी, वह लेकर भागा। और सभी दुखी हैं। सभी दुखी हैं, क्योंकि सभी का बहुत कुछ छूट गया है। आग इतनी अचानक थी और क्षण भर रुकना मुश्किल था कि जो हाथ में लगा, वह लेकर भागा। सभी रो रहे हैं। सिर्फ एक आदमी पांपेई के नगर में नहीं रो रहा है, अरिस्टीपस नाम का एक आदमी नहीं रो रहा है। तीन बजा है रात का; अपनी छड़ी लिए उसी भीड़ में--पूरे नगर के लाखों लोग अपना सामान लेकर भाग रहे हैं--वह अपनी छड़ी लिए जा रहा है।

अनेक लोग उससे कहते हैं, अरिस्टीपस, कुछ बचा नहीं पाए? अरिस्टीपस कहता है, कुछ था ही नहीं। हम इकट्ठा करने की झंझट में ही नहीं पड़े, बचाने की भी कोई झंझट नहीं रही। सारे लोग भाग रहे हैं और अरिस्टीपस टहल रहा है। लोग उससे पूछते हैं कि तू भाग नहीं रहा? अरिस्टीपस कहता है कि इतने वक्त हम रोज ही सुबह घूमने जाते हैं। वह अपनी छड़ी लिए घूमने जा रहा है। चिंतित नहीं हो? पीछे तुम्हारा मकान? अरिस्टीपस कहता है, अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है।

अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है, यह अर्थ है अभाव का। अपने सिवाय अपने पास और कुछ भी नहीं है। और इसलिए मौत भी अरिस्टीपस से कुछ छीन न पाएगी। इसका यह मतलब नहीं है कि आपके पास कुछ भी न हो। इसका यह मतलब भी नहीं है कि अरिस्टीपस के पास भी कुछ न था। कम से कम छड़ी तो थी ही। इसका मतलब कुल इतना है कि वह जो परिग्रह का भाव है कि मेरे पास यह है, यह है, यह है, वही दुख का कारण बनेगा। क्या है, क्या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। भीतर संपत्ति को पकड़ने की जो वृत्ति है, कि मेरे पास है, मेरा है, वही दुख का कारण बनेगा। और वही चिंताओं का जन्म है।

"अभाव है संपदा।"

कुछ भी नहीं है; तो उसी के साथ सारी चिंताएं भी विलीन हो गईं। यह एक आंतरिक दशा है।

एक छोटी सी कहानी, जो मुझे बहुत प्रीतिकर रही है। एक सम्राट एक साधु के प्रेम में पड़ गया। साधु था भी अदभुत। मोह बढ़ता गया सम्राट का। आखिर सम्राट ने एक दिन कहा कि इस वृक्ष के नीचे न पड़े रहें, मेरे महल में चलें। साधु उठ कर तत्क्षण खड़ा हो गया। उसने कहा, चलो।

सम्राट बड़ा चिंतित हुआ। सोचा था, साधु कहेगा, कहां संसार में उलझाते हो! महल? हम महल नहीं जा सकते; हम सब त्याग कर दिए हैं। सम्राट भी प्रसन्न होता अगर साधु ऐसा कहता। और सम्राट और जोर से आग्रह करता कि नहीं महाराज, चलना ही पड़ेगा। पैर पकड़ता, हाथ-पैर जोड़ता और सोचता, महा तपस्वी है।

साधु खड़ा ही हो गया। भिक्षा का पात्र उठा लिया, जो थोड़े-बहुत पोटली में बंधे हुए कपड़े-लत्ते थे दो-चार, वे कंधे पर टांग लिए और कहा, कहां है रास्ता?

सम्राट के बिल्कुल प्राण निकल गए। उसने कहा, कहां नासमझ, किस साधारण आदमी के पीछे मैंने इतने दिन गंवाए! यह तो तैयार ही बैठे थे। प्रतीक्षा ही थी। सिर्फ हमारी राह ही देख रहे थे। हम भी बुद्धू निकले।

लेकिन अब कह ही चुके थे, फंस ही गए थे, तो रास्ता भी बताना पड़ा, लेकिन बड़े बेमन से। महल पहुंचते-पहुंचते साधु तो विदा ही हो चुका था। साधु तो बचा ही नहीं--उसी क्षण, जब साधु खड़ा हो गया चलने के लिए। अब तो एक जबर्दस्ती का मेहमान था, बिना बुलाया मेहमान। लेकिन अब कह दिया था सम्राट को तो उसे ठहराना था। उसे ठहरा दिया। परीक्षा की दृष्टि से ही श्रेष्ठतम जो भवन था, उसमें ही ठहराया। अच्छे से अच्छे जो भोजन थे, वही व्यवस्था की। अच्छे से अच्छे कपड़े! और साधु गजब का था--साधु था ही नहीं सम्राट की नजरों में--जो भी कहता, करने को राजी हो जाता। कहा, ये कपड़े छोड़ दो, वह उतार कर तत्काल खड़ा हो गया। कीमती वेशभूषा पहना दी, पहन लिया। बड़े शानदार बिस्तरों पर सोने को कहा, मजे से सो गया। सुंदरतम स्त्रियां सेवा में लगाईं, पैर फैला दिए। सम्राट ने कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया। एक दफा तो यह न कहे!

पंद्रह दिन में ही सम्राट ऊब गया और घबड़ा गया। एक दिन सुबह आकर उसने कहा, महाराज, बहुत हो गया। मुझमें और आप में कोई फर्क ही नहीं है। साधु ने कहा, फर्क? जानना कठिन है। लेकिन अगर जानना चाहते हो तो मेरे पीछे आओ। साधु ने कपड़े सम्राट के वापस उतार कर रख दिए, अपने कपड़े पहन लिए, अपना डंडा उठा लिया, अपनी झोली, अपना भिक्षा-पात्र, बाहर निकल आया महल के। सम्राट पीछे-पीछे चला। नदी आ गई। सम्राट ने कहा, अब बता दें। उस फकीर ने कहा, जरा नदी के उस पार। नदी के पार भी निकल गया। सम्राट बोला, अब बता दें वह भेद। उसने कहा, थोड़ा और आगे। राज्य की सीमा आ गई। सम्राट ने कहा, अब? उस फकीर ने कहा, अब मैं पीछे नहीं जाना चाहता; अब तुम भी मेरे साथ ही चलो। सम्राट ने कहा, यह कैसे हो सकता है? मेरा महल है पीछे; मेरा राज्य है। उस फकीर ने कहा, अगर तुम्हें समझ में आ सके फर्क तो समझ लेना। मेरा कोई महल पीछे नहीं है, मेरा कोई राज्य पीछे नहीं है। मैं तुम्हारे महल में था, लेकिन तुम्हारा महल मुझमें नहीं है।

सम्राट पैर पकड़ लिया और कहा कि महाराज, बड़ी भूल हो गई। साधु ने कहा, लौट चल सकता हूं, कोई हर्जा मुझे नहीं है। लेकिन तुम फिर मुसीबत में पड़ जाओगे। अब तुम लौट ही जाओ, मुझे कोई अड़चन नहीं है, वापस... । जैसे ही उस साधु ने कहा वापस, सम्राट का पसीना छूट गया। साधु ने कहा, फिर तुम पूछोगे कि महाराज, फर्क क्या है? मुझे तुम जाने ही दो, ताकि तुम्हें फर्क याद रहे। अन्यथा और कोई कारण मेरे जाने का नहीं है। वापस चल सकता हूं।

क्या है आपके पास, यह सवाल नहीं है; कितना आपके भीतर चला गया है, यही सवाल है। भीतर न गया हो तो आप खाली हैं। अभाव है। उस अभाव में ही विश्रांति है, आनंद है, मुक्ति है।

"इसलिए संत उस एक का ही आलिंगन करते हैं; और बन जाते हैं संसार का आदर्श।"

इस एक नियम का, एक ताओ का, इस खाली होने के सूत्र का, इस झुक जाने की कला का, इस मिट जाने की तैयारी का, इस एक नियम का पालन करते हैं; और बन जाते हैं संसार का आदर्श।

बनना नहीं चाहते संसार का आदर्श, नहीं तो कभी नहीं बन पाएंगे। जो बनना चाहते हैं, वे कभी नहीं बन पाते। जो इन कलाओं को जानता है जीवन की, वह अनजाने संसार का आदर्श बन जाता है।

आज इतना ही। कीर्तन करें, फिर जाएं।

अड़तालीसवां प्रवचन

समर्पण है सार ताओ का

Chapter 22 : Part 2

Futility Of Contention

He does not reveal himself,
And is therefore luminous.
He does not justify himself,
And is therefore far-famed.
He does not boast of himself,
And therefore people give him credit.
He does not pride himself,
And is therefore the chief among men.
It is because he does not contend
That no one in the world can contend against him.
Is it not indeed true, as the ancients say,
"To yield is to be preserved whole?"
Thus he is preserved and the world does him homage.

अध्याय 22 : खंड 2

संघर्ष की व्यर्थता

वे अपने को प्रकट नहीं करते,
और इसलिए ही वे दीप्त बने रहते हैं।
वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते,
इसलिए दूर-दिगंत उनकी ख्याति जाती है।
वे अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते,
इसलिए लोग उन्हें श्रेय देते हैं।
वे अभिमानी नहीं हैं,
और इसीलिए लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हैं।

चूंकि वे किसी वाद की प्रस्तावना नहीं करते,
इसलिए दुनिया में कोई भी उनसे विवाद नहीं कर सकता है।
और क्या यह सही नहीं है, जैसा कि कहा है प्राचीनों नेः
"समर्पण में ही है संपूर्ण की सुरक्षा।"
और इस तरह संत सुरक्षित रहते हैं और संसार उनको सम्मान देता है।

मनुष्य की तीव्र आकांक्षा है कि दूसरे उसे जानें और दूसरे उसे पहचानें।

इस आकांक्षा का मौलिक कारण क्या है?

मौलिक कारण है कि मनुष्य स्वयं को नहीं जानता और स्वयं को नहीं पहचानता। यह एक गहरी कमी है। और इस कमी को वह दूसरों से सम्मान पाकर, नाम पाकर, श्रेय पाकर भर लेना चाहता है। जो हमारे पास नहीं है, वह हम दूसरों से उधार मांग लेना चाहते हैं।

लेकिन कितने ही लोग जान लें और कितने ही लोग पहचान लें, जो अपने को ही नहीं पहचानता है, उसका जो गड्ढा है, जो कमी है, वह दूसरों के पहचान लेने से भर नहीं सकता। और जब मैं अपने को ही नहीं जानता तो मैं लोगों को भी क्या पहचनवा सकूंगा कि मैं कौन हूं। एक झूठ होगा। लेकिन अगर बहुत लोग उस झूठ को दोहराने लगें तो मुझे भी भरोसा आ जाएगा। हमारे सच और झूठ में बहुत फर्क नहीं होता। हमारे सच और झूठ में इतना ही फर्क होता हैः कि जिस झूठ पर हम भरोसा करते हैं, वह हमारा सच हो जाता है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है--और हिटलर ने बड़ी महत्वपूर्ण बातें लिखी हैं, वह आदमी महत्वपूर्ण था--उसने लिखा है कि सत्य और असत्य में मैंने कोई ज्यादा फर्क नहीं पाया। असत्य को बार-बार दोहराते रहो, धीरे-धीरे सत्य हो जाता है। और यह वह अनुभव से कहा है। उसने खुद बहुत असत्य दोहराए और वे सत्य हो गए। और वे इतने सत्य हो गए कि दूसरों ने उन्हें सत्य माना सो माना ही, हिटलर भी उन पर भरोसा करने लगा।

अगर आप एक झूठ लोगों से कहते रहें तो थोड़े दिन में आप भी भूल जाएंगे कि वह झूठ है। पुनरुक्ति विस्मरण बन जाती है। पुनरुक्ति, बार-बार दोहराने से, सत्य की जन्मदात्री हो जाती है--उस सत्य की जो हमारा सत्य है। इसलिए हमारे सत्य में और झूठ में इतना ही फर्क होता हैः झूठ कम दोहराया गया है और सत्य ज्यादा दोहराया गया झूठ है।

इसीलिए पुराने झूठ बहुत सत्य मालूम पड़ते हैं; क्योंकि हजारों साल से आदमी उन्हें दोहरा रहा है। नया सत्य भी झूठ मालूम पड़ता है; क्योंकि वह दोहराया नहीं गया, अभी नया है। तो हम पुराने झूठ को भी मान लें; नए सत्य को मानने की तैयारी नहीं होती। क्योंकि हमारे लिए सत्य का एक ही अर्थ होता हैः कितना दोहराया गया है।

इसलिए हम पूछते हैं कि कोई शास्त्र कितना पुराना है। जितना पुराना, उतना सत्य। इसलिए सभी धर्मों के लोग अपने शास्त्र को बहुत पुराना सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। अगर कोई सिद्ध करे कि उतना पुराना नहीं है तो उन्हें बड़ी पीड़ा होती है। वे चाहते हैं कि उनका धर्मग्रंथ सबसे ज्यादा पुराना हो तो सबसे ज्यादा सत्य हो जाएगा। क्योंकि हमारे मन में सत्य का यही अर्थ हैः कितनी बार दोहराया गया। पुराना होगा तो ही ज्यादा दोहराया गया होगा।

लेकिन असत्य को कोई हजारों साल तक दोहराए तो भी सत्य नहीं होता। और सत्य को शायद किसी ने एक बार भी न कहा हो तो भी सत्य ही होता है। सत्य और असत्य में बुनियादी अंतर है, गुणात्मक अंतर है; कोई परिमाण के अंतर नहीं हैं।

लेकिन जैसा आदमी है, उसके सभी सत्य दोहराए गए झूठ हैं। आप अपने संबंध में ही कुछ बातें दोहराते रहते हैं। लोग भी उनको दोहराने लगते हैं। भरोसा आ जाता है कि मैं यह हूं। यह भरोसा जिंदगी को व्यर्थ कर देता है।

लाओत्से इस सूत्र में कहता है, "वे अपने को प्रकट नहीं करते, और इसलिए वे दीप्त बने रहते हैं।"

संत की परिभाषा है इस सूत्र में। लाओत्से जिसे संत कहेगा, उसकी। हम जिन्हें संत कहते हैं, उनकी नहीं। क्योंकि हमारा संत भी दोहराया हुआ झूठ होता है। इसलिए हिंदू के संत को मुसलमान संत न मानेंगे। और मुसलमान के संत को हिंदू संत न मानेंगे। और जैन के संत को हिंदू संत नहीं मानेंगे। क्योंकि हमारे संत का भी अर्थ, हमने किस झूठ को दोहराया है बहुत बार, उस पर निर्भर है। और लाओत्से, संतत्व की जो शुद्धता है, जो शुद्धतम संतत्व है, जो संतत्व का सत्य है--हिंदू, मुसलमान, ईसाई का नहीं--उसके संबंध में बात कर रहा है।

वह कहता है, "वे अपने को प्रकट नहीं करते।"

प्रकट करने की जो आकांक्षा है--दूसरा मुझे जाने--यह अज्ञान से ही उपजती है। दूसरा मुझे पहचाने कि मैं कौन हूं, यह, मेरे भीतर कोई घाव है, उसे छिपा लेने का उपाय है। और दूसरा जो स्वयं को नहीं जानता, वह मेरे संबंध में कुछ जान कर मेरे अज्ञान को मिटाने का कारण कैसे हो सकता है? संत अपने को प्रकट नहीं करते, इसका यह अर्थ नहीं है कि वे प्रकट नहीं हो जाते हैं। लेकिन वह प्रकट हो जाना उनकी चेष्टा नहीं है, आकांक्षा नहीं है।

सूफी फकीरों के संबंध में थोड़ी बात यहां समझ लेनी उपयोगी होगी। सूफी फकीर संसार छोड़ कर भी नहीं जाते हैं--सिर्फ एक कारण से। इसलिए नहीं कि संसार छोड़ना व्यर्थ है। संसार छोड़ कर भी पाया जा सकता है। शायद ज्यादा सरलता से भी पाया जा सकता है। लेकिन सूफी संत कहते हैं कि संसार छोड़ कर जाओ तो लोगों को पता चल जाता है। और लोगों को पता चल जाए, ऐसा कुछ भी करना भीतर छिपी किसी गहरी वासना का परिणाम है। तो इतना भी क्या बताना कि हम छोड़ कर जा रहे हैं।

तो सूफी संत, हो सकता है, चमार हो गांव में, जूते बनाता हो; वह जूते ही बनाता रहेगा। उसका पड़ोसी भी, हो सकता है कि न जानता हो कि पड़ोस में कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लेकिन दूर-दूर से जानने वाले उसके पास आते रहेंगे। उनको भी वह जिज्ञासु की तरह स्वीकार नहीं करेगा। उनको भी वह जूता बनाने की कला सिखाने के लिए ही स्वीकार करेगा। प्रकट बाजार की दुनिया में वह जूता बनाने वाले का शिष्य होगा; रात के अंधेरे में, एकांत में, वह साधक होगा। और कई बार ऐसा होगा कि एक फकीर दूसरे फकीर के पास किसी को भेज देगा। वह दो-चार वर्ष तक उससे जूते बनवाता रहेगा, कपड़ा बुनवाता रहेगा। दो-चार वर्ष तक उससे पूछेगा ही नहीं कि तुम आए किस लिए थे। दो-चार वर्ष चुपचाप वह आदमी जूता बनाता है, चटाई बुनता है, कपड़ा सीता है; जो उसका गुरु कह देता है, वह दिन भर करता रहता है। दो-चार साल बाद वह संत उसे भीतरी जगत में प्रवेश करवाता है।

क्यों? इतनी चार साल तक प्रतीक्षा क्या थी? सूफी कहते हैं कि जो जल्दी यह भी प्रकट करता हो कि मैं साधना करने आया हूं, उसकी प्रकट करने की वासना प्रबल है। और ऐसा आदमी सत्य को नहीं खोज पाएगा।

ऐसा आदमी, मैं सत्य खोज रहा हूं, इसके प्रचार में ज्यादा उत्सुक होगा, सत्य को खोजने में कम। ऐसा आदमी, मैं साधु हूं, ऐसा दूसरे लोग जान लें, इसमें ज्यादा उत्सुक होगा, बजाय इसके कि साधु हो जाए।

सूफी फकीर हसन अपने शिष्यों से पूछता था, तुम संन्यासी होने आए हो या संन्यासी बनने? तुम धार्मिक होना चाहते हो या धार्मिक बनना? और वह कहता, दूसरा काम सरल है। अगर धार्मिक बनना है, साधु बनना है, महात्मा बनना है, बहुत सरल काम है। और उसके लिए मेरे पास आने की भी जरूरत नहीं है, थोड़े से प्रचार और विज्ञापन की कला आनी चाहिए। धार्मिक होना है तो लंबी यात्रा है। और उसका पहला सूत्र है कि प्रकट करने की भूल मत करना। क्यों? यह प्रकट करने के लिए इतनी बड़ी भूल समझने का कारण क्या है?

आदमी के हाथ में एक कदम उठाना है, फिर दूसरा कदम अनिवार्य हो जाता है, फिर तीसरा कदम अनिवार्य हो जाता है।

जिब्रान ने लिखा है कि एक फकीर गांव-गांव घूमता था और कहता था, जिसे प्रभु के पास चलना हो, मेरे पीछे आ जाए। कई लोगों ने कहा, बड़ी आकांक्षा होती है तुम्हारे पीछे आने की, लेकिन अभी बहुत काम संसार में बाकी हैं। किसी की लड़की बड़ी है और विवाह करना है। और किसी के बच्चे अभी छोटे हैं, मासूम हैं, थोड़े बड़े हो जाएं, सम्हल जाएं। और किसी ने अभी-अभी दुकान जमाई है। और किसी ने अभी-अभी खेत में दाने डाले हैं; फसल कट जाए। ऐसे हजार काम थे। वह फकीर गांव-गांव चिल्लाता है कि जिसको ईश्वर के पास चलना हो, मेरे पास आ जाए; मैं ईश्वर का रास्ता जानता हूं। गांव में लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते थे।

एक गांव में बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई। एक आदमी उसके पीछे चलने को राजी हो गया। फकीर मुसीबत में पड़ा। क्योंकि वह आदमी दो-चार दिन में उसको पूछता कि कितनी देर और है? कहां है रास्ता? उस फकीर ने उसको कठिन से कठिन काम बताए। लेकिन वह भी आदमी जिद्दी था। वह सब काम पूरा करके खड़ा हो जाए और बोले, कोई और रास्ता, विधि, मार्ग?

छह साल हो गए। फकीर सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया--इस आदमी की वजह से। क्योंकि वह चौबीस घंटे तनाव हो गया; रात सोने न दे, दिन जागने न दे। और उसकी मौजूदगी भी भारी होने लगी। आखिर एक दिन फकीर उसके पैरों में पड़ गया और कहा, मुझे माफ कर दे, तेरी वजह से मैं भी रास्ता भूल गया। और मुझसे गलती हो गई, अब मैं किसी को न कहूंगा।

यह जो आदमी है जो कह रहा था कि मैं रास्ता जानता हूं, इसे कोई रास्ता पता नहीं है। लेकिन मैं रास्ता जानता हूं, ऐसा भी लोग मानें इसमें भी बड़ा सुख है। और न कभी कोई पीछा करने आता है, इसलिए न कभी कोई परीक्षा होती है। जिन्हें आप संत कहते हैं, उनमें से सौ में से निन्यानबे एकदम पानी में डूब जाएं, अगर आप उनके पीछे चलने को राजी हो जाएं। आप कभी पीछे चलते नहीं, वे नेता बने रहते हैं। क्योंकि बिना अनुयायी के नेता बना रहना बड़ी सरल बात है। और धीरे-धीरे उन्हें भी भरोसा आ जाता है कि वे जानते हैं। जब आपकी आंखों में चमक आती है और आपको लगता है कि हां, यह आदमी जानता है; तो उस आदमी को भी तृप्ति होती है।

हम एक-दूसरे का उपयोग दर्पण की भांति करते हैं; अपनी शक्ल दूसरे में देख लेते हैं।

यह जो प्रकट करने की वृत्ति है, वह जिस अहंकार से जन्मती है, वह अहंकार बाधा है। संत अगर प्रकट हो जाएं, दूसरी बात है। कोई उन्हें खोज ले, जान ले, पहचान ले, दूसरी बात है। लेकिन वह जो गहन वासना है कि दूसरा मुझे जाने, वह संतत्व का हिस्सा नहीं है। दूसरा मुझे जाने, यह सांसारिक मन की वृत्ति है। मैं स्वयं को जानूं, यह धार्मिक मन की वृत्ति है। कोई मुझे न जाने, अकेला मैं ही अपने को जान लूं, यह धार्मिक खोज है। मैं

अपने को जानूं, न जानूं, सारा संसार मुझे जान ले; ऐसा न हो कि एकाध आदमी ऐसा भी रह जाए जो मुझे जाने बिना रह जाए, यह सांसारिक मन की वृत्ति है।

एक दिन सांझ मुल्ला नसरुद्दीन के काफी हाउस में बड़ी भीड़ है--गांव के काफी हाउस में। एक योद्धा आया है। वह नंगी तलवार हाथ में निकाल कर अपने युद्ध की बातें कर रहा है। और वह कहता है कि हम युद्ध से सीधे लौट रहे हैं। और लोग बड़े सकते में आ गए हैं; उसकी बहादुरी ऐसी है। और वह कहता है कि मैंने भाजी-मूली की तरह लोगों को काटा। नसरुद्दीन के बर्दाश्त के बाहर हो गया। नसरुद्दीन ने खड़े होकर कहा कि हमें भी जवानी की याद आती है; एक दफा ऐसा हमने भी भाजी-मूली की तरह लोग काट दिए थे। दस-पंद्रह आदमियों के पैर तो एक झपट्टे में काट दिए थे। उस योद्धा ने कहा, पैर? कभी सुना नहीं। अगर आप सिर काटते तो ज्यादा बेहतर होता। नसरुद्दीन ने कहा, सिर तो कोई पहले ही काट कर ले जा चुका था।

मगर बड़ा कठिन हो गया उसको रुकना। नसरुद्दीन, हमारे भीतर वह जो बचकाना अहंकार छिपा है, उसका ही प्रतीक है। अगर कोई ईश्वर को जानने की बात कर रहा है तो फिर आप से नहीं रहा जाता। आप भी कुछ कहेंगे। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बिना जाने न बोलता हो। हम सब बिना जाने बोलते रहते हैं। हम बिना जाने बताते रहते हैं। हम बिना जाने सलाह देते रहते हैं।

इमर्सन ने लिखा है अपनी डायरी में कि अगर दुनिया में लोग बिना जाने सलाह देना बंद कर दें तो पृथ्वी किसी भी दिन स्वर्ग हो सकती है।

लेकिन जिन्हें कुछ भी पता नहीं है, उनके भी मन में यह तो मजा आता ही है कि कोई जाने कि हमें पता है। यह मजा इतना महंगा है! और इसके पीछे कुछ लोग तो अपने जीवन को भी ढाल लेते हैं; बड़ा कष्ट भी उठाते हैं। ऐसा भी नहीं है कि ऐसे लोग दूसरों को धोखा दे रहे हों; ऐसे लोग अपनी आंख में अपने को धोखा देने के लिए बड़े कष्ट भी उठाते हैं। अब एक आदमी है कि एक ही बार भोजन करता है, नग्न रहता है, घास पर सोता है, मकान में नहीं ठहरता। कम कष्ट नहीं उठा रहा है, कष्ट पूरा उठा रहा है। लेकिन सिर्फ एक भरोसा दूसरे लोगों को दिलाने के लिए अगर कष्ट उठाया जा रहा है कि मैं साधु हूं तो सारा कष्ट व्यर्थ जा रहा है।

बुद्ध ने कहा है कि नासमझ तप भी करते हैं तो भी नरक ही जाते हैं। नासमझ तप भी करते हैं तो भी नरक की ही यात्रा करते हैं।

उनकी नासमझी का आधार क्या है? हमारे सारे अज्ञान का आधार क्या है?

दूसरे आदमी को दर्पण की तरह व्यवहार करना सारे अज्ञान का आधार है। दूसरे की फिक्र छोड़ दें और सीधी अपनी फिक्र करें। मैं क्या हूं, इसे मैं पहले जान लूं। और मजा यह है कि जो यह जान लेता है कि मैं क्या हूं, कौन हूं, उसकी बिल्कुल आकांक्षा नहीं रह जाती कि कोई मुझे जाने। यह बात ही समाप्त हो जाती है। स्वयं को जानते ही दूसरे को प्रभावित करने की वृत्ति विलीन हो जाती है।

और लाओत्से कहता है, ऐसे ही वे लोग हैं, वे अपने को प्रकट नहीं करते और इसीलिए ही वे दीप्त बने रहते हैं। जो अपने को प्रकट करते हैं, वे क्षीण और दीन हो जाते हैं।

प्रकट करने में भी शक्ति, ऊर्जा खोती है। जो अपने को छिपा कर रखता है, जैसे अंगारा छिपा हो, जैसे सूरज छिपा हो, प्रकट न हो, उसकी सारी ऊर्जा बची रहती है। प्रकट करने में भी शक्ति का व्यय है। और शक्ति का व्यय ही दीप्ति का खो जाना है। अगर कोई व्यक्ति अपने को प्रकट करने की वासना से छुटकारा दिला ले तो उसके भीतर जैसे सूरज आ जाए, सारी ऊर्जा भीतर इकट्ठी होने लगे। वह जो दूसरे को हम प्रभावित करने जाते

हैं तो हम व्यय होते हैं, चुकते हैं। दूसरे को प्रभावित करने की चेष्टा में जरूरी नहीं है कि दूसरा प्रभावित होगा। इतना पक्का है कि हम क्षीण होंगे, हम दीन होंगे, हम चुकेंगे, हमारी जीवन-ऊर्जा कम होगी।

दूसरा प्रभावित होगा कि नहीं, यह बहुत मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी हमारे पास हमें प्रभावित करने आता है। वह कोई प्रभावित होने नहीं आता। आप ध्यान रखना कि कई बार जब कोई आदमी आप से प्रभावित भी होता है तो थोड़ा सोच-समझ लेना, हो सकता है यह आपको प्रभावित करने का उसका ढंग हो। आदमी की चालाकियों का अंत नहीं है। अगर किसी को प्रभावित करना हो तो पहला रास्ता है उससे प्रभावित होने का ढोंग करना। क्योंकि यह उसकी खुशामद बन जाती है। जब आप ऐसे लगते हैं कि दूसरे से बिल्कुल प्रभावित हो गए, पानी-पानी उसके चरणों में हो गए, तब आपको पता नहीं है कि उस आदमी को भी आपने पानी-पानी कर लिया। अब जरा ही धक्के की जरूरत है कि आपके पैरों में गिरा।

खुशामद हमें इतना क्यों छूती है? उसका कारण यह है कि खुशामदी बताता है कि मैं कितना प्रभावित हूं, आपसे कितना प्रभावित हूं। हम जानते हैं कई दफा कि खुशामद बिल्कुल झूठी है; फिर भी कोई आदमी हमें खुशामद करने के योग्य मान रहा है, यह भी दिल को बहुत बहलाता है। खुशामद उतना नहीं छूती, जितनी यह बात छूती है कि किसी ने हमें इस योग्य माना है कि खुशामद करे। यह भी क्या कम है? और इस जगत में जहां हर आदमी अपने अहंकार से जीता है, वहां दूसरे के अहंकार को जरा सा भी फुसलाना बड़ी चमत्कारिक घटना मालूम पड़ती है। लेकिन खुशामदी आपको प्रभावित करने के लिए प्रभावित हो रहा है। आप दूसरे को प्रभावित कर पाएंगे, इसकी संभावना कम है। हां, एक बात पक्की है कि आप अपनी ऊर्जा व्यय कर रहे हैं, आप अपने को खो रहे हैं।

झेन फकीर हुआ रिंझाई। जब भी कोई उसके पास आता तो वह कहता, दो बातें पहले तय हो जाएं। एक कि तेरा इरादा अपने को प्रकट करने का तो नहीं है? मेरा शिष्य बनने आया है, तब उसका कुल कारण इतना ही तो नहीं है कि गांव में जाकर तू कह सके कि रिंझाई का शिष्य हूं?

रिंझाई महान संत है। शिष्य अपने गुरु के बाबत सदा प्रचार करते हैं। लेकिन यह गुरु का प्रचार नहीं होता; क्योंकि गुरु जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे शिष्य भी बड़ा होने लगता है। बड़े गुरु का बड़ा शिष्य होता है। अगर किसी के गुरु को आप कुछ गलत कह दें तो शिष्य को जो चोट लगती है वह इसलिए नहीं कि गुरु को गलत कह दिया; गुरु के गलत होते ही शिष्य की गति बिगड़ जाती है। शिष्य की क्या स्थिति रह जाती है! अगर गुरु गलत है तो शिष्य? शिष्य भी गलत हो गया। गुरु बड़ा है तो शिष्य भी बड़ा है।

ठीक से हम गौर करके देखें कि अगर कोई आपके मुल्क को गाली देता है तो आपको तकलीफ इसलिए नहीं होती कि मुल्क को गाली दे रहा है। किसको मतलब है मुल्क से? कोई आपके धर्म को गाली देता है तो आपको क्या मतलब है? कोई राम को, कृष्ण को, महावीर को गाली देता है, आपको क्या प्रयोजन है?

नहीं, लेकिन उनको गाली देने का मतलब गाली आपको लग जाती है। हिंदू मानना चाहता है कि हिंदू जो है श्रेष्ठतम धर्म है; क्योंकि मैं हिंदू हूं। मुसलमान मानना चाहता है, इसलाम श्रेष्ठतम धर्म है; क्योंकि मैं मुसलमान हूं। इसलाम श्रेष्ठ है तो ही मुसलमान श्रेष्ठ हो सकता है। हिंदू धर्म श्रेष्ठ है तो हिंदू श्रेष्ठ हो सकता है। और अगर भारत ऐसी भूमि है कि देवता भी वहां पैदा होने को तरसते हैं तो फिर आपने पैदा होकर भारत पर जो कृपा की है उसका कोई अंत नहीं है। जब देवता तरसते हैं और आपको पैदा होने का मौका मिला तो देवता दो इंच नीचे छूट गए। मन को यह बात जो खुशी देती है, यह खुशी कोई मुल्क की जमीन से कुछ लेना-देना नहीं है।

अहंकार सब तरफ से अपने को भरता है। और अहंकार का सूत्र हैः अपने को प्रकट करना। क्योंकि अहंकार अगर अप्रकट रहे तो मर जाता है। यह ख्याल रखें। अहंकार प्रकट होने में जीता है। कितने दूसरे लोग मुझे मान लें, उसमें ही उसके प्राण हैं। अहंकार के प्राण दूसरे लोगों के प्रभावित होने में हैं। अगर मुझे कोई भी नहीं जानता तो अहंकार कहां टिकेगा? आप अकेले हैं जमीन पर तो आपके अहंकार को खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। अहंकार होता भीतर है, बनता दूसरों के कंधों पर है। दूसरों के कंधे न मिलें तो अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं रह जाता।

यह जो अहंकार है, संतत्व के लिए पहली बाधा है। आत्मा को जिसे जानना हो, उसे अहंकार से छुटकारा चाहिए। अहंकार से छुटकारा, अर्थात दूसरे को प्रभावित करने की वासना से छुटकारा। और ध्यान रहे, दूसरे को प्रभावित करना हिंसा है। दूसरा प्रभावित हो जाए, यह दूसरी बात है। दूसरे को प्रभावित करना हिंसा है। दूसरे को ढालने की कोशिश, बनाने की कोशिश, आदर्श बनाने की कोशिश, अच्छा बनाने की कोशिश भी हिंसा है।

असल में, दूसरा जैसा है, हम उसे वैसा स्वीकार करने को राजी नहीं हैं। हम जैसा चाहते हैं, दूसरे को वैसा बनाने की हमारी उत्सुकता है। बाप बेटों को बना रहे हैं, मित्र मित्रों को बना रहे हैं, गुरु शिष्यों को बना रहे हैं। सब एक-दूसरे को बनाने में लगे हैं। कोई किसी से राजी नहीं हैं। आप जैसे हैं, वैसा स्वीकार करने को कोई राजी नहीं है। न आपकी पत्नी, न आपके पिता, न आपके पति, न आपके बेटे, न आपके बाप, कोई राजी नहीं है जैसे आप हैं। आप जैसे हैं, वह गलत होना है। हरेक उत्सुक है आपको बनाने के लिए, जैसा वह चाहता है, आप होने चाहिए। काटेगा आपको। एक कान गड़बड़ है, अलग करो; एक आंख खराब है, निकाल दो; हाथ तोड़ दो; पैर ठीक कर दो; सब ठीक कर दो।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की खिड़की पर एक दिन एक पक्षी आकर बैठ गया। अजनबी पक्षी था, जो मुल्ला ने कभी देखा नहीं था। लंबी उसकी चोंच थी, सिर पर कलगी थी रंगीन, बड़े उसके पंख थे। मुल्ला ने उसे पकड़ा और कहा, मालूम होता है, बेचारे की किसी ने कोई फिक्र नहीं की। कैंची लाकर उसके पंख काट कर छोटे किए; कलगी रास्ते पर लाया; चोंच भी काट दी। और फिर कहा कि अब ठीक कबूतर जैसे लगते हो। मालूम होता है, किसी ने तुम्हारी चिंता नहीं की। अब मजे से उड़ सकते हो।

लेकिन अब उड़ने का कोई उपाय न रहा। वह पक्षी कबूतर था ही नहीं। मगर मुल्ला कबूतर से ही परिचित थे; उनकी कल्पना कबूतर से आगे नहीं जा सकती थी।

हर बच्चा जो आपके घर में पैदा होता है, अजनबी है। वैसा बच्चा दुनिया में कभी पैदा ही नहीं हुआ। जिन बच्चों से आप परिचित हैं, उनसे इसका कोई संबंध नहीं है। यह पक्षी और है। लेकिन आप इसके पंख वगैरह काट कर, चोंच वगैरह ठीक करके कहोगे कि बेटा, अब तुम जगत में जाने योग्य हुए।

तो यहां हर आदमी कटा हुआ जी रहा है; क्योंकि सब लोग चारों तरफ से उसे प्रभावित करने, बनाने, निर्मित करने में इतने उत्सुक हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। जब बाप अपने बेटे में अपनी तस्वीर देख लेता है, तब प्रसन्न हो जाता है। क्यों? इससे बाप को लगता है कि मैं ठीक आदमी था; देखो, बेटा भी ठीक मेरे जैसा। अगर मुझे मौका मिले और हजारों लोग मेरे जैसे हो जाएं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, क्योंकि मेरे अहंकार का भारी फैलाव हुआ। जब हजारों लोग मेरे जैसा होने के लिए तैयार होते हैं, उसका मतलब यह हुआ कि मैं ठीक आदमी हूं, और हजारों लोग मेरा अनुकरण करते हैं। दूसरे को प्रभावित करने के पीछे अहंकार की यही आकांक्षा हैः तुम मेरे जैसे हो जाओ।

लाओत्से कहता है, "वे अपने को प्रकट नहीं करते, और इसलिए दीप्त बने रहते हैं।"

उनकी ऊर्जा, उनकी अग्नि समाप्त नहीं होती; वे सदा चमकते रहते हैं। लेकिन उनकी चमक किसी की आंखों को लुभाने के लिए नहीं है। उनकी चमक अपनी आंतरिक चमक है। वह ज्योति किसी को भरमाने के लिए नहीं जली है। वह ज्योति अपनी ही ऊर्जा है।

"वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते। ही डज नाट जस्टीफाई हिमसेल्फ, एंड इ.ज देयरफोर फार-फेम्ड। और इसलिए दूर-दिगंत तक उनकी ख्याति जाती है।"

संत कभी अपने को जस्टीफाई नहीं करते, वे अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते।

जीसस को सूली दी जा रही है। और पाइलट जीसस से पूछता है कि मैं तुम्हें अभी भी क्षमा कर सकता हूं, तुम सिद्ध कर दो कि तुम ईश्वर के पुत्र हो। और जीसस चुप रह जाते हैं। पाइलट कहता है कि तुम्हें एक मौका है, तुम इतना ही कह दो कि मैं निरीह हूं, मेरा कोई कसूर नहीं है; तुम इतनी ही अपील कर दो रोमन सम्राट के नाम कि मैं बेकसूर हूं। लेकिन जीसस चुप रह जाते हैं। सूली पर जाना उचित मालूम पड़ता है, बजाय औचित्य सिद्ध करने के कि मैं जस्टीफाइड हूं। क्या कारण होगा? उचित यही हुआ होता, हम भी कहेंगे, किसी वकील से सलाह ले लेनी थी। ऐसी क्या सूली पर जाने की जल्दी थी? सिद्ध करना था कि मैं जो कहता हूं, ठीक कहता हूं। मेरे अर्थ और हैं।

ईसाइयत दो हजार साल से सिद्ध कर रही है कि जीसस के अर्थ और थे। गलत समझे लोग। लेकिन जीसस ने खुद क्यों न सिद्ध कर दिया? ज्यादा आसान होता। जीसस के लिए गवाही दी जा रही है दो हजार साल से कि जीसस का मतलब और था, और जिन्होंने सूली दी वे उस मतलब को नहीं समझ पाए। जीसस ने कहा था, किंगडम ऑफ गॉड; तो वह ईश्वर के राज्य की बात थी, इस जगत के राज्य की बात नहीं थी। इस जगत में जो राजा हैं, वे घबड़ा गए। वे समझे कि यह जीसस जो है, इस जगत का सिंहासन पाने की कोशिश कर रहा है। मगर जीसस खुद ही कह सकते थे। इतनी सीधी सी बात थी। एक वक्तव्य देते और कहते कि मेरा मतलब यह है, मेरा मतलब ऐसा नहीं है। जीसस क्यों चुप रह गए? यह औचित्य सिद्ध क्यों न किया?

असल में, औचित्य सिद्ध करने की जो चेष्टा है, वह दूसरे को मालिक मान लेना है। किसके सामने औचित्य? संत उत्तरदायी नहीं है किसी के प्रति। आप जाकर पूछें लाओत्से से कि सिद्ध करो कि तुम साधु हो! लाओत्से कहेगा कि तुम्हें असाधु मानना हो, असाधु मान लो; साधु मानना हो, साधु मान लो; यह तुम्हारा धंधा है; हमसे कुछ लेना-देना नहीं है। आप यह भी कह सकते हैं कि हम मान कर चले जाएंगे कि तुम असाधु हो। तो लाओत्से कहेगा, मौज है तुम्हारी; लेकिन तुम्हारे सामने मैं सिद्ध करने जाऊं कि मैं साधु हूं तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरी साधुता के लिए तुम्हारी प्रामाणिकता की कोई जरूरत है, तुम्हारे प्रमाण की, तुम्हारे सील की, तुम्हारे हस्ताक्षर की कोई जरूरत है।

ऐसा मजेदार हुआ कि मैं एक नौकरी की तलाश में था। उस राज्य के शिक्षा मंत्री से मिला। तो उन्होंने कहा, नौकरी तो हम आपको अभी दे दें; किसी भी युनिवर्सिटी या कालेज में आप चले जाएं; लेकिन आपके चरित्र का प्रमाणपत्र, कैरेक्टर सर्टिफिकेट चाहिए। तो आप वाइस चांसलर का, जिस युनिवर्सिटी में आप पढ़े हों; किसी प्रिंसिपल का, जिस कालेज में आप पढ़े हों; उनका कैरेक्टर सर्टिफिकेट ले आएं।

तो मैंने उनको कहा कि अभी तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला, जिसके कैरेक्टर का मैं सर्टिफिकेट दे सकूं--न कोई प्रिंसिपल, न कोई वाइस चांसलर। तो जिसके कैरेक्टर का सर्टिफिकेट मैं नहीं लिख सकता, उससे मैं कैरेक्टर का सर्टिफिकेट लिखवा कर लाऊं तो बड़ी अजीब सी बात होगी। तो अगर बिना कैरेक्टर सर्टिफिकेट के नौकरी मिलती हो तो दे दें। अन्यथा बिना नौकरी के रह जाना ठीक है, बजाय इसके कि चरित्रहीनों से चरित्र

का और प्रमाण लाया जाए। आखिर चरित्र का प्रमाण कौन दे सकता है? और कैसे दे सकता है? और फिर मैं चरित्रवान हूं या नहीं, इसकी जिम्मेवारी मेरे और परमात्मा के बीच है। और मैंने उनको कहा कि नौकरी में आप जो मुझे तनख्वाह देंगे, वह पढ़ाने की देंगे। मेरे चरित्र की देंगे? कोई मेरे चरित्र की कीमत आप चुकाने वाले हों तो चरित्र की चिंता की जाए।

लेकिन हमारा जो जिसे हम जगत कहते हैं, हमारा जो जीवन है, वहां सब औचित्य पर निर्भर है, वहां सब सिद्ध करना होता है। वहां सब सिद्ध करना होता है, और सिद्ध करने की तरकीबें बड़ी मजेदार हैं।

क्वेकर ईसाई अदालत में कसम नहीं खाते। अदालत में कसम खानी चाहिए कि मैं कसम खाता हूं कि सत्य बोलूंगा। क्वेकर ईसाई कहते हैं कि अगर मैं झूठ ही बोलने वाला हूं तो यह कसम भी झूठ खा सकता हूं।

यह बड़ी अजीब पागलपन की बात है! एक आदमी से, जो झूठ बोलने वाला है, निष्णात झूठ बोलने वाला है, अदालत में हम कसम खिलवाते हैं कि तुम कसम खाओ कि सच बोलेंगे। वह कसम खाता है कि हम कसम खाते हैं, सच बोलेंगे। बड़े आश्चर्य की बात है कि क्या कसम खाने से किसी आदमी का झूठ बोलना मिट जाता है! और जो आदमी कसम खाने से झूठ बोलना छोड़ देता हो, उसने बहुत पहले कभी ही झूठ बोलना छोड़ दिया होता। मगर बचकाना काम अदालतें भी किए चली जाती हैं। एक कहीं से शुरुआत होनी चाहिए; कहीं से हम मान कर चलें कि तुम सच बोल रहे हो। कसम कैसे तय कर सकती है कि कौन आदमी सच बोल रहा है?

मजा यह है, लेकिन जो झूठ बोलता है, वह जोर से कसम खाएगा; सच बोलने वाला शायद थोड़ा झिझके भी कि कसम खानी कि नहीं खानी। सच बोलने वाला ही झिझकेगा कि कसम खानी कि नहीं खानी; झूठ बोलने वाला बेझिझक खाएगा। क्योंकि जिसे झूठ ही बोलना है, कसम क्या अड़चन पैदा करेगी? सच बोलने वाले को कसम अड़चन पैदा कर सकती है। वह सोच सकता है कि कसम खाने का मतलब सच बोलना है। लेकिन झूठ बोलने वाला तेजी से खाएगा।

बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि इस जगत में जो लोग अपना औचित्य जितनी तेजी से सिद्ध करने में लगे रहते हैं, वे प्रमाण देते हैं कि वे आदमी उचित नहीं हैं। उनकी सिद्ध करने की चेष्टा ही कहती है कि उनको खुद भी शक है, खुद भी भीतर संदेह है। उस संदेह को झुठलाने के लिए वे सब तरह के उपाय करते हैं।

इसलिए एक बड़े मजे की बात है कि इस जगत में जो श्रेष्ठतम जन हुए हैं, उन्होंने जो भी कहा है, उसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिए हैं। वे सीधे वक्तव्य हैं, स्टेटमेंट्स हैं, उनका कोई प्रमाण नहीं है। बुद्ध कहते हैं कि मुझे ऐसा-ऐसा हुआ। अगर कोई पूछता है, प्रमाण? तो वे कहते हैं, तुम भी ऐसा-ऐसा करो और तुम्हें हो जाएगा। तुम्हारा करना ही तुम्हारे लिए प्रमाण बनेगा। और मैं अगर चार गवाह खड़े करूं, कि देखो, ये भी कहते हैं कि मुझे हुआ तो एक इनफिनिट रिग्रेस शुरू होती है, एक अंतहीन सिलसिला शुरू होता है। क्योंकि मजा यह है कि मैं एक गवाह खड़ा करता हूं और आश्चर्य तो यह है कि हम यह भी नहीं पूछते कि यह जो गवाह बोल रहा है, इसके गवाह कहां हैं जो कहें कि यह ठीक बोल रहा है। यह गवाहों का सिलसिला कहां अंत होगा?

ऋषियों ने एक बात कही है, उन्होंने कहा है कि सत्य जो है, वह सेल्फ एवीडेंट है, स्वतः प्रमाण है। झूठ सेल्फ एवीडेंट नहीं है, झूठ स्वतः प्रमाण नहीं है। इसलिए झूठ हमेशा गवाह साथ लेकर आता है। सत्य खुद ही अपना गवाह है, और कोई गवाही नहीं है। झूठ पहले से ही इंतजाम करके चलता है, पच्चीस गवाह लेकर आता है।

मुल्ला नसरुद्दीन पर मुकदमा चला। उसने किसी की हत्या कर दी है। और अदालत में दस गवाहों ने बयान दिया कि हमारे सामने यह हत्या हुई है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, इसमें क्या रखा है! मैं सौ गवाह खड़े

कर सकता हूं जो कहने को राजी हैं कि उनके सामने हत्या नहीं हुई। दस से क्या होता है? सौ गवाह खड़े कर सकता हूं! जब यह हत्या हुई, जिस आदमी की हत्या हुई, नसरुद्दीन कहता है, मैंने नहीं की, किसी और ने की होगी; मैं मौजूद जरूर था। तो अदालत में वकील उससे पूछता है कि तुम कितने दूर खड़े थे इस आदमी से जब यह आदमी मरा? तो उसने कहा कि मैं तेरह फीट सात इंच दूर खड़ा था। मजिस्ट्रेट भी चौंका। उसने कहा, हैरानी की बात है, तुम पहले ही आदमी हो! तेरह फीट सात इंच, यह तुम्हें कैसे पता चला? नसरुद्दीन ने कहा, मैंने पहले ही सब सोच लिया था, कोई न कोई मूर्ख अदालत में जरूर पूछेगा। मैं सब नाप-जोख करके ही काम किया हूं।

वह जो आदमी गलत है, वह गलती करने के पहले गवाह खोज लेता है। जो आदमी सही है, उसे तो बाद में ही पता चलता है कि सही के लिए भी गवाह देने होते हैं।

लाओत्से कहता है, संत अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते। वे क्या हैं, इसके लिए उनके पास कोई गवाही नहीं। उनका क्या अनुभव है, इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं। प्रमाण देने की कोई इच्छा भी नहीं। कोई जस्टीफिकेशन नहीं है। संत बिल्कुल अनजस्टीफाइड खड़े होते हैं, बिना किसी औचित्य की चिंता के खड़े होते हैं। जिनको दिखाई पड़ सकता हो, वे सीधा देख लें; और जिनको दिखाई न पड़ सकता हो, वे न देखें, अंधे बने रहें।

लेकिन संत के मन में अगर यह आकांक्षा हो कि मैं सच्चा हूं, अहिंसक हूं, व्रती हूं, त्यागी हूं, या और कुछ हूं, इसको प्रमाणित करूं... ।

एक गांव में मैं गया था। एक साधु वहां ठहरे थे। कोई उन्हें मुझसे मिलाने लिवा लाया था। जो मिलाने लाए थे, उनके शिष्य थे। उन्होंने कहा कि ये बड़े त्यागी हैं, महा तपस्वी हैं। इन्होंने अब तक इतने-इतने हजार उपवास किए हैं। मैंने उन साधु से पूछा कि ये कहते हैं कि इतने हजार उपवास किए हैं! तो उन्होंने कहा, हां। और अब तो संख्या और भी बढ़ गई। ये तो पुरानी, पुरानी संख्या बता रहे हैं। मैंने उनसे पूछा, आपने हिसाब रखा है? उन्होंने कहा कि मैं बिल्कुल डायरी रखता हूं।

यह डायरी किसको बताई जाने वाली है? ये परमात्मा के पास डायरी ले जाएंगे? यह डायरी किसको बताई जाने वाली है? न, यह लोगों को बताई जाती है कि कितने उपवास किए हैं। और जो बताने को उत्सुक है, वह दो के चार उपवास भी डायरी में लिख सकता है। जो बताने को उत्सुक है, उसका कोई भरोसा नहीं। क्योंकि उपवास असली चीज नहीं है, संख्या असली चीज है। उपवास का मूल्य ही इतना है कि कितनी संख्या बढ़ती जाती है।

यह जो औचित्य है त्याग का, यह बताता है कि आदमी अभी भी बाजार में है। उसकी भाषा, सोचने के ढंग अभी दुनियादारी के हैं। अभी उसे संन्यास की कोई किरण भी नहीं मिली। अभी उसे त्याग का कोई आनंद नहीं मिला। अभी उसे त्याग से आनंद मिलता है, त्याग का आनंद नहीं मिला। इस फर्क को ठीक से समझ लें। उसे त्याग से आनंद मिलता है। क्योंकि त्याग को लोग सम्मान देते हैं, आदर देते हैं, पैर छूते हैं, जयजयकार करते हैं, रथ-यात्रा निकालते हैं, बैंड-बाजे बजाते हैं। त्याग के द्वारा, त्याग से। त्याग अभी साधन है। लेकिन आनंद अभी सम्मान का है। अभी उसे त्याग का आनंद नहीं मिला।

जिस दिन उसे त्याग का आनंद मिल जाएगा, उस दिन वह समझेगा कि सम्मान का त्याग बड़े से बड़ा त्याग है। तो उसने जो भी अभी छोड़ा, खाना वगैरह, कपड़े-लत्ते, मकान वगैरह, वह ना-कुछ हैं। जब इनको छोड़ने से इतना आनंद मिलता है, तो जिस दिन कोई सारे अहंकार को ही छोड़ देता है, सम्मान के भाव को ही छोड़ देता है, तब उसे परम आनंद मिलता है। लेकिन उसका उसे अभी कोई पता नहीं है। जो आज बैंड-बाजा

बजाते हैं उसके चारों तरफ, कल अगर बैंड-बाजा बजाना बंद कर दें तो उसके उपवास भी बंद हो जाएंगे। कारण ही खो जाता है।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। वह हर वर्ष, जब नवदुर्गा होती, तो बड़ा उत्सव मनाता और बड़े बकरे कटते। फिर अचानक उत्सव बंद हो गए, और बकरे कटने बंद हो गए। रामकृष्ण ने उससे पूछा कि बहुत दिन से देखते हैं कि वर्ष, दो वर्ष बीत गए, उत्सव का क्या हुआ? धर्म का क्या? पूजा का क्या? अब बकरे वगैरह नहीं कटते? उस आदमी ने कहा, दांत ही न रहे, दांत ही गिर गए। रामकृष्ण सोचते थे कि उत्सव हो रहा है धर्म का। वे बड़े चौंके। रामकृष्ण ने कहा, दांत से इसका क्या लेना-देना? उस आदमी ने कहा, दांत ही न रहे तो उत्सव कैसा? बकरे कैसे कटने? खाने-पीने का आनंद ही चला गया।

धर्म तो एक बहाना था, एक आड़ थी। तो अगर मूल कारण गिर जाए... साधु को जिस दिन आप सम्मान न दें, उस दिन आपको पता चलेगा, कितने साधु आपके पास हैं। जब तक साधु को सम्मान मिलता है, तब तक तय करना मुश्किल है। क्योंकि सौ में से निन्यानबे लोग तो सम्मान के कारण ही साधु होंगे।

और एक बड़े मजे की बात है कि साधु होने के लिए बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है; किसी गुण की जरूरत नहीं है; किसी टैलेंट की, किसी जीनियस की, किसी मेधा की कोई जरूरत नहीं है। इस दुनिया में सब तरफ सम्मान महंगा है, साधु होकर बहुत सस्ता है। आप अपने साधुओं को जरा गौर करके देखें, इनको किस दिशा में आप लगा देंगे तो ये कारगर हो सकते हैं?

एक साधु छोड़ना चाहते थे साधु-वेश। उन्होंने मुझे पत्र लिखा। तो मैंने कहा, छोड़ दो, इसमें पूछना क्या है? यह भी पूछ कर छोड़ोगे? पूछ कर पहले फंसे कि लिया, अब भी पूछ कर छोड़ोगे? छोड़ दो छोड़ना है तो। इसमें क्या बुराई है? उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि आप समझे नहीं। मैट्रिक फेल हूं। और अभी--अभी वाइस चांसलर भी मेरे पैर छूते हैं आकर। कल मुझे क्लर्क की भी नौकरी नहीं मिल सकती है। इसलिए पूछता हूं कि छोडूं कि न छोडूं? तो मैंने कहा कि तुम गलत सवाल पूछे। तुम्हें यह पूछना ही नहीं था कि साधुता छोड़ दूं। साधुता है ही नहीं। तुम एक व्यवसाय में हो। और अच्छा व्यवसाय है, तुम जारी रखो। क्योंकि इससे साधुता का कोई संबंध नहीं है। तुम्हें ठीक धंधा मिल गया है, उसे तुम जारी रखो। लेकिन धंधे को साधुता मत कहो।

साधु होना सबसे सस्ती, बिना किसी योग्यता के घटने वाली घटना है। तो आसान है। सौ में निन्यानबे साधु इसीलिए साधु हैं कि साधुता से कुछ और मिलता है, जो उन्हें अन्यथा नहीं मिल सकेगा। लेकिन सम्मान की आधारशिलाएं हट जाएं, आपके साधु एकदम तिरोहित हो जाएंगे। तब शायद वही साधु रह जाएगा बाकी, जिसके लिए सम्मान से कोई प्रयोजन न था। जो प्रकट ही न होना चाहता था, या प्रकट भी हो गया था तो उसकी कोई वासना न थी, दुर्घटना थी।

अपना औचित्य! अपना औचित्य हम तभी सिद्ध करते हैं, जब हमें लगता है कि जिनके सामने हम सिद्ध कर रहे हैं, वे हमारे न्यायाधीश हैं।

नीत्शे से किसी ने कहा कि तुम जीसस के इतने खिलाफ लिखे हो--और नीत्शे न केवल लिखता था जीसस के विरोध में, दस्तखत भी करता था तो लिखता था एंटी-क्राइस्ट फ्रेडरिक नीत्शे, जीसस-विरोधी--तो तुम इस सबके लिए प्रमाण दो। तो नीत्शे ने कहा कि जिस अदालत में जीसस की प्रामाणिकता जांची जाएगी, उसी अदालत में हम भी प्रमाण दे देंगे। अगर कहीं कोई परमात्मा है जो सिद्ध करेगा कि जीसस ईश्वर के पुत्र हैं तो उसी के सामने हम भी सिद्ध कर देंगे। लेकिन तुम्हारे सामने नहीं, क्योंकि तुम न्यायाधीश नहीं हो। तुम कौन हो? तुमसे क्या लेना-देना है?

और नीत्शे तो कोई संत नहीं है। लेकिन संतत्व के बड़े करीब है। नीत्शे ने जो किताबें लिखी हैं, वे सुसंबद्ध नहीं हैं, सिस्टमैटिक नहीं हैं, फ्रैगमेंट्स हैं, टुकड़े हैं। उनके बीच कोई सिलसिला नहीं है। कई बार लोगों ने उसे कहा कि तुम कुछ सिलसिला बनाओ। उसने कहा कि तुम कौन हो? विचार मेरे हैं, जिम्मेवार मैं हूं। जिनके पास आंखें हैं, वे सिलसिला देख लेंगे। और जिनके पास आंखें नहीं हैं, उनको सिलसिला बताने की जरूरत भी क्या है?

नीत्शे ने कहा है कि लोगों ने एक-एक किताब लिखी है जितने विचार से, उतने विचार से मैंने एक-एक वाक्य लिखा है। लेकिन वह बीज है। पर कोई न्यायाधीश नहीं है; उत्तरदायित्व नहीं है किसी के प्रति।

असल में, संत का वक्तव्य यह है कि मैं जैसा हूं, वह मेरे और परमात्मा के बीच की बात है; किसी और से उसका कोई लेना-देना नहीं है।

लेकिन हम मान नहीं सकते बीच में बिना कूदे। हम एक-दूसरे की खिड़कियों से झांकने के ऐसे आदी हो गए हैं--पीपिंग टाम्स! किसी का चाबी का छेद है, उसी में से झांक रहे हैं। हम सब को दूसरों में झांकने की ऐसी वृत्ति हो गई है! और दूसरे भी इतने कमजोर हैं कि वे अपना औचित्य सिद्ध करने लगते हैं कि मैं ठीक हूं; ऐसा कर रहा था उसका कारण यह था; ऐसा कहा, उसका कारण यह था। दूसरे भी कारण बताते हैं, दूसरे भी कमजोर हैं।

लेकिन संत कमजोर नहीं है। वह अपने में पूरी तरह निर्भर है। अपने में पूरा का पूरा ठहरा हुआ है। कोई प्रमाण की जरूरत नहीं है। किसी को कुछ समझाने की, कोई औचित्य की, कोई तर्क की, कोई गवाही की जरूरत नहीं है।

और लाओत्से कहता है, "इसीलिए उनकी ख्याति दूर-दिगंत तक जाती है।"

जो अपना औचित्य सिद्ध करते रहते हैं, वे दो-चार को भी समझाने में सफल हो जाएं तो कठिन है। जो अपना औचित्य सिद्ध ही नहीं करते, उनकी सुगंध दूर-दिगंत तक चली जाती है। क्योंकि उनका खंडन नहीं किया जा सकता। यह बड़े मजे की बात है। जिसने कभी सिद्ध ही नहीं किया कि मैं चरित्रवान हूं, उसको आप चरित्रहीन सिद्ध नहीं कर सकते। जिसने सिद्ध करने की कोशिश की कि मैं चरित्रवान हूं, उसको चरित्रहीन सिद्ध किया जा सकता है। सच तो यह है कि उसने खुद ही खबर दे दी है कि वह चरित्रहीन है--चरित्रवान सिद्ध करने की चेष्टा से। जब कोई आदमी कहता है कि मैं चोर नहीं हूं, जब कोई आदमी कहता है कि मैं बेईमान नहीं हूं, जब कोई आदमी दिन भर यही कहे चला जाता है कि मैं झूठ नहीं बोलता हूं, तब कोई भी संदिग्ध हो जाएगा कि बात क्या है? इतनी चेतना क्या है? इतना होश क्या है? बार-बार दोहराने की इतनी जरूरत क्या है? नहीं हो तो ठीक है।

लेकिन जो आदमी भीतर गिल्ट, अपराध अनुभव करता है, वह हर बार कोशिश करता रहता है। उसकी हर तरह की चेष्टा सिद्ध करती रहती है कि उसके भीतर कोई अपराध छिपा है। फ्रायड कहता था कि कुछ लोग दिन भर बैठे-बैठे हाथ ही मलते रहते हैं। फ्रायड कहता था, ये हाथ मलने वाले वे लोग हैं, जिन्होंने कोई पाप किया है। ये हाथ धो रहे हैं। इनका जो हाथ मलना है, यह अकारण नहीं है।

कुछ लोगों को हाथ धोने का मैनिया होता है। वे दिन में दस-पचास दफे हाथ धोएंगे। इनके भीतर कोई अपराध घना है और जिसका प्रतीक यह इनका हाथ धोना है। कोई अपराध है जिससे इनको लगता है कि हाथ मेरे रंगे हैं, उसे ये साफ कर रहे हैं। कुछ लोग हैं, खासकर महिलाएं, घर की सफाई में पागल हो जाती हैं। सफाई भी पागलपन हो जाता है। एक कचरे का टुकड़ा नहीं टिकने देंगी। आदमी को अंदर किसी का आना, मेहमान का, उन्हें भय का कारण हो जाता है कि पता नहीं, कचरा आ जाए, कुछ गंदगी आ जाए, कुछ हो जाए।

सफाई अच्छी बात है। लेकिन हर चीज पागलपन की सीमा तक खींची जा सकती है। फ्रायड कहता है कि इन महिलाओं के मन में कहीं कोई डर्ट, कहीं कोई गंदगी जमी है; उसका यह बाहर फैला हुआ रूप है कि बाहर कहीं कोई गंदगी न जम जाए। बाहर की गंदगी उनको भीतर की गंदगी की याद दिलाती है। इसलिए इतना पागलपन है।

एक मित्र मेरे साथ थे। वे किसी के घर चाय नहीं पीते, किसी के घर पानी नहीं पीते, किसी का दिया पान नहीं खाते। वे कहते यही हैं कि नहीं, मैं कहीं कोई बाहर की चीज नहीं लेता।

बहुत बार यह सब देख कर मुझे लगा कि यह कुछ मैनिया, कुछ पागलपन की बात है। खोज-बीन की, उनसे चर्चा की, समझने की कोशिश की। उन्होंने कभी किसी आदमी को जहर खिलाने की कोशिश की थी। और उसके बाद वे किसी के घर कुछ नहीं खा सकते। वह जो भीतर छिपा है, वह अभी भी कंपित हो रहा है। और अब किसी से भी कुछ लेना उनके अपने ही अपराध का पुनर्स्मरण है।

आदमी बहुत जटिल है। आप क्या करते हैं, क्यों करते हैं, आपको भी पता न हो। आदमी का मन बहुत गहरा उलझाव है। और आदमी हजार काम करता है, जिसका उसे पता नहीं कि क्यों कर रहा है। लेकिन उसके कारण भीतर छिपे हैं। ये जो व्यक्ति निरंतर औचित्य सिद्ध करते रहते हैं कि मैं ठीक आदमी हूं, इनके भीतर गलत होने की धारणा पक्की है। इनको खुद ही भरोसा नहीं है कि ये ठीक आदमी हैं। जब कोई आदमी आपसे आकर कह देता है, आप ठीक आदमी नहीं हैं; तो अगर आप नाराज होते हैं तो उसका मतलब यह है कि उसने कोई घाव छू दिया। नहीं तो नाराज होने का कोई कारण नहीं है। या तो वह आदमी सही है तो धन्यवाद दे देना चाहिए; या वह आदमी गलत है तो हंस देना चाहिए। बात खतम हो गई। नाराज होने की क्या बात है?

गुरजिएफ के पास लोग जाते थे और वे कहते थे कि आज एक फलां आदमी मिला था, वह बहुत अभद्र बातें आपके संबंध में कह रहा था, गालियां दे रहा था, बहुत गंदी बातें कह रहा था। गुरजिएफ कहता, यह कुछ भी नहीं है। और भी लोग हैं, तुम फलां आदमी से जाकर मिलो, वह इससे भी ज्यादा गंदी बात मेरे बाबत कहता है। और अगर तुम्हारी तृप्ति उससे भी न हो तो मैं तुम्हें और भी आदमी बताऊंगा जो और भी... यह कुछ भी नहीं है। जब पहली दफा ऑसपेंस्की गुरजिएफ को मिला तो वह बहुत चकित हुआ इस तरह की बात देख कर। जब भी कोई आकर उसकी निंदा की बात करता तो वह कहता, यह कुछ भी नहीं है।

जिस आदमी के भीतर कोई घाव नहीं है, आप उसकी कितनी ही बुराई करके उसको चोट नहीं पहुंचा सकते। चोट आपकी बुराई से नहीं पहुंचती, भीतर के घाव से पहुंचती है। कोई आदमी आपसे आकर कह देता है कि फलां आदमी कहता था आप चरित्रहीन हैं। आपको जो चोट पहुंचती है, वह उस आदमी से नहीं पहुंचती। जानते तो आप भी हैं कि चरित्रहीन हैं, अब फजीहत हुई, अब फजीहत हुई, औरों को भी पता चलने लगा। तो अब औचित्य सिद्ध करने में लगते हैं कि नहीं हैं, कौन कहता है? मैं चरित्रवान हूं। सिवाय चरित्रहीनों के चरित्रों की औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा किसी ने कभी नहीं की है।

संत अपना औचित्य सिद्ध नहीं करते; लेकिन उनकी ख्याति दूर-दिगंत तक पहुंच जाती है। यह पहुंच जाना सहज घटना है। यह अनायोजित, अचेष्टित है। न इसकी कोई कामना है, न इसकी कोई आकांक्षा है। अन-अभीप्सित है। लेकिन यह घटती है। और जब घटती है, तो इस सुगंध को रोकना बहुत मुश्किल है। क्योंकि इसको कभी गलत सिद्ध नहीं किया जा सकता। जो सही सिद्ध करने की चेष्टा में नहीं है, उसे हम गलत सिद्ध नहीं कर सकते।

"वे अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं करते, इसलिए लोग उन्हें श्रेय देते हैं।"

उनका एक ही श्रेय है कि वे श्रेष्ठता का दावा नहीं करते। श्रेष्ठता का दावा सिर्फ हीनजन ही करते हैं; श्रेष्ठजन नहीं करते। जो श्रेष्ठ है ही, वह दावा क्यों करेगा? जो श्रेष्ठ नहीं है, उसी के भीतर दावा पैदा होता है।

"वे अभिमानी नहीं हैं, और इसलिए लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हैं।"

आगे बने रहते हैं; क्योंकि आगे बने होने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। पीछे खड़े होने की उनकी पूरी तैयारी है। पीछे ही वे खड़े होते हैं।

इसको हम थोड़ा समझ लें। दो तरह से लोग आगे खड़े होते हैं इस जगत में। एक तो वे जो क्यू में धक्कमधेल करके आगे पहुंचते हैं। राजनीतिज्ञ हैं, काफी धक्कमधक्का करके वे आगे पहुंचते हैं। आगे पहुंचने में बड़ी उनकी फजीहत होती है; लेकिन वे सब झेल लेते हैं। आगे पहुंचने का लोभ इतना है कि कितनी भी फजीहत झेली जा सकती है। और एक दफे आदमी आगे पहुंच जाए तो लोग भूल जाते हैं कि इनकी बड़ी फजीहत हुई थी। इसलिए बीच के धक्कमधक्का खा लेने में कोई हर्ज नहीं है। एक दफा आगे पहुंच गए तो सब इतिहास बदल जाता है। सफल आदमी की सब असफलताएं भूल जाती हैं। आगे पहुंच गए आदमी की बात ही भूल ही जाती है कि कभी वह पीछे क्यू में खड़ा था।

और बड़ा मजा यह है कि जिस तरह धक्कमधक्का देकर वह आगे आया है, वह लोगों को समझाने लगता हैः क्यू में लाइन लगा कर खड़े रहो, धक्कमधुक्की करनी ठीक नहीं है। इंदिरा गांधी को पूछें, निजलिंगप्पा जो उनको समझाते थे, वह अब दूसरों को समझाना शुरू कर दी है। यह बड़ी आश्चर्य की बात है। लेकिन आदमी का मन ऐसा है। और सब आदमियों का मन ऐसा है।

आप ट्रेन के डिब्बे में बैठे हैं। चिल्लाते हैं दरवाजे से, किसी को घुसने नहीं देते हैं कि बिल्कुल भरा है, एक इंच जगह नहीं है, आगे जाओ! और आप भूल गए कि अगले स्टेशन पर आप बाहर खड़े थे और तब जो दलीलें आप दे रहे थे, वही दलीलें बाहर खड़ा आदमी दे रहा है--कि बिल्कुल मत घबड़ाइए, मैं पांव पर ही खड़ा रहूंगा, पैर के लायक जगह मिल जाएगी, आप चिंता मत करिए, तकलीफ मैं झेल लूंगा। आप कहते हैं, है ही नहीं जगह। यही बातें किसी ने डिब्बे के भीतर आपसे कही थीं। लेकिन डिब्बे के भीतर आदमी प्रवेश करते ही आत्मा बदल जाती है। डिब्बे के बाहर दूसरी आत्मा होती है; डिब्बे के भीतर दूसरी आत्मा होती है। आपको पता ही नहीं चलता कि आत्मा इतनी जल्दी कैसे बदलती है। और ऐसा नहीं कि अभी जो आदमी गिड़गिड़ा रहा है, वह नहीं बदलेगा। डिब्बे के भीतर आने दो, अगले स्टेशन पर उसकी बातें सुनो कि वह लोगों से बाहर क्या कह रहा है। तब आपको पता चलेगा कि आदमी जो कहता है, वह परिस्थिति पर निर्भर होने वाली बातें हैं।

जिसको नेता बनना है, उसे सब तरह के उपद्रव करने होते हैं। लेकिन जो नेता बन गया और नेता जिसे बना रहना है, उसे बाकी को समझाना पड़ता है कि उपद्रव मत करना। सच तो यह है कि जो उपद्रव करके आगे आता है, वह उपद्रव के बहुत खिलाफ होता है; क्योंकि उसे पक्का पता है कि आगे आने का रास्ता क्या है, जो आगे पहले से हैं उनको गिराने का रास्ता क्या है।

मैक्यावेली ने लिखा है कि जिस सीढ़ी से चढ़ो, चढ़ते ही पहले उसे नष्ट कर देना। और मैक्यावेली मनुष्य के मन में झांकने वाले गजब के लोगों में से एक है। थोड़े ही लोग इतना गहरे देखते हैं आदमी के अस्तित्व में। मैक्यावेली कहता है, पहला काम चढ़ जाने पर सीढ़ी के करना सीढ़ी तोड़ देने का। क्योंकि ध्यान रखना, सीढ़ी निष्पक्ष है; जैसा तुम्हें चढ़ा दिया, किसी दूसरे को भी चढ़ा सकती है। मैक्यावेली कहता है कि नेता को और अनुयायी के बीच बहुत फासला रखना चाहिए। क्योंकि पास के लोग खतरनाक होते हैं।

इसलिए कोई भी नेता बुद्धिमान लोगों को अपने आस-पास पसंद नहीं करता, बुद्धुओं को पसंद करता है। उनमें फासला इतना होता है कि अगर उनको सीढ़ी भी लगा दो तो उनकी समझ में न आएगा कि इस पर चढ़ना है। ऐसे आदमी ठीक रहते हैं। इसलिए हर नेता के पास बुद्धुओं की जमात होगी। उन्हीं पर वह जीता है।

एक तो रास्ता है क्यू में इस तरह उपद्रव करके आगे खड़े हो जाने का। नेता इस भांति खड़े होते हैं। यह पोलिटिकल रास्ता है, राजनीतिक का रास्ता है।

संत भी कभी-कभी आगे पाए जाते हैं। लेकिन उनके खड़े होने का ढंग दूसरा है। वे क्यू में पीछे खड़े हो जाते हैं। जहां भी धक्कमधुक्की है, वे पीछे खड़े हो जाते हैं। लेकिन उनके पीछे खड़े होने की यह जो शांत स्थिति है, क्योंकि जिसे आगे नहीं जाना है, उसको अशांत होने का कोई कारण नहीं है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसको चिंतित होने की कोई वजह नहीं है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसकी न कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतियोगिता है, न कोई ईर्ष्या है, न कोई संघर्ष है। जिसे आगे नहीं जाना है, उसका कोई दुश्मन नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं दुश्मन का। जिसका कोई दुश्मन नहीं, जिसकी कोई अशांति नहीं, चिंता नहीं, पीड़ा नहीं, दुख नहीं, उसमें जो दीप्ति आनी शुरू हो जाती है, उस दीप्ति के कारण कुछ लोग उसके पीछे क्यू लगाने लगते हैं। यह दूसरी प्रक्रिया है। ये लोग पीछे खड़े होते जाते हैं। और इनको इतना चुप खड़ा होना होता है कि उसको पता न चल जाए कि पीछे और लोग खड़े हो गए हैं। नहीं तो वह उनके पीछे जाकर खड़ा हो जाएगा।

गुरजिएफ कहता था कि संतों के पीछे चलना हो तो पता मत चलने देना, तुम्हारे पैर की आवाज मत होने देना। क्योंकि संत पीछे खड़े होने के बड़े प्रेमी हैं। वे तुम्हें आगे कर लेंगे। उनके पीछे ऐसे चलना कि जैसे तुम हो ही नहीं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि इन संतों के पीछे भी लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं। लेकिन यह आगे होने की प्रक्रिया गुणात्मक रूप से भिन्न है। इस आगे होने में किसी को पीछे नहीं किया गया है। इसमें लोग पीछे हो गए हैं। राजनीति में अनुयायी बनाने पड़ते हैं; धर्म में अनुयायी बन जाते हैं। राजनीति में लोगों को पीछे रखना पड़ता है; धर्म में पीछे लोग खड़े हो जाते हैं। यह एक सहज घटना है। और इस सुगंध को दूर-दिगंत तक हवाएं अपने आप ले जाती हैं। इसलिए जो अभिमानी नहीं हैं, वे लोगों के बीच अग्रणी बने रहते हैं।

"चूंकि वे किसी वाद की प्रस्तावना नहीं करते, इसलिए दुनिया में कोई उनसे विवाद नहीं कर सकता है।"

वाद की प्रस्तावना विवाद के लिए निमंत्रण है। अगर मैं कहता हूं, यही सत्य है! तो मैं किसी न किसी आदमी के भीतर आकांक्षा पैदा कर दूंगा, जो कहे कि यह सत्य नहीं है। जगत एक संतुलन है। जब कोई दावा करता है तो प्रतिदावा तत्काल खड़ा हो जाता है।

अगर कोई महावीर के पास जाए तो उनकी कोई प्रस्तावना नहीं है। महावीर से कोई विवाद करने में सफल नहीं हो पाया; क्योंकि उन्होंने जो कहा, वह वाद नहीं है। कोई आदमी आकर कहता है, ईश्वर है। तो महावीर कहते हैं, ठीक है, यह भी ठीक है। और घड़ी भर बाद कोई आदमी आकर कहता है कि ईश्वर नहीं है। तो महावीर कहते, यह भी ठीक है। महावीर कहते कि ऐसा कोई असत्य नहीं है, जिसमें सत्य का अंश न हो। और ऐसा कोई सत्य नहीं है जो मनुष्य उच्चारित करे जिसमें असत्य सम्मिलित न हो जाए। तो इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं क्यों चिंता करूं, कोई चीज पूर्ण नहीं है इस जगत में, तो कोई कोई भी बात आकर कहे, उसमें एक अंश तो सत्य होगा ही। वह कैसा ही वाद हो, उसमें एक अंश तो सत्य होगा ही। और पूर्ण कोई चीज सत्य नहीं है; क्योंकि मनुष्य की भाषा में पूर्ण को प्रकट नहीं किया जा सकता।

तो महावीर का कोई वाद नहीं है। लेकिन अनुयायी तो वाद बनाते हैं। बिना वाद के अनुयायी को बड़ी कठिनाई होगी। अगर आप महावीर के अनुयायी, जैन को कहें कि ठीक है, कोई वाद नहीं है तो चलो मस्जिद! तो फिर क्यों मंदिर जा रहे हो? तो क्यों रखे बैठे हो ये महावीर के वचन? रखो कुरान! तो क्यों करते हो नमस्कार महावीर को? चलो आज नमस्कार हो जाए राम को। तो वह कहेगा, नहीं। उसका वाद है। ये इतिहास में घटने वाली दुर्घटनाएं हैं। महावीर का कोई वाद नहीं है; लेकिन अनुयायी तो बिना वाद के नहीं रह सकता। उसको तो फासला बनाना पड़ेगा कि मैं दूसरों से अलग हूं, मेरा गिरोह अलग है। सीमा बनानी पड़ेगी। सीमा बनाने में विवाद शुरू हो जाएगा।

महावीर का कोई वाद नहीं है। लेकिन मजे की बात है कि जैन दार्शनिकों और पंडितों ने जितना विवाद भारत में किया है, उतना और किसी ने नहीं किया। पक्के विवादी हैं। और एक-एक चीज की बाल की खाल निकालने में कुशल हैं। और जैन तर्क विकसित तर्क है। सच तो यह है कि जैन अनुयायियों को खूब तर्क को विकसित करना पड़ा; क्योंकि महावीर ने तर्क को बिल्कुल छुआ नहीं। उनको मुसीबत में छोड़ गए। तो उसकी काफी सुरक्षा उन्हें करनी पड़ी, उन्हें काफी ईजाद करनी पड़ी। और महावीर का जो वाद ही नहीं था, उसको भी जैनों ने स्यातवाद नाम दे दिया।

अब यह बड़ा उलटा नाम है। स्यात शब्द बहुत अदभुत है। वह सिर्फ पासिबिलिटी का, संभावना का सूचक है। कोई आदमी पूछता है, ईश्वर है? महावीर कहते हैं, स्यात, स्यात है। स्यात का मतलब यह है कि न तो मैं पूर्ण रूप से कहता कि नहीं है और न पूर्ण रूप से कहता कि है। स्यात का अर्थ यह है कि मैं मध्य में खड़ा हूं।

स्यात के लिए अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है। अभी एक अमरीकन विचारक है डिबोनो; उसने एक शब्द निकाला है, वह काम का है। वह शब्द है पो। वह नया गढ़ंत शब्द है। भाषा में कोई शब्द है नहीं। दो शब्द हैं अंग्रेजी में: यस, नो; हां, नहीं। डिबोनो ठीक महावीर की पकड़ का आदमी मालूम होता है। वह कहता है, ये दोनों शब्द खतरनाक हैं; क्योंकि इनसे पूरा हो जाता है मामला--हां या नहीं। और जिंदगी ऐसी नहीं है। जिंदगी ऐसी नहीं है। तो वह कहता है, यस और नो के बीच में एक मिडिल टर्म--पो, पी ओ। वह कहता है, पो का मतलब शायद।

आप पूछते हैं कि आपको मुझसे प्रेम है या नहीं? तो हां या न? डिबोनो कहता है, पो, स्यात। क्योंकि हजार चीजों पर निर्भर करता है, इतने जल्दी हां और न में जवाब देना खतरनाक है। हां का मतलब यह हुआ कि अब यह प्रेम जो है, एब्सोल्यूट हो गया। अगर मैं कहूं हां और घड़ी भर बाद आप पर नाराज हो जाऊं तो आप कहेंगे, कहां गया प्रेम? कहां गया वह प्रेम? हां भी गलत होगा, नहीं भी गलत होगा। जीवन में सभी चीजें रिलेटिव हैं, एब्सोल्यूट नहीं हैं; सब सापेक्ष है, कोई पूर्ण नहीं है। जो अभी प्रेम है, क्षण भर बाद प्रेम नहीं रह जाएगा। जहां अभी प्रेम की कोई खबर भी नहीं, क्षण भर बाद प्रेम का पौधा उग आएगा। कुछ नहीं कहा जा सकता। तो डिबोनो कहता है--पो, स्यात।

महावीर स्यात का प्रयोग किए हैं। लेकिन उनके अनुयायियों ने उसको भी वाद बना दिया--स्यातवाद। वह वाद नहीं है। स्यात का मतलब ही यह है कि कोई वाद जगत में नहीं है। तुम जितने भी वाद प्रस्तावित करते हो... । वाद का मतलब यह होता है कि कोई दावा, कि ऐसा है। ऐसा ही है, तब वाद खड़ा होता है। महावीर कहते हैं, ऐसा ही है, मत कहो; इतना ही कहो, ऐसा भी है। बस, इतना कहो। ही पर जोर मत दो, भी पर जोर दो; तो कोई कलह नहीं है, कोई विवाद नहीं है। विवाद खड़ा होता है वाद के आग्रह से। अनाग्रह, कोई दावा नहीं।

"चूंकि वे किसी वाद की प्रस्तावना नहीं करते, इसलिए दुनिया में कोई भी उनसे विवाद नहीं कर सकता है। और क्या यह सही नहीं है, जैसा कि कहा है प्राचीनों नेः समर्पण में ही है संपूर्ण की सुरक्षा। और इस तरह संत सुरक्षित रहते हैं और संसार उनको सम्मान देता है।"

समर्पण में ही है संपूर्ण की सुरक्षा, यही सूत्र का प्रारंभ था। इस सारे सूत्र में अलग-अलग पहलुओं से--लड़ना नहीं, छोड़ देना, संघर्ष मत करना, झुक जाना, विवाद मत करना, दावा मत करना, कोई प्रस्तावना ही मत करना, अपनी तरफ से कोई औचित्य सिद्ध मत करना, अपनी तरफ से झुक जाना, कड़े मत होना, अकड़ कर मत खड़े होना--इसी पहलू, इसी सत्य को अलग-अलग पहलुओं से लाओत्से ने कहा है। सार है समर्पण, सरेंडर।

इस आखिरी बात को हम ठीक से समझ लें। वह इसका सार है।

संघर्ष एक शब्द है, एक शब्द है समर्पण। संघर्ष में दूसरे से लड़ना है, जीतना है, जीतने की आकांक्षा है; हार परिणाम है। समर्पण में दूसरा दूसरा नहीं है, दूसरे से कोई विरोध नहीं है, दूसरे से कोई शत्रुता नहीं है। समर्पण में दूसरा स्वीकार है, अविरोध से स्वीकार है; जैसे आए आंधी और छोटा घास का तिनका झुक जाए, समर्पित हो जाए। आंधी से शत्रुता नहीं बांधता, मित्रता मानता है। सोचता है, आंधी खेल रही है साथ मेरे। आंधी को गुजर जाने देता है, राह दे देता है। यह जो छोटे तिनके का समर्पण है आंधी के लिए, यही उसके प्राणों की सुरक्षा है। आंधी बीत जाएगी, तिनका खड़ा हो जाएगा। बड़े वृक्ष गिर जाएंगे, तिनका बच जाएगा।

समर्पण भी, इस पूरे जगत को अगर हम एक आंधी समझें, इस पूरे अस्तित्व को एक झंझावात समझें, तो समर्पण इस झंझावात में सुरक्षा का उपाय है। यहां झुक जाना है।

झुक जाना शब्द अच्छा नहीं लगता हमारे मन में; क्योंकि हमारी भाषा न झुकने की है। लेकिन लाओत्से को समझेंगे तो झुक जाना शब्द बड़ा अदभुत है। और बहुत कम लोग इस महानता को उपलब्ध होते हैं कि झुक जाएं।

झुक जाना है इस झंझावात में जो जगत का है। क्योंकि हम इसके अंग हैं, इससे पृथक नहीं हैं। इससे लड़ाई बेमानी है, पागलपन है। जैसे मैं अपने ही दोनों हाथों को लड़ाऊं, ऐसा पागलपन है। जैसे मेरी आंख मेरे शरीर से लड़ने लगे, मेरे पैर मेरे पेट से लड़ने लगें, ऐसा पागलपन है। लड़ाई शब्द खतरनाक है।

अस्तित्व के रहस्य में जिसे प्रवेश करना है, वह अपने को ऐसा छोड़ दे, जैसे बूंद सागर में छोड़ देती है, एक हो जाती है। जैसे सूखा पत्ता हवा में छोड़ देता है, हवा के साथ एक हो जाता है। इस पूरे अस्तित्व की झंझा में मैं एक अंश मात्र हूं, पृथक नहीं, अलग नहीं। मेरा कोई अलग अस्तित्व नहीं है, एक अस्तित्व का ही एक कण हूं। तो लड़ाई बेमानी है, महंगी है; नाहक कष्ट, नाहक दुख है। पश्चिम में आज इतनी चिंता का जो कारण है, वह इस बात से पैदा हुआ है कि व्यक्ति अस्तित्व से अलग है। जो लोग भी अपने को अस्तित्व से अलग मानेंगे, वे चिंता में पड़ जाएंगे। क्योंकि तब सारा जगत शत्रु है और मुझे अपनी रक्षा करनी है। यह रक्षा हो नहीं सकती; और तब मैं टूटूंगा, मिटूंगा, परेशान होऊंगा। अगर यह सारा अस्तित्व मैं ही हूं और इसके साथ एक हूं तो मेरी मृत्यु भी मेरी मृत्यु नहीं है।

उमर खय्याम ने कहा है कि क्या हुआ अगर मैं मर भी गया! तो मेरी जो मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी, कोई पौधा उसमें से उगेगा, कोई फूल खिलेगा, तो मैं उस फूल में खिलूंगा। मेरे प्राण विसर्जित हो जाएंगे हवाओं में, किसी के फेफड़े में प्रवेश करेंगे, कोई हृदय धड़केगा, तो मैं उस हृदय में धड़कूंगा।

मैं मिट नहीं सकता हूं; क्योंकि मैं नहीं हूं। मैं मिट सकता हूं; अगर मैं हूं। अगर मैं नहीं ही हूं, यह अस्तित्व ही है, तो मेरे मिटने का कोई उपाय न रहा। आज जो मेरे हाथ में बहता हुआ खून है, वह किसी पक्षी में किसी

दिन आकाश में उड़ा होगा। आज मेरी हड्डी में जो मिट्टी है, वह मिट्टी कभी किसी वृक्ष में फूल बनी होगी; फिर कभी फूल बनेगी। आज जिस शब्द से मैं बोल रहा हूं, वह शब्द कभी किसी वृक्ष में हवा की टक्कर से पैदा हुआ होगा; फिर कभी वृक्षों के बीच बहेगा। मेरा होना अगर अस्तित्व से अलग है तो मेरा मिटना निश्चित है। लेकिन अगर मैं अस्तित्व से एक हूं तो कभी फूल में, कभी पक्षी में, कभी आकाश में, कभी मिट्टी में, अनंत-अनंत रूपों में बना ही रहूंगा। मेरे मिटने का फिर कोई उपाय नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, समर्पण में है सुरक्षा। जिसने अपने को खो दिया अस्तित्व में पूरा, उसकी फिर कोई असुरक्षा नहीं है। उसकी इनसिक्योरिटी का फिर कोई सवाल नहीं है। बचाया अपने को कि असुरक्षा निश्चित है। फिर मुसीबत खड़ी है।

और हम सब अपने को बचाने में लगे हैं। बचाना ही हमारा दुख है। और बचा भी नहीं पाते हैं। बचा भी नहीं पाएंगे। मिटेंगे तो ही, खोएंगे तो ही। और ऐसा भी नहीं है कि जो बचाने में लगा है, वह अलग ढंग से खोता है; और जो समर्पण करता है, वह अलग ढंग से खोता है। सिर्फ दृष्टि बदल जाती है। खोना तो दोनों को ही पड़ता है। खोना दोनों को ही पड़ता है; दृष्टि बदल जाती है। आप मरते हैं, क्योंकि आप सोचते थे आप हैं। लाओत्से सिर्फ विसर्जित होता है विराट में। वह दृष्टि बदल जाती है। लाओत्से की मृत्यु भी एक शांत मृत्यु है। कोई पीड़ा नहीं है। क्योंकि लाओत्से और बड़ा होने जा रहा है, जैसे कारागृह से छूट रहा हो। कारागृह की दीवारें गिर जाएंगी, कारागृह के भीतर छिपा हुआ आकाश विराट आकाश में मिल जाएगा। यह तो मुक्ति का क्षण है। हमारे लिए जो मृत्यु का क्षण है, वह लाओत्से के लिए मुक्ति का क्षण है। हमारे लिए जो बड़ी उदास, दुख-भरी घटना है, वह बुद्ध और महावीर के लिए निर्वाण है--विराट के साथ एक होने जा रही है चेतना।

मंसूर ने सूली पर लटके हुए कहा है कि तुम इतना ही मत देखना कि मुझे सूली दी जा रही है; जरा आंखें खोलो! एक लाख लोग इकट्ठे थे, वे पत्थर मार रहे थे, गालियां दे रहे थे। उसकी हत्या के लिए आए हुए थे। मंसूर ने कहा, मैं तो मर रहा हूं; इतना ही मत देखना कि मैं मर रहा हूं; जरा आंखें खोलो, शोरगुल बंद करो। इस तरफ मैं मर रहा हूं, उस तरफ मैं परमात्मा से मिल रहा हूं; उसको भी तुम देख लेना। इधर मैं विदा हो रहा हूं, उधर मेरा स्वागत हो रहा है। इधर से मैं हट रहा हूं, उधर मेरा प्रवेश हो रहा है। तुमसे मैं दूर जा रहा हूं, और उसके मैं पास जा रहा हूं; उसको भी देख लेना।

लेकिन जब एक आदमी मरता है, तो हमें सिर्फ उसकी विदाई दिखाई पड़ती है। वह कहीं जा रहा है, यह बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता। हम अंधे हैं। लेकिन इस जगत में कोई चीज खोती नहीं। एक मिट्टी का कण भी नहीं खोता है। विज्ञान कहता है, डिस्ट्रक्शन इ.ज इंपासिबल; असंभव है नष्ट करना किसी वस्तु को। एक रेत के कण को भी हम नष्ट नहीं कर सकते। रहेगा; किसी भी रूप में रहे, रहेगा। अस्तित्व बना ही रहेगा। अस्तित्व उतना ही रहेगा, उसकी मात्रा जरा भी कम नहीं हो सकती। तो जहां रेत का कण न मिटता हो, वहां आपको मिटने की इतनी क्या फिक्र है? जहां कुछ भी मिटना संभव नहीं है, वहां आदमी को लगता है--मैं मर जाऊंगा, मिट जाऊंगा। यह लगना किसी भ्रांति पर खड़ा है। वह भ्रांति है अपने को अलग मान लेना। मैं अलग हूं तो घबड़ाहट शुरू हो जाती है कि मैं मिटूंगा।

रामकृष्ण मर रहे हैं। उनको कैंसर हो गया है। वे भोजन भी नहीं ले पाते हैं। गले में कुछ डालते हैं, बाहर गिर जाता है। विवेकानंद रामकृष्ण से जाकर कहते हैं कि आप एक बार क्यों नहीं कह देते मां को? काली को क्यों नहीं प्रार्थना कर लेते? एक दफा आप कह देंगे, बात घट जाएगी।

विवेकानंद की बात मान कर रामकृष्ण ने आंख बंद की, फिर खिलखिला कर हंसने लगे और उन्होंने कहा, मैंने कहा तो काली बोलीः अपने गले से बहुत दिन भोजन किया, अब दूसरों के गलों से करो। तो विवेकानंद, आज तुम जब भोजन करो, तब तुम्हारे गले से मैं भोजन कर लूंगा। और यह उचित ही है, रामकृष्ण ने कहा, क्योंकि इस गले से कब तक बंधा रहूंगा? वक्त करीब आता है, जब दूसरे गलों में मुझे फैल जाना होगा।

लेकिन अगर यही गला मेरा गला है तो फांसी लगेगी। लेकिन अगर सारे गले मेरे हैं तो लगती रहे फांसी, कितने ही फंदे बनाए जाएं, कोई न कोई गला बचता रहेगा। कितनी ही सांस घुटे, कोई न कोई सांस चलती रहेगी। और कितने ही फूल कुम्हलाएं, कहीं और फूल खिल जाएंगे। इस जगत में कुछ नष्ट नहीं होता है। सिर्फ आदमी के अहंकार की भ्रांति कि उसे लगता है मैं अलग हूं। इसलिए भय पैदा होता है कि नष्ट हो जाऊंगा।

समर्पण अहंकार की भ्रांति का विसर्जन है--मैं अलग नहीं हूं। फिर इस जगत में कोई संघर्ष नहीं है।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

उनपचासवां प्रवचन

ताओ है परम स्वतंत्रता

Chapter 23

Identification With Tao

Nature says few words.
Hence it is that a squall lasts not a whole morning;
A rainstorm continues not a whole day.
Where do they come from? From Nature.
Even Nature does not last long (in its utterances),
How much less should human beings?
Therefore it is that:
He who follows the Tao is identified with the Tao.
He who follows Character (Teh) is identified with Character.
He who abandons (Tao) is identified with abandonment (of Tao).
He who is identified with Tao--Tao is also glad to welcome him.
He who is identified with Character--Character is also glad to welcome him.
He who is identified with abandonment--abandonment is also glad to welcome him.
He who has not enough faith, will not be able to command faith from others.

अध्याय 23

ताओ से एकात्मता

निसर्ग है स्वल्पभाषी।
यही कारण है कि तूफान सुबह भर भी नहीं चल पाता;
और आंधी-पानी पूरे दिन जारी नहीं रहता है।
वे कहां से आते हैं? निसर्ग से।
जब निसर्ग का स्वर भी दीर्घजीवी नहीं, तो मनुष्य के स्वर का क्या पूछना?
इसलिए ऐसा कहा जाता हैः

ताओ का जो करता है अनुगमन, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है।
आचार सूत्रों पर चलता है जो, वह उनके साथ एकात्म हो जाता है।
और जो ताओ का परित्याग करता है, वह ताओ के अभाव से एकात्म होता है।
जो ताओ से एकात्म है, ताओ भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।
जो नीति से एकात्म है, नीति भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।
और जो ताओ के परित्याग से एक होता है,
ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न होता है।
जो स्वयं में श्रद्धावान नहीं है, उसे दूसरों की श्रद्धा भी नहीं मिल सकेगी।

विटगिंस्टीन ने कहा है, जो कहा जा सकता है, वह थोड़े में ही कहा जा सकता है; जो नहीं कहा जा सकता, उसे विस्तार में भी कहने का कोई उपाय नहीं है।

लेकिन संत और भी गहरी बात कहते रहे हैं। वे कहते रहे हैं, जो कहा जा सकता है, वह मौन में भी कहा जा सकता है, और जो नहीं कहा जा सकता, उसे कितने ही विस्तार में कहा जाए तो भी अनकहा रह जाता है। जो कहा जा सकता है, वह बिन कहे भी कहा जा सकता है। जो नहीं कहा जा सकता, कितना ही हम कहें, वह अछूता, अस्पर्शित रह जाता है।

लाओत्से बहुत स्वल्पभाषी है। सच तो यह है कि वह थोड़ा सा जो उसने कहा है, वह भी बड़ी मजबूरी में। अधिकतर लाओत्से चुप रहा है। या कहें कि उसने अपनी चुप्पी से ही अधिकतर कहा है। कहा तो बहुत है, कहा तो बहुत गहरा है। लेकिन जीवन भर अपने शिष्यों के पास वह अधिकतर मौन था। शिष्य उसके साथ बैठते, उठते, चलते, यात्रा करते, सोते, खाते-पीते; बोलना अधिक व्यवसाय न था। उस मौन में, लाओत्से के उठने में, बैठने में, उसकी आंखों में, उसके हाथ के इशारों में, उसकी भाव-भंगिमा में, उसकी मुद्राओं में, उसकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं में, जो सूचन मिल जाता, वही उसका संदेश था।

लाओत्से ने जीवन भर कुछ नहीं कहा है। जीवन के अंत में यह ताओ तेह किंग किताब, अति छोटी से छोटी किताब है, यह उसने कही है। लाओत्से से कभी कोई पूछता कि कुछ कहो! तो लाओत्से कहता, जो समझ सकते हैं, वे बिना कहे भी समझ लेंगे; और जो नहीं समझ सकते हैं, उनके साथ कह कर भी समझाने का कोई उपाय नहीं है। अगर दृष्टि हो और गहराई हो, भाव हो, प्रेम हो, तो मौन भी समझा जा सकता है। दृष्टि न हो, गहराई न हो, भाव न हो, प्रेम न हो, तो शब्द भी बहरे कानों पर पड़ते हैं और बिखर जाते हैं। सुन कर भी सुना हो, यह जरूरी नहीं; देख कर भी देखा हो, यह अनिवार्य नहीं।

हम देख कर भी अनदेखा छोड़ सकते हैं। हम सुन कर भी अनसुनी हालत में रह सकते हैं। क्योंकि सुनना अगर सिर्फ कान का ही काम होता तो बड़ा आसान हो जाता। कान के साथ भीतर प्राणों का तादात्म्य भी चाहिए। अन्यथा कान सुन लेंगे यंत्रवत और प्राणों का कोई तालमेल भीतर न हो तो बात कहीं भी उतरेगी नहीं। आंख अगर देख लेती तो काफी था। हम परमात्मा को कभी का देख लेते, अगर आंख अकेली देखने में समर्थ होती। आंख के साथ प्राणों का तालमेल चाहिए। जब आंखों के पीछे से प्राण झांकते हैं, तब कहीं भी देखें तो परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। और जब आंखों के पीछे से प्राण नहीं झांकते, आंखों से ही बाहर की वस्तुएं भीतर झांकती हैं, तो सभी जगह पदार्थ का अनुभव होता है। पदार्थ का अनुभव यह खबर देता है कि हमने अभी प्राणों से देखना नहीं सीखा; अभी सिर्फ आंखें देख रही हैं।

अगर कान ही सुनते हों तो शब्द सुनाई पड़ते हैं; अगर प्राण कानों के भीतर से सुनने लगें तो सत्य सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जिसके प्राण कानों से झांक रहे हों, उसे वृक्षों की हवा में हिलती पत्तियों के स्वर में भी सत्य का अनुभव होगा। और जिसके प्राण कानों से न झांक रहे हों, बुद्ध कहते हों उसके सामने खड़े होकर कुछ, कि कृष्ण कहते हों, कि लाओत्से कहता हो, शब्द सुनाई पड़ेंगे और ऐसे ही बिखर जाएंगे जैसे हवा में पत्तियां हिली हों और बिखर गई हों। कहीं भीतर कुछ स्पंदित नहीं होगा। कहीं भीतर गहरे में कोई हलचल न मचेगी। कहीं भीतर केंद्र तक कोई किरण प्रवेश न करेगी। एक गहरा सहयोग चाहिए प्राणों का इंद्रियों के साथ।

संतों ने मौन से बहुत कुछ कहा है। लेकिन सभी से मौन से नहीं कहा जा सकता; उनसे ही कहा जा सकता है जो अपनी समस्त इंद्रियों के पीछे अपने प्राणों को एकजुट करने को तैयार हों। शिष्य का इतना ही अर्थ है। शिष्य का इतना ही अर्थ है कि जो अपनी इंद्रियों के पीछे अपने प्राणों को जोड़ कर सीखने को तैयार है। डिसिप्लिन का इतना ही अर्थ है। आप अनुशासित हैं, इसका इतना ही अर्थ है कि आपकी इंद्रिय और आपके प्राण टूटे हुए अलग-अलग नहीं हैं; संयुक्त हैं, जुड़े हैं। और जब आंख देखती है, तो आंख ही नहीं देखती, आत्मा देखती है। आंख द्वार बन जाती है। और जब कान सुनते हैं, तो कान ही नहीं सुनते, आत्मा सुनती है। कान द्वार बन जाते हैं। तब आप अपनी इंद्रियों के द्वारा बाहर आते हैं। साधारणतः आपकी इंद्रियों के द्वारा जगत भीतर आता है। जब जगत भीतर आता है, तो कोई गहरी अनुगूंज नहीं होती। और जब आप फैलते हैं बाहर, तो गहनतम अनुगूंज होती है। शिष्य का अर्थ है, जो तैयार है इस भीतरी अल्केमी के लिए, इस भीतरी रसायन के लिए कि प्राणों को साथ जोड़ देगा।

हुआ एक सदगुरु था। एक व्यक्ति उसके पास आया और उसने हुआ से कहा कि मैं सत्य सीखने आया हूं। तो हुआ ने कहा, रुको और सीखो।

बहुत दिन बीते। शिष्य ने कहा, अब तक आपने सिखाया नहीं। हुआ ने कहा कि अगर मेरे होने से ही तुम्हें शिक्षा नहीं मिल सकती तो मेरे कहने से नहीं मिल सकेगी। कहना बहुत कमजोर है; होना बहुत शक्तिशाली है। अगर मेरा समग्र अस्तित्व और मेरी मौजूदगी तुम्हें कुछ नहीं सिखा सकती तो मेरे शब्द, मेरे होंठों का कंपन, मेरी आवाज तुम्हें क्या सिखा सकेगी? बहुत फीकी है आवाज; मेरा होना तो बहुत विराट स्वर है। सीखो।

फिर और कुछ महीने बीते। शिष्य ने कहा कि मैं कब तक ऐसे रुका रहूं? आप कुछ सिखाते नहीं हैं। हुआ ने कहा, जो सीखने को तैयार है, उसे सिखाने की जरूरत नहीं पड़ती। और जो सीखने को तैयार नहीं है, उसे अब तक जगत में कोई सदगुरु सिखा भी नहीं सका है। यह काम मेरा नहीं है। यह काम तुम्हारा है कि तुम सीखो।

वर्ष बीता। शिष्य ने कहा, अब क्या मैं चला जाऊं? मैं थक भी गया, ऊब भी गया। न आप बोलते, न आप कुछ कहते।

हुआ ने कहा, तुम्हारी मर्जी! लेकिन अगर मेरे होने का आघात भी तुम्हारे ऊपर नहीं पड़ता है तो मेरी शिक्षाएं व्यर्थ ही होंगी। फिर तुम यह मत कहना किसी से जाकर कि मैंने सिखाया नहीं। सुबह जब तुमने मुझे नमस्कार किया है, तब क्या मैंने तुम्हें नमस्कार का उत्तर नहीं दिया? और सुबह जब तुम मेरे लिए चाय लेकर आए हो, तो क्या मैंने चाय तुमसे स्वीकार नहीं की? काश, तुम देखते जब मैंने तुम्हारे नमस्कार का उत्तर दिया है! तब तुम मुझे देखते! जब मैंने तुम्हारी चाय स्वीकार की है, तब तुम मुझे देखते! और जब तुमने मेरे चरणों पर सिर रखा है और मैंने तुम्हारे सिर पर हाथ रखा है, काश, तब तुम अनुभव करते! तो मैं तुम्हें प्रतिपल सिखा रहा हूं।

लेकिन इस तरह की शिक्षा तो केवल शिष्यों को दी जा सकती है। लाओत्से ने मरने के पूर्व यह किताब लिखने की रजामंदी जाहिर की, उसका कुल कारण इतना है कि जो शिष्य नहीं हैं, जिनसे लाओत्से सीधा अब नहीं मिल सकेगा, जिनको लाओत्से के पास होने का अब कोई उपाय नहीं रहेगा, जिनको लाओत्से के अस्तित्व का संस्पर्श अब मिलना असंभव है, उनके लिए शब्द छोड़े जा रहे हैं। शायद कोई उनमें से इन शब्दों के सूत्र को पकड़ कर भी लाओत्से के अस्तित्व तक प्रवेश कर जाए। कोई करना चाहे तो कर सकता है।

लाओत्से इस सूत्र में कहता है, "निसर्ग है स्वल्पभाषी।"

नहीं, ज्यादा नहीं बोलती प्रकृति; लेकिन पर्याप्त बोलती है। ज्यादा नहीं बोलती, अल्प बोलती है; लेकिन सब बोल देती है, जो बोलने योग्य है। एक फूल खिलता है सुबह, सांझ गिर जाता है। जो कहना था, वह कह दिया गया; जो सुवास छोड़नी थी, वह छोड़ दी। सूरज निकलता है, महासूर्य सुबह, और सांझ अस्त हो जाता है। जो खबर देनी थी, वह दे दी गई। प्रकृति बहुत सूक्ष्म इशारे करती है, बहुत स्वल्प।

लाओत्से कहता है, "यही कारण है कि तूफान सुबह भर भी नहीं चल पाता।"

उठता है तूफान, लेकिन पूरी सुबह भी नहीं चल पाता।

"आंधी-पानी पूरे दिन जारी नहीं रहता है।"

कहां से आते हैं ये और कहां चले जाते हैं? क्या हैं ये, किस बात के प्रतीक हैं? कौन सा संदेश हैं? आते हैं निसर्ग से, विलीन हो जाते हैं निसर्ग में। निसर्ग की भाषा हैं ये। अगर कोई इनमें झांकना सीख जाए तो निसर्ग भी प्रतिपल अनंत-अनंत संदेश भेज रहा है। लेकिन बड़े स्वल्प हैं संदेश। क्षण भर भी चूके तो चूक जाएंगे। वही निसर्ग के संदेश ग्रहण कर सकता है, जो प्रतिपल सजग है। कोई निसर्ग, स्कूल के शिक्षक की भांति, सिर पर डंडा लेकर चौबीस घंटे सिखाता नहीं रहेगा। और अच्छा ही है कि निसर्ग लंबी शिक्षाएं नहीं देता। क्योंकि लंबी शिखाएं अक्सर लोगों को बधिर बना देती हैं। लंबी शिक्षाएं अक्सर लोगों को उबा देती हैं। लंबी शिक्षाओं से लोग सीखते कम हैं, सुनने के आदी हो जाते हैं, शब्दों से परिचित हो जाते हैं। आदी हो जाते हैं, फिर कोई चोट नहीं होती।

सत्य का प्रथम संस्पर्श अगर प्रवेश न कर पाए तो उसकी पुनरुक्ति प्रवेश नहीं करती है। सत्य का पहला संस्पर्श ही अगर प्रवेश कर जाए तो ही आसान है बात। अगर हम सत्य को सुनने के भी आदी हो जाएं तो जितना हम सुनते हैं, उतना ही हमारे आस-पास दीवार मजबूत हो जाती है, द्वार बंद हो जाते हैं।

इसलिए अक्सर यह होता है कि जिन मुल्कों में धर्म की बहुत चर्चा होती है, वहां लोग अधार्मिक हो जाते हैं। हमारा ही मुल्क है। जितनी धर्म की चर्चा हमने की है, उतनी पृथ्वी पर कभी किसी ने नहीं की। और शायद कभी कोई अब करेगा भी नहीं। इस भूल को दोहराना उचित भी नहीं है। जितने तीर्थंकरों, जितने अवतारों को हमने इस पृथ्वी के खंड पर मौका दिया है, उतना पृथ्वी के किसी दूसरे खंड पर मौका नहीं मिला। लेकिन परिणाम बहुत विपरीत है। परिणाम यह है कि हम महावीर और बुद्ध और कृष्ण के भी आदी हो गए हैं। अगर कृष्ण भी अचानक खड़े हो जाएं तो हमारे भीतर कोई तूफान और आंधी नहीं उठेगी। हम कहेंगे, जानते हैं, पहचानते हैं, परिचित हैं। परिचय अंधा कर देता है। निकटता बहरा बना देती है। महावीर भी अचानक खड़े हो जाएं तो हमारे भीतर कोई हलचल और कोई आंदोलन नहीं हो जाएगा। हम कहेंगे, ठीक है, पहले भी होते रहे हैं। महावीर जैसी महा घटना भी हमारे बीच एक साधारण घटना होगी। हम आदी हो गए हैं।

सूर्य भी रोज सुबह निकलता है तो हमें कोई, हमें कोई पता नहीं चलता। आदी हो गए हैं। हम सारी चीजें, जो पुनरुक्त होती रहती हैं हमारे चारों ओर, उनसे आदी हो जाते हैं। थोड़ा सोचें, आदम ने जिस दिन पहली बार

सूरज को निकलते देखा होगा, उसका आनंद, उसकी पुलक, उसका आह्लाद! आदम ने जिस दिन पहली बार रात में आकाश के तारे देखे होंगे, उसका नृत्य! वह नाच उठा होगा। उस रात सोना मुश्किल हुआ होगा। तारे अब भी वही हैं और हमारे भीतर का आदम, आदमी भी वही है। लेकिन हम आदी हो गए हैं। सब ठहर गया है। हमें सब पता है कि ठीक है, रात तारे होते हैं। जरूरी नहीं है कि हमने जाना हो। हो सकता है हमने सुना हो, या हमने फिल्म के पर्दे पर देखा हो।

निसर्ग स्वल्प संदेश देता है--प्रत्यक्ष भी नहीं, परोक्ष, छिपे हुए। इशारा करता है, बोलता भी नहीं। धीमी सी पुलक, धीमी सी सिहरन पैदा करता है। अगर हम संवेदनशील हों तो ही समझ पाएंगे। कोई वीणा पर हथौड़ी नहीं पटक देता है; धीमे से इशारा करता है और तार झनझना जाते हैं। लेकिन लुहार जो दिन भर हथौड़ा पटकता रहता है, उसको अगर ऐसे तार झनझनाएं तो वह कहे कि कैसी आवाज आ रही है, सुनाई भी नहीं पड़ती है। कान आदी हो गए हैं। संवेदना खो गई है। स्पर्श की क्षमता क्षीण हो गई है। स्वाद मंदा पड़ गया है। सब कुछ जड़ हो गया है। तो हमें कुछ भी पता नहीं चलता। हवा हमारे पास से गुजर जाती है--पूरे परमात्मा को बहाती हुई, हमारे रोएं में खबर भी नहीं उठती।

आपको पता है कि आप श्वास से ही श्वास नहीं लेते, रोएं-रोएं से श्वास लेते हैं? लेकिन आपको पता चलता है? वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपकी नाक खुली रहने दी जाए और सारे रोएं बंद कर दिए जाएं, आप तीन घंटे में मर जाएंगे, श्वास आप कितनी ही लेते रहें। अगर सब रोएं बंद कर दिए जाएं, सिर्फ नाक खुली और मुंह खुला छोड़ दिया जाए कि मजे से श्वास लो, आप तीन घंटे से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकेंगे। क्योंकि एक-एक रोआं श्वास ले रहा है। पूरे शरीर में करोड़ों रोएं श्वास ले रहे हैं। लेकिन आपको पता है? सिर्फ छोटे बच्चों को अनुभव होता है, या लाओत्से जैसे बूढ़ों को अनुभव होता है।

लाओत्से ने कहा है, कहां से लेता हूं मैं श्वास? सब तरफ से, सब दिशाओं से, रोएं-रोएं से।

हमें तो इसकी पुनर्खोज करनी पड़े। ताओ परंपरा में यह एक गहन प्रयोग है--संवेदनशीलता को जगाने का। कभी इस पर प्रयोग करें। कभी दिन में पंद्रह मिनट लेट जाएं और अनुभव करें कि श्वास से ही नहीं, शरीर के रोएं-रोएं से श्वास ले रहे हैं। इसकी पुनर्खोज करनी पड़े। जरूर कुछ दिन प्रयोग करने पर अनुभव होना शुरू हो जाएगा कि श्वास रोएं-रोएं से आ रही है। पूरा शरीर तब जीवंत मालूम होगा। अभी पूरा शरीर जीवंत नहीं मालूम होता। सिर के आस-पास थोड़ी सी जीवंतता है; बाकी पूरा शरीर जड़ हो गया है।

पूरे शरीर में आप नहीं हैं, खोपड़ी के पास थोड़ी सी जगह में सीमित हो गए हैं। बाकी सब शरीर तो आप ढोते हैं, उसमें जीते नहीं। जिस दिन श्वास-श्वास का अनुभव होगा रोएं-रोएं से, उस दिन पता चलेगा, पूरा शरीर जीवित है। और उस दिन आपकी आत्मा खोपड़ी में मालूम नहीं पड़ेगी, तत्काल नाभि पर सरक जाएगी। उस दिन आपको ऐसा नहीं लगेगा कि मेरा केंद्र सिर के भीतर है, केंद्र नाभि के पास है। क्योंकि जब सब तरफ से श्वास आती है, सब तरफ से श्वास का वर्तुल बनता है और सब तरफ की श्वास आती है, तब आपको पता चलेगा, मैं नाभि से जी रहा हूं। तब नाभि केंद्र बन जाएगी। नाभि ही केंद्र है। लेकिन जो पूरे शरीर से श्वास के अनुभव को उपलब्ध होता है, वही नाभि केंद्र है, इसके अनुभव को उपलब्ध होता है।

जिस दिन आप पूरे शरीर से श्वास लेने में सक्षम हो जाएंगे, उस दिन जब हवा का झोंका आपके पास से निकलेगा, तो सिर्फ हवा का झोंका नहीं होगा, परमात्मा का झोंका भी होगा। और जब आपकी आंख के सामने एक फूल खिलेगा और हंसेगा, तो सिर्फ फूल नहीं खिलेगा, फूल से सारी प्रकृति खिलेगी और हंसेगी। और तब वह जो स्वल्पभाषी प्रकृति है, निसर्ग है, उसकी भाषा, उसकी कोड लैंग्वेज आपको समझ में आनी शुरू होगी।

हम आदमी की भाषा समझते हैं; वह भी ठीक से नहीं समझते हैं। मतलब सदा हमारे होते हैं। प्रकृति की भाषा तो वही समझ सकता है, जो सीखे; या आदमी की भाषा जो सीख ली है, उसे भूले। दोनों का एक ही मतलब है। अनलर्न करे, आदमी की भाषा भूले; ताकि निसर्ग की भाषा सीख सके।

निसर्ग की भाषा तो प्रतीक भाषा है। और प्रतीक परोक्ष हैं; सीधे, स्पष्ट नहीं हैं; सिर पर चोट की तरह नहीं पड़ते हैं। बहुत हलकी संवेदना, हलका संस्पर्श करते हैं और विदा हो जाते हैं। द्वार पर इतनी हलकी दस्तक कि केवल वे ही सुन पाएंगे जिनका पूरा रोआं-रोआं सुनता है; नहीं तो नहीं सुन पाएंगे। परमात्मा के पैरों की जो ध्वनि है, वह केवल वे ही सुन पाएंगे, जो इतने मौन हैं, इतने शांत हैं कि अगर अदृश्य का पैर भी जमीन पर पड़े तो उसकी ध्वनि उन्हें सुनाई पड़ सकेगी। हमें तो तुमुल नाद हो, तब थोड़ा-बहुत सुनाई पड़ता है।

आदमी की भाषा भी हम ठीक से नहीं समझते, हमारे अपने-अपने अर्थ होते हैं। मैं जो बोलता हूं वही आप समझते हैं, इस भूल में कभी भी मत पड़ जाना। सुनाई तो वही पड़ता है जो मैं बोलता हूं; लेकिन समझ में वही पड़ता है जो आप समझ सकते हैं। समझ में वही नहीं पड़ सकता है जो मैं समझाना चाहता हूं। अर्थ हैं भीतर हमारे। और हमारे अपने प्रयोजन हैं। यहां इतने लोग हैं तो इतने ही अर्थ हो जाते हैं। और फिर अपना-अपना स्वार्थ है, अपना-अपना लाभ है, अपनी-अपनी उपयोगिता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक नदी के किनारे बैठा था। और दस अंधे आए, वे नदी पार करना चाहते थे। मुल्ला ने उनके साथ सौदा किया और कहा, एक-एक पैसा एक-एक आदमी को नदी के पार करने का मैं लूंगा। ज्यादा नहीं मांगता हूं। अंधे राजी हो गए; कोई महंगी बात न थी।

मुल्ला ने एक-एक अंधे को नदी के पार किया। नौ अंधों को पार कर चुका, थक भी गया, जब दसवें को पार कर रहा था तो दसवां हाथ से छूट गया। डुबकी खाया, तेज थी धार नदी की, अंधा बह गया। नौ अंधों में हलचल मची। शक हुआ, आवाज आई डुबकी खाने की, किसी के गिरने की। उन्होंने पूछा, क्या हुआ नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा, कुछ भी नहीं हुआ; तुम्हारे लाभ में है, एक पैसा कम देना पड़ेगा।

नसरुद्दीन के लिए तो प्रयोजन दस पैसे से है। उसने कहा, कुछ भी नहीं हुआ; तुम्हारे लाभ में है, एक पैसा कम देना पड़ेगा। नौ को ही पार करवा पाए। वह जो एक आदमी का मर जाना है, खो जाना है, वह नसरुद्दीन के प्रयोजन में नहीं है। एक पैसा प्रयोजन में है।

डाक्टर अक्सर एक-दूसरे से कहते सुने जाते हैं कि मरीज तो मर गया, पर आपरेशन बड़ा सफल हुआ। आपरेशन की सफलता अलग ही बात है; उसका मरीज के जिंदा रहने या मर जाने से कोई सवाल नहीं है। है भी। डाक्टर के लिए मरीज गौण है। आपरेशन, एक कुशलता, बात ही अलग है।

अंग्रेज सर्जन था कैनेथ वाकर। बड़ा सर्जन था, लंदन के बड़े से बड़े सर्जन में से था। फिर पीछे वह गुरजिएफ का अनुयायी हो गया और सब छोड़ कर साधना में लग गया। उसने अपने संस्मरणों में कहीं कहा है कि पहली दफे एक ऐसा मरीज आया, जिसके बाबत सर्जरी को कुछ भी पता नहीं था। मैं ही पहला आदमी था उसका आपरेशन करने वाला। मरीज तो मर गया, लेकिन आपरेशन बिल्कुल सफल था। और जो शब्द मेरे मुंह से निकले थे पहली दफा, जब मैं उसके पेट को चीर-फाड़ करके और बीमारी की ग्रंथि को बाहर निकाल लिया था, तो वह जो बीमारी की ग्रंथि थी, उसको देख कर जो मेरे मुंह से शब्द निकले थे पहले, वह थे--ब्यूटीफुल, सुंदर! मैं ही पहला आदमी था उस ग्रंथि को देखने वाला मनुष्य-जाति के इतिहास में। और वह अनुभव अनूठा था।

वह जो मरीज मरा पड़ा है टेबल पर, वह ठीक वैसे ही है, जैसे मुल्ला नसरुद्दीन का अंधा डूब गया। एक पैसा कम देना पड़ेगा!

हमारे प्रयोजन ही हमारे अर्थ बन जाते हैं। अगर आंधी जोर से चल रही है तो आप आंधी को नहीं देखते; आप अगर एक दीया जला कर बैठे हैं तो आपको यही फिक्र हो जाती है कि यह दीया बुझ न जाए। अगर आकाश में बादल घिरे हैं और अपने कपड़े आप बाहर सूखने टांग आए हैं; तो बादल नहीं दिखाई पड़ते, रस्सी पर टंगे हुए कपड़े दिखाई पड़ते हैं कि कहीं वे भीग न जाएं। घर चले आ रहे हैं, वर्षा की बूंदें गिरने लगी हैं; तो आपको वर्षा की बूंदें नहीं दिखाई पड़तीं, कपड़े की सब क्रीज बिगड़ी जा रही है, वही दिखाई पड़ती है। एक पैसा कम देना पड़ेगा!

हमारे प्रयोजन ही हमारे अनुभव बनते हैं। इतनी महान घटना घट रही है कि वर्षा, सारा आकाश आप पर बूंदें बरसा रहा है, उससे कोई लेना-देना नहीं है, वह कहीं पता ही नहीं चलता, आदमी भागने लगता है कि कपड़े न भीग जाएं। कपड़े भीग भी जाएंगे तो कितना महंगा है यह कृत्य। हम देखते हैं वही, जो हमारे क्षुद्र स्वार्थों से बंधा है। इसलिए प्रकृति का जो विराट निहित अर्थ है, जो रहस्य है, जो संकेत है, जो संदर्भ है, वह सब खो जाता है। हम सब अपने आस-पास एक दुनिया बना कर जीते हैं--अपने संदर्भ की। उसमें सभी कुछ हमारे हिसाब से होता है।

खलिल जिब्रान ने एक कहानी लिखी है कि एक रात एक होटल में बहुत से लोग आए, बहुत उन्होंने खाया-पीया, बहुत आनंदित हुए। रात आधी रात हो गई। जब वे विदा होने लगे तो होटल के मालिक ने अपनी पत्नी से कहा कि ऐसे मेहमान रोज आएं तो हमारे भाग्य खुल जाएं। जिसने पैसे चुकाए थे, उसने कहा कि दुआ करो परमात्मा से, हमारा धंधा ठीक से चले; तो हम रोज आएं। उसने कहा, हम दुआ करेंगे। लेकिन अचानक उसे ख्याल आया, पूछा, लेकिन तुम्हारा धंधा क्या है? उसने कहा, हम मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करते हैं। दुआ करो, हमारा धंधा ठीक चले; तो हम रोज आएं।

धंधा ठीक तभी चल सकता है, जब बस्ती में रोज लोग मरें। वह लकड़ी बेचने का काम है मरघट पर। लेकिन सभी धंधे ऐसे हैं। कोई मरघट पर लकड़ी बेचने वाला धंधा ही ऐसा है, ऐसा मत सोचना। सभी धंधे ऐसे हैं।

लेकिन अपना-अपना धंधा है, अपना-अपना निहित स्वार्थ है। उसी के भीतर हम जीते हैं। इसलिए वह जो प्रकृति की स्वल्प भाषा है, अति मृदु, मौन, जरा सा छूती है और गुजर जाती है, उससे हम वंचित रह जाते हैं। उस संवेदनशीलता के लिए हमारा जो निहित स्वार्थ का घेरा है, वह टूट जाए और हम विराट अनंत का जो प्रयोजन है उसके साथ तादात्म्य हों, तो ही हम समझ पाएंगे।

लाओत्से कहता है, "जब निसर्ग का स्वर भी दीर्घजीवी नहीं, तो मनुष्य के स्वर का क्या पूछना?"

वह कहता है, जब निसर्ग भी बोलता है और इतना अल्प, इतनी परम ऊर्जा और इतनी स्वल्प भाषा, तो मनुष्य के संदेश का क्या?

इसलिए लाओत्से ने जो सूत्र लिखे हैं, वे अति संक्षिप्त हैं। संक्षिप्ततम हैं। और इसी कारण लाओत्से की किताब समझी नहीं जा सकी। लाओत्से की किताब अभी भी अनसमझी पड़ी है। लोग उसे पढ़ भी लेते हैं, तो घंटे भर में पढ़ सकते हैं, आधा घंटे में पढ़ सकते हैं। छोटी सी तो किताब है। ऐसा जितनी देर में अखबार पढ़ते हैं सुबह का, उतनी देर में पढ़ कर फेंक दे सकते हैं।

क्यों स्वल्प है? इतना छोटा-छोटा क्यों? इतने अनखुले और रहस्यपूर्ण वचन क्यों?

तो लाओत्से कहता है, इसलिए संक्षिप्त में जो मुझे कहना है, वह इतना है।

"इसलिए ऐसा कहा जा सकता है... ।"

इन तीन वचनों में लाओत्से की पूरी किताब का सार है।

"ताओ का जो करता है अनुगमन, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है। आचार-सूत्रों पर चलता है जो, वह आचार-सूत्रों के साथ एकात्म हो जाता है। और जो करता है परित्याग ताओ का, वह ताओ के अभाव से एकात्म हो जाता है। जो ताओ से एकात्म है, ताओ भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। जो नीति से है एकात्म, नीति उसका स्वागत करने में आह्लादित है। और जो ताओ के परित्याग से एक होता है, ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करता है।"

यह बड़ी अनूठी बात है। और एकदम से ख्याल में न आए, ऐसी बात है। इसके बड़े अंतर्निहित अर्थ हैं। दो-तीन आयाम से हम समझने की कोशिश करें।

पहलाः लाओत्से कहता है, तुम जिसका करोगे अनुगमन, वैसे ही हो जाओगे। तुम चलोगे जिसके पीछे, उसकी ही छाया बन जाओगे। तुम भाव से जिसके साथ जोड़ लोगे अपने को, वही हो जाओगे। अगर तुमने पदार्थ के साथ जोड़ लिया अपने को भाव से तो तुम पदार्थ हो जाओगे। हम सब पदार्थ हो गए हैं। क्योंकि पदार्थ के अतिरिक्त हम और किसी का अनुगमन नहीं करते। कोई मकान का अनुगमन करता है, कोई कार का, कोई धन का, कोई पद का। पदार्थ का हम अनुगमन करते हैं; हम सब अनुयायी हैं पदार्थ के।

दिखाई नहीं पड़ता ऐसा। कोई दिखाई पड़ता है महावीर का अनुयायी है, कोई बुद्ध का, कोई कृष्ण का। लेकिन यह सब ऊपरी बकवास है। भीतर आदमी को हम खोजने जाएं तो सब पदार्थ के अनुगामी हैं। वह जो महावीर का अनुगामी है, वह भी रुपए के पीछे जा रहा है। वह जो बुद्ध का है, वह भी रुपए के पीछे जा रहा है। और वह जो जीसस का है, वह भी रुपए के पीछे जा रहा है।

चीन का सम्राट था एक। खड़ा है अपने महल पर। और उसके साथ खड़ा है च्वांगत्से, लाओत्से का शिष्य। और च्वांगत्से से सम्राट पूछता है, इतने जहाज आ रहे हैं पानी में, कोई पूरब से, कोई पश्चिम से, कोई पूरब जा रहा है, कोई पश्चिम, कोई दक्षिण, कोई उत्तर; कितनी दिशाओं से और कितने जहाज आ-जा रहे हैं! च्वांगत्से कहता है, महाराज, देखने के भ्रम में मत पड़ें। ये सब जहाज एक ही दिशा से आते हैं और एक ही दिशा को जाते हैं। सम्राट ने कहा, क्या कहते हो? च्वांगत्से ने कहा, रुपए के लिए आते और रुपए के लिए जाते। बाकी सब दिशाएं भ्रांत हैं, बाकी सब दिशाएं ऊपरी हैं। उनका कोई बहुत मूल्य नहीं है। जो जा रहा है वह भी, जो आ रहा है वह भी।

अगर हम लोगों के धर्मों के नीचे देखें तो धन का धर्म मिलेगा। सब भेद हिंदू और मुसलमान और ईसाई के टूट जाते हैं वहां। बाकी सब भेद ऊपरी हैं। और जब तक यह भीतरी धर्म नहीं बदलता, तब तक जीवन नहीं बदलता। कोई ईसाई हो जाए, हिंदू हो जाए, मुसलमान हो जाए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो भीतरी धर्म है, वह जो एक दिशा में संसार चलता है, पदार्थ की दिशा में।

लाओत्से कहता है, जिसका करोगे अनुगमन, वैसे ही हो आओगे। तीन सूत्र उसने दिए हैं।

ताओ का जो अनुगमन करेगा--मूल ऊर्जा का, प्रकृति का, निसर्ग का, स्वभाव का--वह श्रेष्ठतम अनुगमन है। और वह श्रेष्ठतम व्यक्ति की संभावना है। जो अपने स्वभाव के साथ चलेगा; चाहे कुछ भी अड़चन झेलनी पड़े, चाहे कुछ भी परिणाम हो, चाहे कोई भी फल आए, जो अपने स्वभाव के अनुकूल चलेगा।

जिसे कृष्ण ने कहा है स्वधर्म, वही है ताओ। जिसे कृष्ण ने कहा है कि परधर्मो भयावहः, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने स्वभाव में मर जाना श्रेयस्कर है बजाय दूसरे के स्वभाव में जीकर जीना; उससे अपने में मर जाना। लेकिन अक्सर लोग समझते हैं कि शायद यह कहा है कि हिंदू धर्म में पैदा हुए तो हिंदू धर्म में ही मर जाना

श्रेयस्कर है, कि मुसलमान धर्म में पैदा हुए तो मुसलमान धर्म में मर जाना श्रेयस्कर है। नहीं, स्व और पर का इनसे कोई संबंध नहीं है। स्वधर्म का अर्थ है ताओ, स्वधर्म का अर्थ है मेरा निज स्वभाव; उसके लिए चाहे कुछ भी हो, चाहे मरना पड़े, तो उसका ही अनुगमन करूं। क्योंकि वही मुझे अमृत की तरफ ले जाएगा।

"जो करता है अनुगमन ताओ का, वह ताओ के साथ एकात्म हो जाता है।"

जो अपनी निज प्रकृति का अनुगमन करता है, वह इस महाप्रकृति के साथ एक हो जाता है। प्रकृति का अनुगमन प्रकृति के साथ तादात्म्य करवा देता है। यह श्रेष्ठतम अनुगमन है--अपना ही अनुगमन, अपने ही पीछे चलना, अपने ही स्वभाव की लकीर को पकड़ कर सब दांव पर लगा देना।

दूसरा उससे नीचे का सूत्र है, "आचार-सूत्रों पर जो चलता है, वह उनके साथ एकात्म हो जाता है।"

महावीर चलते हैं स्वधर्म पर, कृष्ण चलते हैं स्वधर्म पर, बुद्ध, लाओत्से चलते हैं स्वधर्म पर। लेकिन बुद्ध का अनुयायी बुद्ध के वचन पर चलता है। वह आचार-सूत्र का अनुगमन है। बुद्ध चलते हैं स्वभाव पर--अपना ही स्वभाव। बुद्ध को जो मान कर चलता है, उसके लिए दो संभावनाएं हैं। अगर वह सच में बुद्ध को मान कर चले तो उसे भी अपने स्वभाव पर चलना चाहिए। अगर वह न समझ पाए और बुद्ध से मोहित हो जाए और बुद्ध की बात उसे अच्छी लगे, लेकिन इस रहस्य को न समझ पाए कि जैसा बुद्ध चलते हैं अपने स्वभाव पर, ऐसे ही मैं भी चलूं अपने स्वभाव पर, यही असली रहस्य है समझने का, तो फिर बुद्ध जैसा चलते हैं, वैसा मैं चलूं, यह दूसरा परिणाम होगा। यह विकृति है। तो बुद्ध जैसा उठते हैं, वैसा मैं उठूं; बुद्ध जैसा बैठते हैं, वैसा मैं बैठूं; बुद्ध जो खाते हैं, वह मैं खाऊं; बुद्ध जो पीते हैं, वह मैं पीऊं; बुद्ध जैसा करते हैं, जो करते हैं।

कोई अनुगमन करेगा, तो लाओत्से कहता है, आचार-सूत्रों का अनुगमन करने वाला आचार-सूत्रों के साथ एक हो जाएगा।

लेकिन ऐसा व्यक्ति एक छाया मात्र होगा। ऐसे व्यक्ति के पास आत्मा नहीं होगी, सिर्फ छाया होगी। आत्मा तो उसके पास होगी, जो स्वयं का अनुगमन करेगा। और बड़े शिक्षक जो हैं, उनकी सारी चेष्टा यह है कि तुम अपना अनुगमन करो। लेकिन उनकी यह बात हमें इतनी प्रीतिकर लगती है और हम ऐसे सम्मोहित हो जाते हैं कि हम कहते हैं कि ठीक है, जंचती है बात आपकी, हम आपका अनुगमन करेंगे। यहां बड़ा ही बारीक फासला है, और उस बारीक फासले में सारा उपद्रव हो जाता है।

बुद्ध आनंद को कहते हैं, तू मुझे छोड़ दे, मैं ही तेरे लिए बाधा हूं। बुद्ध मर रहे हैं। आनंद छाती पीट कर रोने लगता है। बुद्ध कहते हैं कि आनंद, तू क्यों रोता है? आनंद कहता है, आपके रहते भी मैं ज्ञान को उपलब्ध न हो सका तो अब आपके जाने पर कैसे उपलब्ध हो सकूंगा? बुद्ध कहते हैं, मुझसे पहले, जब मैं नहीं था, तब भी लोग ज्ञान को उपलब्ध हुए; मैं खुद ही अज्ञानी था, मैं भी बिना किसी बुद्ध के ज्ञान को उपलब्ध हुआ। मैं नहीं रहूंगा, तो आनंद, तू सोचता है जगत में फिर कोई ज्ञान को उपलब्ध न होगा? सच तो यह है आनंद, कि तू आनंद मना; क्योंकि अब मैं न रहूंगा तो शायद तू अपना अनुसरण कर सके। मेरे रहते तू अपना अनुसरण नहीं कर पाएगा।

मरते क्षण के आखिरी शब्द जो हैं बुद्ध के, वे पहले सूत्र के शब्द हैंः अप्प दीपो भव! अपने लिए स्वयं दीपक बन जाओ। दूसरे को दीया मत मानो; दीया तुम्हारे भीतर है। तुम अपने ही दीपक बन जाओ।

लेकिन बुद्ध की यह बात इतनी प्रीतिकर लगती है कि हम बुद्ध को दीया बनाने की गलती कर सकते हैं। और उस गलती में हम छाया रह जाएंगे। फिर हम अनुगमन करते रहेंगे। लेकिन हमारा जो एकात्म है वह

महाप्रकृति से नहीं होगा; उस महाप्रकृति को जिन्होंने अनुभव किया है, उनके आचरण से होगा। उसमें हम छायावत हो जाएंगे।

इसलिए वास्तविक अनुयायी वही करता है, जो उसके गुरु ने अपने साथ किया। झूठा अनुयायी वही करता है, जो अनुयायी को दिखाई पड़ता है कि गुरु करता है।

इन दोनों में फर्क है। इन दोनों में बुनियादी फर्क है। गुरु ने क्या किया, वही करता है वास्तविक अनुयायी। गुरु क्या करता दिखाई पड़ता है अनुयायी को, झूठा अनुयायी वही करने लगता है। तब नकल ऊपरी हो जाती है। और तब अनुयायी एक कार्बन कापी हो जाता है। फिर मूल प्रति को खोजना असंभव है। क्योंकि जिसने कार्बन कापी को समझ लिया कि यह मूल हो गया, तो लाओत्से कहता है, खतरा यह है प्रकृति का, जीवन के परम नियम का खतरा यह है कि तुम आचार-सूत्रों के साथ एक हो जाओगे और तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि तुमने छाया के साथ अपने को एक मान लिया है। यह एकात्म इतना हो जाएगा कि तुम समझोगे, मैं छाया ही हूं।

बुद्ध के बहुत बड़े अनुयायी बोधिधर्म ने कहा है... । कोई शिष्य पूछता है कि बुद्ध का नाम सुबह लेना चाहिए या नहीं? बोधिधर्म ने कहा है, जब भी बुद्ध का नाम लो, तो कुल्ला करके मुंह भी साफ कर लेना।

क्यों? उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं आप? बुद्ध का पवित्र नाम! और उसको लेने पर कुल्ला करके मुंह साफ करना पड़े?

बोधिधर्म ने कहा, होगा नाम पवित्र, लेकिन तुम मुंह साफ कर लेना! और रास्ते में तुम्हें कभी अगर बुद्ध मिल ही जाएं तो उस रास्ते से ऐसे भागना कि लौट कर मत देखना!

वह अनुयायी तो बहुत घबड़ा गया। बोधिधर्म ने कहा, घबड़ाओ मत, यह तो कुछ भी नहीं है। अब मैं तुम्हें असली बात बताए देता हूं। जब बुद्ध के साथ मेरा भीतरी सत्संग चलता था, तब आखिर में वह हालत आई कि मुझे बुद्ध को एक तलवार से काट कर टुकड़े-टुकड़े करना पड़ा। तभी मैं अपने को उपलब्ध हो सका।

और बोधिधर्म के पीछे बुद्ध की प्रतिमा रखी है। और आज सुबह भी बोधिधर्म ने बुद्ध के चरणों में नमस्कार किया है। और आज सांझ फिर वह दीया जलाएगा।

उस अनुयायी ने कहा, और यह क्या हो रहा है? फूल सुबह तुमने जो चढ़ाए थे, अभी कुम्हलाए भी नहीं हैं। और जानता हूं, रोज मैं देखता हूं, कि सांझ तुम दीया भी जलाओगे। बोधिधर्म ने कहा, इसीलिए कि बुद्ध ने खुद ही समझाया था कि तुम मुझे भी जब छोड़ दोगे, तभी तुम अपने को पा सकोगे। वे मेरे गुरु हैं।

यह जरा जटिल हो गई बात। गुरु को मान कर चलने का अर्थ ही यही है कि एक दिन गुरु व्यर्थ हो जाए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि अनुग्रह छूट जाता है। बोधिधर्म जीवन भर अनुग्रह से भरा है। बुद्ध को मरे तो कई सौ साल हो गए, और बोधिधर्म अब भी दीया जला रहा है, और अब भी फूल चढ़ा रहा है। और यह भी कहने की हिम्मत रखता है कि मिलें बुद्ध रास्ते में तो टुकड़े-टुकड़े कर देना। यह परम अनुयायी है। यह आचार-सूत्रों का अनुसरण नहीं कर रहा है; नहीं तो प्राण कंप जाएंगे यह कहने में, हिम्मत नहीं जुटेगी। यह बुद्ध का ठीक-ठीक जो भाव है अप्प दीपो भव का, वही कर रहा है। और इसलिए अनुगृहीत भी है।

लेकिन यह अनुग्रह हमारा अनुग्रह नहीं है। हमारा अनुग्रह याचना से भरा अनुग्रह है। हम डरेंगे यह कहने में कि बुद्ध का नाम लो तो मुंह कुल्ला कर लेना; लगेगा कि बुद्ध कहीं नाराज न हो जाएं।

जो नाराज हो जाते हैं, वे बुद्ध नहीं हैं। और जो डरता है इतना कि कहीं नाराज न हो जाएं, उसके संबंध अभी प्रेम के नहीं हैं। उसके संबंध अभी लेन-देन के हैं; अभी भय के हैं। और जो घबड़ाता है इतना कि बुद्ध के

साथ लड़ न सके, अभी बुद्ध के बहुत पास नहीं आया है। यह बुद्ध की परंपरा में, सिर्फ बुद्ध की परंपरा में यह संभव हो सका कि बुद्ध को रोज चरणों में सिर रखने वाला भी बुद्ध को कह सकता है कि हटा दो, तोड़ दो यह मूर्ति! यह बड़ी आत्मीयता का परिणाम है। यह पहले सूत्र की आत्मीयता का परिणाम है।

अधिकतर धर्म के अनुयायी दूसरे सूत्र के आस-पास चलते हैं। आचरण का जिसने अनुगमन किया, वह आचरण के साथ एकात्म हो जाएगा। यही खतरा है। फिर उसे पता भी नहीं चलेगा, उसको लगेगा यह मैं ही कर रहा हूं। आचरण इतना सघन हो जाएगा कि उसे लगेगा यह मैं ही कर रहा हूं। आप बुद्ध के जैसा चलना सीख लें, अभ्यास घना हो जाए, अंतिम परिणाम यह होगा कि आपको लगेगा मैं ही चल रहा हूं। और आप नहीं चल रहे हैं। यह सिर्फ अभिनय है। आप बुद्ध की तरह मूर्तिवत बन कर बैठ जाएं... ।

तनका के पास लोग आते और वे कहते, हमें ध्यान करना है, और हमें बुद्ध जैसा हो जाना है। तो तनका कहता, भाग जाओ यहां से! क्योंकि मेरे मंदिर में एक हजार बुद्ध, पत्थर के, पहले से ही बैठे हुए हैं। वह एक हजार बुद्धों वाले मंदिर का पुजारी था। चीन में एक मंदिर है एक हजार बुद्ध की मूर्तियों वाला, वह उसका पुजारी था। वह कहता, भाग जाओ! यहां और ज्यादा भीड़ मत करो, एक हजार वैसे ही पालथी मारे बैठे हुए हैं। और तुम पालथी मार कर बैठ जाओगे तो यहां जगह कहां है?

आप बिल्कुल पालथी मार कर, आंख बंद करके, बुद्ध बन कर बैठ सकते हैं। कई साधु-संन्यासी फोटो उतरवाते वक्त बैठ जाते हैं--बिल्कुल बुद्ध बन कर, बुद्धवत। लेकिन बुद्धवत होना बुद्ध होना नहीं है; वह सिर्फ आवरण है, झूठा है। भीतर तूफान उबल रहा है, आंधियां चल रही हैं; भीतर सब उपद्रव मौजूद हैं। आचरण के सूत्र का खतरा यही है कि कोई ठीक से पालन करे तो भूल ही जाएगा कि जो मेरे हाथ में है, वह नकली प्रति है; वह वास्तविक नहीं है, वह केवल छाया है, प्रतिबिंब है।

"और जो ताओ का परित्याग करता है... ।"

मजे की बात तीसरी, आखिरी, कि जो स्वधर्म को बिल्कुल ही छोड़ देता है, न स्वधर्म की दृष्टि से, न आचार की दृष्टि से, सब दृष्टियों से छोड़ देता है।

"जो ताओ का परित्याग करता है, वह भी परित्याग के साथ एकात्म हो जाता है।"

लाओत्से का यह सूत्र बहुत गहरा है। वह कहता है, यह प्रकृति इतनी उदार है कि अगर तुम इसके विपरीत भी चले जाते हो तो भी तुम्हें बाधा नहीं देती है। अगर तुम परमात्मा की तरफ पीठ भी कर लेते हो तो परमात्मा उसमें भी तुम्हारी सहायता करता है।

साधारण धार्मिक आदमी को लगेगा, यह तो बात ठीक नहीं है। परमात्मा को रोकना चाहिए कि तुम क्यों गलत जा रहे हो? बाप, अगर बेटा गलत जाने लगे, रोकता है। अगर परमात्मा के मन में दया है तो उसे कहना चाहिए कि पीठ मत करो मेरी तरफ, लौटो! किसी का आचरण खोने लगे तो आचरण पर लाना चाहिए।

लाओत्से की दृष्टि, स्वभाव और परमात्मा की तरफ, हम से बहुत गहन है। हमारी तो उपयोगिता की दृष्टि है। लाओत्से कहता है, ताओ है परम स्वतंत्रता। इसलिए अगर तुम उसके विपरीत भी जाओ तो तुम उसी के साथ एकात्म हो जाओगे।

तो जो आदमी कहता है ईश्वर नहीं है, ईश्वर उसे भी बाधा नहीं देगा। वह आदमी नास्तिकता से एकात्म हो जाएगा। बड़ी खतरनाक बात है। बड़ी महान, बड़ी खतरनाक, बड़े दायित्व की! क्योंकि इतनी परम स्वतंत्रता का हम दुरुपयोग कर रहे हैं। जो आदमी कहता है, मैं ईश्वर को नहीं मानता और जब तक ईश्वर मुझे मिल न जाए, तब तक मैं मानूंगा नहीं, वह आदमी जन्मों-जन्मों तक भी ईश्वर से न मिल पाएगा। क्योंकि ईश्वर से

मिलने का जो द्वार था, उसकी तरफ वह पीठ करके पहले से खड़ा हो गया। और ईश्वर इतनी भी बाधा नहीं देता कि जबरदस्ती करे और सामने आकर खड़ा हो जाए। अस्तित्व इतना उदार है, इतना परम उदार है कि तुम जो भी होना चाहो, हो सकते हो। तुम अस्तित्व के विपरीत जाना चाहो, विपरीत जा सकते हो। तो भी कोई बाधा नहीं होगी।

अगर बुराई की स्वतंत्रता न हो तो भलाई फिर एक मजबूरी हो जाएगी। और अगर नरक जाने की स्वतंत्रता न हो तो स्वर्ग जाना एक जबरदस्ती हो जाएगी। और नरक के द्वार पर अगर बहुत मुश्किल पड़ती हो, भीतर न घुसने दिया जाता हो, तो स्वर्ग के द्वार पर प्रवेश करने में मन बड़ी ग्लानि अनुभव करेगा। क्योंकि जबरदस्ती मिला हुआ स्वर्ग भी नरक जैसा हो जाता है। और अपनी मौज से जो नरक को चुनता है, तो वह नरक भी स्वर्ग हो जाता है। असल में स्वतंत्रता ही स्वर्ग है।

तो लाओत्से कहता है कि जो ताओ का परित्याग करता है, वह ताओ के अभाव से एकात्म हो जाता है। इससे भी बड़ी मजे की बात आगे है।

कहता है, "जो ताओ से एकात्म है, ताओ उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। जो नीति से एकात्म है, नीति उसका स्वागत करने में प्रसन्न है। जो ताओ के परित्याग से एक हो गया, ताओ का अभाव भी उसका स्वागत करने में प्रसन्न है।"

यह बहुत अदभुत बात है। लाओत्से यह कह रहा है कि इस जगत में तुम कुछ भी करो, यह जगत हर हालत में तुमसे प्रसन्न है। हर हालत में, अनकंडीशनल, कोई शर्त नहीं है कि तुम ऐसा करो तो अस्तित्व प्रसन्न होगा, और तुम ऐसा नहीं करोगे तो अस्तित्व नाराज हो जाएगा। अस्तित्व हर हालत में प्रसन्न है। तुम जो करो, अस्तित्व तुम्हें उसी तरफ बहाने के लिए सारी शक्ति देने को तैयार है। तुम अस्तित्व के ही विपरीत चलो तो भी अस्तित्व तुम्हें अपनी ऊर्जा देने को तैयार है--प्रसन्नता से। कहीं कोई खिन्नता नहीं है।

इस लिहाज से लाओत्से अनेक धर्मगुरुओं से बहुत गहरे उठ जाता है, बहुत ऊपर उठ जाता है। क्योंकि अगर हम और धर्म की बातों को समझें तो ऐसा लगता है कि ईश्वर की शर्तें हैं। ऐसा लगता है कि तुम अगर अच्छा कर्म करोगे तो ईश्वर प्रसन्न होगा, बुरा कर्म करोगे तो ईश्वर अप्रसन्न होगा। लेकिन लाओत्से कहेगा, बेहूदी बात है। ईश्वर भी अप्रसन्न हो सके तो तुम में और ईश्वर में कोई भेद न रहा। और अगर ईश्वर भी शर्त रखता हो, कि यह शर्त तुम पूरी करोगे तो मैं राजी और यह शर्त तुम पूरी नहीं करोगे तो मैं नाराजी, तो फिर इस ईश्वर और हमारे बीच भी लेन-देन हो गया।

जीसस की एक कहानी इस अर्थ में बड़ी महत्वपूर्ण है। और इसीलिए ईसाइयत अब तक उस कहानी को नहीं समझ पाई। और समझ नहीं पाएगी; क्योंकि लाओत्से के बिना उस कहानी को समझना एकदम असंभव है। कुछ ऐसा मजा है कि महावीर को समझना हो तो बहुत दफे महावीर को सीधा समझने वाला नहीं समझ पाता; कभी कोई सूत्र लाओत्से से मिलेगा, जो महावीर को खोलता है; कभी कोई सूत्र जीसस से मिलेगा, जो महावीर को खोलता है। कभी महावीर में कोई सूत्र मिलेगा, जो जीसस की कहानी को एकदम प्रकाशित कर देता है।

असल में जीसस, मोहम्मद, कृष्ण, क्राइस्ट या लाओत्से, इस तरह के लोग उस परमात्मा की एक झलक देते हैं; वह झलक हमेशा अधूरी होगी। क्योंकि परमात्मा विराट है। लाओत्से जैसा व्यक्ति भी उसकी झलक देगा तो वह एक झलक ही होगी। वह झलक अधूरी होगी। कभी किसी दूसरे की झलक उसको पूरा कर जाती है; कभी किसी दूसरे की झलक में उसका अधूरापन पहली दफा पूरा होकर दिखाई पड़ने लगता है।

जीसस की कहानी है, जो ईसाइयों के लिए कठिनाई का कारण रही है और जो अब तक भी उसको सुलझा नहीं पाए। और बिना इस सूत्र के कभी सुलझा भी न पाएंगे। लेकिन धार्मिक लोग, धर्मों से बंधे लोग, एक-दूसरे की तरफ से कुछ भी सहायता लेने को तैयार नहीं होते। जीसस को मानने वाला यह तो मानने को तैयार होगा ही नहीं कि लाओत्से से जीसस साफ होंगे। वह यह मानने की कोशिश जरूर करेगा कि लाओत्से और जीसस में दुश्मनी है। दोस्ती तो मानने को तैयार नहीं हो सकता है। क्योंकि दुश्मनी पर संप्रदाय खड़े होते हैं; दोस्ती पर तो संप्रदाय गिर जाएंगे। दुश्मनी पर चर्च खड़े होते हैं; दोस्ती पर चर्चों का कोई उपाय न रहेगा। एक चर्च का दरवाजा दूसरे मंदिर में खुल जाएगा। बहुत कठिनाई हो जाएगी।

जीसस ने कहानी कही है कि एक धनपति ने अपने अंगूर के बगीचे में काम करने मजदूरों को बुलाया। सुबह बहुत मजदूर आए; लेकिन मजदूर कम थे, धनपति ने और लोगों को बाजार भेजा। और दोपहर भी मजदूर आए; लेकिन फिर भी मजदूर कम थे, धनपति ने और लोगों को बाजार भेजा। कुछ लोग सांझ ढलते-ढलते आए। लेकिन तब सूरज ढलने के करीब आ गया। कुछ तो अभी-अभी आए थे; उन्होंने हाथ में सामान भी न लिया था काम करने का। और कुछ सुबह जब सूरज उग रहा था, तब आए थे, और दिन भर पसीने से तरबतर हो गए थे और थक गए थे। फिर धनपति ने सभी को इकट्ठा किया और सभी को बराबर पुरस्कार दे दिया। जो सुबह आए थे, वे चिल्लाने लगे कि यह अन्याय है! हम सुबह से मेहनत कर रहे हैं, हमें भी उतना! उतना ही? जो दोपहर आए थे, आधे दिन जिन्होंने काम किया, उन्हें भी उतना ही? और जो अभी-अभी आए हैं, जिन्होंने कोई काम नहीं किया, उन्हें भी उतना ही?

उस धनपति ने कहा, दूसरी तरह से सोचो। तुमने जितना काम किया, उतना तुम्हें मिल गया या नहीं? तुमने जितना काम किया, उससे तुम्हें ज्यादा मिल गया है। तुम दूसरों की चिंता छोड़ो। उन्हें मैं उनके काम के कारण नहीं देता; मेरे पास बहुत है, इसलिए देता हूं।

मगर यह अनजस्टीफाइड है; यह बात न्याययुक्त नहीं है। फिर भी सुबह के मजदूर दुखी लौटे; हालांकि उन्हें काफी दिया था। और अगर ये दो वर्ग के मजदूर न आए होते दिन में तो वे बड़े खुश लौटते। उन्हें बहुत मिला था। लेकिन अब तुलना खड़ी हो गई थी। अब जो मिला था, उसका सवाल नहीं था; दूसरों को भी जो मिल गया था, वह कठिनाई में डाल रहा था।

थोड़ा सोचें कि संत भी खड़े हों परमात्मा के सामने और शराबी भी वहीं पहुंच गए हों और परमात्मा दोनों को बराबर बांट दे! संतों की कैसी गति होगी? प्राण निकल जाएंगे। मर गए! लुट गए! अगर संतों को पता चले कि पापी भी स्वर्ग में प्रवेश पा रहे हैं, उसी मौज से स्वर्ग का द्वार उनके लिए भी खुलता है, बैंड-बाजे बजते हैं, जैसा इनके लिए--स्वर्ग बिल्कुल नरक हो जाएगा। यह कहानी बड़ी खतरनाक है।

लेकिन अगर कहीं कोई परमात्मा है तो मैं आपसे कहता हूं कि द्वार सभी के लिए एक जैसा खुलता है। और जब पापी भी आता है तो परमात्मा प्रसन्न होता है कि आ गए!

जीसस ने एक और कहानी कही है। जीसस ने कहा है, एक बाप के दो बेटे थे। बड़ा बेटा आज्ञाकारी था; छोटा बेटा आज्ञाकारी नहीं था। बाप बूढ़ा हो गया। दोनों बेटों में कलह थी और दोनों को अलग करने की मजबूरी आ गई। संपत्ति बांट दी गई।

छोटा बेटा सारी संपत्ति को लेकर शहर चला गया। क्योंकि गांव में संपत्ति हो भी तो उसका कोई उपयोग नहीं है। गांव में अमीर आदमी भी गरीब है। शहर में गरीब आदमी भी अमीर हो जाता है; कुछ कर सकता है।

छोटा लड़का शहर चला गया। पांच-सात साल उसकी कोई खबर न आई। फिर अचानक खबर आई कि उसने सब बर्बाद कर दिया और वह भिखारी हो गया और सड़कों पर भीख मांग रहा है।

बड़े बेटे ने इन पांच-सात वर्षों में, जितनी संपत्ति उसे मिली थी, उससे पांच-सात गुनी कर दी। बड़ी मेहनत उठाई, व्यवसाय किया, खेती-बाड़ी की, बगीचे लगाए। धन बढ़ता चला गया।

लेकिन बाप को जब खबर मिली कि उसका बेटा भिखारी हो गया, तो उसने संदेशवाहक भेजे कि अभी मैं जिंदा हूं, भिखारी होने की कोई जरूरत नहीं है, तुम वापस आ जाओ। फिर एक दिन सांझ खबर आई कि बेटा वापस लौट रहा है। तो बाप के पास जो सबसे तगड़ी भेड़ें थीं, उसने कहा कि आज वे काटी जाएं और भोज की तैयारी हो। और जो सबसे पुरानी शराब थी तहखाने में, वह निकाली जाए और आज भोज की तैयारी हो। मेरा छोटा बेटा वापस लौट रहा है! गांव भर को उत्सव में बुला लिया जाए, गांव भर को भोज का निमंत्रण दे दिया जाए। आज की रात उत्सव की रात होगी!

गांव भर में खबर फैल गई, उत्सव का निमंत्रण पहुंच गया। बड़ा बेटा सांझ को खेत से थका-मांदा लौट रहा था, पसीने की धारें उसके मुंह पर सूख गई थीं। तब गांव में उत्सव होते देखा, उसने लोगों से पूछा कि क्या बात है? तो उन्होंने कहा, अरे, तुम्हें पता नहीं! तुम्हारा छोटा भाई वापस लौट रहा है और तुम्हारे पिता ने उसके स्वागत का भोज का आयोजन किया है। उसकी छाती पर पत्थर पड़ गया। उसने कहा कि मैं सात साल से अपने को जला रहा हूं, इस बुड्ढे की सेवा कर रहा हूं, धन इकट्ठा कर रहा हूं। और वह पुत्र--सुपुत्र--सब बर्बाद करके, भिखमंगा होकर वापस लौट रहा है, उसके स्वागत की तैयारी!

बड़ा बेटा नाराज घर लौटा। उसने अपने बाप को कहा कि यह अन्याय है! ऐसा मेरा कभी स्वागत नहीं हुआ।

बाप ने कहा, तुम मेरे पास थे सदा। और जब एक गड़रिया सांझ को घर लौटने लगता है अपनी भेड़ों को लेकर, उसके पास सौ भेड़ें हों और एक भेड़ खो जाए, तो निन्यानबे को वहीं अंधेरे में छोड़ कर वह खोई एक भेड़ को खोजने जंगल में चला जाता है; और जो भेड़ खो गई है, उसे कंधे पर रख कर लौटता है। क्या तुम कहोगे निन्यानबे भेड़ें आवाज उठाएं कि अन्याय हो रहा है! हम सदा तुम्हारे साथ, हमें कभी कंधे पर न ढोया! और हम सदा तुम्हारे साथ और तुम कभी इतनी चिंता और व्यग्रता से न भरे और हमें खोजने न आए! और खोई हुई भेड़ को, आवारा भेड़ को, भाग गई भेड़ को... !

क्योंकि भेड़ भागती ही तब है, जब आवारा हो, नहीं तो भेड़ भागती नहीं। भेड़ तो भीड़ में चलती है। शरारती भेड़ हो, बगावती भेड़ हो, तो ही भागती है, तो ही भटकती है। नहीं तो भटकने का कोई सवाल नहीं है।

उस बाप ने कहा कि वह लौट रहा है। वह आवारा भेड़ है, भटक गई भेड़ है। उसे मैं कंधे पर लेकर लौटूं, इससे तुम दुखी मत होओ। तुम्हारे लिए मेरा सब है। लेकिन बाप का हृदय बड़ा है, और तुम पर चुक नहीं जाता। और जो मेरे पास अतिरिक्त है, वह उसे भी देने दो।

ये अन्यायपूर्ण बातें हैं; लेकिन परम न्याय के अनुकूल हैं। लाओत्से कहता है कि तुम जो भी करो, यह प्रकृति प्रसन्न है। इसके आनंद में रत्ती भर कमी नहीं पड़ेगी। तुम चाहो ताओ से एकात्म हो जाओ तो प्रकृति प्रसन्न है; तुम चाहो आचार से एकात्म हो जाओ तो प्रकृति प्रसन्न है; तुम चाहो विपरीत चले जाओ धर्म के तो प्रकृति प्रसन्न है।

लेकिन एक बात ख्याल रखना, यह सूत्र अधूरा है। और लाओत्से ने आधी बात नहीं कही है इस सूत्र में--जान कर कि जो उसे समझ लेंगे, वे उसे भी समझ लेंगे। वह स्वल्पभाषी है। दूसरी बात मैं आपको कह दूं; क्योंकि पक्का नहीं है कि आप समझ पाएंगे।

अगर आप ताओ के साथ एकात्म हो जाएं, तो ताओ प्रसन्न है, आप भी प्रसन्न होंगे। अगर आप आचार-सूत्रों के साथ एक हो जाएं, आचार-सूत्र प्रसन्न हैं, आप उतने प्रसन्न नहीं होंगे। और अगर आप ताओ के विपरीत चले जाएं, तो ताओ की विपरीतता में भी ताओ का अभाव प्रसन्न है, लेकिन आप दुखी हो जाएंगे। वह दूसरा हिस्सा है। उससे कोई ताओ का लेना-देना नहीं है; आपसे लेना-देना है। और अपने दुख को आप ताओ के ऊपर मत ढालना। ताओ तो आपके नरक में जाने से भी प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न न हो सकोगे। ताओ तो, आप शराब पीकर नाली में पड़ गए हो, तो भी प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न न हो सकोगे। ताओ तो, आप अपनी हत्या कर रहे हो, तो भी प्रसन्न है; लेकिन आप प्रसन्न न हो सकोगे।

आपकी प्रसन्नता तो एक ही स्थिति में पूर्ण हो सकती है कि आप ताओ के साथ एकात्म हो जाओ। और इसलिए जो ताओ के साथ एकात्म हो गया है, उसको आप अप्रसन्न नहीं कर सकते। आप कुछ भी करो, वह प्रसन्न है। आप कुछ भी करो, वह प्रसन्न है। आप उसके विपरीत चले जाओ तो प्रसन्न है; आप उसके अनुकूल आ जाओ तो प्रसन्न है। लेकिन आप उसके प्रतिकूल जाकर प्रसन्न न हो सकोगे। आपकी सीमाएं हैं, आपकी शर्तें हैं।

इसलिए लाओत्से की यह बात ख्याल में रख कर दूसरा हिस्सा भी ख्याल में रख लेना।

"जो स्वयं में श्रद्धावान नहीं है, उसे दूसरों की श्रद्धा भी नहीं मिल सकेगी।"

लेकिन यह जो महायात्रा है ताओ के साथ एकात्म की, यह शुरू होती है स्वयं में श्रद्धा से।

"जो स्वयं में श्रद्धावान नहीं है, उसे दूसरों की श्रद्धा भी नहीं मिल सकेगी।"

हम सब श्रद्धा पाना चाहते हैं, आदर पाना चाहते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि हमारी खुद की स्वयं में कोई श्रद्धा नहीं है, हम खुद के प्रति भी आदरपूर्ण नहीं हैं। सच तो यह है कि हम जितने अनादरपूर्ण अपने प्रति होते हैं, किसी के प्रति नहीं होते। अगर हम अपने से ही पूछें कि अपने बाबत क्या ख्याल हैं, तो वह ख्याल अच्छे नहीं हैं।

यह महायात्रा शुरू होती है अपने में श्रद्धा से। क्योंकि जो अपने में श्रद्धा करता है, वही एक दिन अपने निज स्वभाव के साथ एक होने की हिम्मत जुटा पाएगा।

हम अपने में श्रद्धा नहीं करते, और इसलिए हमने एक तरकीब निकाल ली है। अपने में श्रद्धा के अभाव को खटकने न देने के लिए हम दूसरों में श्रद्धा करते हैं। कोई महावीर में, कोई बुद्ध में, कोई कृष्ण में श्रद्धा करता है। कृष्ण में जो इसलिए श्रद्धा करता है कि अपने में तो कोई श्रद्धा है नहीं, चलो उनमें श्रद्धा रख कर शायद कोई रास्ता बन जाए, वह दूसरे सूत्र पर पहुंच जाएगा--आचरण का अनुगमन करेगा। जो इस कारण कि अपने में ही जब श्रद्धा नहीं है तो किसी पर श्रद्धा नहीं रखेगा, क्योंकि जब अपने में ही नहीं तो किसी पर क्या रखनी, वह नास्तिक हो जाएगा--वह तीसरे सूत्र पर पहुंच जाएगा। जिसकी अपने में श्रद्धा है, वह कृष्ण से भी सीख लेगा, लाओत्से से भी सीख लेगा। लेकिन अपनी श्रद्धा उसकी सघन होगी इस शिक्षण से। इस सत्संग से उसकी स्व की श्रद्धा बढ़ती जाएगी। वह अगर कृष्ण के चरणों में भी झुकता है तो सिर्फ इसीलिए कि कृष्ण उसके भविष्य के प्रतीक हैं; कल वह भी कृष्ण जैसा हो पाएगा। वह जो कल हो सकता है, उसके चरणों में झुक रहा है।

बुद्ध से कोई पूछता है कि लोग आपके चरणों में झुकते हैं, आप रोकते क्यों नहीं?

बुद्ध कहते हैं, अगर वे मेरे चरणों में झुकें तो मैं उन्हें जरूर रोकता हूं। लेकिन वे अपने ही भविष्य के चरणों में झुकते हैं; मैं तो केवल बहाना हूं। मुझमें उन्हें अपना भविष्य दिखाई पड़ता है; कल वे भी बुद्ध हो सकते हैं। और इसीलिए झुकते हैं। इसलिए रोकने का कोई कारण नहीं है।

अपने में श्रद्धा अगर हो तो हम ताओ के साथ एकात्म हो सकते हैं। अपने में श्रद्धा न हो तो दो खतरे हैं--या तो हम दूसरे में श्रद्धा करके सब्स्टीट्यूट पा लेंगे, तब हम आचरण का अनुगमन करेंगे; या हम अपने में श्रद्धा नहीं है, इसलिए किसी में भी श्रद्धा नहीं करेंगे, तब हम ताओ के विपरीत चले जाएंगे।

ताओ हर हाल प्रसन्न है; आप हर हाल प्रसन्न नहीं हो सकेंगे। इसलिए अपने दुख को देखते रहना। जितना ज्यादा हो दुख आपका, समझना कि तीसरे सूत्र में पड़े हैं। दुख हो, बहुत ज्यादा न हो, संतोष के लायक हो, समझना कि दूसरे में पड़े हैं। दुख बिल्कुल न हो, संतोष की भी जरूरत न हो, तो समझना कि पहले के निकट आ गए हैं।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

पचासवां प्रवचन

न नया, न पुराना; सत्य सनातन है

बहुत से प्रश्न हैं।

एक मित्र ने पूछा है, ताओ की परिभाषा क्या है?

उसी की परिभाषा का हम प्रयास कर रहे हैं। और सारा प्रयास पूरा हो जाने पर भी परिभाषा उसकी समझ में आएगी नहीं। क्योंकि जब समझाने का सारा प्रयास भी पूरा हो जाता है, तब भी ताओ परिभाषा के बाहर छूट जाता है। वह तो जब आप उसका प्रयोग भी करेंगे, तभी समझ में आएगी।

जैसे प्रेम को समझाया जाए; कितना ही समझाया जाए, जब तक आप प्रेम में उतर न जाएंगे, तब तक उसे नहीं जान पाएंगे। प्रेम की कोई भी परिभाषा प्रेम को प्रकट न कर पाएगी; प्रेम का अनुभव ही उसे प्रकट करेगा। फिर भी प्रेम की परिभाषा करने की कोशिश की जाती है। इसलिए नहीं कि आप उससे प्रेम को जान लेंगे, बल्कि इसीलिए कि शायद प्रेम को जानने की प्यास उससे पैदा होगी।

तो अगर ताओ को समझने की कोशिश में आपको ताओ की परिभाषा समझ में न आए तो यह उचित ही है। लेकिन ताओ को समझने की प्यास जग जाए तो किसी दिन उसके अनुभव में उतरा जा सकता है। जिन्हें अनुभव हुआ है, वे भी परिभाषा कर सकेंगे, ऐसा नहीं है। जिन्हें अनुभव हुआ है, वे खुद तो जान लेंगे, लेकिन दूसरे को बताते समय वही कठिनाई खड़ी हो जाएगी। अनुभव कहे नहीं जा सकते। इशारे हो सकते हैं। लेकिन शब्दों में प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। और जितना बड़ा हो अनुभव, उतनी ही असमर्थता हो जाती है।

ताओ बड़े से बड़ा अनुभव है। उससे बड़ा कोई अनुभव नहीं है।

ताओ शब्द का अर्थ होता है धर्म। ताओ शब्द का अर्थ होता है वह परम नियम, जिसके आधार पर पूरा अस्तित्व चलता है। तो जब तक हम अस्तित्व में न डूबें और उस परम नियम के साथ एक न हो जाएं, तब तक हमारी समझ में आएगा नहीं। सागर के किनारे खड़े होकर लहरों को समझा जा सकता है। दूर की समझ परिचय ही होगी, ज्ञान नहीं। जिसे सागर को ही जानना हो, उसे सागर में डूबना होगा, डुबकी लगानी होगी। और वह डुबकी भी ऐसी नहीं कि आप सागर से अलग बने रहें। वह डुबकी ऐसी चाहिए जैसे नमक का पुतला सागर में कूद जाए, फिर लौट न सके, नमक उसका पिघल जाए, बह जाए, सागर के साथ एक हो जाए। तभी सागर को जाना जा सकेगा।

तो अगर शब्द की ही जानने की इच्छा हो तो ताओ का अनुवाद होगा धर्म, परम नियम, अस्तित्व का मूल आधार। जिसको वेदों ने ऋत कहा है, वही ताओ का अर्थ है। लेकिन यह शब्द का अर्थ हुआ। इसे जान लेने से कुछ जान लिया, ऐसा जो मानता है, वह भ्रांति में पड़ेगा। यह सिर्फ इशारा हुआ, यात्रा की तरफ जाने के लिए पहला। यात्रा पर निकलना जरूरी है।

फिर परिभाषा का क्या अर्थ होता है?

परिभाषा का अर्थ होता है किसी एक चीज को किसी दूसरी चीज के द्वारा बताना। किसी एक चीज को किसी दूसरी चीज के द्वारा बताना। जैसे कि अगर आपने नीलगाय नहीं देखी है जो हिमालय की तराइयों में

होती है, तो हम कह सकते हैं, वह गाय जैसा एक जानवर है। तो थोड़ी सी समझ आई, थोड़ा सा ख्याल आया। लेकिन ताओ या धर्म तो अकेला ही अनुभव है। उस जैसा कोई दूसरा अनुभव नहीं है, जिससे इशारा किया जा सके; कोई दूसरा अनुभव नहीं है जिससे हम कह सकें--उस जैसा।

फिर ताओ तो जटिल, गहनतम अनुभूति है। छोटे-मोटे जीवन के अनुभव भी परिभाष्य नहीं हैं, डिफाइनेबल नहीं हैं। अगर कोई आपसे पूछ ले कि पीला रंग क्या है तो आप क्या कहेंगे? क्योंकि पीले रंग जैसा कोई और रंग तो होता नहीं। और अगर पीले रंग जैसा कोई रंग होगा तो वह पीला ही होगा। पीले रंग की क्या परिभाषा करिएगा?

इस सदी के बहुत बड़े विचारक जी.ई.मूर ने, जिसने डेफिनीशन पर, परिभाषा पर सर्वाधिक काम किया है, दो, ढाई सौ पृष्ठों में चर्चा करने के बाद यह कहा है कि व्हाट इ.ज यलो इ.ज इनडिफाइनेबल, पीला क्या है उसकी परिभाषा नहीं हो सकती। पीला पीला है, यलो इ.ज यलो।

मगर यह कोई बात हुई? इसको तर्कशास्त्री कहते हैं टोटोलाजी। इसका मतलब तो हुआ, जब आप कहते हैं यलो इ.ज यलो, पीला पीला है, तो इसका मतलब हुआ कि आपने परिभाषा करने से इनकार कर दिया। पीला क्या है, हम यह पूछ रहे हैं। आप कहते है, पीला पीला है। यह तो कोई उत्तर न हुआ। यह तो बात वहीं के वहीं रह गई।

जी.ई.मूर ने कहा है कि जितना परिभाष्य है, वह सब जोड़ है।

जैसे कि कोई अगर पूछे, पानी क्या है? तो हम कह सकते हैं, हाइड्रोजन और आक्सीजन का जोड़ है--एच टू ओ। यह परिभाषा हो गई पानी की। क्योंकि पानी दो चीजों का जोड़ है, इसलिए दो को तोड़ कर हम बता सकते हैं कि पानी यह है। जितनी चीजें कई चीजों का जोड़ हैं, उनकी परिभाषा आसान है। लेकिन अब कोई पूछे, आक्सीजन क्या है? तो अड़चन होगी; क्योंकि आक्सीजन किसी चीज का जोड़ नहीं है। लेकिन फिर भी तोड़ा जा सकता है। अब हमने परमाणु को तोड़ लिया तो हम कह सकते हैं कि इतने इलेक्ट्रान, इतने न्यूट्रान, इनका जोड़ है। नीचे उतरते जाएं; जब एक ही चीज रह जाएगी, तो तोड़ा भी नहीं जा सकता।

ताओ आखिरी बिंदु है, जिसको तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। धर्म आखिरी अनुभव है, आत्यंतिक, अल्टीमेट; उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। लेकिन उसका अनुभव हो सकता है। माना कि पीले की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि पीले का अनुभव नहीं हो सकता। आप पीले का अनुभव रोज करते हैं, कोई अड़चन नहीं है।

अगर आप जिद्द कर लें कि पहले परिभाषा, फिर अनुभव करूंगा, तो फिर अनुभव भी बंद हो जाएगा। आप पहले अनुभव करते हैं प्रेम का। कोई आदमी पूछे कि पहले मैं परिभाषा कर लूं, समझ लूं ठीक से, फिर उतरूंगा, क्योंकि अनजाने रास्ते पर नहीं उतरना है, तो वह प्रेम के रास्ते पर कभी भी नहीं उतरेगा। आप समय का उपयोग करते हैं रोज। लेकिन कोई आपसे पूछ ले समय की परिभाषा, तब आप कठिनाई में पड़ जाएंगे।

अगस्टीन ने कहा है कि मुझसे पूछो मत तो मैं जानता हूं, और मुझसे पूछा कि मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं।

जानना कुछ ऐसी बात है, जिसके लिए परिभाषा जरूरी नहीं है। तो ताओ जानना होगा; और जान कर भी ताओ गूंगे का गुड़ ही रहेगा। कबीर ने कहा है कि पूछो मत मुझसे कि वह क्या है। रास्ता पूछ लो, कैसे उस तक मैं पहुंचा, वह मैं तुम्हें बता दूं। तुम भी पहुंच जाओ, तुम भी जान लो। मुझसे मत पूछो कि वह क्या है। क्योंकि वह मुझसे भी बड़ा है, उसे प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है।

तो हम क्या कर रहे हैं? ताओ के संबंध में जो चर्चा कर रहे हैं, यह चर्चा ताओ के इर्द-गिर्द है, ताओ के आस-पास है। हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं ताओ के आस-पास। कहीं कोई चीज आपके हृदय पर चोट कर जाए और आप भीतर केंद्र में प्रवेश कर जाएं! सारी चर्चा परिधि पर है, सर्कमफरेंस पर है--इस आशा में कि कोई परिधि का बिंदु आपके लिए द्वार बन जाएगा और आप भीतर प्रवेश कर जाएंगे और केंद्र पर पहुंच जाएंगे। लेकिन अगर आप परिधि पर ही केंद्र को चाहते हों तो वह असंभव है। आपको जाना पड़ेगा।

आदमी का मन ऐसा है कि वह एक कदम उठाने के पहले भी सब कुछ तय कर लेना चाहता है। सुरक्षा इसमें मालूम होती है कि सब साफ हो जाए--मैं कहां जा रहा हूं, क्यों जा रहा हूं, क्या रास्ता है, क्या परिणाम होगा, कितना लाभ है, कितनी हानि है--सब तय हो जाए तो आदमी कदम उठाता है। जो सब तय करके कदम उठाता है, वह कभी ताओ तक, धर्म तक नहीं पहुंचेगा। क्योंकि धर्म तक पहुंचते ही वे हैं जो कैलकुलेटिव नहीं हैं, जो हिसाब नहीं लगाते। हिसाबी तो संसार से जुड़े रहते हैं; गैर-हिसाबी धर्म में प्रवेश करते हैं।

कोई परिभाषा नहीं है। कोई परिभाषा कभी की नहीं गई है। कभी की भी नहीं जाएगी। लेकिन ध्यान रहे, इससे निराश हो जाने की कोई जरूरत नहीं है। यह केवल इस बात की सूचना है कि अनुभव, अनुभव से ही जाना जा सकता है।

शेख फरीद एक मुसलमान सूफी फकीर हुआ। कोई उसके पास गया है ईश्वर की परिभाषा पूछने।

ईश्वर हो, कि धर्म हो, कि आत्मा हो, कि सत्य हो, इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। ये सब शब्द हैं उसके लिए, जिसको नहीं कहा जा सकता।

उस आदमी ने शेख फरीद से पूछा कि कुछ मुझे भी अपने अनुभव की बात बताओ।

शेख फरीद के पास एक डंडा पड़ा था। उसने डंडा उस आदमी के पैर पर मार दिया। पैर में चोट लगी, उस आदमी ने चीख मारी और कहा कि यह आप क्या करते हैं, मुझे बहुत दर्द हो रहा है।

शेख फरीद ने कहा, दर्द तुम्हें हो रहा है, थोड़ा मुझे बताओ कि क्या हो रहा है?

वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ा। शेख फरीद ने कहा, मैं कैसे मानूं कि तुम्हें दर्द हो रहा है? और क्या है दर्द? वह आदमी बड़ी बेचैनी में पड़ा; कुछ बता नहीं सका।

शेख फरीद ने कहा, पागल, उठा डंडा और मार मुझे! डंडा पड़ा है, उठा और मार मुझे! बताने की फिक्र छोड़। मुझे भी दर्द होगा, मैं भी जान लूंगा।

यही रास्ता है। दर्द होगा तो जान सकेंगे। धर्म होगा तो जान सकेंगे।

एक मित्र ने पूछा कि कल आपने कहा संत अत्यंत अल्पभाषी होते हैं; लेकिन आप तो इतना अधिक बोलते हैं!

ठीक पूछा है; थोड़ा सोचना पड़े। मैं जो बोलता हूं, वह अल्प ही है; आपको ज्यादा मालूम पड़ता होगा। क्योंकि जो मैं बोलना चाहता हूं, उससे तौलता हूं तो अल्प है; जो आप समझ सकते हैं, उससे तौलूं तो बहुत ज्यादा है। कम और ज्यादा सापेक्ष शब्द हैं। उनमें सीधा कोई अर्थ नहीं होता, किसी तुलना में अर्थ होता है। जो मैं बोलना चाहता हूं, उस लिहाज से जो मैंने बोला है, वह कुछ भी नहीं है। जो आप समझ सकते हैं, उस लिहाज से जो मैंने बोला है, वह बहुत ज्यादा है। मेरी तरफ से वह अल्प ही है।

लाओत्से ने ऐसा नहीं कहा कि संत जो बोलते हैं, वह सुनने वालों की तरफ से अल्प होता है; वह संतों की तरफ से अल्प होता है। सुनने वालों को बहुत ज्यादा हो सकता है।

एक मित्र ने पूछा है, आप कहते हैं समस्त अस्तित्व इकट्ठा, संयुक्त, अद्वैत है, और उसमें जो भेद दिखता है वह अहंकार का खेल है। इस संदर्भ में मनुष्य की स्वतंत्रता, जिसकी कल आपने यहां चर्चा की, बहुत दुर्बल हो जाती है। यहां तो नियतिवाद ही अधिक संगत दिखता है। समस्त द्वारा संचालित व्यक्ति स्वतंत्र कैसे हो सकता है, इसे स्पष्ट करें।

हमारी सारी अड़चन शब्दों की है। जैसे, हम विपरीत शब्दों में सोचने के आदी हैं। हम सोचते हैं, या तो मनुष्य स्वतंत्र है या परतंत्र है। अगर स्वतंत्र है तो पृथक होना चाहिए और समस्त का उसके ऊपर कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। अगर समस्त का अधिकार है उसके ऊपर, और समस्त ही का वह एक अंश मात्र है, तो परतंत्र हो गया, फिर स्वतंत्र कैसे होगा?

लेकिन स्वतंत्र हो या परतंत्र, इन दोनों के बीच एक बात हमने मान रखी है वह यह कि मनुष्य पृथक है--दोनों के बीच! जब हम कहते हैं कोई स्वतंत्र है, तो उसका मतलब हुआ कि पृथक है, लेकिन समस्त की शक्ति के बाहर है। जब हम कहते हैं परतंत्र है, तो उसका अर्थ हुआ कि पृथक है, लेकिन समस्त की शक्ति के भीतर है।

लाओत्से कहता है, पृथक है ही नहीं। इसलिए स्वतंत्रता और परतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है। पृथक है ही नहीं। मनुष्य प्रकृति ही है, या मनुष्य परमात्मा ही है। जब हम दो मानें परमात्मा को और मनुष्य को, तो स्वतंत्रता का और परतंत्रता का सवाल उठता है। परमात्मा दूसरा हो तो हम उसके खिलाफ स्वतंत्र हो सकते हैं, या उसके अनुगत होकर परतंत्र हो सकते हैं। लेकिन अगर हम परमात्मा के साथ एक ही हैं तो स्वतंत्रता और परतंत्रता का हमारी भाषा में जो अर्थ होता है, वह खो गया।

अगर परमात्मा के साथ हम एक ही हैं और परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी दूसरा नहीं है, तो परमात्मा स्वतंत्र है, ऐसा कहना ठीक नहीं; परमात्मा स्वतंत्रता है। इसमें फर्क है। स्वतंत्र तो हमें किसी के खिलाफ होना पड़ता है। स्वतंत्रता हमारा स्वभाव होता है। परमात्मा स्वतंत्र नहीं है; क्योंकि स्वतंत्र का तो मतलब हुआ कि कोई और है जिसके विपरीत वह स्वतंत्र है, जिससे वह स्वतंत्र है। परमात्मा अकेला है। कोई दूसरा नहीं है, जो उसे परतंत्र कर सके या स्वतंत्र कर सके। उसका स्वभाव ही स्वतंत्रता है। उसके अलावा कोई दूसरा है ही नहीं। गॉड इ.ज नाट फ्री, गॉड इ.ज फ्रीडम। और हम उसके साथ एक हैं; इसलिए हम भी स्वतंत्रता हैं। मनुष्य स्वतंत्र है, ऐसा नहीं, मनुष्य भी स्वतंत्रता है। कोई है नहीं जो उसे परतंत्र कर सके; कोई है नहीं जो उसे स्वतंत्र कर सके।

ध्यान रखें, जब कोई आपको स्वतंत्र करता है, तब भी आप परतंत्र ही होते हैं; क्योंकि किसी ने आपको स्वतंत्र किया। जो स्वतंत्रता दी जाती है, वह स्वतंत्रता नहीं है। वह परतंत्रता का ही एक उदार रूप है। स्वतंत्रता किसी पर निर्भर न होने का नाम है। लेकिन तब सवाल उठता है कि फिर तो आदमी नियतिवाद में घिर जाएगा। प्रकृति सब कुछ कर रही है! आदमी?

लेकिन हम एक बात माने चले ही जाते हैं कि आदमी अलग है। तो फिर नियति खड़ी हो जाएगी, भाग्य खड़ा हो जाएगा। आदमी कहेगा, मैं क्या कर सकता हूं, जो परमात्मा करता है वही। लेकिन लाओत्से कहता है कि तुम जिस दिन जानोगे, पाओगे तुम हो ही नहीं। तो यह सवाल ही नहीं उठता कि तुम क्या कर सकते हो। परमात्मा जो कर रहा है, वही तुम कर रहे हो। नियति इसमें नहीं है।

नियति में पुनः, डेस्टिनी में, भाग्य में पुनः हमने भेद स्वीकार कर लिया। हमने मान लिया कि मैं भी हूं, और परमात्मा मेरे भाग्य को निर्धारित कर रहा है। मैं अलग हूं, वह निर्धारक है। लाओत्से की बात को ठीक से समझें, अद्वैत की बात को ठीक से समझें, तो नियति का भी कोई सवाल नहीं है। क्योंकि कोई मेरा भाग्य-निर्माता नहीं है। मुझसे पृथक कोई है नहीं। तो कौन मेरे भाग्य का निर्णय करे? मैं समस्त के साथ एक हूं। और इस समस्त के साथ ऐक्य का नाम ही मोक्ष है। इसलिए हमने स्वतंत्रता शब्द का भारत में उपयोग नहीं किया। क्योंकि स्वतंत्रता में भाव बना रहता है कि कोई स्वतंत्र करने वाला है। हमने शब्द उपयोग किया है--मोक्ष, मुक्ति। और हमने कहा है, मोक्ष जो है वह आत्मा का स्वभाव है।

नियति, परतंत्रता, स्वतंत्रता, सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं, अगर हम प्रकृति के साथ एक हैं। एक बूंद नदी के साथ बही जा रही है। अगर वह बूंद कहे कि मुझे नदी के साथ बहना पड़ रहा है तो परतंत्र हो गई। अगर वह बूंद कहे कि मैं अपनी इच्छा से नदी के साथ बह रही हूं तो स्वतंत्र हो गई। और अगर वह बूंद कहे कि मैं नदी हूं तो मुक्त हो गई। वह जो मुक्तता है, वह एकता का नाम है। अब नदी कोई और है ही नहीं, जिससे कोई संबंध बनाया जाए स्वतंत्रता का या परतंत्रता का। कोई दूसरा नहीं है, जिससे हमारा संबंध बने। संबंध खो गए, मैं ही हूं। अपने से ही कोई स्वतंत्र और परतंत्र कैसे होगा? अपने से ही कोई स्वतंत्र और परतंत्र कैसे होगा?

अगर आप इस पृथ्वी पर बिल्कुल अकेले हों, इस अस्तित्व में बिल्कुल अकेले हों, समझें कि सब खो गया, आप अकेले हैं अस्तित्व में, उस समय आप स्वतंत्र होंगे कि परतंत्र होंगे? उस समय आप क्या कहेंगे, आप स्वतंत्र हैं या परतंत्र हैं? दोनों बात व्यर्थ हो जाएंगी। आप मुक्त होंगे। यह मुक्तता आपकी निजता होगी, आपका अंतर-भाव होगा।

हमारी स्वतंत्रता तो परतंत्रता का ही एक रूप है। और हमारी परतंत्रता भी स्वतंत्रता का एक रूप है। उन दोनों में बहुत फासला नहीं है। एक आदमी घर में है तो हम कहते हैं स्वतंत्र है और जेल में है तो हम कहते हैं परतंत्र है। कहां स्वतंत्रता समाप्त होती है, कहां परतंत्रता शुरू होती है, कहना मुश्किल है। और जो घर में है, वह भी कितना स्वतंत्र है? क्योंकि बुद्ध घर से भाग गए, क्योंकि घर उन्हें परतंत्रता मालूम पड़ी। आप नहीं भागे हैं, परतंत्रता के आदी हो गए होंगे। जेल के भी लोग आदी हो जाते हैं।

फ्रेंच रिवोल्यूशन के वक्त बैस्तील के किले को तोड़ दिया क्रांतिकारियों ने; कैदी थे वहां बंद, उनको निकाल बाहर कर दिया। कोई चालीस साल, कोई पचास साल से कैदी था। आजन्म कैदियों का निवास था वहां। आधे कैदी सांझ वापस लौट आए। और उन्होंने कहा, बाहर हमें अच्छा नहीं लगता।

जो आदमी चालीस साल जेलखाने में रहा हो, बाहर की दुनिया खतम हो गई। चालीस साल! बाहर की दुनिया मर गई, वह बाहर की दुनिया के लिए मर गया। न उसका कोई पहचानने वाला है; न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। और बाहर सब अजीब सा लगने लगा। और बाहर जाकर रोटी भी कमानी पड़ेगी। वह परतंत्रता मालूम पड़ने लगी। जेलखाने में रोटी सुबह ठीक वक्त पर मिल जाती है। कोई चिंता नहीं है, कोई जिम्मेवारी नहीं है। बाहर जाकर उस आदमी को फिक्र करनी पड़ी कि छप्पर कहां है, जिसके नीचे मैं सोऊं। जेलखाने में छप्पर निर्मित था, उसे उसकी चिंता नहीं थी। जब वर्षा आती, तो जेलखाने के अधिकारी छप्पर को ठीक करते थे। कोई चिंता न थी। यह जेल बड़ी स्वतंत्रता थी। और फिर बड़ी तकलीफ हुई कि हाथ में जो बड़ी-बड़ी जंजीरें पड़ी थीं, पैर में जो बेड़ियां पड़ी थीं चालीस साल तक, उनके बिना कैदी सो न सके बाहर, नींद न आई। लगा कि कुछ-कुछ खाली है, कुछ खो रहा है। उन्होंने आकर कहा कि बिना जंजीरों के अब हम सो नहीं सकते। उनके बिना ऐसा लगता है हाथ नंगा हो गया है। आभूषण थे वे जंजीरें।

कौन जाने, आपके आभूषण जंजीरें हैं या क्या हैं! उनके बिना आप भी न सो सकेंगे। क्या है स्वतंत्रता और क्या है परतंत्रता? मात्राओं के भेद हैं। जिसके आप आदी हो गए हैं, उसको आप समझते हैं स्वतंत्रता। लेकिन हमारी स्वतंत्रता और परतंत्रता दोनों में हमारा अहंकार मौजूद है।

ताओ, धर्म, संन्यास, जो भी हम नाम दें, मुक्ति है--न स्वतंत्रता, न परतंत्रता।

इसे एक दूसरी तरफ से समझ लें तो ख्याल में आ जाएगा। हम जीते हैं द्वंद्व में। या तो होते हैं दुख में, या सुख में। तो हम पूछते हैं, जब परमात्मा में हम होंगे तो सुख होगा कि दुख?

दोनों नहीं होंगे। हमारा सुख और दुख एक ही चीज के भेद हैं। इसलिए हमें एक नया शब्द गढ़ना पड़ाः आनंद। आनंद का अर्थ सुख नहीं है। आनंद का अर्थ हैः सुख-दुख दोनों का अभाव। हालांकि जब हम सुनते हैं आनंद, तो हमें सुख का ही ख्याल आता है। और जब हम आनंद की तलाश करते हैं, तब भी हम सुख की ही खोज कर रहे होते हैं। हमारे मन में आनंद का अर्थ होता है महासुख। हमारे मन में आनंद का अर्थ होता है, जहां दुख बिल्कुल नहीं है। हमारे मन में आनंद का अर्थ होता है, जहां सुख शाश्वत है। यह सब गलत है। ये सब गलत बातें हैं। जब तक सुख है, तब तक आनंद हो न सकेगा। क्योंकि सुख के साथ दुख जुड़ा ही रहेगा। आनंद है अभाव--सुख का भी, दुख का भी। इसलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का भी उपयोग नहीं किया। क्योंकि यह भ्रामक है; इससे सुख की झलक मिलती है। इससे सुख की झलक मिलती है। तो बुद्ध ने शांति शब्द का प्रयोग किया। सब शांत हो गया है--सुख भी, दुख भी। सब उत्तेजना खो गई है।

लेकिन सभी शब्दों के साथ अड़चन खड़ी रहेगी। क्योंकि हमारे सब शब्द द्वैत में चलते हैं। शांति है तो अशांति है; उसके विपरीत हमारे मन में ख्याल उठता है।

ठीक ऐसे ही स्वतंत्रता-परतंत्रता, दोनों जहां खो जाती हैं, वहां मुक्ति है, वहां मोक्ष है। मोक्ष स्वतंत्रता नहीं है, परतंत्रता भी नहीं है; दोनों के पार उठ जाना है, दोनों का अतिक्रमण है। और जब व्यक्ति एक हो जाता है अस्तित्व के साथ, तो अकेला ही हो जाता है, अकेला ही बच रहता है। तब वह कह पाता हैः अहं ब्रह्मास्मि, मैं ही ब्रह्म हूं। अब कोई दूसरा न रहा। इसलिए द्वैत के सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं प्रकृति के साथ अंतरतम तादात्म्य के साथ चलूं, बाह्यतम तादात्म्य के साथ चलूं या प्रतिकूल चलूं, तीनों परिस्थितियों में प्रकृति समान रूप से प्रसन्न है; कोई भी एक परिस्थिति का चुनाव करने को मैं संपूर्ण रूप से स्वतंत्र हूं; फिर तीनों चुनाव में मेरी प्रसन्नता में फर्क क्यों पड़ेगा?

फर्क पड़ेगा, क्योंकि तीनों के अलग-अलग अनुभव हैं। ऐसा समझें, जमीन में गुरुत्वाकर्षण है; आप रास्ते पर चलते हैं; आप सीधे चलते हैं, नहीं गिरते हैं। स्वतंत्र हैं आप; आप चाहें आड़े-तिरछे चलें और गिर जाएं। गुरुत्वाकर्षण नहीं कहेगा कि आड़े-तिरछे मत चलो। आड़े-तिरछे चलें, गिर जाएं, टांग टूट जाए, दर्द हो, तकलीफ हो। जब आप आड़े होकर गिरते हैं जमीन पर, तब भी वही गुरुत्वाकर्षण काम करता है, जब आप खड़े चल रहे थे, तब काम करता था। कोई फर्क नहीं है। वही नियम काम कर रहा है। नियम निरपेक्ष भाव से काम कर रहा है। आपने गलती की चलने में, या गलत का चुनाव किया, चोट खाएंगे। ठीक का चुनाव किया, चोट नहीं खाएंगे।

सुख का अर्थ ही क्या है? सुख का अर्थ हैः नियम के अनुकूल। दुख का अर्थ हैः नियम के प्रतिकूल। नियम निष्पक्ष है। आपने जहर पी लिया; प्रकृति आपको मार डालेगी। आप बीमार हैं; जहर की एक मात्रा ली; बीमारी

मर जाएगी, आप स्वस्थ हो जाएंगे। पानी भी आप ज्यादा पी लें तो जहर हो जाएगा। तो पानी पीने में भी संयम रखना पड़ता है; शराब पीने में ही नहीं। पानी भी ज्यादा पी लें तो मौत आ जाएगी। पानी निष्पक्ष है। कोई पानी आपसे कहता नहीं कितना पीएं। वह स्वतंत्रता आपकी है। लेकिन पानी की एक प्रकृति है। अगर आप नियम के अनुकूल पीएंगे, सुखदायी हो जाएगा; नियम के बाहर जाएंगे, दुखदायी हो जाएगा।

नियम के अनुकूल सुख है; नियम के प्रतिकूल दुख है। तो जब भी आप दुख पाते हैं, जान लेना कि कहीं नियम के प्रतिकूल पड़ गए हैं। और किसी कारण कोई दुख नहीं पाता। विज्ञान इसीलिए कहता है कि हम आदमी के लिए ज्यादा सुख जुटा लेंगे; क्योंकि हम उन नियमों की खोज करते चले जाते हैं जिनको जान लेने पर तुम प्रतिकूल व्यवहार नहीं करोगे। और तो कोई विज्ञान की खोज नहीं है; इतनी ही खोज है कि हम नियम को खोजते चले जाते हैं, तुम्हें बताते चले जाते हैं कि यह है नियम, अब तुम अनुकूल चलोगे तो सुख होगा, अनुकूल नहीं चलोगे तो दुख हो जाएगा। नहीं जानने से नियम, हम कई बार प्रतिकूल चल जाते हैं। लेकिन एक बात पक्की है, जानते हों नियम या न जानते हों, दुख बता देगा कि हम प्रतिकूल चले हैं, सुख बता देगा कि हम अनुकूल चले हैं।

तो लाओत्से कहता है कि चाहे ताओ के अनुकूल, चाहे बाह्य सूत्रों के अनुकूल और चाहे प्रतिकूल, प्रकृति हर हाल प्रसन्न है। जब आप गिरते हैं और आपकी टांग टूट जाती है, तो गुरुत्वाकर्षण कोई दुखी नहीं होता, आप दुखी होते हैं। कोई ग्रेविटेशन को कोई पीड़ा नहीं होती। जब आप जहर पीकर मर जाते हैं, तो जहर कोई दुखी नहीं होता। न कोई प्रकृति आंसू बहाती है। कोई प्रयोजन नहीं है। आप स्वतंत्र थे। आपने जो चाहा, वह किया। फिर जो परिणाम होगा, वह होगा। इसे समझ लें ठीक से। आप कर्म करने को स्वतंत्र हैं, परिणाम में स्वतंत्र नहीं हैं। परिणाम तो आपने किया कर्म और आप बंध गए।

मोहम्मद से अली ने पूछा है कि हमारी स्वतंत्रता कितनी है? तो मोहम्मद ने कहा, तू एक पैर ऊपर उठा कर खड़ा हो जा! तो वह बांया पैर ऊपर उठा कर खड़ा हो गया। मोहम्मद ने कहा, अब तू दायां भी ऊपर उठा ले। अली ने कहा, आप भी क्या मजाक करते हैं! दायां मैं कैसे उठा सकता हूं? मैं तो बायां उठा कर बंध गया; अब दायां नहीं उठ सकता। तो मोहम्मद ने कहा, अगर तू पहले दायां उठाता तो उठा सकता था? उसने कहा, बिल्कुल उठा सकता था। क्योंकि तब तक मैं बंधा नहीं था; कोई मैंने कर्म नहीं किया था। दायां उठाता तो बंध जाता, फिर बायां नहीं उठा सकता। तो मोहम्मद ने कहा, करने को तुम स्वतंत्र हो; लेकिन हर कर्म बंधन दे जाएगा--हर कर्म!

इसलिए हम अपने मुल्क में कर्म को बंधन कहे हैं और अकर्म को मुक्ति कहे हैं। क्योंकि जब भी मैं कुछ करूंगा तो बंध ही जाऊंगा; किया कि बंधा। क्योंकि जो मैंने किया है उसके परिणाम होंगे। और वे परिणाम नियम के अनुसार होंगे, मेरे अनुसार नहीं। मैं झाड़ से कूदने को स्वतंत्र हूं, लेकिन टांग टूटेगी। उसके लिए स्वतंत्र नहीं हूं कि नहीं टूटेगी कि टूटेगी। आप हवाई जहाज से कूदें, आपकी मर्जी! कोई रोकेगा नहीं इस संसार में। लेकिन फिर पैर टूट जाएं, हड्डी-हड्डी चूर-चूर हो जाए, तो फिर इसके लिए किसी को दोष मत देना। क्योंकि वह आपके ही कर्म का फल है, वह आपकी ही स्वतंत्रता का चुनाव है। जहर पीने को मैं स्वतंत्र हूं, लेकिन फिर मैं यह नहीं कह सकता कि अब मैं मरूंगा भी नहीं।

कर्म के लिए व्यक्ति स्वतंत्र है। स्वतंत्रता का अर्थ ही कर्म की स्वतंत्रता है, परिणाम की स्वतंत्रता नहीं। अगर परिणाम की भी स्वतंत्रता हो तो जगत एक अराजकता होगा, अनार्की। कासमास नहीं रह जाएगा। क्योंकि मैं पीऊं जहर और अमृत का परिणाम पाऊं; गिरूं आकाश से और जमीन पर मजे से चलने लगूं; दुख के

उपाय करूं और सुख पाऊं; तब तो जगत एक अराजकता होगा। तब तो जगत में फिर कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन जगत अराजकता नहीं है, नियम है। ताओ का यही अर्थ है, जगत एक नियम है, जगत ताओ है। उस नियम के दो पहलू हैं। एक पहलू है, आप स्वतंत्र हैं सदा चुनने को, क्या करना चाहते हैं। लेकिन करते ही आप नियम के अंतर्गत आ गए। और करते ही परिणाम सुनिश्चित हो गया।

इसलिए बुद्ध ने, महावीर ने, लाओत्से ने, सभी ने यह कहा है कि जब तक कर्म जारी है, तब तक पूर्ण मुक्ति नहीं हो सकती। पूर्ण मुक्ति का अर्थ होगा पूर्ण अकर्म। इस अकर्म को साधने के कई उपाय हैं।

लाओत्से का उपाय यह है कि तुम प्रकृति के साथ अपना फासला छोड़ दो। तुम यह भूल ही जाओ कि तुम कर्म करते हो। कहो परमात्मा को कि तू ही करता है, तू ही भोगता है; हम नहीं हैं मौजूद। तुम स्वतंत्र हो गए। तब न तुम चुनते हो करते वक्त; और न तुम भोगते वक्त। दोनों हालत में परमात्मा चुनता है, परमात्मा भोगता है। या हम कहें: समस्त सृष्टि चुनती है, समस्त सृष्टि भोगती है। मैं बाहर हो गया। मैं मौजूद न रहा। यह मुक्ति हो गई।

लेकिन जैसे ही मैं चुनता हूं, वैसे ही चुनाव का अनिवार्य परिणाम होगा। उस परिणाम को मुझे भोगना पड़ेगा। मैंने चुना, इसलिए मुझे भोगना पड़ेगा। अपना-अपना कर्म भोगना ही पड़ेगा। उससे अनभोगे निकल जाने का कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है।

बुद्ध की मृत्यु हुई विषाक्त भोजन से। तो आनंद ने उनसे पूछा कि इस आदमी ने बहुत बुरा किया, अज्ञान में ही सही, लेकिन आपको विषाक्त भोजन करा दिया! भूल से ही हुआ था, जान कर नहीं हुआ था। फूड पायजन से बुद्ध की मृत्यु हुई। अनजाने हो गया था। गरीब आदमी था, कुकुरमुत्ते इकट्ठे करके सुखाए थे; उनमें जहर था। उनकी सब्जी बनाई थी। बुद्ध की उस सब्जी के खाने से मृत्यु हुई।

बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने कहा, आनंद, उसकी भूल वह जाने! लेकिन यह जहर से मेरी मृत्यु का होना मेरे ही किन्हीं कर्मों का फल है। उससे कुछ इसका लेना-देना नहीं है। वह संयोग मात्र है। मैंने कुछ किया होगा, उससे मैं बंधा हूं। उससे छुटकारा हुआ, आनंद! शायद अब मेरे किए हुए का मुझ पर कोई बोझ नहीं है। अब मैं बिल्कुल अनकिया हो गया; अब सब समाप्त हो गया। शायद इसी के लिए अब तक मैं जिंदा भी था। यह मेरी मृत्यु नहीं है, यह मेरा विसर्जन है। अब सब लेना-देना समाप्त हो गया। जो मैंने किया था, वह सब पूरा हो गया। और तुम इस आदमी के प्रति कोई दुर्भाव मत लेना; क्योंकि वह दुर्भाव तुम्हारा कर्म हो जाएगा। और उस कर्म का फल तुम्हें भोगना पड़ेगा, इस आदमी को नहीं।

तो आनंद ने पूछा, हम क्या करें? क्योंकि आदमी बिना किए नहीं रह सकता। कुछ तो करें! अगर दुर्भाव न करें, इसकी खिलाफत न करें, जाकर इसकी निंदा न करें, तो हम क्या करें?

तो बुद्ध ने कहा, तुम एक घंटा हाथ में लेकर गांव में डुंडी पीटो और कहो कि यह आदमी धन्यभागी है; क्योंकि बुद्ध को अंतिम भोजन देने का सौभाग्य इसे मिला। तुम जाओ, गांव में शोरगुल मचाओ कि यह आदमी धन्यभागी है कि बुद्ध को अंतिम भोजन देने का सौभाग्य इसे मिला। यह उतना ही धन्यभागी है, जितनी बुद्ध की मां थी; क्योंकि उसे प्रथम भोजन देने का सौभाग्य मिला था। तुम जाओ!

आनंद ने कहा, लेकिन यह भी कर्म होगा।

तो बुद्ध ने कहा, यह भी कर्म है, लेकिन तुम कर्म से बच नहीं सकते। अगर तुम पहला कर्म करोगे, उस आदमी की निंदा करोगे, अपमान करोगे, तो दुख पाओगे। वह नियम के प्रतिकूल है। और अगर तुम उस आदमी

की इस घड़ी में भी प्रशंसा करोगे तो तुम नियम के अनुकूल हो, तुम सुख पाओगे। दोनों ही कर्म हैं। आनंद तो दोनों से न मिलेगा। अगर तुम कुछ भी न करो, बिल्कुल शांत रह जाओ, तो तुम मुक्त हो जाओगे, तो तुम आनंद को पा सकते हो।

जब भी हम चुनते हैं, तो या तो हम विधायक चुनते हैं या नकारात्मक चुनते हैं। या तो हम किसी की निंदा करते हैं, या किसी की प्रशंसा करते हैं। या तो हम किसी को सुख देने जाते हैं, या किसी को दुख देने जाते हैं। जब भी हम कोई कर्म करते हैं तो हमने चुनाव कर लिया। उस चुनाव से सुख या दुख फलित होंगे। अगर दुख फलित हो तो समझना कि नियम के प्रतिकूल चुना। अगर सुख फलित हो तो समझना कि नियम के अनुकूल चुना। अगर आपको दुख ही दुख होते हों तो समझना कि आपकी जिंदगी नियम के प्रतिकूल चुनने में चल रही है।

लोग कहते हैं कि दुख ही दुख हैं। एक सज्जन आए थे कुछ दिन हुए कि मैं दुख ही दुख में पड़ा हूं। आपसे एक ही बात पूछने आया हूं कि ज्योतिषी कहते हैं कि मेरे पीछे शनि देवता लगे हैं; उनसे कब मेरा छुटकारा होगा?

किसी के पीछे कोई शनि देवता नहीं लगे हैं। अगर शनि देवता आपको दुख देने का काम कर रहे हैं तो शनि देवता की क्या गति होगी? उन्हें किस नरक में डालिएगा! इतने लोगों को दुख देने का धंधा जो कर रहे हैं, उनका क्या होगा? कोई आपके पीछे नहीं लगा है; आप ही अपने पीछे लगे हैं। और शनि देवता का अर्थ है कि आप नियम के प्रतिकूल चुनते चले जा रहे हैं; दुख भोगते रहे हैं, दुख भोग रहे हैं।

आपका दुख आपकी जिम्मेवारी है, आपका सुख आपकी जिम्मेवारी है। अगर बहुत दुख होता है तो समझ लेना कि आपके सोचने, चुनने, जीने के ढंग गलत हैं। वे नियम के प्रतिकूल हैं। दुख सिर्फ सूचन है। और दुख बड़ा अच्छा सूचन है। प्रकृति ने इंतजाम किया है, दुख से आपको सूचना मिलती है कि आप कहीं नियम के बाहर चले गए हैं। लेकिन हम बड़े पागल हैं, हम दुख को मिटाने की कोशिश करते हैं, नियम के भीतर लौटने की कोशिश नहीं करते। और अक्सर ऐसा होता है कि दुख को मिटाने की कोशिश हम ही करते हैं जो नियम के प्रतिकूल चले गए हैं। हम दुख को मिटाने की कोशिश में और नियम के प्रतिकूल चले जाते हैं। तब हम एक दुख से दस दुख पैदा कर लेते हैं। और हम इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि हर दुख को मिटाने को... हम कभी वापस लौट कर नहीं देखते कि दुख सूचक है कि मैं नियम के प्रतिकूल जी रहा हूं, इसलिए नियम के अनुकूल हो जाऊं, दुख विलीन हो जाएगा। हम दुख को विलीन करने की कोशिश करते हैं, नियम के अनुकूल होने की नहीं। तब दुख तो विलीन नहीं होता; एक दुख के दस दुख हो जाते हैं, दस के हजार हो जाते हैं।

सब आदमी दुख-शून्य पैदा होते हैं और दुख से भरे हुए मरते हैं। लेकिन वे ही अपने हाथ से फैलाए चले जाते हैं। वह जो फैलाव है, वह जो विस्तार है, वह इसी गणित को न जानने का परिणाम है। जब भी दुख हो, तब दुख की फिक्र छोड़ना, तत्काल अपने पूरे जीवन का निरीक्षण करना, पूरे जीवन पर एक पुनरावलोकन कि कहां मैं नियम के प्रतिकूल चला गया हूं। यह बड़े मजे की बात है और मनुष्य के अधिकतम दुखों का कारण यही है।

एक मित्र हैं, शराब पीते हैं। बीस साल से पत्नी उनके पीछे पड़ी है, कि शराब मत पीयो। यही कलह का सूत्र हो गया। बीस साल जिंदगी के इसी उपद्रव में उलझ गए। पत्नी भी कहती है कि पति अच्छे हैं, सब तरह अच्छे हैं, भले हैं; बस यह एक शराब, यही कष्ट का कारण है। इस एक शराब के कारण सब खराब हो गया। पति नहीं छोड़ पाते हैं। तो मैंने पत्नी को कहा कि एक काम कर! बीस साल तुझे कहते हो गए, कुछ छूटा नहीं। अब तू तीन महीने के लिए कहना छोड़ दे। बाद में, तीन महीने बाद तेरे पति से मैं बात करूं।

पांच-सात दिन बाद पत्नी ने मुझे आकर कहा कि बड़ा मुश्किल है; जैसे उनकी शराब पीने की आदत है, वैसे ही मुझे उन्हें छेड़ने और रोकने की। बिना रोके मैं नहीं रह सकती।

अब यह बड़ा मजा है। कौन शराब पी रहा है, तय करना मुश्किल है। अब मैं सोचता हूं कि अगर पति हिम्मत करे और शराब छोड़ दे तो पत्नी मुश्किल में पड़ जाएगी। पहली दफे जिंदगी में दुख आएगा। अभी तक दुख रहा, अब एक नया दुख शुरू होगा। अब पत्नी दुख उठा रही है--बहुत दुख उठा रही है--लेकिन इस दुख उठाने का कारण वह समझती है कि पति शराब पीते हैं इसलिए मैं दुख उठा रही हूं। उसे पता नहीं है कि यह कारण नहीं है। यह कारण नहीं है। क्योंकि पति अगर शराब बंद भी कर दें तो भी वह दुख उठाएगी। यह कारण नहीं है। और अगर पति शराब न पीते तो भी वह दुख उठाती। क्योंकि दुख उठाने का कारण कुछ दूसरा है। वह नियम की प्रतिकूलता है।

जब भी एक व्यक्ति दूसरे पर किसी तरह की मालकियत करता है, तब प्रकृति के नियम के प्रतिकूल जा रहा है। वह दुख उठाएगा। जब भी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को डॉमिनेट करता है, तब वह दुख उठाएगा। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता है। और जब भी कोई व्यक्ति किसी को परतंत्र करने की कोशिश करता है, तो नियम के प्रतिकूल जा रहा है। वह दुख उठाएगा। और जो लोग भले कामों में अधिकार करने की कोशिश करते हैं, वे और ज्यादा दुख उठाएंगे। क्योंकि उनको दिखाई ही नहीं पड़ेगा कि हम कुछ गलत कर रहे हैं। अब पत्नी को दिखाई पड़ना मुश्किल है कि मैं कुछ गलत कर रही हूं। साफ है कि वह ठीक कर रही है कि पति की शराब छुड़वा रही है। बीमारी हो सकती है, दुख-दर्द आ सकता है, सब कुछ हो सकता है शराब के कारण, इसलिए अच्छा काम कर रही है।

लेकिन ध्यान रखना, अच्छे काम से दुख होता नहीं। एक ही कसौटी हैः आप अच्छा काम अगर कर रहे हैं तो उसका परिणाम सुख होगा। लेकिन बीस साल अच्छा काम करने का परिणाम अगर दुख ही दुख है तो अच्छे सिर्फ शब्द हैं, असली चीज भीतर कुछ और है। यह शराब सिर्फ बहाना है।

मैंने सुना है एक स्त्री को कहते हुए कि मेरे पति में कोई दुर्गुण नहीं है, और इस वजह से मैं, इस वजह से मैं दुखी हूं।

अगर आपको बिल्कुल संत पति मिल जाए, तो दुख का अंत न रहेगा। क्योंकि उसको काबू में रखने का कोई उपाय न रहा। उसको कहां से डराओ, कहां से धमकाओ, कहां से कब्जा करो, कहां से गर्दन दबाओ; कुछ भी न रहा। इसलिए एक मजे की घटना है कि संत पतियों को आज तक पत्नियों ने कभी बरदाश्त नहीं किया। चोर, बेईमान, बदमाश पति भी चलेगा; क्योंकि उसमें एक रस है। बेईमान, शराबी, चोर, कुछ भी हो, चलेगा। क्योंकि पत्नी ऊपर है, अपर हैंड है। पति डरा हुआ घर में प्रवेश करता है; तैयार है कि कुछ उपदेश मिलेगा। लेकिन दुख कौन उठा रहा है?

और बड़े मजे की बात है कि जब एक पत्नी चेष्टा में लगी है कि पति अच्छा हो जाए तो शायद वही जिम्मेवार बन जाए उसके बुरा होने का। क्यों? क्योंकि पति को यह अपनी स्वतंत्रता पर हमला है। यह सवाल शराब का नहीं रह गया। यह सवाल रह गया कि कौन किसकी मानता है! यह पत्नी अगर कहना छोड़ दे--बिल्कुल छोड़ दे--तो शायद पति को भी जितना मजा शराब पीने में आ रहा है, उतना न आए। क्योंकि शराब पीकर वे पत्नी को ठिकाने लगा रहे हैं, उसको रास्ते पर लगा रहे हैं। वे बता रहे हैं कि मालिक कौन है! चिल्लाते रहो, लेकिन मालिक कौन है!

यह शराब मालकियत के बीच उपद्रव का केंद्र बन गई है। पत्नी कहे चली जाएगी; क्योंकि यही मालकियत का ढंग है। पति पीए चला जाएगा; क्योंकि उसको भी अपनी मालकियत सिद्ध करनी है। पति भी दुख पाएगा; पति भी दुख पा रहा है बीस साल से। दुख पाएगा ही; क्योंकि वह भी शराब के द्वारा मालकियत सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है। और पत्नी से ज्यादा दुख पाएगा; क्योंकि पत्नी एक ही नियम का उल्लंघन कर रही है, पति दो नियमों का उल्लंघन कर रहा है। पत्नी एक नियम का उल्लंघन कर रही है कि स्वतंत्रता पर बाधा डाल रही है। पति दो नियमों का उल्लंघन कर रहा है। एक तो स्वतंत्रता को शराब पीकर सिद्ध करने की कोशिश कर रहा है; आत्मघात, स्युसाइड कर रहा है। क्योंकि जहर पीकर कोई अपनी स्वतंत्रता सिद्ध कर रहा हो तो वह दोहरे उपद्रव कर रहा है। यह शराब पीकर जो दुष्परिणाम होंगे, वे भी उसे भोगने पड़ेंगे। लेकिन इन दुष्परिणामों को भी वह भोगेगा, और कभी यह नहीं सोचेगा, उसके मन में यही रहेगा, सदा यही रहेगा कि यह स्त्री एक उपद्रव है; कोई दूसरी स्त्री होती तो शायद सब ठीक हो जाता।

नहीं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था। स्त्री मात्र यही करेगी। क्योंकि पुरुष और स्त्री के बीच जो कलह का मौलिक कारण है, वह यही है कि वे एक-दूसरे पर अधिकार जमाने की कोशिश कर रहे हैं। और जहां अधिकार की चेष्टा है, वहां प्रेम की हत्या हो जाती है। और तब दुख घना हो जाता है।

हम सब जो दुख भोगते हैं, अगर थोड़ी खोज करेंगे तो कहीं न कहीं हम पाएंगे कि कोई कारण है। और वह कारण सदा किसी गहरे नियम के विपरीत जाने से हो रहा है। लेकिन हम दुख मिटाने की कोशिश करते हैं। आदमी अपनी पत्नी बदल सकता है। पत्नी अपना पति बदल सकती है। यह सब हो सकता है। लेकिन इससे दुख का कोई अंत नहीं होगा। क्योंकि हम वही के वही बने रहेंगे। वह शनि हमारा पीछा करेगा; क्योंकि वह शनि हम ही हैं। वह कोई दूसरा होता तो उससे छुटकारे का उपाय था। कोई पूजा-पाठ करवा लेते, कोई मंत्र-तंत्र करवा लेते, और छुटकारा हो जाता। इतना आसान छुटकारा नहीं है। आप ही हैं अपना नरक, आप ही हैं अपना स्वर्ग।

लेकिन इस बात को हम बचाने की कोशिश करते हैं। हम किसी और पर डालना चाहते हैं। जब एक ज्योतिषी आपको बता देता है कि शनि आपके पीछे पड़ा है, आपके सिर से बोझ उतर जाता है। यह कोई और दुष्ट पीछे पड़ा है, उसको ठीक करना है। उसको रास्ते पर लगाने का कोई उपाय करना है--पूजा से करें, समझा-बुझा कर करें, मंत्र-तंत्र से करें। मगर एक बात पक्की हो गई कि आप जिम्मेवार नहीं हैं। ज्योतिषियों को हाथ दिखाने से जो आपको सुख मिलता है, उसका और कोई कारण नहीं है। आप जिम्मेवार नहीं हैं। भाग्य, हाथ की रेखाएं, विधि की रेखाएं, कोई और जिम्मेवार है। कहीं भी मेरी जिम्मेवारी मुझसे उतर जाए तो हलकापन लगता है।

लेकिन वह हलकापन आपको सुख नहीं देगा; वह और गहरे दुखों में ले जाएगा; क्योंकि आप ही जिम्मेवार हैं। और यह हलकेपन का अनुभव होते से ही आप नया बोझ रखने के लिए स्वतंत्र हो गए। अब आप फिर वही करते जाएंगे, जो आप कर रहे थे।

स्वतंत्र है आदमी कर्म करने को, फल भोगने को नहीं।

श्रीकृष्ण ने कहा है, कर्म तू कर और फल मुझ पर छोड़ दे। तू अगर फल भी खुद पकड़ता है तो तू मुसीबत में पड़ेगा; क्योंकि फल तेरे हाथ में नहीं है। फल की आकांक्षा मत कर, तू कर्म कर। फल की आकांक्षा मत कर। क्योंकि फल की आकांक्षा तुझे गलत दिशा में ले जाएगी। फल तेरे हाथ में नहीं है। कर्म तेरे हाथ में है। और अगर कर्म का फल दुखद आता है तो तुझे जानना चाहिए कि तुझे कर्म बदलना है, फल नहीं। अगर कर्म का फल सुखद आता है तो तुझे जानना चाहिए कि तू इस कर्म की दिशा में जा सकता है।

लेकिन एक घटना घटती है। जो आदमी दुख में पड़ा है, वह सुख की तरफ जाना चाहता है--स्वभावतः। लेकिन जो सुख में पड़ जाता है, वह सुख से भी ऊपर उठना चाहता है--स्वभावतः। दुखी आदमी सुख की तरफ जाना चाहता है; इसलिए उसे नियम की प्रतिकूलता छोड़ कर अनुकूलता पकड़नी चाहिए। सुखी आदमी सुख से भी फिर ऊब जाता है। सुखी आदमी को सुख भी फिर बासा मालूम पड़ने लगता है। सुखी आदमी को फिर सुख में भी स्वाद नहीं आता। रोज-रोज मीठा-मीठा खाते-खाते मीठा भी कड़वा मालूम पड़ने लगता है। सुख से जब आदमी ऊब जाता है, तब वह तीसरे आयाम में प्रवेश करता है। तब न नियम की अनुकूलता, न प्रतिकूलता; क्योंकि अनुकूलता-प्रतिकूलता दोनों में मैं मौजूद हूं। तब वह अपने को ही नियम में विसर्जित कर देता है। तब वह न नियम के अनुकूल होता है, न प्रतिकूल; नियम के साथ एक हो जाता है। और यह नियम के साथ एक हो जाना ताओ है। तब वह कहता है कि अब तक मैं कर्म चुनता था, अब मैं कर्म भी नहीं चुनता।

तो कृष्ण कहते हैं कि तू फल की आकांक्षा छोड़, कर्म किए जा; दुख तुझे नहीं होगा। लाओत्से कहता है, तू कर्म भी छोड़ और विश्व के साथ एक हो जा; फिर तुझे सुख भी नहीं होगा। दुख भी नहीं होगा; सुख भी नहीं होगा। फिर ये द्वंद्व के सारे अनुभव खो जाएंगे, और अद्वैत के आनंद का प्रारंभ।

उस एक को संत पकड़ लेते हैं, लाओत्से कहता है। वे दो को छोड़ देते हैं और एक को पकड़ लेते हैं।

एक मित्र ने प्रश्न नहीं पूछा है, जैसे मैंने उनसे कुछ पूछा हो, उन्होंने जवाब दिया है। संक्षेप में लाओत्से ने बहुत अच्छी बातें कही हैं... ।

लाओत्से ने अच्छी बातें नहीं कही हैं; बड़ी खतरनाक बातें कही हैं। अच्छी बातें उन्हें कहते हैं, जिनसे सांत्वना मिले। खतरनाक बातें उन्हें कहते हैं, जिनसे आपको मिटना पड़े, मरना पड़े, टूटना पड़े, और नया होना पड़े। लाओत्से ने अच्छी बातें नहीं कही हैं; बहुत खतरनाक, बहुत डेंजरस बातें कही हैं। लाओत्से ने आपको सुलाने के लिए कोई लोरी नहीं गाई है। लाओत्से ने आपको जगाने की चेष्टा की है। और जगाने की चेष्टा हमेशा दुखद होती है। लेकिन आप कहते हैं, लाओत्से ने अच्छी बातें कही हैं; यह आप अपने को समझा रहे हैं। जिन बातों को आप अच्छा समझते होंगे, उनको आपने लाओत्से में सुन लिया होगा। आगे पता चलता है।

परंतु शैली और शब्दों के अंतर के अलावा ऐसी कौन सी नई बात लाओत्से ने कही है, जो वेदों और उपनिषदों में ही क्यों, गीता में भी न कही गई हो?

जानकार हैं बड़े। वेद भी जानते हैं, गीता भी जानते हैं, उपनिषद भी जानते हैं। इतना जान कर यहां कैसे आ गए? इतना सब जान लेने के बाद कुछ जानने को बचता नहीं है। कुछ अर्थ नहीं है अब और जानने का आपके लिए।

शैली और शब्दों का भेद उन्हें दिखाई पड़ रहा है। बहुत गहरे भेद हैं! और बड़ा भेद तो यही है कि लाओत्से समस्त ज्ञान के विपरीत है, वह चाहे वेद का ज्ञान हो, चाहे गीता का, चाहे उपनिषद का। समस्त पांडित्य के विपरीत है। आपके विपरीत है। आप जो गीता, उपनिषद और वेद को बीच में ले आए हैं, उसके कारण आप लाओत्से को समझ ही न सके होंगे। मैं इधर लाओत्से की बात बोलता होऊंगा, वहां आपके भीतर वेद की ऋचाएं उठती रही होंगी। उस धुएं में सब गड़बड़ हो गया होगा, कनफ्यूज हो गया होगा। पंडितजन

अति कनफ्यूज्ड होते हैं। क्योंकि वे कभी किसी बात को सीधा नहीं सुन पाते। उनके पास ज्ञान तो पहले से ही होता है। यह नई बात भी जाकर उसी ज्ञान के ढेर में गिरती है। उस ढेर में जो आवाजें होती हैं, वही उनको सुनाई पड़ती हैं; यह बात सुनाई नहीं पड़ती। तो स्वभावतः उनको फिर दिखाई पड़ेगा कि ठीक है, शब्दों का ही भेद है। और क्या है?

यह अपने को समझा लेने की कोशिश है। अगर आप गीता को, उपनिषद को और वेद को समझ ही गए होते, तब तो ठीक था। तब तो शब्दों का भी भेद नहीं है। तब तो शब्दों का भी भेद न दिखाई पड़ता; शैली का भी भेद न दिखाई पड़ता। तब तो भेद ही न दिखाई पड़ता। लेकिन अभी भेद दिखाई पड़ रहा है; शब्दों का दिखाई पड़ रहा है, शैली का दिखाई पड़ रहा है। भीतर के अर्थ का कोई पता है? क्या है अर्थ भीतर?

शब्द और शैली का भेद है। संसार का कोई भी आदमी कभी भी कोई मौलिक बात, कोई नई बात कह सका है क्या?

फिर ध्यान रखना, वेद भी मौलिक बात न कह सकेंगे, गीता भी न कह सकेगी, उपनिषद भी न कह सकेंगे। फिर तो कोई बात मौलिक रहेगी ही नहीं।

इसे थोड़ा समझें। धर्म बड़ी जटिल बात है। धर्म के संबंध में दोनों बातें कही जा सकती हैं। कभी धर्म के संबंध में कोई मौलिक बात नहीं कही जा सकती--एक। और धर्म के संबंध में सदा ही मौलिक बातें कही जाती हैं--दो। धर्म के संबंध में कोई मौलिक बात नहीं कही जा सकती; क्योंकि वह जिस अनुभव से आती है, वह अनुभव शाश्वत, सनातन का है। चाहे कोई बुद्ध, चाहे कोई कृष्ण, चाहे कोई लाओत्से, जब भी कोई उस अनुभव को पहुंचता है, तो वह अनुभव एक है। और पहुंचने वाला उस तक पहुंचते-पहुंचते मिट जाता है, जिससे भेद पैदा होता है। वह पहुंचते-पहुंचते मिट जाता है, समाप्त हो जाता है। इसलिए धर्म के संबंध में कभी कोई मौलिक बात नहीं कही जा सकती।

लेकिन ध्यान रखना, यह बात उनके लिए है, अगर कृष्ण लाओत्से को सुनें, या लाओत्से बुद्ध को सुने, तो लाओत्से समझेगा कि कोई मौलिक बात नहीं कही जा सकती। लेकिन आप ऐसा समझ लें तो मुश्किल में पड़ेंगे। आपके लिए तो हर बात धर्म की मौलिक है। क्योंकि आपको तो उसका कोई अनुभव नहीं है।

इसलिए दूसरी बात भी सत्य है, पहले जैसी ही, कि धर्म के संबंध में सदा ही मौलिक बात कही जाती है। क्योंकि जब कोई बुद्ध बोलता है, तो यह बिल्कुल नई बात है। नई किस अर्थ में? नई इस अर्थ में कि जिन्हें वेद कंठस्थ हैं, उन्हें इसका कोई भी पता नहीं है; जिन्हें गीता कंठस्थ है, उन्हें इसका कोई भी पता नहीं है। यह बात बिल्कुल मौलिक है। कृष्ण के लिए मौलिक नहीं है। लेकिन कृष्ण बुद्ध को सुनने भी नहीं आते हैं।

बुद्ध और महावीर एक ही गांव में कई बार ठहरे; मिलना नहीं हुआ। एक बार तो एक ही धर्मशाला में, एक कमरे में बुद्ध और एक में महावीर ठहरे। आधी धर्मशाला में बुद्ध का डेरा, आधी धर्मशाला में महावीर का डेरा। लेकिन मिलना नहीं हुआ। बड़े विचार की बात रही है। कई को लगता है कि यह तो बड़ी बुरी बात है, दो भले आदमियों को मिलना चाहिए। भले आदमी वे थे नहीं--जिनको हम भले आदमी कहते हैं--बड़े खतरनाक आदमी थे। और मिलने का कोई कारण नहीं था; क्योंकि दोनों उसी जगह खड़े थे। दोनों तो मिट गए थे; एक ही जगह खड़े थे। मिलता कौन? मिलने का भी क्या उपाय है? और क्या अर्थ है?

तो अगर कृष्ण सुनने जाएं लाओत्से को तो कोई मौलिक बात नहीं है। लेकिन कृष्ण सुनने नहीं जाते। और कृष्ण अगर सुनने जाएं तो उसका मतलब है कि अभी भी खोज जारी है। अभी कृष्ण को पता नहीं चला होगा; अभी भी पता लगा रहे हैं। लेकिन आपके लिए तो सब बातें मौलिक हैं। क्योंकि जो आपके पास होती हैं, वे बासी होती हैं, आपके अनुभव की नहीं होती हैं। इसलिए जब भी कोई धर्म का पुरुष पैदा होता है, तब वह जो भी कहता है, वह मौलिक होता है। और यही तो मजा है। इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि पुराने धर्म को मानने वाले लोग, जब भी कोई धर्म की ज्योति पैदा होती है, उसके तत्काल खिलाफ हो जाते हैं।

जीसस ने कोई नई बात नहीं कही थी। यहूदी शास्त्रों में सब लिखा हुआ था, जो जीसस ने कहा। यहूदी पैगंबर पहले जान चुके थे, कह चुके थे, जो जीसस ने कहा। और जीसस ने खुद ने भी कहा है कि मैं किसी का खंडन करने नहीं आया हूं। मैं वही कहने आया हूं, जो सदा कहा गया है। और जीसस ने खुद कहा--यहूदियों का बड़े से बड़ा पैगंबर था अब्राहम--तो जीसस ने कहा है, अब्राहम बोला, उसके पहले भी मैं था। मैं कोई नया नहीं हूं। लेकिन फिर भी यहूदी जीसस को सूली दिए; क्योंकि यहूदियों को जीसस की बातें बड़ी नई मालूम पड़ीं। क्या मामला है? जीसस कहते हैं, मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूं। लेकिन यहूदियों को जीसस की बातें नई क्यों मालूम पड़ती हैं? और यहूदियों को शास्त्रों का ठीक अध्ययन है। उनके पास पंडित हैं, पुरोहित हैं, बड़े ज्ञानी हैं। वे सब जानते हैं। उन्होंने कहा कि नहीं, ये बातें आदमी गड़बड़ कह रहा है। क्या मामला है? और यह आदमी खुद कहता है कि मैं वही कह रहा हूं। और ये जानकार हैं, जो कह रहे हैं। और जीसस से ज्यादा जानकार हैं। जीसस बहुत पढ़े-लिखे आदमी नहीं हैं। वे जो पंडित, जिन्होंने जीसस को सूली दी, जीसस से बहुत ज्यादा कुशल और योग्य थे--जानकारी में। जीसस उनसे जीत नहीं सकते थे। उन्हें रत्ती-रत्ती ज्ञान कंठस्थ था। एक-एक बात उन्हें याद थी। फिर क्या बात हो गई?

उनके पास सब बासा था, कंठस्थ था, शब्द थे, अनुभव कोई भी न था। जिनके पास शब्द हैं, उनके लिए अनुभव सदा मौलिक है। सदा मौलिक है। जिनके पास शास्त्र ही हैं सिर्फ, उनके लिए अनुभव सदा मौलिक है। लेकिन जिनके पास अनुभव है; उनके लिए तो पुराने और नए का फासला गिर जाता है।

इस आखिरी बात को समझ लें। असल में, सब द्वंद्व, जैसा मैंने कहा, सुख और दुख का; जैसा मैंने कहा, शांति और अशांति का, स्वतंत्रता और परतंत्रता का; वैसे ही इस द्वंद्व को भी समझ लें, नए और पुराने का। सत्य न तो नया है और न पुराना। क्योंकि नई चीज वही होती है, जो कभी पुरानी हो सके। और पुराने का मतलब ही यह होता है कि कभी नया रहा होगा। आज जो नया है, कल पुराना हो जाएगा। आज जो पुराना है, कल नया था। सत्य न तो नया है और न पुराना। क्योंकि सत्य न तो पुराना हो सकता है और न नया हो सकता है। इसलिए सत्य को हम कहते हैं सनातन; उसको हम कहते हैं शाश्वत; उसको हम कहते हैं, जो सदा है।

तो सत्य के संबंध में कोई मौलिक नहीं हो सकता। लेकिन सत्य के संबंध में कोई प्राचीन भी नहीं हो सकता। सत्य का अनुभव समय के बाहर है। नया और पुराना समय के भीतर घटते हैं। सत्य कोई कपड़े जैसा नहीं है; कल नया था, आज पुराना हो गया। सत्य आपकी आत्मा है।

कभी आपने ख्याल किया कि आपकी आत्मा कब पुरानी हो जाती है? कभी आंख बंद करके सोचा कि आपकी आत्मा की उम्र कितनी है? कितनी पुरानी, कितनी नई? एकदम भीतर जाकर खाली हो जाएंगे। शरीर की उम्र मालूम होती है; शरीर में नया-पुराना मालूम होता है। भीतर तो कुछ नया नहीं है, कोई पुराना नहीं है। भीतर तो कुछ है, बस है--न नया, न पुराना। या कहें कि रोज नया और रोज पुराना।

सत्य का अनुभव न तो नया है, न पुराना। और ध्यान रखना, अनुभव की बात कह रहा हूं। शब्द तो पुराने पड़ जाते हैं; शब्द नए होते हैं। कृष्ण के शब्द पुराने पड़ गए। महावीर के शब्द पुराने पड़ गए। जिस दिन महावीर ने कहे थे, उस दिन नए थे। उस दिन वेद के शब्द पुराने थे। जिस दिन बुद्ध बोले, उस दिन शब्द नए थे, आज तो पुराने पड़ गए। जिस दिन बुद्ध बोले, वेद के शब्द पुराने थे, बुद्ध के नए थे। शब्द पुराने और नए हो जाते हैं, सत्य तो पुराना और नया नहीं होता। और इसीलिए उपद्रव पैदा होता है। जिनके पास शब्दों की भीड़ होती है, उनके पास सब पुराना होता है। और जब किसी का सत्य का अनुभव प्रकट होता है तो वह बिल्कुल नया होता है। और इस कारण संघर्ष हो जाता है।

इस जगत में धार्मिक आदमी का संघर्ष अधार्मिक आदमी से नहीं है। इस जगत में वास्तविक संघर्ष धार्मिक आदमी का धार्मिक पंडित-पुरोहित से है। अधार्मिक से कोई झगड़ा नहीं है। अधार्मिक तो कहता है, हम बाहर हैं, इसमें हम लेन-देन में नहीं हैं। धर्म के दो वर्ग हैं। एक, जिनके पास शब्दों कीशृंखला है, बासे शब्दों का संग्रह है। और एक, जिनके पास अनुभव की ताजी किरण है। इनके बीच, इनके बीच सारा संघर्ष है।

अगर आपको समझना हो लाओत्से को तो कृष्ण को, महावीर को, बुद्ध को विदा दे दें। विदा दे देने का मतलब कोई दुश्मन हो जाना नहीं है। विदा दे देने का मतलब है, फिलहाल उनको कहें कि भीतर शोरगुल न मचाएं, उनको अलग करें। आप सीधे लाओत्से को समझें। और अगर आपको कृष्ण को समझना हो किसी दिन तो लाओत्से को विदा दे दें। उसे हट जाने दें, उसे बीच में मत आने दें। क्योंकि वे बड़े अनूठे लोग हैं। उनके सबके शब्द अपने, अनूठे हैं, निज हैं। उनकी पहुंच, उनकी यात्रा का पथ, उनकी आंखें बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। उनका अनुभव एक है; लेकिन अनुभव तो आपको उस दिन समझ में आएगा, जब आपको अनुभव होगा, उसके पहले नहीं। उससे पहले एक के शब्द को दूसरे के बीच में मत आने दें।

नहीं तो दो उपाय हैं। दो उपाय हैं, एक तो उपाय यह है कि जब आप लाओत्से को सुनें, तो आपको लगे कि वेद गलत, कृष्ण गलत, बुद्ध गलत। पकड़ो लाओत्से को, छोड़ो इनको। एक तो उपाय यह है। हिम्मतवर कोई आदमी हो, साहसी हो, एडवेंचरस हो, यह करेगा। यह गलत है। इतनी जल्दी नहीं। समझें। और लाओत्से क्या कहता है, उसको प्रयोग करें। कृष्ण को गलत कहने से प्रयोग नहीं होगा। महावीर को छोड़ देने से प्रयोग नहीं हो जाएगा। लाओत्से क्या कहता है, उसका प्रयोग करें। जिस दिन प्रयोग पूरा होगा, उस दिन आप पाएंगे कि लाओत्से के सही होने में कृष्ण, महावीर, बुद्ध सब सही हो गए। एक सही हो जाए अनुभव से, सब सही हो जाते हैं।

लेकिन हम होशियार लोग हैं। अनुभव की झंझट में नहीं पड़ते। ऊपर ही हेर-फेर कर लेते हैं, लेबल बदल देते हैं--हटाओ यह लेबल, अब दूसरा लगा लो। भीतर का कंटेंट वही का वही बना रहता है। उसमें कभी कोई फर्क नहीं होते। कभी लाओत्से का लेबल जंचा तो वह लगा लिया; कभी नहीं जंचा तो हटा दिया। बड़ी जल्दी करते हैं।

एक मित्र मेरे पास आए। दो-चार दिन से ध्यान शुरू किया था। जिस दिन लाओत्से का सूत्र आया कि ध्यान की भी कोई जरूरत नहीं है क्योंकि ध्यान भी क्रिया है, वे मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि बड़ा अच्छा हुआ, हम दो-चार दिन से ही शुरू किए थे, छोड़ दिया।

एक मित्र संन्यास लेने आने वाले थे। एक दिन पहले कह कर गए थे कि कल सुबह आकर मैं संन्यास में प्रवेश करता हूं। लेकिन उसी दिन शाम को लाओत्से का सूत्र था, जिसमें मैंने कहा कि लाओत्से ने कभी संन्यास नहीं लिया। वे फिर दूसरे दिन आए ही नहीं। वे समझ गए, बात ठीक हो गई।

आदमी बहुत चालाक है। जिन मित्र ने ध्यान छोड़ दिया चार दिन करके, मैंने उनसे पूछा, लाओत्से को समझ कर और क्या छोड़ दिया? उन्होंने कहा, और तो कुछ नहीं, ध्यान से ही शुरू करता हूं।

ध्यान को अभी पकड़ा भी नहीं था, पाया भी नहीं था; छोड़ना तो बहुत मुश्किल है। जो तुम्हारे पास हो, वही छोड़ा जा सकता है। मैंने उनसे पूछा, ध्यान तुम्हें मिल गया? उन्होंने कहा, अभी तीन-चार दिन से ही शुरू किया है। जो है ही नहीं, उसे छोड़ दिया। छोड़ना चाहते होंगे, लाओत्से बहाना बन गया। हम बड़े होशियार लोग हैं। संन्यास लेने में डर लग रहा होगा, लाओत्से ने हिम्मत दे दी कि ठीक, संन्यास की क्या जरूरत है! अपने डर को लाओत्से के ज्ञान से जोड़ लिया। यह ज्ञान नहीं है। यह डर ही है, भय ही है। इस सब बेईमानी को ध्यान में रखना जरूरी है।

तो मैं कहता हूं कि छोड़ दें कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर को; जब लाओत्से को समझ रहे हैं तो लाओत्से को समझ लें। और अगर लाओत्से ठीक लगता हो तो समग्रता से उसके प्रयोग में उतर जाएं। एक दिन आप पाएंगे, बुद्ध छूटे नहीं, कृष्ण छूटे नहीं, सब पा लिए। कृष्ण ठीक लगते हों, कृष्ण को चल पड़ें। लेकिन चलें।

अक्सर हम ऐसे लोग हैं, रास्ते के किनारे बैठे हैं और वहीं बैठ कर बदलते रहते हैं--कौन अच्छा लगता है, कौन बुरा लगता है। चलते नहीं हैं। और हमारी बदलाहट भी हम तभी करते हैं, जब हमें ऐसा डर लगता है कि अब कोई हमें चला ही देगा। उस वक्त हम बदल लेते हैं कि अब दूसरे को पकड़ लेना ठीक है, जो अभी आश्वासन देता हो कि बैठे रहो।

आदमी आत्मवंचक है। और इस जगत में हम दूसरे को कोई धोखा नहीं दे पाते, अपने को जीवन भर देते हैं, जन्मों-जन्मों देते हैं। और हम इतने कुशल हैं कि अपने मतलब का अर्थ निकाल लेते हैं।

मैंने सुना है कि एक आदमी शराब पीता था। कुरान का बड़ा भक्त था। उससे किसी फकीर ने पूछा कि तुम कुरान के इतने भक्त हो और शराब पीते हो? उस आदमी ने कुरान खोली और कहा कि देखो, कुरान में क्या लिखा है! कुरान में लिखा है, शराब पीने से प्रारंभ करो और तुम्हारा अंत नरक में होगा। उसने कहा, यह वाक्य देखो! उस फकीर ने कहा, यह वाक्य दिखाई पड़ रहा है, लेकिन तुम्हारे खिलाफ है। उसने कहा, लेकिन मैं अभी आधे वाक्य तक ही पहुंचा हूं। शराब पीना शुरू करो, यह कुरान का आदेश है। और मेरा अभी पूरा वाक्य मानने का सामर्थ्य नहीं है। लेकिन जितना बने, उतना तो मानना ही चाहिए। कोशिश करते-करते दूसरे आधे हिस्से तक भी कभी, आप लोगों की कृपा रही, पहुंच जाऊंगा।

हम सब बहुत होशियार हैं। हम चुन लेते हैं, क्या हमारे मतलब का है। और तब हम धोखा खा जाते हैं।

लाओत्से को समझना है तो मन को साफ कर लें सब जानकारी से; कृष्ण को समझना है तो मन को साफ कर लें सब जानकारी से। उनको समझ लें; और समझ लें करने के लिए।

पंडित समझता है तुलना करने के लिए, करने के लिए नहीं। वह समझता है कि ठीक, अच्छा लाओत्से ने यह कहा, कृष्ण ने क्या कहा, बुद्ध ने क्या कहा। किसने क्या कहा, वह इसका हिसाब लगाता है।

बुद्ध कहते थे कि मेरे गांव में एक आदमी था जो रास्ते के किनारे बैठ कर रोज सुबह जंगल जाती हुई गाय-भैंसों को गिनता था, सांझ आती गाय-भैंसों को गिनता था। मैंने उससे पूछा कि तू बड़ा हिसाब लगाता है, बात क्या है? उसने कहा कि इतनी गाएं सुबह गईं, इतनी सांझ लौटीं। बुद्ध ने पूछा, इसमें तेरी कितनी हैं? उसने कहा, मेरी तो एक भी नहीं। ये तो गांव की हैं, मैं तो ऐसे बैठ कर गिनती करता रहता हूं। तो बुद्ध ने कहा कि वह आदमी मुझे कई बार जिंदगी में मिलता है, बहुत-बहुत रूपों में।

कुछ लोग हिसाब लगाते रहते हैं--वेद ने क्या कहा, कुरान ने क्या कहा, बाइबिल ने क्या कहा। आपकी गाएं कितनी हैं? आपका अनुभव कितना है? ऐसा किसने क्या कहा, और किसने किसके विपरीत कहा और अनुकूल कहा, और कौन किसके साथ एक है, और किसकी शैली भिन्न है, और किसके शब्द भिन्न हैं, इस सब गोरखधंधे से क्या मिलने वाला है?

आज इतना ही। अब पांच मिनट कीर्तन करें।

इकयावनवां प्रवचन

सदगुण के तलछट और फोड़े

Chapter 24

The Dregs And Tumours Of Virtue

He who stands on tiptoe does not stand (firm);
He who strains his strides does not walk (well);
He who reveals himself is not luminous;
He who justifies himself is not far-famed;
He who boasts of himself is not given credit;
He who prides himself is not chief among men.
These in the eyes of Tao
Are called "the dregs and tumours of Virtue,"
Which are things of disgust.
Therefore the man of Tao spurns them.

अध्याय 24

सदगुण के तलछट और फोड़े

जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता;
जो अपने कदमों को तानता है, वह ठीक से नहीं चलता;
जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुतः दीप्तिवान नहीं है;
जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है;
जो अपनी डींग हांकता है, वह श्रेय से वंचित रह जाता है;
जो घमंड करता है, वह लोगों का अग्रणी नहीं होता।
ताओ की दृष्टि में
उन्हें सदगुणों के तलछट और फोड़े कहते हैं।
वे जुगुप्सा पैदा करने वाली चीजें हैं।
इसलिए ताओ का प्रेमी उनसे दूर ही रहता है।

अमृत भी सदा अमृत नहीं होता। कुछ लोग उसे पीकर भी मर जाते हैं। कुछ लोग अमृत का भी उपयोग जहर की भांति करते हैं। जो समझदार हैं, वे जहर का उपयोग भी औषधि की तरह कर लेते हैं।

न तो अमृत अपने में अमृत है, और न जहर अपने में जहर। निर्भर है आदमी पर और उसके उपयोग पर। कुछ लोगों को धर्म भी बीमारी की तरह मिलता है। कुछ लोग धर्म को भी अपना कारागृह बना लेते हैं। कुछ लोग प्रकाश के साथ भी वैसा व्यवहार करते हैं, जैसा अंधकार के साथ। जीवन सभी के लिए आनंद नहीं है। मृत्यु भी सभी के लिए दुख नहीं है। कुछ लोग जीवन में सिवाय मरने के और कुछ भी नहीं करते। और कुछ लोग मृत्यु में भी परम जीवन का अनुभव करते हैं। वस्तुएं अपने में नहीं हैं कुछ भी; व्यक्ति पर निर्भर है। सभी कुछ व्यक्ति पर निर्भर है।

यह सूत्र इस महत धारणा से संबंधित है। लाओत्से कहता है, कुछ लोगों के लिए धर्म फोड़े की भांति है, दुखता है। उससे उन्हें आनंद नहीं मिलता। बीमारी की तरह उन्हें ग्रस लेता है। उससे वे खिलते नहीं, और सिकुड़ जाते हैं। उससे उनकी कली फूल नहीं बनती, और मुर्दा हो जाती है।

इस महत सूत्र की गहराई में उतरना जरूरी है। और गहन है यह बात। क्योंकि हम सब ऐसा ही सोचते हैं कि वस्तुएं तय हैं। जहर जहर है, अमृत अमृत है। धर्म धर्म है, अधर्म अधर्म है। हम सोचते हैं, वस्तुएं तय हैं। वस्तुएं तय जरा भी नहीं हैं। व्यक्ति कैसा उपयोग करता है, इससे सब कुछ तय होता है।

धर्म को भी लोग फोड़ा कैसे बना लेते होंगे, और धर्म भी जीवन को खिलाने के बजाए संकुचित करने का कारण कैसे बन जाता होगा, उसे समझना हो तो दूर जाने की जरूरत नहीं है, धार्मिक आदमी को कहीं भी देखा जा सकता है। इसीलिए तो एक आश्चर्यजनक घटना पृथ्वी पर घटी है कि सभी लोग अपने को धार्मिक मानते हुए मालूम पड़ते हैं और जीवन में आनंद कहीं भी नहीं है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ न कुछ है; कोई मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, कहीं जुड़ा है। कहीं न कहीं से सभी ने परमात्मा की तरफ अपनी आंखें उठाई हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। लेकिन जमीन बिल्कुल अधार्मिक है। और आदमी की आत्मा एक फोड़े से ज्यादा नहीं है, जो सिर्फ दुखती है।

यह कैसे संभव हुआ होगा? और यह हम सबके जीवन में रोज हो रहा है। जरूर कहीं कोई एक तरकीब है आदमी के हाथ में, जिससे वह अमृत को जहर बना लेता है। कोई विधि है उसे मालूम, जिससे जो भी सुखद हो सकता है, दुखद हो जाता है, और जिससे मुक्ति संभव है, वही कारागृह बन जाता है। जिन पंखों से आकाश में उड़ा जा सकता है, हम उन्हीं को जंजीरें बनाने में कुशल हैं।

उस विधि का ही उल्लेख है इस सूत्र में; इस सूत्र को हम पढ़ें।

"जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता; जो अपने कदमों को तानता है, तनाव देता है, वह ठीक से नहीं चलता।"

जहां भी जीवन में कुछ करने में हमने तनाव लाया, वहीं सब विकृत हो जाता है। अगर हम प्रेम करने में भी तनाव ले आएं तो प्रेम दुख का जन्मदाता है। उससे बढ़ा फिर दुख का जन्मदाता पाना, खोजना मुश्किल है। अगर प्रार्थना भी हमारी तनाव बन जाए तो वह भी एक बोझ है, पत्थर की तरह छाती पर रखा हुआ। उससे हम और डूबेंगे अंधकार में, प्रकाश की तरफ उड़ेंगे नहीं। लेकिन हम हर चीज को तनाव बना लेने में कुशल हैं। हम किसी चीज को बिना तनाव के करना ही भूल गए हैं।

निसर्ग तनावरहित है। जब एक कली फूल बनती है तो कोई भी प्रयास नहीं होता; बस कली फूल बन जाती है। यह कली का स्वभाव है फूल बन जाना; इसके लिए कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। और नदी जब सागर

की तरफ बहती है तो हमें लगता है कि बह रही है; नदी का होना ही उसका बहना है। बहने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना होता। इसलिए नदी कहीं भी थकी हुई नहीं दिखाई पड़ेगी। कली खिलने में थकेगी नहीं। अगर कली खिलने में थक जाए तो फूल नहीं बन पाएगा फिर। क्योंकि थकान से कहीं फूल का कोई जन्म है? कली तो जब खिलती है तो थकती नहीं, खिलती है, और ताजी होती है, और नई हो जाती है। और नदी जब सागर में गिरती है तो थकी हुई नहीं होती इतनी लंबी यात्रा के बाद; पूर्ण प्रफुल्लित होती है।

आदमी थकता है हर चीज में। वह जो भी करता है, उसमें ही थक जाता है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया इस थकान के सूत्र को? आप थके हुए मालूम होते हैं कोई भी काम करते क्षण में। लेकिन अचानक कभी ऐसी घटना घटती है कि सब थकान तिरोहित हो जाती है।

विनसेंट वानगॉग एक डच पेंटर हुआ, और इन पिछले डेढ़ सौ वर्षों में कुछ थोड़े से कीमती आदमियों में से एक। कुरूप था, इसलिए कोई स्त्री कभी उसके प्रेम में नहीं गिरी। उसकी जिंदगी एक थकान थी, एक लंबी ऊब। वानगॉग ने लिखा है कि सुबह उठने का मुझे कोई कारण नहीं मालूम पड़ता, क्यों उठूं? उठना पड़ता है, मजबूरी है, उठ आता हूं। सांझ सोने का कोई कारण नहीं मालूम पड़ता। आंख भी खोलूं, इसकी कोई वजह नहीं है; क्योंकि कोई भविष्य नहीं है। वानगॉग चलेगा भी तो उसके पैर लड़खड़ाते हुए होंगे। वह काम भी करेगा तो उसके काम में एक उदासी छायी होगी। वह जिस दुकान पर काम करता है--एक चित्र बेचने वाली, पेंटिंग्स बेचने वाली दुकान पर काम करता है--उसके मालिक ने कभी नहीं देखा कि उसने कभी किसी ग्राहक में कोई रस लिया हो। ग्राहक को आता देख कर उसे लगता है कि एक मुसीबत आ रही है। उठ आता है, चित्र दिखा भी देता है, लेकिन जैसे कोई आटोमेटा, कोई यंत्र सब कर रहा हो।

लेकिन अचानक एक दिन देखा उसके मालिक ने कि वानगॉग गीत गुनगुनाता हुआ सीढ़ियां चढ़ रहा है। यह पहला मौका था कि उसे किसी ने गीत गुनगुनाते देखा। जब वह पास आया तो उसके मालिक ने देखा कि न केवल वह गीत गुनगुना रहा है, आज मालूम पड़ता है उसने स्नान भी किया है। स्नान वह रोज भी करता था, लेकिन वह सिर्फ पानी ढाल लेना था। पानी ढाल लेने में और स्नान करने में बड़ा फर्क है। जब कोई अपने लिए ही ढाल लेता है, तो पानी ढालना होता है। और जब किसी और के लिए ढालता है, तब स्नान हो जाता है। और दोनों में बुनियादी फर्क है। कपड़े उसके वही थे, लेकिन आज उनकी तर्ज बदल गई। आदमी वही था, लेकिन चाल बदल गई। उसके मालिक ने पूछा, वानगॉग, क्या हुआ? वानगॉग ने कहा कि आज मेरी जिंदगी में एक स्त्री आ गई--प्रेम की एक घटना।

उस दिन ग्राहकों में उसका रस और है। उस दिन ग्राहक को आता देख कर वह आनंदित है। उस दिन उसके काम में अंतर पड़ गया। जिंदगी में कोई अर्थ आ गया।

वानगॉग ने उस दिन रात अपनी डायरी में लिखा है कि पहली दफा एक ऐसा दिन बीता, जिससे मैं थका नहीं; नहीं तो मैं सुबह थका हुआ ही उठता हूं। सांझ थका हुआ तो सोता ही हूं, सुबह थका हुआ ही उठता हूं। उस दिन मैं सांझ भी ताजा था, थका हुआ नहीं था। और काम मैंने हर दिन से ज्यादा किया था।

क्या फर्क पड़ गया? जो कल तक तनाव था, आज वह तनाव नहीं रहा। जिस काम को करने में तनाव है, वह आपको थका जाएगा। और जिस काम को करने में तनाव नहीं है, सहजता है, वह आपको और भी ताजा कर जाएगा। न तो काम थकाता है, न ताजा करता है। आदमी पर निर्भर है।

हम पूरे जीवन को काम बना लेते हैं, तनाव बना लेते हैं। मैं सुनता हूं, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि पिता बीमार हैं, उनकी सेवा कर रहे हैं, कर्तव्य है, ड्यूटी है। ड्यूटी होती है पुलिसमैन की, कर्तव्य होता है

एक नौकर का। बेटे का कर्तव्य नहीं होता। कर्तव्य का मतलब हैः करना चाहिए इसलिए कर रहे हैं। लेकिन अगर पिता की सेवा करना कर्तव्य है तो फिर सेवा एक पत्थर की तरह छाती पर पड़ जाएगी। और भीतर मन के किसी कोने में यह भाव अगर आना शुरू हो जाए तो यह मत समझना कि यह भाव कहां से आ रहा है कि यह पिता समाप्त हो जाए तो अच्छा। हालांकि आप कहेंगे कि यह बुरा विचार कहां से आ रहा है, यह नहीं आना चाहिए। आप इसको प्रकट भी न करेंगे। लेकिन जिस दिन आपने सेवा को कर्तव्य माना, उसी दिन इस विचार का बीज भी आपने बो लिया अपने भीतर। यह कोई और नहीं ला रहा है। क्योंकि जहां कर्तव्य है, वहां से छुटकारे का मन होगा।

लेकिन पिता की सेवा अगर कर्तव्य न हो तो बोझ नहीं होगी। और तब सच तो यह है कि पिता की सेवा करते वक्त पहली दफा आपके जीवन में वह फूल खिलेगा, जिसका अर्थ पुत्र होना होता है। नहीं हो, तो वह फूल कभी नहीं खिलेगा। पिता आपको जन्म देकर पिता नहीं हो जाता, और आप किसी से जन्म पाकर पुत्र नहीं हो जाते। पुत्र आप उस दिन होते हैं जिस दिन पिता की सेवा आनंद होती है। और पिता भी आप उस दिन होते हैं जिस दिन बेटे के प्रति जो प्रेम है, वह आनंद होता है, काम और कर्तव्य नहीं।

जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह निसर्ग से खिलता है। और जीवन में जो भी कचरा, जिसको लाओत्से कह रहा है तलछट, कचरा, फोड़े की भांति घाव जो बन जाता है, वह सब तनाव से पैदा होता है। और हम जो भी करते हैं, वह सब तनाव है। हमारा पूरा जीवन एक लंबी यात्रा है, एक तनाव से दूसरे तनाव पर।

इसलिए मौत हमारे जीवन की पूर्णता नहीं है, केवल समाप्ति है। अन्यथा अगर एक आदमी का जीवन विकसित हुआ हो तो सांझ जब सूर्य डूबता है तो सुबह के सूर्य से कम सुंदर नहीं होता। सांझ के डूबते हुए सूर्य का सौंदर्य भी वैसा ही अनूठा होता है, जैसा उगते सूर्य का। लेकिन आदमी का उगता हुआ सौंदर्य अलग होता है, डूबता हुआ सब कुरूप हो जाता है। आदमी के जीवन का सूर्यास्त क्यों सुंदर नहीं है? जिंदगी एक तनाव की यात्रा है। तो हम समाप्त होते हैं मृत्यु में, पूर्ण नहीं होते। धार्मिक व्यक्ति के लिए मृत्यु पूर्णता है। अधार्मिक व्यक्ति के लिए सिर्फ अंत, सिर्फ समाप्ति। यह जो, यह जो घटना घटती है, यह घटना प्रत्येक काम को तनाव बनाने से घटती है।

लाओत्से कहता है, "जो अपने पंजों के बल खड़ा होता है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं होता।"

आप कभी अपने पंजों के बल खड़े होकर देखें। वैसे तो सभी लोग पंजों के बल जीवन में खड़े हैं, लेकिन ऐसे कभी पंजों के बल खड़े होकर देखें। जल्दी ही थक जाएंगे। और पंजों के बल आप कितने ही सध कर खड़े रहें, आप कंपित होते रहेंगे भीतर, और खड़ा होना प्रतिपल एक श्रम होगा।

लेकिन हम सब पंजों के बल खड़े हैं। हमारा खड़ा होना सहज खड़ा होना नहीं है। कोई आदमी पंजों के बल क्यों खड़ा होता है? ऊंचा दिखना चाहता है, बड़ा दिखना चाहता है; दूसरों की आंखों में कुछ दिखना चाहता है। दूसरों की आंखें बहुत मूल्यवान हैं; अपनी सहजता स्वीकार नहीं है। वह लंबा होना चाहता है।

पश्चिम में स्त्रियों ने बड़ी एड़ी के जूते ईजाद किए हैं--वह सिर्फ पुरुष के साथ प्रतिस्पर्धा में। पुरुष थोड़ा लंबा है। उन लंबी एड़ी के जूतों पर चलना सुखद नहीं है; क्योंकि प्रकृति के बिल्कुल प्रतिकूल है। असल में, लंबी एड़ी के जूते पहनने का मतलब है कि पंजे के बल आप खड़े होना चाह रहे हैं, सहारा चाहिए, तो लंबी एड़ी का सहारा मिल जाता है। स्त्री को भी पुरुष जैसा लंबा होने की तृष्णा है; स्वीकृति नहीं है। दूसरे से कुछ तुलना है, और दूसरे के मुकाबले होने का कोई भाव है। फिर यह एड़ी की ऊंचाई तक ही बात नहीं टिकेगी, यह तो फिर पूरे जीवन में फैल जाएगी। यह तो दृष्टि और आधार हुआ। जिस दिन पश्चिम में आज से कोई तीन सौ साल पहले

स्त्रियों ने लंबी एड़ी के जूते खोजे, उसी दिन कहा जा सकता था कि आज नहीं कल, जो भी स्त्रियां आज पश्चिम में कर रही हैं, वह करेंगी। जो भी आज वे कर रही हैं, वह उस एड़ी के जूते से ही तय हो गया। एक भाव है भीतर।

लेकिन लंबी एड़ी के जूते पर खड़े होने में सुखद नहीं हो सकता। खड़ा होना भी एक दुख हो जाएगा। चलना एक कष्ट हो जाएगा। चलना एक आनंद हो सकता है। चलना आनंदपूर्ण है। लेकिन जिनकी भी आदत पंजों पर खड़े होने की पड़ गई है, वे फिर चल नहीं सकते। सारे शरीर को घसीटना पड़ेगा।

और यह जो लाओत्से कहता है कि पंजों के बल जो खड़ा है, वह दृढ़ता से खड़ा नहीं हो सकता। वह कंपित भी रहेगा। क्योंकि जो भी सहारे उसने लिए हैं, सब झूठे हैं और कृत्रिम हैं। वह अपना पैर नहीं है लंबा, वह जूते की एड़ी है। वह जिन सहारों पर भी लंबा हो गया है, वे सब झूठे हैं।

एक राजनीतिज्ञ अपनी कुर्सी पर बड़ा हो गया है; वह कुर्सी उतनी ही झूठी है। इसलिए राजनीतिज्ञ अपनी कुर्सी पर बैठ कर कभी शांति से बैठ नहीं सकता। कुर्सी पर होना और शांति से होना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि वह कुर्सी जिस चीज के लिए काम में लाई जा रही है--दूसरों से ऊपर दिखाई पड़ने के--यह जो चेष्टा है, यह चेष्टा ही कुर्सी पर शांति से नहीं बैठने दे सकती। इसलिए सम्राटों की रातें अगर कष्टपूर्ण हैं, और अगर सम्राटों ने कभी-कभी भिखारियों से भी ईर्ष्या की है अपने मन में, तो उसका कारण है।

अगर एक व्यक्ति ने धन का ढेर लगा लिया है और उस पर ऊपर होने की कोशिश में लगा है, तो यह ढेर वह कितना ही सोचता हो कि वह ढेर के ऊपर खड़ा है, वह समझे या न समझे, उसे पता नहीं, असलियत में यह ढेर उसके सिर पर बैठ जाएगा। वह दब जाएगा। वह इस ढेर से ऊपर नहीं उठने वाला है।

लाओत्से कहता है, अगर दृढ़ता से खड़ा होना हो तो ऐसे खड़ा होना चाहिए कि खड़े होने में कोई तनाव न हो। पंजों के बल खड़ा नहीं हुआ जा सकता। और जब आप पंजों के बल खड़े होते हैं, तभी पता चलता है कि आप खड़े हैं। जब आप पूरे पैर के बल खड़े होते हैं, तब आपको पता भी नहीं चलता कि आप खड़े हैं। लेकिन हमारी आदत संतुलन की नहीं है।

इसलिए लाओत्से की परंपरा में एक प्रक्रिया है। लाओत्से अपने शिष्यों को कहता था कि खड़े हो जाओ, फिर आंख बंद कर लो, फिर ध्यान करो कि तुम पैर के किसी हिस्से पर जोर तो नहीं दे रहे हो। पूरे दोनों पैरों पर संतुलन बराबर बांट दो। पर हमें तो पता ही नहीं चलेगा। तो पता चलने के लिए लाओत्से कहता था कि खड़े हो जाओ; फिर एक पैर पर जोर दो; बाएं पैर पर पूरा जोर दे दो; बाएं पर ही खड़े हो, भीतर शिफ्ट कर दो, भीतर पूरा बल बाएं पर शिफ्ट कर दो। तब तुम्हें पता चलेगा कि दायां नपुंसक हो गया पैर, उसमें प्राण न रहे। फिर दाएं पर पूरा का पूरा जोर हटा दो। तब तुम पाओगे कि बायां रिक्त और खाली हो गया। तब दोनों पर बराबर जोर बांटो।

और लाओत्से कहता था, जिस दिन तुम्हारा संतुलन बिल्कुल बराबर हो जाएगा, तुम्हें बाएं और दाएं पैर का पता नहीं चलेगा--कौन सा पैर बायां है और कौन सा पैर दायां है। और जिस दिन संतुलन बराबर हो जाएगा, उस दिन तुम कितनी ही देर खड़े रहो, तुम थकोगे नहीं।

यह पैर के बाबत ही सही नहीं है, पूरे शरीर के बाबत सही है। अगर हमारा प्राण पूरे शरीर पर समान रूप से वितरित हो, तो जिस भांति हम थकते और परेशान होते हैं, वैसे थकने और परेशान होने का कोई कारण न रह जाए। कभी लोगों को देखें। खुद को देखना तो मुश्किल होता है, दूसरों को देखें तो आसानी होगी। किसी परीक्षा भवन में चले जाएं और विद्यार्थियों को लिखते देखें। तो आप हैरान हो जाएंगे। लिखा तो जाता है हाथ

से, लेकिन उनके पैर तक तने हुए हैं। पैरों से लिखने का कोई भी संबंध नहीं है। अगर कुशल लेखक हो तो कलम अंगुलियां जितनी पकड़ती हैं, उतना ही बल हाथ पर देने की जरूरत है, उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। लेकिन सारा शरीर तन जाता है, सिर से लेकर पैर तक एक-एक नस खिंच जाती है।

एक आदमी को साइकिल चलाते देखें। तो सिर्फ पैर के पंजे काफी हैं साइकिल को चलाने के लिए, लेकिन उसका पूरा शरीर संलग्न है। यह जो पूरे शरीर की संलग्नता है, यह अकारण थकावट है। और यह अगर आदत बन गई हो तो हमारा पूरा जीवन व्यर्थ के तनाव में टूटता है।

इंग्लैंड में मैथ्यू अलेक्जेंडर करके एक बहुत बड़ा शिक्षक था। वह शिक्षक ही इस बात का था कि लोगों को सिखाए कि कैसे खड़े हों, कैसे बैठें, कैसे लेटें, कैसे चलें। और आप हैरान होंगे यह जान कर कि अलेक्जेंडर ने हजारों लोगों की हजारों बीमारियां सिर्फ उनको ठीक खड़ा होना, ठीक लेट जाना, ठीक बैठ जाना सिखा कर दूर कीं। वह शिक्षक था केवल मनुष्य की गतिविधियों का, लेकिन वह चिकित्सक सिद्ध हुआ। और अलेक्जेंडर ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैंने अब तक ऐसा एक आदमी नहीं पाया, जो शरीर के साथ सदव्यवहार कर रहा हो। लेकिन उसका उसे कोई पता ही नहीं है।

अलेक्जेंडर ने लाओत्से का स्मरण किया है और उसने कहा कि इस आदमी को राज पता था। वह कहता है कि अगर अपने पंजों के बल कोई खड़ा होगा तो दृढ़ता से खड़ा नहीं हो सकेगा। उसकी पूरी जिंदगी एक कमजोरी बन जाएगी। उसकी पूरी जिंदगी में एक भय का कंपन भीतर प्रवेश कर जाएगा। वह जो भी करेगा, कंपित रहेगा, डरा हुआ रहेगा, घबड़ाया हुआ रहेगा। और इसका कारण? इसका कारण नहीं है यह कि वह कमजोर है। इसका कारण सिर्फ यह है कि दूसरों के सामने वह शक्तिशाली दिखाई पड़ने की कोशिश कर रहा है। जब भी आपको लगे कि भीतर कमजोरी पकड़ रही है, समझ लेना कि आप दूसरों के सामने शक्तिशाली दिखाई पड़ने की व्यर्थ चेष्टा में लगे हैं। जब आपको लगे कि आपके भीतर डर पैदा हो रहा है कि कहीं मैं बुद्धिहीन तो नहीं हूं, तब आप समझ लेना कि आप पंजों के बल खड़े होकर लोगों को दिखला रहे हैं कि मैं बुद्धिमान हूं। जीवन बड़ा विपरीत है।

अमरीका में एक मनोविद है, अब्राहम मैसलो। एक मरीज उसके पास आया है। वह एक बहुत बड़ी बैंक का डायरेक्टर है और उसका सारा काम उसके लिखने पर निर्भर है। और आज तक उसकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा उसकी बहुत ही सुघड़ और सुडौल लिखावट की रही है। लेकिन इधर कुछ दिनों से उसका हाथ कंपने लगा है और उसकी लिखावट खराब होने लगी है। वह जितनी कोशिश करता है अपनी लिखावट को बचाने की, उतनी लिखावट और खराब होती चली जाती है। और अब उसे डर पैदा हो रहा है कि या तो वह यह काम छोड़ दे, क्योंकि उसकी जीवन भर की प्रतिष्ठा नष्ट हुई जा रही है। उसने न मालूम कितने लोगों से सलाह ली है। लेकिन सब सलाहें खतरनाक साबित हुईं। और सब सलाहों का परिणाम यह हुआ कि उसका हाथ और खराब हो गया है। वह मैसलो से पूछता है।

तो मैसलो उससे कहता है, तुम एक काम करो। जब तुम्हारी लिखावट अच्छी थी, तब तुम्हें ख्याल है कि तुमने लिखावट को अच्छा रखने का कोई प्रयास किया हो? उसने कहा, मुझे कोई ख्याल नहीं है। तो मैसलो ने कहा, तुम अब एक काम करो, जान कर जितना खराब लिख सकते हो लिखो--चेष्टा से। जितना बिगाड़ सको अपनी लिखावट को बिगाड़ो। और जो वर्ष से उसकी चिंता थी, वह विदा हो गई। क्योंकि जितनी उसने चेष्टा की बिगाड़ने की, उतना उसने पाया कि वह बिगड़ती नहीं, सुडौल हो गई। चेष्टा से हम जो भी करते हैं, वह बिगड़

जाता है। चेष्टा से अगर बिगाड़ना चाहें लिखावट को तो यह श्रम भी व्यर्थ हो जाएगा; सुधर जाएगी लिखावट। अगर चेष्टा से सुधारना चाहें, यह श्रम भी व्यर्थ हो जाएगा; लिखावट बिगड़ जाएगी।

इसको जर्मन मनोवैज्ञानिक फ्रैंकल ने लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट कहा है--विपरीत का नियम। जो भी हम करते हैं चेष्टा से, उससे विपरीत परिणाम आता है। एक आदमी सब के साथ भला होने की कोशिश करता है, और फिर एक दिन छाती पीट कर कहता है कि मैं सब के साथ भला होने की कोशिश कर रहा हूं और सारे लोग मेरे प्रति बुरे हो गए हैं। लोग निरंतर कहते सुने जाते हैं कि हम नेकी करते हैं और लोग हमारे साथ बदी करते हैं; मैंने उस व्यक्ति की इतनी सहायता की और वक्त पर उस व्यक्ति ने बिल्कुल मेरी तरफ पीठ कर ली।

यह आपकी चेष्टा का परिणाम है; नियमानुसार हो रहा है। कोई आदमी बुरा नहीं कर रहा है आपके साथ। जब भी कोई भला करने की कोशिश करता है किसी के साथ, तो बुरा हो जाता है। कोशिश में ही बुराई आ जाती है। किसी पर दया करने की कोशिश करें, और वह आदमी आपको कभी माफ नहीं कर पाएगा। वह आपसे कभी न कभी बदला लेगा आपकी दया का। क्योंकि दया करने की जो कोशिश है, उसमें दया क्रूरता हो गई, उसमें दया हिंसा हो गई। जब किसी के साथ अच्छा करने की आप कोशिश करते हैं तो आप यह दिखा रहे हैं कि आप अच्छे हैं। वह दिखाना ही बीज हो गया जहर का।

इसलिए तथाकथित अच्छे लोगों को कोई कभी माफ नहीं कर पाता। खुद के मां-बाप तक को माफ करना मुश्किल होता है। क्योंकि मां-बाप इतना अच्छा करने की कोशिश करते हैं कि दुश्मन मालूम पड़ने लगते हैं।

यह इस सीमा तक पहुंच सकती है बात कि इंग्लैंड के एक विचारक आरड़ी.लेंग ने अपनी एक किताब इस वाक्य से शुरू की है कि मां का बच्चे के प्रति पहला चुंबन ही इस जगत में उपद्रव की शुरुआत है। चुंबन! मां का पहला चुंबन इस जगत में उपद्रव की शुरुआत है! बच्चे के साथ हिंसा शुरू हो गई। लेंग ने लिखा है कि बच्चे के साथ हिंसा शुरू हो गई।

यह कुछ दूर तक सच है। लेकिन उतनी ही दूर तक, जहां तक यह चुंबन चेष्टा से निकला हो। अगर चेष्टा से न निकला हो तो चुंबन की याद भी नहीं रह जाती। लेकिन माताएं बाद में बड़ा याद करती हैं। इसलिए लगता है कि चेष्टा से निकली हुई चीजें हैं। माताएं बाद में कहती हैं कि मैंने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया! रात-रात भर तुम्हारी बीमारी में जागी हूं! कैसे-कैसे कष्ट उठाए, माताएं पूरा हिसाब रखती हैं। यह हिसाब रखना माताओं जैसा है ही नहीं; यह किसी संस्था के सेक्रेटरी को शोभा देता है।

अगर यह चेष्टा से निकला हो तो इसकी स्मृति बनती है; अगर यह सहज निकला हो तो इसकी कोई स्मृति नहीं बनती। अगर यह सहज निकला हो तो इसका फल उसी समय मिल गया, इसके किसी और फल की आशा नहीं बंधती। अगर यह चेष्टा से निकला हो तो यह इनवेस्टमेंट है, भविष्य में इसके फल लेने की आकांक्षा होगी। फिर ब.ूढी मां अपने बेटे से कहेगी कि मैंने तुम्हारे लिए क्या किया और तुम मेरे लिए क्या कर रहे हो? इसका मतलब यह है कि मां ने जो किया था, उसका आनंद करने में नहीं मिल पाया। आनंद बच गया है। काम हो गया है, फल शेष रह गया है। लेकिन अगर मां का चुंबन आनंद था तो उसे आनंद मिल गया है; अब उसके बदले में कुछ और पाने का सवाल कहां है? और अगर याद है तो वह बताती है याद कि वह पूंजी लगाई थी भविष्य के लिए--लाभ की आशा से। लाभ तत्क्षण नहीं मिला है; आगे मिलेगा, उसका हिसाब रखना पड़ेगा। उसकी स्मृति बनी रहती है।

लाओत्से कहता है कि जो भी हम तनाव से करेंगे, वह हमारे जीवन को भीतर से कुरूप कर जाता है और क्रिपिल्ड कर जाता है, जकड़ जाता है, पंगु कर जाता है। खड़े होकर देखें और खड़ा होना कष्ट हो जाएगा।

"जो अपने कदमों को तानता है, वह ठीक से नहीं चलता।"

जीवन में हमें चारों तरफ ऐसी घटनाएं रोज अनुभव में आती हैं, हम ख्याल में लें, न लें। हम सभी बोलते हैं। सौ में निन्यानबे लोग अच्छी तरह बोलते हैं, बातचीत में कुशल होते हैं। उन्हें यहां मंच पर लाकर खड़ा कर दिया जाए, और बोलना मुश्किल हो जाता है। क्या हो गया? उनकी जबान में कोई खराबी नहीं, उनका कंठ ठीक है, सब ठीक है, रोज बात करते हैं--बात ही करते हैं दिन भर, और क्या करते हैं! अचानक इस माइक के सामने खड़े होकर उनका कंठ अवरुद्ध क्यों हो जाता है? हाथ-पैर कंपने क्यों लगते हैं? ये बोलने में इतने कुशल! इन्हें चुप होना मुश्किल होता है, मौन कठिन मालूम पड़ता है! अचानक इनका मौन क्यों सध जाता है? मंच पर खड़े होकर इनसे बोला क्यों नहीं जाता? बोलना प्रयास है अब। अब यह पंजे के बल खड़ा होना हो गया। अब प्रयास है बोलना। जो रोज दिन भर बोलते थे, वह अप्रयास था। उसमें कोई चेष्टा न थी, उसमें ख्याल ही नहीं था कि हम बोल रहे हैं। बोलना हो रहा था। अब ख्याल है कि हम बोल रहे हैं। और ख्याल क्यों है? ख्याल इसलिए है कि कहीं कुछ ऐसा न बोल जाएं कि लोगों के सामने प्रतिष्ठा गिर जाए; कुछ ऐसा बोलें कि प्रतिष्ठा बढ़ जाए। लोगों पर दृष्टि है।

ऐसा समझें कि ये सब लोग कोई भी नहीं हैं यहां, माइक पर आप अकेले खड़े हैं; फिर आप मजे से बोल सकते हैं, बड़े आनंद से बोल सकते हैं। अपनी ही आवाज सुनना बहुत आनंदपूर्ण होता है। लेकिन लोग बैठे हैं, तब अड़चन होती है। आप तनाव से भर गए।

मनसविद कहते हैं--आपको अनुभव हुआ होगा--गोली गटकनी मुश्किल होती है दवा की; खाना आप रोज गटक जाते हैं। कभी ख्याल भी नहीं आता कि खाने का कोई कौर अटक गया हो और आपको चेष्टा करके लीलना पड़ा हो। लेकिन दवा की गोली जीभ पर रखें--पानी अंदर चला जाता है, गोली जीभ पर रह जाती है। इस गोली में क्या खूबी है? जब आप खाना ले जा रहे हैं, तब कोई चेष्टा नहीं है। गोली को गटकना है। यह प्रयास है। वह प्रयास ही अटकाव बन जाता है।

जीवन के सब तलों पर विपरीत का नियम काम करता रहता है। जितनी आप चेष्टा करेंगे, उतने ही आप विफल हो जाएंगे। सफलता का एक ही सूत्र हैः चेष्टा ही न करें। इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ करें ही नहीं। यह मतलब नहीं है। इसका मतलब है, ऐसे करें, जैसे करना आपसे निकलता हो। उस पर कोई बोझ न हो, उस पर कोई भार न हो, उस पर कोई जबरदस्ती न हो, अपने को खींचना न पड़ता हो। नदी की तरह बहना होता हो, कली की तरह खिलना होता हो, पक्षी की तरह गीत होता हो!

"जो अपने कदमों को तानता है, वह ठीक से नहीं चलता; जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुतः दीप्तिवान नहीं है।"

दूसरे मुझे देखें, दूसरे मुझे जानें, दूसरे मुझे पहचानें--आखिर दूसरों के मन में मेरी अच्छी धारणा बने, इसकी इतनी कामना क्यों होती है? इसका इतना मन में रस क्यों होता है?

अपने पर कोई भरोसा मुझे नहीं है, इसलिए। अपनी कोई प्रतिमा भी मेरे पास नहीं है, इसलिए। अपना कोई तादात्म्य भी नहीं है, कोई आइडेंटिटी नहीं है। मैं कौन हूं, इसका मुझे कुछ पता नहीं है। दूसरे मुझे क्या मानते हैं, वही मुझे पता है। उसका ही जोड़ मेरी आत्मा है। अ कुछ कहता है, ब कुछ कहता है, स कुछ कहता है। मेरे बाबत लोग जो कहते हैं, उनको ही जोड़ कर मैं अपनी आत्मा बना लेता हूं। लोग कहते हैं मैं अच्छा हूं, तो मुझे लगता है मैं अच्छा हूं। और लोग कहने लगें मैं बुरा हूं, तो मेरे भवन की आधारशिलाएं डगमगा जाती हैं।

इसलिए जब कोई आदमी आपको बुरा कहता है, तो आपको जो क्रोध आता है, वह इसलिए नहीं आता कि उसने गलत कहा। अगर गलत कहा है, तब तो क्रोध आने की कोई जरूरत ही नहीं है। गलती उसकी है, आप क्यों परेशान होते हैं। डर यह है कि कहीं उसने सही ही न कहा हो। उससे क्रोध आता है। और अगर उसने सही कहा है तो हमने जो अपनी प्रतिमा बना रखी है, वह मोम की तरह पिघलने लगेगी। एक आदमी मेरे प्राण खींच ले सकता है। एक आदमी कह दे कि बुरे हो, तो सारा अस्तित्व डगमगा जाता है। मैंने अस्तित्व बनाया ही दूसरों के विचारों से है; उनके ओपीनियन इकट्ठे कर लिए हैं, उनकी फाइल बना ली है। वही मेरी आत्मा है। उसमें एक पन्ना उड़ता है तो मेरे प्राण उड़ते हैं।

कभी आपने सोचा है कि लोग आपके बाबत क्या कहते हैं, अगर वह सब आप हटा दें, तो आपके पास सिफर, शून्य के सिवाय क्या बच रहेगा? तब आपको कैसे पता चलेगा कि आप अच्छे हैं या बुरे हैं, सुंदर हैं कि कुरूप हैं, बुद्धिमान हैं कि बुद्धिहीन हैं, कैसे पता चलेगा? दूसरे क्या कहते हैं, वही हमारा आत्मज्ञान है। इसलिए हम दिखाते फिरते हैं। इसलिए बड़ी झंझटें खड़ी होती हैं, और जीवन बड़े उलझन में पड़ जाता है।

एक व्यक्ति किसी के प्रेम में पड़ जाता है। दोनों एक-दूसरे को दिखाते हैं। प्रेमी ऐसा दिखाई पड़ता है कि ऐसा प्रेमी जगत में कभी हुआ ही नहीं होगा। प्रेयसी ऐसी मालूम पड़ती है कि अभी, सद्यः, अभी-अभी स्वर्ग से उतरी है। दोनों एक-दूसरे को दिखा रहे हैं। लेकिन यह पंजों के बल खड़ा होना है। ज्यादा देर नहीं रहा जा सकता इसके बल खड़ा। जब बीच पर मिले घड़ी भर को तो पंजों के बल खड़े रह सकते हैं। पूर्णिमा के चांद में चोरी-छिपे मिले तो पंजों के बल खड़े रह सकते हैं। फिर ये भूल से विवाह कर लें तो पंजों के बल कितनी देर खड़े रहेंगे? फिर जमीन पर उतरना पड़ेगा। फिर वह जो दिखाने की चेष्टा थी, वह समाप्त हो जाएगी। तब अचानक लगता है कि एक साधारण सी स्त्री, जिसको मैं अप्सरा समझा था! एक साधारण सा पुरुष, जिसको समझा था देवता उतर आया है! धोखा हो गया। तब भी हम यही सोचते हैं कि दूसरे ने धोखा दे दिया। दोनों ही यही सोचते हैं। कोई भी यह नहीं सोचता कि हम दोनों पंजों के बल खड़े होकर एक-दूसरे को दिखाने की कोशिश कर रहे थे। वह कोशिश ज्यादा देर नहीं चल सकती, वह स्थायी नहीं हो सकती। तीन दिन काफी हैं, सब प्रेम उखड़ जाता है।

अगर पुराने दिनों में नहीं उखड़ता था तो उसका कारण था कि तीन दिन भी इकट्ठे साथ नहीं मिलते थे। बहुत कठिन मामला था। बहुत कठिन मामला था। पुराने लोग जरूर होशियार थे, बुद्धिमान थे। अपनी पत्नी को भी देखना एक चोरी का काम था। अपनी पत्नी से मिलना भी एक बड़े संयुक्त परिवार में बड़ी मुश्किल बात थी। लंबा चल पाता था धोखा।

अब हमने पति-पत्नियों को आमने-सामने बिठा दिया है। उनकी हालत वैसी हो गई है, जैसा सार्त्र ने अपने एक उपन्यास में कल्पना की हैः कि एक आदमी मरता है। वह सदा से डरा हुआ है; उसको पाप, अपराध का डर है। और उसको डर है कि वह नर्क जाएगा। लेकिन जब मर कर उसकी आंख खुलती है तो वह पाता है कि एक अच्छे कमरे में बैठा हुआ है, सब साज-सामान लगा हुआ है। बड़ा हैरान होता है कि क्या मैं स्वर्ग में आ गया! सब सुंदर है, सब व्यवस्थित है। जो व्यक्ति उसे उस कमरे में ले आया है, वह उससे पूछता है, क्या यह स्वर्ग है? वह व्यक्ति उससे कहता है कि क्षमा करें, आप नरक में आ गए हैं। और तब दो व्यक्ति और कमरे में लाए जाते हैं--एक महिला है बूढ़ी, एक जवान लड़की है। वह पूछता है, लेकिन यह नरक कैसा है, यहां सब सुविधा है! वह आदमी कहता है, सभी को ऐसी तकलीफ होती है; थोड़ी देर में आपकी समझ में आ जाएगा।

और थोड़ी देर में समझ में आना शुरू हो जाता है। उस कमरे के बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। उसमें दरवाजा भीतर की तरफ खुलता है, बाहर की तरफ खुलता ही नहीं। उसमें कोई बाहर से भीतर आ सकता है, भीतर से बाहर नहीं जा सकता। लेकिन उस आदमी को अच्छा लगता है--जवान है लड़की, सुंदर है; एक संगी-साथी है इस कमरे में, कोई डर नहीं। लेकिन चौबीस घंटे वे अपनी-अपनी कुर्सियों पर वहां बैठे हैं उस कमरे के भीतर। एक घंटा, दो घंटा, रात, दिन--चौबीस घंटे--वहां से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। अगर आंख बंद करके सोओ भी तो पता है कि दो लोग वहां मौजूद हैं; वे देख रहे होंगे। नर्क में और कोई तकलीफ नहीं है, उन तीनों को एक ही कमरे में रहना पड़ता है। और तीन दिन के भीतर उसको लगता है कि इससे वह जो पुराना नर्क था, आग में जलाए जाने वाला, वही ज्यादा बेहतर था। यह नया इनवेंशन तो खतरनाक मालूम होता है। कम से कम थोड़ा एक्साइटमेंट तो होता, आग में जलाए जाते, फेंके जाते, कुछ होता! यहां कुछ होता ही नहीं है। बस ये तीनों बैठे हुए हैं एक कमरे में। पूछताछ भी समाप्त हो गई। जैसे कि ट्रेन में मिलते हैं लोग, समाप्त हो जाती है; वेटिंग रूम में मिलते हैं, कहां जा रहे हैं, क्या है, बात खतम हो जाती है; फिर लोग अपने टाइम-टेबल को दुबारा पढ़ने लगते हैं, तिबारा पढ़ने लगते हैं। सब खतम हो गई बातचीत, हो गई जानकारी, पहचान हो गई, अब कोई उपाय नहीं रहा। तीन दिन में उसे पता चलता है कि यह तो महा नर्क है, और किसी बहुत ही शैतान की ईजाद है। पुराना शैतान इतना आविष्कारक नहीं था।

वे दो प्रेमी जब एक ही कमरे में बंद कर दिए जाते हैं, तीन दिन में प्रेम नर्क हो जाता है। हो जाने वाला है। उसका कारण प्रेम का कोई कसूर नहीं है। उसका कारण पंजों के बल खड़े होने की चेष्टा है। इस जगत में तब तक विवाह सफल नहीं हो सकता, जब तक लोग दिखाने की कोशिश नहीं छोड़ते। तब तक विवाह असफलता रहेगी। जब तक लोग दिखाने की कोशिश नहीं छोड़ते, तब तक इस दुनिया में परिवार स्वर्ग नहीं हो सकता, तब तक मित्रता में जहर रहेगा, तब तक सब संबंध रोग पैदा करेंगे। क्योंकि जो भी हम दिखाने की कोशिश करते हैं, वह ज्यादा देर नहीं चल सकता। मैं जो हूं, वह मैं सदा हो सकता हूं। जो मैं दिखाने की कोशिश करता हूं, वह मैं कभी-कभी हो सकता हूं। वह मैं कभी-कभी हो सकता हूं। और वह होना कष्टपूर्ण होगा। उस होने में मुझे चेष्टा करनी पड़ेगी। चेष्टा श्रम लाएगी। और जिसके लिए मुझे चेष्टा करनी पड़ेगी, उसके प्रति मेरा सदभाव नष्ट हो जाएगा।

आदमी जैसा है, वैसे की स्वीकृति ताओ है। और उस स्वीकृति से भी जीवन में गति आती है। यह मत सोचना कि उससे गति बंद हो जाती है। उससे भी गति आती है। लेकिन गति में कोई तनाव नहीं होता। तब आदमी जैसा है, उसमें से ही बहाव निकलता है। अभी हमें खींचना पड़ता है अपने को। इस खींचने के लिए दो तरकीबें काम में लाई जाती हैं--या तो पीछे से हमें धक्का दिया जाए, या आगे से हमें रस्सियां बांध कर खींचा जाए। हमारी सब गतियां ऐसी हैं। या तो पीछे से कोई हमें धक्का दे रहा हो।

मां-बाप बेटे को धक्का देते रहते हैं कि पढ़ो-लिखो, पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब। नवाब की क्या हालत है, यह किसी को प्रयोजन ही नहीं है। वे अभी भी कहे चले जा रहे हैं कि पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब। महत्वाकांक्षा! कुछ बन पाओगे--धक्का पीछे से दिया जा रहा है। और जब आदमी खुद योग्य हो गया अपने को धक्का देने में, तो पीछे से खुद को तो धक्का नहीं दिया जा सकता, दूसरे दे सकते हैं, खुद को धक्का देना हो तो महत्वाकांक्षा भविष्य में रखनी पड़ती है। कि अगर आज इतनी मेहनत करता हूं तो कल मुझे यह मिलेगा; एक तारा आकाश में, वहां पहुंच जाऊंगा कभी, अगर मेहनत की तो। तो आदमी फिर दौड़ता है। आगे का तारा खींचता है। दो ही उपाय हैं--या तो पीछे से कोई धक्का दे, या आगे के लिए हम खुद दौड़ें।

लेकिन ये दोनों ही कृत्रिम व्यवस्थाएं हैं। एक और गति है। न कोई पीछे से धक्का दे रहा है, न कोई आगे से खींच रहा है; बल्कि मेरे प्राणों की जो ऊर्जा है, वही बह रही है। मेरे प्राणों की जो ऊर्जा है, वही बह रही है।

हम कहते हैं कि नदी सागर की तरफ बह रही है। यह ठीक नहीं है कहना, नदी के साथ न्याय नहीं है। हमें लगता है, क्योंकि हम नदी की सब अवस्थाएं देखते हैं। लेकिन नदी को सागर का क्या पता है? नदी सिर्फ बह रही है। बहने का नाम नदी है। बहते-बहते सागर में पहुंच जाती है, यह दूसरी बात है। बहते-बहते सागर मिल जाता है, यह दूसरी बात है। लेकिन नदी सागर के लिए बह नहीं रही है।

अगर किसी नदी को हम तैयार कर सकें, प्रशिक्षित कर सकें सागर की तरफ बहने के लिए, तो संभावना कम है कि नदी सागर तक पहुंच पाए। क्योंकि जैसे ही कोई नदी इस कोशिश में पड़ जाएगी कि मुझे सागर पहुंचना है, बहना भूल जाएगी। वह जो सागर पहुंचना है, वह बहने का भूलना हो जाएगा। सागर पहुंचना ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया, बहना कम महत्वपूर्ण हो गया। नदी अपने बहने में आनंदित है। यह आनंद उसे एक दिन सागर पहुंचा देता है।

कली फूल नहीं बनना चाहती, बन जाती है। कली तो जो है है, इस होने से फूल निकल आता है।

जीवन में, मनुष्य के जीवन में भी जो श्रेष्ठतम फूल खिलते हैं--बुद्ध के, कृष्ण के या लाओत्से के--वे बड़े सहज फूल हैं। हम जो बिना खिले रह जाते हैं, उसका कारण यह है कि हम बड़े होशियार हैं। हम बुद्ध से ज्यादा बुद्धिमान हैं, हम लाओत्से से ज्यादा होशियार हैं, वाइज। क्योंकि हम पहले से ही योजना बांधते हैं--कहां पहुंचना है, क्या होना है। मंजिल हम पहले तय करते हैं। अक्सर हम मंजिल तय करने में ही समाप्त हो जाते हैं। मंजिल तो आदमी के भीतर है। अगर कली फूल बनना चाहे तो उसका मतलब हुआ कि फूल कहीं बाहर है, जो कली बनना चाहती है। लेकिन कली तो कली ही हो जाए पूरी तरह तो फूल बन जाएगी। क्योंकि कली के भीतर छिपा है फूल।

इस बात को ठीक से समझ लें। जो भी हम हो सकते हैं, वह हमारे भीतर छिपा है। वह कहीं कोई भविष्य की मंजिल नहीं है, वह अभी और यहीं मौजूद है। इसलिए अगर हम अभी और यहीं अपनी परिपूर्णता में हो जाएं तो हम उसको रस दे रहे हैं जो हमारे भीतर छिपा है। उसको हम सींच रहे हैं, उसको हम पानी दे रहे हैं। अगर मैं अभी और यहीं अपनी परिपूर्णता में हो जाऊं तो मेरे भीतर जो बीज छिपा है, वह प्राण पा रहा है मेरे इस होने से, आनंद पा रहा है, बढ़ रहा है। एक दिन वह खिल जाएगा।

लेकिन हमारे लिए मंजिल कोई बाहरी चीज है। हम सोचते हैं, कुछ होना है। जो मैं हूं नहीं, वह होना है।

लाओत्से कहता है, जो तुम नहीं हो, वह तुम कभी नहीं हो सकोगे। और जो तुम हो, केवल वही तुम हो सकते हो।

लेकिन एक बात और जोड़ देने जैसी हैः जो तुम हो, जरूरी नहीं है कि हो पाओ; चूक भी सकते हो। जो तुम नहीं हो, कभी नहीं हो सकोगे; जो तुम हो, वही हो सकते हो; लेकिन जो तुम हो, उस होने की कोई अनिवार्यता नहीं है, चूक भी सकते हो। कली कली भी रह सकती है; जरूरी नहीं है कि फूल हो। बीज बीज भी रह सकता है; जरूरी नहीं है कि वृक्ष हो। लेकिन गुलाब की कली कोई भी उपाय करे तो कमल का फूल नहीं हो सकती। खतरा यह है कि कमल के फूल होने की चेष्टा में गुलाब की कली कहीं गुलाब होने से भी वंचित न रह जाए। अक्सर वैसा होता है।

आदमी योजना से पीड़ित है। योजना क्या है? और जो मंजिल हम चुनते हैं, वह भी किस लिए चुनते हैं? वह भी हम दिखाते फिरते हैं किसी और को। हमारे आदर्श भी हमारे आभूषण हैं। और हमारे आदर्श भी

हमारेशृंगार से ज्यादा नहीं हैं। दूसरों को हम दिखाते फिरते हैं कि हम क्या हैं, क्या होना चाहते हैं, क्या होने की योजना है।

"जो अपने को दिखाता फिरता है, वह वस्तुतः दीप्तिवान नहीं है।"

अगर दीप्ति है तो लोग देख लेंगे। और लोग न देखें तो दीप्ति के होने में अंतर कहां पड़ता है! अगर आपके घर में दीया जला है तो आपके मकान की खिड़कियों से रोशनी बाहर जाएगी। कोई राहगीर निकलेगा तो देख लेगा। और राहगीर अंधा हो, निकले, अपने में व्यस्त हो, अंधा भी न हो, न देखे, तो दीए के होने में क्या फर्क पड़ता है? और अगर एक राहगीर खड़ा होकर प्रशंसा भी कर जाएगा कि दीया जला है और रोशनी हो रही है, तो इससे दीए को कोई तेल नहीं मिल जाने वाला है। और न यह प्रशंसा दीए की ज्योति को बढ़ा देगी।

हां, हम जरूर ऐसे दीए हैं कि भभक कर जल उठेंगे, अगर कोई कह जाए। उसमें हमारा और तेल, जो थोड़ा-बहुत होगा, चुक जाएगा। और अगर कोई न निकले तो हम अपनी उदासी में डूब कर बुझ जाएंगे। हमें पूरे समय दूसरे का उकसावा चाहिए। हम अपने से नहीं जीते, कोई हमें जिलाने को चाहिए; कोई हमें धक्का देता रहे, कोई हमें सहारा देता रहे, कोई हमें कहता रहे। आप ऐसा मत सोचना कि यह किसी और के संबंध में बात हो रही है। यह आपके ही संबंध में बात हो रही है। जब कोई आपसे कह देता है कि कितने सुंदर हैं, तो भीतर कोई चीज भभक उठती है। जब कोई आपकी तरफ से मुंह फेर लेता है और उसकी आंखें कह जाती हैं कि देखने योग्य कुछ भी नहीं है, तब भीतर कोई ज्योति बुझ जाती है। यह ज्योति आपकी नहीं है, इतना पक्का आप समझ लेना। यह कोई और जलाता है, कोई और बुझाता है। आप लोगों के हाथ के खिलौने हैं। इसको अगर हम धर्म की भाषा में कहें तो कहना होगा, आपके पास अपनी कोई आत्मा नहीं है। आप उधार हैं। आप दूसरों की पूंजी से चल रहे हैं।

इसलिए एक मजे की घटना घटती है, राजनेता जब तक ताकत में होते हैं, आमतौर से मरते नहीं। ऐसा नहीं कि मरते ही नहीं हैं, मरना तो पड़ता ही है, लेकिन आमतौर से मरते नहीं। और राजनैतिक नेता आमतौर से जब तक ताकत में होते हैं, बड़े स्वस्थ होते हैं। लेकिन कोई धक्का लगे उनकी प्रतिष्ठा को, और वे बीमार होना शुरू हो जाते हैं। और उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाए, और उनकी मृत्यु करीब आ जाती है। वह जो चमक और दीप्ति दिखाई पड़ती है, वह उधार है। इसलिए जब भी कोई राजनेता अपने जीवन में जल्दी शिखर छू लेता है, तो मुश्किल में पड़ जाता है। क्योंकि उसके बाद उतरने के सिवाय कोई उपाय नहीं रहता। और हर उतार उसके जीवन को क्षीण कर जाता है। फिर जीने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता।

मनसविद कहते हैं कि लोग अपने कामों से निवृत्त होकर, रिटायर होकर दस साल पहले मर जाते हैं; कम से कम दस साल उनकी उम्र कम हो जाती है--भला वे कुछ भी रहे हों, एक स्कूल में हेड मास्टर ही क्यों न रहे हों। हेड मास्टर ही सही, लेकिन दो-चार सौ बच्चों में तो अकड़ होती ही है। बच्चों के लिए तो हेड मास्टर करीब-करीब परमात्मा ही होता है। और अगर बच्चों से पूछें भी कि परमात्मा कैसा है? तो उनको जो तस्वीर ख्याल में आएगी, वह हेड मास्टर की। और कोई आ नहीं सकती। हेड मास्टर रिटायर हो जाता है, अब कोई बच्चे रास्ते पर नमस्कार नहीं करते। किन्हीं मास्टरों को भी धमका नहीं सकता है, चपरासियों पर रोब नहीं गांठ सकता है। आदत! जीवन-ऊर्जा एकदम फीकी पड़ जाती है। लगता है, बेकार है, अब होने का कोई अर्थ नहीं है।

औरंगजेब ने अपने बाप को बंद कर दिया था जेलखाने में। तो शाहजहां ने खबर भिजवाई कि मेरी आदतों को देखते हुए तू इतना तो कम से कम कर कि तीस बच्चे मुझे दे दे तो मैं उनको पढ़ाने का काम करूं। शाहजहां ने खबर भिजवाई कि मुझे तीस बच्चे दे दे तो मैं एक छोटा मदरसा चलाऊं।

औरंगजेब ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि शाहजहां को सब कुछ होने का, सॉवरिन होने का ऐसा शौक था कि जेलखाने में भी उसको अकेले होने में चैन न पड़ी। तीस बच्चे भिजवाने पड़े। और तब तीस बच्चों के बीच में कुर्सी पर बैठ कर वह फिर दरबार में बैठ गया। तीस बच्चों को पढ़ाने लगा, सिखाने लगा, डांटने-डपटने लगा। फिर सम्राट हो गया।

छोटी क्लास में एक शिक्षक भी सम्राट ही है। क्लासें हैं; छोटी हैं, बड़ी हैं, कोई बहुत फर्क तो पड़ता नहीं। आप चालीस करोड़ की क्लास में बैठे हैं, कि चालीस की क्लास में बैठते हैं, क्या फर्क पड़ता है? जितने हैं, उनके ऊपर आप हैं, बस काफी है। दीवार के बाहर बड़ा जगत है, उससे क्या लेना-देना है! उससे क्या प्रयोजन है!

शाहजहां बीमार था, जेलखाने में स्वस्थ हो गया। प्रसन्न हो गया, काम में उसे मजा आने लगा। ये तीस बच्चों की आंखें फिर दीए में ज्योति डालने लगीं। ज्योति अपनी बिल्कुल नहीं है।

यह जो उधार जीवन है, यह अधार्मिक जीवन है। और इस उधार जीवन का सूत्र क्या है? जो अपने को दिखाता फिरता है, वह समझ ले ठीक से कि उसमें कोई दीप्ति नहीं है। और यह भी समझ ले कि उधार दीप्ति सिर्फ धोखा है। अच्छा हो कि अपनी दीप्ति को खोजने में लगे, बजाय दूसरों की आंखों से दीप्ति चुराए और धोखा पैदा करे। अच्छा हो कि अपना दीया जलाए, बजाय दूसरों के दीए के सामने अपने आईने को करके उसमें दीयों को देखे। हम देख सकते हैं। जरूरी नहीं है कि मेरे मकान की खिड़की में भी दीया जले तो प्रकाश निकले। आपके मकान में निकल रहा हो, मैं अपने मकान की खिड़की पर आईना लगा सकता हूं। और तब यह भी हो सकता है कि राहगीर मेरी खिड़की से ज्यादा प्रकाश को निकलता देखें, बजाए आपकी खिड़की के।

लेकिन आईना सिर्फ धोखा है। हम सब आईने के मकान में रहते हैं। हम अपने चारों तरफ व्यक्तित्व में आईने लगा लेते हैं। उनमें दूसरों की छाया को हम इकट्ठी करते रहते हैं।

इसलिए कोई भी आदमी अपने से श्रेष्ठतर लोगों के पास रहना पसंद नहीं करता। सभी लोग अपने से निकृष्ट लोगों के पास रहना पसंद करते हैं। अपने से नीचे आदमी को खोजना हमेशा अच्छा लगता है। क्योंकि वह जब पास होता है, तो हमारे आईने में अकड़ आ जाती है। श्रेष्ठतर व्यक्ति के पास हम खड़े हों तो हम छोटे पड़ जाते हैं।

जिस व्यक्ति ने यह तय कर लिया कि अब मैं अपने से श्रेष्ठतर व्यक्ति के पास रहूंगा, उसको धर्म की भाषा में शिष्य कहते हैं--डिसाइपल। लेकिन हम गुरुओं से डरते हैं। गुरु के पास होना भी खतरनाक है। इसलिए अगर कोई गुरु हमें समझाए कि गुरु की कोई भी जरूरत नहीं, हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है कि बिल्कुल ठीक। अपने से श्रेष्ठतर के पास होने में हम छोटे मालूम पड़ते हैं। हमारा दीया बुझने लगता है। अपने से निकृष्ट के पास हम श्रेष्ठ मालूम पड़ते हैं।

कोई पति अपने से लंबी पत्नी से शादी करना पसंद नहीं करेगा। कोई पसंद नहीं करेगा। यह हो सकता है, इसी कारण से स्त्रियों की लंबाई लाखों वर्षों में कम हो गई। क्योंकि कोई पुरुष लंबी स्त्री से शादी करना पसंद नहीं करेगा। यह अयोग्यता हो जाएगी। पुरुष अपने से ज्यादा बुद्धिमान स्त्री से भी शादी करना पसंद नहीं करते, अपने से ज्यादा पढ़ी-लिखी स्त्री से भी शादी करना पसंद नहीं करते। क्यों? वह जो पुरुष का अहंकार है, दिन भर बाजार में कुटा-पिटा घर लौटता है, वहां भी पिटाई उसकी हो जाए, असह्य हो जाएगा जीवन। इतनी सुविधा बनाने की उसे हम आज्ञा दे देते हैं, इसीलिए कि दिन भर न मालूम कहां-कहां पिटता है, कितना

कांपिटीशन है, कितनी स्पर्धा है, जगह-जगह अपने से पहाड़ मिल जाते हैं; वहां से लौटता है, घर आकर पत्नी को देख कर बड़ी तृप्ति होती है।

यह जो आदमी का मन है, यह सदा अपने से छोटे लोगों को अपने पास खोजने में लगा रहता है। उधार जिनकी ज्योति है, उनके लिए यही सूत्र है।

जिन्हें अपनी ज्योति खोजनी है, उन्हें निरंतर शिखर की तलाश करनी चाहिए। जिन्हें अपनी ज्योति खोजनी है, उन्हें अपने सब दर्पण तोड़ देने चाहिए। उन्हें नग्न, वे जैसे हैं वैसे ही, अपने को स्वीकार कर लेना चाहिए। सारे वस्त्र हटा कर अपनी नग्नता को जानना उसकी तथ्यता में, फैक्टिसिटी में, जीवन-क्रांति की तरफ पहला कदम है।

"जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है।"

जो स्वयं कोशिश करता है समझाने की कि मैं विख्यात हूं, जो स्वयं कोशिश करता है समझाने की कि मैं सही हूं, उसे खुद भी शक है। असल में, हमारे अपने ही शक हमें परेशान करते हैं। दूसरे के शकों से क्या प्रयोजन है? एक आदमी आकर आपको कह जाता है कि आप चरित्रहीन हैं; अगर आपको खुद भी शक है तो इस आदमी की बात घाव पर पड़ जाएगी। अगर आपको खुद शक नहीं है तो आप इस आदमी पर हंस सकते हैं।

बंगाली के प्रसिद्ध कथाकार हुए शरतचंद्र। एक सदगृहिणी ने जो शरतचंद्र के उपन्यासों से बड़ी प्रभावित थी, एक बहुत कुलीन परिवार की महिला, उसने एक दिन शरतचंद्र को जाकर निमंत्रण दे आई भोजन के लिए। लेकिन शरतचंद्र ने एक किताब लिखी थीः चरित्रहीन। और ऐसे भी शरतचंद्र का चरित्र ऐसा चरित्र नहीं था कि साधारण बुद्धि के लोग उन्हें चरित्रवान कह सकें। उन्हें चरित्रवान कहने के लिए बड़ी असाधारण समझ चाहिए। जिनको हम सब चरित्रवान कह पाते हैं उसका मतलब तो यही है कि जो हमारी समझ से भी चरित्रवान हैं, वे कोई बहुत, कोई बहुत गहरे चरित्रवान नहीं हो सकते। हमारे मापदंड में भी जो चरित्रवान उतर जाते हैं।

तो शरतचंद्र को तो लोग चरित्रहीन ही समझते थे। जैसे ही घर में पता चला कि गृहिणी निमंत्रण कर आई है तो नौकरानी ने उसकी सास को कहा कि यह चरित्रहीन चटर्जी को निमंत्रण कर आई; ऐसे आदमी को घर में घुसने भी नहीं देना चाहिए। तो सास ने तो कहा कि इसी वक्त जाकर और इनकार कर आओ; कहना कि मेरी सास की तबीयत खराब हो गई। उसने बहुत समझाया कि यह पागल है; और फिर एक दफा भोजन ही की बात है, आधा घंटा--चरित्रहीन ही सही--भोजन करके चले जाएंगे; निमंत्रण दिया है, अब जाकर मना करूं, बहुत अशोभन है। फिर उसके मन में बहुत आदर भी था। लेकिन कोई तरह सास राजी न हुई तो उसे जाना पड़ा। लेकिन आदर इतना था शरत बाबू के प्रति कि उसने झूठ बोलना ठीक न समझा। उसने सारी घटना ऐसी ही बता दी कि नौकरानी ने खबर दे दी है कि आप चरित्रहीन हैं और मेरी सास छाती पीट रही है, रो रही है। और अब असंभव है आपको ले जाना।

शरतचंद्र खूब हंसे। और उन्होंने कहा कि बिल्कुल बेफिक्र रह। और तो और है, पत्नी को भीतर से बुलाया और कहा कि इससे मैंने विधिवत विवाह किया है, फिर भी लोग कहते हैं मेरी रखैल है। इससे मैंने विधिवत विवाह किया है, फिर भी लोग कहते हैं मेरी रखैल है। तो उस महिला ने कहा कि आप इसका प्रतिवाद क्यों नहीं करते? तो शरतचंद्र ने कहा, अगर मुझे शक होता तो प्रतिवाद करता। अब मैंने विधिवत विवाह किया है, अब इसमें और क्या प्रतिवाद करना है? और जिनको मेरी विधि और मेरा विवाह जिनको आश्वस्त नहीं कर पाया, मेरा औचित्य उन्हें आश्वस्त कर पाएगा, इस वंचना में पड़ने का कारण क्या है? शरतचंद्र ने कहा कि हम जो मानना चाहते हैं, वह हम मान ही लेंगे। किसी का औचित्य बहुत फर्क नहीं कर पाता।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब भी अपने घर लौटता था तो पत्नी उसके कपड़ों पर बाल खोजती थी। अक्सर मिल जाते थे। मुल्ला शौकीन आदमी था। तो कलह निरंतर होती थी। आखिर मुल्ला ने सोचा इतनी सी ही बात से तो चरित्र का सब तय होता है, तो एक दिन घर आने के पहले एक लांड्री में जाकर उसने सारे कपड़ों पर ब्रश करवा कर सब तरह से सफाई करवा दी, और फिर घर लौटा। उसने सोचा, आज तो पक्का है कि कोई कलह का कारण नहीं है। उसकी पत्नी ने उसके सारे कपड़े देखे, छाती पीट कर रोना शुरू कर दिया और कहा कि अब तुमने गंजे सिर की स्त्रियों से भी प्रेम करना शुरू कर दिया! किसी बात की हद होती है, उसकी पत्नी ने कहा।

आदमी जो मानना चाहता है, मानता ही रहता है। कोई तर्क बहुत फर्क नहीं कर पाते। हां, उचित सिद्ध करने की चेष्टा में व्यक्ति अपने संदेहों को प्रकट कर देता है।

तो लाओत्से कहता है, "जो स्वयं अपना औचित्य बताता है, वह विख्यात नहीं है। जो अपनी डींग हांकता है, वह श्रेय से वंचित रह जाता है। जो घमंड करता है, वह लोगों में कभी अग्रणी नहीं हो पाता। ताओ की दृष्टि में उन्हें सदगुणों के तलछट और फोड़े कहते हैं।"

किन चीजों को? जो चीजें लाओत्से ने ऊपर गिनाई हैं। तनाव से भरा हुआ व्यक्ति, जो अपने को दिखाता फिरे ऐसा व्यक्ति, जो अपना औचित्य सिद्ध करे ऐसा व्यक्ति, जो डींग हांके, जो घमंड करे ऐसा व्यक्ति, इसे लाओत्से कहता है, ये सदगुणों के तलछट और फोड़े हैं। ऐसा व्यक्ति सदगुणी नहीं है।

लेकिन हम तो जिनको भी सदगुणी मानते हैं, वे इसी तरह के व्यक्ति होते हैं। आपको अपने त्याग का भी प्रचार करना पड़ता है, तो लोग आपको त्यागी मानते हैं। जरूरी नहीं है कि आपने त्याग किया ही हो, ठीक प्रचार जरूरी है। अगर आप अपने सदगुणों की खुद ही चर्चा नहीं करते हैं तो कोई आपके सदगुणों की चर्चा करने वाला नहीं है। लोगों को अपने सदगुणों की चर्चा से फुर्सत मिले तो आपके सदगुणों की भी चर्चा करें। और जहां सब अपने में उत्सुक हैं, किसको फिक्र है कि आप में सदगुण भी हैं! तो हर आदमी को अपना ही प्रचार करना पड़ता है। प्रचार ठीक से आप करें, यही जरूरी मालूम पड़ता है--जैसे समाज में हम जीते हैं, जहां हम जीते हैं। अगर लोग नहीं मान पाते हैं तो उसका मतलब ही है कि प्रचार में कोई त्रुटि रह गई। अगर फिर भी लोग पता लगा लेते हैं तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि आपके प्रचार की जो संरचना है, वह भूल भरी है। ठीक प्रचार करने पर लोग मानेंगे ही। लोग मानते ही उसी बात को हैं, जिसको उनके मस्तिष्क पर ठोंका जाता है और प्रचार किया जाता है। हमारे सदगुणी, हमारे महात्मा, हमारे साधु, हमारे चरित्रवान, हमारे नीतिनिष्ठ व्यक्ति, हम अपने प्रचार को हटा लें, फिर कहां खड़े रह जाएंगे? बहुत अजीब है, हम प्रचार से जीते हैं।

मैंने सुना, गुजरात के एक बड़े समाजसेवी, ठक्कर बापा, एक ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। गांधीजी के अनुयायी थे, इसलिए थर्ड क्लास में चलते थे। बड़ी भीड़-भाड़ थी, बामुश्किल तो अंदर हो पाए। बंबई की तरफ आते थे। एक मोटा आदमी पूरी सीट पर कब्जा किए लेटा हुआ था। बीसों लोग खड़े हैं, स्त्रियां, बच्चे खड़े हैं। बड़ी भीड़, बड़ी गर्मी! और वह आदमी पूरी सीट रोके हुए अपना अखबार पढ़ रहा है। ठक्कर बापा ने उसे कहा कि मैं बूढ़ा आदमी हूं, अगर थोड़ी जगह दे दें। उसने कहा, चुप रह बूढ़े, फिजूल गड़बड़ मत कर। अखबार पढ़ कर वह अपने बगल वाले आदमी से कहता है कि कल बंबई में ठक्कर बापा का व्याख्यान है; सुनना है मुझे भी।

और ठक्कर बापा उसके पास खड़े हैं! आदमी को मानिए कि अखबार को मानिए? अखबार बड़ी चीज है।

एक जैन बहुत क्रांतिकारी विचारक व्यक्ति थे महात्मा भगवानदीन। वे मेरे एक मित्र के घर नागपुर में मेहमान थे। उन मित्र ने मुझे घटना बताई। आए थे कुछ चंदा करने। कोई एक आश्रम, वृद्ध और विधवाओं का आश्रम चलाते थे। उसके लिए चंदा करने आए थे। तो मित्र से कहा कि मैं चंदा करने आया हूं; और चंदा करने निकल गए। दिन भर मेहनत करके कोई पांच-सात रुपए लेकर लौटे। तो मित्र ने कहा, यह भी हद हो गई, पांच-सात रुपए! तो आपको मालूम नहीं चंदा कैसे किया जाए। कल हम निकलेंगे।

उसके पहले अखबारों में ठीक से खबर निकाली कि महात्मा भगवानदीन कौन हैं, क्या हैं। फिर दस-पांच लोगों की भीड़-भाड़ लेकर लोगों के घर पहुंचे। और फिर एक झूठी फेहरिस्त लेकर पहुंचे, जिसमें दो-चार बड़े आदमियों के नाम थे जिनके नाम के सामने हजार रुपया, किसी के सामने पांच सौ रुपया--वे सब झूठे थे। और जिसकी दुकान पर गए, उसने चार नाम देखे, महात्मा भगवानदीन! उठ कर खड़े हुए, पैर छुए। कई दूकानें तो वे थीं, कल जिन पर वे जाकर चार आने लेकर लौट आए थे। उन्होंने एक सौ एक रुपया, किसी ने दो सौ एक रुपया दिए।

कल जो आदमी आया था, वह महात्मा भगवानदीन नहीं था। आज जो आदमी आया है, बड़ा महात्मा है। और हम आदमी को थोड़े ही देते हैं, हम प्रचार को देते हैं। हम सबको लगता ही है ऐसा कि हम आदमियों से संबंधित हैं; हम प्रचार से संबंधित हैं।

मैं एक विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। तो पहला ही वर्ष था मेरा और बुद्ध-जयंती आई। तो उस विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर ने व्याख्यान दिया और उन्होंने कहा कि मेरे मन में एक पीड़ा हमेशा बनी रहती है। जब भी बुद्ध का नाम आता है, तब मुझे ऐसा लगता है कि काश, हम उनके जमाने में होते तो उनके चरणों में बैठ कर कुछ सीखते! मैं उठ कर खड़ा हो गया और मैंने उनसे कहा कि आप इस पर फिर से सोचें। जहां तक मैं समझता हूं, आप बुद्ध के जमाने में होते तो आप आखिरी आदमी होते उनके चरणों में जाने वाले। उन्होंने कहा, क्या मतलब? तो मैंने कहा, आपको कम से कम ढाई हजार साल का प्रचार चाहिए पहले--कि बुद्ध! ढाई हजार साल का प्रचार है, तब आपको ऐसा ख्याल उठ रहा है।

मैंने उनसे पूछा कि इस जमाने में किस जाग्रत व्यक्ति के चरणों में जाकर आप बैठे हैं? या तो आप यह कहिए कि कोई जाग्रत व्यक्ति है ही नहीं। छोड़िए जाग्रत व्यक्ति को। आपसे भी कोई श्रेष्ठ व्यक्ति इस जमीन पर इस समय है? वे थोड़ा बेचैन हुए। मैंने कहा, आप ढाई हजार साल बाद फिर पैदा होकर इसी तरह सिर पीटेंगे कि काश, उस वक्त हम होते तो चरणों में जाकर बैठते। चरणों में बैठने की आपकी वृत्ति नहीं है। लेकिन ढाई हजार साल का लंबा प्रचार है। तो बुद्ध, बुद्ध से आपकी कोई पहचान नहीं हो सकती, प्रचार से संबंध है।

जिन्होंने जीसस को सूली लगाई, उन्हें जरा भी नहीं लगा कि कोई खास आदमी को सूली लगा रहे हैं। और अब वे पैदा हो जाएं तो वे सोचेंगे कि काश, जीसस के वक्त में होते तो चरणों में बैठ कर अमृत मिल जाता। और यही उनको सूली लगाने वाले थे! एक लाख आदमी इकट्ठा था जीसस को सूली लगाते वक्त, एक को नहीं लगा कि किसी आदमी को हम मार रहे हैं जिसके चरणों में बैठ कर--लोग कभी तड़पेंगे जिसके चरणों में बैठने को। लेकिन चरणों से हमें मतलब नहीं, चरणों का प्रचार चाहिए।

केंडी में, श्रीलंका में केंडी के मंदिर में एक दांत रखा हुआ है। उसको लोग हजारों साल से सिर झुका रहे हैं। ख्याल है कि वह बुद्ध का दांत है। और यह सिर्फ प्रचार है। क्योंकि उसकी खोज-बीन हुई तो पता चला कि वह आदमी का भी दांत नहीं है; बुद्ध का तो हो ही नहीं सकता। वह दांत किसी जानवर का है। लेकिन वे जो लाखों लोग सिर झुका रहे हैं, उनको दांत से थोड़े ही मतलब है, प्रचार से मतलब है। हम जीते हैं प्रचार से।

और लाओत्से कहता है, यह जो, यह जो वृत्ति है सतह पर नीति, आचरण, साधुता, सबको तौल लेने की, इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। यह तो सदगुणों का तलछट है। यह तो सदगुण तो कहीं दूर हैं बहुत, यह तो कचरा-कूड़ा है, जो बचा हुआ है। इसका कोई संबंध नहीं है सदगुणों से। और न केवल यह कचरा है, बल्कि ये फोड़े हैं। तो जिनको आप पूजते हैं जिस सदगुण के कारण, उस सदगुण के कारण उस आदमी को कोई आनंद नहीं मिल रहा है और आप पूजा कर रहे हैं। ये फोड़े होने का यह मतलब है, उनको दुख रहा है।

मैं ऐसे बहुत साधुओं को जानता हूं, जिनके हजारों भक्त हैं। और उन साधुओं से जब मैं मिला हूं तो अकेले में वे मुझसे कहते हैं कि अभी हमें ध्यान नहीं हुआ, कोई रास्ता बताएं। और हजारों हैं जो सोच रहे हैं, इनके चरणों में बैठ कर उनको ध्यान हो जाने वाला है।

यहां बंबई में कोई दस वर्ष पहले एक बड़े साधु के साथ मैं बोल रहा था। उन्होंने आत्मज्ञान पर बड़ी अदभुत बातें कहीं। जानते थे सभी कुछ, जिसको जानने में कोई अड़चन नहीं है। पीछे मैं बोला। और जब वे जाने लगे तो मैंने उनसे बहुत धीरे से कहा कि आपने जो भी कहा है, उसका आपको पता नहीं है। पता होता तो कोई झगड़ा ही नहीं था; लेकिन उनको भी पता तो था ही कि पता नहीं है।

चोट लग गई, नाराज दिखाई पड़े और कहा कि आपने ऐसा कैसे कह दिया? मैंने कहा कि अब आप सोचना। मैंने कह दिया, अब आप सोचना। रात भर सो नहीं सके। उनको बेचैनी रही। पर आदमी ईमानदार थे। दूसरे दिन सुबह उन्होंने मुझे बुलवाया।

यह देख कर कि मैं जा रहा हूं, दस-बीस उनके भक्त इकट्ठे हो गए। पर उन्होंने कहा, मैं तो अकेले में ही मिलना चाहता हूं। सो दरवाजे बंद कर लिए। और तब वे मुझसे बोले कि साठ साल का मैं हो गया, मुझसे कभी किसी ने यह कहा ही नहीं कि आपको पता नहीं है। सब मानते हैं कि मुझे पता है। और धीरे-धीरे मैं भी भूल गया था कि मुझे पता नहीं है। कल अचानक चौंका दिया आपने। इसलिए पहले तो क्रोध आया, फिर रात मैंने सोचा कि क्रोध का क्या प्रयोजन है, पता तो मुझे नहीं है। फिर मैंने कहा कि अगर ठीक सच में ही समझ में आ गया तो दरवाजा खोल दें और वे जो बीस-पच्चीस आदमी बाहर बैठे हैं, उनको भी भीतर बुला लें।

उन्होंने कहा, क्या कहते हैं आप, सब प्रतिष्ठा पानी में मिल जाएगी! वे मानते हैं कि मुझे पता है, इसीलिए तो सारी प्रतिष्ठा है। पर मुझे कोई रास्ता बता दें।

लेकिन यह भी वे चोरी में ही पूछते हैं! मैंने कहा कि रास्ते की शुरुआत हो जाएगी, उन लोगों को बुला लें, उनके सामने ही पूछें। इतनी भी हिम्मत नहीं थी कि उनको सामने बुला कर पूछ लें।

जो साधु समझाते हैं लोगों को ब्रह्मचर्य पर, एकांत में मुझे मिलते हैं, वे पूछते हैं, ब्रह्मचर्य कैसे सधे, सधता तो नहीं। और जितना कम सधता है, उतना व्याख्यान में ज्यादा जोर लगाते हैं कि ब्रह्मचर्य साधो! वे आपको कम समझा रहे हैं, खुद को ज्यादा समझा रहे हैं। चौबीस घंटे ब्रह्मचर्य की बात करते रहेंगे। लेकिन भीतर फोड़ा है वह उनका। आप समझ रहे हैं वे उपदेश कर रहे हैं; वह उनका फोड़ा है। यह मवाद बह रही है फोड़े से। यह उनका दुख है भीतर। आदमी अपने को धोखा देने में अति कुशल है। वह यह भी मानने को राजी नहीं होता कि मैं बीमार हूं। इसमें भी तकलीफ होती है मानने में कि मैं बीमार हूं। वह कहता है, हूं तो मैं स्वस्थ, लेकिन दवा दे दें--अगर कोई दवा हो। लेकिन स्वस्थ की कोई दवा होती है? बीमारी स्वीकार करना आवश्यक है।

आपने कभी ख्याल किया, इसको सूत्र समझ लें, कि जो सदगुण आपको आनंद न देता हो वह सदगुण आपके लिए फोड़ा है। लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि हम ईमानदार हैं, लेकिन कष्ट भोग रहे हैं। ईमानदार हैं

तो कष्ट कैसा? वे कहते हैं, बेईमान बड़ा मजा कर रहे हैं। ईमानदार कष्ट भोग रहे हैं, बेईमान बड़ा मजा कर रहे हैं।

मत भोगें ऐसा कष्ट, बेईमान हो जाएं। यह ईमानदारी झूठी है, यह तलछट है; यह सदगुण नहीं है, यह फोड़ा है। इससे कुछ मिलता नहीं है। मजा यह है कि यह फोड़ा ऐसा है कि इससे बेईमान भी ज्यादा लाभ में है, यह मालूम पड़ता है। यह आश्चर्य की बात है!

एक आदमी कहता है कि हम सत्य बोलते हैं और दुख पाते हैं, और झूठ बोलने वाले आगे बढ़े जा रहे हैं!

अगर सत्य बोलना काफी नहीं है आनंद के लिए तो यह सत्य फोड़ा है। तब इसका मतलब केवल इतना ही है कि आप में झूठ बोलने की भी हिम्मत नहीं है, इसलिए झूठ भी नहीं बोलते। लेकिन झूठ बोलने से जो मिलता है, उसका लोभ आपको सता रहा है। वह आप चाहते हैं। बड़े बेईमान हैं, बेईमान से भी ज्यादा बेईमान हैं।

बेईमान बेईमानी करता है और बेईमानी से जो मिलता है वह पाता है। आप बेईमानी भी नहीं कर सकते, उतनी भी हिम्मत नहीं, ईमानदार होने का ढोंग भी जारी रखते हैं और बेईमानी से जो मिलता है वह भी पाना चाहते हैं। आपकी चालाकी ज्यादा है, आप ज्यादा कर्निंग हैं। बेईमान का हिसाब साफ है। बेईमान मुझे कभी कहता नहीं मिलता कि हम इतनी बेईमानी कर रहे हैं, फिर भी सुख नहीं पा रहे और फलां ईमानदार आदमी सुख पा रहा है। बेईमान कहता ही नहीं है यह। बेईमान कभी नहीं कहता कि हम इतनी बेईमानी करके भी सुख नहीं पा रहे हैं और फलां ईमानदार आदमी सुख पा रहा है, बिना ही बेईमानी किए।

असल में, ईमानदार आदमी सुखी दिखाई नहीं पड़ता। बेईमान को लगता है कि वह हम से भी ज्यादा दुख पा रहा है। कोई ईमानदार आदमी सुखी दिखाई नहीं पड़ता। और जिस आदमी की ईमानदारी सुख नहीं है, उसकी ईमानदारी फोड़ा है। जो आदमी सच में सदगुण में जीता है, उसके लिए इस जगत में कोई तुलना नहीं है फिर किसी से। फिर उसके सामने कोई स्वर्ग को लाकर रख दे और कह दे कि तू सच बोलना छोड़ दे और स्वर्ग ले ले। तो वह कहेगा, अपना स्वर्ग ले जाओ अपने साथ, क्योंकि मेरे लिए सत्य बोलना ही स्वर्ग है। और अगर सत्य बोलना स्वर्ग नहीं है तो कोई स्वर्ग स्वर्ग सिद्ध नहीं हो सकता।

लेकिन हमसे कोई स्वर्ग तो बहुत दूर की बात है, नए ढंग का नरक भी बता दे तो हम झूठ बोलने को तैयार हैं। कम से कम नए ढंग का नरक तो है; पुराने से छुटकारा हुआ, इसको ग्रहण करें, थोड़ी राहत तो मिलेगी।

लाओत्से इसको फोड़ा कहता है, सदगुण को फोड़ा--जैसे सदगुण हम जानते हैं। लेकिन फोड़ा कहने का प्रयोजन इतना ही है कि आपके भीतर, फोड़े का क्या मतलब होता है कि आपके व्यक्तित्व की, आपके प्राणों की जो व्यवस्था है, उसमें कोई फारेन एलीमेंट, कोई विजातीय तत्व खटकता है। स्वास्थ्य का अर्थ है, कोई विजातीय तत्व खटकता नहीं है; आप एक गहरी संगीत की व्यवस्था में हैं, एक लयबद्ध; कोई चीज खटकती नहीं।

लेकिन ऐसा तभी हो सकता है, जब व्यक्ति के सदगुण दूसरों को दिखाने के निमित्त नहीं, अपने आनंद से निष्पन्न हुए हों। और ऐसे सदगुण तभी फलित हो सकते हैं, जब उन्हें पूरा करने के लिए हमने अपने ऊपर जबरदस्ती दबाव न डाला हो, बल्कि अपनी सहजता के प्रवाह में उन्हें उपलब्ध किया हो। अगर कोई आदमी सहज बहे और एक दफा जिंदगी में बेईमानी भी आ जाए, तो हर्जा नहीं है; क्योंकि सहज बहने वाला बेईमानी में ज्यादा देर नहीं रह सकता। क्योंकि बेईमानी इतनी असहज है। कभी आपने झूठ बोला? एकाध दफे बोला हो तो ही ख्याल में आएगा; रोज बोला हो तो फिर बिल्कुल ख्याल में नहीं आएगा। अगर आपने एकाध दफे झूठ

बोला हो तो आपको पता चलेगा कि आपको उस झूठ के लिए अब जिंदगी भर झूठ बोलना पड़ेगा। वह इतना असहज है! और अब आप किससे क्या कहते हैं, वह ख्याल रखना पड़ेगा। क्योंकि वह एक झूठ, जो आप बोल दिए हैं, अब उसके हिसाब से आपको सब बोलना पड़ेगा। आपकी सारी जिंदगी झूठ हो जाएगी। झूठ इतना असहज है, झूठ को याद रखना पड़ता है।

इसलिए ध्यान रखें, जिनकी स्मृति कमजोर है, उनको झूठ नहीं बोलना चाहिए। झूठ बोलने के लिए बड़ी गहरी स्मृति चाहिए। इसलिए अक्सर स्मृति जिनकी कमजोर है, वे ईमानदार रहते हैं। उसका कारण यह नहीं है; झूठ बोलने में झंझट है, उसमें बड़ा हिसाब रखना पड़ता है। वह शतरंज का खेल है, उसमें कई चालें आगे की भी याद रखनी पड़ती हैं। सच बोल कर भूला जा सकता है; सच को याद रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। इसलिए सच का कोई बोझ नहीं पड़ता। इसलिए जितना सच्चा आदमी होता है, उसके मन पर उतना कम बोझ होता है। जितना झूठा आदमी होता है, उसके मन पर बोझ बढ़ता चला जाता है। पहाड़ खड़े हो जाते हैं। हजारों झूठों का बोझ उसको पूरा तना हुआ रखता है। फोड़ा बन जाता है।

अगर कोई सच को सहजता से बोल रहा है तो उसके जीवन में फोड़े नहीं होंगे। अगर ईमानदारी को कोई सहजता से जी रहा है तो उसके जीवन में फोड़े नहीं होंगे।

एक अमरीकी मनसविद, फ्रेडरिक पर्ल्स ने अपनी मृत्यु के पहले--अभी उसकी मृत्यु हुई--एक छोटा सा कम्यून बनाया था। उस कम्यून में जितने परिवार थे, दस-पांच मित्रों के परिवार थे, उस कम्यून का एक मोटो बनाया था। वह आदमी मर गया। पता नहीं, वह कम्यून चल सकेगा, नहीं चल सकेगा। लेकिन वह मोटो मुझे बहुत पसंद पड़ा। इतना ही सहज हो तो जीवन में प्रेम का फूल खिल सकता है। मोटो यह था, पर्ल्स ने अपने कम्यून के दरवाजे पर लिख रखा थाः आई एम आई; यू आर यू। इफ आई कैन लव यू, इट इ.ज ब्यूटीफुल; इफ यू कैन लव मी, इट इ.ज ब्यूटीफुल; इफ आई कैननाट लव यू, आई एम हेल्पलेस; इफ यू कैननाट लव मी, यू आर हेल्पलेस। मैं मैं हूं, तुम तुम हो; यदि मैं तुम्हें प्रेम कर पाऊं, सुखद है; यदि तुम मुझे प्रेम कर पाओ, सुखद है; यदि मैं तुम्हें प्रेम न कर पाऊं तो असहाय हूं; यदि तुम मुझे प्रेम न कर पाओ तो असहाय हो। और कुछ भी नहीं किया जा सकता।

यह परिवारों के लिए सूत्र। लेकिन इतनी सरलता से अगर आप किसी को प्रेम करें तो आपका प्रेम घाव नहीं बनेगा। कर पाएं तो सुंदर है; न कर पाएं तो आदमी असहाय है। खिल जाए प्रेम, सुखद है; न खिल पाए तो चेष्टा से खिलाने का कोई उपाय नहीं है। यह मतलब है असहाय होने का--आई एम हेल्पलेस। अगर मैं आपको प्रेम कर पाऊं तो ठीक है; न कर पाऊं तो चेष्टा से करने का कोई उपाय नहीं है। और अगर चेष्टा से करूंगा तो सब जहर हो जाएगा। फिर मैं खड़ा हो गया अपने पंजों के बल।

और जिस जीवन में प्रेम भी सहज नहीं है, उस जीवन में कुछ भी सहज नहीं हो सकता, ध्यान रखना। जिसके जीवन में प्रेम सहज नहीं है, पैसा कैसे सहज होगा? पैसा तो अनिवार्य रूप से असहज चीज है। प्रेम अनिवार्य रूप से सहज चीज है। जिनका प्रेम तक तनाव है, उनका सब तनावग्रस्त हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, "ये हैं सदगुण के तलछट और फोड़े। वे जुगुप्सा पैदा करने वाली चीजें हैं।"

घृणा पैदा करने वाली चीजें हैं। बड़ी हैरानी की बात लाओत्से कहता है। वह कहता है, जब सदगुण फोड़ा होता है, तो उससे ज्यादा जुगुप्सा, उससे ज्यादा घृणा-उत्पादक और कोई चीज नहीं होती। यह होगा भी। क्योंकि चीजें विपरीत से जुड़ी होती हैं। प्रेम से ज्यादा सुंदर इस जगत में कोई भी चीज नहीं है; लेकिन प्रेम जहां अभिनय है, प्रेम जहां असत्य है, वहां प्रेम से ज्यादा कुरूप चीज भी खोजनी असंभव है। वे जुगुप्सा पैदा करती

हैं। जहां सदगुण फोड़े की तरह मवाद से भरे होते हैं, और जहां साधु सिर्फ छिपे हुए असाधु होते हैं, और जहां वस्त्रों के सिवाय सफाई भीतर कहीं भी नहीं होती, और जहां आत्मा भी अपनी नहीं, उधार होती है, दूसरों से मांग कर भिक्षा-पात्र में जहां आत्मा इकट्ठी करनी पड़ती है, उससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करने वाली और कोई चीजें नहीं होंगी।

इसका मतलब यह हुआ कि एक बार एक अपराधी भी सुंदर हो सकता है, लेकिन झूठा साधु सुंदर नहीं हो सकता। एक बार क्रोध में भी एक त्वरा और चमक हो सकती है, लेकिन झूठे, चेष्टित प्रेम में उतनी चमक भी नहीं होती। एक बार क्रोध भी ताजा हो सकता है, लेकिन चेष्टा से दिखाया गया प्रेम सदा बासा होता है। और प्रेम जब बासा होता है तो जितनी दुर्गंध देता है, उतना ताजा क्रोध भी नहीं देता। ताजगी क्रोध की भी भली है, और बासापन प्रेम का भी बुरा है। जब प्रेम ताजा होता है, तब की बात ही करनी उचित नहीं है। जब प्रेम ताजा होता है, तब की बात ही करनी उचित नहीं है। और जब क्रोध भी बासा होता है, तब आदमी बिल्कुल मुर्दा है। कब्र है, आदमी नहीं है।

जीसस ने कहा है, तुम सफेदी से पोते गए ताबूत हो; कब्रें हो सफेदी से पोती गई। तुम्हारी सफेदी ऊपर है, भीतर सब सड़ रहा है।

हमारे सदगुण ऊपर से पोती गई सफेदी हैं अगर, तो लाओत्से कहता है, इससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करने वाली और कोई चीज नहीं।

"इसलिए ताओ का प्रेमी उनसे दूर ही रहता है।"

ताओ का प्रेमी ऐसे सदगुणों से दूर रहता है। क्योंकि ताओ का प्रेमी उस सदगुण के लिए ही आतुर होता है, जो सहज विकसित होता है और खिलता है; जो एक बहाव है, जो लाया नहीं जाता; जिसको खींच कर लाने का कोई मार्ग नहीं है; जिसके लिए सिर्फ हृदय के द्वार खोल देने पड़ते हैं, और जो आता है। आप उसे आने दे सकते हैं, ला नहीं सकते।

करीब-करीब ऐसा जैसे सूरज बाहर निकला हो, मैं अपना द्वार खोल दूं और उसकी किरणें भीतर आ जाएं। मैं आने दे सकता हूं। मैं अपना द्वार बंद कर दूं, सूरज बाहर रहा आए, उसकी किरणें द्वार से टकराएं और वापस लौट जाएं। मैं सूरज को आने से रोक भी सकता हूं। लेकिन मैं सूरज को ला नहीं सकता। रोक सकता हूं, आने दे सकता हूं, लेकिन ला नहीं सकता। कोई सूरज की किरणों को पोटली में बांध कर लाने का उपाय नहीं है। और अगर आपने बांधा भी, पोटली भीतर आ जाएगी, किरणें बाहर ही रह जाएंगी। और तब उस खाली पोटली को आप अगर रखे बैठे रहें तो इससे ज्यादा जुगुप्सा पैदा करने वाली और कोई स्थिति नहीं है।

आज इतना ही। रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

बावनवां प्रवचन

वर्तुलाकार अस्तित्व में यात्रा प्रतियात्रा भी है

Chapter 25 : Part 1

The Four Eternal Models

Before the Heaven and Earth existed
There was something nebulous:
Silent, isolated,
Standing alone, changing not,
Eternally revolving without fail,
Worthy to be the Mother of all things.
I do not know its name,
And address it as Tao.
If forced to give it a name, I shall call it "Great".
Being great implies reaching out in space,
Reaching out in space implies far-reaching,
Far-reaching implies reversion to the original point.

अध्याय 25 : खंड 1

चार शाश्वत आदर्श

स्वर्ग और पृथ्वी के अस्तित्व में आने के पूर्व
सब कुछ कोहरे से भरा थाः
मौन, पृथक,
एकाकी खड़ा और अपरिवर्तित,
नित्य व निरंतर घूमता हुआ,
सभी चीजों की जननी बनने योग्य!
मैं उसका नाम नहीं जानता हूं,
और उसे ताओ कह कर पुकारता हूं।
यदि मुझे नाम देना ही पड़े तो मैं उसे महान कहूंगा।

महान होने का अर्थ है अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता,
और अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी,
यही दूरगामिता मूल बिंदु की ओर प्रतिगामिता भी है।

लाओत्से, जीवन का जो परम रहस्य है, उसे नाम देने के पक्ष में नहीं। नाम देते ही हम उससे वंचित होना शुरू हो जाते हैं। नाम देना उससे बचने का उपाय है, उसे जानने का नहीं। लेकिन हम सब यही सोचते हैं कि नाम दे दिया उसे तो जान लिया। इसके कारणों को समझना जरूरी है।

हम अपने पूरे जीवन में नाम देने को ही ज्ञान मानते हैं। एक बच्चा पूछता है सामने खड़े पशु को देख कर, क्या है? और हम कहते हैं, गाय है। या हम कहते हैं कुत्ता, या हम कहते हैं घोड़ा। और बच्चा नाम सीख लेता है। इस सीखने को ही वह जानना मानेगा। जो हमारा ज्ञान है, वह इसी तरह सीखे गए नाम हैं। न हम गाय को जानते हैं, न हम घोड़े को जानते हैं। हम नाम जानते हैं, हम लेबल लगाना जानते हैं। और जो आदमी जितने ज्यादा लेबल पहचानता है, उतना बड़ा ज्ञानी समझा जाता है।

यह नाम जान लेना भी बड़े मजे की बात है। क्योंकि न तो गाय कहती है कि उसका नाम गाय है, और न घोड़ा कहता है कि उसका नाम घोड़ा है। हमने ही दिए हैं नाम और फिर हम ही उन नामों से परिचित होकर ज्ञानी हो जाते हैं। वह जो अस्तित्व है, अपरिचित ही रह जाता है, अनजाना रह जाता है।

अब्राहम मैसलो ने एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मैं जिस विश्वविद्यालय में पढ़ता था, उस विश्वविद्यालय में एक बहुत बड़े ज्ञानी प्रोफेसर थे। और उनको चीजों को नाम देने की और हर चीज को व्यवस्थित करने की ऐसी विक्षिप्त आदत थी कि अखबार भी पुराने वे तारीखें-नाम लगा कर फाइल करते जाते थे। दाढ़ी बनाने का ब्लेड भी जब खराब हो जाए, तो किस तारीख को शुरू किया और किस तारीख को खराब हुआ, वे लेबल लगा कर सम्हाल कर रख देते थे। मैसलो ने लिखा है कि एक दिन वह उनके घर गया तो उसने पियानो का ढक्कन उठा कर देखा, तो उसमें नीचे बड़े अक्षरों में लिखा था--पियानो।

यह प्रोफेसर हमें पागल मालूम पड़ेगा। लेकिन अगर यह पागल है तो हम भी थोड़ी मात्रा में पागल हैं। वह अंतिम सीमा तक चला गया। कुर्सी पर लिखा हुआ है कुर्सी, दरवाजे पर लिखा हुआ है दरवाजा; यह हमें पागल मालूम पड़ता है। लेकिन हमारा ज्ञान भी और क्या है? हमारा सारा ज्ञान नामकरण है, लेबलिंग। और हमने--मजा यह है कि उस प्रोफेसर ने तो पियानो पर लिखा कि पियानो, दरवाजे पर लिखा दरवाजा, कुर्सी पर लिखा कुर्सी--हमने ईश्वर पर भी लिख छोड़ा है ईश्वर। आत्मा, मोक्ष, स्वर्ग, नरक। नाम देने से ऐसा भ्रम पैदा होता है कि हम जानते हैं।

जब मैं कहता हूं मोक्ष, तो आपके भीतर थोड़ी सी गुदगुदी पैदा होती है, आपको लगता है जानते हैं। क्योंकि नाम आपका सुना हुआ है। जब मैं कहता हूं ईश्वर, तो आपके भीतर में धड़कन होती है और आपको लगता है जानते हैं। क्योंकि यह नाम सुना हुआ है। लेकिन क्या जानते हैं आप ईश्वर को? क्या जानते हैं मोक्ष को? क्या जानते हैं गाय को? क्या जानते हैं घोड़े को? नाम जानते हैं। और आदमी भाषा को तत्वज्ञान समझ लेता है। नामों के संग्रह को आदमी संपदा समझ लेता है ज्ञान की।

इसलिए लाओत्से सख्त खिलाफ है नामकरण के। कहीं भी वह नाम नहीं देता। वह कहता है, जिसे नाम दिया जा सके, वह सत्य न होगा। जिस पर हम लेबल लगा सकें, वह सत्य न होगा।

असल में, हम लेबल लगाते ही इसलिए हैं ताकि हम जानने की झंझट और यात्रा से बच जाएं। लेबल लगाने पर हम निश्चिंत हो जाते हैं। फिर हमें कोई चिंता नहीं रह जाती। एक आदमी से हम पूछ लेते हैंः क्या है तुम्हारा नाम? क्या है तुम्हारी जाति? क्या है तुम्हारा धर्म? किस गांव से आते हो? किस देश के नागरिक हो? और ये सब बातें जान कर हम निश्चिंत हो जाते हैं, वह आदमी जान लिया गया।

एक आदमी इतनी बड़ी घटना है! और हमने इन चार नामों को इकट्ठा कर लिया, हिंदू है, राम उसका नाम है, हिंदुस्तान का नागरिक है, जानकारी पूरी हो गई। और आदमी इतनी बड़ी घटना है! इतना बड़ा सागर! छोर उसके खोजने मुश्किल हैं। हमारा सारा परिचय नाम देने के धोखे से निर्मित होता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, मैं उस परम सत्य को कोई नाम नहीं देता हूं। उसे ईश्वर नहीं कहता हूं, उसे मोक्ष नहीं कहता हूं। क्योंकि जैसे ही मैं उसे नाम दूंगा, तुम समझोगे कि तुम जानते हो।

और बड़ी से बड़ी कठिनाई लाओत्से, कृष्ण या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के सामने यही है कि वे कैसे आपको समझाएं कि आपको कुछ भी पता नहीं है। आप आश्वस्त हो अपने ज्ञान में। आपको अपने ज्ञान का बिल्कुल पक्का भरोसा है। और लाओत्से जैसे व्यक्ति के लिए यही सबसे पहली जरूरत है कि वह आपको आपके ज्ञान से छुटकारा दिलाए और आपको बताए कि आपको कुछ भी पता नहीं है। जो भी पता करने योग्य है, अभी वह अनजाना पड़ा है। और जो भी आप जानते हो, वह कचरा है। वह पियानो पर लिख दिया कि पियानो, दरवाजे पर लिख दिया कि दरवाजा! बस वे हमारे दिए हुए नाम हैं। और उन्हीं लेबलों को इकट्ठा करके हम ज्ञानी बन जाते हैं। जो जितने ज्यादा लेबल जानता है, उतना बड़ा ज्ञानी हो जाता है।

सदगुरु के समक्ष पहला काम यही है कि वह व्यक्ति को अज्ञान के प्रति सचेत कर दे। तो लाओत्से ने सबसे सुगम तरकीब खोजी है कि वह आपसे नाम छीन ले। वह आपको यह बता दे कि जो भी आप समझते हैं कि जानते हैं, वह आप जानते नहीं हैं, वह धोखा है। अगर आपके सब नाम छीन लिए जाएं, आपकी जानकारी छीन ली जाए, तब आपको पता चलेगा कि आपका जीवन बिना जाने बीता जा रहा है। किसी ने गीता पढ़ ली है, किसी ने कुरान पढ़ लिया है, किसी ने रामायण पढ़ ली है, किसी ने उपनिषद पढ़ लिए हैं। वह उनका जानना बन गया। आपने किया क्या है? कुछ शब्द सीख लिए हैं। और बार-बार शब्दों को दोहराने से यह भ्रम आपको पैदा हो गया कि अब इन शब्दों से जो इशारा किया गया है, वह भी आप जानते हैं। वह आप बिल्कुल नहीं जानते हैं।

अंधा भी प्रकाश शब्द को बहुत बार सुनता है। यह शब्द उसे भी मालूम हो जाता है। अंधों की ब्रेल लिपि होती है, इसमें वह अपने हाथ को फेर कर इसको पढ़ भी लेता है कि प्रकाश। प्रकाश की परिभाषा भी पढ़ सकता है। प्रकाश के संबंध में जो भी आदमी ने खोजा है, वह भी सब पढ़ सकता है। और तब अंधे को भी यह वहम पैदा हो सकता है कि वह जानता है कि प्रकाश क्या है। और उसकी सारी जानकारी व्यर्थ है; क्योंकि उसकी आंखों पर कभी प्रकाश का कोई संस्पर्श नहीं हुआ। और उसकी सारी जानकारी व्यर्थ है; क्योंकि उसके हृदय तक प्रकाश की कोई किरण नहीं पहुंची। उसकी सारी जानकारी न केवल व्यर्थ है, बल्कि खतरनाक भी है। क्योंकि यह भी हो सकता है कि अंधा धीरे-धीरे यह सोचने लगे कि जब मैं प्रकाश के संबंध में सब जानता हूं तो मैं अंधा नहीं हूं। क्योंकि अंधे प्रकाश के संबंध में जान ही कैसे सकते हैं!

हम सब की भी तकलीफ यही है। हम सब परम सत्य के संबंध में बिल्कुल अंधे हैं। लेकिन शब्द हमें कंठस्थ हो गए हैं। और भारत जैसे मुल्क का तो और भी बड़ा दुर्भाग्य है। क्योंकि जितनी पुरानी हो संस्कृति, उतने शब्दों

का बोझ होता है ज्यादा। जितनी लंबी यात्रा हो किसी जाति की, उतना ही ज्ञान उसके पास संगृहीत हो जाता है; जो उसकी मौत बन जाती है, उसकी गर्दन पर फांसी लग जाती है।

पुरानी कौम अपने ज्ञान से दब कर मरती है। नई कौमें अपने अज्ञान से परेशान होती हैं; पुरानी कौमें अपने ज्ञान से परेशान हो जाती हैं। बच्चे भटकते हैं अज्ञान के कारण, बूढ़े भटकते हैं ज्ञान के कारण। बच्चों की सारी तकलीफ यह है कि उन्हें रास्तों का कोई पता नहीं है, इसलिए भटक जाते हैं। बूढ़ों की तकलीफ यह है कि उन्हें सभी रास्तों का पता है बिना किसी रास्ते पर चले, इसलिए भटक जाते हैं। बच्चे क्षमा किए जा सकते हैं; बूढ़ों को क्षमा करने का कोई उपाय नहीं है। अज्ञान क्षमा किया जा सकता है; लेकिन झूठा ज्ञान क्षमा नहीं किया जा सकता। इस जगत में जो बड़े से बड़ा अपराध आदमी अपने साथ कर सकता है, वह अज्ञानी रहते हुए ज्ञान के भ्रम का अपराध है।

हमने इस मुल्क में कुछ इस संबंध में दूर तक चिंतन किया है। हमारे पास तीन शब्द हैं। एक को हम कहते हैं ज्ञान, एक को हम कहते हैं अज्ञान। लेकिन अज्ञान के साथ एक शब्द और है, जिसका हम प्रयोग करते हैं, वह है अविद्या। लेकिन बड़े मजे की बात है कि जिसको हमने अविद्या कहा है, उसको ही आमतौर से हम ज्ञान समझते हैं। अविद्या का मतलब अज्ञान नहीं है। अविद्या का मतलब है ऐसी विद्या जो विद्या नहीं है, ऐसा ज्ञान जो ज्ञान नहीं है, जो सिर्फ ज्ञान का धोखा है। जिससे भ्रम तो पैदा होता है... ।

जैसे हम छोटे बच्चे को मुंह में कुछ चूसने को लकड़ी का टुकड़ा दे देते हैं। उसे भ्रम तो होता है कि शायद वह मां का स्तन चूस रहा है, लेकिन उससे कुछ पोषण नहीं मिलता। हालांकि उसका रोना बंद हो जाएगा और अपनी भूख को भी वह झुठला लेगा; क्योंकि जब बच्चा देखता है कि मुंह में स्तन है और वह दूध पी रहा है, चूस रहा है, तो वह अपनी भूख को झुठला देता है; आंख बंद करके, विश्राम करके सो जाता है। करीब-करीब हम ऐसी हालत में हैं। जो हम नहीं जानते हैं, उसे हम समझते हैं वह हमारा जाना हुआ। फिर वह हमारी जो भूख है सत्य के लिए, वह मर जाती है। या छिप जाती है, दब जाती है। और हम छोटे बच्चों की तरह झूठे ज्ञान को पोषण समझ कर सोए रहते हैं।

इसलिए लाओत्से की पहली और गहरी चोट है नाम के विरोध में। वह कहता है, नाम सत्य का कोई भी नहीं।

लेकिन तब एक अड़चन खड़ी हो जाती है। क्योंकि उसकी अगर चर्चा करनी हो, उसकी तरफ इशारा करना हो, तो कोई नाम तो देना ही पड़ेगा। अन्यथा किसकी चर्चा? किसकी बात? किसकी तरफ इशारा? यह भी कहना तो मुश्किल है कि हम उसे नाम न देंगे। पूछा जा सकता हैः किसे? किसे नाम न देंगे आप?

तो लाओत्से चीनी भाषा का एक शब्द चुनता है, जो कि कम से कम नाम है, वह है ताओ। ताओ के लिए अगर हम अपनी भाषा में अनुवादित करने चलें तो वेद में एक शब्द है ऋत, बस उससे ही वह अनुवादित हो सकता है। या बुद्ध ने जिस अर्थ में धम्म शब्द का प्रयोग किया है, वह उसका अनुवाद हो सकता है। लेकिन धम्म या धर्म कहते ही हमारे मन में कुछ और ख्याल उठता है, हमारे मन में ख्याल उठता हैः ईसाई धर्म, हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म, जैन धर्म। बुद्ध ने धम्म या धर्म का प्रयोग किया है परम नियम के अर्थों में--दि इटरनल लॉ--जिस अर्थ में वेद ने ऋत का प्रयोग किया है। ऋत का अर्थ है वह नियम, जिससे सब संचालित है।

लाओत्से कहता है, मैं उसे ताओ कहता हूं। इस जगत का जो स्वभाव है, इस जगत के भीतर छिपा हुआ जो सारभूत, इसेंस है, वह मैं उसे कहता हूं।

लेकिन यह मजबूरी में दिया गया नाम है। इस नाम को समझ कर कोई यह न समझे कि उसने ताओ को समझ लिया। ताओ शब्द को कोई समझ कर यह न समझे कि उसने ताओ को समझ लिया। धम्म को समझ कर कोई यह न समझे कि उसने धर्म को समझ लिया। ऋत शब्द को कंठस्थ करके कोई यह न समझे कि वह उस परम नियम को जान लिया, जिसके लिए इशारा किया गया था।

इशारे छोड़ने के लिए हैं, पकड़ने के लिए नहीं। इशारे कहीं पहुंचाने के लिए हैं, रोकने के लिए नहीं। इशारे से दूर हटना चाहिए, इशारे को जकड़ नहीं जाना चाहिए। वह मील का पत्थर लगा है रास्ते पर, तीर का इशारा करता है कि मंजिल आगे है। वह मील के पत्थर पर रुकना नहीं है। वह मील का पत्थर लगाया ही इसीलिए है कि कोई वहां मंजिल समझ कर रुक न जाए। वह तीर आगे के लिए है। सब शब्द मील के पत्थर हैं। और सब शब्दों का तीर सत्य की तरफ है। लेकिन तीर हमें बिल्कुल भूल गए हैं। और हम सब शब्दों को पकड़ कर बैठ जाते हैं, और उनके निकट विश्राम करते हैं। और जो मील का पत्थर था, वह मंजिल मालूम होने लगता है।

इसके कारण हैं, अपने को धोखा देने के कारण हैं। यात्रा कष्टपूर्ण है। मान कर सपना देखना आसान है। मील के पत्थर को ही मंजिल मान कर बड़ी चैन मिलती है। और अगर मील के पत्थर को मान कर यात्रा करनी पड़े तो श्रम उठाना पड़ता है। और हम हजारों-हजारों साल तक झूठे शब्दों को सत्य मान कर इस भांति के भ्रम में पड़ जाते हैं कि याद भी नहीं आता कि सत्य इससे भिन्न कुछ हो सकता है। इस सूत्र को समझें।

"स्वर्ग और पृथ्वी के अस्तित्व में आने के पूर्व सब कुछ कोहरे से भरा थाः मौन, पृथक, एकाकी, अपरिवर्तित, नित्य, निरंतर घूमता हुआ, सभी चीजों की जननी बनने योग्य!"

जो लोग आधुनिक विज्ञान से परिचित हैं, उन्हें तत्काल इस सूत्र में प्रतिध्वनि मिलेगी। तब यह सूत्र आम धर्मों से बहुत गहरा हो जाता है। ईसाइयत कहती है कि ईश्वर ने एक विशेष दिन सारे जगत को निर्मित किया। इसलाम भी करीब-करीब ऐसा मानता है। फिजिक्स की आधुनिकतम खोजें कहती हैं कि जगत का निर्माण कभी भी नहीं हुआ; ज्यादा से ज्यादा हम इतना कह सकते हैं कि जब पृथ्वी नहीं थी, तो सारा जगत एक कोहरे से भरा था। इस सारे जगत का निर्माण नेबुलस से हुआ, गहन कोहरे से हुआ।

इस कोहरे शब्द का प्रयोग करने वाला लाओत्से संभवतः मनुष्य-जाति में पहला आदमी है। जिसको आज विज्ञान कहता है कि ऐसा कुछ संभव हुआ है कि पृथ्वी एक कोहरा थी, जैसे कि बादल वर्षा होने के पहले आकाश में घिरा हो। फिर पानी गिरे और फिर पानी जमे और बर्फ बन जाए। ऐसा ही सारा पदार्थ एक दिन कोहरा था।

विज्ञान कहता है कि प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैंः ठोस, सालिड; लिक्विड, तरल; और गैसीय, वाष्पीय। हर पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं। पत्थर भी तरल हो सकता है एक विशेष तापमान पर। और पत्थर भी एक विशेष तापमान पर गैस बन जाएगा, भाप बन जाएगा। हम सिर्फ पानी के बादल ही जानते हैं, लेकिन हर चीज के बादल हो सकते हैं। पत्थर के बादल हो सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक वस्तु की तीन अवस्थाएं हैं। लेकिन पत्थर का बादल होने के लिए बहुत बड़े तापमान की जरूरत है, जैसा तापमान सूरज पर है। अगर हम पृथ्वी को सूरज के करीब ले जाएं, करीब ले जाएं, जैसे-जैसे पृथ्वी करीब पहुंचेगी, वैसे-वैसे पृथ्वी के तत्व वाष्पीभूत होने लगेंगे। सूरज के बिल्कुल करीब जाकर पृथ्वी एक कोहरे का गोला भर रह जाएगी। उसके सारे तत्व अपनी दृढ़ता खो देंगे, ठोसपन खो देंगे और वाष्पीय हो जाएंगे।

लाओत्से कहता है कि इस सारी सृष्टि के पहले सभी कुछ कोहरे से भरा था।

विज्ञान की जो आधुनिकतम खोज है, उसका बोध लाओत्से को जरूर था। और अगर आज कोई विज्ञान के करीब से करीब आदमी पड़ेगा, पुराने जगत से खोजने पर, तो लाओत्से के वचन हैं।

लाओत्से कहता है, "देयर वाज समथिंग नेबुलस।"

कुछ था कोहरे जैसा। उस कोहरे का कभी जन्म नहीं हुआ और उस कोहरे का कभी अंत नहीं होगा। जब कोहरा सघन हो जाता है तो पृथ्वियां निर्मित होती हैं। और जब कोहरा फिर कोहरा हो जाता है तो पृथ्वियां विलीन हो जाती हैं। लेकिन वह मूल कोहरा न कभी निर्मित हुआ है और न कभी नष्ट होता है। इसलिए जिसको हम सृजन और विनाश कहते हैं, वह सृजन और विनाश नहीं, केवल रूपांतरण हैं। जब पानी की बूंद आग पर पड़ कर भाप बन जाती है, तो हम सोचते हैं विनष्ट हो गई! वह जरा भी विनष्ट नहीं होती, सिर्फ भाप बन जाती है। और आज नहीं कल फिर पुनः पानी बन जाएगी। भाप बन जाना नष्ट हो जाना नहीं है, सिर्फ रूपांतरण है।

लाओत्से के हिसाब से जगत का होना और जगत का न होना पानी की बूंद के भाप बनने जैसा है। जो मौलिक है दोनों के बीच, वह कभी नष्ट नहीं होता। बूंद दिखाई पड़ती है तो हम सोचते हैं है। फिर आग की लपट में भाप बन कर उड़ जाती है, हम सोचते हैं नहीं है। ठीक यह जगत भी कभी ठोस होता है तो हमें मालूम पड़ता है कि है; उसे हम सृष्टि कहते हैं। और जब तरल होकर वाष्पीभूत हो जाता है तो उसे हम प्रलय कहते हैं। लेकिन जगत कभी नष्ट नहीं होता और कभी निर्मित नहीं होता।

विज्ञान भी इससे सहमति भरता है। विज्ञान कहता है कि हम एक छोटे से रेत के कण को भी नष्ट नहीं कर सकते। पदार्थ अविनाशी है--इनडिस्ट्रक्टिबल है। और हम एक रेत के छोटे से कण को निर्मित भी नहीं कर सकते। जब विज्ञान कहता है हम निर्मित नहीं कर सकते तो उसका मतलब यह है कि शून्य के बाहर निर्मित नहीं कर सकते; किन्हीं चीजों को मिला कर बना सकते हैं; लेकिन वे चीजें पहले से मौजूद थीं। जब विज्ञान कहता है हम नष्ट नहीं कर सकते तो उसका मतलब यह नहीं कि हम मिटा नहीं सकते; हम मिटा सकते हैं। रेत मिट जाएगी; लेकिन फिर कुछ और शेष रह जाएगा। बिल्कुल नहीं मिटा सकते, किसी चीज को हम शून्य में नहीं बदल सकते। और किसी चीज को हम शून्य के बाहर पैदा नहीं कर सकते। जो भी है, वह किसी रूप में पहले था। और जो भी है, वह किसी रूप में आगे भी रहेगा। इस जगत में सभी कुछ अविनाशी है। विनाश असंभव है। और तब सृजन भी असंभव है।

इसलिए लाओत्से किसी स्रष्टा को, किसी क्रिएटर को नहीं मानता। लाओत्से नहीं कहता कि कोई ईश्वर है, जो सब बनाता है। बनाने की धारणा ही बचकानी है। और इस बनाने की धारणा की वजह से आस्तिक बड़ी तकलीफ में रहे हैं। क्योंकि नास्तिक उनकी इस बात को अंगुलियों पर तोड़ देते हैं। इसमें कुछ जान नहीं है। आस्तिकों की यह दलील कि हम ईश्वर को इसलिए मानते हैं, क्योंकि बनाने वाला कोई चाहिए, नास्तिकों को हंसी योग्य मालूम होती रही है। और हंसी योग्य है भी। अगर कोई इसीलिए आस्तिक है और सोचता है कि उसके पास प्रमाण है, क्योंकि हर चीज को बनाने वाला चाहिए, इसलिए इस जगत को भी बनाने वाला कोई होगा, तो वह बड़ी दुविधाओं में पड़ जाएगा। अगर सोचे न, तब तो ठीक है; सोचेगा तो मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी।

पहली मुसीबत तो यह खड़ी होगी कि ईश्वर भी शून्य के बाहर नहीं बना सकता। शून्य से निर्माण असंभव है। अगर ईश्वर भी बनाए तो ज्यादा से ज्यादा अरेंजमेंट कर सकता है, क्रिएशन नहीं कर सकता। चीजें होनी ही चाहिए। हम कहते हैं, कुम्हार घड़ा बनाता है। घड़ा बनाता है; क्योंकि घड़ा कोई सृजन नहीं है, केवल मिट्टी का आकार बदलना है। मिट्टी मौजूद है। जो लोग कहते हैं कि कुम्हार की तरह ईश्वर जगत को निर्मित करता है,

उनके लिए ईश्वर बनाने वाला नहीं है, सिर्फ संयोजन करता है, एक रूप देता है, एक मूर्तिकार है। लेकिन पत्थर पहले से चाहिए। अगर ईश्वर शून्य के बाहर बना सके तो ही सृजन की बात निर्मित हो सकती है। लेकिन शून्य के बाहर बनाने की धारणा भी असंभव है। शून्य से कुछ पैदा करने की धारणा भी असंभव है।

शून्य के बाहर तो सिर्फ स्वप्न ही निर्मित हो सकते हैं। और इसलिए शंकर की बात ठीक है; अगर ईश्वर बनाने वाला है, तो जगत माया है, सत्य नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें। अगर ईश्वर बनाने वाला है, तो जो घड़ा उसने बनाया है, वह वास्तविक घड़ा नहीं है, स्वप्न का घड़ा है।

हां, शून्य से स्वप्न पैदा हो सकते हैं। रात आप सपने में कुछ निर्मित कर सकते हैं। उसके लिए किसी वस्तु की जरूरत नहीं होती। इसलिए जो लोग मानते हैं कि ईश्वर जगत का बनाने वाला है, उनके पास शंकर को मानने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जगत झूठा है।

लेकिन तब बड़ी कठिनाइयां खड़ी होती हैं। क्योंकि अगर हम जगत को झूठा मान लें तो उसके बनाने वाले को सच मानने में बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि सारा तर्क इस बात पर निर्भर है कि जगत है और जगत को बनाने वाला कोई चाहिए। तो हमने माना कि ईश्वर है। अब ईश्वर को मान कर तकलीफ खड़ी होती है कि जगत झूठा होना चाहिए, स्वप्नवत होना चाहिए। क्योंकि शून्य से स्वप्न ही निर्मित हो सकता है। तो जगत माया है। लेकिन अगर इस झूठे जगत के कारण ही हम मानते हैं कि कोई बनाने वाला है, तो बनाने वाला भी झूठा हो जाता है, मायिक हो जाता है।

इसलिए शंकर को दूसरा कदम भी उठाना पड़ा। शंकर इस जगत में बहुत हिम्मतवर विचारकों में से एक हैं। दूसरा इससे भी... । एक तो कदम यह उठाना पड़ा शंकर को कि जगत माया है, झूठ है, इल्यूजरी है, मिथ्या है। लेकिन तब शंकर जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को तत्काल दिखाई पड़ गया कि ईश्वर, इसका बनाने वाला, सच नहीं हो सकता। इसलिए शंकर ने कहा कि ईश्वर भी माया है, ईश्वर भी माया का हिस्सा है। और जब कोई ईश्वर के भी पार जाता है, तब ब्रह्म की उपलब्धि है। संसार के पार तो जाए ही, ईश्वर के भी पार जाए, तब ब्रह्म की उपलब्धि है।

लाओत्से कहेगा कि जिनके पार ही जाना है, उन्हें व्यर्थ उठाने की कोई जरूरत नहीं है। उस ऊहापोह में कोई सार नहीं है। लाओत्से कहता है, जगत शाश्वत है। इसलिए स्रष्टा को बीच में नहीं लाता। यह जो शाश्वत जगत है, यह अपने नियम से ही गतिमान है। उस नियम का नाम ताओ है।

हमें बहुत कठिनाई होती है। कठिनाई हमें होती है, क्योंकि जहां भी... । हम मनुष्य की भाषा सब जगह थोपते हैं। लेकिन विज्ञान मनुष्य से छुटकारा करवाता है चीजों का। और धीरे-धीरे मनुष्य से छूट कर चीजें नियमों के अंतर्गत चली जाती हैं।

समझ लें, एक छोटा बच्चा गिर पड़ता है तो वह फौरन गाली देता है जमीन को, कुर्सी से टकरा जाता है तो वह कहता है नॉटी, कुर्सी शैतान है। और अगर उसकी मां कुर्सी को दो चपत लगा दे तो वह प्रसन्न हो जाता है, खुश हो जाता है। निबटारा हो गया। कुर्सी ने शरारत की उसके साथ, उसको जवाब दे दिया गया। बच्चा यह सोच ही नहीं सकता कि कुर्सी बिना शैतानी करने के इरादे के उसे गिराती होगी। कुर्सी में कोई इरादा नहीं होगा, कोई व्यक्ति नहीं होगा, यह बच्चा नहीं सोच सकता। और अगर जमीन गिरा कर उसके पैर में चोट लगा देती है तो वह यह नहीं मान सकता कि न्यूटन कहता है कि गुरुत्वाकर्षण के कारण तुम गिर गए। बच्चा मानेगा कि गुरुत्वाकर्षण? तो मतलब कौन छिपा है उसके भीतर जो मुझे गिरा रहा है? बच्चे को कोई न कोई व्यक्ति

चाहिए; तब निश्चिंतता हो जाती है। मुझे गिराने वाला कोई चाहिए, कोई दुश्मन वहां बैठा है जो मुझे गिरा रहा है।

बच्चों की भाषा में जो लोग सोचते हैं, उनके नियम को समझना उन्हें बड़ा कठिन पड़ेगा। लेकिन विज्ञान चाहे धर्म का हो, चाहे पदार्थ का, व्यक्तियों की भाषा में नहीं सोचता, इम्पर्सनल लॉज, निर्वैयक्तिक नियमों की भाषा में सोचता है। जमीन आपको गिराना नहीं चाहती। जमीन का कोई इरादा नहीं है। आप गलत चलते हैं, गिर जाते हैं। जमीन तो सिर्फ एक नियम है, एक कशिश है, एक आकर्षण का नियम है। आप ठीक नियम मान कर चलते हैं, जमीन आपको कभी गिराएगी नहीं। आप नियम के विपरीत चलते हैं, आप गिर जाते हैं। जमीन का कोई इरादा आपको गिराने का नहीं है। और जमीन को आपका पता भी नहीं है कि आप कब गिरे, क्यों गिरे। और जमीन की आप कितनी ही प्रार्थना और पूजा करें, अगर आप गलत चलेंगे तो कशिश आपके प्रति कोई दया-भाव नहीं कर सकती। आप गिरेंगे।

धर्म के दो रूप हैं। एक धर्म का बचकाना रूप है। जिनकी बच्चों जैसी बुद्धि है, वे ईश्वर को व्यक्ति मान कर चलते हैं कि वहां आकाश में बैठा हुआ देख रहा है कि आप रात में पानी पी रहे हैं कि नहीं पी रहे हैं, कि आप किसी से झूठ बोले कि नहीं बोले। हिसाब लगा रहा है, बही-खाते लिए बैठा होगा।

अब तक पागल हो जाता, अगर कोई परमात्मा आपके सब कारनामों का हिसाब रखता होता। एक-एक आदमी अपने कारनामों से पागल हो जाता है। उसकी क्या गति होती, ईश्वर अगर यह सब हिसाब लगाता रहता? ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन हम उसे व्यक्ति मान कर चलते हैं तो हम हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते हैं उससे कि मुझ पर जरा दया रखना! मेरा जरा ख्याल रखना! किससे आप बात कर रहे हैं? क्यों यह बात कर रहे हैं?

यह वही आपका तर्क है जो बच्चे का। कुर्सी से चोट लग जाए तो बच्चा समझता है, कुर्सी कोई शरारत कर रही है, शैतान कुर्सी है, अच्छी कुर्सी नहीं है। दूसरी कुर्सी जिस पर से वह कभी नहीं गिरा, उसे मानता है, साधु कुर्सी है, कभी गिराती नहीं। जिस दरवाजे से उसको खरोंच लग जाती है, वह समझता है, यह दरवाजा शरारती है। यह बच्चे की भाषा है। यह बच्चे की भाषा हम जब जगत पर लगा देते हैं तो हमारे बचकाने धर्मों का जन्म हो जाता है। फिर अगर ईश्वर हमें नौकरी लगवा देता है तो हम प्रसन्न होते हैं और अगर नहीं लगवाता तो हम नाराज होते हैं।

एक आदमी ने मुझे आकर कहा कि तीन दिन का समय दिया था। पत्नी बीमार थी और मैंने तीन दिन का समय जाकर मंदिर में भगवान को दे दिया और कहा कि अब सब दांव पर लगा दिया है। अगर तीन दिन में पत्नी ठीक नहीं होगी तो समझ लूंगा कि कोई ईश्वर नहीं है, और अगर ठीक हो गई तो सदा के लिए तुम्हारा भक्त हो जाऊंगा। पत्नी ठीक हो गई। वे सदा के लिए भक्त हो गए हैं। मैंने उनसे कहा कि अब दुबारा ऐसा मत करना। संयोग सदा काम नहीं करेगा। एक दफा परीक्षा ले ली, बहुत है। अब अपनी आस्तिकता को बचाना। अब दुबारा यह भूल मत करना। नहीं तो आस्तिकता मिट्टी में मिल जाएगी।

पर आदमी का मन ऐसा है कि उसकी पत्नी बीमार है, इसके लिए भी ईश्वर, ईश्वर को कुछ करना चाहिए। और वह यह भी सोचता है कि अगर मैं कहता हूं कि मैं तुम्हें मानना छोड़ दूंगा तो धमकी भी दे रहा है। और वह खुशामद भी कर रहा है कि मैं तुम्हारी पूजा करूंगा, फूल चढ़ाऊंगा। जैसे कि सारे फूल उस पर चढ़े हुए ही नहीं हैं। वह एक सलाह दे रहा है बुद्धिमानी की कि थोड़ी समझ से काम करना, नहीं तो एक आदमी को

चूकोगे, खो जाओगे। जैसे ईश्वर का होना कोई लोकतांत्रिक मतों पर निर्भर है; कि एक मत, एक वोट हाथ से जाता है। वह आदमी यह कह रहा है कि पार्टी बदल लूंगा। तीन दिन के भीतर!

मगर हमारी सारी आस्तिकता ऐसी ही है, सशर्त है। इसलिए ध्यान रखें, जो आस्तिकता शर्त से बंधी है, वह अभी बचकानी है, अभी प्रौढ़ नहीं हो पाई। अभी समझ पैदा नहीं हुई; अभी हम बच्चों की तरह जगत के साथ व्यवहार कर रहे हैं।

लाओत्से एक प्रौढ़ धर्म की बात कर रहा है। वहां ईश्वर व्यक्ति नहीं है, नियम है। फर्क इसलिए समझ लेना जरूरी है कि जब ईश्वर नियम हो जाता है, तो प्रार्थना नहीं, आचरण मूल्यवान हो जाता है। और जब ईश्वर व्यक्ति होता है, तो आचरण नहीं, प्रार्थना मूल्यवान होती है। जब व्यक्ति ईश्वर होता है, तो हम जो कर रहे हैं उसके आस-पास, उसे हम एक आदमी मान कर करते हैं। फुसला भी सकते हैं; नाराज भी कर सकते हैं; प्रसन्न भी कर सकते हैं। लेकिन जब ईश्वर एक नियम है, तो ये सारी बातें व्यर्थ हो गईं। न फुसलाया जा सकता; न राजी किया जा सकता; न धमकी दी जा सकती; न भयभीत किया जा सकता। कुछ भी नहीं किया जा सकता।

फर्क समझ लें। जब तक ईश्वर एक व्यक्ति है, तब तक हमारी कोशिश होती है ईश्वर को बदलने की। जब एक आदमी जाकर कहता हैः मेरी पत्नी बीमार है, उसे ठीक करो। यह वह यह कह रहा है कि अपना निर्णय बदलो, मेरी पत्नी को बीमार रखने की तुमने जो कोशिश की है, उसे बदलो। एक आदमी कह रहा है कि मैं मर रहा हूं, मुझे बचाओ; एक आदमी कह रहा है, मैं गरीब हूं, मुझे अमीर करो; कुछ भी कह रहा है, कुछ मांग रहा है। वह यह कह रहा है कि ईश्वर, तुम अपने को बदलो; तुम्हारे निर्णय से मैं राजी नहीं हूं; तुम्हारे निर्णय में कोई भूल है; तुमने जो भी निर्णय लिया है, अभी वह योग्य नहीं है; उसे बदलो। जब तक कोई व्यक्ति ईश्वर को व्यक्ति मानता है, तब तक ईश्वर को बदलने की कोशिश चलती है। हमारी प्रार्थनाएं, हमारी पूजाएं, हमारी उपासनाएं, उपवास, सब ईश्वर को बदलने की कोशिश हैं।

लेकिन ध्यान रखना, ईश्वर को बदलने का कोई उपाय नहीं है। और जो ईश्वर आदमियों से बदला जा सके, उस ईश्वर का फिर कोई भरोसा करने की जरूरत भी नहीं है।

जिस दिन ईश्वर नियम हो जाता है, उस दिन सारी चीज उलटी हो जाती है। तब हमें अपने को बदलने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रहता। अगर ईश्वर नियम है, तो मुझे अपने को बदलना पड़ेगा। क्योंकि नियम न किसी को क्षमा करता, न किसी का पक्षपात करता। नियम निर्वैयक्तिक है, इम्पर्सनल है। कितनी ही करूं प्रार्थना, कोई परिणाम न होगा। आचरण का ही परिणाम हो सकता है। कितनी ही उपासना, कितने ही उपवास, कुछ परिणाम न होगा। कितनी ही मांग करूं, कितनी ही कातरता से चिल्लाऊं, इससे कोई हल न होगा। नियम सुनता नहीं; नियम शब्दों को नहीं मानता। नियम तो आचरण को, भीतर जो बदलाहट होती है व्यक्तित्व की, उसको मानता है। मैं कितना ही पृथ्वी से कहूं कि मैं इरछा-तिरछा दौडूं, मेरी टांग मत तोड़ देना, उससे कोई फर्क न होगा। मैं गिरूं तो मुझे चोट मत देना; उससे कोई फर्क न होगा। मुझे अपने को ही बदलना पड़ेगा।

हां, मैं अपने को इतना बदल सकता हूं कि पृथ्वी का सारा गुरुत्वाकर्षण भी मुझे जरा सी चोट न पहुंचा पाए। क्योंकि गुरुत्वाकर्षण चोट पहुंचाने को नहीं है। गुरुत्वाकर्षण किसी को गिराने को नहीं है, न किसी को उठाने को है। गुरुत्वाकर्षण एक निर्वैयक्तिक नियम है। उस निर्वैयक्तिक नियम के बीच अगर मैं अपने को बदल लेता हूं--बदलने का मतलब है कि अगर मैं उस नियम और अपने बीच तालमेल, हार्मनी निर्मित कर लेता हूं; अगर उस नियम और मेरे बीच एक छंदबद्धता आ जाती है; उस नियम के और मेरे बीच कोई शत्रुता और कोई विरोध नहीं रह जाता; उस नियम और मेरे बीच एक अविरोध निर्मित हो जाता है; वह नियम और मैं एक हो

जाते हैं; उस नियम से मेरी कोई अलग सत्ता नहीं रह जाती; उस नियम की मुझसे अलग कोई सत्ता नहीं रह जाती; हम मिल जाते हैं और एक हो जाते हैं--तो फिर उस नियम से मुझे दुख नहीं पहुंचता; उस नियम से मुझे आनंद मिलने लगता है।

जगत से हमें दुख पहुंचता है, क्योंकि हम नियम के प्रतिकूल हैं। जीवन हमारा नरक बन जाता है, क्योंकि हम नियम के प्रतिकूल हैं। जीवन स्वर्ग हो जाता है, जब हम नियम के अनुकूल हैं। और जीवन हो जाता है मोक्ष, जब हम नियम से एक हैं। इस फर्क को थोड़ा समझ लें। जब हम प्रतिकूल हैं, तब जीवन नरक हो जाता है। हम अपने ही हाथों दुख में उतरते चले जाते हैं। हम जो भी करते हैं, उससे हम कष्ट पाते हैं; क्योंकि वह नियम के अनुकूल नहीं है। हम कितना ही उपाय करें, हम सफल न हो सकेंगे। नियम की विपरीतता में कोई सफलता नहीं है।

लोग सोचते हैं, विज्ञान ने कितनी सफलता पाई! लेकिन क्या आपको पता है, विज्ञान की सारी सफलता इस बात पर निर्भर है कि उसने प्रकृति के नियमों के अनुकूल चलना सीख लिया! और तो कोई सफलता नहीं है। अगर विज्ञान के इतने शिखर उठ गए हैं आज सफलता के तो वह प्रकृति पर विजय के कारण नहीं। यह बिल्कुल भ्रांत है धारणा। वह प्रकृति के नियम को समझ कर उसके अनुकूल चलने के कारण। जो विजय है विज्ञान की, वह समझ की दिशा में है; प्रकृति के ऊपर नहीं। बिना समझे अनुकूल चलना मुश्किल है; समझ कर अनुकूल चलना आसान हो जाता है। विज्ञान की सारी खोज प्रकृति के नियम को समझ लेने की खोज है।

धर्म की सारी खोज, वह जो परम नियम है--प्रकृति का ही नहीं, मनुष्य की चेतना के अंतसतम का भी--उसकी खोज है; उसके अनुकूल चलने की। उसका नाम है ऋत, उसका नाम है ताओ। उसके जो प्रतिकूल चलता है, वह दुख पाता है। इसलिए जब भी आप दुख पाएं, न तो किसी ईश्वर को दोषी ठहराना, न किसी और को दोषी ठहराना; क्योंकि वे सब भ्रांतियां हैं। तब एक ही बात समझना। न अपने को ही दोषी ठहराना। क्योंकि खुद को दोषी ठहरा लेने से भी कुछ हल नहीं होता। कुछ लोग तो खुद को दोषी ठहराने में भी मजा लेने लगते हैं। कुछ लोगों को खुद के अपराधी होने की चर्चा करने में भी आनंद होने लगता है। किसी को दोषी मत ठहराना।

इसलिए हमने इस मुल्क में ठीक उस तरह नहीं सोचा है, जैसे ईसाइयत ने सोचा है। ईसाइयत बोलती है जो भाषा, उसमें पाप, अपराध बड़े महत्वपूर्ण हैं। ईसाइयत कहती है कि तुम जो गलती कर रहे हो, वह तुम्हारा पाप है। हिंदू चिंतन कहता है, वह तुम्हारा अज्ञान है, पाप नहीं। यह बड़े मजे का फर्क है, और गहरा फर्क है। हिंदू चिंतन कहता है, वह अज्ञान है, पाप नहीं। क्योंकि पाप में तो अपराध का भाव हो जाता है। अज्ञान का केवल इतना ही मतलब है कि तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कर रहे हो, इसलिए दुख पा रहे हो। पाप का तो मतलब है, तुम्हें पता है कि तुम क्या कर रहे हो और फिर भी तुम कर रहे हो। पापी ज्ञानी हो सकता है। अज्ञानी को पापी कहना ठीक नहीं है। अज्ञान में क्या पाप है? उसे पता ही नहीं। मुझे पता नहीं है रास्ता कौन सा है और मैं भटक जाता हूं, तो मैं पापी नहीं हूं, कोई अपराध नहीं कर रहा हूं। कोई उपाय ही नहीं है, मैं भटकूंगा ही। पापी तो मैं उसी दिन होता हूं, जिस दिन मुझे पता था कि रास्ता क्या है, और मैं जान कर हटा।

लेकिन हिंदू चिंतन कहता है, जान कर दुनिया में कोई पाप नहीं कर सकता। जान कर आदमी वैसे ही पाप नहीं कर सकता, जैसे कि आग में जान कर कोई हाथ नहीं डाल सकता। छोटा बच्चा डाल देता है, क्योंकि उसे पता नहीं है। लेकिन छोटा बच्चा पापी नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि पापी नहीं है तो आग में हाथ

डाल देगा तो आग जलाएगी नहीं। इसका यह मतलब भी नहीं है कि आग में हाथ डालेंगे आप अज्ञान में तो कष्ट न पाएंगे। कष्ट तो पाएंगे ही। लेकिन वह कष्ट अज्ञान का कष्ट है।

इसलिए जब आपके जीवन में दुख हो तो न तो ईश्वर को दोषी ठहराना, न भाग्य को, न दूसरों को, न अपने को; सिर्फ इतना ही समझना कि नियम के कहीं प्रतिकूल चले गए हैं। नियम को भी दोषी ठहराने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि नियम आपसे कहता नहीं कि प्रतिकूल चले जाएं। और अपने को भी दोषी ठहराने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि पता नहीं है, इसलिए प्रतिकूल चले गए हैं।

लेकिन हम दोषी ठहरा कर बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं; मूल बात चूक जाती है। मूल बात इतनी है कि नियम से जितनी प्रतिकूलता होती है, उतना सघन दुख हो जाता है--उसी मात्रा में। अगर दुख बढ़ता ही चला जाए तो आप समझना कि आप नियम के प्रतिकूल चले ही जा रहे हैं, दूर हटते जा रहे हैं नियम से। जब कभी जीवन में आपको सुख की झलक मिले तो यह मत सोचना कि परमात्मा की कृपा है; यह भी मत सोचना कि आप बड़े पुण्यशाली हैं; इतना ही सोचना कि आप जाने-अनजाने नियम के करीब, अनुकूल पड़ गए हैं। सुख की जो हलकी हवा आ गई है, एक झोंका सुख का आकर आपको घेर गया है... ।

इसलिए एक बड़ी मजे की घटना घटती है कि जब भी आदमी को पता चलता है कि वह सुख में है, तभी दुख शुरू हो जाता है। जैसे ही उसे पता चलता है कि सब सुख में है, वैसे ही दुख शुरू हो जाता है। क्यों हो जाता है?

जैसे ही उसे पता चलता है कि सुख में है, वह यह नहीं समझ पाता कि नियम के करीब है और खोज करे कि कहां से नियम के करीब है; वह सोचने लगता है कि मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूं, मुझसे सौभाग्यशाली और कोई भी नहीं। वह कुछ गलत दिशा में यात्रा शुरू हो गई। वह सोचता है, मैं बहुत बुद्धिमान हूं, इसलिए यह सुख मुझे मिल रहा है। या वह यह सोचने लगता है कि यह सुख मैंने पा लिया, इसलिए अब मैं जब भी चाहूंगा, यह सुख पा लूंगा। तब मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी। करीब-करीब ऐसी हालत है कि जैसे हम अंधे भाग रहे हों और अचानक दरवाजे पर हाथ पड़ जाए और हवा का एक झोंका लग जाए। नियम के करीब हम जब पड़ जाते हैं, जाने-अनजाने, तो सुख का अनुभव होता है। अगर आपका सुख बढ़ता चला जाए तो समझना कि आप नियम के करीब पहुंच रहे हैं।

लेकिन करीब भी एक तरह की दूरी है। इसलिए सुख में भी दुख का एक मिश्रण है। जब तक हम नियम से एक न हो जाएं, तब तक आनंद का अनुभव नहीं होता। कितने ही निकट हों, फिर भी एक दूरी है। और इसलिए सभी सुख थोड़े दिनों बाद दुख हो जाते हैं। उनके हम आदी हो जाते हैं। जब पहली दफा हवा का झोंका लगता है तो लगता था कि एक ताजगी बरस गई, स्नान हो गया, किसी एक परम अनुभव में उतरना हो गया। फिर जब आदमी खिड़की पर ही खड़ा रहता है, आदी हो जाता है; फिर भूल जाता है। सुख भी शीघ्र ही दुख हो जाता है। सिर्फ आनंद कभी बदलता नहीं है। क्योंकि दूरी इतनी भी नहीं रह जाती कि हम कहें कि निकटता है। एकता ही हो जाती है। मोक्ष, निर्वाण, ताओ, उस एकता के नाम हैं।

लाओत्से कहता है, जब कुछ भी न था, अर्थात जब कुछ भी प्रकट न था, जब कुछ भी अभिव्यक्त न हुआ था, सब कोहरे से भरा था--मौन। क्योंकि शब्द भी एक अभिव्यक्ति है। शब्द भी आकार है। शब्द भी ठोस है।

इसे थोड़ा हम समझ लें। जब मैंने कहा कि सभी चीजों की तीन अवस्थाएं होती हैं, तो शब्द की भी तीन अवस्थाएं होती हैं। एक अवस्था है शब्द की, जब हम बोलते हैं। लेकिन बोलने में भी कभी ख्याल किया होगा,

कुछ शब्द तरल होते हैं। जब हमें लगता है किसी शब्द में बड़ी मिठास है, लगता है किसी शब्द में बड़ा काव्य है, लगता है किसी शब्द में सौंदर्य के फूल खिल गए, तब शब्द तरल होता है।

काव्य एक तरलता है। प्रोज और पोएट्री में वही फर्क है--ठोस और तरल होने का। गद्य ठोस है, जैसे बर्फ जमी हुई। पद्य तरल है, जैसे बर्फ पिघल गई और बहने लगी। इसलिए विज्ञान कविता की भाषा में नहीं लिखा जा सकता। विज्ञान सीमा मांगता है--ठोस, स्पष्ट परिभाषा। प्रेम-पत्र कविता में लिखे जा सकते हैं; गणित कविता में नहीं किया जा सकता। गणित ठोस शब्द मांगता है। काव्य है तरल बात।

कोई पूछता था दांते से, दांते ने एक गीत लिखा है। किसी को प्रीतिकर लगा और वह दांते से पूछने गया कि इसका अर्थ क्या है? तो दांते ने कहा, जब मैंने लिखा था तो दो आदमियों को इसका अर्थ पता था--मुझे और परमात्मा को। अब सिर्फ परमात्मा को ही पता है; अब मुझे अर्थ पता नहीं है।

कवि को भी, वह जो लिखता है, उसका पूरा अर्थ पता नहीं होता। और अगर पता हो तो वह कवि बहुत छोटा है। उसका मतलब है, कविता कम है, तुकबंदी ज्यादा है। अगर काव्य सचमुच जन्म ले तो बिल्कुल तरल होता है, उसकी कोई सीमाएं नहीं होतीं। उसके अनेक अर्थ हो सकते हैं; अर्थ पर कोई पाबंदी नहीं होती।

इसीलिए वेद हैं, उपनिषद हैं, उनके हम इतने अर्थ कर पाए। फिर भी अर्थ चुक नहीं सकते; क्योंकि वे सब काव्य हैं, तरल हैं। गीता पर हजारों टीकाएं हो सकती हैं, हुईं, होती रहेंगी। और कभी ऐसा दिन नहीं आएगा कि हमें कहना पड़े कि बस अब गीता पर और किसी टीका की कोई भी जरूरत न रही। क्योंकि गीता एक काव्य है, गणित का ग्रंथ नहीं। तरल है, कोई सीमा नहीं है। इसलिए परिभाषाओं में कुछ बंधता नहीं है।

पुरानी सब भाषाएं काव्य-भाषाएं हैं--अरबी है, ग्रीक है, संस्कृत है। इसलिए अरबी, ग्रीक या संस्कृत में एक-एक शब्द के दस-दस, बारह-बारह, पंद्रह-पंद्रह अर्थ हैं। इससे खेलने की बड़ी सुविधा है। इसलिए वेद की एक कड़ी के पचास अर्थ किए जा सकते हैं। कोई गलत और कोई सही नहीं। वहीं भ्रांति शुरू होती है, जब कोई कहता है कि दूसरे ने जो अर्थ किया, वह गलत है। वह काव्य-कड़ी है, तरल है।

इसलिए अरविंद उसमें से चाहें तो वह अर्थ निकाल सकते हैं, जो आइंस्टीन का है। आइंस्टीन के पहले वह अर्थ उसमें से नहीं निकाला जा सकता था। अब निकाला जा सकता है। अब जैसे वेद कहते हैं कि सूर्य के सात घोड़े हैं, अश्व। अब अश्व के संस्कृत में कई अर्थ होते हैं। उसका अर्थ किरण भी होता है; उसका अर्थ घोड़ा भी होता है। तो सूरज के सात घोड़े हैं। सूरज के रथ में चित्रकारों ने सात घोड़े जोते हैं। लेकिन हम चाहें तो अब कह सकते हैं कि नहीं, वे घोड़े नहीं हैं, सात रंग हैं; सूरज की किरण में सात रंग हैं। वह अभी फिजिक्स की नवीनतम खोज है; हम उसका दर्शन कर सकते हैं। कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि अश्व के दोनों ही अर्थ होते हैं, किरण भी और घोड़ा भी।

पुरानी सब भाषाएं काव्य-भाषाएं हैं। नई भाषाएं गद्य-भाषाएं हैं, ज्यादा ठोस हैं। इसलिए अगर संस्कृत में विज्ञान लिखना हो तो बड़ी मुश्किल बात है। और अगर एस्प्रैंटो में कविता लिखनी हो तो मुश्किल बात है। क्योंकि एस्पैंरटो नवीनतम आदमी की बनाई हुई भाषा है। वह बिल्कुल गणित जैसी है। उसमें जो कहा गया है, वही अर्थ होता है। जो कहा जाए, अगर वही अर्थ हो, तो कविता का जन्म मुश्किल है। जो कहा जाए, उससे बहुत अर्थ हो सके ज्यादा, तो ही कविता पैदा हो सकती है।

प्रेम में जब हम बोलते हैं, तो शब्द तरल होते हैं। इसलिए कभी आपने ख्याल किया कि दो जवान व्यक्ति भी अगर प्रेम में पड़ जाएं तो फिर से बच्चों की भाषा बोलने लगते हैं, बेबी-लैंग्वेज शुरू हो जाती है। दो प्रेमी जो भाषा बोलते हैं आपस में, वह बच्चों जैसी बोलते हैं। बच्चों की भाषा ज्यादा तरल है। और प्रेम को तरल भाषा की

जरूरत है। इसलिए प्रेमी अगर अपनी प्रेयसी को बेबी कहने लगता है तो कोई ऐसे अकारण नहीं। कारण है। वे दोनों बच्चे हो गए हैं।

लेकिन भाषा की एक तीसरी, शब्द की एक तीसरी अवस्था भी है, जहां गद्य-पद्य दोनों खो जाते हैं। वह है वायवीय अवस्था, जहां गैस बन जाता है शब्द। उसका नाम ही मौन है। मौन भी शब्द की ही अवस्था है।

ठोस बोला जा सकता है। जब आप किसी को क्रोध में बोलते हैं, तो शब्द ठोसतम होते हैं। गाली वजनी होती है, उसमें वजन होता है, वेट होता है। इसलिए हम कहते हैं कि बड़ी वजनी गाली दी। ठोस होती है। इसलिए छिद जाती है, पत्थर की तरह चोट करती है। प्रेम में बोले गए शब्द तरल होते हैं। उनकी चोट पत्थर की तरह नहीं होती है, उनकी चोट ऐसी होती है, जैसे ऊपर फूल की वर्षा हो जाए।

मौन शब्द की तीसरी अवस्था है, जहां शब्द भाप बन जाते हैं, कोहरे में खो जाते हैं।

तो लाओत्से कहता है, वह जो कोहरा था, मौन था; पृथक, एकाकी खड़ा। कोई दूसरा न था, अकेला था। अपरिवर्तित, कोई परिवर्तन न था; नित्य, निरंतर घूमता हुआ; सभी चीजों की जननी बनने योग्य!

इस फर्क को थोड़ा ख्याल में लेंगे।

जो लोग मानते हैं ईश्वर ने जगत को बनाया, वे हमेशा गॉड दि फादर, ईश्वर पिता है, इस भाषा में सोचेंगे। लेकिन लाओत्से कहता है, मां! पिता नहीं। वह जो कोहरा था, सारे जगत की जननी बनने योग्य, मां बनने योग्य!

ईश्वर को पिता की तरह सोचना कई बातों की तरफ सूचना देता है। पहली बात, पिता का बच्चे के जन्म में न के बराबर संबंध होता है--न के बराबर। पिता बच्चे को जन्म दूर से देता है, अपने भीतर से नहीं। बच्चे के विकास, उसकी ग्रोथ, उसके निर्माण में उसका कोई हाथ नहीं होता। प्रारंभ में उसका हाथ होता है। जैसे आपके कार में बैटरी है स्टार्टर, बस वह स्टार्टर भर है। और जैसे ही इंजन शुरू हो गया, उसका कोई उपयोग नहीं है।

तो अगर ईश्वर पिता है तो जगत को बना कर वह दूर हट जाएगा। लेकिन ईश्वर अगर मां है तो जगत उसका गर्भ है। अगर ईश्वर पिता है तो बनाना एक कृत्य है--एटामिक, आणविक। लेकिन अगर ईश्वर मां है तो सृजन एक शाश्वतता है--इटरनल।

इसलिए लाओत्से कहता है कि वह जो कोहरा था मौन, अकेला, अपरिवर्तित, स्वयं में घूमता हुआ, वह सबकी जननी बनने योग्य। सब उससे पैदा हो सकता है। सबकी संभावना है उससे पैदा होने की।

इसलिए कई बार, कई बार इन दोनों के बीच आंदोलन होता रहा है। कुछ लोगों ने परम सत्ता को मां की तरह सोचा है; कुछ लोगों ने परम सत्ता को पिता की तरह सोचा है। लेकिन जो लोग भी गहरे गए हैं, उन्होंने उसे सदा मां की तरह सोचा है।

मां के लिए बच्चे का जन्म बड़ी और बात है। उसके ही खून, उसके हड्डी-मांस, बच्चा उसका हिस्सा है। उसकी ही सांसें उसमें प्रविष्ट हो जाती हैं। उसकी ही आकांक्षाएं, उसके ही स्वप्न उसके खून में गतिमान हो जाते हैं। उसकी ही धड़कनें उसमें धड़कती हैं। मां और उस बच्चे का संबंध ज्यादा आंतरिक है, गहन है।

पिता एक धूमकेतु की तरह जीवन में आता और अलग हो जाता। पिता के बिना चल सकता है; मां के बिना नहीं चल सकता है। शायद भविष्य में विज्ञान थोड़ा विकसित हो तो पिता व्यर्थ भी हो जाए। क्योंकि ऐसे बायोलाजिकली जो वह करता है, वह एक इंजेक्शन से भी हो सकता है। कोई पिता का होना कोई बहुत गहन अर्थ नहीं रखता है। इसलिए पिता एक सामाजिक संस्था है, नैसर्गिक नहीं। मां एक नैसर्गिक है, वह संस्था नहीं है। पिता एक संस्था है, इंस्टीट्यूशन है; हमने बनाई है। मां हमने बनाई नहीं है, वह है।

लाओत्से कहता है, "जननी बनने योग्य!"

उसके एक-एक शब्द बहुत विचारणीय हैं। क्योंकि वह शब्दों के मामले में बहुत कृपण है। शब्दों के मामले में वह बहुत कृपण है; वह बामुश्किल बोलता है--टेलीग्राफिक है। अगर एक शब्द काट सके तो वह जरूर काट देगा। जितना कम बन सके, उतना ही कहने की उसकी मर्जी है। तो वह ऐसे ही उपयोग नहीं कर लेता है; जब वह कहता है जननी बनने योग्य तो वह बहुत सी बातें कहता है। वह कहता है, यह जगत का अस्तित्व और जगत की अभिव्यक्ति एक ही चीज हैं, दो नहीं। परमात्मा कहीं दूर बैठा हुआ नहीं है; वह परम सत्य, वह परम नियम जगत में अनुस्यूत है। वह आपके भीतर, आपकी हड्डी में, जैसे आपकी मां आपकी हड्डी में, आपके खून में, आपकी चर्बी में अनुस्यूत है, ऐसे ही वह परम नियम आपके रोएं-रोएं में अनुस्यूत है। वह आपके पिता की तरह दूर खड़ा नहीं हो गया।

और पिता के संबंध में सदा संदेह हो सकता है; मां भर असंदिग्ध है। इसलिए पिताओं को सदा संदेह बना ही रहता है कि वे सच में अपने बेटे के पिता हैं या नहीं हैं। और इसलिए उन्होंने बड़ा इंतजाम किया है इसको व्यवस्थित करने का कि संदेह न हो। इतनी जो ईर्ष्या, इतना जो नियम, इतना जो परिवार, इतना जो बंधन, स्त्री पर इतना जो जाल, इस सारे जाल का मौलिक कारण कुल इतना है कि पिता संदिग्ध है। उसे पक्का भरोसा कभी नहीं आता कि जो बेटा है, वह उसका ही है। इतना सब इंतजाम करके वह भरोसे में हो पाता है।

इसलिए विवाह करे तो कुंआरी लड़की से; वह भरोसे के लिए। पूरा पक्का भरोसा रखना चाहता है। इसलिए हम कुंआरे लड़के की फिक्र नहीं करते कि विवाह के वक्त लड़का कुंआरा था कि नहीं। अगर लड़का थोड़ा भी लड़का है तो कुंआरा होना बहुत मुश्किल है। लेकिन लड़की कुंआरी होनी चाहिए। फिर हम फिक्र नहीं करते, तो हम कहते हैं कि पुरुष तो पुरुष हैं। अगर वे कुछ यहां-वहां भटकते हैं तो हम कहते हैं कि पुरुष तो पुरुष हैं। लेकिन स्त्री पर हमारा सख्त... । उसका कारण है। उसका कारण है कि पुरुष कभी भी निश्चिंत नहीं हो पाता; भीतर एक संदेह और एक शक का बीज उसमें बना ही रहता है।

सिर्फ मां असंदिग्ध है। मां भर जानती है कि बेटा उसका है। उस मामले में कोई संदेह का उपाय नहीं है।

जिन लोगों ने परमात्मा को पिता की तरह माना है, उन्होंने बड़ी दूरी खड़ी कर दी। पिता की तरह परमात्मा भी एक संस्था हो गया--दूर। मां की तरह परमात्मा एक संस्था नहीं है, एक नैसर्गिक व्यवस्था है--निकट।

लाओत्से कहता है, जननी बनने योग्य वह कुहासा था।

सब उससे पैदा हो सकता है। स्रष्टा नहीं है वह, जननी है। सब उससे निकल सकता है, जैसे मां से बेटा निकल सकता है। वह कोई कुम्हार की तरह घड़ा बनाने वाला नहीं है। मां की तरह है, उसके ही गर्भ से सब पैदा हो सकता है; सब संभावित है।

"मैं उसका नाम नहीं जानता हूं।"

लाओत्से कहता है, मैं उसका नाम नहीं जानता हूं। यही नहीं कहता कि उसका नाम कहा नहीं जा सकता है; वह यह कहता है कि मैं उसका नाम जानता ही नहीं हूं। यह तो बहुत लोगों ने कहा है कि उसका नाम कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसमें यह भी लग सकता है कि उनको तो पता है; कह नहीं सकते, कहने में तकलीफ है। जैसा हम निरंतर कहते हैं, गूंगे का गुड़। हम कहते हैं, गूंगा कह नहीं सकता कि गुड़ मीठा है, लेकिन गूंगे को पता तो है कि मीठा है। इसमें कोई शक नहीं है कि गूंगे को पता नहीं है, गूंगे को पता है, कह नहीं पाता। तो हमने कहा है कि संतों को पता है, कह नहीं पाते। क्योंकि भाषा असमर्थ है।

लाओत्से बहुत हिम्मत से कहता है, वह कहता है, मैं उसका नाम नहीं जानता हूं। मुझे उसका नाम पता ही नहीं है। क्योंकि उसका नाम है ही नहीं। यह सिर्फ अभिव्यक्ति की कठिनाई नहीं है; अस्तित्व अनाम है।

बोधिधर्म चीन गया। लाओत्से जैसा ही अनूठा आदमी था। भारत ने जो दस-पांच अनूठे आदमी पैदा किए, उनमें बोधिधर्म एक है। वह चौदह सौ साल पहले चीन गया। सम्राट ने उसका स्वागत किया। और सम्राट ने बड़ी आशाएं बांध कर रखी थीं। इतना महान मनीषी आता था तो सम्राट के मन में बड़े लोभ थे, बहुत कुछ हो सकेगा। सम्राट ने आते ही उससे पूछा, बोधिधर्म से, कि मैंने इतने-इतने मंदिर और विहार बनवाए, इनका क्या लाभ होगा? बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं, नथिंग।

सम्राट थोड़ा चौंका। क्योंकि संन्यासी आमतौर से ऐसी भाषा नहीं बोलते। ऐसी भाषा बोलें तो संन्यासी जी नहीं सकते। संन्यासी समझाते हैं, इतना पुण्य करो, इससे हजार गुना मिलेगा। पुण्य तो संन्यासियों को मिलता है, हजार गुना मौत के बाद का सवाल है। उसके बाबत अब तक कुछ तय नहीं हुआ कि कितना गुना मिलता है, कि नहीं मिलता, कि पाप लगता है, कि क्या होता है। कुछ पता नहीं है। पुरोहित अगर ऐसी भाषा बोलें, बोधिधर्म जैसी, तो सारा धंधा टूट जाए। पुरोहित का धंधा आपके लोभ के शोषण पर निर्भर है। वह आपको कहता है, एक पैसा छोड़ो गंगा जी में, करोड़ मिलेंगे वहां, करोड़ गुना पाओगे। करोड़ गुना के लोभ में आदमी एक पैसा छोड़ता है। यह एक पैसा पुरोहित को मिल जाता है। बाकी करोड़ इसको मिलते हैं या नहीं मिलते, यह यह आदमी जाने।

बोधिधर्म के पहले और भी बौद्ध भिक्षु आए थे चीन में। उन्होंने सम्राट को समझाया था, विहार बनवाओ, मंदिर बनवाओ, बुद्ध की प्रतिमाएं बनवाओ। बड़ा पुण्य होगा। स्वर्ग तुम्हारा होगा। और बोधिधर्म कहता है, कुछ भी नहीं। तो सम्राट ने दुबारा--सोचा, शायद बोधिधर्म समझा नहीं--तो उसने कहा कि मैंने इतने पवित्र कृत्य किए, उनका पुण्य क्या? बोधिधर्म ने कहा, कोई कृत्य पवित्र नहीं है। सम्राट ने पूछा, धर्म क्या है? सोचा उसने, छोड़ो पुण्य की बात। बोधिधर्म ने कहा, पूछो और उत्तर मिल जाए, ऐसा धर्म नहीं है। जीओ, पा सकते हो।

तब सम्राट ने सोचा, यह हद हो गई। और सम्राट था, साधारण आदमी न था। उसके अहंकार को भारी चोट लग रही है बार-बार। हजारों लोग इकट्ठे थे। वे सुन कर बोधिधर्म का उत्तर मुस्कुराते। और सम्राट को दीनता मालूम होने लगी। तो सम्राट ने कहा, ये सब बातें छोड़ो; इसका भी पता नहीं, उसका भी पता नहीं। तुम कौन हो? हू आर यू? बोधिधर्म ने कहा, आई डोंट नो, मुझे पता नहीं, मुझे बिल्कुल पता नहीं। हम सोचेंगे शायद बोधिधर्म को कहना था, मैं आत्मा हूं, मैं ब्रह्म हूं। उसने कहा कि आई डोंट नो, मुझे पता ही नहीं है।

सम्राट ने कहा, जब तुम्हें कुछ ही पता नहीं है तो तुम हमें क्या बताओगे? सम्राट वापस लौट गया।

बोधिधर्म के शिष्यों ने कहा, आपने यह क्या किया? आपने ऐसे उत्तर दिए कि वह हताश हो गया।

बोधिधर्म ने कहा, मैंने तो सोच कर कि सम्राट है, श्रेष्ठतम उत्तर दिए थे। अंतिम उत्तर दिए थे, सोच कर कि बुद्धिमान होगा। अशिक्षित निकला। मैंने तो अंतिम उत्तर दिए थे। मुझे क्या पता कि अशिक्षित गंवार है! नहीं तो मैं कह देता कि मेरा नाम बोधिधर्म है। इसमें क्या अड़चन थी? सोच कर कि सम्राट है, सुसंस्कृत है, मैंने अंतिम उत्तर दिए थे--अल्टीमेट। यह आखिरी उत्तर है।

लाओत्से कहता है, "मैं उसका नाम नहीं जानता हूं, और उसे ताओ कह कर पुकारता हूं।"

यह उसका नाम नहीं है, यह मेरा दिया हुआ नाम है।

जैसे आपके घर में एक बच्चा पैदा होता है, उसको कोई नाम नहीं है। आप उसे नाम देते हैं। अगर समझ हो तो कहना चाहिए कि मैं उसे मुन्ना कह कर पुकारता हूं। यह उसका नाम नहीं है। हमें उसका नाम पता नहीं है।

लेकिन बिना नाम के कैसे पुकारें, इसलिए हमने उसे यह नाम दे दिया है--अ, ब, स। यह उस बच्चे को भी समझाया जाना चाहिए कि यह उसका नाम नहीं है, केवल एक इंतजाम है पुकारने का। एक कामचलाऊ इंतजाम है। अज्ञान है गहन और हमें नाम का कोई पता नहीं है। इसलिए हम यह नाम रख लिए हैं। यह बच्चे को भी पता होना चाहिए।

लेकिन मां-बाप भी भूल जाते हैं कि यह नाम सिर्फ पुकारने के लिए है। फिर बेटा भी सुनते-सुनते भूल जाता है कि नाम पुकारने के लिए था। जब कोई आपके नाम को गाली देता है तो आपको लगता है गाली आपको दी गई है। अगर आपको पता होता यह नाम सिर्फ पुकारने के लिए है तो आप कहते कि मेरे नाम को गाली दी गई है, मेरा इससे कुछ लेना-देना नहीं। जब आपके नाम को कोई जयजयकार करता तो आप कहते, मेरे नाम का जयजयकार किया जा रहा है, मेरा इससे कोई संबंध नहीं है। मैं तो अनाम हूं, यह कामचलाऊ है। अगर कोई व्यक्ति अपने नाम के संबंध में इतना स्मरण रख सके तो यह स्मरण भी ध्यान बन जाता है।

लेकिन बड़ा मुश्किल है। एक क्षण भी याद रखना मुश्किल है; चूक जाएगा। जरा... ।

हुई हाई अपने गुरु के पास गया था। और उसके गुरु ने हुई हाई को समझाया कि पहला सूत्र तुझे देता हूं कि तू तेरा नाम नहीं है, इसको स्मरण रख। उसने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, स्मरण रखूंगा। और तभी जोर से उसके गुरु ने कहा, हुई हाई! और उसने कहा, जी! उसके गुरु ने कहा, कैसे तू स्मरण रखेगा? जरा तो संयम रखता जी कहने में!

ऐसे ही हमारा विस्मरण हो जाएगा। कितना ही हम मन में समझाते रहें कि यह जो गाली दी जा रही है, मेरे नाम को दी जा रही है; लेकिन गाली भीतर लगती ही चली जाएगी। छेद हृदय में हो जाएगा, नाम में नहीं। तीर वहां भीतर घुस जाएगा, नाम में नहीं।

लाओत्से कहता है, "मुझे उसका नाम पता नहीं, मैं उसे ताओ कह कर पुकारता हूं। यदि मुझे नाम देना ही पड़े, अगर तुम मानो ही न बिना नाम के, तो मैं उसे महत कहूंगा। इफ फोर्स्ड टु गिव इट ए नेम, आई शैल काल इट ग्रेट; अगर कहना ही पड़े कुछ नाम तो मैं उसे महत कहूंगा।"

महत का उपयोग सांख्य ने भारत में किया है। महत का मतलब होता है, जो इतना महान है कि उसकी हम सीमा न बना सकें। महान का मतलब है, जो फैलता ही चला गया है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

"महान होने का अर्थ है अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता।"

इससे भी विज्ञान का बड़ा संबंध है। आज तो विज्ञान कहता है कि यह जो हमारा यूनिवर्स है, ऐसा मत सोचें कि यह ठहरा हुआ है, यह एक्सपैंडिंग है। इस विचार ने फिजिक्स की सारी आधारशिलाएं हिला दीं और बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। क्योंकि यह तो हमारी समझ में आता है कि यह जगत कितना ही बड़ा हो, हमारी बुद्धि इसको कितना ही बड़ा सोचे, फिर भी ऐसा लगता है, कहीं तो सीमा होगी--कितनी ही दूर हो वह सीमा। लेकिन यह हमारी बुद्धि के लिए ग्रहण करना असंभव है कि कहीं भी सीमा न होगी। हमारा मन कहेगा, और आगे सही, और आगे सही, और आगे सही--कहीं तो होगी। यह भी हो सकता है, हम न पहुंच सकें वहां तक, लेकिन फिर भी तो होगी।

मन असीम को नहीं सोच सकता। मन की सोचने की क्षमता सदा सीमा के भीतर है।

महान का अर्थ है, जो मन से सोचा न जा सके। इसलिए जब आप कहते हैं फलां व्यक्ति बहुत महान है, तो आपको पता नहीं आप क्या कह रहे हैं। महान का मतलब है, जो आपकी पकड़ में न आए, जिसको आप कितना ही खोजें और जिसकी सीमा न खोज पाएं। लेकिन उसको आप महान नहीं कहते, आप तो महान उसको कहते हैं

जो आपके तराजू में तुल जाए। आप कहें कि बिल्कुल ठीक है। जितने कपड़े पहनना चाहिए, उतने ही कपड़े पहने हुए है; लंगोटी लगानी चाहिए, लंगोटी लगाए हुए है; एक दफा खाना खाना चाहिए, एक दफा खाना खाता है; पैदल चलना चाहिए, पैदल चलता है; आंख नीचे रखनी चाहिए, नीचे रखता है; हिंसा नहीं करता; बुरे वचन नहीं बोलता; महान है। आपकी तराजू पर जो तुल गया, वह महान है।

आपकी तराजू पर जो तुल जाए, वह क्षुद्र भी नहीं है, महान होना तो बहुत दूर है। आपके तराजू की औकात कितनी? महान का अर्थ हैः जिसको आप तौल न पाएं, अमाप, जिसकी कोई सीमा न बना पाएं, जिसको आप तय न कर पाएं, जिसको आप यह भी न कह सकें कि महान है--तब! जिसको आप इतना ही कह पाएं कि बेबूझ है, समझ के परे है; हम चुक जाते हैं, वह नहीं चुकता।

यह जो जगत है, यह दोहरे अर्थों में बेबूझ है। एक तो यह बेबूझ है कि यह असीम है। पहली तो यह बेबूझ बात है। दूसरी बेबूझता यह है कि न केवल यह असीम है, बल्कि यह असीमता एक्सपैंडिंग है। यह जो असीमता है, यह बढ़ती चली जा रही है। यह और कठिन मामला है। क्योंकि हम समझ सकते हैं सीमित चीज बढ़ती जा रही हो। लेकिन असीम चीज बढ़ रही हो तो उसका मतलब पहला तो यह है कि वह असीम नहीं होगी, जब बढ़ रही है; कोई सीमा होगी, उससे आगे बढ़ती जा रही है।

जब आइंस्टीन ने पहली दफे कहा कि यह जगत फैल रहा है, तो सवाल उठा कि यह कहां फैल रहा है? स्थान चाहिए फैलने को, स्पेस चाहिए। और अगर स्पेस आगे है तो स्पेस जगत का हिस्सा है। तो आइंस्टीन कहता है कि स्पेस भी फैल रही है, आकाश भी फैल रहा है। इधर पिछले तीस-चालीस वर्षों में फिजिक्स मेटाफिजिक्स हो गई है। वह जो भौतिक शास्त्र है, वह अध्यात्म हो गया है। उसकी बातें ठीक अध्यात्म जैसी बेबूझ हो गई हैं। और आने वाले भविष्य में अगर वैज्ञानिक लाओत्से जैसी भाषा बोलें तो बहुत हैरानी नहीं होगी।

इसलिए लाओत्से के संबंध में पश्चिमी वैज्ञानिक को बड़ी उत्सुकता बढ़ गई है। अभी एक बहुत अदभुत किताब, दि ताओ ऑफ साइंस, लिखी गई है--ताओ और विज्ञान के बीच कहां तालमेल है इस पर।

लाओत्से कहता है, महान होने का अर्थ है अंतरिक्ष में फैलते चले जाना।

ब्रह्म का भी यही अर्थ है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता है विस्तार। लेकिन सिर्फ मृत विस्तार नहीं, जीवित विस्तार। अर्थात विस्तीर्ण होता विस्तार, फैलता जाता फैलाव। इसलिए हम इसको ब्रह्मांड कहते हैं; यह फैलता हुआ विस्तार है। यह कहीं रुक नहीं जाता। जैसे एक सागर फैलता ही जा रहा हो, जिस पर कोई सीमा न हो कहीं; जहां कोई दीवार न हो, जो रोकती हो फैलाव को।

लेकिन अगला हिस्सा बहुत कठिन हैः "और अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी।"

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि यह साधना के लिए भी बहुत कीमती है।

"और अंतरिक्ष में फैलाव की क्षमता है दूरगामी।"

यह जो फैलाव है, यह इतना दूरगामी है, इतना दूरगामी है, अनंत तक दूर चला जाता है। यह तो कठिन है समझना, आखिरी कड़ी समझना असंभव है।

"यही दूरगामिता मूल बिंदु की ओर प्रतिगामिता भी है। दिस फार रीचिंग इंप्लाइज रिवर्सन टु दि ओरिजिनल प्वाइंट।"

यह जो लोग फिजिक्स समझते हैं गहरे में, वे ही समझ पाएं।

लाओत्से कहता है, यह जो दूर चले जाना है, यह इतने दूर चला जाता है, यह इतने दूर चला जाता है--कि फिर वर्तुल बन जाता है, और यह दूर जाना पास आना हो जाता है। इतने दूर, इतने दूर, इतने दूर--फिर वर्तुलाकार हो जाता है और यह दूर चले जाना फिर पास आना हो जाता है। और जो अपने से सर्वाधिक दूर चला जाता है, वह अचानक पाता है कि अपने बिल्कुल पास आ गया है।

आइंस्टीन ने कहा है कि यह जो स्पेस है, सरकुलर है, वर्तुलाकार है। यह और भी कठिन मामला है। आइंस्टीन कहता है, यह जो आकाश है, यह वर्तुलाकार है। यह फैलता जा रहा है, लेकिन इससे यह मत समझना कि यह दूर ही चला जा रहा है। एक सीमा के बाद इसका फैलाव लौट पड़ता है अपनी ही तरफ, घर की तरफ, और मूल बिंदु पर आ जाता है। वापस लौट आता है।

जैसे एक आदमी, आप अपने घर से निकलें यात्रा पर और अपनी नाक की सीध में चल पड़ें। आप अपने घर से प्रतिपल दूर होते जा रहे हैं। लेकिन चूंकि पृथ्वी गोल है, आपका हर कदम आपको घर की तरफ भी ला रहा है। अपने घर से आप निकल पड़े, दस कदम दूर हो गए घर से, बारह कदम दूर हो गए घर से; लेकिन चूंकि पृथ्वी गोल है, अगर आप नाक की सीध में चलते ही गए तो एक दिन अपने घर वापस लौट आएंगे। तो हर कदम जो आपको दूर ले जा रहा है, वह आपको पास भी ला रहा है--दूसरी दिशा से, दूसरे आयाम से।

आकाश को आइंस्टीन कहता है, वर्तुलाकार है, सरकुलर है। तो जितनी दूर फैलता जा रहा है यह ब्रह्मांड, उतना ही पास भी आता जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि लाओत्से को यह ख्याल आज से पच्चीस सौ साल पहले। लाओत्से कहता है, यही दूरगामिता का बिंदु प्रतिगामिता भी है, रिवर्सन टु दि ओरिजनल प्वाइंट। वापस लौटना भी है।

इसका मतलब यह हुआ कि सिर्फ वे ही लोग भटक जाते हैं, जो बीच में अटक जाते हैं। या तो दूर जाएं ही मत, और या फिर इतने दूर चले जाएं कि वापस अपने पास आ जाएं। या तो घर छोड़ें ही मत, और या फिर घर छोड़ दें तो फिर रुकें ही मत। तो किसी दिन वापस घर लौट आएं।

इसको ऐसा हम समझें। एक बच्चा पैदा हुआ, चला जिंदगी में। जीवन भी वर्तुलाकार है।

ध्यान रखें, इस जगत में सभी गतियां वर्तुलाकार हैं। गति का अर्थ ही वर्तुल है, सरकुलर है। कोई भी गति हो--चाहे तारे घूमते हों, और चाहे पृथ्वी घूमती हो, चाहे सूरज घूमता हो, चाहे स्पेस घूमती हो, चाहे ब्रह्मांड घूमता हो--सब घूमना वर्तुलाकार है। और चाहे जीवन घूमता हो, सब घूमना वर्तुलाकार है।

एक बच्चा पैदा हुआ। यह बच्चा चल पड़ा जीवन में। अब यह जन्म से दूर होता जा रहा है। मौत करीब आएगी, जन्म दूर होता जा रहा है। लेकिन यह उन्हीं की दृष्टि है, जिन्हें अगले जन्म का कोई पता नहीं है। अन्यथा यह फिर जन्म के करीब होता जा रहा है। इस जन्म से शुरू हुआ, मौत की तरफ जाता हुआ दिखाई पड़ रहा है; लेकिन हर मौत नए जन्म की शुरुआत है। मरते वक्त व्यक्ति ठीक वहीं पहुंचता है, उसी बिंदु पर, जहां जन्मते वक्त होता है। एक वर्तुल पूरा हो जाता है। हम पहले बिंदु पर वापस लौट आते हैं।

इसलिए जो लोग मृत्यु को समझ लें, वे जन्म को भी समझ लेते हैं। जन्म को समझना मुश्किल है, क्योंकि आपको पता ही नहीं है क्या हो रहा है। लेकिन मृत्यु को आप समझ सकते हैं। और जो व्यक्ति मृत्यु को समझ ले, मृत्यु के बिंदु को ठीक से समझ ले, उसको जन्म का रहस्य भी समझ में आ गया। जिसने जान ली मृत्यु, उसने जीवन भी जान लिया। लेकिन मृत्यु से हम डरते हैं। इसलिए हम जीवन जानने से भी वंचित रह जाते हैं। मृत्यु और जन्म, एक ही बिंदु पर मिलते हैं।

हमारी सारी की सारी जीवन की गतिविधियां वर्तुलाकार हैं। और हम कहीं भी चले जाएं, हम अपने मूल बिंदु पर वापस लौट आते हैं। लाओत्से यह क्यों कह रहा है? लाओत्से यह कह रहा है कि तुम कितना ही कुछ करो, तुम अपने स्वभाव से दूर न जा सकोगे। तुम कितने ही दूर चले जाओ, तुम्हारा दूर जाना भी पास आने का ही रास्ता बनेगा। लाओत्से यह कह रहा है, अपने से दूर जाने का कोई भी उपाय नहीं है। तुम भटक सकते हो, धोखा दे सकते हो, सपने देख सकते हो; लेकिन तुम अपने से दूर नहीं जा सकते। और कितने ही दूर चले जाओ, तुम्हारा सब दूर जाना तुम्हारा अपने ही पास आने का उपाय है।

इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि जो बहुत गहरे संसार में चला जाता है, वह अचानक अध्यात्म में आ जाता है। बीच में जो मीडियाकर्स हैं, वे हमेशा मुश्किल में होते हैं। इसलिए कभी कोई बाल्मीकि अचानक धार्मिक हो जाता है। हैरानी होती है, कोई अंगुलीमाल एकदम हत्या की दुनिया से बदलता है और बुद्ध उससे कहते हैं कि तुझसे ज्यादा शुद्ध ब्राह्मण खोजना मुश्किल है अंगुलीमाल! यह हत्यारा अचानक शुद्ध ब्राह्मण हो जाता है। क्या हुआ? यह इतनी दूर चला गया हत्या में कि वर्तुलाकार हो गई यात्रा।

इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पापी और अपराधी तो संत बन जाते हैं, तथाकथित साधु नहीं बन पाते। जिंदगी जटिल है। और उसके रास्ते इतने सीधे-सादे नहीं हैं जैसे हमें दिखाई पड़ते हैं। बहुत उलझे हैं।

यह लाओत्से का सूत्र बड़ा कीमती है, साधक के लिए बहुत कीमती है। तीन बातें स्मरण रख लेने जैसी हैं।

एक, लाख करो उपाय अपने से दूर नहीं जाया जा सकता। सब तरफ भटक कर, सब तरफ की यात्रा आखिर में अपने पर ले आती है। क्योंकि वह हमारा मूल बिंदु है।

दूसरी बात, जीवन की सब गतियां वर्तुल में हैं। इसलिए ऐसा, ऐसा सोचने की कोई भी जरूरत नहीं है कि कोई भी इतने पाप में पड़ गया है कि पुण्य को उपलब्ध न हो सकेगा। ऐसा सोचने की कोई भी जरूरत नहीं है कि कोई इतने संसार में गिर गया है कि मोक्ष का अधिकारी न हो सकेगा। सब यात्रा वर्तुल है। किसी भी बिंदु से लौटना हो सकता है। और किसी भी बिंदु से वापसी शुरू हो जाती है। और सच तो यह है कि अगर कोई जिद्द किए ही चला जाए नाक की सीध में तो हर यात्रा अपने पर ले आती है। इसलिए जिद्दी अक्सर पहुंच जाते हैं। उसको हम जिद्द नहीं कहते, उसको हम हठयोग कहते हैं। उसको हम दृढ़ता कहते हैं, उसको हम संकल्प कहते हैं।

तनका अपने गुरु के पास था। वह ध्यान की साधना कर रहा है। महीनों बीत गए हैं। गुरु उसके पास गया। और उसने तनका को बैठे हुआ देखा--बुद्ध की मुद्रा में, आंखें बंद किए, पत्थर की तरह। उसके गुरु ने, एक ईंट पड़ी थी दरवाजे पर, उसको उठा कर पत्थर पर घिसना शुरू कर दिया। ईंट की कऱर-कऱर आवाज, दांत किसमिसाने लगे तनका के। आखिर उसने आंख खोली और उसने कहा, यह क्या कर रहे हैं? और अपने गुरु को देखा तो बहुत हैरान हुआ। उसने सोचा, कोई बच्चा, या कोई शैतान आकर आस-पास कुछ कर रहा है। उसका गुरु पत्थर घिस रहा है। तनका ने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं? उसके गुरु ने कहा कि इस ईंट को घिस-घिस कर मैं दर्पण बनाना चाहता हूं।

गुरु तनका को कहना चाहता था कि जैसे यह ईंट घिस-घिस कर दर्पण नहीं बन सकती, ऐसे ही तू यह जो बैठा है आंखें बंद किए, कितना ही बैठा रहे, इससे ध्यान नहीं मिल सकता।

लेकिन तनका हंसा और उसने कहा कि अगर आप आखिरी तक घिसते ही गए तो दर्पण बन जाएगी। आंख बंद कर लीं। और आंख बंद किए-किए बैठे-बैठे तनका ज्ञान को उपलब्ध हुआ।

जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ, तो उसके गुरु ने कहा कि मैं तो यह सोच कर तेरे सामने ईंट घिस रहा था कि तू पूछेगा कि आप पागल तो नहीं हो गए हैं! ईंट कितना ही घिसो, कहीं दर्पण बनेगी? तो मन को कितना ही

घिसो, ध्यान कैसे हो जाएगा मन--यह मैं तुझे कहने आया था। और अगर तू यह सवाल मुझसे पूछ लेता कि कितना ही ईंट को घिसो, दर्पण कैसे बनेगी? तो पक्का था कि तू कितना ही मन को घिसता, ध्यान नहीं बन सकता था। लेकिन तूने यह पूछा ही नहीं और आंख बंद कर ली। मैं तुझसे पूछता हूं, तेरे मन को क्या हुआ? तो तनका ने कहा कि मेरे मन को हुआ कि अगर कोई घिसता ही चला जाए तो कभी न कभी दर्पण बन ही जाएगी। और मैं घिसता ही चला गया।

सीमा है। अगर कोई जिद्द किए ही चला जाए, सीधा चलता ही चला जाए, तो ईंट भी घिसी जाए तो दर्पण बन सकती है। और नरक की तरफ मुंह करके चलने वाला आदमी भी एक दिन स्वर्ग में पहुंच सकता है। और संसार की तरफ चलने वाला आदमी भी एक दिन निर्वाण के द्वार पर खड़ा हो सकता है।

झेन फकीरों ने कहा हैः संसार और निर्वाण में जरा भी, रत्ती भर का फर्क नहीं। जो ठहर जाते हैं बीच-बीच में, वे संसार में रह जाते हैं; जो चलते ही चले जाते हैं, वे निर्वाण में पहुंच जाते हैं।

आज इतना ही। रुकें पांच मिनट और कीर्तन करें।

तिरपनवां प्रवचन

स्वभाव की उपलब्धि अयात्रा में है

Chapter 25 : Part 2

The Four Eternal Models

Therefore: Tao is Great,
The Heaven is great,
The Earth is great,
The King is also great.
These are the Great Four in the universe,
And the King is one of them.
Man models himself after the Earth;
The Earth models itself after Heaven;
The Heaven models itself after Tao;
Tao models itself after Nature.

अध्याय 25 : खंड 2

चार शाश्वत आदर्श

इसलिए: ताओ महान है,
स्वर्ग महान है,
पृथ्वी महान है,
सम्राट भी महान है।
ब्रह्मांड के ये चार महान हैं,
और सम्राट उनमें से एक है।
मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है;
पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है;
स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बनाता है;
और ताओ अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाता है।

लाओत्से ने चार आदर्श बताए हैं।

"ताओ महान है, स्वर्ग महान है, पृथ्वी महान है और सम्राट भी।"

पहले इन चारों का लाओत्से का अर्थ समझ लें।

ताओ परम आदर्श है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं। ताओ का अर्थ है जीवन के आत्यंतिक नियम के अनुसार हो जाना, कोई विरोध न रह जाए अस्तित्व में और स्वयं में।

हमारा जीवन जैसा है, प्रतिपल विरोध है। हम जीते कम, जीवन से लड़ते ज्यादा हैं। जीवन हमारे लिए एक संघर्ष है, एक स्ट्रगल है, एक छीना-झपटी है। एक प्रसाद नहीं, एक अनुकंपा नहीं, एक द्वंद्व है। जो भी हमें पाना है, वह हमें छीनना है, झपटना है। अगर हम न झपटें, न छीनें, तो खो जाएगा। और हमें लगता है ऐसा कि जो जितना छीन लेते हैं, उतना ज्यादा पा जाते हैं। और जो खड़े रह जाते हैं, छीनते नहीं, संघर्ष नहीं करते, युद्ध में नहीं उतरते, वे हार जाते हैं।

लाओत्से की दृष्टि बिल्कुल विपरीत है। लाओत्से कहता है, जो छीनेगा, झपटेगा, वह और कुछ भला पा ले, जीवन से वंचित रह जाएगा। धन पा ले, यश पा ले, पद पा ले, लेकिन जीवन से वंचित रह जाएगा। और जब कोई जीवन को चुका कर पद पा लेता है तो उससे दयनीय कोई भी नहीं होता। और जब जीवन की कीमत पर कोई धन कमा लेता है तो उससे ज्यादा दरिद्र कोई नहीं होता। और जो जीवन को बेच कर यश कमाता है, आखिर में पाता है, हाथ में राख के सिवाय कुछ भी नहीं है। अंततः जीवन के मूल्य पर कुछ भी पाया गया, पाया गया सिद्ध नहीं होता, खोया गया सिद्ध होता है। लाओत्से कहता है, जीवन को पाना हो तो छीना-झपटी उसका उपाय नहीं है।

फिर क्या उपाय है? उपाय है ताओ के अनुकूल होते चले जाना; उपाय है जीवन की वह जो सरिता है, जो धारा है, उसमें तैरना नहीं बल्कि बहना, उससे लड़ना नहीं, उसके साथ एक हो जाना, और वह सरिता जहां ले जाए वहीं चले जाना। क्योंकि जिनका जीवन पर भरोसा नहीं है, उनका फिर किसी चीज पर भरोसा नहीं हो सकता। जीवन आपको जन्म देता है, जीवन आपकी श्वास है, जीवन आपके हृदय की धड़कन है। अगर आपका जीवन पर भी भरोसा नहीं है, जिससे आपका हृदय धड़कता है और जो आपके खून में बहता है और जो आपकी श्वास में सरकता है, अगर उस पर भी भरोसा नहीं है, तो फिर आपका किसी पर भरोसा नहीं हो सकता। अगर लाओत्से को हम समझें तो लाओत्से के लिए श्रद्धा का यही अर्थ है। यह अर्थ बड़ा गहरा है--जीवन के प्रति भरोसा, ट्रस्ट इन लाइफ।

लाओत्से नहीं कहता ईश्वर में विश्वास करो। ईश्वर का हमें कोई पता भी नहीं है। और जिसका पता ही नहीं है, उसमें विश्वास कैसे होगा? और होगा भी तो झूठा होगा।

इसलिए जगत में दो तरह के लोग हैंः अविश्वासी और झूठे विश्वासी। तीसरे तरह का आदमी खोजना मुश्किल है। और अविश्वासी ज्यादा ईमानदार हैं झूठे विश्वासियों से। क्योंकि अविश्वासी आज नहीं कल विश्वास पर पहुंच भी सकता है; लेकिन झूठे विश्वासी कभी विश्वास पर नहीं पहुंच सकते। क्योंकि झूठे विश्वासियों को तो यह ख्याल है कि उनमें श्रद्धा है ही। जिस ईश्वर को आप जानते नहीं, उसमें श्रद्धा हो नहीं सकती। कितना ही झुठलाएं और कितना ही समझाएं अपने को, कितना ही अपने ऊपर सिद्धांतों का आवरण ओढ़ें और कितना ही अपने हृदय को दबाएं और कितनी ही अपनी बुद्धि को कहें कि संदेह मत उठा, लेकिन जिसे आप जानते नहीं हैं उस पर आपकी श्रद्धा हो नहीं सकती। श्रद्धा आप कर सकते हैं, लेकिन श्रद्धा हो नहीं सकती। गहरे में अश्रद्धा मौजूद ही रहेगी। केंद्र पर अश्रद्धा मौजूद ही रहेगी।

और परिधि की श्रद्धा का कोई भी मूल्य नहीं। जब तक कि आत्मगत न हो, जब तक कि भीतर तक उसका तीर प्रवेश न कर जाए, जब तक आपके भीतर ऐसी कोई जगह न रह जाए जहां तक श्रद्धा प्रविष्ट न हुई हो, सब कुछ श्रद्धा से भर जाए, रोआं-रोआं प्राणों का, संदेह की एक जरा सी सुविधा न रह जाए, तब तक श्रद्धा का कोई मूल्य नहीं। हम श्रद्धा के वस्त्र ओढ़े हुए होते हैं, आत्मा हमारी अश्रद्धा की होती है।

इसलिए आस्तिक से आस्तिक आदमी को थोड़ा खरोंचें तो अश्रद्धा निकल आएगी। जिंदगी में खरोंच कभी-कभी अपने आप लग जाती है और अश्रद्धा निकल आती है। दुख आता है और आदमी कहने लगता है, ईश्वर का भरोसा डगमगा गया। खरोंच लगी--पराजय हो गई, हानि हो गई, सफलता न मिली--खरोंच लगी, श्रद्धा डगमगा जाती है। और इसी कारण, जिनको हम श्रद्धालु कहते हैं, वे श्रद्धा के संबंध में बात करने से भी भयभीत होते हैं। नास्तिक से चर्चा करने में भी उनकी आत्मा थर्राती है। क्या डर हो सकता है नास्तिक से आस्तिक को?

यह बड़े मजे की बात है कि नास्तिक आस्तिकों से चर्चा करने में नहीं घबड़ाते, आस्तिक नास्तिकों से चर्चा करने में घबड़ाते हैं। निश्चित ही, नास्तिक की अश्रद्धा आस्तिक की श्रद्धा से ज्यादा मजबूत मालूम होती है। नास्तिक का संदेह ज्यादा प्रामाणिक मालूम होता है आस्तिक के विश्वास से। और कोई छोटा सा नास्तिक भी आपकी आस्तिकता को हिला दे सकता है। सच यह है कि आप आस्तिक हैं नहीं। आस्था इतनी सस्ती नहीं। मां के साथ दूध पीने में नहीं मिलती, न मां के खून से आती है, न समाज के शिक्षण से मिलती है, न धर्मशास्त्रों से मिलती है। आस्था इतनी सस्ती बात नहीं। और हम एक ऐसा असंभव कृत्य करने में लगे हैं हजारों वर्ष सेः उस पर श्रद्धा करना चाहते हैं जिसे हम जानते ही नहीं। और तर्क हमारा बड़ा मजेदार है। जिसे हम जानते नहीं, उस पर हम श्रद्धा इसलिए करना चाहते हैं ताकि हम उसे जान सकें। आस्तिक लोगों को समझाते हुए सुनाई पड़ते हैं कि अगर श्रद्धा करोगे तो ही जान पाओगे। और मजा यह है कि श्रद्धा बिना जाने हो नहीं सकती है। यह सारा भवन ही बेबुनियाद है। जान कर ही श्रद्धा हो सकती है। न जाने तो संदेह बना ही रहेगा। संदेह का मतलब ही इतना है, अगर हम गहरे में खोज करें तो संदेह का मतलब ही इतना है कि आपको पता नहीं है इसलिए संदेह है। संदेह अज्ञान है।

इसलिए अज्ञान में श्रद्धा तो हो ही नहीं सकती। और अगर अज्ञान में भी श्रद्धा हो जाए तो इसका मतलब हुआ कि फिर ज्ञान में भी संदेह हो सकता है। अज्ञान में अगर श्रद्धा हो सकती है तो फिर ज्ञान में क्या होगा? फिर ज्ञान के लिए कुछ बचा ही नहीं। अज्ञान के साथ होता है संदेह। अज्ञान टूट जाए तो संदेह टूट जाता है। ज्ञान के साथ आती है श्रद्धा। ज्ञान का आगमन हो तो श्रद्धा छाया की तरह प्रवेश करती है।

इसे हम ऐसा समझें कि संदेह भीतर के अज्ञान का सिर्फ संकेत है, सूचक है। श्रद्धा भीतर के ज्ञान की सूचक है। ज्ञान और अज्ञान तो होते हैं भीतर, सूचनाएं बाहर तक आती हैं। संदेह सूचना है। श्रद्धा भी एक सूचना है। जो ऊपर की सूचनाओं को बदल लेता है, वह अपने को धोखा दे रहा है। भीतर तो है अज्ञान, संदेह की खबर आ रही है; और आप अपने ऊपर, अपने वस्त्रों में श्रद्धा-श्रद्धा राम-नाम लिख कर चदरिया ओढ़ लेते हैं। वह भीतर से संदेह आता ही चला जाएगा। आपके चादर पर लिखा राम-नाम उस संदेह को मिटा नहीं पाएगा। वह संदेह आथेंटिक है, प्रामाणिक है। वह आपसे उठ रहा है। और यह चदरिया आप बाजार से खरीद लाए हैं, इसे ऊपर से आपने ढांक लिया। इससे दूसरे को धोखा हो सकता है। लेकिन सच तो यह है, दूसरे को भी धोखा होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि जिसके भीतर से राम उठ रहा हो, चादर महत्वपूर्ण न रह जाएगी। और अगर ओढ़ने वाले को चादर बहुत महत्वपूर्ण है तो दूसरे को भी धोखे में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। यह अपने ही संदेह को ढांकने की व्यवस्था है।

लेकिन दूसरा धोखे में पड़ भी जाए, मजा तो यह है कि हम खुद भी धोखे में पड़ जाते हैं। अपने ही ऊपर ओढ़ी हुई चादर को देख कर कहते हैं कि श्रद्धा से भरे हुए हैं हम। सब तथाकथित श्रद्धाओं के भीतर संदेह का कीड़ा होता है। और जब तक वह मिट न जाए, तब तक श्रद्धा का कोई आगमन नहीं है।

इसलिए हमने सारी दुनिया को सिखा-सिखा कर कि ईश्वर पर भरोसा करो, ईश्वर पर भरोसा करो, धर्म को हम नहीं ला पाए; केवल लोगों को बेईमान बना पाए हैं। जिस पर भरोसा किया कैसे जा सके, जिसे हम जानते न हों; उस पर भरोसे की शिक्षण दे-दे कर हमने लोगों को झूठे धार्मिक बनाने में सफलता पा ली है। इसलिए सारी जमीन धार्मिक--और एक धार्मिक आदमी नहीं। सब धार्मिकता ओढ़ी हुई।

लेकिन धार्मिक आदमी अभी भी चिल्लाए चले जाते हैं, वे कहते हैं, हर बच्चे को दूध के साथ धर्म पिला दो। उनको डर लगा रहता है पूरे वक्त कि जरा बच्चे में अपनी बुद्धि आई कि फिर चदरिया ओढ़ाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वह बुद्धि भीतर से सवाल उठाने लगेगी। तो इसके पहले कि बुद्धि जगे, तुम जहर डाल दो, तुम्हें जो पिलाना हो पिला दो, उसको इतने गहरे में पड़ जाने दो कि कल उसकी बुद्धि भी सवाल उठाए तो भी उसे ऐसा लगे कि भीतर से नहीं आ रहा है। और उसकी झूठी श्रद्धा, जो बाहर से डाली गई है, वह इतने गहरे में जड़ जमा ले कि उसे धोखा होने लगे कि भीतर से आ रही है। इसलिए हम छोटे-छोटे अबोध बच्चों के साथ जो बड़े से बड़ा अपराध कर सकते हैं, वह करते हैं। हम उन्हें ज्ञान के मार्ग पर नहीं ले जाते, हम उन्हें विश्वास के मार्ग पर ले जाते हैं। विश्वास धोखा है ज्ञान का। विश्वास श्रद्धा नहीं है। विश्वास अंधापन है। श्रद्धा आंख का नाम है। इस जगत में जो गहरी से गहरी आंख हो सकती है, वह श्रद्धा है।

लाओत्से ईश्वर की बात नहीं करता। और लाओत्से की चिंतना बहुत वैज्ञानिक है। और अगर कभी इस जमीन पर कोई धर्म आता हो तो उसे कहीं लाओत्से की सीढ़ियों से आना पड़ेगा। बाकी सीढ़ियां असफल साबित हुई हैं।

लाओत्से कहता है, ईश्वर से तो क्या संबंध होगा आपका? इतना दूर है मामला। निकट से शुरू करो। दूर की बात मत करो, निकट से शुरू करो। कल दूर भी पहुंच सकते हो, लेकिन यात्रा निकट से शुरू करो।

जीवन निकटतम है। और अगर मेरा जीवन पर ही भरोसा नहीं है, उससे भी मैं छीना-झपटी कर रहा हूं, तो फिर मेरा कोई भरोसा किसी पर नहीं हो सकता। जीवन तो हमारे रग-रग में समाया हुआ है। जीवन तो हम हैं; जीवन के कारण हम हैं। जीवन का होना ही हमारा होना है। हमारे होने में जीवन छिपा है। इस पर भी हमारा भरोसा नहीं है। ऐसा जो गैर-भरोसा है, वह तोड़ा जा सकता है। क्योंकि जीवन से परिचय कोई दूर की बात नहीं है, किसी आकाश में बैठे ईश्वर की बात नहीं है। यहां रग-रग में दौड़ते हुए जीवन की बात है। इससे संबंध बन सकता है।

लाओत्से चार आदर्शों की बात करता है। और एक-एक क्रम से वे आदर्श हम समझें, तो अंततः हम जो निकटतम है और दूरतम मालूम पड़ता है, उस तक पहुंच सकते हैं।

कहता है, "ताओ महान है, स्वर्ग महान है, पृथ्वी महान है, सम्राट महान है।"

ये सीढ़ियां हैं। ताओ है श्रेष्ठतम, अंतिम। लेकिन ताओ हमारी पकड़ के बहुत दूर है। हमारे हाथ वहां तक पहुंच नहीं पाएंगे। यद्यपि वह हमारे हाथों के भीतर भी छिपा है, लेकिन यह उस दिन की बात है जब हमारी पहचान हो जाएगी उससे। अभी तो ताओ बहुत दूर है।

दूसरी सीढ़ी पर लाओत्से रखता है स्वर्ग। स्वर्ग का अर्थ है आनंद का सूत्र। स्वर्ग का अर्थ है महासुख। ताओ तो हमारे लिए दूर है, लेकिन सुख, आनंद, उतना दूर नहीं है। उसकी थोड़ी सी भनक कभी हमारे कान में पड़ी

है, कभी अचानक सुबह आंख खुली है और आकाश में आखिरी तारा डूबता हुआ देखा है--और कोई चीज हृदय के भीतर कंपित हो गई है। वह स्वर्ग है। कभी काले बादल आकाश में घिरे हैं और झील के किनारे उनकी छाया झील में बन गई है--और आपके भीतर भी कोई प्रतिबिंबित हो उठा है एक क्षण को। कि अंधेरी रात में, अमावस में, रात की सांय-सांय आपके हृदय को स्पर्श कर गई है--कोई वीणा भीतर किसी तार पर चोट पड़ गई क्षण भर को। ऐसे क्षण शायद जीवन में दस-पांच हों। उन क्षणों में हमें स्वर्ग की जरा सी झलक मिलती है। किसी के प्रेम में क्षण भर को सब भूल गया है जगत और वह प्रेम का क्षण ही शाश्वत होकर ठहर गया है। घड़ी बंद हो गई, समय रुक गया, और लगा, सब खो गया है। बस प्रेम की एक... । शायद उस क्षण के लिए हम सब दान कर सकते हैं, सब खोने को तैयार हो सकते हैं। ऐसे कुछ क्षण में आकस्मिक हमें स्वर्ग की झलक मिलती है।

झलक कह रहा हूं, स्वर्ग का हमें पता नहीं है। स्वर्ग भी हमसे बहुत दूर है। स्वर्ग से लाओत्से का अर्थ है आनंद का सूत्र। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो ताओ की खोज कर रहा हो, सत्य की खोज कर रहा हो; लेकिन ऐसा आदमी भी खोजना मुश्किल है जो आनंद की खोज न कर रहा हो। ताओ बहुत दूर है। कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर सत्य में उत्सुक होता है। लेकिन बुद्ध के पास जो लोग आते हैं और बुद्ध के अनुगमन में जो चलते हैं, वे भी सत्य में उत्सुक नहीं होते; वे बुद्ध के आनंद में उत्सुक होते हैं। वह नंबर दो की सीढ़ी है।

बुद्ध के पास सारिपुत्त आया है। तो सारिपुत्त कहता है, भगवान, कैसे ऐसा ही आनंद मुझे मिले?

बुद्ध जब तलाश कर रहे थे गुरु की, तब वे अनेक गुरुओं के पास गए हैं। लेकिन वे पूछते हैं कि सत्य क्या है? एक योगी ने उन्हें कहा, आनंद को खोजो।

बुद्ध ने कहा, अगर सत्य को पाकर आनंद मिलता हो तो ठीक; सत्य को पाकर आनंद खोता हो तो भी ठीक। क्योंकि झूठे आनंद में समय को व्यर्थ करने की मेरी इच्छा नहीं है। अगर असत्य के साथ आनंद मिलता हो तो मैं लेने को राजी नहीं हूं। क्योंकि असत्य आनंद का क्या अर्थ? वह एक स्वप्न होगा। आनंद अगर सत्य हो तो ही सार्थक है। इसलिए आनंद की बात छोड़ देता हूं; सत्य की ही बात काफी है। सत्य क्या है?

लेकिन सारिपुत्त बुद्ध के पास आया है तो वह पूछता है, आपको जो आनंद मिला, वह आनंद हमें कैसे मिल जाए?

आनंद हमारी समझ में आ सकता है। वह भी काफी दूर है। और जब भी हम आनंद की बात करते हैं, तो हमारा मतलब सुख होता है, आनंद नहीं होता। हमारे भाषाकोश में भी आनंद का अर्थ सुख लिखा होता है। सुख सिर्फ आनंद की झलक है, आनंद नहीं। जैसे आकाश में चांद हो और झील में हमने चांद को देख लिया हो; तो वह जो झील का चांद है वह सुख है और आकाश का जो चांद है वह आनंद है।

लेकिन झील के चांद का क्या है? जरा सा एक कंकड़ पड़ जाए झील में, छार-छार हो जाएगा। वह चांद टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाएगा। एक छोटा सा कंकड़ उस चांद को मिटा देगा। एक मछली की छलांग, और झील का दर्पण कंप जाएगा, वह चांद खंड-खंड हो जाएगा।

हमारा सुख ऐसा ही है। जरा सा कंकड़, सब छार-छार हो जाता है। जरा सी एक मछली की छलांग, सब टूट जाता है। और हम छाती पीटते रह जाते हैं कि सब सुख खो गया। सुख हमारा आनंद की झलक है, प्रतिबिंब है।

लेकिन जब भी हम, जिस आदमी ने देखा ही न हो चांद, जब भी देखा हो झील में ही देखा हो, तो हम चांद की बात करें तो वह अपनी झील का चांद समझे, इसमें कुछ अनहोना नहीं है। लेकिन फिर भी, झील का चांद ही सही, चांद से किसी तरह जुड़ा है। इसीलिए आनंद की बात हमें थोड़ी सी समझ में आ सकती है। हम

सुख से जुड़े हैं। पर आनंद भी बहुत दूर है। और दूर इस कारण भी है कि आनंद की पहली शर्त है जो, बहुत कठिन है। और वह यह है कि जब तक हम सुख का त्याग न करें। स्वभावतः जो आदमी झील के चांद को छोड़ने को राजी न हो, उसकी आंखें आकाश के चांद की तरफ उठेंगी भी कैसे? झील के चांद को ही जो चांद समझ रहा हो और वहां से आंखें हटाने को राजी न हो, वह आकाश के चांद की तरफ देखेगा कैसे? माना कि झील का चांद आकाश के चांद से जुड़ा है, लेकिन विपरीत है। सब प्रतिबिंब विपरीत होते हैं। रिफ्लेक्शन है, उलटा है।

इसलिए अगर हम इस झील के चांद की तलाश में लगे रहें तो एक बात पक्की है कि आकाश का चांद हमें कभी भी नहीं मिलेगा। हमें इसके विपरीत चलना होगा। इसके हम जितने उलटे यात्रा करेंगे, उतना हम आकाश के चांद के पास पहुंचेंगे। तप का यही अर्थ है। सुख की विपरीत यात्रा है वह। चांद की खोज है, झील के चांद का त्याग है। तो यद्यपि हमें समझ में आता है आनंद, लेकिन जिसके कारण समझ में आता है, वही बाधा भी है। सुख ही समझने का कारण है; सुख ही हमारी बाधा है, अड़चन है। आनंद को पाना हो तो सुख छोड़ना पड़े।

दुख को हम सब छोड़ना चाहते हैं। बड़े मजे की बात है, दुख को हम छोड़ना चाहते हैं और दुख हमें कभी नहीं छोड़ता। सुख को हम पकड़ना चाहते हैं और सुख को हम कभी पकड़ नहीं पाते। लेकिन कितनी बार यह अनुभव होता है, पर इस अनुभव से हम कोई निष्कर्ष नहीं निकालते। दुख को हम छोड़ना चाहते हैं और छोड़ नहीं पाते; सुख को हम पकड़ना चाहते हैं और पकड़ नहीं पाते।

तप इससे उलटा प्रयोग है। तप इस बात का प्रयोग है कि अब तक सुख को पकड़ने की कोशिश की और नहीं पकड़ पाए, अब सुख को छोड़ेंगे; अब तक दुख से छूटने की कोशिश की और दुख को नहीं छोड़ पाए, अब दुख को पकड़ेंगे। और बड़े मजे की बात है कि जैसे सुख को पकड़ने से सुख नहीं पकड़ में आता, दुख पकड़ने से दुख पकड़ में नहीं आता। और जैसे दुख को छोड़ने से दुख नहीं छूटता, वैसे ही सुख को छोड़ने से सुख नहीं छूटता। असल में, जिसे हम पकड़ना चाहते हैं, वही छूट जाता है। और जिसे हम छोड़ देते हैं, वह हमारे पकड़ के भीतर आ जाता है।

लेकिन यह उलटा नियम अनेक-अनेक बार अनुभव में आने पर भी हम कभी इसका विज्ञान नहीं बना पाते। वही विज्ञान धर्म है। सामान्य आदमी के अनुभव में और वैज्ञानिक के अनुभव में इतना ही फर्क है। आपको अनुभव होते हैं, अनुभव आणविक रह जाते हैं--एक अनुभव, दो अनुभव, तीन अनुभव। वैज्ञानिक बुद्धि तीन अनुभव के बीच जो सार-सूत्र है, उसको खोज लेती है; अनुभव को छोड़ देती है। जिंदगी में मुझे हजार अनुभव हों, लेकिन उनकी राशि इकट्ठी करता चला जाऊं, आणविक राशि हो, सब पर लगा दूं एक, दो, हजार अनुभव हुए; लेकिन हजार अनुभव जिस नियम के कारण हो रहे हैं, उसका अगर पता न लगा पाऊं, तो मैं खोजी नहीं हूं। वैज्ञानिक बुद्धि का इतना ही अर्थ है कि हजार जो अनुभव हुए, उनका सार-सूत्र हम खोज लें।

न्यूटन के पहले भी वृक्ष से फल जमीन पर गिरता था। और सेब का फल! बड़ा पुराना इतिहास है उसका, अदम को भी ईव ने जो पहला फल तोड़ कर दिया था, वह सेब का फल था। तो अदम के जमाने से लेकर सदा सेब का फल जमीन पर गिरता रहा। लेकिन गुरुत्वाकर्षण का नियम न्यूटन निकाल पाया। फल रोज गिरते थे। हजारों लोगों ने फलों को गिरता देखा। यह अनुभव नियम नहीं बन पाया। लेकिन न्यूटन ने पहली दफे पूछा कि यह फल नीचे ही क्यों गिरता है?

यह पागलपन का सवाल है। वैज्ञानिक हमेशा पागलपन का सवाल पूछते हैं। सामान्य आदमी नहीं पूछते; इसलिए सामान्य आदमी सामान्य आदमी रह जाते हैं। यह बिल्कुल पागलपन का सवाल है न्यूटन का यह पूछना कि फल नीचे ही क्यों गिरता है? हम बुद्धिमान लोग कहते कि तुम्हारी बुद्धि तो ठीक है? फल नीचे गिरता ही

है, बात खतम हो गई। इसमें और क्या पूछने का है? लेकिन न्यूटन ने कहा कि सभी फल नीचे गिरते हैं; जरूर नीचे गिरने में कोई राज होना चाहिए। जमीन खींचती है, नहीं तो फल नीचे नहीं गिर सकते हैं। तो जमीन के खींचने का नियम--फिर सब फल बेकार हो गए; गिरे हों, न गिरे हों; पत्थर गिरे हों, न गिरे हों; सब खतम हो गए--सब गिरने के सब अनुभवों में से एक सार ग्रेविटेशन का, गुरुत्वाकर्षण का हाथ में आ गया।

धर्म भी एक विज्ञान है, अंतस जीवन का। जितना सुख को पकड़ो, पकड़ में नहीं आता; जितना दुख से भागो, भाग नहीं पाते; दुख को छोड़ो, छूटता नहीं; सुख को पकड़ो, पकड़ में नहीं आता। कितने-कितने जन्मों का आदमी का अनुभव है, लेकिन वही हम कभी पूछते नहीं कि इसके पीछे कारण क्या होगा? क्या बात है कि जिसे पकड़ते हैं वह पकड़ में नहीं आता और जिसे छोड़ते हैं वह छूटता नहीं? छोड़ने की कोशिश निमंत्रण मालूम पड़ती है, छोड़ने की कोशिश बुलावा है। पकड़ने की कोशिश, मालूम होता है, जिसे हम पकड़ना चाहते हैं उसे रिपेल करती है, उसे हटाती है।

इसे जीवन में जरा चेष्टा करके देखें। किसी को भुलाना चाहते हैं मन से, जितना भुलाएंगे उतना मुश्किल हो जाएगा, जितना भुलाएंगे उतनी याद आएगी। भुलाने की कोशिश भी एक ढंग की याद है। बैठे हैं आंख बंद करके, भुला रहे हैं। मगर भुलाना भी याद करना है। तो जिसे भुलाना चाहते हैं, वह भूलता नहीं है। और कभी इससे उलटा करके देखें, प्रयासपूर्वक किसी की याद करके देखें। और आप पाएंगे, याद हाथ से छूट गई। आंख बंद कर लें, जिस चेहरे को आप खूब प्रेम करते हैं, उसे पूरी तरह याद करें, पूरा एकाग्र करें, सारी ताकत लगा दें कि वह चेहरा कैसा है। पहली दफे आपको पता चलेगा, आपके खुद के प्रेमी या प्रेयसी का चेहरा आपकी याद में नहीं पकड़ता। आप चकित हो जाएंगे कि जो चेहरा इतना निकट है, जो सपनों में छाया रहता है, वह इस भांति क्यों खो गया है? अपनी मां का चेहरा भी याद करना आसान नहीं है कोशिश से। कोशिश करके देखेंगे, तब आपको पता चलेगा कि खो गया चेहरा। रेखाएं डगमगा जाएंगी, धुंधला हो जाएगा; चेहरा खो जाएगा।

जिसकी चेष्टा से याद करेंगे, वह खो क्यों जाता है? शायद आपकी चेष्टा विकर्षण बन जाती है। जिसको चेष्टा से आप भुलाना चाहते हैं, वह याद क्यों आ जाता है? कोई विपरीत नियम काम कर रहा है, लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट काम कर रहा है। विपरीत परिणाम आ जाते हैं।

इसको जो समझ लेगा, वह फिर दुख को हटाना न चाहेगा, वह फिर सुख को बुलाना न चाहेगा। और जो दुख को हटाता नहीं और सुख को बुलाता नहीं, वह आनंद में प्रवेश कर जाता है।

आनंद का मतलब ही यह है, अब दुख आते नहीं, सुख जाता नहीं। आनंद का मतलब ही इतना है कि अब दुख आते नहीं, सुख जाता नहीं। लेकिन यह एक बहुत कीमिया है, एक अल्केमी है, एक भीतरी रसायन है।

हम अपने ही हाथों नियम के विपरीत चल कर दुख निर्मित करते हैं। और हम अपने ही हाथों नियम के विपरीत चल कर सुख को नष्ट करते हैं। अगर हम आदमियों को देखें और उनकी जिंदगी में झांकें, तो हर आदमी अपने लिए दुख के गड्ढे खोद रहा है। हर आदमी! उसको जरा भी पता नहीं है कि वह क्या कर रहा है। वह गड्ढे खोद रहा है। जब वह गड्ढे में गिरता है, तब उसको पता चलता है। और तब वह चिल्लाता है कि न मालूम किस दुष्ट ने यह गड्ढा खोद दिया! हर आदमी दुख को बुला रहा है और हर आदमी सुख को तोड़ रहा है। और जब उसका सुख खंड-खंड होकर बिखर जाता है, तब वह छाती पीटता है कि कौन दुश्मन मेरे पीछे पड़ा है! प्रकृति निर्दय मालूम होती है! परमात्मा कठोर है! लेकिन आप इस गहरे नियम को समझ लें तो आप जो गड्ढे अपने लिए खोदते हैं वे बंद हो जाएंगे और अपने हाथ जो आप सुख की प्रतिमा खंडित करते हैं वह बंद हो जाएगी।

दूर है लेकिन आनंद भी। जो सुख और दुख दोनों के पार है, वह भी दूर है।

तीसरा सूत्र लाओत्से कहता है, और आपके पास लाता है, "दि अर्थ इ.ज ग्रेट, पृथ्वी महान है।"

आनंद भी बहुत दूर है। पृथ्वी से अर्थ सुख का है। आनंद बहुत दूर है; उस तक भी हम नहीं जा सकते। पृथ्वी बहुत ग्रॉस, पृथ्वी का मतलब है बहुत स्थूल। सूक्ष्म है आनंद तो, ताओ सूक्ष्मतम है। पृथ्वी है पदार्थ; ठोस है। सुख को हम पकड़ पाते हैं। सुख स्थूल है, और हमारी आंखों में आ जाता है, हमारे हाथों में आ जाता है, हमारे जाल में पड़ जाता है। लेकिन सच में क्या सुख भी हमारे हाथ में पड़ पाता है? थोड़ा गौर से देखें, तो पड़ता हुआ मालूम पड़ता है, कभी पड़ नहीं पाता। बस करीब-करीब होता है, कभी हम पा नहीं पाते उसे भी। सुख भी हमारी आशा है, अनुभव नहीं।

कठिन होगी बात। हम सबको यह तो ख्याल होता ही है, इसमें भी बड़ा भरोसा रहता है कि कम से कम सुख का तो अनुभव है, न सही आनंद का। सुख का भी हमें अनुभव नहीं है, सिर्फ आशा है। सुख हमेशा कल मिलने वाला होता है, आज कभी नहीं मिलता। करीब-करीब होता है, पहुंचे-पहुंचे, ऐसा लगता है बस क्षण भर की देरी और है कि पहुंचे जाते हैं। लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि जब भी आप पहुंचते हैं, हताशा हाथ लगती है, निराशा हाथ लगती है। जिसे चाहा था, जिसे सोचा था, जिसे खोजा था, वह हमेशा डिसअपाइंटिंग, हमेशा अपेक्षा तोड़ने वाला सिद्ध होता है। सब सुख डिसइल्यूजनमेंट सिद्ध होते हैं। जाकर भ्रम टूट जाता है।

कितनी आशा की थी कि मित्र घर आ रहा है, पता नहीं कितना सुख होगा! और फिर मित्र आ जाता है, और कहीं कुछ नहीं होता। फिर घड़ी, दो घड़ी व्यर्थ की बातें करके--कि कैसे हो, कैसे नहीं हो--घड़ी, दो घड़ी के बाद पता लगता है, इस आदमी के लिए इतनी रास्ता देखी थी! सब खतम हो गया, राख हाथ लगी! मित्र घर आ गया, कुछ और नहीं आया। दिन, दो दिन के बाद लगता है, कब यह आदमी चला जाए। और ऐसा नहीं है कि यह कोई नया अनुभव है। दो महीने बाद इसी आदमी की फिर हम ऐसे ही रास्ता देखेंगे। और दो महीने पहले भी ऐसे ही देख चुके हैं। आदमी अनुभव से कुछ निष्कर्ष नहीं लेता।

सुख हमारी आशाओं में है। उनका लगता है कि बस अब मिला ही जाता है। इंद्रधनुष जैसे हैं, दूर-दूर तो बनते हैं, पास जाओ खो जाते हैं। निकट पहुंचो पकड़ने को इंद्रधनुष को, कुछ पकड़ नहीं आता। पकड़ भी आए तो थोड़ी सी शायद पानी की बूंदें हाथ को छू जाएं और सब समाप्त हो जाए। वे रंग जो इस शान से आकाश में तने थे, उनकी छाप भी, हलकी सी छाप भी हाथ पर नहीं पड़ती। करीब-करीब सुख इंद्रधनुष जैसा है। वह भी हमारा अनुभव नहीं, हमारी आशा है। सोचते हैं कि मिलेगा; मिलता नहीं है। और आदमी इतना होशियार है कि कभी-कभी ऐसा भी सोचने लगता है बाद में कि मिला था।

इसे थोड़ा समझ लें। मिलता कभी नहीं है। या तो सोचता है मिलेगा--भविष्य। और या फिर कभी-कभी पीछे लौट कर सोचता है कि मिला था--अतीत। लेकिन वर्तमान में सुख का कोई संस्पर्श नहीं होता। कभी आपको ऐसा कोई आदमी मिला है जिसने आपसे कहा हो मैं सुखी हूं? हां, ऐसे आदमी आपको मिलेंगे, वे कहेंगे मैं सुखी था। ऐसे आदमी आपको मिलेंगे कि ज्यादा देर नहीं है, मैं सुखी हो जाने वाला हूं। ऐसा आदमी आपको नहीं मिल सकता जो कहे, अभी, यहीं मैं सुखी हूं, इसी क्षण मैं सुखी हूं। और अगर इसी क्षण सुखी नहीं है कोई तो वह अपने को धोखा दे रहा है। लेकिन धोखे जरूरी हैं। क्योंकि जहां सुख भी न हो और सुख की आशा भी न हो तो आदमी जीए कैसे? धोखे बड़े आवश्यक हैं। माना कि झूठे हैं, लेकिन जीने के लिए सहारे हैं।

बूढ़ा आदमी कहता है, बचपन स्वर्ग था। बच्चे से पूछो, तब पता चलेगा। बच्चे से पूछो, तब सब बूढ़े झूठे मालूम पड़ेंगे। क्योंकि एक बच्चा नहीं कहता कि यह बचपन स्वर्ग है। सब बच्चे जल्दी में हैं कि कैसे जवान हो जाएं। स्वर्ग जवानी में मालूम पड़ता है। बच्चे कमजोर मालूम पड़ते हैं। बच्चों से पूछो।

आप अपने बचपन की याद मत करना, वह झूठी है; आपने खड़ी कर ली है। वह कल्टीवेटेड है, वह आपकी संयोजित है। आप याद नहीं कर सकते अपने बचपन की। आप अपने बचपन की जब याद करते हैं तो आपने जो कविताएं वगैरह पढ़ी हैं बचपन के संबंध में, वे आप समझते हैं आपके बचपन के बाबत हैं।

सच तो यह है कि मनसविद कहते हैं कि आदमी चार साल की उम्र के पहले का स्मरण नहीं कर पाता। और उसका कारण यह है कि चार साल का जीवन बच्चे का इतना दुखद है कि उस स्मृति को रखना मनुष्य के लिए हितकर नहीं है। इसलिए आदमी भूल जाता है। आपको याद आती है पीछे लौट कर तो ज्यादा से ज्यादा चार साल। बहुत बुद्धिमान हुए तो तीन साल तक आपको स्मरण आएगा। लेकिन वे तीन साल बिल्कुल ब्लैंक हो जाते हैं, भूल जाते हैं। क्या हो गया? मनसविद कहते हैं कि जब अति दुख होता है मन में तो उसकी स्मृति रखनी उचित नहीं है; इसलिए मन उसकी स्मृति को पोंछ डालता है। खतरनाक है, वह स्मृति पत्थर की तरह छाती पर बैठ जाएगी। इसलिए मन की आयोजना है कि अति दुख हो, उसे भुला देते हैं हम। वह अचेतन में डूब जाता है।

हां, बच्चे को बेहोश किया जाए, हिप्नोटाइज किया जाए, सम्मोहित किया जाए, तो याद आ जाती है। लेकिन सम्मोहन में कोई बच्चा नहीं कहता कि मैं स्वर्ग में था। और सब बूढ़े कहते हैं कि हम स्वर्ग में थे, बचपन बड़ा सुखद था। असल में, आपको बचपन का अब कोई ख्याल नहीं रह गया। यह बचपन आपने निर्मित किया हुआ है।

पहले आदमी भविष्य में सुख को रखता है, जब तक उम्र शेष रहती है। और जब मौत करीब आने लगती है तो भविष्य तो समाप्त हो जाता है, भविष्य में तो सिर्फ मौत दिखाई पड़ती है; इसलिए आदमी पीछे अपने सुख को रखने लगता है। एक बात पक्की है कि जहां आदमी है, वहां सुख नहीं होता। फिर पीछे रख लेता है। फिर वह सोचता है, कैसा आनंद था! ऐसा लगता है, बचपन में सभी कुछ आनंद था।

अगर बचपन इतना आनंदपूर्ण हो तो बच्चे बचपन छोड़ने से इनकार कर दें। लेकिन बच्चे जल्दी बड़े होना चाहते हैं। यहां तक कि बच्चे जितने बड़े होते हैं, उससे भी ज्यादा अपने को बड़ा बताना चाहते हैं। क्योंकि बड़ों के पास ताकत मालूम पड़ती है, स्वर्ग मालूम पड़ता है, सुख मालूम पड़ता है; नियंत्रण, मालकियत, सब उनके पास मालूम पड़ती है। बच्चा तो एकदम दीन-हीन, कमजोर मालूम पड़ता है। उसको लगता है कैसे जल्दी, जल्दी-जल्दी बड़ा हो जाए। इसलिए बच्चे बड़ों की आदतें सीख लेते हैं।

अगर छोटे बच्चे सिगरेट पीते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि बच्चों को सिगरेट में कोई भी सुख मिलता है। जरा भी नहीं मिलता। बच्चों को बड़ी तकलीफ मिलती है। क्योंकि सिगरेट और बच्चे को कोई तरह का सुख नहीं दे सकती। सिगरेट से सुख लेने के लिए जरा ज्यादा उम्र की मूढ़ता चाहिए। बच्चा इतना मूढ़ नहीं होता। अभी इतनी ताजी कली है उसके मन की कि सिगरेट का धुआं सिर्फ दुख ही दे सकता है। लेकिन बच्चा उस दुख को झेल लेता है, कोई फिक्र नहीं; क्योंकि सिगरेट पीते ही पावरफुल मालूम होता है। वे जितने लोग सिगरेट पी रहे हैं, फिल्म अभिनेता हैं, राजनेता हैं, सड़कों पर ताकतवर लोग हैं, अपनी गाड़ी में बैठे हुए सिगरेट पी रहे हैं। वह बच्चा जब सिगरेट अपने मुंह पर रख लेता है, बचपन खो गया। अब वह बड़ों की दुनिया का भागीदार हो गया, हिस्सेदार हो गया। बच्चे सिगरेट पीना सीखते हैं, क्योंकि सिगरेट जो है, वह पावर-सिंबल है।

अनेक बच्चे हैं, मनसविद उनके बाबत जानकारी रखते हैं, जो जाकर जल्दी दाढ़ी-मूंछ बढ़ाना चाहते हैं। पिता घर न हों तो उनके रेजर का उपयोग करके जल्दी किसी तरह दाढ़ी-मूंछ आ जाए। कोई बच्चा बच्चा रहने

को राजी नहीं है। भागना चाहता है बचपन से। स्कूल कारागृह से ज्यादा नहीं मालूम होता। शिक्षक समाज में सबसे बड़े चुने हुए दुष्ट मालूम पड़ते हैं। और यह ख्याल बच्चों का कुछ दूर तक सही भी हो सकता है। क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक होने की जिनमें वृत्ति होती है, वे असल में डॉमिनेट करना चाहते हैं, वे लोगों पर रुआब बांधना चाहते हैं। इसलिए कम तनख्वाह में भी शिक्षक राजी रहता है। क्योंकि जो रस मिल रहा है, वह बहुत दूसरा है। वह किसी हिटलर, किसी नेपोलियन से कम नहीं है अपनी क्लास में। सारी दुनिया का सम्राट मालूम होता है।

बच्चों से अगर उनके दुख कभी पूछे जाएं तो बूढ़ों को यह भ्रम छोड़ देना पड़ेगा कि बचपन एक स्वर्ग था। जहां चौबीस घंटे परतंत्रता अनुभव होती है--यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। जहां मां-बाप "मत करो" में इतना रस लेते मालूम पड़ते हैं कि कई बार तो माताएं यह भी फिक्र नहीं करतीं कि बच्चा क्या कर रहा है, उसके पहले ही कहती हैंः मत करो! सबके मन में अहंकार की तृप्ति अधूरी रह जाती है, वासना अधूरी रह जाती है। सब अपने अहंकार को तृप्त करने के लिए चारों तरफ उपाय खोजते हैं। बच्चों से ज्यादा सुगम उपाय और सस्ता उपाय दूसरा नहीं है। एक स्त्री के पास चार-आठ बच्चे हैं तो फिर समझो कि उसके अहंकार को अब इससे ज्यादा और पुष्टि का कोई दूसरा उपाय नहीं है। पुष्ट हो जाएगा उसका अहंकार। हर चीज में आखिरी वचन उसका है।

यह जो पीछे से ख्याल आता है कि सुख था, यह धोखा है। न तो सुख पीछे हुआ है, और न आगे है; सुख होता है सदा अभी। और जो उसकी कला जानता है, वह अभी सुखी होता है।

वानगॉग से कोई पूछ रहा है कि तुम्हारा सबसे श्रेष्ठ चित्र कौन सा है? तो वानगॉग ने कहा, यह जो मैं अभी पेंट कर रहा हूं। वह जो पेंट कर रहा था, यही। वह आदमी पंद्रह दिन बाद वापस आया देखने कि अब यह क्या कहता है। तब वानगॉग दूसरा चित्र पेंट कर रहा था। और उस आदमी ने पूछा कि तुम्हारा श्रेष्ठतम चित्र? उसने कहा, यही। वानगॉग का यह उत्तर सुन कर उस आदमी ने कहा, लेकिन पंद्रह दिन पहले वह दूसरा चित्र जो पूरा हो गया, तुमने उसके बाबत कहा था। वानगॉग ने कहा, वह गए जमाने की बात हो गई, उससे क्या लेना-देना? मैं अभी सुखी हूं।

जो अभी सुखी होता है, अतीत बेमानी हो जाता है। आपके लिए अतीत में जो मूल्य मालूम पड़ता है, वह वर्तमान के दुख के कारण। आप इतने दुखी हैं कि अब और कोई उपाय नहीं है। पीछे सुख को बना लेते हैं, आगे सुख को बना लेते हैं। ऐसे जिंदगी आगे-पीछे में डोलती चली जाती है। एक झूठा ब्रिज, सेतु बना लेते हैं; उस पर यात्रा होती चली जाती है। और प्रतिपल जो वास्तविक जगत है, वह चूकता चला जाता है।

जो आदमी सुखी है, वह अभी सुखी है। और जो आदमी सुखी है, इसी क्षण जगत के शिखर पर सुखी है। लेकिन आप यह मत समझना कि अगले क्षण वह दुखी हो जाएगा। उसके शिखर कभी छोटे नहीं होते। हर क्षण उसका शिखर है, पीक है। और उसकी कोई तुलना नहीं है आगे-पीछे से। जब भी अतीत आपको याद आए, समझना वर्तमान दुखी है। जब भी भविष्य आपको खींचे, समझना वर्तमान दुखी है। जब वर्तमान सुखी होता है, अतीत खो जाता है, भविष्य मिट जाता है। जब सुख होता है, तो क्षण शाश्वत हो जाता है।

लाओत्से कहता है, तीसरा महान तत्व है पृथ्वी, सुख। लेकिन वह भी हमारी आशा है, वह भी हमें कामना है मिले, वासना है मिले।

चौथी निकटतम जो हमारे बात है, लाओत्से कहता है, "सम्राट भी महान है।"

सम्राट लाओत्से के लिए अहंकार का प्रतीक है, ईगो का। ताओ बहुत दूर, आनंद भी काफी दूर, सुख भी मिला-मिला मालूम पड़ता है, मिलता नहीं; लेकिन हर आदमी अपने को सम्राट तो मानता ही है। यह मिला हुआ है। हर आदमी सम्राट तो है ही, चाहे प्रजा कोई भी न हो। इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। राजा होने के लिए राज्य का होना जरूरी नहीं है। लेकिन हर आदमी अपने भीतर राजा तो है ही। और हर आदमी छोटी-मोटी किंगडम भी बना ही लेता है। सड़क पर जो भिखारी है, उसका भी अपना राज्य है, उसकी भी टेरीटरी है। उसकी टेरीटरी में दूसरा भिखारी नहीं प्रवेश कर सकता। उसकी अपनी सीमाएं हैं, दंगा-फसाद हो जाएगा। वह भिखारी नहीं है एकदम, उसकी भी अपनी सीमाएं, राज्य। नंगे से नंगा खड़ा आदमी भी किसी छोटे-मोटे राज्य का राजा है।

हमारे निकटतम जो बात है, वह है अहंकार। यह हमें मिला हुआ है। इसमें हम जीते हैं। इसमें ही हम जीए चले जाते हैं। अहंकार का मतलब क्या है? सम्राट का मतलब क्या है?

अहंकार का मतलब है, मैं केंद्र हूं सारे अस्तित्व का। चांद-तारे मेरे लिए घूमते हैं, हवाएं मेरे लिए बहती हैं, नदियां मेरे लिए दौड़ती हैं, पशु-पक्षी मेरे लिए गीत गाते हैं। जो कुछ भी हो रहा है कहीं, मैं केंद्र हूं। मेरे लिए हो रहा है। जिस दिन मैं नहीं, उस दिन सब बिखर जाएगा। जिस दिन मैं नहीं था, उस दिन कुछ भी नहीं था। जिस दिन मैं मरूंगा, मैं नहीं मरूंगा, अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, प्रलय हो जाएगी। यह तो बड़ा अच्छा है कि कब्र से लौटने का मौका लोगों को नहीं मिलता। उनको ऐसा सदमा पहुंचे कि मौत से भी बड़ी दुर्घटना घटे। कोई राजनेता अगर लौट कर देख ले कि मेरे बिना भी दुनिया चल रही है! और जब मैं मरा था तो इन्हीं लोगों ने कहा था कि अब यह क्षति कभी पूरी नहीं होगी--अपूर्णीय! और कहीं कोई चर्चा ही नहीं है कि मेरी खाली जगह का क्या हुआ?

इस जगत में जगह खाली होती ही नहीं; आदमी पहले से तैयार होते हैं। इधर राजनेता मरता है, उसके पहले सीढ़ियां लगाए हुए लोग तैयार होते हैं उसकी कुर्सी पर बैठ जाने को। ये वे ही लोग हैं, जो दूसरे दिन सुबह कहते हैं कि अपूर्णीय क्षति हो गई। ये वे ही लोग हैं, ये ही पूर्ति कर देंगे। इस जगत में किसी भी आदमी के हटने से कोई जगह खाली नहीं होती। अहंकार मानता है कि मेरे हटते ही से जो छिद्र हो जाएगा इस जगत में, वह कभी नहीं भरा जा सकेगा। अहंकार मानता है कि मैं इस जगत में अपरिहार्य हूं, अनिवार्य हूं, मेरे बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

कभी सोचें मन में कि आप नहीं होंगे, तब भी पूर्णिमा का चांद निकलेगा; कैसी उदासी छा जाती है! आप नहीं होंगे, तब भी यह सागर ऐसी ही गर्जन करेगा! और आप नहीं होंगे, और सुबह पक्षी गीत गाएंगे! कैसी उदासी छा जाती है। यह ख्याल आ जाएगा तो पक्षी का गीत भी सुन कर बड़ी पीड़ा होगी; चांद को आकाश में देख कर हृदय पर सदमा पहुंचेगा कि मैं नहीं होऊंगा और फिर भी सब ऐसे ही होता रहेगा। इसका मतलब यह है कि मेरे होने न होने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता। मैं था या नहीं था, कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन अहंकार यह मानने को राजी नहीं है। अहंकार का मतलब यह है कि मैं इस अस्तित्व में कुछ हूं, जिसका मूल्य है, वजन है। और मेरे बिना यह अस्तित्व रीता-रीता, खाली-खाली हो जाएगा। मैं ही इस जगत का नमक हूं, मेरे बिना सब रोना-रोना हो जाएगा। यह हमारे निकटतम है। यह हमारी भावदशा है।

अहंकार हमारी स्थिति है; ताओ हमारी मंजिल है। अहंकार में हम खड़े हैं; ताओ तक हमें पहुंचना है। लेकिन अहंकार झूठी स्थिति है।

लाओत्से कहता है, "ब्रह्मांड के ये चार महान हैं।" साथ कहता है, "और सम्राट भी उनमें एक है।"

इसे भी गिना देना जरूरी है, क्योंकि इसके बिना फिर हम यात्रा शुरू न कर पाएंगे। इसलिए कहता है, सम्राट भी उनमें एक है। हम यहीं खड़े हैं। यह हमारी स्थिति है।

लेकिन महान कहना अहंकार को जरा हैरानी की बात मालूम पड़ेगी। ताओ को महान कहना समझ में आ सकता है, अहंकार को महान कहना? लेकिन इसे थोड़ा समझ लें। अहंकार भी महान है इस अर्थों में कि उसकी भी कोई सीमा नहीं है। और कितना ही बड़ा हो जाए, कोई तृप्ति नहीं है। और कुछ भी पा ले, कभी आप्तकाम नहीं होता, भरता नहीं है। दुष्पूर है। इस अर्थ में महान है। ऐसा एबिस, ऐसी खाई है कि जिसमें कितना ही डालते चले जाएं, कोई अंतर नहीं पड़ता। अहंकार निगेटिव अर्थ में महान है, नकारात्मक अर्थ में महान है। झूठ है, इसलिए असीम है। सत्य इसलिए असीम है कि असीम होना उसका स्वभाव है। झूठ इसलिए असीम होता है कि वह है ही नहीं। जो है ही नहीं, उसकी सीमा कैसे होगी? जो नहीं है, वह असीम होता है। जो है, वह भी असीम होता है। लेकिन जो है, उसकी असीमता विधायक होती है; जो नहीं है, उसकी असीमता नकारात्मक होती है।

इसलिए नहीं गिनना चाहता है लाओत्से, फिर भी गिनता है; कहता है, और सम्राट भी उनमें से एक है। ये चार हैं महान तत्व, और यह अहंकार भी उनमें से एक है।

आज तक किसी का अहंकार भर नहीं पाया। कभी भरेगा भी नहीं। कोई उसके भरने का उपाय भी नहीं है। आप उसको जितना दें, उतनी उसकी मांग बढ़ जाती है। मांगना उसका स्वभाव है। जितना आप उसको देते हैं, उतना उसका स्वभाव और मांगता चला जाता है। मजे की बात है, अहंकार को जो मिल जाता है वह व्यर्थ हो जाता है, और जो नहीं मिलता वही सार्थक होता है। अहंकार जहां पहुंच जाता है, अंधा हो जाता है; और जहां नहीं पहुंचता, वहां उसकी आंखें टंगी रहती हैं।

आप भी कहीं पहुंच गए हैं। सभी कहीं पहुंच गए हैं। लेकिन जो जहां है, वहां तृप्त नहीं है। अगर आप डिप्टी मिनिस्टर हैं तो परेशान। जब नहीं थे, तब भी परेशान थे। तब सिर्फ एम.एल.ए. थे। जब एम.एल.ए. नहीं थे, तब भी परेशान थे। तब एक साधारण नागरिक थे। साधारण नागरिक से बड़ी चेष्टा की, एम.एल.ए. हो गए। सोचा था सब भर जाएगा। जाकर पाया, एम.एल.ए. होना भी कोई होना है जब तक कि डिप्टी मिनिस्टर न हो जाएं! फिर डिप्टी मिनिस्टर--बड़ी दौड़-धूप, बड़ी मेहनत--डिप्टी मिनिस्टर हो गए हैं। अब डिप्टी मिनिस्टर हो गए हैं, उपमंत्री हो गए हैं, लेकिन अब मिनिस्टरशिप नहीं दिखाई पड़ती, सिर्फ डिप्टीशिप खटकती है। वह जो डिप्टी है वह अखरता है, मन को चोट देता है, कीले की तरह चुभता है कि डिप्टी होना भी कोई होना है, कम से कम मिनिस्टर तो चाहिए। मिनिस्टर होते ही चीफ मिनिस्टर अखरने और खलने लगता है। और यात्रा चलती चली जाती है।

जो आदमी जहां है, वहीं अतृप्त होता है। यह अहंकार का लक्षण है। और जहां नहीं है, वहां के लिए सोचता है, तृप्त हो सकूंगा। इन चार के बीच हमारी जीवन की व्यवस्था है।

लाओत्से कहता है, "मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है।"

पृथ्वी--सुख। मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है। मनुष्य पूरे समय कोशिश कर रहा है, सुखी हो जाए। सारी कोशिश यही है। आप कुछ भी कर रहे हों, इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप क्या कर रहे हैं; एक बात तय है, आप सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं। यह पूछना जरूरी नहीं है कि आप क्या कर रहे हैं--चोरी कर रहे हैं, कि साधुता कर रहे हैं, कि ईमानदारी कर रहे हैं, कि बेईमानी कर रहे हैं--जो भी कर रहे हैं। यह बड़े मजे की बात है कि बेईमान और ईमानदार, साधु और असाधु, सबकी खोज एक है। सब सुख खोज रहे हैं। यह दूसरी

बात है कि कोई बेईमानी से सोचता है कि मिल जाएगा, कोई ईमानदारी से सोचता है कि मिल जाएगा। यह उनकी समझ का फर्क है, लेकिन खोज में कोई अंतर नहीं है। मिलेगा, नहीं मिलेगा, यह भी दूसरी बात है। लेकिन खोज सुख के लिए है।

हर आदमी सुख खोज रहा है; और हर आदमी दुख पा रहा है। और हर आदमी तेजी से सुख की तरफ दौड़ रहा है, और हर आदमी तेजी से दुख के गर्त में गिरा जा रहा है।

"मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाता है।"

मनुष्य पूरे वक्त कोशिश कर रहा है कि मैं कैसे सुख के अनुरूप हो जाऊं। लेकिन क्या है अड़चन? यह सुख नाराज क्यों है मनुष्य पर? इतनी चेष्टा असफल क्यों हो जाती है? मनुष्य सुखी क्यों नहीं हो पाता? और दुर्घटना यह है कि मनुष्य जितना निकट पहुंचता मालूम पड़ता है, उतना दुखी होता जाता है। हम जितने पीछे लौटें, जितना अशिष्ट समाज हो, असभ्य समाज हो, प्रिमिटिव हो, सुख के साधन न हों, वह कम दुखी मालूम पड़ता है। होना उलटा चाहिए। हम ज्यादा सुखी होने चाहिए; आदिम लोग ज्यादा दुखी होने चाहिए। लेकिन उलटा मालूम पड़ता है, हम ज्यादा दुखी और वे ज्यादा सुखी मालूम पड़ते हैं। क्या हो गया है? हमारे दुख का इतना घनापन क्यों है? इतनी त्वरा क्यों है? हमारा दुख इतना बुखार की तरह हमारी छाती पर क्यों है?

हमारे पास सुख के बहुत साधन हो गए हैं। और इतने साधन के बाद हमें समझ में आता है, सुख बिल्कुल भी नहीं मिल रहा है। इससे हमारी बेचैनी बढ़ गई है। एक गरीब आदमी है, भिखमंगा है, सड़क पर भीख मांग रहा है; सोचता है, महल मिल जाए तो सुख मिलेगा। महल सिर्फ उनके लिए होते हैं, जो महलों में नहीं होते। महल सिर्फ उनके लिए होते हैं, जो महलों में नहीं होते। उनके लिए महलों की जो महिमा है, उसका कोई अंत नहीं है।

फिर एक दिन यह भिखमंगा महल में पहुंच जाता है; तब इसे पहली दफे पता चलता है, महल तिरोहित हो गया। वह जो महिमावान महल था, जो रास्ते पर सोकर सपने में देखा था, जो सदा मन को घेरे रहा, आच्छादित किए रहा, जिसके लिए सब तरह की यात्राएं कीं और बामुश्किल इस महल में प्रवेश किया, वह महल यह नहीं है। वह महल कोई और था।

असली महल सपनों के महल को तोड़ देते हैं। असलियत सदा ही सपनों को तोड़ने वाली सिद्ध होती है। सपनों की नावें असलियत के तट से लग कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इसलिए हम इतने दुखी हैं! हमने सब महल पा लिए, जो गरीब आदमी पाना चाहता था।

इसलिए अगर अमरीका भारत से ज्यादा दुखी मालूम पड़े तो हैरानी की बात नहीं है। और अगर अमरीका के आदमी को लगता हो कि ध्यान कैसे पाऊं? और धर्म कैसे पाऊं? और कैसे ऋषिकेश पहुंचूं? और कैसे साधना करूं? तो हमको लगता है, पागल तो नहीं हो गए हैं ये लोग! वे जो ऋषिकेश में रहते हैं, उनको लगता है, जरूर इनका दिमाग फिर गया है। क्योंकि वे जिंदगी से वहां रह रहे हैं और उन्हें कुछ भी नहीं हुआ है। ये अमरीका से लोग भागे क्यों चले आ रहे हैं ऋषिकेश की तरफ? इनको वह महल मिल गया है, जो अभी ऋषिकेश के लोगों को मिलने की देरी है। इस महल को पाकर इनके सब सपने टूट गए हैं।

सुख जब उपस्थित हो जाता है, तब हमें पता चलता है कि वह मिला नहीं। यह बड़ी कठिन बात हो गई। जब मिलता नहीं, तब भी दुख देता है; जब मिल जाता है, तब भी दुख देता है। बुद्ध ने इसे देख कर इस जगत का स्वभाव कहा कि दुख है इस जगत का स्वभाव। जो मिल जाए वह दुख देता है; जो न मिले वह दुख देता है। जिस स्त्री को चाहो; न मिले, जिंदगी भर दुख होता है। मजनू से पूछो, दुखी है। पर उनको पता नहीं कि लैला मिल

जाती तो कितना दुख होता। वह उनसे पूछो जिनको मिल जाती है। जिनको मिल जाती है, वे तलाक के दफ्तर में खड़े हुए हैं--तलाक कैसे हो! डाइवोर्स चाहिए! जिनको नहीं मिलती, वे कविताएं गा रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं। पता नहीं इनमें दुखी कौन है?

एक बात तय है कि जो नहीं मिलता वह भी दुख देता है, जो मिल जाता है वह भी दुख देता है। और शायद इन दोनों दुखों में पहला बेहतर है। कम से कम आशा तो बनी रहती है। दूसरे में आशा भी टूट जाती है। लेकिन इसका राज क्या है? इतनी सुख की तलाश और सुख हाथ में क्यों नहीं? इसका राज?

लाओत्से बड़ी अदभुत बात कहता है। लाओत्से कहता है, "मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बना रहा है; और पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बना रही है।"

यह तकलीफ है। इसलिए मिलन कभी नहीं हो पाता। आप जिसके पीछे दौड़ रहे हैं, वह किसी और चीज के पीछे दौड़ रहा है। वह आपकी तरफ दौड़ ही नहीं रहा है। इसलिए आप तकलीफ में हैं। यह जरा सूक्ष्म है। मैं आपको पाना चाहता हूं और आप किसी और को पाना चाहते हैं। तो यह मिलन होगा कैसे? इस मिलन का एक ही रास्ता है कि मैं उसे पाने में लग जाऊं, जिसे आप पाना चाहते हैं। तो यह मिलन हो सकता है। नहीं तो यह मिलन नहीं हो सकता। और अगर मैं आपको पकड़ भी लूं तो आप छूट कर भागेंगे; क्योंकि आप मुझसे मिलने को उत्सुक नहीं हैं। आप कहीं और जाना चाहते हैं।

लाओत्से कहता है, "मनुष्य अपने को पृथ्वी के अनुरूप बनाना चाहता है; पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाना चाहती है; स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बनाना चाहता है; और ताओ अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाना चाहता है।"

यह उपद्रव है। यहां जिसके पीछे हम भाग रहे हैं, वह कहीं और भाग रहा है। तो जब तक हम उसको न पकड़ लें जिसकी तरफ सब कुछ भाग रहा है, तब तक हम कुछ भी न पकड़ पाएंगे।

पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाना चाहती है, इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि जहां-जहां हमें सुख दिखाई पड़ता है, जहां-जहां हमें सुख की झलक मिलती है, जहां-जहां हमें लगता है सुख है, जिस बिंदु पर सुख हमें घनीभूत दिखाई पड़ता है, उस बिंदु के लिए सुख व्यर्थ हो गया। जो मिल जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। वह बिंदु आनंद की तरफ यात्रा कर रहा है। वह बिंदु आनंद होना चाहता है। कठिनाई है अब। वह बिंदु आनंद होना चाहता है। पृथ्वी स्वर्ग बनना चाहती है। अगर आप आनंद की तरफ यात्रा कर रहे हैं तो आपका सुख से मिलन हो जाएगा। क्योंकि तब आप दोनों के लक्ष्य एक हो जाते हैं।

इसलिए मजे की बात है, जो आनंद की तरफ जाता है वह सुख को पा लेता है, और जो सुख की तरफ जाता है वह सिर्फ दुख को पाता है। बुद्ध की आंखों में सुख की झलक है। महावीर के चलने में सुख की हवा है। महावीर बैठते हैं तो लगता है कोई सुख बैठा, उठते हैं तो लगता है कोई सुख उठा। उनके होने में एक भीनी सुगंध है सुख की। वह चारों तरफ बरस रही है। वही सुख तो हमें आकर्षित करता है, हमें खींचता है। तो हम सोचते हैं, हम भी महावीर जैसे हो जाएं, यह सुख हमें कैसे मिल जाए!

लेकिन महावीर को यह सुख मिल रहा है आनंदित होने से, आनंद की यात्रा पर निकल जाने से। वे प्रतिपल आनंद को पाने की कोशिश में लगे हों तो यह सुख मिल रहा है। अगर हम सुख पाने की कोशिश में लगे हैं, हमें दुख मिलेगा। इसलिए महावीर के पीछे चलने वाले साधु-संन्यासियों को देखो, दुखी बैठे हैं। यह बड़ी हैरानी की बात है, महावीर की प्रतिमा देखो और एकाध जैन मुनि को देखो उसके साथ रख कर। तब तुम्हें पता लगेगा कि दुश्मन हैं दोनों? क्या बात है? महावीर की प्रतिमा--इससे ज्यादा सुंदर काया खोजनी मुश्किल है।

महावीर की काया ऐसी सुंदर है कि फिर दूसरी काया उसके साथ रखनी मुश्किल है। और काया इतनी सुंदर थी, इसीलिए तो महावीर नग्न खड़े हो सके। कुरूप आदमी नग्न कैसे खड़ा हो?

असल में, वस्त्र सौंदर्य को नहीं बढ़ाते, सिर्फ कुरूपता को ढांकते हैं। इसलिए ध्यान रखना, जब सौंदर्य बढ़ेगा, तो लोगों के शरीर उघड़ने लगेंगे। जहां सौंदर्य जितना ज्यादा होगा, शरीर उतने उघड़ जाएंगे। अगर पश्चिम की स्त्रियां शरीर को ज्यादा उघाड़ रही हैं और भारत की स्त्रियों को बेचैनी होती है तो सोच लें। उसमें कहीं ईर्ष्या काम कर रही है, और कोई मामला नहीं है। शरीर सुंदर होगा तो ढांकना कोई अर्थ नहीं रखता।

महावीर का शरीर तो अति सुंदर है। और उनकी काया तो ऐसी है जैसे मूर्ति बनाने के लिए ही बनी हो। मूर्ति बनाने वाले को भी दिक्कत होती होगी। मूर्ति सदा थोड़ी फीकी मालूम पड़ती होगी, क्योंकि इतनी जिंदा तो नहीं हो सकती। यह एक तरफ महावीर है, इसकी श्वास-श्वास में सुख है। और दूसरी तरफ उनके पीछे चलने वाला साधु है। वह जितना उपवास कर-कर के, शरीर को सुखा-सुखा कर पीला पड़ता जाता है, जितना वह पीला, पीतल जैसा लगने लगता है, वैसा उसके भक्त कहते हैं कि कैसे तप की आभा प्रकट हो रही है! तपे दुख वाला पीलापन स्वर्णिम मालूम पड़ता है। जैसे-जैसे शरीर सूखता जाता है और प्राण केवल आंखों में टंके रह जाते हैं, लोग समझते हैं, आंखें तो देखो! अब और कुछ बचा नहीं है देखने को। लोग कहते हैं, आंखें तो देखो, कैसा तेज प्रकट हो रहा है। यह तेज नहीं, यह आखिरी झलक है दीए के बुझने के पहले की।

महावीर के पास एक सुख है, एक छाया है; जैसे बरगद के नीचे छाया होती है, वैसे ही उस छाया के पास कोई आए, तो जैसे दूर की यात्रा की थकान मिट जाए, हजार-हजार लोग उनके पास बैठें तो शीतल हो जाएं। लेकिन उसका कारण है कि वे कुछ और खोजने में लगे हैं। सुख बाई-प्रोडक्ट है; वह खोज नहीं है उनकी। जो सुख को खोजने उनके पास आया, वह तपस्वी के दुख में पड़ जाएगा। क्योंकि तब वह महावीर की नकल करेगा; वह सोचेगा, जो-जो महावीर कर रहे हैं वह-वह मैं करूं, तो यह सुख मुझे मिल जाएगा। सुख इमीटेटिव है। आपको दिखता है कि किसी के हाथ में एक छल्ला दिखाई पड़ जाता है हीरे का। तो लगता है, पता नहीं कितना सुख मिल रहा है इसको। अब यह हीरे का छल्ला मेरे हाथ में हो जाए तो मुझे भी सुख मिल जाए। छल्ला हीरे का हो, या किसी और चीज का हो, मिलते ही सिर्फ बोझ का अनुभव होता है, बंधन हो जाता है। महावीर कुछ और खोज रहे हैं।

जहां-जहां हमें झलक दिखाई पड़ती है... । अगर आपको रात के सन्नाटे में सुख की झलक दिखाई पड़ती है, तो उसका अर्थ है रात किसी अपने से बड़े सूत्र के साथ एक हो गई है। अगर आपको चांद से झलक मिलती है किसी शीतलता की तो उसका अर्थ है यह पूर्णिमा का चांद किसी बड़े सूत्र के साथ एक हो गया है। अगर आप जंगल में जाते हैं और हरियाली आपको मोह लेती है और मन नाचने लगता है तो उसका अर्थ है यह जंगल किसी आनंद के सूत्र में डूबा हुआ है। इसके उस डूबने से यह सुख पैदा हो रहा है।

"यह पृथ्वी अपने को स्वर्ग के अनुरूप बनाती है।"

पृथ्वी, चारों तरफ जो है, पदार्थ, वह सब अपने को स्वर्ग बनाने में लगा हुआ है। एक छोटा सा बीज भी अंकुरित होकर फूल बनना चाहता है। एक छोटा सा बीज भी पृथ्वी से स्वर्ग बनना चाहता है। चारों तरफ चेष्टा चल रही है। आदमी पृथ्वी के अनुरूप बनाने की कोशिश में ही भटकता है।

लेकिन पृथ्वी भी स्वर्ग को उपलब्ध हो नहीं पाती। फूल खिलते हैं और मुरझाते हैं। चांद पूरा हो जाता है और फिर घटने लगता है। यहां कोई चीज शाश्वत नहीं हो पाती। पृथ्वी भी अपने को स्वर्ग बना नहीं पाती। क्योंकि स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बना रहा है। स्वर्ग भी किसी और की तलाश में है।

हमें स्वर्ग का कोई पता नहीं है, इसलिए मुश्किल होगा। पृथ्वी तक समझ आसान है कि पृथ्वी भी स्वर्ग बनना चाहती है। इसलिए कहीं-कहीं, कश्मीर में हम कहते हैं, पृथ्वी का स्वर्ग। कुछ खिल गया है। झीलें, आकाश, पहाड़, पर्वत, वृक्ष, सबमें कोई चीज खिल गई है--कुछ जो पृथ्वी के दूसरे हिस्सों में मुर्झायी है--तो लगता है कि यहां स्वर्ग है। वह झलक है एक। लेकिन स्वर्ग का हमें कोई पता नहीं है। पृथ्वी भी स्वर्ग को उपलब्ध हो नहीं पाती, सिर्फ कोशिश करती रहती है पाने की। क्योंकि स्वर्ग ताओ के अनुरूप होना चाह रहा है।

समझने के लिए ऐसा ख्याल कर लें कि जिसे हम जानते हैं, यह अस्तित्व का अंत नहीं है। जिस पृथ्वी को हम जानते हैं, यह जीवन की समाप्ति नहीं है। और पृथ्वियां हैं, और तारे हैं, और ग्रह हैं, और उपग्रह हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन की संभावना है। कोई तीन अरब महासूर्य हैं। यह हमारा तो एक छोटा सा सूरज का परिवार है। इस तरह के तीन अरब सूर्य-परिवार हैं। और हमारा सूरज तो बहुत मीडियाकर, मध्यस्थ, मध्यमवर्गीय सूरज है। इससे साठ-साठ हजार गुने बड़े सूर्य हैं। बड़ा विस्तार है।

महावीर ने, बुद्ध ने, लाओत्से ने, कृष्ण ने इस पृथ्वी से ज्यादा सुख के तल अनुभव करने वाले ग्रहों-उपग्रहों की चर्चा की है--उनका नाम स्वर्ग है--इससे भी जहां जीवन श्रेष्ठतर हो गया है, इससे भी जहां जीवन ज्यादा खिल गया है! ऐसा समझें हम, एक कली अधखिली रह गई हो, एक कली खिल गई हो, एक कली फूल बन गई हो! अगर बहुत पृथ्वियां हैं, तो कोई पृथ्वी अभी सिकुड़ी पड़ी होगी, कोई पृथ्वी खिल रही होगी, कोई बहुत खिल गई होगी, कहीं चेतना ने नए आयाम पा लिए होंगे। स्वर्ग का मतलब इतना है--ऐसी पृथ्वियां, ऐसे जीवन के तल इस ब्रह्मांड में, जहां सुख उपलब्ध हो गया है, जहां सुख स्थिति बन गई है। यहां दुख स्थिति है, सुख आशा है। वहां सुख स्थिति बन गई है।

लेकिन वहां भी जहां सुख स्थिति बन गई है, जहां आनंद बरस गया है, वहां भी अभी थोड़ी सी यात्रा शेष है। क्योंकि जब तक हम कहते हैं, मैं आनंदित हूं, तब तक भी मैं और आनंद में थोड़ा सा फासला बना रहता है। उतना फासला भी कष्टपूर्ण है, उतने फासले में भी बेचैनी है, उतनी दूरी भी अखरती है।

लाओत्से कहता है, "स्वर्ग अपने को ताओ के अनुरूप बना रहे हैं।"

वे स्वर्ग भी दौड़ रहे हैं; वे उस परम नियति में प्रवेश कर जाना चाहते हैं, उस नियम के साथ एक हो जाना चाहते हैं, जो सभी नियमों का आधार है। लेकिन उनकी दौड़ भी तब तक पूरी न हो पाएगी। क्योंकि ताओ भी--यह थोड़ा अंतिम, कठिन बात है--

"ताओ भी अपने को स्वभाव के अनुरूप बनाने में लगा है।"

जिस ताओ की हम बात कर सकते हैं, वह ताओ वास्तविक नहीं, सिद्धांत हो जाता है। जिस ताओ की हम कल्पना कर सकते हैं, जो कंसीवेबल है, जिसकी हम धारणा बना सकते हैं, वह भी हमारी धारणा हो जाता है। वैसी धारणा का ताओ भी अंतिम नहीं है। अंतिम तो वह ताओ है, जहां सब धारणाएं गिर जाती हैं और सिर्फ स्वभाव, होना मात्र, जस्ट एक्झिस्टेंस शेष रह जाता है। ताओ भी सिर्फ रह जाए होने मात्र में, होना मात्र ही जहां अंत हो जाए!

इसे थोड़ा समझ लें।

एक अंग्रेजी में शब्द है बिकमिंग, होने की दौड़। और एक शब्द है बीइंग, होना मात्र। जब तक दौड़ है, तब तक दुख है। अगर ताओ भी स्वभाव के अनुकूल होना चाह रहा है तो दुख शेष रहेगा। क्योंकि होना तो सदा भविष्य में होगा, अभी तो नहीं हो सकता। समय लगेगा। कुछ यात्रा करनी पड़ेगी। बीइंग, अस्तित्व, सत्य अभी है।

मिलारेपा, तिब्बत का एक फकीर, अपने गुरु मारपा के पास गया। मारपा आंख बंद किए बैठा था। मिलारेपा ने कहा कि क्या आप भीतर प्रवेश कर रहे हैं? एक भीतरी यात्रा पर हैं?

मारपा ने आंख खोली और उसने कहा, यात्राएं सब समाप्त हो गईं। नहीं, मैं भीतर प्रवेश नहीं कर रहा हूं, मैं भीतर हूं। प्रवेश तो वह करता है जो बाहर हो। मारपा ने कहा, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मैं केवल हूं।

यह जो होना मात्र है, इसका नाम स्वभाव है। स्वभाव में फिर कोई यात्रा नहीं है, कोई भविष्य नहीं है, कहीं जाना नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि जाना नहीं होगा। इसका यह मतलब भी नहीं है कि भविष्य नहीं होगा। इसका केवल इतना मतलब है कि यात्रा नहीं होगी, दौड़ नहीं होगी, पहुंचने की कोई वासना नहीं होगी, कामना नहीं होगी। जहां सब कामनाएं गिर जाती हैं, जहां सब होने के स्वप्न बिखर जाते हैं, जहां होने से तथाता हो जाती है, एकता हो जाती है।

लाओत्से कहता है, इसका अर्थ हुआ कि चाहे कोई कहीं भी यात्रा कर रहा हो, किसी भी दिशा में, अंतिम यात्रा स्वभाव की दिशा में हो रही है। इसलिए जो व्यक्ति इस सूत्र को समझ ले और सीधा स्वभाव की यात्रा में लग जाए, वह जीवन में जो भी पाने योग्य है, उसे पा लेगा। और जीवन में जो भी पाने योग्य नहीं है, वह अपने आप गिर जाएगा, तिरोहित हो जाएगा। जो व्यक्ति बीच की यात्राएं चुनेंगे, वे कष्ट में रहेंगे। क्योंकि जिससे मिलने वे जा रहे हैं, वह खुद यात्रा पर है।

ऐसा समझो कि आप बंबई से दिल्ली की यात्रा पर निकलते हैं। दिल्ली पहुंच जाते हैं आप, क्योंकि दिल्ली की स्टेशन एक जगह ठहरी है। अगर दिल्ली की स्टेशन भी यात्रा पर हो तो फिर बहुत मुश्किल है। फिर आप पहुंच नहीं पाएंगे। वह तो दिल्ली ठहरी है, इसलिए आप दिल्ली पहुंच जाते हैं।

लेकिन जीवन में सब यात्रा पर हैं; वहां कोई ठहरा हुआ नहीं है। सिर्फ स्वभाव ठहरा हुआ है। तो जो स्वभाव की तरफ जाता है, वही केवल पहुंचता है। बाकी लोग भटकते हैं। उनके पीछे दौड़ते हैं, जो खुद ही दौड़ रहे हैं।

आखिरी बात।

लाओत्से ने ताओ परंपरा में सदगुरु की परिभाषा की है। और कहा, सदगुरु वह है जो कहीं जा नहीं रहा है। अगर कहीं जा रहा है तो वह गुरु नहीं है। अगर उसे कुछ पाने को शेष है तो वह गुरु नहीं है। अगर कुछ होने को शेष है तो वह गुरु नहीं है। और जो ऐसे गुरु के पीछे चल पड़े जो कहीं जा रहा है, मुश्किल में पड़ेगा। मुश्किल में पड़ना अनिवार्य है। क्योंकि आपने जो मंजिल चुनी है, वह मंजिल नहीं है। मंजिल का अर्थ है वह बिंदु इस अस्तित्व के बीच, जो सदा शाश्वत रूप से वहीं है। सब चीजें उसकी तरह जा रही हैं, वह किसी की तरफ नहीं जा रहा है।

इसका अर्थ हुआ कि अगर हम स्वभाव की तरफ जा रहे हैं, उस सबको छोड़ रहे हैं जो कृत्रिम है, उस सबको छोड़ रहे हैं जो चेष्टित है, उस सबको छोड़ रहे हैं जो प्रयास से है, उस सबको छोड़ रहे हैं जो दूर है, वरन उसमें डूब रहे हैं जो हमारे भीतर ही मौजूद है। स्वभाव भीतर ही मौजूद है। सुख को बाहर खोजना पड़ता है। आनंद को भी बाहर खोजना पड़ता है। सत्य की खोज में भी लोग न मालूम कहां-कहां जाते हैं। सिर्फ स्वभाव भीतर है। स्वभाव का अर्थः जो आप अभी हैं, इसी क्षण हैं। अगर दौड़ें न, रुक जाएं, तो उससे मिलन हो जाए। अगर दौड़ते रहें, तो उससे चूकते चले जाएं।

तीन शब्दों में लाओत्से को हम संक्षिप्त में रख लें। लाओत्से कहता है, जो खोजेगा वह खो देगा। अगर पाना है तो पाने की कोशिश मत करो। क्योंकि जो दूर है, उसे पाने के लिए चलना पड़ता है। और जो भीतर ही है, उसे पाने के लिए रुक जाने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

आज इतना ही। रुकें, कीर्तन करें, फिर जाएं।

चैपनवां प्रवचन

अद्वैत की अनूठी दृष्टि लाओत्से की

Chapter 26

Heaviness And Lightness

The Solid is the Root of the Light;
The Quiscent is the Master of the Hasty.
Therefore the Sage travels all day,
Yet never leaves his provosion-cart.
In the midst of honour and glory,
He lives leisurly undisturbed.
How can the Rular of a great Country
Make Light of his body in the Empire?
In Light frivolity, the Centre is lost;
In hasty action, Self-mastery is lost.

अध्याय 26

गुरुता और लघुता

जो हलका है, उसका आधार ठोस है, गंभीर है;
और निश्चल चलायमान का स्वामी है।
इसलिए संत दिन भर यात्रा करता है,
लेकिन जीवन-ऊर्जा के स्रोत से जुड़ा रहता है।
सम्मान व गौरव के बीच भी
वह विश्रामपूर्ण व अविचल जीता है।
एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य में
अपने शरीर को उछालता फिर सकता है?
हलके छिछोरेपन में केंद्र खो जाता है,
जल्दबाजी के काम में स्वामित्व, स्वयं की मालकियत नष्ट हो जाती है।

मन सोचता है सदा द्वंद्व में। निर्द्वंद्व की उसे कोई झलक भी नहीं है। विचार बांट लेता है अस्तित्व को दो में। एक का उसे कोई अनुभव नहीं है।

जो अद्वैत की बात भी करते हैं, वे भी द्वैत में ही ग्रस्त होते हैं। जो एक की चर्चा भी करते हैं, उनकी चर्चा में भी दो ही समाया रहता है। जो कहते हैं कि एक ही है, वे भी संसार और मोक्ष में फर्क करते हैं। जो कहते हैं सब अद्वैत है, वे भी कहते हैं ब्रह्म और माया अलग-अलग हैं। जो कहते हैं कि एक का ही विस्तार है, वे भी सुख और दुख में भेद मानते हैं। शुभ और अशुभ में तो निश्चय ही भेद मानते हैं।

लाओत्से अद्वैत का इस जगत में अब तक हुए मनीषियों में सबसे बड़ा प्रतिपादक है। यह थोड़ी हैरानी की बात लगेगी। क्योंकि हमने शंकर को पैदा किया है; और ऐसा लगता है कि शंकर से बड़ा अद्वैतवादी खोजना मुश्किल है। लेकिन शंकर के अद्वैत में भी द्वैत की चर्चा जारी ही रहती है। बहुत चेष्टा शंकर करते हैं दो को मिटाने की; लेकिन जिसको मिटाने की हम चेष्टा करते हैं, उसे हमने स्वीकार कर ही लिया। जिसे हम इनकार करने की कोशिश करते हैं, कहीं गहरे तल पर हमने उसे मान लिया है। शंकर अथक चेष्टा करते हैं कि माया नहीं है; लेकिन पूरे जीवन शंकर, माया नहीं है, यह सिद्ध करने में लगे रहते हैं। जो नहीं है उसकी इतनी चिंता भी क्या? जो नहीं है उसे नहीं है, ऐसा सिद्ध करने का प्रयोजन भी क्या? शंकर को भी उसका होना कहीं खटकता है।

सपना ही सही, लेकिन सपना भी होता है। और कितना ही इनकार करो, कितना ही कहो झूठ है, फिर भी नहीं तो नहीं हो जाता। होता तो है ही। और रात सपने के बाद सुबह जाग कर भी जब पता भी चल जाता है कि सपना था, तब भी उसके परिणाम तो जारी रहते हैं। जिसने रात एक सुखद सपना देखा है, सुबह जाग कर भी उसके चेहरे पर उसकी खुशी होती है। और जिसने रात एक दुख-स्वप्न से घिरा रहा है, सुबह उठ कर भी उसका मन उदास और म्लान बना रहता है। जाग कर भी! तो सपना भी एकदम सपना तो नहीं है। और जब हम कहते हैं कि सपना सपना ही है, तब हम सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि वह ठोस जाग्रत के जगत जैसा नहीं है। लेकिन फिर भी है तो।

लाओत्से अद्वैत को दार्शनिक की तरह नहीं, एक अनुभोक्ता की तरह प्रतिपादित करता है; एक सिद्धांत की तरह नहीं, क्योंकि यहीं कठिनाई है। और यह कठिनाई थोड़ी जटिल है। जब भी हम सिद्धांत बनाते हैं, तभी विचार का उपयोग करना पड़ता है। और विचार द्वैत के पार नहीं जा सकता। वह उसकी मजबूरी है। इसलिए जब हम विचार से द्वैत के पार जाने की कोशिश करते हैं, तो हम अद्वैत की चर्चा भला करते रहें, लेकिन द्वैत उस चर्चा के भीतर भी तलहटी में मौजूद रहता है। विचार दो के पार जा ही नहीं सकता। तो या तो अद्वैत के संबंध में कुछ कहना हो तो चुप रह जाना उपाय है; और या फिर एक उपाय है जो लाओत्से ने अख्तियार किया। यह उपाय शंकर से बहुत बुनियादी रूप से भिन्न है। इसे हम थोड़ा समझें।

लाओत्से कहता है कि विरोध दिखाई पड़ता है, विरोध है नहीं। विरोध केवल भासमान है। संसार और मोक्ष में जो विरोध है, वह भी दिखाई पड़ता है। क्योंकि हम पूरा नहीं देख पाते, हम अधूरा देखते हैं।

हमारे देखने की एक सीमा है। आप मुझे देख रहे हैं; तो मेरा चेहरा दिखाई पड़ता है, लेकिन मेरी पीठ दिखाई नहीं पड़ती। आप मेरी पीठ देखें तो मेरा चेहरा दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। आप मुझे पूरा नहीं देख सकते। जब भी देखेंगे, आधा ही देखेंगे। शेष आधा अनुमानित है। मेरी पीठ भी होगी, यह आपका अनुमान है; क्योंकि देख तो आप मेरा चेहरा ही रहे हैं। कभी आपने मेरी पीठ भी देखी है। इन दोनों को आप जोड़ लेते हैं और एक का निर्माण करते हैं। लेकिन एक को आपने कभी देखा नहीं। देखते आप दो को हैं।

यह बड़े मजे की बात है। एक छोटा सा कंकड़ भी आप पूरा नहीं देख सकते हैं। उसका भी एक हिस्सा अनदेखा ही रह जाता है। एक रेत का छोटा सा टुकड़ा भी आप पूरा नहीं देख सकते हैं। छोटे होने से कोई फर्क नहीं पड़ता, आधा ही देखते हैं। आधा-आधा दो बार देखते हैं, दोनों को विचार में जोड़ कर पूरा बना लेते हैं। इसलिए जिस रेत के टुकड़े को आप कल्पना में देखते हैं, वह आपके अनुमान से निर्मित है--हाइपोथेटिकल है, परिकल्पित है। वह आपका अनुभव नहीं है। अनुभव तो आधे का है। दो आधे आपने देखे हैं और दोनों को जोड़ कर विचार में एक का निर्माण किया है।

विचार की सीमा है। वह आधे को ही देख पाता है; पार्ट को, हिस्से को देख पाता है। इस देखने की वजह से हमें विरोध दिखाई पड़ता है--अंधेरा अलग और प्रकाश अलग। और उन दोनों को हम जोड़ नहीं पाते, क्योंकि वे बड़ी घटनाएं हैं। हम जोड़ नहीं पाते कि अंधेरा और प्रकाश एक ही चीज के दो पहलू हैं। अगर प्रकाश चेहरा है, तो अंधेरा पीठ है। लेकिन प्रकाश और अंधेरे को हम जोड़ नहीं पाते। वे बहुत बड़ी घटनाएं हैं, विराट घटनाएं हैं।

लेकिन विज्ञान कहता है कि अंधेरे का अर्थ इतना ही होता है, जितना कम प्रकाश कहने से हो। और प्रकाश का अर्थ इतना ही होता है जितना कम अंधेरा कहने से हो। आप प्रकाश को अंधेरे के बिना सोच भी नहीं सकते। अंधेरे को प्रकाश के बिना कल्पना करने का कोई उपाय नहीं है। अगर अंधेरा मिट जाए तो आप ऐसा मत सोचना कि प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाएगा। अंधेरा मिट जाए तो प्रकाश बिल्कुल शेष नहीं रह जाएगा। आप यह मत सोचना कि प्रकाश नष्ट हो जाए तो जगत अंधकार ही अंधकार में डूब जाएगा। प्रकाश के नष्ट होते ही अंधेरा भी नष्ट हो जाएगा। वे दोनों एक ही चीज के दो पहलू हैं। उनमें जो अंतर है, वह विरोध का नहीं है। विरोध हमारे आंशिक देखने के कारण पैदा होता है। यह बात बहुत मौलिक है लाओत्से की, यह समझ लेनी चाहिए।

सुख और दुख में हम विरोध देखते हैं। लाओत्से कहता है, वे विरोधी नहीं हैं। इसलिए जो आदमी सोचता है कि ऐसा कोई क्षण आ जाए जब दुख बिल्कुल न रहे, तो उसे पता नहीं है, उस क्षण सुख भी बिल्कुल न रह जाएगा। अगर आप सुख चाहते हैं तो दुख को चाहना ही पड़ेगा। अगर आप सुख चाहते हैं तो दुख को बनाए ही रखेंगे। दुख आपकी सुख की चाह से ही निर्मित हो रहा है। क्योंकि वे दोनों एक हैं। आपने जाना है कि दो हैं, आपके जानने से अस्तित्व में कोई फर्क नहीं पड़ता। यह आपका जानना भ्रांत है।

थोड़ा सोचें कि आपके घर कोई मित्र आए और आपको खुशी हो; तो आपके घर कोई शत्रु आएगा तो दुख होगा। आप सोचते हों, कुछ ऐसा कर लें कि शत्रु आए तो दुख न हो। जिस दिन आप ऐसा इंतजाम कर लेंगे, उस दिन मित्र भी आएगा और सुख न होगा। आप सोचते हों कि यश मिले और सुख न हो; तो अपयश मिलेगा, दुख न होगा। वे संयुक्त घटनाएं हैं। उन घटनाओं को हम तोड़ कर देख लें, लेकिन अस्तित्व में तोड़ नहीं सकते।

लाओत्से कहता है कि विरोध केवल दिखाई पड़ते हैं; विरोध हैं नहीं। विरोध एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। लेकिन इतना विस्तार है अस्तित्व का कि जब हम देखते हैं तो एक छोर को देख पाते हैं; जब तक हम दूसरे छोर तक जाते हैं, एक छोर हमारे लिए ओझल हो जाता है। और इन दोनों को हम अब तक नहीं जोड़ पाए। जो जोड़ लेते हैं, वे परम संत हैं। इन दोनों छोरों को जो जोड़ लेते हैं, देख लेते हैं जुड़ा हुआ, वे परम संत हैं। जो नहीं जोड़ पाते, उन्हें हम अज्ञानी कहते हैं। इतना ही अज्ञान है कि अस्तित्व हमारे लिए सदा दो में बंटा हुआ दिखाई पड़ता है--मित्र में, शत्रु में; प्रेम में, घृणा में; प्रकाश में, अंधकार में; शुभ में, अशुभ में; स्वर्ग में, नरक में--हमें बंटा हुआ दिखाई पड़ता है।

स्वर्ग और नरक एक ही चीज के दो छोर हैं। और इसलिए स्वर्ग से नरक जाने में, नरक से स्वर्ग आने में अड़चन नहीं होती। यात्रा सुगम है। सुख से दुख में जाने में कितनी देर लगती है? कभी आपने ख्याल किया कि जब आप सुख से दुख में प्रवेश करते हैं, तो कौन सा क्षण है जहां सुख दुख बन जाता है? किस जगह आकर सुख समाप्त होता है और दुख शुरू होता है?

अगर आप इतनी खोज करें तो आपको पता चलेगा, वह क्षण आता ही नहीं कभी। जितना आप खोजेंगे उतना आप पाएंगे कि दुख और सुख के बीच में कोई अंतराल नहीं है, कोई खाई नहीं है। सुख और दुख के बीच में कोई गैप नहीं है। जितना आप खोजेंगे, उतना ही आप पाएंगे कि सुख दुख का ही एक छोर है। दुख कभी शुरू नहीं होता। जब आप सुख में थे, तब भी मौजूद था। सिर्फ आप आधे को देख रहे थे। धीरे-धीरे जब पूरा आपकी झलक में आता है, दूसरा छोर दिखाई पड़ता है, तो दुख हो जाता है। सब दुख सुख बन सकते हैं, सब सुख दुख बन सकते हैं। इंटरचेंजेबल हैं, उनमें कहीं कोई अवरोध नहीं है। कहीं कोई झटका भी नहीं लगता जब आप सुख से दुख में जाते हैं। इतना भी नहीं जितना कि गियर बदलने में गाड़ी में लगता है। इतना भी नहीं। कोई बदलाहट ही नहीं होती; आप एक ही पटरी पर होते हैं।

इसलिए एक बहुत मजे की बात है और वह यह है कि जहां-जहां आपको विरोध दिखाई पड़ता हो, वहां-वहां विरोध नहीं है, अविरोध है। यह जो अविरोध है, यह सिर्फ अविरोध ही नहीं है। लाओत्से दूसरी बात भी कहता है। वह कहता है, न केवल यह अविरोध है, बल्कि यह परिपूरक है, यह कांप्लीमेंटरी है। इतना ही नहीं है कि सुख और दुख में विरोध नहीं है, बल्कि इतना भी कि सुख का आधार दुख है और दुख का आधार सुख है। इतना ही नहीं कि शुभ और अशुभ दुश्मन नहीं हैं, बल्कि मित्र हैं, और एक-दूसरे के सहयोगी हैं।

ऐसी कोई दुनिया की कल्पना करें जहां कोई असाधु न हो, साधुओं की एकदम मृत्यु हो जाएगी। जहां कोई अज्ञानी न हो, वहां ज्ञानी एकदम व्यर्थ हो जाएंगे। उनका पता ही नहीं चलेगा। एक के साथ दूसरा जुड़ा है। और एक के सहारे दूसरा खड़ा है।

यह साधक के लिए बहुत कीमत की बात है। क्योंकि साधक पूरी जिंदगी इसी उपद्रव में पड़ा होता है। संसारी भी इसी उपद्रव में पड़ा होता है और साधक भी। फर्क उनके विषयों के चुनाव का होता है। संसारी इसमें पड़ा होता है कि सुख बचे और दुख हट जाए। और साधक इसमें पड़ा होता है कि शुभ बचे और अशुभ हट जाए। लेकिन दोनों की भूल एक ही है। जिसको आप संन्यासी कहते हैं, वह भी उसी भूल में होता है जिसमें संसारी होता है। उनके चुनाव अलग हैं। संसारी कहता है, मैं सुख बचा लूंगा, दुख को काट डालूंगा। आज नहीं कल श्रम से, पुरुषार्थ से दुख को मिटा दूंगा, सुख को बचा लूंगा। संन्यासी कहता है कि सुख-दुख में मुझे रस नहीं है, मैं शुभ को बचाऊंगा, अशुभ को मिटा दूंगा। जो बुरा है उसे हटा दूंगा और जो भला है उसे बचा लूंगा।

ऊपर से दोनों बड़े विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन लाओत्से के हिसाब से दोनों की दृष्टि एक सी भ्रांत है। शुभ और अशुभ भी एक ही चीज के दो छोर हैं। कहां शुभ अशुभ बन जाता है, कहना मुश्किल। कहां अशुभ शुभ बन जाता है, कहना मुश्किल। और जिंदगी इतना बड़ा विस्तार है कि अगर हम पूरे को देख पाएं तो हम यह द्वैत की भाषा ही छोड़ दें।

अच्छा करने वालों ने अच्छा किया है जगत में या बुरा करने वालों ने बुरा किया है, अगर हम विस्तीर्ण इतिहास देखें तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। बड़ी कठिनाई हो जाती है। एक सीमा पर जाकर बुराई अच्छी बन जाती है।

अब जैसे उदाहरण के लिए, जिन्होंने अणु-बम खोजा और जिन्होंने नागासाकी और हिरोशिमा पर अणु-बम गिराया, शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में इससे बुरा कृत्य दूसरा नहीं है। इस मामले में निश्चित हुआ जा सकता है। गिराने वाले भी निश्चित हैं कि इससे बुरा कृत्य दूसरा नहीं है। लेकिन संभावना यह है कि अणु-बम के कारण ही दुनिया में युद्ध समाप्त हो जाएं। नागासाकी और हिरोशिमा के कारण ही दुनिया में अब तीसरा महायुद्ध हो नहीं सकता। तब बड़ी मुश्किल है। यह हो सकता है कि आने वाला भविष्य अब महायुद्धों का नहीं होगा। तब नागासाकी-हिरोशिमा पर गिराए गए बम शुभ थे या अशुभ? लंबे विस्तार में तय करना मुश्किल हो जाता है। अगर एक-एक घटना को हम अकेला-अकेला सोचें तो तय करना आसान है--शुभ है, अशुभ है। लंबे विस्तार में देखें तो शुभ अशुभ में बदलता दिखाई पड़ता है।

अब जैसे महावीर और बुद्ध, दोनों ने भारत को अहिंसा की शिक्षा दी। इस शिक्षा को कोई भी अशुभ नहीं कह सकता। लेकिन इस शिक्षा का हाथ है भारत की ढाई हजार साल की दीनता में, गुलामी में। इस शिक्षा को कोई अशुभ नहीं कह सकता। इससे ज्यादा शुभ कोई बात नहीं हो सकती। लेकिन जब भी किसी मुल्क को आप अहिंसा सिखा देंगे, तो उसकी क्षमता संघर्ष की क्षीण हो जाएगी, प्रतिकार की क्षमता टूट जाएगी। उसके परिणाम होंगे।

आपने अहिंसा सीख ली, इसलिए आपका पड़ोसी भी सीख लेगा, यह जरूरी तो नहीं है। बल्कि हो सकता है, आपकी अहिंसा पड़ोसी को हिंसक होने के लिए मौका दे। यह भी हो सकता है कि आपकी अहिंसा के कारण ही आपका पड़ोसी हिंसक हो जाता हो। उसकी हिंसा की भी जिम्मेवारी आपकी होगी। क्योंकि कमजोर दूसरों को निमंत्रण देता है कि मेरा शोषण करो। जब कोई आपके गाल पर एक चांटा मारता है, तो सिर्फ उसके हाथ का ही हाथ नहीं होता, आपके गाल का भी हाथ होता है। आपका गाल बुलाता है कि मारो। यह बुलावा ऐसा ही है जैसे कि पानी बहता है और गड्ढा बुलाता है, और गड्ढे में समा जाता है।

जीवन में भी गड्ढे हैं। जब आप लड़ने की क्षमता खो देते हैं, तो आप गड्ढा बन जाते हैं। तो किसी की लड़ाई की वृत्ति आप में प्रवाहित हो जाती है; कोई चांटा आपके चेहरे पर पड़ जाता है। इसमें अकेला एक जिम्मेवार नहीं है, आप भी जिम्मेवार हैं। इस जिंदगी में जिम्मेवारी बंटी हुई नहीं है, संयुक्त है।

महावीर और बुद्ध की शिक्षा तो श्रेष्ठतम है। लेकिन अगर लंबे विस्तार में देखें तो परिणाम क्या हुआ? महावीर खुद तो एक क्षत्रिय हैं, लेकिन उनका मानने वाला पूरा वणिक वर्ग खड़ा हो गया। बनियों की एक जमात खड़ी हो गई। यह जरा हैरानी की बात है कि एक बहादुर क्षत्रिय के--उनको हमने नाम दिया महावीर का सिर्फ इसीलिए कि उन जैसा वीर खोजना मुश्किल है--लेकिन उनके पीछे कमजोरों और कायरों की एक जमात क्यों खड़ी हो गई? अहिंसा कायरता क्यों बन जाती है लंबे अर्से में? बहादुरी अच्छी चीज है। लंबे अर्से में हिंसा क्यों बन जाती है?

सभी चीजें बदल जाती हैं अपने से विपरीत में। विपरीत विपरीत नहीं है, दूसरा छोर है। सिर्फ समय की जरूरत है और आप दूसरे छोर में बदल जाएंगे। बच्चे ही तो बूढ़े हो जाते हैं। जन्म ही तो मृत्यु बनता है। कब बच्चा बूढ़ा होता है, आप बता सकते हैं? कब जन्म मौत बन जाता है, आप बता सकते हैं? साथ ही साथ चलते हैं। साथ-साथ चलते हैं, यह कहना भी भाषा की भूल है। एक ही चीज के दो छोर हैं। एक ही चीज है--जन्म यानी मौत, बचपन यानी बुढ़ापा।

और मजा यह है, दूसरा जो सूत्र है लाओत्से का वह यह कि ये परिपूरक हैं। अगर हम बुढ़ापे को मिटा दें तो दुनिया से बचपन मिट जाएगा। यह मुश्किल पड़ता है समझना, क्योंकि हम सोच सकते हैं कि यह हो सकता

है बुढ़ापा न हो। ईजाद हो जाएं दवाइयां, स्वास्थ्य-व्यवस्था ठीक हो जाए, तो यह हो सकता है कि आदमी बूढ़ा न हो। लेकिन जिस दिन हम यह कर पाएंगे कि आदमी बूढ़ा न हो, उस दिन बचपन तिरोहित हो जाएगा। क्योंकि वह जो बचपन है, वह बुढ़ापे का छोर है। वह उसके साथ ही जी सकता है। उसके अलग नहीं जी सकता। कांप्लीमेंटरीनेस है, दोनों जुड़े हैं और एक-दूसरे के आधार हैं।

इस सूत्र को हम समझें।

"जो हलका है, उसका आधार ठोस है, उसका आधार गंभीर है; जो निश्चल है, वह चलायमान का स्वामी है।"

गाड़ी का चाक चलता है एक कील पर। वह कील ठहरी रहती है और चाक घूमता रहता है। गर्मी के दिनों में अंधड़ उठता है, हवा के बवंडर खड़े होते हैं, धूल उठती है। गोल वर्तुलाकार घूमती है, आकाश की तरफ उठती है। कभी जाकर जमीन पर उसका छोड़ा हुआ चिह्न देखें तो आप बहुत चकित हो जाएंगे। वह हवा का बवंडर नीचे की रेत पर अपना चिह्न छोड़ जाता है; लेकिन बीच में एक बिंदु होता है जो बिल्कुल शांत होता है, जिसमें जरा भी चिह्न नहीं होता। वह जो बवंडर है, उसके बीच में एक केंद्र बिल्कुल शांत और थिर होता है।

गति स्थिर के ऊपर चलती है। स्थिर को तोड़ दें, गति टूट जाएगी। गति को तोड़ दें, स्थिर समाप्त हो जाएगा। वह जो हलका है, वह ठोस पर खड़ा है। वह जो गंभीर है, वह गैर-गंभीर पर निर्मित है।

ऐसा समझें, जिस दिन आदमी हंसना बंद कर देगा, उस दिन आदमी का रोना भी खो जाएगा। जानवर न तो हंसते हैं, न रोते हैं। जब तक जानवर हंस न सकें, तब तक रो भी न सकेंगे। जिस जानवर को हम रोना सिखा सकते हैं, उसको हम हंसना भी सिखा लेंगे। अकेला आदमी ऐसा जानवर है जो हंसता है। अनिवार्य रूप से, अकेला वही है जो रोता है।

किसी जानवर को आप ऊब से भरा हुआ न पाएंगे, बोरियत से, बोर्डम से भरा हुआ नहीं पाएंगे। देखें एक भैंस को, घास चर रही है; एक गधे को, वृक्ष के नीचे खड़ा चिंतन कर रहा है। कोई ऊब नहीं है। ऊब का कोई पता ही नहीं है। बोर्डम है ही नहीं। ऊबते ही नहीं हैं। रोज वही घास है, रोज वही वृक्ष है। और गधा कुछ नया-नया सोचता होगा, इसकी भी संभावना नहीं है। सोचता होगा, इसकी भी संभावना नहीं है। लेकिन कोई ऊब नहीं है।

सिर्फ आदमी ऊबता है। इसलिए आदमी को मनोरंजन के साधन खोजने पड़ते हैं। ऊब के साथ मनोरंजन। गरीब आदमी कम ऊबता है। इसलिए कम मनोरंजन के साधन खोजता है। अमीर आदमी ज्यादा ऊबता है तो ज्यादा मनोरंजन के साधन खोजता है। सम्राट हुए जो चौबीस घंटे मनोरंजन में पड़े रहते थे; क्योंकि बिल्कुल ऊबे हुए थे, जिंदगी में कोई रस ही न था। दूसरा छोर तत्काल निर्मित हो जाता है।

आदमी को छोड़ कर किसी पशु-पक्षी को सौंदर्य का बोध नहीं मालूम होता; क्योंकि कुरूपता की कोई पहचान नहीं है। आदमी हट जाए जमीन से तो सुंदर और कुरूप दोनों शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। आदमी के साथ, विचार के साथ द्वंद्व निर्मित होता है। चीजें बंट जाती हैं। एक चीज सुंदर हो जाती है; एक कुरूप हो जाती है। हमारा मन चाहेगा कि ऐसी घड़ी आ जाए, जब कुरूप बिल्कुल न रहे, सुंदर ही सुंदर रह जाए।

ऐसी घड़ी आ सकती है। लेकिन तब सुंदर को सुंदर कहने में कोई अर्थ न रह जाएगा। वह सदा कुरूप के विपरीत ही सार्थक है। हमारी सारी भाषा ही द्वंद्व में सार्थक है।

लाओत्से कहता है, जो निश्चल है, वह चलायमान का स्वामी है।

जहां-जहां गति है, वहां-वहां खोजना, बीच में एक केंद्र होगा जहां कोई गति न होगी। मगर हमारी अड़चन यह है कि हम एक को पकड़ लेते हैं। अगर हम गति को पकड़ते हैं तो हम केंद्र को भूल जाते हैं। अगर हम केंद्र को पकड़ते हैं तो हम गति को भूल जाते हैं। दुनिया ने दो तरह के लोग पैदा किए, वे दोनों ही अधूरे हैं।

एक आदमी है जो गति को इतना पकड़ता है, बाजार में, दुकान में, व्यापार में, राजनीति में गतिमान रहता है, वह यह भूल ही जाता है कि मेरे भीतर एक केंद्र भी है, उसी केंद्र के ऊपर यह सारी गति है। और वह केंद्र चलता नहीं, चलायमान नहीं है, थिर है। वह भूल ही जाता है। यही भूल उसका दुख बन जाती है।

फिर इस भूल से एक दूसरी भूल पैदा होती है। फिर वह सोचता है--जब थक जाता है, ऊब जाता है इस दौड़-धूप से, इस आपा-धापी से बेचैन हो उठता है, तब वह सोचता है--छोड़ो सब गति, अब तो थिर हो जाओ, ठहर जाओ, हटाओ सब यह भाग-दौड़, अब तो उस केंद्र को पा लो जो चलता ही नहीं है। तब वह सारी गति के विपरीत केंद्र को खोजने लगता है। तब वह सारी गति छोड़ कर, आंख बंद करके, प्रतिमा बन कर सोचता है कि केंद्र को पा लूं। तब वह दूसरी भूल कर रहा है। पहले उसने एक भूल की थी कि केंद्र को छोड़ कर गति को पा लूं। अब वह एक दूसरी भूल कर रहा है कि गति को छोड़ कर केंद्र को पा लूं। चुनाव कर रहा है अधूरे का।

अधूरा इस जगत में नहीं है। गति में ही जो केंद्र को पा ले, वही केंद्र को पा सकता है। केंद्र के साथ भी जो गति में रह ले, उसी ने केंद्र को पाया ऐसा जानना। जो अपनी सारी भाग-दौड़ में भी थिर हो, वही साधु है। और जो अपनी थिरता में भी भाग सके, दौड़ सके, वही साधु है।

जगत में दो तरह के असाधु हैं। असाधु का मतलब अंश को चुनने वाले लोग। एक, वे कहते हैं कि हम संसारी हैं, हम ध्यान कैसे करें? क्योंकि ध्यान तो उस बिंदु को खोजने की विधि है, जहां गति नहीं है। वे कहते हैं, हम संसारी हैं, हम ध्यान कैसे करें? वे कहते हैं, हम संसारी हैं, हम संन्यासी कैसे हो जाएं? जब संसार छोड़ेंगे, तब संन्यासी हो जाएंगे। और जब छोड़ेंगे सब दौड़-धूप, तब ध्यान कर लेंगे। इसलिए कुशल, होशियार, चालाक लोगों ने बना रखा है कि जब मरने के करीब होंगे--जब गति छोड़ना भी न पड़ेगी, अपने आप छूटने लगेगी, जब दौड़ना भी चाहेंगे तो पैर जवाब दे देंगे--तब हम ध्यान कर लेंगे। वह मौका अच्छा है।

इसलिए हमने संन्यास को बूढ़े के साथ जोड़ रखा है। उसका कोई संबंध बूढ़े से नहीं है। मगर हमारी द्वैत की सोचने की व्यवस्था में यही उचित मालूम पड़ता है। वह तो हमारा बस नहीं है, नहीं तो हम मरने के बाद, क्योंकि तब फिर कोई उपद्रव ही नहीं रह जाएगा, न दुकान, न बाजार; मर ही गए, फिर कब्र में ध्यान साधते रहेंगे। लेकिन वह उपाय नहीं मालूम पड़ता, इसलिए बिल्कुल मरते-मरते, मरते-मरते... । आदमी मर रहा है और लोग उसको गंगाजल पिला रहे हैं और राम-नाम पिला रहे हैं। इनको जिंदगी भर फुर्सत न मिली गंगाजल पीने की। बहुत काम था, व्यस्त थे। और जल्दी भी क्या थी? आखिरी क्षण पी लेंगे।

ये जो... मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम संसारी हैं, हम ध्यान कैसे कर सकते हैं? वे क्या कह रहे हैं? वे यही कह रहे हैं कि अभी हम गति में हैं तो हम ठहर कैसे सकते हैं? उनको हम जरा और तरफ से समझें।

आप किसी से जाकर कहें कि मैं तो दिन भर काम में लगा रहता हूं, इसलिए विश्राम कैसे कर सकता हूं? विश्राम तो विपरीत है। किसी से आप कहें कि मेरा तो काम जागने का है, मैं सो कैसे सकता हूं?

लेकिन दिन भर आप जागते हैं और रात आप सो जाते हैं। न केवल इतना, बल्कि जितना ठीक से जागते हैं, उतना ठीक से सो जाते हैं। सोना और जागना विपरीत आपको दिखाई पड़ते हों, विपरीत नहीं हैं, परिपूरक हैं। जो आदमी दिन में ठीक से जागा है, रात गहरी नींद सो जाता है। जो आदमी दिन में ऊंघता रहा है, वह रात

सो नहीं पाता। जो दिन भर खाली बिस्तर पर पड़ा रहा है, वह रात कैसे सो पाएगा? अगर हमारा तर्क सही होता तो जिसने दिन भर ऊंघने का अभ्यास किया, उसको गहरी नींद आनी चाहिए; क्योंकि दिन भर का अभ्यासी है। और अभ्यास का तो फल मिलना चाहिए। यह क्या उलटा हो रहा है? और जो आदमी दिन भर गड्ढा खोदता रहा, लकड़ियां काटता रहा, पत्थर तोड़ता रहा, इसको तो रात नींद आनी ही नहीं चाहिए। दिन भर का अभ्यास जागने का!

लेकिन जो दिन भर लकड़ी काटा है, वह बिस्तर पर गिरता भी नहीं है और नींद आ जाती है। उसे पता भी नहीं चलता कि कब उसके शरीर ने बिस्तर को छुआ, उसके पहले उसके प्राण निद्रा को छू लेते हैं। और वह जो आदमी दिन भर ऊंघता रहा है, अपनी आरामकुर्सी पर बैठा रहा है, बिस्तर पर लेटा रहा है, वह रात करवटें बदलता है।

आपको पता है, ये करवटें परिपूरक हैं। जो दिन में नहीं कर पाया, वह उसे रात में करना पड़ता है। उतना श्रम तो करना जरूरी है। हजार, पांच सौ करवटें बदल कर थोड़ा-बहुत सुबह-सुबह सो पाता है। ये करवटें, जिसने लकड़ी फाड़ी है, दिन में ही बदल लीं उसने। और अच्छी तरह बदल लीं, बिस्तर भी कोई जगह है व्यायाम करने के लिए? लेकिन अधिक लोग, जो दिन में व्यायाम नहीं कर रहे, रात बिस्तर में व्यायाम करेंगे ही। उनकी जिंदगी बड़ी अस्तव्यस्त हो जाएगी। जब व्यायाम करना था, तब वे ऊंघते रहे; जब सोना था, तब वे व्यायाम करते रहे। उनका सब जीवन विपरीत जालों में उलझ जाएगा--अपने ही कारण।

नींद विपरीत नहीं है जागने के। और लाओत्से कहता है, गति विपरीत नहीं है थिरता के, परिपूरक है।

तब एक नया आयाम खुलता है सोचने का। इसका मतलब यह हुआ कि दौड़ते हुए भी ऐसा हुआ जा सकता है कि भीतर कोई न दौड़े। और जब तक ऐसा सूत्र न मिल जाए कि दौड़ते हुए भी आप जानें कि आप नहीं दौड़ रहे हैं, तब तक आपको जिंदगी के रहस्य का द्वार नहीं मिलेगा। तब काम करते हुए भी कोई विश्राम में बना रह सकता है। और तब, तब जीवन के सब द्वंद्वों के बीच में एक सूत्र मिल जाता है। तब रात सोए हुए भी भीतर कोई जागा रह सकता है। और तब दिन के सारे श्रम के बीच भी भीतर कोई विश्राम में बैठा रह सकता है। और तब चाहे जीवन में कितनी ही धूप हो, भीतर एक छाया बनी रहती है। और चाहे कितनी ही बेचैनी के बवंडर उठें, एक केंद्र पर सब शांत और मौन रहता है। और मजा यह है कि जितनी तीव्रता होती है इन बवंडरों की, उतनी ही गहरी वह शांति अनुभव होती है। वह इससे नष्ट नहीं होती। क्योंकि ये परिपूरक हैं। इसलिए जीवन में जितना तूफान होता है, उतनी ही गहन शांति का अनुभव होता है। और जीवन में चारों तरफ कितने ही दुखों की वर्षा होती रहे, एक भीतर सुख की वीणा बजती रहती है। जितने जोर से दुखों की होती है वर्षा, उतने ही जोर से उस वीणा का स्वर गतिमान हो जाता है। क्योंकि परिपूरक है, विपरीत नहीं है। एक-दूसरे का दुश्मन नहीं है, साथी है।

अद्वैत की यह अनूठी बात है। लाओत्से अद्वैत की दिशा में यह अनूठा कदम उठा रहा है। वह यह कह रहा है कि जहां-जहां तुम्हें विपरीत दिखाई पड़े, तुम विपरीत मान लेते हो, वहीं भूल हो जाती है। विपरीत मानना ही मत। और जहां तुम्हें विपरीत दिखाई पड़े, वहां तुम विपरीत को साधना, एक को छोड़ कर नहीं, दोनों को साध कर, साथ ही साध कर। इसका मतलब हुआ कि संन्यास अगर वास्तविक हो तो संसार में ही हो सकता है।

इसलिए जब मुझसे कोई आकर कहता है कि हम संसारी हैं, हम संन्यासी कैसे हो जाएं? लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आप यह क्या उपद्रव कर रहे हैं? संसारियों को संन्यास दे रहे हैं! संन्यास तो तभी हो सकता

है, जब कोई घर-द्वार छोड़ कर, सब छोड़ कर भाग जाए। पलायन में ही संन्यास हो सकता है, त्याग में ही संन्यास हो सकता है। उनका कसूर नहीं है। द्वंद्व की भाषा में सोचने की आदत।

मेरी दृष्टि में तो संन्यास हो ही केवल संसार में सकता है। और जिसका संन्यास संसार में नहीं हो सकता, उसका संन्यास कभी नहीं हो सकता।

लाओत्से कहता है, इसलिए संत दिन भर यात्रा करता है, और फिर भी यात्रा नहीं करता।

बुद्ध चालीस वर्ष तक चलते रहे ज्ञान के बाद। ज्ञान के बाद ही वे बुद्ध हुए। चालीस वर्ष तक चलते रहे, एक गांव से दूसरे गांव, दूसरे गांव से तीसरे गांव। अनथक यात्रा चलती रही। एक शिष्य उनका, मोग्गलायन, एक दिन बुद्ध को पूछता है, आप इतना चलते हैं, थकते नहीं? बुद्ध ने कहा, जो चलता हो, वह थकेगा ही; मैं चलता ही नहीं हूं। मोग्गलायन ने कहा, मजाक करते हैं आप। आपको अपनी आंखों से चलते देखता हूं। बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हारी आंखों का भरोसा करूं या अपनी आंखों का? मैं भीतर देखता हूं, वहां कोई चलता ही नहीं है। तुम मुझे बाहर से देखते हो, वहां कोई चलता है। जो चलता है, वह मेरी छाया है; जो नहीं चलता, वह मेरी आत्मा है। और छाया के चलने से कोई थकता है?

लेकिन आप थकेंगे, क्योंकि आपकी छाया नहीं चलती, आपने छाया से अपने को एक ही मान रखा है।

हमारे मन में सवाल उठते हैं कि जब बुद्ध को ज्ञान हो गया, तो अब बोलते क्यों हैं? जब ज्ञान हो गया, तो अब चलते क्यों हैं? जब ज्ञान हो गया, तो अब क्या उन्हें प्रयोजन है? हमें लगता है कि जब ज्ञान हो गया, तो अब सब गति बंद हो जानी चाहिए।

गति बंद नहीं होती ज्ञान से। सिर्फ गति में जो ज्वर होता है, फीवर होता है, वह बंद हो जाता है। गति तो जारी रहती है। बल्कि सच पूछें तो गति पहली दफे निखर कर स्वच्छ हो जाती है। नदी तो अब भी बहती है, लेकिन उसमें कूड़ा-करकट नहीं बहता, अब उसमें गंदगी नहीं बहती। अब नदी शुद्ध धार हो जाती है। ऐसा समझ लें कि पानी भी न रह जाए और सिर्फ गति रह जाए नदी में, इतनी शुद्ध हो जाती है।

लाओत्से कहता है, "इसलिए संत दिन भर यात्रा करता है, देयरफोर दि सेज ट्रैवेल्स आल डे, यट नेवर लीव्स हिज प्रोवीजन कार्ट।"

और वह जो भीतर जीवन-ऊर्जा है, वह जो भीतर जीवन का मूल स्रोत है, प्रोवीजन कार्ट, जहां जीवन की सारी शक्ति संरक्षित है, जहां उसके जीवन का भोजन छिपा है, उसे कभी नहीं छोड़ता। यात्रा करता है दिन भर, चलता है दिन भर, और भीतर कोई भी नहीं चलता। भीतर वह अपने मूल केंद्र में थिर बना रहता है। परिधि चलती है, केंद्र ठहरा रहता है। चाक चलता है, कील रुकी रहती है। बोलता भी है और नहीं भी बोलता; क्योंकि मौन से बोलता है।

बुद्ध बोलते हैं। उस बोलने में और आपके बोलने में फर्क है। आप जब बोलते हैं, तब शब्दों से बोलते हैं। बुद्ध भी शब्दों का उपयोग करते हैं। लेकिन शब्दों से नहीं बोलते, मौन से बोलते हैं। आप जब बोलते हैं, तो आपके भीतर शब्दों का इतना उपद्रव मच जाता है कि उसे आप पर किसी को उलीचना पड़ता है। बुद्ध जब बोलते हैं, तो शब्दों के उपद्रव से नहीं बोलते। भीतर मौन इतना घना है, उस मौन से ही जो दृष्टि दिखती है, उस मौन से ही जो रिस्पांस, जो प्रतिसंवेदन होता है, उससे बोलते हैं।

आप जब बोलते हैं, तो आप कभी ख्याल करना, आप जब बोलते हैं, तो जिससे आप बोलते हैं, उससे आपका प्रयोजन नहीं होता। आपका बोलना एक बुखार है; वह आपके भीतर परेशान कर रहा होता है। किसी न किसी से बोलना पड़ता है। निकल जाता है, थोड़ी राहत मिलती है। आपने अपना कचरा दूसरे को सम्हाल

दिया; वह किसी को सम्हाले, वह जाने! अब आपका कोई प्रयोजन नहीं है। अब आप निश्चिंत सो सकते हैं। आप ख्याल करना कि जब आप बोलते हैं, तो आपका दूसरे से प्रयोजन है? आपका दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए कोई न मिले तो आदमी अकेले में अपने से भी बात कर लेता है। ताश बिछा कर दोनों तरफ से चाल चल लेता है।

आदमी विक्षिप्तता से बोलता है। बुद्ध शून्य से बोलते हैं। इसलिए बुद्ध के बोलने में आप प्रयोजन हैं। इसलिए बुद्ध, जब कोई उनसे कुछ पूछता है, तो लोग एक से सवाल भी पूछते हैं, लेकिन बुद्ध सभी को अलग-अलग जवाब देते हैं। बुद्ध के भिक्षु अनेक बार मुश्किल में पड़ जाते हैं और वे बुद्ध से कहते हैं कि सवाल तो एक ही था और आपने जवाब अलग-अलग लोगों को अलग-अलग दिए!

बुद्ध ने कहा, सवाल महत्वपूर्ण नहीं है, पूछने वाला महत्वपूर्ण है। और जवाब मैं सवाल को नहीं देता, पूछने वाले को देता हूं। पूछने वाले अलग-अलग थे।

उनके सवाल एक से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन अगर हम पूछने वाले की पूरी-पूरी व्यवस्था को समझें तो हर सवाल का मतलब अलग हो जाएगा। वह जब आपके भीतर से आता है, तो आपका रंग, आपका खून, आपकी मज्जा उसमें सम्मिलित हो जाती है।

एक आदमी आकर पूछता है, ईश्वर है? यह सवाल नहीं है सिर्फ, यह आकाश शून्य से पैदा नहीं हुआ है, एक आदमी से पैदा हुआ है। एक दूसरा आदमी आकर पूछता है, ईश्वर है? ये दोनों सवाल शब्दों में एक से हैं, लेकिन ये दो आदमी अलग-अलग हैं। एक आदमी नास्तिक हो सकता है, और पूछता हो, ईश्वर है? उसका मतलब हो कि है तो नहीं, आपसे भी पूछना चाहता हूं कि है? लेकिन वह जानता है, नहीं है। दूसरा आदमी आस्तिक हो। वह भी आपसे पूछना चाहता है, वह भी आपकी सलाह लेना चाहता है, लेकिन भीतर जानता है कि है। उन दोनों के सवाल एक से नहीं हैं; उनके भीतर का आदमी अलग-अलग है। भीतर की छाया उनके सवालों को बदल देगी।

इसलिए सिर्फ बुद्धू एक से जवाब देंगे। बुद्ध तो अलग-अलग जवाब देंगे। क्योंकि बुद्धुओं को सवाल सुनाई पड़ते हैं, बुद्धों को पूछने वाला सुनाई पड़ता है। और जब पूछने वाला महत्वपूर्ण होता है, तो जो उत्तर आते हैं, वे देने वाले के बोझ के कारण नहीं आते, देने वाले के शून्य से उनकी प्रतिध्वनि होती है।

बुद्ध मौन से बोलते हैं। यह हमें कठिन लगेगा। हम कहेंगे, जब मौन ही हो गए, तो बोलना क्या? हमारा सब तरफ द्वंद्व चलता है सोचने में कि जब मौन हो गए तो बोलना क्या? और जब बोलते हैं तो मौन कैसे हो सकते हैं?

जो बोल सकता है, वह मौन हो सकता है। जो मौन हो गया, वह बोल सकता है। क्वालिटी बदल जाती है, गुण बदल जाता है। जब बोलने वाला मौन हो जाता है, तो उसके बोलने में मौन के स्वर समाविष्ट हो जाते हैं। जब बोलने वाला मौन हो जाता है, तो उसका बोलना एक बीमारी नहीं रह जाती, एक संवाद हो जाता है। और जब बोलने वाला मौन हो जाता है, तो उस मौन से सत्य का जन्म होता है। और जब बोलने वाला मौन नहीं होता, तो शब्द शब्दों को पैदा करते रहते हैं, शब्द शब्दों को जन्माते रहते हैं। शब्दों कीशृंखला चलती रहती है। और जब मौन कोई हो जाता है, तब बोलता है... ।

महावीर बारह वर्ष तक मौन रहे। तब लाख लोगों ने कहा, लाख लोगों ने सवाल पूछे, लेकिन वे न बोले। आप समझते हैं कारण क्या था? कारण केवल इतना था कि महावीर के भीतर अभी भी शब्द मौजूद थे। इसलिए महावीर अभी जानते थे कि यह उत्तर जो मेरा आएगा, मौन से नहीं आएगा, मेरे शब्दों से आएगा। तो

अभी उत्तर देने का कोई अर्थ नहीं है। इन उत्तरों से मैं खुद ही परेशान हूं, दूसरे को देकर और क्या परेशानी में डालना है? जिन शब्दों से मुझे राहत न मिली, उन शब्दों से किसे राहत मिल जाएगी?

इसलिए महावीर चुप हैं। बारह वर्ष वे चुप रहे। शब्द खो गए, तब महावीर ने बोलना शुरू कर दिया। यह मजे की बात है, हम शब्दों से बोलते हैं, महावीर जैसे लोग मौन से बोलते हैं। बारह वर्ष जंगल में रहे, और जब बिल्कुल मौन हो गए तो शहर में वापस लौट आए। अब उनके पास भीतर एक मौन शून्य था। अब कोई भी उत्तर पूछे तो यह शून्य उत्तर दे सकता था। अब महावीर को बीच में आने की कोई भी जरूरत न थी। अब महावीर खो गए। अब यह आत्मा ही जवाब देती। महावीर का मतलब है शिक्षा, संस्कार, वे सब खो गए। अब ये उत्तर शिक्षा और संस्कार से नहीं आएंगे। अब ये उत्तर उस गहन खाई से आएंगे, उस अतल शून्य से आएंगे, जिसको हम अस्तित्व कह सकते हैं।

महावीर भाग गए संसार से; फिर लौट क्यों आए? यह बड़े मजे की बात है कि महावीर के अनुयायी उनके भागने की तो चर्चा करते हैं, लौटने की चर्चा नहीं करते। लेकिन इस जगत में जो भी भागा है, वह लौट आया है। महावीर हट गए; फिर लौट क्यों आए? लौटने का मतलब कि उन्होंने कोई आकर शादी कर ली हो, ऐसा नहीं। लौटने का मतलब है कि जिन सबको छोड़ कर वे चले गए थे, वापस आ गए उनके बीच। जो संबंध छोड़ दिए थे, वे पुनर्निर्मित किए। इससे क्या फर्क पड़ता है कि वे संबंध अब गुरु और शिष्य के थे; जब भागे थे तब वे संबंध भाई और भाई के थे; जब भागे थे तब वे संबंध पति और पत्नी के थे। इससे क्या फर्क पड़ता है? संसार का अर्थ है संबंधों का जगत। बारह वर्ष बाद जब महावीर लौट आए, फिर संबंधों में लौट आए।

लेकिन अब महावीर तो हैं ही नहीं, इसीलिए वे लौट पाए। वह महावीर तो समाप्त हो गए बारह वर्ष में। अब तो एक मौन शून्य बचा, एक दर्पण बचा, जो लौटा। अब इस दर्पण में कोई भी देखे तो दर्पण को अब दिखाने का कोई सवाल नहीं रह गया। अब तो जो शक्ल देखेगी, वही शक्ल दिखाई पड़ जाएगी। एक दर्पण वापस लौट आया। और दर्पण गांव-गांव घूमने लगा। इसमें जो प्रतिबिंब बने, वे आपके अपने थे। इसमें जो बीमारियां दिखाई पड़ीं, वे आपकी अपनी थीं। इसमें से जो उत्तर आए, वे प्रतिध्वनियां थीं।

लाओत्से कहता है, संत दिन भर यात्रा करता, लेकिन जीवन-ऊर्जा के स्रोत से जुड़ा रहता है। सम्मान और गौरव के बीच भी विश्रामपूर्ण और अविचल।

यह थोड़ा सोचने जैसा है। कहना चाहिए थाः अपमान, असम्मान, अगौरव, दुख, अपयश के बीच भी विश्रामपूर्ण और अविचल! लेकिन लाओत्से उलटा कह रहा है। वह कह रहा है, सम्मान और गौरव के बीच भी।

जरा कठिन है। दुख में तो हम विचलित हो ही जाते हैं; लेकिन अगर थोड़ी चेष्टा करें तो दुख में अविचलित होना ज्यादा कठिन नहीं है।

लेकिन सुख में अविचलित होना बिल्कुल स्वाभाविक है। और सुख में अविचलित रह जाना बड़ा मुश्किल है। दुख में तो आदमी दुख के कारण ही अपने को थिर कर लेता है। दुख सहना हो तो थिर करना जरूरी है। जितना आप थिर होंगे, उतनी आसानी से दुख को झेल लेंगे। तो थिर होना तो झेलने की व्यवस्था हो सकती है। लेकिन सुख में तो आप खुद ही नाचना चाहते हैं। और अगर सुख में आप थिर होंगे, तो जैसे दुख कम हो जाता है थिर होने से, वैसे ही सुख भी कम हो जाएगा थिर होने से। सुख का मतलब ही है कि आप कंपित हो जाएं, डोल जाएं, नाच उठें, रोआं-रोआं पुलकित हो जाए। अगर सुख में आप अविचलित रह जाएं तो सुख व्यर्थ हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, सम्मान और गौरव के बीच भी! जब उन पर फूल बरसते हैं, तब भी। और जब चारों तरफ देवी-देवता उनके आस-पास मोहर लेकर झूलने लगते हैं, तब भी। तब भी अविचलित और तब भी विश्रामपूर्ण!

यह बड़ी मजे की बात है। क्योंकि हम कहेंगे, सुख में, गौरव में तो विश्राम होगा ही। गलती है आपका ख्याल। सुख जितना विश्राम तोड़ता है, उतना दुख नहीं तोड़ता। सुखी होकर देखें। यह बात मुश्किल है कि सुखी होने का मौका कम लोगों को मिलता है, इसलिए पता नहीं चलता। सुखी आदमी भी रात में सो नहीं सकता। सुख भी एक तरह की परेशानी है। माना कि आप पसंद करते हैं; यह दूसरी बात। लेकिन सुख भी एक तरह की परेशानी है। लाटरी मिल गई है आपको। कितने दिन से सोचा था--मिल जाए, मिल जाए, मिल जाए। फिर मिल गई। अब रात सोइएगा? कैसे सोइएगा? अब बहुत मुश्किल है। अब एक क्षण भी चैन मुश्किल है। लाटरी न मिली थी तो जितनी बेचैनी थी, यह बेचैनी उससे ज्यादा है।

जिस दिन कोई सुख में भी शांत हो जाता, संत हो जाता।

दुख में शांत बने रहना तो व्यवस्था की बात है। आदमी को झेलने में सुविधा होती है। सुरक्षा बना लेता है चारों तरफ। कड़ा कर लेता है मन को, समझा लेता। सुख में जब समझाए, तब पता चले। सुख में, हम कहेंगे, पागल होगा जो अपने को समझाए। मुश्किल से तो सुख मिला है, अब समझा कर क्या सुख को नष्ट करना है?

दुख आ जाए, तो हम कहते हैं, चला जाएगा; कोई ज्यादा देर थोड़े ही रुकने वाला है। संसार में सब चीजें अनित्य हैं। जब सुख आता है, तब कहिए अपने से, चला जाएगा, कोई घबड़ाने की जरूरत नहीं है। संसार में सब चीजें अनित्य हैं। जब घर में कोई मर जाए, तो हम कहते हैं, आत्मा अमर है; मृत्यु तो सब भासमान है। जब घर में बच्चा पैदा हो जाए, तब कहिए कि आत्मा तो अमर है, जन्म वगैरह सब भासमान हैं, कुछ भी नहीं हुआ।

इसलिए लाओत्से जान कर कहता है कि सम्मान और गौरव के बीच भी वह विश्रामपूर्ण और अविचल जीता है। एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य में अपने शरीर को उछालता फिर सकता है?

संत को अनेक जगह लाओत्से उस आंतरिक साम्राज्य का मालिक मानता है।

हम अपने को उछालते फिरते हैं चारों तरफ अनेक तरह से। हमारे उछालने की व्यवस्थाएं आदतन हो गई हैं, इसलिए पता नहीं चलता। लोग कपड़े पहनते हैं। हम सोचते हैं ढांकने को पहनते होंगे। गलत! बहुत कम ही लोग हैं जो शरीर ढांकने को कपड़े पहनते हों। शरीर दिखाने को कपड़े पहनते हैं; शरीर उछल कर दिखाई पड़े, इसलिए कपड़े पहनते हैं। शरीर ढांकने को जब कोई कपड़े पहनने लगता है, तब साधु हो गया। शरीर दिखाने को कपड़े पहने जाते हैं। बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। लेकिन जितने ढंग से शरीर को कपड़ों से दिखाया जा सकता है, नग्न शरीर को उतने ढंग से नहीं दिखाया जा सकता।

और बड़े मजे की बात है कि कपड़े ढंके शरीर को देखने की जितनी इच्छा पैदा होती है, उतने नग्न शरीर को देखने की इच्छा पैदा नहीं होती। एक आदमी नग्न खड़ा हो, सुंदरतम ंी भी नग्न खड़ी हो, कितनी देर देखिएगा? थोड़ी देर में मन यहां-वहां भागने लगेगा। नग्न ंी, सुंदरतम ंी पर भी एकाग्र होना मन के बस की बात नहीं है। मन यहां-वहां भागने लगेगा। लेकिन ढंकी ंी हो--ढंकी ऐसी, ढंकी ढंग से, ढंकी व्यवस्था से, ढंकी इस ढंग से कि आपकी कल्पना को गति दे, सामने न उघड़ी हो, आपका मन उघाड़ने लगे--तो फिर आप बड़े एकाग्रचित्त हो सकते हैं। तो फिर आप घंटों लीन हो सकते हैं। कपड़े नग्नता से ज्यादा अश्लील हो सकते हैं।

लेकिन कठिन है थोड़ा। क्योंकि कपड़े बड़ी तरकीब है, लंबी तरकीब है सभ्यता की। और हम भूल ही गए हैं कि कपड़ों का हम क्या-क्या उपयोग करते हैं। जो शरीर में नहीं है, जैसा शरीर नहीं है, कपड़े वैसा वहम भी दे सकते हैं। देते हैं। मगर हम आदी हैं, हमें ख्याल भी नहीं है।

हमें ख्याल भी नहीं है कि एक आदमी अपने कोट के दोनों कंधों में रुई भरे हुए है। उसे ख्याल भी नहीं है। सभी के कोट में रुई भरी हुई है। लेकिन क्यों वह रुई भरे हुए है, उसे कुछ ख्याल नहीं है। असल में, पुरुष के कंधे अगर उठे हुए न हों और छाती अगर फैली हुई न हो, तो óियों के लिए आकर्षक नहीं है। इसलिए रुई भर कर भी धोखा चलता है। लेकिन हम आदी हैं। जब कोट बना कर दर्जी दे जाता है, तो हम यह नहीं सोचते कि यह कोई हमें अश्लील बनाने की कोशिश कर रहा है, कि यह हमारे शरीर को उछालने की कोशिश कर रहा है। कंधे ढले-ढले, तो भीतर से प्राण निकल जाते हैं। चाहे रुई से ही उठे हों, तो भी पैरों में तेजी आ जाती है।

हम अपने को उछालते फिर रहे हैं--शरीर की दृष्टि से, मन की दृष्टि से। कोई आदमी कुछ कहता है, फिर आपसे रुका नहीं जाता। आप अपना ज्ञान फिर रोक नहीं पाते। ज्ञान को रोकना बड़ा दूभर है। निकल ही पड़ता है, ज्ञान उछलता फिरता है। आप तरकीब में रहते हैं कि कोई फंस भर जाए, एक सवाल भर पूछ ले। ऐसे इतना ही पूछ ले कि कैसे हैं! काफी है। फिर आप छोड़ नहीं सकते। फिर आप उछाल देंगे, जो भीतर उबल रहा है। शरीर को उछाल रहे हैं दूसरों पर, मन को उछाल रहे हैं दूसरों पर।

लाओत्से कहता है, लेकिन संत ऐसा है जैसे कोई सम्राट अपने ही राज्य में घूमता हो। उछालने का कोई कारण भी नहीं है। उछाल कर भी अब वह सम्राट से ज्यादा और क्या हो सकता है? उछाल कर भी अब सम्राट से ज्यादा क्या हो सकता है? इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटती है। सम्राट सादगी से जी सकते हैं; आसान है। दरिद्र सादगी से नहीं जी सकते; बहुत कठिन है। सम्राट सादगी से जी सकते हैं।

मैंने सुना, राॅकफेलर इंग्लैंड आया और उसने एयरपोर्ट पर जाकर पूछताछ की कि सबसे सस्ती होटल लंदन में कौन सी है। उसके चेहरे को कौन नहीं पहचानता था? वह आदमी जो सूचना देने वाला था, वह पहचान गया। उसने कहा कि आप? आपका चेहरा तो राॅकफेलर जैसा मालूम पड़ता है। वह भी डरा, क्योंकि छोटी, सस्ती होटल! तो उसने कहा, आपका चेहरा तो राॅकफेलर जैसा मालूम होता है। राॅकफेलर ने कहा, जैसे का क्या सवाल, मैं राॅकफेलर हूं। तो उसने कहा, आप और सस्ती होटल पूछते हैं? आपके लड़के आते हैं तो वे तो पूछते हैं कि सबसे बढ़िया होटल कौन सी है। और फिर भी उनको तृप्ति नहीं मिलती। और आप यह कोट कैसा पहने हुए हैं? फटा कोट पहने हुए हैं! राॅकफेलर ने कहा, क्या फर्क पड़ता है? मैं कोट कोई भी पहनूं, राॅकफेलर मैं हूं ही। अभी लड़के जरा नए-नए हैं, उछालते फिरते हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है मैं छोटे, सस्ते होटल में ठहरूं? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। राॅकफेलर ने कहा कि अगर मैं सस्ते होटल में ठहरता हूं तो होटल सम्मानित होता है; और कोई फर्क नहीं पड़ता। हम अपमानित नहीं होते; मैं राॅकफेलर हूं ही।

गरीब आदमी जब सस्ते होटल में ठहरता है, तो अपमानित होता है। खुद पर भरोसा नहीं है। और राॅकफेलर ने कहा, कोट कोई भी हो, इससे क्या राॅकफेलर को फर्क पड़ता है! वह तो गरीब आदमी... ।

इसलिए जब कोई नया-नया अमीर होता है, तब देखें, कैसा उछालता फिरता है। कभी-कभी ताकत के बाहर कूद जाता है, हाथ-पैर तोड़ लेता है। नए अमीर अक्सर हाथ-पैर तोड़ लेते हैं। जब किसी के घर में घुसें और दिखाई पड़े कि धन उछल रहा है, तो समझना, अभी यह आदमी गरीब ही है। अभी अमीर हुआ नहीं, अभी आश्वस्त नहीं हुआ। वह जो उछालने की वृत्ति है, दीनता का हिस्सा है।

जो सच में सुंदर होता है, वह अपने सौंदर्य के प्रति विनम्र होता है। वह इतना विनम्र होता है कि उसे बोध भी नहीं होता कि वह सुंदर है। जो कुरूप होता है, वह इतना विनम्र नहीं हो सकता। कुरूप अपने को सुंदर बनाए रखता है। और पूरे वक्त सचेष्ट रहता है कि कहीं कोई ऐसा तो नहीं है जो उसके सौंदर्य को न मान रहा हो।

जो सच में बुद्धिमान है, वह दूसरों को विवाद करके हराने में उत्सुक नहीं होता। जो बुद्धिहीन है, वह किसी को भी हराने में उत्सुक होता है। शाó◌ार्थ बुद्धिहीनों के कृत्य हैं। क्योंकि दूसरे को हरा कर ही उसको भरोसा मिल सकता है कि मैं भी जानता हूं। मैं जानता हूं, इसके प्रति जो आश्वस्त है, वह दूसरे को हराने के लिए क्या... ? दूसरे को हरा कर भी क्या अर्थ हो सकता है? कोई अंतर नहीं पड़ता है।

लाओत्से कहता है, संतजन, जैसे एक महान देश का सम्राट अपने ही राज्य में घूमता हो, ऐसे इस पूरे अस्तित्व में जीते हैं।

इस सारे अस्तित्व में जो गहनतम है, जो केंद्रीय है, उसका उन्हें अनुभव है। अब उछालने का कोई भी सवाल नहीं है। अब किसी को दिखाने का भी कोई सवाल नहीं है। अब कोई देखे, कोई माने, यह बात भी व्यर्थ हो गई। किसी को कनवर्ट किया जाए, किसी को राजी किया जाए, किसी को बदला जाए, यह बात भी अर्थहीन हो गई।

यह जो परम आश्वासन है स्वयं के प्रति, यह इस जगत में सबसे बड़ा सौंदर्य है। स्वयं के प्रति जो परम आश्वासन है, यह सबसे बड़ा सौंदर्य है। इतना आश्वस्त है व्यक्ति अपने प्रति कि अब कोई और आश्वासन का सहारा खोजने की जरूरत नहीं है। यही कारण है कि बुद्ध और महावीर सड़क पर निःसंकोच भिक्षा मांग सके। आपको मांगने में कठिनाई पड़ेगी। आप भिक्षा मांगने जाएंगे तो अड़चन मालूम पड़ेगी। लेकिन बुद्ध और महावीर भिक्षा मांग सके सड़क पर। इससे केवल वे इतना ही जाहिर करते हैं कि वे अपने सम्राट होने के प्रति पूरे आश्वस्त थे। भिक्षा का पात्र कोई फर्क नहीं ला सकता। बुद्ध के हाथ में भिक्षा का पात्र गौरवान्वित हो जाता है; बुद्ध भिक्षु नहीं बनते हैं। उनके हाथ में भिक्षा का पात्र गौरवान्वित हो जाता है।

बड़े मजे की बात है कि बुद्ध की भिक्षा मांगने के कारण भिक्षु शब्द आदृत हो गया। भिक्षु शब्द आदृत हो गया। भिक्षु भिखारी नहीं है। भिक्षु का मतलब भिखारी नहीं है। बुद्ध तो अपने संन्यासियों के आगे भिक्खु, भिक्षु, लगाते ही थे। बड़े मजे की बात है, उन्होंने कहा... स्वामी हटा दिया बुद्ध ने। अपने संन्यासियों के सामने स्वामी लगाना बंद कर दिया, भिक्षु लगा दिया। यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है कि क्यों ऐसा हुआ।

ब्राह्मण अपने संन्यासी के सामने सदा स्वामी लगाते थे। ब्राह्मण भिखारी थे। स्वामी होने में थोड़ा रस था। सदा के भिखारी थे, और तो कोई उपाय नहीं था स्वामी होने का। संन्यासी होकर जो पहला ख्याल ब्राह्मण को आएगा, वह यह कि अब मैं मालिक हुआ। यह बिल्कुल ठीक है।

ये बुद्ध सदा के सम्राट थे। सम्राट होने की हवा में ही बड़े हुए थे। ये अपने आगे अगर स्वामी लगाते तो फीका ही लगता। उसमें कोई मतलब न था बहुत। अगर स्वामी ही लगाना था तो सम्राट बने रहने में क्या बुराई थी? बुद्ध को जो पहला शब्द सूझा, वह सूझा भिक्षु।

ये शब्द भी अकारण पैदा नहीं हो जाते। इनके पीछे लंबी यात्राएं होती हैं; अनेक अर्थ होते हैं। ब्राह्मणों ने स्वामी रखा तो सिर्फ स्वामी होने की वजह से नहीं। ख्याल था कि भीतर की मालकियत मिली। लेकिन मालकियत महत्वपूर्ण मालूम पड़ी। बुद्ध को तो सारी मालकियत व्यर्थ हो गई। अब उस मालकियत वाले शब्द का उपयोग करना भी ठीक न मालूम पड़ा। बुद्ध अपने संन्यासियों को भिक्षु कह सके। और उनके कहने के कारण

भिक्षु शब्द ऐसा समादृत हुआ कि सम्राट होना फीका पड़ गया, भिक्षु होना महत्वपूर्ण हो गया। और बुद्ध जब भिक्षा का पात्र लेकर सड़कों पर निकले होंगे, तो वही दृश्य थोड़ा ख्याल में लें तो लाओत्से की बात समझ में आ जाए।

"एक महान देश का सम्राट कैसे अपने राज्य में अपने शरीर को उछालता फिर सकता है?"

दिखाने की कोई जरूरत ही न रही। राज्य ही मेरा है, अस्तित्व ही पूरा मेरा है।

"हलके छिछोरेपन में केंद्र खो जाता है; जल्दबाजी के काम में स्वामित्व, स्वयं की मालकियत नष्ट हो जाती है।"

इस आखिरी सूत्र को थोड़ा समझना पड़े। मैंने आपसे कहा, गति में केंद्र के खोने की कोई भी जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि गति में ही स्थिर को जाना जा सकता है। लेकिन गति दो तरह की है। एक छिछोरेपन की गति है। छिछोरापन ज्वरग्रस्त गति का नाम है--फीवरिश, बुखार से भरी।

एक आदमी सन्निपात में है, और दौड़ रहा है। यह दौड़ और आप सुबह जाकर बीच पर दौड़ रहे हैं, दोनों दौड़ें हैं, लेकिन इन दौड़ों में बड़ा फर्क है। आप दौड़ रहे हैं, आप मालिक हैं अपने दौड़ के। सन्निपात से ग्रस्त जो दौड़ रहा है, वह दौड़ाया जा रहा है। वह मालिक नहीं है। यह दौड़ उसके ऊपर सवार है; पजेस्ड है। आप मालिक हैं। आप चाहें तो इसी वक्त दौड़ रुक सकती है। भीतर आप नहीं दौड़ रहे हैं, इसलिए कंट्रोल है, नियंत्रण है। आप दौड़ ही नहीं हो गए हैं। आप चाहें तो इसी वक्त दौड़ रुक जाएगी; चाहें तो तेज हो जाएगी। सन्निपात में जो भाग रहा है, इसके चाहने का कोई सवाल ही नहीं है। यह दौड़ ही हो गए हैं। इनका केंद्र खो गया है, धूमिल हो गया है। हलके छिछोरेपन का अर्थ है ऐसी गति जिसमें आप बीमार की तरह दौड़ते हैं।

अक्सर मुझे लंबी यात्राओं में ऐसे लोग मिल जाते थे, क्योंकि लंबी यात्राओं में एक आदमी ट्रेन में बैठा हुआ है। थर्ड क्लास का डिब्बा इस लिहाज से बहुत बेहतर है; वहां संसार मौजूद रहता है। वहां ज्यादा दिक्कत नहीं आती। हर स्टेशन पर इतने उपद्रव होते हैं कि रुचि कायम रहती है। और अपनी जगह इतनी असुरक्षित रहती है कि जीवन का संघर्ष चलता रहता है। थर्ड क्लास में यात्रा करना एक लिहाज से बहुत अच्छा है। क्योंकि संसार की जो हमारी आदत है, बाजार की, उसमें कोई, उसमें कोई गतिरोध खड़ा नहीं होता, कोई बाधा नहीं पड़ती। लेकिन अगर आप फरुट क्लास में सफर कर रहे हैं तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है--क्या करें?

तो कई बार मुझे, अगर मैं बीस या तीस घंटे एक ही डिब्बे में एक आदमी के साथ हूं, तो उसे देखने का बड़ा आनंद है। जिस अखबार को वह सुबह से कई दफे पढ़ चुका, उसको फिर पढ़ रहा है। चिटकनी खोलेगा, खिड़की खोलेगा, फिर दो मिनट बाद बंद कर देगा। फिर थोड़ी देर बैठेगा, फिर पंखा चलाएगा। और अगर एक आदमी चुपचाप बैठा देख रहा है तो उसकी गति और फीवरिश होने लगती है। अब वह और बेचैन है कि अब क्या करे, क्या न करे! सूटकेस खोलेगा, कोई सामान निकालेगा, फिर वापस रख देगा। उसकी सारी गतिविधि फीवरिश है। इस गतिविधि से वह कुछ करना नहीं चाह रहा है। क्योंकि जिस अखबार को छह दफे पढ़ चुका, अब सातवें दफे पढ़ने का कोई प्रयोजन नहीं। और अगर सातवें दफे भी पढ़ने का प्रयोजन है तो सत्तर दफे भी पढ़ने से कोई हल नहीं होगा। अगर छह दफे में भी समझ में नहीं आया कि अखबार में क्या लिखा है, तो सातवीं दफे भी कैसे समझ में आने वाला है? नहीं, लेकिन पढ़ने से प्रयोजन नहीं है। वह आदमी बिना कुछ किए नहीं रह सकता, उसकी तकलीफ यह है। आक्युपेशन चाहिए, व्यस्तता चाहिए। खाली नहीं रह सकता। खाली में बेचैनी होती है कि क्या कर रहे हो? कुछ तो करो! अखबार ही पढ़ो, खिड़कियां खोलो, सूटकेस बंद करो, कुछ करो!

क्यों यह कुछ करना, इसके आप मालिक हैं? अगर आप मालिक हैं तो अखबार सात बार नहीं पढ़ सकते हैं। यह आदमी चाहे भी कि मैं अखबार पढ़ना रोक दूं तो नहीं रोक सकता। यह सन्निपात है। और हम सब सन्निपात में हैं। मात्रा थोड़ी कम है, इसलिए हास्पिटलाइज करने की कोई जरूरत नहीं है। और फिर आस-पास सभी लोग इस अवस्था में हैं, इसलिए नार्मल सन्निपात है। इसमें कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई परेशान हो। इसमें कोई परेशानी की बात नहीं है। पत्नी जानती है कि पति तीसरी दफे अखबार पढ़ रहा है। पति जानता है कि यह पत्नी क्यों बर्तन बार-बार पटक रही है। सबको पता है, सबको पता है। हम अपनी गति के मालिक नहीं हैं। मालिक वही हो सकता है, जिसको अपनी अगति के केंद्र का पता हो।

लाओत्से कहता है, हलके छिछोरेपन में केंद्र खो जाता है। यह हलका छिछोरापन है। जल्दबाजी में स्वामित्व खो जाता है।

आपको पता होगा, सबको अनुभव में आता है, जल्दबाजी में क्या होता है। जल्दबाजी में, जो आप बिना जल्दबाजी के कर लेते, वह नहीं हो पाता। आप जल्दी में हैं ट्रेन पकड़ने की और बटन लगा रहे हैं। जो बटन रोज लग जाती थी, वह आज नहीं लग रही है, या उलटे काज में लग जाती है। आप रोज लगाते थे इस बटन को, इस बटन ने कभी बगावत नहीं की। यह बटन भली, सज्जन, सदा ठीक लग जाती थी। और आज इसको न मालूम क्या हो रहा है कि अंगुलियों की पकड़ में नहीं आ रही, छूट-छूट जा रही है। और लगती भी है तो गलत काज में प्रवेश कर जाती है। और एक बटन गलत काज में चली जाए तो फिर आगे की बटनें कभी ठीक काज में नहीं जा सकतीं। यह सब लंबा सिलसिला है। फिर कर्म का फल भोगना ही पड़ता है, जब तक कि पहली बटन न बदली जाए। और जितनी जल्दी करिए, उतना सब गड़बड़ हो जाता है। होता क्यों है ऐसा? क्या मामला है?

जल्दबाजी में स्वामित्व खो जाता है। आप मालिक नहीं रह जाते; छिछोरापन हो जाता है। आश्वस्त हैं तो आप मालिक हैं। अंगुली आपकी मालकियत से चलती है। यह बटन गड़बड़ नहीं कर रही है, बटन को कोई मतलब ही नहीं है। आपकी अंगुली गड़बड़ा रही है। अंगुली भी क्यों गड़बड़ाएगी, यह आपका मन गड़बड़ा रहा है। मन भी क्यों गड़बड़ाएगा, आपकी आत्मा कंपित हो गई है। सब भीतर तक, यह छोटी सी बटन जो हिल रही है, यह भीतर की आत्मा के हिल जाने का परिणाम है।

बड़े से बड़ा सर्जन भी अपनी पत्नी का आपरेशन नहीं कर पाता; नहीं कर सकता। यह दूसरी बात है कि डाइवोर्स की हालत आ गई हो और फिर आपरेशन कर दे। वह दूसरी बात है। लेकिन अगर पत्नी से थोड़ा भी प्रेम हो जारी--जो कि बड़ी कठिन बात है--अगर थोड़ा भी प्रेम चल रहा हो, घिसट रहा हो, तो भी आपरेशन करना मुश्किल है। हाथ कंप जाएंगे। यही सर्जन पत्थर की मूर्ति की तरह किसी का भी आपरेशन कर देता है। परमात्मा को भी लाकर लिटा दो इसकी आपरेशन टेबल पर तो यह फिक्र न करेंगे। एपेंडिक्स न निकालनी हो तो भी निकाल देंगे। मगर अपनी पत्नी के साथ इनको क्या अड़चन आ रही है? क्या मुश्किल हो रही है? हाथ क्यों कंपता है?

हाथ नहीं कंपता, आत्मा भीतर कंप जाती है। और प्रेम से ज्यादा आत्मा को कंपाने वाली और कोई चीज नहीं है। मोह बहुत जोर से कंपा देता है। भीतर जब आत्मा कंपती है, तो मालकियत खो जाती है। और जब भी हम जल्दी में होते हैं, तब यह कठिनाई हो जाती है।

लेकिन अब तो ऐसा है कि हम चौबीस घंटे जल्दी में हैं। अब कोई ऐसा नहीं है कि कभी-कभी हम जल्दी में होते हैं। वह पुराने जमाने की बात होगी, जब लोग कभी-कभी जल्दी में होते थे। फिर भी ऐसी कोई जल्दी नहीं होती थी। बैलगाड़ी पकड़ने की कोई जल्दी तो होती नहीं। बैलगाड़ी ही पकड़नी है तो कभी भी पकड़ सकते

हैं। दिक्कत तो रेलगाड़ी के साथ शुरू होती है। हवाई जहाज के साथ और मुश्किल हो जाती है। लेकिन अभी भारत में इतनी मुश्किल नहीं है। क्योंकि कोई गाड़ी, कोई हवाई जहाज टाइम पर नहीं चलता। लेकिन बिल्कुल टाइम पर चलने लगे तो मुसीबत बढ़ती चली जाती है।

स्विटजरलैंड में वे कहते हैं कि वे सूचना ही नहीं करते कि अब गाड़ी छूटने वाली है। जब छूटती है, तब छूटती ही है। वह टाइम टेबल में लिखा हुआ है। उसके अतिरिक्त और कोई सूचना करने की जरूरत नहीं है। सूचना ही तब करते हैं, जब कभी वर्ष, छह महीने में कोई गाड़ी लेट होती है। तो ही सूचना करते हैं। यहां हमारे मुल्क में तो हालत ऐसी है कि यही समझ में नहीं आता कि टाइम टेबल क्यों छापते हैं! सिर्फ एक ही कारण मालूम पड़ता है कि टाइम टेबल से पता चल जाता है कि गाड़ी कितनी लेट है। और तो कोई कारण नहीं समझ में आता।

लेकिन जैसे जीवन की त्वरा बढ़ती है, गति बढ़ती है, वैसे जल्दबाजी बढ़ती है। लेकिन इसका अर्थ आप यह मत समझना कि यह जल्दबाजी जीवन की त्वरा के कारण बढ़ती है। न, यह जीवन की त्वरा के कारण प्रकट होती है। आपमें मौजूद है, चाहे आप बैलगाड़ी में चलते हों और चाहे हवाई जहाज में। बैलगाड़ी में प्रकट नहीं हो पाती, हवाई जहाज प्रकट कर देता है।

इसलिए सभ्यता आदमी को बीमार नहीं करती, बीमार आदमियों को जाहिर कर देती है। पुरानी सभ्यताओं में सब आदमी ऐसे ही बीमार थे, लेकिन जाहिर होने का मौका नहीं था। तो मैं तो मानता हूं, अच्छा हुआ है। बीमारी जाहिर हो तो इलाज भी हो सकता है। बीमारी जाहिर न हो तो इलाज का भी कोई उपाय नहीं है।

"हलके छिछोरेपन में केंद्र खो जाता है; जल्दबाजी में स्वामित्व, स्वयं की मालकियत नष्ट हो जाती है।"

आज इतना ही। रुकें, कीर्तन करके जाएं। रुकें पांच मिनट।

पचपनवां प्रवचन

प्रकाश का चुराना ज्ञानोपलब्धि है

Chapter 27 : Part 1

On Stealing The Light

A good runner leaves no track.
A good speech leaves no flaws for attack.
A good reckoner makes use of no counters.
A well-shut door makes use of no bolts,
And yet cannot be opened.
A well-tied knot makes use of no rope,
And yet cannot be untied.
Therefore the Sage is good at helping men;
For that reason there is no rejected (useless) person.
He is good at saving things;
For that reason there is nothing rejected.
-- This is called Stealing the Light.

अध्याय 27 : खंड 1

प्रकाशोपलब्धि

एक कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता है।
एक बढ़िया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोषरहित होता है।
एक कुशल गणक को गणित्र की जरूरत नहीं होती।
ठीक से बंद हुए द्वार में
और किसी प्रकार का बोल्ट लगाना अनावश्यक है,
फिर भी उसे खोला नहीं जा सकता।
ठीक से बंधी गांठ के लिए रस्सी की कोई जरूरत नहीं है,
फिर भी उसे अनबंधा नहीं किया जा सकता।
संत लोगों का कल्याण करने में सक्षम हैं;

इसी कारण उनके लिए कोई परित्यक्त नहीं है।

संत सभी चीजों की परख रखते हैं;

इसी कारण उनके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है।

-- इसे ही प्रकाश का चुराना या ज्ञानोपलब्धि कहते हैं।

लाओत्से ने ज्ञानोपलब्धि को प्रकाश का चुराना कहा है। दो शब्द चोरी के संबंध में समझ लें।

चोरी एक कला है। और अगर हम नैतिक चिंतना में न जाएं, तो बड़ी कठिन कला है। चोरी का अर्थ है, इस भांति कुछ करना कि संसार में कहीं भी किसी को पता न चले। पता चल जाए तो चोर कुशल नहीं है। आपके घर में भी चोर प्रवेश करता है। दिन के उजाले में भी जिन चीजों को खोजना आपको मुश्किल पड़ता है, रात के अंधेरे में भी अपरिचित घर में जरा सी आवाज किए बिना चोर वही सब खोज लेता है। आपको पता भी नहीं चल पाता। अगर चोर अपने चिह्न पीछे छोड़ जाए तो उसका अर्थ हुआ कि चोर अभी कुशल नहीं है; अभी सीखता ही होगा। अभी चोर नहीं हो पाया है।

लाओत्से सत्य की, प्रकाश की उपलब्धि को भी कहता है एक चोरी--इसी कारण। अगर किसी को पता चल जाए कि आप सत्य खोज रहे हैं तो वह पता चलना भी बाधा बन जाएगी।

जीसस ने कहा है कि तुम्हारा दायां हाथ क्या करता है, तुम्हारे बाएं हाथ को पता न चले। तुम्हारी प्रार्थना इतनी मौन हो कि सिवाय परमात्मा के और किसी को सुनाई न पड़े।

लेकिन हमारी प्रार्थनाएं परमात्मा को सुनाई पड़ती हों या न पड़ती हों, लेकिन पास-पड़ोस मुहल्ले में सभी को सुनाई पड़ जाती हैं। शायद परमात्मा से हमें इतना प्रयोजन भी नहीं है; पड़ोसी सुन लें, यह ज्यादा जरूरी है, तात्कालिक उपयोगी है। तो आदमी धर्म ऐसे करता है, डुंडी पीट कर। बड़े मजे की बात है, अधर्म हम चोरी-चोरी, छिपे-छिपे करते हैं और धर्म हम बड़े प्रकट होकर करते हैं।

लाओत्से, जीसस या बुद्ध ऐसे लोग हैं, वे कहते हैं, जैसे पाप को चोरी-चोरी, छिपे-छिपे करते हो, वैसे ही पुण्य को करना। बड़े उलटे लोग हैं। वे कहते हैं, पाप ही करना हो तो प्रकट होकर करना और पुण्य करना हो तो चोरी-छिपे कर लेना। क्योंकि पाप अगर कोई प्रकट होकर करे तो नहीं कर पाता है।

इसे थोड़ा समझ लें। पाप अगर कोई प्रकट होकर करे तो नहीं कर पाता है। पाप को छिपाना जरूरी है; क्योंकि पाप अहंकार के विपरीत है। और पुण्य अगर कोई प्रकट होकर करे तो भी नहीं कर पाता है; क्योंकि पुण्य प्रकट होकर अहंकार का भोजन बन जाता है। पुण्य तो चोरी-छिपे ही किया जा सकता है, पाप भी चोरी-छिपे ही किया जा सकता है। जो न करना हो, उसे प्रकट होकर करना चाहिए। और जो करना हो, उसे चोरी-छिपे कर लेना चाहिए। अगर पाप न करना हो तो प्रकट होकर करना; फिर पाप नहीं हो पाएगा। और अगर पुण्य न करना हो, सिर्फ धोखा देना हो करने का, तो प्रकट होकर करना। तो पुण्य न हो पाएगा। लेकिन लोग जानते हैं कि उन्हें पाप तो करना ही है, इसलिए चोरी-छिपे कर लेते हैं। और लोग जानते हैं कि पुण्य का तो प्रचार भर हो जाए कि किया तो काफी है; करना किसी को भी नहीं है। इसलिए लोग पुण्य को प्रकट होकर करते हैं।

लाओत्से कहता है, जिन्हें परमात्मा के मंदिर में प्रवेश करना है, उन्हें चोर के कदमों की चाल सीखनी चाहिए। आवाज न हो, निशान न छूटे, कहीं कोई पता भी न हो। बैंड-बाजे बजा कर, स्वागत-समारोह से, जलसों में, शोभायात्रा निकाल कर उस मंदिर में कोई प्रवेश नहीं है। कोई कितनी ही प्रदक्षिणाएं करता रहे उस

मंदिर की शोभायात्राओं में, उस मंदिर में प्रवेश नहीं है। उसमें तो कोई कभी चोरी-छिपे प्रवेश पाता है। कोई कभी जब जगत में एक पत्ते को भी खबर नहीं होती, कोई उस मौन क्षण में, निबिड़ क्षण में, प्रविष्ट हो जाता है। यह जरा कठिन है। दूसरे को खबर न हो इतना ही नहीं, उस परमात्मा के मंदिर में प्रवेश जब होता है, तो खुद को भी खबर नहीं होती, इतनी भी आवाज नहीं होती। हो जाता है प्रवेश, तभी पता चलता है कि प्रवेश हो गया। अगर खुद को भी पता चल रहा हो कि प्रवेश हो रहा है तो समझना कि कल्पना चल रही है। मन धोखा दे रहा होगा। परमात्मा में डूब कर ही पता चलता है कि डूब गए। डूबते क्षण में भी पता नहीं चलता, क्योंकि उतना भी पता चल जाए तो रुकावट हो जाएगी। पता पड़ना बाधा है। क्योंकि आपका चेतन मन और आपका अहंकार खड़ा हो गया, जैसे ही पता चला।

इसे थोड़ा ऐसा देखें। कोई क्षण है और आपको लग रहा है बड़े आनंदित हैं। जैसे ही चेतन हो जाते हैं आप कि आनंदित हूं, आनंद खो जाएगा। ध्यान कर रहे हैं और अचानक आपको पता चला कि ध्यान हुआ, कि आप पाएंगे ध्यान खो गया। किसी के गहरे प्रेम में हैं और आपको पता चला कि मैं प्रेम में हूं, और आप पाएंगे कि वह बात खो गई, वह सुगंध विलीन हो गई। जीवन का जो गहनतम है, वह चुपचाप मौन में घटित होता है। शब्द बनते ही तिरोहित हो जाता है। फिर हमारे हाथ में शब्द रह जाते हैं--परमात्मा, प्रेम, प्रार्थना, ध्यान, आनंद--शब्द रह जाते हैं। वह जो अनुभव था, वह खो जाता है।

लाओत्से तो कहता है कि जब भी कोई चीज पूर्णता के निकट पहुंचती है, तो चुप हो जाती है।

इसे हम एक-दो ताओइस्ट कहानियों से समझें। एक कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर रही है।

एक सम्राट ने अपने दरबार के सब से बड़े धनुर्विद को कहा कि अब तुझसे बड़ा धनुर्विद कोई भी नहीं है। तो तू घोषणा कर दे राज्य में और अगर कोई प्रतिवादी न उठे तो मैं तुझे राज्य का सबसे बड़ा धनुर्धर घोषित कर दूं। द्वार पर जो द्वारपाल खड़ा था, वह हंसा। क्योंकि धनुर्विद ने कहा कि घोषणा का क्या सवाल है, घोषणा कल की जा सकती है। कोई धनुर्विद नहीं है, जो मेरी प्रतियोगिता में उतर सके। द्वारपाल हंसा तो धनुर्विद को हैरानी हुई। लौटते में उस बूढ़े द्वारपाल से उसने पूछा, तुम हंसे क्यों? उसने कहा कि मैं इसलिए हंसा कि तुम्हें अभी धनुर्विद्या का आता ही क्या है? एक आदमी को मैं जानता हूं। तुम पहले उससे मिल लो, फिर पीछे घोषणा करना।

पर उस धनुर्विद ने कहा कि ऐसा आदमी हो कैसे सकता है जिसका मुझे पता न हो? मैं इतना बड़ा धनुर्विद!

उस द्वारपाल ने कहा कि जो तुमसे भी बड़ा धनुर्विद है, उसका किसी को भी पता नहीं होगा। यह पता करने और कराने की जो चेष्टा है, यह सब छोटे मन के खेल हैं। तुम रुको। जल्दी मत करना, मुसीबत में पड़ जाओगे। मैं उस आदमी का पता तुम्हें दे देता हूं। तुम वहां चले जाओ।

वह धनुर्विद उस आदमी का पता लगाते गया, एक जंगल की तलहटी में वह आदमी रहता था। तीन दिन उसके पास रहा, तब उसे पता चला कि अभी तो यात्रा धनुर्विद्या की शुरू भी नहीं हुई। तीन साल उस आदमी के चरणों में बैठ कर उसने धनुर्विद्या सीखी। लेकिन तब मन ही मन में उसे डर भी लगने लगा। अब पुराना आश्वासन न रहा कि मुझसे बड़ा धनुर्विद कोई नहीं है। यह साधारण सा आदमी लकड़ियां बेचता था गांव में, यह इतना बड़ा धनुर्विद था। और इसके बाबत किसी को खबर भी नहीं है। पता नहीं कितने और छिपे हुए लोग हों!

लेकिन तीन वर्ष उसके पास रह कर उसका आश्वासन लौट आया। वह आदमी अदभुत था। उसके हाथ में कोई भी चीज जाकर तीर बन जाती थी। वह लकड़ी का टुकड़ा भी फेंक दे तो तीर हो जाता था। वह इतना कुशल था कि लड़की के एक छोटे से टुकड़े को फेंक कर किसी के प्राण ले सकता था। वह चोट ऐसी बारीक और ऐसी सूक्ष्म जगह पर पड़ती थी कि उतनी चोट काफी थी। खून की एक बूंद न गिरे और आदमी मर जाए। तीन वर्ष में उसने सब सीख लिया। तब उसे लगा कि अब मैं घोषणा कर सकता हूं। लेकिन अब उसे एक ही कठिनाई थी कि यह जो गुरु है उसका, इसके रहते मैं चाहे घोषणा भी कर दूं--और यह गुरु ऐसा नहीं है कि प्रतिवाद करने आएगा--लेकिन इसकी मौजूदगी मेरे मन में तो बनी रहेगी कि मैं नंबर दो हूं। तो उसने सोचा कि इसको खतम करके ही चलूं।

सुबह लकड़ी काट कर गुरु लौट रहा था। एक वृक्ष की आड़ में छिप कर उसने तीर मारा--उसके शिष्य ने। गुरु तो चुपचाप लकड़ियां काट कर लौट रहा था, उसके हाथ में तो कुछ था भी नहीं। तीर उसने आते देखा तो उसने लकड़ी के बंडल से एक छोटी सी लकड़ी निकाल कर फेंकी। वह लकड़ी का टुकड़ा तीर से टकराया और तीर वापस लौट पड़ा और जाकर शिष्य की छाती में छिद गया। भागा हुआ गुरु आया, उसने तीर निकाला और उसने कहा कि यह एक बात भर तुझे सिखाने से मैंने रोक रखी थी, क्योंकि शिष्य से गुरु को सावधान होना ही चाहिए। क्योंकि अंतिम खतरा उसी से हो सकता है। लेकिन अब मैंने वह भी तुझे बता दिया। और अब तुझे मुझे मारने की जरूरत नहीं। तू समझ कि मैं मर गया। तू अब जा सकता है। मैं एक लकड़हारा हूं और अब धनुर्विद्या मैंने छोड़ दी आज से। लेकिन जाने के पहले एक ध्यान रखना, मेरा गुरु अभी जीवित है। और मेरे पास तो तीन साल में सीख लेना काफी है, उसके पास तीस जन्म भी कम होंगे। घोषणा करे, उसके पहले दर्शन कम से कम उसके कर लेना।

उसके प्राणों पर तो निराशा छा गई। ऐसा लगा कि इस जगत में प्रथम धनुर्विद होना असंभव मालूम होता है। कहां है तुम्हारा गुरु और उसकी खूबी क्या है? क्योंकि तुम्हें देखने के बाद अब कल्पना में भी नहीं आता कि और ज्यादा खूबी क्या हो सकती है।

उसके गुरु ने कहा कि अभी भी मुझे लकड़ी का एक टुकड़ा तो फेंकना ही पड़ा। इतनी भी आवाज, इतनी भी चेष्टा, इतनी भी वस्तु का उपयोग मेरी धनुर्विद्या की कमी है। मेरे उस गुरु की आंख भी तीर को लौटा दे सकती थी, उसका भाव भी तीर को लौटा दे सकता था। तू पर्वत पर जा। मैं ठिकाना बताए देता हूं। वहां तू खोजना।

वह आदमी पर्वत की यात्रा किया। उसकी सारी महत्वाकांक्षाएं धूल-धूसरित हो गई हैं। उस पर्वत पर सिवाय एक बूढ़े आदमी के कोई भी नहीं था जिसकी कमर झुक गई थी। उसने उस बूढ़े आदमी से पूछा कि मैंने सुना है कि यहां कोई एक बहुत प्रख्यात धनुर्विद रहता है। मैं उसके दर्शन करने आया हूं। उस बूढ़े आदमी ने इस युवक की तरफ देखा और कहा कि जिसकी तुम खोज करने आए हो, वह मैं ही हूं। लेकिन अगर तुम धनुर्विद्या सीखना चाहते हो तो गले में धनुष क्यों टांग रखा है?

उस आदमी ने कहा, धनुष क्यों टांग रखा है! धनुर्विद्या धनुष के बिना सीखी कैसी जा सकेगी?

तो उस बूढ़े ने कहा, जब धनुर्विद्या आ जाती है, तो धनुष की कोई भी जरूरत नहीं रहती। यह तो जरूरत तभी तक है, जब तक विद्या नहीं आती। और जब संगीत पूरा हो जाता है, तो संगीतज्ञ वीणा को तोड़ देता है। क्योंकि वीणा तब बाधा बन जाती है। अगर अभी भी वीणा की जरूरत हो तो उसका मतलब है, संगीतज्ञ का भरोसा अपने पर अभी नहीं आया। अभी संगीत आत्मा से नहीं उठता। अभी किसी इंस्ट्रूमेंट, किसी साधन की

जरूरत है। जब साध्य पूरा हो जाता है, साधन तोड़ दिए जाते हैं। फिर भी तू आ गया है तो ठीक। तू सोचता है, तेरे निशाने अचूक हैं?

उस युवक ने कहा कि बिल्कुल अचूक हैं। सौ में सौ निशाने मेरे लगते हैं। अब इससे ज्यादा और क्या हो सकता है? सीमा आ गई, अगर सौ प्रतिशत निशाने लगते हों और एक निशाना न चूकता हो।

वह बूढ़ा हंसा। और उसने कहा कि यह तो सब बच्चों का खेल है। प्रतिशत का हिसाब बच्चों का खेल है। तू मेरे साथ आ। और वह बूढ़ा उसे पर्वत के किनार पर ले गया, जहां नीचे भयंकर मीलों गहरा गड्ढ है और एक शिलाखंड गड्ढ के ऊपर फैलता हुआ चला गया है। वह बूढ़ा सरक कर, चल कर--जिसकी आधी कमर झुकी हुई है--जाकर उस पत्थर के किनारे खड़ा हो गया। उसका आधा पैर का पंजा खड्ड में झुक गया, सिर्फ आधे पैर के बल वह उस खड्ड पर खड़ा है, जहां एक सांस चूक जाए तो वह सदा के लिए खो जाए। उसने इस युवक को कहा कि अब तू भी आ करीब और ठीक ऐसे ही मेरे पास खड़ा हो जा!

उस युवक ने कहा कि मेरी हिम्मत नहीं पड़ती, हाथ-पैर कंपते हैं।

उस बूढ़े ने कहा, जब हाथ-पैर कंपते हैं, तो निशाना सधा हुआ हो कैसे सकता है? अगर हाथ कंपता है, तो तीर तो हाथ से ही छूटेगा, कंप जाएगा। तेरे निशाने लग जाते होंगे; क्योंकि जो आब्जेक्ट तू चुनता है, काफी बड़े हैं। एक तोते को तूने चुन लिया। तोता काफी बड़ी चीज है। अगर तेरा हाथ थोड़ा कंप भी रहा हो तो भी तोता मर जाएगा। लेकिन तू अगर घबड़ाता है और कंपता है और तेरा हाथ कंपता है, तो ध्यान रख, तेरे भीतर आत्मा भी कंपती होगी। वह कंपन कितना ही सूक्ष्म हो, वह कंपन जब खो जाता है, तब कोई धनुर्विद होता है। और जब वह कंपन खो जाता है, तब धनुष-बाण की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती।

उस बूढ़े ने आंखें ऊपर उठाईं। एक पक्षियों की, तीस पक्षियों की कतार जाती थी। उसकी आंख के ऊपर और नीचे गिरते ही तीसों पक्षी नीचे आकर गिर गए। उस बूढ़े ने कहा कि यह ख्याल--जब आत्मा कंपती न हो--कि नीचे गिर जाओ, काफी है। यह भाव तीर बन जाते हैं।

यह एक लाओत्सियन पुरानी कथा है। इस सूत्र को समझने में आसानी होगी।

कहता है लाओत्से, "एक कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता है।"

जो दौड़ने में कुशल है, अगर उसके पदचिह्न बन जाते हों तो कुशलता की कमी है। जमीन पर हम चलते हैं तो पदचिह्न बनते ही हैं। लेकिन पक्षी आकाश में उड़ते हैं तो कोई पदचिह्न नहीं बनता। कुशलता जितनी गहरी होती जाती है, उतनी आकाश जैसी होती जाती है। कुशलता जितनी गहरी होती जाती है, उतनी सूक्ष्म हो जाती है, स्थूल नहीं रह जाती। स्थूल में पदचिह्न बनते हैं, सूक्ष्म में कोई पदचिह्न नहीं बनते। और जितना सूक्ष्म हो जाता है अस्तित्व, उतना ही पीछे कोई निशान नहीं छूट जाता। अगर आप जमीन पर दौड़ेंगे तो पदचिह्न बनेंगे। लेकिन दौड़ने का एक ऐसा ढंग भी है कि दौड़ भी हो जाए और कहीं कोई पदचिह्न भी न छूटे।

च्वांगत्से ने, लाओत्से के शिष्य ने कहा है कि जब तुम पानी से गुजरो और तुम्हारे पैर को पानी न छुए, तभी तुम समझना कि तुम संत हुए, उसके पहले नहीं। और ऐसा मत करना कि किनारे बैठे रहो और पैर सूखे रहें तो तुम सोचो कि संत हो गए हो, क्योंकि पैर पर पानी नहीं है। पानी से गुजरना और पैर को पानी न छुए, तो ही जानना कि संत हो गए हो।

जटिल है बात थोड़ी। एक आदमी संसार छोड़ कर भाग जाता है--पानी छोड़ कर भाग जाता है, किनारे बैठ जाता है। फिर पैर सूखे रहते हैं। इसमें कुछ गुण नहीं है, पैर सूखे रहेंगे ही। लेकिन यही आदमी बीच बाजार

में खड़ा है, घर में खड़ा है, पत्नी-बच्चों के साथ खड़ा है, धन-दौलत के बीच खड़ा है; जहां सब उपद्रव चल रहा है, वहां खड़ा है, और इसके पैर नहीं भीगते हैं; तभी जानना की संतत्व फलित हुआ है।

संत की परीक्षा संसार है। संसार के बाहर संतत्व तो बिल्कुल आसान चीज है। लेकिन वह संतत्व नपुंसक है, इंपोटेंट है। जहां कोई गाली नहीं देने आता, वहां क्रोध के न उठने का क्या अर्थ है? या जहां जो भी आता है, प्रशंसा करता आता है, वहां क्रोध के न उठने का क्या अर्थ है? जहां उत्तेजनाएं नहीं हैं, टेंपटेशंस नहीं हैं, जहां वासनाओं को भीतर से बाहर खींच लेने की कोई सुविधा नहीं है, वहां अगर वासनाएं थिर मालूम पड़ती हों तो आश्चर्य क्या है? लेकिन जहां सारी सुविधाएं हों, सारी उत्तेजनाएं हों, जहां प्रतिपल आघात पड़ता हो प्राणों पर, जहां सोई हुई वासना को खींच लेने के सब उपाय बाहर काम कर रहे हों और भीतर से कोई वासना न आती हो, तभी--जब पानी से गुजरो और पैर न छुए पानी को, पानी न छुए पैर को, तभी--तभी जानना कि संतत्व।

तो पानी और पैर के बीच में जो अंतराल है, वहीं संतत्व है।

कमल का पत्ता है। वह खिला रहता है पानी में। पानी की बूंद भी उस पर पड़ जाएं तो भी छूती नहीं। एक अंतराल है, पत्ते और बूंद के बीच में एक फासला है। बूंद लाख उपाय करे, तो भी उस अंतराल को पार नहीं कर पाती। वह अंतराल ही संतत्व है। बूंद गिर जाती है, पत्ते को पता ही नहीं चलता। बूंद आती है, चली जाती है, पत्ते को पता ही नहीं चलता। बूंद खुद वजनी हो जाती है, पत्ता झुक जाता है और बूंद नीचे गिर जाती है। बूंद हलकी होती है, बनी रहती है; बूंद भारी हो जाती है, गिर जाती है। यह बूंद का अपना ही काम है; पत्ते का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन कमल का पत्ता अगर कहे कि मैं सरोवर को छोडूंगा, क्योंकि पानी यहां मुझे बहुत छूता है, गीला कर जाता है, तो फिर जानना कि वह पत्ता कमल का नहीं है। कमल के पत्ते को अंतर ही नहीं पड़ता वह बाहर है या भीतर, वह पानी में है या पानी के बाहर। क्योंकि पानी के भीतर होकर भी पानी के बाहर होने का उपाय उसे पता है। इसलिए बाहर भागने का कोई अर्थ नहीं है, कोई संगति नहीं है।

लाओत्से कहता है, "एक कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता।"

इसे थोड़ा समझें। जितनी तेजी से आप दौड़ेंगे, उतना ही कम स्पर्श होगा जमीन का। इसको अंतिम, चरम की अवस्था पर ले जाएं। अगर तेजी आपकी बढ़ती ही चली जाए तो जमीन से स्पर्श कम होता जाएगा। जब आप धीमे चलते हैं, पैर पूरा जमीन पर बैठता है--छूता है, उठता है, फिर जमीन को छूता है। जब आप तेजी से दौड़ते हैं, जमीन को कम छूता है। अगर तेजी और बढ़ती चली जाए... ।

अभी वैज्ञानिक ऐसी गाड़ियां, ऐसी कारें ईजाद किए हैं, जो एक विशेष गति पकड़ने पर जमीन से ऊपर उठ जाएंगी। क्योंकि उतनी गति पर जमीन को छूना असंभव हो जाएगा। तो जल्दी ही, जल्दी ही, जैसे कि हवाई जहाज एक विशेष गति पर टेक ऑफ लेता है, एक विशेष गति को पकड़ने के बाद जमीन छोड़ देता है, ठीक वैसे ही कारें भी एक खास गति लेने के बाद जमीन से एक फीट ऊपर उठ जाएंगी। फिर रास्तों की खराबी निष्प्रयोजन हो जाएगी, उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। रास्ते कैसे भी हों, गाड़ी को कोई अंतर नहीं पड़ेगा। रास्ता न भी हो तो भी गाड़ी को कोई अंतर नहीं पड़ेगा। एक फीट का फासला उस गति पर बना ही रहेगा। तो सिर्फ फासला पकड़ने के लिए रन-ओवर की जरूरत होगी; उतरने के लिए। लेकिन बीच की यात्रा बिना कठिनाई के, बिना रास्तों के की जा सकती है। लेकिन तब कार आपके घर के सामने से निकल गई हो, तो भी चिह्न नहीं छोड़ेगी।

यह उदाहरण के लिए कहता हूं। ठीक ऐसे ही अंतस-चेतना में भी गतियां हैं। कुशल धावक जब चेतना में इतनी गति ले आता है, तो फिर कोई चिह्न नहीं छूटते। कोई चिह्न नहीं छूटते। आप पर चिह्न छूटते हैं, उसका

कारण संसार नहीं है, आपकी गति बहुत कम है। एक आदमी शराब पीता है। शराब के चिह्न छूटेंगे। स्वभावतः हम सोचते है, शराब में खराबी है। इतना आसान मामला नहीं है। शराब के चिह्न छूटते हैं, शराब की बेहोशी छूटती है; क्योंकि शराब की गति और इस आदमी की चेतना की गति में जो अंतर है, वही कारण है। इस आदमी की चेतना की गति शराब से ज्यादा नहीं है; शराब से नीची है। शराब ओवरपावर कर लेती है, आच्छादित कर लेती है।

तंत्र ने बहुत प्रयोग किए हैं नशों के ऊपर। और तंत्र ने चेतना की गति को बढ़ाने के अनूठे-अनूठे उपाय खोजे हैं। इसलिए किसी तांत्रिक को कितनी ही शराब पिला दो, कोई भी बेहोशी नहीं आएगी। क्योंकि चेतना की गति शराब की गति से सदा ऊपर है। शराब ऊपर जाकर स्पर्श नहीं कर सकती, केवल नीचे उतर कर स्पर्श कर सकती है। जब आपकी चेतना की गति धीमी होती है, शराब की तीव्र होती है, तब आपको स्पर्श करती है।

तंत्र ने संभोग के लिए अनेक-अनेक विधियां निकाली हैं। और तांत्रिक संभोग करते हुए भी काम से दूर बना रह सकता है। यह जटिल बात है। क्योंकि जब कामवासना आपको पकड़ती है, तो आपकी आत्मा की गति बिल्कुल खो जाती है, कामवासना की ही गति रह जाती है। इसलिए आप उससे आंदोलित होते हैं। अगर आपकी चेतना की गति ज्यादा हो तो कामवासना नीचे पड़ जाएगी।

हमारी हालत ऐसी है, हमेशा हमने आकाश में बादल देखे हैं--अपने से ऊपर। जब कभी आप हवाई जहाज में उड़ रहे हों, तब आपको पहली दफे पता चलता है कि बादल नीचे भी हो सकते हैं। जब बादल आपके ऊपर होते हैं, तो उनकी वर्षा आपके ऊपर गिरेगी। और जब बादल आपके नीचे होते हैं, तो आप अछूते रह सकते हैं। उनकी वर्षा से कोई अंतर नहीं पड़ता है।

यह थोड़ी जटिल बात है कि चेतना की गति क्या है? उसकी गति है। इसे हम थोड़े से ख्याल लें तो हमारी समझ में आ जाए। आप भी चेतना की बहुत गतियों से परिचित हैं, लेकिन आपने कभी निरीक्षण नहीं किया है। आपने यह बात सुनी होगी कि अगर कोई आदमी पानी में डूबता है, तो एक क्षण में पूरे जीवन की कहानी उसके सामने गुजर जाती है। यह सिर्फ ख्याल नहीं है, वैज्ञानिक है। लेकिन एक आदमी सत्तर साल जीया और जिस जिंदगी को जीने में सत्तर साल लगे, एक क्षण में, एक डुबकी के क्षण में, जब कि मौत करीब होती है, सत्तर साल एकदम से कैसे घूम जाते होंगे?

सत्तर साल लगे इसलिए कि जीवन-चेतना की गति बहुत धीमी थी। बैलगाड़ी की रफ्तार से आप चल रहे थे। लेकिन मौत के क्षण में, वह जो शिथिलता है, वह जो तमस है, वह जो बोझ था आलस्य का, वह सब टूट गया। मौत ने सब तोड़ दिया। साधारणतः भी मौत आती है, लेकिन ऐसा नहीं होता; क्योंकि मौत का आपको पता नहीं होता। अपनी खाट पर मरता है आदमी आमतौर से। तो खाट पर मरने वाले को कोई पता नहीं होता कि वह मर रहा है। इसलिए चेतना में त्वरा नहीं आती। नदी में डूब कर जो आदमी मर रहा है, वह जानता है कि मर रहा हूं, क्षण भर की देर है और मैं गया। यह बोध उसकी चेतना को त्वरा दे देता है, गति दे देता है। वह जो बैलगाड़ी की रफ्तार से चलने वाली चेतना थी, पहली दफा उसको पंख लग जाते हैं, हवाई जहाज की गति से चलती है। इसलिए जो सत्तर साल जीने में लगा, वह एक क्षण में देखने में आ जाता है। एक क्षण में सब देख लिया जाता है।

छोड़ें! क्योंकि पानी में मरने का आपको कोई अनुभव नहीं है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया है कि टेबल पर बैठे-बैठे झुक गए और एक झपकी आ गई; और झपकी में आपने एक स्वप्न देखा। स्वप्न लंबा हो सकता है कि आप किसी के प्रेम में पड़ गए, विवाह हो गया, बच्चे हो गए। बच्चों का विवाह कर रहे थे, तब जोर की

शहनाई बज गई और नींद खुल गई। घड़ी में देखते हैं तो लगता है कि एक मिनट बीता है। पर एक मिनट में इतनी घटना का घट जाना कैसे संभव है? अगर आप, जो-जो आपने सपने में देखा, उसका विवरण भी बताएं, तो भी एक मिनट से ज्यादा वक्त लगेगा। और सपने में आपको ऐसा नहीं लगा कि चीजें बड़ी जल्दी घट रही हैं; व्यवस्था से, समय से घट रही हैं। इस एक मिनट में आपने कोई तीस साल--प्रेम, विवाह, बच्चे, उनका विवाह--कोई तीस साल का फासला पूरा किया है। और आपको एक क्षण को भी सपने में ऐसा नहीं लगा कि चीजें कुछ जल्दी घट रही हैं, कि कैलेंडर को कोई जल्दी-जल्दी फाड़े जा रहा है, जैसा कि फिल्म में दिखाना पड़ता है उनको--कैलेंडर उड़ा जा रहा है, तारीख एकदम बदली जा रही है। ऐसा भी कोई भाव स्वप्न में नहीं होता। चीजें अपनी गति से घट रही हैं। लेकिन एक मिनट में यह कैसे घट जाता है?

वैज्ञानिक बहुत चिंतित रहे हैं। क्योंकि यह टाइम, समय का इस भांति घट जाना बड़ी मुश्किलें खड़ी करता है। इसके मतलब दो ही हो सकते हैं। इसका मतलब एक तो यह हो सकता है कि जब हम जागते हैं तो हम दूसरे समय में होते हैं जिसकी रफ्तार अलग है, और जब हम सोते हैं तो हम दूसरे समय में होते हैं जिसकी रफ्तार अलग है। लेकिन दो समय को मानने में बड़ी अड़चनें हैं, वैज्ञानिक चिंतन की अड़चनें हैं। और अभी तक वैज्ञानिक साफ नहीं कर पाए कि यह मामला क्या होगा।

इसे हम दूसरी तरफ से देखें, योग की तरफ से, तो यह मामला इतना जटिल नहीं है। समय तो एक ही है, लेकिन समय में घूमने वाली चेतना की रफ्तार बदलने से फर्क पड़ता है। जागते में भी वही समय है, सोते में भी वही समय है। लेकिन जागते में आपकी चेतना बैलगाड़ी की रफ्तार से चलती है। क्यों? क्योंकि जागते में सारा संसार अवरोध है। अगर जागते में मुझे आपके घर आना है तो तीन मील का फासला मुझे पार करना ही पड़ेगा। लेकिन स्वप्न में कोई अवरोध नहीं है। इधर मैंने चाहा, उधर मैं आपके घर पहुंच गया। वह तीन मील का जो फासला था स्थूल, वह बाधा नहीं डालता। जाग्रत में सारा जगत बाधा है। हर तरफ बाधाएं हैं--दीवार बाधा है, रास्ते बाधा हैं, लोग बाधा हैं--सब तरह की बाधाएं हैं। स्वप्न में निर्बाध हैं आप। आप अकेले हैं, सब खो गया। जगत है कोरा और आप अकेले हैं; कहीं कोई रेसिस्टेंस नहीं है। इसलिए आपकी चेतना तीर की रफ्तार से चल पाती है।

यह जो चेतना की रफ्तार है, इसकी वजह से, जो तीस साल में घटता, वह एक मिनट में घट जाता है। चेतना की रफ्तार के कारण बड़ी चीजें संभव हो जाती हैं। आदमी सत्तर साल जीता है। कुछ पशु हैं जो दस साल जीते हैं। कोई पशु हैं जो पांच साल जीते हैं। कुछ कीड़े-पतिंगे हैं जो घड़ी भर जीते हैं। कुछ और छोटे जीवाणु हैं जो क्षण भर जीते हैं। कुछ और छोटे जीवाणु हैं कि आप अपनी सांस लेते हैं और छोड़ते हैं, उतने में उनका जन्म, प्रेम, संतान, मृत्यु, सब हो जाता है। लेकिन यह कैसे होता होगा? इतने छोटे, अल्प काल में यह सब कैसे होता होगा?

चेतना की रफ्तार का सवाल है। जितनी चेतना की रफ्तार होगी, उतने कम समय की जरूरत होगी। जितनी कम चेतना की रफ्तार होगी, उतने ज्यादा समय की जरूरत होगी। और चेतना की रफ्तार पर अब तक वैज्ञानिक अर्थों में कुछ नहीं हो सका। लेकिन योगियों ने बहुत कुछ किया है।

लाओत्से का यह कहना कि कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता, सिर्फ इसी बात को कहने का दूसरा ढंग है कि चेतना जब त्वरा में दौड़ती है, तीव्रता में दौड़ती है, जब उसकी गति तेज हो जाती है, तो उसके कोई चिह्न आस-पास नहीं छूटते। जितना धीमे सरकने वाली चेतना हो, उतने चिह्न छोड़ती है। इसका मतलब यह होगा कि जिनको हम इतिहास में पढ़ते हैं, ये आमतौर से धीमे सरकने वाली चेतनाएं हैं। चंगीज, तैमूर, हिटलर,

नेपोलियन, स्टैलिन, बहुत धीमी सरकने वाली चेतनाएं हैं। यह भी हो सकता है--हुआ ही है--कि जो हमारे बीच बहुत प्रकाश की गति से चलने वाली चेतनाएं थीं, उनका हमें कोई पता ही नहीं है। क्योंकि उनका पता हमें नहीं हो सकता।

यहां हम बैठे हैं। मैं आपसे बोल रहा हूं तो मेरी आवाज आपको सुनाई पड़ती है। लेकिन आप यह मत सोचना कि यही एक आवाज यहां है। यहां बड़ी तेज आवाजें भी आपके पास से गुजर रही हैं। लेकिन वे इतनी तेज हैं कि आपके कान उन्हें पकड़ नहीं पाते। और जीवन के लिए जरूरी भी है कि अगर आप उनको पकड़ पाएं तो आप पागल हो जाएंगे। क्योंकि फिर उनको ऑन-ऑफ करने का कोई उपाय आपके शरीर में नहीं है। यहां से अनंत आवाजें आपके पास से गुजर रही हैं। लेकिन आपको उनका कोई पता नहीं है। जब रात में आप कहते हैं कि बिल्कुल सन्नाटा है, तब आपके लिए सन्नाटा है; अस्तित्व में अनंत आवाजें--भयंकर, प्रचंड आवाजें--आपके पास से गुजर रही हैं। आपके कान समर्थ नहीं हैं। आपके कान की एक सीमा है, एक खास वेवलेंथ में आपके कान आवाज को पकड़ते हैं। उसके पार आपको कुछ पता नहीं है।

हम देखते हैं; तो प्रकाश की भी एक विशेष सीमा हम देखते हैं। उसके पार बड़े-बड़े प्रकाश के प्रचंड झंझावात हमारे पास से गुजर रहे हैं, वे हमें दिखाई नहीं पड़ते। अभी-अभी विज्ञान को ख्याल में आना शुरू हुआ कि जो हम देखते हैं, वह सब नहीं है, बहुत थोड़ा है। जो अनदिखा रह जाता है, वह बहुत ज्यादा है। जो हम सुनते हैं, वह सब नहीं है। जो हम सुनते हैं, वह अत्यल्प है। जो अनसुना रह जाता है, वह महान है। लेकिन क्यों हमारी सुनाई में नहीं आता? क्योंकि उसकी गति तीव्र है। उसकी गति इतनी तीव्र है कि हम पर उसका कोई चिह्न नहीं छूटता। हम अछूते ही खड़े रह जाते हैं।

ऐसा समझें, एक बिजली का पंखा घूम रहा है। जब वह धीमा घूमता है, तब आपको तीन पंखुड़ियां दिखाई पड़ती हैं। जब वह और तेजी से घूमने लगता है तो आपको पंखुड़ियां नहीं दिखाई पड़तीं। यह भी हो सकता है, एक ही पंखुड़ी घूम रही हो; यह भी हो सकता है, दो घूम रही हों; यह भी हो सकता है, तीन घूम रही हों। अब आप पंखुड़ी का अंदाज नहीं कर सकते। अगर वह और तेजी से घूमे तो धीरे-धीरे धुंधला होता जाएगा। जितना तेज घूमेगा, उतना धुंधला होता जाएगा। अगर वह इतनी तेजी से घूमे जितनी तेजी से प्रकाश की किरण चलती है तो आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। लेकिन--यह तो हम समझ सकते हैं कि शायद दिखाई न पड़े--लेकिन अगर वह इतनी तेजी से घूमे और आप अपना हाथ उसमें डाल दें तो? इतनी तेजी से घूमे कि हमें दिखाई न पड़े और हम अपना हाथ उसमें डाल दें तो क्या होगा? हाथ तो कट जाएगा, लेकिन हमें कारण बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा कि कारण क्या था कट जाने का।

हमारे जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएं घट रही हैं जब अदृश्य कारण हमें काटते हैं। हमें दिखाई नहीं पड़ता, तो हम समझ नहीं पाते कि क्या हो रहा है। या जो हम समझते हैं, वह गलत होता है। हम कुछ और कारण सोच लेते हैं कि इससे हो रहा है, उससे हो रहा है। त्वरा से शक्तियां हमारे चारों तरफ घूमती हैं। उनका चिह्न तभी हम पर छूटता है, जब हम उनके आड़े पड़ जाते हैं। अन्यथा उनका हमें कोई स्पर्श भी नहीं होता।

लाओत्से कहता है, "कुशल धावक पदचिह्न नहीं छोड़ता।"

अगर छोड़ता है तो समझना कि अभी दौड़ बहुत धीमी है।

"एक बढ़िया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोषरहित होता है।"

जब किसी वक्तव्य में दोष खोजा जा सके, तो समझना चाहिए कि वक्तव्य अधूरा है, पूरा नहीं है। लेकिन बड़ी कठिनाई है। अगर वक्तव्य पूरा हो तो आपकी समझ में न आएगा। अगर वक्तव्य आपकी समझ में आए तो

अधूरा होगा। और अधूरे में दोष खोजे जा सकते हैं। क्योंकि वक्तव्य अगर पूरा होगा तो आपकी समझ पर भी कोई चिह्न नहीं छूटेगा। इसलिए अक्सर लोग कहते हैं कि--अगर कोई ऊंची बात कही जाए तो वे कहते हैं--सिर के ऊपर से गुजर गई। वह सिर के ऊपर से इसलिए गुजर जाती है कि आप पर उसका कोई चिह्न छूटता मालूम नहीं पड़ता। आपकी बुद्धि उसे कहीं से भी पकड़ नहीं पाती, कहीं से भी कोई संबंध नहीं जुड़ता। सुनते हैं, और जैसे नहीं सुना। आया और गया, और जैसे आया ही न हो। या जैसे किसी स्वप्न में सुना हो, जिसकी प्रतिध्वनि रह गई, जो बिल्कुल समझ के बाहर है।

इसलिए वक्तव्य अगर पूरा हो तो उसमें दोष नहीं खोजा जा सकता। लेकिन वक्तव्य अगर पूरा हो तो समझना ही मुश्किल हो जाता है। जैसे महावीर के वक्तव्य बहुत कम समझे जा सके हैं; क्योंकि वक्तव्य पूरे होने के करीब-करीब हैं। करीब-करीब इतने हैं कि महावीर के संबंध में जो कथा है, वह बड़ी मधुर है। वह यह है कि महावीर बोलते नहीं थे, चुप बैठे रहते थे, लोग सुनते थे। यह कथा बहुत मीठी है। और कथा ही नहीं है।

अगर वक्तव्य को पूर्ण करना हो तो वाणी का उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि वाणी तो आदमी की ईजाद है, और अधूरी है। शब्दों का उपयोग नहीं किया जा सकता। क्योंकि सब शब्द, कितने ही उचित हों, फिर भी दोषपूर्ण हैं। असल में, जो चीज भी आघात से उत्पन्न होती है, उसमें दोष होगा। और शब्द एक आघात है--ओंठ का, कंठ का। संघर्ष है। और जो भी चीज संघर्ष से पैदा हो, वह दोषपूर्ण होगी। वह पूर्ण नहीं हो सकती।

एक ऐसा नाद भी है मौन का, जिसे हम कहते हैं अनाहत। अनाहत का अर्थ है जो आघात से उत्पन्न न हुआ हो, आहत न हो, जो किसी चीज के टकराने से पैदा न हुआ हो। जो किसी की टक्कर से पैदा होगा, उसमें दोष होगा। लेकिन शब्द तो टक्कर से ही पैदा होते हैं। तो एक ऐसा स्वर भी है मौन का जो अनाहत है, जो आहत नहीं है, जो किसी चीज की चोट से पैदा नहीं होता।

तो महावीर के संबंध में कहा जाता है, वे चुप रहे और चुप्पी से बोले, मौन रहे और मौन से बोले। लेकिन तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। समझेगा कौन उन्हें? इसलिए कहते हैं कि महावीर के ग्यारह गणधर थे, उनके ग्यारह निकटतम शिष्य थे, वे उन्हें समझे। फिर उन्होंने लोगों को वाणी से कहा। अब इसमें बड़े उपद्रव हैं। क्योंकि जो समझने वाले ग्यारह गणधर थे, उनमें कोई भी महावीर की हैसियत का व्यक्ति न था। इसलिए महावीर ने जितना मौन से कहा, उसका एक अंश उन्होंने समझा। फिर जो अंश उन्होंने समझा, उसका एक अंश ही वे लोगों से शब्दों में कह पाए। और जो एक अंश लोगों ने सुना, उसका भी एक अंश उनकी बुद्धि पकड़ पाई।

लेकिन ऐसा महावीर के साथ ही हुआ हो, ऐसा नहीं है। ऐसा प्रत्येक मनीषी जब बोलता है, तो यही होता है। इस घटना में हमें विभाजन करना आसान होता है। लेकिन जब किसी को भी--लाओत्से को, बुद्ध को, महावीर को--किसी को भी सत्य का अनुभव होता है, तो वह पूर्ण होता है। वह वक्तव्य पूरा है। वहां कोई दोष नहीं होता। लेकिन इस वक्तव्य को, इस घटना को, इस तथ्य को, जो अनुभव में आता है, जैसे ही महावीर खुद भी अपने भीतर शब्द देना शुरू करते हैं, गणधर के हाथ में बात पहुंच गई। मन अब उसको शब्द देगा। तो जो आत्मा ने जाना, उसका एक अंश मन को समझ में आएगा। अब यह मन उसे प्रकट करेगा वाणी से बाहर। तो मन जितना समझ पाता है, उतना भी शब्द नहीं बोल पाते। फिर ये शब्द आपके पास पहुंचते हैं। फिर इन शब्दों में से जितना आप समझ पाते हैं, उतना आप पकड़ लेते हैं। सत्य जो जाना गया था, और सत्य जो संवादित हुआ, इसमें जमीन-आसमान का फर्क हो जाता है।

इसलिए सत्य बोलने वालों को सदा ही अड़चन होती है। और वह यह कि जो बोला जा सकता है, वह सत्य होता नहीं। और जो बोलना चाहते हैं, वह बोला नहीं जा सकता। इन दोनों के बीच कहीं समझौता करना

पड़ता है। सभी शास्त्र इसी समझौते के परिणाम हैं। इसलिए शास्त्र सहयोगी भी हैं और खतरनाक भी। अगर कोई इसको समझ कर चले कि शास्त्रों में बहुत अल्प ध्वनि आ पाई है वक्तव्य की, तो सहयोगी हैं। और अगर कोई समझे कि शास्त्र सत्य है, तो खतरनाक हैं।

लाओत्से कहता है, वक्तव्य जब पूर्ण होता है, तो उसमें प्रतिवाद के लिए कोई उपाय नहीं।

लेकिन आपने कोई ऐसा वक्तव्य सुना है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके? किसी ने कहा, ईश्वर है। क्या अड़चन है? आप कह सकते हैं, ईश्वर नहीं है। किसी ने कहा, आत्मा है; आप कह सकते हैं, नहीं है। किसी ने कहा कि मैं आनंद में हूं; आप कह सकते हैं, हमें शक है। आपने ऐसा कोई वक्तव्य सुना है कभी, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके? नहीं सुना है। क्या ऐसा कोई वक्तव्य कभी दिया ही नहीं गया है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके? नहीं, ऐसे बहुत वक्तव्य दिए गए हैं। अड़चन है थोड़ी। ऐसे बहुत वक्तव्य दिए गए हैं, जिनका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। लेकिन आपने अब तक ऐसा कोई वक्तव्य नहीं सुना है, जिसका प्रतिवाद न किया जा सके।

इसका क्या मतलब हुआ? यह तो बड़ी विरोधाभासी बात हो गई। इसका मतलब यह है कि अगर आप प्रतिवाद कर पाते हैं तो उसका कुल कारण इतना है कि जो वक्तव्य दिया गया, उसको आप समझ नहीं पाते; और जो आप समझते हैं, उसका प्रतिवाद करते हैं। जो वक्तव्य दिया गया है, उसे आप समझ नहीं पाते। समझ पाएं तो ऐसे वक्तव्य दिए गए हैं जिनका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। लेकिन जो आप समझ पाते हैं, उसका प्रतिवाद किया जा सकता है। आप अपनी ही समझ का प्रतिवाद करते रह सकते हैं।

लाओत्से कहता है, ऐसे वक्तव्य हैं, जो पूर्ण हैं।

लेकिन वक्तव्य पूर्ण कब होता है? क्या शब्दों की कुशलता से, व्याकरण की व्यवस्था से वक्तव्य पूर्ण होता है? क्या जिसमें कोई व्याकरण की भूल-चूक न हो, शब्द-शास्त्र पूर्ण हो, वह वक्तव्य पूर्ण होता है? लाओत्से के हिसाब से नहीं। लाओत्से के हिसाब से वह वक्तव्य पूर्ण है--चाहे उसमें व्याकरण की भूलें हो, शब्द गलत हों--वह वक्तव्य पूर्ण है जो अनुभव से निःसृत होता है।

दो तरह के वक्तव्य हैं। एक, जो वक्तव्यों से निःसृत होते हैं; और दूसरे, जो अनुभवों से। आप कहते हैं, ईश्वर है। यह आपके अनुभव से नहीं आता। यह किसी ने आपको कहा है, उसके वक्तव्य से आपके भीतर निर्मित होता है। यह वक्तव्यों की प्रतिध्वनि है, आपके अनुभव का निर्झर नहीं। आपके अनुभव से इसका जन्म नहीं है। सुने हुए शब्दों का संकलन है। सुना है आपने, उसे आप दोहरा देते हैं। यह स्मृति है, ज्ञान नहीं।

आपके अनुभव से जब कोई वक्तव्य आता है, सीधा, प्रत्यक्ष, आपके भीतर से जन्मता है, तब पूर्ण होता है। और तब हो सकता है व्याकरण सहायता न दे; तब हो सकता है भाषा टूटी-फूटी हो। अक्सर होगा। क्योंकि वक्तव्य इतना बड़ा होता है कि भाषा का जो भवन है, छोटा पड़ जाता है। उस वक्तव्य को भीतर ढालते हैं तो भवन खंडहर हो जाता है। वक्तव्य इतना बड़ा होता है कि सब शब्दों को तोड़-मरोड़ डालता है।

गुरजिएफ ऐसी भाषा बोलता था, जिसमें कोई व्याकरण ही न था। उसकी अंग्रेजी समझनी तो बड़ी मुश्किल बात थी। वे ही लोग समझ सकते थे, जो वर्षों से उसे सुन रहे थे और हिसाब रखते थे कि उसका क्या मतलब होगा। लेकिन फिर भी पश्चिम के श्रेष्ठतम ज्ञानी उसके चरणों में बैठे। पावेल ने लिखा है कि उसके शब्द सुन कर ऐसी कठिनाई होती थी कि कोई हथौड़े मार रहा है। लेकिन फिर भी उसके पास जाने का मोह नहीं छूटता था। वह जो कह रहा था, वह तो बिल्कुल ही अजीब था; लेकिन वह जो कहने वाला भीतर था, वह खींचता था, वह पकड़ता था।

उसकी पहली किताब जो उसने वर्षों लिखी और लिखवाई, इस सदी की श्रेष्ठतम किताबों में एक हैः आल एंड एवरीथिंग। मगर इससे ज्यादा बेबूझ किताब कभी नहीं लिखी गई। एक मित्र को उसने अमरीका में कहा था कि कुछ मित्रों को बुलाना और किताब पढ़ी जाएगी। क्योंकि वर्षों तक उसने किताब छापी नहीं, वह छापने योग्य थी भी नहीं। भाषा गोल-गोल है। और कभी-कभी तो एक पूरे पृष्ठ पर एक ही वाक्य फैलता चला जाता है। और पीछे लौट कर दुबारा वाक्य पढ़ना पड़ता है कि इसने वाक्य के शुरू में क्या कहा था और वाक्य के बाद में क्या कहता है। फिर कोई तालमेल नहीं मालूम पड़ता। और ऐसा लगता है कि अगर उसको एक मतलब की बात कहनी हो तो कम से कम हजार बेमतलब की बातें पहले कहता है और फिर वह एक मतलब की बात कहता है। वर्षों तक उसके मित्र इकट्ठे होते, किताब का एक पन्ना पढ़ा जाता, और फिर वह कहता, कैसा लगा? कुछ समझ में न आता।

अमरीका में किसी मित्र को उसने कहा था कि दस-पांच लोगों को बुला लेना; किताब पढ़ी जाएगी। चूंकि किताब छपी नहीं थी, बहुत लोग उत्सुक थे। तो अमरीका का एक बहुत बड़ा बिहेवियरिस्ट मनोवैज्ञानिक वाटसन भी उस बैठक में मौजूद था। वह बहुत विचारशील आदमी था। और इस सदी के मनोविज्ञान में एक अलग परंपरा को, फ्रायड से बिल्कुल अलग चलाने वाले जन्मदाताओं में से एक था। उसका मानना है कि आदमी सिर्फ एक यंत्र है, कोई आत्मा वगैरह नहीं है। और उसने बड़े गहरे काम किए इस दिशा में। वाटसन भी था। उसको तो बड़ी मुश्किल हो गई। और भी पांच-सात लोग थे। लेकिन और किसी की तो हिम्मत न पड़ी; लेकिन जो आदमी कहता है आत्मा ही नहीं है, उसकी हिम्मत तो पड़ ही सकती है। उसने खड़े होकर कहा कि महाशय गुरजिएफ, या तो आप हमारे साथ कोई मजाक कर रहे हैं! यह जो पढ़ा जा रहा है, यह क्या है? या तो आप जान-बूझ कर कोई मजाक कर रहे हैं, और या फिर हम किसी पागलखाने में बैठे हैं। कृपा करके यह किताब बंद की जाए और कुछ बातचीत हो, जिसमें कुछ अर्थ हो।

गुरजिएफ बहुत हंसा और उसने कहा कि बातचीत भी मेरी ही होगी और यह किताब भी मेरी ही है। और जिस ढंग से तुम अर्थ खोजने के आदी हो, उस ढंग से मेरी बातचीत में कोई भी अर्थ नहीं है। मैं किसी ऐसी जगह से बोल रहा हूं, जहां मुझे पता है कि मैं क्या बोल रहा हूं; लेकिन शब्द छोटे पड़ जाते हैं। और जब मैं उनको शब्दों में रखता हूं, तब मुझे लगता है सब फीका हो गया।

और ये इतने जो बेबूझ शब्द हैं, इतनी जो लंबी किताब है... एक हजार पृष्ठ की किताब है। और जब पहली दफे गुरजिएफ ने छापी, तो उसके नौ सौ पन्ने जुड़े हुए थे, कटवाए नहीं थे। सिर्फ सौ पन्ने की भूमिका कटी हुई थी और खुली थी। और एक वक्तव्य था भूमिका के साथ कि अगर आप सौ पन्ने पढ़ कर भी सोचें कि आगे पढ़ेंगे, आगे पढ़ने वाले हैं, तो पन्ने काटें, अन्यथा किताब को दूकानदार को वापस कर दें।

लेकिन सौ पन्ने के आगे जाना बहुत मुश्किल है। और मैं समझता हूं कि जमीन पर दस-बारह आदमी खोजने मुश्किल हैं, जिन्होंने गुरजिएफ की पूरी किताब ईमानदारी से पढ़ी हो। बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि पांच सौ पन्ने पढ़ जाएं, जब कहीं एकाध वाक्य ऐसा लगता है कि इसमें कुछ मतलब है। मतलब तो सब में है, लेकिन मतलब इतना ज्यादा है कि शब्द छोटे पड़ जाते हैं। वह ऐसे ही जैसे कि एक बड़े आदमी को छोटे बच्चे के कपड़े पहना दिए हैं, और वह एक मजाक मालूम पड़े। शरीर उसका कहीं से भी निकल-निकल पड़ता हो कपड़ों से। और कपड़े कपड़े न मालूम पड़ें, बल्कि जंजीरें मालूम पड़ें।

भाषा, व्याकरण वक्तव्य को पूर्ण नहीं बनाती। सुडौल बनाती है, सुरुचिपूर्ण बनाती है, स्वादिष्ट भी बनाती है; लेकिन पूर्ण नहीं बनाती। वक्तव्य तो पूर्ण होता है उस भीतर के प्रकाश से, जो शब्दों की कंदील के

बाहर निकलता है। अगर कंदील थोड़ी भी गंदी हो, थोड़ी भी अस्पष्ट हो, तो वह प्रकाश भी अस्पष्ट हो जाता है। लेकिन कंदील कितनी ही स्वच्छ हो तो भी वह प्रकाश पूरा प्रकट नहीं हो पाता। क्योंकि कांच कितना ही स्वच्छ और ट्रांसपैरेंट क्यों न हो, फिर भी एक बाधा है।

"एक बढ़िया वक्तव्य प्रतिवाद के लिए दोषरहित होता है। एक कुशल गणक को गणित्र की जरूरत नहीं रहती।"

आप जोड़ते हैं दो और दो, तो आपको ऐसा जोड़ना नहीं पड़ता अंगुलियों पर कि एक, दो, तीन, चार; एक छोटे बच्चे को जोड़ना पड़ता है। छोटे बच्चे की अंगुलियां जोर से पकड़ लो, वे जोड़ न पाएंगे। क्योंकि जब तक अंगुलियों को गति न मिले, उनको कठिनाई हो जाएगी।

आदिम कौमें हैं, जिनके पास दस से ज्यादा की संख्या नहीं है। दस के बाद उनको फिर एक, दो से शुरू करना पड़ता है। और अगर सौ, दो सौ की संख्या में कोई चीज पड़ी हो तो फिर वे संख्या गिनते ही नहीं। फिर वे कहते हैंः ढेर, असंख्य। फिर उसमें कोई संख्या नहीं रह जाती। क्योंकि गिनने का जो गणित्र है उनका, वे अंगुलियां हैं। ऐसे तो हमारा सारा गणित ही अंगुलियों पर ही खड़ा है। इसलिए हमारे दस के आंकड़े बुनियाद में हैं। क्योंकि दस अंगुलियां हैं आदमी को, और कोई कारण नहीं है। दस डिजिट--एक से लेकर दस तक। और फिर इसके बाद ग्यारह पुनरुक्ति है। फिर इक्कीस पुनरुक्ति है। असल में, आदमी पहले अंगुलियों पर ही गिनता रहा है। तो दस तक तो गिन लेता था, फिर से शुरू करना पड़ेगा एक से। ग्यारह भी फिर से शुरू करना है। इक्कीस फिर से शुरू करना है। दस में हमारी भी संख्या पूरी हो जाती है। अंगुलियों की वजह से हमारा गणित दस के डिजिट और आंकड़ों पर खड़ा है।

लेकिन जब आप गणित में कुशल हो जाते हैं, तो आपको ऐसा गिनना नहीं पड़ता कि दो और दो चार। दो और दो किसी ने कहे कि आपको भीतर चार हो जाते हैं। लेकिन दो-दो में तो आसान है, कोई बड़ी लंबी संख्या बोल दे, दस-बारह आंकड़ों की संख्या बोल दे और कह दे कि गुणा करो इसमें दस-बारह आंकड़ों की संख्या से। तब आपको गणित्र का उपयोग करना पड़े। कोई न कोई विधि का उपयोग करना पड़े।

लेकिन रामानुजम था, वह इसमें भी उपयोग नहीं करेगा। जब रामानुजम पहली दफा आक्सफोर्ड ले जाया गया और आक्सफोर्ड के प्रोफेसर हार्डी ने, जो वहां गणित के बड़े से बड़े ज्ञानी व्यक्ति थे, ऐसे सवाल रामानुजम को दिए जिनको बड़े से बड़ा गणितज्ञ भी पांच घंटे से पहले में हल नहीं कर सकता--उनको हल करने की विधि ही उतना वक्त लेगी, इतने बड़े आंकड़े थे--और हार्डी लिख भी नहीं पाया तख्ते पर और रामानुजम ने उत्तर बोला। तो हार्डी ने कहा कि पहली दफा मुझे गणितज्ञ दिखाई पड़ा। अब तक जो थे, वे सब बच्चे थे, अंगुलियों पर गिन रहे थे--अंगुलियां कितनी ही बड़ी हो जाएं! हार्डी ने कहा, मैं भी बच्चा मालूम पड़ा जो कि आंकड़े गिनता है अंगुलियों पर--अंगुलियां कितनी ही बड़ी हो जाएं! हार्डी इधर सवाल बोलें, उधर उत्तर आ जाए। यह क्या हो रहा था? यह ज्यादा पढ़ा-लिखा लड़का नहीं था। मैट्रिक फेल था। यह पश्चिम के गणित के लिए एक बड़ा भारी प्रश्नचिह्न बन गया कि यह हो क्या रहा है? इसका मस्तिष्क क्या कर रहा है? इसके मस्तिष्क की गति कैसी है?

रामानुजम बीमार था। टी.बी. से मरा। हार्डी उसे देखने आए थे हास्पिटल में। गाड़ी बाहर खड़ी करके भीतर आए। रामानुजम ने ऐसा बाहर देखा, गाड़ी पर जो नंबर था, रामानुजम ने कहा कि हार्डी, यह नंबर सबसे कठिन नंबर है गणित के लिए। और उस नंबर के संबंध में उसने कुछ बातें कहीं। हार्डी, रामानुजम के मरने के बाद सात साल मेहनत करता रहा, कि उसने जो मरते वक्त नंबर देख कर कहा था, वह कहां तक सही है।

सात साल में नतीजे निकाल पाया कि उसने जो कहा था, वह सही है। सात साल की लंबी मेहनत? और हार्डी कोई छोटा-मोटा गणितज्ञ नहीं है। इस सदी के श्रेष्ठतम गणितज्ञों में एक है।

लाओत्से कहता है, लेकिन अगर कुशल हो गणक, अगर गणित की प्रतिभा हो, तो फिर सहारों की जरूरत नहीं पड़ती। ये सब सहारे हैं। तब क्या बिना सहारों के हल हो जाता है सवाल?

हमारे लिए कठिन है, क्योंकि यह बात इंट्यूटिव है। हम तो जो भी करते हैं वह बुद्धि से करते हैं। बुद्धि को सहारा चाहिए। लेकिन बुद्धि के पीछे एक प्रज्ञा भी है, जो बिना सहारे के करती है। बुद्धि तो चलती है चींटी की चाल और प्रज्ञा छलांग लेती है। प्रज्ञा में विधि नहीं होती, मेथड नहीं होता। बुद्धि में मेथड होता है, विधि होती है। बुद्धि को कुछ भी करना है तो वह एक-एक कदम चल कर, पूरी विधि करेगी, तो ही नतीजे पर पहुंच पाएगी। बुद्धि के लिए नतीजा एक लंबी प्रोसेस, एक लंबी प्रक्रिया है। उसके पीछे एक प्रज्ञा है, जिसको बर्गसन ने इंट्यूशन कहा है। वह प्रज्ञा किसी विधि से नहीं चलती, सिर्फ छलांग लेती है। प्रथम से अंतिम पर सीधी पहुंच जाती है; बीच की विधि होती ही नहीं।

अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि जो श्रेष्ठतम खोजें हैं, वे बुद्धि के द्वारा नहीं होतीं, वे प्रज्ञा के द्वारा होती हैं। क्योंकि जिसका हमें पता ही नहीं है, उसकी विधि हम कर कैसे सकते हैं? विधि बाद में हो सकती है। जिसका हमें पता ही नहीं है, उसकी विधि हम कर कैसे सकते हैं? इसलिए इस जगत में जो भी बड़ी से बड़ी विज्ञान की खोजें हुई हैं, वे सब छलांगें हैं।

मैडम क्यूरी को नोबल प्राइज मिली एक छलांग पर। वह एक गणित हल कर रही थी, जो हल नहीं होता था। वह परेशान हो गई थी, वह हताश हो गई थी। और उस जगह आ गई थी, जहां उसने एक दिन सांझ को--कई रातें और कई दिन खराब करने के बाद--सब कागज-पत्र बंद करके टेबल के भीतर डाल दिए और उसने कहा, इस झंझट को ही छोड़ देना है। रात वह सो गई।

सुबह उठ कर वह बहुत हैरान हुई, टेबल पर जो लेटरपैड पड़ा था, उस पर उत्तर लिखा हुआ था, जिसकी वह तलाश में थी। कठिनाई और बढ़ गई, क्योंकि अक्षर उसी के थे। और तब उसने विचारा तो उसे ख्याल आया एक स्वप्न का--कि रात उसे स्वप्न आया था कि वह उठी है और कुछ टेबल पर लिख रही है।

वह स्वप्न नहीं था; वह वस्तुतः उठी थी और टेबल पर लिख गई थी। विधि तो बुद्धि ने पूरी कर ली थी महीनों तक, और हल नहीं आता था। यह हल कहां से आया? और यही हल उसकी नोबल प्राइज का कारण बना। फिर बुद्धि ने प्रोसेस कर ली पीछे। जब हल हाथ में लग गया--सवाल हाथ में था ही, उत्तर भी हाथ लग गया--तो फिर बुद्धि ने बीच की कड़ी पूरी कर लीं। और वे कड़ी सही साबित हुईं।

इसको बर्गसन कहता है इंट्यूशन। वह कहता है, इंट्यूशन एक छलांग है--चींटी की तरह नहीं, मेंढक की तरह। चींटी सरकती है और चलती है, और मेंढक छलांग लेता है। बुद्धि चलती है और सरकती है, प्रज्ञा छलांग लेती है।

जब लाओत्से कहता है कि कुशलता पूरी, तो उसका अर्थ प्रज्ञा से होता है। आपने एक सवाल लाओत्से से पूछा। अगर आप बर्ट्रेंड रसेल से पूछेंगे तो वह सोचेगा। लाओत्से सोचेगा नहीं, सिर्फ उत्तर देगा। वह एक छलांग है। उसमें कोई प्रोसेस नहीं है। अगर प्रोसेस भी करनी है तो पीछे की जा सकती है। बुद्धि के लिए प्रोसेस पहले है, प्रक्रिया, प्रज्ञा के लिए प्रक्रिया बाद में है।

लेकिन यह बात बर्गसन की, लाओत्से की और अनंत-अनंत अंतःप्रज्ञावादियों की अब तक वैज्ञानिक नहीं हो सकी थी, क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि छलांग भी एक प्रोसेस है। मेंढक छलांग लेता है तो भी बीच का

रास्ता छोड़ थोड़े ही देता है। तेजी से निकलता है, बस इतनी ही बात है। हवा में से निकलता है, मगर निकलता तो है ही। बीच की विधि से निकलता तो है ही। चींटी भी निकलती है, वह जमीन से निकलती है। यह मेंढक कितनी ही तेजी से छलांग ले ले, लेकिन बीच के हिस्से में होता तो है। और इसके भी स्टेप्स तो हैं ही। यह विज्ञान को अड़चन थी कि प्रज्ञा भी अगर छलांग लेती है तो उसका मतलब इतना ही है कि कुछ तेजी से कोई घटना घट जाती है। लेकिन घटती तो है ही। प्रक्रिया होती है।

लेकिन अभी नवीनतम फिजिक्स की खोजों ने विज्ञान के इस सवाल को, इस संदेह को मिटा दिया। इस सदी की जो सबसे बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना घटी है फिजिक्स में, वह यह है कि जैसे ही हम अणु का विस्फोट करते हैं और इलेक्ट्रांस पर पहुंचते हैं, तो एक बहुत अनूठी घटना घटती है, जो कि संभवतः आने वाली सदी में नए विज्ञान का आधार बनेगी। वह घटना यह है कि प्रत्येक अणु के बीच में एक तो न्यूक्लियस है, एक बीच का केंद्र है, और उसके आस-पास घूमते हुए इलेक्ट्रान हैं। वह जो परिधि है, वह सबसे बड़ा चमत्कार है। इलेक्ट्रान अ नाम के स्थान पर है, फिर ब नाम के स्थान पर है, फिर स नाम के स्थान पर है। लेकिन बीच में नहीं पाया जाता; अ और ब के बीच में होता ही नहीं। अ पर मिलता है, फिर थोड़ी दूर चल कर ब पर मिलता है, फिर थोड़ी दूर चल कर स पर मिलता है; लेकिन अ, ब और स के बीच में जो खाली जगह है, वहां होता ही नहीं। तो विज्ञान कहता है, वह अ से ब पर पहुंचता कैसे है? क्योंकि बीच में होता ही नहीं। मेंढक तो बीच में भी होता है, अ से ब पर कूदता है, बीच में होता है। लेकिन यह इलेक्ट्रान अ से जब ब पर जाता है, तो बीच में होता ही नहीं। अ पर होता है, देन इट डिसएपीयर्स, तब वह खो जाता है, फिर अगेन इट एपीयर्स, वह ब पर फिर प्रकट होता है।

इससे एक बहुत अनूठी कल्पना--अभी तो कल्पना है, लेकिन सभी कल्पनाएं पीछे सत्य हो जाती हैं--एक अनूठी कल्पना हाथ में आई है। और वह यह कि अगर हमें आदमी को दूर की यात्रा पर भेजना है, तो चांद तक पहुंचना तो बहुत अड़चन की बात नहीं थी। बहुत अड़चन की थी, लेकिन फिर भी बहुत अड़चन की न थी; क्योंकि चांद बहुत फासले पर नहीं है। अगर हम अपने निकटतम तारे पर भी पहुंचना चाहें तो एक आदमी की जिंदगी कम है। वह बीच में ही मर जाएगा। तो इसका मतलब यह हुआ कि हम कुछ भी उपाय कर लें... । और अभी हमारे जो साधन हैं पहुंचने के, वे इतने तीव्र भी नहीं हैं। लेकिन कितने ही तीव्र हो जाएं, क्योंकि अधिकतम तीव्रता जो गति की है वह प्रकाश की है, उससे बड़ी कोई गति अभी तक नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं, प्रकाश की गति के यान बन जाएं, एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड की रफ्तार से चलें, तो भी जो निकटतम तारा है वह हमसे चालीस प्रकाश वर्ष दूर है। मतलब अगर इतनी रफ्तार से आदमी जाए तो चालीस साल में पहुंचेगा और चालीस साल में वापस आएगा। अस्सी साल में आशा नहीं है उसकी कि वह बचे। और अगर वह बच भी जाए तो जिन्होंने भेजा था उनसे उसकी मुलाकात न होगी। और जिनसे उनकी मुलाकात होगी--हिप्पी और इन सबसे--वे उसको कुछ समझेंगे नहीं कि काहे के लिए आए हैं? क्या प्रयोजन है? कहां गए थे?

इस घटना से एक कल्पना पैदा हुई। और वह कल्पना यह है कि अगर हमें कभी भी इतने दूर की यात्रा करनी तो उसका उपाय यान नहीं है, कोई माध्यम नहीं है, प्रोसेस नहीं है--छलांग! बड़ा मुश्किल मामला है। वैज्ञानिक कहते हैं आज नहीं कल--अभी कल्पना है--हम एक ऐसा यंत्र खोज लेंगे कि एक आदमी को उस यंत्र में रख दें, एंड ही डिसएपीयर्स फ्रॉम हियर, वह यहां से विलीन हो गया, एंड देन ही एपीयर्स ऑन ए प्लैनेट, ऑन ए स्टार। और बीच की प्रोसेस गोल, बीच में कोई उपाय नहीं। यहां से अप्रकट हो जाता है, शून्य हो जाता है,

और वहां प्रकट हो जाता है। जब तक हम ऐसा कोई उपाय न खोज लें, तब तक तारों तक नहीं पहुंचा जा सकता।

लेकिन आदमी पहुंच कर रहेगा। कोई उपाय खोजा जा सकता है। और अगर इलेक्ट्रान एक जगह से विलीन हो जाता है और दूसरी जगह प्रकट हो जाता है, तो आदमी भी इलेक्ट्रान का जोड़ है, इसलिए अड़चन नहीं है। गणित में अड़चन नहीं है। यह हो सकता है। क्योंकि अगर इलेक्ट्रान कर ही रहे हैं सदा से यह, तो आज नहीं कल आदमी भी क्यों न कर सके? तब हमें पहली दफे छलांग का पता चलेगा कि छलांग क्या है।

लेकिन प्रज्ञावादी सदा से कहते रहे हैं कि जो पूर्णता है, वह प्रज्ञा की है। बुद्धि तो हिसाब लगाती है। हिसाब में भूल-चूक हो सकती है। जहां हिसाब ही नहीं है और निष्कर्ष सीधा है, वहीं, वहीं पूर्णता संभव है।

"ठीक से बंद हुए द्वार में और किसी प्रकार का बोल्ट लगाना अनावश्यक है; फिर भी उसे खोला नहीं जा सकता।"

लेकिन हम जीवन में हमेशा एक के ऊपर एक ताले लगाए चले जाते हैं। उसका कारण है, भीतर हम असुरक्षित हैं। कितने ही ताले लगाएं, कोई अंतर नहीं पड़ता। तालों पर ताले लगाए चले जाते हैं, कोई अंतर नहीं पड़ता। असुरक्षा भीतर है।

लाओत्से कहता है, जो ठीक से सुरक्षित है, कुछ भी हो जाए जगत में, वह असुरक्षित नहीं होता।

और ठीक से सुरक्षा क्या है? ठीक से सुरक्षित वही है--वह नहीं जिसने सब सुरक्षा के इंतजाम कर लिए, वह नहीं। आपने दरवाजे पर ताला लगा लिया, खिड़कियों पर ताले लगा दिए, सब कर लिया, फिर भी आप सुरक्षित नहीं हैं। सब ताले तोड़े जा सकते हैं। क्योंकि जिस बुद्धि से ताले लगते हैं, वही बुद्धि बाहर भी है। और ध्यान रहे, लगाने वालों से खोलने वालों के पास सदा ज्यादा बुद्धि होती है। कम बुद्धि वाले लगाने का काम करते हैं, क्योंकि डरे रहते हैं। ज्यादा बुद्धि वाले खोलने का काम करते हैं। इसलिए कितने ही ताले लगाओ, कोई खोल लेगा।

हुडनी ने पश्चिम में सब तरह के ताले खोल कर बताए। ऐसा कोई ताला नहीं था, जो हुडनी नहीं खोल लेगा। और बिना चाबी के। और हुडनी कोई साईंबाबा नहीं था। और हुडनी कहता था कि मेरे हाथ में कोई मंत्र नहीं है, कोई सिद्धि नहीं है। मैं सिर्फ कुशल हूं। हुडनी बहुत ईमानदार आदमी था। इतने ईमानदार आदमी भारत के चमत्कारी साधुओं में भी खोजना मुश्किल हैं। हुडनी ने कहा कि मैं सिर्फ कुशल हूं; बस। ट्रिक्स हैं।

हुडनी पर सब तरह के तालों का प्रयोग किया गया। सिर्फ एक बार वह असफल हुआ; और वह इसलिए हुआ कि दरवाजा खुला था और ताला डाला नहीं गया था। और इसलिए वह नहीं निकल पाया। एक बार झंझट में पड़ गया। ऐसे तो हजारों जेलखानों में, पश्चिम के सारे बड़े जेलखानों में उस पर प्रयोग किए गए। पुलिस के पास जितने उपाय थे, सब उपाय किए गए। और इतना कम समय उसको दिया गया खोलने का कि चाबी भी हो तो भी नहीं खोल सकते। चाबी भी तो समय लेगी न ताले को खोलने में! आखिर ताले में चाबी को जाना; और फिर ताला अगर उलझा हुआ हो और होशियारी से बनाया गया हो और गणित का उसमें हिसाब हो, तो बहुत मुश्किल है। समय तो लगेगा। उसको बांध कर डाल दिया है पानी के भीतर, अब जितनी देर वह पानी के भीतर सांस ले सकता है, उतना ही समय है। जितनी देर सांस रोक सकता है, कुछ सेकेंड। और हर ताले को वह पानी के भीतर से खोल कर बाहर आ जाएगा। हर हथकड़ी को उसने खोल कर बता दिया। हर जेलखाने के बाहर आकर खड़ा हो गया। और उसने कहा कि मैं कोई चमत्कारी नहीं हूं, मेरे पास कोई चमत्कार नहीं, कोई सिद्धि नहीं। मैं सिर्फ कुशल हूं।

सिर्फ एक बार दिक्कत में पड़ गया; मजाक हो गई। जब सब ताले वह खोल चुका, तो स्काटलैंड यार्ड ने एक मजाक किया। दरवाजे के भीतर उसको जेल में बंद किया और दरवाजा अटकाया, ताला लगाया नहीं। वह मुश्किल में पड़ गया। वह बेचारा लगा कर अपना मन ताला खोलने की सोचता रहा होगा। ताला था नहीं; खोलने का कोई उपाय नहीं था। अटक गया, पहली दफा, एक ही दफा।

आप कितना ही इंतजाम कर लें बाहर, सब इंतजाम तोड़ा जा सकता है। और आप भी जानते हैं कि जो इंतजाम किया जा सकता है, वह तोड़ा जा सकता है। इसलिए भय बना ही रहता है, असुरक्षा बनी ही रहती है। फिर जितना आप इंतजाम कर लेते हैं, उतनी असुरक्षा बढ़ जाती है। होता यह है कि किस पर करिए भरोसा? एक पहरेदार दरवाजे पर खड़ा कर दिया। अब पहरेदार पर एक पहरेदार खड़ा करना पड़े; उस पर एक पहरेदार खड़ा करना पड़े। कहां किस पर करिए भरोसा? और आखिरी आदमी तो खतरनाक रहेगा ही। एक कड़ी तो आपको असुरक्षित रखनी ही पड़ेगी।

इसलिए लाओत्से कहता है कि ये सारे जो इंतजाम पर इंतजाम हैं, सुरक्षा पर सुरक्षा है, यह बेमानी है। एक ही सुरक्षा है। और वह सुरक्षा हैः पूरी तरह असुरक्षा को स्वीकार कर लेना। पूरी तरह असुरक्षा को स्वीकार कर लेना। जिसने मान ही लिया कि असुरक्षित हूं, अब कोई भय न रहा। यह उस हालत में आ गया, जिसमें हुडनी आ गया। दरवाजा खुला ही था और खोल न पाया। जो आदमी असुरक्षित है, उसकी इस जगत में कोई असुरक्षा नहीं है। असुरक्षा का भय ही समाप्त हो गया।

ऐसा नहीं है कि उसकी मौत नहीं होगी। और ऐसा भी नहीं है कि कोई उसको छुरा मार दे तो वह नहीं मरेगा। मौत भी होगी, मरेगा भी; लेकिन असुरक्षा का कोई भय नहीं है। मौत भी उसे प्रियतम का मिलन होगी और छुरा भी उसी की भेंट। इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। जो असुरक्षित होने को राजी है, उसकी सुरक्षा पूर्ण है। जो सुरक्षा की चेष्टा में लगा रहेगा, उसकी असुरक्षा बढ़ती चली जाती है।

"ठीक से बंधी गांठ के लिए रस्सी की कोई जरूरत नहीं है; फिर भी उसे अनबंधा नहीं किया जा सकता। संत लोगों का कल्याण करने में सक्षम हैं; इसी कारण उनके लिए कोई परित्यक्त नहीं है।"

यह थोड़ी सी सूक्ष्म बात है। लाओत्से कहता है कि संतों के लिए कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि संत न हो सके।

"देयरफोर दि सेज इ.ज गुड एट हेल्पिंग मैन, फॉर दैट रीजन देयर इ.ज नो वन रिजेक्टेड एज यूजलेस।"

अगर कोई संत आपसे कहे कि तुम पापी हो और तुम्हें मैं स्वीकार नहीं कर सकता, तो समझना कि वह संत नहीं है। यह तो ऐसा ही हुआ कि एक डाक्टर किसी मरीज को कहे कि तुम मरीज हो, तुम्हें मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं? मरीज के लिए ही उसका होना है। संत का होना ही उसके लिए है, जो कि जीवन में भटक गया, खो गया। लेकिन अगर संत कहे कि तुम अपात्र हो तो जानना कि संत स्वयं अपात्र है। अपात्रता की भाषा संत की भाषा नहीं है। अपात्रता की भाषा उन कमजोर साधुओं की भाषा है, जो लोगों को बदलने की कीमिया जिनके पास नहीं है। तो वे उनको ही चुनते हैं, जो पात्र हैं। पात्र का मतलब यह कि जिनको बदलने के लिए उनको कुछ भी न करना पड़ेगा।

एक गांव में बुद्ध आए हैं। और रास्ते में जब वे आ रहे थे, तो गांव की वेश्या दूसरे गांव जा रही थी। और उसने बुद्ध को कहा कि आप गांव जा रहे हैं; वर्षों से मैं प्रतीक्षा करती थी। और आज मजबूरी है कि मुझे दूसरे गांव जाना पड़ रहा है। लेकिन सांझ होते-होते हर हालत में लौट आऊंगी। तो जब तक मैं न लौट आऊं, बोलना मत।

सारा गांव इकट्ठा हो गया। पंडित, पुजारी, ज्ञानी, सब आकर बैठ गए। और बुद्ध बार-बार देखने लगे--वह वेश्या अब तक नहीं आई है। आखिर एक आदमी ने कहा, आप शुरू क्यों नहीं करते, सब तो आ चुके हैं। गांव में जो भी आने योग्य थे, सब आ चुके हैं। अब किसकी प्रतीक्षा है? बुद्ध ने कहा कि किसी की प्रतीक्षा है। जिसके लिए बोलने मैं आया हूं, वह अभी मौजूद नहीं। लोगों ने चारों तरफ देखा, कोई ऐसा आदमी गांव में नहीं था जो धार्मिक हो और मौजूद न हो। कोई प्रतिष्ठित आदमी ऐसा न था जो गांव में हो और मौजूद न हो। किसकी प्रतीक्षा है?

और तब अचानक वेश्या आई और बुद्ध ने बोलना शुरू किया। गांव बड़ा चिंतित हो गया। बोलने के बाद गांव के लोगों ने बुद्ध से कहा, क्या आप इस वेश्या की प्रतीक्षा कर रहे थे? इस अपात्र की? बुद्ध ने कहा, जो पात्र हैं, वे मेरे बिना भी तर जाएंगे। जो अपात्र हैं, उनके लिए ही मैं रुका हूं। लेकिन ध्यान रहे, जो अपने को पात्र मानता है, समझता है, उससे बड़ा अपात्र नहीं होता। और जो मानता है कि मैं अपात्र हूं, यह मानना ही उसकी पात्रता बन जाती है। यह विनम्रता उसके लिए द्वार बन जाती है।

संत किसी के लिए परित्यक्त नहीं करते। कोई भी निरुपयोगी नहीं है।

इससे भी गहरी बात दूसरे सूत्र में है, "संत सभी चीजों की परख रखते हैं; इसी कारण उनके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है।"

यह और भी कठिन है।

"ही इ.ज गुड एट सेविंग थिंग्स; फॉर दैट रीजन देयर इ.ज नथिंग रिजेक्टेड।"

जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसका संत उपयोग करना नहीं जानते। उन्हें जहर दे दें, वे उसकी औषधि बना लेंगे। उन्हें जहर दे दें, वे उसकी औषधि बना लेंगे। उनके पास क्रोध हो, वे उसमें से दया का फूल खिला लेंगे। उनके पास कामवासना हो, उसी में ब्रह्मचर्य की सुगंध उठेगी। उनके पास ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे वे त्यागते हैं। रूपांतरित करते हैं, ट्रांसफार्म करते हैं।

दो तरह के लोग हैं इस जगत में। एक वे, जो अपने को काट-काट कर सोचते हैं कि आत्मा को पा लेंगे। तो जो-जो उन्हें गलत लगता है, उसे काटते चले जाते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं, जो उन्हें गलत लगता है, उसे काट कर वे अपनी ही ऊर्जा को काट रहे हैं। और सब काटने के बाद--अपना क्रोध काट दें, अपना सेक्स काट दें, अपना लोभ काट दें--सब काट दें, और तब आपको पता चलेगा आप बचे ही नहीं।

काटने का ढंग आत्मघाती है, स्युसाइडल है। रूपांतरण वास्तविक धर्म है। संत रूपांतरित करते हैं, जो भी उनके पास है। इस विराट अस्तित्व ने उन्हें जो भी दिया है, उसे वे सौभाग्य मान कर स्वीकार करते हैं। और उसमें जो छिपा है, उसे प्रकट करने की कोशिश करते हैं।

ऐसा किया जा सकता है अब कि आदमी को हम सेक्स से बिल्कुल मुक्त कर सकते हैं वैज्ञानिक विधि से। अब कोई कठिनाई नहीं है। हम आदमी को बिल्कुल क्रोधहीन कर सकते हैं वैज्ञानिक विधि से। क्योंकि क्रोध को पैदा होने के लिए कुछ रासायनिक तत्व जरूरी हैं। वे रासायनिक तत्व बहुत थोड़े से हैं। खून में उनको बाहर निकाला जा सकता है। आप क्रोध नहीं कर पाएंगे फिर।

पावलव कुत्तों पर काम कर रहा था। उसने कुत्तों के भीतर जिन-जिन केमिकल्स से क्रोध जन्मता है, उनको अलग निकाल लिया। फिर कुत्ते को आप कितना ही मारें, कल तक जो शेर की तरह हमलावर था, वह आज बैठा रहेगा, पूंछ हिलाता रहेगा। लेकिन उस कुत्ते के चेहरे से सब रौनक भी खो जाती है। उसकी आंखें

धूमिल हो जाती हैं। वह एक मशीन की भांति हो जाता है। जो क्रोध भी नहीं कर सकता, उसमें सब निस्तेज हो जाता है।

संत क्रोध को तेज बना लेते हैं। वह ऊर्जा है। इस जगत में सभी ऊर्जाएं हैं। उनका हम क्या उपयोग करते हैं, इस पर निर्भर करता है। इस जगत की कोई ऊर्जा बुरी नहीं, कोई ऊर्जा भली नहीं; कोई शुभ नहीं, कोई अशुभ नहीं। इसलिए यह मत कहना कि कामवासना पाप है, यह मत कहना कि क्रोध पाप है, यह मत कहना कि लोभ पाप है। इतना ही कहना कि लोभ ऊर्जा है, कामवासना ऊर्जा है, क्रोध ऊर्जा है, शक्ति है। इस शक्ति का उपयोग पाप हो सकता है, इस शक्ति का उपयोग पुण्य हो सकता है। शक्ति निष्पक्ष है। उपयोग आपकी चेतना पर निर्भर है। जो नासमझ हैं, वे शक्तियों से लड़ते हैं। जो समझदार हैं, वे चेतना को रूपांतरित करते हैं। और चेतना के प्रति रूपांतरण के साथ शक्तियां ऊपर उठती चली जाती हैं। और जिनको कल हमने नरक की लपटें समझा था, वे ही एक दिन स्वर्ग के फूल बन जाती हैं।

लाओत्से कहता है, "इसे ही प्रकाश का चुराना--इस ट्रांसफार्मेशन को, यह जो अंतर-रूपांतरण है--इसको ही प्रकाश का चुराना कहते हैं। दिस इ.ज काल्ड स्टीलिंग दि लाइट।"

आज इतना ही। कीर्तन करें, फिर जाएं।

छप्पनवां प्रवचन

शिष्य होना बड़ी बात है

Chapter 27 : Part 2

On Stealing The Light

Therefore the good man is the Teacher of the bad.
And the bad man is the lesson of the good.
He who neither values his teacher
Nor loves the lesson
Is one gone far astray,
Though he be learned.
Such is the subtle secret.

अध्याय 27 : खंड 2

प्रकाशोपलब्धि

इसलिए सज्जन दुर्जन का गुरु है;
और दुर्जन सज्जन के लिए सबक है।
जो न अपने गुरु को मूल्य देता है,
और न जिसे अपना सबक पसंद है,
वह वही है जो दूर भटक गया है,
यद्यपि वह विद्वान हो सकता है।
यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है।

जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उपयोगी न हो--वह चाहे अच्छा हो या बुरा। अच्छा और बुरा हमारी परिभाषाओं के कारण है। लेकिन अस्तित्व में उसकी अपनी अपरिहार्य जगह है। इसलिए जो जानते हैं, वे बुरे का भी उपयोग कर लेते हैं। और जो नहीं जानते, उनके लिए भला भी बाधा बन जाता है। उपयोग समझ पर निर्भर है, वस्तुओं पर नहीं। नासमझ को मोक्ष में भी रख दिया जाए तो वह नरक का रास्ता खोज लेगा। समझदार को नरक भी मोक्ष का ही रास्ता बनने वाला है।

किसी ने पश्चिम के एक बहुत विचारशील आदमी एडमंड बर्क को एक बार पूछा कि तुम स्वर्ग जाना पसंद करोगे या नरक?

तो बर्क ने कहा, मैं जानना चाहूंगा, सुकरात कहां हैं? बुद्ध कहां हैं? जीसस कहां हैं? अगर वे नरक में हैं तो मैं नरक ही जाना पसंद करूंगा। अगर वे स्वर्ग में नहीं हैं तो स्वर्ग मेरे लिए नहीं है।

जिसने पूछा था, वह हैरान हुआ। उसने कहा, हम तो सोचते थे तुम बेशर्त स्वर्ग जाना चाहोगे। सभी बेशर्त स्वर्ग जाना चाहते हैं। लेकिन सुकरात, जीसस या बुद्ध नरक में हों तो तुम नरक भी जाना चाहते हो, कारण क्या है?

बर्क ने कहा, जीसस, बुद्ध और सुकरात जहां भी होंगे, वहां स्वर्ग अब तक बन चुका होगा। और जीसस और बुद्ध और सुकरात जहां नहीं होंगे, वह स्वर्ग कभी का उजड़ चुका होगा। वहां जाने का अब कोई अर्थ नहीं है।

व्यक्ति पर निर्भर करता है, स्थितियों पर नहीं। लोग अक्सर रोते हैं कि जीवन दुख है। और इसका उन्हें पता ही नहीं कि वे ही उस दुखपूर्ण जीवन के कारण हैं। परिस्थितियों में नहीं है स्वर्ग और नरक, व्यक्तियों के भीतर छिपा है। परिस्थितियां केवल पर्दे बन जाती हैं; उन पर्दों पर, जो भीतर छिपा है, उसकी तस्वीरें चलने लगती हैं। लेकिन जो भी हम देखते हैं परिस्थिति में, वह हमारा ही प्रक्षेपण है। हम ही परिस्थितियों में फैल कर दिखाई पड़ते हैं। परिस्थितियां दर्पण से ज्यादा नहीं हैं। फिर हम परिस्थितियों को दोष दिए जाते हैं। और परिस्थितियों को दोष देने से कभी कोई आदमी बदलता नहीं। बल्कि परिस्थितियों को दोष देने के कारण बदलने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती।

लाओत्से कहता है कि संतजन कुछ भी अस्वीकार नहीं करते। जीवन उन्हें जो भी देता है, वे उसे बदलने की कीमिया जानते हैं। अस्वीकार तो वे करते हैं, जो उसे बदलने की कीमिया नहीं जानते। जिनको हमने बुरा कहा है, अशुभ कहा है, पाप कहा है, संत उन्हें भी अस्वीकार नहीं करते। क्योंकि उनके पास वह पारस है, जो उन्हें पुण्य बना देगा। उसके स्पर्श मात्र से, वह जो जहर है, वह अमृत हो जाएगा।

हमें इसका ख्याल ही नहीं है, फिर भी हम अमृत की तलाश करते हैं। हमें इसका ख्याल ही नहीं है कि हमारे हाथ में अमृत हो तो जहर के अतिरिक्त और कुछ हमें मिलने वाला नहीं है। हमारे हाथ में वह कला है कि जहर अमृत हो जाए। या हमारे हाथ में वह कला है कि अमृत जहर हो जाए। हमें अपने हाथों का कुछ भी पता नहीं है।

इन हाथों का पता चल जाना ही धर्म की सारभूत रहस्यमय प्रक्रिया है। इस आधे सूत्र को हम समझें।

लाओत्से कहता है, "इसलिए सज्जन दुर्जन का गुरु है।"

इसमें हमें बहुत अड़चन न होगी। इसमें हमें बहुत कठिनाई न होगी कि जो शुभ है, वह उसका गुरु हो जो अशुभ है। जो ज्ञानी है, वह उसका गुरु हो जो अज्ञानी है। जो भटक गया है रास्ते से, वह उसे गुरु माने जो रास्ते पर है। जो प्रकाश है, वह अंधेरे में भटके लोगों के लिए गुरु हो, यह हमारी समझ में आ सकता है।

दूसरा हिस्साः "और दुर्जन सज्जन के लिए सबक है। देयरफोर दि गुड मैन इ.ज दि टीचर ऑफ दि बैड, एंड दि बैड मैन इ.ज दि लेसन ऑफ दि गुड।"

लेकिन यह अधूरी है बात कि अच्छा आदमी बुरे का गुरु है। पूरी बात तो तभी होगी जब अच्छा आदमी यह भी समझ ले कि बुरा उसके लिए सबक है। इसका मतलब यह हुआ कि बुरा भी किसी गहरे अर्थ में अच्छे का गुरु हो गया। लाओत्से जीवन के समस्त द्वंद्वों के बीच अद्वैत को खोजता है। तो यह कहना उचित न होगा--केवल

यह कहना उचित न होगा--कि बुरे लोगों ने बुद्ध को अपना गुरु माना। यह भी स्मरण रखना जरूरी है कि बुरे लोग अगर न होते तो बुद्ध अच्छे नहीं हो सकते थे। उन बुरे लोगों की मौजूदगी बुद्ध के लिए सबक बनी। उन बुरे लोगों का दुख, उन बुरे लोगों का नरक बुद्ध के लिए आनंद की तलाश बनी। अब यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध तो भले होकर बुरे लोगों के गुरु बने; लेकिन बुद्ध जब बुद्ध नहीं थे, तब भी बुरे लोग उनके गुरु थे। बुरे लोगों से सीखा जाता है। और ध्यान रखें, जो बुरे आदमियों से नहीं सीख सकेगा, वह खुद आदमी बुरा हो जाएगा।

लेकिन बुरे आदमियों से सीखने के दो ढंग हैं। एक तो बुरे आदमी का अनुकरण करना। तब हमने अमृत को जहर बना लिया। और एक--बुरे आदमी को अनुभव करना, और बुरे की पीड़ा, उसका दुख, उसका संताप अनुभव करना। और यह सबक बन जाए और बुरे होने की संभावना लीन हो जाए। तो हमने जहर को अमृत बना लिया।

लेकिन हम भी बुरे आदमियों से सीखते हैं। सच तो यह है कि हम बुरे आदमियों से ही सीखते हैं। अच्छे आदमियों से हम कभी नहीं सीखते। हम बुरे का ही अनुकरण करते हैं, अच्छे का अनुकरण हम कभी नहीं करते। लेकिन बुरे से हम जो सीखते हैं, वह उसकी बुराई है; वह उसका नरक नहीं, वह उसका पाप है। वह उस पाप के गर्त में पड़ी हुई जो पीड़ा है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती।

मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैं, फलां आदमी बेईमान है और इतना बड़ा मकान उसने खड़ा कर लिया! वह मकान उन्हें दिखाई पड़ता है। उस आदमी की बेईमानी का कोई नरक भी होगा, वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। यह आदमी ज्यादा दिन तक बेईमानी से नहीं बच सकता है, जो आदमी कह रहा है कि फलां आदमी बेईमान है, और देखते हैं, उसने कितना बड़ा मकान बना लिया! यह आदमी ज्यादा दिन बेईमानी से नहीं बच सकता। इसने बेईमान आदमी से सीखना शुरू कर दिया।

लोग कहते हैं, फलां आदमी पापी है और फिर भी प्रतिष्ठित है।

इस आदमी ने पाप कर लिया, यह कह कर ही पाप कर लिया। क्योंकि पाप में जो प्रतिष्ठा देखता है, वह ज्यादा दिन तक पाप से नहीं बच सकता।

लेकिन पाप में कोई नरक भी आपने देखा है कभी? कभी आपने देखा है कि पापी आदमी भला प्रतिष्ठित हो, लेकिन उसके हृदय में एक नासूर भी होता है? वह आपको दिखाई नहीं पड़ता। बेईमान कितना ही सफल हो जाए, उसके भीतर सिवाय असफलता के कुछ भी नहीं होता। और बेईमान कितने ही बड़े महल बना ले, उनके भीतर शांति से रहने की कोई संभावना उसे मिलती नहीं। लेकिन वह आपको नहीं दिखाई पड़ता है। आपको सदा दिखाई पड़ता है कि बुरा आदमी फायदा उठा रहा है। यह किस बात की खबर है?

आप भी सीखेंगे। आप सीखेंगे यह कि बुराई सफल होती है। आप सीखेंगे यह कि भलाई असफल होती है। आप सीखेंगे यह कि पाप की प्रतिष्ठा है, पुण्य की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। आप यह सीखेंगे कि बुरे को स्वर्ग मिलता है और भला नरक में पड़ा रहता है। निश्चित ही इस शिक्षा का परिणाम होगा। आपका जीवन एक अनुकरण बनेगा।

लाओत्से भी कहता है, लेकिन वह कहता है बुरा आदमी अच्छे आदमी के लिए सबक है, पाठ है।

लेकिन वह पाठ तभी हो सकता है, जब हम बुरे आदमी के अंतस को समझना शुरू करें। एक बात तय है, जो आदमी बुराई करता है, बुरा करता है, वह भी मूल्य चुका रहा है। दुख का मूल्य चुका रहा है, ग्लानि का मूल्य चुका रहा है, आत्मदंश, पीड़ा का मूल्य चुका रहा है। उसे भी कुछ मिलना चाहिए। अगर वह एक बड़ा मकान बना ले, तो यह कोई सस्ता सौदा नहीं है। यह सौदा महंगा है। उसने जो खोया है, अगर हमें दिखाई पड़

जाए, तो जो उसने पाया है, वह बहुत महंगा सौदा मालूम पड़ेगा। लेकिन जो उसने खोया है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। जो उसने पाया है, वह हमें दिखाई पड़ता है।

ठीक इससे ही जुड़ी हुई भूल हम दूसरी भी करते हैं। महावीर ने त्याग किया; बुद्ध ने घर छोड़ा। वहां भी हम देखते हैं, उन्होंने क्या छोड़ा। वहां भी हमको नहीं दिखाई पड़ता, उन्होंने क्या पाया। तो जैन अपने शास्त्रों में लिखते हैं कि महावीर के घर इतने रथ थे, इतने हाथी थे, इतने घोड़े थे--एक-एक हिसाब उन्होंने रखा हुआ है--इतने हीरे, इतने माणिक, इतने मोती, इतनी अरबों-अरबों की राशि थी, वह सब छोड़ दी। इसको गिनने में भी उनको मजा आ जाता होगा। इतना सब था!

कहीं मन के कोने में जरूर कोई उनसे कहता होगा कि यह महावीर भी नासमझ रहा। थोड़ी देर सोचें कि आप महावीर की जगह हो जाते, तो यह भूल आप करने वाले नहीं थे, जो महावीर ने की। लेकिन महावीर ने क्या पाया, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिए तो हम कहते हैं, महावीर महात्यागी हैं। अन्यथा हम कहते कि महावीर से परम भोगी जगत में दूसरे नहीं हुए। हमें वही दिखाई पड़ता है जो उन्होंने छोड़ा, इसलिए त्याग। जो उन्होंने पाया, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। नहीं तो हम कहते, परम भोग। और तब हम कहते, यह सौदा सस्ता हुआ। और महावीर होशियार हैं, चालाक हैं; हम नासमझ हैं। क्योंकि महावीर ने जो खोया, वह कुछ भी नहीं है। और जो पाया, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। इतने सस्ते में पाया! संसार खोकर अगर मोक्ष मिलता हो तो यह मुफ्त का सौदा है। और अगर वस्तुएं खोकर आत्मा मिलती हो तो यह भी कोई त्याग है!

लेकिन हम कहते हैं, महात्यागी। उसका कारण यह नहीं कि महावीर महात्यागी हैं। उसका कारण कि हमें दिखाई पड़ता है वह जो उन्होंने छोड़ा। और वह दिखाई नहीं पड़ता जो उन्होंने पाया। यह बड़े मजे की बात है।

लेकिन जब कोई बेईमान आदमी मकान बना लेता है, तो हमें दिखाई पड़ता है जो उसने पाया। और हमें दिखाई नहीं पड़ता वह जो उसने खोया। ये एक ही तर्क के दो हिस्से हैं। यह होगा ही। जिस दिन हमें बेईमान का नरक दिखाई पड़ेगा, उसी दिन हमें महावीर का स्वर्ग दिखाई पड़ सकता है। उसके पहले नहीं दिखाई पड़ सकता।

हम भी सीखते हैं। हम भी सीखते हैं। बेईमान से हम सीखते हैं कि वह सफल हो रहा है। और महावीर से हम सीखते हैं कि कितना कष्ट उठा रहे हैं! कितनी पीड़ा झेल रहे हैं! हम उनके चरणों में जो सिर झुकाते हैं, वह इसलिए नहीं कि उन्होंने कुछ पाया; बल्कि इसलिए कि वे कितना कष्ट उठा रहे हैं! कितना दुख उठा रहे हैं! हम बेईमान को भी नमस्कार करते हैं, महावीर से ज्यादा करते हैं। महावीर को तो कभी-कभी करते हैं। औपचारिक है। बेईमान को रोज करते हैं। वह भी हम बेईमान को नमस्कार इसीलिए कर रहे हैं कि हमें दिखाई पड़ रहा है उसने क्या पाया। वह सब राशि हमें दिखाई पड़ रही है। यह हमारा सीखने का ढंग है।

लाओत्से इस सीखने के लिए नहीं कह रहा है। वह कह रहा है कि जो गलत है, जो बुरा है, वह सज्जन के लिए सबक है। लेकिन यह सबक कठिन है। यह तो तभी हो सकता है, जब हम जीवन के अंतस-नियम के पर्तों में उतर जाएं। उस नियम को हम समझें तो शायद यह उतरना भी आसान हो जाए।

एक बात इस जगत में इस भांति तय है कि अब तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सका और कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकेगा। अगर हम पूरब की पूरी मनीषा की जो आत्यंतिक खोज है, उसको एक शब्द में रखना चाहें, तो वह खोज यह है कि जो बुरा करता है, वह सुख पा नहीं सकता। इसलिए नहीं कि कोई भगवान उसको दंड देता है। इसलिए भी नहीं कि जब उसने बुरा किया है, तो एक न्याय की व्यवस्था है जगत में, जो उसे फल

देगी। इसलिए भी नहीं। और इसलिए भी नहीं कि जो आज बुरा कर रहा है, वह कल कभी न कभी फल पाएगा। इसलिए भी नहीं।

ये सब हमारे मन के समझावे हैं। देखते तो हम यह हैं कि बुरा आदमी सफल होता है, धनी होता है, पद पर होता है, यश पा जाता है। तब हमारे मन को बड़ी बेचैनी होती है। दिखाई तो यह पड़ता है, करता बुरा है और पाता अच्छा है। तो फिर हम सोचते हैं--हमारे मन के कंसोलेशन के लिए, सांत्वना के लिए--कि कभी, आज नहीं तो कभी, किसी जन्म में फल भुगतना पड़ेगा।

अगर आपको आज नहीं दिखाई पड़ रहा है कि उसके बुरे का फल उसे मिल गया है, तो आप जो बातें कर रहे हैं, वे झूठी हैं और सांत्वना की हैं, उनका कोई जीवन के सत्य से संबंध नहीं है। अगर आपको ऐसा लगता है कि बुरा आज किया जाएगा और फल जन्मों-जन्मों में भुगता जाएगा, तो आप सिर्फ अपने को समझा रहे हैं।

असल में, आप ईर्ष्या से भरे हैं। आप जानते हैं कि इस आदमी को बड़ा मकान मिल गया। मिलना नहीं चाहिए था। और इस आदमी ने इतना धन इकट्ठा कर लिया। और धन इतना इकट्ठा नहीं होना चाहिए था। यह धन तो आपको मिलना चाहिए था। यह मकान तो आपको मिलना चाहिए था। इस आदमी को मिल गया। तो अब इस गणित को कैसे व्यवस्थित करें? या तो आपको सारे धर्म को तिलांजलि देनी पड़े और कहना पड़े कि बुरा सफल होता है; और जिसे सफल होना है, उसे बुरा होना चाहिए। लेकिन तब आपकी पूरी चिंतना की आधारशिला डगमगा जाएगी। चिंतना तो यह कहती रही है, सुना हमने यही है कि बुरा जो करेगा, बुरा पाएगा। तब हम क्या करें?

तब एक ही उपाय हैः आज नहीं तो कल। तो हम कहते हैं कि प्रभु के राज्य में देर हो सकती है, अंधेर नहीं।

लेकिन देर भी क्यों होगी? देर से बड़ा अंधेर और क्या हो सकता है? वह हमारे मन को हम समझा रहे हैं कि कोई फिक्र नहीं, आज नहीं कल नरक में सड़ोगे। उससे हमको राहत मिलती है। पलड़ा बराबर हो जाता है। कि आज तुमने मकान बना लिया, कोई फिक्र नहीं; स्वर्ग में हमको मकान मिलेगा। नर्क में तुम सड़ोगे। इसलिए जब भी कोई साधु पापियों के लिए नरक में सड़ने की व्यवस्थाएं देता है, तो समझना कि अभी भी ईर्ष्या छूटी नहीं, जेलसी अभी काम कर रही है।

लेकिन यह नियम तो आत्यंतिक है कि बुरा बुरा फल पाता है। पाएगा नहीं, पाता है। करने में ही पा जाता है। इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें तो हम सबक सीख सकेंगे।

जब आप आग में हाथ डालते हैं तो हाथ जल जाता है; कोई अगले जन्म तक रास्ता नहीं देखना पड़ता। आग तत्काल हाथ जला देती है। और जहर अभी खाते हैं तो इसी जन्म में मरते हैं; अगले जन्म में नहीं मरेंगे। नियम तो तत्काल परिणाम ले आते हैं। जब आप क्रोध करते हैं तो किसी नरक में जलने की जरूरत नहीं है; क्रोध में ही आप जलते हैं। वही नरक है। जब एक आदमी बेईमानी करता है, तो मकान जिस भांति ऊंचा होता जाता है, उसी भांति उसकी आंतरिक आत्मा नीची होती चली जाती है, दीनता उसको पकड़ती चली जाती है। चोरी की सजा कोई अदालत नहीं दे सकती। और चोरी का दंड भी कोई परमात्मा के देने की जरूरत नहीं है। वह तो चोर होने की जो चेतना है, उसमें ही मिल जाता है।

हम एक कदम भी नहीं उठा सकते बिना परिणाम भुगते। और यह परिणाम कोई भविष्य की बात नहीं है। यह कदम के साथ ही जुड़ा हुआ है। यह उसी क्षण घटित हो रहा है। इस जगत में कोई हिसाब रखने वाला नहीं है। और इसलिए ध्यान रखना, चूंकि कोई हिसाब रखने वाला नहीं है, इसलिए रिश्वत काम नहीं पड़

सकती, प्रार्थनाएं काम नहीं पड़ सकतीं। इसलिए भगवान को कितना ही फुसलाओ, समझाओ, बुझाओ, कुछ काम नहीं पड़ सकता। इस जगत में चूंकि कोई भी नियम निलंबित नहीं है, प्रतिपल काम कर रहा है, तो जो हम कर रहे हैं, हम उसी क्षण भोग रहे हैं। करने और भोगने में अंतराल नहीं है। कर्म और भोग साथ-साथ हैं।

जब आप किसी पर दया करते हैं, तो उस दया के क्षण में जो प्राणों में एक सुगंध भीतर मालूम पड़ती है, वह उसका फल है। रास्ता मत देखिए किसी स्वर्ग का। जब आप एक भूखे को रोटी दे देते हैं, या पानी पिला देते हैं, या बीमार के सिर पर हाथ फेर देते हैं, तो बीमार को ही राहत नहीं मिलती। यह बड़े मजे की बात है कि बीमार को राहत अभी मिले और आपको राहत स्वर्ग में मिले। बीमार को भी राहत मिलती है; आपको भी राहत मिलती है। वह राहत आपका पुण्य है। वह इसी वक्त पूरा हो गया।

इसके गहरे अर्थ हैं। इसकी निष्पत्ति है। पहली तो बात यह कि अगर हम कर्म में ही फल को देख सकें तो हम बुरे आदमी से सबक ले सकते हैं। तब चाहे कितना ही बड़ा मकान हो, हम मकान के धोखे में नहीं आएंगे। चाहे कितने ही धन की राशि चारों तरफ इकट्ठी हो, वह झुठला न पाएगी। हम बुरे आदमी के अंतस में झांक लेंगे। क्योंकि फल भविष्य में होने वाला नहीं है। फल अभी हो गया है। इसी क्षण हो गया है।

हिटलर इतने लोगों की हत्या किया। लेकिन हिटलर कितने कष्ट से गुजरा, इसकी कोई बात नहीं होती। हिटलर सो नहीं सकता है। क्योंकि सोते ही उसे दुख-स्वप्न घेर लेते हैं। इतने लोगों की हत्या! वे सब प्रेत-आत्माएं, वे सब नर-कंकाल, उसे घेर लेते हैं। उसके स्वप्न नरक हैं। वह सोने से डरने लगा है। सो नहीं सकता। इतना भयभीत है। क्योंकि जिसने हिंसा की हो, वह भयभीत हो ही जाएगा। एक भी मित्र नहीं है हिटलर का। जो उसके निकटतम हैं, उनको भी वह शत्रु के ही भाव से देखता है। क्योंकि जिसने हिंसा की है, लोगों को धोखा दिया है, परेशान किया है, मारा है, उसे पूरे क्षण डर है। कहीं से भी बदला आ सकता है। वह पूरे समय भयभीत है। हिटलर की आत्मा भय से कंप रही है प्रतिपल। कोई एक मित्र नहीं है जिसका, वह आदमी नरक में होगा ही। नरक में और जाने की जरूरत नहीं है। शादी नहीं की उसने इसी भय से कि पत्नी इतने निकट होगी। और इतने निकट वह किसी को भी बरदाश्त नहीं कर सकता। एक ही कमरे में सोएगी; क्या भरोसा रात उसका गला न दबा दे! जिसने हजारों लोगों के गले दबाए हों, वह यह नहीं मान सकता कि हजारों लोग उसके गले दबाने के लिए तैयारी में नहीं हैं। यह कैसे मान सकता है? एक आदमी की हत्या करें, तो फिर जिंदगी भर उस आदमी की छाया आपका पीछा कर रही है।

हिटलर घिरा है अपनी हत्याओं से। और आखिरी क्षण बिल्कुल पागल होकर मरा है। उसके सामने, जहां वह छिपा है, उसके सामने बमबारी हो रही है। जर्मनी परास्त हो गया है। दुश्मन बर्लिन में खड़े हैं। उसकी खिड़कियों में आकर गोलियां लग रही हैं। और जब उसका सेनापति उसे आकर खबर देता है, तो वह आज्ञा देता है अपने पहरेदार को कि सेनापति को गिरफ्तार कर लिया जाए। मालूम होता है, यह दुश्मनों से मिल गया है। हमारी सेनाएं तो जीतती चली जा रही हैं मास्को में। हिटलर आखिरी क्षण तक यही सोच रहा है कि हम जीत रहे हैं, लंदन और मास्को पर कब्जा हुआ जा रहा है। और जो उसे ठीक खबर देता है, उसको दुश्मन मान कर वह गोली मरवा देता है। आखिरी क्षण में भी, जब उसके दरवाजे पर गोलियां लग रही हैं, तब भी वह मानने को तैयार नहीं है। वह बिल्कुल विक्षिप्त हो गया है। तब भी वह रेडियो से बोल रहा है कि हमारी फौजें जीत रही हैं और शीघ्र ही सारी दुनिया में जर्मन साम्राज्य स्थापित हो जाएगा। वह बिल्कुल पागल हो गया है।

हिटलर के निजी डाक्टर के वक्तव्य अब प्रकाशित हुए हैं, जिसमें उसने कहा है कि हिटलर पूरे समय पागल था। और पच्चीस तरह की बीमारियों से ग्रसित था। बीमारियां कभी-कभी इतनी ज्यादा हो जाती थीं कि

वह बोलने में असमर्थ हो जाता था, बाहर निकलने में असमर्थ हो जाता था। और फिर उसकी एक प्रतिमा थी। तो कमजोर हालत में बाहर नहीं निकल सकता था। तो उसके डाक्टर ने संस्मरणों में लिखा है कि हिटलर ने एक आदमी, डबल, हिटलर की शक्ल का रख छोड़ा था। अक्सर तो वही सलामी लेता था फौजों की। हिटलर तो नहीं जा पाता था; क्योंकि उसकी हालत तो बहुत खराब थी। रात सो नहीं सकता था; दिन बैठ नहीं सकता था। एक क्षण कुर्सी पर एक करवट नहीं बैठ सकता था, इतना सब बेचैन हो गया था भीतर। दिन-रात दवाइयां डाल कर उसे किसी तरह जिंदा रखा जा रहा था। और उसका डबल सलामियां ले रहा था!

यह बड़े मजे की बात है। इन्हीं सलामियों के लिए यह सब कुछ किया गया था--इन्हीं सलामियों के लिए! अखबार में जिसके फोटो छप रहे थे, वे उसके डबल के फोटो थे। रेडियो पर जो बोल रहा था, टेलीविजन पर जो दिखाई दे रहा था, वह उसका डबल था। स्टैलिन भी ठीक अपना डबल रखे हुए था--एक आदमी जो नाटक करने वाला है, जो हिटलर का नाटक कर रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि यह सारा आयोजन किसलिए था? यह सारा आयोजन इसलिए था। लेकिन यह सारा आयोजन व्यर्थ हो गया। और यह आदमी नरक में सड़ रहा है। इसका रोआं-रोआं जल रहा है।

नहीं, कोई आगे भविष्य में नर्क नहीं है। हम जो करते हैं, वहीं, उसी क्षण हमें सब कुछ मिल जाता है। भविष्य में नरक रख कर हमने अपने को सांत्वना भी दी है और हमने अपने लिए सुविधा भी बनाई है। उससे हमको ऐसा लगता है कि अभी अगर हम बुरा कर रहे हैं तो अभी तो फल मिलने वाला नहीं है; देखेंगे। फिर हमने ये भी तरकीबें निकाली हैं कि अगर बुरा किया है, तो उसके वजन का कुछ भला कर दो तो कट जाएगा।

जिंदगी में कुछ भी कटता नहीं है। इस दूसरी बात को ठीक से समझ लें। आप सोचते हों कि दो पैसे का बुरा किया तो दो पैसे का भला कर देंगे तो पुराना बुरा किया हुआ कट जाएगा, तो आप गलती में हैं। दो पैसे का बुरा करेंगे तो उतना बुरा आपको भोगना पड़ेगा। दो का भला करेंगे, उतना भला आपको भोगना पड़ेगा। जिंदगी में कटता कुछ भी नहीं है। क्योंकि जिंदगी में दो क्षण का कोई मिलन नहीं होता।

यह थोड़ा कठिन है। अभी मैं बुरा करता हूं तो बुरा मुझे अभी भोग लेना पड़ता है। और कल मैं भला करूंगा तो कल मैं भला भोग लूंगा। लेकिन आज और कल का कहीं मिलन नहीं होता। जो बुरे का क्षण था, वह बीत गया। उसको अब काटा नहीं जा सकता। जो किया है, उसे अनकिया नहीं किया जा सकता।

लेकिन इसने हमको तरकीब दे दी। भविष्य में मिलेगा फल; कर्म अभी, फल दूर; बीच में समय का मौका मिलता है। उस समय में हम एडजस्टमेंट कर सकते हैं। उसमें हम कुछ इंतजाम कर सकते हैं। ऐसा जैसा मैंने आग में हाथ डाला, अगर छह घंटे बाद हाथ जलने वाला हो तो इस बीच में बर्फ पर रख कर ठंडा कर ले सकते हैं। बीच में अगर समय मिल जाए तो जो किया है उसको हम अनकिया कर सकते हैं। इसलिए भी हम कर्म को भविष्य के साथ जोड़ते हैं।

कर्म है प्रतिपल फलदायी। तब बड़ी मुश्किल होगी। तब कोई छुटकारा नहीं है। और तब कोई बचा नहीं सकता। और बचने की कोई विधि भी नहीं बनाई जा सकती। यहीं और अभी, हम जो करते हैं, वह हम भोग लेते हैं। इसलिए हम सब जमीन पर भला रहते हों, हम में से कुछ लोग नरक में रहते हैं, कुछ लोग स्वर्ग में रहते हैं, कुछ लोग यहीं मुक्त भी होते हैं, मोक्ष में रहते हैं।

यह भी गणना ठीक नहीं है। एक ही आदमी सुबह स्वर्ग में होता है; दोपहर नरक में हो जाता है; सांझ मोक्ष में हो सकता है। और ऐसा जरूरी नहीं है कि दोपहर स्वर्ग में था, इसलिए सांझ फिर नरक में नहीं हो

जाएगा। एक-एक क्षण हम थर्मामीटर के पारे की तरह स्वर्ग, नरक और मोक्ष में डोलते रहते हैं। जिंदगी गतिमान है, डायनामिक है।

अगर यह हमें ख्याल में आ जाए तो फिर हम बुरे आदमी से बहुत कुछ सीख सकते हैं। वह सबक बन सकता है। हिटलर का जीवन पढ़ें, वह सबक बन सकता है।

लेकिन बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि हम जिनको सफल कहते हैं, उनके सच्चे जीवन हमें उपलब्ध नहीं होते। दुनिया में जिनको हमने सफल कहा है, बड़े राजनीतिज्ञ हैं, बड़े धनपति हैं, यशस्वी लोग हैं, उनका अगर हमें सच्चा जीवन मिल सके, एक्सरेड--उसमें जरा भी बेईमानी न हो, सीधी एक्सरे की तरह पूरी तस्वीर हो--तो इस दुनिया में बेईमान होना मुश्किल हो जाए, बुरा होना मुश्किल हो जाए। लेकिन जब एक आदमी चढ़ते-चढ़ते सीढ़ियां प्रधानमंत्री हो जाता है, तो उसकी जिंदगी के भीतरी दुख, पीड़ाएं, चिंताएं, सब तिरोहित हो जाती हैं। वह जो स्कूल के बच्चों के सामने मुस्कुराता हुआ तस्वीर उतरवाता है, वही हमारे सामने होती है। उसका भीतरी नरक हमें बिल्कुल दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। उसकी सफलता की जो महिमा है--कागजी सही, लेकिन काफी रंगीन--वह हमें घेर लेती है, आच्छादित कर लेती है। और हमारे प्राणों के कोनों में भी कहीं एक वासना उठती है कि हम व्यर्थ ही हो गए, हम भी ये सीढ़ियां चढ़ सकते थे। और चढ़ सकते हैं अभी भी, कुछ तो कोशिश करें।

एच.जी.वेल्स कहा करता था--और ठीक कहा करता था--कि अखबारों में एडवरटाइजमेंट को छोड़ कर, और कोई चीज सच्ची नहीं होती। और हम जानते हैं कि एडवरटाइजमेंट कितना सच्चा होता है। लेकिन वह ठीक कहता है। बाकी सब झूठ होता है। हमारा इतिहास, हमारी किताबें, हमारी गाथाएं, सब झूठ होती हैं। और वे सब हमारे भीतर एक भ्रम पैदा करती हैं। हम बुरे आदमी के पीछे चलने लगते हैं; उससे सबक नहीं ले पाते।

मनुष्य-जाति का बड़ा कल्याण होगा उस दिन, जिस दिन हम बुरे आदमी की जिंदगी को पूरा खोल कर सामने रख सकेंगे। एक बुरे आदमी की जिंदगी बड़ा सबक हो सकती है।

एक भले आदमी की जिंदगी भी बड़ा सबक हो सकती है। लेकिन हम बुरे की जिंदगी ही नहीं खोल पाते, तो भले की जिंदगी खोलनी तो बहुत कठिन है। क्योंकि बुरा तो जीता है छिछला, ऊपर-ऊपर। उसकी जिंदगी तक छिपी रह जाती है। तो भला तो जीता है बहुत गहराइयों में, अतल गहराइयों में, सागर के बहुत नीचे। उसका तो हमसे कोई संबंध ही नहीं हो पाता।

ध्यान रखें, अगर बुरे को सबक बनाना है तो बुरे की जिंदगी को उघाड़े। कैसे उघाड़ पाएंगे? दूसरे की जिंदगी को उघाड़ना बहुत बुरा है। लेकिन आप में क्या बुराई कुछ कम है? वहीं से शुरू करें। अपनी ही बुराई उघाड़ें। और अपनी ही बुराई के साथ जो छाया की तरह दुख और नरक चलता है, उसे खोजें। हम सभी कुछ न कुछ बुरा कर रहे हैं। उस बुरे में थोड़ा झांकें और खोजें कि क्या मिला? दुख के अतिरिक्त बुरे से कभी कुछ नहीं मिलता है।

लेकिन हम क्षण में रुकते नहीं, हम आगे बढ़ जाते हैं। हम कभी खोज नहीं करते कि हमें क्या मिला। हमने जो किया, उस करने में क्या हुआ, उसका हम पूरा निरीक्षण नहीं करते।

आपने क्रोध किया। कभी आपने निरीक्षण किया है द्वार बंद करके, क्रोध पर ध्यान किया हो कि क्या हुआ? किसी को गाली दी, किसी का अपमान किया। कभी द्वार बंद करके निरीक्षण किया है कि क्या किया?

नहीं, हम बहुत होशियार हैं। जब भी हम क्रोध करते हैं, तो हम दूसरे पर ध्यान करते हैं कि उसने क्या कहा था जिसकी वजह से क्रोध किया--उसने क्या कहा था? हमने क्या किया, उसका हम निरीक्षण नहीं करते।

दूसरे ने क्या किया, उसका हम निरीक्षण करते हैं। और मजा यह है कि वह दूसरा भी, आपने क्या किया, इसका निरीक्षण अपने घर पर कर रहा होगा। आप दोनों अपने से चूक जाएंगे।

आत्म-निरीक्षण का अर्थ हैः मैंने क्या किया। आपने गाली दी, यह आपका काम था। इसका निरीक्षण करना मेरा जिम्मा नहीं है। इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। इसका मैं निरीक्षण करना भी चाहूं तो कैसे करूंगा? यह एक छोटी सी गाली जो आपसे आई है, यह आपके पूरे जीवन का हिस्सा है। यह आपकी पूरी जिंदगी की कथा है। उस पूरी जिंदगी के वृक्ष में यह गाली लगी है एक कांटे की तरह। यह आज अचानक नहीं लग गई है। यह पूरा वृक्ष इसमें अंतर्निहित है। मैं इसका निरीक्षण कैसे कर पाऊंगा? मैं निरीक्षण इतना ही कर सकता हूं कि इस गाली ने मेरे भीतर क्या किया? इस गाली के प्रतिकार में मेरे भीतर क्या हुआ? इस गाली ने मुझे क्यों बदल डाला? इस एक गाली ने मेरी मुस्कुराहट को राख क्यों कर दिया? इस एक गाली ने मेरे भीतर खिले हुए सब फूल क्यों जला डाले? इस एक गाली ने मेरा सारा रुख क्यों बदल दिया? इस एक गाली के कारण, मैं जो भला आदमी था, अचानक शैतान क्यों बन गया हूं? और फिर इस गाली से मेरे भीतर क्या हो रहा है--जो क्रोध उठ रहा है, जो आग उठ रही है, जो जलन मेरे रोएं-रोएं में फैलती जा रही है, जो हिंसा मेरे भीतर भभक रही है--वह क्या है?

अगर आप द्वार बंद कर लें जब आपको कोई गाली दे और उस आदमी को भूल जाएं और जो आपके भीतर हो रहा है उसका निरीक्षण कर लें, तो आप बुरे आदमी के भीतर प्रवेश करने की कला समझ जाएंगे। बुरा आदमी दूसरा नहीं है, बुरे आदमी आप ही हैं। और जिस दिन आप अपने क्रोध को और उसकी पीड़ा को जान लेंगे, अपने पाप को और उसके दंश को जान लेंगे, उस दिन आप इस भूल में कभी न पड़ेंगे कि कोई दूसरा आदमी क्रोध करके और जीवन में आनंद पा सकता है। इस भूल में फिर आप न पड़ेंगे। फिर आप यह न सोच सकेंगे कि कोई आदमी दूसरों को दुख पहुंचा कर, पीड़ा पहुंचा कर सुख पा सकता है। इस भ्रांति का फिर कोई उपाय नहीं है। इस आत्म-निरीक्षण से हम बुरे आदमी के भीतर भी देखने में समर्थ हो जाते हैं।

बुद्ध का चचेरा भाई है एक। दोनों साथ खेले और बड़े हुए हैं। तो जिनके साथ हम खेले और बड़े हुए हैं, वे कभी हम से बड़े हो सकते हैं, यह मानने के लिए अहंकार कभी राजी नहीं होता। देवदत्त बुद्ध के साथ बड़ा हुआ। कभी खेल में बुद्ध को गिराया भी, छाती पर भी सवार हुआ। कभी बुद्ध से हारा भी, कभी जीता भी।

फिर अचानक बुद्ध का शिखर ऊपर उठता चला गया। लाखों लोग बुद्ध के चरणों में सिर रखने लगे। देवदत्त की पीड़ा हम समझ सकते हैं। देवदत्त ने बुद्ध की हत्या के बड़े उपाय किए हैं। बुद्ध एक शिला पर बैठ कर ध्यान करते हैं; देवदत्त एक बड़ी चट्टान पहाड़ से सरकवा देता है। वह चट्टान सरकती हुई जब बुद्ध के पास से गुजरती है, बाल-बाल चूक जाते हैं, तो बुद्ध का एक शिष्य बुद्ध से कहता है, यह दुष्ट देवदत्त!

बुद्ध कहते हैं, रुको! रुको! तुम भी अपने भीतर उसके खिलाफ चट्टान सरकाने लगे। दुष्ट क्यों? जो उससे हो सकता है, वह कर रहा है। यह धार्मिक आदमी की स्वीकृति हैः जो उससे हो सकता है, वह कर रहा है। और जो उससे नहीं हो सकता, उसकी अपेक्षा करने का कारण भी क्या है? बुद्ध उस भिक्षु से कहते हैं कि भिक्षु, तू भी अगर मेरे साथ खेला और बड़ा हुआ होता, तो शायद ऐसा ही कुछ करता। देवदत्त की पीड़ा का तुझे पता नहीं है। क्योंकि बहुत पीड़ा में होगा, तभी कोई आदमी ऐसी चट्टान सरकाने का श्रम लेता है।

इस आदमी को ध्यानी कह सकते हैं हम। क्योंकि यह आदमी, देवदत्त क्या कर रहा है, इस पर फिक्र नहीं करता; इसके भीतर क्या हो रहा है, इसकी ही फिक्र है।

बुद्ध आंख बंद कर लेते हैं। वह चट्टान सरकती नीचे के खड्डों में चली जाती है शोर करती। और बुद्ध आंख बंद किए रहते हैं। घड़ी भर बाद वह भिक्षु फिर पूछता है, आप क्या सोच रहे हैं?

बुद्ध कहते हैं, मैं अपने भीतर देख रहा हूं कि देवदत्त ने जो किया, उससे मेरे भीतर क्या होता है। अगर कुछ भी होता है मेरे भीतर तो चट्टान से मैं बच नहीं पाया, चोट लग गई। अगर जरा सी भी खरोंच मेरे भीतर आती है तो देवदत्त सफल हो गया। यही वह चाहता है। अगर मैं भी एक चट्टान लेकर उस पर दौड़ पड़ूं और उसके ऊपर चट्टान फेंक दूं तो उसकी सारी पीड़ा मिट जाए। यही वह चाहता है। समझ जाए कि ठीक है, कोई गड़बड़ नहीं है। उसकी फिर कोई ईर्ष्या न रह जाए। उसकी ईर्ष्या यही है, उसकी तकलीफ यही है।

बुद्ध के रास्ते पर से, बुद्ध जहां से गुजर रहे हैं, देवदत्त एक पागल हाथी छोड़ देता है। अब तो यह बात कथा जैसी लगती है। लेकिन कथा नहीं है; और आज नहीं कल, विज्ञान इसकी गहराइयों में उतर जाएगा, और यह कथा नहीं रह जाएगी। पागल हाथी बुद्ध के पास आता है और चरणों में सिर झुका कर खड़ा हो जाता है। वह पागल था। लगता है, कहानी है। क्योंकि पागल हाथी क्या फिक्र करेगा बुद्ध की? और पागल हाथी को क्या अंतर पड़ता है कि कौन कौन है? पागल हाथी तो पागल ही होगा।

इसमें थोड़े से फर्क हैं। पागल आदमी अगर होता तो शायद बुद्ध की फिक्र न भी करता। क्योंकि आदमी से ज्यादा पागल होने वाला जानवर जमीन पर दूसरा नहीं है। पागल हाथी कितना ही पागल हो, फिर भी पागल आदमी जैसा पागल नहीं होता। और जानवरों के पास एक अंतःप्रज्ञा होती है। बुद्धि तो उनकी नहीं काम करती, लेकिन उनका हृदय संस्पर्शित होता है।

अब वैज्ञानिक, विशेषकर जो साइकिक रिसर्च पर काम कर रहे हैं पश्चिम में, उनका कहना है कि जब कोई आदमी बिल्कुल शांत होता है तो उससे एक खास तरह की तरंगें उसके चारों तरफ फैलनी शुरू हो जाती हैं। आपसे भी तरंगें फैल रही हैं। सभी से तरंगें फैल रही हैं। हर आदमी तरंगों में जी रहा है। और हर आदमी प्रतिपल एक झील है गहरी, जिसमें तरंगें उठ रही हैं। जब आपके भीतर क्रोध उठता है तो आपके बाहर क्रोध की तरंगें फैलनी शुरू हो जाती हैं। जरूरी नहीं है कि आप नाराज हों और चिल्लाएं और चीखें, तब तरंगें फैलें। जब आप नहीं भी चीखते, नहीं भी चिल्लाते, बाहर कुछ प्रकट नहीं होता, तब भी आपके भीतर से तरंगें बाहर फैलनी शुरू हो जाती हैं। जिस आदमी ने क्रोध प्रकट न किया हो, उसके आस-पास भी क्रोध की हवा पैदा हो जाती है। जो आदमी कामातुर हो गया हो, और कहीं प्रकट न कर रहा हो कि कामवासना भीतर भर गई है, तो भी तरंगें चारों तरफ कामातुर हो जाती हैं।

अब तो वैज्ञानिकों के पास उपाय हैं जांचने के। क्योंकि यंत्र हैं, जिन पर ये तरंगें अंकित हो जाती हैं कि आदमी इस वक्त कैसी हालत में है। और न केवल इतना, बल्कि अभी एक बहुत अनूठा प्रयोग हुआ है जो कि भविष्य की धार्मिक साधना के लिए बड़े काम का होगा। वह है एक छोटे से यंत्र की ईजाद, जिसमें बटन दबाते से आप अपने मस्तिष्क में कैसी तरंगें चल रही हैं, उनका ग्राफ देख सकते हैं। वह ग्राफ आपको सामने पर्दे पर दिखाई पड़ने लगता है। आपके मस्तिष्क से एक इलेक्ट्रोड, एक बिजली का तार जुड़ा होता है यंत्र में। आपने ऑन किया यंत्र, आपके मस्तिष्क में कैसी तरंगें चल रही हैं, वह बताना शुरू कर देता है। यंत्र पर निशान लगे हुए हैं कि अगर इतनी तरंगें चल रही हैं तो आपका मन अशांत है, इतनी चल रही हैं तो कम अशांत है, इतनी चल रही हैं तो शांत है, इतनी चल रही हैं तो बिल्कुल शांत है, इतनी चल रही हैं तो आप बिल्कुल शून्य हो गए हैं।

जब आप देखते हैं कि बहुत अशांत किरणें चल रही हैं, तो बड़े मजे की बात यह है कि देखते से ही किरणें नीचे गिरनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि जैसे ही आदमी सजग होता है कि अशांत है, वह शांत होना चाहता है।

वह ख्याल ही कि हमें शांत होना चाहिए, तत्काल किरणों को नीचे गिरा देता है। उस ग्राफ को वे कहते हैं फीड बैक। क्योंकि आपको देखने से तत्काल ख्याल आता है कि यह तो ठीक नहीं हो रहा। उसका परिणाम होना शुरू हो जाता है।

ध्यान के लिए इस यंत्र का बड़ा परिणाम होगा। क्योंकि तब आप सामने ही देख सकते हैं कि क्या हो रहा है। और न केवल देख सकते हैं, जो आप देखेंगे, तत्काल उस पर आपकी प्रतिक्रिया होगी और उसका परिणाम होगा।

जैसे ही कोई आदमी बिल्कुल शांति के करीब पहुंचता है और ग्राफ खबर देता है कि मन बिल्कुल शांत हो गया, वह एकदम से कहता है कि मन बिल्कुल शांत हो गया--अशांति शुरू हो जाती है। क्योंकि यह भी अशांत ख्याल है। यह भी एक तरंग हो गई। तत्काल मन की शांति खो जाती है। तरंगें उठनी शुरू हो जाती हैं।

ये तरंगें पशु हमसे ज्यादा सक्षम हैं पकड़ने में। आदमी बहुत संवेदनहीन हो गया है। पशु ज्यादा संवेदनशील हैं। वैज्ञानिक बहुत चिंतित रहे हैं सदा से। कुत्ते हैं, बिल्लियां हैं। ऐसी बिल्लियां हैं जिनको कि हवाई जहाज से ले जाकर दूर जंगलों में छोड़ दिया गया। रास्ते का उन्हें कोई पता नहीं कि उनका घर कहां है। और वे सीधी घर की तरफ चल पड़ती हैं। सीधी! ऐसा भी नहीं कि उनको रास्ता खोजना पड़ता हो। उनको छोड़ा है बोरिए के बाहर, उनकी आंख की पट्टी खोली और वह चल पड़ीं--स्ट्रेट। इस जगह उन्हें कभी नहीं लाया गया। इस जगह हवाई जहाज से लाया गया है। आंख पर पट्टी बंधी हुई हैं। कोई रास्ते का उन्हें पता नहीं है। लेकिन फिर यह घर की तरफ चलना कैसे हो जाता है? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि बिल्लियों को जरूर ही कुछ संवेदनाएं हैं, कुछ तरंगों का अनुभव है, जो हमें नहीं है। जिनके आधार पर वह चलनी शुरू हो जाती हैं।

एक वैज्ञानिक के घर में सरकार उसके खिलाफ कुछ जासूसी कर रही थी। शक था उस मुल्क की सरकार को कि वह वैज्ञानिक किन्हीं दूसरे मुल्कों से जुड़ा हुआ है। तो उसके घर में चोरी से एक टेप रिकार्डर छिपा दिया गया था। एक जरा सा यंत्र एक कोने में, दीवार में छिपा हुआ था।

वैज्ञानिक घर आया, उसके कुत्ते ने आते से ही उस कोने की तरफ मुंह करके और भौंकना शुरू कर दिया। वैज्ञानिक बहुत परेशान हुआ, कुत्ते को डांटा-डपटा; लेकिन वह मानने को राजी नहीं हुआ। वह छलांग लगाए और कोने में जाए और शोरगुल करे। खोज की गई तो पाया गया कि वहां कोई यंत्र छिपाया गया है। वह वैज्ञानिक ध्वनि पर काम कर रहा था। वह बड़ा हैरान हुआ।

खोज करने से पता चला कि जैसे यह माइक है, मैं इससे बोल रहा हूं, तो यह माइक मेरी आवाज को खींच रहा है। तो माइक के पास छोटा सा वैक्यूम निर्मित हो जाता है, क्योंकि वह आवाज को खींचता है, सक करता है। उस कुत्ते को उस वैक्यूम का अनुभव हुआ, इसलिए वह भौंका। फिर तो उस कुत्ते पर बहुत प्रयोग किए। सूक्ष्मतम भी तरंगों का वैक्यूम पैदा हो तो वह कुत्ते को पता चल जाएगा।

अब तो जो साइकिक रिसर्च करते हैं, वे लोग कहते हैं... । जैसा कि हिंदुस्तान के गांवों में ग्रामीण लोग कहते हैं। लेकिन वे ग्रामीण हैं, अंधविश्वासी हैं, उनकी कोई मानने को राजी नहीं--कि कुत्ते जब रात अचानक भौंकने लगें, तो किसी की मृत्यु हो गई, या मृत्यु होने के करीब है। अब वैज्ञानिक आधारों पर भी ऐसा मालूम पड़ता है कि जब कोई शरीर से आत्मा छूटती है, तो तरंगों का जो आघात चारों तरफ पैदा होता है, कुत्ते उसके लिए संवेदनशील हैं। और उनको लगता है कि कुछ हो रहा है जो बेचैनी का है, उनको बेचैनी का है।

तो कुछ हैरानी नहीं कि पागल हाथी बुद्ध के पास आकर अचानक उनकी तरंगों की छाया में शांत हो गया हो। देवदत्त बहुत परेशान हुआ; क्योंकि पागल हाथी से यह आशा न थी। पत्थर चूक गया, यह संयोग था। पागल हाथी, और जाकर चरणों में सिर रख दिया! तब तो उसकी बेचैनी और बढ़ गई।

बुद्ध ने कहा है कि हाथी को भी समझ आ गई जो पागल था, लेकिन देवदत्त को कब समझ आएगी!

आदमी सीखता ही नहीं। और सीखता है तो गलत सीखता है। देवदत्त इतना ही समझा कि हमने गलत समझा कि हाथी पागल था। हाथी पागल नहीं था। हमारी भ्रांति थी कि हमने समझा हाथी पागल था। हाथी पागल नहीं था। इतना सीखा। दूसरे पागल हाथी की तलाश उसने जारी की। हम ऐसे ही सीखते हैं।

लाओत्से कहता है, "सज्जन दुर्जन का गुरु है; दुर्जन सज्जन के लिए सबक है। जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसंद है, वह वही है जो दूर भटक गया है, यद्यपि वह विद्वान हो सकता है।"

"जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसंद है।"

ध्यान रखना, जब एक बुरे आदमी से आप कुछ सीखते हैं, तो आपको अनुगृहीत होना चाहिए। जिससे आपने कुछ सीखा है, उससे अनुगृहीत होना चाहिए। बुरे आदमी से भी।

लेकिन बुरे आदमी से अनुगृहीत होने की तो बात दूर है, हम जब भले आदमी से भी कुछ सीखते हैं तो अनुग्रह नहीं होता। असल में, हमें यह ख्याल ही दुख देता है कि हमने और सीखा! हम और सीखें! सीखना अहंकार के लिए बड़ी चोट है। इस जगत में शिष्य होने से बड़ी कठिन और शायद कोई ही चीज हो।

हम कहेंगे, क्या है? शिष्य होने में क्या तकलीफ है? लेकिन जरूर बड़ी कठिन है। क्योंकि उसका अर्थ ही यह है, यह मानना कि मैं नहीं जानता हूं, शुरुआत है। और ऐसा कोई आदमी मानने को तैयार नहीं कि मैं नहीं जानता हूं। हम सभी जानते हैं। अगर हम कभी किसी से अनुग्रह भी प्रकट करते हैं तो हमारे शब्द बड़े मजेदार होते हैं।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं; उनकी बातें बड़ी मजेदार होती हैं। एक सज्जन आकर अक्सर कहते हैं कि आपने जो कहा, वह बिल्कुल मेरा ही ख्याल है। सिर्फ यह है कि मैं उसे कहने में कुशल नहीं हूं, और आपने कहा। एक सज्जन आते हैं, वे अक्सर कहते हैं कि आपकी बातों से, जो मैं पहले से ही मानता हूं, उसे इतनी पुष्टि मिलती है जिसका कोई हिसाब नहीं। ऊपर से देखने पर लगेगा कि इसमें कुछ भी भूल-चूक नहीं है। वस्तुतः ये मित्र यह कह रहे हैं कि सीखने को कहीं कुछ भी नहीं है। जो भी सीखने को है, उनके पास है।

और यह जो, यह जो वृत्ति है, यह व्यक्तियों तक ही नहीं, समूह में फैल जाती है, जातियों में फैल जाती है। हमारे मुल्क में बहुत गहन है। हमारे मुल्क में इतनी जड़ता की तरह फैल गई है यह कि अगर पश्चिम में कोई भी विज्ञान की नई ईजाद होती है तो हमारा मुल्क कभी यह नहीं कह पाता कि यह कोई नई खोज है। हम नहीं कह पाते। हम फौरन अपनी किताबें उलटने लगते हैं और खोजने लगते हैं कि कहीं से कोई भी तोड़-मरोड़ कर भी हम कह सकें कि हमारी किताब में तो पहले से मौजूद है। और बड़ा मजा यह है कि इस किताब को इसके पहले हमने कभी नहीं खोला। और इसके पहले हम कभी नहीं बता सके कि उसमें क्या मौजूद है। हम इसमें इतने कुशल हो गए हैं कि दुनिया में कहीं कुछ हो ही नहीं सकता जो हमारे वेद में मौजूद न हो। कुछ भी कर ले दुनिया, हम फौरन बता देंगे कि यह देखो! हम मतलब बदल लेंगे। हम शब्दों को तोड़ लेंगे। हम शब्दों पर जबरदस्ती कलमें बिठा देंगे अर्थों की। और हम तोड़-मरोड़ कर सिद्ध कर देंगे कि यह तो हमारे इसमें पहले से लिखा हुआ है।

क्या कारण है? हमको वहम हो गया है कि हम जगतगुरु हैं। अब जो जगतगुरु हैं, वे शिष्य तो हो ही नहीं सकते, जगत में कुछ सीख तो सकते ही नहीं। और यह अगर कौम को ही हो गया हो, ऐसा नहीं है। हमारी कौम जगतगुरुओं की कौम है, इसमें हर आदमी जगतगुरु है।

सीखने की क्षमता हमने खो दी; वही हमारा पाप है। हम अगर पांच हजार साल में इंच भर आगे नहीं सरके तो उसका कारण है कि हमने सीखने की क्षमता खो दी। सीखने की क्षमता इस विनम्रता से शुरू होती है कि हमें पता नहीं है। लेकिन हम इतने बेईमान हैं कि हमें पता नहीं है इसकी कोई फिक्र नहीं, जब किसी को पता होगा तो हम कहेंगे यह तो हमें पहले से पता था।

अच्छा यह बड़े मजे की बात है कि हम, विज्ञान अभी सौ साल में आगे क्या होगा, उसकी एक-आध खोज करके अपने शास्त्रों से कभी बताएं। वह हम कभी नहीं बता पाते। साइकिल बनाना हमारे शास्त्र से मुश्किल है, लेकिन हवाई जहाज हमारे शास्त्र में है। वह वृत्ति! हवाई जहाज था या नहीं, यह बहुत मूल्य की बात नहीं है। लेकिन वृत्ति! और यह वृत्ति सामूहिक हिस्सा बन गई हमारी चेतना का। कोई आदमी सीखने को राजी नहीं है।

सीखने का भाव पैदा ही तब होता है, जब कोई यह स्वीकार करता है कि मुझे पता नहीं है। और तब तो बुरे आदमी से भी जो सबक मिलता है, उसका भी अनुग्रह मन में रह जाता है। तब तो जिन्हें गड्ढे में गिरे देख कर हम गड्ढे में गिरने से बच गए, वे भी हमारे गुरु हैं।

"जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसंद है, वह वही है जो दूर भटक गया है।"

क्यों दूर भटक गया है? क्योंकि जिसकी सीखने की क्षमता ही खो गई है, उसके अब पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। जिसने सीखना ही छोड़ दिया है, अब उसके भटकन का क्या हिसाब लगाएं? भटकन कम हो सकती है, अगर सीखने की क्षमता मौजूद हो। लाख कोस दूर भटक गया होऊं, लेकिन सीखने की क्षमता मौजूद है तो वापस लौट सकता हूं। लेकिन इंच भर दूर हूं मंजिल के, और सीखने की क्षमता नहीं है, तो भी वापस नहीं लौट सकता। लौटना, यात्रा, तो सीखने पर निर्भर होगी।

तो जरूरी नहीं है, जो आदमी सीख सकता है... जैसी मेरी समझ है कि पश्चिम हमसे ज्यादा धार्मिक हो सकता है। उसकी सीखने की क्षमता निश्छल है, ताजी है, निर्दोष है। हम बड़ी अड़चन में हैं। पश्चिम का बड़े से बड़ा विचारक सीखना चाहता हो, तो गंवार से गंवार आदमी के पास भी बैठ जाएगा सीखने के लिए। इसकी फिक्र छोड़ देगा कि मैं किससे सीख रहा हूं। लेकिन हम बहुत मजेदार हैं। पश्चिम से लोग आते हैं। पश्चिम से इधर पिछले पचास वर्षों में वहां के कुछ विचारशील लोग भी पूरब की तरफ आए। और कई बार ऐसा हुआ है कि जाने-अनजाने वे ऐसे लोगों के चरणों में भी बैठ गए हैं, जिनको खुद भी कुछ पता नहीं है। खोज है, इसलिए कई बार जरूरी नहीं है कि आप ठीक आदमी के पास पहुंच जाएं। लेकिन उनका श्रेष्ठतम विचारक भी हमारे गंवार से गंवार साधु के चरणों में बैठ जाएगा--सीखना है--और इस भांति सीखेगा कि अपनी सारी जानकारी, अपनी सारी समझ एक तरफ रख देगा। क्योंकि उसे बाधा नहीं बनानी है। लेकिन हमारा नासमझ से नासमझ आदमी भी सीखने की क्षमता खो दिया है। क्या हुआ है? क्या कारण गहन हो गया है भीतर हमारे?

दो बातें हुई हैं। एक तो जीवन के सत्यों के संबंध में जो शब्द हैं, वे हमें कंठाग्र हो गए हैं। शब्द ही बीच में आ जाता है और पता लगता है कि हमें मालूम है। फिर और भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। और दूसरी बात, इस पांच हजार वर्षों में हम इतने दीन-हीन हो गए हैं कि अगर हम अब यह भी मानें कि हमें ज्ञान भी नहीं है अध्यात्म का तो फिर हमारे अहंकार के लिए कोई सहारा ही नहीं रह जाता। एक ही सहारा बचा है। बाकी तो सब सहारे टूट गए हैं। सब सहारे टूट गए हैं। हमारे पास और तो कोई बल नहीं है, जिसको हम कह

सकें। मगर एक तो हम बात चलाए ही रख सकते हैं कि हम आध्यात्मिक हैं। सारी ग्लानि को भुलाने के लिए हमें एक ही सहारा बचा है कि हम अपने को आध्यात्मिक कहे चले जाएं।

लेकिन मजा यह है कि उसके कारण हम भीतरी रूप से भी दीन होते चले जा रहे हैं; क्योंकि वह खोज भी नहीं कर पाते। जब मालूम है, खोज का कोई उपाय न रहा। जब हम पहुंच ही गए हैं, तो चलने की कोई बात ही नहीं है।

लाओत्से कहता है, "जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसंद है, वह वही है जो दूर भटक गया है, यद्यपि वह विद्वान हो सकता है।"

विद्वान होना एक बात है। उतनी कठिन नहीं, जितना शिष्य होना कठिन है। सीखना जितना कठिन है, उतना विद्वान होना नहीं। पर विद्वान का क्या मतलब? क्योंकि हम तो सोचते हैं, जो आदमी सीखता है, वह विद्वान होता है। नहीं, जो आदमी सीखने से बचने की तरकीबें करता है, वह विद्वान हो जाता है। जो आदमी बिना सीखे सीखने की आयोजना कर लेता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। जो आदमी सत्य को बिना जाने शब्दों का संग्रह कर लेता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। जो आदमी गुरु से डरता है, लेकिन शास्त्र को पचा जाता है, वह आदमी विद्वान हो जाता है। शास्त्र बाजार में मिल जाते हैं। शास्त्र पर कोई अनुग्रह की जरूरत भी नहीं है।

यह एक मजेदार मामला है। लाओत्से की किताब पढ़ना आसान है, लाओत्से के पास क्षण भर बैठना मुश्किल हो जाए। बुद्ध की किताब बांचने में क्या अड़चन है? पढ़ी और एक कोने में फेंक दी। इतना आसान बुद्ध के पास जाना नहीं होगा। और बुद्ध के पास जाकर बुद्ध को फिर कोने में कभी नहीं फेंका जा सकता। बुद्ध की किताब पढ़ो, कुछ करना नहीं पड़ता। शब्द सीधे भीतर चले जाते हैं और खून में मिल जाते हैं। बुद्ध के पास जाओ, पूरी जिंदगी बदलनी पड़ेगी। बुद्ध तोड़ देंगे पूरा। पुराना सारा ढांचा तोड़ेंगे। एक-एक अंग-अंग, पसली-पसली अलग कर देंगे। फिर नया आदमी निर्मित करेंगे। वह जरा जटिल और कठिन मामला है।

लेकिन बुद्ध के जो शब्द हैं, वे उन्हीं के काम के हैं, जो उतना टूटने, मरने और नया जीवन पाने के लिए तैयार हों। वे शब्द उन्हीं के काम के हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा लगता है--धम्मपद पढ़ो, बुद्ध के वचन पढ़ो--कभी तो हैरानी होती है कि इन्हीं वचनों के कारण यह आदमी इतना बड़ा था! ये वचन तो साधारण हैं।

इन वचनों के कारण यह बड़ा आदमी नहीं था। ये वचन तो सिर्फ रास्ते पर छूट गया कचरा है। जिस रास्ते से यह आदमी गुजरा था, उस रास्ते पर छूट गई थोड़ी सी खबरें हैं। ये इतने ही शब्द इतने क्रांतिकारी रहे होंगे? वह क्रांति है व्यक्ति के बदलने में, शब्दों में नहीं। और जब व्यक्ति बदलता है और शब्द अनुभव बनता है, तब पता चलता है।

इसलिए इस मुल्क में हमने बहुत जोर दिया था गुरु पर। अतिशय जोर दिया था गुरु पर। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। हमारा जोर इतना था गुरु पर कि संभवतः पृथ्वी पर किसी कौम का कभी भी नहीं रहा। लेकिन थोड़ी भूल हो गई। गुरु पर जोर सिर्फ इसलिए था, ताकि आप शिष्य हो सकें। गुरु पर जोर इसलिए था। हमने गुरु को आसमान पर बिठाया था। उसे हमने सारी भगवत्ता दे दी थी।

कबीर ने यहां तक कहा कि गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय। दोनों खड़े हैं सामने, गुरु भी और गोविंद भी, किसके पैर लगूं? बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय। फिर गुरु के ही पैर लग गया; क्योंकि उसके ही कारण गोविंद का पता चला।

हैरानी की बात है! गोविंद, खुद भगवान खड़ा हो और गुरु खड़ा हो, तो कबीर कहते हैं, गुरु के ही पैर में गिरा। क्योंकि गुरु के बिना वह भगवान नहीं बताया जा सकता था। इसलिए भगवान नंबर दो है।

इतना हमने गुरु को ऊपर रखा था। उसका प्रयोजन था, ताकि आप शिष्य हो सकें। लेकिन हम बड़े होशियार लोग हैं। हमने सोचा, जब गुरु इतने ऊपर है, तो हम गुरु ही क्यों न हो जाएं? इसलिए मुल्क में गुरु ही गुरु हो गए।

मैंने सुना है, एक गांव में कुछ लोग दान मांगने गए। एक मकान को सदा दान मांगने वाले छोड़ देते थे। वह गांव के सबसे बड़े धनपति का मकान था। पर अति कृपण था वह। और कभी वहां से किसी को दान नहीं मिला था। लेकिन हालत बुरी थी, अकाल था। और लोगों ने सोचा, शायद ऐसे क्षण में उसको दया आ जाए। और अस्थिपंजर गांव में पड़े थे। और लोगों को भोजन नहीं था। शायद उसको दया आ जाए! सोचा कि वर्षों से गए भी नहीं, एक कोशिश करें। फिर आदमी बदल भी जाता है। और ज्यादा से ज्यादा इनकार ही होगा; इससे ज्यादा क्या हो सकता है? तो वे भीतर गए। उन्होंने बहुत समझाई सारी हालत। उनकी हालत अकाल की सुन कर उन्हें ऐसा लगने लगा कि कृपण पिघल रहा है। और उन्हें ऐसा लगा कि कृपण की आंखों में रौनक आ रही है। और उन्हें लगा कि आज तो कुछ न कुछ जरूर मिलेगा। आखिर कृपण इतना प्रसन्न हो गया और उसने कहा कि मैं काफी प्रभावित हो गया हूं तुम्हारी बातों से। तो उन्होंने कहा कि फिर? तो उसने कहा, फिर क्या? मैं भी चलता हूं तुम्हारे साथ दान मांगने। फिर क्या? जब ऐसी हालत है तो हम घर में न बैठे रहेंगे।

ऐसा ही हुआ इस मुल्क में। गुरु की इतनी महिमा--सारा मुल्क गुरु हो गया। शिष्य के लिए थी वह सारी शिक्षा। वह इसलिए थी कि तब यह ख्याल में आए कि अगर गुरु की इतनी महिमा है तो गुरु को पा लेना मार्ग है। लेकिन गुरु को पाने का उपाय एक ही है कि कोई पूरे हृदय से शिष्य हो जाए। और तो कोई उपाय नहीं है। शिष्य तो खोते चले गए। नानक ने पांच सौ साल पहले फिर से कोशिश की, और गुरु की बड़ी महिमा... । इसलिए अपने अनुयायियों को शिष्य नाम दिया। उनको पता नहीं था कि वे सिक्ख हो जाएंगे। शिष्य नाम दिया, उनको पता नहीं था कि वे सिक्ख हो जाएंगे। पंजाबी में शिष्य का रूप है सिक्ख। सिक्ख एक नई जमात हो गई, एक नया संप्रदाय हो गया। शिष्यत्व की तो बात ही खो गई; एक नई जमात खड़ी हो गई।

हम चूकने में कुशल हैं। कुछ भी हमें दिया जाए, हम अपने बचाव निकाल लेते हैं।

गुरुओं की इस महिमा का इतना नुकसान हुआ, तो इधर कृष्णमूर्ति ने गुरु के खिलाफ एक आंदोलन खड़ा किया सारे जगत में--कोई गुरु नहीं है। लेकिन जो भूल सदा होती है, वही भूल होने वाली है। इस सदी में यह खबर कि कोई गुरु नहीं है किसी का, प्रत्येक को स्वयं पाना है, हमारे अहंकार को बड़ी तृप्तिदायी मालूम पड़ी। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों की जमात इकट्ठी हो गई। उन अहंकारियों ने कहा कि ठीक है, कोई गुरु नहीं है, यह तो बिल्कुल ठीक बात है। कोई गुरु हो भी क्यों? प्रत्येक व्यक्ति पहुंच सकता है। तो ऐसे लोग हैं, जो चालीस साल से कृष्णमूर्ति को सुनते हैं; जो भी उनकी बुद्धि में है, सब कृष्णमूर्ति से सुना हुआ है; उनके शब्द-शब्द उधार हैं; फिर भी उनमें इतना भी अनुग्रह नहीं आ पाया कि वे कह सकें कि कृष्णमूर्ति से हमने सीखा है। बल्कि वे कृष्णमूर्ति की ही साथ में उक्ति बताएंगे कि सीखने का सवाल ही कहां है? कृष्णमूर्ति खुद ही कहते हैं, कोई गुरु नहीं है।

हमने एक बार इस मुल्क में मेहनत की थी गुरु की महिमा बता कर, ताकि लोग शिष्य हो जाएं; तब भी वे शिष्य न हुए, गुरु हो गए। अभी कृष्णमूर्ति ने दूसरा प्रयोग किया गुरु को खंडित करके, कि उसकी कोई महिमा नहीं है, ताकि लोग शिष्य हो जाएं, छोड़ें गुरु होना। मगर लोगों ने कहा, जब गुरु कोई है ही नहीं तो शिष्य होने

का कोई सवाल ही नहीं है। जब गुरु की महिमा हमने सुनी, हम गुरु हो गए। जब हमने सुना कि गुरु है ही नहीं, हमने कहा, अब शिष्य होने का कोई सवाल ही न रहा।

चाहें बुद्ध हों, चाहे कबीर हों, चाहे कृष्णमूर्ति हों, हमको रास्ते से हटा नहीं सकते। हम बड़े मजबूत हैं। वे हमें कैसा ही धक्का दें, हम उसकी जो परिभाषा करेंगे, वह हमें और मजबूत कर जाती है। इस दशा को ठीक से समझ लें तो यह सूत्र समझ में आ जाएगा।

और लाओत्से कहता है, "यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है। सच इ.ज दि सटल सीक्रेट।"

आदमी अज्ञान में है। आदमी को पता नहीं, कौन है। यह भी पता नहीं, किस यात्रा पर है। यह भी पता नहीं, इस जीवन की नियति क्या है। इस जीवन के बीज से कौन सा फूल खिलेगा? इस जीवन के अंधेरे में कौन सी सुबह होगी? कौन सा सूरज निकलेगा? कुछ भी पता नहीं है। यह जीवन की नाव किस किनारे लगेगी? कोई किनारा भी है या नहीं है, कुछ भी पता नहीं है। इस गहन अज्ञान में अगर सीखने की विनम्रता न हो, तो भटकाव का कोई अंत नहीं हो सकता। सीखने की विनम्रता इतनी होनी चाहिए कि जहां से भी सीखने को मिल जाए, सीख लिया जाए। वह बुरा आदमी हो, चोर हो, बेईमान हो, डाकू हो, हत्यारा हो, जिससे भी सीखने को मिल जाए, सीख लिया जाए।

गुरु का यह अर्थ नहीं है कि इसी एक गुरु के पैर पकड़ कर और रुक रहा जाए। इस फर्क को थोड़ा ठीक से समझ लें। वह भी अड़चन खड़ी हुई है, क्योंकि गुरु लोगों को समझाते हैं... । एक महिला मेरे पास आई। उसने मुझे कहा कि आपको सुनने आना चाहती हूं, लेकिन मेरे गुरु कहते हैंः एक पति, एक गुरु! गुरु बदलेगी?

बड़े मजेदार लोग हैं। मगर वक्त गया एक पति वाला भी; एक गुरु का तो अब कोई सवाल ही नहीं है। और पति तो हैं मूढ़; एक की बात चल सकती है, समझ में आती है। लेकिन गुरुओं में ऐसी मूढ़ता हो, तब तो हद हो गई। लेकिन गुरु भी पकड़ते हैं। वहां भी डर है कि उनके घेरे से कोई बाहर न हो जाए।

शिष्य का मतलब गुरु को पकड़ना नहीं है। शिष्य का मतलब सीखने की अनंत क्षमता को जन्म देना है। फिर जहां भी सीखने को मिल जाए और जिससे भी सीखने को मिल जाए। फिर मस्जिद हो, मंदिर हो, गुरुद्वारा हो; फिर हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो; फिर जहां सीखने को मिल जाए, वहां सीखते चले जाना है। और सीखने की कोई सीमा नहीं है। और सीखने का कोई पड़ाव नहीं है, जहां रुक जाना पड़ता है। सीखना एक धारा है, एक बहाव है। और जो जितना बहता है, उतना सीखता है। सब से सीखें।

और ऐसा जरूरी नहीं है कि जो किसी अर्थ में आपसे अज्ञानी हो, वह किसी अर्थ में ज्ञानी न हो। ऐसा भी नहीं है। एक छोटा बच्चा भी किसी अर्थ में आपका गुरु हो सकता है। और किसी अर्थ में आपका गुरु भी आपसे सीख सकता है। सीखना एक बहुत जटिल और सूक्ष्म बात है। सीखने की वृत्ति चाहिए। यह वृत्ति हो, तो वह जो गुह्य रहस्य है जीवन का, वह सूक्ष्म रहस्य हमारे हाथ आ जाता है। जो सीखना सीख लेता है, सत्य उसके निकट है।

लेकिन इसे हम थोड़ा और तरह से समझ लें। यह कहना भी शायद ठीक नहीं है कि जो सीखना सीख लेता है, सत्य उसके निकट है। अगर वह सच में ही पूरे शिष्यत्व के भाव में आ जाता है, सत्य उसके भीतर है। क्योंकि जो इतनी विनम्रता से अपने द्वार खोल देता है सारे जगत के लिए--कि जहां से भी आती हों हवाएं सत्य की, मेरे द्वार खुले हैं, मेरा कोई पक्षपात बाधा नहीं बनेगा, मेरी कोई पूर्व-धारणा बाधा नहीं बनेगी, मैं टूटने को, मिटने को तैयार हूं, मेरा अतीत मेरे भविष्य के लिए बाधा नहीं बनेगा, अगर सत्य की हवाएं आती हों और मेरा अतीत गलत सिद्ध होता है तो मैं उसे राख करने को तैयार हूं--इतनी जिसकी तैयारी है, वह पहुंच गया। वह इसी क्षण

पहुंच गया। शायद उसे सीखने की जरूरत भी न पड़े। यह सीखने का भाव ही काफी हो जाए। शायद यह खुलापन ही उसकी मंजिल हो जाए।

लेकिन हम हैं बंद। अगर हम सीखते हैं तो भी डरे-डरे तौल-तौल कर। हम सत्य को भी अपने अनुकूल चाहते हैं। अगर सत्य प्रतिकूल पड़ता हो तो हम द्वार बंद कर लेते हैं कि यह सत्य अपने काम का नहीं है, यह अपने लिए नहीं है, यह अपना सत्य नहीं है। हम सत्य को भी अपने अनुकूल चाहते हैं। हम चाहते हैं, सत्य भी हमारा गवाह हो।

सत्य किसी का गवाह नहीं होता। जो अपने को खोने को तैयार हैं, सत्य उनका हो जाता है; लेकिन किन्हीं का गवाह नहीं होता। अगर आप सोचते हैं कि सत्य आपके अनुकूल हो--हिंदू हो, ईसाई हो, मुसलमान हो, ऐसा हो, वैसा हो, आपके कोई ढांचे-सांचे हों, उनमें ढले, तब आप स्वीकार करेंगे--तो आपके पास सत्य कभी नहीं पहुंच पाएगा। क्योंकि आपके ढांचे, सब ढांचे सत्य को असत्य कर देते हैं, मार डालते हैं, उसकी हत्या कर देते हैं, उसके अंग-भंग कर देते हैं। कुरूप हो जाता है। सत्य चाहिए तो सब ढांचे छोड़ कर खड़े हो जाने की तैयारी ही शिष्यत्व का अर्थ है।

इजिप्सियन सूत्र हैः व्हेन दि डिसाइपल इ.ज रेडी, दि टीचर एपीयर्स। जब शिष्य तैयार है, तो गुरु मौजूद हो जाता है। और यह सौ प्रतिशत सही है।

लेकिन हम बड़े मजेदार हैं। हम में से अनेक लोग गुरु खोजते फिरते हैं। पूछो, कहां जा रहे हो? वे कहते हैं, हम गुरु की खोज कर रहे हैं।

आप कैसे गुरु की खोज करिएगा? आपके पास कोई मापदंड, कोई कसौटी, कोई तराजू है? आप तौलिएगा कैसे कि कौन है गुरु आपका? और अगर आप इतने कुशल हो गए हैं कि गुरु की भी जांच कर लेते हैं, तो अब बचा क्या है? जिसकी हम जांच करते हैं, कर सकते हैं, उससे हम ऊपर हो जाते हैं। तो आप तो गुरु पहले हो गए। परीक्षा तो होनी है गुरु की। उतर जाएं, पास हो जाएं, उत्तीर्ण हो जाएं, तो ठीक। अनुत्तीर्ण हो जाएं?

तो शिष्य घूम-घूम कर गुरुओं को अनुत्तीर्ण करते रहते हैं; कहते हैं, फलां गुरु बेकार साबित हुआ। अब वे दूसरे गुरु की तलाश में जा रहे हैं।

गुरु को शिष्य नहीं खोज सकता। यह असंभव है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। यह तो बात ही व्यर्थ है। हमेशा गुरु शिष्य को खोजता है। वह बात समझ में आती है; तर्कबद्ध है। तो गुरु शिष्य को खोजता है। तो जब भी आप शिष्य होने के लिए तैयार हो जाते हैं, गुरु प्रकट हो जाता है। वह आपको खोज लेगा। फिर आप बच नहीं सकते। वह आपको खोज लेगा। फिर आपके बचने का कोई उपाय नहीं। फिर आप भाग नहीं सकते।

इसलिए बड़ी चीज गुरु को खोजना नहीं है; बड़ी चीज शिष्य बनने की तैयारी है। आप गड्ढे बन जाएं; पानी बरसेगा और झील भर जाएगी आपकी। आप सीखने के गड्ढे बन जाएं; चारों तरफ से आपको खोजने वे सूत्र निकल पड़ेंगे, जो आपके गुरु बन जाएंगे। शिष्य का गड्ढा जहां भी होता है, वहां गुरु झील की तरह भर जाता है। लेकिन गड्ढे खोजने नहीं जा सकते। खोजने का कोई उपाय नहीं है।

दो-तीन आखिरी बातें। यह जरूरी नहीं है कि आप गुरु को जांच सकें; यह जरूरी है कि आप अपने शिष्य होने को जांचते रहें। जो आवश्यक है वह यह है कि आप यह जांचते रहें कि मेरे शिष्य होने की पात्रता, मेरे सीखने की क्षमता निखालिस है, शुद्ध है।

बायजीद अपने गुरु के पास था। बायजीद के गुरु ने बायजीद से कहा कि बायजीद, तू जो मुझसे सीखने आया है, उसके अलावा मैं क्या हूं, यह भी तू जानना चाहता है? बायजीद ने कहा कि उससे मुझे क्या प्रयोजन है? जो मैं सीखने आया हूं, वह आप हैं। इतना मेरे जानने के लिए काफी है।

फिर एक दिन बायजीद आया है और गुरु शराब की सुराही रखे बैठा है। प्याली में शराब ढालता है और चुस्कियां लेता जाता है, और बायजीद को समझाता जाता है। एक और शिष्य भी बैठा था। उसके बरदाश्त के बाहर हो गया कि हद हो गई! बरदाश्त की भी एक सीमा होती है और भरोसे का भी एक अंत है। आखिर विश्वास, कोई अंधविश्वासी तो नहीं हूं मैं! उसने कहा, यह क्या हो रहा है? यह अध्यात्म किस प्रकार का है?

गुरु ने उस शिष्य को कहा कि अगर तुम्हें नहीं सीखना है, तुम जा सकते हो। मतलब यह कि हमारा गुरु-शिष्य का संबंध टूट गया। लेकिन किस शर्त पर? मैंने तुमसे कब कहा था कि मैं शराब नहीं पीऊंगा?

बायजीद की तरफ गुरु ने देखा और बायजीद से कहा कि तुम्हें तो कुछ नहीं पूछना है?

बायजीद ने कहा कि कुछ भी नहीं पूछना है।

बारह वर्ष बायजीद था। इस बारह वर्ष में बारह हजार दफे ऐसे मौके गुरु लाया होगा जब कि कोई भी पूछ लेता कि यह क्या हो रहा है, यह नहीं होना चाहिए। बारह साल बाद जिस दिन बायजीद विदा हो रहा था, उसके गुरु ने कहा कि तुम्हें कुछ पूछना नहीं है मेरे और संबंधों में? मेरे बाबत?

बायजीद ने कहा कि अगर मैं पूछता दूसरी चीजों के संबंध में तो मैं वंचित ही रह जाता तुमसे। मैंने उनके संबंध में नहीं पूछा। मैं तो उस संबंध में ही डूबता चला गया, जिसके लिए आया था। और आज मैं जानता हूं कि वह सब जो किया था, वह कैसा नाटक था। मैंने पूछा नहीं, लेकिन आज मैं जानता हूं कि वह सब नाटक था। अगर मैं उस नाटक के बाबत पूछता तो मैं वह जो असली आदमी था यहां मौजूद, उससे वंचित रह जाता।

तिब्बत में शिष्यों के लिए सूत्र है कि गुरु अगर पाप भी कर रहा हो सामने तो उसकी शिकायत नहीं की जा सकती। बड़ा अजीब है और उचित नहीं मालूम पड़ता। अंधविश्वास पैदा करने वाला है। लेकिन जो सीखने आया है, उसे व्यर्थ की बातों में रस लेना खतरनाक है। और उसकी सीखने की क्षमता नष्ट होती है।

नारोपा एक भारतीय गुरु तिब्बत गया। मिलारेपा उसका पहला शिष्य था तिब्बत में। नारोपा बहुत ही अदभुत व्यक्ति था। और वह मिलारेपा को ऐसे-ऐसे काम करने को कहता है कि किसी की भी हिम्मत टूट जाए। वह मिलारेपा से कहता है कि यह पहाड़ से पत्थर काटो। मिलारेपा का मन होता है कि मैं सत्य की साधना करने आया। पत्थर पहाड़ से काटना! लेकिन नारोपा ने कहा कि जिस दिन तुझे संदेह उठे, उसी दिन चले जाना; बताने मत आना कि संदेह उठा है। संदेह करने वालों के साथ मैं कोई मेहनत नहीं लेता।

लेकिन मिलारेपा भी नारोपा से कम अदभुत आदमी न था। उसने पत्थर काटे। फिर नारोपा ने कहा कि अब इसका एक छोटा मकान बनाओ। उसने मकान बनाया। जिस दिन मकान बन कर खड़ा हो गया, वह दौड़ा आया और उसने सोचा कि शायद आज मेरी शिक्षा शुरू होगी। यह परीक्षा हो गई। नारोपा के पास आकर चरणों में सिर रख कर कहा कि मकान बन कर तैयार है। नारोपा गया। और उसने कहा कि अब इसको गिराओ।

कहानी कहती है, ऐसे सात दफे नारोपा ने वह मकान गिरवाया। गिरवा कर वह पत्थर वापस फेंको खाई में। फिर चढ़ाओ, फिर मकान बनाओ। ऐसा सात साल तक चला। सात बार वह मकान बना। एक साल में वह बन कर खड़ा हो पाए; गिरवा दे। और सातवीं बार भी जब मकान गिर रहा था, तब भी मिलारेपा ने नहीं कहा कि क्यों?

और कहते हैं कि नारोपा ने कहा कि तेरी शिक्षा पूरी हो गई। जो मुझे तुझे देना था, मैंने दे दिया। और जो तू पा सकता था, वह तूने पा लिया है। बोल! मिलारेपा चरणों में गिर पड़ा।

मिलारेपा से बाद में उसके शिष्य पूछते थे कि हम कुछ समझे नहीं यह क्या हुआ। क्योंकि कोई और शिक्षा तो हुई नहीं। यह लगाना, यह गिराना, बस यही हुआ। मिलारेपा ने कहा कि पहले तो मैं भी समझा कि यह क्या हो रहा है! लेकिन फिर मैंने कहा कि जब एक दफा तय ही कर लिया, तो ज्यादा से ज्यादा एक जिंदगी ही जाएगी न! बहुत जिंदगी बिना गुरु के चली गईं, एक जिंदगी गुरु के साथ सही। ज्यादा से ज्यादा, उसने कहा, एक जिंदगी ही जाएगी न! तो ठीक है। बहुत जिंदगियां ऐसे बिना गुरु के भी गंवा दीं, अपनी बुद्धि से गंवा दीं; इस बार बुद्धि को गंवा कर, दूसरे के हिसाब से चल कर देख लें। जिस दिन, मिलारेपा ने कहा, मैंने यह तय कर लिया, उस दिन से मैं बिल्कुल शांत होने लगा। वह पत्थर जमाना नहीं था, जन्मों-जन्मों का मेरा जो सब था, उसने जमवाया-उखड़वाया, जमवाया-उखड़वाया। वह सात बार जो मकान का बनाना और मिटाना था; तुम्हें मकान का दिख रहा हो, वह मेरा ही बनना और मिटना था। और जिस दिन सातवीं बार मैंने मकान गिराया, उस दिन मैं नहीं था। इसलिए उसने मुझसे कहा कि जो मुझे तुझे देना था, दे दिया; और जो तू पा सकता था, वह पा लिया। तुझे कुछ और चाहिए?

"लेकिन जो न अपने गुरु को मूल्य देता है और न जिसे अपना सबक पसंद है, वह वही है जो दूर भटक गया है, यद्यपि वह विद्वान हो सकता है।"

अक्सर--यद्यपि नहीं--अक्सर वह विद्वान होता है।

"यही सूक्ष्म व गुह्य रहस्य है।"

आज इतना ही। कीर्तन करें पांच मिनट; फिर जाएं।

सत्तावनवां प्रवचन

श्रद्धा, संस्कार, पुनर्जन्म, कीर्तन व भगवत्ता

बहुत से सवाल हैं।

एक मित्र ने पूछा है, श्रद्धा अंधविश्वास न बने, इसके लिए क्या करें?

पहली बात, श्रद्धा के परिणाम से निर्णीत होता है कि श्रद्धा श्रद्धा है या अंधविश्वास है। आप किसी पर श्रद्धा करते हैं। वह आदमी गलत भी हो सकता है। वह श्रद्धा का पात्र न भी हो, यह भी हो सकता है। अगर ऐसे आदमी पर आप श्रद्धा करते हैं, तो लोग कहेंगे यह अंधश्रद्धा है। आप अंधे हैं, आपको दिखाई नहीं पड़ता कि वह आदमी गलत है। अगर आप ऐसे किसी सिद्धांत पर श्रद्धा करते हैं जिसके लिए वैज्ञानिक कोई प्रमाण नहीं है, तो लोग कहेंगे यह अंधश्रद्धा है।

मेरी परिभाषा अलग है। कोई सिद्धांत वैज्ञानिक है या नहीं, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। अगर उस सिद्धांत पर श्रद्धा के कारण आपका जीवन वैज्ञानिक होता जाता हो, अगर उस श्रद्धा के कारण आप रूपांतरित होते हों, अगर वह श्रद्धा आपको शुभ और सत्य की दिशा में गतिमान करती हो, तो श्रद्धा है। और वह सिद्धांत कितना ही वैज्ञानिक हो, लेकिन उस पर भरोसा रखने से आपका जीवन और सड़ता हो, नीचे गिरता हो, तो अंधश्रद्धा है।

जिस व्यक्ति पर आप श्रद्धा करते हैं, वह ठीक हो या गलत हो, यह असंगत है, निष्प्रयोजन है, इररेलेवेंट है। वह गलत ही हो और उस पर श्रद्धा आपको ठीक बनाती हो, उस पर श्रद्धा आपके जीवन को आनंद से और संगीत से, सौंदर्य से भरती हो, तो मैं इसे श्रद्धा कहूंगा। और वह आदमी बिल्कुल ठीक हो और आपकी श्रद्धा उस पर आपको नीचे गिराती हो दुख में, पीड़ा में, नरक में, या आपकी गति को अवरुद्ध करती हो, उस श्रद्धा के कारण आप बढ़ते न हों, रुक जाते हों, तो मैं कहूंगा अंधश्रद्धा है।

इसका अर्थ यह हुआ कि श्रद्धा कैसी है, यह श्रद्धा करने वाले पर निर्भर है। श्रद्धा आब्जेक्टिव, वस्तुगत नहीं है, विषयगत नहीं है; विषयीगत है, सब्जेक्टिव है।

एक पत्थर की मूर्ति में आप श्रद्धा करते हैं। अगर यह श्रद्धा आपके भीतर नए फूलों को खिलने में सहयोगी होती है, तो मैं कहूंगा सम्यक श्रद्धा है। और खुद भगवान ही आपके सामने खड़े हों और आप उनमें श्रद्धा रखते हों, लेकिन वह आपको अंधेरे की तरफ ले जाती हो, तो मैं कहूंगा वह अंधविश्वास है।

मेरा फर्क समझ लें। किस पर आपका विश्वास है, यह महत्वपूर्ण नहीं है, निर्णायक नहीं है। आपका विश्वास आपके लिए क्या करता है, यही महत्वपूर्ण है और निर्णायक है। तब हर आदमी तौल सकता है कि उसकी श्रद्धा श्रद्धा है या अंधविश्वास है। अगर आपके विश्वास आपको कहीं भी नहीं ले जाते और आप जहां थे वहीं सड़ते रहते हैं, तो वे अंधविश्वास हैं। क्योंकि श्रद्धा तो एक आग है। वह आपको जला देगी और बदल डालेगी।

आग में हम डालते हैं सोने को; तो जो कचरा है वह जल जाता है, सोना बच जाता है। आग सच्ची है या झूठी, इसका और क्या सवाल सोना पूछ सकता है? सोना यही देख ले कि उसके भीतर जो कचरा था वह जल

गया, वह निखर कर स्वर्ण होकर बाहर आ गया, तो आग सच्ची थी। आग को जानने का सोने के लिए और उपाय भी क्या है? और अगर कचरा सब बचा हुआ साथ रह गया है तो आग झूठी थी।

आप इसकी फिक्र मत करना कि किस पर आपकी श्रद्धा है, आप इसकी फिक्र करना कि आपको जो श्रद्धा है वह आग है या नहीं, वह आपको बदलती है या नहीं बदलती है।

यह बड़े मजे की बात है। और इसलिए कई बार ऐसा होता है कि श्रद्धा जिस पर आपकी है, वह शायद पात्र न भी हो; लेकिन आप पात्र हो जाते हैं श्रद्धा के कारण। और रोज ऐसा होता है कि जिस पर आपकी श्रद्धा है, वह पूरा पात्र है; लेकिन आपकी जिंदगी में कोई अंतर नहीं पड़ता, कोई क्रांति घटित नहीं होती। आप अपात्र ही रह जाते हैं। मगर हम सब यही सोचते हैं कि जिसमें हमारी श्रद्धा है, वह ठीक है या नहीं। आप सोचें दूसरे छोर से, जिसकी श्रद्धा है, वह ठीक है या नहीं। आपकी श्रद्धा आपको भयभीत करती हो, अंधविश्वास है; आपकी श्रद्धा आपको अभय करती हो, श्रद्धा है। आपकी श्रद्धा आपको घृणा और क्रोध और वैमनस्य से भरती हो, अंधविश्वास है। आपकी श्रद्धा करुणा बन जाती हो, श्रद्धा है। अपने से तौलना। और कोई दूसरा उपाय नहीं है। जो दूसरे से तौलने चलेगा, उसे कभी भी कोई पात्र मिलने वाला नहीं है जिस पर वह श्रद्धा कर सके। कभी भी कोई पात्र मिलने वाला नहीं है जिस पर वह श्रद्धा कर सके। और जो अपने से सोचना शुरू करेगा, उसे चारों तरफ पात्र ही पात्र मिल जाएंगे जिन पर श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा ही चुकाती है। किस पर की है, यह महत्वपूर्ण नहीं है; की है, इसलिए क्रांति घटित होती है।

सुना है मैंने, संत फ्रांसिस परम श्रद्धालु व्यक्ति थे और किसी पर भी भरोसा करते थे। उनका शिष्य था लियो। दोनों एक यात्रा पर थे। कोई भी साथ हो जाता फ्रांसिस के तो उसे साथ रख लेते। अक्सर तो कोई भी साथ होकर उनका सामान भी चुरा कर ले जाता। एक रात टिकता, रात उनका बिस्तर, उनकी झोली--जो कुछ थोड़ा-बहुत होता--लेकर चला जाता। लियो बहुत परेशान था, उनका शिष्य। वह कहता कि कम से कम जांच-परख तो कर लेनी चाहिए। हर किसी को साथ ले लेते हैं और फिर तकलीफ उठाते हैं। यह आदमी पर भरोसा छोड़ो। इतने आदमी धोखा दे गए हैं, फिर भी तुम्हारा आदमी पर भरोसा नहीं छूटता।

तो संत फ्रांसिस कहता, वे सब मेरी श्रद्धा की परीक्षा ले रहे हैं। दो उपाय हैं। एक आदमी रात रुका है और चोरी करके चला गया। तो एक तो उपाय यह है कि सामान तो गया ही जिसकी कोई कीमत नहीं है, साथ श्रद्धा भी चली जाए जिसकी बड़ी कीमत है। तो संत फ्रांसिस ने लियो से कहा कि लियो, तुझे वे लोग ज्यादा नुकसान पहुंचा रहे हैं। सामान की तो बड़ी कीमत नहीं है; लेकिन तेरी श्रद्धा भी नष्ट होती जा रही है।

और संत फ्रांसिस ने कहा कि अगर ऐसे लोग मेरे साथ ठहरें जो भले हैं, तो मेरी श्रद्धा के लिए कोई कसौटी भी न होगी। मैं आदमी पर भरोसा किए ही चला जाऊंगा। क्योंकि सवाल आदमी का नहीं, सवाल मेरे भरोसे का है। सवाल यह नहीं है कि आदमी पर मेरी श्रद्धा हो, सवाल यह है कि मेरी श्रद्धा हो। और अगर मैं आदमी पर भरोसा नहीं कर सकता तो फिर मैं किसी पर भी भरोसा नहीं कर सकूंगा।

इसको अगर इस तरह से देखेंगे तो सारी दृष्टि और। श्रद्धा मूल्यवान है। पत्थर पर है या परमात्मा पर, यह गौण है। पत्थर पर भी हो सकती है। और तब पत्थर भी परमात्मा का काम देने लगता है।

अंधविश्वास नपुंसक श्रद्धा है। उससे कुछ भी नहीं होता। उसे हम रखे रहते हैं मस्तिष्क के एक कोने में। वह किसी काम की नहीं है, उसका कोई उपयोग नहीं है। इतने लोग ईश्वर में भरोसा करते हैं। यह भरोसा झूठा होना चाहिए। क्योंकि अगर इतने लोग सच में ही ईश्वर में भरोसा करते हैं, तो यह जगत इतना कुरूप नहीं हो सकता, जितना कुरूप है। अगर इतने लोग सच में ही ईश्वर में भरोसा करते हैं, तो इनकी जिंदगी में जो सुगंध,

जो सुवास आनी चाहिए, उसका तो कहीं कोई पता नहीं चलता। सिर्फ दुर्गंध आती है। यह भरोसा झूठा है। यह भरोसा ऊपरी है। यह भरोसा दिखाऊ है। तो इसे मैं कहूंगा अंधविश्वास।

जो क्रांति ले आए आपके जीवन में, वह श्रद्धा है। और जो आपकी जिंदगी में एक स्थिरता लगा दे, स्टैगनेंसी पैदा कर दे, और आप एक ही जगह बंद तालाब की तरह सड़ते रहें, वह अंधविश्वास है। जो मुल्क अंधविश्वासी हैं, वे बंद डबरे में सड़ते रहते हैं। श्रद्धा तो एक बहाव है, एक तीव्र गति है। श्रद्धालु होना आसान नहीं है। क्योंकि श्रद्धा का अर्थ हैः अपने को बदलने की तैयारी।

बुद्ध के पास अनेक लोग आते हैं। बुद्ध के पास आते हैं तो वह कहते हैंः बुद्धं शरणं गच्छामि! हम बुद्ध की शरण जाते हैं। एक युवक वैशाली में बुद्ध के पास आया। और उसने कहा कि मैं आपकी शरण आता हूं। तो बुद्ध ने पूछा, तुम मेरी शरण आते हो, यह अपना उत्तरदायित्व टालने के लिए तो नहीं? ऐसा तो नहीं है कि अब से तुम समझो। अब से तुम्हारी कृपा से कुछ हो तो ठीक है। अगर यह शरण में आना सिर्फ दायित्व टालना हो, तो तुम शरण नहीं आते, मेरे सिर पड़ते हो। और अगर यह शरण में आना सिर्फ एक आंतरिक क्रांति की शुरुआत हो, तो ही सार्थक है।

मेरे पास भी लोग आते हैं। वे आकर कहते हैं कि हम तो कमजोर हैं, हमसे तो कुछ हो नहीं सकता, अब आप सम्हालो। एक सज्जन अभी-अभी आए। वे दस वर्ष से मुझे जानते हैं। दस वर्ष से मैं भी उन्हें जानता हूं। बस इस जानने के अतिरिक्त और कोई संबंध नहीं है। अभी आए और वह मुझसे बोले कि दस वर्ष हो गए, और अभी तक कुछ हुआ नहीं है। मैंने पूछा कि मैं समझा नहीं। उन्होंने कहा, दस वर्ष से आपको जानता हूं, अभी तक कुछ हुआ नहीं है। कुछ करके दिखाइए!

अपराधी मैं हूं। और उन्होंने काफी काम किया कि दस वर्ष से मुझे जानते हैं। वे भी कह सकते हैं कि उनकी मुझ पर श्रद्धा है। वह श्रद्धा नहीं है, वह अंधविश्वास है। और वह अंधविश्वास आत्मघाती है। क्योंकि उसमें मेरा कोई नुकसान नहीं हो रहा है। अगर वे इस भरोसे बैठे हैं कि मैं कुछ करूं और होगा, तो कभी भी नहीं होगा। उन्हें ही कुछ करना पड़ेगा।

हां, कोई करने को तैयार हो तो यह सारा जगत उसको साथ देने को तैयार है। कोई बैठने को तैयार हो तो यह सारा जगत उसको बैठाने को भी तैयार है। अस्तित्व सहयोगी है। आप नरक जा रहे हैं तो अस्तित्व आपको नरक की तरफ ले जाता है। आप स्वर्ग जा रहे हैं तो अस्तित्व आपको स्वर्ग की तरफ ले जाता है। लेकिन जाते सदा आप हैं। निर्णय आपका, दायित्व आपका।

आपकी श्रद्धा आपको रूपांतरित करने की कीमिया बने, तो समझना कि सम्यक श्रद्धा है।

एक मित्र ने पूछा है कि--और एक ने नहीं, बहुत मित्रों ने, कोई बीस मित्रों ने वही सवाल पूछा है--पूछा है कि आपने कहा कि प्रत्येक कर्म का फल तत्काल मिल जाता है। अगर प्रत्येक कर्म का फल तत्काल मिल जाता है तो फिर एक आदमी अंधा और एक आदमी गरीब और एक आदमी अमीर क्यों पैदा होते हैं? अगर तत्काल फल मिल जाता है तो फिर जन्म-जन्म में भेद क्यों पड़ता है?

इस भेद का कारण समझ लें। फल तो तत्काल मिलता है, फिर भी भेद पड़ता है। और भेद इसलिए पड़ता है कि तत्काल मिले हुए फल का जो इकट्ठा जोड़ है, वह आप हैं। उसका जोड़ कहीं किसी ईश्वर के हाथ में नहीं है, वह जोड़ आप हैं। आप जो भी एक जिंदगी में करते हैं, उस सबका परिणाम हैं।

आपने एक जिंदगी में हजार बार क्रोध किया, तो आप वही आदमी नहीं हो सकते जिसने एक भी बार क्रोध नहीं किया। हजार बार क्रोध किया, हजार बार आपने फल पाया। जिस आदमी ने एक भी बार क्रोध नहीं किया, उसने एक भी बार फल नहीं पाया। आप पर हजार चोटें हैं क्रोध करने की और फल पाने की। आपका व्यक्तित्व हजार घावों से भर गया। माना कि वे घाव सूख गए; लेकिन उनके निशान रह जाएंगे। उन निशानों का नाम संस्कार है। कर्म करते हैं हम, फल तत्काल मिल जाता है। लेकिन संस्कार रह जाता है।

संस्कार को समझ लेना जरूरी है। थोड़ा सूक्ष्म है।

हम इस कमरे में एक पानी का गिलास लुढ़का दें; पानी बह जाएगा। सुबह धूप आएगी, पानी उड़ जाएगा। लेकिन एक सूखी रेखा कमरे में छूट जाएगी। वह सूखी रेखा पानी की है? पानी अब बिल्कुल नहीं, इसलिए उसको पानी का कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि पानी की एक बूंद भी नहीं रह गई वहां, सब उड़ गई है। वह सूखी रेखा पानी की है, यह कहना उचित नहीं है। लेकिन फिर भी पानी की ही है। क्योंकि पानी के बहने से ही बन गई थी--इस कमरे की धूल पर। वह संस्कार है। सूख गया सब, पानी बिल्कुल नहीं बचा; फिर भी रेखा रह गई। अब आप दुबारा पानी डालें, तो बहुत संभावना यह है कि सूखी रेखा को पकड़ कर वह पानी बहे। संस्कार का मतलब होता है टेंडेंसी। अब उस सूखी रेखा की यह वृत्ति होगी कि पानी मिले तो उससे बह जाए; क्योंकि लीस्ट रेसिस्टेंस के कारण। अगर और कहीं से पानी को बहना पड़े तो फिर से रास्ता बनाना पड़ेगा, धूल काटनी पड़ेगी। उतनी झंझट पानी भी नहीं लेना चाहता। जहां धूल कटी है और रास्ता बना है, उसी से बह जाता है।

जिस आदमी ने कल दिन भर क्रोध किया, आज सुबह वह उठेगा क्रोध की सूखी रेखा के साथ। वह सिर्फ टेंडेंसी है। फल तो उसे कल ही मिल गया; जब क्रोध किया, तभी फल मिल गया। लेकिन क्रोध उसने किया और फल मिला, तो उसके व्यक्तित्व में एक सूखी रेखा क्रोध की बन गई। आज सुबह जब वह उठेगा, तो वह जो सूखी रेखा है, वह तत्पर है। जरा सा भी मौका मिला, कोई भी वेग उठा, वह सूखी रेखा उसको बहा देगी अपने में से। क्रोध पुनः प्रकट हो जाएगा।

जब हम एक जन्म के बाद पैदा होते हैं, तो हम संस्कार लेकर पैदा होते हैं। वह जो हमने पिछले जन्म में किया है, और जन्मों-जन्मों में किया है, वही हमारा व्यक्तित्व है। वे सब सूखी रेखाएं लेकर हम पैदा होते हैं। इसलिए दो बच्चों में भेद होता है। इसलिए नहीं कि उनके पिछले जन्मों का कर्मों का फल उनको अभी भोगना है। फल तो वे भोग चुके। लेकिन फल भोगने के बाद भी जो वृत्तियां शेष रह गईं, जो वृत्तियों का प्रभाव शेष रह गया, जो-जो उन्होंने किया उसकी जो-जो पंक्तिबद्ध उनके ऊपर रेखाएं रह गईं, वे जो आदतें रह गईं, उनको लेकर बच्चा जन्म रहा है। इसलिए दो बच्चे अलग-अलग हैं।

जिन मित्रों ने भी सवाल पूछा है, उनके सवाल में यही ध्वनि है कि अगर ऐसा है, तब तो फिर कर्म-फल का सिद्धांत समाप्त हो गया। क्योंकि तत्काल हमें फल मिल जाता है, तो मरते वक्त सब लेखा-जोखा पूरा हो जाता है। तब तो सब व्यक्ति समान पैदा होने चाहिए, क्योंकि लेखा-जोखा पूरा हो गया।

लेखा-जोखा जरूर पूरा हो गया। लेकिन हर आदमी ने लेखा-जोखा अलग-अलग ढंग से पूरा किया है। और हर आदमी के लेखे-जोखे में अलग-अलग घटनाएं घटी हैं। और हर आदमी ने अलग-अलग संस्कार अर्जित कर लिए हैं। उन संस्कारों को लेकर वह पैदा होता है।

एक मित्र ने पूछा है, कोई आदमी अंधा पैदा हो जाता है, कोई आदमी गरीब पैदा हो जाता है। क्या कारण है कि कोई सोने की चम्मचें लेकर पैदा होता है!

थोड़ा जटिल है। और जटिल हो गया इस सदी के कारण। इतना जटिल नहीं था। इतना जटिल नहीं था, क्योंकि गरीबी-अमीरी बहुत सीधी-सीधी बातें थीं। और साफ था कि गरीब गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इसमें सचाई है।

इसमें सचाई है, क्योंकि हम गरीब होने का संस्कार भी अर्जित करते हैं। लेकिन गरीब होने का संस्कार बड़ी बात है। सिर्फ धन से उसका संबंध नहीं है, और बहुत सी चीजों से संबंध है। जटिलता इसलिए है कि अब तक जब भी हम गरीब आदमी के बाबत सोचते थे, तो अतीत में गरीब आदमी का मतलब था जिसके पास धन नहीं है। एक ही मतलब था। लेकिन अब जमीन पर विज्ञान ने बहुत धन पैदा कर लिया। सौ-पचास वर्षों में निर्धन आदमी जमीन पर कोई भी नहीं होगा। तब गरीब के नए अर्थ शुरू हो जाएंगे। गरीब नहीं मिटेगा, सिर्फ उससे धन का जो जोड़ था, वह मिट जाएगा। गरीब के नए अर्थ शुरू हो जाएंगे। कोई आदमी बुद्धि में गरीब होगा, कोई आदमी स्वास्थ्य में गरीब होगा, कोई आदमी सौंदर्य में गरीब होगा।

ध्यान रखें, धन तो मनुष्य-जाति का इतने दिनों का जो श्रम है, उसके परिणाम में सबको उपलब्ध हो जाएगा। लेकिन तब सूक्ष्मतम दरिद्रताएं प्रकट होनी शुरू हो जाएंगी। जब स्थूल दरिद्रताएं मिटती हैं, तो सूक्ष्म दरिद्रताएं शुरू हो जाती हैं। जब सबके पास धन बराबर होता है, तो धन की तो बात समाप्त हो गई। लेकिन तब बुद्धि, प्रतिभा, गुण, उनकी दीनता अखरने लगती है। दरिद्रता बड़ा शब्द है; उसकी अभिव्यक्तियां बहुत हो सकती हैं। अब तक जो बड़ी से बड़ी अभिव्यक्ति थी, वह धन की थी। भविष्य में जो बड़ी अभिव्यक्ति है, वह गुण की होगी। लेकिन यह जारी रहेगा; क्योंकि हम अलग-अलग कर्म से अलग-अलग संस्कार अर्जित करते हैं।

कुछ लोग दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा होते हैं। कुछ लोग समृद्ध होने की आदत लेकर पैदा होते हैं। जो लोग समृद्ध होने की आदत लेकर पैदा होते हैं, उनको भिखारी भी बना कर रास्ते पर खड़ा कर दो, तो भी उनकी चाल में सम्राट की रौनक होगी। जो लोग दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा होते हैं, देखो, बड़े-बड़े महलों में भी बैठ कर उनसे ज्यादा दरिद्र आदमी खोजना मुश्किल हो जाएगा। कंजूस आदमी वह है जो दरिद्र होने की आदत लेकर पैदा हुआ है। धन भी उसके पास आ जाए तो उसको खर्च नहीं कर पाता। धन तो मिल भी सकता है समाज की व्यवस्था से, लेकिन खर्च करने की जो आदत है, उस धन को भोग लेने की जो आदत है, वह बहुत गहरा संस्कार है।

तो एक आदमी को आप धनी बना दें, और आप अचानक पाएंगे कि इतना दरिद्र वह पहले नहीं था जितना अब हो गया। अक्सर ऐसा होता है कि गरीब आदमी कंजूस नहीं होते। क्योंकि जब बचाने को ही कुछ नहीं होता तो क्या बचाना! एक गरीब आदमी को थोड़े रुपए दे दें, और जिसको भारत में हम बहुत दिन से जानते हैं, हम कहते रहे हैं--निन्यानबे का चक्कर। एक आदमी को निन्यानबे रुपए दे दें। अब उसकी एक ही इच्छा होगी कि कैसे सौ हो जाएं। यह इच्छा बड़ी स्वाभाविक है। और उसको आज जो एक रुपया मिलेगा, वह आज भूखा सो जाना चाहेगा, सौ कर लेना चाहेगा। लेकिन जब एक दफा मन को निन्यानबे से सौ करने का रस लग जाता है, तो फिर सौ से एक सौ एक करने का, फिर एक से दो करने का--वह रस बढ़ता चला जाता है।

पुरानी कथा है पंचतंत्र में। एक सम्राट सदा अपने नाई से पूछता था कि तू इतना प्रसन्न कैसे है? तेरे पास कुछ भी नहीं है। वह नाई कहता कि मुझे जो आप दे देते हैं, उतना बहुत है। सांझ गुजर जाती है, दिन गुजर

जाता है। दूसरे दिन फिर सुबह आपकी सेवा कर जाता हूं, मालिश कर जाता हूं, बाल बना जाता हूं; जो मिल जाता है, वह दिन भर के लिए काफी है।

फिर अचानक एक दिन सम्राट ने देखा कि नाई उदास है, और नाई बड़ा बेचैन है, और लगता है रात भर सोया नहीं है। तो सम्राट ने पूछा कि आज तेरे हाथों में ताकत नहीं मालूम पड़ती; और रात तू सोया नहीं, ऐसा लगता है; तेरी आंखों में नींद है। कहीं तू भी निन्यानबे के चक्कर में तो नहीं पड़ गया? उस नाई ने पूछा, आपको कैसे पता चला? उसने कहा कि पागल, तू झंझट में मत पड़ना, यह मेरे वजीर की करतूत है। कल उससे मेरा विवाद हो गया। और मैंने कहा कि नाई बड़ा शांत, संयमी आदमी है। उसने कहा कि कुछ मामला नहीं है, सिर्फ निन्यानबे उसके पास नहीं हैं। तो उसने मुझसे कहा था, आज रात जाकर मैं निन्यानबे की एक थैली उसके घर में फेंक आऊंगा, सुबह देख लेना। तू पड़ गया झंझट में। तू रात भर क्या सोचता रहा? वह बोला कि मैं रात भर यही सोचता रहा कि सौ कैसे हो जाएं। रात तो मैं सो ही नहीं सका। पहली रात मैं नहीं सो सका। और कभी मेरे पास कुछ नहीं होता था, मैं मजे से सोता था। ये निन्यानबे ने ठीक सौ का ख्याल दे दिया। यह वैसे ही है जैसे दांत टूट जाए और जीभ वहीं-वहीं जाने लगे। वह जो सौ है, वह खाली गड्ढा है, जीभ वहीं-वहीं जाने लगी। रात भर सो नहीं सका। सम्राट ने कहा, अगर तू समझ, तो वह निन्यानबे की थैली फेंक दे, नहीं तो मरेगा दुख में। हम मर ही रहे हैं पहले से। हमारी तरफ देख। सौ होने से कुछ भी न होगा। निन्यानबे होना खतरा है। सौ होने से कुछ भी न होगा। फिर एक दफा यात्रा शुरू हो गई तो तू मुश्किल में पड़ जाएगा। लेकिन उस नाई ने कहा, महाराज, एक दफे तो जीवन में मौका मिला। सौ तो कर लेने दें।

लेकिन उस दिन के बाद नाई कभी सुखी नहीं हो सका। कोई भी नहीं हो सकता।

होता क्या है? लोग आदत लेकर पैदा होते हैं। परिस्थिति मौका बनती है उस आदत के प्रकट होने का, या रुक जाने का। धन अब तक परिस्थिति में कम था, इसलिए कुछ लोग गरीब थे, कुछ लोग अमीर थे--धन के लिहाज से। और इस वजह से दूसरी गरीबियां दिखाई ही नहीं पड़ती थीं। अब दुनिया मुसीबत में पड़ेगी, क्योंकि धन की गरीबी परिस्थिति से मिटी जा रही है; मिट जाएगी। और तब आपको पहली दफे पता चलेगा कि और भी गरीबियां हैं, जो धन से बहुत गहरी हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पांच प्रतिशत लोग ही केवल प्रतिभाशाली होते हैं--केवल पांच प्रतिशत! और यह प्रयोग हजारों तरह से किया गया और यह प्रतिशत पांच से ज्यादा कभी नहीं होता। इसे थोड़ा आप समझें। यह केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है। जानवरों में भी पांच प्रतिशत जानवर कुशल होते हैं, शेष पंचानबे प्रतिशत से। जो कबूतर चिट्ठी-पत्री पहुंचा देते हैं, वे पांच प्रतिशत कबूतर हैं। पंचानबे प्रतिशत नहीं पहुंचा सकते। और अनेक-अनेक प्रयोग से यह बड़ी हैरानी की बात हुई कि ये पांच प्रतिशत, मालूम होता है, कोई वैज्ञानिक नियम है प्रकृति में। जैसे कि सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, ऐसे पांच प्रतिशत प्रतिभा होती है।

पिछले वर्षों में चीन में उन्होंने माइंड-वाश के लिए, ब्रेन-वाश के लिए बहुत से प्रयोग किए--लोगों के मस्तिष्क बदल देने के लिए। कोरियाई युद्ध के बाद चीन के हाथ में जो अमरीकन सैनिक पड़ गए थे, उन्होंने लौट कर जो खबरें दीं, उसमें एक खबर यह भी है। उन्होंने ये खबरें दीं कि चीनियों ने सबसे पहले तो इसकी फिक्र की कि हममें प्रतिभाशाली कौन-कौन है। और तब उन्होंने पांच प्रतिशत लोगों को अलग कर लिया। अगर सौ कैदी पकड़े, तो उन्होंने पहले पांच प्रतिभाशाली लोगों को अलग कर लिया। और चीनियों का कहना है कि पांच प्रतिभाशाली लोगों को अलग कर लो, पंचानबे को बदलने में कोई दिक्कत ही नहीं होती। पांच को अलग कर लो, फिर पंचानबे कभी गड़बड़ नहीं करते; कोई उपद्रव, कोई बगावत, भागना, कुछ नहीं। पांच को अलग

कर लो, पंचानबे के ऊपर पहरेदार रखने की भी कोई जरूरत नहीं है। वे पांच हैं असली उपद्रवी। अगर वे पांच वहां रहे तो झंझटें जारी रहेंगी। भागने की चेष्टा होगी, बगावत होगी, कुछ उपद्रव होगा। और अगर वे पांच मौजूद रहे, तो वे पांच जो हैं लीडर्स हैं, वह नेतृत्व है उनके पास, उनकी मौजूदगी में आप बाकी को भी नहीं बदल सकते। बाकी सदा उनके पीछे चलेंगे। उनके पांच प्रतिशत को अलग कर लो, वे पंचानबे प्रतिशत बिल्कुल ही खाली हो जाते हैं। उनकी जगह किसी को भी रख दो, वे उनका नेतृत्व स्वीकार कर लेंगे।

यह केवल आदमियों में होता तो हम सोचते, शायद आदमी की समाज-व्यवस्था का परिणाम है। वैज्ञानिकों ने चूहों पर प्रयोग किए हैं, खरगोशों पर प्रयोग किए हैं, भेड़ों पर प्रयोग किए हैं; वे पांच प्रतिशत...। आपने सुना है न, भेड़ें कतार बांध कर चलती हैं। लेकिन किसी के तो पीछे चलती हैं। पांच प्रतिशत भेड़ें आगे भी चलती हैं। सभी भेड़ें पीछे नहीं चलतीं, पांच प्रतिशत भेड़ें आगे भी चलती हैं। वे पांच प्रतिशत भेड़ों को अलग कर लो, बाकी झुंड एकदम केआटिक हो जाता है। उसकी कुछ समझ में नहीं आता अब क्या होगा।

जो लोग जू में काम करते हैं, अजायबघरों में काम करते हैं, जहां बड़े-बड़े--लंदन या मास्को में--जहां बड़े-बड़े अजायबघर हैं, उन अजायबघरों में काम करने वाले लोगों को पता है कि जब भी नए बंदर आते हैं, तो उनमें से पांच प्रतिशत तत्काल अलग कर लेने होते हैं। वे लीडर्स हैं, पोलिटीशियंस हैं। उनको अलग कर लेना पड़ता है। वे उपद्रव मचा देंगे। उनको अलग कर लेने के बाद बाकी सब डोसाइल हैं, बिल्कुल अनुशासन मान लेते हैं।

इससे भी बड़ी मजे की बात जो है, वह यह पता चली है कि जेलखानों में जो अपराधी हैं; राजधानियों में जो राजनीतिज्ञ हैं; मंदिरों में, चर्चों में, गिरजाघरों में जो पुरोहित हैं; युनिवर्सिटीज में, विश्वविद्यालयों में, कालेजों में जो पंडित हैं; ये पांच प्रतिशत हैं सब मिला कर।

यह जरा जटिल बात है। क्योंकि एक लंदन के जू में प्रयोग किया जा रहा था कि अगर बंदरों को ठीक से भोजन, ठीक से सुविधा, उनको कोई अड़चन न दी जाए, जगह दी जाए, तो वे जो पांच प्रतिशत प्रतिभाशाली लोग हैं, वे बाकी शेष बंदरों को अनुशासित रखने में सहयोगी होते हैं। उनको गड़बड़ नहीं करने देते। वे पांच प्रतिशत नेतृत्व ग्रहण कर लेते हैं। अगर तकलीफ दी जाए, भोजन कम हो, सुविधा कम हो, अड़चन हो, तो वे पांच प्रतिशत क्रिमिनल हो जाते हैं, अपराधी हो जाते हैं। और वे पांच प्रतिशत बाकी को उपद्रव करवा कर, हड़ताल या कुछ न कुछ, कुछ न कुछ करवाते हैं।

वैज्ञानिकों का यह कहना है कि अपराधी और राजनीतिज्ञ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए आप कभी देखें, जब तक राजनीतिज्ञ ताकत में नहीं होता, तब तक वह हड़ताल करवाता है। जब वह ताकत में हो जाता है, तब वह हड़ताल तुड़वाता है। यह बड़े मजे की बात है। यह वही बंदर वाला नियम है, उसमें कुछ फर्क नहीं है। जब तक राजनीतिज्ञ ताकत के बाहर है, तब तक वह सब तरह के उपद्रव को क्रांति कहता है। जब वह ताकत में आ जाता है, सब तरह की क्रांति को वह उपद्रव कहता है। जब वह ताकत में होता है, तब वह कहता है कि लोग अपराधी हैं जो उपद्रव कर रहे हैं। जब वह ताकत के बाहर होता है, तब वह कहता है कि लोग बगावती हैं, विद्रोही हैं। उसकी भाषा बदल जाती है। ताकत में आते से ही वह अनुशासन की बात करता है; और वह कहता है, अगर अनुशासन रहेगा तो सुख-शांति सब आ जाएगी। ताकत के बाहर कर दो कि वह कहता है, बगावत चाहिए, क्रांति चाहिए, बिना क्रांति के कुछ भी नहीं हो सकता। क्रांति से ही सुख आएगा।

लेकिन चाहे अपराधी हों, चाहे राजनीतिज्ञ हों, यह पांच प्रतिशत ही है मनुष्य के पास।

आदमियों को छोड़ दें, पशुओं को छोड़ दें, जिन लोगों ने वनस्पति पर बहुत जीवन भर प्रयोग किए हैं, वे कहते हैं कि अफ्रीका के जंगल में भी जो वृक्ष सारी परेशानी और संघर्ष को पार करके जंगल के ऊपर उठ कर सूरज तक पहुंच जाते हैं, उनकी संख्या पांच प्रतिशत है। अगर एक पानी का सरोवर हो और उसमें मछलियां हों और आप जहर डाल दें, तो पांच प्रतिशत मछलियां ही हैं जो उस जहर से बचने की चेष्टा करती हैं, बाकी तो राजी हो जाती हैं।

आपके शरीर में जब कोई बीमारी प्रवेश करती है, तो आपके शरीर के सेल्स में भी पांच प्रतिशत ही हैं जो उसको रेसिस्ट करते हैं, उसको लड़ते हैं। अगर वे पांच प्रतिशत अलग कर दिए जाएं, आपके शरीर में फिर कोई रेसिस्टेंस, कोई अवरोधक शक्ति नहीं रह जाती। तब कोई भी बीमारी प्रवेश कर सकती है।

गरीबी मिटानी बड़ी मुश्किल बात है। वे पांच प्रतिशत किसी न किसी अर्थ में अमीर होंगे ही। अर्थ बदल सकते हैं। कभी उनकी अमीरी मकान की होगी, कभी उनकी अमीरी ताकत की होगी, कभी उनकी अमीरी ज्ञान की होगी, कभी उनकी अमीरी काव्य की, कला की होगी; लेकिन एक हिस्सा अमीर होगा, एक हिस्सा गरीब होगा।

गरीबी और अमीरी का यह संदर्भ अगर ख्याल में रहे तो समाजवाद या साम्यवाद से संस्कार और कर्म के सिद्धांत में कोई अंतर नहीं पड़ता है। हम बदल सकते हैं, परिस्थिति बदल सकते हैं; लेकिन व्यक्ति के भीतर की जो क्षमताएं हैं, उन्हें बदलना आसान नहीं है। उन्हें व्यक्ति ही जब बदलना चाहे, तब बदल सकता है।

पूछा है कि जब हम पुनर्जन्म लेते हैं, तो हिसाब-किताब कहां रहता है? क्या रहता है?

आप हैं हिसाब-किताब। आपके अलावा कहीं हिसाब-किताब नहीं रहता। कोई जरूरत नहीं है। आप ही हैं करने वाले, आप ही हैं भोगने वाले, आप ही हैं हिसाब-किताब। आप खाता-बही हैं पूरा अपना। जो-जो आप कर रहे हैं, वह प्रतिपल आपको बदल रहा है। हर कृत्य आपकी बदलाहट है। और हर कृत्य आपका जन्म है। और हर कृत्य के साथ आप नया आदमी अपने भीतर निर्मित कर रहे हैं। वही है हिसाब-किताब। अलग रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। कोई प्रयोजन भी नहीं है। आपको जान कर ही आपका पूरा हिसाब-किताब जाना जा सकता है। आपका एक-एक कृत्य बताता है कि आपकी आदतें क्या हैं, गहरे संस्कार क्या हैं।

अब जैसे मैंने संत फ्रांसिस की बात कही; यह आदमी कहता है कि मुझे कोई धोखा दे जाए तो भी मैं भरोसा ही करूंगा। यह इसके एक गहरे संस्कार की खबर है। इसने भरोसे का संस्कार बनाया है। तो कोई आदमी धोखा देकर इतनी आसानी से तोड़ नहीं सकता। बहुत मुश्किल है इसके संस्कार को तोड़ना। और जब इसका संस्कार टूटता नहीं धोखा देने से, तो और मजबूत हो जाता है। प्रत्येक चीज मजबूत होती है पुनरुक्ति से।

आपको कोई धोखा न भी दे, कोई आदमी आपके कमरे में ऐसे ही चला आए, तो ही जो पहला ख्याल उठता है वह भरोसे का नहीं होता। अभी इसने कुछ किया नहीं है। न आपकी गर्दन दबाई, न कोई आपका सामान ले भागा; लेकिन जो पहला ख्याल आपके भीतर उठता है वह यह उठता है कि पुलिस को आवाज दें, क्या करें। अभी इसने कुछ भी तो नहीं किया। अभी इसके संबंध में कोई भी निर्णय उचित नहीं है लेना। लेकिन आपने निर्णय गहरे में ले ही लिया। ऐसा है कुछ कि हमें, कोई आदमी बुरा है, इसके लिए प्रमाण की जरूरत नहीं होती। वह तो हमारे संस्कार से ही मिल जाती है खबर हमें। कोई आदमी भला है, तो हमें प्रमाण की जरूरत

होती है। गैर-भरोसा हमारी आदत है। भरोसा हमारी मजबूरी है। कोई मानता ही नहीं और ऐसा व्यवहार किए जाता है कि हमें भरोसा करना पड़ता है। लेकिन गैर-भरोसा हमारी आदत है।

आपको लगता है कि आप कभी-कभी क्रोध करते हैं। गलती है आपकी। क्रोध आपकी आदत है; आप कभी-कभी ऐसा होता है जब क्रोध में नहीं होते। लेकिन इतना कम होता है यह कि आपको पता ही नहीं चलता। इसलिए आप सोचते हैं कि कभी-कभी आप क्रोध में होते हैं। बस आपका क्रोध ऐसा है कि कभी-कभी सौ डिग्री पर उबलता हुआ होता है, और कभी ल्यूकवार्म, कुनकुना। कुनकुना क्रोध आपको पता ही नहीं चलता; क्योंकि वह आपकी आदत है। वह आप जिंदगी से वैसे ही हैं। कभी-कभी जब यह कुनकुना क्रोध भी नहीं होता आप में, तब क्षण भर को आपको झलक मिलती है प्रेम की। अन्यथा नहीं मिलती। फिर कठिनाई यह है कि जितना आपका क्रोध का संस्कार है, उतना ज्यादा आप क्रोध करते हैं; जितना ज्यादा क्रोध करते हैं, उतना संस्कार मजबूत होता चला जाता है। हम अपने ही कारागृहों में बंद होते चले जाते हैं। इसे कहीं से तोड़ना पड़े।

दो बातें ख्याल रखें। एक, अगर मैं कहता कि आपका कर्म का फल आप भोग रहे हैं, तब तो तोड़ने का कोई उपाय नहीं था। समझ लें फर्क। अगर मैंने कोई कर्म किया है और उसके कारण मैं आज क्रोधित हो रहा हूं तो मुझे होना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं है। लेकिन मैं कहता हूं कर्म का फल तो तत्काल मिल जाता है, सिर्फ संस्कार रह जाते हैं। संस्कार का अर्थ है, केवल एक खास ढंग का काम करने की वृत्ति। मजबूरी नहीं। इसलिए आप चाहें तो तत्काल अपने को बदल सकते हैं। चाहें तो तत्काल बदल सकते हैं, क्योंकि यह सिर्फ केवल एक आदत है।

कभी आपने ख्याल किया कि कुछ बातें आप केवल आदत के कारण किए चले जाते हैं? केवल आदत के कारण! कुछ और वजह नहीं होती। आदत को तोड़ना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं है। और कभी-कभी जरा सी बात आदत को तुड़वा देती है। जरा सी बात।

अभी अमरीका के कुछ मनोवैज्ञानिक, जो रियल थैरेपी के प्रतिपादक हैं। वे कहते हैं, एक यथार्थ मनोचिकित्सा। वे बड़े अनूठे प्रयोग कर रहे हैं, और बड़े काम के प्रयोग हैं। वे कहते हैं, एक आदमी को जिंदगी भर समझाओ कि सिगरेट मत पीयो, मत पीयो। पच्चीस दफे छोड़ता है, फिर शुरू कर देता है। शराब पीता है, छोड़ता है, फिर शुरू कर देता है। कोई उपाय नहीं होता। वे कहते हैं, आपकी थैरेपी रियल नहीं है, यथार्थ नहीं है। क्योंकि शराब है वास्तविक चीज और आपका समझाना है केवल शब्द। शराब है एक यथार्थ और शब्द हैं सिर्फ सिद्धांत। ये नहीं तोड़ पाएंगे। तो वे कहते हैं, कुछ और किया जाना जरूरी है। वे क्या करते हैं?

अब उन्होंने एक इंजेक्शन ईजाद किया है। शराबी को वह इंजेक्शन रात में दे दिया जाता है। उसे पता भी नहीं चलता है। या उन्होंने गोलियां भी ईजाद की हैं। वे उसको खिला दी जाती हैं। उन गोलियों के बाद जब भी वह शराब पीता है, तो नासिया पैदा होता है; बड़ी बेचैनी पैदा होती है, वोमिट होती हैं और सारा शरीर झर-झर कंपने लगता है। और रोआं-रोआं इतनी पीड़ा से भर जाता है कि नरक उपस्थित हो गया। वह जो इंजेक्शन है, उसके और शराब के मिलने से यह परिणाम होता है। वह आदमी दुबारा हाथ में शराब नहीं ले सकता। जैसे ही वह शराब हाथ में लेता है, सब उसे याद आ जाता है जो हुआ। और हजारों साल समझाने से जो नहीं होता वह एक इंजेक्शन से क्यों हो जाता है? क्या हो गया? वह आदत थी सिर्फ एक। लेकिन अब आदत के विपरीत एक बड़ा दुख खड़ा हो गया। वह आदत इतनी बड़ी नहीं थी कि इस दुख के बावजूद भी... ।

आमतौर से हम सोचते हैं कि लोग शराब दुख के बावजूद भी पीते हैं। हम गलत सोचते हैं। लोग कहते हैं कि एक आदमी शराब पी रहा है, उसकी पत्नी दुख में पड़ी है, उसके बच्चे दुख में पड़े हैं, फिर भी शराब पीए

चला जा रहा है। इतना दुख हो रहा है, फिर भी! आप गलती में हैं। हो सकता है, यह दुख देना भी शराब पीने का एक हिस्सा हो। शायद वह और किसी तरह से दुख देने में समर्थ न हो, या उतना आक्रामक न हो, इस बारीक तरकीब से वह दुख भी दे लेता है। अपना दुख भी भुला लेता है, दूसरों को दुख भी दे लेता है। दोनों काम कर लेता है।

नहीं, इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा। बल्कि यह भी हो सकता है कि पत्नी दुखी दिखाई न पड़े और बच्चे बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ें और सब कहें कि पिताजी, आप मजे से पीए चले जाओ, आप चौबीस घंटे पीओ, तो शायद वह चौंक कर खड़ा भी हो जाए कि मामला क्या है! कोई दुखी नहीं हो रहा और मैं शराब पीए चला जा रहा हूं! शायद शराब का रस ही चला जाए। जिंदगी बड़ी जटिल है।

लेकिन ये रियल थैरेपी के लोग कहते हैं कि अगर किसी भी आदत को तोड़ना है तो उस आदत को इतने बड़े दुख के साथ जोड़ देना जरूरी है कि वह जो पुरानी सिर्फ वृत्ति की वजह से आदमी बह जाता था, वह दुख बीच में खड़ा हो जाए और उसको चुन कर जाना पड़े कि अगर मैं जाता हूं आदत में तो यह दुख झेलना पड़ेगा। बड़ी हैरानी की बात है, आदतें आसानी से बदल जाती हैं।

पावलव, साल्टर, पश्चिम के, खास कर रूस के वैज्ञानिक तो कहते हैं कि सिर्फ रिकंडीशनिंग की जरूरत है, वे कहते हैं सिर्फ पुनर्संस्करण की जरूरत है। सिर्फ संस्कार बंधे हुए हैं, उनको नया संस्कार से जोड़ देने की जरूरत है, यात्रा बदल जाती है।

मैं मानता हूं, उनकी बात में थोड़ी सचाई है। कोई आदमी कर्मों का फल नहीं भोग रहा है, कर्मों के फलों के संस्कार से बंधा जी रहा है। संस्कार मजबूत है, अगर आप उसके साथ बहते हैं। कमजोर है, अगर आप निर्णय करते हैं और रुक जाते हैं। इसलिए ऐसा कोई भी कृत्य नहीं है, जिसे आप न रोक सकते हों। और अगर आप कर रहे हैं तो आप ही जिम्मेवार हैं। और अपने मन को ऐसा मत समझाना कि क्या करें, जन्मों-जन्मों का कर्मफल है, भोगना ही पड़ेगा। यह भी होशियारी है। यह भी जो आप करना चाहते हैं, उसको करते रहने की नीयत। और कुछ भी नहीं। यह भी जस्टीफिकेशन है, यह भी आप अपने को न्यायोचित ठहरा रहे हैं। बड़े मजे की बात है कि कर्म का सिद्धांत तो धर्म का अंग था और हमने कर्म के सिद्धांत से अपने सब अधर्म के लिए सहारा खोज लिया--क्या कर सकते हैं? हाथ के बाहर है बात। जो हो चुका, वह हो चुका; वह भोगना ही पड़ेगा।

जो हो चुका, वह आप भोग चुके हैं। अगर आप पुनः उसे दोहरा रहे हैं तो यह केवल एक बार-बार दोहराई गई आदत है, किसी कर्म का फल नहीं। हर बार दोहरा कर फल पाएंगे और हर बार आदत मजबूत होती चली जाएगी। धीरे-धीरे आदमी आदतों का एक पुंज ही रह जाता है।

हम सब आदतों के पुंज हैं। इन आदतों को बदलना हो तो संकल्प की जरूरत है। और संकल्प की शुरुआत इससे होती है कि आपको यह ख्याल में आ जाए कि ये बदली जा सकती हैं। अगर आपको यह ख्याल है कि ये बदली ही नहीं जा सकतीं तो आपका संकल्प बिल्कुल मर जाएगा।

एक जर्मन यहूदी फ्रैंकल पिछले महायुद्ध के वक्त जर्मनी के एक बड़े कारागृह में बंद था। उसने लिखा है--बड़ी हैरानी की बातें लिखी हैं--उसने अपने संस्मरणों में लिखा है। क्योंकि वह एक मनसविद है, वह निरीक्षण करता रहा, क्या हो रहा है। दिसंबर करीब आ रहा था। त्योहार के दिन करीब आ रहे थे। और सभी कैदियों को यह आशा थी कि कम से कम क्रिसमस के करीब छुटकारा हो जाएगा। क्रिसमस के करीब हिटलर दया करेगा और लोग छोड़ दिए जाएंगे। फ्रैंकल ने लिखा है कि क्रिसमस तक कितनी ही तकलीफें दी गईं कैदियों को, कोई नहीं मरा। लोग बीमार रहे, लेकिन एक आशा थी--क्रिसमस करीब आ रहा है। उस आशा के साथ प्राण में बल

था। उसने लिखा, जिस दिन क्रिसमस निकल गया, उसके पंद्रह दिनों में अनेक लोग मरे--क्रिसमस के बाद। और उसका कहना है, कुल कारण इतना था उस पंद्रह दिन में मरने वालों का कि सब आशा टूट गई। क्रिसमस पर भी छुटकारा नहीं मिला, अब कोई आशा नहीं है। जब आशा नहीं रह जाती, तो जीवन-ऊर्जा क्षीण हो जाती है।

जिस कारागृह में फ्रैंकल बंद था, उसमें एक एटामिक भट्ठी थी। जिसमें हजारों कैदियों को इकट्ठा रख कर क्षण भर में राख किया जा सकता था। रोज हजारों कैदी राख होते थे। रोज उस भट्ठी की चिमनी से धुआं निकलता था। फिर उनको कारागृह बदला गया। कोई पांच सौ कैदी फ्रैंकल के साथ दूसरे कारागृह में भेजे गए। दो दिन पैदल उन्हें चलाया गया। ठंडी रातें, नंगे पैर, बिना कपड़ों के, भूखे-प्यासे उन्हें चलाया गया। बिल्कुल थके हुए, मुर्दा, मरे हुए वे किसी तरह पहुंचे। आधी रात में जब वे पहुंचे कारागृह में, तो उनकी जांच-पड़ताल होने में पूरी रात लग गई, एक-एक आदमी को अंदर करने में, जांच-पड़ताल करके अंदर किया गया।

फ्रैंकल ने लिखा है, इतनी यातना, इतनी यात्रा, इतनी थकान, भूख, परेशानी, और रात जब हम खड़े थे बारह बजे मैदान में क्यू लगा कर, तो ओले पड़ने लगे, बर्फ पड़ने लगी। लेकिन फिर भी सब गीत गा रहे थे, गुनगुना रहे थे, मजाक चल रही थी, लोग हंसी कर रहे थे। और कुल कारण इतना था कि उस जेलखाने में चिमनी नहीं दिखाई पड़ रही थी। वह जो चिमनी थी पिछले जेलखाने में, वह नहीं थी। सब दुख भूल गया। यह दो दिन की यात्रा, यह वर्षों की तकलीफ, सब भूल गई। यह बर्फ पड़ रही है, यह भूल गया। लोग गीत गुनगुनाने लगे।

फ्रैंकल ने लिखा है, मैंने पहली दफा मेरे साथी कैदियों को गीत गुनगुनाते, पुरानी मजाकें दोहराते, एक-दूसरे से कहानियां कहते पहली दफा सुना, तो मैं बहुत हैरान हुआ कि बात क्या है! तब थोड़ी देर में पता चला कि वह चिमनी नहीं दिखाई पड़ रही वहां। आश्वस्त हैं, कितनी ही तकलीफ होगी, मौत अभी करीब नहीं है।

अगर ऐसा हो कि रात के अंधेरे में चिमनी न दिखाई पड़ रही हो और सुबह रोशनी हो और चिमनी दिखाई पड़ जाए, तो अनेक तो वहीं गिर पड़ेंगे। दो दिन की थकान, एकदम पैर जवाब दे देंगे।

आदमी अपने भरोसों से जीता है, अपनी आशाओं से जीता है, अपने अभिप्रायों से जीता है। अगर आपको ख्याल है कि आप अपने को बदल सकते हैं, यह ख्याल ही बदलाहट की पहली बुनियाद बन जाती है। आपको ख्याल है कि बदलाहट हो नहीं सकती, हाथ-पैर ढीले पड़ जाते हैं, आप जमीन पर गिर जाते हैं। जिंदगी की ऊर्जा आपके ख्यालों से उठती और गिरती है।

मैं आपसे कहता हूं, संस्कार हैं आपके पास, लेकिन संस्कार पानी की सूखी रेखाओं की तरह हैं। अगर पानी को कुछ न किया गया तो वह उनसे बह जाएगा। लेकिन अगर जरा सी ही चेष्टा की गई तो पानी नई रेखा बना लेगा। पुरानी रेखा कोई नियति नहीं है कि पानी उसी से बहे। कुछ न किया गया, पैसिवली पानी छोड़ दिया गया, तो पुरानी रेखा से बहेगा। लेकिन अगर जरा सी भी चेष्टा की गई तो पुरानी रेखा मजबूर नहीं कर सकती पानी को बहने के लिए। बस इतना ही संस्कार है आदमी पर। अतीत से हम बंधे हैं, लेकिन भविष्य के प्रति हम मुक्त हैं।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। अतीत से हम बंधे हैं, लेकिन बंधे हैं अपने ही भाव के कारण। भविष्य के प्रति हम मुक्त हैं। और हम चाहें तो एक झटके में अतीत की सारी रस्सियों को तोड़ दें। वे रस्सियां वास्तविक नहीं हैं, जली हुई रस्सियां हैं, राख की रस्सियां हैं। रस्सियों जैसी दिखाई पड़ती हैं। एक रस्सी को जलाएं; जल जाए, राख हो जाए, फिर भी बिल्कुल रस्सी मालूम पड़ती है, रेशा-रेशा। और छूकर न देखें, तो यह भी हो सकता है

कि हाथ में बंधी हो तो सोचें कि कैसे भाग सकते हैं। छूकर जरा देखें, जली हुई है। टूट सकती है, अभी गिर सकती है।

संस्कार का अर्थ हैः जली हुई रस्सियां। लेकिन अगर आप उनको रस्सियां मान कर चलते हैं तो आप उनको प्राण देते हैं। मनुष्य अपने कर्म का फल भोगता है और प्रतिपल नए कर्म करने को मुक्त हो जाता है। सिर्फ आदत के कारण पुराने को दोहराए, बात दूसरी है। लेकिन पुराने को दोहराना अनिवार्य नहीं है। इसलिए कोई आदमी अगर ठीक संकल्प का आदमी हो तो एक क्षण में पूरी जिंदगी बदल ले सकता है--एक क्षण में! इस तरफ एक जिंदगी और दूसरी तरफ दूसरी जिंदगी शुरू हो सकती है।

इस बदलाहट को मैं संन्यास कहता हूं। इस संकल्प को मैं संन्यास कहता हूं, जब कोई आदमी तय करता है कि अब मैं पुराना नहीं रहूंगा, मैंने नए होने का तय कर लिया। एक क्षण में भी यह हो सकता है, और जन्मों-जन्मों में भी न हो, हम पर निर्भर है।

एक मित्र ने पूछा है कि हर प्रवचन के अंत में आप कीर्तन पर क्यों जोर देते हैं? कीर्तन के संबंध में थोड़ा सा समझाइए।

कीर्तन के संबंध में समझाना जरा मुश्किल है। क्योंकि समझ के जो परे है, उसी को कीर्तन कहते हैं। और जोर इसलिए देता हूं कि आपकी समझ बहुत थक गई होगी, अब थोड़ा नासमझी का काम पीछे कर लें। जो मैं बोल रहा हूं, वह तो आपकी बुद्धि पर आघात करता है। अगर आप इस तरह सुन रहे हों कि बुद्धि को हटा दें, तो आपके हृदय तक जाता है। लेकिन ऐसा सुनना कठिन है। बुद्धि बीच में खड़ी रहती है, द्वार पर खड़ी रहती है। भीतर जाने देने के पहले वह जांच-परीक्षा करती है--कि अपने मत की बात है, अपने शास्त्र की बात है, अपने वेद में कही है कि नहीं कही है--तो भीतर जाने देती है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आपकी इंद्रियां और आपकी बुद्धि, जैसा हम आमतौर से सोचते हैं, बाहर की संवेदनाओं को भीतर ले जाने के उपाय हैं, यह थोड़ी ही दूर तक सच है। केवल दो प्रतिशत चीजों को भीतर जाने दिया जाता है, अट्ठानबे प्रतिशत चीजों को बाहर रोक दिया जाता है। यह जरूरी भी है। आप रास्ते से गुजर रहे हैं। अगर सौ प्रतिशत जो घट रहा है रास्ते पर, वह आपके भीतर चला जाए, तो आप घर न पहुंच सकेंगे। आप घर पहुंच जाते हैं इसलिए कि आपका मस्तिष्क पूरे समय चुनाव कर रहा है--किसको भीतर जाने देना है, किसको बाहर रोक देना है। अगर सभी चीजें, जो घट रही हैं, आपके मस्तिष्क में घुस जाएं, तो आप घर न पहुंच पाएंगे, या किसी दूसरे के घर पहुंच जाएंगे, या अपने भी घर पहुंच गए तो आप पहचान न पाएंगे कि यह आपका घर है। आप पागल हो जाएंगे। इस वजह से बुद्धि पूरे वक्त सुरक्षा करती है कि बिल्कुल जांच-पड़ताल करके भीतर किसी चीज को प्रवेश करने दो।

आप सभी चीजें नहीं सुनते, सभी आवाजें नहीं सुनते आप। और आपके भीतर क्षमता है इस बात की कि आप जो सुनना चाहें सुनें, जो न सुनना चाहें न सुनें। कान पर आवाज पड़ जाए तो भी आपकी बुद्धि चूक सकती है। उसको लगे नहीं सुनना, तो कान सुन लेगा, बुद्धि अपना संबंध भीतर तोड़ लेगी।

अभी एक वैज्ञानिक, साल्टर, प्रयोग कर रहा था। एक छोटी सी बिल्ली पर प्रयोग कर रहा है। तो बिल्ली के कान के पास जोर से आवाज की जाती है। आवाज होते ही से बिल्ली चौंक जाती है--आवाज इतनी तेज है। उसके चौंकने का, उसके कान में आवाज गई, उसका ग्राफ यंत्र पर बन जाता है कि बहुत जोर का आघात हुआ

और बिल्ली का पूरा मस्तिष्क-तंत्र झनझना गया। तब अचानक दूसरे कोने से एक चूहे को प्रवेश किया जाता है। बिल्ली चूहे को देखती है और उसकी सारी आत्मा उसकी आंखों से चूहे की तरफ लग जाती है। फिर आवाज की जाती है, बिल्ली को सुनाई नहीं पड़ती। वह ग्राफ भी नहीं बनता, जो पहले बना था। आवाज अब भी हो रही है, कान पर चोट पड़ रही है; लेकिन वह जो ग्राफ बनता था कि उसका मस्तिष्क का तंत्र झनझना गया, वह बिल्कुल नहीं बनता। क्या हो गया? बिल्ली ने अपनी बुद्धि का और कान का संबंध तोड़ लिया। अब बुद्धि चूहे की तरफ दौड़ रही है।

हम पूरे वक्त सक्षम हैं भीतर अपने संबंध तोड़ने और जोड़ने में। चूंकि यह एक बचाव की अनिवार्य शर्त है आदमी की, इसलिए बुद्धि की आदत हो गई है बहुत चुन-चुन कर भीतर जाने देने की। तो जब आप मुझे सुन रहे हैं, तब भी बुद्धि उस आदत का उपयोग करती है।

जो उस आदत को छोड़ कर सुनता है, उसको ही हमने कल शिष्य कहा। वह जो सीखने के लिए इतना तैयार है कि बुद्धि के सब डिफेंस मेजर, सुरक्षा के उपाय अलग कर देता है, द्वार खुला छोड़ देता है।

यही श्रद्धा का अर्थ है। श्रद्धा का अर्थ हैः जिस तरफ श्रद्धा है उस तरफ हम अपनी सुरक्षा के सब उपाय छोड़ देते हैं। तब तो आपके हृदय तक बात पहुंच जाएगी, तब तो आपके हृदय के तंतु भी झनझना जाएंगे। तब आपको कठिनाई नहीं होगी समझने में कि कीर्तन क्या है। आप खुद भी करना चाहेंगे। तब मैं जो बोल रहा हूं, वह आपकी बुद्धि का भोजन नहीं बनेगा, आपके हृदय का रस हो जाएगा। और वह रस प्रकट होना चाहेगा। और वह रस मग्न होना चाहेगा। और वह रस डूबना चाहेगा।

तो जो हृदय से सुन रहे हैं, उनके तो पैर थिरकने लगेंगे, उनका तो सिर डोलने लगेगा, उनके तो हाथों में कोई नाचने लगेगा। चाहे वे सम्हाल कर अपने को कुर्सी पर बैठे रहें भला, पास-पड़ोस के डर से, लेकिन कोई उनके भीतर नाचने की तैयारी करने लगेगा। जो कहा है, अगर वह हृदय को छू जाए तो आप जरूर ही नाचना चाहेंगे। क्योंकि हृदय नाचना ही जानता है। हृदय पर जब कोई आघात गहरा हो जाता है और हृदय में जब कोई बीज गहरे में उतर जाता है, तो हृदय एक ही तरह से अपने को प्रकट करना जानता है कि सारा रोआं-रोआं नाच उठे। तो जिनको हृदय तक बात पहुंच जाती है, वे नाचना चाहते हैं। और उन्हें बिना नाचे सड़क पर छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। एक दस मिनट नाच कर वे हलके हो सकेंगे। वह जो भीतर घना हुआ, वह प्रकट हो जाएगा; जो बादल आकाश में आया, वह बरस लेगा। वे हलके होकर जाएंगे। और एक संबंध भी जोड़ कर जाएंगे कि बुद्धि और हृदय में विरोध नहीं है। विरोध हमारा खड़ा किया हुआ है।

लेकिन जिनकी समझ में नहीं आया, जिनकी समझ द्वार पर पहरा बन कर खड़ी हो गई और जिन्होंने हृदय तक नहीं पहुंचने दिया, उनको जरूर सवाल उठेगा कि यह कीर्तन की क्या जरूरत है? न केवल सवाल उठेगा, बल्कि ऐसा भी लगेगा कि यह तो बड़ा विपरीत है। जो मैं कहता हूं, उससे यह कीर्तन विपरीत मालूम पड़ता है। यह तो बड़ी नासमझों जैसी बात है, ग्राम्य, कि लोग नाचें-कूदें।

ध्यान रखें, मेरे लिए सभी विपरीत, जैसा लाओत्से ने कहा है, परिपूरक हैं। जब मैं एक घंटे, डेढ़ घंटे तक आपसे बुद्धि की बात करता हूं, तो आपका बैलेंस झुक जाता है एक तरफ। जरूरी है कि इससे विपरीत हम कुछ करके विदा हों। आप ज्यादा बैलेंस्ड, ज्यादा संतुलित होकर जाएंगे। कुछ हृदय का हम कर लें।

और भी कारण हैं। जो मैंने कहा है, वह आपके गहरे उतर जाएगा, अगर आप उसको सुन कर नाच कर लौटें। जो मैंने कहा है, अगर आप सोचते ही लौटे, आप उसको खराब कर लेंगे। मैंने कुछ कहा है, आपके ऊपर वह हावी है, सिर पर; आप उसको सोचते लौटेंगे। आप करेंगे क्या? आप सोच कर उसको विकृत कर देंगे। उचित

है कि एक दस-पंद्रह मिनट के लिए खाली गैप मिल जाए, आपको मौका न मिले कुछ करने का, और वह जो आपके ऊपर है धीरे-धीरे रस-रस कर भीतर चला जाए। एक पंद्रह मिनट जरूरी है कि आपको मौका न मिले। आपको मौका मिला तो आप उसको अस्तव्यस्त कर देंगे। इसलिए अगर आप एक पंद्रह मिनट नाच कर, भूल कर बुद्धि को, हृदयपूर्वक जीकर लौट जाते हैं, तो जो मैंने आपसे कहा है आप उसको विकृत न कर पाएंगे, वह आपके विकृत करने के पहले आपके हृदय तक कोई थोड़ी सी धाराएं उसकी पहुंच गई होंगी। वे ही धाराएं वस्तुतः काम की हैं।

फिर जो भी मैं कह रहा हूं, वह कितना ही बौद्धिक मालूम पड़े, वह बौद्धिक नहीं है। कहना, अभिव्यक्ति, बौद्धिक है। और मैं उसे इस भांति समझाने की आपको कोशिश करता हूं कि आपके तर्क को भी समझ में आ जाए। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह तार्किक नहीं है। तर्क केवल माध्यम है। शब्द केवल उपाय है। जो मैं कह रहा हूं, वह बिल्कुल अतर्क्य है। और जो मैं कह रहा हूं, वह विचार के अतीत है। अगर मैं कहने पर ही आपको छोड़ दूं, तो आप बहुत जल्दी तोतों की तरह पंडित बन जाएंगे, या पंडितों की तरह तोते बन जाएंगे। आपको सब बातें कंठस्थ हो जाएंगी और आप भी दूसरों को कह सकेंगे। बस इतना ही होगा। इसका कोई बहुत अर्थ नहीं होने वाला। मेरा आपको कोई तोते बनाने का जरा भी प्रयोजन नहीं है।

आपको पता न होगा, अगर आप एक दस मिनट नाच लिए, गीत गा लिए, आनंदित हो लिए, तो आप तोते नहीं बन पाएंगे। आप हलके हो गए। आप पर जो भार पड़ा था, बुद्धि पर जो तनाव पड़ा था, वह हलका हो गया। और अब जो सारभूत है, वह आपके भीतर रह जाएगा; जो शब्द हैं, वे तिरोहित हो जाएंगे। यह कीर्तन इसलिए कि जो मैंने आपसे कहा है, उसके शब्द भूल जाएं और उसका सत्य आपके साथ रह जाए। यह कीर्तन इसलिए कि जो मैंने आपसे कहा है, उसका माध्यम न पकड़ जाए, कंटेनर न पकड़ जाए; कंटेंट, उसकी सार-वस्तु आप में रह जाए।

तो मैं नहीं कहता आपसे कि जो मैं कहता हूं उसे आप याद रखें। मैं कहता हूं, आप कृपा करके भूल जाएं, आप उसे याद मत रखें। जो सार्थक है, वह भीतर रह जाएगा। वह आपकी जिंदगी में जगह-जगह से कभी-कभी प्रकट होगा। जो गैर-सार्थक है, उसे याद रखना पड़ता है।

इमर्सन ने कहीं शिक्षा की परिभाषा करते वक्त कहा है कि शिक्षा वह है जो स्कूल छोड़ने पर भूल जाती है, सब भूल जाती है; लेकिन फिर भी एक शिक्षित और अशिक्षित आदमी में एक फर्क रह जाता है।

वह फर्क क्या है? वह फर्क क्या है? वह जो सार्थक था, अगर डूब गया, तो वही फर्क है, वही सुसंस्कार है, वही संस्कृति है। शिक्षा तो भूल जाती है। आज कितनी आपको ज्यामिति की थ्योरम याद हैं?

अंग्रेज लेखक सामरसेट माम ने लिखा है कि मैं लाख उपाय करूं--और उसकी बात मुझे समझ में पड़ी, क्योंकि मैं भी उसी परेशानी में रहा हूं--लिखा है कि लाख उपाय करूं, ए से लेकर जेड तक पूरी वर्णमाला याद नहीं आती। मुझे भी नहीं आती, उसको फिर-फिर गिनना पड़ता है। डिक्शनरी देखो तो फिर से देखना पड़ता है कि एच किसके आगे है और किसके पीछे। सामरसेट माम ने लिखा है कि कितना ही उपाय करो, वर्णमाला याद नहीं आती। वर्णमाला याद आने के लिए है भी नहीं। भूल ही जानी चाहिए। क्योंकि जिनको वर्णमाला ही याद आती है, उनको फिर कुछ और याद नहीं आएगा। वर्णमाला याद रखने की चीज नहीं है, भूल जाने की चीज है। उसका काम रह जाता है, उसका उपयोग रह जाता है। वही उपयोग।

शास्त्रों के साथ कठिनाई है, सिद्धांतों के साथ कठिनाई है--शब्द याद रह जाते हैं, उपयोग बिल्कुल याद नहीं रहता। तो मैं जो कहता हूं, वह आपके मस्तिष्क पर बोझ न बन जाए, आप उस बोझ से हलके होकर लौटें।

भूल ही जाए, उतर ही जाए। तो जो सार है, जो बीज है, वह आपके भीतर पड़ा रह जाएगा। और किसी दिन अचानक आप पाएंगे कि उसमें अंकुर आ गए, उसमें फूल आ गए। वे फूल, जो मैंने कहा है, उसके सत्य की खबर देंगे। और जो मैंने कहा है, अगर वही आपको याद है, तो केवल शब्द आप में दोहरते रहेंगे, और सत्य से आप वंचित हो जाएंगे।

इसलिए भी! और इसलिए भी कि मेरा मानना है कि बुद्धि से कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता है। सोच-सोच कर कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचता है। नाच कर तो कभी-कभी कुछ लोग पहुंच गए हैं, हिसाब करके कभी कोई नहीं पहुंचा है। कुछ पागल तो कभी-कभी पहुंच गए हैं, लेकिन होशियार लोग नहीं पहुंच पाते हैं। उनकी होशियारी ही बाधा बन जाती है।

लेकिन एक अड़चन है। जो लोग पागलपन की बात करते हैं, वे होशियारी की बात नहीं करते। इसलिए होशियार आदमी उनके पास फटकते ही नहीं। जो लोग होशियारी की बात करते हैं, वे पागलपन से बिल्कुल दूर साफ-सुथरे रहते हैं। वे पागलपन को बिल्कुल अछूत मानते हैं। उनके पास पागल नहीं फटकते।

लेकिन ध्यान रहे, समझ और पागलपन का एक गहरा तालमेल जब निर्मित होता है, तो जीवन में श्रेष्ठतम क्रांति घटित होती है। बुद्धिमानी अगर हंस न सके, तो थोड़ी कम बुद्धिमानी है। बुद्धिमान अगर नाच न सके, तो थोड़ा कम बुद्धिमान है। अगर बुद्धि हलकी होकर उड़ न सके, तो पत्थर है।

मेरी दृष्टि में, जीवन इन विरोधों का एक संगम है। सोचें खूब, लेकिन सोचने पर रुक न जाएं। कहीं एक क्षण सोचने को एक तरफ रख दें वस्त्रों की तरह, नग्न हो जाएं सोचने से; नाचें, कूदें, छोटे बच्चों की तरह हो जाएं। अगर आप छोटे बच्चे में और बुद्धिमान में, दोनों के बीच कोई सेतु बना लेते हैं, तो आपने वह गोल्डन ब्रिज, स्वर्ण-सेतु बना लिया जिस पर से होकर ही सभी को जाना पड़ता है। अगर आप वह नहीं बना पाते हैं, आप अधूरे रह जाएंगे। अगर आप सिर्फ नाच ही कूद सकते हैं, तो आप पागल हैं। अगर आप सिर्फ सोच ही सकते हैं, तो आप दूसरे ढंग के पागल हैं। अगर आप ये दोनों एक साथ आप में संभव हैं, तो इन दोनों का मिलन एक नए तत्व को जन्म दे जाता है, जिसको प्रज्ञा कहते हैं, जिसको विजडम कहते हैं। इसलिए भी!

एक और मित्र ने पूछा है कि हमने बहुत कीर्तन देखे, लेकिन कीर्तन में एक व्यवस्था होती है, ढंग होता है। यह यहां जो होता है बिल्कुल बेढंगा है; इसमें कोई व्यवस्था नहीं है। कोई कैसा ही नाचता-कूदता है, कोई कैसा ही चिल्लाता है।

उनका ख्याल ठीक ही है। जान कर ही यह अव्यवस्था है। ऐसा कहिए कि व्यवस्थित है--व्यवस्था से ही यह अव्यवस्था है। यह कोई अकारण नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरा मानना है कि जब कोई व्यवस्था से नाचता है, तो नर्तक हो सकता है, कीर्तन नहीं। व्यवस्था एक बात है। जब कोई व्यवस्था से गाता है, तो गायक हो सकता है। वह दूसरी बात है। लेकिन जब कोई भाव से, हृदय की उमंग से, सहजता से नाचता और गाता है, तब कीर्तन का जन्म होता है। कीर्तन की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती। नृत्य एक बात है, और कीर्तन में नाचना बिल्कुल और बात है। स्पांटेनियस, सहज-स्फूर्त होना चाहिए। जो अंतर में उदित हो रहा हो, वही होना चाहिए। फिर हाथ-पैर जैसे भी मुद्राओं में होना चाहें, उन्हें होने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

आपको शायद पता नहीं कि जब हम शरीर को पूरी मुक्ति दे देते हैं, और भाव के साथ शरीर को भी पूरा छोड़ देते हैं, अगर यह छोड़ना पूरा हो जाए तो आपको समाधि की पहली झलक इससे ही मिलेगी। क्योंकि जब

शरीर पर कोई बंधन नहीं होता... । क्योंकि नियम तो बंधन है, व्यवस्था एक बंधन है। और जब आप व्यवस्था रखते हैं, तो चेतन रहना पड़ता है, पूरे वक्त होश रखना पड़ता है कि कुछ गलती तो नहीं हो रही; कोई ताल में, पद में, कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही। तो फिर बुद्धि काम जारी रखती है। व्यवस्था का अर्थ हैः बुद्धि मौजूद है। हृदय को मौका नहीं मिला। यह हृदयपूर्वक है। तो आप अगर यहां, कौन कैसा भूल-चूक कर रहा है, यह देख रहे हैं, आप गलत जगह आ गए। आपको किसी नर्तकी को, किसी नर्तक को देखना चाहिए। वहां भूल-चूक नहीं होंगी। यहां आपको देखना चाहिए कि कौन कितना स्वाभाविक हो गया। और स्वाभाविक कोई हो गया है या नहीं हो गया, इसे बाहर से देखना बड़ा मुश्किल है। यह तो खुद ही हों तो ही समझ में आता है। तो बेहतर यह है कि खुद होकर देखिए। एक स्वाभाविकता भी है, तब हम कुछ भी नहीं रोकते; पैर जैसा नाचना चाहते हैं, नाचने देते हैं। कोई नियम, कोई अनुशासन नहीं है। मन जैसा उछलना चाहता है, उछलने देते हैं।

एक दस मिनट अपने इस शरीर, अपने इस मन को सहज छोड़ कर देखिए। उस सहज में डूबते ही आपको पहली दफे एक स्वतंत्रता अनुभव होगी, जो आप छोटे से बच्चे रहे होंगे, तब कभी शायद आपने उसकी झलक जानी हो। लेकिन अब तो बहुत समय हो गया उसे भूले हुए। जब कभी छोटे बच्चे, आप किसी फूल के पास किसी तितली को पकड़ने के लिए दौड़े होंगे, तब जैसी सहजता भीतर रही होगी, वैसी सहजता एक बार फिर से पकड़िए। उसके पकड़ते ही बीच की सारी की सारी बाधाएं गिर जाती हैं। और जब कोई फिर से अपनी बुद्धिमानी में बच्चों जैसा हो जाता है, तो स्वर्ग की चाबी उसके हाथ में है।

छोटे-छोटे दो-चार सवाल हैं।

एक मित्र ने पूछा है, डू यू क्लेम टु बी ए डिसाइपल ऑफ एनी गुरु? क्या आपका कोई दावा है कि आप किसी के शिष्य हैं?

शिष्य होने का भी दावा होता है? और शिष्य होना बताया जा सकता है, अगर कोई एकाध का शिष्य हो। पूरी जिंदगी ही गुरु है। और जिसकी आंखें खुली हैं, वह एक क्षण भी बिना सीखे नहीं रह सकता। रास्ते के पत्थरों से भी सीख लेगा, फूलों से भी सीख लेगा, आकाश के तारों से भी सीख लेगा। जो गाली देंगे, उनसे भी सीख लेगा; जो फूल चढ़ाएंगे, उनसे भी सीख लेगा। अगर सीखने की कला आ गई हो तो आप शिष्य होते हैं, और यह सारा जगत गुरु होता है। सीखने की कला नहीं आती, इसलिए हम एकाध को गुरु बना लेते हैं।

ऐसा समझें कि आप अपने घर में छिपे हैं और एक छोटा सा छेद कर लेते हैं, उसमें से आकाश को देखते हैं। कोई आदमी आकाश के नीचे खड़ा है, घर ही छोड़ दिया। जब एक छोटे से छेद से इतना आकाश दिखता था, तो सोचा कि अब सब दीवारों को गिरा ही दो, बाहर ही खड़े हो जाओ। स्वभावतः, आप अपने घर के भीतर से पूछेंगे कि मैं इस नंबर एक के छेद से देख रहा हूं, आपने किस छेद से आकाश को देखा? और वह जो आदमी आकाश के नीचे खड़ा है, वह आपको क्या कहे? क्या दावा करे कि किस छेद से उसने आकाश को देखा? उसकी बड़ी मुसीबत होगी। वह कहेगा, छेद तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता, आकाश ही आकाश है।

जब सीखने की क्षमता पूरी होती है, तो गुरु कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता; क्योंकि गुरु ही गुरु है, आकाश ही आकाश है। तो मेरा कोई दावा नहीं है। और ध्यान रहे, शिष्य होने का कोई दावा नहीं होता। और गुरु होने का तो दावा हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो आदमी दावा करता हो कि मैं गुरु हूं, अभी वह इतना भी नहीं सीख पाया, इतना भी नहीं सीख पाया कि गुरु होकर सत्य में कोई भी प्रवेश नहीं है।

इसलिए जो गुरु के दावेदार हैं कि हम गुरु हैं, जानना कि गुरु नहीं हो सकते। गुरु दावेदार नहीं होता। शिष्य दावा कर सकता है कि फलां व्यक्ति मेरा गुरु है। गुरु दावा नहीं कर सकता। और शिष्य भी तभी तक दावा कर सकता है, जब तक अभी पूरी तरह शिष्यत्व उसमें खिला नहीं। नहीं तो फिर सारा जगत गुरु हो जाए, सारी दिशाएं गुरु हो जाएंगी। शिष्यत्व का अर्थ है सीखने की क्षमता। गुरु को पकड़ने की आदत नहीं, सीखने की क्षमता।

एक नदी बहती है--कितने किनारों को छूती हुई! कितने पहाड़ों को पार करती हुई! उससे कोई पूछे कि किस घाट का तुम्हारा दावा है? तो नदी कहेगी, बहुत घाट थे, घाट ही घाट थे। अब उनका नाम लेना भी मुश्किल है।

अगर आप जीए हैं ठीक से, जाग कर जीए हैं, तो आपने सब से सीखा है। असंभव है यह कि आप किसी बात से सीखे बिना बच जाएं। लेकिन हम अंधे लोग हैं। इसलिए हम गुरु को भी बनाते हैं। गुरु बनाने का मतलब ही यह है कि आपको शिष्य होने की कला अभी नहीं आई। नहीं तो गुरु क्या बनाना है? शिष्य हो जाना है। गुरु नहीं बनाना है, शिष्य हो जाना है। लेकिन हम गुरु बनाते हैं। हम गुरु इसलिए बनाते हैं ताकि दूसरों से सीखने से बचें। हमारा डर यह है कि सबसे सीखेंगे तो डूबे; एक को पकड़ लें, सहारा पक्का, सब तरफ द्वार-दरवाजे बंद कर लें। हम ऐसे लोग हैं कि हम सोचते हैं कि हम तो एक खिड़की पर खड़े होकर श्वास ले लेंगे और बाकी सब खिड़कियों पर श्वास बंद रखेंगे। मर जाएंगे।

जगत चारों तरफ से दे रहा है। इसे लेने में इतनी कंजूसी क्या है? सब तरफ से श्वास लें, शिष्य हो जाएं, गुरु की फिक्र छोड़ें। और जब आप शिष्य हो जाएंगे, तो कदम-कदम पर गुरु उपलब्ध होने लगेगा। जब मैं यह कहता हूं कदम-कदम पर गुरु उपलब्ध होने लगेगा, तो इसका यह मतलब नहीं कि कोई एक बुद्ध आपको, या कोई एक महावीर आपको पकड़ जाएगा और फिर आपके साथ बना रहेगा। जिंदगी अनंत है।

बुद्ध का अंतिम दिन था। और आनंद छाती पीट कर रोने लगा और उसने कहा कि आपके रहते मुझे ज्ञान नहीं हुआ! और अब आप जा रहे हैं तो मेरा क्या होगा? तो बुद्ध ने कहा, आनंद, पागल मत बन। मुझसे पहले हजारों बुद्ध हुए हैं; मुझसे बाद हजारों बुद्ध होते रहेंगे। और अगर तू सीखने में कुशल है तो तुझे हर कदम पर बुद्ध मिल जाएंगे। और अगर तू सीखने में कुशल नहीं है तो चालीस साल से तू मेरे साथ ही था, इससे भी तूने क्या सीख लिया है? बड़े मजे की बात है कि चालीस साल तू मेरे साथ था और तू कहता है कि तुझे ज्ञान नहीं हुआ। और अब जब मैं मर रहा हूं तो रो रहा है कि आप छूट जाएंगे तब ज्ञान कैसे होगा? मेरे साथ चालीस साल में नहीं हुआ, तो अब मेरे मरने से रोने की क्या जरूरत है? चालीस साल में नहीं हुआ, चालीस जन्मों में भी नहीं होगा।

बुद्ध ने आखिरी बात जो आनंद से कही, बड़ी महत्वपूर्ण है। बुद्ध ने कहा, शायद यह भी हो सकता है, मेरे कारण तू संकीर्ण हो गया; मुझे तूने पकड़ लिया, तेरी सीखने की क्षमता क्षीण हो गई। तूने समझा कि गुरु तो मिल गए, अब क्या सीखने की क्षमता की जरूरत है? एक दफा हो गए शिष्य, बात खतम हो गई। शिष्य हो जाना कोई खतम हो जाने वाली बात नहीं है। यह सिर्फ प्रारंभ होती है, खतम कभी नहीं होती। तो बुद्ध ने कहा, मैं मर जाऊंगा, तो शायद तेरे सीखने की क्षमता फिर उन्मुक्त हो जाए, फिर तू खुल जाए।

और ऐसा ही हुआ। आनंद बुद्ध के मरने के बाद ही ज्ञान को उपलब्ध हो सका।

एक मित्र ने कहा है कि व्हाई डू यू काल योरसेल्फ भगवान? और बड़े हिम्मतवर आदमी हैं, क्योंकि उन्होंने यह भी लिखा कि इफ यू आर रियली बोल्ड, यू मस्ट रिप्लाय माई क्वेश्चन।

पूछा, "आप अपने को भगवान क्यों कहते हैं?"

मैंने तो कभी कहा नहीं। लेकिन अब आप कहते हैं तो मैं कहता हूं कि मैं भगवान हूं। और यह इसलिए कहता हूं कि भगवान के सिवाय और कुछ होने का उपाय ही नहीं है। आप भी भगवान हैं। भगवान के सिवाय इस जगत में और कुछ भी नहीं है। तो अगर कोई दावा करता हो कि मैं भगवान हूं और आप भगवान नहीं हैं, तब यह दावा अपराधपूर्ण है। मैंने कभी कोई दावा नहीं किया। मैंने कभी कहा भी नहीं। पर इससे उलटी बात भी मैं नहीं कह सकता हूं कि मैं भगवान नहीं हूं। क्योंकि वह तो सरासर असत्य होगा। इतना ही कह सकता हूं कि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है। और अब मैं क्या कर सकता हूं, क्योंकि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है।

आप भी भगवान हैं। इसका पता न हो, यह हो सकता है। इसका पता हो, यह हो सकता है। जिसको पता नहीं है, उसे पता करने की कोशिश करनी चाहिए। भगवान का अर्थ हैः अस्तित्व, शुद्धतम अस्तित्व। वह जो हम हैं अपने मौलिक स्वभाव में, उसका नाम ही भगवत्ता है।

लेकिन हमारे मन में भगवान की न मालूम क्या-क्या धारणाएं हैं। उससे तकलीफ होती है। कोई सोचता है, भगवान वह जिसने दुनिया को बनाया।

तो स्वभावतः, मैंने दुनिया को नहीं बनाया। इसलिए यह झंझट तो मुझ पर नहीं है।

कोई सोचता है कि अगर भगवान हैं--मेरे पास पत्र आते हैं, वे कहते हैं कि अगर आप भगवान हैं--तो मैं गरीब हूं, मेरी गरीबी मिटा कर दिखाइए। अगर आप भगवान हैं, तो मेरी आंखें खराब हैं, आंखें ठीक करके बताइए।

नहीं, भगवान से वैसा भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। आपकी आंखें खराब हैं, इसके लिए आपके भीतर का ही भगवान जिम्मेवार है। उसमें थोड़े फर्क करिए। आप गरीब हैं, आपके भीतर का भगवान ही जिम्मेवार है। उसमें कुछ थोड़े फर्क करिए। और किसी बाहर के भगवान की तरफ मत देखिए। क्योंकि जिसे भीतर का भगवान ही नहीं दिखाई पड़ रहा, उसे बाहर का भगवान दिखाई नहीं पड़ सकता है। नहीं, मैं कोई ताबीज प्रकट करने वाला भगवान भी नहीं हूं। कि कोई चमत्कार दिखाइए, अगर भगवान हैं। ऐसे तो मदारियों में भी भगवान होते हैं; लेकिन भगवान मदारी होने में बहुत रस लेते दिखाई नहीं पड़ते।

भगवान से मेरा अर्थ है कि वह जो आपकी शुद्धतम सत्ता है। जहां सब कचरा, जहां सब व्यर्थ, असार अलग करके आपने अपने को देख लिया है, तो आप भगवान हैं। कोई दुनिया बनाने की जरूरत नहीं है आपके भगवान होने के लिए; नहीं तो फिर आप भगवान कभी हो न पाएंगे। पक्का समझ लेना। किसी की आंखें ठीक करना जरूरी नहीं है आपके भगवान होने के लिए; नहीं तो फिर आप भगवान कभी हो न पाएंगे। और या फिर कोई डाक्टर भगवान हो जाएगा। भगवान होने का अर्थ ही यह है कि वह जो हमारे भीतर छिपा स्वभाव है, जो ताओ है, वह जो हमारे भीतर का अस्तित्व है, उस अस्तित्व की प्रतीति, उस अस्तित्व में प्रवेश।

तो यह झंझट भी आपकी अलग कर दूं। नाहक आपको लगता है कि मैंने क्यों अपने को भगवान कहा। अभी तक कहा नहीं था; आज मैं आपको कह देता हूंः मैं भगवान हूं। उससे अड़चन मिटेगी, उससे सुविधा हो

जाएगी। लेकिन इसका यह मतलब आप मत समझ लेना कि आप कुछ और हैं। आप भी वही हैं। देर-अबेर होगी आपको पहचानने में, लेकिन चेष्टा करें तो पहचान ले सकते हैं।

भगवान होना कोई दावा नहीं है, भगवान होना हमारा सहज स्वभाव है।

शेष प्रश्न तो पुनरुक्तियां हैं। दो बातें अंत में।

प्रश्न पूछ लेना कठिन नहीं है, जवाब देना भी कठिन नहीं है। जो प्रश्न भी पूछा जा सकता है, उसका जवाब भी दिया जा सकता है। लेकिन सच में ऐसे प्रश्न पूछना जो आपके काम पड़ें, बहुत कठिन है। और वैसे प्रश्नों का जवाब देना भी आसान नहीं है। लेकिन आप वैसे प्रश्न पूछते ही नहीं।

ऐसा लगता है कि ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं है आपके पास जो आपकी जिंदगी में काम आने वाला हो। आपके प्रश्न व्यर्थ के प्रश्न मालूम पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि बुद्धि में थोड़ी खुजली होती है उससे आपके प्रश्न निकलते हैं। कोई आत्मा में कोई प्यास, कि कोई पुकार, कि कोई खोज, ऐसा नहीं। खुजली! थोड़ा खुजा लिया। फिर खुजाने से खून निकल आए तो जिम्मा मेरा नहीं है। फिर पीछे तकलीफ हो तो जिम्मा मेरा नहीं है। अपने तरफ हमारा शायद ध्यान नहीं है। शायद हमें ख्याल ही नहीं है कि हम कुछ और भी हो सकते हैं, जो हम हैं; जहां हम खड़े हैं, वहां से कहीं और पहुंचना भी हो सकता है। हमारा जीवन भी यात्रा बन सकता है, उसका हमें कोई ख्याल नहीं है। हम पूछे चले जाते हैं, कुतूहलवश, बिना इसकी फिक्र किए कि अगर इसका उत्तर मिल जाएगा तो फिर क्या करना है।

अब जैसे एक मित्र ने पूछ लिया, आप अपने को भगवान क्यों कहलवाते हैं या कहते हैं। कोई भी उत्तर हो, इससे उस मित्र को क्या होगा? कोई भी उत्तर हो। मैं कह दूं मैं भगवान हूं, मैं कह दूं मैं भगवान नहीं हूं, इससे उस मित्र को क्या होगा? मेरे संबंध में दिया गया कोई भी वक्तव्य उस मित्र को क्या लाने वाला है?

खुजली है। थोड़ी खरोंच लग जाएगी, तकलीफ होगी। जिस मित्र ने पूछा है, वह परेशान घर लौटेगा। अगर जवाब न दूं तो वह समझेगा कि मैं हिम्मतवर नहीं हूं। और जवाब दूं तो उसकी खुजली में खून निकलेगा, वह भी मुझे पता है। अब वह परेशान लौटेगा। प्रश्न से उसे कोई हल नहीं होने वाला है, कोई राहत नहीं मिलने वाली है। फिर किसलिए पूछा है? हमें ख्याल ही नहीं है हम क्यों पूछ रहे हैं। इसलिए हम बहुत से प्रश्न पूछते हैं, बहुत से उत्तर इकट्ठे कर लेते हैं और हम वैसे के वैसे ही रह जाते हैं जैसे थे।

आगे के लिए आपसे कहता हूं, थोड़ा सोच कर पूछें। और सोचने के लिए एक कसौटी रख लें कि इसका जो उत्तर मिलेगा, उससे मैं क्या कर सकता हूं?

एक गांव में मैं था। दो बूढ़े मेरे पास आए। एक जैन था, एक हिंदू था; दोनों पड़ोसी। उन्होंने दोनों ने मुझसे कहा कि हमारा पचास साल का विवाद है। दोनों साथ पढ़े, दोनों बड़े साथ हुए, धंधा साथ किया। यह हिंदू है, मैं जैन हूं। मैं जैन हूं, मैं मानता हूं कि किसी ईश्वर ने जगत को नहीं बनाया। यह हिंदू है, यह मानता है कि जगत को ईश्वर ने बनाया। इसमें कुछ निर्णय नहीं हो पाता, विवाद होता रहता है। अब तक कोई हल नहीं हुआ। आप आए हैं, आप हल कर दें। मैंने उनसे कहा कि अगर मैं हल भी कर दूं तो फिर तुम क्या करोगे? अगर यह पक्का हो जाए कि जगत ईश्वर ने बनाया, फिर तुम्हारे क्या इरादे हैं? अगर यह पक्का हो जाए कि जगत ईश्वर ने नहीं बनाया, तो तुम्हारे क्या इरादे हैं? उन्होंने कहा, नहीं, इरादे का क्या सवाल है? नहीं, कुछ करना नहीं है, उन्होंने कहा, मगर तय तो हो जाए।

जिससे कुछ करना नहीं, उसको तय किसलिए करना है? ध्यान रहे, और जिस चीज से हमें कुछ करना नहीं है, हम उसे कभी तय न कर पाएंगे। क्योंकि तय ही हम तब करते हैं, जब हमें कुछ करना होता है। तय

करने का मतलब यह होता है कि जिंदगी दांव पर है, इसलिए तय करके कुछ करना है। जिस चीज के तय होने से कुछ करना ही नहीं, वह कभी तय नहीं हो पाती।

इसलिए लोग जिंदगी भर विवाद करते रहते हैं, और जहां झूले ने उन्हें पाया था, कब्र इंच भर दूर नहीं पाती, वहीं पाती है। मत पूछें, ऐसे सवालों का कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसा सवाल पूछें जो आपकी जिंदगी को बदलता हो, जिसका उत्तर आपको कुछ करने में ले जाए, जो सवाल आपके लिए क्रांति बने, जो सवाल रूपांतरण का इशारा बने।

आज इतना ही। रुकें, पांच मिनट कीर्तन करें, और फिर जाएं। और आज वे लोग भी कीर्तन करें, जो हिम्मत नहीं कर पाते। आ जाएं।

अट्ठावनवां प्रवचन

सनातन शक्ति, जो कभी भूल नहीं करती

Chapter 28 : Part 1

Keeping To The Female

He who is aware of the Male
But keeps to the Female
Becomes the ravine of the world.
Being the ravine of the world,
He has the original character which is not cut up,
And returns again to the (innocence of the) babe.
He who is conscious of the white (bright)
But keeps to the black (dark)
Becomes the model for the world.
Being the model for the world,
He has the eternal power which never errs,
And returns again to the Primordial Nothingness.

अध्याय 28 : खंड 1

स्त्रैण में वास

जो पुरुष को तो जानता है,
लेकिन स्त्रैण में वास करता है,
वह संसार के लिए घाटी बन जाता है।
और संसार की घाटी होकर,
वह उस मूल स्वरूप में स्थित रहता है, जो अखंड है।
और वह पुनः शिशुवत निर्दोषता को उपलब्ध हो जाता है।
जो शुक्ल (प्रकाश) के प्रति होशपूर्ण है,
लेकिन कृष्ण (अंधेरे) के साथ जीता है,
वह संसार के लिए आदर्श बन जाता है।

और संसार का आदर्श होकर,

उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो कभी भूल नहीं करती।

और वह पुनः अनादि अनस्तित्व में वापस लौट जाता है।

इस सूत्र में प्रवेश के पूर्व कुछ बुनियादी बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात। लाओत्से स्त्री को--स्त्रैण चित्त को--ज्यादा मौलिक, आधारभूत मानता है। पुरुष गौण है।

सारे जगत में पुरुष प्रमुख समझा जाता है, स्त्री गौण। पहले तो इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए; क्योंकि पूरे मनुष्य-जाति का इतिहास लाओत्से के विपरीत निर्मित हुआ है। सभी सभ्यताएं पुरुष को प्रमुख और स्त्री को गौण मान कर चलती रही हैं।

लाओत्से मानता है, स्त्री प्रमुख है, पुरुष गौण है।

और आज विज्ञान भी लाओत्से के समर्थन में है। क्योंकि विज्ञान भी मानता है कि सभी बच्चे मां के पेट में प्राथमिक रूप से स्त्रैण होते हैं। जो गर्भ का प्रारंभ है, मां के पेट में, सभी बच्चे स्त्री की तरह यात्रा शुरू करते हैं। फिर उनमें से कुछ बच्चे पुरुष की तरह विभिन्न यात्रा पर निकलते हैं। लेकिन प्रारंभ सभी बच्चों का स्त्रैण है।

दूसरी बात समझ लेने जैसी है, वह यह कि पुरुष भी स्त्री से ही जन्मता है। इसलिए गौण ही होगा, प्रमुख नहीं हो सकता। वह भी स्त्री का ही फैलाव है। वह भी स्त्री की ही यात्रा है।

तीसरी बात। जीव-शास्त्री कहते हैं कि पुरुष में एक तरह की तनाव-स्थिति है; स्त्री में वैसी तनाव-स्थिति नहीं है। जीव-वैज्ञानिकों के अनुसार जिस दो अणुओं के मिलन से, जीवाणुओं के मिलन से व्यक्ति का जन्म होता है। प्रत्येक जीवाणु में चौबीस कोष्ठ होते हैं। यदि चौबीस-चौबीस कोष्ठ के दो जीवाणु मिलते हैं तो स्त्री का जन्म होता है। कुछ कोष्ठ तेईस जीवाणुओं वाले होते हैं। अगर तेईस और चौबीस, ऐसे दो जीवाणुओं वाले कोष्ठ का मिलन होता है तो पुरुष का जन्म होता है। पुरुष में संतुलन थोड़ा कम है। एक तरफ चौबीस कोष्ठ हैं, एक तरफ तेईस कोष्ठ हैं। स्त्री संतुलित है। दोनों कोष्ठ चौबीस-चौबीस हैं। तो जीव-वैज्ञानिक कहते हैं कि स्त्री के सौंदर्य का कारण यही संतुलन है। ज्यादा संतुलित, ज्यादा बैलेंस्ड। यही कारण है कि स्त्री का धीरज, सहनशीलता पुरुष से ज्यादा है। और यही कारण भी है कि पुरुष स्त्री को दबाने में सफल हो पाया। क्योंकि बेचैनी उसका गुण है; वह जो तेईस और चौबीस का असंतुलन है, जो तनाव है, वही उसका आक्रमण बन जाता है। और पुरुष पूरे जीवन संतुलन की खोज कर रहा है।

इसलिए बहुत मजे की बात हैः स्त्रियों ने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, जीसस पैदा नहीं किए हैं। पुरुषों ने पैदा किए हैं। उसका बहुत मौलिक कारण यही है कि पुरुष की ही खोज है शांति के लिए; स्त्री की कोई खोज नहीं है। स्त्री स्वभाव से शांत है; अशांति विभाव है। उसे चेष्टा करके अशांत किया जा सकता है। पुरुष स्वभाव से अशांत है। चेष्टा करके उसे शांत किया जा सकता है। इसलिए बुद्ध पुरुषों में पैदा होंगे, स्त्री में पैदा नहीं होंगे।

पुरुष चेष्टा कर रहा है निरंतर कि कैसे शांत हो जाए। और आक्रामक होना उसका स्वभाव होगा, एग्रेशन उसका लक्षण होगा। इसीलिए पुरुष खोज करेगा; क्योंकि खोज आक्रमण है। पुरुष विज्ञान निर्मित करेगा; क्योंकि विज्ञान आक्रमण है। पुरुष एवरेस्ट पर चढ़ेगा, चांद पर जाएगा, मंगल को जीतेगा; क्योंकि यह सारा अभियान आक्रमण का है। स्त्री आक्रामक नहीं है। पुरुष युद्ध करेगा; बिना युद्ध के जी नहीं सकेगा। कितनी ही शांति की बातें करे, लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष का जीवाणु-संगठन ऐसा है कि वह बिना युद्ध के जी नहीं सकता।

युद्ध उसकी प्रवृत्ति का हिस्सा है। जब तक कि उसकी प्रवृत्ति न बदल जाए, या जब तक कि हम उसके जीवाणुओं का संगठन न बदल दें, तब तक युद्ध वह करेगा। यह हो सकता है, शांति के लिए युद्ध करे।

इसलिए बड़े मजे की बात है, जो शांतिवादी हैं, अगर उनका भी जुलूस देखें और उनके भी नारे सुनें, तो वे युद्धवादियों से कम युद्धवादी नहीं मालूम होते। वे शांति के लिए संघर्ष करते हैं, लेकिन करते संघर्ष ही हैं। वे शांति के लिए जान देने को, लेने को तैयार हैं। बहाना कोई भी हो, पुरुष की उत्सुकता लड़ने में है।

इसलिए जब युद्ध चलता है कहीं भी, तो पुरुषों की आंखों में चमक आ जाती है। जीवन में कुछ रस मालूम होता है--कुछ हो रहा है! वह जो उदासी है, टूट जाती है, एक रौनक छा जाती है। स्त्री और पुरुष के बीच जो मौलिक असंतुलन का भेद है, वही इसके पीछे कारण है।

हिंसा एक आंतरिक असंतुलन का परिणाम है और प्रेम एक आंतरिक संतुलन का। इसलिए स्त्री ने प्रेम किया है। लेकिन प्रेम से न तो चांद पर जाया जा सकता है, न एवरेस्ट चढ़े जा सकते हैं। सच तो यह है कि स्त्रियों की कभी समझ में नहीं आता कि एवरेस्ट चढ़ने की जरूरत क्या है? चांद पर जाने की जरूरत क्या है? स्त्री की उत्सुकता निकट में होती है, दूर में बिल्कुल भी नहीं। विजय में बिल्कुल नहीं होती, आक्रमण में बिल्कुल नहीं होती। एक संतुलित, शांत, प्रेमपूर्ण जीवन में होती है--अभी और यहीं। इसलिए स्त्रियां दूर-दृष्टि की नहीं होतीं। उनको बहुत पास का दिखाई पड़ता है; दूर व्यर्थ हो जाता है। पुरुष को पास का बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि जो पास है, उसको जीतने में कोई मजा नहीं है। वह जीता ही हुआ है।

इसलिए बड़े मजे की घटना घटती है, पुरुष की उत्सुकता किसी भी स्त्री में तभी तक होती है, जब तक वह उसे जीत नहीं लेता। जीतते ही उसकी उत्सुकता समाप्त हो जाती है। जीतते ही फिर कोई रस नहीं रह जाता। नीत्शे ने कहा है कि पुरुष का गहरे से गहरा रस विजय है। कामवासना भी उतनी गहरी नहीं है। कामवासना भी विजय का एक क्षेत्र है। इसलिए पत्नी में उत्सुकता समाप्त हो जाती है, क्योंकि वह जीती ही जा चुकी। उसमें कोई अब जीतने को बाकी नहीं रहा है। इसलिए जो बुद्धिमान पत्नियां हैं, वे सदा इस भांति जीएंगी पति के साथ कि जीतने को कुछ बाकी बना रहे। नहीं तो पुरुष का कोई रस सीधे स्त्री में नहीं है। अगर कुछ अभी जीतने को बाकी है तो उसका रस होगा। अगर सब जीता जा चुका है तो उसका रस खो जाएगा। तब कभी-कभी ऐसा भी घटित होता है कि अपनी सुंदर पत्नी को छोड़ कर वह एक साधारण स्त्री में भी उत्सुक हो सकता है। और तब लोगों को बड़ी हैरानी होती है कि यह उत्सुकता पागलपन की है। इतनी सुंदर उसकी पत्नी है और वह नौकरानी के पीछे दीवाना हो! पर आप समझ नहीं पा रहे हैं। नौकरानी अभी जीती जा सकती है; पत्नी जीती जा चुकी। सुंदर और असुंदर बहुत मौलिक नहीं हैं। जितनी कठिनाई होगी जीत में, उतना पुरुष का रस गहन होगा।

और स्त्री की स्थिति बिल्कुल और है। जितना पुरुष मिला हुआ हो, जितना उसे अपना मालूम पड़े, जितनी दूरी कम हो गई हो, उतनी ही वह ज्यादा लीन हो सकेगी। स्त्री इसलिए पत्नी होने में उत्सुक होती है; प्रेयसी होने में उत्सुक नहीं होती। पुरुष प्रेमी होने में उत्सुक होता है; पति होना उसकी मजबूरी है।

स्त्री का यह जो संतुलित भाव है--विजय की आकांक्षा नहीं है--यह ज्यादा मौलिक स्थिति है। क्योंकि असंतुलन हमेशा संतुलन के बाद की स्थिति है। संतुलन प्रकृति का स्वभाव है। इसलिए हमने पुरुष को पुरुष कहा है और स्त्री को प्रकृति कहा है। प्रकृति का मतलब है कि जैसी स्थिति होनी चाहिए स्वभावतः।

इसलिए बहुत मजे की घटना घटती हैः जब कोई पुरुष शांत हो जाता है, तो उसमें स्त्रैण लक्षण प्रकट हो जाते हैं। बुद्ध के चेहरे को देख कर पुरुष का कम और स्त्री का ख्याल ज्यादा आता है। हमने तो इसीलिए बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम को दाढ़ी-मूंछ भी नहीं दी। नहीं थी, ऐसा नहीं है। दाढ़ी-मूंछ निश्चित ही थी। लेकिन जिस

अवस्था को वे उपलब्ध हुए, वह स्त्रैणवत हो गई। वे इतने शांत और संतुलित हो गए कि वह जो पुरुष की आक्रामकता थी, वह खो गई। इसलिए सिर्फ प्रतीक है यह। इसलिए हमने उनको दाढ़ी-मूंछ नहीं दी। जैनों के चौबीस तीर्थंकर हैं, एक को भी दाढ़ी-मूंछ नहीं है। बड़ा मुश्किल है चौबीस ऐसे आदमी खोजना, जिनमें एक को भी दाढ़ी-मूंछ न हो। एकाध तो कभी आदमी मिल सकता है, लेकिन चौबीस खोजना बड़ा मुश्किल है। बुद्ध को दाढ़ी-मूंछ नहीं है। कृष्ण को, राम को दाढ़ी-मूंछ नहीं है। आपने कोई चित्र नहीं देखा होगा राम का दाढ़ी-मूंछ के साथ। क्या कारण है?

दाढ़ी-मूंछ निश्चित रही होगी, क्योंकि दाढ़ी-मूंछ का न होने का मतलब है कि वे ठीक से पुरुष ही नहीं थे। बीमार थे, रुग्ण थे, कुछ हारमोन की कमी थी। नहीं, यह सिर्फ प्रतीक है। हमने यह बात उनमें अनुभव की कि वे स्त्री जैसे हो गए थे। इसलिए दाढ़ी-मूंछ को प्रतीक की तरह छोड़ दिया।

नीत्शे ने तो स्पष्ट रूप से बुद्ध और जीसस को स्त्रैण कहा है, फेमिनिन कहा है। निंदा के लिए कहा है, पर बात उसकी सच है। उसने तो निंदा में कहा है, उसने तो कहा है कि इन स्त्रैण पुरुषों की बातें मान कर अगर दुनिया चलेगी तो सारी दुनिया स्त्रैण हो जाएगी। उसने तो निंदा में कहा है, क्योंकि वह तो पुरुष का पक्षपाती है। वह तो कहता है, जगत में पौरुषिकता बढ़नी चाहिए। और ये बुद्ध और क्राइस्ट और महावीर, इनके खिलाफ है; क्योंकि ये स्त्रियों के पक्षधर हैं। ये जो भी अहिंसा, करुणा की बातें कर रहे हैं, वे सब स्त्रैण गुण हैं। नीत्शे कहता है, युद्ध, हिंसा, आक्रमण, रक्त, ये पुरुष का लक्षण है। तो वह कहता है कि ये दगाबाज पुरुष धोखा दे गए पुरुषों को और स्त्रैण प्रचार कर रहे हैं। लेकिन उसकी बात में थोड़ी सचाई है। बुद्ध और महावीर स्त्रैण हो गए हैं। बहुत गहरे तल पर संतुलन हो गया है। इसलिए वह जो पुरुष का आक्रमण है, हिंसा है, वह खो गई है।

लाओत्से के लिए स्त्री मूल है, आधार है। पुरुष उसकी एक शाखा है।

इसे हम एक और दिशा से भी समझ लें। पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व की बनावट भी, उनके शरीर का निर्माण भी, सूचक है। पुरुष के पास जो जनन-यंत्र है, वह भी आक्रामक है। स्त्री के पास जो जनन-यंत्र है, वह भी आक्रामक नहीं है, सिर्फ ग्राहक है। इसलिए स्त्री किसी पर व्यभिचार नहीं कर सकती। असंभव है। स्त्री किसी पर आक्रमण करके व्यभिचार नहीं कर सकती। वह असंभव है। और पुरुष के लिए व्यभिचार जितना संभव है, उतना प्रेम संभव नहीं है। इसलिए जिन स्थितियों में पुरुष सोचता है कि वह प्रेम कर रहा है, उन स्थितियों में भी सौ में से नब्बे मौकों पर वह व्यभिचार ही कर रहा होता है। यह थोड़ा कठिन है। लेकिन आज मनसविद कहते हैं कि यह सही है कि पुरुष अक्सर प्रेम में भी आक्रमण ही करता है। वहां भी एक तरह की जबरदस्ती है। और स्त्री केवल इस जबरदस्ती को स्वीकार करती है। और यह पता लगाना मुश्किल है कि उसकी स्वीकृति में उसका प्रेम था, या नहीं था। क्योंकि स्त्री के प्रेम की प्रक्रिया भी पैसिव है, निष्क्रिय है। इसे भी हम समझ लें तो सूत्र में प्रवेश बहुत आसान हो जाएगा।

पुरुष के प्रेम की प्रक्रिया सक्रिय है। वह प्रेम को प्रकट करता है। उसका प्रेम भी आक्रमण बनता है। स्त्री का प्रेम केवल समर्पण है। स्त्री यदि प्रेम में बहुत ज्यादा सक्रियता बरते तो पुरुष को बेचैनी होगी। वह सिर्फ स्वीकार करे, समर्पण करे, लीन हो जाए, प्रतिरोध न करे, अप्रतिरोध में हो, सहयोगी हो। और उसका सहयोग भी पैसिव हो, सिर्फ एक आमंत्रण हो, स्वीकृति हो, सहयोग हो, प्रफुल्लता हो। लेकिन प्रेम सक्रिय न बने। उतनी ही स्त्री पुरुष को ज्यादा प्रीतिकर होगी। उसका प्रेम स्वीकार है, बहुत गहन स्वीकार है। और इसलिए पता लगाना भी बहुत आसान नहीं है। पुरुष का प्रेम तत्काल पता चल सकता है, क्योंकि सक्रियता में प्रकट होता है।

निष्क्रियता का यह तत्व भी सोचने जैसा है। क्योंकि जो तत्व जितना निष्क्रिय होगा, उतना शांत होगा, उतना मौन होगा, उतना गहन, उतना गहरा होगा। जो तत्व जितना सक्रिय होगा, उतनी सतह पर होगा, उथला होगा। लहरें तो सतह पर होती हैं; बड़ा शोरगुल होता है। सागर की गहराई में तो मौन होता है। वहां कोई लहरें भी नहीं होतीं, कोई शोरगुल भी नहीं होता। पुरुष एक तरह की सतह है, जहां बड़ी सक्रियता है, बड़े तूफान, बड़ी आंधियां हैं। स्त्री एक तरह की गहन गहराई है, जहां सब मौन और शांत है। लेकिन ध्यान रहे, वह जो पुरुष की सक्रियता है, वह उसी गहराई के ऊपर टिकी है। वह उसी गहराई का ऊपरी हिस्सा है। स्त्री केंद्र पर है, पुरुष परिधि पर है। इसलिए जब भी कोई पुरुष केंद्र में प्रवेश करता है, स्त्रियों जैसा हो जाता है। और जब भी कोई स्त्री सक्रिय होने की कोशिश करती है, सतह पर आ जाती है और पुरुष जैसी हो जाती है।

पश्चिम में आज स्त्री की बड़ी दौड़ है--पुरुष जैसे हो जाने की। इधर लाओत्से पुरुषों को समझा रहा है कि वे स्त्रियों जैसे हो जाएं। वहां पश्चिम में एक दौड़ है कि स्त्रियां पुरुष जैसी हो जाएं। कारण है उसका। क्योंकि पश्चिम की पूरी संस्कृति पुरुष के द्वारा निर्मित हुई है--आक्रामक, हिंसक। उसने स्त्री को पोंछ डाला, दबा डाला, मिटा डाला। यह सीमा के बाहर चला गया आक्रमण। और इस पुरुष ने सब तरह की जो शिक्षा स्त्री को दी, वह स्त्री भी उस शिक्षा में पुरुष की आकांक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं से भर गई। आज दुनिया में जो भी शिक्षा है, वह स्त्रियों के लिए कोई भी नहीं है। वह सब पुरुषों के लिए निर्मित हुई शिक्षा है। स्त्रियां उसमें प्रवेश कर गई हैं। मौलिक ढांचा पुरुष के लिए है उस शिक्षा का, स्त्री के लिए नहीं है। जिनको हम स्त्रियों की संस्थाएं कहते हैं, उनकी भी शिक्षा का ढांचा पुरुष का है। क्या पढ़ाते हैं, इससे सवाल नहीं पड़ता। कैसे पढ़ाते हैं और किसलिए पढ़ाते हैं? और क्या है लक्ष्य? सारा ढांचा पुरुष का है--महत्वाकांक्षा, एंबीशन, विजय, दौड़, प्रतिस्पर्धा, वह उसका सूत्र है, शिक्षा का। उसमें ही स्त्री को ढाला गया है पश्चिम में। अब स्त्री पुरुष जैसा होना चाहती है।

यह बड़ी ही गहरी कठिनाई पैदा करने वाली बात है। क्योंकि स्त्री अगर पुरुष जैसे होने की कोशिश करे तो इस जगत में जो भी मूल्यवान है, जो भी कीमती है, जो भी सारभूत है, वह सब खो जाएगा। इधर पूरब में लाओत्से जैसे मनुष्यों ने दूसरी कोशिश की है कि पुरुष स्त्री जैसा होने की कोशिश करे, ताकि जो गहन है, मूल्यवान है, वह और भी थिर हो जाए, और भी प्रकट हो जाए, और भी मनुष्य की अंतरात्मा में प्रविष्ट हो जाए।

स्त्रियां जब पुरुष जैसी होती हैं, तो सब उथला हो जाता है। स्त्री तो उथली हो ही जाती है। स्त्री सबसे ज्यादा चीज अगर कुछ खो सकती है, तो वह पुरुष जैसे होने की दौड़ में खो सकती है--अपनी आत्मा खो सकती है। हो तो नहीं पाएगी पुरुष जैसी, लेकिन आवरण ले सकती है। और जो स्त्री पुरुष जैसा आवरण ले लेगी, उससे ज्यादा असंतुष्ट पुरुष भी खोजना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि पुरुष के लिए अशांति स्वाभाविक है, स्त्री के लिए अशांति आरोपित होगी। पुरुष के लिए दौड़ नैसर्गिक है, स्त्री के लिए दौड़ उसकी प्रकृति के प्रतिकूल होगी।

इसलिए आज अगर पश्चिम में स्त्री एकदम रुग्ण होती जाती है, और उसे कोई शांति नहीं है, तो उसका मौलिक कारण यही है। वह कभी शांत हो नहीं सकती। पुरुष भी पुरुष रह कर शांत नहीं हो पाता, तो स्त्री तो पुरुष होकर शांत कैसे हो सकेगी? पुरुष भी तभी शांत हुआ है, जब वह स्त्री जैसा गहन निष्क्रिय हो गया है, शून्य हो गया है, समर्पित हो गया है, अनाक्रामक हो गया है। तब शांत हुआ है। पुरुष भी स्त्री जैसा होकर शांत होता रहा हो तो स्त्री तो पुरुष जैसी होकर कभी शांत नहीं हो सकती। हां, पुरुष से ज्यादा अशांत हो जाएगी, विक्षिप्त हो जाएगी, पागल हो जाएगी।

उसके कारण हैं। क्योंकि पुरुष जब स्त्री जैसा होता है, तो वस्तुतः वह अपने ही केंद्र पर लौट रहा है। ऐसा हम समझें कि वह जिस मां से निकल कर जगत में भागा और दौड़ा था, उसमें वापस लौट रहा है। लेकिन स्त्री अगर पुरुष जैसे होने की कोशिश कर रही है तो विक्षिप्तता के अतिरिक्त, पागलपन के अतिरिक्त, कोई और परिणाम नहीं हो सकता। और पुरुष जैसी किसी भी क्रिया में कोई हल, कोई सांत्वना नहीं मिल सकती। सिर्फ एक फीवरिश, एक रुग्ण बुखार पैदा हो सकता है।

लाओत्से मानता है कि निष्क्रियता प्राकृतिक है। सक्रियता तूफान है, आंधी है। और वापस गिर जाएगी, गिरना ही होगा। इसे हम समझें। कोई भी चीज सक्रिय नहीं रह सकती सदा; क्योंकि सक्रियता में शक्ति व्यय होती है। एक पत्थर पड़ा है। आप उसे उठाते हैं हाथ में और फेंकते हैं आकाश में। अभी तक निष्क्रिय पड़ा था। आपने अपने हाथ की ताकत उसे दी और सक्रिय कर दिया। आपने भी थोड़ी ताकत खोई। इसलिए आप भी अगर पत्थर उठा कर फेंकते रहेंगे तो दस-बीस पत्थर के बाद आप कहेंगे, अब मैं नहीं फेंक सकता। आपकी ताकत जा रही है पत्थर के साथ। आप अपनी शक्ति पत्थर को दे रहे हैं। तभी तो पत्थर हवा से टकराएगा, लड़ेगा और यात्रा करेगा। और जब तक सक्रिय रहेगा, तभी तक सक्रिय रहेगा, जब तक कि वह शक्ति को व्यय न कर देगा। व्यय होते ही पत्थर वापस जमीन पर गिर जाएगा। फिर निष्क्रिय हो जाएगा।

एक पत्थर जमीन पर पड़ा रह सकता है हजारों-लाखों साल तक निष्क्रिय। लेकिन फेंका गया पत्थर हजारों-लाखों साल तक यात्रा नहीं कर सकता। हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि पत्थर पड़ा रहे अनंत काल तक तो भी पड़ा रह सकता है। क्योंकि पड़े रहने में कोई शक्ति का अपव्यय नहीं है। लेकिन चल नहीं सकता अनंत काल तक, क्योंकि चलने में शक्ति का व्यय है। शक्ति चुकेगी और गिर जाएगा। सब सक्रियता शक्ति का व्यय है। निष्क्रियता शक्ति का संग्रह है; शक्ति व्यय नहीं होती।

इसलिए लाओत्से कहता है कि निष्क्रियता स्वभाव है। सक्रियता स्वभाव के बीच में घटी शक्ति को व्यय करने की इच्छा का परिणाम है।

स्त्री ज्यादा निष्क्रिय है। पुरुष ज्यादा सक्रिय है। इसलिए लाओत्से स्त्री को मूल में मानता है। लेकिन इससे स्त्रियां यह न सोच लें कि काम पूरा हुआ। इससे स्त्रियां यह न सोच लें कि अब कुछ करने को उनके लिए नहीं बचा।

तब दूसरी बात ख्याल में ले लें। जो परम संतुलन है, वह दो विरोध के बीच संतुलन है। अगर स्त्री निष्क्रिय रह कर ही निष्क्रिय रह पाती हो तो परम संतुलित नहीं है। अगर सक्रिय होकर भी भीतर निष्क्रिय रह पाती हो तो परम संतुलन है। उलटा, अगर पुरुष सब कुछ काम छोड़ कर जंगल में भाग कर मौन बैठ जाए तभी शांत हो पाए, तभी स्त्रैण हो पाए, तो वह भी शांति परम शांति नहीं है। क्योंकि सक्रियता के विरोध में चुनी गई शांति भी एक तरह की सक्रियता है। जहां विरोध है, वहां क्रिया है। अगर किसी ने अपने को सक्रियता के विरोध में निष्क्रियता में डुबाने की कोशिश की तो वह कोशिश भी सक्रियता है।

इसलिए ताओ के मानने वाले, झेन को मानने वाले जो परम ज्ञानी हैं, वे कहते हैं, प्रयास से जो शांति मिल जाए, वह परम शांति नहीं है। क्योंकि प्रयास से जो मिली है, प्रयासजन्य जो है, उसमें तो सक्रियता जुड़ी ही हुई है। अप्रयास से जो मिल जाए, इफर्टलेसली जो मिल जाए, वही परम शांति है।

इसका क्या मतलब हुआ? इसका मतलब हुआ कि विरोध की भाषा में जब तक हम सोचते हैं, तब तक हम शांत न हो पाएंगे। जब विरोध की भाषा ही गिर जाए, तो हम शांत हो पाएंगे। स्त्री सक्रिय होकर भी अपनी निष्क्रियता में बनी रहे, पुरुष सक्रिय होकर भी निष्क्रियता में डूब जाए, करे भी और भीतर न किया हुआ भी

बना रहे, बोले भी और भीतर शांति बनी रहे। मौन होकर न बोलने में कोई कठिनाई नहीं है, बोल कर मौन को खो देने में कोई कठिनाई नहीं है। शब्द हो बाहर, मौन हो भीतर, तब जो संतुलन स्थापित होता है, दो विरोध के बीच जो सेतु बन जाता है, वह परम है, वह आत्यंतिक है। फिर उसको विनष्ट नहीं किया जा सकता।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

"जो पुरुष को तो जानता है, लेकिन स्त्रैण में करता है वास, वह संसार के लिए घाटी बन जाता है। और संसार की घाटी होकर वह उस मूल स्वरूप में स्थित रहता है, जो अखंड है।"

"ही हू इ.ज अवेयर ऑफ दि मेल, बट कीप्स टु दि फीमेल, बिकम्स दि रैवाइन ऑफ दि वर्ल्ड। बीइंग दि रैवाइन ऑफ दि वर्ल्ड ही हैज दि ओरिजनल कैरेक्टर व्हिच इ.ज नाट कट अप, एंड रिटर्न्स अगेन टु दि इनोसेंस ऑफ दि वे।"

जो पुरुष को जानता है, लेकिन स्त्रैण में वास करता है। जो क्रिया में जीता है, लेकिन निष्क्रियता जिसके भीतर बनी रहती है।

ऐसा करें: दौड़ रहे हैं रास्ते पर, तब बाहर तो दौड़ है, लेकिन भीतर कोई है, जो दौड़ नहीं रहा। जरा भीतर झांकें। उसे पकड़ लेना कठिन नहीं होगा, जो भीतर बैठा हुआ है, जो दौड़ नहीं रहा। शरीर दौड़ता है, चेतना तो दौड़ती नहीं। चेतना तो वहीं बैठी रहती है। चेतना तो कभी चली ही नहीं है। आप कितने ही चले हों, चेतना नहीं चली है।

चेतना करीब-करीब वैसी है, जैसे आप हवाई जहाज में बैठे हैं। हवाई जहाज दौड़ रहा है हजारों मील की रफ्तार से और आप बैठे हैं। शरीर भी आपका वाहन है। शरीर दौड़ रहा है, आप बैठे हैं। और हवाई जहाज में तो यह भी संभव है--अगर आपका दिमाग खराब हो--कि हवाई जहाज भी भाग रहा हो, आप उसमें भाग रहे हों अंदर, जल्दी पहुंच जाने के ख्याल से। ठीक वैसा पागलपन आप भीतर भी कर सकते हैं। शरीर भाग रहा हो और आप भी भीतर भागने की कोशिश कर रहे हों। जल्दी नहीं पहुंच जाएंगे आप; क्योंकि भीतर कोई गति हो नहीं सकती। भीतर अगति है। भीतर कोई मूवमेंट, कोई हलन-चलन संभव नहीं है। शरीर हलन-चलन कर सकता है।

तो जो व्यक्ति दौड़ते हुए भीतर ध्यान रख सके उस पर जो दौड़ता नहीं है, तो वह पुरुष होकर स्त्रैण में वास कर रहा है। जो विचार करते समय भी गहरे तल पर निर्विचार में रह सके, तो वह पुरुष होते हुए स्त्रैण में वास कर रहा है। जो इस संसार में चलते हुए, जीते हुए भी, संन्यासी रह सके, तो वह पुरुष के साथ स्त्रैण में ठहरा हुआ है। संन्यास स्त्रैण है। सैनिक होना पुरुष, संन्यासी होना स्त्रैण है। लेकिन जो सैनिक रह कर संन्यासी रह सके, उसकी स्थिति परम है। या जो संन्यासी रह कर सैनिक रह सके, उसकी स्थिति भी परम है। क्योंकि दो विरोध जब मिल जाते हैं, तो एक-दूसरे को काट देते हैं। ऋण और धन जब मिलते हैं, तो एक-दूसरे को विलीन कर देते हैं। और उनके नीचे शून्य रह जाता है।

"जो पुरुष को जानता है, लेकिन स्त्रैण में वास करता है... ।"

स्त्रैण से समझें निष्क्रियता, स्त्रैण से समझें त्याग, स्त्रैण से समझें समर्पण, स्त्रैण से समझें स्वीकार--स्त्रैण से इस तरह की बातें समझें। पुरुष से समझें आक्रमण, परिग्रह, संग्रह, दौड़, महत्वाकांक्षा, प्रतिस्पर्धा। ये शब्द प्रतीक हैं। अगर आपका मन दौड़ में जी रहा है सिर्फ और आपने उसको बिल्कुल नहीं जाना जहां दौड़ नहीं है, तो आप आधे जी रहे हैं। इस संबंध में एक बात और नवीन खोज की ख्याल में लेनी चाहिए।

कार्ल गुस्ताव जुंग ने इस सदी की महानतम खोजों में एक अनुदान किया है। और वह यह कि कोई पुरुष न तो पूरा पुरुष है और न कोई स्त्री पूरी स्त्री। प्रत्येक व्यक्ति द्विलिंगी है, बाई-सेक्सुअल है। मात्रा का फर्क है। आप

साठ परसेंट पुरुष होंगे, चालीस परसेंट स्त्री होंगे। आपकी पत्नी साठ परसेंट स्त्री होगी, चालीस परसेंट पुरुष होगी। बस ऐसा फर्क है। सौ परसेंट पुरुष आप नहीं हैं। न सौ परसेंट कोई स्त्री है। हो नहीं सकता ऐसा। इसलिए नहीं हो सकता कि आपका जन्म स्त्री और पुरुष दोनों के मिलन से होता है। स्त्री में होता है; स्त्री से आप बाहर आते हैं। लेकिन पुरुष इसमें सहयोगी होता है। वह पुरुष आपके भीतर प्रवेश कर जाता है। क्योंकि जन्म सेक्सुअल है, पुरुष और स्त्री के मिलन से है, इसलिए दोनों ही मात्रा में मौजूद रहेंगे। यह हो सकता है कि एक व्यक्ति नब्बे परसेंट पुरुष हो और दस परसेंट स्त्री हो; लेकिन स्त्रैण हिस्सा होगा। और कभी-कभी ऐसा होता है कि यह अनुपात इतना क्षीण होता है कि कभी-कभी कोई स्त्री बाद में पुरुष हो जाती है, कोई पुरुष बाद में स्त्री हो जाता है। लिंग-परिवर्तन हो जाता है। अगर इक्यावन परसेंट आप पुरुष हैं, तो खतरा है। एक ही परसेंट, दो परसेंट का मामला है। जरा सा भी केमिकल फर्क, जरा से हारमोन का फर्क--किसी बीमारी के कारण, किसी दवा के कारण--और आप तत्काल स्त्री हो सकते हैं। अगर आप सिर्फ एक-दो परसेंट के फासले पर हैं, मारजिन बहुत कम है, तो परिवर्तन हो सकता है।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि परिवर्तन--मारजिन कितना ही बड़ा हो--किया जा सकता है। क्योंकि हारमोन का फर्क है। अगर थोड़े स्त्रैण हारमोन आप में डाल दिए जाएं तो आपकी मात्रा, भीतर का अनुपात बदल जाएगा, आप स्त्री होना शुरू हो जाएंगे।

इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुष के भीतर स्त्री छिपी है, स्त्री के भीतर पुरुष भी छिपा है। इन दोनों के बीच भी अगर संतुलन न बन पाए तो आप असंतुलित रहेंगे। इन दोनों में भी भीतर तालमेल हो जाना चाहिए।

ख्याल करें तो आपको अनुभव में आना शुरू होगा। सुबह आप बड़े शांत हैं। जरा सा किसी ने कुछ कहा, आप क्रोधित हो गए, आग जलने लगी। आपको पता नहीं है, भीतर जब आप शांत थे, तो स्त्रैण तत्व प्रमुख था। स्त्रैण ऊपर था, पुरुष नीचे दबा था। अब किसी ने आप में एक अंगारा फेंक दिया, एक गाली दे दी, किसी ने धक्का मार दिया, किसी ने कुछ कह दिया, जो चोट कर गया। स्त्री तत्काल पीछे हट गई। क्योंकि स्त्री चोट का जवाब नहीं दे सकती, स्त्री आक्रामक नहीं हो सकती। स्त्री तत्काल पीछे हट गई, पर्दे की ओट हो गई। पुरुष बाहर आ गया। आपकी आंखें खून से भर गईं। हाथ-पैर में जहर दौड़ गया। आप गरदन किसी की दबाने को, किसी को मार डालने को उत्सुक हो गए।

आप दिन में चौबीस घंटे में कई बार स्त्री हो जाते हैं, कई बार पुरुष हो जाते हैं। जो स्त्री आपको प्रेम करती है, और कभी आप सोच नहीं सकते कि आपकी गरदन दबा सकती है, वह भी कभी आपकी गरदन दबा सकती है। उसके भीतर भी वह गरदन दबाने वाला छिपा है। अगर वह देख ले आपको कि आप किसी और के प्रेम में पड़े जा रहे हैं, तो वह गरदन भी दबा सकती है। न भी दबाए तो विचार तो करेगी ही गरदन दबाने का। यह भी हो सकता है, आपकी न दबाए तो अपनी दबा ले। मगर दबा सकती है।

अक्सर यह होगा कि पुरुष जब क्रोधित होता है तो दूसरे को नष्ट करना चाहता है; स्त्री जब क्रोधित होती है तो खुद को नष्ट करना चाहती है। उतना उन दोनों में भेद है। क्योंकि दूसरे को नष्ट करने में ज्यादा आक्रामक होना पड़ता है, खुद को नष्ट होने में कम आक्रामक होना पड़ता है। इसलिए स्त्रियां ज्यादा आत्मघात करती हैं। करने का कारण कुल इतना है, वह भी हत्या करना चाहती हैं आपकी, लेकिन स्त्रैण होने की वजह से उन्होंने अपनी हत्या कर ली। पुरुष कम आत्मघात करते हैं। क्योंकि जब भी वे आत्मघात करना चाहते हैं, तब उनका मन किसी दूसरे की हत्या करने के लिए दौड़ पड़ता है। दूसरे की हत्या करना पुरुष को आसान है; क्योंकि दूसरा

दूर है। और स्त्री को अपनी हत्या करना आसान है; क्योंकि स्त्री अपने पास है। उसकी नजर पास पड़ती है, दूर नहीं पड़ती।

लेकिन दोनों एक-दूसरे के भीतर छिपे हैं। और इनमें से अगर एक को बिल्कुल काट दिया जाए तो आप अपंग हो जाएंगे, जैसे बायां पैर किसी ने काट दिया। आप चल पाते हैं, क्योंकि दाएं और बाएं के बीच एक संतुलन बना रहता है; यद्यपि दोनों का काम विरोधी है। जब बायां पैर ऊपर उठता है, तो दायां जमीन को पकड़े रहता है। और जब बायां जमीन को पकड़ लेता है, तब दायां उठता है। दोनों एक-दूसरे के विरोध में होते हैं। एक जमीन पर होता है, एक जमीन को छोड़ देता है। लेकिन इन दोनों के बीच गति संभव हो पाती है। और इन दोनों के बीच जितना संतुलन हो, जितनी बराबर शक्ति हो दोनों में, उतनी ही गति व्यवस्थित हो पाती है।

आपके भीतर की स्त्री और आपके भीतर का पुरुष भी एक संतुलन मांगते हैं। जिस दिन यह संतुलन पूरा हो जाता है, उस दिन, लाओत्से कहता है, आप ताओ को उपलब्ध हो गए। क्योंकि लाओत्से कहता है, इस संतुलन का नाम ही निर्दोषता है, इनोसेंस है।

जो पुरुष को जानता और स्त्रैण में वास करता है। स्त्रैण हो नहीं जाता, स्त्रैण में वास करने लगता है। ठीक इससे विपरीत स्त्री के लिएः जो स्त्रैण को जानती है और पुरुष में वास करती है; पुरुष हो नहीं जाती। वह संसार के लिए घाटी बन जाता है।

घाटी का, वैली का, रैवाइन का लाओत्से के लिए प्रतीक अर्थ है। पहाड़ जाएं आप देखने, तो उठे हुए शिखर हैं पहाड़ के। और उन शिखरों के पास ही, निकट पड़ोस में घाटियां हैं, वैलीज हैं। आपने ख्याल भी न किया होगा कि शिखर उठ ही इसलिए पाता है कि पास में घाटी बन जाती है। अगर घाटी न हो तो शिखर उठ नहीं पाएगा। शिखर घाटी से ही अपने सामान को खींचता है और उठता है। शिखर गौण है। शिखर बन नहीं सकता।

फिर शिखर आक्रामक है--जैसे अहंकार उठ गया हो आकाश में। घाटी निरहंकार, विनम्र है। शिखर को अपने को सम्हालना पड़ता है, क्योंकि गिरने का सदा डर है। जो ऊपर उठता है, उसे गिरने का डर होगा ही। घाटी अपने को सम्हालती नहीं; क्योंकि गिरने का कोई डर ही नहीं है। जो नीचे उतरता है, उसे गिरने का कोई डर नहीं रह जाता। घाटी निश्चिंत सोई रहती है; शिखर चिंता से भरा रहेगा। शिखर आज नहीं कल मिटेगा, क्योंकि शिखर होने में शक्ति व्यय होती है। जब शिखर अपने को सम्हाले हुए है, तो शक्ति व्यय हो रही है। घाटी में शक्ति व्यय होती ही नहीं; क्योंकि घाटी मात्र निष्क्रियता है, शून्यता है।

इसलिए लाओत्से घाटी का बड़ा उपयोग करता है। और लाओत्से यह कहता है, पुरुष शिखर की तरह है, स्त्री घाटी की तरह। यह प्रतीक भी ठीक है। और स्त्री के व्यक्तित्व, उसकी शरीर-रचना में भी यह बात सच है। पुरुष की शरीर-रचना शिखर की तरह है, स्त्री की शरीर-रचना घाटी की तरह। घाटी शांत है, शिखर सदा अशांत होगा। लेकिन जो व्यक्ति अपने भीतर दोनों का संतुलन कर लेता है, वह भी घाटी की तरह शांत हो जाता है।

"वह उस मूल रूप में स्थित रहता है, जो अखंड है।"

मूल रूप सदा अखंड है। गौण रूप सदा खंडित होते हैं। इसे हम ऐसा समझें, स्त्री और पुरुष दो खंड हैं एक ही मूल रूप के। इसीलिए स्त्री और पुरुष में इतना आकर्षण है। आकर्षण होता ही सदा उससे है जो हमारा ही खंड हो और दूर हो गया हो, जो अपना ही हो और बिछुड़ गया हो। इसे हम थोड़ा विज्ञान की यात्रा से भी समझें।

वैज्ञानिक कहते हैं कि जो जीवाणु मौलिक है जगत में, वह है अमीबा। अमीबा दोनों है, स्त्री-पुरुष साथ-साथ। अमीबा में जो जनन की प्रक्रिया है, वह बड़ी अदभुत है। अमीबा में स्त्री-पुरुष अलग-अलग नहीं हैं। इसलिए स्त्री और पुरुष के मिलन से बच्चे का जन्म नहीं हो सकता। अमीबा दोनों है एक साथ। वह स्त्री भी है और पुरुष भी है। तो अमीबा फिर जनन कैसे करता है?

उसका जनन बहुत अदभुत है। वह सिर्फ भोजन करता जाता है और बड़ा होता जाता है। जब एक सीमा के बाहर उसका शरीर हो जाता है, उसका शरीर दो टुकड़ों में टूट जाता है। ये दो टुकड़े भी स्त्री-पुरुष नहीं होते, स्त्री-पुरुष साथ-साथ होते हैं। ये दो टुकड़े प्रत्येक स्त्री-पुरुष एक साथ होते हैं। फिर ये भोजन करते जाते हैं। फिर यह शरीर बड़ा होकर एक सीमा के बाहर जाता है, शरीर दो हिस्सों में टूट जाता है। अमीबा को वैज्ञानिक कहते हैं कि यह पृथ्वी पर पैदा हुआ पहला जीवन है, पहला जीवाणु है।

अमीबा में कोई कामवासना नहीं है; परम ब्रह्मचारी है। कामवासना का कोई उपाय नहीं है; क्योंकि दूसरा कोई है नहीं, जिसके प्रति वासना हो सके। और दूसरे से मिलने की कोई इच्छा अमीबा में नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है। अमीबा में मिलने की इच्छा बिल्कुल नहीं है; टूटने की इच्छा है। तो अमीबा जब भोजन करता है, तो टूटना चाहता है। भारी हो जाता है, टूटना चाहता है। आपको ठीक भोजन मिले तो कामवासना पैदा होती है; आप मिलना चाहते हैं। इसे थोड़ा समझ लें।

अगर आपको ठीक भोजन न मिले तो कामवासना खो जाती है। इसलिए तथाकथित साधु उपवास कर-करके कामवासना को तोड़ने का उपाय करते हैं। तथाकथित कहता हूं; क्योंकि वस्तुतः मिटती नहीं है, केवल शक्ति के न होने से पता नहीं चलती। जैसे अमीबा को भोजन न दें तो फिर वह दो में नहीं टूटेगा; क्योंकि भोजन के बिना शरीर बड़ा नहीं होगा, टूटने का सवाल नहीं होगा। टूटना ही उसके जनन की प्रक्रिया है। जब आपको भोजन ठीक से मिलेगा, तो आप तत्काल दूसरे से मिलना चाहेंगे--पुरुष हैं तो स्त्री से, स्त्री हैं तो पुरुष से। क्यों? जैसे अमीबा टूट कर जन्म देता है, आप मिल कर जन्म देते हैं। और अमीबा टूट कर इसलिए जन्म दे सकता है कि उसमें स्त्री-पुरुष दोनों उसके भीतर ही मौजूद हैं। आप टूट कर जन्म नहीं दे सकते, आप मिल कर ही जन्म दे सकते हैं। क्योंकि जन्म का आधा हिस्सा आपके पास है और आधा हिस्सा स्त्री के पास है। बच्चा पैदा होगा दोनों के मिलने से। आधा आपके पास है बच्चा, आधा स्त्री के पास है। और जब तक वे दोनों न मिल जाएं, तो बच्चा पैदा नहीं होगा।

अमीबा टूटता है शक्ति बढ़ने से; आप शक्ति बढ़ने से मिलना चाहते हैं। इसलिए अगर आप भोजन न करें, कम भोजन करें, ऐसा भोजन करें जिससे आपकी शक्ति न बढ़े, तो कामवासना क्षीण हो जाएगी। मिट नहीं जाएगी। जिस दिन भोजन करेंगे, उस दिन फिर जाग जाएगी।

पुरुष-स्त्री के बीच जो मिलन का आकर्षण है, उसका कारण बायोलाजी, जीव-विज्ञान के हिसाब से यही है कि दोनों एक अखंड चीज के टुकड़े हैं और फिर से पूरा होना चाहते हैं। इसलिए संभोग में इतना सुख मालूम पड़ता है--एक क्षण के लिए पूरा हो जाने का सुख। वे जो टूटे हुए टुकड़े थे किसी एक अखंड के, वे एक क्षण के लिए इकट्ठे हो गए। वह इकट्ठे हो जाने में एक क्षण को, उन्हें जो सुख प्रतीत होता है, वह पूरा हो जाने का सुख है।

इसलिए संभोग में जो अपने को पूरा खो नहीं सकता, उसे संभोग में कोई भी सुख नहीं मिलेगा। और बहुत कम लोग हैं, जो संभोग में अपने को खो सकते हैं। क्योंकि नैतिक शिक्षाओं ने, धर्मगुरुओं ने इतना विषाक्त कर दिया है मन। उनके विषाक्त कर देने से आप संभोग से बचते नहीं; वह तो बच नहीं सकते आप। जब तक

आदमी भोजन कर रहा है, तब तक धर्मगुरु जीत नहीं सकते। कोई उपाय नहीं है उनके जीतने का। जब तक आदमी स्वस्थ है, शक्तिशाली है, तब तक वे जीत नहीं सकते। वह तो आदमी को बिल्कुल सिकोड़ कर, उसकी सारी शक्ति-ऊर्जा खींच कर, अगर अस्थि-कंकाल खड़े कर दिए जाएं सारे जगत में, तो ही साधु-संन्यासी जीत सकते हैं। वे जीत नहीं सकते। क्योंकि जो जैविक प्रक्रिया है, वह जिन क्रियाओं से घटित हो रही है, उनका उन्हें कोई बोध नहीं है।

लेकिन वे एक काम कर सकते हैं। वे आपके संभोग से तो आपको नहीं बचा सकते, लेकिन संभोग में आप पूरे न खो सकें, इसका उपाय कर देते हैं। उनकी बातें, उनके विचार, आपकी खोपड़ी में समा जाते हैं। फिर संभोग के क्षण में भी वह खोपड़ी आप अलग नहीं रख सकते उतार कर। वह आपके साथ होती है। संभोग भी करते हैं और पूरे लीन भी नहीं हो पाते। तब आपको अपने साधु-संन्यासियों की बातें ठीक मालूम पड़ती हैं कि वे लोग ठीक ही कहते हैं कि संभोग में कोई सुख नहीं है। यह एक विसियस सर्कल है, यह एक बड़ा दुष्ट-चक्र है। क्योंकि वे कहते हैं, इसलिए आपको सुख नहीं मालूम पड़ता; जब आप डूब ही नहीं पाते तो सुख मालूम नहीं पड़ता। डूब जाएं तो सुख मालूम पड़ेगा। यद्यपि सुख क्षणिक होगा, लेकिन मालूम पड़ेगा। क्षण भर ही सही, लेकिन वह सुख है।

सुख क्या है? सुख है दो आधे टुकड़ों का मिल कर एक हो जाना। एक क्षण को ही यह होगा, लेकिन एक क्षण में आप भी मिट जाएंगे स्त्री भी मिट जाएगी। संभोग का मतलब हैः जहां स्त्री और पुरुष मिट जाते हैं; जहां स्त्री स्त्री नहीं रह जाती, पुरुष पुरुष नहीं रह जाता; जहां दोनों खो जाते हैं, एकाकार हो जाते हैं। एक चैतन्य रह जाता है। क्षण भर को दो अहंकार नहीं रह जाते, दो शरीर नहीं रह जाते, दो मन नहीं रह जाते, दो आत्माएं नहीं रह जातीं। एक क्षण को द्वैत खो जाता है, अद्वैत हो जाता है। एक क्षण को ही होता है; एक क्षण के बाद वापस आप पुरुष हैं, स्त्री स्त्री है। इसलिए संभोग सुख भी देता है, दुख भी। सुख देता है क्षण भर को, चौबीस घंटे को दुख दे जाता है। क्योंकि मिलने में क्षण भर को सुख होता है, फिर बिछुड़न। वह अलग होना, वह अलग होना फिर दुख है। और आदमी इस सुख-दुख के बीच घूमता रहता है। क्षण भर का सुख, फिर दिनों का दुख, फिर क्षण भर का सुख, फिर दिनों का दुख।

अद्वैत एक क्षण को भी मिल जाए तो सुख मिलता है। इसलिए बुद्ध, महावीर, लाओत्से कहते हैं, यह अद्वैत अगर सदा को मिल जाए तो आनंद उपलब्ध होता है। और अद्वैत जब सदा को मिलता है, तो फिर दुख का कोई उपाय नहीं रह जाता। जब सुख क्षण भर को मिलता है, तभी दुख का उपाय होता है।

यह जो अद्वैत की तलाश है, इस तलाश का जो पहला अनुभव आदमी को हुआ है, वह संभोग से ही हुआ है। कोई और उपाय भी नहीं है। आदमी को समाधि की जो पहली झलक मिली है, वह संभोग से ही मिली है। कोई और उपाय नहीं है। पहले मनुष्य को जब ख्याल आया होगा, जब पहले विचारशील मनुष्य ने सोचा होगा कि क्यों मिलता है सुख संभोग में, तब उसे लगा होगा कि मिट जाता हूं मैं, इसलिए। तो अगर मैं पूरा ही मिट जाऊं सदा के लिए उस परम चैतन्य में, परम अस्तित्व में, तो फिर दुख नहीं रह जाएगा।

संभोग के अनुभव से ही समाधि की धारणा और समाधि का दूरगामी लक्ष्य पैदा हुआ है। बड़ा फासला है दोनों में; लेकिन दोनों में एक जोड़, एक सेतु है। जब स्त्री-पुरुष संभोग में डूब जाते हैं, तब दोहरी घटना घटती है। वह दोहरी घटना भी समझ लेनी चाहिए। क्योंकि आप दोहरे हैं--स्त्री भी, पुरुष भी। और स्त्री भी दोहरी है--स्त्री और पुरुष भी। जब एक स्त्री और पुरुष एक जोड़े में लीन हो जाते हैं, तो आपके भीतर का पुरुष आपके बाहर की स्त्री से मिलता है और आपके भीतर की स्त्री भी आपके बाहर के पुरुष से मिलती है--यह एक रूप। और

इस गहरे मिलन में आपके भीतर का पुरुष भी आपके भीतर की स्त्री से मिलता है और आपकी प्रेयसी के भीतर की स्त्री भी भीतर के पुरुष से मिलती है। तब एक वर्तुल निर्मित हो जाता है। एक क्षण को यह घटना घटती है कि आप टूटे नहीं होते, अखंड हो जाते हैं।

इस अखंडता को कामवासना के द्वारा स्थिर रूप से नहीं पाया जा सकता। इस अखंडता को केवल समाधि के द्वारा स्थिर रूप से पाया जा सकता है। लेकिन यह अखंडता की एक झलक, समाधि की एक झलक, संभोग में घटित होती है। और अगर आपको घटित नहीं होती, तो उसका मतलब ही यह है कि आपका मस्तिष्क संभोग होने ही नहीं देता। आप अपराध से भरे हुए ही संभोग में जाते हैं। आप जानते हैं कि पाप कर रहे हैं। आप जानते हैं कि गर्हित कृत्य कर रहे हैं। आप जानते हैं कि कुछ बुरा हो रहा है; मजबूरी है, इसलिए कर रहे हैं। आप यह सब जानते हुए जब संभोग में जाते हैं, तो घटना नहीं घटती। और जब घटना नहीं घटती, तब आपके समझाने वाले गुरुओं के वचन आपको बिल्कुल ही ठीक मालूम पड़ते हैं कि ठीक कहा है उन्होंने कि यह सब व्यर्थ का है। और जब आप बाहर आते हैं, तो और दुख से भरे हुए लौटते हैं, और पश्चात्ताप से भरे लौटते हैं। सुख मिलता नहीं, सुख का क्षण आपका मस्तिष्क गंवा देता है, और पीछे का दुख मिलता है। तब स्वभावतः आपकी धारणा और मजबूत होती चली जाती है। यह मजबूत होती धारणा आपको संभोग से वंचित ही कर देती है।

और जिस व्यक्ति को संभोग का कोई अनुभव नहीं होता, वह अक्सर समाधि की तलाश में निकल जाता है। वह अक्सर सोचता है कि संभोग से कुछ नहीं मिलता, समाधि कैसे पाऊं? लेकिन उसके पास झलक भी नहीं है, जिससे वह समाधि की यात्रा पर निकल सके। स्त्री-पुरुष का मिलन एक गहरा मिलन है। और जो व्यक्ति उस छोटे से मिलन को भी उपलब्ध नहीं होता, वह स्वयं के और अस्तित्व के मिलन को उपलब्ध नहीं हो सकेगा। स्वयं का और अस्तित्व का मिलन तो और बड़ा मिलन है, विराट मिलन है। यह तो बहुत छोटा सा मिलन है। लेकिन इस छोटे मिलन में भी अखंडता घटित होती है--छोटी मात्रा में। एक और विराट मिलन है, जहां अखंडता घटित होती है--स्वयं के और सर्व के मिलन से। वह एक बड़ा संभोग है, और शाश्वत संभोग है।

यह मिलन अगर घटित होता है, तो उस क्षण में व्यक्ति निर्दोष हो जाता है। मस्तिष्क खो जाता है; सोच-विचार विलीन हो जाता है; सिर्फ होना, मात्र होना रह जाता है, जस्ट बीइंग। सांस चलती है, हृदय धड़कता है, होश होता है; लेकिन कोई विचार नहीं होता। संभोग में एक क्षण को व्यक्ति निर्दोष हो जाता है।

लेकिन लाओत्से कहता है कि अगर इस गहन आंतरिक मिलन को व्यक्ति उपलब्ध हो जाए कि पुरुष को जाने, स्त्री में वास करे, तो संसार के लिए घाटी बन जाता है। और घाटी होकर स्वरूप में स्थित रहता है, अखंड हो जाता है। शिशुवत निर्दोषता उपलब्ध होती है।

अगर आपके भीतर की स्त्री और पुरुष के मिलने की कला आपको आ जाए, तो फिर बाहर की स्त्री से मिलने की जरूरत नहीं है। लेकिन बाहर की स्त्री से मिलना बहुत आसान, सस्ता; भीतर की स्त्री से मिलना बहुत कठिन और दुरूह। बाहर की स्त्री से मिलने का नाम भोग; भीतर की स्त्री से मिलने का नाम योग। वह भी मिलन है। योग का मतलब ही मिलन है।

यह बड़े मजे की बात है। लोग भोग का मतलब तो समझते हैं मिलन और योग का मतलब समझते हैं त्याग। भोग भी मिलन है, योग भी मिलन है। भोग बाहर जाकर मिलना होता है, योग भीतर मिलना होता है। दोनों मिलन हैं। और दोनों का सार संभोग है। भीतर, मेरे स्त्री और पुरुष जो मेरे भीतर हैं, अगर वे मिल जाएं मेरे भीतर, तो फिर मुझे बाहर की स्त्री और बाहर के पुरुष का कोई प्रयोजन न रहा।

और जिस व्यक्ति के भीतर की स्त्री और पुरुष का मिलन हो जाता है, वही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। भोजन कम करने से कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता; न स्त्री से, पुरुष से भाग कर कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। न आंखें बंद कर लेने से, न सूरदास हो जाने से--आंखें फोड़ लेने से--कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होने का एकमात्र उपाय हैः भीतर की स्त्री और पुरुष का मिल जाना।

अब यह बड़े मजे की बात है कि बाहर की स्त्री से आप कितनी देर मिले रह सकते हैं? शरीर के तल पर क्षण भर मिल सकते हैं। क्योंकि वह मिलन बहुत महंगा है। आपको बहुत ऊर्जा खोनी पड़ती है, शक्ति खोनी पड़ती है। अब तो ऊर्जा नापी जा सकती है कि कितनी शक्ति आप एक संभोग में खोते हैं, कितनी शरीर की विद्युत विनष्ट होती है। इसलिए जब तक उतनी विद्युत आप फिर पैदा न कर लें, मिलन नहीं हो सकता। इसलिए अब रुकना पड़े--चौबीस घंटे, अड़तालीस घंटे, सप्ताह भर। जैसे उम्र बढ़ती जाएगी, उतना ज्यादा आपको रुकना पड़ेगा--महीना भर। क्योंकि जब तक उतनी विद्युत फिर पैदा न हो जाए, यह मिलन अब नहीं हो सकता। इसलिए यह मिलन स्थिर तो हो ही नहीं सकता--एक क्षण में इतनी विद्युत खो जाती है।

इसीलिए संभोग के बाद लोगों को शांति मालूम पड़ती है, विश्राम मालूम पड़ता है, नींद आ जाती है। फ्रायड ने संभोग को ही एकमात्र प्राकृतिक ट्रैंक्वेलाइजर कहा है। है भी। अमीर आदमी और तरह के भी ट्रैंक्वेलाइजर खोज लेता है; गरीब के लिए तो एक ही ट्रैंक्वेलाइजर है। और इसलिए गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। और कहीं कोई विश्राम नहीं, और कहीं कोई उपाय नहीं खो जाने का।

अमरीका की मैं एक घटना पढ़ रहा था। अमरीका के एक नगर में एक वर्ष तक टेलीविजन यांत्रिक कारणों से बंद करना पड़ा। कुछ खराबी थी और एक वर्ष तक टेलीविजन नहीं चला। बड़ी हैरानी की घटना घटी, जो किसी ने सोची भी न थी। दूसरे साल दुगने बच्चे पैदा हुए उस गांव में। क्योंकि लोग टेलीविजन देख लेते थे, सो जाते थे चुपचाप देख-दाख कर। साल भर टेलीविजन बंद रहा, अमीर और गरीब बराबर हो गए। एक ही मनोरंजन बच गया। दुगने बच्चे! एक मनोवैज्ञानिक ने सुझाव दिया है कि टेलीविजन बर्थ-कंट्रोल की सबसे अच्छी व्यवस्था है। घर-घर में टेलीविजन पहुंचे, तो लोग... बर्थ-कंट्रोल की कम जरूरत पड़ेगी--अगर उस गांव का अनुभव सभी जगह काम आया तो। आना चाहिए, क्योंकि आदमी एक जैसा है। इसलिए गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। उनके पास कुछ और स्वयं को खोने का उपाय नहीं है। इसलिए अमीर आदमियों को अक्सर बच्चे गोद लेना पड़ते हैं।

अगर बाहर का मिलन है, शरीर के तल पर, तो क्षण भर को होगा। और मन के तल पर तो क्षण भर को भी नहीं हो पाता। इसे थोड़ा समझ लें। शरीर के तल पर तो क्षण भर को भी हो पाता है; मन के तल पर क्षण भर को भी नहीं हो पाता। इसलिए काम, यौन तो आसान है; प्रेम बहुत कठिन है। प्रेम का मतलब है मन के तल पर मिलन--किसी स्त्री-पुरुष का मन के तल पर ऐसा मिल जाना जैसे संभोग में शरीर के तल पर घटित होता है। कोई विरोध नहीं रह गया; कोई भेद नहीं रह गया; कोई अस्मिता, अहंकार नहीं रह गया; जब मन के तल पर ऐसा मिलन होता है तो प्रेम घटित होता है; जब शरीर के तल पर ऐसा मिलन होता है तो यौन घटित होता है। प्रेम बड़ा कठिन है। क्योंकि दो मन का ऐसे क्षण में आ जाना जहां कोई विरोध न हो, कोई अहंकार न हो, अति कठिन है।

शरीर के तल पर क्षण भर को, मन के तल पर क्षण भर को भी नहीं, इसलिए दुख मिलेगा।

अपने भीतर एक मिलन घटित हो सकता है स्वयं की स्त्री और स्वयं के पुरुष का--वह आत्मा के तल पर है। और वह जो मिलन है, उसमें कोई शक्ति व्यय नहीं होती। क्यों? आप अपने बाहर जाते ही नहीं। अगर

विज्ञान की भाषा में कहें तो अमीबा जैसे शरीर के तल पर स्त्री और पुरुष एक है, ऐसे ही जो व्यक्ति अपने भीतर स्त्री और पुरुष को मिला लेता है, आत्मा के तल पर अमीबा की तरह एक हो जाता है। इस मिलन का नाम आनंद है। इसकी प्रक्रिया योग है। और ऐसी स्थिति में आया हुआ व्यक्ति बिल्कुल बच्चे की तरह निर्दोष हो जाता है।

बच्चे की तरह कहने का कारण है। बच्चे से मतलब है, जब यौन की धारणा विकसित नहीं हुई। छोटा बच्चा न स्त्री है, न पुरुष। शरीर की दृष्टि से तो स्त्री-पुरुष है, पर अभी उसे अपने शरीर का पता ही नहीं है। आपको पता है। तो आपके लिए एक बच्चा स्त्री है, एक बच्चा पुरुष है। बच्चा पैदा हुआ। मां-बाप पता लगाना चाहते हैं--लड़का है, लड़की है। यह लड़का-लड़की मां-बाप के लिए है। अपने लिए? अपने लिए अभी कुछ भी नहीं है। अभी इसे शरीर का बोध ही नहीं है। अपने लिए तो अभी यह सिर्फ है। वक्त लगेगा। जब आप इसको सिखाएंगे, बड़ा होगा, तब यह समझेगा कि लड़का है या लड़की। फिर भी समझ कर भी इसकी समझ में न आएगा कि ऐसा बहुत फर्क क्या है लड़का और लड़की में। चौदह साल का होगा, तब इसकी ग्रंथियां शक्ति पैदा करना शुरू करेंगी, हारमोन विभाजित होंगे। तब इसे पहली दफा भीतर से अनुभव आएगा कि लड़का होने का क्या अर्थ है और लड़की होने का क्या अर्थ है। तब लड़के शिखर बनने लगेंगे, लड़कियां घाटियां बनने लगेंगी। तब उनकी मिलन की आकांक्षा पैदा होगी। तब वे एक-दूसरे से मिल कर पूरा होना चाहेंगे।

लाओत्से कहता है, जो व्यक्ति पुरुष होकर स्त्री में वास कर लेता है, वह भीतर एक निर्दोष बच्चे की भांति हो जाता है। फिर न वह स्त्री है, न पुरुष।

मैंने कहा आपको कि बुद्ध स्त्रैण मालूम होते हैं। अगर हम बाहर चंगीजखां को, हिटलर को, नेपोलियन को, सिकंदर को पुरुष मानते हैं, तो निश्चित ही बुद्ध स्त्रैण मालूम होते हैं। लेकिन बुद्ध के भीतर का अनुभव क्या है? भीतर का अनुभव यह है कि बुद्ध अब न स्त्री हैं, न पुरुष। बुद्ध अब केवल हैं। अब वे उस बच्चे की भांति हो गए जिसको पता ही नहीं कि शरीर में कोई भेद--जिसे यह भी पता नहीं कि शरीर है।

कभी आपको ख्याल हो न हो, शरीर का आपको पता ही तब चलता है, जब आप बीमार होते हैं। नहीं तो पता नहीं चलता। अगर बच्चा स्वस्थ है तो बिल्कुल पता नहीं चलता कि शरीर है। स्वस्थ बच्चे को शरीर का कोई पता नहीं होता। जब बीमारी आती है, भूख लगती है, ठंड लगती है, तब बच्चे को पता चलता है कि शरीर है। आप भी अगर पूरे स्वस्थ हों--जो कि बहुत कठिन है--तो आपको भी शरीर का पता नहीं चलेगा। बीमारी का पता चलता है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द होता है तो सिर का पता चलता है। और अगर आपको सिर का पता चलता ही रहता है तो समझना कि दर्द है। विचार बहुत चलते रहें, वे भी दर्द पैदा करते हैं। उनकी वजह से भी खोपड़ी का पता चलता है।

बच्चे को कोई पता नहीं शरीर का। बच्चे को किसी भेद का पता नहीं। बच्चे को किसी से मिलने की कोई आकांक्षा नहीं। बच्चा अपने में लीन है। फ्रायड ने जो शब्द उपयोग किया है, वह बहुत बढ़िया है। फ्रायड कहता है, बच्चा आटो-एरोटिक है, आत्म-कामी है। खुद काफी है; उसे कोई और जरूरत नहीं है। देखा, बच्चा अपना ही हाथ चूसता रहता है। आपको अगर हाथ चूसने में मजा लेना हो तो किसी और का चूसना पड़े। अपना हाथ बिल्कुल मजा नहीं देगा। या कि आपको दे सकता है? अगर दे तो आपके घरवाले आपका इलाज करवाने चिकित्सक के पास ले जाएंगे। बच्चा आटो-एरोटिक है।

तीन तरह की संभावनाएं हैं, मनसविद कहते हैं। हेट्रो-सेक्सुअल, विपरीत लिंगी काम--पुरुष और स्त्री के बीच। होमो-सेक्सुअल, समलिंगी काम--पुरुष और पुरुष के बीच, स्त्री और स्त्री के बीच। आटो-सेक्सुअल, आत्म-

लिंगी काम--खुद ही, किसी के प्रति नहीं। बच्चा आटो-सेक्सुअल है। उसे अभी दुनिया में किसी की जरूरत नहीं है। अभी वह अपने को ही प्रेम करता है।

नार्सीसस की कथा अगर आपने पढ़ी हो। यूनानी कथा है कि नार्सीसस इतना सुंदर था कि जब उसने पहली दफा पानी में अपनी छाया देखी, तो उसके प्रेम में पड़ गया। फिर वह अपने को ही प्रेम करता रहा। फिर वह किसी को प्रेम नहीं कर सका। बच्चे नार्सीसस हैं; वे खुद ही को प्रेम करते हैं। अभी दूसरा है ही नहीं।

लेकिन अभी दूसरा आएगा। जल्दी ही; शरीर तैयारी कर रहा है। प्रतीक्षा है, जल्दी ही दूसरा आ जाएगा। जल्दी ही बच्चे दूसरे में रस लेना शुरू कर देंगे। छिपे में अभी भी रस होता है--छिपे में, अभी बच्चे को साफ भी नहीं होता--अनकांशस, अचेतन में।

इसलिए लड़कियां पिता को ज्यादा प्रेम करती हैं; लड़के मां को ज्यादा प्रेम करते हैं। मां लड़कों को ज्यादा प्रेम करती है; बाप लड़कियों को ज्यादा प्रेम करता है। वह विपरीत अभी भी आकर्षक है। इसलिए बाप और बेटे में थोड़ी सी कलह रहती है। लड़की और मां में थोड़ी सी कलह रहती है। और अगर बाप लड़की को ज्यादा प्रेम करता है तो कलह और बढ़ जाती है। या अगर मां लड़के को ज्यादा प्रेम करती है तो कलह और बढ़ जाती है। वह विपरीत का आकर्षण अभी भी छिपा है। लेकिन अभी प्रकट नहीं है। प्रकट हो जाएगा।

लेकिन जब भीतर यह मिलन घटित हो जाता है, तो पुनः व्यक्ति बच्चे की तरह निर्दोष होता है। बच्चे की तरह! यह बात ठीक बच्चे की तरह नहीं है। और ही आयाम खुल जाता है। अब दूसरा कभी भी महत्वपूर्ण नहीं होगा। अब दूसरे का आकर्षण सदा के लिए खो गया। अब यह सारी बात ही समाप्त हो गई। अब यह भीतर आत्म-कामी है। यह अब अपने ही भीतर पूरे रस में लीन है। अब यह उस अद्वैत को उपलब्ध हो गया, जहां अब कहीं बाहर जाने की, प्रेमी को खोजने की अब कोई जरूरत न रही। अब प्रेमी भीतर मिल गया है। और तब स्वभावतः, सब तनाव खो जाए, सब अशांति खो जाए, सब दुख खो जाए, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति सदा ही भीतर अमृत के झरने को अनुभव करता है।

जो झलक कभी संभोग में आपको दिखी हो, अगर आपका साधु-संन्यासियों ने मस्तिष्क खराब न किया हो, जो कि बहुत मुश्किल है ऐसा आदमी खोजना जो साधु-संन्यासियों से बच जाए। क्योंकि उनका जाल बहुत पुराना; उनका धंधा बहुत प्राचीन। और उनके हाथ सब जगह फैले हुए हैं। और हर बच्चे की गरदन पर उनके हाथ पहुंच जाते हैं। और इसके पहले कि बच्चा होश से भरे, उसके मस्तिष्क में कामवासना के संबंध में अत्यंत मूढ़तापूर्ण विचार डाल दिए जाते हैं, जो उसको कभी भी संभोग के क्षण में सुखी न होने देंगे।

अगर मनुष्य-जाति के साथ कोई सबसे बड़ा अनाचार हुआ है, तो वह यह है। क्योंकि जो सहज सुख था, वह असंभव कर दिया गया। और उसके असंभव हो जाने से धर्म कोई फैल गया हो, ऐसा नहीं। सिर्फ अधर्म फैला। क्योंकि वह सहज सुख की संभावना अगर बनी रहे तो आदमी समाधि की खोज में निश्चित ही निकल जाएगा। जिसे जरा सी भी झलक मिली हो, वह और को पाना चाहेगा। जिसे बिल्कुल भी झलक न मिली हो, वह केवल हताश हो जाता है। कुछ और पाने का सवाल ही नहीं रह जाता है। अगर मैं आपके हाथ में झूठा हीरा भी दे दूं, तो भी असली हीरे की खोज शुरू हो जाएगी। लेकिन आपके हाथ में असली हीरा भी रखा हो और चारों तरफ समझाने वाले लोग हों कि यह पत्थर है, तो उसको भी आप फेंक देंगे। और असली की खोज तो असंभव हो जाएगी। झलक, और विराटतर सत्य की तरफ ले जाती है।

इसलिए कहता हूं, अगर आपको संभोग का कभी जरा सा भी क्षण भर को भी अनुभव हुआ हो, तो आप कल्पना कर सकते हैं उस योगी की, जिसको भीतर यह संभोग घटित होता है। तो फिर यह रस चौबीस घंटे

झरता रहता है। कबीर कहते हैं, जागूं कि सोऊं, उठूं कि बैठूं, वह अमृत झरता ही रहता है। वह कौन सा अमृत है? वह एक भीतर मिलन का अमृत है। अब भीतर कबीर एक हो गए।

इस एक हो जाने का नाम ही आत्मा है। भीतर बंटे होने का नाम मन है और भीतर एक हो जाने का नाम आत्मा है। और जब तक आपके भीतर आत्मा नहीं है, तब तक आप व्यक्ति नहीं हैं, इंडिविजुअल नहीं हैं। आप सिर्फ एक भीड़ हैं, एक समूह; बहुत से लोगों का वास है। जब यह भीड़ खो जाती है, और एक ही बच रहता है। जब यह द्वैत खो जाता है, और एक ही बच रहता है।

लाओत्से कहता है, "जो शुक्ल के प्रति होशपूर्ण, लेकिन कृष्ण के साथ जीता है; जो प्रकाश के प्रति होशपूर्ण, लेकिन अंधेरे के साथ जीता है; वह संसार के लिए आदर्श बन जाता है। और संसार का आदर्श होकर उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, जो कभी भूल नहीं करती। और वह पुनः अनादि अस्तित्व में वापस लौट जाता है।"

प्रकाश के प्रति होशपूर्ण, लेकिन अंधेरे में जीता है। और भी कठिन बात है। क्योंकि हम प्रकाश को चाहते हैं अंधेरे के खिलाफ। हमारी सारी वासना किसी की चाह किसी के खिलाफ से बनी है। प्रकाश!

ऋषि ने गाया है, हे प्रभु मुझे प्रकाश की तरफ ले चल! अंधेरे से हटा, प्रकाश की तरफ ले चल! मृत्यु से हटा, अमृत की तरफ ले चल!

लाओत्से की बात उस ऋषि से ज्यादा गहरी है। क्योंकि वह ऋषि सामान्य मनुष्य की वासना को ही प्रकट कर रहा है। उस ऋषि ने जो भी कहा है, वह कोई असामान्य बात नहीं है। सामान्य आदमी की वासना है कि मुझे अंधेरे से प्रकाश की तरफ, मृत्यु से अमृत की तरफ, सुख की तरफ दुख से, वेदना से आनंद की तरफ ले चल! यह तो ठीक वासना सामान्य आदमी की है। इसमें ऋषि का कुछ बहुत है नहीं। कहें कि ऋषि ने सभी सामान्य मनुष्यों की वासना को अपने इस सूत्र में प्रकट कर दिया है।

लेकिन लाओत्से की बात सचमुच उसकी बात है जिसने जाना है। वह कह रहा है, जो शुक्ल के प्रति होशपूर्ण! जागे रहना प्रकाश की तरफ, लेकिन अंधेरे के खिलाफ प्रकाश को मत चुन लेना। डरना मत अंधेरे से। अंधेरे में जीना। घबड़ाना भी मत। क्योंकि जो आदमी अंधेरे में जीने को राजी है बिना भय के, वही आदमी वस्तुतः प्रकाश को उपलब्ध हुआ है। जो अंधेरे से डरता है, वह प्रकाश को कभी वस्तुतः उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। भेद हमें दिखाई पड़ता है। अस्तित्व में भेद नहीं है।

और अगर हम गहरे उतरें तो इसका मतलब है कि जो नीति की तरफ होशपूर्ण, लेकिन अनीति से भयभीत नहीं; जो संन्यास के प्रति जागा हुआ, लेकिन संसार से भागा हुआ नहीं। इस सूत्र को पूरे जीवन के समस्त विरोधों में फैला देना जरूरी है। जहां-जहां विरोध हो, वहां-वहां जानना कि दोनों को एक साथ जोड़ लेना है। तब जो स्थिति घटित होगी, वही परम शांति की है।

अगर हम द्वंद्व में से चुनते हैं, तो शांति कभी घटित नहीं होगी। जो भय से भाग गया संसार से और संन्यास चुन लिया, वह संसार से पीड़ित रहेगा। जो भयभीत है जिससे, भय उसका पीछा कर रहा है। वह कहीं भी चला जाए, उसे शांति न मिलेगी। और डर लगा ही रहेगा संसार का। और संसार छाया की तरह पीछे जाएगा। और वह कितना ही बचे, जहां जाएगा वहीं संसार निर्मित हो जाएगा। लेकिन जो संसार के बीच संन्यस्त हो जाता है, अब इसे कोई भय न रहा। अब इसे कहीं जाने की जरूरत न रही। अब यह जहां भी है... ।

कबीर मरने के करीब थे। तो कबीर जिंदगी भर काशी में रहे और मरते वक्त उन्होंने कहा, मुझे काशी के बाहर ले चलो। लोगों ने कहा, आप पागल हो गए हैं! लोग मरने के लिए काशी आते हैं। क्योंकि यहां जो मरता है, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। कबीर ने कहा, इसीलिए मुझे काशी के बाहर ले चलो। इसीलिए मुझे काशी के बाहर ले चलो, क्योंकि मर कर मैं वहीं उपलब्ध होना चाहता हूं, जहां उपलब्ध हो सकता हूं। काशी का सहारा नहीं लेना चाहता। पर लोगों ने कहा, ऐसी जिद्द भी क्या? अगर काशी के सहारे भी मोक्ष मिलता हो तो ऐसी जिद्द भी क्या? तो कबीर ने कहा है कि जो मैंने भीतर पा लिया है, अब मुझे नरक में भी फेंक दिया जाए तो वहां भी मोक्ष है। अब कोई भेद नहीं पड़ता। क्या मुझे मिलता है, इससे कोई सवाल नहीं है। क्योंकि मैंने जो भीतर पा लिया है, वही मोक्ष है।

काशी मरने वही आते हैं मोक्ष के लिए, जिन्हें भीतर का मोक्ष नहीं मिला है। और जिन्हें भीतर का नहीं मिला, वे पागल हैं कि सोच रहे हैं कि बाहर का मिल जाएगा। काशी में कितने ही बार मरो, मोक्ष नहीं मिल सकता। अपने में एक बार भी मर जाओ, मोक्ष अभी और यहीं है।

अपने में मरने का सूत्र हैः द्वंद्व में चुनाव मत करना, द्वंद्व को पूरा का पूरा आत्मसात कर लेना। बुरे और भले को, शुभ और अशुभ को, शुक्ल और कृष्ण को, सब को एक साथ आत्मसात कर लेना, ताकि दोनों एक-दूसरे को काट दें। उनके कटते ही व्यक्ति अनादि अस्तित्व में वापस लौट जाता है।

"और उसे वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो कभी भूल नहीं करती।"

फिर उसे सोचना नहीं पड़ता कि मैं यह करूं और यह न करूं। फिर उसे सोचना नहीं पड़ता कि क्या ठीक है और क्या गलत है। फिर तो उससे जो होता है, वह ठीक होता है। और उससे जो नहीं होता, वह गलत है। फिर तो उसका होना ही उसका नियम है।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

उनसठवां प्रवचन

संस्कृति से गुजर कर निसर्ग में वापसी

Chapter 28 : Part 2

Keeping To The Female

He who is familiar with honour and glory
But keeps to obscurity
Becomes the valley of the world.
Being the valley of the world,
He has an eternal power which always suffices,
And returns again to the natural integrity of uncarved wood.
Break up this uncarved wood
And it is shaped into vessel.
In the hands of the Sage,
They become the officials and magistrates.
Therefore the great ruler does not cut up.

अध्याय 28 : खंड 2

स्त्रैण में वास

जो सम्मान और गौरव से परिचित है,
लेकिन अज्ञात की तरह रहता है,
वह संसार के लिए घाटी बन जाता है।
और संसार की घाटी होकर,
उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त हो जाती है,
जो स्वयं में पर्याप्त है।
और वह पुनः अनगढ़ लकड़ी की
नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है।
इस अनगढ़ लकड़ी को खंडित करें या तराशें,
तो वही पात्र बन जाती है।

ज्ञानी के हाथों में पड़कर,

वे उस आभिजात्य को उपलब्ध होते हैं,

जो शासन करता है।

इसलिए महान शासक खंडन नहीं करता है।

स्त्रैण मनुष्य का एक और आयाम!

स्त्री और पुरुष के चित्त को समझ लेना साधना की अनिवार्य भूमिका है।

जैसा मैंने कल कहा, स्त्री है अनाक्रामक; आमंत्रण है, आक्रमण नहीं है। पुरुष है आक्रामक, हमलावर। इसलिए पुरुष का चित्त सदा यात्रा पर है। दूसरे की सक्रिय खोज है। और आक्रामक है चित्त, इसलिए पुरुष चाहता है कि जाना जाए, पहचाना जाए; लोग जानें, प्रतिष्ठा हो, यश हो, सम्मान हो। यश की आकांक्षा आक्रमण का हिस्सा है। और जिस दिन यश की आकांक्षा नहीं होती किसी में, उस दिन ही आक्रमण शून्य हो जाता है।

आक्रमण के रूप अनेक हो सकते हैं। कोई तलवार लेकर आक्रमण पर निकलता है--दूसरे को जीतने। कोई यही काम त्याग से भी कर सकता है। कोई यही काम ज्ञान से भी कर सकता है। कोई चित्र बना सकता है; कोई संगीत सीख सकता है; कोई तलवार चला सकता है। लेकिन आकांक्षा एक है कि दूसरे मुझे जानें, मैं जाना जाऊं, पहचाना जाऊं, सम्मानित होऊं।

इसका अर्थ हुआ कि पुरुष का केंद्र है अहंकार। अहंकार अगर जाना न जाए तो निर्मित ही नहीं होता। जितने ज्यादा लोग मुझे जानें, उतना अहंकार निर्मित होता है। जितने ज्यादा लोगों तक मेरा प्रभाव हो, जितनी बड़ी सीमा हो उस प्रभाव की, उतना मेरा अहंकार सघन होता है। स्त्री है अनाक्रमण, अर्थात समर्पण।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। अगर आक्रमण चाहता है कि जाना जाऊं, तो समर्पण चाहेगा कि जाना न जाऊं, पहचाना न जाऊं। करूं भी, तो भी यह पता न चले कि मैंने किया। समर्पण छिपना चाहता है; समर्पण अज्ञात रहना चाहता है। समर्पण अनाम की खोज करता है। समर्पण की गहरी से गहरी आकांक्षा आक्रमण के विपरीत है। अगर समर्पण भी जाना जाना चाहे, यश चाहे, खबर चाहे कि लोग जानें कि मैंने समर्पण किया, तो जानना कि समर्पण केवल शब्द ही है, भीतर आक्रमण ही है। दूसरे के चित्त पर मेरा प्रभाव हो, यह हिंसा है, आक्रमण है। किसी को मेरा पता भी न हो, ऐसे जीने का जो ढंग है, वही समर्पण है।

स्त्री का प्रेम, अगर वस्तुतः स्त्री का प्रेम है, तो अज्ञात होगा। इसीलिए कोई स्त्री पहल नहीं कर पाती। अगर उसका किसी से प्रेम भी हो, तो वह यह नहीं कह सकती कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। प्रतीक्षा करेगी कि पुरुष ही उसे किसी दिन कहेगा कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। पहल, इनीशिएटिव आक्रमण का ही हिस्सा है। स्त्री घोषणा नहीं करेगी। उसके सारे अस्तित्व से घोषणा के स्वर सुनाई पड़ेंगे। उसकी आंखों से, उसके ओंठों से, उसके होने से, उसकी श्वास-श्वास से घोषणा होगी; लेकिन वह घोषणा अप्रकट होगी। उसे वही समझ पाएगा जो उतने सूक्ष्म में, उतने प्रेम में लीन हुआ है। अन्यथा वह दिखाई भी नहीं पड़ेगी।

यह स्त्री-चित्त का आयाम ख्याल में रख लें तो फिर इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाए।

"जो सम्मान और गौरव से परिचित है, लेकिन अज्ञात की तरह रहता है, वह संसार के लिए घाटी बन जाता है। और संसार की घाटी होकर उसको वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, जो स्वयं में पर्याप्त है।"

लाओत्से की दृष्टि बड़ी उलटी है। आमतौर से हम समझते हैं कि शक्ति होती है आक्रमण में। लाओत्से कहता है, शक्ति होती है समर्पण में। और आक्रमण की शक्ति को तो तोड़ा भी जा सकता है, काटा भी जा सकता है, क्योंकि आक्रमण से बड़ा भी आक्रमण हो सकता है। लेकिन समर्पण से बड़ा कोई समर्पण नहीं हो सकता। समर्पण का अर्थ ही आखिरी होता है। उससे बड़ा कुछ होता नहीं। तो आप ऐसा नहीं कह सकते कि यह समर्पण थोड़ा छोटा और यह समर्पण थोड़ा बड़ा। समर्पण का अर्थ ही पूरा है। जैसे कि आप यह नहीं कह सकते कि यह वर्तुल अधूरा, यह सर्कल अधूरा, और यह सर्कल पूरा। सर्कल का अर्थ ही होता है कि वह होगा तो पूरा होगा, नहीं तो नहीं होगा। कोई अधूरा वर्तुल नहीं होता, नहीं तो वह वर्तुल ही नहीं है। वर्तुल पूरा ही होगा।

ऐसे ही कोई प्रेम अधूरा नहीं होता। या तो होता है, या नहीं होता। कम-ज्यादा भी नहीं होता। या तो होता है, या नहीं होता। कोई मात्राएं नहीं होतीं।

समर्पण पूरा है। आप यह नहीं कह सकते किसी से कि मैं आधा समर्पण करता हूं। आधा समर्पण का क्या अर्थ होगा? आधे समर्पण का कोई अर्थ ही नहीं होता। असल में, आप समझ नहीं पा रहे हैं, आप समर्पण कर ही नहीं रहे हैं। इसलिए आप कहते हैं, आधा समर्पण करता हूं। आप अपने को पीछे बचा ले रहे हैं। वह जो बचा हुआ है, वही तो समर्पण में बाधा है। समर्पण का अर्थ है पूरा। समर्पण होता ही पूरा है।

इसलिए आक्रमण से बड़ा आक्रमण हो सकता है और आक्रमण पराजित किया जा सकता है। समर्पण से बड़ा कोई समर्पण नहीं होता, इसलिए समर्पण की कोई पराजय नहीं है। लेकिन हम सोचते हैं, आक्रमण में है शक्ति। पुरुष का चित्त ऐसा ही सोचता है।

लाओत्से कहता है, समर्पण में है शक्ति। और लाओत्से के कहने के बहुत कारण हैं।

पहला तो यह कि समर्पण से बड़ा कोई समर्पण नहीं हो सकता। दूसरा, शक्ति अगर वस्तुतः हो तो आक्रामक नहीं हो सकती। कमजोर ही आक्रमण करता है। असल में, कमजोरी ही शक्ति पर भरोसा रखती है। शक्तिशाली आक्रमण नहीं करता। महावीर ने कहा है, शक्तिशाली अहिंसक हो जाता है। कमजोर कभी अहिंसक नहीं हो सकता; कमजोर को तो सदा ही आक्रमण पर भरोसा रखना पड़ेगा।

मैक्यावेली, जो कि आक्रमण के विज्ञान में गहरा गया है, वह कहता है कि आक्रमण वस्तुतः सुरक्षा का उपाय है। वह ठीक कहता है। वह कहता है कि अगर अपनी सुरक्षा चाहिए हो, तो इसके पहले कि कोई आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर देना। इसकी प्रतीक्षा मत करना कि जब कोई आक्रमण करेगा, तब हम सुरक्षा कर लेंगे। क्योंकि तब तुम पीछे पड़ गए, तुम एक कदम पीछे पड़ गए। और आक्रमण करने वाले की संभावना बढ़ जाएगी जीतने की। तो वह कहता है, सुरक्षा का एकमात्र उपाय है आक्रमण।

लेकिन सुरक्षा कौन चाहता है? कमजोर सुरक्षा चाहता है। और इसलिए कमजोर आक्रामक होता है। अगर हम अपनी जिंदगी में भी देखें, अगर आप अपने भीतर भी देखें, तो जिन क्षणों में आप कमजोर होते हैं, उन क्षणों में आप क्रोधी होते हैं। जिन क्षणों में आप कमजोर नहीं होते, आप क्रोधी नहीं होते। जिन क्षणों में आप भयभीत होते हैं, उन क्षणों में भय प्रकट न हो जाए, इसलिए आप बड़ी अकड़ दिखलाने की कोशिश करते हैं। वह अकड़ आपकी व्यवस्था है कि आपका भय प्रकट न हो जाए। जो भयभीत नहीं होता, वह अकड़ा हुआ भी नहीं होता। जो कमजोर नहीं होता, वह क्रोधी भी नहीं होता। शक्तिशाली मनुष्य कभी भी क्रोधी नहीं देखे गए हैं। जितना कमजोर आदमी होगा, उतना क्रोधी होता है।

लोग आमतौर से कहते हैं, फलां आदमी कमजोर है, क्योंकि क्रोध करता है। वे उलटी बात कह रहे हैं। क्रोध से कोई कमजोर नहीं होता, कमजोर की वजह ही लोग क्रोधी होते हैं। लेकिन स्वभावतः परिणाम होगा।

जब क्रोध करेगा तो और कमजोर होता जाएगा, क्योंकि शक्ति व्यय हो रही है। और जितना कमजोर होता जाएगा, उतना ज्यादा क्रोध करता चला जाएगा। क्रोध जो है, वह प्याली में आ गया तूफान है। ताकत बिल्कुल नहीं है। जितनी थोड़ी-बहुत है, उसको दिखाए बिना कोई उपाय नहीं है। उसे दिखा कर ही कोई रास्ता बन जाए, कोई भयभीत हो जाए, और हमारी शक्ति का वास्तविक कसौटी का मौका न आए, क्रोध उसका आयोजन है।

लाओत्से कहता है, समर्पण है शक्ति। वह कहता है, शक्ति जब होती है, तो दूसरे पर आक्रमण करके उसके सामने सिद्ध नहीं करना पड़ता। शक्ति स्वयंसिद्ध है। दूसरे को सिद्ध करने की आकांक्षा भी अपने में अविश्वास है।

आमतौर से यह होता है। आप किसी बात पर विचार, किसी धारणा में श्रद्धा रखते हैं; आपकी कोई मान्यता है। अगर कोई व्यक्ति उस मान्यता का खंडन करे, आप तत्क्षण क्रोधित हो जाते हैं। वह क्रोध बताता है कि आपको डर है कि कहीं मान्यता का खंडन, वस्तुतः आपके मन की जो धारणा है, उसे तोड़ न दे। उस डर से क्रोध आता है। अगर यह धारणा आपका अनुभव है तो क्रोध नहीं आएगा। क्योंकि आपको भरोसा ही है कि इसे तोड़ने का कोई उपाय नहीं है। यह आपका अनुभव है। जब भी आप अपने किसी विचार के लिए दूसरे को ताकत लगा कर समझाने लगते हैं, तो आप ध्यान रखना, आप दूसरे को नहीं समझा रहे हैं, आप दूसरे के बहाने अपने को ही समझा रहे हैं। आपको भय है, डर है। आपको खुद ही भरोसा नहीं है कि जो आप मानते हैं, वह ठीक है।

इसलिए तथाकथित विश्वासी लोग दूसरे की बात सुनने को राजी ही नहीं होते। उनके गुरुओं ने उनको समझाया है कि कान बंद कर लेना, अगर कोई विपरीत बात कहता हो। क्योंकि खुद भी भरोसा नहीं है। विपरीत बात भरोसे को उखाड़ दे सकती है। आप दूसरे को कनविंस करने की, दूसरे को राजी करने की जितनी तीव्रता से चेष्टा करते हैं, उतनी ही तीव्रता से खबर देते हैं कि आपको अपने पर भरोसा नहीं है।

जिसे अपने पर भरोसा है, वह दूसरे को प्रभावित करने के लिए उत्सुक नहीं होगा। और जिसको अपने पर भरोसा है, उससे दूसरे प्रभावित होते हैं। प्रभावित करना नहीं पड़ता, वे प्रभावित होते हैं। और जिसको अपने पर भरोसा नहीं है, उसे बहुत प्रभावित करने की चेष्टा करनी पड़ती है। फिर भी कोई उससे प्रभावित नहीं होता। आत्मश्रद्धा चुंबक है। अपना अनुभव, अगर गहरा और पूर्ण है, तो परम शक्तिशाली है। दूसरे उसकी तरफ खिंचे चले आते हैं। दूसरे को आकर्षित करने का प्रयास, भीतर कमजोरी का लक्षण है।

तो लाओत्से कहता है, समर्पण शक्ति है, आक्रमण कमजोरी है।

एक और कारण से भी कहता है। समर्पण वही कर सकता है, जिसे अपने पर भरोसा है। आक्रमण तो कोई भी कर सकता है। और सच तो यह है, आक्रमण वही करता है, जिसे अपने पर भरोसा नहीं है। समर्पण वही कर सकता है, जिसे अपने पर भरोसा है। पूरा अपने को दे देने का सवाल है। कौन अपने को पूरा दे सकता है? वही अपने को पूरा दे सकता है, जिसका अपने पर पूरा भरोसा है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम समर्पण करना चाहते हैं, लेकिन हमें अपने पर कोई भरोसा ही नहीं है। तब समर्पण कैसे होगा? जिसे अपने पर भरोसा नहीं है, उसे यह भी तो भरोसा नहीं है कि जो समर्पण उसने इस क्षण में किया है, वह दूसरे क्षण में भी टिकेगा। उसे कल का भी भरोसा नहीं है। अभी भी उसे पक्का नहीं है कि वह सच में करना चाहता है कि नहीं करना चाहता है।

समर्पण की घटना ही इस बात की खबर है कि व्यक्ति को अपने पर पूरी आस्था है; वह अपने को पूरा दे सकता है। पूरे का मालिक है।

आक्रमण तो अधूरे से भी हो जाता है। आपको पूरा होने की जरूरत नहीं है आक्रमण में। और अक्सर आक्रमण में आप पूरे नहीं होते। जब आप क्रोध कर रहे होते हैं, तब भी आपके भीतर कोई हिस्सा कह रहा होता हैः क्या कर रहे हो! न किए होते तो अच्छा था। क्रोध करते ही आप पछताते हैं। वह हिस्सा जो क्रोध में साथ नहीं था, वही पछताता है कि क्या किया, नहीं करना था। आक्रमण में कभी भी आप पूरे नहीं होते।

यह बड़े मजे की बात है कि बड़े से बड़ा योद्धा भी भयभीत होता है--बड़े से बड़ा योद्धा भी! इंग्लैंड में कहा जाता है कि लार्ड नेल्सन ने कभी जीवन में भय नहीं जाना। बड़ा सेनापति था नेल्सन। नेपोलियन को हराया। कभी भय नहीं जाना। लेकिन एक मनसविद ने नेल्सन की मनोदशा का विश्लेषण करते हुए बड़ी कीमती बात लिखी है। उसने लिखा है कि यह असंभव है कि नेल्सन ने भय न जाना हो; क्योंकि बिना भय के तो आक्रामक आदमी हो ही नहीं सकता। जिसको भयभीत नहीं किया जा सकता, उसको क्रोधित भी नहीं किया जा सकता। जिसको भयभीत नहीं किया जा सकता, उसको लड़ने के लिए राजी भी नहीं किया जा सकता। जो भयभीत नहीं होता, वह दूसरे को भी भयभीत करने नहीं जाएगा। असल में, अपने भय से बचने के लिए हम दूसरे को भयभीत करते हैं। जब दूसरा भयभीत हो जाता है, तो हमें लगता है, हमारा भय समाप्त हुआ। अगर दूसरा भयभीत न हो तो हमारा भय बढ़ता है।

उस मनसविद ने यह भी लिखा है कि अगर यह बात सच है कि नेल्सन ने कभी भय नहीं जाना, तो नेल्सन के प्रति हमारी जो धारणा है उसके एक महान योद्धा होने की, वह भी समाप्त हो जाती है। क्योंकि जिसने भय जाना ही नहीं, उसके महान योद्धा होने का क्या अर्थ है? महान योद्धा होने का तो यही अर्थ है कि हमारे जैसा ही भयभीत आदमी नेल्सन भी था और युद्ध के मैदान पर ऐसे खड़ा रहा जैसे कि बिल्कुल भय न हो। तभी तो कोई अर्थ है। एक आदमी सड़क पर खड़ा है और बस आ जाए और वह डरे नहीं और खड़ा रहे, उसे भय ही न हो, और बस के नीचे कुचल कर मर जाए, तो हम उसको कोई बहादुर आदमी नहीं कहेंगे, सिर्फ मूढ़ कहेंगे। बहादुरी तो भय के अनुपात में ही होती है। अगर भय ही नहीं है, तो बहादुरी समाप्त हो गई। तब तो आदमी मूढ़ हो जाएगा। और या परमज्ञानी हो जाएगा, जहां अभय है। लेकिन जो अभय को उपलब्ध हुआ है--कभी कोई महावीर, कोई बुद्ध--वह युद्ध में उसकी उत्सुकता नहीं रह गई। युद्ध का मतलब ही है कि दूसरे को भयभीत करने की चेष्टा। और जो खुद भय नहीं जानता, उसे दूसरे को भयभीत करने में कोई रस नहीं रह जाता। दूसरे को भयभीत करना अपने भय से ही बचने की व्यवस्था है।

जितना ज्यादा भय होता है, अक्सर आदमी उतना बाहर बहादुरी दिखाता है। वह बहादुरी भीतर के भय को संतुलित करती है। वह संतुलित करती है, वह आवरण है। वह उसका जिरह-बख्तर है। वह उसकी सुरक्षा है। भीतर भय है, इसलिए बाहर सुरक्षा है। भीतर भय नहीं है, तो बहादुरी दिखाने का कोई कारण भी नहीं है।

लाओत्से कहता है, समर्पण है शक्ति; क्योंकि दिखाने का वहां कोई इरादा नहीं है। आक्रमण है कमजोरी; क्योंकि आक्रमण दिखावे पर निर्भर है।

"जो सम्मान और गौरव से परिचित है... ।"

ध्यान रहे, यह बात जाननी जरूरी है। एक छोटा बच्चा है, उसे सम्मान और गौरव का कोई अनुभव नहीं है। अगर अभी वह अज्ञात में रहा आए, तो इसमें कुछ गौरव नहीं है, इसमें कुछ गुण नहीं है। सम्मान और गौरव से जो परिचित है, वह अज्ञात में रहे--तो गुण है, तो गौरव है, तो गरिमा है।

अनुभव के बिना जो भी घटे, वह अज्ञान में घटता है। अनुभव के साथ जो घटे, वह ज्ञान में घटता है।

सम्मान और गौरव से जो परिचित और अज्ञात की तरह रहता है। जिसे पता है कि गौरव का रस क्या है; जिसे पता है कि गौरव का अनुभव क्या है; जिसे पता है कि लोग जानें, यश हो, प्रतिष्ठा हो, सम्मान हो, तो प्रतीति क्या है, उसका एहसास क्या है, इसका जिसे पता है; वह अज्ञात में रहे। इसे हम समझ लें दो कारणों से।

एक तो, जो बिना अनुभव के अज्ञात में रहे, उसका अज्ञात अज्ञात नहीं है। उसे अभी ज्ञात होने का पता ही नहीं है। इसलिए अज्ञात होने का कोई पता नहीं हो सकता। हमारे अनुभव द्वंद्व के हैं। जिसने सुख न जाना हो, उसे दुख का कोई अनुभव नहीं हो सकता। इसलिए बड़ी मजे की घटना घटती है। अक्सर, जिन्होंने सुख जाना है, वे सोचते हैं कि दूसरे लोग, जिनको वैसा सुख नहीं मिल रहा है, बहुत दुखी हैं। वह भ्रांति है। वह बिल्कुल भ्रांति है।

आप अगर एक महल में रह रहे हैं, तो झोपड़े में रहने वाला आदमी बहुत दुख पा रहा है रह कर, ऐसा आपको लगेगा। आपका लगना ठीक है। अगर आपको झोपड़े में रहना पड़े तो आपको दुख होगा, यह भी सच है। लेकिन झोपड़े में जो रह रहा है, जो महल में नहीं रहा है, वह दुख पा रहा है महल में न रहने का, इस भ्रांति में आप मत पड़ें। वह नहीं पा सकता। दुख सुख के अनुभव के बाद ही पाया जा सकता है। जिस चीज का सुख अनुभव हो जाता है, फिर उसका अभाव दुख देता है। इसलिए दुनिया में दुख बढ़ता जा रहा है, क्योंकि चीजें और उनके अनुभव बढ़ते जा रहे हैं। आज से दस हजार साल पहले दुनिया में दुख कम था। यह मत सोचना आप कि लोग सुखी थे। क्योंकि अगर लोग सुखी होते तो दुख होता। दुख कम था, क्योंकि सुख कम था। सुख के अनुभव से ही दुख बढ़ता है।

अब कोई दस हजार साल पहले किसी आदमी को कार के न होने का दुख नहीं हो सकता था। या कि हो सकता था? आज होगा। कार के न होने का दुख आज एक वास्तविकता है। क्योंकि कार के होने का सुख एक वास्तविकता है। दस हजार साल पहले कार के न होने के दुख का कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि कार के होने के सुख का कोई उपाय नहीं है। सुख पहले आता है, दुख पीछे। दुख छाया है।

सम्मान, प्रतिष्ठा, यश, आदर, गौरव का अनुभव हो, तो ही अज्ञात के अनुभव में उतरा जा सकता है। अनेक लोग अनाम जीते हैं। इससे आप यह मत सोचना कि वे उस परम स्थिति को उपलब्ध हो गए हैं, जिसकी लाओत्से बात करता है। अनेक लोग अनाम जीते हैं। लेकिन ध्यान रहे, उनका अनाम होना सार्थक नहीं है, जब तक उन्हें नाम का अनुभव न हो। नाम के अनुभव के बाद जो बिना नाम के जीने को तैयार है, उसने द्वंद्व को जाना और उसने द्वंद्व को काटा। द्वंद्व जब कट जाता है, तो निर्द्वंद्व चित्त परम आनंद को उपलब्ध होता है। लेकिन द्वंद्व को काटने के लिए द्वंद्व से गुजरना जरूरी है।

इसलिए लाओत्से संसार के विरोध में नहीं है। और लाओत्से नाम के भी विरोध में नहीं है, सम्मान के भी विरोध में नहीं है। वह इतना ही कह रहा है कि सम्मान के अनुभव के साथ अनाम का अनुभव और अज्ञात का अनुभव भी जुड़ जाए, तो तुम संसार के पार, जिसे मोक्ष कहें, मुक्ति कहें, उसमें प्रवेश कर जाते हो।

दूसरी बात भी ध्यान रखने जैसी है। और वह यह कि जिसने ठीक से सम्मान का अनुभव जाना है, वह निश्चित ही अज्ञात के अनुभव के लिए उत्सुक हो जाएगा। और जिसने सम्मान का अनुभव नहीं जाना, वह कितना ही अज्ञात के अनुभव की चेष्टा करे, उसकी चेष्टा व्यर्थ जाएगी।

उसका कारण है। उसका कारण है। बहुत से लोग उन महलों का त्याग कर देते हैं जिनमें वे कभी रहे ही नहीं। बहुत से लोग उन पदों को लात मार देते हैं, जिन पर वे कभी पहुंचे ही नहीं। आप लात कैसे मारिएगा उस सिंहासन पर, जिस पर आप कभी बैठे नहीं? आप कुछ और नहीं कर रहे हैं--अंगूर खट्टे हैं! आपकी पहुंच के बाहर

हैं! आप अपने को समझा रहे हैं, सांत्वना दे रहे हैं। और तब ऐसा आदमी इस सांत्वना को भी नाम बनाने का आधार बनाएगा। यह बड़े मजे की और जटिल बात है। ऐसा आदमी, जो कहेगा कि मुझे सम्मान की कोई जरूरत नहीं, नाम की कोई जरूरत नहीं, पद की कोई जरूरत नहीं, वह पद की, सम्मान की, प्रतिष्ठा की जरूरत नहीं, इसको भी प्रतिष्ठा का कारण बनाएगा। इसको भी! जिनको हम त्यागी कहते हैं, वे क्या कर रहे हैं? वे त्याग को भी धन की तरह उपयोग कर रहे हैं। त्याग भी उनके लिए प्रतिष्ठा का कारण है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि त्याग का मतलब ही एक होता है कि प्रतिष्ठा छोड़ दी। लेकिन अगर त्याग की भी प्रतिष्ठा बनाई हो तो सब व्यर्थ हो गया। लेकिन हालत ऐसी है। मैं एक साधु के आश्रम में गया था। वे सब कुछ छोड़ कर चले गए हैं। सब कुछ का मतलब जो उनके पास था--बहुत ज्यादा नहीं था--मगर जो भी था, सब कुछ छोड़ कर चले गए हैं। उनके आश्रम में दीवारों पर मैंने जो वचन लिखे देखे, वे बड़े मजेदार थे। जिस कमरे में वे बैठे थे, उसकी दीवार पर लिखा हुआ था कि त्याग श्रेष्ठतम है, क्योंकि सम्राट भी त्यागी के चरणों में सिर झुकाता है। मैंने उनको पूछा कि इस सूत्र का क्या मतलब हुआ? त्याग की श्रेष्ठता भी इसीलिए हुई कि सम्राट भी सिर झुकाता है? इसका अर्थ हुआ कि त्याग करने योग्य है; क्योंकि सम्राट को भी जो प्रतिष्ठा नहीं मिलती, वह त्यागी को मिलती है।

अगर त्याग भी प्रतिष्ठा बन जाए तो त्याग नहीं रहा। त्याग का मतलब ही एक होता है कि प्रतिष्ठा का अब कोई अर्थ नहीं है। लेकिन आप त्यागी को देखें। वह प्रतिष्ठा में इतना रस लेता है जितना कि भोगी नहीं लेता। त्यागी का सारा काम चौबीस घंटे एक है कि प्रतिष्ठा। भोगी कभी-कभी प्रतिष्ठा में रस लेता है; और भी काम हैं उसे। त्यागी को दूसरा काम ही नहीं है। उसको सुबह से सांझ तक एक ही काम है--प्रतिष्ठा। और अगर वह त्याग भी करता है इस प्रतिष्ठा के लिए तो वह त्याग व्यर्थ हो गया।

असल बात यह है कि अगर सम्मान का अनुभव न हो तो सम्मान की पीड़ा का भी अनुभव नहीं होता। अगर सम्मान का अनुभव न हो तो सम्मान की व्यर्थता का भी अनुभव नहीं होता। अगर सम्मान का अनुभव न हो तो सम्मान की मूढ़ता का भी अनुभव नहीं होता। पूरे अनुभव के बाद जो व्यक्ति अज्ञात में डूब जाता है, वह फिर अज्ञात में डूबने को सम्मान का कारण नहीं बनाता। यह अज्ञात अब सम्मान से विपरीत आयाम हो जाता है।

हम अपने को धोखा दे सकते हैं। ऐसा समझें कि आपको धन का अनुभव न हो और आप त्यागी हो जाएं। तो छिपे अचेतन में धन की आकांक्षा काम करती रहेगी। बिल्कुल काम करती रहेगी। उसमें कोई भेद नहीं पड़ेगा। और वह नए रास्ते निकालेगी और नए सिक्के गढ़ेगी। वे सिक्के बड़े धोखे के होंगे। संसार के सिक्के उतने धोखे के नहीं हैं, सीधे-साफ हैं। संसारी होना सीधा-साफ है। लेकिन संसार के बिना परिपक्व अनुभव के संन्यासी हो जाना बड़े उपद्रव की बात है। क्योंकि तब आदमी विकृत मार्गों से संसारी ही होता है। सिर्फ मार्ग बदल गए होते हैं, ज्यादा धोखे के और ज्यादा चालाकी के हो गए होते हैं। लेकिन संसार से कोई छुटकारा नहीं होता।

अगर आपको धन का अनुभव नहीं है तो आप निर्धन होने का मजा नहीं ले सकते। सिर्फ दुख पा सकते हैं निर्धन होने का। या निर्धन के नाम पर प्रतिष्ठा बना कर सुख पा सकते हैं। लेकिन तब आप निर्धनता का उपयोग धन की तरह कर रहे हैं। तो कुछ लोग धन का उपयोग कर रहे हैं प्रतिष्ठा के लिए, आप निर्धनता का उपयोग कर रहे हैं प्रतिष्ठा के लिए। आपके मार्ग अलग हो गए हों, लेकिन आपका लक्ष्य एक है।

धन के अनुभव के बाद जब कोई निर्धन होता है, तो इस निर्धनता का कोई भी उपयोग नहीं करता। यह निर्धनता सिर्फ उसका आंतरिक अनुभव होती है। बाहर के जगत से इसके कारण वह कोई प्रतिष्ठा इकट्ठी नहीं करता। यह उसके लिए फिर कभी धन नहीं बनती; क्योंकि धन उसके लिए व्यर्थ हो गया।

इसलिए लाओत्से कहता है, "सम्मान और गौरव से जो परिचित है, लेकिन अज्ञात की तरह रहता है।"

सम्मान और गौरव से परिचित होना बुरा नहीं है। सम्मान और गौरव में यात्रा करना भी बुरा नहीं है। लेकिन वह मंजिल नहीं है, यह ध्यान रखना जरूरी है। और उस दिन की, उस क्षण की प्रतीक्षा करनी जरूरी है, जिस दिन वह व्यर्थ हो जाए। इसलिए मैं आपसे कहता हूं कि धन की यात्रा बुरी नहीं है; लेकिन उस दिन की प्रतीक्षा करनी, प्रार्थना करनी और साधना भी साथ करनी है, जिस दिन धन व्यर्थ हो जाए। छोड़ कर भाग जाएं, ऐसा आवश्यक नहीं है। व्यर्थ हो जाए, वह आपका आंतरिक अनुभव बन जाए।

हम उलटा कर रहे हैं।

मैं एक घर में ठहरा हुआ था। जिनके घर ठहरा था उनका लड़का थोड़ा उद्दंड था, जैसे कि लड़के होते हैं। अविनयी था। तो बाप को अच्छा मौका मिला कि मेरे सामने वह उसको लताड़ें, सताएं। अक्सर बाप दूसरों के सामने लड़कों को सताने में रस लेते हैं। तो मेरे सामने उनके पुत्र को हाजिर किया गया। पिता बोले कि ये सुपुत्र हैं! मतलब था--कुपुत्र हैं, विनय बिल्कुल नहीं। फिर उन्होंने उपदेश दिया पुत्र को कि विनयवान को ही सम्मान मिलता है।

मैंने उनको पूछा, आप क्या कह रहे हैं? आप इस लड़के को पाखंडी बनाने की कोशिश कर रहे हैं। क्या कह रहे हैं? आप कह रहे हैं, विनयवान को सम्मान मिलता है। आप रस जगा रहे हैं सम्मान में और विनय को उपकरण बना रहे हैं सम्मान का। आप इसको हिपोक्रेट, पाखंडी बना रहे हैं। यह विनीत होगा और प्रतीक्षा करेगा सम्मान मिले। यह दिखाएगा कि मैं विनम्र हूं और आशा करेगा लोग मेरे पैर छुएं। यह कहेगा, नहीं-नहीं, मेरे पैर मत छुओ; और इसकी पूरी आत्मा से लार टपकेगी कि जल्दी छुओ। आप इसको क्या सिखा रहे हैं?

उन्होंने कहा कि आप क्या कह रहे हैं इसके ही सामने? यह वैसे ही उद्दंड है!

मैंने कहा, इसकी उद्दंडता फिर भी सीधी-साफ है। और आप जिस विनय की बात कर रहे हैं, वह ज्यादा चालाकी और कनिंगनेस की बात है। उद्दंड है तो उद्दंड रहने दें। उद्दंड का दुख मिलेगा। सहायता करें कि और उद्दंड हो जाए, ताकि अनुभव से गुजर जाए। और दुख उठाने दें उद्दंड का। क्योंकि दुनिया में कोई किसी को अनुभव नहीं दे सकता। शब्द दे सकता है, अनुभव नहीं दे सकता। इसको उद्दंड होने का दुख उठाने दें। यह सोचता है कि उद्दंड होने में सुख है। इसको सुख उठाने दें। और आप सोचते हैं कि उद्दंड होने में दुख पाएगा, दुख उठाने दें। इसके अनुभव से जिस दिन इसको दिखाई पड़ जाए कि उद्दंडता मूढ़ता है, उस दिन जो विनम्रता आएगी, वह आपकी विनम्रता नहीं होगी, कि सम्मान के लिए। और मैं समझता हूं कि आपने उद्दंड होने का दुख नहीं उठाया। इसलिए सम्मान की इच्छा पीछा कर रही है। और तब विनम्र होने में भी सम्मान की आकांक्षा है। और तब त्याग में भी सम्मान की आकांक्षा है। सम्मान की आकांक्षा भोग है तो त्याग में सम्मान की आकांक्षा क्या होगी? तब फिर निर्धन होने में भी धन ही कमाया जा रहा है।

आदमी ऐसा उपद्रव अपने साथ कर सकता है। उसी का नाम पाखंड है। और हमारे सारे जीवन पाखंड से भर गए हैं। भर गए हैं इसलिए कि लक्ष्य कुछ और, और साधन विपरीत। इच्छा यही है कि मेरा अहंकार भरे। और आवरण ऐसा है कि मैं तो निरहंकारी हूं। अगर कोई कह दे कि आपसे भी बड़ा निरहंकारी कोई है, तो दुख

पहुंचता है। निरहंकारी को इस बात से कैसे दुख पहुंचेगा कि उससे बड़ा भी कोई निरहंकारी है? अहंकारी को पहुंचेगा।

अगर मेरे पास कोई आए और मैं कहूं कि मैं बिल्कुल निरहंकारी हूं और वह कहे कि आप क्या निरहंकारी हैं, हमारे पड़ोस में एक आदमी रहता है जो आपसे भी ज्यादा निरहंकारी है, तो मुझे चोट पहुंचेगी। क्यों? हां, मैं अगर अहंकारी हूं और मुझसे ज्यादा कोई अहंकारी है तो चोट पहुंचनी चाहिए। निरहंकारी को भी चोट पहुंचती है कि उससे बड़ा कोई निरहंकारी है। त्यागी से कहिए कि आपका त्याग क्या, आपसे बड़ा त्यागी है! देखिए, चेहरे पर कालिमा छा जाती है। त्यागी को भी इसमें दुख होता है?

तो फिर कहीं धोखा हो रहा है। निरहंकारी तो आनंदित होगा कि बड़ी अच्छी बात है, मुझसे बड़ा कोई निरहंकारी है। यह तो बहुत ही आनंद की बात है। त्यागी को खुशी होगी कि मुझसे बड़ा कोई त्यागी है; तो बड़ी खुशी की बात है कि दुनिया में और बड़ा त्याग भी है। लेकिन त्यागी भी दुखी होगा। ज्ञानी भी दुखी होता है, उससे कहो कि आपसे बड़ा ज्ञानी कोई है। ज्ञानी भी दुखी होता है। अज्ञानी दुखी होता है, क्षम्य है। पर ज्ञानी दुखी होता है। तो फिर अज्ञानी और ज्ञानी में फर्क कहां है?

बड़े से जब तक आप दुखी होते हैं, तब तक जानना कि नाम कुछ भी हो, अहंकार भीतर है। आप बहाने कुछ भी खोज रहे हों अहंकार को भरने के लिए, भोजन कुछ भी दे रहे हों, दूध पर ही रखा हो, शुद्ध दूध पर अहंकार को, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मांसाहार करवाया हो, कि दूध दिया हो, कि साग-सब्जी खिलाई हो, खिला अहंकार को ही रहे हैं। त्याग खिलाया हो, कि प्रतिष्ठा खिलाई हो, अहंकारी कि निरहंकारी कौन सी यात्रा करवाई हो; लेकिन अहंकार ही यात्रा कर रहा है।

लाओत्से जीवन के प्रति बहुत सम्यक है। कहता है, अनुभव और अनुभव के साथ अज्ञात की तरह रहता है, वह संसार के लिए घाटी बन जाता है। और उस सनातन शक्ति को प्राप्त होता है, जो स्वयं में पर्याप्त है।

इसे थोड़ा समझ लें। कौन सी शक्ति स्वयं में पर्याप्त होती है?

ऐसा समझें कि अर्जुन बहुत बड़ा योद्धा है। लेकिन दुनिया में कोई भी न हो तो अर्जुन का सब योद्धापन खतम हो जाएगा। क्योंकि अर्जुन के योद्धा होने के लिए किसी का हारना जरूरी है, किसी का मरना जरूरी है, किसी की पराजय आवश्यक है। अर्जुन की विजय के लिए किसी की पराजय आवश्यक है। उसकी विजय भी किसी की पराजय पर निर्भर है।

यह बहुत मजे की बात है कि आपकी विजय भी किसी की पराजय पर निर्भर है। उसके बिना आप जीत भी नहीं सकते। उसके बिना आप जीत भी नहीं सकते। क्या विजय हुई यह? जो दूसरे पर निर्भर है वह विजय हुई? आपकी अमीरी गरीबी पर निर्भर है। अगर आस-पास गरीब न हों, अमीरी का मजा चला जाता है। आपको कोई सारी दुनिया का सम्राट बना दे, लेकिन दुनिया में कोई और न हो, आप अकेले ही हों। आप कहेंगे, भाड़ में जाए यह साम्राज्य, मजा ही चला गया। क्योंकि मजा दूसरे पर निर्भर था। आप कितने ही बड़े महल में रहें, जब तक पड़ोस में झोपड़ा न हो, तब तक महल का मजा नहीं आता। वह महल का मजा झोपड़े में निर्भर है। किसी पर है, उसका मजा इसी पर है कि किसी पर नहीं है।

यह बड़ी उलटी बात है। आपका सारा सुख दूसरे पर निर्भर है। आपका सारा व्यक्तित्व दूसरे पर निर्भर है। आप बड़े पंडित हैं। कुछ मूढ़ आपको चाहिए, नहीं तो आप पंडित नहीं हैं। मतलब पांडित्य मूढ़ता पर निर्भर है। दुनिया में मूढ़ न हों, पंडित व्यर्थ हो गए। अज्ञानी न हों, ज्ञानी दो कौड़ी के हो गए। कुरूप लोग न हों, सुंदर लोगों की कोई पूछ न रही। तो जो सौंदर्य कुरूपता पर टिका हो, वह कितना सुंदर होगा? और जो धन निर्धन

की छाती पर खड़ा हो, वह कितना धन होगा? और जो पुण्य पापों के बीच निर्मित होता हो, उसमें कितनी पुण्यवत्ता हो सकती है?

इसका मतलब यह हुआ कि सुंदर जाने-अनजाने चाहता है कि दूसरे लोग कुरूप रहें। जाने या न जाने, दूसरी बात है। लेकिन जो चीज निर्भर दूसरों की कुरूपता पर है, वह चाहेगी ही कि दूसरे लोग कुरूप रहें। सौंदर्य अगर कुरूप को चाहता है, कितना सौंदर्य है उसमें?

लाओत्से कहता है कि जो व्यक्ति द्वंद्वों के बीच समता को उपलब्ध हो जाता है, चुनाव नहीं करता, डोलता नहीं, द्वंद्वों को जोड़ कर काट देता है और दोनों के बाहर हो जाता है, वह उस शक्ति को उपलब्ध होता है जो स्वयं में पर्याप्त है।

बुद्ध शांत हैं। उनकी शांति अशांत लोगों पर निर्भर नहीं। समझ लें। अगर दुनिया में एक भी आदमी अशांत न हो तो भी बुद्ध की शांति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। या पड़ेगा? बुद्ध अपने बोधिवृक्ष के नीचे शांत बैठे हैं। यह शांति अशांत लोगों की अशांति के कारण शांति है? अगर--बुद्ध तो आंख बंद किए बैठे हैं--यह सारी दुनिया विलीन हो जाए, बुद्ध आंख खोल कर देखें कि कोई अशांत यहां दिखाई नहीं पड़ रहा, तो उनको भीतर की शांति समाप्त हो जाएगी? नहीं, कोई कारण नहीं है। यह शांति किसी की अशांति पर निर्भर ही न थी।

अगर यह किसी की अशांति पर निर्भर थी तो बुद्ध को लोगों को अशांत होने के लिए समझाना चाहिए, शांत होने के लिए नहीं। क्योंकि लोग अगर शांत हो जाएंगे तो बुद्ध का क्या होगा? आत्महत्या में लगे हैं! लोगों को समझा रहे हैं, शांत हो जाओ! बुद्ध की शांति आत्मनिर्भर है। यह किसी को अशांत करके शांत होने का उपाय नहीं है। यह स्वयं को ही शांत करके शांत होने का उपाय है।

बुद्ध का ज्ञान अज्ञानी पर निर्भर है?

इसे कसौटी समझ लें। अगर आपका ज्ञान अज्ञानी पर निर्भर हो, तो वह जानकारी है, ज्ञान नहीं है। अगर आपका ज्ञान आप पर ही निर्भर हो, और दुनिया में एक भी अज्ञानी न रहे तो भी आपके ज्ञान में कोई फर्क न पड़े, तो ही समझना कि वह अनुभव है। अनुभव सदा ही स्वयं में पर्याप्त है। बुद्ध ने जो जाना है, उसका आपके न जानने से कोई संबंध नहीं है। कोई भी न हो इस पृथ्वी पर, तो भी वह जानना ऐसे ही घटित हो जाएगा।

लेकिन एक फिल्म अभिनेत्री है, वह सुंदर है। और कोई भी न हो इस पृथ्वी पर, वह सुंदर नहीं रह जाएगी। उसका सुंदर होना दूसरों की आंखों पर निर्भर था। एक राजनेता है। इस पृथ्वी पर कोई न हो, वह राजनेता नहीं रह जाएगा। उसका नेता होना अनुयायियों पर निर्भर था। एक बुद्ध बुद्ध ही होंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पृथ्वी बचती है कि खो जाती है। यह सारा संसार खो जाए, यह कुछ भी न हो, तो भी रत्ती भर फर्क नहीं पड़ेगा।

वही स्थिति जो दूसरे पर निर्भर नहीं है, आत्म-स्थिति है। जो स्थिति दूसरे पर निर्भर है, वह पर-स्थिति है। वह आत्म-स्थिति नहीं है। ध्यान रखना, अपने भीतर खोज करते रहना कि आपके पास ऐसा भी कुछ है जो किसी पर निर्भर नहीं है? अगर है, तो समझना कि आपके पास आत्मा है। और अगर नहीं है, तो समझना कि आत्मा का आपको अभी कोई भी पता नहीं है। आत्मा का अर्थ ही यह है कि जो स्वयं में पर्याप्त हो।

यह सूत्र कीमती है। लाओत्से कहता है, "उस व्यक्ति को वह सनातन शक्ति प्राप्त होती है, जो स्वयं में पर्याप्त है। और वह पुनः अनगढ़ लकड़ी की भांति नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है।"

"अनगढ़ लकड़ी की भांति नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है।"

हम सब गढ़ी हुई लकड़ियां हैं--कल्टीवेटेड, सुसंस्कृत। ऐसा समझें, एक बच्चा पैदा हुआ आपके घर में। वह अनगढ़ लकड़ी है। अभी वह बच्चा हिंदू नहीं है, ईसाई नहीं है, जैन नहीं है, बौद्ध नहीं है। अभी अनगढ़ लकड़ी आप गढ़ना शुरू कर दिए। अगर आप जैन हैं, तो आपने उस लड़के को तराशना शुरू कर दिया, जैन बनाने की कोशिश शुरू हो गई। बुला लाए किसी मुनि महाराज को आशीर्वाद दिलाने के लिए; कि ले गए चर्च में बपतिस्मा के लिए। आपने उस लड़के को काटना-छांटना शुरू कर दिया। यात्रा शुरू हो गई। लकड़ी अनगढ़ नहीं। अब फर्नीचर बनेगा। आप उसकी कुर्सी, टेबल, कुछ बनाएंगे। लकड़ी स्वीकृत नहीं है। अनगढ़, नैसर्गिक लकड़ी स्वीकृत नहीं है। आप कुछ बनाएंगे। तभी काम का; नहीं तो बेकाम का साबित हो जाएगा लड़का। आप काम का बना कर रहेंगे।

फिर यह लड़का पचास साल का हो गया। अब यह सोचता है, मैं हिंदू हूं, ईसाई हूं, जैन हूं। यह झूठ है। यह थोपा हुआ आरोपण है। यह बनावट है। यह ऊपर से दिया गया ख्याल है। यह संस्कार है। यह जानता है, मैं इंजीनियर हूं, डाक्टर हूं, दूकानदार हूं, कि क्लर्क हूं, कि मास्टर हूं। ये भी संस्कार हैं। यह जानता है कि मेरा नाम राम है, कृष्ण है, कि मोहम्मद है। यह भी संस्कार है। यह जानता है कि मैं सफल हूं, असफल हूं। यह भी संस्कार है। ये सब दूसरों ने दिए हैं।

ध्यान रहे, संस्कार मिलते हैं दूसरों से, स्वभाव आता है स्वयं से। इसलिए संस्कार से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है, स्वभाव में गिर जाना ही मुक्ति है। स्वभाव तो अनगढ़ है, अनबना है। संस्कार गढ़ा हुआ है। संस्कार ही बंधन है। हिंदू होना बंधन है; जैन होना बंधन है; मुसलमान होना बंधन है। राम होना, कृष्ण होना, बुद्ध होना बंधन है। नाम बंधन है। धंधा, व्यवसाय, पद, उपाधि बंधन हैं। लेकिन वह सब जरूरी है। क्योंकि उसके बिना तो जीवन चल नहीं सकता। आवश्यक है। बुराई हो तो भी आवश्यक है। बच्चे को मां-बाप कुछ तो देंगे ही। अगर न देने की कोशिश करें तो उस कोशिश में भी कुछ देंगे। कोई उपाय नहीं है।

ऐसा हुआ, इजिप्त के एक सम्राट, एक फैरोह को ख्याल आया कि जो भी हम बच्चों को भाषा सिखाते हैं, वह दी हुई है। तो उसने एक बच्चे को जन्म के बाद महल में रखवा दिया और उपाय किया कि उसको कोई भाषा सुनने का मौका न मिले, ताकि पता चल जाए कि मनुष्य की निसर्ग-भाषा क्या है।

वह बच्चा सिर्फ गूंगा साबित हुआ। वह बोला ही नहीं; क्योंकि कोई निसर्ग-भाषा नहीं है; सब भाषा संस्कार है। निसर्ग तो मौन है। ध्यान रहे, भाषा संस्कार है। उसको कोई भाषा ही नहीं दी गई तो वह गूंगा ही रह गया।

लेकिन ध्यान रहे, उसका गूंगापन महावीर का मौन नहीं है, क्योंकि उसने वाणी नहीं जानी। जिसने वाणी नहीं जानी, वह मौन से कैसे परिचित होगा? वह सिर्फ गूंगा है, सिर्फ गूंगा। गूंगा होना मौन नहीं है। वाणी जिसने जानी और वाणी को जान कर जिसने व्यर्थ पाया और चुप हो गया, तब मौन है। वह लड़का सिर्फ गूंगा रह गया। उसकी कोई भाषा नहीं थी। भाषा तो सिखानी पड़ेगी। हमें सभी कुछ सिखाना पड़ेगा।

लेकिन अगर साथ यह बात भी ख्याल में बनी रहे कि जो भी सिखाया जा रहा है, वह बाहर से आ रहा है; जरूरी है, आत्यंतिक नहीं है। आवश्यक है, उपयोगी है; सत्य नहीं है। सत्य तो वह अनगढ़ स्वभाव है, अनछुआ, कुंआरा, अस्पर्शित--दूसरा जहां तक पहुंचा ही नहीं कभी--वही मेरी आत्मा है।

तो लाओत्से कहता है, ऐसा व्यक्ति जो द्वंद्व के बाहर हो गया, वह पुनः अनगढ़ लकड़ी की भांति नैसर्गिक समग्रता में वापस लौट जाता है।

वह फिर अनगढ़ लकड़ी हो जाता है। टेबल-कुर्सी नहीं रह जाता, हिंदू-मुसलमान नहीं रह जाता। डूब जाता है उस तल पर, जहां कोई संस्कार नहीं है। वह पुनः असंस्कृत, नैसर्गिक, स्वाभाविक हो जाता है। उस स्वभाव का नाम ताओ है। उस स्वभाव का नाम ताओ है। उस स्वभाव को वेद ने ऋत कहा है। उस स्वभाव को महावीर आत्मा कहते हैं। बुद्ध उस स्वभाव को निर्वाण कहते हैं। यह शब्दों का फासला है। लेकिन यह बात ठीक से समझ लें कि एक आपका रूप है, नाम है, ढांचा है, जो दिया गया है। और एक आप हैं, जो किसी ने आपको दिया नहीं, आप हैं; जो अनदिया है आपके भीतर।

इसीलिए महावीर और बुद्ध, जिन्होंने ज्ञान की परम स्थिति में प्रवेश किया, उन्होंने ईश्वर को इनकार कर दिया। और करने का कारण क्या था? करने का कारण यह था कि अगर ईश्वर बनाने वाला है, तब तो हमारे भीतर स्वभाव बचा ही नहीं। क्योंकि उसका तो मतलब यह हुआ कि कुछ ईश्वर बनाता है, कुछ मां-बाप बनाते हैं, कुछ स्कूल का शिक्षक बनाता है, कुछ समाज बनाता है--सभी बना हुआ है--तो फिर भीतर स्वभाव कहां? इसलिए महावीर ने कहा कि जगत का कोई स्रष्टा नहीं है।

यह बड़ी महत्व की बात है। यह साधारण नास्तिकता नहीं है, यह परम आस्तिकता है। क्योंकि महावीर की दृष्टि यह है कि अगर मेरा स्वभाव भी किसी ने बनाया तो वह भी मेरा स्वभाव नहीं रहा। इससे क्या फर्क पड़ता है कि बाप ने बनाया, कि बड़े बाप ने, जो आकाश में है, उसने बनाया। इससे क्या फर्क पड़ता है? किसी ने बनाया। तो फिर मैं हूं ही नहीं। झूठ ही झूठ है, फिर कोई सत्य नहीं है। फिर सभी बाहर से आया, तो भीतर क्या है? इसलिए महावीर ने कहा कि धर्म को स्रष्टा को अस्वीकार करना ही होगा। कोई स्रष्टा नहीं है।

लेकिन फिर भी, महावीर कहते हैं, व्यक्ति भगवान हो सकता है। और भगवान कोई नहीं है। तब बड़ी जटिलता हो जाती है। महावीर कहते हैं, भगवान कोई भी नहीं है स्रष्टा के अर्थ में, जिसने दुनिया बनाई हो, जिसने आदमी बनाया हो, जिसने आत्मा बनाई हो। क्योंकि अगर आत्मा भी बनाई जाती है, तो चाहे कितने ही स्वर्गीय कारखाने में बनाई जाती हो, वह वस्तु हो गई, वह आत्मा नहीं रही। महावीर कहते हैं, जो बनाया ही नहीं जा सकता, अनबना है, और है, वही आत्मा है।

इसलिए लाओत्से भी ईश्वर की बात बिल्कुल नहीं करता--स्रष्टा की तरह।

लेकिन महावीर कहते हैं, जिस दिन कोई इस अनबने को जान लेता है, वह भगवान हो जाता है। इसलिए महावीर के भगवान में और और लोगों के भगवान में बुनियादी अंतर है, बड़ा कीमती अंतर है। और लोगों का भगवान सिर्फ एक बड़ा संचालक है एक बड़े कारखाने का। और आप वस्तुओं की तरह बनाए और मिटाए जा रहे हैं। महावीर कहते हैं कि अगर कोई बनाने वाला भगवान है तो फिर जगत में धर्म का कोई उपाय ही न रहा; क्योंकि फिर आत्मा की कोई संभावना न रही। इसलिए महावीर की दृष्टि में स्रष्टा के रूप में भगवान का होना धर्म के लिए नष्ट कर देने का कारण है। फिर धर्म का कोई उपाय नहीं है। फिर सब व्यर्थ है। अगर मेरा कोई स्वभाव है--अनबना, बिना किसी का बनाया हुआ--तो ही इस जगत में स्वतंत्रता, मुक्ति सार्थक शब्द हैं; अन्यथा व्यर्थ हैं।

लाओत्से भी ईश्वर की बिल्कुल बात नहीं करता। हालांकि वह जो बात कर रहा है, उससे आप ईश्वर हो जाएंगे। इसलिए एक और मजे की बात ध्यान रख लें। इसीलिए महावीर कहते हैं, जितनी आत्माएं हैं, उतने भगवान हो सकते हैं। क्योंकि हर आत्मा जिस दिन अपने स्वभाव को जान ले, उस दिन भगवत्ता को उपलब्ध हो जाती है।

भगवान होना आपके भीतर स्वभाव के अनुभव का नाम है। अनगढ़ लकड़ी की भांति आप तत्काल नीचे सरक जाते हैं, अपने निसर्ग में। वह निसर्ग आपके भीतर है मौजूद, अभी, इसी वक्त भी। पर आप जोर से पकड़े हुए हैं अपने ढांचे को। जैसे कोई आदमी नदी में हो और किनारे से लटकती एक जड़ को वृक्ष की पकड़े हो जोर से, ऐसे आप अपने नाम को, रूप को, पद को, प्रतिष्ठा को, धर्म को, जाति को जोर से पकड़े हुए हैं। और वही पकड़ आपको स्वभाव में नहीं गिरने देती।

और आश्चर्य तो यह है कि साधारण आदमी पकड़े हो तो भी ठीक। जिनको आप महात्मा कहते हैं, वे भी हिंदू हैं, वे भी जैन हैं, वे भी मुसलमान हैं, वे भी ईसाई हैं। जिनको आप महात्मा कहते हैं, उनकी भी जाति है, उनका भी ढांचा है, उनका भी संस्कार है। वे भी अभी संस्कार को पकड़े हुए हैं। तब इसका अर्थ यह हुआ कि हम भूल ही गए हैं स्वभाव में गिरने की प्रक्रिया। क्या है स्वभाव में गिरने की प्रक्रिया?

लाओत्से कहता है, द्वंद्व के बीच कोई चुनाव नहीं, दोनों को साथ-साथ स्वीकार। सम्मान मिले, तो न तो उसे पकड़ने की आकांक्षा, न उसे छोड़ देने की आकांक्षा। सम्मान मिले, तो पकड़-छोड़, दोनों की आकांक्षा नहीं। सम्मान मिलता रहे और भीतर व्यक्ति अज्ञात में खड़ा रहे, जैसे है ही नहीं; तो लाओत्से कहता है, तत्क्षण निसर्ग में गिर जाएगा। क्यों? क्योंकि ढांचे को पकड़ने की व्यवस्था द्वंद्व की है।

हम एक आदमी को कहते हैं कि सफल होओ, असफल रहे तो जीवन बेकार है। तो वह सफलता को पकड़ता है। फिर वह असफलता को छोड़ता है, सफलता को पकड़ता है। फिर ऐसे लोग भी हैं जगत में, जो असफलता को पकड़ते हैं। उसका भी कारण है। क्योंकि सफलता से उन्हें भय लगता है। और सफलता में झंझट है, संघर्ष है, उपद्रव है। और भी एक मजा है कि सफलता की कोशिश करने में असफल होने का भी डर है। इसलिए वे असफलता को ही पकड़ लेते हैं। वे कहते हैं कि तबीयत ही ठीक नहीं रहती, सफल क्या हों? वे कहते हैं, घर में ऐसे जनमे जहां कौड़ी नहीं है, सफल कैसे हों? वे कहते हैं, शिक्षा ही नहीं मिली ठीक से, सफल कैसे हों? वे कोई बहाने खोज लेते हैं, असफलता को पकड़ लेते हैं। फिर उनको आप सफल करने की भी कोशिश करें तो वे टस से मस नहीं होंगे। वे हटेंगे नहीं; क्योंकि यह उनका प्राण है। और डर क्या है? वे बातें इतनी असफलता की कर रहे हैं, लेकिन डर केवल एक है--अगर सफल होने की चेष्टा की और असफल हो गए तो! इसलिए बहाने खोज कर यहीं खड़े रहना उचित है, कि यह अपने से हो नहीं सकता।

एक सज्जन मेरे पास आए। वे कहते हैं कि मैं सब जानता हूं, सब समझता हूं। ठीक सुशिक्षित हैं, लेकिन वह इंटरव्यू देने कहीं किसी नौकरी में जाने में उनको बेचैनी मालूम पड़ती है। तो कोई नौकरी नहीं लगती है; क्योंकि बिना इंटरव्यू नौकरी कैसे लगे? और वे कहते हैं कि सब मुझे मालूम है, जो भी पूछा जाता है। कोई ऐसी बात नहीं है जो मुझे मालूम नहीं। छह साल से वे भटक रहे हैं, लेकिन इंटरव्यू... । तो मैंने उनको पूछा कि तुमने असफलता को जोर से पकड़ लिया है; अब तुम्हें डर है। इंटरव्यू का डर क्या है? नौकरी नहीं मिलेगी। छह साल से नौकरी है ही नहीं। और क्या इससे बुरा होने वाला है?

लेकिन एक लाभ है इसमें कि अभी तक वे किसी इंटरव्यू में असफल नहीं हुए। दिया ही नहीं, असफल होने का कोई कारण ही नहीं। तो अभी एक अकड़ है। अब वह अकड़ उनको दिक्कत दे रही है कि अब दें और कहीं असफल हो जाएं! अब ऐसे वे जिंदगी भर असफलता को पकड़े रहेंगे।

बहुत लोग हैं जो असफलता को पकड़ लेते हैं। बहुत लोग हैं जो सफलता को पकड़ लेते हैं। ये द्वंद्व हैं। कुछ लोग नाम को पकड़ लेते हैं। कुछ लोग बदनामी को पकड़ लेते हैं। क्योंकि बदनाम भी हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर आप जेलखाने में जाएं और लोगों की बातें सुनें, तो वे एक-दूसरे को

बताते हैं कि किसकी बदनामी ज्यादा है। तेरी क्या है? कुछ भी नहीं। वहां भी पुराने घाघ और नए घाघ और पुराने अपराधी और नए अपराधी। नए अपराधी की कोई इज्जत नहीं होती जेलखाने में। पहली दफे आए हो? कोई खास फिर पूछता नहीं। कितनी बार आ चुके हो?

आदमी द्वंद्व में से कुछ भी पकड़ लेता है। लेकिन बिना पकड़े कोई उपाय नहीं; नहीं तो नीचे डूब जाएगा।

लाओत्से कहता है, द्वंद्व में कुछ भी मत पकड़ना। द्वंद्व को ही मत पकड़ना; न नाम को पकड़ना, न अनाम को पकड़ना; न संसार को पकड़ना, न संन्यास को पकड़ना। पकड़ना मत; इसी का नाम संन्यास है। पकड़ना ही मत। और धीरे-धीरे द्वंद्व के बीच चुनाव छोड़ देना, च्वायसलेस हो जाना। विकल्प मत बनाना। यह मत कहना कि मैं बुरे को पकडूंगा कि भले को पकडूंगा, कि पुण्य पकडूंगा कि पाप पकडूंगा, कि भोग पकडूंगा कि त्याग पकडूंगा। सब द्वंद्व को समझ लेना, पकड़ना मत। तो तत्क्षण व्यक्ति स्वयं में गिर जाता है। और वह जो स्वयं में गिर जाना है, वही परम अनुभव है।

"अनगढ़ लकड़ी को खंडित करें या तराशें, तो वही पात्र बन जाती है।"

यह बड़े मजे की बात है। लाओत्से कहता है, जो परम अध्यात्म में प्रवेश करता है, वह बिल्कुल अपात्र हो जाता है संसार के लिए। अपात्र! शब्द जरा अच्छा नहीं है। अपात्र सुन कर ही भीतर मन में भय लगता है कि अपात्र! कुछ न कुछ तो पात्रता कहीं न कहीं होनी चाहिए। लाओत्से कहता है कि वह अनगढ़ लकड़ी की भांति अपात्र होता है--वह जो परम में विलीन होता है। उसका कोई भी तो उपयोग नहीं है।

लाओत्से का क्या उपयोग करिएगा, बताइए? किसी काम के नहीं, कोई उपयोग नहीं। कोई उपयोग है? महावीर का कोई उपयोग है? क्या उपयोग करिएगा? किसी काम में न पड़ेंगे, बिल्कुल बेकाम।

मगर यही उनका उपयोग है। क्योंकि यह जो बिल्कुल ही उपयोग के बाहर खड़ा व्यक्ति है, यह परम शक्ति को उपलब्ध हो जाता है। यह फिर जाता नहीं आक्रमण करने उपयोग के लिए। इसके पास जो आ जाते हैं, इसके पास जो खिंच आते हैं चुंबक की भांति, उनको हजारों-हजारों उपयोग मिल जाते हैं। लेकिन यह अपनी तरफ से नहीं जाता। यह कुछ करता नहीं है। यह तो बिल्कुल निष्क्रिय हो जाता है।

लेकिन इसकी निष्क्रियता में बड़ी क्रांतियां घटित होती हैं। इसके पास आकर न मालूम कितने चिराग जल जाते हैं। और यह उन्हें जलाता नहीं है। पर इसकी आग काफी है। चिराग पास भी आ जाएं तो लपट पकड़ जाती है। इसके पास आकर न मालूम कितने लोग अनंत सौंदर्य को उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन यह उन्हें तराशता नहीं है। यह उन्हें सुंदर बनाता नहीं है। इसकी सन्निधि, इसका संपर्क, इसकी हवा, बस इसका होना, इसका होना उन्हें बहुत कुछ दे जाता है।

लाओत्से गुजर रहा है एक पहाड़ से। और सारा जंगल काटा जा रहा है। यह बड़ी प्रीतिकर कथा है और बहुत बार मैंने कही है। सिर्फ एक वृक्ष नहीं काटा जा रहा है। तो लाओत्से अपने शिष्यों को कहता है कि जाओ, जरा पूछो इन काटने वालों से, इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते हो?

तो वे गए, उन्होंने पूछा। उन्होंने कहा, यह वृक्ष बिल्कुल बेकार है। इसकी सब शाखाएं टेढ़ी-मेढ़ी हैं। तो कुछ बन नहीं सकता। दरवाजे नहीं बन सकते, मेज नहीं बन सकती, कुर्सी नहीं बन सकती। और यह वृक्ष ऐसा है कि अगर इसे जलाओ तो धुआं ही धुआं होता है; आग जलती नहीं। इसके पत्ते किसी काम के नहीं; कोई जानवर खाने को राजी नहीं। इसलिए इसे कैसे काटें? तो सारा जंगल कट रहा है, यह भर बच रहा है।

लाओत्से के पास जब शिष्य आए तो लाओत्से ने कहा, इस वृक्ष की भांति हो जाता है ताओ को उपलब्ध व्यक्ति। देखो, यह वृक्ष कट नहीं सकता, क्योंकि वस्तुतः यह सम्मान पाने को उत्सुक नहीं है। एक लकड़ी सीधी

नहीं है; सम्मान की आकांक्षा होती तो कुछ तो सीधा रखता। सब इरछा-तिरछा है। इस वृक्ष को दूसरों को प्रभावित करने की उत्सुकता नहीं है; नहीं तो धुआं ही धुआं छोड़ता? इस वृक्ष को जानवरों तक को अनुयायी बनाने का रस नहीं है; नहीं तो कम से कम पत्तों में कुछ तो स्वाद भरता। लेकिन देखो, यही भर नहीं कट रहा है; बाकी सब कट रहे हैं।

सीधा होने की कोशिश करोगे, काटे जाओगे, लाओत्से ने कहा। तुम्हारा फर्नीचर बनेगा। सिंहासन में लगते हो कि साधारण क्लर्क की कुर्सी में लगते हो, यह और बात है; लेकिन फर्नीचर तुम्हारा बनेगा। और जो तुम्हें फर्नीचर बनाने को उत्सुक हैं, वे तुमको समझाएंगे कि सीधे रहो, नहीं तो बेकार साबित हो जाओगे। अगर तुमने उनकी मानी, तो तुम कहीं ईंधन बन कर जलोगे।

सब ईंधन बन कर जल रहे हैं। लोगों से पूछो, क्या कर रहे हो? वे कह रहे हैं, हम बच्चों के लिए जी रहे हैं। उनके बाप उनके लिए जी रहे थे। उनके बच्चे उनके बच्चों के लिए जीएंगे। तुम ईंधन हो? तुम किसी और के लिए जल रहे हो?

लाओत्से ने कहा, छोड़ो फिकर। ईंधन मत बनना।

और लाओत्से ने कहा कि देखो, इस वृक्ष के नीचे एक हजार बैलगाड़ियां ठहर सकती हैं। यह वृक्ष किसी को बुलाता नहीं, लेकिन इसकी घनी छाया, हजारों लोग इसके नीचे रुकते हैं। बिल्कुल बेकार है; पर हजारों थके हुए विश्राम पा लेते हैं। यह वृक्ष कोई उन्हें छाया देना चाहता है, ऐसा भी नहीं। इस वृक्ष ने तो एक ही नियम बना रखा है मालूम होता है कि जो नैसर्गिक है, उसमें ही रहूंगा, कुछ गड़बड़ नहीं करूंगा।

ताओ को उपलब्ध व्यक्ति ऐसा ही हो जाता है। हजारों लोग उसके नीचे छाया पाते हैं। वह छाया देता नहीं, छाया उसके नीचे होती है।

लकड़ी को काटें-छांटें तो पात्र बन जाती है। ज्ञानी के हाथों में पड़ कर लोग भी पात्र बन जाते हैं, आभिजात्य को उपलब्ध होते हैं, शासन करने वाले बन जाते हैं।

"इन दि हैंड्स ऑफ दि सेज, दे बिकम दि आफिशियल्स एंड दि मैजिस्ट्रेट्स।"

अगर आप ज्ञानियों के हाथ में पड़ जाएं, शिक्षकों के हाथ में पड़ जाएं, तो आपको डाक्टर, इंजीनियर, मिनिस्टर, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति बन जाने का मौका मिलेगा। वे आपको पात्र बना देंगे। योग्य पात्र बना देंगे, जो किसी काम आ सके।

लेकिन लाओत्से कहता है, "किंतु महान शासक खंडन नहीं करता। बट दि ग्रेट रूलर डज नाट कट अप।"

लेकिन महान शास्ता, महावीर, बुद्ध, कृष्ण जैसा महान शास्ता, वस्तुतः जो शासक है--राजा से मतलब नहीं है, शास्ता से मतलब है--वस्तुतः जिसकी छाया में शासन फलित हो जाता है, जो कुछ करता नहीं। जिसकी मौजूदगी शासन बन जाती है। जो आदेश नहीं देता, लेकिन जिसका होना, जिसका ढंग आदेश बन जाता है; जिसकी मुद्रा, जिसका हिलना-डुलना आदेश बन जाता है। ऐसा महान शास्ता किसी को काटता-पीटता नहीं, खंडित नहीं करता, तराशता नहीं। वस्तुतः ऐसा महान शास्ता आपके तराशेपन को छीन लेता है। आपके खंडन को अलग कर देता है और आपको अखंड में गिरने की सुविधा जुटा देता है।

अखंड का मतलब है गैर-तराशा हुआ, अनरिफाइंड। बड़ी उलटी बातें लगेंगी। लाओत्से रिफाइंड के खिलाफ, अनरिफाइंड के पक्ष में। तराशने के खिलाफ, अनगढ़ के पक्ष में। संस्कार के खिलाफ, संस्कार-शून्यता के पक्ष में।

लेकिन संस्कार-शून्यता तभी आती है, जब संस्कार घटित हो जाता है।

इसलिए इस दुनिया में दो तरह के शिक्षक हैं। हमने उनके लिए अलग-अलग नाम दिए हैं। एक को हम शिक्षक कहते हैं, दूसरे को हम गुरु कहते हैं। शिक्षक तराशता है, गुरु फिर अन-तराशे में भेज देता है। पश्चिम के पास दो शब्द नहीं हैं। क्योंकि पश्चिम के पास टीचर, शिक्षक, एक ही शब्द है। तराशना, सुसंस्कार करना, पात्र बनाना, बस यही शिक्षा है।

हमने पूरब में एक और शिक्षा भी जानी है, जो परम शिक्षा है। जो जब सब शिक्षकों का काम पूरा हो जाता है, तो परम शिक्षक का काम, गुरु का काम शुरू होता है। वह फिर अन-तराशता है। फिर जोड़ता है; टूटे को फिर इकट्ठा करता है। बनाए को फिर मिटाता है। पात्र को फिर अनगढ़ लकड़ी में ढाल देता है। और सारे संस्कार, सारे समाज को छीन कर वापस फिर निसर्ग में डुबा देता है।

उस निसर्ग में डूब जाना ही निर्वाण है।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

साठवां प्रवचन

प्रकृति व स्वभाव के साथ अहस्तक्षेप

Chapter 29

Warning Against Interference

There are those who will conquer the world,
And make of it (what they conceive or desire).
I see that they will not succeed.
(For) the world is God's own vessel
It cannot be made (by human interference).
He who makes it, spoils it.
He who holds it, loses it.
For: Some things go forward, some things follow behind;
Some blow hot, and some blow cold;
Some are strong, and some are weak;
Some may break, and some may fall.
Hence the Sage eschews excess,
eschews extravagance, eschews pride.

अध्याय 29

हस्तक्षेप से सावधान

वैसे लोग भी हैं, जो संसार को जीत लेंगे;
और उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेंगे।
लेकिन मैं देखता हूं कि वे सफल नहीं होंगे।
संसार परमात्मा का गढ़ा हुआ पात्र है,
इसे फिर से मानवीय हस्तक्षेप के द्वारा नहीं गढ़ा जा सकता।
जो ऐसा करता है, वह उसे बिगाड़ देता है।
और जो उसे पकड़ना चाहता है, वह उसे खो देता है।
क्योंकिः कुछ चीजें आगे जाती हैं, कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं।

एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं,

जैसे फूंकने से गरम हो जाती हैं चीजें, और फूंकने से ही ठंडी।

कोई बलवान है, और कोई दुर्बल; कोई टूट सकता है, तो कोई गिर सकता है।

इसलिए, संत अति से दूर रहता है, अपव्यय से बचता है, और अहंकार से भी।

यह सूत्र इस सदी के लिए बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है।

लाओत्से ने जो कहा है, कुछ लोग हैं, जो जगत को जीत लेना चाहेंगे और उसे अपने मन के अनुरूप गढ़ना भी चाहेंगे।

जिस दिन लाओत्से ने यह कहा था, उस दिन तो उन लोगों ने यात्रा शुरू ही की थी, जो जगत को अपने अनुरूप गढ़ना चाहते हैं। आज वे लोग जगत को जीतने में बहुत दूर तक सफल हो गए हैं। और जगत को गढ़ने की चेष्टा भी उन्होंने की है। पर बड़े मजे की बात है कि लाओत्से की भविष्यवाणी रोज-रोज सही होती चली जाती है।

लाओत्से कहता है, मैं देखता हूं कि वे सफल नहीं हो सकेंगे।

और वे सफल नहीं हो रहे हैं।

और वह यह भी कहता है कि मैं यह भी देखता हूं कि बनाने की बजाय वे जगत को बिगाड़ देंगे।

और यह भी वह सही कहता है। क्योंकि वे लोग जो जगत को गढ़ रहे हैं, बिगाड़ने में सफल हो रहे हैं। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण आज उपलब्ध हैं। लाओत्से ने जब कही थी यह बात, तब तो यह भविष्यवाणी थी। आज यह भविष्यवाणी नहीं है। आज तो यह होकर, घट कर हमारे सामने खड़ी हुई स्थिति है।

इसे थोड़ा सा हम समझ लें फिर सूत्र में प्रवेश करें। यूरोप और अमरीका में एक आंदोलन चलता है--इकोलाजी का। यह आंदोलन रोज गति पकड़ रहा है। इस आंदोलन का कहना है कि प्रकृति का एक संगीत है, उसे नष्ट मत करें। और एक तरफ से हम नष्ट करते हैं संगीत को तो हम पूरी व्यवस्था को बिगाड़ देते हैं। और हमें पता नहीं कि हम क्या कर रहे हैं और उसके क्या परिणाम होंगे। क्योंकि जगत एक व्यवस्था है। केआस नहीं, एक अराजकता नहीं है; जगत एक व्यवस्था है। और इस जगत की व्यवस्था में छोटी से छोटी चीज बड़ी से बड़ी चीज से जुड़ी है। यहां कुछ भी विच्छिन्न नहीं है, अलग-अलग नहीं है। जब आप कुछ छोटा सा भी फर्क करते हैं तो आप पूरे जगत की व्यवस्था में फर्क ला रहे हैं। एक पत्थर का हटाया जाना भी पूरे जगत की व्यवस्था में परिवर्तन की शुरुआत है। और इसके क्या परिणाम होंगे, कितने व्यापक होंगे, उन्हें कहना मुश्किल है।

ऐसा हुआ कि बर्मा के एक बहुत छोटे, दूर देहात में प्लेग की बीमारी से बचने के लिए चूहों को मार डाला गया। चूहों के मर जाने पर गांव की बिल्लियां मरनी शुरू हो गईं; क्योंकि चूहे उनका भोजन थे। और गांव की बिल्लियों के मर जाने पर एक बीमारी गांव में फैल गई, जो उस गांव में कभी भी नहीं फैली थी। क्योंकि उन बिल्लियों की मौजूदगी की वजह से कुछ कीटाणु गांव में विकसित नहीं हो सकते थे, बिल्लियों के मर जाने की वजह से वे विकसित हो गए। और जिस मिशन ने गांव के चूहे नष्ट किए थे प्लेग को अलग करने के लिए, वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। गांव के मुखिया को बहुत समझा-बुझा कर राजी किया जा सका था चूहों को मारने के लिए।

उस गांव के मुखिया ने कहा कि अब हम क्या करें? बिल्लियां भी मर गईं, और यह नई बीमारी फैल गई। और इस नई बीमारी का अभी कोई इलाज नहीं था। यह बात कोई चालीस साल पहले की है। तो जिस मिशन ने

यह सेवा की थी गांव की, उन्होंने कहा कि हम पता करते हैं। लेकिन उन बूढ़े गांव के पंचायत के लोगों ने कहा कि तुम कब तक पता कर पाओगे, यह बीमारी हमारे प्राण ले लेगी। फिर प्लेग के हम आदी हो चुके थे। और प्लेग के लिए हमने एक प्रतिरोधक शक्ति भी विकसित कर ली थी। हजारों वर्ष से प्लेग थी; हम उससे लड़ना भी सीख गए थे। इस नई बीमारी से लड़ना भी संभव नहीं है। हमारा शरीर भी प्लेग के लिए सक्षम हो गया था। यह नई बीमारी हमारे प्राण लिए ले रही है, तोड़े डाल रही है। इतनी जल्दी तो नई बीमारी दूर नहीं की जा सकती थी।

और गांव के बूढ़ों ने यह भी कहा कि अगर तुम यह नई बीमारी भी दूर कर दो, तो क्या भरोसा है कि तुम और दूसरी बीमारियां पैदा करने के कारण न बन जाओ? इसलिए उचित यही होगा कि पड़ोस के गांव से हम चूहे मांग लें। कोई उपाय नहीं था। पड़ोस के गांव से चूहे मांग लिए गए। चूहों के पीछे बिल्लियां चली आईं। और बिल्लियों के आते ही वह जो बीमारी फैली गई थी, वह विदा हो गई।

इकोलाजी का अर्थ है कि जिंदगी एक व्यवस्था है। उसमें जरा सा भी कहीं कोई फर्क, तत्काल पूरे पर फर्क पैदा करता है। और पूरे का हमें कोई बोध नहीं है। पूरे का हमें कोई पता नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है कि आज जमीन पर सर्वाधिक दवाइयां हैं, और सर्वाधिक बीमारियां हैं। और आज जमीन पर आदमी को सुख पहुंचाने के सर्वाधिक उपाय हैं, और आज से ज्यादा दुखी आदमी जमीन पर कभी भी नहीं था। क्या कारण होगा? कारण एक ही मालूम पड़ता है कि हम एक का इंतजाम करते हैं और दस इंतजाम बिगाड़ लेते हैं। जब तक हम दस का इंतजाम करते हैं, तब तक हम हजार इंतजाम बिगाड़ लेते हैं।

अभी--ठीक यह तो बर्मा के गांव में घटी घटना--अभी लास एंजिल्स में, अमरीका में घटना घटी। क्योंकि लास एंजिल्स में कारों की अत्यधिकता के कारण, कारों के एक्झास्ट धुएं के कारण हवा इतनी विषाक्त हो गई है कि चमत्कार मालूम पड़ता है। वैज्ञानिक कहते हैं, जितना विष हवा में सहा जा सकता है, आदमी सह सकता है, उससे तीन गुना विष हवा में हो गया है; फिर भी आदमी जिंदा है। लेकिन जिंदा तो परेशानी में ही होगा। जब तीन गुनी मृत्यु को झेलना पड़ता हो जीवन को तो जीवन मुर्दा जैसा हो जाएगा, कुम्हला जाएगा। तो चेष्टा की गई कि कारें इस ढंग की बनाई जाएं कि उनमें कम एक्झास्ट निकले और पेट्रोल में भी ऐसे फर्क किए जाएं कि इतना विष हवा में न फैले।

वे फर्क किए गए। लेकिन तब हवा में दूसरी चीजें फैलीं, जो पहले से भी ज्यादा संघातक हैं। अब क्या किया जा सकता है? और आदमी इतने विष को झेल कर जिंदा रहे तो तनावग्रस्त होगा, बीमार होगा, परेशान होगा। जीएगा जरूर, लेकिन जीने की कोई रौनक और जीने की कोई लय उसके भीतर नहीं रह जाएगी।

हमने चांद पर आदमी भेजा। तो हमने पहली दफा, पृथ्वी को जो वायुमंडल घेरे हुए है, उसमें छेद किए--पहली दफा। पर किसी को ख्याल नहीं था कि वायुमंडल में भी छेद का कोई अर्थ होता है। करने के बाद ही ख्याल हुआ। स्वभावतः कुछ चीजें करने के बाद ही पता चलती हैं।

हम ऐसा समझें। जैसे कि अगर सागर है, तो सागर मछलियों के लिए वायुमंडल है। पानी उनके लिए वातावरण है। मछलियां पानी में जीती हैं, पानी के बाहर नहीं जी सकतीं। हम भी हवा में जीते हैं, हवा के बाहर नहीं जी सकते। जमीन को दो सौ मील तक हवा घेरे हुए है। ऐसा समझें कि हम दो सौ मील तक हवा के सागर में हैं। इसके पार होते ही हम जी नहीं सकते, जैसे मछली किनारे पर फेंक दी जाए और जी न सके।

आमतौर से हम सोचते हैं कि हम जमीन के ऊपर हैं। बेहतर होगा सोचना कि हम हवा के सागर की तलहटी में हैं। ज्यादा उचित होगा, ज्यादा वैज्ञानिक होगा। जैसे कि कोई जानवर सागर की तलहटी में रहता हो

और उसके ऊपर दो सौ मील तक पानी हो, ठीक आदमी हवा के सागर की तलहटी में रहता है, दो सौ मील तक उसमें हवा का सागर है। यह दो सौ मील तक हवा का जो सागर है, सारे ब्रह्मांड से आती हुई किरणों में छांटता है। और केवल वे ही किरणें हम तक पहुंच पाती हैं, जो जीवन के लिए घातक नहीं हैं। इसलिए हमारे चारों तरफ दो सौ मील तक एक सुरक्षा का वातावरण है। सभी किरणें, जो पृथ्वी की तरफ आती हैं, प्रवेश नहीं कर पातीं। यह वातावरण इनमें से नब्बे प्रतिशत किरणों को वापस लौटा देता है, आठ प्रतिशत किरणों को इस लायक बना देता है दो सौ मील में छान कर कि वे हमारे प्राण न ले पाएं। और दो प्रतिशत किरणें, जो हमारे प्राण के लिए जरूरी हैं, जीवन के लिए, वे वैसी की वैसी हम तक पहुंच जाती हैं। ऐसा समझें कि दो सौ मील तक हमारे चारों तरफ छनावट का इंतजाम है।

पहली दफा, जब हमने चांद की यात्रा की और हमने अंतरिक्ष में यात्री भेजे, हमने इस वातावरण को कई जगह से तोड़ा। जहां से यह वातावरण टूटा, वहां से पहली दफा उन किरणों का प्रवेश हुआ पृथ्वी पर, जो अरबों वर्षों से प्रवेश नहीं हुआ था। वैज्ञानिकों ने एक नया शब्द उपयोग कियाः वातावरण में छेद हो गए। और उन छेदों को भरना मुश्किल है। उन छेदों से रेडिएशन किरणें भीतर आ रही हैं। उनके क्या परिणाम होंगे, कहना मुश्किल है। वे जीवन के लिए कितनी घातक होंगी, कहना मुश्किल है। किस तरह की बीमारियां फैलेंगी, कहना मुश्किल है।

पश्चिम में, जहां कि वातावरण को बदलने की, जिंदगी को बदलने की सर्वाधिक चेष्टा विज्ञान ने की है, वहां के जो चोटी के विचारक हैं, वे लाओत्से से राजी होने लगे हैं। वे कहते हैं, करके हमने यह देखा, आदमी सुखी नहीं हुआ, आदमी दुखी हुआ। जीवन अनेक तरह के कष्टों में पड़ गया, जिनका हमें ख्याल नहीं था।

जैसे समझें, हम कोशिश करते हैं कि आदमी ज्यादा जीए। हम कोशिश करते हैं, जो बच्चा पैदा हो जाए, वह मरे नहीं। आज से हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते थे तो नौ बच्चे मर जाते थे, एक बच्चा बचता था। वह प्रकृति की व्यवस्था थी। बड़ी क्रूर मालूम पड़ती है--नौ बच्चे मर जाएं और एक बच्चा बचे। तो हमने चेष्टा की हजार साल में; आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बचते हैं, एक मरता है। हमने बिल्कुल उलटा दिया। लेकिन परिणाम क्या हुआ? परिणाम बहुत हैरानी का है। जो नौ बच्चे हजार साल पहले मर जाते, वे अब बच जाते हैं। वे नौ बच्चे जो हजार साल पहले मर जाते, मरते ही इसलिए कि उनमें जीवन की क्षमता कम थी। आज वे बच जाते हैं। उनमें जीवन की क्षमता कम है। वे जीते हैं, लेकिन बीमार जीते हैं। और वे अकेले ही नहीं जीते, वे बच्चे पैदा कर जाएंगे। और उनके बच्चों के बच्चे--और लाखों साल तक वे बीमारी के गढ़ बन जाएंगे।

अभी एक बहुत बड़े चिकित्साशास्त्री ने, कैनेथ वाकर ने कहा था कि हमने जो इंतजाम किया है चिकित्सा का और जो खोज की है, उसका परिणाम यह होगा कि हजार साल बाद स्वस्थ आदमी खोजना ही असंभव हो जाएगा।

हो ही जाएगा। क्योंकि वे जो नौ बच्चे बच रहे हैं, वे बच्चे पैदा कर रहे हैं। और धीरे-धीरे सारी मनुष्यता रुग्ण होती जा रही है। उन नौ बच्चों में वे बच्चे भी बच जाएंगे, जो बुद्धिहीन हैं, विक्षिप्त हैं, जिनमें कोई कमी है, अंधे हैं, लूले हैं, लंगड़े हैं। वे भी बच जाएंगे। और जिन्होंने बचाया है, वे मानवतावादी हैं। उनकी अभीप्सा पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। उनके विचार में दया है। लेकिन उतनी गहरी समझ नहीं है, जितनी लाओत्से बात कर रहा है। वे सब बच्चे जो बुद्धिहीन हैं, रुग्ण हैं, विक्षिप्त हैं, पागल हैं, वे सब बच जाएंगे। और वे बच्चे पैदा करते रहेंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि पांच हजार साल के भीतर सारी मनुष्यता रोग, विक्षिप्तता और पागलपन से

भर जाए। आज अगर अमरीका में वे कहते हैं कि हर चार आदमी में एक आदमी मानसिक रूप से रुग्ण है। तो यह ज्यादा देर तक रुकेगा नहीं एक पर मामला; धीरे-धीरे फैलेगा और चारों रुग्ण हो जाएंगे।

हमने उम्र बढ़ा ली। आज अमरीका में सौ के ऊपर हजारों लोग हैं। रूस में और भी बड़ी संख्या है। लेकिन बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। वह जो सौ के ऊपर जिंदा रह जाता है, उसके जीवन की सारी शक्ति तो क्षीण हो गई होती है। वह जीवन के किसी उपयोग का भी नहीं रह जाता। जीवन से उसके कोई संबंध भी नहीं रह जाते। उसकी तीसरी-चौथी पीढ़ी काम में लग गई होती है, उससे उसका फासला इतना बड़ा हो जाता है कि कोई स्नेह नाता भी नहीं रह जाता। वह मुर्दे की भांति अस्पतालों में टंगा रहता है, या विश्रामगृहों में या वृद्धों के लिए बनाए गए विशेष स्थानों में टंगा रहता है। उसका जीवन एक है कि वह रोज दवाएं लेता रहे और बचा रहे। न कोई प्रेम है उसके आस-पास, न कोई परिवार है; न हो सकता है परिवार। वह मर भी नहीं सकता। आत्महत्या करना गैर-कानूनी है। डाक्टर अगर यह भी समझें कि इस आदमी के जिंदा रहने का कोई उपाय नहीं है, तो भी उसे मरने में सहयोगी नहीं हो सकते। क्योंकि डाक्टर का काम बचाना है, मारना नहीं।

पुराने दिन की डाक्टर की जो परिभाषा थी बचाना, वह अब भी है। लेकिन आदमी उम्र के इतने आगे चला गया है, जहां कि डाक्टर का काम उसे मरने में भी सहयोग देना होना चाहिए। क्योंकि एक आदमी अगर एक सौ बीस वर्ष का होकर सिर्फ खाट पर पड़ा रहे, फोसिल हो जाए, किसी मतलब का न हो--किसी और के न खुद के--और फिर भी जिंदा रखा जा सके क्योंकि जिंदा हम रख सकते हैं अब, और वह आदमी चिल्लाए कि मुझे मर जाने दो, तो भी हमारे कानून में कोई व्यवस्था नहीं है। अगर डाक्टर यह भी सोचे कि इसे दवा न दें--मारने के लिए दवा न दें, जिंदा रखने की दवा न दें--तो भी उसके अंतःकरण में उसे अपराध का भाव होगा कि जो आदमी अभी बच सकता था, उसे मैं मरने दे रहा हूं।

सारी दुनिया में चिकित्सकों के सम्मेलन रोज विचार करते हैं अथनासिया के लिए कि आदमी को मरने में सहयोग देना या नहीं देना, इसका क्या नैतिक--यह नैतिक होगा या अनैतिक होगा? अभी तो सौ की बात है, आज नहीं कल, हम दो सौ और तीन सौ साल तक आदमी को बचा लेंगे। इस आदमी का बचा कर क्या होगा? यह सब तरह से बोझ हो जाता है। क्योंकि इसकी आर्थिक उपादेयता न रही। पचपन साल में आप रिटायर कर देते हैं एक आदमी को। अगर वह एक सौ दस साल जी जाता है, तो बाकी पचपन साल समाज उसको खिलाता है, पिलाता है। और परेशान रहने, बीमार रहने, दुख उठाने के लिए जिंदा रखता है। उसके मित्र, उसके प्रियजन चाहते हैं वह विदा हो जाए, क्योंकि अब वह बोझ मालूम होता है। अगर उसको कोई सार्थकता देनी हो तो उसे काम में रखना चाहिए। अगर उसे काम में रखना है तो नए आने वाले बच्चों के लिए कोई काम नहीं है। वैसे ही नए बच्चों के लिए काम कम है, बच्चे ज्यादा हैं। बूढ़ों को हटाना पड़ेगा। तो उनको तो कचरेघर पर बिठा देना पड़ेगा।

और जब वे कचरेघर पर पड़े रहते हैं, तो उन्हें मरने का भी कोई हक नहीं है। जीने की कोई व्यवस्था नहीं है, मरने का कोई हक नहीं है। और ये बूढ़े सब के चित्त पर भारी होते चले जाएंगे। धीरे-धीरे बूढ़ों की संख्या बढ़ जाएगी। जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होगा, औषधि की सुविधा होगी, बूढ़ों की संख्या बढ़ जाएगी। और अभी आप बच्चों की बगावत से परेशान हैं, आज नहीं कल, बूढ़ों के उपद्रव से परेशान होंगे।

आपको ख्याल में नहीं है कि उपद्रव कैसे आते हैं। आज सारी दुनिया में युवकों से परेशानी है, विद्यार्थियों से परेशानी है। तोड़-फोड़ है, उपद्रव, क्रांति। क्या कारण है? ये बच्चे सदा थे दुनिया में, ये कोई आज पैदा नहीं हो गए। ये सदा थे दुनिया में। फिर क्या कारण हो गया आज इनके उपद्रव का?

आज इनके उपद्रव का कारण है। ये पहले भी थे, लेकिन कभी भी एक जगह संगृहीत नहीं थे। आज बड़े विश्वविद्यालय, कालेज, स्कूल, ये सब इकट्ठे हैं। एक-एक नगर में लाख-लाख विद्यार्थी इकट्ठे हैं। युवक कभी भी इतने इकट्ठे एक जगह न थे। जब एक लाख युवक इकट्ठे होंगे तो उपद्रव की शुरुआत होगी।

आज नहीं कल, बूढ़े भी लाखों की संख्या में एक जगह इकट्ठे होने लगेंगे। एक नए तरह के उपद्रव की शुरुआत होगी, जो कि लड़कों के उपद्रव से ज्यादा महंगा होगा। क्योंकि ज्यादा समझदार लोग उसे करेंगे। उसे सम्हालना भी मुश्किल होगा। उससे अड़चनें नई तरह की होंगी। क्योंकि बूढ़े अगर जीते हैं तो जीवन की सार्थकता की मांग करेंगे। और किसी भी आदमी का जीवन सार्थक तभी होता है, जब वह कोई सार्थक काम कर रहा हो। अगर उसके पास कोई काम नहीं है सार्थक करने का तो उसकी आत्म-श्रद्धा खो जाती है। उसे लगता है मैं बेकाम हूं। ऐसा लगना कि मैं बेकाम हूं, बड़े से बड़ा कष्ट है। मैं किसी के भी काम का नहीं हूं, किसी काम का नहीं हूं, यह मन में भारी पत्थर की तरह प्रवेश कर जाता है। और एक आत्मग्लानि, स्वयं को नष्ट करने का भाव गहरा होने लगता है।

लेकिन हमने बचा लिया है। और अभी भी कोई यह नहीं कहेगा कि आदमी को लंबी उम्र मिले, इसमें कुछ बुराई है। हम भी चाहेंगे कि लंबी उम्र मिले। पर बड़े मजे की घटनाएं घटती हैं।

मैं पढ़ रहा था कि उन्नीस सौ अठारह में न्यूयार्क में घोड़ागाड़ी चलती थी। घोड़ागाड़ी की रफ्तार ग्यारह मील प्रति घंटा थी। आज न्यूयार्क में कार की रफ्तार प्रति घंटा साढ़े सात मील है। यह बहुत हैरानी की बात है। क्या हुआ? रफ्तार बढ़ाने के लिए कार थी। आज रफ्तार को कार ने बिल्कुल कम कर दिया। क्योंकि वह सब जगह ट्रैफिक जाम कर रही है। अगर कार इसी तरह बढ़ती जाती है तो पैदल आदमी तेज चलेगा--बहुत जल्दी। कोई कारण नहीं है, सात मील अब भी चल सकता है तेज आदमी। जल्दी ही चार मील--चार मील तो कोई भी चल सकता है घंटे में।

हम जो करते हैं, उसके परिणाम क्या होंगे? परिणाम अनंत आयामी हैं, उनका कोई भी पता नहीं है। जब हम एक तार छूते हैं, तब हम पूरे जीवन को छू रहे हैं। और उसके क्या-क्या दूरगामी अर्थ होंगे, उनका हमें कुछ भी पता नहीं है। ऐसा नहीं है कि हम पहली दफा इन चीजों को कर रहे हैं। आदमी ने ये चीजें बहुत बार कर ली हैं। और यह जो लाओत्से कह रहा है, यह सिर्फ भविष्यवाणी नहीं है, अतीत का अनुभव भी है। इस सदी के आदमी को ऐसा ख्याल है कि जो हम कर रहे हैं, यह हम पहली दफा कर रहे हैं। यह बात सही नहीं मालूम पड़ती। अगर हम इतिहास की गहन खोज में जाएं तो हमें पता चलेगा, जो-जो हम आज कर रहे हैं, आदमी बहुत बार कर चुका और छोड़ चुका। बहुत बार कर चुका और छोड़ चुका। छोड़ चुका इसलिए कि पाया व्यर्थ है।

अगर महाभारत पढ़ें, और महाभारत में जो युद्ध का विवरण है, पहली दफा जब हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरा तो जो दृश्य बना, उस दृश्य का विवरण पूरा का पूरा महाभारत में है। उसके पहले तो कल्पना थी, महाभारत में जो बात लिखी थी। तब तो यही सोचा था, कवि का ख्याल है। लेकिन जब हिरोशिमा में एटम गिरा और धुएं का बादल उठा और वृक्ष की तरह आकाश में फैला; नीचे जैसे वृक्ष की पीड़ होती है, वैसे ही धुएं की धारा बनी और ऊपर जैसे आकाश में उठता गया धुआं वैसा फैलता गया, अंत में वृक्ष का आकार बन गया। महाभारत में उसका ठीक ऐसा ही वर्णन है। इसलिए अब वैज्ञानिक कहते हैं कि यह वर्णन कवि की कल्पना से तो आ ही नहीं सकता। इसका कोई उपाय नहीं है। क्योंकि एटम के विस्फोट में ही ऐसा होगा। एटम के बिना विस्फोट के और कोई विस्फोट नहीं है जिसमें इस तरह की घटना घटे।

जो महाभारत में वर्णन है, वह यह है कि वृक्ष के आकार में धुआं आकाश में फैल गया। सारा आकाश धुएं से भर गया। और उस धुएं के आकाश से रक्तवर्ण की किरणें जमीन पर गिरने लगीं। और उन किरणों का जहां-जहां गिरना हुआ, वहां-वहां सब चीजें विषाक्त हो गईं। भोजन रखा था, वह तत्क्षण जहर हो गया। वर्णन है महाभारत में कि जब वे रक्तवर्ण की किरणें नीचे गिरने लगीं, तो जो बच्चे मां के पेट में गर्भ में थे, वे वहीं मृत हो गए। जो बच्चे पैदा हुए, वे अपंग पैदा हुए। और जमीन पर जहां भी वे किरणें गिरीं, जिस चीज को उन किरणों ने छुआ, वे विषाक्त हो गईं। उनको खाते ही आदमी मरने लगा। कोई उपाय नहीं है कि कवि इसकी कल्पना कर सके। लेकिन उन्नीस सौ पैंतालीस के पहले इसके सिवा हमारे पास भी कोई उपाय नहीं था कि हम इसको कविता कहें। अब हम कह सकते हैं कि यह किसी अणु-विस्फोट का आंखों देखा हाल है।

महाभारत में कहा है कि इस तरह के अस्त्र-शस्त्रों का जो ज्ञान है, वह सभी को न बताया जाए।

अभी अमरीका में एक मुकदमा चला अमरीका के बड़े से बड़े अणुविद डाक्टर ओपेन हाइमर पर। और मुकदमा यह था कि ओपेन हाइमर को कुछ चीजें पता थीं जो अमरीका की सरकार को भी बताने को राजी नहीं था। और ओपेन हाइमर अमरीकी सरकार का आदमी है। तो ओपेन हाइमर पर एक विशेष कोर्ट में मुकदमा चला। उस कोर्ट ने यह कहा कि तुम जिस सरकार के नौकर हो और तुम जिस देश के नागरिक हो, उस सरकार को तुमसे सब चीजें जानने का हक है। लेकिन ओपेन हाइमर ने कहा कि उससे भी बड़ा मेरा निर्णायक मेरी अंतरात्मा है। कुछ बातें मैं जानता हूं जो मैं किसी राजनैतिक सरकार को बताने को राजी नहीं हूं। क्योंकि हम देख चुके हिरोशिमा में क्या हुआ। हमारी ही जानकारी लाखों लोगों की हत्या का कारण बनी।

निश्चित ही, महाभारत में जो कहा है कि कुछ बातें हैं जो सबको न बताई जाएं और ज्ञान के कुछ शिखर हैं जो खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं, वह किसी अनुभव के कारण होगी। ओपेन हाइमर किसी अनुभव के कारण कह रहा है कि कुछ बातें जो मैं जानता हूं नहीं बताऊंगा।

जो इतिहास हम स्कूल-कालेज, युनिवर्सिटी में पढ़ते हैं, वह बहुत अधूरा है। आदमी इस इतिहास से बहुत पुराना है। और सभ्यताएं हमसे भी ऊंचे शिखर पर पहुंच कर समाप्त होती रही हैं। और हमसे भी पहले बहुत सी बातें जान ली गई हैं और छोड़ दी गई हैं; क्योंकि अहितकर सिद्ध हुई हैं। अभी इस संबंध में जितनी खोज चलती है, उतनी ही अड़चन होती है समझने में। उतनी ही कठिनाई होती है। ऐसा कोई भी सत्य विज्ञान आज नहीं कह रहा है जो किसी न किसी अर्थ में इसके पहले न जान लिया गया हो। परमाणु की बात भारत में वैशेषिक बहुत पुराने समय से कर रहे हैं। यूनान में हेराक्लतु, पारमेनेडीज बहुत पुराने समय से परमाणु की बात कर रहे हैं। और परमाणु के संबंध में वे जो कहते हैं, वह हमारी नई से नई खोज कहती है। हमने बहुत बार उन चीजों को जान लिया, जिनसे जिंदगी बदली जा सकती है। और फिर छोड़ दिया; क्योंकि पाया कि जिंदगी बदलती नहीं, सिर्फ विकृत हो जाती है।

तो लाओत्से का यह कहना--हस्तक्षेप से सावधान--बहुत विचारणीय है। लाओत्से मानता है कि निसर्ग ही नियम है। आदमी को जीने दो, जैसा वह निसर्ग से है। वह जो भी है, अच्छा और बुरा, वह जैसा भी है, सुख में और दुख में, उसे निसर्ग से जीने दो। क्योंकि निसर्ग से जीकर ही वह ब्रह्मांड के साथ एकसूत्रता में है। निसर्ग से हट कर ही ब्रह्मांड से उसकी एकसूत्रता टूटनी शुरू हो जाती है। और फिर उस टूटने का कोई अंत नहीं है। और टूटते-टूटते अंत में वह बिल्कुल ही रिक्त, खाली और व्यर्थ हो जाता है।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

"वैसे लोग भी हैं, जो संसार को जीत लेंगे; और उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेंगे। लेकिन मैं देखता हूं कि वे सफल नहीं होंगे।"

उमर खय्याम ने कहा है, कितनी बार होता है मन कि मेरे हाथ में हो ताकत मैं दुनिया को फिर से बना पाऊं, ताकि मैं अपने मन का बना लूं।

हर आदमी के मन में वह भाव है। और जो हम में बहुत ज्यादा महत्वाकांक्षी हैं, उस भाव को जीवन में लाने की, यथार्थ करने की चेष्टा भी करते हैं। वैज्ञानिक हैं, राजनीतिक हैं, समाज-नेता हैं, उन सारे लोगों की चेष्टा यह है कि आदमी को हम मन के अनुकूल बना लें। और जब भी मन के अनुकूल बनाने की घटना में कहीं हम सफल होते हैं, पाते हैं, हम बुरी तरह असफल हो गए। हमारी सब सफलताएं असफलताएं सिद्ध होती हैं।

अब जैसे उदाहरण के लिए, क्या हम न चाहेंगे कि ऐसा आदमी हो, जिसे क्रोध पैदा न होता हो, जिसमें घृणा न हो! दुनिया के आदर्शवादी निरंतर यही सोचते रहे हैं--सब यूटोपियंस--आदमी में क्रोध न हो, घृणा न हो, वैमनस्य न हो, ईर्ष्या न हो। अब हमारे हाथ में ताकत आ गई कि हम ऐसा आदमी बना सकते हैं। और अब आदमी से पूछने की जरूरत नहीं; उसे समझाने की, शिक्षा देने की, और योग और साधना में उतारने की जरूरत नहीं। अब तो हम प्रयोगशाला में उसको क्रोधहीन बना सकते हैं।

अमरीका का बहुत बड़ा विचारक है, स्किनर। अब वह कहता है कि जिस बात को दुनिया के सारे महत्वाकांक्षी लोग सोचते रहे और सफल न हो पाए, अब हमारे हाथ में ताकत है और अब हम चाहें तो अभी कर सकते हैं। लेकिन अब कोई राजी नहीं है, विचारशील आदमी, कि यह किया जाए। क्योंकि अब हम समझते हैं कि हारमोन अलग किए जा सकते हैं, ग्रंथियां आदमी की अलग की जा सकती हैं जिनसे क्रोध का जहर पैदा होता है। उनको काट कर अलग किया जा सकता है। बच्चे को जन्म के साथ ही--कभी पता नहीं चलेगा--जैसे हम उसका टांसिल निकाल दें, वैसे उसकी ग्रंथि निकाल दे सकते हैं। वह कभी क्रोधी नहीं होगा।

लेकिन उसमें सारी गरिमा भी खो जाएगी। वह बिल्कुल नपुंसक होगा। उसमें कोई तेज, कोई बल, कुछ भी नहीं होगा। रीढ़हीन, जैसे कोई उसकी रीढ़ ही न हो। उसे आप धक्का दे दें तो गिर जाएगा, उठ जाएगा और चलने लगेगा। उसको आप गाली दे दें तो उसे कुछ भी न होगा। क्योंकि गाली जिस ग्रंथि पर चोट करती है, वह वहां मौजूद नहीं है। क्या आप ऐसा आदमी पसंद करेंगे?

कुछ लोग पसंद करेंगे। स्टैलिन पसंद करेगा, हिटलर पसंद करेगा। सभी राजनेता पसंद करेंगे कि काश, हमको छोड़ कर सारे आदमी ऐसे हो जाएं! तो फिर कोई बगावत नहीं है, कोई विरोध नहीं है, कोई क्रोध नहीं है। तब आदमी एक घास-पात है। उसे काट भी दो तो विनम्रता से कट जाएगा। पर आदमी कहां होगा? आदमी कहीं भी नहीं होगा।

हम सफल हो जाते हैं और तब हमें पता लगता है कि यह तो बड़ी असफलता हो गई। आज हम कर सकते हैं यह, मगर शायद हम न करना चाहेंगे। शायद हमारी आत्मा राजी न होगी अब यह करने के लिए।

हम कितना नहीं चाहते कि सभी बच्चों के पास एक सा, समान प्रतिभा, समान स्वास्थ्य हो। समानता की हम कितनी आकांक्षा करते हैं! जल्दी ही हम उपाय कर लेंगे कि बच्चे समान हो सकें। क्योंकि पैदा हो जाने के बाद तो समानता लानी बहुत मुश्किल है, असंभव है। क्योंकि पैदा होने का मतलब है असमानता की यात्रा शुरू हो गई। लेकिन अब जीव-विज्ञानी कहते हैं कि अब दिक्कत नहीं है। हम पैदा होते के साथ ही, पैदा होने में ही समानता का आयोजन कर सकते हैं।

लेकिन वह भी बड़ा दुखद मालूम होता है। जैसे कि सरकारी बस्तियां हैं नई, एक से मकान, बेरौनक, उबाने वाली, वैसे ही आदमी हों एक से, बहुत बेरौनक, बहुत घबराने वाला होगा। शायद हम राजी न होंगे। शायद हम चाहेंगे कि नहीं, ऐसी समानता नहीं चाहिए। क्योंकि अगर आदमी इतना समान हो सकता है तो यंत्रवत हो जाएगा। यंत्र ही हो जाएगा। यंत्र ही केवल समान हो सकते हैं। आदमी के होने में ही असमानता का तत्व छिपा हुआ है।

लेकिन समाजवादी हैं, साम्यवादी हैं, वे कहते हैं, सब मनुष्यों को समान करना है और एक ऐसी स्थिति लानी है जहां कि बिल्कुल कोई वर्ग न हो।

आपको ख्याल नहीं है, गरीबी-अमीरी उतना बड़ा वर्ग नहीं है, और हजार वर्ग हैं। बुद्धिमान और बुद्धिहीन का वर्ग है, सुंदर और कुरूप का वर्ग है, स्वस्थ और अस्वस्थ का वर्ग है। वे वर्ग और गहरे हैं। और आखिरी कलह, और आखिरी संघर्ष तो बुद्धिमान और बुद्धिहीन का है। क्योंकि कुछ भी उपाय करो, बुद्धिमान बुद्धिहीन के ऊपर हावी हो जाता है। समानता टिक नहीं सकती--कुछ भी करो, कैसा ही इंतजाम करो। कौन करेगा इंतजाम? इंतजाम करने वाला और इंतजाम किए जाने वाले, दो वर्ग फिर निर्मित हो जाते हैं। वे अमीर और गरीब के न होंगे तो सरकार और जनता के होंगे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन इंतजाम करने वाला वर्ग और जिनका इंतजाम करना है, ये दो वर्ग हमेशा निर्मित हो जाते हैं।

गहरे में देखें, तो वह जो बुद्धिमान है, वह हर हालत में हावी हो जाता है। कभी वह ब्राह्मण होकर हावी हो जाता है, कभी वह कमीसार होकर हावी हो जाता है। कभी वह कम्युनिस्ट सत्ता में कॉमिनटर्न का मेंबर होकर हावी हो जाता है, कभी वह ब्राह्मण की पंचायत में हावी हो जाता है। लेकिन वह आदमी वही है। आदमी में कोई फर्क नहीं है। कभी धन पर हावी होता है, तब वह सत्ता करता है। अगर धन पर भी हावी न हो, उस बुद्धिमान आदमी को निर्धन भी बना दिया जाए, तो वह फकीर होकर सत्ता शुरू कर देता है। लेकिन उससे सत्ता नहीं जाती। उससे सत्ता नहीं छीनी जा सकती। वह धन को लात मार सकता है, नंगा खड़ा हो सकता है। वह धन के द्वारा सिर झुकवाता था; वह नंगा खड़ा होकर सिर झुकवा लेता है। लेकिन कोई है जो सिर झुकवाता है, और कोई है जो सिर झुकाता है। और उन दोनों का फासला बना ही रहता है। उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता, कोई भेद नहीं पड़ता।

अंतिम कलह और अंतिम वर्ग-संघर्ष तो बुद्धिमान और बुद्धिहीन का है। उसको मिटाना है तो ही समानता हो सकती है। और जिस दिन हम उसे मिटा लेंगे, उस दिन हम आदमी को मिटा देंगे। तब शायद असमानता निसर्ग है, और समानता केवल एक आकांक्षा है; जिसमें हम सफल न हों तो अच्छा, हम सफल हो जाएं तो बुरा।

यह सूत्र कहता है, "वैसे लोग हैं, जो संसार को जीत लेंगे; उसे अपने मन के अनुरूप बनाना चाहेंगे।"

आदमी जीतना ही इसलिए चाहता है कि मन के अनुरूप बना ले। नहीं तो जीत का कोई मजा ही नहीं है। जीत का रस क्या है? इसे थोड़ा समझ लें, जीत का मजा क्या है?

जीत का मजा यह है कि फिर मैं मालिक हो गया--तोडूं, बनाऊं, मिटाऊं, अपने मन के अनुरूप ढालूं। इसलिए दुनिया में दो तरह के जीतने वाले लोग हैं। एक, जिनको हम राजनीतिज्ञ कहें। वे आदमी को पहले जीतते हैं, और फिर उसको तोड़ कर अपने अनुरूप बनाने की कोशिश करते हैं।

स्टैलिन ने एक करोड़ लोगों की हत्या की। बीस करोड़ के मुल्क में एक करोड़ की हत्या छोटा मामला नहीं है। हर बीस आदमी में एक आदमी मारा। और एक करोड़ एक आदमी के द्वारा हत्या का कोई उल्लेख नहीं है सारे इतिहास में। लेकिन स्टैलिन कर क्या रहा था? कोई हत्यारा नहीं था, आदर्शवादी था। और सभी

आदर्शवादी हत्यारे हो जाते हैं। आदर्शवादी था, लोगों को अपने अनुरूप बनाने की कोशिश कर रहा था। जो बाधा डाल रहे थे, उनको साफ कर रहा था। आकांक्षा भली थी। और जब भली आकांक्षा वाले लोग ताकत में होते हैं, तो बड़े खतरनाक होते हैं। क्योंकि बुरी आकांक्षा के लोग ताकत से तृप्त हो जाते हैं; भली आकांक्षा के लोग ताकत का उपयोग करके आदर्श को लाना चाहते हैं, तब तक तृप्त नहीं होते। तो स्टैलिन ने जब तक मुल्क को बिल्कुल सपाट नहीं कर दिया, जरा सा भी विरोध का स्वर समाप्त नहीं कर दिया, और जब तक मुल्क को ढांचे में ढाल नहीं डाला, तब तक वह काटता ही चला गया। एक करोड़ लोगों की हत्या, स्टैलिन के मन को पीड़ा नहीं हुई होगी?

नहीं होती आदर्शवादी को। क्योंकि वह किसी को मार नहीं रहा है। किसी महान लक्ष्य के लिए, जो लोग बाधा बन रहे हैं, वे अलग किए जा रहे हैं। इसलिए महान लक्ष्य अगर न हो तो बड़ी हत्याएं नहीं की जा सकतीं। छोटे-मोटे हत्यारे बिना लक्ष्य के होते हैं, बड़े हत्यारे लक्ष्य वाले होते हैं। तो स्टैलिन ने महान सेवा का काम किया--अपनी तरफ से। लेकिन मुल्क को रौंद डाला। चाहता था मन के अनुरूप एक समान समाज निर्मित कर लिया जाए।

ऐसा नहीं है कि स्टैलिन को यह ख्याल पहली दफा आया था। सिकंदर को यह ख्याल था कि मैं दुनिया इसलिए जीतना चाहता हूं ताकि दुनिया को एक बना सकूं। ये फासले देशों के टूट जाएं और सारी दुनिया एक हो। सारी दुनिया को एक बनाने के लिए वह जीत रहा था।

हिटलर अगर सारी दुनिया को रौंद डालना चाहता था, तो कारण था, लक्ष्य था। हिटलर कहता था कि मनुष्य में सभी जातियां बचने के योग्य नहीं हैं; सिर्फ एक नार्डिक, एक आर्य, शुद्ध आर्य जाति बचने के योग्य है। शुद्ध आर्य की वजह से तो सुभाष को भी हिटलर की बात में जान मालूम पड़ने लगी थी। सुभाष का मन भी नाजी की तरफ झुका हुआ मन था। इसलिए हिंदुस्तान से भाग कर वे जर्मनी पहुंच गए। और हिटलर ने जब सुभाष को पहली सलामी दिलवाई थी जर्मनी में तो उसने कहा थाः मैं तो केवल चार करोड़ लोगों का फ्यूहरर हूं, यह आदमी सुभाषचंद्र चालीस करोड़ लोगों का फ्यूहरर है।

हिटलर मानता था कि शुद्ध आर्य ही केवल मनुष्य हैं, बाकी नीची जाति के लोग हैं। उनको ठीक-ठीक मनुष्य नहीं, सब-ह्यूमन, उप-मनुष्य कहा जा सकता है। उनको हटाना है। उनके ताकत में होने की वजह से ही सारी दुनिया में उपद्रव है। इसलिए उसने लाखों यहूदियों को काट डाला; क्योंकि वे नार्डिक नहीं थे। बड़े मजे से काट डाला; क्योंकि एक महान लक्ष्य--शुद्ध रक्त, शुद्ध मनुष्य, सुपर मैन, एक महा मानव को बनाना और बचाना है। सारी दुनिया को उपद्रव में डाल दिया। इतना बड़ा रक्तपात, इतना बड़ा युद्ध, इस महान आदर्श के आस-पास हुआ।

और अगर जर्मन जाति उसके साथ लड़ रही थी, तो पागल नहीं है। जर्मन जाति इस जमीन पर सबसे ज्यादा बुद्धिमान जाति कही जा सकती है। फिर इतने बुद्धिमानों को इस पागल आदमी ने कैसे प्रभावित कर लिया? महान लक्ष्य के कारण। यह बुद्धिमान जाति भी आंदोलित हो उठी। इसको लगा कि बात तो ठीक है, शुद्ध मनुष्य बचना चाहिए, तो दुनिया स्वर्ग हो जाएगी। उस शुद्ध मनुष्य के लिए कुछ भी किया जा सकता है। एक बार आदर्श आंख को अंधा कर दे, तो आदमी कुछ भी कर सकता है।

राजनीतिज्ञ पहले आदमी को अपनी ताकत में लाना चाहता है, फिर आदमी को बदलता है।

धार्मिक गुरुओं ने भी यह काम किया है। वे दूसरी तरफ से यात्रा शुरू करते हैं। वे आदमी को बदलना शुरू करते हैं। और जैसे-जैसे आदमी बदलने लगता है, उनकी ताकत बढ़ने लगती है। राजनीतिज्ञ पहले ताकत

स्थापित करता है। वह कहता है, पहले पावर, फिर क्रांति। धर्मगुरु कहता है, पहले क्रांति, ताकत तो उसके पीछे चली आएगी। इसलिए धर्मगुरु के पास आप जाएं तो आपको बिना बदले नहीं मानता। कहता है, छोड़ो सिगरेट पीना! छोड़ो शराब पीना! यह मत खाओ, वह मत खाओ। अगर आप उसकी मानते हैं, तो उसने आप पर कब्जा करना शुरू कर दिया। जैसे आप मानते जाएंगे, वह आपको बदलने लगा। जिस दिन आप बदलने के लिए पूरी तरह राजी हो जाएंगे, उस दिन उसकी ताकत आपके ऊपर पूरी हो गई। धर्मगुरु राजनीतिज्ञ की तरह ही उलटी यात्रा कर रहा है।

इसलिए वास्तविक धार्मिक व्यक्ति आपको बदलना नहीं चाहता। इस फर्क को थोड़ा ख्याल में रख लेना। क्योंकि जब मैं कह रहा हूं धर्मगुरु आपको बदलना चाहता है, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि बुद्ध आपको बदलना चाहते हैं, या महावीर आपको बदलना चाहते हैं, या लाओत्से आपको बदलना चाहते हैं। न; लाओत्से, महावीर या बुद्ध या जीसस जैसे लोग आपको बदलना नहीं चाहते। क्योंकि आपके ऊपर कोई ताकत कायम करने की आकांक्षा नहीं है। उन्होंने अपने जीवन में कुछ जाना है, वह आपको भी दे देना चाहते हैं, दिखा देना चाहते हैं, उसमें आपको साझीदार बना लेना चाहते हैं। अगर उस साझेदारी में कोई बदलाहट आप में होने लगती है, उसके जिम्मेवार आप हैं। अगर उस साझेदारी में आप बदलने लगते हैं तो उसके मालिक आप हैं। आप बुद्ध को जिम्मेवार नहीं ठहरा सकते।

बुद्ध से आपकी तरफ जो संबंध है, वह आपको बदलने का कम, आपको कुछ देने का ज्यादा है। बदलने वाला तो आपसे कुछ लेता है, ताकत लेता है। बुद्ध को आपसे कोई ताकत नहीं लेनी है, बुद्ध को आपसे कुछ लेना ही नहीं है। आपके पास कुछ है भी नहीं जो आप बुद्ध को दे सकें। बुद्ध को आपकी तरफ से कुछ भी नहीं जाता। बुद्ध को कुछ मिला है। जैसे कि आप भटक रहे हों अंधेरे में और एक आदमी के पास दीया हो और दीया जलाने की तरकीब हो और वह आपसे कहे कि क्यों भटकते हो, दीया जलाने की यह तरकीब रही। बस इतना ही संबंध है। जैसे आप रास्ते पर भटक रहे हों और किसी से आप पूछें कि नदी का रास्ता क्या है? और उसे मालूम हो और वह कह दे कि बाएं मुड़ जाओ, यह नदी का रास्ता है। बस इतना ही बुद्ध से आपका संबंध है।

धर्मगुरु अलग बात है। धर्मगुरु के लिए धर्म राजनीति ही है। पोप है; धर्म राजनीति है। धर्म भी एक तरह का साम्राज्य है। उसके भीतर फंसा हुआ आदमी भी पोप की ताकत बना रहा है।

लाओत्से कहता है, ऐसे लोग बदलना चाहेंगे; लेकिन मैं देखता हूं, वे सफल नहीं होंगे।

इसलिए नहीं कि उनकी ताकत कम है। ताकत तो उन पर बहुत है। इसलिए भी नहीं कि बदलने के नियम उन्हें पता नहीं चल गए हैं। नियम भी पता चल गए हैं। फिर भी वे सफल नहीं होंगे। सफल वे इसलिए नहीं होंगे कि--

"संसार परमात्मा का गढ़ा हुआ पात्र है; इसे फिर से मानवीय हस्तक्षेप के द्वारा नहीं गढ़ा जा सकता।"

सफल वे इसलिए नहीं होंगे कि विराट है यह जगत; अंतहीन, आदिहीन इसका फैलाव है। और आदमी की समझ बहुत संकीर्ण है। जैसे किसी आदमी ने आकाश को अपने घर की खिड़की से देखा हो; खिड़की भी बड़ी बात है, शायद एक छोटा छेद हो, उस छेद से देखा हो। विराट है जगत; आदमी की समझ संकीर्ण है। इस संकीर्ण समझ के कारण इस विराट को नहीं बदला जा सकेगा। और जब तक हम पूरे को ही न जान लें, तब तक हमारी सब बदलाहट आत्मघात होगी। क्योंकि पूरे को जाने बिना हम जो भी करेंगे, उसके परिणाम का हमें कोई भी पता नहीं है कि परिणाम क्या होगा। इसे हम जरा देखें; अपने चारों तरफ हमने जो किया है, किसी भी कोने से देखें।

एक मित्र हैं मेरे, बीस-तीस साल से आदिवासी बच्चों को शिक्षा देने का काम करते हैं। बड़े सेवक हैं। देश के बड़े नेता भी उनके चरणों में सिर रखते हैं। सभी कहते हैं कि महान सेवा का कार्य किया है। वे मुझे मिलने आए थे। मैंने उनसे पूछा कि अगर तुम बिल्कुल ही सफल हो गए, और तुमने सब आदिवासियों को शिक्षित कर दिया, तो होगा क्या? ये बंबई में जो शिक्षित हो गए हैं, ये भी कभी आदिवासी थे। ये शिक्षित हो गए हैं। ये जो कर रहे हैं, तुम्हारे आदिवासी भी शिक्षित होकर यही करेंगे या कुछ और करेंगे? वे जो बनारस विश्वविद्यालय में लड़के पढ़ रहे हैं, तुम्हारे आदिवासी भी पढ़ कर अगर विश्वविद्यालय के स्नातक होकर निकलेंगे तो क्या करेंगे?

वे थोड़े बेचैन हुए, क्योंकि कभी किसी ने उनसे यह सवाल उठाया ही न होगा। जो भी कहता था, वह कहता था, आप महान कार्य कर रहे हैं; बोलें, मैं क्या सेवा कर सकता हूं? लोग उनको धन देते हैं, गाड़ियां देते हैं, व्यवस्था देते हैं कि जाओ, सेवा करो, बड़ा अच्छा कार्य कर रहे हैं। क्योंकि अशिक्षित को शिक्षित करना बड़ा अच्छा कार्य है, इसमें संदेह का कोई सवाल ही नहीं है। शिक्षितों को कोई देखता ही नहीं कि जो शिक्षित हो गए हैं उनकी क्या दशा है। अगर कोई शिक्षितों को ठीक से देखे तो शायद संदेह उठना शुरू हो कि अशिक्षित को शिक्षित करना सेवा है या नहीं। लेकिन संदेह उठता ही नहीं, क्योंकि हम सोचते ही नहीं।

आदिवासियों को हम शिक्षित करके क्या करेंगे? ज्यादा से ज्यादा, जो शिक्षित कर रहे हैं, उन जैसे ही उनको बना लेंगे। और क्या होने वाला है? लेकिन जो शिक्षित कर रहे हैं, वे कहां हैं? वे यह मान कर ही बैठे हैं कि जैसे वे मोक्ष में पहुंच गए हैं। वे कहां हैं?

और बड़ी हैरानी की बात है कि हम बिल्कुल नहीं देखते कि आदिवासी को हम अपनी शिक्षा देकर उससे क्या छीने ले रहे हैं। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। और आदिवासी बेचारा इस स्थिति में नहीं है कि हमसे संघर्ष ले सके अशिक्षित रहने के लिए। वह शिकार है; वह कुछ कर नहीं सकता। हम जो करेंगे, उसको उसे झेलना ही पड़ेगा। और जब तक हम सफल न हो जाएंगे, तब तक हम उसका पीछा न छोड़ेंगे। और जिस दिन हम सफल हो जाएंगे, उस दिन हम चौंकेंगे कि यह क्या आदमी पैदा हुआ! यह हमारी सफलता का परिणाम हुआ।

आज अमरीका दुनिया में सबसे ज्यादा शिक्षित देश है। और अमरीका के विश्वविद्यालय में जो होता है, उससे ज्यादा अशिक्षित स्थिति खोजनी मुश्किल है। और जिन्होंने शिक्षित किया है उसको, तीन सौ, दो सौ वर्षों के सतत श्रम के बाद, वे भी अपना सिर ठोंक लेंगे कि हम इसीलिए इतनी मेहनत कर रहे थे! आज अमरीका में जब शिक्षा पूरी हो गई है, तो परिणाम क्या है?

परिणाम यह है कि वह पूरी तरह शिक्षित व्यक्ति आपकी शिक्षा के प्रति क्रोध से भरा है; आपके शिक्षकों के प्रति घृणा से भरा है; आपके पूरे आयोजन, व्यवस्था, समाज, सबके प्रति घृणा से भरा है। आपकी शिक्षा का यह फल है। मां-बाप के प्रति, परंपरा के प्रति, जिन्होंने उसको शिक्षित किया है, जिन्होंने उसे यहां तक खींच-खींच कर लाया और बड़ा त्याग किया है--वह बड़ा मजा लेते रहे मां-बाप उनके कि हम बड़ा त्याग करके बच्चों को शिक्षित कर रहे हैं--और अब बच्चे उन सबकी निंदा कर रहे हैं। बात क्या है?

आपकी सेवा में कहीं कोई बुनियादी भूल थी। क्योंकि हमें ख्याल नहीं है, जीवन बड़ी जटिल रचना है। आप शिक्षा देते हैं, महत्वाकांक्षा बढ़ती है। असल में महत्वाकांक्षा के लिए ही आप शिक्षा देते हैं। आदिवासी को भी आप समझाते हैं कि अगर पढ़ोगे-लिखोगे तो होगे नवाब। फिर वह पढ़-लिख कर नवाब होना चाहता है, तो मुसीबत खड़ी होती है। फिर कितने लोग नवाब हों? फिर वह कहता है नवाब हुए बिना हम न मानेंगे। हर बच्चे को हम महत्वाकांक्षा दे रहे हैं। महत्वाकांक्षा के बल ही हम उसको खींच रहे हैं, धक्का दे रहे हैं कि पढ़ो, लिखो,

लड़ो, प्रतिस्पर्धा करो; क्योंकि कल बड़ा सुख पाओगे। कोई नहीं पूछ रहा है कि कल वह सुख अगर इसको नहीं मिला, तो तुमने जो आशा बंधाई थी, अगर वह असफल हुई, तो इस बच्चे का जीवन सदा के लिए व्यर्थ हो जाएगा। क्योंकि आधा जीवन इसने शिक्षा में गंवाया, इस आशा में कि शिक्षा से सुख मिलेगा और फिर आधा जीवन रोकर गंवाएगा कि वह सुख नहीं मिला। लेकिन इसकी कोई फिक्र नहीं कर रहा है।

आज अमरीका में बच्चा वही अपने मां-बाप से पूछ रहा है। एक मित्र मुझे मिलने आए थे। वे प्रोफेसर हैं। वे कहने लगे, मेरा लड़का मुझसे यह पूछता है। वह भाग जाना चाहता है। हाईस्कूल में है अभी और हाईस्कूल छोड़ कर हिप्पी हो जाना चाहता है। और मैं उसको समझाता हूं तो वह यह पूछता है कि ज्यादा से ज्यादा, अगर मैं पढ़ा-लिखा, तो आप जैसा प्रोफेसर हो जाऊंगा। आपको क्या मिल गया है?

वह पिता ईमानदार हैं। इधर भारतीय पिता होता तो वह कहता कि मुझे सब मिल गया है। मगर वह पिता ईमानदार हैं। वह कहते हैं, मैं अपनी आत्मालोचना करता हूं तो मुझे लड़के का सवाल सही मालूम पड़ता है। और मैं झूठा जवाब नहीं दे सकता। मुझे कुछ भी नहीं मिला है। हालांकि मेरे बाप ने भी मुझे यही कहा था कि बहुत कुछ मिलेगा। उसी आशा पर तो मैंने यह सब दौड़-धूप की थी। अब मैं किस तरह कहूं इस बेटे को? और तब डरता भी हूं कि अगर यह छोड़ कर भाग गया हाईस्कूल, इसकी जिंदगी खराब हो जाएगी। मगर मैं यह भी नहीं कह सकता कि मेरी जिंदगी खराब नहीं हो गई है। यह कठिनाई है। मेरी जिंदगी भी खराब हो गई है।

तो जिंदगी खराब करने के दो ढंग हैं। एक व्यवस्थित लोगों का ढंग है; एक अव्यवस्थित लोगों का ढंग है। पर वह लड़का यह पूछता है, तो अव्यवस्था से जिंदगी खराब करने में क्या एतराज है? जब खराब ही करनी है तो अच्छी नौकरी पर रह कर खराब की कि सड़क पर भीख मांग कर खराब की, अंतर क्या है? और जब खराब ही होनी है जिंदगी तो कम से कम स्वतंत्रता से खराब करनी चाहिए। इतना तो कम से कम भरोसा रहेगा कि अपनी ही मर्जी से खराब की है। आपकी मर्जी से क्यों खराब करूं?

यह अशिक्षित बच्चे ने कभी बाप से नहीं पूछा था, यह ख्याल में रखिए। अशिक्षित बच्चे ने कभी बाप से यह नहीं पूछा था। बाप के मूल्यों पर कभी शक नहीं उठाया था। अब यह बाप खुद परेशान है। लेकिन इसको पता नहीं कि इसकी परेशानी का कारण यह लड़का नहीं है, इसकी परेशानी का कारण पिछले दो सौ वर्षों के बाप, जो सबको शिक्षित करने में लगे हैं, वे हैं। अब वे शिक्षित हो गए। अब शिक्षा का जो फल हो सकता था, वह सामने आ रहा है। अब वे पूछने लगे, अब वे तर्क करने लगे, अब वे विचार करने लगे। अब जिंदगी उनको बिना विचार के व्यर्थ मालूम होती है। अब वे कुछ भी करेंगे तो सोच कर करेंगे। अब वे हर कुछ मान नहीं सकते। तब मां-बाप और शिक्षक चिल्ला रहे हैं कि अनुशासनहीनता है।

शिक्षित आदमी अनुशासनबद्ध होना मुश्किल है। सिर्फ अशिक्षित आदमी अनुशासनबद्ध हो सकता है। या फिर एक बिल्कुल और ढंग की शिक्षा चाहिए, जिसका हमें अभी कोई भी पता नहीं है। अभी तो हम जब भी शिक्षित करेंगे किसी को, वह अनुशासनहीन हो जाएगा। हां, एक मजे की बात है--वह अनुशासनहीन हो जाएगा और दूसरों पर अनुशासन करना चाहेगा। इसको आप देखें। विद्यार्थी को शिक्षक कहता है अनुशासनहीन। और वाइस चांसलर को पूछें, वह कहता है कि शिक्षक अनुशासनहीन। और राष्ट्रपति को पूछें, वे कहते हैं, वाइस चांसलर कोई हमारी सुनते नहीं, सब अनुशासनहीन। ऊपर वाला सदा नीचे वाले को कहता है अनुशासनहीन है। उसके ऊपर वाला उसको कहता है अनुशासनहीन है।

असल में शिक्षित आदमी अपने ऊपर किसी को पसंद नहीं करता; सबको अपने नीचे चाहता है। जो भी नीचे है, उसको अनुशासित करना चाहता है। लेकिन वह जो नीचे है, वह भी नीचे नहीं रहना चाहता। वह भी

शिक्षित है। शिक्षा महत्वाकांक्षा को जगा देती है। हमने सार्वभौम शिक्षा फैला कर सार्वभौम महत्वाकांक्षा जगा दी। हमने हर आदमी का अहंकार जगा दिया। अब उस अहंकार को तृप्ति का कोई उपाय नहीं है। इसलिए आग की लपटें जल रही हैं। बहाने हैं सब।

अभी एक मित्र, एक विधान सभा के व्हिप हैं, वे मुझे मिलने आए थे। वे कहने लगे कि पहले एक सत्ता थी, एक पार्टी की हुकूमत थी हमारे राज्य में, उसको हम लोगों ने मेहनत करके बदल डाला। अब दूसरी पार्टी की हुकूमत आ गई। बड़ी आशाएं थीं, वे सब खतम हो गईं। अब हम लोग क्या करें? क्या हम इसको बदल कर अब तीसरी पार्टी को ले आएं? मैंने उनको कहा कि आप ला सकते हैं, लेकिन फिर भी आशाएं इसी तरह व्यर्थ होंगी। क्योंकि जो आप कर रहे हैं, उससे आशाओं के पूरे होने का कोई लेना-देना नहीं है। एक की जगह दूसरे को रखें, दूसरे की जगह तीसरे को रखें, थोड़ी देर के लिए राहत मिलती है। थोड़ी देर के लिए राहत मिलती है, क्योंकि थोड़ी देर के लिए लगता है कि अब दूसरे को मौका मिला, थोड़ा काम होने का समय दो। लेकिन जैसे-जैसे समय निकलता है, पता चलता है--अरे, कुछ भी नहीं हो रहा, कुछ भी नहीं हो रहा। पुरानी कांग्रेस सत्ता से गई, नई कांग्रेस सत्ता में आई; आशा बंधी। अब ढीली होती जा रही है आशा कि कुछ नहीं हो रहा।

आदमी जो करता है, नहीं जानता कि उसके परिणाम क्या होंगे। और यह भी नहीं जानता कि क्यों कर रहा है। उसके भीतर अचेतन कारण क्या हैं, उसका भी उसे पता नहीं है। भविष्य के परिणाम क्या होंगे, इसका भी उसे पता नहीं है। लेकिन किए चला जाता है। और तब जाल में उलझता चला जाता है।

लाओत्से कहता है, ये लोग सफल नहीं होंगे। क्योंकि संसार विराट की कृति है, इसे मानवीय हस्तक्षेप से नहीं गढ़ा जा सकता।

लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। क्योंकि आदमी हस्तक्षेप करना चाहता है। छोटी-छोटी बात में हस्तक्षेप करना चाहता है। जहां न किए भी चल जाता, वहां भी करना चाहता है। आपका बच्चा आपसे कह रहा है, जरा बाहर जाकर खेलूं? नहीं! खेल सकता था, कुछ दुनिया बिगड़ी नहीं जा रही थी। लेकिन हस्तक्षेप करने का मजा। नहीं तो बाप होने का कोई मजा ही नहीं है। अगर हां और हां ही कहते चले जाएं तो बाप किसलिए हुए? इतनी तकलीफ झेल रहे हैं--इसको पैदा किया, इसको बड़ा कर रहे हैं--तो थोड़ा नहीं कहने का मजा... । मैं घरों में ठहरता हूं कभी-कभी, तो मैं सुनता हूं, हैरान होता हूं। अकारण "नहीं" कहा जा रहा है। क्या रस होगा? क्या कारण होगा भीतर? हस्तक्षेप में एक मजा है। न कहने में इतना आनंद है किसी को, जिसका हिसाब नहीं।

आप खड़े हैं खिड़की पर, क्लर्क से कह रहे हैं कि यह कर दीजिए। वह कहता है, आज नहीं हो सकता। खाली भी बैठा हो तो भी वह कहता है, आज नहीं हो सकता। क्योंकि नहीं कहने से ताकत पता चलती है, हां कहने से ताकत पता नहीं चलती। नहीं किसी से भी कह दो, उसका मतलब है कि तुम नीचे हो गए, हम बड़े हो गए।

तो हस्तक्षेप अहंकार का लक्षण है। जितना नहीं कहने वाला आदमी होगा, समझना कि उतना अहंकारी है।

विचारशील व्यक्ति पहले हर कोशिश करेगा हां कहने की, असंभव ही हो हां कहना, तो ही नहीं कहेगा। और तब भी नहीं को इस ढंग से कहेगा कि वह भीतर जाकर छुरी की तरह काटती न हो। उसका रूप हां का ही होगा।

हमारे हां की भी जो शकल होती है, वह नहीं की होती है। और हम हां तभी कहते हैं, जब कोई और उपाय नहीं रह जाता। यह लड़का जो कह रहा है बाहर जाकर खेलूं, इसको भी थोड़ी देर में बाप हां कहेगा;

लेकिन तब कहेगा जब कि हां का सारा मजा ही चला जाएगा। और हां विषाक्त हो जाएगा और नहीं के बराबर हो जाएगा। इसने नहीं कह दिया। लड़का भी जानता है; क्योंकि हस्तक्षेप कोई पसंद नहीं करता। बाहर नहीं जाने का बदला लेना शुरू करेगा कमरे के भीतर ही। शोर करेगा, चीजें पटकेगा, दौड़ेगा, भागेगा, जब तक यह हालत पैदा नहीं कर देगा कि बाप को कहना पड़े, बाहर चले जाओ! लेकिन तब बाहर चले जाओ हां जैसा लगता है, लेकिन उसका रूप तो न का हो गया। वह विषाक्त हो गया। और संबंध विकृत हो गए। और दोनों के अहंकार को अकारण बढ़ने का मौका मिला। अकारण बढ़ने का मौका मिला। क्योंकि जब भी मैं कहूं नहीं, तो मेरा अहंकार बोलता है। और जिससे भी मैं कहूंगा नहीं, उसका अहंकार संघर्ष करेगा। और जब तक वह मेरी नहीं को न तोड़ दे, तब तक संघर्ष करेगा। अगर बाप कह दे हां, तो खुद के भी अहंकार को मौका नहीं मिलता और बेटे के अहंकार को भी मौका नहीं मिलता कि वह हां कहलवाए।

हमारी हस्तक्षेप की बड़ी सहज वृत्ति है। चारों तरफ हम हस्तक्षेप करते रहते हैं। जितने दूर तक हम रुकावटें डाल सकते हैं, उतने दूर तक लगता है हमारा साम्राज्य है। लेकिन यह जो रुकावट डालने वाला मन है, यह रुकावट डालने वाला मन जीवन को दुख और नरक में उतार देता है--चाहे व्यक्तिगत रूप से, चाहे सामाजिक रूप से।

नरक निर्मित करना हो तो नहीं को जीवन की दृष्टि बनाएं। स्वर्ग निर्मित करना हो तो हां की जीवन की दृष्टि बनाएं--स्वीकार की, तथाता की। निसर्ग को जहां तक बन सके मत छेड़ें। और बड़े आश्चर्य की बात है, अगर कोई व्यक्ति तैयार हो तो अनंत तक बन सकता है। मैं कहता हूं, जहां तक बन सके मत छेड़ें। और अगर आप तैयार हों तो अनंत तक बन सकता है। छेड़ने का कोई सवाल ही नहीं है। और जो व्यक्ति निसर्ग को नहीं छेड़ता, उसके भीतर उस घनीभूत शांति का जन्म होता है, उस अतुल शांति का जन्म होता है, जिसकी हमें कोई खबर भी नहीं। क्योंकि उसे अशांत ही नहीं किया जा सकता। जो आदमी हस्तक्षेप नहीं करता, उसे अशांत ही नहीं किया जा सकता। जो चीजों को स्वीकार कर लेता है, उसे अशांत ही नहीं किया जा सकता। सच यह है कि उसे किसी संघर्ष में घसीटा नहीं जा सकता, उसे किसी कलह में नहीं खींचा जा सकता।

मनुष्य है क्या? एक छोटा जीवाणु। और जब वह विराट में हस्तक्षेप करता है, तो वह उस तिनके की भांति है जो नदी में बह रहा है और सोच रहा है कि नदी के विपरीत बहूं, उलटा बहूं, लडूं। बह नहीं पाएगा; लेकिन बहने की कोशिश में दुखी बहुत हो जाएगा, असफल बहुत हो जाएगा।

लाओत्से कहता है, उस तिनके की भांति हो रहो जो नदी से कोई कलह ही नहीं करता, जो नदी के साथ बहता है।

जो लड़ता है वह भी साथ ही बहेगा, ध्यान रखना, कोई उलटा तो बहने का तिनके के पास उपाय नहीं है। क्या तिनका नदी में उलटा बहेगा? वह भी नदी में ही बहेगा; लेकिन मजबूरी में, दुख में, पीड़ा में, लड़ता हुआ, हारता हुआ, पराजित होता हुआ, प्रतिपल उखड़ता हुआ बहेगा। विषादग्रस्त होगा। और जो तिनका नदी में दूसरा बह रहा है उसके पड़ोस में, बिना लड़े, वह भी बहेगा। दोनों बहेंगे तो नदी की धारा में ही--क्योंकि नदी है विराट, तिनका है क्षुद्र, कोई उपाय नहीं है विपरीत जाने का।

लेकिन जो जाने की कोशिश करेगा, वह दुख में गिर जाएगा और उसकी शक्ति व्यर्थ ही अपव्यय होगी। क्योंकि लड़ने में शक्ति लगेगी। वह भी पहुंचेगा सागर तक, लेकिन मुर्दा पहुंचेगा। और रास्ते का जो आनंद हो सकता था, रास्ते के किनारे जो वृक्ष मिलते और जो पक्षियों के गीत होते और आकाश में सूरज निकलता और रात तारों से भरा आकाश होता, वह उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। उसका सारा काम तो लड़ने में लगा

रहेगा। और वह जो तिनका नदी के साथ बह रहा है, उसे नदी से कोई दुश्मनी नहीं है; उसने नदी को वाहन बना लिया।

ध्यान रहे, क्षुद्र अगर विराट के साथ हो तो विराट भी क्षुद्र का वाहन हो जाता है। और क्षुद्र अगर विराट से लड़े तो अपना ही दुश्मन हो जाता है। विराट तो वाहन नहीं होता, सिर्फ अपना ही दुश्मन हो जाता है। ये दोनों तिनके सागर में पहुंचेंगे। लेकिन एक रोता और रुदन से भरा, हारा, थका, पराजित, क्रुद्ध, जलता हुआ, सारा जीवन व्यर्थ गया, ऐसे संताप में और रास्ते के अदभुत अनुभव से वंचित। दूसरा भी पहुंचेगा सागर में--आह्लाद से भरा, रास्ते के सारे नृत्य को अपने में समाए हुए। और रास्ते का सारा यात्रा-पथ उसके लिए तीर्थयात्रा हो जाएगी। सागर में गिरना उसके लिए महामिलन होगा। आदमी के बस दो ही तरीके हैं।

लाओत्से कहता है कि जो हस्तक्षेप करेगा, वह उसे और बिगाड़ देता है।

"जो ऐसा करता है, वह उसे बिगाड़ देता है। और जो उसे पकड़ना चाहता है, वह उसे खो देता है।"

इस निसर्ग को जो बदलना चाहता है, वह उसे बिगाड़ देता है। बस बिगाड़ ही सकता है, बदलने की कोशिश में बिगाड़ ही सकता है।

ध्यान रहे, यह केवल समाज के लिए ही सही नहीं है, यह व्यक्ति के स्वयं के लिए भी सही है। कुछ लोग दूसरे को बदलने की फिक्र में नहीं होते हैं तो खुद को ही बदलने की फिक्र में होते हैं। वे कहते हैं, यह गलत है, यह नहीं होना चाहिए मुझमें। यह ठीक है, यह ज्यादा होना चाहिए मुझमें। यह क्रोध को काट डालूं, यह काम को जला दूं, बस मेरे भीतर प्रेम ही प्रेम रह जाए, सत्य ही सत्य रह जाए, शुद्ध, पवित्र पुण्य ही रह जाए, सब पाप काट डालूं। तो लोग अपने को भी बदलने की कोशिश में लगते हैं और लड़ते हैं। हम इन्हें साधु कहते रहे हैं--इस तरह के लोगों को जो अपने भीतर काटते हैं और साधुता आरोपित करते हैं।

लाओत्से उनके भी पक्ष में नहीं है। लाओत्से तो उसे साधु कहता है, जो अपने को पूरा स्वीकार कर लेता है--जैसा हूं, ऐसा हूं। और बड़े आश्चर्य की घटना तो यह है कि ऐसा व्यक्ति साधु हो जाता है। पुण्य उस पर बरस जाते हैं; पाप उससे खो जाते हैं। क्रोध उसका विलीन हो जाता है; प्रेम उसका प्रगाढ़ हो जाता है। लेकिन वह यह करता नहीं है। यह स्वीकार का परिणाम है। यह सर्व-स्वीकार है।

अब ध्यान रखें, यह कैसे होता होगा? क्योंकि जो सब स्वीकार कर लेता है, वह क्रोध कैसे करेगा? इसे थोड़ा समझें, यह थोड़ा आंतरिक कीमिया की बात है। अगर मैं अपने क्रोध को भी स्वीकार करता हूं तो मैं क्रोध कर ही नहीं सकूंगा। इस स्वीकृति में ही क्रोध क्षीण हो जाता है। क्योंकि क्रोध का मतलब ही अस्वीकार है। कोई चीज मैं नहीं चाहता, उससे ही क्रोध आता है। पत्नी नहीं चाहती कि पति कहीं भी कपड़े उतार कर कमरे में डाल दे। और डालता है पति, तो क्रोध आ जाता है। लेकिन जो अपने भीतर क्रोध को तक स्वीकार करती हो, वह कहीं पड़े हुए कमरे में कपड़ों को स्वीकार न कर पाएगी? वह कर पाएगी। पति सिगरेट पीता है, वह पत्नी स्वीकार नहीं कर पाती। लेकिन जिस पत्नी ने अपने क्रोध तक को स्वीकार कर लिया हो, वह पति की इस निर्दोष नासमझी को स्वीकार न कर पाएगी? कि धुआं भीतर करता है, बाहर करता है, तो करने दो। जैसे ही हम अपनी बुराइयों को स्वीकार कर लेते हैं, ध्यान रखना, हम दूसरों की बुराइयों के विरोध में नहीं रह जाते।

इसलिए जो लोग अपनी बुराई स्वीकार नहीं करते, वे दूसरे की बुराई के प्रति बड़े दुष्ट होते हैं, बड़े कठोर होते हैं। हम उन्हें महात्मा कहते हैं। महात्माओं का लक्षण यह है कि वे कठोर होते हैं--अपने प्रति भी, दूसरों के प्रति भी। जो गलत है, उसके प्रति सख्त कठोर होते हैं। उसको काट कर फेंक देना है।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि गलत और सही, इतनी बंटी हुई चीजें नहीं हैं। गलत और सही भीतर एक ही चीज के दो पहलू हैं। और तुम एक को काटो, दूसरा कट जाता है। तुम एक को बचाओ, दूसरा बच जाता है। जो आदमी क्रोध को काट डालेगा बिल्कुल, उसके भीतर प्रेम भी कट जाएगा। बचेगा नहीं। जो आदमी यह कहता है कि मेरा दुनिया में कोई शत्रु नहीं, ध्यान रखना, उसका कोई मित्र भी नहीं हो सकता। अगर आप चाहते हैं दुनिया में कोई शत्रु न हो तो मित्र बनाना ही मत। क्योंकि शत्रु बिना मित्र बनाए नहीं बनता कोई। पहले मित्र बनाना पड़ता है, तब कोई शत्रु बनता है। पहले कदम पर रुक जाना। तो जो शत्रु से डरता है, वह मित्र भी नहीं बनाएगा।

हम विरोध में काट नहीं सकते। विरोध एक ही सिक्के के दो पहलू, एक ही चीज के दो छोर का नाम है।

लाओत्से कहता है, अपने भीतर भी बदलने की चेष्टा, काटने की चेष्टा, बनाने की चेष्टा, व्यर्थ है। और अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी कितनी ही चेष्टा करे, जैसे होता है वैसा ही रहता है, कुछ बदलता नहीं। यह बड़ी कठिन बात है। और कम से कम धर्मगुरु इसे कभी मानने को राजी नहीं होंगे। क्योंकि धर्मगुरु का तो सारा व्यवसाय इस बात पर निर्भर है कि लोग बदले जा सकते हैं। अगर मैं आपसे कहूं कि आप जैसे हैं वैसे ही रहेंगे, आपमें कभी कोई बदलाहट नहीं हो सकती; आप दुबारा मेरे पास नहीं आएंगे। धंधा खतम ही हो गया। क्योंकि मेरे पास आप इस आशा में आते हैं कि यह आदमी कुछ करेगा, बदलेगा, अच्छा बना देगा; हम भी महात्मा हो जाएंगे। और मैं आपसे कह दूं कि तुम जैसे हो इसमें रत्ती भर कुछ होने वाला नहीं है, तुम तुम ही रहोगे, तब स्वभावतः यह आदमी गुरु होने के योग्य न रहा। गुरु तो वही है, जो बदल दे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम तो अपने को नहीं बदल पाते, आपकी कृपा से बदल दीजिए। और आप कृपा करेंगे तो बदलाहट हो जाएगी। अब मैं उनको कहूं कि बदलाहट तो हो ही नहीं सकती; परमात्मा ने तुमको बनाया, इससे बड़ी कृपा अब और कौन करेगा? और मैं इसमें हेर-फेर करने वाला कौन? परमात्मा ने तुमको ऐसा बनाया, बहुत सोच-समझ कर बनाया। अब तुम कुछ न करो, तुम काफी हो, परमात्मा की कृति हो, काफी सुंदर, अच्छे, जैसे हो ठीक हो, तो दुबारा वह आदमी आने वाला नहीं है। इसलिए धर्मगुरु सत्य कह ही नहीं पाते। क्योंकि असत्य पर तो सारा व्यवसाय है।

आप जरा सोचें, पचास साल की उम्र है आपकी, आप रत्ती भर बदले हैं? लौटें पचास साल में, सोचें, क्या बदले हैं आप?

आइजनहावर साठ वर्ष के थे जब वे अमरीका के प्रेसीडेंट हुए। तो उन्होंने अमरीका की अर्थनीति में कुछ फर्क किए। उनके बड़े भाई, एडगर, या कुछ नाम है, उनके बड़े भाई जो उनसे दो या तीन साल बड़े होंगे। पत्रकारों ने उनसे जाकर पूछा कि आइजनहावर की अर्थनीति के संबंध में आपका क्या ख्याल है? उनके बड़े भाई ने कहा कि बिल्कुल बेकार है, उसमें कुछ सार नहीं है उसकी अर्थनीति में। बरबाद कर देगा मुल्क को। पत्रकार वापस आइजनहावर के पास गए; उन्होंने कहा, आपके बड़े भाई ने ऐसा कहा है। आइजनहावर ने कहा कि जब मैं पांच साल का था, तब से वे ऐसा मुझसे कह रहे हैं। कोई नई बात नहीं है। पांच साल का था, तब से वे मेरी आलोचना कर रहे हैं इसी तरह। यह कोई अर्थनीति का सवाल नहीं है। जो भी मैं करता हूं, उसको वे गलत कहते हैं। पत्रकार, जिसने यह सुना, वह वापस गया। उसने बड़े भाई से कहा कि वह आइजनहावर ऐसा कह रहे थे। बड़े भाई ने कहा कि अभी भी मैं उसको धूल चटा सकता हूं। बड़े भाई ने कहा कि अभी भी एक धक्का दूं तो धूल चटा सकता हूं। वह आदमी वापस लौटा। उसने आइजनहावर से कहा कि हद हो गई, आपके बड़े भाई कहते हैं कि एक धक्के में आपको चारों खाने चित्त कर देंगे। आइजनहावर ने कहा, हद हो गई, यह बात भी वे मुझसे जब

मैं पांच साल का था, तब से कह रहे हैं। और मैं आपसे कहता हूं कि मुझे धूल नहीं चटा सकते। यह मैं भी तब से कह रहा हूं।

अगर आप लौटें अपने पीछे, आप बदले नहीं हैं। आप आदमी वही हैं। आपके कपड़े बड़े हो गए, शरीर बड़ा हो गया; थोड़ा भीतर खोज-बीन करें, आपका अणु वही का वही है। ढंग बदल गए होंगे, रास्ते बदल गए होंगे; लेकिन भीतर की गहरी सच्चाइयां नहीं बदलतीं। और कभी नहीं बदलतीं।

इससे निराश मत हो जाना कि तब तो इसका मतलब यह हुआ कि कुछ हो ही नहीं सकता!

नहीं, आप करना चाहें तो कुछ भी नहीं हो सकता। आप स्वीकार कर लें तो बहुत कुछ होता है। लेकिन वह किए से नहीं होता। जिस दिन आप अपने को स्वीकार कर लेते हैं और कह देते हैं मैं ऐसा हूं, बुरा या भला, क्रोधी, ईर्ष्यालु, जैसा भी हूं, ऐसा हूं--यह सत्य का पहला स्वीकार है कि मैं ऐसा हूं--इसमें कोई एतराज नहीं मुझे, परमात्मा ने मुझे ऐसा बनाया है, इस स्वीकृति के साथ ही पहली दफे आपकी क्षुद्रता समाप्त हो जाती है और आप विराट के अंग हो जाते हैं। और जिसने आपको बनाया है वह आपके भीतर आपको फिर से बनाने में संलग्न हो जाता है। सच बात यह है कि जब तक आप अपने को बनाने की कोशिश करते हैं, परमात्मा के हाथ रुके रहते हैं, विराट के हाथ रुके रहते हैं। जिस दिन आप अपने को छोड़ देते हैं, उसी दिन उसके हाथ फिर आपको बनाने लगते हैं। लेकिन वह बनावट बड़ी और है।

लाओत्से उसी को कहता है कि जो ऐसा करेगा, वह और बिगाड़ देता है। जो उसे पकड़ना चाहता है, वह उसे खो देता है। निसर्ग पकड़ में नहीं आता। लेकिन जो अपने को निसर्ग में छोड़ देता है, और निसर्ग के साथ बहने लगता है, निसर्ग उसकी पकड़ में तो नहीं आता, लेकिन निसर्ग उसके लिए साथी, सहयोगी और उसकी आत्मा बन जाता है।

"क्योंकि कुछ चीजें आगे जाती हैं और कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं।"

हमें ख्याल नहीं है कि कुछ चीजें आगे जाती हैं और कुछ पीछे-पीछे चलती हैं। जैसे मैंने कहा, स्वीकार आगे जाता है और क्रांति पीछे-पीछे चलती है। तथाता आगे जाती है--मान लेना कि मैं ऐसा हूं और जरा भी इसमें मुझे एतराज नहीं है, क्योंकि यह एतराज परमात्मा के प्रति ही एतराज है।

अब लोग मजेदार हैं। लोग कहे जाते हैं कि परमात्मा ने आदमी को बनाया। और आदमी को कोई स्वीकार नहीं करता। लोग कहते हैं कि भीतर आत्मा है। लेकिन उसको कोई स्वीकार आप भी नहीं करते। आप कहते हैं कि मैं प्रभु की कृति हूं। लेकिन इसमें भी आप सुधार करना चाहते हैं, तरमीम करना चाहते हैं। आप इसमें भी कुछ हेर-फेर करना चाहते हैं। अगर परमात्मा आपसे सलाह लेता, तो आप कभी बनने वाले नहीं थे; क्योंकि आप इतनी योजनाएं बदलते।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक बेटा अपने बाप से पूछ रहा था कि परमात्मा ने आदमी को बनाया, फिर अदम की हड्डी निकाल कर ईव को, स्त्री को बनाया। तो उस बेटे ने पूछा कि परमात्मा ने पहले आदमी को क्यों बनाया, पहले स्त्री को क्यों नहीं बनाया? तो उसके बाप ने कहा, तू जब बड़ा होगा तो समझ जाएगा। अगर परमात्मा स्त्री को पहले बनाता तो आदमी बन ही नहीं पाता। स्त्री इतने सुझाव, इतनी सलाह देती कि फिर आदमी नहीं बन सकता था। वह कहती--ऐसा बनाओ, ऐसा बनाओ, वैसा बनाओ, यह न करे, वह न करे। वह कभी बना ही नहीं पाता। इसलिए उसने पहले आदमी बनाया, ताकि झंझट बिल्कुल न हो। फिर स्त्री बनाई।

अभी भी स्त्री सलाह दिए चली जाती है आदमी को। अगर आप अपनी पत्नी के साथ कार चला रहे हैं, तो आप सिर्फ आदेश का पालन कर रहे हैं, कार तो पत्नी चलाती है। एक्सीडेंट वगैरह हो तो आप जिम्मेवार होंगे; सकुशल घर पहुंच जाएं, पत्नी ने गाड़ी चलाई।

आदमी जब अपने को बदलने की बात करता है, तभी वह परमात्मा का अस्वीकार कर देता है।

लाओत्से कहता है, कुछ चीजें आगे जाती हैं, कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं। और जो पीछे चलती हैं, उनको आगे लाने की कोशिश मत करना; नहीं तो भूल हो जाएगी।

गेहूं बो दें, घास-भूसा पीछे अपने आप हो जाता है। गेहूं के साथ भूसा पैदा हो जाता है। भूसे को बो दें, फिर कोई गेहूं पैदा नहीं होता; फिर भूसा भी पैदा नहीं होता। पास भी जो भूसा था, वह भी खराब हो जाता है। जो परिणाम है, उसको बीज नहीं बनाया जा सकता। और हम सब उसको बीज बनाने की कोशिश करते हैं।

लोग चाहते हैं कि शांत हो जाएं; लोग चाहते हैं कि आनंदित हो जाएं; लेकिन यह परिणाम है, यह बीज नहीं है। आप आनंद को सीधा पकड़ नहीं सकते; आनंद परिणाम है। आप कुछ और करें, जो बीज है, तो आनंद आ जाएगा। जैसे मैं कहता हूंः स्वीकार।

लाओत्से का जो कीमती से कीमती सूत्र है, वह है स्वीकार। लाओत्से कहता है, दुख को भी स्वीकार कर लो और तुम आनंदित हो जाओगे। और सुख को भी स्वीकार मत करो तो तुम दुखी रहे आओगे। दुख को भी कोई स्वीकार कर ले तो आनंदित हो जाता है। क्योंकि स्वीकार दुख जानता ही नहीं। स्वीकार को दुख का कोई पता ही नहीं है। इसलिए पुराने ऋषियों ने स्वीकृति को, संतोष को बहुत गहन प्रतिष्ठा दी थी। क्योंकि उसकी स्वीकार और संतोष के साथ ही परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

हम भी कोशिश करते हैं, लेकिन हम परिणाम को पहले लाना चाहते हैं। जैसे मैं अगर आपको कहूं कि मुझे कबड्डी खेलने में, या ताश खेलने में बहुत आनंद आता है। तो आप कहेंगे, आनंद तो मुझे भी चाहिए, मैं भी कबड्डी खेलने आता हूं। आपको नहीं आएगा, क्योंकि आनंद को आप बीज बना रहे हैं। और कबड्डी खेलते वक्त, पूरे वक्त आप तू-तू, तू-तू करते रहेंगे, लेकिन भीतर यही ख्याल रहेगा--अभी तक आनंद नहीं आया, नाहक तू-तू कर रहे हैं, अभी तक कुछ आनंद नहीं आया। यह आदमी झूठ कह रहा था कि आनंद आता है; अभी तक नहीं आया। आप पूरे वक्त तू-तू करके घर लौट आएंगे; बिल्कुल आनंद नहीं आएगा। थक जाएंगे सिर्फ। क्या हुआ क्या?

कबड्डी में जो डूब जाता है और जिसे इतना भी ख्याल नहीं रहता कि आनंद आ रहा है कि नहीं आ रहा, जो इतना लीन हो जाता है खेलने में कि खेलने वाला बचता ही नहीं, उसे आनंद आ जाता है। वह परिणाम है। आप परिणाम को बीज की तरह पकड़े बैठे हुए हैं कि अब आए आनंद, अब आए आनंद! वह नहीं आता।

इसलिए दुनिया में आनंद की जितनी विधियां बताई गई हैं, आप सब को असफल कर देते हैं। आपकी कुशलता अनंत है। जितनी विधियां बताई हैं ऋषियों ने, आप सब को असफल कर देते हैं। क्योंकि विधियां, अगर आप उसमें पूरी तरह डूब जाएं तो आनंद आता है। आनंद लेने के लिए ही जो वहां जाता है, वह डूबता ही नहीं; वह डूब सकता नहीं। वह पूरे वक्त सचेतन है कि आनंद कहां है? वह सचेतना बाधा बन जाती है। आनंद कहीं भी मिल सकता है, लेकिन आता है किसी के पीछे छाया की तरह। उसे कोई सीधा पकड़ता नहीं; जो पकड़ता है, वह खो देता है।

"एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं।"

अगर मुझे खेलने से आनंद मिल रहा है, तो जरूरी नहीं है कि आपको भी खेलने से आनंद मिले, दुख भी मिल सकता है। क्रियाओं पर कुछ निर्भर नहीं होता। क्रियाओं के पीछे करने वाले पर सब कुछ निर्भर होता है।

इसलिए अगर आप हनुमान से पूछें, तो वह कहेगा, बस काफी है; राम-राम, राम-राम कर लिया, काफी है, और परम आनंद आता है। वह हनुमान को आता है; आपको नहीं आएगा। आप कितना ही राम-राम कहें, कुछ भी नहीं होगा। थोड़ी देर बाद आप कहेंगे, छोड़ो भी, अखबार ही पढ़ो, उसमें ही ज्यादा आनंद आता है। यह कहां हनुमान की बातों में पड़ गए! और हनुमान कहां से मिल गए! छोड़ो, यह सब झंझट है। यह आदमी धोखे में मालूम पड़ता है, इसको भी कोई आनंद वगैरह आया नहीं होगा। आखिर बंदर ही ठहरे, कुछ आनंद इनको आया न होगा। हम क्यों इस नासमझी में पड़ें?

पर हनुमान को आया है।

अब कई स्त्रियां सीता बनने की कोशिश करती हैं। वे मुश्किल में पड़ेंगी। वह सीता को बहुत आनंद आया है। लेकिन सीता को आया है। आपको आएगा, मुश्किल है। क्योंकि सीता कोई बन नहीं सकता; या होता है या नहीं होता। तो सीता को जंगल भी फेंक दिया राम ने तो भी आनंदित है, अनुगृहीत है। और सीता के हृदय को समझना मुश्किल है, उसके अनुग्रह को समझना मुश्किल है। और बहुत सी किताबें लिखी जाती हैं, जिनमें स्त्री-जाति के पक्षपाती--जो सोचते हैं कि स्त्री-जाति के पक्षपाती हैं--वे लिखते हैं कि यह अन्याय हो गया। राम ने सीता को निकाल कर फेंक दिया घर के बाहर, यह अन्याय हो गया। लेकिन सीता गहन में यह जानती है, दूर जाने की पीड़ा है, अलग रहने का राम से दुख है, लेकिन गहन में सीता जानती है कि राम का भरोसा उस पर इतना है कि जरूरत पड़े तो उसे जंगल में फेंका जा सकता है--बिना पूछे। और यह भरोसा इतना गहरा है और यह प्रेम इतना गहरा है कि डरने का कोई कारण नहीं है कि सीता सोचेगी कि मुझे छोड़ दिया। इसका कोई कारण नहीं है। इसलिए राम सरलता से सीता को भेज पाए। प्रेम में जरा भी कमी होती तो हजार बार सोचते कि सीता क्या सोचेगी।

इसलिए आप देखते हैं, पत्नियां धीरे-धीरे समझ जाती हैं। जिस दिन पति घर कोई सामान लेकर आता है, घड़ी ले आता है, कुछ गहना ले आता है, स्त्री समझ जाती है--कुछ प्रेम में गड़बड़ है। यह काहे के लिए ला रहे हैं? यह सब्स्टीट्यूट है। और पति भी लाता ही उस दिन है, जिस दिन कुछ डरा होता है, कुछ भयभीत होता है। जिस दिन पति भयभीत होता है, उस दिन आइसक्रीम लिए चला आ रहा है, कुछ लेकर चला आ रहा है।

राम सहजता से सीता को फेंक सके, इतना भारी भरोसा था। पर वह सीता पर ही हो सकता था। फिर सीता बनने की बहुत सी स्त्रियां कोशिश कर रही हैं। कोई बन नहीं सकता वैसा।

बनना हो सकता है, पर वह बनने की प्रक्रिया से नहीं होता। जो जैसा है, उसे वैसा पूरा स्वीकार कर ले, अस्वीकार को छोड़ ही दे, ख्याल से ही उतार दे, और जीवन जो लाए उसमें आह्लादित हो--दुख लाए तो, सुख लाए तो; यश तो, अपयश तो--जीवन जो भी दे जाए, उसमें हृदय प्रफुल्लित हो; तो कोई भी सीता हो सकता है।

"क्योंकि कुछ चीजें आगे जाती हैं और कुछ चीजें पीछे-पीछे चलती हैं। एक ही क्रिया से विपरीत परिणाम आते हैं। जैसे चीजें फूंकने से गरम हो जाती हैं और फूंकने से ही ठंडी हो जाती हैं।"

मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में कथा है। वह गुरु की तलाश में था। और किसी ने उससे कहा कि फलां गांव में एक बड़ा फकीर है, उसके पास जाओ, शायद उससे तुम्हें ज्ञान मिल जाए। मुल्ला गया। सुबह ही सुबह पहुंचा। जांच-पड़ताल करनी जरूरी थी। जिसके प्रति समर्पण करना हो, उसकी पूरी जांच होनी चाहिए। चारों तरफ घूम-घाम कर उसने मकान के देखा, फिर अंदर गया। सर्द थी बहुत सुबह, और गुरु अपने कंबल में दुबका हुआ हाथ रगड़ रहा था। तो मुल्ला ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि मेरे हाथ ठंडे हैं, उन्हें गरम कर

रहा हूं। रगड़ता रहा और मुंह से भी फूंकने लगा। तो उसने कहा, अब यह क्या कर रहे हैं? उसने कहा, मैं गरम ही कर रहा हूं। फूंक रहा हूं सांस कि हाथ गरम हो जाएं। मुल्ला ने कहा, ठीक है।

थोड़ी देर बाद उसकी पत्नी चाय लेकर आई। गुरु चाय पीने लगा, उसको भी फूंकने लगा। तो मुल्ला ने कहा, अब आप यह क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि मैं चाय ठंडी कर रहा हूं। मुल्ला ने कहा, नमस्कार! ऐसे असंगत आदमी के पास मैं एक क्षण नहीं रुक सकता। अभी कहते थे फूंक कर गरम कर रहे हैं हाथ। अब कहते हैं फूंक कर चाय ठंडी कर रहे हैं! धोखे की भी कोई सीमा होती है! और आदमी बदले तो भी वक्त लगना चाहिए। अभी मैं मौजूद हूं यहीं के यहीं; इतनी जल्दी इतनी असंगति!

लाओत्से कहता है, फूंकने से चीजें गरम भी हो जाती हैं और ठंडी भी। इसलिए फूंकने से क्या हो रहा है, जल्दी मत करना समझने की। विपरीत घटनाएं एक ही क्रिया से घट सकती हैं।

"कोई बलवान है, और कोई दुर्बल; और कोई टूट सकता है, और कोई गिर सकता है। इसलिए संत अति से दूर रहता है, अपव्यय से बचता है, और अहंकार से भी।"

कोई बलवान है और कोई दुर्बल! लेकिन कोई अपनी दुर्बलता को स्वीकार नहीं करता। दुर्बल आदमी भी बलवान बनने की कोशिश में लगा है। वह और दुर्बल हो जाएगा। जो थोड़ी-बहुत ताकत थी, वह बलवान बनने में खतम हो रही है। वह और दुर्बल हो जाएगा। और बलवान भी, आप यह मत सोचना कि आश्वस्त है। उससे भी बड़े बलवान हैं, जिनसे वह दुर्बल है। और आज बलवान है, अगर कल दुर्बल हो जाए। बुढ़ापा आएगा। शक्ति आज है, कल हाथ नहीं होगी। वह भी चिंतित और भयातुर है। दुर्बल भी डरे हुए हैं, बलवान भी डरे हुए हैं। और बलवान और बलवान बनना चाहता है, दुर्बल भी बलवान बनना चाहता है। लेकिन कोई अपने को स्वीकार नहीं करता।

लाओत्से यह कहता है, अगर तुम दुर्बल हो तो इस सत्य को पहचान लो, और दुर्बल रहो। रहने का मतलब सिर्फ इतना है कि अब इससे लड़ो मत। इससे बड़ी हैरानी की बात है।

जो लोग पशुओं का अध्ययन किए हैं गहरा, जैसे कोंड्रेड लारेंज ने बड़ा गहरा पशुओं का अध्ययन किया है; तो वह कहता है, आदमी को छोड़ कर कोई पशु, जब भी कोई पशु दुर्बलता को स्वीकार कर लेता है, तो उस पर हमला नहीं करता। एक कुत्ता एक कुत्ते से लड़ रहा है। जैसे ही कुत्ता अपनी पूंछ नीची कर लेता है, दूसरा कुत्ता लड़ना फौरन बंद कर देता है। बात खतम हो गई। एक तथ्य की स्वीकृति हो गई। इसका यह मतलब नहीं है कि दूसरा कुत्ता खड़े होकर अब इस पर हंसता है, या जाकर खबर करता है कि यह दुर्बल है। नहीं, बात ही खतम हो गई। इससे कोई दूसरा, जो पूंछ नीची झुका कर खड़ा हो गया है, वह अपमानित नहीं होता। और न ही जो जीत गया है, वह कोई सम्मानित होता है। सिर्फ एक तथ्य की स्वीकृति है कि एक सबल है, एक दुर्बल है। बात खतम हो गई। न तो सबल होने का कोई गुण है और न निर्बल होने का कोई दुर्गुण है। दुर्बल दुर्बल है, सबल सबल है।

एक पत्थर छोटा है, एक पत्थर बड़ा है। इसमें बड़े पत्थर के कोई सम्मान का कारण नहीं है। और एक झाड़ छोटा और एक झाड़ बड़ा है। इसमें बड़े झाड़ को कोई सम्मान का कारण नहीं है। छोटे झाड़ को अपमान का कोई कारण नहीं है।

पर आदमी के साथ बड़ी कठिनाई है। दुर्बल पहले तो स्वीकार नहीं करना चाहता कि दुर्बल है। और अगर स्वीकार कर ले, तो सबल उसको सताना शुरू करता है, अपमानित करता है, निंदित करता है। पशुओं में कभी भी कलह के कारण हत्या नहीं होती। हत्या के पहले ही बात रुक जाती है। सिर्फ, वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी और चूहे, दो अपनी ही जाति में हत्या करते हैं। और कोई नहीं; सिर्फ आदमी और चूहे! चूहे चूहे पर हमला करके

मार डालते हैं। और आदमी। इन दो को छोड़ कर पूरी पृथ्वी पर अनंत-अनंत जीवन और प्राणी हैं, कोई किसी को मारता नहीं। लड़ाई होती है उस सीमा तक, जब तक कि तथ्य स्वीकृत नहीं हो जाता कि कौन बलवान, कौन कमजोर। स्वीकृत होते ही बात खतम हो जाती है।

इसलिए चूहे और आदमी में जरूर कोई गहरा आत्मिक संबंध है। जरूर कोई संबंध है। या तो आदमियों के साथ रह-रह कर चूहे बिगड़ गए हैं, या चूहों के साथ रह-रह कर आदमी बिगड़ गया। क्योंकि एक और मजे की बात है, सिर्फ आदमी और चूहे ही ऐसे हैं जो दुनिया की हर तरह की आबोहवा में रहते हैं। और ऐसी कोई जगह नहीं है दुनिया में जहां आदमी हो, वहां चूहा न हो। है ही नहीं। आदमी-चूहे बड़े संगी-साथी हैं। कोई जानवर हिंदुस्तान में होता है, कोई तिब्बत में नहीं होता। लेकिन चूहे के मामले में यह बात नहीं है। जहां आदमी होता है, चूहा उसके साथ होता है। बहुत साथ है। शायद किसी ने एक-दूसरे को संक्रामक बीमारी पकड़ा दी है।

लेकिन जानवर एक-दूसरे की हत्या नहीं करते; अपनी ही जाति में कभी हत्या नहीं करते। क्योंकि हत्या के पहले ही जैसे ही निर्बल को पता चलता है, नाप-तौल हो जाती है--दोनों गुर्राएंगे, पास आएंगे, रौब दिखाएंगे और दोनों एक-दूसरे को माप लेंगे--दुर्बल स्वीकार कर लेगा मैं दुर्बल हूं, सबल स्वीकृत हो गया कि सबल है। बात खतम हो गई। इस बात को आगे नहीं खींचा जाता।

क्यों? क्योंकि इसमें क्या गुण है कि आप सबल हैं? इसमें क्या दुर्गुण है कि कोई निर्बल है? उसका क्या कसूर है कि वह दुर्बल है? एक आदमी कमजोर है और आपके पास मजबूत हड्डियां हैं, इसमें कौन सा गुण है और कौन सा दुर्गुण है? माना कि आप उसे पटक सकते हैं और उसकी छाती पर बैठ सकते हैं, लेकिन इसमें क्या खूबी की बात है? इसमें कोई खूबी की बात नहीं है। बात वैसी ही है, जैसे तराजू पर हम एक बड़ा पत्थर रखें और एक छोटा, बड़ा पत्थर नीचे पहुंच जाए, छोटा ऊपर अटका रह जाए। लेकिन इसमें छोटा अपमानित कहां हो रहा है?

लाओत्से कहता है, इस कारण कि दुर्बल सबल होना चाहता है, कमजोर ताकतवर होना चाहता है, कुरूप सुंदर होना चाहता है, उपद्रव पैदा हो गया है। लाओत्से कहता है, तुम जो हो, उससे राजी हो जाओ। तथ्य से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। तथ्य ही सत्य है। उसके विपरीत जाने का कोई उपाय नहीं है।

इसका क्या मतलब हुआ? इससे हमें बहुत हैरानी लगेगी कि इसका तो मतलब यह हुआ कि फिर आदमी कोई उन्नति ही न करे। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप यह क्या कहते हैं? इसका मतलब हुआ, उन्नति मत करो। सफल कैसे होंगे? फिर तो ऐसा मान कर बैठ जाएंगे तो बस जड़ हो जाएंगे।

नहीं, कभी कोई जड़ नहीं हुआ है। ऐसा मानने वाला अपनी व्यर्थ ताकत नहीं खोता। और वह जो व्यर्थ ताकत खोती है रोज, वही और कमजोर करती चली जाती है। ऐसा जान लेने वाला कि मैं क्या हूं, अपनी सीमा, अपनी समझ, अपनी सामर्थ्य, अपनी शक्ति जान लेने वाला व्यक्ति अपनी मर्यादा के भीतर शक्ति को नहीं खोता। शक्ति संगृहीत होती है। और वही संगृहीत शक्ति उसके जीवन में गति बन जाती है। लेकिन यह गति आती है भीतर से, बाहर की प्रतिस्पर्धा से नहीं।

अभी हम सब बाहर की प्रतिस्पर्धा में लगे रहते हैं। कोई आदमी बुद्धिमान है, आप कोशिश में लगे हैं बुद्धिमान होने की। कोई आदमी ताकतवर है, आप दंड-बैठक लगा रहे हैं। दूसरों को देख-देख कर लगे हुए हैं। मुसीबत में पड़ जाएंगे। चारों तरफ हजार तरह के लोग हैं। सब में से कुछ-कुछ सीखा! किसी की बुद्धि लेनी है आपको, बुद्धिमान होना है आपको आइंस्टीन जैसा, ताकतवर होना है कोई गामा जैसा। अब पड़े मुश्किल में

आप; अब मुसीबत में पड़ जाएंगे; अब झंझट खड़ी होगी। आप अपने को इतना बांट देंगे इन आकांक्षाओं में कि टूट जाएंगे और कुछ भी न हो पाएंगे।

आप सिर्फ एक ही व्यक्ति हो सकते हैं दुनिया में, और वह व्यक्ति अभी तक पैदा नहीं हुआ कि उसकी आप नकल करें। वह आप ही हैं। अद्वितीय है प्रत्येक व्यक्ति। वह दूसरे जैसा नहीं हो सकता, वह सिर्फ अपने ही जैसा हो सकता है। फिर वह जो है, उससे राजी होकर उसे वही हो जाने की तथाता में प्रवेश कर जाना चाहिए।

"कोई टूट सकता है, कोई गिर सकता है।"

ध्यान रखें, कमजोर गिर जाता है, ताकतवर टूट जाता है। बड़े वृक्ष, तूफान आता है, टूट जाते हैं। छोटे-छोटे पौधे हैं, गिर जाते हैं। तूफान चला जाता है, फिर उठ जाते हैं। अगर तूफान से पूछो तो तूफान कहेगा कि छोटे मुझसे जीत गए, बड़े मुझसे हार गए। ताकतवर टूटता है, कमजोर झुकता है। लेकिन यह देखने पर निर्भर करता है। इस झुकने को हम ताकत भी कह सकते हैं, फ्लेक्सिबिलिटी कह सकते हैं। इस झुकने को हम ताकत भी कह सकते हैं। यह तो हमारे देखने पर निर्भर है कि हमारे क्या सोचने के मापदंड हैं। अगर दुनिया ज्यादा समझदार होगी तो इसमें क्या कठिनाई है? झुकना भी एक ताकत है। जो नहीं झुक सका, वह टूट जाएगा।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने लड़के को सिखा रहा था, दंड-बैठक करवा रहा था। पड़ोस के किसी आदमी ने पूछा कि यह क्या कर रहे हो नसरुद्दीन, यह दस साल के बच्चे के लिए? उसने कहा कि मैं इसको ताकतवर बना रहा हूं कि कोई लड़का इसको दबा न सके, कोई इसको परेशान न कर सके। तो इसको मैंने नौ तरकीबें सिखा दी हैं कि यह किसी को भी ठिकाने पर लगा देगा। पर उस पड़ोसी ने कहा कि नसरुद्दीन, क्या तुम सोचते हो इससे ताकतवर लड़के नहीं हैं? नसरुद्दीन ने कहा, वे भी हैं; उनके लिए मैं इसको दसवीं तरकीब भी सिखा दिया हूं। वह क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, समय के पहले भाग खड़े होना। वह दसवीं तरकीब है, जैसे ही पता चले कि मामला गड़बड़ है और अपनी नौ तरकीबें काम नहीं आएंगी, दसवीं भी सिखा दी है। नौ का तभी तक उपयोग करना, जब तक देखे कि हां, अपने हाथ के भीतर बात है। और जब दिखाई पड़े कि अपने हाथ के बाहर है, तो दसवीं काम में लाना।

दो ही उपाय हैं संघर्ष में: लड़ना या भाग जाना--फाइट आर फ्लाइट। आदमी सोचता है कि भाग जाना बुरी बात है। नहीं, कम से कम हम अपने मुल्क में नहीं सोचते। हमने कृष्ण का एक नाम दिया है रणछोड़दास। जो युद्ध से भाग खड़े हुए--रणछोड़दासजी! उनको भी हम जी कहते हैं। समझदार लोग थे जिन्होंने यह नाम दिया। नहीं तो रणछोड़दासजी किसी को कोई कहेगा नहीं। अगर किसी से कहिए तो झगड़ा हो जाएगा कि आप रणछोड़दासजी हैं, आप युद्ध का मैदान छोड़ कर भाग गए थे। लेकिन बुद्धिमान आदमी अति पर नहीं जाता; जो उचित हो, जो संतुलित हो, वही करता है। इसलिए कृष्ण भाग भी सके और हमने उनका अपमान भी नहीं किया। बड़ी हैरानी की बात है। कोई कारण भी नहीं है। क्योंकि कभी भगाना सार्थक हो सकता है, कभी लड़ना सार्थक हो सकता है।

"कोई टूटता है, कोई गिर सकता है। संत अति से दूर रहता है।"

वह सिद्धांत बना कर नहीं जीता कि मैं ऐसा ही जीऊंगा। वह जीवन को बहने देता है और जीवन के साथ बहता है। कभी इस किनारे भी, कभी उस किनारे भी। कभी हार में भी, कभी जीत में भी। कभी गिरता भी है, कभी नहीं भी गिरता। कभी कमजोर भी होता है, कभी ताकतवर भी। किसी के सामने बुद्धिमान होता है, किसी के सामने बुद्धिहीन भी होता है। किसी के सामने सुंदर और किसी के सामने कुरूप होता है। लेकिन लक्ष्य नहीं चुनता। दोनों के बीच डोलता रहता है।

"संत अति से दूर रहता है, अपव्यय से बचता है।"

अपव्यय से बचता है। हम बहुत अपव्यय करते हैं। दूसरे की नकल अपव्यय है; वह आप कभी न हो सकेंगे। जो शक्ति खो गई, वह व्यर्थ खो जाएगी।

"और अहंकार से भी।"

क्योंकि अहंकार के कारण ही हम दूसरे जैसे होना चाहते हैं। अगर हमको लगता है कि सम्मान है कृष्ण का, तो हम कृष्ण जैसे होना चाहते हैं। और अगर हमें लगता है कि सम्मान है आइंस्टीन का, तो हम आइंस्टीन जैसे होना चाहते हैं। और हमें लगता है कि सम्मान है किसी अभिनेता का, तो हम अभिनेता होना चाहते हैं। लेकिन कारण क्या है? जिसका सम्मान है, वैसे हम हों, यह हमारे अहंकार की मांग हो जाती है।

लेकिन संत अहंकार से बचता है, अपव्यय से और अति से। जो इन तीन से बच जाता है--तीन क्या, एक अर्थ में एक ही बात है--जो इससे बच जाता है, वह परम शांति को, निसर्ग को, ताओ को उपलब्ध हो जाता है। वह स्वभाव में गिर जाता है।

हस्तक्षेप से बचें--दूसरों के प्रति भी और स्वयं के प्रति भी।

आज इतना ही। पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

इकसठवां प्रवचन

खेदपूर्ण आवश्यकता से अधिक हिंसा का निषेध

Chapter 30

Warning Against The Use Of Force

He who by Tao purposes to help the ruler of men
Will oppose all conquest by force of arms.
For such things are wont to rebound.
Where armies are, thorns and brambles grow.
The raising of a great host is followed by a year of dearth.
Therefore a good general effects his purpose and stops.
He dares not rely upon the strength of arms;
Effects his purpose and does not glory in it;
Effects his purpose and does not boast of it;
Effects his purpose and does not take pride in it;
Effects his purpose as a regrettable necessity;
Effects his purpose but does not love violence.
(For) things age after reaching their prime.
That (violence) would be against the Tao.
And he who is against the Tao perishes young.

अध्याय 30

बल-प्रयोग से बचें!

जो ताओ के अनुसार राजा को मंत्रणा देता है, वह शस्त्र-बल से विजय का विरोध करेगा।
क्योंकि ऐसी विजय विजयी के लिए भी बहुत दुष्परिणाम लाती है।
जहां सेनाएं होती हैं, वहां कांटों की झाड़ियां लग जाती हैं।
और जब सेनाएं खड़ी की जाती हैं, उसके अगले वर्ष में ही अकाल की कालिमा छा जाती है।
इसलिए एक अच्छा सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है।
वह शस्त्र-बल का भरोसा कदापि नहीं करता है।

वह अपना कर्तव्य भर निभाता है, पर उस पर गर्व नहीं करता है।

वह अपना कर्तव्य भर निभाता है, पर शेखी नहीं बघारता।

वह अपना कर्तव्य भर निभाता है, पर उसके लिए घमंड नहीं करता है।

वह एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप में युद्ध करता है।

वह युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता।

क्योंकि, चीजें अपना शिखर छूकर फिर गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं।

हिंसा ताओ के विपरीत है। और जो ताओ के विपरीत है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

लाओत्से समस्त बल-प्रयोग के विरोध में है। जो भी निसर्ग के पक्ष में होगा, वह बल का विरोधी भी होगा। जबरदस्ती, किसी भी भांति की, निसर्ग के विपरीत है। इस बात को ठीक से समझ लें तो फिर इस सूत्र को समझना आसान हो जाएगा।

निसर्ग को देखें, आदमी को छोड़ कर। वृक्ष बड़े हो रहे हैं, नदियां बह रही हैं, चांद-तारे घूम रहे हैं; इतना विराट आयोजन चल रहा है। पर कहीं भी कोई जबरदस्ती नहीं मालूम पड़ती, जैसे सब सहज हो रहा है, जैसे इस सब होने में कोई बल का प्रयोग नहीं है, कोई धक्का नहीं दे रहा। नदी अपने से ही बही जा रही है, वृक्ष अपने से बड़े हो रहे हैं, तारे अपने से घूम रहे हैं।

आदमी न हो, तो जगत बहुत मौन है। आदमी न हो, तो जगत में कोई द्वंद्व नहीं है, कोई संघर्ष नहीं है। एक सहजता, एक स्पांटेनिटी है।

लाओत्से मानता है, जब तक आदमी भी अपने भीतर और अपने बाहर इतना ही सहज न हो जाए, तब तक धर्म को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि धर्म का एक ही अर्थ हो सकता हैः सहजता। और जब कोई सहज होगा, तभी आनंद को भी उपलब्ध होगा। जहां संघर्ष है, जहां द्वंद्व है। जहां जबरदस्ती है, जोर है, बल है, वहां दुख होगा।

इसके कई आयाम हैं। पहलाः जैसे ही हम जबरदस्ती शुरू करते हैं, वैसे ही हमने अपनी मान्यता को जगत पर आरोपित करना शुरू कर दिया। जैसे ही मैं जबरदस्ती शुरू करता हूं, मैंने यह कहना शुरू कर दिया कि इस जगत के विपरीत हूं मैं। और जिस पर मैं जबरदस्ती करता हूं, मैंने उसकी आत्मा की हत्या शुरू कर दी। मैं उसकी स्वतंत्रता छीन रहा हूं, मैं उसका निसर्ग छीन रहा हूं। उसे मैं अपने अनुसार नहीं चलने दे रहा, मेरे अनुसार चलाने की कोशिश कर रहा हूं। चाहे फिर वह पिता हो, चाहे मां, चाहे गुरु, चाहे राजा, वह कोई भी हो, जो किसी दूसरे को अपनी मर्जी के अनुसार चलाने के लिए बल का प्रयोग कर रहा है, वह हिंसा कर रहा है। क्योंकि हिंसा का एक ही अर्थ होगा कि हम किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग कर रहे हैं, साध्य की तरह नहीं।

जर्मन चिंतक इमेनुअल कांट ने नीति की परिभाषा में इस सूत्र को जोड़ा है। कांट ने कहा है कि एक ही नीति मैं जानता हूं कि किसी मनुष्य के साथ उसे साधन मान कर व्यवहार मत करना। प्रत्येक मनुष्य साध्य है। कोई मनुष्य किसी का साधन नहीं है। क्योंकि जब हम किसी मनुष्य का साधन की तरह उपयोग करते हैं, तभी हमने उस मनुष्य को वस्तु बना दिया। वह मनुष्य नहीं रहा। हमने उसकी आत्मा को इनकार कर दिया।

पुरुष न मालूम कितनी सदियों से स्त्री को अपनी संपत्ति मानते रहे हैं। वह अनीति है। क्योंकि कोई आत्मा किसी की संपत्ति नहीं हो सकती। संपत्ति मानते रहे हैं, इसीलिए युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगा सके। संपत्ति

ही दांव पर लगाई जा सकती है, कोई मनुष्य दांव पर नहीं लगाया जा सकता। किसी मनुष्य को वस्तु मानना ही पाप है। और जब हम जबरदस्ती करते हैं, तब हमने वस्तु माननी शुरू कर दी।

दूसरी बातः जैसे ही मैं जबरदस्ती करता हूं, बल का प्रयोग करता हूं, मैं अपनी शक्ति खो रहा हूं, मैं दीन हो रहा हूं, मैं कमजोर हो रहा हूं। और मेरी दीनता के कारण कोई दूसरा भी समृद्ध नहीं हो रहा। क्योंकि मेरी जबरदस्ती दूसरे को भी पीड़ा में डालती है, उसे भी जबरदस्ती करने को मजबूर करती है। वह भी अपनी शक्ति को व्यर्थ व्यय करेगा। जितनी ज्यादा हिंसा होगी, उतना जीवन का अवसर खोता है व्यर्थ। जितनी कम हिंसा होगी, उतनी जीवन की शक्ति बचती है। और बची हुई शक्ति ही अंतर्यात्रा के काम में आ सकती है।

ध्यान रहे, हिंसक व्यक्ति सदा बाहर की तरफ यात्रा करता है। क्योंकि हिंसक को तो सदा दूसरे का ही ध्यान रखना पड़ता है। और जो हिंसा करता है, वह हिंसा से भयभीत भी होगा। और जो हिंसा करने को तत्पर है, वह दूसरे की हिंसा से डरेगा भी। वह सदा ही दूसरे में उलझा रहेगा। वह हारे या जीते, लेकिन नजर उसकी दूसरे पर रहेगी। और जिन सीढ़ियों से हम यात्रा करते हैं, उन्हीं सीढ़ियों से दूसरे भी यात्रा करते हैं। और जब मैं हिंसा करके किसी की छाती पर बैठ जाता हूं, तो फिर मुझे भयभीत रहना पड़ेगा। यह तो हो भी सकता है कि जिसकी छाती पर मैं बैठा हूं, वह विश्राम को उपलब्ध हो जाए; लेकिन यह नहीं हो सकता कि मैं विश्राम को उपलब्ध हो जाऊं। मुझे तो भयभीत रहना ही पड़ेगा कि जिन उपायों से मैंने उसे नीचे दबा रखा है, वे ही उपाय किसी भी क्षण मेरे खिलाफ काम लाए जा सकते हैं। और शिथिलता का कोई भी क्षण, और मैं नीचे हो सकता हूं और दुश्मन ऊपर हो सकता है। जो हिंसक है, वह दूसरे पर ही उसका ध्यान अटका रहेगा। और जो हिंसक है, वह कभी अभय को उपलब्ध नहीं हो सकता। भीतर की कोई यात्रा संभव नहीं है, जिसका मन दूसरे में उलझा हो।

शक्ति का अपव्यय है; दूसरे में उलझाव है। अपने जीवन के अवसर का अपव्यय है। व्यर्थ ही, उससे कुछ सृजन नहीं होगा। सिर्फ मैं खोऊंगा, रिक्त और समाप्त हो जाऊंगा। जो दूसरे को समाप्त करने की कोशिश करता है, वह स्वयं भी समाप्त हो रहा है उस कोशिश में। दूसरा समाप्त हो पाएगा या नहीं, नहीं कहा जा सकता, लेकिन दूसरे को समाप्त करने में मैं समाप्त हो रहा हूं, यह सुनिश्चित है।

फिर तीसरी बात और ख्याल में ले लें कि हिंसक की दृष्टि विध्वंस की होती है, मिटाने की होती है। हिंसा का मतलब ही है मिटाने की आतुरता। और जो मिटाने में बहुत उत्सुक हो जाता है, वह बनाने की कला भूल जाता है। उसका सृजनात्मक व्यक्तित्व पंगु हो जाता है; विध्वंसात्मक व्यक्तित्व ही रह जाता है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि इस दुनिया में जो लोग बहुत हिंसात्मक हैं, वे बहुत सृजनात्मक हो सकते थे, इसीलिए हिंसात्मक हैं। इस दुनिया में जो बहुत बड़े अहिंसक लोग पैदा हुए हैं, वे भी बहुत बड़े हिंसक हो सकते थे, इसीलिए अहिंसक हैं।

मनसविद हिटलर के जीवन का गहन अध्ययन किए हैं। जरूरी भी है अध्ययन; क्योंकि हिटलर जैसे लोग जमीन पर होते रहें तो आदमी का होना ज्यादा देर तक संभव नहीं रहेगा। हिटलर एक चित्रकार बनना चाहता था; नहीं बन पाया। मूर्तियां गढ़ना चाहता था, सुंदर चित्र बनाना चाहता था; नहीं बना पाया। और मनसविद कहते हैं कि उसकी यह सृजन की आकांक्षा विध्वंस बन गई। फिर आदमी को तोड़ने, मिटाने और नष्ट करने में उसकी सारी शक्ति लग गई। शक्ति एक ही है, चाहे उससे मिटाएं, और चाहे उससे बनाएं। जो नहीं बना पाएगा, वह मिटाने में लग जाएगा। जो मिटाने में लग जाएगा, उसे बनाने का ख्याल ही नहीं आएगा।

साथ ही यह भी ख्याल रखें कि जब कोई दूसरे को मिटाने में लगता है, तो वह अपने को भी मिटा रहा है। समय खो रहा है, शक्ति खो रही है, जीवन चुक रहा है। और जो दूसरे के मिटाने में संलग्न है, वह मिटाना ही सीख जाता है। वह अपने लिए भी आत्मघाती हो जाता है।

हिटलर ने इतने लोगों की हत्या की और अंत में अपनी आत्महत्या की। वह बिल्कुल तार्किक है घटना; ठीक यही अंत होगा। क्योंकि मिटाने वाले को एक ही तर्क आता है, मिटाने का। जब तक वह दूसरे के खिलाफ है, दूसरे को मिटा रहा है। जिस दिन वह पाएगा दूसरा मिटाने को नहीं बचा--वह एक ही बात जानता है, मिटाना--वह अपने को मिटाएगा। इसलिए हिंसक अंततः आत्मघाती हो जाता है।

सृजन दूसरी ही यात्रा है।

लाओत्से परम अहिंसा में भरोसा करता है। लेकिन उसकी अहिंसा के कारण बड़े अलग हैं। वह यह नहीं कहता कि दूसरे को मत सताओ, क्योंकि दूसरे को दुख होगा। वह यह नहीं कहता। वह कहता है, दूसरे को मिटाने में तुम मिट रहे हो, दूसरे को समाप्त करने में तुम समाप्त हो रहे हो। और जिस जीवन में फूल खिल सकते थे आनंद के, वह तुम्हारा जीवन सिर्फ कांटों से भरा रह जाएगा।

इसमें थोड़ी सी विचारणीय है एक बात। आमतौर से अहिंसावादी यही कहते हैं कि दूसरे को दुख मत दो, क्योंकि दूसरे को दुख देना बुरा है। लाओत्से यह नहीं कहता। लाओत्से कहता है, दूसरे को दुख मत दो, क्योंकि इस तरह तुम अपने सुख का, अपने आनंद का अवसर खो रहे हो। लाओत्से बिल्कुल स्वार्थी मालूम पड़ेगा।

लेकिन ध्यान रहे, लाओत्से कहता है कि अगर कोई व्यक्ति ठीक-ठीक स्वार्थी हो जाए तो उससे कोई बुरा काम हो ही नहीं सकता। यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। हम तो सिखाते हैं लोगों को परार्थी होने के लिए, परोपकार के लिए। छोड़ो स्वार्थ को और परार्थ को पकड़ो। लेकिन लाओत्से कहता है, जिसे स्वार्थ का ही पता नहीं, उसे परार्थ का तो कोई पता नहीं होगा। और जो अभी अपने स्वयं का हित भी साधने में समर्थ नहीं है, वह दूसरे का हित साध सकेगा, इस पागलपन में मत पड़ना। सच तो यह है कि जो अपना हित साध लेता है, उस साधने में ही दूसरे का हित सध जाता है। क्योंकि जो अपने आनंद को पकड़ लेता है, वह किसी को दुख देने में इसलिए असमर्थ हो जाता है कि उससे स्वयं का आनंद नष्ट होता है।

धर्म परम स्वार्थ है; लेकिन उससे परम परार्थ घटित होता है। नीति परार्थ की बातें करती है, कुछ घटित नहीं होता। न परार्थ घटित होता है, न स्वार्थ घटित होता है।

लाओत्से कहता है कि अगर व्यक्ति अपने निज का पूरा ख्याल रख ले तो उससे इस जगत में बुरा होगा ही नहीं कुछ। उस ख्याल में ही जीवन के प्रति उसका सदभाव और करुणा गहन हो जाएगी। असल में, दूसरे पर दया वही करता है, जिसे अपने पर दया करना आ गया है। और दूसरे पर दया करना जो नहीं जानता, उसका मतलब ही यह है कि उसे अभी अपने पर दया करने का कोई भी पता नहीं है।

बुद्ध को किसी ने पत्थर फेंक कर मार दिया है। आनंद, उनका शिष्य, क्रोधित हो गया है। और उसने कहा कि मुझे आज्ञा दें तो इस आदमी को मैं रास्ते पर लगाऊं। बुद्ध ने कहा, भूल उसने की है, सजा तू अपने को देगा? आनंद से बुद्ध ने कहा, बहुत समय पहले यह सूत्र मेरी समझ में आ गया कि हम दूसरे की नासमझियों के लिए अपने को दंड देते हैं। यह पत्थर उसने फेंका है, यह उसका काम हुआ। अगर इस पत्थर के सिलसिले में हम भी कुछ करने जाते हैं, तो वह आदमी जीत गया और उसने हमें एक वर्तुल में फंसा लिया। वह हमारा मालिक हो गया। उसने पत्थर मारा और हमारे भीतर उसने क्रिया को जन्म दे दिया; वह हमारा मालिक हो गया। वह जीत गया, हम हार गए। और अब अगर मैं क्रोधित होता हूं, तो उसका पत्थर मारना सफल हो गया। नहीं, बुद्ध ने

कहा कि मैं परम स्वार्थी हूं, मैं अपने सुख को बचाता हूं। वह पत्थर मारे तो भी मेरे सुख को मैं नहीं टूटने देता; मैं अपने आनंद को बचाता हूं।

और एक बार कोई आदमी अपने आनंद को बचाना सीख जाए तो इस दुनिया में उस आदमी से कुछ भी बुरा दूसरे के लिए नहीं हो सकेगा। क्योंकि दूसरे के लिए बुरा करना गहरे में अपने लिए ही गड्ढा खोदना सिद्ध होता है। किसी नीति-शास्त्र के वचन के अनुसार नहीं, निरंतर मनुष्य के अपने ही अनुभव के अनुसार। व्यक्ति के लिए भी और समाज के लिए भी लाओत्से की यही दृष्टि है। यह सूत्र समाज की तरफ इशारा है।

लाओत्से कहता है, "जो ताओ के अनुसार राजा को मंत्रणा देता है, वह शस्त्र-बल से विजय का विरोध करेगा।"

ताओ के अनुसार जो राजा को मंत्रणा देता है, वह शस्त्र-बल का विरोध करेगा। वस्तुतः वह बल का ही विरोध करेगा। वह चाहेगा कि काम बिना बल के हो जाए। और जितना कुशल होगा व्यक्ति, उतने बिना बल के काम करा लेता है। अकुशल अपनी अकुशलता की पूर्ति बल से करता है।

कभी आप किसी कुशल व्यक्ति को देखें--किसी भी काम में--आप पाएंगे, वह बल-प्रयोग न के बराबर करता है। एक कुशल व्यक्ति को कार चलाते देखें, तो आप पाएंगे, वह बल का बिल्कुल प्रयोग नहीं कर रहा, वह ताकत लगा ही नहीं रहा। एक सिक्खड़ को कार चलाते देखें; उसकी सारी शक्ति व्यय हुई जा रही है, पसीना-पसीना हुआ जा रहा है। क्या फर्क है दोनों में? कार कोई बल से नहीं चलती, कुशलता से चलती है। लेकिन कुशलता की कमी हो तो आदमी बल से उसे पूरी करना चाहता है। बल हम लगाते ही हैं वहां, जहां हमारी कुशलता क्षीण पड़ती है, कम पड़ती है।

आप ख्याल करना, इसलिए नया काम करने में आप थक जाते हैं और पुराना काम करने में आप नहीं थकते। पुराना काम कुशल हो गया है। नया काम, आप ताकत लगाते हैं। छोटे बच्चों को लिखते देखें, तो उनका पूरा शरीर अकड़ा हुआ है कलम पकड़ने में। अभी वे कुशल नहीं हैं, अभी सारी ताकत लगा कर वे कुशलता पूरी कर रहे हैं। बच्चे कागज को फाड़ देते हैं, इतना ताकत लगा कर लिखते हैं। ताकत लगाने की कोई जरूरत नहीं है। कई तो बूढ़े भी ऐसे लिखते हैं, पूरी ताकत लगा देते हैं। ताकत का लिखने से कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन भीतर कुशलता की कमी है।

एक झेन फकीर हुआ, लिंची। वह अपने शिष्यों को चित्रकला सिखाता था। वह कहता था कि अगर तुम्हें जरा भी श्रम मालूम पड़े, तो समझना कि अभी तुम कलाकार नहीं हुए। अगर तुम्हें जरा भी श्रम मालूम पड़े कुछ बनाते वक्त, तो समझना अभी कमी है। और जब श्रम बिल्कुल ही न पड़े, जब तुम्हें लगे ही नहीं, कि जैसे तुमने कुछ भी नहीं किया, ऐसे ही तुमने कैनवस पर पेंटिंग बना दी, तो ही जानना कि तुम कुशल हुए हो।

कुशलता बल नहीं मांगती, जीवन का कोई आयाम हो। अकुशलता बल मांगती है। ताओ के अनुसार सलाह देने वाला शस्त्र-बल का विरोध करेगा। क्योंकि वह बताता है कुशलता की कमी है।

"क्योंकि ऐसी विजय, विजयी के लिए भी दुष्परिणाम लाती है।"

और फिर विजय, जो हारता है, उसके लिए तो दुष्परिणाम लाती ही है; जो जीतता है, उसके लिए भी दुष्परिणाम लाती है।

नेपोलियन ने अनेक युद्धों के अनुभव के बाद एक पत्र में लिखा है कि जो हारता है वह तो रोता ही है, लेकिन जो जीतता है वह भी रोता है। क्योंकि चारों तरफ विध्वंस फैल जाता है और हाथ कुछ भी नहीं लगता। सब टूट जाता है, विकृत हो जाता है, और हाथ कुछ भी नहीं लगता।

और जिसे हरा कर हम जीत जाते हैं, ध्यान रहे, जिंदगी बड़ी जटिलता है। आप जब तक उसे हराए नहीं थे, तब तक आपका दुश्मन भी आपको बल देता था। यह थोड़ा कठिन है, लेकिन समझने की कोशिश करें। जिस दिन आप दुश्मन को हरा देते हैं, उस दिन दुश्मन आपको बल नहीं देता, आप भी टूट गए होते हैं।

ख्याल करें, आपका एक दुश्मन आज मर जाए, तो आपकी जिंदगी में उतनी ही कमी हो जाएगी, जितनी किसी मित्र के मरने से होती। इसलिए समझदारों ने तो कहा है कि अच्छा दुश्मन चुन लेना, अच्छा दुश्मन पा जाना बड़ा सौभाग्य है। क्योंकि अच्छे दुश्मन से जो आपका तनाव बना रहता है, सेतु बना रहता है, जो खिंचाव बना रहता है। वह सृजनात्मक हो सकता है। दुश्मन के टूटते ही... ।

इसको ऐसा समझें कि आज अमरीका हार जाए; तो आप सोचते हैं, रूस की गति का क्या होगा? रूस के विकास का क्या होगा? सब शून्य हो जाएगा। या आज रूस हार जाए तो अमरीका के सारे विकास का क्या होगा? शून्य हो जाएगा। वह सारा विकास एक सतत द्वंद्व के बीच तनाव में है। और आज मैं समझता हूं कि रूस और अमरीका इस बात को भलीभांति समझते हैं कि लड़ना उनके हित में नहीं है, लड़ने का पोज बनाए रखना उनके हित में है। लड़ना जरा भी हित में नहीं है, लेकिन एक लड़ने की मुद्रा बनाए रखना हित में है। उसकी शिथिलता खतरनाक हो सकती है।

दुश्मन को मिटा कर आप भी मिट जाते हैं; क्योंकि उस दुश्मन के साथ स्पर्धा में जो-जो निर्मित हुआ था, वह सब गिर जाता है और क्षीण हो जाता है। हारा हुआ तो हारता है, दुख पाता है; जीते हुए को भी दुष्परिणाम हाथ लगते हैं।

"जहां सेनाएं होती हैं, वहां कांटों की झाड़ियां लग जाती हैं। और जब सेनाएं खड़ी की जाती हैं, तो उसके अगले वर्ष ही अकाल की कालिमा छा जाती है। इसलिए एक अच्छा सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है।"

लाओत्से यह कह रहा है कि मजबूरी हो सकती है कभी राज्य के लिए, समाज के लिए; व्यक्ति के लिए कभी भी नहीं। इसे भी थोड़ा ख्याल में ले लें। व्यक्ति के लिए मजबूरी कभी भी नहीं है; लेकिन समाज और राष्ट्र के लिए मजबूरी हो सकती है। क्योंकि एक व्यक्ति का सवाल नहीं है, करोड़ों लोगों का सवाल है। तो राष्ट्र को कभी लड़ने पर भी उतरना पड़ सकता है। तो पहले तो ताओ को मानने वाला युद्ध की सलाह नहीं देगा, सैन्य-शक्ति की सलाह नहीं देगा। और अगर मजबूरी ही हो, तो भी सेनापति अगर होशियार है तो धमकी देकर रुक जाएगा। युद्ध में उतर जाना नासमझ सेनापतियों का काम है। समझदार उस सीमा तक रुक जाएगा, जहां सिर्फ बल का दिखावा होता है, लेकिन बल का संघर्ष नहीं होता।

कल मैं आपसे कह रहा था, पशुओं में सिर्फ बल का दिखावा होता है, संघर्ष नहीं होता। ज्यादा होशियार मालूम पड़ते हैं। निसर्ग शायद उन्हें ज्यादा एक अंतर्दृष्टि दिए हुए है। बल का प्रयोग काफी होता है दिखावे के लिए, लेकिन कभी उसका ठीक प्रयोग नहीं होता। इसके पहले कि खतरा हो, पशु रुक जाते हैं। जैसे ही साफ हो गई बात कि कौन कमजोर है, कौन ताकतवर है, रुकावट आ जाती है।

"सेनापति अपना प्रयोजन पूरा कर रुक जाता है। वह शस्त्र-बल का भरोसा कदापि नहीं करता।"

आमतौर से हम सोचते हैं कि सेनापति शस्त्र-बल का भरोसा करता है; राज्य तो शस्त्र-बल के भरोसे पर ही निर्भर होता है। लेकिन लाओत्से की सलाह, ताओ के अनुसार अगर कभी कोई समाज चलता हो, तो उसके लिए यह है कि भरोसा शस्त्र-बल पर नहीं होना चाहिए। वह अंतिम मजबूरी है, एक आवश्यक बुराई है। न टाली जा सके, ऐसी बीमारी हो सकती है, लेकिन उसका भरोसा नहीं होना चाहिए। जिसका उसे भरोसा है, वह पहले

ही मौके पर उसका उपयोग कर लेगा। और जो समझदार नहीं है, वह जरूरत जब पूरी हो जाएगी तब भी नहीं रुकेगा।

पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ। जापान पर एटम बम गिराने की कोई भी जरूरत न थी। जर्मनी घुटने टेक रहा था; जापान के पैर टूटे जा रहे थे। दो-चार दिन, सात दिन ज्यादा से ज्यादा, और जापान विलीन हो जाता। लेकिन अमरीका को शस्त्र-बल का भरोसा था। एटम हाथ में आ गया था पहली दफा आदमी के, वे उसका उपयोग करना चाहते थे। जरूरत बिल्कुल भी न थी। कोई हिरोशिमा-नागासाकी में एक-एक लाख लोगों के मर जाने की जरा भी जरूरत न थी। लेकिन हाथ में ताकत हो तो नासमझ उसका उपयोग करना चाहेगा।

इसलिए अमरीका का अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता। युद्ध की कोई जरूरत न रह गई थी। जापान हार ही रहा था। और हारते हुए के ऊपर एटम का फेंकना मजबूरी नहीं थी, विलास था। अनावश्यक था। अमरीका के सेनापति भी कहते हैं कि सात दिन से ज्यादा युद्ध आगे जा नहीं सकता था; बात खतम हो गई थी। हां, इससे उलटी हालत हो सकती थी कि जापान जीत रहा होता और न्यूयार्क में अमरीकी फौजें घुटने टेक रही होतीं और उन्हें एटम बम फेंकना पड़ता। वह मजबूरी होती, शस्त्र का भरोसा न होता। लेकिन अमरीका जरा भी खतरे में न था। अमरीकी फौजें जापान की छाती में प्रवेश कर गई थीं। जापान टूट चुका था, उजड़ चुका था। लेकिन इतनी बड़ी ताकत उजड़ने में भी एक सप्ताह का वक्त लेती है। इतनी जल्दी कोई भी आवश्यक नहीं थी। एटम बिल्कुल अनावश्यक था।

और इसीलिए जो बुद्धिमान आदमी हैं, वे इस पाप को गहन पाप मानते हैं। क्योंकि यह उस शत्रु की छाती में छुरा भोंकने जैसा था, जो जमीन पर गिर चुका था और जो हाथ जोड़े पड़ा था और माफी मांग रहा था। उसकी छाती में छुरा भोंकने जैसा था। यह क्षम्य नहीं है। लेकिन यह हुआ क्यों?

यह हो जाने का कारण है। कारण अमरीका की कोई सभ्यता, कोई संस्कृति पुरानी नहीं है, केवल तीन सौ वर्ष! नए से नया, कोई समाज अगर बचकाना हो सकता है, तो वह अमरीका है। तीन सौ वर्ष कोई उम्र होती है जातियों के लिए? जिनका इतिहास तीन सौ वर्ष का हो, उनकी समझ बहुत गहरी नहीं हो सकती। जानकारी बहुत हो सकती है, समझ बहुत नहीं हो सकती। वि.जडम की कमी होगी। तो आज अमरीका के पास जानकारी तो बहुत है, इसीलिए तो एटम भी बन सका। लेकिन समझ नहीं है। समझ न होने के कारण उसका उपयोग हो गया।

लाओत्से कहता है, सेनापति, जो ताओ का भरोसा करता है, जो धार्मिक है, जो राज्य धार्मिक है, वह शस्त्र-बल का भरोसा कदापि नहीं करता। अपना कर्तव्य भर निभाता है, उस पर गर्व नहीं करता। अपना कर्तव्य भर निभाता है, उसकी शेखी नहीं बघारता। अपना कर्तव्य भर निभाता है, उसके लिए घमंड नहीं करता। वह एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप में युद्ध करता है। इफेक्ट्स हिज परपज एज ए रिग्रेटेबल नेसेसिटी। एक खेदपूर्ण आवश्यकता की भांति--एक मजबूरी, एक बुराई, जो करनी पड़ेगी, जिससे बचना मुश्किल है। लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता।

"चीजें अपना शिखर छूकर फिर गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं।"

हिंसा से प्रेम एक बात है, और हिंसा मजबूरी में, बिल्कुल दूसरी बात है। और इस भेद को जो नहीं जानते, वे बड़ी मुश्किलों में समाजों को उलझा देते हैं। इस पर हम थोड़ा ध्यान दे लें। एक तरफ वे लोग हैं, जो हिंसा के लिए दीवाने हैं, मौके की तलाश में हैं। मौका मिल जाए, वे हिंसा करेंगे। फिर वे यह न देखेंगे कि कहां तक जाना जरूरी था। फिर वे वहां तक जाएंगे, जहां तक जा सकते थे। जरूरत का कोई सवाल नहीं है। हिंसा उन्हें खेल हो

जाएगी, हिंसा उनके लिए शिकार हो जाएगी। दूसरे वे लोग हैं, जो दूसरी अति पर चले जाएंगे, जो अहिंसा के लिए पागल हो जाएंगे, और जो हिंसा खेदपूर्ण आवश्यकता है, उसको भी करने में शिथिल हो जाएंगे।

ऐसा हमने इस मुल्क में किया। हमने दूसरी अति छुई। हमने जो खेदपूर्ण हिंसा थी, उसको भी नहीं करेंगे, ऐसा दूसरी अति पर चले गए। लेकिन जब आप खेदपूर्ण हिंसा नहीं करेंगे, तो दूसरा भी नहीं करेगा, इसको मानने का कोई भी कारण नहीं है। सच तो यह है कि आपका न करना दूसरे के लिए निमंत्रण बन जाएगा करने का।

इसलिए जैनों और बौद्धों के प्रभाव के बाद भारत का पतन शुरू हो गया। क्योंकि अहिंसा की अति--कि किसी भी स्थिति में हिंसा नहीं करेंगे--स्वभावतः चारों तरफ से निमंत्रण बन गई हमलावरों के लिए। कि जो लोग भी हमला करना चाहें, उनके लिए भारत से ज्यादा सुविधापूर्ण कोई जगह न रही। इसलिए बहुत क्षुद्र शक्तियों ने भारत को पराजित किया। भारत की कहानी बड़ी अनूठी है। असल में, अध्यात्म के अतिशयपूर्ण प्रयोग की कहानी है। भारत की कहानी अनूठी है। अनूठी कई लिहाज से है।

पहला तो यह कि इतना बड़ा देश--गौरव-सभ्यता के शिखर पर! विज्ञान के संबंध में उस समय पृथ्वी पर कोई भी इतना विकसित नहीं, जितना भारत! आज जो विज्ञान के संबंध में बहुत विकसित हैं, वे उस समय बिल्कुल जंगली, जिनके पास कुछ समझ नहीं। गणित की, ज्योतिष की, धर्म की ऊंचाइयां स्पर्श कीं। संगीत की, कला की साहित्य की ऊंचाइयां स्पर्श कीं। एक शिखर स्वर्ण का! और अचानक भूमिसात हो गया। और जिन्होंने हराया, वे बहुत क्षुद्र थे। उनका कोई नाम जानने वाला भी न था। भारत को नहीं जीता था उन्होंने तो इतिहास में उनका कभी कोई उल्लेख न होता। क्या हुआ? अतिशय कभी-कभी बड़े खतरे हो जाते हैं। भारत एकदम दूसरी अति पर उतर गया।

एक अति हैः जहां जरूरी न हो वहां हिंसा करना, हिंसा को खेल समझ लेना, रक्तपात को रस बना लेना। एक दूसरी अति हैः इतने भयभीत हो जाना, इतने डर जाना कि जहां जरूरत हो जाए, वहां से भी हट जाना।

ध्यान रहे, भारत ने सर्जरी की सबसे पहली खोज की। सुश्रुत ने, जो आज की नवीनतम सर्जरी है उसके सूत्र स्पष्ट लिखे हैं। प्लास्टिक सर्जरी के बाबत भी। लेकिन फिर क्या हुआ? बौद्धों और जैनों के प्रभाव में सर्जरी भी हिंसा मालूम पड़ी। वह भी नहीं करनी चाहिए। किसी की हड्डी काटनी, हाथ काटना, पेट काटना, यह नहीं किया जा सकता। और फिर आदमी को काटना हो, उसकी शरीर की रचना, उसका अस्थिपंजर, वह सब जानना हो, तो मुर्दे भी काटना पड़ेंगे। फिर कुछ पशुओं को भी काट कर जानकारी लेनी पड़ेगी। वह सब नहीं हो सकता। तो बीमारी सही जा सकती है, भयंकर बीमारियां सही जा सकती हैं, लेकिन सर्जरी नहीं की जा सकती। सुश्रुत ने जो खोजा था, अगर सुश्रुत के बाद तीन हजार साल हम उस सूत्र पर चलते, तो पश्चिम की सर्जरी आज बचकानी होती। लेकिन चलने का कोई उपाय न रहा; क्योंकि सर्जरी में, शल्य-क्रिया में हिंसा मालूम पड़ने लगी। वह नहीं की जा सकती।

जैनों ने तो अति कर दी, उन्होंने खेती-बाड़ी बंद कर दी। क्योंकि उसमें हिंसा! इसलिए कोई जैन खेती-बाड़ी नहीं करता। क्योंकि वृक्ष उखाड़ने पड़ेंगे, पौधे उखाड़ने पड़ेंगे, काटने पड़ेंगे। तो पौधे में प्राण हैं।

इसे थोड़ा समझ लें। पौधे को काटना खेदपूर्ण हिंसा है। कोई चाहता नहीं। अगर हम जी सकें बिना पौधे को काटे, तो कोई काटने की जरूरत नहीं है। और फिर अगर मैं न भी काटूं, तो कोई दूसरा मेरे लिए काटेगा। फर्क कहां पड़ता है? जैन गेहूं तो खाएंगे ही। कोई और बनाएगा, कोई और काटेगा। तो इतना ही हुआ कि हिंसा

हम दूसरे से करवा रहे हैं, अपने दलालों से करवा रहे हैं। बाकी जब मैं भोजन ले रहा हूं, जब तक मैं भोजन ले रहा हूं, तो भोजन लेने में जो भी हिंसा होगी, उसका जिम्मा तो मेरा होगा।

तो जैनों ने बंद कर दी। जैन हट गए। जैन इसीलिए सब दुकानदार हो गए, क्योंकि कोई उपाय न रहा। क्षत्रिय थे मूलतः वे; क्योंकि महावीर और जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। तलवार उनके हाथ में ही थी, ऐसे वे पैदा हुए थे। निश्चित ही जब उनके चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, तो उनके मानने वाले अधिक लोग क्षत्रिय होंगे। क्षत्रिय रहने का कोई उपाय न रहा, क्योंकि हिंसा तो की नहीं जा सकती। ब्राह्मण होने का कोई दरवाजा नहीं था; क्योंकि जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। शूद्र कोई होना नहीं चाहता था। इसलिए वणिक होने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया। खेती-बाड़ी की जा नहीं सकती, शूद्र कोई हो नहीं सकता; तो सिर्फ दुकान चलाने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया।

यह जो अति पैदा हो जाती है, यह अति खतरे में ले जाती है--एक से दूसरे खतरे में। कुएं से बचते हैं, खाई में गिर जाते हैं। तो एक शिखर छूकर भारत एकदम नीचे गिर गया। इसलिए भारत के मन में अभी भी हरा है वह घाव। और हमारे मन में ऐसा लगता है कि कोई एक स्वर्ण-शिखर था अतीत में, जिसे हम छूकर हट गए। इसलिए हमारा मन बार-बार पीछे लौट जाता है। उसमें थोड़ी सचाई है। एक शिखर हमने छुआ था। लेकिन होता खतरा तभी है, जब कोई शिखर छू लेता है। उदाहरण दूं तो ख्याल में आ जाए।

जब हम सभ्यता के इतने शिखर पर थे और विलास की सुविधा थी, इस विलास की भी कि हम चाहें तो अहिंसा की अति में चले जाएं। यह भी सिर्फ तभी संभव हो सकता है, जब लोग बहुत खुशहाल हों। तब इतना सोच सकें, इतनी बारीक, सूक्ष्म अहिंसा की बात सोच सकें। तो हम हट गए।

आज अमरीका भी ठीक वैसी हालत में है। आज अमरीका समृद्ध है, संपन्न है। आज उसके बच्चे युद्ध से हटना चाहते हैं। आज अमरीका में जितना, वियतनाम में युद्ध न हो, इसका विरोध है, ऐसा कभी किसी मुल्क में नहीं हुआ कि उसका मुल्क लड़ रहा हो और मुल्क के भीतर इतना भयंकर विरोध हो।

आप थोड़ा सोचें भारत में कि भारत पाकिस्तान से लड़ रहा हो और भारत के सारे युनिवर्सिटी और कालेजों में और सारे युवा-समाज में इसका विरोध हो--कि नहीं, यह लड़ाई गलत है। ऐसा कभी दुनिया में हुआ नहीं; क्योंकि जब मुल्क लड़ता है, तो पूरा मुल्क दीवाना और पागल हो जाता है। और जो दीवाना और पागल नहीं होगा, वह गद्दार और देशद्रोही मालूम पड़ेगा।

अमरीका में यह पहली दफा हो रहा है। होने का कारण है। अति संपन्नता में ही दूसरी अति पर जाने की सुविधा होती है। यह भारत में हुआ। बुद्ध और महावीर के वक्त हम एक शिखर पर पहुंचे। एक ऊंचाई थी। और तब हमने कहा कि हम नहीं लड़ेंगे--मिट जाएंगे, लड़ेंगे नहीं। तब दूसरे को मौका मिल गया। अगर आज अमरीका अपने लड़कों की बात मान ले, तो अमरीका वैसा ही गिरेगा, जैसा भारत कभी गिरा। और हो सकता है लड़के मनवा दें। क्योंकि आज नहीं कल ताकत उनके हाथ में आएगी; आज नहीं कल वे सत्ता में होंगे। और एक अति से दूसरी अति पर मन का जाना बहुत आसान है।

लाओत्से दूसरी अति पर जाने को नहीं कह रहा है। लाओत्से कहता है, एक खेदपूर्ण आवश्यकता के रूप में युद्ध करता है एक सच्चा सेनापति। युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता।

बड़ा कठिन है, युद्ध करना और हिंसा से प्रेम नहीं करना। लेकिन ताओ को मानने वाले लोगों ने चीन में और जापान में इस तरह का सैनिक निर्मित करने का महान प्रयोग किया, जो युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता। अगर आपने समुराई नाम सुना हो, तो जापान में समुराइयों की एक बड़ी जमात पैदा हुई, यह एक

खास तरह के सैनिक का नाम समुराई है। उस सैनिक का नाम समुराई है, जो युद्ध तो करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता। तब इस समुराई की सारी शिक्षा-पद्धति बड़ी अनूठी है। इसे तलवार सिखाने के पहले ध्यान सिखाया जाता है। और इसे युद्ध पर भेजने के पहले स्वयं के भीतर जाना होता है। और यह दूसरे को काटने जाए, उसके पहले इसे उस अनुभव से गुजरना होता है, जहां यह जानता है कि आत्मा काटी नहीं जा सकती।

यह बड़ी कठिन बात है। क्योंकि संन्यासी होना एक बात है, आसान है। सैनिक होना भी आसान है। लेकिन संन्यासी और सैनिक एक साथ होना बहुत कठिन है। समुराई संन्यासी और सैनिक एक साथ है।

कृष्ण ने भी अर्जुन को समुराई बनाने की कोशिश गीता में की है। वह समुराई बनाने की कोशिश है--सैनिक और संन्यासी एक साथ। वे कहते हैं, तू लड़! क्योंकि अगर न लड़े, वह अति होगी। वे यह भी नहीं कहते कि लड़ने को तू जीवन का कोई अंत समझे; वह भी अति होगी। अर्जुन को आसान था, कृष्ण कह देते, काट! कोई आत्मा नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है, आदमी सिर्फ शरीर है। गीता में आगे जाने की जरूरत न थी। अर्जुन को इतना पक्का हो जाता कि आदमी सिर्फ शरीर है, काटने-पीटने में कोई हर्ज नहीं है, वह लोगों को वृक्षों की पंक्ति की भांति काट डालता। अगर उसे कोई भरोसा दिला देता भौतिकवाद का, तो कोई अड़चन न थी, वह सैनिक हो जाता। शुद्ध सैनिक वह था। या अगर कोई उसे भरोसा दिला देता कि हर स्थिति में हिंसा पाप है, तू भाग जा, तो वह बिल्कुल तैयार था भाग जाने को। वह संन्यासी हो जाता।

उसे एक बहुत ही अजीब आदमी से मुलाकात हो गई। वह जो सारथी बना कर बैठा था, उससे ज्यादा अजीब आदमी खोजना मुश्किल है। उसने दोनों बातें कहीं। वह बातें तो महावीर जैसी करने लगा सारथी; आत्मा अमर है, और जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा को पाना है, और मुक्ति--यह बात करने लगा।

वह मार्क्स जैसी बात करते कृष्ण, अर्जुन की समझ में आ जाती; अर्जुन काट देता वैसे ही मजे से, जैसे स्टैलिन ने एक करोड़ लोग काट डाले। कोई अड़चन ही न रही। यह बात अगर पक्की ख्याल में आ जाए कि दूसरी तरफ कोई आत्मा है ही नहीं, सिर्फ शरीर, एक यंत्र है, तो यंत्र को तोड़ने में क्या अड़चन आती है? कोई अंतर-ग्लानि भी नहीं होती, कोई अंतःकरण को पीड़ा भी नहीं होती। अगर मार्क्स मिल जाता तो भी अर्जुन को शांति मिल जाती, वह युद्ध में उतर जाता। या महावीर मिल जाते तो वह तलवार छोड़ कर जंगल चला जाता।

मगर यह जो आदमी मिल गया कृष्ण, इसने दिक्कत में डाल दिया। इसने कहा, व्यवहार तो तू ऐसे कर, जैसे दुनिया में कोई आत्मा नहीं है--काट! और भलीभांति जान कि जिसे तू काट रहा है, उसे काटा नहीं जा सकता। यह दो अतियों के बीच में जो बात थी, बीच में खड़ा हो जा संतुलित, यह अर्जुन को मुश्किल पड़ी। और पता नहीं अर्जुन कैसे इस मुसीबत के बीच अपने संतुलन को उपलब्ध कर पाया।

भारत तो अभी तक नहीं कर पाया। यह कृष्ण की बात बहुत चलती है, गीता इतने लोग पढ़ते हैं; लेकिन भारत से गीता का कोई भी संबंध नहीं है। भारत में या तो अति वाले लोग हैं जो अहिंसा को मानते हैं, और या दूसरी अति वाले लोग हैं जो हिंसा को मानते हैं। लेकिन भारत में अर्जुन जैसा व्यक्तित्व पैदा नहीं हो सका। गीता बिल्कुल ही भारत के सिर पर से चली गई है। उसने कभी हृदय को भारत के छुआ नहीं। हालांकि यह बात उलटी मालूम पड़ेगी; क्योंकि घर-घर गीता पढ़ी जाती है। गीता जितनी पढ़ी जाती है, और कुछ पढ़ा नहीं जाता। गीता लोगों को कंठस्थ है, लेकिन छू नहीं सकी। छू नहीं सकती, क्योंकि बहुत कठिन बात है। सैनिक और संन्यासी एक साथ, इससे ज्यादा कोई कठिन बात दुनिया में संभव नहीं है। यह सर्वाधिक नाजुक मार्ग है।

लाओत्से भी ठीक कृष्ण से सहमत है। लाओत्से कहता है, "वह युद्ध करता है, लेकिन हिंसा से प्रेम नहीं करता।"

और फिर एक बात कहता है, जो बड़े मतलब की है, "चीजें अपना शिखर छूकर फिर गिरावट को उपलब्ध हो जाती हैं।"

लाओत्से कहता है, विजय अगर तुमने पा ली, तो जल्दी ही तुम हारोगे। इसलिए विजय पाना मत, विजय को शिखर तक मत ले जाना। किसी चीज को इतना मत खींचना कि ऊपर जाने का फिर उपाय ही न रह जाए। फिर नीचे ही गिरना रह जाता है। लाओत्से कहता है, सदा बीच में रुक जाना।

अतिवादी कभी बीच में नहीं रुकता, खींचता जाता है। और एक जगह आती है, जहां से फिर नीचे उतरने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाता। आखिर हर शिखर से उतराव होगा ही। लेकिन लाओत्से की बात किसी ने भी नहीं सुनी है कभी। सभी सभ्यताएं अति कर जाती हैं; एक शिखर पा लेती हैं, और गिर जाती हैं। कितनी सभ्यताएं शिखर छूकर गिर चुकी हैं! फिर भी वह दौड़ नहीं रुकती। बेबीलोन, असीरिया, मिस्र अब कहां हैं? एक बड़ा शिखर छुआ, फिर नीचे गिर गए।

अभी भी वैज्ञानिक कहते हैं कि इजिप्त के जो पिरामिड्स हैं, उतने बड़े पत्थर किस भांति चढ़ाए गए, यह अभी भी नहीं समझा जा सकता। कुछ पत्थर गिजेह के पिरामिड में इतने बड़े हैं कि हमारे पास जो बड़ी से बड़ी क्रेन है, वह भी उन्हें उठा कर ऊपर नहीं चढ़ा सकती। बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है! तो फिर इजिप्त उनको आज से कोई छह हजार साल पहले, सात हजार साल पहले, कैसे चढ़ा सका? अब तक यही समझा जाता था कि आदमियों के सहारे। लेकिन उस पत्थर को चढ़ाने के लिए तेईस हजार आदमियों की एक साथ जरूरत पड़ेगी। तो उनके हाथ ही नहीं पहुंच सकते पत्थर तक। तेईस हजार आदमी एक पत्थर को उठाएंगे कैसे? क्या राज रहा होगा? वे पत्थर कैसे चढ़ाए गए?

इजिप्त की पुरानी किताबें कहती हैं कि इजिप्त ने ध्वनि की कीमिया खोज ली थी। और एक विशेष ध्वनि करते ही पत्थर ग्रेविटेशन खो देते थे; उनका जो वजन है, वह खो जाता था। आज कहना मुश्किल है कि यह कहां तक सही है। लेकिन और कोई उपाय भी नहीं है सिवाय यह मानने के कि उन्होंने कुछ मंत्र का, कुछ ध्वनि का उपाय खोज लिया था। चारों तरफ एक विशेष ध्वनि करने से एंटी-ग्रेविटेशन, जो गुरुत्वाकर्षण है, उसकी विपरीत स्थिति पैदा हो जाती थी, और पत्थर उठाया जा सकता था।

यहां पूना के पास, कोई पचास मील दूर, सिरपुर में एक पत्थर है। एक मस्जिद के पास पड़ा हुआ है। जिस दरवेश की, जिस फकीर की वह मजार है, नौ आदमी, ग्यारह आदमी अपनी छिगलियां उस पत्थर में लगा दें और फकीर का नाम लें जोर से, तो अंगुलियों के सहारे वह बड़ा पत्थर उठ आता है सिर के ऊपर तक। बिना नाम लिए ग्यारह आदमी कितनी ही कोशिश करें, वह पत्थर हिलता भी नहीं। पर एक क्षण को वह पत्थर ग्रेविटेशन खो देता है। वैज्ञानिक उसका अध्ययन करते रहे, लेकिन अब तक उसकी कोई बात साफ नहीं हो सकी कि मामला क्या है। उस फकीर के नाम में कोई ध्वनि, आस-पास पत्थर के, निर्मित हो जाती है और पत्थर उठ जाता है।

पर जिन्होंने ध्वनि के सहारे इतने बड़े पत्थर पिरामिड पर चढ़ाए होंगे, वे आज कहां हैं? वे खो गए। एक शिखर छुआ। आज पिरामिड खड़े रह गए हैं, लेकिन उनको बनाने वालों का कुछ भी पता नहीं रहा। असीरिया, बेबीलोन, सब खो गए, जहां सभ्यता जनमी।

प्लेटो ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि इजिप्त से यात्रा करके लौटे हुए एक व्यक्ति ने बताया कि इजिप्त के मंदिर के बड़े पुजारी ने, सोलन ने, उसे बताया है कि कभी एक महाद्वीप परम सभ्यता को उपलब्ध हो गया था। अटलांटिस उस महाद्वीप का नाम था; फिर वह पूरी सभ्यता के साथ समुद्र में खो गया। क्यों खो गया,

इसका कोई कारण आज तक नहीं खोजा जा सका। लेकिन जो भी मनुष्य जान सकता है, वह अटलांटिस की सभ्यता ने जान लिया था। खो जाने का क्या कारण होगा, इस पर लोग चिंतन करते हैं। हजारों किताबें लिखी गई हैं अटलांटिस पर। और अधिक लोगों का यही निष्कर्ष है कि अटलांटिस ने इतनी विज्ञान की क्षमता पा ली कि अपने ही विज्ञान के शिखर से गिरने के सिवाय कोई उपाय नहीं रह गया। वह अपनी ही जानकारी के भार से डूब गया। या तो कोई विस्फोट उसने कर लिया अपनी ही जानकारी से, जैसा आज हम कर सकते हैं।

आज कोई पचास हजार उदजन बम अमरीका और रूस के तहखानों में इकट्ठे हैं। अगर जरा सी भी भूल हो जाए और इनका विस्फोट हो जाए, तो अटलांटिस नहीं, पूरी पृथ्वी बिखर जाएगी। इसलिए आज जहां-जहां एटम बम इकट्ठे हैं, उनकी तीन-तीन चाबियां--क्योंकि एक आदमी का दिमाग जरा खराब हो जाए, गुस्सा आ जाए, किसी का पत्नी से झगड़ा हो जाए और वह सोचे कि खतम करो इस दुनिया को--तो तीन-तीन चाबियां रखी हुई हैं कि जब तक तीन आदमी राजी न हों, तब तक कुछ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन तीन आदमी भी राजी हो सकते हैं। तीन आदमी राजी हो सकते हैं, सारी पृथ्वी मिटाई जा सकती है।

अटलांटिस पूरा डूब गया शिखर को पाकर। ख्याल यह है कि उसका ज्ञान ही उसकी मृत्यु का कारण बना।

अभी इस तरह के पत्थर मिलने शुरू हुए हैं सारी दुनिया में। अब तक उन पत्थरों पर खुदी हुई तस्वीरों का कुछ अंदाज नहीं लगता था। लेकिन अब लगता है। अभी आपके जो चांद से यात्री आकर लौटे हैं, वे जिस तरह का नकाब पहनते हैं और जिस तरह के वस्त्र पहनते हैं, उस तरह के वस्त्र और नकाब पहने हुए दुनिया के कोने-कोने में पत्थरों पर मूर्तियां हैं और चित्र हैं।

अब तक हम जानते भी नहीं थे कि ये क्या हैं। लेकिन अब बड़ी कठिनाई है। जिन लोगों ने ये चित्र खोदे हैं पत्थरों पर, उन्होंने अगर अंतरिक्ष यात्री न देखे हों, तो ये चित्र खोदे नहीं जा सकते। और अगर ये दस-दस हजार साल पुराने चित्र पत्थरों पर जो खुदे हैं, अगर इन्होंने भी अंतरिक्ष यात्री देखे हैं, तो सभ्यताएं हमसे भी पहले काफी यात्राएं कर चुकी हैं, शिखर छू चुकी हैं।

मैक्सिको में कोई बीस मील के बड़े पहाड़ पर चित्र खुदे हुए हैं। वे चित्र ऐसे हैं कि नीचे से तो देखे ही नहीं जा सकते; क्योंकि उनका विस्तार बहुत बड़ा है। बीस मील की सीमा में वे चित्र खुदे हुए हैं, और एक-एक चित्र मीलों तक फैला है। तो नीचे से तो उनको देखने का ही उपाय नहीं है; उनको देखने के लिए सिवाय हवाई जहाज के कोई उपाय नहीं है। और वे चित्र कोई पंद्रह हजार वर्ष पुराने हैं।

तो अब बड़ी कठिनाई है यह कि या तो जिन्होंने चित्र खोदे थे, उन्होंने हवाई जहाज के यात्रियों को देखने के लिए खोदे थे। और अगर हवाई जहाज नहीं था पंद्रह हजार साल पहले, तो इन चित्रों को खोदना भी मुश्किल है। इनके खोदने का कोई प्रयोजन भी नहीं है। क्योंकि इनको कोई देख ही नहीं सकेगा जमीन पर। इतनी दूरी से ही वे चित्र दिखाई पड़ सकते हैं! तो वैज्ञानिक कठिनाई में हैं कि अगर हम यह मानें कि पंद्रह हजार साल पहले हवाई जहाज था, तो हमें यह भ्रांति छोड़ देनी पड़ेगी कि हमने ही पहली दफा हवाई जहाज निर्मित कर लिया है। अगर पंद्रह हजार साल पहले हवाई जहाज था, तो सभ्यताएं हमसे पहले भी शिखर पा चुकी हैं।

वे सभ्यताएं कहां हैं आज? आज उनका कोई नामलेवा भी नहीं है। आज उनका कुछ निशान भी नहीं छूट गया है। ये भी अनुमान हैं हमारे। इनके बाबत भी कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

लाओत्से कहता है, सभी चीजें शिखर पर जाकर नीचे गिर जाती हैं। सभी चीजें! विजय भी शिखर पर जाकर गिर जाती है। सफलता भी शिखर पर जाकर गिर जाती है। यश भी शिखर पर जाकर गिर जाता है।

लाओत्से कहता है, इसलिए बुद्धिमान आदमी कभी किसी चीज को शिखर तक नहीं खींचता। वह गिरने का उपाय है। वह अपने हाथ नीचे उतर आने की व्यवस्था है।

"हिंसा ताओ के विपरीत है। और जो ताओ के विपरीत है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।"

हिंसा अति है; विध्वंसात्मक अति है। और जो अति पर जाएगा, वह नष्ट हो जाएगा। लेकिन लाओत्से यह कहता है कि ताओ के विपरीत है हिंसा, प्रकृति के विपरीत है हिंसा। इसे हम समझने की कोशिश करें।

अगर कोई आपकी हिंसा करे तो अच्छा नहीं लगता। किसको अच्छा नहीं लगता? आपके निसर्ग को, आपकी प्रकृति को। जब आप किसी के साथ हिंसा करते हैं, उसे भी अच्छा नहीं लगता। किसको अच्छा नहीं लगता? उसकी प्रकृति को, उसके निसर्ग को। इस दुनिया में हिंसा किसी को भी प्रिय नहीं है। कोई की भी प्रकृति नहीं चाहती कि हिंसा हो। फिर भी हम हिंसा करते हैं। जो हम दूसरे के साथ कर रहे हैं, वह हम अपने साथ नहीं चाहते कि कोई करे। दूसरा भी नहीं चाहता। और जब सभी के भीतर का निसर्ग नहीं चाहता कि हिंसा हो, तो एक बात तय है कि हिंसा प्रकृति के प्रतिकूल है। और जो प्रकृति के प्रतिकूल है, लाओत्से कहता है, वह नष्ट हो जाता है।

हो ही जाएगा। क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं है। हम चेष्टा कर सकते हैं, लेकिन प्रकृति के प्रतिकूल हम हो नहीं सकते। होने में हम टूटेंगे और नष्ट हो जाएंगे। क्यों? क्योंकि हमारा होना प्रकृति का अंग है। यह मेरा हाथ है, यह मेरे खिलाफ कैसे हो सकता है? अगर यह मेरा अंग है, तो यह मेरे खिलाफ कैसे हो सकता है? एक ही रास्ता है इसके खिलाफ होने का कि इसको लकवा लग जाए, रुग्ण हो जाए। मैं कहूं कि उठो, और यह न उठ सके। यह बीमार हो जाए इतना तो ही मेरे खिलाफ जा सकता है। यह स्वस्थ हो तो मेरे खिलाफ नहीं जा सकता। लेकिन बीमार होकर यह मेरे खिलाफ ही नहीं जा रहा है, यह अपना भी विनाश कर रहा है।

इसलिए जब भी कोई आदमी स्वस्थ होता है तो प्रकृति के प्रतिकूल नहीं होता। हो नहीं सकता। और जब कोई आदमी रुग्ण होता है तो प्रकृति के प्रतिकूल होता है। हम इसे उलटा भी कह सकते हैं कि प्रकृति के प्रतिकूल जो होता है, वह रुग्ण हो जाता है। इसलिए जब कोई प्रकृति के प्रतिकूल चलता है तो अपने हाथ से क्षीण होता है, टूटता है, नष्ट होता है। किसी भी दिशा में प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं है। अनुकूल होकर ही स्वास्थ्य और जीवन है, और अनुकूल होकर ही आनंद और शांति है। और जो परम अनुकूल हो जाता है, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। परम अनुकूलता का अर्थ हम समझ लें तो प्रतिकूलता भी ख्याल में आ जाए।

परम अनुकूलता का अर्थ है कि जिसको यह ख्याल ही नहीं रहता कि मैं हूं। प्रकृति ही है। जब तक मुझे ख्याल है कि मैं हूं, तब तक थोड़ा-बहुत विरोध रहेगा। मैं का भाव बिना विरोध के हो नहीं सकता; थोड़ा-बहुत विरोध रहेगा। तब तक मैं कुछ न कुछ करता रहूंगा। लेकिन जब मैं हूं ही नहीं, प्रकृति ही है मेरे भीतर और बाहर, तो सब विरोध शांत हो गया।

बुद्ध के संबंध में कहा जाता हैः वे ऐसे आते हैं जैसे हवा आए, वे ऐसे चले जाते हैं जैसे हवा चली जाए; न दिखाई पड़ता उनका आना, न दिखाई पड़ता उनका जाना। इसलिए बुद्ध का एक नाम है तथागत। जो आया और गया, लेकिन जिसके आने-जाने की कोई चोट नहीं पड़ती। तथागत का मतलब होता हैः जो ऐसे आए कि पता भी न चले, जो ऐसे चला जाए कि पता भी न चले। बुद्ध के प्यारे से प्यारे नाम में तथागत है। हजारों नाम बुद्ध को दिए गए हैं, लेकिन तथागत की खूबी ही और है। आया, गया, और हमें पता भी न चले।

जब कोई इतना एक हो जाता है प्रकृति के साथ कि जैसे प्रकृति ही उसमें उठती है और प्रकृति ही बैठती है और प्रकृति ही सोती है और प्रकृति ही चलती है, तब परम मुक्ति। इसलिए अहंकार का इतना विरोध है; क्योंकि अहंकार ही आपकी मुक्ति में बाधा है। जितना आपको लगता है मैं हूं, उतना ही आपका आनंद दूर है। और जितना आपको लगे मैं नहीं हूं, उतना ही आनंद निकट है। जिस दिन लगे मैं हूं ही नहीं... ।

इसलिए बुद्ध कहते हैं, जो बुझ जाता है, जैसे दीया बुझ जाए, ऐसा जिसका अहंकार बुझ जाता है, जो मिट जाता है, जैसे बूंद सागर में खो जाए, ऐसा जो खो जाता है, वही मुक्त है।

इसलिए बुद्ध से कभी लोग जाकर पूछते हैं कि मेरी मुक्ति कैसे होगी? तो बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। तुमसे मुक्ति हो सकती है, तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती। कीमती बात है। बुद्ध कहते हैं, तुमसे मुक्ति हो सकती है, तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती। तो यह मत पूछो कि मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, यह पूछो कि मैं मुझसे कैसे मुक्त हो जाऊं।

सारा उपद्रव मेरे मैं का है; क्योंकि मेरा मैं मुझे अलग करता है। अगर मैं अनुकूल हूं तो मेरी कोई हिंसा नहीं रह जाती। फिर जो भी होता है, मैं राजी हूं।

महावीर के कान में कोई खूंटियां ठोंक गया है, लहूलुहान उनका कान हो रहा है। बड़ी मीठी कहानी है। इंद्र ने महावीर को आकर प्रार्थना की है कि मैं आपकी रक्षा का इंतजाम करूं? यह तो बहुत अशोभन है, और हमें पीड़ा होती है कि कोई आपके कान में खीलियां ठोंक जाए। तो महावीर ने कहा कि मैं राजी हूं; जो हो जाए, उसके लिए राजी हूं। क्योंकि अगर मैं राजी नहीं हूं, तो मैं हिंसा करूं या न करूं, मन में हिंसा हो ही जाएगी। अगर मैं राजी नहीं हूं तो हिंसा हो गई; न राजी होना ही हिंसा है। तो मैं राजी हूं। और जो मेरे कानों में खीलियां ठोंक गया है, उसकी बड़ी कृपा है। क्योंकि उसने मुझे एक मौका दिया, जिसका मुझे पहले कोई अनुभव नहीं था। उसने मुझे एक मौका दिया कि जब मेरे कानों में कोई खीलियां ठोंक रहा हो, तब भी मैं राजी होता हूं या नहीं होता हूं। तब भी मैं राजी था। और उसने मुझे मुक्ति का एक अदभुत स्वाद दे दिया, कानों में खीलियां ठोंक कर। अब कोई मेरे कानों में खीलियां ठोंक कर भी मुझे दुखी नहीं कर सकता, इस सत्य को मैं जान गया हूं। अब मुझे कोई दुखी ही नहीं कर सकता, इस सत्य को मैं जान गया हूं। अब मेरी कोई हत्या भी कर दे तो मुझे दुखी नहीं कर सकता। मैं मुक्त हो गया हूं, मैं दूसरों से मुक्त हो गया हूं।

लेकिन दूसरों से कोई तभी मुक्त होता है, जब अपने से मुक्त हो जाए। वह जो अपने से बंधा है, दूसरों से बंधा रहेगा। असल में, दूसरों से हम इसीलिए बंधे हैं कि अपने से बंधे हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कैसे मुक्ति होगी! पत्नी है, बच्चा है, घर है, दुकान है। वे यह कह रहे हैं कि जब तक इसको छोड़ कर न भाग जाएं--पत्नी को, बच्चों को, दुकान को--तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। वे ऐसा बता रहे हैं कि जैसे ये सब उन्हें बांधे हुए हैं।

कौन किसको बांधे हुए है? जब कोई मेरे पास ऐसा आता है, तो मैं उससे पूछता हूं, मानो तुम अभी मर गए तो ये लोग तुम्हें रोक पाएंगे? नहीं, फिर नहीं रोक पाएंगे। तो मैंने कहा, जब ये फिर नहीं रोक पाएंगे, जब ये मृत्यु में नहीं रोक पाएंगे, तो मुक्ति में कैसे रोक पा सकते हैं? इनका बल कितना है?

इनका कोई बल नहीं है। तुम्हीं बहाने कर रहे हो, तुम्हीं कह रहे हो कि यह पत्नी की वजह से मैं अटका हुआ हूं। और पत्नी सोच रही है कि पति की वजह से अटकी हुई है। दोनों किसी की वजह से नहीं अटके हुए हैं, अपनी वजह से अटके हुए हैं। यह आदमी पत्नी के बिना नहीं रह सकता, इसलिए अटका हुआ है। लेकिन यह कह

रहा है कि पत्नी मुझे अटकाए हुए है। और यह सच है कि यह आदमी अगर भाग कर कहीं और चला जाए तो कहीं और पत्नी खोज लेगा; बच नहीं सकता। और तब यह फिर कहेगा कि फिर जाल खड़ा हो गया।

वह जाल कोई खड़ा नहीं कर रहा है, वह जाल इसके भीतर है। वह जाल मैं के साथ होता ही है। तो यह अगर आज दुकान छोड़ दे तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कल एक मंदिर का पुजारी हो जाएगा, या एक आश्रम का मालिक हो जाएगा, तब वही जाल शुरू हो जाएगा।

एक मित्र को मैं जानता हूं; उनको दो हालत में मैंने देखा। एक बार उनके गांव गया था तो वे अपना मकान बना रहे थे। संयोग की बात थी, उनके घर के सामने से निकल गया तो मैं रुक गया। वे छाता लगाए हुए, धूप थी तेज, मकान बनवा रहे थे। कहने लगे, बड़ी मुसीबत है; लेकिन क्या करें, बच्चे हैं, उनके लिए करना पड़ रहा है। और बन जाए एक दफा मकान तो मैं इस झंझट से छूट जाऊं। ये बच्चे-पत्नी इसमें रहें, और मेरा मन तो त्याग की तरफ झुकता जा रहा है। सुना मैंने; क्योंकि कुछ कहने की बात भी नहीं थी।

दस वर्ष बाद उन्होंने घर छोड़ दिया; वे संन्यासी हो गए। फिर मैं उस गांव से निकला, जहां वे आश्रम बना रहे थे। वही आदमी छाता लिए खड़ा था; आश्रम बन रहा था। वे कहने लगे, क्या करूं--उन्हें ख्याल भी नहीं रहा कि दस साल पहले यही बात उन्होंने मुझसे तब भी कही थी--क्या करूं, अब ये शिष्य, और यह सब समूह इकट्ठा हो गया है; इनके पीछे यह उपद्रव करना पड़ रहा है। यह आश्रम बन जाए तो छुटकारा हो जाए।

मैंने उनसे कहा कि दस साल पहले घर बना रहे थे, तब सोचते थे यह बन जाए तो छुटकारा हो जाए; अब आश्रम बना रहे, हो सोचते हो यह बन जाए तो छुटकारा हो जाए। आगे क्या बनाने का इरादा है? बनाओगे तुम जरूर, और यही छाता लिए तुम खड़े रहोगे धूप में। और फर्क क्या पड़ गया कि मकान बन रहा था बच्चों के लिए, और आश्रम बन रहा है शिष्यों के लिए; फर्क क्या पड़ गया? और मुक्त होना था तो मकान बना कर भी हो सकते थे। और मुक्त नहीं होना है तो आश्रम बना कर भी नहीं हो सकते।

आदमी सोचता है दूसरे बांधे हुए हैं, कोई और पकड़े हुए है। नहीं, कोई और पकड़े हुए नहीं है। हम ही अपने को पकड़े हुए हैं। और अपने को बचाने के लिए औरों को पकड़े हुए हैं। क्योंकि उनकी कतार हमारे चारों तरफ हो, तो हम सुरक्षित मालूम होते हैं। लगता है कि कोई भय नहीं है; कोई साथी है, संगी है, मित्र हैं, प्रियजन हैं। लेकिन आदमी बचा अपने को रहा है।

"हिंसा ताओ के विपरीत है।"

लेकिन हिंसा पैदा ही क्यों होती है?

मैं अपने को बचाने की कोशिश करता हूं, उसी में हिंसा पैदा होती है। जिस दिन कोई आदमी अपने को बचाने का ख्याल ही छोड़ देता है। कौन छोड़ सकता है अपने को बचाने का ख्याल? सिर्फ वही छोड़ सकता है, जिसे यह पता चल जाए कि मैं बचा ही हुआ हूं; मुझे कोई काट भी डालेगा तो मुझे नहीं काट पाएगा; मुझे कोई मिटा भी देगा तो नहीं मिटा पाएगा; मुझे कोई जला देगा तो अग्नि मुझे नहीं जला पाएगी। शस्त्र मुझे नहीं छेद सकेंगे, कृष्ण कहते हैं, आग मुझे नहीं जला पाएगी। ऐसी जिसकी प्रतीति सघन हो जाए, फिर वह भयरहित हो गया। जो भयरहित हो जाता है, वह हिंसारहित हो जाता है। जो भयभीत है, वह हिंसारहित नहीं हो सकता।

इसीलिए मैंने कहा, व्यक्ति अहिंसक हो सकता है पूर्णरूपेण, समाज और राष्ट्र पूर्णरूपेण अहिंसक नहीं हो सकते। क्योंकि राष्ट्र का मतलब ही संपत्ति है, राष्ट्र का मतलब ही सुरक्षा का उपाय है, राष्ट्र का मतलब ही सीमा है, पहरा है। व्यक्ति मुक्त हो सकता है, राष्ट्र नहीं हो सकते; तब तक, जब तक कि इतने व्यक्ति मुक्त न हो जाएं कि राष्ट्रों की कोई जरूरत न रह जाए। राज्य तो हिंसक होगा ही। इसलिए जो लोग सोचते हैं हम राज्य को

अहिंसक बना लेंगे, वे गलत सोचते हैं। व्यक्ति अहिंसक हो सकता है। राज्य हिंसा को मजबूरी मानने लगे, इतना काफी है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। राज्य हिंसा से प्रेम न करे, मजबूरी मानने लगे, इतना काफी है। लेकिन बड़ा मुश्किल है। अभी हमने बंगला देश में अपनी फौजें भेजीं; फिर लौट कर हम पद्म-श्री और पद्म-भूषण और महावीर-चक्र बांट रहे हैं। जिन्होंने जितनी ज्यादा हिंसा की है, उनके ऊपर उतने बड़े तगमे लगा रहे हैं। यह सिर्फ मजबूरी नहीं मालूम होती; इसमें रस मालूम होता है।

यह मजबूरी होती तो हम कहते कि चलो, जिन्होंने जितनी ज्यादा हिंसा की है, वे तीर्थयात्रा करके अपने पाप का प्रक्षालन कर आएं। अगर मजबूरी होती तो हम कहते कि अब तुम जाओ, काशीवास करो कुछ दिन, ध्यान करो, और अपना जो पाप हो गया, उसके लिए परमात्मा से प्रार्थना करो कि मजबूरी में हुआ, हमारा कोई रस न था। तो माणेक शा को हमें छुट्टी दे देनी थी कुछ दिन के लिए, तीर्थ जाने के लिए; केदार, बद्री, कहीं जाकर बैठ जाओ, और जो हो गई है बात, मजबूरी थी, करनी पड़ी है, उसका प्रायश्चित्त कर लो। लेकिन हम चक्र और पदवियां बांट रहे हैं। इसमें रस मालूम पड़ता है। यह हिंसा मजबूरी नहीं मालूम पड़ती, यह आवश्यक बुराई नहीं मालूम पड़ती; इसमें कुछ गौरव मालूम पड़ता है।

राज्य इतना ही कर ले कि हिंसा को मजबूरी मान ले तो बड़ी बात है। व्यक्ति अहिंसक हो सकता है, राज्य हिंसक रहेगा। लेकिन मजबूरी में हिंसक हो जाए, तो लाओत्से कहता है, वह राज्य धार्मिक हो गया।

ध्यान रहे, बड़ी चर्चा चलती है कि राज्य को धार्मिक होने का क्या अर्थ। कोई राज्य मुसलमान है, तो वह सोचता है धार्मिक है; कोई राज्य ईसाई है, तो वह सोचता है ईसाई है। हमारा जैसा मुल्क का राज्य है, जो सोचता है सेक्यूलर है, धर्म-निरपेक्ष है, तो वह सोचता है धर्म से हमारा कोई लेना-देना नहीं। न तो ईसाई, न हिंदू, न मुसलमान राज्य धार्मिक होते हैं। धार्मिक राज्य का एक ही अर्थ हैः हिंसा जिस राज्य के लिए मजबूरी है। फिर वह चाहे हिंदू हो, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई, कोई फर्क नहीं पड़ता।

लेकिन जिस राज्य के लिए हिंसा में मजा है और जो प्रतीक्षा कर रहा है हिंसा करने की, मौका मिले तो हिंसा करेगा--आक्रमण के नाम से, सुरक्षा के नाम से। और इतिहास बड़ा अनूठा है। दुनिया में जब भी दो लोग लड़ते हैं, दोनों ही मानते हैं कि वे सुरक्षा कर रहे हैं। आक्रमण मानने को कोई कभी राजी होता नहीं। अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी ने यह नहीं कहा कि हमने आक्रमण किया है। इसलिए सभी मुल्कों का जो सुरक्षा मंत्रालय है, वह डिफेंस कहलाता है। बड़े मजे की बात है, किसी मुल्क में कोई सेना है ही नहीं। सभी डिफेंस डिपार्टमेंट हैं, वे सब सुरक्षा ही करते हैं। तो फिर आक्रमण कौन करता है? कोई आक्रमण करता ही नहीं, सभी सुरक्षा करते हैं। युद्ध कैसे होता है? हालत उलटी मालूम पड़ती है। मालूम पड़ता है कि दोनों आक्रमण करते हैं। और कहीं दुनिया में किसी राज्य के पास सुरक्षा का मंत्रालय नहीं है, सभी के पास आक्रमण के मंत्रालय हैं। लेकिन बेईमानी है। और बेईमानी अपने को छिपाती है।

लाओत्से के हिसाब से, अगर राज्य हिंसा को मजबूरी समझता हो, गौरव न लेता हो; निंदा मानता हो, ग्लानि अनुभव करता हो, पश्चात्ताप करता हो; करना पड़े, मजबूरी हो जाए, कोई रास्ता न निकले, तो जाता हो; लेकिन वहीं रुक जाता हो जहां प्रयोजन पूरा हो जाए; और प्रयोजन भी पूरा हो जाए तो भी अनुभव करता हो कि एक बुरा काम करना पड़ा, ऐसी प्रतीति होती हो, तो वह राज्य धार्मिक है। अन्यथा सभी राज्य अधार्मिक हैं।

"और जो ताओ के विपरीत है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।"

विनाश का अर्थ ही, असल में, धर्म के विपरीत होना है। जो धर्म के विपरीत है, वह विनष्ट हो जाता है। लेकिन कैसे? आपको ख्याल में भी नहीं आएगा। हालतें तो उलटी दिखती हैं। जो धर्म के विपरीत हैं, वे काफी विकसित होते मालूम पड़ते हैं। जो धर्म के विपरीत है, वह काफी फलता-फूलता मालूम पड़ता है। और धार्मिक को देखें तो दीन-हीन, पिटा-कुटा मालूम पड़ता है। लाओत्से और सारे शास्त्र कहते हैं दुनिया के कि जो धर्म के विपरीत है वह नष्ट हो जाता है, और जो धर्म के अनुकूल है वह बढ़ता चला जाता है। पर दिखाई तो उलटा पड़ता है।

लोग रोज मुझे कभी न कभी आकर कह जाते हैं कि फलां आदमी बेईमान, झूठ, सब तरह से भ्रष्ट, और सफल हो रहा है। और वे यह भी कह जाते हैं कि मैं ईमानदारी से चल रहा हूं, सचाई से चल रहा हूं, और असफल हो रहा हूं। कहां है न्याय?

समझाने वाले भी हैं उनको। वे कहते हैं कि परमात्मा के राज्य में देर है, अंधेर नहीं है; जरा रुको।

कब तक रुकें वे? और पक्का अंधेर दिखाई पड़ता है। और देर है अगर तो इतनी लंबी है कि इस जन्म में तो कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। अगले जन्म का कोई पक्का नहीं है। और जब अभी जो चल रहा है, वह पहले भी चल रहा था, और भी पहले चल रहा था। क्योंकि यह शिकायत पुरानी है। हजारों-हजारों साल से यह शिकायत है आदमी की कि जो बुरा आदमी है वह सफल हो रहा है, नष्ट हो रहा है भला आदमी। और ये सब लाओत्से और कृष्ण और महावीर और बुद्ध कहते हैं कि वह जो धार्मिक है वह नष्ट नहीं होता, वह जो अधार्मिक है वह नष्ट होता है। तब जरा सोचना पड़े। या तो ये गलत कहते हैं, या हमारे विश्लेषण में कहीं भूल है।

हम जिसको धार्मिक कहते हैं, वह भी धार्मिक नहीं है--एक बात। और वह जो कहता है कि मैं सच बोल रहा हूं, ईमानदार हूं, वह भी ईमानदार नहीं है और सच नहीं बोल रहा है। हो सकता है, बोल रहा हो। जहां तक तथ्य की बात है, हो सकता है आप सच बोल रहे हों। लेकिन सच बोलने के कारण और अभिप्राय पर सब निर्भर करता है। इसलिए आप सच बोल रहे हों कि आप इतने भयभीत आदमी हैं कि झूठ बोले तो फंसने का डर है। अगर डर न हो तो आप झूठ बोलें। अगर आपको पक्का आश्वासन दिला दिया जाए कि कोई अदालत आपको पकड़ेगी नहीं, कोई कानून आपको सजा नहीं देगा, परमात्मा की अदालत में भी आपका बड़ा स्वागत-सत्कार होगा, आप झूठ बोल सकते हैं। फिर आप सच बोलेंगे?

फिर भी जो आदमी सच बोलेगा, वही सच बोल रहा है। और अगर यह भी कहा जाए कि सच बोलने वाला नरक में सड़ेगा और आग में जलाया जाएगा, और जहां भी सच बोलोगे, कष्ट पाओगे, फिर भी जो आदमी सच बोल रहा है, वही सच बोल रहा है। जो प्रयोजन से बोल रहा है, ये जो आदमी आते हैं जो कहते हैं कि मैं सच बोल रहा हूं और अभी तक सफलता नहीं मिली, इनको रस सफलता में है, सत्य में बिल्कुल नहीं है। इसीलिए ये परेशान हैं, ये देखते हैं कि आदमी झूठ बोल रहा है और सफल हो रहा है! सफलता में इनका भी रस है, लेकिन डरपोक हैं, भयभीत हैं, झूठ बोल भी नहीं सकते; और सफलता भी वैसी चाहते हैं, जैसा झूठ बोलने वाला पा रहा है।

लेकिन झूठ बोलने वाला क्यों सफलता पा रहा है? समझ लें यह भी कि जो आदमी सच बोल रहा है, उसकी सचाई में ईमानदारी नहीं है। मान लें कि उसका जो ह्नास हो रहा है, वह उसके ही कारण हो रहा है। यह झूठ बोलने वाला आदमी क्यों सफल हो रहा है?

चीजें जटिल हैं। और कोई चीज एक कारण से नहीं होती, अनेक कारण से होती है। जो आदमी झूठ बोल कर सफल हो रहा है, उसमें और भी कुछ होगा--साहस होगा। साहस गुण है। झूठ दुर्गुण है, लेकिन साहस गुण

है। और साहस इतना बड़ा गुण है कि झूठ भी हो तो भी साहस सफल हो जाता है। और साहसहीनता इतना बड़ा दुर्गुण है कि सच भी हो तो उसको भी डुबा लेता है। अगर हम गौर से आदमी का विश्लेषण करें, तो जो आदमी भी सफल होता दिखाई पड़ रहा हो, कुछ न कुछ पता चलेगा कि गुण है, जो उसे सहारा दे रहा है। और जो आदमी असफल होता दिखाई पड़ रहा है, कितना ही ईमानदार दिखाई पड़े, कुछ न कुछ दुर्गुण मिलेगा, जो उसे डुबा रहा है।

धर्म समस्त सदगुणों का जोड़ है। अधर्म समस्त दुर्गुणों का जोड़ है। मात्रा पर निर्भर करता है। लेकिन एक बात तय है कि अधर्म हारता है, टूटता है, बिखरता है; क्योंकि वह प्रकृति के प्रतिकूल है।

कई बार बुरा आदमी हंसते हुए मिल जाता है और अच्छा आदमी रोता हुआ ही मिलता है। ऐसी अच्छाई भी क्या अच्छाई है जिसमें से रोना ही निकलता है! और ऐसी बुराई में भी कुछ खूबी है जिसमें से हंसना तो निकल आता है! जब अच्छा आदमी हंसता हुआ मिले--चाहे हार गया हो, तो हार में भी आनंदित हो--तभी जानना कि कोई धार्मिक आदमी है। धार्मिक आदमी हारना जानता ही नहीं; क्योंकि हार में भी जीत ही उसे दिखाई पड़ती है। धार्मिक आदमी असफलता को पहचानता ही नहीं; क्योंकि सभी असफलताएं उसके द्वार आते-आते सफलताएं दिखाई पड़ने लगती हैं। धार्मिक आदमी असंतोष से परिचित ही नहीं है; क्योंकि उसके पास वह कला है कि जो भी चीज उसे छुएगी, वह संतोष बन जाती है।

और इससे विपरीत अधार्मिक आदमी है। वह कितना ही सफल हो, जिस दिन सफलता उसके घर आती है, असफलता हो जाती है। जिस दिन वह पा लेता है झूठ से, बेईमानी से कुछ, उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। वह कितना ही बड़ा महल बना ले, वह उस महल में सो नहीं पाता। वह कितना ही बड़ा महल बना ले, वह महल उसका नहीं होता। जिस महल में सो न पाता हो आदमी, वह उसका अपना है? और कितना ही धन इकट्ठा कर ले, उसके भीतर की निर्धनता में कोई कमी नहीं आती। वह मांगे ही चला जाता है, वह चोरी किए ही चला जाता है, वह दुख उठाए ही चला जाता है।

मेरे हिसाब में धार्मिक आदमी सफल होता है; क्योंकि असफलता उसके पास आते ही सफलता हो जाती है। उसके देखने के ढंग में, उसके जीने के ढंग में, वह कीमिया, वह कला है कि वह जो भी छूता है वह स्वर्ण हो जाता है। अधार्मिक आदमी के जीने के ढंग में ही वह भूल है कि वह सोने को भी इकट्ठा कर लेता है तो मिट्टी हो जाती है। उसकी सब सफलताएं भी, आखिर में उसे मालूम पड़ती हैं, उसे कुछ भी नहीं दे गईं। वह रिक्त ही जीता है और रिक्त ही मरता है। तो इसका मतलब यह हुआ कि आप जरा और ढंग से सोचें। अगर आप शांत हों, आनंदित हों, और आपको लगता हो कि जीवन एक प्रफुल्लता है, तो समझना कि आप धार्मिक आदमी हैं। अगर इसके विपरीत हों, तो समझना कि धर्म के नाम पर आप अपने को धोखा दे रहे हैं। अगर आप दुखी हों, परेशान हों, पीड़ित हों, उदास हों, जीवन एक संताप हो, तो समझना कि आप अधार्मिक आदमी हैं। भला आप मंदिर नियमित जाते हों, गीता रोज पढ़ते हों, कुरान पर सिर टेकते हों, तो भी आप अधार्मिक आदमी हैं। हम उलटा लें तो आसानी हो जाएगी।

मैं एक गुरुकुल में गया। तो गुरुकुल के सारे अध्यापक इकट्ठे हुए और उन्होंने मुझसे कहा कि आप हमें कुछ समझाएं; अनुशासन टूटता जा रहा है, और गुरुओं को कोई सम्मान नहीं देता, अब क्या किया जाए? तो मैंने उनसे कहा कि मेरी परिभाषा पहले आप समझ लें। मैं उसे गुरु कहता हूं, जिसे लोग सम्मान देते ही हैं। और अगर किसी गुरु को सम्मान नहीं देते तो उसे समझ लेना चाहिए वह गुरु नहीं है। और जो सम्मान पाने की चेष्टा करता है वह तो गुरु है ही नहीं; क्योंकि गुरुता उसे ही उपलब्ध होती है जिसे सम्मान से कोई संबंध नहीं रह

जाता। तो उन्होंने कहा, लेकिन शास्त्रों में तो कहा है कि गुरु को सम्मान देना चाहिए। मैंने कहा, आपने शास्त्र ठीक से नहीं पढ़े। शास्त्र कहते हैं, सम्मान जिसको दिया जाता है वही गुरु है।

तो धार्मिक आदमी नष्ट नहीं होता। इसको आप थोड़ा उलटा करके समझेंगे तो बहुत आसानी हो जाएगी। जो नष्ट नहीं होता, वह धार्मिक आदमी है। और जो नष्ट हो रहा है, होता रहता है, वह अधार्मिक है। अगर आप नष्ट हो रहे हैं, तो आप समझना कि अधार्मिक हैं। अगर नहीं हो रहे हैं और आपको लगता है कुछ नष्ट नहीं हो रहा है, सृजन हो रहा है, निर्मित हो रहा है, जन्म रहा है, विकसित हो रहा है मेरे भीतर, तो समझना कि आप धार्मिक आदमी हैं।

इस तरह अगर सोचेंगे तो बड़ी आसानी हो जाएगी, और अपनी जिंदगी की परख और कसौटी हाथ में आ जाएगी। और एक बार निकष हाथ में आ जाए जिंदगी को जांचने का तो बहुत शीघ्र आदमी को पता चल जाता है कि जहां मैं निसर्ग के प्रतिकूल जाता हूं, वहीं दुख में पड़ता हूं; और जहां निसर्ग के अनुकूल जाता हूं, वहीं मेरा आनंद फलित हो जाता है।

निसर्ग के साथ होना आनंद है, और निसर्ग के विपरीत होना दुख है। निसर्ग में डूब जाना स्वर्ग है, और निसर्ग की तरफ पीठ करके भाग खड़े होना नरक है।

आज इतना ही। कीर्तन करें, फिर जाएं।

बांसठवां प्रवचन

युद्ध अनिवार्य हो तो शांत प्रतिरोध ही नीति है

Chapter 31 : Part 1

Weapons Of Evil

Of all things, soldiers are instruments of evil,
Hated by men.
Therefore the religious man (Possessed of Tao) avoids them.
The gentleman favours the left in civilian life,
But on military occasions favours the right.
Soldiers are weapons of evil.
They are not the weapons of the gentleman.
When the use of soldiers cannot be helped,
The best policy is calm restraint.

अध्याय 31 : खंड 1

अनिष्ट के शस्त्रास्त्र

सैनिक, सबसे बढ़ कर, अनिष्ट के औजार होते हैं,
और लोग उनसे घृणा करते हैं।
इसलिए, ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष उनसे बचता है।
सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष अर्थात
शुभ के लक्षण की ओर झुकता है;
लेकिन युद्ध के मौकों पर वह दक्षिणपक्ष अर्थात
अशुभ के लक्षण की ओर मुड़ जाता है।
सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र होते हैं,
वे सज्जनों के लिए शस्त्र नहीं हो सकते।
जब सैनिकों का उपयोग अनिवार्य हो जाए,
तब शांत प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है।

इस सूत्र को समझने के लिए कुछ प्रारंभिक बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बातः वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी का सारा विकास अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा हुआ है; मनुष्य की सारी प्रगति हिंसा के कारण हुई है। और मनुष्य अगर सारे पशुओं में जीत पाया है, तो बुद्धिमानी के कारण नहीं, ज्यादा हिंसा करने की क्षमता के कारण। ऐसे वैज्ञानिक भी हैं, जो कहते हैं, मनुष्य की बुद्धि हिंसा करने के कारण ही विकसित हुई है।

इसे थोड़ा हम समझ लें, क्योंकि लाओत्से की बात इसके बिल्कुल विपरीत है। तभी इसके ठीक आमने-सामने लाओत्से की बात समझना आसान भी होगा, उचित भी।

शायद आपको पता न हो, डार्विन से लेकर जे.बी.एस.हाल्डेन तक जिन लोगों ने विकास के संबंध में गहन अध्ययन किया है, वे एक बहुत अजीब नतीजे पर पहुंचे हैं। और वह नतीजा यह है कि आदमी का सारा विकास उसके अंगूठे के कारण हुआ। सुन कर थोड़ी हैरानी होगी, लेकिन बात में सचाई है। अकेला आदमी ही ऐसा पशु है, जिसका अंगूठा उसकी अंगुलियों के विपरीत काम कर सकता है। जैसे आपका पैर का अंगूठा है, वह अंगुलियों के विपरीत काम नहीं कर सकता; इसलिए पैर से आप कोई चीज पकड़ नहीं सकते। और जब पकड़ ही नहीं सकते, तो फेंक नहीं सकते। आदमी के हाथ का अंगूठा अंगुलियों के विपरीत काम करता है--अंगुलियां एक दिशा से और अंगूठा दूसरी दिशा से। इस विरोध के कारण आप हाथ में कोई चीज पकड़ सकते हैं। और इस विरोध के कारण ही आप किसी चीज को फेंक सकते हैं। फेंकने की ताकत ही अस्त्र-शस्त्र का निर्माण बनती है।

कोई जानवर शस्त्रों का उपयोग नहीं कर सकता; क्योंकि पकड़ ही नहीं सकता। और जब पकड़ ही नहीं सकता, तो फेंक भी नहीं सकता। जो जानवर उपयोग कर सकते हैं अंगूठे का, जैसे बंदर, चिम्पांजी, बबून--बंदरों की जातियां हैं। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी और बंदर सजातीय हैं। क्योंकि उनके पास भी अंगूठा है, जो अंगुलियों के विपरीत थोड़ा सा काम कर सकता है। ज्यादा नहीं। आदमी के मुकाबले गतिमान नहीं है, लेकिन थोड़ी-बहुत चीजें वे पकड़ सकते हैं; थोड़ी दूर तक चीजें फेंक भी सकते हैं।

आदमी का अंगूठा उसकी हिंसा का आधार है। वैसे आदमी कमजोर है। यह भी हम ठीक से समझ लें कि आदमी को इतने हिंसक होने की क्या जरूरत पड़ गई होगी। क्योंकि आदमी से ज्यादा हिंसक कोई पशु नहीं है। कोई पशु खेल में हिंसा नहीं करता; सिर्फ आदमी शिकार करता है और खेल में हिंसा करता है। कोई पशु अपनी ही जाति में हिंसा नहीं करता; आदमी आदमी को मारने में बड़ा रस लेता है। कोई पशु अकारण हिंसा नहीं करता; आदमी अकारण हिंसा करता है, और पीछे कारण खोज लेता है। पशुओं में कोई बड़े युद्ध नहीं होते, कोई विश्वयुद्ध नहीं होते। होने की कोई संभावना नहीं है।

क्या कारण है आदमी के इतने हिंसक हो जाने का? और क्या कारण है आदमी के अस्त्र-शस्त्र की खोज का?

कारण बड़ा अजीब है--वह भी ख्याल में नहीं आता--क्योंकि आदमी कमजोर है। सारे पशुओं में आदमी कमजोर से कमजोर पशु है। अगर निहत्थे आप एक कुत्ते से भी लड़ें तो नहीं लड़ सकते। न तो आपके पास उतने मजबूत दांत हैं और न उतने नुकीले नाखून। जानवरों के पास दांत और नाखून उनके अस्त्र-शस्त्र हैं, उनके औजार हैं। आदमी बिल्कुल कमजोर है। निहत्था आदमी किसी जानवर से जीत नहीं सकता। यही कमजोरी हिंसा की खोज बन गई। क्योंकि आदमी के पास नाखून न थे, इसलिए उसे छुरी-तलवारें बनानी पड़ीं। वे नाखून की पूरक हैं। आदमी के पास इतने बड़े दांत न थे जितने पशुओं के पास थे, तो उसे औजार के दांत बनाने पड़े, जो पशुओं की छाती में घुस जाएं, उनका कलेजा बाहर खींच लें।

आदमी कमजोर है, इसलिए हिंसक हो गया। यह बड़े मजे की बात है। इसका मतलब यह होगा कि जब तक आदमी की भीतरी कमजोरी न मिट जाए, तब तक वह अहिंसक नहीं हो सकता। और तब इसका मतलब भी यह हुआ कि जितना बड़ा हिंसक आदमी हो, समझना कि उतना भीतर कमजोर है। और इसका यह भी मतलब हुआ कि जितना शक्तिशाली मनुष्य होगा, उतना अहिंसक हो जाएगा।

भय के कारण हिंसा पैदा हुई। आदमी भयभीत है, तो उसने हिंसा खोजी। और उसके पास हाथ थे, अंगूठा था, कमजोर मनोदशा थी--उसने चीजें फेंक कर मारनी शुरू कर दीं। उसके अस्त्र-शस्त्रों की खोज शुरू हो गई। फिर आदमी ने पत्थर के औजार से लेकर एटम बम तक की यात्रा की।

यह भी थोड़ा समझने जैसा है कि जैसे-जैसे आदमी के पास ताकतवर अस्त्र-शस्त्र बनते चले गए, वैसा-वैसा आदमी और कमजोर होता चला गया। आज से दस हजार साल पहले की कब्रों में अगर हम आदमी को देखें, तो वह शरीर की दृष्टि से हमसे बहुत मजबूत था। हमारे पास एटम बम हैं। अगर हम दस हजार साल के पहले के आदमी से युद्ध करें, तो वह हमसे जीत नहीं सकेगा। बाकी वह हमसे शरीर में मजबूत था। अगर हम अस्त्र-शस्त्रों को अलग कर दें और निहत्था लड़ें, तो हम पीछे के आदमियों से जीत नहीं सकते। आज भी जो जंगल में आदिवासी रह रहा है, उससे हम जीत नहीं सकते। शारीरिक रूप से वह ताकतवर है। क्यों?

एक दुष्ट-चक्र है। कमजोर आदमी कमजोरी के कारण हिंसा के अस्त्र खोजता है। फिर हिंसा के अस्त्र जितने मिल जाते हैं, उतनी ही ताकत की जरूरत कम होती चली जाती है, तो वह कमजोर होता चला जाता है। जिस दिन हमारे पास सब तरह के स्वचालित यंत्र होंगे, उस दिन आदमी बिल्कुल कमजोर होगा।

जो लोग पैदल चलते थे, उनके मुकाबले हमारे पैर कमजोर हैं। होंगे ही। क्योंकि हम पैदल तो चलने का कोई काम ही नहीं कर रहे हैं। पैर का कोई उपयोग नहीं है। जिन चीजों का उपयोग खोता चला जाता है, वे कमजोर होती चली जाती हैं। अब हमने कंप्यूटर खोज लिया है। जल्दी ही आदमी के मस्तिष्क की ज्यादा जरूरत नहीं रह जाएगी, और आदमी का मस्तिष्क भी कमजोर होता चला जाएगा। जिस चीज का हम यंत्र बना लेते हैं, उसकी फिर हमारे शरीर में कोई जरूरत नहीं रह जाती।

कमजोरी के कारण आदमी हिंसक हुआ। हिंसक होने के कारण और कमजोर होता चला गया। एक तरफ बड़ी ताकत है हमारे हाथ में कि हम लाखों लोगों को एक सेकेंड में मिटा दें; और दूसरी तरफ हम इतने निहत्थे हैं कि एक छोटा सा जानवर भी हम पर हमला कर दे तो हम सीधा उससे जीत नहीं सकते। हमारा बड़े से बड़ा सेनापति भी निहत्था जीत नहीं सकता एक साधारण जंगली पशु से।

ये तथ्य ख्याल में ले लेने जरूरी हैं। सब हिंसा परिपूरक है कमजोरी की।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक एडलर ने इस सदी में बहुत महत्वपूर्ण विचार प्रस्तावित किया था। और वह था कि जिंदगी निरंतर परिपूरक की खोज करती है। इसलिए जिन लोगों में कोई कमी होती है, वे उस कमी की पूर्ति के लिए कुछ ईजाद करते हैं। अक्सर यह होता है--अक्सर--कि जो लोग किसी दृष्टि से हीन अनुभव करते हैं अपने को, वे किसी दूसरी दिशा में श्रेष्ठ होने की कोशिश करके पूर्ति कर लेते हैं। कुरूप आदमी हो, तो वह किसी दूसरी दिशा में अपनी कुरूपता की पूर्ति खोजता है--वह बड़ा कवि हो जाए, कि बड़ा चित्रकार हो जाए, कि बड़ा संगीतज्ञ हो जाए, कि बड़ा नेता हो जाए--वह कुछ हो जाए, ताकि उसको ऐसा न लगे कि मैं हीन हूं।

दुनिया के राजनीतिज्ञों का जीवन अगर हम खोजें तो बड़ी आश्चर्य की बात मालूम पड़ेगी। वे किसी न किसी रूप में बहुत हीनता से पीड़ित थे। लेनिन के पैर, कुर्सी पर बैठता था, तो जमीन तक नहीं पहुंचते थे। पैर

उसके छोटे थे, ऊपर का हिस्सा बड़ा था। और बचपन से लोग उससे कहते रहे थे कि तुम क्या करोगे जिंदगी में, तुम साधारण सी कुर्सी पर भी बैठ नहीं सकते हो! तो उसने सोवियत रूस के सिंहासन पर बैठ कर दिखला दिया कि साधारण कुर्सी तो कुछ भी नहीं है, मैं बड़े से बड़े सिंहासन पर बैठ सकता हूं।

मनसविद कहते हैं कि वह जो पैर जमीन को नहीं छूते थे, वह जो हीनता थी, लेनिन सदा पैर छिपा कर बैठता था। जब वह सिंहासन पर बैठ गया--तब भी--तब भी वह किसी के सामने कुर्सी पर एकदम से नहीं बैठ सकता था; क्योंकि पैर उसके ऊपर उठ जाते थे। वह उसके लिए दीनता की बात थी। वह उसके लिए कठिनाई हो गई।

हिटलर के संबंध में अब वैज्ञानिकों ने जो खोज-बीन की हैं, वे बहुत सी बातें बताती हैं। वह अनेक तरह की बीमारियों से परेशान था और उन सारी बीमारियों की परेशानी और हीनता उसे पागल बना दी। वह किसी दूसरी दिशा में सिद्ध करके बता देगा कि वह हीन नहीं है।

जो भी इनफीरियारिटी से, हीनता से पीड़ित होते हैं, वे किसी दिशा में सुपीरियर, श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इस लिहाज से मनुष्य सबसे ज्यादा हीन पशु है--भौतिक शक्ति में। और उसने सब पशुओं से श्रेष्ठ होने की कोशिश करके अपने को सिद्ध भी कर दिया है कि वह श्रेष्ठ है। और जिन-जिन चीजों की कमी थी, उसने परिपूर्ति कर ली है। हाथ कमजोर थे, तो उसने अस्त्र बना लिए। शरीर कमजोर था, तो उसने मकान बना लिए, किले बना लिए। उसने सब तरह से अपनी सुरक्षा की है। वैज्ञानिक कहते हैं कि इसी हिंसा के बल पर, आदमी जो है आज तक, वह बन पाया है। पर इसके अब खतरे भी हैं। यह बात सच है कि आदमी जो भी बन पाया है, वह हिंसा के कारण ही बन पाया है। अगर लाओत्से या महावीर या बुद्ध ने आज से बीस हजार साल पहले आदमी को अहिंसा समझा दी होती और आदमी मान लिया होता, तो आदमी आज कहीं होता ही नहीं। अगर जंगल के आदमी को अहिंसा समझाने वाले लोग मिल गए होते, तो जंगली जानवर उसे कभी का साफ कर चुके होते।

इसलिए आज से बीस हजार साल पहले कोई महावीर पैदा नहीं हुआ। हो भी नहीं सकता था। ध्यान रहे, महावीर के पैदा होने के लिए वह स्थिति जरूरी है, जब हिंसा जरूरी न रह गई हो। तभी अहिंसा की बात की जा सकती है। इसलिए महावीर के इसके पहले पैदा होने का कोई उपाय नहीं। न लाओत्से का। ख्याल करें, लाओत्से, महावीर, बुद्ध, सुकरात, अरस्तू, प्लेटो, सभी का समय एक है। सारी जमीन पर यह आज से पच्चीस सौ साल पहले ये लोग पैदा हुए। इनको और पीछे नहीं हटाया जा सकता है। क्योंकि पीछे तो अहिंसा की बात ही करने का कोई अर्थ नहीं हो सकता था; पीछे तो हिंसा जीवन की अनिवार्यता थी।

लेकिन जो अनिवार्यता थी कल, वही बाद में कठिनाई बन जाएगी।

आज वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी ने कोई दस लाख साल में हिंसा से अपने को विजेता घोषित किया; पशुओं को हरा डाला और वह एकछत्र मालिक हो गया। दस लाख साल में उसके जीवाणुओं की आदत हिंसा की हो गई। अब हिंसा की कोई जरूरत नहीं है; लेकिन उसकी आदत हिंसा की है। यही आज की तकलीफ है।

आज की सारी बड़ी से बड़ी पीड़ा यही है कि आपकी बनावट जिस रास्ते से हुई है, वह रास्ता समाप्त हो गया। अब न तो आप जंगली जानवरों से लड़ रहे हैं; न आप अंधेरी रात में किसी गुहा में बैठे हुए हैं। न आज आपके दांत और नाखून की कोई जरूरत है। और उनके विस्तार का तो कोई काम नहीं है। लेकिन आदमी के सेल्स, उसके शरीर के जीवाणुओं में बिल्ट-इन, बना हुआ प्रोग्राम है। दस लाख साल में आपके जीवाणुओं ने जो सीखा है, वे आपकी जिंदगी में भूल नहीं सकते। उनको दस लाख साल लगेंगे भूलने में।

तो जो लोग विज्ञान की तरह से सोचते हैं, जैसे स्किनर और दूसरे विचारक, वे कहते हैं, आदमी को अहिंसक बनाने का तब तक कोई उपाय नहीं, जब तक हम उसके जेनेटिक, उसके जीवाणुओं के मूल आधार को न बदल दें। तब तक आदमी को अहिंसक बनाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आदमी पैदा ही होता है, हिंसा का प्रोग्राम उसमें छिपा हुआ है, ब्लू-प्रिंट उसके भीतर है। जंगल नहीं रहा, संघर्ष नहीं रहा, हिंसा का उपयोग नहीं रहा; लेकिन आदमी की बनावट, उसके शरीर का ढांचा हिंसा के लिए है, उसकी ग्रंथियां हिंसा के लिए हैं। उसकी सारी संरचना हिंसक की है। और इसीलिए जिंदगी में बड़ी तकलीफ है।

वह तकलीफ यह है कि आप हिंसा करना चाहते हैं और कर नहीं पाते। तब आप भीतर उबलते हैं, परेशान होते हैं, जैसे एक ज्वालामुखी भीतर जल रहा हो। फिर यह ज्वालामुखी आपकी पूरी जिंदगी को विषाक्त कर देता है। क्योंकि यह जहां नहीं जरूरत थी, वहां भी आग गिर जाती है आपके हाथ से। न भी गिराएं तो भीतर जलती है।

दो बातें घटित होती हैं। एक तो आप जलते हुए लावा बन जाते हैं। इसलिए आप ऐसा मत सोचना कि आप कभी-कभी क्रोध करते हैं। सचाई उलटी है; आप सदा ही क्रोध में होते हैं, कभी-कभी ज्यादा प्रकट हो जाता है, कभी-कभी छिपाए रखते हैं। शांत होना मुश्किल है आपके लिए, आप अशांत ही होते हैं। लेकिन जब बहुत अशांत हो जाते हैं, तब आपको पता चलता है। असल में, बुखार में रहने की आपकी आदत है।

अगर आप गौर करें तो आप पाएंगे कि आप चौबीस घंटे क्रोध में हैं, और तलाश में हैं कि कहां से क्रोध बाहर निकल जाए। चौबीस घंटे आपके भीतर हिंसा का रस है--छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक। छोटा बच्चा भी, एक चींटा चल रहा हो, उसको तोड़-मरोड़ कर नष्ट कर देगा। स्कूल चला जा रहा है, कुत्ते को पत्थर मार देगा। उसे हो क्या रहा है उसके भीतर?

यह बच्चा जंगल में पैदा होना चाहिए था। इसके भीतर के सेल को कोई खबर नहीं है कि अब जंगल में नहीं है। इसका भीतर का सेल बिल्कुल आपकी शिक्षा, संस्कृति से अपरिचित है। वह अपना काम पूरा कर रहा है। उसे कोई प्रयोजन नहीं है कि दुनिया बदल गई है चारों तरफ। उसी हिंसा के कारण बदल गई है; लेकिन वह हिंसा गहरी बैठ गई है। स्किनर कहता है, कोई आशा नहीं है, जब तक हम आदमी की जनन-प्रक्रिया को न बदल दें और उसके मूल सेल में प्रवेश करके हिंसा के तत्वों को अलग न कर दें।

लेकिन वह अभी शायद जल्दी आसान नहीं होगा। अभी हमने एटम में प्रवेश किया है; वह मृत अणु है। और जीवित अणु में प्रवेश करने में अभी बहुत समय लगेगा। क्योंकि जीवित अणु को तोड़ते ही वह मृत हो जाता है। जब तक हम ऐसी कला न खोज लें वैज्ञानिक कि जीवित अणु टूट कर भी मृत न हो, तब तक हम उसे बदल न सकेंगे।

लेकिन ज्यादा देर नहीं लगेगी। सौ साल ज्यादा से ज्यादा, और बीस साल कम से कम। इस सदी के पूरे होते-होते आसार हैं कि हम आदमी के जीवाणु को तोड़ लेंगे, जैसे हमने अणु को तोड़ लिया।

लेकिन इतने से बात हल नहीं होती। तब बड़े खतरे हैं। अगर हम जीवाणु को बदल सकते हैं तो हम आदमी को ही नष्ट कर देंगे। क्योंकि जीवाणु को बदलने का मतलब यह हुआ कि हम जैसे आदमी चाहेंगे वैसे आदमी पैदा करेंगे। कौन चाहेगा? कौन निर्णय करेगा कैसे आदमी हों?

निश्चित ही, राजनीतिज्ञ निर्णय करेंगे; ताकत उनके हाथ में है। राजनीतिज्ञ पसंद नहीं करेंगे कि बुद्धिमान लोग पैदा हों। क्योंकि समाज जितना बुद्धिहीन हो, राजनीतिज्ञ उतना ही बड़ा मालूम पड़ता है। राजनीतिज्ञ नहीं चाहेगा कि बहुत स्वतंत्र विचार के लोग पैदा हों। क्योंकि स्वतंत्र विचार विद्रोह का जन्मदाता है।

राजनीतिज्ञ चाहेगा आज्ञाकारी, अनुशासनबद्ध गुलाम पैदा हों। और अगर आदमी के जेनेटिक सेल को बदला जा सके, तो राजनीतिज्ञ अपने अनुयायियों की एक जमात पैदा कर लेगा, जिसमें गुलाम आदमी होंगे जिनके पास कोई आत्मा नहीं होगी। ज्यादा कुशल होंगे, लेकिन आदमी होने की बात विलीन हो गई होगी। यंत्रवत होंगे।

शायद हम इसके लिए राजी भी न हों कि यह किया जाए। तब क्या उपाय है?

लाओत्से, महावीर और बुद्ध जो कहते हैं अहिंसा की बात, उनकी बात में सार तो है। क्योंकि मनुष्य हिंसा के द्वारा पशु से ऊपर उठा और मनुष्य हुआ। अब हिंसा के ही द्वारा और ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है। पशुओं का युद्ध ही समाप्त हो चुका है। आदमी और पशु के बीच अब कोई संघर्ष नहीं है। अब तो संघर्ष आदमी और आदमी के बीच है। इसीलिए आदमी आदमी के साथ हिंसा कर रहा है। क्योंकि हिंसा उसे करनी है। पशुओं से कोई संघर्ष नहीं रहा, और संघर्ष करने की वृत्ति उसके भीतर है, तो आदमी आदमी से लड़ता है। बहाने करता है--कभी हिंदू-मुसलमान से, कभी ईसाई-मुसलमान से, कभी कम्युनिस्ट-गैर-कम्युनिस्ट से, कभी हिंदुस्तान-पाकिस्तान से, कभी अमरीका-वियतनाम से--ये सब बहाने हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से तो आदमी लड़ना चाहता है। क्योंकि लड़े बिना उसे राहत नहीं मिलती। वह बेचैन है भीतर। और किससे लड़ने जाए? या तो पशुओं से लड़ता रहे।

इसलिए एक आप मजे की बात देखेंगे। पशुओं के शिकारी आमतौर से भले आदमी होते हैं। अगर आपकी शिकारी से दोस्ती है, तो आप पाएंगे, वह बहुत मिलनसार और अच्छा आदमी है। क्योंकि सारी हिंसा वह पशुओं के साथ निकाल लेता है; आदमियों के साथ हिंसा निकालने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जिनको हम सज्जन कहते हैं, जो चींटी भी न दबाएंगे, वे भले आदमी नहीं मालूम होते। उनके साथ रहना दुखद मालूम होगा। उनके साथ घंटे भर रहना बोर्डम, ऊब पैदा करेगा। अगर उनके साथ महीने भर रहना पड़े तो आप आत्महत्या का विचार करने लगेंगे। सज्जनों से दूर ही रहना अच्छा मालूम पड़ता है। वे भारी पड़ते हैं; वे भारी पड़ते हैं। क्यों?

उबलती हुई हिंसा उनके भीतर भरी है। वही उनका बोझ है। और वे तरकीबों से उसे निकालते रहते हैं। वे आपको न मारेंगे लकड़ी उठा कर, लेकिन विचारों से आप पर हमला करते रहेंगे। वे आपकी छाती में छुरा नहीं भोंकेंगे, लेकिन ऐसे शब्द भोंक देंगे जो छुरे से भी गहरे चले जाते हैं। वे आपको गाली न देंगे, लेकिन तरकीब से बता देंगे कि आप आदमी, अभी आदमी नहीं हो।

सभी साधु--तथाकथित--यही समझा रहे हैं लोगों को कि तुम पतित हो, पापी हो, अपराधी हो। उनका सारा खेल ही एक है कि दूसरा अपराधी सिद्ध हो जाए। दूसरे को नीचा दिखाने में उनकी हिंसा निकल रही है। हिंसा बहुत रूपों में निकल सकती है। दूसरे को चोट पहुंचाना अनेक तरह से हो सकता है। एक नजर निंदा की, और हिंसा हो जाती है। एक साधु-महात्मा के पास आप सिगरेट पीते चले जाएं, तब उनकी नजर देखें। तब वह नजर बता देगी कि तलवार इतनी बुरी तरह नहीं काटती।

मैंने सुना है कि पुरी के शंकराचार्य से एक आदमी मिलने गया। पुरी के शंकराचार्य की प्रशंसा में लिखे गए एक लेख में मैंने पढ़ा। जिसने लिखा है, उसने जरा भी नहीं सोचा कि क्या लिख रहा है। बीस-पच्चीस लोग, उनके भक्त, पास बैठे थे। उस आदमी ने शंकराचार्य से पूछा कि ब्रह्म को कैसे पाया जाए, कुछ रास्ता बताएं। शंकराचार्य ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। वह आदमी फुल पैंट, शर्ट पहने हुए था। वह अपराध की बात थी। उसके उत्तर में शंकराचार्य ने कहा कि जनेऊ, यज्ञोपवीत पहने हुए हो?

वह आदमी डर गया; नहीं पहने हुए था। तो शंकराचार्य ने कहा, तो तुम समझते हो कि ऋषि-मुनि हमारे नासमझ थे? बिना यज्ञोपवीत के और ब्रह्मज्ञान की खोज शुरू कर दी!

वे बीस-पच्चीस जो नासमझ वहां इकट्ठे होंगे, वे बड़े प्रसन्न हुए होंगे; क्योंकि वे यज्ञोपवीत पहने हुए थे। और वह आदमी अचानक निंदित... । उस आदमी को लगा होगा, जमीन फट जाए तो मैं समा जाऊं। यह कहां फंस गया! यह प्रश्न मैंने कहां से पूछा!

लेकिन अभी तो यह शुरुआत थी। शंकराचार्य ने कहा, मैं यह भी पूछना चाहता हूं कि पेशाब खड़े होकर करते हो कि बैठ कर? क्योंकि फुल पैंट पहने हुए हो, बैठ कर करना बहुत मुश्किल पड़ेगा। खड़े होकर पेशाब करते हो और ब्रह्मज्ञान की कोशिश कर रहे हो?

इसको क्या कहिएगा? इससे बड़ी हिंसा और कुछ हो सकती है? इस आदमी के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, वह सिर्फ सज्जन ही कर सकते हैं ऐसा दुर्व्यवहार! लेकिन हमें पता नहीं चलता कि दूसरे को बुरा दिखाने की चेष्टा में जो रस है, वही हिंसा है। दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा में जो रस है, वही हिंसा है।

आदमी हिंसा से पशुओं से जीता। और हिंसा अगर बनी रही तो आदमी अपने से ही हार जाएगा। आज जो खतरा है, वह हिंसा के कारण ही है। क्योंकि हमारे पास इतने साधन हो गए हैं कि अगर हिंसा की हमारी वृत्ति जारी रहती है तो आदमी इस जमीन पर ज्यादा देर नहीं रहेगा। हम अपना आखिरी अध्याय लिख रहे हैं। इतिहास आखिरी किनारे खड़ा है। हिंसा से ही हम जीत कर आए हैं, लेकिन अब हिंसा ही हमारी मौत बनेगी। क्योंकि वह जो आदत हमने सीख ली है, उसके दो परिणाम हो रहे हैं।

एक तो हमें रोज हिंसा चाहिए। ख्याल करें, हर पंद्रह वर्ष में हमें एक बड़ा युद्ध चाहिए। दस-पंद्रह साल में हम इतनी हिंसा इकट्ठी कर लेते हैं कि बड़ा युद्ध न हो तो निकास नहीं होता। और एक-एक आदमी को दो, चार, आठ दिन में क्रोध और हिंसा का उपाय चाहिए। नहीं तो आग जलने लगती है और आदमी बुखार से ग्रस्त हो जाता है। निकास चाहिए! तो हम निकालते रहते हैं। यह जो इकट्ठी होती हिंसा है, यह कितने रूपों में आज निकल रही है, उसे देखें। नाम, बहाने; विद्यार्थी शिक्षकों पर निकाल रहे हैं; बेटे बाप पर निकाल रहे हैं। पुरुष सदा से स्त्रियों पर निकालते रहे हैं; अब पश्चिम में स्त्रियां पुरुषों पर निकाल रही हैं। ऐसा समझ में पड़ता है कि कारण न भी हो... ।

अभी मैं एक हिप्पी-विचारक की एक किताब पढ़ रहा हूं। किताब का नाम हैः डू इट। किताब में लेखक ने सुझाव दिया है कि जो भी कानून हो, उसे तोड़ो। इसकी फिक्र मत करो कि क्यों तोड़ रहे हो। तोड़ना ही लक्ष्य है। जिसको भी मना किया जाता हो, वह काम करो; इसकी फिक्र मत करो कि उसका क्या फल होगा। उसे तोड़ना ही लक्ष्य है। लेखक ने सुझाव दिया हैः किताबें जला दो, बाइबिल जला दो, चर्चों में आग लगा दो, यूनिवर्सिटीज को फूंक डालो! क्यों? तो वह कहता है, क्यों का सवाल नहीं है। आग क्रांति है। और हमें सब जला डालना है, ताकि हम सब फिर से शुरू कर सकें।

उसने एक बड़ी मजे की बात कही है। उसने यह कहा है कि हमें कुछ चीज शुरू करने का मौका ही नहीं बचने दिया लोगों ने। पुराने लोग सभी कुछ कर गए हैं। हमें कुछ करने का मौका नहीं है। सब जला दो! ताकि हम फिर से शुरुआत कर सकें।

यह जो युवक कह रहा है, यह कोई एक युवक की बात नहीं है। आज यूरोप और अमरीका में लाखों युवक इस बात से राजी हैं। बड़ी अजीब बातें!

अभी मैं एक छोटी पुस्तिका देख रहा था, जिसमें सुझाव दिया गया है कि तुम्हें जो पहली साध्वी मिले, उसके साथ व्यभिचार करो। जो पहली नन, साध्वी मिल जाए, उसके साथ तत्काल व्यभिचार करो। क्यों?

उस लेखक ने कहा है कि दुनिया ने गरीबों की क्रांतियां देखी हैं अब तक। तो गरीब कुछ पाने के लिए क्रांति करता है, स्वभावतः। अमरीका उस क्रांति को देखेगा, जो अमीरों के लड़कों की क्रांति है। वे कुछ पाने को क्रांति नहीं करते; कुछ मिटाने को, कुछ खोने को, नष्ट करने को क्रांति करते हैं।

तो अभी कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के कैंपस में उन्होंने एक राल्स रायस गाड़ी नई खरीद कर आग लगाई, होली जलाई। खरीद कर नई गाड़ी। और जब पत्रकारों ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तो उन्होंने कहा, हम सिर्फ तुम्हारे सिंबल को, तुम्हारे प्रतीक को, राल्स रायस को आग लगा रहे हैं। न्यूयार्क एक्सचेंज में जाकर लड़कों ने डालर के नोटों में आग लगाई और डालर लुटाए। लोगों ने पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे प्रतीक को नष्ट कर रहे हैं। किसलिए नष्ट कर रहे हो? क्रोधित हैं, हम सिर्फ क्रुद्ध हैं।

हमारी समझ में नहीं आ सकती यह बात; लेकिन जल्दी आ जाएगी समझ में। क्योंकि अगर क्रोध बौखला जाए और कारण न मिले तो क्या करेगा? बच्चे स्कूल तोड़ रहे हैं, फर्नीचर मिटा रहे हैं, कांच तोड़ रहे हैं। हम सोचते हैं, शायद कोई वजह है। कोई वजह नहीं है। आदमी हिंसक है। और आदमी को हिंसा के अब उपाय नहीं हैं।

मनसविद कहते हैं कि जो लोग लकड़ी काटते हैं जंगल में, पत्थर तोड़ते हैं, उनकी हिंसा पत्थर तोड़ने, लकड़ी काटने में निकल जाती है। जब सांझ को आठ घंटे लकड़ी काट कर कोई लौटता है, तो पत्नी से प्रेम से मिलता है, बच्चों के साथ गपशप करता है। उसकी हिंसा वह जंगल में निकाल आया है। लेकिन एक आदमी आठ घंटे दफ्तर में बैठ कर घर चला आ रहा है। हिंसा कहीं निकली नहीं, भरा हुआ आ रहा है। यह घर निकालेगा। यह रास्ते खोजेगा घर जाते ही से कि इसकी हिंसा निकल जानी चाहिए। जो आदमी पत्थर तोड़ रहा है, उसकी हिंसा निकल रही है। पत्थर तोड़ने वाला आदमी अचानक पत्थर नहीं तोड़े तो कुछ और तोड़ेगा। तोड़े बिना उसे मजा नहीं आएगा।

एक तो परिणाम यह हो रहा है कि हिंसा उबल कर व्यर्थ, अकारण टूटती है। और दूसरा परिणाम यह हो रहा है कि यह जो अकारण टूटती हिंसा है, इसकी मौजूदगी के कारण भीतर के सब रस-स्रोत विषाक्त हो जाते हैं। आदमी प्रेम भी करता है तो उसमें भी हिंसा समाविष्ट हो जाती है। आदमी किसी को गले भी लगाता है तो उसमें भी दूसरे को मरोड़ डालने का, तोड़ डालने का भाव समाविष्ट हो जाता है। क्योंकि जो भीतर छिपा है, वह सब तरफ छा जाएगा।

इसलिए अगर दो प्रेमियों को प्रेम करते देखें, और अगर वे थोड़े ईमानदार हों और अपने को समझते हों, तो वे भी समझ पाएंगे कि उनके प्रेम में भी थोड़ी हिंसा है। दो प्रेमी चुंबन लेते-लेते एक-दूसरे को काटने भी लगेंगे, दांत भी गड़ा देंगे। वात्स्यायन ने तो, दांत गड़ाया नहीं जिसने, उसने प्रेम किया ही नहीं, ऐसा लिखा है। जब तक दांत के निशान न छूट जाएं प्रेयसी पर या प्रेमी पर, तब तक भी कोई प्रेम है! वात्स्यायन ने तो लिखा है कि नाखून कैसे बना कर रखना चाहिए प्रेमी को कि जब वह मांस में गड़ा दे, तो निशान छूट जाएं, रक्त प्रकट हो जाए। नख-दंश प्रेम की प्रक्रियाओं में एक बात उसने बताई।

अभी वात्स्यायन की किताब पश्चिम में काफी पढ़ी जा रही है। पूरब में तो अब कोई पढ़ता नहीं है। उसका कारण है। पूरब में यह किताब तब लिखी गई थी, जब हम भी समृद्ध थे। और हमारी भी हिंसा कहीं मौका नहीं पाती थी, तो हमने प्रेम में भी निकाली थी हिंसा। आज वात्स्यायन और पंडित कोक की किताबें सारी दुनिया की

भाषाओं में अनुवादित होकर प्रचारित हो रही हैं। और पश्चिम के लोग आह्लादित होते हैं पढ़ कर वात्स्यायन को कि गजब के लोग थे हिंदू भी! क्या-क्या प्रेम की तरकीबें उन्होंने हजारों साल पहले निकाल दी थीं!

लेकिन नाखून का गड़ाना किस अर्थ में प्रेम हो सकता है? इसी अर्थ में हो सकता है कि प्रेम के बहाने थोड़ी सी हिंसा बह गई। तो फिर आदमी होशियार है। फ्रांस में हुआ मार्क्विस दि सादे, तो उसने सोचा जब नाखून गड़ाने से इतना प्रेम होता है, तो फिर उसने तैयार कर लिए लोहे के नाखून! और वह अपने पास एक छोटी सी थैली रखता था, जिसमें कोड़ा, लोहे के नाखून और और औजार रखता था--प्रेम के औजार। और बड़ा मजा तो यह है कि प्रेयसियां उसकी बहुत थीं; मार्क्विस था। और उसकी प्रेयसियों का कहना है कि जिसने मार्क्विस दि सादे का प्रेम पा लिया, फिर दूसरे का प्रेम फीका मालूम पड़ेगा। पड़ेगा ही। क्योंकि वह नग्न करके कोड़े मारता और लोहे के नाखून शरीर में गड़ाता। और स्त्रियों ने कहा है कि पहले तो यह बहुत घबड़ाने वाली बात मालूम पड़ती, लेकिन पीछे इसमें रस आने लगता। और उसकी इस हिंसा से, उसके कोड़े के मारने से, उसके लोहे के नाखून गड़ाने से पैशन जागता, वासना जाग कर उद्दाम हो जाती।

यह मार्क्विस दि सादे विक्षिप्त है, पागल है। लेकिन सभी लोग थोड़ी-बहुत मात्रा में वैसे ही हैं। कोई लोहे के नाखून खोज लाता है, यह सिर्फ आविष्कारक बुद्धि है। कोई अपने ही नाखून से काम चलाता है, यह जरा गैर-आविष्कारक बुद्धि है। और अगर इस हिंसा को लोग प्रेम में रोक लेते हैं तो फिर यह दूसरे मार्गों से निकलती है। इसलिए पति-पत्नी दिन-रात लड़ते रहते हैं। मां-बाप, बेटे-मां, बेटे-पिता दिन-रात लड़ते रहते हैं। यह संघर्ष भी इसी कारण है कि वह जो हिंसा भीतर भरी है, उसे निकास का कोई भी उपाय नहीं है, वह कहीं भी बह रही है। अब झरना कहीं भी फूट कर बह रहा है।

मनुष्य तब तक मनुष्य नहीं हो पाएगा, जब तक वह इस भीतर की हिंसा से मुक्त न हो जाए। दो उपाय हैं। एक तो स्किनर और दूसरे वैज्ञानिक जो कहते हैं कि हम आदमी के सेल को बदल दें। वह तो कुछ हितकर मालूम नहीं पड़ता। हो भी सके तो भी करने योग्य नहीं है; क्योंकि उसके साथ ही आदमी मर जाएगा।

आदमी के भीतर जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना घटती है, वह स्वेच्छा से घटती है। और जब स्वेच्छा का कोई उपाय न हो, तो जो भी घटता है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। अगर आप क्रोध को स्वेच्छा से छोड़ देते हैं, तो आप में करुणा पैदा होती है। और अगर क्रोध के सेल और हारमोन अलग कर दिए जाएं और ग्रंथियां काट दी जाएं, तो आपमें करुणा पैदा नहीं होती, सिर्फ आप क्रोध की दृष्टि से नपुंसक हो जाते हैं।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। अगर क्रोध के ऊपर कोई स्वेच्छा से उठता है तो क्रोध की शक्ति ही करुणा बनती है। अगर क्रोध को कोई काट ही डालता है सिर्फ शरीर के तल पर तो भीतर चित्त और आत्मा के तल पर तो क्रोध की ग्रंथि मौजूद ही रहेगी। शरीर के तल पर कट जाने से सिर्फ आप वैसी हालत में हो जाएंगे कि एक आदमी हमला करना चाहे, उसके हमने दोनों हाथ काट दिए हों, तो हमला न कर सके। आपकी हालत वैसी हो जाएगी, जैसे एक व्यक्ति को हम ब्रह्मचारी कहें, क्योंकि हमने उसके वीर्य का सारा संस्थान काट डाला। वह ब्रह्मचारी नहीं है। उसके ब्रह्मचर्य का कोई अर्थ ही नहीं है। और वह ब्रह्मचारी होना भी चाहे तो अब बहुत मुश्किल है होना। क्योंकि अब वह जगह ही न रही, जिसके ऊपर उठ कर वह स्वेच्छा की घोषणा कर सकता था।

इसलिए बुद्ध, महावीर और लाओत्से कहते हैं कि इसकी संभावना है कि आदमी स्वेच्छा से ऊपर उठ सके। और जिस दिन आदमी स्वेच्छा से अपनी हिंसा के ऊपर उठता है, उसी दिन वस्तुतः आदमी का जन्म होता

है। जब तक हम हिंसा से भरे हैं, हम एक तरह के पशु हैं, जो पशुओं से लड़ता रहा है। जिस दिन हम हिंसा से शून्य होते हैं, मुक्त होते हैं, उस दिन हम पशुओं के बाहर निकल जाते हैं। उस दिन हम पशु नहीं रह जाते।

इसलिए अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

लाओत्से कहता है, "सैनिक, सबसे बढ़ कर, अनिष्ट के औजार हैं।"

क्यों सैनिक को अनिष्ट का औजार कहा जाए? इसीलिए कि हिंसा पशुता है। अगर हिंसा पशुता है, तो ही सैनिक अनिष्ट का औजार है। अगर हिंसा पशुता नहीं है, तो फिर सैनिक अनिष्ट का औजार नहीं, बल्कि श्रेष्ठ का साधन है।

नीत्शे ने कहा है; क्योंकि नीत्शे बिल्कुल उलटा सोचता है। नीत्शे सोचता है, सैनिक मनुष्य के जीवन का सर्वश्रेष्ठ फूल है। तो नीत्शे कहता है कि सैनिक को देख कर मेरी आत्मा विस्तीर्ण हो जाती है, फैल जाती है; साधु को देख कर सिकुड़ जाती है। नीत्शे कहता है कि मैंने इस जगत में जो सबसे श्रेष्ठ संगीत सुना है, वह वही है जब सैनिक अपनी नंगी तलवारों को लेकर धूप में अपने पैरों की लयबद्ध आवाज करते हुए गुजरते हैं। उनके पैरों की जो लयबद्ध आवाज है, वही श्रेष्ठतम संगीत है। क्योंकि उसके साथ ही जगता है पुरुष, उसके साथ ही जगता है पौरुष, उसके साथ ही जगती है शक्ति की आकांक्षा। नीत्शे कहता है, शक्ति को पाने की आकांक्षा ही मनुष्य की आत्मा है।

अगर हम नीत्शे के व्यक्तित्व में भी उतरें तो भी बड़ी हैरानी होगी। नीत्शे कमजोर आदमी था, और दर्शन उसने लिखा है शक्ति का। नीत्शे बिल्कुल कमजोर आदमी था, लेकिन बात करता है वहः विल टु पावर। वह कहता है, शक्ति पा लेना ही एकमात्र लक्ष्य है जीवन का। और आदमी वह कमजोर था; जिंदगी के अधिक दिन बीमार था।

एडलर ठीक कहता है कि लोग अपनी हीनता की परिपूर्ति कर लेते हैं। नीत्शे कमजोर है, और शक्ति की बात करता है। और हमने महावीर और बुद्ध और लाओत्से से ज्यादा शक्तिशाली आदमी नहीं देखे, और वे अहिंसा की बात कर रहे हैं। असल में, शक्तिशाली शक्ति की बात ही क्यों करेगा; कमजोर ही शक्ति की बात करता है। जो हमारे पास नहीं है, वही हम चाहते हैं। जो हमारे पास नहीं है, उसे ही हम मांगते हैं।

नीत्शे की दृष्टि में सैनिक श्रेष्ठतम है। और नीत्शे की फिलासफी का परिणाम हुआ कि हिटलर पैदा हो सका और सारी दुनिया दूसरे महायुद्ध से गुजरी। उस युद्ध का असली श्रेय या अपयश, नाम या बदनामी, हिटलर की नहीं है; उसकी असली जड़ नीत्शे में है। हिटलर अपने तकिए के पास नीत्शे की किताब सदा रखे रहता था। किताब का नाम हैः विल टु पावर। और हिटलर ने कहा है कि जब भी मन मेरा डरने लगता है, या डांवाडोल होने लगता है, तत्काल मैं नीत्शे की किताब उठा कर एक कोई भी पन्ना पढ़ लेता हूं, प्राण फिर भर जाते हैं भीतर, ओज फिर लौट आता है, बल फिर साथ खड़ा हो जाता है।

नीत्शे कहता है, सैनिक है श्रेष्ठतम फूल, और हिंसा है मनुष्य का कर्तव्य। जो हिंसा से विमुख है, वह मनुष्य ही न रहा। इसलिए जीसस को, बुद्ध को, नीत्शे कहता है, ये स्त्रैण हैं। ये भी कोई पुरुष हैं जो प्रेम की और करुणा की बात कर रहे हैं! ये कमजोर लोग हैं, नीत्शे कहता है। और ये अपनी कमजोरी के लिए दर्शन-शास्त्र रच रहे हैं। ये स्वीकार नहीं करना चाहते।

नीत्शे कहता है, जीसस कहते हैं कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटे मारे, दूसरा उसके सामने कर दो। नीत्शे कहता है, यह सिर्फ तरकीब है अपनी कमजोरी को छिपाने की। दूसरा तो तुम्हें करना ही पड़ेगा; तुम इतने कमजोर हो। न करोगे तो तुम्हारा दुश्मन तुम्हारा दूसरा सामने कर लेगा। तो नीत्शे कहता है, कमजोर भी

अपनी फिलासफी, अपना तत्वदर्शन निर्मित करता है। और वह यह अपने को समझाना चाहता है कि तुमने मुझे मारा नहीं, मैंने ही तुम्हें मारने का मौका दिया है; मैं खुद ही अपना मुंह तुम्हारे सामने किए दे रहा हूं। इस भांति वह सांत्वना खोजता है।

तो नीत्शे के लिए यह सूत्र तो बहुत हैरानी का होता। अगर उसने ताओ तेह किंग पढ़ा होता, तो वह फाड़ कर फेंक देता किताब, आग लगा देता। क्योंकि लाओत्से कहता है, सैनिक सबसे बढ़ कर अनिष्ट के औजार होते हैं। क्योंकि सैनिक का मतलब यह है कि जिसे हमने हिंसा के लिए तैयार किया है--व्यवसायी हिंसक, प्रोफेशनल। हमने एक धंधे के लिए ही उसको तैयार किया है, एक खास काम के लिए तैयार किया है कि वह हिंसा करे।

सैनिक को हम तैयार इस तरह करते हैं कि उसमें कोई मानवीय गुण न रह जाए। सैनिक का सारा प्रशिक्षण ऐसा है कि उसके भीतर मस्तिष्क न रह जाए, हृदय न रह जाए; वह यंत्र हो जाए। इसलिए हम सालों तक उससे कोई और काम नहीं लेते। हम क्या करवाते हैं? हम उसको लेफ्ट-राइट परेड करवाते रहते हैं। घंटों--बाएं घूमो, दाएं घूमो; बाएं घूमो, दाएं घूमो; बायां पैर ऊंचा करो, दायां नीचा करो! हम क्या करवा रहे हैं उससे? वर्षों तक हम उससे यह क्यों करवा रहे हैं?

इसके पीछे एक पूरा मनोविज्ञान है। क्योंकि जो आदमी वर्षों तक बाएं घूमो, दाएं घूमो करता रहेगा, वह धीरे-धीरे कंडीशंड हो जाएगा। आज्ञा, और उसके भीतर कोई विचार नहीं उठेगा, कृत्य। आज्ञा और कृत्य के भीतर विचार नहीं होगा। बाएं घूमो! तो सैनिक सोचता नहीं कि मैं घूमूं या न घूमूं? या कि घूमने का कोई लाभ है? या क्यों व्यर्थ घुमा रहे हो? न, इस सबकी सुविधा उसे नहीं है। उसे सिर्फ घूमना है। तो जब उससे कहा जाता हैः गोली चलाओ! तो वह चलाता है। तब वह सोच नहीं सकता कि मैं क्यों चलाऊं? या सामने जिसे मैं मार रहा हूं, उसे मारना जायज है? या मैं कौन हूं जो उसे मारूं? और मैं क्या पा रहा हूं मार कर?

कोई सौ रुपए, दो सौ रुपए की महीने की नौकरी पा रहा है एक सैनिक। अपनी रोटी के लिए वह हत्या का धंधा कर रहा है। वह हजार लोगों को काट सकता है। जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटम गिराया, उससे बाद में जब पूछा गया, तो उसने कहा कि मैंने तो सिर्फ आज्ञा का पालन किया, मेरा और कोई जिम्मा नहीं है। जब उस आदमी से पूछा गया कि तुम रात सो सके हिरोशिमा पर एटम गिरा कर? तो उसने कहा, मैं बिल्कुल आनंद से सोया, क्योंकि मैं अपना काम पूरा कर आया था। ड्यूटी पूरी हो गई थी, फिर मैं सो गया।

वहां एक लाख बीस हजार आदमी जल कर राख हो गए--इस आदमी के गिराने से। अगर यह आदमी सोचे कि मैं पा क्या रहा हूं--तीन सौ रुपए महीना, कि पांच सौ रुपए महीना--कि मैं रोटी ही तो कमा रहा हूं, रोटी तो भिखमंगे भी सड़क पर भीख मांग कर कमा लेते हैं, तो मैं एक लाख बीस हजार आदमियों की हत्या करने का रोटी कमाने के लिए कारण बनूं? तो शायद यह आदमी कहे कि नहीं, यह आज्ञा मानने से मैं इनकार करता हूं। लेकिन यह मौका नहीं आएगा। अगर हम किसी आदमी को सीधा एटम बम गिराने भेज दें तो आएगा। इसलिए वर्षों हम इसको लेफ्ट-राइट कराते हैं, इसके सोचने की क्षमता को मारते हैं, इसके भीतर बुद्धि को क्षीण करते हैं। यह यंत्रवत हो जाता है।

विलियम जेम्स मजाक में कहा करता था कि एक दिन ऐसा हुआ कि वह एक होटल में बैठ कर अपने मित्रों से कुछ बात कर रहा था। बड़ा मनोवैज्ञानिक था अमरीका का और वह कह रहा था कि आदमी कैसे संस्कारित, कंडीशंड हो जाता है। और तभी एक रिटायर्ड सैनिक सड़क से गुजर रहा था अंडे अपने सिर पर लिए। और विलियम जेम्स ने एक जिंदा उदाहरण देने के लिए चिल्ला कर कहा, अटेंशन! सावधान!

वह आदमी, जो कि रिटायर्ड था कोई दस साल से, उसकी अंडे की टोकरी नीचे गिर गई और वह अटेंशन खड़ा हो गया। जब वह खड़ा हो गया, तब उसे समझ में आया कि अरे! बहुत नाराज हुआ और उसने कहा, क्या मजाक करते हैं, सब अंडे फूट गए।

पर विलियम जेम्स ने कहा कि तुम्हें हक था, तुम अटेंशन न करते। पर उसने कहा कि वह हक तो हम खो चुके। दस साल हो गए छोड़े हुए नौकरी, लेकिन यंत्रवत। तुमने कहा तो सोचने का मौका ही नहीं रहा कि... । नहीं करने का सवाल ही नहीं उठता। और हमने किया, यह कहना ठीक नहीं है; अटेंशन हो गया--यंत्रवत।

तो सैनिक की तैयारी है यंत्रवत।

मनुष्य का जो सर्वाधिक पतन हो सकता है, वह यंत्र है। पशु मनुष्य का पतन नहीं है, बड़ा पतन नहीं है। आदमी दो सीढ़ियां नीचे गिर सकता है; आदमी चाहे तो पशु हो सकता है। लेकिन पशु की भी एक गरिमा है। क्योंकि पशु भी सोचता तो है थोड़ा; पशु भी अनुभव तो करता है थोड़ा; पशु भी निर्णय तो लेता है कभी। आपका कुत्ता है; उसे भूख भी लगी हो, लेकिन आप बेमन से दुतकार कर रोटी डाल दें, तो वह भी रोटी खाने को तैयार नहीं होगा। वह जो दुतकारा है, वह दीवार बन गया। वह तैयार नहीं होगा। वह भी कुछ अनुभव करता है, कुछ सोचता है, कुछ निर्णय लेता है। उससे भी बड़ा पतन है यंत्रवत हो जाना। तब कोई निर्णय का सवाल ही नहीं रहता।

इसलिए लाओत्से कहता है, सैनिक अनिष्ट का साधन है। क्योंकि वह मनुष्य की अधिकतम पतन की अवस्था है। यह तो बड़ी बुरी बात लाओत्से कह रहा है। क्योंकि फिर क्या होगा हमारे सेनापतियों का? हमारे नेपोलियन, हमारे सिकंदर, हमारा सारा इतिहास तो सैनिकों का इतिहास है। इतिहास में जो चमकदार नाम हैं, वे सैनिकों के नाम हैं।

लेकिन हमारा सारा इतिहास हिंसा का इतिहास है। और हमारा सारा इतिहास आदमियत का नहीं है; हमारा सारा इतिहास, आदमी अभी भी पशु है, इस बात का इतिहास है। स्वभावतः, उसमें सैनिक श्रेष्ठ मालूम पड़ता है। उसमें सैनिक के तगमे चमकते हैं। उसकी बांहों पर लगी रंगीन पट्टियां इंद्रधनुष बन जाती हैं--पूरे इतिहास पर।

लाओत्से कहता है, सैनिक अनिष्ट के औजार हैं; क्योंकि व्यवसायी हिंसक हैं वे। इससे तो गैर-व्यवसायी हिंसक भी ठीक हैं। अगर कोई आदमी आपका अपमान करे और आप क्रोध से भर जाएं, तो इस क्रोध में भी एक गरिमा है। लेकिन व्यवसायी हिंसक क्रोध से भी नहीं भरता और हत्या करता है। सैनिक को क्रोध का कोई कारण नहीं है। वह सिर्फ धंधे में है, वह अपना काम कर रहा है।

सैनिक और वेश्या में बड़ी निकटता है। वेश्या शरीर को दे देती है बिना किसी भाव के। कोई प्रेम नहीं है, कोई घृणा नहीं है; बड़ी तटस्थता है। इसीलिए तो पैसे पर शरीर को बेचा जा सकता है। वेश्या को हम सब पापी कहते हैं। लेकिन वेश्या का कसूर क्या है? कि वह अपने शरीर को पैसे पर बेच रही है, यही कसूर है न! सैनिक क्या कर रहा है? वह भी अपने शरीर को पैसे पर बेच रहा है। और अगर दोनों में चुनना हो तो वेश्या बेहतर है। क्योंकि वेश्या सिर्फ अपने शरीर को बेच रही है, किसी दूसरे के शरीर की हत्या नहीं कर रही। सैनिक अपने शरीर को बेच रहा है दूसरे की हत्या करने के लिए। लेकिन वेश्या अपमानित है और सैनिक सम्मानित है। वेश्या से किसी को क्या बड़ा नुकसान पहुंचा है?

विचारशील लोग कहते हैं कि वेश्याओं के कारण बहुत से परिवार बचे हैं; नुकसान तो किसी को पहुंचा नहीं। असल में, वेश्याएं न हों, तो सतियों का होना बहुत मुश्किल हो जाए। वहां वेश्या है, तो घर में पत्नी सती

बनी रहती है। और पत्नी भी बहुत डरती नहीं पुरुष के वेश्या के पास जाने से; पत्नी डरती है पड़ोसिन के पास जाने से। क्यों? क्योंकि वेश्या से कोई खतरा नहीं है; क्योंकि कोई लगाव नहीं है, कोई इनवाल्वमेंट नहीं है। पुरुष जाएगा और आ जाएगा। वेश्या के पास जाना एक बिल्कुल तटस्थ प्रक्रिया है। वह पैसे का ही संबंध है। लेकिन पड़ोसिन के पास अगर पुरुष चला जाएगा तो लौटना फिर आसान नहीं है। क्योंकि पैसे का संबंध नहीं है; भाव का संबंध बन जाएगा।

इसलिए वेश्याओं से किसी को कोई चिंता नहीं है। पुराने राजा-महाराजाओं की औरतें पास में बैठ कर, और वेश्याओं को राजा नचाता रहता, और वे भी देखती रहतीं। उससे कोई अड़चन न थी। क्योंकि उससे सती होने में कोई बाधा नहीं पड़ती। बल्कि जो लोग समाज की गहराई में खोज करते हैं, वे कहते हैं, उससे सुविधा बनती है। सुविधा यह बनती है कि समाज व्यवस्थित चलता जाता है। कुछ स्त्रियों के शरीर बिकते रहते हैं; समाज का घाव सब तरफ नहीं फूटता, कुछ स्त्रियां उस घाव को अपने ऊपर ले लेती हैं। वह जो बीमारी सब तरफ फैल जाती, वह सब तरफ नहीं फैलती; उसकी धाराएं बन जाती हैं।

जैसे हमारे घर का गंदा पानी नालियों से बह जाता है। तो नालियां आपके घर की सफाई के लिए जरूरी हैं; नहीं तो पूरी सड़कों पर पानी फैल जाएगा। वे वेश्याएं नालियों का काम कर जाती हैं। और जो गंदगी घर-घर में इकट्ठी होती है, वह वहां से बह जाती है। जब तक घर में गंदगी होती है, तब तक वेश्या रहेगी। जिस दिन घर का संबंध ही पति और पत्नी का प्रेम का गहन संबंध हो जाएगा, कोई गंदगी पैदा न होगी, तभी वेश्या मिटेगी। नहीं तो वेश्या मिटाई नहीं जा सकती। क्योंकि वह जरूरत है।

लेकिन वेश्या को हम पापी कहते हैं। और वेश्या आ जाए तो हमारे मन में तत्क्षण निंदा आ जाती है। लेकिन सैनिक को... सैनिक क्या कर रहा है? सैनिक भी शरीर बेच रहा है रोटी के लिए, और साथ में दूसरे के शरीरों की भी हत्या कर रहा है।

लाओत्से कहता है, "सैनिक अनिष्ट के औजार होते हैं। और लोग उनसे घृणा करते हैं।"

लेकिन इसे थोड़ा हम समझ लें, कि लोग साधारणतः सैनिक से घृणा करते हैं; साधारणतः पुलिसवाले को कोई अच्छी नजर से नहीं देखता। जब तक आप सुरक्षित हैं और शांत हैं और जिंदगी में कोई तकलीफ नहीं, तो पुलिस को और सैनिक को कोई अच्छी नजर से नहीं देखता। लेकिन जैसे ही तकलीफ होती है, वैसे ही पुलिस ही आपका रक्षक हो जाता है। जैसे ही बेचैनी फैलती है, युद्ध की आशंका होती है, सैनिक ही आपका सब कुछ हो जाता है। इसलिए सैनिक सदा उत्सुक रहते हैं कि युद्ध चलता रहे। और पुलिसवाला भी सदा उत्सुक रहता है कि कुछ उपद्रव होता रहे। क्योंकि जब उपद्रव होता है, तभी वह सम्मानित है। जैसे ही उपद्रव खोया, वह खो जाता है।

अभी आपने देखा, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का थोड़े दिन युद्ध हुआ, तो सेनापतियों के नाम अखबारों में सुर्खियां बन गए। धीरे-धीरे अब कम होते जा रहे हैं वे नाम, लेकिन अभी भी चल रहे हैं। साल, छह महीने कोई उपद्रव न हुआ, आप भूल जाएंगे कि कौन है सेनापति।

सैनिक की प्रतिष्ठा तभी है, जब उपद्रव चल रहा हो; अन्यथा लोग घृणा करते हैं। क्योंकि लोग भी भीतर अनुभव तो करते हैं कि यह हिंसा का व्यवसाय, यह हत्या का धंधा, सब तरह से गलत है। फिर भी कभी-कभी हम इसे ठीक मानते हैं। अगर एक आदमी किसी की हत्या कर दे तो वह अपराधी है और फांसी की सजा होती है। और एक आदमी युद्ध में हजारों की हत्या कर दे तो सम्मानित होता है। मरने की बात तो एक ही है; मारने

की बात तो एक ही है। लेकिन कभी वही अपराध है, और कभी वही सम्मान बन जाता है। तो गहरे में तो हम जानते हैं कि सैनिक कोई शुभ लक्षण नहीं है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "और लोग उनसे घृणा करते हैं। ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष उनसे बचता है।"

हमने सुना है कि धार्मिक पुरुष वेश्या से बचता है। लेकिन कभी आपने यह भी सुना कि धार्मिक पुरुष सैनिक से बचता है? नहीं, आपके ख्याल में नहीं होगा। लेकिन लाओत्से ठीक कह रहा है। वेश्या से भी ज्यादा सैनिक से बचना जरूरी है धार्मिक पुरुष का। क्योंकि सैनिक का प्रयोजन ही एक है कि आदमी अभी आदमी नहीं हुआ, इसलिए उसकी जरूरत है। वह सबूत है हमारे पशु होने का।

आपके लिए जेल की जरूरत है, सिपाही की जरूरत है, अदालत की जरूरत है, मजिस्ट्रेट की जरूरत है। ये सब प्रतीक हैं हमारे चोर-बेईमान होने के। मजिस्ट्रेट अकड़ कर अपनी कुर्सियों पर बैठे हुए हैं; वे हमारी बेईमानी के प्रतीक हैं। उनकी कोई जरूरत नहीं है, जिस दिन हम बेईमान नहीं हैं। सैनिक खड़ा है चौरस्ते पर; वह आपके चोर होने का, धोखेबाज होने का, नियमहीन होने का सबूत है। अगर वह चौरस्ते पर नहीं है तो आप फिर फिक्र करने वाले नहीं हैं कि आप कार कैसी चला रहे हैं--बाएं जा रहे हैं, कि दाएं जा रहे हैं, कि क्या कर रहे हैं। वह वहां खड़ा है; वह आपके भीतर जो गलत है, उसका प्रतीक है। जिस दिन आदमी बेहतर होगा, उस दिन पुलिसवाले की चौरस्ते पर कोई जरूरत नहीं होनी चाहिए। जिस दिन आदमी सच में ही आदमी होगा, उस दिन अदालतें खो जानी चाहिए।

मगर हम देखते हैं, हमारे राज्यों में अदालत का जो मकान होता है, वह सबसे शानदार होता है। हाईकोर्ट जाकर देखते हैं! पीछे आने वाला आदमी इतिहास में लिखेगा कि कैसे अपराधी लोग रहे होंगे कि अदालतों के इतने-इतने बड़े मकान बनाते थे! अदालतों के इतने-इतने बड़े मकान बनाने की जरूरत क्या है? अदालत कोई गौरव है? कि अदालत कोई कलात्मक कृति है? कि अदालत कोई संस्कृति का प्रतीक है? अदालत तो हमारे भीतर वह जो पशु छिपा है, उसकी जरूरत है।

लेकिन कोई आदमी अगर जस्टिस हो जाए, चीफ जस्टिस हो जाए, तो हम समझते हैं और क्या होने जैसा बचता है! फलां आदमी चीफ जस्टिस हो गया! उसे पता नहीं कि वह दूसरा छोर है हमारे चोरों, अपराधियों, हत्यारों का; और उनके ऊपर ही खड़ा है। जिस दिन वे खो जाएंगे, वह भी खो जाएगा।

कानून बताता है कि लोग अच्छे नहीं हैं। जितना ज्यादा कानून, उतना बुरा समाज! जितनी ज्यादा कानून की जरूरत, उतना बेहूदा समाज! कानून बढ़ते जाते हैं हमारे रोज, तो उससे डर लगता है कि कहीं आदमी और बुरा तो नहीं होता जाता है! क्योंकि कल दस कानून थे तो आज बीस हैं, कल तीस हो जाते हैं। कानून रोज बढ़ते जाते हैं। बढ़ता हुआ कानून बताता है कि आदमी बिगड़ते चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, ताओ से युक्त धार्मिक पुरुष सैनिक से भी बचता है। क्योंकि सैनिक, आदमी के पीछे, अतीत की घटना है; पशुओं से संघर्ष की घटना है। सैनिक, आदमी का भविष्य नहीं है, अतीत है। और भविष्य में सैनिक नहीं होना चाहिए।

"सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष अर्थात शुभ के लक्षण की ओर झुकता है।"

चीन में वामपक्ष को शुभ का लक्षण, प्रतीक माना जाता है।

"सज्जन असैनिक जीवन में वामपक्ष, शुभ के लक्षण की ओर झुकता है; लेकिन युद्ध के मौकों पर वह दक्षिणपक्ष अर्थात अशुभ के लक्षण की ओर झुक जाता है।"

आप साधारणतः हत्या पसंद नहीं करते, लेकिन युद्ध के समय में पसंद करते हैं। पसंद ही नहीं करते, जो जितनी ज्यादा हत्या कर आए उसे उतना सम्मानित करते हैं। हत्यारा आदृत हो जाता है। साधारण जीवन में आप हत्या के विरोधी हैं; युद्ध के समय आपका सारा रुख बदल जाता है। आप और ही तरह के आदमी हो जाते हैं।

तो लाओत्से कहता है कि शांत जीवन में सज्जन आदमी शुभ की तरफ होता है, अशांत और युद्ध के क्षणों में वह भी अशुभ की ओर झुक जाता है। अशुभ तो अशुभ रहते ही हैं, युद्ध के समय में जो सज्जन थे वे भी अशुभ की ओर झुक जाते हैं।

इसलिए युद्ध का समय मनुष्य के जीवन में, समाज के जीवन में, धर्म की दृष्टि से पतन का समय है। युद्ध के समय में बहुत सी बुराइयां सहज स्वीकृत हो जाती हैं, जिनका हम कभी वैसे ख्याल भी नहीं करते। पिछले महायुद्ध में ऐसा हुआ कि जब हजारों सैनिक अपने घरों को छोड़ कर युद्ध पर गए। तो जैसा भारत में हुआ कि स्टेशन-स्टेशन पर हम सैनिक का स्वागत करने लगे, फूलमालाएं पहनाने लगे, मिठाइयां भेंट करने लगे, कि स्वेटर और कपड़े और ऊनी कपड़े भेंट करने लगे--कुछ हम भेंट करने गए। लेकिन आपको शायद पता न हो कि पिछले महायुद्ध में स्त्रियों ने, लड़कियों ने सैनिकों को जाकर स्टेशनों पर अपने शरीर भी भेंट किए। एक लिहाज से तो अगर भेंट ही करना हो, तो क्या स्वेटर भेंट कर रहे हैं! स्त्रियों ने अपने शरीर भी भेंट किए; क्योंकि जो मरने-मारने जा रहा है, उसे सब कुछ दिया जाए। जो स्त्रियां कभी सोच भी नहीं सकती थीं--क्योंकि वे साधारण स्त्रियां थीं, कोई वेश्याएं नहीं थीं--जो सोच भी नहीं सकती थीं किसी पुरुष का संसर्ग, उन्होंने अनजान, अपरिचित लोगों को शरीर दिए। क्या हुआ?

युद्ध सारे मूल्यों को उलटा देता है। जो मूल्य कल तक प्रतिष्ठित थे वे नीचे गिर जाते हैं, और जो अप्रतिष्ठित थे वे ऊपर आ जाते हैं। युद्ध एक उत्पात की स्थिति है। इसलिए जितने ज्यादा युद्ध होते हैं, समाज की गति धर्म की ओर उतनी ही कम हो जाती है।

पिछले पांच हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध हुए। हिसाब लगा कर देखा जाए तो ऐसा दिन खोजना मुश्किल है, जब जमीन पर कहीं न कहीं युद्ध न हो रहा हो। युद्ध हो ही रहा है, युद्ध चल ही रहा है। कहीं न कहीं हम आदमी को मार रहे हैं, और मर रहे हैं। आदमी मरने और मारने के लिए है?

फिर हम बड़े-बड़े लक्ष्य खड़े करते हैं। और उन लक्ष्यों के कारण ही सज्जन पुरुष भी युद्ध में सैनिक की तरफ झुक जाता है। तब हिंसा छिप जाती है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि हमारे जीवन की व्यवस्था का बहुत नाजुक पहलू है कि जब भी हमें बुराई करनी होती है, तो हम बहुत अच्छे, रंगीन पर्दों की ओट में उसे छिपा देते हैं। क्योंकि बुराई को सीधा करना मुश्किल है। और अगर हम बड़े नारे लगाएं और बड़ी आदर्शों की बात करें, तो फिर बुराई करना आसान हो जाती है। इसलिए कोई भी युद्ध बिना आदर्श के नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि जब तक दुनिया में आदर्श हैं, युद्ध से बचना मुश्किल है। आदर्श बदल जाते हैं, लेकिन युद्ध नहीं बदलता, युद्ध जारी रहता है। आदर्श की आड़ में बुरा करना कितना आसान है, इसे थोड़ा ख्याल करें।

अगर आप एक मस्जिद जला रहे हैं, और यह धार्मिक कृत्य समझ में आए; या एक मंदिर तोड़ रहे हैं, और यह जेहाद हो; तो फिर मंदिर को तोड़ने में, आग लगाने में, निर्दोष पुजारी को काट डालने में आपके मन में जरा भी ग्लानि न होगी। क्यों? क्योंकि जो आप कर रहे हैं, वह दिखाई ही नहीं पड़ता; आदर्श दिखाई पड़ता है।

मुसलमानों ने इतने मंदिर जला डाले, इतनी मूर्तियां तोड़ डालीं, इतने निर्दोष लोगों की हत्या कर दी--जेहाद! उनका धर्मगुरु उनसे कह रहा है कि यह धर्मयुद्ध है! अगर जीते, तो यहीं सुख पाओगे। अगर मर गए युद्ध में, तो स्वर्ग में, बहिश्त में परमात्मा का आशीर्वाद मिलेगा। तो फिर आसान है मामला। अगर कुरान हाथ में हो, बाइबिल हाथ में हो, या गीता हाथ में हो, तो छुरा भोंकना बहुत आसान है। क्यों? क्योंकि छुरा फिर छोटी चीज हो जाती है; बड़ी चीज कुरान, बड़ी चीज बाइबिल। अब कोई डर नहीं है। अब किया जा सकता है।

अभी हमारे मुल्क में आजादी के बाद लाखों लोग काटे गए। हिंदुओं ने काटे, मुसलमानों ने काटे। जिन्होंने काटे, वह हम ही लोग थे। कभी सोच भी नहीं सकते थे कि यह आदमी, जो दुकान करता है, स्कूल में मास्टरी करता है, या पढ़ता है, या लकड़ी काटता है, या घास बेचता है, यह आदमी कभी हत्या करेगा! इसको कभी कोई सोच भी नहीं सकता था। इसी ने हत्या की। और यह कैसे कर सका? क्योंकि इसकी हमने कभी कल्पना भी न की थी कि यह आदमी किसी को काट भी सकता है। इसने काटा। क्या हुआ?

बड़ा आदर्श! फिर आदमी के पागल होने में कठिनाई नहीं होती। युद्ध आदर्शों की आड़ में चलते हैं।

दूसरा महायुद्ध चला। हिटलर लड़ा रहा था अपने लोगों को, क्योंकि सारी दुनिया में श्रेष्ठ मनुष्य पैदा करना है, सुपर मैन, महामानव पैदा करना है। तो जर्मन खून में उसने लहर भर दी। जर्मन खून इस आदर्श के पीछे दीवाना हो गया कि ठीक, सारी पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे, नार्डिक जाति को बचा लेंगे, जो श्रेष्ठतम है उसी को बचने देंगे, निकृष्ट को विदा कर देंगे। एक सर्जिकल आपरेशन था, एक गलत को हटा देना है, ठीक को स्थापित करना है। यह बड़ा ऊंचा लक्ष्य था। इसके लिए कोई मरे-मारे, सब उचित था। तो जर्मन लड़ रहे थे।

इंग्लैंड, अमरीका और रूस इसलिए लड़ रहे थे कि दुनिया को फासिज्म से बचाना है, नाजिज्म से बचाना है। यह फासिज्म हत्या है लोकतंत्र की, फासिज्म हत्या है समाजवाद की, फासिज्म हत्या है स्वतंत्रता की; इससे बचाना है। तो इंग्लैंड का जवान लड़ रहा था, अमरीका का जवान लड़ रहा था, रूस का जवान लड़ रहा था--कि दुनिया एक गर्त में जा रही है पाप के, उससे उसे बचाना है।

बड़े आदर्श! आदमी फिर कुछ भी कर सकता है। आदर्श न हो, नग्न सत्य सामने हो, तो युद्ध आदमी कर नहीं सकता। इसलिए कोई युद्ध सीधा नहीं होता। सिद्धांत, शास्त्र, आइडियोलाजी जरूरी है बीच में।

इसलिए जब तक दुनिया में आदमी सिद्धांतों में बटे हैं, तब तक कोई न कोई युद्ध कभी भी करवाया जा सकता है। और जब तक दुनिया में लोग कहते हैं कि मेरा विचार ठीक और तुम्हारा गलत, तब तक कभी भी तलवार निकाली जा सकती है। क्योंकि आखिरी निर्णय कैसे हो कि किसका विचार ठीक? तर्क निर्णय नहीं कर पाता। वर्षों लग जाते हैं और तर्क से कुछ सिद्ध नहीं होता। तलवार जल्दी सिद्ध कर देती है। जो हार जाता है उसका सिद्धांत गलत, और जो जीत जाता है उसका सिद्धांत सही।

यह हैरानी की बात है। आपने सूत्र सुना होगा, हम तो अपने राष्ट्र का प्रतीक बना रखे हैं उस सूत्र कोः सत्यमेव जयते, सत्य सदा जीतता है। लेकिन हालत उलटी दिखती है। जो जीत जाता है, वह सत्य मालूम पड़ता है; जो हार जाता है, वह असत्य मालूम पड़ता है। सत्य सदा जीतता है, इसका तो कुछ पक्का पता नहीं चलता। लेकिन जो जीत जाता है, उसको आप असत्य नहीं कह सकते, इतना पक्का है। वह सत्य हो जाता है।

थोड़ा सोचें। अगर हिटलर जीत जाता दूसरे महायुद्ध में, तो चर्चिल, स्टैलिन, रूजवेल्ट कहां होते आज? उनकी गिनती पागलों में होती। स्टैलिन, रूजवेल्ट, चर्चिल जीत गए, हिटलर हार गया, तो हिटलर की गिनती पागलों में है। हालांकि दोनों ही पागल हैं। जो जीत जाए, वह लगता है ठीक, जो हार जाए, वह पागल। असल में, बिना पागल हुए राजनीतिज्ञ होना मुश्किल है। थोड़े नट-बोल्ट भीतर ढीले होने ही चाहिए, तो ही आदमी

को राजनीति का बुखार चढ़ता है। फिर उसमें जो बड़े पागल होते हैं, वे जीत जाते हैं; जो छोटे रहते हैं, वे हार जाते हैं। पर जो हार जाते हैं, वे इतिहास नहीं बनाते; जो जीत जाते हैं, वे इतिहास बनाते हैं।

इसलिए सब इतिहास झूठा है। क्योंकि हारा हुआ आदमी तो बना ही नहीं पाता। थोड़ा सोचें कि रावण जीत जाता और राम हार गए होते। रामायण होती आपके पास? कभी नहीं हो सकती थी। क्योंकि रावण ने कोई वाल्मीकि खोजा होता, कोई तुलसीदास रावण को मिले होते, सारी कथा और होती! सारी कथा और होती; क्योंकि जो जीत जाता है, उसके इर्द-गिर्द चापलूस इकट्ठे होते हैं, कवि इकट्ठे होते हैं, खुशामदखोर इकट्ठे होते हैं, वे इतिहास रचते हैं। जो हार जाता है, उसकी तरफ तो कोई हाथ उठाने को भी राजी नहीं रह जाता। तो इसलिए इतिहास सब झूठा है। इतिहास सच हो नहीं सकता; क्योंकि कौन बनाता है, इस पर निर्भर करता है।

स्टैलिन ने सारे रूस को निर्मित किया। और स्टैलिन के मरते ही ख्रुश्चेव ने स्टैलिन के नाम को इतिहास से मिटा दिया। रूस की इतिहास की किताबों में स्टैलिन का नाम नहीं है अब। फोटो नहीं है। जिन जगह पर स्टैलिन की फोटो लेनिन के साथ थी, वहां-वहां लेनिन की बची है फोटो, स्टैलिन की काट दी गई। आपको पता हो, न हो, लेनिन की कब्र--कब्र नहीं कहना चाहिए--लेनिन की जहां समाधि है, जहां उसकी लाश रखी है अभी भी, क्रेमलिन के चौराहे पर, उसके बगल में ही स्टैलिन की लाश भी रखी गई थी। फिर जब ख्रुश्चेव ताकत में आया, तो वह लाश वहां से हटवा दी गई। इतिहास से नाम काट दिया गया। रूस के बच्चे स्कूल में, रूस के बच्चों को पता ही नहीं कि स्टैलिन भी हुआ है।

अब बड़ा कठिन है। यही काम स्टैलिन ने किया था। जब स्टैलिन ताकत में आया, तो जहां-जहां ट्राटस्की के चित्र थे, वे हटा दिए गए। क्योंकि लेनिन के बाद नंबर दो की ताकत का आदमी ट्राटस्की था। तो जगह-जगह उसके चित्र थे, किताबों में उल्लेख था, अखबारों में उल्लेख था, इतिहास में उल्लेख था। वह सब जगह से पोंछ दिया गया। जो स्टैलिन ने ट्राटस्की के लिए किया था, वह ख्रुश्चेव ने स्टैलिन के लिए किया। और अब जो हैं, वे ख्रुश्चेव के साथ वही कर रहे हैं। इतिहास का तय करना बहुत मुश्किल है। हजार साल बाद जिनके हाथ में किताबें लगेंगी, जिनमें स्टैलिन का नाम भी न होगा, वे कैसे समझेंगे कि स्टैलिन ने क्या किया था? या जो किताबें होंगी, उनमें लिखा होगा कि स्टैलिन पागल था, विक्षिप्त था, हत्यारा था। तो वे यही समझेंगे।

अंग्रेजों ने शिवाजी के लिए लिखा है कि वह लुटेरा था। अगर अंग्रेज हिंदुस्तान में बने रहते तो शिवाजी लुटेरे रहते; कोई और उपाय नहीं था। अंग्रेज चले गए तो शिवाजी अब लुटेरे नहीं हैं; अब शिवाजी की हम जगह-जगह मूर्तियां खड़ी कर रहे हैं। अब शिवाजी महाराष्ट्र-नायक हैं।

पर बड़ी कठिनाई है, कौन सच कह रहा है? कौन इतिहास बना रहा है? जो जीतता चला जाता है, वह इतिहास बनाता चला जाता है। हार सब पोंछ देती है।

लाओत्से कहता है कि सज्जन आदमी भी युद्ध के क्षण में असत्य की तरफ झुक जाता है, गलत की तरफ झुक जाता है। क्योंकि प्रचार, हवा, आदर्श, सज्जन को भी उलझा देते हैं। जिनको हम अच्छे आदमी कहते हैं, वे भी प्रार्थनाएं करने लगते हैं। और कभी तो बड़ी मजेदार प्रार्थनाएं हो जाती हैं। क्योंकि दूसरे महायुद्ध में दोनों तरफ ईसाई थे, इसलिए पोप बड़ी मुश्किल में पड़ा कि प्रार्थना किसके लिए करे। और तब जर्मनी का चर्च टूट गया और जर्मनी के प्रधान पुरोहित ने जर्मनी के लिए प्रार्थना की कि परमात्मा हिटलर को जिताए। और इंग्लैंड के चर्च ने इंग्लैंड के लिए प्रार्थना की कि परमात्मा इंग्लैंड को जिताए। और परमात्मा इंग्लैंड को ही जिताएगा,

क्योंकि इंग्लैंड सत्य के पक्ष में है। और वही जर्मन पुरोहित भी कह रहा था कि हिटलर ही जीतेगा; क्योंकि हिटलर जो है, वह वस्तुतः ईश्वर का संदेशवाहक है।

अब अगर दो ईश्वर हों, तब भी चल जाए। यह तो एक ही ईश्वर से प्रार्थना हो रही है। और वह भी हिंदू-मुसलमान का ईश्वर हो, तो भी समझें; ईसाइयों के एक ही ईश्वर से प्रार्थना चल रही है। लेकिन भला आदमी भी... । अब यह पुरोहित कोई बुरा आदमी नहीं है; यह कोई किसी की हत्या करने वाला आदमी भी नहीं है। यह कोई किसी को चोट भी नहीं पहुंचाएगा; जरा किसी के पैर में कांटा गड़ जाए, तो उसे निकालने की, सेवा करने की इसकी तत्परता है। यह भी भला आदमी है। लेकिन यह भी उलझ जाता है। यह भी उलझ जाता है।

यहां हिंदुस्तान में कोई युद्ध की हवा चलती है, तो जिनको हम अहिंसक कहें, वे भी जोश में आ जाते हैं। फिर उनकी अहिंसा वगैरह सब विलीन हो जाती है। फिर उनको भी पता नहीं रहता कि खून बुद्धि से ज्यादा जोर मार रहा है, और बुद्धि एक तरफ रह गई और खून छलांग मार रहा है। और वे बातें करने लगते हैं युद्ध की।

लाओत्से कहता है, युद्ध इसलिए बहुत बुरा है कि भला भी उसमें बुरा जैसा हो जाता है। सारे मूल्य उलटे हो जाते हैं।

"सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र हैं, वे सज्जनों के शस्त्र नहीं हो सकते। जब सैनिकों का उपयोग अनिवार्य हो जाए, तब शांत प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है।"

"सैनिक अनिष्ट के शस्त्र-अस्त्र हैं।"

यह थोड़ा सोचने जैसा है। क्योंकि हम ऐसा कभी नहीं सोचते। हमारा सोचना कुछ और है।

एक गांव में मैं था। वहां कुछ दंगा-फसाद की हवा थी; हिंदू-मुसलमानों में तनाव था। तो हिंदू मेरे पास आए; उन्होंने कहा, आप अपने वक्तव्य में कहें कि आततायियों को तो नष्ट करने के लिए भगवान ने भी कृष्ण ने आज्ञा दी है कि आततायी को तो नष्ट कर देना चाहिए।

मैंने कहा कि मुझे पक्का पता नहीं कि आततायी कौन है। आततायी को नष्ट कर देना चाहिए, यह कृष्ण ने कहा है। लेकिन तुम्हारे पास कोई कसौटी है कि तुम जानो कि आततायी कौन है? उन्होंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है; मुसलमान आततायी हैं।

अगर यह सिद्ध ही है कि मुसलमान आततायी हैं, तब तो ठीक है। लेकिन यह सिद्ध कौन कर रहा है? यह हिंदू सिद्ध कर रहे हैं।

मैंने उनसे पूछा, मुसलमानों से पूछा? उन्होंने कहा, उनसे क्या पूछना है! तो मैंने उनको कहा, अगर मुसलमान मेरे पास आएं, क्योंकि न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान हूं, अगर वे मेरे पास आएं और वे कहें कि काफिरों को तो नष्ट करने की आज्ञा कुरान में दी हुई है। तो मैं उनसे पूछूंगा कि काफिर कौन है? अगर सिद्ध है कि हिंदू काफिर हैं, तब तो कोई मामला ही नहीं है। मगर हिंदुओं से पूछा? वे भी राजी नहीं होंगे पूछने, कि काफिरों से क्या पूछना है! हम मान कर ही बैठे हैं। तो फिर ठीक है, मुसलमान समझते हैं कि तुम गलत हो, हिंदू समझते हैं कि मुसलमान गलत हैं। कौन तय करे?

एक बात पक्की है, जो आदमी सदा देखता है कि दूसरा गलत है और मैं ठीक हूं, वह गलत होगा। यह गलत आदमी का लक्षण है असल में। सही आदमी बहुत विचार करता है, इसके पहले कि दूसरे को गलत कहे, अपने गलत होने की सारी संभावनाओं को सोच लेता है कि कहीं मैं गलत तो नहीं हूं। बुरा आदमी इस झंझट में नहीं पड़ता। वह मान कर चलता है कि दूसरा गलत है। मुसलमान गलत होते हैं, ऐसा नहीं है; मुसलमान गलत होते

ही हैं, इसमें कुछ और सोच-विचार की जरूरत नहीं है। उनका मुसलमान होना उनके गलत होने के लिए काफी है। ऐसे ही हिंदू का हिंदू होना काफिर होने के लिए काफी है।

फिर जब मुसलमान हिंसा करता है, तो वह नहीं मानेगा कि हिंसा हर हालत में अनिष्ट का साधन है। वह कहेगा कि हिंदू जब हिंसा करते हैं, तब अनिष्ट का साधन है। और जब हम कर रहे हैं, तो काफिर का नाश करना, यह कहीं अनिष्ट है? यह तो इष्ट है।

इसलिए सभी युद्धखोर अपनी हिंसा को इष्ट मानते हैं, दूसरे की हिंसा को अनिष्ट मानते हैं।

लाओत्से कहता है, सैनिक हर हालत में, हिंसा हर हालत में अनिष्ट का साधन है। कौन उपयोग करता है, इससे सवाल नहीं है; हर हालत में अनिष्ट का साधन है। अच्छा आदमी भी उपयोग करे, तो भी उससे अनिष्ट ही होता है; बुरा आदमी करे, तो भी अनिष्ट होता है। साधन ही अनिष्ट का है। तब फिर अच्छा आदमी क्या करे?

हिंसा उसका शस्त्र नहीं हो सकती। सैनिक सज्जन के लिए शस्त्र नहीं हो सकते। इसलिए जब तक कोई राष्ट्र वस्तुतः समस्त सैन्य शक्ति का विसर्जन नहीं करता, तब तक सुसंस्कृत कहने का अधिकारी नहीं है। कोई राष्ट्र जब तक सैनिक को रखता है, तब तक वह सुसंस्कृत कहलाने का अधिकारी नहीं है।

लेकिन कोई राष्ट्र यह हिम्मत नहीं जुटा सकता कि सैनिक को विदा कर दे। मजबूरियां हैं। क्योंकि चारों तरफ जो लोग इकट्ठे हैं, वे तत्काल दौड़ पड़ेंगे, वे तत्काल मुल्क को पी जाएंगे। यह भय है। तो सज्जन भी क्या कर सकता है? सैनिक को अपना साधन न भी माने, लेकिन अगर असज्जन उस पर हमला करे, तो वह क्या कर सकता है? हमले का प्रतिरोध तो करना पड़ेगा। क्योंकि अगर प्रतिरोध न किया जाए तो यह भी असज्जन को सहयोग है, यह भी बुराई को साथ देना है।

समझें कि जीसस ने कहा है कि दूसरा गाल सामने कर दें। लेकिन सामने अगर आदमी बुरा है, तो मैं उसके लिए सहयोगी हो रहा हूं। और यह भी हो सकता है, मैं उसकी आदत बिगाड़ रहा हूं। और कल वह किसी और को भी चांटा मारेगा इसी आशा में कि दूसरा गाल भी आता ही होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक काफी हाउस के सामने बैठ कर रोज गपशप किया करता था। एक छोटा बच्चा, शरारती बच्चा रोज की आदत बना लिया कि वह आता और मुल्ला की पगड़ी में हाथ मार कर भाग जाता। पगड़ी नीचे गिर जाती, मुल्ला अपनी पगड़ी फिर ऊपर रख लेता। अनेक बार लोगों ने कहा कि मुल्ला, एक दफे इस लड़के को डांट दो। यह भी क्या बेतुकी बात है! और इस लड़के की कोई ताकत है? एक दफा जोर से इसको चांटा लगा दो, दुबारा नहीं लौटेगा। मुल्ला ने कहा, ठहरो, हमारे भी अपने रास्ते हैं।

फिर एक दिन ऐसा हुआ--यह वर्षों की आदत हो गई, यह रोज का नियम हो गया कि वह लड़का मुल्ला की पगड़ी गिरा जाता--एक दिन ऐसा हुआ कि एक पठान सैनिक उधर बैठा हुआ था, उस जगह, शाम का वक्त, जहां मुल्ला शाम को रोज बैठते थे। मुल्ला आकर दूसरी जगह बैठ कर देख रहा था। वह लड़का आया, उसने पगड़ी पर एक हाथ मारा। पठान ने तलवार निकाल कर उसकी गर्दन काट दी। मुल्ला ने कहा, देखा! हम रास्ता देख रहे थे। इसका अभ्यास पक्का हो गया था; अब यह होने ही वाला था कभी।

इस हत्या में पठान से ज्यादा मुल्ला का हाथ है। पठान दिखेगा अपराधी, मगर वह बेचारा केवल एक लंबीशृंखला की आखिरी कड़ी है। उनका कोई इसमें ज्यादा हाथ नहीं है। ज्यादा हाथ तो उस आदमी का है, जो साल भर पगड़ी गिरवा रहा था, और अभ्यास करवा रहा था।

तो यह भी हो सकता है--जिंदगी जटिल है और वहां जड़ नियम काम नहीं करते--कि एक गाल पर आप चांटा मारें, दूसरा आपके सामने कर दूं, जरूरी नहीं है कि यह हितकर ही हो। मैं आपकी आदत भी बिगाड़ रहा हूं। और इसमें किसी दिन आपकी गर्दन भी कट सकती है। और जिम्मा मेरा भी होगा।

तो सज्जन क्या करे? अगर वह सैनिक पर भरोसा करे और तलवार का भरोसा करे, तो अनिष्ट का सहयोगी होता है। अगर वह न कुछ करे, तो भी अनिष्ट का सहयोगी होता है।

तो लाओत्से कहता है उसके पास एक ही उपाय है। इस बुरी दुनिया में उसके पास एक ही उपाय है।

"दि बेस्ट पालिसी इ.ज काम रेस्ट्रेंट।"

शांत प्रतिरोध, शांत, संयमित प्रतिरोध ही उसके पास एकमात्र उपाय है। वह विरोध तो करे ही, अगर जरूरत पड़े तो वह तलवार भी लेकर विरोध करे और हिंसा का भी उपाय करे और जरूरत पड़े तो सैनिक को लेकर भी विरोध करे; लेकिन शांत रहे। यह शर्त है। तलवार तो बुरे आदमी के हाथ में भी होती है, अच्छे आदमी के हाथ में भी होती है। तलवार का कोई फर्क नहीं है। लेकिन बुरा आदमी भीतर शांत नहीं होता; अच्छा आदमी भीतर शांत होगा। और अगर वह शांत नहीं है, तो सिद्धांतों की बकवास न करे, समझे कि मैं भी बुरा आदमी हूं।

एक कहानी, और मैं आज की बात पूरी करूं।

मुसलमान खलीफा हुआ, उमर। बड़ी मीठी घटना है उसकी जिंदगी में। दस साल तक एक दुश्मन से युद्ध चलता रहा। दस साल में न मालूम कितनी हत्या, न मालूम कितने गांव जलाए गए! और न मालूम कितने लोग मरे, कितनी धन-जन की हानि हुई! फिर दस साल बाद एक मुकाबले में आमने-सामने उमर अपने दुश्मन के पड़ गया। और एक ही दांव में उमर ने दुश्मन के घोड़े को काट दिया। दुश्मन नीचे गिर पड़ा। उमर छलांग लगा कर उसकी छाती पर बैठ गया और उसने अपना भाला निकाला उसकी छाती में भोंक देने को। दुश्मन नीचे पड़ा था, असहाय; एक क्षण, और मौत घट जाएगी! दुश्मन ने आखिरी मौका नहीं चूका; इसके पहले कि भाला उसकी छाती में जाए, उसने उमर के मुंह पर थूक दिया। उमर ने भाला वापस लौटा लिया, उठ कर खड़ा हो गया।

उसके दुश्मन ने कहा, मैं समझा नहीं। क्या बात है? ऐसा मौका मैं नहीं छोड़ सकता था।

उमर ने कहा, बात खतम हो गई। मुझे क्रोध आ गया, तुम्हारे थूकने से मुझे क्रोध आ गया। और कसम है मेरी कि शांत ही लडूं तो ही लडूंगा। अशांत हो गया आज। कल सुबह फिर लड़ेंगे।

यह तो खतम हो गया। क्योंकि वह दुश्मन पैर पर गिर पड़ा। उसने कहा, मैं सोच भी नहीं सकता, यह मौका छोड़ा ही नहीं जा सकता। दस साल से जिस दुश्मन के पीछे तुम थे और जिसके पीछे मैं था; दस साल का लंबा उपद्रव और आज फैसला हुआ जाता था। यह भी तुम क्या बात कर रहे हो उमर कि क्रोध हो गया? क्या यह युद्ध बिना क्रोध के चल रहा था?

उमर ने कहा, मेरा कोई क्रोध न था, एक शांत प्रतिरोध था। तुम पागल थे लड़ने को, कोई और उपाय नहीं था, तो मैं लड़ रहा था। लेकिन लड़ने में कोई रस नहीं था। आज व्यक्तिगत रस हो गया लड़ने में। तुमने जब थूका, तो क्षण भर को मुझे लगा कि भोंक दो! लेकिन तब मैं भोंक रहा था--उमर। दस साल सब विलीन हो गए। तुम बुरे आदमी हो, इसलिए मारना; तुम नुकसान कर रहे हो लोगों का, इसलिए मारना; यह सब सवाल न रहा। तुमने मेरे मुंह पर थूका, सारी बात इस पर अटक गई, इस छोटे से थूक के दाग पर। तो फिर रुक जाना जरूरी हो गया। क्योंकि कसम है मेरी कि शांत लड़ सकूं तो ही लडूंगा। क्योंकि अगर अशांत होकर लड़ रहा हूं तो फायदा ही क्या है? दो बुरे आदमियों के लड़ने से हल भी क्या है? कोई जीतेगा, हर हालत में बुराई जीतेगी। फिर मेरी उत्सुकता नहीं है।

लाओत्से कहता है, "शांत प्रतिरोध ही सर्वश्रेष्ठ नीति है।"

अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि युद्ध में उतरना पड़े, सैनिक बनना पड़े, तलवार उठानी पड़े, तो भी वह जो धर्मिष्ठ व्यक्ति है, वह निरंतर अव्यक्तिगत, निरंतर शांत, निरंतर शून्य, निरंतर अपनी तरफ से अलिप्त, लड़ने में बिना रस लिए, युद्ध में उतरेगा।

यही कोशिश कृष्ण की अर्जुन के लिए है कि वह ऐसा हो जाए--संन्यासी, सैनिक एक साथ। तो ही सैनिक का जो विष है, जो जहर है, वह विलीन हो जाता है।

संन्यासी का अमृत अगर सैनिक पर गिर जाए, उसका जहर विलीन हो जाता है।

आज इतना ही। कीर्तन करें; और फिर जाएं।

तिरसठवां प्रवचन

विजयोत्सव ऐसे मना जैसे कि वह अंत्येष्टि हो

Chapter 31 : Part 2

Weapons Of Evil

Even in victory, there is no beauty,
And who calls it beautiful
Is one who delights in slaughter.
He who delights in slaughter
Will not succeed in his ambition to rule the world.
(The things of good omen favour the left.
The things of ill omen favour the right.
The lieutenant-general stands on the left,
The general stands on the right.
That is to say, it is celebrated as a Funeral Rite.)
The slaying of multitudes should be mourned with sorrow.
A victory should be celebrated with the Funeral Rite.

अध्याय 31 : खंड 2

अनिष्ट के शस्त्रास्त्र

विजय में भी कोई सौंदर्य नहीं है।
और जो इसमें सौंदर्य देखता है,
वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है।
और जिसे हत्या में रस है,
वह संसार पर शासन करने की अपनी महत्वाकांक्षा में सफल नहीं होगा।
(शुभ लक्षण की चीजें वामपक्ष को चाहती हैं,
अशुभ लक्षण की चीजें दक्षिणपक्ष को।
उप-सेनापति वामपक्ष में खड़ा होता है,
और सेनापति दक्षिणपक्ष में।

अर्थात, अंत्येष्टि क्रिया की भांति यह मनाया जाता है।)

हजारों की हत्या के लिए शोकानुभूति जरूरी है,

और विजय का उत्सव अंत्येष्टि क्रिया की भांति मनाया जाना चाहिए।

हिंसा में कौन उत्सुक है? हत्या में किसका रस है? और विध्वंस किसकी अभीप्सा बन जाती है? इसे हम थोड़ा समझ लें; फिर इस सूत्र पर विचार आसान होगा।

सिगमंड फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के मन में गहरा से गहरा प्रवेश किया है। इस सदी का पतंजलि कहें उसे। सिगमंड फ्रायड की गहनतम खोज मनुष्य की दो आकांक्षाओं के संबंध में है। उन दो को सिगमंड फ्रायड ने कहा है--एक को जीवेषणा और दूसरे को मृत्यु-एषणा। आदमी जीना भी चाहता है, इसकी भी वासना है, और आदमी के भीतर मरने की भी वासना है।

दूसरा सूत्र समझना कठिन है। लेकिन अनेक कारणों से दूसरा सूत्र उतना ही अपरिहार्य है, जितना पहला। हर आदमी जीना चाहता, इसमें तो कोई शक नहीं है। जीने की आकांक्षा सभी को जन्म के साथ मिली है। लेकिन दूसरी आकांक्षा, जो जीने के विपरीत है, मरने की आकांक्षा, वह भी हर आदमी के भीतर छिपी है। इसीलिए कोई आत्मघात कर पाता है; अन्यथा आत्मघात असंभव हो जाए। इसीलिए कोई अपने को नष्ट कर पाता है। अगर भीतर मरने की कोई आकांक्षा ही न हो तो आदमी अपने को नष्ट ही न कर सके।

जैसे-जैसे उम्र व्यतीत होती है, वैसे-वैसे जीवन का ज्वार कम हो जाता है और मृत्यु की आकांक्षा प्रबल होने लगती है। बूढ़े व्यक्ति निरंतर कहते हुए सुने जाते हैं, अब परमात्मा उठा ले। बूढ़ा आदमी सच में ही चाहता है अब विदा हो जाए। क्योंकि अब होने का कोई अर्थ भी नहीं है।

मरने का कहीं कोई गहरा ख्याल जवान के भीतर भी है। ऐसा जवान आदमी भी खोजना मुश्किल है, जिसे कभी न कभी मरने का ख्याल न आ जाता हो कि मैं मर जाऊं, समाप्त कर लूं। या इस सब में क्या अर्थ है? इस जीवन में क्या प्रयोजन है?

आज ही एक युवती मेरे पास थी। वह कह रही थी कि हर महीने यह बात बार-बार लौट आती है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है, मर जाना चाहिए। अभी तो उसने जीवन देखा भी नहीं है।

छोटे बच्चों तक के मन में मरने का ख्याल आ जाता है।

तो अगर मृत्यु की कोई आकांक्षा भीतर न हो तो ये मरने के ख्याल कहां से अंकुरित होते हैं? मृत्यु की आकांक्षा भी भीतर है। और जब हम पाते हैं कि जीवन संभव नहीं रहा, तो मृत्यु की आकांक्षा हमें पकड़ लेती है।

यह बात इसलिए भी जरूरी है कि जगत में हर चीजें द्वंद्व में होती हैं। प्रकाश है, तो अंधेरा है; अकेला प्रकाश नहीं हो सकता। और जीवन है, तो मृत्यु है; अकेला जीवन नहीं हो सकता। तो अगर भीतर जीवेषणा है, तो मृत्यु-एषणा भी होनी ही चाहिए। यह सारा जगत द्वंद्व पर खड़ा है। यहां हर चीज अपने विपरीत के साथ बंधी है। विपरीत न हो, यह संभव नहीं मालूम होता।

अब तो वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि जीवन के सब नियम विपरीत पर खड़े हैं, और ऐसा कोई नियम नहीं है जिसका विपरीत नियम न हो। विपरीत न हो तो वह हो ही नहीं सकता। करीब-करीब हालत ऐसी है, जैसे एक मकान को बनाने वाला राजगीर उलटी ईंटें लगा देता है दरवाजे पर, गोल दरवाजा बन जाता है। विपरीत ईंटें एक-दूसरे को सम्हाल लेती हैं। जिंदगी विपरीत ईंटों से बनी है। यहां हर

चीज का विरोध है, और विरोध के तनाव में ही संतुलन है। जैसे एक लकड़ी के दो छोर होंगे, एक छोर नहीं हो सकता, ऐसे ही जीवन की सब चीजों का दूसरा छोर भी है--कितना ही अज्ञात हो।

तो फ्रायड चालीस वर्ष निरंतर लोगों का मनोविश्लेषण करके इस नतीजे पर पहुंचा कि लोगों को पता नहीं है, उनके भीतर मृत्यु की आकांक्षा भी है। पर हालत ऐसी है, जैसे एक सिक्का होता है, उसके दो पहलू होते हैं। एक पहलू ऊपर होता है तो दूसरा नीचे दबा होता है, जब दूसरा ऊपर आता है तो एक पहला नीचे चला जाता है। जवान आदमी में जीने की आकांक्षा प्रबल होती है, मृत्यु की आकांक्षा नीचे दबी रहती है। कभी-कभी किसी बेचैनी में, किसी उपद्रव में, किसी अशांति में सिक्का उलट जाता है; जिंदगी की आकांक्षा नीचे और मौत की ऊपर आ जाती है। बूढ़े आदमी में मृत्यु की आकांक्षा ऊपर आ जाती है, जीवन की आकांक्षा नीचे दब जाती है। कभी-कभी किसी वासना के उद्दाम प्रवाह में सिक्का उलट जाता है और बूढ़ा भी जीना चाहता है। लेकिन एक ही वासना का आपको पता चलेगा, दोनों एक साथ आपको दिखाई नहीं पड़ सकतीं; क्योंकि एक ही पहलू आप देख सकते हैं। इसीलिए यह भ्रांति पैदा होती है कि हमारे भीतर एक ही आकांक्षा है--जीवन की। दूसरी भीतर छिपी है।

ये जो दो आकांक्षाएं हैं आदमी के भीतर, इन्हें थोड़ा हम ठीक से समझें, तो हिंसा और अहिंसा के विचार में बहुत गहन गति हो पाएगी। जब आपकी जीवन की वासना ऊपर होती है, तो आपके स्वयं के मरने की वासना नीचे दबी होती है। और जो आदमी जीना चाहता है प्रबलता से, वह आदमी मरना नहीं चाहता। लेकिन उसके जीवन की गति में कोई बाधा बने तो उसे मारना चाहता है। जिसकी जीवन की वासना प्रबल है, वह दूसरे के जीवन को नष्ट करके भी अपने जीवन की वासना को पूरा करना चाहता है। हिंसा इसी से पैदा होती है।

हिंसा, अपने ही भीतर जो मृत्यु की वासना है, उसका प्रोजेक्शन है दूसरे के ऊपर, उसका प्रक्षेपण है दूसरे के ऊपर। मेरे भीतर जो मृत्यु छिपी है, उसे मैं दूसरे पर थोपना चाहता हूं। हिंसा का मनोवैज्ञानिक अर्थ यही हैः मैं नहीं मरना चाहता। मैं अपने जीने के लिए, चाहे सबको मारना पड़े, तो उसकी भी मेरी तैयारी है; लेकिन मैं नहीं मरना चाहता। हर हालत में, सारा जगत भी नष्ट करना पड़े, तो मैं तैयार हूं; लेकिन मैं जीना चाहता हूं। आदमी के भीतर दोनों संभावनाएं हैं। जब आदमी जीवन को पकड़ लेता है, तो उसकी मरने की वासना का क्या हो? वह भी उसके भीतर है। उसे प्रोजेक्ट करना पड़ता है, उसे दूसरे पर थोपना पड़ता है। नहीं तो बेचैनी होगी, कठिनाई होगी। दोनों की मांग है पूरा होने की। आप एक को पकड़े हैं तो दूसरे का क्या करिएगा? उसे आपको दूसरे पर आरोपित करना होता है।

इसलिए जितना जीवेषणा से भरा हुआ व्यक्ति होगा, उतनी ही हिंसा से भरा हुआ व्यक्ति भी होगा।

अगर बुद्ध या महावीर अहिंसक हो सके, तो उसका पहला सूत्र यह है कि उन्होंने जीने की वासना छोड़ दी। नहीं तो वे अहिंसक नहीं हो सकते। उन्होंने जीने की कामना ही छोड़ दी। बुद्ध ने तो कहा है कि अगर जरा सी भी वासना जीने की है, तो आदमी दूसरे को मिटाने को हमेशा तैयार होगा।

आप लड़ते ही कब हैं? जब आपको डर होता है कि कोई आपके जीवन को छीनने आ रहा है--चाहे झूठ ही हो यह डर। आप भयभीत कब होते हैं? जब आपको लगता है आपका जीवन छिन जाएगा, तो भयभीत होते हैं। भय का एक ही अर्थ है कि मेरा जीवन न छिन जाए। तो हम सुरक्षा करते हैं। उस सुरक्षा में अगर हमें दूसरे का जीवन छीनना पड़े, तो हम छीनेंगे।

शवीत्जर ने, एक बहुत विचारशील व्यक्ति ने, भारत को मृत्युवादी कहा है। उसकी बात में थोड़ी सचाई है, थोड़ी। जिस अर्थ में वह कहना चाहता है, वह तो ठीक नहीं है; लेकिन थोड़ी सचाई है। क्योंकि भारत के जो भी बड़े मनीषी हैं, वे जीवेषणा से भरे हुए नहीं हैं। वे कहते हैं, जीवेषणा हिंसा पैदा करती है।

जब मैं बहुत जोर से जीना चाहता हूं, तो मैं दूसरे की मृत्यु का कारण बन जाता हूं। और दूसरे भी इतने ही जोर से जीना चाहते हैं, वे मेरी मृत्यु का कारण बन जाते हैं। जी कोई भी नहीं पाता; हम एक-दूसरे की मृत्यु के कारण बन जाते हैं। हम एक-दूसरे के जीवन को काटते हैं; जी कोई भी नहीं पाता।

तो बुद्ध या महावीर कहते हैं, ऐसी जीवेषणा का क्या मूल्य, जो दूसरे के जीवन का घात बनती हो! अगर यही जीवन है, जिसमें दूसरे की हिंसा अनिवार्य है, तो इस जीवन को छोड़ देने जैसा है।

भारत की आकांक्षा रही हैः ऐसे जीवन की तलाश, जो दूसरे के जीवन के विरोध में न हो। उसको हमने परम जीवन कहा है। एक ऐसे सत्व की खोज, एक ऐसी स्थिति की खोज, जहां मेरा होना किसी के होने में बाधा न बनता हो। और अगर मेरा होना किसी के होने में बाधा बनता है, तो भारत इस होने को दो कौड़ी का मानता रहा है। फिर इसका कोई मूल्य नहीं है। फिर ऐसे होने को करके भी, लेकर भी क्या करेंगे? ऐसे जीवन को क्या करेंगे, जो लाश पर ही खड़ा होता हो दूसरे की? जो दूसरे को मिटा कर ही बनता हो, ऐसी बनावट के भारत पक्ष में नहीं है।

तो शवीत्जर ठीक कहता है, उसकी आलोचना में सचाई है कि भारत मृत्युवादी है। सचाई इतनी ही है कि भारत जीवेषणावादी नहीं है। लेकिन शब्द अनुचित है, मृत्युवादी कहना ठीक नहीं। क्योंकि जो जीवन को ही नहीं मानता, वह मृत्यु को क्या मानेगा? जिसका जीवन में ही रस नहीं है, उसका मृत्यु में रस कैसे हो सकता है?

तो भारत वस्तुतः न तो जीवेषणावादी है और न मृत्यु-एषणावादी है। भारत तो मानता है, ये दोनों एषणाएं साथ-साथ हैं; इनमें से एक का त्याग नहीं हो सकता। एक सिक्के का मैं एक पहलू त्यागना चाहूं, यह कैसे हो सकता है? पूरा सिक्का फेंक सकता हूं, या पूरा सिक्का बचा सकता हूं। लेकिन सोचूं कि एक पहलू बच जाए और एक फेंक दूं, तो मैं पागल हूं। तो भारत कहता है, या तो दोनों बचते हैं, जीवन की आकांक्षा के साथ दूसरे की मृत्यु की आकांक्षा भी बच जाती है, अपनी मृत्यु की आकांक्षा भी बच जाती है। और अगर फेंकना है जीवेषणा, तो मृत्यु-एषणा भी फिंक जाती है; वह उसी का दूसरा पहलू है।

इसलिए भारत मुक्तिवादी है, मृत्युवादी नहीं। मुक्ति का अर्थ हैः जीवन और मृत्यु दोनों के पार। जीवन का अर्थ है मृत्यु के विरोध में, मृत्यु का अर्थ है जीवन के विरोध में; मुक्ति का अर्थ है दोनों के पार। किसी के विरोध में नहीं, किसी के पक्ष में नहीं; दोनों से अलग। इसलिए भारत का सारा चिंतन मोक्ष के इर्द-गिर्द घूमता रहा है। यह मोक्ष क्या है? यह मोक्ष ऐसे होने की अवस्था है, जहां मेरा होना किसी के होने का शोषण नहीं है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। जहां मैं होता हूं, इससे कोई मिटता नहीं, कोई भी नहीं मिटता; मेरे होने से किसी की हिंसा नहीं होती; मेरा होना शुद्धतम, निर्दोष और पवित्र हो जाता है; उसमें कोई रेखा हिंसा की नहीं रह जाती। अगर ऐसा कोई जीवन है, तो भारत कहता है, ऐसा जीवन ही पाने योग्य है। इस पृथ्वी पर तो हम जो जीवन देखते हैं, वह जीवन किसी न किसी रूप में हिंसा पर खड़ा है। इसलिए भारत को इस पृथ्वी की आकांक्षा ही न रही। हमने जो श्रेष्ठतम मनीषी पैदा किए, वे पृथ्वी के पार जाने की उद्दाम अभीप्सा से भरे हुए लोग हैं। वे कहते हैं, अगर यही जीवन है तो जीवन जीने योग्य नहीं है। एक और जीवन हो सकता है क्या?

शरीर के रहते तो उस जीवन की संभावना मुश्किल मालूम पड़ती है। क्योंकि शरीर का होना तो हिंसा पर निर्भर है; चाहे भोजन करें हम, चाहे श्वास लें, चाहे पानी पीएं, चाहे एक कदम रखें, लेटें, उठें, बैठें, हिंसा चलती है। शरीर हिंसा ही के आधार पर है। लेकिन चेतना, भीतर शरीर के जो होश, जो जागरूकता है, जो बोध है, उसके लिए किसी की हिंसा की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए हम इस बात की भी तलाश करते रहे हैं कि कैसे शरीर के पार के तत्व का पता चल जाए। और शरीर को हमने एक आवश्यक बुराई की तरह स्वीकार किया है। उसका इतना ही उपयोग है कि उसके रहते हमें उसका पता चल जाए जो शरीर नहीं है। जैसे ही उसका पता चल जाए जो शरीर नहीं है, फिर शरीर में आने का, लौटने का कोई कारण नहीं रह जाता।

जीवेषणा खुद की हो, तो मृत्यु-एषणा दूसरे पर टिक जाती है। आज नहीं कल, खुद पर वापस लौट सकती है। वह हमारी ही वासना है, कभी भी वापस लौट सकती है।

एक आदमी के मकान में आग लग गई। अभी क्षण भर पहले तक वह जीवेषणा से भरा था। बड़े सपने थे दुनिया में रहने के, होने के। अचानक वह कूद पड़ना चाहता है आग में कि मैं मर जाऊं। क्या हो गया? क्षण भर पहले यह आदमी जीना चाहता था। जीने की बड़ी योजना थी; लंबे स्वप्न थे, जो पूरे करने थे; समय कम था। अब अचानक यह आदमी कहता है, मैं मर जाना चाहता हूं, मुझे छोड़ दो, मैं कूद जाऊं, इस मकान के साथ जल जाऊं। क्या हुआ? जीवेषणा मृत्यु-एषणा कैसे बन गई? वह जो जीना चाहता था, मरना क्यों चाहता है?

सब जीने की शर्त होती है। ध्यान रखना, आप भी जी रहे हैं, उसमें शर्तें हैं--पता हों, न हों। इस आदमी के जीने की शर्त थी--इसको पता नहीं था अब तक--कि यह महल रहेगा तो ही जीऊंगा। आज महल जल रहा है तो जीना व्यर्थ हो गया। कोई आदमी किसी को प्रेम करता है; उसकी पत्नी मर जाए, बच्चा मर जाए, पति मर जाए--मरना चाहता है।

हमारे मुल्क में हजारों स्त्रियां सती होती रहीं। सती होने का क्या मतलब है? उसका मतलब है, जीवन की एक शर्त थी कि वह पति के साथ ही... । वह शर्त टूट गई, तो जीवेषणा मृत्यु-एषणा बन गई। अब वह पति के साथ ही मर जाना चाहती है स्त्री। उसका मतलब यह हुआ कि एक शर्त थी सुनिश्चित, उसके बिना जीवन स्वीकार नहीं, उसके बिना मृत्यु स्वीकार है।

एक मित्र को मैं जानता हूं; वे एक राज्य के मुख्य मंत्री थे। बूढ़े हो गए थे। उनके घर मैं मेहमान था। ऐसे ही बात चलती थी; बातचीत में वे भूल से कह गए, फिर पछताए भी और कहा कि किसी और को मत कहना। लेकिन अब वे नहीं हैं, इसलिए कोई अड़चन नहीं है। वे ऐसे ही बातचीत में, रात गपशप चलती थी, वे मुझसे कह गए कि मेरी एक इच्छा है कि मुख्य मंत्री रहते ही मर जाऊं; क्योंकि बिना मुख्य मंत्री के फिर मैं एक मिनट न जी सकूंगा। जब से भारत आजाद हुआ, तब से वे मुख्य मंत्री थे उस राज्य के। बस एक ही इच्छा है कि मुख्य मंत्री रहते मर जाऊं। मुख्य मंत्री नहीं रहा तो फिर न जी सकूंगा।

ऐसे वे एक स्कूल के मास्टर थे आजादी के पहले। लेकिन अब वापस, मुख्य मंत्री का महल छोड़ कर अब वापस उनकी हिम्मत न थी पुरानी स्थिति में लौट जाने की। उनकी स्थिति दयनीय थी। और मैं मानता हूं कि अगर वे मुख्य मंत्री रहते न मरते, तो वे आत्महत्या कर लेते; वे इतने ही बेचैन और परेशान आदमी थे।

शर्तें हैं हमारी जीने की। जीवन सशर्त है। तो शर्त टूट जाए तो हम मरने को राजी हो जाते हैं। आप अपनी हत्या करें या दूसरे की, कारण सदा एक होता है। दूसरे की भी आप हत्या इसीलिए करते हैं कि वह आपके जीवन में बाधा बन रहा था। और अपनी भी आप हत्या इसीलिए कर लेते हैं कि अब आपका स्वयं का जीवन भी आपके सशर्त जीवन की आकांक्षा में बाधा बन रहा था। उसे मिटा डालते हैं।

यह जो हिंसा की वृत्ति है, यह इसी मृत्यु की--इसको फ्रायड ने थानाटोस कहा है--यह मृत्यु-एषणा का हिस्सा है। अगर, जैसा फ्रायड कहता है, उतनी ही बात हो, तो फिर आदमी को इससे मुक्त कैसे किया जा सकता है? इसलिए फ्रायड कहता है कि ज्यादा से ज्यादा आदमी को हम कम से कम हिंसा के लिए नियोजित कर सकते हैं; लेकिन पूर्ण अहिंसा के लिए नहीं। आदमी तो हिंसक रहेगा ही। इसलिए हम उसकी हिंसा को सब्लीमेट कर सकते हैं, उसकी हिंसा को हम थोड़ा सा ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं। कई तरह के ऊर्ध्वगमन हैं हिंसा के, वह भी ख्याल में ले लें, तो आपको पता चले कि वहां भी आप हिंसा ही कर रहे हैं।

दो पहलवान कुश्ती लड़ रहे हैं; आप देखने चले जा रहे हैं। हजारों, लाखों लोग इकट्ठे होते हैं पहलवान को कुश्ती लड़ते देखने। आप क्या देखने जा रहे हैं? आपको क्या रस मिल रहा होगा? एक आदमी पिटेगा, कुटेगा, गिरेगा; एक गिराएगा, दूसरा उसकी छाती पर सवार होगा; आपको क्या पुलक होती है? स्टुपिड, बिल्कुल मूढ़तापूर्ण है। आप किसलिए पहुंच गए हैं देखने?

मगर लोगों को देखें, जब कुश्ती हो रही हो, तो वे अपनी कुर्सी पर बैठ नहीं सकते; इतनी शक्ति से भर जाते हैं कि उठ-उठ आते हैं। सांस उनकी तेज चलने लगती है, रीढ़ सीधी हो जाती है; जैसे उनके प्राण अटके हैं किसी बड़ी घटना में। हो क्या रहा है? आपके भीतर जो हिंसा की वृत्ति है, उसकी केथार्सिस हो रही है, वह बाहर निकल रही है। आप मजा ले रहे हैं। असल में, अब आप इतने बलशाली भी नहीं हैं कि खुद ही हिंसा कर लें, वह आप नौकरों से करवा रहे हैं। वे किराए के आदमी कर रहे हैं वह काम।

अब हम किसी भी काम को करने में खुद समर्थ नहीं हैं। अगर आपको प्रेम करना है तो आप खुद नहीं कर सकते। तो नाटक या फिल्म में दूसरों को प्रेम करते देखते हैं। आपके नौकर प्रेम कर रहे हैं, आप देख रहे हैं। बड़ा हलकापन लगता है; तीन घंटे नासमझियां देख कर जब आप लौटते हैं, तो मन हलका हो जाता है। क्यों?

यह सब आप करना चाहते थे। आपके भीतर ये वेग हैं। जब फिल्म के पर्दे पर पुलिस डाकू का पीछा कर रही हो, और सनसनीखेज हो जाए स्थिति, और रोआं-रोआं कंपने लगे, पहाड़ी रास्ते हों, भागती हुई कारें हों और ऐसा लगे कि अब दुर्घटना, अब दुर्घटना, तब आप इस हालत में हो जाते हैं जैसे कार के भीतर हैं। वह तो अच्छा है कि फिल्म के हाल में अंधेरा रहता है, कोई किसी को देख नहीं सकता। एकदम से उजाला हो जाए, तो आप शर्मिंदा हो जाएंगे कि क्या कर रहे थे! इतने जोश में आप क्यों आ गए थे?

आपके भीतर भी कुछ हो रहा था। वह आप हलके हो रहे थे। आप कुश्ती देख रहे हैं, दंगा-फसाद देख रहे हैं, युद्ध देख रहे हैं; आपके भीतर कुछ हलका हो रहा है। नौकरों से काम लिया जा रहा है; आप जो नहीं कर सकते हैं, वह अब धंधेबाज लोग उस काम को कर रहे हैं। आप नाच नहीं सकते, कोई नाच रहा है; आप गा नहीं सकते, कोई गा रहा है; आप दौड़ नहीं सकते, कोई दौड़ की प्रतियोगिता कर रहा है; आप लड़ नहीं सकते, कोई लड़ रहा है। हमने अपनी हिंसा को निकास के रास्ते बना रखे हैं।

और सारी दुनिया में इस तरह के उपाय समाजों ने छोड़े हैं--छुट्टी के दिन। जैसे होली; वह छुट्टी का दिन है। उस दिन जो-जो नालायकी आपको करनी हो, वह आप मजे से कर सकते हैं। उसको कोई एतराज नहीं लेगा। लेकिन आप कर रहे हैं वह, यह आपने कभी सोचा कि क्यों कर रहे हैं? आप साल भर ही करना चाहते, लेकिन छुट्टी नहीं थी। यह तो दिल आपका था साल ही भर करने का--गाली देने का, गंदगी फेंकने का, दूसरे को परेशान करने का--यह तो आपका मन सदा से था। समझदार समाज आपको साल में कभी-कभी छुट्टी देता है, ताकि आपका कचरा निकल जाए, थोड़ी राहत मिले, थोड़ी राहत मिले।

सारी दुनिया में सभी समाज, विशेषकर सभ्य समाज। असभ्य समाज नहीं करते ऐसी व्यवस्था; क्योंकि कोई जरूरत नहीं है। साल भर ही वे यह करते हैं। इसलिए कोई उनको होली की जरूरत नहीं है; साल भर होली है। जितना सभ्य समाज होगा, उतना उसे रास्ता बनाना पड़ेगा निकास का। फिर हम उसको हलके मन से लेंगे; फिर आप उसमें एतराज नहीं उठाएंगे। क्योंकि, आपने कभी सोचा ही नहीं कि आपकी यह जरूरत है; मानसिक जरूरत है।

सारी दुनिया में खेल है, प्रतियोगिता है, ओलंपिक्स हैं। हमारी सब हिंसा का उपाय है कि कहीं से वह बह जाए, निकल जाए। यह सब्लिमेशन है, यह ऊर्ध्वगमन है--मनोविज्ञान की भाषा में। कुछ बहुत ऊर्ध्वगमन नहीं है, लेकिन सीधी हिंसा नहीं है। और किसी को कोई बहुत नुकसान नहीं होता। पर आपके भीतर हिंसा है और वह मांग करती रहती है निकलने की, इसे आपको समझ रखना चाहिए।

इसलिए जब युद्ध होता है, तो लोगों के चेहरे पर रौनक आ जाती है। आनी नहीं चाहिए, उदासी छा जानी चाहिए। लेकिन होता उलटा है। युद्ध जब होता है, तो लोग रौनक से भर जाते हैं, पैरों में गति आ जाती है, जिंदगी में पुलक मालूम होती है--कुछ हो रहा है! ऐसे ही जिंदगी बेकार नहीं जा रही, चारों तरफ कुछ हो रहा है। हवा गरम है; उसमें आप भी गरमा जाते हैं। आप कितनी ही निंदा करते हों युद्धों की, लेकिन अपने भीतर देखेंगे, तो आपको रस आता है। हां, आपके घर पर ही युद्ध न आ जाए; तब आपको चिंता होती है। वह कहीं दूर होता रहे--वियतनाम में, बंगलादेश में, इजराइल में--आप बिल्कुल प्रसन्न हैं। होता रहे। सुन कर भी, टेलीविजन पर देख कर, रेडियो पर सुन कर भी, आपको हलकापन आता है।

आदमी क्या हिंसा से मुक्त कभी भी नहीं हो सकेगा?

मनोविज्ञान के पास तो कोई उपाय नहीं है और निराशा है। मनोविज्ञान कहता है, इतना ही हो सकता है कि हम आदमी की हिंसा को समुचित मार्गों पर गतिमान कर दें। ठीक है, ओलंपिक देखो, पहलवानों को लड़ाओ, फिल्म देखो, यह ठीक है। सीधी मत करो। इस तरह अपने मन को निकाल लो, हलका कर लो। बस इतना ही हो सकता है।

या फिर हम आदमी को बदलें। मनोविज्ञान को आशा नहीं मालूम होती। लेकिन लाओत्से, बुद्ध को आशा है; वे मानते हैं, आदमी बदला जा सकता है। आदमी के बदलने का एक ही उपाय है कि आदमी पहले अपनी वस्तुस्थिति से पूरी तरह परिचित हो जाए। पहले तो वह जान ले कि उसके भीतर हिंसा छिपी पड़ी है। इसे स्वीकार करना अहिंसा की दिशा में पहला कदम है।

लेकिन हम इसे स्वीकार नहीं करते। हम तो अपने को अहिंसक मानते हैं। क्योंकि कोई रात में पानी नहीं पीता, वह अहिंसक है; कोई पानी छान कर पी लेता है, वह अहिंसक है; कोई मांस नहीं खाता, वह अहिंसक है। हमने अहिंसा की बड़ी सस्ती तरकीबें खोज निकाली हैं।

लेकिन जो मांस नहीं खाता उसके व्यवहार में और जो मांस खाता है उसके व्यवहार में, कभी आपने फर्क देखा है कि कोई हिंसा का फर्क हो? कोई फर्क नहीं है। जो आदमी पानी छान कर पीता है और जो बिना छाने पीता है, क्या उनका दोनों का व्यवहार देख कर कोई भी बता सकता है कि इनमें कौन पानी छान कर पीता है? कोई भी नहीं बता सकता। तो अहिंसा क्या हुई? उन दोनों का व्यवहार एक जैसा है।

अगर एक जैन दूकानदार है, जो सब तरह से अहिंसा को ऊपर से साध रहा है, और एक मुसलमान दूकानदार है, जो मांसाहारी है और किसी तरह की ऊपरी हिंसा को छोड़ नहीं रहा है। क्या ग्राहक के संबंध में उन दोनों का जो व्यवहार है, उसमें रत्ती भर भी फर्क होता है? कोई फर्क नहीं होता। डर तो यह है कि जो सब

तरफ से हिंसा से रोक रहा है अपने को, वह ग्राहक की गर्दन ज्यादा दबाएगा। क्योंकि उसे दबाने का और कहीं मौका नहीं है, फैलाव नहीं है। तो उसकी गर्दन दबाने की वृत्ति ज्यादा तीव्र हो जाए, इसकी संभावना है। क्योंकि हिंसा अगर बहुत सी चीजों में फैल जाए तो उसकी मात्रा कम हो जाती है, डाइल्यूट हो जाती है। सब तरफ से सिकोड़ ली जाए तो फिर उसकी मात्रा घनी हो जाती है; फिर वह सीधी ही पकड़ती है।

इसलिए अक्सर यह होता है और इसमें आश्चर्य होता है हमें। भारत कई अर्थों में अहिंसक है--ऊपरी अर्थों में। पश्चिम के मुल्क ऊपरी अर्थों में हिंसक हैं। लेकिन अगर आदमियत, ईमानदारी, सचाई, वचन का भरोसा करना हो, तो भारत के आदमी का नहीं किया जा सकता। क्या मामला है? होना नहीं चाहिए। अगर यह अहिंसा इतनी साधी जा रही है, तो भारत का आदमी अलग ही तरह का आदमी होना चाहिए। लेकिन आज हम देखते हैं कि मनुष्यता की दृष्टि से पश्चिम का हिंसक आदमी भी हम से बेहतर साबित हो रहा है। क्या कारण होगा? कारण एक है, और वह यह है कि हम जो छोटी-मोटी अहिंसा साधते हैं, उससे हम अपनी हिंसा के निकास का उपाय भी नहीं छोड़ते। फिर वह एक ही तरफ, एक दिशा में हमारी हिंसा यात्रा करने लगती है; बहुत सघन हो जाती है।

इससे क्या नतीजा लिया जा सकता है? नतीजा एक लिया जा सकता है कि ऊपर से जो जबरदस्ती, ठोंक-पीट कर छोटी-मोटी हिंसा से बचेगा और छोटी-मोटी दिखाऊ अहिंसा साधेगा, वह एक तथ्य से वंचित हुआ जा रहा है जानने के कि उसके भीतर गहरी हिंसा भरी है। वह अपने आचरण में थोड़ा-बहुत उपाय करके भुला लेगा। और वह भुलाना बहुत खतरनाक है। आपके ऊपरी आचरण के अंतर से कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। आपके भीतर हिंसा है, उसे देखने से बहुत फर्क पड़ेगा, उसे पहचानने से बहुत फर्क पड़ेगा। उसकी जितनी गहरी समझ हो जाएगी, उतना ही उससे मुक्त होना आसान हो जाएगा।

और जब तक आपके भीतर हिंसा का पहलू है, तब तक आपके जीवन में सौंदर्य नहीं हो सकता। यह दूसरी बात हम ख्याल में ले लें, फिर सूत्र में प्रवेश करें। एक ही प्रकार का सौंदर्य है जगत में, और वह सौंदर्य है भीतर से सब तरह की हिंसा, विध्वंस की वृत्ति का विसर्जन हो जाना। जब भीतर किसी तरह की हिंसा की वृत्ति और विध्वंस का भाव नहीं रह जाता, तो भीतर की चेतना कमल के फूल की तरह खिल जाती है।

हमने बुद्ध में, महावीर में वही सौंदर्य देखा है। एक सौंदर्य है शरीर का; वह केवल धारणा की बात है। वह कुछ है नहीं। बुद्ध कहीं भी जाएं, कैसे भी आदमी के पास से गुजरें, कहानी तो कहती है कि पशु के पास से भी गुजरें, तो भी उनके सौंदर्य से आंदोलित हो जाएगा।

एक सौंदर्य शरीर का है; वह मान्यता की बात है। कहीं लंबी नाक सुंदर है, कहीं नहीं है। कहीं सफेद चमड़ी सुंदर है, कहीं नहीं है। अभी मैं एक अमरीकन विचारक की किताब पढ़ रहा था। उसने लिखा है कि सफेद चमड़ी जो है, एक तरह की बीमारी है। वह खुद ही सफेद चमड़ी का आदमी है; लेकिन बड़ी हिम्मत की बात लिखी है। उसने लिखा है कि सफेद चमड़ी जो है, वह एक तरह की बीमारी है। क्योंकि सफेद चमड़ी के आदमी में कुछ पिगमेंट कम हैं, जो काली चमड़ी के आदमी में हैं। और वे जो पिगमेंट हैं, जो काली चमड़ी के आदमी में हैं, जीवन की सुरक्षा के लिए बड़े जरूरी हैं। वह डाक्टर है आदमी और उसका कहना है कि सफेद चमड़ी जो है, वह एक तरह की बीमारी है। सफेद चमड़ी कोई सौंदर्य नहीं है।

अगर आप अमेजान के किनारे बसे हुए जंगली आदमियों से पूछें, तो वे सफेद चेहरे को सफेद कहते ही नहीं, वे पेल फेस कहते हैं, पीला चेहरा। और वे कहते हैं कि यह रुग्ण आदमी है।

सफेदी कोई सौंदर्य नहीं है; मान्यता की बात है। इसलिए हमने कृष्ण को, राम को गोरा नहीं बनाया; क्योंकि उन दिनों हम गोरे को कोई सुंदर नहीं मानते थे। पता नहीं, राम और कृष्ण सांवले थे कि नहीं; यह दूसरी बात है। लेकिन एक बात पक्की है कि उस दिन जिन चित्रकारों ने उनके चित्र बनाए और मूर्तियां गढ़ीं, उनकी मान्यता यह थी कि सांवले का मुकाबला नहीं है, सांवला ही सुंदर है। इसलिए कृष्ण को हमने नीलवर्ण, श्याम नाम ही दे दिया, सांवला। उन दिनों भारत की धारणा ऐसी थी कि सफेदी में एक तरह का उथलापन है; सांवले में एक तरह का गहरापन है। जब नदी गहरी हो जाती है, तो सांवली हो जाती है; जब आकाश से बादल हट जाते हैं, तो आकाश सांवला हो जाता है; जितना गहन और गहरा होता है, उतनी नीलिमा छा जाती है। तो उन दिनों भारत की कल्पना थी सौंदर्य की सांवले की। सफेद को हम कभी सुंदर नहीं माने हैं।

लेकिन यह मान्यता की बात है। मान्यता बदलती चली जाती है। और शरीर का सौंदर्य बिल्कुल ही धारणा पर निर्भर है। जो आज सुंदर है, कल असुंदर हो जाएगा। जो कल असुंदर था, वह आज सुंदर हो सकता है।

एक और सौंदर्य है, जो धारणा की बात नहीं है; जो आंतरिक अवस्था की, अस्तित्वगत बात है। बुद्ध किसी भी युग से गुजरें और कैसी ही धारणा के लोग हों, बुद्ध का सौंदर्य छुएगा। वह सौंदर्य शरीर का नहीं है, वह चुंबक भीतर का है। यह चुंबक उस आदमी में ही गहन हो जाता है, जिस आदमी में भीतर की हिंसा क्षीण हो जाती है।

क्यों? वह हमें क्यों आकर्षित करता है?

सुंदर का मतलब है जो खींचे, आकर्षित करे। इसलिए हमने कृष्ण को नाम ही कृष्ण दे दिया। कृष्ण का मतलब है जो खींचे, आकर्षित करे। आकृष्ट करे वह कृष्ण, खींच ले जो, कशिश हो जिसके भीतर।

इसे हम ऐसा समझें कि जब भी कोई आदमी आपके प्रति क्रोध से भरता है, तो उस आदमी का सारा आकर्षण आपके लिए समाप्त हो जाता है, विकर्षण पैदा हो जाता है। अगर कोई आदमी आपके प्रति हिंसा से भरा है, आपको पता भी न हो, तो भी उस आदमी के पास आपको बेचैनी मालूम होगी; वह आदमी से आप रिपेल्ड अनुभव करेंगे, हटते हुए, बच जाएं--दूर हो जाए, यह आदमी हट जाए। कभी ऐसा लगता है कि कोई आदमी, बिल्कुल अपरिचित, अनजान, आपको पहली दफा दिखता है और आप हट जाना चाहते हैं। क्या बात होगी?

जो भी आपके प्रति हिंसा से भरता है, उससे आपका विकर्षण पैदा होता है। अगर आप भी हिंसा से भरे हैं किसी के प्रति तो विकर्षण पैदा होगा। और अगर आप हिंसा से भरे ही हैं, किसी के प्रति का कोई सवाल नहीं, तो जो भी आपके पास आएगा, वह दूर हटना चाहेगा। कभी आपने अनुभव किया है कि लोग आपके पास आना नहीं चाहते, या आते हैं तो दूर हट जाते हैं, या आप उनको खींचते हैं तो वे भागते हैं। अगर ऐसा अनुभव भी होगा, तो आप समझेंगे वे लोग ही गलत हैं। लेकिन थोड़ा विचार करना, अगर भीतर हिंसा है, तो हिंसा विकर्षक है; वह उलटा मैग्नेटिज्म है उसमें, दूर हटाती है। स्वाभाविक भी है। क्योंकि जहां हिंसा हो, वहां आपके जीवन को खतरा है; इसलिए दूर हट जाना उचित है।

जब हिंसा विसर्जित हो जाती है, तो इससे उलटी घटना घटती है। जिसके भीतर से हिंसा विसर्जित हो जाती है, आप अचानक जैसे उसमें गिर जाना चाहते हैं, उससे एक हो जाना चाहते हैं, उसके पास होना चाहते हैं, उसके निकट होना चाहते हैं। एक अदम्य आकर्षण आपको उसकी तरफ खींचने लगता है।

अगर बुद्ध और महावीर के पास सैकड़ों लोग आकर्षित होकर डूब गए, तो उसका कारण, वह जो कह रहे थे, वह नहीं था। क्योंकि उन्होंने जो कहा है, वह किताबों में रखा है। और आप किताब पढ़ लें, आप कुछ दीवाने हो नहीं जाएंगे। गीता कितनी दफे आपने पढ़ ली! लेकिन जो अर्जुन ने जाना है, वह आप नहीं जान पाएंगे।

क्या, फर्क क्या है? वहां वह आदमी मौजूद था, जिसके होने में आकर्षण था। गीता आपको कनविन्स नहीं कर पाएगी, कितना ही पढ़ें। कृष्ण के होने में कनविक्शन है। वह जो राजी हो जाना है आपका, वह कृष्ण के वचन से नहीं है, वह कृष्ण की वाणी से नहीं है, वह कृष्ण के अस्तित्व से है।

एक सौंदर्य है, एक आकर्षण है, जो भीतर की हिंसा के विसर्जित हो जाने से उपलब्ध होता है। और एक ही सौंदर्य है वस्तुतः, जो उसे पा लेता है, वह सुंदर है। जो उसे नहीं पाता, वह कितने ही आभूषण लगाए और कितनी ही सजावट करे और कितना ही बाहर से सजाए-संवारे, वह सिर्फ अपनी कुरूपता छिपा रहा है; सुंदर नहीं हो पाता। कुरूपता छिपाना एक बात है; सुंदर हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है।

इसीलिए महावीर जैसा व्यक्ति नग्न भी हो सका; क्योंकि अब छिपाने को कुछ बचा ही नहीं। जिसे छिपाते थे, वह कुरूपता न बची। सौंदर्य नग्न हो सकता है, कुरूपता नग्न नहीं हो सकती। सिर्फ सौंदर्य ही नग्न हो सकता है। इसका मतलब यह आप मत समझना कि जो भी नग्न हो जाते हैं, वे सुंदर हैं। उलटा नहीं कह रहा हूं कि जो भी नग्न हैं, वे सुंदर हैं। लेकिन सौंदर्य नग्न हो सकता है, प्रकट हो सकता है; क्योंकि अब कुछ छिपाने को नहीं है, कुछ भय नहीं है किसी का। कुरूपता भयभीत है, छिपना चाहती है, ढंकना चाहती है, आवृत होना चाहती है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें।

"विजय में भी कोई सौंदर्य नहीं है। और जो इसमें सौंदर्य देखता है, वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है।"

विजय में भी कोई सौंदर्य नहीं है; क्योंकि विजय निर्भर ही हिंसा पर होती है, विजय आधृत ही मृत्यु पर है। कौन जीतता है? जो मारने में ज्यादा कुशल है, जो मृत्यु का दूत आपसे ज्यादा है। जीतने में न तो पता चलता कि सत्य जीत रहा है, न पता चलता कि शिव जीत रहा है, न पता चलता कि सुंदर जीत रहा है; एक बात भर पता चलती है कि जो शक्तिशाली है वह जीत रहा है। ब्रूट फोर्स, पाशविक शक्ति जीतती है।

जीसस को सूली पर लटका दिया। जिन्होंने सूली दी, उनके पास सिर्फ पाशविक शक्ति थी; जीसस के पास परमात्मा था। लेकिन वे सूली देने वाले सूली देने में जीत गए। मंसूर को जिन्होंने काटा, उनके पास तलवारें थीं; मंसूर के पास आत्मा थी। लेकिन तलवार से काटने वाले लोग शरीर काटने में जीत गए।

एक बात ख्याल में ले लें: जितना श्रेष्ठतर हो भीतर का अंश, उतना ही पशुता के सामने--बाहरी अर्थों में--जीत नहीं पाएगा। आपके भीतर आइंस्टीन की बुद्धि हो, तो भी क्या फर्क पड़ता है; एक जोर से मारा हुआ पत्थर आपकी खोपड़ी को तोड़ देगा। और आपके पास कितनी ही बड़ी आत्मा हो, तलवार आपकी गर्दन को काट देगी। बाहरी अर्थों में, पशुता जीत जाएगी।

एक और मजे की बात है कि बाहरी अर्थों में सिर्फ पशुता ही जीतना चाहती है। बाहरी अर्थों में सिर्फ पशुता ही जीतना चाहती है; बाहरी अर्थों में, वह जो दिव्यता है, जीतना भी नहीं चाहती। क्योंकि जीतने की आकांक्षा ही पशुता का हिस्सा है; दूसरे को जीतने का भाव ही हिंसा है। क्यों जीतना चाहते हैं दूसरे को? डॉमिनेट करना है? मालकियत दिखानी है? उसको वस्तु बना कर अपने घेरे में, फंदे में, अपने कारागृह में डालना है? दूसरे को हम जीतना क्यों चाहते हैं?

दूसरे को जीतने का अर्थ है उसकी स्वतंत्रता को नष्ट करना; वस्तुतः दूसरे को जीतने का अर्थ है उसको नष्ट करना। अगर वह बाधा डालेगा हमारे जीतने में तो हम नष्ट कर देंगे। या तो राजी हो हार कर जीने को तो हम जीने देंगे, और या फिर मरने को राजी हो। असल में, क्या? दूसरे को जीतने में हम क्या चाहते हैं? दूसरे को जीतने में हम दूसरे को मिटाना चाहते हैं। और क्यों? क्या अस्तित्वगत कारण है इसका?

इसका कारण छोटी सी कहानी से कहूं; वह सबकी सुनी हुई कहानी है।

अकबर ने एक दिन एक लकीर खींच दी है बोर्ड पर, और लोगों से कहा है, अपने दरबारियों से, कि इसे बिना छुए छोटा कर दो। बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं दरबारी; वे नहीं कर पाए। और फिर बीरबल ने एक लकीर बड़ी उसके नीचे खींच दी है। बड़ी लकीर खिंचते ही वह लकीर छोटी हो गई; कुछ छुआ भी नहीं उसे।

ठीक यही हम कर रहे हैं हिंसा में--उलटे तरह से। हम भीतर बहुत छोटे हैं। एक रास्ता तो है कि इसे हम बड़ा करें। लेकिन तब इसे छूना पड़ेगा, इस भीतर के अस्तित्व को बदलना पड़ेगा। तब इस भीतर के अस्तित्व में संघर्ष और साधना आएगी। तब यह भीतर का अस्तित्व एक लंबी यात्रा होगी क्रांति की, रूपांतरण की। वह झंझट का काम है। इसे हम छूना भी नहीं चाहते, फिर भी हम बड़े होना चाहते हैं; फिर भी अहंकार चाहता है मैं बड़ा हूं। तो एक सीधा उपाय है, दूसरे को छोटा कर दो। इसको छुओ ही मत, इस भीतर की बात ही छोड़ो, इस आत्मा वगैरह की झंझट में मत पड़ो; दूसरे को छोटा कर दो। दूसरा छोटा होते ही आप बड़े मालूम पड़ते हैं।

सारी हिंसा का रस दूसरे को छोटा करके खुद को बड़ा अनुभव करने का रस है। आप बड़े होते नहीं। वह बीरबल ने भी अकबर को धोखा दिया; आप भी धोखे में पड़ मत जाना। वह लकीर उतनी की उतनी ही रही, जरा भी छोटी-बड़ी नहीं हुई; लेकिन नीचे एक बड़ी लकीर खींच देने से वह छोटी दिखाई पड़ने लगी। छोटी हुई नहीं; एपियरेंस, सिर्फ भास हुआ। वह छोटी हुई नहीं, क्योंकि वह उतनी ही है। और उस लकीर को कोई पता भी नहीं है कि वह छोटी हो गई। कैसे पता होगा? वह तो आप जो बड़ी लकीर नीचे देख रहे हैं...। इसको, जो लोग दृष्टि और प्रकाश के संबंध में खोज करते हैं, वे दृष्टि-भ्रम कहते हैं। बीरबल ने धोखा दिया। यह दृष्टि-भ्रम है। लकीर उतनी की उतनी है; अकबर धोखे में आ गया। वह धोखा क्यों पैदा हुआ? एक बड़ी लकीर दिखाई पड़ने लगी; तुलना पैदा हो गई। वह छोटी लकीर छोटी दिखाई पड़ने लगी--बड़ी की तुलना में। लकीर उतनी ही है।

अकबर धोखे में भला आ गया हो, आप धोखे में मत आ जाना। क्योंकि जब आप दूसरे को छोटा करते हैं, आप बड़े नहीं हो रहे, आप उतने के उतने हैं। और डर तो यह है कि दूसरे को आप छोटा कर सके, इसलिए आप और छोटे हो गए हैं। क्योंकि दूसरे को छोटा करने में बिना छोटा हुए कोई उपाय नहीं है।

इसलिए जिस आदमी के पास जाकर आपको लगे कि वह आपको छोटा कर रहा है, वह आदमी बड़ा आदमी नहीं होता। आइंस्टीन के संबंध में सी.पी.स्नो ने लिखा है कि मैं दुनिया के बहुत बड़े-बड़े लोगों से मिला, लेकिन आइंस्टीन की जो बड़ाई थी, जो बड़प्पन था, वह और ही है। क्योंकि उसके पास जाकर ऐसा लगता था कि हम बड़े हो गए हैं। उसके पास होने में यह बात ही भूल जाती थी कि दूसरी तरफ आइंस्टीन है। वह इसका मौका ही नहीं देता था कि पता भी चले कि दूसरी तरफ आइंस्टीन है।

और आइंस्टीन बुद्धि के हिसाब से तो बेजोड़ था ही। एक बहुत बड़े विचारक ने, जोरेफ ने सुझाव दिया है कि अब हमें दुनिया का जो कैलेंडर है, वह आइंस्टीन के हिसाब से चलाना चाहिए--बिफोर आइंस्टीन, आफ्टर आइंस्टीन। आइंस्टीन के पहले की घटना और आइंस्टीन के बाद की घटना अब आइंस्टीन से ही नापी जानी चाहिए--वह लकीर बन जानी चाहिए बीच की। उसके सुझाव में जान है। आदमी इतनी बुद्धि का कभी हुआ नहीं।

लेकिन स्नो कहता है कि उसके पास बैठ कर पता ही नहीं चलता था कि आइंस्टीन के पास बैठे हैं। यह तो जब उसके घर से लौटने लगते थे, तब ख्याल आता था--किससे मिल कर लौट रहे हैं। और उसने ख्याल भी न होने दिया। और उसके पास होकर लगा कि हम बड़े हो गए हैं।

जब आप दूसरे को छोटा करते हैं, तब आप बड़े तो हो ही नहीं सकते, छोटे जरूर हो जाते हैं। लेकिन भ्रम पैदा होता है, दृष्टि-भ्रम पैदा होता है।

तो हिंसा का मजा एक हैः दूसरा छोटा किया जा सके, हराया जा सके। आप बड़े होते हैं; लगता है कि होते हैं। अगर दूसरा बाधा डाले तो मिटा दिया जाए। तब आपको लगता है कि आपके पास परम शक्ति है, आप मिटा भी सकते हैं। ध्यान रहे, एक दूसरा भ्रम पैदा होता है। जो लोग भी मिटा सकते हैं, वे सोचते हैं कि शायद वे बना भी सकते हैं; जब मिटा सकते हैं, तो बना भी सकते हैं। वह भी भ्रम है। आपकी मिटाने की ताकत आपके बनाने की ताकत नहीं है। मिटाना आसान है। मिटाने का काम बच्चे भी कर सकते हैं, मूढ़ भी कर सकते हैं, पागल भी कर सकते हैं। बनाना बड़ी और बात है।

हिंसक मिटाने में सोचता है कि कुछ बना लिया उसने, कुछ करके दिखा दिया। क्या करके दिखाया? मिटाया है। मिटाना कोई कृत्य नहीं है। बनाना! लेकिन भ्रम पैदा होता है कि जब मैं मिटा सकता हूं, तो मैं बना भी सकता हूं।

मनसविद कहते हैं कि दूसरे को मार डालने में आदमी को एक भरोसा आता है कि मैं मार सकता हूं तो मुझे कोई नहीं मार सकेगा। एक आदमी अगर लाखों लोगों की हत्या कर दे तो उसे ऐसा लगता है कि अब मुझे कौन मारने वाला है! लेकिन वह मौत आते वक्त यह नहीं पूछती कि आपने कितने लोगों को मारा था? उससे कोई अंतर ही नहीं पड़ता। आपका मरणधर्मा-स्वरूप मरणधर्मा ही है।

हिंसा पर खड़ा है विजय का सारा आधार। हिंसा कुरूपता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "विजय में भी कोई सौंदर्य नहीं है। और जो इसमें सौंदर्य देखता है, वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है।"

लेकिन आदमी है बेईमान। और आदमी की सबसे बड़े बेईमानी है उसकी रेशनलाइजेशन करने की क्षमता; वह हर चीज को बुद्धियुक्त कर लेता है। इसे थोड़ा समझ लें; क्योंकि आदमी की बुनियादी बेईमानी है। और हम सब उसमें कुशल हैं। हम जो करना चाहते हैं, उसके आस-पास हम बुद्धि का जाल खड़ा कर लेते हैं। अब तक ऐसा ही आदमी सोचता रहा है कि वह जो भी करता है, बुद्धियुक्त ढंग से करता है। लेकिन यह झूठ है। वह करता पहले है। करने के कारण बुद्धि में नहीं होते; करने के कारण अचेतन मन में होते हैं। लेकिन आदमी यह भी मानने को तैयार नहीं है कि मैं बिना बुद्धि के कोई काम करता हूं। इसलिए करता है किन्हीं और कारणों से, दिखाता है कोई और कारण।

इसे हम जरा समझें। आप घर में बैठे हुए हैं। आपको देख कर ही कोई कह सकता है कि आप किसी न किसी पर टूटने की तैयारी कर रहे हैं। आप हालांकि आरामकुर्सी पर बैठे हैं; लेकिन कुर्सी आराम कर रही है, आप नहीं कर रहे हैं। आपके ढंग से दिखता है कि आप तलाश में हैं, आप शिकार की खोज कर रहे हैं। कोई भी आपका निरीक्षण कर रहा हो तो पहचान सकता है कि आप तैयारी में हैं; हालांकि आपको यह बिल्कुल ख्याल नहीं है खुद भी। लेकिन आपके भीतर भाप इकट्ठी हो रही है; जल्दी ही आपकी भाप फूटेगी।

आपका बच्चा स्कूल से चला आ रहा है दिन भर की मुसीबत झेल कर। क्योंकि शिक्षक से बड़ी मुसीबत और क्या हो सकती है! अपना बस्ता टांगे हुए, जैसे सारा संसार का बोझ उठा रहा है--अकारण, उसकी कुछ

समझ में भी नहीं आ रहा कि क्यों। वह चला आ रहा है। आपको दिखाई पड़ता हैः कपड़े पर दाग लगे हैं, स्याही डाल ली है; या शर्ट फट गया है, या पैंट पर कीचड़ पड़ी है। आप टूट पड़े।

आप यही कहेंगे कि बच्चे का सुधार करना जरूरी है। यह रेशनलाइजेशन! क्योंकि कल भी बच्चा ऐसे ही आया था। बच्चा ही है। और कल तो और एक दिन छोटा था। परसों भी ऐसे ही आया था--स्याही भी डाल कर लाया था, कपड़े भी फटे थे, रास्ते में कीचड़ से भी खेल लिया था। परसों भी ऐसे ही आया था, लेकिन तब, तब आप भीतर क्रोध से भरे नहीं थे। आज, आज क्रोध तैयार है।

कल भी इसी पत्नी ने भोजन बनाया था। और जैसा वह सदा जलाती है, वैसा कल भी जलाया था। आज, आज भोजन बिल्कुल जला हुआ है। आज आप थाली फेंक देंगे और आप यह कहेंगे कि यह भोजन मैं कब तक खाऊं? अगर यही भोजन खाना है, तो जीना बेकार है।

लेकिन कल भी आपने यही खाया था, परसों भी खाया था। और जिस दिन पहले दिन यह पत्नी आई थी, उस दिन तो आपने कहा था, स्वर्ग है तेरे हाथों में! और जो तू छू देती है, अमृत हो जाता है। और उस दिन भी ऐसा ही जला हुआ था। अब तो अभ्यास भी अच्छा हो गया इसका; तब और भी जला हुआ था। लेकिन आज आप टूट पड़ेंगे। आप हालांकि यही कहेंगे कि कब तक कोई ऐसा भोजन कर सकता है! आखिर भोजन तो आदमी को ठीक मिलना चाहिए! लेकिन आप भीतर देखें, तो यह रेशनलाइजेशन है। आप युक्तिपूर्ण बना रहे हैं एक घटना को, जिसका युक्ति से कोई भी संबंध नहीं है, कोई संबंध नहीं है।

एक स्त्री आपको दिखाई पड़ती है और आप प्रेम में पड़ जाते हैं। फिर पीछे आप कहते हैं कि उसकी नाक ऐसी है कि मुझे बहुत प्यारी है, कि उसकी आंखें ऐसी हैं कि मुझे बहुत प्यारी हैं। लेकिन यह सब रेशनलाइजेशन है। क्योंकि जब आप प्रेम में पड़े, तो न तो आंख का आपने विचार किया था और न नाक का आपने विचार किया था। ये तो पीछे से सोची गई बातें हैं। आप कहते हैं, वह सुंदर है, इसलिए मैं प्रेम में पड़ गया। लेकिन मनसविद कहते हैं कि आप प्रेम में पड़ गए, इसलिए वह सुंदर दिखाई पड़ रही है। क्योंकि वही स्त्री किसी और को सुंदर नहीं दिखाई पड़ रही है। और किन्हीं को वही स्त्री कुरूप भी दिखाई पड़ रही है। और कोई सोचेंगे अपने मन में कि तुम भी किस पागलपन में पड़े हो! इस स्त्री को सुंदर देख रहे हो! तुम्हारी बुद्धि मारी गई है! पर आपको सुंदर दिखाई पड़ रही है।

इसलिए कभी भी जब किसी को कोई सुंदर दिखाई पड़े तो आप आलोचना मत करना। यह आलोचना का काम ही नहीं है। आप चुप रह जाना; आपको न भी दिखाई पड़े तो समझना कि अपनी भूल है। आप शांत रहना। उसमें बीच में बोलना मत; क्योंकि सुंदर का कोई वस्तु से संबंध नहीं है। सुंदर दिखाई पड़ने लगता है कोई भी व्यक्ति, अगर प्रेम हो जाए।

और प्रेम क्यों हो गया? तब बड़ी अड़चन है, कि प्रेम क्यों हो गया? तो लोग उसके भी रास्ते खोजते हैं। कोई सोचता है कि शायद पिछले जन्म में कुछ संबंध रहा होगा, इसलिए प्रेम हो गया। पर यह कोई हल नहीं होता। क्योंकि पिछले जन्म में क्यों प्रेम हो गया था? कहां तक पीछे ले जाइएगा? कहीं तो शुरुआत करनी पड़ेगी। पीछे हटाने से क्या होगा?

आपको पता नहीं है, प्रेम की घटना अचेतन है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अनकांशस है। आपको पता नहीं कि क्यों हो गया। और आपका मन खोला जाए, तो जो बातें आप बता रहे हैं कि इसकी नाक ऐसी है, और आंख ऐसी है, और शरीर ऐसा है, ये सब बातें कुछ भी नहीं पाई जातीं; कुछ और ही पाया जाता है। अचेतन में आपके उतरा जाए तो कुछ और ही पाया जाता है। उसको मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आपके भीतर अचेतन में बचपन से

ही स्त्री की जो छापें पड़ रही हैं, जैसे कि एक बच्चे ने आंख खोली, नर्स दिखाई पड़ी; वह पहली स्त्री है। या मां दिखाई पड़ी, या नौकरानी दिखाई पड़ी, या कोई दिखाई पड़ा; वह पहली स्त्री है। पहली स्त्री का बिंब उसके भीतर अचेतन में उतर गया। अब इस बिंब पर बिंब जुड़ते चले जाएंगे। और बच्चा कोई एक वर्ष तक अचेतन में बिंब इकट्ठे करता रहता है। जितनी स्त्रियों से संबंध होगा, वे बिंब इकट्ठे हो जाएंगे। और इन सब बिंबों से मिल कर अचेतन में एक प्रतिमा बन जाएगी; वह जिंदगी भर इसी प्रतिमा की तलाश करेगा। जब किसी स्त्री से यह प्रतिमा मेल खा जाएगी, वह तत्काल कहेगा, प्रेम हो गया। लेकिन इसका आपकी बुद्धि और विचार से कुछ लेना-देना नहीं है। इसको वे कहते हैं कि यह तो एक्सपोजर पर निर्भर है। और इसलिए बहुत सी बातें घटती हैं, जो आपके ख्याल में नहीं हैं।

सभी पुरुष स्त्रियों के स्तन में बहुत उत्सुक होते हैं। वह एक्सपोजर है; क्योंकि मां का स्तन उनका पहला अनुभव है। और उसी स्तन से उन्होंने दूध पाया, भोजन पाया, पहला स्पर्श पाया। उस स्तन में उन्होंने प्रेम भी अनुभव किया। उस स्तन के साथ उनके पहले संबंध जुड़े। इसलिए स्तन के प्रति उनका एक एक्सपोजर है। इसलिए आप ऐसी स्त्री के प्रेम में न पड़ पाएंगे, जिसके स्तन न हों। बिल्कुल न पड़ जाएंगे। बिल्कुल न पड़ पाएंगे। क्योंकि बिना स्तन की स्त्री के प्रेम में पड़ने का मतलब यह होगा कि या तो आपको बचपन से पुरुष के पास बड़ा किया गया हो और आपके मन में कोई स्तन की प्रतिमा न बनी हो, नहीं तो मुश्किल हो जाएगा।

इसलिए स्त्रियां भी जाने-अनजाने स्तन को उभार कर दिखाने की कोशिश में लगी रहती हैं। झूठे स्तन भी बाजार में बिकते हैं।

अमरीका में एक मुकदमा उन्नीस सौ बीस में चला। एक अभिनेत्री, नाटक की अभिनेत्री--बड़ी प्रसिद्ध अभिनेत्री थी, उसकी बड़ी ख्याति थी--नाटक के एक दृश्य में अभिनेता और उसमें छीन-झपट होती है। उस छीन-झपट में उसका झूठा स्तन बाहर आ गया। तो उसने अदालत में लाखों डालर का मुकदमा किया; क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा ही नष्ट हो गई सारी। उसके बाद फिर कोई यह मान नहीं सकता कि वह स्तन सच्चा है, फिर तो वह कुछ भी लाख उपाय करे। उसका सारा का सारा इमेज खो गया।

क्यों स्त्रियां उत्सुक होती होंगी? क्यों पुरुष उत्सुक है। कोई आप कारण मत खोजें बुद्धिगत। बुद्धिगत कारण नहीं है; इंप्रिंट! सिर्फ एक संस्कार है, बचपन से बच्चे के ऊपर पड़ा है। वह संस्कार की तलाश कर रहा है। मां का मतलब स्तन; वह उसकी पहली पहचान है इस जगत से। इसलिए स्तन प्रीतिकर मालूम पड़ते रहेंगे।

बूढ़े आदमी को भी कठिनाई होती है। मुझसे एक बूढ़े सज्जन पूछ रहे थे कि यह क्या मामला है? आखिर स्त्री के स्तन में अब भी इतना रस क्यों है?

तो मैंने उनको कहा कि इसमें आप कुछ घबराएं न, और कसूर न समझें कुछ। और न कुछ पाप-अपराध हो रहा है। आप भी बच्चे थे, बस इसकी खबर है। और कुछ मामला नहीं है। कभी आप भी बच्चे थे, बस इसकी खबर है। इसमें आप परेशान न हों ज्यादा। सहजता से इसे स्वीकार कर लें। क्योंकि कभी आप भी स्तन से दूध लिए।

लेकिन आदमी आस-पास तर्क, बुद्धि का जाल खड़ा कर लेता है। उसका नाम है रेशनलाइजेशन, तर्कीकरण। यह तर्कीकरण से, कोई आदमी रक्तपात में रस लेता हो तो वह कहेगा, विजय में बड़ा सौंदर्य है, विजय की बड़ी गरिमा है, विजय महान है, विजय बड़ी श्रेष्ठ है, और विजयी का बड़ा गौरव है। हम भी, आप भी क्यों आखिर, अगर दो आदमी लड़ते हों और एक गिर जाए जमीन पर और दूसरा छाती पर बैठ जाए, तो आप छाती पर बैठने वाले को गौरवान्वित क्यों मानते हैं? समझ के बिल्कुल बाहर बात है कि इसमें क्या गौरवान्वित होने की बात है? आप छाती पर बैठ गए, वह आदमी नीचे लेट गया, इसमें गौरवान्वित होने की क्या बात है?

वह जो नीचे लेट गया, वह भी पीड़ा अनुभव करता है कि मैं ना-कुछ। जो छाती पर बैठ गया, वह अनुभव करता है मैं सब कुछ। देखने वालों के मन में भी, जो जीत गया, वह गौरव पाता है। क्यों? आखिर जीतना ऐसा गौरव क्यों है?

नहीं आपने सोचा होगा। आप भी जीतना चाहते हैं, दूसरे की छाती पर आप भी बैठना चाहते हैं। इसलिए जब भी कोई दूसरे की छाती पर बैठ जाता है, तब आप उसको गौरवान्वित समझते हैं। क्योंकि यही आपकी भी मनोकांक्षा है, यही आप भी चाहते हैं। और जब नीचे कोई छाती के नीचे गिर जाता है, किसी के पैरों के नीचे दब जाता है, तो आप उसको गौरवान्वित नहीं कह सकते। हां, सहानुभूति दिखा सकते हैं उसके साथ।

इसलिए सहानुभूति से कोई सुखी नहीं होता, ध्यान रखना। भूल कर किसी को सहानुभूति मत बताना। क्योंकि उसका मतलब ही यह है कि आपने भी मान लिया कि गिर गए, सहानुभूति के योग्य हो गए। सहानुभूति के योग्य होने का मतलब ही यह है कि गौरव छिन गया। जीते के साथ कोई सहानुभूति नहीं दिखाता। कभी आप कहते हैं किसी से कि बड़ी सहानुभूति है आपके प्रति, क्योंकि आप जीत गए? कोई नहीं कहता। सिर्फ हारे हुए के साथ सहानुभूति। वह भी क्यों? आप जीतना चाहते हैं, इसलिए जीते को गौरवान्वित कहते हैं। और आप भी डरते हैं कि कहीं हार गए, तो कम से कम सहानुभूति तो मिलनी चाहिए। वे दोनों आपके अचेतन में दबे हुए भाव हैं। उनका फैलाव है।

अगर कोई मनुष्य सच में ही आध्यात्मिक साधना में उतरना चाहता हो तो उसे अपने हर भाव के पीछे अचेतन दशा को खोजना चाहिए। बुद्धि और तर्क से कुछ समझाने की कोशिश नहीं करना चाहिए, कि हम कुछ समझा-बुझा कर अपना जाल खड़ा कर लें और कहें कि इस वजह से।

आप साधारणतः यही कहना चाहेंगे कि विजय श्रेष्ठ है, इसलिए जो जीत गया, उसका गौरव है। लेकिन क्यों है विजय श्रेष्ठ? और हार बुरी क्यों है? और वह हार गया, वह अपमानित क्यों है? इसके क्या कारण हैं भीतर?

इसके कारण आपकी आकांक्षा और वासना में हैं। हारने और जीतने की बाहर जो घटना घट रही है, वह तो केवल बहाना है; आपके भीतर की वासना उस बहाने का उपयोग कर रही है।

लाओत्से कहता है, "वह वही है, जो रक्तपात में रस लेता है; वही सौंदर्य देखता है विजय में। और जिसे हत्या में रस है, वह संसार पर शासन करने की अपनी महत्वाकांक्षा में सफल नहीं होगा।"

क्यों नहीं होगा महत्वाकांक्षा में सफल? क्योंकि जो हिंसा से जीतता है, वह हिंसा से भयभीत रहता है। जो हिंसा से जीतता है, वह कभी भय के बाहर नहीं जा सकता। इसलिए बड़े हिंसक बड़े भयभीत रहते हैं। हिटलर या स्टैलिन से ज्यादा भयभीत आदमी खोजने मुश्किल हैं। जो थर-थर कंपते रहते हैं। स्टैलिन की लड़की श्वेतलाना ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मेरे पिता से ज्यादा भयभीत आदमी खोजना मुश्किल है। इतनी हिंसा की है, तो इतने लोगों को हिंसा करने के लिए उत्सुक भी कर दिया। जितने लोगों को दबाया है, उनको भी उत्सुक कर दिया है कि वे बदला लें, प्रतिकार लें, और तुम्हें दबा दें।

और जिसको हम दबाते हैं, वह हमसे भयभीत भला हो जाए, वह कभी मानता नहीं कि हम जीत गए हैं और वह हार गया। वह सदा इतना ही मानता है कि एक टेंपरेरी फेज, एक अस्थायी बात है कि तुम अभी ऊपर आ गए; थोड़ा मौका दो, थोड़ा समय आए, हम भी ऊपर आ जाएंगे। हारा हुआ कभी नहीं मानता कि मेरी हार शाश्वत हो गई। वह मानता है, क्षण की बात है, संयोग की बात है। जीता हुआ भी मान नहीं सकता कि मेरी जीत शाश्वत हो गई। क्योंकि वह भी जानता है, जो नीचे है, वह कल ऊपर आ सकता है।

एक बात विचारणीय हैः भय से कोई भी कभी विजित नहीं होता, कोई कभी भय से हराया नहीं जा सकता। लेकिन हम सब भय पर भरोसा करते हैं। बड़े युद्धखोर करते हैं, ऐसा नहीं, हम भी। हम भी मानते हैं ऐसा।

उन्नीस सौ चालीस में रूजवेल्ट ने एक वक्तव्य में कहा कि मेरा देश, मैं चाहता हूं, उस स्थिति में पहुंचे, जहां कोई भी व्यक्ति भयभीत न हो, किसी को भी भय की परतंत्रता न रहे, सब स्वतंत्र हों अभय होने को। और दूसरी बात कही कि सभी स्वतंत्र हों पूजा करने को, प्रार्थना करने को।

एक व्यक्ति ने, एक बहुत विचारशील व्यक्ति ने, रूजवेल्ट को एक पत्र लिखा और उस पत्र में लिखा कि दोनों बातें विरोधी हैं; आप जरा फिर से सोचें। क्योंकि ईसाई प्रार्थना में वचन ही यही आता है कि हे प्रभु, ऐसा कभी दिन न आए जब मैं तुझसे भयभीत न होऊं; तेरे प्रति मेरा प्रेम बना रहे और तुझसे मैं सदा डरता रहूं।

उस आदमी ने ठीक पत्र लिखा। रूजवेल्ट को मुश्किल पड़ गई। उसने ठीक लिखा कि प्रार्थना में तो भय की ही प्रार्थना है। और अगर आप चाहते हैं लोग भय से मुक्त हो जाएं, तो लोग प्रार्थना से मुक्त हो जाएंगे; जरा ख्याल कर लें। और अगर आप चाहते हैं लोग प्रार्थना को स्वतंत्र हों, तो फिर उनको भयभीत रहने ही देना पड़ेगा। इसमें थोड़ी सचाई है। अंग्रेजी में गॉड-फियरिंग धार्मिक आदमी को कहते हैं; ईश्वर-भीरु हम भी कहते हैं।

तुलसीदास ने कहा है, भय बिन होई न प्रीति, बिना भय के प्रीति नहीं हो सकती।

यह थोड़ी दूर तक सही बात मालूम पड़ती है; क्योंकि हमारा सब प्रेम भय पर ही खड़ा होता है। बाप बेटे को डराता है, तो बेटा बाप को प्रेम करता है। और जब बेटा बाप को डराने लगता है--मौका तो आ ही जाएगा, थोड़े ज्यादा दिन नहीं चलेंगे--तब बाप कहता है कि अब तू मुझे प्रेम नहीं करता। वह पहले भी प्रेम नहीं करता था। आप सिर्फ डरा रहे थे, इसलिए प्रेम मालूम पड़ रहा था। अब वह आपको डराने लगा, तो अब कैसे प्रेम मालूम पड़े?

इसलिए हर बाप को अनुभव होता है कि अब बेटा प्रेम नहीं करता। वह कब करता था, यह तो बताइए। जब डंडा आपके हाथ में था, तब आपको लगता था वह प्रेम करता है। ज्यादा देर डंडा आपके हाथ में नहीं रहेगा। जिंदगी सभी को मौका देती है; डंडा उसके हाथ में आएगा। तब फिर वह बूढ़े बाप को डंडा बताएगा; अब वह चाहता है कि आप उससे प्रेम करो। पहले वह आपसे प्रेम करता था, अब आप उससे प्रेम करो। आखिर वही कब तक करे, आप भी तो करो।

जो भयभीत कर रहा है, वह भला सोचता हो कि मैंने प्रेम पैदा कर लिया, वह दूसरे में प्रेम पैदा नहीं कर रहा है, सिर्फ घृणा पैदा कर रहा है। लेकिन तुलसीदास ठीक कहते हैं, निन्यानबे आदमियों के बाबत यही बात है कि वे भय को ही प्रेम समझते हैं। तो जितना डराते हैं, उतना सोचते हैं... ।

एक नेता है बड़ा। भीड़ लग जाती है, लोग जयजयकार करते हैं, फूलमालाएं पहनाते हैं। और कल वह ताकत में नहीं रहता, फिर उसका पता ही नहीं चलता, वह कब आता है, कब जाता है। फिर आपको आखिरी खबर तभी मिलेगी जब वह मरेगा, अखबार खबर छापेंगे। क्यों? अगर इतना प्रेम था, तो इतनी जल्दी खो कैसे जाता है? वह प्रेम वगैरह नहीं था, सत्ता का भय था, ताकत की पूजा है। तो खो जाती है।

अगर पति बहुत धन कमाता है, तो पत्नी बहुत प्रेम करती मालूम पड़ती है। फिर धन नहीं कमाता, या गंवा बैठता है धन को, सब प्रेम समाप्त हो जाता है। वह प्रेम कहां गया? वह प्रेम कभी था नहीं, वह धन का भय था। प्रतिष्ठा, धन की शक्ति, उसका भय था। उससे सब प्रेम था। इसलिए पुरुषों ने स्त्रियों को सदा भयभीत रखा है। क्योंकि वे सोचते हैं, भयभीत स्त्री प्रेम करेगी।

भयभीत स्त्री भीतर से घृणा ही करेगी; प्रेम नहीं कर सकती। लेकिन सस्ता है यह काम, दूसरे को भयभीत करना सस्ता काम है। दूसरे के मन में अपने लिए प्रेम करना बहुत कठिन काम है, अति कठिन काम है। शायद इस पृथ्वी पर इससे बड़ा कोई कठिन काम ही नहीं है। प्रेम से बड़ी कोई कला नहीं है। इसलिए सस्ता काम है कि डरा दो, तो भय पैदा हो जाए।

तो पुराने धर्म भी भय पर खड़े हैं। वे कहते हैं, ईश्वर से डरो। लेकिन जो आदमी ईश्वर से डरेगा, वह ईश्वर को प्रेम कैसे करेगा? डर कहीं प्रेम पैदा करता है? तब तो दिल में तो यही रहेगा कि कोई दिन मौका मिल जाए तो ईश्वर की छाती में छुरा भोंक दें। मन में तो यही रहेगा। ऊपर से हाथ जोड़े खड़े हैं, जी-हुजूरी कर रहे हैंः कि हम पापी हैं, आप पतितपावन हो। मगर भीतर सोच रहे हैं कि कब मौका मिले कि हम सिंहासन पर बैठें और तुम वहां आगे आकर कहो कि आप पतितपावन हो, हम पापी हैं! भय तो सदा ही यह प्रतीक्षा करेगा, चाहे भयभीत आदमी को पता भी न हो। यही मैं कह रहा हूं। खुद भयभीत आदमी को पता न हो कि उसकी अचेतन आकांक्षा क्या है; लेकिन डरा हुआ आदमी अचेतन में घृणा ही करेगा और बदला लेना चाहेगा।

लाओत्से कहता है कि घृणा से, हिंसा से कभी कोई शासन करने में सफल नहीं हो पाएगा। क्योंकि शासित स्वीकार ही नहीं करता आपको। उसके हृदय में आपकी विजय कभी स्थापित नहीं होती। सिर्फ एक ही उपाय है कि किसी के हृदय में विजय स्थापित हो जाए; वह उपाय प्रेम का है, हिंसा का नहीं है।

मगर उसकी बड़ी कठिन शर्त है। और वह शर्त यह है कि जब तक आप दूसरे को विजित करना चाहते हैं, तब तक आपमें प्रेम ही नहीं है। यह जरा जटिल मामला है। जब आप में प्रेम होता है, तो दूसरा हार जाता है; लेकिन जब तक आप हराना चाहते हैं, तब तक आप में प्रेम ही नहीं होता। जीत होती है दुनिया में, लेकिन उसकी ही होती है जो जीतना चाहता ही नहीं। और कई बार तो ऐसा होता है कि जो हारने को तैयार होता है, वही जीत जाता है, पहले वही जीत जाता है।

जीसस ने कहा है, जो आखिरी खड़े होने को राजी हैं, वे मेरे राज्य में प्रथम खड़े हो जाएंगे। और जो हारने को राजी हैं, उनकी जीत निश्चित है। जो खोने को राजी हैं, उन्हें कोई पाने से नहीं रोक सकेगा। जो बचाना चाहेंगे, उनसे छिन जाएगा।

यह ठीक कहा है, ये उलटे सूत्र बड़े ठीक हैं। लेकिन ये सूत्र प्रेम के हैं। अगर मैं आपको जीतना चाहता हूं, तो एक बात निश्चित है, मैं कभी नहीं जीत पाऊंगा। क्योंकि मेरी जीतने की आकांक्षा ही आपको मेरा दुश्मन बना रही है। अगर मैं जीतना ही नहीं चाहता, तो मैंने मित्रता के हाथ फैला दिए। और अगर मैं इतने प्रेम से भरा हूं कि आपको आनंद मिलता हो मुझे जीत लेने में तो मैं हारने को तत्काल राजी हूं, तो मैंने जीत लिया। हिंसा के जगत में हराए बिना कोई जीत नहीं है; अहिंसा के जगत में हारने की कला ही जीतने की कला है।

ऐसे व्यक्ति की महत्वाकांक्षा कभी पूरी न होगी, जो सोचता है कि हिंसा से, रक्तपात से जगत का शासन कर ले। एक व्यक्ति का नहीं किया जा सकता, जगत तो बहुत बड़ी बात है। आप जरा सोचें, एक अपने छोटे से बच्चे को आप शासन में नहीं रख सकते, उसका भी प्रेम पाने में आप असफल हो जाएंगे अगर आपने हिंसा का उपाय किया। और सभी मां-बाप कर रहे हैं, इसलिए असफल हो जाते हैं। डरा रहे हैं, भयभीत कर रहे हैं, धमकी दे रहे हैं। बच्चा कमजोर है, आप धमकी दे सकते हैं। बच्चे से कमजोर और क्या होगा? लेकिन यह धमकी क्या परिणाम लाएगी?

यह बच्चा आपके प्रति घृणा इकट्ठी कर रहा है। आप ही जिम्मेवार हैं। कल यह घृणा फूटेगी और बहेगी। और तब? तब आप सिर्फ रोएंगे-पीटेंगे और चिल्लाएंगे, और कहेंगे कि सब बच्चे बिगड़ गए हैं। और कभी ख्याल

न करेंगे कि बिगड़ कैसे गए हैं। क्योंकि कोई बच्चा नहीं बिगड़ सकता, अगर बाप पहले ही बिगड़ न गया हो। कोई उपाय नहीं है बिगड़ने का। वृक्ष फलों से पहचाने जाते हैं; बाप उनके बेटों से पहचाने जाते हैं। और कोई उपाय भी नहीं है। अगर फल सड़ा है तो जड़ें ही सड़ी होंगी; भला जड़ें कितना ही शोरगुल मचाएं कि फल बिगड़ गया। लेकिन फल बिगड़ता कैसे है? बिगाड़ने की लंबी प्रक्रिया है। और बिगाड़ने की लंबी प्रक्रिया हिंसा से शुरू होती है।

मगर हमें ख्याल में नहीं है; हम सोचते हैं, शासन आसान है हिंसा से। एक व्यक्ति पर भी संभव नहीं है; इस विराट जगत पर तो कभी भी संभव नहीं हो सकेगा।

"शुभ लक्षण की चीजें वामपक्ष को चाहती हैं, अशुभ लक्षण की चीजें दक्षिणपक्ष को। उप-सेनापति वामपक्ष में खड़ा होता है, और सेनापति दक्षिणपक्ष में। अर्थात अंत्येष्टि क्रिया की भांति विजय का पर्व मनाया जाता है।"

यह व्यंग्य कर रहा है लाओत्से। जैसे कि कोई अरथी ले जा रहा हो, और जैसे लाश रखी गई हो अंत्येष्टि के लिए, और एक तरफ सेनापति खड़ा है और एक तरफ उप-सेनापति खड़ा है, और आग जलाई जा रही है, और लाश जलाई जा रही है। विजय को, विजय की यात्रा को, लाओत्से कहता है, समझना कि यह मरघट पर हो रही अंतिम क्रिया है।

"हजारों की हत्या के लिए शोकानुभूति जरूरी है।"

और तुम यह क्या कर रहे हो? विजय का उत्सव मना रहे हो? हजारों की हत्या करके तुम विजय का उत्सव मना रहे हो? लेकिन थोड़ा इसे समझें। जब भी कोई मुल्क जीतता है युद्ध में, तो विजय का उत्सव मनाता है। क्यों? अगर थोड़ी भी समझ हो, तो यह भी हो सकता है कि मजबूरी थी, लड़ना पड़ा, लेकिन इसमें इतना उत्सव मनाने की क्या बात है?

इसके बहुत गहरे, गहन मनोवैज्ञानिक कारण हैं। जब भी आप कोई अपराध करते हैं, तो एक ही उपाय है अपराध को भूलने का कि आप उत्सव में लीन हो जाएं। जब भीतर पश्चात्ताप का क्षण आ रहा हो, तो उससे बचने का एक ही उपाय है कि बाहर के शोरगुल में, धूमधाम में उस क्षण को भुला दें। जब भी आप कोई बड़ा उत्सव मनाते हैं, तो आप भीतर किसी अपराध को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। यह बड़ी कठिन बात है, यह बड़ी कठिन बात है।

लेकिन आदमी बड़ा कुशल है छिपाने में। तो जब भी युद्ध में कोई जीतता है, तो उत्सव मनाता है। उस उत्सव के शोरगुल में, बैंड-बाजों में, झंडे-पताकाओं में, रंग-बिरंगे गुब्बारों में, नारेबाजी में, नेताओं की नासमझी की बातों में एक हवा पैदा होती है, जिसमें हम यह भूल ही जाते हैं कि हमने क्या किया! हम किस बात का उत्सव मना रहे हैं? हमने लाशें बिछा दीं; उनके ऊपर हम यह उत्सव मना रहे हैं? इस उत्सव के उपद्रव में आदमी फिर वापस, जहां युद्ध के पहले था, उस काम-काज की दुनिया में संलग्न हो जाता है। इस उत्सव को मना लेने में, पश्चात्ताप के क्षण से बचाव है, पलायन है।

लेकिन लाओत्से कहता है, इसे तो ऐसे मनाना, विजय का उत्सव अंत्येष्टि क्रिया की भांति मनाना; जैसे कि कोई मर गया हो, ऐसा दुख और शोक में डूब जाना।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। अगर हम विजय के क्षणों में शोक में डूबने लगें, तो फिर हम लोगों को हिंसा करने के लिए राजी न कर पाएंगे। जैसा मैंने परसों कहा कि अगर हम अपने सेनापतियों को युद्ध के बाद पश्चात्ताप के लिए तीर्थयात्रा पर भेज दें, या उनको कहें कि अब तुम महीने भर का उपवास करो, प्रभु-कीर्तन

करो, या उनको कहें कि तुमने बहुत पाप किया, इतने लोग मार डाले, अब तुम सब त्याग करके संन्यासी हो जाओ, तो फिर हम किसी आदमी को राजी न कर पाएंगे इतना पाप करने के लिए! वह कहेगा, फिर पहले ही, इतना जब हमें आखिर में पश्चात्ताप करना हो, तो फिर युद्ध पर जाने की जरूरत क्या है? तो फिर हम नहीं जाते।

सैनिक को अगर हमें युद्ध पर भेजना है तो हमें विजय की यात्रा मनानी ही पड़ेगी। क्योंकि सैनिक उसी विजय की आकांक्षा में, उसी शोभा की आकांक्षा में तो मरने और मारने जा रहा है। तो कल जब वह जीत कर आएगा, हत्या करके आएगा, तो उस हत्यारे का हमें स्वागत करना पड़ेगा। इस स्वागत के नशे में ही तो वह भूल पाएगा कि उसने पाप किया है। तो हमें उसे पद्म-विभूषण और भारत-रत्न और महावीर-चक्र देने पड़ेंगे, ताकि इस शोरगुल में उसे लगे कि वह कोई महान कार्य करके लौटा है, और हम उसे दुबारा फिर इस मूढ़ता पर भेज सकें। नहीं तो फिर दुबारा वह जाएगा नहीं। सैनिक को हमें सम्मान देना पड़ेगा; क्योंकि हमने उससे एक पाप करवाया है। और उस पाप के बदले में हमें उसे गौरव देना पड़ेगा, ताकि उसको पाप का ख्याल न रहे। इसलिए विजय की यात्रा और विजय का उत्सव और विजय का पीछे का शोरगुल, सब हमारी आत्मा को अंधा करने और बहरा करने का उपाय है।

अगर लाओत्से की बात मान ली जाए, तो दुनिया में युद्ध बंद हो जाएंगे। अगर विजय जिसने की है, वह अगर शोक में डूब जाए, तो दुनिया में फिर विजय की आकांक्षा भी न रह जाएगी। अभी तो हारा हुआ शोक में डूबता है; जो जीतता है, वह खुशी मानता है। अगर लाओत्से की बात मान ली जाए और जीतने वाला भी दुख में डूब जाए, तो इसके दोहरे परिणाम होंगे। इसका एक परिणाम तो यह होगा कि जो हार गया है, वह दुख में नहीं डूबेगा। अगर जीतने वाला दुख में डूब जाए, तो हार जो गया है, वह दुख में नहीं डूबेगा। और अगर जीतने वाला दुख में डूबने लगे, तो जीत की आकांक्षा क्षीण हो जाएगी, और हम लोगों को राजी न कर सकेंगे हिंसा के लिए। और किसी दिन ऐसा वक्त आ सकता है कि विजय एक पाप हो जाए, और विजय एक अपराध हो जाए। हम ऐसा मनुष्य भी निर्मित कर सकते हैं जिसके हृदय में विजय की आकांक्षा ही अपराध हो। शायद उसी दिन हम दुनिया को युद्ध से मुक्त कर पाएं। उसके पहले दुनिया युद्ध से मुक्त नहीं होगी।

हम कितना ही कहें कि युद्ध नहीं होने चाहिए, लेकिन युद्ध के जो मूल कारण हैं उनमें तो हम सम्मिलित ही होते हैं; उनमें हम कभी भी दूर खड़े नहीं होते। हम कितना ही कहें कि युद्ध बुरा है, लेकिन जीतने वाला अच्छा है यह तो हम भी मानते हैं। वह जीतने वाला चाहे स्कूल से कक्षा में प्रथम होने की प्राइज लेकर घर आया हो, वह भी उनतीस लड़कों को हरा कर चला आ रहा है। एक बच्चा जब घर में प्रथम होकर आता है अपनी क्लास में, तो हम उसका स्वागत करते हैं; हम युद्ध को निमंत्रण दे रहे हैं। वह उनतीस को हरा कर आ रहा है, उनको नीचे गिरा कर आ रहा है, तो हम कहते हैं कि तू प्रथम आया। बाप बड़ा आनंदित होता है; वह नहीं आ पाया था, कम से कम उसका लड़का आया। लड़के के द्वारा उनकी महत्वाकांक्षा पूरी हो रही है। वह अकड़ कर चलेंगे आज, क्योंकि उनका लड़का प्रथम आ गया।

लेकिन उनतीस को हरा आया। वे उनतीस घर दुख में लौटे हैं। उनके बाप दुखी हो रहे होंगे, वे नाराज हो रहे होंगे; वे उनको अपमानित कर रहे होंगे; वे कह रहे होंगे कि लानत है तुम पर, तुम्हारे होने से न होना अच्छा था; बरबाद कर दिया, कुल का नाश हो गया। वे जो उनतीस हार कर घर चले गए हैं, वहां शोक होगा। यह जो एक जीत कर घर आया है, यहां सम्मान होगा। आपने युद्ध के बीज बो दिए। जिंदगी अब इसी पटरी पर सदा

चलेगी। जो जीतेगा, वह सम्मानित; जो हारेगा, वह अपमानित। फिर छोटे युद्ध हैं और बड़े युद्ध हैं। और सारी जिंदगी रक्तपात से भर जाती है।

ध्यान रहे लेकिन, हिंसा में कोई भी सौंदर्य नहीं है और विजय में कोई गौरव नहीं है। विजय की आकांक्षा क्षुद्र मन का फैलाव है। और हिंसा में, विजय में, हत्या में गौरव देखना आदमी के रुग्ण मन की खबर है, बीमार चित्त की खबर है।

स्वस्थ आदमी जीतने में रोग देखेगा, हिंसा में पाप देखेगा, दूसरे को नीचा करने में, हीन करने में अधर्म देखेगा। और एक ही सौंदर्य को जानता है--जो व्यक्ति सच में विचारशील है, वह एक ही सौंदर्य को जानता है--और वह सौंदर्य है परम अहिंसा का, प्रेम का।

और उस प्रेम से भी एक विजय फलित होती है। वही वास्तविक विजय है। और उस प्रेम से जीवन में एक संगीत का जन्म होता है, जो संगीत बिना किसी को हराए जीतता चला जाता है।

आज इतना ही। कीर्तन करें, और फिर जाएं।

चौंसठवां प्रवचन

मार्ग है बोधपूर्वक निसर्ग के अनुकूल जीना

बहुत से प्रश्न हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि इजिप्त के पिरामिड के संबंध में आपने कहा कि उनकी सभ्यता, संस्कृति ऊंचाई के एक शिखर पर थी। लेकिन उन लोगों ने पिरामिडों के भीतर मनुष्यों के मृत शरीर रखे हैं, ममीज रखी हैं; और उनमें खाना-पीना, कपड़े, जवाहरात, इस तरह का सामान भी रखा है, ताकि उनको मरने के बाद के सफर में काम आए। तो यह समझाएं कि जो इतनी ऊंचाई पर पहुंचे हुए सभ्य लोग थे, क्या उन्हें यह भी पता नहीं था कि मरने के बाद यह कुछ भी काम नहीं आता है?

इस संबंध में दो बातें समझ लेनी चाहिए। एक तो जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो जो हम करते हैं, उसका संबंध हमसे है, उस व्यक्ति से नहीं है। आपकी मां मर गई है, या पिता मर गए हैं, ऐसे ही घर के बाहर फेंक दे सकते हैं; दफनाने की कोई भी जरूरत नहीं है, मरघट तक ले जाने का भी कष्ट उठाना फिजूल है। क्योंकि लाश का अब क्या मरघट तक ले जाना? शरीर को ही ले जा रहे हैं न, आत्मा तो उड़ चुकी है। अब इस शरीर को आप बैंड-बाजे से ले जाएं तो पागलपन है। मरघट पर जाकर आप इस मरे हुए शरीर पर आंसू गिराएं, पागलपन है। ध्यान रहे, जो आप कर रहे हैं, वह मरे हुए पिता या मां के लिए नहीं है, वह आपके लिए है।

जिन्होंने इजिप्त के ममीज में कपड़े रखे हैं, रोटी रखी है, और सामान रखा है, उन्होंने केवल इतनी खबर दी है, यह जानते हुए भी कि मरे हुए आदमी के यह कुछ भी काम नहीं आएगा, उनका प्रेम नहीं मानता है, उनका प्रेम चाहता है कि वे जो कुछ कर सकें मरे हुए आदमी के लिए, वह भी करें।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। मरा हुआ आदमी कहां है, आपको पता नहीं; उसके लिए क्या उपयोगी है, यह भी पता नहीं। प्रार्थना, पूजा, उसकी आत्मा की शांति का प्रयास, यह सब अब आप उसके लिए कर सकते हैं; उस तक पहुंचेगा, यह भी आपको पता नहीं। लेकिन आप कर रहे हैं। अगर ठीक से समझें तो यह आप अपने लिए कर रहे हैं। यह आपके प्रेम का प्रदर्शन है। और इससे आपको राहत मिलेगी, मरे हुए आदमी को नहीं।

आपके पिता मर गए हैं और पितृपक्ष में आप कुछ कर रहे हैं। इससे कोई आपके पिता को कुछ हो जाने वाला है, ऐसी भूल में मत पड़ जाना। पर कुछ आप कर रहे हैं, यह आपके लिए, यह आपके हृदय के लिए, आपके प्रेम के लिए है। यह आपकी अपनी सांत्वना है।

किसी का पति मर गया है। और अगर उसने उसके साथ भोजन का सामान रख दिया है, तो यह पति मरा हुआ भोजन करेगा, ऐसा नहीं है। लेकिन जिसने जीवन भर इस पति के लिए भोजन बनाया था, वह मृत्यु के क्षण में भी इस भोजन को साथ रख देना चाहेगी।

अगर इस तरह देखेंगे तो ख्याल आएगा कि सभ्यता का अर्थ ही क्या होता है? सभ्यता का अर्थ ही होता है, प्रेम का गहन और विस्तीर्ण हो जाना।

निश्चित ही वे लोग सभ्य थे और उनका हृदय भी सभ्य था। और केवल मस्तिष्क की सभ्यता होती तो आप जो कह रहे हैं, वही उन्होंने भी सोचा होता कि क्या फायदा है? क्या फायदा है? सच तो यह है कि बाप

की हड्डी-पसली निकाल कर बेच देना चाहिए। कुछ पैसे मिल सकते हैं, वह फायदे की बात है। शरीर को व्यर्थ जला आते हैं, उसका कोई मतलब भी तो नहीं है। सब बेचा जा सकता है सामान। लेकिन वह आप न कर पाएंगे; यह जानते हुए भी कि बाप की आत्मा को अब इससे कुछ नुकसान होने वाला नहीं है। जो शरीर छूट गया, वह छूट गया। अब इसको जला दे रहे हैं, इससे तो बेहतर है बाजार में बेच दें। अगर बुद्धि ही पास में होगी तो यही उत्तर ठीक मालूम पड़ेगा। लेकिन फिर भी आप बेचना न चाहेंगे। भीतर हृदय में कहीं चोट लगेगी।

यह शरीर ही बचा है अब, और मिट्टी है, यह बात साफ है। और इस मिट्टी के साथ अब कुछ पैसे और हीरे-जवाहरात रख देना असभ्यता का लक्षण नहीं है; हृदय भी एक ऊंचाई पर रहा होगा, इसकी खबर है।

पर बड़ी कठिनाई होती है; क्योंकि जो सभ्यताएं खो जाती हैं, उनके बाबत हम कुछ भी सोचते हैं, वह हमारा ही विचार होता है। पश्चिम के जिन लोगों ने इन ममीज को खोदा है और इनमें सामान पाया है, उन्होंने यही सोचा कि मरा हुआ आदमी इनका उपयोग कर सकेगा, इसलिए ये चीजें रखी गई हैं।

ये चीजें इसलिए नहीं रखी गई हैं। प्रेम मरे हुए को भी मरा हुआ नहीं मान पाता है। और जहां प्रेम नहीं है, वहां जिंदा आदमी भी मरा हुआ ही है। एक छोटी सी घटना कहूं, उससे ख्याल में आ सके।

रामकृष्ण की मृत्यु हुई। तो नियमानुसार उनकी पत्नी शारदा को चूड़ियां तोड़ लेनी चाहिए। पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा, चूड़ियां तोड़ डालो। और शारदा चूड़ियां तोड़ने जाती ही थी कि तभी वह खिलखिला कर हंसने लगी। लोग समझे कि वह पागल हो गई है। और उसने चूड़ियां तोड़ने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि जैसे ही मैं चूड़ियां तोड़ने जा रही थी, मुझे रामकृष्ण का वचन याद आया। उन्होंने कहा है, मैं तो कभी भी नहीं मरूंगा। तो उनका शरीर भला छूट गया हो, लेकिन वे मरे नहीं हैं; इसलिए मैं विधवा नहीं हो सकती। यह भारत में पहला ही मौका है, पूरे इतिहास में, जब किसी विधवा ने पति के मरने पर विधवा होने से इनकार कर दिया। अगर उनकी आत्मा है, तो मैं विधवा नहीं हूं; इसलिए ये चूड़ियां मैं पहने रहूंगी।

और शारदा फिर सधवा के वस्त्र ही पहने रही। रोज जितने समय वह रामकृष्ण की बैठक में जाती थी, उनसे कहने कि चलें, भोजन तैयार है। अब वहां कोई भी नहीं था; लेकिन शारदा रोज जाती थी। लोग वहां बैठ कर शारदा की बात सुन कर रोते थे। और शारदा उस जगह जाती जहां रामकृष्ण बैठते थे और उनसे कहती, कि परमहंस देव, चलें, भोजन तैयार हो गया। वह भोजन तैयार करती, वह थाली लगाती, वह इस भांति लौटती जैसे रामकृष्ण उसके साथ वापस लौट रहे हों, वह उन्हें बिठाती, वह पंखा झलती। यह वर्षों चलता रहा। इसमें कभी भूल-चूक न हुई। फिर वह उन्हें लिटा देती, फिर वह उन्हें सुला देती, फिर वह मसहरी डाल देती। यह पूरी जिंदगी चलता रहा।

हम निश्चित कहेंगे, यह औरत पागल है। और हमारे हिसाब में यह बात कहीं भी न आएगी। लेकिन थोड़ा हृदय से सोचें, तो यह भी संभावना है कि शारदा के लिए रामकृष्ण कभी मरे ही नहीं। और शारदा के हृदय ने कभी स्वीकार ही नहीं किया, किसी तल पर, कि उनकी मृत्यु हो गई है। हमारे लिए तो वह पागल है, लेकिन अगर थोड़ा सहानुभूति से सोचें, तो हो सकता है कि हम ही नासमझ हों और वह पागल न हो।

फिर एक बात तय है कि शारदा कभी दुखी नहीं हुई, वह सदा आनंदित रही। अगर पागलपन में इतना आनंद है, तो आपकी बुद्धिमत्ता छोड़ देने जैसी है। क्योंकि आपकी बुद्धिमत्ता सिवाय दुख के आपको कुछ नहीं दे रही। आपका पति भी जिंदा है, तब भी आपको आंसू के सिवाय कुछ नहीं है; पत्नी भी जिंदा है, तब भी आंसू के सिवाय कुछ नहीं है। और रामकृष्ण के मरने के बाद भी शारदा की आंख में आंसू न आया, वह हंसती ही रही। और जितने दिन जिंदा रही, रामकृष्ण को जीवित--उसके लिए रामकृष्ण जीवित ही रहे।

जिन्होंने ममीज में सम्हाल कर रखे हैं सामान, उन्होंने बड़े प्रेम से रखे हैं।

तुतुम खानम की समाधि जब पहली दफा तोड़ी गई इजिप्त में, तो वह है कोई छह हजार वर्ष पुरानी लाश। तुतुम खानम की समाधि में तीन हिस्से थे, तीन पर्तें थीं। पहली पर्त पर भी तुतुम खानम का चेहरा सोने का और पूरा जैसे लाश वही हो, और हीरे-जवाहरात और सब सामान रखा हुए था। खोदने पर पता चला कि उसके नीचे फिर ठीक वैसा ही चेहरा सोने का और उतना ही सामान रखा हुआ था। और लाश तो तीसरे तल पर थी। यह धोखा था ऊपर। क्योंकि सोने की वजह से, हीरे-जवाहरात की वजह से चोर कब्रों को खोद लेते थे। इसलिए दो धोखे दिए थे ऊपर कि पहली कब्र खोद कर कोई ले जाए तो कोई चिंता नहीं, दूसरी भी कब्र खोद कर कोई ले जाए तो भी चिंता नहीं; लेकिन तीसरी कब्र पर कोई चोट न पहुंचे।

जिन्होंने मरे हुए तुतुम खानम के लिए इतने प्रेम से ये कब्रें बनाई होंगी, उनके हृदय को समझने की कोशिश करनी चाहिए। मृतक के संबंध में जितने भी संस्कार हैं, वे जीवित के प्रेम के सबूत हैं। मृतक के संबंध में उनसे कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए अगर हम बहुत वैज्ञानिक हो जाएं तो फिर मृतक के साथ कुछ भी करने की जरूरत नहीं। बात खतम हो गई।

लेकिन थोड़ा सोचें कि शारदा जैसे होना पसंद करेंगे, या एकदम बुद्धि और गणित से चलेंगे? बुद्धि और गणित कितना ही सही हो, आनंद उससे फलित नहीं होता। और हृदय कितना ही गलत हो, वही आनंद का द्वार है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है, हम प्रकृति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल, यह कैसे जानें?

इसे जानने में कठिनाई नहीं होगी। जब आप बीमार होते हैं तो कैसे जानते हैं कि बीमार हैं? और जब आप स्वस्थ होते हैं तो कैसे जानते हैं कि स्वस्थ हैं? क्या उपाय है आपके पास जानने का?

जब आप बीमार होते हैं तो पीड़ा में होते हैं, जब आप स्वस्थ होते हैं तो प्रफुल्लित होते हैं। ठीक आत्मिक तल पर भी बीमारी और स्वास्थ्य घटित होते हैं। जब आप भीतर अशांत, उद्विग्न, परेशान, क्षुब्ध होते हैं, संतप्त होते हैं, तब जानना कि प्रकृति के प्रतिकूल हैं। और जब आप भीतर आनंद में खिले होते हैं, और आनंद की धुन आपके भीतर बजती होती है, और रोआं-रोआं उसमें कंपित होता है, और यह सारा जगत आपको स्वर्ग मालूम पड़ने लगता है, तब आप समझना कि आप प्रकृति के अनुकूल हैं। किसी दूसरे से पूछने जाने की जरूरत नहीं है। जब भी दुख है, तब वह प्रतिकूल होने से ही घटित होता है। और जब भी आनंद घटित होता है, वह अनुकूल होने से घटित होता है। आनंद कसौटी है।

लेकिन हम सब इतने दुख में जीते हैं कि हम दुख को ही जीवन मान लेते हैं; इसलिए हमें पता ही नहीं चलता कि आनंद भी है। मेरे पास लोग आते हैं। उन्हें खुद कोई आनंद का अनुभव नहीं हुआ है, वे दूसरे के आनंद पर भी विश्वास नहीं कर सकते। एक बहन ने परसों मुझे आकर कहा कि यह भरोसे योग्य नहीं है कि कीर्तन में दो मिनट में लोग इतने आनंदित होकर नाचने लगते हैं; यह भरोसा नहीं होता।

स्वभावतः, जो कभी भी नाचा न हो आनंद में, उसे भरोसा कैसे होगा? जो नाच ही न सकता हो, जिसके भीतर आनंद की कोई पुलक ही पैदा न होती हो, उसे भरोसा कैसे होगा?

निश्चित ही, उसको लगेगा कि यह कोई तैयार किया हुआ खेल, कोई नाटक है। ये लोग शायद आयोजित हैं, जो बस नाचना शुरू कर देते हैं। ऐसा कहीं हो सकता है! जो आदमी चालीस-पचास साल में कभी आनंदित न हुआ हो, वह कैसे मान ले कि दो मिनट में कोई आनंद से भर सकता है?

आनंद का मिनट और वर्षों से कोई संबंध है? अगर दो मिनट में नहीं भर सकते, दो वर्ष में कैसे भर जाइएगा? और अगर दो वर्ष में भर सकते हैं तो दो मिनट में बाधा क्या है? समय का क्या संबंध है आनंद से?

कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन अनुभव ही न हो... ।

तो मैंने उस बहन को पूछा कि तूने कभी आकर कीर्तन करके, नाच कर देखा? उसने कहा कि नहीं। मैंने उससे कहा कि नाच कर देख, आकर देख। शायद तुझे भी हो जाए तो तुझे पता चले।

हम आनंद से भी भयभीत हैं। क्योंकि हमारे चारों तरफ दुखी लोगों का समाज है; उसमें आनंदित होना मैल-एडजस्ट कर देता है, उसमें दुखी होना ही ठीक है। हमारे चारों तरफ जो भीड़ है, वह दुखी लोगों की है। उसमें आप भी दुखी हैं तो बिल्कुल ठीक हैं। अगर आप आनंदित हैं तो लोगों को शक होने लगेगा कि कुछ दिमाग तो खराब नहीं है। इस भांति हंस रहे हैं, यह भी कोई... ! इस भांति प्रसन्न हो रहे हैं! बीमारों की जहां भीड़ हो, दुखी लोगों का जहां समूह हो, वहां आपका भी दुख में होना उनके साथ एक संगति बनाए रखता है।

इसलिए बच्चों को हम बड़े जल्दी गंभीर करने की कोशिश में लग जाते हैं। बच्चे प्रफुल्लित हैं, आनंदित हैं, नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, खेल रहे हैं। हमें बड़ी बेचैनी होती है उनके नाच से, कूद से। आप अखबार पढ़ रहे हैं। आप अपने बच्चे को कहते हैं, बंद कर यह शोरगुल, नाचना-कूदना; मैं अखबार पढ़ रहा हूं!

जैसे अखबार पढ़ना नाचने-कूदने से बड़ी बात है। जैसे अखबार पढ़ना कोई ऐसा मामला है जो नाचने-कूदने से ज्यादा कीमती हो। बच्चे कमजोर हैं, इसलिए आपसे नहीं कह सकते कि बंद करो यह अखबार पढ़ना और नाचो-कूदो! और जब तक वे ताकतवर होंगे, तब तक आप उनको बिगाड़ चुके होंगे। वे भी अखबार पढ़ रहे होंगे और अपने बच्चों को डांट रहे होंगे।

सभी मनुष्य प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं, और अधिकतर मनुष्य प्रकृति के प्रतिकूल मरते हैं। हम सभी जन्म से प्रकृति के अनुकूल पैदा होते हैं; लेकिन समाज, चारों तरफ का ढांचा हमें मरोड़ कर गंभीर बना देता है। और जो आदमी गंभीर नहीं रहता, उसको हम बड़े हो जाने पर भी कहते हैं कि तुम अभी बचकाने हो, चाइल्डिश हो; यह बचकानापन छोड़ो, गंभीर बनो। हम उदास शक्लें चाहते हैं।

अगर आप किसी साधु-संत के पास जाएं और उसे खिलखिला कर हंसते देख लें, आप दुबारा न जाएंगे। आप गंभीर, रुग्ण चेहरे चाहते हैं। महात्मा और हंस रहा है, जरूर कोई गड़बड़ है! बुरा आदमी हंस सकता है, भला आदमी हंस नहीं सकता; भले आदमी का नैसर्गिक गुण रोना है। इसलिए आप अपने संतों, महात्माओं की शक्लें देखें, रोते हुए लोगों की भीड़ है। और जो जितना जोर से रो सकता है, उतना बड़ा महात्मा। उनके रोएं-रोएं से उदासी टपक रही है, संसार के प्रति दुश्मनी टपक रही है। उनके चारों तरफ फूल खिले हुए नहीं दिखाई पड़ते।

लेकिन तभी आप आश्वस्त होते हैं। इसलिए जो संन्यासी, जो साधु जितना ज्यादा परेशान दिखेगा, उतना आपको त्यागी मालूम पड़ता है। नंगा खड़ा हो, धूप में खड़ा हो, भूखा मर रहा हो, उपवास कर रहा हो, शरीर हड्डी हो गया हो, उतना बड़ा आपको मालूम होता है।

बड़े अजीब हैं! आपके मन में कहीं न कहीं कोई दुखी लोगों को देखने में कुछ मजा आता है। इसलिए आप ख्याल करें, अगर महात्मा झोपड़े में रहता हो, तो आप उसके आसानी से पैर पड़ सकते हैं; महात्मा महल में

रहता हो, अड़चन की बात है। क्यों? महात्मा अगर स्वस्थ मालूम पड़ता हो तो आपको लगेगा कि कुछ गड़बड़ है, गृहस्थ जैसा स्वस्थ मालूम पड़ रहा है। उसे हड्डी-हड्डी होना चाहिए; तब आपको लगेगा कि कोई त्याग है। महात्मा कहीं भी सुख लेता हुआ मालूम पड़े तो आपको अड़चन होगी। इसलिए जहां-जहां सुख है, वहां-वहां से आप अपने महात्मा को तोड़ते हैं। भोजन वह ठीक नहीं कर सकता। सुंदर स्त्री उसके पास दिखाई पड़ जाए तो आपको बहुत बेचैनी हो जाएगी। क्यों? आपका जहां-जहां सुख है, वहां से महात्मा दूर होना चाहिए। भोजन ठीक न कर सके; सुंदर स्त्री उसके पास न दिखाई पड़ सके।

इसलिए महात्माओं को होमो-सेक्सुअल समाज खड़े करने पड़े, एक ही लैंगिक समाज खड़े करने पड़े। कैथलिक महात्मा है, तो वह पुरुष अलग रहते हैं एक मोनेस्ट्री में, स्त्रियां अलग रहती हैं दूसरी मोनेस्ट्री में। जैनों का महात्मा चलता है तो साधु एक तरफ चलते हैं अलग, साध्वियां एक तरफ चलती हैं अलग। उनको आप साथ भी नहीं ठहरने दे सकते हैं। आपको अपने महात्मा पर इतना भी भरोसा नहीं है? इतना डर क्या है?

जैन साध्वी अकेली नहीं चल सकती; पांच को चलना चाहिए साथ। निश्चित, जैन शास्त्र निर्माण करने वाले लोग भलीभांति समझ गए होंगे कि पांच औरतें जहां साथ हैं, चार एक के ऊपर पहरा हैं। वे चार जो हैं, वे किसी को भी सुख न लेने देंगी, वे नजर रखेंगी। एक आंतरिक, बिल्ट-इन, इंतजाम कर दिया आपने भीतरी। पांच औरतों को साथ चला रहे हैं, वे किसी को सुखी न होने देंगी। और एक-दूसरे पर नजर रखेंगी कि कोई सुखी तो नहीं हो रहा।

और स्त्री-पुरुष पास हों तो ज्यादा सुखी हो सकते हैं, यह डर समाया हुआ है। क्योंकि आपका अनुभव क्या है सुख का? दो ही अनुभव हैं आपके सुख केः भोजन का, स्त्री का, या पुरुष का। दो ही सुख हैं। तो दो सुख से महात्मा को बिल्कुल तोड़ देना चाहिए। तब फिर वह लगता है कि ठीक, अब ठीक है!

तो जितना मरा हुआ हो, उतना ठीक है। जिंदा हो, तो डर है। क्योंकि जिंदगी के साथ डर है। हंस कैसे सकता है महात्मा? हंसने का मतलब? हंसने का मतलब अभी भी उसे जगत में, या होने में रस है। हंसने का मतलब होता है कि रस है। विरस होना चाहिए। उसकी सारी हंसी सूख जानी चाहिए।

तो हम एक रुग्ण समाज में जी रहे हैं। और हमारे रुग्ण समाज की रुग्ण धारणाएं हैं। और उन रुग्ण धारणाओं को हम एक-दूसरे पर थोपते हैं।

बाप भी नहीं चाहता कि बेटा सुखी हो; कहे कितना ही। कहता बहुत है कि तेरे सुख के लिए सब कर रहा हूं; लेकिन सुखी चाहता नहीं कि बेटा सुखी हो। यह जरा कठिन लगेगा। क्योंकि बाप सोचेगा, ऐसा तो कभी नहीं, मैं तो चाहता हूं मेरा बेटा सुखी हो। आप कहते हैं; आप समझते भी हैं कि आप चाहते हैं; लेकिन जो आप करते हैं, उससे बेटा दुखी होगा। आप कर भी वही सकते हैं जो आपके बाप ने आपके साथ किया है। नया सोचना बड़ी कठिन बात है। इसलिए हर बाप अपने बेटे के साथ वही करता है जो उसके बाप ने उसके साथ किया है। और ढांचा है; उस ढांचे को आप थोप देते हैं।

थोड़ा सोचिए, आप सुखी हैं? अगर आप सुखी नहीं हैं, तो एक बात तो पक्की समझ लीजिए कि आपका ढांचा किसी को भी सुखी नहीं कर सकता। लेकिन यह कोई नहीं सोचता। बाप यह नहीं सोचता कि मैं सुखी नहीं हूं तो मेरी धारणाओं के अनुसार चला हुआ मेरा लड़का कैसे सुखी हो जाएगा? अगर मैं सुखी नहीं हूं तो एक बात तो तय है कि मेरा ढांचा इसे न दूं; और कुछ भी हो। कम से कम दूसरे में कोई संभावना तो होगी कि शायद सुखी हो जाए। लेकिन मेरे ढांचे में तो कोई संभावना नहीं है।

लेकिन कोई सोचता नहीं है। आपको मजा ढांचा देने में आता है; लड़के को सुख मिलेगा या नहीं, यह सवाल नहीं है। आप लड़के को अपने अनुसार ढाल रहे हैं, इसमें आपको मजा आ रहा है। बड़ी अजीब बात है। आप दुखी हैं और अपने ढांचे में ढाल रहे हैं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे मुझे तक सलाह देने आ जाते हैं। वे कहते हैं, आप ऐसा करिए तो बहुत अच्छा होगा। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम्हारी सलाह से कम से कम तुम तो चले ही होओगे, और अगर तुम्हारे जीवन में आनंद आ गया हो, तो ही मुझे सलाह दो। वे कहते हैं, नहीं, हमारे जीवन में तो कुछ नहीं आया; उसके लिए तो हम आपके पास आए हुए हैं। तो मैं उनसे कहता हूं कि तुम्हारी सलाह सम्हाल कर रखो, और किसी को देना मत! क्योंकि तुम्हारी सलाह के तुम भी उदाहरण नहीं हो।

मुझे याद आता है, हेनरी फोर्ड एक दुकान में गया, एक किताब खरीदी। जब वह किताब देख रहा था, तो किताब थीः हाउ टु ग्रो रिच, कैसे अमीर हो जाएं। हेनरी फोर्ड तो अमीर हो चुका था, फिर भी उसने सोचा कि शायद कोई और बातें इसमें हों। और तभी दुकानदार ने कहा कि फोर्ड महोदय, आप बड़े आनंदित होंगे, इस किताब का लेखक भी दुकान में भीतर है। वह कुछ काम से आया हुआ है, हम आपको उससे मिला देते हैं।

उससे सारी बात बिगड़ गई। वह लेखक बाहर आया। हेनरी फोर्ड ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और कहा कि यह किताब वापस ले लो, यह मुझे खरीदनी नहीं है। वह दुकानदार हैरान हुआ कि आप क्या कह रहे हैं! इस किताब की लाखों कापियां बिक चुकी हैं।

वह कितनी ही बिक चुकी हों, लेकिन लेखक को देख लिया, अब किताब को क्या करें! कोट फटा था; हाउ टु ग्रो रिच किताब लिखी है उन्होंने! हेनरी फोर्ड ने पूछा कि अपनी ही कार से आए हो कि बस में आए हो? लेखक ने कहा, आया तो बस में ही हूं। तो हेनरी फोर्ड ने कहा कि मैं फोर्ड हूं, और कभी कार की जरूरत पड़े तो मेरे पास आना, सस्ते में निबटा दूंगा। लेकिन अभी ये किताबें मत लिखो। क्योंकि जिस सलाह से तुम नहीं कुछ पा सके, उससे कोई और क्या पा सकेगा?

जिंदगी बड़ी जटिल है। अगर आपको न मिला हो आनंद तो अपने बेटे को अपना ढांचा मत देना। अगर आपको न मिला हो आनंद तो अपनी सलाह किसी को मत देना। वह जहर है। उसी सलाह के आप परिणाम हैं। दूसरों ने आपके साथ ज्यादती की कि आपको ढांचा दे दिया; अब आप दूसरों के साथ ज्यादती मत करना कि उनको अपना ढांचा दे जाएं।

इसीलिए हमें पता नहीं चलता कि क्या है प्रकृति की अनुकूलता। क्योंकि प्रतिकूलता में ही हम बड़े होते हैं। मनुष्य का सारा का सारा संस्थान प्रतिकूल है। इसलिए लाओत्से कहता है कि निसर्ग के जितने अनुकूल हो सकें, उतने अनुकूल हो जाना। क्यों हो गया है प्रतिकूल आखिर? इसको हम थोड़ा समझ लें। इसका पूरा शास्त्र है कि आखिर क्या कारण है कि आदमी प्रतिकूल हो गया है।

कारण है। हर व्यक्ति अनुकूल पैदा होता है। प्रकृति से ही पैदा होता है, इसलिए अनुकूल होगा ही। लेकिन हम किसी व्यक्ति को उसकी निसर्गता में स्वीकार नहीं करते। हम उस पर आदर्श ढालते हैं। हम लोगों से कहते हैं कि महावीर बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, कुछ न बने तो कम से कम विवेकानंद बन जाओ! लेकिन आपको पता है कि महावीर दुबारा पैदा नहीं होते? अभी पच्चीस सौ साल में तो नहीं पैदा हुए; हालांकि कई लोगों ने समझाया अपने बेटों को कि महावीर बन जाओ। कोई आदमी इस जमीन पर दुबारा पैदा हुआ है, ऐसी आपको खबर है? कोई राम, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध--कोई कभी दुबारा पैदा हुआ है?

हर आदमी अनूठा पैदा होता है। और हम आदर्श देते हैं उसको कुछ होने के कि तू यह हो जा! कठिनाई है मां-बाप की, क्योंकि उनको भी पता नहीं कि घर में जो पैदा हुआ है, वह क्या हो सकता है। किसी को भी पता नहीं। अभी तो वह जो पैदा हुआ है, उसको भी पता नहीं कि वह क्या हो सकता है। सारा जीवन अज्ञात में विकास है। तो मां-बाप की बेचैनी यह है कि कोई ढांचा क्या दें वे?

तो जो पहले लोग हो चुके हैं चमकदार, उनका ढांचा देते हैं कि तुम ऐसे हो जाओ। वह ढांचा फांसी बन जाता है। और वह ढांचा ही प्रकृति के प्रतिकूल ले जाने का कारण हो जाता है।

फिर हम ढांचे में ढाल कर व्यक्तियों को खड़ा कर देते हैं। वे फंसे हुए लोग हैं, जिनके चारों तरफ लोहे की जंजीरें हैं सख्त। उनमें से निकलना मुश्किल है। जब तक मनुष्यता यह स्वीकार न कर ले कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है, और किसी की कापी न है और न हो सकता है। दो व्यक्ति समान नहीं हैं; हो भी नहीं सकते; होना भी नहीं चाहिए। अगर आप कोशिश करके राम हो भी जाएं, तो आप एक बेहूदा दृश्य होंगे, और कुछ भी नहीं। राम का होना तो एक बात है, आपका होना सिर्फ नकल होगा। झूठे होंगे आप। सच्चे राम होने का कोई उपाय नहीं। कारण? क्योंकि सच्चे राम होने के लिए बड़ी कठिनाई है। कठिनाई क्या है? यह नहीं कि राम होना बड़ा कठिन है। राम बिना कोशिश किए हो गए, इसलिए बहुत कठिन तो मालूम नहीं होता। या कि बुद्ध होना बहुत कठिन है? बुद्ध बिना कोशिश किए हो गए; कोई बहुत कठिन नहीं है। कठिनाई दूसरी है।

एक-एक व्यक्ति इतिहास, समय और स्थान के ऐसे अनूठे बिंदु पर पैदा होता है, उस बिंदु को दुबारा नहीं दोहराया जा सकता। वह बिंदु एक दफा आ चुका, और अब कभी नहीं आएगा। इसलिए कोई आदमी दोहर नहीं सकता। इसलिए सब आदर्श खतरनाक हैं।

फिर हम किसी व्यक्ति को स्वीकार नहीं करते हैं। हम सब का अहंकार है भीतर; वह सिर्फ अपने को स्वीकार करता है और अपने अनुसार सबको चलाना चाहता है। इस दुनिया में सबसे खतरनाक और अपराधी लोग वे ही हैं, जो अपने अनुसार सारी दुनिया को चलाना चाहते हैं। इनसे महान अपराधी खोजने कठिन हैं; भला आप उनको महात्मा कहते हों। आपके कहने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब भी मैं कोशिश करता हूं कि किसी को मेरे अनुसार चलाऊं, तभी मैं उसकी हत्या कर रहा हूं। मेरे अहंकार को तृप्ति मिल सकती है कि मेरे अनुसार इतने लोग चलते हैं; लेकिन मैं उन लोगों को मिटा रहा हूं।

इसलिए वास्तविक धार्मिक गुरु आपको आपके निसर्ग की दिशा बताता है; आपको अपने अनुसार नहीं चलाना चाहता। आपको कहता है कि आप अपने अनुसार ही हो जाएं, और इस होने के लिए जो भी त्यागना पड़े और जो भी मुसीबत झेलनी पड़े, वह झेल लें। क्योंकि सब मुसीबतें छोटी हैं, अगर उस आनंद का पता मिल जाए, जो स्वयं के अनुसार होने से मिलता है। सब मुसीबतें छोटी हैं; उसकी कोई कीमत नहीं है। सब मुसीबतें आसान हैं।

और आप दूसरे के अनुसार बनने की कोशिश करते रहें, तो आप दुखी, और दुखी, और दुखी होते चले जाएंगे। कभी आपको आनंद की कोई झलक न मिलेगी।

आनंद की झलक का मतलब ही है कि मेरी प्रकृति और विराट की प्रकृति के बीच कोई तालमेल खड़ा हो गया, कोई हार्मनी आ गई। अब दोनों एक लय में बद्ध होकर नाच रहे हैं। मेरा हृदय विराट के हृदय के साथ लयबद्ध हो गया; मेरा स्वर और विराट का स्वर मिल गया; अब दोनों में जरा भी फासला नहीं है।

तो मुझे अपने ही अनुसार, अपने ही जैसा होना चाहिए। इसके लिए कोई मुझे सहायता नहीं देगा। सब इसमें बाधा डालेंगे; क्योंकि सब चाहेंगे कि उनके अनुसार हो जाऊं।

मां-बाप चाहते हैं; फिर स्कूल में शिक्षक हैं, वे चाहते हैं; फिर नेता हैं, फिर महात्मा हैं, फिर पोप हैं, शंकराचार्य हैं, वे चाहते हैं कि मेरे अनुसार हो जाओ। इस दुनिया में आपको चारों तरफ, जैसे बहुत से गिद्ध आप पर टूट पड़े हों, वे सब आपको अपना भोजन बनाना चाहते हैं। इसमें आप भूल ही जाते हैं कि आप सिर्फ अपने जैसे होने को पैदा हुए थे। पर एक बात तो पक्की है कि आप दुखी होते रहते हैं। उस दुख को ही पहचानें। अगर आप दुखी हैं, तो समझ लें कि यह पक्की है बात, आप निसर्ग के प्रतिकूल चल रहे हैं। दुख काफी सबूत है।

और जब आप दुखी होते हैं तो पता है, आप क्या करते हैं? आप जब दुखी होते हैं, तब आप वही भूल दोहराते हैं जिसके कारण आप दुखी हैं। तब आप किसी से पूछने जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए, जिस पर मैं चलूं और मेरा दुख मिट जाए। वह आपको रास्ता बताएगा कोई न कोई। वह रास्ता उसका होगा। और हो सकता है, उस पर चलने से उस आदमी का दुख भी मिट गया हो। मगर वह रास्ता उसका होगा। और दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नहीं हो सकता। आपको अपना रास्ता खोजना पड़ेगा।

आप दूसरों के रास्तों से परिचित हो लें, इससे सहयोग मिल सकता है। आप दूसरे के रास्तों को पहचान लें, इससे अपने रास्ते की खोज में सहारा मिल सकता है। लेकिन किसी दूसरे के रास्ते पर अंधे की तरह चले अगर आप, तो आपको अपना रास्ता कभी भी नहीं मिलेगा। कितने लोग महावीर के पीछे चले हैं, और एक भी महावीर नहीं हो सका। और कितने लोग बुद्ध के पीछे चले हैं, और एक भी बुद्ध नहीं हो सका। क्या कारण है? इतना अपव्यय हुआ है शक्ति का, कारण क्या है?

कारण एक हैः आपका रास्ता किसी दूसरे का रास्ता नहीं है, और किसी दूसरे का रास्ता आपका रास्ता नहीं है। आत्माएं अद्वितीय हैं, और हर आत्मा का अपना रास्ता है।

तो क्या करें? अपने दुख को समझें, अपने दुख के कारण को खोजें कि मेरे दुख का कारण क्या है। उस कारण से हटने की कोशिश करें। रास्ते मत खोजें, दूसरों से जाकर मत पूछें। क्या है दुख का कारण आपका?

मेरे पास न मालूम कितने लोग आते हैं। उनके दुख का कारण इतना साफ है कि हैरानी होती है कि उनको दिखाई क्यों नहीं पड़ता! ऐसा लगता है कि वे देखना ही नहीं चाहते। और अगर उन्हें कोई रास्ता भी बताया जाए, तो उस रास्ते पर चल कर भी वे दुख का कारण तो साथ ही ले जाते हैं।

अधिक लोगों के दुख का कारण अहंकार है। इतना साफ है, लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता।

मेरे पास लोग आते हैं। उनको मैं कहता हूं कि यह अहंकार ही दुख दे रहा है। वे कहते हैं, छूटने का कोई रास्ता बताइए। उनको कोई रास्ता बता दूं; वे उस रास्ते पर चलेंगे, मगर वह जो बीमारी थी, उसको साथ ही ले आएंगे। मैं उनको कहता हूं, चलो, एक संन्यास में छलांग लगा लो। वे संन्यास में भी छलांग लगा लेते हैं। लेकिन तब संन्यासी का अहंकार उनको पकड़ लेता है। तब वे मानते हैं कि जिन्होंने संन्यास नहीं लिया, वे उनसे छोटे हैं; और जिन्होंने ले लिया, वे कुछ बड़ी ऊंचाई पर पहुंच गए हैं। वे गैर-संन्यासी को ऐसा देखते हैं जैसा कि सहानुभूति से किसी दुखी, पीड़ित आदमी को देखा जाता है कि ठीक है, भटको जब तक भटकना है! हम पहुंच गए; तुम भटको।

यह उनकी बीमारी थी; इससे छोड़ने को कहा था एक छलांग लगा लो। ये बीमारी को साथ ले आए। फिर दस-पचास संन्यासी इकट्ठे हो जाते हैं, तो छोटे-बड़े का सवाल शुरू हो जाता है। फिर उनमें कलह शुरू हो जाती है, फिर पालिटिक्स शुरू हो जाती है। फिर वे दल बना लेते हैं; फिर एक-दूसरे की काट-पीट शुरू कर देते हैं। उन्होंने एक संसार बना लिया--आल्टरनेटिव, छोटा सा। ये सौ आदमी के भीतर सारी राजनीति आ जाती है, जो

दिल्ली में चलती हो, वाशिंगटन में चलती हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। कौन कहां बैठा है; कौन कौन सा काम कर रहा है; कौन को कितनी प्रतिष्ठा मिल रही है--वह सारी बीमारी साथ खड़ी है।

यह कठिनाई है। बीमारी हम देखना नहीं चाहते। या फिर मामला ऐसा है जैसा कि खाज किसी को हो जाती है। तो वह जानता भी है कि खुजलाने से दुख होता है, लेकिन खुजलाने में रस भी आता है। अकेला दुख होता तो खाज को कोई भी न खुजलाता। खाज में दोहरा उपद्रव है, मजा भी आता है खुजलाने में। तो जिस दुख में मजा आता है, उससे बचना मुश्किल हो जाता है।

आपको अहंकार में मजा भी आता है; वह खाज है। फिर दुख भी होता है। जब दुख होता है, तब आप हाथ जोड़ कर आ जाते हैं कि कोई रास्ता बताइए। जब चमड़ी बिल्कुल उखड़ जाती है, और लहूलुहान हो जाता है और खून बहने लगता है, तब आप कहते हैं, कोई रास्ता बताइए, बहुत दुख पा रहे हैं। लेकिन थोड़ी देर में चमड़ी फिर ठीक हो जाएगी, खून बंद हो जाएगा; फिर आपके भीतर सरसराहट शुरू होगी कि थोड़ा खुजा कर देखो, बड़ा मजा आता है।

खाज है अहंकार। अकेला दुख नहीं है, शुद्ध दुख नहीं है; उसमें थोड़ा रस भी मिश्रित है। वही रस पीछा करता है। इसलिए जहां भी आप जाते हो, वह रस पीछा करता है।

अगर आप दुख पा रहे हो, तो समझना कि अहंकार वहां है। अगर आप दुख पा रहे हो, तो समझना कि आप प्रकृति के प्रतिकूल चल रहे हो। और प्रतिकूल चलने के दो ढंग हैं। शरीर को भोजन चाहिए। आप दो ढंग से शरीर को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इतना खाना खा लें कि शरीर के लिए झेलना मुश्किल हो जाए; दुख शुरू हो जाएगा। यह प्रतिकूल चले गए। या भूखे रह जाएं, बिल्कुल न खाएं, तो भी दुख शुरू हो जाएगा।

तो ध्यान रखना, प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं। अनुकूल होने का एक उपाय है, और प्रतिकूल होने के दो उपाय हैं। और आदमी का मन ऐसा है कि एक प्रतिकूलता से दूसरी पर चले जाने में उसे सुविधा होती है; क्योंकि वह भी प्रतिकूल है। इसलिए ज्यादा भोजन करने वाले लोग अक्सर उपवास करने को राजी हो जाते हैं। असल में, जिस आदमी ने सम्यक भोजन किया है, वह उपवास की मूढ़ता में पड़ेगा ही नहीं। क्यों उपवास करेगा? जिसने ठीक भोजन किया है, उतना ही भोजन किया है जितना शरीर को जरूरत थी, वह उपवास करने का कोई सवाल नहीं उठता। सिर्फ अति भोजन किया है, तो फिर अनाहार में उतरना पड़ेगा। और जो अति भोजन करता है, वह तत्काल अनाहार के लिए राजी हो जाता है।

इसको आप समझ लें। अति भोजन करने वाले को अगर कहें कि कम भोजन करो, तो वह कहेगा, यह जरा कठिन है; बिल्कुल न करो, यह हो सकता है। अगर एक आदमी सिगरेट पीता है, उससे आप कहें, दस की जगह पांच पीओ। वह कहेगा, यह जरा कठिन है; बिल्कुल न पीऊं, यह हो सकता है। क्यों? क्योंकि अति की आदत है; या तो पीऊंगा दिन भर, या बिल्कुल नहीं पीऊंगा। इन दोनों में से चुनाव आसान है। लेकिन मध्य में रुकना कठिन है। मध्य में रुकना कठिन है। मध्य में रुकने का मतलब है कि आप प्रकृति के अनुकूल होना शुरू हो गए। प्रकृति है मध्य, संतुलन, संयम।

ध्यान रखना, हमने संयम का अर्थ ही खराब कर दिया है। संयम का हमारा मतलब होता है दूसरी अति। अगर एक आदमी उपवास करता है, हम कहते हैं, बड़ा संयमी है। असंयमी है वह आदमी उतना ही, जितना ज्यादा खाने वाला असंयमी है। संयम का मतलब क्या है? संयम का मतलब है संतुलित, बैलेंस्ड, बीच में; न इस तरफ, न उस तरफ। झुकता ही नहीं अति पर, बिल्कुल मध्य में है। मध्य में जो है, वह संयम में है। और संयम सूत्र

है निसर्ग के अनुकूल हो जाने का। लेकिन आपका संयम नहीं; आपका संयम तो असंयम का ही एक नाम है--दूसरी अति पर।

अहंकार है, अति है, और भीतर जिन चीजों से आप छूटना चाहते हैं, उनमें ही रस भी है। इसे पहचानना पड़ेगा। आपके हर दुख में आपका हाथ है और रस है। रस को आप नहीं देखते, आप सिर्फ दुख को देखते हैं; तो आप कभी नहीं छूटेंगे। रस को भी देखें। रस से ही छूटेंगे तो दुख से छूटेंगे। जिस आदमी को खाज खुजलाने में रस है, उससे कितना ही कहो कि दुख है, वह भी मानता है कि बहुत दुख है, वह भी दुख झेल चुका है। पहले उसको समझाओ कि रस भी है! और रस को समझ लो ठीक से, और रस लेना चाहते हो तो यह दुख की कीमत चुकानी पड़ेगी। फिर दुख से बचने की बात मत पूछो।

लोग मुझसे आकर कहते हैं, बड़ी अशांति है। उन्हें मैं कारण बताता हूं। वे कहते हैं, वह कारण तो छोड़ना मुश्किल है। आप तो अशांति हटाने का उपाय बता दें। इसलिए लोग झूठी तरकीबों में पड़ जाते हैं।

एक आदमी है, वह धन के पीछे पागल है। वह कहता है कि जब तक करोड़ों न हो जाएं, उसे चैन नहीं मिलने वाली। और करोड़ों की इस दौड़ में उसका मन अशांत हो जाता है। वह मेरे पास आता है, वह कहता है कि बड़ी अशांति है, कोई मंत्र बता दें, कोई माला दे दें तो मैं माला फेर कर शांत हो जाऊं। मैं उससे पूछता हूं कि माला न फेरने से तुम अशांत हुए हो? तो माला फेरने से शांत हो जाओगे। तुम्हारी अशांति का क्या संबंध है माला से? माला का हाथ ही कहां है? उसको मैं कहता हूं कि यह जो तुम धन की पागल दा.ौड में पड़े हो, यह तुम्हारी अशांति है। वह कहता है, इसको तो छोड़ना मुश्किल है; आप तो कोई दूसरी विधि बता दें।

वह विधि चाहता है। उसका मतलब यह है कि वह जो खाज के खुजलाने का रस है, वह तो बचा रहे; और खाज के खुजलाने में से जो दुख होता है, वह न हो। आप कोई माला बता दें कि खुजला कर माला फेरने लगूं, ताकि वह जो दुख है, वह न हो। वह दुख कैसे नहीं होगा? उस दुख का कारण है। और मंत्रों से वह कारण मिटने वाला नहीं है। कोई मंत्र आपके कारण नहीं मिटा सकता।

इसलिए मंत्र तो दुनिया में बहुत हैं और मंत्र देने वाले बहुत हैं, और आपके दुख का कोई अंत नहीं है। फिर मंत्र देने वाले भी समझ जाते हैं कि आप खाज को खुजलाना चाहते हैं, तो वे दोहरी बातें कहते हैं। महेश योगी अपने साधकों को कहते हैं कि इस मंत्र से तुम्हें आध्यात्मिक शांति तो मिलेगी ही, भौतिक संपन्नता भी मिलेगी। यह वे यह कह रहे हैं कि इससे दुख भी मिटेगा और खुजलाने का मजा भी रहेगा। पश्चिम में महेश योगी के विचार के प्रभाव का बुनियादी कारण यह है। क्योंकि वे कहते हैं कि इससे भौतिक संपन्नता भी मिलेगी, इससे धन-समृद्धि भी मिलेगी।

स्वभावतः धन तो आप चाहते हैं, और शांति भी चाहते हैं। अगर कोई कहता है, धन की दौड़ में शांति नहीं मिलेगी; तो आप कहेंगे, फिर शांति रहने दो; अभी धन की दौड़ कर लें, फिर धन पास होगा तो शांति भी खरीद लेंगे। जिसकी बुद्धि धन पर टिकी होती है वह सोचता है, हर चीज धन से खरीदी जा सकती है; शांति भी खरीद लेंगे।

कुछ चीजें हैं जो धन से नहीं खरीदी जा सकतीं। और कुछ चीजें हैं जो धन की दौड़ में कभी फलित ही नहीं हो सकती हैं। कुछ चीजें हैं जिनसे यश नहीं खरीदा जा सकता। और कुछ चीजें हैं जो यश चाहने वाले को कभी नहीं मिल सकती हैं। क्योंकि उसी चाह में उनका विरोध है।

एक मेरे मित्र हैं। एक राज्य के मंत्री थे। अब फिर मंत्री हो गए। जब वे मंत्री नहीं रहते, तब मेरे पास आते हैं। जब वे मंत्री हो जाते हैं, तब मुझे भूल जाते हैं। जब वे मंत्री नहीं रहते, तब वे मेरे पास आते हैं कि शांति का

कोई उपाय बताइए। मैं उनसे पूछता हूं, अशांति क्या है? यही न कि अभी मंत्री आप नहीं हैं? तो इसके लिए मैं क्या उपाय बताऊं? और मेरा उपाय ऐसा है कि फिर आप कभी मंत्री नहीं हो पाएंगे। तो मैं उनसे कहता हूं, आप तय कर लें। अगर शांत ही होना है, तो राजनीति छोड़ देनी पड़े। क्योंकि वह खाज है और उसमें खुजलाना जारी रखना पड़ेगा। और राजनीति ऐसी खाज है कि आप भी न खुजलाओ तो दूसरे आपकी खाज को खुजलाते हैं। बड़ी कठिनाई है। आप चैन से ही बैठे हो तो आपके उपद्रवी, जिनको आप ने इकट्ठा कर लिया है, जो आपको मंत्री बनाते हैं, वे चैन से न बैठने देंगे। वे खुजलाएंगे। तो वहां तो खाज के रोगियों का ही समूह है, वहां बहुत मुश्किल है। वहां अपनी भी खुजलाते हैं लोग, दूसरों की भी खुजलाते हैं। आप वहां से हट आओ। वे कहते हैं, आप बात तो ठीक कहते हैं, और मैं हटना भी चाहता हूं--जब वे नहीं होते, तब वे कहते हैं, हटना भी चाहता हूं--मगर अभी जरा मुश्किल है, उलझाव है। तो फिर, मैं उनसे कहता हूं, अशांत ही रहो। फिर क्यों... ?

हमारी बेईमानी क्या है? अशांति से जो मिलता है वह भी हम लेना चाहते हैं, और अशांति भी नहीं लेना चाहते। इस जगत में इसका कोई उपाय नहीं है। आदमी को सीधा-साफ होना चाहिए। अगर राजनीति का रस लेना है तो अशांति होगी; उसको मजे से झेलो, उसे समझो कि वह हिस्सा है। लेकिन बुद्ध की शांति देख कर वह भी महत्वाकांक्षा मन में जगती है कि बुद्ध जैसी शांति भी हो जाए। मगर बुद्ध किसी राज्य के मंत्री होने की कोशिश नहीं कर रहे थे, इसका ख्याल नहीं आता। बल्कि राज्य था हाथ में, उससे हट गए थे।

तो बुद्ध की शांति आकर्षित करती है; मंत्री का बंगला आकर्षित करता है। मन विरोधी वासनाओं से भर जाता है। और तब हम चाहते हैं, दोनों बातें एक साथ हो जाएं। वे दोनों बातें एक साथ नहीं हो पाती हैं। जिस व्यक्ति को निसर्ग के अनुकूल चलना है, उसे यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि प्रतिकूल क्यों चल रहा है।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर हम प्रकृति के अनुकूल चलने लगें तो समाज का क्या होगा?

आप पर समाज टिका हुआ है, ठहरा हुआ है? नाहक हर आदमी सोचता है कि वही सम्हाले हुए है इस जगत को। कोई पंडित जवाहरलाल नेहरू से ही लोग नहीं पूछते कि आपके बाद क्या होगा, आप भी अपने मन में सोचते रहते हैं--मेरे बाद क्या होगा? कुछ भी नहीं होगा, लोग बड़े मजे में होंगे। कोई कहीं तकलीफ नहीं हो जाने वाली है। आपकी जगह खाली हो, इसके लिए कई लोग तैयार हैं कि जल्दी वह हो।

आप प्रकृति के अनुकूल हो जाएंगे तो समाज का क्या होगा?

क्या होगा समाज का! कम से कम एक समाज का टुकड़ा अच्छा हो जाएगा तो समाज थोड़ा अच्छा होगा। नहीं, आपको समाज की फिक्र नहीं है। आपको पता नहीं है कि आप जो पूछ रहे हैं, उसका मतलब क्या है। आप असल में यह पूछ रहे हैं कि अगर मैं प्रकृति के अनुकूल होने लगूं, तो जिन बीमार समाज से मेरे संबंध हैं और जहां मैं अभी जमा हुआ हूं, वहां मैं उखड़ जाऊंगा। समाज का क्या होगा, यह सवाल नहीं है। आपका क्या होगा?

आप उखड़े हुए अनुभव करेंगे। अगर आप दौड़ नहीं रहे हैं दौड़ने वालों में, तो आप रास्ते के किनारे हटा दिए जाएंगे। दौड़ने वाले तो बड़े मजे में दौड़ेंगे, जगह थोड़ी ज्यादा हो जाएगी। आपका स्थान बचेगा; उनको कोई तकलीफ न होगी। आप दिक्कत में पड़ते हैं। आपको लगता है, मैं हटा दिया जाऊंगा। अगर मैं खड़ा हुआ, नहीं दौड़ा, तो लोग रास्ते के किनारे कर देंगे कि हट जाओ! अगर नहीं दौड़ना है, तो बीच में मत आओ! जो दौड़ रहे हैं उनको दौड़ने दो। उससे मन में दुख होता है कि रास्ते से हट जाऊंगा। रस तो उसी रास्ते में बना है, कि

आगे कहीं कोई यश का इंद्रधनुष दिखाई पड़ रहा है, वह हाथ में मुट्ठी बना लूंगा। दौड़े जा रहे हैं लोग। लगता है, सारी दुनिया दौड़ रही है, अगर हम न दौड़े, कहीं सबको मिल गया आनंद और हम बच गए, तो क्या होगा?

ये दौड़ने वालों की शक्लें देखें। उनमें से किसी को आनंद मिलने वाला नहीं है। मिला नहीं है; मिलने की कोई आशा भी नहीं है। दौड़े जा रहे हैं, क्योंकि बाकी भीड़ भी दौड़ रही है। और इसमें खड़ा होना मुश्किल है; खड़ा होगा जो, वह मैल-एडजस्ट हो जाएगा।

इसलिए कठिनाई, समाज का क्या होगा, यह नहीं है। आपकी कठिनाई है कि आपका क्या होगा? तो आप अपने लिए निर्णय कर लें। अभी आपको क्या हो रहा है? अभी आप कौन से स्वर्ग में हैं? एक मजे की बात है, आदमी कभी नहीं सोचता कि वह क्या है अभी। और आपका क्या खो जाएगा? आपके पास कुछ हो, तो खो सकता है। आपके पास कुछ है ही नहीं। आप नाहक ही उस नंगे आदमी की तरह हैं, जो रात भर जागा हुआ है कि कोई कपड़े न चुरा कर ले जाए। कपड़े उनके पास हैं ही नहीं, मगर चोर से डरे हुए हैं कि कोई चुरा कर... ।

आपके पास क्या है जो खो जाएगा? और जो आपके पास है, वह खोने ही वाला है। उसको आप बचा नहीं पाएंगे। क्योंकि जो भी आपके पास है, वह बाहर का है। मकान है, धन है, वह सब खो जाएगा। मौत उसे छीन लेगी। वह खोया ही हुआ है। भीतर क्या है आपके पास जो मौत में भी आपके साथ बच रहेगा?

एक कसौटी ख्याल रखनी चाहिए कि मौत में मेरे साथ क्या बच रहेगा? जिन मित्र ने पूछा है कि पिरामिड की ममीज में मुर्दों के पास हीरे-जवाहरात, रोटी, खाने का सामान रख दिया है, वह उनके साथ तो जाएगा नहीं! आपने अपने चारों तरफ क्या इकट्ठा किया है? वह आपके साथ जाएगा? मुर्दों के साथ नहीं जाएगा, छोड़ दीजिए; आपके साथ जाएगा? आपने क्या इकट्ठा किया है अपने चारों तरफ?

नहीं आपसे कह रहा हूं कि उसे छोड़ दें; सिर्फ यही कह रहा हूं कि आप यह समझ लें कि वह आपके साथ जाने वाला नहीं है। उसकी भी तलाश कर लें जो साथ जा सकता हो। और अगर ऐसी हालत हो कि साथ जो जा सकता हो, और जो साथ नहीं जा सकता, उसके कुछ छोड़ने से उसकी उपलब्धि होती हो, तो सौदा कर लेने जैसा है। सौदा छोड़ देने जैसा नहीं है।

लेकिन भय बड़े अजीब हैं। और आपको पता ही नहीं है कि जो आप कर रहे हैं, वह आप कर रहे हैं या दूसरे आपसे करवा रहे हैं। आपका पड़ोसी एक कार खरीद कर आ जाता है। कल तक आपको इस कार को खरीदने का कोई ख्याल नहीं था। अब यह पड़ोसी कार खरीद लाया, अब आपको भी यह कार खरीदनी ही है। क्यों? कार की शायद जरूरत नहीं थी; नहीं तो कल भी आप सोचते कि खरीदनी है। लेकिन पड़ोसी ले आया; अब पड़ोसी से अहंकार की टक्कर है। और हो सकता है, पड़ोसी किसी और अपने दफ्तर में किसी आदमी की कार देख कर झंझट में पड़ा हो। अब आप यह कार लेकर रहेंगे। इसके लिए आप शांति खो सकते हैं, स्वास्थ्य खो सकते हैं, नींद खो सकते हैं, प्रेम खो सकते हैं, सब खो सकते हैं। यह कार चाहिए। और कार पाकर आपको क्या मिलेगा?

जो आपने खो दिया है, उसे दुबारा पाना मुश्किल हो जाएगा। और जो आपने पा लिया है, वह कुछ भी नहीं है। पड़ोसी के सामने अकड़! लेकिन पड़ोसी भी मिट जाने वाला है और आप भी मिट जाने वाले हैं। ये कारें खड़ी रह जाएंगी और आप खो जाएंगे। और जो आपने इनके लिए खोया था, उसे लौटाना मुश्किल होता चला जाएगा।

बहुत आश्चर्य की बात आदमी के साथ यही है कि उसे ठीक-ठीक यह भी पता नहीं है कि वह जो कर रहा है, वह खुद कर रहा है या दूसरे उससे करवा रहे हैं। चारों तरफ की भीड़ आपसे करवा रही है। जो कपड़े आप

पहने हुए हैं, वे किसी ने आपको पहना दिए हैं। जिस मकान में आप रह रहे हैं, वह किसी ने आपको लिवा दिया है। जो आप वाणी बोल रहे हैं, वह किसी ने आपको सिखा दी है। आप बिल्कुल उधार हैं। यह जो उधार व्यक्तित्व है, यह आपकी आत्मा नहीं है।

लाओत्से, निसर्ग के अनुकूल होने का यही प्रयोजन है उसका कि आप अपनी आत्मा की तलाश कर लें, अपने स्वभाव की तलाश कर लें। आप उसकी फिक्र में लग जाएं, जो आपका है।

एक मित्र ने पूछा है कि लाओत्से कहता है कि हम निसर्ग के अनुकूल हो जाएं; तो हम पशु जैसे न हो जाएंगे?

अभी आप क्या हैं? पशु जैसे नहीं हैं? क्या है जो पशु से आप में भिन्न है? क्या है आप में जो पशु से भिन्न है? क्रोध वही है, मोह वही है, घृणा वही है, काम वही है, लोभ वही है। क्या है जो पशु से भिन्न है?

हां, एक बात है कि पशुओं के पास कारें नहीं हैं, बंगले नहीं हैं, तिजोड़ी नहीं हैं, बैंक-बैलेंस नहीं हैं। ये आपके पास ज्यादा है। लेकिन अगर आप यह देखें कि पशु आपसे गहरे सो पाते हैं, ज्यादा प्रसन्न मालूम होते हैं, जिंदगी ज्यादा निर्भार मालूम होती है, तो ये कारें और मकान महंगा सौदा मालूम पड़ता है। पशु कम से कम सो तो सकते हैं। माना कि उनके पास बिस्तर आप जैसे नहीं हैं--हैं ही नहीं। मगर बिस्तर को क्या करिएगा, अगर बिस्तर मिले और नींद खो जाए? पशु आकाश के नीचे सो रहे हैं। आपके पास मकान है पत्थर की दीवारों का। मगर क्या करिएगा उस मकान का, अगर उसके भीतर भी प्राण भय से थरथराते रहें? पशु खुले आकाश के नीचे भी शांति से सोया है। सुबह उसकी आंख में जो ताजगी है, वह सुबह आपकी आंख में नहीं होती।

ऐसा क्या है आपके पास जो कि आप सोचते हैं पशु होने का डर लगता है कि कहीं पशु न हो जाएं? पशु ही हैं। और ध्यान रखें, निसर्ग के अनुकूल आप ही हो सकते हैं, पशु नहीं हो सकता। क्योंकि पशु को प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं है। सिर्फ मनुष्य ही निसर्ग के अनुकूल हो सकता है। पशु तो निसर्ग के अनुकूल है--अचेतन। उसके होने में कोई गरिमा नहीं है, कोई उपलब्धि नहीं है।

इसे ऐसा समझिए कि एक आदमी भिखारी है। और फिर एक बुद्ध, राजा के घर में पैदा हुआ, और भिखारी हो जाता है। ये दोनों सड़क पर भी भीख मांग रहे हैं। ये दोनों एक से भिखारी नहीं हैं। बुद्ध के भिखारीपन का मजा ही और है। भिखारी का दुख बुद्ध का आनंद है। दोनों भिखारी हैं, दोनों भिक्षापात्र लिए खड़े हैं। लेकिन बुद्ध एक सम्राट भिखारी हैं। बुद्ध का भिखारीपन स्वेच्छा से लिया गया है, वरण किया गया है। यह बुद्ध की इच्छा का, बुद्ध के अपने संकल्प का परिणाम है। बुद्ध ने छोड़ा है धन; बुद्ध का भिखारी होना सम्राट के बाद की अवस्था है। वह जो भिखारी खड़ा है, उसने धन छोड़ा नहीं है; धन मांगा है, लेकिन मिला नहीं है। अभाव है। वह सम्राट के पहले की अवस्था है। वह जो भिखारी है, वह सम्राट होना चाहता है; बुद्ध सम्राट थे, नहीं हो गए हैं। बुद्ध के भिखारीपन में एक समृद्धि है। उस भिखारी का भिखारीपन सिर्फ भिखारीपन है। वहां सिर्फ रिक्तता है। बुद्ध के भीतर एक भराव है। बुद्ध की गरिमा को वह भिखारी नहीं पा सकता।

पशु निसर्ग के साथ हैं, उन्होंने प्रतिकूल होना जाना ही नहीं। वे भिखारी की तरह हैं। आदमी ने प्रतिकूल होना जाना; वह बुद्ध की तरह है। अब अगर वह अनुकूल हो जाए, तो जिस रहस्य को वह पा लेगा, उसे पशु नहीं पा सकते। पशु परमात्मा में लीन हैं, लेकिन अचेतन। मनुष्य परमात्मा से दूर हट आया है, लेकिन चेतन। मनुष्य अगर चेतन रूप से परमात्मा में लीन हो जाए, तो वह स्वयं परमात्मा हो जाता है।

पशु है पीछे मनुष्य के, परमात्मा है आगे, बीच में है मनुष्य। इसलिए मनुष्य तकलीफ में है।

दो रास्ते हैं उसके शांति के। या तो वह बिल्कुल गिर कर पशु हो जाए। पशु होने का अर्थ है, वह अचेतन हो जाए। इसलिए शराब पीकर कभी मन अचेतन हो जाता है, तो आप भी बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं। जब शराब का दौर चलता है, दस-पांच मित्र शराब पीते हैं, तो थोड़ी देर में सभ्यता विसर्जित हो जाती है। फिर उनकी आंखें देखें; धीरे-धीरे उनके चेहरे और उनकी आंखों से एक बोझ उतर जाता है। फिर उनके हाथ-पैर में पुलक और गति आ जाती है; फिर उनकी वाणी में ओज आ जाता है। फिर वे बातें हृदयपूर्वक करने लगते हैं। फिर वे जोर-जोर से बातें करने लगते हैं। फिर वे नाच सकते हैं और गीत गा सकते हैं।

लेकिन अब वे होश में नहीं हैं। यह बड़े मजे की बात है! जब वे होश में थे, तो नाच नहीं सकते थे; अब वे होश में नहीं हैं, तो नाच सकते हैं। यह पशु जैसा हो जाना है; वापस नीचे गिर जाना है। बेहोशी का अर्थ है, नीचे गिर जाना; होश का अर्थ है, वापस नीचे गिरना नहीं, ऊपर उठ जाना।

इसलिए संत की आंखों में भी पशु जैसी सरलता दिखाई पड़ेगी, वैसा ही निर्दोष भाव दिखाई पड़ेगा। लेकिन संत पशु नहीं है। संत पशु जैसा ही सरल हो गया, लेकिन होशपूर्वक। शराबी बेहोश। किसी ने एल एस डी ले लिया हो, किसी ने मारिजुआना ले लिया हो, उसकी आंखों में भी एक निर्दोषता, सरलता आ जाती है। लेकिन वह पशु की सरलता, निर्दोषता है। वह बेहोश हो गया; वह नीचे गिर गया; उसने अपनी आदमियत का त्याग कर दिया।

आदमियत का त्याग दो तरह से हो सकता हैः पीछे गिर कर भी, आगे जाकर भी। पीछे गिरना पशुता है। लाओत्से पीछे गिरने को नहीं कह रहा है।

लाओत्से आगे जाने को कह रहा है। वह कह रहा है, होशपूर्वक निसर्ग के अनुकूल हो जाओ। होशपूर्वक शांत हो जाओ, मौन हो जाओ। होशपूर्वक सारी विकृति, सारा उपद्रव, सारी कलह छोड़ दो। होशपूर्वक अहंकार को विदा कर दो। होशपूर्वक कलह के बीज मत बोओ। द्वंद्व मत पकड़ो, निर्द्वंद्व हो जाओ--अवेयरनेस में, होश में।

तो निश्चित ही, लाओत्से पशु जैसा ही लगेगा। और लाओत्से को एक गाय के पास बिठा देंगे, दोनों की आंखों में फर्क करना मुश्किल हो जाएगा। उतना ही शांत होगा। लेकिन गाय को उसका पता नहीं, जिसका लाओत्से को पता है। लाओत्से जान रहा है अब; इस निसर्ग में डूबने का जो रस है, इसे पी रहा है।

तो जिन मित्र ने पूछा है कि कहीं निसर्ग के साथ एक होने से मनुष्य पशु जैसा तो नहीं हो जाएगा, वे ध्यान रखें, मनुष्य पशु जैसा हो सकता है, उपाय है बेहोश होना। जितना बेहोश आदमी होता है, उतना पशु जैसा होता है। इसलिए जो काम आप बेहोशी में करते हैं, वे पशु जैसे होते हैं। और जो काम आप होश में कर ही नहीं सकते, उनको मत करना; क्योंकि उस वक्त आप पशु हो जाते हैं। और जिन कामों को आप बेहोशी में ही कर सकते हैं, उनको भी होश में करने की कोशिश करना, तो आप पाएंगे, आप उनको कर ही नहीं सकते।

किसी पर क्रोध है आपको; जब आप करते हैं, तो बेहोश हो जाते हैं। बेहोशी में ही कर पाते हैं। आपकी ग्रंथियों से जहर छूट जाता है खून में; शराब ऊपर से नहीं पीते आप, भीतर से पी लेते हैं। अब तो उसकी जांच हो सकती है कि कितनी शराब आपके खून में आपके क्रोध से पहुंच गई।

आपकी ग्रंथियां हैं, जो पायजन इकट्ठा करती हैं, जरूरत के लिए; क्योंकि क्रोध बिना बेहोशी के नहीं हो सकेगा। जब क्रोध का क्षण होता है, तत्काल आपका चेहरा लाल हो जाता है, आंखें सुर्खी से भर जाती हैं, हाथ-पैर कस जाते हैं, दांत बंधने लगते हैं--खून जहर से भर गया। अभी आपका जहर नापा जा सकता है कि कितना जहर आपके भीतर है। इस जहर के प्रभाव में आप किसी की गर्दन दबा देते हैं, किसी का सिर खोल देते हैं।

घड़ी भर बाद जब जहर चुक गया और ऊर्जा क्रोध में बाहर जाकर खो गई, तब आप पछताते हैं और कहते हैंः यह मैंने कैसे किया? यह तो मैं कभी करना नहीं चाहता था! यह मुझसे हो कैसे गया? तब आप सोचते हैं, ऐसा लगता है कि जैसे किसी भूत-प्रेत ने मुझे पजेस कर लिया हो।

किसी ने आपको पजेस नहीं किया था, आप बेहोश हो गए थे; और ग्रंथि जो जहर छोड़ रही हैं, उनमें आप डूब गए थे। आपको लगता है, यह मैंने नहीं किया! और एक लिहाज से ठीक लगता है; क्योंकि आप थे ही नहीं, आप बेहोश थे।

क्रोध को होशपूर्वक करें, पूरे होश से भर कर करें, और आप पाएंगे कि क्रोध नहीं कर सकते हैं। जो होशपूर्वक न किया जा सके, समझना वह पाप है। और जो होशपूर्वक ही किया जा सके, समझना वह पुण्य है। और कोई परिभाषा नहीं है पाप और पुण्य की। जिसे आप होशपूर्वक ही कर सकें, वह पुण्य है। जो बेहोशी में हो ही न सके!

अब इसका बड़ा मजा हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि अगर आप दान भी कर रहे हैं और बेहोशी में कर रहे हैं, तो वह पाप है। आपने कभी होशपूर्वक दान किया है? मुश्किल है। कब करते हैं आप दान? जब आप किसी के कारण बेहोश हो जाते हैं। चार लोग आते हैं और कहते हैं, आप जैसा दानी इस गांव में नहीं है!

छाती फूलने लगी आपकी। सोचते तो आप भी थे, लेकिन अभी तक किसी ने कहा नहीं था। और वे लोग कहते हैं कि आपके बिना यह काम नहीं हो पाएगा; आपका हाथ मिला, तो काम की सफलता है। वे आपको चढ़ा रहे हैं, वे आपको जहर दे रहे हैं। अब आपकी ग्रंथियां छोड़ने लगेंगी जहर; आप दान कर जाएंगे--इस बातचीत में, इस प्रभाव में, इस प्रशंसा में, इस दंभ में।

पीछे पछताएंगे, जैसा क्रोध में पछताते हैं। लेकिन फिर कुछ करने का उपाय नहीं। रात भर सो नहीं पाएंगे कि लाख रुपया दे दिया, किस क्षण में फंस गए! लेकिन कल अखबार में नाम छपे, फोटो छपे, तो थोड़ी राहत मिलेगी कि कोई बात नहीं। मकान पर पत्थर लग जाए, आपका नाम लग जाए, तो राहत मिलेगी कि कोई हर्जा नहीं, कोई धोखा नहीं हुआ, ठीक है।

लेकिन दान भी आप अगर बेहोशी में करते हैं, कोई आपसे करवा लेता है--जैसे कोई आपसे क्रोध करवा लेता है--तो समझना कि पाप है। और क्रोध भी अगर आप होश में करते हैं, कोई करवाता नहीं, आप पूरे होशपूर्वक करते हैं, तो समझना कि पुण्य है। क्योंकि जो क्रोध होशपूर्वक किया जाए, उससे कभी अहित किसी का नहीं होगा। वह हित के लिए ही हो सकता है। और जो दान बेहोशी में किया जाए, उससे आपका भी अहित हो रहा है, दूसरे का भी अहित हो रहा है।

वे जो दूसरे आपसे दान ले गए हैं, वे सोचते हैं, खूब बुद्धू बनाया। वे लौट कर यही सोचते जाते हैं, आप कुछ और मत सोचना कि वे कुछ और सोचते जाते हैं। उनकी तो छोड़ दें, रास्ते पर एक भिखारी आपसे चार आने निकलवा लेता है, वह भी हंसता है पीठ पीछे। जिससे नहीं निकलवा लेता, उसको मानता है कि आदमी मजबूत है।

इसलिए भिखारी भी, जब चार आदमी होते हैं, वहीं आपको पकड़ लेता है। अकेले में पकड़ ले तो आप उसको दान देने वाले नहीं हैं। क्योंकि अकेले में कहेंगे कि हट, क्या लगा रखा है! अभी तेरी उम्र इतनी है कि काम कर! लेकिन चार आदमियों के सामने पकड़ लेता है आपका पैर। अब आपको लगता है, चार आने के पीछे चार आदमियों के सामने इज्जत जाती है; दो चार आने। आप चार आदमियों को चार आने दे रहे हैं, उस भिखारी को नहीं। उसने आपको उस स्थिति में डाल दिया, जहां आपसे वह करवाए ले रहा है।

आदमी जो भी बेहोशी में करता है, वही पाप है।

अगर आप निसर्ग के अनुकूल हो जाते हैं होशपूर्वक, तो आप पशु नहीं होते, आप परमात्मा की तरफ जा रहे हैं।

दो-तीन छोटे-छोटे प्रश्न और हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कुपुत्र के बारे में बताया कि उसको अनुभवों में से गुजरने देना चाहिए, तो वह खुद सीख जाएगा। लेकिन अनुभव लेने के बाद भी वह वही पसंद करता है--कोई अपने कुपुत्र के संबंध में पूछ रहे हैं--चाहे कितना ही दुख झेलना पड़े, चाहे मौत भी क्यों न आ जाए, फिर भी वह वही करता है। बार-बार ठोकर खाकर भी वही दोहराता है। उसका क्या उपाय किया जाए? उसको सुधारने का क्या तरीका है?

आप न सुधार पाएंगे। जिसको जिंदगी नहीं सुधार पा रही, मौत नहीं सुधार पा रही, उसको आप क्या सुधार पाएंगे? अगर आपकी बात सच है कि बार-बार दुख पाकर भी वह वही करता है, मौत भी आ जाए तो भी वही करता है, और सुधरता नहीं, तो आप हाथ अलग कर लें। आपसे नहीं सुधर पाएगा। आप मौत से ज्यादा मजबूत नहीं हो सकते। और जो दुख से नहीं सीख पा रहा है, वह आपसे क्या सीख पाएगा? कुपुत्र मत कहिए उसको। आपको कोई जड़भरत मिल गया है। क्योंकि जिसको दुख नहीं सुधारते, मौत नहीं सुधारती, वे तो बड़े पहुंचे हुए महात्मा हैं, वे तो परम अवस्था में हैं। उनको आप सुधारने की कोशिश ही मत करिए।

और आप सुधारने को इतने उत्सुक क्यों हैं? अपने को ही सुधार लेना काफी है। लेकिन दूसरे को सुधारने में बड़ा मजा आता है। अपनी फिक्र कर लें। और बेटे की तो उम्र अभी ज्यादा होगी; आपकी कम बची होगी। उनको छोड़ें, आप अपनी फिक्र कर लें। यह बेटे को सुधार कर आप अगर सुधार कर भी छोड़ गए, तो भी इससे आप नहीं सुधर जाएंगे। अपने को सुधार लें।

और यह भी हो सकता है कि आप बेटे को सुधारना बंद कर दें तो शायद वह सुधर जाए; क्योंकि बहुत से बाप बेटों को सुधारने के कारण ही सुधरने नहीं देते। क्योंकि आपकी सुधारने की जिद्द दूसरे को न सुधरने के लिए मजबूत करती है। जिंदगी जटिल है। जब एक बाप कोशिश में लगा रहता है कि सुधार कर रहूंगा, तो बेटा भी कहता है कि ठीक है, तो अब देखें कौन जीतता हैः तुम सुधारते हो कि हम ऐसे हैं वैसे ही बने रहते हैं? अक्सर तो बेटे बाप से जिद्द में पड़ जाते हैं। और अहंकारी बाप अहंकारी बेटे पैदा करता है। यह भी अहंकार है कि मैं सुधार कर रहूंगा। यह अहंकार--आपका ही बेटा है, ख्याल रखना, आपके ही ढंग का होगा। आप कहते हैं, मैं सुधार कर रहूंगा। वह कहता है कि ठीक है, तो देख लेंगे कौन मुझे सुधारता है! हो सकता है, आपके सुधारने की वजह से इतने दुख झेल रहा हो और फिर भी न सुधर रहा हो।

कृपा करके उससे कहें कि क्षमा कर, तू जान तेरा काम जाने; अब हम अपने को सुधारने में लगते हैं। तो उसको शायद बुद्धि आए कि अब बात ही खतम हो गई, अब वह जिद्द का कारण ही न रहा।

ध्यान रखें, दुनिया में कोई किसी को सुधार नहीं सकता। सुधारना इतना आसान मामला नहीं है। और जिन लोगों ने लोगों को सुधारा है, वे वे ही लोग थे, जिन्होंने सुधारने की कोशिश नहीं की है। उनके पास सुधरना हो जाता है। अगर आपका बेटा आपके पास रह कर नहीं सुधरता, तो आप समझना कि बात समाप्त हो गई, अब और कुछ किया नहीं जा सकता। आपके पास रह कर कोई सुधर जाए बस, तो समझना कि ठीक है।

अपने को बदलें कि आपके पास एक हवा पैदा हो जाए कि आपका बेटा, या आपकी बेटी, या आपके मित्र, या आपका परिवार उस हवा को छुए।

लेकिन जो भी सुधारने वाले लोग होते हैं, ये बोझिल हो जाते हैं। इनको कोई पसंद नहीं करता। ये दुष्ट होते हैं। और घर भर अनुभव करता है कि यह दुष्ट से कैसे छुटकारा हो! और आप ऐसी बारीक, नाजुक नसें पकड़ते हैं लोगों की कि वे आपको कह भी नहीं सकते कि आप गलत हैं। और आप बोझिल हो जाते हैं। और आप कठिन मालूम होने लगते हैं। आपको सहना मुश्किल होने लगता है।

आदमी की हिंसा गहरी है। और आदमी अनेक तरह से हिंसा करता है। यह भी हिंसा है! आप क्यों सुधारने के लिए इतने दीवाने हैं? और अगर नहीं सुधरना है, तो आप कुछ भी न कर पाएंगे। इस दुनिया में किसी को जबरदस्ती ठीक करने का कोई उपाय नहीं है। है ही नहीं उपाय। हां, जबरदस्ती ठीक करने की कोशिश उसको और जड़ कर सकती है। कई बार तो बहुत अच्छे बाप भी बहुत बुरे बेटों के कारण हो जाते हैं।

महात्मा गांधी के लड़के ने गांधी के सुधारने का बदला लिया। अब महात्मा गांधी से अच्छा बाप पाना मुश्किल है, बहुत कठिन है। अच्छे बाप का जो भी अर्थ हो सकता है, वह महात्मा गांधी में पूरा है। लेकिन हरिदास के लिए बुरे बाप सिद्ध हुए। क्या कठिनाई हुई?

यह बड़ी मनोवैज्ञानिक घटना है। और इस सदी के लिए विचारणीय है। और हर बाप के लिए विचारणीय है। क्योंकि गांधीजी कहते थे, हिंदू-मुसलमान सब मुझे एक हैं। लेकिन हरिदास अनुभव करता था कि यह बात झूठ है। यह बात है; फर्क तो है। क्योंकि गांधी गीता को कहते हैं माता; कुरान को नहीं कहते। और गांधी गीता और कुरान को भी एक बताते हैं, तो गीता में जो कहा है, अगर वही कुरान में कहा है, तब तो ठीक; और जो कुरान में कहा है और गीता में नहीं कहा, उसको बिल्कुल छोड़ जाते हैं, उसकी बात ही नहीं करते। तो कुरान में भी गीता को ही ढूंढ़ लेते हैं, तभी कहते हैं ठीक है; नहीं तो नहीं कहते हैं।

हरिदास मुसलमान हो गया; हरिदास गांधी से वह हो गया अब्दुल्ला गांधी। गांधी को बड़ा सदमा पहुंचा। और उन्होंने कहा अपने मित्रों को कि मुझे बहुत दुख हुआ। जब हरिदास को पता लगा तो उसने कहा, इसमें दुख की क्या बात है? हिंदू-मुसलमान सब एक हैं!

यह आप देखते हैं? यह बाप ने ही धक्का दे दिया अनजाने। और हरिदास ने कहा, जब दोनों एक हैं, तो फिर क्या दुख की बात है? हिंदू हुए कि मुसलमान, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सब बराबर, तो हरिदास गांधी कि अब्दुल्ला गांधी, इसमें पीड़ा क्या है?

मगर पीड़ा गांधी को हुई।

गांधी स्वतंत्रता की बात करते हैं, लेकिन अपने बेटों पर बहुत सख्त थे, और सब तरह की परतंत्रता बना रखी थी। तो जो-जो चीजें गांधी ने रोकी थीं, वह-वह हरिदास ने कीं। मांस खाया, शराब पी, वह-वह किया। क्योंकि अगर स्वतंत्रता है तो फिर इसका मतलब क्या होता है स्वतंत्रता का? यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो--और स्वतंत्रता है?

तो यह तो बात वैसी ही हो गई, जैसे हेनरी फोर्ड कहा करता था। हेनरी फोर्ड के पास पहले काले रंग की ही गाड़ियां थीं, कारें थीं। और कोई नहीं थीं। पर वह अपने ग्राहकों से कहता था, यू कैन चूज एनी कलर, प्रोवाइडेड इट इ.ज ब्लैक। कोई भी रंग चुनो, काला होना चाहिए बस।

क्या मतलब हुआ? स्वतंत्रता है पूरी और सब तरह की परतंत्रता नियम की बांध दी--इतने बजे उठो, और इतने बजे सोओ, और इतने वक्त प्रार्थना करो, और इतने वक्त... । और यह खाओ और यह मत पीयो। सब तरफ से जाल कस दिया, और स्वतंत्रता है पूरी! तो हरिदास ने, जो-जो गांधी ने रोका था, वह-वह किया।

अगर कहीं कोई अदालत है, तो उसमें हरिदास अकेला नहीं फंसेगा। कैसे अकेला फंसेगा? क्योंकि उसमें जिम्मेवार गांधी भी हैं, बाप भी है।

ध्यान रखना, अगर बेटा आपका फंसा, तो आप बच न सकोगे। इतना ही कर लो कि बेटा ही अकेला फंसे, तुम बच जाओ, तो भी बहुत है। हटा लो हाथ अपने दूर और बेटे को कह दो, जो तुझे लगे, जो तुझे ठीक लगे! अगर तुझे दुख भोगना ही ठीक लगता है, तो ठीक है, दुख भोग! अगर तुझे पीड़ा ही उठाना तेरा चुनाव है, तो तुझे स्वतंत्रता है, तू पीड़ा ही उठा! हमें पीड़ा होगी तुझे पीड़ा में देख कर, लेकिन वह हमारी तकलीफ है। उससे तुझे क्या लेना-देना है! वह हमारा मोह है, उसका फल हम भोगेंगे; उससे तेरा कोई संबंध नहीं है।

अगर मुझे दुख होता है कि मेरा बेटा शराब पीता है, तो यह मेरा मोह है कि मैं उसे मेरा बेटा मानता हूं, इसलिए दुख पाता हूं। इसमें उसका क्या कसूर है? मेरा बेटा जेल चला जाता है तो मुझे दुख होता है; क्योंकि मेरे बेटे के जेल जाने से मेरे अहंकार को चोट लगती है। लेकिन यह मेरा कसूर है, इसमें उसका क्या कसूर है? उससे कह दें कि हम दुखी होंगे, हो लेंगे। वह हमारी भूल है, वह हमारा मोह है; लेकिन तू स्वतंत्र है।

और आप अपने को बदलने में लगें। जिस दिन आप बदलेंगे, उस दिन आपका बेटा ही नहीं, दूसरों के बेटे भी आपके पास आकर बदल सकते हैं।

बहुत से प्रश्न और हैं। फिर दोबारा जब बैठक होगी, तब उन्हें ले लेंगे। अब कीर्तन करें।

आज इतना ही।

प्रवचन-क्रम

65. स्वर्ग और पृथ्वी का आलिंगन 2
66. स्वयं का ज्ञान ही ज्ञान है 22
67. सारा जगत ताओ का प्रवाह है 42
68. ताओ का स्वाद सादा 63
69. शक्ति पर भद्रता की विजय होती है 82
70. विश्व-शांति का सूत्रः सहजता व सरलता 102
71. सहजता और सभ्यता में तालमेल 122
72. श्रेष्ठ चरित्र और घटिया चरित्र 143
73. पैगंबर ताओ के खिले फूल हैं 164
74. एकै साधे सब सधे 182
75. अस्तित्व में सब परिपूरक है 203
76. अस्तित्व अनस्तित्व से घिरा है 222
77. सच्चे संत को पहचानना कठिन है 244
78. मैं अंधेपन का इलाज करता हूं 264
79. ताओ सब से परे है 283
80. कठिनतम पर कोमलतम सदा जीतता है 302
81. सर्वाधिक मूल्यवान--स्वयं की निजता 320
82. वह पूर्ण है और विकासमान भी 339
83. प्रार्थना मांग नहीं, धन्यवाद है 358
84. मार्ग स्वयं के भीतर से है 378
85. जीवन परमात्मा-ऊर्जा का खेल है 396

पैंसठवां प्रवचन

स्वर्ग और पृथ्वी का आलिंगन

Chapter 32

Tao Is Like The Sea

Tao is absolute and has no name.
Though the uncarved wood is small,
It cannot be employed (used as vessel) by anyone.
If kings and barons can keep (this unspoiled nature),
The whole world shall yield them lordship of their own accord.

The Heaven and Earth join, and the sweet rain falls,
Beyond the command of men, yet evenly upon all.

Then human civilization arose and there were names.
Since there were names, it were well one knew where to stop.
He who knows where to stop may be exempt from danger.
Tao in the world may be compared to rivers that run into the sea.

अध्याय 32

समुद्रवत ताओ

ताओ परम है और उसका कोई नाम नहीं है।
यद्यपि यह गैर-तराशी लकड़ी छोटी सी है,
तो भी कोई इसका उपयोग (घड़े की भांति) नहीं कर सकता।
यदि सम्राट और भूस्वामी इस निष्कलुष स्वभाव को शुद्ध रख सकें,
तो सारा संसार उन्हें स्वेच्छा से स्वामित्व प्रदान करेगा।

जब स्वर्ग और पृथ्वी आलिंगन में होते हैं, तब मीठी-मीठी वर्षा होती है।
और यद्यपि वह मनुष्य के वश के बाहर है, तो भी सब के ऊपर समान रूप से बरसती है।

और तब मानवीय सभ्यता का उदय हुआ और नाम आ गए।

और जब नाम आ गए, तब आदमी के लिए जान लेना उचित था कि कहां रुक जाना है;

और जो जानता है कि कहां रुकना है, वह खतरों से बच सकता है।

संसार में ताओ की तुलना उन नदियों से की जाए, जो बह कर समुद्र में समा जाती हैं।

मुझसे अक्सर ही लोग पूछते हैं कि लाओत्से पर बोलना मैंने क्यों चुना?

कुछ जरूरी कारण से। एक तो लाओत्से की पूरी परंपरा करीब-करीब नष्ट होने की स्थिति में है। चीन लाओत्से की सारी व्यवस्था को, चिंतना को, उसके आश्रमों को, उसके संन्यासियों को आमूल नष्ट करने में लगा है।

एक बहुत पुराना संघर्ष। कोई तीन हजार वर्ष चीन में दो जीवनधाराएं थीं, एक कनफ्यूशियस की और एक लाओत्से की। बहुत गहरे में देखें तो दुनिया में जितनी विचारधाराएं हैं, उनको इन दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। कनफ्यूशियस मानता है नियम को, व्यवस्था को, शासन को, संस्कृति को। लाओत्से मानता है प्रकृति को; संस्कृति को नहीं, नियम को नहीं, स्वभाव की अराजकता को; व्यवस्था को नहीं, सहज स्फुरणा को; अनुशासन को नहीं--क्योंकि सभी अनुशासन, वह जो जीवन का स्वभाव है, उसे नष्ट करता है--वरन सहज प्रवाह को। दुनिया की सारी चिंतनधाराएं दो हिस्सों में बांटी जा सकती हैंः एक वे जो मनुष्य को अच्छा बनाना चाहती हैं और एक वे जो मनुष्य को सहज बनाना चाहती हैं। एक वे जो मनुष्य को पूर्ण बनाना चाहती हैं; कोई प्रतिमा, कोई आदर्श, जिसके अनुकूल मनुष्य को ढालना है। और एक वे जो मनुष्य को स्वाभाविक बनाना चाहती हैं; कोई आदर्श नहीं, कोई प्रतिमा नहीं, जिसके अनुसार मनुष्य को ढालना है।

लाओत्से दूसरी परंपरा में अग्रणी है। लाओत्से के समय में भी उसके विचार को नष्ट करने का बहुत उपाय किया गया। कनफ्यूशियस को मानने वालों ने सब तरह से, उस विचार का अंकुर ही न पनप पाए, इसकी चेष्टा की। क्योंकि कनफ्यूशियस के लिए इससे बड़ा कोई खतरा नहीं हो सकता।

लाओत्से कहता है कोई नियम नहीं, क्योंकि सभी नियम विकृत हैं। लाओत्से कहता है स्वभाव, सहजता, ऐसा बहे मनुष्य जैसे नदियां सागर की तरफ बहती हैं। रास्ते बनाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि सभी रास्ते मनुष्य के साथ जबरदस्ती करते हैं। और नियम देना खतरनाक है, क्योंकि सभी नियम हिंसा करते हैं। लाओत्से कहता है कि अगर मनुष्य को उसके आंतरिकतम केंद्र के अनुसार छोड़ दिया जाए तो जगत में कुछ भी बुरा न होगा। मनुष्य को अच्छा बनाने की जरूरत नहीं है, मनुष्य को उसके आंतरिक स्वभाव के साथ छोड़ देने की जरूरत है। चेष्टा की जरूरत नहीं है, क्योंकि चेष्टा विकृति में ले जाएगी।

स्वभावतः, कनफ्यूशियस को अति कठिन थी यह बात। और कनफ्यूशियस के चिंतन में तो लगेगा कि यह आदमी सारे जगत को अराजकता में ले जाएगा, अनार्की में; और यह आदमी तो सब नष्ट कर देगा। समाज, संस्कृति, इस सबका क्या होगा? नीति, सदाचार, नियम? तीन हजार साल से कनफ्यूशियस के मानने वाले लाओत्से के संन्यासियों को, उसके शास्त्रों को, उसकी धारा में बहने वाले लोगों को, सब तरह से उनकी जड़ें न जम पाएं चीन में, इसकी चेष्टा में लगे रहे थे। और लाओत्से के अनुयायी तो संघर्ष भी नहीं कर सकते, क्योंकि संघर्ष में भी उनकी कोई आस्था नहीं है। उनकी आस्था तो समर्पण में है। वे तो नहीं मानते कि किसी से उनका कोई विरोध है। इसलिए उन्होंने तो कोई संघर्ष नहीं किया। फिर भी वे जीवित रहे।

लेकिन माओत्से तुंग ने उनकी सारी व्यवस्था को आमूल तोड़ डाला है। माओत्से तुंग कनफ्यूशियस से सहमत है। और अगर हम ठीक से समझें तो कम्युनिज्म कनफ्यूशियस से सहमत होगा ही। कनफ्यूशियस कहता है कि समाज के हाथ में नियंत्रण चाहिए। और लाओत्से कहता है व्यक्ति पूर्ण स्वतंत्र है, किसी के हाथ में उसका नियंत्रण नहीं। कनफ्यूशियस से जो धारा चलती थी वह माओत्से तुंग में आकर पूरी हो गई। और माओत्से तुंग के हाथ में पूरी ताकत है। तो आज, जहां हजारों आश्रम थे लाओत्से के, वहां एक भी आश्रम खोजना मुश्किल है। एकाध-दो आश्रम बचा कर रखे हैं, म्यूजियम की तरह, जो अतिथियों को दिखाए जाते हैं। लाओत्से को मानने वाले संन्यासियों पर मुकदमे चले हैं; अदालतों में उनको घसीटा गया है; मारा-पीटा गया है, हत्या की गई है।

स्वभावतः, माओत्से तुंग की दृष्टि से लाओत्से के अनुयायी तो सुस्त और काहिल हैं। क्योंकि लाओत्से कहता है, करने में हमारा कोई भरोसा नहीं है, हमारा न करने में भरोसा है। लाओत्से कहता है, करने से क्षुद्र ही पाया जा सकता है, केवल न करने से विराट की उपलब्धि होती है--अकर्म, कर्म नहीं। क्योंकि कर्म से आदमी क्या पा सकेगा? और कर्म से आदमी जो भी पाएगा, वह संसार का होगा। अकर्म में आदमी डूबता है अपने में; कर्म से जाता है संसार में। और जब कोई कुछ भी नहीं करता तब उसके भीतर उसकी जीवन-चेतना अपनी पूरी सुगंध से खिलती है। तो लाओत्से कहता है, अकर्म है जीवन का सिद्धांत। स्वभावतः, उसके संन्यासी माओत्से तुंग की भाषा में तो शोषक हैं, मुफ्तखोर हैं; वे कुछ करते नहीं। कर्म तो जरूरी है।

इसलिए भी मैंने लाओत्से पर विचार कर लेना जरूरी समझा। क्योंकि यह हो सकता है कि आने वाले दिनों में लाओत्से का एक भी संन्यासी खोजना मुश्किल हो जाए।

और चीन का कम्युनिज्म का हमला भयंकर है। न केवल चीन से, बल्कि तिब्बत से भी सारी संभावनाओं को विनाश करने की चेष्टा चीन ने की है। तिब्बत में भी लाओत्से और बुद्ध को मान कर चलने वाला एक वर्ग था। शायद पृथ्वी पर अपने तरह का अकेला ही मुल्क था तिब्बत, जिसको हम कह सकते हैं कि पूरा का पूरा देश एक आश्रम था; जहां धर्म मूल था, बाकी सब चीजें गौण थीं; जहां हर चार आदमियों के बीच में एक संन्यासी था और ऐसा कोई घर नहीं था जिसमें संन्यासियों की लंबी परंपरा न हो। जिस बाप के चार बेटे होते वह एक बेटे को तो निश्चित ही संन्यास की तरफ भेजता। क्योंकि वही परम था।

लेकिन चीन ने तिब्बत को भी अपने हाथ में ले लिया है। और तिब्बत में भी संन्यास की गहन परंपराएं बुरी तरह तोड़ डाली गई हैं। कोई संभावना नहीं दिखती कि तिब्बत बच सकेगा।

दलाई लामा तिब्बत से जब हटे तो चीन की पूरी कोशिश थी कि दलाई लामा तिब्बत से हट न पाएं। उन्नीस सौ उनसठ में, जो लोग भी धर्म के गुह्य रहस्य से परिचित हैं, उन सबके लिए एक ही ख्याल था कि दलाई लामा किसी तरह तिब्बत से बाहर आ जाएं और उनके साथ तिब्बत के बहुमूल्य ग्रंथ और तिब्बत के कुछ अनूठे साधक और संन्यासी भी तिब्बत के बाहर आ जाएं। लेकिन बाहर आ सकेंगे, यह असंभावना थी। कोई चमत्कार हो जाए तो ही बाहर आने का उपाय था। क्योंकि दलाई लामा के पास कोई आधुनिक साज-सामान नहीं; कोई फौज, कोई बम, कोई हवाई जहाज, कोई सुरक्षा का बड़ा उपाय नहीं। और चीन ने पूरे तिब्बत पर कब्जा कर लिया है।

दलाई लामा का तिब्बत से निकल आना बड़ी अनूठी घटना है। क्योंकि हजारों सैनिक पूरे हिमालय में सब रास्तों पर खड़े थे। और कोई सौ हवाई जहाज पूरे हिमालय पर नीची उड़ान भर रहे थे कि कहीं भी दलाई लामा का काफिला तिब्बत से बाहर न निकल जाए। लेकिन एक चमत्कार हुआ।

जिन चमत्कारों को आपने सुना है--मोहम्मद, महावीर, बुद्ध--वे बहुत पुरानी घटनाएं हो गई हैं। सुना है आपने कि मोहम्मद चलते थे तो उनके ऊपर, अरब के रेगिस्तान में, छाया के लिए बादल छाया कर देते थे। सुना है कि महावीर चलते थे तो कांटा भी पड़ा हो सीधा तो उलटा हो जाता था। ये सारी बातें कहानी मालूम होती हैं। लेकिन अभी उन्नीस सौ उनसठ में जो घटना घटी है वह कहानी नहीं हो सकती, और उसके हजारों पर्यवेक्षक हैं, निरीक्षक हैं।

जितनी देर दलाई लामा को भारत प्रवेश करने में लगी, उतनी देर पर पूरे हिमालय पर एक धुंध छा गई। और सौ हवाई जहाज खोज रहे थे, लेकिन नीचे देख सकना संभव नहीं हुआ। वह धुंध उसी दिन पैदा हुई जिस दिन दलाई लामा पोताला से बाहर निकले; और वह धुंध उसी दिन समाप्त हो गई जिस दिन दलाई लामा भारत में प्रवेश कर गए। और वैसी धुंध हिमालय पर कभी भी नहीं देखी गई थी। वह पहला मौका था।

तो जो लोग धर्म की गुह्य धारणाओं को समझते हैं, उनके लिए यह एक बहुत बड़ा प्रमाण था। वह प्रमाण इस बात का था कि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, अगर वह विनष्ट होने के करीब हो, तो पूरी प्रकृति भी उसको बचाने में साथ देती है। लाओत्से की पूरी परंपरा नष्ट होने के करीब है। इसलिए दुनिया में बहुत तरह की कोशिश की जाएगी कि वह परंपरा नष्ट न हो पाए, उसके बीज कहीं और अंकुरित हो जाएं, कहीं और स्थापित हो जाएं। मैं जो बोल रहा हूं वह भी उस बड़े प्रयास का एक हिस्सा है।

और लाओत्से को अगर कहीं भी स्थापित करना हो तो भारत के अतिरिक्त और कहीं स्थापित करना बहुत मुश्किल है। दलाई लामा को भी जरूरी नहीं था कि भारत भागें; कहीं और भी जा सकते थे। लेकिन कहीं और आशा नहीं है। वे जो लाए हैं, उसे किन्हीं हृदय तक पहुंचाना हो, तो उन हृदयों की और कहीं संभावना न के बराबर है।

इसलिए लाओत्से पर बोलने का मैंने चुना है कि शायद कोई बीज आपके मन में पड़ जाए, शायद अंकुरित हो जाए। क्योंकि भारत समझ सकता है। अकर्म की धारणा को भारत समझ सकता है। निसर्ग की, स्वभाव की धारणा को भारत समझ सकता है। क्योंकि हमारी भी पूरी चेष्टा यही रही है हजारों वर्षों में।

यह सुन कर आपको कठिनाई होगी। क्योंकि आपको समझाने वाले साधु-महात्मा भी जो समझा रहे हैं, वह कनफ्यूशियस से मिलता-जुलता है, लाओत्से से मिलता-जुलता नहीं है। आपको भी जो शिक्षाएं दी जाती हैं, वे भी प्रकृति की नहीं हैं, वे भी सारी शिक्षाएं आदर्शों की हैं। उनमें भी कोशिश की जा रही है कि आपको कुछ बनाया जाए।

मैं मानता हूं कि वह भी भारत की मूल धारा नहीं है। भारत की भी मूल धारा यही है कि आपको कुछ बनाया न जाए; क्योंकि जो भी आप हो सकते हैं, वह आप अभी हैं। आपको उघाड़ा जाए, बनाया न जाए। आपके भीतर छिपा है; आपको कुछ और होना नहीं है; जो भी आप हो सकते थे, और जो भी आप कभी हो सकेंगे, वह आप अभी इसी क्षण हैं। सिर्फ ढंका है। कुछ निर्मित नहीं करना है, कुछ अनावरण करना है, कुछ पर्दा हटा देना है। आदमी को बनाना नहीं है परमात्मा, आदमी परमात्मा है--सिर्फ इसका स्मरण, सिर्फ इसका बोध, इसकी जागृति। जैसे खजाना आपके घर में है, उसे कहीं खोजने नहीं जाना है, कोई दूर की यात्रा नहीं करनी है। लेकिन वह कहां गड़ा है, उसका आपको स्मरण नहीं रहा। हो सकता है, आप उसी के ऊपर बैठे हैं और आपको कुछ पता नहीं है।

लाओत्से को भारत में स्थापित करना, भारत की ही जो गहनतम आंतरिक दबी धारा है, उसको भी आविष्कृत करने का उपाय है।

तो दोहरे प्रयोजन हैं। एक तो लाओत्से चीन से उजड़ गया; वहां बचना बहुत असंभव है। और भारत के अतिरिक्त और कोई ग्राहक भूमि नहीं हो सकती, जहां उसके बीज अंकुरित हो सकें--एक। और दूसरा कि भारत खुद उसके साधु-संन्यासियों की शिक्षाओं से पीड़ित और परेशान है। और वे शिक्षाएं भारत की मौलिक शिक्षाएं नहीं हैं; वे शिक्षाएं नैतिक लोगों की शिक्षाएं हैं, सुधारकों की शिक्षाएं हैं। लेकिन उन क्रांतिद्रष्टा ऋषियों की शिक्षाएं नहीं हैं।

सच बात यह है कि लाओत्से जैसे महर्षि जब भी होंगे तभी समाज उनसे भयभीत हो जाएगा; और समाज के ठेकेदार भी भयभीत हो जाएंगे, समाज के गुरु और नेता भी भयभीत हो जाएंगे। वे उनको पूजा भी कर सकते हैं, आदर भी दे सकते हैं, लेकिन बहुत शीघ्र उनकी शिक्षाओं को परिवर्तित कर लेंगे और उनकी शिक्षाओं में वे तत्व डाल देंगे जो तत्व आदमी को निर्मित करने की चेष्टा करता है, जो उसे बनाने की... भविष्य में आदर्श को रखता है जो, और जो एक धारणा लेकर चलता है, एक ढांचा, कि आदमी ऐसा हो तो ठीक है।

असल में, शिक्षक जी नहीं सकता, अगर वह आपको स्वीकार कर ले। नेता जी नहीं सकता, अगर वह कह दे कि आप स्वयं परमात्मा हैं। गुरु बच नहीं सकता, अगर वह शिष्य से कहे कि कहीं जाना नहीं, कहीं पहुंचना नहीं, कुछ पाना नहीं; तुम जो भी हो सकते हो, वह हो। यह सारा गोरखधंधा शिक्षक का, गुरु का, नेता का चल सकता है इसीलिए कि आपको भरोसा दिलाया जाए कि आप गलत हो, और ठीक करने का काम किसी और के हाथ में है। कुंजी किसी और के हाथ में है, जो आपको ठीक करेगा; आप गलत हो। अपराध की भावना पैदा करवाई जाए कि तुम गलत हो। जब आप कंपने लगें भय से कि मैं गलत हूं, तभी आप किसी के चरण में गिरेंगे और कहेंगे कि मुझे ठीक करो। और जब आप डर जाएंगे कि मैं गलत हूं, तभी कोई ठीक करने वाले को मौका है कि वह आप पर काम शुरू करे। अगर आप ठीक हो, तो सारा का सारा धंधा, जिसे हम धर्म समझ रहे हैं, वह गिर जाता है, टूट जाता है; उसके खंडहर रह जाते हैं।

तो धर्म का शोषण करने वालों के कुछ सूत्र हैं, वे उनके ट्रेड सीक्रेट हैं, वे उनके धंधे के बुनियादी सूत्र हैं। पहला यह कि आप जैसे हो, गलत हो; आप जो कर रहे हो, वह गलत है; आपकी वृत्तियां गलत हैं, आपके कर्म गलत हैं, आपका होना गलत है। यह जितने जोर से आपको समझाया जाए उतने ही जोर से धर्म का धंधा चल सकता है; क्योंकि तब ठीक करने वाले की जरूरत है। और मजे की बात यह है कि यह धंधा सनातन है; क्योंकि आप कभी ठीक हो नहीं सकते। आप ठीक इसलिए नहीं हो सकते कि आप गलत हो नहीं; इसलिए ठीक होने का कोई उपाय नहीं है। अगर कोई बीमारी होती तो इलाज हो सकता। लेकिन वहां कोई बीमारी नहीं है। बीमारी कल्पित है, इलाज कल्पित है। और धंधा लंबा है; उसका कोई अंत नहीं है।

आप उसी दिन ठीक हो जाओगे जिस दिन आपको पता चलेगा कि आप गलत हो ही नहीं। जिस क्षण आप अपने को स्वीकार कर लोगे कि मैं जैसा हूं, यही मेरी नियति है। इसे थोड़ा समझेंगे; बहुत कठिन है। इसलिए लाओत्से को पकड़ पाना कठिन है। जगत में जो भी गहन चिंतक हुए हैं, उनको पकड़ पाना कठिन है। इसे थोड़ा समझें। जिस क्षण भी आप यह समझ लोगे कि मैं जैसा हूं वैसा होना ही मेरी नियति है, इससे अन्यथा नहीं हो सकता, उसी क्षण सारा तनाव गिर जाता है, सारी अशांति गिर जाती है, सारा असंतोष, सारी दौड़, सब खो जाता है, सारी खोज बंद हो जाती है। जिस क्षण न कोई खोज रहती, न कोई दौड़ रहती, न कोई भविष्य रहता, जिस क्षण आप अपने को इतनी पूर्णता में स्वीकार कर लेते हैं कि इस क्षण के आगे जाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, उसी क्षण आपके सब पर्दे गिर जाते हैं, और आपके भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो जाता है। दौड़ के कारण वे पर्दे नहीं गिर पाते, वासना के कारण वे पर्दे नहीं गिर पाते। मैं यह हो जाऊं, वह हो जाऊं, इस तनाव

के कारण वे पर्दे निर्मित बने रहते हैं। ठीक होगा कहना कि यह दौड़, यह वासना कि मैं कुछ हो जाऊं, कुछ बन जाऊं, कहीं पहुंच जाऊं, यही पर्दा है; इसके कारण ही मैं खिंचा हुआ हूं और अपने स्वभाव के साथ एक नहीं हो पाता।

स्वभाव के साथ एक होने का सूत्र है स्वीकार। और कोई दयनीय स्वीकार नहीं, कोई असहाय स्वीकार नहीं, कोई मजबूरी का स्वीकार नहीं; सहज स्वीकार, कि मैं जो हूं, हूं। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप बदल नहीं जाएंगे। सच तो यह है कि तभी आप बदलेंगे। आपके बदलने की कोशिश से आप नहीं बदल सकते। थोड़ा जटिल है। कौन बदलेगा आपको? आप ही बदलने की कोशिश में लगे हैं; और आप गलत हैं, और आप ही बदलने की कोशिश में लगे हैं। वह जो गलत है, वह बदलने की कोशिश में लगा है। वह और गलत हो जाएगा। वह जो पागल है, वह अपना इलाज कर रहा है। वह और पागल हो जाएगा। वह जो पहले से ही तिरछा है, वह सीधा होने की कोशिश कर रहा है; वह तिरछापन ही सीधा होने की कोशिश कर रहा है। वह सीधे होने की कोशिश में और तिरछा हो जाएगा। आप जैसे हैं उसमें कुछ कोशिश करने से खतरा है। कोशिश कौन करेगा? वह यत्न कौन करेगा? आप ही करेंगे।

लाओत्से जैसे द्रष्टा कहते हैं कि कुछ मत करो, रुक जाओ--अकर्म! तुम कुछ भी करोगे, भूल हो जाएगी।

अभी इंग्लैंड में एक बहुत अदभुत शिक्षक था, मैथ्यू अलेक्जेंडर। वह अपने शिष्यों से कहता था, तुम कुछ भी किए कि वह गलत होगा; क्योंकि तुम गलत हो। इसलिए मैं तुमसे कुछ करने को नहीं कहता। वह कहता, तुम कुछ करो मत, कुछ दिन के लिए तुम करना बंद कर दो। कुछ दिन के लिए तुम करने का ख्याल ही छोड़ दो, कुछ दिन के लिए तुम सिर्फ रह जाओ जैसे हो। उस रह जाने से ठीक होना शुरू हो जाएगा।

यह कीमिया तब तक समझ में नहीं आती जब तक इसका उपयोग न किया जाए। हम तो मान ही नहीं सकते; क्योंकि हम इतनी कोशिश करके ठीक नहीं हो पा रहे और लाओत्से जैसे लोग कहते हैं कि तुम कोशिश मत करो और ठीक हो जाओगे, तो हमारी समझ में नहीं आता। हम कहेंगे, इतनी कोशिश से ठीक नहीं हो पा रहे, बिल्कुल कोशिश न की तो और गलत हो जाएंगे।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि चाहे आप कोशिश करो और न करो, आप जैसे हो वैसे ही रहोगे, कुछ ज्यादा गलत नहीं हो जाओगे। कोशिश करने से शायद ज्यादा गलत हो सकते हो; रुक जाने से आप ज्यादा गलत नहीं हो जाओगे। जितने हो, ज्यादा से ज्यादा इतने ही रहोगे। लेकिन कोशिश रुक जाने से इतने भी नहीं रहोगे; जैसे ही कोशिश रुकी कि स्वभाव प्रकट होना शुरू हो जाता है। दौड़ता हुआ आदमी अपने को नहीं देख पाता; देखने के लिए रुकना जरूरी है।

तो लाओत्से से अगर आप परिचित हो पाएं तो शायद आप उपनिषदों से, गीता से, महावीर और बुद्ध से एक नए अर्थ में परिचित हो पाएंगे, जो कि अर्थ आपसे छूट गया है। लाओत्से पर चर्चा कर रहा हूं, ताकि आप उपनिषद को लाओत्से की दृष्टि से अगर देखने में समर्थ हो पाए तो उपनिषद बिल्कुल नया अर्थ खोल देंगे, जो आपके स्वामीगण जरा भी नहीं खोल रहे हैं। गीता बिल्कुल नया अर्थ प्रकट कर देगी, जो कि न शंकर खोल पाते हैं, न अरविंद खोल पाते हैं, न तिलक खोल पाते हैं। लाओत्से की पहचान बड़ी कीमती सिद्ध हो सकती है। उससे लाओत्से तो बच सकता है, भारत का भी अंतर-हृदय उघाड़ा जा सकता है। इसलिए उस पर चर्चा कर रहा हूं।

अब हम उसके सूत्र को लें।

"ताओ परम है और उसका कोई नाम नहीं है।"

दो बातें हैं। एक, जो भी परम है उसका कोई नाम नहीं हो सकता; जो भी पूर्ण है उसका कोई नाम नहीं हो सकता; वह जो टोटैलिटी है, समग्रता है, उसका कोई नाम नहीं हो सकता।

नाम खंड के हो सकते हैं; नाम व्यक्ति के हो सकते हैं, वस्तुओं के हो सकते हैं। नाम का अर्थ ही है जिसकी सीमा है, जिसकी परिभाषा हो सके। जिसको हम कह सकें कि ऐसा और वैसा नहीं, तो नाम सार्थक हो सकता है। प्रकाश का नाम सार्थक है, क्योंकि इतना तो कम से कम हम कह ही सकते हैं कि जो अंधेरा नहीं है। अंधेरे से सीमा बन जाती है। मृत्यु का नाम संभव हो पाता है, क्योंकि इतना तो हम कह ही सकते हैं कि जीवन की गति, हलचल जहां बंद हो जाती है। जीवन से सीमा बन जाती है। तो जीवन की परिभाषा करनी हो तो मृत्यु की जरूरत पड़ती है; क्योंकि उससे सीमा बनानी पड़ेगी। अगर मृत्यु की परिभाषा करनी हो तो जीवन की जरूरत पड़ती है।

लेकिन जो परम है, जिससे अन्य कुछ भी नहीं हो सकता, उसकी सीमा नहीं बनाई जा सकती, उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती, उसका कोई नाम भी नहीं हो सकता। ताओ कोई नाम नहीं है। ताओ का अर्थ होता है मार्ग। मंजिल का कोई नाम नहीं है, यह सिर्फ मार्ग का नाम है, उस तक पहुंचने के रास्ते का नाम है।

नदी को हम तब तक नाम देते हैं जब तक वह सागर में नहीं गिर जाती। सागर में गिरते ही नाम खो जाता है। फिर गंगा गंगा नहीं है, फिर नर्मदा नर्मदा नहीं है। और सागर में कहां खोजिएगा कि गंगा कहां है। सागर में नदियां नहीं खोजी जा सकतीं; सीमाएं खो जाती हैं तो नाम खो जाते हैं।

ताओ है परम, इसलिए लाओत्से कहता है, उसका कोई नाम नहीं है। और जो भी नाम हम देते हैं, वे सभी कामचलाऊ हैं, इशारे हैं। और जो लोग नामों को पागलों की तरह पकड़ लेते हैं, वे मुद्दा चूक गए। लोग नामों पर लड़ते हैं। परमात्मा का क्या नाम है, इस पर संघर्ष है--राम कहें? कि कृष्ण कहें? कि कुछ और कहें?

लाओत्से कहता है, उसका कोई भी नाम नहीं है। और या फिर सभी नाम उसके हैं। फिर आपका भी नाम उसी का नाम है। और या फिर कोई भी नाम उसका नहीं है।

नाम पर लाओत्से का बहुत जोर है कि हम उसे कोई नाम न दें। कई कारणों से। क्योंकि जैसे ही हम नाम देते हैं, हम उससे अलग हो जाते हैं। जिस चीज का भी हमने नाम दे दिया, हम नाम देने वाले हो गए और अलग हो गए। और जिस चीज को भी हमने नाम दे दिया, हमने उसे नाप लिया, उसकी माप पूरी हो गई। हमने उसे पहचान लिया, हमने उसे जान लिया, हमने तो उसको कैटेगराइज कर दिया, उसकी कोटि बना दी, कि यह इसका नाम है।

लाओत्से कहता है, पागलपन की बात है; न तो हम उसे नाप सकते हैं, न हम उसका कोई स्थान बता सकते कि यहां रख दें। उसकी कोई कोटि नहीं बना सकते, उसकी कोई कैटेगरी नहीं कर सकते। उसे स्त्री कहें या पुरुष कहें, उसे जीवित कहें या मृत कहें, यहां कहें या वहां कहें--सभी गलत होगा। उसके संबंध में कुछ भी हम कहेंगे तो हम उससे दूर हो जाएंगे। इसलिए लाओत्से कहता है, उसे कोई नाम मत देना। उसका कोई नाम है भी नहीं।

और अनाम के साथ जीने का नाम ध्यान है। जब आप बैठ कर राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते हैं, तब ध्यान नहीं है। जब राम का नाम खो जाता है, जब जप करने वाला भी नहीं बचता और जप भी नहीं बचता, तब आप उसमें प्रवेश करते हैं। हमने उसे अजपा कहा है। अजपा का अर्थ ही यह है कि जब नाम खो जाता है। जब तक नाम चल रहा है तब तक तो आप विचार में ही हैं। जब तक नाम चल रहा है तब तक मन है।

और जब तक नाम चल रहा है तब तक आप भी हैं, क्योंकि नाम लेने वाला। और यह भी ख्याल रहे कि जो नाम देने वाला है, वह बड़ा होता है; जो नाम दे रहा है, वह जिसे नाम दे रहा है, उससे बड़ा हो गया।

लाओत्से कहता है, "ताओ इ.ज एब्सोल्यूट एंड हैज नो नेम। वह जो परम सत्य है उसका कोई भी नाम नहीं है।"

इस कारण लाओत्से के मानने वाले बड़ी तकलीफ में पड़ते हैं; उनके पास जप के लिए कोई नाम नहीं है।

मेरे एक मित्र, एक लाओत्से को मानने वाले संन्यासी के साथ कुछ समय तक थे। तो जब भी वह संन्यासी ध्यान करने बैठता तो उन मित्र को बड़ी परेशानी होती कि वह भीतर करता क्या है! क्योंकि वे मित्र स्वयं जप के साधक थे। उससे वे पूछते बार-बार कि तुम क्या जप करते हो? तो वह हंसता। उसने अनेक बार उन्हें कहा कि मैं कोई भी जप नहीं करता, क्योंकि हमारे पास कोई नाम ही नहीं है। उन मित्र को भरोसा नहीं आया। वे सोचते रहे कि शायद वह अपने जप को छिपा रहा है; शायद बताना नहीं चाहता; शायद, जब तक दीक्षा न हो, तब तक वह मंत्र गैर-दीक्षित को कहा नहीं जा सकता।

वे मेरे पास आए थे। उनको मैंने कहा कि वह धोखा नहीं दे रहा था। लाओत्से के मानने वालों के पास कोई नाम नहीं है। फिर वे करते क्या हैं? वे नाम को छोड़ने की चेष्टा करते हैं। उसका तो कोई नाम नहीं है, लेकिन और बहुत सी चीजों के नाम हैं और वे हमारे मन में भरे हैं। जब आप परमात्मा का स्मरण करते हैं तो इस भरे हुए नामों की कतार में एक नाम और जोड़ देते हैं। इसमें पत्नी का नाम है, बेटे का नाम है, मित्रों का नाम है; दुकान, बाजार, सामान, नोट, रुपया, बैंक, इसमें सब नाम हैं। इस सारे नामों की भीड़ में राम को और आप डाल देते हैं। और इसलिए स्वभावतः ये जो पुराने नाम हैं, जो काफी जम कर बैठे हैं, ये उसको नहीं जमने देते; वह राम को निकाल बाहर करने की वे कोशिश करते हैं। आप कितना ही राम-राम कहो, बीच में पत्नी का नाम आता है, पति का नाम आता है, बेटे का नाम आता है; बाजार, दुकान, सब बीच में आ जाता है। वे जो पुराने जमे हुए नाम हैं, वे इस नए प्रतियोगी को भीतर नहीं बैठने देना चाहते। और यह प्रतियोगी खतरनाक है, क्योंकि यह सबको बाहर करना चाहता है। सारी भीड़ इकट्ठी होकर इसको बाहर करती है। अगर आपने कभी भी नाम-जप का उपयोग किया है तो आपको पता होगा कि कैसी कलह भीतर मच जाती है।

लाओत्से का मानने वाला नए नाम को भीतर नहीं डालता, सिर्फ पुराने नामों को बाहर निकालता है। वह उलीचता है, भीतर नहीं डालता। वह उस घड़ी की प्रतीक्षा करता है जब भीतर कोई भी नाम नहीं रह जाए। जब भीतर कोई नाम नहीं रह जाएगा तब वह कहेगा ताओ उपलब्ध हुआ, ताओ का स्मरण हुआ। यह परमात्मा का स्मरण है। अनाम हो जाना परमात्मा का स्मरण है। यह प्रक्रिया बिल्कुल उलटी हुई। आप जबरदस्ती कर रहे हैं एक नाम को भीतर डालने की। ध्यान रहे, एक तो जबरदस्ती में आप सफल न होंगे, सिर्फ परेशान होंगे; और अगर दुर्भाग्य से सफल हो गए, तो जिस नाम को इतनी आप जबरदस्ती से लाए हैं, उससे कुछ आनंद न पा सकेंगे। वह जबरदस्ती के बाद जो सफलता होगी, मुर्दा होगी; और जो सन्नाटा आएगा, वह जीवंत न होगा, मरघट का हो जाएगा। इसलिए अक्सर जो लोग नाम-जप जबरदस्ती थोपने की कोशिश करते हैं, एक तो सफल नहीं होते, अगर कभी सफल हो जाते हैं तो उनका नाम-जप मूर्च्छा बन जाता है, वे सिर्फ मूर्च्छित हो जाते हैं। जब वे जबरदस्ती एक नाम को स्थापित कर देते हैं तो तत्काल गहरी तंद्रा में खो जाते हैं; वह मुर्दा शांति उन्हें पकड़ लेती है।

आपका मकान पहले से ही काफी भरा हुआ है; इस भरे हुए मकान में परमात्मा को निमंत्रण देना जरा भी उचित नहीं। लाओत्से कहता है, तुम मकान खाली कर लो। और वह परमात्मा बाहर से आने वाला भी नहीं है

कि तुम उसे निमंत्रण दो। तुम्हारा मकान भरा है, इसलिए वह दिखाई नहीं पड़ता। तुम मकान खाली करो। वह जो खालीपन है मकान का, वही है वह; वह जो तुम्हारे भीतर खालीपन है, वही है वह। वह कोई अतिथि नहीं है जो बाहर से आएगा; वह तुम्हारे भीतर का खालीपन है, तुम्हारे भीतर की शून्यता है, जो तुम्हारी भरी हुई चीजों में दब गई है। उन्हें तुम बाहर कर दो, वह प्रकट हो जाएगी। शून्यता को भीतर उपलब्ध कर लेना लाओत्से के मानने वाले के लिए ध्यान है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "ताओ परम है; उसका कोई नाम नहीं है। वह एक गैर-तराशी लकड़ी की भांति है, जिसका कोई भी उपयोग नहीं--कोई उपयोग कर नहीं सकता।"

यह बहुत मजे की और लाओत्से की बड़ी अनूठी धारणा है, और बहुत गहरी है। लाओत्से कहता है कि वह जो तुम्हारे भीतर छिपा हुआ परमात्मा या ताओ या धर्म या आत्मा--जो भी नाम हम देना चाहें--वह गैर-तराशी लकड़ी की भांति है। एक तो तराशी हुई लकड़ी है जिसकी कीमत हो जाती है। एक लकड़ी को तराशा, एक मूर्ति बन गई। अब इसकी कीमत है, अब इसका मूल्य है। एक लकड़ी को तराशा, तो कोई कलात्मक कृति बन गई। अब इसका मूल्य है। लाओत्से कहता है कि तराशना ही आदमी की विकृति है; तुमने जितना अपने को तराशा है, उतना तुम मूल्यवान तो बन गए हो, लेकिन तुमने स्वभाव खो दिया। तराशे हुए आदमी हो, तुम्हारी कीमत है बाजार में। स्वभावतः, जितना तराशा हुआ आदमी हो, उतनी बाजार में कीमत है। कितना शिक्षित, कितना सुसंस्कृत, कितना शिष्ट, कितना सभ्य, कितना जानता है, कितना व्यवहार-कुशल--उतना तराशा हुआ आदमी है, उतनी उसकी कीमत है।

लाओत्से कहता है, लेकिन तुम्हारे भीतर जो छिपा हुआ परमात्मा है, वह गैर-तराशी हुई लकड़ी की भांति है। उसे तुम चाहो तो भी तराश नहीं सकते।

तुम अपने को तराश कर बाजार में बेच सकते हो; तुम्हारी कीमत भी मिलनी शुरू हो जाएगी। लेकिन तब स्वभाव से संबंध तुम्हारा छूट जाएगा। तराशा हुआ जो रूप है वह है संस्कृति। लाओत्से के लिए संस्कृति विकृति का ही अच्छा नाम है। लाओत्से प्रकृति का बिल्कुल पागल भक्त है। वह कहता है, जो है, जैसा है, वैसा ही! उसमें तुम इंच भर फर्क मत करना। क्योंकि तुमने फर्क किया कि तुम परमात्मा से ज्यादा समझदार हो गए।

एक तो परमात्मा है जो मुझे बनाता है; और फिर एक मैं हूं जो अपने को बनाता हूं। परमात्मा आपको जन्म देता है; परमात्मा से आप पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, बड़े होते हैं--एक जंगली पौधे की भांति। शायद उसकी बाजार में कीमत न हो। जापान में वे पौधे लगा कर रखते हैं। स्वामी रामतीर्थ जब पहली दफा जापान गए तो बहुत हैरान हुए। उन्होंने तीन-तीन सौ साल पुराने वृक्ष देखे, जिनकी ऊंचाई पांच इंच थी। वे बहुत हैरान हुए, तीन सौ साल पुराना वृक्ष और ऊंचाई पांच इंच! उनकी कुछ समझ में न आया। उन्होंने पूछा, इसका राज क्या है? तो माली ने राज बताया कि गमले के नीचे से वे जड़ें काटते रहते हैं; नीचे जड़ नहीं बढ़ पाती, ऊपर वृक्ष नहीं बढ़ पाता। तो तीन सौ साल पुराना हो जाता है, लेकिन होता है पांच इंच, दस इंच ऊंचा; बौना रह जाता है। वे जड़ को नीचे से बढ़ने नहीं देते; ऊपर वृक्ष नहीं बढ़ पाता। फिर उसको, जैसी शाखाएं उनको बनानी हैं, वैसे तारों से उसको गूंथ देते हैं। शाखाओं के भीतर भी खीलें ठोक देते हैं। जैसा मोड़ना है वैसा मोड़ते हैं; जैसा बनाना है वैसा बनाते हैं। एक सुंदर कलाकृति बन जाती है। लेकिन वृक्ष मर जाता है; उसकी आत्मा मर जाती है। वह जो परमात्मा ने जैसा उसे चाहा था, वैसा वह नहीं हो पाता; माली ने जैसा चाहा, वैसा हो जाता है।

हम सब भी, जैसा परमात्मा ने हमें चाहा है, वैसे नहीं हो पाते। हम सब तराश कर बाजार के काम के हो जाते हैं; लेकिन भीतर का स्वभाव विकृत हो जाता है।

लाओत्से कहता है, वह है गैर-तराशी लकड़ी की भांति, जिसका कोई भी उपयोग नहीं हो सकता।

यह बड़ी कठिन धारणा है। लाओत्से कहता है, उपयोग की बात ही गलत है। जीवन कोई बाजार नहीं है। उपयोगिता, यूटिलिटी बात ही व्यर्थ है। लाओत्से के हिसाब में उपयोगिता से ज्यादा गंदा कोई शब्द नहीं है। क्या उपयोग है चांद का रात में? और क्या उपयोग है एक फूल जब जंगल में खिलता है उसका? क्या उपयोग है सूरज के परिभ्रमण का? क्या उपयोग है सागरों का? क्या उपयोग है बहती हुई नदियों का?

सारा जगत निरुपयोगी है। जगत में कोई उपयोगिता नहीं है। उपयोग आदमी के मन की खोज है। आदमी पूछता है फौरन, इसका उपयोग क्या है? इसको किस काम में लाया जाए? थोड़ा समझें हम। यह उपयोगिता की जो इकोनामिक्स की, अर्थशास्त्र की धारणा है कि वही चीज कीमत की है जिसका कोई उपयोग है। तो आपकी आत्मा का क्या उपयोग है? कोई उपयोग है? कोई उपयोग नहीं है। आत्मा से ज्यादा निरुपयोगी कोई चीज हो सकती है? क्या करिएगा इस आत्मा का? आपके जीवन का क्या उपयोग है? आप न होते तो हर्ज क्या था? और आप नहीं हो जाएंगे तो क्या हर्ज हो जाने वाला है? परम अर्थों में, किसी चीज का कोई उपयोग नहीं है। अस्तित्व आनंद है, उपयोग नहीं। अस्तित्व एक उत्सव है, उपयोग नहीं।

लेकिन हमारी उपयोगिता की धारणा है। हर चीज को सोचते हैंः इसका उपयोग क्या? यह किसी काम में आनी चाहिए। अगर काम में आ सकती है तो ठीक है; और अगर किसी काम में नहीं आ सकती तो व्यर्थ है। लेकिन आपको पता है, जीवन में केवल उन्हीं क्षणों में आनंद उपलब्ध होता है, जिनका कोई काम नहीं है; जिनसे न आप बंदूक की गोली बना सकते हैं, न बैंक का नोट बना सकते हैं; जिनसे आप कुछ भी नहीं कर सकते। सुबह आप उठे हैं, हवा का एक झोंका आया और आप आनंदित हुए हैं; कि सूरज को उगते आपने देखा और आपके भीतर भी कुछ उगने लगा और आप प्रफुल्लित हो उठे हैं। लेकिन क्या है उपयोग?

उपयोगिता हर चीज को काम बना देती है। तब आदमी प्रेम भी करता है तो भीतर सोचता है, गणित लगाता हैः क्या है उपयोग? इससे मैं क्या पाऊंगा? इसलिए जो बुद्धिमान हैं, वे प्रेम नहीं करते; वे हिसाब रखते हैं। वे प्रेम से भी कुछ अर्थशास्त्र निकालते हैं। वे कहते हैं, किसी कुलीन घर में शादी करो, किसी धनपति के घर में शादी करो, किसी प्रतिष्ठित के घर में शादी करो; उससे भी कुछ उपयोग निकालो। प्रेम भी तुम्हारा सहज कृत्य न हो; उसका भी बाजार में मूल्य होना चाहिए। जो कुछ भी हो हमारे जीवन में, उस सब का मूल्य आंका जा सके, तो हमें मूल्यवान लगता है। लेकिन प्रेम का क्या मूल्य हो सकता है? आनंद का क्या मूल्य हो सकता है? ध्यान का क्या मूल्य हो सकता है? कोई मूल्य नहीं हो सकता। कुछ चीजें अपने आप में मूल्यवान हैं। उनकी मूल्यवत्ता आंतरिक है। किसी और कारण से वे मूल्यवान नहीं हैं; वे किसी और साध्य का साधन नहीं हैं। वे स्वयं अपना साध्य हैं।

बच्चे खेल रहे हैं। कोई मूल्य नहीं है, खेल का आनंद है। आपको लगता है समय खराब कर रहे हैं। आप खाता-बही में हिसाब लगा रहे हैं। और बच्चे खेल रहे हैं और शोरगुल कर रहे हैं, और आपको लगता है समय खराब कर रहे हैं। बड़ा कठिन है कहना। लाओत्से से पूछें तो वह कहेगा कि आप समय खराब कर रहे हैं। काश, आप भी खेल सकते! काश, आप भी इस क्षण में ऐसे लीन हो जाते कि आप फिक्र छोड़ देते कि इसका कोई मूल्य है या नहीं। मूल्य का मतलब क्या है?

मूल्य की धारणा का अर्थ यह है कि जो भी मैं कर रहा हूं, वह अपने आप में मूल्यवान नहीं है; उससे कुछ और पाया जाएगा, वह मूल्यवान है। मूल्य का अर्थ है कि लक्ष्य सदा भविष्य में है, और अभी मैं जो कर रहा हूं वह तो केवल साधनवत है। आप बाजार जा रहे हैं, दुकान पर बैठे हैं, इस सबका कोई मूल्य नहीं है; मूल्य तो उस

धन में है जो इससे आएगा। फिर धन का भी क्या मूल्य है? फिर आप कहीं और मूल्य खोजेंगे; इस धन से जो मिलेगा, उसका मूल्य है। उसका भी क्या मूल्य है? अगर आप यूं खोजते हुए चलें, तो आप पाएंगे कि आप एक वर्तुल में घूम रहे हैं जहां किसी चीज का कोई मूल्य नहीं है--आगे, आगे, आगे, हर चीज को आगे टालते चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, टालो मत; जीवन का प्रत्येक क्षण मूल्यवान है। क्योंकि जीवन का प्रत्येक क्षण साधन ही नहीं, साध्य भी है। और तुम इस क्षण को ऐसे जीओ जैसे इसके बाहर कुछ पाने को नहीं है; जो भी पाया जा सकता है, वह इसी क्षण में है। यह निरुपयोगिता का सिद्धांत है। इसका अर्थ है, उपयोगिता की बात ही मत सोचो; सिर्फ भोग को परम बनाओ। भोग को इतना गहन बनाओ कि उपयोगिता व्यर्थ हो जाए और क्षण अपने आप में सार्थक हो जाए।

अगर लोग ध्यान भी कर रहे हैं तो भी--फर्क समझें--अगर और किसी को मानने वाला ध्यान कर रहा है तो ध्यान एक साधन है। वह कहता है, परमात्मा को पाना है। परमात्मा में है मूल्य, ध्यान तो एक साधन है। अगर कोई तरकीब उसको बता दे कि काहे इतनी मेहनत कर रहे हैं, बिना ध्यान के परमात्मा को पाने की तरकीब है! वह फौरन ध्यान छोड़ देगा। क्योंकि ध्यान केवल साधन था।

इसलिए पश्चिम में एक घटना घट रही है अभी। एल एस डी, मारिजुआना, मेस्कलीन... क्योंकि उनके प्रचारक कह रहे हैं कि क्या ध्यान कर रहे हो, यह तो पुराना ढंग है, यह काम तो एक गोली से हो जाता है। तो अगर ध्यान अपने आप में मूल्यवान है तो आप कहेंगे, रखो अपनी गोली, क्योंकि ध्यान मेरे लिए आनंद है। लेकिन अगर ध्यान परमात्मा पाने के लिए है, या कुछ और पाने के लिए है, और कोई दावा करता है कि क्या जरूरत तीन साल ध्यान में मेहनत करो, यह तो एक इंजेक्शन से, एक गोली से अभी हो जाता है, तो आप ध्यान छोड़ देंगे स्वभावतः। क्योंकि तीन साल क्यों बर्बाद करना? इसमें ज्यादा उपयोगिता है गोली में।

और आप समझ लेना कि वह गोली वाला आपको समझा लेगा आज नहीं कल। इस मुल्क को मैं मानता हूं कि जिस दिन भी इस मुल्क को एल एस डी और मारिजुआना की पूरी खबर हो जाएगी, यह मुल्क ध्यान और प्रार्थना करना बंद कर देगा। क्योंकि यहां जितने लोग मेरे पास आते हैं ध्यान की पूछने, वे सब ध्यान को साधन की तरह पूछ रहे हैं। उनका जो तर्क है वह गलत है। उस गलत तर्क का परिणाम खतरनाक है।

समझें, एक आदमी उपवास कर रहा है। वह कर रहा है उपवास इसलिए कि उपवास से शांति होगी, आनंद होगा, या प्रभु-दर्शन होगा, या आत्म-साक्षात्कार होगा। लेकिन फिजियोलाजिस्ट है, शरीरशास्त्री है, वह समझाता है कि आप कर क्या रहे हैं, उपवास में कर क्या रहे हैं आप? यह तो एक शारीरिक काम है; आप कुछ खाना ले रहे थे, वह आपने बंद कर दिया। कुछ रासायनिक तत्व आपके शरीर में जा रहे थे, वे अब नहीं जा रहे। तो आपके शरीर के भीतर जो रासायनिक व्यवस्था थी उसमें असंतुलन पैदा हो रहा है। कुछ तत्व जो जा रहे थे, बंद हो गए; कुछ तत्व जो इकट्ठे थे, शरीर उनको रोज पचा लेगा। तो आपके भीतर रासायनिक व्यवस्था बदल जाएगी। वह कहता है, आप इतनी मेहनत क्यों कर रहे हैं! तीन महीने में आप व्यवस्था बदल पाएंगे, वह व्यवस्था हम एक इंजेक्शन से बदल देते हैं। उसका तर्क बिल्कुल साफ है, और जिसमें थोड़ी भी बुद्धि है उसकी समझ में आ जाएगा। आखिर उपवास करेगा क्या? तीन महीने के लंबे उपवास में आपके शरीर की रासायनिक व्यवस्था बदल जाएगी। जो व्यवस्था तीन महीने के उपवास से पैदा होगी वह एक इंजेक्शन से अभी हो सकती है, तो फिर हर्ज क्या है? फिर आपके पास कोई दलील नहीं है; क्योंकि उपवास साधन था। लेकिन अगर यही

बात महावीर को कही जाए तो महावीर कहेंगे कि मुझे उपवास के बाहर कुछ पाना नहीं है। उपवास आनंद है, उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।

मीरा नाच रही है, आनंदित हो रही है। वह जितनी आनंदित हो रही है, नाच रही है, आपसे कोई कहे कि यह नाचना, यह आनंदित होना, यह तो एक मेस्कलीन की गोली से हो जाए, एल एस डी का एक इंजेक्शन दे दिया जाए और हो जाए, आप इसी तरह नाच सकते हैं।

अल्डुअस हक्सले जैसे विचारशील आदमी ने भी यह कहा है कि कबीर और दादू को जो अनुभव हुआ होगा, वह अनुभव मुझे एल एस डी से हुआ है। कबीर को जो अनुभव हुआ होगा, वह मुझे एल एस डी से हुआ है। फर्क कबीर और मेरे अनुभव में इतना ही है कि कबीर को आधुनिक ढंग का पता नहीं था; वे पुराने बैलगाड़ी के रास्ते से सालों की मेहनत कर रहे थे और मुझे आधुनिक ढंग का पता है।

ठीक है, अगर आप बंबई ही आना चाहते हैं कलकत्ते से और बैलगाड़ी में बैठना, इसीलिए बैठे हैं आप बैलगाड़ी में कि बंबई पहुंचना है, तो फिर हवाई जहाज से आने में हर्ज क्या है? फिर आप नासमझ हैं अगर आप कहते हैं कि नहीं, हम तो बैलगाड़ी से ही जाएंगे। बैलगाड़ी या हवाई जहाज में फर्क फिर आपको नहीं करना है। फिर तो उचित यही है कि बैलगाड़ी से ज्यादा उपयोगी है हवाई जहाज।

लेकिन जो आदमी कहता है, बंबई पहुंचने का सवाल नहीं है, बैलगाड़ी में होने में आनंद है, उसके लिए फर्क हो गया। वह हवाई जहाज के लिए राजी नहीं होगा। वह कहेगा कि बैलगाड़ी में होने का एक आनंद है जो हवाई जहाज में नहीं हो सकता। सच तो यह है कि हवाई जहाज में यात्रा होती ही नहीं। यात्रा हो कैसे सकती है हवाई जहाज में! आप एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं, बीच की जगह तो गिर जाती है। यात्रा तो बैलगाड़ी में ही होती है, क्योंकि एक-एक पौधा, जमीन का एक-एक टुकड़ा, सब आपके पास से गुजरता है, आप उसके पास से गुजरते हैं। हवाई जहाज यात्रा नहीं है; यात्रा से बचने का उपाय है। वह जो यात्रा थी बीच में, उसको गिरा देना है, हटा देना है। कलकत्ता और बंबई दो बिंदु हो जाते हैं; बीच से सब गिर जाता है। आप कलकत्ता से सीधे बंबई होते हैं। अगर कल कोई और उपाय हो सके, जो और शीघ्रगामी हों, तो हम उनका उपयोग करेंगे।

उपयोगिता का अर्थ यह है कि जो हम कर रहे हैं, उसका कोई उपयोग नहीं; कहीं जाना है, कहीं कोई मंजिल है, जिस तरह से हम पहुंच जाएं।

लेकिन लाओत्से कहता है कि ताओ मंजिल नहीं है। इसलिए उसने नाम दिया है ताओ। ताओ का अर्थ है दि वे, मार्ग। ताओ कोई मंजिल नहीं है कि जहां पहुंचना है। मार्ग ही ताओ है, मार्ग ही परमात्मा है। प्रतिपल मंजिल है। और प्रतिपल का उपयोग जो साधन की तरह करेगा वह उपयोगितावादी है, और जो प्रतिपल का उपयोग साध्य की तरह करता है वह उत्सववादी है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। तब जीने के ढंग दो ढंग के हो सकते हैं। एक कि आप सब कुछ कर रहे हैं कहीं पहुंचने के लिए, और जहां पहुंचना है वह आगे है। अक्सर तो वहां कोई पहुंचता नहीं कभी, क्योंकि मरने तक हम टालते ही चले जाते हैं। और एक दूसरा रास्ता है कि जहां हमें पहुंचना है, वहां हम अभी हैं; अब हमें सिर्फ भोगना है, इस क्षण को।

आप मुझे सुन रहे हैं। आप दो ढंग से सुन सकते हैं। एक ढंग तो यह है कि मुझे सुन कर आपको कोई ज्ञान प्राप्त करना है, कि मुझे सुन कर आपको कुछ रास्ता निकालना है, कि मुझे सुन कर आप उसका कुछ उपयोग करेंगे। तो फिर आपका सुनना एक काम है। और दूसरा कि आप मुझे सुन रहे हैं, यह सुनना ही आनंद है। इससे कहीं पहुंचना नहीं, इससे कुछ उपयोग नहीं करना, इससे कोई ज्ञान इकट्ठा नहीं करना, कोई पंडित नहीं बन

जाना, कहीं जाना नहीं। यह सुनने का जो क्षण है, यह आनंदपूर्ण है, यह एक उत्सव है। तब प्रतिपल आप आनंदित हैं। इसकी उपयोगिता बाहर नहीं है, भीतर है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे आपको लाभ न होगा; इससे ही लाभ होगा। क्योंकि प्रतिपल जो आपने आनंद लिया है, वही इकट्ठा हो जाएगा, उसकी राशि बन जाएगी। और जिसने टाला है, उसके हाथ खाली रह जाएंगे। क्योंकि जिसने प्रतिपल इकट्ठा नहीं किया, वह आखिर में इकट्ठा कैसे कर लेगा? क्षण तो खो जा रहे हैं।

लाओत्से बिल्कुल गैर-उपयोगितावादी है। वह जो परम सत्य है, वह जो परम जीवन का तत्व है, गैर-तराशी लकड़ी की तरह है; कोई उसका उपयोग नहीं कर सकता।

परमात्मा का उपयोग करने की कभी भूल कर मत सोचना; जीवन का उपयोग करने की कभी भूल कर मत सोचना। जीवन को व्यर्थ गंवाना हो तो तरकीब है यह कि उसका कुछ उपयोग सोचना। और जीवन का सच में कुछ उपयोग कर लेना हो तो उपयोग की बात ही छोड़ देना, और जीवन को आनंद की तरह, उत्सव की तरह लेना।

लेकिन हम परमात्मा का भी उपयोग करते हैं। इसलिए जब हम दुख में होते हैं तब हम परमात्मा की तरफ जाते हैं। क्योंकि सुख में उसका कोई उपयोग नहीं है। क्या उपयोग है? सुख में कोई परमात्मा को याद नहीं करता। कोई जरूरत ही नहीं तो याद क्या करना!

मैंने सुना है, एक ईसाई घर में मां अपने बेटे से सुबह पूछ रही है कि रात तूने प्रार्थना की या नहीं? तो उसने कहा, रात तो कोई जरूरत ही नहीं थी, सभी कुछ ठीक था; प्रार्थना का कोई सवाल ही न था।

प्रार्थना तो हम तभी करते हैं... । आज ही मैं किसी का जीवन पढ़ रहा था। उसकी पत्नी कार में एक दुर्घटना में चोट खा गई। उसके पहले कभी वह चर्च नहीं गई थी। लेकिन इस रविवार को वह चर्च पहुंची। हाथ पर, पैर पर पट्टियां बंधी हैं। चर्च का पादरी भी चौंका, क्योंकि वह महिला कभी चर्च आई नहीं थी, पति सदा अकेला ही आता था। प्रवचन के बाद जब लोग चर्च से विदा होने लगे तो पादरी ने महिला को रोक कर कहा, क्या ज्यादा घबड़ा गई हो दुर्घटना से, क्योंकि चर्च आने का और कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

दुख में जब हम होते हैं तो परमात्मा की याद आती है; क्योंकि अब उसका कुछ उपयोग हो सकता है। सुख में हम होते हैं तो हम उससे बचना ही चाहेंगे; कहीं उधार मांगने लगे, कुछ और उपद्रव... । परमात्मा भी मिलना चाहे आप जब सुख में हों, तो आप कहेंगे, अभी ठहरो, अभी कोई जरूरत नहीं। प्रार्थना करते हैं तो कुछ मांगने के लिए, स्मरण करते हैं तो कुछ मांगने के लिए।

लाओत्से कहता है, ध्यान रखना, उसका कोई भी उपयोग नहीं हो सकता। और जब तक तुम उपयोग की भाषा में सोचते हो तब तक तुम्हारा उससे कोई संबंध नहीं हो सकता। जिस दिन उपयोग की भाषा बंद और उत्सव की भाषा शुरू, उस दिन परमात्मा से संबंध हो जाता है। फिर चाहे मंदिर जाओ, न जाओ; फिर चाहे उसका स्मरण करो, न करो; फिर चाहे धर्म की ऊपरी व्यवस्था से तुम्हारा नाता बने, न बने; लेकिन जीवन को उत्सव में जो बदल लेता है, वह जीवन को प्रार्थना में बदल लेता है।

"यदि सम्राट और भूस्वामी इस निष्कलुष स्वभाव को शुद्ध रख सकें, तो सारा संसार उन्हें स्वेच्छा से स्वामित्व प्रदान करेगा।"

इस तरह के वचन कनफ्यूशियस को ध्यान में रख कर कहे गए हैं। क्योंकि कनफ्यूशियस समझा रहा था सम्राटों को, राजकुमारों को, भूस्वामियों को कि तुम इस तरह से जीओ, इस तरह का व्यवहार करो, इस तरह उठो, इस तरह बैठो; तुम्हारा आचरण, तुम्हारी नीति, तुम्हारा आदर्श ऐसा हो; तुम्हारा जीवन मर्यादा का

जीवन हो; सब लोग देखें और तुम्हारे आचरण से प्रभावित हों; तुम्हारा उठना-बैठना भी शाही हो, वह भी साधारण न हो; तभी तुम लोगों के ऊपर स्वामित्व रख सकोगे।

लाओत्से कहता है, यह स्वामित्व झूठा है। लाओत्से कहता है कि यदि सम्राट और भूस्वामी अपने भीतर के निष्कलुष स्वभाव को शुद्ध रख सकें, तो सारा संसार उन्हें स्वेच्छा से स्वामित्व प्रदान करेगा।

यह एक अलग तरह का स्वामित्व है। जो इसलिए नहीं कि तुम्हारे आचरण से कोई प्रभावित होता है, इसलिए भी नहीं कि तुम्हारे व्यवहार से कोई प्रभावित होता है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि तुम जैसे हो, तुम्हारा होना ही चुंबक है, तुम्हारा अपना स्वाभाविक होना ही आकर्षण है। पहला जो आकर्षण है, वह चेष्टित है, उसमें हिंसा है, उसमें दूसरे का ध्यान है। दूसरा जो आचरण है, वह चेष्टित नहीं है, वह प्रवाह है। और उसमें हिंसा नहीं है, उसमें दूसरे का कोई ध्यान नहीं है।

लाओत्से के अनुयायी एक बहुत अनूठी बात मानते रहे हैं। लाओत्से कहता था कि अगर एक गांव में चार आदमी भी मेरी बात समझ जाएं, और चार आदमी भी मेरी बात को समझ कर स्वाभाविक जीने लगें, तो पूरा गांव मैं बदल दूंगा। उन चार आदमियों को गांव में लोगों को बदलने जाने की जरूरत नहीं है। उन्हें किसी से कहने की भी जरूरत नहीं है कि तुम अच्छे हो जाओ। उनकी मौजूदगी लोगों को अच्छा करने लगेगी। वे जहां से गुजरेंगे, वहां उनकी हवा, उनका जादू काम करने लगेगा। और लोगों को कभी यह पता भी नहीं चलेगा कि कौन उन्हें बदल रहा है। क्योंकि लाओत्से कहता है, यह पता चल जाए कि कोई तुम्हें बदल रहा है तो इससे भी प्रतिरोध पैदा होता है।

बाप बेटे को बदलना चाहता है तो बेटा सख्त हो जाता है। पत्नी पति को बदलना चाहती है तो पति सख्त हो जाता है। क्योंकि अहंकार बदला जाना पसंद नहीं करता। कोई पसंद नहीं करता कि कोई आपको बदले। क्योंकि जैसे ही कोई आपको बदलता है, उसका मतलब हुआ कि वह आप जैसे हो उसको स्वीकार नहीं करता; वह आपको प्रेम नहीं करता। आप जैसे हो, अस्वीकृत हो। पहले वह कांट-छांट करेगा, पहले वह आपको अपने अनुकूल बनाएगा और फिर वह आपको पसंद करेगा। लेकिन दुनिया में कोई भी बदला जाना इसलिए पसंद नहीं करता। इसलिए बाप जब बदलने की कोशिश करता है बेटे को तो भूल करता है। शायद इसी कारण बेटा फिर कभी भी बदला नहीं जा सकेगा। और जब गुरु शिष्य को बदलने की कोशिश करता है तो बाधा खड़ी हो जाती है। जब नेता अनुयायियों को बदलने की कोशिश करते हैं तो अनुयायी नहीं बदलते, अनुयायी भी फिर नेता को बदलने की कोशिश में संलग्न हो जाते हैं। और अक्सर अनुयायी सफल हो जाते हैं और नेता हार जाते हैं। स्वाभाविक है, क्योंकि अनुयायी बहुत हैं और नेता अकेला है।

सुना है मैंने कि जब फ्रांस की क्रांति हुई तो पेरिस के एक मुहल्ले में जोर का उपद्रव मचा हुआ था और एक गिरोह आग लगाने जा रहा था। तो दो पुलिस के आदमियों ने, उस गिरोह में जो आदमी नेता जैसा मालूम पड़ता था, उसको पकड़ लिया। तो उसके वचन बड़े प्रसिद्ध हो गए हैं। उस आदमी ने कहा कि डोंट प्रिवेंट मी; लेट मी गो। आई हैव टु फालो दैट क्राउड, बिकाज आई एम देयर लीडर। रोको मत, मुझे जाने दो; क्योंकि मुझे इस भीड़ के पीछे जाना है, क्योंकि मैं उनका नेता हूं।

नेता को भीड़ के पीछे चलना पड़ता है। नेता अपने अनुयायियों का भी अनुयायी होता है। उसको देखना पड़ता है कि अनुयायी क्या चाहते हैं। नेता अनुयायियों को बदलने में लगे रहते हैं, अनुयायी नेताओं को बदल लेते हैं। बदलने की चेष्टा में हिंसा है। और इसलिए जो ज्यादा है संख्या में, वह जीत जाता है।

लाओत्से कहता है, अगर किसी को बदलने की कोशिश करनी पड़े तो वह आदमी काम का ही नहीं जो बदलने में लगा है। बदलाहट एक आंतरिक घटना है। और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने स्वभाव के साथ जीता है, उसके पास जाकर आपकी श्वास की गति बदल जाती है, उसके पास जाकर आपके हृदय की धड़कन बदल जाती है, उसके पास जाकर आपके भीतर का सब कुछ बदलने लगता है। उसकी मौजूदगी!

सूफी फकीर इस तथ्य को स्वीकार करते रहे हैं। और इसलिए सूफी फकीरों का एक नियम रहा है कि किसी को पता मत चलने दो, चुपचाप रहे आओ। तुम्हारा चुपचाप रहना लोगों को बदलने में सुगमता देगा।

एक सूफी फकीर हुआ, झुन्नून। वर्षों तक वह शिष्यों में बैठा रहता था और एक नकली आदमी को गुरु बना कर बैठा दिया। वह गुरु शिक्षा देता था, समझाता था, और झुन्नून शिष्यों में बैठा रहता था। यह तो बहुत बाद में लोगों को पता चला कि यह आदमी झुन्नून नहीं है। फिर झुन्नून कौन है? पता चलने पर पता चला कि जो वर्षों से शिष्यों में बैठा रहता है। और जब उससे पूछा गया तो उसने कहा, इस भांति मैं तुमको आसानी से बदल सकता हूं। तुम्हारा ध्यान लगा रहता है वहां बोलने वाले पर और इधर मैं चुपचाप तुम्हारे पास।

लाओत्से कहता है कि अगर भूस्वामी, सम्राट, गुरु, नेता--वे जो लोगों को प्रभावित करते हैं--केवल अपने भीतर के स्वभाव के साथ जी सकें, तो संसार उन्हें स्वेच्छा से स्वामित्व प्रदान करेगा।

अभी तो उनको स्वामित्व बड़ी छीन-झपटी से लेना पड़ता है। अपने नेताओं की आप हालत देखें! किस बामुश्किल वे नेता बने रहते हैं, कितनी जद्दोजहद से नेता बने रहते हैं। आप लाख उपाय करो, वे नेता बने रहते हैं। हजार लोग उनकी टांगें खींच रहे हैं और वे नेता बने हुए हैं। उनका एक ही काम है चौबीस घंटे--कैसे नेता बने रहें। ऐसा लगता है कि कोई उनको नेता रखने को राजी नहीं है।

इसलिए आप देखते हैं, एक नेता पद से नीचे उतर जाए, फिर आपको पता ही नहीं चलता कि वह कहां गया। अखबारों में नाम नहीं, कोई खबर पूछता नहीं। अजीब स्वामित्व था यह भी कि कल अखबारों में बड़ी सुर्खी उसी नाम की थी; अब सिर्फ एक बार आपको पता चलेगा जब वे इस संसार को छोड़ेंगे। तब अखबार के एक कोने में खबर छपेगी कि उनका देहावसान हो गया। उसके पहले आपको अब पता चलने वाला नहीं है कि वे कहां हैं। यह स्वामित्व, यह नेतृत्व, यह प्रभाव बड़ा अदभुत मालूम होता है; कि पद से उतरते ही खो जाता है। जैसे व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है, सिर्फ पद का मूल्य है। असल में, पद की तलाश वे ही व्यक्ति करते हैं जिनके भीतर कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि पद का मूल्य उनको मूल्य होने का भ्रम दे देता है; पद की गरिमा से वे गरिमायुक्त हो जाते हैं। पद से हटते से ही गरिमा खो जाती है; फिर उन्हें कोई पूछता नहीं।

लाओत्से कहता है कि अगर कोई व्यक्ति अपने निसर्ग के साथ जी रहा हो, जैसा परमात्मा ने, जैसा ताओ ने उसे चाहा है, जैसी उसकी नियति है उसके अनुकूल बह रहा हो, तो उसके पास एक स्वामित्व होता है, एक नेतृत्व, एक गुरुत्व, जो आरोपित नहीं है, जो चेष्टित नहीं है, जिसको उसने किसी के ऊपर डाला नहीं है, जो उसकी सहज मालकियत है। और तब उसे एक स्वामित्व मिल जाता है, जो संसार उसे स्वेच्छा से देता है।

"जब स्वर्ग और पृथ्वी आलिंगन में होते हैं... ।"

स्वर्ग और पृथ्वी--लाओत्से के लिए प्रतीक है। आपके भीतर भी दोनों हैं; आपके भीतर स्वर्ग और पृथ्वी दोनों हैं। और जब आप अपने स्वभाव के अनुकूल चल रहे होते हैं, तब स्वर्ग और पृथ्वी आलिंगन में होते हैं, आपकी परिधि और आपका केंद्र आलिंगन में होते हैं। और जब आप स्वभाव को छोड़ कर चल रहे होते हैं, जब आप कुछ और होने की कोशिश कर रहे होते हैं जो कि आपकी नियति नहीं है, तब आपकी परिधि और आपके केंद्र का संबंध टूट जाता है। तब आपका व्यक्तित्व और आपकी आत्मा दो हो जाती हैं। तब व्यक्तित्व तो आप

जबरदस्ती थोपते रहते हैं अपने ऊपर, और आत्मा और आपके बीच का फासला बढ़ता चला जाता है। लाओत्से की भाषा में, तब पृथ्वी और स्वर्ग का संबंध टूट गया, उनका आलिंगन समाप्त हो गया। और इस आलिंगन के टूटने से ही पीड़ा और संताप और दुख पैदा होता है।

लाओत्से को बहुत प्रेम करने वाले एक व्यक्ति ने अभी-अभी एक किताब लिखी है। किताब बड़ी अनूठी और चौंकाने वाली है। किताब है कैंसर के ऊपर। और उस व्यक्ति का ख्याल ठीक मालूम पड़ता है। कैंसर नई बीमारी है; और अब तक उसका कोई इलाज नहीं। इस व्यक्ति ने लिखा है कि कैंसर इस बात की खबर है कि व्यक्ति के भीतर के स्वर्ग और पृथ्वी का संबंध बिल्कुल टूट गया। और बीमारी इसीलिए पैदा हो गई है, जिसका कोई इलाज नहीं है; क्योंकि बीमारी शरीर की होती तो इलाज हो जाता। बीमारी सिर्फ शरीर की नहीं है कैंसर; अगर शरीर की ही होती तो इलाज हो जाता। बीमारी शरीर और आत्मा के बीच के फासले के कारण पैदा हुई है; मात्र शरीर की नहीं है। शायद शरीर और आत्मा, दोनों के बीच जो फासला है, उस फासले के कारण पैदा हो रही है। जितना फासला बढ़ता जाएगा उतना कैंसर बढ़ता जाएगा।

एक लिहाज से शुभ लक्षण है, अगर हम चेत सकें तो। अगर हम चेत सकें तो शुभ लक्षण है; अगर न चेत सकें तो बहुत खतरनाक है। कैंसर बीमारी नहीं है, यह बात समझने जैसी है। कैंसर एक आंतरिक दुर्घटना है जिसमें हमारे भीतर के सारे सेतु टूट गए हैं। परिधि अलग हो गई है; केंद्र अलग हो गया है। और हम परिधि के साथ पकड़े हुए हैं अपने को, और हमारा अपने ही अंतस्तल से सारा संबंध क्षीण होता जा रहा है। इस तनाव से जो पैदा हो रही है बीमारी वह कैंसर है। कैंसर बढ़ता जाएगा। अगर स्वभाव के अनुकूल जीने की क्षमता नहीं बढ़ती तो कैंसर बढ़ता जाएगा। कैंसर सामान्य बीमारी हो जाएगी। और उसका इलाज खोजना कठिन है। शायद इलाज खोज भी लिया जाए तो कैंसर से बड़ी बीमारियां पैदा हो जाएंगी। क्योंकि वह जो भीतर की विच्छेद-स्थिति है, भीतर का जो फासला है, वह अगर कैंसर से प्रकट न हुआ, कैंसर को किसी तरह रोका जा सका, तो वह मवाद किसी और बड़ी बीमारी से बहने लगेगी।

यह पिछले दो सौ वर्ष का इतिहास है कि एक बीमारी सबसे ऊपर होती है। हम किसी तरह उसका इलाज कर लेते हैं, तो उससे बड़ी बीमारी पैदा हो जाती है। हम उस बीमारी का उपाय कर लेते हैं, तो उससे बड़ी बीमारी पैदा हो जाती है। लेकिन एक मजे की बात है कि बड़ी बीमारी तत्काल पैदा हो जाती है, जैसे ही हम पुरानी बड़ी बीमारी का इलाज खोजते हैं। शायद कोई बहुत आंतरिक वेदना प्रकट होना चाह रही है और हम उसके दरवाजे रोकते जाते हैं; वह नए दरवाजे खोज लेती है।

लाओत्से कहता है कि जब स्वर्ग और पृथ्वी आलिंगन में होते हैं... ।

पृथ्वी से अर्थ है आपकी परिधि, आपके भीतर जो पौदगलिक है, पदार्थ है, वह। और स्वर्ग से अर्थ है आपका चैतन्य, आपकी आत्मा, आपके भीतर वह जो अपौदगलिक है, वह।

"जब दोनों आलिंगन में होते हैं, तब मीठी-मीठी वर्षा होती है।"

बड़ा कठिन है उसको कहना कि क्या होता है, जब आपकी आत्मा और आपका व्यक्तित्व दोनों आलिंगन में होते हैं। जब आपके भीतर कोई फासला नहीं होता, जब आपके भीतर कोई भविष्य नहीं होता, वर्तमान के क्षण में आप पूरे के पूरे इकट्ठे होते हैं, कोई विच्छेद नहीं, कोई खंड-खंड स्थिति नहीं, जब आप अखंड होते हैं, तब क्या होता है।

लाओत्से कहता है, "तब, दि हेवन एंड अर्थ ज्वाइन एंड दि स्वीट रेन फाल्स, बियांड दि कमांड ऑफ मेन यट ईवनली अपान आल। तब होती है मीठी-मीठी वर्षा, मनुष्य के वश के बाहर, लेकिन सबके ऊपर समान।"

इस वर्षा को आप आदेश नहीं दे सकते, इस वर्षा को आप कोशिश करके नहीं घटा सकते। आपकी चेष्टा से यह वर्षा नहीं आ सकती। आप निमंत्रण दे सकते हैं, आदेश नहीं; आप पुकार सकते हैं, खींच नहीं सकते। आप प्रार्थना कर सकते हैं और प्रतीक्षा। यह वर्षा प्रसाद है, ग्रेस है।

शब्द बड़े साधारण चुने हैं लाओत्से ने, "मीठी-मीठी वर्षा।"

थोड़ा सोचें, कल्पना करें भीतर वर्षा की, जैसे प्राण प्यासे हों वर्षों से, जन्मों से, और भीतर की सब भूमि तप्त हो, दरारें पड़ गई हों और भीतर पूरी आत्मा में एक ही प्यास, एक ही पुकार वर्षा की हो--और तब वर्षा हो। इस मिलन में प्यास तृप्त हो जाती है। वह जो जन्मों-जन्मों की प्यास थी कि कुछ चाहिए, कुछ चाहिए, और कुछ भी मिल जाए तो भी तृप्ति नहीं होती थी, जो भी मिल जाए वही व्यर्थ हो जाता था और मांग आगे बढ़ जाती थी, क्षितिज की तरह वासना हटती चली जाती थी; अचानक इस मिलन में सब चाह खो जाती है, सब वासना तिरोहित हो जाती है; क्षितिज घर में आ जाता है। कहीं कुछ जाने को नहीं रह जाता; सब पा लिया, कुछ पाने को शेष नहीं रहा; ऐसी गहन तृप्ति हो जाती है।

एक सूफी फकीर के संबंध में मैंने सुना है। उसके मरने के दिन करीब थे। रहता तो एक छोटे झोपड़े में था, लेकिन एक बड़ा खेत और एक बड़ा बगीचा भक्तों ने उसके पास लगा रखा था। मरने के कुछ दिन पहले उसने कहा कि अब मैं मर जाऊंगा; ऐसे तो जिंदा में भी इस बड़ी जमीन की मुझे कोई जरूरत न थी, यह झोपड़ा काफी था; और मर कर तो मैं क्या करूंगा! मर कर तो मुझे तुम इस झोपड़े में दफना देना; यह काफी है। तो उसने एक तख्ती लगा दी पास के बगीचे पर कि जो भी व्यक्ति पूर्ण संतुष्ट हो, उसको यह बगीचा मैं भेंट करना चाहता हूं। बड़ा खतरनाक आदमी रहा होगा। जो भी व्यक्ति पूर्ण संतुष्ट हो, उसको मैं यह बगीचा भेंट करना चाहता हूं।

अनेक लोग आए, लेकिन खाली हाथ लौट गए। खबर सम्राट तक पहुंची। एक दिन सम्राट भी आया। और सम्राट ने सोचा कि औरों को लौटा दिया, ठीक; मुझे क्या लौटाएगा! मुझे क्या कमी है? मैं संतुष्ट हूं; सब जो चाहिए वह मेरे पास है। सम्राट भीतर आया और उसने फकीर से कहा कि क्या ख्याल है? अनेक लोग आए और वापस लौट गए; मैं भी आया हूं।

तो उस फकीर ने कहा कि अगर तुम संतुष्ट थे तो आए ही क्यों? यह तो उसके लिए है जो आएगा ही नहीं, और मैं उसके पास आऊंगा। अभी वह आदमी इस गांव में नहीं है। वह यहां नहीं आएगा; वह क्यों आएगा?

एक ऐसा संतोष का क्षण भीतर घटित होता है, जब आपकी चाह नहीं होती, दौड़ नहीं होती और आप अपने साथ राजी होते हैं। उस क्षण में परमात्मा आता है; आपको उसके द्वार पर मांगने जाना नहीं पड़ता। उस दिन उसकी मीठी वर्षा आपके ऊपर हो जाती है। वही निर्वाण है।

लेकिन उस तरफ जाने के लिए आप कोई चेष्टा नहीं कर सकते; आपकी कोशिश काम न आएगी। क्योंकि वह प्रसाद है। आपकी कोशिश का मतलब होगा कि आप सम्राट की तरह पहुंच गए मांगने। वह उसको मिलती है, जो जाता ही नहीं मांगने; जो मांग ही छोड़ देता है, उसको मिल जाती है।

वह सूफी फकीर होशियार रहा होगा। उसने आखिरी राज की बात अपने बगीचे पर लिख दी थी।

"वह मनुष्य के वश के बाहर है, लेकिन तो भी सबके ऊपर समान रूप से बरसती है।"

और निश्चित ही, इसीलिए समान रूप से बरसती है। क्योंकि अगर आपके वश के भीतर हो तो ताकतवर ज्यादा बरसा लेगा; कमजोर प्यासे रह जाएंगे। जोर-जबरदस्ती जो कर सकता है वह ज्यादा पर कब्जा कर लेगा; अधिक लोग तो क्यू में पीछे खड़े रह जाएंगे। वह समान रूप से सबके ऊपर बरस सकती है, क्योंकि आपके

वश के बाहर है। आप कुछ कर नहीं सकते; आप सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हैं। आप सिर्फ राजी हो सकते हैं, तैयार हो सकते हैं। आप उसके आने के लिए बाधा न डालें, बस इतना काफी है। और आप कुछ भी नहीं कर सकते; आप रुकावट न डालें, बस इतना काफी है। आप खुले हों, द्वार-दरवाजे बंद न हों। वह कभी आपके दरवाजे पर आए तो बंद न पाए; बस इतना आप कर सकते हैं।

इसलिए वह सबके ऊपर समान हो जाती है। कबीर को या कृष्ण को या बुद्ध को या मोहम्मद को जरा सा भी, इंच भर का फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध सम्राट के लड़के रहे हों, रहे हों; और कबीर जुलाहे थे, तो थे। और बुद्ध बहुत सुसंस्कृत, सभ्य, तो रहें; और कबीर बिल्कुल लट्ठ, बेपढ़े-लिखे गंवार। कोई फर्क नहीं पड़ता, वह वर्षा जब होती है तो उसकी मिठास में जरा भी फर्क नहीं है। क्योंकि उससे कोई संबंध नहीं है व्यक्ति का, ध्यान रखना। अगर व्यक्ति से संबंध हो, तो बुद्ध बाजी मार ले जाएंगे, कबीर को दिक्कत पड़ेगी। लेकिन व्यक्ति से कोई संबंध ही नहीं है उसका। आपका घड़ा सोने का है या मिट्टी का, इससे कोई संबंध ही नहीं है वर्षा को। आपका घड़ा खाली हो बस; सोने का हो तो भी भर जाएगा और मिट्टी का हो तो भी भर जाएगा। खाली होना शर्त है; घड़े का सोना होना और मिट्टी होना शर्त नहीं है।

इसलिए बेपढ़े-लिखे भी पहुंच जाते हैं। गरीब, दीन-हीन भी पहुंच जाते हैं। कमजोर, रुग्ण भी पहुंच जाते हैं। और कोई बुद्धिमानों से कम उन्हें मिलता है, ऐसा नहीं है। रत्ती भर कम नहीं मिलता। व्यक्ति-व्यक्ति का कोई फासला नहीं है उस वर्षा के लिए। आप जब भी अपने साथ राजी हो गए पूरे और आपने स्वीकार कर लिया कि मेरी नियति, मेरा स्वभाव, बस मैं ऐसा हूं, और उसमें आपने रत्ती भर फर्क करना छोड़ दिया--बड़ी से बड़ी तपश्चर्या यही है।

यह सुन कर आपको कठिनाई होगी। मैं आपसे कहता हूं, यह बड़ी से बड़ी तपश्चर्या है कि आप अपने साथ राजी हो जाएं और फर्क करना छोड़ दें।

एक तीन महीने प्रयोग करके देखें। कुछ भी हो, जैसे हैं वैसे, तीन महीने कोई फर्क ही न करें। चोर हैं तो चोर और बेईमान हैं तो बेईमान, बुरे हैं तो बुरे, झूठे हैं तो झूठे, तीन महीने कोई फर्क ही न करें। जैसे हैं वैसे और उसका जो भी फल मिले उसको झेलने को राजी रहें। और आप तीन महीने में पाएंगे कि आपके भीतर नए आदमी का जन्म हो गया। वह जो अपने साथ राजी हो जाना है, वह इतनी बड़ी ऊर्जा है कि उस आग में सब जल जाता है जो कचरा है; सिर्फ सोना बचता है।

लेकिन इसके लिए, इस परम घटना के लिए कि वर्षा आपके ऊपर हो जाए, आप कुछ प्रत्यक्ष न कर सकेंगे। अप्रत्यक्ष कर सकते हैंः अपने को खाली, खुला छोड़ सकते हैं।

"और तब मानवीय सभ्यता का उदय हुआ और नाम आ गए। और जब नाम आ गए, तब आदमी के लिए जान लेना उचित था कि कहां रुक जाना है। और जो जानता है कि कहां रुकना है, वह खतरों से बचता है। संसार में ताओ की तुलना उन नदियों से की जाए जो बह कर समुद्र में समा जाती हैं।"

इस स्वभाव के साथ न तो कोई नाम है, न कोई शब्द है, न कोई दर्शन है, न कोई शास्त्र है। लेकिन मानवीय सभ्यता का उदय हुआ, आदमी ने सोचना शुरू किया, समझना शुरू किया; शब्द आ गए। शब्द आते ही... ।

बच्चा अभी भी जब पैदा होता है तो वह ताओ में होता है। लेकिन हम उसको वैसे ही नहीं छोड़ सकते। उसे सिखाना होगा, शिक्षित करना होगा। जरूरी भी है। अगर वैसा छोड़ देंगे तो वह भी अन्याय होगा। वह जी भी न सकेगा। इस विराट समूह में, चारों तरफ जो घेरा बना है, इसके साथ चलने के लिए उसे योग्य बनाना

होगा। उसे घिसना होगा, काटना होगा, तराशना होगा; उसके अनगढ़ पत्थर को मूर्ति बनाना होगा। तभी वह चल पाएगा। और भाषा देनी होगी, शब्द देने होंगे।

लाओत्से कहता है, सभ्यता का जन्म भाषा का जन्म है। इसलिए और कोई जानवर सभ्य नहीं हो पाता, क्योंकि उनके पास भाषा नहीं है। भाषा के बिना सभ्य होना असंभव है। बोलने के बिना समाज ही पैदा नहीं होता; व्यक्ति अकेला रह जाता है। बोलना है तो शब्द आ जाएंगे; समाज बनेगा तो शब्द आ जाएंगे, भाषा आ जाएगी, नाम आ जाएंगे। और जब नाम आ गए--और नाम के लाओत्से बहुत खिलाफ है, भाषा के बहुत खिलाफ है, मौन के पक्ष में है--तब आदमी के लिए जान लेना उचित था कि अब रुक जाओ। लेकिन रुकना मुश्किल है। एक नाम दूसरा नाम पैदा करता है। शब्द शब्दों को पैदा करते चले जाते हैं।

जितनी सभ्य भाषाएं हैं वे शब्दों को बढ़ाए चली जाती हैं। अंग्रेजी भाषा हर वर्ष कोई पांच हजार नए शब्द जोड़ लेती है। बढ़ते चले जाते हैं शब्द; भाषा बढ़ती चली जाती है; विचार फैलते चले जाते हैं। और प्रकृति और स्वयं के बीच का फासला भी बढ़ता चला जाता है। भाषा से पटे हुए रास्ते ही हमारे बीच परिधि और केंद्र को अलग करते हैं।

लाओत्से कहता है, तब जान लेना उचित था कि कहां रुक जाना है। क्योंकि जो जानता है कहां रुकना है, वह खतरों से बच जाता है।

लेकिन आदमी नहीं रुक सका। शायद इस खतरे से गुजरना भी जरूरी था। और शायद इस खतरे से गुजर कर ही मौन का पूरा अर्थ समझ में आ सकता था। आप अगर समझ जाएं और रुक जाएं, तो वह जो ताओ खो गया है पीछे, वापस पाया जा सकता है। भाषा को छोड़ते ही, मौन में उतरते ही स्वभाव से संबंध हो जाता है। भाषा में उतरते ही आप फासले पर जाना शुरू हो गए। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप बोलें न। लाओत्से भी बोलता ही था। प्रयोजन इतना ही है कि आप जब किसी दूसरे से न बोल रहे हों तब न बोलें।

लेकिन आप तब भी बोल रहे हैं। कोई नहीं है, आप अकेले बैठे हैं, तब भी बोल रहे हैं। आपके ओंठ भी कंप रहे हैं। अगर कोई ठीक से जांच करे तो आपको पकड़ सकता है कि आप भीतर क्या बोल रहे हैं। भीतर चल रहा है; किसी से बात हो रही है, चीत हो रही है, भीतर चल रहा है। भाषा रुकती ही नहीं। सोते हैं तो, जागते हैं तो, सपना, विचार चल रहे हैं भीतर। यह जो भीतर का सतत भाषा का प्रवाह है, यह स्वभाव में नहीं उतरने देता।

स्वभाव तो मौन है; प्रकृति तो अबोल है। उस अबोल में जो जान लेता है रुक जाना, वह खतरे से बच जाता है। कहां तक भाषा में जाना, इसे समझ लेना बुद्धिमानी है। दूसरे से जब बात करनी हो तो भाषा जरूरी है; अपने से जब बात करनी हो तो मौन जरूरी है। दूसरे से संवाद करना हो तो शब्द चाहिए; अपने से संवाद करना हो तो निशब्द चाहिए। अपने से बोलने की कोई भी जरूरत नहीं है; अपने से तो चुप होने की जरूरत है। जिस दिन आप अपने भीतर चुप होंगे उस दिन आपका अपने से पहला संभाषण होगा। जब तक आप भीतर चुप नहीं हुए तब तक आपका अपने से मिलना नहीं हुआ है।

"संसार में ताओ की तुलना उन नदियों से की जाए जो बह कर समुद्र में समा जाती हैं।"

नदियां जैसे चुपचाप बिना किसी बंधे हुए रास्ते के, अंधेरे में टटोलती हुई चुपचाप सागर तक पहुंच जाती हैं और लीन हो जाती हैं। संसार में, लाओत्से कहता है, ताओ की तुलना इस भांति की जाए कि आप भी जब चुपचाप संसार के सारे रास्तों पर टटोलते अपने भीतर के मौन सागर में डूब जाते हैं, जिस दिन आपके व्यक्तित्व की नदी आपके भीतर के मौन सागर में लीन हो जाती है, उस दिन आप धर्म को उपलब्ध हो जाते हैं।

यह कठिन दिखाई पड़े, कठिन है नहीं; असंभव भी दिखाई पड़े तो भी कठिन नहीं है। एक बार ठीक से मूल सूत्र समझ में आ जाए तो लाओत्से का महामंत्र बहुत ही सरल है। वह इतना ही हैः अपने को परिपूर्णता से स्वीकार कर लेना और अपने को तराशने की कोशिश न करना। बुरे-भले जैसे भी हैं, अनगढ़, परमात्मा ने ऐसा ही चाहा है, और हम परमात्मा से ज्यादा बुद्धिमान होने की कोशिश न करेंगे। उसने जैसा चाहा है, उसकी मर्जी से हम राजी हैं। यह राजीपन, यह एक्सेप्टबिलिटी, यह स्वीकार-भाव लाओत्से का महामंत्र है। फिर नदी सागर में गिर जाती है।

पांच मिनट रुकेंगे, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

छासठवां प्रवचन

स्वयं का ज्ञान ही ज्ञान है

Chapter 33

Knowing Oneself

He who knows others is learned;
He who knows himself is wise.
He who conquers others has power of muscles;
He who conquers himself is strong.
He who is determined has strength of will.
He who does not lose his centre endures,
He who dies yet (his power) remains has long life.

अध्याय 33

आत्म-बोध

जो दूसरों को जानता है वह विद्वान है;
और जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी।
जो दूसरों को जीतता है वह पहलवान है;
और जो स्वयं को जीतता है वह शक्तिशाली।
जो संतुष्ट है वह धनवान है; और जो दृढ़मति है वह संकल्पवान।
जो अपने केंद्र से जुड़ा रहता है वह मृत्युंजय है।
और जो मर कर जीवित है वह चिर-जीवन को उपलब्ध होता है।

ताओ है सागर की भांति। नदियां सागर से पैदा होती हैं और सागर में पुनः खो जाती हैं। ताओ से अर्थ है उस मूल उदगम का, जहां से जीवन पैदा होता है; और उस अंतिम विश्राम का भी, जहां जीवन विलीन हो जाता है। ताओ आदि भी है और अंत भी। प्रारंभ भी वही है और समाप्ति भी वही।

यह जो ताओ का केंद्र है या धर्म का या सत्य का, इसे हम जन्म के साथ ही लेकर पैदा होते हैं; वह हमारे जन्म के पहले भी मौजूद है। और उसे हम अपने साथ लेकर ही मरते हैं; वह मृत्यु के बाद भी हमारे साथ यात्रा

पर होता है। जो हमारे भीतर न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, वही धर्म है। और उसे जान लेना ही जानने योग्य है।

इस सूत्र में उस आंतरिक केंद्र की तरफ बहुत बहुमूल्य इशारे हैं।

पहला इशाराः "जो दूसरों को जानता है वह विद्वान है; और जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी।"

दूसरों को जानना बहुत आसान है। क्योंकि दूसरों को जानने के लिए इंद्रियां काम में आ जाती हैं। आंख है मेरे पास, मैं आपको देख सकता हूं। लेकिन यह देखने वाली आंख स्वयं को देखने के काम न आएगी। कान हैं मेरे पास, मैं आपको सुन सकता हूं। लेकिन ये कान स्वयं को सुनने के काम न आएंगे। हाथ हैं मेरे पास, मैं आपको छू सकता हूं। लेकिन मेरे ही हाथ हैं, मैं स्वयं को छूने में असमर्थ हूं। इंद्रियां दूसरे को जानने का द्वार हैं। इंद्रियां हमें उपलब्ध हैं; हम दूसरे को सहजता से जान लेते हैं।

और दूसरे को जानने की इस दौड़ में हम यह भूल ही जाते हैं कि हम स्वयं से अनजान रह गए। स्वयं के संबंध में भी जो हम जानते हैं, वह भी हम दूसरों के द्वारा ही जानते हैं। अगर आप सोचते हैं कि आप सुंदर हैं, तो यह दूसरों ने आपसे कहा है; कि आप सोचते हैं कि आप विचारशील हैं, यह भी दूसरों ने आपसे कहा है; कि आप सोचते हैं कि आप बुद्धिहीन हैं, तो यह भी दूसरों ने आपको समझाया है। आपकी स्वयं के संबंध में जो जानकारी है वह दूसरे के माध्यम से है, दूसरे के द्वारा उपलब्ध हुई है।

इसलिए हम स्वयं की जानकारी पर भी दूसरे पर निर्भर रहते हैं, और दूसरे से भयभीत भी रहते हैं। अगर मेरा सौंदर्य आपके ऊपर निर्भर है तो मैं भयभीत रहूंगा। क्योंकि आपकी नजर की जरा सी बदलाहट, और मेरा सौंदर्य खो जाएगा। और अगर मेरी बुद्धिमानी आपके आधार पर बनी है, आप कभी भी ईंटें बुनियाद की खींच ले सकते हैं और मेरी बुद्धिमत्ता खो जाएगी। मेरी प्रतिष्ठा में अगर आप कारण हैं तो वह कोई प्रतिष्ठा ही नहीं, वह गुलामी है। अगर मेरी प्रतिष्ठा किसी पर भी निर्भर है तो मैं उसका गुलाम हूं। और गुलामी की क्या प्रतिष्ठा हो सकती है? स्वयं के संबंध में भी हम दूसरे के माध्यम से जानते हैं। इसलिए स्वयं के संबंध में जो भी हम जानते हैं, वह गलत है।

फिर और भी कारण समझ लेने जरूरी हैं। मैं आपको जान सकता हूं; मेरे पास इंद्रियां हैं, मन है। आंख से देख सकता हूं, मन से सोच सकता हूं। लेकिन स्वयं को जानने में न तो इंद्रियां काम आएंगी, न तो आंख काम आएगी और न मेरा मन ही काम आएगा। क्योंकि दूसरे के संबंध में सोचा जा सकता है, स्वयं के संबंध में कुछ भी सोचा नहीं जा सकता। और जब तक आप सोचते हैं तब तक स्वयं से कोई संबंध नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक आप सोचते हैं तब तक आप स्वयं के बाहर होते हैं। विचार जब तक मौजूद होता है तब तक आप अपने आंतरिक केंद्र पर नहीं हैं, परिधि पर घूम रहे हैं। क्योंकि विचार भी एक बेचैनी है; विचार एक तनाव है। कहें कि विचार एक तरह का ज्वर है, एक बुखार है, एक आंतरिक उद्वेग है। इसलिए अगर विचार तेज चल रहे हों तो रात आप सो नहीं सकते; क्योंकि विचार विश्राम नहीं है। और स्वयं के आंतरिक केंद्र पर तो परम विश्राम की अवस्था में ही कोई पहुंचता है। जितना तनाव होता है, उतनी दूरी होती है।

इसलिए पागल स्वयं से सर्वाधिक दूर होता है। पागलपन का अर्थ ही यह है कि आपसे अब स्वयं के सारे संबंध छूट गए। अब आपकी कोई भी जड़ अपने केंद्र में न रही। अब आप उखड़ गए, अपरूटेड--जमीन से जड़ें अलग हो गईं। पागल अपने से सर्वाधिक दूर है, क्योंकि पागल का विचार एक क्षण को भी बंद नहीं होता, चलता ही रहता है सतत। आप भी अपने से उसी मात्रा में दूर हैं जिस मात्रा में आपके भीतर मौन की कमी है।

विचार से मैं दूसरे को जान सकता हूं, लेकिन विचार से स्वयं को नहीं जान सकता।

इसलिए सब बुद्धिमत्ता, जिसको लाओत्से ने कहा है विद्वत्ता, विचार पर निर्भर होती है। और ज्ञान निर्विचार पर निर्भर होता है। इसलिए हम बुद्ध को विद्वान नहीं कह सकते, महावीर को विद्वान नहीं कह सकते। अरिस्टोटल विद्वान है, प्लेटो विद्वान है। बुद्ध और महावीर विद्वान नहीं हैं, ज्ञानी हैं।

जो फर्क है--विद्वत्ता विचार का जोड़ है; और ज्ञान निर्विचार की स्फुरणा है, जहां सब इंद्रियां शांत होती हैं। क्योंकि इंद्रियों से दूसरे को जान सकते हैं। और जब तक इंद्रियां अशांत हों तब तक बाधा डालेंगी; क्योंकि उनकी अशांति बाहर ले जाएगी। इंद्रियों की अशांति बाहर ले जाएगी; वे बाहर जाने वाले द्वार हैं।

जब तक मन चल रहा है तब तक भी स्वयं को न जान सकेंगे। क्योंकि मन का चलना परिधि पर रोके रखेगा। जब इंद्रियां चुप हो गईं और मन भी मौन हो गया, और जब भीतर कोई गति न रही, किसी तरह का हलन-चलन न रहा, कोई स्पंदन न रहा, कोई लहर न रही, जब भीतर आप मात्र रह गए, जहां कुछ भी नहीं हो रहा है, कोई कर्म नहीं हो रहा है भीतर, पूर्ण अकर्म हो गया, उस क्षण में आपको अपने केंद्र से विच्युत करने को कोई भी न रहा; कोई लहर आपको बाहर नहीं खींच सकती। उस क्षण ज्ञान का जन्म है।

विद्वान होना हो, शास्त्र सहयोगी हैं, शिक्षण उपयोगी है, सीखना जरूरी है। ज्ञानी होना हो, शास्त्र खतरनाक हैं, बाधा हैं; शिक्षा व्यर्थ ही नहीं, हानिकर है। सीखने की कोई सुविधा नहीं है। अनसीखना करना होता है। लर्निंग नहीं, अनलर्निंग; जो सीखा है उसे भी भूल जाना होता है; जो जाना है उसका भी त्याग कर देना होता है।

और ध्यान रहे, जगत में ज्ञान का त्याग बड़ा मुश्किल है। धन छोड़ा जा सकता है; पद छोड़ा जा सकता है। क्योंकि पद को छोड़ने में भी बड़े पद के मिलने की आशा है, और धन को छोड़ने में भी महाधन को पाने की संभावना है। क्योंकि धनी भी सोचता है मन में कि गरीब सुखी है। धनी भी--सच तो यह है धनी ही--गरीब तो कभी नहीं सोचता कि गरीब भी सुखी है। धनी अक्सर सोचता है कि गरीबी में बड़ा सुख है। ठीक वैसे ही जैसा गरीब सोचता है कि अमीरी में बड़ा सुख है। जो हमारे पास नहीं उसमें सुख दिखाई पड़ता है।

लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि अगर गरीब सोचता है कि अमीरी में सुख है, तो ज्ञानी--तथाकथित विद्वान, ज्ञानी नहीं कहना चाहिए--वे उसको समझाते हैं कि तू पागल है। लेकिन जब धनी सोचता है कि गरीबी में सुख है, तो ये ही महात्मागण उसको नहीं समझाते कि तू भी पागल है। बात दोनों की एक सी हैः जो उनके पास नहीं है उसमें सुख दिखाई पड़ता है। न तो गरीबी में सुख है, न धनी होने में सुख है। सुख सदा आशा है--वहां, जहां हम नहीं हैं। और जहां हम हो जाते हैं वहीं दुख हो जाता है।

धनी धन छोड़ सकता है, क्योंकि गरीबी में सुख की आशा बनी है। पद छोड़े जा सकते हैं, क्योंकि पदों को छोड़ कर भी बड़ी प्रतिष्ठा मिलती है। सच तो यह है कि पदों को छोड़ कर ही प्रतिष्ठा मिलती है। जो प्रतिष्ठा पाने की कला जानता है वह पद को छोड़ देगा। क्योंकि पद छोड़ते से ही आपको लगता है कि यह आदमी पद से बड़ा हो गया। नहीं तो छोड़ कैसे सकता? छोटा आदमी तो पद को पकड़ता है। यह पद को लात मार सकता है, सिंहासन को लात मार सकता है; यह आदमी सिंहासन से बड़ा हो गया। लेकिन जो छोड़ रहा है वह भी गणित जमा सकता है, उसको भी पता है कि छोड़ने में भी लाभ है। धन छोड़ने में अड़चन ज्यादा नहीं है; पद छोड़ने में कठिनाई ज्यादा नहीं है। लेकिन ज्ञान छोड़ने में बड़ी कठिनाई है; क्योंकि अज्ञान में कोई भी आशा नहीं बंधती।

और लाओत्से जैसे थोड़े से परम ज्ञानियों को छोड़ कर अज्ञान की कोई शिक्षा भी नहीं देता। अज्ञान से ही तो हम परेशान हैं; तो ज्ञान से अपने को भर रहे हैं। यह जो ज्ञान से भरना है, यह आपको विद्वान बना देगा। तो विद्वान वह अज्ञानी है जिसने अपने को उधार ज्ञान से भर लिया। अज्ञान मिटता नहीं, सिर्फ दबता है। जैसे आप

नग्न हैं और वस्त्र पहन लिए; तो नग्नता मिटती नहीं, सिर्फ ढंकती है; अब किसी को दिखाई नहीं पड़ती। और किसी को न दिखाई पड़े यह तो ठीक ही है, आपको भी दिखाई नहीं पड़ती, जो कि चमत्कार है। क्योंकि कपड़े आपके बाहर हैं, दूसरों की आंखों पर हैं कपड़े; आपके ऊपर नहीं हैं।

वेटिकन का पोप जब किसी को मिलता है तो विशेष वस्त्र पहनने होते हैं। स्त्रियां हों तो सिर ढांकना होता है; पुरुष हों तो सिर ढांकना होता है। खास तरह के कपड़े, सादे, पहन कर प्रवेश करना होता है। एक बारह अमरीकनों की मंडली वेटिकन के पोप के दर्शन के लिए गई। तो जिस आदमी ने उन्हें समझाया कि आप कैसे कपड़े पहनें, कैसे भीतर खड़े हों, कैसे नमस्कार करें, वह भी उनको समझाने से थोड़ा व्यथित था। और उसने भी कहा कि क्षमा करना, मजबूरी है, मैं इसी काम पर नियुक्त हूं, यही मेरी रोटी-रोजी है, लेकिन लोगों को समझाते-समझाते मैं परेशान हो गया हूं और मेरे मन में भी कभी होता है कि इससे तो बेहतर होता एक पट्टी पोप की आंख पर ही बांध दी जाती; वह सरल होती बजाय इतना उपद्रव करने के।

लेकिन यह इतना बड़ा उपद्रव भी दूसरे की आंख पर पट्टी का ही काम करता है, इससे ज्यादा का काम नहीं करता। पट्टी बड़ी है; लेकिन आंख दूसरे की है, उसको भर रुकावट डालती है, उसको पता नहीं चलता कि आप नग्न हैं। लेकिन आप तो नग्न हैं ही। विद्वान भी दूसरे की आंखों में विद्वान मालूम पड़ता है, अपने भीतर तो अज्ञानी ही होगा, नग्न ही होगा। लेकिन जैसा आप चमत्कार कर लेते हैं और कपड़े पहन कर सोचते हैं आप नग्न नहीं, वैसा ही पंडित भी चमत्कार कर लेता है, शब्दों को ओढ़ कर सोचता है कि अब अज्ञान समाप्त हुआ, अब मैं ज्ञानी हुआ। और इन शब्दों में एक भी उसका अनुभूत नहीं है; इसमें से कुछ भी उसने जाना नहीं है; इसमें से किसी का भी उसे स्वाद नहीं मिला। ये सब कोरे, उधार, निर्जीव, नपुंसक शब्द हैं। क्योंकि शब्द में प्राण तो पड़ता है अनुभूति से। शास्त्र से शब्द इकट्ठे कर लिए जा सकते हैं। सरल काम है। स्मृति सजाई जा सकती है। जरा भी कठिन नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे कर लेते हैं, और बूढ़ों से ज्यादा अच्छा कर लेते हैं।

यह सब बाहर से इकट्ठा किया हुआ बाहर को ही प्रभावित कर सकता है, इसे स्मरण रखें। तो पंडित आपको प्रभावित कर सकता है; शायद ज्ञानी से आप प्रभावित न भी हों। क्योंकि बड़े मजे की बात है कि जमीन पर ज्ञानियों को तो बहुत बार सूली लगी, पंडितों को कभी नहीं लगी। ज्ञानियों पर तो पत्थर बहुत बार फेंके गए, लेकिन पंडितों को किसी ने पत्थर नहीं मारा। ज्ञानियों को तो बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ीं, लेकिन पंडितों को कोई कठिनाई का सवाल नहीं है। ज्ञानियों ने बड़ी निंदा झेली, सब तरह की निंदा झेली, लेकिन पंडित को कोई निंदा नहीं झेलनी पड़ती। कारण क्या है?

पंडित के पास जो ज्ञान है उससे आप प्रभावित होते हैं। वह बाहर से आया है, और बाहर के लोगों को प्रभावित करता है। ज्ञानी के पास जो ज्ञान है वह बाहर से नहीं आया, वह भीतर से आया है। वह अनूठा है, नया है, अद्वितीय है। वह ताजा है, कुंआरा है। उससे आपकी कोई पहचान नहीं। तो जब ज्ञानी से आपकी मुलाकात होती है तो आप बेचैनी में पड़ जाते हैं। आप उसको ठीक से समझ नहीं पाते, या समझने की कोशिश में हमेशा गलत समझ पाते हैं। क्योंकि वह जो कह रहा है इतना नया है कि आपकी बुद्धि, आपकी जानकारी, उससे उसका कोई तालमेल नहीं बैठता। वह कुछ ऐसी बात कह रहा है जिससे आपका कभी कोई संबंध नहीं रहा।

तो ज्ञानी अजनबी मालूम पड़ता है। पंडित आपका ही आदमी है। जैसे आप हैं वैसा ही वह है। आप में और उसमें जो फर्क है वह मात्रा का है, गुण का नहीं है। आप थोड़ा कम जानते हैं, वह थोड़ा ज्यादा जानता है; लेकिन एक ही कतार में खड़े हैं। वह क्यू में थोड़ा आगे है, आप थोड़े पीछे हैं। उससे कोई दुश्मनी नहीं मालूम होती, उससे गहरी मैत्री मालूम होती है। ज्ञानी से सदा दुश्मनी मालूम होती है, क्योंकि वह आपकी पंक्ति में खड़ा ही

नहीं है। और वह जो भी कहता है वह खतरनाक मालूम होता है। क्योंकि वह जो भी कहता है उससे आपका जो भवन है वह गिरता है। वह जो भी कहता है उससे आपका ज्ञान अज्ञान सिद्ध होता है। वह जो भी कहता है उससे आपकी जानकारी व्यर्थ होती है। वह आपसे छीनता है। वह आपको तोड़ता है। वह आपको मिटाता है। ज्ञानी सदा विध्वंसक मालूम होता है। पंडित हमेशा निर्माणकारी मालूम होता है। क्योंकि वह सिर्फ आपको आगे बढ़ाता है। वह आप में कुछ जोड़ता है। पंडित आपको कुछ देता हुआ मालूम पड़ता है; ज्ञानी आपसे कुछ छीनता हुआ मालूम पड़ता है।

इसलिए ज्ञानी के पास केवल वे ही लोग टिक सकते हैं जो अति साहसी हैं, जो कि निपट अज्ञानी होने को तैयार हैं। लेकिन अगर आप ज्ञान की तलाश में गए हैं तो पंडित ठीक जगह है। वह आपको ज्ञान देगा। वहां से आप ज्ञान इकट्ठा कर ले सकते हैं। अगर आप ज्ञानी के पास गए हैं तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। पहले तो वह आपसे छीन लेगा सब कुछ--जो भी आपके पास है। वह आपको सब भांति निर्धन कर देगा; वह भीतर से आपको सब भांति दरिद्र कर देगा। जीसस ने शब्द उपयोग किया हैः पुअर इन स्पिरिट। वह आपकी आत्मा तक को गरीब कर देगा। लेकिन उसी गरीबी से, उसी परम दारिद्र्य से, उसी परम अज्ञान से ज्ञान का जन्म होता है।

यह बड़ा विरोधाभासी है। क्योंकि हम तो सोचते हैं ज्ञान एक संग्रह है। ज्ञान संग्रह नहीं है; जो भी संग्रह है वह विद्वत्ता है, पांडित्य है, बौद्धिक कुशलता है, होशियारी है, चालाकी है। ज्ञान का उससे कोई लेना-देना नहीं है। ज्ञान तो एक जन्म है; संग्रह नहीं। जैसे मां के पेट में बच्चा जन्मता है, वैसा ज्ञान भी एक जन्म है। बच्चे को आप संगृहीत नहीं कर सकते कि कहीं से एक टांग खरीद लाए, कहीं से एक हाथ खरीद लाए, कहीं से एक सिर इकट्ठा कर लिया; फिर सब जोड़ कर तैयार कर लिया। ऐसा अगर बच्चा आप जोड़ कर तैयार कर लें तो वह जैसा मुर्दा होगा वैसा ही पंडित का ज्ञान होता है। कहीं से वह पैर ले आया है, कहीं से हाथ ले आया है, कहीं से सिर ले आया है; उसने ठीक प्रतिमा निर्मित कर ली है। लेकिन प्रतिमा मुर्दा है, क्योंकि जीवन को जन्म देना संग्रह से नहीं होता। और जैसे मां को गुजरना पड़ता है एक पीड़ा से, ठीक वैसे ही ज्ञानी को भी गुजरना पड़ता है। ज्ञानी की तलाश एक पीड़ा है, एक आत्म-प्रसव है। इस आत्म-प्रसव का पहला चरण है यह समझ लेना कि जो भी बाहर से जाना गया है वह ज्ञान नहीं है।

यह समझ भी बड़ी मुश्किल है। क्योंकि तत्काल हमें लगता है हम दरिद्र हो गए। क्योंकि जो भी हम जानते हैं वह सब बाहर से जाना हुआ है। कभी आप सोचते हैं एकांत में कि आप जो भी जानते हैं उसमें कुछ भी आपका है? भय लगता है, ऐसी बात ही सोचने से भय लगता है। क्योंकि आप सोचेंगे तो पसीना आना शुरू हो जाएगा; हाथ-पैर भीतर कंपने लगेंगे। कुछ भी नहीं है जाना हुआ अपना। इतनी दरिद्रता में जी रहे हैं। लेकिन वह ज्ञान एक वहम, एक भ्रम पैदा कर देता है। उस भ्रम से ऐसा लगता है हम कुछ जानते हैं। और बड़े मजे की बात है, जैसा दूसरे हमें ज्ञान देते रहते हैं, वह उधार ज्ञान हम इकट्ठा करके हम भी दूसरों को देते रहते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यह मूढ़ता चलती ही चली जाती है। कोई बीच में रुक कर यह नहीं कहता कि मुझे कुछ पता नहीं है।

इधर मैं देखता हूं। अभी एक जैन मुनि को कुछ दिनों पहले कोई मेरे पास ले आया था। दो भक्त उनके साथ थे। मुनि ने इशारा किया कि आप बाहर जाएं, मुझे साधना के संबंध में कुछ एकांत बातें करनी हैं। भक्त बाहर चले गए। मुनि ने मुझसे पूछा कि जो आप कहते हैं वही मैं भी कहता हूं, लेकिन मेरा प्रभाव क्यों नहीं पड़ता? कुछ रास्ता बताइए। मैंने उनसे कहा कि जो आप कहते हैं, वह हो सकता है, मुझसे भी बेहतर कहते हों। लेकिन जब तक आप प्रभाव डालना चाहते हैं, तब तक बात सब व्यर्थ है, तब तक उत्सुकता आपकी दूसरे में है, स्वयं में नहीं है। आखिर प्रभाव डालने की आकांक्षा क्या है? क्यों प्रभाव डालना चाहते हैं? प्रभावित क्यों करना

चाहते हैं किसी को? और किसी के प्रभावित होने से क्या होगा आंतरिक लाभ? अहंकार बढ़ेगा। लेकिन वह आंतरिक लाभ नहीं है, हानि है। अकड़ बढ़ेगी। लेकिन वह अकड़ सहयोगी नहीं है, बाधा है।

तो मैंने उनसे कहा, कुछ ऐसा करिए कि दूसरे बिल्कुल आपसे अप्रभावित हो जाएं। दूसरे को प्रभावित करने की चेष्टा आप साधना कह रहे थे अपने भक्तों से कि मुझे साधना के संबंध में कुछ पूछना है। यह साधना है? और निश्चित ही आपको अपना कोई पता नहीं है, इसलिए आप दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। क्यों हम दूसरे को प्रभावित करना चाहते हैं? ताकि उसकी आंखों से हमें हमारा पता चल सके कि हम कुछ हैं।

जब दूसरा प्रभावित होता है और उसकी आंख में चमक आती है तो वह चमक हमें प्राण देती है। वैसे हम निष्प्राण हैं। उससे मजा आता है, रस आता है, शक्ति मिलती है। वह बड़ा अदभुत वाइटामिन है। वैसा वैज्ञानिक अभी कोई वाइटामिन नहीं खोज पाए। जो दूसरे की आंख में जो चमक आती है तो जो वाइटेलिटी, जो प्राण आपको मिलता है, वैसा अभी तक कोई वाइटामिन नहीं खोजा जा सका।

दूसरे में उत्सुकता, मैंने उनसे कहा, इसी बात का सबूत है कि आपको अपना कोई भी पता नहीं है और आप दूसरों की आंखों से पता लगा कर अपना परिचय निर्मित करना चाहते हैं कि मैं कौन हूं।

पंडित दूसरे को प्रभावित करके सोचता है मैं ज्ञानी हो गया। अगर मैं न जानता होता तो लोग प्रभावित कैसे होते? लोग प्रभावित हो रहे हैं; निश्चित ही मैं जानता हूं। उसके जानने का बोध भी लोगों के प्रभावित होने पर निर्भर करता है। ज्ञानी का भी प्रभाव होता है। लेकिन ज्ञानी का प्रभाव ज्ञानी की आकांक्षा नहीं है। ज्ञानी का प्रभाव ज्ञानी का सहज परिणाम है। जैसे आदमी चलता है तो धूप में छाया बनती है, ज्ञानी जब लोगों के बीच चलता है तो उसकी छाया पड़ती है। पड़ेगी ही। पर वह छाया ज्ञानी की चेष्टा नहीं है। पंडित की चेष्टा है। पंडित का सारा रस इसमें है कि दूसरे प्रभावित हो जाएं।

लाओत्से कहता है, "जो दूसरों को जानता है वह विद्वान है।"

और पंडित भली-भांति दूसरों को जानता है। सच तो यह है कि वह दूसरों को ही जानता है। और दूसरों को जानने के कुछ फायदे हैं। क्योंकि दूसरों को मैनीपुलेट किया जा सकता है, दूसरों को चलाया जा सकता है, नचाया जा सकता है, अगर आप उन्हें जानते हैं।

डेल कार्नेगी की बड़ी प्रसिद्ध किताब है--हाउ टु इनफ्लुएंस पीपुल, लोगों को कैसे प्रभावित करें। आज सारे जमीन पर ऐसी हजारों पुस्तकें लिखी जा रही हैं कि दूसरों को कैसे प्रभावित करें, दूसरों के साथ कैसे सफल हों। निश्चित ही, दूसरे के साथ सफल होना है तो दूसरे को जानना जरूरी है। और दूसरे को जानना जरा भी कठिन नहीं है। लेकिन स्वयं को जानना अति कठिन है। और मैंने अभी तक ऐसी कोई किताब नहीं देखी जो कहती होः हाउ टु इनफ्लुएंस योरसेल्फ। हाउ टु इनफ्लुएंस अदर्स, कैसे दूसरों को प्रभावित करें। लेकिन कैसे स्वयं को प्रभावित करें? कैसे स्वयं को जानें? उसमें कुछ रस ही नहीं है किसी को। कारण क्या होगा?

एक भ्रांति है हमारे मन में कि स्वयं को तो हम जानते ही हैं। रह गया दूसरा, वह अनजाना है, उसे जानना है। इस भ्रांति को तोड़ना जरूरी है। आप स्वयं को नहीं जानते हैं; दूसरे को भला थोड़ा-बहुत जानते हों, अपने को बिल्कुल नहीं जानते। लेकिन तब एक और अजीब घटना घटती है। जो अपने को ही नहीं जानता, वस्तुतः क्या वह दूसरे को जान सकेगा?

यह जरा और गहरे में उतरने की बात है। जो अपने को ही नहीं जानता, उसको दूसरे का भी जानना कितना सार्थक और अर्थपूर्ण हो सकता है। जिसकी अपने संबंध में भी कोई अनुभूति नहीं है, उसकी दूसरे के संबंध में जो भी जानकारी होगी, वह भी छिछली ही होगी। वह भी दूसरे के गहरे में तो प्रवेश नहीं कर पाएगा।

उसके आस-पास घूम सकता है, उसके संबंध में कुछ जान सकता है; उसको नहीं जान सकता। उसका चेहरा कैसा है, जान सकता है; उसकी आंखें कैसी हैं, जान सकता है; उसका व्यवहार कैसा है, जान सकता है।

आधुनिक मनोविज्ञान में एक स्कूल का नाम बिहेवियरिस्ट है, व्यवहारवादी। इन मनोवैज्ञानिकों की धारणा है कि आदमी के पास आत्मा जैसी कोई चीज नहीं; सिर्फ उसका व्यवहार ही सब कुछ है, भीतर कुछ है ही नहीं। बस वह बाहर जो करता है उसी के जोड़ का नाम आत्मा है। तो अगर आप आदमी का पूरा व्यवहार जान लें तो व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपने आदमी को जान लिया। आप क्या करते हैं, वही आप हैं। अगर आपके करने को पूरा समझ लिया तो बात खत्म हो गई। भीतर कुछ है ही नहीं। अगर ठीक से समझें तो ईश्वर का इनकार करना इतनी बड़ी नास्तिकता नहीं है जितनी बड़ी नास्तिकता व्यवहारवाद है। क्योंकि वह यह कह रहा है कि सिर्फ कृत्य, जो आप कर रहे हैं।

लेकिन ऐसा मत सोचना कि व्यवहारवादी कोई नई धारणा है। आप में से सौ में से निन्यानबे लोग व्यवहारवादी हैं। आप भी व्यक्ति को उसके कृत्य से पहचानते हैं, और तो कोई पहचान नहीं है। आप देखते हैं एक आदमी चोरी कर रहा है, इसलिए चोर है; और एक आदमी पूजा कर रहा है, इसलिए संत है। आप भी देखते हैं कि क्या कर रहा है। क्या है, यह तो दिखाई पड़ता नहीं। चोर के भीतर क्या है, यह तो दिखाई पड़ता नहीं। संत के भीतर क्या है, यह तो दिखाई पड़ता नहीं। चोर चोरी कर रहा है, यह दिखाई पड़ता है। संत प्रार्थना कर रहा है, यह दिखाई पड़ता है। और हो सकता है संत प्रार्थना करते समय चोर हो और चोर चोरी करते समय संत हो। लेकिन वह बड़ी मुश्किल बात है। वह पहचानना बहुत कठिन है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। तो उसने एक रात, जब कि चिकित्सक कह चुके कि अब कल सुबह तक बचना बहुत मुश्किल है, परमात्मा से प्रार्थना की कि मैंने जिंदगी भर प्रार्थनाएं कीं, कभी कोई पूरी नहीं हुई; अब यह आखिरी वक्त भी करीब आ गया; एक आखिरी प्रार्थना तो कम से कम पूरी कर दो! और वह प्रार्थना यह है कि मरने के पहले मुझे देखने मिल जाए स्वर्ग और नरक, ताकि मैं तय कर सकूं कि कहां जाना उचित है।

वह आदमी बुद्धिमान था; सब कदम सोच-समझ कर उठाने चाहिए।

नींद लगी और उसने देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है। प्रार्थना पूरी हो गई है, स्वीकृत हो गई है। उसने भीतर प्रवेश किया। वह देख कर बड़ी मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि जैसा सुना था, शास्त्रों में पढ़ा था कि वहां शराब के चश्मे बहते हैं और अप्सराएं और सुंदर स्त्रियां और कल्पवृक्ष जिनके नीचे बैठ कर सभी इच्छाएं तत्क्षण पूरी हो जाती हैं, वे वहां कुछ भी दिखाई न पड़े। और बड़ा सन्नाटा था, बड़ा बेरौनक सन्नाटा था। और लोग कुछ भी नहीं कर रहे थे। कोई ध्यान कर रहा था, कोई पूजा कर रहा था, कोई प्रार्थना कर रहा था, जो कि बड़ी घबड़ाने वाली बात थी। चौबीस घंटे, उसने लोगों से पूछा कि क्या बस यही यहां होता रहता है? बस यहां तो कोई पूजा करता रहता है, कोई प्रार्थना करता रहता है, कोई ध्यान करता रहता है, कोई शीर्षासन करता है, कोई साधना। बस यही चलता है स्वर्ग में?

तो उसने कहा कि अच्छा हुआ, सोचा मन में कि परमात्मा से पहले ही पूछ लिया; यह तो बड़ा खतरनाक स्वर्ग मालूम होता है। नरक! स्वर्ग हट गया आंख के सामने से, दूसरा द्वार खुला। और वह नरक के सामने खड़ा है। द्वार खुलते ही ताजी हवाएं, संगीत का स्वर, नृत्य; देखा तो स्वर्ग तो यहां था। उसने कहा कि बड़ा धोखा चल रहा है जमीन पर। बड़ा राग-रंग था, बड़ी मौज थी। उसने सोचा कि अच्छा हुआ जो पहले ही पूछ लिया; स्वर्ग तो यहां है।

फिर उसकी नींद लग गई और सुबह वह मर गया। मर कर जब उसकी आत्मा यम के दफ्तर में पहुंची तो वहां पूछा गया कि नसरुद्दीन, कहां जाना चाहते हो? नसरुद्दीन मुस्कुराया; यम भी मुस्कुराया। नसरुद्दीन मुस्कुराया कि तुम मुझे धोखा न दे सकोगे, मैं तो देख चुका हूं कि कहां जाना है। और नसरुद्दीन ने समझा कि यम इसलिए मुस्कुरा रहा है कि मुझे कुछ पता नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं नरक जाना चाहता हूं। फिर भी यम मुस्कुराता रहा। तब उसे जरा बेचैनी हुई कि बात क्या है। उसने कहा कि सुना, मैं नरक जाना चाहता हूं। यम ने कहा कि निश्चित, तुम नरक जाओ। मगर यह कोई अनूठी बात नहीं है; अक्सर लोग नरक ही जाना चाहते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, अनूठी बात नहीं है!

फिर नरक भेज दिया गया। जैसे ही नरक के द्वार पर प्रवेश किया तो बड़ा हैरान हुआ, चार शैतान के शिष्यों ने उस पर हमला बोल दिया। उसकी मार-पिटाई शुरू हो गई। वे उसे घसीटने लगे एक कड़ाहे की तरफ जहां आग जल रही थी। उसने कहा कि अरे, और अभी आधी रात की ही बात है, और जब मैं आया था। यहां तो सब हालत बदल गई। यह तो फिर वही जो पुराने ग्रंथों में लिखा है, वही हो रहा है। तो शैतान ने कहा कि जब तुम आए थे पहली दफा, यू हैड कम एज ए टूरिस्ट, तब आप एक अतिथि-यात्री की तरह आए थे। तो वह इतना हिस्सा हमने आप लोगों को देखने के लिए बना रखा है। यह असली नरक है।

आदमी जो व्यवहार से दिखाई पड़ रहा है, वह असली आदमी नहीं है; वह आपको दिखाने के लिए उसने बना रखा है। वह जो आप कर रहे हैं, वह आप असली नहीं हैं। उस करने में दूसरे पर ध्यान है। पूजा कर रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं, तप कर रहे हैं, यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं; आप जो भी कर रहे हैं, वह आपका असली हिस्सा नहीं है। करने में तो धोखा दिया जा सकता है। व्यवहार आत्मा नहीं है। और दूसरे को तो धोखा दे ही सकते हैं, अपने को धोखा दे सकते हैं। क्योंकि करते-करते आपको भी भरोसा हो जाता है कि जो मैंने किया है वही मैं हूं। लोग अपने कर्मों के जोड़ को अपनी आत्मा समझ लेते हैं। कर्मों का जोड़ आत्मा नहीं है। कर्मों का जोड़ तो आत्मा पर पड़ी धूल है। वह गंदी हो सकती है, वह सुगंधित हो सकती है, यह दूसरी बात है। लेकिन वह धूल है जो इकट्ठी हो गई है।

यह जो आप दूसरे के संबंध में जानते हैं वह भी दूसरे को जानना नहीं है; वह भी दूसरे का व्यवहार जानना है। लेकिन इस जानकारी का नाम लाओत्से कहता है विद्वत्ता है। विद्वान होने से बचना और विद्वान होने से सावधान रहना! अज्ञानी भी सुने गए हैं कि पहुंच गए अंतिम सत्य तक, लेकिन विद्वान कभी नहीं सुने गए। और विद्वान भी तभी पहुंचता है जब वह पुनः अज्ञानी होने का साहस जुटा लेता है।

"और जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी।"

स्वयं को जानना क्या है? किसी भी कृत्य से इसका संबंध नहीं है, क्योंकि सभी कृत्य बहिर्मुखी हैं। आप जो भी करते हैं वह बाहर जाता है। कोई करना भीतर नहीं लाता। कृत्य मात्र बाहर जाते हैं। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है ऐसे कृत्य बाहर की तरफ बहता है। वह कृत्य का स्वभाव है। तो आप जो भी करते हैं उससे स्वयं का ज्ञान न होगा। ऐसा कोई क्षण आपको खोजना पड़ेगा जब आप कुछ भी नहीं करते; उसी का नाम ध्यान है। ऐसा क्षण जब आप कुछ नहीं करते, मात्र होते हैं, जस्ट बीइंग, सिर्फ होते हैं। अगर इतना सा शब्द आपके ख्याल में आ जाए, सिर्फ होना, और आप एक क्षण को भी चौबीस घंटे में इस होने की तलाश कर लें, जब आप कुछ भी नहीं करते, न शरीर कुछ करता है, न मन कुछ करता है; आप सिर्फ होते हैं। श्वास चलती है; शरीर में खून बहता है; वह आपको नहीं करना होता।

ध्यान रहे, जो आपके बिना किए होता है वह होता रहेगा। खून बहता रहेगा, पाचन चलता रहेगा, श्वास चलती रहेगी, हृदय धड़कता रहेगा, उसमें आपको कुछ करना भी नहीं पड़ता। ऐसे भी आप कोई हृदय को धड़काते नहीं, खून को चलाते नहीं; वह चल रहा है। वह प्रकृति का हिस्सा है। जो प्राकृतिक है वह आपके भीतर चलता है। और जो-जो आपने निर्मित किया है वह सब बंद हो जाता है।

उस मौन क्षण में आपको पहली दफा अपने से परिचय होता है। उस परिचय के लिए आंखों की कोई जरूरत नहीं, हाथों की कोई जरूरत नहीं, कानों की कोई जरूरत नहीं। उस परिचय के लिए किसी इंद्रिय की कोई जरूरत नहीं। वह परिचय अतींद्रिय है। उस परिचय के लिए मन की भी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि मन भी बाहर की व्यवस्था रखने का उपाय है। बाहर कुछ भी करना हो तो मन की जरूरत है। भीतर कुछ भी, मन की जरा भी जरूरत नहीं है। मन हमारा दूसरे से संबंध है। दूसरे से हमारा जो संबंधों का जाल है उसकी फैकल्टी, उसका यंत्र है हमारे भीतर मन। स्वयं से तो कोई संबंध का सवाल ही नहीं उठता। वहां तो दो नहीं हैं जहां संबंध की जरूरत हो। वहां तो अकेले ही हम हैं--असंग, असंबंधित, अकेले। महावीर ने उस अवस्था को कैवल्य कहा है अकेलेपन की वजह से, कि वहां सिर्फ अकेलापन है, वहां कोई भी नहीं है जिससे संबंधित हुआ जा सके।

इस कैवल्य के क्षण में, जब सारा कृत्य बंद हो गया हो, सिर्फ प्राकृतिक क्रियाएं चल रही हों और आप सिर्फ हों, क्या होगा? अनूठी घटनाएं घटती हैं। क्योंकि इस क्षण में भविष्य समाप्त हो जाता है, अतीत विलीन हो जाता है; सिर्फ वर्तमान रह जाता है। इस कृषण में, दूसरों ने जो भी आपके संबंध में कहा है, वह सब खो जाता है। इस क्षण में, जो भी आपने शास्त्रों से, अन्यों से जाना है, वह सब विलीन हो जाता है। इस क्षण में तो आप जीवन-ज्योति के साथ ही होते हैं। इस समय, आत्मा क्या है, यह सोचना नहीं पड़ता; क्योंकि सोचना तो तभी पड़ता है जब आप जानते नहीं। सोचते हम उसी संबंध में हैं जिसे हम नहीं जानते। इस संबंध में तो साक्षात्कार होता है, इस क्षण में तो हम आमने-सामने होते हैं।

यह जो आमना-सामना है, यह जो आत्म-साक्षात्कार है, लाओत्से या उपनिषद, या बुद्ध या महावीर या कृष्ण इसको ही ज्ञान का क्षण कहते हैं--मोमेंट ऑफ नोइंग। बाकी सब कचरा है। विद्वत्ता कचरा और कचरे का संग्रह है।

"जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी।"

और जब तक आप स्वयं को न जान लें तब तक जानना कि आप अज्ञानी हैं। क्योंकि यह ध्यान अगर बना रहे कि आप अज्ञानी हैं तो विद्वत्ता का उपद्रव आपके भीतर पैदा न हो पाएगा। अगर यह स्मरण बना रहे कि मुझे पता नहीं है तो पता करने की चेष्टा जारी रहेगी।

इस मुल्क में यह दुर्घटना घटी। अब उसे उलटाने का कोई उपाय नहीं है। इस मुल्क में यह बड़ी दुर्घटना घटी है, और वह यह है कि हमें जीवन के सभी सत्यों का पता है--आत्मा का, ब्रह्म का। ऐसा कुछ नहीं है जिसका हमें पता न हो। यहां हम पैदा होते हैं, श्वास हम पीछे लेते हैं, ब्रह्मज्ञान पहले मिल जाता है। यहां सभी को ब्रह्मज्ञान है। इसलिए यह मुल्क जितना अधार्मिक होता जा रहा है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लेकिन अधार्मिक होने का कारण न तो पाश्चात्य शिक्षा है, अधार्मिक होने का कारण न तो कम्युनिज्म का प्रभाव है, अधार्मिक होने का कारण कोई नास्तिकता की हवाएं नहीं हैं; अधार्मिक होने का कारण पांडित्य का बोझ है।

हर आदमी को पता है, इसलिए खोज बंद हो गई। इसलिए कोई खोज पर नहीं निकलता। आपको मालूम ही है पहले से ही, तो अब खोजना क्या है? अब खोज का कोई अर्थ ही नहीं है। उपनिषद कंठस्थ हैं, गीता

कंठस्थ है; रोज उसका पाठ चल रहा है। परीक्षा में आप उत्तीर्ण हो सकते हैं। धर्म की कोई भी परीक्षा हो, आपको असफल करना मुश्किल है। आपको सब पता ही है।

यह सब पता का जो भाव पैदा हो गया है, यह भाव खोज में बाधा बन गया है। और इससे अज्ञान की जो शुद्धता है, वह नष्ट हो गई है। अज्ञान की शुद्धता बड़ी कीमत की चीज है। अज्ञान का भाव विनम्र करता है, खोज के लिए तत्पर करता है, द्वार खोलता है। हमारे सब द्वार बंद हैं। हमारे सब बंद द्वारों पर शास्त्रों की कतार लग गई है। कोई गीता से बंद किए है, कोई कुरान से, कोई बाइबिल से। कोई महावीर की मूर्ति अटका कर दरवाजे को बंद किए हुए है कि वहां दरवाजा न खुल जाए।

लाओत्से का यह विचार ख्याल में रख लेना कि जब तक आपको स्वयं का कोई अनुभव नहीं है, तब तक सब ज्ञान व्यर्थ है। और उसको ज्ञान आप मानना मत।

"जो दूसरों को जीतता है वह पहलवान है; और जो स्वयं को जीतता है वह शक्तिशाली।"

दूसरों को जो जीतता है उसके पास शरीर की शक्ति है; स्वयं को जो जीतता है उसके पास आत्मा की शक्ति है। दूसरे को जीतना बहुत कठिन नहीं है। दूसरे के जीतने के लिए सिर्फ आपको थोड़ा ज्यादा पशु होना जरूरी है; और कुछ जरूरी नहीं है। पहलवान का मतलब है कि जो आपसे ज्यादा पाशविक है, जिसके पास शरीर जंगली जानवर का है। दूसरे को जीतने के लिए पशु होना जरूरी है। और जितनी पाशविकता आप में हो, आप उतना दूसरे को जीत सकते हैं--तोड़ने की, विध्वंस की, हिंसा की। स्वयं को जीतने के लिए बहुत मामला और है। वहां पशु की शक्ति काम न आएगी। वहां शरीर की शक्ति भी काम न आएगी। सच तो यह है कि वहां शक्ति काम ही न आएगी।

इसे थोड़ा समझ लें। क्योंकि शक्ति का उपयोग ही दबाना है। स्वयं को जीतने के लिए शक्ति काम ही न आएगी। दूसरे को जीतने के लिए शक्ति के अलावा और कुछ काम न आएगा। तो दूसरे को जीतने का जितना उपाय है वह सब शक्ति का फैलाव है। अगर हम सब तरह की शक्तियों को देखें। व्यक्ति अगर शक्तिशाली है तो दूसरों को दबाएगा, उनकी गर्दन पर सवार हो जाएगा। राज्य अगर शक्तिशाली है तो पड़ोसियों को हड़प लेगा। जिसके पास ताकत है वह गैर-ताकतवर को, कम ताकतवर को सताएगा; उसकी छाती पर सवार हो जाएगा। यह ताकत बहुत रूपों की हो सकती है। लेकिन शक्ति का स्वभाव है कब्जा करना, दबाना, सताना, डॉमिनेशन।

भीतर आत्मा को भी लोग शक्ति के द्वारा ही पाने की कोशिश करते हैं, तब मुश्किल में पड़ जाते हैं। जिस तरह पहलवान दूसरे से लड़ते हैं ऐसे ही कुछ लोग अपने से लड़ते हैं। अपने से लड़ने की जरूरत ही नहीं है। क्योंकि वहां लड़ाई का कोई सवाल नहीं है। वहां लड़ाई से कुछ भी पाया नहीं जा सकता।

आपने देखा है, जानते हैं कि लोग, साधना में लगे हुए लोग अपने शरीर को सताने में लग जाते हैं, वे अपने ही साथ पहलवानी कर रहे हैं। अगर वे साधु न होते तो शैतान होते, वे किसी और को सता रहे होते। एक कम से कम उनकी बड़ी कृपा है कि वे खुद को ही सता रहे हैं। सताते वे जरूर; उनका रस सताने में है। अब वे अपने ही शरीर पर दुश्मन की तरह हावी हो गए हैं।

ऐसे साधुओं के संप्रदाय रहे हैं जो कांटों पर लेटे हैं, अंगारों पर चल रहे हैं। ईसाइयों में एक संप्रदाय था साधुओं का जो रोज सुबह अपने को कोड़े मारेगा। और जो जितने ज्यादा कोड़े मारता, उतना बड़ा तपस्वी। एक ऐसा संप्रदाय रहा है जो जूते पहनेगा, जिनमें भीतर खीले लगे होंगे, जो पैर में छिदे रहें। कमर में पट्टा बांधेगा, उस पट्टे में खीले लगे रहेंगे, जो घाव बना दें। और जितने ज्यादा खीले वाला साधु, उतना बड़ा तपस्वी।

आपको इसमें दिक्कत होती है। लेकिन आप भी यही काम कर रहे हैं। लेकिन जिस काम से आप परिचित हैं, आदी हैं, वह आपको दिखाई नहीं पड़ता। अगर साधु मोटर में चल कर आ रहा है, खतम। पैदल चल कर आ रहा है, चरणों में आपने सिर रख दिया। आप कर क्या रहे हैं, आपको पता है? अगर साधु ठीक दोनों वक्त भोजन खा रहा है, समाप्त। आपका संबंध टूट गया। साधु भूखा मर रहा है, आप सिर पर लिए घूम रहे हैं। आप कर क्या रहे हैं? जूतों में खीले ठोक रहे हैं; कमर में। वे खीले बहुत साफ थे और ईमानदार। ये खीले बहुत बेईमान हैं, और दिखाई भी नहीं पड़ते। मगर इससे आप परिचित हो गए हैं, आदी हो गए हैं।

आप साधु को सुख में देख लें तो फौरन असाधु हो जाते हैं। साधु का दुख में होना जरूरी है। क्या कारण होगा? यह दुखवाद का क्या कारण होगा? जितना सता रहा हो साधु अपने को, उतना साधु मालूम पड़ता है। अगर अपने बाल नोच कर उखाड़ रहा है, तो लगता है कि हां, तपस्वी है। नग्न खड़ा है धूप, बरसात में, तो लगता है तपस्वी है। भूखा मर रहा है, तो लगता है तपस्वी है। जब उसके शरीर में हड्डियां-हड्डियां रह जाएं और सारा शरीर कृशकाय होकर पीला दिखाई पड़ने लगे, तब आप कहते हैं कि अब तपश्चर्या का प्रभाव! तपश्चर्या का तेज अब प्रकट हुआ! वह जो पीलापन प्रकट होता है मृत्यु के करीब, उसको आप तपश्चर्या का तेज! जब सारा शरीर मुर्दा हो जाता है, सिर्फ आंखें ही बचती हैं, तब आप कहते हैं क्या ज्योति! पर आप कर क्या रहे हैं? आपकी आकांक्षा क्या है? आप पर प्रभाव किस चीज का पड़ रहा है?

दुख का प्रभाव पड़ रहा है। कोई अपने को सता रहा है, आप उसमें रस ले रहे हैं। और चूंकि वह अपने में सताने वाला भी आपके रस में उत्सुक है, वह अपने सताने को बढ़ाए चला जाता है। क्योंकि जितना वह अपने को सताता है, उतना आपका आदर बढ़ता है, उतना उसके अहंकार की तृप्ति होती है।

एक बार आप तय कर लें कि एक महीने भर के लिए इस मुल्क में हम किसी खुद को सताने वाले आदमी को आदर नहीं देंगे, आपके सौ में से निन्यानबे तपस्वी खोजे नहीं मिलेंगे, भाग जाएंगे। क्योंकि वे आपके आदर पर जी रहे हैं। वे अपने को सता रहे हैं। ध्यान रहे, उसका पाप-कर्म आपको भी लगेगा। क्योंकि जिम्मेवार आप भी हैं। वे खुद ही अपने को नहीं सता रहे हैं, आप भी हाथ बंटा रहे हैं। वे जो भी कर रहे हैं, उसमें आप भी सहयोगी और साथी हैं। शायद आप न आदर दें तो वह उपद्रव बंद हो जाए। और अहंकार सब कुछ कर सकता है।

दूसरे से लोग लड़ते हैं, समझ में आने वाली बात है। दूसरे को जीतने का एक ही उपाय हैः उससे लड़ना और उससे ज्यादा ताकत प्रकट करना। लेकिन स्वयं को जीतने का उपाय लड़ना नहीं है। यह आप बाहर की भाषा को भीतर ला रहे हैं। और जो बाहर सफल होता है वह भीतर सफल होगा, इस भ्रांति में मत पड़ना। जो बाहर सफल होता है वह भीतर असफल होगा, क्योंकि दिशाएं बिल्कुल विपरीत हैं। और जो गणित बाहर कारगर है वह गणित भीतर बिल्कुल कारगर नहीं है।

इसलिए जो लोग बाहर की लड़ाई को अनुभव किए हैं--और हम सब अनुभव किए हैं। जन्मों-जन्मों तक जो जीवन का संघर्ष है, उसमें हमने जाना है कि ताकतवर जीतता है, कमजोर हारता है, हिंसा जीतती है; तो हम दूसरे के साथ हिंसा करते रहे हैं। फिर हमें ख्याल आता है स्वयं को जानने, स्वयं को जीतने का। कठिनाई है हमारी भाषा की, क्योंकि भाषा भी हमारी हिंसा से भरी है। हम दूसरे को जीतते हैं तो हमने भाषा में यह भी कहना शुरू कियाः स्वयं को जीतना। स्वयं को जीतना मजबूरी का शब्द है, क्योंकि और कोई शब्द नहीं है। अन्यथा यह शब्द ठीक नहीं है। क्योंकि यहां जीत का सवाल ही नहीं है। जीत का सवाल ही हिंसा और शक्ति से जुड़ा हुआ है। भीतर तो वही व्यक्ति जीतता है, या भीतर तो वही व्यक्ति सफल होता है, भीतर तो वही जानने

में पहुंच पाता है, ज्ञान में पहुंच पाता है, जो लड़ता ही नहीं, जो शक्ति का उपयोग ही नहीं करता, जो शक्ति को बिल्कुल निरुपयोगी छोड़ देता है।

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि शक्ति जब उपयोग की जाती है तो क्षीण होती है। इसलिए बाहर जो भी लड़ता है वह रोज क्षीण होता है। वह भला आज आपकी गर्दन पर सवार हो जाए, लेकिन गर्दन पर सवार होने में उसने शक्ति खोई है, क्योंकि शक्ति का उपयोग किया है। गर्दन पर सवार होने के पहले वह जितना शक्तिशाली था उतना अब नहीं है, मात्रा कम हो गई है। इसलिए अगर नीचे का आदमी, जो नीचे गिर पड़ा है, होशियार हो, तो लड़ने की जरूरत नहीं है, वह दूसरे आदमी को ही लड़ा कर हरा दे सकता है।

तो जापान में ताओ के प्रभाव में एक कला विकसित हुई है, जूडो। जूडो इस बात की कला है कि जब आप पर कोई हमला करे तो आप उसको उकसाएं कि वह हमला करे, आप उसको सब भांति उकसाएं कि वह पागल हो जाए, और आप शांत रहें। और जब वह हमला करे तो आप उसके हमले को पी जाएं। वह आपको घूंसा मारे तो आपका हाथ भी रेसिस्ट न करे, आप हाथ भी अकड़ाएं न कि उसके घूंसे को रोकना है। आप हाथ को गद्दी की तरह, तकिए की तरह बना लें कि उसका घूंसा हाथ पी जाए। जूडो की कला कहती है कि उसके घूंसे से जो ताकत आ रही थी वह आपका हाथ पी लेगा।

और यह सच है। क्योंकि जब आप हाथ को रोक लेते हैं शक्ति से, तो आपकी हड्डी जो टूट जाती है वह उसकी ताकत से नहीं टूटती, आपके रेसिस्टेंस से टूटती है। आपका जो अकड़ापन है वह तोड़ देता है। अगर आप बिल्कुल अकड़े न हों... ।

देखें, एक शराबी सड़क पर गिर पड़ता है। आप गिर कर देखें! आप हड्डी-पसली तोड़ कर घर आ जाएंगे। शराबी जरूर कोई कला जानता है जो आप नहीं जानते। क्योंकि वे कई दफे गिर रहे हैं, और कुछ नहीं हो रहा; सुबह वे फिर दफ्तर चले जा रहे हैं मजे से। न कोई हड्डी टूटी, न कोई बात हुई। आखिर शराबी कौन सी कला जानता है जो आप नहीं जानते? और वे बेहोशी में गिरे थे, उनकी ज्यादा हड्डियां टूटनी चाहिए थीं। आप होश में गिरे हैं, आपकी हड्डियां नहीं टूटनी थीं।

लेकिन जब आप होश में होते हैं तो गिरते वक्त आप रेसिस्टेंस से भर जाते हैं; आप अकड़ जाते हैं। आप बचाव की कोशिश करने लगते हैं। उस कोशिश में और जमीन की टक्कर में हड्डी टूट जाती है। शराबी को पता ही नहीं है कि वे गिर रहे हैं, कि जमीन उन पर गिर रही है, या कुछ हो रहा है। वे ऐसे गिरते हैं, इतनी सरलता से, बिना किसी विरोध के, कि जमीन उन्हें नुकसान नहीं पहुंचा पाती।

भीतर जो यात्रा है वह यात्रा बाहर की यात्रा से बिल्कुल भिन्न है। बाहर आप लड़ेंगे, आपकी शक्ति क्षीण हो रही है, आप कमजोर हो रहे हैं। आप दिखाई पड़ेंगे जीत कर कि बड़े शक्तिशाली हो गए हैं; लेकिन आप कमजोर हो गए हैं, आपने कुछ खोया है। भीतर आप शक्ति का बिल्कुल उपयोग न करें। कोई उपयोग की जरूरत भी नहीं है। शक्ति को मौजूद रहने दें, और आपकी शक्ति भीतर बढ़ती जाएगी। बिना उपयोग किए हुए शक्ति एक आंतरिक संपदा बन जाती है, और बिना उपयोग किए हुए शक्ति शांति बन जाती है। शक्ति का जो बिना उपयोग किया हुआ रूप है उसका नाम ही शांति है। शांति कोई नपुंसकता नहीं है। वह कोई कमजोरी का नाम नहीं है; वह महाशक्ति का नाम है। लेकिन जिसका उपयोग नहीं किया गया, जिसने अपना घर नहीं छोड़ा, जो अपने घर में ही विराजमान है, जो बाहर नहीं गई; जिसमें तरंगें नहीं उठीं, ऐसी झील है। महाशक्ति उपलब्ध होती है, लेकिन वह शक्ति उपयोग से उपलब्ध नहीं होती, अनुपयोग से।

इसलिए लाओत्से का सारा जोर नॉन-एक्शन पर है। वह कहता है कि तुम जितना क्रिया को शांत कर दो, उतने महाशक्तिशाली हो जाओगे। और इस महाशक्ति में स्वयं का जानना और स्वयं की जीत अपने आप घटित हो जाती है। यह कोई लड़ाई नहीं है। यह तो सिर्फ शक्ति की मौजूदगी में घट जाता है।

जैसे सूरज निकलता है और फूल खिल जाते हैं; कोई सूरज को आकर फूलों को खिलाना नहीं पड़ता। सूरज निकलता है, पक्षी गीत गाने लगते हैं; कोई एक-एक पक्षी के कंठ को खटखटाना नहीं पड़ता कि अब गीत गाओ। सूरज कुछ करता ही नहीं; उसकी मौजूदगी, और जीवन संचरित हो जाता है।

जिस दिन आपके भीतर आप सिर्फ मौजूद होते हैं--शांत मौजूद, जस्ट योर प्रेजेंस, सिर्फ उपस्थिति--आपकी उपस्थिति में जो महाशक्ति प्रकट हो जाती है, विजय घट जाती है। भीतर की विजय कोई संघर्ष नहीं है। भीतर की विजय कोई युद्ध नहीं है। भीतर की विजय कोई दमन नहीं है।

लाओत्से कहता है, "जो दूसरों को जीतता है वह पहलवान है; और जो स्वयं को जीतता है वह शक्तिशाली।"

जो दूसरों को जीतता है वह व्यर्थ ही अपनी शक्ति खो रहा है। आखिर में उसके हाथ खाली रह जाएंगे। आखिर में वह पाएगा, उसकी मुट्ठियों में सिवाय राख के और कुछ भी नहीं है। और जो स्वयं को जीत लेता है वही वस्तुतः शक्ति का उपयोग कर रहा है। उसने जीवन-ऊर्जा में जो भी छिपा था मूल्यवान, सुंदर, सत्य, वह सभी पा लिया है।

आप दो तरह का उपयोग कर सकते हैं शक्ति काः एक तो बाहर दूसरों को जीतने में और एक भीतर स्वयं को जीतने में। दोनों का गणित अलग है और दोनों का तंत्र अलग है, दोनों के काम का ढंग अलग है। बाहर शक्ति को हिंसात्मक होना पड़ता है; भीतर शक्ति को अहिंसात्मक होना पड़ता है। बाहर शक्ति विध्वंस करती है; भीतर शक्ति सृजनात्मक हो जाती है--आत्म-सृजन, स्वयं का आविष्कार।

लेकिन भाषा की मजबूरी है। हम जो बाहर के लिए उपयोग करते हैं वही भीतर के लिए उपयोग करना पड़ता है। लेकिन आप फर्क समझ लेंगे। यह कोई जीत नहीं है, क्योंकि यहां न कोई हारने को है भीतर और न कोई जीतने को है। यहां दो नहीं हैं कि हार-जीत हो सके। इसलिए जो लड़ने में लग जाता है वह द्वंद्व में पड़ जाता है। और उसका द्वंद्व उसे और भी रुग्ण कर देता है। द्वंद्वग्रस्त संन्यासी, साधक, योगी चौबीस घंटे एक ही काम में लगा है, अपने से लड़ने के काम में लगा है। इस काम में कभी भी विजय आती नहीं। कौन जीतेगा? कौन हारेगा? वहां दो नहीं हैं। और इस लड़ने में वह अपनी शक्ति खो रहा है।

इधर मैंने अनुभव किया। एक युवक मेरे पास आए। कोई दस-पंद्रह वर्ष होते होंगे। उस समय उनकी उम्र कोई पैंतीस-चालीस के बीच में रही होगी। साधक! बड़ी तीव्रता से खोज में लगे हुए! उन्होंने मुझसे पूछा कि अभी तक मैं अपने को कामवासना से रोक रहा हूं, लड़ रहा हूं, ब्रह्मचर्य को साधने की कोशिश कर रहा हूं। क्या मैं इसमें सफल हो जाऊंगा? मैंने उनसे कहा कि पैंतालीस साल तक तो सफलता का आसार रहेगा, पैंतालीस साल के बाद हार शुरू हो जाएगी। उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! मेरे गुरु ने तो मुझे कहा है कि यह थोड़े ही दिन का उपद्रव है; जवानी चली जाएगी, झंझट खत्म हो जाएगी। तो मैंने कहा कि जब तुम पैंतालीस के हो जाओ तब फिर तुम मेरे पास आ जाना।

अब वे पैंतालीस के होकर मेरे पास आए थे। वे कहने लगे कि आपने ठीक कहा था। मुसीबत बढ़नी शुरू हो गई। पूछने लगे कि मेरी समझ में नहीं आता इसका गणित क्या है? क्योंकि तीस साल में इतनी मुसीबत नहीं थी, अब पैंतालीस में उससे ज्यादा हो रही है।

तो मैंने उनसे कहा कि तीस साल में तुम्हारे पास लड़ने की शक्ति ज्यादा थी; पैंतालीस साल में कम हो गई। और जिससे तुम लड़ रहे हो वह शक्ति उतनी की उतनी है। तुम लड़-लड़ कर चुक रहे हो, कामवासना को दबा-दबा कर परेशान हो रहे हो। वह दबाने वाला कमजोर होता जा रहा है और वासना अपनी जगह पड़ी है।

पैंतालीस साल के बाद ब्रह्मचारियों को बड़ा कष्ट शुरू होता है। और असली तकलीफ तो साठ के बाद शुरू होती है। इसलिए आमतौर से लोग सोचते हैं कि अब तो साठ साल का हो गया फलां आदमी और अभी तक परेशान है! असली परेशानी ही तब शुरू होती है। क्योंकि वह दबाने वाली ताकत क्षीण हो गई; वह लड़ने वाला कमजोर हो गया; लड़-लड़ कर हार गया, थक गया। वह जो दबाता था, हार चुका है; और जिसको दबाता था, वह ताजा है। जो लोग कामवासना को भोग लेते हैं वे शायद साठ साल में कामवासना के बाहर भी हो जाएं, लेकिन जो लड़ते रहते हैं वे मरते दम तक बाहर नहीं हो पाते। क्योंकि उनकी कामवासना जवान ही बनी रहती है। वे तो बूढ़े हो जाते हैं, वे तो थक जाते हैं, टूट जाते हैं, और वासना बड़ी ताकतवर बनी रहती है। तब बेचैनी शुरू होती है, तकलीफ शुरू होती है।

लड़ कर भीतर आप सिर्फ उपद्रव कर सकते हैं, और जीवन, समय और अवसर खो सकते हैं। लड़ने का सवाल नहीं है; समझ का सवाल है। लड़ने की बात ही गलत है; द्वंद्व खड़ा करना ही गलत है। ऐसा भी सोचना कि इसे रोकना है, गलत है। क्योंकि जिसे आप रोक रहे हैं वह भी आप हैं, और जो रोक रहा है वह भी आप हैं। यह ऐसा है जैसे मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाने लगूं। कौन जीतेगा, बायां या दायां? कोई भी नहीं जीत सकता।

हां, यह हो सकता है कि मैं एक ऐसी परंपरा में पला होऊं जहां मैंने सुन रखा हो कि दायां हाथ गलत है--जहां मैंने सुन रखा हो कि दायां हाथ गलत या बायां गलत, एक ठीक है और एक गलत है--तो मैं पूरा का पूरा वजन अपना उस हाथ पर रख लूंगा जो ठीक मैंने सुन रखा है, और जो हाथ गलत है उसको वजन नहीं दूंगा। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? वह हाथ मेरा ही है। और वजन दूं या न दूं, चाहे मैं अपनी ताकत पूरी दाईं तरफ से लगाऊं तो भी बायां मेरा है, और मैं न भी लगाऊं तो कोई फर्क नहीं पड़ता। और मजे की बात यह है कि जब मैं ताकत बाएं हाथ को न दूंगा और दाएं हाथ को दूंगा, तो थोड़ी देर में दायां हाथ थक जाएगा और बायां ताजा रहेगा। क्योंकि जिसको ताकत दी गई है वही थकेगा, बायां थकेगा नहीं। और आखिर मैं पाऊंगा कि बायां जीत जाएगा। जरा सी ताकत, और बायां दाएं को नीचे कर देगा।

इसलिए ब्रह्मचर्य में लड़ने वाले लोगों पर कामवासना क्षण भर में जीत जाती है; उसमें देर नहीं लगती। भोगी को प्रभावित करना बहुत मुश्किल है। इंद्र भोगियों के पास जरा अप्सराओं को भेज कर देखे; वे बैठे अपनी सिगरेट ही पीते रहेंगे। मगर ऋषि-मुनि बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं, एकदम मुश्किल में पड़ जाते हैं। उनको हिलाने में दिक्कत ही नहीं होती। खूबी अप्सराओं की नहीं है, खूबी ऋषि-मुनियों की है। वे जिस बुरी तरह दबा कर बैठे हैं, जिससे दबाया है वह कमजोर हो गया और जिसको दबाया है वह ताकत से भरा है। और अप्सराएं भेजने की कोई जरूरत नहीं है, कोई भी स्त्री काम करेगी। और वह जो ऋषि-मुनियों को अप्सराएं बहुत सुंदर दिखाई पड़ी हैं, वे अप्सराएं सुंदर थीं, इसका पक्का सबूत नहीं है; ऋषि-मुनियों की वासना प्रगाढ़ थी, इसका सबूत है। वह प्रगाढ़ वासना किसी भी चीज को सुंदर कर देती है। स्त्री होना काफी है। प्रोजेक्शन है सौंदर्य तो, वह भीतर का प्रक्षेपण है बाहर। भोगियों के पास भेजना बहुत मुश्किल है।

इसीलिए आजकल इंद्र ने भेजना बिल्कुल बंद कर दिया है। आपको कहीं अप्सराएं दिखाई न पड़ेंगी। क्योंकि किसको भेजिए? कोई डिगाने को है ही नहीं। कोई अकड़ कर बैठा ही नहीं है जिसको हिलाना हो। लोग

इतने हिल चुके हैं कि अप्सरा को देख कर सो जाएंगे--इतने थके-मांदे बैठे हैं। भोगी भ्रष्ट नहीं होता। आपने कभी भ्रष्ट भोगी शब्द सुना है? भ्रष्ट योगी शब्द सार्थक है। कारण क्या होगा?

संघर्ष, लड़ाई की दृष्टि, अंतर-जगत में घातक है। और साधक को सावधान होने की जरूरत है कि भीतर वह लड़ना शुरू न कर दे और भीतर किसी तरह का द्वंद्व खड़ा न करे, दुश्मन खड़ा न करे। भीतर जो भी है उसे आत्मसात कर ले अपने में। कामवासना है तो भी मेरी है; क्रोध है तो भी मेरा है; जो भी है भीतर वह मैं हूं। मेरा है कहना भी ठीक नहीं, मैं हूं। और उस सबके साथ मुझे एक आत्म, एक आत्मिक संबंध; और उस सबके साथ एक गहरी मैत्री, एक आत्मीयता, एक निकटता, एक अपनापन निर्मित करना है। और जैसे-जैसे यह आत्मीयता इकट्ठी होने लगती है वैसे-वैसे वासना की जो शक्ति बाहर बहती है, वह बाहर न बह कर भीतर बहने लगती है।

अभी वासना की शक्ति बाहर बहती है, क्योंकि रस आपका बाहर है। और जब रस आपका भीतर होता है तो यही शक्ति भीतर बहने लगती है। जो वासना अभी काम बन जाती है वही वासना राम भी बन जाती है। सिर्फ अंतर है उसके बाहर और भीतर बहने का। अभी मैं दूसरे में उत्सुक हूं तो मेरी वासना की शक्ति उस तरफ बहती है। और जब मैं अपने में उत्सुक हूं और स्वयं की खोज में लीन हूं तो वही शक्ति मेरी तरफ बहने लगती है। लेकिन वह बहेगी तब जब मैत्री का एक द्वार खुला हो; वह बहेगी तब जब मैत्री की एक रेखा खिंची हो जिससे वह भीतर आ जाए। दुश्मन की तरह वह भीतर नहीं आ सकती है। दुश्मन की तरह उसके लिए कोई निमंत्रण नहीं है।

अगर कोई व्यक्ति अपनी प्रकृति की सारी शक्तियों को सहज आनंद से स्वीकार कर ले, परमात्मा की देन मान कर अहोभाव से स्वीकार कर ले, तो वह पाएगा कि वासनाओं को जीतने की जरूरत नहीं है। जीतने की बात ही फिजूल है। अपनी ही वासनाओं को खुद जीतने का क्या सवाल है? मेरी ही वासनाएं हैं। मैं उन्हें बाहर की तरफ ले जाता हूं; वे बाहर जाती हैं। मैं भीतर में उत्सुक हो गया; वे भीतर आनी शुरू हो जाती हैं। और जब अपनी ही वासनाओं की ऊर्जा भीतर की तरफ बहनी शुरू होती है और जब कामना आत्म-कामना बनती है, तब जिनको हमने आप्तकाम कहा है, उस अवस्था की उपलब्धि होती है। आप्तकाम का अर्थ हैः जिसकी सारी कामवासना अंतर्मुखी हो गई, जो अपनी कामवासना का स्वयं ही लक्ष्य हो गया, और जिसकी सारी नदियां अब किसी और सागर की तरफ नहीं जातीं, अपने भीतर के सागर में ही गिर जाती हैं।

"जो संतुष्ट है वह धनवान है; जो दृढ़मति है वह संकल्पवान है। जो अपने केंद्र से जुड़ा है वह मृत्युंजय है; और जो मर कर जीवित है वह चिर-जीवन को उपलब्ध होता है।"

जो संतुष्ट है वह धनवान है। इस वचन को हम बहुत सुनते हैं; लोकोक्ति बन गया। लेकिन हम समझते हैं, इसमें शक है। लोग समझाते हैं, वे भी समझते हैं, इसमें शक है। संतोष बड़ा धन है और संतुष्ट व्यक्ति सदा सुखी है, ऐसा हम सुनते हैं। और कोई दुखी होता है तो उसको भी हम कहते हैंः संतोष रखो; क्योंकि संतोष से बड़ा सुख मिलता है। ध्यान रहे, संतोष से सुख मिलता है, यह बात गलत है। संतुष्ट व्यक्ति सुखी होता है, यह बात सही है; लेकिन संतोष से सुख मिलता है, यह बात गलत है।

इस फर्क को आप समझ लेंगे तो इस सूत्र का रहस्य ख्याल में आ जाएगा।

संतोष से सुख मिलता है, ऐसा हम समझाते हैं। कोई दुखी है, परेशान है; हम कहते हैं, संतुष्ट रहो, संतोष से सुख मिलेगा; संतोष से बड़ा धन नहीं है। आप कह क्या रहे हैं? आप यह कह रहे हैं कि तेरे लोभ को तू संतोष की तरफ लगा; क्योंकि संतोष से सुख मिलेगा। और तू सुख चाहता है तो संतुष्ट हो जा। लेकिन ध्यान सुख पर है; पाना सुख है। और मजा यह है कि वह दुखी इसीलिए हो रहा है कि वह कोई सुख पाना चाह रहा था जो उसे

नहीं मिला है। अब उसके दुख का कारण क्या है? उसके दुख का कारण यह है कि वह सुख चाहता था कोई, जो नहीं मिला है, इसलिए दुखी है। सुख चाहने के कारण दुखी है। और हम उससे कह रहे हैं, सुख तुझे चाहिए हो तो संतुष्ट हो जा। हम संतुष्ट होने की भी बात इसलिए कह रहे हैं कि तू ताकि सुख पा सके। सुख की वासना को हम जलाए हुए हैं; उसको हम तेल दे रहे हैं; उस लौ को हम और उकसा रहे हैं। उसी के कारण वह दुखी है।

तो ध्यान रहे, संतोष से सुख मिलेगा, यह बात गलत है। हां, संतुष्ट जो है वह सुखी है, यह बात सच है। संतोष कारण नहीं है और सुख कार्य नहीं है। संतोष, सुख के बीच जो संबंध है, वह कार्य-कारण का नहीं है कि आप संतुष्ट हो जाएं तो आप सुखी हो जाएं। संतोष और सुख के बीच जो संबंध है वह वैसा है जैसा आपके और आपकी छाया के बीच है। वह कार्य-कारण का नहीं है। जहां आप हैं वहां आपकी छाया है। सुख संतोष की छाया है, उसका फल नहीं है। इसलिए जो आदमी सुखी होने के लिए संतुष्ट होगा वह न तो संतुष्ट होगा और न सुखी होगा। क्योंकि उसका ध्यान ही गलत है। सुख की जहां कामना है वहां संतोष हो ही नहीं सकता। संतोष का मतलब ही यह है कि सुख की हमारी कोई मांग नहीं है। संतोष का मतलब यह है कि जो हमारे पास है उसमें सुख भोगने की कला हम जानते हैं। इसको फर्क को समझ लें। संतोष का मतलब है सुख की कला; जहां भी हम हैं, जो भी हमारे पास है, उसमें सुख लेने की कला।

इपीकुरस यूनान का सबसे बड़ा भौतिकवादी दार्शनिक हुआ, ठीक चार्वाक जैसा। पर न तो चार्वाक को लोग समझ पाए अब तक और न इपीकुरस को समझ पाए। इपीकुरस कहता है कि सुखी रहो। हमें लगता है कि भोगवादी है। पर इपीकुरस कुछ बात ही बड़ी गजब की कह रहा है। वह यह कह रहा है कि जो भी है उसमें सुख ले लो पूरा। वही चार्वाक ने भी कहा है कि जो भी तुम्हारे हाथ में है उससे पूरा सुख निचोड़ लो; सुख को आगे पर मत टालो। क्योंकि जो समय खो जाएगा उसे तुम पा न सकोगे। और टालने की आदत अगर बन गई तो तुम टालते ही चले जाओगे, तुम कभी सुख पा न सकोगे।

संतुष्ट होने का मतलब यह है कि जो तुम्हारे पास है उससे तुम इतना सुख ले लो कि संतोष झर जाए, भर जाए। तुम टालो मत आगे। और तुम संतुष्ट होने की कोशिश करोगे ताकि कल सुख मिले, तो तुम न संतुष्ट हो सकते हो, न सुख पा सकते हो। तुम सुख आज ही पा लो; तुम संतुष्ट हो जाओगे। क्योंकि जब सुख भविष्य में नहीं होता तो असंतुष्ट होने का कारण नहीं रह जाता। भविष्य का सुख असंतुष्ट होने का कारण है। भविष्य की अपेक्षा फ्रस्ट्रेशन का, विषाद का कारण है।

इपीकुरस से मिलने यूनान का सम्राट गया था। देख कर दंग हुआ। उसने भी सोचा था, यह नास्तिक इपीकुरस! न ईश्वर को मानता, न आत्मा को मानता, सिर्फ आनंद को मानता है; बिल्कुल, निपट नास्तिक है! तो सोचा था उसने, पता नहीं यह क्या कर रहा होगा। जब वे पहुंचे वहां तो बहुत हैरान हुए। इपीकुरस का बगीचा था जिसमें उसके शिष्य और वह रहता था। सम्राट ने उसे देखा तो वह इतना शांत मालूम पड़ा जैसा कि ईश्वरवादी कोई साधु कभी दिखाई नहीं पड़ा था। वह बहुत खुश हुआ उसके आनंद को देख कर। उनके पास कुछ ज्यादा नहीं था; लेकिन जो भी था वे उसके बीच ऐसे रह रहे थे जैसे सम्राट हों।

सम्राट ने कहा कि मैं कुछ भेंट भेजना चाहता हूं। डरता था सम्राट--कि इपीकुरस से कहना कि भेंट भेजना चाहता हूं, जो भौतिकवादी, पता नहीं, साम्राज्य ही मांग ले--डरता था। तो उसने कहा, फिर भी उसने कहा कि आप जो कहें, मैं भेज दूं। तो इपीकुरस बड़े सोच में पड़ गया। उसके माथे पर, कहते हैं, पहली दफा चिंता आई। उसने आंखें बंद कर लीं; उसके माथे पर बल पड़ गए। और सम्राट ने कहा कि आप इतने दुखी क्यों हुए जा रहे हैं?

तो इपीकुरस ने कहा, जरा मुश्किल है, क्योंकि हम भविष्य का कोई विचार नहीं करते। और आप कहते हैं कुछ मांग लो, कुछ आप भेजना चाहते हैं। तो बड़ी मुश्किल में आपने डाल दिया। हमारे पास जो है हम उसमें आनंद लेते हैं, और जो हमारे पास नहीं है उसका हम विचार नहीं करते। अब इसमें मुझे विचार करना पड़ेगा, जो मेरे पास नहीं है, आपसे मांगने का।

तो उसने कहा कि एक ही रास्ता है। एक नया-नया आदमी आज ही आश्रम में भरती हुआ है। वह अभी इतना निष्णात नहीं हुआ आनंद में, उससे हम पूछ लें। मगर वह जो नया-नया आश्रम में आया था, इपीकुरस के ही आश्रम में आया था, सोच-समझ कर आया था। उसने भी बहुत सोच-समझ कर यह कहा कि आप ऐसा करें, थोड़ा मक्खन भेज दें; यहां रोटियां बिना मक्खन की हैं।

सम्राट ने मक्खन भेजा नहीं, वह मक्खन साथ लेकर आया। वह देखना चाहता था कि मक्खन का कैसा स्वागत होता है। उस दिन आश्रम में ऐसा था जैसे स्वर्ग उतर आया हो। वे सब नाचे, आनंदित हुए; मक्खन रोटी पर था! वह सम्राट अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि मुझे भरोसा नहीं आता कि मैंने जो देखा वह सत्य था या स्वप्न। क्योंकि मेरे पास सब कुछ है और मैं इतना आनंदित नहीं हूं और उस रात सिर्फ रोटी पर मक्खन था और वे सब इतने आनंदित थे!

जो है उसमें सुख लेने की कला संतोष है। संतोष का मतलब समझ लें। संतोष कोई अपने आपको समझा लेना नहीं है, कोई कंसोलेशन नहीं है, कि अपने मन को समझा लिया कि नहीं है अपने पास तो अब उसकी क्या मांग करना। जो नहीं है वह नहीं है, जो है इसी में भगवान को धन्यवाद दो। वैसे मन में लगा ही है कि वह होना चाहिए था। क्योंकि जो नहीं है, उसका भी क्या विचार करना? जो नहीं है उसका कोई विचार नहीं, और जो है उसका रस; उस रस में लीन हो जाने से संतोष जन्मता है। और संतोष सुख है, संतोष धन है।

असंतुष्ट सदा निर्धन है, उसके पास कितना ही हो; क्योंकि वह जो है उसका तो हिसाब ही नहीं रखता, वह तो जो नहीं है उसका हिसाब रखता है। तो असंतुष्ट सदा निर्धन है, क्योंकि अभाव का हिसाब रखता है, वह जो नहीं है उसका हिसाब है। संतुष्ट धनवान है, क्योंकि वह उसका ही हिसाब रखता है जो है। और जो है वह इतना है कि आपने कभी उसका हिसाब नहीं रखा, इसलिए आपको पता नहीं है।

सुना है, एक सूफी फकीर से एक युवक ने कहा कि मैं आत्महत्या कर लेना चाहता हूं, क्योंकि जिंदगी में कोई रस नहीं; मेरे पास कुछ भी नहीं है। उस फकीर ने कहा, तू घबड़ा मत। एक सम्राट से मेरी पहचान है। और जो तेरे पास है, तुझे परख नहीं, लेकिन मुझे परख है; मैं बिकवा दूंगा। उसने कहा कि मेरे पास कुछ है ही नहीं, बिकवा क्या देंगे? देखते हैं, खाली हूं बिल्कुल, झोला भी मेरे पास नहीं है जिसमें कुछ रख सकूं। उसने कहा, तू फिक्र न कर, मेरे साथ आ। वह उसे महल के दरवाजे पर ले गया। भीतर से लौट कर आया और उसने कहा कि एक लाख अगर दिलवा दूं तो क्या ख्याल है? पर उसने कहा कि बेच कौन सी चीज रहे हैं? उस सूफी फकीर ने कहा कि तेरी आंखों का सौदा कर आया हूं। सम्राट कहता है, एक लाख में खरीद लेंगे दोनों। उसने कहा, क्या कहते हैं? आंख? वह दस लाख में भी मांगता हो तो मैं बेच नहीं सकता हूं। वह सूफी फकीर कहने लगा, अभी तू कह रहा था मेरे पास कुछ है नहीं और अब तू दस लाख में आंख बेचने को तैयार नहीं है। मैं तेरा कान भी बिकवा सकता हूं, तेरे दांत भी बिकवा सकता हूं; और भी कई चीजें हैं जो मैं बिकवा सकता हूं। तू बोल, ग्राहक मेरी नजर में हैं सब तरफ। करोड़ों रुपए के ढेर लगवा दूंगा तेरे पास। उस आदमी ने कहा कि तू और खतरनाक है। इससे तो मैं मर जाता वह बेहतर था। आपसे कहां मेरी मुलाकात हो गई!

आपके पास जो है उसका आपको तब तक पता नहीं जब तक वह छीन न लिया जाए। यह बड़े मजे की बात है। आपकी आंख चली जाए, तब आपको पता चलता है आंख थी। कई लोगों को मर कर पता चलता है कि हम जिंदा थे; उसके पहले उनको पता ही नहीं चलता। जो आपके पास है वह दिखता ही नहीं, उसका हिसाब ही नहीं। वह हमारी आदत ही नहीं है।

संतोष का अर्थ हैः जो है उसका रस, उसका बोध। असंतोष का अर्थ हैः जो नहीं है उसका रस, उसका बोध। और संतोष धन है।

"और जो दृढ़मति है वह संकल्पवान है। ही हू इ.ज डिटरमिंड हैज स्ट्रेंग्थ ऑफ विल।"

जो निश्चय करने की क्षमता रखता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि निश्चय क्या है। निश्चय की क्षमता! आपके पास बिल्कुल निश्चय की क्षमता नहीं है। अगर आप यह भी निश्चय करें कि इस अंगुली को पांच मिनट तक सीधा रखेंगे, आप हजार दफे हिला लेंगे। इतना भी कि एक दो मिनट मैं आंख खुली रखूंगा, तो बस आंख जवाब देने लगेगी। आप हजार कारण निकाल लेंगे और आंख को झपका लेंगे।

डिसीसिवनेस! कि कोई निर्णय लिया तो उस निर्णय को टिकने देना। निर्णय के टिकने देने में आप इकट्ठे होते हैं; संकल्प पैदा होता है। सच कहें तो आत्मा पैदा होती है। चाहे वह कितना ही छोटी बात क्यों न हो; छोटी और बड़ी बात का सवाल नहीं है। जब आप किसी बात पर एक निर्णय लेते हैं--और निर्णय लेते ही विकल्प का कोई सवाल नहीं रह जाता; बात समाप्त हो गई; अब लौटने का कोई उपाय न रहा। ऐसी भाव-दशा में आप इकट्ठे हो जाते हैं; आप टूट नहीं सकते।

लेकिन अभी आप छोटा सा भी निर्णय लेते हैं, तो जब आप निर्णय ले रहे हैं तब भी आप भलीभांति जानते हैं कि यह चलने वाला नहीं है। यह बड़े मजे की बात है! जब आप ले रहे हैं तब भी आप जानते हैं कि यह चलने वाला नहीं है। यह जो भीतर से कह रहा है कि चलने वाला नहीं है, यही उसको मिटाएगा, यही उसको तोड़ेगा।

सुना है मैंने कि विवेकानंद का एक प्रवचन एक बूढ़ी औरत ने सुना। वह भागी हुई घर गई। क्योंकि विवेकानंद ने बाइबिल का एक वचन उद्धृत किया था और कहा था कि फेथ कैन मूव माउंटेन्स, विश्वास से पहाड़ भी हटाए जा सकते हैं। उस बूढ़ी औरत के मकान के पीछे एक पहाड़ी थी। तो उसने सोचा कि हद हो गई, अब तक इसका अपने को पता ही नहीं था। अगर विश्वास से पहाड़ी हटाई जा सकती है, हटाओ इस पहाड़ी को! वह भागी हुई घर पहुंची। उसने खिड़की से आखिरी बार पहाड़ी को देखा, क्योंकि फिर जब प्रार्थना कर चुकेगी तो पहाड़ी हट चुकी होगी। फिर उसने खिड़की बंद की और प्रार्थना की, और फिर उठ कर देखा, पहाड़ी वहीं की वहीं थी। उसने कहा, हमें पहले से ही पता था कि ऐसे कहीं कोई पहाड़ियां हटती हैं!

पहले से ही पता था! तो फेथ का क्या मतलब होता है? और मैं आपसे कहता हूं, पहाड़ी हट सकती थी; उस बूढ़ी औरत के कारण ही न हटी। भीतर, निश्चित ही, श्रद्धा पहाड़ को हटा सकती है; पहाड़ों से भी बड़ी चीजें हैं, उनको हटा सकती है। लेकिन श्रद्धा का मतलब होता हैः एकजुट, एक भाव; जहां कोई द्वंद्व नहीं भीतर, जहां कोई दूसरा स्वर नहीं। ध्यान रखना, वह जो दूसरा स्वर है वह उपद्रव है। जब आप किसी के साथ विवाह कर रहे हैं तब भी आप भीतर तलाक का फार्म भर रहे हैं। जब आप किसी से प्रेम कर रहे हैं तब भी आपको पता है कि आप जो कह रहे हैं यह सच नहीं हो सकता; यह है नहीं। मित्रता का एक हाथ बढ़ा रहे हैं और दूसरा हाथ दुश्मनी के लिए तैयार रखा हुआ है। टूटे हुए हैं, खंड-खंड हैं। यह खंडित व्यक्तित्व जो है, यही दरिद्रता है। अखंड व्यक्तित्व समृद्धि है।

"जो दृढ़मति है वही संकल्पवान है। और जो अपने केंद्र से जुड़ा रहता है वह मृत्युंजय है।"

जिसने अपने केंद्र के साथ अपना संबंध स्थापित कर लिया, नहीं टूटने दिया, जिसकी जड़ें नहीं उखड़ीं स्वयं के केंद्र से, उसकी कोई मृत्यु नहीं है। क्योंकि मृत्यु केवल परिधि की है, केंद्र की मृत्यु नहीं है। मृत्यु केवल आपके व्यक्तित्व की है, आपकी कभी भी नहीं है। मरते हैं आप इसलिए कि आप जिससे अपने को जोड़े हैं वह मरणधर्मा है। और जो आपके भीतर अमृत है उस पर आपका कोई ध्यान नहीं है।

यह जो स्वयं की अंतर्यात्रा है--विद्वत्ता को अलग करें, ज्ञान को ध्यान में लें; दूसरे को जीतने की चिंता छोड़ें, स्वयं की विजय की यात्रा पर निकलें; धन धन में नहीं, संतोष में है, और संकल्प में है, निर्णयात्मक बुद्धि में है, आपकी आत्मा में है, ऐसी दृष्टि हो और ऐसी यात्रा हो--तो आप अपने केंद्र से पुनः जुड़ जाएंगे। जुड़े ही हुए हैं। स्मरण आ जाएगा, प्रत्यभिज्ञा हो जाएगी। और उस प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है कि आप मृत्युंजय हैं।

"और जो मर कर जीवित है वह चिर-जीवन को उपलब्ध होता है।"

और आपको अपनी परिधि पर मरना होगा, तो ही आप अपने भीतर छिपे चिर-जीवन को जान सकेंगे। आपको अपनी इंद्रियों से मरना होगा, तो आप अपने अतींद्रिय जीवन को जान सकेंगे। आपको अपने मन में मरना होगा, तो आप अपने आत्मा के अमृत को जान सकेंगे।

जीसस ने कहा है, जो बचाएगा अपने को वह खो देगा, और जो खोने को राजी है उसको मिटाने का कोई भी उपाय नहीं है।

मरने की कला भी सीखनी चाहिए, तो ही हम जीवन के परम रहस्य को जान पाते हैं। मरने की कला का अर्थ है परिधि पर, बाहर, दूसरों की तरफ से मर जाना। सिर्फ एक ही बिंदु जीवन का रह जाए, वह मेरे भीतर के चैतन्य का केंद्र, और सब तरफ से मैं अपने को समेट लूं और मर जाऊं। एक क्षण को भी यह घटना घट जाए कि बाहर की दुनिया समाप्त हो गई, सब मर गया, सब मरघट है, और सिर्फ मेरी एक ज्योति जलती रह गई, फिर मेरे लिए मृत्यु नहीं है। फिर मैं वापस लौट आऊंगा, इस मुर्दों की दुनिया में वापस आ जाऊंगा, लेकिन फिर मैं मरने वाला नहीं। एक क्षण का भी अनुभव हो जाए स्वयं के स्रोत का तो अमृत उपलब्ध हो गया।

अमृत की खोज लोग करते हैं कि कहीं अमृत मिल जाए! कहीं पारे में छिपा हो, किसी रसायन में छिपा हो। एक बूढ़े सज्जन को मैं जानता रहा हूं। जैसे-जैसे उनकी मौत करीब आती है वे और पगलाते जाते हैं। वे जब भी मुझे मिलने आते थे बस वह एक ही उनकी बात थी कि अमृत जैसी कोई चीज है? किस रसायन-विधि से आदमी सदा जीवित रह सकता है, वह बताइए।

मैं उनको कहा कि आपको तो मरना ही होगा। क्योंकि जिस जगह आप अमरत्व खोज रहे हैं वहां तो मृत्यु ही है। कोई रसायन-विधि अमरत्व नहीं दे सकती है। लंबाई दे सकती है जिंदगी को, अमरत्व नहीं दे सकती है। और लंबाई से कुछ हल नहीं होता; लंबाई से मुसीबत बढ़ती है। क्योंकि जितनी लंबाई होती है उतनी ही मौत ज्यादा दिनों तक पीछा करती है। जो आदमी एक ही साल की उम्र में मर गया, उसको शायद मौत का पता ही नहीं। लेकिन जो आदमी सौ साल में मरेगा, उसने सौ साल मौत को अनुभव किया। सौ साल डरा, बामुश्किल मर रहा है।

आपको पता है, अभी अमरीका में उन्होंने एक सर्वे किया। तो उन्होंने देखा कि पैंतीस साल की उम्र में सौ आदमियों में से केवल बीस आदमी आत्मा की अमरता में भरोसा करते हैं। सौ में से केवल बीस, पैंतीस साल की उम्र में! पचास साल की उम्र में सौ में से चालीस भरोसा करते हैं। सत्तर साल की उम्र में सौ में से अस्सी भरोसा करने लगते हैं। और सौ साल के ऊपर उन्हें जितने आदमी मिले उनमें एक भी आदमी नहीं मिला जो आत्मा की

अमरता में भरोसा न करता हो। जैसे-जैसे मौत डराने लगती है, वैसे-वैसे आत्मा अमर है, ऐसा भरोसा आदमी करने लगता है। पैंतीस साल की उम्र में अकड़ होती है; मौत का कोई भय नहीं होता। सौ साल में सभी की कमर झुक जाती है; मौत काफी प्रगाढ़ हो जाती है।

मैं उनको कहता था कि आप बाहर मत खोजें; बाहर खोजने से कोई कभी अमृत को उपलब्ध नहीं होता। अमृत जरूर मिल सकता है, लेकिन वह रसायन में नहीं है। वह किसी वनस्पति में नहीं छिपा है। और वह किसी अल्केमी की कला में नहीं छिपा है। अमृत जरूर उपलब्ध है, लेकिन वह स्वयं के भीतर है, और वह उसे उपलब्ध होता है जो मर कर जीवित है, जो बाहर की परिधि पर मर जाता है और सिर्फ भीतर के जीवन में जीता है।

"वह चिर-जीवन को उपलब्ध होता है।"

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

सड़सठवां प्रवचन

सारा जगत ताओ का प्रवाह है

Chapter 34

The Great Tao Flows Everywhere

The Great Tao flows everywhere,
(Like a flood) it may go left or right.
The myriad things derive their life from it,
And it does not deny them.
When its work is accomplished,
It does not take possession.
It clothes and feeds the myriad things,
Yet does not claim them as its own.
Often (regarded) without mind or passion,
It may be considered small.
Being the home of all things, yet claiming not,
It may be considered great.
Because to the end it does not claim greatness,
Its greatness is achieved.

अध्याय 34

महान ताओ सर्वत्र प्रवाहित है

महान ताओ सर्वत्र प्रवाहित हैय
;बाढ़ की तरहद्ध यह बाएं.दाएं सब ओर बह सकता है।
असंख्य वस्तुएं उसी से जीवन ग्रहण करती हैंय
और यह उन्हें अस्वीकार नहीं करता।
जब उसका काम पूरा होता हैए तब वह उन पर स्वामित्व नहीं करता।
असंख्य वस्तुओं को यह वस्त्र और भोजन देता हैए
तो भी उन पर मालकियत का दावा नहीं करता।

प्रायः यह चित्त या वासना से रहित हैए
इसलिए तुच्छ या छोटा समझा जा सकता हैय
फिर सभी चीजों काए उन पर बिना दावा किएए आश्रय होने के कारणए
वह महान भी समझा जा सकता है।
और चूंकि अंत तक वह महानता का दावा नहीं करताए
इसलिए उसकी महानता उपलब्ध है।

ईश्वर को कहां खोजेंघ् कहां उसका मंदिर हैघ् सत्य की कहां हो तलाशए किस दिशा मेंघ्

हजारों वर्षों से आदमी पूछता रहा हैए खोजता रहा हैए सोचता रहा है। और बहुत सी दिशाएं भी तय की गईय बहुत से स्थान भी तय किए गएय बहुत से मंदिरए बहुत से तीर्थ निर्मित हुए। उनमें संघर्ष भी रहा कि ईश्वर की खोज कहां होए कैसे हो। लाओत्से का उत्तर बहुत अनूठा है।

लाओत्से कहता हैए जो किसी दिशा में खोजता है सत्य को वह सत्य को कभी भी उपलब्ध न कर पाएगा। क्योंकि सत्य किसी भी दिशा में नहीं हैय विपरीतए सभी दिशाएं सत्य में हैं।

तो सत्य को एक दिशा में खोजने वाला भटक जाएगा। और सत्य को जो एक दिशा में खोजता है वह उस एक दिशा के कारण ही असत्य तक पहुंचेगाए सत्य तक नहीं पहुंच सकता। परमात्मा को जो मंदिर में देखता है मस्जिद के विपरीतए मस्जिद में देखता है चर्च के विपरीतए उसका परमात्मा से कोई संबंध न हो सकेगा। क्योंकि परमात्मा किसी मंदिरए किसी मस्जिद और किसी चर्च में नहीं हैय वरन सभी मंदिरए सभी चर्चए सभी गुरुद्वारेए सभी मस्जिदें परमात्मा में हैं।

इस भेद को ठीक से समझ लें तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाए।

यह पूछना ही कि परमात्मा कहां हैए गलत है। यह प्रश्न ही गलत है कि परमात्मा कहां है। और जो इसका उत्तर देता है उसे कुछ पता नहीं। और जो भी उत्तर दिए जाएंगे वे गलत होंगेय क्योंकि गलत प्रश्न का उत्तर गलत ही हो सकता है। परमात्मा कहां हैए यह बात व्यर्थ है पूछनीय क्योंकि सभी कुछ परमात्मा में है। कहां तो हम उसके लिए पूछ सकते हैं जो सभी कुछ को न घेरता हो। सभी कुछ का जो जोड़ है उसको हम इशारा करके बता नहीं सकते कि वह कहां है। परमात्मा को बताना हो तो मुट्ठी बांध कर बता सकते हैंय अंगुली के इशारे से नहीं बता सकते। क्योंकि वह सब जगह है। समग्र अस्तित्व का नाम ही परमात्मा है।

लाओत्से इसीलिए परमात्मा शब्द का प्रयोग भी नहीं करता। क्योंकि परमात्मा शब्द का प्रयोग करते ही मूर्ति निर्मित होती हैए व्यक्तित्व निर्मित होता हैए और परमात्मा एक व्यक्तिए एक पर्सन की भांति हमारे ख्याल में उतरने लगता है। और व्यक्ति तो सब जगह नहीं हो सकताय व्यक्ति तो कहीं होगाए किसी जगह होगाए किसी स्थान में होगा। इसलिए लाओत्से परमात्मा शब्द का उपयोग पसंद नहीं करता। वह कहता हैए ताओ या धर्म। और धर्म लाओत्से की धारणा में वैसा ही है जैसा आकाश। आप नहीं पूछ सकते आकाश कहां हैय या कि पूछ सकते हैंघ् अच्छा होगा पूछना कि हम पूछें कि आकाश कहां नहीं हैघ् जहां भी आप देखेंगे वहां आकाश है। आप भी आकाश में खड़े हैं। आपकी श्वासें भी आकाश में चल रही हैं। इसलिए आकाश को कोई इशारा करके बताएगा तो गलती होगी। आकाश सब जगह हैय सभी कुछ आकाश में है। और आकाश किसी में भी नहीं है।

ताओ या धर्म सभी को घेर लेने वाले अस्तित्व का नाम है।

लेकिन अड़चन है। अड़चन यह हैए खासकर धर्मशास्त्रियों कोए कि अगर परमात्मा सब जगह है तो निंदा करनी बहुत मुश्किल हो जाती हैए फिर संघर्ष खड़ा करना बहुत मुश्किल हो जाता है। अगर सभी कुछ परमात्मा है तो फिर बुरा क्या हैघ् फिर बुरा कुछ भी नहीं रह जाता। इसलिए धर्मशास्त्री भला कितना ही कहता हो कि सभी कण.कण में वही समाया हुआ हैए पर उसकी बात में ईमानदारी नहीं होती। क्योंकि वह फिर भी कहे चले जाता हैः यह गलत हैए यह बुरा हैए यह छोड़ना हैए इससे हटना हैए इससे पार होना है।

अगर परमात्मा सभी जगह है तो फिर क्या छोड़ना हैघ् परमात्मा सभी जगह हैए ऐसी जिसकी प्रतीति होए उसको छोड़ने को कुछ भी न बचा। क्योंकि जो भी छोड़ा जाएगा वह भी परमात्मा होगा। उसे पाने को भी कुछ न बचाए क्योंकि पाने को तभी कुछ होता है जब कुछ छोड़ने को होता है। उसके लिए कुछ श्रेष्ठ न रहा और कुछ निकृष्ट न रहा। उसके लिए कुछ शुभ न रहा और कुछ अशुभ न रहा। उसके लिए पूरा जीवन एकरस स्वीकृत हो गया।

इस भय के कारण कि पूरा जीवन स्वीकार करने में हमें डर लगता हैए हम परमात्मा को काट लेते हैंए और जो.जो हमें पसंद नहीं पड़ता उसे हम अलग कर देते हैं। हम अस्तित्व के दो टुकड़े कर लेते हैं। कुछ लोग अस्तित्व को दो हिस्सों में बांट देते हैं कि यह संसार है और वह मोक्ष हैए और संसार और मोक्ष को विपरीत संघर्ष में जुटा देते हैं। फिर जीवन की एक ही खोज रह जाती है कि कैसे संसार से छुटकारा हो और कैसे मोक्ष की उपलब्धि हो। इस अस्तित्व को बांटने से वासना का जन्म होता हैए वासना मिटती नहीं। नई वासना का जन्म होता है कि संसार कैसे छूटे और मोक्ष की कैसे प्राप्ति हो। और जब तक वासना है तब तक मोक्ष की कोई प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही है निर्वासनाय मोक्ष का अर्थ ही है कि अब कोई चाह न रही। इसलिए मोक्ष की चाह भी मोक्ष में बाधा है।

लाओत्से के विचार में प्रवेश के पहले ये सारी बातें ख्याल में ले लेनी जरूरी हैं। जब भी हम जगत को बांटेंगे तो वासना का जन्म होगा। सिर्फ अनबंटे जगत में वासना का जन्म नहीं होगा। या तो हम कहते हैं संसार और मोक्षए या हम कहते हैं शैतान और ईश्वर। तब हम कहते हैं शैतान बुरा है और ईश्वर भला है। तो सारे संसार की जो बुराई..हमें जो बुराई मालूम पड़ती है..वह हम शैतान पर थोप देते हैं। और जो भी हमारी धारणा में भलाई है वह हम परमात्मा पर थोप देते हैं। तब शैतान से बचना है और परमात्मा को पाना है। लेकिन वासना पैदा होगी। जहां चुनाव है वहां वासना से छुटकारा कैसे होगाघ् सिर्फ अचुनाव मेंए च्वाइसलेसनेस में वासना गिर सकती हैय उसके पहले वासना नहीं गिर सकती।

लाओत्से की बात ठीक से समझ में आ जाए तो वासना छोड़नी नहीं पड़तीय वासना का उठना ही असंभव हो जाता है। और जिस वासना को छोड़ना पड़े वह छूटेगी नहींय क्योंकि वासना को छोड़ने की कोशिश में भी आप और किसी वासना का सहारा लेंगे। जब भी आप एक वासना को छोड़ेंगे तो दूसरी वासना के सहारे छोड़ेंगे। तो एक छूट जाएगी और दूसरी पकड़ जाएगी। और तब इलाज बीमारियों से भी ज्यादा बदतर सिद्ध होते हैं। क्योंकि एक बीमारी हटती नहीं कि जिसे हमने औषधि समझी थी वह बीमारी हो जाती हैए और वह हमें पकड़ लेती है।

इसलिए संसार को छोड़ कर भागने वाला जो संन्यासी है उसका संन्यास भी एक रोग है। होगा ही। क्योंकि उसके संन्यास में समग्रता नहीं है। वह भी एक खंड हैय तोड़ करए बचा करए जबरदस्तीए आस.पास दीवालें खड़ी करके वह संन्यास को बचा रहा है। और जिस संन्यास को बचाना पड़ता हो वह मुक्ति नहीं ला सकता। और जिस संन्यास को किसी चीज के विपरीत खड़ा हो वह अपने विपरीत से जुड़ा रहता हैय वह

विपरीत का ही हिस्सा होता है। उसका प्राण अपने विपरीत में ही होता है। संसार के विपरीत जो संन्यास होगा वह संन्यास नाममात्र को होगाय वह एक नए ढंग का संसार होगा। शक्ल बदल जाएगीए व्यवस्था बदल जाएगीय लेकिन मूल रोग अपनी जगह होगा।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपनी चिकित्साए अपनी मानसिक चिकित्सा करवा रहा था। वर्षों के बाद उसके एक मित्र ने पूछा कि अब तो चिकित्सा मालूम होता है पूरी हो गईए क्योंकि तुम चिकित्सक की तरफ जाते हुए दिखाई नहीं पड़ते। क्या लाभ हुआ तुम्हेंघ्

तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी बीमारी यह थी कि मैं हर छोटी.छोटी चीज से भयभीत हो जाता..ऐसा भी नहीं कि कुछ हो रहा हो तब भयभीत होता हूंए होने की आशंका सेए हो न जाए इस कल्पना से भी भयभीत हो जाता हूं। उदाहरण के लिए मेरी हालत ऐसी थी चिकित्सा के पहले कि टेलीफोन रखा हुआ हैए तो कहीं घंटी न बजने लगेए कोई किसी से बात न करनी पड़ेए तो मैं कंपने लगता थाए घबड़ाने लगता था। और घंटी अगर बज गई तो मैं इतना घबड़ा जाता था कि मैं उठ ही नहीं सकता था अपनी जगह से।

तो उसके मित्र ने पूछाए तो अब तो तुम ठीक हो गएए अब क्या हालत हैघ्

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अब मैं इतना ठीक हो गया हूं कि अब हालत ऐसी है कि घंटी न भी बजे तो भी दिन में बीस दफे मैं फोन पर जवाब देता हूं। तब घंटी भी बजती थी तो उठ नहीं सकता थाए अब घंटी नहीं भी बजती है तो कोई फिक्र नहींए मैं तो फोन उठा कर जवाब दे ही देता हूं।

एक बीमारी से दूसरी बीमारी में चले जाना बहुत आसान है। और विपरीत बीमारी में चले जाना तो एकदम आसान है। लेकिन मूल रोग अपनी जगह खड़ा रहता है। जहां भी हम विपरीतता खड़ी करते हैं वहीं उपद्रव हो जाता है।

लाओत्से कहता हैए यह सारा जगतए यह सारा अस्तित्व ताओ का प्रवाह हैए धर्म का प्रवाह है।

यहां माया और ब्रह्मए ऐसे दो नहीं हैं। यह जो माया दिखाई पड़ रही है यह भी ब्रह्म का ही प्रवाह है। ऐसा कहना ठीक नहीं कि परमात्मा कण.कण में हैय कण.कण परमात्मा है। यह कहना भी भ्रांत है कि कण.कण में परमात्मा हैए क्योंकि तब हमने कण को अलग कर लिया और परमात्मा को ऐसे डाल दिया जैसे डब्बे के भीतर कोई किसी चीज को रख देता है। लाओत्से की दृष्टि मेंए कण.कण में परमात्मा हैए ऐसा कहना ठीक नहींय कण.कण ही परमात्मा है। यहां परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

मगर तब हमें कठिनाई होगी। क्योंकि तब हम किससे लड़ेंगेघ् और बिना लड़े अहंकार खड़ा नहीं होता। तब हम किसको जीतेंगेए किसको दबाएंगेए किसको नष्ट करेंगेघ् क्योंकि बिना लड़े अहंकार को कोई मजा नहीं होता। अगर सभी कुछ परमात्मा है तो हम एकदम खाली हो जाएंगे। हमारी सारी लड़ाई खो गई। लड़ने को कुछ भी न बचा। और हम चाहते हैं कि लड़ने को कुछ बचे। क्योंकि लड़ने में ही हमें पता चलता है कि हम हैं। जितना हम लड़ते हैं उतना हमें पता चलता है कि हम हैं। जब आपको कुछ करने को नहीं होता तब आपको ऐसा लगता है आप मिट गए।

मनसविद कहते हैं कि लोग जैसे ही अपने काम से रिटायर होते हैं उनकी दस वर्ष उम्र कम हो जाती हैय क्योंकि लड़ने को कुछ नहीं बचता। यह जान कर आप हैरान होंगे कि कुंआरे लोग कम जीते हैं बजाय पतियों केए क्योंकि उनको लड़ने को कुछ नहीं होता। यह पश्चिम में जब अभी इस सब की गणना चलती थी तो वे बहुत चकित हुए। वे सोचते थे कि कुंआरा आदमी ज्यादा जीना चाहिएए क्योंकि कोई झगड़ा नहींए कोई झंझट नहींए पत्नी.बच्चे का उपद्रव नहीं। लेकिन वे जल्दी मर जाते हैं। क्योंकि वह झगड़ा.झंझट जो है वह जिलाए रखता हैय

उससे लगता है मैं भी हूं। कभी जीतते हैंए कभी हारते हैंय लेकिन दांव चलते रहते हैं। और आदमी टिका रहता है। अगर आपको लड़ने को कुछ भी नहीं है तो आपको लगेगा आप खो गए। लड़ाई से जैसे ईंधन मिलता था।

गैर.विवाहित लोग ज्यादा विक्षिप्त होते हैं बजाय विवाहित लोगों के। नहीं होना चाहिए ऐसा। क्योंकि विवाहित आदमी कैसे विक्षिप्त होने से बचता हैए यही चमत्कार है। लेकिन गैर.विवाहित लोग ज्यादा मानसिक बीमार होते हैं बजाय विवाहित लोगों के। क्या होगा कारणघ्

मनसविद कहते हैंए वह जो संघर्ष है उससे उनके अहंकार को शक्ति बनी रहती है। रोज.रोज लड़ कर वे अपने को निखारते रहते हैंय ताजे बने रहते हैं। लड़ने को कुछ नहीं होताए आदमी ढीला पड़ जाता हैए सुस्त हो जाता है।

आप देखते हैंए जब कभी युद्ध होता है तो मुल्क में कैसी जान आ जाती है! कैसा हर आदमी तेजी से चलने लगता हैए और हर आंख में चमक मालूम होती है। लोग मर रहे हैंए और मुल्क में तेजी की लहर दौड़ जाती है। क्या कारण होगाघ् वह जो संघर्ष है वह आपको खबर देता है कि आप भी जिंदा हैय आप भी कुछ कर सकते हैं। जब कुछ संघर्ष नहीं है तो आदमी खाली हो जाता है। फिर उसे लगता है कि मैं हूं या नहींए इसका भी पता नहीं चलता। अपनी आइडेंटिटीए अपना तादात्म्य खोजना मुश्किल हो जाता है। इसलिए सारा जगत प्रतियोगिता में लगा रहता है। सच्ची प्रतियोगिताए नहीं तो हम झूठी प्रतियोगिता भी खड़ी कर लेते हैं।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा मेन कैम्फ में लिखा है कि अगर युद्ध न भी होए रहा हो तो भी किसी मुल्क को अगर जवान रहना होए तो युद्ध की आशंका को बनाए रखना चाहिएए कि युद्ध होने वाला हैए कि युद्ध होने वाला है। इस आशंका को तो बनाए ही रखना चाहिए अगर मुल्क को जवान रहना हो। असली युद्ध न हो तो नकली युद्ध की हवा। यह जो कोल्ड वार चलती है दुनिया में वह उसीलिए चलती है। क्योंकि युद्ध हमेशा चलाए रखना आसान नहीं है। लेकिन ठंडा युद्ध हमेशा चलाया जा सकता है। उससे लोग जिंदा मालूम पड़ते हैं।

आप भी अपनी जिंदगी में प्रतियोगिता खोजते रहते हैं। अगर बाजार से मन नहीं भरता तो ताश फैला कर टेबल पर बैठ जाते हैं। लड़ाई शुरूए ताश के ऊपर लड़ाई शुरू। शतरंज रख लेते हैं। अब घोड़े और हाथी असली लेकर लड़ाई पर जाना जरा मुश्किल है तो लकड़ी के घोड़े.हाथी चलाने लगते हैं। और युद्ध का पूरा मजा! आप दिन भर के थके थेए वह थकान एकदम खो जाती है। जैसे ही शतरंज बिछाई गईए वह थकान खो गई। अब आप पूरी रात टिके रह सकते हैं। कौन यह शक्ति देता है आपकोघ् यह शक्ति कहां से आती हैघ्

यह शक्ति आती है अहंकार के संघर्ष से। इसलिए आप देखते हैं कि संन्यासी के चेहरे पर जो रौनक दिखाई पड़ती है..लड़ने वाले संन्यासी के चेहरे पर..वह रौनक कुछ तपश्चर्या का कारण नहीं है। वह एक ऐसी लड़ाई में लगा हुआ है जहां अहंकार की तृप्ति की बड़ी सुविधा है। आपकी लड़ाई दो कौड़ी की है। इसलिए जब भी आप उसके पास जाएंगेए वे कहेंगेः क्या कर रहे हो! क्या इकट्ठा कर रहे हो क्षणभंगुर संपदा! इस जीवन में क्या रखा है! हमारी तरफ आओ। हम उस जीवन को खोज रहे हैं जो शाश्वत हैय हम उस संपदा की तलाश में है जो कभी नष्ट नहीं होती। वह एक बड़ी लड़ाई लड़ रहा है। उस बड़ी लड़ाई में उसमें रौनक हैए ताजगी हैय वह टिका हुआ है। लेकिन वह लड़ाई अहंकार को निर्मित कर रही है। और ध्यान रहेए अहंकार की रौनक रुग्ण हैए और अहंकार की रौनक विषाक्त है।

लाओत्से कहता है कि ताओ का प्रवाह है सब कुछय बाढ़ की भांति ताओ ही सब तरफ बह रहा है।

सभी कुछ स्वीकार करने जैसा हैय यहां अस्वीकार करने जैसा कुछ भी नहीं है। क्योंकि जो भी अस्वीकृत हो रहा है वह भी परमात्मा है। मगर इतना बड़ा हृदय चाहिए स्वीकार करने का फिर। अस्वीकार करने के लिए

तो क्षुद्र हृदय काफी है। इसलिए जो आदमी जितने छोटे हृदय का होता है उतना अस्वीकार करता रहता हैए उतना निषेध करता रहता है। यह भी ठीक नहींए यह भी ठीक नहींए यह भी ठीक नहींय इनकार करता रहता है। बहुत छोटाए संकीर्ण हृदय है।

अगर आप पूरे अस्तित्व को हां कह सकें तो ही आपको परमात्मा की प्रतीति शुरू होगी। वह कहीं छिपा नहीं हैए वह यहीं प्रकट है। वह सब जगह प्रकट है। सभी रूप उसके हैंय सभी अभिव्यक्तियां उसकी हैं। सभी घटनाओं में वह छिपा है। जिसको हम बुरा कहते हैं वह हमारी व्याख्या हैय जिसको हम भला कहते हैं वह हमारी व्याख्या है। लेकिन परमात्मा बुरे में भी है और भले में भी। क्योंकि हमारी व्याख्याएं परमात्मा को निर्धारित नहीं करतीं।

सूत्र में प्रवेश करें।

ष्महान ताओ सर्वत्र प्रवाहित हैय दि ग्रेट ताओ फ्लोज एवरीव्हेयर।ष्

सब कहीं प्रवाहित है। दो बातें हैं इसमें। एक तो सब कहींए सर्वत्रए एवरीव्हेयरय और दूसरी बातए प्रवाहित है। लाओत्से के मन में परमात्मा कोई स्टेटिक कंसेप्टए कोई ठहरी हुई धारणा नहीं हैय प्रवाहपूर्ण है।

यह भी समझने जैसा है। क्योंकि जब भी हम ईश्वर की बात करते हैं तो हमें लगता है कि कोई चीज जो ठहरी हुई हैए कोई चीज जो स्थिर हैए कोई चीज जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होताए कोई चीज जिसमें परिवर्तन की कोई संभावना ही नहीं है। क्योंकि हमारे मन में पूर्णता का अर्थ ही यह होता है कि जिसमें परिवर्तन न हो।

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि लाओत्से का अर्थ बड़ा अलग है। हमारे मन मेंए अगर हम कहें कि ईश्वर भी विकासमान हैए तो उसका तो मतलब हुआ कि वह भी अधूरा है। क्योंकि विकास तो उसी में होता है जिसमें कमी है। एक बच्चा विकसित होता हैय वह कम है अभी। एक पौधा विकसित होता हैए बड़ा होता हैय छोटा था। सब चीजें विकसित होती हैंए विकास में परिवर्तित होती हैं। लेकिन परमात्मा कैसे विकसित होगाघ् क्योंकि वह तो पूर्ण है। उसमें तो कोई हलन.चलन भी नहीं हो सकताय उसमें कोई गति और प्रवाह नहीं हो सकता।

लेकिन ध्यान रहेए अगर परमात्मा में कोई गति और प्रवाह नहीं है तो परमात्मा मुर्दा होगा। लाओत्से की दृष्टि में इस तरह की पूर्णता तो मौत का पर्याय है। आदमी तभी बढ़ना रुकता है जब मर जाता है। कोई भी चीज तभी ठहर जाती है जब उसमें और जीवन नहीं रह जाता। जीवन तो प्रोसेस हैय जीवन तो प्रवाह हैए प्रक्रिया है। जीवन कोई ठहरी हुई चीज नहीं हैय नदी की भांति है।

लेकिन परमात्मा को प्रवाह कहने में हमें बहुत डर लगेगा। क्या वह भी विकसित हो रहा हैघ् क्या वह भी गतिमान हैघ् क्या उसमें भी नया घटित हो रहा हैघ् हमारे मन में परमात्मा बिल्कुल पत्थर काए जड़ए ठहरा हुआ रूप है। संसार में गति हैय परमात्मा में कोई गति नहीं है। संसार में प्रवाह हैय परमात्मा बिल्कुल ठहरा है।

पर हमारी धारणा लाओत्से को मुर्दा लगती है। और वह कहता है कि जो ऐसा ठहरा हुआ परमात्मा है उससे इस प्रवाहपूर्ण जगत का कैसे संबंध हो सकता हैघ् ऐसा मरा हुआ जो परमात्मा है उससे इस जीवंत.गति काए इस गत्यात्मकता काए इस डायनामिज्म का क्या नाता हो सकता हैघ् लाओत्से उनको बांटता भी नहीं है। लाओत्से कहता हैए यह प्रवाह ही परमात्मा है। तब उसकी धारणा पूर्णता की बिल्कुल अलग हो जाती है। लाओत्से पूर्णता शब्द का प्रयोग पसंद नहीं करताए वह समग्रता शब्द का प्रयोग करता है।

ये दोनों शब्द बड़े अदभुत हैं। पूर्णताए परफेक्शनय समग्रताए होलनेस। पूर्णता का अर्थ होता है कि अब इसमें और कोई आगे गति की संभावना नहीं हैय सब समाप्त हो गया। समग्रता का अर्थ होता है पूरापनए टोटैलिटीय इस क्षण भी पूर्ण हैए अगले क्षण भी पूर्ण होगा। लेकिन प्रवाह है।

इसे हम ऐसा समझें। नदी को आपने देखाए गंगा कोए गंगोत्री पर। बहुत छोटी हैए बड़ी पतली धार हैय लेकिन उस क्षण भी उसका सौंदर्य समग्र है। फिर आगे बढ़ी हैय पहाड़ों को पार किया हैय हजारों और धाराएं जलधाराएं आकर मिल गई हैं। फिर मैदान में उसका विराट रूप है। वहां भी उसका सौंदर्य समग्र है। फिर सागर में गिर रही है और खो रही है। वहां भी उसका सौंदर्य समग्र है। तीन जगह आपने देखा..गंगोत्री में देखाए मैदानों में देखाए सागर में गिरते देखा। गंगोत्री में जिस गंगा को आपने देखा हैए सागर में गिरती गंगा उससे ज्यादा पूर्ण नहीं हो गई है। वहां भी समग्र थीय अपने छोटेपन में भी एक होलनेसए एक समग्रता थी।

एक बीज भी समग्र है और एक वृक्ष भी समग्र हैय लेकिन बीज की समग्रता में और वृक्ष की समग्रता में एक प्रवाह है। लाओत्से नहीं कहेगा कि वृक्ष पूर्ण हो गया और बीज अपूर्ण था। लाओत्से कहेगा कि बीज भी पूर्ण थाए वृक्ष भी पूर्ण है। बीज की पूर्णता बह कर वृक्ष की पूर्णता बन गई। और इसीलिए तो बीज वृक्ष बनेगा और वृक्ष फिर बीज बन जाएगा। नहीं तो फिर पूर्ण कैसे बीज बनेगाघ् फिर पूर्ण कैसे अपूर्ण बनेगाघ् बीज से वृक्ष जन्मता है और वृक्ष में फिर करोड़ों बीज जन्म जाते हैं। फिर वृक्षय फिर बीज। और एक समग्रता परिवर्तित होती रहती है। लेकिन प्रतिपल सब समग्र है।

बच्चा समग्र हैए और उसका अपना सौंदर्य है। और जवान भी समग्र हैए और उसका अपना सौंदर्य है। कोई जवान बच्चे से ज्यादा पूर्ण हैए यह बात अलग है। बच्चे की पूर्णता एक ढंग की हैय जवान की पूर्णता दूसरे ढंग की है। दोनों में कोई तुलना नहीं है। फिर बूढ़े की पूर्णता बिल्कुल तीसरे ढंग की है। उनमें कोई तुलना नहीं है। लेकिन तीनों अपनी.अपनी अवस्थाओं में समग्र हैं।

तो लाओत्से नहीं कहता कि बच्चे को जवान होने की कोशिश में लगना चाहिएय लाओत्से कहता है बच्चे का बचपन समग्र होना चाहिए। उस समग्रता से दूसरी समग्रता पैदा होगी। जवानी को कोई बूढ़ा होने की चेष्टा में नहीं लग जाना चाहिएय जवानी को समग्र होने की चेष्टा करनी चाहिए। होलनेसए टोटैलिटीए पूर्णता यहां कोई शिखर की भांति नहीं है। पूर्णता यहां सब कुछ हो जाना है। जो भी हो सकता है जवानए वह उसे पूरी तरह हो जाना है। इस पूर्णता से वृद्धावस्था की पूर्णता निकलेगी। और जीवन जब पूर्ण होता है तो उससे पूर्ण मृत्यु का जन्म होता है। और जीवन जब समग्र होता है तो मृत्यु भी समग्र हो जाती हैए अखंड हो जाती है। इन दोनों में फर्क को ठीक से समझ लें। ऐसा समझें कि एक फूल है। अगर हम पूर्णतावादी हैंए परफेक्शनिस्ट हैंए तो हमारी फिक्र यह होगी कि फूल सारे दूसरे फूलों के मुकाबले सबसे ज्यादा सुंदर हो जाएए सबसे ज्यादा बड़ा हो जाए।

मेरे बगीचे में एक माली था। उसके फूल हर वर्ष प्रतियोगिता में प्रथम आ जाते थे। तो मैं उसको पूछा कि तू करता क्या हैघ् तो उसने कहा कि मैं एक पौधे पर एक ही फूल को लगने देता हूंए बाकी फूलों को काट देता हूं। तो जब बाकी फूल कट जाते हैं तो वह जो बेचैन धारा जीवन की उन फूलों से प्रकट होतीए मजबूरी में एक ही फूल की तरफ प्रवाहित होगीए और एक फूल बड़ा हो जाएगा। लेकिन वह बड़ापन भी रुग्ण है। वह बड़ापन भी अपना नहीं हैए शोषित है। प्रतियोगिता में प्रथम आ जाएगाए लेकिन वह फूल समग्र नहीं है। वह दूसरे पर जी रहा हैए और प्रतियोगिता मेंए किसी दूसरे से तुलना मेंए बड़ा है।

फूल की समग्रता अलग बात है। किसी आदर्श के अनुकूल होने की जरूरत नहीं है। फूल जो भी हो सकता थाए उसके भीतर जो भी छिपा थाए वह सब खिल जाएए उसके भीतर कुछ दबा न रह जाएय यह समग्रता है।

किसी दूसरे से तुलना करने की और उसकी पूर्णता की कोई दृष्टि नहीं है। अगर आप पूर्ण होने की कोशिश में लगे हैं तो आप हमेशा सोचेंगे कि मैं बुद्ध जैसा हो जाऊंए कि महावीर जैसा हो जाऊंए कि कृष्ण जैसा हो जाऊं। अगर आप समग्र होने की कोशिश में लगे हैं तो बुद्धए महावीरए सब खो जाएंगेय तब आपकी एक ही चेष्टा होगी कि जो भी मैं हो सकता हूं वह मैं पूरा का पूरा हो जाऊंय मेरे भीतर कुछ अधूरा न रह जाए। मरते वक्त मुझे ऐसा न लगे कि कोई अंग मेरा अपंग रह गया। मरते वक्त मुझे ऐसा न लगे कि कोई फूल मुझमें खिल सकता था और नहीं खिल पायाय कोई बीज अंकुरित हो सकता थाए बीज ही रह गया। मरते समय मैं इस भाव से विदा हो सकूं कि जो भी मेरे भीतर हो सकता थाए जो भी मेरी नियति थीए वह पूरी हो गई। बुद्ध से कोई तुलना नहीं है। बुद्ध की अपनी नियति हैय वे अपने ढंग से पूरे हो गए। आपकी नियति आपकी अपनी नियति हैय आप अपने ढंग से पूरे होंगे।

लाओत्से पूर्णता के लक्ष्य को नहीं मानता। क्योंकि पूर्णता का लक्ष्य बहुत खतरनाक है। और उसमें दमन अनिवार्य है। उसमें काट.पीट जरूरी है। उसमें हिंसा होगी ही। और पूर्णता का जो लक्ष्य है उसमें दूसरे से प्रतिस्पर्धा हैय और दूसरे के साथ कलह और संघर्ष है। समग्रताए टोटैलिटीए मेरे भीतर कुछ भी अनखिला न रह जाए।

तो परमात्मा को लाओत्से एक प्रवाह मानता है..पूर्णता का प्रवाह। हजारों तरह की पूर्णताएं हो सकती हैं। जब एक फूल खिलता है तब परमात्मा फूल में पूर्ण होता है। और जब एक नदी बहती है तो परमात्मा नदी में पूर्ण होता है। और जब एक बुद्ध का व्यक्तित्व अपनी पूर्णता में आता हैए पूर्णिमा बनती है जब बुद्ध के व्यक्तित्व कीए तब परमात्मा बुद्ध में पूर्ण होता है। एक पक्षी में भी पूर्ण होता हैय एक पत्थर में भी पूर्ण होता है। अनंत पूर्णताएं हैं। क्योंकि जगत प्रवाह है। यहां पूर्णता कोई एक भी नहीं है। और एक पूर्णता अपने आप में यूनीकए अद्वितीय हैय दूसरे से उसकी तुलना का भी कोई सवाल नहीं है।

लाओत्से कहता हैए जीवन एक प्रवाह है। और इस प्रवाह को ठोसए बंधी हुई धाराओं मेंए जमे हुए शब्दों में सोचना गलत है।

इसलिए जब हम परमात्मा को सोचते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि किसी न किसी दिन परमात्मा को पा लेंगेए कब्जा कर लेंगे। लाओत्से के परमात्मा पर आप कब्जा न कर पाएंगे। आप जिस परमात्मा को सोचते हैंए आपकी धारणाएं कब्जा कर लेंगी..बांसुरी बजाने वाले कृष्ण परए धनुर्धारी राम पर..कोई एक धारणा है आपकीए उस पर आपका कब्जे का भाव है कि आप कब्जा कर लेंगेए उसको पजेस कर लेंगे। लेकिन लाओत्से के परमात्मा को आप कभी भी पजेस न कर पाएंगे। वही आपको पजेस करेगा। आप उसमें डूब जाएंगे। उसको आप मुट्ठी में न ले पाएंगे।

इसलिए लाओत्से कहता हैए परमात्मा कोए सत्य को या ताओ को हम कभी उपलब्ध नहीं कर सकते मुट्ठी मेंय हम स्वयं को उसमें लीन कर सकते हैं। वही उपलब्धि है।

तो पहली तो बात कि सब तरफ वही है। इस भाव के उठते ही निंदा खो जाती है। इस भाव के उठते ही विरोध गिर जाता है। इस भाव के उठते ही आपकी सब व्याख्याएं व्यर्थ हो जाती हैं। और अगर यह भाव मन में गहरा हो जाए तो आप अचानक पाएंगे कि जहां आपको कल बुरा दिखाई पड़ता था वहां भी अब बुरा दिखाई नहीं पड़ता।

समझें! अभी मैं एक वैज्ञानिक का जीवन भर का अनुसंधान देख रहा था। उसने पूरे जीवन दुखए पीड़ा के ऊपरए कष्ट के ऊपर काम किया है। जब भी आपको पीड़ा होती है तो आपको लगता है कि परमात्मा नहीं हो

सकता। क्योंकि इतनी पीड़ा क्यों हैघ् इसलिए जो भी हम मोक्ष की धारणा करते हैं उसमें पीड़ा को हम कोई जगह नहीं देते। असंभव। अगर मोक्ष में भी पीड़ा होती हो तो फिर काहे का मोक्षघ् पीड़ा तो यहां है। और नरक में पीड़ा ही पीड़ा है। मोक्ष में पीड़ा बिल्कुल नहीं है। और हम मध्य में हैं दोनों के। और यहां पीड़ा भी है और सुख भी हैए और दोनों के बीच हम डोल रहे हैं। जहां भी हमें पीड़ा दिखाई पड़ती है वहीं लगता है कि परमात्मा कैसे हो सकता हैघ् नास्तिकों की ईश्वर के खिलाफ जो दलीलें हैं उनमें एक यह भी है कि अगर परमात्मा है और करुणावान है और जैसा जीसस कहते हैं कि प्रेम है परमात्मा का स्वरूपए तो इतना दुख क्यों हैघ्

यह वैज्ञानिक जीवन भर दुख की तलाश कर रहा था कि दुख है क्याघ् और उसकी जीवन में उपयोगिता क्या हैघ् क्योंकि है तो उपयोगिता होगी। तो वह एक अनूठे नतीजे पर पहुंचा। कुछ ऐसे बच्चे पैदा होते हैंए बहुत कभी.कभीए जिनको संवेदन नहीं होता दुख काए जिनके शरीर के कुछ तंतु खराब होते हैं और उनको पीड़ा का अनुभव नहीं होता। आपके शरीर में कुछ तंतु हैं जो पीड़ा की खबर ले जाते हैंय वे तंतु अगर काम न कर रहे हों तो पीड़ा की खबर नहीं मिलेगी। लेकिन ऐसे बच्चे जी नहीं पातेए मर जाते हैं। क्योंकि उनके हाथ में आग लग जाए तो वे हाथ को हटाएंगे नहीं। उनको पीड़ा होती ही नहीं।

ऐसे बच्चों के संबंध में बड़ी अदभुत बात है कि वे अपने भोजन के साथ अपनी जीभ भी चबा लेते हैंए क्योंकि उनको पीड़ा होती नहीं। वे अपनी जीभ को काट कर खा जाते हैंए चबा जाते हैंय उनको पता ही नहीं चलता। क्योंकि जीभ का आपको पता जीभ के कारण थोड़े ही चलता हैए उसमें जो पीड़ा होती है उसके कारण पता चलता है। अगर आपको पीड़ा न हो जीभ की तो आप काट जाएंगे भोजन के साथय आपको पता नहीं चलेगा। ऐसे बच्चे बच नहीं पातेए क्योंकि उनको सुरक्षा का कोई उपाय नहीं है। उनको पीड़ा नहीं होतीए इसलिए वे कुछ भी उपद्रव कर सकते हैं। घर में आग लगी हो और बच्चा सो रहा हो तो निकल कर बाहर नहीं भागेगाय वह सोया रहेगा। उसे पता ही नहीं चलेगा कि वह कब जल गया।

तो इस वैज्ञानिक के जीवन भर की खोज का परिणाम यह है कि उसने कहा कि पीड़ा जो है वह जीवन के अस्तित्व के लिए बड़ी सुरक्षा है। सारी व्याख्या बदल गई फिर। जीवन हो ही नहीं सकता बिना पीड़ा के। तो पीड़ा फिर बुरी नहीं रही। फिर तो पीड़ा जीवन की भूमि हो गईय फिर तो पीड़ा शुभ हो गई। क्योंकि उसी की भूमि में जीवन का फूल खिलता है। वह उसकी सुरक्षा है। इसलिए जितना संवेदनशील व्यक्तित्व होगा उतना जीवंत होगा। यह जरा मुश्किल बात है। जितना संवेदनशील व्यक्तित्व होगाए जितनी छोटी सी भी पीड़ा का जिसे अनुभव होता हैए वह उतना ज्यादा बुद्धिमानए उतना ज्यादा चैतन्यए उतना ज्यादा जीवंत होगा।

आप कोशिश कर सकते हैं पीड़ा से बचने कीय आप तंतुओं को नष्ट कर सकते हैं। आप फकीरों को देखते हैंए लेटे हैं कांटों पर। अभ्यास से हो जाता है। वे जो तंतु पीड़ा की खबर ले जाते हैंए वे खबर नहीं ले जाते। लेकिन उसी मात्रा में वह फकीर मुर्दा हो गया। जिस मात्रा में पीड़ा पहुंचनी बंद हो गई उसी मात्रा में मुर्दा हो गया। आप प्रभावित होते हैं कि गजब का चमत्कार है कि कांटों पर लेटा हुआ है। लेकिन चमत्कार सिर्फ इतना ही है कि उसने अपने तंतुओं को जड़ कर लिया। और उन तंतुओं के जड़ होने के साथ ही उसी मात्रा में उसकी जीवन की ज्योति भी क्षीण हो गई। इसलिए कांटों पर लेटे फकीर की आंखों में आपको जीवन का दर्शन नहीं होगा। आप सिर्फ कांटे और फकीर को देख कर लौट आते हैं। उसकी आंखें भी देखें। वहां लगेगाः एक मुर्दगीए एक डेडनेसय सब कुछ मरा हुआ। वह एक लाश है।

जैसे ही आप जीवन को पूरा का पूराए एक देखना शुरू करेंगेए आपकी व्याख्याएं बदलनी शुरू हो जाएंगी।

आप जिसे प्रेम करते हैं उससे कलह भी हो जाती है। हम सब सोचते हैं कि जिससे प्रेम है उससे कलह नहीं होनी चाहिए। कैसे होगी कलहघ् अगर प्रेम है तो कलह होनी ही नहीं चाहिए। कलह है बुरीय वह घृणा का हिस्सा हैय प्रेम का कैसे हो सकता हैघ् लेकिन मनसविद कहते हैं..और ठीक कहते हैं..कि कलह दो प्रेमियों के बीच बड़ी जरूरी है। जैसे आप श्वास लेते हैं भीतर और फिर श्वास बाहर छोड़ते हैंए वह बाहर श्वास का जाना फिर भीतर श्वास लेने के लिए जरूरी है। चौबीस घंटे आप भीतर ही भीतर श्वास लेंय चौबीस घंटे बचेंगे ही नहीं। आप कहें कि भीतर ही लेंगे श्वासए बाहर नहीं लेंगे। बाहर छोड़नी पड़ती है श्वासए फिर भीतर लेते हैंय खाली हो जाते हैं।

प्रेम भी चौबीस घंटे नहीं किया जा सकताय वह भी जहर हो जाएगा। उसे छोड़ना भी पड़ता है। वह भी श्वास की तरह हैय जैसे दिन और रात हैंय जैसे बाहर आती श्वास और भीतर जाती श्वास। दो प्रेमी कलह करके दूर हट जाते हैं। दूर हटने के कारण फिर पास आने का उपाय हो जाता है। अगर वे पास ही पास बने रहें तो ऊब जाएंगे और पास होना खतरनाक होने लगेगा। और फिर वे भागना चाहेंगेए बचना चाहेंगे। दूरी जरूरी है। फिर दूरी पास आने का आकर्षण पैदा करती है। फिर पास आना सुखद मालूम होने लगता है। अक्सर दो प्रेमी लड़ कर जैसा प्रेम करते हैंए वह प्रेम बहुत ताजा होता है। बिना लड़े प्रेम करते रहते हैंए वह बासा हो जाता है। दूरी जरूरी है पास आने की ताजगी के लिए।

तब तो इसका अर्थ हुआ कि कलह की भी सार्थकता है और उसके प्रति भी दुश्मनी का भाव रखने की कोई जरूरत नहीं है। अगर यह समझ हो तो कलह भी सुखद हो गई। अगर यह समझ हो तो दूर हटना भी सारपूर्ण हो गया। और हम उसके लिए भी धन्यवाद देंगेए उसके लिए भी आभारी होंगे।

जैसे.जैसे जीवन को इस विचार से देखेंगे कि सभी तरफ परमात्मा है तो कुछ भी अशुभ हो नहीं सकता। अगर दिखाई पड़ता है तो हमारी कहीं भूल होगी। तो हम और खोजेंए और गहरे प्रवेश करेंए तो हमें पता चल जाएगा कि भूल हमारी कहां थी। और भूल गिर जाएगी। और हम अखंड जीवन का जो उत्सव है उसको पहचान पाएंगे।

ष्महान ताओ सर्वत्र प्रवाहित हैय बाढ़ की भांति बाएं.दाएं सब ओर बहता है।ष्

उसकी कोई दिशा नहीं है।

ष्असंख्य वस्तुएं उसी से जीवन ग्रहण करती हैंए और यह उन्हें अस्वीकार नहीं करता।ष्

यह समझने जैसा है। सुना है मैंनेए एक सूफी फकीर ने परमात्मा से प्रार्थना की एक रात कि उसके पड़ोस में एक आदमी है जो बाधा डालता है प्रार्थना मेंए पूजा में। उपद्रवी हैए दुष्ट हैए शैतान है पूरा का पूरा। इसे सुधार दोय क्योंकि इसके रहते पूजा.प्रार्थना ही मुश्किल हो गई है।

तो उसने अपने स्वप्न में आवाज सुनी कि उस आदमी को मैं तीस साल से स्वीकार किए हुए हूं और तुझे तो अभी तीन महीने ही इस पड़ोस में आए हुए हैं। और जिसे मैंने स्वीकार किया है उसे तुझे अस्वीकार करने की क्या जरूरत हैघ् और अगर वह पूजा में तेरीए प्रार्थना में बाधा डालता हैए तो तू उस पर ध्यान मत दे। तेरी पूजा और प्रार्थना कमजोर हैए तू उसका स्मरण कर। और जान कर ही मैंने तुझे उस पड़ोस में भेजा हैए ताकि तेरी पूजा कितनी गहरी है उसका तुझे पता चल जाए। और यह आदमी बड़ा काम का है और मेरे ही काम में लगा है।

वह फकीर बहुत हैरान हुआ। सुबह जाग कर उसको बड़ी मुश्किल हुई खड़ी। बात तो ठीक लगी। क्योंकि जगत में जो भी हो रहा हैए अगर वह परमात्मा को अस्वीकार हैए तो वह होगा ही नहीं। एक बात। वह हो कैसे

सकता हैघ् इसके तो दो ही अर्थ हो सकते हैं कि या तो परमात्मा को वह स्वीकार है और या फिर जगत में वैसा भी कुछ हो सकता है जो उसको अस्वीकार है। और अगर उसको अस्वीकार होकर भी जगत में कुछ हो सकता है तो उसकी कोई शक्ति नहीं हैय वह व्यर्थ है। और अगर उसके विपरीत भी कुछ हो सकता है तो उस नपुंसक परमात्मा को पाकर भी क्या करिएगाघ् अगर उसके विपरीत भी कुछ हो सकता है तो आप मोक्ष से भी खींचे जा सकते हैं वापस।

परमात्मा के विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए जो आपको बुरा भी दिखाई पड़ रहा हो वह भी उसकी ही मर्जी से हो रहा है। और यह प्रतीति आते ही कि उसकी मर्जी ही अस्तित्व का आधार हैए जो आपको बुराई दिखाई पड़ती है वह बुराई दिखाई पड़ेगी नहीं। वह बुराई दिखाई ही इसलिए पड़ती है कि आपको अस्वीकार है। लेकिन जब उसको स्वीकार है तो आपकी अस्वीकृति का क्या अर्थ हैघ् आप अपनी अस्वीकृति को गिरा दें।

लाओत्से कहता हैए ष्असंख्य वस्तुएं उसी से जीवन ग्रहण करती हैं।ष्

सभी कुछ उसी से जीवन ग्रहण करता है..जहर भी और अमृत भी। दोनों में उसी का जीवन हैए उसी की शक्तिए उसी की ऊर्जा है। साधु में और असाधु मेंए हत्यारे में और प्रेमी मेंए करुणावान में और कठोर में वही प्रवाहित है।

ष्और यह उन्हें अस्वीकार नहीं करता।ष्

और कोई अस्वीकृति नहीं है अस्तित्व को किसी की भी। अस्तित्व सभी को समाहित किए है।

साधक को अगर यह ख्याल आना शुरू हो जाए कि मैं भी अस्तित्व की भांति हो जाऊं और सभी कुछ समाहित कर लूंय और मेरे भीतर से भी विरोधए शत्रुता गिर जाएय और मैं न कहूं कि यह बुरा है और मैं न कहूं कि यह भला हैय और मैं कहूं कि उसकी मर्जी हैए सिर्फ इतना ही जानूं कि अस्तित्व की मर्जी है। और जब अस्तित्व की मर्जी है तो जरूर कुछ कारण होगाए गहन कारण होगा। जिसे हम भला कहते हैं वह बुरे के बिना अस्तित्व में नहीं हो सकताय उसके लिए बुरा जरूरी है। बुरा पृष्ठभूमि बनता है। जिसको हम सौंदर्य कहते हैं वह कुरूपता के बिना न होगा। वह कुरूप बादलों के बीच में ही सौंदर्य की बिजली चमकती है।

तो जहां.जहां द्वंद्व है वहां.वहां एक अनिवार्यता है। और तब अगर आप सुंदर को स्वीकार करते हैं तो असुंदर को अस्वीकार मत करें। क्योंकि वह सौंदर्य पैदा ही नहीं हो सकता असुंदर के बिना। अगर आप जीवन को अहोभाव मानते हैं तो मृत्यु को पीड़ा मत मानेंए दुख मत मानें। क्योंकि जीवन जन्मता ही मृत्यु में है। दोनों छोर पर मृत्यु हैय बीच में जीवन की थोड़ी सी लहर है। वह लहर दोनों तरफ की मृत्यु के दबाव से ही उठती है। और आप मृत्यु के विरोध में हैं तो आप आधे को स्वीकार कर रहे हैंए आधे को अस्वीकार कर रहे हैं। और वे जो दो आधे दिखाई पड़ रहे हैं वे सिर्फ आपकी दृष्टि में आधे हैंए अपने आप में वे जुड़े हैं और एक हैं। जीवन ही तो बह कर मृत्यु बन जाता हैय मृत्यु ही तो बह कर फिर जन्म बन जाती है। जो यहां लहर जीवन की है वही लहर मौत की बन जाती है।

यहां सब कुछ इकट्ठा हैय यहां बंटा हुआ कुछ भी नहीं है। यहां राम और रावण अस्तित्व में अलग.अलग नहीं हैं। रामायण में अलग.अलग हैंए अस्तित्व में एक हैं। अस्तित्व में राम और रावण एक ही चीज के दो पहलू हैंए और दोनों एक.दूसरे के सामने अड़ कर खड़े हैं। उनमें से एक भी हट जाए तो दूसरा गिर जाएगा। दूसरा खड़ा नहीं रह पाएगा। राम को सोच ही नहीं सकते रावण के बिना। रावण को हटा लें रामकथा से और रामकथा में देखने योग्य कुछ भी न रह जाएगा। सुनने योग्यए पढ़ने योग्य कुछ भी न रह जाएगा। मजे की बात

यह है कि रावण के मिटते ही राम की सारी गरिमा खो जाएगी। वह सारी गरिमा जैसे रावण से उपलब्ध हो रही है। और विपरीत भी सही है। राम को हटा लें तो रावण का कोई मूल्य नहीं रह जाता। सारा रस रावण में राम से बह रहा है। ऊपर से दिखाई पड़ते हैं वे दुश्मनय भीतर से वे गहरे मित्र हैं। अस्तित्व में जहां.जहां द्वंद्व है वहां.वहां जरा सी खोज करेंगेए जरा खोदेंगेए और भीतर मिलेगाए एक गहरी आत्मीयता बह रही है।

लाओत्से कहता है कि इस असंख्य अभिव्यक्तियों वाले जगत को वह अस्वीकार नहीं करता। लेकिन बड़े मजे का शब्द है! लाओत्से यह नहीं कहता कि वह स्वीकार करता है। वह कहता हैए अस्वीकार नहीं करता। यह बहुत सोच.समझ कर कहा हुआ वक्तव्य है। वह यह नहीं कहता कि स्वीकार करता हैए इतना ही कहता है कि अस्वीकार नहीं करता। अगर वह स्वीकार करता है तब तो आपको बदलने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता। तब तो जीवन.क्रांति और जीवन का आरोहण सब खो जाता है।

नहींए वह आपको अस्वीकार नहीं करताय लेकिन जब तक आप जीवन को रूपांतरित नहीं करते हैं तब तक आप अपने ही हाथों से उससे दूर बने रहेंगे। वह आपको स्वीकार करे तब तो आपको कुछ करने की जरूरत नहीं है। वह सिर्फ अस्वीकार नहीं करता। वह आपको मिटाता नहींए वह आपको हटाता नहींए वह आपको तोड़ता नहींए वह आपको बदलता नहींए वह आपसे कहता नहीं कि ऐसे हो जाओय आप जैसे हो उसको अस्वीकार नहीं करता। यह निगेटिव हैए यह नकारात्मक है बात।

लेकिन वह आपको स्वीकार भी नहीं करता। स्वीकार तो आप तभी होते हैं जब आप बदलते हैं और उसके निकट आते हैंय जब आप रूपांतरित होते हैं और उसके निकट आते हैं। और यह रूपांतरण की कीमिया यह है कि जब आप समग्र अस्तित्व को स्वीकार करने लगते हैं तब आप उसे स्वीकार होने लगते हैं। लेकिन स्वीकार पाजिटिव बात है। इसलिए उसका अस्वीकार न करना आपको अस्तित्व देता हैए जीवन देता हैय लेकिन जिस दिन वह आपको स्वीकार करता है उस दिन महाजीवन!

जीसस ने कहा है कि तुम जिसे जानते हो वह जीवन हैए लेकिन मैं जिस तरफ तुम्हें ले जा रहा हूं वहां तुम्हें महाजीवन..लाइफए एबनडंट लाइफय परम जीवन या दिव्य जीवनए अमृत या मुक्तिए जो भी हम नाम देना चाहें दें।

वह हमें अस्वीकार नहीं करता तो भी हम जीते हैं। उसकी अस्वीकृति में तो हम जी ही न सकेंगे। वह अस्वीकार नहीं करताए इसलिए हम जीते हैं। लेकिन अगर हम जगत को स्वीकार कर लें तो वह हमें स्वीकार कर लेता है। और उस स्वीकृति में महाजीवन उपलब्ध होता है। वह जो अभी एक चिनगारी की तरह हमारे भीतर है वह एक महासूर्य की तरह हो जाती है। वह जो अभी चैतन्य की एक छोटी सी बूंद है वह चैतन्य का एक महासागर बन जाती है।

परमात्मा आपको अस्वीकार नहीं करता हैए लेकिन इससे आप यह मत समझ लेना कि आप स्वीकृत हो गए हैं। स्वीकृत होने के लिए तो पात्र होना होगा। और इस पात्रता का पहला कदम यही है कि आप अस्वीकार करना बंद कर दें।

जीसस का एक बहुत प्यारा वचन है जिसमें उन्होंने कहा हैए जज यी नाट सो दैट यी मे नाट बी जज्ड।

तुम दूसरों का निर्णय मत करोए और तुम दूसरों के संबंध में धारणाएं मत बनाओए तुम दूसरों के न्यायाधीश मत बनोए ताकि वे भी तुम्हारे न्यायाधीश न बनें। अगर तुमने कहा कि यह बुरा हैए तुमने कहा कि यह गलत है और तुमने कहा कि यह आदमी जीने योग्य भी नहीं हैए तुमने निंदा कीए तुमने घृणा की और तुमने

अस्वीकार कियाए तो तुम अपने ही हाथों जो तुम दूसरे के लिए कर रहे हो अस्तित्व से तुम अपने लिए कर रहे हो। तुम मत करो निर्णय और तुम मत न्यायाधीश बनो।

और हम सब न्यायाधीश हैं। हम उठते.बैठते.चलते निर्णय किए चले जाते हैं। कुछ भी हम देखते हैंए और हम देख भी नहीं पाते हैं पूरा और भीतर निर्णय हो जाता है। एक आदमी को देखा नहीं कि हम सोच लेते हैं कि यह आदमी बुरा है। एक आदमी को देखा नहीं कि हम सोच लेते हैं कि यह गलती बात है। हम बड़ी जल्दी निर्णय ले रहे हैंए जैसे निर्णय हमारे लिए ही हुए हैं। कोई आदमियों को देखने की जरूरत नहींय हम पहले से ही जानते हैं कि आदमी गलत है। बस थोड़ा सा सहारा चाहिएए बहाना चाहिए। हमने सब तैयार कर रखा हैए खूंटी कहीं मिल जाएए हम टांग देंगे। हमारे निर्णय पूर्व.निर्मित हैंए और हम लोगों पर उन्हें टांगते रहते हैं।

जिस दिन आदमी अस्वीकार करना बंद कर देता है और जीवन के रहस्य को स्वीकार कर लेता हैए और जान लेता है कि जो मेरी समझ में नहीं आता वह भी अस्तित्व को तो समझ में आता ही हैए जो मुझे बुरा लगता है वह भी अस्तित्व को तो बुरा नहीं लगता इसीलिए हैए जो मुझे स्वीकार नहीं है वह भी जीवन को स्वीकार है। जीवन मुझसे बड़ा हैए मैं अपनी अस्वीकृति को हटा दूंय मैं अपने निषेध को अलग रख दूंय मैं निर्णय न लूं और मैं बिल्कुल निष्पक्ष हो जाऊंय मैं कोई पक्ष न बनाऊं। ऐसा व्यक्ति एक क्रांति से गुजर जाता है। क्योंकि जैसे ही आप ये पक्ष बनानेए धारणाएं बनानी बंद कर देते हैंण्ण्ण् ।

आपको लगता है कि चोर बुरा है। लेकिन चोर इसलिए बुरा नहीं लगता कि चोरी बुरी हैय चोर इसलिए बुरा लगता है कि आपको अपनी संपत्ति प्रिय है। उस तत्व को आप नहीं देखते कि चोर बुरा क्यों लगता है। संपत्ति प्रिय है! और इसलिए चोर का विरोध करना जरूरी है। क्योंकि आप कहते हैंए अगर सब ठीक है तो फिर कल कोई आपकी चीज उठा कर ले जाता है। आप जानते हैं कि मेरी चीज कोई उठा कर ले जाए तो मुझे बुरा लगता है। लेकिन फिर भी चोर का अस्तित्व है और यह बुरा लगना मेरी धारणा है। और यह धारणा बदल सकती है। व्यक्तिगत संपत्ति न रहे समाज में तो चोरी के बुरे होने की बात खत्म हो जाएगी।

एस्कीमो हैं साइबेरिया में। तो एस्कीमोज की एक व्यवस्था है। आप किसी एस्कीमो के घर में जाएंए वैसे ज्यादा एस्कीमो के पास कुछ होता नहींए बहुत छोटी.मोटी चीजेंए जीवन.चलाऊए बामुश्किल कठिनाई से जीता हैए लेकिन अगर आपको कोई चीज पसंद आ जाए तो एस्कीमो समाज की व्यवस्था है कि कोई कह दे कि तुम्हारा कोट बहुत अच्छाए तो उसी वक्त कोट भेंट कर देना है। तो एस्कीमो समाज में चोरी नहीं होती। चोरी का उपाय नहीं है। चीजें बहुत थोड़ी हैंए जीवन बहुत कठिन है और दरिद्र है। लेकिन यह नियम चोरी को काट डाला है। किसी के भी घर में कोई कह देगा कि यह कुर्सी मुझे पसंद पड़ गईए यह खाट मुझे अच्छी लग गईए यह कपड़ा बहुत प्यारा हैए यह बर्तन तो बहुत सुंदर हैए बस यह कहने का मतलब यह है कि उस आदमी की वासना पैदा हो गई और अब उसे न देने का अर्थ उसे चोर बनाना होगाय इसलिए उसे उसी वक्त दे देना। इसका परिणाम यह हुआ है कि एस्कीमो समाज में कोई चोरी नहीं हो सकती। चोरी का कोई उपाय ही नहीं है।

समाज बदलेए धारणा बदलेए तो चोरीण्ण्ण् । चोरी एक व्यवस्था के अंतर्गत चलती है। आपकी धारणा अस्तित्व पर मत थोपें। इतना जानें कि मुझे अच्छा नहीं लगता कि कोई मेरी चीज ले जाएए इसलिए चोरी बुरी है। लेकिन अस्तित्व में क्या बुरा हैघ् आदमी के साथ चोरी आईय पशुओं में तो कोई चोरी नहीं है। क्योंकि कोई निजी संपत्ति नहीं है। निजी संपत्ति होगीए चोरी पीछे आ जाएगी। तो निजी संपत्ति में ही चोरी छिपी हुई है। इसलिए प्रूधां का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः प्रापर्टी इज थेफ्ट। सब धन चोरी है। धन मात्र चोरी है। क्योंकि धन

मेरा हैए तो मैंने कब्जा किया है। और किसी की भी वासना उस पर पैदा होती है। और वासना पर किसी की भी तो मालकियत नहीं है।

आपकी मालकियत है वासना परघ् एक मकान आप देखते हैंय क्या है आपका बल कि आप भीतर वासना को रोक देंघ् वासना उठती है कि यह मकान मेरा होता! चोरी शुरू हो गई। आप कमजोर होंए न कर पाएंए समाज का भय होए अदालत का डर होए और कारण होंए नीति का भय होए नरक जाने का डर होए भगवान दंड देगा उसकी कोई चिंता होए और आप न कर पाएंए वह बात दूसरी है। लेकिन चोरी आपके भीतर शुरू हो गई। आपने दूसरे की चीज पर मालकियत शुरू कर दी। आप चाहते हैंय नहीं कर पाते हैंए बात दूसरी है।

तो दो तरह के चोर हैं। एक जो भीतर ही भीतर करते रहते हैंय एक जो बाहर कर लेते हैं। जो बाहर करते हैंए उनमें साहस ज्यादा होता हैए मूढ़ता ज्यादा होती हैए समझ कम होती है। सोच.विचार नहीं कर पातेए ज्यादा दूर काए क्या परिणाम होगाए इसका हिसाब नहीं लगा पाते। चालाक कम हैंए कनिंग कम हैंय गणित का उन्हें पता नहीं है। आप ज्यादा चालाक हैंए गणित लगा लेते हैंय भीतर.भीतर करते हैंए लेकिन बाहर कभी नहीं आने देते।

लेकिन निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। माना कि एक आदमी चोर है और मुझे चोरी पसंद नहीं हैए तो भी वह चोर बुरा हैए ऐसी धारणा बनाने की कोई जरूरत नहीं है। मुझे पसंद नहींए इसलिए मुझे बुरा मालूम पड़ता हैय लेकिन अस्तित्व में उसकी स्वीकृति है। परमात्मा उसे भी जीवन दे रहा हैय उसकी श्वास में कोई बाधा नहीं डालता। और सूरज रोशनी कम नहीं देता और हवाएं उसको प्राणवायु नहीं रोकतीं। जीवन उसे स्वीकार किए हुए है। तो जिसे जीवन स्वीकार किए हुए है उसे मैं भी अस्वीकार न करूं।

ऐसी धारणा बढ़ती चली जाए तो अनूठी घटना घटती है। आपके भीतर से सब तनाव समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि तनाव धारणाओं के हैंय तनाव वह जो आपके भीतर बेचैनी हैए चिंता हैए वह इन धारणाओं के कारण है। वह क्षीण हो जाती हैए और आप एक शांत मौन में प्रविष्ट होने लगते हैं।

उस प्रवेश में ही आपकोए वह जो सर्वत्र प्रवाहित ताओ हैए उससे संस्पर्श होता है।

ष्जब उसका काम पूरा होता है तब वह उन पर स्वामित्व नहीं करता।ष्

यह ताओ अस्वीकार नहीं करता किसी को। और जब इनमें से कोई जीवन अपने शिखर पर पहुंच जाता है और उसकी समग्रता खुल जाती है और प्रकट हो जाती हैए तब भी ताओ उस पर दावा नहीं करता।

समझें। बुद्ध या महावीर परिपूर्णता को उपलब्ध हुए। परमात्मा चोर को इनकार नहीं करताए और परमात्मा ने फिर कोई घोषणा नहीं की कि बुद्ध को मैं स्वीकार करता हूं। परमात्मा ने कोई घोषणा नहीं की कि अब बुद्ध मेरे हो गए। उसने कोई स्वामित्व की घोषणा नहीं की। काम पूरा हो गया। बुद्ध वहां आ गए जहां उनकी चेतना अंततः आ सकती थी। वह हो गया जो हो सकता थाय शिखर छू लिया गयाय लेकिन कोई स्वामित्व का दावा नहीं है। और बड़े मजे की बात है कि बुद्ध तो कहते हैं कोई परमात्मा नहीं है। इस स्थिति में भी परमात्मा की कोई घोषणा नहीं है कि मैं हूंए कि तुम अब मेरे हुएए कि तुम पर अब मेरी मालकियत है। क्षुद्र का अस्वीकार नहीं हैय श्रेष्ठ के ऊपर कोई स्वामित्व का दावा नहीं है। परमात्मा शून्यवत है। परमात्मा एक परम स्वतंत्रता हैए जिसमें आप जो भी होना चाहेंए हो सकते हैं। वह आपको न रोकता हैए न धक्के देता है।

धर्म को इस भाषा में समझें कि धर्म है आपका परम स्वातंष्य। आप जो भी होना चाहें वह हो सकते हैं। परमात्मा के विपरीत भी जाना चाहें तो भी जा सकते हैंय तो भी उसका सहारा मिलता रहेगा। वह आपको अस्वीकार न करेगा। और उसके अनुकूल आना चाहें तो अनुकूल भी आ सकते हैंय तो भी वह स्वामित्व की

घोषणा नहीं करेगा कि तुम अब मेरे हुए। उसकी तरफ से कभी भी कोई दावा नहीं किया जाताय अस्तित्व दावे से रहित है। यह बहुत सुखद है। यह अनूठी घटना है। इसकी कोई तुलना में दूसरी घटना जीवन में दिखाई नहीं पड़ती।

समझेंए एक मित्र मेरे हैं। उनके एक लड़के की मृत्यु हो गई। लड़का मंत्री थाए और मित्र सोचते थे कि जल्दी ही मुख्यमंत्री होगा। और आशाएं थीं कि कभी हिंदुस्तान का प्रधानमंत्री भी होगा। लड़का मर गया तो भारी दुख में थे। आत्महत्या की दो.तीन बार कोशिश की। कोशिश निश्चित ही अधूरी थी और आधे हृदय से थीय नहीं तो दो.तीन बार करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। शायद वह भी एक दिखावा था। राजनीतिज्ञ हैंय राजनीतिज्ञ की किसी बात का कोई भरोसा नहीं। खुद बड़ा रोना.धोना करते थे।

तो मैंने उनसे पूछा कि इतने आप क्या परेशान हैं! और आपका दूसरा लड़का भी है। उनका दूसरा लड़का भी है। मैंने उनसे पूछा कि अगर यह दूसरा लड़का मर जाता तो आप इतने दुखी होतेघ् मैंने कहाए ईमानदारी से ही मुझे जवाब देना। उन्होंने कहा कि दुखी नहीं होताए यह दूसरा लड़का मर जाता तो। क्योंकि इसे मैंने कभी चाहा ही नहीं। यह मुझे कभी स्वीकृत ही न हुआ। वह दूसरा लड़का साधारण है..उनकी भाषा में।

बाप को कोई बेटा साधारण तो नहीं होना चाहिए। लेकिन कौन बाप बाप होता हैघ् असाधारण बेटा वह है जो मंत्री हो गया हैय और यह बेटा साधारण हैए क्योंकि दुकान करता हैए धंधा करता हैय साधारण है। इस दूसरे बेटे से अहंकार की कोई तृप्ति नहीं होतीए इसलिए साधारण है। उस बेटे से अहंकार की तृप्ति होती थी। वह बाप की महत्वाकांक्षा था। बाप उसके कंधे पर बंदूक रख कर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। वे खुद भी प्रधानमंत्री होना चाहते थेय वे नहीं हो सके। अब वे बेटे के द्वारा होने की कोशिश में लगे थे।

तो उन्होंने मुझसे कहा कि दूसरा बेटा मर जाता तो इतना दुख मुझे नहीं होता। वह स्वीकार नहीं था। और सच तो यह है कि वे चाहते नहीं कि कोई समझे कि वह उनका बेटा हैए दूसरा। जब तक उनका पहला बेटा नहीं मर गया तब तक लोगों को पता ही नहीं था कि उनका दूसरा बेटा भी है। वे एक की ही बात करते थे।

परमात्माए वह जो निकृष्टतम हैए उसके विरोध में नहीं हैए और वह जो श्रेष्ठतम है उसका भी दावेदार नहीं है। क्योंकि अस्तित्व की कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। ऐसा नहीं है कि वह राम के पक्ष में हो और रावण के विरोध में हो। क्योंकि अगर दोनों उसी से पैदा होते हैं तो रावण का भी उसे अस्वीकार नहीं है और राम के होने में भी कोई गौरव और अहंकार नहीं है। उसका भी कोई दावा नहीं है।

इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा या ताओ या धर्म परम स्वतंत्रता है। उसमें आप जो भी होना चाहें हो सकते हैं। होने का सारा जिम्मा आपके ऊपर हैए सारा दायित्व आपके ऊपर है।

आप परमात्मा से विपरीत चलते हैं तो दुख पाएंगे। इस कारण बड़ा उपद्रव हुआ है। आप परमात्मा से विपरीत चलते हैं तो दुख पाएंगेय आप अनुकूल चलते हैं तो सुख पाएंगे। इस कारण दुनिया के बहुत से धर्मग्रंथ बड़ी भ्रांति पैदा कर दिए हैं। उन्होंने इसको ऐसा समझाना शुरू कर दिया कि जो उसके विपरीत चलेगा उसको वह दुख देता है और जो उसके अनुकूल चलेगा उसको वह सुख देता है।

यह बात बिल्कुल गलत है। क्योंकि परमात्मा भी अगर विपरीत चलने वाले को दुख देता है तो अति साधारण मनोदशा हो गईय और अनुकूल चलने वाले को सुख देता है तो मनुष्य की साधारण बुद्धि से ज्यादा बुद्धि वहां भी न रही। प्रशंसा जो करता हैए स्तुति जो गाता हैए पैरों में जो पड़ता हैए उसको आकाश में उठा देता हैय और जो इनकार करता है और स्वीकार नहीं करताए और शराबखाने में बैठता है और मंदिर में नहीं

जाताए उसको नरकों में डाल देता है। ईसाइयतए यहूदी और इसलामए तीनों धर्मों ने एक नैसर्गिक घटना को मनुष्य की व्याख्या देकर बहुत विकृत कर दिया।

जब आप उसके अनुकूल नहीं चलते तो वह आपको दुख नहीं देताए आप दुख पाते हैं। इस फर्क को समझ लेना चाहिए। वह आपको दुख नहीं देता। अपनी तरफ से वह आपको कुछ भी देता.लेता नहीं है। जैसे आप आग में हाथ डालते हैं तो आप जल जाते हैंय आग आपको जलाती हैए ऐसा मत कहिए। आप आग से दूर हाथ ले जाते हैं तो ठंडक मालूम होने लगती हैय आप पास हाथ लाते हैं तो गर्मी मालूम होने लगती है। आग अपने स्वभाव से चलती रहती है। न आपको जलाने को उत्सुक हैय न आपको न जलाने को उत्सुक है। आपसे आग को कुछ संबंध नहीं है। आग जल रही हैय उसका स्वभाव है जलना। आप दूर और पास आते हैं तो ठंडक और गर्मी बढ़ जाती है।

परमात्मा का स्वभाव है स्वतंत्रता। आप दूर जाते हैं स्वतंत्रता से तो आप बंधन में पड़ने लगते हैं..बंधन से दुख। आप पास आते हैं तो आप खुलने लगते हैं..स्वतंत्रता का सुख। लेकिन यह सुख और दुख आपके आने.जाने पर निर्भर है। इसमें परमात्मा कुछ करता नहीं। इसमें कोई मोटिवेशनए परमात्मा की तरफ कोई हेतु नहीं है। परमात्मा न आपको सुख देता हैए न दुख देता हैय न स्वर्ग भेजता हैए न नरक भेजता है। आप ही जाते हैं। ये आपकी ही यात्राएं हैं। इनसे उसका कोई भी संबंध नहीं है। हांए आप नरक जाते हैं तो वह रोकता नहींय आप स्वर्ग जाते हैं तो वह खींचता नहीं। अस्तित्व आपके ऊपर जबरदस्ती नहीं करता।

और ध्यान रहेए अच्छा है कि अस्तित्व जबरदस्ती नहीं करता। क्योंकि अगर अस्तित्व जबरदस्ती करे तो शायद आप फिर कभी भी ठीक न हो पाएंगे। क्योंकि जैसे ही जबरदस्ती की जाती है वैसे ही चित्त प्रतिकूल जाने के लिए आतुर हो जाता है। अगर आपको जबरदस्ती स्वर्ग में भी भेजा जाए तो आप निकल भागने की कोशिश करेंगे। स्वर्ग सुख नहीं देताए जबरदस्ती दुख देती है। आप अपनी मौज से नरक में भी चले जाएं तो आपको वहां भी बड़ी शांति मिलेगी। आप खुद ही वहां चले गए हैं। और जिस चीज का भी निषेध किया जाए वहां जाने का मन होता है। और जहां भी जबरदस्ती लाया जाए वहां से हट जाने का मन होता है।

आप सबको अनुभव होगा कि कोई सुखद से सुखद चीज भी दुखद हो जाती है अगर जबरदस्ती की जाएए और दुखद से दुखद चीज भी सुखद हो जाती है अगर आपने ही उसे चुना है। क्योंकि सुख स्वतंत्रता में है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। आपने चुना हैए इसलिए स्वतंत्रता हैय दूसरे ने थोपा है तो परतंत्रता हो गई। परतंत्रता में दुख हैय स्वतंत्रता में सुख है। क्योंघ् क्योंकि जितने आप स्वतंत्र होते हैं उतने आप भी परमात्मा जैसे हो जाते हैं। और जितने आप परतंत्र होते हैं उतने प्रतिकूल होते चले जाते हैं।

परमात्मा जीवन का नियम है। वह कोई व्यक्ति नहीं है जो आपको कुछ देगा। आप रास्ते पर चलते हैं। तिरछे चलते हैंए गिर पड़ते हैंए टांग टूट जाती है। तो आप ऐसा नहीं कहते कि ग्रेविटेशन ने मेरी टांग तोड़ दीए कि जमीन की कशिश ने मेरी टांग तोड़ दी। जमीन की कशिश को आपकी टांग से क्या लेना.देनाघ् जमीन की कशिश कोई व्यक्ति तो नहीं है कि वहां बैठा देख रहा है कि यह देखोए तिरछा चल रहा हैए इसकी तोड़ो टांग! यह आदमी बिल्कुल सीधा चल रहा हैए इसको कुछ पुरस्कार दो। वहां कोई नहीं है। कशिश एक नियम हैए एक लॉ है।

ताओ का अर्थ होता है नियम। आप तिरछे चलते हैंय अपने ही कारण आप गिर जाते हैं। आप सीधे चलते हैंय अपने ही कारण आप चलते हैं। कशिश का प्रभाव तो नीचे बह रहा हैय ग्रेविटेशन तो मौजूद है हमेशा।

परमात्मा जीवन का परम नियम है। जब आप प्रतिकूल चलते हैंए आप दुख अपने लिए पैदा कर लेते हैंय जब आप अनुकूल चलते हैं तब आप अपने लिए सुख पैदा कर लेते हैं। जब आपको सुख मिले तब आप समझना

कि आप किसी न किसी कारण अनुकूल हैंय और जब आपको दुख मिले तो आप समझना कि आप किसी न किसी कारण प्रतिकूल हैं।

अगर आदमी सिर्फ सुखवादी भी हो जाए तो परमात्मा तक पहुंच जाए। लेकिन हम दुखवादी हैं। अगर आप अपने सुख को भी पहचानने लगें कि कब आपको सुख मिलता हैए क्यों मिलता हैय कैसी अवस्था होती है जब सुख मिलता हैय आपके भीतर क्या होता है जिससे आप सुख के साथ ट्यून हो जाते हैंय अगर इतना भी आप समझ लें तो आपको कोई शास्त्र की जरूरत नहीं हैए किसी गुरु की जरूरत नहीं है। सुख महागुरु है। आप सुख के सूत्र को पकड़ कर ही खोजते रहेंए थोड़े दिन में ही आपको वह कुंजी हाथ में आ जाएगी जहां से आप परमात्मा को खोल लेंगे।

लेकिन आप दुखवादी हैं। आपको इसकी भी होश नहीं है जरा कि कब आपको सुख मिलता हैए क्यों मिलता हैए कहां से आता हैए कैसी भाव.दशा होती है जब आपके भीतर सुख झलक आता हैए कैसी आपके हृदय की धड़कन होती हैए कैसी आपकी श्वास होती हैए आप किस मुद्रा में होते हैं जब सुख आपके पास निकट आ जाता हैए और आप किस मुद्रा में होते हैं जब सुख आपसे दूर छिटक जाता है।

अगर आप अपने सुख को ही पहचानने लगें तो काम पूरा हो गया। वही सुख की पहचान आपको पास लाने लगेगी। क्योंकि नियम केवल इतना ही हैः जब भी आप उसके अनुकूल होते हैंए क्षण भर को भीए कभी.कभी तो दुर्घटना के कारण आप उसके अनुकूल हो जाते हैं। क्योंकि आप जैसे हैं आप प्रतिकूल ही चलते जाते हैंय कभी.कभी दुर्घटना के कारणए कभी.कभी संयोगवशए कभी आपने नहीं सोचा था तो भीए आप अनुकूल हो जाते हैं..अनुकूल होते ही झरोखा खुल जाता है और एक हवाए ठंडी हवा और नई ताजी हवा आपके भीतर भर जाती है। मगर आप अपनी पुरानी आदतों से ऐसे ग्रस्त हैं कि आप पहचान नहीं पाते। आप फिर सम्हल कर दुर्घटना के बाहर होकर अपने पुराने रास्ते पर चलने लगते हैं।

लोग कहते हैंए सुख क्षणिक है। इस कारण नहीं कि सुख क्षणिक हैय इस कारण कि आपकी आदतें दुख की हैं। और दुख बहुत लंबा है। इसलिए नहीं कि दुख लंबा हैय आप बड़े कुशल हैं। आप दुख पैदा करने में ऐसे कुशल हैं कि सुख की कैसी ही अवस्था होए आप उसमें से दुख पैदा कर लेंगे।

सुना है मैंनेए मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा बीमार था। तो उसके चिकित्सकों ने उसे पहाड़ भेजा। पहाड़ से पांच.सात दिन बाद ही उसका तार आया अपने चिकित्सक के नामः आई एम फीलिंग वंडरफुलय व्हाईघ् मैं बहुत आनंद में हूंय क्योंघ् इसका जवाब चाहता है वह।

आपको भरोसा भी नहीं आता जब आप सुख में होते हैं। आप भी पूछते हैंए कुछ गड़बड़ हो गईघ् क्या बात हैए मैं और सुख मेंघ् यह हो ही नहीं सकता। दुख में आप बिल्कुल तृप्त होते हैं। दुख में आप चलते हैं कि बिल्कुल ठीक। रास्ता जाना.मानाए सब पहचाना हुआ। यहां आप ठीक से यात्रा करते हैं। सुख में आप बिल्कुल विचलित हो जाते हैंए आपकी समझ में नहीं आता। और जब तक आप दुख न बना लेंण्ण्ण् ।

सुना है मैंने कि एक आदमी बहुत ज्यादा चिंतितए परेशान और हमेशा उलझा.उलझा और उदास रहता था। सलाह ली उसनेए किसी मनोवैज्ञानिक को पूछा कि क्या करूंघ् तो उसने कहा कि तुम गलत पहलू देखते हो जिंदगी काए अंधेरा पहलू देखते होय उजाला पहलू देखो। जिंदगी में रात ही रात नहीं हैय दिन भी है। और कांटे ही कांटे नहीं हैंय फूल भी हैं। तुम जरा फूलों पर नजर ले जाओ। तुम्हारा जो पेसिमिज्म हैए यह जो दुखवाद हैए इसको छोड़ो। तुम ऑप्टिमिस्ट हो जाओय तुम आशावादी हो जाओ। तो उस आदमी ने कहाए अच्छाए मैं कोशिश करूंगा।

उसने कोशिश शुरू कर दी और वह अपने संबंध में जो भी बातें करता सब में उसने आशावाद फैला दिया। कोई पूछता कि धंधा कैसा हैघ् तो वह कहता है कि बहुत अच्छा हैए और कल और अच्छा हो जाएगा। पत्नी कैसी हैघ् तो वह कहता कि बहुत अच्छी हैए और कल और बहुत अच्छी हो जाएगी। सब संबंध में वह अच्छी बातें करने लगा और आशा बताने लगा। लेकिन सब लोग परेशान हुएए वह चिंतित पहले से भी ज्यादा दिखाई पड़ता था।

तो आखिर लोगों ने पूछा कि मामला क्या हैघ् तुम आशावाद की इतनी चर्चा करते होए फिर भी तुम इतने चिंतित क्यों दिखाई पड़ते होघ् उस आदमी ने कहा कि नाउ आई एम वरीड एबाउट माई ऑप्टिमिज्म। अब मैं अपने आशावाद के प्रति चिंतित हूं कि यह सब होने वाला नहीं है जो मैं कह रहा हूं। हालतें बहुत खराब हैं।

आदमी आदतों से जीता है। आपको सुख की कोई आदत नहीं है और दुख की मजबूत आदत है। इस आदत से घिरे हुए जब सुख के सामने भी आप खड़े होते हैं तो सुख भी कुछ कर नहीं पाताए आप इतने सख्त और मजबूत हैंय वह भी दुख जैसा ही आपको दिखाई पड़ता है। आप उसमें से भी दुख खोज लेते हैं। आप कुछ न कुछ निकाल ही लेते हैं जिससे दुखण्ण्ण् । और फिर आप निश्चिंत हो जाते हैं।

लाओत्से के हिसाब में आप जब भी ताओ की तरफ गतिमान होते हैं तब सुख की वर्षा होने लगती है। तब स्वर्ग और पृथ्वी का मिलना होने लगता हैय मीठी अमृत की झलक आपके ऊपर आने लगती है।

जब भी आपको कहीं भी सुख मिलता होए चाहे वह सुख कितना ही धर्मगुरु कहते हों कि निकृष्ट हैए मैं आपसे कहता हूं कि जहां भी आपको सुख मिलता होए चाहे आप नरक में भी पड़े हों तो जब भी आपको सुख मिलता हो तब आप जानना कि किसी न किसी कारण परमात्मा से थोड़ा सा संबंध जुड़ गया है। चाहे जो आप कर रहे होंए वह बिल्कुल पाप ही क्यों न होए लेकिन उस पाप के बीच में भी आप किसी भी कारण सेए जाने.अनजानेए परमात्मा से संयुक्त हो गए हैं। सुख तो सदा उससे ही मिलता है।

अगर यह आपको ख्याल रहे तो आपने पाप से पुण्य का मार्ग खोज लियाए और आपने दुख से सुख की किरण पकड़ ली। और किरण हाथ में आ जाए तो सूरज बहुत दूर नहीं है। और किरण कितनी ही दूर होए सूरज बहुत दूर नहीं है। किरण पकड़ में आ जाए और आप किरण के रास्ते पर ही चल पड़ें तो आप एक न एक दिन सूरज तक पहुंच जाएंगे।

ष्और जब उसका काम पूरा होता हैए तब भी वह उन पर स्वामित्व नहीं करता।ष्

वह परम स्वतंत्रता है।

ष्असंख्य वस्तुओं को यह वस्त्र और भोजन देता हैए तो भी उन पर मालकियत का दावा नहीं है।ष्

सारा जीवन उससे आता है। श्वास उससे चलती हैए प्राण उससे धड़कता हैय फिर भी उसका कोई दावा नहीं है।

ष्प्रायः यह चित्त या वासना से रहित हैए ऐसा समझा जाता हैए इसलिए तुच्छ या छोटा है।ष्

यह थोड़ा समझने की बात है। वह जो ताओ हैए वह जो परम धर्म है जीवन काए न तो वहां कोई वासना हैए न वहां कोई चित्त हैए न कोई मन हैए न कोई विकार हैए न कोई विचार है। तो लोगों को लगता है कि यह ताओ तुच्छ और छोटी चीज हैय क्योंकि हमारे लिए तो बड़प्पन अहंकार में है। हम तो एक ही बड़प्पन जानते हैं वह अहंकार का। और जहां अहंकार गौरवमंडित सिंहासनों पर नहीं पाया जाता वहां हमें लगता है सब क्षुद्र है। हम तो पूजा करते हैं सिर्फ अहंकार की। निश्चित हीए परमात्मा के पास कोई अहंकार नहीं हो सकता। होगा भी

तो किसके विपरीत होगाघ् परमात्मा तो अति विनम्र है। अति विनम्र कहना भी ठीक नहीं हैए इतना ही कहना चाहिए कि वहां कोई अहंकार नहीं है। अहंकार दूसरे के विपरीत खड़ा होता हैय उससे दूसरा कोई भी नहीं है। तो अगर हमें ऐसा लगे कि उसकी न कोई महत्वाकांक्षा हैए न कोई वासना हैए न कोई चित्त हैए तो हमें ऐसा लगेगा वह बहुत क्षुद्र हैए छोटा है। क्योंकि बड़ा तो हमारे लिए महत्वाकांक्षी मालूम होता है।

अगर परमात्मा आपके बीच खड़ा हो तो आप उसे देख भी न पाएंए पहचान भी न पाएं। खड़ा ही है। लेकिन देख भी नहीं पातेए पहचान भी नहीं पातेए क्योंकि कठिनाई है। हम पहचानते उसको ही हैं जो अहंकार की घोषणा करता है और दावा करता है। चाहे धन के कारण दावा करेए चाहे ज्ञान के कारण दावा करेए चाहे पद के कारण दावा करेए जब कोई घोषणा करता है कि मैं कुछ हूं तभी हमें बड़ा मालूम पड़ता है। लेकिन परमात्मा की कोई घोषणा न होने सेए लाओत्से कहता हैए शायद हमें लगे कि वह तो छोटा हैए क्षुद्र है।

ष्फिर सभी चीजों काए उन पर बिना दावा किएए आश्रय होने के कारणए उसे महान भी समझा जा सकता है।ष्

कोई उसे क्षुद्र समझ सकता हैए क्योंकि कोई महत्वाकांक्षा का विस्तार नहीं है। और कोई उसे महान भी समझ सकता हैए क्योंकि सब उसी का फैलाव है। और फिर भी सबका आश्रय होने पर भी उसकी कोई मालकियत की घोषणा नहीं।

ष्और चूंकि अंत तक वह महानता का दावा नहीं करताए उसकी महानता शाश्वत हैए उसकी महानता सदा है।ष्

दावे खंडित किए जा सकते हैं। असल मेंए दावा करता ही वही है जिसे भय होता है। नहीं तो दावे का कोई सवाल नहीं है। जिस चीज का भी आप दावा करते हैंए आपने ख्याल किया कि आप भयभीत होते हैंए इसीलिए दावा करते हैं। अगर आपको डर है तो आप दावे से डर को छिपाते हैं।

मैंने सुना है कि एक बड़े कुलीन परिवार में एक भोज का आयोजन था। और जो गृहपति था उसने एक प्रतिष्ठित महिला को अपने बाएं हाथ पर भोजन के समय बिठाया हुआ था। उस प्रतिष्ठित महिला को थोड़ी पीड़ा हो रही थी। जिस देश में यह भोज था वहां दाएं हाथ पर बिठाना ज्यादा सम्मानजनक समझा जाता था। तो उस महिला को बेचैनी हो रही थी कि उसे बाएं हाथ पर बिठाला गयाय उसे ठीक जितनी प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए भोज में उतनी नहीं मिली। लेकिन कहे भी तो कैसे कहेघ् तो उसने फिर ढंग से बात की।

उसने मेजबान को कहा कि इतने लोग आए हैं भोजन के लिए कि अनेक बार आपको भी असुविधा होती होगीए अड़चन होती होगीए किसको कहां बिठाएं! बिठाने में बड़ी दिक्कत होती होगीय इतने लोग हैं और सभी को उनके सम्मानित पद पर बिठाना अड़चन की बात है। उस गृहपति ने कहा..उसका वचन बहुत मूल्यवान है..उसने कहाए दोज हू मैटर दे डोंट माइंड एंड दोज हू माइंड दे डोंट मैटर। जिनको खलता है उनका कोई मूल्य नहीं और जिनका मूल्य है उनको पता ही नहीं चलता कि उन्हें कहां बिठाया गया है।

आपको कहां बिठाया गया हैए यह आपको पता ही तब चलता है जब आपको भीतर भय हैए और आप आश्वस्त नहीं हैं अपने प्रतिए कि आपकी जो गरिमा है उस पर आपको खुद भी भरोसा नहीं है। तो आप सुरक्षित करना चाहते हैं। जरा सी बात में आप बेचैन हो जाते हैं। कोई जरा सा हंस देए और आपको तकलीफ शुरू हो जाती है। क्योंकि आपको खुद ही डर लगा हुआ है कि हालत तो ऐसी है कि लोग हंसने चाहिए। आप जानते हैं कि आपकी दशा कैसी है। उसको छिपाए हैंए सम्हाले हुए हैं। एक पोज है आपका व्यक्तित्वय एक मुद्रा है चेष्टित। उसमें सब तरफ से डर है कि कोई तोड़ न दे।

आप अपने ज्ञान को घोषित किए हुए हैंय आप खुद ही भयभीत हैंए आपको कुछ पता है नहीं। इसलिए कोई अगर जरा सा सवाल उठा दे तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। या कोई जरा सा विरोध कर देए या कोई खंडन कर देए तो आप इतने ज्यादा जोर से हमला बोल देते हैं उस परए सुरक्षा के लिएए क्योंकि डर है कि अगर जरा हमला हुआ ज्यादा तो आपकी रक्षा.पंक्ति टूट जाएगी।

इसलिए बुद्धिमान जो लोग हैं वे विवाद भी नहीं करते एक.दूसरे सेय वे इस तरह की बातें नहीं उठाते जिनमें कि कोई विवाद हो जाए। इसलिए सबने सुविधाजनक बातें खोज रखी हैंः मौसम कैसा हैघ् आपके बच्चे कैसे हैंघ् ये ऐसी बातें हैं जिनमें कि कोई जरा भी उपद्रव नहीं हैय इनकी बातें करके और बच कर निकल जाना है। कोई ऐसी भी बातए जिससे कि कुछ टूट जाएए कोई विरोध हो जाएए खतरनाक है। आपको अपने पर आश्वासन नहीं है।

लेकिन परमात्मा को क्या कारण हो सकता है दावे काघ् आश्वस्त है।

रोम के एक चौरास्ते पर एक दिन ऐसा हुआ कि एक यात्री आया। रोम के उस चौराहे पर बारह भिखमंगे बैठे हुए थे। सब स्वस्थ मालूम पड़ते थे। शरीर अभी ठीक लगता था। तो यात्री को हुआ कि निश्चित ही अलाल हैंए भीख मांगने का धंधा कर रहे हैं। तो उसने खड़े होकर कहा कि यह जो सोने का सिक्का हैए उसके लिएए जो तुममें सबसे ज्यादा अलाल हो। ग्यारह आदमी भाग कर आए और उन्होंने कहा कि मैं सबसे ज्यादा अलाल हूं। उसने कहा कि ठहरोए वह जो आदमी पीछे लेटा हुआ है यह रुपया उसके लिए है। पर उन्होंने कहा कि हम दावा कर रहे हैंए और आपने कहा जो सबसे ज्यादा अलाल हो! मैं कहता हूं कि मैं सबसे ज्यादा अलाल हूंए और सिद्ध कर सकता हूं। उसने कहाए सिद्ध करने का कोई सवाल नहीं है। दावा ही वह करता है जिसको भीतर सिद्ध नहीं है। वह आदमी सिद्ध अलाल है। उठ कर भी नहीं आया हैए रुपया लेने भी नहीं आया हैय कोई दावा ही नहीं किया कि मैं अलाल हूं। दावा क्या करना हैघ् आश्वस्त है। और जब वह उसे रुपया देने गया तो उसने इशारा किया कि खीसे में!

आप जब आश्वस्त हैं तो न कुछ सिद्ध करने को हैए न कुछ दावा करने को है। जब आप आश्वस्त नहीं हैं तब आप सिद्ध करते हैंए दावा करते हैं। इसलिए एक बहुत मजे की घटना घटी है कि दुनिया में सिर्फ उन लोगों ने ईश्वर को सिद्ध करने के प्रमाण दिए हैंए जिनको ईश्वर पर भरोसा नहीं था। जिन्होंने तर्क दिए हैं ईश्वर को सिद्ध करने के लिए वे संत नहीं हैंय उनको खुद ही पता नहीं है। वे आपको तर्क नहीं दे रहे हैंय वे खुद को ही तर्क दे रहे हैं।

पहली बार जब पाश्चात्य भाषाओं में उपनिषदों का अनुवाद हुआ तो वहां के विचारक भरोसा न कर सके कि इस तरह की किताबें..किस तरह की किताबें हैं ये! क्योंकि इनमें कोई तर्क नहीं है। ईश्वर हैए इसकी सीधी चर्चा हैय लेकिन इसका कोई तर्क नहीं है सिद्ध करने के लिए कि वह क्यों है। तो उन्हें लगा कि ये किताबें कविता की ज्यादा हैंए दर्शन की नहीं। क्योंकि वे जिन किताबों से परिचित हैं उन किताबों में तर्क दिए हुए हैं कि ईश्वर इसलिए हैए ईश्वर इस कारण से है। उपनिषदों में कोई तर्क नहीं है। और मैं कहता हूंए इसीलिए उपनिषद धार्मिक किताबें हैंए क्योंकि तर्क देने का कोई सवाल ही नहीं है। उपनिषद के ऋषियों को आश्वासन है कि वह है। बात खतम हो गई है। इसे सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं हैय न कोई जरूरत है।

जब भी आप किसी चीज को सिद्ध करने के लिए चेष्टारत हो जाते हैं तब अपने भीतर खोजनाए और आप पाएंगे कि आपका आश्वासन नहीं है। नास्तिक आस्तिकता को सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हैंय अधार्मिक

धार्मिकता को सिद्ध करने की कोशिश में लगे रहते हैं। जो आप नहीं हैं उसको ही सिद्ध करने की आप कोशिश में लगे रहते हैं। जो आप हैं उसको तो छिपाना पड़ता हैय सिद्ध करने की कोई जरूरत नहीं है।

लाओत्से कहता हैए उसका कोई भी दावा नहीं हैए महानता की कोई घोषणा नहीं हैय और इसलिए उसकी महानता सिद्ध हैए सदा उपलब्ध है।

अब पांच मिनट रुकेंए कीर्तन करें और फिर जाएं।

आज इतना ही।

अड़सठवां प्रवचन

ताओ का स्वाद सादा

Chapter 35

The Peace Of Tao

Hold the Great Symbol
And all the world follows,
Follows without meeting harm,
(And lives in) health, peace, commonwealth.
Offer good things to eat
And the wayfarer stays.
But Tao is mild to the taste.
Looked at, it cannot be seen;
Listened to, it cannot be heard;
Applied, its supply never fails.

अध्याय 35

ताओ की शांति

महान प्रतीक को धारण करो,
और समस्त संसार अनुगमन करता है;
और बिना हानि उठाए अनुगमन करता है;
और स्वास्थ्य, शांति और व्यवस्था को उपलब्ध होता है।
अच्छी वस्तुएं खाने को दो,
और राही ठहर जाता है।
लेकिन ताओ का स्वाद बिल्कुल सादा है।
देखें, और यह अदृश्य है;
सुनें, और यह अश्राव्य है।
प्रयोग करने पर इसकी आपूर्ति कभी चुकती नहीं है।

लाओत्से की दृष्टि में शिक्षक वही है जिसे शिक्षा देनी न पड़े, जिसकी मौजूदगी शिक्षा बन जाए; गुरु वही है जिसे आदर मांगना न पड़े, जिसे आदर वैसे ही सहज उपलब्ध हो जैसे नदियां सागर की तरफ बहती हैं। ऐसी सहजता ही जीवन में क्रांति ला सकती है।

शिक्षक शिक्षा देना चाहता है; गुरु अपना गुरुत्व दिखाना चाहता है; पिता बेटे को बदलना चाहता है; समाज-सुधारक समाज को नया रूप देना चाहते हैं। उनकी आकांक्षाएं शुभ हैं, लेकिन वे सफल नहीं हो पाते। न केवल वे सफल नहीं हो पाते, बल्कि वे भयंकर रूप से हानिपूर्ण सिद्ध होते हैं। क्योंकि जब कोई किसी को बदलना चाहता है तो वह उसकी बदलाहट में बाधा बन जाता है। और जितना ही आग्रह होता है बदलने का उतना ही बदलना मुश्किल हो जाता है।

आग्रह आक्रमण है। अच्छे पिता अक्सर ही अच्छे बेटों को जन्म नहीं दे पाते। उनका अच्छा होना, और अपने बेटे को भी अच्छा बनाने का आग्रह, बेटों की विकृति बन जाती है। जो समाज बहुत आग्रह करता है शुभ होने का, उसका शुभ पाखंड हो जाता है और भीतर अशुभ की धाराएं बहने लगती हैं। जिस चीज का निषेध किया जाता है उसमें रस पैदा हो जाता है, और जिस चीज को जबरदस्ती थोपने की कोशिश की जाती है उसमें विरस पैदा हो जाता है। ये मनोवैज्ञानिक सत्य आज पश्चिम की मनस की खोज में स्पष्ट होते चले जाते हैं।

लेकिन लाओत्से अभी भी अप्रतिम है, अभी भी लाओत्से की बात पूरी समझ में मनुष्य को नहीं आ सकी है। लाओत्से यह कह रहा है कि शुभ लाने की चेष्टा से अशुभ आता है; अच्छा बनाने की कोशिश बुरा बनने का कारण बन जाती है। परिणाम विपरीत होते हैं। इसको हम ठीक से समझ लें तो फिर इस सूत्र में प्रवेश हो जाएगा।

जब मैं किसी को अच्छा बनाने की कोशिश करता हूं, तो इस पूरी कोशिश की व्याख्या समझ लें, इस पूरी कोशिश का एक-एक ताना-बाना समझ लें। जब मैं किसी को अच्छा बनाने की कोशिश करता हूं तो पहली तो बात यह कि मैं अपने को अच्छा मानता हूं जो कि गहन अहंकार है, और दूसरा कि मैं दूसरे को बुरा मानता हूं जो कि अपमान है। और जितना ही मैं आग्रह करता हूं दूसरे को अच्छा बनाने का उतना ही मैं उसे अपमानित करता हूं; मेरी चेष्टा उसकी गहन निंदा बन जाती है। और अपमान प्रतिकार चाहता है, अपमान बदला लेना चाहता है। तो जिसे मैं अपमानित कर रहा हूं इस सूक्ष्म विधि से वह मुझ से बदला लेगा। और बदले का सबसे सरल उपाय यह है कि जो मैं चाहता हूं वह भर वह न होने दे; उससे विपरीत करके दिखा दे। तो बेटे बाप के विपरीत चल जाते हैं; शिष्य गुरुओं को सब भांति खंडित कर देते हैं; अनुयायी नेताओं को बुरी तरह पराजित कर देते हैं।

इधर हमने देखा, महात्मा गांधी की अथक चेष्टा थी, लोग अच्छे हो जाएं; और उन्होंने अपने अनुयायियों को अच्छा बनाने की भरपूर कोशिश की। लेकिन उन्हें लाओत्से का कोई भी पता नहीं था। और जो परिणाम हुआ वह हमारे सामने है कि उनका अनुयायी, ठीक वह जो चाहते थे, उससे विपरीत हुआ। इसके लिए सभी लोग अनुयायियों को जिम्मेवार ठहराएंगे, लाओत्से जिम्मेवार नहीं ठहराता, मैं भी जिम्मेवार नहीं ठहराता। क्योंकि भूल शिक्षक की है। लेकिन वह भूल दिखाई हमें नहीं पड़ेगी। क्योंकि हम भी यह धारणा मान कर चलते हैं कि महात्मा गांधी ने तो अथक चेष्टा की लोगों को अच्छा बनाने की; अगर लोग नहीं अच्छे बने तो लोगों का कसूर है।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि शिक्षक की बुनियादी भूल है। जहां आग्रह होता है, जहां दूसरे को ठीक करने की चेष्टा होती है, वह चेष्टा विपरीत परिणाम लाती है। और ऐसा नहीं कि विपरीत परिणाम अनुयायियों

पर हुए, उनकी खुद की संतान पर भी विपरीत परिणाम हुआ। जो वे चाहते थे उससे उलटा हुआ। चाह में कुछ भूल न थी, लेकिन उन्हें जीवन के गहन इस सत्य का जैसे पता नहीं है कि आग्रह आक्रमण है, और चाहे दूसरा कहे या न कहे, भीतर अपमानित होता है।

जैसे ही मैं किसी को अच्छा करने की कोशिश करता हूं, एक बात तो मैंने कह दी कि तुम बुरे हो। और यह मैं सीधा कह देता तो शायद इतनी चोट न लगती, लेकिन मैं यह परोक्ष कहता हूं कि तुम्हें अच्छा होना है, तुम्हें अच्छा बनना है। यह तो मैं कह रहा हूं कि तुम जैसे हो वैसे स्वीकृत नहीं हो; तुम कटो, छंटो, निखरो, तो मैं स्वीकार कर सकूंगा। मेरे स्वीकार में शर्त है: जैसा मैं चाहता हूं वैसे तुम हो जाओ।

एक तो मैंने मान ही लिया कि मैं ठीक हूं और दूसरी अब मैं यह कोशिश कर रहा हूं कि तुम गलत हो। और यह एक गहरी हिंसा है। दूसरे को मारना बड़ी स्थूल हिंसा है; दूसरे को बदलना बड़ी गहन हिंसा है, बड़ी सूक्ष्म हिंसा है। मैं आपका हाथ काट डालूं, यह बहुत बड़ी हिंसा नहीं है; लेकिन मैं आपके व्यक्तित्व को काटूं--चाहे भली इच्छा से ही, चाहे मैं आपको लाभ पहुंचाने के लिए ही, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। बड़े मजे की तो बात यह है कि जितने लोग भी दूसरों को लाभ पहुंचाना चाहते हैं अक्सर तो लाभ पहुंचाना असली बात नहीं होती, दूसरे को बदलने, तोड़ने, काटने का रस असली बात होती है। और बड़ा सूक्ष्म मजा है कि दूसरे को मैं अपने अनुकूल ढाल रहा हूं। जैसा मैं हूं, जैसा मैं समझता हूं ठीक है, वैसा मैं दूसरे को बना रहा हूं। यह दूसरे की आत्मा का अपमान है।

तो शिक्षक, आदर्शवादी, महात्मा, साधु-संन्यासी, नेता, क्रांतिकारी, समाज-सुधारक समाज को बदल नहीं पाते, और विकृत कर जाते हैं। और उनके पीछे जो छाया आती है वह अत्यंत पतन की होती है। जब भी कोई महापुरुष लोगों को बदलने की कोशिश करता है तो उसके पीछे एक अंधकार की धारा अनिवार्यरूपेण पैदा हो जाती है।

लाओत्से कहता है कि तुम दूसरे को बदलना मत। तुम अपने स्वभाव में जीना। और अगर तुम्हारे स्वभाव में कुछ भी मूल्यवान है तो दूसरे उसकी उपस्थिति में बदलना शुरू हो जाएंगे। यह बदलाहट तुम्हारा आग्रह न होगी; इस बदलाहट में तुम्हारी चेष्टा न होगी; इस बदलाहट में तुम सचेतन रूप से सक्रिय भी नहीं होओगे। दूसरा ही सक्रिय होगा, दूसरा ही यत्न करेगा; लेकिन तुम सिर्फ एक मौन उपस्थिति, एक मौन प्रेरणा रहोगे।

उस प्रेरणा में कोई उपाय तुम्हारी तरफ से नहीं है। और जब कोई सिर्फ उपस्थिति होता है--एक आनंद की, एक उत्सव की, एक समाधि की, एक ध्यान की--तो दूसरे भी उसकी तरफ बहने शुरू हो जाते हैं। इस बहाव में वे दूसरे ही पहल करते हैं। यह उनकी अपनी निजी चेष्टा होती है। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है ऐसे जहां भी आनंद होता है वहां व्यक्ति बहने शुरू हो जाते हैं। न तो सागर निमंत्रण देता, न बुलाता; नदियां भागी चली जाती हैं। खींचता भी नहीं, नदियां अपनी स्वेच्छा से ही भागी चली जाती हैं।

और जब कोई स्वेच्छा से शिष्य बनता है और जब कोई स्वेच्छा से परिवर्तित होता है तो वास्तविक परिवर्तन घटित होता है। और उस परिवर्तन की घटना में कोई हानि नहीं होती। अन्यथा एक तो यह संभावना है कि जब कोई आपको बदलने की कोशिश करे, निर्माण करने की कोशिश करे, तो आप बगावती हो जाएं और विपरीत चले जाएं। एक तो यह संभावना है। अगर आप साहसी हैं और आपके पास थोड़ा बल है विद्रोह का तो आप बगावती हो जाएंगे। अगर आप इतने साहसी नहीं हैं और विद्रोह का बल नहीं है तो आप पाखंडी हो जाएंगे। वह भी बड़ा खतरा है। आप ऊपर-ऊपर से, जो भी कहा गया है, सिखाया गया है, पूरा कर देंगे; और भीतर उबलते रहेंगे और जलते रहेंगे। ऊपर से ब्रह्मचर्य हो जाएगा; भीतर कामवासना होगी। ऊपर से अहिंसा

हो जाएगी; भीतर सब तरह की हिंसा होगी। ऊपर से सब शुभ दिखाई पड़ने लगेगा और भीतर सब अशुभ दब जाएगा। यह और भी रुग्ण अवस्था है। इससे तो बगावती बेहतर है। वह कम से कम ईमानदार है।

तो महात्माओं के पीछे दो तरह के लोग छूट जाते हैं। या तो वे लोग जो महात्माओं के ठीक विपरीत चल पड़ते हैं, या वे लोग जो महात्माओं की मान कर चल पड़ते हैं और पाखंडी हो जाते हैं। इसलिए धार्मिक समाज अक्सर पाखंडी समाज होता है। होना नहीं चाहिए। यह सारी दुनिया में चिंता की बात है कि भारत जैसा देश, जहां इतने धर्मगुरु हुए हों, वह इतना पाखंडी क्यों है? इतने धर्मगुरु और इतने सुधारक और इतने विचारक और इतने संत, और भारत का आदमी इतना पाखंडी क्यों है?

इसमें कुछ उलझन नहीं होनी चाहिए। इतने सुधारने वालों के कारण ही भारत पाखंडी है। उन्होंने इतना समझा दिया है कि क्या ठीक है, और उन्होंने इतना थोप दिया है कि क्या ठीक है, कि आपकी हिम्मत भी नहीं कि आप कह दें कि यह गलत है। आप उसको आरोपण कर लेते हैं। आपके पास साहस भी नहीं है कि उसके विपरीत चले जाएं और तोड़ दें सारा पाखंड। वह भी आपकी हिम्मत नहीं है। आप उसको थोप लेते हैं अपने ऊपर, लेकिन भीतर आप पीछे के दरवाजे खोल लेते हैं जहां से आप बिल्कुल उलटे आदमी होते हैं।

तो एक आपकी शक्ल होती है मंदिर में; वह आपकी असली शक्ल नहीं है। एक शक्ल होती है आपकी असली, वह मंदिर में कभी दिखाई नहीं पड़ती। और वह जो मंदिर में दिखाई पड़ती है वह बिल्कुल ओढ़ी हुई है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। उसे आप भी जानते हैं कि वह ओढ़ी हुई है, वह दिखावे के लिए है। वह एक सामाजिक व्यवहार है; वह आपका असली व्यक्तित्व नहीं है। और जब ऐसा दोहरा व्यक्तित्व हो जाता है... ।

पाखंड का अर्थ ही यही है कि जो असली है वह भीतर छिपा है, जो नकली है वह ऊपर ओढ़ा हुआ है। और इन दोनों के बीच सतत कलह और संघर्ष चलता रहता है। अगर आपके चित्त में बहुत अशांति है तो उस अशांति का नब्बे प्रतिशत कारण तो आपका पाखंड है। और आप लाख ध्यान करें और लाख योग साधें, वह पाखंड जब तक नहीं छूटता तब तक शांति की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि योग साधने से वह पाखंड नहीं छूट जाएगा। और आप कितनी ही पूजा-प्रार्थना करें, उससे वह पाखंड नहीं छूट जाएगा। इस सत्य को समझना ही पड़ेगा कि मेरे भीतर मैंने दो हिस्से बना रखे हैं। एक, जो बिल्कुल झूठा है; जिसको मैं कहता हूं कि ठीक है, लेकिन कभी जिसको मैं उपयोग नहीं करता, कभी जिसका व्यवहार नहीं करता। और एक, जिसका मैं व्यवहार करता हूं, जिसको मैं गलत कहता हूं। बड़ी अजीब स्थिति है। जो भी मैं करता हूं उसको मैं गलत कहता हूं और जिसको भी मैं ठीक कहता हूं उसको मैं करता नहीं हूं। और जो मैं करता हूं वही मैं हूं; जो मैं कहता हूं उसका कोई मूल्य नहीं है।

यह पाखंड अनिवार्य है। क्योंकि जहां बदलने की कोशिश की जाती है वहां दो ही परिणाम होते हैं, या तो बगावत या पाखंड। और जब भी पाखंड बहुत ज्यादा हो जाता है तो फिर बगावत पैदा हो जाती है। आज अगर अमरीका और यूरोप में बगावत है तो उस बगावत का कारण है। ईसाइयत ने दो हजार साल तक जो पाखंड पैदा किया है उसके खिलाफ वह बगावत है। तो ठीक विपरीत स्थिति बन गई है।

इस मुल्क में भी आज नहीं कल भयंकर विस्फोट होगा। चीन में जो विस्फोट हुआ है वह कनफ्यूशियस उसका कारण है। माओत्से तुंग की सफलता असलियत में माओत्से तुंग की सफलता नहीं है। कनफ्यूशियस और उसकी परंपरा ने चीन के ऊपर जो जबरदस्त ढांचा व्यक्तित्व का थोप दिया था, वह इतना भारी हो गया था कि उसे तोड़ना जरूरी था। जब भी कोई चीज अतिशय हो जाएगी तो टूट जाएगी। आज जगह-जगह नीति के ढांचे

टूट रहे हैं; उनका कारण इतना ही है कि वे नीति के ढांचे पाखंड हैं। लाओत्से इनके जरा भी समर्थन में नहीं है। उसकी धर्म की दृष्टि बिल्कुल ही अलग है। हम इस सूत्र में प्रवेश करें तो हमें ख्याल में आए।

"महान प्रतीक को धारण करो, होल्ड दि ग्रेट सिंबल, और समस्त संसार अनुगमन करता है, एंड आल दि वर्ल्ड फालोज।"

क्या है वह महा प्रतीक? ताओ उसका नाम है, या कहें धर्म, या कहें स्वभाव। स्वभाव से हमें समझने में आसानी होगी। क्या है तुम्हारा स्वभाव, उस स्वभाव को ही सम्हाले रहो। और वह स्वभाव कष्ट में भी ले जाए तो कष्ट में जाओ, और वह स्वभाव तुम्हें मुसीबत में डाल दे तो मुसीबत में पड़ो। क्योंकि वह मुसीबत भी निखारने वाली सिद्ध होगी। और वह कष्ट भी तुम्हें ताजा करेगा और तुम्हें जीवन देगा। लेकिन स्वभाव को मत छोड़ो; उस महा प्रतीक को पकड़े रहो। स्वभाव से प्रतिकूल मत होओ, चाहे कितना ही कोई लाभ दिखाई पड़ रहा हो। और स्वभाव से जरा भी मत हटो, चाहे कितनी ही हानि दिखाई पड़ती हो।

लाओत्से की दृष्टि में यही साधना है कि जो मेरा स्वभाव है, मैं उसका अनुगमन करूंगा। बहुत कठिन है, बहुत कठोर है; क्योंकि पूरा समाज पाखंड से भरा है। और जहां सारे लोग पाखंड से भरे हों और जहां सब कुछ झूठ हो गया हो, वहां एक व्यक्ति अपने स्वभाव का अनुगमन करे तो कठिनाई में पड़ेगा। स्वाभाविक। क्योंकि वह ऐसी भाषा बोलने लगेगा और ऐसा जीवन जीने लगेगा कि जिसका किसी से तालमेल नहीं खाएगा।

मैं एक कहानी पढ़ रहा था। लाओत्से को पढ़ कर किसी ने वह कहानी लिखी हुई मालूम पड़ती है। कहानी का पात्र है, वह इतना प्रभावित हो जाता है लाओत्से के स्वभाव की बात से कि वह अचानक सारा पाखंड छोड़ देता है, और जो स्वाभाविक है वैसा ही करने लगता है। घंटे भी नहीं बीत पाते कि लोगों को शक हो जाता है कि वह पागल हो गया। पत्नी अस्पताल में भर्ती करवाती है। वह बहुत कहता है कि मैं पागल नहीं हो गया हूं, मैं केवल सच्चा हो गया हूं। तो जिस आदमी को मैं कहना चाहता था कि तू बेईमान है, उसको सदा से जानता था कि वह बेईमान है और सदा से कहना चाहता था कि बेईमान है; अब तक कहा नहीं था, अब तक उसकी ईमानदारी की प्रशंसा की थी। अब मैंने सच-सच कह दिया; मैं सिर्फ सच्चा हो गया हूं। लेकिन कोई उसकी सुनता नहीं। लोग समझते हैं कि उसके दिमाग में कुछ गड़बड़ हो गई है। लोग बहुत बुरा मानते हैं; क्योंकि वह, जैसी बात उसे ठीक लगती है, वैसी कहनी शुरू कर देता है। तो वह अपने घर बैठा रहता है। लोग उसे देखने आते हैं कि उसकी तबीयत खराब है। तो पहले तो लोग चौंकते थे जब वह सच्ची बातें कह देता था, लेकिन अब वे मुस्कुराते हैं। क्योंकि सब राजी हो गए हैं, मान लिया है कि इसका दिमाग खराब हो गया है। उसे अंततः पागलखाने जाना पड़ता है।

अगर आप, जैसी समाज की व्यवस्था है, उसमें अचानक सच्चे हो जाएं तो आप इतनी मुसीबत में पाएंगे जितना कि पागल भी नहीं पा सकता है। क्योंकि जिस पत्नी से आप जिंदगी भर से कह रहे थे कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तेरे बिना जी नहीं सकता, उससे आप क्या कहिएगा? जिस पति से आप कह रहे थे कि तुम परमात्मा हो और व्यवहार जिंदगी भर उससे ऐसा ही कर रहे थे जैसे वह शैतान हो, उसको क्या कहिएगा? अगर चौबीस घंटे के लिए भी आप ठीक सच्चे हो जाएं तो आप पाएंगे कि आप जिंदा नहीं रह सकते। बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

इमर्सन ने अपने एक पत्र में लिखा है कि मैं सुनता हूं, पढ़ता हूं कि सत्य होना चाहिए; लेकिन मैं जानता हूं कि अगर लोग सत्य का अनुगमन करें तो दुनिया में दो मित्र भी खोजना मुश्किल हो जाएंगे। मित्रता ही असंभव हो जाएगी। प्रेम बिल्कुल असंभव हो जाएगा; क्योंकि सब झूठ पर खड़ा है।

आपका प्रेम, आपकी दोस्ती, आपके संबंध सब झूठ पर खड़े हैं। यह बड़े मजे की बात है कि दुनिया भर के शिक्षक सत्य की शिक्षा दे रहे हैं और हमारी सारी जीवन-व्यवस्था असत्य पर खड़ी हुई है। और अगर हम चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि सत्य से जीएंगे तो या तो आपकी हत्या कर दी जाए, या आपको पागलखाने में बंद कर दिया जाए, या लोग आप पर हंसने लगें कि आपका दिमाग खराब हो गया है। ये भी उनकी व्यवस्थाएं हैं सुरक्षा की। जब वे हंसेंगे कि आप पागल हो गए हैं तो वह आपको पागल नहीं कह रहे हैं, वे हंस कर अपनी सुरक्षा कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि इनकी बात को कोई ध्यान देने की जरूरत नहीं है। वे यह कह रहे हैं कि जब आदमी पागल ही हो गया तो अब इससे कुछ आशा ही नहीं है; यह कुछ भी कह सकता है।

लाओत्से की साधना कठिन है। क्योंकि जैसे ही आप अपने स्वभाव में सरकना शुरू करेंगे, आप पाएंगे कि आपका सारा व्यक्तित्व झूठा है। जगह-जगह से आपको हटना पड़ेगा। आप मुस्कुराते झूठे हैं, आप रोते झूठे हैं।

मैं लोगों को देखता हूं, किसी के घर में कोई मर गया है, वे जाकर वहां ऐसी शक्ल बना लेते हैं एक क्षण में! बाहर तक वे हंसते हुए सिगरेट पीते आ रहे थे; सिगरेट झड़ा कर वे एकदम, शक्ल उनकी बिल्कुल उदास हो जाती है; भीतर जाकर वे उदासी की बातें कर लेते हैं; बाहर आकर फिर वे हंस रहे हैं, गपशप कर रहे हैं; सिनेमागृह की ओर जा रहे हैं। बीच में जैसा उन्होंने जो उदासी ओढ़ी थी वह जैसे कुछ बात ही न थी।

आंसू निकाल लेते हैं लोग झूठे; मुस्कुरा लेते हैं। वह सब चिपकाई हुई मुस्कुराहट है, ऊपर से पेंट की हुई। फिर धीरे-धीरे वे भूल ही जाते हैं कि असली मुस्कुराहट क्या है। इतना अभ्यास हो जाता है झूठी मुस्कुराहट का कि जब असली भी आना चाहिए तो झूठी आ जाती है। वह अभ्यास का हिस्सा हो जाती है। आंसू जब असली भी आना चाहिए तब भी उनको पता नहीं चलता कि असली कहां से लाएं; क्योंकि नकली के लाने की धारा, आदत, यांत्रिक आदत बन गई होती है। इस पर थोड़ा विचार करें तो आपको ख्याल में आएगा कि लाओत्से की साधना अति जटिल होगी, कठिन होगी, महातप होगी।

"महान प्रतीक को धारण करो, और समस्त संसार अनुगमन करता है।"

लेकिन उसके अंतिम परिणाम अभूतपूर्व हैं, अदभुत हैं। एक बार कोई व्यक्ति अपने स्वभाव में उतरने लगे तो पहली घटना तो यह होगी कि सारे लोग उसके विपरीत हो जाएंगे। कारण? क्योंकि आप झूठ हुए ही इसलिए हैं, ताकि कोई आपके विपरीत न हो जाए। इसे थोड़ा समझ लें।

आपने सारा ढांचा झूठा इसलिए खड़ा किया है कि सबसे बनी रहे; कहीं कुछ बिगाड़ न हो जाए। सबसे बनाए रखने में आपने अपने से बिगाड़ कर लिया है। सबको सम्हालने में, पता नहीं सब सम्हले हैं या नहीं सम्हले, आप जरूर बिल्कुल असंतुलित हो गए हैं। आप सम्हले हुए नहीं रहे हैं। सब प्रसन्न रहें आपके आस-पास, सब खुश रहें; हालांकि कोई खुश नहीं है आपके आस-पास; लेकिन इस चेष्टा में एक बात जरूर घटी है कि आप स्वाभाविक नहीं रह गए हैं। और बिना स्वभाविक हुए कोई प्रसन्न नहीं हो सकता। प्रसन्नता स्वभाव के साथ मेल से पैदा होती है; प्रफुल्लता स्वभाव के साथ एकतान होने से पैदा होती है।

तो जैसे ही आप स्वाभाविक होने की कोशिश करेंगे वैसे ही आप पाएंगे कि जहां-जहां आपने ताने-बाने बुने थे--सबको सम्हालने के थे--वे सब टूटने लगे, वे सब शिथिल होने लगे। जिस-जिस को सम्हाला था वह दूर हटने लगा। वह सम्हालना भी सिर्फ कामचलाऊ था, उससे काम चलता था; कुछ सम्हला नहीं था।

स्वभाव के प्रतीक को जैसे ही कोई धारण करेगा, पहला तो परिणाम यह होगा कि लोग उसके विपरीत होने लगेंगे। अगर वह डर गया तो वापस अपनी खोल को ओढ़ लेगा। अगर नहीं डरा और स्वभाव में चलता ही चला गया तो यह विरोध ज्यादा दिन नहीं टिकेगा। यह विरोध तो उसकी पुरानी झूठ के कारण पैदा हो रहा है।

जैसे-जैसे लोग राजी होते जाएंगे, समझते जाएंगे, जैसे-जैसे लोग उसके स्वभाव, उसके आनंद, उसकी शांति से परिचित होने लगेंगे, वैसे-वैसे विरोध गिर जाएगा। और इस विरोध के गिरने के बाद अनुगमन पैदा होता है; और तब लोग उसके पीछे चलने लगेंगे।

अभी आप लोगों को पीछे चलाने की कोशिश करते हैं; कोई आपके पीछे चलता नहीं। आपको भला ख्याल हो कि लोग आपके पीछे चल रहे हैं, उनको यह ख्याल होता है कि आप उनके पीछे चल रहे हैं। लेकिन जिस दिन कोई व्यक्ति अपने स्वभाव में थिर होता है उस दिन अपने आप लोग पीछे चलना शुरू हो जाते हैं। क्योंकि वह अपूर्व धारा पैदा हो गई उसके भीतर, वह महा चुंबक उपलब्ध हो गया उसे, जिससे लोग खिंचने शुरू हो जाते हैं।

लेकिन उस घटना के पहले विरोध होगा। और उस घटना के पहले जो साथ थे वे साथ छोड़ देंगे। उस घटना के पहले जो अपने थे वे पराए हो जाएंगे। क्योंकि उनसे सारा संबंध झूठ का था; वह जबरदस्ती था। वह किसी भय और लोभ के कारण था। आप अपने संबंधों को सोचें कि आपके संबंध किस तरह से खड़े हुए हैं। पति पत्नी से डरा हुआ है, इसलिए प्रेम किए चला जाता है। पत्नी डरी हुई है भविष्य से, आशंकित है--क्या होगा जीवन का; कहां भोजन, कहां रोटी, कहां मकान--वह पति की सेवा किए जाती है। लेकिन दोनों के बीच कोई, वह निसर्ग की कोई अनुभूति, कोई प्रेम का कोई स्फुरण नहीं है। और हम डराए जाते हैं एक-दूसरे को, क्योंकि हम जानते हैं यही हमारा संबंध है। या तो भय या लोभ, बस दो के आधार पर हम जीते हैं। इसलिए साथ चलते हुए लोग मालूम पड़ते हैं, लेकिन सिर्फ घिसटते हैं; कोई किसी के साथ नहीं चलता।

साथ तो कोई तभी चल सकता है जब कोई लोभ और कोई भय न रह जाए; जब सिर्फ दो प्रकृतियां मेल खाती हों और इसलिए साथ चलती हों। तब लाओत्से कहता है कि सारा संसार अनुगमन करता है।

लेकिन आप यह मत सोचना अपने मन में कि यह तरकीब अच्छी है सबसे अनुगमन करवाने की। अगर आप इस कारण स्वभाव की बात से प्रभावित हुए तो आप स्वभाव को कभी उपलब्ध न हो पाएंगे। स्वभाव को तो वही उपलब्ध होता है जो दूसरे की चिंता ही नहीं करता कि वह पीछे चलेगा कि नहीं चलेगा, कि साथी होगा कि दुश्मन हो जाएगा; दूसरे की जो चिंता ही छोड़ देता है।

बहुत बार लाओत्से के ऊपर स्वार्थी होने का आरोप लगाया गया। उस आरोप में थोड़ी सच्चाई है। क्योंकि लाओत्से कहता है कि तुम अगर ठीक से स्वभाव में हो जाओ--उसको ही वह कहता है ठीक स्वार्थ--तो सब घटना घटनी शुरू हो जाएगी। तुम दूसरे की चिंता ही मत करो, क्योंकि दूसरे की चिंता से ही सारा उपद्रव पैदा हो रहा है।

यह जरा जटिल है। क्योंकि हमारे मन में परोपकार की इतनी धारणा बैठी हुई है, और सब एक-दूसरे का उपकार करने में इस बुरी तरह लगे हुए हैं। और उनका उपकार दूसरे को बिल्कुल नष्ट कर देता है। इसे हम थोड़ा समझें। क्योंकि एक धारणा मजबूत हो तो उससे बिल्कुल प्रतिकूल धारणा समझ में आनी कठिन हो जाती है।

पति सोच रहा है कि वह पत्नी के लिए सब कुछ कर रहा है। पत्नी सोच रही है कि वह अपना जीवन गंवा रही है पति के लिए। दोनों मिल कर सोच रहे हैं कि हम बच्चों के लिए जी रहे हैं। कोई अपने लिए नहीं जी रहा है। और जो अपने लिए नहीं जी रहा है उसके पास जीवन ही नहीं होता; वह दूसरे के लिए कैसे जीएगा? इसलिए खतरे होंगे। पति सोच रहा है, पत्नी के लिए मेहनत कर रहा है, तो पत्नी से बदला लेता रहेगा स्वभावतः। क्योंकि जिंदगी गंवा रहा है वह पत्नी के लिए। तो इसका बदला कौन लेगा? तो पत्नी पर वह क्रोध और रोष और दुष्टता जाहिर करता रहेगा। पत्नी सोच रही है, उसने अपना शरीर, अपना जीवन, अपना सब

कुछ गंवा दिया इस पति के लिए; वह इससे बदला लेती रहेगी। और दोनों मिल कर बच्चों की गर्दन को कसे हैं; वे कहते हैं, हम तुम्हारे लिए जी रहे हैं, नहीं तो हमें जीने की कोई बात ही नहीं है।

तुम्हें जीने की कोई बात नहीं है? तुम्हारे बाप और मां तुम्हारे लिए जीए; उनको भी जीने की कोई बात नहीं थी। उनके बाप और मां उनके लिए जीए। और ये बच्चे भी खुद नहीं जीएंगे; ये अपने बच्चों के लिए जीएंगे। इस संसार में कोई अपने लिए जीएगा ही नहीं तो जीवन कहां फलित होगा?

तो ये मां-बाप बच्चों से बदला लेते रहेंगे; इन पर क्रोध आता ही रहेगा। अब तक मैंने एक ऐसा मां-बाप नहीं देखा जो बच्चों पर क्रोध न कर रहा हो। लेकिन क्रोध का कारण बच्चे नहीं हैं; क्रोध का कारण यह है कि मेरी जिंदगी तुम्हारे लिए खराब हो रही है। मैं मर जाऊंगा मेहनत कर-कर के और तुम मजा करोगे।

वे भी मजा नहीं करेंगे; आपकी कृपा ऐसी है कि आप उनको बिगाड़ कर रहेंगे। यहां कोई मजा तो कर ही नहीं सकता; मजा यहां पाप है। तो ये मां-बाप बच्चों से बदला लेते रहेंगे।

और ध्यान रहे, बच्चों को यह कभी समझ में नहीं आएगा कि आप हमारे लिए जीए, क्योंकि आपके पास जीवन ही नहीं था। और बच्चों को सिर्फ इतना ही समझ में आएगा कि कितना आपने क्रोध किया, कितना उनको सताया, कितना परेशान किया। आखिर में बच्चों को याद रह जाएगी आपकी दुष्टता, और आपको याद रह जाएगा आपकी कुर्बानी। और इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। बुढ़ापे में आप कहते रहोगे कि मैंने कुर्बानी की है; और बच्चे जानते हैं कि सिवाय तुमने सताने के और कुछ भी नहीं किया। बच्चे बूढ़ों से बदला लेते हैं, क्योंकि बच्चे बचपन में तो बदला नहीं ले सकते। कमजोर हैं, असहाय हैं; आप पर निर्भर हैं। आप उनको सता लेते हैं। फिर जब आप बूढ़े होते हैं तो बच्चे आपको सताना शुरू कर देते हैं।

सारी दुनिया में बूढ़े बच्चों से परेशान हैं, क्योंकि जैसे ही बूढ़े हुए आप, और बच्चे आपका तिरस्कार करने लगते हैं और आपको सताना शुरू करते हैं। वे भी ढंग निकाल लेते हैं। यह ठीक वही बदला वापस लौटा रहा है। यह वर्तुल पूरा हो रहा है। बूढ़े बहुत दुखी होते हैं कि बच्चे हमारे साथ क्या व्यवहार कर रहे हैं! पर उन्हें पता नहीं कि उन्होंने बच्चों के साथ क्या व्यवहार किया था। उनको याद है कुर्बानी कि उन्होंने जिंदगी इन्हीं के लिए नष्ट कर दी। इन दोनों भाषाओं का कहीं कोई मेल नहीं है।

लेकिन अगर ठीक से समझें तो जो आदमी दूसरे के लिए जिंदगी नष्ट करेगा वह आदमी खतरनाक है। क्योंकि उसमें जो शहीदगी पैदा हो गई कि मैं शहीद हो गया हूं, वह बदला लेगा। तो यह जो मार्टरडम है, यह जो शहीदगी है, यह सबसे बड़ा पाप है जगत में। इस भाषा में कभी भी मत सोचना कि मैं दूसरे के लिए जीऊं। क्योंकि आप खतरनाक हैं, आप दूसरे को नुकसान पहुंचाएंगे। आप सिर्फ अपने लिए जीएं, और आपके जीवन में इतनी सुगंध हो--वह तभी होगी जब आप अपने लिए जीएंगे।

पति अपने लिए जी रहा है; उसके अपने लिए जीने से जो आनंद फलेगा वह पत्नी को भी मिलेगा, वह ज्योति उसके ऊपर भी पड़ेगी। लेकिन पति कभी यह नहीं कहेगा कि मैं तेरे लिए जीया। मैं जीया अपने लिए, और अगर मेरे जीवन में बाढ़ आई और मेरे जीवन में धाराएं ज्यादा हो गईं और अतिरेक हो गया मेरा आनंद तो तुझ तक भी पहुंचा। लेकिन मैं तेरे लिए नहीं जीया, जीया मैं अपने ही लिए। और पत्नी अपने लिए जी रही है; और उसके पास जब ज्यादा होती है तो वह बांटती है। और जो ले लेता है, उसकी वह अनुगृहीत होगी। क्योंकि जब कोई भार से भर जाता है आनंद के तब जो भी उसके आनंद को बंटा लेता है, वह उसे निर्भार करता है। और ये मां-बाप दोनों आनंद से जी रहे हैं, अपने आनंद के लिए; इनकी छाया में बच्चों को भी बहुत आनंद मिलेगा। और ये बच्चे अनुगृहीत रहेंगे इनके बुढ़ापे तक, क्योंकि इनके पास जो छाया और जो सुगंध अनुभव हुई थी। और

इन मां-बाप को कभी बुढ़ापे में यह ख्याल नहीं रहेगा कि हमने अपनी जिंदगी तुम्हारे लिए बर्बाद की। इसलिए बदला लेने का कोई सवाल नहीं है। और जहां बदला लेने का कोई सवाल नहीं है वहां बहुत कुछ प्रत्युत्तर में मिलता है।

इस जगत में जो मांगता है उसे कुछ भी नहीं मिलता। जो नहीं मांगता है और अपने आनंद से देता है, किसी सिद्धांत के कारण नहीं, किसी कर्तव्य के कारण नहीं, जो देता है इसलिए कि उसके पास इतना ज्यादा है कि देने में वह सुख पाता है, उसको बहुत आनंद उपलब्ध होता है।

लाओत्से की शिक्षा अति स्वार्थी है। पर मैं मानता हूं कि अगर दुनिया उसकी शिक्षा के करीब आ जाए तो दुनिया में इतना परार्थ होगा जिसका हिसाब नहीं। हम सब परोपकारवादी हैं, और दुनिया में इतना उपद्रव मचा है और इतना स्वार्थ है जिसका कोई हिसाब नहीं। विपरीत परिणाम हो जाता है। दूसरे की चिंता छोड़ कर अपनी ही चिंता कर लें ठीक से। पर हमारे मन में बड़ा डर लगता है। अपनी चिंता? यह तो बात बुरी है। चिंता सदा दूसरे की करनी चाहिए। देश के लिए कुर्बान हो जाओ! पति के लिए कुर्बान हो जाओ! बेटे-बच्चों के लिए कुर्बान हो जाओ! जैसे आप सिर्फ कुर्बानी के बकरे हो; आपको सिवाय कुर्बान होने के कोई काम ही नहीं है। कहीं न कहीं कुर्बान हो जाओ, और आपकी सार्थकता हो गई। कहीं न कहीं किसी बलिवेदी पर अपना सिर रख दो, और झंझट खत्म हो गई; आपका जीवन पूर्णता को उपलब्ध हो गया।

कुर्बानी की बात ही बेहूदी है। और वह जिन्होंने खोजी है उन्होंने एक बहुत झूठा जाल खड़ा कर रखा है। जाल इतना बड़ा है और इतना प्राचीन है कि उसमें से बाहर सिर उठा कर देखना भी बहुत मुश्किल होता है। मैं भी आपसे कहता हूं, अपने स्वार्थ की अगर आप ठीक से चिंता कर लें तो आपसे किसी को कोई हानि न होगी। और आपके जीवन से परोपकार सहज ही बहेगा। और सहज बहे तो ही शुभ है; चेष्टा से बहाना पड़े तो अशुभ है।

"महान प्रतीक को धारण करो, और समस्त संसार अनुगमन करता है। और बिना हानि उठाए अनुगमन करता है।"

यह वचन बहुत अनूठा हैः "और बिना हानि उठाए अनुगमन करता है; फालोज विदाउट मीटिंग हार्म।"

क्योंकि अनुगमन तो करवाया जा सकता है; लेकिन तब हानि होती है। सारे नेता हानि पहुंचाते हैं, क्योंकि सारे नेता का रस है कि कोई अनुगमन करे। नेता को अनुयायी में कोई रस नहीं है वस्तुतः, लोग उसका अनुगमन करें इसमें रस है। और लोग अनुगमन करें इसमें रस इसलिए है कि जितने ज्यादा अनुयायी उतना बड़ा वह नेता! उसके अहंकार की तृप्ति इसमें है कि कितने लोग उसके पीछे चल रहे हैं। जितनी बड़ी संख्या उसके पीछे चले, वह उतना बड़ा है; उतना अहंकार तृप्त होता है।

इसलिए आप देखते हैं, शांति के समय में बड़े नेता पैदा नहीं होते; अशांति के समय में बड़े नेता पैदा होते हैं। क्योंकि अशांति के समय में लोग इतने भयभीत हो जाते हैं कि वे किसी का सहारा चाहते हैं। समझ लें कि भारत में स्वतंत्रता का संग्राम था तो बड़े नेता पैदा हुए। कोई स्वतंत्र देश में इतने बड़े नेता पैदा नहीं होते जितने गुलाम देश में पैदा होते हैं। उसका कारण है। क्योंकि गुलामों की भीड़ स्वतंत्र होना चाहती है; कोई भी सहारा दे तो उसके पीछे चल सकती है। लेकिन दुनिया के जितने बड़े नेता पैदा होते हैं सब युद्ध के समय में पैदा होते हैं; शांति के समय में कोई बड़ा नेता पैदा नहीं होता। इंग्लैंड चर्चिल को पैदा करके दिखाए! तो दूसरा महायुद्ध फिर से लड़ना पड़े तो चर्चिल पैदा हो सकता है। दि गॉल ने स्टैलिन की मृत्यु पर कहा था कि दुनिया का बड़े नेताओं का काल समाप्त हो गया, स्टैलिन की मृत्यु के साथ। निश्चित ही, स्टैलिन था, रूजवेल्ट था, हिटलर था और चर्चिल था--बड़े लोग थे।

पर ये सारे बड़े लोग युद्ध से पैदा हुए थे। चाहे गांधी हों, चाहे नेहरू हों, ये सारे बड़े लोग संघर्ष से पैदा होते हैं। जब अशांति होती है, और लोग परेशान होते हैं, और लोगों को कोई का सहारा चाहिए, कोई जिसके वे पीछे चल सकें। जब युद्ध नहीं होता तो लोग अपने पैरों पर खड़े रहते हैं; किसी के पीछे चलने की उनको चिंता नहीं होती। जब कोई भय नहीं होता तो वे किसी का सहारा नहीं पकड़ते।

इसलिए अगर दुनिया में बिल्कुल शांति हो जाए तो दुनिया से नेता विदा हो जाएंगे। शांत दुनिया में नेता बिल्कुल नहीं होंगे। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, जब तक नेता हैं तब तक शांति नहीं हो सकती। और नेता कितनी ही शांति की बात करें वे शांति ला नहीं सकते; क्योंकि शांति उनके विपरीत है। वे युद्ध ही लाएंगे। वे बातें करेंगे कि युद्ध नहीं चाहिए; और इतने जोश में आ जाएंगे कि युद्ध नहीं चाहिए कि मौका लगे तो युद्ध नहीं चाहिए के लिए युद्ध करेंगे; मगर युद्ध के बिना नेता नहीं जी सकते। जहां युद्ध समाप्त होता है वहां नेतागिरी समाप्त हो जाती है। राजनीति ही समाप्त हो जाती है अगर अशांति न हो।

तो अशांति बनी ही रहनी चाहिए, कारण कुछ भी हों; अशांति खड़ी रहनी चाहिए, कोई भी बहाना हो। बहाने सच भी मालूम पड़ें--बहाने सच ही होते हैं--लेकिन असली बात बहाना नहीं होती, असली बात नेतृत्व होता है। लोग मुसीबत में हैं; नेता को मुसीबत से मतलब नहीं है, नेता को मतलब इस बात से है कि मुसीबत में जो लोग हैं वे उसके पीछे चल सकते हैं। इसलिए जो सुविधा में है, मौज में है, वह किसी के पीछे नहीं चलता। परेशानी आई कि आप डरे। आपका अकेला होना मुश्किल होने लगा; अपने पैरों पर भरोसा न रहा। तो आप किसी के पीछे चलते हैं। और जहां पीछे चलाने का यह रस कायम रहेगा वहां मुसीबतें निर्मित होती ही रहेंगी। क्योंकि मुसीबतें बिल्कुल जरूरी हैं। अभी यह भारत-पाकिस्तान का युद्ध हुआ तो इंदिरा सबको पार कर गई। नेहरू भी थोड़े फीके पड़ गए। पड़ ही जाएंगे। जहां युद्ध है, लोग भयभीत हुए, कि भयभीत लोग भीड़ में इकट्ठे हो जाते हैं। युद्ध गया... ।

इसलिए आप देखते हैं, जब युद्ध होता है तो लोग कहते हैं, देश में बड़ी एकता आ जाती है। एकता वगैरह कुछ नहीं आती। भयभीत लोग अकेले खड़े नहीं रह सकते; दूसरे का सहारा चाहिए। भीड़ में चारों तरफ घिर कर खड़े होते हैं, भरोसा आ जाता है--हम कोई अकेले नहीं हैं। इसलिए जब भी उपद्रव होता है, देश में एकता मालूम पड़ती है। जब भी उपद्रव हट जाता है, बिल्कुल एकता समाप्त हो जाती है। अगर पूरे मुल्क पर खतरा हो तो फिर महाराष्ट्रियन और गुजराती में कोई झगड़ा नहीं है; फिर हिंदी-भाषी में और तमिल-भाषी में कोई झगड़ा नहीं है। दोनों डरे हुए हैं। अभी ये झगड़े काम के नहीं हैं; ये अलग कर देंगे वे। अभी इकट्ठे खड़े हो जाएंगे। शांति आ गई; झगड़े वापस लौट आएंगे।

अगर इस बात को हम ठीक से समझ लें तो नेतृत्व की अनिवार्य जरूरत है कि लोग अशांत हों, दुखी हों, गरीब हों, परेशान हों। वे बिल्कुल खुशहाल हो जाएं तो नेतृत्व नष्ट हो जाएगा। अनुगमन तो करवाया जा सकता है बहुत तरकीबों से, लेकिन उनकी हानियां हैं।

और सब नेता अनुयायियों की बुद्धि को नुकसान पहुंचाने वाले होते हैं। क्योंकि जब भी कोई नेता बुरी तरह छा जाता है आपके भय और लोभ का शोषण करके तो वह आपकी चेतना को नुकसान पहुंचाता है। वह आपको सचेत नहीं करता; वह आपको बेहोश करता है। वह असल में आपसे यह कहता है कि फिक्र मत करो, तुम्हें करने की कोई जरूरत नहीं; तुम सब मुझ पर छोड़ दो, मैं कर लूंगा। और आप डरे हुए होते हैं, इसलिए लगता है कि ठीक है, कोई और सम्हाल ले सारी जिम्मेवारी तो अच्छा है। नेता जिम्मेवारी सम्हाल लेता है। कोई नेता जिम्मेवारी पूरी नहीं कर पाता; लेकिन सम्हाल लेता है। सम्हालने से वह बड़ा हो जाता है; उसके अहंकार

की तृप्ति हो जाती है। लेकिन वह हानि पहुंचाता है। क्योंकि लोगों का चैतन्य बढ़ना चाहिए, घटना नहीं चाहिए। उनका दायित्व बढ़ना चाहिए, घटना नहीं चाहिए। उनका होश बढ़ना चाहिए, घटना नहीं चाहिए। और अपनी समस्याओं को खुद हल करने की हिम्मत बढ़नी चाहिए, कम नहीं होनी चाहिए।

इसलिए असली गुरु वह नहीं है जो आपकी समस्याएं अपने सिर पर ले लेता है। असली गुरु वह है जो आपकी समस्याएं जरा भी अपने सिर पर नहीं लेता, और आपको इस स्थिति में छोड़ता है कि आप इस योग्य बन जाएं कि अपनी समस्याएं हल कर लें। क्योंकि समस्याएं आप हल करेंगे तो ही आपका विकास है। कोई समस्या दूसरा हल कर देगा तो आपका कोई विकास नहीं है। दूसरे के हल के द्वारा समस्या भला हल हो जाए, आपकी हानि हो गई। आप एक विकास के अवसर से चूक गए। इसलिए जो नेता जिम्मेवारी ले लेते हैं, जो गुरु जिम्मेवारी ले लेते हैं, वे नुकसान पहुंचाते हैं।

लाओत्से कहता है, "और बिना हानि उठाए अनुगमन करता है।"

अगर कोई व्यक्ति अपने स्वभाव में लीन हो जाए तो लोग उसके पीछे चलते हैं, लेकिन उनकी कोई हानि नहीं होती। ऐसे व्यक्ति के पीछे चलने से उनको जरा भी हानि नहीं होती; उनको लाभ ही होता है।

लेकिन जब कोई नेता पीछे चलवाता है तब हानि होती है। स्वभाव को उपलब्ध व्यक्ति किसी को अनुयायी बनाने के लिए उत्सुक नहीं होता; कोई पीछे चले, इसमें भी उत्सुक नहीं होता। कोई उसकी माने, इसमें भी उत्सुक नहीं होता। स्वभाव को उपलब्ध व्यक्ति तो अपने आनंद में लीन होता है। उसके आनंद की हवा में कोई बह कर आ जाए, और उसकी सुगंध किसी को पकड़ ले, और उसके भीतर का संगीत किसी के हृदय में तान छेड़ दे, वह गौण बात है; उससे कोई लेना-देना नहीं है।

"और बिना हानि उठाए अनुगमन करता है; और स्वास्थ्य, शांति और व्यवस्था को उपलब्ध होता है।"

वे लोग जो पीछे चलते हैं, स्वभाव को उपलब्ध व्यक्ति के पीछे चलते हैं, वे स्वास्थ्य, शांति और व्यवस्था को उपलब्ध होते हैं। लेकिन कला यही है कि न तो वह स्वास्थ्य की चिंता करता है आपके, और न आपकी शांति की चिंता करता है, और न आपको व्यवस्था देता है।

लाओत्से की बात बड़ी कंट्राडिक्टरी है, बड़ी विरोधाभासी है। लाओत्से कहता है, व्यवस्थापकों ने जगत में अव्यवस्था पैदा कर रखी है। वे जो व्यवस्था करने में लगे हुए हैं कि सब व्यवस्थित कर देना है, उनके कारण अव्यवस्था खड़ी हो जाती है। क्योंकि उनकी व्यवस्था आरोपण होती है, और कोई भी अपने स्वभाव में नहीं रह पाता। वे इतना थोप देते हैं बाहर का ढांचा कि भीतर की आत्मा कुचल जाती है। वे व्यवस्था भी जमा देते हैं, लेकिन वह ऊपर-ऊपर होती है, जबरदस्ती होती है, परतंत्रता जैसी होती है। और ज्यादा देर नहीं टिक पाती; स्वभाव उसको तोड़ डालता है। और जब व्यवस्था स्वभाव से टकरा कर टूटती है तो अव्यवस्था आ जाती है। वास्तविक व्यवस्था वही है जो कि बिना किए, बिना थोपे आती हो।

आप यहां चुप बैठे हैं। कोई आपसे कह नहीं रहा है कि आप चुप बैठें; कोई यहां डंडा लेकर नहीं खड़ा है कि आप शांत रहें। इधर मैं देखता हूं, धार्मिक सभाओं में महात्मागणों को हर दो-चार वचन के बाद बोलना पड़ता है, अब शांत रहिए, अब चुप हो जाइए। और अगर यह नहीं हो पाता तो बोलो सिया रामचंद्र की जय! तो एक क्षण को लोग जय बोल कर कम से कम, उतना उपद्रव मच जाता है, तो थोड़ी देर को शांति हो जाती है। आश्चर्यजनक है! और धर्मगुरुओं को यह नहीं दिखाई पड़ता कि लोगों की अशांति यह कह रही है कि आप बंद करो, मत बोलो; कोई सुनने को राजी नहीं।

व्यवस्था बिठाने की जरूरत क्या है? जहां भी लोग स्वभाव का कोई स्वर सुनते हैं, चुप हो जाते हैं। चुप न होते हों तो बोलने वाले को चुप हो जाना चाहिए। सीधी बात है। व्यवस्था बिठाने का कोई सवाल नहीं है। आप चुप हैं, यह चुप्पी में एक व्यवस्था है जो व्यवस्था आपसे आ रही है। उस व्यवस्था को कोई ला नहीं रहा है। अगर लाई जाए तो आपके भीतर बेचैनी शुरू हो जाएगी। आप बैठे भी रहेंगे तो करवट बदलते रहेंगे, क्योंकि लाई गई व्यवस्था... आपके भीतर से तो कुछ और हो रहा था; ऊपर से कुछ और करना पड़ रहा है। आप थक जाएंगे; आपकी जीवन-ऊर्जा को कुंठा मालूम पड़ेगी, दमन मालूम पड़ेगा।

आप देखते हैं, स्कूल से बच्चे छूटते हैं तो किस तरह छूटते हैं! जैसे कारागृह से छूटे हों। कितने प्रसन्न होते हैं! उनकी प्रसन्नता में ही उनकी स्लेट टूट जाती है, किताबें फट जाती हैं, बस्ता फेंक देते हैं। एकदम आनंदित हो जाते हैं। लेकिन हम कर क्या रहे हैं उनके साथ? छह घंटे जबरदस्ती व्यवस्था बिठाए हुए हैं। डंडे के बल पर व्यवस्था बिठाए हुए हैं। इसलिए अगर आज सारी दुनिया में विश्वविद्यालय जलाए जा रहे हैं, कालेजों में आग लगाई जा रही है, तो आप यह मत समझना कि सिर्फ बच्चे ही जिम्मेवार हैं। यह तो होने ही वाला था। क्योंकि जो आप कर रहे हैं बच्चों के साथ वह जबरदस्ती है। उस जबरदस्ती का प्रतिकार होने वाला था।

पहले नहीं हुआ, क्योंकि बहुत थोड़े स्कूल थे, बहुत थोड़े कालेज थे। बड़ा समूह शिक्षित नहीं किया जा रहा था। और जो लोग शिक्षा लेने जाते थे वे उन घरों के थे जिनके पास साधन-सामग्री थी; पैसा, सुविधा, जमीन-जायदाद थी। उन घरों के बच्चे विश्वविद्यालयों और स्कूलों में पढ़ रहे थे। जिनके पास सुविधा है वे बगावती नहीं होते; क्योंकि बगावत में उनका नुकसान होगा, कुछ खोएगा। लेकिन जिनके पास कुछ नहीं है वे बगावती हो जाते हैं। उनसे आप कुछ छीन नहीं सकते; उनका कुछ भी नष्ट नहीं होता। और जिनके पास है उनका नुकसान होता है; और जिनके पास नहीं है उनका कोई नुकसान नहीं होता।

मार्क्स ने कहा है कि दुनिया के मजदूरो, इकट्ठे हो जाओ! क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है। तो डर क्या है?

तो सारी दुनिया में सार्वभौम शिक्षा! सब को शिक्षित होना चाहिए। स्वभावतः, विश्वविद्यालयों और कालेजों, स्कूलों में वे सारे बच्चे इकट्ठे हो गए हैं जिनके पास कुछ नहीं है। और उनको आप छह घंटे जबरदस्ती बिठाए हुए हैं, और उनके पास खोने को कुछ नहीं है। और छह घंटे की सजा, और यह बीस-पच्चीस साल तक सजा चलती है। इसका उपद्रव है। इस जबरदस्त व्यवस्था में से अव्यवस्था पैदा हो रही है। कोई विश्वविद्यालय बिना जले बच नहीं सकता। इस सदी के पूरे होते-होते ये बच्चे सारे विश्वविद्यालय, सब कालेजों को मिट्टी में मिला देंगे। और आपके पास कुछ उपाय नहीं। क्योंकि आप जो भी सोचते हैं वह गलत सोचते हैं।

उपाय एक ही है कि कालेज और विश्वविद्यालय से व्यवस्था हट जाए और सहज व्यवस्था आए। वह तो हमारी संभावना के बाहर है। हम सोच ही नहीं सकते कि सहज व्यवस्था कैसे आ सकती है। क्योंकि उसका तो अर्थ होगा कि सारा ढांचा बदले जीवन का। क्योंकि शिक्षक सहज व्यवस्था ला सकता है, अगर वह सच में शिक्षक हो। लेकिन सच में शिक्षक कौन है? सौ में एक शिक्षक भी सच में नहीं है। निन्यानबे नौकरी करने गए हैं, जैसे वे कोई और नौकरी करने गए होते। और सच तो यह है कि आखिर में वे शिक्षक की नौकरी करने जाते हैं जब कोई नौकरी नहीं मिलती। पहले वे कोशिश करते हैं कि सब-इंस्पेक्टर हो जाएं, कि किसी दफ्तर में मैनेजर हो जाएं, कि हेड क्लर्क हो जाएं। जब कुछ भी नहीं हो पाते तब मजबूरी में वे शिक्षक हो जाते हैं। यह शिक्षक जो सब-इंस्पेक्टर होने गया था, यह अव्यवस्था पैदा करवाएगा। क्योंकि यह व्यवस्था लाने की इतनी चेष्टा करेगा कि सबके भीतर की ऊर्जा को दबा देगा। वह दबी हुई ऊर्जा विस्फोट बन जाएगी।

लाओत्से कहता है, एक और भी व्यवस्था है--स्वभाव की। और जब कोई ऐसे व्यक्ति का अनुगमन करता है, लाओत्से कहता है, अगर संसार ऐसे व्यक्ति के अनुगमन में लीन हो जाए तो स्वास्थ्य, शांति और व्यवस्था सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

स्वास्थ्य क्या है? अपने साथ एक लयबद्धता, अपने साथ एक गहरी मैत्री, अपने भीतर कहीं भी कोई अराजकता न हो; अपने भीतर कोई कलह न हो; एक राजीपन कि सब ठीक है; एक भाव कि सब ठीक है; ऐसा स्वर-स्वर में, श्वास-श्वास में एक गूंज, कि कुछ भी गलत नहीं है। पर यह तभी होता है जब कोई स्वभाव में लीन होने लगता है। और अगर आप ऐसे व्यक्ति के पीछे चल पड़े जो स्वभाव में डूबा हुआ है तो आप ज्यादा दिन बच न पाएंगे। यह स्वभाव में डूबना संक्रामक है।

इस संदर्भ में आपको एक शब्द का अर्थ समझा दूं। हमारे पास एक बहुत मीठा शब्द है, सत्संग। उसको साधु-संन्यासी बुरी तरह खराब कर दिए हैं। सत्संग का मतलब यह नहीं होता कि वहां जाकर गुरु कुछ समझा रहा है और आप कुछ समझ रहे हैं। सत्संग का सिर्फ मतलब होता है कि गुरु है और आप हैं; सिर्फ गुरु मौजूद है और आप उसके पास मौजूद हैं। यह पास होने का नाम सत्संग है; सिर्फ पास होने का नाम, निकट होने का नाम, समीपता का नाम। सत्संग का अर्थ कोई बौद्धिक शिक्षा नहीं है; सत्संग का अर्थ एक आत्मिक सामीप्य है। कोई जो अपने स्वभाव को उपलब्ध हुआ है, उसके पास बैठ कर आपके भीतर भी वही धुन बजने लगेगी जो उसके भीतर बज रही है।

लेकिन बड़ा अदभुत है। आप गुरु के पास जाएं तो गुरु--गुरु खुद, अगर चुप बैठे तो आपके सत्संग में हो जाएगा--वह चुप बैठ नहीं सकता। कुछ बोलना चाहिए उसे। क्योंकि बोल कर वह आपसे बचता है। आपको पता नहीं कि भाषा एक बचाव की तरकीब है। जिस व्यक्ति का सत्संग आप नहीं करना चाहते उससे आप बातचीत शुरू कर देते हैं। क्योंकि बातचीत से एक दीवाल बन जाती है बीच में। अगर पति पत्नी का सत्संग नहीं करना चाहता तो वह चर्चा शुरू कर देगा; वह कुछ भी बात करेगा। आप सबको अनुभव है कि आप बात करेंगे कुछ भी, ताकि निकटता का पता न चले। कुछ भी बात करो। प्रेमी चुप बैठ सकते हैं, पति-पत्नी पास में चुप नहीं बैठ सकते। प्रेमी अक्सर चुप बैठ जाते हैं। बात करने का मन नहीं होता, क्योंकि निकट होने का मन होता है। जब निकट होने का मन होता है तो बात करने का मन नहीं होता। और जब निकट से बचने का मन होता है तो आदमी बात करता है। बातचीत एक सुरक्षा है, एक तरकीब है, जिससे हम एक पर्दा खड़ा कर लेते हैं और ओट में हो जाते हैं।

सत्संग का अर्थ है ऐसे व्यक्ति के पास चले जाना जो स्वभाव को उपलब्ध है। और उसके स्वभाव की तरंगें आप को भी छुएंगी, और शायद उसके मौन में आप भी मौन हो जाएंगे। वह जिस आनंद में नहा रहा है, आप पर भी कुछ बूंदें पड़ जाएंगी। वह जहां खड़ा है वहां की थोड़ी सी झलक आपको भी मिल जाएगी।

ऐसा ही दूसरा शब्द है हमारे पास, दर्शन। इस दर्शन के लिए दुनिया की किसी भाषा में अनुवाद करना आसान नहीं है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है। सत्संग तो पास होने का नाम है। पर अगर, जो व्यक्ति स्वभाव को उपलब्ध हुआ है, उसकी दृष्टि भी आप पर पड़ जाए या आपकी दृष्टि उस पर पड़ जाए तो उतने में भी एक संबंध स्थापित हो जाता है; एक क्षण को एक धारा, एक लहर आपको बहा ले जाती है।

तो पश्चिम के लोग आते हैं, वे नहीं समझ पाते। वे नहीं समझ पाते कि किसी गुरु के दर्शन को जाने का क्या मतलब? जब तक कि बातचीत न हो, इंटरव्यू न हो, कुछ चर्चा न हो, कुछ प्रश्न-उत्तर न हो, तो दर्शन का

क्या मतलब? सिर्फ देखना? तो देख कर क्या फायदा? उनका कहना ठीक है। क्योंकि साधारणतः देख कर क्या फायदा होगा? तो तस्वीर ही देख सकते हैं हम।

लेकिन इस मुल्क को पता है कि दर्शन का बड़ा अदभुत फायदा है। लेकिन वह फायदा तभी है जब दूसरा व्यक्ति स्वभाव को उपलब्ध हो। वह ऐसे ही है जैसे कि आप एक पहाड़ के पास जाएं और एक गहन खाई में झांक कर देखें। तो खाई में झांकते वक्त आपको पता है, जो आप कंप जाते हैं, वह कंपन किस बात से आता है? अभी खाई में आप गिर नहीं गए हैं; सिर्फ झांका है। लेकिन खाई की गहराई आपके भीतर की गहराई को जन्मा देती है। एक प्रतिफलन हो जाता है; आप कंप जाते हैं, उस गहराई से डर जाते हैं। जब कोई स्वभाव को उपलब्ध होता है तो उसके पास जाना एक मानवीय खाई के पास जाना है; एक चैतन्य की खाई--जहां एक अंतहीन गड्ढ है, एक शून्य है। उसका एक क्षण भी दर्शन, और आप फिर वही नहीं होंगे जो आप थे।

लेकिन इस सब की कला थी, कैसे सत्संग करें और कैसे दर्शन करें। अब तो जाते भी हैं आप गुरु के पास तो पैर छुआ और भागे। शायद आपने ठीक से देखा ही नहीं; एक कर्तव्य था, वह निभाया, पूरा किया। शायद आपने झांका ही नहीं। थोड़ी देर बैठ जाएं और सिर्फ देखते रहें।

और ध्यान रहे, यह गुरु की परीक्षा है आपके लिए कि जिस गुरु के पास सिर्फ उसको देखने से आप शांत होने लगें, समझना कि वही आपके लिए गुरु है। जिस गुरु के पास बैठ कर आप अचानक ध्यान में उतर जाएं, समझना कि वही आपके लिए गुरु है। वह क्या कहता है, यह सवाल नहीं है। वह क्या है? और उस क्या है की गंध आपको मिल सकती है अगर आप थोड़े से जाकर शांति से बैठ जाएं।

तो गुरु की तलाश का उपाय ही एक है कि उसके दर्शन से ही आपको कुछ होना चाहिए, उसकी मौजूदगी से आपको कुछ होना चाहिए। इसके पहले कि वह बोले, और उसकी खबर आप में पहुंच जानी चाहिए। इसके पहले कि वह हिले, और आपके भीतर कुछ हिल जाना चाहिए।

लाओत्से कहता है, "बिना हानि उठाए संसार अनुगमन करता है; स्वास्थ्य, शांति और व्यवस्था को उपलब्ध होता है। अच्छी वस्तुएं खाने को दो, राही ठहर जाता है, मेहमान रुक जाता है। लेकिन ताओ का स्वाद बिल्कुल सादा है।"

इसलिए ताओ के पास शायद ही कभी कोई मेहमान रुकता है। स्वाद बिल्कुल सादा है। लाओत्से कहता है कि ताओ में न तो कोई तर्क है, न कोई तीव्र उत्तेजना है, न कोई भय की प्रतारणा है, न कोई लोभ का आकर्षण है। ताओ कहता नहीं कि तुम अगर पुण्य करो, दान करो, तो स्वर्ग पाओगे। ताओ कहता नहीं कि तुमने अगर पाप किया, चोरी की, बेईमानी की, तो नर्क में सड़ोगे। ताओ तुम्हें डराता नहीं और ताओ तुम्हें प्रलोभित भी नहीं करता। ताओ तुम्हें कोई आश्वासन नहीं देता कि भविष्य में ऐसा होगा अगर तुमने माना, और नहीं माना तो ऐसा होगा। ताओ के पास कोई लोभ और भय की व्यवस्था नहीं है। इसलिए उसका स्वाद बिल्कुल सादा है।

आदमी धार्मिक बनता है--अक्सर, सौ में निन्यानबे मौके पर--भय या लोभ के कारण। या तो डरता है तो ईश्वर का सहारा मांगता है और या फिर लोभ सताता है तो ईश्वर का सहारा मांगता है। हमारा ईश्वर लोभ और भय का ही फल है। जब भी तुम मंदिर में गए हो तो पूछना अपने से कि किसलिए आए हो। तो तुम या तो भय को सरकता हुआ पाओगे या लोभ को उठा हुआ पाओगे। और अगर तुम दो में से एक भी पाओ तो मंदिर जानना कि व्यर्थ है जाना; घर लौट आना वापस। अगर मंदिर जाते वक्त न तो भय की कोई लहर भीतर हो, न लोभ की कोई लहर भीतर हो, तो ही समझना कि मंदिर में तुम्हारा प्रवेश होगा।

मंदिर नाम के मकान में प्रवेश करना तो बहुत आसान है। पशु-पक्षी, मक्खियां भी काफी अभी वर्षा में प्रवेश कर गई हैं। उसके लिए प्रवेश करने का कोई सवाल नहीं है। मकान में तो, मंदिर वाले मकान में तुम जा सकते हो, आ सकते हो। लेकिन मंदिर मकान नहीं है। मंदिर एक घटना है, मंदिर एक अनुभव है। और उस अनुभव में तुम तभी प्रवेश कर सकोगे जब तुम्हारे भीतर ये दो चीजें न हों। लेकिन ये दो ही चीजें अगर हट जाएं तो जमीन पर धार्मिक आदमी खोजना मुश्किल है।

रसेल ने कहा है कि दुनिया में अगर सुख आ जाए तब मैं समझूं कि कोई धार्मिक हो। ठीक कहता है। धार्मिक आदमी जैसे हैं, उनको सोचने से रसेल की बात करीब-करीब ठीक लगती है। तो वह कहता है, दुनिया में दुख है इसलिए लोग धार्मिक हैं। लोग परेशान हैं इसलिए लोग धार्मिक हैं। लोग सुखी हो जाएं तो फिर कोई धार्मिक हो! उसकी बात में थोड़ी सच्चाई मालूम पड़ती है। क्योंकि सुख में आप भी स्मरण नहीं करते; दुख में स्मरण करते हैं। जितना दुख बढ़ता है उतने आप आस्तिक होने लगते हैं। और जितना सुख बढ़ता है उतने नास्तिक होने लगते हैं।

यह दुनिया अगर नास्तिक हो गई है तो इसमें बहुत बड़ा कारण तो यही है कि दुनिया में विज्ञान ने बहुत से दुख कम कर दिए हैं। तो डर के मौके बहुत कम हो गए हैं। अगर पीछे लौटें ऋग्वेद के समय में तो ऋग्वेद का जो रूप है उससे लगता है हर चीज डरा रही है। आकाश में बादल गरजने लगें तो डर लगेगा, बिजली चमकने लगी तो डर लगेगा। हर चीज डराने वाली है। क्योंकि किसी चीज का कुछ वश नहीं है आदमी का। बाढ़ आ जाए तो डर लगेगा; वर्षा न हो तो डर लगेगा; ज्यादा हो जाए तो डर लगेगा; रात का अंधेरा भी डराएगा। सभी चीजें डर पैदा करेंगी।

अभी आने वाले कुछ दिनों में सूर्य का ग्रहण लगने वाला है। तो अफ्रीका की सरकारों को--क्योंकि अफ्रीका में पूरा ग्रहण रहेगा, ऐसा हजारों वर्ष के बाद होता है--तो अफ्रीकी सरकारों को खबर करनी पड़ी है आदिवासियों के लिए, जगह-जगह संदेशवाहक भेजने पड़े हैं कि तुम घबड़ाना मत, दुनिया का अंत नहीं हो रहा है। नहीं तो जंगलों में आदिवासी हैं अफ्रीका के, वे देख कर कि सूरज दिन में अचानक समाप्त हो गया, घबड़ाहट से ही मर जाएंगे; वे समझेंगे कि दुनिया का अंत आ गया। और उनकी लोककथाओं में ऐसा है कि जब अंत आएगा तो सूरज जल्दी दोपहर में एकदम से बुझ जाएगा; जब बुझ जाएगा सूरज तो अंत आ जाएगा। तो कहीं वे घबड़ा न जाएं, कहीं कोई आत्महत्या न कर लें, इसलिए अफ्रीकी सरकार ने जगह-जगह सूचनाएं भिजवाईं कि तुम डरना मत, यह सिर्फ ग्रहण है।

वह अफ्रीका में अब भी आदमी तीन-चार हजार साल पुराना है। भय था हर चीज का। भय था तो हर भय से भगवान याद आता था। भय कम होता चला गया। न अब जंगली जानवर आप पर हमला कर रहा है; चारों तरफ से आप सुरक्षित मालूम पड़ते हैं; सीमेंट-कांक्रीट के मकान में कहीं कुछ भय नहीं मालूम पड़ता। सब रोशनी हाथ में मालूम पड़ती है। भगवान का डर कम हो गया है; भगवान का स्मरण कम हो गया है।

लाओत्से न तो भय देता है, न लोभ देता है। इसलिए उसका स्वाद बड़ा सादा है। वह तो सिर्फ सहज होने को कहता है। क्योंकि सहज होना ही एकमात्र होने का ढंग है। बाकी सारे उपद्रव हैं।

"अच्छी वस्तुएं खाने को दो, राही ठहर जाता है। लेकिन ताओ का स्वाद बिल्कुल सादा है।"

धर्मग्रंथ बड़ी अच्छी-अच्छी बातें खाने को देते हैं। वे कहते हैं, स्वर्ग में क्या-क्या सुख होंगे; उसका विस्तीर्ण ब्योरा बताते हैं। कभी-कभी तो ऐसा ब्योरा बताते हैं जो बाद में बहुत बेहूदा मालूम पड़ता है।

एक धर्मग्रंथ ऐसे समय में रचा गया, जब उस मुल्क में होमोसेक्सुअलिटी, समलैंगिकता बहुत तेजी पर थी। तो पुरुष लड़कों को भी प्रेम करते थे; और ज्यादा दीवाने थे जवान लड़कों के, बजाय जवान लड़कियों के। यह धर्मग्रंथ उस समय रचा गया जब उस मुल्क में इस तरह की विकृत मनोदशा थी। तो स्वर्ग में इसका भी इंतजाम किया है कि वहां छोकरे भी उपलब्ध होंगे। वहां छोकरियां तो उपलब्ध होंगी ही, वहां सुंदर छोकरे भी उपलब्ध होंगे।

आदमी का मन है! तो सारा स्वाद स्थापित किया है स्वर्ग में, और सारा भय स्थापित किया है नरक में। इसलिए सभी समाजों के नरक अलग-अलग हैं, क्योंकि सभी के भय अलग-अलग हैं। सभी के स्वर्ग भी अलग-अलग हैं, क्योंकि सभी के सुख भी अलग-अलग हैं। जैसे तिब्बती स्वर्ग है तो वहां सूरज प्रगाढ़ होकर चमकता है; क्योंकि तिब्बत परेशान है सर्दी से। नरक में बर्फ जमी है; स्वर्ग में सूरज चमकता है। हमारे नरक में हम बर्फ का इंतजाम नहीं कर सकते, नहीं तो ऋषि-मुनि बहुत आनंद लेंगे बर्फ का वहां। नरक में हम आग जलाते हैं, क्योंकि हम आग से परेशान हैं। स्वर्ग में शीतल हवाएं हैं, वातानुकूलित है स्वर्ग। वह जो हमारा दुख है उसको हम नरक में डाल देते हैं; जो हमारा सुख है उसे हम स्वर्ग में डाल देते हैं। तिब्बतियों के स्वर्ग में बर्फ बिल्कुल नहीं है; धूप ही धूप है, खुला आकाश है। और हमारे स्वर्ग में हमको बर्फ का थोड़ा इंतजाम करना ही पड़े।

लाओत्से कहता है, लेकिन ताओ बिल्कुल सादा है। हम न कोई अतीत, न कोई भविष्य देते; न कोई सुख, न दुख का आश्वासन देते। हम इतना ही कहते हैं कि तुम जो हो अगर तुम वही हो जाओ तो तुम्हारे जीवन की पूर्णता है और तुम्हारे जीवन का पूरा अर्थ है। और तुम्हारे जीवन में अकारण तुम जो दुख पैदा कर लेते हो, वे नहीं होंगे, और सहज ही जो सुख प्रवाहित होना चाहिए वह प्रवाहित हो जाएगा।

आदमी को छोड़ कर कोई भी स्वभाव से च्युत नहीं होता। सारी प्रकृति स्वभाव में जीती है। लेकिन उसका स्वभाव में जीना एक मजबूरी है, क्योंकि प्रकृति के पास इतना बोध नहीं है कि वह स्वभाव के बाहर जा सके। सिर्फ आदमी स्वभाव के बाहर जा सकता है। लेकिन यह एक बड़ी संभावना भी है, एक बड़ा खतरा भी। बड़ा खतरा है कि हम स्वभाव के बाहर जाकर बहुत दुख पाते हैं; लेकिन एक बड़ी संभावना भी कि हम वापस लौट सकते हैं।

निश्चित ही, हम जितना दुख पाते हैं उतना कोई पशु नहीं पाता। हम दुख के बिल्कुल आखिरी नरक तक जा सकते हैं; कोई पशु नहीं जा सकता। लेकिन हम लौट भी सकते हैं; और लौट कर हम जो आनंद पा सकते हैं वह भी कोई पशु नहीं पा सकता। पशु सुख पा सकते हैं, लेकिन उनका सुख का बोध भी नहीं है। वे दुख नहीं पा सकते, क्योंकि वे स्वभाव से विपरीत नहीं जा सकते। हम स्वभाव से विपरीत जाकर दुख की आखिरी पराकाष्ठा पा सकते हैं, और वापस लौट कर आनंद की परम अनुभूति भी पा सकते हैं। ताओ तो सिर्फ नियम को स्पष्ट कर देता है। वह यह भी नहीं कहता कि ऐसा करो ही। वह इतना ही कहता हैः ऐसा है।

बुद्ध की वाणी में अक्सर ऐसे वचन हैं। बुद्ध से कोई पूछता है कि हम क्या करें? तो बुद्ध नहीं कहते कि क्या करो; बुद्ध कहते हैं, मैं तो इतना ही बता देता हूं कि ऐसा करने से ऐसा होगा और ऐसा करने से ऐसा होगा; मैं यह नहीं कहता कि तुम क्या करो। अगर तुम वासना में हो तो दुख होगा; अगर तुम निर्वासना में हो तो सुख होगा। मैं नहीं कहता कि तुम निर्वासना करो या वासना करो; मैं तो सिर्फ नियम कहता हूं। बुद्ध ने भी इसलिए परमात्मा की बात नहीं की; स्वर्ग-नरक की बात नहीं की; सिर्फ धर्म की बात की कि मैं सिर्फ धर्म कहता हूं कि ऐसा-ऐसा कारण मौजूद हो जाए तो दुख होता है; ऐसा-ऐसा कारण मौजूद हो जाए तो सुख होता है। अब तुम जानो। मैं बीमारी कहता हूं, इलाज कहता हूं। फिर तुम्हें बीमार रहना है तो तुम बीमार रहो; और तुम्हें इलाज

करना है तो तुम इलाज करो। न तो मैं निंदा करता हूं कि तुम बीमार रहो तो तुम्हारी निंदा। वह तुम्हारी स्वतंत्रता है। न मैं प्रशंसा करता हूं कि तुम स्वस्थ हो जाओ तो तुम्हारा कोई समादर हो। वह भी तुम्हारी स्वतंत्रता।

ताओ भी कोई किसी तरह के वायदे नहीं करता है।

"ताओ का स्वाद बिल्कुल सादा है। देखें, और यह अदृश्य है। सुनें, और यह अश्राव्य है। पर प्रयोग करने पर इसकी आपूर्ति कभी चुकती नहीं।"

स्वाद है सादा, इतना सादा कि कहना चाहिए स्वाद है ही नहीं। सादे का अर्थ ही यह होता है कि स्वाद का पता न चले। जब तक पता चलता है स्वाद का तब तक उसमें कुछ न कुछ गैर-सादगी है। क्योंकि चोट का ही पता चलता है, उत्तेजना का पता चलता है। इसलिए जिनको स्वाद लेना है वे सब तरह की उत्तेजना पैदा करते हैं; भोजन में मिर्च डालेंगे, कुछ करेंगे जिससे उत्तेजना पैदा हो। उत्तेजना हो तो स्वाद का पता चलता है; उत्तेजना न हो तो स्वाद का कोई पता नहीं चलता। अगर स्वाद बिल्कुल सादा है तो उसका पता ही नहीं चलेगा।

"देखें, और ताओ अदृश्य है।"

आंखों से उसे देख न पाएंगे; कहीं भी दिखाई न पड़ेगा। और सब कुछ दिखाई पड़ जाएगा, सिर्फ धर्म दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि वह सबके भीतर का छिपा हुआ नियम है। सब उसी से चलता है, लेकिन वह अप्रकट। ठीक वैसे ही जैसे वृक्ष दिखाई पड़ता है और जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं। मेरा हाथ दिखाई पड़ता है, मेरी आंखें दिखाई पड़ती हैं; लेकिन मैं दिखाई नहीं पड़ता। वह जितना मूल है उतना ही गहन में छिपा होता है, और जितना अनिवार्य है उतना ही ऊपर नहीं होता। सभी महत्वपूर्ण चीजें गहन अंधकार में छिपी होती हैं। और जीवन के सब रहस्य दबे होते हैं गहरे में, गर्भ में; प्रकट और ऊपर नहीं होते। प्रकट तो ऊपर वही होता है जो शरीर है, आत्मा नहीं। प्रकट तो वही होता है जो अभिव्यक्ति है; प्रकट तो वही होता है जो आकार है; प्रकट तो वही होता है जो परिधि है। केंद्र तो सदा अप्रकट होता है।

"देखें, और वह अदृश्य है। सुनें, और वह अश्राव्य।"

सुनेंगे तो सुनाई नहीं पड़ेगा। देखेंगे तो दिखाई नहीं पड़ेगा। छुएंगे तो छू न सकेंगे। स्वाद लेंगे तो उसका कोई स्वाद नहीं।

"लेकिन प्रयोग करने पर उसकी आपूर्ति कभी चुकती नहीं।"

लेकिन जो उसमें डूबने लगता है, फिर वह अनंत है, फिर उसकी पूर्ति कभी चुकती नहीं। फिर उसका कितना ही भोग करें, उसका कोई अंत नहीं है। फिर ऐसा कोई क्षण नहीं आता जब कहें कि वह चुक गया। फिर वह कभी भी चुकता नहीं। इसे हम दो तरह से समझ लें। एक तो वह इसलिए स्वाद उसका अनुभव में नहीं आता, क्योंकि उसमें कोई उत्तेजना नहीं है। और वह इसलिए दिखाई नहीं पड़ता कि वह जीवन का आंतरिक केंद्र है, परिधि नहीं है। और वह इसलिए सुनाई नहीं पड़ता, क्योंकि सुनाई पड़ने में भी आघात की जरूरत है। सब शब्द आघात से पैदा होते हैं। शब्द मात्र में थोड़ा आघात तो होगा ही। ध्वनि पैदा होगी तो दो चीजें टकराएंगी तभी पैदा होगी। लेकिन उससे दूसरा कोई है ही नहीं; वह अकेला ही है। अस्तित्व अकेला है। वह किससे टकराए जिससे आघात पैदा हो?

इसलिए हमने अपने मुल्क में उस स्थिति को अनाहत नाद कहा है। अनाहत नाद का अर्थ है कि बिना आघात के, बिना आहत जो ध्वनि है, उसका जब आवाज सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है। ये सब शब्द काव्य हैं;

वह सुनाई नहीं पड़ता कभी भी। लेकिन भाषा की मजबूरी है। तो वह जब सुनाई पड़ना शुरू हो जाता है जो कि सुना नहीं जाता, और जब वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है जो कि दिखाई नहीं पड़ता, और जब उसका स्वाद अनुभव में आने लगता है जिसका कोई स्वाद नहीं है, तब व्यक्ति स्वभाव को उपलब्ध हुआ। क्या करना होगा?

आंखों का उपयोग करेंगे तो उससे संबंध नहीं जुड़ता। इसलिए आंखों का उपयोग छोड़ दें। जब उसकी तलाश में हों तो आंखों का उपयोग न करें। पर हम आंखों का उपयोग करते हैं। जब आंख खोलते हैं तब तो करते ही हैं, जब आंख बंद करते हैं तब भी जारी रहता है उपयोग। हम कुछ न कुछ देखते ही रहते हैं। आंख बंद करके भी देखना बंद नहीं होता; सपने देखते रहते हैं। आंख बंद किए, और कुछ न कुछ तैरने लगता है। वह जो बाहर की दुनिया ने आघात छोड़े हैं भीतर, चित्र छोड़े हैं, वे तैरने लगते हैं। कल्पना का जाल शुरू हो जाता है; पर्दे पर सब चलने लगता है। देखना बंद नहीं होता। सुनना भी बंद कर देते हैं, बाहर की आवाज भी सुनाई न पड़े, तो भीतर की आवाजें जो हमने इकट्ठी कर ली हैं जन्मों-जन्मों में, वे आवाजें गूंजने लगती हैं। भीतर का कोलाहल है। लेकिन अगर उस आंतरिक, आत्यंतिक केंद्र से संबंध स्थापित करना हो तो आंखें बिल्कुल बंद हो जानी चाहिए। पलकें खुली रहें या बंद, यह सवाल नहीं है; लेकिन देखने की प्रक्रिया बंद हो जानी चाहिए। कान खुले रहें या बंद, यह सवाल नहीं है; लेकिन कोलाहल बिल्कुल बंद हो जाना चाहिए।

जब इंद्रियों के सभी हलन-चलन बंद हो जाते हैं तो उस आंतरिक केंद्र की प्रतीति शुरू होती है; उसका स्वाद--या उसका दर्शन या उसका श्रवण, कुछ भी कहें--उससे हमारा पहला संबंध बनना शुरू होता है। और उससे जिसका संबंध बन गया वह अनंत खजाने का मालिक हो गया। फिर उसकी आपूर्ति कभी चुकती नहीं; फिर आप उसको चुका नहीं सकते।

इस जगत में सभी चीजें चुक जाती हैं। बड़े से बड़े सम्राट का खजाना भी सीमित है। बड़े से बड़े ज्ञानी की समझ भी सीमित है। बड़े से बड़े शक्तिशाली पुरुष की शक्ति भी सीमित है। इस जगत में हम कुछ भी पा लें, वह चुक ही जाएगा। इस जगत में न चुकने वाला कुछ भी नहीं है। लेकिन भीतर के, ताओ के, धर्म के जगत में--अभिव्यक्ति को छोड़ दें, केंद्र के जगत में; परिधि से हट जाएं, मूल के जगत में--सभी कुछ अनंत है; फिर उसे चुकाया नहीं जा सकता। उस आनंद को समाप्त नहीं किया जा सकता। फिर ऐसी कोई घड़ी नहीं आती जहां हम कह सकें कि जो पाया था वह चुक गया। अनंत में हमारा प्रवेश है, अपने ही स्वभाव में डूबते अनंत से हमारा संबंध जुड़ जाता है।

यह भी कहना ठीक नहीं कि संबंध जुड़ जाता है; क्योंकि हम उससे जुड़े ही हुए हैं। पर हमारा ध्यान उस तरफ नहीं है। सारा उपद्रव एक ही बात में सीमित है कि हमारा ध्यान उस तरफ नहीं है जहां हमारा खजाना है। हमारा ध्यान उस तरफ है जहां हमारा खजाना नहीं है। तो हम चांद पर जाने की सोचते हैं, मंगल पर उतरने की सोचते हैं; अपने पर जाने की बिल्कुल नहीं सोचते, अपने में उतरने की कभी भी नहीं सोचते। हमें ख्याल है कि वह तो हम हैं ही। वहीं हमारी गहरी से गहरी भ्रांति है। तो हम भटकते हैं सब तरफ।

मैंने सुना है कि एक आदमी पहली दफा शिकार के लिए जंगल में जा रहा था। पहली दफा जा रहा था तो बहुत डरा हुआ भी था। सब इंतजाम कर रहा था। तो वह एक दुकान पर गया था जहां शिकार का सब सामान मिलता था। तो उसने सब चीजें खरीद लीं; खास वेश-भूषा, जूते, और भी जो इंतजाम शिकार के लिए जरूरी था वह सब खरीद लिया। उसने एक कंपास भी खरीदा; कहीं भटक जाए घने जंगल में तो यात्रा का बोध हो सके, दिशा का पता चल सके, कहां है, कहां से आ रहा है। जब उसने कंपास का डब्बा खोला तो वह जरा सोच में पड़ गया। और सब चीजें तो ठीक थीं, एक चीज उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आती थी। कंपास में एक छोटा

सा आईना भी रखा था। तो उसने दुकानदार को पूछा कि और सब तो ठीक है, लेकिन कंपास में आईने की क्या जरूरत? तो उस दुकानदार ने कहा कि इसमें देखने से आपको पता चल जाएगा कि कौन खो गया है। और तो सब दिशा वगैरह तो ठीक है, लेकिन इसका भी तो पता होना चाहिए कौन खो गया है। नहीं तो दिशा की जानकारी क्या करेगी?

वह शायद मजाक ही रही हो, पर गहरी मजाक है। आप भी खो गए हैं। और अक्सर आप पूछते हैंः दिशा, जीवन का लक्ष्य, उद्देश्य क्या है? मेरे पास लोग आते हैं, यह सवाल अक्सर लेकर आते हैं कि जीवन का उद्देश्य क्या है? लक्ष्य क्या है? हम कहां जा रहे हैं? कहां जाना चाहिए?

यह सब फिजूल बकवास है। पहले आईने में देखना चाहिए, कौन खो गया है? कहां जाना है, क्या होना है, यह तो पीछे की बात है, इसका तो पता चल जाएगा। किसको जाना है? अपना ही पता नहीं है और जीवन के लक्ष्य की चिंता होती है। मैं कौन हूं, इसका भी कोई बोध नहीं है। मैं हूं भी या नहीं, इसका भी कोई अनुभव नहीं है।

ताओ उस मूल की तरफ यात्रा है जहां मैं उससे परिचित हो जाऊं जो मैं हूं। उसके लिए जरूरी है कि मैं बाहर से संबंध बनाने के जितने मैंने उपाय किए हैं, जितने सेतु निर्मित किए हैं, जितने द्वार निर्मित किए हैं दूसरे से संबंधित होने के, वे सारे द्वार बंद कर दूं, ताकि मेरी ऊर्जा जो दूसरे की तरफ जाती है वह दूसरे की तरफ न जाए और मेरी तरफ आए। हम बोलते हैं, दूसरे से संबंधित होने के लिए; वाणी दूसरे से एक संबंध है। भाषा एक सेतु है। भाषा न हो तो दूसरे से हमारा कोई संबंध नहीं हो सकता। लेकिन भाषा दूसरे से सेतु है; अपने से संबंधित होने के लिए भाषा की कोई भी जरूरत नहीं है। पर आंख बंद कर लें तो भी भाषा चलती ही चली जाती है। शब्द घूमते रहते हैं, विक्षिप्त की तरह शब्द घूमते रहते हैं। उनको बंद करना होगा। वे बंद हो जाएंगे तो अपने से संबंध होगा।

भाषा है दूसरे से संबंध का मार्ग; मौन है अपने से संबंध का मार्ग। आंखें दूसरे को देखने के लिए हैं; अपने को देखने के लिए आंखों की कोई जरूरत नहीं है। अंधा भी अपने को देख सकता है; अपने को देखने के लिए आंख का कोई लेना-देना नहीं है।

तो आंख का काम बंद करना होगा। सारी इंद्रियों का काम शांत हो जाए, सारी इंद्रियां विश्राम को उपलब्ध हो जाएं, तो ताओ की झलक मिलनी शुरू होती है। और एक बार उसकी झलक मिल जाए तो फिर खोती नहीं। फिर हम कितने ही संसार में दूर निकल जाएं तो भी हम उससे दूर नहीं जाते। फिर हम दुकान पर हों कि मंदिर में हों, कि भीड़ में हों कि अकेले में हों, उससे हमारा नाता बना ही रहता है। उसकी सुरति, उसकी स्मृति चलती ही रहती है। और उसकी स्मृति चलती रहे तो वह जो हम गलत करते हैं, वह अपने आप होना बंद हो जाता है। उसकी स्मृति चलती रहे तो हमसे जो रास्ते चूक जाते हैं, हम भटक जाते हैं, वे अपने आप बंद हो जाते हैं। उसकी स्मृति बनी रहे, उसकी धुन भीतर गूंजती रहे, तो जीवन में सहज रूपांतरण होने लगता है। जो व्यर्थ है वह गिर जाता है; जो सार्थक है वह फलने लगता है। जो गलत है वह होता ही नहीं; जो ठीक है वही होता है।

ताओ से संबंध जुड़ जाए तो नीति साधनी नहीं पड़ती, सध जाती है।

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

उनहत्तरवां प्रवचन

शक्ति पर भद्रता की विजय होती है

Chapter 36

The Rhythm Of Life

He who is to be made to dwindle (in power)
Must first be caused to expand.
He who is to be weakened
Must first be made strong.
He who is to be laid low
Must first be exalted to power.
Ho who is to be taken away from
Must first be given.
-- This is the Subtle Light.
Gentleness overcomes strength:
Fish should be left in the deep pool,
And sharp weapons of the state should be left
Where none can see them.

अध्याय 36

जीवन की लय

सत्ता से जिसे गिराना है,
पहले उसे फैलाव देना पड़ता है।
जिसे दुर्बल करना है,
पहले उसे बलवान बनाना होता है।
जिसे नीचे गिराना है,
पहले उसे शिखरस्थ करना होता है।
जिससे छीन लेना है,
पहले उसे दे देना होता है।

-- यही सूक्ष्म प्रकाश या दृष्टि है।

शक्ति पर भद्रता की विजय होती हैः

मछली को गहरे पानी में ही रहने देना चाहिए;

और राज्य के तेज हथियारों को

वहां रखना चाहिए जहां उन्हें कोई देख न पाए।

जन्म के साथ मृत्यु को देखना कठिन है। लेकिन दिखाई पड़े या न दिखाई पड़े, जन्म मृत्यु की शुरुआत है; वह मृत्यु का ही पहला कदम है। पर जन्म पर हम प्रसन्न होते हैं; मृत्यु में हम दुखी होते हैं। काश, हम देख पाएं कि जन्म ही मृत्यु का प्रारंभ है तो जन्म की खुशी भी समाप्त हो जाए और मृत्यु का दुख भी। क्योंकि मृत्यु इसीलिए दुखद मालूम होती है कि जन्म सुखद मालूम हुआ था। और भ्रांति इसलिए चलती चली जाती है कि जन्म और मृत्यु के बीच जो फासला है, उस फासले के कारण हम उनका एक होना नहीं देख पाते। एक ही चीज के दो छोर हैं; एक छोर को हम जन्म कहते हैं, दूसरे को मृत्यु; एक पर हम सुखी होते हैं, दूसरे पर हम दुखी। और दोनों के बीच एक का ही विस्तार है। असल में, जन्म का अर्थ है कि मृत्यु हो गई। कितनी ही देर लगे अब प्रकट होने में, कितना ही समय लगे हमें अनुभव करने में कि मृत्यु हुई, लेकिन जन्म के साथ मृत्यु हो गई।

जीवन की लय कहता है लाओत्से इसे। लय जीवन की विपरीत से बनी है, द्वंद्व से बनी है। और लय के लिए जरूरी है कि विपरीतता हो। लय अकेले एक स्वर की नहीं हो पाएगी; विपरीत स्वर चाहिए उभारने के लिए। अगर हम जीवन के सत्य की तलाश करें तो पहला सत्य हमें यही अनुभव होगा कि जीवन विपरीत से निर्मित है।

इसके बहुत गहरे परिणाम हैं। अगर जीवन विपरीत से निर्मित है तो एक को चाहना और दूसरे को न चाहना नासमझी है, अज्ञान है। एक को चुनना और दूसरे को छोड़ना नासमझी है। क्योंकि अगर जीवन विपरीत से ही बना है तो जब हम एक को चुनते हैं तब हमने दूसरे को भी चुन लिया। अन्यथा वह एक भी जीवन में न हो सकेगा। जब हम दिन को चुनते हैं तो हमने रात को चुन लिया, और जब हम प्रेम को चुनते हैं तो हमने घृणा को भी चुन लिया। और जब हमने मित्र बनाया तब हमने शत्रु बनाने की शुरुआत कर दी। और जब हम प्रसन्न हुए तो हमने उदासी के बीज बो दिए। अब दूसरी बात से बचना संभव न होगा। क्योंकि हमने लहर का एक छोर पैदा कर दिया, अब लहर का दूसरा छोर भी अनिवार्य है। जो हमें दिखाई पड़ रहा है वह प्रकट है; जो दूसरा छोर है वह अप्रकट है और नीचे ही छिपा है।

यदि यह दिखाई पड़ जाए कि जीवन विपरीत से बना है तो चुनाव बंद हो जाए, च्वाइस बंद हो जाए। और जिस व्यक्ति के जीवन से चुनाव गिर जाता है उस व्यक्ति के जीवन से सब पीड़ाओं का अंत हो जाता है। उसकी फिर कोई चिंता न रही; उसके लिए फिर कोई दुख न रहा।

यह बड़ी अदभुत बात हैः हम दुख से बचना चाहते हैं, और दुख बढ़ता चला जाता है; हम सुख पाना चाहते हैं, और सुख मिलता नहीं, दुख मिलता है। क्योंकि सुख की चाह में हमने दुख को भी चुन लिया। जीवन विपरीत से बना है, और एक को अलग किया नहीं जा सकता। वह जो विपरीत है उससे अलग करने का कोई उपाय नहीं। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जब आप सुख की मांग करते हैं तब आपको पता नहीं कि आपने दुख की भी प्रार्थना कर ली। वह दूसरा हिस्सा भी प्रकट होगा। वह भी आज नहीं कल बाहर आएगा अस्तित्व के। तब आप विषाद से भर जाएंगे। क्योंकि आपने चाहा था सुख और मिला दुख। आपने चाहा था जीवन, बनाना

चाहा था जीवन को एक सुंदर काव्य, एक गीत; लेकिन अंत में मृत्यु सब संगीत तोड़ देती है, सब बिखर जाता है सौंदर्य, सब कुरूप हो जाता है। और आखिर में चिता ही हाथ लगती है। वे सब फूल जो हमने जीवन के सपनों में देखे थे, वे सब स्वप्नवत तिरोहित हो जाते हैं; आखिर हाथ में राख लगती है।

लाओत्से कहता है, जीवन की लय को अगर हम समझ लें कि वह विपरीत से बनी है, जहां भी एक है उससे विपरीत उसके पीछे छिपा है, उसके बिना वह हो ही नहीं सकता, तो हमारा चुनाव गिर जाए। फिर चुनाव का क्या अर्थ है? अगर सुख को चुनने में दुख उपलब्ध होने वाला है तो सुख को चुनने का अर्थ ही क्या रहा? तब एक दूसरी घटना घटती हैः जो चुनाव नहीं करता वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

सुख और दुख का द्वंद्व है; वे जीवन के हिस्से हैं। आनंद जीवन का हिस्सा नहीं है। और आनंद के विपरीत कुछ भी नहीं है। आनंद उस घड़ी का नाम है जब हम द्वंद्व में से कुछ भी नहीं चुनते। तब जीवन की लय समाप्त हो जाती है; जीवन की लय शून्य हो जाती है। और जहां जीवन की लय शून्य हो जाती है, जहां जीवन की धुन बंद हो जाती है, वहीं मोक्ष के स्वर, शून्य स्वर का अनुभव होता है।

तो पहले तो यह समझ लें कि यह द्वंद्व सब तरफ से घेरे हुए है। हमारा मन निरंतर कहेगा कि नहीं, ऐसा नहीं है। जब हम प्रेम करते हैं तब हम कहां घृणा करते हैं? लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आपने प्रेम नहीं किया उसको आप घृणा नहीं कर सकते हैं। या कि कर सकते हैं? जिससे आपका प्रेम नहीं उससे आप घृणा नहीं कर सकते। तो घृणा के लिए प्रेम पहला कदम है। और जिससे आपकी मित्रता न रही हो उससे शत्रुता कैसे घटित हो सकती है? तो मित्रता शत्रुता की पहली व्यवस्था है। वहां से हम यात्रा पर निकलते हैं।

सभी मित्रताएं शत्रुताओं में बदल जाती हैं। चाहे आप समझें और न समझें, चाहे आप पहचानें और न पहचानें, चाहे आप झुठलाए चले जाएं, चाहे आप अपने को भुलाए चले जाएं, लेकिन सभी मित्रताएं शत्रुताओं में बदल जाती हैं। इसीलिए तो मित्रता का इतना सम्मान है, लेकिन वह फूल कहीं मिलता नहीं। इतना सम्मान इसलिए है कि वह फूल आकाश का फूल है; वह पृथ्वी पर खिलता नहीं। सभी प्रेम घृणाओं में बदल जाते हैं। फिर हम अपने का छिपा सकते हैं इस तथ्य की जानकारी से कि प्रेम घृणा बन गया। हम हजार तरह के रेशनलाइजेशन, बुद्धियुक्त तर्क खोज सकते हैं, लेकिन इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि सभी प्रेम घृणा बन जाते हैं। इसीलिए तो प्रेम की इतनी प्रशंसा है। लेकिन वह प्रेम का फूल भी इस पृथ्वी पर खिलता नहीं।

जहां द्वंद्व है, और जहां जीवन होता ही द्वंद्व में है, वहां जो भी हम करेंगे, उसका विपरीत भी साथ में जुड़ गया। लेकिन एक निर्द्वंद्व जगत भी है। लेकिन वहां जीवन का सब स्वर शांत हो जाता है; वहां जीवन की कोई धुन नहीं रह जाती। फिर वहां द्वंद्व भी नहीं है। इस क्षण को मुक्ति का क्षण कहें, मोक्ष का क्षण कहें या परमात्म-अनुभव का क्षण कहें।

लाओत्से के सूत्र में प्रवेश करने के पहले यह ख्याल में रख लें। लाओत्से के कहने के ढंग अपने हैं। वह बहुत तरकीब से किसी बात को कहता है।

इस सूत्र में उसने कहा है, "सत्ता से जिसे गिराना है, पहले उसे फैलाव देना पड़ता है।"

जिसे गिराना हो, पहले उसे चढ़ाना होगा। नहीं तो गिराइएगा कैसे? पहले सहारा देना होगा कि ऊंचे शिखर पर पहुंच जाए; तभी गिराया जा सकता है खाइयों में। तो लाओत्से कहता है कि अगर गिरना न हो तो चढ़ने से सावधान रहना। लोग तो चढ़ाएंगे, क्योंकि वे गिराना चाहेंगे। वे तो तुम्हें सहारा देंगे कि बढ़ो। और जब वे चढ़ा रहे हैं तब तुम यह देख भी न पाओगे कि वे गिराने का इंतजाम कर रहे हैं। और जब वे तुम्हें हाथ का सहारा दे रहे हैं तब तुम बड़े प्रसन्न हो रहे हो; लेकिन तुम्हें दूसरे पहलू का कुछ भी पता नहीं है। जो तुम्हें मान

देते हैं वे ही तुम्हारा अपमान करेंगे; जो तुम्हें आदर देते हैं वे ही तुम्हारे अनादर का कारण हो जाएंगे। क्योंकि आदर का दूसरा हिस्सा अनादर है। जैसे जन्म मृत्यु में बदलेगा ही, वैसे ही आदर भी अनादर में बदलेगा।

इमर्सन ने एक बहुत अनूठी बात लिखी है। इमर्सन ने अपने जीवन भर के अनुभव के बाद लिखा है। लिखा हैः एवरी ग्रेट मैन फाइनली टर्न्स टु बी ए बोर; सभी बड़े लोग अंततः बोर सिद्ध होते हैं, उबाने वाले सिद्ध होते हैं।

इधर पिछले तीस-चालीस वर्षों के इतिहास से हम समझ सकते हैं कि क्या है इसका अर्थ। आपको ख्याल है कि पिछले तीस-चालीस वर्षों में जितने बड़े लोग पैदा हुए जमीन पर, एक दिन लोगों ने उन्हीं को सम्मानित किया, शिखर पर उठाया, और उनके ही जीवन के अंतिम क्षणों में उन्हें उतार कर नीचे डाल दिया।

चर्चिल की कैसी प्रतिष्ठा थी दूसरे महायुद्ध में! लेकिन युद्ध के बाद चर्चिल सत्ता में वापस नहीं आ सका। और जिन्होंने उसे पूजा था और सोचा था कि इंग्लैंड के इतिहास में इससे बड़ा महापुरुष नहीं हुआ, वे ही उसे सत्ता में लाने से रुकावट डालने को तैयार हो गए। दि गॉल को उतरना पड़ा सत्ता से युद्ध के बाद। स्टैलिन ने रूस को बचाया और बनाया। शायद ही किसी एक आदमी ने किसी राष्ट्र को इस भांति बनाया। उसने जो पाप भी किए वे भी उसी राष्ट्र को बनाने के लिए किए। उस एक आदमी के हाथ की मेहनत ही पूरा सोवियत रूस है। लेकिन युद्ध के बाद रूस ने स्टैलिन को अपदस्थ कर दिया। और मरने के बाद, आपको पता है, क्रेमलिन के बाहर के चौराहे से उसकी लाश भी वापस हटा दी गई। लेनिन के पास ही उसकी लाश रखी गई थी; वह भी मरने के बाद हटा दी गई। उसको क्रेमलिन के चौराहे पर नहीं रहने दिया। क्या कारण होगा?

क्या आपको पता है कि महात्मा गांधी के साथ आपने क्या किया? कोई सोच भी नहीं सकता था कि कोई हिंदू गांधी को मारेगा। लेकिन वह भी गौण बात है, क्योंकि मृत्यु कोई बहुत बड़ी बात नहीं। गांधी को तो मरना ही होता। लेकिन गांधी मरने के पहले कहने लगे थे कि मेरे मानने वालों में अब मेरा सिक्का नहीं चलता; मेरे मानने वाले भी सब मेरे विपरीत हो गए हैं; मेरी कोई सुनता नहीं है। मैं खोटा सिक्का हो गया हूं।

गांधी को पूजा आपने, और फिर गांधी को खुद कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं; अब मेरा कोई चलन नहीं है। क्या बात होगी? गांधी चाहते थे कि एक सौ पच्चीस वर्ष जीएं, लेकिन मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि अब मेरी और जीने की कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि जिनके लिए मैं जीना चाहता था उन्होंने सब पीठ फेर ली। क्या अर्थ क्या है इसका? हम इन दोनों तथ्यों को जोड़ कर कभी नहीं देखते।

च्यांग काई शेक को चीन ने इतना आदर दिया था जिसका हिसाब नहीं। च्यांग काई शेक अब जिंदा है, लेकिन चीन में कोई पूछने वाला नहीं। चीन की जमीन पर च्यांग काई शेक पैर भी नहीं रख सकता है। चीन की जनता उसको नंबर एक दुश्मन मानती है। रूजवेल्ट ने अमरीका को बचाया; दूसरे महायुद्ध में विजय के निकट लाया। सारी दुनिया को युद्ध से बचाने में रूजवेल्ट का गहनतम हाथ था। लेकिन युद्ध के बाद अमरीकी संसद ने एक संशोधन किया अपने विधान में और उस संशोधन के द्वारा रूजवेल्ट वापस प्रेसिडेंट न हो जाए, इसकी व्यवस्था कर ली।

क्या होगा इस सबके पीछे राज? व्यक्तियों का सवाल नहीं है। लाओत्से जिस जीवन के द्वंद्व की बात कर रहा है, और जिस लय की, उसका सवाल है। आदर के पीछे छिपा है अनादर; सम्मान के पीछे छिपा है अपमान।

"सत्ता से जिसे गिराना है, पहले उसे फैलाव देना पड़ता है। और जिसे दुर्बल करना है, पहले उसे बलवान बनाना होता है। जिसे नीचे गिराना है, पहले उसे शिखरस्थ करना होता है। जिससे छीन लेना है, पहले उसे दे

देना होता है।" और जो इस राज को समझ लेता है, उसे लाओत्से कहता है, "इस राज को समझ लेना सूक्ष्म दृष्टि है।"

और यह राज गहन है। क्योंकि यह राज अगर समझ में आ जाए तो आप पहले चरण को इनकार कर देते हैं; दूसरे चरण का कोई सवाल नहीं उठता। लाओत्से निरंतर कहता था, मुझे कोई भी हरा नहीं सकता, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ हूं। लाओत्से कहता था, मुझे कोई धक्के देकर पीछे नहीं हटा सकता, क्योंकि मैं सबसे पीछे खड़ा ही होता हूं; उसके पीछे कोई जगह नहीं है। लाओत्से कहता है, अगर पहला कदम उठा लिया तो दूसरा कदम मजबूरी है; फिर उससे रुका नहीं जा सकता। पहले कदम पर सावधानी! तो फिर वह जीवन का जो द्वंद्व का संगीत है, जो कि वस्तुतः विसंगीत है, संगीत नहीं, क्योंकि कलह है और एक आंतरिक तनाव है और एक बेचैनी है और एक संताप है। जो पहले कदम पर सम्हल जाता है, दूसरे कदम का कोई सवाल नहीं।

लेकिन पहला कदम बड़ा प्रलोभक है और सम्हलना अति जटिल है और बहुत कठिन है। पहले कदम का प्रलोभन भारी है, क्योंकि तब यह ख्याल भी नहीं आता कि मैं और खोटा सिक्का हो जाऊंगा! इसकी कल्पना भी नहीं उठती कि मैं और अनादृत हो जाऊंगा! कि मुझे और घृणा मिलेगी! जब कोई प्रेम से आपके गले में बांहें डाल देता है तो आप सोच भी तो नहीं सकते कि इससे शत्रुता निकल सकती है। असंभव है! यह कल्पना ही नहीं पकड़ती। और इसीलिए तो इतने लोग दुख में हैं। क्योंकि पहले कदम पर जो चूक जाता है; दूसरे कदम में मजबूरी है, फिर उससे बचने का कोई उपाय नहीं।

ध्यान रहे, जिसने पहला कदम उठा लिया उसे दूसरा उठाना ही पड़ेगा। वह नियति का हिस्सा हो गया। और जो पहले पर सावधान हो गया उसके लिए दूसरे का कोई सवाल ही नहीं है।

महत्वाकांक्षा दुख में ले जाती है; क्योंकि महत्वाकांक्षा पराजय में ले जाती है। अहंकार पीड़ा बन जाता है, नरक बन जाता है। क्योंकि अहंकार ऊपर उठाता है, फुलाता है, और तब गिरने का उपाय हो जाता है। निरहंकार का सूत्र लाओत्से से समझें तो बहुत अनूठा है। लाओत्से यह कह रहा है कि अहंकार बुरा है, ऐसा हम नहीं कहते हैं; हम इतना ही कहते हैं कि अहंकार पहला कदम है, और दूसरे कदम पर गहन अपमान है। वह दूसरा कदम भी अगर तुम राजी हो, तो पहला उठाना। इसको थोड़ा समझ लें। दोनों तरह से यह बात हो सकती है। अगर दूसरे के लिए भी आप राजी हैं और इतने ही प्रसन्न रहेंगे तो फिर कोई डर नहीं है। तो जब लोग आपको ऊपर उठाएं तो उठ जाना। लेकिन ध्यान रहे कि गिरते वक्त भी आप इतने ही आनंदित रहना। तो फिर कोई दिक्कत नहीं है।

तो दो रास्ते हैं। एक रास्ता है कि आप फिक्र मत करना, क्योंकि विपरीत को स्वीकार कर लेना। तो फिर पहला कदम उठा सकते हैं। तो जब जन्म आए तो जन्म; और जब मृत्यु आए तो मृत्यु। और जब प्रेम मिले तो प्रेम; और जब घृणा मिले तो घृणा। दूसरे को आप उतनी ही शांति और उतने ही सौमनस्य से स्वागत कर सकेंगे जितना पहले का; फिर कोई अड़चन नहीं है। अगर दूसरे का स्वागत न हो सकता हो और आपका मन डरता हो कि दूसरे का स्वागत कैसे होगा, तो फिर पहला कदम मत उठाना। ये दो उपाय हैं। इन दो उपायों में ही सारे संसार की धार्मिक साधनाएं छिपी हैं। जो पहला कदम उठाने से रुक जाता है, वह एक मार्ग। और जो दूसरे कदम को भी उसी रस से स्वीकार करता है जिससे पहले कदम को, वह दूसरा मार्ग।

पहला मार्ग महावीर को चलते हुए हम देखते हैं, बुद्ध को चलते हुए देखते हैं; दूसरा मार्ग हम जनक को चलते हुए देखते हैं। दूसरे कदम की चिंता नहीं है। और बोध है पूरा कि पहले के बाद दूसरा आएगा; इसको जान कर ही उठाया है, इसको मान कर ही उठाया है। तब कोई अड़चन नहीं है। इसलिए जनक या महावीर, ये दो

विकल्प हैं। या तो पहला ही मत उठाना और या फिर दूसरे के लिए भी पूरी तरह राजी रहना; उसमें रंच मात्र फर्क मत करना। दोनों का परिणाम एक है। क्योंकि जिसे दूसरे और पहले में कोई फर्क नहीं है, उसने उठाया; उसका उठाना न उठाने के बराबर है। कोई अंतर न रहा।

लाओत्से कहता है कि यही सूक्ष्म दृष्टि है।

"शक्ति पर भद्रता की विजय होती है। मछली को गहरे पानी में ही रहने देना चाहिए; और राज्य के तेज हथियारों को वहां रखना चाहिए जहां उन्हें कोई देख न पाए।"

शक्ति पर भद्रता की विजय होती है। दिखाई नहीं पड़ता हमें ऐसा। हमें तो ऐसा ही दिखाई पड़ता है कि भद्रता पर सदा शक्ति की विजय होती है। हमारी आंखों में, हमारी समझ में, हमारे माप-तौल में लाओत्से का सूत्र कभी भी दिखाई नहीं पड़ता कि भद्रता शक्ति पर जीतती हो। सदा हमें शक्ति जीतती हुई दिखाई पड़ती है। भद्रता कहां जीतती हुई दिखाई पड़ती है? लेकिन उसका कारण यही है कि जीत का भी अर्थ हमें ठीक से पता नहीं है। और जीत भी हम जिसे कहते हैं वह हमारा अधूरा ज्ञान है। वह पहले कदम का ही ज्ञान है। इसे थोड़ा समझ लें।

जब शक्ति भद्रता पर जीतती है तो वह पहला कदम है, और वहीं हम जीत समझ लेते हैं कि जीत हो गई। लेकिन दूसरा कदम भी शीघ्र ही आएगा जो कि हार का है। भद्रता लड़ती ही नहीं; इसलिए पहला कदम उठता ही नहीं। और दूसरे का कोई उपाय नहीं है।

जीसस भद्रता के प्रतीक हैं। निश्चित ही, शक्ति उन पर जीतती हुई दिखाई पड़ती है। जीसस को सूली लग गई। सूली के कुछ क्षण पहले पायलट ने जीसस को कहा भी कि लोग कहते हैं कि तुम ईश्वर के पुत्र हो! तो यह मौका है, तुम चमत्कार दिखा दो तो तुम मुक्त हो जाओ; यह मृत्यु से तुम बच जाओ; और मैं भी इस पाप से बच जाऊं कि तुम्हारी मृत्यु में सहयोगी हूं। तुम चमत्कार दिखा दो।

और लोग यही सोच रहे थे, लाखों लोग इकट्ठे हो गए थे--आज जरूर कोई चमत्कार होगा। और जीसस, जिसके बाबत ख्याल था कि बीमार को छू दे तो बीमार ठीक हो जाए और मुर्दे को छू दे तो मुर्दा जाग जाए। निश्चित ही, ऐसा व्यक्ति जो दूसरे को छूकर जीवन दे सकता है, जब उस पर खुद मुसीबत आएगी और आखिरी परीक्षा का क्षण आएगा तो चमत्कार घटने ही वाला है। इसमें कोई शक न था। इसमें जीसस के शिष्यों को भी कोई शक न था। सभी इस आशा में खड़े थे कि अब चमत्कार हुआ! सूली पर जीसस लटकाए जाएंगे और उनका वास्तविक रूप प्रकट होगा। वे पुनरुज्जीवित हो जाएंगे। और सारा जगत उनके अनुशासन को स्वीकार कर लेगा।

लेकिन जीसस सूली पर चुपचाप मर गए, जैसे कोई भी मर जाता है। और मैं इसको चमत्कार कहता हूं; मैं इसको चमत्कार कहता हूं। और इसको ईसाइयत को बहुत समय लगा समझने में, फिर भी ठीक से समझ में बात आ नहीं सकी है। ऐसा लगता ही है मन में कि कहीं न कहीं कोई गड़बड़ हो गई, क्या ईश्वर ठीक वक्त पर जीसस को दगा दे गया? क्या चमत्कार की शक्ति उनकी खो गई? या कि वह सब पाखंड ही था? वे जो उनके पास चमत्कार घटित हुए थे वे किसी मूल्य के न थे? झूठी खबरें हैं? कहानियां हैं? क्योंकि जो मुर्दों को जिला सकता था वह अपनी मौत को क्यों न रोक पाया? और यह तो घड़ी थी परीक्षा की। इसके साथ ही तो विजय की घोषणा होती।

लेकिन जीसस की सारी कला इसमें है कि वे शक्ति के द्वारा जीतने को राजी नहीं हैं; वे भद्रता के द्वारा जीतने को राजी हैं। शक्ति के खिलाफ वे शक्ति को खड़ा न करेंगे। क्योंकि शक्ति से जो जीती गई है बात, वह आज नहीं कल, हार में परिवर्तित हो जाएगी। शक्ति द्वंद्व का हिस्सा है, संसार का हिस्सा है। तो जीसस शक्ति का

उपयोग न करेंगे, वे केवल साक्षी रहेंगे, वे केवल चुप रहेंगे, वे देखते रहेंगे। वे सिर्फ भद्रता का, हंबलनेस का, विनम्रता का उपयोग करेंगे। वे झुक जाएंगे। जब शक्ति उन पर हमला करेगी तो वे पूरे झुक जाएंगे; उनके मन में कहीं कोई प्रतिरोध न होगा।

और मजे की बात यही है कि यही जीसस की विजय का कारण बन गई बात। जीसस को कोई जानता भी नहीं; जीसस को कोई कभी पहचानता भी नहीं; जीसस का नाम भी किसी को पता न चलता, अगर सूली पर यह भद्रता घटित न होती। इस भद्रता के कारण ही जीसस जीते। लेकिन यह जीत किसी और लोक की है। शक्ति हार गई; शक्ति अपने आप बिखर गई। जीसस को जो मार डालना चाहते थे, मिटा डालना चाहते थे, वे मिट गए, और जीसस एकदम अमर हो गए, अमृत को उपलब्ध हो गए। यह केवल ऐतिहासिक अर्थों में ही नहीं, बल्कि जीसस के अंतस्तल में भी यही घटित हुआ। जो बड़े से बड़ा चमत्कार जगत में हो सकता था वह हुआ। क्योंकि जीसस परम जीवन को अनुभव करते हुए भी, परम शक्तिशाली होते हुए भी झुक गए भद्रता में।

लाओत्से कहता है, भद्रता अंततः जीतती है। अंततः! प्रारंभ में तो शक्ति जीतती हुई मालूम होती है। और इसीलिए हम शक्ति पर भरोसा करते हैं। क्योंकि अंततः तो हम देख ही नहीं पाते; हमें तो जो प्रथम है वही दिखाई पड़ता है। हमारे पास आंखें तो बहुत पास देखने वाली हैं, दूर तक हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता है। तो सब तरफ हम इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि कैसे शक्ति उपलब्ध हो। वह शक्ति चाहे धन की हो, चाहे ज्ञान की हो, चाहे तंत्र की, मंत्र की हो, लेकिन कैसे शक्ति उपलब्ध हो। चारों तरफ हमारी एक ही खोज होती है पूरे जीवन में कि हम शक्तिशाली कैसे हो जाएं। लेकिन शक्ति का करिएगा क्या? शक्ति की इतनी आकांक्षा क्यों है?

नीत्शे ने एक किताब लिखी है। अनूठी किताब है, दि विल टु पावर। और किताब में उसने सिद्ध करने की कोशिश की है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा एक आकांक्षा है शक्ति के लिए, विल टु पावर, और कुछ भी नहीं। हर आदमी शक्ति पाना चाहता है; शक्ति के रूप कुछ भी हों। जब आप ज्यादा धन इकट्ठा करना चाहते हैं तो आप क्या चाहते हैं? अनेक लोग पूछते हैं, ज्यादा धन इकट्ठा करके क्या करिएगा?

लेकिन उनको पता नहीं कि वे क्या पूछ रहे हैं। धन धन नहीं है, धन शक्ति का संचित रूप है। एक रुपया आपकी जेब में पड़ा है तो सिर्फ रुपया नहीं पड़ा है, शक्ति संचित पड़ी है। इसका आप तत्काल उपयोग कर सकते हैं। जो आदमी अकड़ कर जा रहा था, उसको रुपया दिखा दीजिए, वह झुक गया; वह रात भर आपके पैर दबाएगा। उस रुपए में यह आदमी छिपा था जो रात भर पैर दबा सकता है। रुपए की इतनी दौड़ रुपए के लिए नहीं है। रुपया तो संचित शक्ति है, कनडेंस्ड पावर है। और अदभुत शक्ति है। क्योंकि अगर आप एक तरह की शक्ति इकट्ठी कर लें तो उसको दूसरी शक्ति में नहीं बदला जा सकता। रुपया बदला जा सकता है। एक रुपया आपकी जेब में पड़ा है, चाहें आप किसी से पैर दबवा लें, चाहें किसी से सिर की मालिश करवाएं, चाहे किसी से कहें कि पांच दफे उठक-बैठक करो। उसके हजार उपयोग हैं। अगर आपके पास एक तरह की शक्ति है तो वह एक ही तरह की है, उसका एक ही उपयोग है। रुपया अनंत आयामी है।

इसलिए इतना पागलपन है रुपए के लिए। पागलपन ऐसे ही नहीं है, जैसा साधु-संन्यासी समझाते हैं कि आप व्यर्थ ही पागल हैं। लोग व्यर्थ पागल नहीं हैं, लोग बड़े गणित से पागल हैं। चाहे उन्हें भी पता न हो, चाहे उन्हें भी स्पष्ट न हो कि वे क्यों पागल हैं, क्यों इतना रस है रुपए में, क्यों रुपए को पकड़ने और बचाने की इतनी आकांक्षा है। शायद उन्हें भी साफ न हो; दौड़ अचेतन हो; उन्हें चेतना न हो पूरी की वे क्या कर रहे हैं। लेकिन बात बिल्कुल साफ है। और बात इतनी है कि वे धन के माध्यम से शक्ति इकट्ठी कर रहे हैं।

कोई आदमी किसी और ढंग से शक्ति इकट्ठी कर रहा है। एक आदमी युनिवर्सिटी में पढ़ रहा है, शिक्षित हो रहा है; वह भी शक्ति इकट्ठी कर रहा है। वह ज्ञान के द्वारा शक्ति इकट्ठी कर रहा है। एक तीसरा आदमी कुछ और उपाय कर रहा है। लेकिन अगर सारे लोगों को हम देखें तो अलग-अलग रास्तों से वे शक्ति की तलाश कर रहे हैं।

एक आदमी मंत्र सिद्ध कर रहा है बैठ कर; वह भी शक्ति की तलाश में है। वह भी सोचता है कि मंत्र सिद्ध हो जाए तो लोगों को आंदोलित कर दूं, प्रभावित कर दूं, कि हजारों लोग चमत्कृत हो जाएं कि जो चाहूं वह करके दिखा दूं। वह भी उसी कोशिश में लगा है। जो आदमी प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है, ठीक से समझें तो वह क्या कर रहा है? वह भी शक्ति की तलाश कर रहा है। वह ईश्वर को प्रभावित करना चाहता है, मुट्ठी में लेना चाहता है, और उससे कुछ करवाना चाहता है कि वह कुछ मेरे लिए कर दे। तो पूजा करेगा, घुटने टेकेगा, मंदिर में गिरेगा। लेकिन आयोजन क्या है उसका? रोएगा, कहेगा कि मैं पतित हूं, तुम पावन हो। सब कहेगा; लेकिन उसका प्रयोजन क्या है? प्रयोजन है कि वह ईश्वर को अपने हाथ में लेकर संचालित करना चाहता है--अपनी मर्जी के अनुसार। इसलिए तथाकथित धार्मिक लोग कहते सुने जाते हैं कि क्या क्षुद्र शक्तियों की तलाश में पड़े हो, परम शक्ति को खोजो।

लेकिन क्षुद्र को खोजो या परम को, लेकिन शक्ति को जरूर खोजो--पावर! शक्ति का क्या उपयोग है?

शक्ति से स्वयं को तो कुछ भी नहीं मिलता, लेकिन दूसरे की तुलना में बल मालूम पड़ता है। शक्ति तुलनात्मक है। यह दूसरा सत्य शक्ति के संबंध में समझ लेना चाहिए। वह हमेशा तुलनात्मक है। किसी को आप शक्तिशाली नहीं कह सकते सीधा; आपको कहना पड़ेगा कि अ, ब से ज्यादा शक्तिशाली है। क्योंकि अ शक्तिशाली है, इतना कहने से कुछ हल नहीं होता। क्योंकि स ज्यादा शक्तिशाली हो सकता है। तो शक्तिशाली हमेशा तुलना में, कंपेरिजन में। आपको सिर्फ इतना कहना ठीक नहीं कि आप धनी हैं, क्योंकि आप किसी की तुलना में गरीब हो सकते हैं। तो यह बताना जरूरी है कि आप किसकी तुलना में धनी हैं। सब शक्तियां तुलनात्मक हैं। किसी को यह कहना काफी नहीं है कि यह विद्वान है; यह बताना जरूरी है कि किसकी तुलना में विद्वान है। क्योंकि किसी की तुलना में यह मूढ़ हो सकता है। सारी शक्तियां रिलेटिव हैं, सापेक्ष हैं। शक्ति का मजा अपने आप में नहीं है, शक्ति का मजा दूसरे को कमजोर करने में है। शक्ति से आप शक्तिशाली नहीं होते, लेकिन दूसरा कमजोर दिखता है। दूसरे के कमजोर दिखने से आपको एहसास होता है कि मैं शक्तिशाली हूं।

इसलिए धन का असली मजा धन में नहीं है, दूसरों की गरीबी में है। अगर कोई भी गरीब न हो, धन का मजा ही चला जाता है। कोई रस नहीं है फिर उसमें। थोड़ा समझिए कि कोहनूर हीरा आपके पास है। उसका मजा क्या है? मजा सिर्फ यह है कि आपके पास है, और किसी के पास नहीं है। सबके पास कोहनूर हीरा है, बात व्यर्थ हो गई। आप इस कोहनूर हीरा को बिल्कुल फेंक देंगे। इसका कोई मूल्य ही न रहा। यह वही कोहनूर हीरा है, लेकिन अब इसका कोई मूल्य नहीं है। इसका मूल्य इसमें था कि दूसरों के पास नहीं था। यह बड़े मजे की बात है! आपके पास है, इसमें मूल्य नहीं है; दूसरे के पास नहीं है, इसमें मूल्य है।

तो सारी शक्ति दूसरे पर निर्भर है, और दूसरे की तुलना में है। अमीर अमीर है, क्योंकि कोई गरीब है। ज्ञानी ज्ञानी है, क्योंकि कोई अज्ञानी है। शक्तिशाली शक्तिशाली है, क्योंकि कोई निर्बल है। शक्ति की दौड़ आत्म-खोज नहीं बन सकती है। क्योंकि शक्ति की दौड़ दूसरे से बंधी हुई है; दूसरे की तुलना में है। और एक मजे की बात है कि जो दूसरे की तुलना में है वह दूसरे पर निर्भर भी है। इसलिए बड़े से बड़ा शक्तिशाली आदमी भी अपने से कमजोर लोगों पर निर्भर होता है। यह हमको भी दिखाई नहीं पड़ता। जब आप एक सम्राट को चलते देखते हैं और उसके पीछे गुलामों को चलते देखते हैं तो आपको ख्याल नहीं होता कि सम्राट गुलामों का उतना

ही गुलाम है जितना गुलाम सम्राट के गुलाम हैं। शायद सम्राट ज्यादा गुलाम भी हो। क्योंकि गुलामों को मौका मिले तो वे छोड़ कर सम्राट को भाग जाएं और स्वतंत्र हो जाएं, लेकिन सम्राट गुलामों को छोड़ कर नहीं भाग सकता। क्योंकि गुलामों के बिना वह सम्राट ही नहीं रह जाएगा; उसका सम्राटपन गुलामों पर निर्भर है। वह गुलामों की भी गुलामी है।

म्युचुअल स्लेवरी, पारस्परिक गुलामियां हैं। जिसको भी आप गुलाम बनाते हैं, उसके आप गुलाम बन जाते हैं। जिस पर भी आप कब्जा करते हैं, आप उसके कब्जे में हो जाते हैं। और जिसको भी आप अपने से निर्बल कर देते हैं, आप उससे भी निर्बल हो जाते हैं। यह गहरा हिसाब है। यह ऊपर से दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन हम सब एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते हैं।

जो व्यक्ति शक्ति की खोज करता है वह निर्भरता की खोज कर रहा है, वह परतंत्रता की खोज कर रहा है। इसलिए बड़े से बड़ा धनी भी धनवान नहीं हो पाता। और बड़े से बड़ा पंडित भी ज्ञानवान नहीं हो पाता। क्योंकि सब तुलना में सारा मामला है। उसका पांडित्य मूढ़ों पर निर्भर है। मूढ़ अगर विदा हो जाएं, उसका पांडित्य विदा हो जाए।

साधु असाधु पर निर्भर है। असाधु न रह जाएं, साधु का कोई मूल्य नहीं रह जाता; वह खो जाता है। इसलिए साधु कोशिश बहुत करते हैं कि दुनिया में असाधु न रहें, लेकिन अगर वे समझेंगे गणित को, तो उनको पता नहीं वे क्या कर रहे हैं। वे आत्मघात में लगे हैं। उनकी साधुता असाधुता पर निर्भर है। वह जो बेईमान है, जो चोर है, वही उनकी गरिमा बना रहा है, वही उनको गौरव दे रहा है। क्योंकि वे बेईमान नहीं हैं, वे चोर नहीं हैं। एक आदमी चोर है और बेईमान है। वह जो चोर और बेईमान है, वही साधु की चमक है। थोड़ी देर के लिए कल्पना करें कि कोई बेईमान नहीं है, कोई चोर नहीं है। क्या ऐसे समाज में जहां कोई बेईमान और चोर नहीं होगा, कोई साधु हो सकता है? साधु का क्या अर्थ होगा? कौन पूछेगा साधु को? कौन सम्मान देगा? दुनिया से जिस दिन भी असाधु को मिटाना हो उस दिन साधु को मिटाने की तैयारी चाहिए। वे परस्पर गुलामियां हैं।

ऐसा ख्याल में साफ आ जाए कि शक्ति तुलनात्मक है, शक्ति दूसरे पर निर्भर है, तो शक्ति कभी भी मुक्ति नहीं बन सकती। मुक्ति का तो अर्थ यह है कि मैं बिल्कुल अकेला रह जाऊं, मुझ पर कोई निर्भरता, किसी के ऊपर मेरी निर्भरता न रह जाए; मैं अकेला ही परिपूर्ण आप्तकाम हो जाऊं। मेरे भीतर ही सब कुछ हो जो मुझे चाहिए; मेरी चाह की पूर्ति कहीं भी बाहर से न होती हो।

यह शक्ति से तो नहीं होगा, यह शांति से होगा। और शांति बिल्कुल अलग बात है। शक्ति में दूसरे को दबाना है, दूसरे को जीतना है; शांति में किसी को दबाना नहीं, किसी को जीतना नहीं। अपने को भी दबाना नहीं, अपने को भी जीतना नहीं। शांति का अर्थ है कि मेरी जो ऊर्जा है, मैं जैसा हूं, मैं जो हूं, वह पर्याप्त हूं; इससे अन्यथा की कोई मांग नहीं है। मैं राजी हूं और प्रसन्न हूं और अनुगृहीत हूं, जो भी मैं हूं वही मेरा आनंद है। ऐसी प्रतीति में शक्ति की खोज तो समाप्त हो गई और दूसरे से कुछ लेना-देना न रहा; दूसरे से कोई संबंध न रहा। यही संन्यास है। जब तक दूसरे से लेना-देना है, जब तक दूसरे पर निर्भरता है, तब तक संसार है; वह निर्भरता किसी भी ढंग की हो।

लाओत्से कहता है, शक्ति पर भद्रता की विजय। भद्रता का क्या अर्थ लाओत्से के विचार में है, वह हम ठीक से समझ लें। क्योंकि जो भी हम समझते हैं भद्रता से, जो लिखा है शब्दकोशों में, वह लाओत्से का प्रयोजन नहीं है। हमारी भाषा की कठिनाई है। और उस कठिनाई के कारण ही लाओत्से जैसे लोग बोलने में भी अड़चन

अनुभव करते हैं कि वे कैसे कहें जो कहना चाहते हैं। क्योंकि आपके ही शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा। और आपके सब शब्द दूषित हो गए हैं। और आपने उनको एक अर्थ दे दिया है।

जैसे भद्रता, विनम्रता। तो जब भी हम इन शब्दों का उपयोग करते हैं तो हमारे मन में क्या अर्थ होता है? हम कहते हैं, फलां आदमी बहुत विनम्र है। क्यों? क्योंकि हम कहते हैं कि वह अहंकारी नहीं है, अकड़ा हुआ नहीं है; झुका हुआ है। तो हमारे मन में जो भी विनम्रता का और भद्रता का अर्थ है वह अहंकार से ही जुड़ा हुआ है--कि जो आदमी विनीत है, कम अहंकारी है, नहीं अहंकारी है, वह आदमी भद्र है। लेकिन लाओत्से की विनम्रता और भद्रता, जिसको वह जेंटिलनेस कह रहा है, वह अहंकार से नहीं तौली जा सकती है। वहां न तो अहंकार है जिसे हम जानते हैं और न वहां विनम्रता है जिसे हम जानते हैं।

हमारा विनम्र आदमी भी छिपा हुआ अहंकारी होता है। और जिसको हम विनम्र आदमी कहते हैं वह अक्सर चालाक होता है, हिसाबी-किताबी होता है। उसकी विनम्रता भी उसकी कुशलता है। उसकी विनम्रता भी उसका व्यवहार का ढंग है। उसकी विनम्रता भी आपको जीतने का उपाय है। उसकी विनम्रता भी शक्ति है।

डेल कार्नेगी की एक किताब हैः हाउ टु विन फ्रेंड्स एंड इनफ्लुएंस पीपुल। तो उसमें वह कहता है कि विनम्र होना चाहिए; जितने आप विनम्र होंगे उतना ही लोगों को जीत सकते हैं।

निश्चित ही, लाओत्से और डेल कार्नेगी में अगर बातचीत हो तो लाओत्से की बात डेल कार्नेगी को बिल्कुल समझ में नहीं आएगी। क्योंकि वह कहता है, विनम्रता का मतलब ही यह है, फायदा ही यह है कि उससे आप दूसरे को जीत लेते हैं। क्यों जीत लेते हैं? क्योंकि उसके अहंकार को आप फुसलाते हैं। वह एक तरह की खुशामद है। जब आप दूसरे आदमी के सामने विनम्र होकर झुकते हैं तो आप उसके अहंकार को बढ़ावा देते हैं। और वह बिल्कुल प्रसन्न होता है। वह कहता है, आप कितने विनम्र आदमी हैं। लेकिन उसे पता नहीं कि उसको यह विनम्रता पता क्यों चल रही है? क्योंकि उसका अहंकार आगे बढ़ाया जा रहा है--कोई झुक गया; कितना विनम्र आदमी है! आपको यह विनम्रता इतनी प्रीतिकर क्यों लग रही है? प्रीतिकर इसलिए लग रही है कि आपका अहंकार तृप्त हो रहा है। और कोई आदमी झुका नहीं और अकड़ा खड़ा रहा। आपको यह अहंकार इतना कष्ट क्यों दे रहा है? इस आदमी का अहंकार कष्ट नहीं दे रहा; आपके अहंकार को गड़ रहा है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था में जो होशियार हैं, कुशल हैं, चालाक हैं, वे विनम्रता का उपयोग करते हैं। झुकेंगे, विनम्र होंगे; सब भांति आपके अहंकार को फुसलावा देंगे। लेकिन भीतर वे गहन अहंकारी हैं, और आपके विजय की चेष्टा कर रहे हैं।

डेल कार्नेगी जिस भाषा में विनम्रता का उपयोग करता है वह तो अहंकार का उपाय है। लाओत्से का जो अर्थ है वहां न तो अहंकार है आपका और न आपकी तथाकथित विनम्रता है। डेल कार्नेगी वाली विनम्रता वहां नहीं है। वहां दूसरे को जीतने का, या दूसरे से हारने का, दोनों ही सवाल नहीं हैं। वहां दूसरा है ही नहीं। आदमी सिर्फ स्वयं है। वह न आपको जीतने की फिक्र कर रहा है और न आपसे हारने के लिए डरा हुआ है। वह आपकी चिंता नहीं कर रहा है। वह जैसा है वैसा है। वह सरल है।

यह जो विनम्रता हमारी है, यह बड़ी जटिल है। अगर यहां आपको लोगों को जीतना है तो विनम्र होना पड़ेगा। यह तो बड़े मजे की बात हुई! यहां अगर आपको अपने अहंकार को आगे ले जाना है तो विनम्र होना पड़ेगा। आप जितने विनम्र होंगे उतने ही अहंकार को आप सफल हो सकते हैं; उतना ही अहंकार आप अपना मजबूत कर सकते हैं। आदमी सब तरह से अपने अहंकार को तृप्त करने की कोशिश करता है। वह विनम्रता से भी करता है।

और तब आपको हर गांव में ऐसे लोग मिल जाएंगे जो विनम्रता की मूर्ति हैं। लेकिन अगर आप उनका थोड़ा सा परीक्षण करें तो पाएंगे कि भीतर उनके गहन अहंकार की लपटें जल रही हैं। और यह विनम्रता की मूर्ति जो वे बने हुए हैं, उसी अहंकार के लिए बने हुए हैं। और जब सारा गांव उन्हें कहता है कि धन्य हैं आप, कि आप जैसा विनम्र आदमी नहीं, तब वे फूले नहीं समाते। वह कौन फूलता है भीतर? जो सुनता है कि आप जैसा कोई विनम्र नहीं, आप परम विनम्र हैं। आप जैसा कोई भद्र नहीं, सरल नहीं, आप जैसा कोई साधु नहीं। तो कौन फूलता है भीतर? वह जो फूल रहा है, वह जो प्रसन्न हो रहा है, वही अहंकार है।

और अगर यह आपको समझ में आ जाए तो फिर उचित यही है कि अगर आपको अपनी अकड़ पूरी करनी हो तो विनम्र होकर पूरी करें। क्योंकि विनम्र होकर ही पूरी करना आसान होगी। आप अकड़े तो दूसरे लोग आपकी अकड़ को तोड़ने की कोशिश में लग जाते हैं। आप अकड़े ही नहीं तो कोई तोड़ने की कोशिश ही नहीं करता; आपको सब सम्हालते हैं। इस गहरी चालाकी को अगर आप समझ लें तो मन के धोखे से बच सकते हैं।

लाओत्से की भद्रता, विनम्रता अहंकार और विनम्रता दोनों का अभाव है। हमारी विनम्रता अहंकार की ही एक व्यवस्था है। हमारा अहंकार भी विनम्रता का ही एक जोड़ और उसकी ही एक डिग्री, उसकी ही एक मात्रा है। जहां दोनों नहीं हैं, वहां भद्र व्यक्ति का जन्म होता है।

लाओत्से बैठा है। कनफ्यूशियस उससे मिलने आया। कनफ्यूशियस डेल कार्नेगी की बात बिल्कुल ठीक से समझता। कनफ्यूशियस तो बिल्कुल मर्यादा पुरुषोत्तम था। हर चीज की मर्यादा थी; हर चीज का नियम था। और आप जानते हैं, चीन में तो लोग या जापान में लोग झगड़ें भी तो भी पहले झुक-झुक कर नमस्कार करते हैं। झगड़ा भी झुक-झुक कर नमस्कार से शुरू होता है। इतने विनम्र हो गए हैं।

कनफ्यूशियस आया; उसने झुक कर नमस्कार किया। लेकिन वह बड़ा चौंका। क्योंकि लाओत्से बैठा था, और बैठा ही रहा। न उसने झुक कर नमस्कार का उत्तर दिया, न वह खड़ा हुआ। कनफ्यूशियस थोड़ा बेचैन हुआ, और उससे नहीं रहा गया। और उसने कहा कि आप समाज के किसी नियम और व्यवस्था को नहीं मानते हैं?

तो लाओत्से हंसा और उसने कहा, तो तुम व्यवस्था और नियम के कारण झुक रहे हो? लाओत्से ने कहा, औपचारिक का क्या उतर देना! फार्मल का क्या उत्तर देना! हार्दिक के उत्तर की कोई बात होती है। तुम सिर्फ झुक रहे थे क्योंकि नियम है! तो सब थोथा हो गया। हार्दिक का उतर हो सकता है; औपचारिक का क्या उत्तर? और अच्छा था कि तुम्हें तुम्हारी औपचारिकता का पता चल जाए, क्योंकि औपचारिकता झूठ है। तुम जरा भी नहीं झुके, और झुक कर तुमने दिखाया। तुम झुकते तो मैं झुका ही हुआ हूं; कोई बाधा नहीं है। और तुम मेरे झुके हुए होने को नहीं देख सकते क्योंकि तुम सिर्फ औपचारिक झुकने को पहचानते हो। मुझे उठ कर खड़े होने और झुकने की जरूरत नहीं। तुम मुझे देखो, मैं झुका हुआ हूं। खड़े होकर झुकने की तो उसे जरूरत है जो भीतर झुका न हो, और बाहर से आयोजन कर रहा हो, प्रदर्शन कर रहा हो।

कनफ्यूशियस बहुत घबड़ा गया होगा। उसकी थोड़ी सी जो चर्चा लाओत्से से हुई है, वह लौट कर अपने शिष्यों से उसने कहा कि इस आदमी के पास दुबारा मत जाना; यह आदमी बहुत खतरनाक है।

लाओत्से का भद्रता से अर्थ है स्वभाव की भद्रता।

इसे हम समझने की कोशिश करें। क्योंकि हमारे पास बहुत ऐसे शब्द हैं जो धोखे के हो गए हैं। एक आदमी लंगोटी लगा लेता है तो हम कहते हैं, कितना सादा आदमी है! सादगी लंगोटी लगाने से हो जाती है। लेकिन जो आदमी लंगोटी लगा रहा है, वह क्यों लंगोटी लगा रहा है? उसकी लंगोटी लगाने में कोई लोभ है?

कोई प्रलोभन है? कुछ पाने की आकांक्षा है? तो फिर सादगी न रही; फिर तो यह व्यवस्था हो गई, व्यवसाय हो गया, इनवेस्टमेंट हो गया। वह लंगोटी लगा कर कुछ पाने की कोशिश कर रहा है। या यह हो सकता है कि आप सादगी को आदर देते हैं, इसलिए वह लंगोटी लगा कर खड़ा है। तो वह आपसे आदर पाने की कोशिश कर रहा है।

तो फर्क क्या हुआ? एक आदमी कीमती, खूबसूरत टाई बांध कर खड़ा हुआ है, वह भी इस आशा में कि आप आदर देंगे; और एक आदमी लंगोटी लगा कर खड़ा हुआ है, वह भी इस आशा में कि आप आदर देंगे। दोनों की लंगोटियों में फर्क क्या है? बुनियादी आकांक्षा! वे प्रतीक्षा क्या कर रहे हैं? आप सुंदर वस्त्र पहन कर खड़े हो सकते हैं, आप नग्न खड़े हो सकते हैं; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह फर्क तो बहुत ऊपरी है। लेकिन भीतर आकांक्षा क्या है? भीतर आकांक्षा है सम्मान पाने की, समादर पाने की, इज्जत पाने की? दूसरे देखें और जानें कि आप कौन हैं, क्या हैं, आप महत्वपूर्ण हैं, विशिष्ट हैं? तो अगर यह आकांक्षा भीतर है, सादगी के पीछे भी, तो सादगी सादगी न रही; फिर सादगी तो जटिल हो गई, उसमें उलझाव हो गया।

मैं अनेक सादगी वाले लोगों को जानता हूं। उनकी सादगी बिल्कुल आरोपित है, आयोजित है। और ऐसा नहीं कि वे आदमी बुरे हैं। उन्हें पता ही नहीं कि वे... वे भी मान कर चल रहे हैं कि यह सादगी है।

सादगी होती है हृदय की। लंगोटियों से उसे नापने का कोई उपाय नहीं है। और हृदय सादा हो तो बात और है। हृदय सादा न हो तो आप कितना ही इंतजाम कर लें, सादगी फलित न होगी। उसमें भी आप हिसाब लगा रहे हैं--स्वर्ग, मोक्ष, क्या मिलेगा, क्या नहीं मिलेगा। क्योंकि आपने लंगोटी लगा ली है। गजब का सौदा कर रहे हैं! एक लंगोटी लगा कर लोग बिल्कुल मोक्ष का इंतजाम कर लेते हैं। या कि कोई नग्न खड़ा हो गया तो वह सोचता है कि परम दिगंबरत्व उपलब्ध हो गया। अब, अब तो क्या कमी रही! तो सिर्फ इतनी ही कमी थी कि आप कपड़े पहने थे; वे बाधा डाल रहे थे मोक्ष में। या आप एक बार खाना खा सकते हैं; तो सादगी नहीं हो जाएगी। अभ्यास की बात है।

अफ्रीका में एक पूरी की पूरी जाति एक ही बार भोजन करती है। जब उनको पहली दफा पता चला, योरोपियन वहां पहुंचे और उनको पता चला कि चार-चार, पांच-पांच दफा दिन में खाते हैं--कभी चाय, कभी नाश्ता, कभी खाना--तो वे हैरान ही हो गए। उनको पता ही नहीं था, सदियों से वे एक ही बार खा रहे थे, जैसे आप दो बार खा रहे हैं। तो पेट उसके लिए राजी हो जाता है, फिर चौबीस घंटे में एक बार भूख लगती है। दो बार खाते हैं तो दो बार लगती है; पांच बार खाते हैं तो पांच बार लगती है। पेट हर चीज से राजी हो जाता है।

तो जो पांच बार खा रहा है, उसका भी पांच बार का अभ्यास है। जो एक बार खा रहा है, उसका एक बार का अभ्यास है। अभ्यास बदलने में थोड़ी तकलीफ हो सकती है शुरू में, लेकिन थोड़े ही दिनों में कंडीशनिंग हो जाती है, अभ्यास हो जाता है। फिर कोई अड़चन नहीं है। लेकिन सादगी से इसका कोई संबंध नहीं है। सादगी से संबंध इसका नहीं है कि आप क्या करते हैं; सादगी से संबंध है कि आप क्या हैं।

एक मित्र थे मेरे, उनके साथ एक दफा यात्रा पर गया। तो वे भोजन के लिए इतना उपद्रव मचाते थे--सादा भोजन। उसके लिए वे इतना उपद्रव मचाते थे कि मैंने कोई उपद्रवी नहीं देखा जो भोजन के लिए इतना ऑब्सेशन से भरा हो। सादा भोजन के लिए वे इतना उपद्रव मचाते थे कि गैर-सादा भोजन वाला इतना उपद्रव कभी करता ही नहीं। चौबीस घंटा उनका भोजन में ही चिंतन में लगता।

कितने घंटे पहले दूध लगाया गया गाय से! क्योंकि उनका हिसाब कि इतने घंटे के बाद उसमें जीवाणु पड़ जाएंगे, यह हो जाएगा। घी कितने घंटे पहले का निकाला हुआ! गाय का ही है दूध? भैंस का न होना चाहिए,

गाय का ही चाहिए। पानी कौन भर कर लाया? वे सारा हिसाब कर लेते थे। और लोग कहते, कितना सादा जीवन! और वे चौबीस घंटे सादा जीवन में ही लगे हैं। उनका कुल एक ही लक्ष्य हो गया है कि चौबीस घंटे वे इसकी व्यवस्था जमाएं। और उससे उन्हें सम्मान मिल रहा है, उन्हें आदर मिल रहा है। लोग कष्ट उठा रहे हैं, सब तरह का इंतजाम कर रहे हैं। और उनको बड़ा सम्मान मिल रहा है। और वे चौबीस घंटे भोजन को ब्रह्म मान कर चिंतन कर रहे हैं।

सादगी वहां मुझे जरा भी न दिखाई पड़ी। यह तो बहुत ही गैर-सादा जीवन मालूम पड़ा। यह तो बहुत उलझा हुआ मालूम पड़ा। और अकेले का ही नहीं उलझा, और अनेक लोगों का उलझाए हुए हैं। और सब भयभीत हैं, डरे हुए हैं, कि जरा भूल-चूक हो जाए तो वे भोजन नहीं लेंगे, वे भूखे रह जाएंगे। उनका भूखा रहना ऐसा है जैसे सबके ऊपर अपराध है। और सब अनुभव करेंगे कि भूल हो गई, अपराध हो गया; बड़ा कष्ट हो गया।

आप सादगी को भी जटिलता कर सकते हैं, अगर आपका जटिल मन है। और अगर आपका सादा मन है, सादा हृदय है, तो कितनी ही जटिलता में आप रह सकते हैं, जटिलता पैदा नहीं होगी। इसलिए असली सवाल यह नहीं कि आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, क्या पहनते हैं। असली सवाल यह है कि कैसा आपके पास हृदय है, कैसे आप हैं। और आप उलझे हुए तो नहीं हैं! गणित तो नहीं बिठा रहे हैं!

सुना है मैंने कि एक सूफी फकीर यात्रा कर रहा था, मक्का जा रहा था। और उसने और उसके मित्रों ने एक महीने का उपवास किया हुआ था। उपवास तोड़ेंगे वे मक्का जाकर। एक गांव में आए, लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई। चार-छह दिन ही हुए थे यात्रा के। और गांव के एक गरीब आदमी ने, जो उस सूफी का भक्त था, अपना सब खेती, जमीन, मकान, सब बेच दिया। क्योंकि सूफी आ रहा था, उसके साथ सौ फकीर आ रहे थे, और उसके भक्त ने सब बेच कर पूरे गांव को भोजन दे दिया, भोज कर लिया। सब फूंक दिया जो उसके पास था। उसका गुरु आ रहा था।

जब गुरु को पता लगा तो शिष्य बड़ी बेचैनी में पड़े। शिष्यों ने कहा, अब क्या होगा? हम तो उपवासे हैं। गुरु का उपवास है; उपवास टूट सकता नहीं। चाहे जान रहे कि जाए, उपवास नहीं टूट सकता। ये जटिल आदमी के लक्षण हैं कि जान रहे कि जाए; ये कोई सरल आदमी के लक्षण नहीं हैं। गुरु सुनता रहा, वह कुछ बोला नहीं। लेकिन जब पहुंचा तो वह खाने के लिए बैठ गया; और जब गुरु बैठ गया तो शिष्यों को मजबूरी में बैठना पड़ा। लेकिन उन्होंने बड़े दुख में खाया, बड़े परेशान, पसीना-पसीना, आत्म-ग्लानि, पाप--कि यह क्या हो रहा है! गुरु भूल गया या क्या हुआ? उपवास है एक महीने का, और ये छह दिन में ही टूट गया।

जब सब विदा हो गए, भोज समाप्त हो गया, रात अकेले शिष्य और गुरु रह गए, तो शिष्यों ने कहा कि यह हमारी समझ के बाहर है। यह तो बड़ी भारी दुर्घटना है कि हमने उपवास किया महीने भर का और छह दिन में टूट गया! गुरु ने कहा, घबड़ाने की क्या बात है? आज से हम फिर शुरू करते हैं; एक महीना चलेगा। लेकिन उस गरीब आदमी ने सब कुछ फूंक डाला; उससे यह कहना कि हम उपवासे हैं--अकारण जटिलता पैदा होती, उसे दुख होता। इसकी क्या जरूरत है? इसकी बात ही क्यों उठानी? फायदा ही हुआ हमको, एक महीने छह दिन का उपवास का फायदा हुआ। कल से हम फिर उपवास करेंगे, और एक महीना उपवास चलेगा।

यह सरल आदमी है। वे शिष्य सरल आदमी नहीं हैं। सरलता गणित नहीं बिठाती। सरलता सहज स्पांटेनियस स्फुरणा है। और जो घटनाएं घटें, उनके साथ बिना भविष्य का गणित बिठाए सहज जो संवाद है, सहज जो प्रत्युत्तर है, वही।

लाओत्से कहता है, "शक्ति पर भद्रता की विजय होती है।"

वह भद्रता--हृदय की भद्रता। वहां कोई मन बैठ कर सोच नहीं रहा है कि भद्र होने से शक्ति पर विजय मिलेगी। अगर आपने इसको गणित का नियम बनाया कि भद्र होने से शक्ति पर विजय मिलेगी तो आपको कभी विजय नहीं मिलेगी। और तब आप कहेंगे कि यह सूत्र गलत था। क्योंकि शक्ति पर विजय पाने के लिए भद्रता कोई उपाय नहीं है। भद्र विजय पा लेता है, यह परिणाम है।

मैं एक विद्यालय में गया--धार्मिक विद्यालय। वहां एक मुनि विराजमान थे। उन मुनि के पीछे एक तख्ती पर एक वचन लिखा हुआ था। वचन लिखा हुआ था कि विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है। तो मैंने उनसे पूछा कि यह वचन यहां किसलिए लगा रखा है? इसीलिए न कि जिनको भी पूजा चाहनी हो वे विद्वान हो जाएं! क्योंकि विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है। राजा तो अपने देश में ही पुजता है, लेकिन विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है। क्या मतलब क्या है इसका? अगर पूजा का भाव जगाना है कि मेरी पूजा होगी सब जगह, इसलिए विद्वान हो जाऊं, तो आप विद्वान कैसे हो पाएंगे? या फिर वह विद्वत्ता कचरा होगी। ज्ञान तो नहीं हो सकती; पांडित्य हो सकता है। लेकिन उस पांडित्य के पीछे अहंकार ही खड़ा होगा, और उस पांडित्य का कुल उपयोग आभूषण का होगा कि अहंकार के लिए आभूषण बन जाए।

हम प्रत्येक चीज में कार्य-कारण का संबंध बना लेते हैं; उन चीजों में भी जहां कार्य-कारण का संबंध नहीं होता। इसे हम थोड़ा समझें, क्योंकि हमारे पूरे जीवन में यह छिपा हुआ है।

मैं किसी को कहता हूं कि आओ, इस खेल को खेलो; इस खेल के खेलने से बड़ा आनंद मिलता है। आप आनंद पाने के लिए खेलने आ गए। आपने सोचा कि आनंद मिलता है तो चलो, आनंद तो चाहिए, इसलिए खेलें। तो आप खेलेंगे तो नहीं; आप पूरे वक्त सोचेंगे कि अभी तक आनंद नहीं मिला! अभी तक आनंद नहीं मिला! अब आनंद कब मिलेगा? और यह हाथ-पैर चलाने से, फुटबाल को यहां से वहां फेंकने से, या वालीबाल को यहां से वहां करने से कैसे आनंद मिलेगा? एक गेंद को इस तरफ से उस तरफ नेट के करने से आनंद कैसे मिल सकता है? लेकिन कोशिश करें, कहते हैं, शायद मिले। तो आप परेशान हो जाएंगे, दुख पाएंगे। और बाद में आप कहेंगे कि गलत कहा, आनंद नहीं मिलता।

खेल से आनंद मिलता है, इसमें कार्य-कारण का संबंध नहीं है, कि आप खेलेंगे तो आनंद मिलेगा, कि आनंद पाने के लिए आप खेलें तो आनंद मिल जाएगा। नहीं, आप आनंद को तो सोचें ही मत, आप सिर्फ खेलें। आनंद की तो बात ही मत उठाएं। आनंद मिलेगा, यह भी ध्यान मत रखें। आनंद चाहिए, इसकी भी बात छोड़ दें। आनंद को भूल ही जाएं, सिर्फ खेलें। तो आनंद मिलेगा। क्योंकि आनंद खेल के पीछे छाया की तरह आता है; कार्य की तरह नहीं, छाया की तरह आता है। लेकिन छाया ऐसी चीज नहीं है कि आप झपट्टा मार दें। अगर आप चुपचाप खेलते रहें तो छाया चारों तरफ घिर जाएगी; आप आनंदित हो उठेंगे।

जीवन में जो लोग भी इस बात को नहीं समझ पाते, वे बड़ी कठिनाई में पड़ते हैं। कहीं संगीत चल रहा है। और कोई आपको कहता है संगीत का प्रेमी, कि आओ, बहुत आनंद है। अब आप वहां बैठे हैं रीढ़ को, कुंडलिनी को बिल्कुल जगाए हुए--आनंद कहां है? यह आदमी शोरगुल मचा रहा है, इसमें आनंद कहां है? कब मिलेगा आनंद? कितनी देर और लगेगी? आप बार-बार घड़ी देख रहे हैं कि अभी तक नहीं मिला! अभी तक नहीं मिला! आपको कभी भी नहीं मिलेगा। क्योंकि जो आप कर रहे हैं उससे आपका संगीत का संबंध ही नहीं बन पा रहा है।

अगर आप सोचते हैं कि भद्रता से विजय मिलेगी, तो भद्रता ही नहीं मिलेगी, विजय तो बहुत दूर है। क्योंकि वह विजय की आकांक्षा ही तो भद्रता का अभाव है। इसलिए इन सूत्रों को आप कार्य-कारण के सूत्र मत समझना। इन सूत्रों का अर्थ परिणाम का है। अगर कोई व्यक्ति भद्र है तो विजय उसके पीछे छाया की तरह चलती है। लेकिन जो व्यक्ति विजय के लिए सोचता है उसने तो विजय को आगे ले लिया, भद्रता को पीछे कर दिया। उसके पीछे फिर विजय नहीं चलती।

सुना है मैंने कि स्वामी राम के पास एक आदमी आया करता था। और राम उससे कहते थे कि जब मेरा एक घर था और मैं एक घर को पकड़े हुए था तो वह घर भी बचाना मुझे मुश्किल हो गया था। और अब मैंने सब घर छोड़ दिए तो सारी दुनिया के घर मेरे हो गए हैं। और जब मैं धन को पकड़ता था कौड़ी-कौड़ी तो कौड़ी भी हाथ में नहीं टिकती थी। और जब मैंने धन की पकड़ छोड़ दी तो सारी दुनिया की संपदा मेरी हो गई।

उस आदमी ने कहा, मैं भी कोशिश करूंगा। उसने सोचा कि अगर ऐसा मामला है तो यह पहले ही क्यों नहीं बताया गुरुजनों ने?

राम उसे देख कर डर गए होंगे। उन्होंने कहा, ठहर! तू कोशिश में मत पड़ जाना, नहीं तो तू मुझ पर मुकदमा करेगा। अगर तूने धन छोड़ा इस आशा में कि सारी दुनिया का धन हो जाए तो तेरे हाथ का धन भी चला जाएगा, दुनिया का तो मिलने वाला नहीं। उस आदमी ने कहा, और अभी आप कह रहे थे कि जब मैंने छोड़ दिया क्षुद्र तो विराट मेरा हो गया! तो मैं भी कोशिश करके देखना चाहता हूं।

हम सब भी यही करते हैं। लाओत्से जैसे परम चैतन्य व्यक्तियों के वचन जब हम पढ़ते हैं तो हमें बड़ी कठिनाई यही हो जाती है कि हम सोचते हैं कि बिल्कुल ठीक, यह तो हम भी चाहते हैं कि विजय मिले, और लाओत्से सूत्र बता रहा है कि भद्र को मिलती है, तो हम भद्र हो जाएं।

एक तो चेष्टा से भद्र आप हुए तो वह झूठ होगा। वह हार्दिक न होगा, औपचारिक होगा। और विजय की आकांक्षा से कोई भद्र कैसे हो सकता है? कोई विनम्र कैसे हो सकता है? कि अगर आप विनम्र हो जाएं तो सब जगह आदर मिलेगा। तो आदर पाने की आकांक्षा से कोई विनम्र कैसे होगा? विनम्र तो आप बिना किसी आकांक्षा के ही हो सकते हैं। आदर मिले कि अनादर, कुछ मिले कि न मिले, यह सब असंगत है; भद्र होने का आनंद मैं लेना चाहता हूं; भद्रता में ही मुझे रस है।

और निश्चित ही, भद्रता अपने आप में इतना बड़ा रस है कि कोई विजय की उससे अतिरिक्त कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई भद्र हो गया तो उसे विजय की कोई जरूरत नहीं है; कोई विजय फिर उसके मुकाबले मूल्य नहीं रखती। सब विजय फीकी हैं। और जिस आदमी को धन छोड़ने का मजा आ गया, उसको सारी दुनिया का धन भी मिल जाए तो पकड़ने का अब सवाल नहीं है।

लेकिन कई लोग सुन लेते हैं सूत्र कि लक्ष्मी को छोड़ो तो लक्ष्मी फिर पैर दबाती है। कई झंझट में भी पड़ जाते हैं छोड़ कर। मैं कई संन्यासियों को जानता हूं जो बेचारे इस आशा में छोड़ बैठे हैं कि लक्ष्मी पैर दबाएगी। वे बड़ी देर से लेटे हैं बिल्कुल शेष-शय्या बना कर; लक्ष्मी आती नहीं; कोई पैर दबाता नहीं। अब वे बड़े बेचैन हैं। अब उनकी नैया बिल्कुल बीच में अटक गई है। अब वे न यहां के रहे, न वहां के रहे। अब वे लौट भी नहीं सकते; अब वे आगे भी नहीं जा सकते। लेकिन आकांक्षा उन्होंने जो की थी वह गलत हो गई। लक्ष्मी जरूर पीछे-पीछे आती है, लेकिन आप पीछे लौट कर भर मत देखना। आपने पीछे लौट कर देखा कि आ रही कि नहीं, तो बस आप चूक गए। फिर आप कितनी ही कोशिश करो, फिर लक्ष्मी आने वाली नहीं।

तो यह सूत्र ख्याल रखनाः लक्ष्मी चाहिए हो तो पीछे लौट कर मत देखना; आप तो चलते ही चले जाना। मगर इसका मतलब यह भी नहीं कि आप बिल्कुल सम्हाले रहना अपने को कि कहीं पीछे लौट कर न देख लें; क्योंकि वह भी पीछे लौट कर ही देखना है। गर्दन बिल्कुल फंसा ली, प्लास्टर करवा लिया सब तरफ से; उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वह पीछे मन लौट कर न देखे, उससे कोई प्रयोजन नहीं है, तो जरूर लक्ष्मी पीछे आती है।

इन सारे सूत्रों के साथ अड़चन है कि हम इनको मानने को राजी हो सकते हैं, लेकिन जो उनकी शर्त है वह हमारी समझ में नहीं आती। वह शर्त यही है--अब शर्त आपको समझा दूं--शक्ति पर भद्रता की विजय होती है; और भद्रता का अर्थ है, जिसको विजय की आकांक्षा नहीं। तब आपको साफ हो जाएगी बात। भद्रता का अर्थ है, जिसको विजय की आकांक्षा नहीं। निश्चित ही तब शक्ति पर भद्रता की विजय होती है।

"मछली को गहरे पानी में ही रहने देना चाहिए।"

और वह जो भद्रता है उसको, लाओत्से कहता है, जैसे मछली को गहरे पानी में रहने देना चाहिए, उस भद्रता को भी बाहर उछालते नहीं फिरना चाहिए। क्योंकि वह तब छिछोरापन है। अहंकार को लोग बाहर उछालते हैं, उसी तरह भद्रता को भी उछालते हैं; यह बड़ा मजा है। लेकिन दोनों बड़ी विपरीत चीजें हैं।

एक आदमी अकड़ कर खड़ा होता है, वह समझ में आता है। क्योंकि भीतर तो अकड़ बच नहीं सकती; बाहर ही हो सकती है। अकड़ तो दूसरे को दिखाने के लिए है। इसलिए अहंकारी तो बाहर दिखाता है, वह समझ में आता है। जिसके पास महल है वह महल दिखाएगा। जिसके पास स्वर्ण के आभूषण हैं वह स्वर्ण के आभूषण दिखाएगा। जिसके पास हीरे-जवाहरात हैं वह उनको दिखाएगा। क्योंकि उनका मूल्य ही देखने वाले की आंख में जो चमक आती है उसमें है। वह जो दूसरे में दीनता पैदा होती है, वह जो दूसरे में वासना जगती है, वह जो दूसरे में तृषा पैदा हो जाती है कि मेरे पास भी होता, और नहीं है, वह जो दूसरे में अभाव हो जाता है, वह जो दूसरा भिखारी की तरह खड़ा हो जाता है उसमें उसका रस है। इसलिए अहंकार तो दिखावा होगा ही। उसका प्रदर्शन जरूरी है। उसके बिना वह बच ही नहीं सकता। अगर आप अहंकार का प्रदर्शन न करें तो वह मर जाएगा। उसको भोजन मिलता है प्रदर्शन से।

लेकिन विनम्रता, भद्रता, अगर आप प्रदर्शन करें तो मर जाएगी; वह झूठी ही है, मरने का भी सवाल नहीं। अहंकार बाहर-बाहर होता है, वहीं उसका जीवन है; भद्रता भीतर-भीतर होती है, वहीं उसके प्राण हैं। जितनी गहरी हो! इसलिए लाओत्से उठ कर खड़ा नहीं हुआ। लेकिन समझना बहुत मुश्किल है। आप भी गए होते तो आपको भी लगता कि बेचारा कनफ्यूशियस ठीक है, झुक कर नमस्कार कर रहा है, और यह लाओत्से बिल्कुल--बिल्कुल गंवार मालूम होता है कि बैठा ही हुआ है। खड़े होकर कम से कम, जब कोई घर में अतिथि आए... ।

लेकिन लाओत्से कहता है, मछली को गहरे पानी में रहने देना चाहिए। लाओत्से कहता है, विनम्रता को दिखाना क्या! है तो है। वे जड़ें उसकी गहरी छिपी रहें। और जो देख सकता है वह उसको देख लेगा। और जो नहीं देख सकता उसको दिखाने से भी कोई अर्थ नहीं है। सिर्फ उसके अहंकार को रस आएगा, और कुछ भी न होगा।

"मछली को गहरे पानी में रहने देना चाहिए।"

इस सूत्र को और दृष्टियों से भी समझ लेना कीमत का है। जो भी मूल्यवान है आपके भीतर, और जिसको भी आप चाहते हैं कि बचाना है, उसे गहरे में डाल देना। नष्ट करना हो तो बाहर; बचाना हो तो भीतर। वृक्ष

ऊपर दिखाई पड़ता है; जड़ें जमीन में छिपी रहती हैं। जड़ें मूल्यवान हैं। वृक्ष जड़ों को दिखाने बाहर ले आए तो मौत हो जाएगी। वह जो भी गहरा और मूल्यवान है उसे भीतर! उसका किसी को पता ही न चले। इसका यह अर्थ नहीं है कि पता नहीं चलेगा; जितना गहरा होगा उतनी जल्दी पता चलेगा। लेकिन आप पता चलाने की, चलवाने की कोशिश मत करना। क्योंकि आपकी कोशिश बताती है कि गहरा नहीं है।

लाओत्से से जब उसके शिष्यों ने पीछे पूछा कि आप बैठे रहे! आपने ऐसा क्यों किया? तो लाओत्से ने कहा, मैं सोचता था कि कनफ्यूशियस अगर थोड़ा भी गहरा होगा तो समझ जाएगा, देख लेगा। लेकिन वह इतना ही देख सका कि मैं बैठा हुआ हूं, खड़ा नहीं हुआ। बस उसे आकार दिखाई पड़ा, उसे और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। तो वह सिर्फ आकार में जी रहा है। नियम, व्यवस्था, शासन, औपचारिकता, शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति, उसमें ही जी रहा है। धर्म का उसे कोई पता नहीं है। अगर उसे पता होता तो उसे दिखाई पड़ जाता कि मैं तो झुका ही हुआ हूं; बैठूं, या खड़ा होऊं, या न होऊं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह झुका हुआ होना मेरा स्वभाव है।

एक पहाड़ तो झुक भी सकता है, लेकिन एक गड्ढा कैसे झुकेगा? एक पहाड़ झुक सकता है, लेकिन एक गड्ढा कैसे झुकेगा? लाओत्से गड्ढे की तरह है, अब झुकने का भी क्या उपाय है। जो अकड़ा है, वह झुक भी सकता है; लेकिन जो अकड़ा ही नहीं है, वह कैसे झुकेगा?

लेकिन हम भी नहीं पहचान पाते। हमें भी कनफ्यूशियस पहचान में आ जाता। क्योंकि हम भी कनफ्यूशियस की ही परंपरा में खड़े हैं। दुनिया में सौ में से निन्यानबे आदमी कनफ्यूशियस के पीछे खड़े हैं। कभी कोई एकाध आदमी समझ पाता है। अन्यथा हम सब उपचार समझते हैं, ढंग समझते हैं, नियम समझते हैं।

"मछली को गहरे पानी में ही रहने देना चाहिए।"

धर्म को, ध्यान को, विनम्रता को, सादगी को, सरलता को जितने गहरे रहने दें उतना अच्छा। क्योंकि जितनी होगी गहरी उतना ही उसके द्वारा रूपांतरण आपकी आत्मा का होगा। आपकी विनम्रता दूसरे को दिखाने के लिए नहीं है; आपकी विनम्रता आपको ही बदलने के लिए है। आपकी सादगी कोई बाजार में प्रदर्शन नहीं है; आपकी सादगी आपकी ही आत्मा का रूपांतरण है। वह आपके ही लिए है।

सूफी फकीर कहते हैं कि जब सब सो जाएं, सारी दुनिया सो जाए, तब चुपचाप अपनी प्रार्थना कर लेना। मस्जिद में जाकर मत करना; क्योंकि वहां डर है कि शायद तुम प्रार्थना करने नहीं जा रहे, तुम सिर्फ दिखाने जा रहे हो कि तुम भी प्रार्थना करते हो। वह जो भीड़ इकट्ठी होती है, वे जो लोग इकट्ठे होते हैं, उन्हें तुम भी दिखाना चाहते हो कि तुम भी धार्मिक हो। एक रिस्पेक्टबिलिटी धर्म से मिलती है, एक आदर मिलता है कि यह आदमी भला है, आदमी ईमानदार है, यह आदमी सादा है, धार्मिक है, ईश्वर की प्रार्थना में लीन रहता है। ईश्वर की प्रार्थना, सूफी फकीर कहते हैं, चुपचाप अंधेरे में, जब कोई भी न जाने, तुम कर लेना। उसे भीतर गहरे में डाल देना; वह कोई बाहर उछालने की बात नहीं है। उससे दूसरे को कोई लेना-देना नहीं है; तुम्हारी अपनी बात है।

लेकिन हम, जो व्यर्थ है उसे भीतर डालते हैं; कचरे को भीतर इकट्ठा करते हैं। जो सार्थक है, जो भीतर होता तो शायद जड़ें पकड़ लेता, बीज फूटता, भूमि में गहरा चला जाता, गर्भ निर्मित हो जाता जिसके आस-पास, उसे हम दिखाते फिरते हैं। यह मजे की बात है! अगर आपको क्रोध आता है तो आप उसको भीतर दबाते हैं। और विनम्रता ऊपर दिखाते हैं। स्वभावतः, जो आप दबाते हैं, वही आप हो जाते हैं। क्रोध है तो उसे भीतर दबाते हैं। अच्छा भी नहीं मालूम पड़ता क्रोध को प्रकट करना; कोई क्या कहेगा? लोग क्या कहेंगे कि आप जैसा संत पुरुष, और क्रोध कर रहा है? तो आप मुस्कुराए चले जाते हैं; क्रोध को भीतर सरकाए चले जाते हैं। लाओत्से

जो कहता है कि मछली को गहरे पानी में रहने देना चाहिए; आप भी मछली को गहरे पानी में रखते हैं, लेकिन सिर्फ सड़ी हुई मछलियों को, मरी मछलियों को, मुर्दा मछलियों को, जिनको आप बाहर ही फेंक देते तो बेहतर था।

और जब आप किसी पर क्रोध रोकते हैं तो इसलिए नहीं कि क्रोध बुरा है, बल्कि क्रोध से प्रतिष्ठा जाती है। इसलिए जहां आपके क्रोध से प्रतिष्ठा नहीं जाती वहां आप बराबर प्रकट करते हैं। अगर आपका मालिक, दफ्तर में आपका बॉस क्रोध करता है तो वहां आप मुस्कुराते रहते हैं खड़े होकर। आपके पास पूंछ होती तो आप हिलाते। बिल्कुल मुस्कुराते हैं। लेकिन घर जाकर आप अपनी पत्नी पर टूट सकते हैं; वहां कोई डर नहीं है प्रतिष्ठा का। और पत्नी की आंख में किसकी प्रतिष्ठा होती है? भय का कारण भी क्या है? कोई प्रतिष्ठा वहां है ही नहीं पहले से। कुछ गंवाने का सवाल भी नहीं है। छोटे, घर में जाकर, बच्चे पर टूट पड़ते हैं। कोई भी बहाना खोज लेते हैं।

वह क्रोध तो निकलेगा ही; वह कहीं न कहीं निकलेगा। क्योंकि क्षुद्र को भीतर रखा नहीं जा सकता। उसके लिए कोई जगह नहीं है वहां। वहां केवल विराट को ही रखा जा सकता है। क्षुद्र तो बाहर आएगा। क्षुद्र बाहर के लिए है। और अच्छा ही है कि आप सफल नहीं हो पाते भीतर रखने में, नहीं तो वह नासूर बन जाएगा। और जो रखने में सफल हो जाते हैं उनके भीतर नासूर हो जाता है। वे फिर गहरे रोग से भीतर घिर जाते हैं। उनके पास हृदय नहीं होता फिर, फफोले ही होते हैं भीतर। और वे उन्हीं के साथ जीते हैं, उन्हीं से धड़कते हैं, उन्हीं से श्वास लेते हैं। उनकी जिंदगी एक महारोग हो जाती है। लेकिन श्रेष्ठ को हम दिखाते फिरते हैं, निकृष्ट को दबाते फिरते हैं।

श्रेष्ठ को दबाएं! जितना श्रेष्ठ बहुमूल्य हीरा हो उसको उतने भीतर रख दें; उसका पता भी न चले किसी को। वह बड़ा होगा वहां, वहां उसे गर्भ मिल जाएगा, वह फैलेगा और आपकी पूरी आत्मा पर प्रकाश बन जाएगा।

लाओत्से कहता है, "मछली को गहरे पानी में ही रहने देना चाहिए। राज्य के तेज हथियारों को वहां रखना चाहिए जहां उन्हें कोई देख न पाए।"

लाओत्से राज्य के पक्ष में नहीं है। न सेनाओं के पक्ष में है, न हिंसा के पक्ष में है, न युद्ध के पक्ष में है। लाओत्से मानता है कि सब युद्ध, सब सेनाएं, सब राज्य मनुष्य-जीवन की विकृतियां हैं। तो लाओत्से कहता है कि राज्य को, समाज को, वह जो भी खतरनाक है--शस्त्र हैं, अस्त्र हैं--उन्हें ऐसी जगह हटा देना चाहिए जहां उन्हें कोई पा भी न सके। यह थोड़ा समझने जैसी बात है कि आदमी की विकृति उतनी नहीं हुई है जितना आदमी के पास विकृति को उपयोग में लाने के साधन बढ़ गए हैं। अगर हम आदमी की तरफ देखें तो आज से दस हजार साल पहले भी आदमी ठीक ऐसा था जैसे आप हैं। आप में और दस हजार साल पुराने आदमी में कोई फर्क नहीं है। फर्क सिर्फ एक है कि अगर उस झगड़े में आ जाता वह आदमी और क्रोध में आ जाता तो शायद नाखून से आपके शरीर को नोंच लेता, और आपके पास एटम बम है। अगर आप क्रोध में आ जाएं तो नाखून से नहीं नोचेंगे; आप शायद सारी पृथ्वी को नष्ट कर देने के लिए तैयार हो जाएंगे।

और एक मजा है। आमने-सामने लड़ने में एक रस था; एटम बम फेंकने में कोई रस नहीं है, सिर्फ मूढ़ता है। दो आदमी जब सामने लड़ लेते हैं तो यह बात नैसर्गिक है, इसमें कुछ बहुत अस्वाभाविक नहीं है। यह न होती तो बहुत अच्छा, लेकिन हो तो कुछ बहुत बुरा नहीं हुआ जा रहा है। लेकिन एक आदमी हिरोशिमा पर जाकर बम पटक देता है। वह किन पर बम पटक रहा है, कोई दिखाई नहीं पड़ता। मित्र पर, शत्रु पर, बच्चों पर,

स्त्रियों पर--किस पर! बूढ़ों पर, अंधों पर, किस पर बम गिर रहा है, कोई मतलब नहीं है उसे। उसे मतलब ही नहीं है कि यह बम क्या करेगा; उसके अंतिम परिणाम का भी उसे कोई बोध नहीं है। वह एक बटन दबाता है और हवाई जहाज से बम गिर जाता है।

जिस आदमी ने नागासाकी-हिरोशिमा पर बम गिराया और एक रात में तीन, साढ़े तीन लाख लोगों की हत्या का कारण बना--दुनिया के इतिहास में किसी आदमी ने, एक आदमी ने, एक क्षण में इतनी बड़ी हत्या नहीं की--वह रात बड़े आराम से सोया। और जब सुबह उससे अखबार वाले लोगों ने पूछा कि तुम्हें रात नींद आ सकी? क्योंकि तीन लाख आदमियों की हत्या!

आप एक तीन आदमियों की हत्या का तो विचार करके सोचिए! और तीन आदमियों की हत्या करके आप रात भर सो पाएंगे? बहुत मुश्किल है। बड़े से बड़ा हत्यारा भी नहीं कर सकता यह काम। वह भी रात भर बेचैन रहेगा। लेकिन यह आदमी तीन, साढ़े तीन लाख आदमियों की हत्या करके बेचैन नहीं हुआ। क्या यह आदमी पागल है? यह पागल नहीं है। लेकिन संबंध ही नहीं जुड़ता; जो मरे हैं उनसे इसका कोई संबंध नहीं जुड़ता।

उसने तो कहा, मैंने अपनी ड्यूटी पूरी की। एक विशेष जगह पर हवाई जहाज को ले जाकर मुझे बम गिरा देना था; उससे ज्यादा मुझे कोई आज्ञा नहीं थी। उससे ज्यादा मेरा कोई संबंध नहीं था। काम पूरा करके, जैसा आदमी दिन भर का थका रात सो जाता है, ऐसा मैं सो गया। अपना काम पूरा हो गया।

तीन लाख आदमियों को मारने पर भी कोई बेचैनी नहीं होती--शस्त्र यह सुविधा जुटा देते हैं। जब मैं आपके निकट से नाखून से आपको नोचूं, तो आप सामने होते हैं, खून सामने बहता है। जिंदगी सामने बनती और मिटती है। और मैं अपनी जिंदगी भी दांव पर लगाता हूं, तभी आपकी जिंदगी लेने का विचार कर सकता हूं। यह सीधा आमना-सामना है। यह बात प्राकृतिक है। सभी पशु ऐसा कर रहे हैं। आदमी भी पशु है; ऐसा कर सकता है। न करे तो देवता हो जाता है। लेकिन अस्त्र-शस्त्र उसे शैतान बना देते हैं; वह पशु भी नहीं रह जाता। क्योंकि तब कोई सवाल ही नहीं है। आपको मैं देखता ही नहीं; आपकी आंख का मुझे पता नहीं; आपके रोने का पता नहीं; आप जलेंगे, क्या होगा, कुछ पता नहीं।

लाओत्से अस्त्र-शस्त्र के बहुत विपरीत है। वह कहता है कि उन्हें इस जगह डाल दो जहां लोग खोजें भी तो उन्हें न पा सकें। प्रयोजन इतना ही है कि आदमी जितना नैसर्गिक हो, जितना सहज हो, जितना स्वाभाविक हो। निश्चित ही, जीवन में संघर्ष भी हो सकता है। लेकिन वह भी स्वाभाविक होना चाहिए। और दो आदमी आमने-सामने लड़ते हैं, उसमें एक गरिमा भी है, एक गौरव भी है। जब तक लोग आमने-सामने लड़ते थे तब तक लोगों में एक गरिमा थी, एक शान थी।

अब लड़ाई तो चलती है, लेकिन आमने-सामने कोई भी नहीं है। इधर भी यंत्र है, उधर भी यंत्र है, और पूरी मनुष्यता बीच में है। और किसी को किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। कौन किसको मार रहा है, इससे कोई संबंध नहीं है। अपनों को मार रहा है तो भी पता नहीं है। अभी वियतनाम के युद्ध में बहुत से अमरीकी अमरीकियों के द्वारा ही मारे गए। क्योंकि नीचे भूल से, उनका ही अड्डा है, और वे बम फेंक आए। अपने ही आदमी मरे, यह भी सुबह जाकर पता चला। अंधेरे में सारी बात हो गई है।

लाओत्से कहता है, आदमी-आदमी के बीच सीधा संपर्क होना चाहिए; बीच में कुछ भी न हो। बीच में कोई एजेंसी अस्त्र की, शस्त्र की, राज्य की, कुछ भी न हो; आदमी आमने-सामने सीधा-सीधा हो। तो आदमी ज्यादा प्राकृतिक होगा। और जो देखेगा उस पर सोचेगा भी; और जो करेगा उससे विचार भी पैदा होगा; और उसके कृत्य उसके लिए सूचक हो जाएंगे कि वह अपने को बदले, न बदले।

"शक्ति पर भद्रता की विजय होती है।"

इसलिए भी, लाओत्से कहता है, अस्त्र-शस्त्रों को हटा दो; क्योंकि उनसे तुम जीतोगे नहीं, हारोगे ही।

लाओत्से की बात शायद दुनिया अब सुनने को राजी हो जाए। क्योंकि जब उसने यह कहा था, आज से कोई तीन हजार, ढाई हजार साल पहले, तब तो अस्त्र-शस्त्र भी कुछ बड़े नहीं थे। अब तो अस्त्र-शस्त्र इतने बड़े हैं कि लाओत्से की बात समझ में आ सकती है। पूरी मनुष्यता उनके कारण आत्महत्या कर सकती है; अस्त्र-शस्त्र इतने बड़े हैं। लाओत्से की बात समझ में आ सकती है कि उन्हें हटा दो। आदमी-आदमी के बीच से जो भी, जितने उपकरण हट सकें, वे हट जाएं; आमने-सामने आदमी हो जाए। तो जीवन ज्यादा निसर्ग के अनुकूल होगा। और निसर्ग के अनुकूल आत्मा के जन्म की संभावना है।

फिर शक्ति से कोई विजय उपलब्ध नहीं होती; और शस्त्र शक्ति दे सकते हैं, भद्रता नहीं।

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

सत्तरवां प्रवचन

विश्व-शांति का सूत्रः सहजता व सरलता

Chapter 37

World Peace

The Tao never does,
Yet through it everything is done,
If princes and dukes can keep the Tao
The world will of its own accord be reformed.
When reformed and rising to action,
Let it be restrained by the Nameless pristine simplicity.
The Nameless pristine simplicity
Is stripped of desire (for contention).
By stripping of desire quiescence is achieved,
And the world arrives at peace of its own accord.

अध्याय 37

विश्व-शांति

ताओ कभी कर्मरत नहीं होता,
तो भी सभी कुछ उसके द्वारा ही कर्मरत है।
यदि सम्राट और भूस्वामी ताओ को अक्षुण्ण रख सकें,
तो संसार आप ही सुधर जाएगा।
और जब सुधर जाए और कर्मरत हो जाए,
तब उस अनाम पुरातन सरलता के द्वारा उसका अनुशासन हो।
यह अनाम पुरातन सरलता (स्पर्धा के लिए) वासना से रहित है।
वासनारहितता से निश्चलता प्राप्त होती है;
और संसार आप ही आप शांति को उपलब्ध होता है।

सूर्य उगता है, डूबता भी है। श्वास आती है, जाती भी है। तारे घूमते हैं; मौसम परिवर्तित होते हैं। प्रकृति का विराट कर्म चलता है, लेकिन बिल्कुल अकर्म जैसा। वहां कोई कर्ता नहीं है। न तो सूरज उगने के लिए कोई प्रयत्न करता है; न चांद-तारे चलने के लिए कोई आयोजन करते हैं; न फूल खिलने के लिए कोई व्यवस्था जुटाते हैं; न नदियां सागर की तरफ बहने के लिए किसी अस्मिता से, कर्ता के भाव से भरती हैं।

मनुष्य को छोड़ कर कर्म कहीं भी नहीं है। गति तो बहुत है, क्रिया बहुत है; लेकिन कर्ता का बोध कहीं भी नहीं है। बीज जब फूटता है और अंकुरित होता है तो कोई भाव पैदा नहीं होता कि मैं फूटता हूं, मैं अंकुरित होता हूं, मैं वृक्ष बनने जा रहा हूं। और जब वृक्ष में फूल खिलते हैं तब भी वृक्ष को नहीं लगता कि मैंने फूल खिलाए हैं। विराट कर्म होता है, लेकिन कर्ता का कोई बोध नहीं है।

निश्चित ही, कर्ता का बोध मनुष्य की बीमारी है। इस बात को गहरे से समझना जरूरी है। क्योंकि यह बीमारी बहुत गहरी है, और हमारे प्रत्येक होने के ढंग में प्रविष्ट हो गई है। आप, जो भी हो रहा है, उसे तत्काल कर्म बना लेते हैं। भूख लगती है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है; जीवन जन्मता है और मृत्यु में फिर सब लीन हो जाता है। इस सब में कहीं भी कोई कर्म नहीं है। आप कुछ करते नहीं हैं; यह सब हो रहा है। लेकिन अगर यह सब हो रहा है, इसको आप ऐसा ही देखें, तो अहंकार को खड़े होने की जगह न होगी। तो आप होने को करने में बदलते हैं। जो हो रहा है, उसे आप कर्म बना लेते हैं। और आप कर्म बना कर ही एहसास कर सकते हैं कि मैं हूं। तो कर्म की सारी बीमारी के पीछे मैं को पैदा करने की आकांक्षा है। अगर सब हो रहा है तो आपके होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। जैसे ही आप कुछ करते हैं, मैं खड़ा होता है।

यह जो हमारा मैं है, सारी दुनिया के धर्म कहते हैं कि यही बाधा है; इसे छोड़ दें, इसे त्याग दें, इसे विनष्ट कर दें। लेकिन मजे की बात यह है कि ताओ जैसे बुद्धत्व को उपलब्ध लोग ही ठीक से समझ पाते हैं कि ये शिक्षाएं गलत हो गईं। क्योंकि जब हम कहते हैं, अहंकार को छोड़ दें, तब भी हम उसे कृत्य बना लेते हैं और कर्म बना लेते हैं। छोड़ेगा कौन? जो छोड़ेगा, वह फिर कर्ता बन गया। अहंकार का त्याग कौन करेगा? अहंकार का नाश कौन करेगा? जो करेगा, वह फिर नया अहंकार निर्मित हो गया।

अहंकार का अर्थ ही कर्ता का भाव है। तो अहंकार का त्याग नहीं किया जा सकता; कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आप त्याग करेंगे तो वह जो त्याग करने वाला है वह एक नया अहंकार निर्मित हो गया। पुराना गया, नया बना। और नया निश्चित ही पुराने से ज्यादा खतरनाक होगा, ज्यादा सूक्ष्म होगा, ज्यादा ताजा होगा, ज्यादा शक्तिशाली होगा। और फिर उसे पहचानने में जन्म लग जाएंगे।

अहंकार का न तो विनाश किया जा सकता, न अहंकार का त्याग किया जा सकता, न अहंकार को काट-छांट कर विनम्र बनाया जा सकता। क्योंकि अहंकार कर्ता का भाव है। लाओत्से कहता है, अगर यह समझ में आ जाए कि जीवन की लीला अपने से चल रही है, बिना किसी कर्ता के, अगर आपको अपने भीतर भी यह समझ में आ जाए कि सब हो रहा है, करने का कोई सवाल नहीं है, तो अहंकार निर्मित ही न होगा; त्याग करने का सवाल नहीं आएगा। त्याग करने का सवाल तो तब आता है जब अहंकार निर्मित हो जाए। और निर्मित अहंकार को त्याग करना असंभव है। यह संभव है कि उसे निर्मित न होने दिया जाए। यह संभव है कि उसे भोजन न दिया जाए। यह संभव है कि उसके बनने की प्रक्रिया समझ ली जाए और उस प्रक्रिया से बच जाया जाए, लेकिन बने हुए अहंकार को मिटाना मुश्किल है, क्योंकि मिटाना फिर कृत्य है। और कृत्य से ही अहंकार मजबूत होता है।

इसलिए संसारी का अहंकार होता है; संन्यासी का अहंकार होता है--संसारी से भी ज्यादा सूक्ष्म और ज्यादा विषाक्त। भोगी का अहंकार होता है, लेकिन योगी के अहंकार का कोई मुकाबला नहीं है। साधारणजन का अहंकार होता है, असाधारणों का अहंकार होता है। लेकिन असाधारणजनों का, साधुओं का अहंकार बड़ा सूक्ष्म, दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन उसकी धार बड़ी पैनी है। देखें महात्माओं के आस-पास तो वह दिखाई पड़ जाएगा, जरा पैनी आंखें देखने को चाहिए पड़ेंगी।

अभी मैं पढ़ रहा था किसी का संस्मरण। एक पंडित एक जैन मुनि के पास गया। उन मुनि की बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह पंडित उनके जीवन पर एक किताब लिखना चाहता था। तो पंडित ने मुनि को कहा कि मुझे आज्ञा दें कि मैं आपका जीवन-चरित्र लिखूं और आशीर्वाद दें कि मैं इसमें सफल हो जाऊं। जैन मुनि ने कहा, मुझे प्रशंसा की कोई भी जरूरत नहीं है, मुझे प्रशस्ति की कोई भी जरूरत नहीं है, मुझे ख्याति का कोई लोभ नहीं। पंडित बहुत प्रभावित हुआ कि कितने विनम्र व्यक्ति हैं! न ख्याति की कोई जरूरत है, न लोग जानें इसकी कोई जरूरत है।

लेकिन जो स्वर है, अगर उसे थोड़ा गौर से देखें, तो वह अहंकार का स्वर है। मुझे प्रशंसा की कोई जरूरत नहीं है! मुझे ख्याति का कोई लोभ नहीं है! यह जो मैं खड़ा है पीछे, यह सूक्ष्म है। यह एकदम से पहचान में नहीं आएगा। लेकिन किसे प्रशस्ति की जरूरत नहीं है? वह कौन है जो कहता है कि मुझे ख्याति की जरूरत नहीं है?

तो एक दफे मैं कहता है कि मुझे ख्याति की जरूरत है; वह संसारी का मैं है। फिर एक बार मैं कहता है कि मुझे ख्याति की कोई जरूरत नहीं है; यह संन्यासी का मैं है। और दूसरा मैं ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि जिस मैं को ख्याति की जरूरत है, वह अभी बहुत बड़ा मैं नहीं। अभी अधूरा है, भरा नहीं है; खाली है, कुछ जरूरत है। और जिस मैं को ख्याति की बिल्कुल जरूरत नहीं है, वह कह रहा है यह कि दो कौड़ी की है तुम्हारी ख्याति; तुम्हारा यश, तुम्हारा गुणगान दो कौड़ी का है। मैं लात मारता हूं उसे, मुझे उसकी कोई भी जरूरत नहीं है। मैं वहां हूं जहां तुम्हारी ख्याति मुझे नहीं छू सकती।

यह बहुत सूक्ष्म है, और इसे देखने के लिए बहुत बारीक दृष्टि चाहिए। लेकिन इसे पहचानना मुश्किल होता है। क्योंकि स्थूल अहंकार को तो हम जानते हैं, सब परिचित हैं; सूक्ष्म अहंकार को हम जानते नहीं हैं।

लेकिन यह क्यों घटता है? यह इसीलिए घटता है। इस मुनि को क्यों यह सूक्ष्म अहंकार होगा? क्योंकि ये मुनि अहंकार को छोड़ने की कोशिश में लगे हैं; यह उसका परिणाम है--ख्याति की जरूरत नहीं है! ख्याति की जरूरत है तो भी बात वही है, और ख्याति की जरूरत नहीं है तो भी बात वही है। जब अहंकार नहीं होगा तो दोनों जरूरतें विदा हो जाएंगी। न तो ख्याति की जरूरत होगी; और न ही ख्याति की जरूरत नहीं है, यह जरूरत होगी। दोनों नहीं रह जाएंगी। क्योंकि फिर कुछ होता नहीं मेरे से; कर्ता नहीं हूं मैं। फिर जो हो रहा है प्रवाह में, उसको देख रहा हूं, द्रष्टा हूं। फिर निंदा होती है तो उसे देखता हूं; और ख्याति होती है तो उसे भी देखता हूं। फिर निंदा कोई कर जाए तो उसे भी देख लेता हूं; और कोई प्रशंसा कर जाए तो उसे भी देख लेता हूं। फिर मेरे बोलने की कोई भी जरूरत नहीं। फिर इस मैं को खड़ा करने की कोई आवश्यकता नहीं।

लेकिन साधक छोड़ने की कोशिश में लगा है अहंकार को, तो एक नया अहंकार खड़ा हो जाता है। अहंकार के रास्ते बहुत विचित्र हैं। लाओत्से के इस सूत्र को समझेंगे तो बहुत हलकापन आएगा। क्योंकि लाओत्से नहीं कहता कि तुम छोड़ो। क्योंकि तुम छोड़ क्या सकते हो? तुम कुछ कर ही नहीं सकते हो; करने की बात ही भ्रांति है। इधर हम संसार बनाते हैं तो भी मजा लेते हैं कि मैं संसार बसा रहा हूं, मकान बना रहा हूं, धन कमा रहा हूं; तिजोड़ी बड़ी होती जा रही है। यह एक रस है, मैं का ही रस है; मैं कर रहा हूं। फिर एक दिन इस सबसे ऊब जाते हैं। फिर हम छोड़ते हैं। तब हम कहते हैं, मैंने धन छोड़ा। फिर हम छोड़ने का भी हिसाब रखते हैं। फिर

कितना छोड़ा, उसका भी हम हिसाब रखते हैं। कितना था, उसका भी हिसाब रखते थे; फिर कितना छोड़ा, उसका भी हिसाब रखते हैं। फिर कितना बड़ा मकान था, उसको लात मार दी, उसका भी हिसाब रखते हैं। फिर कितनी सुंदर स्त्री थी, उसका त्याग कर दिया, उसका भी हिसाब रखते हैं। फिर सबका हिसाब रखते हैं, क्योंकि हमने छोड़ा। तब इकट्ठा करना हमारी संपदा थी; अब छोड़ना हमारी संपदा है। लेकिन संपदा अपनी जगह खड़ी है। तब हम इस जगत के सिक्के इकट्ठे कर रहे थे; अब हम मोक्ष के सिक्के इकट्ठे कर रहे हैं। लेकिन इकट्ठा करना जारी है। और वह मैं अकड़ा हुआ है। और उसकी मैं की अकड़ स्वभावतः ज्यादा होगी। क्योंकि तुम सब इकट्ठा कर सकते हो, लेकिन छोड़ने की हिम्मत कम लोग जुटा पाते हैं। परम अहंकारी ही छोड़ने की हिम्मत जुटा पाते हैं।

इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि तुम छोड़ना मत। इसका यह भी मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि छोड़ोगे तो पाप होगा। मैं यह कह रहा हूं कि जहां भी कर्तृत्व आ गया वहां पाप हो जाएगा। तुमने इकट्ठा किया था, वहां कर्ता था। तुमने छोड़ा, वहां भी कर्ता हो गया। कर्ता छूट जाए तो पुण्य की घटना घटती है। इसलिए क्या तुम पकड़ते हो, क्या तुम छोड़ते हो, यह महत्वपूर्ण नहीं है; उन दोनों से कौन भरता है, कौन पोषित होता है, वही महत्वपूर्ण है। स्वभाव कर रहा है। आप जैसे हैं, जो हो रहा है, वह विराट धर्म की लीला है--या परमात्मा की लीला है, अगर परमात्मा शब्द प्रीतिकर है।

लाओत्से कहता है, "ताओ कभी कर्मरत नहीं होता, तो भी सभी कुछ उसी के द्वारा कर्मरत है। दि ताओ नेवर डज, यट थ्रू इट एवरीथिंग इ.ज डन।"

कृत्य कमजोर आदमी की धारणा है। करने का भाव ही कमजोरी है। करने के भाव से ही हम अपने को खड़ा रखते हैं। लगता है, हम कुछ कर रहे हैं, कुछ कर रहे हैं, कुछ कर रहे हैं। फिर यह करने की भाषा भला बदलती जाए, लेकिन यह करने का जो रस है, जो रोग है, वह जारी रहता है। इसे पहचान लेने की जरूरत है। इसे पहचानने के लिए कुछ दिशाओं से खोज करना जरूरी है।

पहली बात तो यह, आप जनमे हैं। यह जन्म आपका कृत्य है? किसी ने आपसे पूछा कि कृपा करें और जन्में? किसी ने आपसे सलाह ली? आपके निर्णय की कोई जरूरत पड़ी?

न किसी ने पूछा, न पूछने का सवाल उठा। एक दिन आप नहीं थे और एक दिन आप हो गए। जन्म घटा है; वह कृत्य नहीं है। फिर आप बच्चे थे, सरल थे, भोले थे; वह भी कोई कृत्य नहीं था। फिर आप जवान हुए, तिरछापन आया, जीवन में वासनाएं जगीं, क्रोध और कामनाएं जगीं, महत्वाकांक्षा फैली; उसमें भी कुछ कृत्य नहीं है। वह भी हो रहा है। फिर आप बूढ़े हुए; वासनाएं थक गईं, क्षीण हो गईं। दौड़ कर देख लिया, कुछ पाया नहीं; विराग जन्मने लगा, वैराग्य का उदय हुआ। उसमें भी कुछ कृत्य नहीं है; वह भी हो रहा है। फिर मृत्यु घटी; उसमें भी कुछ कृत्य नहीं है। जीवन, अगर गौर से देखें, तो कृत्यहीन है।

और अगर यह दिखाई पड़ जाए कि घटनाएं हो रही हैं, मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, तो आपकी सारी चिंता खो जाएगी, सारा तनाव क्षण भर में विलीन हो जाएगा। कोई जन्मों-जन्मों की तपश्चर्या की जरूरत न होगी; यह बोध, कि सब हो रहा है, आपको निर्भार कर देगा। फिर क्या बोझ है आपके ऊपर? फिर अगर आप बुरे भी हैं तो भी जिम्मेवारी आपकी नहीं है। फिर आप भले हैं तो भी कोई गौरव और प्रशंसा आपकी नहीं है।

ऐसा हुआ है कि एक आदमी की नाक थोड़ी लंबी है, और एक आदमी की नाक थोड़ी लंबी नहीं है। और एक आदमी की आंखों में चमक है, और एक आदमी की आंखों में चमक नहीं है। और एक आदमी चोरी करता है, और एक आदमी साधु है। अगर यह सब हो रहा है तो सारा बोझ विदा हो गया। फिर किसी पौधे में कांटे हैं और

किसी पौधे में कांटे नहीं हैं; और किसी पौधे में लाल फूल लगते हैं और किसी में पीले फूल लगते हैं; और किसी में बड़े फूल लगते हैं और किसी में छोटे फूल लगते हैं। एक बार यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि घटनाएं हो रही हैं।

पर यह बड़ा मुश्किल है। इस सत्य के करीब बहुत बार ज्ञानी आ गए हैं, लेकिन इस सत्य को प्रकट करना भी खतरनाक है। क्योंकि डर यह लगता है कि अगर ऐसा कहा जाए कि सब हो रहा है तो लोग बिगड़ जाएंगे। क्योंकि लोग कहेंगे, फिर कोई उत्तरदायित्व ही न रहा। फिर हत्या करनी तो हम हत्या करेंगे, क्योंकि हो रहा है। फिर चोरी करनी तो हम चोरी करेंगे, क्योंकि हो रहा है। फिर हमें क्रोध करना है तो हम क्रोध करेंगे। और वासना हो रही है तो हो रही है। हम क्या हैं? हमारा कोई दायित्व, हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं है। इस भय के कारण इस परम सत्य को बहुत बार छिपाया गया है।

लेकिन यह भय निर्मूल है। यह भय बिल्कुल ही फिजूल है। सच तो यह है कि बात बिल्कुल उलटी है। जो व्यक्ति ऐसा अनुभव कर ले कि सब हो रहा है, उसके जीवन से, जिसको हम पाप कहते हैं, वह अपने आप गिरना शुरू हो जाएगा। क्योंकि सभी पाप के मूल में अहंकार होता है। चाहे एकदम से उलटा दिखाई पड़े, लेकिन सभी पाप के मूल में अहंकार होता है। अगर सभी कुछ हो रहा है, ऐसी प्रतीति किसी को होने लगे... ।

हमने भारत में इसको किसी और ढंग से रखा है। हम उसे नियतिवाद कहते हैं। हम कहते हैं कि भाग्य। वह यही बात है गहरे में। हम कहते हैं कि परमात्मा कर रहा है। उसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि हम यह कहते हैं कि हम नहीं कर रहे हैं। परमात्मा कर रहा है या नहीं कर रहा है, यह सवाल नहीं है।

लेकिन ताओ की बात ज्यादा वैज्ञानिक है; लाओत्से का विचार ज्यादा वैज्ञानिक है। क्योंकि वह कहता है कि हम अपने पर से कर्ता का भाव हटाते हैं तो भी कर्ता के भाव को नहीं हटाते, उसको परमात्मा पर आरोपित कर देते हैं। यहां से हटाया तो वहां रख देते हैं, लेकिन उसको बिल्कुल छुटकारा नहीं हो पाता। लाओत्से कहता है, उससे बिल्कुल छूट जाने की जरूरत है। न तो तुम कर्ता हो और न परमात्मा कर्ता है। यहां कर्तृत्व हो ही नहीं रहा; जीवन का प्रवाह है सहज; उसमें घटनाएं घट रही हैं। उन घटनाओं के विराट आयोजन में तुम भी हो; अनेकों घटनाओं में जुड़ी हुई एक ग्रंथि तुम भी हो। इस बात की प्रतीति होते ही अहंकार गिर जाएगा, यह तो पहली बात है।

लेकिन नीतिशास्त्रियों को डर रहा है कि यह सत्य खतरनाक है। सच तो यह है कि सभी सत्य खतरनाक होंगे, क्योंकि समाज असत्य पर खड़ा हुआ है। जब आप असत्य पर खड़े होते हैं तो सत्य खतरनाक होता है। क्योंकि जैसे ही सत्य दिखाई पड़ेगा, आपका भवन गिरेगा। वह आपने असत्य पर बनाया हुआ है। एक आदमी ताश का भवन बना कर बैठा हुआ है; आंख बंद करके और सोच रहा है कि इस मकान में रहेंगे, विवाह करेंगे और बच्चे होंगे। और कोई भी उसको कह दे कि तुम यह क्या कर रहे हो, यह मकान ताश के पत्तों का है! तो निश्चित ही वह नाराज होगा। क्योंकि आप उसका मकान ही नहीं खराब कर रहे हैं, आप उसके पूरे कल्पना का जाल, उसके सारे स्वप्न, उसका सारा भविष्य छीन रहे हैं; सारा अतीत, सारा भविष्य आप नकार किए दे रहे हैं। क्योंकि पीछे पूरी जिंदगी उसने इसी भवन को बनाने में खर्च की है। और आगे की पूरी जिंदगी इसी भवन में जीने की योजना है। और आप कह रहे हैं, यह ताश का भवन है! तो वह आपकी बात को सुनने को राजी नहीं होगा। वह आपको झुठलाएगा। वह कहेगा, यह सच नहीं हो सकता। क्या झूठ बात कह रहे हो! क्या गलत बात कह रहे हो! वह इसलिए नहीं कह रहा है कि आप जो कह रहे हो वह झूठ है। वह इसलिए कह रहा है कि वह जिस झूठ पर सहारे पर खड़ा हुआ है, आप उसको छीने ले रहे हो।

इसलिए दुनिया ने सत्य को निकट से उदघाटित करने वाले लोगों का कभी भी स्वागत नहीं किया। न तो वे लाओत्से का स्वागत कर सकते हैं, न जीसस का स्वागत कर सकते हैं। हां, बहुत समय बाद स्वागत कर सकते हैं, जब उनके सत्य के आस-पास भी झूठ बुनने वाले लोगों का गिरोह इकट्ठा हो जाएगा, और जब वे उनके सत्य की व्याख्या भी ऐसी कर देंगे कि सत्य उसमें बचेगा नहीं और सिर्फ असत्य का जाल हो जाएगा।

अब जीसस का और वेटिकन के पोप का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। जीसस और वेटिकन का पोप, जितने दूरी पर हो सकते हैं, उतने दूरी पर हैं। आपका भी संबंध हो सकता है जीसस से, लेकिन वेटिकन के पोप का कोई संबंध नहीं है। लेकिन वह प्रतिनिधि है। और निश्चित ही, ईसाइयत को खड़ा करने में जीसस का हाथ नहीं है, पोपों का हाथ है। लेकिन जीसस के सत्य के आस-पास असत्य का जाल बुनेंगे। जाल इतना ज्यादा हो जाएगा कि सत्य बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा। असत्य की राख, सिद्धांतों की राख इतनी बढ़ जाएगी कि सत्य का अंगारा बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा। तब आप आश्वस्त हो जाएंगे, फिर आप पूजा करेंगे।

लाओत्से शुद्ध सत्य की बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि जीवन का एक ही पाप है, या एक ही भ्रांति है, और एक ही अज्ञान है कि मैं कर रहा हूं। जब जन्म आपके हाथ में नहीं और जीवन आपके हाथ में नहीं और मृत्यु आपके हाथ में नहीं, तो क्या आपके हाथ में है? वे जो छोटी-छोटी चीजें आपको अपने हाथ में लगती हैं, उनके भी गहरे में विश्लेषण करें। किसी ने आपको गाली दी, क्रोध आ गया। क्या आप क्रोध कर रहे हैं? क्या आप कर्ता हैं? या कि क्रोध आ रहा है? कोई सुंदर व्यक्ति दिखाई पड़ा और आप प्रेम में पड़ गए। क्या आप सोचते हैं, आप प्रेम कर रहे हैं? या कि प्रेम हो गया? और क्या आप किसी व्यक्ति को प्रेम कर सकते हैं जिससे प्रेम न हुआ हो?

कोशिश करें तो आपको अपनी असफलता दिखाई पड़ेगी। ऐसे व्यक्ति को प्रेम करने की कोशिश करें जिसके प्रति आपका कोई प्रेम नहीं है। तो आप क्या करेंगे? कैसे आप प्रेम को जन्माएंगे? नहीं है तो नहीं है। आप कह सकते हैं कि मेरा प्रेम है। कहने से प्रेम नहीं हो जाएगा। आप वस्तुएं खरीद कर भेंट कर सकते हैं। उससे भी प्रेम नहीं हो जाएगा। आप कुछ भी करें, प्रेम नहीं है तो होने का कोई उपाय नहीं है। और अगर है तो उसे नहीं करने का भी कोई उपाय नहीं है। भाग जाएं प्रेमी से हजारों मील दूर तो भी वह नहीं नहीं हो जाएगा। सब तरह की दीवालें खड़ी कर लें तो भी वह मिट नहीं जाएगा। जो है, वह आपका कृत्य नहीं है।

अगर आप जीवन की सारी पर्त-पर्त पहेली को खोलें तो आप कहीं भी ऐसा न पाएंगे कि आपका कृत्य है; आप सभी जगह पाएंगे कि कुछ हो रहा है। लेकिन समाज भयभीत है आपके होने से। तो समाज इंतजाम करता है कि सभी नहीं होने देगा। क्रोध आए तो समाज कहता है, भीतर ही रखना। और बचपन से सिखाया जाता है कि क्रोध आए तो भीतर रखना, क्योंकि उसके नुकसान हो सकते हैं। बाहर क्रोध को प्रकट करने के नुकसान हो सकते हैं, इसलिए भीतर रखना। लेकिन भीतर रखने के नुकसान हो सकते हैं, इसकी कोई फिक्र नहीं करता। जब आपको क्रोध आता है तो आप इतना कर सकते हैं जरूर... ।

यह बड़े मजे की बात है कि जीवन में जो भी विधायक है वह तो होता है, लेकिन जो भी निषेधक है वह आप कर सकते हैं। क्रोध आ रहा है; क्रोध नहीं आ रहा है तो आप पैदा नहीं कर सकते। या आप कर सकते हैं? तो आप कोशिश करें तो आपको समझ में आएगा कि कितनी नपुंसकता मालूम होती है। क्रोध नहीं आ रहा है, और आपसे कहा जाता है कि चलिए, क्रोध करके दिखाइए। आप उछलकूद कर सकते हैं; लेकिन हास्यास्पद होगी। आप आंखें गुरेर कर देख सकते हैं, मुट्ठी बांध सकते हैं। लेकिन उसको देख कर हंसी आएगी, किसी को भी लगेगा नहीं कि आप क्रोध कर रहे हैं। और आपको खुद भी हंसी आएगी कि मैं क्या कर रहा हूं! और भीतर सब सन्नाटा

है। सच तो यह है, क्रोध करने की कोशिश में आपका विचार तक रुक जाएगा। वह भी नहीं चल सकेगा भीतर। इस कोशिश में सब रुक जाएगा।

आप क्रोध तो नहीं पैदा कर सकते, आप प्रेम तो पैदा नहीं कर सकते, आप घृणा पैदा नहीं कर सकते। लेकिन आप एक काम कर सकते हैंः क्रोध आया हो तो आप उसे छिपा सकते हैं, नकारात्मक, आप एक अवरोध कर सकते हैं। आप झूठी एक व्यवस्था दे सकते हैं कि क्रोध का पता न चल पाए।

लेकिन वह भी झूठ आप दूसरे को ही बता सकते हैं; खुद आपके लिए तो वह झूठ नहीं है। आपके लिए तो क्रोध आ गया। अब वह भीतर घूमेगा। आप उसे भीतर इकट्ठा कर ले सकते हैं। तो हर आदमी के पास अपना बैंक है, जहां वह क्रोध इकट्ठा किए है। और वह बढ़ता जाता है। क्योंकि रोज इकट्ठा करना है, रोज इकट्ठा करना है।

इसलिए हर दस वर्ष में युद्ध की जरूरत पड़ जाती है। बिना युद्ध के आपके इकट्ठे बैंकों का क्या होगा? हिंदू-मुस्लिम दंगे की जरूरत पड़ जाती है। गुजराती-मराठी के दंगे की जरूरत पड़ जाती है। कोई भी बहाना, वे बैंक तैयार हैं। वहां आप इतना भरे हुए बैठे हैं कि कोई सामूहिक निकास का अवसर चाहिए।

नहीं तो अचानक भला-अच्छा आदमी चला जा रहा है, एक भीड़ मस्जिद में आग लगा रही है, वह उसमें सम्मिलित क्यों हो जाता है? उसे कभी ख्याल भी नहीं था कि मस्जिद में आग लगाना है, मंदिर की मूर्तियां तोड़नी हैं, या दुकानें लूट लेनी हैं या कारों पर पत्थर फेंक देना है; उसे कभी ख्याल भी नहीं था। भला-चंगा, अच्छा आदमी अपने दफ्तर से लौट रहा है, दूसरे लोग कारों के कांच फोड़ रहे हैं, वह भी संलग्न हो जाता है।

इस आदमी को क्या हो रहा है? इसका बैंक है; इसके पास अपना रिजर्वायर है, जिसको यह सम्हाल कर चलता है, बचा-बचा कर रखता है। आज सामूहिक मौका है; कानून टूट गया, व्यवस्था नहीं है; इसके भीतर जो भरा हुआ है, वह बाहर निकलना शुरू हो जाता है। यह खुद भी भरोसा नहीं कर सकेगा दो दिन बाद कि इसने गाड़ियां खड़ी थीं, उनके कांच तोड़े, किसलिए? इससे भी आप पूछिए तो यह भी कहेगा कि क्या बात है? यह भी कहेगा कि क्या हो गया? किसी शैतान ने मेरे सिर में प्रवेश कर लिया; कोई भूत-प्रेत मेरे ऊपर आ गया।

न तो कोई भूत है, न कोई प्रेत है, न कोई शैतान है; आपका अपना रिजर्वायर है, वह तैयार है। जरा सा मौका मिल जाए, वह फूट पड़ता है। आप किसी भी क्षण पागल हो सकते हैं। आप पागल होने के किनारे पर सदा ही खड़े हुए हैं। सिर्फ अवसर की जरूरत है। ठीक अवसर, और आप पागल हो जाएंगे।

जिन लोगों ने हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे पर लाखों लोगों की हत्या की, वे आप ही जैसे लोग थे। हत्या के पहले ऐसे ही दुकान जाते थे, ऐसे ही लौट कर पत्नी को मुस्कुरा कर देखते थे, ऐसे ही बच्चे की पीठ थपथपाते थे, ऐसे ही समय, अवसर पर मित्रों को फूल भेंट करते थे, मस्जिद जाते थे, मंदिर जाते थे, गीता पढ़ते थे, कुरान पढ़ते थे, सब धार्मिक कृत्य करते थे; बिल्कुल आप जैसे लोग थे। कोई दानव नहीं थे, कोई दैत्य नहीं थे। हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे के पहले आपकी और उनकी शक्ल में कोई फर्क नहीं था। बंटवारा हुआ, एक मौका मिला। वह जो मंदिर-मस्जिद जाने वाला भक्त था, अचानक पागल हो गया। वह जो दुकान पर बैठा हुआ दुकानदार था, वह अचानक पागल हो गया। एकदम खून सवार हो गया लोगों को; लोग काटने-पीटने में लग गए। आप भी यही कर सकते हैं, इसे ध्यान रखना। क्योंकि आप भी वही इकट्ठा कर रहे हैं जो उन लोगों ने इकट्ठा किया था।

हम जीवन की धारा में कोई विधायक तो कुछ भी नहीं कर सकते, लेकिन जीवन की धारा में अवरोध खड़े कर सकते हैं। इसलिए हमारी सारी शिक्षाएं अवरोध की हैंः डोंट डू दिस; यह मत करो, यह मत करो। सारे टेन कमांडमेंट्स बस एक ही तरह की शिक्षा देते हैंः यह मत करो, यह मत करो। कोई नहीं कहता कि क्या

करो, क्योंकि कर तो आप कुछ सकते नहीं। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकते हैं कि न करें। न करने का मतलब यह, बाहर न जाने दें ऊर्जा को। ऊर्जा भीतर घूमने लगेगी; और भीतर घाव बना लेगी और नासूर बना लेगी।

हर आदमी के मन में कैंसर है, क्योंकि उसने जो-जो नहीं किया है वह इकट्ठा हो गया है, वह भीतर घूम रहा है। हर आदमी पागल की तरह चल रहा है। लोग मेरे पास आते हैं, कहते हैं, रात भर सपने चलते हैं, कैसे रोकें? वे नहीं रुकेंगे। क्योंकि वह आप जो पागलपन इकट्ठा कर रहे हैं, वे सपने आपको बचा रहे हैं।

एक महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि कुछ समझ नहीं आता मुझे। उसके सीधे हाथ में लकवा लग गया है। उसने मुझे कहा कि सपने में उसे सदा एक ही बात ख्याल में आती है कि वह अपने पति की हत्या कर रही है। तो मैंने पूछा, किस हाथ से? तो वह थोड़ी बेचैन हुई। उसने कहा, आप यह क्यों पूछते हैं? मैंने कहा, मैं पूछता हूं कि किस हाथ से? तो उसने कहा कि सीधे हाथ से मैं उसकी हत्या कर रही हूं।

यह जो सपना है, यह वह हत्या करने का जो भाव उसके मन में घूम रहा है, उसकी खबर दे रहा है। और भय इतना गहरा हो गया है कि उस भय के कारण हाथ पैरालाइज्ड हो गया है। मैंने उसको कहा कि तेरे हाथ की कोई चिकित्सा नहीं कर सकेगा डाक्टर। और वह कहती है कि डाक्टर कहते हैं इसमें कुछ खराबी नहीं है। यह पैरालिसिस गहरी है; इसका शरीर से कोई संबंध नहीं है। यह पैरालिसिस इस भय से पैदा हो गई है कि कहीं मैं पति की हत्या न कर दूं। तो यह हाथ जड़ हो गया है। उस महिला को मैंने सम्मोहित किया और उससे कहा कि उठा हाथ! उसका हाथ उठने लगा, काम करने लगा। जब वह मूर्च्छित थी तो उसके हाथ में कोई लकवा नहीं था; जब वह होश में आई तो उसका हाथ फिर लकवे से भर गया। हाथ में कोई भी खराबी नहीं है; नहीं तो सम्मोहन में भी हाथ चल-फिर नहीं सकता। हाथ बिल्कुल ठीक है। लेकिन एक गहरे भय ने हाथ को भीतर से खींच लिया है। सपना उसी को निकाल रहा है। उससे थोड़ी राहत है, नहीं तो उसका पूरा शरीर लकवे से लग सकता है।

विक्टोरिया के जमाने में इंग्लैंड में स्त्रियों को एक बीमारी होती थी जो अब बिल्कुल नहीं होती। चिकित्सक बहुत हैरान हुए कि यह बीमारी होती थी, अब क्यों नहीं होती? यह बीमारी अचानक तिरोहित हो गई। और उस बीमारी का कोई इलाज नहीं था; और चिकित्सक हैरान हो गए इलाज खोज-खोज कर। अचानक वह बीमारी नदारद कैसे हो गई? विक्टोरिया के जमाने में कोई सैकड़ों स्त्रियां इंग्लैंड में एक खास बीमारी से पीड़ित थीं जिसमें उनके दोनों पैर में लकवा लग जाता था।

अब मनसविद कहते हैं कि वह बीमारी शारीरिक नहीं थी। कामवासना का इतना विरोध था कि स्त्रियां भयभीत थीं अपनी कामवासना से। तो वे सारी ऊर्जा को खींच कर रखती थीं। उस ऊर्जा को खींचने के कारण, भय के कारण, नीचे का हिस्सा उनका अपंग हो जाता था। वह अपंग होने का शरीर में कोई खराबी नहीं थी। जैसे ही इंग्लैंड में कामवासना के संबंध में जो दुष्ट नैतिकता थी वह शिथिल हुई, वैसे ही वह बीमारी तिरोहित हो गई।

आप भी अपने नीचे के शरीर को अपना नहीं मानते हैं। आप भी एक सीमा के बाद के शरीर को इनकार करते हैं; जैसे वह है ही नहीं। इसलिए आपके पैर उतने शक्तिशाली कभी नहीं होते जितने कि होने को पैदा हुए हैं। हो नहीं सकते। क्योंकि शक्ति का विभाजन गलत हो गया, असंतुलित हो गया। आप अपने सारे शरीर को छिपाए रखते हैं। अगर आपकी गर्दन काट दी जाए और आपको ही दिखाया जाए आपका शरीर, आप पहचान न पाएंगे कि यह मेरा शरीर है। कैसे पहचानेंगे? सिर्फ चेहरे की पहचान है; और तो कोई पहचान नहीं है।

इंग्लैंड से अचानक बीमारी तिरोहित हो गई। हजारों बीमारियां हैं, जो इसी तरह तिरोहित हो सकती हैं, अगर भीतर की स्थिति को हम ठीक से समझ लें। बड़ी से बड़ी बीमारियों को पैदा करने वाली व्यवस्था है कि जो भी हो रहा है उसे हम न होने दें, उसे रोक लें। और एक बार यह जाल पैदा हो जाए तो जो व्यक्ति क्रोध को रोक लेता है, क्रोध को नहीं होने देता, वह फिर प्रेम को भी नहीं होने देगा; वह भी रुक जाएगा। क्योंकि यह रुकने की व्यवस्था इतनी यंत्रवत हो जाती है कि जो भी ऊर्जा भीतर से पैदा होती है, तत्क्षण बाहर न जाकर स्वयं के भीतर घूमनी शुरू हो जाती है। अगर आप क्रोध नहीं कर सकते तो आप प्रेम भी नहीं कर सकते; असंभव! और अगर आपका क्रोध रुका हुआ है तो आपका प्रेम भी रुका हुआ हो जाएगा। फिर सब भावनाएं रुक जाएंगी। और जब सब भावनाएं रुक जाती हैं तो आदमी मुर्दे की भांति हो जाता है। एक काम हम कर सकते हैं कि जो हो रहा है उसे न होने दें; इतना हम कर सकते हैं।

लाओत्से कहता है कि जो हो रहा है उसके आप कर्ता नहीं हैं। इसलिए उसे न करने में भी कर्ता मत बनें; उसे होने दें।

बड़ा भय लगता है कि क्रोध आए तो उसे होने दें? वासना आए तो उसे होने दें? हमें भय लगता है, वह स्वाभाविक है। क्योंकि हमने इतना इकट्ठा कर लिया है कि अगर आज हम होने दें तो उपद्रव हो जाएगा। लेकिन अगर बचपन से ही होने दिया जाए तो कोई उपद्रव नहीं है। तब क्रोध का भी एक अदभुत परिणाम है।

छोटे बच्चे जब क्रोध कर लेते हैं, उसके बाद उनकी आंखों को देखें, जैसे तूफान के बाद एक शांति आ गई। जैसे क्रोध में, उनके भीतर जो भी कचरा था, वह सब निकल गया। और अगर हम, छोटा बच्चा जब क्रोध कर रहा हो, उसके क्रोध को प्रेम से स्वीकार कर लें और कहें कि घबड़ा मत, ठीक से कर, भयभीत मत हो, यह भी स्वाभाविक है; अगर हम छोटे बच्चे को क्रोध के प्रति भी स्वभाव से भर दें और कहें कि यह भी हो रहा है, तेरा कुछ करने का सवाल नहीं है, इसे हो जाने दे; जैसे तूफान आता है और वृक्ष कंपने लगता है, ऐसा तुझमें तूफान आया है, कंप जा और इसे निकल जाने दे। अगर बच्चे को हम, जो भी उसके भीतर हो रहा है, उसे स्वीकार के भाव से भर दें तो उसमें कृत्य का भाव पैदा ही नहीं होगा। क्रोध के प्रति तो वह यह नहीं कह सकता कि मैं कर रहा हूं, लेकिन क्रोध रोके तो कह सकता है कि मैंने रोका। जो भी रोकेगा उससे मैं पैदा होगा।

इसलिए आप एक मजे की बात देखें, अहंकार हमेशा नकारात्मक होता है। वह हमेशा कहता है, नो। यस, हां कहना उसे बड़ा मुश्किल है--उन बातों में भी जहां कोई जरूरत न थी। छोटा बच्चा अपनी मां से पूछ रहा है कि जरा मैं बाहर खेल आऊं? वह कहती है, नहीं। बड़े आश्चर्य की बात है कि कोई कारण भी नहीं था रोकने का। लेकिन रोकने का एक मजा है। क्योंकि रोकने से लगता है मैं कुछ हूं।

आप दफ्तर में जाते हैं और क्लर्क बैठा है, वह चाहे तो एक सेकेंड में आपका काम कर दे; वह कहता है, अभी नहीं हो सकता, दो दिन बाद आओ। वह जब आपको कहता है नहीं, तभी उसे लगता है मैं हूं। अगर वह अभी कर दे तो उसको लगेगा ही नहीं। उसको भी नहीं लगेगा और आपको भी नहीं लगेगा कि यह भी कुछ है। आपको भी तभी लगेगा जब वह कहे कि नहीं। आप अपने जीवन में खुद निरीक्षण करें तो आप पाएंगे कि आप सौ में से निन्यानबे दफे नहीं सिर्फ अहंकार के रस के लिए कहते हैं। और तब आपकी सौवीं नहीं भी व्यर्थ हो जाती है; उसका कोई मूल्य नहीं रह जाता। बच्चे जानते हैं कि मां नहीं कहेगी ही।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था कि मैं बाहर जाऊं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अगर तुझे जाना ही है बाहर तो जाकर अपनी मम्मी को कह कि पिताजी मना कर रहे हैं बाहर जाने से।

ठीक, यह बिल्कुल ठीक कहा। अगर तुझे बाहर जाना ही है तो अपनी मम्मी को कह दे जाकर कि पिताजी बिल्कुल सख्त मना कर रहे हैं बाहर जाने से; फिर तुझे कोई बाधा नहीं। निश्चित, वह ठीक कह रहा है।

नहीं कह कर हमारे अहंकार को रस आता है, क्योंकि लगता है हम कुछ हैं। इसलिए नास्तिकता अहंकार है, क्योंकि वह आखिरी नहीं है। ईश्वर नहीं है, यह कह कर आप परम अहंकार को पैदा करते हैं। आस्तिकता का अर्थ है समर्पण, आस्तिकता का अर्थ है हां पूरे अस्तित्व को, एक स्वीकार! नास्तिकता का अर्थ है नहीं, समर्पण बिल्कुल नहीं; संघर्ष। नास्तिक कोई दार्शनिक आधार से नहीं होता, क्योंकि नास्तिकता के लिए कोई दार्शनिक आधार नहीं है। नास्तिक आदमी होता है मनोवैज्ञानिक रोग के कारण। क्योंकि अगर ईश्वर है तो आप मिट गए। इसको कभी आपने सोचा? चाहे आप मंदिर जाएं या न जाएं, अगर ईश्वर है तो आप मिट गए। क्योंकि फिर सब कुछ उसके द्वारा हो रहा है; और आपके करने, न करने का कोई मूल्य नहीं रहा।

नीत्शे ने लिखा है कि ईश्वर नहीं हो सकता; क्योंकि मैं हूं।

ठीक है। ईश्वर कैसे हो सकता है; मैं हूं। "मैं" ईश्वर को नहीं मान सकता। क्योंकि ईश्वर मैं का सबसे बड़ा खंडन हो जाएगा। और ईश्वर है तो फिर मैं नहीं बच सकता, क्योंकि उसका होना मैं का विसर्जन है।

आप अपने जीवन से नहीं को कम करें तो आपकी नास्तिकता कम होगी। मैं नहीं कहता आप मंदिर जाएं। मैं आपको कहता हूं, अपने जीवन से नहीं को कम करें; और जहां तक बन सके, जहां तक हो सके, हां का उपयोग करें। आप अगर थोड़ा सा समझ का प्रयोग करेंगे और थोड़ा होश रखेंगे तो दिन में आप पाएंगे कि सौ में से निन्यानबे मौकों पर नहीं से बचा जा सकता है। उसी मात्रा में आपकी आस्तिकता सघन होने लगेगी। उस आखिरी हां कहने के पहले छोटी-छोटी हां कहना सीखना पड़ेगा। लोग सीधा कहते हैं, परमात्मा है। वह नहीं हो सकता, क्योंकि चौबीस घंटे वे हर चीज को नहीं कह रहे हैं। नहीं कह कर वे मैं को मजबूत कर रहे हैं, और फिर कहते हैं, परमात्मा है। इस मैं की मजबूती में परमात्मा से कोई संबंध नहीं हो सकता। जब कल सुबह उठ कर आपको पहले ही मौके पर नहीं कहने का ख्याल आए तो आप सोचना कि इसकी जरूरत है? इसके बिना नहीं चल सकेगा?

और छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि आपकी नहीं का कोई मूल्य नहीं है। वे पैर पटक कर वहीं खड़े रहेंगे कि जाऊं? खेलने जाऊं? और वे जानते हैं कि तीन दफे या चार दफे कहने की जरूरत है, और नहीं जो है वह गिर जाएगी और हां में बदल जाएगी। तो आप छोटे बच्चों को भी व्यर्थ का जाल सिखा रहे हैं। भरोसा उनका सब छुड़ाए दे रहे हैं आप। वे आप पर भरोसा नहीं कर सकते, क्योंकि आपकी बात का कोई मूल्य नहीं है। आप नहीं कहते हैं, और क्षण भर बाद आप हां कह देते हैं। बेहतर था, आप पहले ही हां कह देते।

जुंग ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर मां-बाप, जहां हां कहना ही पड़ता हो वहां पहले से ही हां कह दें, तो बच्चों का भरोसा उन पर रहे। और जहां न कहना आखिरी बात हो, जहां कोई उपाय ही न हो, वहीं नहीं कहें। लेकिन जब एक दफा नहीं कह दें तो चाहे कुछ भी हो जाए, उसको फिर हां में न बदलें। क्योंकि नहीं को हां में बदलने का मतलब है कि आपका कोई मूल्य नहीं है।

जुंग ने लिखा है कि ऐसी बात तो बच्चे से कहना ही नहीं चाहिए जिसको वह नहीं कर दे। जैसे अब रो रहा है बच्चा, और आप उससे कहते हैं, मत रोओ। अगर वह रोता रहेगा तो आप करेंगे क्या? मार सकते हैं। वह और ज्यादा रोएगा। एक बार बच्चे को यह पता चल गया कि आपकी नहीं ठुकराई जा सकती है--आप कहते हैं मत रोओ, वह रो रहा है; और आप चिल्लाए जा रहे हैं, मत रोओ, वह रो रहा है--तो उसको पता चल गया कि आपका कोई भी मूल्य नहीं है। आपकी बात का भी कोई मूल्य नहीं है। जुंग ने कहा है कि वही बात कहो जिसको

तुम करवा सकते हो; वह बात कहो ही मत जो तुम्हारे वश के बाहर है, कर ही नहीं सकते तुम। रोना कैसे रोकोगे?

हम जो भी कर रहे हैं अपने आस-पास उसमें हम नहीं पर बड़ा बल देते हैं। कभी ख्याल में नहीं आता कि क्यों देते हैं। क्योंकि नहीं से हमारा मैं भरता है, और नहीं से दूसरे का मैं टूटता है। यही नहीं जब विराट रूप ले लेती है तो नास्तिकता बन जाती है। हम एक काम भर कर सकते हैं कि जो उठ रहा है उसको नहीं कह सकते हैं; जो नहीं उठ रहा है उसको उठा नहीं सकते। तो हमारा सारा कृत्य नकारात्मक है, निगेटिव है।

जीवन है विधायक, पाजिटिव, और हमारा कृत्य है नकारात्मक। अगर हम जीवन को देखें और जीवन पर ध्यान रखें तो हमारा नकार गिरेगा, नकार के साथ अहंकार गिरेगा। अगर हम नकार पर ध्यान रखें और जीवन को न देखें और अपने अहंकार का ध्यान रखें, तो धीरे-धीरे हमारा नकार, नहीं, बढ़ता जाएगा, हमारी नास्तिकता सघन होती चली जाएगी, और हमारा अहंकार गौरीशंकर का शिखर हो जाएगा।

"ताओ कभी कर्मरत नहीं होता, तो भी सभी कुछ उसी के द्वारा कर्मरत है।"

यह तो एक अर्थ हुआ इसका; और इसका एक दूसरा अर्थ भी ख्याल में ले लेना चाहिए। और वह है कि जब भी आप कर्मरत होते हैं तभी आपका ताओ से संबंध छूट जाता है। जब भी आप कुछ करने को आबद्ध हो जाते हैं तभी आपका ताओ से संबंध छूट जाता है। जब आप कुछ करने को आबद्ध नहीं होते, शून्यवत होते हैं, तभी आपका ताओ से संबंध होता है। इस बात का अर्थ है। इस बात का अर्थ यह हुआ कि जब भी आप कुछ करना चाहते हैं तभी आप कमजोर हो जाते हैं; क्योंकि विराट की शक्ति आपको नहीं मिलती।

दुनिया में जो इतनी असफलता है, इतना फ्रस्ट्रेशन, इतना विषाद है, इतना संताप है, और हर आदमी थका हुआ और पराजित है, उसका कारण? उसका कारण है कि हर आदमी करने में लगा है, और करने में असफलता अनिवार्य है। क्योंकि करने में आपकी शक्ति है ही कितनी? विराट की शक्ति आपको मिलती नहीं जब आप करने में लगते हैं। विराट की शक्ति तो आपको तभी मिलती है जब आप न करने में होते हैं। तब आप द्वार बन जाते हैं उसके बहाव का; तब आपसे बहता है परमात्मा, और उसके द्वारा होता है। विराट की शक्ति को आप सीमित कर लेते हैं जैसे ही आप आग्रह से भरते हैं कि मैं यह करके रहूंगा। आप अपने हाथों अपने को तोड़े ले रहे हैं, अपनी जड़ों को उखाड़े ले रहे हैं। आप कुम्हला जाएंगे। सारी दुनिया पर सारे लोग कुम्हलाए हुए हैं।

यह बहुत विचारणीय बात है कि आदिवासी, जंगली, जिनके पास कोई साधन, कोई सुविधा नहीं है, दीन हैं, दरिद्र हैं, पर कुम्हलाए हुए नहीं हैं, प्रफुल्लित हैं। भूख में भी उनका जीवन खिलता हुआ मालूम पड़ता है। रात नाच सकते हैं तारों के नीचे; गा सकते हैं। हृदय पर कहीं कोई अवरोध नहीं मालूम होता। उनके शरीरों में भी भूख है, लेकिन फिर भी ऊर्जा प्रफुल्लित मालूम होती है। और सभ्य लोगों के पास सब कुछ है, सब सुविधा है, सब साधन है, कुछ कमी नहीं रही है; बस जीवन का फूल कुम्हला गया। वहां कोई प्रफुल्लता नहीं है।

बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है कि मैं अपना सब कुछ देने को राजी हूं, मुझे कोई वैसी शक्ति दे दे कि मैं सड़क पर खड़े होकर नाच सकूं; वह शक्ति मेरे पास नहीं है कि आकाश के तारों के नीचे मैं गीत गा सकूं और मेरे विचारों का बोझ खो जाए, और मैं रात वृक्ष के नीचे शांति से सो सकूं कि मुझे कोई सपना न दिखे, और सुबह मैं हलका और ताजा उठ सकूं जैसे सारे पशु-पक्षी उठते हैं।

आदमी इतना कुम्हलाया हुआ क्यों है? कुम्हलाए होने का कारण है। और वह कारण है कि हमारा विराट की शक्ति से संबंध विच्छिन्न हो गया। और विच्छिन्न उसी मात्रा में हो गया जिस मात्रा में हमको ख्याल है कि

हम कर सकते हैं। सभ्य आदमी इस भ्रांति में है कि वह कर रहा है। वह यह बना रहा है, यह निर्मित कर रहा है, यह कमा रहा है। सभ्य आदमी अहंकार से जी रहा है।

असभ्य, आदिम, आदिवासी, जंगल का निवासी मैं से नहीं जी रहा था; वह परमात्मा से जी रहा था। वह कर रहा है; हम उसके हाथ की कठपुतलियां हैं। वह चला रहा है; हम चल रहे हैं। वह गिरा देगा, हम गिर जाएंगे। हमारा कोई वश नहीं है। असहाय था वह, लेकिन बड़ी प्रफुल्लता थी। आदमी आज बड़ा शक्तिशाली मालूम पड़ता है, और एकदम उदास और टूटा हुआ है। कई बार ऐसा लगता है कि शायद आदमी को यह वहम कि मैं कुछ कर सकता हूं, सबसे ज्यादा घातक सिद्ध हुआ है।

लाओत्से कहता है, ताओ कभी कर्मरत नहीं है तो भी सभी कुछ उसके द्वारा होता है।

आप भी कर्म से अपने को हटा लें। इसका यह मतलब नहीं कि आप खाली होकर बैठ जाएं; इसका यह मतलब भी नहीं कि आप भाग जाएं। इसका यह मतलब भी नहीं कि आप जिंदगी को छोड़ दें, काहिल हो जाएं, सुस्त हो जाएं, लेट जाएं अपने बिस्तर पर, उठें ही नहीं। इसका यह मतलब नहीं है।

इसका कुल मतलब इतना है कि जो भी हो रहा है उसे आप अपना कर्म न समझें, उसे होने दें जीवन की धारा। नदियां जैसे बह रही हैं वैसे आप भी बह रहे हैं। और विराट ही उसका मूल स्रोत है। आप खुद स्रोत न रहें; आप सिर्फ उसके हाथ के उपकरण रह जाएं। तो कर्म तो होगा; व्यर्थ कर्म बंद हो जाएगा। व्यर्थ कर्म अपने आप गिर जाएगा; सिर्फ कर्म रह जाएगा। जो भी अनिवार्य है वह होगा। न आप उसको रोकेंगे, न आप उसको करेंगे। वह होगा। और आप सरल हो जाएंगे, पशु-पक्षियों की भांति सरल।

निश्चित ही, मनुष्य जब पशु-पक्षियों की भांति सरल होता है तब उसकी सरलता की गरिमा और ही है। क्योंकि वह बोधपूर्ण सरल होता है; वह जानता भी है अपनी सरलता को; वह इस सरलता का जागरूक द्रष्टा भी होता है। पशु-पक्षी सरल हैं, लेकिन उनकी सरलता मजबूरी है, क्योंकि वे जटिल नहीं हो सकते। उनकी सरलता कोई गुण नहीं है; उनकी सरलता एक तरह की मूर्च्छा है। लेकिन मनुष्य जब सरल होता है पशु-पक्षियों की भांति तब उसकी सरलता परम शिखर है जीवन के आनंद का, और जीवन के चैतन्य की आखिरी ऊंचाई है, और जीवन के भाव का आखिरी विस्तार है।

ताओ कर्मरत नहीं है। इसलिए जब भी आप कर्मरत हैं तब आप धार्मिक नहीं हैं। प्रार्थना करें मत, प्रार्थना होने दें। इस फर्क को समझ लें। मंदिर में जाकर बैठ गए हैं आप; प्रार्थना की जा सकती है। तब आपके पास रटे हुए शब्द हैं, वे आप दोहराते हैं। करके जल्दी निबटा लेते हैं। कभी जल्दी होती है तो तेजी से कर लेते हैं; कभी सुविधा होती है तो जरा ज्यादा देर बैठे रहते हैं। लेकिन एक और ढंग है--जो कि वास्तविक ढंग है--कि आप मंदिर में गए हैं, बैठ गए हैं। अब प्रार्थना को होने दें, करें मत। बैठे रहें, शांत बैठे रहें; होने दें प्रार्थना को।

ईसाइयों का एक छोटा सा संप्रदाय है जो अनूठा है। उस संप्रदाय की प्रार्थना बड़ी अदभुत है। वह तो आपको समझ में भी एकदम से न आए; लेकिन ताओ के बहुत अनुकूल है। उस संप्रदाय को कोई गति नहीं मिल सकी ज्यादा, क्योंकि उनकी प्रार्थना ने ही उनको नुकसान पहुंचा दिया। उनकी प्रार्थना की वजह से ही लोग समझे कि यह तो पागलपन है। उनकी प्रार्थना का एक ही नियम है कि आप उनके चर्च में जाकर बैठ जाएं और जो भी भाषा आप जानते हैं उस भाषा को बीच में मत आने दें। जैसे आप हिंदी जानते हैं, अंग्रेजी जानते हैं, गुजराती जानते हैं, तो इसका उपयोग मत करें। आप सिर्फ शांत बैठे रहें; और कुछ भी बेबूझ ध्वनियां आपके भीतर से आनी शुरू हो जाएं, उनसे ही प्रार्थना करें। भाषा का उपयोग न करें। ऐसा कोई शब्द उपयोग न करें जो आप जानते हैं। क्योंकि उसमें डर है कि आप उसका उपयोग कर रहे हैं--कि आप कहते हैं, हे प्रभु! हे पतित

पावन! यह मत करें। इसमें कोई सार नहीं है बहुत। यह आप बहुत दफे कह चुके हैं। यह आपकी बुद्धि में समाया हुआ है, इसको आप कह सकते हैं। यह रिकार्डिंग है, इसको आप दोहरा सकते हैं। यह ग्रामोफोन का रिकार्ड है; यह रोज आप दोहरा कर वापस जा सकते हैं। इसका कोई भी मूल्य नहीं है। तो वह संप्रदाय ईसाइयों का कहता है कि आप भाषा का उपयोग न करें, जो भी आप जानते हैं।

निश्चित ही, इसका बड़ा गहरा परिणाम होगा। इसका मतलब हुआ कि आपकी बुद्धि को अब कोई उपाय न रहा। क्योंकि बुद्धि सब भाषा है। आप जो भी भाषा जानते हैं, उसका उपयोग मत करें। आप सिर्फ बैठे रहें; और कुछ भी बेबूझ ध्वनियां आने लगें, वही प्रार्थना है। आपको हुंकार आए तो हुंकार करें, चीख आए तो चीख करें, पुकार आए तो पुकार करें; लेकिन भाषा का भर उपयोग न करें। जैसे छोटे-छोटे बच्चे अनर्गल बकते हैं, बेबी लैंग्वेज, कुछ भी धुन बन जाती है उनको, तुक बन जाती है, तो वही कहे चले जाते हैं। बस वैसा। आप चकित हो जाएंगे कि इस प्रार्थना में आपकी बुद्धि नहीं बोलती; आपका हृदय, आपका शरीर, आपकी प्रकृति बोलने लगती है। कई बार आप पशु-पक्षियों जैसी आवाज करने लगेंगे। वह भी आपको नहीं करनी है; वह भी होने देना है। कुछ न हो तो शांत बने रहना है। तब समझना है कि शांति ही इस क्षण प्रार्थना है। कुछ हो तो उसे होने देना है। अपनी तरफ से रोकना नहीं, अपनी तरफ से पैदा नहीं करना; सिर्फ निष्क्रिय बहाव में अपने को छोड़ देना है जो भी हो।

अनूठे, अदभुत परिणाम होते हैं। एक घंटे की ऐसी प्रार्थना आपको इस तरह हलका कर जाएगी कि जैसे कोई वजन नहीं रहा शरीर में। जब आप इस मंदिर के बाहर आएंगे तो आप आदमी ही दूसरे होंगे। आपकी आंखें उसी सूरज को देखेंगी जिसको आपने जाते वक्त देखा था, लेकिन अब उसकी रौनक ही और है। वे ही वृक्ष, वे ही पक्षी। लेकिन अब आप हलके हैं, और भाषा का बोझ गिर गया। अब आप हार्दिक हैं, बौद्धिक नहीं हैं। अब आप ज्यादा प्राकृतिक हैं। अब आपने मनुष्य की शिक्षा का जो भी जाल था वह तोड़ दिया थोड़ी देर के लिए, और आप पहली दफा प्रकृति के विराट में गिर गए। आप फिर से छोटे बच्चे हो गए हैं। वह जो शिक्षित, कल्टीवेटेड, सुसंस्कृत आदमी था वह हट गया। आप छोटे बच्चे हो गए हैं। इस प्रार्थना का तो कोई मूल्य है, क्योंकि यह नैसर्गिक है। प्रार्थना करें मत, होने दें। पूजा करें मत, होने दें। निश्चित ही कठिनाई होगी। क्योंकि हम तो सब चीजों को बांध कर चलते हैं। पूजा, प्रेम, प्रार्थना, सबको हमने व्यवस्था दे रखी है कि ऐसा करो, ऐसा करो।

रामकृष्ण को उनके मंदिर के लोग निकालने को राजी हो गए थे पुजारी के पद से। रामकृष्ण जैसा पुजारी कभी हजारों साल में मिलता है! लेकिन सोलह रुपए महीने तो कुल तनख्वाह देते थे, और फिर भी कमेटी इकट्ठी हो गई मंदिर की, ट्रस्टियों की, और उन्होंने कहा, इस आदमी को निकाल बाहर करो, क्योंकि इसकी पूजा में ढंग नहीं है। स्वभावतः इसकी पूजा बेढंगी है। यह आदमी तो मंदिर को अपवित्र कर देगा! क्योंकि ऐसी-ऐसी खबरें आई हैं कि भोग लगाने के पहले खुद चख लेता है। खराब हो गया सब। भ्रष्ट हो गई बात। फूल चढ़ाने के पहले खुद सूंघता हुआ देखा गया है। और कोई ढंग ही नहीं है। कभी चार घंटे भी चलती है पूजा; कभी होती ही नहीं। कभी सुबह होती है; कभी सांझ होती है। तो यह आदमी कोई पुजारी नहीं है; इसको हटाओ, यह तो पागल है।

रामकृष्ण से पूछा ट्रस्टियों ने। तो उन्होंने कहा कि जिस दिन होती है उस दिन होती है और जिस दिन नहीं होती उस दिन नहीं होती। मैं कोई करने वाला नहीं हूं। होगी तो हो जाएगी। जब वही चाहता है कि हो पूजा तो होती है; जब वही नहीं चाहता तो हम कौन हैं? हम बीच में आने वाले कोई भी नहीं हैं। रही फूलों की बात, तो बिना सूंघे मैं नहीं चढ़ा सकता। पता नहीं, सुगंध है भी कि नहीं? रही भोग की बात, तो बिना चखे

मेरी मां मुझे नहीं खिलाती थी तो मैं भी नहीं खिला सकता। नौकरी तुम अपनी सम्हाल सकते हो। लेकिन जैसा होता है वैसे ही होगा।

फिर कमेटी को तरकीब निकालनी पड़ी। आदमी तो यह कीमती था। तो एक दूसरा पुजारी रखना पड़ा कि इसको करने दो जो यह करता है, और व्यवस्थित पूजा जारी रहनी चाहिए। नहीं तो सब गड़बड़ हो जाएगा। तो एक दूसरा पुजारी व्यवस्थित पूजा करता था; रामकृष्ण अव्यवस्थित पूजा करते थे।

ताओ का आग्रह है एक ही कि कर्ता को बीच में मत लाओ जीवन के, तब तुम्हारा जीवन निसर्ग के अनुकूल हो जाएगा। नहीं कि कठिनाइयां न होंगी। कठिनाइयां होंगी, लेकिन उनमें भी आनंद होगा। और अभी हो सकता है, कठिनाइयां न भी हों, बड़ी सुविधा हो। लेकिन सुविधा भी नरक हो जाएगी। झूठी सुविधा भी नरक है। सच्ची कठिनाई भी स्वर्ग है। सचाई के साथ आनंद का संबंध है; झूठ के साथ आनंद का कोई संबंध नहीं है।

"यदि सम्राट और भूस्वामी ताओ को अक्षुण्ण रख सकें, तो संसार आप ही सुधर जाएगा।"

वे जो नेतृत्व करते हैं, वे जो प्रभु हैं, मालिक हैं, गुरु हैं, जिनके पीछे लोग चलते हैं, अगर वे कर्ता का भाव छोड़ दें और स्वयं स्वभाव में लीन हो जाएं और स्वयं ताओ को करने दें अपने भीतर से काम, खुद न करें, तो जगत अपने आप सुधर जाएगा।

गुरुओं की कमी नहीं, नेताओं की कमी नहीं; दूसरों को सुधारने वालों की अंतहीनशृंखला लगी हुई है, उनकी कतार अंत नहीं आती। लेकिन कोई सुधरता नहीं दिखाई पड़ता; कोई बदलाहट होती दिखाई नहीं पड़ती। क्रांतियां हो जाती हैं और व्यर्थ हो जाती हैं। कितनी हत्याएं होती हैं क्रांतियों के नाम पर, और आदमी वहीं के वहीं खड़ा रह जाता है। इतने युद्ध होते हैं आदमी को बदलने के लिए, आदमी को अच्छा करने के लिए। कितना उपद्रव चलता है सारी दुनिया में एक ही बात को लेकर कि समाज अच्छा, शांत, स्वस्थ चाहिए! वह कभी नहीं होता। हर बार बदलाहट होती है, लेकिन बदलाहट से नई बीमारी, या पुरानी बीमारी नई शक्ल में नए नाम के साथ फिर खड़ी हो जाती है। पांच हजार साल का ज्ञात इतिहास इसी बात की कहानी दोहराता है कि आदमी वहीं के वहीं खड़ा रह जाता है। सब परिवर्तन, परिवर्तन के लाने वाले क्रांतिकारी नेता, शिक्षक, आते हैं, चले जाते हैं; और आदमी में कोई फर्क होता दिखाई नहीं पड़ता। तो ये सारे शिक्षक और ये सारे गुरु यही समझाते हैं कि आदमी की गलती है।

ताओ के हिसाब से आदमी की गलती नहीं है। लाओत्से कहता है कि जो लोगों को बदलना चाहते हैं उनमें कर्ता का भाव बाधा है। वे नहीं बदल पाते; क्योंकि वे विराट शक्ति के उपकरण नहीं बन पाते। वे खुद ही दुनिया को बदलना चाहते हैं। खुद को बदलना मुश्किल है; दुनिया को बदलना तो असंभव। वे अगर विराट के उपकरण बन जाएं तो जगत अपने आप सुधर जाए।

अगर हम जांच-पड़ताल करें, थोड़ी खोज-बीन करें, तो दिखाई पड़ेगा कि कहां कठिनाई है, कहां अड़चन है। चार महात्माओं को मिलाना मुश्किल है; दुनिया को बदलने की बात चलती है, चार महात्माओं को मिलाना मुश्किल है। एक जगह कुछ विचारशील लोगों ने एक बड़ा मंच बनाया, और बड़ी सभा का आयोजन किया; सभी धर्मों के ज्ञानियों को बुलाया। कोई तीस ख्यातिलब्ध महात्मा आमंत्रित किए; बड़ा आयोजन किया। बड़ा मंच बनाया कि तीस महात्मा बैठ सकें, लेकिन उस मंच पर एक-एक महात्मा ने ही बैठ कर व्याख्यान दिया। भूल से उन्होंने मुझे भी बुला लिया था। मैंने उनको पूछा कि इतना बड़ा मंच बनाया है, बाकी लोग इस पर बैठते क्यों नहीं? तो संयोजकों ने कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। क्योंकि शंकराचार्य कहते हैं कि उनका

सिंहासन है, वे उस पर बैठेंगे; और दूसरे कहते हैं कि अगर वे सिंहासन पर बैठेंगे तो हम नीचे नहीं बैठ सकते। और यह इतनी मुश्किल की बात हो गई कि आखिर में यही उचित मालूम पड़ा कि एक-एक ही बैठ कर यहां बोले। यहां सारे लोग मंच पर इकट्ठे साथ बैठ भी नहीं सकते; क्योंकि कौन नीचे बैठेगा, कौन ऊपर बैठेगा, यह इतनी उपद्रव की बात है!

ये महात्मा दुनिया को बदलने में लगे हुए हैं। ये किस तरह की दुनिया बनाएंगे? इनकी ही कृपा का परिणाम है जैसी दुनिया आज है। नेता हैं; बातें वे कुछ भी करते हों, कि राष्ट्र बचाना है, समाज बचाना है, लेकिन सबको सिर्फ नेतागिरी बचानी है। किसी को किसी और चीज से कोई मतलब नहीं है। बाकी सब बातें बहाने हैं। भीतर का रस अहंकार है।

लाओत्से यह कह रहा है कि जब तक भीतर का अहंकार न गिर गया हो तब तक तुम्हारे द्वारा कुछ भी नहीं हो सकता जिससे दुनिया में शांति आए। क्योंकि तुम ही शांत नहीं हो।

मनसविद बाद में बोलते हैं कि हिटलर पागल था, कि मुसोलिनी का दिमाग खराब था, कि स्टैलिन मानसिक रोगों से ग्रस्त था; यह सब वे बाद में बोलते हैं। और यह भी वे उन नेताओं के संबंध में बोलते हैं जो मर जाते हैं या असफल हो जाते हैं। जो सफल होते हैं उनके बाबत किसी की बोलने की हिम्मत नहीं होती। जब तक हिटलर जिंदा था तो जर्मनी के एक मनोवैज्ञानिक ने नहीं कहा कि यह आदमी पागल है। जब मर गया और हार गया, पराजित हो गया, तो जर्मनी के ही मनोवैज्ञानिक कहने लगे कि यह पागल है। खुद हिटलर का चिकित्सक, जो तीस साल से हिटलर की सेवा में रत था, उसने भी कभी नहीं कहा कि यह पागल है। हिटलर के मरने और हार जाने के बाद उसने अभी किताब छापी कि मैं तो भलीभांति जानता था कि वह पागल है। निक्सन के संबंध में अभी कोई चिकित्सक यह नहीं कहेगा। माओ के संबंध में कोई चिकित्सक यह नहीं कहेगा। मरने के बाद, असफल हो जाने के बाद, जब कि कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता, तब बड़ी हैरानी की बातें मालूम होती हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि स्टैलिन या हिटलर या मुसोलिनी या तोजो, ऐसा व्यक्तिगत पागल की बात ही गलत है। असल में, नेतृत्व पाने की जो आकांक्षा है, वह पागलपन का हिस्सा है। और अहंकार जड़ है पागलपन की। और राजनीति जितनी सुविधा से अहंकार को भरती है, और कोई चीज नहीं भर सकती। क्योंकि शक्ति वहां है। जहां शक्ति है वहां अहंकार को रस है, मजा है। सिंहासन वहां है। तो राजनीति में पागल ही उत्सुक होता है। और आज नहीं कल जब दुनिया थोड़ी शांत अगर कभी हो सकी, और राजनीति से हम थोड़ा छुटकारा पा सके, तो हम पाएंगे कि हमारा पूरा इतिहास पागलों की कथा है। कोई हिटलर और तोजो और स्टैलिन ही पागल हैं, ऐसा नहीं है। तब हम पाएंगे कि पूरा नेतृत्व हजारों वर्ष का, राजनीतिक नेतृत्व ही पागल था।

असल में, पागल ही महत्वाकांक्षी होता है। और जब पागल पद पर पहुंच जाता है तो उसके हाथ में ताकत होती है अपने पागलपन को पूरा करने की; फिर वह अपने पागलपन को पूरा कर लेता है। अगर वह सफल हो जाए तो उसकी प्रशस्ति में गीत लिखे जाते हैं। अगर वह असफल हो जाए तो लोग उसके विपरीत बातें करने लगते हैं। पांच हजार साल का यह जो इतिहास है, पागल लोगों के द्वारा समाज को बदलने की कोशिश का इतिहास है। उन्होंने पूरी जमीन को पागलखाना बना दिया है। लेकिन हमें दिखाई भी नहीं पड़ता कि जमीन पागलखाना बन गई। क्योंकि हम इसके आदी हैं, हम इसी के बीच बड़े होते हैं। हम देखते हैं यही शायद प्राकृतिक है।

यह बिल्कुल प्राकृतिक नहीं है। यह ऐसा ही है जैसे एक बच्चा अस्पताल में पैदा हो और कभी बाहर की दुनिया उसे देखने न मिले। अस्पताल में ही बड़ा हो, अस्पताल ही उसकी एकमात्र जानकारी हो। तो वह

समझेगा यही दुनिया है; और लोगों का खाटों पर पड़े रहना, उनके टांगों का ऊपर लटके रहना, उनके हाथों में इंजेक्शन लगे रहने, उनके पास आक्सीजन की बोतल रखी रहनी; यही जिंदगी है। उसे कोई और जिंदगी का पता नहीं है। वह अस्पताल को ही जिंदगी समझेगा। और अगर वह जिंदगी भर वहीं रहे और फिर अचानक एक दिन बाहर लाया जाए तो वह बहुत हैरान होगा कि ये लोग सब क्या कर रहे हैं! ये सब गड़बड़ हो गए हैं। इनकी खाटें कहां हैं? इनके इंजेक्शन कहां हैं? इनकी बोतलें कहां हैं? इनको अपनी-अपनी जगह पर होना चाहिए; सब अस्तव्यस्त हो गया है, यह सब अराजकता फैली हुई है। स्वभावतः, क्योंकि उसके सोचने का ढंग, उसका तर्क, उसके मन की बनावट, उसका संस्कार जैसा है वैसा। जिस दुनिया को अभी हम कहते हैं दुनिया, यह करीब-करीब पागलखाना है। इसमें हमें दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि हम इसी में पैदा होते हैं, इसी में बड़े होते हैं। हम इसी से परिचित हैं।

बच्चा बड़ा होता है, वह देख कर बड़ा होता है कि मां और बाप उसके लड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं। वह इसी को प्रेम मानने लगता है कि यह प्रेम है। वह देखता है घर की राजनीति, वह देखता है कि मां पिता को दबा रही है, पिता मां को दबा रहा है। वह चौबीस घंटे देखते-देखते, देखते-देखते, इसी में बड़ा होता है। फिर जब वह शादी करता है तो उसी कहानी को दोहराता है जो उसने देखी थी। क्योंकि और उसे कुछ कहानी का पता भी नहीं है कि कोई और भी ढंग होता है। यही जिंदगी है। यही उसके बच्चे करेंगे। यही उसके बाप-दादों ने किया, उनके पहले किया। हम पागलपन को भी वंशानुक्रम से देते चले जाते हैं जो हम देखते हैं। कभी आपने ख्याल नहीं किया, लेकिन आप ख्याल करें कि जब आप अपनी पत्नी से व्यवहार करते हैं तो आप अपने पिता को पुनरुक्त तो नहीं कर रहे हैं! कि जब आप अपने पति से व्यवहार करती हैं तो आप अपनी मां को दोहरा तो नहीं रहीं! क्योंकि वह बचपन में जो देखा था, जिसमें हम बड़े हुए थे, वही हमारे पास एकमात्र माडल है; उसी के अनुसार चलना हमें रास्ता है।

करीब-करीब आप वही दोहराए चले जाते हैं, थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ। थोड़ा-बहुत हेर-फेर इसलिए आ जाता है कि जिंदगी में चारों तरफ थोड़े फर्क आते हैं। वे फर्क आपको थोड़ा हेर-फेर दे देते हैं। बाकी वही दोहरता चला जाता है। इसको हम प्रेम कहते हैं; इसको हम गृहस्थी कहते हैं; इसको हम घर कहते हैं; इसको हम परिवार कहते हैं। हम कहते हैं, परिवार स्वर्ग है। इसको भी दोहराए चले जाते हैं कि परिवार स्वर्ग है और इसको भी नहीं देखते कि परिवार बिल्कुल पागलखाना हो गया है। अपने परिवार को नहीं देखते; परिवार स्वर्ग है, यह भी सुना हुआ है। और परिवार जो है वह भी हमें पता है। तो एक ही स्थिति रह जाती है भीतर, और वह यह कि कहने की बातें कुछ और हैं, असलियत कुछ और है।

एक मेरे मित्र कार खरीदना चाहते थे। प्रोफेसर थे; गरीब आदमी। मुश्किल से पैसा इकट्ठा कर पाए थे। लेकिन पत्नी सख्त खिलाफ थी। कुछ ऐसा नहीं कि उसे कार से कोई दुश्मनी थी। पत्नी सख्त खिलाफ रहती थी पति जो भी करना चाहें उसके। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या करूं? बामुश्किल तो पैसे इकट्ठा कर पाया हूं कि एक पुरानी गाड़ी खरीद लूं, लेकिन गाड़ी का नाम ही सुनते पत्नी आगबबूला हो जाती है। इतना उपद्रव मच जाता है कि मैं हिम्मत ही नहीं कर पाता कि गाड़ी कैसे खरीदूं।

मैंने उनसे कहा कि मैं तुम्हें तरकीब बताता हूं। तुम अभी घर चले जाओ। यह रही तरकीब। तरकीब मैंने उन्हें समझा दी। वे घर गए; उन्होंने जाकर शांति से घोषणा की कि गाड़ी मैंने खरीद ली है। उपद्रव शुरू हो गया। पत्नी तो भरोसा ही नहीं कर सकी--खरीद ली है! क्योंकि हमेशा वे पूछते थे कि खरीद लूं? खरीद ली! एकदम से सकते में आ गई। इससे बड़ा शॉक नहीं हो सकता था--उसकी बिना आज्ञा के! फिर उसने जो उपद्रव

मचाया तो पूरा पागलपन। लेकिन कितनी देर कोई पागल रह सकता है? अब खरीद ही ली; आधा घंटे बाद वह शांत हो गई।

वे मित्र मेरे पास आए। मैंने कहा, अब तुम जाकर खरीद लो। अब जो होना था वह हो चुका। जो आखिरी होना था हो चुका। अब और क्या बचा? अब तुम देर मत करो। और आगे के लिए इसको नियम समझो कि जो भी करना हो वह इस तरह किया करो।

हर घर में करीब-करीब कलह है, संघर्ष है। उस संघर्ष और कलह के बीच भी हम किसी तरह तालमेल बिठाए रखते हैं। जैसे एक ही बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिए हों वैसी स्थिति बनी रहती है जिंदगी भर। थोड़ा इधर सरकते हैं, थोड़ा उधर; यात्रा कुछ नहीं होती, वहीं बने रहते हैं जहां के तहां। आखिर में इतना ही हो जाता है कि इस कशमकश में बैलगाड़ी के अस्थिपंजर सब ढीले हो जाते हैं। फिर जाने की इच्छा भी नहीं रह जाती।

पर इसको हम जिंदगी मान लेते हैं, क्योंकि इसी से हम परिचित हैं, यही जिंदगी है। आदमी की जिंदगी क्या हो सकती है, इसका हमें पता ही नहीं। और आदमी की जिंदगी क्या हो गई है! अगर ये दोनों का ख्याल भी हमें आ सके तो हम भयभीत हो जाएं, कंप जाएं। आदमी की जिंदगी एक बहुत अदभुत अनूठा अनुभव हो सकती है। लेकिन जो हो गया है वह एक लंबा दुख-स्वप्न, एक नाइटमेयर है।

इस सारे दुख-स्वप्न के पीछे जो कारण है वह है हमारा निरंतर अप्राकृतिक होते चले जाना, जीवन की सहजता से धीरे-धीरे बिल्कुल टूट जाना। सब असहज हो गया है। बोलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, करते हैं, लेकिन कहीं भी कोई साहजिकता नहीं है, कहीं कोई स्फुरणा नहीं है। हमारे प्राण से कुछ आता हुआ झरना नहीं मालूम होता। सब ऊपर-ऊपर के फूल हैं--कागज के, प्लास्टिक के। वे हमने लगा लिए हैं। देखने में फूल मालूम पड़ते हैं। न उनमें जीवन है, न उनमें सुगंध है; उनमें कुछ भी नहीं है, सिर्फ धोखा है।

लाओत्से कहता है कि इस सारे धोखे का मूल है कर्ता का भाव, और इस सारे धोखे की गहराई में आपका मैं खड़ा हुआ है। कर्ता का भाव गिरे, मैं गिर जाता है।

"और यदि सम्राट और भूस्वामी ताओ को अक्षुण्ण रख सकें, स्वभाव को अक्षुण्ण रख सकें, तो संसार आप ही सुधर जाएगा। और जब संसार सुधर जाए और कर्मरत हो जाए, तब उस अनाम पुरातन सरलता के द्वारा उसका अनुशासन हो। यह अनाम पुरातन सरलता वासना से रहित है। वासनारहितता से निश्चलता प्राप्त होती है; और संसार आप ही आप शांति को उपलब्ध हो जाता है।"

यदि बिना चेष्टा और बिना प्रयास के किसी को बदला जा सके तो ही बदलाहट का मूल्य है। किसी की गर्दन को बिना दबाए, किसी को बिना आरोपण के, उसे पता भी न चले कि उसे कोई बदल रहा है, उसे खटक भी सुनाई न पड़े, ध्वनि भी सुनाई न पड़े कि कोई उसे बदल रहा है, बदलने का कोई भाव ही आस-पास न हो, सिर्फ आपकी सरलता, आपकी सहजता उसे बदलाहट दे दे, संक्रामक हो जाए, आपकी सरलता प्रतिध्वनित होने लगे उसके प्राणों में और वह बदल जाए, तो ही बदलाहट का कोई धार्मिक मूल्य है। और तो ही बदलाहट आत्मानुशासन बन जाती है। फिर उस सरलता को वह खो न सकेगा। फिर उस सरलता को छीनने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह सरलता कभी थोपी नहीं गई। उस सरलता से वह मुक्त भी न होना चाहेगा। क्योंकि वह सरलता कोई परतंत्रता नहीं है। वह किसी ने उसके ऊपर डाली नहीं है।

हम सुंदर चीजों को भी कुरूप कर देते हैं थोप कर। हम अच्छी से अच्छी बात को भी विकृत कर देते हैं आग्रह करके। और जब भी किसी चीज के पीछे जबरदस्ती हो जाती है तो सब खराब हो जाता है।

अभी मैं पढ़ रहा था। एक डेनिश विचारक सोरेन कीर्कगार्ड ने लिखा है कि अगर ईश्वर ने, जब उसने आदम और हौवा को बनाया, ईसाइयों की कहानियों के हिसाब से, तो उसने कहा कि तुम ज्ञान के वृक्ष के फल को मत चखना। कीर्कगार्ड ने लिखा है कि अगर वह कह देता कि देखो, यहां एक सांप रहता है, वह शैतान है छिपा हुआ, तुम कभी उसको मत चखना! तो आदम और हौवा ढूंढ़ कर सांप को खा गए होते; दुनिया से शैतान का अंत हो जाता। लेकिन ईश्वर ने कहा कि तुम यह ज्ञान के फल को मत चखना। और फिर उनको ज्ञान का फल चखना पड़ा। इसलिए नहीं कि शैतान ने उन्हें भड़काया, ईश्वर ने ही उनको भड़का दिया। वह जो कहा कि मत चखना, उससे रस पैदा हो गया। वह जो कहा कि इस ज्ञान के वृक्ष के पास मत जाना, उससे उनको लगा कि बस अगर कुछ है खाने योग्य तो यह ज्ञान का वृक्ष ही है। नहीं तो क्यों ईश्वर रोकता!

इदन के बगीचे में बहुत वृक्ष थे, अनंत-अनंत वृक्ष थे। सबको छोड़ कर वे उसी के आस-पास घूमने लगे होंगे। और शैतान तो बेचारा सिर्फ बहाना है। शैतान ने तो सिर्फ इतना ही कहा कि ईश्वर ने रोका इसीलिए कि इसको जो भी खाता है वह ईश्वर हो जाता है। नहीं तो ईश्वर रोकता ही क्यों? तुम ईश्वर जैसे हो जाओगे, इस वृक्ष को चख लो। यह भी शैतान कहीं कोई बाहर है, यह बात फिजूल है। यह तो जब भी कोई निषेध करता है तो शैतान भीतर पैदा हो जाता है, जो कहता है, इसे करके देखो! इसमें जरूर कोई बात होनी चाहिए, कोई रस होना चाहिए; नहीं तो रोका ही क्यों जाता?

आप जब भी किसी को रोक रहे हैं तब आप उसको कह रहे हैं कि करो। जब आप अपने बेटे को कह रहे हैं कि सिगरेट मत पीना, आपने उनको पहली दफे निमंत्रण दे दिया। अब इस बेटे का मन किसी और बात में न लगेगा। अब सब बातें बेकार हो गईं। अब सारा स्वर्ग सिगरेट में निहित है। अब यह जरूर इसको पीनी ही पड़ेगी। इसका कोई बचाव नहीं है। और आपने ही रस पैदा किया। आपने ही इसको उकसाया, भड़काया। और आप सोच रहे हैं, आपने सुधारने के लिए किया था; आपने रोका था। आपने भला बनाने के लिए किया था।

हम जो भी रुकावट डालते हैं उससे दूसरे के अहंकार को चोट पड़ती है। और दूसरे के अहंकार को चोट पड़ी कि अहंकार बदला लेना चाहता है। वह विपरीत जाएगा।

लाओत्से कहता है कि इस भांति सरलता से जो रूपांतरण हो लोगों का तो फिर उनका जीवन अनाम पुरातन सरलता से भर जाए। जिसका कोई नाम नहीं है, उस सरलता से भर जाए। और उनके जीवन से वासना तिरोहित हो जाए अपने आप। क्यों? क्योंकि वासना है स्पर्धा। वासना है दूसरे से आगे निकलने की दौड़। वासना है महत्वाकांक्षा। वासना अहंकार का ही फैलाव है। अगर आप सरल हो जाएं तो वासना, स्पर्धा अपने आप गिर जाए।

एक मित्र मेरे पास आते हैं, कहते हैं, शांत होना है। मैं पूछता हूं, किसलिए शांत होना है? तो वे कहते हैं, बड़ी उलझन में पड़ा हूं। एक राज्य के शिक्षा मंत्री हैं। तो वे कहते हैं, रात नींद नहीं आती, दिन चैन नहीं है; बड़ा काम है, बड़ी उलझन है। तो कुछ ऐसा ध्यान दें कि मैं शांत हो जाऊं। मैंने कहा कि अगर आप शांत हो जाएं तो फिर क्या करेंगे? मैंने कहा, ईमानदारी से मुझे कह दें। तो उन्होंने कहा, अब आप जब पूछते हैं तो आपसे क्या छिपाना! बड़ा उपद्रव चल रहा है राज्य में। मेरे भी मौके हैं चीफ मिनिस्टर हो जाने के। लेकिन मैं इतना अशांत हूं कि मेहनत ही नहीं कर पा रहा हूं; इसी में उलझा रहता हूं; रात नींद नहीं आती, बीमार रहता हूं। जरा शांत हो जाऊं तो मैं भी लग जाऊं।

तो मैंने उनको पूछा कि आप सोचते हैं, शांत हो जाएं तो चीफ मिनिस्टर होने में लग जाएं। लेकिन आप अशांत इसीलिए हैं कि चीफ मिनिस्टर होने में लगे हैं। और कौन कहता है कि आप शिक्षा मंत्री रहें? और इतने

अशांत होकर आपके शिक्षा मंत्री होने से कौन सी शिक्षा का विस्तार होगा? कौन आपको परेशान कर रहा है? कोई आपको धक्के नहीं दे रहा है कि शिक्षा मंत्री हो जाएं। बल्कि कई लोग आपको इस परेशानी से मुक्त करने की कोशिश में लगे हैं कि आप हट जाएं तो यह परेशानी वे ले लें। कई लोग सेवा के लिए तैयार हैं। कई लोग चाहते हैं कि उनको रात नींद न आए। कई लोग चाहते हैं कि वे इतने परेशान हो जाएं जैसे आप हैं। कई लोग चाहते हैं कि फिर वे भी साधु-संन्यासियों के जाएं पास और पूछें कि महाराज, शांति का क्या उपाय है! आपको कौन रोक रहा है? कोई दुनिया में आपको रोकने वाला नहीं है। आप बिल्कुल हट जाएं।

नहीं, वे बोले कि यह तो जरा मुश्किल है। आप तो सिर्फ शांत होने का रास्ता बता दें।

आदमी शांत भी इसलिए होना चाहता है ताकि और अशांति के उपद्रव गति से कर सके। कई बार ऐसा हो जाता है--कई बार क्या, निरंतर ऐसा होता है--कि इस तरह के लोग पूरा जीवन गंवा देते हैं। उनको शांति के आनंद का कोई क्षण नहीं मिल पाता। वे सोचते हैं कि अभी मिनिस्टर हैं, कल चीफ मिनिस्टर हो जाएं तो शायद आनंद। जब वे मिनिस्टर नहीं थे, क्योंकि पहले वे डिप्टी मिनिस्टर थे, तब वे सोचते थे मिनिस्टर हो जाएं।

मैंने कहा, कभी पीछे लौट कर अपने तर्क को भी सोचना चाहिए। पहले तुम सिर्फ एम एल ए थे, तब भी तुम मेरे पास आते थे; तब तुम डिप्टी मिनिस्टर होने की तरकीब में लगे थे। फिर तुम डिप्टी मिनिस्टर हो गए, फिर तुम मिनिस्टर होने की तरकीब में लगे थे। अब तुम मिनिस्टर भी हो गए। वे बोले, इसीलिए तो आशा बंधती है कि अगर कोशिश जारी रखूं तो चीफ मिनिस्टर भी हो ही जाऊंगा। मैंने कहा, बिल्कुल हो जाओगे, लेकिन जीवन हाथ से जा रहा है। और चीफ मिनिस्टर होने से स्पर्धा तो रुकेगी नहीं, वासना तो ठहरेगी नहीं। वह कहेगी कि अब चलो सेंटर की तरफ, केंद्र की तरफ, दिल्ली की तरफ। फिर वहां दौड़ का सिलसिला है। और वहां जो हैं उनकी हालत!

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है! कहीं भी कोई साधु हो, मदारी हो, कुछ भी हो, ज्योतिषी हो, प्रधानमंत्री से लेकर राष्ट्रपति, गवर्नर, सब उसकी सेवा में हाजिर हो जाते हैं। क्या कारण होगा?

इसका कारण यह नहीं है कि वह जो चमत्कार दिखाने वाला है, वह चमत्कारी है; इसका कारण यह है कि ये सब बेचारे अशांत और परेशान लोग हैं और इनकी परेशानी इतनी है जिसका हिसाब नहीं। ये कहीं भी तलाश में हैं कि भी कोई राख दे दे, ताबीज दे दे, तो बस सब ठीक हो जाए।

राष्ट्रपति होकर भी, कोई का ताबीज मिले तब सब ठीक होगा, तो यह राष्ट्रपति होना ताबीज सिद्ध नहीं हुआ है। अभी भी दौड़ वही है। और अब दौड़ और बढ़ गई है। क्योंकि पहले तो यह आशा थी कि राष्ट्रपति हो जाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा। अब राष्ट्रपति हो गए और कुछ ठीक नहीं हुआ, और जिंदगी हाथ से बह गई है। लेकिन इतनी हिम्मत भी नहीं है कि जहां तुम कष्ट पा रहे हो, जिस कुर्सी पर बैठ कर आग में जल रहे हो, उससे उठ कर अलग हो जाओ। उतनी हिम्मत भी नहीं है। उसको भी पकड़े हुए हैं जोर से। जहां जल रहे हैं उसको भी पकड़े हुए हैं।

धार्मिक बोध इस बात का बोध है कि जो आप कर रहे हैं उससे जीवन नरक बन गया है। तो कुछ और नया न करें, कम से कम वह जो आप कर रहे हैं, उसको शिथिल कर दें। एक दफा शिथिल हो जाएं। क्या फर्क पड़ेगा? आपका नाम इतिहास में नहीं लिखा जाएगा तो कुछ फर्क पड़ेगा? आपका नाम अखबारों में नहीं होगा तो कुछ फर्क पड़ेगा? और आपके मजार के आस-पास मेला न भरेगा तो कुछ हर्ज होगा? लेकिन कुछ लोग

जिंदगी गंवा देते हैं, ताकि मजार के आस-पास मेला भरे। बड़े आश्चर्य की बात है, इसलिए जी रहे थे कि मजार के आस-पास मेला भरे! आप अहंकार के लिए जो भी कर रहे हैं उस सब में आप अपने को गंवा रहे हैं, खो रहे हैं।

लाओत्से कहता है, जैसे ही अहंकार गिर जाए... । और अहंकार तभी गिरता है जब जीवन सरल और निसर्ग के अनुकूल हो जाता है; जब आप जोर-जबरदस्ती छोड़ देते हैं और कहते हैं, परमात्मा की जो मर्जी; वह जो करा रहा है, हो रहा है; मैं न कुछ कर रहा हूं, न मैं कुछ करूंगा; मैं सिर्फ बहा जाऊंगा, मैं तैरूंगा भी नहीं; मैं सिर्फ बहूंगा, उसकी धार मुझे जहां ले जाए; मैं मोक्ष की तरफ भी जाने को उत्सुक नहीं हूं; मैं उसी जगह को मोक्ष समझ लूंगा जहां उसकी धार मुझे पहुंचा देगी। ऐसी भाव-दशा में अहंकार नहीं है। अहंकार नहीं तो स्पर्धा नहीं।

और जहां वासनारहितता है, लाओत्से कहता है, वहां निश्चलता प्राप्त होती है। और संसार आप ही आप शांति को उपलब्ध हो जाता है।

अपने आप कैसे शांति घटित हो, इसका यह सूत्र है। यह कोई योग नहीं सिखाता आपको कि आप शीर्षासन करो तो शांति उपलब्ध होगी। यह कोई मंत्र नहीं देता आपको कि आप राम-राम, राम-राम जपो तो शांति होगी। यह कोई ताबीज-गंडा नहीं देता कि इसको बांध लेने से शांति होगी। लाओत्से तो आपकी अशांति के यंत्र को समझा देता है कि यह आपके अशांति का यंत्र है। यह आपका कर्ता-भाव ही आपकी अशांति की जड़ है। यह भाव गिर जाए, आप सदा से शांत हैं। अशांति अर्जित है; शांति स्वभाव है। तो शांति अर्जित नहीं करनी है; सिर्फ अशांति अर्जित कर देना बंद कर देना है। स्वास्थ्य पाना नहीं है; स्वास्थ्य तो मिला हुआ है। बीमारी इकट्ठी कर ली है; बीमारी इकट्ठा करना बंद कर देना है।

इस दृष्टि का थोड़ा सा भी स्मरण आना शुरू हो जाए और आप पाएंगे कि आप शांत होने लगे। और आपके शांत होते ही आपके आस-पास का संसार शांत होना शुरू हो जाता है। क्योंकि आप अपने आस-पास के संसार को, अशांत होने के कारण, काफी अशांत किए रहते हैं। आप एक केंद्र बन जाते हैं; आपके आस-पास भी एक छोटा संसार घूमता है। पत्नी है, बच्चा है, दफ्तर है, मित्र हैं, सगे-संबंधी हैं; वे आपके पास-पास घूम रहे हैं। आपकी अशांति उनको भी अशांत करती रहती है। उनकी अशांति आपकी अशांति को बढ़ाती रहती है। ऐसा हम एक-दूसरे का काफी गुणनफल कर देते हैं, एक-दूसरे को काफी मल्टीप्लाय कर देते हैं। हर आदमी एक-दूसरे की अशांति बढ़ा रहा है।

लाओत्से कहता है, अगर शांत व्यक्ति गांव में एक भी हो तो भी उसका परिणाम पूरे गांव पर पड़ना शुरू हो जाएगा। उसकी हवा धीरे-धीरे प्रवेश करने लगेगी।

संसार शांत हो सकता है, अगर महत्वाकांक्षा न हो। संसार शांत हो सकता है, अगर अहंकार का पागलपन गिर जाए। और यह आपके हाथ में है। एक क्षण में इसे छोड़ा जा सकता है।

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

इकहत्तरवां प्रवचन

सहजता और सभ्यता में तालमेल

पहला प्रश्नः बौद्ध, जैन, हिंदू धर्म, सभी पुरातन मूल स्वर इस भारत भूमि से विलुप्त हो गए हैं। और आपने कहा भी है कि धर्म के उदय की संभावना अब पश्चिम में है। लेकिन लाओत्से के प्रवचन के प्रथम दिवस ही आपने कहा कि धर्म की एकमात्र संभावना भारत में है। कृपया स्पष्ट करें कि किन विशिष्ट संभावनाओं को जान कर ऐसा आपने कहा है।

नए धर्म के अंकुरण की संभावना तो पश्चिम में ही है। अगर बीज बोने हों तो पश्चिम ही ठीक है। क्योंकि नए धर्म का अंकुरण तभी होता है जब लोग भौतिकता से पीड़ित हों, जब लोग समृद्धि से पीड़ित हों।

पीड़ाएं दो तरह की हैं। एक पीड़ा है गरीबी की पीड़ा, अभाव की पीड़ा। और एक पीड़ा है समृद्धि की पीड़ा; जब सब होता है, और भीतर फिर भी खालीपन मालूम पड़ता है; जो भी पाया जा सकता है वासना के जगत में वह मिल जाता है, और तब पता चलता है कि आत्मा नहीं मिली; कोई तृप्ति नहीं मालूम होती। साधन सब होते हैं तृप्ति के, लेकिन भीतर तृप्ति की क्षमता नहीं होती। दो तरह के अभाव हैंः एक गरीब का और एक अमीर का। गरीब के अभाव में नए धर्म का अंकुरण असंभव है; अमीर के अभाव में ही नए धर्म का अंकुरण होता है।

इसलिए मैंने निरंतर कहा है कि नया धर्म पश्चिम से जन्मेगा। पश्चिम अब उसी तरह समृद्ध है जैसा कभी पूरब था। जब हिंदू, जैन, बौद्ध विचार पैदा हुए तब पूरब समृद्धि के शिखर पर था और पश्चिम दरिद्र था। अब पूरब दरिद्र है और पश्चिम समृद्ध है। तो नया धर्म तो पश्चिम में ही पैदा हो सकता है। धर्म के विस्तार की संभावना पश्चिम में है, पूरब में नहीं। फिर भी मैंने कहा कि ताओ को अगर जमीन पकड़नी हो तो भारत ही उपयोगी हो सकता है। अगर दलाई लामा को जो तिब्बत ने सैकड़ों वर्षों की साधना में पाया है उसे नष्ट न होने देना हो तो भारत ही उनके लिए योग्य भूमि है। इन दोनों बातों में विरोध दिखाई पड़ता है; विरोध नहीं है। अगर पुराने धर्म को स्थापित करना हो तो भारत ही भूमि बन सकता है; नए धर्म को अंकुरित करना हो तो पश्चिम। नए बीज को बोना एक बात है और पुराने वृक्ष को लाकर जमीन पर आरोपित करना, ट्रांसप्लांट करना बिल्कुल दूसरी बात है।

ताओ पुराना वृक्ष है; पुराने से पुराना वृक्ष है। दलाई लामा भी जिस बुद्ध-चिंतना को ला रहे हैं, साधना को, वह भी बहुत पुरानी धारणा है। इतने पुराने वृक्ष को सम्हालने के लिए बहुत पुरानी भूमि चाहिए, संस्कारों का बहुत लंबा इतिहास चाहिए, तो ही पुराना वृक्ष सम्हल सकेगा। बहुत पुरानी हवा, बहुत पुराना आकाश, बहुत पुरानी भूमि चाहिए; नहीं तो यह पुराना वृक्ष मर जाएगा।

अगर इस पुराने वृक्ष को पश्चिम में लगाना हो तो यह काम नहीं आएगा। पश्चिम में नए बीज बोए जा सकते हैं, और वृक्ष पैदा किया जा सकता है। वह फिर पश्चिम की हवाओं में ही पैदा होगा; उसी ढंग से बड़ा होगा। लेकिन ये जो वृक्ष हैं ताओ के और बुद्ध धर्म के, ये तो बहुत प्राचीन हैं। और इनके लिए बहुत प्राचीन भूमि चाहिए। तो प्राचीन भूमियों में भारत ही सर्वाधिक पुराना है। और उसके पास बहुत पुराने संस्कारों की संपदा है। उस संपदा में ये वृक्ष पल सकते हैं। इनको नई जगह नहीं पाला जा सकता।

इसे ऐसा ही समझें कि एक छोटे बच्चे को अगर पश्चिम में रखा जाए तो वह बहुत शीघ्र पश्चिम के अनुकूल ढल जाएगा। और एक बूढ़े आदमी को पश्चिम में ले जाया जाए, वह नहीं ढल पाएगा। उसके ढलने का कोई उपाय नहीं है। नई भूमि उसके लिए खतरनाक सिद्ध होगी। बच्चे के लिए नई भूमि सार्थक हो सकती है; बूढ़े के लिए पुराना वातावरण चाहिए।

यह ताओ बूढ़े से बूढ़ा धर्म है। इसलिए मैंने कहा कि भारत में। हां, फिर इस वृक्ष पर जो नए बीज लगें, उनको पश्चिम में पहुंचाया जा सकता है। दलाई लामा जो साधना की प्रक्रिया लेकर आए हैं उसको तो पश्चिम समझ भी नहीं सकता। क्योंकि वह तो इतनी जटिल है; उसका तो हजारों साल का लंबा इतिहास है। पश्चिम को अगर समझाना हो तो अ ब स से शुरू करना पड़ेगा; पहली कक्षा से शुरू करना पड़ेगा। वे जो लाए हैं, वह परम शिखर है। उस शिखर को समझने के लिए भारत के अतिरिक्त कोई भूमि समर्थ नहीं है। क्योंकि ऐसा कोई ऊंचा शिखर नहीं है जो भारत ने न छू लिया हो, जिससे वह परिचित न हो। भला भारत के बड़े समूह की स्थिति विकृत हो गई हो, लेकिन भारत में ऐसे कुछ लोग निरंतर ही खोजे जा सकते हैं जो कितनी ही ऊंची बात हो उसको समझने में समर्थ हैं। और भारत में ऐसा हृदय खोजा जा सकता है जिसके लिए अ ब स से शुरू करने की जरूरत नहीं; अंतिम पाठ जिसे दिया जा सकता है। और ताओ या दलाई लामा जो लेकर आए हैं वह अंतिम पाठ है। अगर यह पहली कक्षा के विद्यार्थियों को दिया जाए तो खो जाएगा। इसलिए मैंने ऐसा कहा कि उन दोनों के लिए भारत में ही पुनआर्रोपण हो सकता है। यह नए बीज का बोना नहीं है; बूढ़े वृक्ष का पुनआर्रोपण है।

दूसरा प्रश्नः एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि घृणा के लिए प्रेम आवश्यक है। लेकिन कई बार किसी आदमी का परिचय हुए बिना उसे देख कर ही हमें घृणा हो जाती है; उससे मिलने का, उससे बातचीत करने का जी भी नहीं चाहता। तो क्या ऐसे वक्त में प्रेम के बिना घृणा संभव नहीं है?

ऐसा जब भी हो कि किसी को देख कर ही, जिससे कोई मैत्री नहीं, कोई संबंध नहीं, जिससे कोई परिचय नहीं, और घृणा पैदा हो जाए, तो इसका एक ही अर्थ होता है कि उस व्यक्ति में कुछ ऐसा है जिससे आपका परिचय है और जिससे आपको घृणा है। क्योंकि बिना परिचय के तो घृणा हो ही नहीं सकती। उस व्यक्ति में कुछ ऐसा है--उसके उठने में, उसके चलने में, उसकी आंखों में, उसके चेहरे में, उसके आस-पास की हवा में--उसके व्यक्तित्व की छाप में कुछ ऐसा है जिससे आप परिचित हैं, और जिससे आप प्रेम कर चुके हैं, और जिससे आप घृणा कर रहे हैं। चाहे खोजने में कठिनाई हो; क्योंकि व्यक्ति बड़ा समूह है, उसमें बहुत सी बातें हैं।

अगर आप अपने पिता से घृणा करते रहे हैं; अक्सर बेटे पिता से घृणा करते हैं, क्योंकि एक कलह है, एक संघर्ष है जो पिता और बेटे के बीच चलता है। क्योंकि पिता बेटे के हित में ही उसको बदलने की कोशिश करता है, और बेटे के अहंकार को चोट लगनी शुरू हो जाती है। वे सब चोटें इकट्ठी हो जाती हैं। इसलिए सारी दुनिया के समाज और संस्कृतियां, बेटा पिता को परम आदर दे, इसकी चेष्टा करते हैं। इस चेष्टा के पीछे यही राज है कि अगर इसका आयोजन न किया जाए तो बेटा पिता का अनादर ही करेगा, आदर नहीं कर सकता। तो इसका आयोजन करना पड़ता है समाज को, संस्कृति को।

इसे समझ लें। हम जहां-जहां बहुत चेष्टापूर्वक आदर को निर्मित करते हैं, उसका अर्थ ही यह है कि अगर सब छोड़ दिया जाए बिना चेष्टा के तो अनादर पैदा होगा। समाज जो व्यवस्था करता है, वह अकारण नहीं करता। समाज समझाता है कि भाई और बहन में किसी तरह की भी कामवासना बड़े से बड़ा पाप है। वह

इसीलिए समझाता है कि अगर यह न समझाया जाए तो पहले कामवासना का संबंध भाई और बहन में निर्मित हो जाएगा। उसकी प्राकृतिक संभावना है। क्योंकि पहला स्त्री-पुरुष का परिचय भाई-बहन में होगा। और अगर समाज इसको बहुत जोर से संस्कारित न करे कि यह महा पाप है, इससे बड़ा पाप कुछ भी नहीं, तो यह घटना घटेगी। बाप और बेटे के बीच हम आदर का भाव पैदा करवाते हैं। वह आदर का भाव हम इसीलिए पैदा करवाते हैं कि इस बात की पूरी संभावना है कि अनादर पैदा हो जाए और बाप और बेटे के बीच घना संघर्ष हो जाए।

तो अगर आपको अपने पिता से दबा हुआ मन में घृणा का भाव है तो जहां-जहां फादर फिगर, जहां-जहां पिता की प्रतिमा दिखाई पड़ेगी, वहां आपको घृणा होगी। जो बेटा बाप से घृणा करता है वह गुरु से प्रेम नहीं कर सकता, क्योंकि गुरु पिता जैसा मालूम पड़ेगा। जो बेटा बाप से घृणा करता है वह परमात्मा से भी प्रेम नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा परम पिता की अवस्था है। तो जहां-जहां उसे दिखाई पड़ेगा कि पिता की झलक मिलती है, वहां घृणा खड़ी हो जाएगी।

अगर कोई बेटा अपनी मां को घृणा करता है, जो कि कम घटता है; बेटियां मां को घृणा करती हैं, बेटे नहीं। बेटियां पिता को घृणा नहीं करतीं, और यह उचित है, क्योंकि यही प्राकृतिक है। लेकिन अगर कोई बेटा अपनी मां को घृणा करता है किन्हीं भी परिस्थितिवश कारणों से, तो फिर वह किसी स्त्री को प्रेम नहीं कर पाएगा। जहां भी स्त्री दिखाई पड़ेगी, मां की झलक मौजूद हो जाएगी।

तो अगर कोई व्यक्ति किसी भी स्त्री को प्रेम नहीं कर पाता तो उसका अर्थ है कि वह अपनी मां को प्रेम नहीं कर पाया। तो जहां स्त्री दिखाई पड़ी वहां मां तो खड़ी हो गई। जो बेटा अपनी मां के विरोध में है, कारण कोई भी हों, वह स्त्री मात्र के विरोध में हो जाएगा। क्योंकि पहला परिचय स्त्री का तो मां से ही है; पहली छाप तो मां की ही पड़ेगी। तो स्त्री के संबंध में जो भी धारणाएं बनने वाली हैं, उसमें मां का जो प्रतिबिंब बना है, वही हाथ बंटाएगा।

तो आपके मन में कई तरह के प्रतिबिंब संगृहीत हैं। एक व्यक्ति अनजान मालूम पड़ता है, लेकिन उसका कोई गुण जाना-माना होगा; उस गुण के कारण तत्क्षण निर्णय हो जाता है। वह निर्णय घृणा पैदा कर देता है। लेकिन घृणा बिना प्रेम के पैदा नहीं होती। उस गुण से आपके परिचय, मैत्री, प्रेम के संबंध रहे हैं, और आप उस संबंध में विफल हो गए हैं। वह विफलता घनी हो गई है। उस विफलता के कारण कहीं भी वह गुण दिखाई पड़ा कि आप फौरन चौंक जाएंगे। हम कहते हैं न कि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। क्योंकि दूध की एक झलक छाछ में भी मिलती है--कम से कम रंग। तो जो दूध से जल गया है वह छाछ भी फूंक कर ही पीएगा। वह जो जलन का अनुभव है, वह छाछ के प्रति भी भय पैदा करवा देगा।

और एक कारण है जो इससे ज्यादा गहरा है; वह भी ख्याल में ले लेना चाहिए। आप उन्हीं चीजों को घृणा करते हैं अक्सर, उन्हीं गुणों को घृणा करते हैं अक्सर, दूसरों में देख कर, जिन गुणों को आप अपने में घृणा करते हैं। यह थोड़ा गहरा है; पहले से भी ज्यादा इसकी गहरी पर्त है। जब अचानक एक आदमी को देख कर आपके मन में घृणा पैदा होती है तो आप खोज-बीन करना कि कहीं यह आत्म-निंदा का हिस्सा तो नहीं है! क्योंकि जो चीज आप अपने में बुरी पाते हैं वही आप दूसरे में भी बुरी पाते हैं। यह प्रोजेक्शन है। जो चीज आप अपने में चाहते हैं न हो वह जब आपको दूसरे में दिखाई पड़ती है तो घृणा पैदा होती है। इसलिए सब घृणा का विस्तार कहीं गहरे में आत्म-घृणा का हिस्सा है। इसे समझें।

आप नहीं चाहते कि क्रोध करें, और क्रोध होता है। और क्रोध से आपकी घृणा है। तो जब भी आप किसी व्यक्ति में क्रोध की झलक देखेंगे, घृणा पैदा हो जाएगी। आप नहीं चाहते चोरी करें, और चोरी आप करते हैं। तो

जब भी आपको कहीं चोर दिखाई पड़ेगा, तत्क्षण घृणा पैदा हो जाएगी। इसका मतलब यह होता है कि जब भी आप कहीं घृणा करते हैं, तब निश्चित रूप से आप अपने से कोई संबंध पाते हैं। उस संबंध को थोड़ा खोजना।

इसलिए जो व्यक्ति अपने को बिल्कुल घृणा नहीं करता वह किसी को भी घृणा नहीं करेगा। यह जरा समझ लेने जैसा है। इसलिए हम कहते हैं कि साधु के मन में किसी के प्रति घृणा नहीं होगी। क्योंकि अब उसके भीतर ही कुछ ऐसा हिस्सा नहीं है जिससे उसकी नफरत, संघर्ष, विरोध है। उसने सब स्वीकार कर लिया। वह सबको आत्मसात कर गया। उसने सब पी लिया; जहर, अमृत सब। और अब उसके भीतर घृणा का कोई बिंदु नहीं है।

इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती है। समझ लें कि यहां कोई व्यक्ति एक ऐसा कृत्य कर दे जो आपको पसंद नहीं है; समझ लें कि एक चोर यहां पकड़ जाए, तो आप में जो सबसे ज्यादा चोर हैं वे उसकी पिटाई शुरू कर देंगे। जो चोर नहीं हैं वे उसको क्षमा कर सकते हैं, लेकिन जो चोर हैं वे क्षमा नहीं कर सकते। जिसको वे अपने में क्षमा नहीं कर पाए हैं, वे दूसरे में क्षमा नहीं कर सकते। और जिसका अपराध-भाव उनके ऊपर भारी है वे दूसरे पर उसे निकाल लेंगे। खुद को तो पीटना बहुत मुश्किल है, लेकिन दूसरे को पीटा जा सकता है। और एक राहत मिलेगी।

फिर और भी कारण हैं। जब कोई एक चोर पकड़ जाए तो सबसे पहले जो चोर हैं वे चिल्लाने लगेंगे उसके विरोध में। क्योंकि इससे वे घोषणा कर रहे हैं कि हम चोर नहीं हैं, हम तो चोर के इतने खिलाफ हैं। वे बता रहे हैं कि वे चोर नहीं हैं। क्योंकि अगर वे चुपचाप खड़े रहें तो उन्हें खुद भी डर है कि कोई यह न समझे कि ये भी चोर के समर्थन में हैं।

इसलिए एक बहुत अनूठी घटना समाज में घटती रहती हैः जब भी बुराई के विपरीत कुछ लोग खड़े होकर लड़ने लगते हैं तो उनमें अक्सर वे ही लोग होते हैं जो बुराई को करने वाले हैं। भले आदमी को न तो अपराध का भाव होता है, न यह डर होता है कि मैं पकड़ा जाऊंगा, कि कोई क्या कहेगा कि तुम चुप खड़े हो! जब कि चोर पीटा जा रहा है, तब तुम चुप क्यों खड़े हो? क्या मतलब है? क्या तुम चोर के समर्थन में हो? क्या तुम चाहते हो कि चोरी हो?

आप अपने में जांच करना इसकी कि जब आप किसी चीज के विरोध में बहुत जोर से लड़ने को खड़े हो जाते हैं, तब आप भीतर खोज-बीन करना कि वह दुर्गुण कहीं आपका हिस्सा तो नहीं है! अगर वह आपका हिस्सा नहीं है तो इतना जोश आ ही नहीं सकता आपको। इतने जोश का कोई कारण ही नहीं है। जो बुराई आपकी नहीं है, जो दुर्गुण आपका नहीं है, उसमें इतना जोश-खरोश का कोई कारण नहीं है। वह आपके भीतर दबा हुआ पड़ा है।

तो जब आप दूसरे व्यक्ति में कभी देखते हैं अचानक कि आप में घृणा का भाव पैदा हो रहा है तो उसकी तो फिक्र छोड़ देना, आप थोड़ी अपनी फिक्र करना, आत्म-विश्लेषण करना कि ऐसा क्यों हो रहा है?

एक आदमी एक स्त्री को यहां धक्का मार दे, आप बस उसके ऊपर टूट पड़ेंगे। जो-जो लोग टूटेंगे वे वे ही लोग हैं जो स्त्रियों को धक्का मारते हैं। क्योंकि यह मौका वे नहीं चूक सकते, यह अवसर वे नहीं चूक सकते। स्त्रियों के प्रति सदभाव दिखाने का इससे अच्छा अवसर उनको कभी नहीं मिलेगा। वह जिस आदमी ने धक्का मारा है वह तो गुंडा है ही; जो उसको मार रहे हैं वे भी गुंडे हैं। लेकिन एक गुंडा पकड़ गया है और दूसरे गुंडे इस समय साधु-चरित्र होने का प्रमाण लिए ले रहे हैं।

अपने भीतर आप देखना कि जिस चीज पर आप बहुत जोश से भर जाते हैं वह कहीं न कहीं रोग का हिस्सा है, बुखार है उसमें; अन्यथा इतने जोश का कोई भी कारण नहीं है।

तो दूसरे के प्रति घृणा में भी आपके भीतर के कुछ संबंध जुड़े हैं। असल में, हम दूसरे के प्रति जो भी करते हैं उसमें हम कुछ अपने प्रति करते ही हैं। हम अपने से मुक्त नहीं हो सकते। हमारे सारे कृत्यों में हम मौजूद होते हैं, वह चाहे घृणा हो और चाहे प्रेम हो। सारा व्यवहार हमारा दर्पण है जिसमें हम दिखाई पड़ते हैं। और अपने को धोखा देते रहते हैं हम जीवन भर।

अगर ठीक से आप अपने भीतर का परीक्षण करेंगे तो बहुत ही हैरान हो जाएंगे। और तब हर व्यवहार आपको जीवन-क्रांति के लिए इशारा करेगा। एक हमारी साधारण वृत्ति होती है कि हम, जो अपने भीतर है, उसे दूसरे को पर्दा मान कर प्रोजेक्ट करते हैं; उसमें देख पाते हैं। अपने में देखना तो मुश्किल होता है; दूसरे में देख पाते हैं। दूसरे में देखना आसान होता है, इसलिए दूसरा हमेशा दर्पण का काम करता है। जब आप दर्पण के सामने खड़े होते हैं तो अगर आपको दर्पण में कुरूप चित्र दिखाई पड़े तो दर्पण को तोड़ने की कोशिश मत करना, उससे कुछ लाभ न होगा। हालांकि दर्पण आप तोड़ सकते हैं। शायद पहला ख्याल तो यही होगा कि यह दर्पण गलत ढंग से बना है, नहीं तो मेरा जैसा सुंदर व्यक्ति इतना कुरूप दिखाई कैसे पड़ सकता है! लेकिन दर्पण तोड़ने से आप सुंदर न हो जाएंगे। दर्पण तो केवल खबर दे रहा है कि आप कैसे हैं।

लेकिन हम जैसे हैं वैसा देखने की हमारी हिम्मत नहीं होती। हम तो अपने मन में बड़ी स्वप्निल प्रतिमाएं निर्मित किए रहते हैं स्वयं की। हम तो अपने को परम सुंदर मानते रहते हैं। इसलिए दर्पण हमें दुख देता है, क्योंकि दर्पण हमें वहां ले आता है जहां हम हैं। दर्पण यथार्थ को प्रकट करता है। आपका व्यवहार जीवन का दर्पण है। दूसरे व्यक्ति दर्पण की तरह काम कर रहे हैं। पूरा समाज दर्पण है। और जब भी किसी व्यक्ति के पास आपको कुछ कुरूपता की प्रतीति हो तो उस पर मत थोपना; लौटना अपने पर। उसको दर्पण ही समझना और खोज भीतर करना। लेकिन स्वयं को तो कोई बदलना नहीं चाहता; सभी लोग दूसरों को बदलना चाहते हैं।

एक मित्र, रोज मैं निकलता हूं, रास्ते में मुझे मिलते हैं। वह कहते हैं, जो आपने कहा उसकी लोगों को बहुत जरूरत है।

लोगों को! वे कौन हैं लोग? आप सब, उनको छोड़ कर। मगर यही दृष्टि आपकी भी है। उन पर हंसना मत।

मैंने सुना है कि एक महिला एक चर्च में रोज आती थी और जब प्रवचन पूरा हो जाता चर्च के पादरी का तो उससे विदा लेते वक्त कहती थीः माय, सरटेनली दे डिड नीड दिस मैसेज टुडे; उनको जरूरत थी इस संदेश की जो आपने दिया। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि बर्फ पड़ी और कोई भी नहीं आया; अकेली महिला ही आई। फिर भी पादरी ने प्रवचन पूरा किया। और जब महिला को द्वार पर वह छोड़ रहा था तो महिला ने कहा--पादरी सोच रहा था मन में कि आज वह क्या कहेगी! क्योंकि आज लोग तो आए ही नहीं थे, सोच रहा था कि आज वह कहेगी, क्या कहेगी! लेकिन महिला ने कहाः माय, दे सरटेनली वुड हैव नीडेड दिस मैसेज, इफ दे हैड कम टुडे; उनको बिल्कुल जरूरत थी अगर वे आज आते।

आपको स्वयं बिल्कुल जरूरत नहीं, लोगों को जरूरत है। यही अधार्मिक चित्त का लक्षण है। धार्मिक चित्त सदा सोचता है कि मुझे क्या जरूरत है, और मैं अपने साथ क्या करूं! अधार्मिक चित्त सदा सोचता है कि दूसरों के साथ क्या किया जाए, दूसरे कैसे बदले जाएं। यह हिंसा का हिस्सा है।

आप अपनी फिक्र करें। और जीवन बहुत थोड़ा है; आप अपनी ही फिक्र कर लें तो भी काफी है। आप लोगों की चिंता बिल्कुल मत करें। और आपकी चिंता से लोगों को कोई लाभ होने वाला नहीं है। और वे लोग भी कुछ आपसे कम बुद्धिमान नहीं हैं। वे आपकी चिंता कर रहे हैं; वे अपनी चिंता नहीं कर रहे। इस जमीन पर कोई अपनी चिंता में नहीं है; सारे लोग दूसरों की चिंता में हैं: दूसरे कैसे सुधर जाएं। किसने दिया आपको यह काम दूसरों को बदलने का? परमात्मा आपसे नहीं पूछेगा जब आपका मिलना होगा उससे कि आप कितने लोगों को सुधार पाए? वह आपसे पूछेगा कि आपकी हालत क्या है? तब आपको बड़ी दीनता मालूम पड़ेगी। तब आप कहेंगे कि हमने तो अनेक जिंदगियां गंवाईं दूसरों को सुधारने में; हमें तो मौका ही नहीं मिला अपने को सुधारने का।

आप अपनी फिक्र करें। बिल्कुल निपट स्वार्थी हो जाएं। आपका स्वार्थ ही परार्थ है। और अगर आप सुधर गए तो आपके आस-पास वे तरंगें पैदा होने लगती हैं जो दूसरों को भी बदल सकती हैं। लेकिन वह आपका लक्ष्य नहीं होना चाहिए। आपका लक्ष्य होना चाहिए कि मैं आनंदित हो जाऊं; यही मेरा काम है इस जीवन में कि मैं आनंदित हो जाऊं। और आप आनंदित हो जाएं तो आपके पास आनंद की वर्षा होने लगेगी। आपसे अनजाने वे तरंगें छूटने लगेंगी जो दूसरे के हृदयों को भी छू सकती हैं। पर वह आपकी चिंता की जरूरत नहीं है--छुएं, न छुएं। आप सुगंधित हों! वह सुगंध किन्हीं नासापुटों में जाए, न जाए, वह प्रयोजन नहीं है।

अगर प्रत्येक व्यक्ति निपट स्वार्थी हो जाए तो इस जगत में दुख खोजना मुश्किल हो। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति परार्थी है, और प्रत्येक व्यक्ति सोच रहा है कि धर्म का अर्थ ही यह है कि दूसरे को कैसे... ।

एक मित्र ने पूछा है कि विवेकानंद ने कहा है कि वस्तुतः जीवित वे ही हैं जो दूसरों के लिए जी रहे हैं; जो अपने लिए जी रहे हैं वे तो मुर्दा हैं।

मुझे पता नहीं कि विवेकानंद ने क्या कहा है। मगर अगर ऐसा कहा है तो बिल्कुल गलत कहा है, या किसी और अर्थ में कहा होगा। लेकिन मैं तो आपसे कहता हूं कि निपट अपने लिए जीएं। लेकिन तकलीफ क्या है?

शब्दों में तकलीफ है। आप समझते हैं कि आप अपने लिए जी रहे हैं; आप नहीं जी रहे हैं अपने लिए। आप मान कर चल रहे हैं कि आप स्वार्थी हैं और अपने लिए जी रहे हैं, मैं आपसे कहता हूं कि आप बड़े परार्थी हैं। आप बिल्कुल स्वार्थी नहीं हैं, आप अपने लिए जी ही नहीं रहे हैं। अगर आप मानते हैं कि आप अपने लिए जी रहे हैं तो विवेकानंद ने जो कहा है वह बिल्कुल ठीक कहा है कि जो अपने लिए जी रहे हैं--आपकी भाषा में--वे मुर्दा हैं। आप मुर्दा हैं। और विवेकानंद ने कहा है कि जो दूसरों के लिए जी रहे हैं वे जीवित हैं। आपकी भाषा का उपयोग है यह। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि आपकी भाषा गलत है। आप अपने लिए जी ही नहीं रहे हैं। बाप बेटे के लिए जी रहा है; पत्नी पति के लिए जी रही है; पति पत्नी के लिए जी रहा है। कोई किसी के लिए जी रहा है; कोई किसी के लिए जी रहा है। कोई अपने लिए नहीं जी रहा है। और इसलिए आप मुर्दा हैं।

आप अपने लिए जीना शुरू कर दें। किसी के लिए मत जीएं, आप अपने लिए जीएं; आप जीवित हो जाएं। और जैसे ही आप जीवित हो जाएंगे, आपके द्वारा बहुत लोगों को जीवन मिलना शुरू हो जाएगा। यह भाषा को और ही ढंग से देखने का प्रयास है। निश्चित ही, सभी स्वार्थ की निंदा करते हैं; मैं नहीं करता हूं। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ता है कि स्वार्थी तो आदमी खोजना मुश्किल है। कभी कोई महावीर, कभी कोई बुद्ध स्वार्थी होता है।

इस भाषा को समझ लें। अगर आप बुद्ध-महावीर को परार्थी समझते हैं तो फिर विवेकानंद का वक्तव्य ठीक है। लेकिन मैं मानता हूं कि वे निपट स्वार्थी हैं। लेकिन उनसे बड़ा परार्थ हुआ। सिर्फ स्वार्थी से ही परार्थ हो

सकता है। जिसका अभी अपना ही अर्थ सिद्ध नहीं हुआ वह दूसरे का अर्थ कैसे सिद्ध करेगा? अपना ही दीया बुझा हुआ है और आप दूसरों में ज्योति जलाने चले हैं--बुझे दीए को लेकर! आपका दीया जल रहा हो, आपकी ज्योति जल रही हो और इतने प्राण से जल रही हो कि आप दूसरे को भी ज्योति देने में समर्थ हों, तो जरूर कुछ दीए जल सकेंगे आपसे। लेकिन पहला कृत्य और पहली दृष्टि तो अपनी ज्योति जली हो।

नहीं तो मैं कई समाज-सेवकों को देखता हूं--बुझे दीए दूसरे दीयों को जलाने जा रहे हैं। कभी-कभी वे दूसरों को और बुझा देते हैं; उनके उपद्रव में दूसरे दीए बुझ जाते हैं। बुझा दीया क्या किसी को जलाएगा? लेकिन अक्सर बुझे दीयों को दूसरों को जलाने की आकांक्षा पैदा होती है। क्यों? क्योंकि उस भांति, मैं बुझा हूं, यह बात भूलने की सुविधा हो जाती है। दूसरे बुझे हैं, उनको जलाना है; इस उपद्रव में वे भूल ही जाते हैं कि हम बुझे हैं।

स्वयं के प्रति पहला प्रयोग; दूसरा गौण है। और जब मैं यह आपसे कह रहा हूं तो यह मैं दूसरे से भी कह रहा हूं। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपनी चिंता कर ले तो इस पृथ्वी पर चिंता का कोई कारण नहीं है। फिर कौन चिंता को बचता है? अगर प्रत्येक अपने हित को साध ले तो अहित की क्या जगह है? फिर कौन बचता है?

इसे हम ऐसा समझें कि यहां प्रत्येक व्यक्ति कोशिश कर रहा हो कि दूसरा स्वस्थ हो, और खुद बीमार रहे; तो यह पूरी पृथ्वी बीमार हो जाएगी। यहां प्रत्येक व्यक्ति सोचे कि दूसरे को ज्ञान मिल जाए, मेरा अज्ञानी होना चल जाएगा; यह पूरी पृथ्वी अज्ञानी हो जाएगी। क्योंकि आप अपने साथ कुछ कर सकते हैं, क्योंकि वह निकटतम चेतना है आपके। अगर वहां कुछ नहीं हो रहा है तो दूसरे की चेतना बहुत दूर है; वहां आप कुछ भी न कर सकेंगे। और भीतर आपके कुछ हो जाए तो उस होने में ही इतनी बड़ी ऊर्जा, इतनी बड़ी शक्ति पैदा होती है कि उसके परिणाम दूसरों में भी झलकने शुरू हो जाते हैं।

इसलिए ताओ कहता है, ताओ-विचार की जो मूल भित्ति है वह यह है कि आप अगर ठीक हो गए तो आप एक ठीक समाज और ठीक जगत की भित्ति बन जाते हैं। सारा ध्यान अपने पर लगा लें।

यह सुन कर ऐसा लगता है कि मैं शायद आपको परार्थ से वंचित कर रहा हूं, परोपकार से हटा रहा हूं, सेवा के मार्ग से च्युत कर रहा हूं। लेकिन आप सेवा के मार्ग पर न हैं, न हो सकते हैं। न आप परोपकार कर सकते हैं; न करने का उपाय है। आप हैं ही नहीं अभी जिससे परोपकार हो सके। जिस चेतना से परोपकार हो सकता है वह आपके भीतर मौजूद नहीं है। तो आपका परोपकार सिर्फ उपद्रव कर सकता है, मिस्चीफ कर सकता है। आप किसी की गर्दन दबा सकते हैं परोपकार के नाम पर, और आप सेवा के नाम पर किसी की छाती पर बैठ सकते हैं।

सेवकों को देखें! वे पैर से शुरू करते हैं दबाना, और फिर गर्दन दबाते हैं। क्योंकि अंतिम लक्ष्य तो गर्दन दबाना है। लेकिन पैर से शुरू करना हमेशा सुगम होता है। और आप भी शांति से लेट जाते हैं--सेवक है, पैर दबा रहा है। और जब सेवक गर्दन दबाता है तब आप परेशान होते हैं; तब आप कहते हैं कि यह क्या कर रहे हो? लेकिन कोई पैर दबाना नहीं चाहता, गर्दन ही दबाना चाहते हैं। लेकिन पैर से शुरू करना पड़ता है। वह ठीक विधि है। इसलिए सेवक आखिर में मालिक बन जाते हैं।

देखें हिंदुस्तान में, जिन-जिन ने स्वतंत्रता के दिनों में सेवा की, वे सब अब छाती पर बैठे हैं। अब वे कहते हैं कि हमने सेवा की थी! हम राष्ट्र की आजादी के लिए लड़े! किसने तुमको कहा? अब वे बदला मांगते हैं। अब वे कहते हैंः बदला चाहिए, प्रतिफल चाहिए, पुरस्कार चाहिए। लेकिन जब उन्होंने शुरू किया था तब उन्होंने पैर दाबने से शुरू किया था। अब वे मुल्क की गर्दन को पकड़े हुए हैं।

ध्यान रखिए, आपके गहरे मन में सेवा तो पैदा हो ही नहीं सकती, जब तक अहंकार है। जिस दिन अहंकार नहीं होगा उस दिन आप जो भी करेंगे वह सेवा होगी। सेवा करनी नहीं पड़ेगी; आपका सब करना सेवा बन जाएगा। पहले स्वयं को बदल लें, और आप एक बदलने वाली दुनिया के केंद्र बन जाते हैं।

तीसरा प्रश्नः एक मित्र पूछते हैं, यदि भीतर के स्वर्ग और पृथ्वी का आलिंगन टूट जाने से कैंसर जैसी बीमारी पैदा हो सकती है तो रामकृष्ण और रमण जैसे ज्ञानियों को कैंसर के रोग से क्यों मरना पड़ा? क्या उनके भीतर के स्वर्ग और पृथ्वी विच्छिन्न हो गए थे? उनको तो कैंसर मात्र को छोड़ कर और किसी भी रोग से मरना चाहिए था।

ताओ पृथ्वी और स्वर्ग को निकट लाने की चेष्टा है। न तो रमण ताओ के मार्ग से चल रहे थे और न रामकृष्ण। रामकृष्ण और रमण ताओ के विपरीत मार्ग से चल रहे थे। वह भी मार्ग है; वह मार्ग है पृथ्वी और स्वर्ग को दूर ले जाने का। शरीर और आत्मा अलग है, इस भाव से रमण और रामकृष्ण चल रहे थे। शरीर को छोड़ देना है, और छोड़ते जाना है; शरीर और आत्मा के बीच विस्तार को बढ़ाना है, जगह को बढ़ाना है; और एक ऐसी घड़ी लाना है जहां सिर्फ आत्मा ही का अनुभव रह जाए और शरीर बिल्कुल भूल जाए। तो स्वभावतः, रमण और रामकृष्ण के शरीर और आत्मा के बीच का सारा संबंध टूट गया था। पृथ्वी और स्वर्ग दूर हो गए थे, जितने दूर हो सकते हैं। इसलिए मैं कहता हूं, उनको कैंसर से ही मरना चाहिए था। वही उचित है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ज्ञानी नहीं थे। और इसका यह भी अर्थ नहीं है कि वे परम निर्वाण को उपलब्ध नहीं हो गए। लेकिन वह मार्ग द्वंद्व को उसकी अति पर पहुंचा देने का है।

लाओत्से का मार्ग द्वंद्व को उसकी शून्य स्थिति तक पहुंचा देने का है। अतियों से छलांग लगती है। या तो शरीर और आत्मा बिल्कुल अलग हो जाएं कि शरीर का पता ही न चले तो भी छलांग लग जाती है। और या शरीर और आत्मा इतने एक हो जाएं कि शरीर का पता न चले तो भी छलांग लग जाती है। दोनों हालत में शरीर का पता नहीं चलता। आप बीच की हालत में हैं। शरीर का पता भी चलता है; दूरी भी है, और एकता भी है। फासला भी लगता है किसी क्षण में कि मैं शरीर नहीं हूं, और व्यवहार में आप, मैं शरीर हूं, इस भांति जीते हैं। आप मध्य में खड़े हैं। इस मध्य के दोनों तरफ मार्ग है। एक मार्ग है कि आप शरीर को छोड़ते ही चले जाएं; फासला अनंत हो जाए। फासला इतना हो जाए कि आपका और शरीर के बीच कोई संबंध, कोई सेतु न रह जाए, सब तंतु टूट जाएं। और एक अति पर, एक एक्सट्रीम पर आ गए आप; यहां से छलांग लग जाएगी। आप सौ डिग्री उबलती हुई अवस्था में आ गए; तनाव आखिरी हो गया। जब तनाव आखिरी होता है तो टूट जाता है। सौ डिग्री पानी उबल रहा है; अब आप भाप बन जाएंगे।

लाओत्से का मार्ग बिल्कुल विपरीत है। वह कहता है कि और करीब आ जाओ, और करीब आ जाओ। मध्य में खड़े हो; थोड़ी सी दूरी है, वह भी मिटा दो। पृथ्वी और स्वर्ग को बिल्कुल करीब ले आओ; इतने करीब, इतने करीब कि तुम एक हो जाओ। शून्य डिग्री पर आ जाओ, जहां से छलांग लग जाती है और पानी बर्फ हो जाता है। एक हो जाओ। इतना भी पता न रहे कि शरीर है।

ये दो मार्ग हैं। शरीर से दूरी पर कैंसर पैदा हो सकता है। कुछ अनहोना नहीं है। अगर लाओत्से से पूछो तो वे कहेंगे कि रामकृष्ण और रमण के लिए कैंसर होना ही चाहिए था। यह बिल्कुल ठीक है। लाओत्से के मानने

वाले को कैंसर नहीं हो सकता। क्योंकि दूरी कम करने का सवाल है। दोनों स्थितियों से परम अवस्था उपलब्ध हो जाती है; दोनों छोरों से छलांग लग जाती है।

रामकृष्ण और रमण का मार्ग थोड़ा अप्राकृतिक है। लाओत्से का मार्ग बिल्कुल प्राकृतिक है। लाओत्से कहता है, निसर्ग के साथ एक हो जाओ; तोड़ो ही मत अपने को। इसलिए लाओत्से के मार्ग में शुरू से ही शांति आनी शुरू हो जाएगी, और शुरू से ही तथाता घटने लगेगी, और शुरू से ही मौन आने लगेगा; क्योंकि संघर्ष शुरू से ही छूट रहा है। रमण और रामकृष्ण के मार्ग पर अंतिम क्षण में शांति घटित होगी। शुरू में तो अशांति बढ़ेगी, तनाव बढ़ेगा, परेशानी बढ़ेगी, आध्यात्मिक पीड़ा बढ़ेगी। क्योंकि लड़ाई होगी, द्वंद्व होगा, संघर्ष होगा, तपश्चर्या होगी।

तपश्चर्या का अर्थ ही यह है कि शरीर से अपने को हटाना। जहां-जहां जोड़ है वहां-वहां तोड़ना। पीड़ा स्वाभाविक है। बहुत संताप होगा। इस संताप की अंतिम घड़ी में ही अचानक सब बदल जाएगा; संताप विलीन हो जाएगा। जब सब संबंध टूट जाएंगे तो दुख सब विलीन हो जाएगा।

इन दोनों छोरों से एक ही सागर में छलांग लगती है। वह सागर एक है। जहां लाओत्से पहुंचता है, वहीं रमण पहुंचते हैं। लेकिन उनके यात्रा-पथ बिल्कुल भिन्न हैं। ताओ का यात्रा-पथ बड़ा सुखद है। ताओ का यात्रा-पथ बड़ा सरल है। ताओ सहज योग है।

एक मित्र ने पूछा है कि ताओ के सहज स्वभाव के अनुकूल जीवन के साथ भौतिक सभ्यता के विकास का क्या तालमेल रहेगा? कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मनुष्य समाज को उस स्थिति में आदिम अवस्था में लौटना पड़े?

डर भी क्या है? लौटना भी पड़े तो डर क्या है? हर्ज क्या हो जाएगा? पा क्या लिया है? खोया ही है कुछ; पाया कुछ भी नहीं है।

तो पहली तो बात यह है कि आदिम से डरने की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि जिसको हम आज सभ्यता कह रहे हैं वह सिवाय महारोग के और क्या है? लेकिन मैं नहीं मानता कि लौटना पड़ेगा। लौटना होता ही नहीं जगत में। लेकिन लौटना पड़े तो हर्ज कुछ भी नहीं है। क्योंकि आपके पास कुछ है नहीं जो खो जाए। कुछ है ही नहीं। आपकी हालत वैसी है जैसे नंगा नहाए और सोचे कि निचोड़ेंगे कहां? सुखाएंगे कहां?

निचोड़ने को है क्या, सुखाने को है क्या? खो क्या जाएगा? आपने पा क्या लिया है? शोर-शराबा है, उपद्रव है चारों तरफ। उससे लगता है कि कुछ उपलब्धि हो रही है। खो जाए तो हर्ज कुछ भी नहीं है; क्योंकि कुछ पाया नहीं है। पा लिया होता तब कुछ चिंता की बात होती। लेकिन खोएगा नहीं, क्योंकि कुछ खोता नहीं।

और बाहरी परिस्थिति से ताओ का बहुत संबंध नहीं है। ताओ का संबंध भीतरी मनोदशा से है। भीतरी मनोदशा अगर सहज हो जाए, तो आप जहां भी हैं, जिस भौतिक स्थिति में हैं, उस भौतिक स्थिति में भी आप प्राकृतिक हो सकते हैं। कोई प्राकृतिक होने के लिए पहाड़ पर ही जाने की जरूरत नहीं है। प्राकृतिक होना एक मनोभाव है। आप अपने मकान में भी हो सकते हैं। कोई प्राकृतिक होने के लिए सब वस्त्र उतार कर नग्न हो जाने की जरूरत नहीं है। आप वस्त्रों के भीतर भी पूरी तरह नग्न हो सकते हैं। हैं ही। सिर्फ ख्याल है कि नहीं हैं। पूरी तरह नग्न हैं ही। सिर्फ भ्रांति है कि नहीं हैं। आप जहां हैं वहीं प्राकृतिक हो सकते हैं। प्राकृतिक होने के लिए कुछ बाहर की दुनिया को बहुत बदलने की जरूरत नहीं।

लेकिन फिर भी अगर लोग प्राकृतिक होने शुरू हो जाएं तो भौतिक सभ्यता में से बहुत कुछ निश्चित ही खो जाएगा। वह जो-जो रुग्ण है, और जो-जो व्यर्थ है, और जो-जो अकारण है, और जो-जो हमारे बुखार के कारण पैदा हुआ है, वह खो जाएगा। कुछ चीजें तो हमारे बुखार के कारण ही पैदा हुई हैं।

अब जैसे हर आदमी जल्दी में है; हर आदमी जल्दी में है, बिना इसकी फिक्र किए कि कहां पहुंचना है। इतनी जल्दी है कि मिनट न चूक जाए। इतनी परेशानी है कि समय न खो जाए। लेकिन जाना कहां है? और समय बचा कर क्या करिएगा? और लोग समय बचा लेते हैं, फिर पूछते हैं, अब क्या करें? समय का क्या करें? और इसको बचाने में जीवन दांव पर लगाए रखते हैं।

एक आदमी कार से भागा चला जा रहा है। वह जीवन दांव पर लगा सकता है, क्योंकि कहीं पांच मिनट ज्यादा न लग जाएं। और पांच मिनट बचा कर--जिसके लिए उसने जीवन खतरे पर लगाया--पांच-दस मिनट बचा कर वह पांच-दस मिनट पहले पहुंच जाएगा अपने मकान पर। फिर अब वह लेट कर सोच रहा है, अब क्या करना है? टेलीविजन चलाऊं? रेडियो शुरू करूं? सिनेमा देखने जाऊं? समय कैसे काटूं? इस आदमी को पूछें कि पहले समय बचा रहा है, फिर पूछ रहा है समय कैसे काटें?

आप पूरी जिंदगी यही कर रहे हैं। एक त्वरा है, एक तेजी है। तेजी का कारण कोई लक्ष्य नहीं है। कोई लक्ष्य हो तो समझ में आता है। कहीं ऐसी जगह पहुंचना हो, जिसके लिए जीवन भी दांव पर लगाना हो, तो समझ में आता है। पहुंच रहे हैं सिर्फ अपने घर, जहां पहुंचने की कोई इच्छा भी नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन पूछ रहा था अपने एक मित्र से कि तू रात इतनी देर तक मधुशाला में रुक कर शराब क्यों पीता रहता है? क्या पत्नी बहुत कलह करने वाली है? क्या घर जाने से डरता है? भयभीत है? उस आदमी ने कहा, मैं तो अविवाहित हूं। तो मुल्ला ने कहा, फिर पागल, शराब पीने की क्या जरूरत है? और यहां इतनी देर बैठने की क्या जरूरत है? हम तो विवाहित होने की वजह से यहां बैठे रहते हैं। और इतना पी लेते हैं, जब अपना होश ही नहीं रहता तो क्या गुजरती है घर जाकर... ।

जिस घर से आप भागते हैं सुबह तेजी से, उसी घर की तरफ तेजी से शाम को भागते हुए आते हैं। शायद आपकी तेजी का कुछ कारण और है। जहां आप पहुंचना चाहते हैं वहां पहुंचने की कोई इच्छा नहीं; लेकिन तेजी की कोई और मनोवैज्ञानिक व्यवस्था होगी भीतर। असल में, जितनी आप तेजी में होते हैं उतना स्वयं को भूलना आसान होता है। जितने धीमे चलते हैं उतने स्वयं की याद आती है। जितने आहिस्ता चलते हैं उतना खुद का पता चलता है कि मैं हूं--और जिंदगी व्यर्थ जा रही है। तेजी में होते हैं धुआंधार, कुछ पता नहीं चलता। तेजी एक शराब है। स्पीड अल्कोहलिक है। जितनी तेजी में होते हैं! देखें, तेजी से चल कर देखें, आपको फिर अपना होश नहीं।

इसलिए बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, तेजी से मत चलना। बहुत आहिस्ता चलना। और सीमा बनाना, जहां तुम्हें अपना स्मरण भूलने लगे बस वही सीमा है। उससे कम। तेजी से मत चलना। आहिस्ता पैर रखना। धीमे जाना, ताकि तुम्हें अपना स्मरण न खोए।

आदमी तेजी का उपयोग करता है अपने को भूलने के लिए। फिर हर चीज में तेजी हो जाती है। और आखिर में मौत के सिवाय कहीं पहुंचना नहीं है। जल्दी पहुंच जाते हैं थोड़ा; और क्या? धीमे चलते, थोड़ी देर से पहुंचते। धीमे चलते, सौ साल जीते; जल्दी चलते हैं, साठ साल में समाप्त हो जाते हैं। मौत पर पहुंचना है, और मरना कोई चाहता नहीं, और बड़ी तेजी है। कहां जा रहे हैं? किससे मिलने की आकांक्षा है? कौन है वहां मिलने को?

अगर लाओत्से की धारणा हमारे जीवन में आ जाए तो तेजी खो जाएगी। हम आहिस्ता चलेंगे, हम आहिस्ता जीएंगे, श्वास लेते हुए जीएंगे। कोई जल्दी न होगी, कोई भाग-दौड़ न होगी। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भौतिक सभ्यता खो जाएगी; भौतिक सभ्यता में जो रोग है, जो पागलपन है, वह खो जाएगा। बहुत सी चीजें खो जाएंगी। जैसे एक आदमी धन इकट्ठा करता जाता है। वह सोचता है कि भोगेंगे, कभी भोगेंगे। अभी है ही कहां जो भोगें? इकट्ठा करो। इकट्ठा करो। वह इकट्ठा करते-करते मर जाता है। क्योंकि धन कभी इतना नहीं होता कि इकट्ठा करने वाले को लगे कि पर्याप्त हो गया। पर्याप्त धन किसी के पास होता ही नहीं। राकफेलर के पास भी नहीं होता, मार्गन के पास भी नहीं होता, कार्नेगी के पास भी नहीं होता। पर्याप्त धन किसी के पास होता ही नहीं। क्योंकि धन की यह व्यवस्था है कि वह जितना भी हो, अपर्याप्त मालूम होता है। क्योंकि वासना से तुलना करते हैं हम धन की। वासना अंतहीन है, अनंत है। ब्रह्म के अनंत होने का तो हमें कोई पता नहीं, लेकिन वासना के अनंत होने का प्रत्येक को पता है। वासना अनंत है। और वासना के मुकाबले धन हमेशा छोटा पड़ता है--कितना ही हो।

कार्नेगी दस अरब रुपया छोड़ कर मरा। मरते वक्त भी दुखी था, क्योंकि वह कह रहा था कि सौ अरब कमाने की मेरी इच्छा थी।

दस अरब काफी रुपया है; लेकिन एंड्रू कार्नेगी के लिए नहीं, आपके लिए लगता है काफी। क्योंकि आपके पास दस ही रुपए हैं, दस अरब बहुत लगते हैं। आप दस रुपए से तौलते हैं दस अरब। एंड्रू कार्नेगी दस से नहीं तौलता, एंड्रू कार्नेगी अपनी वासना से तौलता है दस अरब। वे बहुत छोटे हैं। सौ अरब की वासना है। और ऐसा नहीं कि सौ अरब होने से कोई तृप्ति होती थी। सौ अरब होते-होते वासना हजार अरब की हो जाती। वासना फैलती चली जाती है आगे। वह पीछे नहीं जाती, आगे जाती है; क्षितिज की तरह, आकाश की तरह आगे बढ़ती जाती है।

तो धन सदा अपर्याप्त है। इसलिए जो आदमी कहता है जब पर्याप्त धन होगा तब भोगेंगे, वह पागल है। वह कभी नहीं भोगेगा। वह इकट्ठा करेगा और मरेगा। जीवन उसका इकट्ठा करने में व्यतीत हो जाएगा। यह पागलपन है। इसका पागलपन इसलिए है कि यहां साधन साध्य बन गया। धन साधन था। उससे जीवन भोगा जा सकता था। लेकिन भोगने के लिए धन इकट्ठा करना भूल गया; धन इकट्ठा करना धन इकट्ठा करने के लिए हो गया। यह पागलपन है। अगर आप सहज जी रहे होंगे तो ऐसा नहीं कि आप धन छोड़ कर भाग जाएंगे। लेकिन धन साधन हो जाएगा, साध्य नहीं। आप उसे भोगेंगे अभी।

अब दो तरह का पागलपन पैदा होता है सभ्यता में। हर पागलपन का विपरीत पागलपन भी रहता है। कुछ लोग धन इकट्ठा कर रहे हैं; वे सोचते हैं यही साधन है। इनकी असफलता देख कर--कार्नेगी और राकफेलर को हारा हुआ देख कर--कुछ लोग सोचते हैं कि धन को छोड़ कर भागना चाहिए। धन इकट्ठा करने वाला असफल होता है, यह दिखाई पड़ गया। तो इसका विपरीत परिणाम सोचने में आता है, तर्क कहता है, तो धन इकट्ठा करना मत करो, भागो धन से। तो धन से भागने से तुम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे।

दोनों ही गलती में हैं। न तो धन इकट्ठा करने से कोई आनंद को उपलब्ध होता है और न धन के त्याग करने से कोई आनंद को उपलब्ध होता है। धन का साधन की तरह जो उपयोग करने में सफल हो जाता है, साध्य की तरह नहीं, वह। उसने जीवन की जो-जो भी रहस्यमयता है उसको समझने का पहला कदम उठा लिया। साधन को साधन की तरह व्यवहार करना, उसे साध्य न बनने देना, यह ज्ञानी का लक्षण है।

अज्ञानी दो तरह के हैं। कुछ धन को इकट्ठा करने में लगे हैं, कुछ धन को त्यागने में लगे हैं। ये एक ही तरह के लोग हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हैं। इनमें फर्क नहीं है। धन को इकट्ठा करने वाले में जो मूढ़ता है, वही धन को छोड़ने वाले में होती है। फर्क जरा भी नहीं है। दोनों की दृष्टि धन पर लगी है। और दोनों समझते हैं कि धन साध्य है। एक सोचता है इकट्ठा करके आनंद पाऊंगा, एक सोचता है छोड़ कर आनंद पाऊंगा। लेकिन धन से आनंद मिलेगा, दोनों सोचते हैं। और धन दोनों का लक्ष्य हो जाता है।

जो धन का साधन की तरह उपयोग करता है उसके लिए धन लक्ष्य नहीं है; उसके लिए आनंद लक्ष्य है। अगर धन सुविधा जुटाता है आनंद की तो वह धन का उपयोग करता है, और अगर वह देखता है कि धन असुविधा जुटा रहा है आनंद के लिए तो वह धन को छोड़ देता है। लेकिन दोनों हालत में धन साधन होता है। इस बात को समझ लें। धन साध्य नहीं होता। अगर उसे लगता है कि धन से सुविधा जुटती है मेरे आनंद और मेरे जीवन-सत्य को पाने के लिए, वह धन का उपयोग करता है। अगर उसे लगता है कि धन से असुविधा होती है तो वह धन छोड़ देता है। लेकिन वह कहता नहीं फिरता कि मैंने धन का त्याग किया। क्योंकि धन का कोई मूल्य ही नहीं है।

धन का कोई भी मूल्य नहीं है। सिर्फ निर्बुद्धियों के लिए धन का मूल्य है--फिर चाहे वे इकट्ठा कर रहे हों तिजोड़ी में और बैंक में, और चाहे त्याग करके संन्यास के रास्ते पर जा रहे हों। सिर्फ नासमझों के लिए धन का मूल्य है। समझदार के लिए धन एक साधन है।

जैसे नाव से कोई पार होता है और नाव को भूल जाता है। लेकिन नाव अगर डुबाती हो तो वह छलांग लगा कर बीच में ही कूद जाता है। यह इस पर निर्भर करता है कि नाव ले जाती है या डुबाती है। आप नाव में चले, और बीच में आपको लगा कि नाव डुबा देगी, इसमें तो छेद है, तो आप कूद गए। तो आप कोई चिल्लाते नहीं फिरते कि मैंने नाव का त्याग कर दिया। आप जानते हैं कि लक्ष्य था उस पार जाना, नाव ले जाती तो उपयोग कर लेते, नाव नहीं ले गई तो हम तैर कर गए। लेकिन इसका कोई शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं है। नाव मूल्यहीन है।

जैसे ही कोई व्यक्ति ताओ के अनुसार जीता है, जीवन में जो भी व्यवस्थाएं हैं वे साधन हो जाती हैं। वे साधन ही रहती हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि साधन, भौतिक सुविधा, भौतिक समृद्धि टूट जाएगी। लेकिन उससे पागलपन विदा हो जाएगा। आपके पास जो भी है उसका आप पूरा रस ले पाएंगे, और जो नहीं है उसकी आप चिंता नहीं करेंगे। और जिसके पास जो है अगर वह उसका रस ले तो बढ़ता जाता है। यह समृद्धि का दूसरा ही सूत्र है; अनूठा ही सूत्र है। आप जिस चीज में रस लेते हैं वह आपके पास बढ़ती जाएगी। आपका रस बढ़ता जाएगा; रस बढ़ने के साथ चीज बढ़ती जाएगी। घटने का कोई सवाल नहीं है।

लेकिन हम तो अभाव में हमारी आंख लगी रहती है। हम देखते रहते हैं, क्या-क्या हमारे पास नहीं है। उसका हम हिसाब लगाए रखते हैं। उससे हम पीड़ित और परेशान होते हैं। और जो हमारे पास है उसे हम भोगने से वंचित रह जाते हैं। अगर ताओ के अनुसार, जो हमारे पास है उसे हम परम धन्यभाग से भोग सकें, तो ईश्वर के प्रति हमारा अनुग्रह बढ़ेगा, घटेगा नहीं।

हम सब के मन में कोई अनुग्रह नहीं है ईश्वर के प्रति। हम कुछ भी कहते हों, लेकिन कृतज्ञता का कोई बोध नहीं, कोई ग्रेटीट्यूड नहीं है। हो भी कैसे? इतना दुख भोग रहे हैं। तो अगर सचाई से कहें तो उसी की वजह से भोग रहे हैं। तो क्या अनुग्रह का भाव रखें! ईश्वर आपको कहीं मिल जाए तो आप अदालत में मुकदमा चला सकते हैं कि इसी ने हमें जन्मों-जन्मों तक... । क्या जरूरत थी पैदा करने की?

मैं एक युवक को जानता हूं जिसने अपने पिता से कहा कि क्या जरूरत थी मुझे पैदा करने की? इसी जीवन के लिए, जिसमें सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है?

डी.एच.लारेंस ने लिखा है कि मैं बेटा पैदा नहीं करना चाहूंगा जब तक कि मैं इस जवाब को देने में समर्थ न हो जाऊं--कि अगर वह मुझसे पूछे कि किसलिए मुझे पैदा किया? तो मेरे पास कोई जवाब नहीं है। तो अपने ही बेटे के सामने निरुत्तर होना मैं नहीं चाहता। इसलिए मैं बेटा पैदा नहीं करूंगा। यह तो जवाब मेरे पास होना चाहिए कि अगर बेटा पूछे कि किसलिए मुझे पैदा किया? इसी सब पागलपन, विक्षिप्तता में सम्मिलित होने के लिए? इसी जीवन का दुख झेलने के लिए?

अगर आपको परमात्मा मिल जाए तो सच पूछिए, आप क्या पूछिएगा उससे कि किसलिए मुझे पैदा किया? क्या जरूरत थी? क्या बिगाड़ा था तुम्हारा? न होना अच्छा था; इस होने में कुछ भी तो पाया नहीं। इसलिए आप में अनुग्रह का भाव हो नहीं सकता। दुख ही दुख है। और दुख क्यों है? क्योंकि अभाव पर नजर है। जो है, उस पर नजर नहीं है।

ताओ का कहना इतना ही है, जो है उसका सहज उपयोग, सरल उपयोग, नैसर्गिक उपयोग। और उससे जितना रस मिल सके, उसका रस का आस्वादन। वह आस्वाद ही प्रभु के प्रति अनुकंपा, वह प्रभु की अनुकंपा का भाव, अनुग्रह का भाव पैदा करेगा।

डर बिल्कुल मत रखें कि आदिम अवस्था में लौटना पड़ेगा। लौट जाएं तो हर्ज कुछ भी नहीं है। लौटेंगे नहीं। स्वस्थ अवस्था में जरूर लौट जाएंगे। यह जो अवस्था है, अस्वस्थ है। यह सभ्यता अस्वस्थ है। स्वस्थ हो सकती है सभ्यता, अगर हमारे सभ्यता के आधार बुनियादी, नैसर्गिक हो जाएं। अभी सब अप्राकृतिक है।

अभी एक बच्चा आपके घर में पैदा हो तो आप उसको अप्राकृतिक होना सिखाना शुरू कर देते हैं। आप उसमें क्या पैदा करते हैं? महत्वाकांक्षा पैदा करते हैं। आप कहते हैं कि देखो, पड़ोसियों के बेटे आगे निकले जा रहे हैं! कुल का नाम रखना। किसके घर पैदा हुए हो, इसका ध्यान रखना। इन सबको मात करना। चाहे आप प्रकट ऐसा न कहते हों, लेकिन आपकी सारी आयोजना यह है कि इन सबको मात करना है। और जब आपका बेटा नंबर एक आ जाएगा स्कूल में तब आप खुश हैं, आपकी छाती फूली नहीं समाती। आपने क्या सिखाया लड़के को? कि दूसरों को मात करके आगे निकलना है। पंक्ति में आगे खड़ा होना है। फिर येन केन प्रकारेण, जैसे भी इससे बनेगा यह पंक्ति में आगे आएगा। धक्का-मुक्की दे, उपद्रव करे, चोरी करे, बेईमानी करे, नकल करे, कुछ भी करे, लेकिन नंबर एक। और हरेक जानता है कि अगर आप नंबर एक हो गए तो नंबर एक होने में जो-जो आपने उपद्रव किए वे सब क्षमा हो जाते हैं। नहीं हो पाए तो दिक्कत में पड़ोगे।

ध्यान रखना, एक आदमी राजनीति में चलता है नंबर एक होने की कोशिश में; अगर हो जाए तो सब पाप क्षमा हो जाते हैं। फिर कोई बात ही नहीं करता कि उसने क्या-क्या किया, और कैसे वह प्रधान मंत्री हुआ; उसकी कोई बात ही नहीं करता। न हो पाए तो दुनिया कहती है कि देखो, बेईमान था, असफल हुआ। यहां लोग कहते हैं कि जो असफल हो जाए वह बेईमान है; जो सफल हो जाए वह ईमानदार है। यहां लोग कहते हैं कि सत्यमेव जयते, वह जो सत्य है, सदा जीतता है। हालत उलटी है। जो जीत जाता है उसको हम समझते हैं सत्य होना चाहिए; तभी तो जीत गया। जो हार जाता है, हम समझते हैं, असत्य होना चाहिए। नहीं तो सत्यमेव जयते! हारे क्यों? सब सत्य हो जाता है जब आप जीत जाते हैं। जीत सभी चीज को सत्य की रौनक दे जाती है। तो फिर जीतो किसी भी तरह; एक ही लक्ष्य है कि आगे नंबर एक खड़े हो जाओ; सब पाप क्षमा हो जाएंगे।

बच्चे को आप यही दौड़ सिखा रहे हैं, फीवर पैदा कर रहे हैं, पागलपन पैदा कर रहे हैं। यह दौड़ेगा, दौड़ेगा; और जिंदगी भर दौड़ता रहेगा नंबर एक होने की कोशिश में। और कभी नंबर एक वस्तुतः कोई भी हो नहीं पाता। क्योंकि यहां गोला है, वर्तुल है, जिसमें हम दौड़ रहे हैं। यहां राष्ट्रपति भी नंबर एक नहीं है, प्रधान मंत्री भी नंबर एक नहीं है। यहां कोई नंबर एक कभी होता ही नहीं। क्योंकि हम एक गोल घेरे में दौड़ रहे हैं। कोई न कोई आगे होता है; किसी न किसी कारण आगे होता है। आप प्रधान मंत्री हो गए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। आपका नौकर है, ड्राइवर है, वह आपसे ज्यादा स्वस्थ होता है। उसकी मसल देख कर तबियत मचल जाती है कि नंबर एक। कम से कम मसल के मामले में तो आप... । देखें अपने राजनीतिज्ञ को, तो उसको बेचारे को ड्राइवर को देख कर लगता है, वह भी डरता है कि उसकी पत्नी कहीं ड्राइवर में उत्सुक न हो जाए। डरा हुआ है।

सभी सम्राट अपने हरम के आगे नपुंसकों की भीड़ इकट्ठी करके रखते थे कि कहीं कोई पुरुष उनकी पत्नियों को देख न ले; उनकी पत्नियां किसी पुरुष को न देख लें। क्योंकि सम्राटों के पास शरीर तो रह नहीं जाता था। कोई शरीर का तो बल नहीं था, कोई प्रेम का आकर्षण नहीं था, जिसकी वजह से कोई पांच सौ रानियां उनके पास रुकी रहें। तो उनको रोकने का उपाय करना पड़ता था। क्योंकि वे किसी भी पुरुष में उत्सुक हो सकती हैं। अब उस सम्राट की दीनता आप समझें, जिसको अपनी पत्नी से डर है कि वह किसी भी पुरुष में उत्सुक हो सकती है। हालांकि वह नंबर एक खड़ा है। लेकिन सड़क पर चलने वाला भिखारी भी शरीर से ज्यादा आकर्षक हो सकता है।

तो बड़ी मुश्किल है। यहां हजार मामले हैं। कोई एक ही क्यू होता तो आप आगे खड़े हो जाते। यहां हजार क्यू लगे हैं। एक क्यू में आगे हो जाते हैं तो नौ सौ निन्यानबे क्यू में कोई दूसरा आदमी आगे खड़ा है। यहां कोई उपाय नहीं है। और एक ही साथ आप कितने क्यू में कैसे खड़े हो सकते हैं? यहां कभी कोई प्रथम नहीं हो पाता।

इसलिए जिस दिन आप बच्चे को प्रथम होने की दौड़ सिखाते हैं उसी दिन आपने पागल होने के बीज बो दिए। अब वह कभी भी सुखी नहीं हो पाएगा। वह दुखी ही होगा। दुख बढ़ता ही चला जाएगा। विषाद के सिवाय उसका कोई अंत नहीं है।

लेकिन हम सोचते हैं कि हम बड़ी कला सिखा रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम समाज, सभ्यता, महत्वाकांक्षा। महत्वाकांक्षा हमारी इस सभ्यता की जड़ में है। स्पर्धा, और उस स्पर्धा के कारण हम सब बीमार हैं।

अगर आप स्वभाव के अनुकूल होंगे तो आप प्रथम होने की दौड़ में नहीं होंगे; महत्वाकांक्षा नहीं होगी। इसका यह अर्थ नहीं कि आप कुछ भी न करेंगे। अभी हमको लगता है कि अगर महत्वाकांक्षा न रही तो हम कुछ करेंगे ही नहीं। गलत है यह ख्याल। फर्क पड़ेगा। आप जो करते हैं शायद यह न करेंगे; लेकिन अगर महत्वाकांक्षा खो जाए तो आप कुछ करेंगे जो आपके लिए आनंदपूर्ण है।

अभी एक आदमी डाक्टर है, या एक आदमी इंजीनियर है, या एक आदमी दुकानदार है। यह दुकानदार कवि होना चाहता है। इसकी स्वाभाविक इच्छा तो यह थी कि वृक्ष के नीचे बैठ कर कविताएं करे। लेकिन उससे महत्वाकांक्षा पूरी नहीं हो सकती थी। धन तो दुकान से इकट्ठा हो सकता है, कविताओं से इकट्ठा नहीं हो सकता। अगर यह अनुकूल स्वभाव के जीता तो चाहे भूखा मरता, लेकिन कविता करता। और मैं मानता हूं कि जो स्वभाव में सहज मालूम पड़े--चाहे कविता करना ही क्यों नहीं--उसके लिए भूखा भी मरना पड़े तो भी जीवन में एक आनंद होगा और एक शांति की छाया होगी। और यह आदमी, जो भूखा मरने के डर से, और पीछे न छूट

जाए, इस डर से दुकान पर बैठा है, यह धन इकट्ठा कर लेगा; लेकिन इसको तृप्ति कभी नहीं मिलेगी। क्योंकि तृप्ति तो चाहिए थी स्वभाव को; उससे तो यह वंचित हो गया। और कविता की जगह धन इकट्ठा करने में लग गया। कितना ही धन इकट्ठा हो जाए, एक कविता का जन्म इसे जितना आनंद दे सकता था, लाखों की संपदा इसको उतना आनंद नहीं दे पाएगी। क्योंकि वह स्वभाव से उसका मेल ही नहीं खाता।

निश्चित ही, अगर हम महत्वाकांक्षा छोड़ दें, तो जो हम कर रहे हैं सौ में निन्यानबे मौकों पर, वह हम नहीं करेंगे। हम कुछ और करेंगे जो हम सदा करना चाहते थे। लेकिन वह हम कभी नहीं कर सके, क्योंकि उससे महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होती थी। हम दूसरे से आगे न होना चाहें तो हम जो होना हमारी नियति है वह हम हो जाएंगे। हम कुछ करेंगे, लेकिन फिर हमारा करना हमारा आनंद होगा। उससे जीवन का पोषण हो जाएगा। लेकिन फिर जीवन की महत्वाकांक्षा, वह जो विक्षिप्त दौड़ है, वह उससे पूरी नहीं होगी। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। साधारण होने से ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है। क्योंकि तब आदमी एट ई.ज, विश्राम में हो पाता है। वह असाधारण होना, असाधारण होने का ख्याल दौड़ाता रहता है; गति से दौड़ाता है, और कहीं भी हम पहुंच नहीं पाते।

एक मित्र ने पूछा है, अपनी यथार्थ स्थिति की छोटी सी झलक भी बहुत ग्लानि और पीड़ा से भर देती है। और कई बार अपने मन के भीतर से अच्छे से अच्छे मित्र और परम हितैषी के प्रति भी अकारण ईर्ष्या, द्वेष और हिंसा के भाव उठते देख कर मेरे जी में आया है कि ऐसा जीवन जीने से तो मर जाना बेहतर है। और तब दुबारा उस अंध कुएं में झांकने की हिम्मत नहीं होती, और लगता है कि जीने के लिए कुछ अयथार्थ, कुछ पर्दापोशी, कुछ भ्रम अनिवार्य है शायद। इस हालत में बताएं कि मैं अपनी समस्त यथार्थ स्थिति का उसके पूरे दिगंबरत्व में सामना या साक्षात्कार कैसे करूं?

होगा। जब झांकेंगे तो बहुत पीड़ा होगी। लेकिन झांकना पड़ेगा और पीड़ा झेलनी पड़ेगी। क्योंकि पीड़ा को झेलने से ही उससे छुटकारा है। उससे आंख चुराने से कुछ भी न होगा। और हमारे सब भ्रम आंख चुराने के उपाय हैं। सब भ्रम तोड़ने ही होंगे। क्योंकि सत्य के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है; सत्य चाहे कितना ही पीड़ादायी क्यों न हो। और ध्यान रखें कि सत्य पहले पीड़ादायी होगा, क्योंकि असत्य के साथ हमने सुख के झूठे भ्रम बना रखे हैं। और जब सत्य की पहली किरण उतरेगी तो असत्य का अंधेरा टूटेगा; बहुत पीड़ा होगी। क्योंकि हमारा सब अतीत व्यर्थ हो जाएगा। हमारी सब कमाई झूठी सिद्ध होगी। हमने जो भी अर्जित किया है वह धूल से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है। वहां कोई सोने के कण नहीं हैं। यह जिस दिन दिखाई पड़ेगा तो पीड़ा तो होगी। लेकिन इस पीड़ा को झेलना ही पड़ेगा। क्योंकि इस पीड़ा के बाद ही आनंद की संभावना है।

तो सत्य के दो परिणाम हैं। अक्सर लोग सोचते हैं कि सत्य से आनंद ही आनंद मिलेगा। गलत सोचते हैं। पहले तो बहुत पीड़ा मिलेगी। और जो पीड़ा से गुजरने को राजी है वह सत्य के दूसरे पहलू से परिचित होगा; वह आनंद का है। लेकिन मार्ग तो पीड़ा का होगा। क्योंकि झूठ हमने सजाया है; वह टूटेगा। हमारे सपने इंद्रधनुषी हैं; उनमें कोई जान नहीं है। जरा सी चीज उन्हें तोड़ देगी। बिल्कुल कागज की नाव है; कहीं भी डुबा देगी।

अब जो आदमी कागज की नाव में यात्रा कर रहा है, अगर आप उससे कहें कि नीचे देखो, कागज की नाव है, मरोगे! इससे तो उसी किनारे पर रहते तो बेहतर था; या पहले से ही तय करके चलते कि डूबने का डर है तो

तैरना सीख लें; इस नाव में बैठ कर तो उपद्रव है, यह कागज की नाव डूबेगी। वह आदमी कहेगा कि इसकी मुझे याद मत दिलाओ; क्योंकि जब तक नहीं डूबी है तब तक तो कम से कम मैं सुख में हूं। जब डूबेगी तब देखेंगे। और ऐसा भी क्या है, कागज की नाव भी पार हो सकती है। और फिर सभी तो कागज की नाव में चल रहे हैं; डर भी क्या है? और कोई तो अपनी नाव नहीं देखता। सब आगे लक्ष्य देखते हैं; वह किनारा, दूर का किनारा, उसका सुहावना सपना देखते हैं। नीचे कागज की नाव है। इसलिए जो भी याद दिलाएगा, वह दुश्मन मालूम पड़ेगा। लगेगा कि यह मित्र नहीं है। क्योंकि पीड़ा होगी, भय पकड़ेगा।

लेकिन मैं मानता हूं कि पीड़ा हो, भय पकड़े, हर्ज नहीं; क्योंकि कागज की नाव डुबाएगी ही। वह दूसरे किनारे तक ले जाने वाली नहीं है। और दूसरे किनारे पर जो आपकी आंखें लगी हैं वे सिर्फ नाव को भुलाने के लिए लगी हैं।

पीड़ा है स्वयं को देखने में; क्योंकि बहुत घृणित सब कुछ वहां इकट्ठा है। लेकिन वह आपने ही इकट्ठा किया है। और जितनी जल्दी देखना शुरू कर दें, उतना ही लाभ है। क्योंकि देखने के बाद फिर आप इकट्ठा करना बंद कर देंगे--एक बात। क्योंकि इस कचरे को कौन इकट्ठा करेगा? दूसरी बात--देखने के बाद इसको आप निष्कासित करना, हटाना, इसका निकालना शुरू कर देंगे; इसकी अभिव्यक्ति शुरू कर देंगे; इसको बाहर फेंकना शुरू कर देंगे। क्योंकि कचरे को देख कर फिर कोई भी बरदाश्त नहीं करेगा। और यह कचरा साफ हो जाए और नया कचरा इकट्ठा न हो, तो आप अपने स्वभाव में थिर होने लगेंगे।

पीड़ा होगी, और यह पीड़ा उतनी ही लंबी होगी जितना आप इस पीड़ा को झेलने से डरेंगे। इसको ही मैं तप कहता हूं। न तो धूप में खड़े होने को, न उपवास करने को; इसको ही मैं तप कहता हूं। अपने भीतर जो-जो हमने व्यर्थ इकट्ठा कर लिया है, जो कांटे, कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लिया है, उसे देखना। और वह है। आप अगर उसे देखेंगे तो भय लगेगा। लगेगा कि अपना ही मित्र है, लेकिन उसके प्रति भी ईर्ष्या है! अपना ही मित्र है, लेकिन उसकी भी सफलता हम नहीं चाहते! ऐसे हम कहते हैं कि तुम सफल होओ, युग-युग जीयो। उसके जन्मदिन पर कहते हैं, यह दिन हजार बार आए। सब कहते हैं।

लेकिन अगर भीतर झांकेंगे तो लगेगा कि उसका सुख भी पीड़ा देता है; वह भी सफल होता है तो कहीं कुछ चोट लगती है। लगता है कि मैं हारा और वह सफल हो रहा है; मुझसे आगे जा रहा है। तो ईर्ष्या पकड़ती है, जलन पकड़ती है, द्वेष पकड़ता है। और ऊपर से हम जो सजाए हुए हैं वह सब झूठा मालूम पड़ता है। तो लगता है कि भूलो इसको, भीतर देखो ही मत। यह जो झूठ सुंदर है, सुखद सपना है, इसको सम्हाले रहो; और कहते चले जाओ ऊपर से कि तेरी खुशी हमारी खुशी है, तेरा जीवन हमारा जीवन है। और भीतर यह रोग।

वह जो भीतर है वही सच है; वह जो बाहर है झूठ है। इसका मतलब यह नहीं कि आप जाकर अपने सब मित्रों को बता दें कि आपके भीतर क्या-क्या है। कोई आवश्यकता नहीं है। किसी को दुख देने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम दुख देने में इतने कुशल हैं कि हम सत्य का उपयोग भी दुख देने के लिए करना शुरू कर देते हैं। कुछ लोग सत्यवादी हो जाते हैं इसीलिए। इसलिए नहीं कि सत्य से उन्हें कुछ आकर्षण है; सत्यवादी इसलिए हो जाते हैं कि सत्य से ज्यादा चोट और किसी चीज से नहीं पहुंचाई जा सकती। कुछ लोग कहते हैं कि भई, हम तो स्पष्ट वक्ता हैं। स्पष्ट वक्ता वगैरह कुछ नहीं होते, लेकिन वे जानते हैं कि इससे ज्यादा गाली और कोई नहीं हो सकती।

आस्कर वाइल्ड से किसी ने कहा कि कुछ लोग तुम्हारे खिलाफ बड़ी झूठी खबरें फैला रहे हैं, अखबारों में लेख लिख रहे हैं तुम्हारे संबंध में, तो तुम उनका विरोध क्यों नहीं करते? आस्कर वाइल्ड ने कहा कि झूठी

खबरों का क्या विरोध करूं! और डर लगता है कि कहीं वे मेरे संबंध में सच्ची बातें कहना शुरू न कर दें। झूठी ही फैला रहे हैं, कोई फिक्र नहीं; डर तो सत्य का है। क्योंकि सत्य से जितनी चोट पहुंचाई जा सकती है उतनी किसी चीज से नहीं पहुंचाई जा सकती।

और जब कोई आपके संबंध में कुछ झूठ कहता है तो आपको चोट नहीं पहुंचती; जब कोई सत्य कहता है तब चोट पहुंचती है। इसलिए परीक्षा यही है कि जब आपको चोट पहुंचे किसी की बात से तो ध्यान रखना कि उसके सत्य होने की संभावना है। और अगर चोट न पहुंचे तो फिक्र की कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि उसका मतलब वह झूठ है। कोई आदमी आपसे कहता है कि चोर! अगर आप चोर हो तो चोट पहुंचती है; नहीं हो तो चोट नहीं पहुंचती। आप हंस सकते हो कि कैसा पागलपन कि यह आदमी सोचता है चोर। लेकिन अगर आप चोर हो तो आप उसकी गर्दन पर वहीं सवार हो जाओगे कि क्या कहा, मैं और चोर! क्योंकि आप डरे हुए हो कि चोर तो मैं हूं। और अगर इसको जरा ही मौका दिया तो सत्य बाहर हुआ जाता है। आप पर चोट सदा सत्य से पहुंचती है, झूठ से कभी नहीं पहुंचती। इसलिए जिस चीज से चोट पहुंचे उसको आत्म-निरीक्षण बना लेना।

तो कोई जरूरत नहीं कि आप मित्रों को जाकर सत्य कह दें। क्योंकि वे सब टूट पड़ेंगे आपके ऊपर। वे तो आपको मित्र आपके झूठ की वजह से ही समझते थे। पर किसी को दुख देने का कोई कारण ही नहीं है। इसको तो आत्म-निरीक्षण ही बनाना है। अपने भीतर देखना शुरू करें। और भीतर जो द्वेष है, ईर्ष्या है, जलन है, घृणा है, उसे समझें कि वह क्यों है।

वह इसलिए नहीं है कि मित्र सफल हो रहा है इसलिए द्वेष है। वह इसलिए है कि आप किसी पंक्ति में प्रथम होना चाहते हैं, और नहीं हो पा रहे हैं। वह मित्र के कारण नहीं है, उसकी सफलता के कारण नहीं है; अपनी महत्वाकांक्षा के कारण है। आपकी अपनी ही महत्वाकांक्षा का ज्वर आपको पीड़ा दे रहा है। कोई मित्र पीड़ा नहीं दे रहा, कोई शत्रु पीड़ा नहीं दे रहा। दुनिया में कोई किसी को पीड़ा नहीं दे रहा; हम खुद ही अपने को पीड़ा दे रहे हैं।

तो अपने द्वेष को समझें, ईर्ष्या को समझें। वह मित्र के कारण नहीं है; उससे मित्र का कोई संबंध नहीं है। इसलिए उससे कहने की कोई जरूरत भी नहीं है। समझने की बात तो यह है कि मेरी महत्वाकांक्षा, कि मैं प्रथम होना चाहता हूं, वही मेरी बीमारी है। उसके कारण सभी से द्वेष है। तो उस महत्वाकांक्षा को समझने की कोशिश करें कि क्या है। उसमें गहरे जाएं और देखें कि वह महत्वाकांक्षा पूरी होना असंभव है। वह कभी किसी की पूरी नहीं होती। तब जैसे हैं, जो हैं, उसे स्वीकार कर लें।

जो व्यक्ति अपने को स्वीकार करता उसका किसी से द्वेष नहीं होता। क्योंकि द्वेष का कोई कारण नहीं है। मैं ऐसा हूं, और जहां मैं खड़ा हूं यही मेरी जगह है, यही मेरा सिंहासन है। इससे अन्यथा मेरा कोई सिंहासन नहीं, और मेरी कोई जगह नहीं। और दूसरे से मेरी कोई लड़ाई नहीं है। क्योंकि दूसरा दूसरा है और मैं मैं हूं। और हम इतने भिन्न हैं कि कोई तुलना का भी कोई सवाल नहीं है। हर आदमी अनूठा है। तुलना व्यर्थ है। और दूसरे से संघर्ष की कोई जरूरत नहीं है। जो मुझे आनंदपूर्ण है वह मैं कर रहा हूं, और जो दूसरे को आनंदपूर्ण है वह दूसरा कर रहा है। अगर आप अपने साथ राजी होने लगें तो सब द्वेष गिर जाएगा। द्वेष का मौलिक अर्थ है कि आप अपने साथ राजी नहीं हैं।

स्त्रियां बहुत द्वेष करती हैं, पुरुषों से ज्यादा। दो स्त्रियों को दोस्त बनाना बहुत मुश्किल है। झूठ भी बनाना मुश्किल है। स्त्रियों में मैत्री बनती ही नहीं। बस एक ही कारण बना रहता है गहरे में, क्योंकि कोई स्त्री अपने शरीर, अपने सौंदर्य से राजी नहीं है; दूसरी स्त्री सदा ज्यादा सुंदर, ज्यादा प्रभावी, पुरुषों को ज्यादा आकर्षित

करती, बांधती मालूम पड़ती है। तो हर स्त्री दूसरी स्त्री को दुश्मन की तरह देखती है। दूर की स्त्रियां तो अलग हैं, जब बेटी जवान होती है तो मां बेटी को दुश्मन की तरह देखना शुरू कर देती है।

अभी एक इटैलियन वृद्धा मेरे पास थी और उसकी लड़की भी मेरे पास थी। उसकी लड़की ने मुझसे कहा कि मेरी मां मुझे प्रेम करती है, लेकिन मैं उसके साथ नहीं रहना चाहती। कारण क्या है? तो उसने कहा कि कारण यह है कि घर में कोई भी आता है, स्वभावतः उसका ध्यान मेरी तरफ ज्यादा जाता है बजाय मेरी मां की तरफ। और वह मुझसे पूछती है कि सब तेरे ऊपर ही ध्यान क्यों देते हैं? घर में जो भी आता है वह तेरे पर ही क्यों ध्यान देता है?

जैसे ही लड़की जवान होती है, मां उसको घर से ढकेलने के लिए उत्सुक हो जाती है। बहाने वह बहुत करती है, कि इसकी शादी करनी है, जल्दी शादी करनी है, ऐसा करना है, वैसा करना है। लेकिन कारण यह होता है कि घर का बिंदु लड़की होने लगती है, मां नहीं रह जाती। ईर्ष्या गहन हो जाती है।

अगर कोई व्यक्ति अपने शरीर और अपने सौंदर्य से राजी है कि यही मैं हूं, परमात्मा ने मुझे ऐसा बनाया है, तब फिर कोई संघर्ष नहीं है।

लेकिन कोई राजी नहीं है। कोई भी राजी नहीं है। जो भी आपके पास है उसमें कमी मालूम पड़ती है। तो फिर तकलीफ होगी। तकलीफ का कारण दूसरा नहीं है; तकलीफ का कारण आपकी यह दौड़ है। समझें भीतर; यह दौड़ समझ के साथ गिरना शुरू हो जाती है। पीड़ा से गुजरना होगा। सभी स्वर्ग नरक के बाद हैं; और कोई सीधा स्वर्ग नहीं जाता। कोई छलांग संसार से सीधी स्वर्ग में नहीं है। कोई रास्ता ही नहीं है वहां जाने का। रास्ता नरक से गुजर कर जाता है। और नरक को झेलने को जो राजी है, स्वर्ग का वह मालिक हो सकता है। और यह नरक है भीतरी।

आखिरी सवालः एक मित्र ने पूछा है कि इन दिनों में आपने महत्वपूर्ण बातें कही हैं, पर पाटकर हाल के बाहर जाते ही मैं पहले जैसा ही मालूम होता हूं, व्यवहार में कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसा क्यों? क्या करना चाहिए?

आप हंसते हैं, क्योंकि यह प्रश्न आप सबका है। सभी के साथ ऐसा होगा। होना बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि किसी बात का अच्छा मालूम पड़ना एक बात है और उसका जीवन में आना बिल्कुल दूसरी बात है।

किसी बात का अच्छा मालूम पड़ना कई कारणों से हो सकता है। एक, वह तर्कयुक्त मालूम होती है। दो, वह आनंद की झलक देती मालूम होती है। तीन, सुनते समय आप इतने लीन हो जाते हैं कि चाहे वह तर्कपूर्ण न हो, चाहे आनंद की झलक देती मालूम न होती हो, लेकिन एक घंटे भर सुनने में आप इतने लीन हो जाते हैं कि एक सुख का झरना आपके भीतर बहने लगता है। इस कारण, वह जो भी कहा गया, आप उससे संबंध जोड़ लेते हैं कि जो कहा गया वह जरूर ठीक होना चाहिए; क्योंकि मुझे घंटे भर सुख की झलक मिली, मैं सुखी था।

लेकिन कमरे के बाहर, कक्ष के बाहर निकलते ही स्थिति बदल गई। बदलेगी। क्योंकि जो तर्कपूर्ण मालूम होता था--जीवन तर्क से नहीं चलता, जीवन बिल्कुल अतर्क है, इररेशनल है--बिल्कुल ठीक मालूम होती है जो बात बुद्धि से, वह जीवन में काम नहीं आएगी। इतना काफी नहीं है जीवन में आने के लिए। क्योंकि जीवन बुद्धि से नहीं चलता। जीवन बुद्धि से ज्यादा बड़ा है। वहां हृदय भी है, वहां शरीर भी है, वहां छिपी हुई अंतर्निहित

वासनाएं भी हैं। वहां सिर्फ सिर होता तो बात खत्म थी। अगर आप सिर्फ सिर की तरह आए होते या आपका सिर ही आया होता यहां, तो आप बिल्कुल बदल कर जाते। लेकिन सिर के अलावा और चीजें भी हैं।

आपने सुनी ब्रह्मचर्य की बात; बिल्कुल ठीक लगी, लगा कि सुखद है। लेकिन वह कामवासना का बिंदु भी आपके भीतर है। वह बलवान है, वह कुछ इतना आसान नहीं है कि आपकी खोपड़ी ने मान लिया तो आपकी जननेंद्रिय भी मान लेगी। इतना आसान नहीं है। खोपड़ी की वह फिक्र ही नहीं करती। खोपड़ी क्या कहती है, उससे उसको कोई संबंध नहीं है। उसका अपना जीवन है, अपनी धारा है, अपना वेग है, अपनी शक्ति है। और वह शक्ति खोपड़ी से नहीं मिलती, वह हार्मोन से मिलती है, खून से मिलती है, भोजन से मिलती है। उसके हजार दूसरे रास्ते हैं। सिर से उसका कुछ लेना-देना नहीं है। सिर से आप जननेंद्रिय को संचालित नहीं कर सकते। जब आप चाहें कि जननेंद्रिय वासना से भर जाए, नहीं भरेगी। और जब आप नहीं चाहते, तब आप अचानक पाएंगे कि वासनाग्रस्त है।

इसलिए कपड़े आदमी को खोजने पड़े। क्योंकि चेहरे को तो आप झुठला सकते हैं, जननेंद्रिय को आप झुठला नहीं सकते। आप नग्न चले जा रहे हैं; तो आप झुठला नहीं सकते, आपकी असलियत जाहिर हो जाएगी। आंखें आप झुठला सकते हैं। एक सुंदर स्त्री सड़क पर दिखती है, आप दूसरी तरफ देख सकते हैं, अखबार पढ़ सकते हैं। हालांकि अखबार पढ़ने में भी वही दिखाई पड़ेगी; दूसरी तरफ देखने में भी आंखें उसी तरफ लगी रहेंगी, लेकिन आप झुठला सकते हैं। उसके पास से गुजर कर आप कह सकते हैं, माताजी, नमस्कार। आप कुछ उपाय कर सकते हैं। लेकिन अगर आप नग्न खड़े हैं, क्या होगा? जननेंद्रिय धोखा दे देगी, असलियत जाहिर कर देगी। आप कुछ भी न कर पाएंगे। कपड़े की ईजाद आदमी को करनी पड़ी, क्योंकि शरीर असली खबर दे सकता है। वह बुद्धि की सुनता नहीं।

इसलिए एक बहुत अजीब घटना घटी है अमरीका में, जहां नग्न क्लब स्थापित हो गए हैं। तो वहां एक अनूठी बात आई ख्याल में। नग्न क्लब स्थापित होने के पहले मनोवैज्ञानिक सोचते थे कि स्त्रियां ज्यादा बाधा डालेंगी नग्न होने में। हालत उलटी पाई गई। पुरुष ज्यादा बाधा डालते हैं। स्त्रियां बड़ी सरलता से नग्न हो जाती हैं; पुरुष बहुत दिक्कत अनुभव करता है। क्योंकि पुरुष की जननेंद्रिय उसकी वासना को शीघ्रता से प्रकट करती है। स्त्री की जननेंद्रिय के प्रकट होने का कोई बाहर उपाय नहीं है। स्त्रियां सरलता से नग्न हो जाती हैं, उनको ज्यादा झंझट नहीं होती। लेकिन पुरुष को बड़ी झंझट होती है। क्योंकि उसे डर लगता है कि उसकी सारी प्रतिमा नष्ट हो सकती है एक क्षण में, और वह कुछ भी न कर पाएगा।

तो जब आप सुनते हैं तो सिर्फ सिर से सुनते हैं। लेकिन आप सिर से ज्यादा हैं; सिर कुछ भी नहीं है। उससे बहुत बड़ा हिस्सा आपके व्यक्तित्व का है। शरीर है, वासनाएं हैं, ऊर्जाएं हैं, जिनके अपने ढंग हैं काम करने के। तो आप सुन कर चले गए। जब आप सुन रहे थे तब आप सिर्फ सिर थे। जैसे ही आप हाल के बाहर निकले, आप पूरे हो गए। बस अड़चन शुरू हो गई। सब तिरोहित होने लगेगा--एक।

जब आप सुन रहे हैं, तब बातों को सुन कर लगता है--लाओत्से को सुन कर लगता है--कि इससे आनंद मिल सकता है। आप दुखी हैं। आप जो भी कर रहे हैं, वह गलत मालूम होता है; क्योंकि उससे आपको दुख मिला है। आप अगर ऐसा कुछ कर पाएं तो आनंद की झलक प्रतीत होती है, भविष्य में कहीं आनंद मिल सकता है। लेकिन यह तो आपने बात सुनी। आप आदतों के जाल हैं। आप जो भी कर रहे हैं वह लंबी आदतों का परिणाम है। सुन लेने में आदत बाधा नहीं डालती, लेकिन करने में आदत बाधा डालेगी।

आपने सुना कि सिगरेट पीना बुरा है। आपने सुना कि शराब पीना बुरा है। और समझ में आ गई बात। लेकिन जैसे ही आप भवन के बाहर होते हैं, अड़चन शुरू होगी। क्योंकि सिगरेट पीना एक आदत है। अगर आपने सिर्फ सुना होता कि सिगरेट पीना अच्छा है, सिर्फ सुना होता, और तब सुना होता कि सिगरेट पीना बुरा है और दूसरी बात आपको जंच गई होती तो पहली बात को छोड़ना आसान था। कोई आदत तो थी नहीं। वह भी सुनी हुई बात थी; यह भी सुनी हुई बात है। और जब आप सुन रहे हैं तो यह सुनी हुई बात है, और आपका जीवन एक लंबी आदतों का जाल है, वह सुनी हुई बात नहीं है। वे आदतें प्रतिरोध करेंगी। क्योंकि जो सिगरेट पीता है उसके शरीर की व्यवस्था बदल जाती है; उसके शरीर की मांग बदल जाती है। निकोटिन उसका खून मांगने लगता है; उसकी भूख पैदा हो जाती है। तो वह निकोटिन आप, वह जो भूख पैदा हो गई भीतर, जो वक्त पर ठीक घंटे भर बाद निकोटिन की जरूरत शरीर को होने लगी, क्योंकि अगर वह नहीं होगी तो आप सुस्त पाएंगे अपने को। क्योंकि निकोटिन ताजगी देता है; क्षण भर को देता है, लेकिन ताजगी देता है। तो आपने एक आदत बना ली निकोटिन से ताजगी लेने की। तो निकोटिन का संबंध हो गया ताजगी से। निकोटिन का आपको पता नहीं है। आप तो धुआं पीते हैं, लेकिन धुएं से निकोटिन आपके भीतर जा रहा है खून में; वह ताजगी देता है। तो वह इंजेक्शन है ताजगी का। थोड़ी देर आप ताजे मालूम पड़ते हैं। वह आपकी आदत हो गई। अब उसके बिना आप सुस्त मालूम पड़ेंगे।

तो सुन ली बात, वह तो ठीक है, लेकिन वह जो भीतर निकोटिन की जरूरत हो गई है पैदा, उसने नहीं सुनी। उसको कोई पता भी नहीं है कि आप क्या सुन कर आ रहे हैं। वह भीतर से धक्का मारेगा घंटे भर बाद कि उठाओ सिगरेट, नहीं तो सब सुस्त हुआ जा रहा है। दफ्तर में काम करने में मन नहीं लगता, कुछ जी नहीं मालूम होता। सब तरफ उदासी मालूम पड़ती है। सिगरेट पीते ही सब तरफ ताजगी आ जाती है। क्षण भर को ही सही, लेकिन क्षण भर को भी आ तो जाती है। तो फिर आप उठाएंगे, उससे बच नहीं सकते। क्योंकि वह आदत का हिस्सा है।

शरीर एक यंत्र है। और उस यंत्र में आपने जो आदतें डाली हैं, उन आदतों को आपको नई आदतों से बदलना पड़ेगा; नई बातें सुन कर नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि अगर आपको सिगरेट पीना छोड़ना है तो आपको ताजगी पैदा करने की दूसरी आदतें डालना पड़ेंगी। नहीं तो आप कभी नहीं छोड़ पाएंगे। समझिए कि मैं आपको कहता हूं कि जब भी आपको सिगरेट पीने का ख्याल हो तब गहरी दस सांस लें, जिनसे आक्सीजन ज्यादा भीतर चला जाएगा। तो ताजगी ज्यादा देर रुकेगी, जितनी निकोटिन से रुकती है, और ज्यादा स्वाभाविक होगी। यह एक नई आदत है। जब भी सिगरेट पीने का ख्याल आए, गहरी दस सांस लें। और सांस लेने से शुरू मत करें, सांस निकालने से शुरू करें। जब भी सिगरेट पीने का ख्याल आए एक्झेल करें, जोर से सांस को बाहर फेंक दें, ताकि भीतर जितना कार्बन डायआक्साइड है, बाहर चला जाए। फिर जोर से सांस लें, ताकि जितना कार्बन डायआक्साइड की जगह थी उतनी आक्सीजन ले ले। आपके खून में ताजगी दौड़ जाएगी। तब आप सिगरेट छोड़ सकते हैं। क्योंकि उससे ज्यादा बेहतर, ज्यादा अनुकूल, ज्यादा स्वाभाविक, ज्यादा श्रेष्ठ विधि आपको मिल गई। तो सिगरेट छूट सकती है। नहीं तो कोई उपाय नहीं है।

तो सुन लिया, यह एक बात है; करना बिल्कुल दूसरी बात है। क्योंकि करने में आपके जीवन भर की आदतें बाधा बनेंगी। और जो मैं कह रहा हूं, उसमें तो कई जीवन की आदतें बाधा बनेंगी। एक जीवन की भी नहीं; कोई सिगरेट छोड़ने का ही मामला नहीं है। यह तो जन्मों-जन्मों में अहंकार की आदत आपने इकट्ठी की है। यह महत्वाकांक्षा का रोग अति प्राचीन है। इसके लिए न मालूम कितने जन्म आपने मेहनत की है। तो सिर्फ आप

सुन कर उससे मुक्त हो जाएंगे, ऐसा न तो मेरा मानना है, और न आप ऐसी आशा रखना। सुन कर मुक्त होने की वासना पैदा हो जाए, इतना काफी है। फिर कुछ करना पड़ेगा। फिर कुछ साधना से गुजरना पड़ेगा।

यहां जो भी मैं बोल रहा हूं वह तो सिर्फ आपके भीतर एक नया अंकुरण हो जाए बीज का। फिर उसको सम्हालना पड़ेगा। फिर उसके साथ चलना पड़ेगा। फिर उसे जीवन देना पड़ेगा। वह लंबी बात है। शायद जितने जन्मों में आपने गलत आदतें इकट्ठी की हैं, उतने ही जन्म लग जाएं उनको रूपांतरित करने में। आवश्यक नहीं है कि उतने ही जन्म लगें, अगर आप तीव्रता से, सघनता से श्रम करें, तो जल्दी भी हो सकता है। लेकिन इस भरोसे आप मत रहना कि सुन कर, और आप मुक्त हो जाएंगे।

फिर जब आप मुझे सुनते हैं तो सुनते वक्त मन एकाग्र हो जाता है। क्योंकि सारा ध्यान एक तरफ लग जाता है कि मैं क्या कह रहा हूं; कहीं कुछ चूक न जाए, कहीं बीच से कोई शब्द छूट न जाए। तो आप पूरे माइंडफुल, पूरे स्मरणपूर्वक मेरी तरफ होते हैं। उतनी देर, आपके जो विचारों का जाल है, आपके जो निरंतर के भीतर चलने वाले बादल हैं, वे सब ठहर जाते हैं। एक घंटे के लिए आप अपने बाहर आ जाते हैं। आप मेरे साथ होते हैं एक घंटे के लिए, अपने साथ नहीं होते। तो जो सुख की प्रतीति होती है! हाल के बाहर निकल कर फिर आप अपने साथ हैं। फिर आपका सत्संग आपसे ही हो रहा है। उससे बाधा है। उससे बाधा है।

इससे आप यह सीखें कि आप जितनी देर के लिए भी, जिस भांति भी ध्यानपूर्ण हो सकें उतना अच्छा है। अगर आप मुझे सुनते वक्त इतने ध्यानपूर्ण हैं, घर लौट कर जब आपकी पत्नी दिन भर का इकट्ठा किया हुआ प्रवचन करने लगे, उसके प्रति भी इतने ही ध्यानपूर्ण हो जाएं। झगड़े की वृत्ति खड़ी न करें, सिर्फ ध्यानपूर्वक सुनें। अगर आप यह कर पाएं तो आप पाएंगे कि पत्नी की चर्चा में भी बड़ा रस आया। और जब आपकी बेटी और आपका बेटा आपके पास आ जाएं और कुछ आपको अनर्गल दिखाई पड़ने वाली बातें सुनाने लगें, तो उनको बाधा मत डालिए, उनकी बात भी उसी भाव से, उसी शांति से सुन लें। आप सुनने की कला सीख जाएं अगर यहां, तो उसे प्रयोग करें। और आखिर में आप अपने साथ भी सुनने की कला का प्रयोग कर सकते हैं। पर आखिर में। जब आप पत्नी से सुन सकें, बेटे से सुन सकें, मित्रों से सुन सकें, और आप अच्छे सुनने वाले बन जाएं, श्रोता बन जाएं, और आप सिर्फ सुनने का उपयोग ध्यान की तरह करने लगें, तो फिर आप खुद को भी सुन सकते हैं। फिर आपके भीतर जब सिर चलने लगे आपका और विचार चलने लगें, तब आप शांत होकर भीतर बैठ जाएं, और मन जो भी आपसे कह रहा है उसको सुनें, जो भी कह रहा है, उसमें बाधा भी मत डालें, उसे दूर खड़े होकर सुनें। तो जो आनंद आपको मुझे सुनने में आ रहा है वही आनंद आपको अपने सत्संग में भी आ सकता है।

और बड़ी अदभुत बात है, मुझे सुन कर आप नहीं बदल पाएंगे, लेकिन अगर आपने अपने मन को साक्षी भाव से सुनना शुरू कर दिया तो बदलाहट होनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि तब आप अलग हो गए मन से, दूर खड़े हो गए, द्रष्टा हो गए, साक्षी हो गए।

साक्षी हो जाना परम अनुभव है।

आज इतना ही।

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

बहत्तरवां प्रवचन

श्रेष्ठ चरित्र और घटिया चरित्र

Chapter 38 : Part 1

Degeneration

The man of superior character is not conscious of his character,
Hence he has character.
The man of inferior character is intent on not loosing character,
Hence he is devoid of character.
The man of superior character never acts,
Nor ever does so with an ulterior motive.
The man of inferior character acts,
And does so with an ulterior motive.
The man of superior kindness acts,
But does so without an ulterior motive.
The man of superior justice acts,
And does so with an ulterior motive.
But when the man of superior Li acts and finds no response,
He rolls up his sleeves to force it on others.

अध्याय 38 : खंड 1

अधःपतन

श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य अपने चरित्र के प्रति अनजान है; इसलिए वह चरित्रवान है।
घटिया चरित्र वाला मनुष्य चरित्र बचाए रखने पर तुला है;
इसलिए वह चरित्र से वंचित है।
श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य कभी कर्म नहीं करता है;
या करता भी है, तो कभी किसी बाह्य प्रयोजन से नहीं।
घटिया चरित्र वाला व्यक्ति कर्म करता है;
और ऐसा सदा किसी बाह्य प्रयोजन से ही करता है।

श्रेष्ठ दया वाला मनुष्य कर्म करता है;
लेकिन ऐसा वह बाह्य प्रयोजन से नहीं करता है।
श्रेष्ठ न्याय वाला मनुष्य कर्म करता है;
और ऐसा वह बाह्य प्रयोजन से ही करता है।
लेकिन जब श्रेष्ठ कर्मकांड वाला मनुष्य कर्म करता है और प्रत्युत्तर नहीं पाता,
तब वह अपनी आस्तीन चढ़ा कर दूसरों पर कर्मकांड लादने की ज्यादती करता है।

लियो टाल्सटाय के संबंध में मैंने सुना है, एक संध्या जब सूरज डूबता था और आकाश डूबते सूरज के रंगों से भरा था, सांझ की शीतल हवा बहती थी, और एक वृक्ष की छाया में टाल्सटाय ने एक सर्प को विश्राम करते देखा; चट्टान पर, काई जमी हुई चट्टान पर परिपूर्ण विश्राम की अवस्था में लेटे हुए देखा। टाल्सटाय सर्प के पास पहुंचा। और ऐसा कहा जाता है कि उसने सर्प से कहा कि सूरज की डूबती हुई किरणों के नृत्य के बीच ठंडी बहती हवा में तुम जीवित हो, श्वास ले रहे हो, और इतना ही तुम्हारे आनंदित होने के लिए काफी है; तुम आनंदित हो। लेकिन मैं, मैं आनंदित नहीं हूं। सूरज की किरणें काफी नहीं, सांझ की शीतल हवा काफी नहीं, चलती हुई श्वास, जीवन का वरदान काफी नहीं। तुम आनंदित हो और मैं आनंदित नहीं हूं।

मनुष्य को छोड़ कर सारा जगत आनंदित है। मनुष्य किस रोग से ग्रस्त है कि आनंदित नहीं है? और ऐसा अगर किसी एक मनुष्य के साथ होता तो हम कहते कि वह बीमार है, और उसका इलाज कर लेते। ऐसा पूरी मनुष्यता के साथ है। इसलिए आसान नहीं कहना कि पूरी मनुष्यता ही बीमार है। तब तो उचित होगा यह कहना कि मनुष्य का गुणधर्म ही दुखी होना है। मनुष्य जैसा है वैसा दुखी ही हो सकता है। मनुष्य के लिए आनंद का द्वार खुल सकता है, मनुष्य जैसा है उसके अतिक्रमण से, उसके ट्रांसेंडेंस से, उसके पार जाने से।

लाओत्से ने सुनी होती यह घटना टाल्सटाय की तो वह राजी हुआ होता। क्योंकि लाओत्से तो सर्प जैसा मनुष्य था। श्वास लेना काफी आनंद है। जीवन अपने आप में इतना बड़ा वरदान है कि कुछ और मांगने की जरूरत नहीं। होना ही बड़ी अनुकंपा है।

जो दुखी हो रहा है; शायद उसके जीवन से संबंध टूट गए हैं। मनुष्य का जीवन से संबंध टूट गया है--या बहुत क्षीण हो गया है। जड़ें उखड़ गई हैं। भूमि से जुड़ा भी है तो भी जुड़ा नहीं है। शायद यह अनिवार्य है, शायद मनुष्य के होने की यह अनिवार्यता है, यह नियति है, कि मनुष्य टूटे प्रकृति से और फिर से जुड़े।

यहां चेतना के धर्म को थोड़ा हम समझ लें तो फिर इस सूत्र में प्रवेश आसान हो जाए।

संस्कृत बड़ी अनूठी भाषा है। शायद पृथ्वी पर वैसी दूसरी भाषा नहीं। क्योंकि जिन लोगों ने संस्कृत को विकसित किया वे लोग मनुष्य की चेतना के अंतर-अनुसंधान में गहरे रूप से लीन थे। जैसे आज पश्चिम में पश्चिम की चेतना विज्ञान के साथ बड़े गहरे रूप से डूबी है तो पश्चिम की भाषाओं में विज्ञान की छाप है। और तब पश्चिम की भाषाएं रोज-रोज वैज्ञानिक होती चली जाती हैं। अनिवार्य है। क्योंकि भाषा वही हो जाती है जो भाषा में किया जाता है। जिन्होंने संस्कृत को विकसित किया वे चेतना के अंतस्तलों की खोज में लगे थे; वह सारी की सारी खोज संस्कृत में प्रविष्ट हो गई।

संस्कृत में शब्द है दुख के लिए वेदना। वेदना अनूठा शब्द है। उसके दोहरे अर्थ हैं। उसका एक अर्थ दुख है और एक अर्थ ज्ञान है। वेदना उसी धातु से बना है जिससे वेद, विद। वेद का अर्थ है--ज्ञान, परम ज्ञान। विद का

अर्थ है--बोध, विद्वान, विद्वत्ता। वेदना भी उसी धातु से बना है। वेदना का एक अर्थ है ज्ञान, बोध; लेकिन वेदना का दूसरा अर्थ है दुख। ज्ञान और दुख में कोई गहरा संबंध है। यह शब्द अकारण नहीं है।

असल में, ज्ञान न हो तो दुख नहीं हो सकता। इसलिए अगर सर्जन को आपका अंग काट डालना है तो पहले आपका ज्ञान छीन लेना जरूरी है। आप बेहोश हो जाएं, फिर आपके शरीर की काट-पीट की जा सकती है। क्योंकि जहां ज्ञान नहीं वहां दुख नहीं। जहां ज्ञान है वहां दुख होगा।

वह जो टाल्सटाय जिस सर्प से बात कर रहा है, वह निश्चित ही दुखी नहीं है। टाल्सटाय दुखी है। लेकिन सर्प को ज्ञान नहीं है, इसलिए दुख भी नहीं है। टाल्सटाय को ज्ञान है, और इसलिए दुख है। और तब एक बड़ी अनूठी घटना घटती है कि मनुष्य-जाति में जो लोग सर्वाधिक ज्ञानपूर्ण हैं वे सर्वाधिक दुख से भर जाते हैं। मनुष्य-जाति में भी वे लोग, जो ज्ञान की दिशा में बहुत आगे नहीं गए हैं, बहुत दुखी नहीं होते। इसलिए दूर जंगल में रहता हुआ आदिवासी बहुत दुखी नहीं है। ज्ञान की मात्रा के साथ दुख बढ़ जाता है।

इसलिए वेदना अनूठा शब्द है। दुनिया की किसी भाषा में ज्ञान और दुख, दोनों के लिए एक शब्द नहीं है। ज्ञान होगा तो दुख होगा। उलटी बात भी सच है। दुख होगा तो ज्ञान होगा। आपके सिर में दर्द होता है तभी आपको पता चलता है कि सिर है। जब दर्द नहीं होता तो पता नहीं चलता कि सिर है। असल में, जब आपको अपने शरीर का पता चलने लगे तब समझना कि आप बीमार हैं। बीमारी का यही लक्षण है। जब आपको शरीर का अंग-अंग पता चलने लगे तो समझना कि आप वृद्ध हो गए, बूढ़े हो गए। जहां-जहां दुख होगा वहां-वहां बोध होगा। पैर में कांटा गड़ेगा तो पता चलेगा कि पैर है। अगर दुख न हो तो ज्ञान भी नहीं होगा, बोध भी नहीं होगा।

मनुष्य बोधपूर्ण है। पूरी प्रकृति में मनुष्य अकेला बोधपूर्ण है, जो सोचता है, विचारता है, विमर्श करता है; जो राजी नहीं होता। चीजें जैसी हैं, उनके प्रति सोचता है, उनमें बदलाहट चाहता है, या अपने में बदलाहट चाहता है।

लेकिन मनुष्य विचार कर रहा है प्रतिपल। जो भी हो रहा है, वह उससे टूटा हुआ है विचार के कारण। जब भी आप विचार करते हैं किसी चीज का, आप उससे टूट जाते हैं। विचार बीच में स्थान बना देता है। विचार डिस्टेंस पैदा करता है, फासला बनाता है। फासले के बिना विचार हो भी नहीं सकता। इसलिए विचारक कहते हैं कि जब भी आप सोचते हों तो पहले फासला बना लेना। अगर फासला न होगा तो आप सोच भी न सकेंगे। जितना फासला होगा उतना सोचना सही होगा। जितना फासला कम होगा उतना सोचना मुश्किल हो जाएगा।

एक मजिस्ट्रेट है। उसका लड़का चोरी करके अदालत में आ जाए तो फिर वह नहीं सोच पाता। फासला बहुत कम है; लड़का बहुत करीब है। एक डाक्टर है। उसकी पत्नी बीमार हो जाए तो वह निदान नहीं कर पाता। फासला बहुत कम है। एक सर्जन है, बड़ा से बड़ा सर्जन। उसके खुद के बेटे का आपरेशन करना हो, वह किसी और सर्जन को बुलाता है। फासला बहुत कम है। फासला जितना हो उतना विचार निष्पक्ष हो पाता है। फासला जितना कम हो उतना विचार धूमिल हो जाता है।

इसलिए एक अनूठी बात रोज देखने में आती है कि अगर दूसरा मुसीबत में हो तो आप बड़ी नेक सलाह दे पाते हैं; वही मुसीबत आप पर हो तो कोई सलाह आप अपने को नहीं दे पाते। फासला बिल्कुल नहीं है। विचार अवरुद्ध हो जाता है।

विचार फासला पैदा करने की विधि है। मनुष्य टूट गया है स्वभाव से, क्योंकि सोचता है; हर चीज पर सोचता है। जहां-जहां सोचना प्रविष्ट हो जाता है वहां-वहां से टूटता चला जाता है।

अब एक ऐसी अवस्था है मनुष्य की जहां दो ही उपाय हैं--कि वह वापस प्रकृति से जुड़ जाए, क्योंकि प्रकृति से बिना जुड़े आनंद नहीं है। विचार आनंद को जानता ही नहीं; जान भी नहीं सकता। विचार दुख का मूल है। विचार स्वयं दुख है, वेदना है। तो दो ही उपाय हैं मनुष्य के लिए। एक तो यह उपाय है कि वह गिर जाए विचार से नीचे; जहां पशु जीते हैं, वृक्ष जीते हैं, आकाश में बदलियां चलती हैं, उस लोक में गिर जाए।

इसीलिए शराब का इतना प्रभाव है। मादक द्रव्यों की इतनी गहरी पकड़ है आदमी के ऊपर कि दुनिया के सारे धर्म चिल्लाते हैं, सारे राज्य कोशिश करते हैं, लेकिन आदमी को बेहोश होने से नहीं रोका जा सकता। यह केवल शराब की ही बात होती तो आसान था। यह शराब की ही बात नहीं है। न कानून रोक सकता है, न साधु रोक सकते हैं, क्योंकि मनुष्य की बहुत गहरी पकड़ है। और वह पकड़ यह है कि शराब के गहरे नशे में थोड़ी देर को वह आनंदित हो पाता है, दुख मिट जाता है। शराब से दुख नहीं मिटता, दुख मिटता है विचार के खो जाने से। शराब माध्यम बन जाती है। तो जहां भी आपका विचार खो जाता है वहीं आपको आनंद की झलक मिलने लगती है।

तो एक तो उपाय है कि आदमी नीचे गिर जाए। लेकिन यह उपाय बहुत कारगर नहीं है। क्योंकि जहां हम पहुंच गए हैं वहां से वस्तुतः नीचे गिरना असंभव है। जगत में पतन होता ही नहीं। यह ऐसे ही है कि एक बच्चा मैट्रिक की कक्षा में पहुंच गया; आप चाहे उसे आप पहली कक्षा में फिर से भेज दें, लेकिन पहली कक्षा में उसे भेजा नहीं जा सकता। ज्ञान से नीचे गिरना असंभव है। जो आपने जान लिया उसे आप अनजाना नहीं कर सकते; जो आपका ज्ञान बन गया उससे आप वापस नहीं लौट सकते।

इसलिए श्री अरविंद के विचार में थोड़ा सा बल है। श्री अरविंद पहले विचारक हैं भारत में जिन्होंने जोर दिया इस बात पर कि कोई भी मनुष्य एक बार मनुष्य योनि में पैदा होकर वापस पशुओं में नहीं जा सकता। इसमें सचाई है। चाहे कितना ही पाप करे! पशुवत हो जाएंगे, लेकिन पशु नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है नीचे गिरने का। क्योंकि जो जान लिया है उसे अनजाना कैसे किया जाए? जो चेतन हो गया, वह अचेतन नहीं हो सकता। क्षण भर को हम भुलावा पैदा कर सकते हैं। शराब भुलावा पैदा करती है; आपकी स्थिति नहीं बदलती।

एक ही उपाय है--दूसरा--वह यह है कि हम विचार के पार चले जाएं। विचार के नीचे चले जाएं तो भी विचार से मुक्ति हो जाती है; उसी के साथ दुख से मुक्ति हो जाती है। बेहोशी में कोई दुख नहीं है। और या फिर इतने परम होश से भर जाएं, विचार के पार चले जाएं, इतने चेतन हो जाएं कि चेतना तो हो, विचार न रह जाए; होश तो हो, लेकिन विचारणा खो जाए; आकाश रह जाए चेतना का, बादल विचार के न रह जाएं। इस अतिक्रमण में, ध्यान में, समाधि में, फिर पुनः हम प्रकृति के साथ एक हो जाते हैं।

तो एक तो असाधु का ढंग है प्रकृति के साथ एक होने काः शराब, वासना, कुछ भी; खोने के उपाय, विस्मरण के उपाय। वह असाधु का ढंग है समाधि को पाने के लिए। सफल उसमें वह नहीं होता। एक साधु का ढंग हैः ध्यान, उस अवस्था में आ जाना जहां विचार खो जाते हैं। नीचे उतर कर... अगर टाल्सटाय को लगा कि सर्प आनंद में है, तो यह भी टाल्सटाय को लग रहा है, सर्प को नहीं। सर्प को यह भी नहीं लग सकता कि टाल्सटाय दुख में है, और न सर्प को यह लग सकता है कि वह आनंद में है। यह भी टाल्सटाय की चिंतना है। सर्प का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। सर्प सिर्फ होश में ही नहीं है। जो भी हो रहा है, हो रहा है; सर्प उसमें बह रहा है। रत्ती मात्र भी फासला नहीं है जहां वह विचार कर सके। न उसे दुख का पता है, और न उसे आनंद का पता है। वह हमें आनंद में प्रतीत होता है; उसे कुछ पता नहीं है।

लेकिन बुद्ध को आनंद का पता है। तो बुद्ध सर्प जैसे हैं एक अर्थ में और एक अर्थ में हम जैसे हैं। उन्हें पता है आनंद का, जैसे हमें पता है दुख का। इस अर्थ में वे मनुष्य जैसे हैं। और इस अर्थ में वे सर्प जैसे हैं कि वे आनंद में इतने लीन हैं कि उसकी कोई विचारणा नहीं बनती। वे आनंद के साथ एक हैं। वह उनका स्वभाव है। इसलिए बुद्ध अगर बैठे हैं बोधिवृक्ष के नीचे और हम जाकर उन्हें कहें कि आप बड़े आनंद में हैं। तो यह भी हमारा विचार है। बुद्ध तो आनंद के साथ इतने लीन हैं कि हम कहेंगे तो उन्हें ख्याल आएगा, अन्यथा उन्हें ख्याल भी नहीं आएगा। हम ही उन्हें स्मरण दिलाएंगे। असल में, हमारे चेहरे का दुख ही उनके लिए स्मरण का कारण बनेगा कि वे आनंद में हैं।

एक अवस्था है अतिक्रमण की। लाओत्से के सूत्र को समझने के लिए यह ख्याल में रखना जरूरी है। प्रकृति का पहला संबंध तो टूट गया; उसे वापस वैसा ही जोड़ने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन अगर हम यह समझ पाएं कि इस संबंध के टूटने में दुख निर्मित हुआ है तो हम इसको अतिक्रमण कर सकते हैं और पार जा सकते हैं। लाओत्से उस अवस्था की चर्चा कर रहा है, जब हम प्रकृति के साथ पुनः मिल गए; वर्तुल पूरा हो गया। हम उसी मूल स्रोत में फिर से डूब गए इस ज्ञान की यात्रा के बाद। वापस नहीं गिरे; पुनः पूरी यात्रा के बाद वर्तुल पूरा हुआ। और ध्यान रहे, हम जहां हैं, आधा वर्तुल हो गया है। यहां से अगर हम पीछे भी गिरें तो भी उतनी ही यात्रा करनी पड़ेगी जितना हम आगे बढ़ें।

मैं एक विश्वविद्यालय में था। और रोज सुबह घूमने जाता था। एक बड़ा बगीचा, उसके चारों तरफ एक चक्कर मार आता था। एक बूढ़े मित्र से रोज नमस्कार होती थी। कभी-कभी उनसे मैं कुशल-क्षेम पूछ लेता था। एक दिन उनसे पूछा कि ठीक तो हैं? उन्होंने कहा, और तो सब ठीक है, लेकिन अब शरीर काम नहीं देता। पहले तो मैं पूरा एक चक्कर लगा लेता था; अब आधे पर ही आकर थक जाता हूं और वापस लौटना पड़ता है। मैंने उनसे कहा, इसमें फर्क क्या है? आधे पर ही आकर थक जाता हूं और वापस लौटना पड़ता है। चाहे पूरा चक्कर लगाओ और चाहे आधे से वापस लौटो, तुम्हारा घर बराबर दूरी पर है।

कुछ लोग उन बूढ़े सज्जन जैसी ही चेष्टा करते रहते हैं; आधे से वापस लौटने की कोशिश करते हैं। उतनी ही यात्रा में तो वर्तुल पूरा हो जाएगा। और जीवन जो सिखाने के लिए है वह शिक्षा भी मिल जाएगी; जो बोध जीवन की नियति है, वह भी हाथ में आ जाएगा। विचार का कचरा भी छूट जाएगा और बोध की पवित्रता भी उपलब्ध हो जाएगी।

पीछे गिरने की चेष्टा जो छोड़ देता है, उसने धार्मिक होना शुरू कर दिया। पीछे गिरने की चेष्टा ही अधर्म है। और पीछे कोई गिर नहीं सकता; वह असंभावना है। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि अधार्मिक आदमी असंभव कोशिश में लगा है; जो सफल हो ही नहीं सकता। अधार्मिक इसलिए असफल नहीं होता कि बुरा है; अधार्मिक इसलिए असफल होता है कि वह जो चाहता है वह हो ही नहीं सकता। वह प्रकृति के नियम में नहीं है। धार्मिक इसलिए सफल नहीं होता कि भला है; धार्मिक इसलिए सफल होता है कि वह जीवन के नियम के अनुकूल चल रहा है। वह सफल होगा ही।

बुरे-भले की कोई फिक्र प्रकृति को नहीं है; प्रकृति को फिक्र सही और गलत की है। बुरा-भला आदमी की धारणाएं हैं। जीवन के परम नियम बुरे और भले की भाषा में नहीं सोचते; जीवन के परम नियम ठीक और गलत की भाषा में सोचते हैं। बुद्ध अपनी हर विधि के सामने सम्यक, राइट शब्द जोड़ देते थे। उन्होंने अपने भिक्षुओं को कहा कि ध्यान भी करो तो उन्होंने कहा सम्यक ध्यान, राइट मेडिटेशन। बड़ी सोचने की बात है कि

ध्यान भी क्या असम्यक हो सकता है? गलत ध्यान भी हो सकता है? जरूर हो सकता है। तभी बुद्ध जोर देकर कहते हैं कि ठीक ध्यान, सम्यक ध्यान।

कोई बुद्ध से पूछता है कि आप ध्यान में भी सम्यक क्यों जोड़ते हैं? तो बुद्ध कहते हैं, वह भी ध्यान है जो बेहोशी से उपलब्ध होता है, गिर कर जो उपलब्ध होता है वापस। वह असम्यक है। वह भी ध्यान है जो आगे बढ़ कर उपलब्ध होता है, अतिक्रमण से उपलब्ध होता है। वह सम्यक है।

बुद्ध कहते हैं, सम्यक समाधि, ठीक समाधि।

यह आपने कभी ख्याल न किया होगा। गैर-ठीक समाधि भी होती है। और दुनिया के बहुत से धार्मिक लोग भी गैर-ठीक समाधि की कोशिश में लगे रहते हैं। अगर आप बेहोश हो गए तो गैर-ठीक समाधि मिली। अगर आप आनंद से भरे और होश में भी रहे तो ठीक समाधि मिली। फर्क वही है पीछे गिरने का, या आगे निकल जाने का। पीछे गिर जाना आसान दिखता है; लेकिन असंभव है। आसान दिखने के कारण बहुत लोग कोशिश करते हैं; लेकिन असंभव होने के कारण कोई भी सफल नहीं हो पाता। ठीक ध्यान, ठीक समाधि कठिन मालूम पड़ती है, लेकिन संभव है। कठिन होने के कारण बहुत कम लोग प्रयास करते हैं; लेकिन जो भी प्रयास करते हैं वे सफल हो जाते हैं।

अब हम इस सूत्र को समझने की कोशिश करें। यह उन ध्यानियों के बाबत खबर देता है जिन्होंने प्रकृति के साथ पुनः अपने को एक कर लिया है।

"श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य अपने चरित्र के प्रति अनजान है।"

अगर आपको चरित्र का बोध है तो वह बोध ही बता रहा है कि चरित्र में कहीं कोई खटकने वाली बात है, कोई चीज खटक रही है। नहीं तो बोध होगा कैसे? बीमारी का बोध होता है; स्वास्थ्य का बोध नहीं होता। अगर चरित्र सच में स्वस्थ है तो आपको खटकेगा ही नहीं कुछ; आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं चरित्रवान हूं। अगर आपको पता चलता है कि आप चरित्रवान हैं तो अभी चरित्र बहुत दूर है। यह आरोपित होगा; ठोंक-पीट कर आपने किसी तरह अपने को चरित्रवान बना लिया होगा। लेकिन आप अभी तक चरित्र की योग्यता नहीं पा सके हैं; अभी चरित्र आपके भीतर से खिला नहीं है। ये फूल आपकी ही आत्मा में नहीं लगे हैं; ये आप कहीं से खरीद लाए हैं। ये उधार हैं। इन्हें आपने ऊपर से चिपका लिया है।

तो चाहे आप दुनिया को धोखा दे दें, लेकिन आप अपने को कैसे धोखा दे सकते हैं? आप अपने को धोखा नहीं दे सकते, यह इस बात से पता चलेगा कि आप सदा इस ख्याल में रहेंगे कि मैं चरित्रवान हूं; आप अकड़े हुए रहेंगे। आपको सदा यह कांटे की तरह चुभता रहेगा कि आप चरित्रवान हैं।

आप देखें, चारों तरफ चरित्रवान लोग हैं। कांटे की तरह उनको चुभता ही रहता है कि वे चरित्रवान हैं। वे अकड़े ही रहते हैं। चलते भी हैं तो और ढंग से; बैठते भी हैं तो और ढंग से। और पूरे वक्त उनकी आंखें तलाश करती हैं कि कोई समझे कि वे चरित्रवान हैं; कोई पहचाने कि वे चरित्रवान हैं; चार लोग उनसे कहें कि आपका शील, आपका चरित्र, आपकी महिमा! आश्वस्त नहीं हैं वे। अभी किसी और के सहारे की जरूरत है। अभी अकड़ के सहारे ही वे चरित्रवान हैं। यह भी अहंकार का ही हिस्सा है। अभी चरित्र इतना सहज नहीं हो गया है कि वे भूल जाएं, कि उन्हें पता न रहे, कि वे इसकी प्रतीक्षा न करें कि कोई सहारा दे, कि कोई प्रशंसा करे, कि दूसरे की आंख में जो झलक पैदा होती है उससे उन्हें भोजन मिले, कि दूसरे के शब्द जो खुशामद करते हैं उससे उन्हें शक्ति मिले। नहीं, अब उन्हें कुछ भी पता नहीं है। चरित्र स्वास्थ्य हो गया है।

जब भी कोई चीज स्वस्थ हो जाएगी तो आपको उसका पता नहीं चलेगा। इसे आप एक कसौटी मान लें। और जीवन की साधना में जो लगे हैं, उनके लिए यह कसौटी बड़ी मूल्यवान है। जिस चीज का भी आपको पता चलता हो, समझना कि अभी, अभी वह आपको नहीं मिली।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि हम बिल्कुल शांत हो गए। फिर वे मेरी तरफ देखते हैं कि मैं कहूं कि हां, आप शांत हो गए। अगर मैं कह दूं कि आप नहीं हुए तो उनकी सब शांति खो जाती है। तो वे तत्क्षण अशांत हो जाते हैं। मैं उनसे यही कहता हूं कि अगर शांत ही हो गए तो अब इस अशांति को क्यों ढोते हो कि मैं शांत हूं! इसे भी छोड़ो। अब पूरे ही शांत हो जाओ। नहीं, वे कहते हैं, पूछने आपसे आए, ताकि पक्का हो जाए।

आप मुझसे पूछने नहीं आते कि आप जीवित हैं या नहीं। वह पक्का है। लेकिन आप पूछने आते हैं कि मैं शांत हो गया कि नहीं। वह पक्का नहीं है। आप थोपना चाह रहे हैं। आप अपने को समझाना चाह रहे हैं कि शांत हो गए। शांत होना कठिन है; समझा लेना बहुत आसान है। और अगर दूसरे प्रशंसा करने लगें तब तो समझा लेना बहुत आसान है।

इसलिए हमारे मुल्क में, जहां साधु की प्रशंसा है, अगर झूठे साधु बड़ी संख्या में पैदा होते हों तो साधुओं का कसूर तो है ही, हमारा कसूर बहुत बड़ा है। वह प्रशंसा ही रोग का आधार हो गया। उस प्रशंसा के मोह में आदमी शांत भी हो जाता है, आनंदित भी हो जाता है। और भीतर कोई घटना नहीं घटती।

लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य अपने चरित्र के प्रति अनजान है।"

उसे कुछ भी पता नहीं है। उसे यह भी पता नहीं है कि मैं अच्छा हूं और आप बुरे हैं। ध्यान रहे, मैं अच्छा हूं, जिसको भी पता होगा, उसे यह भी पता होता है साथ ही साथ कि आप बुरे हैं। जब भी आप दूसरे को इस भांति देखते हैं कि दूसरा बुरा है, तब आप गौर करके देखना कि दूसरे को बुरा देखने की चेष्टा वस्तुतः दूसरे से संबंधित नहीं है, स्वयं को अच्छा देखने से संबंधित है। और जब हम दूसरे को बुरा देख लेते हैं तो स्वयं को अच्छा देखना आसान होता है। अगर सभी लोग अच्छे हैं तो स्वयं को अच्छा देखना बहुत कठिन हो जाएगा।

कबीर ने कहा है, जो मैं खोजने चला कि कौन है बुरा आदमी तो मुझसे बुरा मुझे कोई भी न मिला।

अगर आप खोजने जाएंगे तो आपसे अच्छा आदमी मिल ही नहीं सकता। असंभव है। अगर आपको कहीं भूल-चूक से कोई अच्छा आदमी मिल भी जाए तो ज्यादा देर अच्छा नहीं रह सकता। आप कुछ न कुछ उपाय खोज ही लेंगे जिससे आप उसे बुरा कह सकें।

कभी आपने ख्याल किया है कि जब भी आप किसी को बुरा सिद्ध कर पाते हैं तो आपकी छाती से बोझ उतर जाता है। जब भी आप निंदा करते हैं, गाली देते हैं, किसी के दोषों का वर्णन करते हैं, तब आपने कभी अपना चेहरा आईने में देखा? कैसे प्रसन्न आप मालूम होते हैं, जैसे बड़ा बोझ छाती से उतर गया। यह एक आदमी और नीचे आ गया। एक आदमी से आप और ऊपर आ गए। निंदा का रस इतना ज्यादा किसी और कारण से नहीं है। निंदा का रस सिर्फ इसीलिए है कि उसमें आपको अच्छा होने का ख्याल पैदा होता है। एक अर्थ में अच्छा लक्षण है कि आप अच्छा होना चाहते हैं। कम से कम इतनी चेष्टा तो जारी है कि अच्छा होना चाहते हैं। लेकिन आप जो विधि चुन रहे हैं, वह गलत है, आत्मघाती है। इस भांति आप कभी अच्छे न हो पाएंगे।

दूसरे में बुराई देखने की अथक चेष्टा चलती रहती है। अगर कोई आपसे प्रशंसा करे किसी की तो आप हजार तर्क उपस्थित करते हैं, आप हजार उपाय करते हैं कि सिद्ध कर दें कि वह प्रशंसा करने वाला गलत है। लेकिन जब कोई किसी की निंदा करता है तो आप कोई तर्क उपस्थित नहीं करते। आप बड़े सदभाव से स्वीकार

कर लेते हैं। थोड़ा जाग कर देखेंगे तो समझ में आएगा कि यह किस तृष्णा का हिस्सा है। आप अच्छे होना चाहते हैं। यह सस्ता उपाय है। यह सस्ता उपाय है।

एक लकीर खिंची है; उसके सामने एक छोटी लकीर खींच दें, वह बड़ी हो जाती है--बिना कुछ किए। उस लकीर को छूना भी नहीं पड़ता। बड़ी लकीर खींच दें, वह छोटी हो जाती है। आप हर आदमी की लकीर अपने से छोटी खींचने की कोशिश में लगे हैं, ताकि आपकी लकीर बड़ी मालूम पड़ती रहे। लेकिन यह प्रयास आत्मघाती है। इससे आप कभी भी बड़े न हो पाएंगे। यह छोटा रहने का बड़ा अदभुत उपाय है; सदा सफल होता है।

लाओत्से कहता है कि चरित्र उसी के पास है जो चरित्र के प्रति अनजान है; इसीलिए वह चरित्रवान है। घटिया चरित्र वाला मनुष्य चरित्र बनाए रखने पर, बचाए रखने पर तुला रहता है।

जो व्यक्ति भी अपने चरित्र को बचाने की कोशिश में लगा रहता है वह घटिया है, मीडियाकर है। उसे चरित्र के अदभुत आकाश का कोई पता ही नहीं। उसे चरित्र की स्वतंत्रता का कोई पता नहीं। चरित्र उसके लिए एक बंधन और कारागृह है। आप देखते हैं साधुओं को! स्त्री न दिख जाए, आंख नीचे रखते हैं। यह साधुता कितने कीमत की है? स्त्री छू न जाए, अपने वस्त्रों को सम्हाल कर चलते हैं।

अभी एक साधु मुझे मिलने आए। तो जहां मैं बैठा था, जिस फर्श पर, उस पर दो स्त्रियां भी बैठी थीं। तो वह फर्श के नीचे ही रुक गए। तो मैंने कहा, आप आ जाएं पास; उतनी दूर से तो बात करना बहुत मुश्किल होगा। तो उन्होंने कहा, जरा अड़चन है; एक ही फर्श पर, जिस पर स्त्रियां बैठी हैं, मैं नहीं बैठ सकता।

कोई उनसे स्त्रियों की गोद में बैठने को नहीं कह रहा है। फर्श पर नहीं बैठ सकते, क्योंकि फर्श पर स्त्रियां बैठी हुई हैं। वह फर्श स्त्रियों को छू रहा है, स्त्रैण हो गया। उसमें स्त्रियों की ध्वनि-तरंगें व्याप्त हो गईं। उससे साधु को कष्ट है; उससे साधु भयभीत है। यह साधुता कितने मूल्य की है? इसका कोई भी तो मूल्य नहीं है। इतनी कमजोर साधुता का मूल्य क्या हो सकता है?

लेकिन हम भी कहेंगे कि हां, यह साधु है। क्योंकि हम भी क्षुद्र चरित्र को ही पहचान पाते हैं। क्षुद्र बुद्धि क्षुद्र चरित्र को ही पहचान भी सकती है। इस साधु को हम भी साधु कह पाएंगे, क्योंकि हमारी बुद्धि से भी इसका तालमेल बैठता है। मगर हम नहीं समझ पा रहे हैं कि जो इतना ज्यादा अपने चरित्र को बचाने पर तुला है, उसके पास कितना चरित्र होगा? है भी चरित्र या नहीं है? क्योंकि जो हमारे पास होता है उसे बचाने की कोई चिंता नहीं होती; जो हमारे पास नहीं होता उसे बचाने की बड़ी चिंता होती है। हम बचाते ही उसको फिरते हैं जिसका हमें खुद ही भय है कि उघड़ न जाए और पता न चल जाए कि वह हमारे पास नहीं है। अगर आप अपने चरित्र को बचाए रखने की कोशिश में लगे रहते हैं तो समझना कि वह चरित्र किसी काम का है नहीं। किसी और चरित्र को खोजें जिसे बचाना नहीं पड़ता। चरित्र आपको बचाएगा या आप चरित्र को बचाएंगे? सत्य आपको बचाएगा या आप सत्य को बचाएंगे? परमात्मा आपको बचाएगा या आप परमात्मा को बचाएंगे?

जिस परमात्मा को आपके लिए बचाना पड़ता है, वह कचरे की टोकरी में डाल देने जैसा है। उसका क्या मूल्य? और जिस चरित्र को आप बचाते हैं, वह आपकी ही कृति है; वह आपसे बड़ी नहीं हो सकती। उस चरित्र को खोजें जो आकाश की तरह आपको घेर लेता है। फिर आप कहीं भी जाएं वह आपको घेरे ही रहता है। आप नरक में उतर जाएं तो भी घेरे रहता है। आप कहां हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। और उस चरित्र के प्रति आपको होश भी नहीं रखना पड़ता; वह है ही। वह आपकी श्वास बन गया।

ऐसा चरित्र भी खोजा जा सकता है। ऐसे चरित्र की खोज ही साधना है। मगर कठिन है यात्रा ऐसे चरित्र को खोजना जो आपको बचाए। आसान है ऐसे चरित्र को चिपका लेना अपने चारों तरफ जिसको आपको बचाना पड़े। वह वस्त्रों की भांति है जो आपने ओढ़ लिए हैं। घाव भीतर होता है; आपने मलहम-पट्टी ऊपर से कर ली। इलाज नहीं हुआ। और तब आपको बचाना पड़ता है।

मैंने सुना है, एक छोटे बच्चे को हाथ में चोट आ गई थी। और डाक्टर उसके हाथ पर पट्टी बांध रहा था। उसके बाएं हाथ में चोट थी। तो उसने कहा कि मेरे दाएं हाथ में पट्टी बांध दें।

तो उस डाक्टर ने कहा कि बेटे, तू पागल तो नहीं है? चोट तेरे बाएं हाथ में लगी है, पट्टी बांधना जरूरी है, ताकि बच्चे स्कूल के कोई धक्का न मार दें।

उसने कहा, आप बच्चों को जानते नहीं हैं; इसीलिए तो मैं कह रहा हूं कि आप दाएं हाथ में बांधें। क्योंकि जहां पट्टी होगी वहीं वे लोग धक्का मारेंगे। अगर बायां बचाना है तो दाएं में पट्टी बांधनी जरूरी है।

वह ठीक कह रहा है। पट्टी बांधने से कोई घाव तो मिट नहीं जाता, सिर्फ ढंक जाता है। हमारा सारा चरित्र पट्टी बांधने जैसा है। इसलिए आपके चरित्र पर कोई जरा सी बात करे तो कैसी चोट लगती है, ख्याल किया आपने? जरा सा कोई इशारा कर दे आपके चरित्र पर तो कैसी चोट लगती है तीर की तरह। वह चोट कहां लगती है? वह उसकी बात से नहीं लग रही है, वह आपके घाव से लग रही है जो पट्टी के भीतर छिपा है। जब कोई आपके चरित्र की आपसे चर्चा करने लगे और आपको कोई चोट न लगे तो समझना कि घाव भर गया, चरित्र उपलब्ध हुआ है।

लेकिन चोट लगती है। चोट लगती ही इसलिए है कि बात सच होती है। नहीं तो चोट नहीं लगेगी। जो आदमी चोर नहीं है उसे कोई चोर भी कह दे तो चोट नहीं लगेगी। वह हंसेगा। वह समझेगा कि यह आदमी पागल है। लेकिन कोई चोट नहीं लगेगी। चोर से चोर कह दें तो चोट लगती है, क्योंकि पट्टी के नीचे घाव है। आपकी चोट से पहचान आ जाती है कि घाव कहां है। किस बात पर आप क्रोधित होते हैं, उससे आपके घाव की खबर मिलती है। किस बात से आप बेचैन, परेशान होते हैं, उससे घाव की खबर मिलती है। और लोगों को भी पता है कि जहां-जहां पट्टियां हैं वहां-वहां घाव हैं। बच्चों को ही पता नहीं है, बड़ों को भी पता है। और वे भी जहां-जहां पट्टियां हैं वहां-वहां चोट करते रहते हैं।

लाओत्से कहता है कि चरित्र घटिया है, अगर उसे बचाए रखने की चेष्टा करनी पड़ती है। जिस चरित्र को बचाने की चेष्टा करनी पड़ती है वह चेष्टा से पैदा हुआ चरित्र है।

इसे थोड़ा समझ लें। चरित्र दो प्रकार का है। एक तो आविर्भाव है। एक तो सहज, अपके भीतर की खिलावट है। और एक आरोपण है; आविर्भाव नहीं। आप भीतर कुछ और होते हैं, बाहर से आप कुछ और थोप लेते हैं। एक तो चरित्र है धर्म, और एक चरित्र है नीति। वह नीति घाव वाला चरित्र है। नीति उपयोगिता का दृष्टिकोण है; जो उपयोगी है, जिससे समाज में चलने में सुविधा होगी, जिससे सफल होने में आसानी होगी, जिससे महत्वाकांक्षा सुगमता से तृप्त होगी, जिससे लोगों से टकराहट कम होगी, वह चालाकी है। नीति चालाकी है। वे जो होशियार लोग हैं वे सब तरह की नीति अपने चारों तरफ खड़ी कर लेते हैं। उससे उनको अनैतिक होने की सुविधा मिल जाती है।

इसे थोड़ा समझ लें। अगर आपको चोरी ही करनी है तो आपको मंदिर जरूर जाना चाहिए। उससे लोग कम शक कर सकेंगे कि यह आदमी, और चोर हो सकता है! अगर आपको बेईमानी ही करनी है तो आपको ईमानदारी का खूब गुणगान करना चाहिए; उसमें कंजूसी नहीं करनी चाहिए। और जब भी कभी ऐसा मौका

मिले, लोक-प्रदर्शन का, तो ईमानदारी का प्रदर्शन भी करना चाहिए; बात ही नहीं। छोटे-मोटे मौके जो भी मिल जाएं ईमानदारी प्रदर्शित करने के, वह जरूर उनका उपयोग कर लेना चाहिए। तो आप बड़ी बेईमानी करने के लिए मुक्त हो जाते हैं। कोई शक भी नहीं कर सकेगा कि यह आदमी और बेईमान! इस आदमी ने इतना दान दिया है अस्पताल के लिए, इतना स्कूल के लिए, इतना आदिवासी बच्चों की शिक्षा के लिए, यह आदमी और बेईमान! अगर लाख, दो लाख दान में खर्च करने पड़ें तो करने चाहिए, अगर आपको करोड़, दो करोड़ का शोषण करना हो। तो आप सुरक्षित हैं।

नीति आपकी रक्षा है। तो अंग्रेजी में जो वे कहते हैं कि आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी, वे ठीक कहते हैं। वह पालिसी ही है; आनेस्टी नहीं है। आनेस्टी का पालिसी से क्या लेना-देना! होशियारी है, कुशलता है, चालाकी है, गणित है, हिसाब है।

और निश्चित ही, जो होशियार हैं वे ईमानदारी के द्वारा बेईमानी करते हैं। जो नासमझ हैं वे सीधी बेईमानी करते हैं और फंस जाते हैं। बेईमान फंसते हैं, ऐसा मत समझना; सिर्फ नासमझ बेईमान फंसते हैं। समझदार बेईमान नहीं फंसते, क्योंकि वे जो करते हैं उससे बचने का पूरा उपाय कर लेते हैं। उन्हें पकड़ना अति कठिन है। उन पर ध्यान भी जाना अति कठिन है कि वे ऐसा कर रहे होंगे।

चरित्र--नैतिक चरित्र, ऊपरी चरित्र--जो समाज में कुशलता से जीने की कला है, वह ऊपर से थोपा हुआ है। भीतर आदमी बिल्कुल उलटा होगा। तो जो आदमी बहुत ब्रह्मचर्य की चर्चा करे, समझना कि कामवासना भीतर गहरे में खड़ी है। जो आदमी सत्य की बहुत बात करे, समझना कि झूठ बोलने की तैयारी कर रहा है। उलटे का ध्यान रखना। उलटा जरूर भीतर होगा, उसी को छिपाने के लिए इतना आयोजन किया जा रहा है; उसी को भुलाने के लिए। हो सकता है आपको ही धोखा देने की चेष्टा न हो, खुद को धोखा देने की चेष्टा हो। वह खुद ही भूल जाना चाहता हो।

पश्चिम के मनसविद, जिन्हें आप साधु-संन्यासी कहते हैं, उनके संबंध में बड़ी हैरानी से सोचते हैं। क्योंकि आपके साधु-संन्यासी ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य की रट लगाए रखते हैं। पश्चिम के मनसविद कहते हैं कि इतनी रटन का एक ही अर्थ हो सकता है कि भीतर कामवासना जोर से धक्के मार रही है। नहीं तो यह रटन खो जाएगी। कामवासना भीतर न होगी तो यह ब्रह्मचर्य की रटन किस चीज को छिपाने, किस चीज को मिटाने, किस चीज के ऊपर आवरण खड़ा करने के लिए होगी? यह भी खो जाएगी।

जब चरित्र पूरा होता है तो नीति खो जाती है, धर्म ही रह जाता है। नीति है दूसरे को देख कर अपने व्यवहार को अनुशासित करना, और धर्म है जीवन के परम नियम के साथ बहना। दूसरे को देखने का कोई सवाल नहीं। इसलिए धार्मिक आदमी अक्सर विद्रोही होगा; और नैतिक आदमी अक्सर कंजर्वेटिव होगा, व्यवस्था के साथ हमेशा राजी होगा। क्योंकि उसकी सारी नीति व्यवस्था के साथ अनुरूप होने की है। वह व्यवस्था से जरा भी इधर-उधर नहीं जाना चाहता। क्योंकि व्यवस्था में रह कर ही शोषण हो सकता है, व्यवस्था में रह कर ही सफलता हो सकती है, व्यवस्था में रह कर ही अहंकार की तृप्ति हो सकती है। धार्मिक आदमी अक्सर व्यवस्था के अनुकूल नहीं पड़ेगा। क्योंकि वह एक महान नियम के अनुकूल हो रहा है। मनुष्यों के बनाए हुए नियम अब छोटे पड़ गए। उनसे ताल-मेल बैठ भी सकता है, नहीं भी बैठे।

मैं इसको कसौटी मानता हूं कि जब बुद्ध जैसे या जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म हो, या कृष्ण या लाओत्से जैसे व्यक्ति का जन्म हो, तो लाओत्से या कृष्ण या बुद्ध के साथ जिस समाज का तालमेल बैठ जाए वह समाज धार्मिक है, और अगर न बैठे तालमेल तो वह समाज अधार्मिक है। आपका तथाकथित साधु-महात्मा, उसका

तालमेल समाज से बिल्कुल बैठा होता है। वह तो बिल्कुल ऐसा बनता है जैसे कि बिजली का प्लग बिल्कुल बैठ जाता है। बनाया ही गया है जैसे समाज के लिए। बिल्कुल बैठ जाता है। सांचे में ढाला हुआ है। जो महात्मा समाज के साथ ऐसा बैठ जाता है जैसा सांचे में ढाला हो, उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है; नीति से जरूर संबंध है। उसने सब भांति अपने को काट-छांट कर नीति के अनुकूल बना लिया। समाज उसे सिर पर लेगा, समाज उसका आदर करेगा, सम्मान करेगा, प्रतिष्ठा देगा। क्योंकि वह समाज का अनुचर है, छाया है। लेकिन अगर कोई व्यक्ति जीवन के परम नियम के साथ अपनी एकता साध लेगा तो समाज के और उसके बीच कई अड़चनें खड़ी हो जाएंगी। जो स्वाभाविक हैं। क्योंकि समाज अभी साधु होने के स्तर पर नहीं है।

यदि आप चरित्रवान हैं समाज को देख कर, तो ध्यान रखना, यह चरित्र बहुत काम न आएगा। एक सामाजिक उपयोगिता है, एक औपचारिकता है, एक व्यवहार-कुशलता है। उस चरित्र की खोज करें, जिससे आप प्रकृति के साथ एक हों। ये दो बातें ध्यान में रखें। समाज के साथ एक होने की जो चेष्टा है उससे एक चरित्र मिलेगा, लेकिन वह चरित्र ढकोसला होगा, पाखंड होगा। और उसे बचाए रखने की निरंतर चेष्टा करनी पड़ेगी। क्योंकि वह आपके जीवन में सीधा नहीं आया है, ऊपर से लादा गया है। वह एक बोझ है जिसे ढोना पड़ रहा है; जिसे आप किसी भी क्षण उतार कर हलके होना चाहेंगे।

लेकिन मजबूरियां हैं। उसे उतारने में महंगा पड़ता है। बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं, वे टूटते हैं, जिंदगी में असुरक्षा आती है, इसलिए उसे ढोए रखना उचित है। और फिर धीरे-धीरे आप बोझ के आदी हो जाते हैं। फिर तो अगर कोई कहे भी कि यह बोझ उतार दो तो दुश्मन मालूम पड़ता है। क्योंकि बोझ लगता है संपत्ति है।

जो चरित्र आपने समाज को ध्यान में रख कर पैदा कर लिया है, वह संपत्ति नहीं है, बोझ है। उस चरित्र की तलाश करनी जरूरी है जो जीवन की धारा के साथ एकता खोजता है। लाओत्से उसी जीवन के नियम को ताओ कहता है।

"घटिया चरित्र वाला मनुष्य चरित्र बचाए रखने पर तुला है, इसलिए वह चरित्र से वंचित है। श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य कभी कर्म नहीं करता है।"

श्रेष्ठ चरित्र का अर्थ ही है, जो आपके भीतर जन्म गया। आप इसलिए सच नहीं बोलते कि सच बोलने से समाज में प्रतिष्ठा होगी; इसलिए भी सच नहीं बोलते कि सच बोलने वाला कभी जेल नहीं जाएगा; इसलिए भी सच नहीं बोलते कि नरक से बच जाएंगे, स्वर्ग जाएंगे। बल्कि इसलिए सच बोलते हैं कि सच बोलने में आपने जीवन का आनंद अनुभव किया है--भविष्य में नहीं, अभी, इसी क्षण। जब आप सत्य बोलते हैं तो आप जीवन के निकटतम होते हैं, उसकी धारा के साथ एक होते हैं। जब भी झूठ बोलते हैं तब धारा से टूट जाते हैं।

यह एक भीतरी अनुसंधान है। जब भी आप सत्य बोलते हैं तब आप निर्बोझ होते हैं, निर्दोष होते हैं, हलके होते हैं, मुक्त होते हैं। न कोई अतीत होता है, न कोई भविष्य होता है। जब भी आप झूठ बोलते हैं तो अतीत होता है, भविष्य होता है; समाज होता है। फिर इस झूठ को बचाए रखना पड़ेगा। एक झूठ के लिए फिर हजार झूठ बोलने पड़ेंगे और उसके लिए निरंतर ख्याल रखना पड़ेगा कि आपने कहां झूठ बोला, क्या झूठ बोला। फिर उस झूठ से विपरीत कुछ न बोल जाएं, इसकी सतत जागरूकता रखनी पड़ेगी। तो झूठ एक चिंता बन जाएगी। लाभ उसमें हो सकता है। लेकिन वह लाभ, जो चिंता उससे पैदा होती है, उसके समक्ष कुछ भी नहीं। वह चिंता बहुत भयंकर है। और बड़ा जो उपद्रव है वह यह है कि जितना इस झूठ में आप व्याप्त होते जाएंगे उतना जीवन की धारा से दूर हटते जाएंगे। क्योंकि जीवन की धारा सत्य है।

तो जब कोई सत्य बोलता है समाज को ध्यान में रख कर, तब उसके सत्य का कोई मूल्य नहीं है। वह भी एक प्रकार का झूठ है। इसे थोड़ा समझने में कठिनाई होगी। इसे इस तरह समझना जरूरी है कि आप झूठ क्यों बोलते हैं? इसीलिए कि उससे कुछ लाभ होगा। अगर लाभ सच बोलने से होता हो तो आप सच भी बोलते हैं। लेकिन ध्यान लाभ पर है। तो झूठ और सच में बहुत फर्क नहीं है। अगर आपको लगता है कि हां झूठ बोल कर निकल जाऊंगा उपद्रव से तो आप झूठ बोलते हैं। अगर आपको लगता है कि सच बोल कर निकल जाऊंगा उपद्रव से तो आप सच बोलते हैं। लेकिन दोनों ही हालत में दृष्टि आपकी उपद्रव के बाहर होने की है। दोनों समान हैं। सत्य भी एक साधन है, झूठ भी एक साधन है। लक्ष्य एक है।

लेकिन जो व्यक्ति इसलिए सत्य बोलता है--न तो हानि का सवाल है, न लाभ का। और ध्यान रहे, जरूरी नहीं है कि सत्य में सदा लाभ ही हो। जो लोग यह सिखलाते हैं कि सत्य में सदा लाभ ही होगा, वे भी आपके लाभ को ही ध्यान में रख कर ये बातें कह रहे हैं।

भारत ने अपना राष्ट्रीय प्रतीक बना रखा हैः सत्यमेव जयते! सत्य सदा जीतता है। ऐसा कहीं दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन लोग जीत में उत्सुक हैं, सत्य में उत्सुक नहीं हैं। अगर सत्य जीतता हो तो लोग सत्य में भी उत्सुक हो सकते हैं। नहीं तो उसमें उनकी कोई उत्सुकता नहीं है। अगर पक्का पता चल जाए कि असत्य ही जीतता है तो लोग असत्य बोलेंगे। लोगों का रस जीत में है, सत्य में नहीं है।

तो मैं नहीं कहता आपसे कि सत्य सदा जीतेगा। जरूरी नहीं है। बहुत बार हारेगा। सच तो यह है कि ज्यादा हारेगा बजाय जीतने के। क्योंकि जिनके बीच आप रह रहे हैं वे सब झूठ हैं। मैं नहीं कहता कि सत्य सदा जीतेगा। लेकिन यह मैं जरूर कहता हूं कि सत्य सदा आनंदित होगा। जीत तो दूसरों से संबंधित है; आनंद भीतर की बात है। सफलता तो दूसरों की बात है।

जीसस को सूली लगी; वह झूठ बोलने से बच सकती थी। इतना ही कहना काफी था... । जीसस कहते थे कि मैं ईश्वर का पुत्र हूं। यह उनकी प्रतीति थी, यह उनका सत्य था, यह उनका अनुभव था कि वह ईश्वर के साथ इतने एक हैं जैसे बाप और बेटे के साथ एक होता है। जैसे बेटा बाप का विस्तार है ऐसा ही जीसस को बोध था कि मैं उसी परमात्मा का विस्तार हूं। यह बोध इतना प्रगाढ़ था कि यह उनका सत्य था। यह इतनी सी बात कहने से जीसस बच सकते थे कि नहीं, यह तो सिर्फ एक प्रतीक है। यह कोई, मैं ईश्वर का पुत्र हूं, यह कोई ऐतिहासिक बात नहीं है। यह कोई सत्य नहीं है, यह तो सिर्फ एक पैरेबल, एक बोध-प्रसंग, एक समझाने का ढंग। इतना कहने से बच सकते थे। इतना ही उनके विरोधी सुनना चाहते थे कि वे साफ-साफ कह दें कि ईश्वर के बेटे नहीं हैं। पर जो उनका सत्य था, वे उससे जरा भी नहीं हटेंगे।

सूली असफलता है जगत की दृष्टि में। जगत की ही दृष्टि में नहीं, जीसस के जो निकटतम अनुयायी थे, उनको भी लगा कि यह तो सब खत्म हो गया। आखिरी क्षण तक जीसस के अनुयायी भीड़ में खड़े यह देख रहे थे कि आखिरी क्षण में कोई न कोई चमत्कार होगा और सत्य जीतेगा। लेकिन जीसस सूली पर चढ़ गए, समाप्त हो गए। तो शिष्य भी घबड़ा गए। यह तो सत्य की मौत हो गई, सत्य सूली पर लटक गया। और सोचा था सत्य जीतेगा, अंततः जीत जाएगा। बीच में छोटी-मोटी हार हो सकती हैं, लेकिन अंततः जीत जाएगा।

मैं नहीं कहता कि सत्य जीतेगा। सच तो यह है, ज्यादा संभावनाएं सत्य के हारने की हैं। क्योंकि हार और जीत बाहर से संबंध है। एक बात निश्चित है कि सत्य सदा आनंदित होगा। हारे तो भी, सूली लग जाए तो भी, असफल हो जाए तो भी, तिरस्कृत हो जाए तो भी। असत्य सदा दुख है। सफल हो जाए तो भी, सिंहासन पर पहुंच जाए तो भी। असत्य सदा दुख है। असत्य सफल होगा। होता है।

मैक्यावेली ने राजाओं को सलाह दी है कि वे सत्य तो अपने निकटतम मित्र को भी न कहें। क्योंकि जो अभी मित्र है, क्षण भर बाद शत्रु हो सकता है; इसे ध्यान में रखना। मैक्यावेली राजाओं को सलाह दे रहा है कि इसे ध्यान में रखना कि जो मित्र है वह कल शत्रु हो सकता है, इसलिए सत्य तो उसे भी मत कहना। कल की शत्रुता को ध्यान में रख कर ही बोलना। अभी वह शत्रु है नहीं, मित्र है; लेकिन कल की शत्रुता संभावी है, उसे ध्यान में रखना। और वही बोलना जो कल वह शत्रु भी हो जाए तो भी नुकसान न पहुंचा सके।

इसलिए सम्राटों का कोई मित्र नहीं हो सकता। मित्र होने का कोई उपाय नहीं। जिनके हाथ में शक्ति है वे किसी के भी मित्र नहीं हो सकते। उनकी मित्रता धोखा होगी। राजनीति में कोई दोस्ती नहीं है, सब दुश्मन हैं। कुछ दुश्मन हैं जो जाहिर हो गए; कुछ जो अभी जाहिर नहीं हुए। मगर वे कभी भी जाहिर हो सकते हैं। इसलिए उनके साथ भी सच नहीं हुआ जा सकता।

जीवन झूठ का एक जाल है, जैसा हमने उसे बना लिया। उसमें झूठ जीतता है; उसमें झूठ सफल होता है। उसमें झूठ सिंहासनों पर विराजमान होता है। लेकिन झूठ का लक्षण उसके भीतर गहन दुख की कालिमा है; अंधेरी रात की तरह वहां दुख है। इसलिए सिंहासनों पर भी दुख की गठरियां ही बैठती हैं।

सत्य आनंद है। अगर आपको आनंद की सुराग मिल गई, सुगंध मिल गई, और आप इसलिए सत्य बोलते हैं कि यही बोलने में आप निकटतम होते हैं निसर्ग के, तो आपको चरित्र--वास्तविक चरित्र--से संबंध जुड़ना शुरू हो गया। ऐसा जो मनुष्य है, जिसको ऐसा चरित्र उपलब्ध हो गया, वह कर्म नहीं करता, उससे कर्म होता है। यह फर्क समझ लेना चाहिए। वह कुछ करता नहीं। वह कुछ जान-बूझ कर करने नहीं जाता। अब उसको कोई जरूरत नहीं रही। अब तो उसकी भीतर की अंतरात्मा जो कराती है, वह होता है। अब जैसे परम नियति के हाथ में उसने अपने को सौंप दिया। अब जहां हवाएं उसे ले जाती हैं परमात्मा की, वह जाता है। वह अब यह भी नहीं पूछता कि क्या है दिशा? क्या है गंतव्य? क्या है लक्ष्य? कहां तुम मुझे पहुंचाओगे? अब तो उसको कोई लक्ष्य नहीं है, कोई पहुंचने की जगह नहीं है। अब तो सहज होना ही, स्वाभाविक होना ही, स्व-स्फूर्त होना ही उसका भाग्य है।

तो वह जो भी करता है वह करना वैसे ही है जैसे वृक्षों पर पत्ते खिलते हैं। कोई नहीं कहेगा कि वृक्ष ने पत्ते खिलाए; कोई नहीं कहेगा कि वृक्ष ने फूल लगाए। क्योंकि कोई चेष्टा नहीं है। वृक्ष का स्वभाव है कि पत्ते लगते हैं, फूल खिलते हैं। वृक्ष बढ़ता है, आकाश में सुगंध फेंकता है। बस ऐसा ही चरित्रवान व्यक्ति है। उसके भीतर से भी जो होता है वह होता है। वह कोई चेष्टा ऊपर से नहीं करता।

मैंने सुना है, लाओत्से का एक भक्त लीहत्जू एक गांव से गुजर रहा था। लाओत्से के निकटतम पहुंचने वाले थोड़े से लोगों में लीहत्जू भी है। एक गांव से जब वह गुजर रहा था तो उसने देखा कि राजा के घुड़सवार उसके पीछे दौड़ते चले आ रहे हैं। वह अपने गधे पर सवार था। घुड़सवारों ने उसे रोका। राजा का बड़ा मंत्री भी आया और उसने कहा कि सम्राट की आज्ञा है कि आप चलें और सम्राट के प्रधान सलाहकार आप हो जाएं। सम्राट को बड़ी उलझनें हैं, उन्हें हल करना है। लीहत्जू ने कहा, अगर कभी मेरे भीतर का सम्राट मुझे वहां ले आया तो मैं आ जाऊंगा, और दूसरा कोई उपाय नहीं है। नहीं लाया, नहीं आऊंगा। अब मैं नहीं हूं। अब वह भीतर वाला ही मुझे चलाता है।

वे राज्य मंत्री और उनके साथी, पता नहीं उसकी बात समझे या नहीं, लेकिन वे वापस चले गए। जैसे ही वे लौट गए वापस, लीहत्जू एक कुएं पर रुका और उसने अपने कान पानी से धोए। गांव के लोग इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा कि तुम यह क्या करते हो? तब लीहत्जू ने अपने गधे के कान भी पानी से धोए। तो उन्होंने

कहा कि तुम बिल्कुल पागल तो नहीं हो गए हो? लीहत्जू ने कहा कि सत्ता का शब्द भी कान में पड़ जाए तो करप्ट करता है, तो व्यभिचार पैदा होता है, इसलिए मैंने अपने कान धोए। पर लोगों ने कहा, इस गधे के क्यों धो रहे हो? उसने कहा, जब मुझे तक करप्ट करता है तो गधे की हालत! और गधे तो वैसे ही राजनीति में बड़े उत्सुक होते हैं। इसका तो दिमाग ही खराब हो जाएगा। इसने सुन ली है। यह बिल्कुल कान खड़े किए हुए था जब वे लोग कह रहे थे। और मैंने इसके भीतर देख ली कि बिजली दौड़ रही थी और यह बिल्कुल तैयार था। यह कह रहा था धीरे, लीहत्जू, हां भर दो। यह तो मुझ पर नाराज है कि कहां महल छोड़ कर, कहां गांव में और जंगलों में भटका रहे हो! इसके कान धो देना भी ठीक है, नहीं तो यह भी पाप मेरे ऊपर पड़ जाएगा।

एक्टन ने, लार्ड एक्टन ने कहा, पावर करप्ट्स, एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली; सत्ता व्यभिचारी है, और पूर्ण रूप से व्यभिचारी है।

लेकिन हम सब सत्ता की खोज में हैं। सत्य की खोज में नहीं हैं, शक्ति की खोज में हैं। उस शक्ति की खोज में हम जो चरित्र निर्मित करते हैं, वह धोखा है, प्रवंचना है। सत्य की जो खोज करता है उसके जीवन में एक चरित्र आना शुरू होता है। जैसे फूलों में सुगंध है, वैसा ही उसका जीवन होता है। उसमें कर्तृत्व खो जाता है; वह कुछ करता नहीं, उससे कुछ होता है।

झेन फकीर रिंझाई कहा करता था कि बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, उसके बाद उन्होंने कुछ भी नहीं किया। पर कहानी तो साफ है कि चालीस साल तक वे गांव-गांव गए, लोगों को समझाया, ज्ञान के लिए जगाया। न मालूम कितनों की प्यास तृप्त की। न मालूम कितनों में सोई प्यास को जगाया और अतृप्त किया। और न मालूम कितने लोग रूपांतरित हुए। चालीस वर्ष अथक भटकन थी, श्रम था। और रिंझाई कहता था कि बुद्ध ने ज्ञान के बाद कुछ भी नहीं किया। तो उसके भक्त उससे पूछते थे कि आप बार-बार ऐसा क्यों कहते हो? हमें पता है कि बुद्ध चालीस साल तक अथक श्रम में लगे रहे। तो रिंझाई कहता था, वह तुम्हें लगता है कि श्रम था, वह बुद्ध की सुगंध थी। उन्होंने कुछ किया नहीं, उनसे हुआ; ज्ञान के बाद उनसे कुछ हुआ। ज्ञान के पहले उन्होंने कुछ किया; ज्ञान के बाद उनसे कुछ हुआ।

इस करने और होने में सारा फर्क है। एक तो है जब आप करते हैं कुछ; सोचते हैं, योजना बनाते हैं, व्यवस्था जुटाते हैं, फिर करने में लगते हैं। वह आपकी अहंकार की ही यात्रा है। और एक जब आप खुले हैं; और जहां भी, जो भी जीवन की धारा आपसे करवा ले, करवा ले। आप सिर्फ तैयार हैं बहने को। न आपकी कोई मंजिल है, न कोई प्रयोजन है, न कोई आग्रह है कि ऐसा हो। फिर आपको कोई दुखी भी नहीं कर सकता, क्योंकि जिसका कोई आग्रह नहीं, उसे कोई विफलता उपलब्ध नहीं होती। और जो कहीं पहुंचना ही नहीं चाहता वह कहीं भी पहुंच जाए, वहीं मंजिल है। कहीं न भी पहुंचे तो भी मंजिल है। उसकी मंजिल उसके साथ ही है। उसे कहीं अब असफलता नहीं हो सकती। बुद्ध के जीवन में कुछ हो रहा है, वह हैपनिंग है, डूइंग नहीं है। वह होना है। वह एक नैसर्गिक प्रवाह है। जिस दिन चरित्र का जन्म होता है उसी दिन कर्ता खो जाता है।

हमारा तो मजा यह है कि हम अपने चरित्र के भी कर्ता हैं। वह भी हम कोशिश कर-करके आयोजित करते हैं। उसे भी हम बिठाते हैं। जैसा मकान बनाते हैं एक-एक ईंट रख कर, ऐसा ही हम अपना चरित्र भी बनाते हैं।

लाओत्से की चरित्र की धारण सहजता की धारणा है। सारा जगत सहज है। न तो चांद-तारे शोरगुल करते हैं कि हम कितनी मेहनत उठा रहे हैं। सूरज रोज सुबह आकर आपके दरवाजे पर दस्तक भी नहीं देता और कहता भी नहीं कि कम से कम धन्यवाद तो दो! कितना जगत का अंधकार मिटा रहा हूं, और कितने समय से मिटा रहा हूं!

मैंने एक कहानी सुनी है कि एक बार अंधकार ने परमात्मा को जाकर कहा कि यह सूरज मेरे पीछे क्यों पड़ा है? आखिर मैंने इसका कुछ बिगाड़ा नहीं। याद भी नहीं आता कि कभी मैंने कोई नुकसान इसे पहुंचाया हो। और यह रोज सुबह हाजिर है! मैं रात भर विश्राम भी नहीं कर पाता; इसके भय से ही पीड़ित होता हूं। सुबह फिर हाजिर है, फिर भाग-दौड़ शुरू हो जाती है। दिन भर भागता हूं, रात विश्राम नहीं। आखिर यह मेरे पीछे क्यों पड़ा है? तो परमात्मा ने, कहानी है कि सूरज को बुलाया और पूछा कि तुम अंधेरे के पीछे क्यों पड़े हो? सूरज ने कहा, यह अंधेरा कौन है? इसे मैं जानता ही नहीं। इससे मेरी कोई मुलाकात ही अब तक नहीं हुई। आप उसे मेरे सामने ही बुला दें, ताकि मैं उसे पहचान लूं और फिर कभी ऐसी भूल न करूंगा।

वह अब तक नहीं हो सका; क्योंकि अंधेरे को सूरज के सामने कैसे लाया जाए! कहते हैं, भगवान सर्व शक्तिशाली है। हो नहीं सकता। अंधेरे को सूरज के सामने वह भी ला नहीं सकता। वह बात वहीं की वहीं फाइल में पड़ी है। वह मुकदमा हल नहीं होता; वह होगा भी नहीं।

जिस सूरज को पता ही नहीं कि अंधेरा है, उसको क्या अहंकार होगा कि मैं अंधेरे को हटाता हूं। सूरज अपने स्वभाव से प्रकाशित है। अंधेरा अपने स्वभाव से भागा हुआ है।

ठीक जीवन की धारा में अपने को छोड़ देने वाला व्यक्ति--ताओ को, धर्म को उपलब्ध व्यक्ति--कुछ करता नहीं; उससे जो होता है, होता है। फिर कुछ बुरा भी नहीं है और भला भी नहीं है। क्योंकि जब हम करते हैं तब बुरा और भला होता है। फिर कोई पुरस्कार और हानि का सवाल नहीं है। क्योंकि हमने कुछ किया नहीं है। और जिस जीवन ने हमारे भीतर से किया है वही पुरस्कार का हिसाब रखे और वही हानियों का हिसाब रखे। हम बीच से हट गए। और जब कर्तृत्व का भाव खो जाता है तो अस्मिता नहीं रह जाती। जहां अहंकार नहीं है, वहां ब्रह्म, वहां परम ऊर्जा प्रकट होती है।

"श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य कभी कर्म नहीं करता। या करता भी है तो कभी किसी बाह्य प्रयोजन से नहीं।"

या करता भी है, यह भी हमारे लिए कहा गया है। क्योंकि हमें वह कर्म करता हुआ दिखाई पड़ेगा। हमें दिखाई पड़ते हैं कृष्ण; मानना मुश्किल है कि वे कर्म नहीं करते। क्योंकि ऐसा भी क्षण आ जाता है कि उन्होंने कहा भी है कि मैं अस्त्र नहीं उठाऊंगा, शस्त्र नहीं उठाऊंगा, और फिर वे सुदर्शन चक्र हाथ में ले लेते हैं। कर्म में खड़े हुए मालूम पड़ते हैं। कहना कठिन है कि कर्म नहीं करते। अपनी तरफ से न करते हों, हमारी तरफ से तो दिखाई पड़ता है कर्म, काफी दिखाई पड़ता है।

जीसस का कर्म काफी दिखाई पड़ता है। कितना ही वे कहते हों, और अपनी तरफ से उनके लिए कर्म न भी हो, लेकिन हमने भी उनको देखा है। तो मंदिर में लोगों ने उन्हें देखा है कि उन्होंने ब्याज लेने वाले लोगों के तख्ते उलट दिए, और हाथ में एक कोड़ा उठा लिया और ब्याज लेने वाले लोगों को कोड़ों से मार कर बाहर निकाल दिया। एक आदमी ने सैकड़ों दुकानदारों को खदेड़ दिया, यह भी बड़ी हैरानी की बात है। निश्चित ही, वह आदमी आदमी नहीं रहा होगा उस क्षण में, कोई और विराट शक्ति उसके भीतर से काम कर रही होगी। तभी तो सारे लोग डर गए, भयभीत हो गए, भाग गए। बदला लिया उन्होंने पीछे, लेकिन उस क्षण में एक जवान आदमी, अकेला आदमी, उसने लोगों की दुकानें उलट दीं--सदियों से दुकानें वहां लगी थीं--और कोई उसे रोक न सका! कोई बड़ी शक्ति उसे पकड़े होगी। लेकिन फिर भी हमारे लिए तो दिखाई पड़ता है कि कर्म हुआ; कोड़ा हाथ में लिया, लोगों को डरवाया, लोगों को धक्का मारा, लोगों के तख्ते उलटे। कर्म साफ है।

तो लाओत्से कहता है, या करता भी है। क्योंकि नहीं तो हमें मुश्किल हो जाएगा, हम फौरन मान लेंगे कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह कुछ भी नहीं करता। और हम उस घटना को तो जानते नहीं, जहां कर्म

सहज होता है; वह हमसे अपरिचित है। तो लाओत्से कहता है, एक बात ध्यान रखना कि या करता भी है तो भी कभी किसी बाह्य प्रयोजन से नहीं। उसका कोई बाह्य प्रयोजन नहीं होता। कोई अंतर-उदभावना होती है, लेकिन बाह्य प्रयोजन नहीं होता।

अगर इस बात को हम समझ लें तो कृष्ण के चरित्र में जो एक उलझाव है वह साफ हो जाए। क्योंकि कृष्ण ने वचन दिया कि शस्त्र नहीं उठाएंगे, फिर शस्त्र उठा लिया। तो हमारे लिए तो बात बड़ी गड़बड़ हो गई। यह तो आदमी वचन का भी मालूम नहीं होता। इसका भरोसा ही नहीं किया जा सकता। इसके आश्वासन का क्या मूल्य है? और जिसके आश्वासन में वचन का मूल्य न हो उसको पूर्ण अवतार कहने वाले हिंदू पागल मालूम होते हैं। और जब कृष्ण की यह अवस्था है तो फिर बाकी हिंदुओं की क्या हालत होगी? बड़ी कठिन बात है। कृष्ण ने वचन दिया है, फिर शस्त्र कैसे उठा लिया?

अगर इस सूत्र को हम समझें तो ख्याल में आ जाएगा। वचन देना एक परिस्थिति की सहज उदभावना है। जब वचन दिया है, तब परिस्थिति और है। उस परिस्थिति में यही फूल खिला कि वचन कृष्ण ने दिया। अपनी तरफ से देते तो वे सोच कर देते कि देना कि नहीं देना। क्योंकि कल परिस्थिति बदल सकती है, और मैं वचन का आदमी हूं। तो अगर वे देते तो भी लीगल ढंग से देते, उसमें कुछ शर्त रखते। वे कहते, यदि ऐसा हुआ, यदि ऐसा न हुआ।

तो आप जैसा देखते हैं न, जब वकील डाक्यूमेंट लिखता है तो उसको इतना लंबा लिखना पड़ता है, एक बात को कहने के लिए वह कोई पचास लाइन का उपयोग करता है। वह इसीलिए कि उसमें जगह है; उसमें पच्चीस जगह बनाता है। कल स्थिति बदल जाएगी। तो इसमें जगह, इसमें छिद्र होने चाहिए, जिनसे उपाय किया जा सके, और कोई यह न कहे कि आपने वचन तोड़ दिया। वचन ही इस ढंग से देना है कि उसको तोड़ने का उपाय उसके भीतर रहे। लीगल डाक्यूमेंट में यह जरूरी है।

लेकिन कृष्ण ने सीधा कह दिया कि हां, मैं शस्त्र न उठाऊंगा। यह वचन किसी कानूनी आदमी का वचन नहीं है। यह एक साधु का वचन है, जिसको न भविष्य का विचार है, न अतीत का हिसाब है। जो चालाक नहीं है। यह एक भोले आदमी का, एक बच्चे का, एक सरलता से निकला हुआ वचन है कि हां, नहीं उठाऊंगा। इसे कुछ पता नहीं है कि जो इससे वचन ले रहे हैं वे चालबाज हैं, जो इससे वचन ले रहे हैं वे होशियार हैं, वे कुशल हैं, जो इससे वचन ले रहे हैं वे इसे बांधने की कोशिश कर रहे हैं, वे इसके हाथ-पैर बांध देना चाहते हैं। कृष्ण को इसका कुछ पता नहीं है। उन्होंने वचन दे दिया। और फिर एक घड़ी आई, तब उन्होंने शस्त्र भी उठा लिया। अब नीतिशास्त्री को बड़ी अड़चन है कि कृष्ण को कैसे बिठाया जाए। वचन टूट गया। यह आदमी धोखेबाज है।

मुझे इसमें जरा भी धोखा नहीं मालूम पड़ता। यह आदमी धोखेबाज होता तो पहली बात वचन न देता। यह आदमी धोखेबाज होता तो वचन इस ढंग से देता कि तोड़ने की सुविधा रखता। यह आदमी इतना सरल है कि वचन भी दे दिया और वक्त आया तो तोड़ भी दिया। और इसको कोई अड़चन न मालूम पड़ी। एक दूसरी परिस्थिति में यही स्वाभाविक लगा कि शस्त्र हाथ में उठा लिया जाए। ये दो अलग क्षण हैं। चालाक आदमी दोनों को साथ जोड़ कर सोचता है; सरल आदमी क्षण-क्षण में जीता है। उसके क्षणों के बीच जोड़ नहीं होता; सिवाय उसकी सहजता के और कोई कंटिन्यूटी, और कोई सातत्य नहीं होता। इसलिए कृष्ण मुझे अनूठी सरलता के आदमी मालूम पड़ते हैं। आपके दूसरे महात्मागण उतने सरल नहीं हैं, बड़े चालाक हैं। वे बड़े दूर का हिसाब रखते हैं। उनको परमात्मा भी जब पूछेगा तो उनको फांस न पाएगा। वे सब कानूनन ढंग से चलते हैं। लेकिन कृष्ण बिल्कुल सरल हैं।

यह सरलता ऐसी है जैसे बच्चे की है। अभी प्रेम कर रहा है आपको और क्षण भर बाद आग हो गया और आपकी जान लेने को तैयार है, और क्षण भर बाद शांत हो गया और फिर आपकी गोदी में आकर बैठ गया। आप कभी बच्चे को नहीं कहते कि धोखेबाज है। अभी क्षण भर पहले तू कह रहा था कि दुश्मनी है, और अभी क्षण भर बाद दोस्ती! लेकिन आप बच्चे को कभी धोखेबाज नहीं कहते, क्योंकि आप जानते हैं वह सहज है। धोखा आप दे सकते हैं; वह नहीं दे सकता। हर क्षण में वह सच्चा है। और दो क्षणों का हिसाब नहीं है। क्योंकि वह चालाक आदमी का गणित है। क्षण-क्षण में सच्चा है, और क्षण के प्रति जो सचाई है वह प्रकट कर रहा है।

एक क्षण है जहां कृष्ण कहते हैं कि हां, शस्त्र नहीं उठाऊंगा। और एक क्षण है जब वे शस्त्र उठाते हैं। इन दोनों क्षणों में हमारे लिए हिसाब है, कृष्ण के लिए सिर्फ एक ही सहजता है। उस क्षण में यही सहज था; इस क्षण में यही सहज है। और इन दोनों में कोई कंट्राडिक्शन, कोई विरोध नहीं है। लेकिन हमें विरोध दिखाई पड़ता है। और जिस दिन आपको विरोध न दिखाई पड़े, समझना कि आप में भी चरित्र का जन्म हुआ है। और जब तक विरोध दिखाई पड़े तब तक समझना कि आपका चरित्र हिसाब है।

लेकिन हिंदू भी कृष्ण को ठीक से समझा नहीं पाते। उनको भी अड़चन है। क्योंकि उनके पास भी बुद्धि तो नैतिक चरित्र की है। और जब दूसरे धर्मों के लोग कृष्ण पर आक्षेप उठाते हैं तो हिंदू विचारक को टालमटोल करनी पड़ती है। फिर उसे कुछ बातें जबरदस्ती प्रस्तावित करनी पड़ती हैं। या तो वह कहता है कि यह अवतार का चरित्र है, अबूझ है। अबूझ बिल्कुल नहीं है, सीधा-साफ है। चरित्र का जरा भी रहस्य नहीं है इसमें। यह सीधी-साफ बात है। एक बच्चे जैसा चरित्र है, इनोसेंट। इसमें क्या अबूझ है? लेकिन वे कहते हैं, अवतार का जीवन तो समझा नहीं जा सकता; वह बड़ा रहस्यपूर्ण है। उन्होंने किसी मतलब से उठाया होगा जो हमें पता नहीं है।

उन्होंने बिल्कुल मतलब से नहीं उठाया। अगर मतलब से उठाया है तो वे चरित्र के व्यक्ति ही नहीं हैं; फिर प्रयोजन है। सुदर्शन उठ गया है। इसे कृष्ण ने उठाया नहीं है। इसमें जरा भी सोच-विचार नहीं है। सोचने में और कृत्य में जरा सा भी फासला नहीं है।

आपके कृत्य में और आपके विचार में फासला होता है। आप पहले सोचते हैं, फिर करते हैं। या कभी आप कर लेते हैं तो फिर पीछे बहुत पछताते हैं कि सोचा क्यों नहीं! सोच लेते तो ऐसा कभी न होता। आपका सोच-विचार और आपका कृत्य बड़े फासले पर हैं। कृष्ण का कृत्य ही उनकी चेतना है। उसमें कहीं कोई सोच-विचार नहीं है। जो हो गया है, वह उनकी परिपूर्णता से हो गया है। न तो इसे सोचा है; न इसके पीछे वे सोचेंगे।

इसलिए कृष्ण के जीवन में कोई पश्चात्ताप नहीं है। न कोई पूर्व योजना है, न कोई पश्चात्ताप है। कृत्यों की एकशृंखला है। और कृष्ण हर क्षण में सच्चे हैं। और एक क्षण उन्हें दूसरे क्षण के लिए बांध नहीं पाता। अतीत बंधन नहीं है; उनकी ईमानदारी हर क्षण में सहज प्रवाहित है। जीवन जहां ले जाए, वे जाने को तैयार हैं। चूंकि मैंने कभी ऐसा कहा था, इसलिए जीवन की धारा को वे न मोड़ेंगे। वे कहेंगे, उस क्षण जीवन की धारा पूरब की तरफ बहती थी और अब उसने एक मोड़ लिया और पश्चिम की तरफ बहने लगी।

आप नदी से नहीं कहते जाकर--या गंगा से कहते हैं जाकर--कि तेरी चाल ठीक नहीं है, तेरा चाल-चलन ठीक नहीं है; कभी इस तरफ, कभी उस तरफ। अगर तुझे सीधा सागर ही जाना है तो स्ट्रेट, सीधा जाना चाहिए! कभी देखते हैं कि तू इस तरफ बह रही है, कभी देखते हैं उस तरफ बह रही है; तेरी चाल से पक्का पता नहीं चलता कि तेरी दिशा क्या है।

न, गंगा को कोई भी नहीं कहेगा कि तू धोखेबाज है। जहां धारा जाती है, जहां गड्ढ मिल जाता, जहां द्वार मिल जाता, जहां राह बन जाती, नदी वहां बहती चली जाती है। कभी पूरब भी मुड़ती है, कभी पश्चिम भी मुड़ती है। कई धाराओं में कई दफे मोड़ लेती है, सागर पहुंच जाती है। सागर पहुंचना लक्ष्य भी नहीं है, यह सहज स्वभाव की अंतिम परिणति है। कोई ऐसा झंडा लेकर नहीं चली है गंगा कि सागर पहुंच कर रहेंगे! कि नहीं पहुंचे तो जीवन बेकार है! कि पहुंच गए तो कोई बड़ा उत्सव मनाना है! जैसे सागर की तरफ बहती हुई नदी की सहज धारा है ऐसे ही स्वभाव को उपलब्ध व्यक्ति की जीवन की सहज धारा होती है।

"श्रेष्ठ चरित्र वाला मनुष्य कभी कर्म नहीं करता; या करता भी है तो किसी बाह्य प्रयोजन से नहीं।"

वह जो भी करता है, उसकी अंतर्भावना से, बाह्य प्रयोजन से नहीं। उसके कर्म बाहर से खींचे हुए नहीं हैं, भीतर से आविर्भूत हैं।

"घटिया चरित्र वाला व्यक्ति कर्म करता है; और ऐसा सदा किसी बाह्य प्रयोजन से करता है।"

घटिया चरित्र वाला व्यक्ति हमेशा कर्ता बना रहता है, और जो भी वह करता है उसमें नजर रखता है कि बाहर क्या हो रहा है। भीतर क्या हो रहा है, इसकी उसे फिक्र ही नहीं है। और भीतर से ही जीवन का संबंध है; बाहर तो सब नाटक है, खेल है। घटिया चरित्र वाला व्यक्ति खेल को बड़ा मूल्य दे देता है। वह सदा देखता हैः बाहर क्या हो रहा है, बाहर क्या परिणाम होगा; मैं ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा; मैं ऐसा करूंगा तो ऐसा होगा।

घटिया चरित्र वाला व्यक्ति शतरंज के खिलाड़ी की तरह है। वह पांच चालें आगे की सोच कर रखता है कि अगर मैं ऐसा चलूंगा तो दूसरा क्या करेगा, फिर मैं ऐसा करूंगा तो दूसरा क्या करेगा। शतरंज के जो बड़े खिलाड़ी हैं, अंतर्राष्ट्रीय, वे कहते हैं कि जो व्यक्ति पांच चालें एक साथ सोच लेता है, वही शतरंज में जीत पाता है। पांच चालों का हिसाब दिमाग में होना चाहिए--कम से कम। ज्यादा का हो सके, तब तो फिर उतनी कुशलता बढ़ती जाएगी। घटिया चरित्र वाला व्यक्ति जीवन को शतरंज का खेल समझ रहा है। वह अपनी पत्नी से भी बोलता है तो पहले से सोच लेता है कि मैं यह कहूंगा तो पत्नी क्या कहेगी, उसका उत्तर क्या देना है। उसके लिए जिंदगी एक अदालत है, आनंद नहीं है। वह पूरे वक्त लगा हुआ है कि कौन... मैं ऐसा कहूं, इसका यह परिणाम होगा। वह परिणाम को पहले से सोच कर, फिर कदम उठाता है।

इसको हम बुद्धिमान आदमी कहते हैं। इससे ज्यादा बुद्धू आदमी खोजना मुश्किल है। क्योंकि वह भला बाहर कुछ लाभ पा ले, लेकिन वह जो गंवा रहा है उसका उसे कोई पता ही नहीं है।

"श्रेष्ठ दया वाला मनुष्य कर्म करता है, लेकिन ऐसा वह बाह्य प्रयोजन से नहीं करता। श्रेष्ठ न्याय वाला मनुष्य कर्म करता है, और ऐसा वह बाह्य प्रयोजन से करता है।"

इसलिए दया धर्म है, और न्याय नीति है। न्याय सामाजिक है, दया आंतरिक है। जब आप दया करते हैं तो जरूरी नहीं है कि आप न्याय पर ध्यान रखें। सच तो यह है, न्याय पर ध्यान रखें तो दया हो ही नहीं सकती।

जीसस ने एक कहानी कही है। एक धनपति ने अपने अंगूर के बगीचे में कुछ लोग काम करने बुलाए। कुछ सुबह आए; कुछ को दोपहर खबर मिली, वे दोपहर आए; कुछ को शाम खबर मिली, वे शाम आए; कुछ तो तब आए जब कि काम बंद होने जा रहा था। जैसे-जैसे खबर मिली, लोग आते गए। और सांझ को उस धनपति ने सभी को बराबर पुरस्कार दिया। लोग बड़े नाराज हो गए जो सुबह से आए थे। उन्होंने कहा, यह अन्याय है! हम सुबह से जी-तोड़ मेहनत कर रहे हैं; कुछ लोग दोपहर आए, उनको भी उतना; कुछ सांझ आए, उनको भी उतना; कुछ अभी आए ही हैं, उन्होंने कुछ किया ही नहीं, उनको भी उतना; यह कैसा अन्याय है!

उस धनपति ने कहा, मैं न्याय से नहीं देता, मैं दया से देता हूं। तुम आए सुबह, तुम्हें मैंने जो दिया है, तुम मुझे कहो, तुमने जितना श्रम किया उससे क्या कम है? उन्होंने कहा, उससे तो कम नहीं है। तो धनपति ने कहा, तुम प्रसन्न होकर घर जाओ। लेकिन उन्होंने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन ये जो अभी आए? धनपति ने कहा, उनसे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। धन मेरा है, मैं लुटाता हूं। तुमने जितना श्रम किया, तुम्हें मिल गया; उससे ज्यादा मिल गया है। लेकिन फिर भी वे लोग कहते गए कि अन्याय हुआ।

जीसस कहते हैं, परमात्मा भी, तुम क्या करते हो, उस हिसाब से नहीं देगा। तुम आए, यही काफी है। उस धनपति ने दिया कि तुम आए, यही काफी है। तुम्हारी मंशा तो पूरी थी काम करने की, समय चुक गया; इसमें तुम्हारा क्या कसूर? तुम्हें जब खबर मिली, तब तुम आए। इससे क्या फर्क पड़ता है? किन्हीं को खबर सुबह मिल गई, वे जरा जल्दी आ गए।

कुछ चरित्रवान आपसे पहले हो गए हैं, आप थोड़ी बाद में हुए। ऐसा मत सोचना कि परमात्मा कहेगा कि यह महात्मा काफी पुराना है, और तुम तो अभी-अभी हुए थे। जीसस की कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है। परमात्मा अपनी दया से देगा, प्रेम से देगा, अंतर्भाव से देगा। उसके पास है, इसलिए देगा। तुम आए, इतना काफी है। तुमने सुना, और जब तुमने सुना तभी तुम आ गए, इतना काफी है।

श्रेष्ठ दया वाला मनुष्य कर्म करता है, लेकिन किसी बाह्य प्रयोजन से नहीं, अंतर्भाव से। तुम्हारे पास है, इसलिए तुम देते हो। किसी को जरूरत है, इसलिए नहीं। एक भिखारी को तुम देते हो। दो कारण हो सकते हैं। भिखारी को जरूरत है, इसलिए। तब तुम न्यायपूर्ण आदमी हो, लेकिन तुम्हारा कृत्य बाहरी है। तुम इसलिए देते हो कि तुम्हारे पास ज्यादा है। तब तुम दयावान हो, तुम्हारा कृत्य आंतरिक है। और दोनों कृत्यों का गुणधर्म बिल्कुल अलग है। जब तुम किसी को देते हो इसलिए कि उसके पास नहीं है, तब तुम किसी से छीन भी सकते हो, क्योंकि उसके पास ज्यादा है। तुम खतरनाक भी हो सकते हो। तुम भिखारी को दे सकते हो, धनपति से छीन सकते हो।

कम्युनिस्ट न्यायपूर्ण हैं। उनके न्याय में कोई शक नहीं है। दया बिल्कुल नहीं है, न्याय पूरा है। मार्क्स कहता है, जिनके पास है उनसे छीनो और उन्हें दो जिनके पास नहीं है। इसमें कहां गलती है? न्यायपूर्ण है। लेकिन दया बिल्कुल नहीं है। दया इसलिए नहीं देती कि उसके पास नहीं है। दया का मूल प्रयोजन और ही है--क्योंकि मेरे पास है और इतना ज्यादा है।

जब तुम किसी गरीब को इसलिए देते हो कि उसके पास नहीं है, तब तुम चाहोगे कि वह तुम्हें धन्यवाद दे। न्याय धन्यवाद मांगेगा। न्याय चाहेगा कि वह आभारी हो। लेकिन जब तुम इसलिए देते हो कि तुम्हारे पास इतना ज्यादा है कि तुम क्या करो अगर न दो, तब तुम उससे धन्यवाद न मांगोगे। बल्कि तुम उसे धन्यवाद दोगे कि तूने मुझे मेरे बोझ से हलका किया; तू राजी हुआ लेने को। क्योंकि तू न भी कर सकता था। देना आसान है, लेकिन अगर लेने वाला न ले तो! लेने वाला इनकार कर सकता है। और तब आपका सारा धन निर्धनता मालूम पड़ेगी। तूने स्वीकार किया, इसलिए मैं अनुगृहीत हूं।

इस मुल्क में हम साधु को भिक्षा देते हैं। और जब वह भिक्षा ले लेता है तो उसको दक्षिणा देते हैं। दक्षिणा इसलिए कि तूने भिक्षा स्वीकार की; वह धन्यवाद है। वह साधु धन्यवाद नहीं दे रहा है; धन्यवाद गृहस्थ दे रहा है कि तेरी कृपा, अनुग्रह कि तूने स्वीकार किया। भिक्षा स्वीकार कर ली, अब यह दक्षिणा है, यह धन्यवाद है। इनकार भी किया जा सकता था। तो साधु को हम इसलिए नहीं दे रहे हैं कि उसके पास नहीं है; हम इसलिए दे रहे हैं कि हमारे पास बहुत है और हम किसी को भागीदार बनाना चाहते हैं, कोई शेयर करे।

तो दया वाला व्यक्ति कर्म नहीं करता, और उसका कोई बाह्य प्रयोजन नहीं है। लेकिन न्याय वाला व्यक्ति कर्म करता है, और ऐसा वह बाह्य प्रयोजन से करता है। और न्याय से भी नीचे गिरे हुए व्यक्ति का अस्तित्व है।

उसको लाओत्से कहता है, "कर्मकांड वाला मनुष्य कर्म करता है, बाह्य प्रयोजन से करता है। और अगर प्रत्युत्तर नहीं पाता, तब वह अपनी आस्तीन चढ़ा कर दूसरों पर कर्मकांड लादने की ज्यादती भी करता है।"

ये तीन तरह के मनुष्य हैं। एक, धर्म को उपलब्ध, वह इसलिए करता है क्योंकि उसके पास इतना ज्यादा है कि वह बांटता है। दूसरा न्यायपूर्ण, वह इसलिए करता है कि कहीं जरूरत है, कोई बाह्य प्रयोजन है, जिसे पूरा करना है। और तीसरा कर्मकांड वाला व्यक्ति; वह न केवल करता है बाह्य प्रयोजन से, लेकिन अगर आप न करने दें उसे तो वह जबरदस्ती भी करेगा, लेकिन करके रहेगा।

यह आपकी समझ में नहीं आएगा, इसमें हम बहुत से लोग ऐसा कर रहे हैं। आप कई बार अच्छा करने में बुरे सिद्ध होते हैं, क्योंकि आप अपने को इतना सही मान कर बैठे हुए हैं और आपका अहंकार इतना मजबूत हो गया है कि अगर आपको दूसरे को चोट और नुकसान भी पहुंचाना पड़े तो भी आप दया करके रहेंगे, आप दया नहीं छोड़ सकते। अब जैसे समझें। मुसलमानों ने हिंदुस्तान में न मालूम कितने मंदिर तोड़ डाले, कितनी मूर्तियां गिरा दीं इन हजार सालों में। उन्होंने किस कारण ऐसा किया? वह तीसरी कोटि का कर्मकांड वाला व्यक्तित्व।

मुसलमान मानता है कि परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है। इस मानने में जरा भी बुराई नहीं है। एकदम सही है बात। लेकिन जब पागल इस बात को मान लेता है कि परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है तो वह समझाने तक ही राजी नहीं रहेगा, अगर आप न समझे तो आस्तीन चढ़ा लेगा। अगर आप फिर भी न माने तो आपको ठीक करने के लिए तलवार भी उठा लेगा वह। आपकी मूर्ति तोड़ कर रहेगा। अच्छा करने की आतुरता इतनी ज्यादा है कि अगर बुराई भी करना पड़े उस अच्छा करने के लिए तो भी वह करेगा।

इसलिए दुनिया में धर्म के नाम पर जितने पाप होते हैं, और किसी चीज के नाम पर नहीं होते। क्योंकि अच्छा करने का इतना भाव रहता है कि फिर बुराई बुराई नहीं दिखाई पड़ती और लगता है यह तो हम अच्छा करने के लिए कर रहे हैं। जब आप अपने छोटे बच्चे को चांटा मारते हैं तब आप यही कहते हैं कि तेरी भलाई के लिए हमें ऐसा करना पड़ रहा है। चांटा मार रहे हैं आप, और तेरी भलाई के लिए! और बड़ा मजा यह है कि हो सकता है, आप इसलिए मार रहे हों कि उस बच्चे ने और छोटे बच्चे को पीटा है। और आप कहते हैं कि हजार दफे कह दिया है कि मार-पीट नहीं होनी चाहिए। और पिटाई कर रहे हैं।

बच्चे की समझ में बिल्कुल नहीं आता कि यह किस जगत का काम हो रहा है। जिस कसूर के लिए उसको मारा जा रहा है, वही कसूर है। और बाप बेटे से कह रहा है, अपने से छोटे को नहीं मारना चाहिए! और बाप बेटे को मार रहा है। वह अपने से छोटा है। इसलिए बच्चे बड़े कनफ्यूज्ड हो जाते हैं, आपके साथ बढ़ते-बढ़ते करीब-करीब उनका दिमाग खराब हो जाता है। उनकी समझ के बाहर हो जाता है कि क्या हो रहा है! नियम क्या है यहां, कुछ समझ में नहीं आता। अगर छोटे को नहीं मारना है तो मुझे क्यों मारा जा रहा है? अगर छोटे को मारना पाप है तो फिर मुझे मारने से रुकना चाहिए। लेकिन आप उसके भले के लिए ही मार रहे हैं। ऐसा नहीं कि आपके मारने से वह छोटे को मारने से रुक जाएगा। वह भी उसके भले के लिए ही उसको... । बस इतना ही शिक्षा का परिणाम होने वाला है।

ये तीन तरह के मनुष्य हैं और आप खोज लेना कि आप किस तरह के मनुष्य हैं। क्योंकि मन की सदा यह इच्छा होती है कि जब भी इस तरह का कोई विचार सुने तो दूसरों के बाबत सोचे कि अच्छा, तो ठीक फलां

आदमी इस तरह का मनुष्य है। नहीं, यह दूसरों से इसका कोई संबंध नहीं है। लाओत्से आपसे बात कर रहा है। और मैं भी आपसे बात कर रहा हूं। आप अपने लिए सोचना कि आप तीन में किस तरह के मनुष्य हैं।

सौ में नब्बे मौके तो इसी बात के हैं कि आप तीसरी तरह के मनुष्य हों--कर्मकांड वाला मनुष्य। सौ में नौ मौके इस बात के हैं कि आप दूसरी तरह के मनुष्य हों--न्याय, नीति वाला मनुष्य। सौ में एक ही मौका है कि आप उस तरह के मनुष्य हों जैसा कि मनुष्य होना चाहिए--धर्म वाला, ताओ वाला मनुष्य।

वह अपने लिए सोचना। और पहले तरह के मनुष्य होने की तरफ ध्यान सजग रहे, तो कठिनाई तो है वहां तक पहुंचने में, लेकिन असंभावना नहीं है।

आज इतना ही।

पांच मिनट रुकेंगे, कीर्तन के बाद जाएं।

तिहत्तरवां प्रवचन

पैगंबर ताओ के खिले फूल हैं

Chapter 38 : Part 2

Degeneration

Therefore:
After Tao is lost, there arises the doctrine of humanity,
After humanity is lost, then arises the doctrine of justice.
After justice is lost, then arises the doctrine of Li.
Now Li is the thinning out of loyalty and honesty of heart,
And the beginning of chaos.
The prophets are the flowering of Tao, and the origin of folly.
Therefore the noble man dwells in the heavy (base),
And not in the thinning (end).
He dwells in the fruit,
And not in the flowering (expression).
Therefore he rejects the one and accepts the other.

अध्याय 38 : खंड 2

अधःपतन

इसलिए:
जब ताओ का लोप होता है, तब मनुष्यता का सिद्धांत जन्म लेता है;
और जब मनुष्यता का लोप होता है, तब न्याय का सिद्धांत जन्म लेता है।
और जब न्याय का भी लोप होता है, तब कर्मकांड का सिद्धांत पैदा होता है।
अब यह कर्मकांड हृदय की निष्ठा और ईमानदारी का विरल हो जाना है।
और वही अराजकता की शुरुआत भी है।
पैगंबर ताओ के पूरे खिले फूल हैं।
और उनसे ही मूर्खता की शुरुआत भी होती है।
इसलिए आर्य पुरुष सघनता (नींव) में बसते हैं;

विरलता (अंत) में वे नहीं बसते।

वे फल में बसते हैं; फूल की खिलावट (अभिव्यक्ति) में वे नहीं बसते।

इसलिए वे एक को इनकार और दूसरे को स्वीकार करते हैं।

मनुष्य दो भांति जी सकता हैः अंतस से या व्यवहार से; या तो भीतर से और या बाहर से।

बाहर से जो जीवन होगा, झूठा, थोथा और पाखंडी होगा--अच्छा भी हो तो भी। अच्छा होने से ही कोई आचरण आंतरिक नहीं हो जाता। अच्छा और बुरा दोनों ही बाहर से संबंधित हैं। बुरा हम कहते हैं उसे, जिससे समाज को नुकसान पहुंचे, दूसरों को नुकसान पहुंचे; अच्छा कहते हैं उसे, जिससे समाज को लाभ हो, दूसरों को लाभ हो। दोनों ही बाहरी घटनाएं हैं। साधु और असाधु दोनों ही बाहर हैं।

भीतर का जीवन संत का जीवन है। अच्छे और बुरे की चिंतना संत नहीं करता। सहज उसका लक्ष्य है; स्वाभाविक होना उसका ध्येय है। स्वाभाविक होना ही उसके लिए अच्छा होना है; अस्वाभाविक होना ही उसके लिए बुरा होना है।

इस बात को थोड़ा ठीक से समझ लें। क्योंकि हमारी चिंतना नीति से प्रभावित होती है, और समाज हमें नैतिक बनाने की कोशिश करता है। समाज के लिए जरूरी भी है। समाज बिना नीति के जी भी नहीं सकता। इसलिए हर व्यक्ति को अनिवार्य रूप से समाज नैतिक बनने की शिक्षा देगा; अनैतिक होने का भय पैदा करेगा। ये जीवन की अनिवार्यताएं हैं। लेकिन अच्छा होकर ही कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता। विपरीत हो सकता है। सत्य को उपलब्ध होकर कोई अच्छा हो, इसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन अच्छा होकर ही कोई सत्य को उपलब्ध हो जाता है, ऐसा जरूरी नहीं है। समाज इससे ज्यादा चिंता नहीं करता कि आप अच्छे हों। अच्छे हों, समाज के लिए पर्याप्त है। आपके लिए पर्याप्त नहीं है। अगर अच्छा होना भी आपके लिए अड़चन है तो दुख का कारण होगा।

इसलिए एक अनूठी घटना घटती है। कभी-कभी अपराधी भी सुखी देखे जाते हैं, और कभी-कभी जिन्हें हम श्रेष्ठ, सज्जन कहते हैं, वे भी दुखी देखे जाते हैं। अक्सर ऐसा ही होता है कि जो अपने ऊपर अच्छाई को आरोपित करता है वह सुखी नहीं हो पाता। आरोपण में पीड़ा है, बंधन है, कारागृह है; और उसे लगता है कि जबरदस्ती हो रही है; परतंत्रता उसके ऊपर थोप दी गई है। इसलिए अच्छा आदमी भी नाचता हुआ मालूम नहीं होता, प्रसन्न नहीं मालूम होता; उसके जीवन में भी उत्सव की कोई वर्षा नहीं दिखाई पड़ती; कोई संगीत, कोई नृत्य उसकी आत्मा में फूटता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। अच्छा आदमी उदास मालूम पड़ता है। उसकी उदासी को हम गंभीरता कहते हैं। उदासी बीमारी है, और स्वभाव से उसका कोई संबंध नहीं है। गंभीरता रोग है; सहजता से उसका कोई संबंध नहीं है।

सहजता तो प्रफुल्लता ही होगी। सहजता में तो आनंद ही होगा। लेकिन गंभीर लोगों ने हमें बड़ी उलटी शिक्षाएं दी हैं। आनंदित व्यक्ति को वे उथला कहते हैं; प्रफुल्लित व्यक्ति को वे ऊपरी कहते हैं; गंभीर आदमी को वे गहरा कहते हैं; उदास आदमी को वे ऊंचा मानते हैं प्रफुल्लित आदमी से।

मूलतः भ्रांत है दृष्टि। गंभीरता विकृति है। जहां रोग होगा वहां गंभीरता होगी। प्रफुल्लता सहज अभिव्यक्ति है। जहां भी जीवन की धारा बहेगी बिना अवरोध के, वहां नृत्य होगा, गीत होगा, उत्सव होगा।

धर्म जब पैदा होता है तब उत्सव होता है, और धर्म जब जड़ हो जाता है और संप्रदाय बन जाता है तो गंभीरता पकड़ लेती है। धर्म जब जन्मता है तब वह कृष्ण की बांसुरी की तरह ही जन्मता है--एक गीत की तरह।

लेकिन जब संगठित होता है तब उदास हो जाता है। धर्म के जन्म के समय तो सहजता होती है, और धर्म के संगठन के समय नीति प्रविष्ट हो जाती है। क्योंकि धर्म तो जन्मता है व्यक्ति की आत्मा में, और संप्रदाय निर्मित होता है समाज के भीतर।

जिस दिन महावीर को ज्ञान होता है, या बुद्ध को परम प्रज्ञा की उपलब्धि होती है, उस दिन उनके जीवन में उत्सव उतरता है। लेकिन यह अकेले व्यक्ति के जीवन में घटी घटना है। बुद्ध अकेले हैं बोधिवृक्ष के नीचे; महावीर वन में एकांत में खड़े हैं। समाज नहीं है, नीति नहीं है, आचरण नहीं है; शुद्ध आंतरिकता है। उस शुद्ध आंतरिकता में तो परम आनंद उपलब्ध होता है। लेकिन जब महावीर के आस-पास जैन धर्म खड़ा होता है तब समाज के भीतर यह घटना घटती है। जब बुद्ध के पास बुद्ध धर्म खड़ा होता है, तो बुद्ध धर्म सामाजिक घटना है।

समाज नीति पर जोर देता है। समाज का आग्रह है दूसरे के साथ ठीक व्यवहार, और धर्म का आग्रह है अपने साथ ठीक व्यवहार। ये दोनों बुनियादी भिन्न बातें हैं। दूसरे के साथ ठीक व्यवहार करके भी आप अपने साथ बुरा व्यवहार कर सकते हैं। तब आप उदास होंगे, गंभीर होंगे, पीड़ित होंगे। आपका अच्छा होना भी आपकी अभिव्यक्ति नहीं बनेगी। आपका जीवन का फूल खिलेगा नहीं, मुर्झाया ही रहेगा। लेकिन जब आप अपने साथ भी अच्छे होते हैं तब आपके जीवन में उत्सव उतरता है। और जो अपने साथ अच्छा है वह किसी के साथ बुरा नहीं हो सकता। पर दूसरे के साथ बुरा न होना गौण है, छाया है। जब कोई व्यक्ति अपने भीतर आनंदित होता है तो किसी को दुख नहीं दे सकता। क्योंकि जो स्वयं के पास नहीं उसे दूसरे को देने का कोई उपाय नहीं है।

हम दूसरे को वही दे सकते हैं, जो हमारे पास है। और हमारी मनोकांक्षाएं कितनी ही विपरीत हों, दुखी आदमी कितना ही चाहे कि दूसरे को सुख दे, सुख दे नहीं सकता। क्योंकि जो पास नहीं है उसे देंगे कैसे? आनंदित आदमी कोशिश भी करे किसी को दुख देने की तो भी उससे सुख ही जाता है। कोई और उपाय नहीं है।

धर्म का जोर है--अपने साथ सदव्यवहार। और जो अपने साथ सदव्यवहार करना सीख गया, और जिसने अपने जीवन को सहज और नैसर्गिक बना लिया, उसके द्वारा किसी के प्रति भी बुरा व्यवहार नहीं होगा। लेकिन वह गौण है, वह विचारणीय भी नहीं है।

यह लाओत्से की प्रस्थापना है। यह उसका मूल बिंदु है, जहां से वह प्रस्थान करता है। इसे हम ख्याल में ले लें, फिर सूत्र को समझें।

"इसलिए: जब ताओ का लोप होता है, तब मनुष्यता का सिद्धांत जन्म लेता है।"

नेता हैं, गुरु हैं। वे लोगों को समझाते हैं कि मनुष्य बनो। मनुष्यता जैसे परम धर्म है। लेकिन लाओत्से कहता है, जब धर्म का लोप हो जाता है तभी मनुष्यता की बातें शुरू होती हैं।

इसे हम ऐसा समझें कि जब भी कोई आपसे कहता है कि मनुष्य बनो, तो एक बात तो पक्की है कि आप मनुष्य नहीं रहे हैं। तभी मनुष्य बनने की शिक्षा में कोई सार है। कोई जाकर गाय को नहीं कहता कि गाय बनो। गाय गाय है। कोई पशुओं को, पक्षियों को नहीं कहता; तोतों को कोई नहीं कहता कि तोते बनो। क्योंकि तोते तोते हैं। सिर्फ मनुष्य को शिक्षा दी जाती है कि तुम मनुष्य बनो। इसका अर्थ हुआ कि मनुष्य सिर्फ दिखाई पड़ता है कि मनुष्य है, मनुष्य है नहीं।

और सिर्फ मनुष्य में ही इस तरह के वचन सार्थक हो सकते हैं कि कोई बड़ा मनुष्य है, कोई छोटा मनुष्य है। दो तोतों में कौन बड़ा तोता है कौन छोटा तोता है? दोनों बराबर तोते हैं। उनका तोतापन जरा भी भिन्न

नहीं है। दो कुत्तों में कौन कुत्ता बड़ा है और कौन कुत्ता छोटा है? जहां तक कुत्तापन का सवाल है, दोनों में बराबर है।

लेकिन दो आदमियों में हम कह सकते हैं एक आदमी बड़ा और एक आदमी छोटा, और एक आदमी महान और एक आदमी क्षुद्र, और एक आदमी पूरा मनुष्य और एक आदमी अधूरा मनुष्य। इस तरह के शब्द, इस तरह के वचन केवल मनुष्य पर ही सार्थक हो सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य मनुष्य की तरह पैदा नहीं हो रहा है, सिर्फ संभावना लेकर पैदा होता है। फिर कोई बन पाता है, कोई नहीं बन पाता; कोई अधूरा बन पाता है, कोई विकृत हो जाता है; कोई भटक जाता है, कोई रास्ते से उतर जाता है। हजार लोग चलते हैं मनुष्य होने की राह पर, कभी कोई एक मनुष्य हो पाता है। होना तो नहीं चाहिए ऐसा। इससे विपरीत हो तो समझा जा सकता है कि हजार लोग पैदा हों और एक आदमी कभी आदमी न हो पाए तो समझ में आ सकता है--रुग्ण हो गया, बीमार हो गया, कुछ भूल हो गई। लेकिन जहां हजार आदमी पैदा होते हों और एक मुश्किल से कभी आदमी बन पाता हो, और नौ सौ निन्यानबे भटक जाते हों, तब तो मानना पड़ेगा कि भटकन ही रास्ता है। यह एक आदमी इस भटकने वाले रास्ते से किसी तरह भूल-चूक से बच गया। यह एक आदमी अपवाद हो गया, नियम न रहा।

लाओत्से कहता है, जब धर्म का लोप हो जाता है, तब मनुष्यता का धर्म, मनुष्यता की बातें, ह्यूमैनिटी, ह्यूमैनिटेरियनिज्म पैदा होता है। तब लोग कहते हैं मनुष्य बनो। लाओत्से कहता है, मूल खो गया हो तब इस तरह की छोटी शिक्षाएं पैदा होती हैं। लाओत्से कहता है, तुम सिर्फ प्राकृतिक बनो।

सारी प्रकृति प्राकृतिक है, सिर्फ मनुष्य अप्राकृतिक है। सिर्फ मनुष्य अपने स्वभाव से इधर-उधर हटता है। कोई अपने स्वभाव से नहीं हटता। अग्नि जलाती है। पुराने शास्त्र कहते हैं, जलाना अग्नि का स्वभाव है। पानी नीचे की तरफ बहता है। पुराने शास्त्र कहते हैं, पानी का नीचे की तरफ बहना स्वभाव है। और पुराने शास्त्र कहते हैं कि मनुष्यता मनुष्य का स्वभाव है। लेकिन कभी आपने देखा है कि आग न जलाती हो? या कभी आपने देखा कि पानी अपने आपसे ऊपर की तरफ चढ़ता हो? लेकिन फिर मनुष्य कैसे, अगर मनुष्यता उसका स्वभाव है, तो जैसे आग जलाती है, वैसे ही मनुष्य को स्वाभाविक रूप से मनुष्य होना चाहिए! भला मनुष्य होना मनुष्य का स्वभाव हो। लेकिन स्वभाव से हम कहीं छिटक गए हैं, हट गए हैं।

इस विचार पर बड़ी खोज चलती रही है, हजारों साल में न मालूम कितने चिंतकों ने कितनी-कितनी प्रस्तावनाएं पेश की हैं कि आदमी विकृत क्यों है? अभी नवीनतम एक प्रस्तावना है आर्थर कोयस्लर की। बहुत घबड़ाने वाली भी। कोयस्लर का ख्याल है--और कोयस्लर एक वैज्ञानिक चिंतक है--कोयस्लर का ख्याल है कि मनुष्य-जाति के प्राथमिक क्षणों में ही, मनुष्य के मूल उदगम में ही मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ विकृति हो गई, और हम विकृत मस्तिष्क को लेकर ही पैदा होते हैं। इसलिए कभी भूल-चूक से कोई बुद्ध हो जाता है, कभी भूल-चूक से कोई क्राइस्ट हो जाता है। वह भूल-चूक है। लेकिन नियम से मनुष्य विकृत पैदा होता है।

इससे कुछ लोगों को सांत्वना भी मिलेगी--इस विचार से--कि चलो, हमारी झंझट समाप्त हुई। मूल में ही कोई उपद्रव है; मेरा निजी कोई दोष नहीं है। और पश्चिम में इस तरह के विचार प्रभावी हो जाते हैं। प्रभावी हो जाने का कारण यह है कि जो बात भी आपको सुविधा देती है गलत होने की, वह प्रभावी हो जाती है। उससे आप रिलैक्स होते हैं, उससे तनाव कम हो जाता है। आप आराम से कुर्सी पर बैठ जाते हैं कि ठीक है, कहीं मूल में, करोड़ों वर्ष पहले इतिहास के साथ ही कुछ भूल हो गई है; मनुष्य विकृत पैदा ही होता है, तो व्यक्तिगत दोष

समाप्त हो गया। और जहां व्यक्तिगत दोष समाप्त हो जाता है वहीं आपको बुरे होने की पूरी सुविधा और छूट मिल जाती है।

लेकिन कोयस्लर का ख्याल कुछ नया नहीं है, उसकी भाषा भला नई हो। ईसाइयत तो बहुत समय से कह रही है कि आदमी मूल पाप में पैदा हुआ। अदम ने जो भूल की थी, उस भूल का फल सारे लोग भोग रहे हैं। अदम ने जो पाप किया था उससे मनुष्य बहिष्कृत हो गया स्वर्ग के राज्य से, सुख के राज्य से, और दुख के जीवन में प्रविष्ट हो गया। अदम ने जो भूल की थी, अदम के बेटों को, आदमी को भोगनी पड़ रही है। तो बहुत पुराना ख्याल है। इसकी भाषा हम बदल दें, वैज्ञानिक कर दें, कि मनुष्य के मन में कोई रुग्णता हो गई मूल में। पुरानी कथा पुराने ढंग से कहती है यही बात कि कहीं कोई भूल हो गई पहले आदमी के साथ, अदम के साथ, और उस भूल का हम सब फल भोग रहे हैं। इस विचार ने पश्चिम को विकृति का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तब आदमी कुछ भी करे, दोष अदम का है। और वह दोषी आदमी इतना दूर है कि अब उसको बदलने का कोई उपाय भी नहीं, वह कहीं है भी नहीं। तो हमें तो इसी पीड़ा में जीना ही पड़ेगा।

लेकिन लाओत्से ऐसा नहीं मानता। और न पूरब के किसी और मनीषी की ऐसी मान्यता है। पूर्वीय मान्यता बिल्कुल भिन्न है। और वह यह है कि मनुष्य पैदा तो बिल्कुल स्वभाव में ही होता है, सब मनुष्य स्वाभाविक पैदा होते हैं, कोई मनुष्य विकृत पैदा नहीं होता; लेकिन विकृति की एक प्रक्रिया से उसे गुजरना पड़ता है। और वह गुजरना शिक्षण के लिए जरूरी है। कुछ लोग उस प्रक्रिया में ही अटक जाते हैं और पार नहीं हो पाते। कुछ लोग प्रक्रिया को पूरा कर लेते हैं; शिक्षण पूरा हो जाता है और पार हो जाते हैं।

इसे हम ऐसा समझें। सभी लोग बच्चे की तरह पैदा होते हैं; कोई आदमी बुजुर्ग की तरह पैदा नहीं होता।

सुना है मैंने, एक गांव में किसी यात्री ने गांव के एक बूढ़े आदमी से पूछा--यात्री पर्यटक था और गुजरता था गांव से, गांव के संबंध में जानकारी चाहता था--उसने पूछा कि तुम्हारे गांव के इतिहास के संबंध में कुछ मुझे बताओ; कभी कोई बड़ा आदमी यहां पैदा हुआ है? उस बूढ़े ने कहा, नहीं, यहां तो सभी बच्चे पैदा होते हैं। यहां कोई बड़ा आदमी कभी पैदा नहीं हुआ।

सभी बच्चे पैदा होते हैं। लेकिन बचपन एक अवस्था है जिससे गुजर जाना चाहिए, जिससे पार हो जाना चाहिए। बहुत कम लोग पार हो पाते हैं। पिछले महायुद्ध में अमरीकी सैनिकों का परीक्षण किया गया मनोवैज्ञानिक। उनकी औसत मानसिक उम्र तेरह वर्ष पाई गई। तेरह वर्ष मानसिक उम्र! शरीर आगे निकल जाता है, मन कहीं अटक जाता है पीछे। सामान्य आदमी की मानसिक उम्र तेरह वर्ष है, चाहे उसके शरीर की उम्र सत्तर वर्ष हो। जैसे ही मनुष्य कामवासना से पीड़ित होता है, लगता है, उसकी प्रतिभा रुक जाती है। क्योंकि चौदह वर्ष के करीब आदमी कामवासना से पीड़ित होता है, और जैसे उसके जीवन की सारी ऊर्जा मस्तिष्क से हट कर काम-केंद्र की तरफ प्रवाहित हो जाती है। इसलिए अगर पूरब के मनीषी इस चेष्टा में रहे कि पच्चीस वर्ष तक युवक वनों में रहें और कामवासना उन्हें न पकड़े, और अगर उन्होंने इस अनुभव और इस प्रयोग के द्वारा ऐसा पाया था कि पच्चीस वर्ष तक अगर युवकों को कामवासना से पार रखा जा सके तो उनकी प्रतिभा पूरी विकसित हो जाती है। वह जो ऊर्जा कामवासना बन कर बहती है वह ऊर्जा पूरी की पूरी उनके जीवन के फूल को खिला देती है।

अभी, आपको शायद पता न हो, अमरीका में हर वर्ष बच्चों की कामुकता की उम्र कम होती चली जाती है। कुछ वर्षों पहले तक पंद्रह वर्ष कामवासना के जन्म की उम्र थी। फिर चौदह वर्ष हो गई, फिर तेरह वर्ष हो गई। अब बारह वर्ष औसत उम्र हो गई। अमरीका के मनोवैज्ञानिक चिंतित हैं कि अगर इस तरह गिराव हुआ तो

कोई आश्चर्य नहीं है कि यह और नीचे गिर जाए। और जितना यह गिराव होता चला जाता है उतनी ही मानसिक उम्र भी कम होती चली जाती है। तो अगर आज अमरीका के युवक विक्षिप्त मालूम पड़ रहे हैं तो उसका एक कारण तो यह भी है कि उनकी मानसिक उम्र नीचे गिरती जा रही है।

सभी बच्चे की तरह पैदा होते हैं, लेकिन बच्चा होने के लिए पैदा नहीं होते। बच्चे के पार जाना है।

आपको ख्याल शायद न हो कि आम आदमी पांच प्रतिशत बुद्धि का उपयोग करता है पूरे जीवन में। जो आंकड़ा सौ तक पहुंच सकता था वह केवल पांच तक ही उपयोग किया जाता है। आप सौ कदम चल सकते थे प्रतिभा के, आप पांच कदम ही चलते हैं। और जिनको हम बहुत प्रतिभाशाली कहते हैं वे भी पंद्रह प्रतिशत प्रतिभा का उपयोग करते हैं। जिनको नोबल प्राइज मिलती हैं वे भी पंद्रह प्रतिशत उपयोग करते हैं। मनुष्य की संभावना अनंत मालूम पड़ती है। अगर हमारे प्रतिभाशाली लोग भी पंद्रह कदम ही चलते हैं, जब कि जन्म से सौ कदम चलने की क्षमता लेकर आए थे, तो लगता है मनुष्यता बहुत अधूरे में जी रही है; अधूरे में भी कहना ठीक नहीं, बहुत छोटे से खंड में जी रही है। आपके मस्तिष्क के अधिकांश हिस्से बिना उपयोग के पड़े रह जाते हैं। आधा मस्तिष्क तो वैज्ञानिक कहते हैं समझ में ही नहीं आता कि क्यों है। क्योंकि उसका कोई उपयोग ही नहीं करता है। मनुष्य तो पूरी क्षमता लेकर पैदा होता है, लेकिन उस क्षमता का शायद पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है।

मनुष्य की शिक्षा में कहीं भूल है, स्वभाव में नहीं। मनुष्य के समाज में कहीं भूल है, क्योंकि समाज मनुष्य के द्वारा निर्मित है; मनुष्य की प्रकृति में कहीं भूल नहीं। क्योंकि वह प्रकृति तो जागतिक है, परमात्मा की है। भूल स्वभाव में नहीं है; भूल समाज में है, व्यवस्था में है।

समझें कि एक बीज हम बोते हैं। और बीज सौ फीट ऊंचा वृक्ष हो सकता था जो आकाश में बदलियों को चूमता। लेकिन उसे ठीक पानी नहीं मिलता, क्योंकि पानी देना माली के हाथ में है। बीज परमात्मा ने दिया है; पानी देना माली के हाथ में है। उसे ठीक खाद नहीं मिलता, उसे ठीक सुरक्षा नहीं मिलती। या माली पागल है और माली उसे बढ़ने नहीं देता। या माली को इस तरह का सपना मन में है कि इस पौधे को छोटा रखा जाए तो ज्यादा सुंदर मालूम पड़ेगा। तो वह उसको काटता रहता है, वह उसकी जड़ों को काटता रहता है, उसके पत्तों को, शाखाओं को काटता रहता है। उसे बढ़ने नहीं देता। या माली को ख्याल है, या समाज में ऐसा फैशन है कि वृक्ष को उसके स्वाभाविक ढंग से बढ़ने दिया जाए तो वह कुरूप हो जाएगा, इसलिए माली उसे एक ढांचा पहना देता है तारों का, ताकि वह वैसा बढ़े जैसा समाज कहता है सौंदर्य है; समाज की धारणा जो सौंदर्य की है वैसा बढ़े। तो फिर पौधा बढ़ता है, लेकिन पौधा वैसा नहीं बढ़ता जैसा बीज लेकर आया था। और फिर अगर पौधा प्रसन्न न हो पाए और खुले आकाश में न उठ पाए और बदलियों को न छू सके और पौधे के जीवन में गीत पैदा न हो, तो हम कहेंगे कि बीज में कुछ भूल थी।

करीब-करीब स्थिति ऐसी है। प्रत्येक मनुष्य बुद्ध होने की क्षमता लेकर पैदा होता है। बुद्धत्व प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। जो बुद्ध नहीं पाता तो समझना चाहिए, कहीं शिक्षा में, यात्रा में, मार्ग में, माली ने, पिता ने, मां ने, शिक्षकों ने, गुरुओं ने, धर्मों ने, कहीं न कहीं कोई उपद्रव खड़ा किया है।

लाओत्से इसी उपद्रव की तरफ इशारा कर रहा है। वह कहता है, जब धर्म का लोप हो जाता है, स्वभाव का, ताओ का, तब मनुष्यता का सिद्धांत जन्म लेता है। और जब मनुष्यता का भी लोप हो जाता है, तब न्याय का सिद्धांत जन्म लेता है। और जब न्याय का भी लोप हो जाता है, तो कर्मकांड पैदा होता है।

स्वभाव के लिए फिर कोई नियम नहीं है; न कोई मनुष्यता है, न कोई न्याय है, न कोई कर्मकांड है। स्वभाव पर्याप्त है। इसलिए हमने उपनिषदों में कहा है कि जो व्यक्ति स्वभाव को उपलब्ध हो जाए वह फिर सारे सामाजिक नियमों के पार हो गया। फिर उस पर कोई बंधन नहीं है। फिर उससे हम नहीं कह सकते कि तुम ऐसा करो। फिर हम यह नहीं कह सकते कि ऐसा करना उचित है और ऐसा करना अनुचित है। उपनिषदों ने कहा है, जो व्यक्ति स्वभाव को उपलब्ध हो गया वह जो भी करता है वही उचित है, और वह जो नहीं करता वही अनुचित है। हमारी परिभाषाएं उस पर लागू नहीं होतीं; उसका आचरण ही हमारी परिभाषाएं बनता है।

बुद्ध को देखें। और बुद्ध जैसा चलते हैं, जैसा व्यवहार करते हैं, वही हमारे लिए नियम है। हम उनसे नहीं कह सकते कि हमारे नियम के विपरीत आप न चलें।

इसलिए एक महत्वपूर्ण घटना भारत में घटी कि हमने किसी बुद्ध या कृष्ण को जीसस की तरह सूली पर नहीं लटकाया। जीसस अगर भारत में पैदा होते तो हमने उन्हें अवतारों की एक गणना में गिनती की होती। अगर बुद्ध जेरुसलम में पैदा होते तो सूली पर लटकते। कोई जीसस का ही सवाल नहीं है। क्योंकि जेरुसलम में जो समाज था वह सोचता है कि जो उसके नियम हैं वह प्रत्येक को पालन करने चाहिए। चाहे कोई कितने ही ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, नियम के बाहर नहीं जाता। इसलिए जीसस को भी उनके नियम के अनुसार चलना चाहिए। लेकिन हम इस देश में मानते रहे हैं कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाए वह हमारे नियम के पार चला जाता है। और हम अपने को उसके अनुसार ढालें, यह तो हो सकता है; हम उसे अपने अनुसार ढालें, यह नहीं हो सकता। अगर हम अपने को उसके अनुसार न ढाल सकें तो यह हमारी मजबूरी है; उसका दोष नहीं।

इसलिए बुद्ध को भारत ने स्वीकार नहीं किया। हिंदू विचारधारा को बुद्ध की विचारधारा पसंद नहीं पड़ी। लेकिन एक बड़ी मीठी घटना है। बुद्ध को अस्वीकार कर दिया, भारत का समाज उनके पीछे नहीं चला; लेकिन फिर भी हिंदुओं ने उन्हें अपना एक अवतार माना। यह बड़ी अनूठी बात है। बुद्ध का धर्म हिंदुस्तान में नहीं फैल पाया; उखड़ गया। बुद्ध ने जो जीवन के सूत्र दिए थे वे लोग मानने को राजी न हुए। यह बड़ा अनूठा मालूम पड़ता है कि जिसको मानने वाला इस मुल्क में एक न रहा, फिर भी हिंदुओं ने अपने एक अवतार में बुद्ध की गिनती की। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; यह हमारी मजबूरी है कि हम तुम्हारे पीछे न चल सके। यह तुम्हारा कसूर नहीं, यह हमारी भूल है। और हमारी अपनी कमियां हैं, सीमाएं हैं। हमारे पैर उतने मजबूत नहीं कि तुम जिस पर्वतीय मार्ग पर जा रहे हो, हम तुम्हारे पीछे आएं। इसलिए हम तुम्हारे पीछे तो नहीं आ सकते, तुम अकेले जाओ। लेकिन यह हम जानते हैं कि तुमने जो पाया है वह सही है। गलत होंगे तो हम होंगे। इसलिए बुद्ध को हमने अवतारों में तो गिन लिया; बुद्ध के पीछे हम नहीं चले।

अगर बुद्ध जेरुसलम में पैदा होते--या कहीं भी, मक्का में या मदीना में पैदा होते--तो सूली उनकी निश्चित थी। मोहम्मद को जिस तरह परेशान किया अरब ने, इस मुल्क ने कभी किसी तीर्थंकर को, किसी पैगंबर को इस भांति परेशान नहीं किया। अस्वीकार किया हो, इनकार किया हो, कह दिया हो कि हम तुम्हारे पीछे नहीं आते, लेकिन अनादर नहीं किया। सूत्र यही है कि तुम ताओ को, स्वभाव को उपलब्ध हो गए; तुम्हारे लिए कोई नियम नहीं। हम अंधेरे में, घाटी में भटकते हुए लोग हैं, स्वभाव का हमें कोई पता नहीं; हम नियम से जीते हैं। हमारे-तुम्हारे बीच बड़ा फासला है। उस फासले को हम पूरा करें, ऐसी हमारी आकांक्षा है। न कर पाएं, ऐसी हमारी मजबूरी है, कमजोरी है।

जब स्वभाव का लोप होता है तब मनुष्यता का सिद्धांत जन्म लेता है। इसलिए मनुष्यता का सिद्धांत कोई बड़ा ऊंचा सिद्धांत नहीं है। लेकिन उससे भी नीचे की स्थितियां हैं। जब मनुष्यता भी लोप हो जाती है तब न्याय

के सिद्धांत का जन्म होता है। जब हम लोगों से कहते हैं, न्यायपूर्ण व्यवहार करो। तो उसका मतलब यह है कि अब मनुष्य होना भी आसान नहीं रहा। मनुष्य तो न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा ही। यह सवाल नहीं है कि दूसरे के साथ न्याय होना चाहिए; यह उसके मनुष्य होने में ही निहित है कि वह न्यायपूर्ण व्यवहार करेगा। लेकिन जब मनुष्यता भी खो जाती है, जब मनुष्य होने का प्रेम भी खो जाता है, तो फिर हमें कहना पड़ता है कि अन्याय मत करो। न्याय की सारी व्यवस्था निषेधात्मक है। इसलिए न्याय हमेशा नकार की भाषा में होता है। जीसस ने पुराने बाइबिल से दस महा आज्ञाओं का उल्लेख किया है, टेन कमांडमेंट्स। लेकिन सभी नकारात्मक हैं--ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। क्योंकि न्याय यह नहीं कह सकता कि क्या करो; न्याय इतना ही कह सकता है कि ऐसा मत करो, ताकि अन्याय न हो। चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो, हत्या मत करो; ये सब निषेधात्मक हैं। मनुष्यता विधायक है।

इसे थोड़ा समझ लें। परम सहजता न तो विधायक है, न निषेधात्मक है। वहां कोई नियम नहीं। वहां तो जो तुम्हारे भीतर से आए वही नियम है। वहां न करना और करने का कोई सवाल नहीं है। परम धर्म में प्रतिष्ठित व्यक्ति तो कुछ करता ही नहीं; इसलिए विधायक और निषेध की बात नहीं हो सकती। उससे जो होता है, होता है। वह तो हवा-पानी की तरह है। उस पर हम न दोष दे सकते और न उसकी प्रशंसा कर सकते।

अगर लाओत्से से जाकर हम कहें कि तुम बड़े सच्चरित्र हो! तो वह हंसेगा; वह कहेगा, इसमें मेरा कोई गुण नहीं; इसमें मेरा कोई भी गुण नहीं है। अगर हम लाओत्से से कहें कि तुम बड़े शांत हो! तो वह कहेगा, इसमें मेरा कोई गुण नहीं; झीलें शांत हैं, पहाड़ शांत हैं, आकाश शांत है, ऐसा ही मैं भी शांत हूं। इसमें कुछ गुण-गौरव नहीं है।

परम धर्म में प्रतिष्ठित, जिसको हम संत कहते हैं, उसके लिए कोई कर्म नहीं है। उससे नीचे उतर कर मनुष्यता है। मनुष्यता के लिए विधायक कर्म है। क्या करो? प्रेम करो, दया करो, करुणा करो। कुछ करने पर जोर है। उससे भी नीचे उतर कर न्याय है। वहां न करने पर जोर है। हिंसा मत करो। प्रेम तुम नहीं कर पा सकते हो, छोड़ दो; लेकिन कम से कम किसी की हत्या मत करो, किसी को दुख मत पहुंचाओ। दान नहीं कर सकते हो, छोड़ो; चोरी मत करो। न्याय "न करने" पर उतर आता है।

परम अवस्था है--निषेध-विधेय के पार। एक सीढ़ी नीचे मनुष्यता है--विधायक। अगर हम बुद्ध के धर्म को लें तो वह विधायक है। लाओत्से की बात परम है। बुद्ध का धर्म विधायक है--करुणा। महावीर का धर्म विधायक है--दया। जीसस का धर्म विधायक है--प्रेम। उससे भी नीचे न्याय का जगत है, जहां जोर इस बात पर है कि तुम कम से कम दूसरे को चोट, नुकसान, पीड़ा मत पहुंचाओ। इतना भी काफी है। लेकिन वह भी अंतिम पतन नहीं है। उससे भी नीचे कर्मकांड का जगत है, जहां सब पाखंड है; जहां दूसरे का तो कोई सवाल ही नहीं है। जहां अगर न्याय भी करना है तो इसीलिए, ताकि न्याय के द्वारा भी शोषण हो सके। जहां अगर चोरी करने से रुकना है तो भी इसलिए, ताकि बड़ी चोरी की व्यवस्था हो सके। जहां सब धोखा है। जहां सिर्फ अपना स्वार्थ ही सब कुछ है। और अपने स्वार्थ के लिए सभी कुछ समर्पित है। और उस स्वार्थ में कठिनाई पड़ती है। क्योंकि आप स्वार्थी हैं, अकेले नहीं, और भी सभी लोग स्वार्थी हैं। तो उन सब स्वार्थियों के बीच में कैसे व्यवस्था से आप अपनी नौका को बचा कर पार कर लें, बस वही धर्म है। इस भांति चलो कि तुम्हें कोई नुकसान न पहुंचा पाए, और तुम नुकसान पहुंचाने में सदा अग्रणी रहो। लेकिन तुम्हें कोई पकड़ भी न पाए। कर्मकांड का जगत है।

एक आदमी मंदिर जाता है। मैंने सुना, एक आदमी रोज चर्च जाता था। बहरा था, तो कुछ सुन तो सकता नहीं था। न चर्च में होने वाले भजन सुन पाता, न प्रवचन सुन पाता। लेकिन नियमित रूप, हर रविवार ठीक समय पर सबसे पहले चर्च में मौजूद होता और सबसे बाद तक बैठा रहता।

आखिर पुरोहित भी जिज्ञासु हो गया और उसने एक दिन जैसे ही आया बहरा आदमी, अकेला ही था, उसने पूछा कि एक प्रश्न मेरे मन में सदा उठता है। लिख कर ही पूछा, क्योंकि वह सुन नहीं सकता है। वह यह कि जब तुम सुन ही नहीं सकते--न तुम गीत सुन सकते, न भजन, न संगीत, न प्रवचन--तो तुम इतने निष्ठावान क्यों हो कि नियम से तुम पहले आकर बैठते हो और नियम से तुम अंत में जाते हो? तो उस बहरे आदमी ने कहा कि मैं चाहता हूं कि लोग मुझे देख लें कि मैं धार्मिक हूं; और कोई प्रयोजन नहीं है।

यह भी इनवेस्टमेंट है, लोग जान लें कि मैं धार्मिक हूं। क्रियाकांडी आदमी की उत्सुकता धार्मिक होने में नहीं है, जनाने में है कि मैं धार्मिक हूं। क्योंकि इसके सहारे बहुत सा अधर्म किया जा सकता है। अगर अधर्म ठीक से करना हो तो धार्मिक होने की धारणा लोगों में चाहिए। अगर आपको झूठ बोलना है तो आपको सत्य बोलने का प्रचार करना चाहिए। क्योंकि झूठ केवल उसी से बोला जा सकता है जो सत्य पर भरोसा करता हो। नहीं तो कोई झूठ बोल नहीं सकता; कोई फायदा भी नहीं है। अगर सभी लोग मानते हों, झूठ बोलना ही धर्म है, फिर बड़ी मुसीबत हो जाए। फिर आप झूठ में कभी सफल नहीं होंगे। आपका झूठ सफल होता है सच में श्रद्धा रखने वाले लोगों की वजह से। आप बेईमानी में सफल हो जाते हैं, क्योंकि कुछ लोग अभी भी ईमानदारी का भरोसा किए बैठे हैं। आपकी बेईमानी सफल नहीं होती; उनकी ईमानदारी आपकी सफलता बनती है। इसलिए क्रियाकांडी व्यक्ति को उन सारी चीजों की प्रचारणा करते रहना चाहिए जिनके विपरीत उसे कुछ करना है।

मैंने सुना है, एक चोर एक बैंक में रात प्रविष्ट हुआ। साज-सामान लेकर गया था, डायनामाइट लेकर गया था कि तिजोड़ी को तोड़ डालेगा। लेकिन तिजोड़ी के सामने ही एक छोटी सी तख्ती उसने लगी देखी। बहुत चकित हुआ। तख्ती पर लिखा थाः डोंट यूज डायनामाइट; दि सेफ इ.ज नाट लॉक्ड, जस्ट पुश दि बटन। डायनामाइट का उपयोग मत करो, ताला है नहीं तिजोड़ी पर, सिर्फ बटन दबाओ। वह चकित हुआ कि बड़े अदभुत लोग हैं! उसने बटन दबाई। लेकिन बटन दबाते ही एक बहुत बड़ा रेत का थैला उसके ऊपर गिरा। सारे बैंक में बल्ब जल गए; घंटियां बजने लगीं। पुलिस भीतर आ गई। स्ट्रेचर पर उसे बाहर ले जाया गया। जब वह होश में आया और जब उसे एंबुलेंस में रखा जा रहा था तब उसके मुंह से ये शब्द सुने गएः माय फेथ इन ह्यूमैनिटी हैज बीन शेकन वेरी डीपली; मेरा भरोसा मनुष्यता में बुरी तरह जर्जरित हो गया।

चोर को भी आपके भरोसे पर ही भरोसा है। और तो कोई उपाय नहीं है।

चौथी जो स्थिति है, वहां धर्म भी शोषण का आधार है। इसलिए अगर आपको शोषक, बेईमान, चार सौ बीस, सब मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में इकट्ठे मिलते हैं तो चकित होने की कोई जरूरत नहीं। वे वहीं मिलेंगे। सारा आयोजन उनके लिए ही हो रहा है और उनके हित में है। यह जो कर्मकांडी मनुष्य है, इसकी जीवन-व्यवस्था का मूल आधार समझ लेना जरूरी है। क्योंकि हम में से अधिक उसी चौथी श्रेणी में होंगे। उसका मूल आधार क्या है?

समझें, समाज में गरीबी है। तो यह जो कर्मकांडी है, यह गरीबी मिटाने के पक्ष में नहीं होगा कभी भी, यह दान के पक्ष में होगा। गरीबी का मूल आधार मिट जाए, इसके पक्ष में कभी नहीं होगा। गरीब तो बने रहें, लेकिन दान बड़ा धर्म है, इसके पक्ष में होगा। क्योंकि दान गरीबी को मिटाता नहीं, सिर्फ गरीबी को सहने योग्य बनाता है। यह मूल कारण कभी नहीं मिटाना चाहेगा, यह केवल ऊपर से लीपापोती करना चाहेगा। यह मकान

की इमारत नहीं बदलेगा, आधार नहीं बदलेगा, यह सिर्फ व्हाइट वाश करने पर भरोसा रखेगा। मकान वही होगा।

इसलिए बहुत मजे की बात है कि धार्मिक आदमी है, वह एक भिखारी को दान देने के लिए तैयार है, और जो नहीं देता उसको अधार्मिक कहेगा; लेकिन इस पूरी व्यवस्था को वह समझने को तैयार नहीं है कि यह भिखारी पैदा कैसे होता है। और वह सब कुछ कर रहा है जो भी, उसके द्वारा यह भिखारी पैदा हो रहा है। वह जो भी कर रहा है, जहां से उसको दान देने योग्य रुपए मिल रहे हैं, वह पूरी व्यवस्था से यह भिखारी पैदा हो रहा है। वह व्यवस्था का आधार है खुद। लेकिन इस भिखारी को दान देने के पक्ष में है। और जो नहीं देगा दान, उसे अधार्मिक कहता है।

तो दो तरह के अधार्मिक हैं। एक वे जो दान नहीं देते। लेकिन वे उतने बड़े अधार्मिक नहीं हैं; वह जो दान दे रहा है, लेकिन गरीबी बिल्कुल मिट जाए, इसके पक्ष में नहीं है।

स्वामी करपात्री ने एक किताब लिखी है और उसमें लिखा है कि समाजवाद के वे इसलिए विरोध में हैं। जो कारण दिया है, वह बहुत अदभुत है। वह कारण यह है कि हिंदू धर्म में दान के बिना मोक्ष जाने का कोई उपाय नहीं है। और अगर समाजवाद आ जाए तो दान कौन लेगा? तो फिर मोक्ष कैसे जाइएगा?

मोक्ष जाने के लिए गरीबों का होना बिल्कुल जरूरी है। क्योंकि उन्हीं के कंधे पर रख कर पैर तो आप मोक्ष जाएंगे। मगर उनको दान भी देते रहिए, कहीं ऐसा न हो कि वे आपके कंधे पर पैर रखने के पहले ही जमीन पर गिर जाएं। इतनी ताकत उनमें रहनी चाहिए कि आप कंधे पर पैर रख सकें और वे आपको झेल सकें।

तो गरीब को जिलाए रखो, उसे मर मत जाने दो। क्योंकि उसके मरते ही वह धनपति भी मर जाएगा। उसके ही कंधे पर खड़ा है। लेकिन कंधे से मत उतरो। और उसको भी तुम्हारे जैसे ही योग्य मत हो जाने दो। क्योंकि दो हालत में धनपति मिटेगा--या तो गरीब मिट जाए या गरीब भी अमीर हो जाए। दो हालत में धनपति मिटेगा। ये दोनों हालतें मत होने दो। गरीब को उस जगह रखो जहां वह गरीब भी रहे और धनपति के प्रति श्रद्धा से भी भरा रहे। तो दान भी दो, दया भी करो। यह कर्मकांडी की व्यवस्था है।

इसलिए अगर मार्क्स ने कहा है कि धर्म गरीबों के लिए अफीम है तो एकदम गलत नहीं कहा है। कर्मकांडी धर्म के लिए मार्क्स की बात बिल्कुल सही है। यह चौथी कोटि का जो धर्म है, इसके लिए मार्क्स की बात एकदम सही है कि यह गरीब को अफीम खिलाना है। न उसे भूख का पता चलता, न उसे दुख का पता चलता, वह अफीम खाए पड़ा रहता है। कर्मकांडी का दान, दया, धर्म, धर्मशालाएं, मंदिर, स्कूल, अस्पताल, सब अफीम हैं। गरीब को इस हालत में नहीं आने देता कि वह बिल्कुल ही इतना असंतुष्ट हो जाए कि क्रांति कर गुजरे। उसे संतोष देता रहता है, सांत्वना देता रहता है।

अगर दान की व्यवस्था बिल्कुल न हो तो क्रांति अभी हो जाए। लेकिन दान की व्यवस्था बफर बना देती है। जैसे ट्रेन में बफर होते हैं दो डिब्बों के बीच में। तो कभी कोई धक्का लगे गाड़ी को तो बफर झेल लेते हैं; डब्बों में बैठे लोगों को धक्का नहीं पहुंच पाता। बफर पी जाते हैं धक्के को। ऐसा समाज गरीब और अमीर के बीच बफर पैदा करता है कि कुछ भी उपद्रव हो तो बफर पी जाएं, अमीर तक धक्का नहीं आ पाए।

तो गरीब और अमीर के बीच में दान और दया के क्रियाकांड बफर पैदा करते हैं। और बड़ी कुशलता से। लंबे अनुभव से यह बात तय हो पाई है कि समाज को अगर ठीक से चूसना हो तो अकेला चूसना काफी नहीं है; चूसने के आस-पास एक वातावरण होना चाहिए जहां गरीब को खुद ही लगे कि उसके हितकारी, उसके कल्याण करने वाले लोग हैं। ये उसका शोषण कैसे कर सकते हैं?

अगर भारत जैसे मुल्क में क्रांति नहीं हो सकी कभी भी तो उसका एक मूल कारण यही है कि यहां हमने इतना बड़ा कर्मकांड पैदा किया, हमने इतने बफर पैदा किए कि दुनिया में कोई समाज इतनी कुशलता से बफर पैदा नहीं कर पाया। गरीब को लगता ही नहीं कि अमीर उसका दुश्मन है। गरीब को लगता है कि अमीर उसका त्राता, उसका पिता, उसको दान देने वाला, उसको सम्हालने वाला, उसका नाथ, सब कुछ अमीर लगता है।

अगर हम एक सौ वर्ष पीछे लौट जाएं और भारतीय गांव की तस्वीर देखें तो गरीब यह सोच ही नहीं सकता कि यह जो अमीर है, यह उसका दुश्मन हो सकता है। यह उसका पिता है; यही तो उसका सब कुछ है। यही उसे भोजन देता, यही उसके बच्चों को शिक्षा देता, यही उसे वस्त्र देता; इस पर ही सब कुछ निर्भर है। जब कि हालत बिल्कुल उलटी है। इस अमीर का सब कुछ इस गरीब पर निर्भर है। लेकिन गरीब को हजारों वर्ष से समझाया गया है कि अमीर पर सब कुछ निर्भर है। और यह समझाहट, दान, दया, करुणा, मंदिर, धर्मशाला, इनसे आई है। ये बीच के सेतु हैं।

तो कर्मकांडी मनुष्य बहुत धार्मिक दिखाई पड़ेगा, लेकिन जरा भी धार्मिक नहीं होगा।

लाओत्से कहता है, "यह कर्मकांड हृदय की निष्ठा और ईमानदारी का विरल हो जाना है, तिरोहित हो जाना है। और वही अराजकता की शुरुआत भी है।"

और जब ऐसा होगा, कर्मकांड इतना सघन हो जाएगा, तो फिर व्यवस्था टूटेगी। एक सीमा है, जब तक कर्मकांड सहा जा सकता है, फिर सब उखड़ जाएगा।

करीब-करीब भारत ऐसी जगह खड़ा है आज, जहां कर्मकांड अपने सौ डिग्री के करीब पहुंच रहा है; जहां किसी भी दिन बगावत, उपद्रव, अराजकता होने वाली है। इसके मूल में हमारा हजारों साल से इकट्ठा हुआ कर्मकांड है। उसकी पर्त बिल्कुल विरल हो गई, कभी भी टूट सकती है। हृदय की निष्ठा उसमें जरा भी नहीं है। न कोई आंतरिक भाव है, न कोई न्याय है, न कोई मनुष्यता है--ताओ और धर्म तो बहुत दूर की बात है, स्वप्न है--सिर्फ कर्मकांड है। और उस कर्मकांड का बड़ा जाल है। लेकिन वह जाल भी एक जगह पर मरने के करीब पहुंच जाता है। जब भी कोई व्यर्थ चीज बहुत बोझिल हो जाती है तो कब तक ढोई जा सकती है? एक सीमा आ जाएगी जब उसे सिर से उतार कर फेंक ही देना पड़ेगा।

तो लाओत्से कहता है, अगर ताओ हो जगत में तो क्रांति नहीं होगी। क्योंकि क्रांति का कोई कारण ही नहीं है। लेकिन जैसे ही ताओ से गिरना शुरू होता है, अगर मनुष्यता हो जगत में तो भी वैसा आनंद तो नहीं रह जाएगा जैसा धर्म के प्रभाव में होता है, लेकिन फिर भी सुख होगा। क्रांति नहीं होगी। अगर न्याय हो जगत में तो सुख भी खो जाएगा; लेकिन दुख न पहुंचे लोगों को, इतनी धारणा होगी। तो भी क्रांति नहीं होगी। वह भी खो जाए, फिर कर्मकांड ही रह जाए, तो एक न एक क्षण अराजकता और क्रांति अनिवार्य है, क्योंकि लोगों को दुख भी दिया जा रहा है। और थोथा कर्मकांड कब तक लोगों को धोखा दे सकता है?

यह करीब-करीब ऐसा है जैसे बच्चे को मां दूध नहीं पिलाना चाहती और उसके मुंह में उसका ही अंगूठा पकड़ा देती है। वह थोड़ी देर चूसेगा। लेकिन कब तक? एक सीमा है। आखिर भूख बढ़ेगी तो अंगूठे का कर्मकांड ज्यादा साथ नहीं दे सकता। अंगूठा कर्मकांड है। उससे कुछ दूध भी नहीं निकल रहा, उससे कुछ मिल भी नहीं रहा। लेकिन बच्चे को ऐसा लग सकता है कि वह कुछ चूस रहा है तो कुछ मिल रहा होगा। क्योंकि जब भी उसने मां का स्तन चूसा है तो दूध मिला है। तो चूसने में और मिलने में एक संयोग बन गया, एक एसोसिएशन है। इसमें सिर्फ चूस रहा है, मिल कुछ भी नहीं रहा; सिर्फ कर्मकांड है, भीतर कोई धारा नहीं बह रही जीवन की।

लेकिन कब तक यह चलेगा? एक न एक घड़ी बच्चा यह समझ जाएगा कि सिर्फ चूसना हो रहा है; मिल कुछ भी नहीं रहा।

जिस दिन भी समाज का कर्मकांड सिर्फ अंगूठे की तरह चूसना रह जाता है, जिससे कुछ भी मिलता नहीं जीवन को, कोई आनंद की झलक नहीं, कोई सुख का महाभाव नहीं है, कोई अनुग्रह नहीं, कोई जीवन की प्रफुल्लता नहीं, तो अराजकता पैदा होती है।

लाओत्से कहता है, यही अराजकता की शुरुआत है।

"पैगंबर ताओ के पूरे खिले फूल हैं।"

यह सूत्र बड़ा बगावती है, बड़ा क्रांतिकारी है। एकदम से धक्का भी पहुंचाएगा, शॉकिंग है। पैगंबर, तीर्थंकर, अवतार, ताओ के पूरे खिले फूल हैं। जहां धर्म अपनी परम सर्वोत्कृष्टता में, चरमता में प्रकट होता है, जैसे गौरीशंकर का शिखर, जहां से ऊंचे से ऊंचे धर्म की अभिव्यक्ति होती है, तीर्थंकर, पैगंबर, अवतार, ऐसे पुरुष हैं। लेकिन दूसरा वचन बहुत हैरान करने वाला है।

"और उनसे ही मूर्खता की शुरुआत भी होती है।"

हर पैगंबर के आस-पास मूर्ख इकट्ठे होंगे ही। कोई उपाय नहीं है, उनसे बचने का भी उपाय नहीं है। वह जो मूढ़ों की जमात है, वह फिर संप्रदाय निर्मित करती है। और सारी दुनिया में उपद्रव उससे फैलता है। मोहम्मद अनूठे हैं। लेकिन मोहम्मद के आस-पास जो जमात इकट्ठी हो गई, उसने पृथ्वी को बहुत परेशान किया। जीसस अनूठे हैं। लेकिन उनके पास जो जमात इकट्ठी हो गई, उसने अभी तक पीछा नहीं छोड़ा। आदमी को अभी भी सताए चली जा रही है। कृष्ण अनूठे हैं। शिव अनूठे हैं। लेकिन उनके पंडित-पुरोहितों का जो जाल है, वह छाती पर पत्थर की तरह बैठा हुआ है। नाम शिव का है, शोषण पंडित कर रहा है। नाम कृष्ण का है, भागवत कृष्ण की पढ़ी जा रही है; लेकिन वह जो पढ़ रहा है, वह जो पंडितों का जाल है, वह जो पुरोहित बैठे हैं, वे उसका शोषण कर रहे हैं।

लाओत्से ठीक कहता है कि पैगंबर अंतिम ऊंचाई हैं जीवन की, लेकिन उन्हीं के साथ मूर्खता का भी जन्म होता है। उनसे नहीं होता, उनमें नहीं होता; लेकिन उनके आस-पास तो होता है। थोड़ा देर सोचें, अगर मोहम्मद पैदा न हों तो मुसलमानों ने जो भी उपद्रव किया दुनिया में वह नहीं होता। अगर जीसस न हों तो ईसाइयों ने जो भी धर्मयुद्ध किए, हत्याएं कीं, हजारों-लाखों लोगों को जलाया, अनेक-अनेक कारणों से, वह नहीं होता। लाओत्से का मतलब यह नहीं है कि पैगंबर इस उपद्रव की शुरुआत करते हैं। लेकिन उनसे शुरुआत होती है। यह कुछ अनिवार्य है। इससे बचा नहीं जा सकता। जीवन का एक नियम है कि विपरीत आकर्षित होते हैं।

तो महावीर हैं। महावीर परम त्यागी हैं, त्याग उनके लिए सहज है। जितने भोगी इस मुल्क में थे सब उनसे आकर्षित हो गए। अभी जैनियों को देखें, त्याग से उनका कोई लेना-देना नहीं है। यह बड़े मजे की बात है कि महावीर के आस-पास सब दुकानदार क्यों इकट्ठे हो गए! महावीर कहते हैं, धन व्यर्थ है। सभी धनी उनके पास क्यों इकट्ठे हो गए! महावीर तो वस्त्र भी छोड़ दिए। लेकिन देखें, वस्त्रों की अधिकतम दूकानें जैनियों की हैं। यह कुछ समझ में नहीं पड़ता कि इसमें कुछ संबंध जरूर होगा, भीतरी कुछ नाता होगा कि जो आदमी दिगंबर हो गया, कपड़े भी छोड़ दिए!

मैं जिस गांव में रहता था वहां एक दिगंबर क्लाथ स्टोर है--नंगों की कपड़ों की दुकान! बेबूझ लगता है, लेकिन कोई भीतरी तर्क जरूर काम कर रहा है। महावीर के त्याग से भोगी प्रभावित हो गए। असल में, विपरीत आकर्षित होता है; जैसे स्त्री पुरुष से प्रभावित होती है, पुरुष स्त्री से प्रभावित होता है। विपरीत आकर्षित करते

हैं। तो महावीर के त्याग को देख कर भोगियों को लगा होगा, गजब! ऐसा त्याग तो हम कभी नहीं कर सकते जन्मों-जन्मों में; यह महावीर ने तो चमत्कार कर दिया। यह चमत्कार उनको छू गया होगा; वे इकट्ठे हो गए।

इसलिए अक्सर विपरीत इकट्ठे हो जाते हैं। और वे जो विपरीत हैं, उन्हीं के हाथ में वसीयत पहुंचती है। स्वभावतः, उन्हीं के हाथ में वसीयत पहुंचती है। महावीर कर भी क्या सकते हैं? जो इकट्ठे हैं आस-पास वे ही उनके, उन्होंने जो कहा है उसके मालिक हो जाएंगे। जो इकट्ठे हैं वे ही उसकी व्याख्या करेंगे। कल वे ही मंदिर, संगठन, संप्रदाय निर्मित करेंगे। यह होगा; इससे बचने का उपाय नहीं है। लेकिन अगर इसकी सचेतना रहे, जैसा कि लाओत्से का इरादा यही है कहने में कि अगर यह हमें बोध रहे, तो इसकी पीड़ा कम हो सकती है। और अगर यह ख्याल सारे जगत में परिव्याप्त हो जाए तो हम पैगंबरों को स्वीकार कर लेंगे और उनके संप्रदायों को अस्वीकार कर देंगे। यह इसका अर्थ है।

तो महावीर बिल्कुल ठीक हैं, लेकिन जैनियों की कोई आवश्यकता नहीं। कृष्ण बिल्कुल प्यारे हैं, लेकिन हिंदुओं का क्या लेना-देना! शिव की महिमा ठीक है, लेकिन बनारस का उपद्रव! वह नहीं चाहिए। मोहम्मद ठीक, लेकिन मक्का पर जो हो रहा है, मदीना में जो हो रहा है, वह जाल तोड़ देने जैसा है। और जिस दिन धर्म की अभिव्यक्तियां स्वीकार हो जाएंगी और उनके आस-पास निर्मित संगठन अस्वीकृत हो जाएंगे, उस दिन इस जगत में धर्म के कारण जो उपद्रव होते हैं वे नहीं होंगे। और धर्म के कारण जो औषधि मिल सकती है पीड़ित मनुष्यों को वह मिल सकेगी।

"पैगंबर ताओ के पूरे खिले फूल हैं। और उनसे ही मूर्खता की शुरुआत होती है।"

ऐसी सीधी बात लाओत्से के सिवाय किसी ने भी कभी कही नहीं है। शायद इसीलिए लाओत्से के आस-पास कोई संप्रदाय निर्मित नहीं हो सका। कैसे संप्रदाय निर्मित होगा? कौन संप्रदाय निर्मित करेगा?

"इसलिए आर्य पुरुष सघनता में, नींव में बसते हैं; विरलता, अंत में नहीं।"

इसलिए मूल पर ध्यान रखते हैं आर्य पुरुष। महावीर पर ध्यान रखेंगे; जैनियों की फिक्र छोड़ देंगे। बुद्ध पर ध्यान रखेंगे; बौद्धों पर जरा भी ध्यान न देंगे। नानक पर दृष्टि होगी; सिक्खों से क्षमा मांग लेंगे। मूल पर ध्यान रखेंगे।

"आर्य पुरुष सघनता, नींव में बसते हैं; विरलता, अंत में नहीं।"

वह जो अंत होता है धर्म का वहां सत्य नहीं है। जहां धर्म का जन्म होता है वहां सत्य है। और धर्म का जन्म और धर्म का अंत बड़ी उलटी बातें हैं। क्योंकि अंत तो सदा संप्रदाय में होता है, सदा संगठन में होता है। कोई उपाय नहीं है। बचने की कोई चेष्टा भी करे तो भी कुछ उपाय नहीं है। अंत होगा ही वहां; यह सहज परिणति है। जैसे बच्चा जन्मता है और अंत मौत में होता है; कोई कितना ही उपाय करे मौत से बचने का, कोई बच नहीं सकता। जन्मता बच्चा है; अंत बुढ़ापे में होता है। ध्यान बच्चे पर रखना है, वहां शुद्धता है।

तो महावीर बच्चे की तरह हैं। उनके आस-पास जो धर्म निर्मित होता है, वह बुढ़ापा है। और फिर बुढ़ापे के भी पार मौत है। सभी धर्म जन्मते हैं और सभी धर्म मरते हैं। समय के भीतर जो भी चीज पैदा होगी वह मरेगी भी। लेकिन महावीर तो विदा हो जाएंगे, मरा हुआ धर्म ढोया जा सकता है अनंत काल तक। और जितना मुर्दा धर्म होगा उतना ही जानलेवा होगा।

लेकिन धार्मिक मनुष्य, जितना पुराना धर्म हो उतना ही गौरव समझते हैं। वे कहते हैं, हमारा धर्म सनातन है। उसका मतलब तुम सनातन से लाश ढो रहे हो। कभी का मर चुका होगा तुम्हारा धर्म। समय में कुछ

भी शाश्वत नहीं है। धर्म की चिनगारी भी जब समय की धारा में प्रविष्ट होती है तो बुझेगी। पृथ्वी पर कुछ भी शाश्वत नहीं है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि धर्म शाश्वत नहीं है। लेकिन धर्म का वह जो रूप शाश्वत है वह तो प्रकट नहीं होता। उस शाश्वत से कभी-कभी किसी व्यक्ति का संबंध हो जाता है; कोई महावीर, कोई बुद्ध, कोई कृष्ण उस शाश्वत धर्म से जुड़ जाता है। उसमें झलक उतरती है। फिर महावीर और बुद्ध के द्वारा वह झलक हमारे पास पहुंचती है। फिर हम उस झलक को संगठित करते हैं। फिर हम मंदिर निर्मित करते हैं, मस्जिद बनाते हैं, शास्त्र निर्मित करते हैं। फिर हम व्यवस्था जमाते हैं। लेकिन इस सारी व्यवस्था में, वह जो मूल शाश्वत से संबंध जुड़ा था महावीर का, वह खो गया। फिर हम इस लाश को ढोते हैं। फिर यह लाश मूर्खतापूर्ण हो जाती है। फिर हमें कष्ट होता है; इसको हम छोड़ भी नहीं सकते। क्योंकि इसमें हम पैदा होते हैं, इसी लाश में हम पैदा होते हैं। जन्म से ही हमारा इसका संबंध जुड़ जाता है। फिर इसे उतारने में हमें ऐसा लगता है प्राण निकल रहे हैं। कि मेरा धर्म! कैसे मैं छोड़ सकता हूं!

लेकिन धर्म से जिसको जुड़ना हो उसे मेरा धर्म छोड़ना ही पड़ता है। जिसे उस शाश्वत धारा से जुड़ना हो जिससे महावीर और बुद्ध जुड़ते हैं उसे महावीर और बुद्ध से संबंध छोड़ कर, महावीर और बुद्ध के आस-पास जो संप्रदाय बने हैं उनसे भी संबंध छोड़ कर सीधा ही उस धारा की तरफ उन्मुख होना होता है। तो महावीर में जो झलक को देख कर झलक, कहां से आई है उस स्रोत की खोज में चला जाए, उसने तो ठीक रास्ता पकड़ लिया। और जो महावीर में झलक को देख कर महावीर के आस-पास रुक जाए... । और अब तो महावीर हैं नहीं, बुद्ध हैं नहीं, कृष्ण हैं नहीं; उनके पंडे-पुरोहित हैं। और वे भी कई पीढ़ियां गुजर गईं, हजारों साल--उधार, उधार, उधार। अब सत्य जैसा कुछ भी बचा नहीं; सिर्फ मुर्दा असत्य उनके हाथ में रखे हैं। उनसे संबंधित हैं लोग।

मैंने सुना है, सूफियों में एक कहानी है कि जिस आदमी ने अग्नि की खोज की उसका नाम था नूर। वह परम ज्ञानी था, प्रकाशवान था, इसलिए उसको नूर नाम दिया गया। उसके आस-पास शिष्य इकट्ठे हो गए। क्योंकि बड़ी अनूठी खोज थी, अग्नि की खोज। आज हमें नहीं लगता, क्योंकि आज तो हमारी माचिस में बंद है। लेकिन हजारों साल पहले जब पहली दफा किसी आदमी ने अग्नि खोजी होगी, तो उस आदमी ने जितना कल्याण किया है मनुष्य का उतना आइंस्टीन भी नहीं कर सकता। तो निश्चित ही नूर पैगंबर हो गया और उसके आस-पास भीड़ इकट्ठी हो गई शिष्यों की। और शिष्यों को बड़ा जोश होता है कि जो तुमने पाया है उसे दूसरों तक कैसे पहुंचाएं।

नूर ने उनको बहुत समझाया कि जल्दी मत करो, क्योंकि लोग अंधेरे में रहने के इतने आदी हैं कि तुम्हारे प्रकाश से बहुत नाराज हो जाएंगे। पर शिष्य नहीं माने। उनको प्रकाश दिखाई पड़ गया था। और दूसरे को भी मनाने में अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है कि हम दूसरे को भी ठीक करके आ गए, उसको भी रास्ते पर लगा दिया। वह अंधेरे में भटक रहा था, उसको हम प्रकाश के मार्ग पर ले आए। शिष्य नहीं माने; तो नूर ने कहा, ठीक है, तो चलो।

तो वे पहले कबीले में गए। और जब नूर के शिष्यों ने खबर की कि हमारा जो पैगंबर है नूर, उसने अग्नि का राज खोज लिया है। अब अंधेरे में रहने की कोई जरूरत नहीं, अब प्रकाश का सूत्र मिल गया। अब तुम अंधेरे में मत भटको और भयभीत भी मत होओ, अब रात की कोई जरूरत नहीं है। लोगों ने समझा कि नूर कोई बहुत भला आदमी है; कवि मालूम होते हैं ये लोग, ऋषि मालूम होते हैं। किसी ने भरोसा नहीं किया कि अंधेरा मिट सकता है। उन्होंने कहा कि हम नूर की पूजा करेंगे; हमें नूर की मूर्ति बना लेने दो। नूर ने अपने शिष्यों से कहा,

देखो! आग के संबंध में उन्होंने बात ही न की, उन्होंने नूर की प्रतिमा बना ली और उन्होंने कहा, हम तुम्हारी सदा-सदा पूजा करेंगे, तुम जैसा महापुरुष, जिसे प्रकाश का पता चल गया। नूर के शिष्यों ने उनसे कहा कि प्रकाश हम तुम्हें भी बता सकते हैं। उन्होंने कहा कि हम पापी, हमारा क्या प्रकाश से संबंध हो सकता है! इतना ही काफी है कि हमने नूर के दर्शन कर लिए। इतना क्या कम भाग्य। पुण्यों से, जन्मों-जन्मों के पुण्यों से ऐसा होता है।

हार कर नूर और उसके शिष्य दूसरी जमात में, दूसरे कबीले में गए। उन लोगों ने बातें सुनीं और वे लोग खंडन पर उतारू हो गए। क्योंकि जो लोग अंधेरे में रह रहे हैं हजारों साल से वे अंधेरे की फिलासफी पैदा कर लेते हैं। उन्होंने कहा कि अंधेरा तो जीवन है। उन्होंने कहा, अंधेरे के बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। और अंधेरा नहीं रहेगा, रात खो जाएगी; यह तो प्रकृति की हत्या है। और अग्नि जब प्रकृति से नहीं मिली तो तुम कौन हो? जरूर इसमें शैतान का हाथ है। क्योंकि परमात्मा ने जब प्रकृति बनाई और उसने अग्नि हमें सीधी नहीं दी तो इसमें शैतान की करतूत है। उन्होंने शिष्यों पर हमला बोला। नूर और उनके शिष्यों को वहां से भागना पड़ा। नूर ने कहा कि देखो! उन्होंने अंधेरे का पक्ष लिया। ऐसा नूर और उसके शिष्य कई जमातों में गए। एक जमात ने उनसे शिक्षा भी ले ली अग्नि की। तो उन्होंने अग्नि का उपयोग लोगों को जलाने, दुश्मनों को मारने, उनके घरों में आग लगाने के लिए किया। तो नूर ने कहा कि देखो!

फिर सैकड़ों साल बीत गए और नूर को मानने वालों की परंपरा गुप्त हो गई। क्योंकि उन्होंने कहा, बात करना खतरनाक है। फिर सैकड़ों साल बाद उनके शिष्यों ने पुनः सोचा कि हम जाकर देखें तो, जहां-जहां नूर गया था वहां-वहां क्या लक्षण छूटे। तो एक जमात में उन्होंने देखा कि नूर की पूजा जारी है। बड़े-बड़े मंदिर खड़े हो गए हैं और सिर्फ मंदिरों में प्रकाश जलता है। और पुजारी भर को प्रकाश जलाने का अधिकार है। और पुजारी भर जानता है कि प्रकाश कैसे जलाया जाए। और लोग प्रकाश को नमस्कार करके अपने अंधेरे घरों में लौट आते हैं। और दूसरी जमात में उन्होंने देखा कि लोग अंधेरे में ही जी रहे हैं और नूर के बड़े खिलाफ हैं। और वहां अभी भी नूर के खिलाफ न मालूम कितनी कहानियां प्रचलित हैं। तीसरे कबीले में उन्होंने देखा कि लोग अब भी अंधेरे में रहते हैं। आग का उपयोग तो सिर्फ दुश्मनों को जलाने और उनके मकानों में, गांवों में आग लगाने के लिए करते हैं।

करीब-करीब धर्मों की यही हालत है।

लाओत्से कहता है, "पैगंबर ताओ के पूरे खिले फूल हैं। पर उनसे ही मूर्खता की शुरुआत होती है। इसलिए आर्य पुरुष सघनता में बसते हैं, विरलता में नहीं। वे फल में बसते हैं, फूल की खिलावट में नहीं।"

फल तो है बीज, फूल है अंत। संप्रदाय फूल है, सदगुरु बीज है, फल है। आर्य पुरुष फल में बसते हैं। बीज की तलाश करते हैं कि धर्म का मूल क्या है। धर्म का मूल है ताओ, वह सहज स्वभाव। फिर उसके आस-पास वर्तुल बनते हैं--मनुष्यता के, न्याय के, कर्मकांड के। यह कर्मकांड आखिरी परिणति है। यह मूर्खता का आखिरी रूप है।

"वे फल में बसते हैं, फूल की खिलावट में नहीं। इसलिए वे एक को इनकार और दूसरे को स्वीकार करते हैं।"

वे धर्म को स्वीकार करते हैं, संप्रदाय को इनकार करते हैं। वे मूल को स्वीकार करते हैं, वे मूल के आस-पास जो आयोजना हो जाती है, उसको अस्वीकार करते हैं। वे बीज को स्वीकार करते हैं, फूल को अस्वीकार करते हैं।

लेकिन साधारणतः हम फूल से प्रभावित होते हैं, बीज से नहीं। बीज तो समझ में ही नहीं आता; फूल दिखाई पड़ता है। उसके रंग साफ होते हैं; उसका रूप निखरा होता है; उसकी सुगंध हमारे नासापुटों को छूती है। हम फूल को समझ पाते हैं। बीज से कौन प्रभावित होता है? और अगर हम कभी बीज की तलाश भी करते हैं तो फूल के लिए ही करते हैं। बीज में तो कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। बीज तो छिपा है; गहन रहस्य में डूबा है। अभी वहां है बीज जहां परमात्मा होता है। फूल वहां है जहां संसार है। मेनीफेस्ट, जो प्रकट हो गया वह फूल है। अनमेनीफेस्ट, जो प्रकट नहीं हुआ वह बीज है। बीज परमात्मा है; संसार फूल है। हम फूल से प्रभावित होते हैं। फूल से प्रभावित होना सांसारिक मन की दशा है। बीज से हम प्रभावित नहीं होते।

लेकिन जिसको जीवन-सत्य की खोज करनी हो उसे बीज की तलाश करनी चाहिए, उसे मूल की तलाश करनी चाहिए। उसे अभिव्यक्तियों को हटा देना चाहिए और उसे खोजना चाहिए जो अभिव्यक्ति के पहले था। क्योंकि वही शुद्ध है। अभिव्यक्ति में तो मिश्रण हो ही जाएगा।

एक कवि एक गीत गाए; एक कविता का जन्म हो। तो थोड़ा कविता के जन्म को देखें। शब्द उतरेंगे, काट-छांट होगी, लयबद्धता लाई जाएगी, पंक्तियां सुधारी जाएंगी, निखारा जाएगा; फिर एक गीत तैयार हो जाएगा छंदबद्ध। उसे गाया जा सकता है। यह अभिव्यक्ति है। इससे थोड़ा पीछे हटें, तो जो पहली पंक्तियां कवि के मन में आई थीं, वे इतनी कटी-छंटी नहीं थीं, इतनी साफ-सुथरी नहीं थीं। धुंधली थीं, उनकी रेखाएं एक-दूसरे से अलग-अलग नहीं थीं, एक-दूसरे में गड्डु-मड्डु थीं, धुएं की तरह थीं। उनका आकार साफ नहीं था। निराकार के करीब थीं। कवि ने उन्हें छांटा। अनगढ़ पत्थर की तरह थीं, निखारा, छेनी से छांटा; मूर्ति प्रकट हो गई। लेकिन जितनी मूर्ति प्रकट हो गई उतनी ही मूल से दूर हो गई। वह अनगढ़ पत्थर मूल था।

इसलिए झेन फकीरों ने जापान के अपने बगीचों में अनगढ़ पत्थर रखे हैं, मूर्तियां नहीं बनाईं। उनको वे रॉक गार्डन कहते हैं। मूर्तियां नहीं बनाई हैं अपने बगीचों में। झेन मोनेस्ट्री के बगीचे में अनगढ़ पत्थर रखे रहते हैं। उन पर काई जम जाती है; वे जैसे हैं, वैसे ही रख दिए जाते हैं। उनको निखारा नहीं जाता, उनको साफ नहीं किया जाता। वे इस बात की याद दिलाते हैं साधक को कि तुम मूल को खोजना; अभिव्यक्त को, निखारे को मत खोजना। क्योंकि निखारा कितना ही आकर्षित करता हो वह मूल से दूर हो गया।

और थोड़ा पीछे हटें, तो ये अनगढ़ पंक्तियां भी नहीं हैं। तब भीतर एक घुमड़ता हुआ भाव है; जो कवि को भी साफ नहीं है कि क्या है। एक गर्भस्थ अवस्था है; मां को भी पता नहीं कि क्या पैदा होगा। वह लड़की होगी कि लड़का होगा; सुंदर होगा कि कुरूप होगा; अच्छा होगा, बुरा होगा; हिटलर होगा कि बुद्ध होगा; कुछ पता नहीं है। सब अंधकार में है। पर एक घुमड़ता हुआ भाव है। कुछ घना हो रहा है भीतर, कुछ गर्भ बन रहा है भीतर। उसकी पीड़ा है, उसका बोझ है।

और थोड़ा पीछे सरकें; अभी गर्भ भी नहीं है। जैसे एक स्त्री किसी के प्रेम में पड़ गई हो। जब भी कोई स्त्री किसी के प्रेम में पड़ती है तो एक अनजानी छाया मां बनने की उसके भीतर सरकने लगती है। असल में, स्त्री के लिए प्रेम का अर्थ मां बनना होता है। कुछ भी साफ नहीं है; कोई भाव भी नहीं है। भाव से भी नीचे कहीं किसी अतल में कुछ सरकना शुरू हो गया है। थोड़ी ही देर बाद घना होगा; भाव बनेगा; फिर भाव विचार बनेगा; फिर विचार छांटे जाएंगे, निखारे जाएंगे; फिर गीत बनेगा।

तो कवि के भीतर जब अभी कुछ घना भी नहीं हुआ है तब जो बीज की तरह बंद पड़ा है, उसकी तलाश काव्य की तलाश है। और जो उसको पकड़ ले और उसमें प्रवेश कर जाए, वह काव्य की आत्मा में प्रवेश कर गया।

कविताओं में जो काव्य को खोजते रहते हैं वे बहुत दूर खोज रहे हैं; कवि की आत्मा में जो खोजते हैं वे ही खोज पाते हैं। कविता तो बहुत दूर की ध्वनि है, बहुत दूर निकल गई।

यह जो संसार है, अगर हम परमात्मा को कवि समझें तो यह जो संसार है, उसका काव्य है। यही वेदों ने कहा है कि परमात्मा का काव्य है, छंद है उसका, उसका गीत है। इस संसार में अगर हम परमात्मा को खोजने सीधे लग जाएं तो कठिनाई होगी; हम फूल में खोज रहे हैं। जरूर फूल भी बीज से जुड़ा है, लेकिन लंबी यात्रा है। संसार भी परमात्मा से जुड़ा है, लेकिन लंबी यात्रा है। अगर हम संसार में धीरे-धीरे डूबें, अगर हम फूल में धीरे-धीरे डूबें तो एक न एक दिन हम बीज को पकड़ लेंगे, मूल उदगम को पकड़ लेंगे। हिंदू गंगोत्री की पूजा करने जाते हैं। ये सारे प्रतीक थे कि तुम गंगा की फिक्र छोड़ो, गंगा से क्या लेना-देना! गंगोत्री की तरफ जाओ, जहां से गंगा जन्मती है उस मूल उदगम को खोजो। पीछे लौटो, वहां पहुंचो जो सबसे पहले था, जिसके पहले कुछ भी नहीं था।

लाओत्से जब कहता है कि आर्य पुरुष फल में बसते हैं, वे मूल को खोज लेते हैं और मूल में ही जीते हैं। अभिव्यक्ति से पीछे सरकते हैं और अनभिव्यक्त को अपना जीवन बना लेते हैं। जितना ही आप अनभिव्यक्त में सरकते चले जाएं, उतना ही आपका जीवन समाधिस्थ होता चला जाएगा।

अगर हम--इस विचार को कई पहलुओं से समझा जा सकता है--अगर आप अपने शरीर में ही इस विचार की अवधारणा करें, तो आपका मस्तिष्क फूल है और आपकी नाभि आपका बीज है। तो जीवन की पहली धड़क नाभि से शुरू हुई और जीवन की अंतिम धड़क मस्तिष्क में पूरी हुई है। मस्तिष्क छत्ते की तरह फूल है। लेकिन हम वहीं जीते हैं, और हमारा सारा जीवन वहीं भटकने में बीत जाता है। आप अपनी खोपड़ी में ही घूमते रहते हैं। यह घूमना फिर आब्सेशन हो जाता है, रुग्ण हो जाता है। फिर यह घूमने का आपको पता भी नहीं चलता कि आप क्यों घूम रहे हैं, आप क्यों इस खोपड़ी के भीतर चक्कर लगाते रहते हैं। फिर यह चक्कर लगाना आपकी आदत हो जाती है। फिर आप न भी लगाना चाहें तो भी कोई उपाय नहीं है; बैठे हैं, चक्कर जारी है।

योग कहता है, नीचे उतरें; मस्तिष्क से हृदय में आएं। हृदय अभी अनगढ़ है; वहां धुंधले बादल हैं, वहां अभी कुछ साफ नहीं है। फिर उससे भी नीचे उतरें और नाभि में आएं। वहां जीवन बीज में छिपा है। वहां अभी कोई भनक भी नहीं पहुंची है अभिव्यक्ति की। और वहीं से संबंध जुड़ सकेगा जीवन की धारा से।

इसलिए लाओत्से और लाओत्से के मानने वाले लोग कहते हैं कि आदमी नाभि में है। नाभि के ठीक दो इंच नीचे, लाओत्से एक केंद्र, चक्र की बात करता है, जिसको वह हारा कहता है।

आपने शब्द सुना होगा जापानी, हाराकिरी। हाराकिरी का मतलब होता है नाभि में छुरा मार कर मर जाना; हारा में छुरा मार लेना। यह बहुत मजे की बात है। अगर यूरोप में कोई आदमी मरे तो वह खोपड़ी में पिस्तौल मारता है। जापान में कोई आदमी मरे तो नाभि में छुरा मारता है। क्योंकि जापानी कहते हैं, वहीं जीवन का मूल उदगम है तो उसी में लीन होना है।

इसलिए हाराकिरी साधारण आत्महत्या नहीं है; सभी नहीं कर सकते। आपको तो पता भी नहीं है कि आप छुरा कहां मारेंगे। हाराकिरी तो केवल वही कुशल आदमी कर सकता है जिसको हारा का पता है कि कहां जीवन का मूल केंद्र है। आपको तो पता भी नहीं है। हर कहीं मारने से आप नहीं मर जाएंगे। सिर्फ हारा पर ही छुरा प्रवेश करेगा तो मृत्यु होगी। और वह मृत्यु बड़ी अदभुत है। वह मृत्यु एक तरह की समाधि है।

इसलिए जापान में हाराकिरी अपमानित शब्द नहीं है। उसका मतलब आत्महत्या नहीं है, उसका अर्थ आत्मसमाधि है। अगर हारा का बिंदु आपको पता है, तो छुरे से जो हारा के बिंदु को काट देता है, उसको साफ

अनुभव होता है शरीर और आत्मा के अलग हो जाने का। ये दोनों के बीच का सेतु टूट गया और अलग यात्रा शुरू हो गई। इसलिए जो हाराकिरी से मरता है उसका चेहरा देखने लायक होता है। वह विकृत नहीं होता उसका चेहरा; उसके चेहरे पर एक बड़ी शांति होती है। उसके चेहरे पर बड़ा अदभुत भाव होता है; एक उपलब्धि का भाव होता है।

पश्चिम में कोई आत्महत्या करे तो सिर में पिस्तौल मार लेता है। क्योंकि उसे पता ही चल रहा है कि वहीं वह है। जहां हम हैं वहीं तो हम मारने की भी कोशिश करेंगे। खोपड़ी में घूमता हुआ आदमी यही सोच सकता है कि वह सिर के भीतर है।

अभिव्यक्ति में हम केंद्रित हैं, मूल में नहीं। मूल की तरफ कदम उठाने जरूरी हैं सभी दिशाओं से। और जितना कोई मूल की तरफ आता जाएगा उतना ही क्रियाकांड दूर छूटेगा। न्याय भी भूल जाएगा; मनुष्यता का भी कोई पता नहीं रहेगा; फिर सहज स्वभाव रह जाएगा। और उस स्वभाव से जो भी होता है वही शुभ है। उस स्वभाव से जो भी निकलता है वही प्रार्थना है। उस स्वभाव से जहां भी पहुंचना हो जाए वहीं मोक्ष है।

रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

चौहत्तरवां प्रवचन

एकै साधे सब सधे

Chapter 39 : Part 1

Unity Through Compliments

There were those in ancient times possessed of the One:
Through possession of the One, Heaven was clarified;
Through possession of the One, Earth was stabilized;
Through possession of the One, the gods were spiritualized;
Through possession of the One, the valleys were made full;
Through possession of the One, all things lived and grew;
Through possession of the One,
the princes and the dukes became ennobled of the people.
-- That was how each became so.
Without clarity, the Heavens would shake;
Without stability, the Earth would quake;
Without spiritual powers, the gods would crumble;
Without being filled, the valleys would crack;
Without the life-giving powers, all things would perish;
Without ennobling powers, the princes and the dukes would stumble.

अध्याय 39 : खंड 1

परिपूरकों द्वारा एकता

प्राचीन समय में वे थे जिन्हें वह एक उपलब्ध था:
इस एक की उपलब्धि के द्वारा, स्वर्ग उजागर था;
इस एक की उपलब्धि के द्वारा, पृथ्वी थिर थी;
इस एक की उपलब्धि के द्वारा, देवता में देवत्व था;
इस एक की उपलब्धि के द्वारा, घाटियां भरी थीं;
इस एक की उपलब्धि के द्वारा, सभी चीजें जीतीं और वृद्धि पाती थीं,

इस एक की उपलब्धि के द्वारा, राजा और भूमिपति लोगों के द्वारा आदृत थे।

इसी तरह उनमें से प्रत्येक ऐसा हो उठा था।

प्रकाश के बिना, स्वर्ग हिलने लगेगा; स्थिरता के बिना, पृथ्वी डोल उठेगी;

आध्यात्मिक शक्ति के बिना, देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे;

भराव के बिना, घाटियां खंड-खंड हो जाएंगी,

जीवनदायी शक्ति के बिना, सभी चीजें नाश को प्राप्त होंगी;

आर्यत्व की शक्ति के बिना, राजा और भूमिपति पतित हो जाएंगे।

इस सदी का प्रारंभ फ्रेडरिक नीत्शे की एक घोषणा से हुआ है। नीत्शे ने कहा है, ईश्वर मर गया है; गॉड इ.ज डेड।

ईश्वर नहीं है, ऐसा कहने वाले लोग सदा से हुए हैं। लेकिन ईश्वर मर गया है, ऐसा कहने वाला व्यक्ति नीत्शे मनुष्य के इतिहास में प्रथम है। यह घोषणा कई अर्थों में मूल्यवान है। एक तो इस अर्थ में कि यह वचन नीत्शे का अकेले का नहीं है। इस सदी के बहुत से लोगों के प्राणों में इसकी प्रतिध्वनि है, चाहे उन्हें पता हो और चाहे पता न हो। बहुत लोगों के प्राणों से ईश्वर मर गया है। ईश्वर मरा हो या न मरा हो, लेकिन बहुत लोगों की आत्मा में उसकी कोई जड़ें नहीं रह गई हैं।

नीत्शे ने जब कहा, ईश्वर मर गया है, तो उसका प्रयोजन स्पष्ट है। लाओत्से भी उससे राजी हो सकता है, लेकिन लाओत्से के राजी होने का कारण बिल्कुल भिन्न होगा।

लाओत्से कहता है, ईश्वर होता है तब जब मनुष्य में ईश्वर को अनुभव करने की क्षमता होती है। उसी मात्रा में ईश्वर प्रकट होता है जिस मात्रा में मनुष्य का हृदय उसे अनुभव करने में सक्षम होता है। ईश्वर की उपस्थिति मनुष्य के अनुभव करने की क्षमता पर निर्भर है। ईश्वर है या नहीं, यह मूल्यवान नहीं है; उसे अनुभव करने का द्वार खुला है या नहीं, यही मूल्यवान है। जब द्वार बंद होता है तो प्रकाश तिरोहित हो जाता है। इसलिए नहीं कि सूर्यास्त हो गया; इसलिए भी नहीं कि सूर्य बुझ गया। सिर्फ इसलिए कि आपके घर का द्वार बंद है, और प्रकाश को भीतर प्रवेश का कोई मार्ग नहीं है।

लेकिन जो घर के भीतर बंद हैं, अंधेरे में डूब गए हैं। और अगर उस अंधेरे में कोई कहे कि सूर्य नष्ट हो गया, कि सूर्य बुझ गया, तो आश्चर्य की बात नहीं है। और अगर उस घर के लोग कभी बाहर जाकर देखते ही न हों और सदा ही घर के अंधेरे में जीते हों तो उनकी बात धीरे-धीरे सत्य प्रतीत होने लगेगी। और उसे खंडित करने का भी कोई उपाय न रह जाएगा। अंधेरा इतना प्रत्यक्ष होगा कि प्रकाश की मृत्यु हो गई है, इसे सिद्ध करने की भी कोई जरूरत न रह जाएगी। नीत्शे के वक्तव्य की खूबी है कि उसने कोई प्रमाण नहीं दिया कि क्यों कहा जा रहा है कि ईश्वर मर गया है। उसने सिर्फ घोषणा की कि ईश्वर मर गया है।

यह पूरी सदी उसी छाया में बड़ी हुई है। और आप सबके लिए भी ईश्वर मर गया है। भला आप मंदिर जाते हों, लेकिन आप मुर्दा ईश्वर के मंदिर जाते हैं। और मंदिर जाने का कारण कुछ और होगा, ईश्वर नहीं। भला आप पूजा करते हों, प्रार्थना करते हों; आपकी पूजा और प्रार्थना मृत ईश्वर की लाश के आस-पास हो रही है। आप भी भली भांति जानते हैं कि जिस ईश्वर से आप प्रार्थना कर रहे हैं, वह संदिग्ध है। लेकिन किन्हीं और कारणों से आप पूजा और प्रार्थना किए जाते हैं। आपकी पूजा और प्रार्थना से यह पता नहीं चलता कि आपके जीवन में ईश्वर है। क्योंकि आपका पूरा जीवन गवाही देता है कि ईश्वर से आपका कोई संबंध नहीं रह गया है।

लेकिन किन्हीं इतर कारणों से आप ईश्वर की बात को जिलाए रखना चाहते हैं--भय, लोभ, असुरक्षा, जीवन के दुख। ईश्वर का नाम एक शरण-स्थल है। ईश्वर का नाम ऐसे ही है जैसे शुतुरमुर्ग को रेत, जहां वह अपने सिर को गपा लेता है; और रेत में डूब गई, बंद हो गई आंखों से फिर उसे लगता है, अब कोई भय नहीं। क्योंकि जब शत्रु दिखाई न पड़े तो शुतुरमुर्ग मान लेता है कि शत्रु नहीं है। आपके लिए ईश्वर रेत की तरह है जहां आप अपने सिर को छिपा लेते हैं।

जीवन में बहुत दुख हैं, पीड़ाएं, संताप, चिंताएं; और उनसे बचने का कहीं उपाय नहीं दिखाई पड़ता। ईश्वर आपके लिए एक शराब है जिसे पीकर आप अपने को थोड़ी देर के लिए विस्मरण कर लेते हैं। और ईश्वर जब शराब हो तो ईश्वर का प्रयोजन ही समाप्त हो गया। क्योंकि जिस ईश्वर से विस्मरण होता हो वह ईश्वर ही न रहा, मादक द्रव्य हो गया। जिस ईश्वर से स्मरण बढ़ता हो और जीवन-ऊर्जा प्रगाढ़ होती हो, सघन होती हो, चेतना का विस्तार होता हो, वही ईश्वर ईश्वर है।

तो इसे कसौटी समझ लें कि जब ईश्वर को आप सिर्फ अपने दुख भुलाने का उपाय बना लेते हैं तो ईश्वर मर चुका है; राख केवल आपके हाथ में रह गई है। और जब ईश्वर दुख भुलाने का उपाय नहीं, आनंद को उपलब्ध करने का स्रोत हो जाता है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। दुख भुलाने का उपाय एक बात है--पलायन, एस्केप, छिप जाना, ढंक जाना, कुछ ओढ़ लेना और अपने को भूल जाना। आनंद-उपलब्धि का स्रोत बिल्कुल दूसरी बात है। आनंद की उपलब्धि विस्मृति से नहीं, गहन स्मृति से होती है। दुख का भुलाना विस्मृति से होता है।

नीत्शे का वचन ठीक ही है कि ईश्वर मर गया है। इसलिए नहीं कि ईश्वर मर गया; क्योंकि जो मर सकता है उसे ईश्वर कहने का कोई अर्थ ही नहीं है। ईश्वर हम कहते ही उस तत्व को हैं जो नहीं मर सकता है; ईश्वर का अर्थ ही है वह तत्व जो अमृत है। ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, अमृतत्व की धारा! जीवन की यह जो अनंत धारा है, आदिरहित, अंतरहित, इस परिपूर्ण धारा का नाम ही ईश्वर है। तो ईश्वर तो नहीं मर सकता। क्योंकि फूल अभी भी वृक्षों में खिलते हैं, पक्षी अभी भी गीत गाते हैं। आदमी अभी भी पृथ्वी पर है। चांद चलता है, सूरज यात्रा करते हैं। जीवन की धारा प्रवाहित है। जीवन की धारा में कहीं कोई अवरोध नहीं। और जीवन ही है ईश्वर। तो ईश्वर तो नहीं मर गया है। लेकिन फिर भी नीत्शे की बात में सचाई है, गहरी सचाई है। और सचाई यह है कि आदमी के अस्तित्व से ईश्वर मर गया है। आदमी का कोई संबंध इस जीवन की विराट धारा से नहीं है।

लाओत्से भी राजी होगा और कहेगा कि ईश्वर मर गया है; लेकिन इसलिए नहीं कि ईश्वर मर गया, बल्कि इसलिए कि तुम मर गए हो। तुम्हारा जीवन-स्रोत सूख गया, तुम सिकुड़ गए हो, बंद हो गए हो, संकीर्ण हो गए हो। तुम्हारे सब खिड़की, द्वार-दरवाजे खुलना बंद हो गए हैं; तुम्हारा हृदय स्पंदित नहीं हो रहा। केवल फेफड़े में श्वास आती है और जाती है, लेकिन हृदय स्पंदित नहीं होता। प्रेम का रस-स्रोत सूख गया है। इसे ख्याल में लें, फिर हम इस सूत्र में प्रवेश करें। क्योंकि यह सूत्र बहुत अनूठा है।

"प्राचीन समय में वे थे जिन्हें वह एक उपलब्ध था।"

लाओत्से उसे कोई नाम नहीं देता; कहता है, वह एक। नाम देना संभव भी नहीं है। और नाम के साथ उपद्रव शुरू होता है। राम कहो, कृष्ण कहो, हरि कहो, शिव कहो; झगड़ा शुरू हो गया, उपद्रव शुरू हो गया। क्योंकि तुम्हारा नाम मेरा नाम नहीं होगा; मेरा नाम तुम्हारा नाम नहीं होगा। मंदिर और मस्जिद बंट जाएंगे; संप्रदाय नाम के आस-पास खड़े होंगे। इसलिए लाओत्से कहता है, उसे कोई नाम मत दो। उसका कोई नाम है भी

नहीं। नाम के साथ ही संप्रदाय का जन्म होता है। वह एक, अनाम, धर्म का स्रोत है। उस एक के अनेक नाम संप्रदाय के स्रोत बन जाते हैं। संप्रदाय के साथ मूढ़ता है।

पर आदमी का मन नाम देना चाहता है। क्यों आदमी का मन नाम देना चाहता है? नाम के साथ सुविधा है। जिस चीज को भी हम नाम दे देते हैं, हमें ऐसा भ्रम पैदा होता है कि हमने उसे जान लिया। हमारी जानकारी नाम देने का ही ढंग है। एक बच्चे को आप बता दें कि यह वृक्ष आम का वृक्ष है। और बच्चे ने नाम सीख लिया आम, और बच्चा समझा कि उसने जान लिया। वह परिचित हो गया। एक्वेनटेंस हो गया। अब जीवन भर वह इसी ख्याल में रहेगा कि वह आम के वृक्ष को जानता है। लेकिन नाम देने से क्या कुछ जाना जाता है? नाम तो संकेत है, और नाम के पीछे अज्ञान छिप जाता है। आम के वृक्ष को आप जानते हैं सिर्फ इसलिए कि आपने नाम दे दिया? वृक्ष उतना ही अनजान, अपरिचित है अभी भी, जितना नाम देने के पहले था।

लेकिन आदमी नाम देकर संतुष्ट हो जाता है। आपसे कोई पूछता है, परिचित होना चाहता हैः आपका नाम? और आप कह देते हैं कि अ, ब, स। और वह बड़ा प्रफुल्लित है कि आपको जानने लगा। नाम जानकारी बन जाता है। नाम धोखा है। जरूरी है काम चलाने के लिए। क्योंकि बाजार में अगर बिना पूछे पहुंच जाएं, बिना जाने, और आम खरीदना हो और आम का नाम न लें और कहें कि वह एक अनाम, तो अड़चन होगी। आम से काम चलता है, लेकिन आप यह मत समझना कि आपने आम का नाम ले दिया तो आप जान गए। या दुकानदार ने आम उठा कर दे दिया तो वह जान गया। दोनों के बीच समझौता है कि इस अपरिचित चीज को हम आम कहेंगे। भाषा एक समझौता है, एक एग्रीमेंट है। इसलिए कोई आम को मैंगो कहे तो झगड़ा करने की कोई बात नहीं है। वह उसका समझौता है। सभी भाषाएं समझौते हैं। जमीन पर कोई तीन हजार भाषाएं हैं। कोई भाषा सत्य की खबर नहीं देती, भाषा केवल उपयोग में लाने वाले लोगों के समझौते की खबर देती है; उनके बीच एक शर्तबंदी है।

एक सूफी कथा है कि चार यात्री, जो एक-दूसरे की भाषा से अपरिचित थे, एक रात एक धर्मशाला में रुके। वहीं उनकी पहचान हुई। कामचलाऊ, कुछ एक-दूसरे की भाषा समझ लेते थे। सुबह भोजन का विचार हुआ तो सभी ने अपने पैसे इकट्ठे किए। अंतिम पड़ाव था यात्रा का और सभी के पास कम पैसे बचे थे। और चारों इकट्ठा पूल कर लें, इकट्ठा कर लें धन को, तो ही यात्रा चल सकती थी। और फिर उन चारों ने विचार प्रकट किया कि क्या वे खरीदना चाहते हैं। उनमें एक यूनानी था, उसने कुछ कहा; उसमें एक अरबी था, उसने कुछ कहा; उसमें एक हिंदुस्तानी था, उसने कुछ कहा; उसमें एक ईरानी था, उसने कुछ और कहा। और वे चारों झगड़ने लगे। क्योंकि उतने पैसे से चार चीजें नहीं खरीदी जा सकती थीं। और तब उस सराय का मालिक उनके पास आया और हंसने लगा। और उसने कहा कि तुम मुझे पैसे दो; चारों की चीजें खरीदी जा सकेंगी। और जब वह खरीद कर लाया तो वे अंगूर थे। और वे चारों हंसने लगे और नाचने लगे, क्योंकि चारों की चीजें आ गई थीं।

वे चारों ही अंगूर के लिए अपनी-अपनी भाषा का शब्द उपयोग कर रहे थे। चारों ही अंगूर चाहते थे। अंगूर का मौसम था और चारों तरफ अंगूर लदे थे। और बाजारों की दूकानों पर अंगूरों के ढेर लगे थे। और अंगूर की सुगंध हवाओं में थी। वे चारों ही अंगूर चाहते थे। लेकिन चारों के पास शब्द अलग थे। और चारों के बीच कोई समझौता नहीं था। लेकिन शब्द कितने ही अलग हों, अंगूर एक है।

लाओत्से उसे कहता है, वह एक। वह कोई शब्द उपयोग नहीं करता। क्योंकि शब्द उपयोग करो कि उपद्रव की शुरुआत हो गई, कि विग्रह, विवाद शुरू हो गया।

अगर हिंदू उसे राम न कहें और मुसलमान उसे अल्लाह न कहें; हिंदू कहें वह एक और मुसलमान कहें वह एक, तो मंदिर और मस्जिद में झगड़ा करना बहुत मुश्किल हो जाए। क्या झगड़ा बचेगा? झगड़ा इसलिए है कि नाम अलग हैं। धर्मों के झगड़े मूलतः भाषाओं के झगड़े हैं, धर्मों के झगड़े नहीं हैं। क्योंकि धर्म तो एक है, भाषाएं बहुत हैं। धर्म तो दो हो भी नहीं सकते। लेकिन भाषाएं तो जितनी चाहें उतनी हो सकती हैं। आप चाहें तो अपनी और अपनी पत्नी के बीच एक निजी भाषा बना सकते हैं। काम करेगी। दुनिया में कोई भी आपकी भाषा नहीं समझेगा, पर आप दोनों समझ सकेंगे। आप समझौता कर ले सकते हैं। भाषा कृत्रिम है, आदमी की बनाई हुई चीज है। सत्य कृत्रिम नहीं है।

इसलिए लाओत्से निष्ठापूर्वक उसे अनाम ही रहने देता है। उपनिषद भी कहते हैं, वह अनाम है। बाइबिल भी कहती है, उसका कोई नाम नहीं है। मोहम्मद भी कहते हैं कि सिर्फ इशारा हो सकता है; शब्द क्या कहेंगे? लेकिन लाओत्से बहुत ही सख्ती से नाम के उपयोग से अपने को रोकता है, संवरित करता है, संयम रखता है। वह कहता है, वह एक। उस एक को जान लेने से सब जान लिया जाता है। क्योंकि वह एक कोई वस्तु नहीं, कोई व्यक्ति नहीं; सभी के भीतर व्याप्त ऊर्जा का नाम है।

उस एक को जानने से सब जान लिया जाता है। क्योंकि वह एक सभी में परिव्याप्त है। जैसे कोई सागर की एक बूंद को चख ले, उसने पूरे सागर को चख लिया। उस बूंद में जो स्वाद है नमक का, वह सारे सागर पर छाया हुआ है। सागर की एक बूंद जिसने जान ली उसने पूरा सागर जान लिया। उस एक को जो जान ले, फिर जानने को कुछ भी नहीं बचता है।

इसका यह अर्थ न ले लें कि उस परमात्मा को, उस एक को जान लेने पर आप एकदम से वह भी जान लेंगे जो डाक्टर जानता है, जो केमिस्ट जानता है, जो साइंटिस्ट जानता है। नहीं, उस एक का ज्ञान शुद्धतम ज्ञान है। उस एक का ज्ञान ज्ञान की कोई शाखा नहीं है। परमात्मा की तरफ जाने वाला व्यक्ति किसी स्पेशलाइजेशन में नहीं जा रहा है। वह किसी चीज का एक्सपर्ट नहीं हो जाएगा। वह तो जीवन के मूल को जानने जा रहा है। वह जीवन के मूल को जान लेगा। लेकिन जीवन के मूल को जान लेने से जीवन की जो अनंत विधाएं हैं, जो जीवन की अनंत शाखाएं-उपशाखाएं हैं, उनका सार तो उसे ख्याल में आ जाएगा, लेकिन उनकी व्यक्तिगत निजताएं उसके ख्याल में नहीं आएंगी।

विज्ञान शाखाओं की खोज है और धर्म मूल की। इसलिए विज्ञान जैसे-जैसे विकसित होता है एक शाखा में, और शाखाएं टूटती चली जाती हैं। आज से हजार साल पहले फिलासफी शब्द के अंतर्गत सारा विज्ञान आ जाता था। फिर जैसे-जैसे विज्ञान विकसित होने लगा तो बंटाव शुरू हुआ, शाखाएं बंटनी शुरू हुईं। फिर एक-एक शाखा अलग होती चली गई। फिर शाखाओं में भी और बारीकियां निकल आईं। केमिस्ट्री एक विज्ञान था, लेकिन अब आर्गनिक केमिस्ट्री अलग बात है, इन-आर्गनिक केमिस्ट्री अलग बात है। जैसे-जैसे आगे विज्ञान बढ़ता है वैसे-वैसे कम से कम के संबंध में ज्यादा से ज्यादा जानकारी पैदा होती जाती है। नोइंग मोर एंड मोर एबाउट लेस एंड लेस। विज्ञान संकीर्ण होता चला जाता है। लेकिन जानकारी बढ़ती जाती है, क्षेत्र संकीर्ण होता चला जाता है।

आज से पचास साल पहले डाक्टर सभी बीमारियों का डाक्टर था। लेकिन अब अगर आंख खराब है तो आंख का स्पेशलिस्ट है। पश्चिम में मजाक है कि बहुत जल्दी बाईं आंख का स्पेशलिस्ट दाईं आंख से अलग हो जाएगा। हो ही जाना चाहिए। क्योंकि बाईं आंख भी इतनी बड़ी घटना है कि एक आदमी अगर ठीक से उसकी

जानकारी करना चाहे तो पूरा जीवन उसमें ही लग जाएगा। तो विभाजन होता चला जाता है। फिर आंख भी, अकेला एक व्यक्ति जान सकेगा हजार साल बाद, कहना मुश्किल है। आंख के भी हिस्से हो जाएंगे।

इतना अनंत है जानने को कि आप विभाजन करते चले जा सकते हैं। आज तो पश्चिम में सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि इतनी जानकारी है, लेकिन सब जानकारियों के बीच कोई तालमेल नहीं है। जो आंख को जानता है वह आंख को जानता है; जो नाक को जानता है वह नाक को जानता है; जो हृदय को जानता है वह हृदय को जानता है। उनके बीच कोई जानकारी नहीं है। और यह आदमी बड़ा अजीब है। इसके भीतर सब चीजें इकट्ठी हैं। इसकी आंख जब बीमार होती है तो अकेली आंख बीमार नहीं होती, इसका हृदय भी बीमार हो जाता है। जब इसकी आंख बीमार होती है तो इसकी आंख ही बीमार नहीं होती, इसका पूरा शरीर ही बीमार हो जाता है। इसका आंख का अकेला इलाज हो सकता है; आंख ठीक भी हो जाएगी। लेकिन वह इलाज लोकल हुआ, स्थानीय हुआ। पूरा व्यक्ति अछूता छूट गया। इसलिए जो बीमारी आंख से प्रकट हो रही थी वह कहीं और से प्रकट होनी शुरू हो जाएगी। तो पश्चिम में एक नया नारा है कि बीमारी का इलाज बंद करो और व्यक्ति का इलाज शुरू करो। जब तक व्यक्ति का इलाज न हो, बीमारियां ठीक नहीं हो सकतीं।

तो विज्ञान संकीर्ण होते-होते, होते-होते एटामिक हो जाता है, परमाणु की तरफ जाने लगता है। बहुत जानता है, लेकिन बहुत थोड़े के संबंध में। धर्म की यात्रा बिल्कुल उलटी है। धर्म बहुत कम जानता है, लेकिन बहुत के संबंध में। इस फर्क को ठीक से समझ लें।

मैंने कहा, विज्ञान जानता है मोर एंड मोर एबाउट लेस एंड लेस, और धर्म जानता है लेस एंड लेस एबाउट मोर एंड मोर। और एक घड़ी ऐसी आती है कि धर्म बिल्कुल नहीं जानता--और तब पूरा प्रकट हो जाता है उसके सामने। होगा ही। एक घड़ी ऐसी आएगी विज्ञान को कि वह सब कुछ जान लेगा ना-कुछ के संबंध में--सामने कुछ भी नहीं रह जाएगा। अगर यात्रा ठीक से बढ़ेगी तो काटते-काटते एक वक्त आएगा कि जानकारी बहुत हो जाएगी, जानने को कुछ भी नहीं बचेगा। धर्म इससे उलटी यात्रा करता है। एक घड़ी आती है कि जानकार खो जाता है, जानना नहीं रह जाता, और जानने को सब कुछ प्रकट हो जाता है। जिस दिन यह विराट प्रकट होता है उस दिन एक ही रह जाता है। उस दिन फिर कोई भेद नहीं रह जाते, खंड नहीं रह जाते। भेद इतनी बुरी तरह गिर जाते हैं कि जानने वाला भी नहीं रह जाता उस एक को, बस एक ही रह जाता है। यह चरम घटना है, जिसे हम बुद्धत्व कहते हैं।

लाओत्से कहता है, "प्राचीन समय में वे थे जिन्हें वह एक उपलब्ध था। इस एक की उपलब्धि के द्वारा स्वर्ग उजागर था।"

एक-एक चरण को हम ठीक से समझें।

"इस एक की उपलब्धि के द्वारा स्वर्ग उजागर था।"

स्वर्ग है प्रतीक सुख का। स्वर्ग है प्रतीक जीवन के भीतर छिपा हुआ जो अनंत सागर है आनंद का, उसका। स्वर्ग महासुख है। उस एक की उपलब्धि के द्वारा स्वर्ग उजागर था; महासुख के द्वार खुले थे। उस एक की उपलब्धि खोती चली गई, स्वर्ग के द्वार बंद होते चले गए। अब हम बहुत जानते हैं उस एक को छोड़ कर। लेकिन हमारा इतना जानना भी हमारे दुख को कम नहीं करता, बढ़ाता है। इसलिए बहुत चिंता की बात है कि आदमी का ज्ञान बढ़ता जाता है, लेकिन दुख क्यों बढ़ता जाता है! होना तो यह चाहिए कि ज्ञान बढ़ने के साथ दुख कम हो। क्योंकि लक्ष्य ही क्या है ज्ञान का अगर दुख कम न होता हो?

पिछले दो हजार वर्षों में ज्ञान रोज बढ़ता चला गया है। लेकिन जिस मात्रा में ज्ञान बढ़ता है उससे कई गुनी मात्रा में दुख बढ़ता है। दुख घना होता चला जाता है। और अब आदमी परेशान है। और ज्ञान को बढ़ाता है, ताकि दुख को कम कर सके; इस खोज में लगा रहता है कि जितनी जानकारी होगी उतना हम दुख से सुरक्षा कर लेंगे। लेकिन दुख बढ़ता जाता है।

लाओत्से कहता है, सुख का द्वार एक को जानना है; दुख का द्वार अनेक को जानना है। अनेक की जानकारी होगी, दुख बढ़ेगा; एक का बोध होगा, सुख बढ़ेगा। क्यों? क्योंकि जितनी दिशाओं में हमारा ज्ञान बंटता है उतने ही भीतर हम बंट जाते हैं। और बंटा हुआ आदमी दुखी होगा। खंडित, टूटा हुआ आदमी दुखी होगा।

आपको पता नहीं कि आप कितने खंडित हैं। आप दुकान पर होते हैं तो आप और ही तरह के आदमी होते हैं। अगर एकदम से आपकी प्रेयसी वहां आ जाए तो आपको बड़ी अड़चन होगी। क्योंकि प्रेयसी के साथ आप जैसे आदमी होते हैं वैसे आदमी आप दुकान पर नहीं हैं। वह ग्राहक के साथ जैसे आदमी होते हैं, वह बिल्कुल दूसरा आदमी है। अगर प्रेयसी एकदम से आ जाए तो आपको सब भीतर का सरंजाम बदलना पड़ेगा; आपको सब भीतर के सामान फिर से आयोजित करने पड़ेंगे। आपको आंख और ढंग की करनी पड़ेगी, चेहरे पर मुस्कुराहट और ढंग की लानी पड़ेगी, हाथ-पैर और ढंग से चलाने पड़ेंगे। सब आपको बदल देना पड़ेगा। आपकी भाषा, सब। क्योंकि ग्राहक के साथ आप और ही व्यवस्था से काम कर रहे थे; आपका एक खंड काम कर रहा था। प्रेयसी के सामने दूसरा खंड काम करता है।

यह जो खंडित व्यक्ति है यह सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि सुख अखंडता की छाया है। जितना भीतर अखंड भाव होता है कि मैं एक हूं, उतनी ही शांति और सुख मालूम होता है। दुख का कारण होता है भीतर के लड़ते हुए खंड। और भीतर खंड प्रतिपल लड़ रहे हैं, क्योंकि विपरीत हैं। आप इस तरह के आयोजन कर लिए हैं जीवन में जो एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं।

अगर आपको धन इकट्ठा करना है, तो धन प्रेम का विरोधी है। जितना ज्यादा धन इकट्ठा करना हो उतना ही आपको अपने प्रेमपूर्ण हृदय को रोक लेना पड़ेगा। लेकिन आपको प्रेम भी करना है। क्योंकि प्रेम के बिना जीवन में कोई तृप्ति नहीं। और जब प्रेम करना है तो वह जो धन की पागल दौड़ थी उसे एक तरफ हटा देना होगा। मगर अड़चन है। हमारे मन में ऐसे ख्याल हैं कि लोग प्रेम के लिए भी धन इकट्ठा करते हैं। वे सोचते हैं कि जब धन होगा पास तो प्रेम भी हो सकेगा। लेकिन धन इकट्ठा करने में वे इतने आदी हो जाते हैं एक खास ढांचे के, जो कि अप्रेम का है, घृणा का है, शोषण का है, कि जब प्रेम का मौका आता है तो वे खुल ही नहीं पाते। उनका दुकानदार इतना मजबूत हो जाता है कि वे उससे कहते हैं, हट! लेकिन वह नहीं हटता। वह बीच में खड़ा हो जाता है।

मैंने सुना है, एक आदमी घर लौटा सांझ, दिन भर का थका-मांदा। पत्नी है घर में; छोटी बेटी है तीन साल की। द्वार पर ही उसने बेटी को बैठे देखा तो उसने अपनी बेटी को कहा कि क्या विचार है, डैडी के लिए एक चुंबन देना है या नहीं? उसकी लड़की चुपचाप बैठी रही। दुबारा उसने पूछा तो उस लड़की ने कहा कि नहीं। तो उस आदमी ने कहा कि मुझे शर्म आती है; तुम्हारे लिए ही मैं दिन भर पैसा कमाता हूं और घर आता हूं तो मेरी छोटी बेटी भी मुझे चुंबन देने के लिए इनकार करती है। चलो, उठो, कमआन एंड गिव मी दि किस, व्हेयर इ.ज दि किस? कहां है तेरा चुंबन? आ करीब! उस लड़की ने उस आदमी की आंखों में गौर से देखा और कहा, व्हेयर इ.ज दि मनी? धन कहां है, जो दिन भर हमारे लिए कमाया?

छोटे बच्चे भी खंडित होना शुरू हो जाते हैं आपके साथ। लेकिन इसमें बेटी और बाप के तर्क में फर्क नहीं है। क्योंकि बाप चुंबन मांग रहा है इस लोभ को देकर कि तुम्हारे लिए दिन भर मैंने धन कमाया; तो बेटी इसी तर्क का उपयोग कर रही है कि कहां है धन। चुंबन भी एक सौदा है।

सौदे में हम इस बुरी तरह डूब जाते हैं कि प्रेम भी सौदा बन जाता है। और प्रेम सौदा नहीं बन सकता। तो बड़ी अड़चन है। प्रेम भी चाहिए और धन भी चाहिए। और दोनों दिशाएं इतनी विपरीत हैं कि धन जिस ढंग से चाहिए उस ढंग से प्रेम नहीं हो सकता, और जिस ढंग से प्रेम हो सकता है उस ढंग से धन के अंबार लगाने असंभव हैं।

यह तो मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं। ऐसे हमारे भीतर हजार वासनाएं हैं जो विपरीत हैं।

आपने सुना है, शास्त्र निरंतर कहते हैं, सदगुरुओं ने कहा है कि वासना दुख देती है। लेकिन असल में, वासना दुख नहीं देती, विपरीत वासनाएं दुख देती हैं। और जितनी विपरीत वासनाएं होंगी उतना ज्यादा दुख होगा। अगर एक ही वासना रह जाए, दुख विलीन हो जाएगा। और अगर कोई आदमी एक ही वासना की खोज करे तो आज नहीं कल लाओत्से के एक को खोजना पड़ेगा। क्योंकि उसके साथ ही एक वासना हो सकती है; बाकी कोई वासना अकेली नहीं हो सकती। अगर आप अकेले प्रेम से जीना चाहें तो थोड़े दिन में ही मुसीबत में पड़ जाएंगे। क्योंकि धन के बिना जी कैसे सकते हैं?

तो देखते हैं पश्चिम में, लड़के और लड़कियां बगावत कर रहे हैं घरों से, और वे कहते हैं कि इस व्यवस्था, धन की इस पागल दौड़ से हमारा कोई संबंध नहीं। लेकिन साल, दो साल में हिप्पी घर लौट जाता है। दूसरे आ जाते हैं उसकी जगह, इसलिए आपको हिप्पी दिखाई पड़ते रहते हैं। लेकिन पुराने हिप्पी कहां खो जाते हैं? कितनी देर तक आप हिप्पी रह सकते हैं? और वह भी आप किसी के पैसे के बल पर ही होंगे। वह आपके बाप का पैसा हो, किसी और का पैसा हो। वह भी, वह जो स्वतंत्रता प्रेम की आप भोग रहे हैं, वह भी किसी के पैसे पर है। और जब पैसा चुक जाएगा तो आप प्रेम भी तो नहीं कर सकते। दौड़ना पड़ेगा उसी दौड़ में जहां दुनिया दौड़ रही है।

सिर्फ परमात्मा की वासना अकेली हो सकती है, बाकी तो सभी वासनाओं की विपरीत वासनाएं होंगी। और विपरीत वासनाएं आदमी को खंड-खंड कर देती हैं। स्वर्ग का द्वार बंद हो जाता है।

"उस एक की उपलब्धि के द्वारा स्वर्ग उजागर था।"

कोई पूछता नहीं था कि सुख क्या है; लोग सुखी थे। आदमी पूछता ही तब है जब दुख शुरू हो जाता है। जब आप स्वस्थ होते हैं तो आप कभी नहीं पूछते कि स्वास्थ्य क्या है। जब आप बीमार होते हैं तो आप पूछते हैं, कैंसर क्या है? टी बी क्या है? जब आप सुखी होते हैं तो आप यह भी नहीं पूछते कि जीवन का लक्ष्य क्या है, प्रयोजन क्या है। जब आप दुखी होते हैं तब आप पूछते हैं कि जीवन का लक्ष्य क्या है? सुख स्वीकृत होता है; उसमें प्रश्न भी नहीं उठता। दुख अस्वीकृत होता है; इसलिए प्रश्न उठ आता है। जितने ज्यादा प्रश्न आपके भीतर उठते हैं वे इस बात की खबर देते हैं कि जीवन आपका दुख से भरा है। आप कहीं नरक में खड़े हैं। स्वर्ग निष्प्रश्न है।

लाओत्से कहता है, "जब उस एक की उपलब्धि थी तो स्वर्ग उजागर था। उस एक की उपलब्धि के द्वारा पृथ्वी थिर थी।"

स्वर्ग और पृथ्वी प्रतीक हैं। स्वर्ग है सुख का प्रतीक, आनंद का प्रतीक। वह जो आशा है सभी के हृदय में छिपी, उस आशा का स्वप्न। पृथ्वी से अर्थ है आपका पार्थिव जीवन, आपकी देह; आप जैसे हैं अभिव्यक्ति के जगत में, पदार्थ के जगत में। और जब स्वर्ग उजागर हो तो पृथ्वी थिर होती है। जब आपके भीतर सुख होता है तो आपकी देह भी थिर होती है। तो देह में भी बेचैनियां नहीं होतीं।

अभी तक ऐसा ख्याल था कि देह में बेचैनियां शुरू होती हैं, इसलिए मन बेचैन होता है। लेकिन तंत्र और योग और धर्म सदा से यह कहते थे कि बेचैनी की शुरुआत मन में होती है; देह में तो केवल प्रतिध्वनि सुनी जाती है। अब पश्चिम में भी वे इस बात को स्वीकार करने लगे। इसलिए अब वे कहते हैं कि शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं। आदमी शरीर और मन नहीं है, शरीर-मन है; साइको-सोमैटिक है। दोनों एक हैं। और एक तरफ घटना घटे तो दूसरी तरफ प्रतिध्वनि पहुंच जाती है। नब्बे प्रतिशत बीमारियों को पश्चिम का मनोविज्ञान अब मन की घटना मानने लगा है। उनके स्वर शरीर तक भी सुने जाते हैं। मन कंपता है तो शरीर भी कंप जाता है। लेकिन कंपन की शुरुआत मन से होती है। होनी भी चाहिए। क्योंकि मन ज्यादा सूक्ष्म है और कंपन को पहले पकड़ता है, इसके पहले कि शरीर पकड़ सके।

इसलिए रूस में एक नई प्रक्रिया विकसित हो रही है जिसमें वे बीमारी के शरीर के आने के पहले--छह महीने पहले--बीमारी की सूक्ष्म ध्वनियां मन में पकड़ लेंगे। इसलिए बीमार होने के पहले व्यक्ति का इलाज हो सकेगा। उसे पता भी नहीं चलेगा कि वह कभी बीमार हुआ। उसके शरीर तक खबर आने के पहले, जब मन में ही ध्वनि का पहला जन्म होता है बीमारी का, उसे वहीं पकड़ा जा सकेगा।

किर्लियान फोटोग्राफी बड़ा काम कर रही है। वह एक खास तरह की फोटोग्राफी है जिसमें मन के छोटे से कंपन भी पकड़ लिए जाते हैं। उस फोटोग्राफी को हम मन का एक्स-रे कह सकते हैं। वह विकसित हो रही है। जल्दी ही आपको बीमार नहीं होना पड़ेगा; बीमार होने के पहले इलाज शुरू हो जाएगा।

लेकिन लाओत्से की बात बड़ी विचारणीय है। लाओत्से कहता है, जब स्वर्ग उजागर हो और उस एक की उपलब्धि हो तो पृथ्वी थिर हो जाती है। क्योंकि पृथ्वी के सारे कंपन, देह के सारे कंपन, पदार्थ के सारे कंपन, पदार्थ में नहीं जन्मते, मन में ही जन्मते हैं। जन्म सदा मन में है, स्रोत सदा मन में है; स्रोत सदा चेतना में है; पदार्थ तक झलक आती है। फिर हम पदार्थ का ही उपाय करने में लग जाते हैं। वहां भूल हो जाती है। तब हम संकेतों का इलाज करने लगते हैं, सिम्पटम्स का, और मूल बीमारी अलग पड़ी रह जाती है।

जितना चिकित्सा-शास्त्र आज विकसित है, कभी भी नहीं था। लेकिन जितने आदमी आज मरीज हैं, बीमार हैं, उतने कभी नहीं थे। यह कुछ अनूठी बात है कि हम चिकित्सा विकसित करते हैं और मरीज क्यों विकसित होते हैं! इधर हम कानून को नियोजित करते हैं, और उधर अपराधी बढ़ते चले जाते हैं। जो भी इंतजाम हम करते हैं, उससे विपरीत होता है। कोई मौलिक भूल है। शायद हम ऊपर से चीजों का इलाज करते हैं और भीतर से उनके मूल स्रोत को नहीं छू पाते।

आदमी पीड़ित है। पीड़ा के हजार कारण हमें दिखाई पड़ते हैं। कभी गरीबी है, कभी शरीर की बीमारी है, कभी शिक्षा की कमी है, कभी कुछ, कभी कुछ। हम एक-एक को दूर करने में लग जाते हैं। हजार कारण हैं। आज से दो सौ साल पहले लोग सोचते थे--विचारशील लोग--कि जिस दिन पृथ्वी शिक्षित हो जाएगी उस दिन कोई दुख नहीं होगा। आज पृथ्वी करीब-करीब शिक्षित है। दुख घना हो गया। अगर उनकी कब्रें खोली जा सकें, जिन विचारकों ने कहा था कि जब लोग शिक्षित हो जाएंगे तो दुख नहीं होगा, तो वे बहुत चौंकेंगे। वे समझेंगे कि

उन्होंने महापाप किया। क्योंकि न मालूम कितने लोगों ने अपना जीवन लगा कर आदमी को शिक्षित करने की कोशिश की है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आदिवासियों को शिक्षित करना है। मैं उनसे कहता हूं, पहले तुम शिक्षित लोगों को तो देखो। तुम्हारा दिमाग खराब है! अगर तुम शिक्षित लोगों को इस हालत में पा रहे हो कि इन्होंने कोई आनंद पा लिया है तो जरूर आदिवासियों को शिक्षित करो। यह तो पक्का कर लो पहले। तुम्हारी युनिवर्सिटियों में जाओ--जाओ लखनऊ, जाओ बनारस, जाओ हार्वर्ड, आक्सफोर्ड--वहां देखो कि क्या हो रहा है। लखनऊ युनिवर्सिटी जल रही है। तुम आदिवासी को शिक्षित कर रहे हो। तुम कहां तक पहुंचाओगे इसको? वहीं तक जहां युनिवर्सिटी में आग लगती है। ज्यादा से ज्यादा शिक्षित होकर यह यही करेगा। और ध्यान रखना, जब यह शिक्षित होकर उपद्रव करेगा तो इसके उपद्रव का तुम मुकाबला नहीं कर सकते हो। क्योंकि यह कई दिन की उर्वरा भूमि है। ये कई दिन से शांत बैठे हैं। जब इनकी अशांति प्रकट होगी तो विस्फोट होगा।

लेकिन अनेक लोग लगे हैं सेवा में आदिवासियों की। वे समझ रहे हैं, सेवा कर रहे हैं। अज्ञानी सेवा भी करे तो खतरे में ही उतार देता है। अज्ञानियों ने पिछले दो सौ वर्षों में सेवा कर-करके आदमी को शिक्षित कर दिया। अभी डी.एच.लारेंस ने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया, और उसने कहा कि मेरा सुझाव है, अगर दुनिया में शांति चाहिए हो तो सौ वर्ष के लिए सब स्कूल, सब कालेज, सब विश्वविद्यालय बिल्कुल बंद कर देने चाहिए।

उसके सुझाव में बुद्धिमत्ता मालूम पड़ती है, यथार्थ मालूम पड़ता है। कोई मानेगा नहीं उसके सुझाव को। क्योंकि आप पागलपन में इतने ज्यादा जा चुके हैं कि सोच भी नहीं सकते। लेकिन मैं मानता हूं कि उसके सुझाव में बड़ी बुद्धिमत्ता है। सौ वर्ष! ताकि यह सब जो समझदारी बढ़ गई है, वह भूल जाए, और एक दफा आदमी फिर वहां से शुरू करे जहां प्रकृति है।

लेकिन जिन्होंने चेष्टा करके शिक्षित किया आदमी को उन्होंने सोचा था, स्वर्ग आएगा। लोग सोचते थे, गरीबी मिट जाए तो स्वर्ग आएगा। गरीबी मिट गई अनेक मुल्कों में; स्वर्ग नहीं आया, नरक आया। लोग सोचते हैं, समाजवाद आ जाए। तो अभी रूस में समाजवाद आ गया। लेकिन वहां के युवक बगावत करने के लिए उत्सुक हैं। और जिस दिन उनको मौका मिलेगा, तो रूस में भयंकर बगावत होगी। युवक संतुष्ट नहीं हैं। समाजवाद आ जाए, शिक्षा आ जाए, धन आ जाए, कुछ भी आ जाए; जब तक आप अलग-अलग बीमारियों का इलाज कर रहे हैं, आदमी बीमार रहेगा। क्योंकि आदमी की बीमारी एक है। और वह बीमारी है कि जब तक वह भीतर एक न हो जाए, वह दुखी रहेगा। न समाजवाद उसको एक कर सकता है, न शिक्षा उसको एक कर सकती है, न धन एक कर सकता है। यह सिर्फ व्यामोह है, यह सिर्फ सिम्पटम्स को पकड़ना है।

एक आदमी को बुखार चढ़ा है। देखा, शरीर गर्म है; ठंडा पानी डाल रहे हैं उसके ऊपर कि शरीर ठंडा हो जाए। बिल्कुल ठंडा हो जाएगा। बुखार, शरीर की गर्मी तो सिर्फ प्रतीक है, खबर है, संकेत है कि आदमी बीमार है। शरीर की गर्मी बीमारी नहीं है। शरीर की गर्मी तो कह रही है कि भीतर कुछ रुग्ण हो गया है; इतना रुग्ण हो गया है कि भीतर के सेल्स आपस में संघर्ष कर रहे हैं। उनके संघर्षण के कारण शरीर गर्म हो गया है। उस संघर्षण को मिटाओ तो शरीर की गर्मी चली जाएगी। शरीर की गर्मी तो केवल खबर है कि भीतर युद्ध छिड़ा है। उस युद्ध के घर्षण के कारण शरीर गर्म हो रहा है।

आप जब रुग्ण होते हैं मानसिक रूप से, चिंतित, परेशान, उद्विग्न, तो उसका अर्थ है कि भीतर मन के खंडों में युद्ध छिड़ा है; उत्तप्त हो गए हैं आप। अब इसे दूर करने के जितने भी उपाय आप बाहर खोजते हैं, वे

काम के नहीं हैं। भीतर से खंड विदा होने चाहिए; भीतर अखंडता आनी चाहिए; भीतर समग्रता आनी चाहिए; भीतर का विरोध विलीन हो जाना चाहिए। भीतर जिस दिन एक का जन्म होगा उस दिन स्वास्थ्य उपलब्ध हो जाएगा।

"इस एक की उपलब्धि के द्वारा पृथ्वी थिर थी। इस एक की उपलब्धि के द्वारा देवता में देवत्व था।"

वह जो मंदिर में मूर्ति है, उसमें देवता नहीं है; जब आपके भीतर एक होता है, तब उसमें देवता होता है। वह मंदिर की मूर्ति तो पत्थर है। लेकिन जब आपके भीतर एक होता है तो वह पत्थर दर्पण बन जाता है। सच में जिन्होंने मूर्तियां खोजी थीं वे अनूठे कलाकार थे, और उनकी दृष्टि बड़ी दूरगामी थी। मगर उन्हें हम बेईमानों का कुछ भी पता नहीं था। सीधे-सादे लोग थे। मूर्ति मंदिर में खोजी गई थी जब पहली बार तो इसलिए खोजी गई थी कि जिस दिन तुम्हें उस मूर्ति में देवता दिखाई पड़ने लगे उस दिन समझना कि तुम्हारे भीतर कोई घटना घटी। वह सिर्फ, जिसको हम कहें, थर्मामीटर थी। मूर्ति में जिस दिन तुम्हें देवता दिखाई पड़ने लगे उस दिन समझना कि तुम्हारे भीतर एक का जन्म हुआ। क्योंकि उसके पहले देवता दिखाई नहीं पड़ेगा।

हमने उसकी फिक्र ही छोड़ दी; हम मूर्ति में देवता मान कर बैठ गए। देखने की चिंता छोड़ी; हम पहले ही से मानते हैं कि यह देवता है। तो हम मंदिर में जाकर हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं, उस मूर्ति के सामने जो अभी आपके लिए देवता नहीं है। अभी तो पत्थर ही आपके सामने रखा है। देवता आपकी सिर्फ धारणा है।

यही की यही मूर्ति रखी होगी एक मूर्ति बनाने वाले की दुकान में तो आप हाथ नहीं जोड़ेंगे। यही मूर्ति! यही मूर्ति मंदिर में रख जाएगी, आप हाथ जोड़ लेंगे। कितने शिवलिंग सड़कों पर पड़े हैं! उनमें पैर भी मार कर आप मजे से चल रहे हैं। उन्हीं में से एक पत्थर का टुकड़ा कल मंदिर में शिवलिंग बन कर बैठ जाएगा; आप जाकर साष्टांग लेट जाएंगे। आप धारणाओं के सामने लेट रहे हैं। आपके लिए कोई शिवलिंग वहां है नहीं।

लेकिन मूर्ति का विज्ञान यह था कि वह तो पत्थर है, यह जानना, और अपने भीतर रूपांतरण करते जाना--प्रार्थना से, ध्यान से, साधना से, और जिस दिन तुम्हें उस पत्थर में से पत्थर तिरोहित हो जाए और वहां चिन्मय का आविष्कार हो, वहां चैतन्य दिखाई पड़ने लगे, उस दिन समझना कि तुम्हारे भीतर घटना घट गई। क्योंकि भीतर की घटना की भी जांच तुम्हें पहले बाहर से करनी होगी। हम इतने बहिर्मुखी हैं कि हमारे भीतर क्या घटा, इसे भी हमें पहले बाहर से जांचना होगा। तो मूर्ति तो प्रतीक थी, दर्पण थी, थर्मामीटर थी; जांच का एक उपाय थी।

लाओत्से कहता है, "इस एक की उपलब्धि के द्वारा देवता में देवत्व था।"

देवता में कोई देवत्व नहीं है; जब आपके भीतर एक होता है तो देवत्व प्रकट होता है; वह आपकी झलक है जो आप मूर्ति को देते हैं। और जिस दिन आपको पत्थर की मूर्ति में देवता दिखाई पड़ने लगा उस दिन सब जगह दिखाई पड़ने लगेगा। पत्थर हमने इसीलिए चुना था। इस जगत में सबसे ज्यादा निर्जीव दिखाई पड़ने वाली चीज पत्थर है। है तो निर्जीव वह भी नहीं, क्योंकि सभी जीवन का अंग है। पर जीवन सबसे कम जहां झलकता है, वह पत्थर है। इसलिए हमने पत्थर की मूर्तियां चुनी थीं। पत्थर की मूर्ति इस बात की खबर है कि अब हमें सबसे ज्यादा निर्जीव दिखाई पड़ने वाली वस्तु में भी चिन्मय का आविष्कार हुआ है, चैतन्य का आविष्कार हुआ है; अब इस जगत में ऐसी कोई चीज भी नहीं बची जिसमें हमें वह चैतन्य न दिखाई पड़े। जब पत्थर में दिख गया तो सब जगह दिखाई पड़ेगा।

"देवता में देवत्व था।"

अभी आप पूछते हैं कि मंदिर की मूर्ति में क्या रखा है? यह प्रश्न ही असंगत है। यह केवल इस बात की खबर दे रहा है कि आपके भीतर देवत्व नहीं है, वह एकता नहीं है जो देख पाती। थर्मामीटर दोषी नहीं कहे जा सकते। आप थर्मामीटर लगाएं और उसमें बुखार न आया; तो आप यह नहीं कह सकते, इस थर्मामीटर में क्या रखा है, फेंको। थर्मामीटर तो वही खबर देता है जो आपके भीतर होता है। बुखार होता है तो बुखार की खबर देता है; नहीं बुखार होता तो नहीं बुखार की खबर देता है। तापमान नीचे गिर जाए, मृत्यु के करीब पहुंचने लगे, तो खबर देता है; कहां है, इसकी खबर देता है। जब आपको मंदिर के देवता में सिर्फ पत्थर दिखाई पड़ता है तो आपके हृदय में अभी पथरीलापन है इसकी खबर देता है। तो जरूरी नहीं है कि जो मूर्ति आपके लिए पत्थर है वह सभी के लिए पत्थर हो। आपके ही पड़ोस में खड़े हुए दूसरे उपासक को वहां चैतन्य का आविष्कार हो सकता है।

इसलिए बड़ी अड़चन खड़ी होती है। रामकृष्ण भी खड़े हैं उसी मूर्ति के सामने दक्षिणेश्वर में; हजारों लोग उनके साथ वहां खड़े हुए हैं। लेकिन जो रामकृष्ण को वहां दिखाई पड़ता था वह किसी को वहां दिखाई नहीं पड़ता था। तो लोग बाहर जाकर कहते थे, इसका दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि रामकृष्ण बातें कर रहे हैं। मां से उनकी चर्चा चल रही है। कभी-कभी झगड़ा भी हो जाता है, विवाद भी हो जाता है। रामकृष्ण रूठ भी जाते हैं--कि फिर कल से पूजा बंद कर दूंगा! क्या समझ रखा है तुमने अपने आपको? इतनी आत्मीय चर्चा चलती है। और जहां इतनी आत्मीयता हो वहीं झगड़ा हो सकता है। पर बाकी लोग खड़े देख रहे हैं कि यह क्या पागलपन है! पत्थर की मूर्ति, इससे क्या बातचीत चल रही है? जरूर रामकृष्ण का दिमाग खराब हो गया।

एक दिन उसी पत्थर की मूर्ति के सामने रामकृष्ण ने कहा, बहुत हो गया पूजा करते-करते; आखिर कब तक? अब आखिरी झलक चाहिए। और अगर आज आखिरी झलक नहीं मिली तो अपनी भी गर्दन काट दूंगा और तुम्हारी भी गर्दन काट दूंगा। तलवार लटकी थी मंदिर में, देवी के मंदिर में। तो तलवार खींच ली। अच्छा हुआ कि वहां कोई था नहीं, नहीं तो रामकृष्ण पुलिस थाने पहुंचाए गए होते। तलवार खींच ली और कहा कि बस, तीन सेकेंड का समय देता हूं। अगर तीन सेकेंड के भीतर ब्रह्मानुभव नहीं होता है तो यह गर्दन नीचे गिरा दूंगा।

तीन सेकेंड अनंत जन्मों जैसे लंबे हो गए होंगे। क्योंकि समय घड़ियों में नहीं नापा जाता, समय संकल्प से नापा जाता है। इतनी त्वरा--जहां जीवन तीन सेकेंड के बाद नंगी तलवार के पास था--और हाथ रामकृष्ण का कंपने लगा। सेकेंड-सेकेंड गुजरने लगे और झटके से उनका हाथ गर्दन पर आया। जैसे ही गर्दन के करीब तलवार आई, सारा रूप बदल गया। मंदिर तिरोहित हो गया। वह जहां पत्थर की मूर्ति खड़ी थी वहां चैतन्य का आविर्भाव हो गया। हाथ से तलवार नीचे गिर गई। रामकृष्ण नाच कर--रात भर नाच कर--बेहोश सुबह पाए गए। लेकिन उस दिन के बाद रामकृष्ण दूसरे हो गए। उस दिन के बाद फिर वे पूजा को अक्सर नहीं जाते थे। लोग पूछते भी तो वे कहते, आविर्भाव हो गया; अब सभी जगह वही है। अब जहां मैं बैठा हूं, वहीं पूजा है। अब मंदिर में जाने की कोई जरूरत न रही। मंदिर तो द्वार था; अब द्वार खुल गया। तो अब द्वार पर खड़े रहने की कोई जरूरत न रही।

क्या हुआ उस क्षण में जब रामकृष्ण ने तलवार उठा ली?

ध्यान रहे, मूर्ति में तो कुछ भी नहीं हो सकता तलवार से। क्या होगा? पत्थर में क्या होगा? लेकिन जब आप तलवार उठा लेते हैं और इतनी त्वरा से भर जाते हैं, इतनी तीव्रता से कि अपना पूरा जीवन दांव पर लगाते हैं, तो आप भीतर एक हो जाएंगे। वहां दूसरा स्वर ही नहीं रह सकता। तीन सेकेंड जहां बचे हों, जीवन जहां समाप्त हो रहा हो, तलवार हाथ में हो, वहां रामकृष्ण में कितनी वासनाएं बची होंगी? सोचा होगा कि

कल सुबह क्या करना है? किसको पैसे देने हैं? किससे पैसे लेने हैं? समय मिट गया होगा। कोई पिछला कल नहीं बचा; आगे का कल नहीं बचा। रामकृष्ण उन क्षण में समय के पार हो गए होंगे--कालातीत। मन में क्या वासना बची होगी? जो परमात्मा के लिए जीवन देने को तैयार हो गया, अब कोई वासना नहीं बच सकती। यह आखिरी वासना है, इसके आग फिर कोई वासना नहीं। यह आखिरी पड़ाव है, इसके आगे कोई पड़ाव नहीं। उस क्षण में वे एक हो गए होंगे। उस तलवार के नीचे, जहां मौत निकट थी, जीवन इकट्ठा हो गया होगा। उस इकट्ठेपन में एक का आविर्भाव हुआ। मूर्ति खो गई, मंदिर खो गया; एक ही व्याप्त हो गया।

ध्यान रहे, घटना भीतर घटती है; बाहर तो उसका सिर्फ अनुभव होता है। इसलिए आप भी मंदिर में बैठे होते तो आपके लिए मंदिर नहीं खो जाता, न मूर्ति खो जाती। आपके लिए सिर्फ अड़चन मालूम पड़ती कि रामकृष्ण को कुछ गड़बड़ हो गई। आपका कहना भी ठीक है। गड़बड़ रामकृष्ण को ही हुई है। कुछ जो हुआ है वह रामकृष्ण को भीतर हुआ है।

लाओत्से कहता है, "इस एक की उपलब्धि के द्वारा देवता में देवत्व था। इस एक की उपलब्धि के द्वारा घाटियां भरी थीं।"

लाओत्से के प्रतीक हैं। घाटी वह कहता है हृदय को। खाली हृदय दुख है; खाली हृदय पीड़ा है। जीवन भर आपका जो कष्ट है, एक शब्द में कहा जा सकता हैः खाली हृदय। आपका हृदय एक घाटी है जिसमें कोई भराव नहीं। इसलिए तो प्रेम का इतना पागल आकर्षण है कि कोई भर दे, कोई मुझे पूरा कर दे। खाली हैं, अधूरे हैं। भरने के लिए लालायित हैंः कोई भर दे। लेकिन जिनसे आप भरने की मांग कर रहे हैं वे भी इतने ही खाली हैं। तो धोखा ही होगा। इसलिए सभी प्रेम असफल हो जाते हैं। शुरू में बड़ी आशा बंधती है कि दूसरा मुझे भर देगा। दूसरा भी इसी आशा से आपके पास आया है कि आप उसे भर देंगे। दूसरा समझता है आप भरे हैं; आप समझते हैं दूसरा भरा है। दोनों खाली हैं। कितनी देर चलेगी यह आशा? ये इंद्रधनुष जल्दी ही बिखर जाएंगे, तिरोहित हो जाएंगे। और लगेगा कि दूसरा तो मुझसे भी ज्यादा खाली है, मुझे चूसे जा रहा है। दूसरे को भी यही लगेगा कि तुम धोखेबाज हो। तुमने जो आशा बंधाई थी वह सब ऊपरी थी। भीतर तुम खुद ही भिखमंगे हो। और मैं एक सम्राट के करीब मेरा आना हुआ था; एक सम्राट को देख कर आना हुआ था।

सभी प्रेम असफल हो जाते हैं, सिवाय परमात्मा के प्रेम के। इसमें प्रेम की कोई गलती नहीं है। इसमें प्रेम के साथ जो अपेक्षा है वहीं भूल है। खाली जो खुद है वह आपको कैसे भर सकेगा? सिर्फ आश्वासन दे सकता है।

लाओत्से कहता है, "उस एक की उपलब्धि के द्वारा घाटियां भरी थीं।"

और वह जब एक उपलब्ध होता है तो हृदय भर जाता है। और वैसे भरे हुए हृदय वाले के पास जो भी गुजरता है वह भी उसके भराव का भागीदार हो जाता है। उस भरे हुए हृदय वाले के पास बहता रहता है, ओवर-फ्लोइंग है, वह जो भरा है अनंत है। घाटी छोटी है; जो भरा है वह अनंत है। वह बहता रहता है। उसके आस-पास जो आता है वह भी अनायास ही भागीदार हो जाता है, अनायास ही आमंत्रण में सम्मिलित हो जाता है। वे बुद्ध, महावीर और जीसस जो घूमते हैं वर्षों तक एक भरी हुई घाटी को लेकर कि जो भी खाली हैं वे अगर निकट भी आ जाएं... ।

लेकिन खाली आदमी की बड़ी तकलीफें हैं। खाली आदमी निकट आने में भी डरता है। सिर्फ भरा हुआ आदमी निकट आने में डरता नहीं। यह बड़े मजे की और बड़ी मनोवैज्ञानिक घटना है। जिनके पास कुछ नहीं वे सदा डरते हैं कि कहीं छीन न लिया जाए, और जिनके पास सब कुछ है वे कभी नहीं डरते। क्योंकि इतना है उनके पास कि तुम कितना छीनोगे! तुम्हारे छीनने से कोई भी फर्क न पड़ेगा। जिनके पास नहीं है उनके पास

इतना नहीं है कि वे डरे हुए हैं कि कहीं कोई और न छीन ले। इसलिए खाली लोग पास आने में डरते हैं। किसी को बहुत निकट नहीं लेते, क्योंकि निकट में कहीं खालीपन प्रकट न हो जाए। कहीं यह आदमी देख न ले कि मैं खाली हूं। तो मेरी दीनता, मेरी नपुंसकता, मेरी दरिद्रता, मेरा भिखमंगापन, मेरा भिक्षा-पात्र किसी को दिख न जाए; इसलिए आदमी डरता है। तो बुद्ध भी आपके पास आएं तो भी आप उनके पास आने से डरते हैं। बुद्ध अगर आपके बहुत पास आ जाएं तो आप भागने, पलायन करने, बचने का उपाय खोजते हैं।

जिनके पास है उनके पास परमात्मा के कारण है, उनके कारण नहीं है। व्यक्ति के कारण सदा खालीपन होगा; सिर्फ परमात्मा के कारण भरापन हो सकता है। व्यक्ति खालीपन का नाम है; परमात्मा अनंत भराव है।

तो लाओत्से कहता है, "इस एक की उपलब्धि के द्वारा घाटियां भरी थीं। इस एक की उपलब्धि के द्वारा सभी चीजें जीतीं और वृद्धि पाती थीं।"

अभी ऐसा लगता है कि जो आदमी भीतर भरा नहीं होता वह सिकुड़ता है, सड़ता है; वृद्धि नहीं पाता। इसे हम ऐसा समझें। अगर आदमी ठीक से वृद्धि पाए तो वह मरने के आखिरी क्षण तक भी विकसित होता रहेगा; किसी भी क्षण में उतार नहीं आएगा। जीवन एक अनवरत वृद्धि होगी, एक शिखर होगा जो बढ़ता ही चला जाता है।

लेकिन हमारे जीवन में ऐसा कोई शिखर नहीं होता। हमारे जीवन में थोड़ी सी वृद्धि होती है, वह भी वृद्धि प्राथमिक काल में होती है। जब हम कम अनुभवी होते हैं, अबोध होते हैं, संसार के अर्थों में अनुभवहीन होते हैं, तब थोड़ी वृद्धि होती है। बच्चे बढ़ते हैं, लेकिन बहुत जल्दी रुक जाते हैं। जिस दिन बच्चा रुक जाता है उसी दिन लोग कहते हैं कि अब यह प्रौढ़ हो गया; जिस दिन वृद्धि रुक जाती है, ठहर गई। जब तक बच्चा बढ़ता रहता है तब तक चिंता का कारण रहता है। पता नहीं कहां बढ़ जाए, क्या बढ़ जाए, क्या हो जाए; अनप्रेडिक्टेबल, भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इसलिए सभी कोशिश में रहते हैं कि जल्दी एक ठहराव आ जाए, एक पठार आ जाए। फिर उसके बाद बच्चा वही रहेगा जो हो गया। अब हम उसके बाबत पूर्व से ही निर्णय कर सकते हैंः वह क्या करेगा, क्या नहीं करेगा।

हम इक्कीस साल की उम्र बना रखे हैं सारी दुनिया में; वह ठहर जाने की उम्र को हम वयस्क होना कहते हैं, कि अब आदमी जो है अडल्ट हो गया। अडल्ट का मतलब यह कि अब नहीं बढ़ेगा। ठहर गए, आखिरी आ गई जगह, जहां से आगे अब ये न जाएंगे। अडल्ट का मतलब मर गए, अब जिंदा नहीं हैं। अब इनके भीतर वृद्धि नहीं होगी। अब इनको वोट देने का अधिकार दिया जा सकता है। अब इनसे कोई खतरा नहीं है। अब ये समझदार हो गए, अनुभवी। खतरे का वक्त गया। बच्चे खतरनाक हैं। अभी बढ़ रहे हैं। अभी कुछ भी अनहोना हो सकता है। अभी वे कहीं भी, किसी भी दिशा में जा सकते हैं। अभी अनजान और अपरिचित में प्रवेश कर सकते हैं। अभी उनका भरोसा नहीं किया जा सकता। अभी भरोसे योग्य नहीं हैं। जीवन का हमें भरोसा नहीं है; हमें सिर्फ मृत्यु का भरोसा है।

इसलिए आप देखते हैं, जिंदा आदमी से थोड़ा डर बना ही रहता है। जब कोई आदमी मर जाता है तो सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगते हैं कि कैसा अच्छा आदमी था। मौत अच्छा बना देती है एकदम। जब भी आप किसी आदमी के संबंध में सबके द्वारा प्रशंसा सुनें तो समझना कि वह मर गया है। मरे आदमी की कोई निंदा नहीं करता, क्योंकि अब इससे खतरा ही नहीं है, अब इससे कोई लेना-देना ही नहीं है। इसलिए लोग कहते हैं, अब मरे की क्या आलोचना कर रहे हो! आलोचना तो जिंदा की है। और जितना जिंदा हो उतनी ही ज्यादा आलोचना। मरा एकदम अच्छा हो जाता है।

मैंने सुना है कि एक बार ऐसा हुआ कि गांव में एक आदमी मरा। वह इतना बुरा आदमी था और गांव भर को उसने इस बुरी तरह परेशान कर रखा था कि गांव के सभी नेतागण चिंतित थे कि उसके मरने पर वक्तव्य क्या दें। क्योंकि उसको अच्छा कहना असंभव ही था। जाहिर इतना बुरा आदमी था कि बहुत खोज करके भी कुछ न पाया जा सका कि उसकी प्रशंसा में बोलना तो पड़ेगा ही। तो फिर उन्होंने गांव के ज्ञानी मुल्ला नसरुद्दीन को कहा कि हमें इस परेशानी से बाहर निकालो। नसरुद्दीन आया और बोला। लोग बड़ी दिक्कत में पड़े; क्योंकि उसने शुरू किया उसकी निंदा करने से कि वह आदमी कितना बुरा था! कितना बुरा था! लोग थोड़े घबड़ाए कि यह तो बड़ा अनहोना हो रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं था। लेकिन आखिर में नसरुद्दीन ने कहा, लेकिन यह कुछ भी नहीं है। उसके जो पांच भाई जिंदा हैं, उनके मुकाबले वह देवता था।

उसने कुछ रास्ता निकाल ही लिया। मरे आदमी की प्रशंसा करनी ही चाहिए। मरते ही आदमी के बाबत हम निश्चिंत हो जाते हैं। अब उसकी कोई संभावना न रही।

लाओत्से कहता है, तब एक की उपलब्धि थी, सभी चीजें जीतीं और वृद्धि पाती थीं। कोई भी मृत न था।

इसका यह मतलब नहीं है कि कोई मरता नहीं था। लेकिन कोई भी मृत होकर जीता नहीं था; मरा-मरा नहीं जीता था। जब जीता था तो पूरी तरह जीता था; और अब मरता था तो पूरी तरह मरता था। पूरी तरह जीने का भी एक आनंद है; पूरी तरह मरने का भी एक आनंद है। पूर्णता में सदा आनंद है। हम कुनकुने-कुनकुने जीते हैं और कुनकुने-कुनकुने मरते हैं। न तो मरने में कोई रस है और न जीने में कोई रस है। जीते हैं ऐसे कि किसी तरह जी रहे हैं; और मर भी इसी तरह जाते हैं। क्योंकि जिसकी जिंदगी कुनकुनी है उसकी मौत महिमापूर्ण नहीं हो सकती। उसकी मौत घटना नहीं है। उसकी मौत एक सड़न है क्रमशः। वह मरता जाता है, मरता जाता है, मरता जाता है। उसकी मौत एक क्रमिक बात है। लेकिन जो ठीक से जीता है, पूरी तरह जीता है, उसकी मौत एक घटना है, एक क्रांति है। जीवन से तत्क्षण वह एक छलांग लेता है दूसरे लोक में। उसकी मौत एक लंबा विघटन नहीं है; उसकी मौत एक अत्यंत तीव्र घटना है। और जिन लोगों ने जीवन को गहराई से जाना है, वे कहते हैं, जीवन से भी बड़ा सौंदर्य मौत का है। क्योंकि वह परम विश्राम है। लेकिन वह उसी व्यक्ति के लिए परम विश्राम है जिसने जीवन को उसकी पूरी तीव्रता में जीया हो; जिसने जीवन को उसके पूरे अर्थों में, बिना कुछ काटे-छांटे, सब दिशाओं में, सब भांति जीया हो।

लाओत्से कहता है, "जब उस एक की उपलब्धि थी, सभी चीजें जीतीं और वृद्धि पाती थीं। इस एक की उपलब्धि के द्वारा राजा और भूमिपति लोगों के द्वारा आदृत थे।"

वह आदर जो सम्राटों का था, उनकी शक्ति का आदर नहीं था; सम्राटों का आदर उनकी शांति का आदर था। सम्राटों के प्रति जो सम्मान का भाव था वह उनकी सैन्य शक्ति और हिंसा के बल का नहीं था। जिस समय की लाओत्से बात कर रहा है, उस अति प्राचीन क्षणों की, जब सम्राट कोई भीतर की मालकियत के कारण था।

राम! तो राम के प्रति जो आदर लोगों को रहा होगा वह कोई राजा के कारण नहीं था कि वे राजा थे। राजा होना गौण घटना थी; राम का होना ही अपने आप में मूल्यवान था। राजा थे, यह राम होने के कारण। उस राजा होने में भी गरिमा थी। लेकिन राजा होने के कारण राम में कोई गरिमा नहीं थी। कितने राजा हुए हैं! लेकिन राजा राम को लोग याद करते हैं; राजाओं को तो भूल गए। कुछ महिमापूर्ण था जो आंतरिक बात थी। उससे उनका सिंहासन भी आलोकित था, वह दूसरी बात है। लेकिन सिंहासन से राम आलोकित नहीं थे।

तो लाओत्से कहता है, "उस एक की उपलब्धि के द्वारा राजा और भूमिपति लोगों के द्वारा आदृत थे। इसी तरह उनमें से प्रत्येक ऐसा हो उठा था। प्रकाश के बिना स्वर्ग हिलने लगेगा; विदाउट क्लैरिटी दि हैवेंस वुड शेक।"

प्रकाश के बिना, बोध के बिना, प्रज्ञा के बिना स्वर्ग हिलने लगेगा। वह जो सुख है, कंपित हो जाएगा; वह जो जीवन का महासुख है, बिखरित हो जाएगा, टूट जाएगा।

"स्थिरता के बिना पृथ्वी डोल उठेगी।"

और उस सुख में ही स्थिरता होती है, भीतर सब ठहर जाता है। सुख के क्षण का अगर आपको अनुभव हो तो आप कह सकते हैं कि किस तरह का ठहराव आ जाता है; जैसे कहीं कोई गति नहीं होती। नदी बहती जरूर है, लेकिन कोई शोरगुल नहीं होता, कोई लहर नहीं उठती, कोई कंपन नहीं होता; सब ठहरा हुआ होता है। आनंद के क्षण ठहरे हुए क्षण होते हैं। समय ही समाप्त हो जाता है।

अगर हम समय की ठीक-ठीक व्याख्या समझना चाहें तो समय दुख का पर्यायवाची है। जितना दुख होता है उतना लंबा समय मालूम होता है। अगर घर में कोई मर रहा हो और रात भर आपको उसके बिस्तर के पास बैठना पड़े, तो रात कितनी लंबी मालूम पड़ेगी? अनंत! शुरू होगी, और ऐसा लगेगा, अंत नहीं आ रहा। जब भी दुख होता है तो समय बहुत लंबा हो जाता है। जब सुख होता है तो समय सिकुड़ जाता है, छोटा हो जाता है।

इसलिए दो प्रेमी रात भर भी मिलते रहें तो भी सुबह विदा होते वक्त उनको लगता है कि बस क्षण भर, क्षण में रात बीत गई। सुख समय को छोटा कर देता है। तो जिस महासुख की लाओत्से बात कर रहा है, जिस आनंद की, वहां समय समाप्त ही हो जाता है।

जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे स्वर्ग में कोई खास बात क्या होगी? तो जीसस अजीब उत्तर देते हैं। कहते हैं, देअर शैल बी टाइम नो लांगर। वहां समय नहीं होगा; यह एक खास बात होगी। वहां कोई गति न होगी। चीजें ठहरी होंगी; जैसे शांत झील पर एक भी तरंग नहीं है। सुख में आदमी ठहर जाता है।

लाओत्से कहता है, "स्थिरता के बिना पृथ्वी डोल उठेगी।"

जैसे ही सुख खोता है, बोध खोता है, वैसे ही पृथ्वी--हमारे जीवन का जो सामूहिक आधार है--पार्थिवता, हमारी देह, और हमारा देह के भीतर जो निवास है, वह सारा घर कंप उठेगा।

"आध्यात्मिक शक्ति के बिना देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे; विदाउट स्प्रिचुअल पावर्स दि गॉड्स वुड क्रंबल।"

तो मंदिर खड़े रहेंगे मुर्दा, मूर्तियां बनी रहेंगी, लेकिन उनका तेज विलीन हो जाएगा; उनके भीतर जो निवासी था वह तिरोहित हो जाएगा। ऐसा हो गया है। लाओत्से से पूछने की जरूरत नहीं है। हम देख सकते हैं कि लाओत्से ने जो कहा है वह हो गया है।

मंदिर खाली हैं। मस्जिद में अब कोई निवास नहीं है। गुरुद्वारे नाम के हैं। खाली खोल रह गई है। पक्षी उड़ गया। जैसे अंडा पड़ा रह जाता है और पक्षी उड़ जाता है। या घोंसला रह जाता है, पक्षी बड़े हो जाते हैं और आकाश की यात्रा पर निकल जाते हैं। ऐसे खाली घोंसले रह गए हैं। उनके भीतर जो जीवत्व था, वह जो जीवंत था, वह जो जिसके लिए वे घर थे, वह निवासी वहां अब नहीं हैं। हम जाकर मकानों को नमस्कार कर लेते हैं। यह होगा ही। क्योंकि आध्यात्मिक शक्ति के बिना देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे। उनमें प्राण होता है, जब आपके भीतर आध्यात्मिक शक्ति होती है। आपकी आध्यात्मिक शक्ति से वे जीते हैं।

इकहार्ट ने, मेस्टर इकहार्ट ने--ईसाई जगत में जो संत हुए हैं उनमें इकहार्ट का मुकाबला नहीं है, इकहार्ट अनूठा है--इकहार्ट ने एक वचन लिखा है, जिसकी वजह से उसे ईसाइयों ने तिरस्कृत किया और ईसाइयों ने उसे

समाज-बहिष्कृत माना। और ईसाई उसे करीब-करीब भुलाने की कोशिश करते रहे हैं, कम से कम संगठनबद्ध पोप, चर्च इकहार्ट की बात नहीं करते। और इकहार्ट जैसा आदमी जीसस के बाद ईसाइयत में हुआ ही नहीं। पर इकहार्ट के वचन खतरनाक हैं। उसका एक वचन है जिसमें वह ईश्वर से प्रार्थना में कहता है कि तुमने मुझे जन्म दिया और मैंने तुम्हें जन्म दिया! और ध्यान रहे, तुम्हारे बिना मैं न बचूंगा, मेरे बिना तुम भी न बचोगे।

इससे घबड़ाहट तो हो ही जाएगी, अगर कोई संत ऐसा ईश्वर से कहे कि मेरे बिना तुम भी न बचोगे। तुम मेरे जीवनदाता हो, तो ध्यान रखना, मैं भी तुम्हारा जीवनदाता हूं।

पर लाओत्से के वचन से बात साफ हो जाएगी। इकहार्ट के कहने का ढंग अदभुत है, बड़ी चोट का है। लेकिन बात वह यही कह रहा है कि ईश्वर नहीं हो सकता जब तक कि मनुष्य उसे आध्यात्मिक जीवन-ऊर्जा न दे। एक पारस्परिक लेन-देन है। ईश्वर कोई ऐसी घटना नहीं है जो हमसे अलग हो सके। आदमी के साथ ही ईश्वर अस्तित्व में आता है। अस्तित्व का अर्थ यह कि ईश्वर का बोध, ईश्वर के होने की बात आदमी के साथ आती है। आदमी को हटा दें पृथ्वी से; पशु होंगे, पक्षी होंगे। आदमी नहीं होगा; ईश्वर भी नहीं होगा। सोच सकते हैं आदमी के बिना मंदिर और मूर्तियां और मस्जिद? आदमी खो जाएगा तो कौन तुम्हारी मूर्तियों को फूल चढ़ाएगा? आदमी की चेतना ही उस जगह आ गई है जहां से ईश्वर का आविर्भाव हो सकता है; जहां से आदमी अपनी चेतना से ईश्वर को जन्म दे सकता है। यह बहुत कठिन बात है ख्याल में लेना। इसलिए जब भी ईश्वर खो जाता है तो उसका अर्थ है आदमी की चेतना नीचे गिर गई। क्योंकि उस ऊंचाई पर ही वह दिखाई पड़ता है। जहां आप ईश्वर को जन्म दे सकते हैं वहीं वह दिखाई पड़ता है।

तो इकहार्ट कहता है कि हम तुम्हारे पुत्र ही नहीं, तुम्हारे पिता भी हैं। तुम हमें जन्म देते हो, यह सच है; पर हम तुम्हारे जन्म की घटना को वापस लौटा देते हैं। हम ऋणी नहीं रहते; हम भी तुम्हें जन्म देते हैं। बड़ी छाती का आदमी रहा होगा। और संत, इतनी बड़ी छाती न हो, तो कोई हो भी नहीं सकता।

लाओत्से कहता है, "आध्यात्मिक शक्ति के बिना देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे।"

क्योंकि तुम्हीं उनके प्राणदाता हो। तुम्हारी ऊर्जा उनका भोजन है। तुम कितनी ऊंचाई पर हो उतनी ही ऊंचाई पर वे भी रहेंगे। तुम्हारी ऊंचाई ही उनके मंदिर की ऊंचाई है।

इसे थोड़ा ऐसा देखें, जिस चेतना की अवस्था में आदमी होता है, उसी तरह के वह देवता भी निर्मित करता है। जैसे-जैसे आदमी की चेतना बढ़ती है वैसे-वैसे देवता परिष्कृत होने लगता है। आदिवासी का देवता देखें, तो वह आदिवासी जहां जीता है, जिस तल पर उसकी चेतना होती है, वैसा ही होगा। पीछे लौटें, जितना ज्यादा अविकसित समाज होगा और चेतना जितनी क्षीण होगी, वैसा ही देवता होगा। उस देवता की परिभाषा भी वैसी ही होगी।

अगर पुराना, ओल्ड टेस्टामेंट, बाइबिल में तो देवता जो है वह बहुत खतरनाक है, बहुत दुष्ट है। दया भी करता है, लेकिन उन पर ही दया करता है जो उसके अनुगत हैं। सशर्त उसका प्रेम है। और नाराज इतने जल्दी होता है, और जब नाराज हो जाता है तो बिल्कुल विक्षिप्त व्यवहार करता है। नष्ट कर देता है गांव के गांव; पृथ्वी को डुबा देता है पानी में; क्योंकि लोग उसकी पूजा और प्रार्थना नहीं कर रहे। इसका ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं है; जिन लोगों ने ये वचन लिखे उनकी चेतना की खबर है। ऐसे ही ईश्वर को वे जन्म दे सकते हैं; यह उनकी धारणा है।

लौटें पीछे; आपके देवी-देवता हैं पुराणों के। उनका चरित्र देखें, उनके काम देखें। तो शर्म मालूम होगी कि ये देवी-देवता हैं! ऐसा कोई पाप नहीं जो वे न करते हों। चोरी वे करें; मित्र को धोखा देकर उसकी पत्नी के साथ

व्यभिचार वे करें; गुरु को धोखा देकर उसकी पत्नी को ले भागें; सब करें, फिर भी देवता हैं। जरूर कुछ कारण होगा। जिन्होंने उनको जन्म दिया उनको कुछ अड़चन नहीं मालूम पड़ी, अन्यथा वे इनको काट-छांट कर देते। उनको ठीक लगा।

थोड़ा लौटें; युधिष्ठिर को हम धर्मराज कहते हैं। युधिष्ठिर जुआ खेलें तो धर्मराज होने में कोई अड़चन नहीं। युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगा दें। आप जरा लगा कर देखें, और अगर कोई आपको धर्मराज कह दे तो चमत्कार है। कोई आदमी आप न खोज पाएंगे जो आपको धर्मराज कहे जब आप द्रौपदी को जुए पर हार आएं। लेकिन जिन लोगों ने युधिष्ठिर को धर्मराज कहा, उन्हें इसमें कुछ अड़चन नहीं मालूम पड़ी होगी, तभी तो! इसमें कोई जरा भी अड़चन नहीं मालूम पड़ी।

उनकी चेतना की धारणा उनका ईश्वर है। उनका देवता, उनका धर्म उनकी चेतना से ही तो निकलेगा। जैसे-जैसे चेतना विकसित होगी वैसे-वैसे ईश्वर का परिष्कार होगा। और जब चेतना पूरी तरह विकसित होगी तो आकार खो जाएगा ईश्वर का, वह निराकार हो जाएगा। क्योंकि आकार कितना ही सुंदर रहे, उसमें असुंदरता बनी ही रहेगी। और आकार को हम कितना ही सम्हालें और संवारें, आकार में भूल-चूक होती ही रहेगी। और फिर आकार की धारणा तो हर युग के साथ बदलती चली जाएगी। इसलिए जब चेतना आखिरी ऊंचाई पर पहुंचती है तो परमात्मा निराकार हो जाता है। निराकार इसलिए हो जाता है कि अब उसमें अशुद्धि का कोई भी उपाय न रहा। निराकार कैसे अशुद्ध होगा? आकार से अशुद्धि प्रवेश पा सकती थी। निराकार का अर्थ हुआ इतनी पूर्ण शुद्धता कि वहां आकार की अशुद्धता भी नहीं है। तो जब भी चेतना आखिरी ऊंचाई पर आती है तो निराकार ब्रह्म जन्म लेता है।

चेतना के अनुसार ईश्वर निर्मित होता है। जैसी चेतना वैसा ईश्वर। आपके ईश्वर की धारणा को देख कर, आप क्या हैं, यह कहा जा सकता है। आपका ईश्वर किस ढंग का है, उसे देख कर, आप क्या हैं, यह कहा जा सकता है। क्योंकि आपका ईश्वर आपसे जन्म पाता है।

"आध्यात्मिक शक्ति के बिना देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे। भराव के बिना घाटियां खंड-खंड हो जाएंगी। जीवनदायी शक्ति के बिना सब चीजें नाश को प्राप्त होंगी। आर्यत्व की शक्ति के बिना राजा और भूमिपति पतित हो जाएंगे।"

इतिहासज्ञ सोचते हैं कि राजाओं, सम्राटों, भूमिपतियों का ह्रास इसलिए हुआ कि वे शोषण कर रहे थे, कि वे लोगों का खून चूस रहे थे, कि वे लोगों को गुलाम बना रहे थे। लेकिन यह बात सच नहीं है। इसमें अधूरा सच है, लेकिन यह बात सच नहीं है। सम्राटों का पतन इसलिए हुआ कि वे केवल सम्राट रह गए; उनके भीतर जो भराव था वह खो गया; उनके भीतर जो परमात्मा की गरिमा थी वह खो गई। राम जैसे सम्राट को उतारना असंभव होगा। लेकिन रावण जैसे सम्राट को कब तक चलाए रखिएगा?

सम्राट होना एक उपलब्धि थी, एक साधना थी, एक क्रम था परिष्कार का। तो सम्राट के घर जब कोई बेटा पैदा होता और उसे सम्राट बनने का मौका आने वाला हो तो उसे सब तरह की प्रक्रियाओं से गुजरना होता था। उसमें योग के अनुष्ठान अनिवार्य थे। उसे ध्यान की गहरी प्रक्रियाएं आनी ही चाहिए। उसे शांत होने की कला आनी ही चाहिए। क्योंकि बाहर के सिंहासन पर बैठ जाना तो बहुत कठिन नहीं है, लेकिन बाहर के सिंहासन का बड़ा मूल्य नहीं है। उसे भीतर से भी सम्राट होना चाहिए। उसे भीतर से भी, जिसको हम कहें अभिजात, भीतर से भी उसे श्रेष्ठ और कुलीन और आर्य होना चाहिए।

इसके कई परिणाम हुए, इधर इस तरह समझें। हिंदुस्तान में जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं। उनकी तैयारी तो राजा होने के लिए करवाई गई थी; राजा होने वाले थे। उनकी तैयारी तो बाह्य सिंहासन के लिए करवाई गई थी, लेकिन भीतर का सिंहासन भी तैयार करवाया गया था। वे धोखा दे गए। उन्होंने बाहर के सिंहासन को लात मार दी। भीतर का रस उन्हें ऐसा आ गया कि उन्होंने कहा कि अब इस बाहर के सिंहासन पर क्या बैठना जब भीतर से ही सम्राट हो गए! हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के लड़के हैं। बुद्धों के सब अवतार राजाओं के लड़के हैं।

भारत में तीन धर्म पैदा हुए। तीनों धर्मों के सभी अवतार पुरुष राजपुत्र हैं। इसके पीछे अनेक कारणों में एक बुनियादी कारण यह है कि राजा को हम भीतर से भी राजा बनाने की कोशिश करते थे। कभी-कभी हमारी कोशिश इतनी सफल हो जाती थी कि वह आदमी भाग ही जाता था। वह कोशिश का सफल हो जाना है। सच में ही वह आदमी भीतर से ऐसा हो जाता था कि सिंहासन दो कौड़ी का हो जाता।

लाओत्से के शिष्य लीहत्जू ने कहीं कहा है कि राजा होने का अधिकारी वही है जिसे राजा होने की वासना न रह जाए; सिंहासन पर बैठने का मालिक वही है जिसके लिए पता ही न चले कि यह सिंहासन है, तभी।

आज तो लोकतंत्र है सारे जगत में और उसकी धारणा का बड़ा प्रभाव है। और आज कहना बिल्कुल मुश्किल है सम्राटों के पक्ष में कुछ भी। लेकिन मैं जानता हूं, इसमें ज्यादती हो रही है लोकतंत्र के नाम पर। क्योंकि सम्राट के नाम पर भी ज्यादती हुई। क्योंकि भीतर का सम्राट खो गया और बाहर की खोल फिर सिंहासन पर बैठती चली गई। लेकिन एक संभावना कि भीतर से भी हम आदमी को इस ऊंचाई पर पहुंचा सकते हैं जितनी ऊंचाई पर उसे सत्ता पहुंचा देगी और सत्ता से उसकी भीतरी ऊंचाई सदा ज्यादा होनी चाहिए तो ही सत्ता का दुरुपयोग न होगा। लेकिन लोकतंत्र में सत्ता का बुरी तरह दुरुपयोग हो रहा है। क्योंकि नीचे से आदमी पहुंचता है जिसकी कोई तैयारी नहीं, जो राजा होने के लिए तैयार नहीं किया गया, और राजा होने का उसका एक ही उसकी योग्यता है कि वह कितने पागलपन से सिंहासन पर पहुंचने की कोशिश करता है। इसको थोड़ा समझ लें।

लीहत्जू कहता है कि जिसे सिंहासन पर बैठने की कोई आकांक्षा नहीं वही सम्राट होने के योग्य है। लेकिन लोकतंत्र में तो जिसे इच्छा नहीं है बैठने की सिंहासन पर वह तो सिंहासन पर कभी पहुंचेगा ही नहीं। यहां तो वही पहुंचेगा जिसको इतनी प्रबल इच्छा है कि बिल्कुल पागल हो जाए और एक ही इच्छा रह जाए, जैसे परमात्मा को पाने की इच्छा ऐसे ही दिल्ली पहुंचने की एक ही इच्छा रह जाए; सारी चेतना उसी पर एकाग्र हो जाए। तब भी जरूरी नहीं कि पहुंच जाए। क्योंकि वह अकेले ही ऐसी एकाग्रता नहीं साध रहा है। मुल्क में ऐसे हजारों लोग एकाग्रता साध रहे हैं। फिर इन सब के बीच संघर्षण है। और उस संघर्ष में जो सबसे ज्यादा चालबाज साबित हो, सबसे ज्यादा बेईमान साबित हो, सबसे ज्यादा नियम की परवाह न करता हो, सबसे ज्यादा शरारती हो, शड्यंत्रकारी हो, और हर आदमी का उपयोग एक ही जानता हो कि उसको सीढ़ी कैसे बनाया जाए, वह आदमी पहुंच जाएगा। सबसे बुरा आदमी सत्ता में सबसे ऊपर पहुंच जाएगा लोकतंत्र में।

एक अनूठा प्रयोग सम्राटों के साथ पूरब के मुल्कों में हुआ था कि हम सम्राट को तैयार करें।

अब यह बहुत मजे की बात है। आपको अगर क्लर्क भी होना है तो भी एक तरह की तैयारी चाहिए। रेलवे का गार्ड होना है तो एक तरह की तैयारी चाहिए। टैक्सी का ड्राइवर होना है तो भी एक तरह का लाइसेंस चाहिए। मिनिस्टर को कुछ भी नहीं चाहिए। टैक्सी का ड्राइवर भी एक तरह की योग्यता चाहता है; एक तरह

की योग्यता जरूरी है। सिर्फ एक जगह है आज, सत्ता की, जहां किसी तरह की योग्यता की जरूरत नहीं। सिर्फ एक पागल योग्यता चाहिए कि आप कोई चिंता न करें, किसी बात की चिंता न करें, बस सीधे कुर्सी की तरफ दौड़ते चले जाएं, सींग नीचे झुका लें और घुस जाएं। उतनी योग्यता हो तो आप पहुंच ही जाएंगे।

एक अभिजात की धारणा थी कि सम्राट तैयार किए जाएं। प्लेटो की, लाओत्से की, वाल्मीकि की, इन सबकी धारणा थी कि राजा ऐसे ही कोई न हो जाए, उसे तैयार किया जाए, पीढ़ी दर पीढ़ी कुलीनता का सारा आयोजन दिया जाए और इस आयोजन के बाद ही कोई शिखर पर पहुंचे। सत्ता तब हाथ में आए जब व्यक्ति बिल्कुल शांत हो। शांति उसकी कसौटी हो।

तो लाओत्से कहता है, "आर्यत्व की शक्ति के बिना राजा और भूमिपति पतित हो जाएंगे।"

आर्य का अर्थ है आंतरिक शुद्धता, आर्यत्व, आंतरिक श्रेष्ठता। इस आंतरिक श्रेष्ठता का अहंकार से कोई संबंध नहीं है। इस आंतरिक श्रेष्ठता का एक अनिवार्य तत्व तो विनम्रता है।

बुद्ध एक गांव में आए हैं। तो उस गांव के सम्राट ने, जैसे ही खबर मिली, अपने वजीरों को बुलाया और कहा कि तैयारी करो स्वागत की, और मैं राज्य की सीमा पर बुद्ध का स्वागत करूंगा। उसके वजीर ने कहा, आप खुद ही स्वागत करने जाएंगे? बुद्ध तो एक भिखारी हैं। एक सम्राट उनके स्वागत को जाए?

सम्राट के मन में भी यह बात तो चलती थी कि एक सम्राट भिखारी का स्वागत करने जाए! लेकिन सम्राट डरता था, क्योंकि और सम्राटों ने स्वागत किया था आस-पास। तो जब वजीर ने यह कहा तो सम्राट ने कहा कि बात तो तुम्हारी ठीक है, एक भिखारी के स्वागत को सम्राट के जाने का क्या प्रयोजन! वजीर हंसने लगा और उसने कहा कि मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें। क्योंकि जो सम्राट बुद्ध जैसे भिखारी के स्वागत को नहीं जाता वह सम्राट होने के योग्य ही नहीं है। मैंने तो इसीलिए सवाल उठाया था कि देखूं, भीतरी अवस्था क्या है। और ध्यान रहे, तुम सम्राट हो, बुद्ध भिखारी हैं; लेकिन उनका भिखारीपन तुमसे आगे है। वे सम्राट थे, सम्राट रह सकते थे; उसे छोड़ कर वे भिखारी हैं। इसलिए उनके भिखारी की जो गरिमा है वह तुम्हारे साम्राज्य और तुम्हारे सिंहासन से बड़ी है।

इस देश में बड़े से बड़ा सम्राट भी गरीब से गरीब ब्राह्मण के चरण छुएगा। छूता था। ब्राह्मण के पास कोई सत्ता नहीं थी। ब्राह्मण सदा का फकीर था, दीन-हीन था। उसके पास कुछ भी नहीं था जिसको हम बाह्य ताकत कह सकें। लेकिन बड़े से बड़ा सम्राट उसके चरण छुएगा। वह इस बात की खबर थी कि हम शक्ति से शांति को ज्यादा मूल्य देते हैं। और सम्राट का आर्यत्व, उसकी श्रेष्ठता इसमें है कि वह विनम्र हो। वह इतना विनम्र हो कि उसके पास कोई अहंकार ही न हो।

लेकिन अहंकार सिंहासन पर बैठने की चेष्टा करता है। और हम चाहते थे कि सिंहासन पर वह बैठे जो निरहंकारी हो। वह प्रयास असफल हुआ। पर बड़ा महाप्रयास था। और छोटे प्रयास सफल हो जाएं तो भी ठीक नहीं; महाप्रयास असफल भी हो जाएं तो भी ठीक है। चेष्टा की, यह भी क्या कम है!

लाओत्से कहता है, "आर्यत्व की शक्ति के बिना राजा और भूमिपति पतित हो जाएंगे।"

वह एक सब का आधार है। उस एक का अनुभव हो गहन तो इतनी घटनाएं घटेंगी--स्वर्ग उजागर होगा; पृथ्वी थिर होगी; देवता में देवत्व होगा; घाटियां भरी होंगी; सभी चीजें वृद्धि और जीवन पाएंगी; राजा और भूमिपति सहज आदृत होंगे। ऐसा न हो तो स्वर्ग हिलने लगेगा; पृथ्वी डोल उठेगी; देवता नष्ट-भ्रष्ट हो जाएंगे; घाटियां खंड-खंड हो जाएंगी; सभी चीजें नष्ट हो जाएंगी; राजा और भूमिपति पतित होंगे; सिंहासन धूल-धूसरित हो जाएंगे; वह जो श्रेष्ठ है, निकृष्ट के साथ एक हो जाएगा।

लेकिन एक का अनुभव हो तो सभी चीजें भिन्न होंगी; जीवन ऊर्ध्वगामी होगा। और उस एक से संबंध टूट जाए तो जीवन अधोगामी हो जाता है।

पांच मिनट कीर्तन करें और फिर जाएं।

पचहत्तरवां प्रवचन

अस्तित्व में सब परिपूरक है

Chapter 39 : Part 2

Unity Through Compliments

Therefore the nobility depends upon the common man for support;
And the exalted depend upon the lowly for their base.
This is why the princes and dukes call themselves "the orphaned",
"the lonely ones" and "the unworthy".
Is it not true that they depend upon the common man for support?
Truly, take down the parts of the chariot,
And there is no chariot left.
Rather than jingle like the jade,
Rumble like the rocks.

अध्याय 39 : खंड 2

परिपूरकों द्वारा एकता

इसलिए अभिजात वर्ग सहारे के लिए साधारण जन पर निर्भर है;
और उच्चस्थ जन आधार के लिए निम्नस्थ पर निर्भर है।
यही कारण है कि राजा और भूमिपति अपने को
"अनाथ," "अकेला," और "अयोग्य" कहते हैं।
क्या यह सच नहीं है कि वे सहारे के लिए साधारण जनों पर निर्भर हैं?
सच तो यह है कि रथ के अंगों को अलग-अलग कर दो,
और कोई रथ नहीं बच रहता है।
मणि-माणिक्य की तरह झनझनाने के बजाय
चट्टानों की तरह गड़गड़ाना कहीं अच्छा है।

उस एक को जो जान लेता है उसे कुछ भी अनजाना नहीं रह जाता।

लेकिन इस जगत में सदा ही दो के दर्शन होते हैं। यहां एक कुछ भी नहीं है। यहां जो भी है दो है। इसलिए ही उस एक की बात लोग सुनते हैं, लेकिन समझ नहीं पाते। इसलिए ही उस एक की सनातन से चिंतना चलती है, लेकिन उसकी साधना नहीं हो पाती। इस दो के जगत में उस एक की बात स्वप्न जैसी मालूम होती है। जहां दो का होना सत्य है, प्रगाढ़ सत्य है, वहां एक आदर्शवादियों के मन की धारणा, कोई उटोपिया, कोई स्वर्ग की परिकल्पना, कोई स्वप्न प्रतीत होता है।

और जिन्होंने उस एक को जान लिया है वे हमारे इस दो के जगत को माया कहते हैं। और जो दो को ही जानते हैं और सिर्फ दो से ही परिचित हैं वे उस एक के जगत को स्वप्न से ज्यादा नहीं मान पाते। उस जगत और इस जगत के बीच कोई सेतु खोजना जरूरी है; अन्यथा यात्रा न हो सकेगी। उस सेतु की ही लाओत्से चर्चा कर रहा है।

लाओत्से का कहना है--और जो भी जानते हैं उन सबका यही कहना है--कि इस दो के जगत में भी अगर हम थोड़ी गहरी खोज-बीन करें तो हम एक को ही पाएंगे। जहां दो बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ते हैं; वहां भी विपरीतता ऊपरी है, भीतर वे एक ही होते हैं।

सच तो यह है कि जीवन का ताना-बाना बुनने को हमें धागे आड़े और सीधे रखने पड़ते हैं। वे सभी धागे हैं; सिर्फ आड़े और तिरछे रखने से वस्त्र की बुनावट निर्मित हो जाती है। वस्त्र में धागे दो मालूम पड़ते हैं, एक-दूसरे के विपरीत, एक-दूसरे से तने हुए, खिंचे हुए, एक-दूसरे से लड़ते, संघर्ष करते हुए। धागा एक है, लेकिन वस्त्र की बुनावट के लिए उन्हें विपरीत रखना जरूरी है। इस जीवन की बुनावट में भी धागा एक है। लेकिन जीवन का जाल निर्मित नहीं हो सकता, अगर उस एक धागे को ही हम विपरीत खड़ा न करें। जैसे राज भवन निर्माण करता है तो द्वारों पर विपरीत ईंटें लगा देता है। ईंट एक है, लेकिन एक-दूसरे के विरोध में लग जाने पर वही ईंट परम शक्तिशाली हो जाती है। उस विरोध से शक्ति, ऊर्जा जन्मती है। और बड़े से बड़ा भवन भी उस द्वार के ऊपर निर्मित हो सकता है।

तत्व एक है। उपनिषद उसे ब्रह्म कहते हैं। और लाओत्से उसे ताओ कहता है। धर्म, स्वभाव, प्रकृति, जो भी हम नाम देना चाहें, वह एक है। लेकिन जीवन के खेल के लिए वह विपरीत भासता है। यह विपरीत भासना भी बिल्कुल ऊपर है। थोड़ी यात्रा गहरे में करें तो सभी विपरीत के भीतर एक समता, एकरसता उपलब्ध होती है। हम चाहते हैं जगत में प्रकाश हो, लेकिन अंधेरे के बिना प्रकाश के होने का कोई उपाय नहीं है। तो अंधेरा प्रकाश का विरोधी नहीं है, अंधेरा प्रकाश का सहयोगी है। क्योंकि उसके होने पर ही प्रकाश हो सकता है। शत्रुता हमें दिखाई पड़ती हो, लेकिन अंधेरा पृष्ठभूमि है। उसका ही सहारा चाहिए प्रकाश को होने के लिए। अंधेरे को हटा लें, प्रकाश भी तिरोहित हो जाएगा।

लेकिन शायद आप सोचते हों, ऐसा होने की क्या जरूरत है? अंधेरा हट सकता है। प्रकाश अकेला क्यों नहीं हो सकता? वैज्ञानिक से पूछें। वैज्ञानिक कहता है कि सभी ऊर्जाएं निगेटिव और पाजिटिव हों तो ही हो सकती हैं; नकारात्मक और विधायक हों तो ही हो सकती हैं। धन विद्युत, पाजिटिव इलेक्ट्रिसिटी बच नहीं सकती, अगर ऋण विद्युत न हो, निगेटिव विद्युत न हो। नकार के खोते ही विधायक भी खो जाएगा। तो वैज्ञानिक कहता है कि अंधेरा शीर्षासन करता हुआ प्रकाश है, उलटा खड़ा हुआ प्रकाश है। वह प्रकाश ही है, लेकिन उलटा खड़ा हुआ है। धागे आड़े रख दिए गए हैं, तिरछे रख दिए गए हैं, ताकि बुनावट हो सके।

जन्म है। और कितनी हम आकांक्षा करते हैं कि जन्म हो, जीवन हो, लेकिन मृत्यु न हो। लेकिन तब हमें जीवन के रहस्य का कोई पता नहीं। इसलिए हम ऐसी व्यर्थ की कामना करते हैं। ज्ञानी, मृत्यु न हो, ऐसी

कामना नहीं करता। क्योंकि मृत्यु के बिना जीवन के होने का कोई उपाय ही नहीं है। अगर ज्ञानी कामना भी करता है तो वह कहता है, मृत्यु भी न हो, जीवन भी न हो। क्योंकि ये दोनों द्वंद्व हैं। तीसरा सत्य होगा, जिसको आड़ा और सीधा रख कर कपड़े की बुनावट हुई है। आवागमन से मुक्ति मृत्यु से मुक्ति नहीं है, जीवन और मृत्यु दोनों के द्वंद्व से मुक्ति है। ताकि हम उस एक को खोज लें जो दो के पीछे छिपा है।

जन्म और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मृत्यु के बिना जन्म नहीं हो सकता। जन्म के बिना तो मृत्यु के होने का कोई उपाय नहीं है। और जिस दिन आदमी मरना बंद कर देगा, उसी दिन जन्मना भी बंद हो जाएगा। दोनों एक साथ जुड़े हैं। इसलिए जितनी चेष्टाएं चलती हैं कि आदमी शरीर में अमृत को उपलब्ध कर ले, वे सब व्यर्थ हो जाती हैं। हजारों साल से आदमी खोजता है, अल्केमिस्ट खोजते हैं, कोई अमृत, कोई ऐसी धातु, कोई ऐसा रस जिससे आदमी अमर हो जाए। लेकिन वे सारी खोजें व्यर्थ हो जाती हैं। आदमी अमर नहीं हो सकता, क्योंकि जन्म के साथ ही मृत्यु प्रविष्ट हो गई। जन्म का तनाव मृत्यु की पृष्ठभूमि में ही निर्मित होता है, अन्यथा निर्मित नहीं हो सकता।

वसंत है, क्योंकि पतझड़ है; बचपन है, क्योंकि बुढ़ापा है; पुरुष है, क्योंकि स्त्री है; स्त्री है, क्योंकि पुरुष है। वह जो विपरीत है, सदा मौजूद है। तो विपरीत उसे कहना कहां तक उचित है?

लाओत्से उसे विपरीत नहीं कहता, अपोजिट नहीं कहता; लाओत्से उसे परिपूरक कहता है, कांप्लीमेंटरी कहता है। विपरीत कहना हमारी भूल है। क्योंकि जिसके बिना हम हो ही न सकें उसे विपरीत कहने का क्या अर्थ है? परिपूरक! उसके सहारे ही हम हो सकते हैं।

प्रेम करते हैं आप। आदमी की कामना है कि प्रेम ऐसा हो, हृदय ऐसा प्रेमपूर्ण हो कि वहां घृणा का कोई स्वर न रह जाए। लेकिन बिना घृणा के प्रेम नहीं हो सकता। और जो आदमी घृणा करना बंद कर देता है, जिसे हम प्रेम कहते हैं, वह भी उसके जीवन से तिरोहित हो जाएगा। हम चाहते हैं आदमी में करुणा हो, क्रोध न हो। लेकिन जिसके जीवन से क्रोध विसर्जित हो जाएगा, हम जिसे करुणा कहते हैं, वह भी विसर्जित हो जाएगी। क्योंकि क्रोध करुणा का परिपूरक है; वे सदा साथ हैं। इस जगत में द्वंद्व अस्तित्व का ढंग है। और दो में से एक को भी छोड़ दें तो दूसरा भी छूट जाता है। दोनों के छूट जाने पर जो बचता है वह तीसरा है। वह वही एक है जिसको लाओत्से ताओ कहता है। जहां दोनों विसर्जित हो जाते हैं वहां उन दोनों के नीचे छिपा हुआ आधार; जो दोनों में था, जो दोनों का प्राण था, जिसकी धारा से ही दोनों जीते थे और जीवन पाते थे, वह प्रकट हो जाता है।

परिपूरक का सिद्धांत, लाओत्से की बड़ी कीमती देन है। और संभवतः लाओत्से पहला व्यक्ति है मनुष्य-जाति के इतिहास में जिसने विपरीत की धारणा को बिल्कुल ही त्याग दिया और परिपूरक की धारणा को जन्म दिया। जगत में, उसने कहा, विरोध देखो ही मत, क्योंकि एक ही ऊर्जा का खेल है। इसलिए विरोध हो नहीं सकता। हो भी तो आभास होगा, दिखता होगा; थोड़ी गहरी समझ होगी, विसर्जित हो जाएगा।

लेकिन यह अंतर्दृष्टि बड़ी अर्थपूर्ण है, और उसके जीवन में परिणाम क्रांतिकारी होंगे। और हमारा मन सदा ही इस विपरीत में से एक को बचा लेना चाहता है। वह हमारी आकांक्षा ही संसार है। और जिस दिन हम यह समझ लेते हैं कि इन दो में से एक को बचाया नहीं जा सकता, या तो दोनों बचेंगे, इसलिए दोनों को स्वीकार कर लो समान भाव से, सम-भाव से, समत्व से; और या दोनों चले जाएंगे तो दोनों का त्याग कर दो समभाव से, समत्व से; चुनाव मत करो। या तो जीवन और मृत्यु दोनों को एक सा अंगीकार कर लो; एक सा स्वागत, एक सा अहोभाव। जरा भी, रत्ती भर भी फर्क किया कि संसार निर्मित हो जाता है; जरा सा चाहा कि जीवन ज्यादा

और मृत्यु कम कि संसार निर्मित हो जाता है। या फिर दोनों का ही त्याग कर दो। कहो कि न जीवन का आग्रह है, न मृत्यु का आग्रह है।

लेकिन हमें दोनों कठिन हैं। हम या तो जीवन का आग्रह रखते हैं। तो हम चाहते हैं, मृत्यु न हो। तो हम मृत्यु को टालते हैं, झुठलाते हैं, भुलाते हैं, सिद्धांत निर्मित करते हैं जिनके धुएं में मृत्यु हमें दिखाई न पड़े और हमारी आंखें अंधी हो जाएं। मृत्यु से डरा हुआ आदमी मान लेता है कि आत्मा अमर है। जरा भी तर्क नहीं करता, जरा भी विचार नहीं करता, जरा भी प्रमाण की तलाश नहीं करता। मृत्यु से डरा हुआ आदमी मान लेता है कि आत्मा अमर है। वह मृत्यु को अस्वीकार करने का उपाय है। इसलिए जवान आदमी आत्मा की अमरता में उतना भरोसा नहीं करता; बूढ़ा आदमी ज्यादा भरोसा करता है। जैसे-जैसे मौत करीब आती है, आत्मा की अमरता ज्यादा सही मालूम पड़ने लगती है। वह मौत के डर के कारण। छोटे बच्चे को कोई फिक्र ही नहीं है कि आत्मा अमर है या नहीं; उसे चिंतना भी पैदा नहीं होती। अभी उसे मृत्यु का बोध ही नहीं है। अभी मृत्यु का भय प्रविष्ट नहीं हुआ तो आत्मा की अमरता की जरूरत क्या है? अभी जन्म इतना निकट है और मृत्यु इतनी दूर है कि उसकी छाया भी नहीं पड़ती।

मृत्यु को भुलाने के हम सब तरह के उपाय किए हैं। मरघट हम बनाते हैं गांव के बाहर कि वह जाते-आते दिखाई न पड़ जाए। जैसे जिंदगी एक बात है; मौत को हम ढकेल कर बाहर कर देते हैं गांव के, त्याज्य। उधर हम कभी जाते नहीं। उधर कभी किसी को विदा करने जाते हैं। और जब किसी को विदा करने जाते हैं तब भी बड़ी बेचैनी होती है। और जब लोग किसी को विदा करने जाते हैं, वहां उनकी बैठ कर आप बातें सुनें। वहां कोई जल रहा होता है और वे बैठ कर गपशप करते हैं, गांव की निंदा-चर्चा करते हैं, या समझदार हुए तो आत्मा की अमरता की बात करते हैं। लेकिन वह जो मौत वहां घट रही है वह उनके भीतर ज्यादा छाया न डाले, इसके प्रति सचेत रहते हैं। छोटे बच्चे खेल रहे हों बाहर और लाश निकलती हो तो मां अंदर बुला लेती है--भीतर आ जाओ! मुर्दा दिखाई न पड़े। और सभी को मुर्दा होना है। और जो सत्य इतना जरूरी है, अनिवार्य है, उसे दिखाने से बचाने का मोह क्या है?

हम चाहते हैं कि मौत का हमें पता न चले, किसी भी भांति हमें उसका स्मरण न आए। हम सब तरह का इंतजाम करते हैं अपने आस-पास, जहां मौत नहीं घटती, जहां चीजें थिर हैं। उन थिर चीजों से लगता है कि हम भी थिर रहेंगे। धर्म पर, आत्मा की अमरता पर आस्था कम हुई है इधर दो-तीन सौ वर्षों में। बहुत कारणों में एक कारण यह भी है कि आदमी उस प्रकृति से बहुत दूर रहने लगा है जहां मौत रोज घटती है।

एक किसान है, तो मौत रोज दिखाई पड़ेगी। कभी वृक्ष सूख कर मर जाएगा; कभी कोई पक्षी वृक्ष से गिर कर मर जाएगा; कभी कोई जानवर मरा हुआ पड़ा होगा। मौत रोज होगी। और गांव इतना छोटा है कि कोई भी मरे तो उसके घर में ही कोई मरा, ऐसा लगेगा। मौत से बचा नहीं जा सकता। लेकिन फिर अब नए शहर हैं। उन नए शहरों में गांव इतना बड़ा है कि कितने ही लोग मरते रहें, आपके लिए कोई नहीं मरता; जब तक कि कोई बहुत निकट न मर जाए। आप ऐसे घर में घिरे हुए रहते हैं सीमेंट-कंकरीट में, जहां न कोई पक्षी मरता, न कोई पौधा मरता, न कोई जानवर मरता, मौत का कोई पता ही नहीं चलता। सुरक्षित सब तरफ से! कभी-कभी मौत प्रवेश करती है; कोई निकट का मर जाता है। तो निकटता भी हमने बहुत कम कर ली है; निकट कोई है ही नहीं। इसलिए दूर के ही लोग मरते हैं। यह जो सुरक्षा हमने बना ली है झूठी, इसके कारण ऐसा लगता है कि जीवन चलता रहेगा, चलता रहेगा। एक वहम, एक आभास बना रहेगा। लेकिन हमारा सारा आयोजन झूठा है। हम कुछ भी करें, मौत आएगी ही।

तो एक तरफ तो ऐसे लोग हैं जो मौत से बचने का उपाय करते रहते हैं। ये वे ही लोग हैं कि अगर कोई ऐसी दुर्घटना घटे कि इनको लगे कि मौत से बचा नहीं जा सकता या जीवन में कोई ऐसा आघात पहुंचे कि जीवन को पकड़ रखने की आशा टूट जाए, कि जीवन का रस क्षीण हो जाए, कि जीवन से जड़ें उखड़ जाएं--प्रेयसी मर जाए, कि दिवाला निकल जाए, कि मकान में आग लग जाए--तो ऐसा आदमी तत्क्षण मरने को उत्सुक हो जाते हैं, आत्मघात करने को उत्सुक हो जाता है। या तो हम जीवन चाहते हैं शाश्वत, और या हम मौत चाहते हैं अभी। दो में से सदा हम एक चुनते हैं। और ध्यान रहे, दोनों में कोई फर्क नहीं है। आप जीवन चुनें कि मौन चुनें, चुनाव हो गया कि संसार निर्मित हो गया। चुनाव संसार है। विकल्प को, एक को चुन लेना, दूसरे को छोड़ देना, जो कि उसका परिपूरक था, यही अज्ञान है। दोनों को एक साथ स्वीकार कर ले कोई, जान ले कि जीवन एक छोर है, मौत एक छोर है, एक ही घटना का, एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं, प्रारंभ और अंत, वह मुक्त हो गया। रत्ती भर भी फर्क न हो। हम मुक्त होने के लिए अपने को समझा भी ले सकते हैं कि नहीं, हमें कोई फर्क नहीं। लेकिन फिर भी हमारा मन डोलता रहेगा जीवन की तरफ।

मुल्ला नसरुद्दीन की दो पत्नियां थीं। एक पत्नी मरी तो उसने कब्र बनवाई सुंदर। फिर दूसरी पत्नी मरी तो उसने उसके ही पास, बीच में थोड़ी जगह छोड़ कर अपने लिए, दूसरी कब्र बनवाई। दोनों एक से संगमरमर की, एक सी सुंदर, एक सी कीमती। कब्र बनाने वाले कारीगर ने पूछा कि मुल्ला, क्या तुम दोनों को बराबर प्रेम करते थे? मुल्ला ने कहा, प्रेम तो बराबर ही करता था, लेकिन अगर तू किसी को बताए न तो एक बात तेरे को बता दूं कान में। मेरी कब्र बीच में बनाना और पहली पत्नी की तरफ थोड़ा सा झुका देना। ऐसे तो प्रेम बराबर करता था; किसी को पता भी न चले, पर जरा सा पहली पत्नी की तरफ झुका देना।

उतना झुकाव आपका भी बना रहता है। कितना ही सोच-समझ लें कि सब बराबर, लेकिन मौत जीवन के बराबर है, थोड़ा सा जीवन की तरफ झुकाव बना रहता है। और यह झुकाव अगर हट गया तो डर यह है कि मौत की तरफ यह झुकाव हो जाता है। लेकिन झुकाव बना रहता है। और झुकाव खतरा है।

और या फिर दोनों का एक सा त्याग कर दें। कह दें कि दोनों बराबर हैं और दोनों में मुझे कोई भी रस नहीं।

इसलिए दो मार्ग हैं धर्म के। एक मार्ग है विराग। विराग का अर्थ हैः दोनों का एक सा त्याग। और एक मार्ग है राग। राग का अर्थ हैः दोनों का एक सा स्वीकार। विराग की यात्रा योग के नाम से जानी जाती है; राग की यात्रा तंत्र के नाम से जानी जाती है। दोनों का एक सा स्वीकार तंत्र है। दोनों का एक सा अस्वीकार योग है। लेकिन दोनों का परिणाम एक है। क्योंकि दोनों स्थितियों में झुकाव खो जाता है, चुनाव खो जाता है। आप सम हो जाते हैं।

लाओत्से के सूत्र को समझें।

"इसलिए अभिजात वर्ग सहारे के लिए साधारण जन पर निर्भर है; और उच्चस्थ जन आधार के लिए निम्नस्थ पर निर्भर है।"

सम्राट है कोई। सम्राट अकेला नहीं हो सकता; प्रजा चाहिए। जैसे-जैसे प्रजा कम होती जाएगी सम्राट का सम्राटपन कम होता जाएगा। प्रजा शून्य हो जाएगी, सम्राट शून्य हो जाएगा। तो सम्राट का होना प्रजा पर निर्भर हुआ। वे जो नीचे दिखाई पड़ते हैं, वे ही भिक्षा दे रहे हैं सम्राट को सम्राट होने की। काश, यह सम्राट को दिखाई पड़ जाए तो सम्राट होने का झुकाव और रस खो जाए। क्या रस है फिर? मालिक को अगर यह दिखाई पड़ जाए कि गुलामों के कारण ही मैं मालिक हूं! इसका अर्थ हुआ कि मालकियत गुलामों की गुलामी है। क्योंकि

जिन पर हम निर्भर हैं और जिनके बिना हम नहीं हो सकते, उनसे हमारे श्रेष्ठ होने का क्या अर्थ है? उनसे बड़े होने की बात बकवास है। जिन पर हम खड़े हैं, जो हमारा आधार हैं, उनसे हम बड़े क्या होंगे? तो जिस मालिक को यह दिखाई पड़ जाए कि मैं गुलामों पर निर्भर हूं, गुलामों के बिना मेरी मालकियत खो जाएगी, उसे बोध हुआ मालकियत के असली स्वरूप का। मालकियत और गुलामी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक साथ होंगे या दोनों एक साथ खो जाएंगे।

बुद्ध ने कहा है कि अगर तुम्हें सच में ही स्वामित्व चाहिए हो, मालकियत चाहिए हो, तो न तो तुम किसी के मालिक बनना और न किसी को मालिक बनाना।

लेकिन हम अक्सर सोचते हैं कि मालकियत का अर्थ यह है कि जितने ज्यादा लोग मेरे गुलाम हों उतना बड़ा मैं मालिक हूं। निश्चित ही, संसार की भाषा में आपके गुलामों की संख्या आपकी मालकियत का अनुपात है। लेकिन जिन गुलामों से आपकी मालकियत बढ़ रही है, मालकियत उन गुलामों पर निर्भर है। और ऐसी मालकियत का क्या मूल्य जो गुलाम पर निर्भर होती हो? ऐसी अमीरी का क्या अर्थ जो गरीब पर निर्भर होती हो? ऐसे सौंदर्य का क्या सार जो अपने खड़े होने के लिए कुरूपता का सहारा मांगता हो? लेकिन जीवन में हमें इसका ख्याल नहीं आता। अमीर सोचता है, मैं अमीर हूं। उसे कभी भी ख्याल नहीं आता कि अमीर वह तिजोड़ी में बंद धन के कारण नहीं, बल्कि उन गरीबों के कारण है जो उसे चारों तरफ घेरे हुए हैं। गरीबी पर निर्भर है उसकी अमीरी। सुंदर व्यक्ति को कभी ख्याल नहीं आता कि मेरा सौंदर्य मेरे शरीर पर ही निर्भर नहीं है, उन शरीरों पर भी निर्भर है जिन्हें लोग कुरूप कहते हैं। बुद्धिमान को कभी ख्याल नहीं आता कि उसकी बुद्धि उसकी अपनी बपौती नहीं है, उन लोगों पर भी निर्भर है जिन्हें लोग मूढ़ कहते हैं। विपरीत जुड़े हुए हैं, और एक-दूसरे के परिपूरक हैं।

अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि मेरी बुद्धिमत्ता मूढ़ों पर निर्भर है तो ऐसी बुद्धिमत्ता मूढ़ता का ही दूसरा छोर हो गई। तो या तो आप दोनों को स्वीकार कर लेंगे, और तब आप परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे। परम ज्ञान किसी के विपरीत नहीं है। परम ज्ञान का कोई परिपूरक नहीं है; वह अकेला है। जहां तक परिपूरक हैं, विपरीतताएं हैं, वहां तक संसार है, वहां तक अज्ञान है। या तो दोनों को स्वीकार कर लेंगे, या दोनों को अस्वीकार कर देंगे।

झेन फकीर हुआ बोकोजू। बोकोजू के पास तरह-तरह के लोग आते थे। सम्राट भी आते, भिखारी भी आते, पंडित भी आते, मूढ़ भी आते। एक दिन एक सीधे-सादे आदमी ने आकर कहा कि मैं बहुत मूढ़ हूं और डरता था कि आपके पास आऊं या न आऊं। और भयभीत था, और बहुत वर्षों तक सोचा, फिर हिम्मत जुटा कर आया हूं। मैं बिल्कुल मूढ़ हूं। तो बोकोजू ने कहा, चिंता मत ले; मेरा काम तो बराबर है, चाहे पंडित आए और चाहे मूढ़। क्योंकि पंडित को उसके पांडित्य से छुड़वाना पड़ता है, मूढ़ को उसकी मूढ़ता से। और तू मूढ़ है, इसके पीछे अगर ठीक से समझे तो पंडित होने की महत्वाकांक्षा छिपी है।

मूढ़ता का भाव, इसका अर्थ ही यह है कि पंडित होने की महत्वाकांक्षा छिपी है। और वह जो पंडित है, जिसको अकड़ है कि मैं पंडित हूं, वह अकड़ बता रही है कि यह आदमी कभी मूढ़ था और गहरे में अब भी मूढ़ है। यह पांडित्य वस्त्रों की तरह इसकी मूढ़ता को ढांक लिया है। जैसे वस्त्र आदमी की नग्नता को ढांक लेते हैं। लेकिन वस्त्र किसी आदमी की नग्नता को मिटा तो नहीं सकते; आदमी वस्त्रों के भीतर तो नग्न होगा ही। ऐसे पांडित्य भी ढांक लेता है मूढ़ता को, लेकिन मूढ़ता मिटती नहीं। और इसलिए पंडितों की मूढ़ता सुसंस्कृत मूढ़ता होती है। साधारण मूढ़ की मूढ़ता प्रकट, नैसर्गिक मूढ़ता होती है।

और इसलिए, बोकोजू ने कहा कि मुझे तो मेहनत बराबर ही करनी पड़ेगी। क्योंकि तू पंडित होने का आकांक्षी है। और जो पंडित हो गए हैं, वे मूढ़ न हो जाएं, इससे भयभीत हैं। पर तुम दोनों में कोई भेद नहीं। तुमने एक ही सिक्के के एक-एक पहलू को चुन रखा है। और यह पूरा सिक्का ही फेंक देने जैसा है।

इस पूरे सिक्के के फेंक देने पर जो बच रहती है निर्दोष अवस्था, न जहां पता चलता कि मैं मूढ़ हूं, न जहां पता चलता कि मैं पंडित हूं, वहां ज्ञान है। वह ज्ञान एक है। उस ज्ञान तक पहुंचने के लिए ये दोनों छोर या तो एक साथ स्वीकार कर लेने जरूरी हैं; तो कट जाते हैं, शून्य निर्मित हो जाता है; या एक साथ फेंक देने जरूरी हैं; तो भी छुटकारा हो जाता है, अतिक्रमण हो जाता है।

आप अपने जीवन की तकलीफों को सोचना--आपका संताप, आपकी चिंता, आपके मन की पीड़ा--तो आप इसी द्वंद्व में कहीं बंटे हुए पाएंगे, इसी में आप फंसे हुए पाएंगे। कोई पंडित आपको कष्ट दे रहा है, क्योंकि उसको देख कर मूढ़ता का पता चलता है। कोई सुंदर आदमी कष्ट दे रहा है, क्योंकि उसको देख कर कुरूपता का पता चलता है। कोई शक्तिशाली आदमी कष्ट दे रहा है, क्योंकि उसको देख कर दुर्बलता का पता चलता है। तुलना, कंपेरिजन पीड़ा है। और जो आदमी तुलना कर रहा है उसके लिए सुख का कोई भी उपाय नहीं किसी भी स्थिति में। क्योंकि ऐसी कोई भी स्थिति नहीं हो सकती जहां आपको तुलना करने की संभावना न रहे। कोई स्थिति नहीं हो सकती।

नेपोलियन जैसा सम्राट भी अपने साधारण सैनिकों को देख कर मन में पीड़ा और ग्लानि से भर जाता था। उसकी ऊंचाई कम थी। साधारण सैनिक भी उसके सामने ऊंचे मालूम पड़ते थे। वह उसके जीवन भर की पीड़ा थी। वह कितना ही बड़ा सम्राट हो गया, लेकिन वह अपनी कद की कम लंबाई से बहुत ही पीड़ित और परेशान था। एडलर जैसे मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कद की कमी की वजह से ही वह सम्राट होने की दौड़ में पड़ गया था कि किसी तरह किसी दूसरी दिशा में कद को बड़ा करके बता दे।

कोई उपाय नहीं है। जगत के हजार आयाम हैं। आप किसी एक आयाम में थोड़े आगे भी जा सकते हैं तो भी आप कभी बिल्कुल आगे नहीं पहुंच जाएंगे। और कभी-कभी ऐसा होता है, जब आप एक आयाम में आगे जाते हैं तो दूसरी तरफ से ऊर्जा सिकुड़ आती है।

अल्बर्ट आइंस्टीन ने एक संस्मरण लिखा है कि उसे नोबल प्राइज मिल चुकी थी; जगत विख्यात हो गया था। उसके गणित की जो प्रतिभा थी, शायद मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी वैसी प्रतिभा पैदा नहीं हुई। और लोग कहते हैं, शक है कि फिर कभी वैसी प्रतिभा पैदा हो। लेकिन एक सुबह एक बस में सवार हुआ। कंडक्टर ने टिकट दी, उसने रुपए दिए; फुटकर उसने वापस किया। उसने गिना, दुबारा गिना, और जब वह तीसरी बार गिनने लगा तो कंडक्टर ने कहा, रुकें! मालूम होता है आपको पैसे गिनना नहीं आता। पढ़े-लिखे हैं या नहीं?

यह दुनिया का सबसे बड़ा गणितज्ञ है, लेकिन इतने बड़े गणित में उलझ गया है कि छोटे गणित से संबंध छूट गया। वे जो पैसे हैं वे गिनने में नहीं आते। जो तारों को गिन रहा हो उसको पैसों को गिनना बहुत मुश्किल हो जाएगा। ऊर्जा एक दिशा में चली जाती है। तो एक बस का कंडक्टर भी अकड़ कर उससे कह रहा है कि मालूम होता है, पढ़े-लिखे नहीं! आइंस्टीन ने बड़े विचारपूर्वक इसका स्मरण किया है।

उसने एक संस्मरण और लिखा है। अक्सर वह अपनी पत्नी के साथ ही कहीं भोजन के लिए जाता था, रेस्तरां में या कहीं भोजनालय में। इसलिए मेनू हमेशा पत्नी ही पढ़ती थी। और वह तो किसी और दुनिया में खोया रहता था। एक दिन पत्नी मौजूद नहीं थी और वह अकेला ही खाना खाने एक जगह गया। वेटर ने लाकर मेनू रखा तो उसने देखा, लेकिन उसकी अक्ल में कुछ नहीं आया कि क्या, किस चीज का क्या अर्थ है, और क्या

लेने योग्य है और क्या लेने योग्य नहीं। वह उसने कभी इसके पहले सोचा भी नहीं था। वह काम पत्नी ही करती थी। जब बहुत देर हो गई उसे देखते हुए तो उसने बैरा से कहा कि तुम्हीं जो ठीक समझो वह ले आओ। तो उस बैरा ने कहा कि मैं भी आप ही जैसा गैर-पढ़ा-लिखा हूं; मैं भी पढ़ नहीं सकता।

ऊर्जाएं जब भी एक आयाम में संलग्न हो जाती हैं तो सब तरफ से सिकुड़ जाती हैं। स्वाभाविक है। आदमी की सीमित सामर्थ्य है, और अस्तित्व अनंत है। इससे ऐसा होगा ही। अक्सर ऐसा होता है कि सुंदर स्त्रियों के पास बुद्धि बिल्कुल नहीं होती। बहुत मुश्किल है, बहुत मुश्किल है। और अक्सर ऐसा होगा कि बुद्धिमान स्त्री सुंदर नहीं होगी। सुंदर स्त्री को बुद्धि की जरूरत भी नहीं होती, सौंदर्य काफी है। उससे यात्रा हो जाती है सुगमता से। स्त्री कुरूप हो तो उसको बुद्धि की जरूरत होती है। क्योंकि फिर उसकी यात्रा के लिए कोई उपाय ही नहीं रहा।

इसलिए एडलर कहता है कि कुरूप स्त्रियां जरूर अपनी प्रतिभा को विकसित कर लेती हैं किसी न किसी दिशा में--संगीत में, काव्य में, लेखन में, पेंटिंग में। क्योंकि कहीं न कहीं उन्हें भी चमक कर दिखने की आकांक्षा होती है। चमड़ी से नहीं चमक सकतीं तो किसी पेंटिंग में, किसी काव्य में, किसी संगीत में, सितार पर... । इसलिए जरा देखें, जब भी आप प्रतिभाशाली स्त्री देखें तो सोचना, बड़ी संगीतिका हो, प्लेबैक सिंगर हो, पर सुंदर नहीं होगी। सुंदर स्त्री इस तरह की झंझट में नहीं पड़ती। क्या जरूरत संगीत की? उसका शरीर संगीत है। तो कोई परिपूरक खोजने की आवश्यकता नहीं है। एक दिशा में आदमी बढ़ जाए तो सब दिशाओं से सिकुड़ जाता है।

एडलर का तो पूरा का पूरा जीवन-सिद्धांत यही है कि हीनता के कारण ही, किसी हीनता के कारण ही लोगों में महत्वाकांक्षा पैदा होती है। कुछ कमी होती है गहरी, उस कमी को झुठलाने के लिए लोग किसी दिशा में बहुत तीव्रता से बढ़ जाते हैं। और ऊर्जा बदल जाती है; स्थान बदल लेती है। अंधा आदमी, उसकी सारी आंख की ऊर्जा कान में चली जाती है, इसलिए उसके सुनने की कला गहन हो जाती है। कोई आंख वाला आदमी उस तरह नहीं सुन सकता जैसा अंधा सुनता है। अंधे का सुनना बड़ा सूक्ष्म हो जाता है। पदचाप भी पहचानता है कि कौन आ रहा है। आपको पदचाप सुनाई भी नहीं पड़ते, लेकिन अंधा दूर बरांडे में चलते हुए आदमी को जानता है कि कौन चल रहा है। सारी आंख कान बन गई है। इसलिए अंधे संगीत में गहरे उतर जाते हैं जो आंख वाले नहीं उतर पाते। क्योंकि ध्वनि के संबंध में उनकी पकड़ स्वभावतः आंख वाले से ज्यादा होगी।

हेलेन केलर अंधी है, बहरी है, गूंगी है। तो उसकी सारी जीवन-ऊर्जा उसके हाथों में उतर आई है। वह जिस भांति से छूती है, दुनिया में कोई आदमी नहीं छू सकता। क्योंकि हाथ से उसको आंख का भी काम लेना है, हाथ से उसे कान का भी काम लेना है, हाथ से उसे मुंह का भी काम लेना है, हाथ से ही उसे सारा काम लेना है। तो दस वर्ष पहले आपके चेहरे को छूकर देखा हो और दस वर्ष बाद आपको देखेगी तो पहचान लेगी और कहेगी कि आपका स्वास्थ्य कुछ पहले जैसा नहीं रहा, कुछ अस्वस्थ मालूम होते हैं; कुछ देह जीर्ण हो गई या वृद्ध हो गए। दस वर्ष पहले की स्मृति अंगुलियों में है। और उसके स्पर्श से जैसी विद्युत बहती है वैसी किसी व्यक्ति के स्पर्श से नहीं बह सकती। क्योंकि सारा जीवन सिकुड़ कर हाथों में आ गया। वही उसकी सब इंद्रियां हैं।

तो जीवन-ऊर्जा एक दिशा में बहनी शुरू हो जाती है तो दूसरी तरफ से सिकुड़ आती है। दूसरी तरफ मार्ग न मिले तो किसी एक दिशा में बहनी शुरू हो जाती है। एक बात स्मरणीय है कि आप कभी भी ऐसी अवस्था में न पहुंच सकेंगे जहां तुलना से पीड़ा न हो। होगी ही। और जितने ज्यादा आप बढ़ जाएंगे किसी दिशा में उतनी ही ज्यादा पीड़ा होगी, क्योंकि उतनी ही दिशाओं में आप क्षीण हो जाएंगे।

एक ही उपाय है जिसे सुख चाहिए हो कि वह तुलना छोड़ दे, तुलना का त्याग कर दे। दूसरे से अपने को तौले ही नहीं। तौलने की दृष्टि ही भ्रांत है। अपने को ही देखे, दूसरे से तौलना छोड़ दे। तो संतोष का जन्म होता है, अपरिसीम संतोष का जन्म होता है। क्योंकि तब न कोई कुरूप है, तब न कोई बुद्धिमान है, तब न कोई मूढ़ है, तब न कोई सुंदर है। क्योंकि ये सारी की सारी चीजें विपरीत से जुड़ती हैं। जब मैं अकेला हूं--समझ लें कि सारी पृथ्वी के लोग समाप्त हो गए और आप अकेले बचे, तीसरा महायुद्ध हो गया और आप अकेले बचे, सारी पृथ्वी शांत हो गई। तब आप बुद्धिमान होंगे, मूढ़ होंगे? तब आप सुंदर होंगे, कुरूप होंगे? तब आप लंबे होंगे, ठिगने होंगे? तब आप गोरे होंगे, काले होंगे? तब आप क्या होंगे? तब ये सारी की सारी चीजें खो जाएंगी, सिर्फ आप होंगे, और ये सारी बातें व्यर्थ हो जाएंगी। उस क्षण में जो शांति आपको मिलेगी वह शांति अभी मिल सकती है, अगर तुलना छूट जाए। क्योंकि जगत बाधा नहीं दे रहा है; तुलना बाधा दे रही है।

और तुलना मूढ़तापूर्ण है। क्योंकि तुलना हमेशा विपरीत पर निर्भर है। सौंदर्य कुरूप पर निर्भर है; धनी गरीब पर निर्भर है। गरीब हट जाएं जमीन से, धन की सारी गरिमा हट जाएगी। लेकिन गरीब कोशिश में लगा होता है अमीर को मिटाने की; अमीर कोशिश में लगा होता है गरीब को मिटाने की। दोनों एक-दूसरे पर परजीवी हैं, एक-दूसरे पर जी रहे हैं। दोनों ही मिट जाएंगे; या दोनों रहेंगे। इसलिए सोवियत रूस जैसे मुल्क में जहां कि अमीर को मिटाने की गरीब ने कोशिश की, अमीर मिट गया, नाम बदल गया; दूसरे अमीर आ गए। क्योंकि दोनों साथ ही हो सकते हैं। पहले जहां पूंजीपति था वहां अब मैनेजर आ गया।

बर्न हाइम ने ठीक शब्द का उपयोग किया है। वह कहता है, कम्युनिस्ट रिवोल्यूशन जैसी कोई चीज दुनिया में नहीं हुई है अभी तक; मैनेजरियल रिवोल्यूशन, सिर्फ व्यवस्थापकों की बदलाहट हो जाती है। मालिक की जगह दूसरे मालिक आ जाते हैं। उनका नाम दूसरा होता है, तख्ती दूसरी होती है। लेकिन वह जो गुलाम था गुलाम होता है; मालिक मालिक होता है। वह दोनों का नाता-रिश्ता बना ही रहता है; वह कहीं समाप्त नहीं होता। या तो दोनों रहेंगे या दोनों जाएंगे।

द्वंद्व के इस जगत में एक से छुटकारा और एक का बचाव संभव नहीं है। हम सब तरह की कोशिश करते हैं छुटकारे की। हम चाहते हैं युद्ध न हो, शांति हो। कितने लोगों ने नहीं चाहा कि शांति हो, लेकिन कुछ हो नहीं पाता। दस साल नहीं बीत पाते और महायुद्ध उतर आता है। ऐसा लगता है कि कोई उपाय नहीं है। शांति और युद्ध परिपूरक हैं, विपरीत नहीं हैं। और अगर युद्ध न हो तो शांति भी व्यर्थ मालूम होने लगती है। जैसे ही युद्ध होता है, शांति में सार्थकता आ जाती है, अर्थ मालूम होता है। जैसे जन्म और मृत्यु हैं, ऐसे ही शांति और युद्ध हैं।

तो बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोग--जो भले लोग हैं; और जो चाहते हैं, दुनिया में शांति हो, युद्ध न हो--उन्हें लाओत्से को ठीक से समझना चाहिए। क्योंकि लाओत्से कहेगा, यह नहीं हो सकता। दुनिया होगी, शांति होगी, तो युद्ध जारी रहेगा। एक ही उपाय है, जमीन शांत हो, यहां युद्ध न हो, वह उपाय यह है कि हम किसी और ग्रह पर अगर जीवन को पा लें, मंगल पर अगर कोई जीवन मिल जाए और प्लेनेटरी युद्ध छिड़ जाए कि मंगल से पृथ्वी का संघर्ष होने लगे, तो पृथ्वी पर युद्ध बंद हो जाएगा। फिर पाकिस्तान-हिंदुस्तान के लड़ने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा, क्योंकि बड़े दुश्मन के मुकाबले हमें इकट्ठा हो जाना पड़ेगा।

ऐसा अभी भी होता है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान लड़ते हैं तो गुजराती और मराठी का युद्ध समाप्त हो जाता है। वे इकट्ठे हो जाते हैं। पंजाबी, गैर-पंजाबी का युद्ध समाप्त हो जाता है। मद्रासी, गैर-मद्रासी का युद्ध समाप्त हो जाता है। वे इकट्ठे हो जाते हैं। बड़ा दुश्मन सामने आ गया, कामन एनीमी सामने आ गया; हम इकट्ठे हो जाते हैं।

इसलिए जब युद्ध चलता है तो देश में बड़ी एकता मालूम होती है। वह एकता नहीं है। वे छोटे युद्ध समाप्त हो जाते हैं, जब बड़ा युद्ध सामने होता है। वैसे ही जैसे आपको छोटी-मोटी बीमारी हो, और बड़ी बीमारी हो जाए। पैर में फुंसी हुई थी, फिर कोई कह दे कैंसर हो गया; फुंसी समाप्त हो गई। अब है ही नहीं। अब कौन उस फुंसी को, उसका बोध भी नहीं रह जाएगा। छोटी बीमारियों को मिटाने का बड़ा सीधा तरीका है--बड़ी बीमारी। छोटी बीमारी तिरोहित हो जाती है। हिंदुस्तान-पाकिस्तान लड़ते हैं तो छोटी बीमारियां तिरोहित हो जाती हैं; मुल्क इकट्ठा मालूम होता है। अगर कोई ग्रह हमसे युद्ध में उतर जाए किसी दिन तो जमीन के सब छोटे-छोटे झगड़े समाप्त हो जाएंगे। तो रूस और अमरीका एक हो सकते हैं; तो चीन और भारत एक हो सकते हैं। कामन एनीमी आ गया। लेकिन युद्ध नए स्तर पर शुरू हो गया।

शांति है तो युद्ध होगा। इसलिए गीता का संदेश बहुत लोगों को समझ में नहीं आता कि आखिर कृष्ण इतना जोर क्या दे रहे हैं कि तू लड़! बर्ट्रेंड रसेल जैसे लोगों को तो लगेगा कि कृष्ण भी युद्धबाज हैं। और युद्ध के लिए प्रोत्साहन देते हैं। लेकिन कृष्ण की समझ वही है जो लाओत्से की है। जब शांति है तो युद्ध होगा। युद्ध से छुटकारा नहीं है। उसे स्वीकार करना पड़ेगा। और अगर पूरी तरह से स्वीकार कर लिया तो युद्ध का जो बोझ है वह विनष्ट हो जाता है। और युद्ध के मध्य से भी शांति का मार्ग खोजा जा सकता है। युद्ध के बीच से, युद्ध की आग के बीच भी कोई शांत रह सकता है और ध्यानस्थ रह सकता है। स्वीकार कर ले दोनों! तो गीता का पूरा संदेश इस बात का ही है कि शांति और युद्ध में तू चुनाव मत कर; जो भाग्य है, जो नियति है, जो हो रहा है, उसके साथ तू जुड़ जा। और तू कोई फल की आकांक्षा मत कर, तू सिर्फ मान कि निमित्त है; और जो हो रहा है उसे हो जाने दे। तू कोई चुनाव मत कर। अचुनाव का यह दृष्टिकोण तभी निर्मित हो सकता है जब हम विरोध को विरोध न समझें, परिपूरक समझें।

"उच्चस्थ जन आधार के लिए निम्नस्थ पर निर्भर है। यही कारण है कि राजा और भूमिपति अपने को अनाथ, अकेला और अयोग्य कहते हैं।"

यह थोड़ा समझने जैसा है। सम्राटों को सदा अकेलेपन का अनुभव होता है, धनियों को अकेलेपन का अनुभव होता है; ऐसा अनुभव गरीबों को नहीं होता--लोनलीनेस का! अपने महल के शिखर में वे अकेले रह जाते हैं। अब यह मनुष्य की बड़ी विडंबना है कि पहले आदमी पूरी कोशिश करता है कि मैं सबसे ऊंचा हो जाऊं। लेकिन सबसे ऊंचे होने में वह अकेला भी हो जाता है; क्योंकि सब नीचे छूट जाते हैं; कोई संगी-साथी नहीं रह जाता। जब अकेला रह जाता है आदमी तब उसको पीड़ा शुरू होती है कि मैं बिल्कुल अकेला हूं; कोई नहीं है जिससे मैं बात कर सकूं; कोई नहीं है जिससे मेरा प्रेम हो सके; कोई नहीं है जिससे मेरी मित्रता हो। और तब अकेलापन सालता है और दुख देता है। और सारे लोग इस कोशिश में लगे रहते हैं कि उस शिखर पर पहुंच जाएं जहां हमारे बराबर कोई भी न हो। तो फिर आप अकेले हो ही जाएंगे। अकेले होने की किसी की तैयारी नहीं है, और अकेले होने की सब कोशिश में लगे हैं। इसलिए धनी आदमी अपनी सफलता के चरम क्षण में पाता है कि असफल हो गया। क्योंकि संबंध ही टूट गया सब उसका। अपना कोई भी न रहा; धन रह गया सिर्फ। उसकी ढेरी पर, धन की एवरेस्ट की ढेरी बन गई, उसके ऊपर वह अकेला रह गया। प्रसिद्धि, यश के शिखर पर आदमी पाता है कि सब व्यर्थ हो गया; क्योंकि बिल्कुल अकेला हो गया। हिटलर या मुसोलिनी जैसे व्यक्तियों से अकेला व्यक्ति खोजना मुश्किल है; बिल्कुल अकेले हो गए। और तब अकेलापन सालने लगा कि अब कोई संगी-साथी नहीं है!

जीवन का सारा रस संगी-साथियों के साथ जुड़ा है। हम जितना ज्यादा लोगों के साथ साझेदारी में हो सकें, हमारी भाव-दशा जितने लोगों में प्रवेश कर सके और जितने लोगों का प्रवाह जीवन का हममें आ सके, उतना ही आपको अच्छा लगेगा, सुखद, स्वस्थ मालूम पड़ेगा। जितने आप अकेले होते जाते हैं, उतनी जड़ें उखड़ती जाती हैं भूमि से। समाज भूमि है, और हर चेतना जो आपके आस-पास है, इतनी दूर नहीं है जितना आप सोचते हैं, जुड़ी है। और जब आप बहुत दूर अपने को खींच लेते हैं और हट जाते हैं, तो अपने हाथ से ही आप अपने जीवन-स्रोत को तोड़ देते हैं।

सम्राटों को निरंतर अनुभव हुआ है कि वे बिल्कुल अकेले रह गए हैं; कोई उनका नहीं है। मगर इसमें किसका कसूर है? उनकी ही चेष्टा रही है कि इस जगह आ जाएं जहां कोई समान न रह जाए। जहां कोई समान न हो वहां मित्रता भी नहीं हो सकती, प्रेम भी नहीं हो सकता।

तो आप समझ लें--आपके ख्याल में नहीं आएगा एकदम से--जैसे आप अकेले रेगिस्तान में छोड़ दिए गए हों, जहां बोल भी नहीं सकते, अपना दुख भी नहीं कह सकते, अपने सुख की खबर भी नहीं दे सकते। कोई वहां है ही नहीं; चिल्लाते हैं तो अपनी ही आवाज गूंज कर तिरोहित हो जाती है; कोई प्रत्युत्तर नहीं आता। जैसे रेगिस्तान में छूटे अकेले आदमी की दुख-दशा हो जाती है, दुर्दशा हो जाती है, ठीक वैसे ही रेगिस्तान यहां भी हैं। जब कोई धन के पूरे शिखर पर पहुंचता है तो अकेला हो गया; रेगिस्तान में हो गया। जब कोई राजनीति के शिखर पर पहुंच जाता है तो अकेला हो गया; रेगिस्तान में हो गया। यश के शिखर पर पहुंच गया, अकेला हो गया। कई तरह के रेगिस्तान हैं, तरह-तरह के रेगिस्तान हैं। और हम सब उनकी तलाश कर रहे हैं।

लाओत्से कहता है, "यही कारण है कि राजा और भूमिपति अपने को अनाथ, अकेला और अयोग्य कहते हैं।"

क्योंकि जिन पर वे निर्भर हैं उनसे ही अपने को दूर रखते हैं; जिन पर जीवन निर्भर है उनसे ही अपने को काट लेते हैं। अगर सम्राट के द्वार पर भिखमंगा आए तो सम्राट मिलेगा भी नहीं। वह कहेगा, मैं सम्राट, तू भिखमंगा! लेकिन उसका सम्राट होना इस भिखमंगे पर निर्भर है। यह उसका मित्र है, यह उसका सगा-संगी है, यह उसका परिवार का सदस्य है। ये दोनों एक ही कड़ी के दो पहलू हैं; एक ही कड़ी के दो छोर हैं। सम्राट को चाहिए कि उसका स्वागत करे। सम्राट को चाहिए कि उसे मेहमान बनाए। सम्राट को चाहिए कि उसका आदर करे। सम्राट को चाहिए कि कहे, रुको कुछ देर मेरे पास, क्योंकि हम-तुम संगी-साथी हैं। मैं एक छोर पर, तुम दूसरे छोर पर; तुम्हारे बिना मैं नहीं हो सकता, मेरे बिना तुम भी नहीं हो सकते।

अगर कोई सम्राट ऐसा कर पाए तो फिर अकेला अनुभव नहीं करेगा। फिर तो वह सबके भीतर व्याप्त हो जाएगा और उसे एक का अनुभव शुरू हो जाएगा। यह उसकी साधना हो जाएगी। अगर सम्राट भिखारी को गले लगा ले और कहे कि तुम मेरे मित्र हो, तो उसकी एक की खोज शुरू हो गई। थोड़े ही दिनों में सम्राट सम्राट नहीं मालूम पड़ेगा खुद को; भिखारी भिखारी मालूम नहीं पड़ेगा। दोनों के भीतर का जो एक सत्य है, वह अनुभव में आने लगेगा। द्वंद्व विसर्जित हो जाएगा।

इसलिए हमने फिक्र की थी कि सम्राट भिखारी को सम्मान दे; आदर दे; शक्ति झुके उनके सामने जिनके पास कुछ भी नहीं है, ताकि उस एक की खोज जारी रहे। अगर आप सुंदर हैं तो असुंदर व्यक्ति की तरफ मुंह मत मोड़ लें। वह आपका परिवार का सदस्य है। उसका दान है आपको; वह आपका ही दूसरा हिस्सा है। उसे छाती से लगा लें।

संत फ्रांसिस के जीवन में एक उल्लेख है कि संत फ्रांसिस ने कहा कि मुझे परमात्मा का जो पहला अनुभव हुआ, वह हुआ एक कोढ़ी को जब मैंने छाती से लगाया, और जब मैंने उसके कोढ़ भरे ओंठों पर अपने ओंठ रख दिए, तब मुझे परमात्मा की पहली झलक मिली। वह मुझे चर्चों में नहीं मिली, प्रार्थनाओं में नहीं मिली।

कोढ़ी को देख कर ही भागने का मन, हटने का मन... । फ्रांसिस को भी वही हुआ था। एक कोढ़ी चला आ रहा है। शरीर के अंग गल गए हैं, गिर गए हैं; बास आती है, बेचैनी होती है, दूर हटने का मन होता है। लेकिन तभी फ्रांसिस को ख्याल आया कि जीसस ने कहा है कि जो अंतिम हैं, उनमें ही जो मुझे खोज पाएगा, वही खोज पाएगा; जिनसे तुम्हारा सहज हटने का मन हो, उनके पास जाना, तो तुम मुझे मिल पाओगे। रोक लिया फ्रांसिस ने अपने को। बड़ी कष्टपूर्ण रही होगी बात। आसान है सालों तक शीर्षासन करना; आसान है पद्मासन लगा कर बैठ जाना; आसान है आंख बंद करके माला फेरते रहना। लेकिन जिसके अंग गिर गए हों, बदबू आती हो, जिसके पास कोई खड़ा होने को राजी न हो, जिसे लोग गांव में प्रवेश न करने देते हों! बड़ी क्रांति का क्षण आ गया होगा फ्रांसिस के सामने। एक तरफ सहज द्वंद्व था, चुनाव था, कि हट जाओ। और एक तरफ निर्द्वंद्व एक की तलाश थी। इस एक क्षण में ही सारा रूपांतरण हो गया। फ्रांसिस ने कोढ़ी को गले लगा लिया; उसके ओंठ पर अपने ओंठ रख दिए।

उस क्षण को थोड़ा सा सोचें। यह ध्यान की अंतिम, चरम अवस्था हो गई, पराकाष्ठा हो गई। उस क्षण में जब फ्रांसिस ने कोढ़ी के ओंठ पर ओंठ रखे, गलते हुए बदबू से भरे हुए ओंठ पर, उस समय फ्रांसिस वहीं पहुंच गया जहां बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे पहुंचे। जरा भी फर्क न रहा। क्योंकि यह संभव ही तभी हो पाया जब द्वंद्व छूट गया कि क्या सुंदर, क्या कुरूप; कौन अच्छा, कौन बुरा; क्या सुगंध, क्या दुर्गंध। दोनों छूट गए। तो पीछे जो एक था वह प्रकट हो गया। फ्रांसिस ने कहा है, मैंने आंख खोल कर देखी, मुझे जीसस के दर्शन हुए।

जरूरी नहीं कि जीसस वहां मौजूद हो गए हों, फ्रांसिस के भीतर यह हुआ। कोढ़ी तिरोहित हो गया, जीसस के दर्शन हुए। फ्रांसिस आदमी न रहा, इस क्षण से परमात्मा हो गया।

द्वंद्व जहां गिर जाए; उसे गिराने के हजार उपाय हो सकते हैं। हर आदमी का शायद अलग-अलग उपाय होगा। क्योंकि--मैं आपसे नहीं कहता कि आप ऐसा करें--क्योंकि हो सकता है कि आपको दुर्गंध न आती हो। तो आप कोढ़ी के पास बैठे रहें और आपको परमात्मा का अनुभव न होगा। कि आप अस्पताल में काम करते-करते अभ्यासी हो गए हों, तो आप कोढ़ी के पैर दाब दें निर्लेप भाव से, जैसे कुछ हो ही नहीं रहा, एक काम पूरा कर रहे हैं। तो आपको कुछ न होगा। क्योंकि क्रांति आपके भीतर घटित होनी है। वह क्रांति तो तभी घटित होती है जब द्वंद्व अपने शिखर पर होता है और आप उस द्वंद्व को छोड़ देते हैं।

"क्या यह सच नहीं है कि वे सहारे के लिए साधारण जनों पर निर्भर हैं?"

एक यहूदी फकीर का मुझे स्मरण आता है। बालसेम उसका नाम था। यहूदियों का कोई धार्मिक उत्सव करीब था, पासओवर। और बालसेम गांव की बड़ी सभा में बोल कर वापस लौटा। सिनागाग से वापस आया तो बहुत थका-मांदा था। तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुमने ऐसी कौन सी बातें कहीं कि तुम्हारी इतनी शक्ति खो गई? तुम बहुत दुर्बल मालूम पड़ते हो! गए थे तब तो तुम बड़े शक्तिशाली दिखाई पड़ते थे। तुमसे जैसे कुछ खो गया है। इतने उदास, इतने दुर्बल! क्या हुआ? सभा में क्या हुआ? बालसेम ने कहा, मैं लोगों को समझा रहा था कि गांव में जो धनी हैं, पासओवर के उत्सव के समय उनका फर्ज है कि गरीबों को कपड़े और भोजन दें। वह उन्हीं का है, उन्हें लौटा दें; कम से कम इस उत्सव के दिनों में गांव में कोई गरीब न हो, कोई भूखा न हो, कोई नंगा न हो। तो पत्नी ने कहा--और संदेह से पूछा--कि क्या तुम लोगों को राजी कर पाए? क्या लोग राजी हुए

इस बात के लिए, इस विचार के लिए? तो बालसेम ने बड़ी अदभुत बात कही। बालसेम ने कहा, आई वुड से फिफ्टी-फिफ्टी, आई कनविंस्ड दि पुअर। पचास प्रतिशत, फिफ्टी-फिफ्टी; गरीबों को मैंने राजी कर लिया।

पर गरीबों के राजी होने से कोई हल ही नहीं होता; राजी अमीर को होना था।

जिंदगी में सब जगह बंटाव है आधा-आधा। गरीब को राजी करने में कोई कठिनाई नहीं है कि दान महा धर्म है; गरीब पहले से ही राजी है। अमीर को राजी करने में कठिनाई है। क्योंकि अमीर सदा ऐसा सोचता है, उसके पास से जो भी जा रहा है गरीब की तरफ वह उसके दुश्मन के पास जा रहा है, उसके विपरीत के पास जा रहा है, विरोधी के पास जा रहा है, तो बामुश्किल छोड़ता है। लेकिन उसे पता नहीं कि वह जिसे विपरीत समझ रहा है, वह परिपूरक है; उसके बिना अमीर के होने का कोई उपाय नहीं है। वह है, इसलिए अमीर है। वे दोनों एक ही खेल के दो भागीदार हैं, साझीदार हैं। और वह जो दूसरा साझीदार है वह विपरीत नहीं है। यह अगर बोध आ जाए तो इस जमीन पर ठीक-ठीक समाजवाद का उदभव हो सकता है।

अगर विपरीत विपरीत न मालूम पड़ें, परिपूरक मालूम पड़ें, तो किसी से छीनने की और किसी को छीनने की जरूरत नहीं है। अगर दूसरा हमारा ही छोर है, यह प्रतीति गहन हो जाए, तो दुनिया से अमीरी और गरीबी दोनों विसर्जित हो सकती हैं।

अगर गरीब कोशिश करेगा अमीर को मिटाने की तो वह नहीं मिटा पाएगा, सिर्फ दूसरे अमीरों को अपने कंधे पर बिठा लेगा। अगर अमीर कोशिश करेगा गरीबों को मिटाने की तो असंभव है, क्योंकि उनके मिटने पर तो वह खुद भी मिट जाएगा। एक ही उपाय हैः या तो दोनों रहें; या दोनों परिपूरक हो जाएं और विसर्जित हो जाएं। और दोनों जान लें कि हम जुड़े हैं; एक ही खेल के दो हिस्से हैं; न कोई ऊपर है, न कोई नीचे है; धूप-छाया की तरह। तो इस जमीन पर एक समाजवाद का उदभव हो सकता है जो संघर्षशून्य हो और जिसमें सत्ता नाममात्र को न बदले, बल्कि विसर्जित हो जाए। उसकी धारणा ही वेद-उपनिषद के ऋषियों को रही है--एक ऐसा जगत जहां द्वंद्व द्वंद्व न प्रतीत मालूम हो, परिपूरक बन जाए।

"सच तो यह है कि रथ के अंगों को अलग-अलग कर दो, फिर कोई रथ नहीं बचता है।"

बौद्ध कथा है। भिक्षु नागसेन एक बहुत अनूठा भिक्षु हुआ। किसी सम्राट ने नागसेन को निमंत्रित किया कि वह बुद्ध-धर्म का उपदेश देने आए। नागसेन के पास जब वजीर गए और उन्होंने निमंत्रण दिया तो नागसेन ने कहा, जरा कठिनाई है, क्योंकि नागसेन जैसा कोई है नहीं। उपदेश होगा, लेकिन सम्राट को कहना, नागसेन जैसा कोई है नहीं। आना होगा, उपदेश होगा, लेकिन नागसेन जैसा कोई है नहीं।

सम्राट ने समझा कि आदमी विक्षिप्त मालूम होता है। आएगा, उपदेश देगा, और कहता है नागसेन जैसा कोई नहीं है! तो आएगा कौन? उपदेश कौन देगा? फिर भी सम्राट ने कहा, आदमी रसपूर्ण है; आने दो।

नागसेन के लिए रथ भेजा। रथ पर बैठ कर नागसेन राजधानी आया, महल के द्वार पर, तो सम्राट स्वागत के लिए आया। तो सम्राट ने कहा, नागसेन, स्वागत है! भिक्षु, स्वागत है! नागसेन ने फिर कहा, स्वागत है, ठीक। स्वागत स्वीकार है, यह भी ठीक। लेकिन नागसेन जैसा कोई है नहीं। तो सम्राट ने कहा, आप पहेलियां मत बूझें। बात साफ करें, मतलब क्या है? फिर आया कौन? फिर स्वागत किसका? फिर स्वागत स्वीकार कौन करता है? यह कौन है जो बोल रहा है?

तो नागसेन ने कहा, इस रथ पर बैठ कर मैं आया हूं। तो एक काम करें, रथ है? सम्राट ने कहा, निश्चित है; नहीं तो यहां आना आपका कैसे होता? रथ सामने खड़ा है। तो नागसेन ने कहा, घोड़ों को अलग कर लें। घोड़े अलग कर लिए गए। तो नागसेन ने पूछा, क्या ये घोड़े रथ हैं? सम्राट ने कहा--सम्राट तब थोड़ा चौंका--सम्राट ने

कहा, घोड़े निश्चित ही रथ नहीं हैं; घोड़े घोड़े हैं। अलग कर दें। फिर दोनों पहिए निकलवा लिए और पूछा कि क्या ये रथ हैं? सम्राट ने कहा, ये पहिए हैं, रथ नहीं। लेकिन सम्राट अब डरा। उसने समझा कि वह अब फंसा। यह तर्क तो खतरनाक जगह ले जा रहा है। एक-एक अंग रथ का निकलता गया और सम्राट को कहना पड़ा--यह भी रथ नहीं, यह भी रथ नहीं, यह भी रथ नहीं। और पीछे कुछ भी न बचा। तो नागसेन ने कहा, रथ कहां है? क्योंकि जो भी निकाला गया वह रथ नहीं था; रथ पीछे बचना चाहिए, शुद्ध रथ पीछे बचना चाहिए। सम्राट ने कहा, मुझे क्षमा करें, भूल हो गई; रथ एक जोड़ ही है। नागसेन ने कहा, मैं भी बस एक जोड़ हूं। एक-एक चीज निकालते जाएं, पीछे शून्य बचेगा, कुछ भी न बचेगा। इसलिए नागसेन कोई नहीं। आना होगा, उपदेश होगा, स्वागत स्वीकार है; लेकिन नागसेन जैसा कोई भी नहीं।

इसलिए बुद्ध का--यह जो सिद्धांत नागसेन ने दिया, यह बुद्ध का अनत्ता का सिद्धांत है, नो सेल्फ। बुद्ध कहते हैं, भीतर कोई भी नहीं है। एक-एक अंग अलग कर लें, जोड़ टूट जाएंगे; भीतर कोई भी नहीं है। और जो इस बात को जान लेता है कि भीतर कोई भी नहीं है वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। फिर अकड़ क्या रही? अहंकार क्या रहा? बचाना किसको है? उठाना किसको है? वह द्वंद्व से छूट गया। जो है ही नहीं, उसका जन्म कैसा? उसकी मृत्यु कैसी?

लाओत्से ठीक वही प्रतीक ले रहा है। वह कह रहा है, "सच तो यह है कि रथ के अंगों को अलग-अलग कर दो, और कोई रथ नहीं बच रहता।"

गरीब को अलग कर लो, अमीर खिसका, गिरा। दीन को अलग कर लो तो वह जो अकड़ा हुआ है, उसकी अकड़ खो गई। दुर्बल को अलग कर लो तो शक्तिशाली मिटा। यहां एक चीज खींचो तो दूसरी गिरनी शुरू हो जाती है; क्योंकि जोड़ है। और दोनों को अलग कर लो तो पीछे शून्य बचता है, वहां कुछ भी बचता नहीं। और ये दोनों परिपूरक हैं, ये एक-दूसरे को सहारा दिए हैं; रथ के सभी अंग एक-दूसरे को सहारा दिए हैं और रथ बने हुए हैं। सहारे में रथ है। वह जो जोड़ है सबका, उसमें रथ है; वह जोड़ रथ है। और एक-एक अंग को निकालें तो जोड़ तो निकलता नहीं, अंग निकल आते हैं; जोड़ शून्य की तरह पीछे रह जाता है; वह पकड़ में भी नहीं आता। पहिया जुड़ा है। जहां पहिया जुड़ा है वहां रथ है, उस जोड़ में। लेकिन पहिया अलग कर लो, फिर और अंग अलग कर लो, पीछे खाली जोड़ रह जाते हैं। जोड़ तो दिखाई नहीं पड़ते; जोड़ तो तभी दिखाई पड़ते हैं जब दो चीजें जुड़ती हैं।

इसे ऐसा समझें कि आप किसी के प्रेम में हैं, गहन प्रेम में हैं। आपको अलग कर लें, आपके प्रेमी को अलग कर लें, तो प्रेम बीच में बच नहीं रहता। बचना चाहिए। क्योंकि आप कहते थे, दोनों के बीच बड़ा प्रेम है। दोनों के हट जाने पर प्रेम बचता नहीं, वहां सिर्फ शून्य रह जाता है।

यह थोड़ा बारीक है, और बहुत अस्तित्वगत सवाल है। जब हम दो प्रेमियों को अलग करते हैं तो बीच में कुछ भी नहीं बचता। तो क्या दोनों प्रेमी भ्रम में थे कि बीच में प्रेम है? प्रेम एक जोड़ है; दोनों की मौजूदगी से प्रकट होता था; दोनों के हट जाने से शून्य में लीन हो जाता है। ऐसा समझें कि दो के जुड़ने पर एक खास तरह की परिस्थिति बनती थी जिसमें प्रेम प्रकट होता था। वह जो प्रेम शून्य में छिपा है, बीज में पड़ा है, वह दो जब एक खास मनोदशा में जुड़ते थे तो आविर्भूत होता था, शून्य से बाहर आता था और अस्तित्व बनता था, प्रकट होता था। जब दोनों हट जाते हैं, परिस्थिति खो जाती है; प्रकट होने का उपाय समाप्त हो जाता है; वह जो प्रकट हुआ था वापस शून्य में लीन हो जाता है। तो जब भी दो प्रेमी मौजूद होंगे, प्रेम प्रकट हो जाएगा। जब भी भक्त

मौजूद होगा, प्रार्थना मौजूद होगी, भगवान मौजूद हो जाएगा। भक्त को अलग कर लो, भक्ति खो गई, भगवान खो गया। वह तीनों का जोड़ है; एक संयोग है।

लाओत्से कहता है कि जैसे रथ के सारे अंगों को हम अलग कर लें, पीछे कोई रथ नहीं रह जाता। ऐसे ही हम सब इस समाज के अंग हैं। इसमें न कोई श्रेष्ठ है और न कोई निकृष्ट है। क्योंकि निकृष्ट भी हट जाए तो रथ टूटता है; श्रेष्ठ भी हट जाए तो भी रथ टूटता है। एक बार श्रेष्ठ को छोड़ा भी जा सके, निकृष्ट को छोड़ना बड़ा मुश्किल है। सम्राट के बिना होना आसान है, लेकिन मेहतर के बिना होना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

इसीलिए कुछ समाज समाज ही नहीं बन पाते; क्योंकि निकृष्ट को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उदाहरण के लिए जैन हैं। जैनों का कोई समाज नहीं है। क्योंकि जैनों से कहो कि तुम एक बस्ती बसा कर बता दो सिर्फ जैनियों की, तो पता चल जाएगा कि इनके पास कोई समाज नहीं है। क्योंकि भंगी कौन बनेगा? चमार कौन बनेगा? जैन एक बस्ती बसा कर बता दें तो उसका अर्थ हुआ कि उनका समाज है। नहीं तो केवल धारणा है, समाज नहीं है। शोषक हैं! एक गांव भी बसा कर नहीं बता सकते अपना। क्योंकि फिर कौन? सिर्फ जैन हैं। क्या करेंगे? उनको हिंदू मेहतर चाहिए, मुसलमान चमड़ा बनाने वाला चाहिए पड़ेगा, कोई ईसाई चाहिए पड़ेगा। तो फिर वे समाज नहीं हैं। उनके पास समाज की अभी तक कोई धारणा नहीं है; सिर्फ एक ख्याल है। फौरन मर जाएंगे; अगर एक गांव जैनियों का हो वे सब मर जाएंगे। और या फिर उनको नीचे उतरना पड़ेगा और उनको मानना पड़ेगा कि वह मेहतर जो था वह इतना जरूरी था कि उसके बिना जीया नहीं जा सकता।

टाल्सटाय ने कहा है कि जिस दिन समाज समझदारी से भरा होगा उस दिन जिन कामों को करने को कोई भी राजी नहीं है उन कामों के लिए सर्वाधिक पैसा दिया जाएगा। दिया ही जाना चाहिए। राष्ट्रपति बनने को कोई भी तैयार है, इतनी तनख्वाह देने की कोई जरूरत नहीं है। मेहतर बनने को कोई भी तैयार नहीं है, उसकी तनख्वाह राष्ट्रपति से ज्यादा होनी चाहिए। जो तैयार है वह हिम्मत वाला आदमी है। और राष्ट्रपति से कोई अड़चन नहीं पड़ती, हों या न हों। वहां एक मिट्टी का गुड्डा भी बिठाल दो तो भी चलेगा। लेकिन यह मेहतर बहुत जरूरी है। यहां मिट्टी के गुड्डे से काम होने वाला नहीं है।

अगर समाज एक रथ है तो सभी अंग समान मूल्य के हो गए। छोटे-बड़े का भेद न रहा; एक कील भी मूल्यवान हो गई। बहुत मूल्यवान हो गई। रथ की एक कील भी निकल जाए तो रथ व्यर्थ हो जाएगा। तो कील कितनी छोटी है, इससे कोई सवाल नहीं है। उपयोगिता सामूहिक है। समता का यही अर्थ हो सकता है। समता का यह अर्थ नहीं हो सकता कि सभी लोग एक सा काम करें तब समान हैं। समता का यह भी अर्थ नहीं हो सकता कि कोई कुछ भी करे तो भी उसको समान ही मूल्य मिले। यह भी नासमझी की बात है। समता का एक ही अर्थ हो सकता है कि समाज एक संयुक्तता है, एक जोड़ है, और उसमें छोटा और बड़ा कोई अर्थ नहीं रखता। उसमें सब जरूरी हैं, और एक भी वहां से हट जाए तो रथ गिर जाता है।

अगर ऐसा आप देख पाएं तो आपके मन से वैषम्य का भाव, किसी को नीचा देखने का भाव... ।

आपके घर में नौकर है; फिर नौकर को आप नीचा देखने के भाव से मुक्त हो जाएंगे। क्योंकि वह भी दान दे रहा है अपने ढंग से; वह भी आपके जीवन का हिस्सा है। और बड़े मजे की बात है कि वह आपके बिना शायद हो भी सके, आप उसके बिना नहीं हो सकते। तो आदर योग्य है, समादर योग्य है। लेकिन नौकर की तरफ कोई व्यक्ति की तरह भी नहीं देखता। आप घर में बैठ कर गपशप कर रहे हैं; नौकर आकर झाड़ू लगा जाता है। आप आंख भी उठा कर नहीं देखते कि उसको देखना भी जरूरी है, कि उसको भी नमस्कार करना जरूरी है, या कोई आया इसका बोध भी लेना जरूरी है। उपेक्षा से बैठे रहते हैं, जैसे कोई आया ही नहीं। वह नौकर शायद आदमी

नहीं है, सिर्फ एक फंक्शन है; एक यंत्र की तरह आया, झाड़ू-बुहारी लगाई, चला गया। आपने उसकी आदमियत को जरा भी नहीं स्वीकारा। तो इसका अर्थ यह हुआ कि आप सोच रहे हैं कि आप उसके बिना हो सकेंगे। इसका यह अर्थ हुआ कि वह अनिवार्य नहीं है।

तो फिर आपका बोध बहुत संकीर्ण है और आपको जीवन के रहस्य का कोई भी पता नहीं। आप उसके बिना नहीं हो सकेंगे। और जिस शान से आप अपने बैठकखाने में बैठे हैं, उस बैठकखाने का सौंदर्य, उसकी सफाई और शान आपके कारण नहीं है। आपके कारण तो रोज कचरा इकट्ठा होता जिसको नौकर साफ करता है। आप तो कचराघर हैं; नौकर रोज साफ करता है। वह शान जो आपके बैठकघर की है वह नौकर की वजह से है। लेकिन अगर इसका बोध हो तो आप अनुगृहीत होंगे, और वह अनुग्रह आपको धीरे-धीरे द्वंद्व से हटाएगा। और धीरे-धीरे लगेगा कि चीजें इतनी जुड़ी हैं कि कौन जिम्मेवार है, कहना कठिन है।

चीजें इतनी संयुक्त हैं कि हम सभी सहभागी हैं। और जीवन इतना घनेपन से जुड़ा है कि आपको ख्याल नहीं आता। आप अपने दायरे बना कर जीते हैं; आप सोचते हैं आप अलग जी रहे हैं। आपको ख्याल ही नहीं है कि कितने लोग आपके जीवन के लिए दान कर रहे हैं, और कितने लोगों के हाथ आपके जीवन को सहारा दे रहे हैं। अनजान, अपरिचित लोग खेतों में काम कर रहे हैं; वह आपका भोजन बनता है। और लोग ही नहीं, अभी तो इकोलाजी का सारी दुनिया में आंदोलन चलता है और नई खोजें होती हैं और खोज बड़ी चकित करने वाली हैं कि आप सोच ही नहीं सकते कि जीवन कितना सघन रूप से संयुक्त है। इसे थोड़ा हम समझें।

अभी पिछले बीस वर्षों में पश्चिम के बड़े नगरों में उपद्रव पैदा हुआ तो ख्याल में आना शुरू हुआ। फैक्ट्री हैं, बड़े कारखाने हैं; उनकी वजह से नदियां दूषित हो गईं। नदी दूषित हो गई तो मछलियां सड़ने लगीं, और मछलियां विषाक्त द्रव्य खा गईं। मछलियां बाजारों में बिकने पहुंच गईं। तो जिन्होंने मछलियों को खाया वे बीमार पड़ गए। उन बीमार आदमियों के जो बच्चे पैदा होंगे वे जन्म के साथ कुछ दूषण लेकर पैदा होंगे। फैक्ट्री और एक बच्चे के पैदा होने में क्या लेना-देना है? लेकिन फैक्ट्री ने नदी को दूषित कर दिया। नदी मछलियों को दूषित कर दी, क्योंकि मछलियां नदी पर निर्भर थीं। मछलियां लोग खाते हैं; लोग मछलियों पर निर्भर हैं। मछलियों ने लोगों को दूषित कर दिया; उनके बच्चे दूषित हो गए। एक वर्तुल की तरह सब चीजें घूमती चली जाती हैं। सारी प्रकृति जुड़ी है।

वृक्ष खड़े हैं। आप वृक्षों को काटते चले जाते हैं बिना फिक्र किए। लेकिन अब घबड़ाहट पैदा हो गई। क्योंकि आदमी ने बहुत वृक्ष काट डाले जमीन पर। उसको पता ही नहीं था कि वृक्ष के बिना जमीन नहीं हो सकती। क्योंकि वृक्ष बिल्कुल अनिवार्य है आपके जीवन के लिए। वृक्ष सूरज की किरणों को पीता है; इस जमीन पर कोई और चीज उनको नहीं पी सकती है। और वृक्ष पीकर उनको डी विटामिन बना देता है। वह डी विटामिन जीवन के लिए बिल्कुल जरूरी है। अगर वृक्ष कम होते चले गए, डी विटामिन कम हो जाए--आदमी मुश्किल में पड़ जाए, पक्षी मुश्किल में पड़ जाएं। आप वृक्ष काटते चले गए, आप अपने जीवन का एक अंग काटते चले गए। अब अड़चन शुरू हो रही है। वृक्ष हैं तो बादलों को वृक्ष आकर्षित करते हैं, निमंत्रण देते हैं। उनकी प्यास बुलाती है, खींचती है। उनकी ठंडक बादलों को अपने पास ले लेती है। बादल उनसे आनंदित उन पर वर्षा कर जाते हैं। वृक्ष काट देते हैं; बादल चले जाते हैं। आप नीचे खड़े देखते रहते हैं कि कब वर्षा हो! लेकिन आपके लिए बादल कभी नहीं आए थे; आपसे उनका सीधा कोई संबंध ही नहीं है। आपसे उनका संबंध वृक्षों के द्वारा है, वाया मीडिया है। आदमी से बादलों का कोई लेना-देना नहीं है। बादल आदमी की कोई आवाज नहीं सुनते। आप कितना ही इंद्र देवता को बुलाओ। वे आपकी बात से... उनको आदमी की भाषा आती ही नहीं। हां, जब वृक्ष

उनको बुलाते हैं तो बादल सुनते हैं। वे वृक्षों से जुड़े हैं। वृक्ष हटा लें जमीन से, आदमी मर जाएगा; आदमी नहीं बच सकता।

यह उदाहरण के लिए कह रहा हूं कि ऐसा जीवन सब तरफ से जुड़ा है। तो जब आप एक वृक्ष की एक शाखा तोड़ रहे हैं तो आपको कभी ख्याल भी नहीं आता कि अपना कुछ तोड़ रहे हैं। जब आप एक वृक्ष को काट रहे हैं, आपको कुछ ख्याल ही नहीं आता। आप सोच रहे हैं, फर्नीचर बनाना है। आपको जीवन की संयुक्तता का कोई बोध नहीं है। यहां सब चीजें जुड़ी हैं।

आप चीजों को खा-पीकर मल-मूत्र त्याग कर देते हैं। फिर कीड़े-मकोड़े हैं जो आपके मल-मूत्र को खा लेते हैं। उन कीड़े-मकोड़ों से आपको बड़ी नफरत है। लेकिन आपको पता नहीं कि वे कीड़े-मकोड़े आपके जीवन के लिए अनिवार्य हैं। उनके बिना आप नहीं हो सकते। अभी तक आदमी ने सारी जमीन को मल-मूत्र कर दिया होता। लेकिन वे कीड़े-मकोड़े मल-मूत्र को खाकर फिर भोजन के योग्य बना देते हैं। वापस मिट्टी बन जाती है; मिट्टी में वापस समा जाती है। फिर कल गेहूं का पौधा खड़ा हो जाता है। उस गेहूं के पौधे में वही मल-मूत्र उन कीड़ों के द्वारा पुनः शुद्ध होकर वापस लौट आया। कीड़े-मकोड़ों से आपको बड़ी नफरत है। आदमी चाहेगा कि सब कीड़े-मकोड़े नष्ट कर दे। लेकिन कीड़े-मकोड़े नष्ट हो गए तो जमीन सिर्फ मल-मूत्र रह जाएगी। क्योंकि उनको ट्रांसफार्म करने के लिए, बदलने के लिए जो कीड़े जरूरी थे वे अब नहीं हैं।

तो आदमी ने इधर बहुत सा काम किया, बहुत सी चीजें नष्ट कर डालीं उसने यह सोच कर कि इनसे क्या लेना-देना है, इनकी कोई जरूरत नहीं है। उनके हटते ही नए उपद्रव शुरू हो जाते हैं। क्योंकि कोई कड़ी टूट जाती है, और जो कड़ी अनिवार्य थी।

इकोलाजी एक नया शास्त्र विकसित हो रहा है जो यह कहता है कि जीवन संयुक्त है; इसमें एक भी कड़ी को तुमने बदला कि तुम पूरे जीवन को प्रभावित करोगे। जीवन ऐसा है जैसे मकड़ी का जाला। उसके एक धागे को भी हिलाओ, पूरा जाला हिलेगा। जरा सा भी कहीं कुछ किया तो पूरे जाले पर प्रभाव पड़ता है।

लाओत्से इसलिए बिल्कुल विपरीत था। वह कहता था, प्रकृति को छुओ ही मत। वह जैसी है, ठीक है। क्योंकि जब तक तुम्हें पूर्ण प्रकृति का ज्ञान नहीं है तब तक तुम जो भी करोगे उससे उपद्रव होगा; क्योंकि तुम जो भी करोगे वह आंशिक होगा। कुछ कड़ियां टूटेंगी, कुछ कड़ियां खो जाएंगी। तुम मुसीबत में पड़ जाओगे। तो लाओत्से की तो मान्यता है, प्रकृति को छूना ही मत। उसको जीयो, छुओ मत। और उसमें इस पूरी तरह से जीयो कि तुम्हें जीवन का एकत्व पता चलने लगे।

अभी विज्ञान को पता चलना शुरू हुआ कि जीवन एक है। ऋषियों को सदा से पता था। उन्हें ध्यान से पता था कि जीवन एक है। लेकिन विज्ञान को अभी सब तरह की मुसीबतों से पता चलना शुरू हो रहा है कि जीवन एक है; यहां सब चीजें जुड़ी हैं। और एकशृंखला है, उसशृंखला में सब चीजें बंधी हैं। हमें दिखाई पड़ेशृंखला, न दिखाई पड़े; समझ में आए, न समझ में आए।

अगर आप पुलिस स्टेशन से पूछें सारी दुनिया के, तो पूर्णिमा की रात ज्यादा अपराध होते हैं; पूर्णिमा की रात सारी दुनिया की पुलिस को ज्यादा सजग रहना पड़ता है। क्योंकि चांद से आदमी का मस्तिष्क जुड़ा है। पूर्णिमा की रात लोग ज्यादा अपराध भी करते हैं, ज्यादा प्रेम में भी गिरते हैं। सब तरह के उपद्रव पूर्णिमा की रात बढ़ जाते हैं। क्योंकि चांद प्रभावी है। जैसे-जैसे चांद बढ़ता है वैसे-वैसे आदमी के मस्तिष्क में तरंगें बढ़ती हैं। पुराना हिंदी का शब्द है, पागल आदमी को हम कहते हैं चांदमारा। अंग्रेजी में भी जो शब्द है लूनाटिक, वह

लूनार से बना है, चांद से--पगला। वह चांद से ही बना हुआ शब्द है। जैसे-जैसे अंधेरी रात बढ़ती है वैसे-वैसे आदमी उतना उपद्रव नहीं करता, शांत होता चला जाता है।

अमावस की रात--आप हैरान होंगे, आपने शायद कभी नहीं सोचा होगा, आप सोचेंगे अमावस की रात ज्यादा उपद्रव होना चाहिए--अमावस की रात सबसे कम उपद्रव होता है। पूर्णिमा की रात सबसे ज्यादा उपद्रव होता है। क्योंकि समुद्र ही प्रभावित नहीं होता चांद से, आप भी तरंगित होते हैं। आपके शरीर में भी वही पानी है जो समुद्र में है। पचहत्तर प्रतिशत पानी है शरीर में, पच्चीस प्रतिशत दूसरी चीजें हैं। पचहत्तर प्रतिशत पानी है, और उस पानी में ठीक वही अनुपात है रासायनिक द्रव्यों का जो समुद्र के पानी में है। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, आदमी का पहला जन्म मछली की तरह हुआ, तो अभी भी उसके शरीर में जो पानी है वह समुद्र का ही है। तो पचहत्तर प्रतिशत पानी है आपके भीतर समुद्र का। और जब चांद बढ़ता है तो वह पचहत्तर प्रतिशत पानी भी आंदोलित होना शुरू हो जाता है; फिर आपके भीतर गड़बड़ शुरू होती है।

ज्योतिष इसी का विस्तार था; इसी बात का ख्याल था कि सारे जगत में जो कुछ भी है, चांद हैं, तारे हैं, ग्रह हैं, उपग्रह हैं, नक्षत्र हैं, वे सभी आपको प्रभावित कर रहे हैं। क्योंकि सब जुड़े हैं, सब संयुक्त हैं। कहीं भी कुछ होता है तो उसकी प्रतिध्वनि जगत के दूसरे कोने तक सुनी जाती है। जरा सा भी एक पत्थर छोटा सा, कंकड़ झील में गिरता है तो पूरी झील पर उसकी तरंगें फैल जाती हैं। ठीक वैसा ही जीवन में हो रहा है। जरा सी कोई घटना, सारा जीवन प्रभावित होता है।

इस एकता का बोध हो जाए, इसका ख्याल आने लगे, इसकी प्रतीति होने लगे, तो हम ब्रह्म की तरफ अग्रसर होने शुरू हो जाते हैं। और ध्यान रहे, शास्त्रों से उस एक का पता न चलेगा। जीवन के अनुभव से ही, जीवन की संयुक्तता की प्रतीति, साक्षात्कार से ही उस एक का अनुभव होना संभव है।

अंतिम वचन है, "मणि-माणिक्य की तरह झनझनाने की बजाय चट्टानों की तरह गड़गड़ाना कहीं अच्छा है।"

लाओत्से यह कह रहा है कि श्रेष्ठ होने के दंभ में पड़ने की बजाय जीवन की बुनियाद में निकृष्ट होना कहीं अच्छा है। अकड़ से भरे होने की बजाय विनम्र होना कहीं अच्छा है। क्योंकि अकड़ के कारण आदमी अकेला हो जाता है। और अकेले के कारण उसे जीवन की एकता का अनुभव नहीं होता। अकड़ के छूट जाने पर विनम्र हो जाने के कारण आदमी को एकता का अनुभव होता है। वह इतना विनम्र होता है कि उसे लगता है कि मैं हूं ही क्या, सबका दान हूं। मेरा अपना होना कुछ भी नहीं। सबके होने में मैं भी एक तरंग हूं। इस विनम्रता को ध्यान में रख कर लाओत्से कह रहा है, मणि-माणिक्य की तरह झनझनाने की बजाय चट्टानों की तरह गड़गड़ाना कहीं अच्छा है।

मणि-माणिक्य भी चट्टानें ही हैं। आदमियों की वजह से वे मणि-माणिक्य हैं। आदमी नहीं था तो वे भी कंकड़-पत्थर थे। कंकड़-पत्थरों ने उनकी कभी कोई फिक्र नहीं की थी। आदमी के अहंकार के कारण आदमी सब जगह हायरेरकी बनाता है। आदमी बहुत अदभुत है। वह खुद ऊंचा-नीचा नहीं खड़ा होता--वह कहता है, तुम नीचे, मैं ऊंचा--ऐसा ही नहीं, कंकड़-पत्थरों में भी तुम नीचे और यह पत्थर ऊंचा।

कोई पत्थर ऊंचा-नीचा नहीं है। अगर आप कोहनूर को रख दें एक चट्टान की बगल में, तो चट्टान आंसू नहीं बहाएगी कि हाय, मैं कुछ भी नहीं! चट्टान फिक्र ही नहीं करेगी कोहनूर की। कोहनूर भी अकड़ से चिल्लाएगा नहीं कि देखो मेरी तरफ, मैं कोहनूर हूं! सम्राटों के सरताज में रहा हूं! न तो कोहनूर कोई अकड़

बताएगा, न चट्टान; न कोई चर्चा उठेगी, न कोई बात उठेगी। आदमी खुद ऊंचा-नीचा होता है और सारे जगत को भी ऊंचा-नीचा कर देता है। वह अपने ही ढंग से सारे जगत में भी विषमता निर्मित करता है।

लाओत्से कह रहा है, ऊंचे होने की बजाय नीचे होना कहीं बेहतर है। उसका कारण? उसका कारण कुल इतना है कि जितने तुम ऊंचे हो जाओगे, उतने तुम बंद हो जाओगे अपने भीतर, उतना तुम समझने लगोगे कि मैं अलग-थलग, विशिष्ट, और जीवन से तुम्हारे तंतु टूट जाएंगे। तुम दुख भी पाओगे, लेकिन अकड़ की वजह से तुम दुख को भी न छोड़ोगे।

जीवन की बुनियाद में, जहां भेद नहीं है, जहां कोई ऊंचा नहीं है, जहां जीवन सहज और सरल है, वहां होना बेहतर है। विनम्रता बेहतर है, क्योंकि विनम्रता द्वार बन सकती है। अहंकार खतरनाक है, क्योंकि वह अवरोध है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

छिहत्तरवां प्रवचन

अस्तित्व अनस्तित्व से घिरा है

Chapter 40

The Principle Of Reversion

Reversion is the action of Tao. Gentleness is the function of Tao.
The things of this world come from Being, And Being comes from Non-Being.

Chapter 41 : Part 1

Qualities Of The Taoist

When the highest type of men hear the Tao (truth),
They try hard to live in accordance with it.
When the mediocre type hear the Tao,
They seem to be aware and yet unaware of it.
When the lowest type hear the Tao, they break into loud laughter--
If it were not laughed at, it would not be Tao.
Therefore there is the established saying:
Who understands Tao seems to be dull of comprehension;
Who is advanced in Tao seems to slip backwards;
Who seems to move on the even Tao (Path) seems to up and down.

अध्याय 40

प्रतिक्रमण का सिद्धांत

प्रतिक्रमण ताओ का कर्म है। और भद्रता ताओ का व्यवहार है।
संसार की वस्तुएं अस्तित्व से पैदा होती हैं; और अस्तित्व अनस्तित्व से आता है।

अध्याय 41 : खंड 1

ताओपंथी के गुणधर्म

जब सर्वश्रेष्ठ प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं,
तब वे उसके अनुसार जीने की अथक चेष्टा करते हैं।
जब मध्यम प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं,
तब वे उसे जानते से भी लगते हैं और नहीं जानते से भी।
और जब निकृष्ट प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं,
तब वे अट्टहास कर उठते हैं--मानो इस पर यदि हंसा न जाए, तो यह ताओ नहीं है।
इसलिए यह प्रसिद्ध कहावत हैः जो ताओ को समझता है, उसकी बुद्धि मंद मालूम पड़ती है;
जो ताओ में खूब गतिवान है, वह बार-बार पिछड़ता मालूम पड़ता है।
और जो समतल ताओ (पथ) पर चलता है, वह ऊपर-नीचे होता दिखता है।

मूल और अंत सदा एक ही होते हैं। जहां से जीवन प्रारंभ होता है वहीं लीन भी होता है। प्रारंभ और पूर्णता एक ही घटना को दो तरफ से देखी गई, एक ही घटना को दो तरफ से पहचानी गई, एक ही घटना को दो दृष्टिकोणों से नापी गई बातें हैं।

ताओ का यह मौलिक आधारभूत विचार है। इसलिए जो पूर्ण होना चाहता है, उसे मूल में वापस लौट जाना पड़ेगा। और जिस दिन कोई वृद्ध व्यक्ति छोटे बच्चे जैसा सरल हो जाता है, जीवन की पूर्णता उपलब्ध हो जाती है। और जिस दिन कोई मृत्यु को भी जन्म की भांति स्वागत करने में समर्थ हो जाता है, उस दिन मृत्यु भी नया जन्म बन जाती है।

साधारण विचार मूल और अंत को विपरीत करके देखता है। अगर कोई मूल की तरफ जाता हुआ मालूम पड़े तो हमें लगेगा कि वह पिछड़ रहा है, गिर रहा है; उसका विकास नहीं हो रहा, पतन हो रहा है। लेकिन लाओत्से कहता है कि जो प्रतिक्रमण की कला सीख लेता है, जो मूल में वापस गिरने की कला सीख लेता है, वह जीवन के परम अर्थ को उपलब्ध हो जाता है। वृद्धावस्था की पूर्णता फिर से बालक जैसा सरल हो जाना है। ज्ञानी की पूर्णता फिर से अज्ञानी जैसा निरहंकारी हो जाना है। पूर्ण प्रकाश तभी जानना उपलब्ध हुआ जब पूर्ण प्रकाश भी परिपूर्ण अंधकार जैसा शांत हो जाए। मरने की फिर कोई सुविधा न रही, जिस दिन मृत्यु अमृत जैसी दिखने लगे, जिस दिन मृत्यु जन्म बन जाए।

इसे लाओत्से कहता है, प्रतिक्रमण का सिद्धांत, लॉ ऑफ रिवर्सन।

यह बहुत विचारणीय है; बहुत साधना योग्य है। हमारी नजर आगे लगी होती है। और हम सोचते हैं कि आगे जो होने वाला है, वह पीछे जो हुआ है, उससे विपरीत है। और इसलिए हम मूल से हटते चले जाते हैं। और जितना ही हम मूल से दूर हटते हैं उतना ही हम अंत से भी दूर हट जाते हैं। क्योंकि मूल और अंत बिल्कुल एक जैसे हैं।

पश्चिम और पूरब में जीवन की गति के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। पश्चिम सोचता है कि जीवन की गति रेखाबद्ध है, लीनियर है, एक पंक्ति में चल रही है। पूरब सोचता है कि जीवन की गति वर्तुलाकार है, सर्कुलर है, एक पंक्ति में नहीं चल रही, बल्कि एक वर्तुल में घूम रही है।

अगर पश्चिम का दृष्टिकोण सही हो, जो कि तर्कनिष्ठ बुद्धि का दृष्टिकोण है, तो फिर मूल में वापस लौटने का कोई उपाय नहीं। कोई भी सीधी चलती रेखा अपने मूल बिंदु पर कभी भी वापस नहीं लौटेगी। कैसे लौट सकती है? सीधी रेखा आगे ही बढ़ती चली जाएगी। पर बहुत सी बातें सोचने जैसी हैं। अगर सीधी रेखा आगे ही

बढ़ती चली जाएगी तो जो हुआ है वह फिर कभी नहीं हो सकेगा। जो हो गया, वह हो गया। और जो भी होने वाला है, वह सदा नया होगा। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं। प्रारंभ का बिंदु कभी उपलब्ध न होगा। दूसरी बात, सीधी रेखा कभी भी अंत को उपलब्ध न होगी। उसके अंत का भी कोई उपाय नहीं है। वह अंत भी कैसे होगी?

पूर्वीय विचार बिल्कुल उलटा हैः वर्तुलाकार है जीवन की गति। जहां से शुरू होती है रेखा, वर्तुल वहीं आकर पूरा हो जाता है। इसलिए जो हुआ है वह फिर-फिर होगा। और जो मूल था वह फिर उपलब्ध होगा।

एक बहुत मजे की बात ध्यान रखने जैसी है, क्योंकि इन मौलिक दृष्टिकोणों पर जीवन के सभी अंग प्रभावित होते हैं। भारत की भाषाओं में बीते कल के लिए और आने वाले कल के लिए एक ही शब्द है--कल। जो जा चुका उसके लिए भी वही शब्द है; जो आने वाला है उसके लिए भी वही शब्द है। यस्टरडे भी कल; टुमारो भी कल। दुनिया की किसी भाषाओं में ऐसा नहीं है। क्योंकि पूरब की धारणा यही है कि जो बीत गया है, वह फिर आ जाएगा; जो कल था वह फिर कल हो जाएगा। आने वाला कल कोई नई बात नहीं है। वह आवर्तन है बीते का ही। दोनों ही कल हैं। जो बीत गया परसों, उसको भी हम परसों कहते हैं। जो आने वाला है, उसको भी परसों कहते हैं। हम बीच में खड़े हैं--जो हो गया वह, और वही फिर होगा। यह वर्तुलाकार समय की दृष्टि है। पश्चिम के लोगों की बिल्कुल समझ में नहीं आता कि बीते हुए कल के लिए भी एक शब्द और आने वाले कल के लिए भी एक शब्द! बहुत उलझन में डालता है। शब्द अलग होने चाहिए। लेकिन शब्दों के पीछे भी जीवन-दृष्टिकोण होते हैं।

फिर पूरब का दृष्टिकोण ज्यादा वैज्ञानिक मालूम होता है। क्योंकि जीवन की सभी तरह की गतियां वर्तुलाकार हैं। चांद घूमता है तो वर्तुल में; सूरज घूमता है तो वर्तुल में; पृथ्वी घूमती है तो वर्तुल में; सारे ग्रह-नक्षत्र, पूरा ब्रह्मांड घूमता है वर्तुल में; मौसम आते हैं वर्तुल में। सिर्फ मनुष्य का जीवन क्यों वर्तुलाकार नहीं होगा जहां सभी कुछ वर्तुलाकार है! मनुष्य का जीवन अपवाद नहीं हो सकता। प्रकृति के महानियम के भीतर मनुष्य का जीवन भी अंतर्निहित है। मनुष्य कोई प्रकृति के बाहर घटी हुई दुर्घटना नहीं है। मनुष्य भी प्रकृति के भीतर ही जीता, जन्मता, बढ़ता, फैलता और लीन होता है। तो जो प्रकृति का नियम है वर्तुल, वही मनुष्य के जीवन का भी नियम होना चाहिए। पूरब की दृष्टि ज्यादा प्राकृतिक है। पश्चिम की दृष्टि मनुष्य को कुछ अनूठा मान लेती है, अलग मान लेती है।

विज्ञान कहता है कि सभी गतियां सर्कुलर हैं। नवीनतम खोजें सीधी रेखाओं में विश्वास नहीं करतीं। यूक्लिड ने सीधी रेखाओं के सिद्धांत को जन्म दिया था। और यूक्लिड का ख्याल है कि दो समानांतर रेखाएं कहीं भी नहीं मिलेंगी, पैरेलल लाइंस कहीं भी नहीं मिलती हैं। लेकिन जैसे-जैसे समझ पश्चिम में भी विकसित हुई है तो नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री का जन्म हुआ। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री बिल्कुल उलटी है। नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है, सीधी रेखा का तो अस्तित्व ही नहीं है; कोई सीधी रेखा खींची भी नहीं जा सकती। अगर आप एक सीधी रेखा खींचते हैं तो वह आपको सीधी दिखाई पड़ती है; सीधी हो नहीं सकती। क्योंकि जिस पृथ्वी पर आप बैठ कर खींच रहे हैं वह वर्तुलाकार है। अगर उस रेखा को हम बढ़ाते चले जाएं दोनों तरफ तो वह पृथ्वी को घेरने वाला वर्तुल बन जाएगी। तो सभी सीधी रेखाएं किसी बड़े वर्तुल का खंड हैं। कोई सीधी रेखा होती ही नहीं। सीधी रेखा के होने का उपाय ही नहीं है।

यह थोड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है, क्योंकि बचपन से हम सबने यूक्लिड की ज्यामेट्री पढ़ी है। स्कूलों में अब भी पढ़ाया जा रहा है कि दो समानांतर रेखाएं कहीं नहीं मिलती हैं, और सीधी रेखा वर्तुल का खंड नहीं है।

लेकिन सीधी रेखा होती ही नहीं, और समानांतर रेखाएं भी नहीं होतीं। अगर हम खींचते ही चले जाएं तो समानांतर रेखाएं भी कहीं जाकर मिल जाती हैं। कितनी ही दूरी हो वह मिलने की, लेकिन मिल जाती हैं। क्योंकि सीधी रेखा नहीं हो सकती तो समानांतर रेखाएं भी नहीं हो सकतीं। सब रेखाएं झुकती हैं और वर्तुल बन जाती हैं।

लेकिन पूरब पहले से ही मानता रहा है कि जीवन में कोई सीधी रेखा नहीं होती। फिर जहां-जहां गति है वहां-वहां वर्तुल दिखाई पड़ता है। नदियां हैं। अगर हमें पूरा वर्तुल ख्याल में न हो तो शक हो सकता है। नदी गिरती है सागर में; भाप बनती है; आकाश में बादल बनते हैं; बादल पर्वतों पर पहुंच जाते हैं; वर्षा होती है; नदी का स्रोत बन जाता है। नदी फिर सागर में गिरती है; फिर बादल बनते हैं; फिर पानी उठता है; फिर स्रोत पर गिरता है; फिर नदी सागर की तरफ बहती है। एक वर्तुल है।

मनुष्य का जीवन भी एक वर्तुल है। समय भी वर्तुलाकार है। इसलिए हमने इस देश में समय की जो धारणा की है वह वर्तुल में है। इसलिए हमने इतिहास लिखने में बहुत रस नहीं लिया। पश्चिम के इतिहासविद बहुत हैरान होते हैं कि पूरब की कौमों ने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन इतिहास नहीं लिखा। हमने पुराण लिखे हैं। पुराण बड़ी और बात है। इतिहास बड़ी और बात है। इतिहास का मतलब है कि जो घटना घटी है वह यूनीक है, इसलिए उसकी तिथि, समय, वर्ष, काल, सब सुनिश्चित लिखा जाना चाहिए। पुराण का अर्थ है कि जो घटना घटी है वह एक कथा है जो बहुत बार घट चुकी है और बहुत बार घटेगी। समय, स्थान मूल्यहीन हैं, क्योंकि घटना बेजोड़ नहीं है।

जैसे राम का जन्म हुआ। अगर राम पश्चिम में पैदा होते तो उन्होंने बराबर हिसाब रखा होता, कब पैदा हुए, किस दिन पैदा हुए, किस दिन मरे, किस दिन दफनाए गए; सब हिसाब रखा होता। हमने कोई हिसाब नहीं रखा है। राम का जन्म होता है, राम का जीवन होता है, राम की जीवन की लीला होती है; सब होता है; लेकिन हमने कोई ऐतिहासिक कालबद्ध हिसाब नहीं रखा। कारण? कारण हमारा यह है कि हर युग में राम होते रहे हैं और हर युग में राम होते रहेंगे। यह एक वर्तुल है जो घूमता ही रहता है। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है तो उसका एक आरा ऊपर आता है; इसको लिखने की, नोट करने की, इतिहास बनाने की कोई भी जरूरत नहीं। क्योंकि अनंत बार यह आरा ऊपर आ चुका है। और फिर भी अनंत बार यह आरा ऊपर आता रहेगा। यह चाक है जो घूम रहा है।

इसलिए हम संसार को संसार नाम दिए हैं। संसार का अर्थ है--दि व्हील, चाक। अशोक ने अपने राज्य के चिह्न में चाक को निर्मित किया था। फिर अभी भारत के स्वतंत्र होने पर हमने चाक को भारत के झंडे पर लिया है। लेकिन शायद हमें ख्याल नहीं कि वह चाक किस बात का प्रतीक है। वह पश्चिम से बिल्कुल विपरीत धारणा है। उसके पीछे पूरा एक जीवन का एक दर्शन है। और वह दर्शन यह है कि घटनाएं बेजोड़ नहीं हैं। इसलिए न हमें पक्का पता है कि बुद्ध किस सन में पैदा होते, किस दिन पर पैदा होते; न हमें पता है कृष्ण कब पैदा होते, कब विदा हो जाते; लेकिन कृष्ण के जीवन में जो भी सारभूत है वह हमें पता है। इसे हम असार कहते हैं, नॉन-एसेंशियल; इसका कोई मतलब ही नहीं है हिसाब रखने का।

सृष्टि बनती है, फिर प्रलय होता है। फिर सृष्टि बनती है, फिर प्रलय होता है। फिर सृष्टि बनती है, फिर प्रलय होता है। और जहां से सृष्टि बनती है, ठीक जब वर्तुल वहीं आकर मिलता है समय का, तो प्रलय हो जाता है। जितने काल तक सृष्टि रहती है, फिर उतने ही काल तक प्रलय रहता है। फिर सृष्टि होती है, फिर प्रलय होता है। और ऐसे प्रत्येक सृष्टि और प्रलय के एक वर्तुल को हम एक कल्प कहते हैं। उसे हमने ब्रह्मा का एक दिन कहा

है। सृष्टि का समय दिन है और प्रलय का समय रात्रि है। वह ब्रह्मा के चौबीस घंटे हैं। फिर सुबह होती है, फिर सूरज निकलता है, फिर सृष्टि होती है। फिर सांझ अस्त हो जाता है सूरज, विश्राम को चली जाती है जीवन की सारी ऊर्जा, शक्ति। फिर सुबह होती है। हर युग में, हर कल्प में राम होंगे, हर कल्प में कृष्ण होंगे, हर कल्प में महावीर-बुद्ध होंगे। इसलिए हिसाब क्या रखना है? इसलिए जो सार है वह बचा लेना है।

बहुत मीठी कथा है कि वाल्मीकि ने राम के जन्म के पहले ही रामायण लिखी। राम का जन्म पीछे हुआ; रामकथा पहले लिखी गई। यह सिर्फ पूरब में हो सकता है। क्योंकि हमारी जो धारणा है, क्योंकि अनंत-अनंत कल्पों में राम हो चुके हैं, उनका सार पता है। घटनाएं गौण हैं, उनके जीवन का सार अर्थ पता है। तो वाल्मीकि ने सार अर्थ के आधार पर कथा लिख दी। फिर राम हुए। और राम के जीवन ने वही पूरा किया जो वाल्मीकि ने लिखा था। जो कवि को पहले दिख गया था, वह राम के जीवन में पूरा हुआ।

जैनों की धारणा भी वैसी है, बौद्धों की धारणा भी वैसी है। जैन कहते हैं कि हर कल्प के प्रारंभ में पहला तीर्थंकर होगा। फिर हर कल्प में चौबीस तीर्थंकर होंगे। हर कल्प का अंत चौबीसवें तीर्थंकर के साथ हो जाएगा। फिर पहला तीर्थंकर होगा, फिर चौबीस। तो तीर्थंकरों के जीवन के अलग-अलग हिसाब रखने जरूरी नहीं हैं।

इसलिए आप जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां देखें, एक सी हैं। कोई फर्क नहीं है; सिर्फ नीचे के चिह्न में फर्क है। वह चिह्न भर बताता है कि कौन सी पहले तीर्थंकर की, या चौबीसवें तीर्थंकर की, या बीसवें तीर्थंकर की मूर्ति है। मूर्तियां एक जैसी हैं। वह एसेंशियल है। वह जो तीर्थंकर के भीतर घटती है परम शांति और आनंद, वह उसकी मूर्ति है। उसके चेहरे में जो फर्क होंगे, लंबाई में फर्क होंगे, नाक छोटी-बड़ी होगी, आंख भिन्न होगी; ये गौण बातें हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है; यह असार है। ऐसे बहुत तीर्थंकर हो चुके हैं। उनकी बहुत लंबी नाक, छोटी नाक, बड़ी आंख, शरीर की ऊंचाई, मोटाई भिन्न रही है। वह गौण है; उसका हम हिसाब नहीं रखते। वह जो भीतर तीर्थंकरत्व है, वह जो भीतर घटता है सारभूत, हमने उसका हिसाब रख लिया। इसलिए चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां एक जैसी हैं। होंगी ही; वे भीतर की मूर्तियां हैं।

पश्चिम हिसाब रखता है। इसलिए जीसस ऐतिहासिक हैं। उस अर्थ में कृष्ण ऐतिहासिक नहीं हैं। कृष्ण पौराणिक हैं। पौराणिक का मतलब यह नहीं कि नहीं हुए। पौराणिक का मतलब, बहुत बार हुए और बहुत बार होंगे। ऐतिहासिक का अर्थ है, एक बार हुए और दुबारा नहीं हो सकते; पुनरुक्ति नहीं हो सकती।

इसलिए पश्चिम में नए की बड़ी दौड़ है; पूरब में नए की कोई दौड़ नहीं है। क्योंकि नया पुराना हो जाता है, पुराना रोज नया होता रहता है। पूरब में हम कहते हैं, सूर्य के नीचे कुछ भी नया नहीं। पश्चिम में हेराक्लतु ने कहा है, एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है। नदी प्रतिपल नई हो जा रही है। हम पूरब में कहते हैं, सूर्य के नीचे कुछ भी नया नहीं। पश्चिम कहता है, एक ही नदी में दुबारा उतरना असंभव है; धारा बही जा रही है। लेकिन अगर हम बहुत गौर से देखें तो धारा कहीं भी बहे, वही धारा है। आकाश के बादल बन जाए तो भी वही धारा है; फिर वापस गंगोत्री में गिरे तो भी वही धारा है; फिर गंगा में बहे तो भी वही धारा है। तो हम यह कहते हैं कि दूसरी गंगा में उतरना ही असंभव है; वह वही गंगा है।

ये जो दो दृष्टिकोण हैं, उनमें ताओ वर्तुलाकार दृष्टिकोण को मानता है। इसके परिणाम होंगे।

अगर आप मानते हैं कि जीवन एक रेखाबद्ध विकास है तो आपके जीवन में बड़ा तनाव होगा। क्योंकि प्रतिपल कुछ हो रहा है नया जिससे आपको समायोजित होना है, एडजस्ट होना है; प्रतिपल नए के साथ आपको आयोजित होना है; फिर से अपने को जमाना है। आपका जीवन एक लंबी चिंता और तनाव होगा। अगर सब

वही हो रहा है जो सदा होता रहा है तो आप अपने घर में हैं। रोज-रोज आयोजन, रोज-रोज समायोजन, रोज-रोज अपने को नए के साथ बिठाने की कोई भी जरूरत नहीं; सब बैठा ही हुआ है।

इसलिए पश्चिम एक शांत सरोवर की तरह नहीं हो पाता; तूफान है।

पूरब बिल्कुल शांत सरोवर की तरह है, जहां कि तूफान के बहुत कारण भी मौजूद हों, तब भी सरोवर शांत ही बना रहता है। हम बहुत एक्साइटेड नहीं हो पाते, बहुत उत्तेजित नहीं हो पाते। क्रांति में हमें बहुत रस नहीं आता, क्योंकि हम जानते हैं क्रांति बहुत बार हुई है, और चीजें वहीं लौट कर आ जाती हैं जहां से शुरू होती हैं। तो हम बीच में जो शोरगुल करते हैं, बहुत उछलकूद मचाते हैं, बहुत परेशान होते हैं, वह व्यर्थ ही जाता है। क्योंकि चीजें वहीं लौट आती हैं जहां से शुरू होती हैं।

पूर्वीय जीवन की जो दृष्टि है वह साधना के लिए बड़ी अनूठी भूमिका है। ऐसा ख्याल में आ जाए तो उत्तेजना विलीन हो जाती है और मन अपने आप शांत होने लगता है।

अब हम लाओत्से के सूत्र में चलें।

"प्रतिक्रमण ताओ का कर्म है। रिवर्सन इ.ज दि एक्शन ऑफ ताओ।"

वह जो मूल है, उसको ही पा लेना लक्ष्य है। जहां से हम प्रारंभ हुए वहीं पहुंच जाना मंजिल है। जो हमारा पहला क्षण है वही हमारा अंतिम क्षण हो जाए तो जीवन का गंतव्य पूरा हो गया। प्रतिक्रमण ताओ का धर्म है--लौटना, मूल पर लौटना, मूल में लीन हो जाना।

क्या है आपका मूल? अगर उसकी खोज में आप लग जाएं तो विचार खो जाएंगे, चिंताएं खो जाएंगी, तनाव खो जाएंगे, संताप खो जाएगा। क्योंकि मूल जहां है वहां कोई तनाव, कोई चिंता, कोई संताप नहीं है। जीवन बिना किसी शोरगुल के चुपचाप शुरू होता है। इसलिए अगर आप पीछे लौटें, अपने बचपन में, तो आप तीन वर्ष के पीछे नहीं लौट सकेंगे। तीन वर्ष तक की आपको याद आ सकती है; तीन वर्ष के पीछे प्रवेश करना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि याद ही तब बननी शुरू होती है जब जीवन में बेचैनी आ जाती है। जब बेचैनी ही नहीं होती तो याद भी क्या बने? जब कुछ घटता ही नहीं और मन इतना शांत होता है तो स्मृति क्या बने? जब कुछ घटता है तो स्मृति बनती है। स्मृति एक आघात है, चोट है। इसलिए जिस चीज से जितनी ज्यादा चोट पहुंचती है उतनी देर तक याद रहती है। जिससे कोई चोट नहीं पहुंचती उसकी कोई याद नहीं रहती।

वास्तविक अर्थों में भी स्मृति एक चोट है मस्तिष्क के तंतुओं पर, घाव है। और इसलिए जो घाव बहुत बन जाता है उस पर आप बार-बार लौटते हैं। किसी ने गाली दे दी थी बीस साल पहले; अगर घाव गहरा बन गया था तो बीस साल बीच के बहुत मूल्य नहीं रखते, घाव हरा रहता है। जरा सा मौका, आप वापस लौट जाते हैं। और घाव ताजा है। कितनी चीजें आप भूल जाते हैं; कितनी चीजें आप बिल्कुल नहीं भूल पाते। क्या कारण होगा? जिस घटना से घाव बनता है जितना गहरा वह उतना ही भूलना मुश्किल होता है।

तीन वर्ष के पीछे जाना मुश्किल है। क्योंकि तीन वर्ष तक मन शांत है, ताओ में है, धर्म में है। अभी बच्चे के जीवन में कुछ भी नहीं घट रहा है। धारा इतनी शांत है कि जैसे बह ही नहीं रही।

इसी में लौट जाना प्रतिक्रमण है। फिर ऐसी जगह आ जाना जहां मन बच्चे की तरह शांत हो गया है, सरल, निर्दोष हो गया है; जहां न कोई भविष्य है, न कोई अतीत है; जहां वर्तमान के क्षण में ही सब कुछ है। एक छोटा बच्चा एक तितली के पीछे दौड़ रहा है। इस घड़ी में, जब वह तितली के पीछे दौड़ रहा है, तो उसको तितली को छोड़ कर कोई भी नहीं है, जगत पूरा लीन हो गया है। एक बच्चा फूल को तोड़ कर देख रहा है। इस क्षण में सारा जगत खो गया है; फूल है और बच्चा है, उस फूल की सुगंध उसे घेरे है। तात्कालिक क्षण में सब कुछ

है। न कोई अतीत है जिसका बोझ ढोना है, न कोई भविष्य है जिसकी आशाएं, कल्पनाएं, योजनाएं बनानी हैं। ऐसा वर्तमान में हो जाना ही निर्दोष हो जाना है। ऐसे क्षण में कोई घाव नहीं लगते। इस अवस्था में फिर से लौट जाना, इस मूल को फिर से पकड़ लेना ध्यान है। सारे ध्यान के प्रयोग इस मूल को पकड़ने के प्रयोग हैं।

फिर यह गहरा होता जाए ध्यान, और हम पीछे प्रवेश करें, तो बच्चा मां के गर्भ में है। तब कोई दायित्व नहीं है, कोई रिस्पांसबिलिटी नहीं है। कोई एक विचार की तरंग भी नहीं उठती है, क्योंकि बच्चे की सभी इच्छाएं उठने के पहले पूरी हो जाती हैं। बच्चे को कुछ भी नहीं करना पड़ता। मां के पेट में बच्चा करीब कल्पवृक्ष के नीचे है। श्वास मां लेती है, उससे बच्चे को आक्सीजन मिल जाती है। मां का खून बच्चे का खून बनता है। मां का जीवन बच्चे का जीवन है; मां के हृदय की धड़कन बच्चे की धड़कन है। बच्चा परम सुख में है, जहां कोई दुख पैदा नहीं होता, जहां कोई चिंता नहीं पकड़ती, जहां आने वाले क्षण का कोई बोध भी नहीं है। अगर हम और पीछे प्रवेश करें तो ऐसे गर्भ की अवस्था है। इसको हमने मोक्ष कहा है। इसको फिर से पा लेना, इसको फिर से पा लेना महासुख है।

तो जब ध्यान गहरा होता है और निर्दोष होते-होते इतना निर्दोष हो जाता है कि जैसे आप फिर से गर्भ में पहुंच गए। अब की बार मां का गर्भ नहीं होता, सारा अस्तित्व मां का गर्भ हो जाता है। इस बार इस पूरे अस्तित्व में आप एक हो जाते हैं। परमात्मा श्वास लेता है, परमात्मा जीवन देता है; आप सारी चिंता उस पर छोड़ देते हैं। आप ऐसे होते हैं, जैसे गर्भस्थ शिशु। यह समाधि है। ध्यान जब गहरा होते-होते ऐसी जगह पहुंच जाता है जहां गर्भस्थ शिशु की चेतना आपके भीतर जन्म लेती है। बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए बुद्ध ऐसे गर्भस्थ शिशु हैं। कहीं कोई उपद्रव नहीं रहा। कोई उपद्रव का कारण नहीं है। आप अपने घर वापस आ गए। यह अस्तित्व विरोधी नहीं रहा, इससे कोई संघर्ष न रहा; यह अस्तित्व गर्भ हो गया।

अस्तित्व को गर्भ बना लेने की कला ही धर्म है। यह पूरा अस्तित्व घर जैसा मालूम होने लगे, एट होम आप हो जाएं--आकाश, चांद-तारे, पृथ्वी सब आपके लिए चारों तरफ से सहारा दे रहे हैं। अभी भी दे रहे हैं; जब आप लड़ रहे हैं तब भी दे रहे हैं। जिस दिन आपकी लड़ाई छूट जाती है, और आप इस गर्भ में प्रवेश कर जाते हैं... । हम मंदिर के अंतरस्थ कक्ष को गर्भ कहते हैं इसी कारण। मंदिर के अंतरस्थ कक्ष में पहुंच जाना गर्भ में पहुंच जाना है।

पश्चिम का मनोविज्ञान भी, निंदा के स्वर में सही, लेकिन इस सत्य को स्वीकार करने लगा है कि मोक्ष की, निर्वाण की खोज गर्भ की खोज है। इसे बहुत अहोभाव से नहीं, स्वागत के लिए नहीं, निंदा के लिए ही पश्चिम का मनोविज्ञान स्वीकार करने लगा है कि निर्वाण की खोज गर्भ की खोज है। और पश्चिम की धारणा में पीछे लौटना तो हो ही नहीं सकता, इसलिए यह खोज गलत है, खतरनाक है, मनुष्य के विकास के लिए बाधा है।

लेकिन मैं मानता हूं कि शीघ्र उन्हें समझ में आना शुरू होगा। जैसे-जैसे यूक्लिड की ज्यामेट्री विदा हो रही है और नॉन-यूक्लिडियन ज्यामेट्री प्रवेश कर रही है, और जैसे-जैसे पुरानी रेखाबद्ध धारणाएं खो रही हैं वैसे-वैसे यह धारणा भी खोएगी। गर्भ ही अंतिम जगह भी होने वाली है। और जो व्यक्ति पुनः गर्भ की अवस्था तक नहीं पहुंच पाता वह अधूरा मर गया। इसलिए हम कहते हैं कि उसे बार-बार जन्म लेना पड़ेगा, क्योंकि गर्भ का अनुभव उसका पूरा नहीं हो पाया; अधूरा अनुभव अटका रह गया। अधूरा भटकाता है। जो व्यक्ति मरते क्षण में ऐसी अवस्था में पहुंच गया जैसी अवस्था में जन्म के क्षण में था, उतना ही शांत हो गया और पूरा अस्तित्व उसका गर्भ बन गया, उसके लिए दूसरे जन्म की कोई जरूरत न रहेगी। बात समाप्त हो गई। उसका अनुभव पूरा

हो गया, शिक्षण पूरा हो गया। इस विद्यालय में लौटने की कोई आवश्यकता नहीं है। मरते क्षण में ऐसे मरना जैसे कोई मां के गर्भ में प्रवेश कर रहा है। क्या चिंता है? क्या डर है? क्या घबड़ाहट है? रोकने की कोई जरूरत नहीं है; सहज स्वीकार से प्रवेश है।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा जब पैदा होता है तो सबसे बड़ा आघात पहुंचता है। उसको वे ट्रॉमा कहते हैं। सबसे बड़ा आघात पहुंचता है बच्चा जब पैदा होता है। होगा ही। क्योंकि बच्चा इतने सुख से इतने महादुख में आता है। मां के पेट में सुख ही सुख है। और बच्चा ऐसे तैर रहा है मां के पेट में जैसा कि आप कल्पना करते हैं--क्षीर सागर में विष्णु तैर रहे हैं; अनंत शेषनाग के ऊपर, उसकी शय्या पर लेटे हैं। ठीक बच्चा मां के गर्भ में सागर में ही तैरता है। और मां के पेट में जो पानी होता है जिसमें बच्चा तैरता है, जो बच्चे को सम्हालता है, वह पानी ठीक सागर का ही पानी होता है। उतना ही नमक, उतने ही केमिकल्स होते हैं। बच्चा उसमें तैर रहा है। कोई धक्का भी नहीं पहुंचता। वह जो पानी का वर्तुल है चारों तरफ वह उसे सब तरह के धक्कों से बचाता है। मां गिर भी पड़े तो भी बच्चे को उतना धक्का नहीं पहुंचता जितना मां को पहुंचता है। बच्चा तैरता ही रहता है। इस शेषनाग की शय्या से, इस सागर में डूबे होने से बच्चे का एकदम निष्कासन होता है; फेंका जाता है बाहर, मां से संबंध टूटता है।

तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, यह ट्रॉमैटिक है, बहुत आघातपूर्ण है, गहरा घाव बनता है। और इस घाव से आदमी मरते दम तक भी मुक्त नहीं हो पाता। वह पीड़ा बनी ही रहती है। बच्चा कंप जाता होगा। क्योंकि जहां कोई भी चिंता न थी वहां सब चिंताएं शुरू हो गईं। अब श्वास भी खुद लेनी है। भोजन की भूख लगेगी तो अब खुद ही चिल्लाना और रोना है और आवाज करनी है। प्यास लगेगी तो खुद ही प्रयास करने हैं। कुछ न कुछ संकेत देने हैं कि मुझे प्यास लगी है। चिंता शुरू हो गई। अपनी कमियां खुद ही पूरी करनी हैं। अपने अभाव खुद को ही प्रतीत होने लगे। मां के सुरक्षित जगत से बच्चा अपने असुरक्षित अहंकार में प्रवेश कर गया।

इसलिए हर आदमी रोता हुआ पैदा होता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है। लेकिन हर आदमी रोता हुआ मरता है, यह बहुत आश्चर्यजनक है। क्योंकि अगर जन्म इतना दुखद है तो मृत्यु इससे विपरीत होनी चाहिए। यह तो सीधा तर्क है, साफ गणित है। अगर जन्म इतना दुखद है, अगर अस्तित्व से टूटना और अहंकार बनना और व्यक्ति बनना, इतना पीड़ादायी है कि रोता हुआ जन्म होता है और बच्चे के चेहरे पर चिंताओं की रेखाएं खिंच जाती हैं, फिर खिंचती चली जाती हैं, यह तो समझ में आता है। पश्चिम का मनोविज्ञान इसको ट्रॉमा कहता है। यह एक बात हुई। लेकिन अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इसका दूसरा पहलू नहीं खोज पाया; उसको ख्याल में नहीं है। हम उसको समाधि कहते हैं, हम उसको आनंद कहते हैं, जो मृत्यु के पहले--जैसा जन्म के पहले अलग होने में पीड़ा हुई थी तो मृत्यु में फिर एक हो रही है चेतना, उतना ही आनंद होना चाहिए। अगर उतना आनंद वहां नहीं हो रहा तो आप अधूरे मर गए। आपने जन्म तो लिया, लेकिन मृत्यु का रस न ले पाए। आपको फिर जन्म लेना पड़ेगा। क्योंकि मृत्यु की शिक्षा एकदम जरूरी है--मां के पेट से बाहर आना और फिर गर्भ में प्रकृति के प्रवेश करना।

मृत्यु क्या है? अस्तित्व में वापस डूब जाना; एक परम विश्राम। जहां मुझे श्वास न लेनी होगी, जहां अस्तित्व श्वास लेगा। हवाएं तो न रुक जाएंगी, हवाएं बहती रहेंगी। जीवन तो धड़कता रहेगा, मेरी धड़कन के साथ जीवन की धड़कन न मिट जाएगी। इतना ही होगा कि मेरी जो अलग धड़कन थी वह उस महाधड़कन में लीन हो जाएगी। सब ऐसा ही होगा। जीवन का महाउपक्रम चलता रहेगा, यह महाउत्सव चलता रहेगा, जीवन

नाचता रहेगा। लेकिन मेरे पैर अलग से न नाच सकेंगे। मेरे पैर लीन हो जाएंगे उस महानृत्य में, जो विराट का है।

आपने देखा, हम मूर्तियां बनाते हैं शंकर की, हजारों हाथ से नाचते हुए। आपको ख्याल में नहीं होगा कि क्यों हम ऐसा बनाते हैं। और जब पहली दफा कोई पूरब की कला से परिचित होता है तो उसको लगता है, यह कुछ अजीब सा मामला है; एकदम अयथार्थ है। कहीं ऐसे हजार हाथ होते हैं! ऐसे अनंत हाथ होते हैं कि अनंत हाथों से कोई नाच रहा है! यह प्रतीक इस बात का है कि सभी हाथ इस महानृत्य में लीन होते जाते हैं; सभी हाथ उसी के हैं।

मुझे याद आता है; मैंने एक आयरिश कथा सुनी है। एक बूढ़ी वृद्धा बहुत चिंतित, पीड़ित और दुखी थी। मौत करीब आती थी। बिस्तर पर लग गई थी; बिस्तर से उठना भी मुश्किल था। और आखिरी चिंता जो मन को बहुत काले बादल की तरह घेरे थी, वह यह थी कि उसे लगता था कि उसका संबंध ईश्वर से टूट गया है। कोई संबंध उसे मालूम नहीं होता था, कोई भाव ईश्वर के प्रति बहता नहीं मालूम होता था। और मौत करीब आती थी और ईश्वर से कोई लगाव, कोई सेतु बीच में नहीं रह गया। जीवन ने सब सेतु गिरा दिए।

एक मित्र उसे देखने आया था। तो मित्र ने कहा, तू चिंता मत कर, ईश्वर का भाव आखिरी क्षण तक भी पुनः पाया जा सकता है। क्योंकि वस्तुतः हम उससे कभी टूटते नहीं, ख्याल ही होता है कि टूट गए। क्योंकि टूट जाएं तो हम मिट ही जाएं। तो तू चिंता मत कर, तू आंख बंद कर और प्रार्थना कर। और उससे ही कह कि मैं तो असमर्थ हूं, मेरे हाथ छोटे हैं, तुझ तक कैसे फैलाऊं! लेकिन तेरे हाथ तो अनंत हैं, तेरा हाथ तो विराट है; तू अपने हाथ को फैला और मेरे सिर पर रख।

वृद्धा ने आंख बंद कर लीं; खुशी के आंसू उसकी आंख से बहने लगे; चिंता एक नई पुलक में बदल गई। और उसने प्रार्थना की कि हे परमात्मा, मेरे हाथ छोटे हैं, मैं तुझे खोजूंगी तो भी नहीं खोज पाती; टटोलूं तो भी तुझ तक नहीं पहुंच पाती; तू ही अपने हाथ को बढ़ा। और तब वृद्धा ने अनुभव किया कि उसके सिर पर कोई हाथ आ गया है। आनंद के आंसू बहने लगे। और उसने कहा कि धन्यवाद, मैं तो सोचती थी संबंध टूट गया, लेकिन तेरा हाथ तैयार है सदा मुझ तक पहुंचने को।

फिर उसने आंख खोलीं। आंख खोल कर--थोड़ी सी चिंता उसके चेहरे पर आई--और उसने मित्र से कहा, बात तो बहुत आनंदपूर्ण रही, लेकिन एक शक मुझे पैदा होता है। वह जो हाथ मेरे सिर पर आया, बिल्कुल तुम्हारे हाथ जैसा लगता था। उस मित्र ने कहा, निश्चित ही! कोई परमात्मा आकाश से इतना लंबा हाथ करके तेरे सिर पर रखेगा, ऐसा थोड़े ही; जो हाथ पास में मिल गया, उसका ही उसने उपयोग कर लिया है।

सभी हाथ उसके हैं। इसलिए हमने अनंत हाथों वाले शिव को नृत्य करते दिखाया है। सभी हाथ उसके हैं। वह नृत्य चलता रहता है, शिव का नृत्य चलता रहता है; हमारा नृत्य डूबता जाता है, उसमें लीन होता जाता है।

जो मृत्यु की कला जानता है, लीन होने की कला जानता है, वह जीवन का पूरा अर्थ, जीवन का पूरा स्वाद, जीवन की पूरी शिक्षा ले लिया। अब जीवन में लौटने की उसे जरूरत न रही। अब फिर से बूंद बनने की जरूरत न रही; अब वह सागर के साथ एक हो सकता है। जन्म के समय जिस तरह का झटका लगता है, मृत्यु के समय उसी तरह के आनंद का नृत्य भी होता है। लेकिन वह किसी बुद्ध को, किसी कृष्ण को। हम चूक जाते हैं। हम जन्म के दुख से मुक्त ही नहीं हो पाते और मृत्यु का आनंद ही नहीं ले पाते।

रोते हुए पैदा होना स्वाभाविक है; रोते हुए मरना दुर्घटना है। हंसते हुए मरना स्वाभाविक है; हंसते हुए पैदा होना दुर्घटना होगी। कोई बच्चा पैदा होते से हंस दे तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। बिल्कुल समझ के बाहर हो जाएगा; मां-बाप भी डर जाएंगे। भरोसा भी नहीं आएगा। ठीक वैसी ही दुर्घटना रोते हुए मरना है।

मूल को वापस उपलब्ध कर लेना है। और तब जीवन एक वर्तुल बन जाता है। तब जीवन के सब सुख-दुख, जीवन की सारी यात्रा लीन होती जाती है। सब जरूरी था शिक्षा के लिए। फिर हम मूल पर वापस लौट आते हैं; विराट गर्भ में वापस लौट आते हैं। जगत, अस्तित्व फिर गर्भ बन जाता है; उसमें हम चुपचाप लीन हो जाते हैं। बिना शोरगुल, बिना विरोध, बिना प्रतिरोध, आनंद-भाव से, नाचते हुए, गीत गाते, उसमें सरिता वापस सागर में गिर जाती है।

लाओत्से कहता है, "प्रतिक्रमण ताओ का कर्म है और भद्रता ताओ का व्यवहार।"

स्वभावतः, यह तो अंतरस्थ घटना होगी; प्रतिक्रमण, रिवर्सन, वापस लौटना, यह तो भीतरी घटना होगी। इसका बाहरी परिणाम भद्रता होगी। क्योंकि जो व्यक्ति मूल से मिलने को चल पड़ा उसका व्यवहार भद्र हो जाएगा, शांत हो जाएगा, आनंदपूर्ण हो जाएगा, करुणा और प्रेम से भर जाएगा। उसके व्यवहार से कटुता खो जाएगी। उसके व्यवहार में चोट नहीं रह जाएगी। जैसे-जैसे व्यक्ति अपने भीतर लीन होने लगेगा मूल में, वैसे-वैसे बाहर उसका व्यवहार कटुता खोने लगेगा।

लेकिन इससे उलटा सही नहीं है। आप अपने व्यवहार से कटुता खो सकते हैं, आप अपने व्यवहार को सम्हाल सकते हैं, दमन कर सकते हैं। आप सब भांति से संस्कार ला सकते हैं अपने व्यवहार में, परिष्कार ला सकते हैं, चमक ला सकते हैं; लेकिन वह भद्रता न होगी। वह व्यवहार कामचलाऊ होगा। वह व्यवहार सभ्यता हो सकती है, भद्रता नहीं होगी। भद्रता तो, जब अंतस में लीनता होने लगती है, तब उसका जो सहज परिणाम, सहज छाया पड़ती है व्यवहार पर, वही है। इसलिए बाहर के व्यवहार से भीतर के आदमी को नहीं जाना जा सकता। बाहर के व्यवहार से भीतर की कोई भी खबर नहीं मिलती। क्योंकि बाहर का व्यवहार झूठा हो सकता है।

पश्चिम में व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक हैं। वे कहते हैं, आदमी सिर्फ व्यवहार है, बिहेवियरिस्ट। कहते हैं, भीतर तो कोई आत्मा है नहीं; बस जो व्यवहार है उसी का जोड़ आदमी है। तो हम व्यवहार के अध्ययन से आत्मा को जान सकते हैं। इससे बड़ी कोई भ्रांत धारणा नहीं हो सकती। व्यवहार के अध्ययन से भीतर के आदमी को नहीं जाना जा सकता। क्योंकि हम देखते हैं नाटक में, फिल्म में, कोई आदमी प्रेम का व्यवहार कर रहा है, कोई आदमी क्रोध का व्यवहार कर रहा है। लेकिन भीतर, भीतर न क्रोध है, न भीतर प्रेम है। भीतर वह आदमी अपने घर जाने की सोच रहा है; कब नाटक पूरा हो जाए। और जिस भांति प्रेम उसने नाटक के मंच पर किया है वैसा ही प्रेम वह अपनी प्रेयसी से भी करता हुआ दिखाई पड़ेगा। दोनों व्यवहार में हमें फर्क करना मुश्किल होगा। लेकिन उसके लिए फर्क है। क्योंकि उसकी प्रेयसी के लिए भीतर से कुछ बह रहा है। अभिनय में बाहर से कुछ आरोपित किया जा रहा है।

मैंने सुना है कि एक ईसाई धर्मगुरु अपने दंत-चिकित्सक के पास गया, डेंटिस्ट के पास गया। उसके दांत गिर गए थे बहुत से, और उसने सब दांत साफ करवा कर नए कृत्रिम दांत लगवाने चाहे। दांत उसके अलग कर दिए गए। और कृत्रिम दांत बनने पर उसे बुलाया गया। जैसे ही चिकित्सक ने उसके कृत्रिम दांत उसके मुंह में बिठाए, चिकित्सक एकदम हैरान हुआ। क्योंकि जैसे ही दांत उसके मुंह में बैठे, उसने बड़े जोर से आवाज कीः

क्राइस्ट! जीसस! वह डाक्टर थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि श्रद्धेय, अगर दांत इतना दर्द दे रहे हैं तो मैं उन्हें निकाल कर फिर ठीक करके वापस जमा दूं।

ऐसा सुन कर चिकित्सक से धर्मगुरु और भी ज्यादा चकित हुआ। उसने कहा, क्या कहते हो? दांत तो बिल्कुल ठीक हैं। दांतों में तो जरा भी गड़बड़ नहीं है। लेकिन ये दो प्यारे शब्द, जीसस और क्राइस्ट, वर्षों से मैं कहना चाहता था--बिना सीटी बजाए। दांत टूट गए थे तो जब भी वह जीसस कहता तो सीटी बजती। तो मुझे पीड़ा नहीं हो रही, मैं बड़ा आनंदित हूं कि वर्षों के बाद ये दो प्यारे शब्द मैं बिना सीटी बजाए कह सकता हूं। लेकिन चिकित्सक ने व्यवहार देख कर समझा कि वह महापीड़ा में है।

स्वभावतः कोई भी--क्राइस्ट, जीसस जब उसने कहा होगा--तो कोई भी सोचता कि महापीड़ा उसे हो रही है। व्यवहार भीतर की खबर नहीं देता। व्यवहार से हम अनुमान लगा सकते हैं। और इसलिए चूंकि व्यवहार से अनुमान लगाया जा सकता है, भद्रता की जगह हमने सभ्यता को सीख रखा है। सभ्यता सिर्फ ऊपरी आचरण है।

शब्द बड़ा अच्छा है सभ्यता। सभ्यता का अर्थ इतना ही होता हैः सभा में बैठने की योग्यता। और कोई अर्थ नहीं होता। सभ्य का अर्थ होता हैः सभा में जो बिठाया जा सके; उपद्रव न करे, गड़बड़ न करे, लोगों से ठीक व्यवहार करे। सभ्यता का और कोई मतलब नहीं होता। वह बाह्य व्यवहार है।

लेकिन भद्रता आंतरिक गुण है। सभ्य आदमी भीड़ में सभ्य होता है, एकांत में असभ्य हो जाता है। आप अपनी पत्नी से जैसा व्यवहार करते हैं अकेले में वैसा व्यवहार आप सड़क पर नहीं करते। चार लोगों के सामने आप ऐसे प्रेम से बोलते हैं जिसका हिसाब नहीं; एकांत में दोनों अपनी साफ शक्लों में आ जाते हैं। पति-पत्नी लड़ रहे हैं और एक मेहमान घर में आ जाए, लड़ाई समाप्त हो जाती है और दोनों के चेहरों पर सभ्यता आ जाती है। सभ्यता दूसरे को ध्यान में रख कर है। लेकिन भद्र आदमी एकांत में भी भद्र होता है। अकेला होता है, तब भी भद्र होता है। भद्र आदमी वस्तुओं के साथ भी भद्र होता है; व्यक्तियों का कोई सवाल नहीं है।

रिल्के, कवि रिल्के के बाबत कहा जाता है कि वह अपना जूता भी खोल कर रखता तो ऐसा जैसा किसी व्यक्ति को रख रहा हो; वह अपने कपड़े भी उतारता तो ऐसा धन्यवाद के भाव से कि तुमने मुझे सर्दी में सहायता दी, या धूप में सहायता दी, या वर्षा में सहायता दी, तुम्हारी बड़ी कृपा है। वह अपने वस्त्रों से भी बोलता, अपने जूते से भी बोलता। वह भद्र आदमी था।

भद्रता एकांत में भी होगी, अकेले में भी होगी; वस्तुओं के साथ भी होगी। सभ्यता भीड़ में होगी, बाजार में होगी, दूसरों के साथ होगी। और सशर्त होगी। अगर आप सभ्य हैं तो मैं सभ्य हूं, ऐसी शर्त होगी। लेकिन भद्रता बेशर्त है, अनकंडीशनल है। आप क्या हैं, इससे उसका कोई संबंध नहीं है। मैं भद्र हूं। भद्र होना मेरा गुण है। आप असभ्य भी हों तो भी मैं भद्र होऊंगा।

"भद्रता ताओ का व्यवहार है। संसार की वस्तुएं अस्तित्व से पैदा होती हैं; और अस्तित्व अनस्तित्व से आता है।"

सब शून्य से पैदा होता है और सब शून्य में लीन हो जाता है। जन्म के पहले आप क्या थे? एक शून्य। मृत्यु के बाद आप क्या होंगे? एक शून्य। एक वृक्ष अभी पैदा नहीं हुआ, अभी शून्य में है। फिर आपने बीज बोया और वृक्ष को शून्य से पुकारा। बीज पुकार है शून्य से वृक्ष के लिए--कि परिस्थिति तैयार है, तुम आओ और प्रकट हो जाओ! और वृक्ष प्रकट होना शुरू हो गया। फैलेगा, विराट बनेगा। फिर वृद्ध होगा, गिरेगा, खो जाएगा। फिर शून्य में लीन हो जाएगा। अस्तित्व के दोनों तरफ अनस्तित्व है। अस्तित्व के दोनों तरफ शून्य है। अभिव्यक्ति के

दोनों ओर अनभिव्यक्ति है। प्रलय है सृष्टि के दोनों ओर। जन्म के दोनों ओर मृत्यु है। जीवन दोनों ओर मृत्यु से घिरा है।

इसे ख्याल में ले लें, तो वह जो अस्तित्व के साथ हमारा बड़ा राग पैदा हो जाता है, वह पैदा न हो। क्योंकि तब हम जानें कि अस्तित्व अनस्तित्व से आता है, और अस्तित्व फिर अनस्तित्व में खो जाता है। इसलिए व्यर्थ मोह और राग और बहुत बंधन में पड़ जाने का कोई अर्थ नहीं है। अगर पड़ना भी हो तो नाटक से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है; अभिनय से ज्यादा परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसा बोध आ जाए तो सब समान हो जाता है। तब हम जानते हैं कि जो है वह कल नहीं था और कल फिर नहीं हो जाएगा। इसलिए आज जब है तब हम बहुत पागल न हो जाएं। और हम इतने पागल न हो जाएं कि कल जब वह नहीं होने लगे तो हमें पीड़ा हो।

आज आपका किसी से प्रेम हो गया। लेकिन कल तक यह शून्य था, कल तक इस प्रेम का कोई पता न था। आज अचानक प्रेम निर्मित हो गया; एक मैत्री बनी। लेकिन जानें कि कल यह शून्य थी और कल फिर शून्य हो जाएगी। सभी चीजें जहां से आती हैं वहीं लौट जाती हैं। तो इस प्रेम के लिए इतने पागल न हो जाएं कि कल जब यह शून्य होने लगे तो आप छोड़ न पाएं। आज एक बच्चा आपके घर में पैदा हुआ; कल यह मरेगा। क्योंकि जन्म मृत्यु को अपने भीतर लिए है। तो आप इससे इतने ज्यादा मोहग्रस्त न हो जाएं कि कल जब यह विदा होने लगे, या विदा का क्षण आ जाए, तो आप छोड़ न पाएं। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप आनंदित न हों। इसके होने में आनंदित हों, लेकिन इसके होने के भीतर न होना छिपा है, इसे स्मरण रखें। और जब यह न होने लगे तब इसको सहज स्वीकार कर लें, जैसा इसके होने को स्वीकार किया था। जो व्यक्ति ऐसी अवस्था को उपलब्ध हो जाए, उसे उपनिषदों ने साक्षी कहा है; जो अस्तित्व में अनस्तित्व को देखता रहे, जो प्रकट में अप्रकट को देखता रहे, जो होने में न होने को देखता रहे। दोनों फिर शांत हो जाते हैं। फिर कोई पकड़, कोई बंधन पैदा नहीं होता, फिर कोई कर्म ग्रसता नहीं और कोई नियति निर्मित नहीं होती। जैसे ही कोई व्यक्ति दोनों को देख लेता है एक साथ, अस्तित्व-अनस्तित्व को, मुक्त हो जाता है।

"संसार की वस्तुएं अस्तित्व से पैदा होती हैं; और अस्तित्व अनस्तित्व से आता है। जब श्रेष्ठ प्रकार के लोग इस तरह के सत्य को सुनते हैं... ।"

यह बहुत महत्वपूर्ण है वचन।

"जब श्रेष्ठ प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं... ।"

इस तरह के वचन को सुनते हैं कि प्रतिक्रमण ताओ का धर्म है, कि भद्रता ताओ का व्यवहार है, कि संसार की वस्तुएं अस्तित्व से पैदा होती हैं और अस्तित्व स्वयं अनस्तित्व से आता है, और सभी चीजें वहीं लौट जाती हैं जहां से जन्म पाती हैं, जब इस तरह के सत्य को सर्वश्रेष्ठ प्रकार के लोग सुनते हैं।

"... तब वे उसके अनुसार जीने की अथक चेष्टा करते हैं।"

जब भी कोई चेतनावान व्यक्ति को ऐसे सत्य चोट करते हैं उसके हृदय में तो वह इन्हें सुनता ही नहीं, वह इन्हें जीने के प्रयास में लग जाता है। श्रेष्ठता इसी से निर्धारित होती है कि सुन कर क्या वह अथक चेष्टा में लग जाता है कि इन सत्यों को जीए भी! क्योंकि जो सत्य जीने का आकर्षण न दे, उसे आप कितना ही सत्य कहें, आपने सत्य माना नहीं। जिस सत्य के अनुसार चलने की आकांक्षा पैदा न हो, अभीप्सा पैदा न हो, और जिस सत्य को जीवन में वास्तविक कर लेने का स्वप्न न जगे, आप कितना ही कहें कि यह सत्य है, आप उसे सत्य

मानते नहीं। क्योंकि सत्य को सत्य की तरह मानने का अर्थ ही यह है कि उसी क्षण आपका जीवन उसके पीछे चलना शुरू हो जाएगा।

अगर आप कहते हैं कि नहीं, यह सत्य है, और चलते आप वैसे ही जाते हैं जैसा इस सत्य को जानने के पहले चलते थे, तो आप सिर्फ धोखा दे रहे हैं। आप बेईमान हैं। आप यह भी सत्य नहीं कहना चाहते कि आपको यह बात सत्य नहीं मालूम पड़ती है। वह आदमी ज्यादा धार्मिक है जो जिस तरह जीता है, कहता है, यही सत्य है। वह आदमी ज्यादा अधार्मिक है जो जीता एक तरह है और सत्य कुछ और बताता है; और कहता है कि सत्य तो वही है, लेकिन मैं अभी उस पर चल नहीं पाता।

जो सत्य मालूम होगा, उस पर चलना ही होगा; चलना अनिवार्यता है। यह कैसे हो सकता है कि मुझे दिखाई पड़ता हो कि दरवाजा यहां है और फिर भी मैं दीवार से निकलने की कोशिश करता रहूं! और कहता रहूं कि जानता हूं, दरवाजा तो वहां है, लेकिन क्या करूं, मैं यहीं से निकलना चाहता हूं! जैसे ही मुझे दिखाई पड़ गया कि यह दीवार है, निकलने का प्रयास बंद हो जाएगा। और जैसे ही मुझे दिखाई पड़ गया कि वह दरवाजा है, मेरे पैर उस तरफ उठने शुरू हो जाएंगे। आपके पैरों का उठना ही दरवाजे की तरफ बताएगा कि आपको दरवाजा दिखाई पड़ा है। और कोई प्रमाण नहीं है।

तो लाओत्से कहता है, "जब सर्वश्रेष्ठ प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं, तब वे उसके अनुसार जीने की अथक चेष्टा करते हैं।"

अथक! क्योंकि हममें से बहुत से चेष्टा भी करते हैं, लेकिन बड़े जल्दी थक जाते हैं। करते भी नहीं हैं, दो कदम भी नहीं चलते, और कहते हैं कि लंबी यात्रा है; वह अपनी दीवार से ही निकलना ठीक है, पास है। लेकिन कितने ही दूर हो दरवाजा, दरवाजे से ही निकला जा सकता है। और दीवार कितने ही पास हो तो भी उससे निकला नहीं जा सकता। और अगर आप निकल सकते होते तो कभी के निकल गए होते; पूरा जीवन आप उसी दीवार से निकलने की कोशिश करते रहे हैं। फिर-फिर वही कोशिश करते हैं, फिर-फिर भूल जाते हैं कि यहां से निकलने का उपाय नहीं है। फिर टकराते हैं, सिर में चोट लगती है। और जब स्वस्थ हो जाते हैं तो फिर उसी दीवार से निकलने की कोशिश करते हैं। स्वास्थ्य का उपाय इसीलिए करते हैं, ताकि और ताकत से उसी दीवार से निकलने की कोशिश करें। दरवाजा कितना ही दूर हो, दरवाजा ही दरवाजा है। दीवार कितनी ही पास हो तो भी दीवार है।

अथक चेष्टा का अर्थ यह है कि बहुत बार शरीर कहेगा, थकान आती है। बहुत बार मन कहेगा, कहां की उलझन में पड़े हो! वहीं ठीक थे; कुछ चलना-फिरना तो नहीं पड़ता था। दीवार पास थी, उसी से टकराते रहते थे। और आशा थी, कभी न कभी निकल जाएंगे। लौट चलो! मन बहुत बार कहेगा, सत्य से वापस लौट चलो। क्योंकि असत्य सुगम मालूम पड़ता है। सुगम है नहीं, सिर्फ आदत के कारण सुगम मालूम पड़ता है--पुरानी आदत के कारण। एडिक्शन है, उसमें उलझे हैं। और इतने आदी हो गए हैं कि पता है इससे निकल नहीं सकते।

कल भी क्रोध किया था आपने, परसों भी क्रोध किया था, आज भी क्रोध किया है। और क्रोध कर-कर के देख लिया है कि क्रोध से कोई निकलने का उपाय नहीं है, कहीं जाना नहीं होता, फिर वापस वहीं खड़े हो जाते हैं। फिर भी कल क्रोध करेंगे। और कितनी बार तय कर लिया कि क्रोध व्यर्थ है, फिर भी क्रोध करेंगे। क्रोध की आदत हो गई है। वह सुगम मालूम पड़ता है। पता ही नहीं चलता कब आ जाता है। उसे लाने के लिए चेष्टा नहीं करनी पड़ती, इसलिए सुगम मालूम पड़ता है। शांत होने के लिए चेष्टा करनी पड़ती है, इसलिए दुर्गम मालूम पड़ता है। जीवन की साधना इतनी दुर्गम मालूम पड़ती है कि हमने नाम तक--आपने सुना है--हमने, काली के

भक्तों ने काली को एक नाम दे रखा हैः दुर्गा। दुर्गा का मतलब है दुर्गम; जिसको पाया नहीं जा सकता। फिर भी पूजे जा रहे हैं और दुर्गा कहे जा रहे हैं, कि आशा नहीं है कि मिलना हो सके।

निश्चित ही दुर्गम है। लेकिन दुर्गम सत्य नहीं है; हमारी आदतें गलत के लिए सुगम हो गई हैं। सत्य भी अथक चेष्टा करने से इतना ही सुगम हो जाएगा; इससे भी ज्यादा सुगम हो जाएगा। एक बार शांत होने की कला आ जाए तो क्रोध दुर्गा, दुर्गम मालूम पड़ेगा; क्रोध बहुत मुश्किल हो जाएगा। बुद्ध से कहो कि थोड़ा क्रोध करो! तो अगर बुद्ध क्रोध करें तो बड़ा ही कष्टपूर्ण होगा। इतनी मुसीबत होगी जितनी मुसीबत आपको शांत होने में होने वाली नहीं है। क्योंकि शांत होना तो आनंदपूर्ण है; और क्रोध करना दुखपूर्ण है। जब आपको आनंद की तरफ जाना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, तो थोड़ा सोचें, बुद्ध को दुख की तरफ आना कितना कष्टपूर्ण मालूम पड़ेगा! आपके सामने अमृत रखा है और आप कहते हैं, पीना बहुत मुश्किल है। और बुद्ध के सामने आप जहर रख रहे हैं कि इसको पीओ। तो हम समझ सकते हैं कि जो व्यक्ति एक बार शांति के, आनंद के रस को ले लेगा, उसके लिए क्रोध और कठोरता बहुत दुर्गम हो जाएंगी। असंभव कहना चाहिए। आपके लिए सुगम मालूम पड़ती हैं, क्योंकि एक आदत है, लंबी आदत है। और आप करीब-करीब यांत्रिक, मशीन की तरह किए चले जाते हैं।

"जब सर्वश्रेष्ठ प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं, सत्य को सुनते हैं, तब वे उसके अनुसार जीने की अथक चेष्टा करते हैं।"

आपके भीतर सर्वश्रेष्ठ का जन्म भी तभी होगा जब सत्य को जीने की अथक चेष्टा करें। मिट जाएं, टूट जाएं, लेकिन वापस न लौटें; जो ठीक दिखाई पड़ रहा है उसका अनुगमन करें। हां, दिखाई ही न पड़ रहा हो तब बात अलग। लेकिन दिखाई पड़े तो अनुगमन करें, उसके पीछे चलें, और कितना ही मूल्य चुकाना पड़े चुकाएं। क्योंकि कोई भी मूल्य उसका मूल्य नहीं है। और जिस दिन आपको उपलब्धि होगी उस दिन आप पाएंगे कि जो मैंने दिया वह कुछ भी नहीं था; मैंने सिर्फ कचरा दिया और हीरे पाए।

लेकिन अभी कचरे पर मुट्ठी बंधी है, और अभी कचरे में संपत्ति मालूम पड़ती है। उसे छोड़ने में डर लगता है। हीरा दूर है। और पता नहीं, इंद्रधनुष सिद्ध हो, पास जाएं और न मिले, और शर्त यह है कि इस कचरे को छोड़ें तो ही उसके पास पहुंच सकते हैं। तो बुद्धिमान हमारे बीच जो हैं वे कहते हैं, हाथ की आधी रोटी दूर की पूरी रोटी से ठीक है। वे बुद्धिमान जो हैं वे कहते हैं, हाथ की आधी रोटी दूर की पूरी रोटी से ठीक है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, हाथ में आधी रोटी है ही नहीं, सिर्फ वहम है, सिर्फ ख्याल है कि कुछ है। इस कुछ को गौर से देखें तो पाएंगे कुछ भी नहीं है। और इसे छोड़ना ही पड़े, असार को छोड़ना ही पड़े सार की यात्रा पर, असत्य को हटाना ही पड़े सत्य की तरफ बढ़ने के लिए।

"जब मध्यम प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं, तब वे उसे जानते से भी लगते हैं और नहीं जानते से भी।"

आप में से अधिक की हालत ऐसी होती होगी कि लगता है समझे भी, और लगता है कहां समझे! बीच में अटक जाते हैं। मध्यम प्रकार के लोग सदा ही मध्य में अटक जाते हैं। उनको दोनों बातें मालूम पड़ती हैं। उनकी हालत बड़ी बुरी हो जाती है। उनकी हालत ऐसी हो जाती है कि आपने उस प्राचीन गधे की हालत सुनी होगी, जो दो घास के ढेरों के बीच में खड़ा था, बिल्कुल मध्य में खड़ा था, और यह तय नहीं कर पाता था कि इस तरफ जाऊं कि इस तरफ जाऊं। भूख गहन थी, मगर दोनों ढेरियां बिल्कुल एक बराबर दूरी पर थीं। एक क्षण इस ढेरी की तरफ झुकने को होता था कि मन कहता था कि उधर क्या, इस तरफ ज्यादा ठीक होगा। कहते हैं, वह पौराणिक गधा बीच में ही खड़ा-खड़ा मर गया। भूख जान ले ली। ढेरी पास थीं, भोजन दूर नहीं था; लेकिन गधे की मध्यम वृत्ति जानलेवा हो गई।

हममें से अधिक लोग मध्य से उलझ जाते हैं। ठीक भी लगता है कि ठीक है, बात तो ठीक है; और फिर हम पच्चीस और कारण भी खोज लेते हैं जिनसे लगता हैः होगी ठीक, लेकिन अपने लिए नहीं।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आपकी बात तो ठीक लगती है, लेकिन... ।

मैं कहता हूं, फिर लेकिन मत उठाओ। या तो कहो, आपकी बात ठीक नहीं लगती, तो कोई रास्ता बने, तो मैं आपको समझाऊं। तो समझाने का भी उपाय आपने समाप्त कर दिया। कहते हैं, बात ठीक लगती है; अब समझाने को कुछ बचा नहीं। और फिर कहते हैं लेकिन। तो फिर लेकिन मत कहो। वह लेकिन हमारे साथ अटका हुआ है। वह लेकिन हमारे प्राण में तीर की तरह छिदा है। उसकी वजह से हम हिल नहीं पाते। या तो किसी चीज को साफ-साफ समझना कि गलत है, तो उससे छुटकारा हो गया। या साफ-साफ समझ लेना कि ठीक है, तो उसमें छुटकारा हो जाए। लेकिन हम दोनों के बीच में खड़े हैं। वर्षों तक लोग सुनते रहते हैं; धीरे-धीरे सुनने के आदी हो जाते हैं। उनको वहम होने लगता है, समझते भी हैं; और जीवन में कहीं कोई क्रांति नहीं होती।

लाओत्से कहता है, जब मध्यम प्रकार के लोग सत्य को सुनते हैं तो वे उसे जानते से भी लगते हैं और नहीं जानते से भी। जैसे अर्ध-निद्रा और अर्ध-जाग्रत; जैसे करवट बदली है नींद में, थोड़ा सा होश आता है और फिर करवट बदल कर आदमी सो जाता है। करवट आदमी बदलता ही सोने के लिए है। वह जो बीच में थोड़ा सा होश आता है वह अड़चन की वजह से आता है। शरीर को अड़चन होती है करवट बदलने में, नींद थोड़ी सी टूटती लगती है, और फिर गहरी नींद लग जाती है। और हमारे भीतर मन की संभावना है कि हम सपने में भी सपना देख सकते हैं कि हम जाग गए। आपने सबने ऐसे सपने देखे होंगे जिनमें आप सपने में देख रहे हैं कि आप जाग गए। सपने के भीतर भी सपना देखा जा सकता है। और जो बहुत कल्पनाशील हैं वे तो सपने के भीतर सपना, सपने के भीतर सपना, सपने के भीतर सपना देख सकते हैं। वे तो देख सकते हैं सपने में कि बिस्तर पर जा रहे हैं सोने के लिए, सो गए, नींद लग गई--सपने में। अब नींद में सपना देख रहे हैं कि बिस्तर पर सोने को जा रहे हैं। ऐसा वह तो डब्बे के भीतर डब्बा, उसके भीतर डब्बा, ऐसा कर सकते हैं। हममें से बहुत से लोग इसी तरह कर रहे हैं। लगता है, जाग गए हैं। सो रहे हैं। तो एक अर्ध-निद्रा, अर्ध-जाग्रत की अवस्था बन जाती है।

इसे तोड़ना जरूरी है। या तो ठीक से सो ही जाएं; तो कम से कम यह बेचैनी मिटे। धर्म को भूलें, सत्य को भूलें, यह परमात्मा की, परलोक की बातें, इनको भूलें। ठीक से सो जाएं संसार में। तो कम से कम दुकान तो ठीक से चले, जगत तो ठीक से चले। लेकिन इनकी वजह से वह भी चल नहीं पाता। बैठे दुकान पर हैं और माला हाथ में भी है। अब वह माला दुकान में भी बाधा डालती है और दुकान माला में बाधा डालती है। कुछ भी ठीक से नहीं चल पाता, सब गड़बड़ हो जाता है। जैसे एक आदमी ने अपनी बैलगाड़ी में सब तरफ बैल बांध लिए हों; पूरब भी बैल जा रहे, पश्चिम भी बैल जा रहे, दक्षिण भी, उत्तर भी। और बैलगाड़ी मरी जा रही है; उसके अस्थिपंजर ढीले हुए जा रहे हैं। क्योंकि कहीं जाना नहीं हो सकता है। एक ही यात्रा हो सकती है।

बहुत स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि अगर कोई चीज सत्य लगती हो तो आप खतरे में उतर रहे हैं। इसको कहने के पहले कि मैं समझ गया तीन बार सोच लेना चाहिए कि मैं समझ गया? अगर नहीं समझा हूं तो बेहतर है यह समझना कि अभी नहीं समझा हूं। तो आप साफ होंगे, एक क्लैरिटी होगी; जीवन में एक व्यवस्था होगी। अगर समझ गए हैं तो साफ समझ लें कि समझ गया हूं। तो भी जीवन में एक गति होगी, विकास होगा। लेकिन मध्य में खड़े रहना बहुत खतरनाक है।

"और जब निकृष्ट प्रकार के लोग ताओ को सुनते हैं, तब वे अट्टहास कर उठते हैं--मानो इस पर हंसा न जाए तो यह ताओ ही नहीं है।"

निकृष्ट प्रकार के लोग जब सत्य की बातें सुनते हैं तो निश्चित ही हंसते हैं। वे समझते हैं, पागलपन की बातें हैं! दिमाग खराब हो गया। कहीं ऐसा भी हुआ है? कि हो सकता है?

पर उनका हंसना भी एक सुरक्षा का उपाय है। इसे ध्यान रखना कि हम कितने कुशल हैं; कई तरह की सुरक्षाएं करते हैं। सत्य की बात सुन कर जब कोई आदमी हंस उठता है और कहता है, पागलपन है! तो वह सुरक्षा कर रहा है अपने चारों तरफ। हंस कर वह बात को ठेल रहा है। हंस कर वह यह कह रहा है कि ध्यान देने की जरूरत नहीं, हंसी-मजाक की बात है, गंभीर होने की कोई आवश्यकता नहीं। हंस कर वह यह कह रहा है कि मुझसे कुछ लेना-देना नहीं; हम इस रास्ते पर जाने वाले नहीं हैं। इसलिए वह कह रहा है, पागलों की बात है।

इसलिए हमने संतों को अक्सर पागल करार दे दिया। पागल करार देकर हम सुरक्षित हो गए। हमने अपने को मान लिया, हम बुद्धिमान हैं; ये तो पागल हैं, इनकी बात में मत पड़ो। आदमी अच्छे हैं, कभी जरूरत हो तो पैर पर दो फूल रख आओ और झंझट से दूर रहो। और ठीक हो भी सकते हैं, लेकिन अपने काम के नहीं। या अभी अपना समय नहीं आया; जब आएगा तब देखेंगे। अभी तो जीवन है, जीवन का राग-रंग है। हम बहुत तरह की सुरक्षाएं करते हैं।

प्रथम कोटि का मनुष्य सत्य को देख कर उसकी तरफ चलना शुरू करता है। मध्यम कोटि का मनुष्य अटका रह जाता है। सत्य उसे दिखाई पड़ता सा मालूम पड़ता है, धुंधला, नहीं भी दिखाई पड़ता है; कभी लगता है दिखा, कभी लगता है नहीं दिखा। लोग मुझसे कहते हैं कि जब हम पाटकर हाल के भीतर होते हैं तब बिल्कुल साफ दिखाई पड़ता है; और जैसे ही पाटकर हाल की सीढ़ियों से नीचे उतर कर आपको विदा कर देते हैं, सब धुंधला हो जाता है। घर लौट कर लगता है, कुछ भी नहीं लगता कि क्या ठीक था, क्या गलत था।

तीसरी कोटि के आदमी हंस कर टाल देते हैं। लाओत्से बहुत बढ़िया बात कहता है। वह कहता है, व्हेन दि लोएस्ट टाइप हियर दि ताओ, दे ब्रेक इनटु लाउड लाफ्टर; इफ इट वर नाट लाफ्ड एट, इट वुड नॉट बी ताओ। अगर तीसरी कोटि के मनुष्य सत्य को सुन कर न हंसें तो वह सत्य ही नहीं है। तीसरी कोटि का मनुष्य तो उसी तरह हंसेगा सत्य को सुन कर, जैसा प्रथम कोटि का मनुष्य चलता है सत्य को सुन कर उसके पीछे। अगर प्रथम कोटि का मनुष्य चले न तो समझना वह सत्य नहीं, और अगर तृतीय कोटि का मनुष्य हंसे न तो समझना कि वह सत्य नहीं। हंसेगा ही। क्योंकि उसका वही उपाय है। उस भांति वह झाड़ रहा है अपने को। वह कह रहा है, हमसे कुछ लेना-देना नहीं। ज्यादा से ज्यादा हम हंस सकते हैं; इससे ज्यादा हमसे कुछ आशा मत रखो। और हंस कर वह अपने को बुद्धिमान मान रहा है।

यह जरा मजे की बात है। प्रथम कोटि का मनुष्य जब सुनता है तो वह समझ लेता है कि मैं अभी तक बुद्धिमान नहीं था, इसलिए चलता है, अपने को बदलता है; ताकि बुद्धिमत्ता उपलब्ध हो सके। तृतीय कोटि का मनुष्य सुन कर हंसता है, क्योंकि वह अपने को बुद्धिमान मानता ही है। तुम पागल हो, इसलिए ऐसी बात कर रहे हो। अज्ञानी अपने को ज्ञानी मान कर खड़ा रहता है। वही उसके लिए बाधा हो जाती है। ज्ञानी अपना अज्ञान स्वीकार कर लेता है और यात्रा पर निकल जाता है। वही उसकी मुक्ति हो जाती है।

"इसलिए यह प्रसिद्ध कहावत है कि जो ताओ को समझता है, उसकी बुद्धि मंद मालूम पड़ती है।"

तीसरी कोटि के मनुष्यों ने कहावतें बनाई हैं। वे ही बड़ी संख्या में हैं, उनका ही समाज है; उनकी बड़ी ताकत है। और उनकी ताकत रोज-रोज बढ़ती चली गई है। और जिस दिन लोकतंत्र पूरा होगा इस जगत में उस दिन उनकी ही ताकत एकमात्र ताकत बच रहेगी। आज रूस में संत होना मुश्किल है। असंभव है। और संत भी होना हो तो कोई चोरी से ही हो सकता है, छिप कर ही हो सकता है। किसी को पता भी नहीं पड़ना चाहिए।

क्योंकि रूस पूरा का पूरा मुल्क तीसरी कोटि के आदमियों के हाथ में पड़ गया है। जो तृतीय कोटि की बुद्धि का, निकृष्ट बुद्धि का मनुष्य था, जिसको हम शूद्र कहते थे, उस शूद्र के हाथ में ताकत है पूरी। सारी दुनिया में उसके हाथ में ताकत बढ़ रही है। सारी दुनिया में उसके हाथ में ताकत बढ़ रही है; क्योंकि उसको आंकड़े का पता चल गया। उसको अब तक पता नहीं था कि संख्या में ताकत है। अब तक सब तरह की ताकत थी; इस बार पहली दफा दुनिया में संख्या की ताकत, दि पावर ऑफ नंबर्स, पहली दफा आया।

वह तो एक स्कूल की क्लास में भी जो प्रथम है वह एक है; जो द्वितीय कोटि के हैं वे दो-चार हैं; जो तृतीय कोटि के हैं वे बड़ी संख्या में हैं, वे चालीस हैं, पचास हैं। वह तो उनको अभी पता नहीं है कि क्लास में भी यह नंबर एक जिसको गोल्ड मेडल मिलता है, यह भी शोषण कर रहा है। क्योंकि वे पचास खड़े होकर कह सकते हैं कि हम पचास हैं। अभी उन तीसरी कोटि के लड़कों को क्लास में पता नहीं है कि संख्या की भी ताकत है। पर उनको भी धीरे-धीरे पता चल रहा है; वे सब जगह उपद्रव कर रहे हैं। ये जो सारी दुनिया के विश्वविद्यालयों में उपद्रव हो रहे हैं, वह तीसरी कोटि की बुद्धि का लड़का कर रहा है। जो गोल्ड मेडल नहीं पा सकता, जो प्रथम नहीं आ सकता, जिसके पास कोई प्रतिभा नहीं है, वह सारे उपद्रव कर रहा है। तो वह दूसरे को प्रथम नहीं आने देगा; तो वह दूसरे को गोल्ड मेडल नहीं मिलने देगा। वह परीक्षा ही नहीं होने देगा। उसकी चेष्टा यह है कि परीक्षा के बिना ही उत्तीर्ण होना चाहिए। और अगर लोकतंत्र जीतेगा तो वह जीतने वाला है। परीक्षा की क्या जरूरत है? जब ज्यादा लोग चाहते हैं कि परीक्षा नहीं होनी चाहिए। तो अल्पमत को बहुमत पर अपना विचार थोपने की कौन सी सामर्थ्य है? वह बहुमत बगावत कर रहा है; वह कह रहा है, बिना परीक्षा के। क्योंकि वह बिना परीक्षा के ही बहुमत उत्तीर्ण हो सकता है। परीक्षा हटनी चाहिए, क्योंकि परीक्षा से कोटियां निर्मित होती हैं। और परीक्षा से ब्राह्मण निर्मित होते हैं। क्योंकि वे जो प्रथम आ जाते हैं वे ब्राहूमण हो जाते हैं; जो छूट जाते हैं वे शूद्र हो जाते हैं।

रूस में संत होना असंभव हो गया है। संतत्व एक तरह की अयोग्यता है। अयोग्यता ही नहीं, एक तरह का अपराध है। क्या कर रहे हो मौन में बैठ कर? श्रम करो! ध्यान से क्या होगा? ध्यान विलास है। बुर्जुआ धारणा है। श्रम! कुछ पैदा करो! ऐसा खाली आंख बंद करने से क्या होगा? यह आलस्य है। समाधि में लीन भी हो गए तो क्या फायदा, जब तक समाज को फायदा न मिले? तुम्हें अगर आनंद भी मिल गया तो वह आनंद एक स्वप्न है। उसको साकार करो समाज के लिए। फैक्ट्री चलाओ, बड़े मकान बनाओ, बड़े यंत्र खोजो, जिससे लोगों को लाभ हो। तुम्हारे लाभ का कोई सवाल नहीं है। तुम सिर्फ एक आंकड़े हो, तुम सिर्फ एक इकाई हो। और तुम्हारी इकाई रिप्लेस की जा सकती है। तुम नहीं रहोगे, दूसरा यंत्र चलाएगा। लेकिन ये ध्यान और समाधि खतरनाक हैं; इनसे निजता पैदा होती है, इनसे व्यक्ति पैदा होता है।

आप बुद्ध को रिप्लेस नहीं कर सकते; एक इंजीनियर को रिप्लेस कर सकते हैं, एक डाक्टर को रिप्लेस कर सकते हैं। दूसरा डाक्टर आपरेशन करेगा, तीसरा डाक्टर आपरेशन करेगा, चौथा डाक्टर आपरेशन करेगा। लेकिन बुद्ध को आप कैसे स्थानांतरित कर सकते हैं? दूसरे को कैसे बिठा सकते हैं? बुद्ध की जगह खाली होगी तो खाली रहेगी। सदियां बीत जाएंगी; उस जगह बैठना मुश्किल होगा। क्योंकि निजता की गहराई इतनी आसान नहीं है भर देना।

तो रूस में संतत्व एक अयोग्यता है, एक अपराध है। और अगर कम्युनिस्टों ने कभी दुनिया का इतिहास लिखा तो वे बुद्ध को, महावीर को, जीसस को अपराधी घोषित करेंगे। क्योंकि इन लोगों ने लोगों की दृष्टि समाज से मोड़ी, लोक-कल्याण से मोड़ी। और इन लोगों ने लोगों को एक गलत बात सिखाई कि आंख बंद करो

और अपने में डूबो--जो कि व्यर्थ है, जो कि एक तरह की निद्रा है, जो कि इस व्यक्ति की शक्ति और सामर्थ्य का उपयोग न हो पाए, इसका उपाय है। इन लोगों ने लोगों को गलत रास्ते पर लगाया।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप लोगों को ध्यान करने को कहते हैं, समाधि सिखाते हैं, और लोग भूखे मर रहे हैं। और फलानी जगह अकाल पड़ा हुआ है। और फलानी जगह आदिवासियों को शिक्षा देने की जरूरत है। वहां भेजिए। बैठने से क्या होगा? ध्यान से क्या होगा?

मैं उनको कहता हूं कि अगर इनके पास ध्यान नहीं है तो ये वहां जाकर भी क्या करेंगे? अगर बिना ध्यान के इनको भेज दिया अकाल में सेवा करने के लिए तो ये वहां से रुपया बना कर वापस लौट आएंगे। जो रोटी मिलनी चाहिए थी उसमें ये बीच के मध्यस्थ हो जाएंगे। चार रोटी भेजी जाएंगी तो एक पहुंच जाए अकाल भूखे आदमी तक तो बहुत है। क्योंकि ये बीच के मध्यस्थ, तीन रोटी इनको भी चाहिए।

मगर हमारी--सारे जगत में--तीसरी कोटि का आदमी, वह जो शूद्र है... । शूद्र कोई जन्म से नहीं होता। कोई शूद्र के घर में पैदा होने से शूद्र नहीं होता। तीसरी कोटि के आदमी को मैं शूद्र कहता हूं। कोई ब्राह्मण जन्म से नहीं होता। बुद्ध ने कहा है, जन्म से ब्राह्मण होने का क्या संबंध, ब्राह्मण बनना होता है। बुद्ध ने कहा है, सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं, उनमें से कुछ ब्राह्मण बन जाते हैं; बाकी शूद्र रह जाते हैं।

यह जो तीसरी कोटि का मनुष्य है उसने कहावतें प्रसिद्ध कर रखी हैं। क्योंकि वह भी अपनी सुरक्षा करता है। वह भी हंसता है, वह भी व्यंग्य करता है, वह भी ताने कसता है। उसने कहावत बना रखी है कि जो ताओ को समझता है, उसकी बुद्धि मंद मालूम पड़ती है; बुद्धिमान आदमी इस तरफ नहीं जाते। इस तरफ तो वे ही लोग जाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं है। इस भांति वह अपने को बुद्धिमान समझ सकता है।

जीसस पर किताबें लिखी जाती हैं, जिनमें सिद्ध किया जाता है कि जीसस रुग्ण थे, मानसिक रूप से बीमार थे; जीसस स्वस्थ नहीं थे। हजार तरह की बातें लिखी जाती हैं। यह तीसरी कोटि का मनुष्य सब तरह के तर्क खोजता है कि जीसस गलत थे। तो फिर पीछे जाने की कोई जरूरत नहीं रह गई। जीसस को गलत सिद्ध करने से हमारा छुटकारा हो जाता है। एक बोझ, एक चुनौती मिट जाती है। फिर हम अपने रास्ते पर सुगमता से चल पाते हैं।

अभी हिंदुस्तान के तीसरी कोटि के आदमियों में इतनी हिम्मत नहीं आई, लेकिन जल्दी आ जाएगी। बढ़ती जा रही है उनकी हिम्मत। जल्दी ही वे लिखेंगे कि महावीर रुग्ण थे, पैथालाजिकल थे, न्यूरोटिक थे; इनके दिमाग में कुछ गड़बड़ थी। और कारण बराबर खोजे जा सकते हैं, क्योंकि परम संतों के जीवन में कुछ ऐसी बातें मिल जाती हैं जो परम पागलों के जीवन में होती हैं। और मिल जाने का कारण है, क्योंकि पागल भी समाज से बाहर गिर जाते हैं और संत भी समाज के बाहर उठ जाते हैं। यह बाहर उठ जाना समाज से दोनों का समान होता है। इसलिए उनमें बातें मिल जाती हैं।

महावीर अपने बाल लोंचते थे, उखाड़ देते थे। क्योंकि महावीर कहते थे, किसी यंत्र का, किसी साधन का उपयोग नहीं करना; जितना स्वावलंबन हो सके उतना हितकर है। जो मैं कर सकूं, वह काम दूसरे से नहीं लेना। यह उनकी परम निष्ठा थी और बड़ी मूल्यवान थी कि जो मैं कर सकूं वह दूसरे से क्यों लेना! और सभी कुछ मैं कर सकता हूं तो सभी कुछ मैं कर लूंगा। क्योंकि वही मेरी स्वतंत्रता होगी। मैं दूसरे पर निर्भर हूं तो गुलाम हो जाता हूं। तो महावीर अपने बाल अपने हाथ से, जब बढ़ जाते, तो खींच कर निकाल देते थे। पागलों का एक वर्ग होता है जो अपने बाल लोंचता है। आपको भी जब कभी क्रोध आता है या गुस्सा, तो बाल लोंचने का मन होता

है। ख्याल किया? स्त्रियां तो अक्सर जब बहुत ज्यादा देवी रूप में आ जाती हैं तो बाल, अपने बाल खींचने लगती हैं। पागलपन में कुछ बाल खींचने का अर्थ मालूम पड़ता है। कारण? अपने को नुकसान पहुंचाना।

अपने को नुकसान पहुंचाना, असल में, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का ही ढंग है। स्त्रैण ढंग है। पुरुष तो आक्रामक है; अगर वह किसी से क्रोध में आ जाए तो वह हमला करेगा। स्त्री अगर क्रोध में आ जाए तो वह खुद को पीटेगी। ये उन दोनों के मनोविज्ञान के फर्क हैं। स्त्री अपने को पीट रही है उसका यह मतलब नहीं कि वह अपने को पीट रही है; वह आपको ही पीट रही है। उसका आक्रमण ज्यादा जटिल है। अगर किसी स्त्री का बच्चा किसी के घर नुकसान पहुंचा आए, और आप शिकायत करने जाएं, वह अपने बेटे की पिटाई शुरू कर देगी। लेकिन आप यह मत समझना कि वह उसको पीट रही है; वह आपको पीट रही है। स्त्री का ढंग है, दूसरे को चोट पहुंचाना हो तो खुद को चोट पहुंचाना।

बहुत सी स्त्रियां आत्महत्या कर लेती हैं, सिर्फ इसी सुख में--कि मैं मर जाऊं तब तुम्हें पता चलेगा, तब भोगोगे, तब मेरी कमी... । आत्महत्या करने से कोई मतलब नहीं है। पति की हत्या नहीं कर सकतीं। वह स्त्रैण भाव नहीं है। आक्रामक हिंसा नहीं है; हिंसा पैसिव है, निष्क्रिय है। तो वह खुद मर जाएगी, पर इसी आशा में। अगर उसको पक्का हो जाए कि इसको कोई दुख होने वाला नहीं तो स्त्री आत्महत्या करेगी ही नहीं। लेकिन पति को कुछ पता नहीं है, वह बेचारा कहता है कि तू मर मत जाना; मैं बहुत दुखी होऊंगा। उसको पता नहीं है कि वह उसको प्रोत्साहन दे रहा है। यही तो रस है। अगर पति कहे कि बिल्कुल ठीक, कल की मरती तू आज मर जा, तो बहुत ही अच्छा है, छुटकारा हो गया। रस ही खो गया। मरने में कोई मतलब नहीं है। बल्कि अब तो जीना बिल्कुल जरूरी है, क्योंकि अब जीकर ही दुख दिया जा सकता है। पहले मर कर दुख दिया जा सकता था। दुनिया में सौ हत्याओं में से निन्यानबे हत्याएं दूसरे की हत्या करने का ही ढंग होती हैं।

तो पागल आदमी अपने को नुकसान पहुंचाने के लिए बाल लोंच सकता है। तो मनोविज्ञान से सिद्ध किया जा सकता है कि महावीर में कुछ पागलपन था, इसलिए बाल लोंचते थे।

पागलों का एक वर्ग है जो नंगा होने में रस लेता है। अगर एकांत में सड़क पर कहीं कोई स्त्री वगैरह मिल जाए तो वह जल्दी से नंगा खड़ा हो जाएगा। एक्झिबीशनिस्ट उनको पश्चिम में कहते हैं; उनकी संख्या बढ़ती जाती है। महावीर नग्न खड़े थे। उन्होंने वस्त्र छोड़ दिए। उन्होंने वस्त्र इसलिए छोड़े कि वे बच्चे की तरह सरल और निर्दोष हो गए। लेकिन मनोविज्ञान से सिद्ध किया जा सकता है कि उनमें जरूर कोई वृत्ति थी कि वे चाहते थे लोग उनको नंगा देखें। और इसको गलत करना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि महावीर तो कभी-कभी एक होता है। ऐसे हजार आदमी होते हैं जो दूसरे को अपने को नंगा दिखाना चाहते हैं। तो उन हजार के सामने महावीर एक अपवाद रह जाते हैं, उनको सिद्ध करना बहुत कठिन होगा।

आसान है क्योंकि जो पागल हैं वे भी समाज के बाहर गिर जाते हैं और जो संत हैं वे समाज के ऊपर उठ जाते हैं। दोनों समाज की सीमा के बाहर हो जाते हैं। उनमें कई चीजें समान मिल सकती हैं। तो पश्चिम में तय किया जा रहा है बहुत तरह से कि यह सब पागलों की जमात है।

लाओत्से ने हजारों साल पहले कहा है कि यह जो तीसरी कोटि का मनुष्य है, यह जो शूद्र बुद्धि का मनुष्य है, जो ताओ को समझता है, उसको वह मानता है कि इसकी बुद्धि मंद मालूम पड़ती है। इसके पास बुद्धि नहीं है; इसमें कुछ गड़बड़ है; यह कुछ बीमार है, कि रुग्ण है, कि विक्षिप्त है, कि मूढ़ है।

जो ताओ में खूब गतिवान है, वह तीसरी कोटि की बुद्धि के मनुष्य को, जीवन में बार-बार पिछड़ता हुआ मालूम पड़ता है।

पड़ेगा ही। क्योंकि ताओ की गति, जीवन में हम जिसे गति कहते हैं, उससे बिल्कुल विपरीत है। अब जो आदमी राजसिंहासन की तरफ चल रहा है, वह जब बुद्ध को देखेगा कि राजसिंहासन छोड़ कर भाग गए तो वह समझेगा, बुद्धू है। आपको पता है कि बुद्ध से ही बुद्धू शब्द बना है! तीसरी कोटि के आदमियों ने कहा होगा, कैसा बुद्धू, सब छोड़ कर चला आया। सुंदर पत्नी थी, महल था, राज्य था। इसके लिए तो आदमी कामना करता है। अभी भी, अभी भी घर में कोई हाथ-पांव बांध कर पद्मासन में बैठ जाए तो आप कहेंगे, छोड़ो, यह क्या बुद्धूपन कर रहे हो। यह बुद्ध जैसे बैठने से कुछ न होगा, उठो, काम-धाम में लगो, कुछ कमाओ। तीसरी कोटि के मनुष्य ने बुद्ध को अपमानित करने के लिए बुद्धू शब्द विकसित किया है। उसे तो लगेगा ही कि यह आदमी पिछड़ रहा है। सिंहासन से और बड़े सिंहासन पर जाना चाहिए था। यह सिंहासन छोड़ कर भाग रहा है। या तो इसकी बुद्धि कमजोर है, या यह जीवन में हार गया; पलायनवादी है, एस्केपिस्ट है।

और जो समतल पथ पर चलता है, सत्य के समतल पथ पर--क्योंकि वहां कोई उतार-चढ़ाव नहीं है, और जैसे-जैसे सत्य की निकटता बढ़ती है वैसे-वैसे पथ समतल होता जाता है--वह इस तीसरी कोटि के मनुष्य को ऊपर-नीचा होता हुआ दिखाई पड़ता है।

इस तीसरी कोटि के मनुष्य को सभी कुछ उलटा दिखाई पड़ेगा, स्वभावतः। क्योंकि वह ताओ, सत्य की तरफ जाने वाला आदमी इसके जीवन-दृष्टिकोण से बिल्कुल विपरीत जा रहा है। जहां यह धन को पकड़ता है, वहां वह धन को छोड़ देता है। जहां यह स्त्री के पीछे भागता है, वहां वह स्त्री की तरफ मुंह कर लेता है। जहां सिंहासन के लिए यह जीवन देने को तैयार है, वहां उसको अगर हम मारने को भी तैयार हों और कहें कि सिंहासन पर बैठो, नहीं तो हत्या कर देंगे, तो भी वह सिंहासन से उतरने को तैयार है। बिल्कुल विपरीत है। साधारण आदमी बहता है नदी की धार में उलटी तरफ, अप-स्ट्रीम; और ताओ की तरफ बहने वाला आदमी तैरना छोड़ देता है और नदी की धार में बहता है, डाउन-स्ट्रीम। दोनों उलटे मालूम पड़ते हैं। तो जो आदमी तैर रहा है उलटा, धारा में, और लड़ रहा है धारा से, जब भी आप लड़ना छोड़ेंगे, वे कहेंगेः कमजोर, कायर, नपुंसक, भाग रहे हो?

बुद्ध को समझाने लोग आते थे। बुद्ध जब अपने राज्य को छोड़ कर दूसरे राज्य में गए तो दूसरे राज्य के सम्राट को पता चला। वह बुद्ध के पिता का मित्र था, शुद्धोधन का। वह बुद्ध के पास आया। उसने कहा कि इस उम्र में, जवान हो, स्वस्थ हो, हृष्ट-पुष्ट हो, भागते हो; शर्म नहीं आती? संकोच नहीं आता? यह तो कायरों का काम है भागना। तो बुद्ध ने कहा, मकान में आग लगी हो, और कोई आदमी मकान के बाहर आए, तो क्या आप उससे कहते हो--कायर, भागता है? जब मकान में आग लगी है तो भीतर बैठ! तो बुद्ध ने कहा, अगर आपकी भाषा में यह कायरता हो तो भी मुझे स्वीकार। आपकी बहादुरी को नमस्कार! उस बहादुरी में मैं नहीं पड़ने वाला। मकान में आग लगी है, मैं तो बाहर निकलूंगा। दुनिया कहे कि यह कायरपन है तो कहने दो। लेकिन जिसको आप महल कह रहे हैं वह जलता हुआ मकान है; वहां आग ही आग है, लपटों के सिवाय मैंने वहां कुछ भी नहीं पाया।

तो जो हमें पलायन मालूम पड़ता है, तृतीय कोटि के मनुष्य को, वह उसके लिए विजय-यात्रा है। और जो हमारे लिए विजय-यात्रा है वह उसके लिए आग का पथ है।

ये तीन तरह के लोग हैं। यह किन्हीं और के संबंध में बात नहीं है। तीनों तरह के लोग यहां मौजूद हैं। और आपका मन होगा मानने का कि आप पहले तरह के मनुष्य हैं। लेकिन जल्दी मत करना। पहली तरह का मनुष्य बहुत मुश्किल है। बेमन से शायद आप मानने को राजी हो जाएं कि चलो, दूसरी तरह के मनुष्य हैं। लेकिन

दूसरी तरह का मनुष्य भी सौ में एकाध-दो होते हैं। क्योंकि दूसरी तरह के मनुष्य को बड़ी बेचैनी में जीना पड़ता है। पहली तरह का मनुष्य बेचैनी में नहीं जीता; तीसरी तरह का मनुष्य भी बेचैनी में नहीं जीता। वे आश्वस्त होते हैं। पहला वाला आश्वस्त चलता है, तीसरा वाला आश्वस्त रूप से छोड़ देता है कि यह सब फिजूल है, बकवास है, इसमें पड़ना नहीं है। दोनों निश्चिंत होते हैं। दूसरा मध्य वाला आदमी हमेशा चिंतित और बेचैन होता है। वह भी बहुत कम संख्या में होता है। तीसरी तरह का मनुष्य अधिकतम संख्या में होता है। वह कई तरह से अपने को सुरक्षित कर लेता है दीवार बना कर; कई तरह के उपाय कर लेता है; और कहता है, यह अपने लिए नहीं है। यही तो कारण है कि बुद्ध जैसे लोग भी जमीन पर हों तो भी कितने लोग रूपांतरित होते हैं! कितने कम लोग! बुद्ध एक गांव में आते हैं, कितने लोग सुनने जाते हैं?

ऐसा एक बार हुआ कि बुद्ध एक गांव में कई बार आए। और एक आदमी उन्हें सुनना चाहता था, लेकिन कोई न कोई बहाना खोज लेता। कभी उसकी पत्नी बीमारी थी, कभी लड़के को सर्दी-जुकाम, कभी दुकान पर ज्यादा ग्राहक, कभी वह खुद ही अस्वस्थ, कभी थका-मांदा, कभी कुछ, कभी कुछ। बुद्ध कई बार आए-गए; तीस साल उसके गांव से कई बार गुजरे। और हमेशा उसने कोई बहाना खोज लिया। फिर जब बुद्ध की मृत्यु का क्षण आया और खबर आई कि बुद्ध आज जीवन छोड़ते हैं, तब वह भागा हुआ पहुंचा। उसने लोगों से कहा, मुझे मिलने दो। तो लोगों ने कहा कि तीस साल तेरे गांव से गुजरते थे, तू तो कभी दिखाई नहीं पड़ा। उसने कहा, मुझे फुर्सत नहीं मिली।

बुद्ध को फुर्सत है आपके गांव में आने की; आपको फुर्सत नहीं है सुनने जाने की। और सब काम चल रहा है, सिर्फ बुद्ध को सुनने की फुर्सत नहीं है। वह बहाना है। वह तरकीब है। तीसरी कोटि का आदमी कई तरह के बहाने खोजता है। वह कहता है, अभी अपनी उम्र नहीं है, यह तो वृद्धावस्था की बात है; जब बूढ़े हो जाएंगे तब धर्म को सोच लेंगे, समझ लेंगे। वह तो अंतिम है। हजार बहाने खोज लेता है कि अभी अपने को सुविधा नहीं है।

एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं आपको सुनने इसलिए नहीं आता कि अगर कहीं आपकी बात ठीक लगने लगी तो! इसलिए न आना अच्छा है।

एक महिला मेरे पास आई, और उसने कहा कि ध्यान तो करना चाहती हूं, लेकिन मुझमें कुछ ऐसा फर्क तो नहीं हो जाएगा कि मेरे परिवार में अड़चन होने लगे। तो मैंने कहा, फर्क तो होगा ही, नहीं तो ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं। और अड़चन भी होगी। क्योंकि परिवार में बुरे होने से ही अड़चन नहीं होती, अच्छे होने से भी अड़चन होती है। अड़चन का तो मतलब होता है कि पुराना एडजस्टमेंट टूट जाता है।

अब पत्नी क्रोध करती थी, दुष्ट थी, तो पति को सुविधा थी एक तरह की। वह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ता तो उसको भीतर एक तर्क था कि अपनी पत्नी इतनी दुष्ट, कर्कशा है, इसलिए! इसलिए कसूर मेरा नहीं है कि मैं दूसरी स्त्री की तरफ आकर्षित होता हूं; इसका ही है। फिर पत्नी ध्यान करने लगे, शांत हो जाए, कर्कशा न रह जाए, प्रसन्न चित्त हो जाए, कठोर न रहे, क्रूर न रहे, तो पति को बेचैनी शुरू होगी। अब, अब वह दूसरी स्त्री की तरफ देखे तो अड़चन मालूम होती है। इसका बदला वह इसी पत्नी से लेगा। बुरे होने से तो अड़चन होती ही है जीवन में, अच्छे होने से और भी ज्यादा अड़चन होती है।

तो मैंने उस स्त्री को कहा कि अड़चन तो होगी, यह तू सोच कर आ। फिर छह महीने हो गए, उसका मुझे पता नहीं चला।

मोक्ष को छोड़ने को लोग तैयार हो सकते हैं; अड़चन से बचते हैं। हजार बहाने हैं। तो तीसरी कोटि का आदमी बड़ी से बड़ी संख्या में है। सौ में अट्ठानबे, निन्यानबे आदमी तीसरी कोटि के हैं।

और अगर आपको दिखाई पड़ जाए कि आप तीसरी कोटि के हैं तो आपकी पहली कोटि के होने की यात्रा शुरू हो गई। तीसरी कोटि का लक्षण है यह कि वह मानता नहीं कि मैं तीसरी कोटि का हूं। तीसरी कोटि का आदमी मानता है कि मैं तो पहली कोटि का हूं। पहली कोटि का आदमी मान लेता है कि मैं तीसरी कोटि का हूं, और कैसे पहली कोटि का बनूं, इसके लिए जीवन को बदलने को तैयार हूं। तो अच्छा हो कि नीचे की सीढ़ी पर अपने को समझना। क्योंकि उससे ऊपर की सीढ़ी का द्वार खुलता है।

और अथक श्रम की जरूरत है। यात्रा तपश्चर्या है। पहुंचना तो हो जाता है, लेकिन चलना जरूरी है। और चल वही सकता है जो समझता है कि मंजिल मुझे मिल नहीं गई है। अगर आपको मंजिल मिल ही गई है--जो कि तीसरी कोटि का लक्षण है, शूद्र का लक्षण है कि वह मुक्त अपने को मानता ही है, ज्ञानी अपने को मानता ही है, ब्रह्मज्ञानी अपने को मानता ही है।

एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मेरे पति आपके बहुत खिलाफ हैं। वे कहते हैं, ऐसा क्या है जो उन्हें सुनने से मिल सकता है--जब मैं घर में मौजूद हूं! और पति मैं हूं तुम्हारा कि वे? मुझसे पूछो! उस महिला ने मुझे कहा कि इसके पहले मैं उनसे कुछ पूछ भी सकती थी, अब वह भी मन नहीं रहा, कि यह आदमी किस तरह का आदमी है!

पर तृतीय कोटि के आदमी का यह लक्षण है कि वह उपलब्ध है, इसलिए कुछ करने को नहीं, कहीं जाने को नहीं; वह जो है, परम साकार प्रतिमा है परमात्मा की, अब कुछ और करने को नहीं रह गया।

अगर आप अपने को समझ लें नीचे की सीढ़ी पर खड़ा हुआ तो आपने ऊपर उठना शुरू कर दिया। वह प्रथम कोटि के आदमी का लक्षण है। इन पर विचार करना, इन पर ध्यान करना। और शीघ्रता से निर्णय मत लेना; आहिस्ता से निर्णय को आने देना। उससे जीवन में क्रांति की संभावना उन्मुक्त होती है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और जाएं।

सतहत्तरवां प्रवचन

सच्चे संत को पहचानना कठिन है

Chapter 41 : Part 2

Qualities Of The Taoist

Superior character appears like a hollow (valley);
Sheer white appears like tarnished;
Great character appears like insufficient;
Solid character appears like infirm;
Pure worth appears like contaminated.
Great space has no corners;
Great talent takes long to mature;
Great music is faintly heard;
Great form has no contour;
And Tao is hidden without a name.
It is this Tao that is adept at lending its power and bringing fulfillment.

अध्याय 41 : खंड 2

ताओपंथी के गुणधर्म

श्रेष्ठ चरित्र घाटी की तरह खाली प्रतीत होता है;
निपट उजाला धुंधलके की तरह दिखता है;
महा चरित्र अपर्याप्त मालूम पड़ता है;
ठोस चरित्र दुर्बल दिखता है;
शुद्ध योग्यता दूषित मालूम पड़ती है।
महा अंतरिक्ष के कोने नहीं होते;
महा प्रतिभा प्रौढ़ होने में समय लेती है;
महा संगीत धीमा सुनाई देता है;
महा रूप की रूप-रेखा नहीं होती;
और ताओ अनाम छिपा है।

और यह वही ताओ है जो दूसरों को शक्ति देने और आप्तकाम करने में पटु है।

दर्शन दृष्टि पर निर्भर है। हम वही देख पाते हैं जो हम देख सकते हैं। जो हमें दिखाई पड़ता है उसमें हमारी आंखों का दान है। हम जैसे हैं वैसा ही हमें दिखाई पड़ता है, और हम जैसे नहीं हैं उससे हमारा कोई भी संबंध नहीं जुड़ पाता। यह स्वाभाविक भी है। लेकिन इसका हमें स्मरण नहीं है। इसलिए जो हम देखते हैं, हम सोचते हैं वह सत्य है। बहुत संभावना यही है कि वह हमारी आंखों का ही प्रतिबिंब है।

सत्य को तो वही देख पाता है जो सभी तरह की दृष्टियों से, सभी तरह की आंखों से मुक्त हो जाता है। आंख पर रंगीन चश्मा हो तो जगत रंगीन दिखाई पड़ने लगता है। और अगर चश्मा भूल जाए तो हम सोचेंगे कि जगत इसी रंग का है। अंधे को प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता तो अंधे के लिए यही सत्य है कि प्रकाश नहीं है। लेकिन अंधे को न दिखाई पड़ने से प्रकाश का न होना सिद्ध नहीं होता।

हर प्राणी के पास भिन्न तरह की आंखें हैं। वैज्ञानिक निरंतर विचार करते हैं कि जगत विभिन्न शरीरों से कैसा दिखाई पड़ता होगा। मनुष्य जैसा जगत को देखता है, वैसा जगत है? या वैसा इसलिए दिखाई पड़ता है कि मनुष्य के पास एक खास तरह की आंख है? मनुष्य के पास ही और पशुओं की लंबी कतार है। उन पशुओं को भी जगत दिखाई पड़ता है, लेकिन उन्हें ऐसा दिखाई नहीं पड़ सकता जैसा मनुष्य को दिखाई पड़ता है। उनकी आंखें भिन्न हैं; उनके देखने का ढंग भिन्न है। उनकी वासनाएं भिन्न हैं; उनके व्यक्तित्व का ढांचा भिन्न है। उस पूरी भिन्नता के बीच से जगत बिल्कुल अलग ही दिखाई पड़ता होगा।

लेकिन हमारे पास कोई उपाय भी नहीं कि हम जान सकें कि पशु-पक्षी या पौधे जगत को कैसा जानते हैं। हम अपने भीतर बंद हैं। हर आदमी अपने शरीर के यंत्र के भीतर बंद है--हर पशु, हर पक्षी, हर पौधा। और जगत से हमारा उतना ही संबंध होता है जितनी हमारे पास इंद्रियां हैं, और जैसी इंद्रियां हैं।

यह बात ठीक से समझ में आ जाए तो हमारा आग्रह क्षीण हो जाए, तो फिर हम अपनी दृष्टि को ही सत्य करने की कोशिश छोड़ दें। फिर हम ऐसा ही कहें कि ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है; मुझे पता नहीं ऐसा है भी या नहीं। जिस व्यक्ति को यह ख्याल में आ जाए, उसका आग्रह, मतांधता, अंधता कम हो जाएगी। और एक ऐसी घड़ी भी आ जाएगी जब धीरे-धीरे वह सभी दृष्टियों को छोड़ देगा, सभी पक्षपातों को, सभी धारणाओं को। और जब कोई व्यक्ति सारी धारणाएं, सारे पक्षपात, सारी दृष्टियों को छोड़ कर देखने में समर्थ हो पाता है, तब उसे वह दिखाई पड़ता है जो है। दृष्टियों से मुक्त होकर जो दर्शन होता है वही सत्य का दर्शन है।

लाओत्से के ये सूत्र, सामान्य तृतीय श्रेणी के मनुष्य को जैसा दिखाई पड़ता है, उसकी खबर देते हैं।

"श्रेष्ठ चरित्र घाटी की तरह खाली प्रतीत होता है।"

वह जो सामान्य बुद्धि है, वह जो हम सबकी बुद्धि है, उस बुद्धि के अनुसार हमें श्रेष्ठ चरित्र खाली मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम जिसे चरित्र कहते हैं वह तो चरित्र है ही नहीं। हम जिसे चरित्र कहते हैं उसे ही हम एक शिखर की भांति देखने के आदी हो गए हैं। ताओ का जो चरित्र है, वस्तुतः निर्मल धर्म का जो चरित्र है, वह तो हमें घाटी की तरह दिखाई पड़ेगा। क्योंकि हम उलटे खड़े हैं। वह जो शिखर की भांति है, हमें घाटी की तरह दिखाई पड़ेगा। ऐसे ही जैसे आप उलटे खड़े हों, शीर्षासन करते हों, और सारा जगत आपको उलटा चलता हुआ मालूम पड़े। अगर आप भूल जाएं कि आप शीर्षासन कर रहे हैं तो सारा जगत उलटा चलता हुआ मालूम पड़े। स्मरण आ जाए कि मैं शीर्षासन कर रहा हूं और आप सीधे खड़े हो जाएं तो सारा जगत आपके साथ एक क्षण में सीधा हो जाता है।

आप कैसे खड़े हैं, इस पर निर्भर है। क्यों शुद्ध चरित्र, निर्मल चरित्र, श्रेष्ठ चरित्र घाटी की भांति खाली दिखाई पड़ेगा? थोड़ा सूक्ष्म है; समझना जरूरी है।

अगर एक व्यक्ति प्रेम का ऊपर से आचरण कर रहा हो, उसके हृदय में प्रेम का आविर्भाव न हुआ हो--जैसा कि सभी आम व्यक्तियों के जीवन में होता है, वे केवल प्रेम का आचरण करते हुए मालूम होते हैं, प्रेम का अंतस उनके पास नहीं होता--तो जो व्यक्ति प्रेम का आचरण करता है उसका प्रेम हमें शिखर की भांति मालूम पड़ेगा। क्योंकि वह अपने प्रेम को सब भांति प्रकट करेगा। प्रेम अगर भीतर हो तो प्रकट करने की जरूरत भी नहीं है। प्रेम भीतर न हो तो प्रकट किए बिना उसके होने का कोई उपाय नहीं रह जाता। तो जिस व्यक्ति के भीतर प्रेम नहीं है, वह प्रेम का बहुत ज्यादा व्यवहार करेगा; शब्दों से, विचार से, सब भांति जतलाएगा कि उसे प्रेम है। और इस जतलाने वाले व्यक्ति का प्रेम हमें दिखाई भी पड़ेगा। क्योंकि हम आचरण को ही देख सकते हैं, अंतस को नहीं। जो ऊपर प्रकट होता है उस तक ही हमारी पहुंच है; जो भीतर गहरे में छिपा होता है उस तक हमारी पहुंच नहीं है। हम बीज को नहीं देख सकते, हम तो केवल फूल को ही देख सकते हैं, जो प्रकट हो गए हैं। फिर चाहे वह फूल नकली ही क्यों न हो, कागज का ही क्यों न हो, चाहे उस फूल पर सुगंध ऊपर से क्यों न छिड़की गई हो। लेकिन हमें बीज में छिपा फूल दिखाई नहीं पड़ सकता। उसके लिए बड़ी गहरी आंखें चाहिए। उतनी गहरी आंख तृतीय कोटि के मनुष्य के पास नहीं है। ऊपर-ऊपर देख सकता है।

आपको भी अंदाज होगा कि जब आपका किसी से प्रेम नहीं होता, और आप प्रेम जतलाना चाहते हैं, प्रेम जतला कर कोई फायदा उठाना चाहते हैं, तब आप प्रेम में बहुत ही मुखर हो जाते हैं, तब आप प्रेम की अभिव्यक्ति में बड़ी तीव्रता दिखलाते हैं। भीतर की कमी को छिपाने के लिए बाहर की अभिव्यक्ति करते हैं। जिस दिन आपको डर होता है कि आपने कुछ ऐसा काम किया है कि आपकी पत्नी अगर जान जाए तो उपद्रव होगा, उस दिन आप भेंट लेकर घर पहुंचते हैं, फूल ले जाते हैं, आइसक्रीम ले जाते हैं। उस दिन आप प्रेम को प्रकट करते हैं। कुछ है जिसे छिपाना है; भीतर कोई जगह खाली है जहां प्रेम नहीं है, उसे बाहर के किसी आवरण से भरना है।

यह जो ऊपर की अभिव्यक्ति है, इस पर बहुत जोर बढ़ता जा रहा है। पश्चिम में तो रोज किताबें लिखी जाती हैं--कैसे प्रेम करें। उसमें सभी किताबों में अनिवार्यतः एक बात होती है कि प्रेम को छिपाए मत रखें, प्रकट करें। क्योंकि जो छिपा है उसे कोई भी नहीं जानता। उसे बोल कर कहें, उसे आचरण से जतलाएं, उसे व्यवहार से दिखाएं। आप अपनी पत्नी को प्रेम करते हैं, पश्चिम में लिखी जाने वाली किताबें कहती हैं, इतना काफी नहीं है। आप इसे कहें भी कि मैं प्रेम करता हूं। इसे आप रोज दोहराएं भी, और इसे आप किसी न किसी भांति व्यवहार से भी जाहिर करें।

ये किताबें इस बात की खबर देती हैं कि आदमी के भीतर से प्रेम मर चुका है, या आदमी समर्थ ही नहीं रहा प्रेम को समझने में। जब प्रेम होता है तो जतलाने की कोई भी जरूरत नहीं होती। जब प्रेम होता है तो यह कहना कि मैं प्रेम करता हूं, बेहूदा मालूम पड़ेगा, ओछा मालूम पड़ेगा, क्षुद्र मालूम पड़ेगा, व्यर्थ मालूम पड़ेगा। इसे उठाना, इसकी चर्चा भी उठानी, नीचे गिरना मालूम पड़ेगा। व्यवहार से भी प्रकट करने की आवश्यकता तभी है जब प्रेम गहरा न हो। अगर प्रेम गहरा हो तो मौन में भी प्रकट है। अगर प्रेम हो तो व्यवहार में भी न आए तो भी प्रकट है। लेकिन तब दूसरी तरफ भी आंखें चाहिए जो उतना गहरा देख सकें।

इसलिए लाओत्से कहता है, श्रेष्ठ चरित्र खाली मालूम पड़ेगा। क्योंकि श्रेष्ठ चरित्र प्रकट करने की चेष्टा ही नहीं करता। श्रेष्ठ चरित्र होने के ख्याल में होता है, प्रकट करने के ख्याल में नहीं। पर श्रेष्ठ चरित्र फिर हमें दिखाई

नहीं पड़ सकता। हमें तो जो शोरगुल करे, काफी उपद्रव मचाए, सब तरफ से दिखलाए, वही दिखाई पड़ता है। ठीक प्रेमी को हम पहचान ही न पाएंगे। हम केवल अभिनेता को पहचान सकते हैं, और ठीक प्रेमी अभिनय नहीं करेगा। अभिनय जैसी क्षुद्रता ठीक प्रेमी नहीं करेगा। अभिनय तो वही करेगा जिसके पास प्रेम नहीं है। अभिनय उसका सब्स्टीट्यूट है, उसका परिपूरक है।

तो जिस प्रेमी ने आपसे कभी कहा ही नहीं कि मैं प्रेम करता हूं, जिसने कभी आपके पास प्रेम की कोई भेंट नहीं भेजी, जिसने प्रेम को पार्थिव नहीं बनाया... । भेंट पार्थिव है; प्रेम अपार्थिव है। इसलिए प्रेमी भेंट देते हैं ताकि पता चल जाए कि प्रेम है। उसे पदार्थ तक लाना पड़ता है। क्योंकि पदार्थ हमें दिखाई पड़ता है। भेंट का अर्थ है पदार्थ में ले आना। लेकिन प्रेम अगर चुप रहे, न पदार्थ तक लाया जाए, न व्यवहार से प्रकट करने की कोशिश की जाए, सहज जो बहाव हो, होने दिया जाए, तो इस जगत में कितने लोग उस तरह के प्रेम को पहचान पाएंगे? प्रेम का भी प्रचार करना होता है। उसके लिए भी विज्ञापन करना होता है। उसके लिए भी सब भांति शोरगुल और आवाज पैदा करनी होती है। क्योंकि मौन के संगीत को कोई सुन ही नहीं पाता; कान इतने बहरे हो गए हैं। जब तक बहुत उपद्रव न मचाया जाए तब तक पता ही नहीं चलता कि कुछ हो रहा है।

जैसा प्रेम है, वैसे ही जीवन के सारे चरित्र की दिशाएं हैं। अगर कोई आदमी सत्यवादी है, अगर कोई आदमी शीलवान है, अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है, तो भी हमें तभी पता चलेगा जब इसका प्रचार किया जाए।

मैंने सुना है, डेल कार्नेगी ने अपने संस्मरणों में कहीं लिखा है कि वह एक विज्ञापन कंपनी का काम करता था। और एक धनपति के पास गया, और धनपति से उसने कहा कि आप कभी अपने सामान का, जो आप बेचते हैं और बनाते हैं, उसका कोई विज्ञापन नहीं करते हैं। आप बहुत पुराने ढंग से चल रहे हैं। दुनिया बदल गई। अब बिना विज्ञापन के कोई खबर नहीं हो सकती। उस धनपति ने कहा कि हमारा काम सौ वर्ष पुराना है, और हमें किसी विज्ञापन की जरूरत नहीं है। लोग जानते हैं, लोग भलीभांति जानते हैं, और लोग श्रेष्ठ चीज को पहचानते हैं। इसलिए क्षमा करें, हमारी कोई उत्सुकता विज्ञापन में नहीं है।

तभी सांझ हो गई और पहाड़ी के ऊपर बने चर्च की घंटियां बजने लगीं। तो डेल कार्नेगी ने कहा उस धनपति से कि आप ये चर्च की घंटियां सुनते हैं? यह चर्च कितना पुराना है? उस धनपति ने कहा, कम से कम पांच सौ वर्ष पुराना है। तो डेल कार्नेगी ने कहा, अभी तक यह घंटियां बजाता है; तभी लोगों को पता चलता है कि चर्च है। यह घंटियां बजाना बंद कर दे, लोग भूल जाएंगे।

डेल कार्नेगी ने लिखा है, उस धनपति ने तत्काल अपने विज्ञापन का आर्डर लिख कर दिया।

कितने पुराने हैं, इससे कोई सवाल नहीं; प्रचार तो करना ही होगा। लेकिन अक्सर लोग भूल जाते हैं। इसीलिए पति-पत्नी को धीरे-धीरे लगता है कि उनके बीच प्रेम नहीं रहा। क्योंकि वे प्रचार कम कर देते हैं। जो प्रचार शुरू में किया था, यह सोच कर कि अब तो तीस साल पुराना हो गया प्रेम, अब क्या रोज-रोज सुबह-सुबह उठ कर कहना है कि तुझ जैसी कोई स्त्री जगत में नहीं, तेरे सौंदर्य की कोई तुलना नहीं, तू मुझे मिल गई तो सब कुछ मिल गया, अब यह रोज-रोज क्या कहना है? लेकिन हमारी आंखें इतना गहरा नहीं देख पातीं। न हमारा इतना प्रेम गहरा है और न इतनी आंखें गहरी हैं कि बिना प्रचार के चल जाए। इसलिए पश्चिम के मनोवैज्ञानिक सलाह देते हैं कि चाहे तीस साल, और चाहे तीन सौ साल हो जाएं, तो भी रोज सुबह उठ कर घंटियां बजाना और प्रचार करना। क्योंकि सिर्फ प्रचार ही दिखाई पड़ता है। और प्रचार करते-करते ही असत्य भी सत्य हो जाते हैं।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि सत्य का कोई और अर्थ नहीं है; ऐसा असत्य जिसका काफी दिनों से प्रचार किया गया है सत्य हो जाता है। और एडोल्फ हिटलर ने अपने जीवन से ही सिद्ध कर दिया कि असत्य को दोहराए चले जाओ, फिक्र मत करो, दोहराए चले जाओ, आज नहीं कल वह सत्य हो जाएगा। दोहराने वाले की क्षमता पर निर्भर है कि असत्य सत्य होगा या नहीं। कान पर पड़ता ही रहे, पड़ता ही रहे, तो सुनते-सुनते, सुनते-सुनते भरोसा आ जाता है।

आप हिंदू हैं। आपने कभी खोज की है कि हिंदू होने में क्या सत्य है? या आप मुसलमान हैं। क्या कभी आपने खोज की है कि मुसलमान होने का क्या अर्थ है? नहीं, सिर्फ प्रचार है, लंबा प्रचार है। और प्रचार इतना लंबा है कि पीढ़ी दर पीढ़ी चला आया है; आपके खून और हड्डी में प्रवेश कर गया है। और जब आप पैदा होते हैं तब से प्रचार शुरू हो जाता है। जब आप होश सम्हालते हैं तब तक प्रचार काफी भीतर प्रवेश कर गया होता है। और आपको खुद ही लगने लगता है कि मैं हिंदू हूं; अगर हिंदू धर्म खतरे में है तो मैं जान दे दूंगा। प्रचार सत्य हो जाता है।

हम जी ही रहे हैं बाह्य से, और बाहर से जो हमारे भीतर डाल दिया जाता है वही हमें दिखाई पड़ता है। भीतर को देखने की क्षमता हमारी न के बराबर है

इसलिए लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठ चरित्र घाटी की तरह खाली प्रतीत होता है।"

क्योंकि हम अश्रेष्ठ चरित्र से परिचित हैं जो कि शिखर की तरह अपना प्रचार करता है। और हम शब्दों से जीते हैं, और श्रेष्ठ मौन होता है। और हम बाहर को देखते हैं, और श्रेष्ठ भीतर होता है। इसलिए श्रेष्ठ हमें दिखाई ही नहीं पड़ता। इसलिए अगर हम रोज धोखा खाते हैं तो किसी और का कसूर नहीं है; हम खुद ही धोखा खाने को तैयार हैं। क्योंकि हम जहां से देखते हैं वहां धोखा ही होगा। उससे गहरी हमारी आंख प्रवेश नहीं करती।

"निपट उजाला धुंधलके की तरह दिखता है।"

क्योंकि हमारी आंखें जब तक उत्तेजना तीव्र न हो तब तक देख नहीं पातीं। सुबह जब सूरज नहीं निकलता तब जो उजाला होता है वह निपट उजाला है। उसमें चकाचौंध नहीं है, उसमें उत्तेजना नहीं है, उसमें तीव्रता नहीं है, उसमें चोट और आक्रमण नहीं है; अनाक्रामक, अहिंसक उजाला है। लेकिन वह हमें धुंधलके की तरह दिखता है। जब सूरज उग आता है और उसकी प्रखर किरणें हमारी आंखों को भेदने लगती हैं तब हमें लगता है कि उजाला हुआ।

हमारी सभी संवेदनशीलताएं क्षीण हो गई हैं, मंद हो गई हैं। जैसा हमारा स्वाद मंद हो गया है। तो जब तक मिर्च जाकर हमारी जीभ को झकझोर न दे तब तक हमें पता नहीं चलता कि कोई स्वाद है। और जो आदमी मिर्च खाने का आदी हो गया, उसके सब स्वाद खो जाते हैं। क्योंकि इतने तीव्र स्वाद के बाद फिर जो मंदिम स्वाद हैं, भद्र स्वाद हैं, वे फिर ख्याल में नहीं आते। हमारी जीभ फिर उनसे संबंधित ही नहीं हो पाती। हम हिंसा के इतने आदी हो गए हैं कि कुछ भी अहिंसक घटना हमें दिखाई नहीं पड़ती--उत्तेजना, सेंसेशन, जितना तेज हो।

देखते हैं आप, संगीत रोज तेज होता चला जाता है। युवकों का जो संगीत है; जब तक बिल्कुल पागल करने वाला न हो, इतने जोर-शोर से न हो कि आपकी सभी इंद्रियां चोट खाकर अस्तव्यस्त हो जाएं, तब तक युवकों को लगता है, यह कोई संगीत ही नहीं है। धीमे स्वर, भद्र स्वर, शांत स्वर सुनाई ही नहीं पड़ेंगे। कान भी

हमारे उत्तेजना मांगते हैं; वस्त्र भी। जब तक कि रंग ऐसे न हों कि जो आंखों को भेद दें, ऐसे न हों कि तिलमिलाहट पैदा कर दें, तब तक रंग नहीं मालूम पड़ते।

हमारा पूरा जीवन ही गहरी उत्तेजना, तेज स्वाद, चोट पहुंचाने वाले स्वर, चोट पहुंचाने वाली घटनाएं, इनकी मांग करता है। सुबह उठ कर आप अखबार देखते हैं, उसमें आप नजर डालते हैं--कहां कितने लोग मरे, कहां युद्ध शुरू हुआ, कहां आगजनी हुई, कहां उपद्रव हुआ, कहां हत्याएं, बलात्कार, कितनी स्त्रियां भगाई गईं। और अगर अखबार में ऐसी कोई खबर न हो तो आप कहेंगे आज कुछ हुआ ही नहीं। आप अखबार को नीचे रख देंगे उदास चित्त से कि आज कोई खबर नहीं है। भद्र, शांत छूता ही नहीं। अभद्र और अशांत ही छूता है। अगर आप फिल्म देखते हैं तो हत्या चाहिए, जासूसी चाहिए, युद्ध चाहिए, खून चाहिए। तब आपकी रीढ़ थोड़ी कुर्सी पर सीधी होकर बैठती है जब कुछ होने लगता है। कुछ होने का मतलब यह होता है कि कुछ उपद्रव होने लगता है। अगर सब ठीक-ठीक चलता हो, जैसा चलना चाहिए, तो वह फिल्म चल नहीं सकती। फिल्म तभी चल सकती है जब एक्साइटमेंट हो, जब आपका खून खौलने लगे।

और आपको पता नहीं है, अभी मनोवैज्ञानिक एक प्रयोग हार्वर्ड विश्वविद्यालय में कर रहे थे। तो उन्होंने चूहों का एक समूह--बारह चूहे--दो हिस्सों में बांट दिया। छह चूहों को चूहों की एक फिल्म दिखाई गई, जिसमें चूहे लड़ते हैं, खून करते हैं, एक-दूसरे की चमड़ी फाड़ देते हैं, हड्डियां खींच लेते हैं। दूसरे छह चूहों को एक साधारण फिल्म दिखाई गई, जिसमें सामान्य चूहे अपनी खोलों में जाते हैं, बाहर निकलते हैं, दाना चुनते हैं; सामान्य जीवन, कहीं कोई खून-हत्या नहीं।

जिन छह चूहों ने खून और हत्या की फिल्म देखी उनका ब्लड-प्रेशर बढ़ गया, और वे लड़ने-मारने को उतारू हो गए। जिन छह चूहों ने सामान्य फिल्म देखी उनमें से अधिक सो गए देखते-देखते ही। उसमें कुछ सार नहीं था; उसमें कोई समाचार नहीं था। उनका ब्लड-प्रेशर सामान्य रहा। रात, जिन छह चूहों ने शांत फिल्म देखी थी, वे निश्चिंत भाव से सोए; उनकी नींद में कोई व्याघात न था। उन्होंने कोई खतरनाक सपने नहीं देखे। क्योंकि अब तो चूहों के भी मस्तिष्क को रात में जांचने का उपाय है। क्योंकि जब सपना देखा जाता है तो मस्तिष्क में तनाव आ जाता है, नसें फूल जाती हैं, खून तेजी से बहता है, और तरंगें ज्वरग्रस्त हो जाती हैं; उनका ग्राफ बन जाता है। जिन छह चूहों ने फिल्म देखी उपद्रव की, खून की, हत्या की, उनकी रात बेचैन रही। उन्होंने ज्यादा करवटें बदलीं, अनेक बार उनकी नींद टूटी। और उन्होंने सपने देखे और सपने सब तीव्र थे, भयभीत करने वाले थे, दुख-स्वप्न, नाइटमेयर थे।

आप जब एक तेज फिल्म देख कर आते हैं तो ऐसा मत सोचना कि चूहे से भिन्न आप व्यवहार करेंगे। आप देखने ही इसलिए गए हैं कि खून ठंडा-ठंडा मालूम पड़ता है, उसमें चाल नहीं मालूम पड़ती, उसमें थोड़ी चाल आ जाए, खून में थोड़ी गति आ जाए, थोड़ा खून का व्यायाम हो जाए, थोड़ा मस्तिष्क झकझोर उठे। आप करीब-करीब सो गए हैं। वही दफ्तर, वही पत्नी, वही बच्चे, वही मकान; जो फिल्म आपके चारों तरफ चल रही है उससे आप बिल्कुल ऊब गए हैं। इस ऊब में से कोई झकझोर कर बाहर निकाल ले।

तो अगर जीवन जैसा कि बुद्ध या लाओत्से कहते हैं वैसा हो तो आपको बड़ा उबाने वाला होगा; जैसा जीवन हिटलर, चंगेज खां और तैमूरलंग चाहते हैं वैसा हो तो ही आपको रसपूर्ण होगा। फिर भी आप बुद्ध की पूजा करते हैं और तैमूर को गाली दिए जाते हैं। लेकिन आप अनुयायी तैमूर, हिटलर, नेपोलियन के हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट से आपका कुछ लेना-देना नहीं है। यह भी आपकी तरकीब है अपने को धोखा देने की कि

चलते हैं पीछे हिटलर के और पूजा करते हैं बुद्ध के मंदिर में। इससे आपको भरोसा बना रहता है कि हम भी बुद्ध के पीछे चलने वाले हैं। लेकिन बुद्ध के जीवन में आपको क्या रस होगा?

एक मित्र अभी मेरे पास आए। जैन हैं, बड़े उद्योगपति हैं, धनपति हैं। उन्होंने मुझसे कहा कि महावीर की पच्चीस सौवीं वर्षगांठ आ रही है चौहत्तर में, तो आप कुछ सुझाव दें कि हम महावीर के लिए क्या करें। तो मैंने उन्हें कहा कि महावीर के जीवन पर एक फिल्म बनाएं। उन्होंने कहा, उसको कौन देखेगा? उनके जीवन में ऐसा कुछ है ही नहीं। उन्होंने ठीक कहा। वे बिल्कुल उदास हो गए। उन्होंने कहा, देखेगा कौन उस फिल्म को? वह चलेगी कैसे? क्योंकि महावीर बैठे हैं आंख बंद किए, इसको कितनी देर तक दिखाइए? इसमें कोई हत्या, इसमें कोई प्रेम का उपद्रव, कोई ट्रायंगल, कुछ भी नहीं है--कि दो स्त्रियां लड़ रही हों उनके लिए, खींचतान हो रही हो, कुछ उपद्रव हो--कुछ भी नहीं है। जीवन बिल्कुल शांत है। तो इस शांत धार को कौन देखेगा? वे ठीक कहते हैं।

जब महावीर की फिल्म को कोई देखने को राजी नहीं है तो महावीर के जीवन को कौन स्वीकार करेगा? और लोग अगर महावीर जैसा जीवन जीने लगें तो हम सब ऊब जाएंगे, बुरी तरह ऊब जाएंगे। रस उत्तेजना से है।

लेकिन उत्तेजना में इतना रस क्यों है? इसे थोड़ा समझना जरूरी है। इसका अर्थ है कि हमारी संवेदनशीलता कम है, सेंसिटिविटी कम है। और संवेदनशीलता जितनी कम हो, जीवन उतना ही कम होता है। मृत्यु का नाम है संवेदनशीलता का खो जाना। तो जितनी आपकी संवेदनशीलता कम होती चली जाती है उतनी उत्तेजना की मांग बढ़ती है। और जितनी उत्तेजना की मांग बढ़ती है, वह इस बात की सूचक है, आप उतने ही मर चुके हैं। मुर्दा आदमी को आप कितनी ही उत्तेजना दें तो भी उत्तेजित नहीं होगा। कितना ही बैंड-बाजा बजाएं, कितना ही शोरगुल करें, तो भी वह चौंकेगा नहीं। उसका अर्थ यह है कि संवेदनशीलता बिल्कुल ही समाप्त हो गई। मृत्यु का अर्थ है, संवेदना बिल्कुल खो गई।

आपको जब बहुत उत्तेजना मिलती है तब कभी आप थोड़ा सा चौंकते हैं। इसका अर्थ है कि आप भी काफी दूर तक मर चुके हैं, डेड हो गए हैं। आपके तंतु भी अब हिलते नहीं हैं साधारणतः, जब तक कि कोई झकझोर न दे। तब थोड़ा सा कंपन होता है। आपके तंतु भी सूख गए हैं।

जितना ज्यादा जीवित व्यक्ति होगा उतनी कम उत्तेजना की जरूरत होगी। और जब व्यक्ति परिपूर्ण जीवित होता है, जैसा महावीर या बुद्ध, तो किसी उत्तेजना की जरूरत नहीं होती। जीवन का होना ही काफी आनंदपूर्ण होता है; उसमें फिर किसी उत्तेजना की कोई जरूरत नहीं।

आखिर बुद्ध और महावीर अगर अपने वृक्षों के नीचे ऐसा दिनों बैठे रहते तो क्या आप सोचते हैं, अगर आपको बैठना पड़े तो क्या गति हो? क्या आप सोचते हैं कि बुद्ध और महावीर बड़े ऊब गए होंगे बैठे-बैठे? उनके चेहरे पर ऊब कभी नहीं देखी गई। वे जीवन में इतने रसलीन हैं, और स्वाद उनका इतना सूक्ष्म है कि हवा का थोड़ा सा कंपन भी उनके लिए काफी आनंदपूर्ण है, श्वास का थोड़ा सा चलना भी उनके लिए काफी जीवन है। होना अपने आप में इतनी बड़ी घटना है कि अब किसी और घटना की कोई जरूरत नहीं--जस्ट टु बी, सिर्फ होना। आपके लिए सिर्फ होना तो कोई अर्थ ही नहीं रखता, जब तक कि आपके होने पर कोई उपद्रव और न होता रहे।

लाओत्से का कहना बहुत विचारणीय है। लाओत्से कह रहा है, "निपट उजाला धुंधलके की तरह दिखता है।"

क्योंकि हमारी आंखें लपटों की आदी हो गई हैं; मंद प्रकाश, सौम्य प्रकाश हमें धुंधलका मालूम होता है।

"महा चरित्र अपर्याप्त मालूम होता है।"

क्योंकि क्षुद्र चरित्र के हम आदी हो गए हैं। और जितना क्षुद्र चरित्र हो उतना हमारी समझ में आता है। क्योंकि हमारी समझ के बिल्कुल समानांतर होता है। जितना श्रेष्ठ होता चला जाए उतना ही हमारी समझ के बाहर होता जाता है। और जो हमारी समझ के बाहर है, वह हमें दिखाई भी नहीं पड़ता।

श्री अरविंद को किसी ने एक बार पूछा कि आप भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में, भारत की आजादी के युद्ध में अग्रणी सेनानी थे; लड़ रहे थे। फिर अचानक आप पलायनवादी कैसे हो गए कि सब छोड़ कर आप पांडिचेरी में बैठ गए आंख बंद करके? वर्ष में एक बार आप निकलते हैं दर्शन देने को। आप जैसा संघर्षशील, तेजस्वी व्यक्ति, जो जीवन के घनेपन में खड़ा था और जीवन को रूपांतरित कर रहा था, वह अचानक इस भांति पलायनवादी होकर अंधेरे में क्यों छिप गया? आप कुछ करते क्यों नहीं हैं? क्या आप सोचते हैं कि करने को कुछ नहीं बचा, या करने योग्य कुछ नहीं है? या समाज की और मनुष्य की समस्याएं हल हो गईं कि आप विश्राम कर सकते हैं? समस्याएं तो बढ़ती चली जाती हैं; आदमी कष्ट में है, दुख में है, गुलाम है, भूखा है, बीमार है; कुछ करिए!

यही लाओत्से कह रहा है। श्री अरविंद ने कहा कि मैं कुछ कर रहा हूं। और जो पहले मैं कर रहा था वह अपर्याप्त था; अब जो कर रहा हूं वह पर्याप्त है।

वह आदमी चौंका होगा जिसने पूछा। उसने कहा, यह किस प्रकार का करना है कि आप अपने कमरे में आंख बंद किए बैठे हैं! इससे क्या होगा?

तो अरविंद कहते हैं कि जब मैं करने में लगा था तब मुझे पता नहीं था कि कर्म तो बहुत ऊपर-ऊपर है, उससे दूसरों को नहीं बदला जा सकता। दूसरों को बदलना हो तो इतने स्वयं के भीतर प्रवेश कर जाना जरूरी है जहां से कि सूक्ष्म तरंगें उठती हैं, जहां से कि जीवन का आविर्भाव होता है। और अगर वहां से मैं तरंगों को बदल दूं तो वे तरंगें जहां तक जाएंगी--और तरंगें अनंत तक फैलती चली जाती हैं।

रेडियो की ही आवाज नहीं घूम रही है पृथ्वी के चारों ओर, टेलीविजन के चित्र ही हजारों मील तक नहीं जा रहे हैं, सभी तरंगें अनंत की यात्रा पर निकल जाती हैं। जब आप गहरे में शांत होते हैं तो आपकी झील से शांत तरंगें उठने लगती हैं; वे शांत तरंगें फैलती चली जाती हैं। वे पृथ्वी को छुएंगी, चांद-तारों को छुएंगी, वे सारे ब्रह्मांड में व्याप्त हो जाएंगी। और जितनी सूक्ष्म तरंग का कोई मालिक हो जाए उतना ही दूसरों में प्रवेश की क्षमता आ जाती है।

तो अरविंद ने कहा कि अब मैं महा कार्य में लगा हूं। तब मैं क्षुद्र कार्य में लगा था; अब मैं उस महा कार्य में लगा हूं जिसमें मनुष्य से बदलने को कहना न पड़े और बदलाहट हो जाए। क्योंकि मैं उसके हृदय में सीधा प्रवेश कर सकूंगा। अगर मैं सफल होता हूं--सफलता बहुत कठिन बात है--अगर मैं सफल होता हूं तो एक नए मनुष्य का, एक महा मानव का जन्म निश्चित है।

लेकिन जो व्यक्ति पूछने गया था वह असंतुष्ट ही लौटा होगा। यह सब बातचीत मालूम पड़ती है। ये सब पलायनवादियों के ढंग और रुख मालूम पड़ते हैं। खाली बैठे रहना पर्याप्त नहीं है, अपर्याप्त है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "महा चरित्र अपर्याप्त मालूम पड़ता है।"

इसलिए हम पूजा जारी रखेंगे गांधी की; अरविंद को हम धीरे-धीरे छोड़ते जाएंगे। लेकिन भारत की आजादी में अरविंद का जितना हाथ है उतना किसी का भी नहीं है। पर वह चरित्र दिखाई नहीं पड़ सकता।

आकस्मिक नहीं है कि पंद्रह अगस्त को भारत को आजादी मिली; वह अरविंद का जन्म-दिन है। पर उसे देखना कठिन है। और उसे सिद्ध करना तो बिल्कुल असंभव है। क्योंकि उसको सिद्ध करने का क्या उपाय है? जो प्रकट, स्थूल में नहीं दिखाई पड़ता उसे सूक्ष्म में सिद्ध करने का भी कोई उपाय नहीं है। भारत की आजादी में अरविंद का कोई योगदान है, इसे भी लिखने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। कोई लिखता भी नहीं। और जिन्होंने काफी शोरगुल और उपद्रव मचाया है, जो जेल गए हैं, लाठी खाई है, गोली खाई है, जिनके पास ताम्रपत्र है, वे इतिहास के निर्माता हैं।

इतिहास अगर बाह्य घटना ही होती तो ठीक है; लेकिन इतिहास की एक आंतरिक कथा भी है। तो समय की परिधि पर जिनका शोरगुल दिखाई पड़ता है, एक तो इतिहास है उनका भी। और एक समय की परिधि के पार, कालातीत, सूक्ष्म में जो काम करते हैं, उनकी भी एक कथा है। लेकिन उनकी कथा सभी को ज्ञात नहीं हो सकती। और उनकी कथा से संबंधित होना भी सभी के लिए संभव नहीं है। क्योंकि वे दिखाई ही नहीं पड़ते। वे वहां तक आते ही नहीं जहां चीजें दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वे उस स्थूल तक, पार्थिव तक उतरते ही नहीं जहां हमारी आंख पकड़ पाए। तो जब तक हमारे पास हृदय की आंख न हो, उनसे कोई संबंध नहीं जुड़ पाता। इतिहास हमारा झूठा है, अधूरा है, और क्षुद्र है। हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध ने इतिहास में क्या किया। हम सोच भी नहीं सकते कि क्राइस्ट ने इतिहास में क्या किया। लेकिन हिटलर ने क्या किया, वह हमें साफ है; माओ ने क्या किया, वह हमें साफ है; गांधी ने क्या किया, वह हमें साफ है। जो परिधि पर घटता है वह हमें दिख जाता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "महा चरित्र अपर्याप्त मालूम पड़ता है। ठोस चरित्र दुर्बल दिखता है।"

गहरी दृष्टि चाहिए। ठोस चरित्र दुर्बल दिखता है; दुर्बल चरित्र बड़ा ठोस दिखता है; इस मनोविज्ञान को थोड़ा ख्याल में ले लें। असल में, दुर्बल चरित्र का व्यक्ति हमेशा ठोस दीवारें अपने आस-पास खड़ी करता है; ठोस चरित्र का व्यक्ति दीवार खड़ी नहीं करता। उसकी कोई जरूरत नहीं है; पर्याप्त है वह स्वयं।

जैसे देखें, कमजोर चरित्र का व्यक्ति हो तो नियम लेता है, व्रत लेता है, संकल्प लेता है; ठोस चरित्र का व्यक्ति संकल्प नहीं लेता। लेकिन जो व्यक्ति संकल्प लेता है वह हमें ठोस मालूम पड़ेगा।

एक आदमी तय करता है कि मैं तीन महीने तक जल पर ही जीऊंगा, अन्न नहीं लूंगा; और अपने संकल्प को पूरा कर लेता है। हम कहेंगे, बड़े ठोस चरित्र का व्यक्ति है। स्वभावतः, दिखाई पड़ता है, अब इसमें कुछ कहने की बात भी नहीं है। कोई प्रमाण खोजने की जरूरत नहीं है। तीन महीने तक, नब्बे दिन तक जो आदमी बिना अन्न के, जल पर रह जाता है, हम जानते हैं कि इसके पास चरित्र है, संकल्प है, बल है, दृढ़ता है।

लेकिन मनसविद से पूछें। यह आदमी भीतर बहुत दुर्बल है; इसको अपने पर भरोसा नहीं है। भरोसा लाने के लिए यह सब तरह के उपाय कर रहा है। यह तीन महीने तक संकल्प को पूरा करना भी स्वयं में भरोसा पैदा करने की चेष्टा है। यह आदमी निर्बल न हो तो संकल्प ही नहीं लेगा। संकल्प ही निर्बलता को मिटाने की, छिपाने की, दबाने की चेष्टा है। अगर इसे भोजन नहीं लेना है तो नहीं लेगा; तीन महीने नहीं, तीन साल नहीं लेना है तो नहीं लेगा। लेकिन इसका संकल्प नहीं लेगा। भोजन नहीं लेना है तो इसे अपने पर भरोसा है, संकल्प खड़ा करने की जरूरत नहीं है।

संकल्प का मतलब यह है कि मुझे अपने पर भरोसा तो है नहीं, तो मैं एक संकल्प खड़ा करता हूं, मैं दांव लगाता हूं, मैं संकल्प की घोषणा कर देता हूं। अब दूसरे लोग भी मेरे लिए सहारा होंगे। अगर मैं भोजन करने

का तीन दिन बाद विचार करने लगूं तो मुझे खुद ही ग्लानि लगेगी कि अब यह तो बड़ी मुश्किल बात हो गई। इज्जत का भी सवाल है। अहंकार का सवाल है। संकल्प अहंकार का सवाल है। अब लोग क्या कहेंगे? इसलिए संकल्प लेने वाले जाहिर में संकल्प लेते हैं, एकांत में नहीं। क्योंकि एकांत में तो उन्हें डर है, टूट जाएगा।

जैन उपवास करते हैं। उनके पर्युषण के दिन करीब आ रहे हैं, तब। तब वे करीब-करीब दिन मंदिर में गुजार देते हैं। क्योंकि मंदिर में, कितना ही विचार आए भूख का, भोजन का, तो भी कोई उपाय नहीं है। और फिर चारों तरफ उन्हीं जैसे लोग इकट्ठे हैं, जो एक-दूसरे से सहारा मांग रहे हैं। फिर उनके मुनि और उनके साधु बैठे हुए हैं जो उन पर दृष्टि रखे हुए हैं और वे उन पर दृष्टि रखे हुए हैं कि कोई चूक न जाए पथ से।

चूकने का सवाल क्या है? अगर आदमी सबल है, अगर आदमी सच में ही सबल है, तो चूकने का सवाल क्या है? और किसके सहारे की जरूरत है?

ये सारे संकल्प निर्बलता के लक्षण हैं। लेकिन इन संकल्पों को पूरा किया जा सकता है। क्योंकि निर्बल आदमी का भी अहंकार है। सच तो यह है कि निर्बल आदमी का ही अहंकार होता है; सबल आदमी को अहंकार की कोई जरूरत नहीं होती। वह अपने में इतना आश्वस्त होता है कि अब और किसी अहंकार की जरूरत नहीं होती। अहंकार की जरूरत का अर्थ है कि मैं अपने में आश्वस्त नहीं हूं, तुम मुझे आश्वस्त करो; तुम कहो कि तुम महान हो। लोग कहें कि तुम चरित्रवान हो; लोग कहें कि अदभुत है तुम्हारा संकल्प; लोग स्वागत-समारंभ करें; उसके बल से मैं जी सकता हूं, उसके बल से मैं दृढ़ हो सकता हूं। मेरी दृढ़ता दूसरों के हाथों से मुझे मिलती है; दूसरों की आंखों से मुझे मिलती है।

लेकिन जो आदमी सच में संकल्पवान है, सच में सबल है, वह हमें दुर्बल दिखाई पड़ेगा। दुर्बल इसलिए दिखाई पड़ेगा कि कभी वह अपनी शक्ति को प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं करेगा, कभी अपनी शक्ति के लिए बाह्य आयोजन नहीं करेगा, और कभी अपनी शक्ति के लिए हमसे सहारा नहीं मांगेगा।

कठिन है। क्योंकि जहां हम जीते हैं वहां हम सभी निर्बल हैं। और हम सभी इंतजाम करके जीते हैं, इंतजाम हमारी सबलता होती है। और अक्सर, आपको पता होगा अपने ही अनुभव से कि दुर्बलता के क्षण में आप बाहर से बड़े सबल दिखलाई पड़ने की कोशिश करते हैं। जब लगता है कि भीतर कहीं टूट न जाऊं तब आप बाहर से बिल्कुल हिम्मत जुटा कर खड़े रहते हैं। लेकिन जब आप भीतर आश्वस्त होते हैं तो बाहर आपको हिम्मत जुटाने की जरूरत नहीं होती। आप निश्चिंत विश्राम कर सकते हैं।

एक महिला को मेरे पास लाया गया। युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। पति की मृत्यु हो गई तो वह रोई नहीं। लोगों ने कहा, बड़ी सबल है! सुशिक्षित है, सुसंस्कृत है! जैसे-जैसे लोगों ने उसकी तारीफ की वैसे-वैसे वह अकड़ कर पत्थर हो गई। आंसुओं को उसने रोक लिया। जो बिल्कुल स्वाभाविक था, आंसू बहने चाहिए। जब प्रेम किया है, और जब प्रेम स्वाभाविक था, तो जब प्रियजन की मृत्यु हो जाए तो आंसुओं का बहना स्वाभाविक है। वह उसका ही अनिवार्य हिस्सा है। लेकिन लोगों ने तारीफ की और लोगों ने कहा, स्त्री हो तो ऐसी! इतना प्रेम था, प्रेम-विवाह था, मां-बाप के विपरीत विवाह किया था, और फिर भी पति की मृत्यु पर अपने को कैसा संयत रखा, संयमी रखा! संकल्पवान है, दृढ़ है, आत्मा है इस स्त्री के पास! इन सब बकवास की बातों ने उस स्त्री को और अकड़ा दिया।

तीन महीने बाद उसे हिस्टीरिया शुरू हो गया, फिट आने लगे। लेकिन किसी ने भी न सोचा कि इस हिस्टीरिया के जिम्मेवार वे लोग हैं जिन्होंने कहा, इसके पास आत्मा है, शक्ति है, दृढ़ता है। वे ही लोग हैं। क्योंकि भीतर तो रोना चाहती थी, लेकिन कमजोरी प्रकट न हो जाए तो अपने को रोके रखा। यह रोकना उस

सीमा तक पहुंच गया जहां रोकना फिट बन जाता है, यह सीमा उस जगह आ गई जहां कि फिर अपने आप कंप पैदा होंगे। सारा शरीर कंपने लगता और वह बेहोश हो जाती। यह बेहोशी भी मन की एक व्यवस्था है। क्योंकि होश में जिसे वह प्रकट नहीं कर सकती, फिर उसे बेहोशी में प्रकट करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रह गया। शरीर तो प्रकट करेगा ही। हिस्टीरिया की हालत में लोटती-पोटती, चीखती-चिल्लाती। लेकिन उसका जिम्मा उस पर नहीं था, और कोई उससे यह नहीं कह सकता कि तेरी कमजोरी है। यह तो बीमारी है। और होश तो खो गया, इसलिए जिम्मेवारी उसकी नहीं है। होश में तो वह सख्त रहती।

जब मेरे पास उसे लाए तो मैंने कहा कि उसे न कोई बीमारी है, न कोई हिस्टीरिया है। तुम हो उसकी बीमारी। तुम जो उसके चारों तरफ घिरे हो। तुम कृपा करके उसके अहंकार को पोषण मत दो; उसे रो लेने दो। वह जो बेहोशी में कर रही है उसे होश में कर लेने दो। उसे छाती पीटनी है, पीटने दो; उसे गिरना है, लोटना है जमीन पर, लोटने दो। स्वाभाविक है। जब किसी के प्रेम में सुख पाया हो तो उसकी मृत्यु में दुख पाना भी जरूरी है। सुख तुम पाओ, दुख कोई और थोड़े ही पाएगा?

तो मैंने उस स्त्री को कहा कि तू सुख पाए, तो दुख मैं पाऊं? या कौन पाए? मैंने उससे पूछा कि तूने अपने पति से सुख पाया?

उसने कहा, बहुत सुख पाया; मेरा प्रेम था गहरा।

तो फिर मैंने कहा, रो! छाती पीट, लोट! बेहोशी में जो-जो हो रहा है, वह संकेत है। तो हिस्टीरिया में जो-जो हो रहा है, नोट करवा ले दूसरों से, और वही तू होशपूर्वक कर; हिस्टीरिया विदा हो जाएगा।

एक सप्ताह में हिस्टीरिया विदा हो गया। स्त्री स्वस्थ है। और अब उसके चेहरे पर सच्चा बल है--प्रेम का, पीड़ा का। अब एक सहजता है। इसके पहले उसके पास जो चेहरा था वह फौलादी मालूम पड़ता था, लोहे का बना हो। लेकिन वह निर्बलता का सूचक है। क्योंकि चेहरे को फौलाद का होने की जरूरत भी नहीं है। फौलाद का चेहरा उन्हीं के पास होता है जिनको अपने असली चेहरे को प्रकट करने में भय है। तो वे एक चेहरा ओढ़ लेते हैं; उस चेहरे के पीछे से वे ताकतवर मालूम होते हैं। आप भी लोहे का एक चेहरा पहन कर लगा लें। तो दूसरों को डराने के काम आ जाएगा। और लोग कहेंगे, हां, आदमी है यह। लेकिन भीतर? भीतर आप हैं जो कंप रहे हैं, भय से घबरा रहे हैं। उसी के कारण तो चेहरा ओढ़ा हुआ है।

वह लोहे की फौलाद तो गिर गई, उसके साथ हिस्टीरिया भी गिर गया। आंसुओं के साथ, वह सब जो झूठा था, बह गया। रुदन में, वह सब जो कृत्रिम था, जल गया, समाप्त हो गया। अब उस स्त्री का अपना चेहरा प्रकट हुआ। लेकिन इसके पहले जो उसे शक्तिशाली कहते थे, अब कहते हैं, साधारण है; जैसी सभी स्त्रियां होती हैं, निर्बल है। वे जो उसे शक्तिशाली कहते थे, अब उसे शक्तिशाली नहीं कहते। लेकिन उनके शक्तिशाली कहने से हिस्टीरिया पैदा हुआ था, इसका उन्हें कोई भी बोध नहीं है।

लाओत्से कहता है, ठोस चरित्र दुर्बल दिखता है। क्योंकि ठोस चरित्र सहज होता है। ठोस चरित्र इतना आश्वस्त होता है अपने प्रति कि सहज-स्फूर्त होता है, स्पांटेनियस होता है। कृत्रिम नहीं होता, कोई सुरक्षा का उपाय नहीं होता, सहज धारा होती है।

देखें, हम किनको शक्तिशाली कहते हैं? लोकमान्य तिलक के जीवन में मैंने पढ़ा है। पत्नी मर गई। तो वे अपने दफ्तर में काम करते थे, केसरी के दफ्तर में काम करते थे। तो जब खबर पहुंची कि पत्नी की मृत्यु हो गई तो उन्होंने लौट कर घड़ी की तरफ देखा और उन्होंने कहा, अभी तो मेरे दफ्तर से उठने का समय नहीं हुआ। तो जिस व्यक्ति ने यह घटना लिखी है उसने लिखा है कि इसको कहते हैं ठोस चरित्र! फौलाद!

मगर मेरे सोचने के ढंग उलटे हैं। यह फौलाद नहीं है, यह कृत्रिम चेहरा है, जो खतरनाक है। क्योंकि जो आदमी घड़ी को ज्यादा मूल्य दे रहा है प्रेम से, दफ्तर को ज्यादा मूल्य दे रहा है पत्नी से, इस आदमी ने अपने व्यक्तित्व की जो सहजता है, उसको दबा लिया है। जब कर्तव्य बड़ा हो जाए प्रेम से तो समझना कि असली आदमी दब गया और नकली आदमी ऊपर आ गया। लेकिन यह बात कोई और नहीं कहेगा। क्योंकि सारी दुनिया में ड्यूटी, कर्तव्य महान चीज है। और जो आदमी प्रेम की भी कुर्बानी दे दे कर्तव्य के लिए, उसको हम कहेंगे--शहीद है! इसको कहते हैं कर्तव्य! सेवा! राष्ट्र!

लेकिन जिसके हृदय में प्रेम की सहज स्फुरणा न हो उसका सारा व्यक्तित्व जड़ हो जाएगा, सूख जाएगा। और जिसके मन में प्रेम की स्फुरणा न हो उसके मन में बाकी कोई स्फुरणा नहीं हो सकती। हम सैनिक को तैयार करते हैं इस तरह से कि वह बिल्कुल लोहे का आदमी हो जाए। और जरूरत है सैनिक की कि वह लोहे का आदमी हो; क्योंकि उसे जो काम करने हैं, वह अगर उसके पास हृदय हो तो वह नहीं कर पाएगा। इसलिए सैनिक को हम कर्तव्य सिखाते हैं, सेवा सिखाते हैं, आज्ञा सिखाते हैं। और हमने सैनिक को लक्ष्य बना लिया है बहुत जीवन के हिस्सों में, और हम हर आदमी को चाहते हैं कि वह सैनिक जैसा हो, सहज न हो। क्योंकि सारा जीवन संघर्ष है और युद्ध है।

लोकमान्य के जीवन में अगर ऐसी घटना घटी हो तो उसका मतलब यह है कि जो लोग प्रशंसा कर रहे हैं वे लोकमान्य के सैनिक की प्रशंसा कर रहे हैं। उनका कुछ लक्ष्य है। क्योंकि उनको लोकमान्य को, और लोकमान्य जैसे लोगों को, इस घटना के आधार पर ऐसी दिशा में ले जाना है जहां लोग हृदय को छोड़ कर संलग्न हो जाएं। फिर वह चाहे राष्ट्रभक्ति का नाम हो, चाहे कोई और नाम हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन नजर यह है कि आदमी सहजता को खो दे, असहज हो जाए।

यह जो असहजता है, बड़ी शक्तिशाली मालूम पड़ेगी। अगर लोकमान्य रोने लगते और आंसू बहने लगते, और भूल जाते दफ्तर और केसरी को--भूलने जैसा था--और उठ कर दौड़ गए होते पत्नी की तरफ, तो हमको लगता अरे! शायद हम उनको लोकमान्य भी कहना बंद कर देते कि आखिर साधारण आदमी ही सिद्ध हुए।

रिंझाई जापान में एक फकीर हुआ। उसका गुरु मर गया। और जब गुरु मर गया... तो रिंझाई की बड़ी ख्याति थी, इतनी ख्याति थी जितनी गुरु की भी नहीं थी। गुरु की भी ख्याति रिंझाई की वजह से थी कि वह रिंझाई का गुरु है। रिंझाई को लोग समझते थे कि वह निर्वाण को उपलब्ध हो गया, परम ज्ञान उसे हो गया, वह बुद्ध हो गया। लाखों लोग इकट्ठे हुए। जो रिंझाई के बहुत निकट थे बड़े चिंतित हो गए, क्योंकि रिंझाई की आंखों से आंसू बह रहे हैं। वह सीढ़ियों पर बैठा रो रहा है छोटे बच्चे की तरह। तो निकट के लोगों ने कहा, रिंझाई, यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगेगा। क्योंकि लोग यह सोच ही नहीं सकते कि तुम और रोओ! तुम तो परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए हो। और तुमने तो हमें समझाया है कि आत्मा अमर है, तो कैसी मौत! तो तुम किसलिए रो रहे हो?

रिंझाई ने कहा कि रोने के लिए भी किसलिए का सवाल है! क्या मैं किसी के लिए उत्तरदायी हूं? क्या मैं रोने के लिए भी स्वतंत्र नहीं हूं? निश्चित ही, आत्मा अमर है। मैं आत्मा के लिए रो भी नहीं रहा। मेरे गुरु का शरीर भी इतना प्यारा था, मैं उसके लिए रो रहा हूं। आत्मा के लिए रो कौन रहा है? मैं तो उस शरीर के लिए रो रहा हूं। अब वह कभी भी नहीं होगा, अब वैसा शरीर कभी भी नहीं होगा। और अगर मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लगता हो तो लगने दो। क्योंकि ऐसी प्रतिष्ठा का क्या मूल्य जो गुलामी बन जाए, कि मैं रो भी न सकूं।

और रिंझाई ने कहा कि मैं तो वही करता हूं जो होता है; अपनी तरफ से तो मैं कुछ करता नहीं। अभी रोना हो रहा है; तो मैं इसे रोकूंगा नहीं। यह रुक जाए तो मैं इसे चलाऊंगा नहीं।

हम बड़े अजीब लोग हैं। हम ऐसे अजीब लोग हैं कि जब रोना चल रहा हो तब उसे रोक लें और जब न चल रहा हो तब रोकर भी दिखा दें। मेरे परिवार की एक महिला की मृत्यु हो गई थी। तो उनके अकेले पति बचे। मैं उनके घर था। तो मैं था, उनके पति थे, और तीन-चार महिलाएं और जो उनकी मृत्यु की वजह से कुछ दिन रहने के लिए आ गई थीं। उनको देख कर मैं बड़ा चकित होता। वे गपशप कर रही हैं, बातचीत कर रही हैं, हंस रही हैं, और कोई बैठने आ जाता--एकदम घूंघट काढ़ कर वे एकदम रोना शुरू कर देतीं। इसमें क्षण भर की देर न लगती। वह आदमी गया, उनके घूंघट उठ जाते, आंसू पुंछ जाते, और फिर वह गपशप जहां टूट गई थी वहां से शुरू हो जाती। मैंने उन महिलाओं को कहा कि तुम्हारी कुशलता अदभुत है, तुम धन्य हो।

पर हम यह कर रहे हैं। जहां रोना हो वहां हम रोक सकते हैं; जहां न रोना हो वहां हम रो सकते हैं। हम झूठे हैं। लेकिन यह हमारी शक्ति मालूम पड़ती है। संयम को हम शक्ति कहते हैं। और श्रेष्ठ चरित्र सहज होता है, संयमी नहीं। उसकी सहजता ही अगर संयम बन जाए तो बात अलग है। लेकिन सहज उसका मूल आधार है। संयम हमारा मूल आधार है--कंट्रोल, नियंत्रण। तो जो आदमी जितना नियंत्रण कर सकता है, उसको हम उतना बलशाली, शक्तिशाली, श्रेष्ठ मानते हैं।

लेकिन वास्तविक लाओत्से के अनुसार, ताओ के अनुसार जो अंतिम जीवन का लक्ष्य है, वह इतनी सहजता है कि जहां न कोई नियंत्रण है, न कोई नियंत्रण करने वाला है; जो हो रहा है उसे होने दिया जा रहा है। क्योंकि उसके विपरीत कोई भी नहीं है। जब तक विपरीत भीतर है तब तक आप बंटे हुए हैं। कुछ हो रहा है और कुछ रोकने वाला भी खड़ा है तो आप खंड-खंड हैं। और खंड-खंड व्यक्ति कितना ही दृढ़ मालूम पड़े, खंडित व्यक्ति कमजोर है। इंटिग्रेशन नहीं है; अभी एक अखंडता पैदा नहीं हुई। अखंडता ही शक्ति और दृढ़ता है। लेकिन अखंडता तो तभी पैदा होगी कि जो मेरे भीतर हो उसको रोकने वाला कोई भी न हो। अहंकार बचे ही न, मैं बच्चे की तरह हो जाऊं, जो हो वह हो।

बड़ा कठिन है। क्योंकि हमें खुद ही अड़चन मालूम पड़ेगी कि यह बात तो ठीक नहीं है, चार आदमियों के सामने कैसे रोना? लोग कहेंगे, क्या मर्द होकर स्त्रियों जैसा व्यवहार कर रहे हो? तो आदमी पुरुषों ने तो रोना ही बंद कर दिया है। लेकिन प्रकृति बड़ी जिद्दी है। वह आंसू की ग्रंथि बनाए चली जाती है। आप रोएं चाहे न रोएं, आंसू की ग्रंथि बनाए चली जाती है। आपकी आंखें रोने को सदा आतुर हैं, चाहे आप पुरुष हों चाहे स्त्री। लेकिन बच्चों को हम सिखा रहे हैं--छोटे से बच्चे को--कि क्या लड़कियों जैसा रो रहा है! वह फौरन रुक जाता है कि ठीक, मैं लड़की नहीं हूं; रोक लेता है। लेकिन हमने उस बच्चे को विकृत करना शुरू कर दिया। उसके आंसू जहर बन जाएंगे, क्योंकि रुके हुए आंसू जहर हो जाने वाले हैं।

इसलिए आप जान कर हैरान होंगे, स्त्रियों की बजाय पुरुष मानसिक रूप से ज्यादा पीड़ित होते हैं। आमतौर से होना चाहिए स्त्रियां, क्योंकि वे ज्यादा कमजोर मालूम पड़ती हैं। लेकिन पुरुष ज्यादा मानसिक रूप से बीमार होते हैं। स्त्रियों की बजाय पागलखानों में पुरुषों की संख्या ज्यादा है। कारण क्या होगा? पुरुष को ज्यादा नियंत्रण सिखाया जा रहा है। स्त्री को क्षम्य मान कर, हम समझते हैंः कमजोर है, रोती है, रोने दो। स्त्री ही है, स्वीकृत है। पुरुष जैसे ही रोने लगे वैसे ही अड़चन शुरू हो जाती है। हमने पुरुष को कृत्रिम नियंत्रण, सैनिक बनाने की कोशिश की है; उसमें वह झूठा हो गया। उसके आस-पास एक आर्मर, एक झूठा कवच हमने

खड़ा कर दिया है। वह उस कवच के भीतर खड़ा है। कोई मर जाए तो भी उसे अकड़े रहना है। कुछ भी हो जाए, उसे अपने को सम्हाले रखना है।

यह सम्हालने वाला कौन है? यही हमारा अहंकार है। इसलिए जितना बड़ा अहंकारी हो उतना हमें दृढ़ मालूम होगा। और जितना निरहंकारी हो उतना ही हमें लगेगा कि यह आदमी दृढ़ नहीं है। निरहंकारी व्यक्ति सरल होगा, सहज होगा; जैसे पानी बहता है, हवा चलती है, इस तरह होगा।

"ठोस चरित्र दुर्बल दिखता है। शुद्ध योग्यता दूषित मालूम पड़ती है।"

शुद्ध योग्यता का तो हमें ख्याल ही नहीं है कि क्या है। हमें तो सिर्फ सीमित योग्यता का, अशुद्ध योग्यता का पता है। ऐसा समझें। एक आदमी है, वह इंजीनियर है, और कुशल इंजीनियर है। तो हम कहते हैं, योग्य है। क्योंकि कुशल इंजीनियर है, एक दिशा में बहुत आगे चला गया। तो हम कहते हैं, योग्य मनुष्य है। लेकिन क्या यह उचित है कहना? क्योंकि इंजीनियर होने से मनुष्यता का क्या संबंध है? इंजीनियरिंग एक कुशलता है। उससे मनुष्य योग्य नहीं होता, उससे मनुष्य उपयोगी होता है। एक आदमी डाक्टर है, और कुशल डाक्टर है।

मैं एक डाक्टर को जानता हूं, एक बड़े सर्जन को। उनकी ख्याति थी दूर-दूर। देश के कोने-कोने से लोग उनके पास आपरेशन के लिए आते थे। और वे आपरेशन की टेबल पर आदमी को रख लेते, चीर-फाड़ शुरू कर देते, और तब उसके रिश्तेदारों को कहते कि पचास हजार रुपया! नहीं तो आदमी बचेगा नहीं। और वह आदमी आपरेशन की टेबल पर रखा हुआ है, बेहोश पड़ा है, चीर-फाड़ शुरू कर दी गई; तब वे कहते।

तो कुशल सर्जन थे, पर आदमी की योग्यता का क्या संबंध है? और कुशल इतने थे कि यह लोग जानते थे, फिर भी लोग जाते। हाथ उनका अदभुत था। जब वे बूढ़े हो गए, सत्तर वर्ष के, तब भी उनका हाथ कंपता नहीं था--जरा सा नहीं कंपता था। वही उनकी कुशलता थी। लेकिन मनुष्य की कुशलता, उससे कोई संबंध नहीं है। मनुष्य वे बड़े खतरनाक थे, बिल्कुल योग्य नहीं थे। मनुष्य वे ऐसे थे कि चोर-डाकू होना था; भूल-चूक से वे सर्जन हो गए थे। अगर वे डाकू होते तो हमें पता नहीं चलता, हम कभी न कहते कि योग्य हैं। लेकिन उनका निशाना तब भी अचूक होता, क्योंकि हाथ उनका हिलता नहीं। वह जो डाकू की योग्यता थी, सर्जन की योग्यता बन गई। लेकिन आदमी का क्या संबंध है? आदमी तो वहीं का वहीं खड़ा है।

आदमी की योग्यता शुद्ध योग्यता है; बाकी कुशलताएं हैं। तो आप अच्छे सर्जन हो सकते हैं, अच्छे शिक्षक हो सकते हैं, अच्छे राज हो सकते हैं, अच्छे चित्रकार, अच्छे कवि हो सकते हैं, साहित्यकार हो सकते हैं, राजनीतिज्ञ हो सकते हैं; ये सब योग्यताएं नहीं हैं, ये उपयोगिताएं हैं, कुशलताएं हैं, एफीशिएंसीज हैं।

शुद्ध योग्यता क्या है? शुद्ध योग्यता शुद्ध मनुष्य होना है। बड़ा कठिन है लेकिन, हम शुद्ध योग्यता को पहचान ही नहीं सकते। अगर एक आदमी ऐसा है जिसमें कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं है, आप उसको कहेंगे, बेकार। न सर्जन है, न चित्रकार है, न मूर्तिकार है, न राजनीतिज्ञ है, कुछ भी नहीं है; कवि तक नहीं है। कम से कम तुकबंदी करता; वह भी नहीं कर सकता, खाली बैठा है।

बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए। कौन सी योग्यता है उनमें, बताइए? क्या कर सकते हैं? कुछ भी नहीं कर सकते हैं। एक साइकिल का पंक्चर नहीं जोड़ सकते। किस मतलब के हैं?

बुद्ध बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए शुद्ध योग्यता में हैं; जहां योग्यता किसी दिशा में नहीं जाती; जहां योग्यता का कोई व्यवहार नहीं है; जहां योग्यता की सिर्फ उपस्थिति है। और जब सभी दिशाओं से योग्यता हट कर भीतर बैठ जाती है तो शुद्धता का जन्म होता है, शुद्ध मनुष्य का जन्म होता है। भीतर की मनुष्यता का कोई भी उपयोग एक अर्थ में अशुद्धि है। क्योंकि उपयोग में अशुद्ध होना ही पड़ेगा; पदार्थ में उतरना पड़ेगा।

तो लाओत्से कहता है, "शुद्ध योग्यता दूषित मालूम पड़ती है।"

हम कितनी ही पूजा बुद्ध की करें, भीतर हमें लगता ही है कि यह आदमी कुछ कर नहीं रहा; किसी काम का नहीं है।

मेरे घर में ऐसा हुआ कि मुझे धीरे-धीरे घर के लोग ही समझने लगे कि मैं किसी काम का नहीं हूं। ऐसा भी हो जाता कभी कि मैं घर में बैठा हूं और मेरी मां मेरे ही सामने कहती कि यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता, सब्जी लेने किसी को भेजना है। मैं सामने बैठा हूं; कहती कि यहां कोई दिखाई नहीं पड़ता, किसी को सब्जी लेने बाजार भेजना है। मैं सुन रहा हूं। मगर उसका कहना ठीक है, वहां सच में कोई नहीं है; सब्जी लेने की मुझमें कोई योग्यता नहीं है।

एक दफा भेज कर वह भूल में पड़ गई, फिर उसने दुबारा मुझे नहीं भेजा। एक बार उसने मुझे भेजा सब्जी लेने। आम का मौसम था और मुझे कहा, आम ले आओ। मैं गया। मैंने दुकानदार से पूछा कि सबसे श्रेष्ठ आम कौन सा है? मेरी शक्ल देख कर ही वह समझ गया और मेरे पूछने के ढंग को देख कर समझ गया कि इस आदमी ने आम कभी खरीदे नहीं हैं। जो रद्दी से रद्दी आम था, उसने कहा कि यह सबसे श्रेष्ठ आम है। और दाम उसने सबसे ज्यादा उसके बताए। तो मुझे लगा कि ठीक ही है, जब दाम इसके सबसे ज्यादा हैं तो सबसे श्रेष्ठ होना ही चाहिए। शक तो मुझे होता था कि वह सड़ा-गला दिखता था, लेकिन मैंने सोचा कि जब मैं खुद उससे पूछ ही लिया हूं और जितने दाम मांगता है उतने देने को राजी हूं तो धोखा देने का कोई कारण नहीं है। लेकर आम मैं घर आ गया। मेरी मां ने तो देख कर आंख बंद कर लीं। पड़ोस में एक बूढ़ी भिखारिन रहती थी, मुझसे कहा कि यह जाकर उसको दे आ। उस बूढ़ी भिखारिन ने मुझसे कहा कि कचराघर पर फेंक दो। बस फिर मेरी बाजार जाने की यात्रा बंद हो गई।

कुशलता पहचानी जाती है, दिखाई पड़ती है। उसका उपयोग है। शुद्धता का क्या उपयोग हो सकता है? निरुपयोगी है। उसका आर्थिक जगत में कोई मूल्य नहीं है, उसकी कोई कीमत नहीं है। और ध्यान रहे, जिस चीज में हमें कोई कीमत न दिखाई पड़े उसमें मूल्य भी कैसे दिखाई पड़े? जब कीमत ही नहीं है तो मूल्य भी हमारे लिए नहीं रह जाता। शुद्धता निरुपयोगी तत्व है। निरुपयोगी इस अर्थ में कि व्यवहार-बाजार की दुनिया में उसका हम कुछ भी नहीं कर सकते। लेकिन परम आनंद का स्रोत है। और जिसको मिलती है उसको तो परम आनंद है ही; अगर आपको भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाए तो आप भी उसके आनंद में सहभागी हो जाते हैं।

अगर बुद्ध बैठे हैं बोधिवृक्ष के नीचे और आप वहां से निकलें और सोचें कि बेकार! तो आपका संबंध टूट गया। अगर आप सोचें कि कुछ जरूर घट रहा है, कुछ परम घट रहा है, जो दिखाई नहीं पड़ता, जो जगत तक नहीं आता, जो किसी मूल स्रोत में घट रहा है, बीज में घट रहा है, और आप बुद्ध के पास बैठ जाएं और एक दीवार खड़ी न करें कि यह बेकार बैठा हुआ है आदमी, आप सोचें कि कुछ घट रहा है, और आप रिसेप्टिव हो जाएं, ग्राहक हो जाएं। तो आप पाएंगे कि बुद्ध की आनंद-किरण आपको भी हिलाने लगी। आप पाएंगे कि बुद्ध की वह शून्यता आपके भीतर भी छाने लगी। आप पाएंगे कि बुद्ध के भीतर जो अमृत बरस रहा है, उसकी कुछ झलक, कुछ स्वाद आपके भीतर भी आने लगा। आप खुले हों, आपका पात्र खुला हो। लेकिन आपने कहा कि बेकार, आपका पात्र बंद हो गया। फिर निश्चित ही बिल्कुल बेकार है। क्योंकि आप कैसे उपयोगिता जान सकते हैं? यह उपयोगिता किसी और ही ढंग की है, किसी और ही आयाम में, एक नया ही डायमेंशन है इसका, जहां बाजार का मूल्य काम नहीं आ सकता; जहां केवल आत्मा की ग्राहकता हो तो हम समझ सकते हैं क्या घट रहा है।

शुद्धता आनंद है, सुविधा नहीं है, उपयोगिता नहीं है, कुशलता नहीं है। सिर्फ मनुष्य का होना अपनी शुद्धता में! इसका अर्थ हुआ कि जहां कोई वासना नहीं है, जहां कोई विचार नहीं है, जहां कोई दौड़, कोई तनाव, कोई अशांति नहीं है, ऐसी चेतना की दशा का नाम शुद्धता है। वह है प्योरिटी, इनोसेंस, वहां निर्दोष होना मात्र है। पर इसकी हमें प्रतीति तभी हो सकती है जब हम कभी ऐसे होने की घटना जहां घट रही हो ऐसे व्यक्ति के पास ग्राहक होकर बैठ जाएं। शायद एक क्षण में आपको पता भी न चले, वर्षों भी लग सकते हैं। लेकिन अगर आप ग्राहक बने बैठे रहें... ।

बुद्ध से कोई एक दिन पूछता है कि ये दस हजार भिक्षु आपके आस-पास इकट्ठे रहते हैं; ये क्या करते हैं यहां? तो बुद्ध कहते हैं, ये कुछ करते नहीं हैं; ये सिर्फ मेरे पास होते हैं। वर्षों तक ये सिर्फ मेरे पास होते हैं। ये मुझे पीते हैं। ये मेरे प्रति खुलते हैं। जैसे सुबह कमल खिलता है, सूरज के लिए उन्मुख हो जाता है; खोल देता है अपनी पंखुड़ियां। ऐसा ये खुलते हैं। कुछ मेरे भीतर घटा है, कुछ ऐसा जो जगत के बाहर है, ये भी उसके साझीदार होने की कोशिश में लगे हैं। एक बार इन्हें स्वाद आ जाए तो इनके भीतर भी घटना शुरू हो जाएगा।

बुद्धत्व संक्रामक है, इनफेक्शस है। अगर आप तैयार हों तो बुद्धत्व के कीटाणु आपके भीतर प्रवेश कर सकते हैं, आपको रूपांतरित कर सकते हैं। बीमारियां ही संक्रामक नहीं होतीं, स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। दुख ही संक्रामक नहीं होता, महा सुख भी संक्रामक होता है।

लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। हम दुख के लिए तो बिल्कुल खुले हैं और आनंद के लिए बिल्कुल बंद हैं। कहीं दुख मिल रहा हो तो हम जल्दी से खुल जाते हैं, तैयार हैं। दुख को लेने को हम बिल्कुल प्यासे हैं, तत्पर हैं। आनंद कहीं मिल रहा हो तो हम इनकार करने के सब उपाय करते हैं।

असल में, हमें भरोसा ही नहीं रहा है कि आनंद संभव है। इसलिए हम मान ही नहीं पाते कि बुद्धत्व संभव है, या क्राइस्ट होना संभव है। हम मान ही नहीं पाते। और जब हम कहते हैं कि ये सब कथाएं हैं, तो हम असल में यह नहीं कह रहे हैं कि बुद्ध और क्राइस्ट कभी हुए नहीं; हम यह कह रहे हैं कि हम मान नहीं सकते कि ये हो सकते हैं, क्योंकि हम इतने दुख में हैं और सुख की हमें कोई किरण नहीं मिली। हमें अपने पर भरोसा खो गया है। शुद्ध योग्यता हमें दूषित मालूम पड़ती है।

"महा अंतरिक्ष के कोने नहीं होते।"

आकाश का कोई कोना है? लेकिन हम अपने घरों में रहने के आदी हैं, और हमारे कमरे का कोना होता है। कोनों के कारण ही हम कह पाते हैं, यह हमारा कमरा है। अगर कोने न हों तो हमारा कमरा खो जाए। लेकिन महा आकाश का कोई कोना नहीं है। इसलिए महा आकाश हमें दिखाई नहीं पड़ता।

योग्यता के कोने होते हैं--छोटे-छोटे कमरे। शुद्धता का कोई कोना नहीं होता--महा आकाश! इसलिए शुद्धता हमें दिखाई नहीं पड़ती। जब तक आकाश दीवारों में बंद न हो जाए तब तक हमें उपयोगी नहीं मालूम पड़ता। यह कमरे में हम बैठे हैं। दीवार में तो हम नहीं बैठे हैं, बैठे तो हम आकाश में ही हैं; जो खाली जगह है उसी में बैठे हैं। लाओत्से बार-बार कहता है, मकान का उपयोग दीवार में नहीं, खाली जगह में है। दीवार केवल खाली जगह को घेरती है। लेकिन जब दीवार खाली जगह को घेरती है, हम आश्वस्त हो जाते हैं; हम कहते हैं, भवन निर्मित हो गया। बैठते खाली जगह में ही हैं, बैठते आकाश में ही हैं, लेकिन जब दीवार घेर लेती है तो हम सुरक्षित अनुभव होते हैं। अपना आकाश घेर लिया; लगता है, अब कुछ अपना है। सीमा है तो हमें दिखाई पड़ता है। दीवारें खो जाएं--अभी यहां बैठे-बैठे ऐसा चमत्कार हो कि दीवारें खो जाएं--तो आप जहां बैठे हैं वही बैठे रहेंगे, कोई भी फर्क आपको नहीं पड़ेगा। लेकिन आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे, बेचैनी शुरू हो जाएगी। खुले

आकाश के नीचे आ गए; अज्ञात के नीचे आ गए। जहां सीमाएं नहीं और कोने नहीं, वहां हमारी पकड़ नहीं बैठती, वहां हम भयभीत हो जाते हैं।

आदमी ने मकान सिर्फ इसलिए ही नहीं बना लिया है कि शरीर के लिए सुरक्षा है। वह तो है ही। बड़ी तो मानसिक सुरक्षा है। क्योंकि जो हमें दिखाई पड़ता है उसके हम मालिक मालूम पड़ते हैं। जिसकी हम सीमा बांध लेते हैं उसके हम मालिक मालूम पड़ते हैं। जिसकी कोई सीमा नहीं उसके सामने हम क्षुद्र हो जाते हैं, और वह मालिक होता हुआ मालूम पड़ता है। वहां भय शुरू हो जाता है।

"महा अंतरिक्ष के कोने नहीं होते। महा प्रतिभा प्रौढ़ होने में समय लेती है।"

लोग मुझसे पूछते हैं आकर, ध्यान कितने समय में हो जाएगा? महीना, दो महीना, तीन महीना? वे जो भी योग्यताएं जानते हैं, सभी बहुत थोड़ा समय लेती हैं। किसी आदमी को इंजीनियर होना है, कुछ वर्ष में हो जाएगा। किसी को डाक्टर होना है, कुछ वर्ष में हो जाएगा। वे पूछते हैं, ध्यान--समय कितना लगेगा? उपनिषद और वेद कहते हैं, अनंत जन्म लगेंगे। अगर आपसे कहा जाए अनंत जन्म लगेंगे, आप प्रयास ही न करेंगे कि जाने दो। आप प्रयास ही न करेंगे।

एक बार बुद्ध एक गांव से गुजर रहे हैं। रास्ता भटक गया है। संगी-साथी, भिक्षु भूखे-प्यासे हैं। घनी दोपहर हो गई है। जंगल से रास्ता निकलता हुआ मालूम नहीं पड़ता। जिस गांव पहुंचना है, वह कितनी दूर है, कुछ पता नहीं। राह में एक आदमी मिलता है। बुद्ध का शिष्य आनंद उस आदमी से पूछता है, गांव कितनी दूर है? वह आदमी कहता है, बस दो मील, एक कोस।

एक कोस निकल जाता है; गांव का फिर भी कोई पता नहीं। फिर एक आदमी मिलता है। आनंद पूछता है, गांव कितनी दूर है? वह आदमी कहता है, बस एक कोस, दो मील। आनंद थोड़ा बेचैन होता है। एक कोस पहले भी था; एक कोस चल चुके, शायद ज्यादा ही चल चुके। लेकिन बुद्ध मुस्कुराते रहते हैं।

फिर एक कोस बीत जाता है। लेकिन गांव का कोई पता नहीं। और अब सांझ होने के करीब आने को है। और भूख और प्यास और सब परेशान हैं। और फिर एक आदमी, एक लकड़हारा मिलता है; और उससे पूछते हैं, गांव कितनी दूर है? वह कहता है, बस दो मील, एक कोस। आनंद खड़ा हो जाता है। वह कहता है, यह किस तरह की, यह किस तरह की यात्रा हो रही है? यह एक कोस कितना लंबा है?

बुद्ध कहते हैं, तू खुश हो, कम से कम एक कोस से ज्यादा तो नहीं बढ़ता गांव। इतना भी क्या कम है कि अपना एक कोस ठहरा हुआ है, उससे ज्यादा नहीं हो रहा। हमने जितना था उससे खोया नहीं है, इतना पक्का है। हम जहां थे कम से कम वहीं थिर हैं; वहां से पीछे नहीं हटे। और ये लोग भले लोग हैं। ये प्रेमवश कहते हैं एक कोस, ताकि तुम चल सको। और बुद्ध ने कहा, मेरी खुद की हालत तुम्हारे साथ यही है। तुम मुझसे पूछते हो, कितनी दूर है बोध? कितनी दूर है बुद्धत्व? मैं कहता हूं, एक कोस। तुम एक कोस चल कर फिर पूछते हो; मैं कहता हूं, एक कोस। यह लंबी यात्रा है; यह अनंत यात्रा है; अनंत जन्म लग जाते हैं। ये भले लोग हैं। ये तुम्हारे चेहरे की थकान देख कर एक कोस कहते हैं। एक कोस से इनका कोई लेना-देना नहीं है। ये दयावान हैं।

अच्छा था, पुराने दिनों में सड़क के किनारे पत्थर नहीं थे। क्योंकि पत्थर आपका चेहरा नहीं देख सकते; पत्थर कठोर हैं; जितनी दूरी है उतनी ही कह देंगे--चाहे यात्री थक कर वहीं गिर पड़े, घबड़ा जाए।

एक-एक कोस करके हजार कोस भी पूरे हो जाते हैं। लेकिन काफी समय लगता है। क्योंकि जितनी महा प्रतिभा की खोज हो उतनी ही प्रौढ़ता में समय लगता है। इसे जरा ऐसा समझें। वैज्ञानिक इसे स्वीकार करने लगे हैं अब, एक दूसरी दिशा से।

आपने देखा, आदमी अकेला प्राणी है जिसको प्रौढ़ होने में बहुत समय लगता है। कुत्ते का बच्चा पैदा होता है; कितनी देर लगती है प्रौढ़ होने में? घोड़े का बच्चा पैदा होता है; कितनी देर लगती है प्रौढ़ होने में? घोड़े का बच्चा पैदा होते से ही चलने और दौड़ने लग सकता है। प्रौढ़ हो गया। प्रौढ़ पैदा होता है। सिर्फ आदमी का बच्चा असहाय पैदा होता है। उसको प्रौढ़ होने में बीस-पच्चीस वर्ष लग जाते हैं। पच्चीस वर्ष का हो जाता है तब भी मां-बाप जरा डरे रहते हैं कि अभी चल सकता है अपने पैर से कि नहीं। इतना लंबा समय मनुष्य को क्यों लगता है प्रौढ़ होने में? अगर आदमी के बच्चे को असहाय छोड़ दिया जाए वह मर जाएगा, बच नहीं सकता। बाकी पशुओं के बच्चे बच जाएंगे। क्योंकि वे पैदा होते ही काफी प्रौढ़ हैं। आदमी भर अप्रौढ़ पैदा होता है। क्योंकि आदमी के पास बड़ी प्रतिभा की संभावना है। उस प्रतिभा को प्रौढ़ होने में समय लगता है। घोड़े के बच्चे के पास प्रतिभा की बड़ी संभावना नहीं है; प्रौढ़ होने में कोई समय नहीं लगता।

वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आदमी की उम्र बढ़ाई गई, बढ़ जाएगी, तो हमारा बचपन भी लंबा होने लगेगा। लेकिन उस लंबे बचपन के साथ ही आदमी की प्रतिभा भी बढ़ने लगेगी। अगर समझें कि दो सौ साल आदमी की औसत उम्र हो जाए तो फिर इक्कीस वर्ष में बच्चा जवान नहीं होगा, प्रौढ़ नहीं होगा। फिर वह पचास-साठ वर्ष में प्रौढ़ता के करीब आएगा। युनिवर्सिटी से जब निकलेगा तो साठ वर्ष के करीब शिक्षित होकर बाहर आएगा। लेकिन तब मनुष्य की प्रतिभा बड़े ऊंचे शिखर छू लेगी। स्वभावतः! क्योंकि प्रौढ़ होने के लिए जितना समय मिलता है उतना ही प्रतिभा पकती है।

ध्यान तो प्रतिभा की अंतिम अवस्था है। एक जन्म काफी नहीं है; अनेक जन्म लग जाते हैं, तब प्रतिभा पकती है। और कोई व्यक्ति अनंत जन्मों तक अगर सतत प्रयास करे तो ही। अन्यथा कई बार प्रयास छूट जाता है; अंतराल आ जाते हैं; जो पाया था वह भी खो जाता है, भटक जाता है; फिर-फिर पाना होता है। अगर सतत प्रयास चलता रहे तो अनंत जन्म लगते हैं, तब समाधि उपलब्ध होती है।

इससे घबड़ा मत जाना, इससे बैठ मत जाना पत्थर के किनारे कि अब क्या होगा। अनंत जन्मों से आप चल ही रहे हो; घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। हो सकता है, आ गया हो वक्त। तो जब कोई कहता है एक ही कोस दूर, तो हो सकता है आपके लिए एक ही कोस बचा हो। क्योंकि कोई आज की यात्रा नहीं है; अनंत जन्म से आप चल रहे हैं। इस क्षण भी ध्यान घटित हो सकता है अगर पीछे की परिपक्वता साथ हो, अगर पीछे कुछ किया हो। कोई बीज बोए हों तो फसल इस क्षण भी काटी जा सकती है। इसलिए भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं। और न भी पीछे कुछ किया हो तो भी बैठ जाने से कुछ हल नहीं है। कुछ करें, ताकि आगे कुछ हो सके।

लाओत्से कहता है, "महा प्रतिभा प्रौढ़ होने में समय लेती है। महा संगीत धीमा सुनाई पड़ता है।"

क्षुद्र संगीत ही शोरगुल वाला होता है। महा संगीत धीमा होने लगता है। परम संगीत की अवस्था तो वही है, जब शून्य रह जाता है; स्वर बिल्कुल शून्य हो जाते हैं। जो शून्य को सुन सकता है, वह महा संगीत को सुनने में समर्थ हो गया। इसलिए हम तो ओंकार को ही महा संगीत कहते हैं। क्योंकि जब व्यक्ति पूर्ण शून्य हो जाता है तब ओंकार की ध्वनि सुनाई पड़ती है। और वह ध्वनि ध्वनिरहित है, साउंडलेस साउंड। उसे रिकार्ड नहीं किया जा सकता। चाहे हृदय में ही टेप रिकार्डर हम लगा लें तो भी उसे रिकार्ड नहीं किया जा सकता। वह कोई ध्वनि नहीं है स्थूल अर्थों में। वह महा शून्य की गूंज है। जब सारी ध्वनियां खो जाती हैं तो उनके खो जाने से जो गूंज रह जाती है, उस गूंज का नाम ओंकार है।

"महा संगीत धीमा सुनाई पड़ता है।"

इसलिए धीमे से धीमे सुनने की क्षमता विकसित करनी चाहिए। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जितना धीमा सुन सकें, जितना सूक्ष्म सुन सकें, उसकी फिक्र करनी चाहिए। शोरगुल चल रहा है बाजार का; आंख बंद करके दीवार पर लगी घड़ी को सुनने की कोशिश करनी चाहिए। आप हैरान होंगे, जैसे ही आपका ध्यान दीवार की घड़ी पर जाएगा, थोड़ी देर में उसकी टिक-टिक सुनाई पड़ने लगेगी। बाजार का शोरगुल खो गया; टिक-टिक सुनाई पड़ने लगी। फिर धीरे-धीरे और नीचे हटना चाहिए। आंख बंद करके, बाजार का शोरगुल चल रहा है, हृदय की धड़कन सुननी चाहिए। अगर बाजार का शोरगुल चलता रहे और आपको अपने हृदय की धड़कन सुनाई पड़ने लगे, आप समझना कि मंजिल बहुत करीब आ रही है। सूक्ष्म को सुनने की कोशिश बढ़ाए जाना चाहिए। स्थूल से हटाते रहना चाहिए अपने को। स्थूल घटता रहेगा, लेकिन परिधि पर; और केंद्र पर सूक्ष्म की प्रतीति होने लगे।

"महा रूप की रूप-रेखा नहीं होती।"

जिस रूप की रूप-रेखा होती है वह सीमित ही है। इसलिए परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं हो सकती। इसलिए हमने परमात्मा का जो गहनतम प्रतीक बनाया है वह शिवलिंग है। उसमें कोई रूप नहीं है; अरूप है। एक अंडाकार आकृति है। अंडाकार आकृति जीवन की गति का प्रतीक है। सभी जीवन की गति वर्तुलाकार है, अंडाकार है। शिवलिंग सिर्फ एक अंडाकार आकृति है जिसमें कोई रूप नहीं है। अरूप है। परमात्मा का कोई रूप नहीं हो सकता; क्योंकि रूप सीमा देगा। और जहां सीमा है वहां बंधन है। जहां सीमा है वहां मृत्यु है। जहां सीमा है वहां अज्ञान है, अविद्या है।

"महा रूप की रूप-रेखा नहीं होती; और ताओ अनाम है, छिपा है।"

स्वभाव अनाम है, और छिपा है। सत्य अनाम है, और छिपा है।

"और यह वही ताओ है जो दूसरों को शक्ति देने और आप्तकाम करने में पटु है।"

यह जो छिपा हुआ मूल स्रोत है धर्म का, सत्य का, इसी से ही सारी ऊर्जा उठती है। इसी से फूल खिलते हैं, इसी से पक्षी आकाश में उड़ते हैं, इसी से तारे चलते हैं, सूर्य प्रकाशित होता है। इसी से चेतना आविर्भूत होती है; इसी से चेतना समाधि तक पहुंचती है। सभी का स्रोत, सभी शक्तियों का मूल उदगम; लेकिन अनाम, छिपा हुआ। जैसे बीज जमीन में छिप जाते हैं, फिर जड़ें बनती हैं और वृक्ष आकाश की तरफ उठता है। आकाश की तरफ उठता हुआ वृक्ष जमीन में छिपी हुई जड़ों पर निर्भर होता है। नीचे से जड़ें काट दो, ऊपर से वृक्ष तिरोहित हो जाएगा। जो भी प्रकट है, वह अप्रकट में उसकी जड़ें होती हैं।

सत्य या परमात्मा या ताओ--या जो भी नाम हम देना चाहें--वह हमारा अप्रकट मूल स्रोत है। उस मूल स्रोत में ही सारी शक्ति का उदगम है। और जब तक हम ऊपर-ऊपर शक्ति को खोजते हैं तब तक हम निर्बल बने रहते हैं। और जब हम उतरते हैं गहरे वृक्ष की जड़ों में तो महा शक्ति मिल जाती है, जिसका कोई अंत नहीं, जो अनंत है।

जो दिखाई पड़ता है, उससे उस तरफ चलें जो दिखाई नहीं पड़ता। जो सुनाई पड़ता है, उससे उस तरफ चलें जो सुनाई नहीं पड़ता। जिसका रूप है, उससे उस तरफ चलें जिसका कोई रूप नहीं है। जिसका नाम है, उससे उस तरफ चलें जो अनाम है। तो आप परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो जाएंगे। वह मंदिर बहुत दूर नहीं, यहीं छिपा है। लेकिन छिपा है। इसलिए जो उसे प्रकट मंदिरों में खोजता है वह व्यर्थ ही भटकता है। जो उसे अप्रकट के मंदिर में खोजने लगता है उसे राह मिल गई और उसकी मंजिल दूर नहीं है।

पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

अठहत्तरवां प्रवचन

मैं अंधेपन का इलाज करता हूं

पहला प्रश्नः हम दुख जानते हैं; बुद्ध आनंद जानते हैं। क्या हम सच ही दुख को जानते हैं? यदि हम सच ही दुख को जानते हैं तो क्यों कर आनंद की दिशा में नहीं जाते?

निश्चय ही, जो दुख को जान लेगा वह दुख से मुक्त होना शुरू हो जाता है। हम दुख को भोगते हैं, जानते नहीं। भोगना जानना नहीं है। हमारा भोगना भी मूर्च्छित, सोया हुआ, बेहोश है। और इस बेहोशी का लक्षण, बुनियादी लक्षण उसे समझ लेना जरूरी है।

हम दुख भोगते भी हैं तो हमें यह स्मरण नहीं आता कि हम सुख की तलाश में दुख भोगते हैं। चाहते तो हम सुख हैं, मिलता दुख है। चाहते तो हम स्वर्ग हैं, उपलब्ध जो होता है वह नरक है। और जो सुख को चाहेगा वह दुख भोगेगा ही। सुख की चाह से ही दुख का जन्म है। यदि हम समझ जाएं कि हम दुख भोग रहे हैं, और यह भी समझ जाएं कि क्यों भोग रहे हैं, और दुख क्या है, तो हम सुख की चाह छोड़ देंगे। सुख की चाह के छूटते ही दुख से मुक्ति होनी शुरू हो जाती है। दुख है इसलिए कि सुख की मांग है। इसलिए जितनी ज्यादा सुख की मांग होगी उतना ज्यादा दुख होगा।

बहुत आश्चर्य की घटना है कि दीन-दरिद्र इतने दुखी नहीं होते हैं जितने समृद्ध और धनी हो जाते हैं। क्योंकि दीन और दरिद्र की सुख की बहुत मांग नहीं होती। वह सोच भी नहीं सकता बहुत सुख के लिए, स्वप्न भी नहीं देख सकता बहुत सुख के लिए। उसके सुख की मांग उसके दायरे में होती है। लेकिन जिसके पास सारी सुविधाएं हैं, उसकी सुख की मांग असीम हो जाती है। उसके पास सब है; सुख को वह खरीद सकता है। तो मांग भी स्वभावतः खड़ी हो जाती है। इसलिए धनी जितने दुखी होते हैं उतने दरिद्र दुखी नहीं होते। दरिद्र कष्ट में हो सकते हैं, लेकिन दुख में नहीं होते। धनी कष्ट में नहीं होते, लेकिन महादुख में होते हैं।

कष्ट तो भौतिक अभाव है। एक भूखा आदमी है, कष्ट में है। एक नंगा आदमी है, सर्दी है, गर्मी है; कष्ट में है। एक बीमार आदमी है, दवा का इंतजाम नहीं; कष्ट में है। लेकिन एक भरा पेट आदमी है; कपड़े हैं, दवा है, सुविधा है, सब कुछ है, और भीतर पाता है कि सब व्यर्थ है; कुछ सार नहीं, कुछ उपलब्ध नहीं हो रहा। बाहर सब है; भीतर खालीपन है। यह आदमी दुख में है। दुख समृद्धि का लक्षण है।

इसलिए दुखी होना हो तो समृद्ध होना जरूरी है। और दुख का अनुभव न हो तो हमारी सुख की वासना नहीं छूटती। दुख के प्रगाढ़ अनुभव से ही यह प्रतीति होनी शुरू होती है कि दुख क्यों है। हमने विपरीत मांगा है। जो हम मांगते हैं, न मिले, तो दुख पैदा होता है। और मजा तो यह है कि मिल जाए तो भी सुख पैदा नहीं होता। जीवन की सारी जटिलता और पहेली यही है कि जो हम चाहते हैं, मिल जाए, तो सुख नहीं मिलता; और न मिले तो दुख मिलता है। धन चाहते हैं; मिल जाए तो धन हाथ में आ जाता है, लेकिन सुख हाथ में नहीं आता। महल चाहते हैं, मिल जाए; राज्य चाहते हैं, साम्राज्य चाहते हैं, मिल जाए; मिल गया बहुत लोगों को। लेकिन सिकंदर ने कहा है कि मैं खाली हाथ मर रहा हूं; मेरे हाथ खाली हैं।

इतना बड़ा साम्राज्य हो और हाथ खाली हों; क्या अर्थ होगा इसका? साम्राज्य तो मिल गया, लेकिन जिस सुख का सपना संजोया था वह पूरा नहीं हुआ। वह अभी भी खाली का खाली है। जो चाहें वह मिले तो

सुख नहीं मिलता; सिर्फ ऊब पैदा होती है। और न मिले तो दुख पैदा होता है। सुख की वासना के दो छोर हैं। मिलने वाला आदमी ऊबा हुआ होता है। इसलिए धनी आदमी बोर्ड हैं, ऊबे हुए हैं, त्रस्त हैं। कुछ सूझता नहीं कि जीवन में क्या अर्थ है, क्या रस है! जिन्हें नहीं मिल पाता, न मिलने की पीड़ा सताती है।

यह दिखाई पड़ने लगे कि दुख कोई बाहरी घटना नहीं है; कष्ट बाहरी घटना है। स्मरण रखें, कोई दूसरा आदमी चाहे तो आपको कष्ट दे सकता है, दुख नहीं दे सकता। दुख तो आप ही अपने को दे सकते हैं। वह निजी घटना है। कष्ट दूसरे पर निर्भर है।

बुद्ध को भी किसी ने जहर दे दिया--भूल से सही--तो भी कष्ट तो दिया। शरीर पीड़ित हुआ; मृत्यु भी उसी घटना से घटी। लेकिन बुद्ध को कोई दुख नहीं दे सकता है। कष्ट बाहर से आता है; दुख भीतर का दृष्टिकोण है। इसलिए कष्ट से भी हम दुख पा सकते हैं; और चाहें तो कष्ट से भी दुख न पाएं। क्योंकि वह भीतर की व्याख्या है। बुद्ध को जहर दिया, भूल से दिया। किसी गरीब आदमी ने निमंत्रण दिया, भोजन कराया। लेकिन भोजन में विषाक्त सब्जी थी। बिहार में लोग कुकुरमुत्ते इकट्ठे कर लेते हैं। गरीब आदमी वर्षा में कुकुरमुत्ते इकट्ठे कर लेते हैं, उनको सुखा लेते हैं; फिर उनका भोजन करते हैं साल भर तक। गरीब आदमी था। कुकुरमुत्ते की सब्जी उसने बुद्ध के लिए बनाई थी। बुद्ध ने खाई तो जहर थी। लेकिन एक ही सब्जी थी, और उस आदमी ने वर्षों इंतजार किया था बुद्ध का। और वह इतने आनंद से बैठ कर उन्हें खिला रहा था कि बुद्ध को यह कहना ठीक न मालूम पड़ा कि सब्जी कड़वी है। उसे दुख होगा। और वह इतना गरीब था कि दूसरी कोई सब्जी नहीं थी। और बुद्ध भूखे घर से लौटें तो उसकी पीड़ा अनंत हो जाएगी। इसलिए बुद्ध चुपचाप उस जहरीली, कड़वी सब्जी को खाते रहे।

वह तो उसे बाद में पता चला। जब सब्जी उसने बुद्ध के जाने के बाद चखी तो वह तो हैरान हो गया। वह तो जहर थी! वह भागा हुआ आया। बुद्ध को चिकित्सकों ने देखा। उन्होंने कहा, यह विषाक्त था भोजन और जहर खून में पहुंच गया है; बचना बहुत मुश्किल है। तो बुद्ध ने जो पहला काम किया वह यह, अपने भिक्षुओं को बुला कर कहा कि बुद्ध के जीवन में दो व्यक्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं। पहला वह व्यक्ति, मां, जो पहला भोजन देती है, दूध; और अंतिम, जो अंतिम बुद्ध को भोजन कराता है। तो इस व्यक्ति का तुम स्वागत करना, इस व्यक्ति का सम्मान करना और इतिहास में इसका उल्लेख करना कि यह बुद्ध को अंतिम भोजन देने वाला व्यक्ति है। आनंद ने कहा, आप क्या कह रहे हैं! भिक्षु तो बहुत रुष्ट हैं और डर है कि लोग उस पर हमला न बोल दें। बुद्ध ने कहा, इसीलिए मैं कह रहा हूं। उसका तुम सम्मान करना, उसका कोई कसूर नहीं है। लेकिन अनायास ही वह महाभाग को उपलब्ध हुआ है कि बुद्ध को उसने अंतिम भोजन दिया है।

बुद्ध दुख को भी दुख की भांति नहीं लेते; कष्ट को भी दुख की भांति नहीं लेते। इससे विपरीत भी होता है। हम सुख को भी दुख की भांति ले सकते हैं। क्योंकि वह हमारी व्याख्या पर निर्भर है।

मैंने सुना है, अमरीका के एक महानगर में एक होटल का मालिक अपने मित्र से रोज की शिकायतें कर रहा था कि धंधा बहुत खराब है, और धंधा रोज-रोज नीचे गिरता जा रहा है; होटल में अब उतने मेहमान नहीं आते। उसके मित्र ने कहा, लेकिन तुम क्या बातें कर रहे हो? मैं तुम्हारे होटल पर रोज ही नो वेकेंसी की तख्ती लगी देखता हूं--कि जगह खाली नहीं है। उसने कहा, वह तख्ती छोड़ो एक तरफ। आज से चार महीने पहले कम से कम सौ ग्राहकों को रोज वापस लौटाता था, अब मुश्किल से पंद्रह-बीस को लौटा रहा हूं। धंधा रोज गिर रहा है।

आदमी की व्याख्याएं हैं। धंधा उतना ही है, लेकिन ग्राहक कम लौट रहे हैं, इससे भी पीड़ा है। धंधे में रत्ती भर का फर्क नहीं पड़ा है, लेकिन वह आदमी दुखी है। और उसके दुख में कोई शक करने की जरूरत नहीं, उसका दुख सच्चा है; वह भोग रहा है दुख।

दुख हमारी व्याख्या है। कष्ट बाहर से मिल सकता है। इसलिए कष्ट से तो बुद्ध भी पार नहीं हो सकते। जब तक शरीर है, तब तक कष्ट दिया जा सकता है। लेकिन दुख देने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि कष्ट बाहर ही रह जाएगा। उसकी दुख की भांति व्याख्या नहीं की जाएगी।

तो दो बातें स्मरण रखें। हम दुख जानते हैं, ऐसा मत कहें; हम दुख भोगते हैं। बुद्ध आनंद भोगते हैं। दुख को जो पहचान लेता है वह आनंद के भोग के लिए तैयार हो जाता है। दुख के पूरे यंत्र को जिसने समझ लिया वह दुख के बाहर होना शुरू हो जाता है। और पूछा है कि हम आनंद की दिशा में क्यों नहीं जाते?

अपनी तरफ से तो हम जाते ही हैं, पहुंचते नहीं। अपनी तरफ से तो प्रत्येक व्यक्ति आनंद की ही तलाश करता है। ऐसा आदमी तो खोजना मुश्किल है जो आनंद की तलाश न करता हो। यह दूसरी बात है कि उसकी तलाश भ्रांत हो; वह जहां खोजता हो वहां आनंद न मिलता हो; वह जिन ढंगों से खोजता हो वे ढंग दुख में ले जाते हों। आनंद को सभी खोजते हैं। उस संबंध में कोई भेद नहीं है बुद्ध में और अबुद्ध में, ज्ञानी में, अज्ञानी में। भेद विधि का है। बुद्ध इस ढंग से खोजते हैं कि पा लेते हैं, और हम इस ढंग से खोजते हैं कि नहीं पाते। ढंग का फर्क है, खोज का कोई फर्क नहीं है। लक्ष्य का कोई फर्क नहीं है। चाहते तो हम भी आनंद ही हैं। लेकिन चाह कर भी दुख पैदा होता है तो जरूर कहीं कोई भूल चाह में हो रही है। इसे दो-तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात, जो बहुत महत्वपूर्ण हैः हमारा सुख, या जिसे हम आनंद कहते हैं, वह सदा भविष्य में होता है; आने वाले कल में होता है। ध्यान रहे, भूल शुरू हो गई। अस्तित्व अभी और यहीं है, और आपने कल की वासना शुरू कर दी जो कि नहीं है। आप अस्तित्व के बाहर भटक गए। जो भी मिल सकता है वह अभी और यहीं मिल सकता है। कल तो कुछ भी नहीं मिल सकता; क्योंकि कल कभी आता ही नहीं। कल का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह नासमझ आदमी की दौड़ है। नासमझ अपनी वासना के कारण कल को सोचता रहता है।

बुद्ध से उनके एक भिक्षु सारिपुत्त ने पूछा है कि मैं आनंद को कैसे खोजूं? तो बुद्ध ने कहा, तू खोज छोड़, अभी और यहीं सिर्फ मौजूद रह। खोज की कोई जरूरत नहीं। आनंद यहीं है। तू भागा हुआ है, इसलिए जो यहीं है उससे तेरा मिलन नहीं हो पाता।

आनंद कोई वस्तु नहीं है जो भविष्य में मिल जाएगी; वह हमारे जन्म के साथ हमारे हृदय की धड़कन में बसी है। आनंद हमारा स्वभाव है। उसे खोजने की कोई जरूरत ही नहीं है। खोजने की वजह से ही हम उससे चूकते हैं। खोजें मत; उसे अभी इसी क्षण में पकड़ें। उसे कल पर मत टालें। दुखी आदमी वही आदमी है जो सुख को कल खोजता है, और आनंदित आदमी वही आदमी है जो उसे कल पर नहीं टालता, अभी इसी क्षण में डूबता है। इस डूबने का नाम ध्यान है, समाधि है।

तो जब आप इसी क्षण में डूबने की कला सीख जाते हैं तो आपको आनंद का स्रोत उपलब्ध हो जाता है, एक। दूसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है कि सुख खोजने वाले लोग सदा दूसरे से सुख पाने की चेष्टा में लगे होते हैं। जैसे कोई और देगा--पत्नी देगी, पति देगा, धन देगा, समाज देगा, बेटा देगा--कोई देगा, कोई और देगा। वहां भूल हो रही है। आनंद आपके भीतर है; दुनिया में कोई भी उसे आपको दे नहीं सकता। उसे देने का कोई उपाय नहीं है। तो जब तक हम सोचते हैं सुख कोई और देगा तब तक हम दुख पाएंगे। जिस दिन हम इस बात पर आ जाएंगे कि आनंद कोई दे नहीं सकता, आज तक पूरे इतिहास में कभी किसी ने किसी को आनंद नहीं दिया।

आनंद तो स्वयं ही पाना होता है। वह स्वयं का स्वयं से संबंध है। वह अंतर्यात्रा है, बहिर्यात्रा नहीं। क्षण में डूबें और अपने में डूबें।

और तीसरी बात, जब भी दुख मिले तब दुख में डूब कर तादात्म्य न कर लें; दुखी न हो जाएं। जब भी दुख मिले तो साक्षी बने रहें और उसे देखें। भोगने की बजाय उसे जानें। उसमें डूबने की बजाय तटस्थ होकर साक्षी बनें, द्रष्टा बनें। दुख का मूल सूत्र है--तादात्म्य, आइडेंटिटी। क्रोध आया, दुख के बादल उठने लगे। आप तत्काल एक हो जाते हैं। आप भूल ही जाते हैं कि मैं कुछ हूं जो क्रोध से अलग हूं। निश्चित ही आप अलग हैं। क्योंकि जब क्रोध नहीं था तब भी आप थे। और थोड़ी देर बाद क्रोध नहीं रह जाएगा तब भी आप होंगे। तो क्रोध एक बादल की तरह आपके आस-पास आया है। लेकिन आपका सूरज उस बादल से एक हो जाने की कोई भी जरूरत नहीं। सूरज को दूर रखा जा सकता है। इस दूर रखने की कला को हमने साक्षी-भाव कहा है, विटनेसिंग कहा है।

तो जब भी दुख पकड़े तब थोड़ा दूर खड़े होकर देखने की कोशिश करें। कठिन होगा प्रारंभ में, क्योंकि जन्मों-जन्मों से हमने एक होकर ही देखने की कोशिश की है। लेकिन जरा सा भी प्रयास करके देखेंगे तो तत्क्षण दूरी हो जाएगी। क्योंकि दूरी है। तादात्म्य झूठ है; दूरी सत्य है। आपके और आपके अनुभवों के बीच एक फासला है। कुछ भी घटता है, वह आपके बाहर घट रहा है। आप चाहें, उससे अपने को जोड़ लें। और जोड़ने की आदत बन गई हो तो तोड़ना मुश्किल भी मालूम पड़े। लेकिन वस्तुतः आप टूटे हुए हैं और अलग हैं। आपका स्वभाव भोगना नहीं है, जानना है। भोगना भूल है; भोगना एक भ्रांति है। जानना सत्य है। जो सत्य है वह सरलता से हो जाएगा। लेकिन पुरानी आदत थोड़ा समय ले सकती है।

तो जब भी दुख पकड़े तब शांत बैठ जाएं, आंख बंद कर लें और दुख को दूर से देखने की कोशिश करें, जैसे वह किसी और को घटता हो। इस एक वचन को बहुत गहरे में उतर जाने दें--जैसे वह किसी और को घटता हो। किसी ने गाली दी है और भीतर पीड़ा घूमने लगी है। बैठ जाएं आंख बंद करके और देखें कि जैसे किसी और को घट रहा है; आप दूर हैं। धीरे-धीरे यह दूरी साफ होने लगेगी, धुंधलका अलग हो जाएगा, और स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि दुख घट रहा है और आप देख रहे हैं। जिस क्षण आप देखने वाले हो जाएंगे उसी क्षण से आपका दुख से संबंध टूट गया। द्रष्टा हो जाना दुख से अलग हो जाना है। ये तीन बातें ख्याल में रखें तो बुद्धत्व बहुत दूर नहीं है। बुद्ध होना आपका अधिकार है। आप नहीं होते, यह आपकी मौज है। बुद्ध होना प्रत्येक के लिए सुगम है। नहीं होते, यह आपकी चेष्टा का फल है। आप सब तरह से रोक रहे हैं अपने को। तो ऊपर से तो दिखता है कि आप आनंद की खोज कर रहे हैं, लेकिन जो भी आप कर रहे हैं उससे ही आनंद की हत्या हो रही है।

आनंद की खोज का अगर इन तीन सूत्रों के अनुसार चलना हो तो आप शीघ्र ही पाएंगे कि वह किरण उतरनी शुरू हो गई जिसके सहारे मुक्त हुआ जा सकता है, और जिसके सहारे सच्चिदानंद तक पहुंचा जा सकता है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि विकसित चेतना के कारण, विचार के कारण, मनुष्य निसर्ग से विच्छिन्न हो गया। फिर यह भी कहा कि इसी चेतना के विस्तार के द्वारा फिर निसर्ग से, स्वभाव से या ताओ से जुड़ सकता है। एक ही चेतना तोड़ती है और जोड़ती भी, इसमें विरोधाभास मालूम पड़ता है।

मालूम पड़ता है; है नहीं। आप जिस रास्ते से इस भवन तक आए हैं उसी रास्ते से आप अपने घर तक वापस भी लौटेंगे। जो रास्ता यहां तक लाया है वही वापस भी ले जाएगा। फर्क थोड़ा सा ही होगा--आपकी दिशा में फर्क होगा; रास्ता वही होगा। रास्ता बदलने की जरूरत नहीं कि आप दूसरे रास्ते से घर पहुंचें। सिर्फ दिशा बदलने की जरूरत है कि आपका मुंह घर की तरफ होगा। अभी आते वक्त आपकी पीठ घर की तरफ थी।

चेतना का विकास ही मनुष्य को प्रकृति से दूर ले जाता है, क्योंकि पीठ प्रकृति की तरफ है। और चेतना का ही अंतिम विकास मनुष्य को प्रकृति में ले जाता है, तब मुंह प्रकृति की तरफ हो जाता है। अगर मेरी बात ठीक से ख्याल में ली हो, तो मैंने कहा, जीवन का विकास वर्तुलाकार है। जब आप चलना शुरू करते हैं चेतना के जगत में, जैसा मनुष्य प्रकृति से टूटता चला जाता है, अगर यह विकास पूरा हो जाए तो वर्तुल पूरा हो जाएगा और मनुष्य प्रकृति से पुनः जुड़ जाएगा। यह विकास बीच में रुक जाता है, यही अड़चन है। आदमी पूरा आदमी नहीं हो पाता, यही अड़चन है। अधूरा रह जाता है। अधूरे से कठिनाई है। आप पूरे चेतन हो जाएं या पूरे अचेतन हो जाएं तो प्रकृति से जुड़ जाएंगे। पूरे अचेतन में भी आप प्रकृति से जुड़ते हैं, पूरे चैतन्य में भी। क्योंकि पूर्णता प्रकृति से जोड़ती है। और अपूर्णता प्रकृति से तोड़ती है।

इसलिए मैंने कहा कि दो ही उपाय हैं। या तो बेहोश हो जाएं तो बेहोशी के क्षण में थोड़ी देर को प्रकृति के साथ एकता सध जाती है। इसलिए गहरी नींद में सुख मिलता है। सुबह जब आप उठते हैं गहरी नींद के बाद तो कहते हैं, बड़ा आनंदपूर्ण था, रात बड़ी आनंदपूर्ण थी। क्या था रात में जो आनंदपूर्ण था? क्या हुआ क्या? कुछ आप बता नहीं सकते कि कुछ हुआ। लेकिन सुबह एक हलकी झलक छूट जाती है; एक पूरे चित्त पर, शरीर पर एक छाया छूट जाती है सुख की। पर हुआ क्या?

हुआ इतना ही कि रात की गहरी निद्रा में आप गिर गए वापस, अचेतन हो गए; जहां पौधे जी रहे हैं, वहां आप पहुंच गए। जहां पत्थर जीता है वहां आप पहुंच गए। प्रकृति की अचिंता में लीन हो गए; धारा में खो गए। वह जो व्यक्ति की चेतना थी वह न रही। उससे ही सुबह इतना सुखद मालूम पड़ता है। यह सुख प्रकृति में डूब कर वापस लौटने के कारण है। आप ताजे होकर आ गए। फिर युवा हो गए। थकान मिट गई, बासापन चला गया।

इसलिए जो आदमी रात ठीक से सो नहीं पाता, उसका जीवन बड़ा बोझिल हो जाता है। क्योंकि उसके संबंध टूट गए प्रकृति से जुड़ने के। बेहोश होकर जुड़ जाता था, वे संबंध टूट गए। लेकिन कृष्ण ने गीता में कहा है कि योगी जागता है। लेकिन आपको अनिद्रा की जब बीमारी हो जाती है तब आप योगी नहीं हो जाते। अनिद्रा की बीमारी में तो आप रुग्ण होने लगते हैं। सुबह आप पाते हैं कि आप थके-मांदे हैं, उससे भी ज्यादा जितने आप सांझ को थे। रात भी थकान ही बनी है। करवट बदलने में ही और ज्यादा बेचैनी हो गई। और सुबह आप उठते हैं टूटे हुए, मुर्दा।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, योगी रात को जागता है। वे ठीक कहते हैं। लेकिन वह घटना तभी घट सकती है जब पूरी चेतना उपलब्ध हो जाए। क्योंकि पूरी चेतना उपलब्ध होने पर फिर प्रकृति से संबंध हो जाता है। पूरी चेतना होने पर भी व्यक्ति खो जाता है, परमात्मा रह जाता है। और पूरी अचेतना होने पर भी व्यक्ति खो जाता है और प्रकृति रह जाती है। दोनों ही हालत में अहंकार मिट जाता है। और जहां अहंकार मिट जाता है वहां निद्रा की कोई आवश्यकता न रही। शरीर विश्राम कर लेगा; चेतना जागी रहेगी। ऐसा नहीं कि बुद्ध सोते नहीं, और ऐसा नहीं कि कृष्ण सोते नहीं। शरीर ही सोता है लेकिन, भीतर दीए की तरह चेतना जलती ही रहती है। और

निद्रा में भी क्या घट रहा है, उसका भी बोध बना रहता है। हम तो जागे हुए भी सोए रहते हैं; बुद्ध या कृष्ण सोए हुए भी जागे रहते हैं।

लेकिन यह जागरण तभी संभव है--नहीं तो बुद्ध और कृष्ण पागल हो जाएंगे--यह जागरण तभी संभव है जब उस परम ऊर्जा के स्रोत से मिलने की कोई दूसरी विधि खोज ली गई हो। उससे मिलने का एक ही उपाय हैः आप नहीं होने चाहिए। या तो आप बेहोशी में मिट जाएं, या इतने होश से भर जाएं कि अहंकार टिके न।

पर अहंकार बड़े जोर से पकड़े हुए है। वही हमारा रोग है।

मैंने सुना है, एक यहूदी फकीर की मृत्यु हो रही थी। वह अपनी शय्या पर पड़ा था। उसके बहुत भक्त थे, वे सब इकट्ठे हुए थे। खबर दूर-दूर तक पहुंच गई थी। मृत्यु करीब आती जाती थी और भक्त गुणगान कर रहे थे अपने गुरु का। कोई कह रहा था, ऐसा ज्ञानी न तो पृथ्वी ने पहले देखा और न पृथ्वी बाद में देखेगी। एक-एक शब्द कंठस्थ था। कहीं से भी पूछो प्रश्न, कभी कोई अड़चन न थी। शास्त्र धारा की तरह बहने लगते थे। कोई कह रहा था, ऐसा दयालु आदमी जीवन में देखा नहीं; सारा जीवन दया और सेवा से भरा हुआ था। कोई कह रहा था, ऐसा तपस्वी! ऐसा कठोर साधक! अपने साथ इतना संयमी और दूसरों के साथ इतना दयालु! अपने साथ इतना कठोर और दूसरों के साथ इतना सदय! ऐसी चर्चा चलती थी। मरता हुआ आदमी आंख बंद किए सब सुनता होगा। आखिरी क्षण में उसने आंख खोली और कहा कि सुनो, कोई मेरे निरहंकारी होने की भी तो बात करो। यह सब तो ठीक है, लेकिन कोई मेरे निरहंकारी होने की भी तो बात करो।

अहंकार बड़ी सूक्ष्म बात है। तपश्चर्या में भी बच जाता है; शास्त्र के ज्ञान में भी बच जाता है। दया-सेवा में भी बच जाता है। परिपुष्ट होता रहता है वहां भी। अब यह आदमी मरते क्षण में भी अहंकार से भरा है। पर इसका अहंकार बड़ा उलटा है। एकदम से पकड़ में न आए। कह रहा है कि मेरे निरहंकारी होने की भी तो कोई चर्चा करो। असल में, अहंकार का अर्थ ही है कि मेरी कोई चर्चा करे, मुझे कोई जाने, मुझे कोई पहचाने। मैं हूं, मैं कुछ हूं, उसकी ही तो सारी विक्षिप्तता अहंकार है।

इस अहंकार को खोने के दो उपाय हैं--या तो पशु की भांति निद्रा में खो जाएं और या फिर संतों की भांति परिपूर्ण जागरण में प्रतिष्ठित हो जाएं। दोनों ही स्थिति में आप मिट जाएंगे। आप दोनों के बीच में हैं। अहंकार मध्य बिंदु है। अर्ध-मूर्च्छा, अर्ध-जागृति; कुछ जागे, कुछ सोए। वहां अहंकार खड़ा रहता है। पूरे जागे, अहंकार चला जाता है। पूरे सो गए, तो भी अहंकार चला जाता है। इसलिए जब चेतना बिल्कुल प्रसुप्त होती है तब भी प्रकृति के साथ हम एक होते हैं, और जब चेतना परिपूर्ण बुद्धत्व को उपलब्ध होती है तब हम पुनः प्रकृति के साथ एक हो जाते हैं।

रास्ता एक ही है, लेकिन दिशाएं बदल जाती हैं। जब हम अहंकार की तरफ बढ़ रहे होते हैं तो पीठ होती है प्रकृति की तरफ, और जब हम अहंकार से हट रहे होते हैं तो मुंह होता है प्रकृति की तरफ। और वापस उसी घर में लौट आना होश से भर कर, यही जीवन का लक्ष्य है। जहां से हम बेहोशी में जनमे हैं, वहीं होश से भर कर लौट आना जीवन की सारी कला है। उसी घर में वापस पहुंच जाना, जहां से हम बेहोश पैदा हुए थे, होश को सम्हाल कर। मनुष्य वहीं पहुंचता है जहां से आया है। मूल स्रोत ही अंत है। लेकिन भिन्न होकर पहुंचता है।

इसलिए संसार का शिक्षण बड़ा अदभुत और जरूरी है। परमात्मा अकारण ही संसार को नहीं चलाए जाता है। गहन कारण हैं भीतर कि जो आपके पास है वह छीना जाना चाहिए और आपको तब तक नहीं मिलना चाहिए जब तक आप पूरे होश से न भर जाएं। वह छीनने का क्रम आपको होश से भरने की प्रेरणा है। होश से भर कर आपको वही मिल जाएगा जिस आनंद में पशु और पक्षी आनंदित हैं, वृक्ष आनंदित हैं, आकाश के तारे

आनंदित हैं। पूरा जगत जिस उत्सव में डूबा है, आप भी डूब जाएंगे। लेकिन आपके डूबने में मजा ही अलग होगा। बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध बैठे हैं। बुद्ध जिस आनंद में हैं, वृक्ष भी उसी आनंद में है, लेकिन वृक्ष को कोई होश नहीं आनंद का। और उस आनंद का अर्थ ही क्या जिसका कोई होश न हो? जिस आनंद का पता न चलता हो उसके होने न होने में फर्क क्या है? उसी के नीचे बुद्ध बैठे हैं। वे भी उसी आनंद में हैं, लेकिन अब पूरे होशपूर्वक जागे हुए हैं।

ऐसा समझें कि आपको बेहोश एक बगीचे में ले जाया जाए स्ट्रेचर पर रख कर। फूलों की सुगंध जरूर आपके नासापुटों तक आएगी। क्योंकि फूल इसकी फिक्र नहीं करते कि आप होश में हैं कि बेहोश हैं। पक्षियों के गीत भी आपके कान पर झंकार करेंगे। क्योंकि पक्षियों को कोई मतलब नहीं कि आप सुन रहे हैं कि नहीं सुन रहे हैं। ठंडी हवाएं आपको छुएंगी। लेकिन आप बेहोश हैं। और इसी बेहोशी में आपको बगीचे का पूरा भ्रमण करवा कर वापस ले आया जाए। तो जब आप होश में आएंगे तब शायद आप कहें भी कि कुछ अच्छा-अच्छा लगता है, कुछ ताजगी मालूम पड़ती है। क्योंकि वह बगीचा कुछ अनजान छाया तो छोड़ ही गया होगा। लेकिन आपको कुछ पता नहीं; न फूलों के उस आनंद का, न फूलों के खिलने का, न पक्षियों के गीत का, न उस संगीत का जो उन हवाओं में था जो वृक्षों से गुजरती थीं, न उस शांति का, न उस हरियाली का। नहीं, आपको उस सबका कुछ भी पता नहीं है। फिर उसी बगीचे में आप होशपूर्वक जाएं; जागे हुए।

ठीक प्रकृति में सभी कुछ आनंद में डूबा हुआ है, लेकिन होश नहीं है। आदमी वापस होश का अनुभव करके डूबता है। इस अनुभव की प्रक्रिया में दुख उठाना पड़ता है। क्योंकि जो बेहोशी में मिलता था, बेहोशी छूटते ही खोने लगता है; होश आते ही छूटने लगता है हाथ से, विलीन होने लगता है। तो आदमी जैसे-जैसे होश से भरता है वैसे-वैसे दुखी होता चला जाता है। बच्चे कम दुखी हैं; बूढ़े बहुत ज्यादा दुखी हो जाते हैं। क्योंकि बूढ़े को कुछ होश आ गया। जिंदगी की सब चीजें दिखाई पड़ने लगीं--सब व्यर्थ था। सब दायित्व, सारी दौड़-धूप, सारी थकान, सारी ऊब साफ हो गई। बूढ़ा ज्यादा दुखी है। बच्चा--अभी पता नहीं है उसे। बच्चा अभी भी प्रकृति से ज्यादा दूर नहीं गया है। अभी बहुत करीब ही खेल रहा है। लेकिन अभी होश नहीं है।

इसलिए जीसस ने कहा है, जो पुनः बच्चे की भांति हो जाते हैं, वे धन्यभागी हैं। पुनः! जो बूढ़े होकर फिर बच्चे जैसे हो जाते हैं। पर इस होने का अर्थ ही यह हुआ कि अब होशपूर्वक बच्चे जैसे हो जाते हैं, जागे हुए बच्चे जैसे हो जाते हैं। लौटना है गंगोत्री पर ही, मूल उदगम पर ही, लेकिन होश को कमा कर लौटना है।

संसार जागरण की एक प्रक्रिया है।

तीसरा प्रश्नः विपरीत विपरीत को आकर्षित करता है। इस नियम के अधीन, बुद्ध पुरुषों के इर्द-गिर्द मूढ़ व्यक्ति इकट्ठे हो जाते हैं। तो क्या वे सब ज्ञानीजन हैं जो उनके सान्निध्य से दूर ही रहते हैं?

वे महामूढ़ हैं। क्योंकि जो बुद्ध के करीब आते हैं... करीब आते हैं, मूढ़ हैं इसीलिए करीब आएंगे। क्योंकि बुद्ध के पास कोई बुद्ध पुरुष तो किसलिए करीब आएगा? कोई जरूरत ही न रही। चिकित्सालय में कोई जाता है इसलिए कि रुग्ण है। बुद्ध के पास कोई आता है इसलिए कि अज्ञानी है और ज्ञान की तलाश है। लेकिन जो अज्ञानी ज्ञान की तलाश में लग गया, ज्ञान का जन्म शुरू हो गया। इसलिए जो दूर रह जाते हैं उनको मैं कहता हूं, महामूढ़ हैं। रुग्ण हैं, और फिर भी चिकित्सक के पास नहीं जाना चाहते। रुग्ण हैं, फिर भी अहंकार रोकता है यह भी कहने से कि मैं बीमार हूं। क्योंकि चिकित्सक को इतना तो कहना ही पड़ेगा कि मैं बीमार हूं। बुद्ध के

पास इतना तो कहना ही पड़ेगा कि मैं अज्ञानी हूं। तभी तो ज्ञान की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। इतना भी स्वीकार करना पीड़ा देता है। इसलिए महामूढ़ बुद्ध के पास नहीं पहुंच पाते। मूढ़ पहुंचते हैं।

लेकिन इन मूढ़ों में भी कई तरह के मूढ़ होंगे, तरह-तरह के होंगे। कुछ होंगे जो सजग हो जाएंगे अपनी मूढ़ता के प्रति और बुद्ध के निकट अपनी मूढ़ता को काटने का उपाय करेंगे। कुछ होंगे जो सजग न होंगे, बल्कि बुद्ध की बातों से अपनी मूढ़ता को ही भरने का उपाय करेंगे। बुद्ध का उपयोग भी अपनी मूढ़ता के लिए ही करने वाले लोग भी हैं। उनसे ही खतरा है। स्वभावतः, जब एक मूढ़जन ज्ञानी के पास आता है तो वह उसकी पूरी बातें तो नहीं समझ सकता। असंभव है। लेकिन अगर उसे ख्याल हो कि मैं समझ तो नहीं सकता, इतनी विनम्रता हो और समझने की चेष्टा करता रहे, तो ठीक। लेकिन अगर, जो भी वह समझ लेता है, समझता हो कि मैंने समझ लिया, और फिर हठाग्रही हो, तो खतरा है। तब खतरा है; तब फिर वह जिद्द बांधेगा। और बुद्ध कितने दिन होंगे? आज नहीं कल--इस तरह का बड़ा वर्ग है--उसके हाथ में बातें पड़ जाती हैं। बुद्ध के मरते ही बुद्ध की बातों पर कोई एकमत न रहा, पच्चीस धाराएं पैदा हो गईं। हर धारा के लोग कहने लगे, यही बुद्ध ने कहा था।

बुद्ध की तो बात छोड़ दें; मैंने सुना है कि सिग्मंड फ्रायड के जीवन में ऐसा घटा। वह जिंदा था, लेकिन बूढ़ा हो गया था। और एक बड़ा आंदोलन उसके आस-पास चल रहा था, मनोविश्लेषण का, साइकोएनालिसिस का। सारी अंतर्राष्ट्रीय ख्याति थी, हजारों उसके शिष्य थे। तो कुछ दस उसके विशेष शिष्य उसके बुढ़ापे को निकट देख कर उससे मिलने के लिए इकट्ठे हुए थे। सांझ को भोजन के लिए फ्रायड के साथ टेबल पर बैठे हैं। बातचीत चलने लगी; उन दसों में विवाद छिड़ गया--फ्रायड क्या कहता है इस संबंध में। और फ्रायड बैठा है जिंदा, उससे कोई पूछता ही नहीं। उनमें विवाद इतना बढ़ गया कि वे भूल ही गए कि अभी इतने विवाद की जरूरत क्या है! आदमी जिंदा है, सामने मौजूद है, उससे हम पूछ लें कि तुम्हारा क्या मंतव्य था। वे अपना-अपना मंतव्य सिद्ध कर रहे हैं। फ्रायड ने उनसे कहा, मित्रो, अभी मैं जिंदा हूं। अभी तुम मुझसे सीधा पूछ ले सकते हो कि मेरा मंतव्य क्या था। लेकिन तुम मुझसे नहीं पूछते; मेरे मरने के बाद तुम क्या करोगे! तब तो तुम्हीं निर्णायक हो जाओगे।

तो जैसे ही एक ज्ञानी की मृत्यु होती है, उसके आस-पास अज्ञानियों का जो समूह है वह पच्चीस तरह के मत-मतांतर खड़े कर लेता है। करेगा ही। धर्म तो ज्ञानियों से पैदा होते हैं, संप्रदाय मूढ़ों से पैदा होते हैं। और ऐसी क्षुद्र बातों पर लड़ेगा कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

अब दिगंबर और श्वेतांबरों से पूछो कि किस बात से तुम्हारा झगड़ा है महावीर के बाबत? श्वेतांबर कहते हैं कि वे कपड़े पहनते थे; दिगंबर कहते हैं वे नग्न थे। कहां की क्षुद्र बातों पर झगड़ा है--कि श्वेतांबर कहते हैं कि उनकी शादी हुई थी और दिगंबर कहते हैं कि उनकी शादी नहीं हुई। श्वेतांबर कहते हैं कि उनकी एक लड़की भी हुई थी और उनका दामाद भी था, और दिगंबर कहते हैं कि उनकी कोई न लड़की हुई, न कोई दामाद था।

ये झगड़े हैं। इनमें से कुछ भी सच हो, इसका महावीर से क्या लेना-देना है? कपड़े पहनते हों तो क्या फर्क पड़ता है? नहीं पहनते हों तो क्या फर्क पड़ता है? उन्होंने जो कहा है, उससे कोई लेना-देना नहीं है। बड़े अजीब लोग हैं! लेकिन इस पर झगड़े हजारों वर्ष तक चलते हैं। और झगड़े बड़े पांडित्यपूर्ण चलते हैं, उसमें बड़े शास्त्रों का और विवाद का और तर्क का जाल फैलाया जाता है। और करने वाले सोचते हैं कि बड़ा महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं, क्योंकि बड़े धर्म की रक्षा की बात है। अब महावीर नग्न थे कि कपड़ा पहनते थे, इससे धर्म की रक्षा का

क्या सवाल है? कपड़े के भीतर भी नग्न ही होंगे। कपड़ा इतना मूल्यवान है नहीं। महावीर की शादी हुई या नहीं हुई, इससे क्या लेना-देना है? इन व्यर्थ की बातों में इतना क्या सार है?

लेकिन नहीं, इनमें सार मालूम पड़ता है। क्योंकि मूढ़ों का अहंकार इनसे जुड़ जाता है--उनकी बात ठीक है। सत्य से मूढ़ को कोई संबंध नहीं होता, अपने मत से संबंध होता है। ज्ञानी, जो सत्य है, उसको अपना मत बनाता है। मूढ़, जो उसका मत है, उसको सत्य सिद्ध करता है। ज्ञानी सदा तैयार है अपने मताग्रह को छोड़ने को, सत्य जहां ले जाए वहां जाने को। अज्ञानी कहता है, सत्य को मेरे पीछे चलना पड़ेगा; जहां मैं जाता हूं, वहां सत्य को जाना पड़ेगा।

जो बुद्ध पुरुषों के पास इकट्ठे होते हैं वे धन्यभागी हैं--मूढ़ हों तो भी। क्योंकि वहां उपाय है कि उनकी मूढ़ता विसर्जित हो जाए। लेकिन जरूरी नहीं है कि पास पहुंचने से आपकी मूढ़ता विसर्जित हो जाएगी। आपको बहुत सजग रहना पड़ेगा। क्योंकि मूढ़ता की बड़ी गहरी जड़ें हैं और बड़ी तरकीबों से वह आपको पकड़े हुए है।

भागवत में एक घटना है। पूर्णिमा की एक रात है और कृष्ण रास कर रहे हैं। उनकी प्रेमिकाएं, उनकी सखियां उनके चारों तरफ नाच रही हैं। हर प्रेमिका को लगता है कि कृष्ण उसी को प्रेम करते हैं। ऐसा लगेगा ही। वह भी अहंकार का ही हिस्सा है। हर प्रेमिका को लगता है कि कृष्ण मुझे ही प्रेम करते हैं। लेकिन जैसे ही किसी प्रेमिका को लगता है कि कृष्ण मेरे ही हैं वैसे ही उसे कृष्ण दिखाई नहीं पड़ते। नाच तो चलता है, लेकिन कृष्ण बीच से तिरोहित हो जाते हैं। जिस सखी को भी ऐसा लगता है कि कृष्ण बस मेरे हैं, और पजेशन, और मालकियत का भाव पैदा होता है, वैसे ही उसे कृष्ण दिखाई पड़ने बंद हो जाते हैं।

यह बहुत मीठी कथा है। खूबसूरत, बड़ी सुंदर और बड़ी प्रतीकपूर्ण। और जैसे ही उसको दिखाई नहीं पड़ते, वह बेचैन हो जाती है, परेशान हो जाती है, प्रार्थना करने लगती है, और भूल जाती है इस भाव को कि कृष्ण मेरे हैं, बस मेरे हैं। इसको भूल जाती है। प्यास जगती है, प्रेम जगता है; विह्वल होकर रोने लगती है, चिल्लाने लगती है। तब उसको फिर कृष्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। लेकिन जैसे ही कृष्ण दिखाई पड़ते हैं, उसे फिर ख्याल होता है कि मेरी पुकार पर आ गए, मेरी प्यास पर आ गए; मैंने चाहा और दिखाई पड़े; बस मेरे हैं। कृष्ण फिर तिरोहित हो जाते हैं।

बस गुरु और शिष्य के बीच ऐसा ही खेल चलता है। जिस क्षण लगता है बुद्ध के किसी भक्त को कि बस मेरे हैं, और मैं समझ गया, और बस असली चाबी मेरे हाथ आ गई; बुद्ध खो गए। मूढ़ता अहंकार है। और जहां अहंकार पकड़ता है वहीं कठिनाई शुरू हो जाती है।

बुद्ध के जीवन में घटना है कि आनंद उनके मरने तक ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। चालीस साल उनके साथ था, और ज्ञानी पुरुष था--जिनको हम ज्ञानी कहते हैं--जानकार था, योग्य था, प्रतिभाशाली था। बुद्ध का बड़ा भाई था रिश्ते में, चचेरा भाई था। लेकिन चालीस साल चौबीस घंटे साथ रह कर भी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ। और कथा कहती है कि बुद्ध के मरने के बाद वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ। बुद्ध से मरने के पहले वह रोने लगा और कहने लगा कि आप जाते हैं! मेरा क्या होगा? चालीस साल भटकते हो गए और मुझे कुछ तो हुआ नहीं।

बुद्ध ने कहा, जब तक मैं न मिट जाऊं, तुझे कुछ होगा भी नहीं। मेरा समाप्त हो जाना तेरे होने के लिए जरूरी है, ताकि तेरी मुट्ठी खाली हो जाए, तेरी पकड़ खो जाए।

कथा बड़ी मधुर है कि जब आनंद आया पहली दफा बुद्ध के पास दीक्षा लेने, तो वह उनका बड़ा भाई था रिश्ते में। तो उसने कहा कि दीक्षा लेने के बाद तो मैं तुम्हारा शिष्य हो जाऊंगा और तुम जो आज्ञा दोगे वह मुझे

माननी पड़ेगी। लेकिन अभी तुम मेरे छोटे भाई हो और मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूं; अभी मैं तुम्हें जो आज्ञा दूंगा वह तुम्हें माननी पड़ेगी। तो पहले तीन शर्तें मेरी पूरी कर दो, फिर मैं दीक्षा लेता हूं। पहली शर्त यह कि सदा, जब तक जीवित हूं, तुम्हारे साथ रहूं; तुम मुझे कहीं अलग न भेज सकोगे; तुम यह न कह सकोगे कि जाओ, कहीं और बिहार करो। मैं सदा छाया की भांति तुम्हारे साथ रहूंगा। चौबीस घंटे! रात सोऊंगा भी तुम्हारे ही कमरे में। तुम मुझे क्षण भर को अलग न कर सकोगे। दूसरी बात, जिस व्यक्ति को भी मैं तुमसे मिलाना चाहूं--आधी रात में भी--तो तुम इनकार न कर सकोगे। और तीसरी बात, कोई भी सवाल मैं पूछूं, वह सवाल कैसा ही हो, तुम्हें जवाब देना ही पड़ेगा।

बुद्ध छोटे भाई थे। तो बुद्ध ने कहा कि जो आज्ञा दे रहे हो बड़े भाई की हैसियत से वह मैं स्वीकार कर लेता हूं। फिर आनंद की दीक्षा हुई। लेकिन यह जो अकड़ थी बड़े भाई होने की यह बाधा बन गई। और बुद्ध ने पूरे जीवन निभाया; जो कुछ आनंद ने मांगा था वह पूरे जीवन पूरा किया। लेकिन वह जो अकड़ थी, वह कठिनाई हो गई, और बुद्ध से सीखने में बाधा बन गई। वह जो बड़ा भाई होना था, वह जो बुद्ध को आज्ञा देने का अहंकार था, वह अड़चन हो गया। बुद्ध के मरने के बाद पकड़ छूटी और आनंद को होश आया कि मैंने गंवा दिए चालीस वर्ष! जिसके पास था वहां एक क्षण में घटना घट सकती थी, लेकिन मैं अपनी तरफ से ही बंद था। वह कभी भी मन के गहरे में बुद्ध को बड़ा नहीं मान पाया। छोटा भाई था, तो छोटा भाई। सिर झुकाता था, पैर में सिर रखता था, लेकिन भीतर वह जानता था कि मेरा छोटा भाई है। तो वह झुकना, वह समर्पण, सब झूठा हो गया।

बुद्ध के पास स्वभावतः जो जाएंगे, वे अज्ञानी हैं। लेकिन वे धन्यभागी अज्ञानी हैं, क्योंकि उन्हें जाने का ख्याल आ गया। इतना भी ज्ञान कुछ कम नहीं। जो नहीं जाते, वे महामूढ़ हैं। वे अपने में बंद हैं, उनके खुलने का उपाय नहीं है। कहीं से चोट जरूरी है; नहीं तो आप अपनी खोल में बंद रह सकते हैं जन्मों-जन्मों तक। कहीं से चिनगारी पड़नी जरूरी है। और बड़ी जरूरत इस बात की है कि कोई आनंदित व्यक्ति आपके जीवन-अनुभव का हिस्सा हो जाए। क्योंकि आपको आनंद की कोई खबर नहीं। जिसकी खबर ही नहीं है उसकी खोज भी कैसे हो? और जिसका कोई स्वाद नहीं, वह होता भी है, इसका भरोसा भी कैसे हो?

बुद्ध आपको आनंद नहीं दे सकते और न ज्ञान दे सकते हैं, लेकिन बुद्ध की मौजूदगी आपको स्वाद दे सकती है। आपको इतना तो लग सकता है कि कुछ इस आदमी को हुआ है जो अगर मुझे भी हो जाए तो जीवन सार्थक है। बुद्ध की छाया में आपको जो शांति की झलक मिले वह आपकी अपनी शांति की खोज बन सकती है। तो बुद्ध प्यास दे सकते हैं। परमात्मा तो दुनिया में कोई किसी को नहीं दे सकता; लेकिन परमात्मा की प्यास किसी के सान्निध्य में जग सकती है। वह जग जाए और अज्ञानी अपने अज्ञान के प्रति सचेत हो तो धीरे-धीरे अज्ञान विसर्जित हो जाता है।

लेकिन अगर अज्ञानी अपने अज्ञान को ही बुद्ध से भरने लगे तो कठिनाई हो जाती है। आप भर सकते हैं। बुद्ध निरुपाय हैं, कुछ भी नहीं कर सकते। आप अपने अज्ञान को भर सकते हैं उनसे भी। उनसे जो बातें सुनें, वे आपकी स्मृति में चली जाएं, आपका जीवन-आचरण न बनें; तो खतरा है। तो आप पंडित हो जाएंगे, ज्ञानी नहीं हो पाएंगे। और अज्ञानी जब पंडित हो जाता है तो भयंकर रोग से ग्रस्त हो जाता है।

चौथा प्रश्नः नागसेन ने कहा है, नागसेन नहीं है। विश्लेषण से यह सत्य निरूपित हुआ। क्या संश्लेषण के द्वारा भी इसी तथ्य का निरूपण होना संभव है? स्पष्ट करें।

कथा मैंने कही कि नागसेन आया सम्राट के पास और उसने कहा कि रथ का एक-एक अंग अलग कर लो। अंग अलग होते चले गए, रथ खोता चला गया। जब सारे अंग अलग हो गए तो पीछे शून्य बचा; वहां कोई रथ न था। और नागसेन ने कहा, अब रथ कहां है? ऐसा ही मैं भी हूं। मेरे एक-एक अंग अलग कर लो, मैं खो जाऊंगा। यह विश्लेषण की प्रक्रिया है, एनालिसिस की। एक-एक चीज को अलग कर लिया।

प्रश्न कीमती है--कि चीजें अलग कर लेने से तो सिद्ध हुआ कि नागसेन नहीं है, लेकिन क्या संश्लेषण से, सिंथीसिस से भी यही सत्य सिद्ध होगा?

यही सिद्ध होगा। क्योंकि जो सत्य है वह विश्लेषण और संश्लेषण पर निर्भर नहीं होता। सत्य सिद्ध नहीं होता, सिर्फ आविष्कृत होता है। इस विश्लेषण की प्रक्रिया से सिद्ध हुआ कि नागसेन नहीं है; एक-एक हिस्से को अलग करते गए तो पता चला कि नागसेन खो गया।

यह बौद्धों की प्रक्रिया है; शून्य की प्रक्रिया है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, कोई आत्मा नहीं है। और इस आत्मा के न होने को जान लेना ही सत्य की उपलब्धि है, निर्वाण है। वेदांत की प्रक्रिया संश्लेषण की प्रक्रिया है। वेदांत कहता है, जोड़ते जाओ, और इतना जोड़ो कि जोड़ के बाहर कुछ भी न बचे।

नागसेन है, पास में वृक्ष है, पास में सम्राट खड़ा है, आकाश है, बादल हैं; सब को जोड़ते चले जाओ। जब सब जुड़ जाएगा तब भी नागसेन बचेगा नहीं, क्योंकि तब परमात्मा ही बचेगा, ब्रह्म बचेगा। अगर हम सब जोड़ते चले जाएं तो एक बचेगा। नागसेन के बचने के लिए तो अनेक की जरूरत है; कम से कम दो की जरूरत है। कम से कम दो तो चाहिए कि सम्राट अलग हो और नागसेन अलग हो। इतना फासला तो चाहिए। अगर हम जोड़ते ही चले जाएं तो एक ही बचेगा--ब्रह्म। टोटैलिटी हो जाएगी; एक समग्रता हो जाएगी। उसमें सम्राट भी खो जाएगा, नागसेन भी खो जाएगा।

बूंद को अगर हम सागर में डाल दें तो भी खो जाती है और बूंद को अगर हम भाप बना दें तो भी खो जाती है। भाप बनने में बूंद मिटती है, शून्य हो जाता है; पीछे कुछ बचता नहीं। सागर में बूंद को डाल दें, बूंद रहती है, लेकिन सागर बचता है, बूंद खो जाती है। तो या तो शून्य की तरफ चलें, अपने को काटते जाएं, काटते जाएं और भीतर अनुभव करें कि मैं नहीं हूं। और या फिर पूर्ण की तरफ चलें और जोड़ते जाएं और जोड़ते जाएं, और ऐसा अनुभव करते जाएं कि सब कुछ मैं ही हूं। दोनों ही स्थिति में नागसेन खो जाएगा, आप खो जाएंगे। अहंकार बीच में बच सकता है--कुछ जुड़ा, कुछ टूटा। पूरा तोड़ दें तो खो जाता है, पूरा जोड़ दें तो खो जाता है। पूर्ण के साथ अहंकार का कोई संबंध नहीं बन पाता; अपूर्ण के साथ ही अहंकार का संबंध बनता है।

इसलिए वेदांत और बुद्ध का विचार बड़े विपरीत मालूम होते हैं; ब्रह्म-अनुभूति और निर्वाण, शून्यता बड़े विपरीत मालूम होते हैं। विपरीत मालूम होते हैं शब्दों की वजह से, प्रक्रिया, विधि की वजह से। लेकिन अंतिम परिणाम बिल्कुल एक है। इसलिए जिनको जैसा रुचिकर लगता हो! कुछ लोग हैं जो विश्लेषण में ज्यादा रस ले पाएंगे, नेति-नेति, इनकार करने में; ठीक है। इसलिए जब कोई नास्तिक मेरे पास आता है तो उससे मैं नहीं कहता कि तू ईश्वर को मान। उससे मैं कहता हूं कि फिक्र छोड़, ईश्वर है ही नहीं; अब तू इसकी ही फिक्र कर कि तू भी नहीं है। ईश्वर को छोड़ने की तूने हिम्मत की, काफी किया; अब इतनी हिम्मत और कर कि तू भी नहीं है। आत्मा भी नहीं है, अहंकार भी नहीं है। नास्तिक को मैं कहता हूं, न करने का तेरा रस है तो फिर पूरा ही न कर दे; कह दे कि कुछ भी नहीं है। तो भी वहीं पहुंच जाएगा। आस्तिक होने की कोई जरूरत नहीं है। अगर आपका रुझान आस्तिक का है तो बात अलग है। तो नास्तिक होने की कोई जरूरत नहीं है।

नास्तिक भी पहुंच सकता है; यह इस भारत की ही खोज है। यह जान कर आप हैरान होंगे, दुनिया में कोई नास्तिक धर्म नहीं है, सिर्फ भारत में दो धर्म नास्तिक हैं, जैन और बौद्ध। दुनिया में कोई धर्म नास्तिक नहीं है। दुनिया में, भारत के बाहर, समझ में भी नहीं आता उनको कि नास्तिक का कैसे धर्म हो सकता है! नास्तिक और धर्म उलटे मालूम पड़ते हैं। लेकिन हमने नास्तिक का धर्म भी खोज लिया। क्योंकि धर्म परम सत्य है; उसे न करके भी पाया जा सकता है, उसे हां करके भी पाया जा सकता है। अगर सत्य को हां करके ही पाया जा सकता है तो सत्य अधूरा हो गया, तो सत्य कमजोर हो गया; न को झेलने की उसमें हिम्मत न रही। तो सत्य अधूरा हो गया। सिर्फ हां वालों को मिलेगा, न वालों को नहीं मिलेगा, तो सत्य भी फिर इतना परिपूर्ण नहीं है कि सभी उसमें समा जाएं। तो उस मंदिर में भी कुछ के लिए जगह है और कुछ के लिए जगह नहीं है।

भारत अदभुत है। आस्तिक धर्म तो बिल्कुल सहज बात है। ईसाइयत है, इसलाम है; सब आस्तिक धर्म हैं। उनकी कल्पना के ही बाहर है कि कोई धर्म हो सकता है, जो कहता है ईश्वर नहीं, और हो सकता है। और कोई धर्म हो सकता है, जो यहां तक कहता है कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, और फिर भी धर्म हो सकता है।

लेकिन हमारा धर्म का अर्थ ही और है। धर्म का हमारा अर्थ हैः वह जो परम है उसको पा लेना। उसको पाने के दो ढंग हैं। या तो कोई इतनी हां करे कि उसकी हां विराट हो जाए और उसमें कहीं भी न को गुंजाइश न रहे। तो पूर्ण हो गया। या कोई इतना न करे कि हां की जरा भी गुंजाइश न रहे। तो न पूर्ण हो गया। या तो यस पूर्ण हो जाए या नो पूर्ण हो जाए। जहां भी दोनों में से कोई एक पूर्ण हो जाता है, परम सत्य की उपलब्धि हो जाती है।

इसलिए बुद्ध नास्तिक हैं। ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है। बड़ा मुश्किल है पश्चिम को समझना कि ऐसा आदमी! एच.जी.वेल्स ने लिखा है कि बुद्ध इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा ईश्वरविहीन और सबसे ज्यादा ईश्वर जैसे व्यक्ति हैं। गॉडलेस एंड गॉडलाइक, दोनों एक साथ। एच.जी.वेल्स ने लिखा है कि समझ झकझोर जाती है कि इस आदमी को समझो कैसे! क्योंकि इससे ज्यादा ईश्वर जैसा आदमी खोजना मुश्किल है। और यह आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है।

हम इसे अगर इस तरह समझ पाएं तो बात बहुत सरल हो जाएगी। सत्य को पाने के दो उपाय हैंः विश्लेषण और संश्लेषण, इनकार या स्वीकार। लेकिन दोनों हालत में एक शर्त है--पूर्णता, टोटैलिटी। नास्तिक होना है तो पूरे ही नास्तिक हो जाएं, और आप ब्रह्म को उपलब्ध हो सकेंगे। अधूरी नास्तिकता से नहीं चलेगा। आस्तिक होना है तो पूरे आस्तिक हो जाएं। अधूरी आस्तिकता से नहीं चलेगा।

लेकिन जमीन पर अधूरे लोगों की भीड़ है। अधूरे आस्तिक, अधूरे नास्तिक; सब तरह के आधे-आधे लोग हैं। जब भी कोई आदमी किसी भी दृष्टि में पूरा उतर जाता है तो समस्त अपूर्णताओं से मुक्त हो जाता है, समस्त दृष्टियों से मुक्त हो जाता है। दोनों ही स्थितियों में पता चलेगा, आप नहीं हैं। या तो बूंद को भाप बना कर उड़ा दें, शून्य में डूब जाएं, या बूंद को सागर में उतार दें और विराट के साथ एक हो जाएं। बस आप मिट जाएं। आपके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

पांचवां प्रश्नः लाओत्से पहले कहते थे कि ताओ के मानने वाले हवा-पानी की तरह जीते हैं--सहज और अनायास। और उस दिन लाओत्से ने कहा कि श्रेष्ठ कोटि के श्रावक ताओ के अनुसार जीने की अथक चेष्टा करते हैं। इस विरोध को स्पष्ट करें।

विरोध नहीं है। ताओ को उपलब्ध व्यक्ति तो हवा-पानी की तरह जीता है, लेकिन ताओ की तरफ चलने वाला व्यक्ति हवा-पानी की तरह कैसे जी सकता है? हवा-पानी की तरह जीने के लिए भी उसे पहले प्रयास करना पड़ेगा। यात्रा के प्रारंभ में आप पूरी मंजिल को कैसे उपलब्ध हो सकते हैं? आपको पुरानी आदतें तोड़नी पड़ेंगी; पुरानी कंडीशनिंग है, संस्कार हैं, उनको नष्ट करना पड़ेगा। वे जगह-जगह आपको घेरे हुए हैं। आप जान भी लेंगे कि वह गलत है तो भी वे पीछा करेंगे। क्योंकि सिर्फ जान लेना काफी नहीं है। आपने वर्षों, जन्मों तक उनकी साधना की है।

एक आदमी है; वह तय कर लेता है, समझ लेता है कि सिगरेट पीना बुरा है; धूम्रपान बंद कर दूं। लेकिन उसके खून ने निकोटिन की आदत बना ली है। उसके खून में इतनी बुद्धि अभी नहीं पहुंच सकती है एकदम से। आपके निर्णय करने का पता खून को नहीं चलेगा। उसके हृदय की धड़कन भी निकोटिन की मांग करती है। वह आदी हो गया है। निकोटिन उसके शरीर का भोजन हो गया है। अब अगर निकोटिन नहीं पहुंचेगा तो वह सुस्त मालूम पड़ेगा। और जब सुस्त मालूम पड़ेगा तो शरीर मांग करेगा कि मुझे धूम्रपान दो। किसी काम में रस नहीं मालूम पड़ेगा। कुछ भी करने जाएगा, तो लुंज-पुंज होगा। हाथ-पैर उठते हुए मालूम नहीं पड़ेंगे। शरीर बगावत करेगा। शरीर कहेगा, मेरा भोजन मुझे दो।

शरीर को कुछ पता नहीं कि आपकी बुद्धि को क्या पता चल गया है कि सिगरेट पीना बुरा है, पाप है। किसी साधु-संन्यासी को सुन कर आपने भावावेश में कसम खा ली, संकल्प कर लिया कि अब नहीं पीऊंगा। अब आप मुश्किल में पड़े। शरीर को पता नहीं है आपके साधु का, संन्यासी का, शास्त्र का। आपने सुन लिया और आपने निर्णय ले लिया। शरीर से आपने पूछा ही नहीं कि मैं चालीस साल से सिगरेट पीता था, तो चालीस साल में निकोटिन की जो आदत बन गई है, वह भोजन का हिस्सा हो गई है, उसको कैसे अलग करूं? तो जब तक, आप कितना ही निर्णय कर लें, जब तक यह आदत न बदलेगी तब तक आपको संघर्ष जारी रखना पड़ेगा।

आप हवा-पानी की तरह अभी नहीं हो सकते; हवा-पानी की तरह हुए कि फौरन सिगरेट जला लेंगे। अगर आपने कहा कि सहज जीएंगे, तो शरीर कहेगा, पीयो। अगर सहज ही जीना है तो फिर यह क्यों कहते हो कि नहीं पीएंगे? जब सहज ही जीना है तो उठाओ सिगरेट; फिर बाधा क्या है?

सहज जरूर जीना है, लेकिन जब असहज आदतें टूट जाएंगी तभी आप सहज जी सकेंगे। इसलिए लाओत्से जब कहता है कि संत हवा-पानी की तरह होता, तो यह अंतिम बात है; उपलब्ध, सिद्ध की बात है। और अपने को सिद्ध मत मान लेना, नहीं तो खतरा है। अपने को साधक ही मान कर चलना। खतरा है अगर सिद्ध अपने को मान लें। क्योंकि आपका मान लेने का तो मन होगा, क्योंकि बिना कुछ किए अगर सिद्ध हो जाएं तो इससे सरल और क्या बात होगी?

मेरे पास लोग आते हैं वे कहते हैं कि लाओत्से की बात बहुत जंचती है। मैं जानता हूं, क्यों जंचती है। कुछ नहीं करना, सब स्वीकार है। सब झंझट मिट गई; कुछ करना नहीं, सब स्वीकार। आप जैसे हैं वैसे ही रहे आएं। इसलिए लाओत्से की बात जंचती है। मगर लाओत्से को आप समझेंगे नहीं, अगर इसलिए आप जंचा रहे हैं। तो आप गलत आदमी लाओत्से के पास आ गए। और आपको नुकसान होगा। आप अभी असहज हैं; अभी आप क्षण में सहज नहीं हो सकते। निर्णय तो आप कर सकते हैं, लेकिन यात्रा, अथक चेष्टा पीछे करनी होगी। और अगर आपने चेष्टा नहीं की पीछे तो निर्णय व्यर्थ पड़ा रह जाएगा।

साधक और सिद्ध का फासला ख्याल में रहे तो विरोधाभास नहीं दिखाई पड़ेगा। बुद्ध भी कहते हैं कि कुछ करना नहीं है; वह स्वभाव है। लेकिन बुद्ध भी छह साल तक तपश्चर्या कर रहे हैं। छह साल तक तपश्चर्या करने के बाद ही उनको पता चलता है कि कुछ करना जरूरी नहीं है। और आपको किताब में पढ़ कर या सुन कर पता चल जाता है कि कुछ करना जरूरी नहीं है। तो वह छह साल की तपश्चर्या में उनकी पुरानी आदतें टूटीं, वे तो आपकी नहीं टूटीं। डी-कंडीशनिंग नहीं हुई।

पावलव ने बहुत प्रयोग किए रूस में--संस्कारित करने के। कुत्ते को रोटी देगा। रोटी देख कर कुत्ते की लार टपकने लगती है, तो घंटी बजाएगा साथ में। अब घंटी से लार टपकने का कोई संबंध नहीं है। लेकिन रोज जब रोटी देगा तभी घंटी बजाएगा। पंद्रह दिन ऐसा करने के बाद रोटी नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई। कुत्ते की जीभ बाहर निकल आई और लार टपकने लगी। घंटी और रोटी में संबंध जुड़ गया मन के भीतर, कंडीशनिंग हो गई। अब कुत्ता भी जानता है कि रोटी नहीं है। कुत्ता भी देख रहा है और बेचैनी अनुभव करता है, लेकिन लार टपके चली जाती है। क्योंकि लार पर आपका कोई कंट्रोल नहीं है। या आप सोचते हैं है? जरा सोचें नीबू के संबंध में, और भीतर से लार आनी शुरू हो गई। अभी सोच ही रहे हैं; नीबू है नहीं। पर कंडीशनिंग है; नीबू के साथ जुड़ गया है। तो कुत्ते का बिचारे का! आपका जुड़ गया तो कुत्ते का क्यों नहीं जुड़ जाएगा? तो घंटी के साथ जुड़ गई। तो अब उसको रोज घंटी बजाई जा रही है, उसकी लार टपकती है। वह सीख गया; उसके शरीर ने आदत सीख ली।

अब इसको महीना, पंद्रह दिन लगेंगे भुलाने में। रोज घंटी बजे, लार टपके, रोटी से संबंध टूटता चला जाए; रोज लार कम होती चली जाएगी। महीना भर लगेगा। और या फिर एक उपाय है कि जब इसकी लार टपके तब इसको बिजली का एक शॉक दिया जाए तो यह घबड़ा जाए। तो नया संबंध जुड़ जाए कि बिजली का शॉक लगा तो लार एकदम बंद होने लगी। तो घंटी और बिजली का साथ जुड़ जाए।

तो दो उपाय हैं आदतों को तोड़ने के। या तो किसी आदत के प्रति उपेक्षा रखें ताकि धीरे-धीरे संबंध टूट जाए। सिगरेट एकदम मत छोड़ें, उपेक्षा से पीएं। पीएं, और बड़े उपेक्षित रहें कि ठीक है, पीयी तो, नहीं पीयी तो। इनडिफरेंट। तो धीरे-धीरे संबंध टूट जाए। और या फिर--अभी पश्चिम में वे इसको री-कंडीशनिंग कहते हैं--कि जब भी आप सिगरेट पीएं, आपको शॉक दिया जाए बिजली का। दो-तीन दिन में छूट जाए। क्योंकि आप सिगरेट पास ले जाएंगे, आपका पूरा शरीर इनकार करने लगेगा। निकोटिन से भी ज्यादा नई आदत बन गई कि अब शॉक लगेगा। तो अभी पश्चिम में इस पर बहुत प्रयोग चलता है, और सरलता से छूट जाती हैं। वर्षों की आदतें किसी दुखद चीज से जोड़ देने से एकदम छूट जाती हैं।

लेकिन यह दूसरा प्रयोग अच्छा नहीं है। क्योंकि यह घातक है। और इसमें चोट पहुंच रही है, और इसमें आपका मन स्वतंत्रता से मुक्त नहीं हो रहा; एक दुख के कारण मुक्त हो रहा है। जैसे एक छोटे बच्चे को हम चांटा मार देते हैं, वह कोई गलत काम--हमको लगता है--गलत कर रहा है। चांटा हम क्यों मारते हैं? हम उसको कंडीशन कर रहे हैं कि वह समझने लगे कि जब भी ऐसा करेगा चांटा पड़ेगा; अगर चांटा नहीं चाहिए तो नहीं करेगा। लेकिन यह कोई सुखद नहीं हुआ, यह कोई ज्ञान नहीं हुआ, यह कोई बोध नहीं हुआ। और जिस दिन बच्चे को पता चल जाए कि अब उसका चांटा आपसे मजबूत हो गया, उस दिन वह फिर करेगा और अब वह जानता है कि अब कोई डर नहीं है। इसलिए जो मां-बाप बच्चे को रोक लेते हैं थोड़े दिनों तक वे पाते हैं कि आखिर में वह वही सब कर रहा है जिसको उन्होंने रोका था। क्योंकि मुक्ति ज्ञान से होती है, बोध से होती है।

तो आप आज साधक की तरह ही चलना शुरू करेंगे, सिद्ध की तरह नहीं। और साधक की तरह चलने का मतलब है कि जो भी स्थिति है, पहले उसको पहचान लें और समझ लें कि कितने लंबे समय से आपने इसको बनाया है। इसकी प्रक्रिया को समझ लें कि किस-किस भांति आपने इसको साधा है। फिर धीरे-धीरे एक-एक हिस्से को उतारना शुरू करें, हटाना शुरू करें। और लंबे क्रम में हटाएं, ताकि कहीं कोई घाव न छूट जाए। अगर आदतों को कोई तोड़ने की कला ठीक से सीख ले तो जिस दिन आदतों का जाल टूट जाता है चारों तरफ से उस दिन जैसे पक्षी के चारों तरफ से पिंजरा गिर गया। पक्षी अब उड़ सकता है।

लेकिन जो पक्षी आकाश में बहुत वर्षों से नहीं उड़ा, उसके पंख भी जड़ हो जाते हैं। उसका भी अभ्यास करना पड़ता है। आपका तोता ऐसे ही छूट जाए तो उसको पशु-पक्षी खा जाएंगे। उड़ भी नहीं पाएगा। उससे तो कारागृह बेहतर था। क्योंकि पंख को आदत ही छूट गई है उड़ने की। पंख को आदत जुटानी पड़ेगी। फिर से पंख को फैलना पड़ेगा। फिर से पंख में खून दौड़ना चाहिए, फिर से पंख ताजा और जवान होना चाहिए। ऊंचाई पर उड़ने के लिए हृदय की धड़कन को अब सम्हलना चाहिए। सब फिर से निर्मित करना पड़ेगा। और जैसा तोते के लिए कठिन है पिंजड़े से बाहर निकल कर उड़ जाना। सिर्फ पिंजड़ा तोड़ देना भी काफी नहीं, फिर बाहर उड़ कर अपने शरीर को उस योग्य लाना पड़ेगा।

इसलिए लाओत्से की जो बात है वह बहुत बहुमूल्य है। पर आप अपने को सिद्ध मान कर चलेंगे तो आप सिर्फ नुकसान उठाएंगे, फायदा नहीं। और नासमझ औषधि को भी जहर बना लेते हैं; समझदार जहर का भी औषधि की तरह उपयोग करते हैं। इसे ध्यान में रखना। अन्यथा परम सत्य बड़े खतरनाक हो जाते हैं।

जैसे यहां हुआ। शंकर की हमने बात सुनी; परम सत्य शंकर ने कहा, सब जगत माया है। हमने कहा, जब सब माया ही है तो अब अड़चन ही क्या है! अब जो भी करो, सब ठीक है, क्योंकि जब सब माया ही है। शंकर के इस विचार ने--जो कि बड़ा गहरा सत्य है कि सब जगत माया है--इस मुल्क को धार्मिक पतन में उतार दिया। क्योंकि मुल्क को लगा जब माया है तो ठीक है। झूठ बोलो, कि चोरी करो, कि बेईमानी करो, कि रिश्वत खाओ--संसार माया है। स्वप्न में आपने चोरी की या नहीं की, क्या फर्क पड़ता है? कि पड़ता है? सुबह जब आप उठेंगे, पाएंगे, सब स्वप्न था--चोरी की तो, और संत हो गए तो, सपने में। सुबह उठ कर पाया सब शांत है। कुछ सार नहीं है, सब एक ख्याल था। अगर जगत पूरा माया है तो फिर कुछ भी करो।

तो आज जो भारत की जो अनैतिक दशा है उसमें शंकर के परम सत्य का हाथ है। वह लाओत्से ठीक कहता है कि पैगंबर, तीर्थंकर ज्ञान के फूल भी हैं और मूढ़ता के स्रोत भी। शंकर का हाथ है। जान कर नहीं। शंकर कभी सोच भी नहीं सकते कि ऐसा हो। लेकिन जो विचार उन्होंने दिया और उस विचार का इस मुल्क ने जो उपयोग किया वह यह था कि ठीक है। इसलिए सब बात, सब चरित्र, सब नैतिकता, सब जीवन की पवित्रता का कोई मूल्य नहीं रहा। सब असार है। दोनों चीजें असार हो गईं--शुभ भी, अशुभ भी। और तब आदमी कोई संत नहीं हो गया, कोई समाज संत नहीं हो गया। समाज बहुत नीचे गिर गया। इस माया के सिद्धांत ने भारत को बहुत नीचे गिराया।

परम सत्य के साथ एक खतरा है कि वह बहुत ऊंचा होता है; वहां तक आप पहुंच नहीं पाते। इसलिए जगत में सदा से धर्म के दो पहलू रहे हैं। एक पहलू है, जिसको हम भारत में कहते हैं सद्यः मुक्ति, सडन एनलाइटेनमेंट। यह कभी करोड़ में एकाध व्यक्ति को होता है, कभी करोड़ में एकाध व्यक्ति को होता है। एक क्षण में सब कुछ घट जाता है। दूसरा एक जीवन की धारा है, क्रमिक मुक्ति, ग्रेजुअल, आहिस्ता-आहिस्ता। अधिक

लोगों को वैसे ही चलना होता है एक-एक कदम। पर एक-एक कदम चल कर भी हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।

और ध्यान रखें, क्रमिक से ही शुरू करें, क्षण में मुक्त होने का ख्याल मत लाएं। हो भी सकते हैं, लेकिन क्रमिक से शुरू करें। कोई बाधा नहीं है। अगर आपकी योग्यता बन जाएगी तो आप क्षण में भी मुक्त हो जाएंगे, क्रमिक प्रयास से कोई बाधा नहीं पड़ेगी। लेकिन अगर आपने क्षण में मुक्त होने की कोशिश की और क्रमिक की भी योग्यता नहीं थी, तो आप व्यर्थ ही समय गंवाएंगे और बहुत तरह की भ्रांतियों में भी पड़ सकते हैं।

निश्चित ही, सिद्ध हवा-पानी की तरह सरल हो जाता है। लेकिन साधक को इस जगह तक पहुंचने के लिए बड़े उपाय करने पड़ते हैं। सरल होना इतना सरल नहीं है, और सहज होना सहज नहीं है। सहज होने के लिए साधना और सरल होने के लिए बड़े जटिल रास्तों से गुजरना पड़ता है।

छठवां प्रश्नः यदि संगठन और संप्रदाय से धर्म व ताओ का पतन होता है तो कृपया समझाएं कि बुद्ध या महावीर जैसे लोग संगठन की नींव क्यों कर डालते हैं? आप भी इस बात के प्रति सचेत होते हुए नव संन्यास अंतर्राष्ट्रीय जैसे संगठन की नींव क्यों डाल रहे हैं?

जैसा मैंने कहा, जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है, और जब भी सत्य पैदा होगा तो संगठन पैदा होगा। इससे बचा नहीं जा सकता। क्योंकि जैसे ही सत्य दूसरे से कहा जाएगा, संगठन शुरू हो गया। या तो बुद्ध को जो हुआ है, वे चुप रह जाएं पीकर, किसी को न कहें।

वह उन्होंने सोचा था। जब उन्हें ज्ञान हुआ तो सात दिन तक वे चुप रहे; सोचा कि कोई सार नहीं है कहने में। जो पहुंच सकते हैं वे बिना कहे भी पहुंच जाएंगे; और जिनको पहुंचना नहीं है, कहने से कोई फायदा नहीं है, कहने में भी वे गड़बड़ पैदा करेंगे। उचित है कि चुप ही रहूं। लेकिन मीठी कथा है कि देवताओं ने, खुद ब्रह्मा ने आकर उनके चरणों में निवेदन किया कि आप ऐसा मत करें! क्योंकि न मालूम कितने-कितने हजार वर्षों के बाद कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है; उसने जो जाना है वह लोगों को कहे, संवादित करे, साझीदार बनाए। बुद्ध ने कहा, लेकिन जो पा सकते हैं उसे वे पा ही लेंगे मेरे बिना, और जो नहीं पा सकते उनको कहने में मेरा समय क्यों लगाऊं! मेरी व्यर्थ शक्ति क्यों लगाऊं!

ब्रह्मा भी थोड़ी दिक्कत में पड़े। तर्क बहुत सीधा था और साफ था। पर देवताओं ने आपस में बैठक की। कहीं शड्यंत्र किया, सोचा-विचारा और एक नतीजे पर आए। आकर उन्होंने बुद्ध से कहा, आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। कुछ हैं जो पहुंच जाएंगे आपके बिना; कुछ हैं जो आपके कहने से भी न पहुंचेंगे। लेकिन कुछ दोनों के बीच में भी हैं जो आपके न कहने से जन्मों-जन्मों तक भटकेंगे और जो आपके कहने से पहुंच जाएंगे। आप उनके लिए कहें। हो सकता है, सौ में वैसा एक भी आदमी हो तो भी कहने का मूल्य है। बुद्ध राजी हुए।

लेकिन जैसे ही कोई किसी से कहेगा, संगठन शुरू हो गया। अगर मैंने आपसे कोई बात की और आपको समझाया, उसका मतलब ही क्या होता है? उसका मतलब यह होता है कि या तो आप मुझसे राजी होंगे या न राजी होंगे। राजी होंगे तो मेरे करीब आ जाएंगे; संगठन शुरू हो गया। न राजी हुए तो मेरे विपरीत हो जाएंगे; और मेरे खिलाफ संगठन शुरू कर देंगे। लेकिन जैसे ही बात कही गई, संगठन शुरू हो गया।

तब सवाल यह है कि अगर संगठन शुरू भी होता हो तो बुद्ध को या महावीर को कृष्णमूर्ति जैसा करना चाहिए था कि संगठन नहीं करते। मैं आपसे कहूंगा, बुद्ध और महावीर ने कृष्णमूर्ति से ज्यादा समझदारी का

काम किया। क्योंकि जब संगठन होना ही है तो दो ही उपाय हैंः या तो बुद्ध खुद कर दें, या बुद्ध के बाद दूसरे करेंगे। वे दूसरे और भी खतरनाक होंगे। दो ही उपाय हैं। कृष्णमूर्ति न करें संगठन, लेकिन संगठन हो रहा है। लोग हैं जो अपने को उनका अनुयायी मानते हैं। लोग हैं जो उनसे सहमत हैं; वे उनके अनुयायी हैं। कृष्णमूर्ति के हटते ही सब कुछ हो जाएगा। और अभी भी शुरू हो गया। जैसे-जैसे वे बूढ़े हो रहे हैं और जैसे-जैसे लगता है कि अब उनका अंतिम दिन करीब आ रहा है, उनके शिष्य कसते जा रहे हैं। ट्रस्ट बना रहे हैं, स्कूल बना रहे हैं, फाउंडेशंस खड़ी कर रहे हैं। संगठन शुरू हो गया। उनके हटते ही संगठन मजबूत हो जाएगा। और वे संगठन के खिलाफ।

निश्चित ही, बजाय कृष्णमूर्ति के अनुयायी संगठन करें, यही बेहतर होगा कि कृष्णमूर्ति खुद कर दें। उसमें ज्यादा समझ होगी। वह ज्यादा गहरा होगा; ज्यादा देर तक टिकेगा। कम नुकसान करेगा--नुकसान तो करेगा ही--कम नुकसान करेगा। लेकिन उनके पीछे जो लोग संगठन खड़ा करेंगे, वे ज्यादा नुकसान करेंगे।

इसलिए बुद्ध, महावीर या मोहम्मद उचित समझे कि संगठन वे खुद ही कर दें। जितनी दूर तक हो सके उतनी दूर तक भी सत्य अपनी शुद्धता में पहुंचाने की चेष्टा की जाए। और संगठन अनिवार्य है; वह बच नहीं सकता, वह होगा। अगर आप मेरी बात सुनेंगे और राजी हो जाएंगे तो आप चाहेंगे कि किसी और को कहें, किसी और तक पहुंचाएं। जो आपको अच्छा लगता है, सुखद लगता है, आनंदपूर्ण लगता है, आप उसको बांटना भी चाहते हैं। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। यह मनुष्य का धर्म है। तो दस आदमियों को अगर मेरी बात अच्छी लगती है तो दस इकट्ठे बैठ कर सोचेंगे कि क्या करें कि यह बात और लोगों तक पहुंचे--संगठन शुरू हो जाएगा। उचित यही है। संगठन सड़ेगा, खराब होगा, उससे नुकसान होगा, वह सब ठीक है। लेकिन उससे लाभ भी होगा, फायदा भी होगा, हित भी होगा, वह भी उतना ही ठीक है। और इस डर से औषधि न बनाई जाए कि कुछ लोग ज्यादा पीकर जहर बना कर आत्महत्या कर लेंगे, तो जिनको औषधि से लाभ पहुंच सकता है, उनके बाबत कोई ध्यान नहीं रखा जा रहा है। तो एक नासमझ जो कि जहर बना लेगा--मगर मैं मानता हूं कि जो औषधि का जहर बना लेगा वह और भी कोई तरकीब आत्महत्या की खोज ही लेगा; कोई इसी औषधि के लिए नहीं रुका रहेगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आप संगठन मत बनाएं। मगर मैं देखता हूं कि वे खुद किसी संगठन में हैं। कोई जैन है, कोई हिंदू है, कोई बौद्ध है, कोई ईसाई है। मेरे बनाने से कुछ फर्क नहीं पड़ जाएगा। वे कहीं न कहीं हैं। मेरी दृष्टि यह है कि संगठन तो बनाना ही होगा; इस बोध से बनाना जरूरी है कि वह सड़ेगा, और यह बोध देना जरूरी है कि जब वह सड़ जाए तो उसे छोड़ने की हिम्मत रखनी चाहिए।

बुद्ध ने हिम्मत की है, लेकिन कोई सुनता नहीं। बुद्ध ने कहा है कि मैं जो सत्य दे रहा हूं वह पांच सौ साल से ज्यादा नहीं चलेगा। असल में, अगर बुद्ध के मानने वाले सच में उनको प्रेम करते हैं तो पांच सौ साल के बाद बुद्ध के सब संगठन विसर्जित हो जाने चाहिए। लेकिन वे राजी नहीं हैं। अब वे सब दुश्मन का काम कर रहे हैं। इसीलिए नए धर्मों की जरूरत होती है, ताकि पुराने जो सड़ गए हैं वे विदा हो सकें।

तो एक संगठन अगर मैं बनाता हूं तो इसी ख्याल से कि जब वह सड़ जाएगा तो कोई दूसरा बनाएगा और उस सड़े से जो लोग मुक्त हो सकते हैं उनको मुक्त कर लेगा, बाहर कर लेगा। जो मरने को ही तय किए बैठे हैं वे कहीं भी उपाय खोजते, वे इसी में मरेंगे, इसी में उपाय खोजेंगे। पर एक बात तय है कि दो उपाय हैं जीवन के संबंध में सोचने के। या तो हम गलत के संबंध में सोचें कि क्या गलत होगा। तब कुछ करना संभव नहीं है। या हम ठीक के संबंध में सोचें कि क्या लाभ होगा। तो कृष्णमूर्ति निरंतर यही सोचते रहते हैं कि नुकसान क्या

होगा। बहुत नुकसान हैं। आप एक मकान बनाते हैं। आप जानते हैं कि मकान बनाने में कितने खतरे हैं--भूकंप आ सकता है, मकान गिर सकता है, जान ले ले किसी की। अगर ऐसा सोचते रहें तो आप मकान नहीं बना सकते। लेकिन मकान क्या कर सकता है, उस पर अगर ध्यान रखें तो इतनी चिंता की जरूरत नहीं है। लेकिन चिंता पकड़ती है। मैं एक छोटी सी कहानी कहूं।

एक अणु वैज्ञानिक, एक एटामिक साइंटिस्ट समझा रहा था अणु के खतरे के संबंध में। जैसे आप यहां इकट्ठे हैं ऐसे लोग इकट्ठे थे। और उसने खतरे बड़े साफ समझाए। सामने ही बैठा हुआ एक आदमी कंपने लगा। वह वैज्ञानिक भी थोड़ा चिंतित हुआ उस आदमी को देख कर। वह एकदम पीला पड़ा जा रहा है। वह वैज्ञानिक भी डरा। उसने कहा, इतने मत घबड़ाएं। अगर बम आपके नगर पर भी गिरे तो भी बचने के उपाय हैं। और ऐसी अभी कोई संभावना भी नहीं है। मैं तो सिर्फ सैद्धांतिक खतरा समझा रहा हूं। पर वह आदमी घबड़ाए ही चला जा रहा है। तो उसने कहा कि बिल्कुल मत घबड़ाएं, एक करोड़ में एक ही मौका है कि आपकी हत्या एटम बम से हो। वह आदमी एकदम बेहोश होने लगा, उसने कहा कि अवसर की तो बात ही मत करें, डोंट टाक एबाउट चांसेस। क्योंकि पिछले ही साल एक करोड़ आदमियों ने टिकट खरीदी लाटरी की और मुझको इनाम मिल गया है। नहीं, यह तो बात ही मत करें। इससे तो मेरी छाती और फटी जाती है कि यह तो खतरा है ही। एक करोड़ में एक मुझे इनाम मिला है।

संगठन का खतरा है, शब्द का खतरा है, शास्त्र का खतरा है; लेकिन उसके लाभ भी हैं। और खतरा उठाने जैसा है। बस एक ही बात ख्याल में रहनी चाहिए कि सब चीजें मरणधर्मा हैं। धर्म हों, संगठन हों, शास्त्र हों, शब्द हों, सब मरणधर्मा हैं। और जब कोई मर जाए तो उसकी लाश नहीं ढोनी चाहिए। बुद्ध ने कहा है कि जब तुम पार हो जाओ नदी के तो मेरे शब्दों को, मेरे धर्म को, मेरे विचारों को ऐसे ही छोड़ देना जैसे कोई नाव को छोड़ देता है। उसको सिर पर मत ढोना। यही बुद्धिमत्तापूर्ण मालूम होता है। जो चीज सड़ जाए उसे छोड़ देना।

अब बच्चा आपके घर में पैदा होता है। पक्का है कि यह बूढ़ा भी होगा और मरेगा भी। तो आप एक बच्चे को पैदा करके दुनिया में एक मरने की घटना के कारण बन रहे हैं। तो बच्चा पैदा मत करें। यह हम जानते हैं कि बूढ़ा होगा, मरेगा। इसलिए समझदारी इसमें है कि पैदा करें, बच्चे को बड़ा भी करें, लेकिन जब वह मर जाए तो उसकी लाश को घर में सम्हाल कर मत रखें। उसको जाकर, मरघट है उसके लिए भी, वहां उसको विश्राम करवा दें।

धर्म भी मरने चाहिए, संगठन भी मरने चाहिए, शास्त्र भी मरने चाहिए। नए तो पैदा होते जाते हैं; पुरानी लाशें हम ढोए चले जाते हैं। उससे उपद्रव है। नए के पैदा होने में कोई खतरा नहीं, पुराने के ढोने में खतरा है। जब आपको लगने लगे कि कोई चीज मृत हो गई तो उसे छोड़ने का साहस जीवन का लक्षण है।

किसको अच्छा लगता है, मां मर जाए तो उसको जलाना? लेकिन फिर भी जलाना पड़ता है। पिता मर जाते हैं तो किसको अच्छा लगता है? रोते हैं, छाती पीटते हैं, फिर भी मरघट पर पहुंचा कर जला ही आते हैं। लेकिन धर्म भी मर जाते हैं। बड़े प्यारे थे कभी, जीवित थे। कभी उनसे अनेकों को जीवन मिला था, सुगंध मिली थी; जीवन में प्रकाश मिला था। पर अब नहीं मिलता, अब अंधेरा है सब वहां। लेकिन हम छाती पर ढोए चले जाते हैं।

व्यक्ति पैदा होते हैं, मरते हैं। संस्थाओं के साथ एक खतरा है। वे पैदा तो होती हैं, लेकिन न मरने की जिद्द करती हैं। उससे खतरा है। संस्थाएं जितनी चाहें पैदा करें, लेकिन जान कर कि वे मरेंगी, उनको मरना भी

चाहिए। यही नैसर्गिक है। अगर यह बोध रहे और मरे को हटा कर जलाने की समझ रहे और नए को अंगीकार और स्वागत करने का साहस रहे तो कोई भी खतरा नहीं है।

सवाल और हैं। सवालों का कोई अंत भी नहीं है। और जब मैं आपको जवाब देता हूं तो इस ख्याल से नहीं देता कि किसी खास प्रश्न का उत्तर आपके ख्याल में आ जाए। वह सिर्फ इसीलिए देता हूं ताकि आपको एक दृष्टिकोण ख्याल में आ जाए प्रश्नों को हल करने का। खास प्रश्न से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। आपके पास एक समझ आ जाए कि आप प्रश्नों को हल कर पाएं। इसलिए सभी प्रश्नों का उत्तर देना ठीक भी नहीं है। जितनों का मैं देता हूं, इसी आशा में कि शेष जो रह गए हैं उनका आप भी खोज सकेंगे। और आप खुद उत्तर खोजने में समर्थ हो जाएं, यही आशा से जवाब दे रहा हूं। मेरे जवाब आप पकड़ लें तो मुर्दा होंगे। उनका भी आपकी छाती पर बोझ हो जाएगा। आप खुद जीवन के प्रश्नों का उत्तर खोजने में क्रमशः सफल होने लगें, और धीरे-धीरे आप मेरे पास सवाल न लाएं और एक दिन ऐसा हो कि आप कोई सवाल ही यहां लेकर न आएं और मुझसे पूछें ही न कुछ।

इसको ख्याल में रखें। एक तो उत्तर होता है, इसलिए दिया जाता है कि आपको एक रेडीमेड उत्तर दे दिया गया, अब आप इसको पकड़ लें; अब आपको कुछ करने की जरूरत नहीं। नहीं, ऐसा उत्तर मैं आपको नहीं देना चाहता हूं। जो देते हैं, वे दुश्मन हैं। क्योंकि वे आपकी प्रतिभा को विकसित नहीं होने देते। मेरे लिए उत्तर और सवाल तो सिर्फ एक प्रयोग है आपकी चेतना को उस दिशा में खींचने का जहां सवाल आप हल कर पाएं। धीरे-धीरे जब प्रश्न उठें तो आपके भीतर उत्तर भी उठने लगें। अगर यह कला आपके ख्याल में आ जाए तो वह कला आपके साथ जाएगी। मेरे उत्तर आपके काम नहीं आ सकते।

सुना है मैंने कि एक अंधे आदमी ने एक सदगुरु को पूछा कि इस गांव में नदी की तरफ जाने का रास्ता कहां है? बाजार की तरफ जाने का रास्ता कहां है? मैं अजनबी हूं। उस सदगुरु ने कहा, तू रुक! रास्ते बहुत हैं, गांव बहुत हैं, और तू कितने रास्ते याद करेगा और कितने गांव याद करेगा? आज यहां अजनबी है, कल दूसरी जगह अजनबी होगा। जीवन लंबी यात्रा है। तो मैं तुझे जवाब नहीं देता। मैं थोड़ा आंख का इलाज जानता हूं; मैं तेरी आंख का इलाज किए देता हूं। तो फिर तू जहां जाए--गांव अजनबी हो, अपरिचित हो कि परिचित--तू खुद ही देख पाएगा कि नदी की तरफ रास्ता कौन सा जाता है। पर उस आदमी ने कहा कि यह तो लंबा मामला होगा, आंख का इलाज। आप तो मुझे अभी बता दें। पर उस सदगुरु ने कहा कि मेरी वह आदत ही नहीं।

प्रश्नों के उत्तर मैं नहीं देता हूं। मैं केवल विधि देता हूं जिससे प्रश्न हल किए जा सकते हैं। ध्यान रखें इस बात को। मैं जो आपके प्रश्नों के उत्तर देता हूं, उत्तरों में मुझे कोई मोह नहीं है। उनको आप पंडित की तरह याद मत रख लें। आप तो सिर्फ प्रक्रिया समझें कि एक प्रश्न में कैसे उतरा जा सकता है, और एक प्रश्न से कैसे जीवंत लौटा जा सकता है बाहर, समाधान लेकर। और जिस दिन आपके प्रश्न आपके भीतर ही गिरने लगें और आपकी चेतना से उत्तर उठने लगें, उस दिन समझना कि आप मेरे उत्तरों को समझ पाए हैं, उसके पहले नहीं।

पांच मिनट रुकेंगे, कीर्तन करें, और फिर जाएं।

उन्नासीवां प्रवचन

ताओ सब से परे है

Chapter. 42

The Violent Man

Out of Tao, One is born;
Out of One, Two; Out of Two, Three;
Out of Three, the created universe.
The created universe carries the yin at its back and the yang in front.
Through the union of the pervading principles it reaches harmony.
To be "orphaned" "lonely" and "unworthy" is what men hate most.
Yet the princes and dukes call themselves by such names.
For sometimes things are benefited by being taken away from,
And suffer by being added to.
Others have taught this maxim,
Which I shall teach also:
"The violent man shall die a violent death."
This I shall regard as my spiritual teacher.

अध्याय 42

हिंसक मनुष्य

ताओ से एक का जन्म हुआ;
एक से दो का; दो से तीन का;
और तीन से सृष्ट ब्रह्मांड का उदय हुआ।
सृष्ट ब्रह्मांड के पीछे यिन का वास है और उसके आगे यान का;
इन्हीं व्यापक सिद्धांतों के योग से वह लयबद्धता को प्राप्त होता है।
"अनाथ", "अयोग्य" और "अकेला" होने से मनुष्य सर्वाधिक घृणा करता है।
तो भी राजा और भूमिपति अपने को इन्हीं नामों से पुकारते हैं;
क्योंकि चीजें कभी घटाई जाने से लाभ को प्राप्त होती हैं और बढ़ाई जाने से हानि को।

दूसरों ने इसी सूत्र की शिक्षा दी है,

मैं भी वही सिखाऊंगाः

"हिंसक मनुष्य की मृत्यु हिंसक होती है।"

इसे ही मैं अपना आध्यात्मिक गुरु मानूंगा।

"ताओ से एक का जन्म हुआ।"

ताओ पर्यायवाची है शून्य का। वेदांत जिसे एक ब्रह्म कहता है, ताओ उससे भी पीछे है। जिसे वेदांत एक ब्रह्म कहता है, अद्वैत कहता है, लाओत्से कहता है, वह भी ताओ से पैदा हुआ। ताओ को एक भी कहना उचित नहीं। ताओ है शून्य। ताओ है स्वभाव।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। स्वभाव ही एकमात्र अस्तित्व है; बाकी सब स्वभाव से पैदा होता है। इस स्वभाव को मानने, स्वीकार करने के लिए कोई विश्वास, कोई शास्त्र आवश्यक नहीं। स्वभाव हमारे भीतर उसी भांति मौजूद है जैसा पूरा अस्तित्व। उसे हम यहीं और अभी, इस क्षण भी जान ले सकते हैं। ब्रह्म एक सिद्धांत है, ईश्वर एक धारणा है; लेकिन ताओ एक अनुभव है।

ताओ का अर्थ हैः तुम जिससे पैदा हुए, जो तुम्हारे भी पहले था, और तुम जिसमें लीन हो जाओगे और जो तुम्हारे बाद भी होगा। ताओ का कोई व्यक्तित्व नहीं है। जैसे सागर में लहरें उठती हैं ऐसा स्वभाव में अस्तित्व की, व्यक्तित्व की लहरें उठती हैं। यह जो ताओ है इसे कोई धार्मिक-अधार्मिक विभाजन में बांटने की जरूरत नहीं है। नास्तिक भी इसे स्वीकार कर लेगा।

इसलिए लाओत्से का विचार नास्तिकता और आस्तिकता का अतिक्रमण कर जाता है। ईश्वर को नास्तिक स्वीकार करने को राजी नहीं होगा। ब्रह्म को शायद अस्वीकार करे; आत्मा के संबंध में विवाद उठाए; लेकिन स्वभाव के संबंध में कोई विवाद नहीं है। विज्ञान जिसको नेचर कहेगा, लाओत्से उसी को ताओ कह रहा है।

इस ताओ को एक भी कहना उचित नहीं। क्योंकि हम गणना उसी की कर सकते हैं जिसकी कोई सीमा हो, और एक भी हम तभी कह सकते हैं जब दो और तीन होने का उपाय हो। ताओ शून्य ही हो सकता है, जिससे सारी संख्याएं पैदा होती हैं और सारी संख्याएं जिसमें लीन हो जाती हैं। ताओ स्वयं कोई संख्या नहीं है। जहां से संख्या शुरू होती है वहीं से संसार शुरू हो जाता है।

इस देश ने तो एक पूरे विचार पद्धति को जन्म दिया; जिसका नाम सांख्य है।

सांख्य का अर्थ है, अस्तित्व की संख्या की गणना। जहां से सांख्य शुरू होता है वहां से संसार शुरू हो जाता है। जिसकी हम गणना कर सकें, जिसे हम गिन सकें, जिसकी हम कोई धारणा बना सकें, और जिसकी परिभाषा हो सके, वह हमसे छोटा होगा। जिसका हम अध्ययन कर सकें, मनन कर सकें, सोच-विचार कर सकें, वह हमसे छोटा होगा। हमसे जो विराटतर है, जिससे हम पैदा होते हैं, उसकी कोई गणना नहीं हो सकती, उसकी कोई संख्या नहीं हो सकती। उस संबंध में हम जो भी कहेंगे, वह गलत होगा। उस संबंध में हम सिर्फ चुप और मौन ही हो सकते हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, "ताओ से एक का जन्म हुआ।"

ताओ के बाद जो भी जगत में है उसे समझने का उपाय है। उसकी परिभाषा भी हो सकती है, उसके सिद्धांत भी निर्मित हो सकते हैं, उसे शास्त्र में बांधा जा सकता है। लेकिन ताओ के संबंध में कोई सिद्धांत, कोई बुद्धि, कोई विचार काम नहीं आएगा। अगर ताओ को पहचानना हो तो सोचने की, समझने की, संख्या को गिन

लेने की जो क्षमता है, जो बुद्धिमत्ता है, उसे हमें त्याग देना पड़े। जैसे ही हम विचार छोड़ते हैं वैसे ही शून्य में प्रवेश हो जाते हैं। अगर आपके भीतर कोई विचार की तरंग नहीं है तो आप जहां होंगे वही ताओ है। अगर कोई भी कंपन नहीं भीतर, चेतना में कोई भी लहर नहीं, अकंप, कोई विचार नहीं बनता, आकाश खाली है, कोई विचार का बादल नहीं तैरता, उस क्षण में आप जहां होंगे वही ताओ है।

लेकिन उस क्षण में अकेले आप ही होंगे, और कुछ भी नहीं होगा। यह पूरा संसार भी नहीं होगा। और आप भी ऐसे नहीं होंगे कि कह सकें कि मैं हूं; सिर्फ होना मात्र होगा। इसे कहते ही से तो एक का जन्म हो जाएगा कि मैं हूं। और जैसे ही इसे कहेंगे वैसे ही दूसरे का भी जन्म हो जाएगा। क्योंकि किससे कहेंगे कि मैं हूं! जैसे ही कोई कहता है मैं हूं, संसार शुरू हो गया। इसलिए परम ज्ञानियों ने कहा है, जब तक मैं न छूट जाए तब तक सत्य का कोई अनुभव न होगा। क्योंकि मैं के साथ ही संसार खड़ा हो जाता है। इधर मैं निर्मित हुआ कि वहां तू आया। क्योंकि बिना तू के मैं निर्मित नहीं हो सकता। और जहां दो आ गए वहांशृंखला शुरू हो गई।

"एक का जन्म होता है ताओ से; एक से दो का, दो से तीन का।"

इसे थोड़ा समझ लें। ताओ अगर शून्य स्वभाव है। तो जैसे ही हम कहते हैं मैं, एक का जन्म हो गया। लाओत्से की भाषा में अस्मिता का बोध, अहं-बोध संसार का प्रारंभ है। वह बीज है। जैसे ही मैंने कहा मैं, मैं किसी से कहूंगा, किसी की अपेक्षा में कहूंगा--कोई सुनता हो, चाहे न सुनता हो--लेकिन जब भी मैं कहता हूं मैं हूं, तो मैं दूसरे की अपेक्षा में ही कहता हूं। वह मौजूद न भी हो तो भी दूसरा मौजूद हो गया। शब्द अकेले में व्यर्थ है; दूसरे के साथ ही उसकी सार्थकता है। भाषा अकेले में व्यर्थ है; दूसरे के साथ संवाद या विवाद में ही उसका उपयोग है। जैसे ही मैंने कहा मैं; मैं एक सेतु है जो मैंने दूसरे के ऊपर फेंका, एक ब्रिज मैंने बनाया। दूसरा आ गया। और जैसे ही दूसरा आया, तीसरा प्रविष्ट हो जाता है। क्योंकि दो के बीच जो संबंध है वह तीसरा है। मैं हूं, आप हैं। फिर मेरे मित्र हैं या मेरे शत्रु हैं या पिता हैं या बेटे हैं या भाई हैं, या मेरे कोई भी नहीं हैं। जैसे ही दूसरा आया कि संबंध, और तीन निर्मित हो जाते हैं। और ऐसे संसार फैलता है। लेकिन मैं की घोषणा उसका आधार है। इससे पीछे लौटना हो तो मैं की शून्यता उपाय है। जैसे ही कोई व्यक्ति मैं को खोता है, पूरा संसार खो जाता है।

इसलिए जो संसार को छोड़ने में लगते हैं वे व्यर्थ की मेहनत करते हैं। संसार छोड़ा नहीं जा सकता--जब तक मैं हूं। क्योंकि मेरे मैं के कारण ही मैंने संसार चारों तरफ निर्मित किया है, बनाया है। वह मेरे मैं की ही उत्पत्ति है। जब तक मैं हूं तब तक गृहस्थी मिट नहीं सकती। जहां मैं हूं वहां मेरा घर और मेरी गृहस्थी निर्मित हो जाएगी। क्योंकि जहां मैं हूं वहां संबंध पैदा हो जाएंगे। तो जो घर को छोड़ कर भागता है वह व्यर्थ ही भागता है, क्योंकि घर का बीज तो भीतर छिपा है। जो संसार को छोड़ कर हिमालय जाता है वह व्यर्थ जाता है, क्योंकि हिमालय में भी संसार निर्मित हो जाएगा। मैं जहां भी रहूंगा, वहीं संसार निर्मित हो जाएगा। क्योंकि मैं मूल हूं। मैं वृक्ष से बातें करूंगा, और मैत्री निर्मित हो जाएगी। और वृक्ष कल तूफान में गिर जाएगा तो मैं रोऊंगा, और दुख और पीड़ा निर्मित हो जाएगी। मैं जहां हूं वहां आसक्ति होगी, संबंध होंगे, संसार होगा।

और ठीक संसार में खड़े होकर अगर मेरा मैं शून्य हो जाए तो वहीं मैं ताओ में प्रवेश कर जाऊंगा, वहीं स्वभाव निर्मित हो जाएगा; वहीं मैं उस मूल शून्य में खो जाऊंगा जहां से सबका जन्म होता है।

"ताओ से एक का जन्म हुआ। एक से दो का; दो से तीन का; और तीन से सृष्ट ब्रह्मांड का उदय हुआ।"

एक, दो, तीन--गहरे प्रतीक हैं। और अगर आप तीसरे को मिटाने से शुरू करते हैं तो आप गलती कर रहे हैं। जैसे कोई आदमी वृक्ष के पत्ते काटता हो और सोचता हो कि वृक्ष नष्ट हो जाएगा। एक पत्ते की जगह दो पत्ते

आ जाएंगे। वृक्ष समझेगा, आप कलम कर रहे हैं। संसार तो आखिरी बात है। वह तो पत्ते हैं। मैं जड़ हूं। मेरे बिना कोई संसार नहीं हो सकता।

इसका यह अर्थ नहीं कि मैं नहीं रहूंगा तो वृक्ष, पर्वत और लोग नहीं रहेंगे। वे रहेंगे, लेकिन मेरे लिए वे संसार न रहे। जैसे ही मैं मिटता हूं, वैसे ही उनके ऊपर जो आवरण थे व्यक्तित्व के वे मेरे लिए खो जाएंगे; मुझे उनके भीतर का सागर दिखाई पड़ने लगेगा। उनकी लहरों की जो आकृतियां थीं वे मेरे लिए व्यर्थ हो जाएंगी; लहरों के भीतर जो छिपा था सागर वही सार्थक हो जाएगा। मेरे लिए संसार मिट जाएगा। संसार का मिटना दृष्टि का परिवर्तन है। मैं के बिंदु से जब मैं देखता हूं अस्तित्व को तो संसार है, और जब मैं मैं-शून्य होकर देखता हूं तो वहां कोई संसार नहीं। वहां जो शेष रह जाता है वही ताओ है, वही स्वभाव है। स्वभाव का अर्थ है, वही आखिरी तत्व है जिससे सब पैदा होता है और जिसमें सब लीन हो जाता है। वह बेसिक, आधारभूत अस्तित्व है।

"सृष्ट ब्रह्मांड के पीछे यिन का वास है, और उसके आगे यान का। इन्हीं व्यापक सिद्धांतों के योग से वह लयबद्धता को प्राप्त होता है।"

लाओत्से की दृष्टि समस्त विरोधों के बीच संगीत को खोज लेने की है। जहां-जहां विरोध है वहां-वहां विरोध को जोड़ने वाली कोई लयबद्धता होगी। और जब तक हमें लयबद्धता न दिखाई पड़े तब तक हम भ्रांति में भटकते रहेंगे।

स्त्री है; पुरुष है। स्त्री भी दिखाई पड़ती है; पुरुष भी दिखाई पड़ता है। लेकिन दोनों के बीच एक लयबद्धता है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ती। और जब भी स्त्री-पुरुष उस लयबद्धता में आ जाते हैं तो उसे हम प्रेम कहते हैं। लेकिन प्रेम किसी को दिखाई नहीं पड़ता। और जब भी स्त्री-पुरुष के बीच की वह लयबद्धता टूट जाती है तो घृणा पैदा हो जाती है। घृणा भी दिखाई नहीं पड़ती। व्यवहार दिखाई पड़ता है। दो व्यक्ति घृणा में हों तो दिखाई पड़ता है; दो व्यक्ति प्रेम में हों तो दिखाई पड़ता है। प्रेम दिखाई नहीं पड़ता; घृणा दिखाई नहीं पड़ती। प्रेम है दो विरोधी तत्वों का लयबद्ध हो जाना। उनके बीच का विरोध शत्रुता में न रह जाए, बल्कि विरोध के कारण ही एक लय पैदा हो जाए; विरोध परिपूरक हो जाए, कांप्लीमेंटरी हो जाए, तो प्रेम का जन्म होता है।

जीसस ने बार-बार कहा है कि परमात्मा प्रेम है। और अगर जीसस के वचन का अर्थ समझना हो तो लाओत्से में खोजना पड़ेगा कि प्रेम का क्या अर्थ है। प्रेम का अर्थ है, दो विरोधों के बीच लयबद्धता। और जहां भी दो विरोध के बीच लयबद्धता होती है वहां सृष्टि बड़े अनूठेशृंगार में और उत्सव में जन्म लेती है।

आपका पूरा जीवन जन्म और मृत्यु के बीच एक लयबद्धता है। और जब आप पूरी तरह जीवंत होते हैं तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि मृत्यु और जन्म की जो प्रक्रिया है उसका सारा विरोध खो गया।

बच्चे को हम पूरा जीवंत नहीं कहते, क्योंकि बच्चे में जन्म का प्रभाव ज्यादा है, मृत्यु का अंश कम है। बूढ़े को हम पूरा जीवित नहीं कहते, क्योंकि उसमें मृत्यु का प्रभाव ज्यादा हो गया और जीवन का, जन्म का अंश कम हो गया। ठीक जवान आदमी को हम शिखर पर मानते हैं जीवन के। उसका कुल इतना ही अर्थ है कि ठीक जवानी के क्षण में मृत्यु और जन्म दोनों संतुलित हो जाते हैं; दोनों बाजू तुला की एक रेखा में आ जाती हैं। जवानी एक संगीत है जन्म और मृत्यु के बीच। बचपन अधूरा है; बुढ़ापा अधूरा है। एक सूर्योदय है; एक सूर्यास्त है। लेकिन जवानी ठीक मध्य बिंदु है, जहां दोनों शक्तियां संतुलित हो जाती हैं।

स्त्री-पुरुष, या अगर हम विज्ञान की भाषा का उपयोग करें तो ऋण और धन विद्युत पोलेरिटीज हैं, विरोधी ध्रुव हैं। और जहां दोनों संतुलित होते हैं वहीं एक गहन, प्रगाढ़ शांति, और उस प्रगाढ़ शांति में एक क्रिएटिविटी, एक सृजनात्मक ऊर्जा का जन्म होता है। लाओत्से का नाम हैः यिन और यान। इन्हें वह दो विरोधी

तत्व कहता है। चाहे स्त्री-पुरुष कहें, चाहे ऋण-धन कहें। उसका शब्द हैः यिन और यान। और लाओत्से कहता है, इन दोनों विरोधों के बीच जो लयबद्धता है वही ताओ है।

लेकिन हम या तो पुरुष होते हैं, या स्त्री होते हैं। हम एक ध्रुव से बंधे होते हैं, एक विरोधी अंग से। और इसलिए हम दूसरे विरोधी अंग की तलाश करते हैं। स्त्री पुरुष को खोज रही है; पुरुष स्त्री को खोज रहा है। जन्म मृत्यु को खोज रहा है; मृत्यु पुनः जन्म को खोज रही है। वह जो विरोधी है, उसके बिना हम अधूरे हैं। इसलिए उसकी खोज जारी रहती है।

यह थोड़ा समझने जैसा है कि हम सब जीवन में अपने से विपरीत को खोजते रहते हैं। आपकी सारी खोज विपरीत की खोज है। अगर आप गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, तो धन को खोज रहे हैं। पर बड़े मजे की बात है कि जिनके पास सच में धन हो जाता है वे दरिद्रता को खोजने में लग जाते हैं। महावीर हैं, बुद्ध हैं; इनके लिए धन का आकर्षण नहीं है। ये परम दरिद्र होने की खोज कर रहे हैं। जीसस कहते हैं, धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं।

हम जब भी कुछ खोजते हैं तो विरोध को खोजते हैं। और इससे बड़ी कठिनाइयां पैदा होती हैं। विरोधी को हम खोजते हैं, लेकिन विरोधी के साथ रहना एक महान कला है। क्योंकि वह विरोधी है। पुरुष स्त्री को खोज रहा है। आस्कर वाइल्ड ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं स्त्री के बिना भी नहीं रह सकता, और स्त्री के साथ तो बिल्कुल नहीं रह पाता। स्त्री के बिना रहना मुश्किल है; अधूरापन है। और स्त्री के साथ रहना बहुत मुश्किल है। क्योंकि विपरीत है, विरोध है। और हर बात में कलह है। विपरीत एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। लेकिन वे विपरीत हैं, और जब निकट आएंगे तो कलह शुरू हो जाएगी। प्रेमियों की कलह अनिवार्य है। क्योंकि प्रेम का मतलब ही है कि विपरीत को आकर्षित किया है।

फ्रायड ने तो बड़ा ही निराशाजनक दृष्टिकोण लिया है; उसका कहना है कि आदमी कभी भी सुखी हो नहीं सकता। आदमी के होने का ढंग ऐसा है कि वह दुखी ही होगा। क्योंकि जो भी वह चाहता है अगर न मिले तो दुखी होता है, अगर मिल जाए तो भी दुखी होता है। और दो ही विकल्प दिखाई पड़ते हैं।

लाओत्से के हिसाब से एक तीसरा विकल्प है। और वह हैः विरोध के बीच लयबद्धता। पुरुष जब तक स्त्री को खोजेगा, दुखी होगा। स्त्री जब तक पुरुष को खोजेगी तब तक दुखी होगी। और जब स्त्री-पुरुष के बीच की लयबद्धता को वे खोजने में लग जाते हैं तो सुख की पहली किरण उतरनी शुरू होती है। वास्तविक प्रेम का जन्म उस दिन होता है जिस दिन स्त्री-पुरुष के बीच जो प्रवाह है, जो ऊर्जा का अदृश्य प्रवाह है, वह ख्याल में आना शुरू हो जाता है। विरोध के बीच में जो संगम है, विरोधियों के बीच में जो बहती हुई धारा है, दो किनारों के बीच जो बहती हुई नदी है, जब वह दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, तो ही जीवन में सुख की कोई संभावना उतरती है। और जैसे ही किसी व्यक्ति को यह लयबद्धता दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है, विरोधी का आकर्षण भी खो जाता है। इस लयबद्धता की प्रतीति--योग कहता है ध्यान है; तंत्र कहता है महासमाधि, महासंभोग का क्षण है; लाओत्से कहता है, यिन और यान के बीच एक संगीत का जन्म है।

जहां भी आपको आकर्षण दिखाई पड़े, दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहला, कि जिससे भी आप आकर्षित हों, वह आपका विपरीत होगा; इसलिए आप खतरे में उतर रहे हैं। कोई भी व्यक्ति अपने समान से आकर्षित नहीं होता। समान के प्रति एक तरह का विलगाव होता है, रिपल्शन होता है, एक विकर्षण होता है। समान से हम दूर हटते हैं; असमान हमें खींचता है। ठीक वैसे ही जैसे धन और धन विद्युत एक-दूसरे को हटाएंगे, ऋण और धन विद्युत चुंबकीय हो जाएंगे और करीब आ जाएंगे। समान से विकर्षण, विपरीत से आकर्षण नियम है। इसलिए जिससे भी आप आकर्षित होते हैं, वह आपका विपरीत है। दूसरी बात, विपरीत जैसे ही निकट

आएगा, उपद्रव और द्वंद्व शुरू हो जाएगा। विपरीत दूर हो तो आकर्षित करता है; पास आए, तो चूंकि वह विपरीत है और विरोधी है, संघर्ष पैदा होगा।

तीसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है, जिससे भी संघर्ष पैदा हो सकता है, उससे संगीत भी पैदा हो सकता है। जहां-जहां संघर्ष है, वहां-वहां संगीत की संभावना है। क्योंकि जहां-जहां संघर्ष है, वहां स्वरों का उत्पात है। और जहां स्वर उत्पात में हैं, वहां अगर कोई जानता हो कला तो वे लयबद्ध हो सकते हैं। दो समान के बीच तो स्वर पैदा नहीं होते। समान के बीच स्वर ही पैदा नहीं होता, इसलिए संगीत का कोई उपाय नहीं है। असमान के बीच स्वर पैदा होते हैं, घर्षण होता है। घर्षण अंत नहीं है। उसे अगर नियोजित किया जा सके, उसे अगर बांधा जा सके, उसे अगर व्यवस्था दी जा सके, अनुशासन पैदा किया जा सके, तो विपरीत के बीच जो लयबद्धता है, ताओ और लाओत्से की मान्यता है, वही योग है। वही कला है--विरोध को जोड़ लेने की।

ये तीन बातें ख्याल में हों तो आप जीवन के किसी भी कोने से समाधि को उपलब्ध हो सकते हैं। फिर जीवन पूरा का पूरा एक साधना बन जाता है। फिर जो भी आकर्षित करे, आप जानते हैं, वहां खतरा है। और जान कर ही आप उस भूमि पर पैर रखते हैं। खतरा है, इसलिए संभावना भी है। वहां कुछ गलत हो सकता है तो कुछ ठीक भी हो सकता है। जहां गिरने का डर है वहां चढ़ने की सुविधा भी है। जब समतल भूमि पर आप चलते हैं तो गिरने का कोई डर नहीं है, क्योंकि चढ़ने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए जीवन में प्रेम सबसे खतरनाक घटना है। वह तलवार की धार पर चलना है। बड़ा उत्पात होगा, बड़ी अराजकता होगी; जीवन विपरीत के संघर्ष से भर जाएगा। अगर यहीं कोई रुक गया तो जो पत्थर सीढ़ी बन सकता था, उसे आपने बाधा मान ली और आप वापस लौट गए। जो बाधा मालूम पड़ी थी, वह सीढ़ी भी बन सकती है; सिर्फ उसे कैसे पार किया जाए, यही ख्याल में होना चाहिए।

"ब्रह्मांड के पीछे यिन का वास है और उसके आग यान का। इन्हीं व्यापक सिद्धांतों के योग से वह लयबद्धता को प्राप्त होता है।"

प्रतिक्षण जीवन की सारी गति विपरीत से बंधी है। न केवल बंधी है, बल्कि हर चीज अपने विपरीत में परिवर्तित हो रही है। यह बहुत आश्चर्यजनक ख्याल है लाओत्से का--और अब विज्ञान भी उससे राजी होता है--कि हर चीज अपने से विपरीत में परिवर्तित होती रहती है। न केवल विपरीत से आकर्षित होती है, बल्कि विपरीत में परिवर्तित होती है।

स्त्रियों की उम्र जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, उनमें पुरुष तत्व प्रकट होने लगता है; पुरुषों की जैसे-जैसे उम्र बढ़ने लगती है, उनमें स्त्रैणता प्रकट होने लगती है। स्त्रियां जैसे-जैसे ज्यादा उम्र की होती जाएंगी, कर्कश होने लगेंगी; उनका स्वर पुरुष का होने लगेगा, और उनके व्यक्तित्व में पुरुष जैसी कठोरता आने लगेगी। पुरुष जैसे-जैसे बूढ़े होने लगेंगे, वैसे-वैसे कोमल होने लगेंगे, और उनके व्यक्तित्व में स्त्रैणता आने लगेगी। न केवल मानसिक रूप से, बल्कि शारीरिक रूप से, हारमोन के तल पर भी ऐसा ही फर्क होता है।

हर चीज अपने विपरीत की तरफ डोलती रहती है, बदलती रहती है।

अक्सर ऐसा होता है कि अगर इस जन्म में आप पुरुष हैं तो अगले जन्म में आप स्त्री हो जाएंगे। बहुत लोगों के पिछले जीवन में झांक कर इसे नियम की तरह कहा जा सकता है कि अगर आप इस जन्म में पुरुष हैं तो पिछले जन्म में स्त्री। बहुत मुश्किल से ऐसा होता है कि आप इस जन्म में भी पुरुष हों और अगले में भी पुरुष हों।

उसके कारण हैं। क्योंकि जिससे आप आकर्षित होते हैं, जिससे आप प्रभावित होते हैं, और जिसकी आप कामना करते हैं, वही कामना तो आपके अगले जन्म का निर्धारक तत्व होगी। पुरुष स्त्री को चाह रहा है और स्त्री को सुंदर मान रहा है। उसे लगता है कि स्त्री में कुछ रहस्य छिपा है। और जीवन भर वह स्त्री के संबंध में सोचेगा। स्वप्न और कल्पना, उसके मन के सारे तार स्त्री के आस-पास घूमेंगे। उसके गीत, उसकी कविताएं, उसका संगीत, सब स्त्री के आस-पास घूमेगा। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होने वाला है कि अगला जन्म आपका स्त्री का हो जाए। और स्त्रियां निश्चित ही पुरुष होना चाहती हैं। कोई स्त्री स्त्री होने से तृप्त नहीं है। स्त्री पुरुष से प्रभावित है और आकर्षित है। इस जीवन में भी आप विरोधी की तरफ धीरे-धीरे बदलते जाते हैं और अगले जीवन में तो आप निश्चित रूप से विरोध में उतर जाते हैं। यिन यान हो जाता है और यान यिन हो जाता है।

इसे, यह तो लंबे विस्तार की बात है, लेकिन छोटे जीवन के क्षणों में भी इसे समझना जरूरी है।

अगर आप ठीक से क्रोध कर लिए हों तो तत्क्षण पीछे करुणा का जन्म होता। और अगर आप में करुणा का जन्म नहीं होता तो उसका अर्थ यही है कि आप क्रोध कभी ठीक से नहीं करते। वह आथेंटिक नहीं है, प्रामाणिक नहीं है। जब भी आप पूरी प्रामाणिकता से क्रोधित हो जाते हैं तो उसके बाद तत्क्षण आप पाएंगे कि करुणा का जन्म हो रहा है। विपरीत में चित्त उतर जाता है। जब भी आप गहरा प्रेम करते हैं तो उससे तृप्त हो जाएंगे और प्रेम के बाद विरोध और घृणा और संघर्ष की शुरुआत हो जाएगी। जैसे रात के बाद दिन है और दिन के बाद रात है, ऐसा ही आपके चित्त का प्रत्येक पहलू अपने विपरीत के साथ जुड़ा हुआ है। और जब भी एक पहलू तृप्त हो जाता है तो दूसरे पहलू का जन्म हो जाता है।

मनसविद कहते हैं कि नैतिक शिक्षण ने मनुष्य के जीवन से बहुत सी चीजें छीन लीं। क्योंकि हम लोगों को झूठा होना सिखाते हैं। हम कभी किसी बच्चे को नहीं कहते कि जब तुम क्रोध करो तो ठीक से और पूरी तरह ईमानदारी से क्रोध करना। हम उसे झुठलाने की कला सिखाते हैं। हम उसे कहते हैं, अगर क्रोध आ भी जाए तो भी तुम छिपाना, पी जाना; चेहरे पर मत प्रकट होने देना। यही सुसंस्कृत होने का लक्षण है। मुस्कुराते रहना, ढांक लेना क्रोध को। और हमारी आकांक्षा यह है कि शायद ऐसा व्यक्ति जो क्रोध नहीं करता, बहुत प्रेम कर पाएगा। वह भ्रांत है। क्योंकि जिस-जिस मात्रा में इसका क्रोध अप्रामाणिक हो जाएगा, उसी-उसी मात्रा में इसका प्रेम भी अप्रामाणिक हो जाएगा। तब यह मुस्कुराएगा, ऊपर से प्रेम प्रकट करेगा, और भीतर इसके कोई उदभाव पैदा नहीं होगा।

जब आप प्रेम में होते हैं, कभी आपने ख्याल किया, कि भीतर कुछ भी नहीं होता; जैसे आप कोई एक नाटक कर रहे हैं, जैसे कुछ काम है जो पूरा कर रहे हैं। बच्चा सामने आ जाता है तो उसका सिर आप थपथपा देते हैं, लेकिन भीतर कुछ नहीं होता। मुस्कुरा देते हैं, उसको गले भी लगा लेते हैं, लेकिन भीतर कुछ भी नहीं होता। एक औपचारिकता है जो आप निभाते हैं।

आदमी बुरी तरह झूठ हो गया है। और उसका कारण है कि हम भय के कारण, कि कहीं कुछ आदमी गलत न हो जाए, कहीं क्रोध करके अड़चन में न पड़ जाए, जो-जो नकारात्मक है उसको हम रुकवाते हैं। लेकिन उसके साथ विधायक भी रुक जाता है। जो आदमी प्रामाणिक रूप से प्रेम करेगा, वह प्रामाणिक रूप से क्रोध भी करेगा। उस समय तक जब तक कि आप ताओ को उपलब्ध नहीं हो जाते तब तक इस विरोध में ही आपको जीना पड़ेगा। और इस विरोध में जीना हो तो प्रामाणिक रूप से जीने से ही संभावना है कि किसी दिन आप लयबद्धता को उपलब्ध हो जाएं। अप्रामाणिक आदमी के लिए तो कोई उपाय नहीं है। क्योंकि वह जीवन की

धारा से उसका कोई संबंध ही नहीं जुड़ता है। ऊपर-ऊपर, सब ऊपर-ऊपर है। उसकी प्रार्थना, उसकी पूजा, उसका प्रेम, उसकी घृणा, उसकी दुश्मनी, उसकी मित्रता, सब ऊपर-ऊपर है। किसी बात से उसके कोई प्राण आंदोलित नहीं होते।

इसे थोड़ा प्रयोग करके देखें, कि अगर जीवन में किसी चीज की कमी मालूम पड़ती हो, लगता हो कि दया की कमी है, करुणा की कमी है, तो थोड़ा समझने की फिक्र करें। उसका मतलब होगा, आपका क्रोध अप्रामाणिक है, क्रोध बनावटी है। वह वास्तविक नहीं है। जहां करना है वहां आप नहीं करते, और जहां नहीं करना है वहां आप करते हैं। ऐसे झूठे क्रोध के साथ जो जी रहा है, वह लाख उपाय करे तो भी अहिंसक नहीं हो सकता। उसकी अहिंसा भी इतनी ही थोथी और उथली होगी। जैसे घड़ी का पेंडुलम जितनी दूर तक बाएं जाएगा उतनी ही दूर तक दाएं जा सकता है। आप सोचते हों कि बाएं तो बिल्कुल न जाए और दाएं खूब दूर तक जाए, तो आप गलती में हैं। क्योंकि दाएं जाने के लिए बाएं जाकर ही शक्ति इकट्ठी की जाती है।

इसलिए पश्चिम में मनोवैज्ञानिक एक बहुत नया शिक्षण दे रहे हैं। वह पूरब को बहुत हैरान करने वाला है; पश्चिम को भी हैरान करने वाला है। और वह यह है कि आपके जो भी मनोभाव हैं उनमें आप ईमानदार हों। अगर पति-पत्नी के बीच कोई लगाव नहीं रह गया है और सब चीजें सूखी हो गई हैं, रसहीन हो गई हैं, तो उन्हें कितना ही समझाया जाए कि वे प्रेमपूर्ण हो जाएं, व्यर्थ होगा। उन्हें समझाना होगा कि वे प्रामाणिक हो जाएं।

अभी कल ही एक युवक और युवती मेरे पास आए। दोनों प्रेम में हैं और विवाह करना चाहते हैं। युवती ने मुझे कहा कि हम विवाह तो करना चाहते हैं, लेकिन इधर कुछ दिनों से आपस में काफी क्रोध पैदा हो जाता है, छोटी-छोटी चीज में चिड़चिड़ाहट, नाराजगी और एक-दूसरे पर टूट पड़ने की वृत्ति हो गई है। तो मैंने उन्हें पूछा कि सिर्फ टूट पड़ने की वृत्ति या तुम टूट भी पड़ते हो? उन्होंने कहा कि नहीं, आप भी कैसी बात करते हैं! हम ऐसा तो नहीं कर सकते कि टूट पड़ें। शारीरिक रूप से हमने कोई एक-दूसरे पर हमला नहीं किया है।

तो मैंने उनको कहा कि जब तुम प्रेम करोगे तब वह प्रेम भी फिर शारीरिक रूप से नहीं हो सकता। अगर तुम शारीरिक रूप से प्रेम की गहराई में उतरना चाहते हो तो क्रोध के क्षण में भी फिर मन से नीचे शरीर तक आओ। और डर क्या है? सिर्फ क्रोध को सोचते क्यों हो? और प्रेम को इतना कमजोर क्यों मानते हो कि झगड़ पड़ोगे, एक-दूसरे को चोट पहुंचा दोगे, तो प्रेम टूट जाएगा। इतना कमजोर प्रेम चलेगा भी कैसे? तो मैंने कहा, तुम एक प्रयोग करो। अब जब तुम्हें दुबारा क्रोध आए तो तुम सिर्फ सोचना ही मत और दबाना मत, तुम उसे निकाल देना। और फिर लौट कर मुझे खबर देना।

सुबह ही वे आए थे, सांझ उन्होंने मुझे खबर भेजी कि आश्चर्यजनक है कि क्रोध के बाद हम इतने हलके हो गए हैं! और पहली दफा इन महीनों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम का भाव उदय हुआ है, और हम इतने करीब हैं जितने हम पहले कभी नहीं थे।

विपरीत में एक संबंध है। और मनसविद कहते हैं कि प्रेमी लड़ कर दूर हो जाते हैं, ताकि फिर पास आने का आनंद ले सकें। अगर दूर होने का डर है तो पास होने का आनंद भी नष्ट हो जाएगा। जब दो प्रेमी लड़ कर दूर हो जाते हैं तो फिर नए-ताजे हो गए, जैसे वे पहले दिन जब मिले होंगे दूर थे, उस दिन की स्थिति में पहुंच गए। फिर से पास आना, फिर एक नया हनीमून है; फिर एक नई शुरुआत है; फिर वे ताजे हैं।

अगर जीवन के द्वंद्व को हम ठीक से समझें तो इतना परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। प्रेम किया है तो क्रोध के लिए तैयार होना चाहिए। और अगर यह ख्याल में हो कि इस क्रोध के माध्यम से हम प्रेम की क्षमता को पुनः पा रहे हैं तो यह क्रोध भी दुखद नहीं रह जाएगा, यह भी खेल हो जाएगा। और जो व्यक्ति प्रेम भी कर

सकता है और क्रोध भी कर सकता है और दोनों में प्रामाणिक है, बहुत शीघ्र ही उसे क्रोध और प्रेम के बीच में जो लयबद्धता है उसकी प्रतीति होनी शुरू हो जाएगी। और तब प्रेम भी गौण हो जाएगा, क्रोध भी गौण हो जाएगा; लयबद्धता ही प्रमुख हो जाएगी। ये दोनों किनारे गौण हो जाएंगे, बीच की सरिता ही... ।

पर वह सरिता अदृश्य है। और जीवन के भावों में जब तक आप ठीक-ठीक ईमानदारी से प्रयोग न करें, उस अदृश्य का आपको कोई पता नहीं चल सकता है।

लेकिन हम भयभीत और डरे हुए लोग हैं। और हमारे भय ने हमारे सारे जीवन को विषाक्त कर दिया है। फिर हम जो भी करते हैं, वह अधूरा-अधूरा है, अपंग; उसके कोई पैर नहीं, वह कहीं ले जाता नहीं। हम जीते हैं मरे हुए, क्योंकि जीवन के किसी भी क्षण को हम अपनी पूर्णता नहीं देते।

किसी भी दिन अगर वैज्ञानिक ढंग से आदमी का चरित्र विकसित किया जाएगा तो उसे सिखाया जाएगा प्रामाणिक होना। और प्रामाणिक होने का मतलब यह है कि जो भी तुम्हारी भाव-दशा हो उसमें तुम पूरे ही जूझ जाना; जो भी परिणाम हो, परिणाम भोगने के लिए तैयार रहना। परिणाम के डर से हम पूरे जीवन को ही गंवा देते हैं। जो भी परिणाम हो प्रामाणिकता का, वह बुरा नहीं होगा। उससे लाभ होंगे; उससे आपकी आत्मा का जन्म होगा। और जो भी लाभ दिखाई पड़ते हों अप्रामाणिक और झूठे होने के, वे कितने ही लाभ दिखाई पड़ते हों, अंततः आपकी आत्मा का हनन है। और आखिर में आप पाएंगे कि आपने आत्मघात कर लिया; अपनी होशियारी में ही आप डूब मरे।

लाओत्से कहता है, यिन और यान, ये दो विरोधी तत्व हैं; इनको स्त्री-पुरुष कहें, या जो भी नाम देना हो, प्रकृति-पुरुष कहें; इन दोनों के बीच एक लयबद्धता है। ये दो तो दिखाई पड़ते हैं। ये दो किनारे साफ हैं, ये दृश्य हैं; इनके बीच बहने वाली धारा अदृश्य है और अरूप है। उस अरूप को देखने के लिए इन दोनों किनारों को स्पष्ट रूप से, दोनों किनारों को स्पष्ट रूप से पकड़ लेना होगा। इसमें जरा भी बेईमानी, और आदमी भटक जाता है। जो भी हमें मिला है--बुरा है या भला है, शुभ है या अशुभ है, विधायक है या नकारात्मक है--हमें मिला है स्वभाव से। जरूर उसमें छिपा हुआ कुछ रहस्य है। जल्दी उसे निंदा न करें, और जल्दी उसके त्याग की चिंता न करें। त्याग इतना आसान नहीं। त्याग तो केवल वे ही कर पाते हैं जो इन दोनों के बीच संतुलन को खोज लेते हैं। उनके किनारे अपने आप छूट जाते हैं। जिसको धारा मिल गई, वह फिर किनारों की चिंता नहीं करता। वे छूट ही जाते हैं। जिसको धारा मिल गई, वह न फिर पुरुष रह जाता और न स्त्री। जिसको बीच का संतुलन मिल गया, संगीत मिल गया, वह न विधायक रह जाता, न नकारात्मक, न यिन और न यान। वह दोनों एक साथ हो जाता है, या दोनों के एक साथ पार हो जाता है। इस पार, अतिक्रमण करने वाली कला को ही लाओत्से ने योग कहा है।

"अनाथ, अयोग्य और अकेला होने से मनुष्य सर्वाधिक घृणा करता है।"

थोड़ा समझना। अनाथ, अयोग्य, अकेला होने से मनुष्य सर्वाधिक घृणा करता है।

"तो भी राजा और भूमिपति अपने को इन्हीं नामों से पुकारते हैं। क्योंकि चीजें कभी घटाई जाने से लाभ को प्राप्त होती हैं और बढ़ाई जाने से हानि को।"

अनाथ, अयोग्य और अकेला--ये हमारे भय हैं। अकेले होने से हम बहुत भयभीत हैं। शायद इससे बड़ा कोई भी भय नहीं है। कोई भी अकेला नहीं होना चाहता। कोई न कोई, किसी न किसी प्रकार का साथ चाहिए। अगर हम अकेले हो भी जाएं किसी कारणवश, परिस्थितिवश, तो भी हम चिंतन करते हैं दूसरों का, ताकि कम से कम कल्पना में कोई दूसरा रहे और हम बिल्कुल अकेले न हो जाएं।

कवि कहते हैं कि प्रियजनों से दूर होने पर प्रेम बढ़ता है। वह इसीलिए बढ़ता है कि प्रियजन दूर होते हैं तो हम उनका चिंतन करते हैं; पास होते हैं तो चिंतन की कोई जरूरत नहीं रह जाती। सब्स्टीट्यूट है कल्पना; जो हमारे पास नहीं है उसकी हम चिंतना करते हैं। चिंतना करके हम एक काल्पनिक साथ पैदा कर लेते हैं। उपवास के दिन आदमी भोजन का विचार करता है। वह न मालूम किस-किस प्रकार के भोजन की सोचता है। अनजाने ही, अचेतन में ही यह प्रवाह उठने लगता है। और जब तक आदमी उपवास करके भोजन की सोचता रहे तब तक उसका उपवास बिल्कुल व्यर्थ गया। वह सिर्फ भूखा मरा। क्योंकि उसे उपवास अभी आया ही नहीं। उपवास का अर्थ ही यह है कि भोजन का ख्याल न हो। भोजन पेट में डालने से भी ज्यादा, भोजन ख्याल में न डाला जाए--तो उपवास हुआ।

अकेले होने का अर्थ है, दूसरे का कोई विचार न हो। अकेले होने में मौज हो, प्रसन्नता हो; दीनता न हो। लेकिन अकेले होने से सभी डरते हैं। और सभी अकेले हैं। इसलिए सभी भयभीत हैं। क्योंकि जिस सत्य से हम छूट नहीं सकते, उस सत्य से हम भयभीत हैं। हर आदमी अकेला है। अकेला ही पैदा होता है; अकेला ही जीता है। भ्रम पैदा करता है कि कोई साथ है। लेकिन कोई किसी के साथ हो नहीं सकता। सब साथ काल्पनिक है।

और दूसरा सोच रहा है आप उसके साथ हैं, और आप सोच रहे हैं कि दूसरा मेरे साथ है। न आपको चिंता है दूसरे को साथ देने की; न दूसरे को चिंता है आपको साथ देने की। एक-दूसरे का शोषण है। दूसरे की मौजूदगी से आपको लगता है ठीक है, भरा-पूरा लगता है, अकेला नहीं हूं। लेकिन अकेला होना एक सत्य है। और जब तक हम अकेले होने की क्षमता न जुटा लें तब तक हम अपने स्वभाव से परिचित न हो सकेंगे। अकेले ही नहीं हो सकते तो स्वयं को कैसे हम जानेंगे? अकेले होने की तैयारी चाहिए--चाहे कितना ही भय मालूम हो, असुरक्षा मालूम हो। चाहे कितना ही मन करे कि साथ खोज लो, तो भी अकेले होने का साहस करना चाहिए।

अब यह बड़े मजे की घटना दुनिया में घटती है। हम जो कुछ भी खोज करते हैं, उस सब खोज के अंतिम परिणाम में हम अकेले हो जाते हैं। एक आदमी धन की तलाश करता है, और अकेले होने से डरता है। और जितना ज्यादा धन उसके पास होने लगेगा उतना ही समाज उसका छोटा होने लगेगा। अब वह सभी से नहीं मिल सकेगा। अब वह उन थोड़े से लोगों से मिल सकेगा जो उसके स्टेटस, उसकी हैसियत के हैं। और वह धन इकट्ठा करता जा रहा है; लोगों को पीछे छोड़ता जा रहा है। एक घड़ी आएगी जब वह अकेला हो जाएगा; जब उसकी स्टेटस का, उसकी हैसियत का कोई भी न होगा। इसी के लिए जीवन भर उसने कोशिश की कि मैं आखिरी शिखर पर पहुंच जाऊं, गौरीशंकर पर खड़ा हो जाऊं। और जब वह गौरीशंकर पर खड़ा हो जाएगा तब हार्ट अटैक हो जाएगा। क्योंकि वह बिल्कुल अकेला हो जाएगा। अब कोई संगी-साथी न रहा।

राजनीतिज्ञ उस मुसीबत में पड़ जाते हैं। यात्रा करते-करते जब वे चोटी पर पहुंच जाते हैं तब अचानक पाते हैं कि बिल्कुल अकेले हो गए; उनका कोई संगी-साथी नहीं है। धन की खोज हो कि पद की खोज हो! बड़े विचारक, बड़े वैज्ञानिक इस हालत में पहुंच जाते हैं। क्योंकि आइंस्टीन को लगता है, किससे बात करे! क्योंकि उसकी भाषा भी कोई नहीं समझेगा। पत्नी है जरूर, लेकिन फासले बहुत हो गए। आइंस्टीन आइंस्टीन रह कर अपनी पत्नी से भी बात नहीं कर सकता।

विलहेम रेक की पत्नी के मैं संस्मरण पढ़ता था। विलहेम रेक फ्रायड के बाद एक बहुत क्रांतिकारी, कीमती मनोवैज्ञानिक हुआ। उसकी पत्नी ने लिखा है कि मैं रेक को कुछ भी समझ नहीं पाई। यह आदमी पागल था कि प्रतिभाशाली था, ठीक था कि गलत था, कुछ भी कहना मुश्किल है। विशिष्ट था, इतना ही कहा जा सकता है,

कुछ विशेष था। और कोई संबंध नहीं हो सकते। पहली पत्नी ने तलाक दिया, फिर दूसरी पत्नी ने छोड़ा। संबंध नहीं बन पाते। क्योंकि जिस जगत में वह विचर रहा है वहां वह बिल्कुल अकेला है।

सभी बड़े विचारक उस हालत में पहुंच जाते हैं जहां उन्हें लगता है, कोई उनका संगी-साथी नहीं। एक अकेलापन अनुभव होता है। यह बड़ी हैरानी की बात है कि जिनको पागल होना चाहिए वे तो पागल नहीं होते--निक्सन पागल नहीं होते, माओ पागल नहीं होते, हिटलर पागल नहीं होता--जिनको कि पागल होना चाहिए। लेकिन बड़े विचारक, विलहेम रेक पागल हो जाता है, पागलखाने में मरता है। ऐसी ऊंचाई पर खड़े हो जाने की घटना घट जाती है मन में जहां से किसी से कोई संबंध नहीं रहा। फिर घबड़ाहट होती है। और इसी की खोज थी।

आप कहीं भी पहुंच जाएं, अगर आप ठीक से चलते ही गए तो अकेले हो जाएंगे। अगर आपने ठीक प्रतिस्पर्धा की, प्रतियोगिता की और संघर्ष किया तो ज्यादा से ज्यादा इतनी बात में आप सफल हो सकेंगे, एक दिन आप अचानक पाएंगे आप अकेले हैं; अब कोई प्रतियोगी नहीं बचा। और तब आप घबड़ा जाते हैं। इसलिए सभी सफलताएं अंत में असफलताएं सिद्ध होती हैं। क्योंकि अकेला कोई होना नहीं चाहता। जब तक आप सफल नहीं हुए हैं तब तक आप भीड़-भाड़ में हैं; तब तक कुछ करने को बाकी है।

लाओत्से कहता है, अकेले होने से मनुष्य सर्वाधिक घृणा करता है, अयोग्य होने से बड़ी घृणा करता है। लेकिन लाओत्से कहता है, तुम्हारी योग्यता का मतलब क्या है? और जब तुम योग्य होते हो तो उसका परिणाम क्या है? लाओत्से का बड़ा अदभुत ख्याल है योग्यता के बाबत। वह कहता है, योग्यता का कुल मतलब इतना है कि लोग तुम्हें साधन की तरह उपयोग करेंगे, अगर तुम योग्य हो।

बाप अपने योग्य बेटे से बड़ा प्रसन्न होता है। क्योंकि बाप जो-जो महत्वाकांक्षाएं पूरी नहीं कर पाया वे इस बेटे के कंधे पर सवार कर देगा। यह योग्य बेटा है, यह पूरी करेगा। जिस नासमझी में उसने अपनी जिंदगी गंवाई और वे अधूरी रह गईं नासमझियां; यह योग्य बेटा उनको पूरी करेगा। योग्य पति से पत्नी बड़ी प्रसन्न होती है। और कुल परिणाम क्या होगा इस योग्य पति का कि यह धन को बढ़ाता चला जाएगा।

एंड्रू कार्नेगी ने कहीं कहा है। किसी ने उससे पूछा कि तुम इतना धन कैसे इकट्ठा कर पाए? दस अरब रुपया वह छोड़ कर मरा। तो उसने कहा कि मैं इकट्ठा कर पाया, कहना मुश्किल है। मैं सिर्फ यह देखना चाहता था कि क्या मैं इतना धन भी इकट्ठा कर सकता हूं जो मेरी पत्नी खर्च न कर सके! मैं सिर्फ एक साधन था। मगर मैं यह देखना चाहता था कि क्या यह हो सकता है कि मैं उस जगह पहुंच जाऊं, इतना धन कमा लूं कि मेरी पत्नी खर्च न कर सके! लेकिन पत्नी खर्च कर रही है। पति योग्य है। वह दौड़ाए चली जा रही है।

योग्यता का कुल परिणाम इतना होता है कि आपका शोषण होगा। और क्या होगा? जितने ज्यादा योग्य होंगे, उतने ज्यादा लोग आपका शोषण करेंगे। लाओत्से बहुत अनूठा है, वह कहता है कि तुम योग्य बनने की कोशिश में मत पड़ना। लाओत्से कहता है, अयोग्य अक्सर बच जाते हैं उपद्रव से, योग्य पिस जाते हैं। लेकिन संसार कहता है, योग्य बनो! क्योंकि संसार शोषण करना चाहता है।

कुशल बनो! संसार निंदा करता है अयोग्य की; योग्य की प्रशंसा करता है। लेकिन संसार उसी की प्रशंसा करेगा जो बलि का बकरा होने को है। और सभी लोग भयभीत हैं कि अयोग्य न हो जाएं। क्यों भयभीत हैं? क्योंकि अयोग्य को संसार प्रतिष्ठा नहीं देता; अहंकार की तृप्ति नहीं देता। और क्या भय है? अयोग्य को यही भय है कि अगर कोई कह दे कि तुम अयोग्य हो तो कोई मूल्य न रहा, कोई कीमत न रही। बाजार में कोई मूल्य न हो तो आदमी को लगता है मैं निर्मूल्य हो गया।

लेकिन लाओत्से कहता है, तुम कोई वस्तु नहीं हो कि तुम्हारा मूल्य होना चाहिए। और अगर योग्य होकर तुम्हारा कोई मूल्य है तो तुम्हारा मूल्य नहीं है, किसी और चीज का मूल्य है जो तुमसे पैदा हो रही है। तुम्हारा मूल्य तो तभी हो सकता है जब तुम बिल्कुल योग्य नहीं हो, फिर भी तुम्हारा कोई मूल्य है। सिर्फ तुम्हारा होने का मूल्य है; तुम हो। इसे थोड़ा समझें।

आप अपने बेटे को प्रेम करते हैं, क्योंकि योग्य है। और अगर योग्य नहीं है तो प्रेम नहीं करते। आपका बेटे से प्रेम है? या बेटे से कुछ आप उपाय लेना चाहते हैं, कुछ काम लेना चाहते हैं, कोई साधन पूरा करना चाहते हैं? तो बेटा एक उपकरण है, एक मीन्स है, साध्य नहीं है। बेटा साध्य अगर हो तो उसकी योग्यता-अयोग्यता अर्थ नहीं रखती। फिर उसका होना, उसका बीइंग, उसका अस्तित्व मूल्यवान है। आप प्रसन्न हैं, क्योंकि वह है। उसका होना काफी है। उसके होने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए। अगर प्रेम का अर्थ समझें तो यही हो सकता हैः किसी व्यक्ति का होना, बिना किसी बाजार के मूल्य के हिसाब के, बिना इस धारणा के कि वह किसी साध्य का साधन बन सकता है। सिर्फ उसका होना!

लाओत्से ने बड़ी प्रशंसा की है अयोग्य होने की कला की। लाओत्से अपने संस्मरणों में कहीं कहा हैः एक गांव में एक आदमी कुबड़ा था, हंच बैक। राजा ने सारे जवानों को पकड़ लिया, क्योंकि युद्ध का समय था और हर व्यक्ति को फौज में जाना जरूरी था। सिर्फ गांव में जो कुबड़ा आदमी था--वह तो किसी काम का नहीं था--उसे छोड़ दिया। लाओत्से उसके पास गया और कहा कि धन्य हो तुम! अगर तुम योग्य होते तो आज गए थे। अयोग्यता ने ही तुम्हें बचाया। तुम परमात्मा को धन्यवाद दो, क्योंकि योग्यता मरेगी युद्ध के मैदान पर। और लाओत्से हमेशा तलाश में रहता था कि अयोग्यता कैसा कवच है।

पर हम योग्य होने के लिए इतने पीड़ित होते हैं। वस्तुतः इसीलिए कि हम योग्य नहीं हैं। असल में, हम वही चाहते हैं जो हमारे पास नहीं होता। इसे थोड़ा समझें। यह उलटा लगेगा। अयोग्य होने को तो वही राजी हो सकता है जो योग्य है ही, और जिसकी योग्यता किसी बाह्य आधार पर निर्भर नहीं है; जिसके होने पर, जिसके स्वभाव पर निर्भर है। आप वही तो चाहते हैं जो आपमें नहीं है। योग्य होना चाहते हैं, क्योंकि योग्य नहीं हैं। और लाओत्से कहता है, जो अयोग्य होने को राजी है उसने स्वभाव की योग्यता पा ली। अब उसे किसी बाहरी योग्यता की कोई भी जरूरत नहीं है। उसका होना ही काफी धन्यता है। हम सबके भीतर, जो नहीं है, उसे ढांकने की चेष्टा चलती है। कमजोर आदमी शक्तिशाली दिखना चाहता है; हो सके तो अच्छा, न हो सके तो कम से कम दिख सके। कमजोर आदमी कमजोर नहीं दिखना चाहता। सब तरह के उपाय करता है कि कोई उसकी कमजोरी न पहचान ले। अयोग्य आदमी सब तरह की योग्यता का आवरण अपने आस-पास खड़ा करता है कि कोई उसकी अयोग्यता न पहचान ले।

एडलर ने बहुत काम किया है इस सदी में हीनता की ग्रंथि पर, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स पर। और उसने कहा कि जितने भी उपाय जगत में चल रहे हैं वे सब हीनता की ग्रंथि से पैदा होते हैं। जिस संबंध में जो आदमी अपने को हीन अनुभव करता है, उसकी पूर्ति में लग जाता है; दौड़ने लगता है। वह भयभीत है कि कोई उसके भीतर के घाव को देख न ले।

बड़े आश्चर्य की बात है। नीत्शे शारीरिक रूप से कमजोर था; बहुत कमजोर आदमी था। शक्तिशाली किसी भी स्थिति में नहीं कहा जा सकता; बीमार, कमजोर, सदा रुग्ण। लेकिन उसने शक्ति की पूजा के लिए बड़ा काम किया है; और महानतम ग्रंथ उसने लिखाः दि विल टु पावर। और नीत्शे कहता है कि मनुष्य की आत्मा एक ही चीज की कोशिश कर रही है, वह है शक्ति की तलाश। और नीत्शे ने शक्तिशाली मनुष्य को इतना सम्मान दिया

है कि किताबें पढ़ कर ऐसा लग सकता है कि नीत्शे बहुत शक्तिशाली रहा होगा। वह बिल्कुल भी शक्तिशाली नहीं था। नीत्शे की शक्ति की पूजा के आधार पर जर्मनी में हिटलर का फैसिज्म पैदा हुआ, नाजीवाद पैदा हुआ। क्योंकि नीत्शे ने कहा कि यह जो नार्डिक जर्मन जाति है, यही महान शक्तिशाली जाति है, और यही जन्मसिद्ध अधिकार है इसका कि सारे जगत पर राज्य करे। वह खुद भी नार्डिक नहीं था; न शक्तिशाली था। पर उसकी अपनी हीनता की ग्रंथि थी। जो उसमें नहीं था, उसको उसने फैला कर शास्त्रों में लिखा। वह खुद कभी लड़ नहीं सकता था, युद्ध के मैदान पर जाने की बात दूर रही। लेकिन उसने लिखा है कि इस जगत में जो सबसे सुंदर दृश्य मुझे याद है, वह हैः जब सैनिक दोपहर की चमकती धूप में अपनी संगीनें लेकर एक लयबद्ध कतार में चलते हैं। उनकी संगीनों पर जो चमक होती है धूप की, बस उससे बड़ा संगीत, उससे महान संगीत मैंने अपने जीवन में दूसरा अनुभव नहीं किया। वही सबसे सुंदरतम दृश्य है। यह, जो नहीं है भीतर, उसकी पूर्ति की आकांक्षा है।

अगर हम अपने भीतर भी झांकेंगे तो हमें समझ में आ जाएगा कि जो हमारे भीतर नहीं है, उसी की पाने की हम कोशिश में लगे हैं। महावीर लात मार सके राज्य को, क्योंकि भीतर का राज्य समझ में आ गया। हम नहीं मार सकते हैं राज्य को लात; हम दीन-दरिद्र हैं, भिखमंगे हैं। बुद्ध भिखमंगे होकर खड़े हो सके, क्योंकि भिखमंगापन भीतर न रहा। हम भिखमंगे होकर खड़े नहीं हो सकते, क्योंकि हम जानते हैं हम भिखमंगे हैं, और अगर बाहर भी भिखमंगे हो गए तो सारी बात ही खुल जाएगी, सारा राज ही खुल जाएगा। बुद्ध खड़े हो सकते हैं भिखमंगे होकर, क्योंकि भिखमंगे होने से कुछ राज नहीं खुलता, बल्कि भीतर का सम्राट पूरी तरह प्रकट हो जाता है।

लाओत्से कहता है, हम अयोग्य होने से डरते हैं, क्योंकि हम अयोग्य हैं; अकेले होने से डरते हैं, क्योंकि हम अकेले हैं; अनाथ होने से डरते हैं, क्योंकि हम अनाथ हैं। हम जो हैं उसी से हम डरे हुए हैं। अनाथ का अर्थ है हेल्पलेस, असहाय। लेकिन हम स्वीकार करने में--स्वीकार करने से बचना चाहते हैं कि हम असहाय हैं, कि अकेले हैं, कि अयोग्य हैं। और ठीक इससे विपरीत अवस्था पैदा करने की कोशिश में हम जीवन को गंवा देते हैं।

लाओत्से कहता है, जो तथ्य है उसे स्वीकार कर लें। तथ्य की स्वीकृति मुक्तिदायी है। और इसका यह मतलब नहीं है कि लाओत्से कहता है तुम अयोग्य रह जाओगे, कि अकेले रह जाओगे, कि अनाथ रह जाओगे। लाओत्से यह कहता है कि जिस दिन तुम समझ गए कि तुम अकेले हो, फिर तुम अकेले नहीं हो। यह जरा जटिल है। क्योंकि जिस दिन तुमने स्वीकार कर लिया कि तुम अकेले हो, यह जीवन का तथ्य है, उसी दिन अकेलापन मिट गया। दूसरे को खोजते थे, इसलिए अकेलापन मजबूती से बना रहता था। अब तुमने स्वीकार कर लिया कि तुम अकेले हो, यह जीवन का तथ्य है; दूसरे की खोज छोड़ दी! धीरे-धीरे तुम भूल ही जाओगे कि तुम अकेले हो। और जिस दिन तुम भूल जाओगे कि तुम अकेले हो उस दिन दूसरा भी मिट जाएगा, तुम भी मिट जाओगे, और वही रह जाएगा जो स्वभाव है, जो ताओ है, जो सबके भीतर छिपा है। वह कभी अकेला नहीं है। हम अकेले इसलिए हैं कि हम लहर की भांति अपने को अलग मान लिए हैं सागर से, और फिर दूसरी लहरों के साथ एक होने की कोशिश कर रहे हैं; खुद भी क्षणभंगुर लहर हैं, दूसरी क्षणभंगुर एक दूसरी लहर के साथ निकटता बना रहे हैं, ताकि अकेलापन मिट जाए। खुद क्षणभंगुर हैं, दूसरे क्षणभंगुर तत्व से मिल कर अकेलापन मिटा रहे हैं।

लाओत्से कहता है कि लहर जिस दिन समझ ले कि अकेली है, यह स्वभाव है, दूसरी लहर की चिंता छोड़ दे, उसी दिन उसे नीचे के सागर का बोध शुरू हो जाएगा। दूसरे पर आंख गड़ी रहे तो भीतर आंख नहीं जाती; दूसरे के कारण ही बाहर भटकती है।

इसलिए अगर इस अकेलेपन की गूढ़ता को समझें तो पर्वत पर जाना संसार को छोड़ने के लिए नहीं, सिर्फ अकेले होने के लिए सार्थक है। वह कोई त्याग नहीं है, वह सिर्फ अकेले होने के अनुभव में उतरने की व्यवस्था है। वह दूसरे से भागना नहीं है, वह अपने में उतरने के लिए सिर्फ सुविधा जुटाना है, ताकि मैं अपने अकेलेपन को उसकी पूरी नग्नता में जान लूं। जहां कोई दूसरा न होगा, दूसरे का मैं चिंतन न करूंगा, वहां मैं अपने अकेलेपन को उसकी पूरी नग्नता में, पूरी प्रगाढ़ता में जान लूंगा। और जिस दिन कोई उसे उसकी पूरी प्रगाढ़ता में जान लेता है, स्वीकार कर लेता है, उसी दिन अकेला नहीं रह जाता। उसी दिन मूल स्वभाव में उतर जाता है। फिर कोई दूसरा नहीं है, मैं ही हूं।

और जो जान लेता है कि अयोग्यता होगी ही, क्योंकि मैं पूर्ण नहीं हूं। लहर कैसे योग्य हो सकती है? और लहर कुछ भी पा ले, उसके पाने का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि लहर खुद मिट जाने वाली है; उसका पाया हुआ भी उसके साथ मिट जाने वाला है। लहर कुछ भी उपलब्ध कर ले, उसकी उपलब्धि कोई कीमत नहीं रखती। तो आप कितने ही योग्य हो जाएं, आप ही खो जाएंगे। और जहां आधारशिला खो जाने वाली है वहां जो भवन योग्यता का है, उसका क्या मूल्य है? थोड़ी देर के लिए दूसरों की आंखों में चमक सकते हैं। लेकिन दूसरों की आंखों का क्या मूल्य है? वे आंखें भी कल मिट्टी हो जाएंगी। थोड़ा इतिहास झांक कर देखें। क्या मूल्य है नेपोलियन का या सिकंदर का? क्या मूल्य है? न होते तो क्या फर्क था? अगर आप भी नेपोलियन रहे हों--कोई न कोई तो रहा होगा--तो आज आपको क्या मूल्य है? आज आपको कोई यह बता भी दे कि आप नेपोलियन थे, यह प्रमाणित हो जाए, तो आज आप हंसेंगे। कल यही आपके साथ हो जाने वाला है। कल आप मिट्टी में गिर जाएंगे। आपकी प्रतिष्ठा, योग्यता, यश, सम्मान, समादर, सब मिट्टी में गिर जाएगा आपके साथ। जिन्होंने दिया था वे भी मिट्टी में गिर जाएंगे। जहां सभी कुछ मिट्टी में खो जाता हो वहां हम इतने दीवाने होकर लगते हैं कुछ चीजों के पीछे, यह भूल ही जाते हैं कि उनकी कोई शाश्वतता नहीं है, उनकी कोई सार्थकता नहीं है, उनका कोई मूल्य नहीं है, क्योंकि वे कहीं टिकने वाली नहीं हैं।

लाओत्से कहता है, योग्यता की दौड़ अहंकार की दौड़ है; अयोग्यता की स्वीकृति विनम्रता का भाव है कि मैं अयोग्य हूं।

इसका यह मतलब नहीं है कि ऐसा अयोग्य आदमी कुछ भी न कर पाएगा। लाओत्से कहता है, यही कर पाएगा। क्योंकि योग्य आदमी तो योग्यता सम्हालने में ही जीवन की ऊर्जा को खो देता है।

राजनीतिज्ञ क्या कर पाते हैं? धनपति क्या कर पाते हैं? क्या है उनकी उपलब्धि? क्या है जोड़? लगते हैं बहुत करते हुए, हाथ आखिर में कुछ भी आता नहीं। लेकिन जो आदमी स्वीकार कर ले विनम्रता से, जो भी मैं हूं हूं, उसके जीवन से बहुत कुछ होता है। करने का भाव नहीं होता वहां, सिर्फ जीवन से होता है, जैसे वृक्षों में फूल लगते हैं।

लाओत्से के जीवन में यह फूल लगा--यह ताओ उपनिषद का, ताओ तेह किंग का। यह कोई चेष्टा से नहीं हुआ। इसके लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। इसके लिए कोई दौड़-धूप नहीं की है। यह ऐसे ही हुआ जैसे वृक्ष में फूल आ जाते हैं। यह लाओत्से की जो जीवन की ऊर्जा है, उसका सहज प्रस्फुटन है। इसके पीछे कहीं कोई कर्ता का भाव नहीं है। ऐसा हुआ, क्योंकि ऐसा लाओत्से में हो सकता था। न लाओत्से लिखना जानता है, न लाओत्से बोलना जानता है; लेकिन फिर भी यह महानतम वचनों कीशृंखला उससे पैदा हुई। इसके लिए कोई भी आयोजन उसने किया नहीं। संयोगवशात ताओ तेह किंग का जन्म हुआ। हैपनिंग है, डूइंग नहीं; एक घटना है जो

घटी। जिसके लिए लाओत्से भी नहीं कह सकता कि क्यों। न घटती तो कोई हर्ज न था। घट गई तो कोई सम्मान, कोई प्रतिष्ठा उसके लिए मिलनी चाहिए, ऐसी कोई आकांक्षा नहीं है।

बड़े मजे की बात है कि लाओत्से इन वचनों को बोल कर खो गया; फिर उसका पता नहीं चला। ये उसके आखिरी वचन हैं; इसके बाद वह चीन से खो गया। कोई कहता है भारत की तरफ लाओत्से आया; कोई कहता है हिमालय, या तिब्बत। लेकिन इतिहास से खो गया। इतने बहुमूल्य अमृत-वचन देकर फिर वह यह भी नहीं रुका कि कोई क्या कहेगा। किसी ने सुने, किसी ने पढ़े, किसी का जीवन रूपांतरित हुआ, कुछ हुआ लाभ या हानि, इससे भी कोई प्रयोजन नहीं था। जैसे पक्षी गीत गाते हैं, वृक्षों में फूल लगते हैं, नदियां बहती हैं, ऐसा लाओत्से में ताओ तेह किंग लगा और बहा।

जो व्यक्ति अपनी अवस्था को स्वीकार कर लेता है जैसी भी है, उसके जीवन में बहुत कुछ होगा। लेकिन उस होने से अहंकार का कोई संबंध नहीं। वह होगा स्वभाव से, वह होगा परम प्रकृति से। तब वैसा व्यक्ति यह भी कह सकता है कि परमात्मा मुझसे काम ले रहा है; वही कर रहा है। लाओत्से तो यह भी नहीं कहता, क्योंकि इसमें भी अस्मिता आ सकती है कि परमात्मा मुझसे काम ले रहा है, किसी और से काम नहीं ले रहा! लाओत्से तो कह रहा है, स्वभाव में ऐसा हो रहा है। इसमें कुछ विचारणीय नहीं है।

और अनाथ, असहाय... ।

हम सब तरह से उपाय करते हैं इस बात को छिपाने का कि हम असहाय हैं। धन से, पद से, प्रतिष्ठा से चारों तरफ एक बागुड़ लगाते हैं कि उसके भीतर हम सुरक्षित मालूम पड़ें और लगे कि हम कोई असहाय नहीं हैं, कोई अनाथ नहीं हैं। लेकिन आदमी असहाय है। मौत आएगी और हम किसी भांति उसे रोक न पाएंगे।

विलियम जेम्स एक पागलखाने को देखने गया। खुद बहुत बड़ा मनसविद। लौट कर बहुत चिंतित हो गया। और फिर कहते हैं, जीवन भर वह चिंता उसे छूटी नहीं। और चिंता इस बात की कि पागलखाने में उसने लोगों को देखा और उसे यह ख्याल आया एक मित्र को देख कर, क्योंकि कल तक वह ठीक था, और कोई सोच भी नहीं सकता था कि वह पागल हो जाएगा, कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि वह पागल हो जाएगा; बिल्कुल ठीक था, और पागल हो गया, तो विलियम जेम्स को एक ख्याल पकड़ गया कि अगर मैं भी कल पागल हो जाऊं तो उपाय क्या है? मैं क्या कर सकूंगा? और पक्का क्या है कि मैं कल नहीं हो जाऊंगा? क्योंकि कल यह मेरा मित्र भी ठीक था और कभी सोच भी नहीं सकता था कि पागल हो जाएगा। मैं भी कल पागल हो जा सकता हूं। मेरी सामर्थ्य क्या है? और उपाय क्या है करने का कि मैं न हो जाऊं?

जो भी किसी मनुष्य को कभी घटा है वह आपको भी घट सकता है। किसी भी मनुष्य को जो भी घटा है! रास्ते पर कोई भीख मांग रहा है तो आप यह मत सोचें कि वह उसको घटा है, आपको नहीं घट सकता। कल आप भीख मांग सकते हैं। आज सोच भी नहीं सकते। आज सोचने का कोई कारण भी नहीं है। सोचें तो भी ख्याल में नहीं आएगा, क्योंकि सारी सुविधा है, सब सुरक्षा है। कोई वजह नहीं है व्यर्थ की बातें सोचने की। लेकिन यह घट सकता है। सम्राटों ने भीख मांगी है। शक्तिशाली लोग दीन-दरिद्र हो गए हैं।

रूस में लेनिन के पहले, सत्ता में आने के पहले, करेंसकी प्रधान मंत्री था। बड़ा ही शक्तिशाली आदमी था। फिर क्रांति हुई, कम्युनिस्ट क्रांति में करेंसकी खो गया। फिर लोग उसको भूल ही गए कि करेंसकी की कभी कोई ताकत थी। उन्नीस सौ साठ में पता चला कि अमरीका में वह किराने का काम करता है; एक दुकानदार है छोटा सा और किराने का काम, बेचने का काम करता है। उन्नीस सौ साठ में, उन्नीस सौ सत्रह से खोया हुआ आदमी! कोई सोच भी नहीं सकता कि लेनिन दुकान पर बैठ कर कहीं किराना बेच रहा होगा। करेंसकी एक दिन लेनिन

से बड़ी ताकत का आदमी था। जब लेनिन कुछ भी नहीं था तब करेंसकी प्रधान मंत्री था। लेकिन यह हो जाता है।

जो किसी भी मनुष्य को घटा है वह आपको भी घट सकता है--कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई आघात, पागलपन, मृत्यु, दीनता, दरिद्रता--कुछ भी, मनुष्यता को जो भी हो सकता है वह प्रत्येक मनुष्य को हो सकता है। असहाय हम बिल्कुल हैं। और जब हो तो हम कुछ भी नहीं कर सकते। हमारी नाव किसी भी क्षण डूब सकती है। क्योंकि नावें रोज डूबती हैं। और एक न एक दिन तो सभी नाव को डूबना ही पड़ता है। अगर किसी तरह हम बचा भी लिए तो बचा कर पहुंचेंगे कहां? कितने ही बच कर जाएं, आखिर में मौत में पहुंच जाते हैं। सब बचाव मौत में ले जाता है। असहाय होना हमारा जीवन का अनिवार्य तत्व है।

लाओत्से कहता है, "अनाथ, अयोग्य और अकेला होने से मनुष्य सर्वाधिक घृणा करता है।"

और यह तथ्य है। और जो तथ्य से घृणा करता है वह सत्य को कभी भी नहीं जान सकेगा।

"तो भी राजा और भूमिपति अपने को इन्हीं नामों से पुकारते हैं।"

लेकिन चीन के सम्राट अपने को इन्हीं नामों से पुकारते रहे हैं--अनाथ, अयोग्य, अकेला। किसी कारण से। इसलिए नहीं कि वे बहुत बुद्धिमान थे; बल्कि किसी कारण से। क्योंकि चीनी ज्योतिष ऐसा मानता है कि हमेशा अपने को उस जगह मानो जहां से प्रगति की संभावना हो। कभी भी पूर्णिमा का चांद अपने को मत मानो, क्योंकि उसके बाद सिवाय पतन के और कुछ भी नहीं होता। सदा दूज के चांद अपने को मानो। तो बढ़ सकते हो। इसलिए चीन के सम्राट अपने को सदा अनाथ, अयोग्य और अकेला मानते रहे हैं, ताकि बढ़ती की संभावना रहे। किसी बुद्धिमत्ता के कारण नहीं, लेकिन एक पुरानी परंपरा के कारण। पर परंपरा बुद्धिमानों से जन्मी है। क्योंकि जिन्होंने यह कहा कि अपने को दूज के चांद की तरह समझो उन्होंने बड़ी कीमत की बात कही। उन्होंने यह कहा, ताकि तुम सदा फैल सको, सदा बढ़ सको; गुंजाइश हो, स्पेस हो, जगह हो; सिकुड़ न जाओ।

इसलिए विनम्र आदमी बढ़ सकता है; अहंकारी नहीं बढ़ सकता। वहां जगह नहीं है बढ़ने की। वह जो भी हो सकता था, जो होने की संभावना थी, वह मानता है वह है ही। जो अपने को अज्ञानी मानता है वह कभी ज्ञानी हो सकता है, लेकिन जो ज्ञानी अपने को इसी क्षण मान रहा है उसके सारे द्वार बंद हो गए। जो अपने को शून्य मानता है वह पूर्ण हो सकता है। सब द्वार खुले हैं। कहीं से भी जीवन को रोकने का कोई उसने इंतजाम नहीं किया है। जीवन सब तरफ से आए, तो उसका निमंत्रण है।

"क्योंकि चीजें कभी घटाई जाने से लाभ को प्राप्त होती हैं, और बढ़ाई जाने से हानि को। दूसरों ने इसी सूत्र की शिक्षा दी है, मैं भी वही सिखाऊंगाः हिंसक मनुष्य की मृत्यु हिंसक होती है। इसे ही मैं अपना आध्यात्मिक गुरु मानूंगा।"

लाओत्से के सभी वचन बहुत सूक्ष्म हैं; नाजुक भी। और उसके इशारे न समझे जाएं तो भूल-चूक हो सकती है। लाओत्से कहता है, वही आदमी अहिंसक है जो अपने को अकेला, अनाथ और अयोग्य मानता है। यह बड़ी अनूठी बात है; क्योंकि अहिंसक से हम सीधा इसका कोई संबंध न जोड़ेंगे। लेकिन गहरा संबंध है।

जो आदमी अपने को योग्य मानता है वह हिंसक होगा। इस घोषणा में ही कि मैं योग्य हूं, उसने हिंसा शुरू कर दी। इस घोषणा के साथ ही वह दूसरे को अयोग्य सिद्ध करने में लग जाएगा। संघर्ष शुरू हो गया। जिस आदमी ने कहा कि मैं अनाथ नहीं हूं, मैं नाथ हूं, स्वामी हूं, मालिक हूं, उसने हिंसा शुरू कर दी। इसे वह सिद्ध करेगा। मालिक होकर ही सिद्ध किया जा सकता है। दूसरे का मालिक होना ही हिंसा है, क्योंकि दूसरे को मिटाए बिना कोई भी मालिक नहीं हो सकता। स्वामी बनने की चेष्टा विध्वंसक है; दूसरे को नष्ट करना ही

पड़ेगा, तोड़ना ही पड़ेगा; अंग-भंग करने पड़ेंगे। दूसरे की स्वतंत्रता छीन लेनी पड़ेगी। और दूसरे के व्यक्तित्व को नष्ट करके एक वस्तु बना देना होगा। तभी कोई स्वामी हो सकता है।

हम सभी इसी कोशिश में लगे होते हैं कि हमारा स्वामित्व का दायरा बड़ा हो जाए। उसका मतलब, हमारी हिंसा का दायरा बड़ा हो जाए। हम ज्यादा लोगों को काट-पीट सकें, ज्यादा लोग हमारी मुट्ठी में हों कि जब भी हम हाथ दबाएं, उनको हम खत्म कर सकें।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके सम्राट ने बुलाया था। खबर पहुंची सम्राट तक कि वह बहुत बुद्धिमान है, नसरुद्दीन बुद्धिमान है। सम्राट ने कहा कि बुलाओ; तलवार सब बुद्धिमानियों को नष्ट कर सकती है। वह तलवार का भरोसा ही था उसे। वह नंगी तलवार लेकर बैठा। नसरुद्दीन लाया गया। उस सम्राट ने नसरुद्दीन से कहा कि तुम एक वक्तव्य दे सकते हो, एक वचन, एक वाक्य बोल सकते हो। और सुना है मैंने कि तुम बुद्धिमान हो। तो एक वचन बोलो! अगर वचन सत्य हुआ तो तुम्हें तलवार से काटा जाएगा, और अगर वचन झूठ हुआ तो तुम्हें सूली पर लटकाया जाएगा। और एक वचन बोलने की तुम्हें आज्ञा है। और सुना है मैंने कि तुम बुद्धिमान हो। सूली उसने तैयार करवा रखी थी; नंगी तलवार लिए आदमी सामने खड़ा था।

नसरुद्दीन ने जो वचन कहा वह बहुत अदभुत है। नसरुद्दीन ने कहा, आई एम गोइंग टु बी हैंग्ड; मुझे सूली होने वाली है। सम्राट को मुसीबत में डाल दिया। क्योंकि उसने कहा था, अगर तू सच बोले तो तुझे तलवार से काटा जाएगा; अगर तू झूठ बोले तो तुझे सूली लगाई जाएगी। अब वह कहता है, मुझे सूली लगाई जाने वाली है। अगर उसको तलवार से काटा जाए तो वह सच बोला था, और अगर उसे सूली लगाई जाए तो सूली तभी लगाई जा सकती है जब वह झूठ बोला हो। सम्राट ने कहा कि तुमने मुझे मुसीबत में डाल दिया। और मैं तो सिर्फ एक ही बात जानता हूं; हिंसा और तलवार के सिवाय मैं कुछ नहीं जानता। लेकिन तुम चालाक हो, तुम निश्चित बुद्धिमान हो।

हमारी बुद्धिमानी भी सिर्फ दूसरों की हिंसा से बचने में लगती है। दो ही तरह के लोग हैं। एक वे, जिनकी सारी शक्ति हिंसा करने में लग रही है; और दूसरे, जिनकी बुद्धिमानी अपने को बचाने में लग रही है। बाकी सारा खेल हिंसा का है। या तो हम हिंसा करने वालों में लगे हुए हैं, साथ हैं, और या फिर हिंसा से बचने की कोशिश में लगे हुए हैं। मगर सारा जीवन या तो हम स्वामी बनना चाहते हैं, या कोई हमें गुलाम न बना ले, इसकी फिक्र में हैं। पर दोनों हालत में हमारा संदर्भ सदा हिंसा है।

लाओत्से कहता है, जो अपने को अनाथ, अयोग्य और अकेला मान लेता है वह हिंसा से मुक्त हो जाता है। ऐसा व्यक्ति न तो दूसरे की मालकियत बनने की फिक्र में लगता है और न अपने को बचाने की फिक्र में लगता है। क्योंकि वह जानता है, बचने का कोई उपाय ही नहीं। मौत आएगी ही। न वह किसी को मारने जाता है, क्योंकि मौत सभी को मार डालेगी, उसके काम को बीच में करने की कोई जरूरत नहीं है; और न वह अपने को बचाने की बहुत चिंता में लगता है, क्योंकि मौत यह काम भी कर देगी। अहिंसा का जन्म तभी होता है जीवन में जब न तो हम किसी को गुलाम बनाना चाहते हैं और न हम किसी के गुलाम बनना चाहते हैं, न गुलाम बनने से बचना चाहते हैं। हम हिंसा की भाषा में सोचते ही नहीं। और जो व्यक्ति भी अनाथ, अयोग्य और अकेला मानने को राजी हो जाए वह एक सूक्ष्म द्वार से जैसे हिंसा के जगत के बाहर हो जाता है।

इसका यह मतलब नहीं कि हम उसे नहीं मार डाल सकते; हम उसे मार डाल सकते हैं। लेकिन फिर भी हम उसे छू नहीं सकते। हम उसकी गर्दन काट सकते हैं, लेकिन फिर भी हम उसे नहीं काट सकते। गर्दन कटते

क्षण में भी उसे हम चोट नहीं पहुंचा सकते, क्योंकि उसने इसे स्वीकार ही कर लिया था कि यह जीवन का अनिवार्य अंग है मृत्यु। वह कैसे घटती है यह गौण है। घटना उसका अनिवार्य है। वह सुनिश्चित है।

"दूसरों ने भी इसी सूत्र की शिक्षा दी है, मैं भी वही सिखाऊंगाः हिंसक मनुष्य की मृत्यु हिंसक होती है।"

इस सूत्र में बहुत सी बातें हैं। जो दूसरों का मालिक बनना चाहता है वह आखिर में पाता है कि दूसरे उसके मालिक बन गए। जो किसी को गुलाम बनाता है, वह उसका गुलाम बन जाता है। जो हम दूसरों के साथ करते हैं, उसका ही प्रतिफल हम पर लौट आता है।

यही होगा भी। जीवन का सीधा नियम है। हम जो जीवन की तरफ फेंकते हैं वही जीवन हमें लौटा देता है। जो भी हमें मिलता है वह हमारा ही दिया हुआ है जो जीवन के हाथों वापस आया, चाहे समय कितना ही लगा हो और हम भूल भी गए हों कि हमने ही दिया था। जब कोई गाली आपके पास आती है तो शायद आपको याद भी न हो, क्योंकि हो सकता है बड़ा समय बीत गया हो, जन्म-जन्म बीत गए हों। लेकिन जो दिया है वही वापस लौट आता है। हम हिंसा करते हैं, हिंसा हमारे ऊपर चारों तरफ से बरस जाती है।

"हिंसक मनुष्य की मृत्यु हिंसक होती है।"

जो हम बोते हैं उससे अन्यथा काटने का उपाय नहीं है। और अगर हम हिंसा काट रहे हों, हमारे ऊपर हिंसा बरस रही हो, तो उसका अर्थ है कि उसे भी हम चुपचाप स्वीकार कर लें कि वह हमारा पिछला हिसाब है जो साफ हुआ जा रहा है। लेकिन प्रतिकार न करें। प्रतिकार फिर नए बीज बो देता है, औरशृंखला का कोई अंत नहीं आता।

"इसे ही मैं अपना आध्यात्मिक गुरु मानूंगा।"

लाओत्से कह रहा है, यह सूत्र मार्ग-निर्देशक है। तुम न किसी के मालिक बनना, न तुम किसी से अपने को योग्य सिद्ध करना, न तुम अपने को इस भुलावे में डालना कि दूसरे का संग-साथ हो सकता है। तब तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे जीवन से हिंसा विसर्जित हो गई। और जैसे ही हिंसा विसर्जित होती है वैसे ही तुम्हारी आंखें धुएं से मुक्त हो जाती हैं और वह जो सत्य चारों तरफ छिपा है वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

लेकिन सिद्धांतों को तो हम सिर का बोझ बना लेते हैं। जीसस भी यही कहते हैं कि जो तलवार उठाएगा वह तलवार से ही काटा जाएगा। महावीर यही कहते हैं, बुद्ध यही कहते हैं। लेकिन सिद्धांत तो शास्त्र बन जाते हैं; फिर उनको हम कंधों पर रख लेते हैं; फिर हम उन्हें ढोने लगते हैं। फिर हम भूल जाते हैं कि उनकी कोई उपयोगिता है, वे कंधों पर रख कर ढोने के लिए नहीं हैं। कभी-कभी हम उन्हें अध्ययन भी करते हैं।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन जब छोटा था, तो उसकी मां ने एक दिन उसे कहा कि बेटा, मैं थोड़ा नदी तक जाती हूं, तू जरा दरवाजे पर ध्यान रखना। नसरुद्दीन बैठा रहा। आधा घंटा, घंटा, फिर बेचैनी उसे शुरू हो गई। आखिर कब तक वह दरवाजे पर ध्यान रखे? चला-फिरा, दरवाजे का चक्कर भी लगाया, बाहर-भीतर गया। लेकिन ध्यान दरवाजे पर रखना था, एक सिद्धांत की बात मां कह गई थी। आखिर बेचैनी बढ़ गई। दो घंटे पूरे होने लगे। तो झोपड़ा तो था; उसने दरवाजे को हिला कर निकाल लिया, कंधे पर रखा और बाजार की तरफ चल दिया। उधर से मां लौटती थी नदी के किनारे, उसने कहा कि नसरुद्दीन, यह तू क्या कर रहा है? मैंने तुझसे कहा था दरवाजे पर ध्यान रखना! उसने कहा, कब तक ध्यान रखते? मैंने सोचा, दरवाजा साथ ही रखो। ध्यान रखने की कोई जरूरत ही नहीं। और जहां जाओ दरवाजा साथ ही रहेगा, फिक्र भी कुछ नहीं है। ध्यान रखे हुए हूं।

वह मकान और असुरक्षित हो गया।

हम भी मार्ग-निर्देशक सूत्रों पर ध्यान रखे हुए हैं। हम सबको पता है कि क्या ठीक है। पर वह हमारे कंधे पर बंधा है। उसमें हमारे जीवन का कोई संबंध नहीं है। और जीवन में हम पूरी चेष्टा यही कर रहे हैं जो कहा गया है कि मत करना। फिर हम दुख पा रहे हैं। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हम जीवन में सब अच्छा कर रहे हैं, फिर भी हम दुख पा रहे हैं।

यह नहीं हो सकता। उसका मतलब ही इतना है कि वे अच्छा सोच रहे हैं। कर तो वे जो रहे हैं वह गलत ही है। या वे गलत की भी व्याख्या ऐसी कर रहे हैं कि उनके शास्त्र से मेल खा जाती है, लेकिन वे कर तो गलत ही रहे हैं। अब यह हो सकता है कि आप राजनीतिज्ञ बन कर लोगों के मालिक न बनें, यह हो सकता है धन इकट्ठा करके लोगों के मालिक न बनें, आप गुरु हो जाएं और लोगों की गर्दन जकड़ लें। तो एक ही बात है। और गुरु जिस बुरी तरह गर्दन पकड़ सकता है, कोई भी नहीं पकड़ सकता। गुरु से बचने का उपाय नहीं। क्योंकि आप हमेशा गलत हैं, वह हमेशा ठीक है।

और कुछ लोग सिर्फ इसीलिए ठीक रह सकते हैं कि वह आपको गलत करने का मजा ठीक रहने में ही छिपा हुआ है। आपका गुरु बिल्कुल नियम के अनुसार चल सकता है, सिर्फ इसलिए कि उसको आपको भी नियम के अनुसार चलाने का मजा लेना है। बहुत से गुरु विदा हो जाएं अगर उनके शिष्य चले जाएं। उनके सब नियम टूट जाएं, क्योंकि नियमों का केवल एक रस था कि उनके माध्यम से मालकियत मिलती थी।

आप तीन बजे रात उठ सकते हैं अगर हजार आदमियों को आपको तीन बजे रात उठाने का मजा लेना हो। और तब आपको बिल्कुल कष्ट नहीं होगा। तीन बजे आप इतने मजे से उठ आएंगे जिसका हिसाब नहीं। और लोग शायद यही सोचेंगे कि आप ब्रह्ममुहूर्त में उठने का मजा ले रहे हैं। लेकिन मन बहुत अदभुत है, वह एक हजार आदमियों को सताने का मजा ले रहा है कि उनको, तीन बजे रात उनको भी उठना पड़ेगा।

आप रास्ते निकाल सकते हैं बुरा करने के इस भांति कि वे अच्छे मालूम हों। लेकिन आदमी की बड़ी गहरी तलाश अहंकार की पूर्ति की ही बनी रहती है, दूसरे को नीचा दिखाने की बनी रहती है। वह कैसे नीचा दिखाता है, यह बात दूसरी है। धन से नीचा दिखाता है, पद से, कि ज्ञान से, यह बात दूसरी है, कि त्याग से। मगर दूसरे को नीचा दिखाने का जो रस है, वह कायम बना रहता है। और जब तक वह न मिट जाए तब तक जीवन से हिंसा का कोई अंत नहीं है।

"हिंसक मनुष्य की मृत्यु हिंसा से होती है। इसे ही मैं अपना आध्यात्मिक गुरु मानता हूं।"

इस सूत्र को ही, लाओत्से कहता है, अगर कोई व्यक्ति ठीक से जीवन में उतार ले तो कुछ और उतारने की जरूरत न रह जाएगी। यह सूत्र काफी गुरु है।

आज इतना ही।

अस्सीवां प्रवचन

कठिनतम पर कोमलतम सदा जीतता है

Chapter 43

The Softest Substance

The softest substance of the world,
Goes through the hardest.
That-which-is-without-from penetrates that-which-has-no-crevice;
Through this I know the benefit of taking no action.
The teaching without words
And the benefit of taking no action
Are without compare in the universe.

अध्याय 43

कोमलतम तत्व

संसार का कोमलतम तत्व
कठिनतम के भीतर से गुजर जाता है।
और जो रूपरहित है, वह उसमें प्रवेश कर जाता है,
जो दरारहीन है;
इसके जरिए मैं जानता हूं कि अक्रियता का क्या लाभ है।
शब्दों के बिना उपदेश करना,
और अक्रियता का जो लाभ है,
वे ब्रह्मांड में अतुलनीय हैं।

लाओत्से की दृष्टि में शक्ति वास्तविक शक्ति नहीं, शून्य ही वास्तविक शक्ति है। और कर्म से जो किया जाता है वह क्षणभंगुर है; और अकर्म से जो पाया जाता है वही शाश्वत और सनातन है। जिसे करके पाना पड़े उसे पाने का कोई मूल्य नहीं; जो बिना किए ही उपलब्ध हो जाए उसकी ही कोई सार्थकता है। प्रयास से जहां पहुंचा जाता है वह स्थान संसार के बाहर नहीं; और अप्रयास, शून्यता में जहां डूबना हो जाता है वही मोक्ष है।

लाओत्से की इस बड़ी मूल्यवान धारणा को बहुत पहलुओं से समझना जरूरी है। और इसलिए भी बहुत कठिन है समझना, क्योंकि हमारे मन और हमारी विचार की पद्धति से यह बिल्कुल विपरीत है।

हम तो सोचते हैं कि शक्तिशाली ही शक्तिशाली है। लेकिन लाओत्से कहता है कि कोमल उसे तोड़ देता है जो कठोर है, और शून्य वहां भी प्रवेश कर जाता है जहां प्रवेश के लिए कोई द्वार नहीं, रंध्र नहीं, दरार नहीं।

हम भी इससे परिचित हैं। शायद सचेतन नहीं। जल-प्रपात गिरता है। जल से ज्यादा कोमल और कोई तत्व नहीं। कठोर से कठोर पत्थर की चट्टानें धीरे-धीरे टूट कर रेत बन जाती हैं। पत्थर हार जाता है पानी से।

लाओत्से कहता है कि जल शक्तिशाली तो बिल्कुल नहीं है। जल से ज्यादा निर्बल और क्या होगा? कठोर तो जरा भी नहीं है जल। जैसा चाहें वैसा झुक जाएगा, जैसा चाहें वैसा ढल जाएगा। अपनी तरफ से कोई प्रतिरोध जल का नहीं है। उसकी अपनी कोई आकृति-रूप नहीं है। जैसी आकृति दें वैसी आकृति ले लेगा। जरा भी प्रतिरोध, रेसिस्टेंस जल में नहीं है। और एक पत्थर है, जो सब तरह से प्रतिरोधक है; जिसे ढालना मुश्किल, जिसे तोड़ना मुश्किल, जिसे बदलना मुश्किल; जिसका आकार सुनिश्चित है। लेकिन जब पानी और पत्थर की टक्कर होती है तो प्रारंभ में भला पानी हारता हुआ दिखाई पड़े, लंबे अरसे में पत्थर हार जाता है और पानी जीत जाता है। बड़े से बड़े पहाड़ को काट देता है; रेत हो जाता है पहाड़ और पानी अपना मार्ग बना लेता है। यह तो प्रतीक है। जीवन की गहराई में भी ऐसा ही है। कठोर हृदय और प्रेमपूर्ण हृदय में अगर टक्कर हो तो प्रथम तो दिखाई पड़ेगा कि कठोर हृदय जीत रहा है, लेकिन लंबे अरसे में प्रेमपूर्ण हृदय जीत जाएगा और कठोर बह जाएगा, टूट जाएगा। प्रेम जल जैसा है। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि अगर स्त्री और पुरुष में संघर्ष हो तो पुरुष जीतेगा, लेकिन लंबे अरसे में स्त्री ही जीत जाती है। पुरुष शक्तिशाली दिखाई पड़ता है, कठोर मालूम होता है, प्रतिरोधक है। लेकिन कठोर से कठोर, शक्तिशाली से शक्तिशाली पुरुष को कमजोर से कमजोर स्त्री का प्रेम झुका लेता है। प्रेम जल जैसा है।

जीवन के सब पहलुओं में लाओत्से पक्षपाती है कमजोर का। इसलिए नहीं कि वह कमजोर है। क्योंकि लाओत्से कहता है कि जीवन की बुद्धिमत्ता यह कहती है कि कमजोर लंबे अरसे में शक्तिशाली सिद्ध होता है, और शक्तिशाली शुरू में तो शक्तिशाली मालूम पड़ता है, पीछे टूटता है और बह जाता है।

जोर का तूफान चलता है तो बड़े वृक्ष टूट कर गिर जाते हैं; छोटे घास के पौधे झुकते हैं, तूफान भी उन्हें तोड़ नहीं पाता। तूफान चला जाता है, घास के पौधे फिर खड़े हो जाते हैं। तूफान उन्हें और ताजा कर जाता है, और जीवन दे जाता है। उनकी धूल, उनका अतीत झाड़ देता है। वे और प्राणवंत हो जाते हैं। तूफान उनकी मृत्यु नहीं बनता, उन्हें जीवनदायी होता है। लेकिन बड़े वृक्ष, जो अकड़ कर खड़े रहते हैं, जो शक्तिशाली हैं, जो तूफान से लड़ने की हिम्मत जुटाते हैं, उनकी जड़ें उखड़ जाती हैं। तूफान उन्हें एक बार गिरा देता है तो फिर उनके उठने का कोई उपाय नहीं। शक्तिशाली गिर जाए तो उठ नहीं सकता; उसकी शक्ति ही इतनी बोझिल हो जाती है। निर्बल--निर्बल कभी गिरता नहीं, झुकता है। झुकना उसकी कला है। और झुकने में ही उसकी शक्ति का राज है।

जीसस के बड़े प्रसिद्ध वचन हैं और ईसाइयत के पास उन्हें खोलने का पूरा-पूरा राज नहीं। लाओत्से में कुंजी है जीसस की। जीसस के वचन हैंः धन्य हैं वे जो कमजोर हैं, क्योंकि वे ही पृथ्वी के राज्य के मालिक होंगे। धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि अंतिम विजय उनकी ही होगी।

लेकिन हमारे देखने में--हमारी दृष्टि इतनी दूरगामी नहीं--जो प्रथम है वही हमें दिखाई पड़ता है। पानी गिरता है पर्वत से; पत्थर अडिग खड़ा रहता है, पानी छितर-बितर हो जाता है; पत्थर की विजय दिखाई पड़ती

है। लेकिन लंबे अरसे में, समय की लंबी धारा में--और जीवन महान है, जीवन विराट है, अंतहीन! इसमें प्रथम का कोई मूल्य नहीं, अंतिम का ही मूल्य है। यह धारा तो शाश्वत है। कल भी थे आप, परसों भी थे आप। ऐसा कभी कोई क्षण न था जब आप न थे। और ऐसा भी कोई क्षण कभी नहीं होगा जब आप न होंगे। इस अनंत धारा में प्रथम को ही जो जीवन का आधार बना लेता है वह भूल में पड़ जाता है। शक्तिशाली प्रथम जीतता हुआ मालूम पड़ता है, लेकिन इस समय की अनंत धारा में उसकी कहीं कोई जीत नहीं है।

दूरगामी दृष्टि हो तो लाओत्से समझ में आएगा। पर हमारी आंखें बहुत कमजोर हैं और निकट ही देख पाती हैं, दूर नहीं देख पातीं। जीवन में, प्रत्येक को अपने जीवन में खोजना चाहिए कि जो चीज भी प्रथम क्षण में जीतती हुई मालूम पड़ती हो, उससे सावधान रहना। उसका अर्थ है कि लंबे अरसे में वह हार सिद्ध होगी। और जो चीज प्राथमिक क्षण में जीतती हुई न मालूम पड़ती हो, उसके संबंध में बार-बार सोचना। लंबे अरसे में उसकी विजय सुनिश्चित है। चूंकि हम देख नहीं पाते, दूसरा अंतिम छोर हमें दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए हम प्रथम की भूल में पड़ जाते हैं।

इसे हम ऐसा भी समझें। निरंतर मैं कहता रहा हूं कि जहां सुख का पहला अनुभव होता है वहां पीछे अंत में दुख उपलब्ध होता है। जहां पहले ही लगता है कि सुख, वहां थोड़ा सावधान हो जाना जरूरी है; पीछे दुख छिपा है। और जहां पहले दुख मालूम पड़ता है वहां से शीघ्र भाग जाना उचित नहीं, क्योंकि वहां सुख की संभावना हो सकती है। तपश्चर्या का इतना ही अर्थ है, दुख को भी इसलिए स्वीकार कर लेना कि उसके पीछे सुख की संभावना हो सकती है। त्याग का इतना ही अर्थ है कि उस सुख को अस्वीकार कर देना जिसके पीछे अनंत दुख छिपा हो।

लेकिन जिनके पास आंखें कमजोर हैं और जिन्हें सिर्फ एक कदम ही दिखाई पड़ता है वे सदा ही भ्रांति में जीएंगे। वे उस सुख को पकड़ लेंगे जो केवल दुख का बुलावा है। वे उस दुख को छोड़ देंगे, भाग जाएंगे, जहां सुख की संपदा छिपी थी। वे उस विजय के लिए राजी हो जाएंगे जो क्षणभंगुर है, और फिर सदा के लिए पराजय का अनुभव करेंगे। और वे उस पराजय से भाग खड़े होंगे जिसके पीछे विजय की यात्रा का पथ शुरू होता था।

जीवन इतना सरल नहीं है, जीवन जटिल है। और जैसा कि लाओत्से की धारणा के आधार-स्तंभों में एक है कि हर चीज अपने विपरीत से जुड़ी है। तो जहां सुख है प्रथम में, वहां अंत में दुख होगा। और प्रथम तो क्षण भर में मिट जाएगा और अंत बहुत लंबा है। जहां विजय है प्रारंभ में, वहां अंत में पराजय होगी। हिटलर, सिकंदर, तैमूर, चंगीज उसी भ्रांति में हैं--शक्ति की भ्रांति! लाओत्से, बुद्ध और जीसस उस भ्रांति से पार हैं। उन्होंने उस गहन सूत्र को पकड़ लिया जो शांति में शक्ति को देखता है, शक्ति में नहीं। उन्होंने निर्बल होने की कला सीख ली। उन्होंने मजबूत वृक्ष की तरह तूफान से लड़ना नहीं चाहा; वे कोमल घास के पौधे की भांति झुक गए। और इस झुकने में उन्होंने तूफान को हरा दिया।

ये सूत्र उलटे मालूम पड़ेंगे, लेकिन इसे सूत्रबद्ध कर लेना जरूरी है। जो लड़ेगा वह हारेगा; और जो हारने को राजी है उसे हराने का कोई भी उपाय नहीं। जो अकड़ेगा वह टूटेगा; जो सहजता से झुक जाता है उसे कोई भी तोड़ नहीं सकता। लेकिन हमारी सारी शिक्षा, समाज, संस्कृति अकड़ना सिखाती है। परिणाम है कि हम सब टूटे हुए हैं; हम सब खंडहरों की भांति हैं। हम सिर्फ अस्थिपंजर हैं--हारे हुए, थके हुए, टूटे हुए। हर आदमी की जिंदगी एक उदास कहानी है। और हर आदमी से अंत में पूछें तो वह कहेगा, सिर्फ थक गया हूं, टूट गया हूं, कुछ पाया नहीं। मगर कोई नहीं पूछता कि इसमें भ्रांति कहां हो गई?

इसमें भ्रांति वहीं हो गई जहां हमने जीतना सिखाया; लड़ना सिखाया; शक्ति की धारणा दे दी। हम शक्ति को पूजते हैं। हमने शक्ति की प्रतिमाएं बना रखी हैं; शक्ति के भक्त हैं। और सब तरफ हमारी पूजा शक्ति की है। जहां भी शक्ति हो वहां हमारा सिर झुकता है। क्योंकि वही हमारी आकांक्षा है। और शक्ति की इतनी पूजा के बाद भी हम पहुंचते कहां हैं? कोई विजय नहीं। लाओत्से सूत्र दे रहा है विजय का।

"संसार का कोमलतम तत्व कठिनतम के भीतर से गुजर जाता है। और जो रूपरहित है वह उसमें प्रवेश कर जाता है जो दरारहीन है। इसके जरिए मैं जानता हूं कि अक्रियता का लाभ क्या है। शब्दों के बिना उपदेश और अक्रियता का जो लाभ है वह इस पूरे ब्रह्मांड में अतुलनीय है।"

एक तो उपदेश है जो शब्द से दिया जा सके। लेकिन शब्द से जो भी दिया जा सकता है वह बहुत मूल्यवान नहीं है। उसका ज्यादा से ज्यादा मूल्य इतना ही हो सकता है कि वह आपको निशब्द में ले जाने के लिए इंगित करे, इशारा करे चुप हो जाने के लिए। यह बड़ी उलटी बात है। शब्द का इतना ही मूल्य है कि आपको निशब्द में ले जाए, और बोलने की इतनी ही सार्थकता है कि आपको मौन होने के लिए राजी कर ले। इससे ज्यादा शब्द का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन शब्द ही अगर आपको पकड़ जाए और निशब्द में न ले जाए, और वाणी से ही आप सम्मोहित हो जाएं, शास्त्र ही आपके सिर पर बैठ जाए, निर्विचार और मौन में जाने का रास्ता उससे न खुले, तो शब्द आपका शत्रु सिद्ध हुआ। इस जगत में बहुत कम लोग हैं जो शब्द को मित्र बना पाते हैं। अधिक लोगों के लिए शब्द शत्रु सिद्ध होता है, और उनके हाथ में राख ही रहती है।

मैंने सुना है कि अपनी वृद्धावस्था में मुल्ला नसरुद्दीन को गांव का जे पी, जस्टिस ऑफ पीस बना दिया गया। वह न्यायाधीश हो गया। और एक दिन उसकी अदालत में एक मामला आया। एक लकड़हारे ने--जो रोज जंगल से लकड़ियां काटता था और गांव में बेचता था--आकर नसरुद्दीन को कहा कि मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूं।

उसके साथ एक और आदमी भी था जो बड़ा शक्तिशाली मालूम पड़ता था और खूंखार भी मालूम पड़ता था। उस लकड़हारे ने कहा कि मैं कल दिन भर जंगल में लकड़ियां काटा हूं। और यह जो आदमी है, यह सिर्फ एक चट्टान पर, मैं जहां लकड़ियां काट रहा था, वहां बैठा रहा। और जब भी मैं कुल्हाड़ी मारता था वृक्ष में तो यह जोर से कहता था--हूं! जैसा कि मारने वाले को कहना चाहिए। और अब यह कहता है कि आधे दाम मेरे हैं, क्योंकि आधा काम मैंने किया है। लकड़हारे ने कहा कि यह बात सच है कि यह रहा पूरे दिन वहां और जितनी बार भी मैंने कुल्हाड़ी वृक्ष पर मारी इसने जोर से हूं कहा।

नसरुद्दीन ने कहा कि रुपए कहां हैं जो लकड़ी बेचने से मिले? उस लकड़हारे ने रुपए नसरुद्दीन के हाथ में दे दिए। उसने एक-एक रुपया जोर से फर्श पर गिराया--आवाज, खन्न की आवाज, फिर खन्न की आवाज। और एक-एक रुपए को गिरा कर वह लकड़हारे को देता गया। जब सारे रुपए दे दिए तो उसने उस आदमी से कहा कि तुम्हारा पुरस्कार तुम्हें मिल गया; तुमने हूं की थी, खन्न की आवाज तुमने सुन ली; संपत्ति आधी-आधी बांट दी गई।

शास्त्र को ही जो सब समझ कर बैठ रहेंगे, आखिर में उन्हें शब्द से ज्यादा कुछ भी मिल सकता नहीं। और रुपए की आवाज से कोई रुपया नहीं मिलता है। सत्य की आवाज से भी सत्य नहीं मिलता है।

उपदेश शब्द से दिया जा सकता है, लेकिन उपदेश शब्द के लिए कभी नहीं दिया जाता; दिया तो जाता है निशब्द के लिए। लेकिन चूंकि हम निशब्द को नहीं समझ पाते और मौन को समझना बहुत कठिन है, इसलिए शब्द का ही उपयोग करना होता है। लेकिन लाओत्से कहता है कि ऐसा भी उपदेश है जो मौन में दिया जाता है,

और वही उपदेश हृदय को बदलता है। लेकिन मौन की भाषा समझ में आए, तभी वह उपदेश दिया जा सकता है।

जैसे भाषाएं हैं--अब मैं हिंदी बोल रहा हूं; आपको हिंदी समझ में आती हो तो ही मैं जो बोल रहा हूं वह समझ में आ पाएगा। अगर मैं चीनी भाषा बोल रहा हूं और आपको समझ में नहीं आती, तो बात समाप्त हो गई। जैसे भाषाएं हैं शब्द की, वैसे ही मौन की भाषा भी सीखनी पड़ती है। मौन की भाषा परम भाषा है। और जब तक हम उस भाषा को, उस संवाद को न सीख लें, तब तक कोई लाओत्से, कोई बुद्ध, कोई जीसस देना भी चाहे संदेश, तो भी मौन में नहीं दे सकता। इसलिए लाओत्से को भी बोलना पड़ा। लेकिन वह दुखी है।

सभी जानने वाले बोलने के कारण दुखी हैं। क्योंकि उन्हें पूरा पता है, साफ है, कि जो वे बोल रहे हैं इससे कुछ हल होने का नहीं है। और डर यह भी है कि जो वे बोल रहे हैं वह कहीं लोगों के लिए शत्रु सिद्ध न हो जाए। खतरे बहुत हैं। शब्द मनोरंजन बन सकता है। और तब शब्द सुनने का एक नशा, एक व्यसन हो जा सकता है। शब्द मूर्च्छा बन सकता है। और शब्द एक तरह की मतांधता पैदा कर सकता है। और शब्द ज्ञान की भ्रांति दे सकता है। शब्द खतरनाक है। बिना जाने ऐसा लग सकता है कि मैं जानता हूं। शब्दों से सिर भर जाए तो भी आपका हृदय तो रिक्त ही रह जाता है। यह भरापन कहीं कोई समझ ले कि मेरी आत्मा का भरापन हो गया, तो भटकाव शुरू हो गया।

तो जानने वाले डरते रहे हैं बोलने से। बोलना पड़ा है। बोलना पड़ा है आपकी वजह से। क्योंकि न बोले भी कहा जा सकता है, लेकिन उसके लिए फिर आपको तैयार होना पड़ेगा। न बोले की अवस्था आपके भीतर हो, मौन आपके भीतर हो, तो गुरु मौन से भी कह दे सकता है। और जो मौन से कहा जाता है वही आपके प्राणों के प्राण तक प्रवेश करता है। शब्द कानों पर चोट कर पाते हैं, मस्तिष्क के तंतुओं को हिला जाते हैं, लेकिन जीवन की वीणा अछूती रह जाती है। जीवन की वीणा तो सिर्फ मौन से ही स्पर्शित होती है। जो भी कहने योग्य है वह मौन से कहा जा सकता है।

यह क्यों मौन पर जोर दे रहा है? लाओत्से का जोर सदा इस बात पर है कि जो सूक्ष्म है वही शक्तिशाली है। शब्द तो स्थूल हैं, वे सूक्ष्म नहीं; मौन सूक्ष्म है। और आप उस गहन सूक्ष्मता में हैं--आपका अस्तित्व, आपकी आत्मा--जहां तक कोई स्थूल पहुंच नहीं पाएगा। उस आत्मा में पहुंचने के लिए कोई द्वार भी तो नहीं है। द्वार होता तो स्थूल भी पहुंच जाता। वहां कोई दरार भी नहीं है। आपके बीइंग में, आपके अस्तित्व में कोई दरार भी नहीं है।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ, लीबनित्स। लीबनित्स ने एक ख्याल दिया है, वह समझने जैसा है। लीबनित्स कहता है कि हर आदमी द्वाररहित एक बंद मोनोड है। मोनोड उसका शब्द है। मोनोड का अर्थ है, जिसमें कोई खिड़की-दरवाजा नहीं, ऐसी एक बंद चीज। और इस बंद मोनोड में कोई प्रवेश नहीं हो सकता। आपके आस-पास कोई घूम सकता है, आपके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। आप भी दूसरे लोगों के आस-पास घूम सकते हैं, लेकिन भीतर प्रवेश नहीं कर सकते।

उसकी बात में थोड़ी सचाई है। आप मोनोड हैं, एक बंद, जहां पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। सब उपाय बस बाहर ही टटोल कर समाप्त हो जाते हैं।

लेकिन लाओत्से कहता है कि जहां कोई दरार भी नहीं है, ऐसे अस्तित्व में भी पहुंचना हो सकता है। पर जहां कोई दरार नहीं, ऐसे अस्तित्व में पहुंचना हो तो फिर स्थूल माध्यम काम के नहीं हैं। वहां शब्द नहीं पहुंच सकता। मैं कितना ही पुकारूं, वह पुकार आप तक नहीं पहुंच सकती। सब पुकार आपके बाहर ही गिर जाएगी।

लेकिन अगर मैं शून्य में पुकारूं, अगर मौन में पुकारूं, कोई शब्द न हो, सिर्फ पुकार हो मेरे प्राण की, तो आपके भीतर प्रवेश हो सकता है।

एक तो हम परिचित हैं जगत से; वहां भी हम अगर देखें तो सूक्ष्म प्रवेश कर जाता है। स्थूल, जितना स्थूल हो, उतना ही किसी दूसरी चीज में प्रवेश मुश्किल होता है। मनुष्य के अंतर-जगत में भी यही सच है। अगर हम कुछ करें तो भीतर तक करना नहीं पहुंचता।

अगर बुद्ध जैसे व्यक्ति दूसरे लोगों के भीतर प्रवेश कर सके तो इस करने में उनका कुछ भी करने जैसा नहीं था। बुद्ध बैठे हैं मौन; सिर्फ हैं। उस अवस्था में, अगर आप ग्राहक हों, राजी हों, स्वीकार करते हों, श्रद्धावान हों, और आपके भीतर मन की चहल-पहल न हो, तो बुद्ध आप में प्रवेश कर जाएंगे। इस प्रवेश करने में वे कुछ करेंगे नहीं; कोई कृत्य नहीं होगा। उन्हें कुछ करना नहीं होगा। क्योंकि करना तो बहुत गहरे नहीं जा सकता। वे न करने की अवस्था में ही रहेंगे। अगर आप भी चुप हो जाएं और न करने की अवस्था में आ जाएं तो इन दोनों अस्तित्वों का मिलन हो जाए। करना सब ऊपर-ऊपर है। भीतर का गहरा अस्तित्व तो अक्रिया है, इन-एक्टिविटी है।

गुरु शिष्य में प्रवेश करता है। भाषा की भूल है, क्योंकि कहना पड़ता है, प्रवेश करता है। लगता है कि कुछ करना पड़ता होगा। ज्यादा उचित हो कहना कि गुरु, जब भी कोई शिष्यत्व के लिए राजी होता है, तो प्रविष्ट होता है; करता नहीं है। बह जाता है सहज; उस बहने में कहीं भी कोई क्रिया नहीं है। और जितनी कम क्रिया होगी उतने गहरे जाएगा। अगर बिल्कुल क्रिया न होगी तो अंतस्तल के आखिरी छोर को भी छू लेगा।

"संसार का कोमलतम तत्व कठिनतम के भीतर से गुजर जाता है।"

और संसार में कोमलतम क्या है? आपके अनुभव में क्या है कोमलतम? उस कोमलतम तत्व को ही बढ़ाए जाना है। इसके अतिरिक्त और कोई साधना नहीं है। कठोर को छोड़ना है, क्योंकि वह स्थूल है। क्रोध अपने आप में बुरा नहीं है; वह कठोर है, इसलिए स्थूल है। घृणा अपने आप में बुरी नहीं है, पर स्थूल है, कठोर है। ईर्ष्या अपने आप में बुरी नहीं है, पर कठोर। लोभ, काम कठोर हैं। जो-जो कठोर है वह आपको वंचित रख रहा है। आप ऊपर-ऊपर भटक रहे हैं। तो जो भी आपके जीवन में कोमल हो उसको संरक्षित करें, उसे पोषित करें, उसे बढ़ाएं।

और ध्यान रहे, ऊर्जा का एक नियम है। आपके पास एक ऊर्जा की मात्रा है। आप उसे कठोरता में भी बदल सकते हैं और कोमलता में भी। मात्रा वही है। जो ऊर्जा क्रोध बनती है वही ऊर्जा प्रेम बन सकती है। लेकिन प्रेम ऊर्जा का कोमल रूप है और क्रोध ऊर्जा का कठोर रूप है।

इसे हम ऐसा समझें कि जैसे मैंने कहा पानी है। पानी कोमल है। लेकिन पानी जम जाए तो बर्फ हो जाता है, और बड़ा कठोर हो जाता है, पत्थर हो जाता है। पानी को हम भाप बना दें, और भी कोमल हो जाता है। पानी में थोड़ा-बहुत प्रतिरोध भी होगा, भाप में उतना प्रतिरोध भी नहीं रह जाता। तो पानी के तीन रूप हुए। ऊर्जा एक ही है, पदार्थ एक ही है, लेकिन तीन अवस्थाएं हैं। एक तो पत्थर की तरह कठोर हो सकता है। फिर द्रवीय हो जाता है, बह सकता है; पानी हो जाता है, कोमल हो जाता है। और भी एक घटना है कि भाप बन जाता है। और जब वाष्पीभूत हो जाता है जल तो बड़ी क्रांतिकारी घटना घटती है। पानी का स्वभाव नीचे की तरफ बहना है, लेकिन भाप का स्वभाव ऊपर की तरफ बहना है। जितना कोमल हो जाता है उतना ही ऊर्ध्वगमन शुरू हो जाता है। क्योंकि ऊंचाई पर जाने के लिए सूक्ष्म होना जरूरी है। इतना सूक्ष्म होना जरूरी है कि सब चीजें भारी हो जाएं, और आप सब चीजों से कम भारी हो जाएं, तभी ऊपर उठ सकेंगे।

इसे थोड़ा समझ लें। अगर आपका भार बहुत है तो परमात्मा तक पहुंचना असंभव है। निर्भार होना जरूरी है, ऊर्ध्वगमन के लिए वेटलेस होना जरूरी है। पानी में भी वजन है। और पानी बहता है जरूर और सूक्ष्म रूप से लड़ता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन लड़ता है। तभी तो आखिर में चट्टान को तोड़ देता है। लेकिन भाप लड़ती ही नहीं, उसका संघर्ष खो गया। उसका कोई प्रतिरोध नहीं है। वह चुपचाप लीन हो जाती है आकाश में, ऊपर उठ जाती है।

जैसा भौतिक शास्त्र कहता है कि प्रत्येक पदार्थ की तीन अवस्थाएं हैं, प्रत्येक चित्त के मनोवेग की भी वैसी ही तीन अवस्थाएं हैं। क्रोध है, वह जमा हुआ है। घृणा, वह जमी हुई पत्थर की चट्टान है। क्रोध को अगर पिघला दें तो वह पानी की तरह हो जाएगा। जिसको हम इस जगत में प्रेम कहते हैं वह क्रोध का पिघला हुआ रूप है। ऊर्जा वही है। और अगर यह प्रेम वाष्पीभूत हो जाए तो प्रार्थना हो जाती है; तब यह आकाश की तरफ उठने लगती है। और इन तीनों के भीतर कोई तीन चीजें नहीं हैं, एक ही चीज है।

तो अगर आप कठोर हैं तो आप पत्थर की तरह रह जाएंगे। अगर आप थोड़े से द्रवीय हैं, बहते हैं, कोमल हैं, तो पानी की तरह हो जाएंगे। और अगर आप बिल्कुल ही सूक्ष्म हो गए हैं और आपने सारी कठोरता छोड़ दी, सारा प्रतिरोध छोड़ दिया है, आप शून्य की भांति हो गए हैं, तो आप वाष्पीभूत हो जाएंगे, आप आकाश में उठने लगेंगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर निरंतर यह जांच करते रहना जरूरी है कि वह ऊर्जा का किस भांति उपयोग कर रहा है। और ध्यान रहे, ऊर्जा की एक मात्रा है आपके भीतर, अगर आप उसका क्रोध बना लें पूरा तो वह पूरा क्रोध बन जाएगी; उसका पूरा प्रेम बना लें तो वह पूरा प्रेम बन जाएगी; उसे चाहें तो पूरी प्रार्थना बना लें तो वह प्रार्थना बन जाएगी। संसार का कोमलतम तत्व प्रार्थना है।

लेकिन प्रार्थना से तो बहुत कम लोगों का परिचय है--उनका भी नहीं, जो मंदिरों में, गिरजाघरों में प्रार्थनाएं कर रहे हैं। क्योंकि प्रार्थना कोई करने की बात नहीं है। अगर आप कर रहे हैं तो फिर अभी स्थूल बात है। प्रार्थना तो चित्त की एक भाव-दशा है। आदमी प्रार्थनापूर्ण हो सकता है; प्रार्थना करने की कोई बात नहीं है। करना तो एक रिचुअल है, बच्चों का खेल है। होना एक क्रांति है। आप प्रेयरफुल हो सकते हैं। तब आपका उठना, बैठना, श्वास लेना, सभी प्रार्थनापूर्ण हो जाएगा। तब आप जो भी करेंगे वह प्रार्थना होगी। तब प्रार्थना अलग से करने की कोई बात नहीं रह जाएगी। अलग से करनी पड़ती है हमें, क्योंकि हमें प्रार्थना का कोई पता नहीं है। हमने और सारे करने के क्रम में प्रार्थना को भी जोड़ रखा है। वह भी एक काम है। जैसे आप दफ्तर जाते हैं, भोजन करते हैं, व्यवसाय करते हैं, वैसे आप प्रार्थना भी करते हैं। लेकिन प्रार्थना का करने से कोई भी संबंध नहीं है। आप प्रार्थनापूर्ण हो सकते हैं। तब रास्ते से गुजरते वक्त भी आप प्रार्थनापूर्ण होंगे। लेकिन प्रार्थना से परिचय दूर की बात है। कभी-कभी कोई भक्त, कोई मीरा, कोई राबिया प्रार्थना कर पाती है। इस कोमल तत्व का हमें कोई पता नहीं है।

इससे जो नीचे की स्थिति है वह प्रेम है। हमें उसका भी ठीक-ठीक पता नहीं है। प्रेम मध्य की अवस्था है, जल की भांति। और ध्यान रहे, बर्फ सीधी भाप नहीं बन सकता। कोई उपाय नहीं है। बर्फ इसके पहले कि भाप बने उसे पानी बनना पड़ेगा। क्षण भर को ही सही, लेकिन बर्फ सीधी भाप नहीं बन सकता। कोई छलांग नहीं लग सकती है। उसे पहले पानी बनना पड़ेगा। पानी बन कर ही भाप की तरफ जाने का रास्ता है।

आप जहां हैं, वहां से पहले प्रेम की तरफ बहना होगा। साधारण जीवन में प्रेम कोमलतम तत्व है, असाधारण जीवन में प्रार्थना कोमलतम तत्व है। साधारण मनुष्य के अनुभव में कभी-कभी प्रेम का झोंका आता है, तब उसके भीतर सब कोमल होता है। यह झोंका किसी भी तरह आ सकता है--मित्रता में आ सकता है, पत्नी

में आ सकता है, पति में आ सकता है, बच्चे में आ सकता है, एक फूल को देख कर आ सकता है--एक झोंका, जहां आप क्षण भर को तरल हो जाते हैं, बह जाते हैं। लेकिन क्षण भर को ही शायद। फिर आपकी पुरानी कठोरता और पुरानी आदत पकड़ लेगी।

एक सुंदर फूल देख कर क्षण भर को आपका हृदय पिघलता है, लेकिन तत्क्षण आप फूल तोड़ लेते हैं। सच में ही अगर फूल के प्रति प्रेम पैदा हुआ था तो तोड़ना असंभव हो जाता। सोच भी नहीं सकते थे तोड़ने की। प्रेम तोड़ने की बात सोच भी नहीं सकता। लेकिन फूल दिखा, एक क्षण को जरा सी हवा का झोंका आता है, और इसके पहले कि आप सचेत हों कि भीतर कुछ पिघला, आप फूल को तोड़ कर फिर कठोर हो जाते हैं। किसी के प्रति प्रेम पैदा हुआ, और प्रेम का झोंका आ भी नहीं पाया कि आप मालिक होना शुरू हो जाते हैं। वह फूल तोड़ने में आप यही कर रहे हैं, पजेस कर रहे हैं। वह फूल वहां खुले आकाश में हवाओं में नाच रहा था, वह आपकी बर्दाश्त के बाहर हो गया। जब तक आप अपनी मुट्ठी में उसको न ले लें तब तक आपको चैन नहीं। और मुट्ठी में आपके फूल मर जाएगा। मर ही गया, जैसे ही मुट्ठी में आया। कोई भी फूल मुट्ठी में जिंदा नहीं रहते।

किसी से आपका प्रेम हो तो तत्क्षण आप मालिक होने की कोशिश करते हैं। पहला काम जो आपके मन में उठता है वह यह कि कैसे मालिक हो जाऊं, कैसे कब्जा कर लूं, कैसे पजेस कर लूं। जैसे ही पजेसन का, मालकियत का ख्याल आया, वह जो हवा का झोंका आया था, जो आपको पिघला सकता था, वह खो गया। आप फिर कठोर हो गए। जैसे ही प्रेम पति बनना चाहता है, प्रेम खो गया। जैसे ही प्रेम पत्नी बनना चाहता है, प्रेम खो गया।

छोटा बच्चा आपके घर में पैदा हो, वह पिघला सकता है। बच्चे अनूठे हैं। क्योंकि इस पूरे मनुष्य के जगत के विकास में बच्चे से ज्यादा कोमल खोजना कुछ भी मुश्किल है। और आदमी के बच्चे सबसे ज्यादा असहाय और सबसे ज्यादा कोमल हैं। जानवरों के बच्चे इतने असहाय नहीं हैं; मां-बाप न भी हों तो बच्चे बच सकते हैं। आदमी का बच्चा तो बच नहीं सकता। जानवरों के बच्चे पैदा हो जाने के बाद एक अर्थ में काम में लग जाते हैं। उन्हें कोई शिक्षण देने की जरूरत नहीं। अपना भोजन खोज लेंगे; अपने जीवन की सुरक्षा करने लग जाएंगे। इसीलिए जानवर परिवार बनाने में असमर्थ रहे। कोई जानवर परिवार नहीं बना पाया; परिवार की कोई जरूरत नहीं। आदमी का बच्चा इस पृथ्वी पर सबसे ज्यादा कोमल और असहाय है। सोच भी नहीं सकते कि बच्चा पैदा हो तो अपने आप बच भी सकता है। कोई बचने का उपाय नहीं है।

इसलिए बच्चा एक परिवार में मौका लाता है कि आप सब पिघल सकते हैं। लेकिन बच्चे के भी हम मालिक हो जाते हैं--बाप हो जाते हैं, मां हो जाते हैं। वह जो एक अनूठी घटना घर में घटी थी, जिसके आस-पास पूरा परिवार पिघल जाता और बह जाता और पानी हो जाता, वह हम चूक जाते हैं। बच्चे की मालकियत शुरू हो जाती है। बच्चे को ढालना हम शुरू कर देते हैं। अच्छा तो यह होता कि बच्चा हमें पिघलाता, बजाय हम उसे ढालते। और हम बच्चे को अपना न मानते। वह हमारा है भी नहीं। हम सिर्फ उपकरण हैं। हमारे भीतर से जगत ने एक और हाथ फैलाया। हमारे बहाने, हमारे निमित्त एक फूल और खिला जीवन का। हम सिर्फ निमित्त हैं, उससे ज्यादा नहीं। लेकिन निमित्त होने में हमें सुख नहीं मालूम पड़ेगा। हम तत्क्षण मालिक हो जाते हैं--मेरा बेटा! और इस मेरे के आग्रह में ही बेटा मर जाता है। फिर हम लाश ढोते हैं।

जहां-जहां प्रेम की थोड़ी सी झलक आती है वहीं हमारी पुरानी कठोरता जकड़ लेती है। इसके प्रति सावधान होना जरूरी है। और जब भी कोई झलक प्रेम की आए तो रोकना अपनी पुरानी आदत को, थोड़ी देर ठहरना फूल को तोड़ने से, थोड़ी देर रुकना मालिक बनने से, थोड़ी देर पिता और मां बनने से अपने को

सम्हालना, और सिर्फ प्रेम को बहने देना, बिना किसी शर्त, प्रेम के प्रत्युत्तर के बिना किसी मांग के, सिर्फ प्रेम को बहने देना, तो शायद आपको पहली दफे अनुभव होगा कि प्रेम क्या है, और क्यों प्रेम इतना कोमल है।

और आप प्रेम बन जाएं तो ही प्रार्थना बन सकते हैं। बिना प्रेम बने जगत में कोई भी प्रार्थना नहीं बन सकता। और अभी आप प्रेम भी नहीं बन सके हैं। और हम जिसे प्रेम कहते हैं वह अक्सर धोखा है। कुछ और है वह। कामवासना हो सकती है; जीवन का अकेलापन हो सकता है; संगी-साथी की इच्छा हो सकती है; लोभ हो सकता है; भय हो सकता है। हमारे प्रेम के पीछे न मालूम कितनी चीजें छिपी हो सकती हैं।

थोड़ा आप अपने प्रेम का निरीक्षण कर लें कि आपके प्रेम में क्या छिपा है! अकेले होने का डर है। तो किसी न किसी को आप प्रेम करते हैं, ताकि कोई संगी-साथी हो। शरीर की वासना है। क्योंकि शरीर निरंतर काम-ऊर्जा को पैदा कर रहा है; उसे किसी तरह निष्कासन चाहिए। तो आप निष्कासन के लिए एक स्त्री को या एक पुरुष को खोज लेते हैं। वह आपकी शारीरिक जरूरत है। और जिससे भी हमारी जरूरत पूरी होती है उसकी हम थोड़ी फिक्र लेते हैं। इसको हम प्रेम कहते हैं। स्वभावतः, जिससे हमारी जरूरत पूरी होती है उस पर हम निर्भर हो जाते हैं। उसके बिना जरूरत पूरी नहीं हो सकेगी। इस निर्भरता को हम प्रेम कहते हैं। बीमारी है, बुढ़ापा है, कष्ट के क्षण हैं, कोई तीमार, कोई केयर, कोई हिफाजत करने के लिए चाहिए।

लोग अविवाहित रह जाते हैं, लेकिन चालीस-पैंतालीस साल के आस-पास उनको चिंता जोर से पकड़ने लगती है। क्योंकि जैसे-जैसे बुढ़ापा करीब आता है उन्हें लगता है कि जवानी तो बिना विवाह के गुजारी भी जा सकती है, लेकिन वृद्धावस्था में बहुत अकेलापन हो जाएगा। तब कोई संगी-साथी चाहिए, नहीं तो बिल्कुल अकेले पड़ जाएंगे, बिल्कुल कट जाएंगे। और दुनिया तो अपनी राह पर चली जाती है। दुनिया को तो बच्चे सम्हाल लेते हैं, नए जवान सम्हाल लेंगे; राग-रंग उनका होगा। बूढ़ा आदमी बिल्कुल कट जाएगा और अकेला हो जाएगा। अकेलेपन का डर लोगों को विवाह में ले जाता है। प्रेम के कारण लोग विवाह करते हों, ऐसा नहीं है; अकेले नहीं रह सकते। और फिर इस सबको प्रेम का नाम दे देते हैं। बने रहते हैं पत्थर, जमे, कठोर। उसमें ही--उस कठोरता में ही--थोड़ा सा आवरण प्रेम का, थोड़ा सा अभिनय, थोड़ी सी कुशलता प्रेम की सीख लेते हैं।

लोगों को देखें! पिता कहता है अपने बेटे से कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। लेकिन दिखता चौबीस घंटे कठोर है। पति कहता है पत्नी से कि मेरा प्रेम है, लेकिन उस प्रेम का कोई पता नहीं चलता। और अगर हमें प्रेम का ही अनुभव न हो तो प्रार्थना का अनुभव कभी भी नहीं हो सकता। इसके पहले कि किसी मंदिर में आपको परमात्मा मिले, आपका घर कम से कम प्रेम का मंदिर बन जाना जरूरी है। और घर जब तक प्रेम का मंदिर न हो तब तक कोई मंदिर प्रार्थना का मंदिर नहीं हो सकता।

"संसार का कोमलतम तत्व कठिनतम के भीतर से गुजर जाता है।"

और अगर आपको प्रेम आ जाए तो आप डरना मत कि आप कोमल हो जाएंगे, पराजित हो जाएंगे, हार जाएंगे। शुरू में तो ऐसा ही दिखेगा। शायद इसीलिए हम इतने कठोर हो गए हैं और प्रेम से डरते हैं। यह जान कर हैरानी होगी कि अधिक लोग प्रेम से भयभीत हैं। क्योंकि जैसे ही वे प्रेम की दुनिया में उतरते हैं वैसे ही पिघलना पड़ता है। और उनकी कठोरता, उनकी अकड़, उनका अहंकार, उनकी शक्ति की धारणा सब टूटती है; इमेज, पूरी की पूरी प्रतिमा गिरती है।

लोग प्रेम से भयभीत हैं। और इसीलिए सिर्फ ऊपर-ऊपर खेलते हैं। गहरे पानी में जाने में डर है। आप अपने से पूछना कि आप जीवन में प्रेम से डरे तो नहीं रहे? और जब भी आपने किसी को प्रेम किया है तो आपने सुरक्षा कर ली है या नहीं? आप उतने ही दूर तक जाते हैं जहां से वापस लौटना आसान हो। उतने गहरे जाने से

आप भयभीत हैं जहां से कि वापस लौटना मुश्किल हो जाए। और प्रेम का तो मतलब यह है कि वहां से लौटना हो ही न सके; खो ही जाएंगे। मेरे अनुभव में सैकड़ों लोग हैं जिनके जीवन की एक ही पीड़ा है कि वे किसी को प्रेम नहीं कर पाए। और कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है, जिम्मेवार वे खुद हैं। कुछ कारण हैं जिनकी वजह से वे प्रेम नहीं कर पाए। और बड़े से बड़ा कारण तो यह है कि प्रेम में आपको झुकना पड़ेगा। और झुकना लज्जा की बात है। झुकाने में रस है। हम झुकाना चाहते हैं किसी को, झुकना नहीं चाहते। और फिर अगर हम इस भांति किसी को झुका भी लेते हैं तो शत्रुता ही पैदा होती है, प्रेम पैदा नहीं होता। क्योंकि जिसको हम झुका लेते हैं वह भी झुकाना ही चाहता था। झुकने को कोई भी राजी नहीं है। यह जो अकड़ है हमारी वह हमारे जीवन का कैंसर है, रोग है भारी। उसकी वजह से कोई प्रेम में नहीं उतर पाता।

और जब प्रेम में ही नहीं उतर पाते तो प्रार्थना बिल्कुल असंभव है। और मैं यह भी देखता हूं कि जो लोग प्रेम में नहीं उतर पाते अक्सर मंदिरों में पाए जाते हैं। क्योंकि वे यहां नहीं झुक पाए, किसी आदमी के सामने नहीं झुक पाए, तो वे सोचते हैं कि चलो, परमात्मा के सामने तो झुका जा सकता है। लेकिन आपको झुकने का अनुभव ही नहीं है। पत्थर की मूर्ति के सामने ज्यादा कठिनाई नहीं होती झुकने में, क्योंकि वहां कोई दूसरा है नहीं। और मंदिर में आप अकेले हैं। लेकिन अगर वह मूर्ति भी जीवित हो तो झुकना मुश्किल हो जाए। अगर आप झुक रहे हों, और बीच में आप देख लें कि मूर्ति की आंखें गौर से देख रही हैं, तो आप सीधे खड़े हो जाएंगे वापस; आप फिर पूरे भी नहीं झुक पाएंगे। वहां कोई नहीं चाहिए। इसलिए आदमी ने पत्थर के भगवान खड़े किए हैं। वह आदमी की होशियारी का हिस्सा है; उसकी चालाकी है।

झुकना एक मधुर अनुभव है। वह हम कहीं भी नहीं कर पाए तो हम जाकर एकांत में एक खेल कर रहे हैं। एक पत्थर की मूर्ति के सामने झुक रहे हैं। उस झूठे झुकने में भी थोड़ा सा रस तो आता है, झूठे झुकने में भी थोड़ा सा रस तो आता है। अगर आप जाकर मंदिर में चारों हाथ-पैर छोड़ कर साष्टांग दंडवत में पड़ गए हैं मंदिर के फर्श पर, अच्छा तो लगेगा; इस झूठे झुकने में भी अच्छा लगेगा। क्योंकि झुकना इतनी बड़ी घटना है। और अगर ऐसे ही आप किसी जीवित मनुष्य के सामने झुक जाएं तो प्रेम है। और प्रेम से गुजर कर जो पहुंचे, वही प्रार्थना तक पहुंच सकता है। अन्यथा उसकी प्रार्थना झूठी होगी। मेरी प्रार्थना की शर्त ही यही है कि प्रार्थना तभी सच्ची हो सकती है जब उसके पहले प्रेम का कोई वास्तविक अनुभव हो। प्रार्थना सब्स्टीट्यूट नहीं है, वह आपके प्रेम की परिपूरक नहीं है कि आप आदमी से प्रेम करने से रुक गए हों, और परमात्मा से प्रेम करना... ।

अहंकारी व्यक्ति आदमी से प्रेम करना नहीं चाहता, वह परमात्मा से प्रेम करना चाहता है। परमात्मा के साथ प्रेम करने में कई सुविधाएं हैं। एक तो वन वे ट्रैफिक है; दूसरी तरफ से कुछ आता-जाता नहीं है। आप ही बोलते हैं, आप ही जवाब देते हैं। आपकी अपनी मौज है। और दूसरा व्यक्ति किसी तरह की अड़चनें खड़ी नहीं करता। दूसरा वहां कोई है नहीं। फिर परमात्मा आप चुनते हैं; परमात्मा आपका ही होता है। हिंदू का अपना है, मुसलमान का अपना है, जैन का अपना है। वह आपका ही चुनाव है। हिंदू को कहें कि मस्जिद में झुक जाए, झुकना मुश्किल हो जाता है। हिंदू अपने परमात्मा के सामने झुक सकता है, जिसको उसने ही निर्मित किया है, जो उसके ही अहंकार का फैलाव है, मस्जिद में नहीं झुक सकता। मुसलमान को मंदिर में झुकने की कोई संभावना नहीं है।

तो जिस परमात्मा को आपने निर्मित किया है और जिसको आपने अपनी धारणाओं से बनाया और जो आपके ही अहंकार का विस्तार है, उसके सामने झुकने का क्या मतलब होता है? उसके सामने झुकने का मतलब है, जैसे आप दर्पण में अपनी तस्वीर देखें और झुक जाएं। इतना ही मतलब है। वह अहंकार की ही घूम कर पूजा

है; वह अपनी ही पूजा है। मंदिरों में लोग अपने ही सामने झुके हुए हैं। जीवित व्यक्ति के सामने झुकना पीड़ादायी है। अहंकार टूटता है; आप दीन हो जाते हैं। तो लोग प्रेम से बचते हैं और प्रार्थना की तरफ जाते हैं।

पर मैं आपसे कहता हूं, जो प्रेम से बचा वह प्रार्थना की तरफ कभी जा ही नहीं सकता। आप जहां हैं वहां से प्रेम के सूत्र को पकड़ने की कोशिश करें, ताकि किसी दिन यह संभव हो सके कि प्रार्थना का सूत्र भी आपकी पकड़ में आ जाए। अभी आप जमी हुई बर्फ हैं; पानी बनें, ताकि किसी दिन आप भाप भी बन सकें। और जो पानी बनने की कला है उसी कला का थोड़ा गुणात्मक विस्तार, परिमाणात्मक विस्तार भाप बना देता है। बर्फ पानी बनता है उष्णता को पीकर, और पानी फिर भाप बनेगा और उष्णता को पीकर। लेकिन सूत्र एक ही है कि उष्णता को पीते चले जाएं। जितनी उष्णता को पी लें उतने ही ज्यादा आप वाष्पीभूत होने के करीब पहुंचने लगेंगे।

अहंकार से प्रेम, और प्रेम से प्रार्थना। मैं से तू, और तू से वह। ये तीन सीढ़ियां हैं। और जिस दिन भी आपको ख्याल में आ जाएगा कि प्रेम की सूक्ष्मता कठोर से कठोर वस्तु में प्रवेश कर जाती है और रूपांतरित कर देती है। पर प्रेम के सूत्र बड़े अजीब हैं। प्रेम कहता है, अगर जीतना हो तो जीतने की कोशिश ही मत करना। अगर जीतना हो तो हार ही सूत्र है; हार जाना, और जीत सुनिश्चित है।

"संसार का कोमलतम तत्व कठिनतम के भीतर से गुजर जाता है। और जो रूपरहित है वह उसमें प्रवेश कर जाता है जो दरारहीन है।"

सूक्ष्म से अर्थ है रूपरहित, फॉर्मलेस। बर्फ का एक रूप है, सुनिश्चित रूप है, आकार है। पानी का रूप है, लेकिन सुनिश्चित नहीं है। आकार है, लेकिन तरल है। पानी आग्रही नहीं है कि मेरा यही आकर है। जिस तरह के बर्तन में डालें, वैसा ही आकार ले लेता है। बर्फ का आग्रह है; उसका अपना आकार है, एक सुनिश्चित रूप-रेखा है। उसे तोड़ें तो कष्ट होगा, उसे बदलें तो पीड़ा होगी। वह प्रतिरोध करेगा बदलने का, परिवर्तन का। लेकिन पानी परिवर्तन के लिए राजी है। क्योंकि आप उसको मिटा नहीं सकते, उसका अपना कोई रूप नहीं। तरल रूप है। और भाप निराकार है। उतना भी रूप नहीं जितना पानी का है। और जितने आप अरूप के पास पहुंचने लगते हैं उतना ही आपका विराट में प्रवेश होने लगता है।

"जो रूपरहित है वह उसमें प्रवेश कर जाता है जो दरारहीन है। इसके जरिए मैं जानता हूं कि अक्रियता का क्या लाभ है।"

अरूप की यह क्षमता, सूक्ष्म की यह शक्ति, निर्बल का यह बल, लाओत्से कहता है, इसके आधार पर मैं जानता हूं कि अक्रियता का क्या लाभ है, इन-एक्टिविटी का क्या लाभ है।

हम क्रिया से परिचित हैं। हम करने के लाभ से परिचित हैं। खाली बैठने के लिए हम भयभीत होते हैं और हम सिखाते हैं कि खाली मत बैठना। क्योंकि अगर कोई खाली बैठा हो तो हम कहते हैं, समय व्यर्थ खो रहे हो, कुछ करो। हमने कहावतें गढ़ रखी हैं कि खाली आदमी का मन शैतान का कारखाना हो जाता है। ये उन लोगों ने कहावतें गढ़ी हैं जो सक्रियता के पीछे पागल हैं; जो कहते हैं, कुछ भी होगा तो करने से होगा; करो! और करते रहो! कुछ न करने से कुछ भी करना बेहतर है, लेकिन खाली बैठे तो उसका अर्थ है समय खोया।

पश्चिम इस पागलपन से बुरी तरह पीड़ित है। पश्चिम सक्रियता का पुजारी है। इसलिए एक ही समय में अगर ज्यादा काम कर सको तो और अच्छा है।

मैं एक चित्र देख रहा था एक चित्रकार का। लाओत्से देखता तो बहुत हंसता। चित्र है एक महिला का, जो रेडियो सुन रही है; हाथ में लेकर सलाइयां बनियान बुन रही है; एक पैर से बच्चे के झूले को झुला रही है।

सक्रियता! वह समय का सदुपयोग कर रही है पूरी तरह। रेडियो सुन रही है; बनियान बुन रही है; बच्चे को पैर से झूला झुला रही है। लेकिन इसके भीतर की दशा को हम समझने की कोशिश करें। इसका हृदय बच्चे के प्रति बहुत प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता। एक काम है और उस काम को पैर कर रहा है, यांत्रिक है। क्योंकि इसका कान और इसका मन तो रेडियो से लगा है। यह पति के लिए बनियान बुन रही होगी, यह भी बहुत प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता। हाथ यंत्रवत बुने जा रहे हैं, जैसे कोई मशीन बुन रही हो। इस बनियान में प्रेम नहीं गूंथा जा रहा है। यह बनियान बन जाएगी, क्योंकि हाथ कुशल हैं, वे बुनना जानते हैं। लेकिन इसमें हृदय का कहीं कोई संस्पर्श नहीं है। और इस स्त्री का व्यक्तित्व बंटा हुआ है, जिसको मनोवैज्ञानिक सीजोफ्रेनिया कहते हैं; खंडित है। यह स्त्री अखंड नहीं है। यह जो सुन रही है वह भी पूरी तरह नहीं सुन रही है; यह जो कर रही है वह भी पूरी तरह नहीं कर रही है; यह बच्चे को झुला रही है वह भी पूरी तरह नहीं झुला रही है। सब अधूरा-अधूरा है। और इसके भीतर एक बेचैनी होगी, इसके भीतर चैन नहीं हो सकता। क्योंकि चैन तो केवल उन्हीं लोगों के भीतर होता है जो अखंड हैं।

लाओत्से इस चित्र को देखता तो बहुत हंसता। लेकिन आप इस चित्र को देखेंगे तो आप भी ऐसा करना चाहेंगे। सोचेंगे कि यह तो समय की बहुत बचत है, यह तो समय का ठीक-ठीक उपयोग है, तीन गुना ज्यादा, इकनॉमिक है। क्योंकि अगर ये तीनों काम अलग-अलग करो तो तीन घंटे लगेंगे। यह एक घंटे में तीन काम हुए जा रहे हैं। और हमारी पूरी चेष्टा यही है, हम सब यही कर रहे हैं--कितने कम समय में कितना ज्यादा हम कर सकें! लेकिन बिना इस बात की फिक्र किए कि उस ज्यादा का मूल्य क्या है, उस ज्यादा का फलित क्या है, अंतिम फल क्या है। आदमी बहुत कर लेता है और करने में नष्ट हो जाता है।

पश्चिम में यह स्थिति आखिरी जगह पहुंच गई है, विक्षिप्तता की जगह पहुंच गई है। लोग भागे जा रहे हैं; चौबीस घंटे भाग रहे हैं। कहां जा रहे हैं उसका बहुत साफ नहीं है। लेकिन तेजी से जा रहे हैं इतना निश्चित है। रास्ते पर किसी आदमी की कार को अगर दो मिनट रुकना पड़े तो वह अपने हार्न को बजाना शुरू कर देता है। वह कभी भी नहीं सोचता कि वह दो मिनट बचा कर कहां उपयोग कर रहा है, क्या होने वाला है। घर बैठ कर वह जाकर सोचता है कि अब क्या करें! रास्ते पर वह इतनी तेजी में था कि ऐसा लगता था कि कहीं निश्चित पहुंचना है। और घर पहुंच कर वह कहता है कि अब क्या करें! तब वह सोचता है कि क्लब जाऊं, कि ताश खेलूं, कि शराब पीऊं--समय कैसे काटूं! और यही आदमी सड़क पर एक मिनट इसको देर हो रही हो तो इतना पागल हो जाता है कि ऐसा लगता है कि बहुत इमरजेंसी में है। और घर जाकर वह समय काटने के उपाय खोजता है।

इसे साफ नहीं कि यह क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है। सड़क पर गुजरने का जो आनंद था वह भी चूक गया, क्योंकि वहां जल्दी में था। घर होने का जो आनंद हो सकता है वह भी चूक रहा है, क्योंकि उसे समझ में नहीं आ रहा कि वह क्या करे, और कुछ भी खोज रहा है।

करने की इतनी प्रतिष्ठा एक ही अर्थ रखती है कि हमारे जीवन में होने का कोई मूल्य नहीं है। अपना कोई मूल्य नहीं है; हम क्या करके दिखा सकते हैं, बस उसका मूल्य है। अगर आप एक बड़ा मकान खड़ा कर सकते हैं तो लोग आपका आदर करेंगे। आपका कोई आदर नहीं करता। आप करोड़ रुपए की कमाई कर लेते हैं तो लोग आपका आदर करेंगे। आपका कोई आदर नहीं करता। और आप कभी नहीं पूछते कि लोग मेरा आदर करते हैं? कोई आपका आदर नहीं करता; आपने क्या किया है, उसका आदर है। कोई दूसरा भी यही करता तो उसका आदर होता।

यह हम देखते हैं कि एक आदमी राष्ट्रपति हो, जब तक राष्ट्रपति है, पूरे मुल्क में सम्मान है। जिस दिन राष्ट्रपति नहीं है, कोई भी उसकी चिंता नहीं लेता, अखबार में उसकी खबर नहीं छपती। फिर पता ही नहीं चलता कि वह आदमी है भी, कि नहीं है, कि क्या हुआ। दो दिन पहले उसके हर वचन का मूल्य था; और दो दिन बाद? मूल्य बढ़ना चाहिए, क्योंकि अब वह और भी ज्यादा अनुभवी है, दो दिन का अनुभव और हो गया। लेकिन उसके वचन का कोई मूल्य नहीं रह गया। लेकिन उस आदमी को भी कभी यह ख्याल नहीं आता कि वह प्रतिष्ठा पद की थी, कुर्सी की थी, मेरी नहीं थी। वह भी सोचता है मेरी प्रतिष्ठा थी।

आप जहां भी हैं, जो भी लोग सम्मान आपको दे रहे हैं, वे आपको दे रहे हैं या आप जो कर रहे हैं उसको दे रहे हैं? जो आप कर रहे हैं अगर उसको दे रहे हैं तो आप जीवन गंवा रहे हैं। आपके होने में कुछ गुणवत्ता होनी चाहिए। कि बस आपका होना मूल्यवान हो जाए।

लाओत्से कहता है, जब तक खुद के होने में मूल्य न आ जाए तब तक हमने जीवन को वैसे ही खोया।

यह जो होने का मूल्य है यह आपके करने से पैदा नहीं होगा; यह न करने से पैदा होगा। इसे थोड़ा समझ लें, क्योंकि पूरब की सारी खोज न करने की खोज है। पश्चिम की सारी खोज करने की खोज है। इसलिए कैसे करने में आदमी ज्यादा कुशल हो जाए, कैसे यंत्रों से काम हो जाए, सब चीज यंत्र से हो सके, ताकि ज्यादा कुशलता से हो सके। पश्चिम ने विज्ञान और टेक्नालॉजी को जन्म दिया, क्योंकि काम मूल्यवान है। पूरब ने ध्यान को जन्म दिया, क्योंकि ध्यान बिल्कुल ही बेकाम अवस्था है, उसमें काम कुछ भी नहीं है। ध्यान का मतलब है कुछ ऐसे क्षण जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं, जब आप सिर्फ हैं, सिर्फ होने का रस ले रहे हैं, सिर्फ होने में डूब रहे हैं, होने में तैर रहे हैं, होने में खिल रहे हैं; बस सिर्फ हैं। यह जो न करने की दशा है, इन-एक्टिविटी, अक्रिया है, अकर्म है, इसमें ही आप अपनी आत्मा से परिचित होंगे।

लाओत्से कहता है, कर-करके आप संसार भी पा लें तो भी अपने को न पा सकेंगे; न करके ही अपने को पाया जा सकता है। ध्यान है अक्रिया। और हम करने में इतने ज्यादा लीन हो गए हैं कि अगर हम खाली बैठें तो हम बैठ नहीं सकते; कुछ न कुछ हमें चाहिए। लोग मुझसे आकर पूछते हैं। मैं उनको कहता हूं कि ध्यान का मतलब है, तुम कुछ देर शांति से बैठो, कुछ मत करो। वे कहते हैं, कुछ तो बताएं! कुछ न करें, ऐसे कैसे हो? कोई मंत्र ही दे दें, कोई राम नाम दे दें, कुछ बता दें! कोई सहारा, आलंबन, जो हम करें। वे बात ही चूक रहे हैं। और इसलिए बताने वाले लोग मिल जाएंगे जो कहेंगे, यह मंत्र पढ़ो, यह राम का नाम लो, यह बीज-मंत्र है, इसको दोहराना।

पश्चिम में महेश योगी के विचार को कीमत मिली। मिलने का कुल कारण इतना है कि पश्चिम आब्सेस्ड है कर्म से, कुछ करने को चाहिए। ध्यान भी हो तो कुछ करने को चाहिए। तो महेश योगी मंत्र दे देते हैं कि यह बैठ कर मंत्र को जपो। पश्चिम के आदमी को बात समझ में आती है। कुछ करना हो तो समझ में आता है। पश्चिम के आदमी को न करने की बात बिल्कुल समझ में नहीं आती।

पूरब भी पश्चिम हुआ जा रहा है; वहां भी कोई न करने की बात किसी को समझ में नहीं आती। लोग पूछते हैं, बुद्ध क्या कर रहे थे बोधिवृक्ष के नीचे? कुछ भी नहीं कर रहे थे। कर रहे होते तो आप ही जैसे रह जाते। बुद्ध खाली बैठे थे। मगर हमें लगता है कि अगर खाली बैठे थे तो बेकार समय खो रहे थे। फायदा क्या, लाभ क्या है?

खाली बैठे थे, इसलिए बुद्ध हो गए। जापान में खाली बैठना एक ध्यान का पूरा संप्रदाय है। सिर्फ बैठने को वे कहते हैं झाझेन--जस्ट सिटिंग। और वे कहते हैं, अगर पूरे जीवन में इतना भी आ जाए तो सब कुछ आ गया।

आसान काम नहीं है। कम से कम बीस साल लग जाते हैं। छह-छह घंटा झेन साधक बैठता है। और गुरु का कुल इतना ही आदेश है कि तुम कुछ करो मत, बस बैठे रहो।

पुरानी आदतें जोर पकड़ती हैं; कुछ न कुछ करने का मन होता है। विचार चलते हैं; भाव उठते हैं; कुछ न हो तो कहीं पैर में झुनझुनी आती है, कभी चींटी चलती मालूम पड़ती है। और वैसे आपको कभी नहीं आती और कभी चींटी चढ़ती नहीं मालूम पड़ती। कहीं खुजलाहट उठती है, कहीं गर्दन में तनाव मालूम पड़ता है। यह सब इसलिए पड़ रहा है कि मन कह रहा है कुछ करो, खुजलाओ, कोई रास्ता खोज रहा है। मन आपके लिए कोई निमित्त बना रहा है। वह कह रहा है कि तुम थक गए हो, परेशान हुए जा रहे हो, ऐसे बैठे नहीं चलेगा; तुम कुछ करो। खांसी आने लगेगी, कुछ होने लगेगा। और आप सोचते हैं कि इसमें अब मैं क्या कर सकता हूं! यह तो स्वाभाविक कुछ हो रहा है।

स्वाभाविक नहीं हो रहा है। क्योंकि मैं देखता हूं कि आप, दो घंटे मैं बोल रहा हूं, तो सुनते रहेंगे, खांसी नहीं आएगी। और अगर ध्यान करने के लिए मैं आपसे कहूं कि पांच मिनट शांत बैठ जाएं। आप अचानक पाएंगे, खांसी सता रही है। दो घंटे आप बैठे थे। लेकिन तब आप कुछ कर रहे थे, सुन रहे थे। तब आप सिर्फ बैठे नहीं थे। कोई काम बंधा हुआ था। शरीर संलग्न था। मन जुटा हुआ था, व्यस्त था, आकुपाइड था; तब कोई अड़चन न थी। अगर आपको कहा कि चुपचाप बैठ जाओ। सब अड़चनें शुरू हो जाएंगी, पच्चीस तरह की व्याधियां अचानक उठती हुई मालूम पड़ने लगेंगी।

बीस साल झेन साधक बैठता है, सिर्फ बैठता है। कठिनतम और सरलतम दोनों है उसकी साधना। क्योंकि गुरु इसके सिवाय कुछ कहता नहीं कि तुम बैठो। वह कहता है, सिर्फ बैठे रहो। आदतें पुरानी छोड़ दो करने की; चार घंटे, छह घंटे, आठ घंटे, दस घंटे, जब भी मौका मिले, बस बैठे रहो। और एक ही बात का ध्यान रखो कि वह जो पुराने मन की जकड़ है कि कुछ करो, उसको शिथिल करते जाओ। एक दिन ऐसा आता है कि मन की जकड़ चली जाती है। आप कुछ भी नहीं कर रहे होते, बस होते हैं। उस होने में ही समाधि फलित होती है। वही बुद्ध कर रहे हैं। और जिस दिन आप भी कर लेंगे उस दिन आप में और बुद्ध में कोई रत्ती भर का फर्क नहीं रह जाएगा।

लाओत्से कहता है, "मैं जानता हूं अक्रियता का लाभ क्या है।"

लाभ है आत्म-उपलब्धि, लाभ है मुक्ति, लाभ है आत्मज्ञान। इस दिशा में थोड़ा सा बढ़ना शुरू करें। एक घंटा निकाल लें, ध्यान भी न करें उस घंटे में, उस घंटे में सिर्फ हों, बस बैठ जाएं, जैसे संसार खो गया। टेलीफोन की घंटी बजती रहे, सुनते रहें, जैसे किसी और के घर में बज रही है। कोई दरवाजे पर दस्तक दे, सुनते रहें; आप हैं ही नहीं, उठ कर कौन दरवाजा खोले! पत्नी बोले कि उठो, कुछ करो। बस देखते रहें, जैसे किसी और से कह रही है। एक घंटा आप अक्रिय हो जाएं। और जो भी इस जगत में पाने योग्य है, वह आपका हो जाएगा।

बड़ी अड़चनें आएंगी। और मन बड़े बहाने खोजेगा। मन समझाएगा कि क्या कर रहे हो! एक घंटे में जा सकते थे दफ्तर, कि दुकान, कि हजार का सौदा हो सकता था, कि लाख की कमाई हो सकती थी। इतनी देर में कम से कम अखबार ही पढ़ लेते, कि रेडियो सुन लेते, कि किसी मित्र से गपशप कर लेते। घंटे भर में तो न मालूम क्या-क्या करने का हो सकता था। क्यों खो रहे हो समय? जिंदगी छोटी है। समय को ऐसे व्यर्थ मत गंवाओ।

और इन पागलों ने बड़ी बुद्धिमानी की बातें कह रखी हैं। वे कहते हैं, टाइम इ.ज मनी, समय धन है, बचाओ। और समय को जितनी जल्दी जितने ज्यादा धन में बदल लो, उतनी ही तुम्हारी सफलता है। जितना समय तुम्हें मिला है सबको तुम रुपए में बदल कर बैंक में जमा कर दो। टाइम इ.ज मनी। बस मरते वक्त परमात्मा तुमसे यही पूछेगा आखिरी समय में कि तुम अपने समय को धन बना पाए कि नहीं?

जब एक घंटा आप खाली बैठेंगे तो बड़ी बेचैनी मालूम होगी, बड़ी अड़चनें आएंगी। हजार बहाने शरीर खोजेगा, मन खोजेगा--कुछ करो। पर आप सब सुनते रहना और कहना एक घंटा कुछ भी नहीं करना है। थोड़े ही दिन में आप पाओगे कि एक नये तरह की शांति आपके रोएं-रोएं में उतरने लगी; कोई एक नया द्वार खुलने लगा; एक नया आकाश, जहां से बादल हट गए हैं।

और जैसे-जैसे यह शांति घनी होने लगेगी वैसे-वैसे समझ में आएगा कि अक्रियता का लाभ क्या है। और तब समझ में आएगा कुछ है जो करके पाया जा सकता है, और कुछ है जो केवल न करके पाया जा सकता है। जो करके पाया जा सकता है वह संसार का हिस्सा होगा, और आपसे छीन लिया जाएगा। जो न करके पाया जा सकता है वह संसार का हिस्सा नहीं है, और उसको कोई भी आपसे छीन नहीं सकता। जो भी करके मिलेगा, मौत उसे नष्ट कर देगी। जो न करके मिलेगा, मौत का अतिक्रमण कर जाता है।

अगर इसे हम ऐसा कहें तो ठीक होगा कि किए हुए की ही मृत्यु होती है; जो न किए में जाना है उसकी कोई मृत्यु नहीं है। आत्म-अनुभव अमृत का अनुभव है, क्योंकि वह न किए में उपलब्ध होता है।

"इसके जरिए मैं जानता हूं कि अक्रियता का लाभ है। शब्दों के बिना उपदेश करना, और अक्रियता का जो लाभ है वह ब्रह्मांड में अतुलनीय है।"

शब्दों के बिना उपदेश करना निश्चित ही अतुलनीय है। क्योंकि बड़ी जटिल घटना है। और दो शिखर हों तभी घट सकती है। पहले तो वह व्यक्ति उपलब्ध हो जो अक्रिय होने की कला में निष्णात हो गया हो, सिद्ध हो गया हो। उसको ही हम गुरु कहते हैं, जिसने वह जान लिया जो बिना किए जाना जाता है; उसके जीवन का शिखर निर्मित हो गया। पर इतना काफी नहीं है। क्योंकि यह शिखर केवल उसी से संवाद कर सकता है जो शून्य हो जाए, चुप हो जाए--क्षण भर को सही--मौन हो जाए। तो इसकी शून्यता उसमें तीर की तरह प्रवेश कर जाए।

उपनिषद के दिनों में कुल साधना इतनी ही थी कि लोग जाएं और गुरु के पास बैठें। उपनिषद का मतलब हैः गुरु के पास बैठना। शब्द का भी इतना ही मतलब है कि गुरु के पास बैठना, गुरु के पास होना। कुछ गुरु काम कहे छोटा-मोटा तो कर देना, फिर उसके पास बैठ जाना। उसके पास होने की बात है। क्योंकि किसी क्षण में, बैठे-बैठे शिष्य वहां, शांत हो जाएगा। उस शांत क्षण में ही गुरु बोल देगा।

लोग कहते हैं, गुरु-मंत्र कान में दिया जाता है। मगर आदमी तो पागल है और जो प्रतीक हैं--गहरे प्रतीक हैं--उनको भी क्षुद्र कर लेता है। इसे लोगों ने समझा कि इसका मतलब यह है कि गुरु आपके कान में मुंह लगा कर, और मंत्र दे देगा। तो गुरु हैं जो कान फूंकते हैं, कान में मंत्र देते हैं।

कान में मंत्र देने का मतलब यह था कि जो बिना बोले दिया जाता है। बोल कर ही देना है तो कितने दूर से दिया कान से, इससे कोई सवाल नहीं है। एक फीट की दूरी से बोले, कि पांच इंच की दूरी से बोले, कि बिल्कुल कान पर मुंह रख कर बोले--लेकिन बोल कर ही बोले हैं--कोई मूल्य नहीं है। कान में मंत्र देना सिर्फ एक गुह्य प्रतीक है। उसका मतलब यह है कि बिना बोल कर दिया गया है। ठेठ कान में दिया गया है, शब्द नहीं डाला गया है। ओंठ का उपयोग नहीं किया गया है। सिर्फ पात्र का उपयोग किया गया है, कान का उपयोग किया

गया है, लेने वाले का उपयोग किया गया है; बोलने वाले ने कुछ भी नहीं कहा है। सिर्फ सुनने वाले ने सुना है और बोलने वाला चुप रहा है। उस चुप्पी में जो संवाद है, उस चुप्पी में जो विचार का संप्रेषण है।

शब्दों के बिना उपदेश करना निश्चित ही अतुलनीय है। क्योंकि कभी ऐसा घटता है। हजारों साल में कभी एक बार ऐसी घटना घटती है। गुरु बहुत हैं, शिष्य बहुत हैं। पर हजारों साल में कभी ऐसी घटना घटती है। इसलिए लाओत्से कह रहा है, अतुलनीय है। इसकी तुलना होनी मुश्किल है।

बुद्ध के पास हजारों शिष्य थे, लेकिन जो भी उन्होंने कहा वह शब्द से ही कहा। जो भी उन्होंने सुना वह शब्द से ही सुना। सिर्फ एक शिष्य था, महाकाश्यप, जिसको बुद्ध ने कहा कि तुझे मैं वह कहता हूं जो कहा नहीं जा सकता। एक दिन सुबह ही सुबह बुद्ध एक कमल का फूल लेकर आए, बैठ गए। लोग प्रतीक्षारत। उनकी बेचैनी बढ़ने लगी कि वे बोलें, क्योंकि वे सुनने को आए हैं, बुद्ध को पीने को नहीं। वे पात्र नहीं हैं खाली, शब्दों से भरे हुए मन हैं। वे बेचैन हैं। और ऐसा कभी नहीं हुआ। बुद्ध आते थे, बैठते थे; और बोलना शुरू कर देते। उस दिन वे चुप हैं, और फूल को देखे चले जा रहे हैं। बुद्ध फूल को देख रहे हैं, शिष्य बुद्ध को देख रहे हैं, और सब बेचैन हैं। थोड़ी देर में शांति उद्विग्न हो गई और लोग एक-दूसरे से फुसफुसाने लगे कि क्या मामला है! आखिर एक शिष्य ने खड़े होकर पूछा कि आज क्या बात है? बड़ी देर हो गई, और हम सुनने को उत्सुक हैं। तो बुद्ध ने आंखें ऊपर उठाईं, फूल हाथ में उठाया। और बुद्ध ने कहा, इतनी देर से मैं क्या कर रहा हूं, मैं बोल रहा हूं!

अब यह जरा ज्यादा हो गया; शिष्यों के लिए और भारी हो गया। क्योंकि वे चुप बैठे हैं इतनी देर से, और कहते हैं, इतनी देर से मैं क्या कर रहा हूं, मैं बोल रहा हूं। और अगर तुम नहीं सुनते हो तो कसूर किसका है?

तब महाकाश्यप, जो दूर बैठा था और कभी नहीं बोला था, पहली दफा उसका पता चला संघ को, क्योंकि वह खिलखिला कर हंसने लगा। बुद्ध ने महाकाश्यप को कहा कि महाकाश्यप, यहां आ और यह फूल तू ले। जो शब्द से दिया जा सकता था, मैंने सबको दे दिया; जो सिर्फ मौन से दिया जा सकता है वह मैं तुझे देता हूं।

फिर बड़ी खोज चलती रही इन सदियों में। क्योंकि महाकाश्यप के ऊपर एक भार हो गया कि अपने मरने के पहले कम से कम वह एक व्यक्ति को खोज ले जिसे वह दे सके जो बुद्ध ने उसे दिया है; अन्यथा संपत्ति, वह धरोहर उसके साथ खो जाएगी। ऐसा छह पीढ़ियों तक महाकाश्यप के बाद वह प्रक्रिया चलती रही। छठवां ग्रहण करने वाला व्यक्ति था बोधिधर्म। और वह खोज-खोज कर थक गया, फिर चीन गया, और सिर्फ इसीलिए चीन गया कि भारत में उसे कोई आदमी नहीं मिला जो मौन में लेने को तैयार हो। चीन में नौ साल उसने खोज की, तब एक आदमी मिल सका जिसे वह वह दे सके जो बुद्ध ने महाकाश्यप को दिया था चुप्पी में। वह प्रक्रिया अब भी चलती चली जाती है। उस प्रक्रिया को झेन फकीर कहते हैंः शब्द के बिना, शास्त्र के बिना हस्तांतरण। कभी मुश्किल से घटती है। क्योंकि घटने के लिए दो शिखरों का मिलना जरूरी है। एक जो पा गया हो, उलीचने को तैयार हो; और एक जो लेने को तैयार हो, और चुप होने को तैयार हो। एक भरा हुआ पात्र और एक खाली पात्र। और खाली पात्र भी, बिल्कुल खाली। लेने के लिए भी तीव्रता और त्वरा न हो, बस खाली हो, तो यह घटना घट जाती है।

लाओत्से कहता है, "शब्दों के बिना उपदेश करना और अक्रियता का जो लाभ है, वे ब्रह्मांड में अतुलनीय हैं। दि टीचिंग विदाउट वर्ड्स एंड दि बेनीफिट ऑफ टेकिंग नो एक्शन आर विदाउट कम्पेयर इन दि यूनिवर्स।"

ये दो चीजें अतुलनीय हैंः एक शब्द के बिना संवाद और एक अक्रियता का लाभ। अक्रियता का लाभ परम लाभ है। पर जो भी मैं कहूं, उसका क्या मूल्य हो सकता है? सुना लाओत्से को; मैंने कहा, वह आपने सुना।

उसका क्या मूल्य हो सकता है? क्योंकि अक्रियता भी एक शब्द रह जाएगी और आप भी परिचित हो जाएंगे इस सिद्धांत से। यह किसी भांति अनुभव बनना चाहिए, रक्त-हड्डी-मांस-मज्जा बनना चाहिए, यह आप में छिद जाना चाहिए।

चौबीस घंटे में एक घंटा निकाल लें--सब समझदारों के विपरीत, जो कहते हैं, समय का उपयोग करो, कुछ करो, खाली मत बैठे रहो--एक घंटा बिल्कुल डूब जाएं निष्क्रियता में।

पश्चिम में, अमरीका में बहुत बड़ा विचारक था, अभी-अभी कुछ दिन पहले मृत्यु हुई, अल्डुअस हक्सले। अल्डुअस हक्सले इसका प्रयोग कर रहा था वर्षों से, अक्रियता का। उसकी पत्नी लारा हक्सले ने अपने संस्मरण लिखे हैं। उसमें उसने लिखा है कि अभूतपूर्व घटना घटती थी, क्योंकि रोज एक घंटा तो नियमित और जब भी मौका मिल जाए, दोबारा, तीन बार, तो हक्सले अक्रिय हो जाता था। वह अपनी कुर्सी में बैठ जाता; अपनी पालथी में दोनों हाथ रख कर उसका सिर झुक जाता, उसकी दाढ़ी छाती से लग जाती, और वह शून्य हो जाता। लारा हक्सले ने लिखा है कि जब भी वह शून्य हो जाता था तो घर का पूरा वातावरण बदल जाता था। एक बिल्कुल अपरिचित सुगंध, एक अपरिचित मौन और शांति पूरे घर को घेर लेती थी।

कभी ऐसा भी होता कि उसकी पत्नी बाहर गई है और उसे पता नहीं है। घर में हक्सले अकेला है, तो वह अपनी कुर्सी पर बैठ जाएगा, शून्य होकर। लाओत्से के भक्तों में एक था। पत्नी को कुछ पता नहीं है। तो वह फोन कर दे, तो हक्सले उठेगा, फोन लेगा, जो भी सूचना दी गई है वह सूचना कागज पर लिख देगा, फिर अपनी जगह जाकर बैठ जाएगा। पत्नी जब आकर पूछेगी कि मैंने फोन किया था, आपको कोई अड़चन तो नहीं हुई। हक्सले कहेगा, कैसा फोन? और तब देखा जाएगा तो टेबल पर उसके हाथ का लिखा हुआ कागज भी रखा हुआ है। ऐसा बहुत बार हुआ तो हक्सले की पत्नी को समझ में आया कि उन क्षणों में जब वह इतना शून्य होता है, तब वह जो भी करता है, वह करना शून्य से ही निकलता है और उसकी कोई स्मृति नहीं बनती।

जब आप इतने अक्रिया में होते हैं कि कहीं कोई विचार नहीं, कहीं कोई तरंग नहीं, तो अगर आप कुछ करेंगे भी तो वह ऐसे ही है जैसे अस्तित्व ने आपके द्वारा कुछ किया। वह आपका निजी कृत्य नहीं है; उसकी कोई स्मृति नहीं बनती। यह बड़े मजे की बात है कि आपके अहंकार पर चोट लगे तो स्मृति शीघ्रता से बनती है।

इसलिए आप जान कर हैरान होंगे कि अगर आपके जीवन में कभी भी अहंकार को चोट लगने की कोई घटना हो तो उसकी बात आपको कभी नहीं भूलती। चाहे कितनी ही क्षुद्र बात हो। पचास साल पहले आप छोटे बच्चे रहे होंगे और रास्ते से गुजर रहे थे और कोई आपको देख कर हंस दिया था, वह आपको अभी भी याद है। सब भूल गया और। हजारों घटनाएं घटीं और भूल गईं। लेकिन शिक्षक ने आपको स्कूल में खड़ा कर दिया था और सब लड़कों के सामने कहा था कि देखो, बिल्कुल गधा है! वह अभी तक याद है। अभी भी आप आंख बंद करें तो आप अपने को कक्षा में खड़ा हुआ, सारे लड़कों की नजर आपके ऊपर। आपके अहंकार को जो चोट लगी थी, वह गहरी स्मृति है। अगर अहंकार बिल्कुल शांत हो तो घटना घट सकती है और स्मृति नहीं बने, जैसे पानी पर खींची गई लकीर खींचते ही मिट जाए।

जो व्यक्ति इस अक्रियता को साध लेते हैं वे करते हुए भी कर्म से नहीं बंधते, क्योंकि कर्म की कोई रेखा नहीं बनती। इसलिए कृष्ण ने बहुत जोर गीता में दिया है अकर्म पर। करते हुए भी कर्ता से मुक्ति, तो अकर्म हो जाता है; न करते हुए भी कृत्य से गुजर जाना, तो कोई स्मृति नहीं बनती।

हक्सले अनूठे प्रयोग करने वाले लोगों में एक था। और कठिन कुछ भी नहीं है; आप भी कर ले सकते हैं। एक घंटा चौबीस घंटे में से निकाल लें और उस अतुलनीय घटना में डूब जाएं; कुछ न करें। मंत्र नहीं, स्मरण

नहीं, प्रभु का नाम नहीं, जाप नहीं, कुछ भी नहीं। मन कुछ न कुछ करता रहेगा, आप चुपचाप बैठे उसे भी देखते रहें कि वह कुछ कर रहा है, पुरानी आदत है; खटर-पटर करेगा, करने दें। निरपेक्ष, उदास, उदासीन, तटस्थ, उपेक्षा से देखते रहें करने को। थोड़ी देर में, जब आप उसमें कोई रस न लेंगे, तो अपने आप शांत होने लगेगा, कुछ दिनों में शांत हो जाएगा। और एक बार भी आपको झलक मिल जाएगी कि शून्य होने में, अक्रिय होने में क्या घटता है, फिर इस जीवन में कोई आसक्ति बांध नहीं सकती, कोई मोह ग्रस्त नहीं कर सकता, कोई लोभ आकर्षित नहीं कर सकता, कोई वासना खींच नहीं सकती। अक्रिया को उपलब्ध हुआ व्यक्ति उस महाशक्ति को उपलब्ध हो जाता है जिस पर कोई भी प्रभाव अंकित नहीं होते हैं।

आज इतना ही।

इक्यास्सीवां प्रवचन

सर्वाधिक मूल्यवान--स्वयं की निजता

Chapter 44

Be Content

Fame or one's own self, which does one love more?
One's own self or material goods, which has more worth?
Loss (of self) or possession (of goods), which is the greater evil?
Therefore: he who loves most spends most,
He who hoards much loses much.
The contented man meets no disgrace;
Who knows when to stop runs into no danger.
He can long endure.

अध्याय 44

संतुष्ट रहें

मनुष्य किसे अधिक प्रेम करता है, सुयश को या स्वयं की निजता को?
किसका अधिक मूल्य है, स्वयं की निजता का या भौतिक पदार्थों का?
और कौन बुराई बड़ी है, स्वयं की हानि या पदार्थों का स्वामित्व?
इसलिए: जो सर्वाधिक प्रेम करता है, वह सर्वाधिक खर्च करता है;
जो बहुत संग्रह करता है, वह बहुत खोता है।
संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठा नहीं मिलती;
जो जानता है कहां रुकना है,
उसे कोई खतरा नहीं है।
वह दीर्घजीवी हो सकता है।

लाओत्से के सूत्र के पूर्व प्रेम के संबंध में थोड़ी सी बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, जो व्यक्ति भी प्रेम करने में समर्थ हो पाता है, संपत्ति, संग्रह, चीजें इकट्ठा करने की वृत्ति उसकी अपने आप कम हो जाती है।

परिग्रह प्रेम का परिपूरक है; जीवन में प्रेम जितना कम होगा उतना ज्यादा परिग्रह की वृत्ति होगी। गहरे कारण हैं।

परिग्रह आदमी करता है इसलिए कि सुरक्षित हो सके। धन है पास में, मकान है पास में, पद है, प्रतिष्ठा है; सुरक्षा मालूम होती है, सिक्योरिटी है। कल का कोई भय नहीं। कोई विपदा होगी, संकट होगा, धन रक्षा करेगा। कल का जिसे भय है उसका धन पर भरोसा होगा। लेकिन कल की चिंता उसे ही पैदा होती है जिसके जीवन में प्रेम नहीं है। जिसके जीवन में प्रेम है उसके लिए आज काफी है, उसके लिए कल है ही नहीं।

भविष्य की चिंता पैदा होती है, क्योंकि वर्तमान दुखपूर्ण है। आज मैं दुखी हूं तो कल की चिंता मन को पकड़ती है। आज मैं सुखी हूं तो कल भूल जाता है। सुख के क्षण में कोई भी भविष्य नहीं होता; न ही कोई अतीत होता है। जब आप आनंद में हों तो समय मिट जाता है। जितना सघन हो सुख उतना समय क्षीण हो जाता है; और जितना सघन हो दुख उतना समय बड़ा हो जाता है। इसलिए दुख का एक पल भी काटना मुश्किल होता है; बहुत लंबा मालूम पड़ता है। घर में कोई मरता हो प्रियजन तो रात भी बीतनी मुश्किल हो जाती है। और आनंद की घड़ी हो तो ऐसे बीत जाती है जैसे आई ही नहीं।

सभी स्वर्ग क्षणभंगुर होंगे और सभी नरक अनंत। इसलिए नहीं कि नरक अनंत है, बल्कि इसलिए कि दुख समय को विस्तार देता है। समय घड़ी से बंधा हुआ नहीं है; समय हमारे मन से बंधा हुआ है। जब आप दुखी हैं तो जीवन कटता हुआ मालूम नहीं पड़ता; और जब आप सुखी हैं तो तीव्रता से बह जाता हुआ मालूम पड़ता है। सुख के क्षण कब निकल जाते हैं, बोध भी नहीं होता। दुख के क्षण कैसे कटेंगे, यह समझ में नहीं आता।

जो आज दुखी है वह कल की सोचता है। दुखी आदमी कल के आसरे ही जीता है। आज तो जीने योग्य नहीं है, लेकिन कल की आशा कि आज बीत जाएगा और कल सब ठीक होगा। लेकिन कल तभी सब ठीक होगा जब मैं आज व्यवस्था कर लूं। तो धन को पकडूं, मकान बनाऊं, प्रियजन-मित्र बनाऊं, कुछ इकट्ठा करूं जो कल काम आ जाए।

और आज उसका दुखी होगा ही जिसके जीवन में प्रेम नहीं। जहां प्रेम है वहां सुख है। और जहां सुख है वहां भविष्य मिट जाता है। इसलिए प्रेमी को कल की चिंता नहीं है; आज काफी है। एक क्षण भी अनंत है, पर्याप्त है। दूसरा क्षण न भी हो तो कोई मांग नहीं। एक क्षण भी काफी संतुष्टि दे जाता है। और इस संतुष्ट क्षण से ही कल भी निकलेगा, इसलिए कल का कोई भय, असुरक्षा मन को पकड़ती नहीं। आज जिस प्रेम ने संतोष दिया है वह कल भी संतोष देगा। और आज जिस प्रेम से सुगंध मिली है वह कल भी सुगंध देगा। जिस प्रेम में आज फूल खिले हैं कल वे और बड़े हो जाएंगे। जिसका आज का क्षण सुखद है, कल इस सुख से ही निकलेगा; इसी की धारा होगी।

तो जितना ज्यादा हो जीवन में प्रेम उतनी भविष्य की चिंता कम होती है। भविष्य की चिंता कम हो तो परिग्रह, संग्रह, वस्तुएं इकट्ठे करने का पागलपन छूट जाता है। जितने भी कृपण लोग हैं उनकी कृपणता उनके जीवन में प्रेम की कमी को भरने का उपाय है। प्रेम न हो तो हम सोने से भरते हैं गड्ढे को। वह कभी भर नहीं पाता, क्योंकि सोना मृत है, और कितना ही मूल्यवान हो तो भी जीवित नहीं। और प्रेम एक जीवंत अनुभव है।

मनसविद कहते हैं कि जिन बच्चों को बचपन में प्रेम मिलता है वे बच्चे ज्यादा भोजन नहीं करते। उनकी मां परेशान होगी उन्हें भोजन कराने को; मां चिंता करेगी ज्यादा खिलाने की और बच्चे कम भोजन करेंगे। जैसे उनका पेट प्रेम से भरा है। जिन बच्चों को प्रेम नहीं मिलता वे बच्चे ज्यादा भोजन करते हैं, जरूरत से ज्यादा। प्रेम

से भीतर गड्ढा खाली है; उसे किसी भी भांति भर लेना जरूरी है। और फिर कल का कोई भरोसा नहीं है। छोटे बच्चे को अगर मां का प्रेम मिला है तो वह जानता है, जिस मां ने अभी सम्हाला है, कल भी सम्हालेगी।

लेकिन जिस बच्चे के जीवन में प्रेम नहीं उसे डर है, आज रोटी मिलती है, कल कुछ पक्का नहीं है, मिलेगी नहीं मिलेगी। ज्यादा खा लेगा। प्रेम की कमी भोजन से लोग पूरी कर लेते हैं। मनसविद कहते हैं, प्रेम जीवन में कम हो तो हम बाहर भी इकट्ठा करते हैं; शरीर के भीतर भी मांस, मज्जा और चर्बी इकट्ठी कर लेते हैं। वह भी कृपणता है। वह भी डर है, कल का भरोसा नहीं है।

यह जो प्रेम की कमी किसी भी तरह की वस्तुओं से पूरी की जाती है, यह हम ठीक से समझ लें। जीन पेआगे, अन्ना फ्रायड, और दूसरे मनसविद, जो बच्चों पर काम किए हैं, उन्होंने जो कुछ भी खोजा है, लाओत्से हजारों साल वही बात सूत्र में कहा है। लाओत्से की दृष्टि बड़ी गहरी है, और मन की आखिरी पर्त को छूती और पकड़ती है। और उसका विश्लेषण अचूक है।

कृपण आदमी की तकलीफ कंजूसी नहीं है। कृपण आदमी की तकलीफ उसके जीवन में प्रेम की कमी है। जिसके जीवन में प्रेम होगा--दूसरी बात ख्याल में ले लें--वह कृपण तो हो ही नहीं सकता है, फिजूलखर्च हो सकता है। उलीच सकता है; इकट्ठा नहीं कर सकता। जितना ज्यादा भीतर प्रेम होगा उतना बांटने की आतुरता पैदा होती है। इसे थोड़ा समझें।

जब आप दुख में होते हैं तो आप चाहते हैं, सिकुड़ जाएं, एक अंधेरे कोने में छिप जाएं। किसी से मिलें न, जुलें न, कोई देखे न। दुखी आदमी सिकुड़ता है। दुख संकोच लाता है। और अगर दुख बहुत हो जाए तो आप मर जाना चाहते हैं, आत्महत्या कर लेना चाहते हैं। आत्महत्या का अर्थ है, इस भांति सिकुड़ जाना चाहते हैं कि फिर मिलने का दूसरे से कोई उपाय ही न रहे। जब आप सुख में होते हैं तब आप लोगों से मिलना चाहते हैं। जब आप सुख में होते हैं तब मित्रों से, प्रियजनों से बांटना चाहते हैं, किसी को साझीदार बनाना चाहते हैं। शेयर करने का भाव पैदा होता है। सुख बंटना चाहता है। दुख सिकोड़ता है; सुख फैलाता है।

इसलिए हमने परम आनंद की जो अवस्था है उसको इस मुल्क में ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही चला जाता है, जिसके विस्तार का कोई अंत नहीं। ब्रह्म का अर्थ है, अनंत विस्तार वाला, जो फैलता ही चला जाता है। यह ब्रह्म शब्द बड़ा बहुमूल्य है। इसका अर्थ है, जहां कोई संकोच कभी घटता नहीं, जिसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है, और जो विस्तीर्ण ही होता चला जाता है। आनंद का यही लक्षण है। जितना ज्यादा आनंद होगा, उतना आप बांटना चाहेंगे; उतना आप चाहेंगे कि कोई आपको उलीच दे और खाली कर दे। और जितना आप बांटेंगे उतना ही आप पाएंगे आप ज्यादा आनंदित हो गए हैं। आनंद बांटने से बढ़ता है।

फिर यह बांटना बहुत तरह का होगा। जो कुछ भी आपके पास होगा, आप बांटेंगे। धन होगा तो धन बांटेंगे, ज्ञान होगा तो ज्ञान बांटेंगे, आनंद होगा तो आनंद बांटेंगे, प्रेम होगा तो प्रेम बांटेंगे। जो भी आपके पास होगा, आपके जीवन की पूरी धारा बांटने में लग जाएगी।

देखें! बुद्ध और महावीर जब दुखी हैं तब वे जंगल भाग गए, और जब वे परम आनंद से भर गए और समाधि को उपलब्ध हुए तो समाज में वापस लौट आए। अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि आनंदित आदमी जंगल में बैठा रहा हो। दुखी आदमी जंगल गए, लेकिन आनंदित आदमी सदा समाज में वापस लौट आया। क्योंकि जंगल में बांटने का कोई उपाय नहीं। जंगल में आनंद पैदा तो हो सकता है, लेकिन बढ़ नहीं सकता, फैल नहीं सकता। उसे उलीचेगा कौन? उसमें साझीदार कौन होगा?

तो चाहे जीसस, चाहे मोहम्मद, महावीर, बुद्ध, या कोई भी, ये सारे लोग एक दिन जब दुखी थे तो जंगल की तरफ चले गए, और जब इन्होंने खोज लिया अपने जीवन का स्रोत, और जब इनके स्वर्ग के द्वार खुल गए और जब इनका जीवन उस अपरिसीम संगीत से भर गया जिसे हम ईश्वर कहते हैं, तब ये फिर जंगल में न रुक सके, फिर इनके पैर वहां न थम सके। फिर जंगल की मौन और जंगल की शांति इनको न रोक सकी। फिर ये लौट आए वापस उन लोगों के बीच जिनसे ये कल भाग गए थे। कौन सी घटना घट रही है? इनके वापस लौटने की कला और क्रिया क्या है? इनके वापस लौटने का राज क्या है?

बहुत लोगों ने सोचा है। महावीर क्यों वन में चले गए, इस संबंध में बहुत चिंतन हुआ है। लेकिन महावीर वन से वापस क्यों लौट आए, इस संबंध में कोई भी चिंतन नहीं हुआ है। और दूसरी घटना पहली घटना से ज्यादा बड़ी घटना है। जिस समाज को छोड़ कर गए थे उस समाज में वापस आने का प्रयोजन क्या है?

प्रयोजन हैः जो मिला है उसे बांट देना। फिर ऐसा व्यक्ति न पात्र देखता है, न अपात्र देखता है; बांटता चला जाता है। पात्र और अपात्र भी कंजूस मन देखता है। वह देने के पहले पच्चीस बार सोचता है, दूं या न दूं। और न देने के लिए जब तक उपाय बन सके, वह सब तरह के उपाय खोजता है--अपात्र है, कैसे दूं?

हम अपने मन को हजार ढंग से समझाते हैं, रेशनलाइज करते हैं, तर्क जुटाते हैं। एक भिखमंगा सड़क पर भीख मांग रहा हो तो आप यह नहीं कहते कि मैं नहीं देना चाहता हूं; आप यह कहते हैं कि देने से भिखमंगापन बढ़ेगा। आप यह देखने को कभी राजी नहीं होते कि यह मेरे देने का डर। वह भी ठीक होगा, शायद आपका तर्क सही ही हो कि आप देंगे तो भिखमंगापन बढ़ेगा। लेकिन उसके कारण आप नहीं दे रहे हैं, यह बात गलत है। आप देना नहीं चाहते हैं।

बांटने में पीड़ा होती है, कुछ भी बांटने में पीड़ा होती है। इकट्ठा करने में सुख मिलता है। तो जो भी आपके पास आ जाता है बांटने के लिए कि बांटो कुछ मुझसे, उससे आपको पीड़ा होती है, उससे आप बचना चाहते हैं। पात्र और अपात्र, सही और गलत हमारा कृपण मन ही सोचता है। जब सच में ही देने योग्य हमारे पास कुछ होता है तो फिर न कोई पात्र रह जाता, न कोई अपात्र रह जाता।

अभी अगर आप कभी देते भी हैं तो प्रयोजन से देते हैं। उसके पीछे कोई शर्त होती है। चाहे प्रकट, चाहे अप्रकट; चाहे कहते हों, न कहते हों; लेकिन देने के पीछे शर्त होती है और देने के पीछे सौदा होता है। देते हैं, पूरी तरह नहीं देते। और देते हैं तो यह भाव रखते हैं कि जिसको दिया है वह अनुगृहीत अनुभव करे, वह धन्यवाद तो दे, और सदा भार से ग्रस्त रहे, दबे, झुके। और आशा मन में बनी रहती है कि कभी प्रत्युत्तर भी दे। यह देना न हुआ, यह सौदा ही हुआ। जब आप कुछ चाह रहे हैं तो आप दे नहीं रहे हैं। दान के पीछे अगर अप्रकट मांग छिपी है तो दान दिया नहीं जा रहा है, इनवेस्टमेंट है; आप एक नया धंधा खोल रहे हैं।

जब कोई प्रेम से, या ज्ञान से, या आनंद से भर जाता है तो देता है। इसलिए नहीं कि आपको जरूरत है, बल्कि इसलिए कि उसके पास ज्यादा है और उसके प्राण बोझिल हैं। और तब देता है तो आप अनुगृहीत नहीं होते, वह खुद ही अनुगृहीत होता है कि आपने लिया। आप इनकार भी कर सकते थे। इसलिए प्रेम सदा अनुगृहीत होता है कि कोई मिल गया जिसने मुझे उलीचने में सहायता दी, जिसने मुझे हलका होने में सहायता दी, जिसने मेरा बोझ कम किया, जिसने मुझे बांटा, जो राजी हुआ मुझे लेने को। अनुग्रह, देने वाला अनुभव करता है।

प्रेम की ऐसी घटना घटे तो जिसे हम त्याग कहते हैं वह त्याग नहीं रह जाता, वह महाभोग हो जाता है। क्योंकि देने वाला देने में आनंदित हो रहा है, त्याग का कोई कारण नहीं है। और देने वाला देकर और ज्यादा पा

रहा है--आपसे नहीं, देने के घटने में ही पाना है। कभी अगर आपके जीवन में कोई एकाध झलक भी देने की कभी आती है, तो इसे थोड़ा समझना। अगर आप एक गिरे हुए आदमी को हाथ का सहारा भी दे देते हैं तो एक बड़ी गहरी शांति और आनंद की प्रतीति आपको होती है। इसलिए नहीं कि वह जो गिरा हुआ आदमी उठ गया है, वह लौट कर कुछ देगा। नहीं, उस उठाते क्षण में ही आप फैल कर ब्रह्म के साथ एक हो जाते हैं। जब भी आप कुछ देते हैं तब आप फैलते हैं। और सब फैलाव का अनुभव ब्रह्म का अनुभव है। लेकिन देना हो बेशर्त, कोई मांग छिपी न हो, अचेतन में भी कोई आकांक्षा न हो। और देते ही अनुग्रह का भाव पकड़ ले कि एक अवसर मिला, एक परिस्थिति बनी कि मैं कुछ बांट सका और फैल सका।

मेरे देखे, प्रेम ही एकमात्र वास्तविक त्याग है। लेकिन उसे त्याग कहना उचित नहीं, क्योंकि त्याग में ऐसा लगता है कि छोड़ते समय कुछ कष्ट हुआ हो। त्याग शब्द में कुछ कष्ट है। कष्ट इसी कारण उस शब्द में जुड़ गया है कि कंजूसों ने त्याग किया है, और उन्होंने बड़ा कष्ट पाया है त्याग करते वक्त। और हम सब कंजूस हैं। और जब हम किसी को त्यागते देखते हैं तो हमें लगता है कि कितनी पीड़ा न हो रही होगी! जैन महावीर की कथा लिखते हैं कि इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रथ, इतने महल, इतना सब धन, इस सबका उन्होंने त्याग किया। वह एक-एक घोड़े-हाथी की संख्या उन्होंने शास्त्रों में लिख रखी है। यह जिन्होंने भी लिखा है, ये कृपण और कंजूस रहे होंगे। यह हिसाब कंजूस का हिसाब है। और इन कंजूसों को लगा होगा कि कितना कष्ट महावीर नहीं उठा रहे हैं!

और महावीर कष्ट उठा रहे हों तो त्याग व्यर्थ हो गया। महावीर जरा भी कष्ट नहीं उठा रहे हैं। महावीर महल में कष्ट में रहे हों, महल छोड़ कर उनके चेहरे पर कष्ट की कोई छाया नहीं देखी गई। महावीर ने कुछ छोड़ा हो तो कष्ट छोड़ा है। और यह त्याग किसी और आंतरिक घटना से उठ रहा है। यह बांटने का अनुभव और आनंद है।

थोड़ी सी बातें ख्याल में ले लें, फिर हम इस सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे।

"मनुष्य किसे अधिक प्रेम करता है, सुयश को या स्वयं की निजता को?"

एक तो आप हैं, अपनी निजता में, अपने भीतर। अगर सारा जगत खो जाए, सारी मनुष्यता तिरोहित हो जाए, आप अकेले बचें, उस क्षण जो बचेगा वह आपकी निजता है।

सोचना भी कठिन है कि क्या बचेगा आपके भीतर। साधारणतः तो आपको लगेगा कुछ भी नहीं बचेगा, क्योंकि निजता का आपको कोई पता ही नहीं है। कुछ लोग हैं जो आपको कहते हैं, सज्जन हैं। अगर वे कल खो गए और आप अकेले बचे तो आप अपने को सज्जन न कह सकेंगे। वह किन्हीं लोगों की धारणा थी आपके प्रति, उन्हीं के साथ खो गई। कुछ लोग आपको महात्मा, संत पुरुष, साधु मानते होंगे। अगर वे खो जाएंगे तो कल आप उनके बिना साधु न हो सकेंगे। वह उनकी मान्यता थी। कोई आपको प्रतिष्ठा देता है, या कोई अपमान करता है; कोई मित्र है, कोई शत्रु है; कोई पक्ष में है, कोई विपक्ष में है। ये सारे लोग खो जाएंगे। और अभी आप जो कुछ भी अपने को मानते हैं, वह इन सबकी धारणाओं का जोड़ है। आपके पास क्या बचेगा?

आपको लगेगा, बिल्कुल शून्य हो जाऊंगा; कुछ भी नहीं बचेगा। शायद जीने के लिए कोई सहारा भी नहीं बचेगा। जीने का कोई कारण भी मालूम नहीं पड़ेगा। क्योंकि कल तक धन को इकट्ठा करने के लिए जी रहे थे; अब धन को इकट्ठा करके क्या करिएगा? सारी पृथ्वी का धन आपका होगा, लेकिन इकट्ठा करके क्या करिएगा?

धन का रस धन में नहीं है। धन का रस उन लोगों में है जिनके पास आपसे कम धन है। धन का रस निर्धन में छिपा है। एक बड़ा महल आप बना रहे थे। अब सारे महल आपके होंगे; सारी पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। लेकिन ये सारे महल बेकार हैं। क्योंकि बड़ा महल तब सुख देता है जब पास में छोटा मकान हो। आप सिंहासनों

पर बैठने के लिए दौड़ रहे थे। सिंहासन सब आपको उपलब्ध होंगे। सिंहासन के ऊपर सिंहासन, सिंहासन के ऊपर सिंहासन रख कर आप अकेले बैठ सकते हैं। लेकिन कोई भी रस न होगा, सिर्फ मेहनत मालूम पड़ेगी, पसीना बहता हुआ मालूम पड़ेगा, कोई सार मालूम नहीं होगा। क्योंकि सिंहासन पर होने का मजा तब है जब सिंहासन के नीचे कोई तड़फ रहा हो, सिंहासन को पाने के लिए कोई तड़फ रहा हो; कतार लगी हो लाखों लोगों की सिंहासन को पाने के लिए और आप पा लिए हों और दूसरे न पा सके हों। सिंहासन का रस दूसरों की आंखों में है।

निजता का अर्थ हैः आप अगर सारा जगत न रह जाए तो जैसे होंगे। साधक, जगत के रहते हुए, इस भांति जीना शुरू करता है अपने भीतर कि जैसे जगत नहीं रह गया। और उन-उन बातों को छोड़ता जाता है, तोड़ता जाता है, जो दूसरों से संबंधित हैं, और सिर्फ उसको ही बचाता है जो सबके खो जाने पर भी बचेगा। वही निजता है, वही आत्मा है।

लाओत्से पूछ रहा है, मनुष्य किसे अधिक प्रेम करता है, सुयश को, या अपनी निजता को? दूसरों की आंखों में प्रतिष्ठा को, मान को, सम्मान को, या अपने होने को? किस बात को ज्यादा प्रेम करता है?

दूसरे मेरे संबंध में क्या कहते हैं, यह मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है? या मैं क्या हूं, यह मेरे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है? दूसरे भला मानें तो मैं भला नहीं हो जाता; दूसरे बुरा मानें तो मैं बुरा नहीं हो जाता। मेरा होना दूसरों की मान्यताओं से बड़ी पृथक बात है। मैं दूसरों की मान्यताओं को मूल्य देता हूं सिर्फ इसलिए कि मुझे मेरी निजता का कोई पता नहीं है। और जिसको मैं अपनी निजता मान रहा हूं वह केवल दूसरों से मिला हुआ अहंकार है; दूसरों ने जो कुछ मेरे संबंध में कहा है उसी का संग्रह है। इसलिए बड़ा डर होता है। अगर आप साधु हैं तो आपको डर होता है कि कोई असाधु न कह दे। इस भय से न मालूम कितने लोग साधु बने रहते हैं कि कोई असाधु न कह दे।

लेकिन उनकी साधुता कैसी और कितनी कीमत की है? इसका कोई भी मूल्य नहीं। नपुंसक है ऐसी साधुता जो इससे डरती हो कि कोई असाधु न कह दे। उधार है, मांगी हुई है; किसी और पर निर्भर है। इस साधुता की जड़ें अपने भीतर नहीं हैं। यह साधुता दूसरों की आंखों में बनाए हुए प्रतिबिंब का जोड़ है; बासी है, मुर्दा है। लेकिन साधु जितने डरते हैं कि कोई असाधु न कह दे, उतने असाधु भी नहीं डरते।

मनसविद कहते हैं कि चाहे आप साधु हों या असाधु, अच्छे हों या बुरे, आपकी नजर अगर दूसरे पर ही लगी हुई है, कि दूसरे क्या कहते हैं, तो आप अपने स्वयं से, अपनी सत्ता से अपरिचित ही रह जाएंगे। और लाओत्से पूछता है, प्रेम किस बात का है--लोगों के विचारों का या अपने शुद्ध अस्तित्व का? क्योंकि इन दोनों बातों पर निर्भर है आपके जीवन की दिशा।

एक बार आपने यह ख्याल में ले लिया कि दूसरे मेरे संबंध में कुछ अच्छा कहें, दूसरे मुझे अच्छा मानें, तो आप झूठे से झूठे होते चले जाएंगे। आपका सारा जीवन एक लंबा पाखंड होगा। हजारों अच्छे लोगों का जीवन सिवाय पाखंड के और कुछ भी नहीं है। क्योंकि एक मौलिक भूल हो गई है; प्राथमिक चौराहे से, जहां जीवन के रास्ते टूटते थे अलग-अलग, उन्होंने एक गलत दिशा चुन ली। पूरे समय इसकी फिक्र है कि दूसरा क्या कहेगा।

हम बच्चों को यही समझा रहे हैं। मां-बाप बच्चों को कह रहे हैं, देखो, ध्यान रखो कि कोई बुरा न समझे। कोई क्या कहता है! तुम बड़े कुल में पैदा हुए हो, तुम्हारे घर की प्रतिष्ठा है, मां-बाप का नाम है। ध्यान रखना, तुम क्या करते हो! कैसे उठते-बैठते हो! दूसरे कुछ गलत न कहें, कोई इशारा न उठाए, तुम्हारी तरफ कोई अंगुली न उठे।

इसी के लिए हम तैयार किए जा रहे हैं। जैसे हम दूसरों के लिए पैदा हुए हैं। और एक बार जीवन इस दिशा को पकड़ ले तो फिर अंत तक इसी के पीछे चलता चला जाता है। फिर वह सब करता है; अच्छा भी, श्रेष्ठतम भी करे तो भी उसकी दृष्टि निकृष्ट पर लगी होती है।

मेरे एक परिचित और मित्र हैं, सेठ गोविंद दास। आज उनका वक्तव्य मैंने देखा। संसद में उनके पचास वर्ष पूरे हुए। पचास वर्ष तक निरंतर वे संसद के सदस्य थे। शायद ऐसा जमीन पर और कहीं कभी नहीं हुआ। संसद ने उनका सम्मान किया। सम्मान में उन्होंने जो वचन कहे वे इस संदर्भ में सोचने जैसे हैं। सम्मान के समय उन्होंने जो उत्तर में कहा, उन्होंने कहा कि मुझसे कम त्याग करने वाले लोग मुझसे ऊंचे पदों पर पहुंच गए हैं, मेरे साथ अन्याय हुआ है। कोई घाव होगा गहरा--मुझसे कम त्याग करने वाले लोग मुझसे ऊंचे पदों पर पहुंच गए हैं। तो जैसे त्याग पदों पर पहुंचने के लिए किया गया है। चाहे करते वक्त सचेतन रूप से उनको ख्याल भी न रहा हो, लेकिन अचेतन में कहीं न कहीं पद छिपा रहा है। वह अभी भी पीछा कर रहा है। और त्याग को सम्मान नहीं मिला तो मेरे साथ अन्याय हुआ है, यह भी प्रतीति है। तो त्याग आंतरिक नहीं है, और त्याग किसी प्रसन्नता से नहीं निकला है। त्याग भी एक सौदा है। उसका प्रतिफल पूरा न मिले तो पीड़ा होती है।

शहीदों को भी अगर हम कब्र से निकाल लें और उनसे पूछें, तो वे बहुत दुखी होंगे कि हम मर गए और तुमने हमारे पीछे क्या किया? न कोई प्रतिष्ठा, न कोई पद, न कोई सम्मान। मरते वक्त चाहे सचेतन रूप से उन्हें ख्याल न रहा हो, लेकिन सुना तो उन्होंने भी होगा कि शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले। वे मेले नहीं जुड़ रहे हैं। जहां उनकी लाशें दबी हैं वहां पीड़ा हो रही होगी--कि उन मेलों का क्या हुआ? जो शहीद नहीं हुए उनके आस-पास मेले जुड़े हुए हैं।

त्याग भी आदमी करे तो भी नजर यह है कि दूसरे उसको कैसा आंकते हैं। दूसरों के आंकने पर ही मूल्य जिस बात का हो वह मूल्य आंतरिक नहीं है; वह मुझसे भीतर से पैदा नहीं हुआ, वह मेरे प्राणों का आविर्भाव नहीं है। नहीं तो बात खत्म हो गई थी। मुझे सुखद था, वह मैंने किया। मेरा आनंद था, वह मैंने किया। जीना था तो जीया और मरना था तो मरा। यह मेरी प्रतीति थी--सूली पर चढ़ जाना। यह कोई मेला जुड़ेगा मरने के बाद, उसके लिए नहीं था। लेकिन त्यागियों को पूछें तो भीतर वही घाव बना रहता है कि मैंने इतना छोड़ा।

लाओत्से यह कह रहा है कि मनुष्य किसे अधिक प्रेम करता है, सुयश को या स्वयं की निजता को?

जो सुयश को प्रेम करता है वह राजनीति के रास्ते पर है; वह चाहे धन की राजनीति हो, चाहे पद की राजनीति हो, मगर पावर पालिटिक्स। उसका रास्ता सत्ता का है। और जो निजता को प्रेम करता है उसका रास्ता धर्म का है। जो इस बात की फिक्र करता है कि मैं क्या हूं मेरी ही आंखों में। क्योंकि मुझसे निकट मुझे कौन देख सकेगा? आप मुझे कैसे देखेंगे और कैसे पहचानेंगे?

आपकी सब पहचान थोथी होगी, उथली होगी, ऊपर से होगी। आपको धोखा दिया जा सकता है। मैं अभिनय कर सकता हूं; मैं भले होने का आचरण कर सकता हूं। आपको झुठलाया जा सकता है, आपको भ्रांति में डाला जा सकता है। लेकिन मैं अपने को खुद कैसे भ्रांति में डालूंगा? मैं अगर अच्छा हूं तो ही मेरे सामने मैं अच्छा हो सकता हूं। दूसरे के सामने तो धोखे का उपाय है, इसलिए दूसरे का कोई भी मूल्य नहीं है। दर्पण के सामने मैं खुद को कैसा प्रतीत होता हूं, अपने ही भीतर जाकर मैं अपने को कैसा पाता हूं, वही आत्यंतिक है।

और लाओत्से कहता है, "किससे है ज्यादा प्रेम, सुयश से या स्वयं की निजता से? किसका अधिक है मूल्य, स्वयं की निजता का या भौतिक पदार्थों का?"

जिसकी नजरों में दूसरे के विचारों का बहुत मूल्य है, उसकी नजरों में भौतिक पदार्थों का भी बहुत मूल्य होगा। अभौतिक अनुभूतियों का मूल्य उसकी नजरों में ज्यादा नहीं होगा, क्योंकि अभौतिक अनुभूतियां दूसरों के सामने प्रदर्शित नहीं की जा सकतीं। मैं कितना शांत हूं, इसकी कोई भी प्रदर्शनी नहीं बनाई जा सकती। लेकिन मेरे पास कितना शानदार महल है, इसकी प्रदर्शनी निरंतर जारी रहती है। मेरे पास क्या है, उसे दूसरे देख सकते हैं; मैं क्या हूं, उसे तो कोई भी नहीं देख सकता। तो जिसकी भी नजर में दूसरे की नजर का मूल्य है, वह भौतिक पदार्थों के संग्रह में लीन रहेगा। और जितना ही कोई वस्तुओं को इकट्ठा करता है उतना ही भूलता चला जाता है कि वस्तुओं के अतिरिक्त भी मेरे भीतर कुछ था। और जितनी वस्तुओं का ढेर बढ़ता जाता है उतना ही अपने से संबंध टूटता चला जाता है। धीरे-धीरे हम करीब-करीब अपनी ही इकट्ठी की हुई वस्तुओं के पहरेदार हो जाते हैं। न सोते हैं, न जागते हैं, न जीते हैं; उन वस्तुओं का पहरा देते रहते हैं।

कहानियां हैं पुरानी कि कृपण आदमी मर जाए तो मर कर भी अपने खजाने पर सांप होकर बैठ जाता है। कहानी अर्थपूर्ण है। और कृपण आदमी के मन को हम समझें तो कहानी बिल्कुल सच मालूम होती है। यही होगा। क्योंकि जिसने जिंदगी भर पहरा दिया वह मर कर एकदम पहरा नहीं छोड़ सकता। उसकी आत्मा को कुछ और करने योग्य नहीं मालूम हो सकता। वह पहरा देकर सांप होकर खजाने पर बैठ जाएगा, उसकी आत्मा प्रेत बन कर भटकेगी। जिंदगी भर उसने यही किया था। जब वह शरीर में था तब भी वह एक प्रेत की भांति था। तब भी वह अपनी तिजोरी के आस-पास घूम रहा था। तब भी उसके सारे प्राण तिजोरी में थे। उसके प्राण उसके हृदय में नहीं थे, उसके धन में थे; जो उसके पास था उसमें थे।

"किसका अधिक मूल्य है, स्वयं की निजता का या भौतिक पदार्थों का? और कौन बुराई बड़ी है, स्वयं की हानि या पदार्थों का स्वामित्व?"

जीसस ने भी ठीक ऐसा वचन कहा है कि तुम सारी पृथ्वी को भी पा लो, लेकिन अगर तुमने खुद को खो दिया तो तुम्हारे पाने का मूल्य क्या है? तुमने सारा साम्राज्य पा लिया, और इस पाने की दौड़ में तुम भूल गए उसे जो तुम थे, तो तुमने जो पाया उसे पाना कहें या खोना कहें? लेकिन आदमी किसी गहरी भ्रांति में है। भ्रांति के पैदा होने के कुछ बड़े गहरे कारण हैं। पहला, एक तो आपको यह भ्रांति होती है कि खुद को पाने का क्या सवाल है; खुद तो आप हैं ही। उसे आपने स्वीकार ही कर लिया है। जैसे जन्म के साथ ही आत्मा आपको मिल गई।

मिली है, लेकिन बीज की तरह; उसे वृक्ष बनाना आपके हाथ में है। और वह बीज की तरह ही सड़ जाए, इसकी भी संभावना है। इस सदी का बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति गुरजिएफ तो इनकार करने लगा था। वह कहता था, सभी आदमियों के पास आत्माएं नहीं हैं। उसकी बात में सचाई है। चौंकाने वाली बात है। क्योंकि वह कहता है, सभी आदमियों के पास आत्माएं नहीं हैं। आत्मा पैदा हो सकती है, लेकिन श्रम करना पड़ेगा। और कभी करोड़ में एकाध आदमी पैदा कर पाता है, बाकी तो वैसे ही मर जाते हैं। सिर्फ एक संभावना है आदमी की, आत्मा पैदा हो सके। बात सच है। आप सिर्फ एक बीज की तरह हैं जो वृक्ष बन भी सकता है और न भी बने।

लेकिन पूरब के धर्मों ने प्रचार किया है कि सभी आदमियों के भीतर आत्मा है। इस प्रचार में सत्य था। क्योंकि जो संभव है, वह है। लेकिन इस सत्य से भी नुकसान हुआ। सारे लोग मान कर ही बैठ गए हैं कि जो भी है वह उनके भीतर है; कुछ करने जैसा नहीं है। संसार पाने योग्य है; आत्मा तो पाई ही हुई है। और जो पाया ही हुआ है, उसके लिए क्या चिंता करनी? जो नहीं पाया है, उसकी हम फिक्र कर लें। तो हम दौड़ते हैं पदार्थ के लिए।

पर ध्यान रहे, आत्मा आप में हो सकती है; यह पोटेंशियलिटी है। आप जब पैदा हुए हैं तो सिर्फ शरीर और मन की तरह पैदा हुए हैं। आत्मा तो बहुत छिपी है--बहुत दूर गहरे में। उससे अभी अंकुर भी नहीं फूटा है। यह शरीर और मन ने व्यवस्था जुटाई है। ये भूमि की तरह हैं। अंकुर फूट सकता है। अगर थोड़ा श्रम किया जाए तो वह आत्मा वृक्ष बन सकती है और उसमें फूल लग सकते हैं।

ऐसे जब किसी वृक्ष में फूल लग जाते हैं, तभी हम कहते हैं, व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। सभी लोग बुद्ध नहीं हैं। सभी लोग बुद्ध हो सकते हैं, लेकिन मुश्किल से कभी कोई हो पाता है। यह प्रतीति कि हमारे भीतर आत्मा है ही, खतरनाक है। कोशिश करनी होगी। सोया है जो उसे जगाना होगा, छिपा है जो उसे प्रकट करना होगा। पत्थरों में दबा है जो झरना उसे पत्थर हटा कर राह देनी होगी। इस कारण भी हममें से बहुत लोग जीवन की ऊर्जा को पदार्थों को इकट्ठा करने में लगा देते हैं।

दूसरा भी एक गहरा कारण है। हमें आत्मा का कोई अनुभव भी नहीं है, स्वाद भी नहीं है। और जिसका स्वाद न हो, जिसका कोई अनुभव न हो, उसको पाने के लिए हम कुछ करें भी कैसे? उसकी वासना भी कैसे जगे? उसके पाने की प्यास भी हम कैसे पहचानें? और चारों तरफ हमारे पागलों का समाज है। वे सब पदार्थों को पाने में, दौड़ने में लगे हैं। उनके साथ अगर हम न दौड़ें तो हम पागल मालूम होते हैं। भीड़ बड़ी है। उस भीड़ में ही हमारा जन्म होता है। बच्चा इसके पहले कि होश से भरे, पागल उसे ठीक से पागल बनाने का पूरा इंतजाम किए हुए हैं।

छोटे बच्चों को जरूर आपकी चीजों पर हंसी आती है। छोटे बच्चों की निर्दोष आंखों में जरूर दिखाई पड़ता है कि कुछ पागलपन हो रहा है। क्योंकि छोटे बच्चों की यह समझ के बाहर है कि एक आदमी बड़ा मकान बनाने में जिंदगी भर नष्ट कर दे, कि धन तिजोड़ी में भरने में सब कुछ गंवा दे, अपना सब कुछ लगा दे। लेकिन इसके पहले कि बच्चे का निर्दोष भाव सबल हो पाए, हम सब चारों तरफ से इकट्ठा होकर उसकी गर्दन घोंट देंगे। हमारी शिक्षा, हमारा स्कूल, विश्वविद्यालय, समाज, सब महत्वाकांक्षा सिखा रहा है--दौड़ो, तेजी से दौड़ो, और जितना ज्यादा इकट्ठा कर सको कर लो; समय बीता जा रहा है, और संपत्ति एकमात्र सहारा है। इस कारण भी प्रत्येक व्यक्ति इस मूर्च्छा में दौड़ना शुरू हो जाता है।

लेकिन बुद्धिमान उसको ही कहेंगे जो इस पागलपन, इस आब्सेशन, इस विक्षिप्तता से थोड़ा सजग हो सके। सोच-विचार उसके भीतर ही माना जा सकता है जो थोड़ा खड़ा होकर सोचे कि मैं क्यों दौड़ रहा हूं! और जिसे पाने के लिए दौड़ रहा हूं, अगर मैंने पा भी लिया तो क्या होगा!

सिकंदर आ रहा है हिंदुस्तान। वह एक फकीर डायोजनीज को मिलता है। डायोजनीज उससे कुछ सवाल पूछता है। उसमें एक सवाल यह है कि तूने अगर पूरी दुनिया जीत भी ली तो फिर, फिर तू क्या करेगा? कहते हैं, सिकंदर यह सुन कर उदास हो गया। और उसने कहा कि डायोजनीज, तुमने ऐसी बात कही कि तुमने मुझे बड़ी निराशा से भर दिया। सच, अगर मैं पूरी दुनिया जीत लूंगा तो फिर क्या करूंगा! यह मैंने कभी सोचा नहीं। और दूसरी कोई दुनिया नहीं है, डायोजनीज ने कहा। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे।

सिकंदर जब विदा होने लगा तो उसने डायोजनीज को कहा कि अभी तो रुकना मुश्किल है; आधी दुनिया तो मैं जीत भी चुका। लेकिन जब मैं पूरी दुनिया जीत लूंगा तो मैं आऊंगा। तुमसे मैं प्रभावित हुआ हूं। तुम्हारी शांति और तुम्हारा आनंद मुझे छू गया है। डायोजनीज ने कहा कि अगर तुम प्रभावित हुए हो तो रुक जाओ। वही कसौटी होगी प्रभावित होने की। लेकिन सिकंदर ने कहा, अब आधी योजना को छोड़ना उचित नहीं है। ऐसे मैं समझता हूं कि पूरी दुनिया जीत कर भी क्या होगा, लेकिन अब आधे काम को छोड़ना उचित नहीं है। मैं पूरा

काम करके लौटूंगा। डायोजनीज ने कहा, अब तक कोई अपनी कोई योजना कभी पूरी नहीं कर पाया है। तुम आधे में ही मरोगे।

और संयोग की बात कि सिकंदर लौटते वक्त आधे में ही मर गया। घर तक वापस नहीं पहुंच पाया। लेकिन कोई भी आधे में मरेगा। योजनाएं इतनी बड़ी हैं कि कभी पूरी नहीं होतीं। और इसके पहले कि एक योजना पूरी हो, उससे भी बड़ी योजना हमारा मन तैयार कर लेता है। इसलिए कभी भी कोई पूरी योजना करके नहीं मरता। हरेक व्यक्ति आधी योजना में ही मरता है, और यह जानते हुए भी कि अगर सारी योजनाएं भी पूरी हो जाएं तो क्या होगा।

सिकंदर ने डायोजनीज को कहा था कि अगर मुझे दुबारा जन्म मिले तो मैं परमात्मा से कहूंगा कि मुझे डायोजनीज बना। डायोजनीज बिल्कुल नंगा फकीर था, ठीक महावीर जैसा। कपड़े भी नहीं थे उसके पास। भिक्षा-पात्र भी उसके पास नहीं था। पहले वह एक भिक्षा-पात्र रखता था, पानी पीने के लिए, या कोई भीख दे देता। फिर उसने एक दिन कुत्तों को पानी पीते देखा नदी में। उसने उसी दिन भिक्षा-पात्र भी फेंक दिया। उसने कहा, जब कुत्ते इतने समर्थ हैं कि बिना एक पात्र के जी लेते हैं तो मैं आदमी होकर इतना कमजोर! फिर वह अपने हाथ से ही पानी पीने लगा। फिर वह करपात्री हो गया।

सिकंदर ने उससे कहा, अगर दुबारा मुझे मौका मिला तो मैं परमात्मा से कहूंगा मुझे डायोजनीज बना। डायोजनीज ने कहा, और अगर मुझे मौका मिले तो मैं कहूंगा, तू कुछ भी बना देना, यह मेरा कुत्ता--उसका कुत्ता उसके पास ही बैठा था--यह कुत्ता भी मुझे बना देना तो भी चलेगा, लेकिन भूल कर मुझे सिकंदर मत बनाना।

सिकंदर एक प्रतीक है हमारे भागते हुए महत्वाकांक्षा का, पागल दौड़ का।

लाओत्से पूछता है, "कौन बुराई बड़ी है, स्वयं की हानि या पदार्थों का स्वामित्व? इसलिए... ।"

यह बड़े मजे की बात है; वह सिर्फ प्रश्न उठाता है, और जवाब आप पर छोड़ देता है। ये तीन प्रश्न उसने उठाए हैं; जवाब दिया नहीं। क्योंकि वह मानता है जवाब इतना साफ है कि उसे देने की कोई जरूरत नहीं। और जिसको जवाब साफ नहीं है उसको कितना ही दिया जाए उसे मिलेगा नहीं। इसलिए सिर्फ प्रश्न उठाता है।

मनुष्य किसे अधिक प्रेम करता है, सुयश को या निजता को? किसका मूल्य है अधिक, निजता का या भौतिक पदार्थों का? और कौन बुराई बड़ी है, स्वयं की हानि या पदार्थों का स्वामित्व? ये सब प्रश्नवाची चिह्न हैं। और जवाब देता नहीं, क्योंकि जवाब साफ है। और जिसे साफ नहीं है उसे देने से भी कोई फायदा नहीं है। सीधे निष्कर्ष पर पहुंच जाता है।

और निष्कर्ष हैः "इसलिए जो सर्वाधिक प्रेम करता है वह सर्वाधिक खर्च करता है।"

बीच में खाली जगह मालूम पड़ती है। यह देअरफोर, यह इसलिए एकदम छलांग लगा कर आया हुआ मालूम पड़ता है। अगर कोई तर्कशास्त्री इसको पढ़ेगा तो वह कहेगा कि इसमें कुछ पंक्तियां बीच में से खो गईं। क्योंकि यह इसलिए का क्या मतलब? पहले साफ होना चाहिए, पहले पूरा तर्कबद्ध विधि होनी चाहिए; इसलिए तो अंतिम चरण है। पर लाओत्से प्रश्न उठाता है, उत्तर नहीं देता। उत्तर साफ है। और जो व्यक्ति भी शांति से इन प्रश्नों को सोचेगा उसे उत्तर साफ हो जाएगा।

इसमें एक बात और समझ लेनी जरूरी है। अगर कोई भी प्रश्न ठीक से सोचा जाए तो उस प्रश्न में ही उत्तर छिपा होता है। और जो लोग प्रश्न पूछने की कला जानते हैं उन्हें उत्तर खोजने कहीं भी नहीं जाना होता; वे उस प्रश्न की तलहटी में ही उत्तर को छिपा हुआ पाते हैं। ये प्रश्न आपसे पूछे हैं, कोई उत्तर देने को नहीं; ये प्रश्न पूछे हैं,

ताकि आप इन प्रश्नों को ठीक से अपने भीतर उठा सकें, और आप इन प्रश्नों के विस्तार में, इन प्रश्नों की प्रगाढ़ता में अपने जीवन को नाप सकें। उत्तर आपके पास है।

आप भी भलीभांति जानते हैं कि सारे संसार को पा लेने का भी कोई मूल्य नहीं है--स्वयं को खोना पड़े अगर। लेकिन फिर भी अपने को खोए चले जाते हैं। क्योंकि यह प्रश्न आपने सचेतन रूप से उठाया नहीं है; इस प्रश्न को आपने अपने मन के सामने नहीं रखा है। और यह प्रश्न ऐसा है कि प्रतिपल पूछने जैसा है। एक-एक कदम जब आप उठाएं तब यह पूछने जैसा है हर बार कि मैं क्या कर रहा हूं? इससे मेरी निजता बढ़ेगी या मेरी संपत्ति बढ़ेगी? इससे मैं बढ़ूंगा या मेरे आस-पास का सामान बढ़ेगा? इससे मेरे जीवन की ऊंचाई और गहराई बढ़ेगी या लोगों की नजरों में मेरी प्रतिष्ठा कम और ज्यादा होगी? मैं यह किसलिए कर रहा हूं? यह प्रश्न प्रतिपल पूछने जैसा है। यह कोई तार्किक प्रश्न नहीं है जिसका कोई उत्तर दिया जा सके। यह प्रश्न तो एक विधि है, एक मेथड है कि अगर आप इसको पूछते चले जाएं तो धीरे-धीरे आपके जीवन में वह निखार आ जाएगा जो कि उत्तर है।

और इसलिए लाओत्से छलांग लेता है। वह कहता है, "इसलिएः जो सर्वाधिक प्रेम करता है वह सर्वाधिक खर्च करता है। जो बहुत संग्रह करता है वह बहुत खोता है। संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठा नहीं मिलती। जो जानता है कि कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है। वह दीर्घजीवी हो सकता है।"

पहली बात, "जो सर्वाधिक प्रेम करता है वह सर्वाधिक खर्च करता है।"

कई कारणों से। पहला कारण, क्योंकि जो प्रेम करता है उसी के पास कुछ खर्च करने को है भी। जो प्रेम नहीं करता उसके पास कुछ खर्च करने को है भी नहीं, उसके पास देने को कुछ है भी नहीं। और अगर वह कभी कुछ देता भी है तो सिर्फ अपनी दीनता छिपाता है। इसे थोड़ा समझना जरूरी है। जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे भी कुछ देते हैं। सच तो यह है कि कई बार देते हुए दिखाई पड़ते हैं। लेकिन तब वे कुछ दे नहीं रहे हैं; कुछ नहीं दे सकते हैं भीतर का, इसलिए बाहर का कुछ देकर छिपा रहे हैं।

इसे थोड़ा जीवन के रोजमर्रा के ढांचे में देखें। अगर पति पत्नी को प्रेम नहीं दे सकता तो हीरे-जवाहरात देता है, सोना-चांदी देता है, आभूषण देता है। इसलिए नहीं--इसलिए नहीं कि उसके भीतर कुछ है जो वह सोना-चांदी के बहाने देना चाह रहा है, बल्कि इसलिए कि भीतर देने को कुछ भी नहीं है। और अगर वह सोना-चांदी भी न दे तो भीतर की दीनता बड़ी प्रगाढ़ होकर प्रकट हो जाएगी। वह छिपा रहा है; भीतर की दरिद्रता को ढांक रहा है। अगर प्रेम देने को हो तो सोना-चांदी देने जैसा लगेगा भी नहीं, निर्मूल्य मालूम होगा, क्षुद्र मालूम होगा। हीरे-जवाहरात का क्या मूल्य है अगर प्रेम का एक टुकड़ा भी देने को पास हो? लेकिन वह नहीं है। और ऐसा कोई भी मानना नहीं चाहता कि मेरे पास देने को प्रेम नहीं है। तो हम कुछ और देकर... ये बहाने हैं।

मनसविद तो यहां तक कहते हैं कि जिस दिन पति अपने को गिल्टी या अपराधी अनुभव करता है उस दिन कोई भेंट लेकर घर आता है। किसी खूबसूरत स्त्री को रास्ते पर देख लिया, तो उस दिन वह फूल खरीद कर घर ले आता है। यह अपराध, मन में जो एक, अंतःकरण को जो एक चोट लगी है कि कुछ गलती की, कुछ भूल की।

तो जब पति घर फूल लेकर आए तो पत्नी को सजग हो जाना चाहिए। बिना अपराध किए वह ऐसा करेगा नहीं। कुछ छिपाना न हो तो देने की जरूरत नहीं है। मेरे अनुभव में सैकड़ों संपन्न परिवारों की महिलाएं हैं, और जिन का दुख यही है कि उनका पति उन्हें सब कुछ दे रहा है, फिर भी उन्हें कुछ मिल नहीं रहा। जो भी दिया जा सकता है दृश्य, उनके पति उन्हें सब कुछ दे रहे हैं।

लेकिन इस मामले में स्त्री और पुरुष के मन में भी बड़े बुनियादी फर्क हैं। स्त्री और पुरुष के तर्क भी बड़े भिन्न हैं। स्त्री को धोखा देना बहुत मुश्किल है। कितना ही उसे दिया जाए, अगर प्रेम को छिपाने के लिए दिया जा रहा है तो स्त्री उसे उघाड़ ही लेगी, वह उसे पहचान ही जाएगी। प्रेम पर उसकी पकड़ बड़ी गहरी और साफ है। कितना ही जगमगाता हीरा हो तो भी वह पहचान लेगी कि पीछे प्रेम नहीं है। इसलिए पुरुषों को मैं देखता हूं कि वे मुझसे कहते हैं कि हम सब पत्नी के लिए कर रहे हैं, फिर भी कोई तृप्ति नहीं है। और पत्नियां कहती हैं, पति सब दे रहे हैं, उसमें कोई कमी नहीं है, लेकिन जो मिलना था वह नहीं मिला है।

पर प्रेम हम तभी दे सकते हैं जब वह हो, और यह बड़ी जटिल बात है। इस जगत में हम किसी और चीज के संबंध में ऐसी गणित की भूल नहीं करते जैसी प्रेम के संबंध में करते हैं। अगर आपके पास धन नहीं है तो आप जानते हैं कि कैसे देंगे! जो आपके पास नहीं है वह आप नहीं दे सकते, आप जानते हैं। लेकिन प्रेम के संबंध में बड़ी गहरी भूल होती है। हम कभी पूछते ही नहीं कि वह हमारे पास है; बिना पूछे हम उसे देने निकल पड़ते हैं।

प्रेम एक बहुत गहरी कीमिया है। वह भी कोई पैदा होने के साथ लेकर नहीं आता। वह भी एक जीवन का संगीत है जिसे खोजना होता है, जिसे निर्मित करना होता है। छिपा है अनगढ़ पत्थर की भांति, उसे छेनी लेकर निखारना होता है। तब वह मूर्ति बन पाता है। अनगढ़ पत्थर में मूर्ति छिपी है, लेकिन सभी के लिए नहीं छिपी है; उसी के लिए छिपी है जो उसे निकाल सके। हम जन्म के साथ प्रेम लेकर पैदा होते हैं एक पत्थर की भांति, पर फिर जीवन भर उसे निखारना पड़ता है। और धन्यभागी हैं वे लोग, अगर जीवन के अंत तक भी उनकी प्रेम की मूर्ति निखर आए। और जब हमारे पास हो तब हम दे सकते हैं।

पर सब लोग एक-दूसरे को प्रेम दे रहे हैं बिना यह सवाल उठाए कि वह हमारे पास है। इसलिए सब देते हैं, और किसी को मिलता नहीं। करीब-करीब सब दे रहे हैं, और जरूरत से ज्यादा दे रहे हैं, और सब यह सोचते हैं कि हमारे जैसा देने वाला कोई भी नहीं है, लेकिन किसी को मिलता नहीं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम प्रेम देते हैं। मेरे पास वह आदमी आता ही नहीं जो कहता है, हमें प्रेम मिलता है। आप देते हैं तो किसी को मिलना चाहिए। मिलने में ही प्रमाण होगा। या फिर आप खाली हाथ देने का सिर्फ स्वांग कर रहे हैं। शायद अपने को धोखा दे रहे हैं कि आप दे रहे हैं।

सच तो यह है कि सब लेना चाहते हैं। सब लेने की कोशिश कर रहे हैं, और देना केवल लेने के लिए आयोजन है। लेकिन देने के लिए किसी के पास कुछ भी नहीं है। यह भी समझ लेने जैसा है कि जब तक आपके जीवन में प्रेम को मांगने की वासना है, जब तक आप पाते हैं कि मुझे कोई प्रेम दे, तब तक आप देने में समर्थ न हो सकेंगे। क्योंकि आप खुद भिखमंगे हैं। देने के लिए सम्राट होना जरूरी है।

यह बड़ी उलटी बात है। इस जगत में केवल वे ही लोग प्रेम दे पाते हैं जो प्रेम मांगते नहीं, जिनके लिए प्रेम की कोई जरूरत न रही। और जिनको इस जगत में प्रेम की जरूरत है, जो मांगते हैं, जो चौबीस घंटे इसी आशा में रहते हैं कि कोई प्रेम देगा और उनके जीवन में एक पुलक, एक नृत्य आ जाएगा, वे दे नहीं सकते। क्योंकि उनके पास है नहीं। मैं निरंतर कहता हूं, हमारी हालत दो भिखमंगों जैसी है, जो एक-दूसरे के सामने भिक्षा-पात्र फैलाए खड़े हैं। उनमें कोई भी देने वाला नहीं है, वे दोनों लेने वाले हैं। दोनों दुखी होंगे। सारा जगत दुखी है।

"जो सर्वाधिक प्रेम करता है, वह सर्वाधिक खर्च करता है।"

इस खर्च से संबंध वस्तुओं का नहीं है; इस खर्च से संबंध अस्तित्व का है। वह अपने अस्तित्व को लुटाता है। इस अस्तित्व के लुटाने में अगर वस्तुएं हैं तो वस्तुएं भी लुटती हैं, लेकिन वे गौण हैं। वे केवल बहाने हैं। उनके

सहारे वह कुछ और देता है। वह जो देता है वह अदृश्य है। अगर दृश्य भी कुछ देता है तो उसके सहारे कुछ अदृश्य ही देता है जो नहीं दिखाई पड़ता। अस्तित्व को लुटाया जा सकता है।

इसे हम दो-तीन तरह से समझने की कोशिश करें। जब आप प्रसन्न होते हैं, आनंदित होते हैं, तो आपको ख्याल भी न होगा कि आपका पूरा व्यक्तित्व रेडिएट करता है, आपका पूरा व्यक्तित्व कुछ अस्तित्व की किरणों को अपने चारों तरफ फेंकता है। इसे आप एक छोटा सा प्रयोग करें तो समझ में आ जाए। एक अंधेरे कमरे में बैठ जाएं। एक मित्र को सामने बिठा लें अंधेरे कमरे में, जो आपको दिखाई न पड़ता हो। और एक छोटा सा प्रयोग करें। और वह प्रयोग यह हो कि आप सिर्फ शांत बैठ कर यह अनुभव करने की कोशिश करें कि आपका अंधेरे में बैठा हुआ मित्र इस समय प्रसन्न है या दुखी। और एक सात दिन के प्रयोग के भीतर आप अंधेरे में भी उन किरणों को पकड़ना शुरू कर देंगे जिनसे आप तत्क्षण कह सकेंगे बेचूक कि इस वक्त अंधेरे में बैठा हुआ मित्र प्रसन्न है या दुखी। अगर दुखी है तो दुखी आदमी आपके भीतर से कुछ खींचता है। इसलिए दुखी आदमी के पास कोई जाना नहीं चाहता। जाना पड़े तो औपचारिक है। लेकिन दुखी के पास जाकर आप भागना चाहते हैं। जितनी जल्दी छुटकारा हो।

किसी के घर कोई मर गया हो तो आप जाते हैं; एक औपचारिकता पूरी करनी है। लेकिन वहां से आप भागना चाहते हैं। तो जल्दी कोई दो-चार बातें औपचारिक करके, सांत्वना प्रकट करके कि आत्मा अमर है, घबड़ाओ मत, और आप निकल भागते हैं। वहां बेचैनी होती है, वहां दम घुटती है। वह दम क्यों घुट रही है? वह दम इसलिए घुट रही है कि जहां भी कोई दुखी हो, वह आपके अस्तित्व को छीनता है। दुख हिंसात्मक है, और आपको रिक्त करता है। जबरदस्ती आपसे कुछ घट जाता है। इसलिए जब आप वापस लौटेंगे तो आप घर आकर पाएंगे कि थक गए।

अस्पताल जाकर देखें; एक पंद्रह मिनट अस्पताल में घूम कर लौटें। और जैसे आपके जीवन की ऊर्जा को किसी ने चूस लिया हो; खाली हो गए हैं। डाक्टर, नर्सेस कठोर हो जाते हैं। अगर कठोर न हों तो वे मर जाएं। कठोर होना उनके जीवन की रक्षा का उपाय है। अगर वे आप जैसे कोमल हों तो चौबीस घंटे दुखी लोग उनकी जीवन-ऊर्जा को खींच रहे हैं, वे जिंदा नहीं रह सकते। इसलिए वे उपेक्षा से भर जाते हैं। वह उपेक्षा उनका कवच है। उस कवच के माध्यम से, एक आदमी बीमार पड़ा है, वह कितना ही दुखी हो, लेकिन उसका दुख उनके भीतर से कुछ भी खींच नहीं सकता। वे बहेंगे नहीं, वे अपने को सम्हाले हैं।

इसलिए बड़े मजे की बात होती है। महामारियां फैलती हैं। कोई भी दूसरा व्यक्ति बीमार हो जाए। संक्रामक बीमारी है--मलेरिया है, प्लेग है, हैजा है। लेकिन डाक्टर वहीं सैकड़ों मलेरिया के बीमार, सैकड़ों प्लेग के बीमारों के बीच काम करने में लगा रहता है, और उसे इनफेक्शन नहीं पकड़ता। न पकड़ने का कारण है। निरंतर के अभ्यास से दुखी आदमियों के पास रह-रह कर उसने वह कवच निर्मित कर लिया है जिससे वे उसके अस्तित्व को नहीं खींच पाते। और जब तक आप कमजोर न हों तब तक कोई इनफेक्शन नहीं पकड़ सकता। जैसे ही आपका अस्तित्व बहना शुरू होता है, द्वार खुल जाते हैं। उन्हीं द्वारों से संक्रामक बीमारियां प्रवेश कर सकती हैं।

दुखी आदमी आपको चूसता है। इसलिए अगर लोग आपसे दूर भागते हों तो समझना कि आप दुखी हैं, और कोई आपके पास नहीं होना चाहेगा।

अब ये बड़े उपद्रव की बातें हैं। दुखी आदमी चाहता है, लोग मेरे पास बैठें। और दुखी आदमी चाहता है, लोग सहानुभूति प्रकट करें। और दुखी आदमी चाहता है, कोई मुझे छोड़े न। और दुखी आदमी पाता है कि कोई

उसके पास नहीं बैठता; अपने भी दूर भागते हैं। जो प्रेम करते हैं वे भी औपचारिक बातें करके और किसी तरह बचना चाहते हैं। और जितना वे बचते हैं, उतना दुखी आदमी और दुखी होता है। जितना दुखी होता है उतनी उसकी मांग बढ़ती है कि कोई मेरे पास आओ। और जितना वह दुखी होता जाता है उतना पास आना मुश्किल होता चला जाता है। अगर आप पाते हैं कि लोग आपसे हटते हैं तो समझना कि आप दुखी हैं। अगर आप पाते हैं कि लोग आपसे खिंचते हैं, आपके पास आते हैं, तो समझना कि आप सुखी हैं। सुख का वह लक्षण है।

सुख एक मैगनेट है। जब आप सुखी होते हैं तब कोई आपसे खींचता नहीं, आप बांटते हैं। और यह फर्क बड़ा बुनियादी है। जब कोई आपसे खींचता है और जबरदस्ती आपकी जीवन-ऊर्जा जाती है तो आप थकते हैं। और जब आप प्रफुल्लता से बांटते हैं तब आप बढ़ते हैं, थकते नहीं। वही काम जबरदस्ती करवाया जाए तो पीड़ा लाता है, और वही काम आप अपनी प्रसन्नता से करें तो आनंद लाता है। काम वही है, भौतिक तल पर कोई अंतर नहीं है, लेकिन मन के तल पर बड़े बुनियादी फर्क हो जाते हैं।

यह जो लाओत्से कहता है, इसलिए जो सर्वाधिक प्रेम करता है, वह सर्वाधिक खर्च करता है। वह बांटता है अपने को, लुटाता है, उलीचता है। और जितना अपने को लुटाता है, जितना अपने को उलीचता है, उतना ही पाता है कि जीवन नए स्रोतों से और भी ज्यादा समृद्ध हो गया। कुएं की भांति है आदमी का व्यक्तित्व। उससे पानी निकालो, नया पानी नए झरनों से भर जाता है। पानी मत निकालो, झरने धीरे-धीरे बंद हो जाते हैं। और जो पानी था वह सड़ जाता है, गंदा हो जाता है, दुर्गंध देने लगता है। उलीचो कुएं को, कुआं सदा ताजा और नया होता है।

जितना ही कोई व्यक्ति अपने प्रेम को उलीचता है उतना ही पाता है कि प्रेम के नए झरने खुल गए। धीरे-धीरे वैसा व्यक्ति प्रेम का सागर हो जाता है। उसे खाली करने का कोई उपाय नहीं। भय के कारण जो लोग अपने प्रेम को सम्हाले रखते हैं कि कहीं कम न हो जाए, कहीं बांटा, किसी को दिया, तो व्यय न हो जाए, उन्हें जीवन की अनंत संपदा का कोई पता नहीं। वे क्षुद्र संपत्ति से परिचित हैं जो खर्च करने से घटती है। तिजोड़ी में से कुछ भी खर्च करिए तो घटेगा, क्योंकि तिजोड़ी के पास कोई सागर से जुड़े हुए झरने नहीं हैं। आदमी के हृदय के पास परमात्मा से जुड़े हुए झरने हैं। यहां लुटाओ, वहां से भर दिया जाता है।

"जो बहुत संग्रह करता है, वह बहुत खोता है।"

जितना ही कोई इकट्ठा करता है वस्तुएं, धन, उतना ही अपने को खो रहा है। क्योंकि बांटने की कला वह भूल जाएगा; संग्रह करने की व्यवस्था में लुटाने की कला भूल जाएगा। और लुटाने से ही कोई बढ़ता है। यह खोना वास्तविक घटना है। इधर आप जा.ेडते चले जाते हैं तो आपको ख्याल में भी नहीं आता कि आप कुछ खो रहे हैं।

निकोडेमस, एक अमीर युवक, एक रात जीसस के पास गया। रात में गया, क्योंकि दिन में गांव के लोग देख लें और कोई अड़चन की बात खड़ी हो जाए, या गांव के लोगों के सामने जीसस के पास जाना किसी झंझट में डाल सकता है। जीसस से क्या बात हो, जीसस क्या कहें, उनका क्या प्रत्युत्तर हो, उससे भी अड़चन हो सकती है। इसलिए रात अंधेरे में जब कोई भी न था और जीसस के शिष्य जा चुके थे तब वह जीसस के पास गया। और उसने कहा, मुझे कुछ बताएं! मैं भी स्वयं को पाना चाहता हूं, कोई रास्ता! और मैं भला आदमी हूं। जो भी नियम हैं समाज के उनको मैं पूरी तरह पालन करता हूं। चरित्र में मेरे कोई कमी नहीं है। धर्म का जो भी क्रियाकांड है, उसे मैं निभाता हूं। सब पर्व, उत्सव मंदिर पर पहुंचता हूं। पूजा-पाठ, जैसा भी शास्त्रोचित है, वह सब मैंने किया है।

तो ऐसे मेरे जीवन में कोई बुराई नहीं है। फिर अब मैं और क्या करूं जिससे कि मैं स्वयं को पा सकूं? जीसस ने कहा, इन सब बातों से कुछ भी न होगा; यह सब धोखा है। तुम एक काम करो, तुम्हारे पास जो भी है तुम उसे बांट कर आ जाओ। उस युवक ने कहा, यह जरा मुश्किल है। कोई और रास्ता नहीं है? जीसस ने कहा कि जब तक तुम्हारे पास जो है, उसे तुम बचाना चाहते हो, तब तक तुम स्वयं को न पा सकोगे।

यह युवक सब कुछ करने को राजी है। नियम पूरे पालन करता है। मंदिर, पूजा-पाठ, सब पूरे करता है, जो भी परंपरा ने कहा है। लीक पर चलता है, उसमें कहीं कोई भूल-चूक नहीं है। न शराबघर जाता है, न वेश्याघर जाता है। सब तरह से, जिसको हम कुलीन, सच्चरित्र, सज्जन कहें, वैसा व्यक्ति है, जिसमें भूल-चूक आप नहीं निकाल सकते। जिसमें कोई दोष नहीं है; जिस पर कोई कलंक नहीं है। गांव में कोई एक व्यक्ति नहीं कह सकता कि इस पर कोई दोष और कलंक है। उससे भी जीसस कहते हैं, इस सबसे कुछ भी न होगा। यह सब बेकार है। यह सब धोखा है। तेरे पास जो है, तू उसको छोड़ कर आ जा। सब छोड़ कर आ जा।

यह सवाल जीसस का उठाना महत्वपूर्ण है। इससे आप यह मत समझना कि आप सब छोड़ दें तो आपको आत्मा मिल जाएगी। सब आप नहीं छोड़ सकते हैं। उस सबको पकड़ने का यह जो इतना आग्रह है, वस्तु का इतना जो मूल्य है, उसके कारण आत्मा का आपके जीवन में कोई मूल्य नहीं हो सकता। और यह निकोडेमस पूछ रहा है आत्मा पाने की बात; उसको भी और संग्रह में एक संग्रह बना लेना चाहता है। मेरे पास धन भी है, पद भी है, चरित्र भी है, आत्मा भी मेरे पास है। वह भी उसकी लंबी फेहरिस्त में, उसकी संपत्ति में, उसके स्वामित्व में एक हिस्सा बनाना चाहता है। जीसस उसे सीधे राह पर खड़ा कर देते हैं कि या तो तू यह सब छोड़ दे। जीसस ने निकोडेमस से ही वह वचन कहा है जो बहुत प्रसिद्ध हो गया कि सुई के छेद से ऊंट भला निकल जाए, लेकिन स्वर्ग के राज्य में धनी आदमी प्रवेश न कर सकेगा।

यह जो धनी आदमी का विरोध है, यह धन का विरोध नहीं है; यह उसकी पकड़ का विरोध है। इसे हम ऐसा समझें कि अगर हम कहें कि एक आदमी जो हाथ में कंकड़-पत्थर पकड़े हुए है, यह कभी भी अपने हाथ में हीरे-मोती न पकड़ सकेगा; बस ऐसा ही मतलब है। क्योंकि जब तक यह कंकड़-पत्थर पकड़े हुए है तब तक इसे एक तो हीरे-मोती दिखाई नहीं पड़ सकते; यह कंकड़-पत्थर को हीरे-मोती समझ रहा है, इसीलिए तो पकड़े हुए है। और जब तक इसके हाथ कंकड़-पत्थर से भरे हैं और खाली नहीं हैं कि हीरे-मोती को सम्हाल सकें तब तक यह उनको पकड़ेगा कैसे? वस्तुओं पर गहरी पकड़ इस बात की खबर है कि आत्मा का कोई भी स्वर भी सुनाई नहीं पड़ रहा है, उसका जरा सा भी स्वाद नहीं आ रहा है। नहीं तो यह पकड़ छूट जाए। धन छूटे या न छूटे, यह बड़ा सवाल नहीं है; पकड़ छूट जानी चाहिए।

मैं समझता हूं कि अगर निकोडेमस कहता कि अच्छा, मैं जाता हूं, सब लुटा कर आ जाता हूं; तो शायद जीसस ने कहा होता, कोई जरूरत नहीं। लेकिन इतनी हिम्मत निकोडेमस नहीं जुटा पाया। क्योंकि कोई बात न थी। अगर जनक धन के बीच रह कर और आत्मा को पा सकते हैं तो निकोडेमस भी पा सकता था। लेकिन सवाल वह नहीं था। निकोडेमस ने कहा कि नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा; कोई और रास्ता बता दें। वह तैयार हो जाता तो मेरी प्रतीति सदा यह रही है कि जीसस ने कहा होता, तब फिर कोई जरूरत नहीं है। तब धन जहां है वहां है; तू स्वयं की खोज में लग सकता है। तेरी कोई पकड़ नहीं है, क्लिंगिंग नहीं है।

"जो बहुत संग्रह करता है, वह बहुत खोता है। संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठा नहीं मिलती।"

जरा मुश्किल होगी समझने में। क्योंकि प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा तो दूसरों से मिलती है।

लेकिन लाओत्से कहता है, "संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठा नहीं मिलती।"

इसका अर्थ बड़ा और है। लाओत्से यह कह रहा है कि तुम चाहे उसे कितना ही अप्रतिष्ठित करो, तुम उसे अप्रतिष्ठित नहीं कर सकते। तुम्हारे हाथ में कोई उपाय ही नहीं है कि तुम संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठित कर सको। तुम उसे हिला नहीं सकते; वह जहां है वहां से तुम उसे रत्ती भर नीचे नहीं उतार सकते। संतुष्ट का मतलब ही यह है कि कुछ भी हो जाए, तुम उसे असंतुष्ट नहीं कर सकते। और जिसको तुम असंतुष्ट नहीं कर सकते उसको अप्रतिष्ठित कैसे करोगे?

संतुष्ट का अर्थ समझ लें। जो भी है, वह उससे राजी है; और जो भी नहीं है, उसकी उसे आकांक्षा नहीं है। अगर उसे तुम अप्रतिष्ठित कर दो तो वह अप्रतिष्ठा से राजी हो जाएगा। तुम उसे बदनाम करो, वह बदनामी से राजी हो जाएगा। तुम उसे गाली दो, वह गाली स्वीकार कर लेगा।

एक कहानी मैं निरंतर कहता रहा हूं। जापान के एक गांव में एक युवक संन्यासी पर आरोप है कि एक युवती गर्भवती हो गई है, उसे बच्चा हुआ है, और उसने संन्यासी का नाम ले दिया। सारा गांव इकट्ठा हो गया। उस लड़की के पिता ने उस एक दिन के बच्चे को संन्यासी के ऊपर लाकर रख दिया, और कहा कि सम्हालो, यह बच्चा तुम्हारा है! उस संन्यासी ने इतना ही पूछा, इतना ही कहा, इ.ज इट सो? क्या ऐसी बात है? और तब वह बच्चा रोने लगा तो वह बच्चे को समझाने में लग गया। भीड़ उसके झोपड़े में आग लगा कर वापस लौट गई।

सुबह-सुबह यह घटना घटी। और बच्चा रोने लगा, उसका रोना बढ़ने लगा। वह भूखा है और उस बच्चे के लिए दूध चाहिए। वह संन्यासी भीख मांगने गया। उस गांव में भिक्षा मिलना अब मुश्किल थी। प्रतिष्ठा खो गई। कोई संन्यासी को तो भिक्षा देता नहीं था, उसकी प्रतिष्ठा को देता था। द्वार उसके मुंह पर बंद कर दिए गए। बच्चे उसके पीछे दौड़ रहे हैं। सारे गांव में हंसी-मजाक चल रहा है। ऐसा कभी भी नहीं हुआ था कि एक संन्यासी एक छोटे बच्चे को लेकर गांव में भीख मांगने निकला हो। फिर उसने उस घर के दरवाजे पर भी जाकर भीख मांगी, जिसकी लड़की का यह बच्चा था। और उसने कहा कि मुझे मत दो, मैं भूखा रह सकता हूं, लेकिन यह बच्चा मर जाएगा।

उस बच्चे की मां को होश आया। वह अपने पिता के चरणों पर गिर पड़ी। और उसने कहा कि मैं झूठ बोली हूं; इस बच्चे के असली बाप को बचाने के लिए मैंने निर्दोष संन्यासी का नाम ले दिया। मैंने यह नहीं सोचा था कि बात यहां तक बढ़ जाएगी। मैंने सोचा था, संन्यासी को परेशान करके, गांव से बाहर करके, आप वापस लौट आएंगे। लेकिन यह बात ज्यादा हो गई। और संन्यासी ने इनकार नहीं किया, इससे और मन में चुभती है बात।

बाप नीचे आया, बच्चे को संन्यासी के हाथ से वापस लेने लगा। उस संन्यासी ने पूछा, क्यों? तो उसने कहा, क्षमा करें, यह बच्चा आपका नहीं है। उस संन्यासी ने फिर उतने ही शब्द कहे, इ.ज इट सो? क्या ऐसी बात है?

बस इतना ही सुबह भी बोला था वह। और इतना ही बाद में भी बोला। न उसने कहा कि बच्चा मेरा है, न उसने कहा कि बच्चा मेरा नहीं है। जो स्थिति थी, उसके लिए राजी हो गया। ऐसे व्यक्ति की अप्रतिष्ठा नहीं हो सकती। क्योंकि ऐसे व्यक्ति को आप कुछ भी करें, जैसी भी स्थिति होगी, वह उसे पूरी तरह स्वीकार करता है। उसकी स्वीकृति समग्र है।

"संतुष्ट आदमी को अप्रतिष्ठा नहीं मिलती।"

इससे उलटा भी सही है। असंतुष्ट आदमी कभी प्रतिष्ठित नहीं होता। उसे कुछ भी मिल जाए, वह कुछ भी पा ले, उसकी भूख जरा भी कम नहीं होती, उसकी प्यास घटती नहीं, उसकी तृषा का कोई अंत नहीं है। उसकी तृष्णा दुष्पूर है।

"जो जानता है कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है।"

और संतुष्ट आदमी का जीवन-सूत्र यह है कि वह जानता है कहां रुकना है। उसे फिर कोई खतरा नहीं है। संतुष्ट आदमी जानता है कहां रुकना है। आवश्यकता उसकी सीमा है।

आवश्यकता हमारी सीमा नहीं है। आप भोजन करने बैठे हैं; आपको कुछ भी पक्का पता नहीं चलता, कहां रुकना है। शरीर की कितनी जरूरत है, उससे आप भोजन नहीं करते; स्वाद की कितनी मांग है, उससे भोजन चलता है। स्वाद का कोई अंत नहीं है, स्वाद की कोई सीमा नहीं है। और स्वाद पेट से पूछता ही नहीं कि कहां रुकना है। स्वाद पागल है, उस पर कोई नियंत्रण नहीं है।

आवश्यकताएं जरूरी हैं, वासनाएं जरूरी नहीं हैं। आवश्यकता और वासना में इतना ही फर्क है। आवश्यकता उस सीमा का नाम है जितना जीवन के लिए--श्वास चले, शरीर चले, और खोज चलती रहे आत्मा की--उतने के लिए जो काफी है। उससे ज्यादा विक्षिप्तता है। उससे ज्यादा का कोई अर्थ नहीं है। फिर उस दौड़ का कोई अंत भी नहीं हो सकता। आवश्यकता की तो सीमा आ सकती है, लेकिन वासना की कोई सीमा नहीं आ सकती। सीमा का कोई कारण ही नहीं, क्योंकि वह मन का खेल है। कहां रुकें? मन कहीं भी नहीं रुकता।

लाओत्से कहता है, "जो जानता है कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है।"

खतरा उसी जगह शुरू होता है जहां हमें पता नहीं चलता, कहां रुकें। धनपतियों को देखें। धन उस जगह पहुंच गया है जहां उन्हें अब उसकी कोई भी जरूरत नहीं है, लेकिन रुक नहीं सकते। शायद अब उनके पास जो धन है उससे वे कुछ खरीद भी नहीं सकते। क्योंकि जो भी खरीदा जा सकता था वे खरीद चुके। अब धन का उनके लिए कोई भी मूल्य नहीं है। धन का मूल्य कम होता जाता है, जैसे-जैसे धन बढ़ता है। आपके पास एक लाख रुपए हैं तो मूल्य ज्यादा है, एक करोड़ होंगे तो मूल्य कम हो जाएगा। क्योंकि अब आप कम चीजें खरीद सकते हैं; चीजें नहीं बचतीं जिनको आप खरीदें। फिर दस करोड़ हो जाते हैं तो धन बिल्कुल फिजूल होने लगता है। फिर दस अरब हो जाते हैं। तो दस अरब के ऊपर जो धन आप इकट्ठा कर रहे हैं, वह बिल्कुल कागज है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। क्योंकि उस धन का मूल्य ही है कि उससे कुछ खरीदा जा सके। अब आपके पास खरीदने को भी कुछ नहीं है। जमीन के पास आपको बेचने को कुछ नहीं है। मगर दौड़ जारी रहती है। वह मन दौड़ता चला जाता है। वह किसी आवश्यकता को, किसी सीमा को नहीं मानता। मन विक्षिप्त है।

"जो जानता है कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है।"

खतरा तो वहीं आता है जब हमें रुकने के संकेत सुनाई नहीं पड़ते, और हम बढ़ते ही चले जाते हैं। जरूरत पूरी हो जाती है और हम बढ़ते चले जाते हैं। खतरे का मतलब यह है कि अब हम खो गए पागलपन में, अब इससे लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और अगर आप लौटना चाहेंगे तो आपको खोजना पड़ेगा वह स्थान जहां आपकी आवश्यकता समाप्त हो गई थी, फिर भी आप दौड़ते चले गए। अपनी आवश्यकता पर लौट आना संन्यास है। अपनी आवश्यकता को भूल कर बढ़ते चले जाना संसार है।

"जो जानता है कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है। वह दीर्घजीवी हो सकता है।"

उसका यह छोटा सा जीवन भी फिर छोटा नहीं है; उसका यह छोटा सा जीवन भी काफी है। इस छोटे से जीवन में भी वह वह सब जान सकता है जिसके लिए जीवन अवसर है। इस शरीर के साथ जो थोड़े से दिनों का संबंध है, इस संबंध में वह उस सबको पहचान लेगा जो अमृत है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं है। लेकिन यह वही आदमी कर पाएगा, यह दीर्घ जीवन उसका ही हो पाएगा, जो आवश्यकता पर रुक गया। और जो आवश्यकता

पर नहीं रुका, उसका तो जीवन अल्प है। क्योंकि वासनाएं इतनी हैं, और समय इतना कम है। अरबों तक दौड़ है मन की और जीवन छोटा है। और यह जीवन इस दौड़ में ही व्यय हो जाता है।

जीवन काफी है। इसे अगर ठीक से समझें तो एक सौ साल का जीवन पर्याप्त जीवन हो सकता है। सत्तर साल का जीवन बहुत है। उससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई व्यक्ति सम्यकरूपेण चले, सीमा पर रुकना जाने, व्यर्थ के साथ न दौड़े, आवश्यक पर ठहर जाए और संतुष्ट हो, तो सत्तर साल का जीवन काफी है। कोई सात करोड़ जन्म लेकर मुक्त होने की जरूरत नहीं है। नहीं तो सात करोड़ जन्म भी कम हैं। क्योंकि हर बार वही दौड़ शुरू हो जाती है। जो करने योग्य है वह हो ही नहीं पाता और जो न करने योग्य है उसमें जीवन व्यर्थ हो जाता है। जो सार है वह हाथ में आ ही नहीं पाता और असार में हम दौड़ कर समाप्त हो जाते हैं।

एक यूनानी कथा मैंने सुनी है। एक बहुत तेज दौड़ने वाला देवता था। उसकी जैसी गति किसी की भी नहीं थी। और एक दूसरे देवता से शर्तबंदी हो गई। उस दूसरे देवता ने कहा कि तुम मेरे मुकाबले दौड़ न पाओगे। दूसरा देवता होशियार था, और जीवन के कुछ सूत्रों को जानता था। वह पहला देवता हंसा, और उसने कहा कि मुझसे तेज दौड़ने वाला कोई है ही नहीं। दौड़ हुई। दूसरे देवता ने एक काम किया। उसने रास्ते पर, जहां यह प्रतियोगिता होने वाली थी, सोने की ईंटें पूरे रास्ते पर डाल दीं।

दौड़ शुरू हुई। पहला देवता जानता है कि दुनिया में कोई उससे तेज दौड़ने वाला नहीं है। और जब उसे सोने की ईंटें चारों तरफ पड़ी दिखाई पड़ने लगीं तो उसने कहा कि थोड़ी ईंटें उठा लेने में हर्ज नहीं है, और फिर मैं कभी भी मिला लूंगा। एक ईंट उठाई, तब तक दूसरा देवता आगे निकल गया। पर उसने फिर उसे पार कर लिया।

पर ईंटें पूरे रास्ते पर थीं। और ईंटों का बोझ बढ़ने लगा। और जो उठा ली थीं, उनको छोड़ना मुश्किल। आपको भी मुश्किल, उसको भी मुश्किल। और ईंटें पड़ी ही थीं। और मोह भी नहीं छूटता था। तो वह उठाता भी गया, दौड़ता भी गया। बहुत बार वह दूसरे देवता से आगे निकल आता, लेकिन फिर ईंटें उठाने लगता। और ईंटें बढ़ती गईं, और अंतिम क्षण में वह हार गया।

बाद में यह पता चला कि जिस देवता से वह हार गया है वह सबसे धीमा दौड़ने वाला देवता है। वे दोनों दो छोर थे--एक सबसे ज्यादा दौड़ने वाला, एक सबसे कम दौड़ने वाला। लेकिन कम, धीमा दौड़ने वाला जीत गया। उसने संसारी मन की एक तरकीब का उपयोग कर लिया।

जहां पहुंचना है, उसके लिए तो जीवन काफी है, दौड़ काफी है। जितनी दौड़ चाहिए उतनी आपके पास है। लेकिन रास्ते पर बहुत सोने की ईंटें हैं, बड़े प्रलोभन हैं। और रास्ते से बहुत सी पगडंडियां निकलती हैं जो व्यर्थ जंगलों में भटका ले जाती हैं। लेकिन उन पगडंडियों पर सब पर स्वर्ण-द्वार हैं, बड़ी मोहक हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, "जो जानता है कहां रुकना है, उसे कोई खतरा नहीं है। वह दीर्घजीवी हो सकता है।"

यह छोटा सा जीवन भी उसके लिए पर्याप्त है। और जो जानता नहीं कहां रुकना है, उसके लिए कितने ही जीवन अपर्याप्त होंगे।

इस पूरे सूत्र का सार-अंश मन में रख लें: निजता का मूल्य है। और जो भी करें, वह मेरी निजता बढ़ती हो, मेरी आत्मा बढ़ती हो, मेरा अस्तित्व सघन होता हो, उसे ध्यान में रख कर करें। और जिससे भी यह अस्तित्व खतरे में पड़ता हो, खोता हो, क्षीण होता हो, उससे बचें, उससे रुकें। और ध्यान रखें, कहां रुक जाना है। सुयश की नहीं, प्रतिष्ठा की नहीं, महत्वाकांक्षा की नहीं, अपने होने की, अपने अस्तित्व के आनंद की खोज;

इन थोड़े से शब्दों में पूरी की जा सकती है। दूसरे क्या कहते हैं, यह मूल्यवान नहीं; आप क्या हैं, यही मूल्यवान है। क्या आपके पास है, यह मूल्यवान नहीं; जो भी आपके पास है उसमें आप संतुष्ट हैं, यह मूल्यवान है। क्या मिल जाएगा, तब आप संतुष्ट होंगे, यह बात फिजूल है। जो मिल गया है अगर आप उसमें संतुष्ट हैं तो ही आप निजता को उपलब्ध हो पाएंगे।

प्रेम आनंद बांटता है। और जितना बांट सकें, उलीच सकें स्वयं को, उतनी ही आपकी सत्ता समृद्ध होती है।

आज इतना ही।

बयास्सीवां प्रवचन

वह पूर्ण है और विकासमान भी

Chapter 45

Calm Quietude

The highest perfection is like imperfection,
And its use is never impaired.
The greatest abundance seems meagre,
And its use will never fail.
What is most straight appears devious,
The greatest skill appears like clumsiness;
The greatest eloquence seems like stuttering.
Movement overcomes cold,
(But) keeping still overcomes heat.
Who is calm and quiet becomes the guide for the universe.

अध्याय 45

निश्चल प्रशांति

श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है,
और इसकी उपयोगिता कभी कम नहीं होती।
सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति है,
और इसकी उपयोगिता कभी समाप्त नहीं होगी।
जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है;
सर्वश्रेष्ठ कौशल अनाड़ीपन जैसा मालूम देता है;
सर्वश्रेष्ठ वाग्मिता तुतलाहट जैसी लगती है।
गति से ठंडक दूर होती है,
लेकिन अगति से गर्मी परास्त होती है।
जो निश्चल और प्रशांत है, वह सृष्टि का मार्गदर्शक बन जाता है।

अति सरल, लेकिन अति जटिल भी यह सूत्र है।

अतियां समान हो जाती हैं। शून्य और पूर्ण बिल्कुल एक जैसे हैं। जो शून्य की परिभाषा है वही पूर्ण की भी। शून्य भी अनादि और अनंत है; पूर्ण भी अनादि और अनंत है। न तो शून्य की कोई सीमा है; न पूर्ण की कोई सीमा है। शून्य की इसलिए सीमा नहीं हो सकती कि वह छोटे से छोटा है। और सीमा बनानी हो तो उतने छोटे पर कोई सीमा नहीं बनती। पूर्ण इसलिए असीम है कि वह बड़े से बड़ा है। सीमा बनानी हो तो उतने विराट पर कोई सीमा नहीं बनती।

देखने में दोनों विपरीत मालूम होते हैं; देखने में एक-दूसरे के निषेध मालूम होते हैं। लेकिन चाहे कोई शून्य में उतर जाए और चाहे कोई पूर्ण में, वे एक ही जगह पहुंच जाएंगे।

शंकर पूर्ण की बात करते हैं, बुद्ध शून्य की। और जो केवल शास्त्र में ही उलझे रहते हैं उन्हें लगेगा कि शंकर और बुद्ध विपरीत हैं। लेकिन जिन्होंने अनुभव से जाना है, शंकर और बुद्ध उन्हें एक ही बात कहते हुए मालूम पड़ेंगे। उनके शब्दों का चुनाव भिन्न है; उनका इशारा एक है। शंकर कहते हैं, सब कुछ। और बुद्ध कहते हैं, कुछ भी नहीं। लेकिन दोनों असीम की ओर इशारा करते हैं, अपरिभाष्य की ओर, अव्याख्य की ओर।

जन्म और मृत्यु हमें विपरीत दिखाई पड़ते हैं। लेकिन जन्म और मृत्यु बिल्कुल एक जैसे हैं। जन्म के पहले आप क्या थे, वही आप मृत्यु के बाद हो जाएंगे। जन्म के पहले देह न थी; मृत्यु के बाद भी देह न होगी। जन्म के पहले का भी आपको कोई स्मरण नहीं है अभी, मृत्यु के बाद का भी आपको कोई बोध नहीं। जन्म के पहले जैसे असीम के साथ एक थे, वैसे मृत्यु के बाद भी असीम के साथ एक हो जाएंगे। जैसा जन्म व्याख्या के पार है, वैसे ही मृत्यु भी व्याख्या के पार है। जन्म हमें पहले मालूम पड़ता है, मृत्यु बाद में; सिर्फ इतने से कोई फर्क नहीं पड़ जाता।

ऐसा ही समझें कि जैसे कोई एक वर्तुल में यात्रा शुरू करे, एक सर्कल में, तो जिस बिंदु से यात्रा शुरू होगी उसी बिंदु पर यात्रा का अंत भी होगा। जो प्रथम बिंदु होगा चलने का वही अंतिम बिंदु भी होगा पहुंचने का। और इस जगत में सभी कुछ वर्तुलाकार है। न केवल पृथ्वी, चांद, तारे, सूरज; जीवन की सारी गति वर्तुलाकार है। मौसम घूमते हैं एक वर्तुल में, पृथ्वी एक चक्कर लगाती वर्तुल में, सूर्य किसी महासूर्य का परिभ्रमण करता है। और आइंस्टीन के हिसाब से सारा ब्रह्मांड भी किसी केंद्र का परिभ्रमण कर रहा है। सारा परिभ्रमण वर्तुलाकार है। जहां से यात्रा शुरू होती है वहीं यात्रा का अंत है।

आदमी का जीवन भी भिन्न नहीं हो सकता। जन्म और मृत्यु एक हैं। लेकिन जन्म को हम प्रेम करते हैं, आकांक्षा करते हैं; मृत्यु से हम भयभीत होते हैं, बचना चाहते हैं। बुद्ध ने कहा है, जिसने जन्म को चाहा उसने मृत्यु को मांग ही लिया। और जिसे मृत्यु से बचना हो उसे जन्म की चाह छोड़ देनी होगी। क्योंकि वे दोनों एक हैं। हमें भिन्न दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हमें जीवन का वर्तुल नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन बचपन, जवानी, बुढ़ापा--एक वर्तुल का अंग हैं। बूढ़ा व्यक्ति फिर से बच्चों जैसा हो जाता है। उसकी समझ, उसका व्यवहार सब बच्चों जैसा हो जाता है। बच्चे बूढ़ों से मिलते-जुलते होते हैं। जवानी जैसे वर्तुल का ऊपरी हिस्सा है, और जवानी के बाद फिर वर्तुल उतरने लगता है। जन्म और मृत्यु एक ही जगह के नाम हैं।

लाओत्से का इस पर बहुत जोर है। और इसे जो समझ लेगा उसे इस जगत में फिर कोई भी चीज विपरीत नहीं दिखाई पड़ेगी। और जिसको भी ऐसा हो जाए कि जगत में कुछ विपरीत न दिखाई पड़े, वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि विपरीत भ्रांति है, विरोध अज्ञान में ही दिखाई पड़ता है; ज्ञान में कोई भी विरोध

नहीं। रास्ते कितने ही भिन्न हों, दृष्टियां कितनी ही अलग हों, लेकिन जहां-जहां हमें विरोध दिखाई पड़ता है वहां-वहां विरोध हमारे अज्ञान के कारण ही दिखाई पड़ता है।

जगत में इतने धर्म हैं--ज्ञान के कारण नहीं, मनुष्य के अज्ञान के कारण। उनमें बड़ी विपरीतता दिखाई पड़ती है। हिंदू महर्षि, उपनिषद और वेदों के ज्ञाता कहते हैं, परमात्मा है। जगत को उसने ही रचा है, स्रष्टा है। और स्रष्टा के बिना तो धर्म की कोई धारणा ही नहीं हो सकती। महावीर कहते हैं, कोई स्रष्टा नहीं है। और महावीर कहते हैं, अगर कोई स्रष्टा है तो धर्म के होने का कोई उपाय नहीं है। बड़ी विपरीत बातें हैं। महावीर कहते हैं, आत्मा ही परम है; उपलब्ध करने योग्य है। और बुद्ध कहते हैं, जिसने आत्मा की भ्रांति छोड़ दी वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। जब तक आत्मा का ख्याल है तब तक अज्ञान होगा, बुद्ध कहते हैं। और महावीर कहते हैं, जब तक आत्मा का पता नहीं तभी तक अज्ञान है। बड़ी विपरीत बातें हैं।

लेकिन मैं कहना चाहूंगा, बुद्ध और महावीर एक ही बात कहना चाह रहे हैं, क्योंकि शून्य और पूर्ण एक ही अर्थ रखते हैं। या तो पूरे आत्मवान हो जाएं और या आत्मा से बिल्कुल शून्य हो जाएं; एक ही अवस्था में पहुंच जाएंगे। वह अवस्था इन दोनों शब्दों से प्रकट की जा सकती है।

लाओत्से के इस सूत्र को समझेंगे तो बहुत सी गहराइयां और रहस्य प्रकट होंगे।

"श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है।"

इससे ज्यादा विरोधाभासी कोई वक्तव्य नहीं हो सकता!

"श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है।"

एक बहुत प्राचीन विवाद है, सारे जगत के धर्मशास्त्री उस विवाद में संलग्न रहे हैं; लेकिन उत्तर शायद लाओत्से के पास है। थियोलाजी, धर्मशास्त्र निरंतर एक समस्या से उलझा रहता है, और वह यह कि यदि परमात्मा पूर्ण है तो फिर जगत में कोई विकास नहीं हो सकता। क्योंकि पूर्ण में विकास का क्या उपाय है? पूर्ण का तो अर्थ है जो हो चुका जो हो सकता था। इंच भर भी विकास की कोई संभावना नहीं है।

इसलिए ईसाइयत ने पश्चिम में डार्विन के विकासवादी सिद्धांत का विरोध किया। विरोध का कारण यह था। क्योंकि डार्विन ने कहा कि जीवन विकसित हो रहा है, हम आगे जा रहे हैं; कुछ नया घटित हो रहा है, जो अतीत में नहीं था वह भविष्य में होगा। ईसाइयत इसे स्वीकार न कर सकी। क्योंकि ईसाइयत का ख्याल है कि जगत परिपूर्ण परमात्मा का निर्माण है, इसमें कुछ भूल-चूक तो हो नहीं सकती। इसमें कोई कमी भी नहीं हो सकती। तो विकास कैसे होगा? इवोल्यूशन कैसे होगी? जहां कुछ कमी हो, जहां कुछ भूल-चूक हो, वहां विकास हो सकता है। लेकिन पूर्ण हाथों ने रचा हो इस जगत को तो विकास का कोई उपाय नहीं है। और अगर विकास का उपाय है तो इसका अर्थ यही हुआ कि वे हाथ पूर्ण नहीं थे जिसने जगत को रचा; वे अपूर्ण थे। अपूर्णता में विकास हो सकता है। पूर्णता में कैसा विकास? इसलिए ईसाइयत मानती है, जगत की सृष्टि हुई है, विकास नहीं हो रहा है।

क्रिएशन और इवोल्यूशन में विरोध है। परमात्मा ने जगत को एकबारगी बना दिया। उसमें कोई विकास नहीं हो रहा है। और न कोई विकास हो सकता है। क्योंकि विकास का मतलब ही यह होगा कि परमात्मा को भूलें पता चल रही हैं, और वह उनको बदल रहा है, बेहतर कर रहा है।

अपूर्ण व्यक्ति के साथ तो माना जा सकता है। एक चित्रकार एक चित्र बनाए, फिर दूसरा बनाए, और तीसरा बनाए, और परिष्कार करता चले--और हर नए चित्र में ज्यादा सुधार होता चला जाए--क्योंकि चित्रकार अपूर्ण है। लेकिन परमात्मा जगत बनाए तो फिर उसमें कैसे विकास की संभावना है? और अगर

विकास हो रहा है तो परमात्मा अपूर्ण है। और परमात्मा अगर अपूर्ण है तो फिर पूर्ण कोई कैसे होगा! अगर स्वयं परमात्मा अपूर्ण है तो पूर्णता का फिर कोई उपाय न रहा। और अपूर्ण परमात्मा को माना भी नहीं जा सकता। अपूर्णता ही उसके परमात्म-तत्व को छीन लेती है। परमात्मा पूर्ण तो होना ही चाहिए। यदि है तो पूर्ण होगा। अगर अपूर्ण है तो बेहतर है कहना कि वह नहीं है।

ईसाइयत के सामने डार्विन ने बड़ी समस्या खड़ी कर दी। जगत विकसित हो रहा है तो परमात्मा अपूर्ण हो जाता है। और अपूर्ण परमात्मा को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

और भी मजे की कुछ बातें हैं जो समझ लेनी जरूरी हैं। अगर परमात्मा भी अपूर्ण है और आदमी भी अपूर्ण है तो दोनों में कोई फर्क नहीं; पूजा का कोई अर्थ नहीं; प्रार्थना व्यर्थ है। और अपूर्ण अपूर्ण से मांगे भी, हाथ भी जोड़े, प्रार्थना भी करे, तो क्या पाएगा? अगर परमात्मा अपूर्ण है तो सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता। अपूर्णता सर्वशक्तिशाली नहीं हो सकती। परमात्मा अपूर्ण है तो सर्वज्ञाता नहीं हो सकता। अपूर्णता सब तरफ अपूर्णता होगी। और अगर परमात्मा भी अब तक पूर्ण नहीं हो पाया तो फिर मनुष्य के सपने व्यर्थ हैं कि कभी कोई मनुष्य पूर्ण हो जाएगा; कि कोई महावीर, कोई बुद्ध कभी पूर्ण हो सके। फिर पूर्णता इस जगत में हो ही नहीं सकती।

पूर्णता न हो सके तो धर्म की धारणा गिर जाती है। क्योंकि धर्म है खोज पूर्ण होने की--कैसे अपूर्णता कटे, और कैसे चेतना पूर्ण हो जाए; कैसे हम उस जगह पहुंच जाएं जहां से आगे जाने का और कोई भी उपाय नहीं रह जाता, कैसे हम उस बिंदु को पा लें जिसके आगे पाने की कोई वासना नहीं रह जाती। अगर परमात्मा अपूर्ण है तो वासनामुक्त नहीं हो सकता है। क्योंकि अपूर्ण तो वासना करेगा ही; पूर्ण होने की वासना करेगा; जहां-जहां कमी है वहां-वहां पूरा होना चाहेगा। अगर परमात्मा के ज्ञान में कमी है तो ज्ञान की खोज जारी रहेगी। अगर परमात्मा के प्रेम में कमी है तो प्रेम की खोज जारी रहेगी। अगर परमात्मा के होने में, बीइंग में कमी है, तो होने की खोज जारी रहेगी। और अगर परमात्मा भी वासना कर रहा हो तो इस जगत में लोगों को समझाना कि तुम निर्वासना में उतर जाओ, निहायत व्यर्थ है।

परमात्मा को पूर्ण होना ही चाहिए, अगर वह हो। अपूर्ण परमात्मा वासना से भरा होगा। और वासना से भरे परमात्मा का क्या अर्थ? फिर वह संसार का ही हिस्सा है। फिर वह वैसे ही अज्ञान में दबा है जैसे हम दबे हैं।

और भी एक बात समझ लेनी जरूरी है कि अज्ञान अगर हो तो पूरा ही होता है; ज्ञान हो तो पूरा ही होता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई आदमी जिंदा हो तो पूरा ही जिंदा होता है; मरा हो तो पूरा ही मरा होता है। आप ऐसा नहीं कह सकते कि आदमी थोड़ा सा जिंदा, थोड़ा सा मरा है। वह बेहोश भी पड़ा हो तो भी पूरा ही जिंदा है। जब तक जिंदा है पूरा जिंदा है; और जब मरा है तो पूरा मरा है। जैसे मृत्यु और जीवन में कोई विभाजन नहीं हो सकता ऐसे ही ज्ञान और अज्ञान में भी कोई विभाजन नहीं हो सकता। या तो आप जानते हैं, या आप नहीं जानते। थोड़ा-थोड़ा जानने का कोई भी अर्थ नहीं है। परमात्मा अगर अपूर्ण है तो है ही नहीं। पूर्णता उसका अनिवार्य लक्षण है। अपूर्ण तो संसार है। फिर परमात्मा की धारणा की कोई जरूरत नहीं; अपूर्ण तो संसार ही काफी है।

लेकिन लाओत्से बड़े अदभुत वचन बोल रहा है।

लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है।"

लाओत्से के लिए अड़चन नहीं है। लाओत्से कहता है कि जब पूर्णता पूर्ण होती है तब भी विकसित होती है; वैसी ही विकसित होती है जैसी अपूर्णता में विकास होता है। समझने में कठिनाई होगी, क्योंकि यहां तर्क

बहुत काम नहीं देगा। यह हिसाब गणित के बाहर हो गया। यह हिसाब वही है जो उपनिषदों ने कहा है। ईशावास्य ने कहा है कि उससे पूर्ण भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। यह गणित के बाहर है। क्योंकि गणित का तो सीधा नियम है कि अगर आप कुछ भी निकाल लेंगे तो जितना था उससे कम हो जाएगा, और अगर पूर्ण ही निकाल लेंगे तो पीछे शून्य रह जाएगा, कुछ भी नहीं बचेगा। लेकिन ईशावास्य कहता है, उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो--थोड़ा निकालने में तो कोई डर ही नहीं है, पूर्ण भी निकाल लो--तो भी पूर्ण ही पीछे शेष रहता है। यह बात गणित के बाहर की हो गई। तर्क इसे सिद्ध न कर पाएगा। लेकिन अनुभव इसे सिद्ध करता है।

हमारे अनुभव में प्रेम एक तत्व है जिसे हम पहचान सकते हैं, जो गणित के बाहर है। आप कितना ही प्रेम अपने बाहर निकाल दो, कितना ही प्रेम लोगों को बांट दो, इससे आपके भीतर प्रेम में रत्ती भर भी कमी नहीं होगी। या कि कमी हो जाएगी? गणित के हिसाब से तो कमी होनी चाहिए, क्योंकि जो भी बाहर निकाल दिया उतना घट जाएगा। लेकिन अनुभव कहता है कि प्रेम घटता नहीं, जितना करो उतना बढ़ता है।

तो एक तो तर्क का जगत है, जहां जोड़ने से चीजें बढ़ती हैं, घटाने से घटती हैं। एक प्रेम का भी, काव्य का और हृदय का जगत है, जहां घटाने से भी चीजें घटती नहीं, विपरीत बढ़ती भी हैं, और जहां रोकने से घटती हैं। अगर कोई व्यक्ति अपने प्रेम को रोके तो सड़ जाए; थोड़े दिन में पाएगा कि प्रेम तिरोहित हो गया, नहीं बचा। प्रेम तो जितना बांटा जाए उतना ही बढ़ता है।

लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है।"

अपूर्णता का एक ही लक्षण है कि वह विकासमान है, डायनामिक है, गतिमान है, बहती है, आगे बढ़ती है। इस जगत की जो पूर्णता है वह भी आगे बढ़ने वाली पूर्णता है--पूर्णता से और पूर्णता की ओर, और सदा पूर्णता से और पूर्णता की ओर। तब परमात्मा पूर्ण भी हो सकता है और विकासमान भी हो सकता है। और जब तक वह दोनों न हो तब तक परमात्मा की धारणा जगत को समझाने में सहयोगी नहीं हो सकती।

इसे हम जीवन के और पहलुओं से समझने की कोशिश करें। क्योंकि परमात्मा को हम जानते नहीं हैं; उससे हमारा सीधा कोई परिचय नहीं है। इसलिए सीधा उसको समझना भी आसान नहीं है। किन्हीं और पहलुओं से देखें, जहां पूर्णता अपूर्णता के समान होती है। बड़े चित्रकार कहते हैं कि जब कोई संपूर्ण रूप से चित्रकला में पारंगत हो जाता है तो वह बच्चों की तरह चित्र बनाने लगता है। पिकासो के चित्र देखें। इस सदी में ही नहीं, मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में वैसी सधी हुई अंगुलियां, वैसा चित्रकार खोजना मुश्किल है। लेकिन उसके चित्र बच्चों जैसे हैं। छोटे बच्चे जैसा बनाएंगे वैसा पिकासो बनाता है। और आप सोचते होंगे कि कोशिश करें तो आप भी बना सकते हैं! आप न बना सकेंगे। जो लोग चित्रों की नकल करने का धंधा करते हैं, वे बड़े से बड़े चित्रकार के चित्रों की नकल कर लेते हैं; लेकिन पिकासो के चित्रों की नकल बहुत मुश्किल है। क्योंकि वे इतने सरल हैं, उनकी नकल बहुत मुश्किल है। जटिल चित्रों की नकल की जा सकती है; सरल चित्रों की नकल बहुत मुश्किल है। पिकासो ऐसे बनाता है जैसे बनाना जानता ही नहीं। चित्रकला तभी पूरी होती है कि जो भी आपने सीखा हो जब आप भूल जाएं।

जापान में, चीन में, जहां चित्रकला को ध्यान के लिए उपयोग में लाया गया, और जहां ध्यान को खोजने के लिए बहुत तरह के आयामों में चित्रकला भी एक आयाम बनी, वहां झेन गुरु जब किसी को चित्रकला सिखाता है तो दस या बारह साल साधना चलती है। फिर कुछ वर्षों के लिए, वह कहता है, फेंक दो तूलिका, फेंक दो रंग और भूल जाओ; तुम अब फिर उस जगह पहुंच जाओ जब तुम चित्र बनाना बिल्कुल भी नहीं जानते

थे। और जब चित्रकार बिल्कुल भूल जाएगा तब गुरु कहेगा कि अब तुम बनाओ, अब तुमसे कुछ बन सकता है। क्योंकि अब तुम्हारी पूर्णता अपूर्णता जैसी हो गई। अब तुम सरलता से बनाओगे। अब तुम्हारे बनाने में टेक्नीक नहीं होगा।

बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अक्सर लोग आर्ट और टेक्नीक को एक ही समझ लेते हैं, कला और विधि को एक ही समझ लेते हैं। तो कोई व्यक्ति तूलिका को ठीक से पकड़ना जानता है, रंगों की ठीक समझ है, और वर्षों तक अभ्यास किया है उसने, वह भी चित्र बना सकेगा। कुशल है, तकनीकी दृष्टि से समझदार है; लेकिन उसके चित्र वैसे ही होंगे जैसे किसी तुकबंद की कविता होती है, जो कि ग्रामर से परिचित है, व्याकरण से परिचित है, मात्रा-छंदों से परिचित है और तुकबंदी बना लेता है। उसकी कविता में भूल निकालनी मुश्किल है, लेकिन उसकी कविता में प्राण नहीं होंगे। उसकी कविता बिल्कुल ही गणित के हिसाब से सही है, लेकिन पीछे कोई आत्मा नहीं होगी। जैसे एक आदमी की लाश पड़ी हो। शरीर की दृष्टि से बिल्कुल पूरी है। एक-एक हड्डी, एक-एक मांस-मज्जा, सब पूरा है। लेकिन फिर भी लाश है; भीतर आत्मा नहीं।

टेक्नीक शरीर देता है। टेक्नीक से कोई भी आदमी किसी भी विधा का शरीर निर्मित कर लेता है। लेकिन आत्मा, आत्मा टेक्नीक से पैदा नहीं होती। पर आत्मा को भी प्रकट करना हो तो टेक्नीक तो जानना जरूरी है। कोई सोचता हो कि आप बिना सीखे और पिकासो जैसा चित्र बना सकेंगे तो आप गलती में हैं। पहले सीखना होगा और फिर भूलना होगा; तब आप पिकासो की हालत में आ पाएंगे।

आदमी संगीत सीखता है, सितार सीखता है तो वर्षों लग जाते हैं। सारी विधि ठीक से सीख लेगा। अंगुलियां सध जाएंगी, पूरा गणित ख्याल में आ जाएगा। लेकिन उससे कोई सितारवादक पैदा नहीं होता। इतना काम तो कंप्यूटर भी कर सकेगा। कंप्यूटर को भी फीड कर दिया जाए, पूरी जानकारी दे दी जाए, तो कंप्यूटर भी सितार बजा देगा--बिल्कुल विधिवत, शास्त्रीय ढंग से, जरा भी भूल-चूक नहीं होगी। लेकिन आत्मा पीछे नहीं होगी। कोई व्यक्ति कलाकार तब हो पाता है जब सितार बजाना पूरी तरह सीख लेता है, और फिर इस पूरे तकनीक को भूल जाता है; फिर सरल हो जाता है बच्चे की भांति, जैसे कुछ भी नहीं जानता। फिर उसने जो भी जाना है वह सहज हो गया होता है। उस सहजता से कला का जन्म होता है।

इसलिए टेक्नीशियन और आर्टिस्ट में बड़ा फर्क है। हजार टेक्नीशियन होते हैं तो कभी कोई एक आर्टिस्ट होता है। साधारणतः पहचानना भी मुश्किल है। लेकिन फर्क इतना ही होता है कि जो आर्टिस्ट है वह बच्चे की तरह सरल होगा; उसकी पूर्णता अपूर्णता जैसी होगी। टेक्नीशियन बिल्कुल परफेक्ट होगा; उसमें अपूर्णता होगी ही नहीं। उससे भूल-चूक हो ही नहीं सकती; रत्ती-रत्ती ठीक होगा। लेकिन आर्टिस्ट, कलाकार से भूल-चूक हो सकती है। वह छोटे बच्चे की भांति होगा। उसकी जो भी जानकारी है वह उसके खून और मांस में मिल कर एक हो गई। वह जानकारी उसके मस्तिष्क में नहीं है, और वह उस जानकारी के माध्यम से नहीं चलता है।

कला हो, कि संगीत हो, कि नृत्य हो, या बुद्ध, जीसस के वचन हों, इन सारी दिशाओं में लाओत्से की बात बिल्कुल ही सही है--सौ प्रतिशत। बुद्ध के वचन बच्चों जैसे हैं। जीसस के वचन में कोई पांडित्य नहीं है। जीसस के वचन बिल्कुल ग्राम्य हैं, जैसे गांव का आदमी बोलता हो; उसमें पंडित की कुशलता बिल्कुल नहीं है। न ही शास्त्रों का बोझ है; न कोई तर्क है। जीसस पैरेबल और छोटी-छोटी कहानियां लोगों से कह रहे हैं। छोटी कहानियां, जिनको बच्चे भी समझ लें, और बूढ़ों को भी समझना मुश्किल पड़े। कहानियां, जिनमें बहुत तल हैं, जिनके बहुत अर्थ हो सकते हैं। और जितना गहरा व्यक्ति होगा उतने गहरे अर्थ को पकड़ने में समर्थ हो जाएगा। लेकिन अपने आप में बात बिल्कुल सीधी-सादी है।

जीसस को जिस दिन सूली हुई, पांटियस पायलट ने, रोमन गवर्नर ने--जो उन्हें सूली की आज्ञा दिया--वह दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी था और उसने दर्शन-शास्त्र में बड़े ग्रंथ पढ़े थे। और यह जीसस के संबंध में लोग कहते हैं कि यह ईश्वर का पुत्र है; और इसी गलत बात कहने के कारण उसे फांसी हो रही है। पर पांटियस पायलट को भी जीसस को देख कर लगा कि इस आदमी में कुछ बात तो ईश्वरीय है--इतना सरल और सीधा आदमी! तो इससे एक सवाल तो पूछ ही लूं। उसने पढ़ा था शास्त्रों में, और वही सवाल है सारे दर्शन का, कि सत्य क्या है? व्हाट इ.ज ट्रुथ? तो मरते वक्त--कहीं यह आदमी ईश्वर को बेटा ही न हो--इससे एक सवाल तो पूछ ही लेना चाहिए। पायलट पास गया और सूली के ठीक क्षण भर पहले उसने जीसस से पूछा कि इसके पहले तुम सूली पर जाओ, मुझे बताओ, व्हाट इ.ज ट्रुथ? सत्य क्या है?

जीसस जो बोलने से कभी थकते नहीं थे, जीसस जो रात भर बोला करते थे, गांव के ग्रामीण, नासमझ लोगों में समझाते रहते थे, वे एकदम चुप हो गए, और पायलट के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया।

नीत्शे ने व्यंग्य में लिखा है कि पायलट का उत्तर नहीं दिया, क्योंकि जीसस को उत्तर पता नहीं था। पायलट बुद्धिमान, शास्त्र का ज्ञाता, सुसंस्कृत, पढ़ा-लिखा आदमी था, रोमन वाइसराय था। जीसस ग्रामीण, बेपढ़े-लिखे, बढ़ई के लड़के थे। शायद जीसस को समझ में ही नहीं आया होगा कि पायलट क्या पूछ रहा है, सत्य क्या है?

जीसस से पूछने का तो कोई उपाय नहीं कि तुम चुप क्यों रह गए। यह पहला ही मौका है जीसस के पूरे जीवन में जब किसी ने कुछ पूछा हो और वे चुप रह गए। अन्यथा तो वे खोजने जाते थे लोगों को कि कोई पूछे और वे उसको कहें। नीत्शे की बात तो मानी नहीं जा सकती, क्योंकि जीसस ने सत्य की पहले बहुत चर्चा की है। परम सत्य की ही चर्चा की है, और तो कोई चर्चा नहीं की। ऐसा भी नहीं माना जा सकता कि यह सवाल समझ में न आया होगा। लेकिन कारण दूसरा है। कारण इतना है कि पायलट एक टेक्नीशियन की तरह पूछ रहा है कि सत्य क्या है। इसमें कोई हृदय का भाव नहीं है, इसमें कोई जिज्ञासा नहीं है। एक पंडित का सवाल है, जो किताबों में उत्तर खोजने का आदी रहा है। इस सवाल में जीसस को कोई हृदय की भावना नहीं दिखाई पड़ी। यह कहीं हृदय से आया हुआ नहीं है; यह सिर्फ बुद्धि की खुजलाहट है। इसलिए जीसस चुप रह गए।

इस चुप्पी से उन्होंने एक जवाब भी दिया कि जब बुद्धि पूछती हो तो चुप रहना ही जवाब है। और जब बुद्धि पूछती हो तो बुद्धि के द्वारा कभी कोई उत्तर नहीं पाया जा सका है। और जब तक बुद्धि चुप न हो जाए, जैसा जीसस चुप रह गए, तब तक सत्य की कोई प्रतीति संभव नहीं है।

जीसस की पूर्णता बड़ी अपूर्ण मालूम होती है। जीसस के भक्तों का ख्याल था कि जब वे सूली पर चढ़ेंगे तो कोई चमत्कार घटित होगा। क्योंकि पूर्ण पुरुष चमत्कार प्रकट करेगा। जीसस के छूने से मरीज कभी ठीक हो गए। जीसस के छूने से कथा थी कि लजारस मुर्दा था और जिंदा हो गया। और जीसस ने किसी अंधे की आंखों पर हाथ फेरा और आंखें खुल गईं। तो जिस जीसस के आस-पास ऐसी सैकड़ों घटनाएं घटी थीं, यह स्वाभाविक अपेक्षा थी कि सूली पर कोई चमत्कार घटित होगा। लेकिन जीसस सूली पर चुपचाप मर गए, जैसा कोई भी साधारण आदमी मर जाता। जरा भी असाधारणता प्रकट न हुई।

और अकेले ही जीसस को सूली न लगी थी; साथ में दो चोर दोनों तरफ, उनको भी सूली दी थी। तीन आदमी एक साथ सूली पर लटकाए गए थे। जैसे दो चोर मर गए वैसे ही जीसस मर गए। जरा भी कुछ विशेष घटित न हुआ। धक्के की बात थी। भक्तों को भारी धक्का लगा होगा। क्योंकि भक्तों का गुरु गुरु नहीं होता,

चमत्कार ही गुरु होता है। निराश हो गए होंगे। इतनी आशाएं बांधी थीं। जिसने ईश्वर के पुत्र होने का दावा किया था वह आखिर में साधारण मनुष्य का ही पुत्र सिद्ध हुआ।

लेकिन मेरे देखे, लाओत्से के इस वचन को ठीक से समझें और फिर जीसस को सोचें, श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है। श्रेष्ठतम पूर्णता दावा नहीं करेगी पूर्ण होने का। यही असाधारण घटना है कि जीसस साधारण मनुष्य की तरह मर गए। उनकी जगह कोई भी होता तो थोड़ा-बहुत कुछ करने की कोशिश करता। कोई मदारी भी होता तो थोड़ा-बहुत कुछ करता। जीसस ने कुछ भी न किया। यह पूर्णता, यह असाधारणता बड़ी साधारण आदमी जैसी थी।

"श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है, और इसकी उपयोगिता कभी कम नहीं होती।"

निश्चित ही, अगर आप पूर्ण ही हो गए हों और फिर से अपूर्णता को आप जी न सकें, तो आप मर गए। वैसी पूर्णता मृत्यु होगी। पूर्ण पूर्णता मृत्यु होगी। क्योंकि उसके आगे फिर कोई अंकुरण नहीं हो सकता।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, फिर भी वे चालीस वर्ष जीवित थे। ज्ञान के बाद इन चालीस वर्षों में निरंतर फूल खिलते ही चले गए। यह पूर्णता मुर्दा पूर्णता नहीं है, यह पूर्णता विकसित हो सकती है। यह पूर्णता और पूर्णतर होती चली जाती है। और इसका कोई अंत नहीं है; इसकी उपयोगिता का कोई अंत नहीं है। अगर मेरी बात समझ में आए तो मैं निरंतर ऐसा ही जानता हूं कि बुद्ध जहां भी होंगे अभी भी पूर्णतर होते जा रहे हैं। वह फूल खिलना बंद नहीं हो सकता। बुद्धत्व फूल की तरह कम और खिलने की तरह ज्यादा है। वह खिलना होता ही रहेगा। इस पृथ्वी पर नहीं, कहीं और; इस देह में नहीं, कहीं और; रूप में नहीं, कहीं और। लेकिन वह खिलना तो जारी ही रहेगा। अस्तित्व से उस खिलने की घटना के खोने का कोई उपाय नहीं है।

लाओत्से कहता है, "और इसकी उपयोगिता कभी कम नहीं होती।"

बुद्ध अभी भी हो रहे हैं। विकास, उत्क्रांति अस्तित्व का स्वभाव है। लेकिन हम आमतौर से ऐसा ही सोचते हैं कि कोई व्यक्ति पूर्ण हो गया, बात समाप्त हो गई। अब क्या बचा होने को!

बर्ट्रेंड रसेल ने इस पर व्यंग्य किया है। और व्यंग्य करने जैसा है। रसेल ने कहा है कि हिंदू और हिंदुओं का जो मोक्ष है उससे मुझे डर लगता है। क्योंकि वहां सब पूर्ण हो गए हैं; वहां कुछ करने को नहीं बचा। वहां क्या हो रहा होगा? जैनों का मोक्ष, वहां सारे सिद्ध-पुरुष सिद्ध-शिलाओं पर बैठे हुए हैं। वहां कुछ नहीं हो रहा। वहां हवा भी नहीं चल सकती। वहां कोई कंपन भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो भी हो सकता था वह हो चुका। रसेल कहता है कि वैसी अवस्था तो बड़ी बोर्डम की हो जाएगी, बड़ी ऊब की हो जाएगी। आत्यंतिक ऊब पैदा होने लगेगी। और यह कोई एक-दो दिन का मामला नहीं है, यह शाश्वत होगा। क्योंकि मोक्ष से लौटने का उपाय नहीं है। मुक्त हो गए, तो बंधन से तो छूटने का उपाय है, मुक्ति से छूटने का कोई उपाय नहीं है। वहां से वापस नहीं आ सकते; वहां से आगे नहीं जा सकते। फांसी लग गई। और वहां कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि होता तभी है जब कुछ कम हो। सब पूरा हो गया। रसेल कहता है, ऐसा मोक्ष तो आत्मघात मालूम होगा।

अगर ऐसा ही मोक्ष है तो आत्मघात है। तब संसार ज्यादा जीवंत है, और तब नरक भी चुनने जैसा है। लेकिन मोक्ष फिर सिर्फ वे ही लोग चुनेंगे जिनके पास बुद्धि नाममात्र को भी नहीं है। मोक्ष सिर्फ वे ही चुनेंगे जो जड़ हैं, क्योंकि यह पूर्णता जड़ता के समान हो जाएगी। इस पूर्णता में और जड़ता में क्या फर्क होगा?

लेकिन लाओत्से कहता है कि पूर्णता, अंतिम पूर्णता अपूर्णता की भांति होती है।

काश, रसेल को कोई लाओत्से की खबर दे पाता। मोक्ष में भी विकास जारी रहेगा, क्योंकि विकास होने का अनिवार्य लक्षण है। इसका कोई संबंध संसार से नहीं है। यह आपके होने का ढंग है। इसमें खिलना होता ही

रहेगा, और उसका कोई अंत नहीं है। वह शाश्वत है। शाश्वतता कोई एक जड़ता की स्थिति नहीं है, बल्कि विकास का अपरंपार फैलाव है।

मुश्किल है लेकिन, क्योंकि हमारे भाषा के हिसाब में पूर्ण का मतलब है, विराम आ गया, पूर्णविराम हो गया। उसके आगे कुछ जाने को नहीं बचता। अगर हमारी समझ की पूर्णता जगत में कहीं घटती होती, तो यह जगत कभी का जड़ हो चुका होता। अनंत काल से यह जगत है; इसमें अभी तक सभी कभी के पूर्ण हो गए होते।

लेकिन इस अर्थ में पूर्णता कभी होती ही नहीं। पूर्णता घटती है। किस अर्थ में? इस अर्थ में पूर्णता घटती है कि आपको अपूर्णता का कोई भाव नहीं रह जाता; कुछ पाने जैसा नहीं रह जाता; कोई वासना नहीं रह जाती पाने की। लेकिन आपके होने का ढंग ऐसा है कि खिलता चला जाता है--निर्वासना से भरा हुआ विकास। कोई दौड़ नहीं होती, कहीं पहुंचने का कोई उतावलापन नहीं होता, कोई मंजिल नहीं होती। जैसे नदियां बहती हैं ऐसे आप भी पूर्णता से और पूर्णता की तरफ बहते चले जाते हैं। सिद्धत्व कोई जड़ता नहीं है, शाश्वत जीवंतता है।

"श्रेष्ठतम पूर्णता अपूर्णता के समान है।"

इतनी ही समानता है उसकी अपूर्णता से कि उसमें विकास सदा बना रहता है।

"और इसकी उपयोगिता कभी कम नहीं होती। सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति है, और इसकी उपयोगिता भी कभी समाप्त नहीं होगी।"

सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति, यह थोड़ा समझें। जिनके पास थोड़ा होता है उनको ही यह ख्याल होता है कि उनके पास काफी है; जिनके पास बहुत होता है उन्हें यह ख्याल कभी भी नहीं होता कि उनके पास काफी है। अज्ञानियों को ही भ्रांति पैदा हो जाती है कि वे ज्ञानी हैं; ज्ञानियों को यह भ्रांति कभी पैदा नहीं होती। दरिद्र ही अपनी संपत्ति की गणना रखते हैं; अगर सम्राट भी रखता हो गणना तो दरिद्र है, भिखारी है। गणना दरिद्र मन का लक्षण है। वह भिखारी के मन की पहचान है कि वह गिन रहा है, कितना मेरे पास है। और जितना उसके पास हो उससे सदा वह ज्यादा बतलाता है।

अगर आप गरीब के घर जाएं तो गरीब अपनी गरीबी को छिपाने की सब तरफ से कोशिश करता है। पड़ोसियों से सोफा मांग लाएगा, दरी मांग लाएगा; घर को सजा लेगा। गरीब सब तरह से अपनी गरीबी को छिपाने की कोशिश करता है, और दिखलाना चाहता है कि मैं अमीर हूं। अमीर घर में जाएं तो घर जैसा है वैसा ही होगा। तो ही अमीर का घर है। अगर इंतजाम करना पड़े तो वह गरीब का ही घर है। बड़े मजे की बात है कि गरीब को सादा होने में बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि सादा होने में गरीबी साफ हो जाएगी। सिर्फ अमीर ही सादे हो सकते हैं। और जब तक अमीरी में सादगी न आने लगे तब तक समझना कि अभी गरीब मिटा नहीं। अमीर सादा होगा ही। दिखावे का कोई सवाल न रहा। दिखावा छिपाने का उपाय है।

जिन्हें छोटा-मोटा कुछ पता है वे उसे बजाते रहते हैं। जिनके खीसे में कुछ थोड़े से फुट कर पैसे पड़े हैं, वे रास्ते पर उनको बजाते हैं। उससे ही पता चलता है कि उनके पास कुछ है। कभी आपने सोचा कि जिस चीज की आपके पास कमी होती है उसको आप ज्यादा करके दिखाते हैं। आप खुद भयभीत होते हैं, किसी को पता न चल जाए कि इतनी कम है। इसलिए ज्यादा करते हैं। लेकिन जो चीज आपके पास होती ही है, जिसका आपको भरोसा होता है, उसे आप दिखाते भी नहीं। क्योंकि उसको दिखाने का कोई प्रयोजन नहीं है। गरीब अपनी अमीरी दिखलाता है। अज्ञानी अपना ज्ञान दिखलाता है। भोगी अपना त्याग दिखलाता है। कंजूस अपना दान दिखलाता है। जो हम नहीं हैं वह हम दिखलाते हैं; जो हम हैं उसे दिखलाने का भाव ही पैदा नहीं होता।

"सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति है, और इसकी उपयोगिता कभी समाप्त नहीं होगी।"

इतना है आपके पास कि जरा भी भय नहीं पकड़ता कि कोई सोचेगा, नहीं है। तो ज्ञानी चुप भी हो सकता है। शायद जीसस चुप रह गए पायलट के पूछने पर... ।

आपसे कोई पूछता कि सत्य क्या है तो चुप रहना बहुत मुश्किल होता। हालांकि आपको पता नहीं है। आपसे कोई पूछ ही ले, कुछ भी पूछ ले, आप चुप नहीं रह सकते। जिस संबंध में आपको कुछ भी पता नहीं है, उस संबंध में भी आप कुछ कहेंगे। मैं लोगों से पूछता हूं, ईश्वर है? कोई कहता है, है; कोई कहता है, नहीं है। लेकिन ऐसा आदमी कभी नहीं मिलता जो कहता है, मुझे पता नहीं। वह ईमानदार का लक्षण है; ये बेईमानों के लक्षण हैं। ईश्वर का कोई भी पता नहीं है और जोर से कहते हैं, है। या कहते हैं, नहीं है। ये दोनों ही बेईमान के लक्षण हैं।

बेईमान ही इस जगत में आस्तिक और नास्तिकों में बंटे हुए हैं। ईमानदार आदमी कैसे आस्तिक हो सकता है? कैसे नास्तिक हो सकता है? ईमानदार आदमी तो इस बात को पहले समझेगा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, तो मैं कैसे चुनाव करूं कि मैं इस तरफ हूं कि उस तरफ हूं? ईश्वर है या नहीं है? मुझे अपने होने का भी कुछ पता नहीं है; ईश्वर के होने के संबंध में मैं कैसे कोई वक्तव्य दूं? ईमानदार आदमी एग्नास्टिक होगा। ईमानदार आदमी स्वीकार करेगा, मुझे पता नहीं है। वह कहेगा कि अज्ञात है, मुझे कुछ पता नहीं है, मैं अज्ञानी हूं। और ऐसा व्यक्ति शायद कभी सत्य को पाने में समर्थ हो जाए। मगर वे बेईमानों की दो कोटियां, वे कभी भी सत्य को नहीं पा सकतीं।

लाओत्से कहता है, "सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति है।"

जितना ज्यादा होता है उतना ही उसका बोध खोने लगता है। अगर सब कुछ आपके पास हो तो आपको पता भी नहीं रह जाएगा कि मेरे पास कुछ है। जब तक आपको पता है तब तक जाहिर है कि आपके पास बहुत अल्प है, और उससे कष्ट हो रहा है। पीड़ा का ही बोध होता है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द होता है तो सिर का पता चलता है। सिर में दर्द न हो तो सिर का पता नहीं चलता; पैर में कांटा न चुभा हो तो पैर का पता नहीं चलता। शरीर स्वस्थ हो तो पता ही नहीं चलता कि है; अस्वस्थ हो, पीड़ा हो, तो पता चलता है। पीड़ा का ही पता चलता है।

अगर आपको अपने धन का पता चल रहा है तो धन के साथ कहीं पीड़ा जुड़ी है, कहीं कोई कष्ट जुड़ा है, कहीं कोई कांटा चुभ रहा है, कहीं कोई दर्द है, कोई घाव छिपा है। जिन लोगों के पास नया-नया धन होता है उन्हें पहचानने में जरा भी कठिनाई नहीं है, क्योंकि वे धन को उछालते चलते हैं। कुलीन घरों का पुराने दिनों में यही लक्षण था कि जिनके पास धन बहुत हो और जो उसे उछालते न हों। उसका मतलब था कि उनके पास धन परंपरा से है, सदियों से है, पीढ़ियों से है; धन का उन्हें पता नहीं रह गया है। जो आज ही धन कमा ले, उसका धन पागल हो जाता है; वह सब तरफ उसे दिखाने की कोशिश में लगता है। उसे अभी अपनी गरीबी भूली नहीं है। इसलिए नए अमीर का पता चलने में कोई कठिनाई नहीं है।

अमीरी--किसी भी आयाम में--तभी फलित होती है जब उसके पीछे जुड़ी हुई पीड़ा खो जाती है। अगर बुद्ध और महावीर अपना राज्य छोड़ सके तो इसीलिए छोड़ सके। हमें लगता है कि उनके पास इतना ज्यादा था, क्योंकि हम गणना करते हैं; उन्हें उसका पता ही नहीं रहा होगा। वह इतना स्वल्प हो गया था कि उसे छोड़ना, न छोड़ना बराबर था।

महावीर के जीवन में बड़ा मधुर उल्लेख है। महावीर ने चाहा कि मैं संन्यास ले लूं। तो महावीर की मां ने कहा, जब तक मैं जिंदा हूं, तुम बात ही मत करना। आमतौर से संन्यास लेने वाला बेटा इस तरह रुक नहीं सकता; बल्कि अगर इस तरह बाधा डाली जाए तो संन्यास लेने वाला बेटा कल लेता हो तो आज ले लेगा। बाप और बेटों में, पीढ़ियों में, बड़ा गहरा तनाव और संघर्ष है। लेकिन महावीर ने बात ही नहीं उठाई। मां भी चिंतित हुई होगी। उसने भी सोचा होगा, यह किस भांति का संन्यास था; जो एक दफा पूछा और मैंने कहा कि जब तक मैं हूं मत लेना, महावीर बात ही बंद कर दिए।

फिर मां चल बसी। पिता भी चल बसे। तो मरघट से लौटते वक्त महावीर ने अपने बड़े भाई को कहा कि अब मैं संन्यास ले लूं? बड़े भाई ने कहा कि तू पागल है! घर में इतनी बड़ी विपत्ति आ गई है कि माता-पिता चल बसे, हम अनाथ हो गए; तू यह बात ही मत उठाना। मेरे ऊपर और आघात मत कर। महावीर फिर चुप हो गए। यह भी हो सकता था कि महावीर कभी संन्यास न लेते, क्योंकि इस तरह जो चुप हो जाए! लेकिन दो वर्ष बाद घर के लोगों को लगा कि हम व्यर्थ ही रोक रहे हैं। महावीर घर में हैं और नहीं हैं। उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, लेकिन जैसे हवा का झोंका आए और चला जाए और किसी को पता भी न चले। न किसी का विरोध करते हैं; न किसी बात में सलाह देते हैं; न कहीं बीच में अड़ंगा डालते हैं। जैसे घर में उनका होना न होने के बराबर है, अनुपस्थित। तो घर के लोगों ने महावीर से प्रार्थना की कि जब ऐसे घर में रहना हो कि तुम जैसे यहां हो ही नहीं तो फिर हम अकारण तुम्हें संन्यास से रोकने का पाप अपने ऊपर न लेंगे। तुम जाओ! महावीर उसी दिन घर से चले गए।

किसी राज्य को छोड़ने जैसी कोई घटना नहीं मालूम होती। राज्य राज्य है, ऐसा भी कोई सवाल नहीं है। वहां कुछ मूल्यवान है, ऐसा भी कोई सवाल नहीं है।

महावीर के लिए वह सारा साम्राज्य, वह सारी सुख-सुविधा, वह सारा धन-वैभव स्वल्प रहा होगा। उसे छोड़ना ऐसे ही था जैसे कि कोई कौड़ी छोड़ कर और चला जाए। उसे पीछे लौट कर देखने योग्य भी नहीं था। हमें लगता है कि बड़ा राज्य छोड़ा, क्योंकि हम हिसाब रखने वाले लोग हैं। हम अपने से तौलते हैं।

जिन्होंने भी छोड़ा है उनके पास इतना ज्यादा था कि वह स्वल्प हो गया। और जब ज्यादा स्वल्प हो जाए तो त्याग फलित होता है। जब ज्यादा को दिखाने का भाव न रह जाए, जब ज्यादा ज्यादा है ऐसी प्रतीति भी न रह जाए। उपनिषद कहते हैं कि जो कहता हो कि मैं जानता हूं परमात्मा को, समझ लेना कि वह नहीं जानता। क्योंकि जो जान लेगा वह अपने इस जानने की घोषणा भी नहीं करेगा। इसकी घोषणा का कोई मूल्य नहीं है। यह घोषणा व्यर्थ है। घोषणा में कहीं पीछे दर्द है।

"सर्वाधिक प्रचुरता स्वल्प की भांति है, और इसकी उपयोगिता कभी समाप्त नहीं होगी। जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है। सर्वश्रेष्ठ कौशल अनाड़ीपन जैसा मालूम होता है। सर्वश्रेष्ठ वाग्मिता तुतलाहट जैसी लगती है।"

एक-एक बिंदु समझने जैसा है।

"जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है।"

ऐसा क्यों होता है? सीधापन टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई ही देगा, क्योंकि हम सब टेढ़े-मेढ़े हैं। हम सब टेढ़े-मेढ़े हैं और हम नार्मल हैं। अंग्रेजी का शब्द नार्मल अच्छा है, नार्म। हम मापदंड हैं, हम औसत हैं। हमारे बीच अगर कोई भी सीधा आदमी होगा तो टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई पड़ेगा।

ऐसा ही समझें कि जहां सभी लोग शीर्षासन कर रहे हों वहां कोई एक आदमी पैर के बल खड़ा हो जाए, वे सब कहेंगे यह आदमी उलटा है। और उनके कहने में गलती भी नहीं है। उन्होंने अपने को सीधा माना हुआ है, उससे यह उलटा है। हम सब अपने को सीधा मान रहे हैं। हम बिल्कुल तिरछे हैं, हमारा इंच-इंच तिरछा है।

आपने शायद सुनी हो कहानी अष्टावक्र की। जनक ने एक उदघोषणा की। वह ज्ञान की तलाश में था और जानना चाहता था सत्य क्या है। तो उसने सारे देश के बड़े पंडितों को निमंत्रण भेजा कि वे आएं, विवाद करें और निर्णय करें। वह कोई निष्पत्ति चाहता है। और बड़ा पुरस्कार था। हजार गौओं के सींगों को उसने स्वर्णमंडित करवा कर दरवाजे पर खड़ा कर रखा था। अष्टावक्र को कोई निमंत्रण भी नहीं मिला, क्योंकि वह दीन-हीन आदमी था। और नाम अष्टावक्र था, क्योंकि शरीर उसका आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा था। लेकिन सुन कर कि इतना बड़ा विवाद हो रहा है और कोई बड़ी सत्य की खोज हो रही है, वह भी चला आया। जैसे ही वह सभा में आया तो जो पंडित थे वे देख कर उसे हंसने लगे। वह आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा था। खुद जनक को भी हंसी आ गई होगी। और सारे पंडित जोर से हंसने लगे। तो अष्टावक्र भी, कहते हैं, जोर से हंसा। वह इतने जोर से हंसा कि लोग सहम गए। और जनक ने पूछा कि तुम क्यों हंसते हो? तो उसने कहा कि मैं तो सोचता था कि पंडितों की सभा है; यहां चमार इकट्ठे हुए हैं, जिन्हें शरीर दिखाई पड़ता है। ये सत्य की कैसे खोज करेंगे? और ये सब टेढ़े-मेढ़े हैं हजार तरह से, मेरा सिर्फ शरीर ही टेढ़ा-मेढ़ा है। पर इनको इतना ही दिखाई पड़ता है। वह जो भीतर की सरलता है, उसका इन्हें कोई भी पता नहीं।

लाओत्से कहता है, "जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है।"

क्योंकि हम सीधे हैं नहीं, पर हम सीधे मालूम पड़ते हैं। हमने ढोंग कर रखा है कि हम सीधे हैं। हमारी हर चाल तिरछी है। हम जो भी करते हैं, वह तिरछा है। हम कहते कुछ हैं, सोचते कुछ हैं, करते कुछ हैं; वह हमारा तिरछापन है। आपने कभी ख्याल किया कि आप में कितनी पर्तें हैं। आप जो कह रहे हैं वह आप सोचते नहीं हैं; जो आप सोच रहे हैं वह आप कह नहीं रहे हैं। और जो आप करेंगे वह तो तीसरी ही बात होने वाली है। लेकिन आपको यह साफ नहीं दिखाई पड़ता कि यह सब क्या है। भीतर इतने खंड हैं! इतना धोखा है! और जब भी आप कुछ करने जाते हैं तो आप कभी सीधा नहीं जाते। आप बड़े गोल चक्कर लेते हैं। अगर उत्तर जाना है तो आप दक्षिण जाने से शुरू करते हैं। लेकिन आस-पास भी सब तिरछे लोग हैं, और उनके साथ शायद ऐसे ही जीना संभव है। कभी कोई सीधा-सरल आदमी हो तो वह भी अड़चन में पड़ता है और आपको भी अड़चन में डालता है।

छोटे बच्चे इसीलिए हमारे साथ दिक्कत में पड़ जाते हैं। बाप बच्चों को समझाता है कि झूठ नहीं बोलना। और घर कोई आया है बाहर, और वह अपने बेटे से कहता हैः जाकर कह दो कि पिता घर पर नहीं हैं। यह बच्चे की समझ के बाहर है। यह उसकी बिल्कुल समझ के बाहर है कि यह क्या हो रहा है। बाप बेटे से कहता है कि नाराज होना बुरा है। और बाप बेटे पर इसी बात पर नाराज हो सकता है कि तुम क्यों नाराज हुए।

मैं एक घर में मेहमान था। बाप बेटे को पीट रहा था; और उससे कह रहा था, मैंने हजार दफे कहा कि छोटे भाई को मत मारा कर; अपने से छोटे को मारना बहुत बुरा है। और वह पीट रहा है अपने बेटे को। और अगर छोटे भाई को मारना बुरा है तो यह बाप से यह बेटा और भी छोटा है, बहुत छोटा है, अनुपात में और ज्यादा छोटा है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है।

और हमारे भीतर जो सबसे ज्यादा आड़े-तिरछे होते हैं वे सबसे ज्यादा सफल हो जाते हैं। चाहे धन की दौड़ हो, चाहे राज्य की दौड़ हो, हमारे भीतर जो सबसे ज्यादा तिरछे लोग हैं वे सबसे ज्यादा सफल हो जाते हैं।

मैं बहुत से राजनीतिज्ञों को जानता हूं; उनकी सफलता का राज सिवाय बेईमानी, धोखाधड़ी के और कुछ भी नहीं है। जितना भी कपट हो सकता है और जितना लोगों को पीछे से उनकी गर्दन काटी जा सकती है और छुरे मारे जा सकते हैं, वे सब करते हैं। लेकिन एक बार जब वे पद पर पहुंच जाते हैं तो वे उपदेश देने लगते हैं पूरे मुल्क को--ईमानदारी का, सचाई का, सच्चरित्रता का। और वे रोने लगते हैं पदों पर बैठ कर कि देश का चरित्र-ह्नास हो रहा है। और चरित्र का ह्नास न हो तो वे पद पर हो नहीं सकते थे। वे चरित्र के ह्नास की वजह से ही पद पर हैं। अगर देश चरित्रवान हो तो उनको कौन? एक वोट देने वाला उनको कोई नहीं मिल सकता। देश भी मजे से सुनता है। और सब उन्हें जानते हैं; वे सबको जानते हैं। लेकिन एक समझौता मालूम पड़ता है, एक कांसपिरेसी है, एक चुप्पी का वातावरण है कि अगर तुम ताकत में हो तो तुम जो भी कहो वह ठीक है। जैसे ही वे पद से नीचे होंगे कि चर्चाएं शुरू हो जाएंगी, उन्होंने क्या-क्या धोखाधड़ी, क्या-क्या गोलमाल किया। जब तक वे पद पर हैं तब तक वे बिल्कुल सच्चरित्र हैं, साधु हैं। सत्ता में होना साधुता है। सत्ता के बाहर आप असाधु हो जाते हैं।

यह जो हमारा जगत है, जहां तिरछा चलना ही सीधा चलना हो गया है। और जहां हम सिखाते ही हैं सिर्फ एक बात कि कुशलता से चलो; कितने ही तिरछे चलो, लेकिन मंजिल पर पहुंचने का ध्यान रखो, कहीं से भी जाओ, येन केन प्रकारेण, कैसे भी। तुमसे कोई नहीं पूछेगा कि तुम कैसे पद तक पहुंचे। तुम धन तक कैसे पहुंचे, तुमसे कोई नहीं पूछने वाला है। न पहुंच पाए तो तुम मुसीबत में पड़ोगे। तब हरेक जानता है कि तुम बेईमान हो। अगर तुम सफल हो गए तो सफलता सारे पाप को धो देती है। तो सिर्फ एक पाप है, वह है असफलता। सब पाप करो, सफल भर हो जाना। तो जिंदगी के आखिर में तुम्हें कोई बुरा कहने को नहीं मिलेगा। और तुम कितना ही ठीक चलो, अगर असफल हो गए, तो लोग जानते हैं कि तुम बुरे हो।

असफलता, सफलता, इनसे सब तौला जा रहा है। हमारे बीच अगर कोई आदमी सीधा हो तो कठिनाई में पड़ेगा। या तो मूढ़ मालूम पड़ेगा, बुद्धू मालूम पड़ेगा। और हम उसे सुधारने की कोशिश करेंगे। और अक्सर हम सफल हो जाते हैं। लेकिन अगर कोई जिद्दी हुआ--कोई जीसस और बुद्ध जैसा हुआ कि लगा ही रहा पीछे और नहीं माना उसने हमारा--तो आखिर में हम उसको पूजा देते हैं। लेकिन तब भी हम जानते हैं कि तुम हमारे जगत के हिस्से नहीं हो; तुम अपवाद हो, तुम कोई नियम नहीं हो। तुम्हें मान कर नहीं चला जा सकता।

"जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई देता है। सर्वश्रेष्ठ कौशल अनाड़ीपन जैसा मालूम होता है।"

जो कुशलता दिखाई पड़े वह कुशलता नहीं है। वह दिखाई नहीं पड़नी चाहिए। वह भूल जानी चाहिए; उसका स्मरण भी नहीं होना चाहिए।

"सर्वश्रेष्ठ वाग्मिता तुतलाहट जैसी लगती है।"

उपनिषद तुतलाहट जैसे लगते हैं। ऋषि जो कह रहे हैं, कहते वक्त उन्हें साफ है कि वे उसे कह न पाएंगे। क्योंकि जिसे वे कहने की कोशिश कर रहे हैं वह कहे जाने के बाहर है; एक असंभव प्रयास है, जो नहीं कहा जा सकता उसको कहने का।

लाओत्से के वचन खुद तुतलाहट जैसे लगते हैं। साफ नहीं दिखता कि लाओत्से क्या कह रहा है; लड़खड़ाता लगता है। और हर चीज के विपरीत को भीतर जोड़ देता है। इधर कहता है कि ईश्वर पास है तो तत्क्षण कहता है कि ईश्वर दूर है। वह जो भी कहता है उसको खंडित करता है तत्क्षण। क्योंकि डर है कि जो कहा जा रहा है कहीं गलत न समझ लिया जाए। इसलिए विपरीत को जोड़ दो, ताकि संतुलन बना रहे।

जितने भी महान वचन हैं, वे सभी तुतलाहट जैसे हैं। वेद के वचन हैं, उपनिषद के वचन हैं, बिल्कुल तुतलाहट जैसे हैं। जैसे जिन्होंने कहा है उन्हें कहना आता ही न हो। ऐसी बात नहीं है। कहना उन्हें खूब आता है। लेकिन जो वे कह रहे हैं वह कहे जाने योग्य नहीं है। वह शब्द से इतने दूर है कि जब खींच-तान कर उसे शब्द तक लाते हैं तो अधमरा हो जाता है। शब्द में प्रवेश करवाते हैं, तब तक वे पाते हैं, उसकी सांस टूट गई। और जब तक वह शब्द आपके पास पहुंचता है तब आपके चेहरे पर जो दिखाई पड़ता है, उससे और, जो कहने की कोशिश कर रहा है, उसे लगता है, बेहतर है चुप हो जाए।

जीसस बार-बार कहते हैं, तुम्हारे पास कान हैं तो मैं जो कहता हूं उसे सुनो; तुम्हारे पास आंखें हैं तो जो मैं दिखा रहा हूं उसे तुम देख लो।

बुद्ध ने एक प्रवचन में कहा है कि तुम अगर यहां मौजूद हो तो मैं जो कहता हूं उसे सुन लो।

तुम यहां मौजूद हो! जो लोग मौजूद थे, मौजूद थे ही। लेकिन आप बैठे हुए हैं, इससे पक्का नहीं होता कि आप मौजूद हैं। आप हजार जगह हो सकते हैं। आप इतने कुशल हैं हजार जगह होने में। संभावना तो यह है कि जहां आप होंगे वहां आप न होंगे।

मैं एक सैनिक के संस्मरण पढ़ रहा था। दूसरे महायुद्ध में उसने अपनी डायरी में लिखा है कि जब शुरू-शुरू में युद्ध के मैदान पर गया, जहां बम गिर रहे हैं, गोलियों की बौछार हो रही है, तो जब बमबार्डमेंट शुरू हो, बम गिरना शुरू हों, तो बड़ा मुश्किल होता है--कहां खड़े हो जाओ? क्योंकि कुछ पता नहीं बम कहां गिरेगा। तो पुराने सैनिकों ने कहा, एक बात ख्याल में रखो, जहां बम गिर चुका हो वहीं खड़े हो जाओ; वहां दुबारा नहीं गिरेगा। इसकी संभावना सबसे कम है कि वहां दुबारा गिरे। और कहीं भी गिर सकता है, वहां नहीं गिरेगा जहां गिर चुका है।

करीब-करीब आपकी हालत ऐसी है कि जहां आप हैं वहां आप नहीं होंगे। वहां तो आप हैं ही। वहां गिर चुके समझिए। कहीं और होंगे, वहां आप नहीं पाए जाएंगे। निश्चित ही, जो आपसे बात कर रहे हैं उनकी हालत तुतलाहट जैसी हो जाएगी। क्योंकि आप वहां मौजूद नहीं हैं। खींच-खींच कर आपको भी लाना पड़ता है। और जो वे कह रहे हैं, उसे भी खींच-खींच कर लाना पड़ता है। इसमें वाणी तुतला जाती है।

इसलिए ऋषियों के वचन बच्चों जैसे मालूम पड़ते हैं। जैसे छोटे बच्चे जो भाषा नहीं जानते और पहली दफे भाषा का प्रयोग करना सीख रहे हैं। या छोटे बच्चे, जो चलना नहीं जानते, पहली दफे चल रहे हैं, डगमगा रहे हैं। छोटे बच्चे भी बेहतर हालत में हैं। उस अज्ञात के जगत में जब किसी व्यक्ति का पहले प्रवेश होता है तो वहां पैर बिल्कुल नहीं टिकते; वहां अपनी ही बुद्धि पकड़ में नहीं आती; वहां अपने ही सारे संस्थान से बुद्धि के संबंध छूट जाते हैं। और जिसे मौन में जाना हो उसे शब्द में कैसे कहा जाए? इसलिए वाणी कंपती है; इसलिए शब्द तुतलाहट बन जाते हैं।

"जो सर्वाधिक सीधा है, वह टेढ़ा-मेढ़ा दिखाई पड़ता है। सर्वश्रेष्ठ कौशल अनाड़ीपन जैसा मालूम होता है। सर्वश्रेष्ठ वाग्मिता तुतलाहट जैसी लगती है। गति से ठंडक दूर होती है, लेकिन अगति से गर्मी परास्त होती है।"

यह सूत्र साधना के लिए बड़ा जरूरी और उपयोगी हैः "गति से ठंडक दूर होती है।"

जब भी आप ठंड से भरे होते हैं तो आप किसी तरह की गति करते हैं। बुखार में आदमी कंपने लगता है। वह कंपना शरीर का इंतजाम है, ताकि कंपने से गति पैदा हो जाए और शरीर को जो ठंड लग रही है वह कम हो जाए। अगर सर्दी जोर से पड़ी हो तो आपके दांत कटकटाने लगते हैं, हाथ-पैर कंपने लगते हैं। वह शरीर का इंतजाम है। ऐसा शरीर कंपन पैदा करके गर्मी पैदा कर रहा है, ताकि ठंडक से लड़ सके। अगर ठंड जोर से पड़

रही हो, बर्फ गिर रही हो, और आपके दांत न कटकटाएं और हाथ न कंपें, तो आप मर जाएंगे; फिर आप बच नहीं सकते। शरीर कंपन पैदा करके शरीर में खून की गति बढ़ जाती है; खून की गति बढ़ने से गर्मी बढ़ जाती है। आप सुरक्षा का उपाय कर लेते हैं।

"गति से ठंडक दूर होती है।"

यह सामान्य जीवन का अनुभव है।

"अगति से गर्मी परास्त होती है।"

उसका हमें ख्याल नहीं है। वह साधक का अनुभव है। आप जैसी हालत में हैं वहां शरीर ही उत्तप्त नहीं है, आपका मन भी उत्तप्त है। उस मन की उत्तप्तता का नाम ही अशांति है। लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, मन अशांत है, पीड़ा है, बेचैनी है। वह कुछ नहीं है, वह सिर्फ गर्मी है। अति गति का परिणाम है। आप चौबीस घंटे गति कर रहे हैं मन से। शरीर तो कभी बैठ भी जाता है, मन बैठता ही नहीं। रात आप तो सो भी जाते हैं, लेकिन मन नहीं सोता, चलता ही रहता है। आधे तो आप जगे ही रहते हैं।

एक मछली होती है पैसिफिक महासागर में। बड़ी अजीब मछली है, मगर आदमी की बिल्कुल प्रतीक है। उस मछली के मस्तिष्क की व्यवस्था बड़ी अनूठी है। और किसी दिन अगर वैज्ञानिक इंतजाम कर सके तो आदमी भी वैसी व्यवस्था चाहेगा। वह व्यवस्था यह है कि मछली रात एक आंख बंद करके सोती है और एक से देखती रहती है। उसका आधा मस्तिष्क सोता है और आधा जगा रहता है। ऐसा रात में पाली बदलती है। फिर आधी रात के बाद दूसरी आंख बंद कर लेती है, आधा हिस्सा सो जाता है, और बाकी हिस्सा जग जाता है। सुरक्षा के लिए वह तैरती भी रहती है, क्योंकि आधा मस्तिष्क उसका जगा रहता है। और कोई हमला नहीं कर सकता, कोई दुश्मन उस पर हमला नहीं कर सकता। बड़ी कुशल मछली है। और उसका मस्तिष्क दो हिस्सों में बंटा हुआ है। एक आंख जब बंद होती है तो आधा मस्तिष्क सो जाता है, आधा जगा रहता है।

आपकी आंखें इस तरह नहीं बंटी हैं, लेकिन खोपड़ी ऐसी ही बंटी है। आप कभी पूरे नहीं सो रहे हैं। मस्तिष्क चल रहा है। बल्कि अक्सर तो यह होता है कि जब आप बिस्तर पर सोते हैं तब जिस गति से चलता है वैसा दिन भर नहीं चलता। क्योंकि दिन भर तो शरीर भी चलता है तो शक्ति शरीर में भी लगी रहती है। रात शरीर की शक्ति भी मस्तिष्क को मिल जाती है, फिर वह जोर से दौड़ता है। फिर वह हजारों मील की यात्राएं करता है, अंतरिक्ष में जाता है। और न मालूम कितनी योजनाएं हैं, भविष्य है, अतीत है; वह सब करता है। और ऐसा नहीं कि आप स्वेच्छा से कर रहे हैं; आप बिल्कुल विवश हैं। आप रोकना भी चाहें तो वह रुकता नहीं। आप कितना ही कहें, मत जाओ, मत दौड़ो, कोई आपकी सुनता नहीं। आपका मन भी आपका नहीं है, कोई मालकियत नहीं है।

यह जो मन की अति गति है, इसकी वजह से आप इतने उत्तप्त और अशांत हैं।

लाओत्से कहता है, "लेकिन अगति से गर्मी परास्त होती है।"

तो गति तो आप करना जानते हैं। ठंड लगे शरीर को तो आप गति कर लेते हैं। दौड़ सकते हैं, व्यायाम कर सकते हैं। कुछ न करेंगे तो शरीर का अपना नैसर्गिक इंतजाम है, शरीर कंपने लगेगा। और कंपन से गति पैदा हो जाएगी। और गति से ठंडक परास्त हो जाएगी।

लेकिन इससे उलटी कला भी है--वही योग है--कि आप जब उत्तप्त ज्यादा हो जाएं, मन बहुत गति कर ले, शरीर बहुत गति कर ले, तो अगति में कैसे उतरना, कैसे अक्रिया में डूब जाना। सारे ध्यान की प्रक्रियाएं अगति के द्वारा मस्तिष्क की गर्मी कम करने के उपाय हैं। और जैसे-जैसे मस्तिष्क की गर्मी कम होती है और शीतलता

बढ़ती है, वैसे-वैसे शांति बढ़ती है। शांति और शीतलता पर्यायवाची हैं--भीतर की दुनिया में। और जब पूर्ण शांति हो जाती है तो शून्यता फलित होती है।

हम कहते हैं कि शिव का निवास कैलाश पर है; वह परम शीतल स्थान है, इसलिए। आपके भीतर भी शिव का निवास कैलाश पर ही है। लेकिन कैलाश जैसी शीतलता आपके भीतर पैदा होगी तब आपको भीतर के शिवत्व का कोई अनुभव होगा। भीतर कैलाश निर्मित हो जाता है; इतनी शीतलता हो जाती है। लेकिन अगति चाहिए; मस्तिष्क का कोई भी तंतु गति न करता हो, कंपित न होता हो। सब ठहर जाए। और एक बार आपको ख्याल में आना शुरू हो जाए कि अक्रिया कैसे शीतलता लाती है तो फिर आप उस शीतलता के सूत्र को पकड़ कर उसको ही साधते चले जाएं। क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्म, गहरे से गहरे में उतरना होने लगेगा। और आप अपने भीतर ही पाएंगे कि सीढ़ियां दर सीढ़ियां कैलाश तक जाने का उपाय है।

एक काम करें। जैसा मैंने कहा पीछे, एक घंटा अक्रिया में उतरना शुरू कर दें। अक्रिया में उतरने के लिए उपयोगी होगा कि शरीर भी बिल्कुल निष्क्रिय हो, क्योंकि शरीर और मन जुड़े हैं। और जब शरीर गति करता है तो मन भी गति करता है। जब मन गति करता है तो शरीर भी गति करता है। जो कुछ मन में होता है वह शरीर में भी प्रतिफलित होता है। और जो कुछ शरीर में होता है वह मन में प्रतिफलित होता है। तो पहले तो बैठ जाएं, अगर सिद्धासन में बैठ सकते हों तो बहुत अच्छा है। लेकिन अनिवार्यता नहीं है। उसमें अड़चन मालूम हो तो आरामकुर्सी पर बैठ जाएं। महत्वपूर्ण इतना है कि शरीर बिल्कुल शिथिल छोड़ दें।

एक दस मिनट इतना ही भाव करते रहें जैसे शरीर बिल्कुल मुर्दा हो गया है, अब मैं उठाना भी चाहूं तो हाथ उठेगा नहीं, मैं हिलाना भी चाहूं तो पैर हिलेगा नहीं। शरीर को बिल्कुल ढीला-ढीला छोड़ते जाना है। थोड़े ही दिन में सूत्र पकड़ में आ जाता है कि शरीर ढीला छोड़ने से ढीला हो जाता है।

जैसे-जैसे शरीर ढीला छोड़ें वैसे-वैसे श्वास को भी धीमा छोड़ दें। क्योंकि श्वास भी जितनी धीमी हो जाए, जितनी कम हो जाए, उतनी गति कम हो जाएगी। देखें, अगर दौड़ते हैं, शरीर की गति होती है, तो श्वास की गति बढ़ जाती है। साधारणतः अगर आप एक मिनट में बारह श्वास ले रहे हैं तो दौड़ेंगे तो चौबीस श्वास लेने लगेंगे। और तेजी से दौड़ेंगे तो छत्तीस श्वास लेने लगेंगे। श्वास तेज हो जाएगी, झटके से चलेगी, जल्दी आएगी-जाएगी। कारण है, क्योंकि शरीर को ज्यादा आक्सीजन की जरूरत है। जब आप दौड़ रहे हैं तो आप शरीर की आक्सीजन पचा रहे हैं। ज्यादा आक्सीजन चाहिए तो श्वास तेज चलेगी।

जब आप कुर्सी पर बैठ कर ढीला छोड़ देंगे या सिद्धासन में बैठ कर ढीला छोड़ देंगे, तो ठीक दौड़ने से उलटी घटना घट रही है। अगर साधारणतः एक मिनट में बारह श्वास चलती हैं तो शिथिल बैठने पर छह श्वास चलेंगी। और शिथिल होते जाएंगे तो चार श्वास चलेंगी। जो लोग भी शरीर को शिथिल करने की कला जान जाते हैं उनकी एक मिनट में चार श्वास चलने लगती हैं। धीमी सी श्वास जाएगी, धीमी सी वापस लौट आएगी। क्योंकि शरीर को आक्सीजन की जरूरत कम है। शरीर का जो मेटाबोलिज्म है उसको अब आक्सीजन की कोई जरूरत नहीं है। धीमी सी श्वास काफी है। जब कोई बिल्कुल भीतर शीतल हो जाता है तो श्वास न के बराबर हो जाती है। दूसरे आदमी को भी पहचानना हो कि श्वास चल रही है या नहीं, तो सामने दर्पण रख कर ही पहचाना जा सकता है, नहीं तो पता नहीं चलेगी। और खुद तो बिल्कुल पता नहीं चलेगा।

मेरे पास कई मित्र आकर कहते हैं कि घबड़ाहट होने लगती है कि कहीं श्वास बंद तो नहीं हो गई?

घबड़ाएगा कौन अगर बंद हो जाएगी? बिल्कुल मत घबड़ाओ, क्योंकि तुम हो। लेकिन कम हो गई, और इतनी कम हो जाती है कि उसकी पहचान नहीं होती। अल्प, अति अल्प चलती है। कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं

जब भीतर ठीक केंद्र पर कोई पहुंचता है शीतलता के तो श्वास बिल्कुल ठहर जाती है। उस एक क्षण में ही आपको इतनी भीतर शीतलता की प्रतीति होगी जैसे हिमालय पर आ गए। बाहर के हिमालय की खोज से कुछ बहुत होने वाला नहीं है; भीतर का हिमालय चाहिए।

शरीर को छोड़ कर फिर श्वास को धीमा छोड़ दें। और श्वास के साथ भाव करते जाएं कि कम होती जा रही है, कम होती जा रही है, कम होती जा रही है। थोड़ी देर में आप पाएंगे कि शरीर विश्राम की हालत में आ गया, और मन में एक शांति और ताजगी मालूम होने लगी। अब इस शांति के सूत्र को पकड़ लें और भीतर भी इसी धारणा को गहराते जाएं कि शांत होते जा रहे हैं--शाब्दिक रूप से नहीं, अनुभव के रूप से। वह जो आपको अनुभव हो रहा है, संवेदना हो रही है शांति की, आनंद की, उसको पकड़ लें, और सिर्फ उसको गहराते जाएं।

शुरू में कठिन होगा। और मैं कह रहा हूं इतने से समझ में नहीं आ जाएगा, लेकिन करेंगे तो बिल्कुल आ जाएगा। कुछ ही दिन में आपके पास वह भीतरी कुंजी हो जाएगी जिससे जब आप चाहें, शिथिल और शांत होकर, अगति में उतर जाएं। और जब आप पूरी अगति में उतर जाते हैं तो आप बिल्कुल ताजे होकर वापस लौटेंगे। यह ताजगी नींद से भी गहरी होगी। नींद इतनी गहरी नहीं जाती।

हमने इस मुल्क में मन की--साधारण मन की--तीन अवस्थाएं मानी हैंः जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। सुषुप्ति तक हम पहुंचते हैं जब स्वप्न नहीं होता। चौथी अवस्था हमने तुरीय मानी है। तुरीय वह अवस्था है जिसमें अगति में, ध्यान में आदमी पहुंचता है। वह सुषुप्ति से भी गहरी है। नींद में जैसे शरीर ताजा हो जाता है, नया हो जाता है। सुबह आप अनुभव करते हैं कि शक्ति वापस लौट आई। जो सेल्स टूट गए थे, कोष्ठ मिट गए थे, वे पुनः निर्मित हो गए। शरीर फिर जवान है। जो थकान, जो-जो यंत्र में खराबियां आ गई थीं, रात के विश्राम ने उनको फिर ठीक कर दिया। ठीक चौथे चरण में, तुरीय में पहुंच कर, इस अगति में पहुंच कर ऐसा ही मन भी ताजा हो जाता है। और बड़े गहरे स्रोत से, सारे शरीर की जो भी विकृति है, मन की जो भी बेचैनी है, जहां-जहां व्यर्थ का कूड़ा-करकट और कचरा इकट्ठा है, वह सब समाप्त हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। जब आप वहां से वापस आते हैं तो आप इस शरीर को, इस जगत को बिल्कुल दूसरी आंख और दूसरे ढंग से देखेंगे और पहचानेंगे।

इस गति के जगत से अगति के जगत में उतरने की कला जो सीख ले और निरंतर गति से अगति में जाए, अगति से फिर गति में लौट आए, और जैसे दिन और रात होते हैं ऐसा गति और अगति में संतुलन साध ले, तो लाओत्से कहता है कि जो दो अतियों के बीच संतुलन और संगीत को पकड़ लेता है वह परम ताओ को, परम स्वभाव को उपलब्ध हो जाता है।

अगति में जाने का यह अर्थ नहीं है कि फिर आप अगति में ही बैठे रहें। अगति में जाने का यही अर्थ है कि आप वापस गति में लौट आएं, सारी ताजगी और सारे आनंद को लेकर। धीरे-धीरे, क्रिया करते हुए भी भीतर अक्रिया बनी रहेगी। धीरे-धीरे, काम करते हुए भी भीतर बिल्कुल कोई काम नहीं होगा। आप दौड़ते रहेंगे, और भीतर कोई भी नहीं दौड़ेगा; भीतर सब ठहरा रहेगा। जिस दिन दोनों बातें एक साथ सध जाती हैं उस दिन मुक्ति फलित हो जाती है।

दो तरह के लोग हैं। और लाओत्से चाहता है, आप तीसरे तरह के व्यक्ति हों। एक तो वे लोग हैं जो गति में पड़े हैं और अगति में नहीं जा सकते। कुछ इनमें से ही भाग कर अगति में चले जाते हैं तो गति से डरने लगते हैं। फिर वे जंगल में छिप जाते हैं, गुहा में, गुफा में बैठ जाते हैं। फिर वे भयभीत होते हैं कि अगर हम यहां से बाहर निकले तो गति फिर पकड़ लेगी। ये दोनों एक जैसे लोग हैं। इन्होंने जीवन के एक पहलू को पकड़ लिया।

लेकिन ये दोनों दरिद्र हैं। क्योंकि समृद्धि उसी के पास होती है जिसके पास जीवन के दोनों पहलू होते हैं; जो अगति में उतर सकता है और गति में आ सकता है--निर्भीक। उसको अगति के खोने का कोई डर नहीं है। वह संपदा उसकी भीतरी है। जो युद्ध के मैदान पर भी खड़ा हो सकता है, और जिसके ध्यान में रत्ती भर फर्क नहीं पड़ेगा। जो दुकान पर बैठ सकता है, और जिसके मंदिर में इससे कोई हलचल नहीं आती। जब कोई व्यक्ति इन दोनों में आता है, जाता है, धीरे-धीरे-धीरे इतनी सहज हो जाती है यह घटना, जैसे अपने मकान के बाहर आना और भीतर जाना, बाहर आना और भीतर जाना।

"गति से ठंडक दूर होती है, लेकिन अगति से गर्मी परास्त होती है। जो निश्चल और प्रशांत है, वह सृष्टि का मार्गदर्शक बन जाता है।"

निश्चल और प्रशांत! जो इस भीतर के तत्व को पकड़ लेता है जो न कभी चला और न चलता है, चलना जिसके आस-पास हो रहा है, सारा परिवर्तन का चाक जिस कील के आस-पास घूम रहा है, लेकिन जो कील ठहरी हुई है, वह जो अनमूविंग सेंटर है जिसके आस-पास सारी गति और परिवर्तन हो रहा है, उस परम स्थिर को जो पहचान लेता है, वह प्रशांत हो गया, वह निश्चल हो गया।

इसका यह मतलब नहीं है कि वह जड़ हो गया। इसका यह मतलब नहीं है कि वह बैठ गया, पत्थर की मूर्ति हो गया। वह काम के जगत में होगा, क्रिया के जगत में होगा, वह संसार में खड़ा होगा। लेकिन अब संसार ही चलेगा, वह नहीं चलेगा। उसका शरीर चलेगा, वह नहीं चलेगा। उसका यंत्र काम करेगा, लेकिन यंत्र के भीतर छिपा हुआ मालिक शांत ही रहेगा।

लाओत्से कहता है, ऐसा व्यक्ति, ऐसी चेतना सृष्टि की मार्गदर्शक हो जाती है।

सहज, स्वभावतः, ऐसे व्यक्ति के पास लोग आने लगते हैं। कोई अनजानी शक्ति उन्हें खींचने लगती है; कोई अदृश्य पुकार उन्हें उसके पास लाने लगती है। वह उसके भीतर जो प्रशांति घटित हुई है वह मैग्नेटिक फोर्स हो जाती है। उसके पास, जैसे कोई घने वृक्ष की छाया में राहगीर चलता हुआ विश्राम करने को रुक जाता है। न तो वृक्ष बुलाता, न वृक्ष निमंत्रण देता, लेकिन वृक्ष का होना ही निमंत्रण बन जाता है; थका राही उसके नीचे रुक कर विश्राम कर लेता है। ठीक वैसे ही प्रशांत हुए व्यक्ति के पास भी अनजाने अनेक-अनेक रास्तों से, अनेक-अनेक कारणों से लोग आने लगते हैं। स्वाभाविक है कि प्यासा कुएं के पास चला जाए। वैसा ही स्वाभाविक है कि जो अशांत है और जिसका मन उत्तेजना और गर्मी से भरा है, वह उसके पास चला आए जहां शांति मिल सकती है, जहां एक हवा का शीतल झोंका मिल सकता है, जहां दो घूंट उस शांति को पीया जा सकता है।

"जो निश्चल और प्रशांत है, वह सृष्टि का मार्गदर्शक बन जाता है।"

और वही केवल मार्गदर्शक बन सकता है; मार्गदर्शक जो बनना चाहते हैं वे नहीं। क्योंकि कुछ बनने की चेष्टा अशांति का लक्षण है। जो गुरु बनना चाहते हैं वे गुरु होने की योग्यता खो देते हैं। क्योंकि उस बनने में भी महत्वाकांक्षा है; उस बनने में भी अभी उत्ताप है; वह बनना भी एक बेचैनी है। वह एक नया आयाम है, लेकिन वासना का ही। सदगुरु वही है जो गुरु बनना नहीं चाहता, लेकिन जिसके पास लोग आकर शिष्य बनना चाहते हैं।

हालतें उलटी हैं। शिष्य कोई बनना नहीं चाहता; गुरु काफी हैं। और गुरुओं में बड़ी कलह रहती है कि कोई किसी का शिष्य न खींच ले। गुरु बड़ी चेष्टा में लगे रहते हैं कि उनका शिष्य कहीं और न चला जाए, किसी और की बात न सुन ले, कहीं भटक न जाए। भटकने का मतलब किसी और के पास न चला जाए। उनके अतिरिक्त सब जगह भटकाव है। तो गुरु बड़ी ईर्ष्या से, बड़ी जलन से सुरक्षा में लगे रहते हैं। इससे ही संप्रदाय

खड़े होते हैं। संप्रदायों के खड़े होने का कारण गुरुओं की ईर्ष्याएं हैं। लेकिन जिस गुरु में ईर्ष्या हो और जो भयभीत हो कि कहीं कोई चला न जाए, वह गुरु ही नहीं है।

एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि उनके गुरु ने उन्हें कहा है कि अगर वे मेरे पास आए तो ठीक नहीं होगा; यह वैसे ही है जैसे कोई अपने पति को छोड़ कर पत्नी किसी के पास चली जाए।

पति-पत्नी का संबंध गुरु-शिष्य बना कर बैठ जाते हैं। गुरु समझा रहा है कि कहीं जाना मत! यह तो वही है जैसे पत्नी पति को छोड़ कर कहीं चली जाए; जब एक गुरु बना लिया तो बस यहीं रुकना।

रोकने की चेष्टा क्या है? जरूरत क्या है? प्रयोजन क्या है? और रोकने से कहीं कोई रुकता है?

पर रोकने में कोई वासना है। गुरु भयभीत है, क्योंकि शिष्यों के बिना वह गुरु न हो सकेगा। इसलिए उसकी गुरुता शिष्यों पर निर्भर है।

इस फर्क को ठीक से समझ लें। जिस गुरु की लाओत्से बात कर रहा है उसकी उस गुरुता के लिए शिष्यों का होना जरूरी नहीं है; उस गुरुता के लिए भीतर की प्रशांति का होना जरूरी है। कोई एक भी शिष्य न हो तो वह व्यक्ति गुरु है। और भीतर की प्रशांति न हो और लाखों शिष्य हों तो भी वह व्यक्ति गुरु नहीं है। क्योंकि नासमझों की भीड़ को इकट्ठा कर लेने में जरा भी कठिनाई नहीं है। थोड़ी सी होशियारी, थोड़ी सी दुकानदारी, और लोग इकट्ठे हो जाते हैं। वह तो बड़ा सरल काम है। इसलिए बिल्कुल बुद्धिहीन लोग भी कर लेते हैं। इसलिए गुरुओं में ढेर मिलेंगे जो निपट बुद्धिहीन हैं, मगर इतने कुशल हैं कि शिष्य इकट्ठे कर लेते हैं।

लाओत्से कह रहा है कि जो व्यक्ति निश्चलता को, भीतर की अगति को उपलब्ध हुआ, प्रशांत हुआ, वह सृष्टि का मार्गदर्शक बन जाता है।

यह बनने की घटना स्वाभाविक घटती है। उसकी छाया में लोग विश्राम करने लगते हैं। उसके अस्तित्व को लोग ठंडे जल की तरह पीने लगते हैं। उसकी निश्चलता और उसकी प्रशांति दूसरों में प्रवेश करने लगती है। लोग उसके आस-पास बदलने लगते हैं--बिना उसकी किसी चेष्टा के। उसका होना ही, उसका होना मात्र ही, मार्गदर्शक बन जाता है।

आज इतना ही।

तिरासीवां प्रवचन

प्रार्थना मांग नहीं, धन्यवाद है

Chapter 46

Racing Horses

When the world lives in accord with Tao,
Racing horses are turned back to haul refuse carts.
When the world lives not in accord with Tao,
Cavalry abounds in the countryside.
There is no greater curse than the lack of contentment.
No greater sin than desire for possession.
Therefore he who is contented with contentment shall be always content.

अध्याय 46

घुड़दौड़ के घोड़े

जब संसार ताओ के अनुकूल जीता है,
तब घुड़दौड़ के घोड़े कचरा-गाड़ी खींचने के काम आते हैं।
और जब संसार ताओ के प्रतिकूल चलता है,
तब गांव-गांव में अश्वारोही सेना भर जाती है।
संतोष के अभाव से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है;
स्वामित्व की इच्छा से बड़ा कोई पाप नहीं है।
इसलिए जो संतोष से संतुष्ट है, वह सदा भरा-पूरा रहेगा।

मनुष्य के सारे दुखों, सारी पीड़ाओं, सारे संताप का एक ही मूल आधार है। और वह मूल आधार है कि मनुष्य जो भी है उससे अन्यथा होना चाहता है, कुछ और होना चाहता है। जो भी स्थिति है उससे भिन्न स्थिति हो, इसकी वासना ही मनुष्य के सारे दुखों का मूल आधार है।

जो भी हम हैं उससे हम संतुष्ट नहीं, और जो भी हम नहीं हैं उसे होने की विक्षिप्त कामना है। ऐसा जो चित्त है वह कभी भी आनंद को उपलब्ध नहीं होगा। ऐसे चित्त में आनंद की संभावना ही नहीं है। वह जहां भी पहुंच जाएगा वहीं नरक निर्मित कर लेगा।

अरब में एक बहुत पुरानी कहावत है कि पापी नरक में प्रवेश नहीं करता और न ही पुण्यात्मा स्वर्ग जाता है; पापी अपने नरक को अपने साथ लेकर चलता है, पुण्यात्मा भी अपने स्वर्ग को अपने साथ लेकर चलता है।

पुण्यात्मा जहां पहुंच जाता है वहीं स्वर्ग है, और पापी जहां पहुंच जाता है वहीं नरक है। नरक चीजों को देखने का हमारा ढंग है; स्वर्ग भी चीजों को देखने का हमारा ढंग है। स्वर्ग और नरक स्थितियां नहीं हैं, भौगोलिक स्थान नहीं हैं; हमारी प्रतिक्रियाएं हैं।

जर्मन कवि हेन ने एक छोटी सी कविता लिखी है। उस कविता में उसने लिखा है कि मैं एक कारागृह के पास से गुजरता था। पूर्णिमा की रात थी और कारागृह के द्वार पर सीखचों के भीतर खड़े हुए दो कैदी मैंने देखे। ठीक कारागृह के द्वार के सामने ही गंदा एक डबरा था, जिससे दुर्गंध उठ रही थी। मच्छर और कीड़े और पतिंगे आस-पास घूम रहे थे। और आकाश में पूरा चांद था। दो कैदी कारागृह के द्वार पर खड़े थे। एक निंदा कर रहा था सामने भरे हुए गंदे डबरे की और दुखी था, और उसे आकाश का पूरा चांद बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ रहा था। क्योंकि जिसे डबरा दिखाई पड़ रहा हो उसे चांद दिखाई पड़ना असंभव है। आंखें डबरे से भर जाएं तो फिर चांद दिखाई नहीं पड़ता। और दूसरा चांद की प्रशंसा कर रहा था। रात अदभुत थी। और जिसे चांद दिखाई पड़ रहा है उसे न तो गंदा डबरा दिखाई पड़ रहा था; न कारागृह में खड़ा हूं, यह प्रतीत हो रहा था; न सीखचों में बंद हूं, ऐसी प्रतीति हो रही थी। आकाश के चांद ने उसे मुक्त कर दिया था। वे दोनों एक ही जगह खड़े थे। उन दोनों के पास एक जैसी ही आंखें थीं, पर उन दोनों के भीतर भिन्न मन थे। उनके देखने का ढंग अलग था; उनकी व्याख्या अलग थी।

संसार तो यही है। जब कोई बुद्ध हो जाता है तो संसार नहीं बदलता। जहां आप हैं वहीं बुद्ध होते हैं। तो देखने का ढंग बदल जाता है। डबरे खो जाते हैं और पूरा चांद प्रकट हो जाता है। व्यक्ति पर निर्भर है, कैसे देखता है, कैसे व्याख्या करता है। स्वीकार करने का मन हो तो दुख असंभव है। क्योंकि दुख को भी स्वीकार किया जा सकता है। स्वीकृत होते ही दुख की मृत्यु हो जाती है। अस्वीकार में ही दुख है। अगर हम दुख को भी स्वीकार कर लें तो दुख विलीन हो जाता है। स्वीकार में सुख है। अगर हम सुख को भी स्वीकार न कर पाएं तो दुख हो जाता है।

तो सुख और दुख बाहर की घटनाएं नहीं, मेरी स्वीकृतियां और अस्वीकृतियां हैं। और अगर कोई मनुष्य इस कला को सीख ले कि ऐसा कुछ भी न बचे जो उसे अस्वीकार हो तो हम उसे दुख कैसे दे सकेंगे? सारा संसार मिल कर भी उसे दुखी नहीं कर सकता। उसका सुख खंडित करना असंभव है। और हम जैसे हैं, हमें सुखी करना असंभव है। हमारे दुख को मिटाना बिल्कुल असंभव है। क्योंकि हम अस्वीकार की कला में इतने पारंगत हैं। जो भी हमें मिले, हम उसे अस्वीकार करना जानते हैं; जो भी हमें मिल जाए, मिलते ही हमारा मन उसके विरोध से भर जाता है।

लाओत्से स्वीकृति का पोषक है, तथाता का। कैसी भी हो स्थिति, स्वीकार करते ही उसका गुण बदल जाता है। अब ध्यान रहे, यह बेशर्त बात है; कैसी भी हो स्थिति, स्वीकार करते ही उसका गुण बदल जाता है। कितना ही गहन दुख हो, बीमारी हो, पीड़ा हो, मृत्यु आ रही हो, अगर आप स्वीकार कर सकते हैं, तत्क्षण गुणधर्म बदल जाता है। मृत्यु भी मित्र बन जाएगी। मृत्यु भी एक द्वार बन जाएगी जो अनंत की तरफ खुल रहा है। मृत्यु में भी तब वह नहीं दिखाई पड़ेगा जो छूट रहा है, बल्कि वह दिखाई पड़ेगा जो उपलब्ध हो रहा है। लेकिन अस्वीकार अगर हो तो मृत्यु तो दुख होगी ही, जीवन भी दुख होगा।

प्रतिपल कुछ छूट रहा है, कुछ मिल रहा है, कुछ आ रहा है, कुछ जा रहा है। अगर हमें वही दिखाई पड़ता है जो जा रहा है तो दुख होगा; अगर वह भी दिखाई पड़े जो आ रहा है तो सुख होगा। और हम जहां भी खड़े हों, उसके आगे भी जगह हैं। कितना ही धन हमारे पास हो, उससे ज्यादा धन हो सकता है।

एक बहुत बड़े मनसविद कार्ल गुस्ताव जुंग ने अपने संस्मरणों में एक बड़ी महत्वपूर्ण बात लिखी है। उसने लिखा है कि मनुष्य के सारे दुखों का कारण मनुष्य की कल्पना की शक्ति है। कोई पशु दुखी नहीं है, क्योंकि कोई पशु कल्पना नहीं कर सकता। कल्पना की शक्ति मनुष्य के बड़े से बड़े दुख का कारण है। क्यों? क्योंकि मनुष्य जिस हालत में भी हो, उससे बेहतर की कल्पना कर सकता है।

एक सुंदर स्त्री आपको पत्नी की तरह मिल जाए, प्रेयसी की तरह मिल जाए, लेकिन ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो उससे सुंदर स्त्री की कल्पना न कर सके। और अगर आप अपनी पत्नी से सुंदर स्त्री की कल्पना भी कर सकते हैं तो दुखी हो गए। यह पत्नी व्यर्थ हो गई। कितना ही सुंदर महल हो, आप उससे बेहतर महल की कल्पना तो कर ही सकते हैं; न भी बना सकें। बस उस कल्पना के साथ ही तुलना शुरू हो गई। और महल झोपड़े से बदतर हो गया। जब बेहतर कुछ हो सकता हो तो जो भी हमारे पास है वह गैर-बेहतर हो गया।

कल्पना की शक्ति मनुष्य के दुख का भी कारण है, उसकी सृजनात्मकता का, उसकी क्रिएटिविटी का भी। कोई पशु सृजन नहीं करता। पशु एक पुनरावृत्ति में जीते हैं। लाखों वर्ष तक उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही ढंग का जीवन व्यतीत करती है। आदमी नए की खोज करता है, नए का सृजन करता है। कल्पना के कारण वह देख पाता हैः कुछ बदलाहट की जा सकती है, कुछ बेहतर बनाया जा सकता है। लेकिन जिस शक्ति से सृजनात्मकता पैदा होती है उसी शक्ति से मनुष्य का दुख भी पैदा होता है।

इसलिए बड़े हैरान होंगे आप जान कर कि सृजनात्मक लोग सर्वाधिक दुखी होते हैं। जो व्यक्ति भी क्रिएटिव है, कुछ सृजन कर सकता है--चित्रकार हैं, मूर्तिकार हैं, वैज्ञानिक हैं, कवि हैं, बहुत दुखी होते हैं। क्योंकि किसी भी स्थिति में उन्हें अंत नहीं मालूम हो सकता; उस स्थिति से बेहतर हो सकता है। और जब तक वे बेहतर को न पा लें तब तक दुखी होंगे। और ऐसी कोई अवस्था नहीं हो सकती जिससे बेहतर की कल्पना न की जा सके।

पशु आदमी से ज्यादा सुखी मालूम पड़ते हैं, क्योंकि वे जहां हैं वही उनका अस्तित्व है। उससे बेहतर न सोच सकते हैं, न सपना देख सकते हैं; तुलना भी नहीं कर सकते। मनुष्य की कल्पना की क्षमता उसे भविष्य में ले जाती है। और जब मन भविष्य में चला जाता है तो वर्तमान से हमारे संबंध टूट जाते हैं और वर्तमान ही जीवन है।

लाओत्से कहता है, जो व्यक्ति भी जहां है उस अवस्था को उसकी परिपूर्णता में स्वीकार कर लेता है उसके जीवन में दुख का कोई उपाय नहीं।

लेकिन इससे हमें डर लगेगा। इससे डर यह लगेगा कि जो भी हमारे पास है, अगर हम स्वीकार कर लें, तो फिर विकास का क्या उपाय है? और अगर हम श्रेष्ठतर को न सोच सकें तो खोजेंगे क्यों? खोजेंगे कैसे? फिर मनुष्य भी पशु जैसा हो जाएगा।

पश्चिम के विचारक, विकासवादी विचारक, यही आलोचना पूरब की उठाते हैं। उनकी आलोचना तर्कयुक्त है। वे कहते हैं कि पूरब इसीलिए विकसित नहीं हो पाया। और पूरब को देख कर उनकी बात सही भी मालूम पड़ती है। क्योंकि पूरब स्वीकार कर लेता है। अगर झोपड़ा है तो झोपड़ा स्वीकार है, और गरीबी है तो गरीबी स्वीकार है, भूख है तो भूख स्वीकार है। इस स्वीकार के कारण पूरब में विज्ञान का जन्म नहीं हुआ।

यह बात ठीक मालूम पड़ती है। पश्चिम में विज्ञान का जन्म हो सका, क्योंकि बड़ी कल्पना है। और जो कुछ भी बना पाते हैं, बना भी नहीं पाते कि वह व्यर्थ हो जाता है, आउट ऑफ डेट मालूम होने लगता है, क्योंकि कुछ और नई कल्पना सामने आ जाती है।

तो पश्चिम जी ही नहीं पाता। बनाता है जीने के लिए, तब तक और बेहतर हो सकता है; बन नहीं पाती कोई चीज कि मिटने के करीब, मिटने का क्षण आ जाता है। पश्चिम जी नहीं पाता, दौड़ता रहता है। पूरब खड़ा है, लेकिन खड़ा है बड़ी पीड़ाओं में और कोई विकास नहीं हो पाता। लाओत्से, बुद्ध, महावीर की जो बड़ी से बड़ी आलोचना है वह पूरब की वर्तमान स्थिति है। और अगर पूरब का विचार पश्चिम को स्वीकार नहीं होता तो उसका कारण है कि पूरब को देख कर लगता है कि वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। वह खतरनाक है। उससे एक जड़ता पैदा हो जाएगी।

लेकिन लाओत्से को या बुद्ध को समझने में कहीं हमारी भूल हो गई है। भूल की संभावना सदा है। क्योंकि जिस तल से लाओत्से बोलता है उस तल पर हम नहीं समझ पाते। लाओत्से की बात अगर ठीक से समझ में आ जाए और जो भी हमारी स्थिति हो उसे हम पूरे हृदय से स्वीकार कर लें तो इससे विकास रुकेगा नहीं, विकास होगा। लेकिन विकास के होने का ढंग बदल जाएगा। हम उस स्थिति में इतने आनंदित हो जाएंगे, और दुख में हमारी जो शक्ति व्यय होती है वह शक्ति व्यय नहीं होगी।

ध्यान रहे, दुख में शक्ति व्यय होती है। पीड़ा में आदमी टूटता है, नष्ट होता है। और आनंद के अतिरिक्त इस जगत में शक्ति का कोई दूसरा स्रोत नहीं है। जो व्यक्ति जीवन को स्वीकार कर ले, प्रतिपल जैसा है, इससे ठहर नहीं जाएगा। इस स्वीकृति से उसके पास अदम्य शक्ति बचेगी। उसकी शक्ति का व्यर्थ बहना बंद हो जाएगा। उसकी शक्ति के छिद्र, जिनसे शक्ति बहती है, समाप्त हो जाएंगे। वह टूटेगा नहीं, वह अखंड होगा, वह अटूट होगा, और एक महाशक्ति का स्रोत होगा। यह महाशक्ति अपनी शक्ति के कारण ही प्रतिपल विकसित होगी।

इस विकास का ढंग ऐसा नहीं होगा जैसा एक आदमी एक गाय को गले में रस्सी बांध कर घसीटता है; गाय न भी जाना चाहे तो आदमी घसीटता है और गाय को जाना पड़ता है। पश्चिम में जो विकास हो रहा है वह इस तरह का है। महत्वाकांक्षा आगे खींचती है रस्सी की तरह; रुकने का कोई उपाय नहीं मालूम होता। प्रत्येक आदमी महत्वाकांक्षा की रस्सी में बंधा हुआ खिंचता है। इसलिए विकास तो होता है, लेकिन महादुख, पीड़ा, तनाव और अशांति के साथ। और जो विकास पीड़ा में ले जाए, संताप में ले जाए, विक्षिप्तता में ले जाए, उस विकास का करेंगे भी क्या? मकान अच्छा बन जाए, भोजन अच्छा हो जाए और आदमी खोता चला जाए; और जिसके लिए हम मकान बनाते हैं और जिसके लिए अच्छा भोजन, अच्छी टेक्नालाजी, यंत्रों का इंतजाम करते हैं, वह बचे ही न उनके उपभोग के लिए; उपभोग की सामग्री इकट्ठी हो जाए, उपभोक्ता मर जाए, तो क्या प्रयोजन है?

पश्चिम में यही हो रहा है। आदमी खोता जाता है; साधन, सामग्री, व्यवस्था, सुविधा बढ़ती जाती है। वह जिसके लिए बढ़ रही है वह धीरे-धीरे बचेगा ही नहीं; उसके बचने की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती।

तो एक तो विकास है, महत्वाकांक्षा की डोर से जबरदस्ती आदमी की गर्दन खींची जाए। एक और विकास है जो महत्वाकांक्षा की डोर से पैदा नहीं होता। हम एक बीज को बोते हैं; अंकुर फूटता है। इस अंकुर को कोई भी खींच नहीं रहा है। और अगर आप खींचेंगे रस्सी बांध कर तो आप हत्यारे सिद्ध होंगे; पौधा मर

जाएगा। इसे कोई भी खींच नहीं रहा है; कोई भी वासना, कोई भी आकांक्षा, कोई भविष्य इसे बुला नहीं रहा है। यह कुछ होना नहीं चाहता। इस बीज की अदम्य ऊर्जा! इसकी शक्ति!

इसलिए हम करते क्या हैं? जब बीज से अंकुर फूटता है तो हम पानी देते हैं, खाद देते हैं, पौधे को खींचते नहीं। पानी और खाद का अर्थ है, हम उसे शक्ति दे रहे हैं, हम उसके भीतर जो शक्ति छिपी है, उसे प्रकट होने का अवसर दे रहे हैं। वह शक्ति अपने आप ही पौधे को खींचती ले जाएगी। और पौधा प्रतिपल आनंदित होगा। क्योंकि कोई भविष्य की वजह से वह आज दुखी होने वाला नहीं है कि कल फूल खिलेंगे, तब सुख होगा। जब फूल नहीं खिले हैं तब भी पौधा सुखी होगा; जब फूल खिलेंगे तब भी सुखी होगा; हर क्षण में सुखी होगा।

लाओत्से कहता है, विकास स्वभाव से। विकास जबरदस्ती नहीं, खींचतान से नहीं; मनुष्य की भीतरी शक्ति ही उसे विकसित होने में लेती जाए, वह एक नदी की धार की तरह बहता रहे। मनुष्य का शक्ति का यह जो स्रोत है यह स्वीकार के भाव से बढ़ता है, अस्वीकार के भाव से कम होता है। क्योंकि जैसे ही हम किसी चीज को अस्वीकृत करते हैं, हमारा विरोध शुरू हो गया। जहां विरोध है वहां संघर्ष है। जहां संघर्ष है वहां हम लड़ने में उलझ गए, और हमारी शक्ति लड़ने में नष्ट होगी। स्वीकार का अर्थ है, हमारा कोई विरोध नहीं; हमारी शक्ति के व्यय होने का कोई उपाय नहीं। हम लड़ नहीं रहे हैं, हमारा कोई संघर्ष नहीं है।

और ध्यान रहे, जैसे ही कोई व्यक्ति लड़ने की वृत्ति पकड़ लेता है, उसके जीवन में धर्म का अनुभव कठिन हो जाएगा। क्योंकि धर्म के अनुभव का एक ही अर्थ है कि इस अस्तित्व के साथ मेरी मैत्री है, विरोध नहीं; इस समग्र अस्तित्व का मैं एक हिस्सा हूं, इसका शत्रु नहीं, और यह पूरा ब्रह्मांड मुझे खिला हुआ देखना चाहता है, मुझे मिटाने को आतुर नहीं है। उसी ने मुझे पैदा किया है, वही मेरी शक्ति को सहारा दे रहा है। श्वास उसकी है, रोआं-रोआं उसका दान है। मैं जो कुछ भी हूं, इस विराट विश्व के भीतर से उठा हूं और यह विराट विश्व मेरा शत्रु नहीं है। यह मेरा घर है। यहां कोई कांक्वेस्ट ऑफ नेचर, कोई प्रकृति पर विजय करने की बात नहीं है। क्योंकि प्रकृति पर विजय हो नहीं सकती। मैं प्रकृति का हिस्सा हूं; हिस्सा पूर्ण पर कोई भी विजय नहीं पा सकता। लड़ सकता है; लड़ कर नष्ट हो सकता है; दुखी और पीड़ित हो सकता है; लेकिन उस सौभाग्य को उपलब्ध नहीं हो सकता जहां प्रतिपल उत्सव हो जाता है। यह उत्सव तो तभी संभव है जब अस्तित्व के साथ मेरी गहरी एकता का बोध मुझे शुरू हो जाए; जब मुझे लगे कि मैं पराया नहीं हूं; जब मुझे लगे कि मैं अजनबी नहीं हूं; और जब मुझे लगे कि वृक्ष और चांद और तारे और पौधे और पृथ्वी और पशु और पक्षी सब मेरे साथ हैं।

स्वीकार का भाव इस साथपन के भाव को भी पैदा करता है।

पश्चिम में एक नई चिंतना चलती है। उस नई चिंतना अस्तित्ववाद ने एक महत्वपूर्ण सवाल, जो पश्चिम के हर विचारशील आदमी को परेशान कर रहा है, काफी जोर से उठाया--नारे की तरह। और वह यह है कि आदमी आउटसाइडर है, आदमी अजनबी है; और प्रकृति को आदमी से कोई प्रयोजन नहीं; और यह ब्रह्मांड बिल्कुल उपेक्षा से भरा है, और यह ब्रह्मांड आदमी को सहारा देने को जरा भी उत्सुक नहीं है। तो आदमी एक स्ट्रेंजर है, एक अजनबी है। यह अस्तित्व घर तो हो ही नहीं सकता, ज्यादा से ज्यादा, अच्छी से अच्छी संभावना एक धर्मशाला होने की है, बुरी से बुरी संभावना एक युद्धस्थल की। लेकिन यह घर नहीं है। और अगर ऐसी प्रतीति हो कि यह अस्तित्व घर नहीं है, एक धर्मशाला है--श्रेष्ठतम संभावना धर्मशाला की है। श्रेष्ठतम संभावना तो बहुत थोड़े लोग पा सकेंगे, अधिकतम लोगों को युद्धस्थल की। यह जगत युद्धस्थल है, जहां लड़ना है और मरना है; जहां जीने का, आनंद से, उत्सव से जीने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सब तरफ शत्रु हैं और सब अपने-अपने को बचाने और दूसरे को नष्ट करने के ख्याल में संलग्न हैं। ऐसी धारणा अगर हो और फिर मनुष्य

अगर बहुत बेचैन हो जाए तो आश्चर्य क्या? फिर अगर पश्चिम में पागलों की संख्या बढ़ने लगे और मस्तिष्क प्रतिदिन रुग्ण होता चला जाए, इसे स्वाभाविक मानना होगा। यह सहज परिणति है। अगर आदमी अकेला है और सारा जगत शत्रु है, तो इस अंधकारपूर्ण जगत में जहां सभी कुछ शत्रु है, हम कैसे शांत हो सकते हैं? कैसे आनंदित हो सकते हैं? समाधि कैसे फलित हो सकती है?

लाओत्से की दृष्टि इस जगत को एक घर, अपना घर बनाने की है। घर तो है ही, हमारी दृष्टि पर निर्भर है। हम चाहें तो उसे युद्ध का स्थल बना सकते हैं। तथाता, स्वीकार का भाव, टोटल एक्सेप्टबिलिटी लाओत्से का आधार सूत्र है। जो भी मैं हूं, जहां भी मैं हूं, उस क्षण में उससे अन्यथा की मांग न हो।

इसके परिणाम बहुत होंगे। पहला परिणाम तो यह होगाः जो भी मैं हूं, जहां भी हूं, जैसा भी हूं, जो मुझे मिला है कम या ज्यादा--क्योंकि कम और ज्यादा का ख्याल तभी पैदा होता है जब मैं कुछ और की मांग करूं--जो भी है उससे अगर मैं संतुष्ट हूं, तो यह क्षण मेरा परम सुख का क्षण हो जाएगा। और इस संतोष के माध्यम से यह जगत मेरा घर बन जाएगा; और इस संतोष के माध्यम से मेरी शक्ति बचेगी, और उस शक्ति से नए अंकुर फूटेंगे; मैं विकसित होता रहूंगा, मैं प्रवाहवान रहूंगा। लेकिन वह प्रवाह सहज होगा। वह किसी संघर्ष के द्वारा नहीं, वह किसी युद्ध के द्वारा नहीं, वह प्रवाह प्रेमपूर्ण होगा, वह प्रवाह एक प्रार्थना की धारा होगी।

लाओत्से या बुद्ध को पूरब समझ नहीं पाया, या फिर पूरब के लोगों ने लाओत्से और बुद्ध की जो व्याख्या की, वह उनके चालाक मन का सबूत है। लाओत्से यह नहीं कह रहा है कि तुम रुक जाना। वह यह भी नहीं कह रहा है कि तुम आंखें बंद कर लेना। वह यह भी नहीं कह रहा है कि तुम मुर्दा हो जाना। और लाओत्से जिसको संतोष कहता है, हम उसे संतोष नहीं कहते। शब्द के कारण बड़ी भ्रांति पैदा होती है।

मेरे पास लोग आते हैं। एक मित्र ने एक दिन मुझे आकर कहा कि साधु-संत कहते हैं कि संतोषी सदा सुखी। मैं तो सदा से संतोष कर रहा हूं, लेकिन सुख का तो कोई पता नहीं।

इस व्यक्ति का संतोष किस भांति का होगा? क्योंकि संतोष का सुख सहज परिणाम है। यह तो ऐसे ही हुआ कि कोई आदमी कहे कि पानी तो मैं रोज पी रहा हूं, लेकिन प्यास तो मेरी कभी बुझी नहीं। तो समझना चाहिए कि पानी की जगह वह कुछ और पी रहा होगा। पानी का तो लक्षण ही प्यास को बुझाना है। वह उसका स्वभाव है। यह आदमी कहता है कि संतोष तो मैं सदा से कर रहा हूं, लेकिन सुख मुझे कभी मिला नहीं।

इस एक वाक्य में पूरे पूरब की भूल छिपी हुई है। मैंने उस आदमी को कहा कि तुम संतोष तो इस क्षण भी नहीं कर रहे हो, सदा की तो बात छोड़ो। क्योंकि यह असंतुष्ट चित्त का लक्षण है जो कह रहा है कि सुख मुझे कभी नहीं मिला। संतोष का अर्थ ही यह होता है कि जो मुझे मिला वह सुख था; जो भी मुझे मिला वह मेरा सुख था। संतोष का इतना ही अर्थ है। तो इस आदमी का संतोष कुछ और ढंग का है। इसके संतोष को--अच्छा होगा--हम कहें, सांत्वना, कंसोलेशन; कंटेंटमेंट नहीं। सांत्वना बड़ी उलटी बात है। जो आप नहीं पा सकते, जिसको पाने की आप सब कोशिश कर लेते हैं और सफल नहीं होते... ।

ईसप की कहानी आपको ख्याल है? लोमड़ी छलांग लगाती है और अंगूर के गुच्छों तक नहीं पहुंचती, तो वह कहती हुई सुनी जाती है कि अंगूर खट्टे हैं। यह सांत्वना है। इससे लोमड़ी अपनी पराजय को छिपा रही है। यह संतोष नहीं है। लोमड़ी ने पूरी कोशिश की है कि अंगूरों को पा ले। अंगूर दूर हैं, और पाने का कोई उपाय नहीं। और लोमड़ी यह भी मानने को तैयार नहीं कि मैं कमजोर हूं, मेरी छलांग छोटी है। और दूसरों को यह पता चले कि मैं हार गई, यह भी अहंकार को चोट पहुंचाने वाली बात है। तो लोमड़ी कहती है कि अंगूर खट्टे हैं। वह इसलिए कह रही है कि अंगूर खट्टे हैं ताकि अपने को भी समझा ले, दूसरों को भी समझा दे--कि ऐसा नहीं है

कि मैं पाना चाहती तो न पा सकती थी; मैं पा सकती थी। लेकिन अंगूर खट्टे हैं, पाने योग्य नहीं। यह लोमड़ी संतोष करके वापस लौट रही है। यह संतोष सांत्वना है, कंसोलेशन है। यह चालाक चित्त का उपाय है।

हमारा संतोष ऐसा ही संतोष है। हम सब उपाय करते हैं; तभी तो इस मित्र ने कहा कि मैं सदा से संतोष कर रहा हूं, लेकिन सुख तो मिला नहीं। सुख मिलना चाहिए, इसके सब उपाय कर रहा है वह। सुख नहीं मिल रहा है तो अपने को समझा रहा है कि मैं संतोषी आदमी हूं, और तब संतोष के माध्यम से सुख पाने की कोशिश कर रहा है। संतोष के माध्यम से कोई सुख पाने का सवाल नहीं है; संतोष सुख है। संतोष का मतलब यह कि हमने दुख को अस्वीकार करना छोड़ दिया, और हमने सुख की मांग छोड़ दी। हमें जो मिल जाता है वही हमारी नियति है, वही हमारा भाग्य है; उससे ज्यादा की हमारी आकांक्षा नहीं है। उससे ज्यादा के लिए हमारी कोई दौड़ भी नहीं है। ऐसे क्षण में जो भीतर एक संगीत बजने लगता है; जब कोई मांग नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई दौड़ नहीं, तो भीतर जो शांति का संगीत बजने लगता है उसका नाम संतोष है। इस संतोष का जिसे भी अनुभव हो जाए, क्या वह कभी भी कह सकता है कि मुझे सुख नहीं मिला? क्योंकि इस संतोष के अतिरिक्त और सुख होगा क्या!

पूरब ने संतोष को ढाल बना लिया और अपनी कमजोरी और कायरता उसमें छिपा ली। संतोष केवल उनके लिए है जो शक्तिशाली हैं। कमजोरों के लिए सांत्वना है। पर वे सांत्वना को संतोष कहते हैं। और तब शब्दों के कारण बड़ी उलझन हो जाती है।

लाओत्से के इस सूत्र को समझना। उसके पहले एक बात और ख्याल में ले लेनी जरूरी है। जो आदमी संतुष्ट है वह महत्वाकांक्षी नहीं हो सकता, एंबीशस नहीं हो सकता। कुछ भी पाने का लक्ष्य--वह चाहे मोक्ष ही क्यों न हो, परमात्मा क्यों न हो, आत्मज्ञान क्यों न हो, ध्यान और समाधि क्यों न हो--कुछ भी पाने का लक्ष्य संतोषी व्यक्ति को नहीं हो सकता। और बड़े मजे की बात तो यह है कि महत्वाकांक्षी दौड़ता है, दौड़ता है सदा, पहुंचता कभी नहीं, और संतुष्ट व्यक्तित्व दौड़ता नहीं और पहुंच जाता है। क्योंकि अगर मैं इतना संतुष्ट हूं कि मैं कुछ भी नहीं मांगता तो ध्यान मुझसे कितनी देर बचेगा? अशांत होने का उपाय नहीं है तो शांत होने की विधि की क्या जरूरत है? विधियां तो तब जरूरी हैं जब बीमारियां हों। पहले हम बीमारी पैदा करते हैं, फिर हम विधि की खोज करते हैं। लाओत्से कह रहा है, बीमारी पैदा करने की कोई जरूरत नहीं।

इसलिए लाओत्से का प्रसिद्ध सूत्र है कि जब जगत में ताओ था तो धर्म नहीं था, धर्म-उपदेशक नहीं थे, धर्मगुरु नहीं थे। जब जगत से ताओ नष्ट हो जाता है, स्वभाव खो जाता है, तब धर्म का जन्म होता है।

सीधी बात है। क्योंकि धर्म औषधि है। पहले बीमारी चाहिए, बीमारी के पीछे फिर डाक्टर प्रवेश करता है। फिर हम डाक्टर के बड़े अनुगृहीत होते हैं। लाओत्से का जोर चिकित्सा पर नहीं है। पहले बीमारी पैदा करो, फिर इलाज करो, इस पर उसका जोर नहीं है। लाओत्से का जोर है, बीमारी पैदा मत करो। और बीमारी हमारी पैदा की हुई है। फिर हजारों औषधियां पैदा होती हैं। बीमारी को ठीक करने के लिए हजारों औषधियां अस्तित्व में आती हैं। और फिर औषधियों के रिएक्शंस हैं, फिर औषधियों से पैदा हुई बीमारियां हैं। और उनका फिर कोई सिलसिले का अंत नहीं है। फिर चिकित्सक जो कर सकता है इलाज जिस बीमारी का, उसी बीमारी को खोजता है। इधर मेरा अनुभव यही है। आपकी तकलीफ क्या है, चिकित्सक को इससे कम संबंध है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने एक बार चिकित्सा का काम शुरू किया था। सारा आयोजन कर लिया था, द्वार पर तख्ती लगा दी थी और मरीज की प्रतीक्षा में था। पहला ही मरीज आया। और उस मरीज ने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में हूं, बहुत निराश हो चुका हूं। जगह-जगह खोज तो चुका, जगह-जगह चिकित्सक, वैद्य,

हकीम, कोई भी मुझे ठीक नहीं कर पा रहे हैं। मेरी रीढ़ में सदा ही दर्द बना रहता है। और इसे कुछ वर्षों हो गए, बारह-पंद्रह वर्ष हो गए। मुल्ला नसरुद्दीन ने काफी सोचा और फिर कहा, तुम एक काम करो। सर्दी के दिन हैं, रात तुम स्नान करो और बाहर घर के खड़े हो जाओ। कपड़े से सुखाना भी मत शरीर को। ठंडी बर्फीली हवाएं बह रही हैं। उस आदमी ने कहा, क्या? क्या इससे मेरी रीढ़ का दर्द ठीक हो जाएगा? नसरुद्दीन ने कहा, यह मैंने कहा भी नहीं। इससे तुम्हें डबल निमोनिया हो जाएगा। और डबल निमोनिया का इलाज मेरे पास है, रामबाण दवा मेरे पास है।

फिर चिकित्सक के पास जिस बात की दवा है वह उस बीमारी को खोजता है। न हो तो पैदा करता है। इसलिए आप जाएं होम्योपैथ के पास, तो वह और बीमारी खोजता है; एलोपैथ के पास, वह और बीमारी खोजता है; नेचरोपैथ के पास, वह कोई और ही बीमारी खोजता है। जितनी चिकित्सा विधियों के पास आप जाएंगे, वे अलग-अलग निदान करेंगे। निदान का मतलब ही इतना है कि जिस बात का वे इलाज कर सकते हैं वही उनका निदान होगा। आपसे बहुत कम प्रयोजन है। वे क्या कर सकते हैं, उससे ही ज्यादा प्रयोजन है। आप सिर्फ निमित्त मात्र हो।

धर्मगुरुओं के पास भी वही है। आपकी क्या तकलीफ है, यह सवाल नहीं है; उनके पास कौन सी औषधि है।

लाओत्से कहता है, एक तो बीमारी का उपद्रव, फिर औषधि का उपद्रव; इसका फिर कोई अंत नहीं है। बीमारी पैदा न हो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे पूछते हैं, मन अशांत है, कैसे शांत करें?

मैं उनसे पूछता हूं कि तुम इसकी फिक्र न करो कि कैसे शांत करें; पहले इसकी ही फिक्र करो कि कैसे तुमने अशांत किया है! और तुम उन कारणों को हटा दो जिनसे तुमने अशांत किया है।

लेकिन यह लंबा मामला मालूम पड़ता है। और उन्हें लगता है कि यह असंभव है। वे कहते हैं, यह तो छोड़ें, आप तो शांति का कोई उपाय, कोई मंत्र बता दें। अशांति को वे पैदा करते रहेंगे; अशांति को रोकने के लिए वे तैयार नहीं हैं; अशांति में इनवेस्टमेंट है, उससे कुछ और मिल रहा है, तो अशांति वे छोड़ नहीं सकते और शांति का कोई ऊपर से इलाज चाहते हैं! अगर शांति ऐसे मिल सकती तब सारी दुनिया के लोग कभी के शांत हो गए होते। शांति ऐसे नहीं मिल सकती; अशांति के कारण हटाने होंगे। लाओत्से के हिसाब से अशांति के कारण समझ लेने चाहिए।

"जब संसार ताओ के अनुकूल जीता है, स्वभाव के अनुकूल जीता है, तब घुड़दौड़ के घोड़े कचरा-गाड़ी खींचने के काम आते हैं।"

घुड़दौड़ के घोड़े आपकी महत्वाकांक्षाओं के घोड़े हैं। यह थोड़ी हैरानी की बात है कि आदमी घोड़ों को दौड़ा कर भी हार-जीत का निर्णय करता है। घोड़े दौड़ते हैं, और आदमी उनमें प्रथम और द्वितीय आते हैं। घोड़े दौड़ते हैं, और लाखों लोग उन्हें देखने इकट्ठे होते हैं। आप आदमियों को दौड़ाएं, लाख घोड़ों को इकट्ठा आप कभी नहीं कर सकते देखने के लिए। घोड़ों को इसमें कुछ रस ही न होगा, और घोड़े बिल्कुल भी प्रसन्नचित्त न होंगे कि कोई आदमी दौड़ रहे हैं और इससे कुछ... । घोड़ों की अपनी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है। आदमी सब बहाने--चाहे वह खेल खेलता हो, ताश खेलता हो, कबड्डी खेलता हो, फुटबाल खेलता हो, वह कुछ भी करता हो--सब जगह हार और जीत को खोजता है, सब जगह अहंकार को प्रतिष्ठित करने के उपाय करता है। उसके खेल भी बीमारियां हैं।

लाओत्से कह रहा है, अगर संसार ताओ के अनुकूल हो तो घुड़दौड़ के घोड़े कचरा-गाड़ी खींचने के काम आएंगे। कौन उन्हें दौड़ाएगा? कौन उनके ऊपर महत्वाकांक्षा की सवारी करेगा? कौन उनके प्रथम और द्वितीय आने में रस लेगा? यह तो हम प्रथम होना चाहते हैं तो हम कई उपाय खोजते हैं प्रथम होने के। कोई भी बहाने हम प्रथम होना चाहते हैं। ऐसे-ऐसे उपाय हम खोजते हैं कि कोई भी सोचेगा तो हंसी आएगी।

कोई आदमी डाक के टिकट ही इकट्ठे करने लगता है। तो वह इसमें रस लेता है कि गांव में सबसे ज्यादा डाक के टिकट उसके पास हैं। डाक के टिकटों का क्या मूल्य हो सकता है? कोई आदमी शराब की बोतलें इकट्ठी करने लगता है--खाली बोतलें। पर कुछ भी हो, कोई भी बहाना काम देगा। मेरी अस्मिता तृप्त होनी चाहिए। मैं कुछ हूं जो दूसरा नहीं है; मैं कहीं हूं जहां दूसरा नहीं है; मैं कुछ अनूठा, अद्वितीय हूं, असाधारण हूं। अगर आप अपनी गतिविधियों को खोजेंगे तो उनमें पाएंगे कि यह असाधारण की खोज चल रही है।

लाओत्से हंसी उड़ा रहा है। लाओत्से यह कह रहा है कि तुम्हारे घुड़दौड़ के घोड़े कचरा-गाड़ियां ढोएंगे, अगर लोग ताओ के अनुकूल हों।

"और जब संसार ताओ के प्रतिकूल चलता है, तब गांव-गांव में अश्वारोही सेना भर जाती है।"

समस्त युद्धों के पीछे महत्वाकांक्षा है। और जब भी हम स्वभाव को खो देते हैं तो हिंसा भड़क उठती है। हिंसा का अर्थ है कि हम स्वभाव के प्रतिकूल चले गए, हम रुग्ण हो गए।

इसे थोड़ा समझें। जब भी हम रुग्ण होते हैं तो हम दूसरे को जिम्मेवार ठहराते हैं। जब भी हम दुखी होते हैं तो किसी को उत्तरदायी ठहराते हैं। अगर आप परेशान हैं तो आप तत्क्षण खोजते हैं कि कौन आपको परेशान कर रहा है! आप कभी नहीं सोचते कि परेशानी के चुकता मालिक आप खुद ही हो सकते हैं; किसी को आपको परेशान करने की जरूरत नहीं है। जब आप क्रोधित होते हैं तो आप सोचते हैं, किसी ने क्रोधित करवाया। जब भी आप बीमार होते हैं तो आप बाहर कारण खोजते हैं; कोई न कोई जिम्मेवार होना चाहिए। इससे आपकी आत्मग्लानि कम हो जाती है। और इससे आप यह भूल जाते हैं कि आपके सब उपद्रव स्वनिर्मित हैं।

वैज्ञानिक इस पर बहुत से प्रयोग किए हैं। कुछ प्रयोगों में उन्होंने कुछ व्यक्तियों को सब भांति एकांत में रखा और उनके मन की निरंतर परीक्षण की व्यवस्था की। अड़तालीस घंटे तक एक आदमी अकेला है। कोई कारण नहीं है--कोई उसे गाली नहीं दे रहा है; कोई उसे चिढ़ा नहीं रहा है; कोई उसे दुर्व्यवहार नहीं कर रहा है--वह अकेला ही है। सारी सुविधाएं हैं; भोजन की, पानी की, रहने की, सारी सुविधाएं हैं। लेकिन चौबीस घंटे में वह आदमी चौबीस रंग बदलता है, अकेले में भी। कभी वह क्रोधित हो जाता है; कभी उदास हो जाता है; कभी खुश हो जाता है; कभी गीत गुनगुनाने लगता है; कभी बेचैन दिखाई पड़ता है; कभी बड़े चैन में होता है। जैसे ये उसके भीतर के मौसम हैं जो उसके भीतर चल रहे हैं। अगर वह किसी के साथ होता तो वह इनका कारण दूसरे में खोजता। लेकिन इस एकांत में भी, जब वह खुद ही सब चीजों को पैदा कर रहा है, तब भी वह अपने मन में कारण दूसरा ही खोजता है। अगर वह क्रोधित हो गया है तो वह सोचता है कि परसों किसी आदमी ने गाली दी थी इसलिए मैं क्रोधित हो रहा हूं। अगर वह प्रसन्न हो गया तो सोचता है कि दस दिन पहले उसका फलां आदमी ने इतना सम्मान किया था, इसलिए वह प्रसन्न हो रहा है। लेकिन हम कारण सदा बाहर खोजते हैं।

लाओत्से के हिसाब से--और समस्त जानने वालों के हिसाब से--सभी के कारण हमारे भीतर हैं। हम प्रसन्न होते हैं तो कारण भीतर हैं, दुखी होते हैं तो कारण भीतर हैं, आनंदित होते हैं तो कारण भीतर हैं। बाहर सिर्फ बहाने हैं, एक्सक्यूजेज हैं, खूंटियां हैं। जो भी हम होते हैं उसी को उन खूंटियों पर टांग देते हैं।

और जब सभी लोग अपने स्वभाव से विचलित हो जाते हैं तो स्वभाव से विचलित आदमी निश्चित ही गहरे संताप से भर जाएगा, और संताप के कारण बाहर खोजेगा। यह बाहर कारण खोजना ही समस्त कलह का कारण है। चाहे आप पत्नी से लड़ रहे हों या पत्नी पति से लड़ रही हो, बाप बेटे से लड़ रहा हो, हिंदुस्तान पाकिस्तान से लड़ रहा हो, कि चीन किसी और से लड़ रहा हो, देश हों, कि जातियां हों, कि व्यक्ति हों, कि समाज हों, सारा क्रोध स्वभाव से च्युत होने का लक्षण है। हम भीतर परेशान हैं। और परेशानी के लिए किसी न किसी को जिम्मेवार ठहराना जरूरी है। और जब भी हम किसी को जिम्मेवार ठहरा लेते हैं, राहत मिलती है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर तुम्हारे राष्ट्र का कोई शत्रु न भी हो, तो भी तुम्हें शत्रु की कल्पना राष्ट्र में बनाए रखनी चाहिए, नहीं तो लोग अति बेचैन हो जाते हैं। और किसी भी राष्ट्र को ठीक से जीना हो तो उसके लिए दुश्मन चाहिए। अगर वास्तविक दुश्मन न हों तो झूठे सही, प्रचारित दुश्मन चाहिए, लेकिन दुश्मन चाहिए।

जर्मनी जैसा विचारशील मुल्क, जो कि इधर पिछले सौ वर्षों में अगर किसी भी मुल्क के ऊपर विचार की ठीक-ठीक प्रतिष्ठा हो सकती है, तो वह जर्मन जाति थी, उस विचारशील जाति ने इतना अभद्र और मूढ़तापूर्ण व्यवहार किया दो महायुद्धों में कि विचार पर से हमें संदेह हो जाना चाहिए। विचारशील लोग भरोसे के नहीं मालूम होते। हिटलर ने ऐसी बातें लोगों को समझा दीं जो कि बुद्धिहीन से बुद्धिहीन आदमी को दिखाई पड़ सकती हैं कि भ्रांत हैं, लेकिन जर्मनी को दिखाई नहीं पड़ीं। उसके कारण थे। पहले महायुद्ध में जर्मनी हारा। कोई भी मानना नहीं चाहता कि हम अपनी कमजोरी से हारे, कि अपनी भूल से हारे। यह तो कोई मानना ही नहीं चाहता, क्योंकि इससे अहंकार को चोट लगती है। जरूर कोई कारण था बाहर। पूरी जर्मन जाति खोज रही थी कि किस कारण हम हारे। और हिटलर ने कारण बता दिया। उसने बताया कि यहूदियों की वजह से हारे।

यहूदियों का कोई भी संबंध नहीं है। यह संबंध इतना ही है जैसे हिटलर कह देता कि लोग साइकिल चलाते हैं इसलिए हम पहले महायुद्ध में हारे, कि लोग चश्मा लगाते हैं इसलिए युद्ध में हारे। इतना ही संबंध यहूदियों का युद्ध से हारने का है। कोई संबंध न था। लेकिन लोग खोजना चाहते थे कोई दुश्मन, जिसको वे दबा सकें। करोड़ों यहूदी हिटलर ने काट डाले। और पूरी जर्मन जाति राजी थी, क्योंकि दुश्मन को मिटाना जरूरी है। कोई तर्क नहीं है, कोई गणित नहीं है, कोई संबंध नहीं है, लेकिन बात जंच गई। क्योंकि हम सदा बाहर कोई कारण खोजना चाहते हैं। कोई भी कारण चाहिए।

अब अगर इस मुल्क में परेशानी बढ़ेगी तो ज्यादा देर नहीं है कि आपको युद्ध में घसीटा जाए। अगर आर्थिक संकट बढ़ता जाए, चीजों के दाम बढ़ते जाएं, लोग मुसीबत में पड़ते जाएं, तो जल्दी ही किसी युद्ध में ले जाना जरूरी हो जाएगा। नहीं तो हिंदुस्तान का नेता आपको क्या जवाब दे कि मुसीबत किसलिए है? मुसीबत हमारे कारण तो कभी है नहीं। अगर पाकिस्तान से या चीन से कोई उपद्रव शुरू हो जाए, हल हो गया, समस्या का समाधान हो गया कि मुसीबत इनके कारण है। फिर पूरा मुल्क शांत है। फिर हम झेल सकते हैं तकलीफ, क्योंकि कारण कहीं मिल गया।

इस तरह के झूठे कारण पूरे इतिहास को युद्धों में ले जाते रहे हैं। जैसे ही हम स्वभाव से च्युत होते हैं वैसे ही तत्काल जरूरत हो जाती है कि बाहर हम कोई कारण खोजें।

लाओत्से कहता है, और जब संसार ताओ के प्रतिकूल चलता है, तब गांव-गांव में अश्वारोही सेना भर जाती हैं। तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

इस सदी में निरंतर सोचा जा रहा है कि युद्धों से कैसे बचा जाए। लेकिन युद्धों से बचा नहीं जा सकता--जैसा आदमी है इसको देखते हुए। इसमें कोई निराशा की बात नहीं है। यह सीधा तथ्य है। आदमी जैसा हमारे पास है, इस आदमी को युद्धों की जरूरत है। चाहे परिणाम कुछ भी हो, चाहे पूरी मनुष्यता मिट जाए, लेकिन जैसा आदमी हमारे पास है, यह आदमी बिना युद्धों के नहीं रह सकता। हर दस वर्ष में युद्ध चाहिए। पिछले तीन हजार, साढ़े तीन हजार वर्षों में केवल सात सौ वर्ष ऐसे हैं जब युद्ध न हुआ हो। साढ़े तीन हजार वर्षों में केवल सात सौ वर्ष छोड़ कर निरंतर युद्ध चलता रहा। वे सात सौ वर्ष भी इकट्ठे नहीं; कभी एक दिन, कभी दो दिन, कभी दस दिन। अन्यथा जमीन पर कहीं न कहीं युद्ध चलता ही रहा है।

युद्ध कोई आकस्मिक घटना नहीं मालूम होती। आदमी के जीने का ढंग कुछ ऐसा बुनियादी रूप से गलत है कि उसको युद्ध की जरूरत पड़ जाती है। हर दस साल में एक बड़ा युद्ध चाहिए। शायद हम इतना क्रोध इकट्ठा कर लेते हैं, इतनी घृणा और इतनी हिंसा भर जाती है, इतनी मवाद पैदा हो जाती है हमारे भीतर, उसका कोई निकास चाहिए। उस गंदगी को फेंकने के लिए कोई सामूहिक आयोजन चाहिए। युद्ध वैसा सामूहिक आयोजन है। युद्ध के बाद हलकापन आ जाता है, जैसे तूफान के बाद थोड़ी शांति आ जाती है।

लाओत्से के हिसाब से--मेरी समझ से भी--दुनिया से तब तक युद्ध नहीं मिटाए जा सकते जब तक आदमी को स्वभाव के अनुकूल नहीं लाया जाता। चाहे बर्ट्रेंड रसेल लाख उपाय करें, चाहे दुनिया के सारे शांतिवादी शांति के लिए युद्ध ही करने में क्यों न लग जाएं, लेकिन युद्धों से आदमी को मुक्त नहीं किया जा सकता। आदमी को उसके स्वभाव में प्रतिष्ठा चाहिए।

इसे थोड़ा देखें। जब आप सुखी होते हैं तो लड़ने का मन नहीं होता। जब आप सुखी होते हैं तो आप लड़ने का सोच भी नहीं सकते। जब आप सुखी होते हैं, कोई आपको उकसाए भी, तो भी आप हंस कर टाल देते हैं। आप हंस सकते हैं। कोई उकसा भी रहा हो लड़ने के लिए तो भी आप उपेक्षा कर सकते हैं। लेकिन जब आप दुखी हों तब आप प्रतीक्षा करते हैं कि कोई जरा सा उकसाए। आपकी बारूद तैयार है, कोई जरा सी चिनगारी चाहिए। अगर चिनगारी न भी मिले तो आप कोई कल्पित चिनगारी से भी विस्फोट पैदा कर सकते हैं। यह अपने जीवन में आप देखें तो आपको ख्याल में आ जाएगा। एक ही परिस्थिति में कभी आप लड़ने को तैयार हो जाते हैं और कभी आप हंसते रहते हैं। परिस्थिति एक ही होती है; आपकी भीतर की वृत्ति और मनोवेग भिन्न होता है। कल भी पति ने यही कहा था पत्नी को, कोई कलह पैदा नहीं हुई थी; आज वही कहने से कलह पैदा हो गई। कल पत्नी प्रसन्न रही होगी; उसकी प्रसन्नता लड़ने को तैयार नहीं थी। प्रसन्नता टाल सकती है, क्षमा कर सकती है, भूल सकती है। लेकिन आज पत्नी प्रसन्न नहीं है; आज वही बात चिनगारी बन सकती है।

जापान में एक बहुत बड़ी, टोकियो की एक बड़ी कंपनी ने, जो कारें बनाने का काम करती है, अपने दरवाजे पर मालिक की और जनरल मैनेजर की दो प्रतिमाएं खड़ी कर रखी हैं--फैक्टरी के बाहर। यह आज नहीं कल सभी फैक्टरी के बाहर करने जैसा होगा। जब भी कोई नाराज हो तो जाकर मालिक को जूते मार सकता है, गाली दे सकता है। वे प्रतिमाएं बाहर खड़ी हैं। वे इसीलिए खड़ी की गई हैं। मनोवैज्ञानिक उस फैक्टरी का अध्ययन कर रहे हैं। और उनका कहना है कि उस फैक्टरी के मजदूर, काम करने वाले लोग अति प्रसन्न हैं और दिन में अनेक बार लोग जाकर उन प्रतिमाओं पर क्रोध निकाल कर आ जाते हैं और हलके हो जाते हैं।

आप भी जब एक-दूसरे पर क्रोध निकाल रहे हैं तो दूसरे से कोई संबंध नहीं है, दूसरा प्रतिमा से ज्यादा नहीं है। इसलिए अगर आप बुद्धिमान हों, तो जब कोई आप पर क्रोध निकाल रहा हो तो आपको परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। आपसे उसका कोई संबंध ही नहीं है। आप सिर्फ एक प्रतिमा हैं, एक बहाना हैं। और

आपको खुश होना चाहिए कि आपको दूसरे आदमी का क्रोध निकालने का एक अवसर मिला। उसका क्रोध हलका हो गया, वह शांत हो गया। लेकिन इतनी हममें समझ नहीं है। दूसरा भी उबल पड़ता है। और दूसरा भी इसलिए उबल पड़ता है कि उसके भी बहुत से उबाल भीतर भरे हैं। हर आदमी सुलगा हुआ है। और इसलिए किसी भी आदमी के साथ रहना सुविधापूर्ण नहीं है। कितना ही आपका लगाव हो और कितना ही प्रेम हो, दो व्यक्ति पास रहते हैं तो सिवाय कलह के कुछ भी पैदा नहीं होता। कारण दूसरा नहीं है; कारण भीतर अपने स्वभाव से च्युत हो जाना है।

"जब संसार ताओ के प्रतिकूल चलता है, तब गांव-गांव में अश्वारोही सेना भर जाती है।"

जब कोई व्यक्ति ताओ के प्रतिकूल चलता है तो उसके भीतर सिवाय घृणा, क्रोध, द्वेष और ईर्ष्या के कुछ भी नहीं बचता। हर आदमी जलता हुआ है। सब आदमी अपनी-अपनी राख में छिपाए अपनी आग को चल रहे हैं। ऊपर से राख दिखाई पड़ती है तो आप सोचते हैं, कोई खतरा नहीं है। सबके भीतर अंगारा है। जरा सी हवा का झोंका, और अंगारा प्रकट हो जाता है और लपटें निकलने लगती हैं।

इससे केवल एक बात की सूचना मिलती है कि आपके भीतर कोई संगीत, कोई संतोष, कोई सुख की धारा नहीं बह रही है। आपका क्रोध केवल लक्षण है, आपकी घृणा लक्षण है; बीमारी नहीं है। इसलिए जो धर्मगुरु सिखाते हैं कि क्रोध मत करो, घृणा मत करो, व्यर्थ की बातें सिखा रहे हैं। उनकी बातें ऐसी हैं जैसे किसी को बुखार चढ़ा हो और कोई उसको समझा रहा हो कि गर्म मत होओ। उसके हाथ के बाहर है। गरमी होना कोई बीमारी नहीं है। वह जो शरीर पर तापमान बढ़ रहा है वह तो केवल लक्षण है। बीमारी कहीं भीतर है। लाओत्से के हिसाब से, स्वभाव से अलग हो जाना, या स्वभाव के प्रतिकूल हो जाना बीमारी है। फिर सब चीजें पैदा होंगी। इसलिए आप लाख उपाय करें कि क्रोध न करें, कुछ हल न होगा। यह हो सकता है कि आप क्रोध को निकलने से रोक लें, दबा लें, छिपा लें। आज नहीं कल निकलेगा; कल नहीं परसों निकलेगा। ज्यादा होकर निकलेगा। और आज निकलने में शायद कोई तुक भी होती, जब परसों निकलेगा तो कोई तुक भी न होगी। आज शायद कोई परिस्थिति में संगत भी मालूम होता, जब दबा लेंगे उसको, पीछे असंगत परिस्थिति में निकल आएगा, तब और भी पीड़ा होगी।

जो लोग छोटा-छोटा क्रोध कर लेते हैं वे बड़े अपराध नहीं करते। जो लोग छोटा-छोटा क्रोध रोक लेते हैं वे बड़े अपराध करते हैं। अब तक ऐसा नहीं हुआ है कि सहज, सामान्य परिस्थिति में क्रोध करने वाले आदमियों ने हत्याएं की हों या आत्महत्याएं की हों। हत्याएं करने वाले लोग वे ही होते हैं जो क्रोध को पीने और इकट्ठा करने की कला जानते हैं। फिर इतना इकट्ठा हो जाता है कि उसका विस्फोट प्राण ले लेता है।

यह करीब-करीब ऐसा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि चाय में जहर है। निकोटिन जहर है। आप अगर दिन में दो कप चाप पीते हैं तो आप बीस साल में जितनी चाय पीएंगे, उतना निकोटिन अगर आप इकट्ठा एक दिन में पी लें तो आप अभी मर जाएंगे, एक क्षण में। लेकिन दो कप चाय रोज पीने से कोई मरता नहीं। बीस साल--और वह बीस साल नहीं, आप बीस जन्म भी दो कप रोज पीते रहें तो भी नहीं मरेंगे। क्योंकि निकोटिन कोई इकट्ठा नहीं हो रहा है कि बीस साल में इकट्ठा होकर जान ले लेगा। वह रोज बहता जा रहा है।

जो आदमी रोज छोटा-मोटा क्रोध कर लेता है, खतरनाक नहीं है। जो आदमी बीस साल तक क्रोध को रोक ले, उसके पास भी मत फटकना। वह बिल्कुल विस्फोटक है, इनफ्लेमेबल है। वह कभी भी किसी भी वक्त लपट पकड़ सकता है। और जब लपट पकड़ेगा तो छोटी घटना घटने वाली नहीं है। क्रोध को दबाने से केवल

क्रोध इकट्ठा होगा, घृणा को दबाने से घृणा इकट्ठी होगी। और जो भी इकट्ठा होगा, अगर वह छोटी मात्रा में बुरा था तो बड़ी मात्रा में तो और भी बुरा होगा।

लाओत्से दमन के पक्ष में नहीं है। लाओत्से कहता है, ये तो केवल संकेत हैं कि तुम्हें क्रोध उठता है, घृणा उठती है, ईर्ष्या उठती है, द्वेष उठता है। ये सूचनाएं हैं कि तुम स्वभाव से हट गए हो। इनकी फिक्र छोड़ो। स्वभाव के साथ एक होने की फिक्र करो। जैसे ही तुम स्वभाव से एक हो जाओगे, ये घटनाएं बंद हो जाएंगी, ये घटनाएं तिरोहित हो जाएंगी। क्रोध को दबाना नहीं पड़ेगा, क्रोध तुम अचानक पाओगे कि होना बंद हो गया। तुम्हारी चेतना की स्थिति बदलनी चाहिए तो तुम्हारे मन के रोग बदलेंगे। चेतना की स्थिति पुरानी ही रहे और तुम मन को बदल लो, ऐसा न कभी हुआ है, न हो सकता है। चेतना बदलनी चाहिए। चेतना के तल हैं। जैसे-जैसे चेतना गहरी होने लगती है वैसे-वैसे जिन तलों से चेतना हट जाती है उन तलों की बीमारियां विसर्जित हो जाती हैं। और जब कोई चेतना ठीक स्वभाव में ठहर जाती है, या स्वभाव के साथ एक हो जाती है, तो सारी बीमारियां तिरोहित हो जाती हैं।

बुद्ध को क्रोध नहीं होता, ऐसा कहना गलत है। बुद्ध क्रोध नहीं करते, ऐसा कहना भी गलत है। बुद्ध क्रोध पर संयम रखते हैं, ऐसा कहना भी गलत है। बुद्ध जहां हैं वहां से क्रोध से कोई संबंध नहीं रहा। जहां क्रोध हो सकता था वहां बुद्ध अब नहीं हैं। जिस मन की सतह पर क्रोध जलता था वहां बुद्ध अब नहीं हैं। बुद्ध अब उस केंद्र पर हैं जहां से क्रोध और उसके बीच अनंत आकाश हो गया; जहां से कोई संबंध नहीं जुड़ता। स्वभाव के साथ एकता समस्त बीमारियों का विसर्जन बन जाती है।

"संतोष के अभाव से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है; स्वामित्व की इच्छा से बड़ा कोई पाप नहीं है। इसलिए जो संतोष से संतुष्ट है वह सदा भरा-पूरा रहेगा।"

"संतोष के अभाव से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है।"

अब हम समझ सकते हैं। क्योंकि संतोष को सूत्र मानता है लाओत्से, स्वभाव के साथ एक होने का। असंतुष्ट का अर्थ हैः मैं कुछ और होना चाहता हूं जो मैं हूं उससे। संतोष का अर्थ हैः जो भी मैं हूं, प्रकृति ने मुझे जो बनाया, मैं उससे राजी हूं। न मेरा कोई आदर्श है जिसे पूरा करना है, न कोई लक्ष्य है जहां तक मुझे पहुंचना है, न कोई उद्देश्य है। प्रकृति ने जो मुझे बनाया वही मेरी नियति है। मैं उससे राजी हूं। गुलाब गुलाब होने से राजी है; घास का फूल घास होने से राजी है। घास के फूल को आकांक्षा नहीं है कि गुलाब हो जाए। न गुलाब को फिक्र है कमल हो जाने की। अगर उनको फिक्र हो जाए तो हमें गुलाब के पौधों को भी पागलखाने में भर्ती करना पड़े, उनको चिकित्सा करवानी पड़े। उनको रात नींद न आए, उनका मन ज्वरग्रस्त हो जाए, उन्हें भी हार्ट-अटैक होने लगे। असंतोष का अर्थ है, प्रकृति ने जो मुझे बनाया उससे भिन्न होने की मेरी आकांक्षा है। और यह मैं कभी हो न पाऊंगा। क्योंकि जो मैं नहीं हूं वह मैं नहीं हो सकता हूं। इसका कोई उपाय नहीं है। मैं जो हूं बस वही हो सकता हूं।

"संतोष के अभाव से बड़ा कोई अभिशाप नहीं है।"

इसलिए लाओत्से इसे बड़े से बड़ा अभिशाप कहता है--कि यह बड़े से बड़ा, जीवन में बड़ी से बड़ी भूल कोई भी अगर संभव है तो वह यह है कि मैं कुछ और होने की कोशिश में लग जाऊं, जो मैं हूं उससे अन्यथा होने की दौड़ मुझे पकड़ ले। यह अभिशाप है। जो मैं हूं वही होने को मैं राजी हो जाऊं, यह वरदान है। थोड़ा सोचें। आप जो हैं अगर वही होने से राजी हैं, एक क्षण को भी आपको यह झलक आ जाए कि जो मैं हूं, ठीक हूं। सारे अभिशाप हट गए, सारे बादल हट गए, और आकाश खुला हो गया।

लेकिन हजार--एक दिशा में ही आप बदलना चाहते हों, ऐसा नहीं--हजार दिशाओं में दौड़ है। बुद्धिमान नहीं हैं तो बुद्धिमान होना चाहते हैं; गरीब हैं तो अमीर होना चाहते हैं; सुंदर नहीं हैं तो सुंदर होना चाहते हैं। और किसी को पता नहीं है कि सुंदर होने का क्या अर्थ है। और कोई नहीं व्याख्या कर सकता कि सुंदर कौन है। न कोई मापदंड है। सब अंधेरे में टटोलना है। आप कुछ भी हो जाएं, वहां भी आपको कुछ भरोसा मिलने वाला नहीं है। क्योंकि कितने धन से आपको तृप्ति मिलेगी?

कभी सोचें। सिर्फ सोचें, अभी धन मिल भी नहीं गया है; सिर्फ सोचें। दस हजार? मन कहेगा, इतने से क्या होने वाला है! दस लाख? मन कहेगा, जब सिर्फ सोचने पर ही निर्भर है तो इतने सस्ते में क्यों राजी होते हो! जहां तक आपको संख्या आती होगी मन कम से कम वहां तक तो ले ही जाएगा। और तब भी भीतर कुछ अड़चन बनी ही रहेगी कि इससे ज्यादा भी हो सकता था। कितना सौंदर्य आपको तृप्त करेगा? कितना स्वास्थ्य आपको तृप्त करेगा? कितनी उम्र चाहिए?

ययाति की कथा है। सौ वर्ष का हुआ, मरने को है, मौत आई। तो ययाति ने कहा कि मुझे कुछ दिन और छोड़ दो, क्योंकि अभी तो मैं जीवन को भोग भी नहीं पाया।

सौ वर्ष काफी होने चाहिए। लेकिन आप भी सौ वर्ष के हो जाएं और मौत आपको सोचने का मौका दे तो जो ययाति ने कहा वही आप कहेंगे। इसलिए कहानी सत्य है। घटी हो कभी, न घटी हो; मनुष्य के मन का गहरा तथ्य है।

ययाति ने अपने बेटों को कहा--उसके सौ बेटे थे--उसने कहा कि तुममें से कोई मुझे अपनी उम्र दे दो। मौत ने कहा, अगर कोई बेटा राजी हो तो मैं उसको ले जाऊं; किसी को तो ले जाना ही पड़ेगा। निन्यानबे बेटे एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। वे सब बुद्धिमान थे। सबकी उम्र काफी थी। उनमें से कई तो खुद भी बूढ़े हो गए थे। छोटा बेटा जो अभी बिल्कुल ताजा था और जिसको अभी कोई अनुभव न था, वह पिता के पास आया और उसने कहा कि आप मेरी उम्र ले लें। मौत को भी दया आ गई, क्योंकि यह बेटा तो अभी बिल्कुल ताजा था, अभी इसने जिंदगी का कोई अनुभव न लिया था। उसने कहा कि तू क्यों ऐसा कर रहा है? उसने कहा कि जब मेरे पिता सौ वर्ष में तृप्त न हो सके तो मैं भी क्या तृप्त हो पाऊंगा! और जब उन्हें अभी भी उम्र की जरूरत है और सौ वर्ष के बाद भी मरने को राजी नहीं हैं तो सौ वर्ष व्यर्थ परेशान होने में कोई सार नहीं। मरना तो पड़ेगा, और अतृप्त ही मरना पड़ेगा।

फिर भी ययाति को बोध न हुआ। बेटा मर गया। ययाति सौ वर्ष और जीया। फिर मौत आ गई। तब तक उसके सौ और बेटे पैदा हो गए थे। उसने कहा, यह तो बहुत जल्दी है। ये सौ वर्ष ऐसे बीत गए, पता न चला। अभी तो कुछ भी तृप्त नहीं हुआ।

ऐसे कहानी चलती है, और हर बार एक बेटा अपनी उम्र देकर ययाति को जिंदा रखता है। हजार साल ययाति जिंदा रहा। और जब हजारवें साल मौत आई तब भी वह वहीं था जहां पहली बार मौत आई थी। उसने फिर वही कहा कि इतने जल्दी क्यों आना हो जाता है? और अभी कुछ पूरा नहीं हुआ। मौत ने कहा कि तुम्हें कब दिखाई पड़ेगा कि यह कभी पूरा नहीं होगा। यह पूरी होने वाली बात ही नहीं है। वासना की कोई सीमा नहीं है; वह कहीं पूरी नहीं होती।

इसलिए अतृप्ति अभिशाप है बड़े से बड़ा, क्योंकि वह कभी भी किसी भी क्षण में मनुष्य को सुख से न जुड़ने देगी। कोई और अभिशाप देने की जरूरत नहीं। भारत में ऋषि-मुनि अभिशाप देने के आदी रहे। पता नहीं फिर भी लोग उनको क्यों ऋषि-मुनि कहे चले जाते हैं! उनको अगर लाओत्से का पता होता तो वे इस तरह के

अभिशाप न देते जैसे उन्होंने दिए। दुर्वासा को पता होता तो वह यही कहता कि जा, तू सदा असंतुष्ट रह! इतना काफी था। यह बड़े से बड़ा अभिशाप है। लेकिन आपको किसी दुर्वासा की जरूरत नहीं, आप खुद ही अपने को अभिशाप दे रहे हैं। आपने इसको जीवन का ढंग बना रखा है--असंतुष्ट!

"संतोष के अभाव से बड़ा कोई अभिशाप नहीं; स्वामित्व की इच्छा से बड़ा कोई पाप नहीं।"

लाओत्से अनूठा है, और जितनी सूत्र में उसने बातें कह दी हैं, बड़े से बड़े पूरे शास्त्र भी उतनी बातें विस्तार में भी नहीं कह पाते। स्वामित्व से बड़ा कोई पाप नहीं। लोग कहते हैं, पंच पाप गिनाते हैं--कि हिंसा पाप है, कि चोरी पाप है, कि लोभ पाप है, कि कोई और गिनाता है, कि वासना, काम। लाओत्से कहता है, स्वामित्व की आकांक्षा। और मैं मानता हूं कि वह ठीक है। बाकी सब पाप स्वामित्व की आकांक्षा से पैदा होते हैं। बाकी सब पाप गौण हैं, वे मूल नहीं हैं। किसी के मालिक होने की आकांक्षा, मालकियत का भाव, फिर चाहे वह धन की मालकियत हो, चाहे किसी व्यक्ति की मालकियत हो, किसी भी दिशा में स्वामित्व होने की जो दौड़ है, लाओत्से कहता है, वह बड़े से बड़ा पाप है, वह महापाप है। क्यों? समझ में आता है कि संतोष न हो तो अभिशाप है। स्वामित्व की दौड़ हो तो पाप क्यों है?

पहली बात, जो व्यक्ति भी स्वामित्व की दौड़ में पड़ा है वह कभी इस तथ्य से परिचित न हो पाएगा कि स्वामी भीतर छिपा है, मालिक भीतर है। वह मालकियत की तलाश बाहर करेगा; वह किसी का मालिक होना चाहेगा। और बाहर कोई मालकियत हो नहीं सकती। वह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है। आप एक मकान बना सकते हैं। आप सोचते होंगे, आप मालिक हैं। तो आप गलती में हैं।

इब्राहिम एक सूफी फकीर हो गया। वह फकीर हुआ इसलिए कि एक रात सोया था और अचानक उसने अपने ऊपर छप्पर पर किसी के चलने की आवाज सुनी। उसने पूछा, कौन है? छप्पर पर चलने वाले आदमी ने कहा कि मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं। इब्राहिम समझा कि यह आदमी पागल होना चाहिए। मकानों के छप्परों पर कहीं ऊंट खोते हैं?

दूसरे दिन सुबह उठ कर उसने कहा कि उस आदमी को खोजो। या तो वह पागल है और या फिर ज्ञानी है। क्योंकि मकानों के छप्परों पर कौन रात को ऊंट खोजने निकलता है? और मकानों के छप्परों पर ऊंट जाएंगे कहां खोने को? तो या तो वह विक्षिप्त है, और या फिर उसने कुछ इशारा किया है जो मैं समझ नहीं पाया।

बहुत खोज की गई, लेकिन कुछ पता न चला। लेकिन भरी दोपहर, जब इब्राहिम का दरबार भरा था, तो एक फकीर ने आकर दरवाजे पर शोरगुल मचाया। वह फकीर यह कह रहा था कि मैं इस धर्मशाला में कुछ दिन रुकना चाहता हूं। और दरबान कह रहा था कि तू पागल है! यह धर्मशाला नहीं है, यह सम्राट का महल है, उनका निवास-स्थान है। और वह आदमी कह रहा था, अगर यह सच है कि कोई आदमी इसका दावेदार है तो मैं उसको देखना चाहता हूं। अंततः उसे लाना पड़ा।

इब्राहिम सिंहासन पर बैठा था। उस आदमी ने पूछा कि मैं कहता हूं यह धर्मशाला है, लेकिन दरबान कहता है कि यह आपका निवास-स्थान है; क्या आप भी यही सोचते हैं? इब्राहिम ने कहा, इसमें सोचने का क्या सवाल है? यह मेरा मकान है, और मैं इसका मालिक हूं। और बंद करो यह बातचीत, यह कोई सराय नहीं है। पर उस फकीर ने कहा, मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। मैं इसके पहले भी आया था, तब एक दूसरा आदमी इस सिंहासन पर बैठा था, और उसने भी यही कहा था कि यह मेरा मकान है। वह आदमी अब कहां है? तब इब्राहिम थोड़ा डरा और उसने कहा कि वे मेरे पिता थे। लेकिन वे स्वर्गीय हो गए। उस फकीर ने कहा, मैं उनके पहले भी आया था, लेकिन तब एक तीसरा आदमी इसी मकान का मालिक था। अब तुम हो। क्या तुम पक्का

भरोसा दिलवाते हो कि जब मैं चौथी बार आऊंगा, तब भी तुम यहां रहोगे इस मकान के मालिक? मैं इतने मालिक देख चुका हूं कि मुझे लगता है यह धर्मशाला है। इसमें कई लोग ठहरे और गए। और मैं सिर्फ रात भर के लिए निवास चाहता हूं।

इब्राहिम ने कहा कि पकड़ लो इस आदमी को; यही वह आदमी होना चाहिए जो रात छप्पर पर ऊंट खोजता था। क्या तुम वही आदमी हो?

उस फकीर ने कहा, मैं वही हूं। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम भी छप्पर पर ऊंट खोज रहे हो; लेकिन तुमको कुछ होश नहीं है। छप्पर पर ऊंट खोजने का इतना ही मतलब है कि जो चीज जहां नहीं मिलती वहां खोजना। जहां मिल नहीं सकती वहां खोजना। और हर आदमी छप्पर पर ऊंट खोज रहा है, जहां होने का कोई उपाय ही नहीं है।

कहते हैं, इब्राहिम ने यह सुन कर उस आदमी से कहा कि तू इस सराय में ठहर और अब मैं जाता हूं। क्योंकि इसको मैं महल समझता था, इसलिए रुका था। जब यह सराय ही हो गई, और जब इसे छोड़ ही देना होगा, तो अब रुकने का कोई अर्थ नहीं। अब तक मैं सोचता था, मैं मालिक हूं।

मालकियत की जो दौड़ है वह आदमी को बाहर भटकाए रखती है। और जब तक आदमी बाहर भटकता है तब तक वह छप्परों पर ऊंट खोज रहा है। मिल सकता है वह जो चाहिए हमें, वह भीतर है, और जहां हम खोजते हैं वहां वह नहीं मिल सकता। क्योंकि वहां वह है नहीं। मालिक हमारे पास है। इसलिए इस मुल्क में हिंदुओं ने अपने संन्यासी को स्वामी का नाम दिया। उनका प्रयोजन था। स्वामी का मतलब है वह आदमी जिसने बाहर मालकियत खोजना छोड़ दी, जिसने बाहर की स्वामित्व की दौड़ छोड़ दी; जो कहता है, अब बाहर मेरा कुछ भी नहीं है इसलिए संन्यास; जो कहता है, अब मेरा मालिक मेरे भीतर है।

स्वामी भीतर है। वह हमारा स्वभाव है। लेकिन उस तरफ हमारी नजर तभी जाएगी जब वस्तुओं से हमारी नजर हट जाए। जब तक वस्तुओं में हम उलझे हैं तब तक सुविधा नहीं है, जगह नहीं है, खाली स्थान नहीं है, जहां से हम भीतर की तरफ देख सकें। वस्तुओं से पूरा मन भर गया है

परिग्रह, स्वामित्व को लाओत्से महापाप इसलिए कह रहा है कि उस दौड़ के कारण ही तुम अपने को पाने से वंचित हो। और जब तक वह दौड़ न छूट जाए तब तक तुम वंचित ही रहोगे। और एक ही बात पाप है कि मुझे मेरा पता नहीं। और क्या पाप हो सकता है? एक ही पाप है कि मैं हूं, और मुझे मेरा अपना अनुभव नहीं। एक ही पाप है कि मैं उत्तर नहीं दे सकता कि मैं कौन हूं। और जब भी आप उत्तर देते हैं तब आप कुछ मालकियत की खबर देते हैं। आप कहते हैं, मैं इस मकान का मालिक हूं; कि आप कहते हैं, यह दुकान मेरी है; कि आप कहते हैं कि ये पद-पदवियां मेरी हैं; कि ये उपाधियां, यह ज्ञान मेरा है। जब भी आपसे कोई पूछता है आप कौन हैं तो आप कुछ बताते हो जिसके आप मालिक हो। आप कभी नहीं बताते कि आप कौन हो। उसका आपको पता भी नहीं है।

वह कौन है जो मालकियत की दौड़ में दौड़ रहा है? वह कौन है जो संग्रह करना चाहता है और सारी पृथ्वी पर साम्राज्य निर्मित करना चाहता है? वह कौन है पीछे छिपा हुआ? उसका अनुभव ही पुण्य है। और जो चीजें उसके अनुभव से रोकती हैं वही पाप हैं। जो दूसरे का मालिक होना चाहता है वह अपना मालिक नहीं हो पाएगा। और जिसे अपना मालिक होना है उसे दूसरों की सारी मालकियत छोड़ देनी चाहिए। उसे सब दावे छोड़ देने चाहिए। वह दावे से शून्य हो जाना चाहिए। अगर ठीक से समझें तो घर छोड़ने का, गृहस्थी छा.ेडने का, पत्नी, पति या बच्चे या धन छोड़ने का वास्तविक प्रयोजन घर, पत्नी और बच्चा छोड़ना नहीं है, मालकियत

का भाव छोड़ना है। कोई पत्नी को छोड़ कर पहाड़ पर भाग जाए, इससे कुछ हल नहीं होता। घर में पत्नी के पास रहे या पहाड़ पर रहे, इससे कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ता। मालकियत का भाव!

एक जैन मुनि के संबंध में मैं पढ़ता था। वे बड़े ख्यातिलब्ध थे। बहुत उनके भक्त थे। अभी-अभी कुछ वर्षों पहले उनकी मृत्यु हुई। उनकी जीवन-कथा में लेखक ने, जिसने उनका जीवन लिखा है, बड़ी प्रशंसा और स्तुति के भाव से एक घटना दी है। घटना है कि घर छोड़ कर, पत्नी को छोड़ कर--बीस वर्ष बाद--वे काशी में थे। पत्नी की मृत्यु हुई। पत्नी को छोड़े बीस वर्ष हो चुके हैं। पत्नी की मृत्यु हुई, घर से तार गया। तो उन मुनि ने तार देख कर कहा कि चलो, झंझट मिटी।

मैं थोड़ा हैरान हुआ, जब मैंने जीवनी में यह पढ़ा। बीस साल बाद पत्नी का मरना और मुनि का यह कहना कि कि चलो, झंझट मिटी। साफ है कि झंझट जारी थी। यह कोई सोचा-विचारा हुआ वक्तव्य नहीं है, यह तो सहज निकला तार के देखते ही। इसका मतलब है कि बीस साल भीतर झंझट जारी थी। अन्यथा पत्नी को बीस साल पहले छोड़ चुके; अब उसके मरने से झंझट मिटने का क्या संबंध?

नहीं, पत्नी इतनी आसानी से नहीं छूटती। और जब उसके मरने पर ऐसा भाव पैदा होता है कि झंझट मिटी, तो जरूर उसको मार डालने की कामना कहीं न कहीं छिपी रही होगी।

पति अक्सर पत्नियों को मार डालने का सोचते हैं। पत्नियां अक्सर पतियों को मार डालने का सोचती हैं। नहीं मारते यह दूसरी बात है, लेकिन उपाय मन में चलता है अनेक ढंग से। अनेक पत्नियां डरती हैं, पति बाहर गया तो भयभीत होती हैं कि कहीं एक्सीडेंट न हो जाए, कहीं कार न टकरा जाए। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, इस भय का भी कारण यही है कि उनके मन में कहीं पति को मारने का कोई रस छिपा हुआ है, कि पति मर जाए तो छुटकारा हो जाए। और स्वाभाविक है कि जैसे पति और पत्नियां हैं, इसमें मरने में छुटकारा दिखाई पड़ता हो।

पर बीस साल पहले पत्नी को छोड़ कर चला गया संन्यासी, उसको लगता है झंझट मिटी, तो लगता है मालकियत कायम थी। और ध्यान रहे, जिसकी हम मालकियत करते हैं वह भी हम पर मालकियत करता है। यह जो पजेशन है, स्वामित्व है, यह एकतरफा कभी नहीं होता। पति कितना ही सोचता हो कि वह स्वामी है, और स्त्रियां बहुत होशियार हैं, वे सदा से कहती रही हैं कि स्वामी तुम्हीं हो, लेकिन सभी जानते हैं कि सौ में निन्यानबे मौकों पर स्त्रियां मालिक होती हैं, पति केवल नाम मात्र के स्वामी होते हैं।

एक बड़ी मीठी, बड़ी पुरानी प्रसिद्ध कथा है। एक सम्राट के दरबार में ऐसा दरबारियों में विवाद उठ गया है, और बात चल पड़ी है कि कितने दरबारी अपनी पत्नियों से डरते हैं, कितने दरबारी अपनी पत्नियों के गुलाम हैं। कोई भी इसको स्वीकार करने को राजी नहीं है। लेकिन सम्राट ने कहा कि मैं जानता हूं, अपने अनुभव से भी जानता हूं कि यह संभव नहीं है कि यहां जितने लोग हैं, ये सभी कह रहे हैं कि कोई भी अपनी पत्नी से नहीं डरते। ध्यान रहे, अगर कोई भी झूठ बोला तो गर्दन उतरवा दूंगा। और कल सब अपनी पत्नियों सहित आ जाएं।

जब पत्नियां भी दरबार में आ गईं तो मुश्किल खड़ी हो गई। और सम्राट ने कहा कि कतार लगा लो; जो लोग अपनी पत्नियों से डरते हैं, एक तरफ, बाईं तरफ, और जो अपनी पत्नियों से नहीं डरते वे दाईं तरफ खड़े हो जाएं। सारे दरबारी बाईं तरफ खड़े हो गए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर। वह एक आदमी खड़ा था अकेला उस पंक्ति में जहां पत्नी से नहीं डरने वाले खड़े हैं।

सम्राट ने कहा, फिर भी धन्यभाग, कम से कम एक दरबारी तो ऐसा है। तुम क्यों यहां खड़े हो?

उसने कहा, जब मैं चलने लगा घर से, पत्नी ने कहा कि भीड़-भाड़ में खड़े मत होना। उधर बहुत भीड़ है।

लेकिन स्त्रियों की मालकियत और ढंग की है, क्योंकि स्त्रियों की मनस-व्यवस्था और ढंग की है। उनकी मालकियत पैसिव है, आक्रामक नहीं है। उनकी मालकियत ज्यादा जटिल और सूक्ष्म है। पति की मालकियत सिर्फ दिखावा है, और एक तरह का गहरा समझौता है भीतर कि जब बाहर रहो घर के तो तुम अकड़ कर चलना, और बाहर यह बात स्वीकार की जाएगी कि तुम मालिक हो और जैसे ही घर के भीतर प्रवेश करो तुम अपनी अकड़ बाहर रख आना।

निश्चित ही, जब भी हम किसी के मालिक बनते हैं तो हम गुलाम भी हो जाते हैं। क्योंकि दूसरा भी हमसे इसीलिए जुड़ा है कि वह भी मालिक बनना चाहता है। मालिक बनने के ढंग अलग-अलग हैं। पति की मालकियत धमकी, मार-पीट सब पर निर्भर है। पत्नी की मालकियत रोने पर, चीखने पर, चिल्लाने पर, परेशान होने पर निर्भर है। वह खुद को इतना दुखी कर लेगी कि हरा देगी। पति उसको चोट पहुंचा कर मालकियत करता है; वह अपने को चोट पहुंचा कर भी मालकियत करती है। पत्नी का मालकियत का ढंग अहिंसावादी है; उपवास कर लेगी, रोएगी। पति का हिंसक है। पर फर्क नहीं है। और दोनों की तलाश स्वामित्व की तलाश है।

जब तक हम स्वामित्व की खोज कर रहे हैं तब तक हम गुलाम भी रहेंगे। और जैसे ही कोई यह खोज छोड़ देता है, उसकी गुलामी भी मिट जाती है। न वह किसी का गुलाम रह जाता है और न किसी को गुलाम बनाता है। तब अचानक भीतर के स्वामित्व का पता चलता है। तब भीतर का स्वामी सारी धुंध के बाहर आ जाता है; कोहरा छंट जाता है। वह दौड़ जो महत्वाकांक्षा की थी, उसके हटते ही धुआं हट जाता है, और लपट स्वामित्व की प्रकट हो जाती है। वही पुण्य है; स्वयं की मालकियत को उपलब्ध हो जाना पुण्य है। और दूसरे की मालकियत की कोशिश पाप है।

"स्वामित्व की इच्छा से बड़ा कोई पाप नहीं। इसलिए जो संतोष से संतुष्ट है, वह सदा भरा-पूरा रहेगा।"

और जो असंतोष से भरा है वह सदा खाली है; उसे भरा नहीं जा सकता। उसे हम सारा संसार भी दे दें, तो भी उसका भिक्षा-पात्र खाली रहेगा। वह कहेगा, बस इतना ही! और कुछ नहीं? वह यही पूछेगा कि बस हो गया समाप्त संसार? इससे ज्यादा पाने को कुछ भी नहीं? वह उसके मन की आदत है। जब भी उसे कुछ मिलता है तब वह यही पूछता रहा है। उसे सब मिल जाए, उसे परमात्मा भी मिल जाए, तो वह परमात्मा के सामने उदास खड़ा हो जाएगा और वह कहेगा, बस इतना ही? वह मन जो है, असंतोष से भरा हुआ है। उसमें कोई पेंदी नहीं है। उसे आप कितना ही भरते चले जाएं उस बर्तन को, उसमें नीचे कोई पेंदी नहीं है कि बर्तन भर जाए। पानी सब बहता चला जाता है। और वह जो संतोष से भरा हुआ मन है वह बर्तन नहीं है, सिर्फ पेंदी है। उसे एक बूंद भी भर देती है।

इसे फिर से दोहरा दूंः वह जो असंतुष्ट मन है वह पेंदी से रहित बर्तन है; उसमें हम पानी डालते जाएं, वह खाली होता जाता है। इधर हम डालते हैं, उधर वह खाली होता है। कितना ही डालें, वह खाली रहेगा। सारे महासागर हम उसमें डाल दें तो भी वह खाली रहेगा। क्षण भर को भरा हुआ दिख सकता है, जब पानी गिर रहा है। और वह जो संतुष्ट मन है वह सिर्फ पेंदी है, उसमें कोई बर्तन नहीं है। वह खाली भी हो तो भरा हुआ है। उसमें एक बूंद भी काफी है।

"जो संतोष से संतुष्ट है, वह सदा भरा-पूरा रहेगा।"

पहचानें अपने को। आपको कभी भी ऐसा लगता है, आप भरे-पूरे हैं? कभी भी ऐसा लगता है कि धन्यवाद दे सकें आप परमात्मा को कि तूने बहुत दिया? कभी भी ऐसा लगता है कि सब कुछ पा लिया, कुछ

पाने को नहीं है? ऐसा कभी नहीं लगता। शिकायत बनी रहती है। हमारी प्रार्थनाएं, पूजाएं, सब हमारी शिकायतें हैं। जब कि वास्तविक प्रार्थना केवल धन्यवाद हो सकती है, शिकायत नहीं। लोग मंदिरों में जाकर कह रहे हैं कि क्यों मुझे इस गरीबी में डाल रखा है? क्यों मुझे बीमारी में डाल रखा है? क्यों मुझे इतनी असफलता मिल रही है? मंदिर शिकायतों से भरे हैं, प्रार्थनाएं शिकायतों के आस-पास निर्मित होती हैं; जब कि वास्तविक प्रार्थना केवल धन्यवाद हो सकती है, केवल आभार हो सकती है, एक अहोभाव हो सकती है।

जिस दिन आप मंदिर जाकर कह सकेंगे कि धन्य है मेरा भाग्य कि तूने इतना दिया, जरूरत से ज्यादा दिया, पात्रता से ज्यादा दिया, जो मेरे पास है उससे मैं तृप्त हूं! उस दिन आपकी प्रार्थना वास्तविक हो जाएगी, प्रामाणिक हो जाएगी। उस दिन आपकी प्रार्थना सुन ली जाएगी। उस दिन कोई अंतराल आप में और परमात्मा के बीच नहीं रह जाता। शिकायत अंतराल है। अहोभाव बीच की खाली जगह का मिट जाना है।

जीसस मरते क्षण में, आखिरी क्षण में, एक शिकायत से भर गए कि हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है! सूली पर हाथ में खीले ठोंके जा रहे हैं और एक क्षण को उनके मुंह से निकल गया कि हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है! यह हम सब मनुष्यों का प्रतीक है। शिकायत बड़ी गहरी है। जीसस जैसे व्यक्तित्व में भी शिकायत आ गई। लेकिन जीसस ने होश सम्हाल लिया और दूसरा वचन उन्होंने कहा कि मुझे क्षमा कर, तेरी ही मर्जी पूरी हो।

मेरे अपने जानने में, इन दो वाक्यों के बीच ही संसार और मोक्ष का फासला है। इस एक क्षण पहले तक जीसस संसार के हिस्से थे। जब तक शिकायत थी तब तक असंतोष था। जब तक असंतोष था तब तक प्रार्थना नहीं हो सकती थी, परमात्मा से कोई मिलन नहीं हो सकता था। जरा सा फासला बाकी था--यह मुझे क्यों दिखला रहा है? इसका मतलब यह है कि तू कुछ गलत कर रहा है। इसका मतलब है कि बेहतर था इससे, वह मैं जानता हूं कि क्या होना चाहिए था। इसमें सलाह है, मशविरा है, प्रार्थना है, आकांक्षा है, कोई इच्छा है, कोई असंतोष है। लेकिन जीसस को दिख गया होगा, उतने संवेदनशील व्यक्ति को, जिसकी चेतना संवेदना के आखिरी कगार पर पहुंच गई थी, इस आखिरी क्षण में दिख गया होगा कि भूल हो गई। तत्क्षण उन्होंने कहा, मुझे माफ कर; तेरी मर्जी पूरी हो। जैसे ही उन्होंने कहा, तेरी मर्जी पूरी हो, जीसस खो गए और क्राइस्ट का जन्म हो गया। इस एक वचन के फासले में संसार और मोक्ष का फासला है। जरा सी शिकायत, और आप संसार में हैं। शिकायत का खो जाना, और आप मोक्ष में हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, "जो संतोष से संतुष्ट है, वह सदा भरा-पूरा रहेगा।"

सदा! थोड़ा संतोष को साधें। और जब मैं कहता हूं संतोष को साधें, तो ध्यान रखें, सांत्वना की बात नहीं कर रहा हूं। संतोष को साधें, तो मेरा मतलब है, जो है उसको अहोभाव से जीएं, जो है उसको आनंद-भाव से स्वीकार करें, जो है उसको उत्सव बना लें। रूखी रोटी भी अहोभाव से खाई जा सके, तो उससे ज्यादा स्वादिष्ट, उससे ज्यादा परम भोग दूसरा नहीं हो सकता। नहीं तो आपके सामने परम भोग रखा हो, शिकायत से भरा हुआ मन हो तो कचरा रखा है। उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

थोड़ा शिकायत को हटाएं। और चौबीस घंटे स्मरण रखें कि शिकायत बीच में न आए। और जहां भी शिकायत बीच में आए उसे हटा दें। जैसा बार-बार जीसस कहते हैं, शैतान, मेरे सामने से हट जा! शैतान सिवाय शिकायत के और कोई भी नहीं है। जब भी शिकायत आए तो उससे कहें कि मेरे सामने से हट जा! और कोशिश करें देखने की उस तत्व को जिससे संतोष पैदा हो। गलत को देखना छोड़ें। कांटों को गिनना बंद करें। फूलों पर थोड़ी नजर लाएं।

जैसे-जैसे फूल ज्यादा दिखाई पड़ने लगेंगे वैसे-वैसे कांटे खो जाएंगे। और एक घड़ी ऐसी भी आती है संतोष की जब कांटा भी फूल दिखाई पड़ने लगता है। उस क्षण रूपांतरण है। उस क्षण उसकी मर्जी पूरी होने लगती है।

असंतोष का अर्थ है, मेरी मर्जी तेरे ऊपर। संतोष का अर्थ है, मेरी कोई मर्जी नहीं; बस तेरी मर्जी ही मेरा जीवन है।

आज इतना ही।

चौरासीवां प्रवचन

मार्ग स्वयं के भीतर से है

Chapter 47

Pursuit Of Knowledge

Without stepping outside one's doors,
One can know what is happening in the world;
Without looking out of one's windows,
One can see the Tao of Heaven.
The farther one pursues knowledge.
The less one knows.
Therefore the Sage knows without running about,
Understands without seeing,
Accomplishes without doing.

अध्याय 47

ज्ञान की खोज

अपने घर के दरवाजे के बाहर बिना पांव दिए ही,
कोई जान सकता है कि संसार में क्या हो रहा है;
अपनी खिड़कियों के बाहर बिना झांके हुए,
कोई स्वर्ग के ताओ को देख सकता है।
जो ज्ञान का जितना ही पीछा करता है,
वह उतना ही कम जानता है।
इसलिए संत बिना इधर-उधर भागे ही जानते हैं,
बिना देखे ही समझते हैं,
और बिना कर्म किए सब कुछ संपन्न करते हैं।

निश्चिम और पूरब में ज्ञान के बड़े भिन्न अर्थ हैं।

पश्चिम में ज्ञान से अर्थ हैः बाहर के संबंध में कुछ जानना, वस्तु के संबंध में कुछ जानना। पूरब में ज्ञान का अर्थ हैः ज्ञाता को जानना, जानने वाले को जानना। इसलिए पश्चिम में ज्ञान धीरे-धीरे विज्ञान बन गया। जानने वाले को छोड़ कर सब कुछ जानने की खोज पश्चिम में हुई। पूरब में ज्ञान धीरे-धीरे अनुभव बन गया, धर्म बन गया। क्योंकि सारी खोज उसकी करनी है जो खोज करने वाला है।

पूरब की मान्यता है, जब तक हम स्वयं को न जान लें तब तक कुछ भी जानने का कोई सार नहीं। और हम कितना ही जान लें स्वयं को बिना जाने, उससे हमारा अज्ञान नहीं मिटेगा। जानकारी बढ़ जाएगी, अज्ञान नहीं मिटेगा। हम विद्वान हो जाएंगे, ज्ञानी नहीं। जो स्वयं को जान लेता है वही ज्ञानी है। तो पूरब की खोज आंतरिक है; पश्चिम की खोज बहिर्मुखी है। जो बाहर को जानने में समर्थ होगा वह शक्तिशाली हो जाएगा; उसके पास उपकरण, साधन, सुविधाएं, संपन्नता बढ़ जाएगी। जो भीतर को जानने में समर्थ होगा वह शांत हो जाएगा। इस बात को ठीक से समझ लें। जो बाहर के ज्ञान में कुशल होगा उसके पास आनंद उपलब्ध करने की सुविधाएं बढ़ जाएंगी; जरूरी नहीं है कि आनंद बढ़े। क्योंकि सुविधाओं पर आनंद निर्भर नहीं होता, आनंद निर्भर होता है आनंद लेने वाले की आंतरिक क्षमता पर। जो भीतर के ज्ञान में प्रवेश करेगा, हो सकता है, उसके बाहर की सुविधाएं न बढ़ पाएं। शायद ही बढ़ें। लेकिन उसके आनंद की क्षमता बढ़ती चली जाएगी।

वह जो भीतर छिपा है आपके, अगर वह विकसित होता है तो पूरब उसे ज्ञान कहता है; जानकारी अगर बढ़ती है तो पश्चिम उसे ज्ञान कहता है। इसलिए पश्चिम आइंस्टीन को ज्ञानी कह सकता है; हीगल, कांट को ज्ञानी कह सकता है। पूरब उन्हें ज्ञानी नहीं कहेगा; पूरब बुद्ध को ज्ञानी कहेगा, लाओत्से को ज्ञानी कहेगा।

आइंस्टीन और बुद्ध में बड़ा फर्क है। अगर दोनों की जानकारी में प्रतियोगिता हो तो आइंस्टीन ही जीतेगा। बुद्ध की जानकारी क्या है? लेकिन अगर आत्म-सत्ता में, स्वयं के होने की गरिमा में कोई प्रतियोगिता हो तो आइंस्टीन शून्य सिद्ध होगा। बुद्ध के पास कुछ है जो भीतरी है; आइंस्टीन के पास कुछ है जो बाहरी है। आइंस्टीन के पास आंतरिक आनंद की क्षमता नहीं है। इस बुनियादी भेद को ख्याल में ले लें तो लाओत्से के सूत्र समझ में आएंगे। अन्यथा लाओत्से के सूत्र समझ में आना मुश्किल है।

"अपने घर के दरवाजे के बाहर बिना पांव दिए ही, कोई जान सकता है कि संसार में क्या हो रहा है।"

हमें असंभव लगेगा। क्योंकि सुबह अगर अखबार न मिले तो हमें पता कैसे चलेगा कि संसार में क्या हो रहा है? और अगर रेडियो पर हम खबर न सुनें तो हमें पता कैसे चलेगा कि संसार में क्या हो रहा है? हमारी बात भी ठीक है। क्योंकि संसार में जो कुछ हो रहा है उसकी खबर मिले तो ही हमें पता चल सकता है।

लाओत्से कहता है, "अपने घर के दरवाजे के बाहर पांव दिए बिना ही, कोई जान सकता है कि संसार में क्या हो रहा है।"

यह जानकारी कुछ और बात है। लाओत्से यह कह रहा है कि यह तो पता नहीं चलेगा कि बर्मा में क्या हुआ, कि कहां नाव डूबी, कहां युद्ध हुआ; लेकिन जो व्यक्ति स्वयं को जानता है वह जानता है कि आदमी जमीन पर कहां क्या कर रहा होगा--हिंसा भड़क रही होगी; आत्महत्याएं हो रही होंगी; लोग पागल हो रहे होंगे। इसके विस्तार को जानने की जरूरत भी नहीं है। लेकिन आदमी को जो पहचानता है, वह जानता है कि संसार में क्या हो रहा होगा। और आदमी को वही पहचान सकता है जो स्वयं को पहचानता है। जो अपने मन को जान लेता है वह जानता है कि सब जगह क्या हो रहा होगा। उसे विस्तार पता न हो, लेकिन उसे मूल पता होगा।

आप ज्योतिषी के पास जाते हैं, हस्तरेखाविद के पास जाते हैं, और कुछ बातें हस्तरेखाविद और ज्योतिषी आपको बताते हैं। शायद आप सोचते हैं कि कोई बहुत विज्ञान के आधार पर आपको कुछ बताया जा रहा है तो

आप गलत सोचते हैं। ज्योतिषी, हस्तरेखाविद, आदमी के मन में क्या हो रहा है, इसकी परंपरागत जानकारी है। डिटेल्स, विस्तार में आपको क्या हो रहा है, यह बताना मुश्किल है। लेकिन क्या हो रहा है, सारभूत बताया जा सकता है। क्योंकि हर आदमी को हो रहा है।

मेरे एक मित्र ज्योतिषी हैं। वे जिसका भी हाथ देखेंगे, उसको वे बताएंगे कि रुपया तो आता है, लेकिन हाथ में टिकता नहीं। किसके टिकता है? रुपया टिक जाए तो रुपया नहीं है; उसका कोई अर्थ ही नहीं है। रुपये का मतलब ही यह है कि वह जाए, चले, एक्सचेंज, विनिमय हो, बदले हाथ, तो ही उसका मूल्य है। रुपया जब हाथ बदलता है तभी रुपया है। अगर हाथ में ही रह जाए तो वह मिट्टी है। उसमें मूल्य तो तभी आता है जब वह एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता है। तो बीच में जो जगह है वही उसका मूल्य है।

तो जितना रुपया चले उतना मूल्यवान होता है। जिन मुल्कों में रुपया जितनी यात्रा करता है, वे मुल्क उतने धनी हो जाते हैं। अमरीका इतना धनी नहीं है जितना दिखाई पड़ता है। दिखाई पड़ता है, क्योंकि रुपया बहुत गति करता है। अगर भारतीय के हाथ में रुपया पकड़ा दिया जाए तो जिसके साथ में है वह पकड़े रहेगा, जब तक कि मजबूरी में छोड़ना न पड़े। अमरीकन, रुपया हाथ में आएगा बीस साल बाद, छोड़ देता है आज। इंस्टालमेंट पर चीजें खरीद रहा है, जिन्हें वह बीस साल में चुकाएगा। बीस साल बाद जब उसके पास पैसा होगा तब वह चुकाएगा। रुपया बीस साल बाद आएगा; उसने चला दिया है आज। उधार ले रहा है। इतना रुपया गति कर रहा है, इतने हाथ बदल रहा है, इसलिए अमरीका इतना धनी है। अमरीका का पूरा अर्थशास्त्र इस पर खड़ा है कि जितना तुम खर्च करोगे उतने ही संपन्न हो जाओगे।

रुपये में मूल्य आता है जब वह हाथ बदलता है; तभी उसके मूल्य का पता चलता है। तो ठीक ही है, वह रुपये का गुणधर्म है। और फिर आदमी के मन का भी गुणधर्म है कि चाहे आपको कितना ही मिल जाए और चाहे आप कितना ही रोक लें, लगेगा सदा आपको ऐसा ही कि रुपया टिकता नहीं है। उसके कारण हैं। क्योंकि जितना आप टिकाना चाहते हैं, उसकी कोई सीमा नहीं है। आप चाहते हैं, सब धन इकट्ठा होता चला जाए। वैसा नहीं हो सकता। और कितना ही इकट्ठा हो जाए तो भी आपको लगता है, जितना हो सकता था उससे कम हो रहा है।

इसलिए धनी से धनी आदमी को और कृपण से कृपण आदमी को भी कहो कि हाथ में रुपया आता है और टिकता नहीं, वह भी स्वीकार करता है कि यह बात सत्य है।

किसी भी आदमी से, वे मेरे मित्र कहते हैं कि मन अशांत है।

मन का होना अशांति है। जिसके पास मन है, अशांति होगी ही। मन अशांत नहीं होता, मन ही अशांति है। इसलिए इसे बेचूक किसी से भी कहा जा सकता है कि मन अशांत है। इसके लिए कोई आदमी देखने की जरूरत नहीं, न हाथ की रेखाएं पहचानने की जरूरत है। मन का स्वभाव अशांति है। और ऐसा आदमी तो शायद ही ज्योतिषी के पास आएगा जिसके पास मन न हो। कोई बुद्ध तो हाथ दिखाने ज्योतिषी के पास आने वाले नहीं हैं। बुद्ध के बाबत, बुद्ध के संबंध में अगर यह बात कोई कहे तो गलत हो जाएगी। लेकिन बुद्ध ज्योतिषी के पास आते नहीं।

ज्योतिषी के पास, असल में, अशांत आदमी ही आता है। भविष्य के संबंध में जानने को वही उत्सुक होता है जिसका वर्तमान दुखी हो। जो आज इतनी पीड़ा में पड़ा है कि लगता है आत्मघात कर ले, वह भविष्य के संबंध में थोड़ा जानना चाहता है कि कोई आशा है कि मैं आज बिता लूं, जी लूं, समय बिता दूं, गुजार दूं। कल की आशा में कोई जीने की सुविधा मिल जाए, इसलिए आदमी ज्योतिषी के पास जाता है। दुखी के अतिरिक्त ज्योतिषी के पास कोई जाता नहीं।

तो अगर ज्योतिषी कहे कि मन अशांत है, चित्त दुखी है, संताप से भरा है, चिंताएं घेरे रहती हैं, तो इसमें कुछ जानने की जरूरत नहीं है। अगर ज्योतिषी अपने मन को भी समझता है तो उसने करीब-करीब सभी मनुष्यों के मन को समझ लिया। मन की साधारण सी समझ के ऊपर ही सारा व्यवसाय ज्योतिष का चलता है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ज्योतिष गलत है, लेकिन जो ज्योतिष सही है वह सड़क पर हाथ देखने वाले ज्योतिषी के पास उपलब्ध नहीं होने वाला है। वह तो बड़ा आंतरिक विज्ञान है; उसका कोई व्यवसाय नहीं बनाया जा सकता। लेकिन जो व्यवसाय कर रहा है वह मनुष्य के मन की समझ के ऊपर कर रहा है।

किसी भी व्यक्ति से कहो कि तुम्हारे जीवन में प्रेम का अभाव है; सभी के लिए लागू होगा। विवाह न हुआ हो तो लागू होगा कि प्रेम का अभाव है और विवाह हुआ हो तो लागू होगा कि प्रेम का अभाव है। प्रेम कभी भरता ही नहीं। और किसी को कभी ऐसा नहीं लगता कि प्रेम मिल गया जितना मिलना चाहिए था। वह तृषा अनंत है; सागर भी प्रेम का मिल जाए तो भी पूरी नहीं होती। तो ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसके संबंध में कहा जाए और गलती हो जाए कि प्रेम का अभाव है।

हर आदमी से कहा जा सकता है कि तुम लोगों के साथ भला करते हो, और लोग उत्तर में बुरा करते हैं। सभी ऐसा मानते हैं; वे जो भला करते हों, न करते हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हर आदमी सोचता है, मैं भला कर रहा हूं और प्रतिकार में मुझे बुरा मिल रहा है। ये मन के लक्षण हैं। इनके लिए व्यक्ति-व्यक्ति को जानने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसा मन की धारणा है कि मैं अच्छा करता हूं, लोग मेरे साथ बुरा करते हैं। ऐसा तो कोई कभी नहीं सोचता कि मैं लोगों के साथ बुरा करता हूं, लोग मेरे साथ अच्छा करते हैं। कभी कोई आदमी मिला आपको जो कहे कि बड़ी अजीब दुनिया है कि मैं लोगों के साथ बुरा करता हूं और लोग मेरे साथ अच्छा करते हैं! ऐसा आदमी आपको नहीं मिलेगा; क्योंकि यह मन का नियम नहीं है। हालांकि सभी आदमी ऐसे हैं कि अपनी तरफ से हर तरह से बुरा करने की कोशिश करते हैं और दूसरे से हर तरह से भला छीनने की कोशिश करते हैं; लेकिन मन सदा यही कहता है कि मैंने अच्छा किया और दूसरों ने बुरा किया।

सूफी फकीर कहते हैं कि नेकी कर और कुएं में डाल। अच्छे आदमी का लक्षण यह है कि वह अच्छा करे और कुएं में डाल दे इस बात को; फिर इसकी दुबारा बात न उठाए, फिर कभी भूल कर न कहे कि मैंने अच्छा किया, तो ही अच्छा आदमी है। अच्छा करने से कोई अच्छा नहीं होता, अच्छे को करके जो भूल जाए वह अच्छा आदमी है।

अगर हम मन की सामान्य वृत्ति को समझ लें तो दुनिया में क्या हो रहा है, इसको समझने के लिए अखबार उठाने की जरूरत नहीं, न रेडियो सुनने की जरूरत है। और अखबार रोज वही दोहरा रहा है। जो कल हुआ था वह आज हो रहा है; जो परसों हुआ था वह आज हो रहा है। वही कल भी होगा। आप किसी भी दिन के अखबार को बिना तारीख पढ़े पढ़ लें। कोई बहुत फर्क नहीं पड़ने वाला है। आदमी जैसा है, उसे जानते हुए, जो हो रहा है उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

लाओत्से कहता है, अगर मनुष्य को थोड़ी सी भी अंतर्मन की प्रतीति हो तो संसार में क्या हो रहा है, उसे पता होगा। एक-एक क्षुद्र घटना को जानने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन के विस्तीर्ण नियम साफ हो जाते हैं।

और हम क्यों एक-एक घटना को जानना चाहते हैं? हम इसलिए जानना चाहते हैं कि हमें विस्तीर्ण नियम का कोई पता नहीं है। और हम जिंदगी भर अखबार पढ़ते रहते हैं तो भी मनुष्य के स्वभाव का हमें कोई ख्याल नहीं हो पाता। मनुष्य का स्वभाव समझने योग्य है; फिर मनुष्य क्या करता है, यह गौण बात है। कामवासना से भरा हुआ मनुष्य क्या करेगा, क्रोध से भरा हुआ मनुष्य क्या करेगा, लोभ से भरा हुआ मनुष्य

क्या करेगा, हिंसा से भरा हुआ मनुष्य क्या करेगा, अगर ये मूल सूत्र हमें ख्याल में हैं तो हम सदा-सदा के लिए घोषणा कर सकते हैं कि कल क्या होगा, परसों क्या होगा।

पश्चिम में तीन सौ वर्ष पहले एक ज्योतिषी ने तीन सौ वर्ष की घोषणाएं की हैं। और करीब-करीब इन तीन सौ वर्षों में उसकी सारी घोषणाएं सही सिद्ध हुईं। तीन कारण हैं उसकी घोषणाओं के सही सिद्ध होने के। एक तो उसने युद्धों की घोषणा की। हर दस साल में एक महायुद्ध होता ही है। मनसविद कहते हैं, दस साल में आदमी इतनी घृणा इकट्ठी कर लेता है कि युद्ध में विस्फोट आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही जैसे कि अगर आप पानी को गर्म करते जाएं तो सौ डिग्री पर जाकर भाप बन जाएगा, और अगर केतली बंद है तो केतली फूट जाएगी। चूंकि सारे धर्म और सारी नैतिक शिक्षाएं आदमी के मन की केतली को बंद रखने का सुझाव देती हैं, इसलिए हर दस वर्ष में युद्ध अनिवार्य हो जाता है। तीन सौ वर्ष की जो घोषणाएं हैं ज्योतिष की, उसमें हर दस वर्ष में उसने युद्ध की घोषणा की है।

फिर किस तरह के आदमी युद्ध करते हैं? हर तरह का आदमी तो युद्ध नहीं करता, कुछ खास तरह के आदमी युद्ध करते हैं। यह बड़े मजे की बात है कि हम लोगों के नाम याद रख लेते हैं, लेकिन टाइप कभी ख्याल में नहीं लेते। हिटलर या स्टैलिन या माओ या चंगीज या तैमूरलंग, नादिर, नेपोलियन, सिकंदर, ये नाम तो इतिहास पढ़ता है; लेकिन समझदार व्यक्ति नामों की फिक्र नहीं करता, इनके पीछे छिपा हुआ टाइप! अगर हम नाम अलग कर दें तो हिटलर और स्टैलिन बिल्कुल एक ही ढांचे के आदमी हैं; नेपोलियन, सिकंदर एक ही ढांचे के आदमी हैं। लेबल का फर्क है; भीतर जो छिपा है वह बिल्कुल एक जैसा है।

हर दस वर्ष में जब भी युद्ध होगा तो एक नेपोलियन, एक हिटलर, एक स्टैलिन चाहिए। तीन सौ वर्ष पहले जिस आदमी ने घोषणाएं की हैं उसने उन व्यक्तित्वों के लक्षण गिनाए हैं कि इस तरह का आदमी युद्ध की शुरुआत करेगा। और वे हमेशा सही सिद्ध होते हैं, क्योंकि वह आदमी कोई भी हो--वह हिटलर करे युद्ध की शुरुआत, या मुसोलिनी करे, या तोजो करे, कोई भी करे--नाम से कुछ लेना-देना नहीं है। वे लक्षण इतने सही हैं कि जब हिटलर शुरू करता है तो उस ज्योतिष को मानने वाले लोग कहते हैं कि देखो, तीन सौ वर्ष पहले एक-एक लक्षण हिटलर का गिनाया हुआ है। हिटलर से कोई संबंध नहीं है ज्योतिष का, लेकिन जिस तरह का आदमी युद्ध की शुरुआत करता है उसके लक्षण गिनाए हैं; वे लागू होते हैं।

यह जो मनुष्य का मन है, इसके प्रकार हैं। और वे ही प्रकार सदा जमीन पर होते हैं, और करीब-करीब पुनरुक्ति होती है। इतिहास लंबी पुनरुक्ति है, उसमें सब दोहरता है; वही दोहरता जाता है बार-बार। विस्तार की बातें बदल जाती हैं, नाम बदल जाते हैं, लेकिन घटनाओं के मूल स्रोत नहीं बदलते।

लाओत्से कह रहा है, "अपने घर के दरवाजे के बाहर बिना पांव दिए ही, कोई जान सकता है कि संसार में क्या हो रहा है।"

इस अर्थ में लाओत्से कह रहा है। लेकिन इस तरह के व्यक्ति को स्वयं के मन की पूरी जानकारी चाहिए। स्वयं के मन को कोई ठीक से जान ले, उसने सारी मनुष्यता को जान लिया। उसको जानने को कुछ बचता नहीं। और अगर आप दूसरे आदमी को नहीं पहचान पाते तो उसका कुल मतलब इतना है कि आप अभी अपने को नहीं पहचान पाए हैं। अगर कोई दूसरा आदमी आपके लिए बेबूझ मालूम होता है, रहस्यपूर्ण मालूम होता है, कि आप समझ नहीं पाते, उसका कुल मतलब इतना है कि अभी आपको आपके भीतर की मनुष्यता से परिचय नहीं हुआ।

एक सागर की बूंद को कोई ठीक से समझ ले, पूरा सागर समझ में आ गया। सागर बहुत बड़ा है; बूंद बहुत छोटी है। लेकिन जो सागर में है वह बूंद में भी सूक्ष्म में मौजूद है। फिर सागर बूंद का ही विस्तार है, या

बूंद सागर का ही संकोच है। बूंद को चख कर जिसने जान लिया कि वह नमकीन है, वह जान गया कि पूरा सागर खारेपन से भरा है। फिर पूरे सागर को चख-चख कर जानने की जरूरत नहीं है। और जो सागर को जगह-जगह चखने जाए और तब भी पक्का न कर पाए, समझना चाहिए कि वह मूढ़ है।

अगर मैंने अपने भीतर के मन को ही समझ लिया तो मैंने सारी मनुष्यता का मन समझ लिया। इसीलिए संत दयालु हो जाते हैं; क्योंकि वे अपने मन को समझ कर जान जाते हैं कि आदमी कितना कमजोर है! आदमी कितना दीन है! आदमी कितना मजबूर है! इसलिए वे आदमी को क्षमा कर सकते हैं। उनकी क्षमा उनके स्वयं के मन की समझ से पैदा होती है। और जो संत किसी को क्षमा न कर सके, समझना कि वह अभी संत नहीं है। उसे पता ही नहीं है कि आदमी की कैसी मजबूरी है।

आप जिनको साधु और संत मानते हैं वे करीब-करीब आप ही जैसे लोग हैं; उतने ही गहरे अज्ञान में खड़े। वे आपको क्षमा नहीं कर पाते, वे आपको अपराधी घोषित करते हैं। अगर आपसे कोई छोटी-मोटी भूल हो जाती है तो उनके हृदय में क्षमा पैदा नहीं होती। निश्चित ही, उन्हें अपने भी मन की पूरी समझ नहीं है; और आदमी कमजोर है और भूल-चूक से भरा है, इसका बोध नहीं है। या फिर उन्होंने अपनी ही भूलों को, अपने ही मन को इतने अचेतन में दबा दिया है कि उनके संबंध छूट गए हैं।

जो व्यक्ति अपने को ठीक से समझ लेगा, इस जगत में फिर कोई भी मनुष्य उसके लिए अपरिचित नहीं रहा। और जो भी अपराध कोई भी मनुष्य इस पृथ्वी पर कर सकता है, अपने मन को समझने वाला जानता है कि मैं भी कर सकता था। और जो मैं कर सकता हूं उसके लिए दूसरे पर क्रोधित, उसे दंडित करने, उसे नरक में डालने की बात बेहूदी है। जैसे ही कोई मन को ठीक से समझता है वह जानता है, बुरे से बुरा मेरे भीतर छिपा है और भले से भला भी। इसलिए संत न तो बुरे की निंदा करते हैं और न भले की प्रशंसा। क्योंकि दोनों संभावनाएं उनकी ही संभावनाएं हैं। उनके भीतर बुद्ध भी छिपा है; उनके भीतर हिटलर भी छिपा है। राम भी और रावण भी! रावण भी अपना ही हिस्सा है और राम भी अपना ही हिस्सा है। और युद्ध कहीं बाहर नहीं, भीतर है। और ये दोनों पात्र किसी कथा के पात्र नहीं, अपने ही मन के दो हिस्सों के नाम हैं। और दोनों हिस्से मेरे हैं। तो न तो राम पूजा योग्य रह जाते हैं और न रावण निंदा योग्य रह जाता है।

यह थोड़ा सुन कर कठिनाई होगी। क्योंकि यह तो हमारी समझ में आ भी जाता है कि मत करो निंदा रावण की, लेकिन राम की तो पूजा करो। पर ध्यान रहे, जो पूजा करता है वह निंदा भी करेगा। जो सम्मान करता है वह अपमान भी करेगा। तो अगर कोई साधु महावीर का सम्मान कर रहा है, राम का सम्मान कर रहा है, कृष्ण का सम्मान कर रहा है, तो रावण के अपमान से कैसे बचेगा?

इसलिए परम संत पुरुष न तो निंदा करता है और न प्रशंसा। उसके वक्तव्य तथ्य के वक्तव्य होते हैं, मूल्यांकन के नहीं। अगर पानी नीचे की तरफ बहता है तो वह कहेगा पानी नीचे की तरफ बहता है। लेकिन इसमें कोई निंदा नहीं है, सिर्फ पानी के तथ्य की सूचना है। अगर आग जलाती है तो वह कहेगा आग जलाती है। लेकिन इसमें कोई निंदा नहीं है। क्योंकि आग का धर्म जलाना है। तथ्य की सूचना है।

जैसे-जैसे कोई व्यक्ति स्वयं के मन को ठीक से समझने में समर्थ हो जाता है, सारा जगत समझ में आ गया कि मनुष्यता एक इकट्ठी घटना है, और थोड़े-बहुत भेद के साथ। वे भेद मात्राओं के भेद हैं, डिग्रियों के भेद हैं। कोई अट्ठानबे डिग्री पर गर्म है, कोई सत्तानबे डिग्री पर गर्म है, कोई निन्यानबे डिग्री पर गर्म है। इतने भेद मनुष्यों में हैं। लेकिन गर्मी को जिसने समझ लिया वह डिग्रियों को भी समझ लेता है।

"अपने घर के दरवाजे के बाहर बिना पांव दिए ही, कोई जान सकता है कि संसार में क्या हो रहा है।"

लेकिन अपने मन को जानना कुछ संसार से छोटी घटना नहीं है। अपने मन को जानना करीब-करीब पूरे संसार को जान लेना है। वह उतना ही विस्तीर्ण है, उतना ही जटिल है। उतना ही विराट का जंगल वहां है। अगर कोई व्यक्ति अपने मन के बारीक-बारीक रेशों को उघाड़ कर देखने लगे तो एक विराट में प्रवेश कर गया, एक बहुत बड़ी घटना में प्रवेश कर गया।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के इस छोटे से मन में सारे विकास के संस्मरण हैं। जमीन पर, विकासवादियों के हिसाब से, मनुष्य को हुए कोई दस लाख वर्ष हो गए--कम से कम। जमीन को बने कोई चार अरब वर्ष हुए। दस लाख वर्षों में आदमी ने जो भी जाना है उस सबके संस्कार आपके मन में हैं। यह तो आदमी की बात है। लेकिन विकासवादी कहते हैं कि आदमी कोई टूटी हुई घटना नहीं है,शृंखला की कड़ी है। आदमी के पीछे पशुओं कीशृंखला है, पशुओं के पीछे पौधों कीशृंखला है। तो चार अरब वर्ष में जो कुछ भी घटा है इस पृथ्वी पर उस सबके सूक्ष्म संस्कार आपके मन में हैं। लेकिन इसे, अगर हम इस गणित को पूरा समझ लें, तो अगर मनुष्य के पहले पशुओं में जो घटा हो, पशुओं के पहले वृक्षों में जो घटा हो, वृक्षों के पहले पृथ्वी में जो घटा हो, अगर उस सबके चिह्न हमारे मन में हैं, तो पृथ्वी जब नहीं बनी थी तो जिस नीहारिका से पृथ्वी का जन्म हुआ उस नीहारिका में जो घटा होगा उसके भी लक्षण हममें होने चाहिए। इसका तो अर्थ यह हुआ कि अस्तित्व की समस्तशृंखला हमारे भीतर है; जो कुछ भी घटा है इस अस्तित्व में कभी भी उसे हम अपने भीतर छिपाए हैं, वह हमारे मन का हिस्सा है। और यह पीछे की तरफ! आगे की तरफ भी यह तर्क उतना ही सही है कि इस जगत में जो भी कभी कुछ घटेगा उसके भी बीज हमारे भीतर हैं। मनुष्य का मन सारा अस्तित्व है; पीछे-आगे सब आयामों में फैला हुआ।

शरीर-शास्त्री कहते हैं कि जब बच्चा मां के पेट में बढ़ता है तो नौ महीने में वह उतनी सारी यात्रा पूरी करता है जितनी मनुष्य ने पूरे अतीत के इतिहास में की है। जैसे बच्चे का जो पहला क्षण है, जब अणु पहली दफा जीवंत मां के पेट में होता है, तो वह वहीं से शुरू करता है जहां पहली मछली का अंडा सागर में जन्मा होगा। क्योंकि शरीर-शास्त्री कहते हैं कि मछली मनुष्य का पहला रूप है। तो जो बच्चा मां के पेट में होता है वह पहले मछली की तरह जीना शुरू करता है। और उनकी बात में बड़े तथ्य हैं। मां के पेट में जो पानी होता है वह ठीक सागर के जैसा पानी होता है जिसमें मछली तैरती है। उसमें उतना ही नमक होता है जितना सागर में नमक है। उसमें उतने ही केमिकल्स होते हैं जितने सागर में हैं। ठीक सागर का पानी मां के पेट में होता है जिसमें बच्चा तैरना शुरू करता है; वह मछली पहली दफा तैरना शुरू करती है। और फिर नौ महीने में--करीब-करीब एक अरब वर्ष में जो विकास हुआ है--नौ महीने में बच्चा शीघ्रता से सारी सीढ़ियां पूरी करता है। ऐसी घड़ी आती है जब बच्चा बंदर की तरह होता है; उसके बाद ही बच्चा मनुष्य के बच्चे की तरह होना शुरू होता है। करीब-करीब सारीशृंखलाएं अल्प समय में पूरी करता है। जो इतिहास में, विकास में जिन घटनाओं को हमें पूरा करने में लाखों वर्ष लगे, बच्चा उन्हें क्षणों में पूरी करता है, लेकिन करता है पूरी। उनसे गुजरता जरूर है।

शरीर में भी, मन में भी सारा इतिहास छिपा है। लाओत्से की बात वैज्ञानिक है। अगर कोई व्यक्ति अपने मन और अपने शरीर की, अपने अस्तित्व की, अपने व्यक्तित्व की पूरी परिधि को पहचान ले, तो संसार में कहां क्या हो रहा है, और कहां क्या हुआ था, और कहां क्या होगा--वर्तमान ही नहीं, अतीत भी, भविष्य भी--सभी की सूक्ष्म झलक उसे मिलनी शुरू हो जाती है। पश्चिम के वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग कर-करके नतीजों पर पहुंचे हैं, पूरब के योगी सिर्फ अपने मन में ही डूब कर, खोज करके नतीजों पर पहुंचे हैं। नतीजे करीब-करीब समान हैं। फर्क बहुत ज्यादा नहीं है।

डार्विन ने कहा कि आदमी पशुओं से पैदा हुआ है। ईसाइयत को बहुत विरोध हुआ। क्योंकि ईसाइयत के पास योग का कोई बहुत पुराना इतिहास नहीं है, और योगियों की कोई बहुत बड़ी परंपरा नहीं है। ईसाइयत एक क्रियाकांडी धर्म है। उसके पास अनुभव के स्रोत उतने जीवंत नहीं हैं जितना कि भारत में बौद्धों या हिंदुओं या जैनों के पास हैं। ईसाइयत ने विरोध किया, क्योंकि यह बात बड़ी बेहूदी लगी कि कल तक हम मानते थे कि आदमी का जन्म परमात्मा से हुआ, स्वयं परमात्मा पिता है आदमी का, और अचानक डार्विन ने घोषणा की कि परमात्मा का तो हमें कोई पता नहीं, आदमी का पिता बंदर है। परमात्मा से पिता का बंदर की तरफ झुक जाना बहुत अपमानजनक मालूम पड़ा। कहां आदमी देवताओं से जरा ही नीचे था और कहां बंदरों के साथ संयुक्त हो गया!

लेकिन पूरब के योगी निरंतर कहते रहे हैं कि मनुष्य की चेतना पशुओं से विकसित होकर आगे आ रही है। हमने निरंतर कहा है कि चौरासी कोटि योनियों में आदमी भटका है, तब मनुष्य हो पाया है। अगर डार्विन ने यह बात भारत में कही होती तो हमें कोई अड़चन न होती। क्योंकि डार्विन तो एक बहुत छोटी सी बात कह रहा था। वह तो सिर्फ इतना ही कह रहा था कि एक योनि, बंदर की योनि से मनुष्य आया है; हम तो कहते रहे हैं कि चौरासी करोड़ योनियों से! उसमें छोटी इल्लियां हैं, कीड़े, मकोड़े, पतिंगे, सब हैं। जितने भी जीवन हैं इस जगत में, उन सबसे मनुष्य गुजरा है, और तब मनुष्य हुआ है। विकास की जैसी धारणा हमारी है वैसी अभी पश्चिम के विज्ञान को पाने में थोड़ा समय है, थोड़ा वक्त है। पर हमने प्रयोगशाला में यह प्रयोग करके नहीं जाना था। हमने तो मनुष्य के मन को ही समझ कर जाना था। और मनुष्य के मन में ही सब कुछ छिपा है। सारी यात्रा के चिह्न और अनंत यात्रा की धूल मनुष्य के मन पर जमी है। हमने सिर्फ मनुष्य की एक बूंद को खोल कर पहचानने की कोशिश की थी कि आदमी का पूरा इतिहास क्या है; ज्ञात, अज्ञात, कहां-कहां से आदमी गुजरा है।

"अपनी खिड़कियों के बाहर बिना झांके हुए, कोई स्वर्ग के ताओ को देख सकता है।"

और संसार में क्या हो रहा है यह तो ठीक ही है, इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कि जीवन का आत्यंतिक स्वभाव क्या है, ताओ क्या है! और जीवन का वह स्रोत कहां है जहां से सारा आनंद, सारा संगीत, सारा रस पैदा होता है! जहां से जीवन निकलता है, फैलता है, जहां से जीवन अंकुरित होता है, वह मूल स्वभाव क्या है! लाओत्से कहता है, अपने घर की खिड़कियों को खोले बिना, उनसे बिना झांके, कोई स्वर्ग के ताओ को भी देख सकता है। इस पृथ्वी के स्वभाव को जानना तो दूर, स्वर्ग के स्वभाव को भी, आत्यंतिक सत्य के स्वभाव को भी, आनंद की आखिरी पर्त को भी जानने का उपाय स्वयं के भीतर है।

मन को अगर जान लें तो संसार को जान लिया। और मन के पीछे जो चैतन्य छिपा है अगर उसे जान लें, तो संसार का जो आत्यंतिक स्वभाव है, सत्य, अस्तित्व की जो आखिरी घटना है, जिससे और पीछे नहीं जाया जा सकता, उस ताओ को, उस ऋत को, उस धर्म को जाना जा सकता है।

लेकिन हम तो मन से ही परिचित नहीं हो पाते। और चेतना मन के पीछे छिपी है। चेतना से मतलब है उस तत्व का जो मन को देखता है।

एक पश्चिमी वैज्ञानिक डेलगाडो एक अनूठा प्रयोग कर रहा था। उसके प्रयोग कीमती हैं और भविष्य में बहुत कुछ उन प्रयोगों पर निर्भर होगा मनुष्य का जीवन। उस प्रयोग से वह एक बहुत पुराने सत्य पर पहुंचा--जिसका उसे कोई ख्याल नहीं है। वह एक प्रयोग कर रहा था कि जब भी किसी के मस्तिष्क के किसी विशेष केंद्र को विद्युत से छुआ जाता है तो खास स्मृतियां अंकुरित होती हैं। मस्तिष्क में कोई सात करोड़ स्नायु हैं और हर स्नायु विशेष स्मृतियों का केंद्र है। उस स्नायु को अगर विद्युत से छुआ जाए, विद्युत की करेंट उसमें डाली जाए,

तो वह तत्क्षण सजीव हो उठता है। और उसमें छिपी हुई स्मृतियां जैसे टेप-रेकार्ड से शब्द आने बाहर शुरू हो जाते हैं, ऐसे उस स्नायु में छिपी हुई स्मृतियां मस्तिष्क के पर्दे पर आनी शुरू हो जाती हैं।

समझें कि आपके किसी मस्तिष्क के हिस्से को छुआ, और उस हिस्से में बचपन की कोई स्मृति छिपी है कि आप पांच साल के थे, और बगीचे में भाग रहे थे, तितली को पकड़ने की कोशिश में थे, वह स्मृति तत्काल सजग हो जाएगी। और सजग ही नहीं होगी स्मृति की तरह, बल्कि ऐसा लगेगा कि आप फिर पांच साल के हो गए और दौड़ रहे हैं बगीचे में। यह जीवित घटना मालूम होगी, और पूरी स्मृति दोहरेगी। विद्युत अलग कर ली जाए, स्मृति बंद हो जाएगी। फिर विद्युत छुलाई जाए, फिर वहीं से शुरू होगी जहां पहले शुरू हुई थी, ठीक उसी क्रम में।

डेलगाडो ने तीन-तीन सौ, छह-छह सौ बार एक ही जगह विद्युत छुला कर देखी है; ठीक स्मृति फिर वहीं से शुरू होती है। जैसे ही विद्युत अलग होती है, स्मृति वापस अपने वर्तुल में बंद हो जाती है; छुलाते से फिर अ ब स से शुरू होती है। जिन मरीजों पर वह प्रयोग कर रहा था, जो मस्तिष्क के मरीजों पर जिन पर वह यह काम कर रहा था, पहली दफा जब स्मृति जगाई गई तब तो वे भूल ही गए कि वे अलग हैं; वे उस स्मृति के साथ एक हो गए। लेकिन जब दूसरी, तीसरी, दसवीं, पचासवीं बार जगाई गई तो धीरे-धीरे मरीज स्मृति से अलग होने लगा; स्मृति चलने लगी जैसे पर्दे पर फिल्म चलती हो और मरीज साक्षी हो गया। वह दूर हट गया, वह देखने लगा। अब उसे पता है कि विद्युत छुलाई जा रही है और एक स्मृति जग रही है, एक रिकार्डेड स्मृति वापस जग रही है। और वह दूर खड़ा हो गया; अब वह देखने लगा। अब उसे पता है कि इसे मैं देख रहा हूं और मैं अलग हूं। छह सौ या सात सौ बार जिस मरीज को यह प्रयोग करवाया गया, उसे एक बड़े अनूठे आनंद का अनुभव हुआ। डेलगाडो ने लिखा है कि हमारी समझ के बाहर था कि यह आनंद क्यों पैदा हो रहा है!

यह आनंद वही है जिसको उपनिषद साक्षी का आनंद कहते हैं; जिसको लाओत्से कह रहा है कि अगर कोई दरवाजे से भी न झांके, खिड़की भी न खोले, तो भी अपने भीतर ही ताओ के राज को जान सकता है।

वह साक्षी-भाव धर्म है; हमारी नियति का, हमारी प्रकृति का आत्यंतिक केंद्र है। जिस दिन हम मन को भी दूर खड़े होकर देखने में समर्थ हो जाते हैं, अपने ही मन को ऐसा देखने लगते हैं जैसे किसी और का हो, खुद के ही मस्तिष्क में चलते हुए विचार अपने नहीं मालूम होते, हमारा तादात्म्य टूट जाता है, हम दूर खड़े हो जाते हैं, हमारी उनसे आसक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है, बीच का सेतु बिखर जाता है, हम सिर्फ द्रष्टा हो जाते हैं। जैसे ही कोई व्यक्ति अपने मन का द्रष्टा हो जाता है, स्वर्ग के ताओ का रहस्य उसके सामने खुल जाता है। इसीलिए लाओत्से उसको स्वर्ग का ताओ कह रहा है, क्योंकि वह परम सुख है। स्वर्ग का अर्थ है परम सुख; ऐसा सुख जिसका फिर कोई अंत नहीं। ऐसे महासुख की जोशृंखला है वह साक्षी में प्रतिष्ठित होते ही प्रकट हो जाती है।

अगर हम मन को समझ लें, हमने संसार को समझ लिया; अगर हम चेतना को समझ लें तो हमने ब्रह्म को समझ लिया। मनुष्य की बूंद में, मनुष्य की छोटी सी बूंद में दोनों छिपे हैं--उसकी परिधि पर संसार, और उसके केंद्र पर ब्रह्म। एक-एक मनुष्य पूरे अस्तित्व की छोटी सी प्रतिकृति है, छोटा सा आणविक प्रतिबिंब है। अगर उसकी परिधि को पहचानें, तो संसार समझ में आ गया; अगर उसके केंद्र को समझ लें तो परमात्मा समझ में आ गया।

केंद्र को समझना हो तो मन के साक्षी होना जरूरी है और मन को समझना हो तो मन का विश्लेषण करना जरूरी है। ये दोनों अलग बातें हैं। मन को समझना हो तो विश्लेषण जरूरी है; मन की एक-एक घटना को तोड़ कर पहचानने की कोशिश जरूरी है। जिसको पश्चिम में वे मनोविश्लेषण कह रहे हैं, साइकोएनालिसिस कह रहे

हैं, वह मन का मंथन है। मन में लोभ उठा, तो इस लोभ की पूरी वृत्ति का विश्लेषण करना जरूरी है। कब उठता है, क्यों उठता है, कितने दूर तक फैलता है, किस भांति पकड़ता है, क्या परिणति होती है, कहां ले जाता है, फिर कैसे उठता है; इस लोभ के उठने वाले वृक्ष को उसके बीज से लेकर अंत फूलों तक स्पष्ट रूप से देखना, समझना, पहचानना, उसके स्वभाव को पकड़ना विश्लेषण है। और जो व्यक्ति मन का ठीक से विश्लेषण करने लगे वह संसार को समझ गया। क्योंकि संसार में इसी मन का खेल चल रहा है। सभी के पास यही मन है। और सभी इसी मन से प्रभावित होकर चल रहे हैं, जी रहे हैं।

इसे थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें। अपने मन का थोड़ा विश्लेषण करें। और अपने मन के कुछ सूत्र निकालें और नियम बनाएं। और फिर देखें कि दूसरे लोग भी उन्हीं नियमों के अनुसार काम कर रहे हैं या नहीं?

आप चकित हो जाएंगे, हर व्यक्ति उन्हीं नियमों के अनुसार काम कर रहा है। और तब आप दूसरे के भी भविष्यद्रष्टा हो सकते हैं। जब कोई आपको गाली देता है तो आपके भीतर क्या होता है, इसका पूरा विश्लेषण कर लें; फिर किसी को गाली देकर देखें। और तब आप जान सकते हैं कि जो-जो आपके भीतर हुआ है, ठीक उन्हीं कदमों में दूसरे व्यक्ति के भीतर होगा। और अगर आपने अपना विश्लेषण ठीक कर लिया है तो आप दूसरे के व्यवहार को भी तत्क्षण समझ जाएंगे।

इसलिए जीसस ने कहा है कि दूसरे के साथ वह मत करो जो तुम नहीं चाहते कि वह तुम्हारे साथ करे।

यह मन के विश्लेषण का सूत्र हुआ। इसको हम नीति का आधार कह सकते हैं। इसे हम अपने सारे व्यवहार की व्यवस्था बना सकते हैं कि मैं दूसरे के साथ वह न करूं जो मैं चाहता हूं कि दूसरा मेरे साथ न करे। क्योंकि एक ही मन दोनों के पास है, और जिससे मुझे दुख होता है उससे दूसरे को दुख होता है, और जिससे मुझे सुख होता है उसी से दूसरे को भी सुख होता है।

महावीर ने अपने पूरे आचरण, धर्म की व्यवस्था इसी सूत्र पर रखी है। और महावीर ने कहा है कि जानो कि जिससे तुम्हें दुख होता है उससे दूसरे को दुख होता है। और अगर तुम इतना जान कर दूसरे को दुख देने से बच सकते हो तो तुम अहिंसक हो गए। अहिंसा का इतना ही अर्थ है कि जो तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हारे साथ करे वह तुम दूसरे के साथ मत करना। पूरा जीवन बदल जाए।

लेकिन हम सब इसी भ्रांति में जीते हैं कि जब हमें कोई गाली देता है तब तो हमें दुख होता है, और जब हम किसी को गाली देते हैं तो शायद उसे आनंदित होना चाहिए, शायद उसे धन्यवाद देना चाहिए, उत्सव मनाना चाहिए कि आपने बड़ी कृपा की जो गाली दी। और जब दूसरा कोई हमें कुछ दान देता है, प्रेम देता है, कुछ बांटता है, तो हम प्रसन्न होते हैं। लेकिन हम दूसरे को बांटने को तैयार नहीं हैं; हम दूसरे से छीनने की कोशिश में लगे हैं। और जब हमें कोई सुखी करता है तो हम उसके सुख की कामना करते हैं।

ध्यान रहे, जब हम लोगों को सुखी करेंगे तो ही वे हमारे सुख की कामना करेंगे। लेकिन हमारे पास डबल बाइंड, दोहरे सिद्धांत हैं--अपने लिए अलग और दूसरे के लिए अलग। अधर्म का यही अर्थ हैः मैं अपने लिए कुछ और ढंग से सोचता हूं और दूसरे के लिए कुछ और ढंग से सोचता हूं। अगर कोई हमें गाली देता है या कोई हम पर क्रोध करता है, तो हम सोचते हैं कि यह दुष्ट है! और अगर हम किसी पर क्रोध करते हैं तो हम उसके सुधार के लिए कर रहे हैं। दूसरा हमारे सुधार के लिए कभी क्रोध करता हुआ मालूम नहीं होता; हम सदा दूसरे के सुधार के लिए क्रोध करते मालूम होते हैं। ये जो दोहरे सिद्धांत हैं, सारी बेईमानी इन दोहरेपन में छिपी है, सारा पाखंड इन दोहरेपन में छिपा है।

जो मैं सोचता हूं अपने लिए वही मेरा आधार होना चाहिए सबके लिए। और तब, तब जीवन एक दूसरे आयाम में गति करना शुरू कर देता है।

मन का ठीक विश्लेषण हो तो मनुष्य का आचरण तत्क्षण बदलना शुरू हो जाता है। क्योंकि उसे कीमिया हाथ लग गई, उसे सूत्र मिल गए कि वह दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करे। मन को कोई ठीक से समझ ले तो आदमी नैतिक हो जाता है। नैतिक नास्तिक भी हो सकता है। नैतिक होने के लिए आस्तिक होने की जरूरत नहीं है। नैतिक होने के लिए केवल थोड़ी सी बुद्धि होने की जरूरत है। अनैतिक आदमी बुद्धिहीन। वह गणित ही नहीं समझ रहा है, जीवन के खेल का गणित नहीं समझ रहा है। इसलिए भूल-चूक कर रहा है। नास्तिक भी नैतिक हो जाएगा, अगर मन को ठीक से समझ ले। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है--बर्ट्रेंड रसेल खुद नास्तिक है--बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि दुनिया में नैतिकता लाने के लिए आस्तिकता की कोई जरूरत नहीं है। और उसने ठीक लिखा है। सिर्फ मनुष्य को मन की पूरी शिक्षा देने की जरूरत है। इसके लिए कोई ईश्वरीय सिद्धांत आवश्यक नहीं हैं। इसके लिए तो सिर्फ मन का विश्लेषण काफी है। अगर हम आदमी के मन को साफ-साफ परख लें और उसी परख के अनुसार जीना शुरू कर दें तो जीवन नैतिक होगा। अनीति अपने आप बंद हो जाएगी।

मन का विश्लेषण नैतिकता में ले जाता है, और साक्षी का भाव धर्म में। इसलिए धर्म की शुरुआत मन के पीछे होती है। वह जो मन के पीछे मन को देखने वाला छिपा है, उसकी परख, उसकी पहचान, उसके साथ हमारा संबंध जुड़ जाना हमें धार्मिक बनाता है। धार्मिक होने से किसी के मुसलमान, ईसाई, पारसी, हिंदू, जैन होने का कोई संबंध नहीं है। धार्मिक होने से संबंध है स्वयं के साक्षी से जुड़ जाना, मैं देखने वाला बन जाऊं, द्रष्टा हो जाऊं। मुझमें दूर खड़े होने की क्षमता आ जाए, मैं अनासक्त भाव से अपने मन को देख सकूं।

इस देखने में विश्लेषण नहीं करना है, सोच-विचार नहीं करना है, सिर्फ दूर खड़े होकर देखना है। सारे विचार को छोड़ कर, मन में जो भी होता हो उसको देखना है। जैसे रास्ता चलता है और हम किनारे पर खड़े होकर देखते हैं जाते हुए ट्रैफिक को; न तो विचार करते, न सोचते कि कौन अच्छा आदमी जा रहा है, कौन बुरा आदमी जा रहा है; सिर्फ रास्ता चलता है और हम देखते हैं। शायद रास्ते को देखने में तो हमें अच्छे-बुरे का ख्याल भी आ जाए। आकाश में बादल जा रहे हैं तो हम नीचे लेट कर आकाश में चलते हुए बादलों को देखते हैं। न तो हम कहते यह बादल शुभ है, न कहते अशुभ है। हम कुछ विचार नहीं करते, बस चुपचाप देखते हैं।

इस चुपचाप देखने की कला को ही ध्यान कहा गया है। अगर आप मन के संबंध में निर्णय करना बंद कर दें; बुरा विचार हो तो भी न कहें कि बुरा है, अच्छा हो तो भी न कहें अच्छा है। क्योंकि जैसे ही हमने कहा अच्छा, पकड़ने का मन होता है; जैसे ही हमने कहा बुरा, हटाने का मन होता है। तो हम मन के साथ उलझ गए, हम मन के साथ सक्रिय हो गए। द्रष्टा न रहे, कर्ता हो गए। मन के साथ कोई क्रिया न की जाए, सिर्फ बैठ कर मन को देखा जाए--बिना किसी निंदा के, बिना किसी स्तुति के, बिना किसी मूल्यांकन के--सिर्फ मन को देखा जाए, तो धीरे-धीरे मन और आपके बीच दूरी बढ़ने लगती है, और तब मन अलग और आप अलग हो जाते हैं।

यह जो अलग हो जाने का बोध है, यही उस सूत्र में ले जाता है, "अपनी खिड़कियों के बाहर बिना झांके, कोई स्वर्ग के ताओ को देख सकता है।"

फिर तो आंख भी खोलने की जरूरत नहीं। ये खिड़कियां हैं हमारी, आंख हैं, कान हैं, हाथ हैं, ये हमारी खिड़कियां हैं। इनको भी खोलने की जरूरत नहीं। इनको भी बंद करके भीतर ही देखा जा सकता है। क्योंकि वह भीतर मौजूद है। क्योंकि हम वही हैं। हमारा होना और उसका, दो भिन्न बातें नहीं हैं। उपनिषदों ने कहा हैः

तत्वमसि, दैट आर्ट दाऊ। वह तुम ही हो, वह जिसकी हम खोज कर रहे हैं--ताओ की, ब्रह्म की, स्वभाव की, धर्म की, आत्मा की।

"जो ज्ञान का जितना ही पीछा करता है, वह उतना ही कम जानता है।"

सारी भाषा लाओत्से की पैराडाक्सेस, विरोधाभासों की है। वह कुछ इतनी गहरी बात कहना चाहता है कि उसे केवल विरोधाभास से ही कहा जा सकता है।

"जो ज्ञान का जितना ही पीछा करता है, वह उतना ही कम जानता है।"

कठिन लगता है। क्योंकि हम तो ज्ञान का पीछा न करेंगे तो जानेंगे कैसे? लाओत्से यह कह रहा है, पंडित अज्ञानी है। पंडित ज्ञान का पीछा करता है। इस पीछा करने में दो-तीन बातें ख्याल ले लेनी जरूरी हैं।

पहली बात तो यह, जो भी ज्ञान का पीछा करता है वह यह माने हुए बैठा है कि ज्ञान भीतर नहीं है, कहीं और है; उसका पीछा करना है। पीछा तो हम सदा दूसरे का करते हैं। अपना तो कोई पीछा कैसे करेगा? अपने ही पीछे तो आप कैसे दौड़ सकते हैं? सदा दूसरे के पीछे दौड़ सकते हैं। तो जो भी ज्ञान का पीछा कर रहा है वह ज्ञान को पराया मान रहा है, दूसरा मान रहा है। और ज्ञान की क्षमता भीतर छिपी है; वह आपके स्वयं के होने का गुणधर्म है। इसलिए जो जितना पीछा करेगा उतना ही दूर निकल जाएगा।

दूसरी बात, ज्ञान का जो पीछा करता है वह सोचता है कि ज्ञान कोई संपदा है जिसे इकट्ठा किया जा सकता है; जैसे आप तिजोड़ी में धन इकट्ठा कर सकते हैं ऐसे आप ज्ञान भी इकट्ठा कर सकते हैं।

ज्ञान कोई संपदा नहीं है। और ज्ञान को जो संपदा मान लेता है वह इनफर्मेशन और जानकारी में ही उलझ जाता है। फिर वह इकट्ठा कर लेता है। वह कितनी ही जानकारी इकट्ठी कर ले सकता है, लेकिन वह जानकारी ज्ञान नहीं बनेगी। ज्ञान तो वह है जो मेरे अनुभव से आता है। जानकारी किसी दूसरे के अनुभव से आती है। महावीर कुछ कहते हैं; वह उनके लिए ज्ञान होगा आपके लिए जानकारी होगी। अगर मैं आपसे कुछ कह रहा हूं, तो हो सकता है वह मेरे लिए ज्ञान हो, आपके लिए जानकारी हो जाएगी। जब तक आपका अनुभव न बन जाए तब तक कोई ज्ञान नहीं होता। पीछा जानकारी का किया जा सकता है, अनुभव का पीछा करने का कोई उपाय नहीं है। अनुभव के लिए तो स्वयं में डूब जाने की जरूरत है। जानकारी के लिए किसी और के पीछे जाने की जरूरत है।

इसलिए लाओत्से तो कहता है, गुरु के भी पीछे जाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि गुरु के पीछे भी जाने का मतलब यह होगा कि आप कुछ इकट्ठा कर रहे हैं। गुरु की भी जरूरत इतनी ही है कि वह आपको आप में ही भेज दे। गुरु का काम आत्मघाती है। आत्मघाती इसलिए कि गुरु अपनी हत्या कर ले, गुरु जितने जल्दी अपने गुरुपन को मिटा दे और शिष्य को उसके भीतर भेज दे। जितने जल्दी गुरु शिष्य को राजी कर ले कि तू मुझे भूल जा और अपना स्मरण कर; कि मैं नहीं हूं, तू ही है; कि बाहर आंख खोल कर मुझे मत देख, भीतर आंख खोल और अपने को देख; गुरु जितने जल्दी शिष्य को राजी कर ले कि शिष्य सब खिड़कियां बंद करके भीतर डूब जाए, उतना ही समर्थ गुरु है।

जो गुरु शिष्य को राजी करे कि तू सदा मेरे पीछे चलता रहे, वह दुश्मन है, वह गुरु तो है ही नहीं। क्योंकि वह किसी बाहर की दिशा पर ले जा रहा है। प्रत्येक को भेज देना है उसके भीतर। बाहर के सारे मोह तुड़वा देने हैं, बाहर के सारे सेतु गिरा देने हैं, बाहर के सारे संबंध काट देने हैं, ताकि शिष्य, कोई उपाय न रह जाए बाहर जाने का, अपने भीतर डूब जाए।

"जो ज्ञान का जितना ही पीछा करता है, वह उतना ही कम जानता है।"

इस सूत्र का एक और भी अनूठा अर्थ है जो कि हमें विज्ञान में दिखाई पड़ता है।

आज से दो हजार साल पहले पश्चिम में केवल एक ही विज्ञान था। फिर जैसे-जैसे ज्ञान का पीछा हुआ, विज्ञान टूटा, ब्रांचेज, शाखाओं में बंटा। फिर एक-एक शाखा भी टूट गई, छोटी उपशाखाओं में बंट गई। अब एक-एक उपशाखा भी टूट गई। आज पश्चिम में, आक्सफोर्ड में कोई तीन सौ वैज्ञानिक शास्त्रों का अध्ययन करवाया जाता है। और इन तीन सौ विज्ञानों के बीच कोई संबंध नहीं है। एक विज्ञान दूसरे विज्ञान की भाषा नहीं समझ सकता। फिजिक्स क्या बोलती है, केमिस्ट्री जानने वाले को कुछ पता नहीं। बायोलाजी क्या कह रही है, साइकोलाजी जानने वाले को कुछ पता नहीं। इन सबके बीच कोई संबंध नहीं रहा है। और हर विज्ञान एक अंधा मार्ग हो गया है। और जितनी ज्यादा जानकारी बढ़ती जाती है उतने ही कम के संबंध में ध्यान जुटता जाता है। जितने कम के संबंध में ध्यान जुटता है उतनी ही ज्यादा जानकारी बढ़ती है। और जितनी ज्यादा जानकारी बढ़ती है उतने कम के संबंध में ध्यान बढ़ता है।

तो विज्ञान--प्रत्येक विज्ञान--एक-एक बिंदु पर अटक गया है। समग्र का कोई चित्र नहीं उभरता। और सभी विज्ञान क्या कह रहे हैं इसका कोई संतुलित संगीत पैदा नहीं होता। सभी विज्ञानों की क्या सिंथीसिस होगी, असंभव है। क्योंकि आज कोई भी एक मनुष्य सभी विज्ञानों को जान ले, यह असंभव है। इसलिए सिंथीसिस कैसे हो? कौन इन सबके बीच सूत्र को खोजे?

अब तो एक ही उपाय है पश्चिम में। वैज्ञानिक कहते हैं कि कंप्यूटर और विकसित हो जाएं तो ही उपाय है कि सभी विज्ञान क्या कह रहे हैं, इनका सार खोजा जा सके। क्योंकि कंप्यूटर को सभी विज्ञान सिखाए जा सकते हैं। कंप्यूटर बता सकेगा कि सभी विज्ञान क्या कह रहे हैं, उनका सार-निचोड़ क्या है। अन्यथा करीब-करीब विज्ञान की हालत वैसी है जैसी पश्चिम में एक कहानी है। वह कहानी आपने सुनी होगी, बैबेल के एक टावर की कहानी है।

बेबीलोनिया की बड़ी पुरानी सभ्यता थी, और बेबीलोनिया की सभ्यता नष्ट हुई एक घटना से। वह घटना एक मिथ है, लेकिन बड़ी मूल्यवान, कि बेबीलोनियन सभ्यता के लोगों ने यह सोचा कि हम एक मीनार बनाएं, एक टावर बनाएं, जो स्वर्ग तक जाए। तो उन्होंने बनाना शुरू किया। उनके पास जितनी ताकत थी, उन्होंने एक टावर बनाने में लगा दी। फिर धीरे-धीरे टावर स्वर्ग के करीब पहुंचने लगा। देवता चिंतित हो गए, क्योंकि वे करीब आते जा रहे थे, रोज उनका मीनार ऊंचा उठता जा रहा था। और देवताओं को लगा कि यह तो हमला हो जाएगा, और अगर ये बेबीलोनिया के सारे लोग स्वर्ग आ गए तो स्वर्ग की शांति, स्वर्ग का सुख, सब नष्ट हो जाएगा। इतनी भीड़ को प्रवेश देने के लिए वे राजी नहीं थे। और सदा से स्वर्ग में इक्के-दुक्के लोग प्रवेश करते रहे थे। ऐसा सामूहिक हमला कभी हुआ भी नहीं था। और अगर एक दफा लोगों ने सीढ़ियां बना लीं तो फिर तो कोई उपाय नहीं है, फिर अच्छे-बुरे का भेद करना भी कठिन है। फिर कौन आए, कौन न आए, यह भी मुश्किल है। फिर तो जो बुरे हैं वे पहले चढ़ जाएंगे। शायद अच्छा चढ़ भी न पाए।

इसलिए बड़ी चिंता व्याप्त हो गई। सारे देवताओं ने समिति बुलाई और उन्होंने कुछ निर्णय लिया। और जिस दिन उन्होंने निर्णय लिया उसके दूसरे दिन से टावर उठना बंद हो गया। वह निर्णय बहुत मजेदार था। वह निर्णय यह था कि देवताओं ने कहा कि जब सांझ को सारे बेबीलोनिया के निवासी थक कर सो जाएं तब उनकी बेहोशी में देवता जमीन पर जाएं और हर आदमी को सिर्फ एक ख्याल दे दें--कि यह टावर मैं बना रहा हूं, मेरी वजह से यह टावर स्वर्ग तक पहुंच रहा है।

बस इतना काफी है सबको सिखा देना। दूसरे दिन उपद्रव शुरू हो गया। टावर बनाना तो एक तरफ रहा, मार-पीट, झगड़ा-झांसा नीचे शुरू हो गया। क्योंकि हर आदमी दावा करने लगा कि मैंने बनाया! और हकदार मैं हूं! और अंत में मेरा नाम ही इस पर खोदना होगा!

कहते हैं कि वह टावर तो वहां रुक ही गया, विवाद इतना बढ़ा कि हत्याएं हो गईं; बेबीलोनिया की पूरी सभ्यता नष्ट हो गई। क्योंकि अहंकार जब जग जाए तो स्वर्ग तक जाने का उपाय बंद हो जाता है। सीढ़ी भी लग गई हो तो रखी रह जाएगी। अहंकार न हो तो बिना सीढ़ी के भी कोई स्वर्ग तक पहुंच सकता है।

विज्ञान की हालत करीब-करीब आज बेबीलोनिया के टावर जैसी है। हर विज्ञान कह रहा है कि हम ठीक हैं, मैं ठीक हूं, शेष सब गलत हैं। जो फिजिक्स में निष्णात है वह मानता है कि बस फिजिक्स ही एकमात्र विज्ञान है, और ये मनोविज्ञान की जो बातें करने वाले लोग हैं, ये व्यर्थ की बकवास कर रहे हैं। आदमी सिवाय अणु के जोड़ के और कुछ भी नहीं। न वहां कोई मन है, न कोई आत्मा है। उनके हिसाब से बिल्कुल ठीक है, क्योंकि वे अणु की ही खोज कर रहे हैं। जो आदमी बायोलाजी की खोज कर रहा है वह कह रहा है कि यह व्यर्थ की बात है। क्योंकि अणु तो मृत है, मनुष्य का जीवकोष्ठ जीवंत है। वह जीवकोष्ठ ही सब कुछ है। और जीवन को मृत से नहीं समझाया जा सकता। बायोलाजी और फिजिक्स एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते। हर विज्ञान की अपनी भाषा है, और अपना अहंकार है। तीन सौ विज्ञान हैं, तीन सौ अहंकारों के दावे हैं।

इधर तीन सौ विज्ञान हैं, और करीब तीन सौ धर्म भी हैं जमीन पर। यह संख्या महत्वपूर्ण मालूम पड़ती है। तीन सौ धर्म हैं जमीन पर, और ये तीन सौ धर्म भी बेबीलोन के टावर की भाषा बोलते हैं। हर धर्म बोलता है कि मैं ठीक हूं और बाकी सब गलत हैं।

ज्ञान का शिखर उठना तो बंद हो गया, अहंकार के कारण अज्ञान का शिखर उठ रहा है। और सब एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने में लगे रहते हैं। इसकी बहुत चिंता नहीं है कि ठीक कौन है, इसकी बहुत चिंता है कि दूसरा गलत हो। और जब मैं दूसरे को गलत सिद्ध कर लेता हूं तब भी जरूरी नहीं है कि मैं ठीक होऊं। मैं भी गलत हो सकता हूं। लेकिन दूसरे को गलत सिद्ध करके ऐसी प्रतीति होती है कि मैं ठीक हो गया।

"ज्ञान का जो जितना ही पीछा करता है, उतना ही कम जानता है।"

क्योंकि जितना पीछा किया जाता है उतनी संकीर्ण गली होती जाती है, उतना केंद्रित होता जाता है। आखिर में एक छोटा सा बिंदु हाथ लगता है; विराट खो जाता है। ब्रह्म खो जाता है, अणु हाथ लगता है।

विराट को जानना हो तो ज्ञान का पीछा नहीं चाहिए। विराट को जानना हो तो आंख बंद कर लेनी चाहिए, ताकि कहीं भी कोई बिंदु न दिखाई पड़े। कोई दिशा में जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि दिशा अधूरे पर ले जाएगी। सत्य तो सभी दिशाओं में फैला हुआ है। यह दसों दिशाओं में सत्य फैला हुआ है। अगर मैं एक दिशा को चुनता हूं तो मैं गलत हो ही जाऊंगा। क्योंकि नौ दिशाओं को मुझे छोड़ना पड़ेगा। सत्य के नौ पहलू छूट जाएंगे और एक पहलू मेरी पकड़ में आएगा। और मुझे लगेगा कि यही पहलू पूरा सत्य है। और जब कोई अधूरे सत्य को सत्य का दावा कर देता है, तभी अज्ञान सघन हो जाता है। तो अगर मुझे सभी दिशाओं को जानना हो तो मुझे सभी दिशाओं को छोड़ कर चुपचाप अपने में डूब जाना चाहिए। भीतर की चेतना एक ऐसी जगह है जहां कोई दिशा नहीं है; वह ग्यारहवीं दिशा है। भीतर की चेतना में कहीं कोई दिशा नहीं है; वह दिशाशून्य है। और जब कोई भीतर की चेतना में प्रतिष्ठित हो जाता है तो वह समग्र को जानता है। पीछे जाने वाला अंश को जानता है; भीतर जाने वाला समग्र को जानता है।

"जो ज्ञान का जितना पीछा करता है, उतना ही कम जानता है। इसलिए संत बिना इधर-उधर भागे ही जानते हैं, बिना देखे ही समझते हैं, और बिना कर्म किए हुए संपन्न करते हैं।"

"इसलिए संत बिना इधर-उधर भागे ही जानते हैं।"

हम तो कुछ भी पाना चाहें तो भागना ही उपाय दिखता है। अगर हम धर्म का सत्य भी जानना चाहें तो भी भागना ही उपाय दिखता है। कोई काशी जा रहा है, कोई मक्का जा रहा है, कोई कैलाश जा रहा है। कहीं जा रहे हैं। कुछ पाना है तो कहीं जाना होगा; हमारा गणित ऐसा है। अगर न मिले जाने से तो उसका मतलब हम गलत जगह गए, कहीं और जाना चाहिए। इस गुरु के पास गए, नहीं मिला; दूसरे गुरु के पास जाना चाहिए। दूसरे के पास न मिले तो तीसरे के पास जाना चाहिए। काशी न मिले तो मक्का खोजना चाहिए। मक्का न मिले तो जेरुसलम है। लेकिन जाना गलत है, यह ख्याल में नहीं आता। जहां गए वह जगह गलत है तो दूसरी जगह चुननी चाहिए।

लाओत्से कह रहा है कि तुम कुछ भी करो, अ के पास जाओ, कि ब के, कि स के, कि तुम संसार में कहीं भी जाओ, तुम उसे नहीं पा सकोगे। क्योंकि जाना गलत है। तुम जहां हो वहीं उसे पाओगे। तुम जहां हो वहीं रुक जाओगे तो उसे पाओगे। इसलिए सभी तीर्थ गलत हैं। सिर्फ एक तीर्थ सही है, वह तुम हो। सभी मंदिर और मस्जिद व्यर्थ हैं। एक ही शिवालय है, वह तुम हो।

"संत बिना इधर-उधर भागे ही जानते हैं।"

असल में, संत रुक कर जानते हैं। भागना अज्ञान का लक्षण है। रुकना ज्ञान का लक्षण है। इस जगत में जो भी पाना हो वह भाग कर पाया जाता है। और जो जितनी तेजी से भागता है उतने जल्दी पाता है। लेकिन उस जगत में--इस माया के, स्वप्न के, व्यर्थ के जगत में दौड़ कर पाया जाता है--उस सत्य के, यथार्थ के जगत में रुक कर पाया जाता है। यहां के और वहां के नियम बिल्कुल विपरीत हैं। यहां रुके कि खो देंगे।

कोई आदमी अगर दौड़े न तो धन कैसे पाएगा? जितना दौड़े उतना ही पा सकता है। घर बैठा रहे... । इस सूत्र को समझ कर, धन कमाना हो तो घर मत बैठ जाना। घर कोई बैठा रहे आंख बंद करके तो धन नहीं आ जाएगा। धन के लिए तो दौड़ना जरूरी है। धन के लिए तो पागल होकर दौड़ना जरूरी है। धन के लिए तो अपना होश छोड़ कर दा.ैडना जरूरी है। एक दिन धन आ जाएगा, आप नहीं बचेंगे। क्योंकि दौड़ में आप खो जाएंगे, नष्ट हो जाएंगे। और जितने जल्दी आप नष्ट हो जाएंगे, उतना ज्यादा धन आप इकट्ठा कर ले सकते हैं। धनी जब धन को पाता है तब पीछे लौट कर देखता है कि जो निकला था खोजने वह तो है ही नहीं, वह कभी का मर चुका। वह जितनी जल्दी मर जाए उतनी आप कठोरता से धन इकट्ठा भी कर सकते हैं। वह अगर जिंदा रहे तो बाधा डालेगा। कभी-कभी वह कहेगा, रुको, कहां दौड़ते हो, क्यों व्यर्थ परेशान होते हो? उसकी तो गर्दन घोंट देनी जरूरी है। भीतर की आवाज तो बंद ही हो जानी चाहिए। वह कभी कहे ही नहीं, भीतर कोई इशारा न करे कि रुको। क्योंकि रुकना खतरनाक है।

नहीं, धन पाना हो तो रुक कर नहीं मिलेगा। लेकिन अगर धर्म पाना हो तो रुक कर मिलेगा। उनकी यात्राएं अलग हैं; उनके नियम, उनकी व्यवस्थाएं विपरीत हैं। संसार का जो नियम है, सत्य का ठीक विपरीत नियम है। यहां दौड़ो तो मिलता है; वहां ठहरो तो मिलता है।

झेन फकीर रिंझाई ने कहा है, रुको! और जो भी तुम पाना चाहते हो वह तुम्हारे पास है। खोजो मत, क्योंकि तुमने खोजा कि तुम भटके।

सारे ज्ञानी एक ही बात समझा रहे हैं कि तुम ठहर जाओ। शरीर भी ठहर जाए, मन भी ठहर जाए; कोई गति न रहे भीतर। इसलिए इतना जोर दिया हैः इच्छा नहीं, वासना नहीं। क्योंकि इच्छा और वासना का एक ही मतलब है कि वे दौड़ाने के उपाय हैं। इच्छा का मतलब हैः दौड़ो। इच्छा का मतलब हैः वह रहा स्वर्ग, दस कदम आगे; दस कदम पार किए कि स्वर्ग मिल जाएगा। इच्छा कभी भी नहीं कहेगी कि यहीं है स्वर्ग जहां तुम खड़े हो। वह कहेगी, सदा कहीं और है जहां तुम नहीं हो; दौड़ो। दौड़ की जो प्रेरणा है, वही वासना है। रुकने का जो भाव है, ठहरने की जो वृत्ति है, वही निर्वासना है।

तो बुद्ध निरंतर अपने भिक्षुओं से कहते हैं कि तुम पाने की बात ही छोड़ दो। क्योंकि जब तक तुम्हारे मन में पाने का कुछ भी रोग सवार है तब तक तुम रुकोगे कैसे? इसलिए बुद्ध यहां तक भी कहते हैं कि न कोई परमात्मा है जिसे पाना है। क्योंकि अगर तुम्हें जरा भी ख्याल रहा कि परमात्मा है तो तुम्हारे मन में वासना जगेगी कि परमात्मा को कैसे पा लें। बुद्ध कहते हैं, न कोई मोक्ष है जिसे पाना है। नहीं तो तुम दौड़ोगे। न कहीं कोई ब्रह्म है; तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कुछ भी नहीं है। और तुम यहीं हो। इसलिए कहीं जाने का कोई सवाल नहीं है।

बुद्ध को समझा नहीं जा सका; लोग समझे कि नास्तिकता की बात है। न ब्रह्म, न मोक्ष, कहीं जाना नहीं है, तो फिर धर्म कैसे होगा? और कुछ पाना नहीं है तो लोग तो भ्रष्ट हो जाएंगे, संसार में भटक जाएंगे। बुद्ध को समझना कठिन है। क्योंकि बुद्ध कह रहे हैं कि कुछ भी पाने योग्य नहीं है, न संसार में और न मोक्ष में। ताकि तुम दौड़ो मत, ताकि तुम ठहर जाओ। और तुम ठहरे कि सब मिल जाएगा। चाहे तुम उसे ब्रह्म कहना, चाहे तुम उसे मोक्ष कहना, निर्वाण कहना, जो तुम्हारे मन में आए, लेकिन तुम रुक जाओ तो वह मिल जाएगा।

बुद्ध से कोई पूछता है बाद के दिनों में कि आपने कैसे पाया? तो बुद्ध ने कहा, जब तक पाने की कोशिश की तब तक नहीं मिला। जब ऊब गया, थक गया, कोशिश भी छोड़ दी पाने की, उसी क्षण, उसी क्षण अनुभव हुआ कि जिसे मैं खोज रहा था वह सदा से मुझे मिला हुआ है। लेकिन खोज के कारण मेरी आंखें बाहर भटकती थीं और मैं भीतर देखने में समर्थ न हो पा रहा था। करीब-करीब ऐसा ही कि आप खिड़की से बाहर झांक रहे हों, और घर के भीतर जो खजाना रखा है उस तरफ नजर न जाए, उस तरफ पीठ रही आए।

"इसलिए संत बिना इधर-उधर भागे ही जानते हैं, बिना देखे ही समझते हैं, और बिना कर्म किए सब कुछ संपन्न करते हैं।"

बिना देखे ही समझते हैं! जो भी देखा जा सकता है वह पराया होगा, वह बाहर होगा। आत्मा को देखा नहीं जा सकता। यद्यपि हमारे पास शब्द हैंः आत्म-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार, आत्म-ज्ञान। ये सभी शब्द गलत हैं। क्योंकि इन शब्दों से भ्रांति हो सकती है। मैं आपको तो देख सकता हूं, क्योंकि आप मुझसे अलग हैं, मैं स्वयं को कैसे देखूंगा? कौन देखेगा और किसको देखेगा? वहां एक ही है, देखने के लिए दो की जरूरत है। अगर मैं स्वयं को देखूं तो जिसको मैं देखूंगा वह मैं नहीं हूं; जो देख रहा है वह मैं हूं। मैं सदा ही देखने वाला रहूंगा। मैं दृश्य नहीं बन सकता, मैं सदा द्रष्टा ही रहूंगा।

इसलिए लाओत्से कहता है, "बिना देखे समझते हैं।"

वहां देखने का कोई उपाय नहीं है। आप अपने को कैसे देख सकते हैं? देखने के लिए बंटना जरूरी हैः कोई देखे, कोई दिखाई पड़े; कोई दृश्य हो, कोई द्रष्टा हो; कोई आब्जेक्ट, कोई सब्जेक्ट। और आप? आप सदा ही देखने वाले हैं। इसलिए आत्म-दर्शन नहीं हो सकता, आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। शब्द के अर्थ में गलत है। वहां

तो बिना जाने जानना होगा, और बिना देखे दिखाई पड़ेगा। वहां प्रतीति होगी, एहसास होगा, अनुभूति होगी। लेकिन वहां कोई बंटाव नहीं होगा। वहां दो नहीं होंगे, वहां एक होगा।

"बिना देखे समझते हैं, और बिना कर्म किए सब कुछ संपन्न करते हैं।"

सब कुछ करते हैं। संत कोई भाग गया हुआ नहीं है, वह कोई भगोड़ा नहीं है। पलायनवादी तो डरा हुआ आदमी है, वह तो भयभीत है। अगर वह कर्म के जगत में रहा तो उससे गलती हो जाएगी, इसका उसे भय है। अगर उसने स्त्री को देखा तो वासना उठेगी, इसका उसे भय है। अगर उसने धन देखा तो वह मालिक बनना चाहेगा, इसका उसे भय है। अगर उसने पद देखा तो वह पद पर होना चाहेगा, इसका उसे भय है। इसलिए वह भागता है। भागना भय के कारण होता है। जो भागता है वह कमजोर है। भागने वाला समर्थ नहीं हो सकता। भागने का मतलब ही यह है कि मैं भयभीत हूं, मैं डरा हुआ हूं; मैं परिस्थिति छोड़ रहा हूं। संत तो सब कुछ करेगा; करने के जगत में होगा; क्योंकि भय की कोई बात नहीं है। लेकिन यह सारा करना ऐसे होगा जैसे कोई अभिनय कर रहा है।

इस बात को ठीक से समझ लें। एक आदमी राम बनता है रामलीला में। सीता खो जाती है, चोरी चली जाती है। वह रोता है, चिल्लाता है, सीता! सीता! वृक्षों से पूछता है, मेरी सीता कहां है? और भीतर उसको कुछ भी नहीं हो रहा। कृत्य वह पूरा कर रहा है। शायद राम भी देखें तो वे भी थोड़ा संकोच अनुभव करें कि इतने जोरदार ढंग से मैंने भी नहीं किया था, जिस ढंग से अभिनेता करेगा; जैसे वृक्ष से पूछेगा जिस ढंग से, जिस लज्जत से। आंख से आंसू टपक रहे होंगे, और भीतर कोई रुदन नहीं। पर्दा गिरेगा, वह पीछे जाकर मजे से चाय पीएगा। सीता का खोना न खोना अभिनेता के लिए मूल्य नहीं रखता; कर्ता के लिए मूल्य रखता है। अगर लगता हो, मेरी सीता खो गई, तो अड़चन है। मेरे अहंकार को पीड़ा और चोट लगे तो अड़चन है। मेरे राग, मेरी कामना और वासना को चोट लगे तो अड़चन है। मेरी आसक्ति को घाव लगे तो अड़चन है। लेकिन अगर मैं वहां नहीं हूं, कर्ता नहीं हूं; सिर्फ अभिनेता हूं।

संत अभिनय कर रहा है। जो भी इस संसार के मंच पर जरूरी है, कर रहा है, लेकिन इस करने में वह कर्ता नहीं है। रो भी सकता है, हंस भी सकता है; लेकिन न हंसने में है और न रोने में है।

कृष्ण बहुत जोर देकर अर्जुन को गीता में यही बात समझा रहे हैं कि तू लड़ एक अभिनेता की तरह, तू कर्ता मत बन; तू समझ कि परमात्मा ने इस परिस्थिति में तुझे रखा, यही तेरा नाटक है, तू इसे पूरा कर। तू इससे भाग मत। क्योंकि भागने में तो तू भयभीत होगा, भागने में तो तू भागने का कम से कम कर्ता हो जाएगा। तू अपनी तरफ से निर्णय मत ले। परिस्थिति जहां तुझे ले आई है, नियति ने तुझे जहां खड़ा कर दिया है, तू उसे चुपचाप स्वीकार कर ले और पूरा कर दे। तू अपने को निमित्त मान।

लाओत्से कह रहा है, "और बिना कर्म किए हुए सब कुछ संपन्न करते हैं।"

अपनी तरफ से कुछ भी नहीं कर रहे हैं, अस्तित्व उनसे जो करवा ले। जीवन तो जीवन और मृत्यु तो मृत्यु! अस्तित्व उन्हें जहां ले जाए, वे चुपचाप चले जाते हैं। लाओत्से का वचन है, संत सूखे पत्ते की तरह हैं, हवा उन्हें जहां ले जाए, पूरब तो पूरब, पश्चिम तो पश्चिम। जमीन पर गिरा दे तो ठीक और आकाश में उठा दे तो ठीक। सूखा पत्ता अपना निर्णय नहीं ले रहा है, हवा जहां ले जाए। उसका अपना कोई अहंकार नहीं है, उसका अपना कोई मैं-भाव नहीं है। उससे बहुत कर्म होते हैं; शायद साधारण आदमी से ज्यादा कर्म होते हैं। थोड़ा समझें।

एक अभिनेता रामलीला में राम का काम कर सकता है; दूसरे दिन रामलीला में रावण बन सकता है; तीसरे दिन कुछ और बन सकता है। और एक जिंदगी में हजार अभिनय कर सकता है। राम एक ही अभिनय कर सकते हैं अपनी जिंदगी में। अभिनेता के करने की क्षमता बढ़ जाती है। क्योंकि उसका कर्ता कहीं जुड़ता नहीं, इसलिए वह हमेशा पीछे बचा हुआ है। सब ऊपर-ऊपर है। वह चुकता नहीं, उसकी शक्ति व्यय नहीं होती।

अगर आप अभिनेता हैं तो आपके जीवन में विराट कर्म हो सकता है, अनंत कर्म हो सकते हैं, और फिर भी आप थकेंगे नहीं। अगर आप कर्ता हैं तो छोटा सा कर्म थका देगा; उसमें ही जिंदगी चुक जाएगी और नष्ट हो जाएगी। एक बार मैं छूट जाऊं अलग अपने कर्मों से, उनका द्रष्टा हो जाऊं और उनको सिर्फ स्वीकार कर लूं एक नाटक के मंच पर खेले गए अभिनय जैसा, फिर कितना ही कर्म हो जीवन में, वह कर्म मुझे छुएगा नहीं, थकाएगा नहीं, बासा नहीं करेगा। बल्कि हर कर्म मुझे और ताजा कर जाएगा, हर कर्म मेरी शक्ति को और नया कर जाएगा। हर कर्म मेरी शक्ति के लिए सिर्फ एक खेल होगा।

ध्यान रहे, जब आप काम करते हैं तो थकते हैं, और जब आप खेलते हैं तो आप ताजे हो जाते हैं। यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि खेल भी काम है। शायद खेल में ज्यादा भी श्रम पड़ता हो काम से, लेकिन खेल में आप थकते नहीं, ताजे होते हैं। आदमी दिन भर का थका हुआ आता है काम से, और वह कहता है कि जरा मैं खेल लूं तो ताजा हो जाऊं। खेल में भी श्रम हो रहा है। अगर हम शरीर-शास्त्री से पूछें तो वह जांच कर बता देगा--कितनी कैलोरी खर्च हो रही है, कितना श्रम हो रहा है, कितनी शरीर की ऊर्जा व्यय हो रही है। और यह आदमी कह रहा है कि मैं खेल कर ताजा हो जाऊंगा। दिन भर का थका हुआ आदमी खेल कर ताजा हो जाता है।

खेल में आदमी अभिनेता हो जाता है, कर्ता नहीं। और अगर कोई आदमी दिन भर ही खेल में हो, दुकान पर भी, बाजार में भी, तो उसके थकने का कोई उपाय नहीं है। और अगर आप खेल में भी काम बना लें। जैसे कुछ लोग प्रोफेशनल होते हैं; फुटबाल का कोई खिलाड़ी है पेशेवर, वह थकता है। खेलता वह भी है, लेकिन वह थक कर लौटता है। क्योंकि उसके लिए यह धंधा था। वह कोई खेलने नहीं गया था; उसका धंधा था। एक खेल में खेल कर उसे इतने रुपये मिल जाने हैं, उतने रुपये लेकर घर लौट आया। वह प्रोफेशनल है। प्रोफेशनल थक जाएगा, पेशेवर थक जाएगा। क्योंकि खेल उसके लिए काम हो गया।

अगर काम आपके लिए खेल हो जाए तो आपके थकने का कोई उपाय नहीं।

इसलिए संत कभी थका हुआ नहीं है। उसके भीतर वह सदा ताजा है; अनंत स्रोत से जुड़ा है। अहंकार से हट गया है तो परमात्मा से जुड़ गया है। मैं की क्षुद्रता से हट गया है तो परम ब्रह्म की विराटता से एक हो गया है। उस महास्रोत से जुड़ कर फिर वह निमित्त है, एक साधन मात्र है।

"और बिना कर्म किए संत सब कुछ संपन्न करता है।"

आज इतना ही।

पचासीवां प्रवचन

जीवन परमात्मा-ऊर्जा का खेल है

पहला प्रश्नः प्रथम दिन की चर्चा में आपने समझाया कि अयोग्यता ताओ चिंतना का कीमती शब्द है, तथा उसका बहुत आध्यात्मिक मूल्य है। इस संदर्भ में ऐसा लगता है कि तामसी व आलसी लोग तो अयोग्यता के गुण से संपन्न होते ही हैं, लेकिन फिर भी उनका आध्यात्मिक विकास होता दिखाई नहीं पड़ता। इस विषय में आपकी क्या दृष्टि है?

लाओत्से जिसे अयोग्यता कहता है वह गहनतम योग्यता का नाम है। वह आलस्य नहीं है, विश्राम की परम दशा है। वह तमस भी नहीं है, ऊर्जा की अत्यंत प्रज्वलित स्थिति है।

फर्क को ठीक से समझ लें। भ्रांति स्वाभाविक है, क्योंकि जो व्यक्ति भी निष्क्रिय बैठा है, हमें लगेगा, आलसी है। सभी निष्क्रिय बैठे हुए व्यक्ति आलसी नहीं होते। जिसे हम आलसी कहते हैं, खाली तो वह भी नहीं बैठता; मन का काम जारी रहता है। शायद आलसी आदमी शरीर से कुछ न करता हो, मन से तो पूरी तरह करता है। और जहां शरीर की गति वाले लोग दौड़ रहे हैं वहां वह भी अपनी कामना और वासना से दौड़ता है। उसके मन के संबंध में कोई फर्क नहीं है। हमें आलसी दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमारे जैसा नहीं दौड़ रहा है। दौड़ तो वह भी रहा है।

अगर आलस्य परम हो जाए, जिसको लाओत्से कह रहा है निष्क्रियता, तो आलस्य ही योग्यता हो जाएगी। लेकिन निष्क्रियता चाहिए पूर्ण। शरीर ही न रुका हो, मन भी रुक गया हो, कोई भी क्रिया न रह जाए। तो आध्यात्मिक विकास दूर नहीं है। आलस्य शब्द को सुनते ही हमारे मन में निंदा उठ आती है। क्योंकि हम सब जीते हैं प्रयोजन से, क्रिया से, कर्म से, फल से। हमने आलसी को बुरी तरह निंदित किया है। हमसे विपरीत है आलसी। इसलिए यह तो हम सोच ही नहीं सकते कि ऐसी भी कोई स्थिति हो सकती है आलस्य की जो अध्यात्म बन जाए। परम आलस्य की स्थिति अध्यात्म बन जाएगी--शरीर ही न रुके, मन भी रुक जाए।

जिसे हम आलस्य कहते हैं, वह क्रिया करने की वासना से मुक्ति नहीं है। क्रिया की वासना तो पूरी मौजूद है, लेकिन उस वासना के साथ शरीर को दौड़ाने की क्षमता नहीं है। हमारा जो आलस्य है, वह नपुंसक को अगर हम ब्रह्मचारी कहें, वैसा आलस्य है। नपुंसक भी ब्रह्मचारी है; इसलिए नहीं कि वासना की कोई कमी है, बल्कि इसलिए कि शरीर साथ नहीं देता। लाओत्से उसे कह रहा है अयोग्य, निष्क्रिय, परम विश्राम में डूबा व्यक्ति, जिसके पास ऊर्जा तो बहुत है, आपसे ज्यादा है, क्योंकि आप तो खर्च कर रहे हैं, वह खर्च भी नहीं कर रहा है, जिसका शरीर आपसे ज्यादा गतिमान हो सकता है, क्योंकि सारी ऊर्जा उसके भीतर छिपी है, लेकिन उस ऊर्जा के रहते हुए भी मन में दौड़ की कोई वासना नहीं है। इसलिए शरीर भी रुक गया है, मन भी रुक गया है। शरीर और मन की इस ठहरी हुई अवस्था का नाम ध्यान है।

ध्यान करने वाले लोग काम करने वाले लोगों को आलसी ही दिखाई पड़ते हैं।

महर्षि रमण अरुणाचल पर बैठे रहे वर्षों। एक पश्चिमी विचारक, लेंजा देलवास्तो, एक इटालियन जो गांधी का भक्त था, वह रमण के आश्रम गया। भारत आया गुरु की तलाश में। तो लेंजा देलवास्तो ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि रमण को देख कर मुझे लगा कि यह तो निपट आलस्य है। गांधी के भक्त को लगेगा ही,

क्योंकि गांधी का तो सारा जोर कर्म पर है, सेवा पर है, कुछ करने पर है। लेंजा देलवास्तो ने लिखा है कि होगा यह अध्यात्म, लेकिन हमारे लिए नहीं। और हमें इसमें कुछ सार नहीं मालूम पड़ता कि कोई आदमी खाली बैठा है। और खाली बैठने से क्या होगा? संसार में इतने कष्ट हैं, इतनी पीड़ाएं हैं; इन्हें दूर करो! लोग भूखे हैं, दीन हैं, दुखी हैं; इनकी सेवा करो! कुछ करो! उससे तो परमात्मा मिल सकता है। यह वृक्ष के नीचे खाली बैठा हुआ आदमी क्या पा लेगा? लेंजा देलवास्तो अरुणाचल से सीधा वर्धा गया। और उसने अपनी डायरी में लिखा है कि वर्धा पहुंच कर लगा कि यह कोई सार्थक बात है। कुछ करो! करने से ही कुछ मिल सकता है।

गांधी और रमण ठीक विपरीत हैं। गांधी पूरे वक्त काम में लगे हैं। एक इंच भर भी ऊर्जा बिना काम के छूट जाए तो गांधी के मन में अपराध का भाव अनुभव होता है। स्नान कर रहे हैं बाथरूम में तो भी बाहर से खड़े होकर कोई अखबार पढ़ कर सुना रहा है, ताकि उस समय का उपयोग हो जाए। मालिश हो रही है तो वे चिट्ठियों के जवाब लिखवा रहे हैं, ताकि उस समय का उपयोग हो जाए। सोते भी हैं तो मजबूरी में; उतना समय व्यर्थ जा रहा है। प्रत्येक चीज का मूल्य क्रिया के आधार पर है।

उधर ठीक विपरीत बैठे रमण हैं। रमण ठीक ताओवादी हैं। लाओत्से रमण को देख कर प्रसन्न होता। वे खाली बैठे हैं, वे कुछ करते नहीं। उनका होना ही--विशुद्ध होना ही--बिना किसी क्रिया के होना ही एक महान घटना है। और उनके पास जो व्यक्ति कुछ करने का भाव लेकर जाएगा वह खाली हाथ लौटेगा। क्योंकि वह उनसे जुड़ ही नहीं पाएगा। उनसे तो संबंध उसी का बन सकता है जो उनके पास खाली बैठने को राजी हो, परम आलस्य में डूबने को राजी हो। शरीर ही नहीं, मन को भी शांत कर देने को राजी हो। तो जल्दी ही रमण से उसके संबंध बन जाएंगे। और तब उसे आविर्भाव होगा, तब उसे प्रतीत होगा कि यह जो शांत चेतना बैठी है, यह कितनी बड़ी महा घटना है।

कर्म क्षुद्र है, चाहे कितना ही बड़ा हो; कर्मशून्य हो जाना महान घटना है। पर देखने के लिए कर्मशून्य आंखें चाहिए; पहचानने के लिए कर्मशून्य हृदय चाहिए। रमण या लाओत्से जैसे व्यक्ति हमसे अपरिचित रह जाते हैं; हम उन्हें पहचान नहीं पाते। क्योंकि वे कुछ दूसरी ही कीमिया बता रहे हैं, जीवन के रहस्य की कुंजी कुछ दूसरी ही, कुछ बिल्कुल और आयाम से। क्या कारण है निष्क्रियता के लिए इतना जोर देने का?

पहली बात, जब भी आप सक्रिय होते हैं तब आप अपने से बाहर चले जाते हैं। क्रिया बाहर ले जाने वाला द्वार है। क्योंकि क्रिया का मतलब है दूसरे से संबंधित होना। क्रिया का मतलब है किसी वस्तु से, किसी व्यक्ति से संबंधित होना। कुछ करने का मतलब है, आप अकेले न रहे, कुछ और जुड़ गया। अक्रिया का अर्थ है, आप अकेले हैं। न कोई व्यक्ति, न कोई वस्तु, न कोई घटना, आप किसी चीज से जुड़े हुए नहीं हैं। अक्रिया में ही आत्म-भाव का उदय होगा। क्रिया में तो दूसरे पर ध्यान रखना होता है। क्रिया दूसरे से संबंध है। इसलिए क्रिया के माध्यम से कोई कभी आत्म-ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। इसका यह मतलब नहीं है कि आत्म-ज्ञानी क्रिया नहीं करेगा। आत्म-ज्ञानी से क्रिया हो सकती है, लेकिन क्रिया करने से कोई आत्म-ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता।

दूसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है, जब भी हम क्रिया में संलग्न होते हैं, तो हम कितना ही कहें कि हमें फल की कोई आकांक्षा नहीं है, लेकिन फल की आकांक्षा न हो तो हम क्रिया में संलग्न होते ही नहीं। वही अर्जुन की कठिनाई है कृष्ण के साथ। अर्जुन की कठिनाई हर मनुष्य की कठिनाई है। कृष्ण कहते हैं, तू क्रिया कर, और फल की आकांक्षा मत कर। अर्जुन को साफ लगता है कि दो बातें सहज हैं। या तो मैं कुछ भी न करूं तो फल का कोई सवाल नहीं; और यदि मैं कुछ करूंगा तो बिना फल के कैसे करूंगा! फल की आकांक्षा होगी, तभी कुछ करूंगा।

गीता समझी बहुत गई, पढ़ी बहुत गई; लेकिन भारत के जीवन में कहीं भी उतर नहीं सकी। क्योंकि बड़ी ही जटिल बात हैः फल की आकांक्षा मत करो और कर्म करो। यह तब हो सकता है जब कोई आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हो गया हो। तब कर्म होगा और फल की आकांक्षा न होगी। लेकिन तब कर्म एक खेल की भांति होगा, एक अभिनय की भांति होगा। उसमें कोई प्रयोजन ही नहीं है; वह निष्प्रयोजन है।

जैसे ही कोई व्यक्ति कर्म में उतरता है, वासना के कारण उतरता है। और लाओत्से कहता है, जब हम वासना में भटक जाते हैं तो स्वयं से दूर निकल जाते हैं। सारे कर्म को छोड़ दो तो हम अपने में ठहर ही जाएंगे, कोई उपाय न रहा बाहर जाने का, सब द्वार बंद हो गए। और एक बार यह भीतर के ठहरने की घटना घट जाए... ।

फिर दो तरह के व्यक्ति हैं जगत में, दो तरह के टाइप हैं, जिनको जुंग ने एक्सट्रोवर्ट और इंट्रोवर्ट कहा है। एक बहिर्मुखी लोग हैं, एक अंतर्मुखी लोग हैं। ये दो मूल प्रकार हैं। तो अगर कोई व्यक्ति आत्म-भाव में ठहर जाए और बहिर्मुखी हो तो उसके जीवन में कर्म जारी रहेगा, लेकिन फल की आकांक्षा नहीं रहेगी। अगर अंतर्मुखी हो तो उसके जीवन में फल की आकांक्षा भी छूट जाएगी और कर्म भी छूट जाएगा।

कृष्ण, महावीर या बुद्ध ज्ञान के बाद भी किसी न किसी भांति कर्म में लीन रहे। कृष्ण तो विराट कर्म में लीन रहे; महावीर-बुद्ध छोटे, थोड़े कर्म में लीन रहे--अल्प। लेकिन लाओत्से या रमण बिल्कुल कर्मशून्य होकर रहे। इनके व्यक्तित्व का जो ढांचा है, परिपूर्ण अंतर्मुखी है। तो जब इनका आत्म-ज्ञान, जब इनकी अंतस-चेतना जागेगी तो ये एक शांत झील हो जाएंगे। इनसे किसी को लाभ भी लेना हो तो उसको ही इनके पास आना होगा। कोई इनके पास न आए तो ये निमंत्रण देने भी न जाएंगे।

बुद्ध और महावीर चल कर, यात्रा करके भी पहुंचेंगे। उन्हें जो मिला है, उसे वे बांटना चाहते हैं। उनके व्यक्तित्व में बाहर की तरफ बहने का ढांचा है। बुद्ध और महावीर नदी की तरह हैं, जो बहती है। रमण और लाओत्से झील की भांति हैं, जो ठहर गई है। जल एक ही है। नदी शायद आपके गांव के पास से भी बहे, कि आप स्नान कर लें, कि आप प्यास को बुझा लें। लेकिन झील अपने पर्वत पर ही ठहरी रहेगी। आपको ही यात्रा करके झील तक जाना होगा। झील निमंत्रण भी न देगी।

ये दो तरह के व्यक्ति हैं। और ये दो तरह के व्यक्ति अज्ञान में भी दो तरह के होते हैं, ज्ञान में भी दो तरह के होते हैं। अगर अज्ञानी व्यक्ति अंतर्मुखी हो तो आलसी हो जाता है। इसे ठीक से समझ लें। और अगर ज्ञानी व्यक्ति अंतर्मुखी हो तो निष्क्रिय हो जाता है। अगर बहिर्मुखी व्यक्ति अज्ञानी हो तो उपद्रवी हो जाता है; उसका कर्म उपद्रव हो जाता है। वह कुछ न कुछ करेगा; वह बिना किए नहीं रह सकता। करने से हानि हो तो चिंता नहीं, लेकिन करेगा।

यह सारा मनुष्य-जाति का इतिहास इसी तरह के बहिर्मुखी अज्ञानियों के कारण है। वे कुछ न कुछ कर रहे हैं; वे बिना किए नहीं रुक सकते। करना उनकी बीमारी है। तो राजनीतिज्ञ हैं, समाज-सुधारक हैं, क्रांतिकारी हैं; सब उपद्रवियों की जमात है। ये बहिर्मुखी अज्ञानी हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है; ये क्या करने जा रहे हैं, उसका इन्हें कोई बोध नहीं है। क्या परिणाम होगा, उसका इन्हें प्रयोजन नहीं। ये बिना किए नहीं रह सकते; ये कुछ करेंगे। इनके करने का दुष्परिणाम होता है; युद्ध होते हैं, क्रांतियां होती हैं। बड़ा उलट-फेर इनके द्वारा होता है। और आदमी रोज दुख के गर्त में गिरता जाता है।

बहिर्मुखी ज्ञानी हो जाए तो उससे कर्म बहेगा; जैसे कृष्ण से बहता है, बुद्ध से बहता है, महावीर से बहता है। वह कर्म कल्याण के लिए होगा। वह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय होगा। लेकिन यह भेद कायम रहता है।

यह भेद आत्मा का भेद नहीं है, यह भेद आत्मा के आस-पास जो मन का संस्थान है, उसका भेद है। जन्मों-जन्मों में व्यक्ति अंतर्मुखता या बहिर्मुखता अर्जित करता है। हम उसे लेकर पैदा होते हैं। जब बच्चा पैदा होता है तब भी अंतर्मुखी या बहिर्मुखी होने का भेद होता है उसमें। अगर छोटा बच्चा--मनसविद कहते हैं, खासकर जीन पिआगे, जिसने बच्चों का पूरे जीवन अध्ययन किया है--कि पहले दिन का बच्चा भी व्यक्तित्व से भेद जाहिर करता है। अगर अंतर्मुखी बच्चा है तो वह ज्यादातर आंख बंद किए सोया रहेगा; हिलेगा-डुलेगा भी नहीं। भूख-प्यास जब उसे लगेगी तभी वह आंख खोलेगा, थोड़ा शोरगुल करेगा। बहिर्मुखी बच्चा पहले दिन से ही चारों तरफ देखना शुरू कर देगा; हाथ-पैर फैलाने की कोशिश करेगा, चीजों को पकड़ने की कोशिश करेगा। जीन पिआगे तो कहता है कि मां के गर्भ में भी अंतर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व का फर्क हो जाता है। वह जो बहिर्मुखी बच्चा है, वहां भी लातें मारना शुरू कर देता है। मां के गर्भ में भी उपद्रव शुरू कर देता है; वह वहां भी क्रांतिकारी है। वह जो अंतर्मुखी बच्चा है वह मां के गर्भ में भी चुपचाप पड़ा रहता है; जैसे है या नहीं, कोई फर्क नहीं। ये हमारे व्यक्तित्व के ढांचे हैं।

आलस्य, अंतर्मुखता है अज्ञानी की। निष्क्रियता, अकर्म, अंतर्मुखता है ज्ञानी की। कर्म, उपद्रव से भरा हुआ कर्म, बहिर्मुखता है अज्ञानी की। सेवा, दूसरे के कल्याण के लिए कर्म में प्रवृत्त होना, बहिर्मुखता है ज्ञानी की। पर ध्यान रहे, चाहे कर्म हो, चाहे अकर्म, दोनों की प्राथमिक शर्त स्वयं में ठहर जाना है। उसके बाद ही शुभ होगा। उसके पहले आप खाली बैठें तो, और कर्म करें तो, दोनों हालत में अशुभ होगा।

फिर भी ध्यान रहे, आलसी लोगों के ऊपर अशुभ का ज्यादा जिम्मा नहीं है। आलसी लोगों ने कुछ बुरा नहीं किया है। यह बहुत हैरानी की बात है कि आलसी की हम निंदा करते हैं, बिना यह जाने कि इतिहास में कोई बड़ी कालिख आलसी लोगों के ऊपर नहीं है। हिटलर, नेपोलियन, मुसोलिनी, तैमूर, नादिर, इनके सामने आप पांच तो आलसी आदमी गिना दें जिन्होंने नुकसान किया हो। आलसी आदमियों का नाम इतिहास में ही नहीं मिलेगा, क्योंकि उन्होंने कोई उपद्रव ही नहीं किया। इतिहास सिर्फ उपद्रवियों को गिनता है। आलसी लोगों ने कभी बुरा नहीं किया, क्योंकि बुरा करने के लिए भी करना तो पड़ेगा। वे करते ही नहीं। निश्चित ही, उन्होंने भला भी नहीं किया। क्योंकि करने में उनका रस नहीं है।

अगर सिर्फ जीवन का अंतिम हिसाब ख्याल में रखा जाए तो आलसी ही चुनने योग्य हैं। उन्होंने भला नहीं किया; उन्होंने बुरा भी नहीं किया। और जो कर्मठ हैं, उन्होंने कुछ भला नहीं किया, बुरा बहुत किया। आलसी आदमी अगर कुछ बुरा भी करे तो वह भी निष्क्रिय बुराई होती है। जैसे घर में आग लगी हो किसी के, तो वह बैठा देखता रहेगा। आग लगाने वह जाने वाला नहीं है; वह बुझाने भी जाने वाला नहीं है। आप अगर उसको दोष भी दे सकते हैं तो इतना ही कि तुम बैठे देखते रहे, तुमने आग क्यों नहीं बुझाई? अगर कोई लुट रहा हो तो वह बचाएगा नहीं; अगर किसी स्त्री की इज्जत लूटी जा रही है तो भी वह आंख बंद किए बैठा रहेगा। अगर उसके ऊपर कोई बुरा कृत्य भी है तो वह बुरा कृत्य सिर्फ निष्क्रिय होने का है, कि वह दूर खड़ा रहता है, वह उपद्रव में नहीं उलझता। लेकिन विधायक रूप से बुराई आलसी आदमी ने कभी की नहीं है।

फिर भी हमारे मन में उसकी निंदा है, क्योंकि हमारी पूरी शिक्षा महत्वाकांक्षा की है। हर बच्चे के मन में हम भाव डाल रहे हैं--कुछ करो, क्योंकि करने से कहीं पहुंचोगे। पश्चिम में अब विचार शुरू हुआ है और आने वाली सदी में कुछ आश्चर्य न होगा कि अब तक के इतिहास का पूरा मूल्यांकन हमें बदलना पड़े। और इसलिए मैं कहता हूं, लाओत्से का बड़ा भविष्य है; अज्ञानियों के लिए भी लाओत्से का बड़ा भविष्य है। क्योंकि पश्चिम के विचारक निरंतर चिंतन कर रहे हैं, इधर सैकड़ों पुस्तकें इस संबंध में प्रकाशित हुई हैं कि आदमी के काम करने

की जो क्षमता है वह तो धीरे-धीरे यंत्रों के हाथ में जा रही है। इस सदी के पूरे होते-होते सारे स्वचालित यंत्र मनुष्य का सारा कर्म कर लेंगे। तो हमने अब तक आदमी को जो कर्म करने की शिक्षा दी है उसे हमें बदलना पड़ेगा। क्योंकि आदमी को हम काम दे न पाएंगे। अब तक हमने सबको समझाया था कि काम करने वाला श्रेष्ठ है; आलसी बुरा है। सिखाया था इसलिए कि संसार में काम की बड़ी जरूरत थी। अब काम यंत्र कर लेगा।

मार्शल मैकलोहान ने कहा है--इस सदी के बड़े विचारकों में एक--कि इस सदी के पूरे होते-होते हमें हर स्कूल में सिखाना पड़ेगा कि आलस्य महाधर्म है। क्योंकि वे ही लोग शांत बैठ सकेंगे जो आलसी हो सकते हैं, अन्यथा वे काम मांगेंगे। और काम हमारे पास नहीं होगा। काम यंत्र करेंगे। और आदमी से बेहतर काम कर रहे हैं; इसलिए आदमी काम्पिटीशन में अब यंत्रों से टिक नहीं सकता।

तो या तो हमें आदमी को फिजूल काम देने पड़ेंगे। जैसी पुरानी कहानियां हैं कि किसी आदमी ने एक प्रेत को जगा लिया, कि एक जिन्न को जगा लिया। और उस जिन्न ने जगते वक्त कहा कि शर्त मेरी एक ही हैः सेवा तुम्हारी करूंगा, लेकिन काम मुझे हर पल चाहिए। जिसने जगाया था वह बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि यह तो बड़ी खुशी की बात है, ऐसा सेवक मिल जाए जिसे हर पल काम चाहिए। पर उसे पता नहीं था कि यह खतरनाक है। घड़ी, दो घड़ी में उसके सारे काम चुक गए। क्योंकि वह प्रेत से कह भी न पाए, कि वह काम करके हाजिर। वह कहे कि काम?

सांझ होते-होते वह आदमी घबड़ा गया, क्योंकि काम सब चुक गए और वह आदमी सिर पर खड़ा है कि काम? क्योंकि अगर काम न हो तो उस प्रेत ने कहा था कि मैं तुम्हारी गर्दन दबा दूंगा। तो वह भागा हुआ एक फकीर के पास गया। उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, और आपसे ही पूछ सकता हूं कि अब क्या करूं! क्योंकि यह प्रेत मेरे प्राण ले लेगा। उस फकीर ने कहा, तुम एक काम करो। एक सीढ़ी लगा दो अपने मकान पर और उससे कहो कि तू इससे ऊपर तक जा और ऊपर से फिर नीचे तक आ, फिर नीचे से ऊपर तक जा। जब भी कोई काम न हो तो सीढ़ी बता दिए, ताकि वह ऊपर-नीचे होता रहे।

करीब-करीब, वैज्ञानिक कह रहे हैं कि आदमी को ऐसी मुसीबत आ जाने वाली है, जब हमें उसे काम देना पड़े सीढ़ी पर चढ़ने जैसा। क्योंकि काम हमारे पास बचेगा नहीं। तब शायद लाओत्से पहली दफा समझ में आने जैसी बात होगी। परम आलस्य भी परम गुण हो जाए।

आज भी लोग छुट्टी की राह देखते हैं कि छुट्टी का दिन आ रहा है। लेकिन छुट्टी के दिन लोग परेशान होते हैं, क्योंकि क्या करें? करने का अभ्यास इतना भारी है। खाली बैठने का कोई अभ्यास नहीं है। तो छुट्टी के दिन भी लोग काफी करते हैं। अमरीका के आंकड़े ये हैं कि छुट्टी के दिन लोग जितना थकते हैं उतना काम के दिन नहीं थकते। भागते हैं समुद्र की तरफ, पहाड़ की तरफ, ड्राइव करते हैं सैकड़ों मील। सोमवार को अमरीका के सभी दफ्तरों में लोग थके हुए होते हैं। होना नहीं चाहिए। छुट्टी के दिन विश्राम होना था। छुट्टी के दिन सर्वाधिक एक्सीडेंट होते हैं, सर्वाधिक लोग मरते हैं। आत्महत्याएं होती हैं, और हत्याएं होती हैं। छुट्टी का दिन खतरनाक है; एक दिन है सप्ताह में। जिस दिन पूरा सप्ताह छुट्टी हो और जिस दिन पूरे वर्ष और पूरे जीवन काम यंत्र कर देते हों, और आप खाली हो जाएं, तब आपको पता चलेगा कि तीन-चार-पांच हजार वर्षों में हमने जो सिखाया है कि कर्म करो, कर्म भगवान है, खाली बैठना हराम है, यह जो हमने सिखाया है, यह हमारी छाती पर बैठ जाएगा, यह हमारी गर्दन दबाएगा।

यह पूरी शिक्षा हमें बदलनी पड़ेगी। लोगों को हमने सिखाया, काम करो, क्योंकि जिंदगी के लिए जरूरत थी। भोजन नहीं था, कपड़ा नहीं था। वह हालत बदल जाएगी। आलस्य इतना बुरा नहीं रह जाने वाला आने वाली सदी में, जितना पीछे था।

और जब लाओत्से कह रहा है परम अयोग्यता की बात तो ऊपरी आलस्य की ही बात नहीं कह रहा है, भीतरी आलस्य की भी कह रहा है। कुछ करने का भाव ही न उठता हो, कहीं जाने की आकांक्षा न पैदा होती हो; अगर इसी क्षण मर जाऊं तो भी ऐसा न लगे कि कुछ अधूरा रह गया है; इस स्थिति को वह कह रहा है परम निष्क्रियता। और जो इस परम निष्क्रियता में प्रवेश कर जाता है, वह जीवन के गहनतम रहस्य को उपलब्ध कर लिया। वह उस मंदिर में प्रवेश कर गया जिसे हम परमात्मा कहते हैं।

और पूछा है कि आलसी लोग अयोग्यता के गुण से संपन्न होते हैं, लेकिन फिर भी उनका आध्यात्मिक विकास होता दिखाई नहीं देता।

बुद्ध क्या कर रहे हैं बोधिवृक्ष के नीचे बैठ कर? परम आलस्य में पड़े हैं। कुछ नहीं कर रहे; करना छोड़ दिया है। संन्यासियों ने क्या किया है सदियों-सदियों में? करना छोड़ दिया है। संन्यास का मतलब ही है, सब छोड़ दिया वह जो करने का, उपद्रव का जगत था; खाली बैठ गए हैं। लेकिन पूरब समझता था, और पूरब ने अपने आलसियों को भी बड़ा आदर दिया है।

आपको ख्याल न हो, हमारे पास जो शब्द है बुद्धू, वह बुद्ध से ही आया है। घर में कोई खाली बैठा हो तो हम उससे कहते हैं, क्या बुद्धू की तरह बैठे हुए हो? वह वही पुराना स्मरण है उसमें कि हम जानते हैं कि बुद्ध एक दिन बोधिवृक्ष के नीचे खाली बैठे रहे हैं वर्षों तक। अब भी हम कहते हैं, क्या बुद्धू की तरह बैठे हो! उठो, कुछ करो। हमें भूल गया है कि यह शब्द बुद्ध से आया है। लेकिन इस शब्द के पीछे छिपा हुआ भाव बताता है कि हमें बुद्ध को देख कर भी हमारे मन में यही उठा होगा। हमने आदर दिया, क्योंकि महिमा प्रकट हुई। हमने आदर दिया, क्योंकि ज्योति प्रकट हुई। लेकिन हम जानते थे, यह आदमी खाली बैठा है; यह कुछ कर नहीं रहा है। करने की भाषा में बुद्ध ने क्या किया है? महावीर बारह वर्ष अपने वन की साधना में क्या कर रहे हैं? खाली खड़े हैं। खाली बैठे हैं। खाली करने की ही बस कोशिश है कि कुछ न रह जाए, एक शून्यता रह जाए।

लेकिन हम होशियार हैं। हम इन खाली शून्यता में बैठे लोगों पर भी ऐसे शब्द चिपकाते हैं कि उनसे कर्म का भाव होता है। हम कहते हैं, महावीर साधना कर रहे हैं। यह हमारी कुशलता है और हमारी भाषा है कि हम कहते हैं, महावीर साधना कर रहे हैं। बुद्ध खाली बैठे हैं; हम कहते हैं, बुद्ध ध्यान कर रहे हैं। ध्यान कर रहे हैं कहने से लगता है कुछ कर रहे हैं। और बुद्ध जिंदगी भर समझाते रहे हैं कि जब तक तुम करोगे तब तक ध्यान नहीं होगा; ध्यान किया नहीं जा सकता। जब तुम कुछ भी नहीं करते हो तो जो अवस्था शेष रह जाती है उस शेष अवस्था का नाम ध्यान है। लेकिन हमारी भी तकलीफ है। हमारे पास शब्द ही सब कर्म से जुड़े हुए हैं। और जब हम शब्द बदल देते हैं तो पूरा भाव बदल जाता है। जब हम कहते हैं, महावीर जंगल में साधना कर रहे हैं तो हमारे मन में ऐसा ख्याल उठता है, कोई बहुत बड़ा काम हो रहा है। महावीर कुछ भी नहीं कर रहे हैं; काम को छोड़ रहे हैं।

शब्द बड़े धोखे के हैं। उन्नीस सौ बावन में संसद में एक सवाल था। हिमालय में नील गाय पाई जाती है। वह बहुत उपद्रव कर रही थी। उसकी संख्या बढ़ गई थी; खेतों को नुकसान पहुंचा रही थी। लेकिन उसको गोली नहीं मारी जा सकती, क्योंकि उसमें गाय जुड़ा है। नील गाय शब्द के कारण उसको गोली नहीं मारी जा सकती, जहर नहीं दिया जा सकता; और वह खेतों को नुकसान कर रही है। तो आप जान कर हैरान होंगे कि संसद ने

एक निर्णय लिया कि उसका नाम बदल दिया जाए, उसको ब्लू काऊ की जगह ब्लू हार्स--उसका नाम नील घोड़ा कर दिया। और इसके बाद गोली मार दी, और कोई उपद्रव नहीं हुआ हिंदुस्तान में।

नील घोड़े को कोई मारे, क्या मतलब किसी को? नील गाय को मारते तो जनसंघ... । कुछ, वही का वही पशु है, लेकिन नाम! आप भी पढ़ लेंगे अखबार में कि नील घोड़े बढ़ गए, उनको मार दिया; किसी को मतलब नहीं है। लेकिन नील गाय! तो आपको भी अखर जाता कि यह तो भारत के धर्म पर चोट हो गई। अमरीका और यूरोप में भी उस पर हंसी उड़ाई गई जब नाम उसका बदल दिया। और नाम बदलने से हल हो गया मामला।

जीवन के बहुत अंगों में हम यही कर रहे हैं। आप पूछते हैं, आलसी लोगों को कब अध्यात्म हुआ? मैं आपसे पूछता हूं, आलसियों के सिवाय कब किसको अध्यात्म हुआ? आप भाषा थोड़ी बदल लें तो आपको ख्याल में आ जाएगा। साधना की जगह आप शून्यता रख लें और ध्यान की जगह निष्क्रियता रख लें तो आपको ख्याल में आ जाएगा कि ये सब परम आलसी हैं। और जब तक आप सीधा-सीधा नहीं समझेंगे और अपने शब्दों में भटकते रहेंगे तब तक कोई समझ पैदा नहीं हो सकती जो उपयोगी हो सके।

लेकिन अगर बौद्धों से भी कहो कि बुद्ध परम आलसी हैं तो वे भी नाराज हो जाते हैं। एक बौद्ध भिक्षु मुझे मिलने आए। तो उनको मैंने कहा कि साधना और तपश्चर्या, इन शब्दों का उपयोग मत करें, क्योंकि इससे वह जो कर्मठ आदमी है वह समझता है कि कुछ उसकी ही कोटि के लोग रहे होंगे। वह संसार में कर्म कर रहा है, ये लोग मोक्ष में कर्म कर रहे हैं; लेकिन कर्म कर रहे हैं। अच्छा हो कि कहें कि बुद्ध परम आलसी हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं। और जब तक तुम भी कुछ न करने की हालत में न आ जाओगे तब तक सत्य से, जीवन के केंद्र से कोई संबंध स्थापित नहीं होगा। उस बौद्ध भिक्षु ने कहा, परम आलस्य? बुद्ध को आलसी कहना! इससे तो बौद्धों के मन को बड़ी ठेस पहुंचेगी।

ठेस पहुंचेगी, क्योंकि हम कर्म का मूल्य मानते हैं, आलस्य का मूल्य नहीं मानते। आलस्य का भी मूल्य है। अगर कर्म का मूल्य जगत में है तो आलस्य का मूल्य उस दूसरे जगत में है। उसके नियम बिल्कुल उलटे हैं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि साधारणतया अपने को आस्तिक या नास्तिक कहना बेईमानी है, और ईमान है एगनास्टिक होना, अज्ञेयवादी होना, अप्रतिबद्ध होना। इस पर कुछ और प्रकाश... ।

जो भी मैं जानता हूं उसे मुझे स्पष्ट जानना चाहिए कि मैं जानता हूं। और जो मैं नहीं जानता उसे भी स्पष्ट जानना चाहिए कि मैं नहीं जानता हूं। ऐसी स्पष्टता अगर हो तो सत्य का खोजी ठीक मार्ग पर चल रहा है।

लेकिन साधारणतः कोई स्पष्टता नहीं है। जिसका आपको कोई भी पता नहीं है, उसको भी आप सोचते हैं आप जानते हैं। आस्तिक सोचता है कि वह जानता है ईश्वर है; नास्तिक सोचता है कि वह जानता है कि ईश्वर नहीं है। लेकिन दोनों जानते हैं।

किसको पता है? इस आस्तिक को सच में पता है कि ईश्वर है? आस्तिक को देख कर लगता नहीं कि इसको ईश्वर के होने का पता चल गया है। क्योंकि ईश्वर के होने का तो पता ही तब चलता है जब आदमी करीब-करीब ईश्वर हो जाता है; उसके पहले तो पता नहीं चलता। हम वही जान सकते हैं जो हम हो गए हैं। ईश्वर को जानने का एक ही उपाय है कि ईश्वर हो जाएं। ईश्वर बिना हुए कैसे ईश्वर को जान पाएंगे?

तो आस्तिक को पता तो नहीं है, क्योंकि वह कहता है कि मैं ईश्वर को खोज रहा हूं, ईश्वर को पाने की कोशिश कर रहा हूं, साध रहा हूं, तप कर रहा हूं, तीर्थ कर रहा हूं। अभी ईश्वर को उसने पाया नहीं, जाना नहीं;

मानता है कि ईश्वर है। और इस मान्यता को सोचता है कि मेरा जानना है। यह बेईमानी है। उसका दावा झूठ है। और झूठ से कोई भी यात्रा सत्य तक नहीं हो सकती। झूठ से जहां शुरू होगा वहां अंत सत्य पर कैसे होगा? झूठ से और बड़े झूठ निकलेंगे।

उसके विपरीत खड़ा हुआ नास्तिक है। वह कहता है, कोई ईश्वर नहीं है। लेकिन उसका भी दावा भिन्न नहीं है; वह भी कहता है, मैं जानता हूं। कैसे तुम जान सकते हो कि कोई ईश्वर नहीं है? क्या अस्तित्व के सारे कोने तुमने छान डाले और उसे नहीं पाया? विज्ञान भी नहीं कह सकता कि हमने अस्तित्व के सारे कोने छान डाले। बहुत कुछ जानने को शेष है। ईश्वर उस शेष में छिपा हो सकता है। जब तक एक इंच भी जानने को शेष है तब तक कोई भी ईमानदार आदमी ईश्वर के होने से इनकार नहीं कर सकता; वह यह नहीं कह सकता कि नहीं है। जब हम पूरा ही जान लें, जब जानने को कुछ भी न बचे, एक-एक रत्ती-रत्ती छान ली जाए, सब रहस्य मिट जाएं, तभी कोई कह सकता है कि ईश्वर नहीं है। उसके पहले कोई उपाय नहीं है। इसलिए नास्तिकता परम झूठ है।

आस्तिकता झूठ है, क्योंकि आस्तिकता भी कह रही है, उस रहस्य को हमने जान लिया। और नास्तिक भी कह रहा है कि उसको हमने जान लिया, वह नहीं है। उनका फर्क हां और नहीं में है, लेकिन उनके दावे में कोई फर्क नहीं है। उनकी मूढ़ता दोनों की बराबर है। और वे दोनों समान बेईमान हैं।

एगनास्टिक का अर्थ है--अज्ञेयवादी का, रहस्यवादी का--कि मुझे पता नहीं; हो भी सकता है ईश्वर, न भी हो। मुझे पता नहीं है। इसलिए मैं किसी भी मत में, किसी भी पक्ष में खड़ा नहीं हो सकता, जब तक कि मैं जान ही न लूं, जब तक कि मेरा अनुभव, मेरा ही अनुभव मुझे साफ न कर दे। किसी के और के भरोसे पर, किसी शास्त्र पर, किसी वेद, कुरान, बाइबिल पर, किसी बुद्ध-महावीर पर, किसी ने जाना है उसके आधार पर--उसके आधार पर आपके जानने का कोई मूल्य नहीं है। अज्ञेयवादी, एगनास्टिक का अर्थ है कि मुझे पता नहीं है, और जब तक मुझे पता नहीं है तब तक मैं रुकूंगा निर्णय लेने से।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं खोज बंद कर दूंगा। सच तो यह है कि जब तक आप निर्णय नहीं लेते तभी तक खोज कर सकते हैं। जब निर्णय ले लिया, खोज बंद हो गई। जब आपने कह दिया कि है! दरवाजा बंद हो गया। अब खोजना क्या है? जब आपने कह दिया, नहीं है! खोजने को कुछ बचा नहीं, दरवाजा बंद हो गया। सिर्फ रहस्यवादी का दरवाजा खुला है। वह यह कहता है कि मैं दरवाजा खुला रखूंगा, खोजता रहूंगा, जब तक कि अनुभव न बन जाए, जब तक कि मैं अपने से ही न जान लूं कि क्या है, तब तक मैं कोई घोषणा न करूंगा।

यह अघोषित खोज, यह रहस्य में टटोलते हुए चलना, चूंकि बहुत दुस्साहस का काम है, इसलिए अधिक लोग इतनी ईमानदारी का कृत्य नहीं करते। यह बहुत दुस्साहस का काम है। क्योंकि इसका मतलब है कि मैं अंधेरे में खड़ा हूं। इसका मतलब है, मेरे पैर के नीचे जमीन है या नहीं, मुझे पता नहीं। इसका मतलब है कि जिस तरफ मैं जा रहा हूं वह मंजिल हो सकता है हो भी, और न भी हो। इसका यह मतलब है कि रास्ता हो सकता है सिर्फ वर्तुलाकार हो, कहीं न ले जाता हो, सिर्फ भटकाता हो। इसका मतलब यह है कि यह भी हो सकता है कि सत्य जैसी कोई भी चीज न हो। बड़ा साहस चाहिए। निर्णय से बचने के लिए, मत, पक्ष, पक्षपात से बचने के लिए बड़ा साहस चाहिए। क्योंकि सुरक्षा नहीं रहेगी फिर।

आस्तिक भी सुरक्षित है; नास्तिक भी सुरक्षित है। उन दोनों के पास शास्त्र है, सिद्धांत है। वे दोनों अपने सिद्धांत के सहारे अकड़ कर खड़े हैं। एगनास्टिक डांवाडोल होगा, उसके पैर कंपेंगे; उसके पास कोई सहारा नहीं

है, कोई आधार नहीं है, कोई आलंबन नहीं है। असुरक्षा है। गहन अंधकार है। और गहन अंधकार में वह जानता है कि मेरे पास अभी रोशनी नहीं है। और आंख बंद करके झूठी रोशनी मानने की उसकी तैयारी नहीं है।

बड़ी साधना है, रहस्य को रहस्य की तरह स्वीकार करना। और ध्यान रहे, यही निष्ठावान व्यक्ति का लक्षण है कि उतने पर ही हां भरेगा जितना जानता है; उससे आगे न हां कहेगा, न न कहेगा। निर्णय को रोकेगा। मन तो कहेगा, निर्णय ले लो। क्योंकि निर्णय लेते ही झंझट मिट जाती है; खोज खत्म हुई; हम विश्राम कर सकते हैं। आश्वस्त हो गए। इसलिए मन तो कहता है, जल्दी निर्णय लो। जितने कमजोर मन होते हैं उतने जल्दी निर्णय ले लेते हैं। इसलिए दुनिया में इतने आस्तिक हैं। इन आस्तिकों को नास्तिक बनाने में जरा भी दिक्कत नहीं है।

रूस में क्रांति हुई। बीस करोड़ लोग आस्तिक थे; बीस करोड़ लोग क्रांति के बाद नास्तिक हो गए। रूस इस जमीन पर गहरे से गहरे आस्तिक मुल्कों में एक था। रूस में जो ईसाइयत थी, आर्थोडाक्स, अत्यंत पुरानी, परंपरागत, और बड़ी धार्मिक। लेकिन बड़ा धर्म धोखे का सिद्ध हुआ। खुद कम्युनिस्ट भी हैरान हुए। उनको भी इतनी आशा नहीं थी कि इतने जल्दी बीस करोड़ का इतना बड़ा समाज, इतनी पुरानी परंपरा, इतना धर्म, इतने चर्च, और एकदम क्रांति के बाद इशारे से सब बदलाहट हो जाएगी और लोग नास्तिक हो जाएंगे। वे भी चौंके। वे सोचते थे, बड़ा संघर्ष होगा; सैकड़ों वर्ष लगेंगे, तब कहीं लोग आस्तिकता से नास्तिकता में लाए जा सकेंगे।

वे गलती में थे। क्योंकि उन्हें आस्तिकता और नास्तिकता के बीच एक बुनियादी समानता है, उसका उन्हें पता नहीं था। वह है बेईमानी। आस्तिक थे लोग, क्योंकि आस्तिकता में सहारा था। अब नास्तिक हो गए लोग, क्योंकि नास्तिकता में सहारा है। कल आस्तिकों की सरकार थी; अब नास्तिकों की सरकार है। कल बंदूक आस्तिकों के हाथ में थी; अब नास्तिकों के हाथ में है। सुरक्षा जिस तरफ हो, लोग उसी तरफ हो जाते हैं। लोग सुरक्षा खोज रहे हैं, सत्य नहीं खोज रहे। इसलिए तो बीस करोड़ लोग एकदम से आस्तिक से नास्तिक हो गए।

सत्तर-अस्सी करोड़ लोग हैं चीन में आज। बौद्धों की बड़ी पुरानी परंपरा है। लाओत्से की, कनफ्यूशियस की, तीनों की बड़ी पुरानी परंपरा है। दुनिया में पुरानी से पुरानी धार्मिक धारणा चीन में है। जिस लाओत्से की हम बात कर रहे हैं उसके बीज भी वहां हैं। लेकिन क्रांति हुई और सारा मुल्क--सारा मुल्क--लाओत्से को भूल गया, कनफ्यूशियस को भूल गया, बुद्ध को भूल गया। चेयरमैन माओत्से तुंग एकमात्र, एकमात्र सत्य के अधिकारी रह गए। जहां लोग ईश्वर का नाम लेते थे वहां लोग सिर्फ चेयरमैन माओत्से तुंग का नाम लेते हैं।

यह कैसे हो जाता है? इतना बड़ा मुल्क, दुनिया का सबसे बड़ा मुल्क, सबसे बड़ी संख्या वाला मुल्क, अति प्राचीन परंपरा वाला मुल्क, अचानक सारी परंपरा छोड़ देता है। सवाल सिर्फ इतना हैः सुरक्षा जहां है। कल चर्च, मंदिर में सुरक्षा थी, आज कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में सुरक्षा है। बुद्ध की मूर्तियां हटा दी गई हैं, माओत्से तुंग के चित्र लटका दिए गए हैं। छोटे-छोटे बच्चे, जैसा पुराने दिनों में कहते थे, परमात्मा रोटी देता है, ऐसा छोटे बच्चे चीन में कहते हैं, माओत्से तुंग रोटी देता है। ठीक ईश्वर की जगह माओत्से तुंग को बिठा दिया।

इतनी जल्दी आदमी बदल जाता है, क्योंकि आदमी बेईमान है। उसे अपनी आत्मरक्षा से मतलब है। तो जिस चीज में उसे कवच मिलता है, वहीं छिप जाता है। इस दुनिया को आस्तिक-नास्तिक बनाने में कोई अड़चन नहीं है। एगनास्टिक को बदलना बहुत मुश्किल है। आस्तिक को नास्तिक बना सकते हैं, नास्तिक को आस्तिक; अज्ञेयवादी को बदलना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह कहता है कि जब तक मैं न जान लूं तब तक मैं कोई निर्णय न लूंगा। मैं अनिर्णीत रहूंगा। अनिर्णय का दुख झेलूंगा, पीड़ा झेलूंगा, लेकिन निर्णय न लूंगा, जल्दी निर्णय न लूंगा।

इतनी हिम्मत के लोग ही अंततः सत्य को जानने में समर्थ हो पाते हैं।

इसलिए मैंने कहा, एक ही ईमान है, वह है अपने भीतर साफ-साफ विभाजन कर लेना, क्या मैं जानता हूं और क्या मैं नहीं जानता हूं, और जो मैं नहीं जानता हूं, किसी भी कीमत पर उस संबंध में कोई मंतव्य स्वीकार न करना। तो खोज जारी रहेगी। आदमी के मन में गहरी पिपासा है सत्य की। लेकिन आप झूठे सत्य पकड़ लेते हैं, उधार सत्य पकड़ लेते हैं। उन उधार सत्यों के कारण यह खोज बंद हो जाती है। आपको लगी है प्यास और कोई आपको झूठा पानी दे देता है और आप पीकर सोचने लगते हैं प्यास बुझ गई। प्यास बुझती नहीं, तकलीफ जारी रहती है। लेकिन पानी की खोज बंद हो जाती है, क्योंकि जब भी खोज करने जाते हैं, ख्याल आता है, पानी तो पी चुके, पानी तो हमारे पास है।

हर आदमी के पास धर्म है, और किसी आदमी के पास धर्म नहीं है। और हर आदमी के पास परमात्मा है, और किसी आदमी के पास परमात्मा नहीं है। परमात्मा, धर्म, कुछ मिलता नहीं है उससे; आप वैसे के वैसे बने रहते हैं। प्यास जारी रहती है, दुख जारी रहता है; लेकिन खोज बंद हो जाती है। ये सब्स्टीट्यूट हैं, ये परिपूरक हैं। और खतरनाक हैं।

वास्तविक खोजी के लिए निर्णय लेने की जल्दी नहीं करनी चाहिए। रुकना चाहिए, अपने को सम्हालना चाहिए, और खोज जारी रखनी चाहिए। जिस दिन खोज उस जगह ले आए जहां प्रकट हो जाए जीवन का रहस्य, उस दिन निर्णय लें। लेकिन उस दिन आप अपने को आस्तिक-नास्तिक नहीं कहेंगे। उस दिन ये शब्द ओछे पड़ जाएंगे। उस दिन हां और न का कोई मतलब न रहेगा। उस दिन आप हंसेंगे सारे विवाद पर। उस दिन आप कहेंगे, हां कहने वाले उतने ही नासमझ हैं जितने न कहने वाले। उस दिन आप कहेंगे कि परमात्मा दोनों को समा लेता है, हां और न को; आस्तिकता-नास्तिकता दोनों ही उसमें लीन हो जाती हैं। उस दिन आप कहेंगे कि ये दोनों बातें भी अधूरी हैं, दोनों को इकट्ठा जोड़ दो तो ही परमात्मा पूरा हो पाएगा। क्योंकि परमात्मा इतना बड़ा है कि अपने सब विरोधाभासों को समा लेता है। उस दिन आप इस तरह की पार्टी-बंदी में नहीं हो सकते हैं। जिन्होंने भी जाना है वे समस्त विरोधों को आत्मसात कर लेते हैं।

तीसरा प्रश्नः मुझे लगता है कि जीवन-यात्रा में मैं स्वभाव से बहुत दूर निकल आया हूं। तो क्या स्वभाव में वापस लौटने की, प्रतिक्रमण की यात्रा भी इतनी ही लंबी होगी? या उसमें कोई शार्टकट भी संभव है?

शार्टकट तो बिल्कुल संभव नहीं है। और दूसरी बात और ख्याल से समझ लें, यात्रा इतनी लंबी नहीं होगी। यात्रा होगी ही नहीं। करीब-करीब हालत ऐसी है कि एक आदमी सूरज की तरफ पीठ करके खड़ा है और चलता जा रहा है। हजार मील चल चुका है। और हम उससे आज कहते हैं कि तू सूरज की तरफ हजार मील चल चुका पीठ करके, इसीलिए अंधेरे में भटक रहा है। और प्रकाश को खोजना चाहता है। तो वह आदमी कहेगा कि क्या सूरज की तरफ मुंह करने के लिए मुझे हजार मील फिर चलना पड़ेगा? उससे हम कहेंगे, नहीं, हजार मील नहीं चलना पड़ेगा। वह कहे कि क्या कोई शार्टकट हो सकता है कि दो-चार-पांच मील चलने से हो जाए? हम कहेंगे, दो-चार-पांच मील चलने की भी कोई जरूरत नहीं है; तू सिर्फ रुख बदल ले; तू सिर्फ पीठ सूरज की तरफ किए है, मुंह कर ले। क्योंकि सूरज कोई एक स्थान में बंधा हुआ नहीं है। और जब तू सूरज की तरफ पीठ करके जा रहा था तब भी सूरज तेरे पीछे साथ ही था।

परमात्मा अगर कहीं एक जगह बंधा होता, या स्वभाव कहीं कैद होता, हम उससे दूर निकल सकते थे। हम दूर नहीं निकल सकते हैं, हम सिर्फ पीठ कर सकते हैं। इसलिए कोई लाखों जन्मों तक स्वभाव से पीठ किए रहा हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। आज मुंह फेरने को राजी हो जाए, स्वभाव में प्रविष्ट हो जाएगा।

इसलिए न तो मैं कहता हूं कि उतना ही चलना पड़ेगा जितना आप विपरीत चले हैं और न मैं कहता हूं कि कोई शार्टकट संभव है। शार्टकट की तो कोई जरूरत ही नहीं है। क्योंकि चलना ही नहीं है, सिर्फ रुख बदलना है।

ऐसा समझें कि इस कमरे में अंधेरा भरा हो हजारों साल से और हम कहें कि दीया जलाएं। तो कोई पूछे कि क्या हजारों साल तक दीया जलाते रहेंगे तब अंधेरा मिटेगा? क्योंकि अंधेरा हजारों साल पुराना है और अभी दीया जलेगा तो एकदम से कैसे अंधेरे को मिटाएगा? इतना पुराना अंधेरा! कोई जल्दी का उपाय नहीं है? तो हम उससे कहेंगे, न तो देर लगेगी और न जल्दी का कोई सवाल है। क्योंकि दीया जला नहीं कि अंधेरा मिट जाएगा। अंधेरे की कोई प्राचीनता नहीं होती; अज्ञान की कोई प्राचीनता नहीं होती। वह कितना ही समय रहा हो, उसकी पर्तें नहीं जमतीं। उनको काटना नहीं पड़ेगा। ज्ञान की एक किरण--और अंधेरा कट जाता है, और अज्ञान छूट जाता है।

और ऐसा किसी एक व्यक्ति के साथ थोड़े ही है कि वह स्वभाव से दूर निकल गया है; सभी स्वभाव से दूर निकल गए हैं। पर दूर निकलने का इतना ही मतलब है कि वे पीठ करके चलते रहे हैं। वस्तुतः तो कोई स्वभाव से दूर नहीं निकल सकता। कैसे निकलेंगे? स्वभाव का मतलब ही यह है कि जो आप हैं। कौन निकलेगा दूर? स्वभाव और आप दो होते तो कहीं स्वभाव को छोड़ कर भाग आ सकते थे। स्वभाव यानी आप। तो आप दूर कैसे निकलेंगे? कोई दूर निकलने का उपाय नहीं है। वस्तुतः स्वभाव की परिभाषा समझ लेनी चाहिए। स्वभाव की परिभाषा यह हैः जिसे छोड़ा न जा सके। जिसे छोड़ा जा सके वह परभाव है, वह स्वभाव नहीं है। स्वभाव का मतलब है, जिसे अपने से अलग किया ही नहीं जा सकता। लाख उपाय करें तो भी स्वभाव से भिन्न आप हो नहीं सकते। तो पहली तो बात यह है कि स्वभाव से आप दूर नहीं जा सकते, स्वभाव को छोड़ नहीं सकते, स्वभाव से विपरीत नहीं हो सकते।

लेकिन तब सवाल यह उठता है, तो फिर यह लाओत्से निरंतर कहे चला जा रहा है--स्वभाव में डूबो! स्वभाव में उतरो! स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाओ! तो इसकी बात गलत होनी चाहिए, अगर हम स्वभाव खो ही नहीं सकते तो।

इसकी बात भी गलत नहीं है। हम स्वभाव के प्रति बेभान हो सकते हैं, स्वभाव के प्रति इनअटेंटिव हो सकते हैं, स्वभाव के प्रति ध्यान छोड़ सकते हैं। स्वभाव का स्मरण खो सकते हैं, स्वभाव नहीं खो सकते। जैसे आपके खीसे में एक हीरा रखा है। आप भूल सकते हैं, विस्मरण हो सकता है कि खीसे में हीरा है; इससे हीरा नहीं खो जाता। हीरा खीसे में है, चाहे आप याद रखें, चाहे याद न रखें। स्वभाव आपके भीतर है। तो जब आप वस्तुओं में, वासनाओं में, इच्छाओं में भटकते हैं, तो विस्मरण हो जाता है। इसलिए भारत के संतों ने कहा है, परमात्मा को पाना नहीं है, केवल प्रभु-स्मरण! सिर्फ प्रभु-स्मरण करना है; पाना नहीं है। क्योंकि पाना तो उसे होता है जिसे हमने कभी खोया हो। परमात्मा को हम खो नहीं सकते। सिर्फ स्मरण!

पर हम तो हर चीज से व्यर्थता निकाल लेते हैं। तो लोग हैं जो हरि-स्मरण कर रहे हैं, प्रभु-स्मरण कर रहे हैं, राम-राम, राम-राम जप रहे हैं। अपनी चदरिया को उन्होंने राम चदरिया बना ली है, उस पर सब राम-राम लिख लिया है। प्रभु-स्मरण का अर्थ है कि जो मेरे भीतर छिपा है उसका मुझे बोध हो जाए। राम-राम दोहराने

से बोध नहीं हो जाएगा। मेरी आंखें जो बाहर भटक रही हैं भीतर मुड़ जाएं; मेरे कान जो बाहर सुन रहे हैं भीतर सुनने लगें; मेरी बुद्धि जो बाहर के संबंध में सोच रही है वह भीतर मुड़ जाए, उसका दीया, उसका प्रकाश भीतर पड़ने लगे।

इसी क्षण आप स्वभाव में प्रतिष्ठित हो सकते हैं, क्योंकि प्रतिष्ठित तो आप हैं ही। कभी कोई आपको वहां से अप्रतिष्ठित न कर सका है, न कर सकेगा। इसीलिए हजारों जन्मों तक भी भटक कर आप भटक नहीं पाते। आपकी क्षमता उसे वापस पाने की प्रतिपल उतनी ही है जितनी कभी थी; उसमें रत्ती भर कमी नहीं हुई। अभी चाहें, इसी क्षण, तो मुड़ सकते हैं। मुड़ने में कोई बाधा अगर है तो वह आपकी आदतों की है; स्वभाव के दूरी की कोई बाधा नहीं है। अगर कोई बाधा है तो यह कि आप एक तरफ इतने दिन से देखते रहे कि गर्दन जकड़ गई। खिड़की पर खड़े हैं अगर एक साल से और पीछे लौट कर नहीं देखा तो गर्दन जकड़ गई। मकान पीछे है, कमरा पीछे है, जहां आप विश्राम कर सकते हैं। लेकिन आप कहेंगे, बड़ी कठिनाई है, मालूम होता है बहुत दूर निकल गए। दूर नहीं निकले हैं, केवल लकवा लग गया है गर्दन में।

इसलिए सारे उपाय इस लकवा को दूर करने के लिए हैं। परमात्मा को पाने का कोई उपाय नहीं है; परमात्मा मिला हुआ है। सिर्फ आपकी गर्दन जकड़ गई है बाहर देखते-देखते; पीछे मुड़ना भूल गई है। बस उसे पीछे मुड़ना सिखाना है। सारे योग, सारी विधियां, आपकी गर्दन की नसों को थोड़ा ढीला करने के लिए हैं; मसाज की तरह हैं। थोड़ी गर्दन ढीली हो जाए, जकड़ी हुई मांस-पेशियां शिथिल हो जाएं और आपकी गर्दन मुड़ जाए, और आप उसे पा लें जिसे आपने कभी भी खोया नहीं है। जो खोया जा सके वह स्वभाव नहीं है। भूला जा सकता है।

इसलिए सारी बात दो शब्दों पर हैः स्मरण और विस्मरण। गुरजिएफ ने अपनी सारी साधना को सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है, आत्म-स्मरण। बस अपना ख्याल आ जाए। आप हैं, ख्याल की शक्ति है; लेकिन इन दोनों में जोड़ नहीं है। करीब-करीब ऐसा कि एक वीणा रखी है आपके घर में। वीणा रखी है; संगीत पूरा का पूरा छिपा पड़ा है। तार तैयार हैं कि कोई जरा सी चोट, कि झंकार पैदा हो जाए। आप भी खड़े हैं। अंगुलियां भी आपकी जीवंत हैं। सिर्फ आपकी अंगुलियों और तार के छूने की बात है; जो संगीत छिपा है, वह प्रकट हो जाएगा।

लेकिन आपको यह स्मरण नहीं है कि आपके पास अंगुलियां हैं। आपको यह स्मरण नहीं कि सामने वीणा रखी है। वीणा दिखाई भी पड़ें तो अंगुलियां समझ में नहीं आतीं; अंगुलियां दिखाई पड़ें तो वीणा समझ में नहीं आती। दोनों भी दिखाई पड़ जाएं तो यह ख्याल नहीं आता कि अंगुली की चोट करनी जरूरी है। सब कुछ मौजूद है। कुछ नया लाना नहीं है। जो मौजूद है, उसके भीतर ही एक नया संयोजन, बस एक नई व्यवस्था बिठानी है। उस नई व्यवस्था का नाम योग है; उस नई व्यवस्था का नाम साधना है।

चौथा प्रश्नः आप प्रारंभ में निष्क्रिय ध्यान-विधि का प्रयोग करवाते थे और अब सक्रिय ध्यान-विधि का। क्या सक्रियता का लाभ भी अक्रियता जैसा है?

नहीं, सक्रियता का लाभ कभी भी अक्रियता जैसा नहीं है। लेकिन आप जिस हालत में हैं, वहां से अक्रिय होना असंभव है। आपको पहले पूरी तरह सक्रिय करवा देना जरूरी है। कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहला, छलांग केवल अति से लगती है। अगर आपको इस कमरे के बाहर कूदना है तो कमरे के बीच में खड़े होकर आप नहीं कूद सकते; किनारे पर जाना पड़ेगा। या तो इस अति पर जाएं, एक छोर पर, या दूसरे

छोर पर जाएं, दूसरी अति पर जाएं। छलांग अति से लगती है, मध्य से नहीं। और आप मध्य में हैं। न तो आपकी सक्रियता पूरी है कि अति पर आ जाए। न आपकी निष्क्रियता पूरी है कि अति पर आ जाए। अगर आपसे कोई कहे कि निष्क्रिय बैठो, तो आप निष्क्रिय नहीं बैठ सकते, सक्रियता जारी रहती है। अगर कोई आपसे कहे कि पूरी तरह सक्रिय हो जाओ, तो भी मन में यह ख्याल बना रहता है कि क्यों व्यर्थ भाग-दौड़ कर रहे हैं, शांत हो जाएं, निश्चिंत बैठ जाएं। जब आप सक्रिय होते हैं तब निष्क्रियता आपको लुभाती है, और जब आप निष्क्रिय होते हैं तब सक्रियता बुलाती है। आप आधे-आधे हैं।

सक्रिय ध्यान-पद्धति पहले आपको पूरा सक्रिय बना देती है। उस जगह ले आती है जहां से छलांग लग सकती है; जहां हम सक्रियता से थक जाते हैं, जहां आपका पूरा मन-प्राण कहने लगता है--अब रुको भी! मैं उस सीमा तक आपको ले जाना चाहता हूं जहां आपकी सारी जीवन-ऊर्जा कहने लगे, रुको! अब और नहीं! उस क्षण में छलांग लग सकती है और आप निष्क्रिय हो सकते हैं। उसके पहले आप निष्क्रिय न होंगे। इसके पहले कि आप शांत हों आपको अपने भीतर की सारी विक्षिप्तता को बाहर निकाल देना होगा। सक्रियता का वही प्रयोजन है, आपके भीतर छिपा हुआ सारा पागलपन बाहर आ जाए। छिपा रहे, साथ रहेगा; छिपा रहे तो भीतर से अड़चन पैदा करता रहेगा। निकल जाए तो आप हलके हो जाएं। तूफान गुजर जाए तो आप शांत हो जाएं।

मैं खुद तो निष्क्रियता से उस जगह पहुंचा था। इसलिए शुरू में मैंने लोगों को भी निष्क्रिय होने को कहा, जैसा लाओत्से कह रहा है। लेकिन मैंने पाया, वह बात समझ में नहीं आती; सौ लोगों को कहूं तो कभी एक व्यक्ति को समझ में आ पाती है निष्क्रिय होने की बात। मेरा अपना अनुभव वही था। पर उसमें भूल हो रही थी। मेरे अनुभव को मैं सबका अनुभव बनाने की कोशिश कर रहा था।

तो पहले जब मेरा जोर था कि सीधे निष्क्रियता में उतर जाएं तो वह मेरे कारण था। उसमें भ्रांति थी। भ्रांति यह थी कि मैं सोचता था, जैसे मुझे हुआ है, ठीक वैसे ही दूसरों को भी हो जाएगा। निरंतर लोगों को निष्क्रिय करने की कोशिश करके मुझे अनुभव हुआ कि कठिन है। ये व्यक्ति अभी सक्रिय ही नहीं हुए हैं पूरे, इसलिए निष्क्रिय न हो सकेंगे। तो फिर इन्हें निष्क्रिय कर लेना सीधा, आसान नहीं है। पहले इन्हें सक्रियता में ले जाना जरूरी है। करीब-करीब मेरा पानी निन्यानबे डिग्री पर रहा होगा इसलिए सौ डिग्री पर उबल गया। वह निन्यानबे डिग्री तक अनेक जन्मों में आया होगा सक्रियता की। तो मुझे लगा था कि एक ही डिग्री की बात है; किनारे पर खड़े हैं, छलांग लग जाएगी। वह अपने कारण आपसे मैंने निष्क्रियता की बात करनी शुरू की थी।

वही लाओत्से कर रहा है--उसके कारण। इसलिए लाओत्से की बात बहुत काम में आ नहीं सकी। बात बिल्कुल सही है, लेकिन अपने को ध्यान में रख कर कर रहा है।

फिर जितना ज्यादा मैंने लोगों के साथ प्रयोग किया, मैंने देखा कि कोई पचास डिग्री पर है, कोई चालीस डिग्री पर है। वह एक डिग्री में छलांग लग नहीं सकती। और एक डिग्री में--वह कोशिश भी करके एक डिग्री ले आता है तो पचास वाला इक्यावन डिग्री पर पहुंचता है, कुछ फर्क नहीं पड़ता; वह कहता है, कुछ हो नहीं रहा। निन्यानबे वाला कहता है सब हो गया, क्योंकि वह भाप बन जाता है। तो मेरी प्रतीति यह थी कि एक डिग्री से सब हो जाता है, वह अपने कारण थी। फिर मैंने बहुत लोगों में देखा कि उनमें एक डिग्री नहीं, दस डिग्री भी बढ़ जाती है तो भी कुछ नहीं होता। तब ख्याल आना शुरू हुआ कि निन्यानबे डिग्री पर जो नहीं है वह छलांग नहीं लगा सकता।

तो आपको अब मैं पागल होना सिखा रहा हूं कि आप निन्यानबे डिग्री तक गर्म हो जाएं। और तब मैं आपसे रुकने को कहता हूं जब मैं पाता हूं कि अब आप उबल रहे हैं, अब इसके आगे जाने का आपको कोई उपाय नहीं है; अब छलांग लग सकती है। अगर आप रुक गए तो इसी क्षण छलांग लग जाएगी।

सक्रियता साधन है निष्क्रियता में ले जाने का। लक्ष्य तो निष्क्रियता ही है। सारी क्रियाएं उस जगह पहुंचाने के लिए हैं जहां आप बिल्कुल क्रिया-शून्य हो जाएं। सब करना उस जगह पहुंच जाने के लिए है जहां कुछ करने को न बचे और परम विश्राम हो जाए।

पांचवां प्रश्नः करोड़ों-अरबों वर्ष की स्मृतियों के संग्रह के भीतर होते हुए भी साधक कैसे मन के बोझ से निर्भार हो, इस पर कुछ कहें। इतने विराट अतीत के कारण चित्त में निराशा उत्पन्न होती है।

निराशा उत्पन्न करने का कोई भी कारण नहीं है। अतीत लंबा है; बोझ भारी है। लेकिन बोझ अतीत के कारण नहीं है; आप उसको पकड़े हैं, इस कारण है। अगर बोझ अतीत के कारण ही होता तो निराशा स्वाभाविक है। फिर मैं आपसे कहता ही नहीं, क्योंकि मामला इतना लंबा है कि होने वाला नहीं था। करोड़ों वर्ष का अतीत है! वह बोझ इतना बड़ा है कि आप कितना ही उतारें, आप उतार न पाएंगे। अगर बोझ को ही उतारना होता तो असंभव थी बात। लेकिन बोझ आपको नहीं पकड़े हुए है, आप बोझ को पकड़े हुए हैं।

मजा तो यह है कि बोझ को पकड़े हैं, इसीलिए वह आपके ऊपर बोझ मालूम हो रहा है। छोड़ दें; छोड़ना एक क्षण में हो सकता है। इकट्ठा किया है अरबों वर्ष में, लेकिन छोड़ना एक क्षण में हो सकता है। एक आदमी धन इकट्ठा करता है पूरे जीवन; दान एक क्षण में हो सकता है। वह यह तो नहीं कहेगा कि पचास साल लगे हैं इकट्ठा करने में तो दान करने में पचास साल तो कम से कम लगेंगे ही।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया था। एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं भेंट कीं। रामकृष्ण ने कहा, मैं क्या करूंगा इनका, तू जा और गंगा में फेंक आ। वह आदमी गया तो बड़ी देर हो गई, लौटा नहीं। तो रामकृष्ण ने कहा, देखो, वह क्या कर रहा है? जरूर वह गिन-गिन कर फेंक रहा होगा।

फेंकने में भी गिनने की कोई जरूरत तो नहीं है। मगर वह आदमी यही कर रहा था। न केवल वह गिन रहा था, बजा रहा था पत्थर पर। जब खन्न से बजती थी--और भीड़ इकट्ठी हो गई थी--तब वह एक फेंकता था। और गिनती कर रहा था--एक, दो... । हजार मुद्राएं थीं। जिन संन्यासी को रामकृष्ण ने भेजा उन्होंने जाकर कहा, तू यह क्या कर रहा है? बड़ी देर हो गई। वापस आया तो रामकृष्ण ने कहा, पागल, इकट्ठा करने में जितना समय लगता है, और इकट्ठा करने में गिन-गिन कर ही करना पड़ता है, उतना समय फेंकने में लगाने की जरूरत नहीं। पोटली पूरी ही फेंक आना था। जब फेंक ही रहे हैं तो हिसाब क्या रखना? और यह बजा क्यों रहा था?

मगर उसकी जो आदत इकट्ठा करने की थी उसी आदत को वह फेंकने में भी काम ला रहा था। उसे दूसरी बात का पता ही नहीं था। यही अड़चन है। करोड़ों वर्ष में संग्रह किया है; छोड़ एक क्षण में सकते हैं। पकड़े आप हैं, अतीत आपको नहीं पकड़े हुए है। अतीत मुर्दा है; वह आपको पकड़ेगा भी कैसे? राख है, धूल की तरह आप पर है; आप झाड़ दे सकते हैं।

इसलिए निराश होने की कोई भी जरूरत नहीं है। और अगर नहीं उतार पा रहे हैं, तो अतीत का बोझ ज्यादा है, इस भांति मत सोचें। आपकी पकड़ गहरी है; तादात्म्य भारी है; लगाव है। हमारी कठिनाई यह है कि जो हम छोड़ना चाहते हैं उससे हमारा लगाव है। तो इधर हम जब सुनते हैं बात छोड़ने की और सोचते हैं छोड़ने से परम आनंद मिलेगा, छोड़ दें। लेकिन हमारे भीतरी लगाव हैं और उन लगावों से हमको ख्याल है कि आनंद, रस, कुछ सुख मिलने वाला है; उसकी वजह से हम पकड़े हुए हैं।

इस संबंध में बहुत साफ हो जाना चाहिए। जिसको भी छोड़ना है उस संबंध में पूरा स्पष्ट हो जाना चाहिए कि उसमें हमारा कोई इनवेस्टमेंट तो नहीं है? उससे हम कुछ पाने की आशा तो नहीं किए हैं? क्योंकि पाने की अगर आशा किए हुए हैं तो छोड़ेंगे कैसे? हमारी अड़चन यही है कि जो-जो हम पकड़े हुए हैं उससे हमें पाने की आशा है। और इधर जब सुनते हैं, संतों ने जो कहा है, उसमें भी हमारा लोभ पैदा होता है। वह भी लोभ है; वह भी समझ नहीं है। उसमें लगता है कि इतना आनंद मिलता है!

कबीर कहते हैं, अमृत बरस रहा है। कबीर कहते हैं, कबीर नाच रहा है और आकाश से अमृत बरस रहा है। सुनते हैं लोभी; उनके मन में भी, उनकी जीभ पर भी लार आ जाती है कि ऐसा अमृत हम पर भी बरसे। तो वे भी सोचने लगते हैं कि कबीर कहते हैं, छोड़ दो सब वासना तो अमृत बरसेगा, तो वे सोचते हैं कि छोड़ दें सब वासना। अमृत बरसे इसलिए, इस लोभ के लिए।

और फिर हर वासना से उनका लोभ जुड़ा है। अगर यह वासना छोड़ते हैं तो पत्नी से जो सुख मिला है वह, धन से जो सुख मिल रहा है वह, पद से जो सुख मिल रहा है वह, उसका क्या होगा? हमारे लिए अध्यात्म और संसार दोनों ही लोभ हैं; और इसलिए हम बड़ी बिबूचन में है। हमारी हालत उस गधे जैसी है। बहुत पुरानी पंचतंत्र की कथा है। एक बुद्धिमान आदमी ने एक गधे के दोनों तरफ बराबर दूरी पर घास के ढेर लगा दिए। वह गधा कभी तो सोचे कि बाएं जाऊं; बाएं की ढेरी उसको प्रीतिकर लगे। तभी उसे ख्याल आए कि दायां भी ज्यादा दूर नहीं है, उतनी ही दूरी पर है; दाएं चला जाऊं। लेकिन दाएं जाता है तो बायां छूटता है; बाएं जाता है तो दायां छूटता है। कहते हैं, वह गधा मर गया भूखा, क्योंकि वह बीच में ही खड़ा चिंतन में ही लीन रहा।

गधे वैसे ही चिंतक होते हैं। सोचते हैं, सोचते चले जाते हैं। गधे इसलिए इतने उदास दिखते हैं खड़े हुए; जहां भी उनको देखो, वे काफी सोच रहे हैं। वह जो रोडिंग की बड़ी प्रसिद्ध कलाकृति है, विचारक, उसमें एक विचारक की ऐसी सिर से हाथ लगाए हुए मूर्ति बनाई है रोडिंग ने। पश्चिम में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है। रोडिंग की मूर्ति की बड़ी कीमत है। क्योंकि वह विचारक का प्रतीक है। लेकिन अगर गधे के पास खड़े होकर देखें तो रोडिंग भी ऐसा विचारक नहीं बना सकता जैसा गधा खड़ा होकर सोचता रहता है।

वह गधा सोचता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा। भूख बढ़ती गई और वह निर्णय न ले पाया कि बाएं जाऊं कि दाएं। क्योंकि एक छोड़ना ही पड़ता। वह एक भी छोड़ने को राजी नहीं था। वह दोनों ही पाना चाहता था। दोनों पाने की कोशिश में दोनों गए। पुरानी कहावत है, इक साधे सब सधे। वह गधे को उस कहावत का कोई पता नहीं था। एक ही ढेर पर जा सकता था।

हर आदमी के मन की हालत ऐसी है। संसार में जो दिखाई पड़ता है, वह भी पाने जैसा है। ये संत और मुसीबत किए रहते हैं। ये जो कहते हैं, वह और भी पाने जैसा है। दो लोभों के बीच मन अटक जाता है। तो कभी वह सोचता है, छोड़ दूं सब। जैसे ही सोचता है छोड़ दूं सब, तो वह देखता है कि ये सारे सुख जो इस पकड़ने से मिले हैं वे खो जाएंगे। तो पकड़े रहना चाहता है। और वह जो संत कह रहे हैं, इशारा कर रहे हैं, वह आकर्षण भी खींचता है, उसको भी पाना चाहता है।

तो फिर वह तरकीबें निकालता है। फिर वह कहता है, कैसे छोडूं? यह जन्मों-जन्मों का बोझ है। यह कोई आसान तो नहीं छोड़ना। कल छोड़ेंगे, परसों छोड़ेंगे, चेष्टा करेंगे, धीरे-धीरे छोड़ेंगे। वह पोस्टपोन करता है। यह लोभ के कारण! बोझ कोई भारी पकड़े हुए है, इस कारण नहीं। लोभ के कारण सोचता है, एक दिन और भोग लो। अगर पत्नी को कल छोड़ ही देना है तो एक दिन प्रेम और सही। अगर इस महल से हट ही जाना है तो कल तक तो रुक ही सकते हैं। फिर जल्दी क्या है?

फिर संत जो भी कहते हैं, उस पर पक्का भरोसा नहीं आता। असंत जो कर रहे हैं, वह भरोसे योग्य मालूम पड़ता है। क्योंकि उनकी बड़ी भीड़ है। फिर असंत जो भी कर रहे हैं, वह प्रत्यक्ष मालूम होता है। संत जो भी कह रहे हैं, वह कबीर को दिख रहा होगा कि अमृत बरस रहा है, हमको कुछ दिखता नहीं। कबीर दिखते हैं, कोई अमृत दिखता नहीं; कहीं कोई वर्षा नहीं दिखती। कबीर से थोड़ी झलक मिलती है कि जरूर कुछ मिला होगा, नहीं तो यह आदमी इस भांति नाचता कैसे? हम भी चाहते हैं कि वह हमें मिले, हम भी नाचें। लेकिन वह हमें साफ दिखाई नहीं पड़ता।

इस जगत में जो कुछ है वह सब दृश्य है। उस जगत में जो कुछ है वह सब अदृश्य है। इसलिए बुद्धिमानों ने कहा है, हाथ की आधी रोटी बेहतर है दूर की पूरी रोटी से। क्योंकि दूर की रोटी पता नहीं जाते-जाते रोटी सिद्ध हो या न हो! सिर्फ दिखाई पड़ती हो, दूर की मृग-मरीचिका हो। हाथ में जो है उसे भोग लो। और अगर कोई तरकीब निकलती हो कि इसे भोगते हुए तुम उसे भी पा सको जो दूर है, तो ऐसी कोशिश करो। वही हम कर रहे हैं। हम, जो है उसे छोड़ना नहीं चाहते और जो नहीं है उसको भी पाना चाहते हैं।

लेकिन ध्यान रहे, हमारे हाथ भरे हैं संसार से; और जब तक हाथ खाली न हों तब तक परमात्मा उतर नहीं सकता। सिंहासन उसके लिए खाली चाहिए।

इसलिए मेरी दृष्टि यह है कि बजाय दोनों घास के ढेरों के बीच भूखे मर जाने के यह बेहतर है कि चाहे बाएं जाओ, चाहे दाएं जाओ, जाओ। संसार ही पाना हो तो पूरी तरह पाओ। फिर मत कहो कि यह बोझ है और इससे छूटना है; यह मत कहो। कहो कि इसमें रस है, इसमें सुख है, हम जाएंगे। ईमानदारी से प्रवेश करो। तुम्हारी ईमानदारी तुम्हें बचाएगी। क्योंकि तुम कितनी ही ईमानदारी से कहो इसमें सुख है, तुम पाओगे कि दुख है। और जो ईमानदारी से कह रहा था संसार में सुख है, जिस दिन पाएगा कि दुख है, वह इतनी हिम्मत उसमें होगी कि वह कहेगा कि इसमें दुख है; मेरी भूल थी।

तुम्हारी मुश्किल यह है कि तुम कहते हो संसार में दुख है, और तुम जानते हो कि सुख है। संतों ने तुम्हें डगमगा दिया। उनकी वाणी ने तुम्हें उलझा दिया। वे चाहते नहीं थे कि तुम्हें उलझाएं; वे तुम्हें सुलझाना चाहते थे। लेकिन तुम कुशल हो। उलझने में तुम्हारी कला इतनी गहन है। उन्होंने तुमसे जो भी कहा है, उससे उलझन बढ़ी है, घटी नहीं है। उससे तुम भी कहने लगे, संसार में दुख है। और तुम जानते हो कि सुख है।

अगर सच में संसार में दुख है तो क्या तुम पूछोगे कैसे छोड़ें? कोई पूछता है दुख को कि कैसे छोड़ें? घर में आग लगी हो, तुम पूछते हो कि कैसे बाहर जाएं? तुम छलांग लगाते हो, बाहर निकल जाते हो। तुम यह नहीं कहते कि यह घर पचास साल में बनाया, कैसे इसमें से छलांग लगा कर बाहर चले जाएं? एक क्षण में कैसे छलांग लग सकती है? लेकिन जब घर में आग लगी हो तब तुम पूछते नहीं, तुम छलांग लगा जाते हो।

संत कहते हैं, घर में आग लगी है। तुम बेईमान हो, तुम उन्हें सिर हिला कर हां भरते हो कि ठीक कह रहे हो, क्योंकि तुम यह भी नहीं कह सकते कि तुम गलत कह रहे हो। और तुम जानते हो, घर में आग नहीं लगी, सब निश्चिंतता है; बाहर झंझट है, आग लग सकती है; अपने घर में रहो। इससे उलझन है। साफ होना जरूरी है।

स्पष्ट होना जरूरी है। तुम्हें सुख दिखाई पड़ता हो तो तुम मानो कि सुख है और उस सुख की खोज करो। और संतों को मत सुनो। बंद करो। कह दो उनसे कि नहीं, तुम्हारा रास्ता हमारा रास्ता नहीं है। हमें जहां सुख दिखता है, हम वहां खोजेंगे। तुमने भी हमारी नहीं सुनी थी। तुम भी अपने अनुभव से आए हो इस जगह कि तुम्हें वहां दुख दिखाई पड़ा। हमें भी हमारे अनुभव से आने दो।

ज्यादा देर नहीं लगेगी। संसार में दुख है। क्योंकि संत झूठ नहीं कह रहे हैं। वे जान कर कह रहे हैं। लेकिन तुम अनुभव से गुजरो। तुम्हारे सब सुख जब तुम्हें दुख मालूम पड़ने लगेंगे तब तुम पूछोगे नहीं कैसे छोड़ दें; तुम उतार कर रख दोगे बोझ। तुम कहोगे, सारा स्वार्थ खत्म हुआ, सारा लोभ खत्म हुआ; अब इस बोझ को ढोने की कोई भी जरूरत न रही। उस दिन अरबों-अरबों वर्ष की स्मृति क्षण भर में टूट जाती है। तुम अलग हो जाते हो।

तुम उसे पकड़े हो। पकड़ सवाल है। तुम्हारी पकड़ कैसे ढीली हो, यह सोचो। चेष्टा से ढीली नहीं होगी, अनुभव से ढीली होगी। मेरी बात कठिन लग सकती है। पर मैं कहता हूं कि तुम्हें अगर नरक में भी सुख दिखाई पड़ता हो तो तुम नरक जाओ। क्योंकि तुम्हारे लिए और कोई उपाय नहीं है। नरक से तुम्हें गुजरना ही होगा। तुम्हें नरक की पीड़ा से साफ अनुभव लेना ही होगा कि यह नरक है, ताकि तुम दुबारा उस मोह में न पड़ सको। तुम्हारा स्वर्ग अगर कहीं भी है तो रास्ता नरक से होकर जाएगा। क्योंकि नरक में तुम्हें अभी स्वर्ग दिखाई पड़ रहा है। पहले तुम्हें नरक ही जाना होगा। तुम इस नरक से बच न सकोगे। कोई कितना ही कहे कि वहां दुख है, लेकिन तुम वहां खिंचे जा रहे हो; तुम्हारा मन कह रहा है वहां सुख है।

तुम्हारा मन जहां तुम्हें ले जाए, जाओ। दुविधा में मत पड़ो। मन तुम्हें गलत जगह ले जाएगा, यह पक्का है। लेकिन जल्दी मत करो, कच्चे निर्णय मत लो; जाओ! और अनुभव से ही कहने दो कि तुम्हारा मन गलत है। धीरे-धीरे तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे मन की मृत्यु हो जाएगी। जितना तुम जानोगे, उतना ही मन को सुनना बंद कर दोगे। और जिस दिन तुम जीवन के सब पहलुओं को पहचान लोगे उस दिन तुम मन को छोड़ दोगे। पकड़ने का कोई कारण न रह जाएगा। अपने ही अनुभव से कोई सत्य तक पहुंचता है। तुम उधार सत्यों के साथ जीने की कोशिश कर रहे हो, वही विडंबना है।

आखिरी प्रश्नः नाटक में काम करने वाले अभिनेता कुछ उद्देश्य के साथ अभिनय करते हैं। हमें अभिनय करवाने में परमात्मा का क्या आशय है?

पहली बात, अभिनेता इसीलिए संत नहीं हो पाता, क्योंकि उसके अभिनय में उद्देश्य है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अभिनेता संत हैं; मैंने यह कहा कि संत अभिनेता होते हैं। सभी संत अभिनेता होते हैं; सभी अभिनेता संत नहीं होते। अभिनेता तो अभिनय कर रहा है काम की तरह। वह खेल नहीं है, वह तो पेशा है। वह उससे कुछ पाना चाहता है। और जिस चीज से भी आप कुछ पाना चाहते हैं वह काम हो गया। और जिस चीज से आप कुछ पाना नहीं चाहते, उस चीज में होने का ही रस काफी है, वह खेल हो गया।

ध्यान रहे, काम का अर्थ है, लक्ष्य बाहर है; खेल का अर्थ है, लक्ष्य भीतर है, इंट्रिंजिक, उसके भीतर छिपा है। खेलते हैं खेल के आनंद के लिए; काम करते हैं कुछ और चीज को पाने के लिए। खेल अपने में पूरा हो जाता है। काम सिर्फ एकशृंखला है, एक कड़ी है; आगे ले जाता है। काम साधन है, साध्य कहीं और। खेल साधन भी है, साध्य भी। इसलिए खेल अपने आप में पूर्ण है।

अभिनेता अभिनय कर रहा है काम की तरह। अभिनेता संत नहीं है। लेकिन संत जीवन को ऐसे जी रहा है जैसे प्रत्येक घड़ी अपने में पूरी है। रस उस घड़ी को जीने में है, उसके पार नहीं। जो भी सामने है, वह उसे पूरी तरह खेल रहा है। और प्रसन्न है, आनंदित है कि यह क्षण और मिला, एक क्षण और मिला। होना इतना आनंद है, श्वास लेना इतना आनंद है! संत को हम दुखी नहीं कर सकते, क्योंकि उसे प्रत्येक, छोटी से छोटी चीज, श्वास लेना भी एक आनंद है।

एक झेन फकीर लिंची को कारागृह में डाल दिया गया था। तो जिन्होंने कारागृह में डाला था वे सोचते थे कि लिंची दुखी हो जाएगा। क्योंकि मोक्ष का खोजी, मुक्ति का खोजी, बंदीगृह में तो और भी दुखी हो जाएगा, साधारण लोगों से भी ज्यादा। क्योंकि साधारण लोग तो बंदी हैं ही; घर में हुए कि जेल में, कोई बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। घर में जरा गले की लगाम लंबी होती है, थोड़े दूर तक घूम लेते हैं; जेल में जरा छोटी होगी, थोड़ा पास ही पास चक्कर लगाएंगे। लेकिन लिंची तो मुक्ति का खोजी है, परम मुक्ति का आकांक्षी है, यह तो बहुत दुखी हो जाएगा। लेकिन लिंची को कोई फर्क न पड़ा। जेल में लिंची वैसा ही आनंदित था जैसा अपने झोपड़े में। हथकड़ियों में वैसा ही आनंदित था; वैसा ही ध्यान में बैठा रहता, वैसा ही मुस्कुराता रहता, वैसा ही गीत गाता।

आखिर कारागृह के प्रमुख ने आकर पूछा कि क्या कर रहे हो? क्या तुम्हें अपनी मुक्ति की जरा भी फिक्र नहीं है? लिंची ने कहा कि मैं न्यूनतम से भी आनंदित हूं, वही मेरी मुक्ति है। मैं हूं, इतना ही क्या कम है! जंजीर के भीतर हूं, इतना भी क्या कम है! श्वास चलती है, इतना क्या कम है! होना इतना सुखद है, पर्याप्त है; इससे ज्यादा की कोई मांग नहीं। और तुम मुझे बंदी न बना सकोगे, क्योंकि मेरा होना भीतर है, तुम्हारी जंजीरें बाहर हैं। तुम जिसे बांध लाए हो वह मेरा बाहर का रूप है; उससे मेरा कुछ बहुत लेना-देना नहीं है। तुम जिसे कुछ भी करके न बांध सकोगे वह मैं भीतर हूं। वहां मैं मुक्त हूं, वहां मैं उड़ रहा हूं; वहां मेरे आकाश की कोई सीमा नहीं है।

प्रतिपल जिसका साध्य और साधन एक साथ मौजूद है, वह अभिनय में है। संत अभिनेता हैं। और कोई उद्देश्य नहीं है।

लेकिन हम हिसाबी-किताबी लोग हैं। हम यह भी पूछते हैं कि परमात्मा का क्या आशय है? आपको पैदा करने में परमात्मा का क्या आशय है? आपसे काम लेने में, कि आप दफ्तर में क्लर्की कर रहे हैं, इसमें परमात्मा का क्या आशय है? हमारा मन मान कर चलता है कि जरूर कोई बड़ा आशय हमसे लिया जा रहा होगा। आप एक दफ्तर में दिन भर क्लर्की करते हैं, इसमें परमात्मा का क्या आशय हो सकता है?

मगर हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है कि जरूर कोई रहस्य होगा। कोई छिपा हुआ आशय, कोई महान योजना के हम भी हिस्से मालूम पड़ते हैं।

परमात्मा बिल्कुल आशयहीन है। क्योंकि आशय दुकानदारी का हिस्सा है। परमात्मा कोई दुकानदार नहीं है। यह जगत ज्यादा से ज्यादा उसका खेल है--उसकी प्रसन्नता, उसका उत्सव। जैसे छोटे बच्चे नाचते हैं, कूदते हैं, बनाते हैं, मिटाते हैं; रेत का घर बनाएंगे, और बना भी नहीं पाए कि मिटा देंगे। बनाते वक्त भी उतने ही आनंदित होंगे जितना मिटाते वक्त। बनाते वक्त बड़े रस से बनाएंगे, फिर उसी पर कूद कर, छलांग लगा कर उसको गिरा देंगे। उस गिराने में भी उतना ही रस लेंगे। कोई पूछे इन बच्चों से कि तुम्हारा आशय क्या है? ऊर्जा है, ऊर्जा प्रकट हो रही है, आनंदित हो रही है, नाच रही है। ओवरफ्लोइंग एनर्जी! बच्चे के पास इतनी ऊर्जा है कि

वह क्या करे? बनाता है, मिटाता है, और रस लेता है। न बनाने में कोई आशय है, न मिटाने में कोई आशय है। ऊर्जा है। वह ऊर्जा नाच रही है। परमात्मा बच्चों की भांति है, दुकानदारों की भांति नहीं।

इसलिए बच्चे परमात्मा के निकटतम हैं। और जब भी कोई पुनः बच्चों की भांति हो जाता है, बोधपूर्वक, तब वह परमात्मा के भीतर प्रवेश कर जाता है। जीसस ने कहा है, जो बच्चों की भांति होंगे वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। आशयरहित, प्रयोजनशून्य। परमात्मा का कोई आशय नहीं है।

सच पूछें तो परमात्मा जैसा कोई व्यक्ति कहीं बैठा हुआ नहीं है। हमारी सारी अड़चन भाषा की है। परमात्मा से तत्काल हमको ख्याल आता है कि ऊपर कोई बैठा है अपने खाते-बही खोले हुए; एक-एक आदमी के नाम लिख रहा है कि किसने चोरी की, किसने किसी का जेब काट लिया। यह मूढ़ता अगर कोई परमात्मा कर रहा हो तो कभी का पागल हो गया होता। आप इतने गजब के काम कर रहे हैं कि हिसाब लगाते-लगाते पागल हो गया होता। वहां कोई व्यक्ति नहीं बैठा हुआ है। परमात्मा से अर्थ है, इस अस्तित्व की पूरी ऊर्जा, समग्रीभूत ऊर्जा, टोटल एनर्जी। यह शक्ति है। क्यों का कोई कारण नहीं है। यह बस है। इसके न पीछे कोई कारण है, न आगे कोई आशय है। और यह शक्ति का लक्ष्य तो कुछ भी नहीं है, लेकिन शक्ति के भीतर छिपा हुआ इतना उद्दाम वेग है कि वह शक्ति फूट कर पौधा बनती है, पशु बनती है, पक्षी बनती है, आदमी बनती है, चोर बनती है, साधु बनती है। वह शक्ति नीचे गिरती है, आकाश भी छूती है, खाइयां और शिखर बनती है। उस शक्ति का सारा का सारा उद्दाम वेग प्रकट होता है, अभिव्यक्त होता है। वह बनाती है और मिटाती है। कोई व्यक्ति वहां छिपा हुआ नहीं है। यह सिर्फ ऊर्जा का खेल है।

और जिस दिन आप भी जीवन को सिर्फ ऊर्जा का खेल समझ लेते हैं उस दिन इस विराट ऊर्जा के खेल से आपका तालमेल बैठ गया, आपका संगीत सध गया। इस सध जाने की स्थिति का नाम समाधि है।

आज इतना ही।

प्रवचन-क्रम

86. आत्म-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है 2
87. धारणारहित सत्य और शर्तरहित श्रद्धा 18
88. जीवन और मृत्यु के पार 33
89. ताओ या धर्म पारनैतिक है 50
90. पुनः अपने मूल स्रोत से जुड़ो 69
91. धर्म का मुख्य पथ सरल है 85
92. संगठन, संप्रदाय, समृद्धि, समझ और सुरक्षा 106
93. धर्म है समग्र के स्वास्थ्य की खोज 125
94. शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है 146
95. सत्य कह कर भी नहीं कहा जा सकता 169
96. आदर्श रोग है; सामान्य व स्वयं होना स्वास्थ्य 189
97. शासन जितना कम हो उतना ही शुभ 211
98. नियमों का नियम प्रेम व स्वतंत्रता है 229
99. मेरी बातें छत पर चढ़ कर कहा 252
100. कृष्ण में राम-रावण आलिंगन में हैं 268
101. स्त्रैण गुण से बड़ी कोई शक्ति नहीं 287
102. ताओ की भेंट श्रेयस्कर है 303
103. स्वादहीन का स्वाद लो 321
104. जो प्रारंभ है वही अंत है 339
105. वे वही सीखते हैं जो अनसीखा है 358
106. धर्म की राह ही उसकी मंजिल है 382

छियासीवां प्रवचन

आत्म-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है

Chapter 48

Conquering The World By Inaction

The student of knowledge aims at learning day by day;
The student of Tao aims at losing day by day.
By continual losing
One reaches doing nothing (laissez-faire).
By doing nothing everything is done.
He who conquers the world often does so by doing nothing.
When one is compelled to do something,
The world is already beyond his conquering.

अध्याय 48

निष्क्रियता के द्वारा विश्व-विजय

ज्ञान का विद्यार्थी दिन ब दिन सीखने का आयोजन करता है;
ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।
निरंतर खोने से व्यक्ति निष्क्रियता (अहस्तक्षेप) को उपलब्ध होता है;
नहीं करने से सब कुछ किया जाता है।
जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है।
और यदि कुछ करने को बाध्य किया जाए,
तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।

एक ज्ञान है जो सीखने से मिलता है, और एक ऐसा भी ज्ञान है जो भूलने से मिलता है। एक ज्ञान है जो दौड़ने से मिलता है, और एक ऐसा भी ज्ञान है जो रुक जाने से मिलता है। एक ज्ञान है जिसे पाने के लिए महत यात्रा करनी पड़ती है, और एक ज्ञान है जिसे पाने के लिए केवल अपने भीतर झांक कर देखना काफी है।

जो ज्ञान श्रम से मिलता है वह ज्ञान बाहर का होगा। आखिरी अर्थों में उसका कोई भी मूल्य नहीं; आखिरी मंजिल पर दो कौड़ी भी उसका अर्थ नहीं। अंतिम अर्थों में तो जो अपने ही भीतर पाया है वही मूल्यवान होगा।

क्योंकि जो ज्ञान हम बाहर से पाते हैं उससे हम स्वयं को न जान सकेंगे। और जिस ज्ञान से स्वयं का जानना न हो वह ज्ञान नहीं है, केवल अज्ञान को छिपाने का उपाय है। पांडित्य से प्रज्ञा उभरती नहीं है, सिर्फ छिप जाती है, ढंक जाती है। एक तो ज्ञान है खुले आकाश जैसा, जहां एक भी बादल नहीं है। और एक ज्ञान है, आकाश बादलों से भरा हो, जहां सब आच्छादित है।

मनुष्य की आत्मा आकाश जैसी है। न कहीं गई; न कहीं जाने को कोई जगह है। न कहीं से आई; न कहीं से आ सकती है। आकाश की तरह है; सदा है, सदा से थी, सदा होगी। कोई समय का, कोई स्थान का सवाल नहीं। तुमने कभी पूछा, आकाश कहां से आया? कहां जा रहा है? आकाश अपनी जगह है। आत्मा भी अपनी जगह है। आत्मा यानी भीतर का आकाश।

पर आकाश में भी बदलियां घिरती हैं, वर्षा के दिन आते हैं, आकाश आच्छादित हो जाता है। कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; उसकी नीलिमा बिल्कुल खो जाती है। उसकी शून्यता का कोई दर्शन नहीं होता। सब तरफ घने बादल घिर जाते हैं। ऐसे ही चेतना के आकाश पर भी स्मृति के बादल घिरते हैं, विचार के, ज्ञान के--जो बाहर अर्जित किया हो। और जब बादल घिर जाते हैं तो भीतर की नीलिमा का भी कोई पता नहीं चलता; भीतर की शून्यता बिल्कुल खो जाती है। भीतर का विराट क्षुद्र बदलियों से ढंक जाता है।

एक तो ज्ञान है बदलियों की भांति जिसे तुम दूसरों से प्राप्त करोगे, जिसे तुम किसी से सीखोगे। शास्त्र से, समाज से, संस्कार से तुम उसे संगृहीत करोगे। जितना संग्रह बढ़ता जाएगा, जितना पांडित्य घना होगा, उतना ही भीतर का आकाश ढंक जाएगा। उतने ही तुम भटक जाओगे। जितना जानोगे उतना भटकोगे।

इसलिए तो ईसाइयों की कहानी है कि जिस दिन अदम ने ज्ञान का फल चखा उसी दिन वह स्वर्ग से, बहिश्त से बाहर कर दिया गया। वह इसी ज्ञान की बात है जो बाहर से मिलता है। वह फल बाहर से चख लिया था। वह बाहर के बगीचे का फल था। उसे चखते ही अदम को क्या हुआ?

ईसाई कहते हैं कि अदम पापी हो गया। अगर लाओत्से से तुम पूछते, या मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा, अदम पंडित हो गया। और कहानी का ठीक अर्थ यही है। क्योंकि ज्ञान के फल के खाने को पाप से क्या संबंध है? ज्ञान के फल को खाकर कोई पंडित होगा; पापी कैसे हो जाएगा? अदम पंडित हो गया।

जैसे ही पंडित हुआ, बहिश्त से बाहर फेंक दिया गया। जानने वालों की, प्रकृति की निर्मलता में कोई भी जरूरत नहीं है। जानने वाले का अहंकार उस मुक्त आकाश में नहीं ठहर सकता। बहिश्त का अर्थ है, जहां आनंद का झरना सदा बह रहा है; जहां आनंद कभी चुकता नहीं, खंडित नहीं होता। जैसे ही पांडित्य हुआ, बादल घिर गए; आकाश से संबंध टूट गया। एक ही पाप है, और वह पांडित्य है। ईसाई भी ठीक ही कहते हैं कि उसने पाप किया। क्योंकि एक ही पाप है, वह अपने को भूल जाना है। इसे थोड़ा समझ लो। तब लाओत्से के वचन बहुत साफ हो जाएंगे, स्फटिक की तरह स्पष्ट और पारदर्शी हो जाएंगे।

एक ही पाप है, और वह पाप है अपने को भूल जाना। और अपने को भूलने का एक ही ढंग हैः और दूसरी चीजों को याद करने में लग जाना। फिर जगह ही नहीं बचती अपने को याद करने की। हजार चीजें याद हो जाती हैं; एक चीज भूल जाती है। और हजारों की भीड़ में कहां तुम्हारा पता चलता है! बाजार की भीड़ है; आंकड़ों का फैलाव है। चारों तरफ बादल ही बादल हो जाते हैं। जानते तुम बहुत हो, लेकिन भीतर तुम अंधेरे बने रहते हो।

जिस जानने से स्वयं न जाना जा सके उसे लाओत्से ज्ञान नहीं कहता। वह ज्ञान का भ्रम है, आभास है। जिस जानने से स्वयं को जाना जा सके उसे ही लाओत्से ज्ञान कहता है। वही ताओ है, वही ऋत है, वही धर्म है।

और इस जगत में या तो तुम स्वयं को जान सकते हो, और या फिर शेष सबको जान सकते हो। क्योंकि दोनों के आयाम अलग-अलग हैं। जो स्वयं को जानता है उसे भीतर की तरफ मुड़ना पड़ता है। जो और कुछ जानना चाहता है स्वयं को छोड़ कर, उसे भीतर की तरफ पीठ कर लेनी पड़ती है। स्वभावतः, अगर तुम्हें मुझे देखना है तो मैं स्वयं को कैसे देख सकूंगा? तुम्हें देखना है तो मेरी आंखों में तुम भर जाओगे, तुम्हारा बादल मेरी आंखों में तैरेगा। और अगर मुझे स्वयं को देखना है तो मुझे तुम्हारी तरफ से आंख बंद कर लेनी पड़ेगी।

संन्यासी का अर्थ है, जिसने और को देखने से आंख बंद कर ली। संन्यासी का अर्थ है, जिसने और कुछ सीखने से आंख बंद कर ली। संन्यासी का अर्थ है कि जिसने संकल्प किया कि जब तक अपने को नहीं जान लेता तब तक और कुछ जानने का मूल्य भी क्या है? सब भी जान लूंगा, और मेरे भीतर अंधेरा होगा, तो उस प्रकाश का क्या सार है? चारों तरफ जलते हुए दीए होंगे, दीवाली होगी चारों तरफ, और मेरे भीतर अंधेरा होगा, तो उस दीवाली से मुझे क्या लाभ होगा?

जीसस ने पूछा है कि तुमने सारा संसार भी जीत लिया और अपने को गंवा बैठे तो इस जीत का क्या अर्थ है।

लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा होता है वैसे ही हम उसे सिखाने में लग जाते हैं। उसके कोमल से मन पर, उसके अबोध मन पर, उसके खुले-नीले आकाश पर हम स्मृति की पर्तें रखने लगते हैं। संसार में उनकी उपादेयता है, उपयोगिता है। गणित है, भाषा है, भूगोल है, इतिहास है, यह सब उसे सीखना है। क्योंकि इनको सीख कर ही वह समाज का हिस्सा हो सकेगा। और उसे समाज का हिस्सा होने के लिए हमें तैयार करना है। इसलिए विद्यालय हैं, विश्वविद्यालय हैं, चारों तरफ शिक्षण की बड़ी दूकानें हैं, जहां सिखाया जा रहा है।

और सीखते-सीखते आदमी इतना सीख गया है, और इतना संग्रह ज्ञान का हो गया है कि एक आदमी सीखना भी चाहे अपने जीवन में तो सीख नहीं पा सकता; हमेशा अधूरा लगता है। क्योंकि सदियों से आदमी ज्ञान का संग्रह कर रहा है। सत्तर-अस्सी साल की जिंदगी में तुम उस पूरे संग्रह को कैसे आत्मसात कर पाओगे? इसलिए हमेशा कमी लगती है। और आगे, और आगे यात्रा करने के लिए जगह खुली रहती है। आदमी दौड़ता चला जाता है, दौड़ता चला जाता है। और धीरे-धीरे जितना बाहर के ज्ञान में जाता है उतना ही अपने से दूर निकल जाता है।

फिर लौटने का एक ही उपाय है कि वह उस ज्ञान को छोड़ दे। और यह सर्वाधिक कठिन बात है। धन को छोड़ना आसान है, क्योंकि धन बाहर ही है। तिजोड़ी छोड़ कर भाग गए तो तिजोड़ी तुम्हारा पीछा न करेगी। पति, पत्नी, बच्चे छोड़े जा सकते हैं। वे भी बाहर हैं। थोड़े-बहुत दिन तुम्हारी याद करेंगे, फिर भूल जाएंगे। कौन किसकी याद सदा करता है? नये संबंध बना लेंगे, नये प्रेम का संसार बन जाएगा। घाव थोड़े दिन हरा रहेगा, फिर भर जाएगा। समय सभी घावों को भर देता है। तुम भाग गए तो तुम्हारे लिए कोई सदा थोड़े ही रोता बैठा रहेगा।

पति-पत्नी को भी छोड़ा जा सकता है, लेकिन ज्ञान को कहां छोड़ जाओगे? जहां जाओगे, ज्ञान तुम्हारे साथ है, क्योंकि ज्ञान की तिजोड़ी भीतर है। वह तुम्हारे मस्तिष्क में है; वह स्मृति है।

इसलिए ज्ञान को छोड़ना सबसे बड़ा त्याग है, महा कठिन। ध्यान उसी का तो प्रयोग है। ध्यान कोई ज्ञान नहीं है; ध्यान ज्ञान को छोड़ने की प्रक्रिया है। कैसे तुम्हारी स्मृति रिक्त और खाली हो जाए, शून्य हो जाए, कैसे तुम भीतर फिर से उस आकाश को पा लो जिसे लेकर तुम पैदा हुए थे, जो कि तुम्हारा स्वभाव है; उसी को लाओत्से ताओ कहता है। ताओ यानी स्वभाव, जिसे तुम लेकर ही पैदा हुए थे। और जिसे तुम दबा सकते हो, खो नहीं सकते; जिसे तुम भूल सकते हो, मिटा नहीं सकते; क्योंकि तुम ही हो, तुमसे भिन्न नहीं है वह। जिसे तुम्हें

खोजना ही होगा। और जितना तुम इसे दबाओगे, उतनी ही तुम पीड़ा से भर जाओगे। क्योंकि जो अपने से ही दूर निकल गया, जो अपने से ही अजनबी हो गया, उसकी पीड़ा का तुम हिसाब नहीं लगा सकते। वही सबसे बड़ा संताप है इस जगत में: अपने से अजनबी हो जाना।

तुमने कभी ख्याल किया, तुम्हारी पत्नी तुमसे थोड़ी दूर हो जाती है--किसी आवेग में, किसी क्रोध में, किसी रोष में--ऐसा लगने लगता है कि पत्नी भी अजनबी है। तब तुम कैसा खाली अनुभव करते हो! एक दिन तुम्हारे बच्चे बड़े हो जाएंगे, पढ़ेंगे-लिखेंगे; तुम्हारे घोंसले को छोड़ कर उड़ जाएंगे। उनकी अपनी यात्रा है। उस दिन तुम्हें कैसी पीड़ा होगी--बच्चे भी अजनबी हो गए!

लेकिन यह तो अजनबीपन कुछ भी नहीं है। जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा कि पत्नी तो पराई थी, अगर दूर भी हो गई तो भी क्या; बच्चे हमसे पैदा हुए थे, लेकिन फिर भी हमारे तो नहीं थे, आए तो प्रकृति के किसी दूर स्रोत से थे, चले गए; लेकिन जब तुम्हें ख्याल आएगा कि तुम खुद से ही अजनबी हो, तुम्हारी अपने से ही अपनी पहचान नहीं है, अपना चेहरा ही तुमने अब तक नहीं देखा, तुम अपने से ही दूर पड़ गए हो, तब जो घाव लगता है, वही घाव व्यक्ति को धार्मिक बनाता है। जिस दिन तुम जानते हो कि मैं अपने से ही दूर हो गया हूं, अपने से ही भटक गया हूं, अपना ही पता-ठिकाना नहीं मिलता है कि मैं कौन हूं, क्या हूं, कहां से हूं, कहां जा रहा हूं, जिस दिन तुम इस असहाय और संताप के क्षण में भर जाते हो, जिस दिन तुम्हारा जीवन सिर्फ एक घाव मालूम पड़ता है, उसी दिन तुम्हारे जीवन में धर्म की शुरुआत होती है। उस दिन तुम क्या करोगे? उस दिन कैसे तुम अपने को पाओगे?

तो मैं तुम्हें एक बुद्ध की छोटी सी कहानी कहूं। बुद्ध एक सुबह-सुबह, जैसे तुम आज मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे ऐसे बुद्ध के भिक्षु उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बुद्ध आए, वे बैठ गए अपने वृक्ष के नीचे। लोग थोड़े चकित थे, क्योंकि हाथ में वे एक रेशम का रूमाल लिए थे। ऐसा कभी न हुआ था। वे उस रूमाल को देखते रहे और फिर उन्होंने रूमाल में पांच गांठें लगाईं। भिक्षु अवाक होकर देखते रहे कि वे क्या कर रहे हैं। गांठें लग जाने पर उन्होंने कहा कि मैं तुमसे एक सवाल पूछता हूं। वह सवाल यह है कि जब इस रूमाल में गांठ न लगी थी तब और अब जब कि गांठें लग गईं कोई फर्क है या नहीं? यह रूमाल वही है कि दूसरा?

एक भिक्षु ने खड़े होकर कहा कि आप हमें व्यर्थ की उलझन में डाल रहे हैं। समझ गए हम आपकी चाल। अगर कहेंगे कि वही, तो आप कहेंगे कि पांच गांठें नई हैं ये। अगर हम कहें कि नया, तो आप कहेंगे, इसमें नया क्या है, वही का वही रूमाल है। गांठ लगने से क्या होता है? रूमाल के स्वभाव में तो कोई फर्क नहीं हुआ। रूमाल तो वही है, धागा-धागा वही है, ताना-बाना वही है, रंग-ढंग वही है, कीमत वही है। गांठ लगने से क्या होता है? और हम अगर कहें कि बदल गया तो आप ऐसा कहेंगे। और हम अगर कहें कि रूमाल वही है तो आप कहेंगे, वही कैसे हो सकता है? इसमें पांच गांठें नई लग गई हैं! और पहले रूमाल में तुम कुछ चीज-बसद बांध लेते, अब तो न बांध सकोगे। पहले तो इस रूमाल से सिर को ढांक लेते, अब तो न ढांक सकोगे। इस रूमाल का गुणधर्म बदल गया, इसका उपयोग बदल गया। तो उस भिक्षु ने कहा कि आप हमें व्यर्थ की तर्क की उलझन में मत डालें। आपका प्रयोजन क्या है?

बुद्ध ने कहा कि यही मनुष्य का स्वभाव है। ज्ञान की कितनी ही गांठें लग जाएं, एक अर्थ में तो तुम वही रहते हो जो तुम सदा से थे, लेकिन एक अर्थ में तुम बिल्कुल बदल जाते हो, क्योंकि ज्ञान की हर गांठ तुम्हारे सारे उपयोग को नष्ट कर देती है। चेतना का एक ही उपयोग है, और वह उपयोग आनंद है। जैसे-जैसे गांठें लग जाती हैं, बंधन पड़ जाता है, पैर में जंजीरें अटक जाती हैं, आनंद खो जाता है; तुम कारागृह में पड़ जाते हो।

कारागृह में पड़े कैदी में और कारागृह के बाहर मुक्त व्यक्ति में क्या फर्क है? व्यक्ति तो वही का वही है। तुम बाहर हो, कल कोई हथकड़ियां डाल कर तुम्हें जेल में डाल दे। क्या फर्क है? तुममें कोई भी तो फर्क नहीं हुआ। सिर्फ गांठ लग गई रूमाल में। अब तुम्हारी उपयोगिता बदल गई। खुला आकाश खो गया। अब तुम मुक्त नहीं हो; पंख जब चाहो तब न खोल सकोगे। गांठें पड़ गईं।

तो बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें यह बताना चाह रहा हूं कि तुम एक अर्थ में तो वही हो, जो तुम सदा से थे। क्योंकि ज्ञान की गांठें क्या मिटा पाएंगी? और ज्ञान की गांठ पानी पर खींची लकीर जैसी है। लेकिन फिर भी सब बदल गया। तुम दूसरे हो गए हो; बिना दूसरे हुए दूसरे हो गए हो। यही पहेली है।

इसी को तो कबीर बार-बार कहते हैं, एक अचंभा मैंने देखा। वह इसी अचंभे की बार-बार बात करते हैं कि जो कभी नहीं बदल सकता वह बदल गया है। एक अचंभा मैंने देखा। जिस पर कोई गांठ नहीं लग सकती थी, गांठ लग गई। आकाश--विराट आकाश--को क्षुद्र बदलियों ने घेर लिया। इतना बड़ा हिमालय पर्वत, और आंख में एक किरकिरी पड़ गई, और खो गया।

तो बुद्ध ने कहा, इसलिए। और दूसरी एक बात और कही। कहा कि मैं इन गांठों को खोलना चाहता हूं। और रूमाल के दोनों छोर पकड़ कर खींचे।

एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि यह आप क्या कर रहे हैं! अगर इस तरह खींचेंगे तो गांठ और बारीक होती जा रही है। और गांठ जितनी बारीक हो जाएगी, उतना खोलना मुश्किल है। आप खींचिए मत। खोलने के लिए खींचना रास्ता नहीं है। इससे तो खोलना मुश्किल ही हो जाएगा। गांठ छोटी होती जा रही है।

जितना तुम्हारा ज्ञान सूक्ष्म होता जाता है उतनी गांठ छोटी होती जाती है, फिर उतना ही खोलना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए तो मैं कहता हूं, कभी-कभी पापी भी पहुंच जाते हैं परमात्मा तक, पंडित नहीं पहुंचता। पापी की गांठ बड़ी मोटी है--किसी की चोरी कर ली, किसी को धोखा दे दिया, किसी की जेब काट ली--पापी की गांठ बड़ी मोटी है। जेब में ही कुछ नहीं था, काटने में क्या हो जाएगा? जेब में दो रुपए पड़े थे; काटना भी दो रुपए से ज्यादा का तो नहीं हो सकता। दुकानदार की कीमत कितनी थी, जिससे कि लुटेरे की कीमत ज्यादा हो जाएगी। दुकानदार के पास कुछ नहीं था; लुटेरा उस कुछ नहीं को लूट कर घर ले आया। गांठ बड़ी मोटी है। जिनको तुम कारागृह में बंद किए हो उनकी गांठें बड़ी मोटी हैं; जरा से इशारे से खुल जाएंगी। कभी कारागृह में जाकर देखो, अपराधी तुम्हें बड़े सरल और सीधे मालूम पड़ेंगे। उनसे सीधे जिनके खिलाफ उन्होंने अपराध किया है। उनकी गांठें बड़ी मोटी हैं, सस्ती हैं।

लेकिन पंडित की गांठ बड़ी सूक्ष्म है। मैंने अब तक कोई पंडित नहीं देखा जो सरल हो, जो निर्दोष हो। न उसने हत्या की है, न किसी की चोरी की है; तुम उसे कानून में नहीं पकड़ सकते। कानून की दृष्टि में उसने कभी किसी को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया है। वह अपनी किताब में उलझा रहा। फुरसत भी नहीं है उसे कानून को तोड़ने की। लेकिन उसने प्रकृति के गहनतम कानून को तोड़ डाला है। उसने परमात्मा के नियम के विपरीत जाने की कोशिश की है; उसने ज्ञान का फल चखा है। वह बड़ा सूक्ष्म है। वह ऊपर से बाहर से उसने किसी के खिलाफ कुछ नहीं किया है; समाज के विपरीत उसने कुछ भी नहीं किया है। जो भी किया है, अपने ही विपरीत किया है, और अपने परमात्मा के विपरीत किया है। वह बिल्कुल सूक्ष्म है। वह सूक्ष्मता क्या है?

उसने सीख-सीख कर ज्ञानी बनने की कोशिश की है। जब कि ज्ञानी तुम पैदा हुए थे। सीखने को कुछ प्रकृति ने छोड़ा नहीं है। परमात्मा ने तुम्हें पाने को कुछ छोड़ा नहीं, सभी दिया हुआ है। तुम पूरे के पूरे पैदा किए गए हो।

तुम परिपूर्ण हो। ऐसा होगा भी, क्योंकि परिपूर्ण परमात्मा से अपूर्ण का जन्म कैसे हो सकता है? और अगर अपूर्ण का जन्म होता है तो परमात्मा परिपूर्ण नहीं हो सकता।

कहावत है गांव में कि बाप को जानना हो तो बेटे को जान लो। बेटे को जानने से बाप का पता चल जाता है। दूसरी कहावत है कि फल को चखने से वृक्ष का पता चल जाता है।

तुम फल हो। तुम्हारा स्वाद ही परमात्मा का स्वाद होगा। क्योंकि उसमें ही तुम लगे हो। वह तुम्हारी जड़ है। तुम बेटे हो; वह तुम्हारा पिता है। अगर तुम अपूर्ण हो तो वह पूर्ण नहीं हो सकता। और अगर वह पूर्ण है तो तुम्हारी अपूर्णता कहीं भ्रांति है; कहीं तुमने कुछ गलत समझ लिया, सोच लिया। तुम पूर्ण ही पैदा हुए हो। पूर्ण से पूर्ण ही पैदा होता है। शुद्ध से शुद्ध का ही जन्म होता है। अन्यथा नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है अन्यथा होने का।

पंडित यही सूक्ष्म पाप कर रहा है। वह उस ज्ञान को खोज कर अपने में भर रहा है जिसको कि लेकर ही आया था।

तुम ऐसे हो कि तुम्हारे भीतर तो हीरे-जवाहरात भरे हैं और तुम बाहर सड़क के किनारे कंकड़-पत्थर बीन कर ढेर लगा रहे हो। तुम्हारी गरीबी तुम्हारी मान्यता में है। परमात्मा को पाना हो तो सिर्फ इस मान्यता को तोड़ देने की जरूरत है। परमात्मा को पाने का अर्थ हैः इस उदघोष से भर जाना कि मैं परमात्मा सदा से हूं। कुछ और करने की जरूरत नहीं है। वेद और उपनिषद कंठस्थ करने की जरूरत नहीं है। उनको कंठस्थ करके तुम कचरा ही कंठस्थ कर लोगे। शब्द में सार नहीं है। जो भी तुम सीख लोगे वही तुम पाओगे कचरा है। सीखने की बात नहीं है।

कबीर कहते हैं, लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।

लिख-लिख कर, पढ़-पढ़ कर क्या तुम पाओगे? शब्दों की जमात हो जाएगी भीतर, भीड़ लग जाएगी, पंक्तिबद्ध शब्द खड़े हो जाएंगे। तर्क होंगे, सिद्धांत होंगे। ज्ञान बात और है। न तो तर्क ज्ञान है, न सिद्धांत ज्ञान है। ज्ञान तो तुम्हारा अंतर-बोध है। किताब से कैसे अंतर-बोध जन्माओगे? पी जाओ घोल कर, तो भी किताब तुम्हारे शरीर के भीतर ही जाएगी, आत्मा में नहीं पहुंच जाएगी। तुम्हारी स्मृति तुम्हारे शरीर का हिस्सा है।

इसलिए तो कोई आदमी गिर पड़ता है ट्रेन से, सिर में चोट लग गई, स्मृति खो गई। कहीं ट्रेन से गिरने में आत्मा को चोट लगती है? किसी ने सिर पर एक लट्ठ मार दिया, चोट खा गए, स्मृति खो गई, सिर चकरा गया। स्मृति तुम्हारे शरीर का हिस्सा है।

इसलिए पश्चिम में वैज्ञानिकों ने रास्ते निकाल लिए हैं। रूस में और चीन में उनका उपयोग हो रहा है कि कोई आदमी अगर कम्युनिस्ट-विरोधी हो तो वे उसको समझाते-बुझाते नहीं हैं। वे कहते हैं, यह बहुत लंबी प्रक्रिया है, पिटी-पिटाई, पुरानी, बैलगाड़ी के दिनों की। इस जेट के युग में जहां हम चांद पर पहुंच रहे हैं, कहां बैलगाड़ी की चाल चलो--कि समझाओ इस आदमी को कि तुम ठीक नहीं हो, गलत हो। सालों इससे विवाद करो, झंझट खड़ी करो। और फिर भी पक्का भरोसा नहीं, किसी दिन बदल जाए। तो वे कहते हैं, इस झंझट में हम नहीं पड़ते। वे तो मस्तिष्क को साफ कर देते हैं, ब्रेन-वाश कर देते हैं। खोपड़ी में बिजली लगा कर तेजी से दौड़ा देते हैं, बिजली के तेजी से दौड़ने से सब अस्तव्यस्त हो जाता है। इलेक्ट्रिक शॉक हम पागल आदमी को देते हैं; वे उनको देते हैं जो उनके विपरीत हैं।

पागल आदमी को इलेक्ट्रिक शॉक देने से फायदा क्यों होता है?

इसीलिए फायदा हो जाता है कि उसकी स्मृति के तंतु झनझना जाते हैं, उसकी याद खो जाती है कि मैं पागल हूं, और पुराना हिसाब धुंधला हो जाता है। बीच में एक अंतराल आ जाता है। वह फिर से अ, ब, स से शुरू

करने लगता है। इसलिए जिसको भी इलेक्ट्रिक शॉक देते हैं, उसका कुल इतना प्रयोजन है कि उसका मस्तिष्क ऐसी दशा में आ गया है कि अब उसको उसके मस्तिष्क से तोड़ लेना जरूरी है। शॉक में उसकी आत्मा अलग हो जाती है, मस्तिष्क अलग हो जाता है। थोड़ी देर को ही, फिर वापस जुड़ जाता है, लेकिन उतने में अंतराल पड़ गया। बीच में बाधा आ गई। बीच में एक दीवार खड़ी हो गई। अब वह याद न कर सकेगा।

लेकिन चीन और रूस में, जो विपरीत हैं साम्यवाद के, उनको वे बिजली के शॉक दे देते हैं।

स्मृति खो जाती है। बड़े से बड़ा पंडित, बिजली के शॉक दे दिए जाएं, छोटे बच्चे जैसा हो जाता है। फिर उसको अ, ब, स से सीखना पड़ेगा। निरीह हो जाता है; उसे कुछ याद नहीं रहता। वह अपनी शक्ल भी आईने में नहीं पहचान सकता, क्योंकि पहचान के लिए स्मृति जरूरी है। कैसे पहचानोगे कि यह मेरा ही चेहरा है? याद चाहिए कि हां, ऐसा ही चेहरा मेरा पहले भी था; उन दोनों की तुलना से ही पहचानोगे। उसको फिर से याद करना पड़ता है।

मैं यह कह रहा हूं कि स्मृति तो शरीर का हिस्सा है, आत्मा का नहीं। इसलिए शास्त्र तो शरीर तक ही जा सकते हैं, शब्द भी शरीर तक जा सकते हैं। तुम्हारे कान सुन रहे हैं; तुम्हारे कान में मेरी वाणी पड़ रही है; तुम्हारे कान से तुम्हारी स्मृति में जा रही है। तुम्हारी स्मृति में तुम चाहो तो संगृहीत हो सकती है; तुम न चाहो तो वह दूसरे कान से बाहर निकल जा सकती है। लेकिन तुम्हारी आत्मा का कैसे स्पर्श होगा इन शब्दों से? शब्द तो पौदगलिक है, मैटीरियल है, पदार्थ है। पदार्थ का पदार्थ से संपर्क हो सकता है। तुम्हारी आत्मा तो पुदगल नहीं है।

हम एक पत्थर फेंकते हैं आकाश में। आकाश से टकरा कर वापस नहीं गिरता पत्थर; क्योंकि आकाश और पत्थर का मिलन नहीं हो सकता। आकाश शून्य है; पत्थर पदार्थ है। एक वृक्ष में फेंको, तो टकरा कर वापस लौट आता है। अगर आकाश में फेंकते हो, वापस लौटता है, तो इसलिए नहीं कि आकाश ने वापस फेंक दिया; तुमने जितनी शक्ति दी थी फेंकते समय वह चुक गई, तब गिर जाएगा। लेकिन आकाश से टकराता नहीं।

अगर आकाश से टकराहट होती तो तुम चल ही नहीं सकते थे; चलना-फिरना मुश्किल हो जाता। क्योंकि आकाश की दीवार तो चारों तरफ है। हाथ हिलाना मुश्किल हो जाता। शब्द जाता है, तुम्हारे शरीर से टकराता है, कंपित करता है तुम्हारी कान की इंद्रिय को, स्मृति को कंपित करता है। चाहो तो स्मृति में संगृहीत हो सकता है, न चाहो तो दूसरे कान से वापस निकल जाता है। लेकिन तुम्हारी आत्मा को थोड़े ही कंपित करता है!

और इसको अगर तुमने इकट्ठा कर लिया तो तुम बड़े पंडित हो जाओगे। अदम ने चखा होगा एक फल; तुमने पूरा वृक्ष पचा लिया है। लेकिन तुम इससे ज्ञानी न हो पाओगे। ज्ञानी होने का रास्ता तो शब्द को भूलना और शून्य में उतरना है। निशब्द की यात्रा है ज्ञान की यात्रा।

यहां तुम मेरे पास अगर कुछ सीखने आए हो तो तुम गलत आदमी के पास आ गए। तुम देर मत करो, भाग जाओ। क्योंकि मैं यहां तुम्हें कुछ सिखाने को नहीं हूं। मैं कोई शिक्षक नहीं हूं। शिक्षक और गुरु का यही फासला है। शिक्षक सिखाता है, गुरु भुलाता है। शिक्षक तुम्हारी खोपड़ी पर लिखता है, गुरु साफ करता है। शिक्षक तुम्हारी स्मृति को भरता है, गुरु तुम्हारी स्मृति को शून्य करता है, रिक्त करता है।

अगर मेरे पास तुम सीखने आए हो तो गलत आ गए। अगर मेरे पास भूलने आए हो, अगर सीख-सीख कर थक गए हो इसलिए आए हो, अगर सीख-सीख कर कुछ भी नहीं पाया इसलिए आए हो, तो तुम ठीक आदमी के पास आ गए। तो फिर तुम्हारा मन कितना भी भागने को कहे, भागना मत।

मन कहेगा कि भाग जाओ, क्योंकि यह आदमी मिटाए डालता है। कितनी मुसीबत से सीखा था! कितनी कठिनाई से संस्कृत पढ़ी! कितनी रातें जागे! कितना मुश्किल से कंठस्थ किया वेदों को! और यह आदमी मिटाए

डालता है, भाग जाओ। लेकिन तब तुम मन की इस उत्तेजना से बचना और रुके रहना। क्योंकि जिन्होंने भी कुछ पाया है--पाने योग्य कुछ पाया है--उन्होंने भूल कर पाया है।

ये शब्द भी मैं उपयोग कर रहा हूं, और तुम्हें बड़ी अड़चन भी होती होगी कि मैं शब्द के खिलाफ हूं फिर शब्द क्यों बोले चला जाता हूं! और मैं कहता हूं सिखाया नहीं जा सकता, और रोज तुमसे इस तरह बात करता हूं जैसे तुम्हें कुछ सिखा रहा हूं! इन शब्दों का उपयोग मैं वैसे ही कर रहा हूं जैसे कि तुम्हारे पैर में कांटा लग जाए तो तुम क्या करते हो? तुम दूसरा कांटा खोजते हो, दूसरे कांटे से तुम पहले कांटे को निकाल लेते हो। मैं शब्द तुम्हारे भीतर पहुंचा रहा हूं, इनसे तुम्हारी आत्मा न बदलेगी; ये शब्द कांटों की तरह हैं, जो तुम्हारे भीतर चुभे कांटों के शब्दों को खींच ला सकते हैं। बस इतना ही हो सकता है।

और ध्यान रखना, जब तुम पहले कांटे को निकाल लेते हो दूसरे कांटे से तो दूसरे कांटे को सम्हाल कर नहीं रखते, उसकी कोई पूजा नहीं करते हो--कि तेरी बड़ी कृपा, कि तेरा बड़ा अनुग्रह, कि तेरे बिना पहला कांटा न निकलता। तुम ऐसा नहीं करते हो कि घाव में दूसरे कांटे को रख लेते हो कि तुझे कैसे अलग करें, अब तो तू प्राणों का प्राण है। नहीं, तुम दोनों को एक साथ ही फेंक देते हो। कांटे तो दोनों एक जैसे हैं। जो गड़ा था वह और जिसने निकाला वह, उन दोनों में कोई भी फर्क नहीं है।

जिन शब्दों को मैं निकाल रहा हूं और जिन शब्दों से निकाल रहा हूं, उन दोनों में कोई फर्क नहीं है। तुम मेरे शब्दों को पूजना मत। तुम मेरे शब्दों को सम्हाल कर मत रख लेना। क्योंकि यह तो बड़ी भूल हो गई। एक कांटे से निकले, दूसरे से उलझ गए। एक वेद से बचे तो दूसरे वेद में पड़ गए। जब तुम्हारे भीतर के शब्द निकल जाएं तो तुम इन्हें भी फेंक देना; दोनों को साथ ही विदा कर देना।

तुम्हें खाली करना प्रयोजन है। तुम्हें शून्य बनाना लक्ष्य है। अब तुम इन शब्दों को सुनो।

लाओत्से से बड़ा ज्ञानी नहीं हुआ है। इसलिए लाओत्से की बात को बहुत समझ-समझ कर, जितने गहरे तक इस कांटे को तुम ले जा सको, ले जाना। क्योंकि यह तुम्हारे भीतर चुभे गहरे से गहरे कांटे को निकालने में समर्थ है। लाओत्से बड़ा कुशल है। इसकी कुशलता बड़ी अनूठी है। अनूठी ऐसी है कि इसकी कुशलता कोई क्रिया की कुशलता नहीं है; इसकी कुशलता अक्रिया की है। वह हम आगे समझने की कोशिश करेंगे।

"ज्ञान का विद्यार्थी दिन ब दिन सीखने का आयोजन करता है; ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का। दि स्टूडेंट ऑफ नालेज एम्स एट लर्निंग डे बाइ डे; एंड दि स्टूडेंट ऑफ ताओ एम्स एट लूजिंग डे बाइ डे।"

कह रहा है लाओत्से, दो तरह के विद्यार्थी हैं। एक है विद्यार्थी, वह ज्ञान का विद्यार्थी है, वह दिन ब दिन सीखने की कोशिश करता है। रोज-रोज ज्ञान को बढ़ाता है। उसके लिए ज्ञान एक संग्रह है। वह अपने ज्ञान में जोड़ता जाता है; उसकी संपत्ति बढ़ती जाती है। वह रोज-रोज ज्यादा से ज्यादा जानने लगता है। जब वह मरेगा तब उसके पास बड़े ज्ञान का भंडार होगा।

लेकिन वह खाली मरेगा। वह खाली मरेगा, क्योंकि उसे खाली होना न आया। उसने सारी जिंदगी भरने की कोशिश की, और खाली मरेगा। क्योंकि जो भी उसने इकट्ठा किया, वह शरीर में रह गया; वह आत्मा तक तो पहुंचता नहीं। वह खोपड़ी में रह गया; खोपड़ी तो यहीं पड़ी रह जाएगी। तुम्हारा मस्तिष्क यहीं पड़ा रह जाएगा।

अभी तुम पढ़ते हो कि खून का बैंक है अस्पतालों में जहां तुम अपना खून दान कर देते हो। आंख का बैंक है जहां तुम अपनी आंख दान कर देते हो। अब हृदय के भी बैंक हैं जहां तुम अपना हृदय दान कर देते हो। अब आगे का कदम वे सोच रहे हैंः मस्तिष्क के बैंक। जहां मरते वक्त तुम अपना मस्तिष्क भी दान कर दोगे। क्योंकि वह भी साथ तो जाता नहीं। चिता पर जल जाता है; व्यर्थ खराब हो जाता है। सत्तर साल मेहनत की, और फिर आग

में जल गया। जैसे अभी तुम खबरें पढ़ते हो कि हृदय के ट्रांसप्लांटेशन हो गए हैं, कि हृदय को, एक आदमी के हृदय को दूसरे आदमी के हृदय में लगा दिया गया है, अब वे जल्दी इस बात की कोशिश में हैं कि एक आदमी का मस्तिष्क भी दूसरे आदमी में लगा दिया जाए। क्योंकि क्यों खराब करना? सत्तर-अस्सी साल की मेहनत पानी में चली जाती है। कितनी मुसीबत! रात-रात जागे, परीक्षाएं पास कीं, बड़ी मुश्किल से ज्ञान इकट्ठा किया; फिर सब--चले खाली हाथ। तुम्हारी खोपड़ी यहीं रह जाती है। तुम तो वैसे ही जाते हो जैसे आए थे। कुछ पाया नहीं, कुछ कमाया नहीं; शायद कुछ गंवाया भला हो। चले! खोपड़ी में तुम्हारी स्मृति रह जाती है। जो भी तुमने जाना, वह तुम्हारे मस्तिष्क के कंप्यूटर में पड़ा रह जाता है। उसका कोई दूसरा उपयोग कभी न कभी करने लगेगा।

और तब एक बड़ी अदभुत घटना घटेगी। आइंस्टीन मर जाए तो उसकी खोपड़ी को हम एक छोटे बच्चे पर ट्रांसप्लांट कर देंगे; उसके मस्तिष्क को निकाल लेंगे और एक छोटे बच्चे के मस्तिष्क में डाल देंगे। यह बच्चा बिना पढ़े-लिखे आइंस्टीन जैसा पढ़ा-लिखा होगा। इसको स्कूल भेजने की जरूरत न होगी। इसने जो गणित कभी नहीं सीखा, वह बोलेगा और करेगा। जो भाषा इसने कभी नहीं जानी, वह यह बोलेगा और निष्णात होगा। इसको किसी विश्वविद्यालय में पढ़ने की कोई जरूरत न होगी। यह जन्म से ही नोबल प्राइज विनर होगा।

यही हम कर रहे हैं छोटे पैमाने पर। जो अतीत में जाना गया है वही तो हम स्कूलों, विद्यालयों में बच्चों को सिखा रहे हैं। मस्तिष्क को ही ट्रांसप्लांट कर रहे हैं पुराने ढंग से। एक-एक इंच-इंच कर रहे हैं। पूरा का पूरा इकट्ठा नहीं कर पाते, बीस-पच्चीस साल मेहनत करके बच्चे को हम वैज्ञानिक बना पाते हैं। यह पुराना ढंग है। नए ढंग में यह ज्यादा देर टिकेगा नहीं।

लेकिन क्या तुम्हारे ऊपर अगर सारी दुनिया का मस्तिष्क भी लगा दिया जाए तो तुम ज्ञानी हो जाओगे? मस्तिष्क बाहर से लगाया जा रहा है। जो बाहर से लगाया जा रहा है वह बाहर का है। जो बाहर का है वह कभी तुम्हारे भीतर नहीं पहुंचता। तुम्हारा भीतर का आकाश अछूता रह जाता है।

तो लाओत्से कहता है, एक तो विद्यार्थी है ज्ञान का, शब्दों का, सूचनाओं का; वह दिन ब दिन संग्रह करता है, आयोजन करता है सीखने का। ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।

और एक विद्यार्थी है परम ज्ञान का। एक विद्यार्थी है आत्मा का, परमात्मा का, सत्य का। वह रोज-रोज छोड़ने की कोशिश करता है। वह अपने भीतर खोजता रहता है, और कुछ मिल जाए, उसको भी छोड़ दूं। वह अपने भीतर से खाली करने में लगा रहता है। वह मस्तिष्क को उलीचता है। क्योंकि जितनी तुम्हारे भीतर बदलियां कम हो जाएं, उतना ही नीला आकाश दिखाई पड़ने लगता है। जैसे-जैसे विचार का जाल कम होता है, विचार के पीछे छिपा हुआ अंतराल दिखाई पड़ने लगता है। वहां परम शून्य विराजमान है।

तुम बदलियों में खोए हो, और बदलियों की कीमत पर आकाश को गंवा बैठे हो। और आकाश से कम में काम न चलेगा; क्योंकि उससे कम में तुम सदा ही बंधे-बंधे अनुभव करोगे। आकाश ही तुम्हारा सहज घर है। उतनी ही स्वतंत्रता चाहिए; उसी को हम मोक्ष कहते हैं। जिसने भीतर के आकाश को पा लिया और जिसकी बदलियां सब समाप्त हो गईं, वह मुक्त, उसने मोक्ष को उपलब्ध कर लिया। अब कोई बंधन न रहे। अब उसके पंखों को रोकने वाला कोई कहीं नहीं है। अब दूर अनंत तक भी वह उड़े तो भी सीमा न आएगी। अब वह असीम का मालिक हुआ।

जानकारी से तुम सीमित के मालिक हो जाओगे। ज्ञान से तुम सीमित को जान लोगे। लाओत्से यह कह रहा है, अज्ञान से! लाओत्से अज्ञान शब्द का उपयोग नहीं कर रहा है, लेकिन मैं करना चाहूंगा। अगर ज्ञान से सीमित

मिलता है तो अज्ञान से असीम मिलता है। लेकिन तुम कहोगे, तो क्या अज्ञानी उसे पा लेते हैं? हां, अज्ञानी उसे पा लेते हैं। लेकिन जिन्हें तुम अज्ञानी समझते हो वे अज्ञानी नहीं हैं। वे छोटे ज्ञानी होंगे, वे भी ज्ञानी हैं।

तुम किसको अज्ञानी कहते हो? जो आदमी मैट्रिक पास है वह गैर मैट्रिक पास को अज्ञानी समझता है। फासला उनमें ज्ञान और अज्ञान का नहीं है। ज्ञान का ही है; एक थोड़ा कम, एक थोड़ा ज्यादा। पढ़ा-लिखा गैर पढ़े-लिखे को अज्ञानी समझता है। शहर में रहने वाला गांव में रहने वाले को अज्ञानी समझता है। इसलिए गांव के आदमी को हम गंवार कहते हैं; गंवार यानी गांव का रहने वाला। गंवार शब्द ही का मतलब होता है गांव का रहने वाला। जो आदमी युनिवर्सिटी की आखिरी डिग्री लेकर लौटता है वह अपने बाप को भी, अगर वह गैर पढ़ा-लिखा हो, तो अज्ञानी समझता है।

जिन्हें तुम अज्ञानी कहते हो वे अज्ञानी नहीं हैं; तुमसे कम ज्ञानी हैं। मगर सब ज्ञान की यात्रा पर ही खड़े हैं। अज्ञानी तो कभी-कभी हुए हैं, कोई बुद्ध, कोई लाओत्से, कोई कबीर। अज्ञानी का यह अर्थ है कि उन्होंने, जिसे तुम ज्ञान कहते हो, वह सब छोड़ दिया। जिसे तुमने ज्ञान की तरह जाना था, जिनको तुमने ज्ञान की उपाधियां समझा था, अज्ञानी वह है जिसने उन्हें वस्तुतः उपाधि ही समझा, बीमारी समझा, और छोड़ दिया। परम अज्ञान में लीन हो गए।

इसलिए तो सुकरात कहता है कि जब तुम यह जान लोगे कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, उसी दिन ज्ञान के द्वार खुलेंगे। अज्ञानी होना बड़ा कठिन है। क्योंकि अज्ञानी होने का अर्थ है निरहंकारी होना। अहंकार तो दावा करता है ज्ञान का। अज्ञानी अपने को स्वीकार कर लेने का अर्थ है कि मैं हूं ही नहीं; मेरी कोई क्षमता नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं; मेरा कोई बल नहीं, कोई शक्ति नहीं। गहन अंधकार और गहन अंधकार की स्वीकृति।

जैसे ही किसी ने अपने भीतर के गहन अंधकार की स्वीकृति की, इसी स्वीकृति से प्रकाश का जन्म होता है। अंधकार तो है ही नहीं। तुमने उसे देखा नहीं, माना नहीं, भीतर झांका नहीं, इसलिए अंधकार मालूम हो रहा है। और तुम क्षुद्र ज्ञान को ज्ञान समझते रहे, इसलिए वास्तविक ज्ञान तुम्हें अज्ञान जैसा मालूम हो रहा है। जब क्षुद्र को तुम छोड़ोगे, तब तुम पाओगे कि यह अज्ञान ही, क्षुद्र को छोड़ने से जो खाली जगह बनती है, यह रिक्त स्थान ही उस परिपूर्ण का आवास है। यह अज्ञान ही परम ज्ञान है।

"ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है।"

वह खोता है ज्ञान को, छोड़ता है जानने को, धीरे-धीरे न जानने में थिर होता है। जैसे ही तुम न जानने में थिर हो जाओगे, कैसे विचार उठेंगे वहां? विचार तो उठते हैं तुम्हारे ज्ञान के कारण। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि शांति नहीं, विचार ही विचार चलते हैं। और उनसे अगर मैं कहूं अज्ञानी हो जाओ, तो वे हंसते हैं। वे कहते हैं, आप भी कैसी बात सिखाते हैं? ज्ञान तो बड़ा जरूरी है।

ज्ञान जरूरी है; फिर विचार से परेशान क्यों हो रहे हो? अगर ज्ञान जरूरी है तो विचार तो चलेंगे ही। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा, विचार और ज्यादा चलेंगे। जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा, फिर रात सो भी न सकोगे; विचार ही विचार चलेंगे। जागोगे तो, सोओगे तो, ज्ञान बढ़ता जाएगा; तुम पागल होते जाओगे। इसलिए पश्चिम में वे बड़ा दार्शनिक उसी को कहते हैं जो एकाध दफे पागलखाने हो आए। दार्शनिक में कुछ न कुछ कमी रह गई, अगर वह पागलखाने न पहुंचा। उसने ठीक आखिरी तक यात्रा न की, पहले ही रुक गया थोड़ा। थोड़ा और जाता तो पागलखाने पहुंच ही जाता।

ऐसा हुआ। एक बार एक आदमी एक विश्वविद्यालय की तलाश में गया था। अजनबी था उस शहर में। और उसने जाकर एक द्वार पर दस्तक दी और पूछा कि क्या यह जो भवन है विश्वविद्यालय का है? उस द्वारपाल ने

कहा, विश्वविद्यालय का तो नहीं है, लेकिन कोई फर्क नहीं है; आओ, चाहो तो भीतर आ जाओ। विश्वविद्यालय का भवन तो सामने वाला भवन है। यह तो पागलखाना है। लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने कहा, फर्क नहीं है? क्या तुम कहते हो! मजाक करते हो? उसने कहा, नहीं, एक फर्क है। यहां से कभी-कभी कोई लोग सुधर कर भी निकल जाते हैं, वहां से कभी नहीं निकलते।

विश्वविद्यालय से लोग करीब-करीब विक्षिप्तता अर्जित करके लौटते हैं, पागलपन लेकर लौटते हैं। क्योंकि विचार का अतिशय हो जाना तनावपूर्ण है। और जब विचार इतना खिंच जाता है तो टूटने की घड़ी करीब आ जाती है। जितना तुम सोचोगे उतना ही उद्विग्न होते जाओगे। उतना ही तनाव, उतना ही खिंचाव भीतर, उतना ही विश्राम मुश्किल हो जाएगा। विचार तो विराम जानता ही नहीं, चलता ही जाता है। तुम रहो कि जाओ, तुम बचो कि न बचो, विचार का अपना ही तंतु-जाल है।

लोग मुझसे कहते हैं, शांत होना है, निर्विचार होना है। और बिना जाने कहते हैं कि वे क्या कह रहे हैं। क्योंकि अगर निर्विचार होना हो तो ज्ञान की दौड़ छोड़ देनी होगी। अगर निर्विचार होना हो तो ज्ञान का संग्रह छोड़ देना होगा। अगर निर्विचार होना हो तो भीतर जो पुराना संग्रह है, उसे भी उलीच कर खाली कर देना होगा।

"ताओ का विद्यार्थी दिन ब दिन खोने का आयोजन करता है। निरंतर खोने से व्यक्ति निष्क्रियता को उपलब्ध होता है, अहस्तक्षेप को उपलब्ध होता है। बाइ कंटिन्यूअल लूजिंग वन रीचेज डूइंग नथिंग--लैसे-फेअर।"

फ्रांसिसी भाषा का यह शब्द लैसे-फेअर बड़ा बहुमूल्य है। इसका अर्थ होता हैः लेट इट बी; जो है, जैसा है, ठीक है। लैसे-फेअर का अर्थ हैः जो है, जैसा है, ठीक है; तुम हस्तक्षेप न करो। तुम सुधारने की कोशिश न करो। कुछ बिगड़ा ही हुआ नहीं है; कृपा करके तुम सुधारना भर मत। क्योंकि तुम्हारा जहां हाथ लगा, वहीं चीजें बिगड़ जाती हैं। प्रकृति अपनी परिपूर्णता में चल रही है। यहां कुछ कमी नहीं है। तुम कृपा करके थोड़ी साज-संवार मत कर देना। तुम कुछ सुधार मत देना।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर लौट रहा था। सांझ का धुंधलका था। और मोटर साइकिल पर दो बैठे हुए आदमी एक वृक्ष से टकरा गए थे। अकेला नसरुद्दीन ही वहां था, वह उनके पास गया। एक तो मर ही चुका था। लेकिन दूसरे को नसरुद्दीन ने सहायता की। नसरुद्दीन को लगा कि चोट खाने से उसका सिर उलटा हो गया है; पीठ की तरफ मुंह हो गया है। तो उसने बड़ी मेहनत से घुमा-फिरा कर--वह आदमी चीखा भी, चिल्लाया भी--उसका बिल्कुल ठीक सिर कर दिया, जिस तरफ होना चाहिए था। तभी पुलिस भी आ गई। और पुलिस ने पूछा कि क्या ये दोनों आदमी मर चुके?

नसरुद्दीन ने कहा, एक तो पहले ही मरा हुआ था; दूसरे को मैंने सुधारने की बड़ी कोशिश की। पहले तो इसमें से चीख-पुकार निकलती थी, फिर पीछे वह भी बंद हो गई।

गौर से देखा तो पाया कि ठंडी सांझ थी और वह जो आदमी मोटर साइकिल के पीछे बैठा था, उसने उलटा कोट पहन रखा था, ताकि आगे से सीने पर हवा न लगे। और उलटा कोट देख कर नसरुद्दीन ने समझा कि इसका सिर उलटा हो गया है, तो उसने घुमा कर उसका सिर सीधा कर दिया। उसी में वे मारे गए। वे जिंदा थे, न सुधारे जाते तो बच जाते।

करीब-करीब ऐसा हमने किया है प्रकृति के साथ। और जहां प्रकृति के साथ हमने बहुत छेड़खानी की है वहां सब चीजें अस्तव्यस्त हो गई हैं।

पश्चिम में बड़ा आंदोलन है इकोलाजी का। पश्चिम के विचारशील लोग कह रहे हैं वैज्ञानिकों को कि अब तुम कृपा करो, अब और सुधार न करो। वैसे ही तुमने सब नष्ट कर दिया है। क्योंकि सब चीजें गुंथी हैं।

हमने जंगल काट डाले, अब वर्षा नहीं होती। अब वर्षा नहीं होती है तो अकाल पड़ता है। हम जंगल काटे चले जाते हैं--बिना यह फिक्र किए कि बादल वृक्षों से आकर्षित होते हैं। उनका वृक्षों से लगाव है। वे तुम्हारी वजह से नहीं बरसते। तुम्हारी खोपड़ी में उनकी तरफ कोई खिंचाव नहीं है। वे वृक्षों से आकर्षित होते हैं। तुमने वृक्ष काट डाले। वृक्षों की जड़ें जमीन को सम्हाले हुए हैं। वृक्ष कट जाते हैं, जड़ें हट जाती हैं; जमीन बिखरने लगती है, रेगिस्तान हो जाते हैं। वृक्ष और पृथ्वी के बीच कोई गहरा नाता है। जहां से वृक्ष हटे वहां रेगिस्तान हो जाएगा। वर्षा न होगी और जमीन को पकड़ने वाली जड़ें न रह जाएंगी, जमीन बिखरने लगेगी, सायल इरोजन हो जाएगा।

तुम एक चीज को सुधारते हो, तत्क्षण हजार चीजें प्रभावित हो जाती हैं। देर अबेर तुम्हें पता लगेगा कि यह तो मुश्किल हो गई। लाभ कुछ होते दिखाई नहीं पड़ता। आदमी सब तरफ से मिटता हुआ मालूम पड़ता है। और विज्ञान कोशिश किए जा रहा है सुधारने की। उसके सब सुधार में मौत हुई जा रही है। आदमी इतनी अड़चन में कभी न था। यह ज्ञानियों के हाथ में पड़ गया है। और उन्होंने आदमी को बड़ी मुसीबत में डाल दिया है। और पृथ्वी ज्यादा देर जिंदा नहीं रह सकती, अगर लाओत्से की न सुनी गई। ज्यादा से ज्यादा इस सदी के पूरे होते तक आदमी जमीन पर रह सकता है--बस ज्यादा से ज्यादा पच्चीस साल और--अगर वैज्ञानिक नहीं सुनता है लाओत्से जैसे ज्ञानियों की कि रुक जाओ, ठहर जाओ, मत सुधारो, रहने दो, जैसा है परम है, वही ठीक है। तुम्हारी जानकारी अधूरी है, तुम पूरे को नहीं जानते। तुम एक चीज को बदलते हो, पच्चीस चीजें प्रभावित होती हैं जिनका तुम्हें ख्याल भी नहीं है।

हिरोशिमा पर एटम बम गिराया, तब उनको अंदाज नहीं था कि कितना विध्वंस होगा। किसी को अंदाज नहीं था, इतना भयंकर विध्वंस हुआ। तब किसी को यह अंदाज नहीं था, वैज्ञानिकों को, कि यह विध्वंस सदियों तक चलेगा। क्योंकि जो रेडियोधर्मी किरणें पैदा हुईं एटम बम के गिराने से, उनको सागर की मछलियां पी गईं। क्योंकि सागर के पानी पर जाकर वे रेडियोधर्मी किरणें बैठ गईं। धीरे-धीरे वे डूब गईं सागर में, मछलियां उनको पी गईं। मछलियों को जिन्होंने खाया उनके भीतर रेडियोधर्मी तत्व पहुंच गए। उनके बच्चे पैदा हुए, उनके बच्चे अपंग हैं। उनके बच्चों की हड्डियों में रेडियोधर्मी तत्व पहुंच गए। अब वे बच्चे बच्चे पैदा करेंगे।

अब यह हजारों साल तक--वह जो एटम गिरा था उन्नीस सौ पैंतालीस में--हजारों साल तक, अगर आदमियत बचती है, तो उसका दुष्परिणाम भोगेगी। इसको अब रोकने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि फलों में भी चला गया वह। गायों के थनों में चला गया। गायों ने घास खाई--घास पर बैठ गया रेडियोधर्मी तत्व--गायों ने घास खाई, घास से दूध आया, दूध तुमने पीया।

तो यह मत सोचना कि मछली अपन खाते ही नहीं! कि हम शाकाहारी हैं! घास गाय खाएगी, दूध तुम पीओगे। सांस तो लोगे? हवा में रेडियोधर्मी तत्व हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि न्यूयार्क, लंदन और टोकियो की हवा में इतने विषाक्त द्रव्य हैं कि यह हैरानी की बात है कि आदमी जिंदा कैसे है! होना नहीं चाहिए। इम्यून हो गया है, इसलिए जिंदा है। लेकिन जहर तो प्रतिपल पहुंच रहा है। जहर भीतर उतर रहा है।

तुमने ख्याल किया होगा, डी डी टी छिड़को तो मच्छर पहली दफा मरते हैं, दूसरी दफा उतने नहीं मरते, तीसरी दफा बिल्कुल नहीं मरते। चौथी-पांचवीं दफा वे फिक्र ही नहीं करते, तुम छिड़कते रहो डी डी टी। वे इम्यून

हो गए, वे जहर इतना पी गए, जो मरने वाले थे, कमजोर, वे मर गए; और जो ताकतवर थे, वे बच गए, और अब जहर पीने में समर्थ हो गए। अब उनके खून में जहर है। अब तुम्हारा डी डी टी कुछ भी नहीं करता।

अभी सिर्फ दस साल पहले सारी दुनिया में डी डी टी का चमत्कार था। सारी दुनिया की सरकारें, भारत की अभी भी डी डी टी छिड़के जा रही है। लेकिन अमरीका और इंग्लैंड में भारी विरोध है इस समय। और अमरीका और इंग्लैंड में सख्ती से डी डी टी को रोका जा रहा है। क्योंकि डी डी टी बड़ा खतरनाक है। मच्छर में जहर जाता है, मच्छर तुम्हें काटता है, जहर तुममें चला गया। मच्छर फल पर बैठ जाता है, जहर फल में चला गया। और डी डी टी तुमने डाल दिया हवा में, वह पानी में गिरेगा, वर्षा में गिरेगा जमीन पर, वह इकट्ठा होता जा रहा है। और चारों तरफ तुम अपने हाथ से जहर इकट्ठा करते हो। तुम मच्छर मारने चले थे, मनुष्यता को मारने का इंतजाम हो जाता है।

जिंदगी जुड़ी है। जिंदगी ऐसे है जैसे तुमने कभी मकड़ी का जाल छूकर देखा हो; मकड़ी के जाल को तुम एक तरफ छुओ, पूरा जाल कंपता है। ऐसा जीवन एक जाल है। और हिंदू तो बड़े पुराने समय से कह रहे हैं इसे कि यह मकड़ी का जाल है। उन्होंने तो परमात्मा को मकड़ी का प्रतीक दिया है। उन्होंने तो कहा है, जैसे मकड़ी अपने भीतर से अपने थूक को ही धागा बना कर निकालती है और जाल बुनती है, ऐसे ही परमात्मा अपने भीतर से सारी सृष्टि को बुनता है। फिर प्रलय में, जैसे मकड़ी को अगर यात्रा करनी हो, जाना हो छोड़ कर घर, तो तुम्हारे जैसा घर छोड़ कर या बेच कर जाने की जरूरत नहीं है। वह वापस अपने घर को लील जाती है, वह फिर उन धागों को पी जाती है। पीकर दूसरी जगह चली जाती है और वहां जाकर फिर धागे निकाल लेती है। वह उसका थूक है। ऐसे ही परमात्मा प्रलय के क्षण में फिर अपने सारे विस्तार को लील लेता है, विश्राम में चला जाता है। जब फिर नींद खुलती है, ब्रह्ममुहूर्त आता है, तब फिर अपने जाल को फैला लेता है।

संसार यही तो है। जो विराट संसार है यह मकड़ी के जाल जैसा है। अंग्रेज कवि टेनीसन ने कहा है, तुम हिलाओ एक फूल को और आकाश के तारे हिल जाते हैं। दूरी कितनी ही हो, लेकिन चूंकि जाल एक का है, और एक का ही जाल है, इसलिए जुड़ा है।

ज्ञान से हम सुधारने की कोशिश करते हैं, और हम बिगाड़ते चले जाते हैं।

लाओत्से कहता है, जैसे-जैसे कोई निरंतर खोता है, व्यक्ति निष्क्रियता, अहस्तक्षेप को उपलब्ध होता है।

तब व्यक्ति धीरे-धीरे निष्क्रिय होता जाता है, वह कुछ भी नहीं करता। वह मेरे जैसा हो जाता है; कुछ भी नहीं करता, चुपचाप बैठा रहता है। खाली हो जाता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप कुछ करते क्यों नहीं? समाज में इतनी तकलीफ है, क्रांति की जरूरत है; समाज-सुधार चाहिए; विधवाओं की हालत देखिए, गरीबों की हालत देखिए, कोढ़ी हैं, उनकी हालत देखिए; कुछ करिए।

उन्हें पता ही नहीं कि करने वाले केवल उपद्रव करते हैं। और जब तक क्रांतिकारी हैं तब तक दुनिया में मुसीबत रहेगी। और जब तक समाज-सुधारक हैं तब तक समाज के सुधरने का कोई उपाय नहीं। यही तो उपद्रवी तत्व हैं। ये चीजों को ठीक बैठने नहीं देते, ये सुधारने में लगे हैं। सब सुधरा ही हुआ है।

इस फ्रेंच शब्द लैसे-फेअर का यही अर्थ हैः जैसा है, बिल्कुल ठीक है। तुम हस्तक्षेप मत करो। तुम अस्तित्व को और बेहतर न कर सकोगे। तुम हो कौन? तुम्हारी क्षमता क्या? तुम क्या सोचते हो कि तुम मूल स्रोत से ज्यादा ज्ञानी हो? क्या तुम सोचते हो, परमात्मा ने जो बनाया है, तुम उस पर सुधार आरोपित कर सकोगे? तुम

इससे बेहतर दुनिया बना सकोगे? क्रांतिकारी की यही आकांक्षा है कि इससे बेहतर दुनिया हम बना कर रहेंगे। इससे बेहतर दुनिया बनाने में तुम इसे भी गंवा दोगे।

"व्यक्ति निष्क्रियता को उपलब्ध होता है, और तब नहीं करने से सब कुछ किया जाता है।"

तब वह कुछ करता नहीं है। लाओत्से जैसे लोग कुछ करते नहीं हैं। लेकिन उनके न करने में इतनी क्षमता है; क्योंकि उनके न करने में वे परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं।

परमात्मा को तुमने कहीं कुछ करते देखा--कहीं वृक्षारोपण करते? कहीं सड़क बनाते? कहीं दवा घोंटते मरीजों के लिए?

तुमने उसे कहीं नहीं देखा होगा। वह कहीं कुछ करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता; इसीलिए तो तुम उसे देख नहीं पाते। क्योंकि तुम्हारा विचार केवल कृत्य को देख सकता है। निर्विचार निष्क्रिय परमात्मा को देख सकता है। सक्रिय बुद्धि केवल सक्रियता को देख सकती है। सक्रिय बुद्धि केवल पदार्थ को देख सकती है। निष्क्रिय बुद्धि केवल आकाश, शून्य को देख पाती है। उस जैसे हो जाओ, तभी तुम उसे देख सकोगे।

जैसे-जैसे कोई व्यक्ति निष्क्रिय होता है, वैसे-वैसे अदृश्य जैसा हो जाता है। क्योंकि उसकी छाप कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती; उसका स्वर कहीं नहीं सुनाई पड़ता। वह शून्यमात्र हो जाता है। उस शून्यता में ही परम घटना घटती है। कबीर ने कहा है, अनकिए सब होए। वही लाओत्से कह रहा है।

लाओत्से कह रहा है, "नहीं करने से सब कुछ किया जाता है। बाइ डूइंग नथिंग एवरीथिंग इ.ज डन।"

यह कैसे होता होगा? न करने से सब कुछ कैसे होगा?

सब कुछ हो ही रहा है। जैसे नदी बह रही है। लेकिन तुम अपने अज्ञान में धक्का दे रहे हो, और तुम सोचते होः धक्का न देंगे तो नदी बहेगी कैसे? तुम नाहक खुद ही थके जा रहे हो। नदी को धक्का देने की जरूरत नहीं है; वह अपने से बह रही है; बहना उसका स्वभाव है। अस्तित्व को सुधारने की जरूरत नहीं है; सुधरा हुआ होना उसका स्वभाव है। वह अपनी परम उत्कृष्ट अवस्था में है ही। कुछ रंचमात्र करना नहीं है। लेकिन तुम नाहक शोरगुल मचाते हो, उछलकूद मचाते हो। उसमें तुम खुद ही थक जाते हो, परेशान होते हो।

"नहीं करने से सब कुछ किया जाता है। जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है।"

दो तरह के विजेता इस संसार में होते हैं। एक विजेता जिनका नाम इतिहासों में लिखा है--सिकंदर, नेपोलियन, स्टैलिन, माओ। ये विजेता कुछ करते हुए दिखाई पड़ते हैं। ये विजेता नहीं हैं। और इनसे कुछ सार न तो किसी दूसरे को होता है, न इनकी खुद की कोई उपलब्धि है।

एक और विजेता है--लाओत्से, कृष्ण, महावीर, बुद्ध। महावीर को तो हमने जिन इसीलिए कहा। जिन का अर्थ है, जिसने जीता। जिन के कारण उनके अनुयायी जैन कहलाते हैं। जिन का अर्थ है विजेता, जिसने जीत लिया। लेकिन महावीर ने किया कुछ नहीं। वे खड़े रहे जंगलों में नग्न, आंख बंद किए वृक्षों के नीचे। कभी किसी ने उन्हें कुछ करते नहीं देखा, कि किसी कोढ़ी का पैर दबा रहे हों, कि किसी की मलहम-पट्टी कर रहे हों, कि किसी समाज-सुधार के कार्य में लगे हों, कि कोई अस्पताल में नर्स का काम कर रहे हों। किसी ने कभी कुछ करते नहीं देखा। लेकिन महावीर को हमने जिन कहा। उन्होंने जीत लिया।

जीतने की कला एक ही है कि तुम कुछ मत करो, तुम शांत हो जाओ। और तत्क्षण तुम परमात्मा के उपकरण हो जाते हो। वह तुम्हारे भीतर से करना शुरू कर देता है। लेकिन उसके करने के ढंग बड़े अदृश्य हैं। उसके करने के ढंग परम अदृश्य हैं। आवाज भी नहीं होती, और सब हो जाता है। पदचिह्न भी सुनाई नहीं पड़ते, और सारी यात्रा पूरी हो जाती है। पदचिह्न बनते भी नहीं, और मंजिल आ जाती है।

"जो संसार जीतता है, वह अक्सर नहीं कुछ करके जीतता है। और यदि कुछ करने को बाध्य किया जाए, तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।"

और अगर वह स्वयं को बाध्य करे, या किसी की बाध्यता में आ जाए और कुछ करने में लग जाए, उसी क्षण संसार उसके हाथ के बाहर निकल जाता है। क्योंकि जैसे ही तुम कुछ करते हो, कर्ता आया, वैसे ही परमात्मा से तुम्हारा संबंध टूट जाता है।

परमात्मा से तुम्हारा संबंध टूटा है तुम्हारे ज्ञानी होने और कर्ता होने से। और परमात्मा से तुम्हारा संबंध जुड़ जाएगा, तुम अकर्ता हो जाओ और अज्ञानी हो जाओ। तुम कह दो कि मुझे कुछ पता नहीं। और यही असलियत है, पता तुम्हें कुछ भी नहीं है। क्या पता है? कुछ भी पता नहीं है।

आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा है कि जिंदगी ऐसे ही गई, मैं कुछ बिना जाने मर रहा हूं; कुछ जाना नहीं है। और आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि दुबारा अगर जन्म मिले तो मैं वैज्ञानिक न होना चाहूंगा।

एडीसन कहा करता था... । एडीसन ने एक हजार आविष्कार किए हैं, उससे बड़ा आविष्कारक नहीं हुआ। तुम्हें पता ही नहीं, तुम्हारे घर की बहुत सी चीजें उसी के आविष्कार हैं--ग्रामोफोन, रेडियो, बिजली, सब उसी के हैं। तुम्हारा घर उसके आविष्कारों से भरा है। लेकिन एडीसन से जब किसी ने पूछा कि तुम इतना जानते हो! तो उसने कहा कि हमारे जानने का क्या मूल्य है? मैं सारे उपकरण बना लिया हूं विद्युत के, लेकिन विद्युत क्या है, यह मुझे अभी पता नहीं। बिजली क्या है?

ऐसी घटना है एडीसन के जीवन में कि एक गांव में गया था, पहाड़ी गांव पर विश्राम करने गया था। छोटा गांव ग्रामीणों का; छोटा सा स्कूल। स्कूल का वार्षिक दिन था, और बच्चों ने कई चीजें तैयार की थीं। पूरा गांव स्कूल देखने जा रहा था। तो एडीसन भी चला गया; फुरसत में बैठा था, कोई काम भी न था। कोई वहां उसे पहचानता भी नहीं था। तो बच्चों ने छोटे-छोटे खेल-खिलौने बिजली के बनाए थे। वह एडीसन तो बिजली का सबसे बड़ा ज्ञाता था। बच्चों ने मोटर बनाई थी, इंजन बनाया था, और बिजली से चला रहे थे। और ग्रामीण बड़े चकित होकर सब देख रहे थे। एडीसन भी चकित होकर सब देख रहा था।

फिर उसने उस बच्चे से पूछा, जो बिजली की गाड़ी चला रहा था, कि बिजली क्या है? व्हाट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी? उस बच्चे ने कहा कि यह तो मुझे पता नहीं; मैं अपने विज्ञान के शिक्षक को बुला लाता हूं। तो वह अपने विज्ञान के शिक्षक को बुला लाया। वह ग्रेजुएट था विज्ञान का। पर उसने कहा कि यह तो मुझे भी पता नहीं है कि बिजली क्या है। बिजली का कैसे उपयोग करें, वह हमें पता है। आप रुकें, हम अपने प्रिंसिपल को बुला लाते हैं। उसके पास डाक्टरेट है साइंस की। वह प्रिंसिपल भी आ गया। उस प्रिंसिपल ने भी समझाने की कोशिश की इस ग्रामीण को; क्योंकि वह ग्रामीण जैसा ही वेश पहने हुए था। लेकिन वह ग्रामीण कोई ग्रामीण तो था नहीं, वह एडीसन था। वह पूछता ही गया कि आप सब कह रहे हैं, लेकिन जो मैंने पूछा, वह नहीं कह रहे हैं। मैं पूछ रहा हूं, बिजली क्या है? सीधा सा उत्तर क्यों नहीं देते? आप जो भी कह रहे हैं, उससे उत्तर मिलता है कि बिजली का कैसे उपयोग किया जा सकता है। लेकिन बिजली क्या है? उपयोग तो पीछे कर लेंगे। आखिर वह भी हैरान हो गया और उसने कहा कि तुम बकवास बंद करो, बेहतर होगा तुम एडीसन के पास चले जाओ। तुम उससे ही मानोगे।

उसने कहा, तब गए काम से। वह तो मैं खुद ही हूं। तो फिर कहीं उत्तर नहीं है। अगर एडीसन के पास ही आखिरी उत्तर है तो फिर कहीं उत्तर नहीं है। तो फिर जाना बेकार है; क्योंकि वह तो मैं खुद ही रहा।

यह जो अस्तित्व है, बड़ी से बड़ी जानकारी के बाद भी तो बिना जाना रह जाता है। क्या जानते हैं हम? एक फूल का भी तो हमें पता नहीं।

अज्ञान और अक्रिया, अगर दो सध गईं--तुम गए, तुम मिट गए। फिर परमात्मा है तुम्हारी जगह; तुम खाली हो गए। जैसे ही तुम खाली होते हो वह तुम्हें भर देता है।

"और यदि कुछ करने को बाध्य किया जाए, तो संसार उसकी जीत के बाहर निकल जाता है।"

और तुम अगर अपने को बाध्य करोगे कुछ करने को, उसी क्षण तुम्हारा संबंध टूट जाता है। अकर्ता, अज्ञानी, शून्य भाव से--तुम सब कुछ हो। कर्ता हुए, अकड़ आई, कुछ करने का ख्याल जगा, क्रिया में उतरे, कर्म के जाल में उतर गए--संसारी हो गए।

इसलिए तो हम कहते हैं इस देश में कि जो कर्म के जाल से मुक्त हो जाए... । कर्म के जाल से कौन मुक्त होगा जब तक तुम्हें कर्ता का भाव है! और ज्ञान भी तो तुम्हारा कर्म है। वह भी तो तुमने कर-करके इकट्ठा किया है। कर्म का जाल उसी दिन टूटेगा जिस दिन न कर्ता रह जाए, न ज्ञान रह जाए। तुम छोटे बच्चे की भांति हो जाओ, जिसे कुछ भी पता नहीं है, जो कुछ भी कर नहीं सकता है। उसी के भीतर से परमात्मा उंडलने लगता है।

और लाओत्से कहता है, सारा संसार जीत लिया है अक्सर उन्होंने, जिन्होंने कुछ भी नहीं किया।

कुछ अनूठे रास्ते हैं। अनुभव से मैं कहता हूं कि वे रास्ते हैं। इधर मैं बिना कुछ किए चुपचाप बैठा रहता हूं, दूर-दूर अनजान देशों से लोग चुपचाप चले आते हैं। वे कैसे आते हैं, रहस्य की बात है। कौन उन्हें भेज देता है, रहस्य की बात है। कोई अनजान, कोई अदृश्य शक्ति चौबीस घंटे काम कर रही है। जहां भी गड्ढा हो जाता है, उसी तरफ यात्रा अनेक चेतनाओं की शुरू हो जाती है। कुछ कहने की भी जरूरत नहीं होती। किन्हीं अनजान रास्तों से उन्हें खबर मिल जाती है। कोई उन्हें पहुंचा देता है। ऐसा सदा ही हुआ है। तुम अपने करने वाले को भर मिटा दो, और तुमसे विराट का जन्म होगा। तुम कर्ता बने रहो, तुम क्षुद्र में ही सीमित मर जाओगे। तुम्हारा कर्ता होना और ज्ञानी होना तुम्हारी कब्र है। कर्ता और ज्ञानी गया कि तुम मंदिर हो गए। परमात्मा तुमसे बहुत कुछ करेगा। तुम जरा हट जाओ, तुम जरा मार्ग दो। परमात्मा तुम्हें बहुत ज्ञान से भरेगा, तुम जरा अपने ज्ञान का भरोसा छोड़ो। तुम जरा अपने ज्ञान की गठरी को उतार कर भर रखो और फिर देखो।

आज इतना ही।

सतासीवां प्रवचन

धारणारहित सत्य और शर्तरहित श्रद्धा

Chapter 49

The People's Hearts

The Sage has no decided opinions and feelings,
But regards the people's opinions and feelings as his own.
The good ones I declare good,
The bad ones I also declare good;
That is the goodness of Virtue.
The honest ones I believe,
The liars I also believe;
That is the faith of Virtue.
The Sage dwells in the world peacefully, harmoniously.
The people of the world are brought into a community of heart,
And the Sage regards them all as his own children.

अध्याय 49

लोगों के हृदय

संत के कोई अपने निर्णीत मत व भाव नहीं होते;
वे लोगों के मत व भाव को ही अपना मानते हैं।
सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी मैं शुभ करार देता हूं;
सदगुण की यही शोभा है।
ईमानदार का मैं भरोसा करता हूं, और झूठे का भी मैं भरोसा करता हूं;
सदगुण की यही श्रद्धा है।
संत संसार में शांतिपूर्वक, लयबद्धता के साथ जीते हैं।
संसार के लोगों के बीच हृदयों का सम्मिलन होता है।
और संत उन सब को अपनी ही संतान की तरह मानते हैं।

ज्ञान कोई ताल-तलैयों की भांति बंद घटना नहीं है। ज्ञान तो तरलता है--सरिता की भांति बहती हुई। इसलिए ज्ञान की कोई बंधी हुई धारणाएं नहीं हो सकतीं। ज्ञान की कोई धारणा ही नहीं होती, न कोई विचार होता है। अगर विचार होगा तो पक्षपात हो जाएगा। ज्ञान तो निष्पक्ष है।

एक दीया हम जलाते हैं। तो जो भी कमरे में हो, जैसा भी कमरे में हो, प्रकाश उसे प्रकट करता है। प्रकाश का कोई अपना पक्ष नहीं है। प्रकाश यह नहीं कहता कि सुंदर को प्रकट करूंगा, असुंदर को ढांक दूंगा; कि शुभ को ज्योतिर्मय करूंगा, अशुभ को अंधकार में डाल दूंगा। प्रकाश निष्पक्ष है; जो भी सामने होता है, उसे प्रकट कर देता है। जहां भी पड़ता है, प्रकट करना प्रकाश का स्वभाव है। प्रकाश की अगर अपनी कोई धारणा हो तो फिर प्रकाश निष्पक्ष न होगा।

ज्ञान प्रकाश की भांति है। ज्ञान तो एक दर्पण है; जो भी सामने आता है, झलक जाता है। ज्ञान कोई फोटोग्राफ नहीं है। ज्ञान के पास अपना कोई चित्र नहीं है। ज्ञान तो एक खालीपन है। उस खालीपन के सामने जो जैसा होता है, वैसा ही प्रकट हो जाता है। इस बात को पहले समझ लें। क्योंकि साधारणतः हम जिन लोगों को ज्ञानी कहते हैं, वे वे ही लोग हैं, जो पक्षपात से भरे हुए लोग हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है। कोई गीता को मानता है, कोई कुरान को। उनकी अपनी धारणाएं हैं। सत्य के पास जब वे जाते हैं तो अपनी धारणा को लेकर जाते हैं; वे सत्य को अपनी धारणा के अनुकूल देखना चाहते हैं।

सत्य किसी के पीछे छाया बन कर थोड़े ही चलता है। और सत्य किसी की धारणाओं में ढल जाए तो सत्य ही नहीं। सत्य के पास तो वे ही पहुंच सकते हैं, जिनकी कोई धारणा नहीं है, जिनके मन में कोई प्रतिमा नहीं है; जो सत्य का कोई रूप-रंग पहले से सोच कर नहीं चले हैं; जिनके परमात्मा की कोई आकृति नहीं है, और जिनके परमात्मा का कोई रूप नहीं है। और जैसा भी होगा रूप और जैसी भी होगी आकृति उस परमात्मा की, वे अपने हृदय के दर्पण में वैसी ही झलका देंगे। वे जरा भी ना-नुच न करेंगे। वे यह न कहेंगे कि तुम अपनी धारणा के अनुकूल नहीं मालूम पड़ते हो।

अपनी धारणा का अर्थ है अहंकार।

तुम ज्ञान को भी चाहोगे कि वह तुम्हारे पीछे चले। और तुम सत्य को भी चाहोगे कि तुम्हारा अनुयायी हो जाए। और तुम परमात्मा को भी चाहोगे कि वह तुम्हारी धारणाओं से मेल खाए। तभी तुम स्वीकार करोगे।

तुम्हारी स्वीकृति के लिए अस्तित्व नहीं रुका है। तुम्हारी स्वीकृति की कोई चाह भी नहीं है। तुम्हारी स्वीकृति के बिना अस्तित्व पूरा है। तुम हो कौन? तुम किस भ्रांति में हो कि तुम्हारी धारणा के अनुकूल सत्य हो? तुमने कभी विचार किया अपने मन पर कि तुम किस बात को सत्य कहते हो?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपने जो बात कही, वह बहुत जंची, बिल्कुल सच है। मैं उनसे पूछता हूं, तुमने जानी कैसे कि सच है? तुमने किस मापदंड से मापी? तुम्हें सत्य का पता है? तो ही तुम जांच सकते हो। हां, वे कहते हैं, सत्य का पता है। आपने वही कहा जो हमारे मन में भी छिपा है। आपने वही कहा जो हम पहले से ही मानते रहे हैं।

सत्य की परिभाषा लोगों की यह हैः अगर उनकी मान्यता के अनुकूल हो। तुम तो सत्य हो; तुम्हीं कसौटी हो जैसे। अब रही बात इतनी कि तुम्हारे अनुकूल जो पड़ जाए, वह भी सत्य हो जाएगा।

कुछ लोग हैं, वे कहते हैं, आपने जो बात कही, वह जंचती नहीं, मन को भाती नहीं; सत्य नहीं मालूम होती। तर्क से भला ठीक हो; आप समझाते हैं, तब ठीक भी लग जाती है; लेकिन ठीक है नहीं, अंतःकरण साथ नहीं देता।

क्या है तुम्हारा अंतःकरण? तुम्हारी धारणाएं? तुम्हें बचपन से जो सिखाया गया? तुम्हारे खून में जो डाला गया? मां के स्तन से दूध के साथ-साथ तुमने मां का धर्म भी पीया है। पिता का हाथ पकड़ने के साथ-साथ पिता की धारणाएं भी तुम्हारे जीवन में उतर गई हैं। तुम्हारा सीखा हुआ तुम्हारा अंतःकरण है! तुम उससे जांच करते हो--अगर मेल खा जाए सच, अगर मेल न खाए तो झूठ। तो कसौटी तुम हो। और जिसने यह समझ लिया कि मैं कसौटी हूं सत्य की, वह सदा भटकता रहेगा। ज्ञान की कोई कसौटी नहीं; ज्ञान तो निर्मल है। ज्ञान का अपना कोई भाव नहीं; ज्ञान तो निर्भाव है। ज्ञान तो बस कोरे दर्पण की भांति है; जो है, उसे प्रकट कर देगा। जो है, बिना व्याख्या के, अपने को बीच में डाले बिना, अपने को जोड़े बिना, प्रकट कर देगा। ज्ञान निष्पक्ष है।

कबीर ने कहा, पखापखी के पेखने सब जगत भुलाना। पक्ष और विपक्ष के उपद्रव में सारा जगत भटका हुआ है। ज्ञान का न तो कोई पक्ष है और न कोई विपक्ष। ज्ञान का कोई मत नहीं, कोई दल नहीं। ज्ञान तो शुद्ध दर्शन है। ज्ञान कोई विचार ही नहीं; वह तो निर्विचार प्रतिबिंब की क्षमता है--दि कैपेसिटी टु रिफ्लेक्ट। दर्पण को तुम ले आते हो घर में। दर्पण अगर पहले ही किसी चित्र से भरा हो तो तुम्हारे काम न आएगा। और दर्पण तुम्हें बताता है।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक जंगल से गुजरता था, किसी राही का गिरा हुआ दर्पण मिल गया। कभी दर्पण उसने पहले देखा नहीं था। दर्पण देखा, शक्ल कुछ पहचानी सी लगी; बाप से मिलती-जुलती थी। अपनी शक्ल तो देखी नहीं थी। दर्पण कभी देखा न था। बाप की शक्ल देखी थी। दर्पण देखा, बाप से मिलती-जुलती थी। नसरुद्दीन ने कहा, अरे बड़े मियां, हमने कभी सोचा भी न था कि तुमने फोटो उतरवाई है। अच्छा हुआ, कोई और न उठा ले गया। कहां से आ गई यह फोटो तुम्हारी? पिता तो चल बसे थे। पिता की फोटो समझ कर सम्हाल कर घर ले आया। कई बार रास्ते में देखी, हमेशा फोटो वही थी। पिता की फोटो थी; स्मृति के लिए सम्हाल कर मकान के ऊपर, जहां अपनी गुप्त चीजें रखता था, वहीं छिपा कर उसने रख दी। रोज जाकर सुबह नमस्कार कर आता था।

पत्नी को शक होना शुरू हुआ--किसलिए रोज ऊपर जाता है? बताता भी नहीं। एक दिन जब मुल्ला बाहर था तो वह ऊपर गई, देखा। अपनी ही शक्ल पाई दर्पण में। बड़ी नाराज हो गई। तो कहा कि इस बुढ़िया के पीछे दीवाने हुए हो! वह समझी कि प्रेयसी की तस्वीर रखे हुए है। अपनी ही फोटो दिखी। कभी दर्पण तो देखा न था। तो सोचा कि अच्छा, तो इस चुड़ैल के पीछे दीवाने हुए जा रहे हो!

दर्पण में तो तुम्हीं दिखाई पड़ोगे। दर्पण के पास अपनी कोई धारणा नहीं है। और अगर तुम्हें आखिरी दर्शन करना हो जीवन का तो तुम्हें ऐसा ही दर्पण हो जाना पड़ेगा जिसकी कोई धारणा नहीं। तभी तुम्हारे आर-पार जो बहेगा वह सत्य है। तुम्हारी धारणाओं में ढल कर जो बहेगा वह असत्य हो गया, तुम्हारे कारण असत्य हो गया। वह नकली हो गया; वह असली न रहा। ढांचा तुमने दे दिया। और तुम्हारे ढांचे के कारण उसकी जो असीमता थी, अनंतता थी, निराकार रूप था, वह सब खो गया। अब वह एक क्षुद्र चीज हो गई।

सत्य जब धारणाओं में बंधा होता है और शास्त्रों में कैद होता है, तब वह जंजीरों में पड़ा होता है। उसमें प्राण नहीं होते और पंख नहीं होते, जिनसे वह आकाश में उड़ जाए। सत्य जब निर्धारणा में उतरता है, तब वह

मुक्त होता है। तब उस पर कोई जंजीरें नहीं होतीं और कोई दीवाल नहीं होती, वह किसी कारागृह में बंद नहीं होता, तब खुले आकाश की भांति होता है। ज्ञान खुला आकाश है, कोई कारागृह का आंगन नहीं।

तुम्हारे मन में जितनी धारणाएं हैं, सब कारागृहों के आंगन हैं। नाम अलग होंगे; कोई हिंदू का कारागृह है, कोई मुसलमान का, कोई ईसाई का, कोई जैन का। लेकिन सभी मान्यताएं कारागृह हैं। और सभी मान्यताओं के बाहर जो आ जाए, वही ज्ञानी है।

ज्ञानी के पास अपना कोई विचार नहीं होता। वह तो दीए की भांति जीता है; जो आ जाता है, वही दिखाई पड़ने लगता है। और ज्ञानी के पास अपना कोई भाव भी नहीं होता कि वह किसी को बुरा कहे और किसी को भला कहे। उसके मन में न किसी की निंदा होती है और न किसी की प्रशंसा होती है। वह न तो चोर को चोर कहता है, न साधु को साधु कहता है। उसके लिए तो द्वंद्व का सारा जगत मिट गया; उसके लिए द्वैत न रहा, दुई न रही। उसके लिए तो अब एक ही है। और वह एक परम शुभ है। उस एक का होना ही एकमात्र शुभ है, एकमात्र मंगल है।

इसलिए तुम ज्ञानी को धोखा न दे सकोगे। नहीं कि तुम ज्ञानी को धोखा नहीं दे सकते, तुम दे सकते हो। लेकिन ज्ञानी को तुम न दे सकोगे, क्योंकि ज्ञानी धोखे को मानता ही नहीं। वह तुम पर भी भरोसा करता है। तुम उसे कितना ही धोखा दिए जाओ, वह बार-बार तुम पर भरोसा किए चला जाएगा। उसके भरोसे का कोई अंत नहीं है। तुम उसके भरोसे को न चुका सकोगे; तुम ही चुक जाओगे, तुम ही हारोगे। ज्ञानी से जीतने का कोई उपाय नहीं; देर-अबेर तुम्हें हारना ही पड़ेगा।

बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक झेन फकीर नदी में खड़ा है और एक बिच्छू डूब रहा है। तो उसे उठाता है हाथ में और किनारे पर रख देता है। जब तक वह उठाता है और किनारे पर रखता है तब तक वह दस-पांच बार डंक मार देता है। बिच्छू का स्वभाव है; कोई कसूर नहीं है। इसमें कुछ न होने जैसा भी नहीं है, अनहोना भी नहीं है। बिच्छू का स्वभाव है। वह उसे किनारे पर रख देता है। बिच्छू फिर पानी में उतर कर तैरने लगता है। वह उसे फिर बचाने के लिए किनारे पर रखता है।

जैसा कि तुमने देखा होगा, पशुता में एक तरह की गहरी जिद्द। पशुता जिद्दीपन है। सभी पशु हठयोगी हैं। तुम किसी चींटे को हटाओ, फिर वहीं भागेगा जहां से हटाया गया है। इसमें चुनौती हो जाती है। तुम एक मक्खी को उड़ाओ, वह वापस वहीं बैठ जाएगी जहां से तुमने उड़ाई थी। जब तक तुम उसको छोड़ ही न दोगे उसके हाल पर, तब तक वह चुनौती से संघर्ष लेगी। उसके अहंकार को भी चोट लगती है। तुम हो कौन हटाने वाले? तुमने समझा है कि यह नाक तुम्हारी है जिस पर मक्खी बैठ रही है। मक्खी के लिए यह केवल उड़ने के बाद विश्राम करने का स्थल है। तुम हो कौन बीच में बाधा डालने वाले? तुम नाक भी काट लो तो भी मक्खी वहीं उतरेगी।

बिच्छू को जैसे-जैसे वह उठा कर बाहर रखता, बिच्छू वापस पानी में दौड़ता। एक आदमी किनारे खड़ा था, उसने कहा कि तुम पागल हो गए हो--उसका सारा हाथ नीला पड़ गया है--मरने दो इस बिच्छू को, तुम्हें क्या पड़ी है? और वह बिच्छू तुम्हें काट रहा है।

उस झेन फकीर ने कहा, जब बिच्छू अपना स्वभाव नहीं छोड़ता तो मैं कैसे अपना स्वभाव छोड़ूं? जब बिच्छू नहीं मानता, काटे चला जाता है, और वापस लौट कर आ जाता है पानी में, तो मैं कैसे मानूं? जैसे बिच्छू का काटना स्वभाव है वैसे साधु का बचाना स्वभाव है। मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, सिर्फ मैं अपने स्वभाव के अनुसार वर्तन कर रहा हूं। बिच्छू अपने स्वभाव के अनुसार वर्तन कर रहा है। देखना यह है कि बिच्छू जीतता है कि साधु!

ज्ञानी को तुम हरा न सकोगे। हरा तो तुम सकते थे जब उसकी कोई सीमा होती, कोई पक्ष होता। वह तो निष्पक्ष है। उसका कोई भाव भी नहीं है। तुम उसकी जेब काट सकते हो, लेकिन तुम उसके भरोसे को न डिगा सकोगे। तुम उसे धोखा दे सकते हो। और ऐसा नहीं है कि धोखा उसे दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि वह तो निर्मल दर्पण की तरह है, तुम जो भी करते हो वह सभी दिखाई पड़ता है। लेकिन धोखे के पार तुम भी उसे दिखाई पड़ते हो। और तुम्हारी महिमा अनंत है। धोखा ना-कुछ है। धोखे का जो कृत्य है, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह जो तुम्हारे भीतर छिपा है महिमावान, उसका ही मूल्य है। उसका भरोसा तुम पर है, तुम्हारे कृत्यों पर नहीं। तुम क्या करते हो, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता तुम्हारे होने में। तुम कैसे हो, कैसा तुम्हारा वर्तन है, आचरण है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता तुम्हारी आंतरिक प्रतिमा में। और ज्ञानी उस प्रतिमा को देख रहा है, जहां परमात्मा का वास है। तो तुम्हारे आचरण से कोई भेद नहीं पड़ता। उसका अपना कोई भाव नहीं है कि तुम क्या करो। वह तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता है।

इसे थोड़ा समझो। अगर तुम्हारे पास कोई भी भाव है, धारणा है, तो तुम अपने प्रियजनों को भी कोई स्वतंत्रता नहीं दे सकते। क्योंकि तुम चाहोगे कि वे तुम्हारे भाव के अनुकूल हों। और तुम उनके हित में ही चाहोगे कि वे तुम्हारे भाव के अनुकूल हों। यह ज्ञानी का लक्षण न हुआ। यह अज्ञानी का लक्षण है।

अज्ञानी प्रेम के माध्यम से भी कारागृह खड़ा करता है। वह अपने बच्चों को भी चाहता है वे ऐसे हो जाएं। कोई उसको गलत भी न कह सकेगा। क्योंकि वह बच्चों को अच्छा ही बनाना चाहता है। लेकिन अच्छे बनाने की चेष्टा भी बच्चों के भीतर छिपे परमात्मा का अस्वीकार है। क्योंकि अच्छे बनाने की चेष्टा में भी तुम मालिक हुए जा रहे हो। तुमने बच्चों की उनकी अपनी मालकियत छीन ली।

खलील जिब्रान ने कहा है, तुम बच्चों को प्रेम देना, लेकिन आचरण नहीं; तुम प्रेम देना, लेकिन अपना ज्ञान नहीं। तुम प्रेम देना और तुम्हारे प्रेम के माध्यम से स्वतंत्रता देना; ताकि वे वही हो सकें जो होने को पैदा हुए हैं। तुम उनकी नियति में बाधा मत डालना।

लेकिन बड़ा मुश्किल है कि बाप बेटे की नियति में बाधा न डाले; कि मां बेटे की नियति में बाधा न डाले; कि शिक्षक शिष्य की नियति में बाधा न डाले। वे बाधा डालेंगे, और तुम्हारे हित में ही बाधा डालेंगे।

संत खुला आकाश है। वह तुम्हें बिल्कुल बाधा न डालेगा। वह तुम्हारे लिए मार्ग भी दिखाएगा, तो भी चलने का आग्रह न करेगा। वह खुद ही मार्ग है--खुला हुआ। तुम्हें चलना हो तो चलना; तुम्हें न चलना हो न चलना; तुम्हें लौटना हो लौट जाना। वहां कोई आग्रह न होगा। सत्य का आग्रह भी न होगा। संत निराग्रही होगा।

तीन तरह के लोग हैंः असत्य-आग्रही, सत्याग्रही और अनाग्रही। संत उसमें तीसरी कोटि का हैः अनाग्रही। उसका सत्याग्रह भी नहीं है कि वह अनशन करके बैठ जाए कि अगर तुम मेरे अनुसार न चले तो मैं मर जाऊंगा।

तुम्हारा सत्य दूसरे का सत्य नहीं हो सकता। तुम्हारे लिए जो सत्य है, वह दूसरे का भी सत्य बन जाए, यह कोशिश ही आग्रह है। पहले तो यही पक्का नहीं है कि तुम्हारा जो सत्य है, वह तुम्हारा भी सत्य है! और यह भी पक्का हो जाए कि तुम्हारा सत्य तुम्हारा सत्य है, तो भी कैसे निर्णय लिया जा सकता है कि यह दूसरे का सत्य भी होगा! क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी नियति है, अपनी स्वतंत्रता है, अपना यात्रा-पथ है। जन्मों-जन्मों से प्रत्येक व्यक्ति अपनी अनूठी चाल, अपनी अनूठी यात्रा पर निकला हुआ है।

इन बातों को ख्याल में ले लें; फिर लाओत्से के ये अदभुत वचन समझने की कोशिश करें।

"संत के कोई अपने निर्णीत मत व भाव नहीं होते; वे लोगों के मत व भाव को ही अपना मानते हैं।"

निर्णीत मत आमतौर से बड़ी बहुमूल्य बात समझी जाती है। हम सोचते हैं कि जिस आदमी के निर्णीत मत हैं, वह बड़ा सुदृढ़ आदमी है। और जिस आदमी का कोई निर्णीत मत नहीं है, वह आदमी संदिग्ध, संशय में पड़ा है।

तो हम तो बड़ा मूल्य देते हैं निर्णय करने वाले लोगों को। संशय में पड़े लोगों को हम अनादर देते हैं। हम कहते हैं, क्या संशय में पड़े हो, निर्णय लो! निर्णीत होकर जीओ। जीवन को कहां ले जा रहे हो? दिशा क्या है? सब पक्का करके चलो।

लेकिन संत न तो संशयी होता है और न उसका कोई निर्णीत मत होता है। संत तो बहता है क्षण-क्षण। और क्षण का जो यथार्थ है, उस यथार्थ और संत की चेतना के बीच जो भी घट जाए, घटने देता है। क्षण के यथार्थ के साथ जीता है। आने वाले क्षण का पता नहीं। निर्णय अभी कैसे किया जा सकता है?

एक हसीद फकीर के जीवन में उल्लेख है कि एक सुबह वह अपने झोपड़े के बाहर खड़ा हुआ और पहला आदमी जो रास्ते पर आया, उसने उसे भीतर बुलाया। और उस आदमी से कहा कि मेरे प्यारे, एक छोटा सा सवाल है, उसका जवाब दे दो, और फिर जाओ। सवाल यह है कि अगर रास्ते पर दस कदम चलने के बाद तुम्हें हजारों स्वर्ण अशर्फियों से भरी हुई एक थैली मिल जाए तो क्या तुम उसके मालिक का पता लगा कर उसे वापस लौटा दोगे? उस आदमी ने कहा, निश्चित ही, तत्क्षण! जैसे ही थैली मुझे मिलेगी मैं आदमी का पता लगा कर उसे वापस लौटा दूंगा। वह फकीर हंसा। उसके शिष्य जो पास बैठे थे, उनसे उसने कहा कि यह आदमी मूर्ख है।

वह आदमी बड़ा बेचैन हुआ; क्योंकि उसने तो सीधी भली बात कही थी। और यह किस प्रकार का फकीर है! अब तक उस आदमी ने भी इस फकीर को फकीर की तरह समझा था और ज्ञानी साधु मानता था। और यह आदमी तो बड़ा गलत निकला। मैं कह रहा हूं कि थैली वापस लौटा दूंगा। यही तो सभी धर्मों का सार है कि दूसरे की चीज मत छीनना। और यह आदमी कह रहा है कि यह आदमी मूर्ख है।

और उस फकीर ने उससे कहा कि तू जा, बात खतम हो गई। तब वह बाहर आकर खड़ा रहा, फिर जब दूसरा आदमी निकला, उसको भीतर ले गया और कहा, एक सवाल है। अगर हजारों स्वर्ण अशर्फियों से भरी हुई थैली दस कदम चलने के बाद तुम्हें राह पर पड़ी मिल जाए तो क्या तुम उसे मालिक को खोज कर लौटा दोगे? उसने कहा, तुमने क्या मुझे मूर्ख समझा? इतना बड़ा मूर्ख समझा? लाखों रुपयों की स्वर्ण अशर्फियां मुझे मिलेंगी और मैं लौटा दूंगा! तुमने मुझे समझा क्या है? एकदम भाग जाऊंगा यह बस्ती भी छोड़ कर कि कहीं वह मालिक पता न लगा ले। फकीर ने अपने शिष्यों से कहा, यह आदमी शैतान है।

अब तो शिष्य भी थोड़ी झंझट में पड़े। क्योंकि पहले आदमी को कहा, मूर्ख! अगर पहला आदमी मूर्ख है तो यह आदमी ज्ञानी है। गणित तो साफ है। और अगर यह आदमी शैतान है तो पहला आदमी संत है। गणित तो साफ है। पहले को कहना मूर्ख और दूसरे को कहना शैतान, संगति नहीं मिलती। लेकिन शिष्य चुप रहे; क्योंकि फकीर तब तक बाहर चला गया था।

वह तीसरे आदमी को पकड़ लाया। और उससे भी यही सवाल किया कि लाखों रुपए के मूल्य की अशर्फियां मिल जाएं दस कदम की दूरी पर, तुम उसके मालिक को वापस लौटा दोगे? उस आदमी ने कहा, कहना मुश्किल है। मन का भरोसा क्या? क्षण का भी पक्का नहीं है। अगर परमात्मा की कृपा रही तो लौटा दूंगा। लेकिन मन बड़ा शैतान है, और बड़ा उत्तेजनाएं देगा मन कि मत लौटाओ! मेरा सौभाग्य और परमात्मा की कृपा रही तो लौटा दूंगा; मेरा दुर्भाग्य और उसकी कृपा न रही तो लेकर भाग जाऊंगा। पर अभी कुछ भी कह नहीं सकता; क्षण आए, तभी पता चले। उस फकीर ने अपने शिष्यों से कहा कि यह आदमी सच्चा संत है।

क्या मतलब है?

संत का पहला लक्षण यह है कि वह क्षण के साथ जीएगा। कल के लिए निर्णय नहीं लिया जा सकता। कल की कौन कहे? कल क्या होगा, कौन जानता है? कल हम होंगे भी या नहीं, यह भी कौन जानता है? और कल की परिस्थिति में क्या मौजू पड़ेगा, इसका निर्णय आज कौन लेगा और कैसे लिया जा सकता है? कल अज्ञात है; अज्ञात के लिए तुम कैसे निर्णय लोगे?

आने दो कल। जीवन कोई नाटक नहीं है कि तुमने आज रिहर्सल कर लिया और कल नाटक में सम्मिलित हो गए। जीवन में कोई भी रिहर्सल नहीं है। इसीलिए तो नाटक में सफल हो जाना आसान, जीवन में सफल होना बहुत मुश्किल है। तैयारी करने का उपाय ही नहीं है। जीवन जब आता है, तभी अनजाना। जब भी जीवन द्वार पर दस्तक देता है, तभी नई तस्वीर। पुराने से पहचान की थी, तब तक वह बदल जाता है। जीवन प्रतिपल नया है। पुराना कभी दुहरता नहीं। हर सूरज नया है। और हेराक्लाइटस ठीक कहता है कि एक ही नदी में तुम दुबारा न उतर सकोगे। इसलिए पहले की तैयारियां काम न आएंगी। जीवन में कोई अभिनय की पूर्व-तैयारी नहीं हो सकती; तुम जीवन के लिए तैयार कभी हो ही नहीं सकते। यही संतत्व का सार है।

तब एक ही उपाय है कि तुम तैयारी छोड़ ही दो। क्योंकि तुम्हारी तैयारी बोझ की तरह सिद्ध होगी। और जीवन सदा नया है, तैयारी सदा पुरानी है। तुम कभी मिल ही न पाओगे। जीवन और तुम्हारा मिलन न हो पाएगा। ऐसे ही तो तुम वंचित हुए हो; ऐसे ही तो तुमने गंवाया है; तैयार हो-होकर तो तुमने खोया है।

बिना तैयारी के, अनप्रिपेयर्ड, यही श्रद्धा है संत की कि वह बिना तैयार हुए क्षण को स्वीकार करेगा। और जो भी उसकी चेतना में उस क्षण प्रतिफलित होगा उसके अनुसार आचरण करेगा। लेकिन आचरण सद्यःस्नात होगा, नया होगा, ताजा होगा। आचरण बासा नहीं होगा।

कल के निर्णय से जो पैदा हुआ है, वह बासा है। तुम बासा भोजन भी नहीं करते, लेकिन बासा जीवन जीते हो। तुम कल की रोटी आज नहीं खाते, लेकिन कल का निर्णय आज जीते हो। तुम्हारा सारा जीवन इसीलिए तो बासा-बासा हो गया है। उससे दुर्गंध उठती है; उससे सुगंध नहीं उठती नए फूलों की। उससे सड़ांध उठती है कूड़े-कर्कट की; लेकिन जीवन की नई प्रभात और नई किरणें वहां दिखाई नहीं पड़तीं। तुम्हारे जीवन पर धूल जम गई है। क्योंकि न मालूम कब के लिए निर्णय तुम अब पूरे कर रहे हो। वह समय जा चुका, वह नदी बह चुकी, जब तुमने निर्णय लिए थे। वे घाट न रहे, वे लोग न रहे, तुम भी वही नहीं हो। और उन निर्णयों को तुम पूरा कर रहे हो! तुम कब तक बासे-बासे जीओगे?

संत ताजा जीता है। ताजा होने का एक ही अर्थ हैः बिना तैयारी के जीना।

लेकिन तुम तैयारी क्यों करते हो? तैयारी तुम इसलिए करते हो कि तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है। तैयारी तभी करता है कोई आदमी, जब भरोसा न हो। तुम इंटरव्यू देने जा रहे हो एक दफ्तर में नौकरी का। तुम बिल्कुल तैयार होकर जाते हो कि क्या तुम पूछोगे, क्या मैं जवाब दूंगा। अगर तुमने यह पूछा तो मैं यह जवाब दूंगा। तुम बिल्कुल तैयार होकर जा रहे हो। क्योंकि तुम्हें अपने पर कोई भरोसा नहीं है। तुम तो मौजूद रहोगे, तैयारी क्या कर रहे हो? जब जो भी पूछा जाएगा, तुम्हारी मौजूदगी से निकले, वही उत्तर। लेकिन नहीं, तुम तैयार होकर जा रहे हो। तुम्हारी तैयारी तुम्हें मुश्किल में डाल दे सकती है।

लेकिन शायद इंटरव्यू में तुम सफल भी हो जाओ तैयारी से; क्योंकि तुम भी बासे हो और लेने वाले भी बासे हैं। लेकिन जीवन की जो चुनौती है वह ताजे परमात्मा की तरफ से है; वहां बासे उत्तर कभी स्वीकार नहीं किए जाते। तुम कर लो गीता कंठस्थ, तुम कर लो कुरान याद, वेद तुम्हारी जिह्वा पर आ जाएं; लेकिन परमात्मा तुमसे वे प्रश्न नहीं पूछेगा जिनके उत्तर वेद में हैं। वह कभी दुहराता ही नहीं पुराने प्रश्न।

जीवन रोज नया होता जाता है। उस नई परिस्थिति में तुम्हारे पुराने प्रश्न बाधा बनते हैं। तुम परिस्थिति को भी नहीं देख पाते; क्योंकि तुम अपनी धारणा से अंधे होते हो। धारणा के कारण बड़ी भ्रांतियां पैदा होती हैं।

एक मनोवैज्ञानिक ने एक छोटा सा प्रयोग किया--धारणाओं से कैसे भ्रांतियां पैदा होती हैं। काशी के विश्वनाथ मंदिर में वह गया और शंकर की प्रतिमा के पास, शिवलिंग के पास, उसने अपना हैट उतार कर रख दिया। दरवाजे पर जाकर उसने एक आदमी, जो अजनबी आदमी अंदर आ रहा था, उसने कहा, रुको, यह शंकर की प्रतिमा के पास क्या रखा हुआ है तुम बता सकते हो? अब कोई भी नहीं कल्पना कर सकता कि शंकर की प्रतिमा के पास और हैट होगा! उस आदमी ने गौर से देखा और उसने कहा, किसी ने घंटा उतार कर रख दिया है।

शंकर की प्रतिमा के पास घंटा की तो संगति है, हैट की बिल्कुल नहीं। शंकर जी हैट लगाए नहीं कभी। तो तुम सोच भी नहीं सकते, तुम्हारी धारणा प्रवेश नहीं कर पाती।

रात अंधेरे में तुम निकलते हो और तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। ये तुम्हारी धारणाओं के हैं। लकड़ी का खूंट खड़ा है और तुम्हें भूत दिखाई पड़ता है। और तुम उसमें सब हाथ-पैर वगैरह जोड़ लेते हो। धीरे-धीरे आंख की प्रतिमा भी निकल आती है, चेहरा भी दिखाई पड़ने लगता है। तुम अपनी धारणा से खड़ा कर रहे हो।

तुम मरघट से निकल सकते हो रोज, अगर तुम्हें पता न हो कि यह मरघट है। बस एक दफे पता चल गया कि फिर भूत-प्रेत मिलेंगे। पहले नहीं मिले; पहले तुम वहीं से निकलते थे। क्योंकि धारणा न थी। अब धारणा रूप खड़ा करती है। तुम जो देखते हो, ध्यान रखना, जरूरी नहीं है कि वही हो--जो तुम देख रहे हो, वह हो भी वहां। तुम वही देख लेते हो जो तुम्हारी धारणा में बैठा है। तुम वही सुन लेते हो जो तुम्हारी धारणा में बैठा है।

और जब तुम बहुत तैयार होकर जीवन के पास जाते हो तो तुम्हारे भीतर संध भी नहीं होती जिससे जीवन प्रवेश कर जाए। तुम्हारी तैयारी सख्त पत्थर की दीवार की तरह खड़ी होती है। जीवन कुछ पूछता है, तुम कुछ और कहते हो। जीवन कुछ मांगता है, तुम कुछ और देते हो। तुम मिल नहीं पाते। इसीलिए तो तुम बेचैन हो। क्या है संताप मनुष्य का? यही कि वह जीवित है और जीवित नहीं; यही कि वह जीवित होते हुए भी मरा-मरा जी रहा है। उसका जीवन एक यथार्थ नहीं है, बल्कि एक स्वप्न है। इस स्वप्न को ही हमने माया कहा है।

संसार तो सत्य है; लेकिन जिस संसार को तुम देख रहे हो, वह सत्य नहीं है। तुम्हारा देखा हुआ संसार तुम्हारी धारणा से बनाया हुआ संसार है, तुम्हारी कल्पना से भरा हुआ संसार है। तुम अपने जीवन में खोजने की कोशिश करना; कई बार तुम अपने ही कारण, अपनी ही धारणा के कारण कुछ का कुछ समझ लेते हो।

एक हसीद फकीर हुआ, झुसिया। वह एक गांव से गुजर रहा था। उसके दो शिष्य साथ थे। अचानक एक औरत दौड़ कर आई और लकड़ी से उसने झुसिया पर प्रहार किया। झुसिया गिर पड़ा। और वह लकड़ी और उठा कर मारने ही वाली थी कि शिष्यों ने कहा, यह क्या करती हो? तो वह स्त्री भी चौंकी। उसने गौर से देखा, सिर से लहू बह रहा है। उस स्त्री का पति बीस साल पहले भाग गया था। यह झुसिया उसके पति जैसा लगता था। देख कर उसने होश खो दिया, क्रोध आ गया। झुसिया उठ कर खड़ा हुआ, लहू पोंछा। वह स्त्री माफी मांगने लगी, पैर पर सिर रखने लगी। उसने कहा कि रुक, तूने मुझ पर चोट ही नहीं की, तूने अपने पति पर चोट की। कभी मिल जाए तो माफी मांग लेना। मुझसे माफी मत मांग! मैं माफी देने वाला कौन? तूने मुझे चोट ही नहीं की, तूने अपने पति को चोट की। कभी मिल जाए, माफी मांग लेना। मुझसे तेरा कुछ लेना-देना ही नहीं है।

जिंदगी में कितनी बार तुम किसी और पर चोट करते हो, जो चोट किसी और पर करना चाही थी। पत्नी पर नाराज थे, बेटे पर क्रोध निकाल लेते हो। दफ्तर में गुस्सा हुए थे, पत्नी पर टूट पड़ते हो। और तुम्हें कभी ख्याल

भी नहीं होता, तुम क्या कर रहे हो? क्योंकि बासे ढंग से जीना तुम्हारी आदत हो गई है। तुम सदा भरे-भरे हो। और वह भरा हुआ पन तुम्हारा न तुम्हें पहचानने देता, न देखने देता कि जीवन की मांग क्या है। और जीवन प्रतिपल नया मांगता है। क्योंकि नए मांग से ही वह तुम्हें नया करता है। जीवन तुम्हें युवा रखता है। तैयारी तुम्हें बूढ़ा कर देती है।

तैयारी से बचना, अगर संतत्व की तरफ जाना हो। संतत्व का कोई रिहर्सल नहीं है। और एक बात दुबारा नहीं दुहरती। इसलिए तैयारी का कोई उपाय नहीं है। हर घड़ी बस एक बार घटती है और खो जाती है।

तुम सभी बुद्धिमान हो! जब घड़ी निकल जाती है तब तुम सोचते हो कि क्या करना था। तुम्हारी बुद्धि जरा देर से आती है। किसी आदमी ने कुछ कहा, तुमने कुछ उत्तर दिया; घड़ी भर बाद तुम्हें याद आता है कि अगर यह उत्तर दिया होता तो ठीक होता। बुद्धिमान का लक्षण ही यही है कि उसे उत्तर उस क्षण में आए जब उत्तर की जरूरत है। अन्यथा तो बुद्धू भी बड़े ऊंचे उत्तर खोज लेते हैं। प्रतिभा का एक ही लक्षण है कि वह पछताती नहीं। अगर तुम पछताते हो तो प्रतिभा नहीं है। और पछतावा क्यों पैदा होता है। और प्रतिभा क्यों नहीं जन्मती?

प्रतिभा तो हर व्यक्ति लेकर पैदा होता है, लेकिन तैयारी की धूल जम जाती है। तुम तैयारी के भीतर से देखते रहते हो। वहीं तुम चूकते हो।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में सम्राट का आगमन हुआ। वह गांव का सबसे बड़ा बूढ़ा था। तो गांव के लोगों ने कहा कि तुम्हीं हमारे प्रतिनिधि हो। और गांव के लोग डरे भी थे, गैर पढ़े-लिखे थे। मुल्ला अकेला लिख-पढ़ सकता था। तो तुम्हीं सम्हालो!

सम्राट के पहले वजीर आए। क्योंकि गांव गंवारों का था और पता नहीं वे कैसा स्वागत करें, तो उन्होंने सब तैयारी करवा दी। मुल्ला को कहा कि देखो, कुछ अनर्गल मत बोल देना, क्योंकि यह सम्राट का मामला है। छोटी सी बात में गर्दन चली जाए। और तुम जरा कुछ बक्कार हो, कुछ भी बोलते रहते हो। यहां जरा ख्याल रख कर बोलना। एक-एक शब्द की कीमत चुकानी पड़ेगी। तो बेहतर यह है कि तुम तैयारी कर लो। और हम सम्राट को कह रखेंगे कि वह तुमसे वही पूछे प्रश्न जो तुमने तैयार किए हैं। तो पहले वह तुमसे पूछेगा, तुम्हारी उम्र कितनी? तो तुम बता देना कि सत्तर साल। फिर वह पूछेगा कि तुम इस गांव में कितने समय से रहते? तो तुम तीस साल से रहते तो कह देना तीस साल। ऐसे पांच-सात प्रश्न तैयार करवा दिए और कहा कि ठीक याद रखना! जरा भी भूल-चूक न हो।

मुल्ला ने कंठस्थ कर लिए, मुल्ला बिल्कुल तैयार था।

सम्राट आया। सम्राट ने पूछा कि इस गांव में कब से रहते हो? मुल्ला मुश्किल में पड़ा; क्योंकि पहले सम्राट को पूछना चाहिए था, तुम्हारी उम्र कितनी है? और वह पूछ रहा है, इस गांव में कितने दिन से रहते हो? तो मुल्ला ने कहा, सम्राट गलती करे तो करे, अपन क्यों गलती करें! उसने कहा, सत्तर साल। सम्राट जरा चौंका। तो उसने कहा, और तुम्हारी उम्र कितनी है? मुल्ला ने कहा, तीस साल। सम्राट ने कहा, तुम होश में हो या पागल! मुल्ला ने कहा, हद्द हो गई। उलटे सवाल तुम पूछ रहे हो; सीधे जवाब हम दे रहे हैं। और होश में हम हैं कि तुम? और पागल तुम कि हम? हम बिल्कुल ठीक वही जवाब दे रहे हैं, जो तैयार किए गए हैं।

एक बार एक आदमी ने विंसटन चर्चिल को बड़ी मुश्किल में डाल दिया। वह मुल्ला नसरुद्दीन जैसा ही आदमी रहा होगा। राजनीतिज्ञ अक्सर यह तरकीब करते हैं कि भीड़ में अपने-अपने आदमी छिपा रखते हैं, जो वक्त पर ताली बजाते हैं, इशारे पर खड़े होकर प्रश्न पूछते हैं--वही प्रश्न जो राजनीतिज्ञ जवाब दे सकता है। और भीड़ पर प्रभाव पड़ता है इसका कि देखो, सब जवाब साफ-साफ दे दिए। तो विंसटन चर्चिल लड़ रहा था एक

चुनाव। एक आदमी खड़ा हुआ, उसने बड़ा कठिन सवाल पूछा कि विंसटन चर्चिल ने भी पसीना पोंछा। मगर जवाब ऐसा दिया कि वाह-वाह हो गई। तब एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ। उसने और भी कठिन सवाल पूछा कि विंसटन के पैर कंप जाएं। भीड़ सांस रोक कर सुनने लगी। विंसटन ने उसे भी ऐसा जवाब दिया कि मुंह की खाकर रह गया। तब तीसरा आदमी खड़ा हुआ। खड़े होकर उसने कोट के खीसे में हाथ डाला, फिर पैंट के खीसे में हाथ डाला, फिर इधर देखा, उधर देखा, और कहा कि महानुभाव, आपने जो प्रश्न पूछने को कहा था, वह चिट कहीं खो गई।

कहते हैं, विंसटन चर्चिल ऐसी मात कभी नहीं खाया। अब उसको कुछ न सूझा कि अब क्या कहे। वे अपने ही आदमी थे, तैयार थे।

नाटक तो तैयारी से चल सकता है, जिंदगी नहीं चल सकती। नेता तैयारी से चल सकते हैं, संत नहीं चल सकता। क्योंकि नेता उधार हैं। तुम्हारे नेता हैं, तुम जैसे ही हैं; तुमसे भी गए-बीते हैं, तभी तुम्हारे नेता हैं। चोरों का नेता होना हो तो बड़ा चोर होना जरूरी है। बेईमानों का नेता होना हो तो बड़ा बेईमान होना जरूरी है। और तुम बड़े हैरान हो, तुम हमेशा कहते हो कि नेता बेईमान क्यों हैं? तुम्हारे नेता नहीं हो सकते, अगर बेईमान न हों। अगर चोर न हों तो तुम्हारे नेता नहीं हो सकते। और फिर तुम शिकायत करते हो कि चोर क्यों हैं? झूठे क्यों हैं? झूठे न हों तो तुम्हारा नेता होना कौन चाहेगा? राजनीति नाटक है झूठ का, धर्म नहीं।

लाओत्से कहता है, "संत के अपने कोई निर्णीत मत और भाव नहीं होते।"

वह खाली जीता है एक शून्य की भांति। न कोई भाव है, न कोई निर्णय है। क्षण जहां खड़ा कर देता है, जैसा खड़ा कर देता है, जो उत्तर निकाल लेता है, वही उत्तर है, वही उसका प्रति-उत्तर है। वही उसका प्रतिसंवेदन है। पूर्व कोई तैयारी नहीं है। इसलिए संत कभी पछताता नहीं है। क्योंकि कोई उत्तर उसने तय ही न किया था, जिसके आधार पर वह सोच सके कि यह गलत हुआ कि सही हुआ। वह कभी नहीं पछताता। क्योंकि जब क्षण निकल गया तब उस क्षण के संबंध में सोचता ही नहीं। क्योंकि तब दूसरा क्षण आ गया; फुरसत किसे है?

तुम्हें पीछे के संबंध में सोचने की फुरसत है, तुम्हें आगे के संबंध में सोचने की फुरसत है, संत को नहीं। संत के लिए वर्तमान इतना प्रगाढ़ है, संत के लिए वर्तमान इतना गहरा है कि समय कहां है कि पीछे लौट कर देखे? समय कहां है कि आगे लौट कर देखे?

यहूदी फकीर बालसेम से किसी ने पूछा कि मैं वर्षों से साधना कर रहा हूं और मैंने अपनी जवानी में सुना था कि अगर तुम सम्मान का तिरस्कार करो और अगर तुम लौट-लौट कर फिक्र न करो कि सम्मान मिल रहा है कि नहीं, तो तुम्हें जरूर सम्मान मिलेगा, और अतिशय से मिलेगा। आदर मत चाहो और आदर मिलेगा। पूजा मत चाहो और पूजा मिलेगी। लेकिन अब मुझे चालीस साल हो गए तपश्चर्या करते-करते, अभी तक वह घटना घटी नहीं। अब तो मुझे उस कहावत पर भरोसा उठने लगा है।

बालसेम ने क्या कहा? बालसेम ने कहा, कहावत तो वैसी की वैसी सही है। तुम उसे पूरा नहीं कर पाए; तुम पीछे लौट-लौट कर देख रहे हो कि सम्मान आ रहा कि नहीं? तुम सम्मान पाने के लिए ही सम्मान का तिरस्कार कर रहे हो। यह तिरस्कार झूठा है। और यह तैयारी--यह तैयारी ही--बाधा बन रही है। तुम फिक्र छोड़ो। आता है या नहीं आता, क्या लेना-देना है? तब आता है। लेकिन अगर तुम इसीलिए छोड़ रहे हो कि आए, तो तुम छोड़ ही नहीं रहे हो। और तुम लौट-लौट कर पीछे देखते रहोगे कि अभी तक, अभी तक नहीं आया, अभी तक सम्मान नहीं मिला, अभी तक दुनिया में पूजा शुरू नहीं हुई और मैंने पूजा की फिक्र छोड़ रखी है तीस वर्षों से, चालीस वर्षों से। यह देखना ही बताता है कि फिक्र छोड़ी नहीं।

तुम पीछे लौट कर देखते हो; क्योंकि पछतावा है हाथ में। तुम आगे देखते हो; क्योंकि जो भूल पीछे हो गई, आगे न हो। इसलिए आगे का इंतजाम करते हो। और इंतजाम के कारण ही भूल पीछे हो गई। अतीत तुमने गंवाया, क्योंकि तुम तैयार थे। भविष्य भी तुम गंवाने की तैयारी कर रहे हो, क्योंकि तुम फिर तैयार हो रहे हो।

संत के लिए न तो कोई अतीत है, न कोई भविष्य है। संत के लिए यही क्षण बस, यही क्षण पर्याप्त। यही क्षण एकमात्र क्षण है। यही क्षण पूरा समय है। इस क्षण के न आगे कुछ है, न पीछे कुछ है। और यह इतना प्रगाढ़ है कि समय किसको है? और यह इतना आनंदपूर्ण है कि कौन लौट कर पीछे देखे? और यह इतना गहन है कि कौन आगे जाए? और यह इतना रसपूर्ण है कि जैसे भंवरा बंद हो जाता है कमल में, ऐसा संत क्षण में बंद हो जाता है, क्षण में डूब जाता है। क्षण के पार कुछ भी नहीं बचता। क्षण ही शाश्वतता है।

संत के न कोई अपने निर्णय हैं, न कोई भाव। वह तो दर्पण की भांति है। वह तो वही प्रकट कर देता है जो लोगों के भाव हैं और जो लोगों के निर्णय हैं।

जब तुम संत के पास जाते हो तो वह तुम्हें प्रकट कर देता है। तुम यह मत सोचना कि वह अपनी धारणाएं तुमसे कह रहा है; तुम यह मत सोचना कि वह अपने भाव तुम्हें दे रहा है। जब भी तुम संत के पास जाओ, याद रखना कि संत दर्पण है, वह तुम्हारे चेहरे को ही तुम्हें दिखा देता है। हां, अगर पंडित के पास तुम जाओगे तो वह तुम्हें अपनी धारणाएं देगा, अपने विचार देगा, ज्ञान देगा। संत के पास तुम जाओगे तो वह तुम्हें तुम्हारे सामने प्रकट कर देगा। वह माध्यम हो जाएगा तुम्हें आमने-सामने करने का, अपने ही आमने-सामने होने का मौका देगा।

मेरे पास लोग आते हैं। कोई आदमी आकर कहता है कि मैं संसार नहीं छोड़ सकता। उसे मैं देखता हूं तो मैं उससे कहता हूं, छोड़ने की कोई जरूरत ही नहीं। शायद यह आदमी लोगों से जाकर कहेगा कि मैं संसार छोड़ने के खिलाफ हूं। मैं केवल उसकी ही तस्वीर बता रहा था और मैं कोशिश कर रहा था कि उसकी ही तस्वीर वह पहचान ले। क्योंकि उसी पहचान से वह पार जाएगा, आगे बढ़ेगा, विकास होगा। अपने पार जाना ही तो परमात्मा से मिलना है। तो उससे मैं यह कह रहा था, तू व्यर्थ परेशान मत हो; ठीक है, संसार छोड़ने की क्या जरूरत है! संसार में ही रह, ध्यान वहीं साधा जा सकता है।

फिर कोई मेरे पास आता है, वह कहता है, मैं संसार छोड़ चुका, मैं संन्यासी हूं, और आप क्या लोगों को समझाते हैं कि संसार में रहने से ही ज्ञान मिलेगा? उससे मैं कहता हूं, कोई जरूरत नहीं संसार में होने की। परम सौभाग्य है तेरा कि संसार छूट गया। अब तू लौट-लौट कर मत देख; अब जो छूट ही चुका छूट ही चुका। अब परम आनंदित हो और इस क्षण का उपयोग कर।

वह लोगों से जाकर कहेगा कि मैं साथ देता हूं, सलाह देता हूं, छोड़ दो सब!

मैंने कुछ भी नहीं किया; मैंने कोई सलाह नहीं दी किसी को। मैंने केवल उसको ही दर्पण बताया।

और तुम जहां हो वहीं से तो पार होना है। तुम जहां हो वहीं से तो यात्रा करनी है। संसारी संन्यासी नहीं हो सकता आज। जो हो ही नहीं सकता, उसकी बात क्या करनी? संन्यासी जो हो ही चुका है, अब गृहस्थ होने का और उपद्रव उसके सिर पर क्यों डालना? मेरी कोई धारणा नहीं है। तुम जहां हो, वहीं से तुम्हें कैसे पार जाने का मार्ग मिल जाए। वह भी तुम्हारे साथ जबरदस्ती करूं कि तुम्हें उस मार्ग पर जाना ही चाहिए तो हिंसा हो जाएगी। वह भी तुम्हारी मर्जी है। मार्ग खोल देना, मार्ग साफ कर देना। फिर तुम्हारी मौज है! तुम चलो तो ठीक, न चलो तो ठीक!

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, आप अपने संन्यासियों को अनुशासन क्यों नहीं देते कि इतने बजे उठो, इतने बजे सोओ, यह खाओ, यह करो, यह मत करो!

मैं कौन हूं किसी को अनुशासन देने वाला? उनके जीवन में ध्यान की ज्योति आ जाए, वही उनका अनुशासन बनेगी। उस ध्यान की ज्योति से ही वे चलेंगे; जो उन्हें ठीक होगा, वह करेंगे। और जो एक के लिए ठीक है, वह दूसरे के लिए ठीक नहीं है। और जो एक के लिए मार्ग है, वही दूसरे के लिए कुमार्ग हो जाता है। जो एक के लिए औषधि है, वही दूसरे के लिए जहर हो जाता है। जो एक के लिए पथ्य है, वही दूसरे के लिए मौत हो सकती है। इसलिए मैं कौन हूं अनुशासन देने वाला? और जो भी अनुशासन ऊपर से दिए जाते हैं, वे कारागृह बन जाते हैं। अनुशासन आना चाहिए तुम्हारे भीतर से, तुम्हारे बोध से, तुम्हारी समझ से, तुम्हारी प्रज्ञा से। तो मैं तुम्हें प्रज्ञा की तरफ इशारा दे सकता हूं, लेकिन अनुशासन नहीं।

संत एक दर्पण है। और जब तुम संत के पास जाओ तो बहुत सम्हल कर जाना। क्योंकि वह तुम्हीं को बताएगा, और तुम समझोगे कि यह उसकी धारणा है। वह तुम्हीं को प्रकट कर देगा। वह तुम्हीं को तुम्हारे सामने रख देगा कि यह रहे तुम! सुलझा लो, उलझा लो; जो तुम्हें करना हो। लेकिन वह तुम्हें खोल कर रख देगा। अगर तुम समझदार हो--थोड़े भी समझदार हो--तो तुम उस सुलझाव से बड़े कीमती सूत्र पा लोगे; तुम्हारा पूरा पथ खुल जाएगा। अगर तुम बिल्कुल ही बुद्धिहीन हो तो तुम संत के पास जाकर और भी उपद्रव होकर लौटोगे। क्योंकि जो उसने बताया था दर्पण की तरह, उसे तुम आदेश समझोगे।

जैन शास्त्रों में एक बड़ी अदभुत बात है। वे कहते हैं, तीर्थंकर उपदेश देते हैं, आदेश नहीं। उपदेश और आदेश का यही फर्क है। उपदेश का मतलब यह हैः कह दिया, मानना हो मानो; न मानना हो न मानो; बता दिया, चलना हो चलो; न चलना हो न चलो। आदेश का मतलब हैः चलना पड़ेगा। पूछा ही क्यों था अगर नहीं चलना था? आदेश का अर्थ हैः लो कसम, व्रत लो! उपदेश का अर्थ हैः जो मेरे भीतर झलका तुम्हें देख कर, वह कह दिया; इसको तुम जीवन का बंधन मत बना लेना। इस पर चल सको, चलना; न चल सको, फिक्र मत करना, चिंता मत बना लेना। यह तुम्हारे ऊपर बोझ न हो जाए। सब आदेश बोझ हो जाते हैं; क्योंकि आदेश पत्थर की तरह हैं। उपदेश फूलों की तरह हैं, वे बोझ नहीं होते।

नानक एक गांव में आकर ठहरे। तो गांव बड़े फकीरों का गांव था, बड़े संत थे वहां; सूफियों की बस्ती थी। तो सूफियों का जो प्रधान था उसने एक कटोरे में दूध भर कर भेजा। कटोरा पूरा भरा था। नानक बैठे थे गांव के बाहर एक कुएं के पाट पर। मरदाना और बाला गीत गा रहे थे। नानक सुबह के ध्यान में थे। कटोरा भर कर दूध आया तो बाला और मरदाना ने समझा कि फकीर ने स्वागत के लिए दूध भेजा है--सुबह के नाश्ते के लिए।

लेकिन नानक ने पास की झाड़ी से एक फूल तोड़ा, दूध के कटोरे में रख दिया। दूध तो एक बूंद भी नहीं समा सकता था उस कटोरे में, वह पूरा भरा था; लेकिन फूल ऊपर तिर गया। छोटा सा फूल झाड़ी का, जंगली झाड़ी का फूल, ऊपर तिर गया। कहा, कटोरा वापस ले जाओ। मरदाना और बाला ने कहा, यह आपने क्या किया? यह तो नाश्ते के लिए दूध आया था। और हम कुछ समझे नहीं। उन्होंने कहा, रुको, सांझ तक समझोगे।

क्योंकि सांझ को वह फकीर नानक के चरणों में आ गया। उसने चरण छुए और कहा कि स्वागत है आपका! तब मरदाना और बाला, नानक के शिष्य कहने लगे, हमें अब अर्थ खोल कर कहें! तो नानक ने कहा, इस फकीर ने भेजा था दूध का कटोरा पूरा भर कर कि अब यहां और फकीरों की जरूरत नहीं है, बस्ती पूरी भरी है। यहां वैसे ही काफी गुरु हैं; और गुरु की कोई जरूरत नहीं है। शिष्यों की तलाश है, गुरु तो ज्यादा हैं। और अब आप और आ गए, इससे और उपद्रव होगा, कुछ सार नहीं होने वाला। आप कहीं और जाएं। तो मैंने फूल रख कर उस पर भेज दिया कि मैं तो एक फूल की भांति हूं, कोई जगह न भरूंगा, तुम्हारी कटोरी पर तिर जाऊंगा।

आदेश पत्थर की भांति है; उपदेश फूल की भांति है। उपदेश जब तुम्हें कोई संत देता है तो वह तुम्हें भरता नहीं, तुम्हारे ऊपर फूल की तरह तिर जाता है। उसकी सुगंध का अनुसरण तुम कर सको तो तुम्हारा जीवन भी वैसा फूल जैसा हो जाएगा। न कर सको तो संत तुम्हारे ऊपर बोझ नहीं है। आदेश बोझ है।

आदेश! मिलिटरी में देना तो ठीक है आदेश; क्योंकि वहां अंधों की कतार खड़ी करनी है, वहां बुद्धिहीनों की जमात बनानी है। इसलिए जनरल आदेश दे, वह तो समझ में आता है; संत आदेश दे, वह बिल्कुल समझ में नहीं आता। संत कोई सैनिक खड़े नहीं कर रहा है। सैनिक और संत बिल्कुल विपरीत हैं। सैनिक को आदेश देना पड़ता है। और अगर तुम्हें भी संतत्व की तरफ ले जाना हो, उपदेश काफी है।

वे लोगों के मत व भाव को सिर्फ झलका देते हैं।

कहता है लाओत्से, "सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी शुभ करार देता हूं; सदगुण की यही शोभा है।"

शैतान कौन है? शैतान वह है जो अशुभ को तो शुभ कहता है, बुरे को ठीक कहता है, रात को दिन कहता है, शुभ को अशुभ कहता है, दिन को रात बताता है, फूल को कांटा समझाता है। वह शैतान है।

साधारणजन कौन है? साधारणजन जो शैतान और संत के बीच में है। वह शुभ को शुभ कहता है, अशुभ को अशुभ कहता है, दिन को दिन, रात को रात।

संत कौन है? संत शुभ को तो शुभ कहता ही है, अशुभ को भी शुभ कहता है। दिन को तो दिन कहता ही है, रात को भी दिन कहता है। फूल को तो फूल कहता ही है, कांटे को भी फूल कहता है। क्यों? क्योंकि संतत्व की घटना जैसे ही घटी, अशुभ दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। कहना नहीं पड़ता, दिखता ही नहीं। जिसने फूल को देख लिया, उसे कांटा दिखेगा? इस गणित को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और जिसने कांटे को देख लिया और कांटे में चुभ गया, उसे फूल दिखाई पड़ेगा?

कभी तुमने देखा है कि गुलाब की झाड़ी में गए और कांटा चुभ गया और खून निकलने लगा, दर्द होने लगा; फिर फूल दिखाई पड़ेगा? फिर फूल दिखाई ही नहीं पड़ता। फिर तुम क्रोध से भरे आते हो। और अगर तुम्हारी जिंदगी भर ऐसे ही कांटों को चुनने में बीत गई हो तो तुम कहने लगोगे कि फूल सब झूठे हैं, दूर के सपने हैं, दूर के ढोल सुहावने हैं; पास जाओ, कांटे मिलते हैं; फूल सब दूर के दिखाई पड़ते हैं, हैं नहीं; मृग-मरीचिका है। और जिसने कांटे ही कांटे को जाना, धीरे-धीरे फूल झूठा हो जाता है, धूमिल हो जाता है। भरोसा ही नहीं आता कि कांटों भरी दुनिया में फूल हो कैसे सकता है?

यही तुम्हारे साथ हुआ है। तुमने दुर्जन गिने हैं, बुरे को जाना है, अशुभ को पहचाना है, चोर, बेईमान, लुटेरे, सबको तुम जानते हो, उनसे तुम्हारा गहरा परिचय है; इसलिए तुम्हें भरोसा ही नहीं आता कि संत हो भी सकता है। संत को भी तुम देखते हो तो वैसे ही देखते हो कि होगा कोई चोर, बस देर-अबेर की बात है, पता चल जाएगा। दूसरे चोर पकड़ गए, यह अभी तक पकड़ा नहीं गया, बस इतना ही फर्क है। और ज्यादा फर्क हो नहीं सकता। संत के पास भी जाते हो तो तुम अपनी जेब पकड़े रखते हो कि पता नहीं काट ले। सावधान रहते हो। क्योंकि कितना धोखा खा चुके हो, अब भरोसा कैसे हो? तुमने इतनी अश्रद्धा जानी है जीवन में कि श्रद्धा का फूल अब विश्वास योग्य नहीं रहा। इतना धोखा, इतनी प्रवंचना, कि भरोसा कैसे करें!

इससे ठीक उलटी घटना संत को घटती है। उसने ऐसा फूल जाना है जीवन में, ऐसी सुगंध, कि कैसे भरोसा करे कि कहीं कांटा भी हो सकता है! और अगर होगा तो फूल की रक्षा के लिए ही होगा। हैं भी कांटे गुलाब में फूल की रक्षा के लिए ही। वे फूल को बचाते हैं, वे फूल के प्रहरी हैं, पहरा दे रहे हैं। वे फूल के दुश्मन नहीं हैं। वे किसी

को चुभने के लिए नहीं हैं वहां, कोई अगर फूल को तोड़े तो रक्षा के लिए हैं। फूल के मित्र हैं, संगी-साथी हैं। फूल का परिवार हैं। आखिर कांटा भी उसी रस से बनता है, जिससे फूल बनता है। दोनों के भीतर एक ही रसधार बहती है। वे अलग-अलग हो भी नहीं सकते। जिसने ठीक से फूल को जाना, उसको कांटे में से भी कांटापन चला जाता है। और जिसने एक भी संत जान लिया, यह सारा संसार संतत्व से भर जाता है। क्योंकि वह श्रद्धा इतनी अपरंपार है, उसकी महिमा इतनी अनंत है, कि फिर कौन भरोसा करेगा कि कोई चोर हो सकता है! जहां ऐसे संतत्व का फूल खिलता है पृथ्वी पर, आकाश में, वहां कैसे कोई चोर हो सकता है?

तब तुम्हारा गणित तुमसे कहेगा कि है तो यह भी संत, अभी तक पहचाना नहीं गया। है तो यह भी संत, भला इसके कृत्य विपरीत जाते हों। भला यह इस तरह के ढंग कर रहा हो कि संत नहीं है, है तो संत। भीतर छिपा हुआ संतत्व तुम्हें दिखाई ही पड़ता रहेगा। तब तुम्हें दो तरह के संत होंगेः एक अंगारे की तरह प्रकट, दूसरे राख में दबे हुए। अंगारा चाहे प्रकट हो, चाहे राख में, स्वभाव तो एक ही है। तो कुछ संत जो अंगारे की तरह जाज्वल्यमान हैं, और कुछ संत जिन पर राख जम गई है कृत्यों की। कर्म का ही भेद है, स्वभाव का कोई भेद नहीं है।

कहते हैं लाओत्से, "सज्जन को मैं शुभ करार देता हूं, दुर्जन को भी शुभ करार देता हूं; सदगुण की यही शोभा है।"

और जब तक तुम दोनों को शुभ न कह सको, तब तक जानना, सदगुण अवतरित नहीं हुआ। तब तक तुमने सदगुण नहीं जाना।

एक फकीर को अस्पताल में भर्ती किया गया। डाक्टर बड़ा हैरान था। वह उसकी बांह पर मलहम-पट्टी कर रहा था और मन में सोच रहा था। आखिर वह न सोच पाया तो उसने पूछा कि मैं जरा चकित हूं! क्योंकि यह जो घाव है, घोड़े का काटा हुआ नहीं हो सकता; क्योंकि छोटा है घाव। यह कुत्ते का काटा भी नहीं हो सकता, क्योंकि यह बड़ा है। यह किस तरह के जानवर का घाव है, मैं समझ ही नहीं पा रहा। उस फकीर ने हंस कर कहा, यह किसी तरह के जानवर का घाव नहीं है; एक सज्जन पुरुष ने काटा है।

लेकिन उसने कहा, एक सज्जन पुरुष ने। जिसने काटा है, वह भी सज्जन पुरुष है। कृत्य का बहुत मूल्य नहीं है। भीतर जो छिपा है! राख का क्या मूल्य है? भीतर जो अंगारा छिपा है।

"ईमानदार का मैं भरोसा करता हूं, और झूठे का भी भरोसा करता हूं; सदगुण की यही श्रद्धा है।"

और तब तक तुम अपने को श्रद्धालु मत कहना, जब तक तुम उन्हीं पर श्रद्धा कर सको जो शुभ हैं। क्योंकि उस श्रद्धा में क्या जान? उस श्रद्धा का मूल्य क्या? अगर मैं अच्छा हूं और इसलिए तुम श्रद्धा करते हो तो तुम्हारी श्रद्धा की क्या कीमत? अगर तुम संत पर श्रद्धा कर लेते हो तो इसमें संत का गुण होगा, तुम्हारी श्रद्धा का क्या गुण है?

लेकिन जिस दिन तुम असंत पर श्रद्धा कर सकोगे, उस दिन तुम्हारी श्रद्धा का गुण प्रकट हुआ, उस दिन अब संतत्व-असंतत्व गौण हो गए, अब तुम्हारे हृदय का भाव प्रधान है। और वही श्रद्धा तुम्हारी नाव बनेगी। वही श्रद्धा जो कोई अपवाद नहीं जानती, जो संत पर तो करती ही है, असंत पर भी करती है, जो बेशर्त है। जो यह नहीं कहती कि तुम ऐसा करोगे तो मैं श्रद्धा करूंगा, जो कहती है तुम कुछ भी करो, श्रद्धा मेरा स्वभाव है। तुम चोरी करो तो श्रद्धा, तुम दान दो तो श्रद्धा, तुम कुछ भी करो, तुम्हारे करने से मेरी श्रद्धा डगमगाएगी नहीं। तुम्हारा करना और मेरी श्रद्धा का होना अलग-अलग बातें हैं। मेरी श्रद्धा मेरे भीतर का स्वास्थ्य है। उससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं। जिस दिन तुम चोर पर भी श्रद्धा कर सकोगे--उस चोर पर जो बहुत बार तुम्हें धोखा दे

चुका, बहुत बार काट चुका जो बिच्छू, फिर भी तुम श्रद्धा करते रहोगे--वैसी श्रद्धा ही नाव बनती है। बेशर्त श्रद्धा नाव बनती है।

संतों पर तो श्रद्धा नपुंसक भी कर लेते हैं। जिनके भीतर कोई श्रद्धा नहीं है वे भी कर लेते हैं, क्योंकि करनी पड़ती है, मजबूरी है। लेकिन जिस दिन तुम बुरे पर भी श्रद्धा करते हो, उस दिन तुम्हारे भीतर श्रद्धा का पहली दफा फूल खिलता है। और अब इस फूल को कोई तूफान न मिटा सकेगा। क्योंकि अब तूफान भी संगी-साथी है। तुम उस पर भी श्रद्धा करते हो। अब तुम्हारे विपरीत कोई भी न रहा। अब यह जगत शत्रुओं से खाली हो गया। क्योंकि शत्रु पर भी अब तुम्हारी श्रद्धा है। अब तुमने श्रद्धा का एक आकाश अपने चारों तरफ निर्मित कर लिया, जिसकी कोई सीमा नहीं।

ऐसी श्रद्धा ही ले जाएगी परमात्मा तक। इससे कम में काम न कभी चला है, और न चल सकता है।

"संत संसार में शांतिपूर्वक, लयबद्धता के साथ जीते हैं। संसार के लोगों के बीच--ऐसे संतों के माध्यम से--हृदयों का सम्मिलन होता है। दि पीपुल ऑफ दि वर्ल्ड आर ब्रॉट इनटु ए कम्युनिटी ऑफ हार्ट।"

सारी दुनिया एक हृदय का सम्मिलन बन जाती है--ऐसे संत के माध्यम से, जो अपनी भीतरी शांति और लयबद्धता में जीता है।

जब तुम्हारे भीतर श्रद्धा रही, अश्रद्धा न रही, तो लयबद्धता आ गई। जब तुम्हारे भीतर प्रेम ही रहा, घृणा न रही, क्योंकि घृणा करने योग्य कोई न रहा; जब तुम्हारे भीतर भरोसा ही रहा, संदेह न रहा; क्योंकि अब संदेह करने योग्य कोई नहीं, तुमने बुरे पर भी भरोसा कर लिया, अब संदेह की तुमने जड़ें काट दीं, तो तुम्हारे भीतर एक परम लयबद्धता और शांति का जन्म होता है। इस महासंगीत का नाम ही संतत्व है। और जब भी किसी एक व्यक्ति के भीतर ऐसी घटना घटती है, वह व्यक्ति इस जगत का हृदय हो जाता है। उस व्यक्ति के आर-पार हजारों हृदय डोलते हैं, गुजरते हैं उस हृदय से, और उन हजारों हृदयों की एक कम्युनिटी, एक परिवार निर्मित हो जाता है।

बुद्ध के पास ऐसा परिवार बना, लाओत्से के पास ऐसा परिवार बना, जीसस के पास ऐसा परिवार बना। वही परिवार जब भ्रष्ट होता है तो संप्रदाय बनता है। परिवार तो तुम्हारी श्रद्धा से बनता है; संप्रदाय तुम्हारे जन्म से। संप्रदाय तुम खून से लेकर आते हो; परिवार तुम्हें अपना खून देकर बनाना पड़ता है। परिवार के लिए तुम्हें बलिदान होना पड़ता है।

जब तुम किसी संत पर ऐसा भरोसा ले आओगे, ऐसा भरोसा जो असंत को भी अपने बाहर नहीं छोड़ता है, निरपवाद, तभी तुम संत के हृदय से गुजरोगे। अन्यथा तुम बाहर-बाहर भटक सकते हो, उसके शरीर को छू सकते हो, लेकिन उसकी अंतरात्मा से वंचित रह जाओगे।

और जब तुम उसके अंतरात्मा से गुजरते हो तो संत सदगुरु हो जाता है। उसके आस-पास प्रेम का एक परिवार बनता है। वही परिवार इस जगत में श्रेष्ठतम घटना है। उससे ऊंची कोई घटना इस पृथ्वी पर नहीं घटती।

और जो उस घटना से गुजर गया, वह दुबारा इस पृथ्वी पर वापस नहीं लौटता है। जो एक बार संत के हृदय में बस गया, उसके लिए बस अब एक हृदय और बसने को रहा, वह परमात्मा का है। संत के द्वार से वह परमात्मा में विलीन हो जाता है।

आज इतना ही।

अट्ठासीवां प्रवचन

जीवन और मृत्यु के पार

Chapter 50

The Preserving Of Life

Out of life death enters.
The companions (organs) of life are thirteen;
The companions (organs) of death are also thirteen.
What send man to death in this life are also (these) thirteen.
How is it so?
Because of the intense activity of multiplying life.
It has been said that he who is a good preserver of his life
Meets no tigers, or wild buffaloes on land,
Is not vulnerable to weapons in the field of battle.
The horns of the wild buffalo are powerless against him;
The paws of the tiger are useless against him;
The weapons of the soldier cannot avail against him.
How is it so?
Because he is beyond death.

अध्याय 50

जीवन का संरक्षण

जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है।
जीवन के साथी (अंग) तेरह हैं;
मृत्यु के भी साथी (अंग) तेरह हैं;
और जो मनुष्य को इस जीवन में मृत्यु के घर भेजते हैं, वे भी तेरह ही हैं।
यह कैसे होता है?
जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।
कहते हैं, जो जीवन का सही संरक्षण करता है,

उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता;
न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं;
जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं;
बाघों के पंजे उसके समक्ष व्यर्थ हैं;
और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं।
यह कैसे होता है?
क्योंकि वह मृत्यु के परे है।

जिसे तुम जीवन की भांति जानते हो वह अपने भीतर मृत्यु को छिपाए है। जीवन ऊपर की ही पर्त है; भीतर मृत्यु मुंह बाए खड़ी है। और अगर तुमने जीवन को सिर्फ जीवन जाना, भीतर छिपी मृत्यु को न पहचाना, तो तुम जीवन को जानने से वंचित ही रह जाओगे।

मृत्यु जीवन के विपरीत नहीं है। मृत्यु जीवन की संगी-साथिन है। वे दो नहीं हैं; वे एक ही घटना के दो छोर हैं। जीवन जिसका प्रारंभ है, मृत्यु उसी की परिसमाप्ति है। गंगोत्री और गंगासागर अलग-अलग नहीं। मूलस्रोत ही अंत भी है। जन्म के साथ ही तुमने मरना शुरू कर दिया। इसे अगर न पहचाना, तो जो सत्य है, जो जीवन का यथार्थ है, उससे तुम्हारा कोई भी संबंध न हो पाएगा। अगर तुमने जीवन को जीवन जाना, और मृत्यु को जीवन से पृथक और विपरीत जाना, तो तुम चूक गए। फिर तुम्हें बार-बार भटकना होगा। और तुम उसे भी न पहचान पाओगे जो दोनों के पार है। क्योंकि जब तुम जीवन और मृत्यु को ही न पहचान पाए तो उन दोनों के पार जो है, उसे तुम कैसे पहचान पाओगे? और वही तुम हो।

कबीर ने कहा हैः मरते-मरते जग मुआ, औरस मरा न कोय।
सारा जग मरते-मरते मर रहा है, लेकिन ठीक रूप से मरना कोई भी नहीं जानता।
एक सयानी आपनी, फिर बहुरि न मरना होय।
लेकिन कबीर एक सयानी मौत मरा, और फिर दुबारा उसे लौट कर न मरना पड़ा। जो भी ठीक से मरने का राज जान गया, वह जीने का राज भी जान गया। क्योंकि वे दो बातें नहीं हैं। और जानते ही दोनों के पार हो गया। और पार हो जाना ही मुक्ति है। पार हो जाना ही परम सत्य है।

न तो तुम जीवन हो और न तुम मृत्यु हो। तुमने अपने को जीवन माना है, इसलिए तुम्हें अपने को मृत्यु भी माननी पड़ेगी। तुमने जीवन के साथ अपना संबंध जोड़ा है तो मृत्यु के साथ संबंध कोई दूसरा क्यों जोड़ेगा? तुम्हें ही जोड़ना पड़ेगा। जब तक तुम जीवन को पकड़ कर आसक्त रहोगे, तब तक मृत्यु भी तुम्हारे भीतर छिपी रहेगी। जिस दिन तुम जीवन को भी फेंक दोगे कूड़े-कर्कट की भांति, उसी दिन मृत्यु भी तुमसे अलग हो जाएगी। तभी तुम्हारी प्रतिमा निखरेगी। तभी तुम अपने पूरे निखार में, अपनी पूरी महिमा में प्रकट होओगे। उसके पहले तुम परिधि पर ही रहोगे।

मृत्यु भी परिधि है और जीवन भी। तुम दोनों से भीतर, और दोनों के पार, और दोनों का अतिक्रमण कर जाते हो। यह जो अतिक्रमण कर जाने वाला सूत्र है, इसे चाहो आत्मा कहो, चाहे परमात्मा कहो, चाहे निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, जो तुम्हारी मर्जी हो। अलग-अलग ज्ञानियों ने अलग-अलग नाम दिए हैं; लेकिन बात एक ही कही है।

सबै सयाने एक मत।

और अगर सयानों में तुम्हें भेद दिखाई पड़े तो अपनी भूल समझना। वह भेद तुम्हारी नासमझी के कारण दिखाई पड़ता होगा। सयानों के कहने के ढंग अलग-अलग होंगे। होने ही चाहिए। सयानों के व्यक्तित्व अलग-अलग हैं। वे जो भी बोलेंगे, वह अलग-अलग होगा। उनके गीतों के शब्द कितने ही अलग हों, लेकिन उनका गीत एक ही है। और संगीत वे अलग-अलग वाद्यों पर उठा रहे होंगे, लेकिन उनका संगीत एक ही है, उनकी लयबद्धता एक ही है। जो कबीर ने कहा है वही लाओत्से कह रहा है--अपने ढंग से।

लाओत्से के एक-एक वचन को समझने की कोशिश करें।

"जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है। आउट ऑफ लाइफ डेथ एण्टर्स।"

तो तुम ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं अलग खड़ी है। ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कोई दुर्घटना है। ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं बाहर से आती है; कोई भेजता है। तुम्हारे भीतर ही मृत्यु बड़ी हो रही है; तुम्हारे साथ ही चल रही है। अगर तुम बायां कदम हो तो मृत्यु दायां, अगर तुम दायां कदम हो तो मृत्यु बायां। वह तुम्हारा ही पहलू है। एक पैर तुम्हारा जीवन है तो दूसरा पैर तुम्हारी मौत है। वह तुम्हारे साथ ही बढ़ रही है। तुम जब भोजन कर रहे हो तब जीवन को ही गति नहीं मिल रही है, मृत्यु को भी मिल रही है। जब तुम श्वास ले रहे हो तो जीवन ही उससे शक्तिमान नहीं हो रहा है, मृत्यु भी हो रही है। तुम्हारी हर श्वास में छिपी है। भीतर आती श्वास अगर जीवन है तो बाहर जाती श्वास मृत्यु है।

इसलिए तुम ऐसा मत सोचना कि मृत्यु कहीं भविष्य में है, दूर; सत्तर-अस्सी साल बाद घटेगी। ऐसे ही टाल-टाल कर तो तुमने जीवन गंवाया है; यही सोच-सोच कर कि कभी होगी, अभी क्या जल्दी है। और मृत्यु अभी हो रही है। क्योंकि संसार इस क्षण के अतिरिक्त किसी समय को जानता ही नहीं; कोई भविष्य नहीं है। अस्तित्व के लिए वर्तमान ही एकमात्र समय है। जो भी हो रहा है अभी हो रहा है। इसी क्षण तुम पैदा भी हो रहे हो, इसी क्षण तुम मर भी रहे हो। इसी क्षण जीवन, इसी क्षण मौत। वे दो किनारे; तुम्हारी जीवन की सरिता उनके बीच इसी क्षण बह रही है। तो तुम जो भी कर रहे हो, वह दोनों के लिए ही भोजन बनेगा। तुम उठोगे तो जीवन उठा और मौत भी उठी; तुम बैठोगे तो जीवन बैठा और मौत भी बैठी।

तो पहली बात लाओत्से कहता है कि मृत्यु को तुम अपने से अलग मत समझ लेना।

सारे जगत में, सारे पुराणों में कथाएं हैं। सभी कथाएं धोखा देती हैं। धोखा यह देती हैं कि मौत कोई भेजता है। कोई यमदूत आता है भैंसे पर सवार होकर, या कि कोई यमराज भेजता है मृत्यु को तुम्हें लेने के लिए। ये सब बातें कहानियां हैं। मृत्यु उसी दिन आ गई जिस दिन तुम पैदा हुए; तुम्हारे जन्म के बीज में ही छिपी थी।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि बहुत जल्दी इस बात के उपाय हो जाएंगे कि जैसे ही बच्चा गर्भ धारण करेगा वैसे ही हम पता लगा लेंगे कि कितने दिन जिंदा रहेगा। क्योंकि वह जो पहला बीज है, उस बीज में ब्लू-प्रिंट है, उस बीज में पूरी कथा छिपी है कि यह कितने साल जीएगा--सत्तर, कि अस्सी, कि पचास, कि दस, कि पांच। ज्योतिषी तो हार गए भविष्य के संबंध में बता-बता कर; विज्ञान जल्दी ही बताने में पूरी तरह समर्थ हो जाएगा। तो बच्चे के सर्टिफिकेट के साथ, कि बच्चे का जन्म हुआ, तुम जाकर सर्टिफिकेट ले आ सकोगे वैज्ञानिक से कि यह कितने दिन जीएगा, कितनी इसकी उम्र होगी। मौत उसी दिन आ गई जिस दिन यह पैदा हुआ। कहीं और मौत घटने वाली नहीं है। इसलिए तुम टाल न सकोगे। इसलिए पोस्टपोन करने का कोई उपाय नहीं है।

और तुम टालते हो। और तुम भी भलीभांति पहचानते हो इस बात को कि रोज तुम बूढ़े हो रहे हो, रोज तुम मर रहे हो। रोज तुम्हारे हाथ से जीवन-ऊर्जा छूटी जाती है; रोज तुम खाली हो रहे हो। लेकिन फिर भी तुम टालते हो। वह कहानी तुम्हें सहायता देती है कि मौत कहीं अंत में है, जल्दी क्या है। अभी और दूसरे काम कर लो।

इसीलिए तुम धर्म को भी टालते हो। क्योंकि जिसने मौत को टाला, उसने धर्म को भी टाला। जिसने मौत को आंख भर कर देखा, वह धर्म को न टाल सकेगा। क्योंकि धर्म मौत के पार जाने का विज्ञान है। तुम बीमारी ही टाल देते हो तो औषधि को टालने में क्या कठिनाई है?

इसीलिए तो पशुओं में कोई धर्म नहीं है, वृक्षों में कोई धर्म नहीं है। क्योंकि उन्हें मृत्यु का कोई बोध नहीं है। छोटे बच्चे पैदा होते से धार्मिक नहीं हो सकते; छोटे बच्चे पैदा होते से तो अधार्मिक होंगे ही। क्योंकि वे पौधों जैसे हैं, पशुओं जैसे हैं। उन्हें भी मौत का कोई पता नहीं। सच तो यह है कि जिस दिन बच्चे को पहली दफे मौत का पता चलता है, उसी दिन बचपन समाप्त हो गया, उसी दिन भय प्रविष्ट हो गया, उसी दिन वह पौधों और पशुओं की दुनिया का हिस्सा न रहा। अदम ईदन के बगीचे के बाहर निकाल दिया गया। अब वह बगीचे का हिस्सा नहीं है। जिस दिन बच्चे को पता चल गया कि मौत है उसी दिन वह बूढ़ा हो गया।

लेकिन फिर जिंदगी भर हम टालते हैं कि है मौत जरूर, लेकिन अभी नहीं है। अभी नहीं करके हम अपने को सांत्वना देते हैं। फिर हमें यह भी दिखाई पड़ता हैः जब भी कोई मरता है कोई दूसरा ही मरता है; हम तो कभी मरते नहीं। कभी यह पड़ोसी मरता है, कभी वह पड़ोसी मरता है। तो मन में हम एक भ्रांति संजोए रखते हैं कि मौत सदा दूसरे की होती है, अपनी नहीं। और अभी बहुत देर है। और आदमी के मन की क्षमता इतनी नहीं है कि वह तीस, चालीस, पचास साल लंबी बात सोच सके। आदमी के मन का प्रकाश छोटे से मिट्टी के दीए का प्रकाश है, बस दो-चार फीट तक पड़ता है; इससे ज्यादा नहीं। चार कदम दिखाई पड़ते हैं, बस। उतना काफी भी है।

इसलिए जब भी तुम किसी चीज को बहुत दूर टाल देते हो तो वह न होने के बराबर हो जाती है। जैसे तुमसे कहे कि तुम्हारी मृत्यु अभी होने वाली है, कोई बताए कि अभी तुम मर जाओगे घड़ी भर में, तो तुम्हारा रोआं-रोआं कंप जाएगा। लेकिन कोई कहे कि मरोगे सत्तर साल में; कुछ भी नहीं कंपता। सत्तर साल इतना लंबा फासला है कि तुम्हें करीब-करीब ऐसा लगता है कि सत्तर साल इतने दूर है; अनंतता मालूम होती है। कोई डर की अभी जरूरत नहीं। फिर सत्तर साल हाथ में हैं, हम कुछ उपाय भी कर सकते हैं बचने के। लेकिन अगर अभी ही मौत हो रही हो तो उपाय भी नहीं है करने का; समय भी नहीं है। तब तुम कंप जाते हो; तब तुम भयभीत हो जाते हो।

लेकिन क्या फर्क है, मौत सत्तर साल बाद घटे कि सात क्षण बाद? मौत घटेगी। अगर मौत घटेगी तो घट ही गई। यही तो बुद्ध ने कहा मुर्दे को देख कर। वह तुम नहीं कहते, इसलिए तुम बुद्ध नहीं हो पाते। बुद्ध ने मुर्दे को देख कर यही तो कहा कि अगर मौत होती ही है--और मेरी भी होगी--तो कहा अपने सारथी को, लौटा ले रथ वापस! जाते थे एक युवक महोत्सव में भाग लेने। वर्ष का बड़े से बड़ा उत्सव था। और राजकुमार ही उसका उदघाटन करता था। सारथी से कहा, वापस लौटा ले! अगर मौत होनी ही है--और मेरी भी होनी है--तो अब मेरे लिए कोई महोत्सव न रहा। अब मेरे जीवन में कोई महोत्सव नहीं है, मौत है। और मुझे मौत से निबटारा करना है।

सारथी ने कहा भी कि माना कि मौत है, लेकिन बहुत दूर है। घर रथ लौटा लेने की कोई जरूरत नहीं है। यह महोत्सव तो घड़ी भर का है। मौत बहुत दूर है।

सारथी बुद्ध को न समझ पाया। वह सारथी तुम्हारे जैसा रहा होगा।

बुद्ध ने कहा, दूर हो कि पास, जो है वह है। पास और दूर से क्या फर्क पड़ता है? मैं मरूंगा। और अगर यह सच है तो मैं मर ही गया। अब मुझे उस सत्य तत्व की खोज करनी है जो नहीं मरता। अब जितने भी क्षण मेरे

पास बचे हैं, इनको मुझे नियोजित कर देना है उस खोज में जो मृत्यु के पार ले जाती है। अब यह जीवन व्यर्थ हो गया।

आश्चर्य है कि तुम मरोगे, रोज तुम लोगों को मरते देखते हो, फिर भी तुम्हारा जीवन व्यर्थ नहीं होता! तुम धोखा देने में कितने कुशल हो!

कबीर कहते हैं, धोखा कासूं कहिए!

किससे कहने जाएं? कौन धोखा दे रहा है? तुम खुद ही अपने को धोखा दे रहे हो। कोई दूसरा देता होता तो शायद बच भी जाते; तुम खुद ही दे रहे हो, इसलिए बचाव का भी उपाय नहीं है। निहत्थे। अपने को ही वंचना में डाले हुए हो।

जो भी तुम इकट्ठा कर रहे हो, वह मौत छीन लेगी। अगर मौत दिखाई पड़ जाए तो संग्रह की वृत्ति खो जाएगी। जिनसे तुम संबंध, नाते-रिश्ते बना रहे हो, मौत तोड़ देगी। अगर मौत दिख जाए तो आसक्ति, संबंध आज ही टूट गया। इसे तोड़ना न पड़ेगा। मौत का बोध तोड़ देगा। तुम अनासक्त हो जाओगे। यह शरीर मौत तो छीन लेगी। यह जलेगा धू-धू करके मरघट पर, या सड़ेगा किसी कब्र में। अगर मौत की प्रतीति हो जाए तो इस शरीर से जो भी तादात्म्य है, जो भी लगाव है, वह आज ही जा चुका; तुम आज ही मर गए।

ज्ञानी मौत को जानते ही अपने को मुर्दा मान लेता है। अज्ञानी कहता है, अभी जल्दी क्या; आएगी तब देख लेंगे। अज्ञानी कहता है, जब आग लगेगी तब कुआं खोद लेंगे। ज्ञानी कहता है, अगर आग लगने ही वाली है तो कुआं तैयार होना चाहिए, आज ही कुआं खोद लो। क्योंकि कौन खोद पाएगा कुआं जब आग ही लग जाएगी? जब घर जल रहा होगा तब तुम कुआं खोदोगे पानी निकालने को आग बुझाने को?

तुम टाल रहे हो मौत को। आग तो लगेगी, तुम्हें पता है; कुआं तुम नहीं खोद रहे हो। आग बुझाने का तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं। और सच तो यह है कि आग तो लगेगी, यह भी तुम्हें पता है, और घर में तुम घी के पीपे इकट्ठे कर रहे हो, कि जब आग लगेगी तो बुझाना भी असंभव हो जाएगा। तुम जीवन में जो भी इकट्ठा करते हो, वह अग्नि में घृत का काम कर रहा है।

लाओत्से कहता है, "जीवन से ही निकल कर मृत्यु आती है।"

तुम्हारे भीतर ही बड़ी होती है। मृत्यु तुम्हारी ही संतान है। जैसे मां के गर्भ में बच्चा बड़ा होता है, और मां से निकल कर बाहर आता है, ऐसे ही तुम्हारी मौत--हरेक की मौत--तुम्हारे भीतर ही बड़ी होती है; तुम्हारे भीतर से ही निकल कर बाहर आती है। कोई यमदूत नहीं है, कोई भैंसों पर सवार होकर यम नहीं आता; कोई मृत्यु का देवता नहीं है जो मृत्यु को भेजता हो। जीवन ही मृत्यु का देवता है। और तुम पर ही मौत सवार है; तुम ही वह भैंसे हो जिस पर मौत सवार होकर चल रही है। तुम इसे बाहर से आता हुआ न पाओगे।

अगर मौत बाहर से आती तो बचने के उपाय हो सकते थे। हम अपने को बंद कर लेते एक ऐसे सुदृढ़ किले के भीतर कि बाहर से कुछ भी न आ सकता। लेकिन तब भी तुम मरोगे। तुम बिल्कुल कांच की दीवारों में बंद कर दिए जाओ, जहां से हवा भी न आती हो, तो भी तुम मरोगे। क्योंकि मौत तुम्हारे भीतर बड़ी हो रही है। हां, अगर तुम अपने को भी बाहर छोड़ आओ तो ही तुम न मरोगे। वही ज्ञानी करता है; वह अपने को बाहर छोड़ देता है, खुद भीतर सरक जाता है।

मृत्यु तुम्हारे भीतर प्रतिपल बड़ी हो रही है। जाग कर रहना।

ऐसा हुआ कि एक यहूदी फकीर एक अंधेरी रात में एक ध्यान की साधना कर रहा था। वह साधना थी चलते हुए स्मरण रखने की कि मैं हूं। स्मरण खो-खो जाता था। उसी अंधेरी रात में रास्ते पर चलते हुए जब वह

साधना कर रहा था, उसने एक आदमी को और टहलते हुए देखा। सोचा, शायद वह भी साधना में लीन है। तो उसने पूछा कि तुम किस बात का स्मरण रख कर भटक रहे हो? तुम क्यों चल रहे हो? क्या है तुम्हारी साधना? उसने कहा, मेरी कोई साधना नहीं है, मैं तो एक अमीर आदमी का वाचमैन हूं, पहरेदार हूं। यह महल है मेरे मालिक का, मैं इसके सामने पहरा देता हूं। रात भर जागा हुआ मुझे एक ही स्मरण रखना होता है--मालिक के दरवाजे का।

फकीर उसके साथ ही फिर-फिर टहलता रहा। आखिर उस आदमी ने पूछा, और मैं तो तुमसे पूछा ही नहीं, आप किसका पहरा दे रहे हैं? उस फकीर ने कहा कि जरा कहना कठिन है, मालिक भीतर है, पहरा उसका दे रहा हूं। लेकिन तुम जैसा कुशल नहीं। चौबीस घंटे बहुत दूर, चौबीस क्षण भी पहरा नहीं लग पाता। कभी क्षण भर को लग जाए तो बहुत। फिर छूट जाता है; फिर छूट जाता है; फिर छूट जाता है।

फिर दोनों टहलते रहे। उस फकीर ने विदा होते वक्त कहा कि क्या तुम मेरे नौकर होना पसंद करोगे? उस आदमी ने कहा, बड़ी खुशी से। तुम प्यारे आदमी मालूम पड़ते हो; तुम्हारा पास होना ही सुखद था। ऐसी शांति मैंने कभी किसी के पास नहीं जानी। खुशी से। लेकिन काम क्या होगा? फकीर ने कहा, काम यही होगा, मुझे याद दिलाते रहना, टु रिमाइंड मी। जब-जब मैं सो जाऊं, मुझे जगा देना। जब-जब मैं होश खोऊं, मुझे हिला देना। याद मेरी बनी रहे। उसने पूछा, लेकिन याद क्या कर रहे हो? कौन सी चीज की याद कर रहे हो? तो उसने कहा, एक तरफ से मौत की याद और दूसरी तरफ से परमात्मा की याद।

और ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर तुमने मौत को पूरी तरह याद किया कि उधर परमात्मा की याद अपने आप सघन होने लगती है। अगर तुम्हें मौत अभी दिखाई पड़ जाए तो तत्क्षण तुम्हारे हृदय से परमात्मा की पुकार और प्यास उठेगी। जैसे प्यासे आदमी को पानी की याद आती है। मौत प्यास है; मौत से भयभीत मत होना। मौत तो पानी की याद है। इसलिए मौत से बचना नहीं है; मौत से छिपना भी नहीं है। छिप भी न सकोगे, बच भी न सकोगे। कोई कभी नहीं बचा। हां, मौत के पार जा सकते हो। मौत तुम्हारे भीतर उग रही है, बड़ी हो रही है। तुम उसे सम्हाल रहे हो। वह तुम्हारा गर्भ है। यह पहली बात।

"जीवन से निकल कर मृत्यु आती है। जीवन के साथी (अंग) तेरह हैं। मृत्यु के भी साथी (अंग) तेरह हैं। और जो मनुष्य को इस जीवन में मृत्यु के घर भेजते हैं, वे भी तेरह ही हैं।"

चीन में लाओत्से के समय में ऐसी प्रचलित धारणा थी। धारणा ठीक भी है कि आदमी के शरीर में नौ छेद हैं; उन्हीं नौ छेदों से जीवन प्रवेश करता है। और उन्हीं नौ छेदों से जीवन बाहर जाता है। और चार अंग हैं। सब मिला कर तेरह। दो आंखें, दो नाक के स्वर, मुंह, दो कान, जननेंद्रिय, गुदा, ये नौ तो छिद्र हैं। और चार--दो हाथ और दो पैर। ये तेरह जीवन के भी साथी हैं और यही तेरह मृत्यु के भी साथी हैं। और यही तेरह तुम्हें जीवन में लाते हैं और यही तेरह तुम्हें जीवन से बाहर ले जाते हैं। तेरह का मतलब यह पूरा शरीर। इन्हीं से तुम भोजन करते हो; इन्हीं से तुम जीवन पाते हो; इन्हीं से उठते-बैठते-चलते हो; ये ही तुम्हारे स्वास्थ्य का आधार हैं। और ये ही तुम्हारी मृत्यु के भी आधार होंगे। क्योंकि जीवन और मृत्यु एक ही चीज के दो नाम हैं। इन्हीं से जीवन तुम्हारे भीतर आता, इन्हीं से बाहर जाएगा। इन्हीं से तुम शरीर के भीतर खड़े हो। इन्हीं के साथ शरीर टूटेगा, इनके द्वारा ही टूटेगा।

यह बड़ी हैरानी की बात है, ये ही तुम्हें सम्हालते हैं, ये ही तुम्हें मिटाएंगे। भोजन तुम्हें जीवन देता है, शक्ति देता है। और भोजन की शक्ति के ही माध्यम से तुम अपने भीतर की मृत्यु को बड़ा किए चले जाते हो।

भोजन ही तुम्हें बुढ़ापे तक पहुंचा देगा, मृत्यु तक पहुंचा देगा। आंख से, कान से, नाक से, जीवन की श्वास भीतर आती है, उन्हीं से बाहर जाती है। नौ द्वार और चार अंग।

लाओत्से कहता है, तेरह ही जीवन के साथी, तेरह ही मौत के साथी। ये तेरह ही लाते हैं, ये तेरह ही ले जाते हैं। अगर तुम सजग हो जाओ तो तुम चौदहवें हो। इन तेरह में तुम नहीं हो; इन तेरह के पार हो।

इस तेरह की संख्या के कारण चीन में, और फिर धीरे-धीरे सारी दुनिया में, तेरह का आंकड़ा अपशकुन हो गया। वह चीन से ही फैला। पश्चिम में जहां तेरह का आंकड़ा अपशकुन है उनको पता भी नहीं कि क्यों अपशकुन है। उसका जन्म चीन में हुआ। उस सुपरस्टीशन की पैदाइश चीन में हुई।

तो आज तो हालत ऐसी है कि अमरीका में होटलें हैं जिनमें तेरह नंबर का कमरा नहीं होता; तेरह नंबर की मंजिल भी नहीं होती। क्योंकि कोई ठहरने को तेरह नंबर की मंजिल पर राजी नहीं है। तो बारह के बाद चौदह नंबर होता है। क्योंकि तेरह शब्द से ही घबड़ाहट पैदा होती है। तेरह नंबर का कमरा नहीं होता; बारह नंबर के कमरे के बाद चौदह नंबर का आता है। होता तो वह तेरहवां ही है, लेकिन जो ठहरता है उसको नंबर चौदह याद रहता है; तेरह की उसे चिंता नहीं पकड़ती। इसका जन्म हुआ चीन में, और बड़े अर्थपूर्ण कारण से यह विश्वास फैला। ये तेरह ही अपशकुन हैं। तुम चौदहवें हो। और तुम्हें चौदहवें का कोई भी पता नहीं। तुम न जीवन हो, न मौत; तुम दोनों के पार हो। अगर तुम इन तेरह के प्रति सजग हो जाओगे, जैसे-जैसे तुम जागोगे वैसे-वैसे शरीर दूर होता जाएगा। जैसे-जैसे तुम्हारा होश बढ़ेगा वैसे-वैसे शरीर से तुम्हारा फासला बढ़ेगा। तुम देख पाओगे, मैं पृथक हूं, मैं अन्य हूं। शरीर और, मैं और। और यह जो भीतर भिन्नता, शरीर से अलग चैतन्य का आविर्भाव होगा, इसकी न कोई मृत्यु है, न इसका कोई जीवन है। न यह कभी पैदा हुआ, न कभी यह मरेगा।

एक सयानी आपनी, फिर बहुरि न मरना होय। जिसने इसको जान कर जो मरा, वह सयाना, वह ज्ञानी। उसने जाना। जो इसको बिना जाने मर गए, उनकी मौत सम्यक नहीं। वे यूं ही मर गए। वे व्यर्थ ही जीए और व्यर्थ ही मर गए। अकारण ही दौड़-धूप हुई, बहुत चले, पहुंचे कहीं नहीं। बहुत खोजा, पाया कुछ भी नहीं; खोजने में सिर्फ अपने को गंवाया। अंत में जब वे जाते हैं, उनके हाथ खाली होंगे। जीसस ने कहा है, खाली हाथ तुम आते हो और खाली हाथ मैं तुम्हें जाते देख रहा हूं। और जीसस राजी थे कि तुम्हारे हाथ भर दें। लेकिन तुम सोचते हो कि तुम्हारे हाथ पहले से ही भरे हैं। खाली हों तो भर दिए जाएं। तुम कंकड़-पत्थरों से हाथ भरे हो। और अगर जीसस या लाओत्से हीरे-जवाहरातों से तुम्हारे हाथ भरना चाहें तो तुम कहते हो, हाथ खाली कहां हैं! तुम कंकड़-पत्थर जुटा रहे हो। तुम व्यर्थ का कूड़ा-कर्कट इकट्ठा कर रहे हो। वह सब भी तुम्हारे साथ जल जाएगा। तुम्हारी सारी संपदा तुम्हारी विपदा ही सिद्ध होती है। तुम उससे परेशान ही होते हो; तुम उससे कुछ शांति और चैन और आनंद अनुभव नहीं करते।

"यह कैसे होता है?"

यह जीवन में मृत्यु का आविर्भाव, यह जीने के रास्ते पर मौत की घटना, यह कैसे घटती है?

"जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।"

अगर तुम अपने भीतर पाओगे... तो मैंने दो ही तरह के लोग देखे। एक, जिनके भीतर और-और-और का मंत्रपाठ चलता है। जो भी है, उससे ज्यादा होना चाहिए। जो भी है, उससे उनकी कोई तृप्ति नहीं। उनके भीतर एक ही स्वर बजता है, एक ही संगीत वे पहचानते हैंः और-और। करोड़ रुपए हों तो भी और, का.ैडी हो तो भी और। कुछ भी न हो तो भी और, साम्राज्य हो तो भी और। उनका मुंह, उनके प्राण अभाव से भरे रहते हैं। जो भी है वह बढ़ना चाहिए।

लाओत्से कहता है, इसी कारण वे, जो जीवन और मृत्यु के पार तत्व है, उससे वंचित रह जाते हैं। जीवन और की दौड़ है, और मौत इसी और की दौड़ का अंत। अगर तुम इस दौड़ में रुक जाओ, उसी क्षण मौत भी रुक गई। फिर बहुरि न मरना होय। फिर दुबारा मरना नहीं होता।

तुम अपने भीतर खोजो, चौबीस घंटे क्या पाठ चल रहा है? कौन सा मंत्र तुम्हारे भीतर काम कर रहा है? तो तुम पाओगे, रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में एक ही आकांक्षा हैः जो भी है और बड़ा हो जाए।

करोगे क्या इसे बड़ा करके? अगर तुम्हें रहना ही नहीं आता तो मकान छोटा हो तो भी तुम बेचैन रहोगे, मकान बड़ा हो तो भी तुम बेचैन रहोगे। अगर तुम्हें सोना ही नहीं आता तो तुम गरीब के बिस्तर पर सोओ कि अमीर के राजभवन में, क्या फर्क पड़ेगा? अगर तुम्हें भोजन करना ही नहीं आता तो तुम रूखी रोटी खाओ कि श्रेष्ठतम सुस्वादु भोजन, क्या फर्क पड़ेगा?

दूसरे तरह का आदमी है जो और की दौड़ नहीं करता। जो उसे मिला है--जो भी मिला है--वह उससे परितृप्त है, संतुष्ट है। एक गहन परितोष उसे घेरे रहता है। उसके चारों तरफ एक वायुमंडल होता है परम संतोष का। जो भी मिला है वह बहुत है, उसके भीतर एक स्वर होता है। और उसके कारण वह निरंतर धन्यवाद देता है। उसके भीतर अनुग्रह का भाव होता है। वह परमात्मा को कहता रहता है, धन्यवाद तेरा। जो भी तूने दिया है, उसकी भी कोई पात्रता मेरी न थी। जो भी तूने दिया है, वह मेरी योग्यता से सदा ज्यादा है। उसके भीतर एक अनुग्रह का नाद होता रहता है। उठते-बैठते-चलते एक परम अहोभाव से भरा रहता है।

ये दो ही स्वर के लोग हैं। जिनके भीतर और का नाद है, वे संसारी। और जिनके भीतर अहोभाव का नाद है, वे संन्यासी। कहां तुम रहते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर तुम्हारे भीतर अहोभाव है तो तुम परम संन्यासी हो। और अगर तुम्हारे भीतर और की ही, और की दौड़ है तो तुम चाहे आश्रम में रहो चाहे हिमालय पर, तुम संसारी रहोगे। तुम अगर अहोभाव से भर जाओ तो स्वर्ग यहीं और अभी है। और तुम और से ही भरे रहो तो तुम जहां भी जाओगे वहीं नरक पाओगे। क्योंकि नरक तुम्हारे भीतर है; स्वर्ग भी तुम्हारे भीतर है।

ऐसा हुआ। एक सूफी फकीर ने एक रात सपना देखा। कुछ ही दिन हुए, उसका गुरु मर गया है। सपने में उसने देखा कि वह स्वर्ग गया है और अपने गुरु की तलाश कर रहा है। फिर उसने एक वृक्ष के नीचे अपने गुरु को प्रार्थना करते देखा तो वह बहुत हैरान हुआ कि अब किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं? जो पाना था पा लिया, आखिरी मंजिल आ गई। स्वर्ग के ऊपर तो कुछ है भी नहीं। अब किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं?

लेकिन गुरु प्रार्थना में था तो वह रुका रहा। एक देवदूत गुजरता था। उसने पूछा कि मैं बड़ा हैरान हूं! मैं तो सोचता था, पृथ्वी पर लोग प्रार्थना करते हैं स्वर्ग जाने के लिए। इसलिए हम भी छाती पीटते हैं और प्रार्थना करते हैं, सिर झुकाते हैं। मेरा गुरु तो स्वर्ग पहुंच गया। और यह ऐसा तन्मय बैठा है, ऐसा मगन होकर प्रार्थना कर रहा है। अब किसलिए? अब क्या पाने को है? मैं तो जानता था, सोचता था कि स्वर्ग में कोई प्रार्थना न होती होगी।

उस देवदूत ने कहा, स्वर्ग में कोई प्रार्थना नहीं होती; प्रार्थना में ही स्वर्ग होता है। जिस क्षण इसकी प्रार्थना चूक जाएगी उसी क्षण स्वर्ग खो जाएगा। प्रार्थना स्वर्ग का द्वार नहीं है, प्रार्थना स्वर्ग है। प्रार्थना मार्ग नहीं है, प्रार्थना मंजिल है। प्रार्थना साधन नहीं है, साध्य है। वह कोई साधक की अवस्था नहीं है, सिद्ध का अहोभाव है।

लेकिन अहोभाव तो तभी होगा, जब और से छुटकारा हो जाए। इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि जो आदमी कह रहा है और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए, वह धन्यवाद नहीं दे सकता; वह शिकायत कर सकता है। क्योंकि वह हमेशा परेशान है, हमेशा कम है। अहोभाव कैसा? प्रार्थना कैसी? पूजा कैसी? अर्चना कैसी?

धन्यवाद किसको? जो आदमी और-और की मांग कर रहा है वह परमात्मा के प्रति शिकायत से ही भरा रहेगा। उसके पूरे प्राणों में शिकायत का कांटा रहेगा, पीड़ा की तरह चुभता रहेगा, दंश देता रहेगा।

मंदिर शिकायत लेकर मत जाना। क्योंकि जो शिकायत लेकर गया वह मंदिर कभी पहुंचता ही नहीं। शिकायत लेकर परमात्मा के पास जाने की कोशिश मत करना, क्योंकि शिकायत परमात्मा से दूर ले जाने की व्यवस्था है। मांगने उसके द्वार पर जाना मत, क्योंकि मांगने का अर्थ ही है कि अभी धन्यवाद देने का क्षण नहीं आया, अभी और चाहिए।

लाओत्से कहता है, यह कैसे होता है कि तुम्हारे जीवन में ही मौत पनप जाती है। यह ऐसे होता है कि तुम और-और-और मांगते चले जाते हो।

"बिकाज ऑफ दि इनटेंस एक्टिविटी ऑफ मल्टीप्लाइंग लाइफ।"

तुम और ज्यादा करना चाहते हो, और ज्यादा करना चाहते हो। कितना ही मिल जाए, तृप्ति नहीं होती।

सुना है मैंने, मुल्ला नसरुद्दीन नियाग्रा जलप्रपात देखने गया। शिकायती आदमी है; अहोभाव मुश्किल है। किसी चीज को देख कर तृप्त होना असंभव है। किसी चीज को देख कर प्रसन्न होना मुश्किल है। खड़ा है नियाग्रा जलप्रपात के पास। जो मार्गदर्शक है, वह प्रशंसा करता है। क्योंकि ऐसा कोई जलप्रपात नहीं, ऐसी अनूठी घटना है नियाग्रा। लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन ऐसे खड़ा है जैसे कुछ भी नहीं।

वह मार्गदर्शक कहता है, आप ऐसे खड़े हैं, गौर से तो देखें! यह अनूठी घटना है। कितना जल गिर रहा है, पता है आपको? अरबों-खरबों गैलन प्रति सेकेंड! मुल्ला ने ऐसी नजर डाली और कहा, दिन भर में कितना गिरता है? आंकड़े। दिन भर में कितना गिरता है? उस आदमी ने कहा, मुझे हिसाब नहीं, लेकिन आप अंदाज कर सकते हैं। असंख्य गैलन! और मुल्ला ने कहा, रात भर भी गिरता रहता है? लेकिन उसके मन पर कोई भाव नहीं है। इस विराट घटना के करीब भी वह ऐसे ही खड़ा है जैसे बाथरूम में नल की टोंटी खोल कर खड़ा रहता हो। कोई फर्क नहीं है।

शिकायती को तुम किसी भी क्षण में विराट से नहीं भर सकते। वह विराट की भी नाप-जोख कर लेगाः कितने गैलन दिन में? रात में भी गिरता है? वह विराट को भी माप लेगा।

और जब भी तुम किसी चीज को माप लोगे, तुम्हारा मन कहेगा, इससे बड़ा भी तो हो सकता है। तो इसमें प्रभावित होने का क्या है? पानी ही तो गिर रहा है। कोई सोना तो नहीं बरस रहा। और जितनी भी बड़ी संख्या हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अन्यथा तो एक पानी की बूंद, सुबह दूब पर पड़ी एक ओस, सूरज की चमकती किरणें--और विराट प्रकट हो जाता है। कोई नियाग्रा जाने की जरूरत है? एक बूंद काफी है, अगर अहोभाव हो। अन्यथा नियाग्रा भी काफी नहीं है।

कैसे तुम्हारे भीतर मौत बड़ी होती है?

लाओत्से कहता है, तुम्हारे भीतर मौत बड़ी होती है, क्योंकि तुम जो हो उससे तुम तृप्त नहीं। लाओत्से यह कह रहा है, अतृप्ति से मौत सघन होती है, बनती है, निर्मित होती है। अतृप्ति मौत है।

इसलिए तो बूढ़े मरते हैं। क्योंकि बूढ़े अतृप्ति के ज्यादा करीब पहुंच जाते हैं बच्चों की बजाय। बच्चे छोटी-छोटी चीजों में तृप्त मालूम होते हैं। एक खिलौना, एक उड़ती तितली काफी है। एक छोटा सा घास में खिला फूल पर्याप्त खजाना है। छोटे बच्चे इतने ताजे और जीवंत हैं, मौत बड़ी दूर है। क्योंकि छोटे-छोटे में, क्षुद्र में भी विराट का दर्शन हो रहा है।

लेकिन यह अज्ञान के कारण हो रहा है। जल्दी ही मौत प्रवेश कर जाएगी। जल्दी ही शिकायत शुरू हो जाएगी। जल्दी ही बच्चा भी कहने लगेगा, और चाहिए। फिर उसका कोई अंत नहीं है।

एक मित्र मेरे पास आते थे। एक राज्य में शिक्षा मंत्री हैं। उन्होंने मुझसे कहा, मुझे नींद नहीं आती। और कहने लगे, न मुझे ईश्वर की खोज है, न मुझे आत्मा जाननी, न मुझे मोक्ष की इच्छा है। मैं आपके पास सिर्फ इसलिए आया हूं कि मुझे सिर्फ नींद आ जाए। यह मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है। मैं सब दवाइयां लेकर हार चुका। ट्रैंक्वेलाइजर लेता हूं तो सुस्ती आ जाती है, नींद नहीं आती। उलटा सुबह और भी ज्यादा बेचैन उठता हूं। फिर सुबह मुझे शक्ति पाने के लिए और ताजगी पाने के लिए दूसरी दवाइयां लेनी पड़ती हैं। तो आप इतना ही करें कि मुझे किसी तरह नींद आ जाए। क्या ध्यान से नींद आ सकेगी? और ज्यादा मेरी मांग नहीं है।

जब वे यह बोल रहे थे तो मैंने इशारा किया और उनकी सब बातें टेप कर ली गईं। क्योंकि मैं जानता हूं, राजनीतिज्ञ हैं, इनकी बात का कोई भरोसा नहीं है। और यह भी मैं जानता हूं कि जब साधारण आदमी की और की दौड़ इतनी ज्यादा होती है तो राजनीतिज्ञ की तो और ज्यादा होनी ही चाहिए। वह तो मनुष्यों में सब से ज्यादा पागल मनुष्य है। ये कैसे सिर्फ नींद से राजी हो जाएंगे? मुझे भरोसा नहीं आया।

उनसे ध्यान करने को कहा। उन्होंने मेहनत की। तीन सप्ताह बाद वह आए और कहने लगे कि ठीक है, नींद तो आ गई, लेकिन और कुछ नहीं हुआ। मैंने कहा कि अब आप रुकें। आप भूल गए कि तीन सप्ताह पहले आपने कहा था, यह जीवन-मरण का सवाल है। और आप कहते हुए आए थे कि मुझे सिर्फ नींद चाहिए, और कुछ नहीं चाहिए। और जब नींद आ गई तो आप कह रहे हैं कि और कुछ भी नहीं हुआ; बस नींद आ गई।

जो नींद वर्षों से नहीं आई थी, जो दवाओं से नहीं आई थी, वह आ गई, लेकिन उनके मन में धन्यवाद नहीं है। मैंने टेप लगवाया। सुना, कहने लगे कि हां, ठीक है। थोड़े चौंके, कहने लगे कि नहीं, ऐसी बात नहीं। मेरा मतलब यह था कि जब ध्यान से इतना हो सकता है तो और भी हो सकता है। पर मैंने कहा कि अब आप सोच लें, क्योंकि जैसे आप आदमी हैं, अगर आपको परमात्मा भी मिल जाए तो आप लौट कर कहेंगे, परमात्मा मिल गया, और कुछ नहीं हुआ। मोक्ष मिल जाए, आप कहेंगे, अब? मोक्ष मिल गया, और कुछ भी न हुआ।

और इस तरह के आदमी को मोक्ष नहीं मिल सकता। और यह नींद भी ज्यादा देर न टिकेगी। यह खो जाएगी। क्योंकि आपको नींद लेने की भी पात्रता नहीं है। क्यों गांव-देहात का गरीब आदमी, जिसे एक जून रोटी मिलती है, कभी वह भी नहीं मिलती, गहरी नींद सोता है? क्यों शहर का धनी, सुखी आदमी, जिसके पास सब है, एक झपकी नहीं ले पाता? होना तो उलटा चाहिए कि जिसके पास कुछ नहीं है वह चिंता में सो न सके, और जिसके पास सब है निश्चिंत होकर सो जाए। ऐसा होता नहीं।

कारण कहीं और है। वह जो गांव का गरीब आदमी है उसके मन में शिकायत नहीं है। जो है, वह उससे भी तृप्त है। एक जून रोटी मिल गई, वह भी क्या कम है! हो सकता था, वह भी न मिले। वह एक जून रोटी के लिए भी धन्यवाद दे रहा है। उस धन्यवाद से ही उसके मन में विश्राम है। वही विश्राम उसकी प्रगाढ़ निद्रा बन जाता है।

भिखमंगों को सोते देख कर सम्राट ईर्ष्या से भर जाते हैं। तुमने रास्ते पर भिखमंगों को सोते देखा होगा। दिन की भरी दुपहरी में--बाजार चल रहा है, कारें दौड़ रही हैं, शोरगुल मचा है, भोंपू, सब कुछ हो रहा है--और कोई आदमी वृक्ष के नीचे मजे से सो रहा है। सड़क की पटरी पर सो रहा है, घुर्राटे की आवाजें ले रहा है। और तुम अपने कक्ष में, जहां कोई आवाज नहीं पहुंचती, जहां कोई शोरगुल नहीं होता, सुखद से सुखद शय्या पर पड़े

करवटें बदलते रहते हो। सम्राट ईर्ष्या से भर जाते हैं भिखारी को सोया हुआ देख कर। क्या होगा? कारण क्या होगा?

भिखारी को जो मिल जाता है, उसकी भी उसे अपेक्षा न थी। पक्का न था कि वह भी मिलेगा। कोई गारंटी न थी। मिल जाए मिल जाए, न मिले न मिले। मिल गया तो धन्यवाद, न मिले तो पानी पीकर सो रहना है।

जब तुम्हारी अपेक्षा कम होती है तब तुम विश्राम में होते हो। जब तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा हो जाती है तब तुम तनाव से भर जाते हो। और अपेक्षा और प्रार्थना का कभी भी मिलना नहीं होता। और अपेक्षा और परम जीवन के मिलने का कोई उपाय नहीं है।

लाओत्से कहता है कि यह कैसे होता है? जीवन को विस्तार देने की तीव्र कर्मशीलता के कारण।

तुम दौड़े जा रहे हो--और ज्यादा चाहिए, और ज्यादा चाहिए, और ज्यादा चाहिए। किसी दिन वह तुम्हें मिल भी जाएगा। इस जगत का एक बड़ा चमत्कार यह है कि तुम्हारी नासमझियां भी पूरी हो जाती हैं। और परमात्मा ऐसा परम कृपालु है कि तुम्हारी मूढ़ता को भी आशीष दिए जाता है, आशीर्वाद दिए जाता है। तुम्हारी क्षुद्र और व्यर्थ वासनाएं भी तृप्त करने का आयोजन कर देता है। तब तुम अचानक पाते हो कि सब हाथ में है; खुद को तुम कहीं छोड़ आए, खुद को कहीं दूर अतीत में भटका आए। खुद कहीं छूट गया मार्ग पर, तुम तो मंजिल पर पहुंच गए। सब इकट्ठा हो गया, लेकिन तुम्हारी आत्मा कहीं राह में छूट गई है। और तब तुम्हें फिर कोई बेचैनी पकड़ लेती है। फिर अशांति पकड़ लेती है। तुम सब भी पाकर भिखारी ही रहोगे।

और इसी सब पाने की दौड़ में तुम्हारी मौत बड़ी हो रही है। क्योंकि तुम जीवन को चुका रहे हो। तुम जीवन को सम्हाल नहीं रहे। तुम जीवन की ऊर्जा को बेच रहे हो--ठीकरों में। इस जीवन-ऊर्जा से परमात्मा पाया जा सकता है। यही अवसर तुम तिजोड़ी भरने में लगा रहे हो। इसी अवसर से आत्मा भरी जा सकती है। अवसर बहुमूल्य है। एक-एक क्षण खोया गया वापस नहीं लौट सकता।

तुम जीवन की इस और की दौड़ से बचो। तुम उसे देखना शुरू करो जो तुम्हें मिला ही हुआ है। तुम उसकी बहुत चिंता मत करो जो तुम्हें मिला हुआ नहीं है। क्योंकि उसकी जिसने चिंता की, वह कभी भी विश्राम को न उपलब्ध हो सकेगा। क्योंकि कितना ही मिल जाए, सदा कुछ शेष रहेगा जो नहीं मिला हुआ है। क्या तुम सोचते हो, ऐसी कोई घड़ी आ जाएगी जब पाने को कुछ भी शेष न रहेगा?

कभी भी न आएगी। अनंत है विस्तार। तुम कैसे सब पा सकोगे? तुम्हारे छोटे हाथों में तुम इस अनंत को कैसे समा सकोगे? तुम कुछ पा लोगे तो बहुत कुछ पाने को शेष रहेगा। तुम कितना ही पा लोगे तो भी अनंत गुना पाने को शेष रहेगा। और कभी वह क्षण न आएगा जब तुम धन्यवाद दे सको। शिकायत बड़ी होती जाएगी। सम्राट की शिकायत गरीब की शिकायत से भी बड़ी हो जाती है। जितनी वासना बड़ी होती है उतनी ही बड़ी शिकायत हो जाती है। और शिकायत अधार्मिक आदमी का लक्षण है।

अगर कोई मुझसे पूछे तो मैं नास्तिक उसको नहीं कहता जो कहता है ईश्वर नहीं है। नास्तिक मैं उसको कहता हूं जिसके जीवन में सिवाय शिकायत के और कुछ भी नहीं है। भला वह मंदिर जाता हो, मस्जिद जाता हो, गुरुद्वारा जाता हो, लेकिन वह वहां भी शिकायत करता है। वह वहां भी कहता है कि यह तू क्या कर रहा है? तू क्या करवा रहा है? बेईमान जीते जा रहे हैं, मैं ईमानदार हारा जा रहा हूं। जिनकी कोई योग्यता नहीं है, वे सिर पर बैठे हैं और मुझ जैसा योग्य आदमी सड़कों पर भटक रहा है। अन्याय हो रहा है।

तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं तुम्हारी शिकायतें हैं। और प्रार्थना कहीं शिकायत हो सकती है?

तुम उसी दिन मंदिर पहुंच पाओगे जिस दिन तुम धन्यवाद देने जाओगे, जिस दिन तुम कहने जाओगे कि मैं किसी योग्य न था, मेरी कोई क्षमता और पात्रता न थी, और तूने इतना दिया! जिस दिन तुम्हारे पास जो है, तुम्हारी पात्रता से तुम्हें ज्यादा दिखाई पड़ेगा, उसी दिन प्रार्थना का जन्म होगा। फिर उस प्रार्थना का कोई अंत नहीं है। वह बढ़ती जाती है, बढ़ती जाती है। और एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम्हारी पात्रता शून्य हो जाती है। उस शून्य पात्र में ही सारा अस्तित्व उतर आता है। जिस दिन तुम कह पाते हो, मेरी कोई भी योग्यता नहीं, मैं जीवन के योग्य भी न था, एक सांस भी ले सकूं अस्तित्व की, इसकी भी मेरी कोई क्षमता न थी, और तूने मुझे अनंत जीवन दिया, जिस दिन तुम्हें इसमें परमात्मा के अनुग्रह के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई पड़ेगा, तुम बिल्कुल शून्य मात्र हो जाओगे, उसी क्षण फिर तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं है।

मृत्यु वासना की है। तुम्हारा जीवन वासना है, इसलिए तुम्हारे भीतर मृत्यु बड़ी होती है। तुम्हारे भीतर की वासना ही तुम्हारे भीतर की मृत्यु है। जो निर्वासना को उपलब्ध हुआ वह अमृत को उपलब्ध हो गया।

"कहते हैं, जो जीवन का सही संरक्षण करता है, उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता; न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं; जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं; बाघों के पंजे उसके समक्ष व्यर्थ हैं; और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं। यह कैसे होता है? क्योंकि वह मृत्यु से परे है।"

कृष्ण ने गीता में यही कहा हैः नैनं छिन्दंति शस्त्राणि--न तो तुझे शस्त्र छेद सकते हैं; नैनं दहति पावकः--न अग्नि तुझे जला सकती है।

लेकिन शरीर तो जल जाता है। शरीर को तो छेद देते हैं शस्त्र। और युद्ध के मैदान पर कृष्ण कहते हैं अर्जुन को! कैसा झूठ बोल रहे हैं? युद्ध के मैदान पर, जहां कि मृत्यु अपनी प्रगाढ़ता में प्रकट होती है, जहां कि अर्जुन को साफ दिखाई पड़ रहा है कि ये मेरे प्रियजन, सगे, बंधु-बांधव, मेरे गुरुजन, ये सब थोड़ी ही देर में मिट्टी चाटते होंगे, थोड़ी ही देर में हम धूल-धूसरित हो जाएंगे, खून हमारा जमीन पर बह रहा होगा, शरीर कटे हुए पड़े होंगे, लाश और लाश के पहाड़ लग जाएंगे, वहां कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि नहीं, तुझे न शस्त्र छेद सकते हैं और न अग्नि जला सकती है। यह ऐसे ही है जैसे मरघट पर कोई जल रही हो लाश और मैं तुमसे कहूं कि घबड़ाओ मत, आग तुम्हें जला नहीं सकती।

लेकिन कृष्ण ठीक ही कह रहे हैं। वे कोई मजाक नहीं कर रहे, न कोई झूठ बोल रहे हैं। क्योंकि तुम जो हो, उसका तुम्हें पता ही नहीं। अग्नि में जो जलता है, वह तुम नहीं हो। शस्त्र जिसे छेद जाते हैं, वह तुमसे बाहर है। वह तुम्हारा आवास हो भला, तुम्हारा वस्त्र हो, तुम नहीं हो। थोड़ी देर तुम रुके हो, पड़ाव हो भला, लेकिन तुम्हारी सत्ता नहीं है। तुम तो चैतन्य हो, तुम शुद्ध चैतन्य हो। शुद्ध चैतन्य को कैसे शस्त्र छेदेंगे? चेतना को शस्त्र छुएंगे कैसे? चेतना को अग्नि में जलाओगे कैसे? चेतना, अग्नि का कोई मिलन ही नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, पानी और तेल को नहीं मिलाया जा सकता। लेकिन फिर भी पानी और तेल को मिलाने की कोशिश की जा सकती है। लेकिन अग्नि और चेतना को तो मिलाने की कोशिश भी नहीं हो सकती। चेतना कैसे जलेगी?

लाओत्से यही कह रहा है। वह यह कहता है कि कहते हैं, जो जीवन का सही संरक्षण करता है... ।

जो जीवन का ठीक-ठीक सम्यक उपयोग करता है, जीवन को वासना में नहीं गंवाता, समय को और की दौड़ में नहीं लगाता, अभाव के पीछे नहीं भागता, जो जीवन का संरक्षण करता है। क्या है संरक्षण?

तुम दो तरह से जी सकते हो। एक तो फूटी बाल्टी की तरह। कुएं में डालो, शोरगुल बहुत होता है, बाल्टी भरती भी दिखाई पड़ती है, जब पानी में डूबती है कुएं के तो भर जाती है। फिर खींचो, बड़ी आवाज मचनी शुरू होती है, क्योंकि सब तरफ से पानी गिरना शुरू होता है। और ऐसा लगता है कि बाल्टी पूरा सागर लेकर आ रही

है। लेकिन जब तक तुम्हारे हाथ तक पहुंचती है, खाली हो जाती है। वह शोरगुल सागर का नहीं था, वह शोरगुल छिद्रों का था। वह शोरगुल इसलिए नहीं हो रहा था कि बाल्टी बड़ी विराट घटना को लेकर आ रही थी; वह इसलिए हो रहा था कि बाल्टी हजार-हजार छिद्रों से भरी थी।

तो एक तो फूटी बाल्टी की तरह का जीवन है। मरते दम तुम पाओगे कि तुम्हारे छेद से सब बह गया, जो भी तुम लेकर आए थे वह तुमने गंवा दिया, और बदले में तुम कुछ भी लेकर नहीं जा रहे हो। जीवन यूं ही गया। दूसरा एक ऐसा जीवन है, जिस बाल्टी में छिद्र नहीं। उसी को लाओत्से संरक्षण कह रहा है।

वासनाएं तुम्हारे छेद हैं, जिनसे जीवन की ऊर्जा बह जाती है। जब भी तुम वासना से भरते हो, तभी तुम अपने को गंवाते हो। निर्वासना संरक्षण है। इसलिए तो बुद्ध, महावीर, सभी का एक जोर है कि तृष्णा छोड़ दो, वासना छोड़ दो। मांगो मत। जो है, वैसे ही काफी है। तुम, जो है, उसको जी लो। और जितने कम से चल जाए। क्योंकि वह कम भी तुम्हारी वासना के कारण मालूम पड़ता है। वासना हटाओगे तो तुम पाओगे, वह कम कभी था ही नहीं।

बहुत बार तुमसे मैंने कहा है। अकबर ने एक दिन अपने दरबार में एक लकीर खींच दी और कहा, इसे बिना छुए छोटा कर दो। दरबारी बड़ी परेशानी में पड़ गए; न कर पाए छोटा। बिना छुए करोगे भी कैसे? फिर उठा बीरबल और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। बिना छुए लकीर छोटी हो गई, तत्क्षण छोटी हो गई।

तुम्हारे पास जो है, वह बहुत थोड़ा मालूम पड़ रहा है; क्योंकि बड़ी वासना की लकीर तुमने खींच रखी है। वह थोड़ा नहीं है। वह जरूरत से ज्यादा है। परमात्मा सदा जरूरत से ज्यादा देता है। वह कोई कृपण नहीं है। और अस्तित्व कोई सौदा थोड़े ही कर रहा है तुम्हारे साथ। और अस्तित्व का तो देना आनंद है, ओवरफ्लोइंग है। अस्तित्व तो ऊपर से बह रहा है। यह अस्तित्व है ही इसलिए कि परमात्मा के पास जरूरत से ज्यादा है। यह उसका आनंद है बांटना। बिना बांटे वह नहीं रह सकता।

इसलिए तुम यह मत सोचना कि तुम्हें जरूरत के हिसाब से दिया जा रहा है। तुम्हें तो जरूरत से सदा ज्यादा दिया जा रहा है। लेकिन तुम वासना की बड़ी लकीर खींचते चले जाते हो। और कितना ही तुम्हें मिलता जाए, तुम्हारी लकीर बड़ी होती जाती है। तो जो भी तुम पाते हो, वह सदा थोड़ा मालूम पड़ता है। जब तक वासना है तब तक तुम गरीब रहोगे, तब तक तुम भिखारी रहोगे। जिस दिन कोई वासना न रही उस दिन तुम्हारा सम्राट प्रकट होता है। उस दिन फिर तुम सम्राट हो।

राम, स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे। लंगोटी थी उनके पास एक। और जब किसी ने पूछा अमरीका में कि क्यों कहते हो तुम अपने को बादशाह, कुछ तुम्हारे पास है नहीं!

तो रामतीर्थ ने कहा, इसीलिए। मेरी कोई जरूरत नहीं है और कोई मांग नहीं है, तो तुम मुझे भिखारी कैसे कह सकते हो? और जो भिखारी नहीं है, वही सम्राट है।

एक फकीर के घर एक अमीर आदमी एक बार मेहमान हुआ। फकीर का घर था, उसमें ज्यादा कुछ साज-सामान न था। थोड़ी-बहुत जरूरत की चीजें थीं। बस काम चल जाए, इतनी थीं। क्योंकि कम में काम चला लेने की कला फकीरों को आती है। अमीर बड़ा परेशान था। जब रात सोने लगा तो फकीर उसके द्वार पर आया और उसने कहा कि देखो, कोई ऐसी चीज जो यहां न हो और तुम्हें जरूरत मालूम पड़े तो मुझे बता देना। तो उस अमीर आदमी ने मजाक में कहा, बताने से क्या होगा? तुम करोगे भी क्या? जो है ही नहीं, मैं बता भी दूं तो तुम करोगे क्या? उस फकीर ने कहा, मैं तुम्हें रास्ता बता दूंगा कि उसके बिना कैसे काम चलाया जाए। हाउ टु डू विदाउट इट। कोई मैं चीज लाने वाला नहीं हूं। यहां चीज है ही नहीं, वह मुझे भी पता है। लेकिन जब मैं जी रहा

हूं देखो, तो तुम भी जी सकते हो। तो अगर कोई अड़चन मालूम पड़े, तुम मुझे बता भर देना; फिर मैं तुम्हें तरकीब बता दूंगा कि उसके बिना कैसे चलाया जाए।

यूनान में एक फकीर हुआ डायोजनीज। वह महावीर जैसा फकीर था, नग्न ही रहता था। दुनिया में डायोजनीज और महावीर समानांतर हैं, और करीब-करीब एक ही समय में हुए हैं। जब वह फकीर हो गया और नग्न घूमने लगा, तो एक भिक्षा-पात्र उसने अपने पास रखा था, जिसमें वह पानी पी लेता था, रोटी ले लेता था। फिर एक दिन उसने देखा एक झरने में एक कुत्ते को पानी पीते, उसने फौरन भिक्षा-पात्र फेंक दिया, और कुत्ते के जाकर चरणों में नमस्कार किया कि गजब कर दिया तूने भी, मात दे दी। हम यह सोचते थे कि बिना भिक्षा-पात्र के पानी कैसे पीएंगे। उस दिन से वह कुत्ते जैसा ही पानी पीने लगा। और जब लोग उससे पूछते, यह क्या है! तो उसने कहा, जब एक कुत्ता चला लेता है तो मैं कोई कुत्ता से गया-बीता तो नहीं। जब कुत्ता इतना बुद्धिमान है, बिना भिक्षा-पात्र के चला लेता है, तो मैं कितना ही गया-बीता होऊं, कुत्ते से गया-बीता तो नहीं। हम भी चला लेंगे। अगर कुत्ता इतनी फकीरी की शान रखता है तो हम कोई कुत्ते से छोटे फकीर नहीं।

और जिस कुत्ते के उसने पैर छुए थे और जिस कुत्ते से उसने सीखा था, कहते हैं, वह कुत्ता फिर सदा डायोजनीज के साथ रहा। जब सिकंदर डायोजनीज को मिला, तब वह कुत्ता भी पास बैठा हुआ था डायोजनीज के। वे दोनों रहते थे एक... । कचरेघर के आस-पास टीन का पोंगरा रख देते हैं कचरे को रोकने के लिए। ऐसा ही एक पोंगरा उसको कहीं पड़ा हुआ मिल गया था। उसी पोंगरे को आड़ा कर लिया था, उसी में वे दोनों रहते थे। सिकंदर जब मिलने आया, तब कुत्ता भी पास बैठा हुआ था। और जब सिकंदर ने डायोजनीज से प्रश्न पूछे तो वह सिकंदर को भी उत्तर देता था, बीच-बीच में वह कुत्ते से भी कहता था, सुन ले!

तो सिकंदर ने पूछा कि यह क्या बकवास है? तुम बात मुझसे करते हो, इस कुत्ते से क्या कहते हो, सुन ले?

और वह कुत्ता भी ऐसे ढंग से बैठा था कि लगता है सुनता है। और जब कहता डायोजनीज सुन ले, तो वह सिर हिलाता।

तो डायोजनीज ने कहा कि आदमियों को मैंने इस योग्य नहीं पाया कि उनसे कुछ समझ की बातें की जा सकें। नासमझी की बातें कितनी ही कर लो, समझदारी की बात आदमियों से नहीं हो सकती है। यह कुत्ता बड़ा समझदार है। और बड़ी से बड़ी समझदारी की बात तो यह है कि मैं कितना ही बोलूं, यह चुप रहता है। यह मुझसे भी ज्यादा समझदार है। कभी बेवक्त-वक्त सिर हिला देता है; इशारे में बात करता है। बड़ा ज्ञानी है।

ना-कुछ से काम चल सकता है; और सब कुछ से भी काम नहीं चलता। तो जरूर सवाल ना-कुछ और सब कुछ का नहीं हो सकता। तुम पर निर्भर है, सब तुम पर निर्भर है। सब कुछ से भी काम नहीं चलता, ना-कुछ से भी काम चल जाता है। जितना तुम ना-कुछ से काम चला लेते हो, उतनी ही वासना की लकीर छोटी होती चली जाती है। जिस दिन लकीर पूरी विदा हो जाती है उस दिन अचानक तुम पाते हो कि तुम्हारे भीतर की चैतन्य की प्रतिमा, तुम्हारी आत्मा अपनी पूरी गरिमा में प्रकट हो गई। अब उसे छुपाने वाला कोई धुआं न रहा। अब सब बदलियां हट गईं। आकाश, नीला आकाश सामने है।

"जो जीवन का सही संरक्षण करता है... ।"

इसका अर्थ हुआ, जो तृष्णा से मुक्त होता है और तृष्णा में अपनी जीवन-ऊर्जा को नष्ट नहीं करता, जिसकी बाल्टी छेद वाली नहीं।

"उसे जमीन पर बाघ या भैंसे से सामना नहीं होता; न युद्ध के मैदान में शस्त्र उसे छेद सकते हैं; जंगली भैंसों के सींग उसके सामने शक्तिहीन हैं; बाघों के पंजे उसके समक्ष असमर्थ हैं, और सैनिकों के हथियार निकम्मे हैं।"

तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे शरीर को छेदा न जा सकेगा। तुम यह भी मत सोचना कि तुम्हारे शरीर को आग न लगाई जा सकेगी। तुम यह भी मत सोचना कि भैंसे तुम्हारे शरीर में सींग न प्रवेश कर सकेंगे। लेकिन तुम शरीर न रह जाओगे। जिसने अपनी ऊर्जा को संरक्षित किया वह अशरीरी हो जाता है। तब सींग भी तुम्हारे शरीर में भैंसा चुभा रहा हो, और शस्त्र--भाला--तुम्हारे शरीर के आर-पार जा रहा हो, तो भी तुम साक्षी ही रहोगे। तब भी तुम जानोगे कि यह तुमसे बाहर घट रहा है--तुम्हारे आस-पास जरूर, पर तुममें नहीं। जैसे तुम्हारे घर में कोई दीवार को छेद दे, इससे तुममें छेद नहीं हो जाता। जैसे तुम्हारा वस्त्र जराजीर्ण हो जाए, उसमें छिद्र हो जाएं, तुममें छिद्र नहीं हो जाता। तुम्हारे शरीर के छिद्र तुम्हारे छिद्र नहीं हैं।

और शरीर तो मौत का ग्रास है ही; वह मरणधर्मा है, वह मरेगा ही। बुद्ध का शरीर भी मर जाता है; कृष्ण का शरीर भी मर जाता है; राम का शरीर भी धूल में खो जाता है। तुम्हारा भी खो जाएगा। क्योंकि शरीर धूल से उठता है। वह धूल से ही आया है। धूल में ही जाना उसकी नियति है। क्योंकि जो जहां से आता है वहीं वापस चला जाता है।

तुममें दो तत्व हैं। एक तो पृथ्वी से आया है, और एक आकाश से उतरा है। जो आकाश से उतरा है वही तुम हो। जो पृथ्वी से आया है वह केवल तुम्हारा आवरण है। वह तुम्हारा वेष्टन है, तुम उससे आच्छादित हो। पृथ्वी पृथ्वी में वापस लौट जाएगी। उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। वह उसका स्वभाव है। लेकिन वह मृत्यु तुम्हारी नहीं है। यह तुम उसी दिन जान पाओगे जिस दिन तुम तृष्णारहित होकर अपने भीतर जागोगे। क्यों तृष्णारहित होकर? क्योंकि जो तृष्णा से भरा है, वह जाग ही नहीं सकता। तृष्णा शराब है। वह बेहोशी है, वह अंधापन है।

सुना है मैंने, एक यहूदी फकीर वृद्धावस्था में अंधा हो गया। एक गांव से गुजर रहा था। अंधा था; किसी ने दया की और कहा कि अच्छा हुआ तुम यहां आ गए। यहां एक बड़ा चिकित्सक है, वह तुम्हारी आंखें ठीक कर देगा। उस फकीर ने कहा, लेकिन आंखें ठीक करवा कर करना क्या है? क्योंकि जो आंखों से देखा जा सकता था, खूब देख लिया, कुछ पाया नहीं। और जो आंखों के बिना देखा जा सकता है, उसे देख ही रहे हैं और खूब पा रहे हैं।

तो एक तो संसार है जो आंखों से देखा जा सकता है। लेकिन शरीर की आंखें वही देख सकती हैं जो शरीर जैसा है। पदार्थ को देख सकती हैं; पार्थिव को देख सकती हैं; पृथ्वी को देख सकती हैं। और एक वह भी है जो आंख बंद करके देखा जाता है। उसे देखने के लिए इन आंखों की कोई जरूरत नहीं है। उसे देखने के लिए आंख की ही जरूरत नहीं है। उसे तुम्हारा हृदय, उसे तुम्हारी अंतरात्मा देखती है, और जानती है। वह आंख बंद करके भी देख लिया जाता है।

उस फकीर ने ठीक ही कहा कि जो इन आंखों से देखा जा सकता था, खूब देख लिया, कुछ पाया नहीं। और जो इनके बिना देखा जा सकता है, उसे खूब भरपूर देख रहे हैं, और खूब पा रहे हैं। आंखों को ठीक करवाना किसे है? करवा कर आंखें ठीक क्या करेंगे?

"यह कैसे होता है?"

कैसे भीतर की आंख खुलती है? कैसे अमृत के दर्शन होते हैं? कैसे शरीर के पार तुम हो जाते हो, जहां मृत्यु नहीं पहुंचती, जहां शस्त्र नहीं छेदते, जहां आग नहीं जलाती, कैसे? जहां तुम बूढ़े नहीं होते, जहां जराजीर्णता नहीं आती?

कहता है लाओत्से, यह होता है मृत्यु के परे होकर।

"क्योंकि वह मृत्यु के परे है। बिकाज ही इ.ज बियांड डेथ।"

जैसे ही तुम जान लेते हो कि तुम मृत्यु के परे हो... । और तुम हो ही, इसलिए जानने में तुम देर कितनी ही लगाओ, कठिनाई कुछ भी नहीं है। टालो तुम कितना ही जानने को, जिस दिन जानना चाहोगे उसी दिन जान लोगे। आंख भर बंद करने की बात है। अपने को ही देखना है। कहीं जाना भी नहीं है; कोई यात्रा भी नहीं करनी है। कोई शर्त भी नहीं पूरी करनी है। किसी और से सौदा भी नहीं है, कोई कीमत भी नहीं चुकानी है। बस आंख बंद करनी है। थोड़ा तृष्णा को शिथिल करना है, ताकि दौड़ बंद हो।

दौड़ चलती रहे तो अपने घर कैसे आओगे? दौड़ चलती रहे तो तुम कहीं और, कहीं और। यह और की जो भीतर चल रही सतत धारा है, इसे थोड़ा कम करना है, ताकि तुम शांत बैठ सको। बैठते हो तुम ध्यान में, तब हजार विचार चलते हैं। मन दौड़ा ही रहता है, शरीर ही बैठा रहता है। शरीर को बिठाने से क्या होगा? वह जो दौड़ा हुआ मन है, वह बैठना चाहिए। वह बैठ जाए, तत्क्षण दर्शन हो जाएं। इधर मन बैठा, उधर आत्मा प्रकट हुई। और वह आत्मा अमृत है। वह न तो जीवन है, न वह मृत्यु है; वह दोनों के पार है। जब बिल्कुल जीवन नहीं था तब भी वह थी। और जब सारा जीवन खो जाएगा तब भी वह होगी। वह शाश्वतता है।

उस आत्मा को ही हम सत्य कहते हैं। सत्य का अर्थ होता हैः जो शाश्वत है, जो सदा है, सदा था, सदा रहेगा। जिसके होने में कभी भी कोई भेद नहीं पड़ता; सब बदल जाए, पूरी सृष्टि प्रलय में चली जाए, नई सृष्टि हो जाए, लेकिन वह रहेगा वैसा ही जैसा था, उसके स्वभाव में रंच मात्र फर्क न आए, वही सत्य है। वैसे सत्य को तुम अपने भीतर लिए चल रहे हो।

तुम्हें परमात्मा ने सभी कुछ दिया है। लेकिन जो संपदा तुम्हारे पास है, उसको भी तुम नहीं देख पा रहे हो। दौड़ के कारण तुम बैठ नहीं पाते। वासना के कारण तुम शांत नहीं हो पाते। और के मंत्र के कारण राम का मंत्र नहीं जप पाते। इसे देखो, इसे पहचानो, इसे अपने भीतर विश्लेषण करो। क्योंकि लाओत्से के वचन किसी दार्शनिक के वचन नहीं हैं। लाओत्से के वचन एक ज्ञानी के वचन हैं--एक परम ज्ञानी के। और वह तुमसे जो भी कह रहा है, वह प्रयोग के लिए कह रहा है। वह तुम्हें कोई सिद्धांत नहीं दे रहा है; न तुम्हें किसी शास्त्र में बांधने का आयोजन है; न तुम्हें कोई रूढ़ अनुशासन दे रहा है। तुम्हें सिर्फ एक बोध दे रहा है। उस बोध की सुवास को तुम पकड़ो अपने भीतर तो ही लाओत्से की सही-सही व्याख्या तुम्हारी समझ में आएगी। अपने ही भीतर तुम जब जागोगे तब तुम पाओगे कि लाओत्से ने जो कहा है वह कैसा अनूठा है।

लेकिन बिना जागे, मैं कितना ही तुम्हें समझाऊं और कितना ही तुम्हें लगे कि समझ रहे हो, समझ पैदा न होगी। लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात। तुम देखोगे अपनी ही आंख से तो ही जानोगे। लोगे स्वाद तो ही जानोगे। गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। तब एक मुस्कुराहट तुम्हारे तन-प्राण को भर लेगी। तब तुम्हारा रोआं-रोआं मुस्काएगा। क्योंकि तुमने एक स्वाद ले लिया। स्वाद से ही समझ होगी।

जो मैं तुम्हें समझा रहा हूं, यह स्वाद की तरफ इशारा है। यह असली समझ नहीं है, इससे असली समझ न होगी। इसे तुम असली समझ मत समझ लेना। नहीं तो रुक जाओगे। इससे तो तुम पंडित बन जाओगे। इसको पांडित्य मत बनाना। इसको तो सिर्फ इशारा समझना--मील का एक पत्थर जिस पर लगा है तीर। उधर बैठ मत जाना। थोड़ी देर विश्राम कर लेना विश्राम करना हो तो। मेरे शब्दों के साथ थोड़ा विश्राम कर लेना करना हो तो। लेकिन यात्रा करनी है। यह सारा समझाना इसलिए है, ताकि तुम स्वाद ले सको। और स्वाद मिल जाए, तभी असली समझ आएगी। उसके पहले, उसके पहले न कभी आई है, न आ सकती है।

आज इतना ही।

नवासीवां प्रवचन

ताओ या धर्म पारनैतिक है

Chapter 51

The Mystic Virtue

Tao gives them birth,
Teh (character) fosters them.
The material world gives them form.
The circumstances of the moment complete them.
Therefore all things of the universe worship Tao and exalt Teh.
Tao is worshiped and Teh is exalted
Without anyone"s order but is so of its own accord.
Therefore Tao gives them birth,
Teh fosters them, makes them grow, develops them.
Gives them a harbour, a place to dwell in peace,
Feeds them and shelters them.
It gives them birth and does not own them,
Acts (helps) and does not appropriate them,
It is superior, and does not control them.
-- This is the Mystic Virtue.

अध्याय 51
रहस्यमय सदगुण

ताओ उन्हें जन्म देता है, और तेह (चरित्र) उनका पालन करता है;
भौतिक संसार उन्हें रूपायित करता है;
और वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं।
इसलिए संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं और तेह की प्रशंसा।
ताओ पूजित है और तेह प्रशंसित।
और ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।
इसलिए ताओ उन्हें जन्म देता है,

तेह उनका पालन करता है, उन्हें बड़ा करता है, विकास देता है,

उन्हें आश्रय देता है, शांति से रहने की जगह देता है।

यह उन्हें जन्म देता है, और उन पर स्वामित्व नहीं करता;

यह कर्म (सहायता) करता है, और उन्हें अधिकृत नहीं करता;

श्रेष्ठ है, और नियंत्रण नहीं करता।

-- यही है रहस्यमय सदगुण।

शुभ को शुभ मानना साधारण सी बात है, कोई सदगुण नहीं। अशुभ को भी शुभ मानना सदगुण की महिमा है। साधु पर भरोसा तथ्यगत है, तुम्हारा कोई गौरव नहीं। असाधु पर भी भरोसा तुम्हारा गौरव है, सदगुण की श्रद्धा है।

सबसे पहले सदगुण का अर्थ समझ लें।

सदगुण नीति नहीं है। नीति तो तथ्य पर पूरी हो जाती है। कोई अच्छा है, उसका स्वागत करो; कोई बुरा है, उसे दंड दो। नीति बहुत साधारण सामाजिक व्यवहार है। साधु की प्रशंसा करो, असाधु की निंदा। अगर असाधु की भी प्रशंसा करोगे तो इससे साधुता की हानि होगी। भेद रखो। नीति भेद करती है। बुरे को दंड दो; भले को पुरस्कार दो। नीति नरक और स्वर्ग बनाती है। जो भले हैं उनके लिए स्वर्ग, जो बुरे हैं उनके लिए नरक। नीति पापी और पुण्यात्मा को अलग-अलग करती है।

सदगुण नैतिक बात नहीं है; सदगुण नीति के पार है।

लाओत्से कहता है, बुरे की भी मैं प्रशंसा करता हूं, भले की भी; यही सदगुण की श्रद्धा है।

तो सदगुण पारनैतिक है--बियांड मारेलिटी। उसका सामाजिक व्यवहार से कोई संबंध नहीं। उसका अगर कोई भी संबंध है तो विश्व की आंतरिक सत्ता से है, परमात्मा से है।

नीति का संबंध है समाज से, समूह से, हमारे आस-पास जो लोग हैं उनसे। धर्म का संबंध है व्यक्ति का समष्टि से; समाज से नहीं, समष्टि से। हम जैसे ही आदमियों से नहीं, बल्कि हमारे पार जो हमारा मूल स्रोत है, जो हम सबकी नियति है, उस पारलौकिक तत्व से। उस पारलौकिक तत्व की दृष्टि में न तो कोई बुरा है, न कोई भला। न तो वह किसी को दंड देता है और न किसी को पुरस्कृत करता है।

लेकिन तुम थोड़ी मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारे धर्मशास्त्र कहते हैं, परमात्मा बुरे को दंडित करेगा और परमात्मा भले को स्वर्ग देगा, और बुरे को नर्क में डालेगा, सड़ाएगा, गलाएगा, आग में जलाएगा। ये शास्त्र भी सामाजिक हैं, और ये शास्त्र भी नीति के ही आधार से लिखे गए हैं। इन शास्त्रों में भी सामाजिक व्यवहार सिखाया गया है। लाओत्से का शास्त्र भिन्न है। यह पारलौकिक है। उपनिषद न दंड की बात करते, न पुरस्कार की। उपनिषद पारलौकिक हैं।

दुनिया में दो तरह के शास्त्र हैं, नैतिक शास्त्र और पारलौकिक शास्त्र। जो पारलौकिक शास्त्र हैं वही धार्मिक शास्त्र हैं। नीति के शास्त्र जरूरी हैं, पर उनमें कोई गुण-गौरव नहीं। नीति के शास्त्र इसलिए जरूरी हैं कि तुम बुरे हो, अन्यथा उनकी कोई उपादेयता नहीं। राह के चौराहे पर पुलिसवाला खड़ा है, वह कोई गरिमा नहीं है। अदालत में मजिस्ट्रेट बैठा है, वह कोई गौरव नहीं है। वे हमारी दीनता के प्रतीक हैं। वे हमारी क्षुद्रता के सबूत हैं। वह पुलिसवाला खड़ा है वहां इसलिए, क्योंकि तुम पर भरोसा नहीं किया जा सकता कि तुम रास्ते के नियम का पालन करोगे। तुम भरोसे योग्य नहीं हो। वह पुलिसवाला तुम्हारी महिमा की खबर नहीं दे रहा है, तुम्हारे चोर,

बेईमान, नियमहीन होने की सूचना दे रहा है। अदालतों के बड़े-बड़े भवन तुम्हारे गौरव की गाथा नहीं कहते; तुम्हारे अपराधों के भवन हैं। बड़े आश्चर्य की बात है! अदालतों के हम बड़े आलीशान भवन बनाते हैं। अपराध की कथा है वहां। वहां तुम्हारा सारा नरक लिखा हुआ है। वह अदालत खड़ी इसलिए है कि तुम ठीक नहीं हो। अदालत अस्पताल है। अस्पताल से ज्यादा उसका मूल्य नहीं है। क्योंकि आदमी रुग्ण है, इसलिए नीति की जरूरत है। अगर सारे लोग स्वस्थ हो जाएं तो चिकित्सा खो जाएगी। और सारे लोग अगर सदवृत्ति के हो जाएं तो नीतिशास्त्र खो जाएगा।

लेकिन धर्मशास्त्र फिर भी रहेगा। वस्तुतः तभी धर्मशास्त्र शुरू होता है जहां नीति पूरी होती है। धर्मशास्त्र के नाम से बहुत से नीतिशास्त्र भी धर्मशास्त्र माने जाते हैं। क्योंकि तुम्हारी आंखें उतने ऊपर नहीं देख सकतीं, जहां धर्मशास्त्र हैं। तुम नीति तक देख पाते हो।

जब पहली दफा उपनिषदों का अनुवाद हुआ पश्चिम की भाषाओं में तो पश्चिम के विचारक बड़े चिंतित हुए। क्योंकि उपनिषदों में बाइबिल जैसी दस आज्ञाएं नहीं हैं; टेन कमांडमेंट्स का कोई उल्लेख नहीं है। चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, पर-स्त्री को मत देखो, ऐसी उपनिषदों में कोई बात ही नहीं। पश्चिम के विचारक बड़े हैरान हुए कि ये कैसे धर्मशास्त्र हैं! इनमें कुछ भी तो नीति-व्यवहार की बात नहीं। नीति, नियम, व्रत, अनुशासन, कुछ भी तो नहीं। सिर्फ ब्रह्म की चर्चा करते हैं। इस चर्चा से कहीं कोई धार्मिक हुआ है?

बाइबिल--पुरानी और नई दोनों--किन्हीं-किन्हीं हिस्सों में धार्मिक हो पाती हैं। अन्यथा वे नैतिक शास्त्र हैं। कुरान कभी-कभी धार्मिक हो पाता है; अन्यथा नब्बे प्रतिशत नीतिशास्त्र है। वेद कभी-कभी धार्मिक हो पाता है, अन्यथा नीतिशास्त्र है। उपनिषद शुद्ध सोना है। आभूषण हम सोने का बनाते हैं तो कुछ न कुछ अशुद्ध करना पड़ता है, कुछ मिलाना पड़ता है। तो अठारह कैरेट होगा, सोलह कैरेट होगा, चौदह कैरेट होगा--लेकिन ठीक चौबीस कैरेट नहीं होता। क्योंकि सोना इतनी मुलायम धातु है कि उसके आभूषण नहीं बन सकते; थोड़ी सख्ती चाहिए। धर्म का शुद्ध सोना, चौबीस कैरेट, तो मुश्किल से कभी किसी शास्त्र में मिलता है। फिर तुम जहां खड़े हो उतने ही नीचे धर्म को उतारना पड़ता है, क्योंकि तुम्हीं को सम्हालना है। जितना धर्म नीचे उतरता है उतना नैतिक हो जाता है।

तो उपनिषद या लाओत्से का ताओ तेह किंग या हेराक्लाइटस के वचन परम, आखिरी हैं। चौबीस कैरेट सोना हैं। तुम अगर न समझ पाओ तो अपनी मजबूरी समझना। तुम्हें अगर लाओत्से को समझना हो तो बड़ी ऊंची आंखें उठानी पड़ेंगी। अब अगर तुम गौरीशंकर देखना चाहते हो तो टोपी गिरेगी। तुम अगर टोपी को सम्हाले रहे तो गौरीशंकर न देख सकोगे। उतनी ऊंची आंखें उठानी हों तो तुम वैसे ही थोड़े खड़े रहोगे जैसे तुम बाजार में चलते हो, समतल भूमि पर चलते हो। आंख उठाने के लिए गर्दन मुड़ेगी, टोपी गिरेगी। जिन्होंने भी धर्मशास्त्र को जाना, टोपी ही नहीं, उनका सिर गिर गया, उनकी बुद्धि गिर गई, उनका सोचना-विचारना तहस-नहस हो गया। तभी वे जान पाए। उतने शुद्ध को जानने के लिए उतना ही शुद्ध होना पड़ेगा।

सदगुण की परिभाषा लाओत्से की है कि जब तुम बुरे को भी भला जानो, और जब तुम पापी को भी आशीर्वाद दे सको, और जब तुम्हारे हृदय में पापी के लिए भी स्वर्ग की सुविधा हो। पुण्यात्मा के स्वर्ग के जाने में कौन सा गुण-गौरव है? गणित की बात है; काव्य तो बिल्कुल नहीं। दुकानदारी की बात है। जो भला है वह स्वर्ग जाएगा; जो बुरा है वह नरक जाएगा। परमात्मा दुकानदार है जैसे। लिए है तराजू, बैठा है, तौल रहा है; तराजू में जो हिसाब में आ जाए। तो परमात्मा भी बुद्धि बन जाता है फिर, हृदय नहीं। हृदय तो शुभ-अशुभ को पार कर जाता है।

एक मां के दो बेटे हैं। एक अच्छा है, एक बुरा है; इससे क्या फर्क पड़ता है? और अगर फर्क पड़ जाए तो मां भी दुकानदार है, मां नहीं। सच तो यह है कि अच्छे की चाहे मां थोड़ी कम चिंता करे, बुरे की ज्यादा करेगी। क्योंकि अच्छा तो अच्छा है ही, बुरे को भी उठाना है। जो खड़ा है उसको सम्हालने की क्या जरूरत, जो गिर गया है उसको सम्हालना है। जो स्वस्थ है उसको औषधि की क्या मांग, जो अस्वस्थ है उसे औषधि देनी है। तो भला तो अगर नरक में भी चला जाए तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि वह अपना स्वर्ग अपने साथ लिए है, बना लेगा वहां भी; बुरे को तो स्वर्ग में ले जाना ही होगा, अपने हाथ से तो वह नरक चला जाएगा।

तो लाओत्से कहते हैं, सदगुण की श्रद्धा क्या है? सदगुण की श्रद्धा अशुभ में भी शुभ को देखने की क्षमता। अशुभ में भी छिपे शुभ के दर्शन। अंधेरी रात में भी जो सुबह को देख ले, वही सदगुण की श्रद्धा है।

सुबह तो, सुबह के सूरज को तो फिर अंधा भी पहचान लेता है, आंखों की कोई गरिमा नहीं। सुबह का उत्ताप तो अंधे को भी मालूम पड़ने लगता है; वह भी कह देता है, सूरज उग गया। रात के घने अंधेरे में, जब सूरज की एक किरण भी नहीं रहती, जब कोई भी प्रमाण नहीं रह जाता सूरज का, जब सब तरफ से सूरज विलीन हो जाता है, तब भी जो सुबह को जानता है, पहचानता है, जो सुबह की आशा और भरोसे से भरा है, उसी के पास आंख है देखने वाली।

इसी को लाओत्से सदगुण की श्रद्धा कहता है। पापी में भी पुण्यात्मा के दर्शन, अंधेरी रात में सुबह के दर्शन हैं। बुरे में भले को देख लेना, कांटे में भी छिपे हुए फूल के रस को पहचान लेना है। तब तुम सभी को आशीर्वाद दे सकते हो। तब तुम्हारे मन से निंदा विलीन हो जाती है। जब तक निंदा है, तब तक सदगुण नहीं। जब प्रशंसा बेशर्त है, जब तुम कोई शर्त नहीं लगाते कि मैं इसलिए प्रशंसा करूंगा। जब तुम्हारी प्रशंसा मनुष्य के होने मात्र में काफी है। तुम हो इतना ही क्या कम है! बुरे हो या भले हो, ये गौण बातें हैं; चोर हो कि साधु हो, ईमानदार हो कि बेईमान हो, ये तो ऊपर-ऊपर व्यवहार की बातें हैं। इससे तुम्हारी आत्मा का क्या लेना-देना?

तुम्हारे कृत्य तुम्हारी परिधि से ज्यादा नहीं हैं। जैसे सागर की छाती पर लहरें हैं, लेकिन सागर की गहराई में कहां लहरें हैं? ऐसे ही तुम्हारी ऊपर की सतह पर लहरें हैं। अपराध की लहर तुम्हें अपराधी नहीं बनाती। लहर तो ऊपर ही घूमती है, खो जाती है; बनती है, मिट जाती है; तुम भीतर तो अछूते रह जाते हो। लहर तो हवा का झोंका है, तुम नहीं। कृत्य तुम्हारा बुरा भी हो या भला हो, इससे तुम्हारे अस्तित्व का कोई भी लेना-देना नहीं है। तुम्हें पता न हो, तुम भी सोचते होओ कि मैं अपराधी हूं, बुरा हूं, लेकिन जिसके पास आंखें हैं उसे तो दिखाई पड़ता है। तुम भला संत के पास इसलिए जाओ कि मैं पापी हूं, उसके पास जाऊंगा तो शायद पुण्य की तरफ मुझे भी स्वाद लग जाए, तुम चाहे अपनी आत्मनिंदा से भरे होओ, लेकिन संत तो तुम्हारे भीतर उगते हुए सूरज को ही देखता है। संत तो तुम्हारी संभावना को देखता है, तुम्हारे भविष्य को देखता है। संत तो तुम्हारे केंद्र को देखता है, तुम्हारी परिधि को नहीं।

वही सदगुण है। सदगुण द्वंद्वातीत है। द्वैत से उसका कोई संबंध नहीं; अच्छे-बुरे का विभाजन नहीं करता। क्या है इस बात को कहने का अर्थ कि शुभ में भी शुभ देखता है, अशुभ में भी शुभ देखता है, भले पर श्रद्धा करता है, बुरे पर भी श्रद्धा करता है? इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब इतना ही है कि अब भले और बुरे में कोई फासला न रहा। अब भला और बुरा समान हो गए। अब जहर और अमृत एक जैसे हैं। अब जन्म और मृत्यु बराबर हैं। अब पाना और खोना एक ही बात हो गए। सब द्वंद्व मिट गया, सब द्वैत गिर गया। अद्वैत की धारा जगी है।

अद्वैत सदगुण है। एक को जान लेना सदगुण है। और उस एक को जानना ही धर्म है।

नीति तो दो को मानती है। इसलिए नीति धर्म नहीं है। इसे समझो, क्योंकि नैतिक होने के लिए धार्मिक होना जरूरी भी नहीं है। नास्तिक भी नैतिक हो जाता है। हो सकता है; अक्सर होता है। तुम अगर नैतिक आदमी खोजना चाहो तो जितने तुम्हें माओ और स्टैलिन के देश में मिलेंगे उतने और कहीं नहीं। रूस नास्तिक है, लेकिन अगर तुम नैतिक आदमी खोजना चाहो तो तुम्हें जितने रूस में मिलेंगे उतने कहीं भी नहीं। भारत में तो कभी भी नहीं।

नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। सच तो यह है कि नास्तिक के पास नैतिक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। वह उसकी ऊंची से ऊंची दशा है। नास्तिक भी नैतिक हो सके तो फिर आस्तिक होने में सार क्या है?

आस्तिक का सार उस सदगुण में है जो नीति के पार है। आस्तिकता समाज के पार ले जाती है। समाज सब कुछ नहीं है। तुम्हारे संबंधों का जाल सब कुछ नहीं है। सच तो यह है, संबंधों का जाल बाहर-बाहर है; समाज बाहर है, तुम्हारे भीतर नहीं। तुम्हारे भीतर तो तुम ही हो--अपनी प्रगाढ़ता में, नीरव निबिड़ता में, शून्य में। भीतर की परम सत्ता में तुम्हारे प्रकाश के अतिरिक्त वहां कुछ भी नहीं है। वहां न मित्र हैं, न प्रियजन हैं, न सगे-संबंधी हैं। वहां बाहर की कोई रेखा भी नहीं पहुंचती, कोई धुन भी नहीं पहुंचती, कोई आवाज भी भीतर सुनी नहीं जाती। वहां तो तुम बिल्कुल अकेले हो।

कबीर ने कहा है, एक-एक जिन जानिया।

जिन्होंने भी जाना उन्होंने एक होकर जाना, भीतर अकेले होकर जाना। उनका अकेलापन बड़ी रोशनी से भरा है। तुम कभी अकेले भी होते हो तो तुम्हारा अकेलापन बड़ी उदासी से भर जाता है। क्योंकि अकेला होना तुम जानते ही नहीं। दो तरह के अकेलेपन हैं। दो शब्द याद रखोः एक शब्द है एकांत और एक शब्द है एकाकीपन। एकांत का अर्थ है अलोननेस। एकांत बड़ा विधायक, पाजिटिव शब्द है। उसका अर्थ हैः अपने होने के रस में निमग्न, जहां दूसरे की याद भी नहीं, जहां दूसरे का अभाव खलता नहीं, जहां दूसरा है भी इसका भी पता नहीं। जहां अपना होना इतना विस्तीर्ण है, इतना गहरा है कि चुकता नहीं; जहां अपने ही रस में तुम डूबे हो; जहां अपने में ही निमग्न हो, अपने में ही लीन हो। और यह होने की दशा बड़ी पाजिटिव, विधायक है; क्योंकि दूसरे का न कोई पता है, न कोई स्मृति है, न दूसरे का अभाव खलता है। अपना होने का भाव इतने आनंद से भर रहा है--एकांत, अलोननेस।

और तब एक दूसरी दशा हैः लोनलीनेस, एकाकीपन। वह नकारात्मक है, निगेटिव है। तब भी तुम अकेले हो, लेकिन अकेले होने में कोई रस नहीं है; तुम अपने में डूबे नहीं हो; दूसरे की याद सता रही है, दूसरे की कमी खल रही है। नजर दूसरे पर लगी है कि दूसरा नहीं है। वह पत्नी हो, मित्र हो, प्रेयसी हो, कोई भी हो; लेकिन दूसरे की मौजूदगी का अभाव एकाकीपन है। और अपनी मौजूदगी का भाव एकांत है।

और जब तक तुमने एकांत नहीं जाना तब तक तुम लाओत्से को न समझ पाओगे। तुमने एकाकीपन तो बहुत बार जाना है, वह खालीपन की बात है। मन अपने को कहीं उलझा लेना चाहता है। तो तुम अखबार पढ़ने लगते हो, रेडियो खोल देते हो, टेलीविजन देखने लगते हो, सिनेमा चले जाते हो, क्लब पहुंच जाते हो, होटल में जाकर बैठ जाते हो। दूसरे की मौजूदगी तुम्हें बाहर उलझाए रखती है। और जब भी दूसरे की मौजूदगी नहीं होती, तुम्हें लगता है, अब क्या जीवन में सार? तुमने अपना सार कभी जाना नहीं; तुम्हारा सारा सार दूसरे से जुड़ा है। तुम्हारे होने के सब ढंग में दूसरा हमेशा मौजूद रहा है। तुमने अकेले का रस नहीं जाना; तुमने कभी अपने को पीया नहीं।

तुमने और सब तरह की शराब जानी, लेकिन वह सब शराब दूसरे से आती है। तुमने एक शराब नहीं जानी जो अपने ही भीतर निर्मित होती है, जो स्वयं के होने में ही छिपी है। और जो उसमें बेहोश हो जाता है वह सदा के लिए होश से भर जाता है।

एकांत को तुम जानोगे तो ही तुम धर्म को जानोगे। और एकांत तक जिसे पहुंचना हो उसे द्वंद्व पैदा करने वाली सभी धारणाओं को छोड़ देना जरूरी है। और तुम्हारे शुभ-अशुभ की धारणाएं भी द्वंद्व पैदा करती हैं। किसी की तुम निंदा करते हो; किसी की तुम प्रशंसा करते हो; किसी की तुम पूजा करते हो; किसी का तुम अपमान करते हो। तुम्हारी धारणा--क्या ठीक है, क्या गलत है; यह ठीक है, यह गलत है--तुम्हें बांटे रखती है। भीतर जाना हो तो अनबंटा होना पड़ेगा। अनबंटा होना सदगुण है। वह सदगुण की श्रद्धा है।

क्यों तुम करते हो निंदा? क्यों करते हो प्रशंसा? पीछे बड़े गहरे जाल हैं, वे समझ लेने जरूरी हैं। तब हम लाओत्से के सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे।

लाओत्से के समय में एक आदमी हुआ कनफ्यूशियस। जगत में दो ही तरह के लोग हैं। तुम भी या तो लाओत्से के मानने वाले हो सकते हो या कनफ्यूशियस के। बस दो ही विभाजन हैं। और सदा से एक धारा कनफ्यूशियस की है, वह अलग बह रही है। और एक धारा लाओत्से की है, वह बिल्कुल अलग बह रही है।

कनफ्यूशियस है नीतिवादी, समाजवादी, समूहवादी--आचरण, व्यवहार। लाओत्से है नीति का अतिक्रमण करने वाला, समाज के पार एकांत में ले जाने वाला। लाओत्से का संबंध स्वभाव से है, आचरण से नहीं; तुम्हारी मूल प्रकृति से है, तुम्हारे होने से है, तुम क्या करते हो इससे नहीं। और जब हम ठीक से समझेंगे तो हम समझ पाएंगे कि क्यों इतना जोर उसका है।

कहते हैं कनफ्यूशियस लाओत्से से मिलने गया था तो बहुत डर गया। क्योंकि जब लाओत्से की बातें उसने सुनीं तो उसने कहा, यह तो अराजकता हो जाएगी। तुम तो नष्ट कर दोगे समाज को। नीति कहां बचेगी?

नीति का आधार ही दंड और पुरस्कार है। कनफ्यूशियस का जोर उस पर है कि बुरे को दंड दो, ताकि बुरा दुबारा बुरा काम न कर सके; भले को पुरस्कृत करो, ताकि दुबारा भला काम करने का लोभ जगे। और ध्यान रखना, दुनिया कनफ्यूशियस को मान कर चल रही है। लाओत्से को मानने वाला तो कभी कोई एकाध है--कोई विरला जन। सारी दुनिया कनफ्यूशियस के आधार पर निर्मित हुई है। फिर कनफ्यूशियस की धारा में बहुत लोग आए हैं; मार्क्स, स्टैलिन, लेनिन, माओ, सभी कनफ्यूशियस की धारा में हैं।

लोग मुझसे पूछते हैं कि चीन जैसे बौद्ध मुल्क में कम्युनिज्म सफल कैसे हो गया?

सफल होने का कारण है। क्योंकि चीन के विचार का जो आधार है वह कनफ्यूशियस है। और कनफ्यूशियस और मार्क्स बिल्कुल एक जैसे चिंतक हैं। अगर भारत में किसी दिन कम्युनिज्म आया तो तुम चकित होओगे, उसका कारण बुद्ध और महावीर नहीं होंगे, उसका कारण मनु और मनु की स्मृति होगी। क्योंकि मनु ठीक कनफ्यूशियस जैसा विचारक है। कनफ्यूशियस, मनु, मार्क्स, माओ--अगर राजनीति के जगत में तुम्हें देखना हो तो ये एक ही सूत्र में बंधे हुए लोग हैं। मार्क्स कहता है कि चेतना का कोई भी मूल्य नहीं है; समाज की परिस्थिति मूल्यवान है। समाज की जैसी परिस्थिति होती है, चेतना वैसी ही ढल जाती है। चेतना का कोई मूल्य नहीं है, मूल्य है समाज की व्यवस्था का। अगर लोगों को बदलना हो, व्यवस्था को बदल दो। और अगर लोगों को बदलना हो तो बुरे को दंडित करो।

इसलिए तो रूस में कोई एक करोड़ लोग मार डाले उन्होंने। जिसको वे बुरा समझते थे उसको फिर उन्होंने ठीक से ही दंडित कर दिया। चीन में भयंकर दंड दिया जा रहा है। लाखों लोग जेलों में पड़े हैं। बुरी तरह सताए

जा रहे हैं। जिसको भी चीन की आज की धारणा, माओ की धारणा समझती है कि बुरे लोग हैं, उनके जीने का कोई उपाय नहीं है। और बुरा कौन है? बुरा वही है जो तुम्हारी धारणा से मेल न खाए।

आखिर चोर का कसूर क्या है, जिसको हमने जेल में डाल रखा है? उसका कसूर इतना ही है कि वह हमारी व्यक्तिगत संपत्ति की धारणा में भरोसा नहीं करता। उसका कसूर क्या है? वह एक तरह का साम्यवादी है। वह यह कहता है कि संपत्ति सब की है। इसलिए तुम्हारी संपत्ति उठा कर ले गया। वह कहता है, संपत्ति पर किसी की मालकियत नहीं है। कहता न हो, लेकिन यह उसकी भीतरी गहरी धारणा है। तुम मालिक हो, यही सिद्ध नहीं है, वह यह कह रहा है। इसलिए तुम्हें अधिकार क्या है कि तुम रखे रहो? वह यह कह रहा है कि जिसके पास ताकत हो वह ले जाए। ताकत मालिक है। माइट इ.ज राइट। जिसको भी तुम गलत समझते हो--और गलत तुम उसे समझते हो जो तुम्हारी धारणा के प्रतिकूल है--उसे तुम जेल में डाल देते हो।

तुम सोचते हो कि दंड देने से वह फिर यह काम न करेगा। तो तुम गलती में हो। और तुम अंधे हो, और इतिहास को तुम कभी देखते नहीं। क्योंकि हमने कितना दंड दिया, लेकिन पाप रत्ती भर कम नहीं हुआ। और लाओत्से खिलखिला कर हंस रहा है पूरे इतिहास के राह के किनारे खड़े कि तुमने कितना दंड दिया, लेकिन अपराधी कम कहां हुए? बढ़ते चले गए। और जिसको तुम एक बार दंड देते हो, फिर कभी तुम लौट कर नहीं देखते कि तुम्हारे दंड से वह सुधरा? जेलखाने में जो एक बार हो आया, वह फिर बार-बार जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे पर मुकदमा चला। कई बार उसे सजा दी जा चुकी। जेब काटने की उसे आदत है। मजिस्ट्रेट को भी दया आने लगी, क्योंकि वह कई बार सजा काट चुका और फिर भी वही करता है। आखिर उसने मुल्ला को बुलाया और कहा कि तुम बाप होकर इसे समझाते क्यों नहीं? यह बार-बार वही कर रहा है; दंड पा रहा है। तुम इसे समझाओ। मुल्ला ने कहा, समझा-समझा कर मैं भी हार गया; सुनता ही नहीं। कितनी बार इसे समझाया कि ढंग से काट, पकड़ा मत। सिखा-सिखा कर परेशान हो गए हैं।

जेलखाने से लोग सीख कर लौटते हैं कि कैसे ढंग से काटें, कैसे ढंग से चोरी करें। क्योंकि वहां उस्ताद उपलब्ध हो जाते हैं। जेलखाना एक विश्वविद्यालय है अपराधों का। आदमी नया-नया जाता है, सिक्खड़ होता है, चेला होता है। वहां बड़े गुरु मिल जाते हैं जो निष्णात हैं, जिनसे वह कई कलाएं सीख कर लौटता है, जिनके अभाव में वह पकड़ा गया था। वह वहां से और मजबूत होकर लौटता है, वहां से वह और तैयार होकर लौटता है।

सारा इतिहास यह कहता है कि जितना हमने दंड दिया, उतने लोग बुरे होते गए। लेकिन अंधे लोग देखते भी नहीं कि क्या हो रहा है। तुम्हारे पुरस्कार से कौन भला हो गया है? तुम्हारे पुरस्कार से इतना ही हुआ है कि लोग भले का नाटक कर रहे हैं; पाखंडी हो गए हैं। और जो आदमी पुरस्कार के लोभ और लालच में भला है, क्या वह भला है? उसकी साधुता कितनी गहरी है? चमड़े की जितनी गहरी भी नहीं है। हड्डियों तक नहीं पहुंच सकती; आत्मा तक तो पहुंचने का कोई उपाय नहीं है।

लेकिन यह सूत्र है हमारी धारणा का। मनोविज्ञान में भी कनफ्यूशियस से राजी होने वाले लोग हैं: रूस का पावलफ, अमरीका में जिंदा एक मनोवैज्ञानिक है बी.एफ.स्कीनर। उन सबका कहना यह है कि एक ही ढंग है नीति को लाने का और वह यह है कि बचपन से ही बच्चे को, अगर वह बुरा करे तो ठीक से दंड दो, वह भला करे, पुरस्कार दो। और यही हम सब कर रहे हैं। यद्यपि पूरा इतिहास हमारा असफल हुआ है, लेकिन लाओत्से की कोई सुनने को राजी नहीं। सुनते हम कनफ्यूशियस की हैं। क्योंकि किन्हीं कारणों से वह सरल मालूम पड़ता है। उसे मैं समझाऊंगा कि क्यों। कनफ्यूशियस गलत होते हुए सरल मालूम पड़ता है, लाओत्से ठीक होते हुए गलत मालूम पड़ता है, या सुनने योग्य मालूम नहीं पड़ता।

तुम भी यही कर रहे हो अपने बच्चों के साथ। उससे कुछ बदलता नहीं। तुम दंड देते हो; बच्चा दंड के लिए धीरे-धीरे राजी हो जाता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अच्छे बाप बुरे बेटे पैदा करते हैं; अच्छे परिवारों से अपराधी निकलते हैं। जब बाप बहुत कोशिश करता है अच्छा करने की तो बेटे बुरे हो जाते हैं। वहीं कुछ सड़ जाता है, उस चेष्टा में ही कुछ मर जाता है, क्योंकि बाप अतिशय चेष्टा करता है। तो दो ही उपाय हैं। या तो बेटा पाखंडी हो जाए, वह ऐसा चेहरा दिखाने लगे जैसा वह नहीं है; चेहरा ओढ़ ले। तो पुरस्कार भी पा ले और कोई पीछे का दरवाजा भी खोल ले, जहां से जो उसे रसपूर्ण लग रहा है वह भी किए जाए। और जिस-जिस को हम पाप कहते हैं, वह हमारे पाप कहने से और भी रसपूर्ण हो जाता है, उसमें और आकर्षण आ जाता है, उसमें चुंबक पैदा हो जाता है।

एक घर में ऐसा हुआ कि घर के लोग बड़े नीति-नियम वाले लोग थे; एक भोज में आमंत्रित थे। तो घर के छोटे से बच्चे को उन सबने कहा कि देखो, ध्यान रखना, कोई चीज मांगना मत। सब चीज दी जाएगी; प्रतीक्षा करना, मांगना मत। घर में मांगते हो, वह एक बात। कोई चीज पसंद भी पड़े तो अपने पर नियंत्रण रखना और चुप रहना। जितना मिले उतने में राजी रहना। संयोग की बात, काफी लोग थे भोज में और लोग गपशप में लगे थे, छोटे से बच्चे को लोग भूल ही गए। उसके हाथ में प्लेट तो दे दी गई, आइसक्रीम बांटी जा रही थी, लेकिन लोग उसे भूल ही गए।

वह थोड़ी देर तो प्लेट लिए बैठा रहा। अब सोच सकते हो, एक छोटा बच्चा, आइसक्रीम बंटती हो और प्लेट लिए खाली बैठा हो। काफी दमन करना पड़ा होगा। फिर उसे जब आशा छूट गई, लगा कि अब तो आइसक्रीम दूर भी चली गई और अब कोई लौट कर आने का उपाय नहीं है, लोग बातचीत में लगे हैं, उसका किसी को ख्याल ही नहीं है; मौका पाकर जब उसने देखा कि एकाध-दो क्षण को सन्नाटा था, लोग आइसक्रीम खाने में लग गए, तो उसने खड़े होकर जोर से कहा कि किसी को खाली प्लेट तो नहीं चाहिए! खाली प्लेट ऊपर उठा कर। तब लोगों को पता चला कि उसको आइसक्रीम नहीं मिली।

छोटे बच्चे भी रास्ता तो निकाल ही लेंगे। तो बड़ों का तो क्या कहना? न मांगेंगे आइसक्रीम तो खाली प्लेट बता देंगे। पीछे से कोई द्वार खोलना पड़ेगा। आगे एक झूठा चेहरा और जीवन का पीछे का एक द्वार। करो कुछ, कहो कुछ, बताओ कुछ। जीवन खंड-खंड कर लो; इकट्ठे न रह जाओ।

सारे दंड और सारे पुरस्कार का परिणाम इतना हुआ है कि कुछ लोग पापी हो गए हैं, अपराधी, और कुछ लोग पाखंडी हो गए हैं। पाखंडियों को तुम नैतिक कहते हो। पाखंडी का कुल मतलब इतना है कि कर तो वह भी वही रहा है जो दूसरे कर रहे हैं, लेकिन कुशलता से कर रहा है। वह ज्यादा चालाक है। निक्सन पकड़ लिया गया, इससे तुम यह मत सोचना कि तुम्हारे दूसरे राजनीतिज्ञ, दूसरे मुल्कों के, वही नहीं कर रहे हैं जो निक्सन ने किया। करीब-करीब सभी राजनीतिज्ञ वही करते हैं। निक्सन थोड़ा ज्यादा आत्मविश्वास में फंस गया। अपने ही हाथ से फंस गया कि वह जो भी बोलता था वह उसने टेप करवा लिया। बोलते तो सभी राजनीतिज्ञ यही हैं।

तुम अगर उनकी अंतरंग वार्ता सुनो तो बड़े हैरान होओगे। वह बिल्कुल सड़क-छाप है; वह बातचीत, जो सड़क के किनारे बैठे हुए लोग करते हैं, उससे भी बेहूदी है। होगी ही। क्योंकि एक-दूसरे की जड़ें काटने की ही तो सारी बात है। ऊपर से मिलते हैं तो मुस्कुराते हैं, और भीतर एक-दूसरे को काट रहे हैं। और ऐसा नहीं कि विरोधी ही काट रहे हैं, जो अपने हैं वे भी काट रहे हैं। क्योंकि राजनीति में सभी एक-दूसरे के विरोधी हैं। अपना तो कोई है ही नहीं वहां। अपना तो राजनीति में कोई हो ही नहीं सकता। क्योंकि जहां पूरी दौड़ प्रतिस्पर्धा की हो वहां कोई जयप्रकाश ही इंदिरा के खिलाफ नहीं होते, चव्हाण भी भीतर से वही करते हैं। कोई बाहर से विरोधी है,

कोई भीतर से विरोधी है; कोई भेद नहीं है। कुछ शत्रु हैं जो मित्र की तरह खड़े हैं और कुछ शत्रु हैं जो शत्रु की तरह खड़े हैं, बस इतना ही फर्क है। अगर तुम उनकी भीतरी बातें सुनो--जैसा मुझे सुनने का मौका मिला है--तो तुम चकित होओगे। वे साधारण आदमी से गए-बीते हैं।

लेकिन तुम उनके पब्लिक चेहरे से परिचित हो; सार्वजनिक उनका जो मुखौटा है, जब वे सभा के मंच पर आते हैं, उससे तुम परिचित हो। तब वे लोकोद्धारक हैं, सर्वोदयी हैं, तब वे जनता के कल्याण के लिए हैं। और ये सब थोथे शब्द हैं, और इनके पीछे सिवाय पद की आकांक्षा के और शक्ति की लोलुपता के कुछ भी नहीं है। और शक्ति की लोलुपता इस जगत में बड़ी अंधी दौड़ है। वह न अपने को जानती है, न पराए को जानती है। क्योंकि शक्ति की लोलुपता महा हिंसा है। ये सब बातें हैं। पांच साल पहले इंदिरा समाजवाद की बात कहती थी; वह खो गई। अभी जयप्रकाश कहते हैं। उनको बिठा दो पद पर, ऐसे ही खो जाएगी। पद मिलते ही सब खो जाता है। क्योंकि सब बातें पद पाने के लिए थीं। और पद पाने के बाद असली चेहरा प्रकट होना शुरू होता है। क्योंकि शक्ति मिल जाने के बाद तुम वह करना चाहोगे जो तुम छिपाए थे और सदा करना चाहते थे।

लार्ड एक्टन ने कहा है, पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। शक्ति व्यभिचारिणी है और परिपूर्ण रूप से व्यभिचार कर देती है व्यक्ति के साथ।

लेकिन मैं एक्टन से राजी नहीं हूं। शक्ति व्यभिचारिणी नहीं है। असल में, व्यभिचारी व्यक्ति ही शक्ति की तरफ उत्सुक होते हैं। शक्ति तो केवल उघाड़ती है। जैसे ही शक्ति मिलती है तुम्हें... । तुम एक वेश्या के घर जाना चाहते थे, लेकिन कभी तुम उतने नोट न इकट्ठे कर पाए। तो तुम द्वार से भटक कर, गीत गुनगुना कर लौट आए। चक्कर तुमने बहुत मारे। लेकिन जिस दिन तुम्हारे पास रुपए होंगे, जिस दिन उतने नोट होंगे, उस दिन तुम्हें कैसे रोका जा सकेगा? नोट किसी को बिगाड़ते नहीं। धन क्या बिगाड़ेगा? धन से ज्यादा नपुंसक क्या है? धन कैसे बिगाड़ सकता है? और पद से ज्यादा नपुंसक क्या है? पद कैसे बिगाड़ सकता है? बिगड़े हुए लोग ही पद की तरफ लोलुप होते हैं। लेकिन जब वे पद की तरफ लोलुप होते हैं तब चारों तरफ एक साधुता का आवेष्टन निर्मित करना पड़ता है; क्योंकि तुम साधु को ही पद तक पहुंचाओगे। तो उनको साधु होना पड़ता है।

ऐसा हुआ कि सम्राट एक विनम्र आदमी की खोज में था। और उसने अपने लोग भेजे और उसने कहा, कोई ऐसा आदमी खोज कर आओ जो बिल्कुल विनम्र हो। वे मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में आए। नसरुद्दीन बाजार से निकल रहा था। उसके पास काफी धन था, बड़ी हवेली थी, लेकिन कंधे पर उसने मछलियों को पकड़ने का एक जाल लटका रखा था। उस मंडल ने, जो विनम्र आदमी की तलाश में था, पूछा कि क्या बात है? तुम इतने बड़े धनी हो, तुम यह मछली का जाल क्यों लटकाए हुए हो पुराना, फटा हुआ? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं मछलियां पकड़-पकड़ कर ही बड़ा हुआ। मैं उस छोटेपन को भूल नहीं जाना चाहता जहां से मूल स्रोत है। मैं गरीब मछुआ था। इस जाल को मैं अपने साथ रखता हूं, ताकि अहंकार न आ जाए। उन्होंने कहा कि यह आदमी, यह आदमी ठीक विनम्र आदमी है। जिसके पास बड़ी हवेली है, राजाओं जैसा जो रह सकता था, वह मछुए के कपड़े पहने हुए है और जाल लटकाए हुए है। उसे चुन लिया गया। उसे राज्य का वजीर बना दिया गया। जिस दिन वह वजीर बन गया उस दिन वह शानदार कपड़े पहन कर राजभवन पहुंचा। उस मंडल के लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, क्या हुआ उस जाल का? उसने कहा कि जब मछली पकड़ ली गई तो जाल को कौन लिए फिरता है!

सब जाल--नाम कुछ भी हों--मछलियां पकड़ने के लिए हैं। जब मछली पकड़ ली गई, जाल फेंक दिए जाते हैं। गणित सीधा है। नीति ने, कनफ्यूशियस, मार्क्स, पावलफ, इन सबने एक ही बात सिखाई है कि नीति का आचरण ऊपर से थोपा जा सकता है। नीति एक कल्टीवेशन है, एक संस्कार है। पावलफ का शब्द हैः कंडीशंड

रिफ्लेक्स। नीति एक संस्कार है। तो पावलफ का प्रसिद्ध प्रयोग तुमने सुना होगा। एक कुत्ते को वह खाना खिलाता है। जब रोटी कुत्ते के सामने आती है तो उसकी जीभ से लार टपकती है। यह स्वाभाविक है। वह घंटी बजाता है। जब भी रोटी देता है, घंटी भी बजाता है। पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं देता, सिर्फ घंटी बजाता है। लार टपकनी शुरू हो जाती है। अब घंटी बजने से कुत्ते की लार टपकने का कोई भी स्वाभाविक संबंध नहीं है। यह कंडीशंड रिफ्लेक्स है। रोटी के साथ घंटी बजती थी, इसलिए कुत्ते के मन में घंटी और रोटी एक हो गए। रोज घंटी रोटी के साथ बजती थी; इसलिए घंटी के बजने से लार शुरू हो गई।

पावलफ यह कह रहा है कि समस्त नीति कंडीशंड रिफ्लेक्स है। अगर बच्चे ने कुछ गलत काम किया, उसे मारो, दंड दो। क्योंकि दंड देने का संबंध हो जाएगा गलत काम से। तो दुबारा जब भी वह गलत काम करेगा, उसे याद आएगा कि मार पड़ेगी। घंटी जुड़ गई! तो वह बुरा काम नहीं करेगा। भला काम करे--मिठाई दो, पुरस्कार दो, खिलौना दो। भला काम और पुरस्कार जुड़ जाएगा। जब भी वह पुरस्कार पाना चाहेगा--जो कौन नहीं पाना चाहता--तो वह भला काम करेगा। और धीरे-धीरे यह इतनी गहरी आदत हो जाएगी, यह आदत ही आचरण है।

लाओत्से कहता है, यह आदत धोखा है, आचरण नहीं। क्योंकि जो ऊपर से थोपा गया है वह ऊपर ही रहेगा। समाज के लिए काफी हो, परमात्मा के खोजियों के लिए काफी नहीं है। फिर कैसे सदगुण पैदा होता है?

लाओत्से कहता है, सदगुण का जन्म स्वभाव की अनुभूति से होता है, आत्मबोध से होता है, ध्यान से हो सकता है। पाप, दंड, पुरस्कार, पुण्य, इस तरह की धारणाओं को जोड़ने से नहीं हो सकता। इस तरह की धारणाएं आदत बना सकती हैं, और आदत को हम आचरण समझ लेते हैं।

तुम अगर जैन घर में पैदा हुए हो तो मांसाहार नहीं कर सकते। लेकिन यह तुम्हारी आदत है। पचास साल तक तुमने मांसाहार नहीं किया। और मांसाहार गंदी बात है, घृणित है, शब्द ही मांस से तुम्हें बेचैनी होने लगती है; घंटी जुड़ गई रोटी से। शास्त्र सुने, गुरुओं के वचन सुने; जिस परिवार में रहे, वे सभी नाक-भौं सिकोड़ते हैं जैसे ही मांस का शब्द आ जाए। अगर जैन परिवार के बूढ़े लोग भोजन कर रहे हों और तुम मांस शब्द का नाम ले दो तो वे भोजन बंद कर देंगे। बहुत दिनों तक जैनी टमाटर नहीं खाते थे, क्योंकि वह मांस जैसा दिखाई पड़ता है। कटहल नहीं खाते, क्योंकि उसे काटने से खून जैसा निकलता हुआ मालूम पड़ता है। प्रतीक! तो अगर तुम जैन घर में बड़े हुए हो तो शाकाहार तुम्हारी आदत है। और अगर कोई मांस तुम्हारे सामने ले आएगा, तुम्हें उलटी होने लगेगी, नासिया मालूम होगा, सारा पेट खड़बड़ हो जाएगा। लेकिन इससे तुम यह मत समझना कि तुम महावीर हो जाओगे। यह आदत है; यह तुम कनफ्यूशियस के अनुयायी हो, महावीर के नहीं। यह आदत है; तुम पावलफ के अनुयायी हो। तुम्हारे साथ वही किया गया है जो पावलफ ने कुत्ते के साथ कियाः भोजन और घंटी। इस आदत को तुम आचरण अगर समझ लिए तो तुमने अपना जीवन गंवा दिया।

शाकाहार तो उस शुद्ध चैतन्य से पैदा होता है, जहां तुम इतने प्रेम से भर जाते हो कि जहां तुम किसी को भी चोट न पहुंचाना चाहोगे। यह भीतर से आता है। वास्तविक आचरण का जन्म अंतस से होता है; झूठे आचरण का जन्म ऊपर के आरोपण से होता है। और यही भेद है। और दोनों एक जैसे दिखाई पड़ सकते हैं। व्यवहार में क्या फर्क करोगे कि कोई आदमी किसलिए मांस नहीं खा रहा है? महावीर भी मांस नहीं खाते, क्योंकि उनके अंतस से हिंसा खो गई। साधारण जैनी भी मांस नहीं खाता; अंतस से हिंसा नहीं खोई है। अंतस में पूरी हिंसा है, क्रोध है, वैमनस्य है, ईर्ष्या है, जलन है, सब है। लेकिन आदत के कारण मांसाहार नहीं करता। लेकिन और-और ढंग से मांसाहार करेगा। कहीं न कहीं वह भी चिल्ला कर कहेगा कि किसी को खाली प्लेट तो नहीं चाहिए! और-और रास्ते खोजेगा। किसी और ढंग से लोगों को सताएगा।

मांस नहीं खा सकेगा, खून नहीं पी सकेगा, तो शोषण करेगा। क्योंकि धन भी खून है। वह प्रतीक है खून का, वह समाज का खून है। और जैसे खून बहता है शरीर में और आदमी स्वस्थ रहता है, वैसा धन घूमता रहे समाज में तो समाज स्वस्थ रहता है। धन रुक जाए, तो जैसे खून रुक जाए, आदमी मर जाए, वैसे समाज मर जाता है। लेकिन जैनियों ने जगह-जगह धन रोक लिया। वे अकारण ही धनवान नहीं हो गए हैं। उनके धनवान होने का कुल कारण इतना है कि जो भी उनकी मांसाहार और खून पीने की वृत्ति थी, वह एक आदत से रोक दी गई है। उसको वे दूसरे रास्ते से खींच रहे हैं, दूसरे रास्ते से इकट्ठा कर रहे हैं। उन्होंने एक सब्स्टीट्यूट, एक परिपूरक मार्ग खोज लिया।

मन को बदलना इतना आसान नहीं है कि ऊपर से बदला जा सके। स्कीनर, पावलफ, कनफ्यूशियस आदमी को बदल नहीं सकते, आदमी को ढोंगी बना सकते हैं, झूठा बना सकते हैं। समाज के लिए काफी है, क्योंकि समाज को कोई लेना-देना भी नहीं कि तुम्हारी आत्मा से आ रहा है या नहीं। इतना काफी है कि तुम डर के मारे भी न करो तो काफी है। पुरस्कार के लिए करो तो भी काफी है; समाज इतना ही चाहता है कि तुम्हारा व्यवहार ठीक हो। व्यवहार कहां से पैदा हुआ, इससे समाज को कोई प्रयोजन नहीं है।

लेकिन धर्म को प्रयोजन है। अगर व्यवहार बाहर से पैदा हुआ तो तुमने जीवन गंवाया। तुम अभिनेता बन कर रह गए; तुमने नाटक किया। अगर तुम्हारा आचरण भीतर से आया तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हुई।

अब इस सूत्र को तुम समझ पाओगे। सदगुण का जन्म कहां से होता है?

"ताओ जन्म देता है सदगुण को।"

ताओ का अर्थ है स्वभाव। ताओ का अर्थ है तुम्हारा आंतरिक धर्म। ताओ का अर्थ है तुम्हारी चेतना।

"ताओ से जन्म होता है सदगुणों का, और चरित्र उनका पालन करता है।"

तो चरित्र मूल नहीं है, छाया की तरह है। जन्म तो भीतर की प्रज्ञा में होता है, ध्यान की गहन अवस्था में होता है। लेकिन उतना काफी नहीं है, वह बीज है। उसके पालने के लिए तुम्हें उसके अनुसार आचरण करना होता है। तो वह प्रगाढ़ होता जाता है। जो तुमने जाना है भीतर, उसे अपने जीवन में उतार लेने से वह प्रगाढ़ होता है, उसकी जड़ें जमने लगती हैं। तो चरित्र मूल नहीं है, मूल तो बोध है। और फिर बोध को प्रगाढ़ करने का प्रयोग चरित्र है। इसलिए ताओ से जन्म और तेह से पोषण।

तेह का अर्थ है चरित्र। जो तुम जानो भीतर, उसे करना। अन्यथा तुम्हारा ज्ञान झलक की तरह बनेगा और खो जाएगा। जब तुम ध्यान की गहरी अवस्था में कुछ उदभाव पाओ, कोई भीतर आदेश मिले, भीतर तुम्हारा अंतःकरण कुछ कहे, तो उसे करना भी। नहीं तो उसको जड़ न मिल पाएगी। अगर तुम करोगे तो आदेश रोज-रोज स्पष्ट होने लगेगा, और अंतःकरण की आवाज रोज-रोज साफ सुनाई पड़ने लगेगी। जितना ही तुम करोगे, जितना ही तुम अपने बोध को चरित्र में रूपांतरित करोगे, उतना ही तुम पाओगे, बोध साफ होने लगा, भीतर की ज्योति स्पष्ट जलने लगी; धुआं कम होने लगा, चीजें साफ दिखाई पड़ने लगीं। जन्म तो होता है भीतर, लेकिन व्यवहार में लाने से चरित्र की जड़ें गहरी होती हैं।

"ताओ में जन्म, चरित्र में पालन। भौतिक संसार उन्हें रूप देता है।"

तुम्हारा चारों तरफ जो संसार है। जन्म तो होता है भीतर, चरित्र में जड़ें मिलती हैं, और जो विस्तार है तुम्हारे जीवन का, वह चारों तरफ के भौतिक संसार से उसे रूप मिलता है।

"भौतिक संसार उन्हें रूपायित करता और वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं।"

स्रोत है भीतर। फिर तुम्हारे व्यवहार पर आते हैं, वहां तुम्हारा चरित्र है, उससे जड़ें जमती हैं। फिर बाहर की भौतिक परिस्थितियों पर आते हैं, उनसे रूप मिलता है। जैसे अगर आज महावीर पैदा होना चाहें तो उनका रूप वही नहीं होगा जो ढाई हजार साल पहले था। क्योंकि आज की भौतिक परिस्थितियां उन्हें रूप देंगी। अगर वे तिब्बत में पैदा हुए होते तो नंगे नहीं खड़े हो सकते थे। नंगे खड़े होते तो मर जाते। नग्नता भारत में सरल थी, क्योंकि भारत का भौतिक संसार भिन्न है। महावीर अगर लंदन में पैदा हों तो व्यवहार और होगा, क्योंकि परिस्थितियां भिन्न हैं। महावीर के नग्न रहने के कारण दिगंबर जैन मुनि भारत के बाहर नहीं जा सका। वह संदेश भी नहीं ले जा सका बाहर, क्योंकि नंगा कैसे जाए बाहर! वह नंगापन अड़चन बन गई। महावीर को न बनती, क्योंकि ज्ञानी तरल होता है।

रूप देती हैं परिस्थितियां। तुम्हारे दीए का क्या रूप है, इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारी ज्योति जगनी चाहिए। दीए तो हर मुल्क में अलग होंगे, उनका ढंग अलग होगा, मिट्टी अलग होगी, रंग अलग होगा, लेकिन ज्योति का रंग एक ही होगा। दीए बदल जाएंगे, ज्योति नहीं बदलेगी।

तो तुम जिस परिस्थिति में पैदा हुए हो, जिस भौतिक परिस्थिति में तुम हो, तुम्हारे आचरण का रूप उससे बनेगा। इसलिए आचरण का कोई बंधा हुआ रूप नहीं है। और जो भी बंधे हुए रूप को मान कर चलता है वह जड़ता को उपलब्ध हो जाएगा। परिस्थिति बदलेगी, रूप बदलेगा।

लेकिन तुम्हें बड़ी मुश्किल है, क्योंकि तुम्हें भीतर का तो कोई आदेश ही नहीं है। तुम तो शास्त्र से नियम उठा लिए हो। शास्त्र जा चुके, उनका समय जा चुका, उनकी परिस्थिति बदल गई। इसलिए शास्त्र के अनुसार जो भी जीएगा वह जड़ हो जाएगा। स्वयं की अंतःप्रज्ञा के अनुसार जो भी जीएगा, उसके जीवन में तरलता, उसके जीवन में जीवंतता होगी।

इसलिए तो तुम तुम्हारे पुराने परंपरागत संन्यासियों को देखो, उनके चेहरों पर धूल जमी हुई है। वे ऐसे लगते हैं--अब गए, तब गए। वे ऐसे लगते हैं जैसे म्युजियम में पुरानी चीजें रखी हों। दर्शनीय भला हों, किसी काम के न रहे। खंडहर हैं। अतीत की कोई गौरव-गाथा कहते होंगे, लेकिन गौरव-गाथा आज की और वर्तमान की नहीं है। किसी पुराने समय की ऐतिहासिक सामग्री हैं वे, फोसिल्स, सम्हाल कर रखने योग्य, जैसा कि हम पुरानी चीजों को सम्हाल कर रखते हैं। लेकिन उपयोग के योग्य नहीं; आज के जीवन से उनका कोई भी संबंध नहीं है।

अगर तुम्हारी अंतःप्रज्ञा से पैदा होता हो, ताओ से पैदा होता हो आचरण, तो तुम कभी भी मुर्दा न होओगे, तुम सदा जीवंत रहोगे, तरल रहोगे, बहोगे। और जैसी परिस्थिति होगी, वैसा तुम्हारा रूप निर्मित हो जाएगा। तुम्हें चिंता नहीं करनी है, तुम्हें सिर्फ संवेदनशील और बोधपूर्ण होना है।

"और वर्तमान परिस्थितियां उसे पूर्ण बनाती हैं।"

और जो भी तुम्हारे भीतर से प्रकट होगा... । तुम किसी अतीत की पूर्णता को आधार मान कर मत चलना। तुम किसी अतीत की पूर्णता को आदर्श मत मान लेना। अन्यथा तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। आज की परिस्थिति, वर्तमान क्षण ही तुम्हें पूर्णता देगा। कोई भी नहीं जानता कि वर्तमान क्षण अगर पूर्णता देगा तो तुम कैसे होओगे--महावीर जैसे? बुद्ध जैसे? लाओत्से जैसे? सच तो यह है, तुम उनमें से किसी जैसे भी नहीं होओगे। तुम तुम जैसे ही होओगे। क्योंकि उनकी कोई की भी परिस्थिति ऐसी न थी। सब कुछ बदल गया।

शास्त्र नहीं बदलते, क्योंकि शास्त्र मुर्दा हैं। लेकिन चेतना का आदेश सदा बदलता रहता है। जैसी परिस्थिति होती है, उसके अनुकूल उदभाव होता है, और प्रति क्षण एक तरह की पूर्णता निर्मित होती है। वह पूर्णता किसी आदर्श के अनुसार नहीं होती, वह पूर्णता तुम्हारे भीतर के आनंद की होती है। और इसीलिए तो ऐसा हो जाता है

कि जब भी कोई एक व्यक्ति तीर्थंकर, अवतार की भांति पैदा होता है, तब जिस धर्म में पैदा होता है उस धर्म के लोग ही उसे स्वीकार नहीं करते। क्योंकि वह एक नए तरह की पूर्णता होती है जो पहले कभी नहीं हुई। तो उसका कोई मापदंड पीछे से नहीं तौला जा सकता।

जीसस यहूदी घर में पैदा हुए, यहूदी जीवन भर रहे; लेकिन यहूदियों ने इनकार कर दिया। क्योंकि यहूदी कहते कि तुम अब्राहम जैसे हो? इजेकिल जैसे हो? तुम किस जैसे हो? वे अपने पुराने पैगंबरों का नाम लेते। और जीसस बिल्कुल भिन्न थे। और जीसस बिल्कुल नए थे। वैसा फूल पहले कभी हुआ नहीं था, क्योंकि वैसी परिस्थिति कभी न थी। यह सुबह और थी। यह हवा और थी। यह वक्त और था। एक नई पूर्णता खिली थी। लेकिन यहूदी पंडित अपने शास्त्रों में खोज रहे थे कि इस तरह की पूर्णता का मेल बैठता है या नहीं।

और जीसस ने बड़ी अनूठी बात कह दी। जब उनसे पूछा गया कि क्या तुम अब्राहम जैसे हो? पुराना, पुरानी याददाश्त, पुराना पैगंबर। तो जीसस ने कहा, बिफोर अब्राहम वा.ज, आई एम। अब्राहम के पहले भी मैं हूं। अखर गई बात यहूदियों को। यह तो बड़ा अहंकारी मालूम होता है कि अब्राहम के पहले भी और यह कहता है मैं हूं।

वे समझ न पाए। जीसस यह कह रहे हैं कि मैं समय के बाहर हूं।

जब भी कोई चेतना परिपूर्णता को उपलब्ध होती है, समय के बाहर हो जाती है। समय तैयार करता है, समय निर्मित करता है, समय पूर्णता के करीब लाता है, निन्यानबे डिग्री तक लाता है; सौ डिग्री पर तत्क्षण चेतना समय के बाहर हो जाती है। वे यह कह रहे हैं कि अब्राहम से भी पहले मैं हूं। कोई अतीत नहीं मेरे लिए अब, कोई भविष्य नहीं मेरे लिए अब; अब मैं शाश्वत हूं। यह घोषणा यहूदी न समझ पाए। यहूदियों ने जीसस को सूली दी।

ऐसा सदा हुआ है; ऐसा सदा होगा। बुद्ध को हिंदू स्वीकार न कर पाए। हिंदू घर में पैदा हुए, हिंदू घर में बड़े हुए, और बुद्ध से बड़ा कोई हिंदू नहीं हुआ, और हिंदू स्वीकार न कर पाए। क्योंकि न राम से उनकी शक्ल मिलती है, न कृष्ण से। कृष्ण नाच रहे हैं गोपियों के साथ, और बुद्ध को राग-रंग बिल्कुल पसंद नहीं। नाच का बुद्ध से क्या संबंध? तुम बुद्ध के ओंठों पर बांसुरी रखो, वे बड़े बेहूदे मालूम पड़ेंगे। और मोर-मुकुट बांध दो तो मजाक हो जाएगी। वे बोधिवृक्ष के नीचे शांत, बिना मोर-मुकुट के ही सुंदर मालूम पड़ते हैं।

कृष्ण को तुम बिठाल दो बोधिवृक्ष के नीचे, वे ऐसे लगेंगे जैसे किसी बच्चे को जबरदस्ती बिठाल दिया है। उनको बांसुरी जरूरी है। रूप परिस्थिति से मिलता है। वह मोर-मुकुट कृष्ण पर बहुत शोभा देता है, लेकिन बस उन पर ही शोभा देता है। कोई और करेगा तो सर्कस का जोकर मालूम पड़ेगा। कोई और करेगा तो लोग हंसेंगे। लेकिन कृष्ण के साथ सारा अस्तित्व राजी था वैसे। वह उस क्षण की पूर्णता थी। वह क्षण अब कभी न आएगा; वह पूर्णता अब कभी न आएगी।

परमात्मा चुकता नहीं अपने कृत्य से, वह रोज नए को निर्मित किए चला जाता है। वह पुराने को दोहराता नहीं। पुराने को तो वही दोहराता है जिसकी प्रतिभा कम हो। परमात्मा की प्रतिभा अनंत है, अस्तित्व की संभावना अनंत है। क्या जरूरत है दोहराने की?

तो बुद्ध न तो राम जैसे लगे कि लिए खड़े हैं धनुष-बाण।

तुलसीदास राम के भक्त हैं। कहते हैं, मथुरा में वे कृष्ण के मंदिर में गए तो झुके नहीं। क्योंकि उन्होंने कहा कि तब तक न झुकूंगा, जब तक धनुष-बाण हाथ में न लोगे। तुलसीदास जैसा आदमी भी कृष्ण के सामने नहीं झुक सकता, क्योंकि उसका अपना एक रूप है धारणा का, अपना एक आदर्श है। कहा कि तुलसी का माथा न झुकेगा

तब तक, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे। और कहानी है कि कहती है कि फिर कृष्ण ने धनुष-बाण हाथ लिए, तब तुलसी का माथा झुका।

तो माथा झुकता है तब जब तुम वर्तमान में अतीत की पुनरुक्ति देखो, नहीं तो नहीं झुकता। और अतीत की कोई पुनरुक्ति नहीं होती। यह कहानी झूठ है। कृष्ण भूल कर भी हाथ में धनुष-बाण नहीं ले सकते; वे जंचेंगे ही नहीं। वह बात मौजू नहीं है। और अगर तुलसीदास को दिखा होगा तो वह उनके मन का ही भ्रम रहा होगा। अक्सर प्रेमी भ्रम को देख लेते हैं। अगर तुम किसी के प्रेम में दीवाने हो, कोई दूसरी स्त्री निकलती रास्ते से, एक क्षण को भ्रम हो जाता है कि वही आ रही है, तुम्हारी प्रेयसी आ रही है। ऐसे ही कोई भ्रम हुआ होगा तुलसी को। धनुष-बाण के प्रेमी थे, राम के प्रेमी थे; प्रेम में आंखें अंधी हो जाती हैं, देख लिया होगा क्षण भर को। लेकिन क्या जरूरत पड़ी कृष्ण को धनुष-बाण लेने की?

लेकिन हिंदू बुद्ध को स्वीकार न कर सके। और बुद्ध का अस्वीकार इतना प्रगाढ़ था कि यहूदियों ने भी इतना बड़ा अस्वीकार जीसस का नहीं किया। उन्होंने कम से कम सूली तो लगा दी। सूली लगाने से जीसस की जड़ें जम गईं। यहूदियों को बड़ी मात्रा में ईसाई हो जाना पड़ा। क्योंकि सूली ने एक घाव बना दिया। हिंदुओं ने ज्यादा होशियारी की। वे ज्यादा चालाक कौम हैं, ज्यादा पुरानी कौम हैं। उन्होंने क्या चालाकी की?

हिंदुओं ने एक कथा गढ़ी। और कथा यह है कि परमात्मा ने नरक बनाया, स्वर्ग बनाया। नरक में बिठाया शैतान को। लेकिन सदियां बीत गईं, कोई पाप ही न करे, कोई नरक ही न जाए। शैतान थक गया। उसने परमात्मा से कहा कि मिटाओ यह नरक और मुझे छुटकारा दो। यह ड्यूटी किस काम की है? यहां बैठे-बैठे क्या सार? कोई आता नहीं। तो परमात्मा ने कहा, तू घबड़ा मत। मैं बुद्ध को पैदा करूंगा। वह अवतारी पुरुष होगा, लेकिन गलत बातें लोगों को समझाएगा; लोगों को भ्रष्ट कर देगा। जब लोग भ्रष्ट हो जाएंगे, अपने आप नरक आने लगेंगे। तू घबड़ा मत।

हिंदू ज्यादा कुशल हैं, ज्यादा चालाक हैं। सूली न दी, तरकीब लगाई। बुद्ध को मान भी लिया, क्योंकि बुद्ध मानने जैसे थे। तो अवतार भी स्वीकार कर लिया; कहा कि दसवां अवतार हैं। लेकिन भ्रष्ट करने को पैदा हुए हैं। इसलिए स्वीकार मत करना, बचना। और इसका परिणाम इतना घातक हुआ कि बुद्ध और बुद्ध का विचार भारत से तिरोहित हो गया। पूरा एशिया डूब गया बुद्ध के प्रेम में, सिर्फ भारत वंचित रह गया। बादल यहां पैदा हुआ; बरसा कहीं और। हमारे खेत सूखे पड़े रह गए।

होने का कारण है। और कारण यह है कि जिस धर्म में कोई तीर्थंकर, कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट पैदा होता है, उस धर्म की अपनी मान्यता होती है। उस मान्यता से वह मेल नहीं खाता, क्योंकि हर तीर्थंकर नए कोंपल की तरह नया है, नई दूब की ओस की तरह नया है। उसका नयापन अप्रतिम है, आत्यंतिक है। वह बासा और पुराना नहीं है। उसे वर्तमान परिस्थितियां पूर्ण बनाती हैं। वह बिल्कुल नया फूल है जो पहले कभी नहीं खिला था।

सदगुण एक फूल है। जब तुममें खिलता है तो न तो शास्त्रों में उसका उल्लेख है, न समाज की परंपराओं में उसका पता है। तुम एक बिल्कुल नए फूल की तरह खिलते हो। वह सदा नया है, कुंआरा है। सदगुण सदा कुंआरा है; नीति सदा बासी है। क्योंकि नीति दूसरे लोगों ने सिखाई है, और सदगुण तुम्हारे भीतर आविर्भूत होता है। नीति ऐसी है जैसे तुम किसी बच्चे को गोदी ले लो। कितना ही लाड़-प्यार करो, कितना ही अपने को समझाओ कि अपना है, लेकिन हर समझाने में ही पता चलता रहता है कि अपना नहीं है। और फिर एक बच्चा तुम्हारे घर पैदा होता है, तुम्हारी ही कोख से जन्मता है, तुम्हारी ही मांस-मज्जा को लेकर आता है। तब बात और हो जाती है; समझाने की कोई जरूरत नहीं रहती।

नीति गोद लिए गए बच्चे की भांति है, और धर्म, धर्म अपनी ही जीवन की ऊर्जा से पैदा हुआ है। और जब तक तुम धार्मिक न हो जाओ तब तक तुम जीवन का जो परम आनंद है, वह न जान पाओगे। क्योंकि वह तुमसे ही पैदा हो तो ही तुम्हारा होगा। इसे तुम कसौटी की तरह अपने हृदय में रख लो कि जो तुमसे पैदा हो वही तुम्हारा है; जो तुमसे पैदा न हुआ हो, किसी और ने दिया हो, वह उधार है। उधार का कोई भी अस्तित्व में मूल्य नहीं है। तुम धोखा दे रहे हो। गोद लेकर तुम अपने को धोखा दे रहे हो।

"इसलिए संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं और तेह की प्रशंसा।"

लाओत्से कहता है, चूंकि सदगुण धर्म से पैदा होता है, भीतर के स्वभाव से पैदा होता है, इसलिए संसार में सभी धर्म की पूजा करते हैं। जब भी बुद्ध जैसा व्यक्ति तुम्हारे बीच खड़ा हो जाए तो तुम्हें माथा झुकाना थोड़े ही पड़ता है, वह झुकता है। वह बुद्ध के होने में ही छिपा है। समादर तुमसे बहने लगता है। उसके लिए तुम्हें कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। वह ऐसे ही बहता है, जैसे पानी गड्ढे की तरफ बहता है। वह स्वभाव है--कि प्रशंसा, पूजा सदगुण की तरफ बहती है।

और उस सदगुण से पैदा हुए चरित्र की एक गहरी प्रशंसा, एक गीत, एक गूंज तुममें छूट जाती है। जहां भी तुम देखते हो... । तुम साधारण चरित्र की भी प्रशंसा करते हो जो कि नकली है। तुम खोटे सिक्कों को भी सम्हाल कर रख लेते हो, यही सोच कर कि वे असली हैं। जब तुम्हें असली सिक्का मिलेगा, जब तुम किसी असली सिक्के को पहचान पाओगे, जब तुम्हारी आंखों की धुंध हटेगी, तुम्हारा पीलिया हटेगा, और तुम जीवन का वास्तविक रूप देख पाओगे, उस दिन तुम्हारे भीतर जो प्रशंसा पैदा होगी चरित्र की और तुम्हारे भीतर जो पूजा पैदा होगी सदगुण की, उसे तुम इससे ही सोच सकते हो कि नकली चीजें भी पूजी जा रही हैं।

नकली की पूजा ही इसलिए होती है कि असली में कोई पूजा है। नकली धोखा क्यों दे पाता है? क्योंकि वह असली की नकल कर रहा है, वह काफी दूर तक असली का ढंग जाहिर कर रहा है। इसीलिए तो तुम पूजा करते हो। चोर भी, बेईमान भी ईमानदारी का सहारा लेता है। और तुम्हें झूठ भी बोलना हो तो तुम्हें सच बोलने का आभास पैदा करना पड़ता है। बेईमान को भी पहले ईमानदारी की हवा अपने चारों तरफ पैदा करनी पड़ती है। अगर तुम्हें किसी आदमी को धोखा देना हो तो तुम उससे एक रुपया उधार मांगते हो, लौटा देते हो; भरोसा आ गया। दस रुपया मांगते हो, लौटा देते हो; भरोसा और बढ़ गया। फिर हजार रुपए लेकर चंपत हो जाते हो। अगर ठीक से समझो तो हुआ क्या? तुम्हें बेईमानी भी करनी हो तो भी तुम्हें ईमानदारी करनी पड़ती है। बेईमानी के पास अपने पैर नहीं हैं, ईमानदारी के पैर उधार लेने पड़ते हैं। झूठ के पास अपना प्राण नहीं है, उसे भी सच का प्राण ही लेना पड़ता है। इससे सिर्फ एक ही बात पता चलती है कि सत्य के प्रति कोई सहज पूजा है और ईमानदारी के प्रति कोई सहज आकर्षण है। तभी तो बेईमान भी लाभ उठा लेता है।

"संसार की सभी चीजें ताओ की पूजा करती हैं, तेह की प्रशंसा। ताओ पूजित है, तेह प्रशंसित।"

धर्म की पूजा है, चरित्र की प्रशंसा।

"और ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।"

यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। ऐसा अपने आप है, ऐसा कोई करवा नहीं रहा है। शास्त्रों में कहा है, गुरु का समादर। मैं एक विश्वविद्यालय में मेहमान था। और वहां विश्वविद्यालय के अध्यापकों की एक छोटी गोष्ठी थी। और जैसा कि अध्यापकों को सारे संसार में एक ही चिंता है अब कि विद्यार्थियों में उनका सम्मान खो गया है, उनको भी चिंता थी। वह बात उठ गई कि ऐसा क्यों हो रहा है कि विद्यार्थी क्यों पूजा नहीं देते? क्यों आदर नहीं

देते? और भारत जैसे मुल्क में, जहां कि हजारों साल की परंपरा है गुरु को भगवान मानने की! तो वे सभी दोष दे रहे थे कि कुछ दोष वर्तमान समय का, परिस्थितियों का; विद्यार्थियों का चरित्र हीन हो गया।

लेकिन, मैं सुनता रहा और हैरान हुआ, किसी ने भी यह न कहा कि अब गुरु गुरु जैसा नहीं है। शास्त्र में जो कहा है कि गुरु को पूजा मिलती है, वह कोई आदेश थोड़े ही है। जब भी कोई गुरु होता है तो पूजा मिलती ही है। जब न मिलती हो तो समझ लेना चाहिए गुरु वहां नहीं है। यह सीधी सी बात है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। इसमें हजार कारण खोजने की कोई जरूरत नहीं है।

शिक्षक कोई गुरु नहीं है। वह शिक्षा का धंधा कर रहा है। वह वैसे ही दुकानदार है जैसे और दुकानदार हैं। वह कुछ बेच रहा है। ठीक है। और लोग पैसा देकर ले रहे हैं। खत्म हो गई बात। अब आदर का और क्या सवाल है? विद्यार्थी फीस चुका रहा है, शिक्षक पढ़ा रहा है। कोई आंतरिक नाता नहीं है। गुरु है नहीं वहां, इसलिए श्रद्धा उठती नहीं। जब कहीं गुरु हो, श्रद्धा अपने आप उठती है। जैसे पतिंगा जाता है प्रकाश की तरफ भागा हुआ ऐसे ही गुरु की तरफ श्रद्धा जाती है भागी हुई।

ऐसा अपने आप है। यह स्वभाव का गुणधर्म है। जैसे सौंदर्य की तरफ वासना जगती है; कोई जगाता है? कोई आज्ञा देता है? कोई प्रेसिडेंट को अधिनियम बनाना पड़ता है? राष्ट्रपति को घोषणा करनी पड़ती है कि अब आज से पक्का कर दिया गया कि जब भी कोई सुंदर व्यक्ति को देखे तो वासना से भर जाए, और जो न भरेगा वह दंडित किया जाएगा।

कोई जरूरत नहीं है। ऐसा अपने आप है कि सुंदर की तरफ मन आकर्षित होता है। तुम कितना ही दबाओ, तुम कितना ही आंख छिपाओ, तुम्हारे आंख छिपाने में भी इसी बात का पता चलता है। तुम कितनी ही आंख बंद करो, आंख बंद करने में उसी की ही खबर मिलती है। सौंदर्य की तरफ वासना दौड़ती है; सत्य की तरफ श्रद्धा दौड़ती है; सदगुण की तरफ पूजा दौड़ती है। ऐसा अपने आप है। ऐसा कोई परमात्मा नियंता की तरह बैठा हुआ नहीं है जो आज्ञा दे रहा है कि ऐसा करो, ऐसा मत करो।

इस संसार में आज्ञा है ही नहीं। तुम परम स्वतंत्र हो। लेकिन इस स्वतंत्रता में भी कुछ नियम हैं। वे स्वतंत्रता के ही नियम हैं; उनसे तुम परतंत्र नहीं हो। वे स्वतंत्रता का स्वभाव हैं।

"ऐसा अपने आप है, किसी के हुक्म से नहीं।"

लाओत्से किसी ईश्वर में नहीं मानता है, कि जो दुनिया को चला रहा है। तुम थोड़ा सोचो। अगर ईश्वर दुनिया को चला रहा हो तो या तो कब का पागल हो गया होता, या कभी का आत्मघात कर लिया होता, या कभी का भाग गया होता इस दुनिया को छोड़ कर कहीं हिमालय--अगर हो अस्तित्व में कोई--संन्यासी हो गया होता। गृहस्थ भाग जाते हैं। एक गृहस्थी काफी थका देती है। यह पूरे संसार की गृहस्थी कोई चला रहा हो, तुम सोच सकते हो। नहीं, कोई व्यक्ति नहीं है जो चला रहा है। अस्तित्व अपने से चल रहा है, किसी की आज्ञा से नहीं। यह अस्तित्व का पूरा होना ही परमात्मा है; यहां कोई व्यक्ति की तरह बैठा हुआ नहीं है।

"ताओ उन्हें जन्म देता है--सदगुणों को--चरित्र, तेह उनका पालन करता है, उन्हें बड़ा करता है, विकास देता है, आश्रय देता है, शांति से रहने की जगह देता है।"

सदगुण का जन्म तो होता है ताओ में, फिर विकास, सुविधा विकास की, अवकाश, स्थान चरित्र देता है। इसलिए एक बात ख्याल रखना। जो भी तुम्हारे ध्यान में पैदा हो उसका तुम रस ही मत लेना, उसे जीवन में भी लाना। उसका रस लेना खूब गहरा है, लेकिन काफी नहीं है। क्योंकि वह खो जा सकता है।

तीन तरह की स्थितियां हैं साधक के लिए। एक तो स्थिति है कि तुम दूर से देखते हो हिमालय के शिखर को, हिमाच्छादित। बादल हट गए हैं, सुबह सूरज निकला है, तुम हजारों मील दूर से देखते हो हिमाच्छादित शिखर को। देख कर भी एक शीतलता मन में छा जाती है; हृदय आनंदित, उत्फुल्लित हो जाता है। एक पुकार मच जाती है और पास जाने की। लेकिन इसको तुम सब कुछ मत समझ लेना। तुम यहीं मत बैठ जाना। यह सिर्फ झलक है। यह पहली समाधि है--झलक।

यहूदी फकीर झुसिया के संबंध में एक कथा है। एक दिन अपने शिष्यों के साथ बैठा था। अचानक उठा और एक शिष्य को हाथ पकड़ कर खिड़की के पास ले गया और कहा कि देख! शिष्य ने खिड़की के बाहर देखा। चांद की रात थी, पूरे चांद की रात। बड़ी शांत, स्निग्ध रात्रि थी। बड़ा नीरव संगीत छाया था। सब चुप था। और गुरु ने इतने जोर से कहा कि देख कि उस कहने में विचार की प्रक्रिया बंद हो गई। उसने गौर से देखा कि क्या मामला है? ऐसा तो कभी झुसिया ने किया नहीं। देखा और तब उसे याद आया, विचार एक क्षण को रुक गए। उस क्षण में एक अपरिसीम सौंदर्य प्रकट हुआ। वह घुटने टेक कर गुरु के चरणों में सिर रख दिया, रोने लगा, और कहा कि जो आज देखा है वह कब मेरा जीवन बन पाएगा? कितने जन्म लगेंगे?

झलक जीवन नहीं है; झलक से स्वाद जग जाएगा। लेकिन उसे तुम काफी मत समझ लेना। ध्यान के रस में डूब मत जाना। ध्यान का रस झलक है, उसे आचरण में सम्हालना, जड़ें देना, जगह बनाना, उसको फैलाना। जैसे-जैसे तुम फैलाओगे, झलक बदलने लगेगी।

तब एक दूसरी अवस्था है, कि एक आदमी गौरीशंकर पर पहुंच गया। अब वह वहीं बैठा है जहां परम सौंदर्य है; उसके बीच में बैठा है। लेकिन यह भी अंत नहीं है। अभी भी गिरना हो सकता है। अभी भी लौट सकता है। अभी लौटने का उपाय है। जिन पैरों से आया है वे ही वापस ले जा सकते हैं। जिस मन से यहां तक आ गया है उसी मन से वापस भी लौट सकता है। सीढ़ी लगी है।

फिर एक तीसरी अवस्था है, यह भी काफी नहीं हैः जब वह व्यक्ति स्वयं हिम का शिखर हो गया। एक सत्य की झलक, दूसरा सत्य का अनुभव, और तीसरा सत्य के साथ एक हो जाना। बस तीसरे को लक्ष्य रखना। उसके बाद फिर लौटना नहीं है। क्योंकि कोई बचा नहीं जो लौट सके। सीढ़ी गिर गई; सीढ़ी पर चढ़ने वाला ही खो गया। यह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है; अब यहां से कोई वापस नहीं लौटता।

ध्यान में पहले झलक मिलती है स्वभाव की। उस स्वभाव को तुम काफी मत समझ लेना। बहुत वहां रुक जाते हैं। समझ लेते हैं मंजिल आ गई; पड़ाव बना लेते हैं; वहीं डेरा-डंगर डाल देते हैं। वह काफी नहीं है। सुखद है, उसका स्वाद लेना। और उसे आचरण में ढालना। अगर स्वभाव में उतर कर प्रेम की झलक मिली हो तो अब आचरण में प्रेम को लाना। अगर स्वभाव में शांति की झलक मिली हो तो अब आचरण में शांति को लाना। उठते-बैठते, बाजार में, दुकान पर काम करते भी उस शांति को सम्हालना। वह खो न जाए। वह तुम्हारा कृत्य भी बने, तो मजबूत होगा। अगर तुमने, जो तुमने झलक देखी, उसको आचरण बना लिया तो तुम दूसरी घटना के लिए तैयार हो गए। तुम अब सत्य का पूरा अनुभव कर सकोगे।

और जब सत्य का तुम्हें अनुभव होगा तब सत्य के अनुभव के कुछ अलग गुण हैंः करुणा, अहोभाव, एक सदा अकारण आनंदित रहना, एक्सटैसी। अब उसको आचरण में लाना। सदा आनंदित रहना। चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, चाहे हानि हो चाहे लाभ, चाहे सफलता चाहे असफलता, तुम्हारा आनंद खंडित न हो। जब तुम्हारे आचरण में आनंद प्रगाढ़ हो जाएगा, करुणा सघन हो जाएगी, तब तुम तीसरे के योग्य हो जाओगे। और जब तीसरे के कोई योग्य हो जाता है तो उसके आचरण को ही हम ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ब्रह्मचर्य का अर्थ हैः ब्रह्म जैसा आचरण, ब्रह्म जैसी चर्या। ब्रह्मचर्य का अर्थ सेलीबेसी से जरा भी नहीं है। वह तो उसका एक अंग मात्र है, छोटा सा, क्षुद्र अंग है। क्योंकि उसके जीवन से वासना खो जाती है, कामवासना खो जाती है। और उसका सारा जीवन ब्रह्मचर्य, ब्रह्म जैसी चर्या का हो जाता है। वह इस पृथ्वी पर एक ईश्वर जैसा है--एक बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट। वह एक अवतार है, तीर्थंकर है। वह परमात्मा है। अब उसके व्यवहार में सारी मनुष्यता खो गई। वह आखिरी शिखर है। जब तुम गौरीशंकर ही हो गए। अब कोई लौटना न हो सकेगा।

"यह उन्हें जन्म देता है, और उन पर स्वामित्व नहीं करता।"

ये भीतर के कुछ गुप्त रहस्य, जो साधक के लिए परम उपयोगी हैं। जन्म तो ताओ से होता है, स्वभाव से होता है, लेकिन उन पर स्वामित्व नहीं करता, मालकियत नहीं करता। और इसलिए कई बार तुम चूक जा सकते हो। क्योंकि भीतर तुम जो भी पाओगे, अगर तुमने न सम्हाला, तो जहां से पैदा हुआ है वह स्रोत आग्रह नहीं करेगा सम्हालने का। वह तुम्हें दबाएगा नहीं कि करो ऐसा। कोई दबाव नहीं है भीतर। स्वभाव परम स्वतंत्रता है। वह तुम्हें दिखाएगा, लेकिन कोड़ा नहीं उठाएगा कि चलो! इशारा करेगा, लेकिन इशारा परोक्ष होगा। समझा तो समझा, नहीं तो चूक गए। सीधे-सीधे आज्ञा नहीं देगा। क्योंकि सीधी आज्ञा हिंसा है। और स्वभाव में कोई हिंसा नहीं हो सकती। वह तुम्हें भला बनाने की कोशिश भी नहीं करेगा, क्योंकि सब कोशिश जबरदस्ती है। भला बनाने की कोशिश भी जबरदस्ती है। इसलिए अगर तुम न सम्हले तो तुम्हारे हाथ में है बात।

स्वभाव से रोशनी मिलेगी; रोशनी लेकर चलना तुम्हें है। जहां भी तुम चलोगे, रोशनी तुम्हें प्रकट कर देगी। लेकिन रोशनी यह न कहेगी कि अंधेरे में मत जाओ, गलत जगह पर मत जाओ, सांप-बिच्छू हैं वहां मत जाओ। रोशनी कुछ न कहेगी। रोशनी तो तुम जहां जाओगे वहीं जो भी है प्रकट कर देगी। रोशनी आदेश नहीं है। और तुम्हारी अगर सारी जिंदगी आदेश पर बनी हो, कि तुम सदा सुनते रहे हो कि कोई बताए, यह करो, यह मत करो, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। तो तुम चूक ही जाओगे।

इसलिए लाओत्से कहता है, ध्यान रखना, "यह उन्हें जन्म देता है, पर उन पर स्वामित्व नहीं करता। यह सहायता करता है, पर उन्हें अधिकृत नहीं करता।"

सहायता पूरी मिलेगी, लेकिन तुम्हारी मालकियत को जरा भी न छुआ जाएगा। तुम्हारी स्वतंत्रता पर कोई बाधा न डाली जाएगी। तुम चाहो तो लौट सकते हो विपरीत, तुम्हें हाथ पकड़ कर प्रकाश भीतर का रोकेगा नहीं कि मत जाओ। कुछ भी न कहेगा।

"श्रेष्ठ है... ।"

यह भीतर की जो प्रतीति है, परम श्रेष्ठ है।

"पर नियंत्रण नहीं करता।"

तुम्हें कंट्रोल नहीं करेगा।

"यही है रहस्यमय सदगुण।"

सदगुण का जन्म स्वभाव में; चरित्र में पालन, और बिना किसी आग्रह के, न कोई दंड, न कोई पुरस्कार। वहां कोई पावलफ नहीं है, कोई कनफ्यूशियस नहीं है। वहां पावलफ और कनफ्यूशियस पहुंच ही नहीं पाए। और इसीलिए तो कनफ्यूशियस घबड़ा गया लाओत्से से मिल कर, डर गया। क्योंकि वह तो नीति-नियम वाला आदमी है, मर्यादा वाला आदमी है। और ये बातें तो बड़ी खतरनाक हैं कि भीतर से लो अपना आदेश; मत सुनो शास्त्र की, मत सुनो परंपरा की, मत सुनो समाज की; सुनो अपने भीतर के स्वर की।

कनफ्यूशियस डर गया, क्योंकि उसने कभी भीतर का स्वर सुना नहीं। वह तो एक ही बात जानता है कि अगर बाहर से नियंत्रण न किया गया तो आदमी पशु हो जाएगा। आदमी आदमी बनाया है बाहर के सहारे लगा कर। तुम्हें कितनी बैसाखियां लगी हैं चारों तरफ से; उसी से तुम आदमी हो। ऐसा कनफ्यूशियस का ख्याल है। और सब तरफ से हथकड़ी डाली है, इसलिए तुम आदमी हो। अगर तुम्हारी जरा हथकड़ी छोड़ दी तो तुम खतरनाक हो। और लाओत्से कहता है, परम स्वतंत्रता, यही सदगुण की रहस्यमयता है।

जब कनफ्यूशियस वापस लौटा, उसके शिष्यों ने पूछा, क्या हुआ? तो कनफ्यूशियस ने कहा, भूल कर इस आदमी के पास मत जाना। तुमने जंगली जानवर देखे होंगे, लेकिन उनमें इतना खतरा नहीं है। शेर, सिंह कोई इतने खतरनाक नहीं हैं। चीन में एक आकाश में उड़ने वाले अजगर की पुराणकथा है, जो कहीं पाया नहीं जाता, सिर्फ पौराणिक है। तो कनफ्यूशियस ने कहा, इस आदमी के संबंध में सोचता हूं तो ऐसा लगता है, यही है वह आकाश में उड़ने वाला अजगर। तुम इसकी छाया से बचना। क्योंकि यह आदमी जगत में अराजकता ला देगा।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यही आदमी जगत में व्यवस्था ला सकता है। और अब तक नहीं सुनी गई है इसकी बात, इसलिए जगत में अराजकता है। कनफ्यूशियस की काफी सुन ली गई। नियंत्रण बहुत किया जा चुका और आदमी के जीवन में कोई क्रांति नहीं घटती, कोई रोशनी नहीं आती, कोई आनंद नहीं प्रकट होता, और आदमी वहीं के वहीं बना रहता है जहां था।

लेकिन इसका अनुशासन दूसरे तरह का है। ऊपर से कोई देखेगा तो डरेगा। इसका अनुशासन ध्यान का अनुशासन है, चरित्र का नहीं। इसका अनुशासन भीतर से जन्मता है और बाहर की तरफ फैलता है। जैसे हम एक पत्थर फेंकते हैं झील में, लहरें पैदा होती हैं पत्थर के पास, और फैलती चली जाती हैं। ऐसे ही तुम जब अपने को भीतर की चेतना में फेंकोगे--वही ध्यान है--तब उस झील में, भीतर की झील में, जो तुम्हारे चारों तरफ फैली है और तुम्हारे भीतर भी छिपी है, जिसका नाम परमात्मा है, उस झील में लहरें उठेंगी अनंत और वे तुम्हारे चारों तरफ फैलती जाएंगी। वह तुम्हारा चरित्र है।

ताओ है झील, तेह है उसमें उठी लहरें। तुम ध्यान में गहरे जाना। जितने गहरे जाओगे उतना ही एक नया अनुशासन पैदा होगा जो तुम्हारे भीतर से ही आता है। और न तो उसमें कोई नियंत्रण है, न कोई कारागृह है, न कोई दंड है, न कोई स्वर्ग-नरक का भय और प्रलोभन है। और उस सदगुण की पूजा सहज ही शुरू हो जाती है। ऐसा स्वभाव है। ऐसा किसी की आज्ञा से नहीं होता, ऐसा अपने आप होता है।

आज इतना ही।

नब्बेवां प्रवचन

पुनः अपने मूल स्रोत से जुड़ो

Chapter 52

Stealing The Absolute

There was a beginning of the universe,
Which may be regarded as the Mother of Universe.
From the Mother, we may know her sons.
After knowing the sons, keep to the Mother.
Thus one's whole life may be preserved from harm.
Stop its apertures, close its doors,
And one"s whole life is without toil.
Open its apertures, be busy about its affairs,
And one"s whole life is beyond redemption.
He who can see the small is clear-sighted;
He who stays by gentility is strong.
Use the light, and return to clear-sightedness—
Thus cause not yourself later distress.
-- This is to rest in the Absolute.

अध्याय 52

परम की चोरी

ब्रह्मांड का एक आदि था, जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है।
माता से हम उसके पुत्रों को जान सकते हैं।
पुत्रों को जान कर, माता से जुड़े रहो;
इस प्रकार व्यक्ति का पूरा जीवन हानि से बचाया जा सकता है।
उसके छिद्रों को भर दो, उसके द्वारों को बंद करो,
और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम-मुक्त हो जाता है।
उसके छिद्रों को खुला छोड़ दो, उसके कारोबार में व्यस्त रहो,

और फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

जो लघु को देख सके, वह स्पष्ट दृष्टि वाला है;

जो कुलीनता के साथ जीता है, वह बलवान है।

प्रकाश को काम में लाओ, और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो।

इस प्रकार अपने को बाद में आने वाली पीड़ा से बचा सकते हो।

-- इसे ही परम में विश्राम करना कहते हैं।

लाओत्से को चोरी का प्रतीक बहुत प्रिय है। इस प्रतीक को थोड़ा हम समझ लें, फिर सूत्र में प्रवेश करें।

सूफी फकीर हुआ जुन्नैद। वह एक गांव से गुजरता था। और गांव के काजी ने एक चोर को आजीवन कारावास की सजा सुनाई थी। गांव का काजी जुन्नैद का भक्त था। खबर सुन कर जुन्नैद अदालत गया और काजी से बड़ी प्रार्थना की कि इस आदमी को छोड़ दो; कितना ही बड़ा पाप हो, लेकिन पूरा जीवन इसका नष्ट न करो। और अभी यह जवान है, शायद सुधर जाए। काजी ने चोर को क्षमा कर दिया।

चोर को अदालत के बाहर लेकर जुन्नैद निकला और उस चोर से कहा कि अब बहुत हो गया, अब सम्हलो, अब चोरी बंद करो। और जीवन बचाया है तो इसीलिए मैंने कि तुम्हारे जीवन में अब प्रार्थना और परमात्मा का जन्म हो। उस चोर ने कहा, क्यों करूं बंद चोरी? एक बार असफल हुए तो क्या सदा असफल होते रहेंगे? और जीवन मिला है तो एक बार प्रयास करना और जरूरी है।

वे दिन जुन्नैद के जीवन में बड़ी कठिनाई के दिन थे। और वह बड़े संकट से गुजर रहा था। वर्षों से खोज रहा था परमात्मा को, और उस सुबह ही उसने यह तय किया था कि अब बहुत हो गया; नहीं मिलता, होगा ही नहीं। चोर की यह बात सुन कर जुन्नैद आंख बंद करके वहीं बीच रास्ते पर खड़ा हो गया और उसने सोचा, एक चोर भी कहता है कि जीवन मिला है तो एक प्रयास और। अब तक असफल हुए, लेकिन आगे भी होंगे इसका क्या पक्का है! सफलता संभव है। भविष्य सदा खुला है। मौके का और उपयोग कर लेना जरूरी है। जुन्नैद ने आंखें खोलीं, चोर को कहा, धन्यवाद! और अपने रास्ते पर चलने लगा।

चोर ने कहा, रुको! किस बात का धन्यवाद? जुन्नैद ने कहा, मैं भी उस घड़ी में आ गया था, जहां हताशा मन को पकड़ ली थी। और सोचता था, छोड़ दूं यह प्रयास; न कोई परमात्मा है, न कोई मोक्ष। बहुत हो गया। खोज लिया बहुत, कुछ हाथ न आया। संसार भी गंवा रहा हूं, शक्ति भी खो रहा हूं, जीवन हाथ से जा रहा है, और उसकी कोई खबर नहीं मिलती। लेकिन तूने मेरी हिम्मत जगा दी। और जब एक चोर भी चोरी छोड़ने को राजी नहीं है, क्योंकि एक अवसर और मिला है, इसका उपयोग करना चाहता है, तो अभी मेरे पास भी जीवन है और मैं भी तब तक उपयोग करूंगा जब तक कि आखिरी क्षण बचता है। तू मेरा गुरु है। धन्यवाद!

जब जुन्नैद ज्ञान को उपलब्ध हुआ कोई बीस वर्ष बाद इस घटना के तो उसके शिष्यों ने पूछा, कौन है तुम्हारा गुरु? किसकी कृपा से? तो उसने उस चोर का स्मरण किया। और जुन्नैद ने कहा, परमात्मा को पाना भी चोरी है। और चोर की तरह ही सतत हिम्मत चाहिए--अंधेरे में चलने की, अंधेरी रात में यात्रा करने की। खतरा वहां चोर जैसा ही है। मिले न मिले, कुछ पक्का नहीं है। जीवन खो जाए और न मिले। आजीवन कारावास हो जाए, फांसी लगे, और कोई संपदा हाथ न लगे। चोर जैसे ही हिम्मतवर लोगों का काम है। दूसरे के घर में ऐसे चलना है जैसे अपना हो--रात अंधेरे में। यह संसार दूसरे का घर है, जुन्नैद ने कहा, यह अपना घर नहीं है। और यहां हिम्मत बनाए रखनी है। और अंधेरा हताशा न बन जाए, असफलता गहरी न बैठ पाए। आशा को जगाए

रखना है--आज नहीं तो कल होगा; कल नहीं तो परसों होगा; होकर रहेगा। यह बात कभी टूटे न मन से, यह धागा कभी छूटे न। तो उस चोर ने ही मुझे बचाया। उस दिन तो मैंने तय कर लिया थाः लौट जाऊं संसार में वापस।

लाओत्से को भी चोरी शब्द बड़ा प्रिय है। हिंदुओं ने भी, जिन्होंने भी खोज की है कभी, चोरी शब्द का कहीं न कहीं प्रयोग किया है। हिंदुओं ने तो परमात्मा का एक नाम, हरि, चोरी के कारण ही चुना है। हरि का मतलब है जो हर ले, चुरा ले। हरि का मतलब है चोर, परम चोर। उसने तुम्हें चुरा लिया है। और जब तक तुम उसे न चुरा लो तब तक यात्रा अधूरी है। जैसे उसने तुम्हें चुरा लिया है, जैसे उसने एक दांव खेला है, ऐसा ही तुम्हें भी जवाब देना है। तुम जब तक उसे न चुरा लोगे तब तक तुम हारी बाजी हो। इसलिए हिंदू परमात्मा को हरि कहते हैं।

लाओत्से कहता है, उस परम सत्य को भी चुराना है। क्यों चुराना है? क्योंकि है तो वह हमारे हृदय का हृदय, लेकिन हमसे बहुत दूर पड़ गया है। अपना ही है, लेकिन इतना पराया हो गया है कि अब उसे पाने की कोशिश चोरी ही कही जाएगी। तुमने ही उसे इतना पराया कर दिया है, इतना दूर कर दिया है। अपनी ही संपदा है, लेकिन फासला तुमने इतना कर लिया है कि अब उसे भी पाने के लिए तुम्हें करीब-करीब चोर की हालत से गुजरना पड़ेगा। तुम उसे पूरा गंवा चुके हो, तुम उसे पूरा खो चुके हो। अब फिर से पाने जाओगे। तुम्हारा कोई दावा नहीं रह गया है; तुम्हारी मालकियत कभी की समाप्त हो गई है। तभी तो तुम भिखारी की तरह भटक रहे हो। यह भिखारी अब सम्राट फिर बनना चाहे तो करीब-करीब चोरी की हालत है। क्योंकि साम्राज्य तो कभी का उसका नहीं रहा है। न मालूम अतीत के किन क्षणों में, किन जन्मों में, तुम उसे गंवा दिए हो। फिर से पाना है, फिर से दावा करना है। वह दावा चोर जैसा ही दावा है। और चोर जैसा ही प्रयास है। अंधेरे में टटोलना है; रोशनी अभी है नहीं। रोशनी को धीरे-धीरे निर्मित करना है। और दूसरों को पता न लगे। क्योंकि दूसरों को पता लग जाए तो भी बाधा पड़ जाती है। इसलिए चोरी जैसा है।

सूफी कहते हैं कि तुम जब प्रार्थना करो तो रात के गहन अंधकार में, जब तुम्हारे बच्चे और तुम्हारी पत्नी भी सो गई हो तब करना। क्यों? क्योंकि किसी को पता चल जाए कि तुम प्रार्थना कर रहे हो, इससे हर्जा नहीं है; लेकिन किसी को यह पता चल जाए कि तुम प्रार्थना कर रहे हो, इससे तुम्हें रस पैदा होता है और तुम्हारा अहंकार निर्मित होता है। तब तुम, किसी को पता चले, इसीलिए प्रार्थना करने लगते हो। तब परमात्मा की खोज तो दूर रह जाती है, प्रार्थना भी अहंकार की पुष्टि बन जाती है। लोग जानें कि तुम साधक हो, लोग जानें कि तुम खोजी हो, लोग जानें कि तुम परमात्मा की यात्रा पर निकले हो--यह जो तुम्हारी चेष्टा है, यह चेष्टा ही बाधा बन जाएगी।

जीसस ने कहा है, तुम बाएं हाथ से दो तो तुम्हारे दाएं हाथ को खबर न लगे। तुम दान करो तो पता न चले, तुम पुण्य करो तो पता न चले; तुम्हीं को पता न चले, कानों-कान खबर न हो। देना और भूल जाना।

सूफी कहते हैं, नेकी कर और कुएं में डाल। अच्छा किया और कुएं में डाल दिया। उसको घर मत ले आना। उसको हृदय में मत रख लेना कि मैंने अच्छा किया, कि मैंने पूजा की, कि प्रार्थना की, कि पुण्य किया, कि दान किया, सेवा की। अगर तुम्हारा कर्ता आ गया तो तुमने गंवा दिया; पाया कुछ भी नहीं। तो दूसरे को पता न चले। क्योंकि दूसरे की आंखों में अपनी झलक देख कर तुम्हारा अहंकार बड़ा होता है।

चोरी का काम है, चुपचाप निबटा लेना है। कानों-कान खबर न हो। जब सब सोए हों--और सब सोए हैं--तब किसी की नींद न टूटे, ऐसे चुपचाप निबटा लेना है काम को। इसलिए चोरी जैसा कृत्य है, और बड़ा सम्हल कर करना होगा। चोर को बड़े सम्हल कर चलना पड़ता है।

तुमने कभी देखा नहीं, तुमने कभी सोचा भी नहीं; चोर को तुमने कभी उसकी पूरी महिमा भी नहीं दी, तुम सिर्फ निंदा ही करते रहे हो। अपने ही घर में तुम चलते हो तो टेबल-कुर्सी से टकरा जाते हो--दिन के उजाले में। हाथ से बर्तन छूट जाता है--दिन के उजाले में, भरे होश में। चोर दूसरे के घर में चलता है, जहां के रास्ते उसे पता नहीं, कमरों के द्वार पता नहीं। रात के अंधेरे में चलता है, जरा भी आवाज नहीं होती, आहट नहीं होती; कोई चीज टकराती नहीं। दीवारें तोड़ लेता है, और घर के लोग मजे से घुर्राते रहते हैं, सोये रहते हैं--प्रगाढ़ निद्रा में। बिना रोशनी जलाए खजाने खोज लेता है। तुमने खुद भी गड़ाया हो अपना खजाना तो भी खोदने में बड़ा शोरगुल मचेगा; उसने गड़ाया भी नहीं है। दूसरे के मन और दूसरे की चेतना के नियमों को समझ कर, कहां गड़ाया गया होगा, कैसे गड़ाया गया होगा, चुपचाप सब निबटा लेता है। तुम सोए ही रहते हो, और चोरी हो जाती है। चोर को बड़ी सजगता रखनी पड़ती है, बड़ा होश रखना पड़ता है। जिसको अवेयरनेस, सम्यक बोध कहा है, वह चोर को रखना पड़ता है।

ऐसा हुआ एक बार कि एक चोर एक झेन फकीर के पास गया। झेन फकीर बड़ा प्रसिद्ध फकीर था, लिंची। और चोर ने कहा कि मुझे ध्यान सिखाएं। लिंची को पता भी नहीं कि वह कौन है। लेकिन लिंची ने कहा, ध्यान? ध्यान तू जानता है; तेरी हवा में ध्यान है। तुझे देख कर लगता है, तू मुझे धोखा देने की कोशिश मत कर, तूने ध्यान पहले सीखा है। उस आदमी ने कहा कि आप भ्रांति में पड़ गए हैं और आपको मैं गलत कहूं, यह उचित नहीं। लेकिन ध्यान से मेरा क्या नाता? आप मुझे जानते नहीं हैं; ध्यान मैंने कभी नहीं किया।

लिंची विचार में पड़ गया। उसने आंखें बंद कीं, बहुत खोजा। उसने कहा कि तूने जरूर कुछ न कुछ किया है। तू तलवार चलाना जानता है?

क्योंकि झेन फकीर तलवार के माध्यम से भी ध्यान करवाते हैं। तलवार का खेल ध्यान का खेल है। क्योंकि रत्ती तुम चूके होश कि गए। दूसरा तलवार उठाए, इसके पहले बचाव हो जाना चाहिए। दूसरा वार करे, इसके पहले तैयारी हो जानी चाहिए। बड़ी सजगता चाहिए। और जरा सा फासला नहीं है समय का, तलवार सामने खड़ी है। तो तलवार के माध्यम से ध्यान का जापान में बड़ा प्रयोग किया गया है।

तो तू तलवार चलाना जानता है?

नहीं, मेरा काम ऐसा नहीं, उसमें तलवार की जरूरत नहीं। मेरा कोई नाता नहीं है।

तो तू क्या करता है? लिंची ने पूछा फिर; क्योंकि मैं यह समझ ही नहीं पा रहा हूं। और मेरी भूल कभी नहीं हुई आज तक जीवन में। मैं भलीभांति पहचान सकता हूं कि ध्यान की आभा क्या है। और तेरे चारों तरफ ध्यान का मंडल है।

वह आदमी रोने लगा। उसने कहा कि जरूर कोई भूल हो रही है; जीवन भर न किए हों, लेकिन इस बार हो रही है। मैं एक साधारण चोर हूं। अब मत वह बात उठाएं, उससे मन में ग्लानि उठती है।

लिंची हंसने लगा। उसने कहा, बात साफ हो गई; मैं गलती में नहीं हूं। क्योंकि चोर को ध्यान तो साधना ही पड़ता है। पर तू साधारण चोर नहीं है, मास्टर थीफ। तू बड़ा असाधारण, असाधारण चोर है। और तू मुझसे क्या सीखने आया है? जो तूने चोरी में जाना है उसको ही तू जीवन में उतार ले। जितनी सजगता से तूने चोरी की है उतनी सजगता से और काम भी कर। बस, हल हो जाएगा। सूत्र तुझे मिल गया है; तुझे खबर नहीं है। तेरे पास क्या है उसका तुझे पता नहीं है। जितनी सजगता से दूसरे के घर रात के अंधेरे में पैर उठाता था, श्वास लेता था... ।

श्वास भी चोर जोर से नहीं ले सकता दूसरे के घर में; उसको प्राणायाम साधना होता है। और तुम जानते हो, जब भी तुम कभी ऐसा कोई काम कर रहे हो जिसमें घबड़ाहट होती है तो श्वास ज्यादा हो जाती है। और चोर को श्वास साधनी पड़ती है कि वह ज्यादा न हो जाए, एक लयबद्धता रहे। श्वास का भी पता न चले। खांसता नहीं चोर, खखारता नहीं चोर। तुम्हें पता है कि संन्यासी भी ध्यान करने बैठता है तो खांसी आ जाती है तो नहीं रोक पाता, लेकिन चोर को तो रोकना ही पड़ेगा। क्योंकि खांस दे तो सब बात ही खराब हो गई। कैसा सम्यक! काम गलत है, लेकिन काम करने की जो प्रक्रिया है उसमें होश तो रखना ही पड़ेगा।

लाओत्से को भी बड़ा प्रिय है चोर का प्रतीक। और लाओत्से कहता है, उस परमात्मा को चुराना है; चोर की तरह अंधेरे में चलना है दूसरे के घर में। यह दुनिया पूरा दूसरे का घर है, अपना यहां कुछ भी नहीं। यहां हर जगह संभावना है टकराने की, यहां हर जगह कलह, संघर्ष की। उस संघर्ष से बचना है, कलह से बचना है। यहां हर जगह संभावना है भटक जाने की, क्योंकि अंधेरा है घना। उस भटकाव से बचना है, और एक ऐसे ढंग से चलना है कि अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगे। चोर को धीरे-धीरे अंधेरे में दिखाई पड़ने लगता है।

तुम भी अगर अंधेरे में थोड़े दिन बैठ कर शांत देखने की कोशिश करो तो तुम पाओगे, जैसे-जैसे तुम्हारी कोशिश गहन होती है वैसे-वैसे तुम्हें हलकी-हलकी प्रतीति होने लगती है। क्योंकि कोई अंधकार अंधकार नहीं है; सभी अंधकार प्रकाश के रूप हैं। जिसको हम अंधकार कहते हैं उसको अगर हम ठीक से कहें, वैज्ञानिक भाषा में कहें, आइंस्टीन से पूछ कर कहें, तो हम कहेंगे, वह कम प्रकाश है। सापेक्ष। अंधकार कहना उचित नहीं है; थोड़ा कम प्रकाश। क्योंकि उस अंधेरे में भी बिल्ली देखती है। बिल्ली की आंखें ज्यादा सचेत हैं। अगर तुम कभी बिल्ली की आंखों में देखो तो तुम्हें बहुत बेचैनी मालूम पड़ेगी। इसीलिए तो बिल्ली शैतान का प्रतीक हो गई। बहुत सचेत है। और इसीलिए तो बिल्ली को, जो लोग भी काली विद्याओं में यात्रा करते हैं, बिल्ली उनकी साथी हो गई। अंधेरे में देख सकती है, यह उसकी बड़ी गहन कला है।

और बिल्ली को तुमने कभी चलते देखा? बस चोर भी वैसे ही चलता है। जब बिल्ली चूहे को पकड़ने जाती है तब उसे देखो, चोर भी वैसे ही चलता है, आवाज भी नहीं होती। और जब चोर संपत्ति के करीब पहुंचता है, दूसरे की संपत्ति के, तब वह वैसी ही हालत में सजग होता है जैसे बिल्ली चूहे के छेद के पास बैठी रहती है। जरा भी पता नहीं चलता कि वह है। हलकी थिरकन भी नहीं करती, लेकिन तैयार ऐसी कि ओलंपिक में दौड़ने के लिए जो प्रतियोगी खड़े होते हैं वे भी इतने तैयार नहीं। चूहा निकला नहीं कि वह झपटी नहीं, लेकिन झपट में भी आवाज नहीं होती। दूसरे चूहों को भी पता नहीं चल पाता कि एक चूहा पकड़ा गया है, नहीं तो वे निकलना बंद कर देंगे।

बिल्ली की नींद तुमने देखी? गहन निद्रा में लीन होती है; हो सकता है कोई गहरा सपना देख रही हो; मूंछों को चाटती है, हो सकता है सपने में चूहा खा रही हो; बड़ी गहरी नींद में लीन है। लेकिन जरा सी खटक, चूहे का चलना-हिलना, आंख खुल गई। योगी की निद्रा बिल्ली जैसी होनी चाहिए। और बिल्ली चोरों में चोर है। बिल्ली, जानवरों में वैसा कोई दूसरा चोर नहीं जैसा बिल्ली। चुरा कर ही जीती है; सारा धंधा ही चोरी का है।

स्मरण रहे कि सारा संसार पराया है, दूसरे का घर है। सब तरफ अंधेरा है। लेकिन अगर तुम थोड़ी अपनी दृष्टि को जमाना सीख जाओ--और दृष्टि के जमाने के अतिरिक्त ध्यान क्या है--अगर तुम्हारी दृष्टि थोड़ी थिर होने लगे, तो यह अंधकार धीरे-धीरे-धीरे-धीरे कम अंधकार होता जाता है और इसमें प्रकाश का आविर्भाव हो जाता है। और एक घड़ी ऐसी आती है कि जब तुम्हारा ध्यान पूरी तरह थिर हो जाता है तो अंधकार बचता ही नहीं।

तुम्हारे भीतर का दीया जल उठता है; उस दीए की रोशनी चारों तरफ पड़ने लगती है। और जब तक तुम ऐसी अंतर-ज्योति को उपलब्ध न हो जाओ तब तक परमात्मा की चोरी नहीं हो सकती। इसलिए चोर का प्रतीक है।

दूसरी बात सूत्र के पहले। तुमने कहावत सुनी है कि वृक्ष को जानना हो तो फल से जाना जाता है। हम सभी कहते हैं कि बेटे से बाप की परख हो जाती है। लेकिन लाओत्से ठीक उलटी बात कहता है। वह कहता है, फल को जानना हो तो वृक्ष से जाना जाता है, और बेटे को जानना हो तो बाप को या मां को पहचानना जरूरी है।

साधारण कहावत ठीक है। लेकिन साधारण कहावत साधारण लोगों ने निर्मित की है। और लाओत्से जो कह रहा है वह उलटा दिखाई पड़ता है, लेकिन बहुत गहरा है। जिससे हम पैदा होते हैं उससे हम बड़े नहीं हो सकते। मूल से बड़े नहीं हो सकते; उदगम से बड़े नहीं हो सकते। क्योंकि जिससे हम आते हैं उससे बड़े हम कैसे हो सकते हैं? उससे छोटे हो सकते हैं। और अगर जीवन को साधना बनाएं तो उसके जैसे हो सकते हैं, लेकिन उससे बड़े होने का कोई उपाय नहीं। अगर भटक जाएं तो छोटे हो सकते हैं। इसलिए बेटे से बाप की पूरी खबर नहीं मिल सकती, क्योंकि बाप सदा बेटे से बड़ा है।

इसीलिए तो पूरब के मुल्कों में हम बाप को, मां को इतनी श्रद्धा देते हैं। पश्चिम में वैसी श्रद्धा नहीं है। और कारण उसका है कि पश्चिम में वे सोचते हैं, जो दिखाई पड़ता है स्थूल, वह उनका तर्क है। अगर तुम गंगोत्री पर जाओ तो गंगा बहुत छोटी है, बड़ी सूक्ष्म है। काशी में आकर खूब विराट है। लाओत्से कहता है कि अगर गंगा को पहचानना हो तो गंगोत्री! और हम तो कहेंगे, गंगोत्री में क्या रखा है? जरा सा झरना बहता है; बूंद-बूंद पानी रिसता है। गौमुख से बहती है गंगा गंगोत्री में--कितनी छोटी होगी। वहां क्या रखा है? वृक्ष की जड़ों में क्या रखा है? देखना हो वृक्ष को तो फूलों और फलों में देखो। बड़ा विस्तार है वहां।

माना विस्तार है, लेकिन जो विस्तीर्ण होकर दिखाई पड़ रहा है, वह सब अंकुर में छिपा था, बीज में छिपा था, जड़ में छिपा था। और ध्यान रहे, जो दिखाई पड़ रहा है उससे ज्यादा मूल में हमेशा छिपा है। मूल अनंत है। जो दिखाई पड़ रहा है... । यह वृक्ष सामने खड़ा है, यह पूरा नहीं है। क्योंकि हर वर्ष ये पत्ते गिर जाते हैं; फिर नए पत्ते आ जाते हैं। ऐसा सैकड़ों बार हुआ है, सैकड़ों बार होगा। हर बार हजारों-लाखों बीज लगते हैं, फिर लग जाते हैं। मूल देता ही चला जाता है। गंगा बहती ही चली जाती है। गंगोत्री सूक्ष्म है, छोटी नहीं। और जिसने सूक्ष्म को पहचान लिया वही विस्तार को समझ पाता है। विस्तार दिखाई पड़ता है, स्थूल आंखें उसे देख लेती हैं। मूल दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन मूल में सब छिपा है। और मूल में अनंत संभावनाएं छिपी हैं। मूल में वह भी छिपा है जो हो गया; वह भी छिपा है जो हो रहा है; वह भी छिपा है जो होगा। विस्तार तो एक क्षण का है; मूल शाश्वत है। विस्तार तो अभी है, सीमित है; मूल असीम है। सब आदि और अंत उसमें छिपे हैं।

तो लाओत्से की समस्त प्रक्रियाएं मूल की तरफ जाने वाली हैं। लाओत्से कहता है, मूल उदगम को खोज लो। परमात्मा विकास का आखिरी फूल नहीं है लाओत्से के हिसाब से। परमात्मा सभी चीजों का मूल उदगम है, मूल स्रोत है। जितना तुम स्रोत की तरफ जाओगे उतना वह छोटा होता जाता है। जितना स्रोत की तरफ जाओगे उतना वह अदृश्य होता चला जाता है। और उस अदृश्य को देखना हो तो तुम्हारी दृष्टि को जमाना पड़ेगा। इस दृष्टि से तुम न देख पाओगे; उसके लिए बड़ी सूक्ष्म, पैनी दृष्टि चाहिए। तुम्हारी आंखें थिर चाहिए, तुम्हारा ध्यान अकंप चाहिए। जितना अकंप ध्यान होगा उतना तुम सूक्ष्म को देख सकोगे। और जिसने सूक्ष्म देख लिया उसने सब देख लिया।

इसका यह अर्थ हुआ कि ध्यान का अर्थ पीछे की तरफ लौटना है। पतंजलि ने इस क्रिया को ही प्रत्याहार कहा है। प्रत्याहार का अर्थ है वापस लौटना। महावीर ने इसी प्रक्रिया को प्रतिक्रमण कहा है। प्रतिक्रमण का अर्थ

भी है रिटर्निंग बैक, पीछे की तरफ लौटना। आक्रमण है आगे की तरफ जाना, झपटना, दौड़ना, बाहर की तरफ; प्रतिक्रमण है भीतर की तरफ लौटना। प्रत्याहार। मूल में समा जाना; जहां से आए हैं उसी तरफ जाना।

अभी पश्चिम में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग चल रहा है। जैनोव नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक, पश्चिम में जो थोड़ी सी महत्वपूर्ण घटनाएं घट रही हैं उनमें जैनोव एक महत्वपूर्ण घटना है। उसने एक नए मनस-चिकित्सा शास्त्र को जन्म दिया है--प्राइमल थैरेपी। पूरी की पूरी चिकित्सा मूल की तरफ लौटने की है। अगर जैनोव सफल होता है तो पश्चिम में जैनोव के माध्यम से लाओत्से का प्रभाव बहुत बढ़ेगा।

जैनोव की प्रक्रिया हैः अगर तुम्हारे जीवन में कहीं भी कोई अड़चन है, दुविधा है, कोई रोग है, मानसिक तनाव, चिंता है, तो वह कहता है, बचपन की तरफ वापस लौटो। वह कहता है, आंख बंद करो और पीछे लौटो। ध्यान को पीछे ले जाओ। प्रतिक्रमण करो, प्रत्याहार करो। लौटो पीछे की तरफ। पहले जब तुम लौटोगे तो तुम ज्यादा नहीं लौट पाओगे, चार साल की उम्र तक लौट पाओगे। तीन साल, बहुत अगर सचेत हुए तो। फिर सब धुंधला हो जाता है, फिर कुछ याद नहीं आता, कोई स्मृति ख्याल में नहीं आती। लेकिन अगर तुम रोज-रोज, रोज-रोज याद को लगाए रखो तो धीरे-धीरे अंधेरा कम होने लगता है, छोटी-छोटी स्मृतियां प्रकट होने लगती हैं। अगर तुम लौटते ही चले जाओ तो कुछ लोग सफल हो जाते हैं उस घड़ी को याद करने में जब उनका जन्म हुआ। जब वे पैदा हुए, जब मां के गर्भ से वे बाहर आए, उस तक याददाश्त पहुंच जाती है। और जैसे ही उस पर याददाश्त पहुंचती है, जैसे ही एक बार उन्होंने ठीक से याद कर लिया--इसको प्राइमल, इसको जैनोव प्राथमिक घटना कहता है। जब तुम गर्भ के बाहर आए, वहीं से संसार शुरू हुआ। वहीं से विस्तार हुआ चीजों का। बीज टूटा, अंडा फूटा, पक्षी उड़ा। अगर तुम उस क्षण में पहुंच जाओ तो उस क्षण तुम बिल्कुल निर्दोष थे। न कोई बीमारी थी, न कोई तनाव था, न कोई चिंता थी। अगर तुम उस क्षण को लौट कर एक बार फिर से जान लो तो अचानक तुम अपने मूल स्वभाव को समझ लोगे कि चिंतित होना तुम्हारा स्वभाव नहीं है। चिंता दुर्घटना है, बाहर से आई है। तुम इसे लेकर न आए थे।

लेकिन जैनोव का प्रयोग अभी पूरा नहीं है, अधूरा है। हिंदुओं ने, लाओत्से के अनुयायियों ने, पतंजलि ने, महावीर ने इसे और गहरा किया। वे कहते हैं कि जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ उस दिन भी तुम नौ महीने पुराने हो चुके थे। उस दिन भी तुम पूरे शुद्ध न थे। जन्म से गंगा काफी दूर निकल गई थी, गंगोत्री यात्रा कर चुकी थी। नौ महीने लंबा वक्त है। इसलिए महावीर तो कहते हैं कि प्रतिक्रमण तुम्हारा वहां तक जाना चाहिए जहां गर्भाधान हुआ, जहां तुम शरीर में प्रविष्ट हुए। उस क्षण तुम और भी शुद्ध थे। क्योंकि नौ महीने में भी बच्चे की स्मृतियां बन जाती हैं। अगर मां बीमार पड़ती है तो बच्चा पीड़ित होता है; स्मृति बनती है। अगर मां गिर पड़ती है, पैर फिसल जाता है गुसलखाने में, तो बच्चे को चोट लगती है, और बच्चे को स्मृति बनती है। मां प्रसन्न होती है तो स्मृति बनती है। अगर मां गर्भवती है और तब भी पति संभोग किए जाता है तो भी बच्चे को स्मृति बनती है।

इसलिए हिंदुओं ने बिल्कुल वर्जित किया है कि गर्भस्थ स्त्री के साथ संभोग न किया जाए। अभी एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने पश्चिम में काम किया है और उसने भी हिंदुओं के साथ सहमति प्रकट की है कि जब मां गर्भवती हो तब संभोग न किया जाए। क्योंकि संभोग की घटना बच्चे के लिए घातक है, और बच्चे के चित्त में कामवासना को अभी से पैदा कर रही है। और बच्चे की निर्दोषता अभी से नष्ट हुई जा रही है। फिर तुम चिल्लाते हो कि बच्चे कामुक हैं; फिर तुम चिल्लाते हो कि बच्चे गंदे हैं, और बच्चे भटक गए हैं, और भ्रष्ट हो गए हैं। और तुम्हें पता नहीं कि तुमने उन्हें भ्रष्ट किया। जब वे बिल्कुल निर्दोष थे और जब संसार का कुछ भी भीतर न प्रविष्ट किया था, जब वे अभी बिल्कुल कोमल थे, तभी कामवासना का वातावरण उनके चारों तरफ इकट्ठा हुआ।

और तुम्हें पता नहीं, अब तो वैज्ञानिक आधार से यह बात पुष्ट हो गई है। क्योंकि जब मां गर्भ की अवस्था में संभोग करे तो संभोग पूरे शरीर के रसायन को बदलता है। श्वास तेज हो जाती है, आक्सीजन की कमी हो जाती है शरीर में। इसीलिए तो तेजी से श्वास लेने लगते हैं संभोग करते हुए युगल; क्योंकि ज्यादा आक्सीजन की जरूरत है। जैसे दौड़ने में जरूरत है वैसे ही संभोग में जरूरत है। आक्सीजन की कमी पड़ जाती है। और बच्चा आक्सीजन मां से लेता है। जब मां को आक्सीजन की कमी पड़ जाती है तो बच्चा एकदम सफोकेटेड हो जाता है, उसको भीतर श्वास लेने की सुविधा नहीं रह जाती, उसका बिल्कुल कंठ अवरुद्ध हो जाता है। वह उसके लिए बहुत संघातक है। और इसलिए यह भी हो सकता है कि अगर नौ महीने के गर्भ की मां से संभोग किया जाए तो कभी-कभी बच्चा गर्भ में मर जाता है इसी कारण। तब हत्या हो गई। क्योंकि उसकी श्वास अवरुद्ध हो जाती है। और अगर यह ज्यादा देर तक चल जाए, या रोज चलता रहे, तो भयंकर घातक है--हिंसा है।

तो महावीर और लाओत्से और गहरा ले जाते हैं। वे कहते हैं, जन्म ठीक उस क्षण होता है जब गर्भाधान होता है। लेकिन वह भी काफी नहीं है। और पीछे जाया जा सकता है। क्योंकि गर्भाधान तो एक पहलू है सिक्के का; दूसरा पहलू है एक बूढ़े आदमी का मरना। वहां से शरीर-आत्मा अलग होते हैं और यहां फिर से जुड़ते हैं। तो जब एक बूढ़ा आदमी मर रहा है, तब आधा हिस्सा वहां है जन्म का, और आधा गर्भाधान में है। ये दो पहलू हैं। अगर तुम और गहरे उतरोगे तो तुम पिछले जन्म में पहुंच जाओगे। और तब तुम्हारे लिए द्वार खुल गया। तब मूल इन जन्मों में खोजने से न मिलेगा। तब तो अनंत जन्म हैं। और उन जन्मों के पार, और पार, और पार जब तुम मूल उदगम पर पहुंचोगे जहां तुम्हारा पहला आविर्भाव हुआ। उसको लाओत्से कहता है, वहां तुम्हें माता मिलेगी, जब पहला आविर्भाव हुआ, जब पहली बार चेतना ने शरीर में प्रवेश किया। वह जो प्राथमिक है वही प्राइमल है।

अभी जैनोव को बहुत यात्रा करनी पड़ेगी प्राइमल को खोजने के लिए। यह प्राथमिक नहीं है। यह तो काफी पुरानी यात्रा है। लेकिन फिर भी उपयोगी है। और अनेक बीमारियां सिर्फ जन्म तक पहुंचते ही विलीन हो जाती हैं। स्मरण मात्र से, तुम चकित होओगे कि मन तनाव खो देता है, और फिर से बच्चे का तुम्हारे भीतर उदय हो जाता है।

तुम कल्पना करो कि जिन लोगों ने प्रथम क्षण पा लिया है अपने जन्म का, अनंत यात्राओं के पूर्व, उनका मन कैसा निर्मल न हो जाता होगा! उसी को हमने संत कहा है, जिसने आदि उदगम पा लिया। उसकी निर्मलता परम है। उसने परमात्मा को चुरा लिया। अब उसे पाने को कुछ भी न बचा। जिसने परमात्मा को चुरा लिया उसे पाने को क्या बचा? सब पा लिया गया। तब परम तृप्ति है। परमात्मा को पाए बिना कोई कभी तृप्त नहीं हुआ है। होना भी नहीं चाहिए। जो हो गए वे नासमझ हैं। उन्हें हीरा मिला ही नहीं; कंकड़-पत्थर से राजी हो गए। कम से राजी मत होना, परमात्मा से कम से राजी मत होना। कितनी ही लंबी हो यात्रा, कितना ही श्रम हो, कितना ही भटकना पड़े, कितना ही गहन अंधेरा हो, जारी रखना प्रयास।

अब हम सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"ब्रह्मांड का एक आदि था, जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है। माता से हम उसके पुत्रों को जान सकते हैं, लेकिन पुत्रों को जान कर माता को नहीं। पुत्रों को जान कर भी माता से जुड़े रहो; इस प्रकार व्यक्ति का पूरा जीवन हानि से बचाया जा सकता है।"

एक ही उपाय है तुम्हें हानि से बचने का और वह यह है कि तुम पीछे लौटो; तुम उस क्षण को पुनः प्राप्त करो जहां से हानि शुरू हुई। जैसे कोई आदमी यात्रा करता हो और किसी चौराहे पर भटक जाए; जहां जाना था, वह राह न पकड़े, कोई और राह पकड़ ले। फिर कई मील चलने के बाद पता चले कि भूल हो गई, तो वह क्या

करेगा? वापस चौराहे पर लौटना होगा। अगर वह कहे, अब इतने चल चुके, अब कैसे वापस लौटें? अब इतना तो लगा चुके दांव पर, अब कहां जाएं? और जाने से अगर डरे। डर आएगा। क्योंकि कोई आदमी तीस साल चल चुका, कोई पचास साल चल चुका, कोई पचास जन्म, कोई पचास हजार जन्म चल चुका। इतना तो इसमें न्यस्त हो गया हमारा जीवन। अब अचानक पता चलता है कि हम गलत मार्ग चुन लिए हैं; पीछे छूट गया चौराहा बहुत।

और इसीलिए तो लोग संतों के पास जाने से डरते हैं। क्योंकि उनके पास जाकर आनंद तो मिलेगा, लेकिन बहुत बाद में। पहले तो बड़ी पीड़ा मिलेगी। पहली पीड़ा तो यह होगी कि तुम गलत हो। अब तक तुम यही माने रहे कि तुम ठीक हो। होगी सारी दुनिया गलत, तुम कभी गलत नहीं हो। संत के पास जाकर पहली पीड़ा तो यह भोगनी पड़ेगी कि तुम अचानक पाओगेः सारा जीवन तुम्हारा व्यर्थ है, तुमने सिवाय भूलों के और कुछ भी नहीं किया। तुमने बस भूलें ही कीं। तुम जहां भी चले, भटके। तुम जिसे यात्रा समझ रहे हो, वह यात्रा नहीं है, सिर्फ भटकाव रहा। तुम कहीं पहुंचे नहीं, मंजिल करीब न आई; दूर भला निकल गई हो। संत तुम्हें कहेगा, लौटो। और तुम बड़ी अकड़ से चले जा रहे थे। राह की धूल को तुम स्वर्ण समझ रहे थे। राह की धूल जम गई थी, इसको तुम अनुभव समझ रहे थे। यह तुम्हारी संपदा थी। और अचानक कोई मिल गया और उसने कहा, आंख तो खोलो! देखो तो सही! हाथ में सिवाय कंकड़-पत्थर के कुछ भी नहीं।

इसलिए संसारी संत के पास जाने से डरता है। और चला जाए, भूले-भटके ही सही, किसी के संग-साथ में ही सही, उत्सुकतावश ही सही, कुतूहल के कारण ही सही, तो फिर दुबारा वही नहीं हो सकता जो जाते वक्त था। चोट थोड़ी लग ही जाएगी। दीवार उस दुर्ग की थोड़ी गिर ही जाएगी। अनुभव पर शक आ जाएगा। अपने पर संदेह पैदा हो जाएगा। सारे धर्म की प्रक्रिया यही है कि तुम्हें पहले तुम पर संदेह आ जाए; तभी तुम किसी पर श्रद्धा कर सकोगे। तुम्हें अपने पर अगर बहुत श्रद्धा बनी रहे कि तुम ठीक हो, तो तुम किसी पर श्रद्धा न कर सकोगे। और तुम अगर ठीक हो तो फिर तुम्हारा दुख, तुम्हारी पीड़ा, तुम्हारा संताप, सब ठीक है। फिर मत शोरगुल मचाओ, फिर मत कहो कि मैं दुखी हूं। तुम चाहते हो कि कोई तुमसे कहे कि दुख किसी और के कारण है। वैसे बताने वाले लोग भी हैं। इसलिए उनकी जमात बहुत बड़ी हो जाती है।

आज दुनिया में करीब-करीब आधी संख्या कम्युनिस्ट है। कम्युनिज्म की अपील कहां है? इतनी बड़ी अपील किसी और विचारधारा की कभी नहीं रही। महावीर के मानने वाले लाखों में हैं। उनमें भी ठीक मानने वाले कोई नहीं हैं। लेकिन मार्क्स के मानने वाले करोड़ों में हैं। क्या कारण है? अपील कहां है? अपील यहां है कि मार्क्स कहता है, तुम्हारे दुख के लिए तुम जिम्मेवार नहीं, समाज जिम्मेवार है। यहां है सारा सार। उत्तरदायित्व तुम पर नहीं है। तुम अगर कष्ट पा रहे हो तो दूसरे लोग तुम्हारे कष्ट का कारण हैं, तुम नहीं।

और महावीर, पतंजलि, लाओत्से, नानक, कबीर, वह पूरी जमात तुम्हें आकर्षित नहीं करती। क्योंकि उसके पास जाने पर वे पहली ही बात यह कहते हैं कि तुम्हीं जिम्मेवार हो; यह नरक तुम्हारा बनाया हुआ है। यह बात मन को चोट करती है। यह नरक किसी और ने बनाया हो, यह बात समझ में आती है। हम क्यों अपना नरक बनाएंगे? और तुम्हारे अनुभव और तुम्हारे अहंकार और तुम्हारे सयानेपन को चोट लगती है। तुम चाहते हो कि स्वर्ग तो तुम बनाने वाले हो, नरक दूसरे बना रहे हैं।

कम्युनिज्म फैलेगा। क्योंकि आदमी के आत्म-अज्ञान से उसका बड़ा जोड़ है। अज्ञानी आदमी को कम्युनिज्म में बड़ा रस है। क्योंकि अज्ञानी को कम्युनिज्म अज्ञानी नहीं कहता, शोषित कहता है। और सारे ज्ञानी कहते हैं कि तुम अज्ञानी हो, शोषित नहीं। तुम जो पीड़ा पा रहे हो, तुम्हारे ही हाथों का इंतजाम है। तुम जिन गड्ढों में गिर रहे

हो, ये तुम्हीं ने खोदे हैं। यह हो सकता है कल खोदे हों, पिछले जन्म में खोदे हों। तुम भूल ही गए हो कि हमने कभी खोदे थे।

एक गांव में मैं मेहमान था। वहां एक हत्या हो गई। हत्या बड़ी अनूठी थी। छोटा गांव है। पहाड़ी गांव है। छोटा सा स्टेशन है। बस दिन में एक ही बार ट्रेन आती-जाती है। एक आदमी--और रात को कोई नौ बजे ट्रेन आती है--एक आदमी बहुत सा रुपया लेकर ट्रेन पकड़ने के लिए आया हुआ था। स्टेशन मास्टर को सुराग लग गया। नौ बजे ट्रेन आने वाली थी; वह तीन घंटे लेट थी। बारह बजे आएगी। स्टेशन सन्नाटा है। कोई ज्यादा लोग नहीं हैं। स्टेशन मास्टर है, एक पोर्टर है; बस ऐसा दो-तीन आदमी हैं। उन तीनों ने तैयारी कर ली इस आदमी को समाप्त कर देने की। पोर्टर को राजी कर लिया। पता भी नहीं चलेगा किसी को। और वह आदमी स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक बेंच पर लेटा हुआ है, विश्राम कर रहा है। बारह बजे ट्रेन आएगी। रुपए का तो उसे भी भय है। पोर्टर तैयार है कि ठीक वक्त ग्यारह बजे तय कर लिया है कि वह आकर कुल्हाड़ी से इस आदमी की गर्दन काट देगा।

संयोग की बात। और वह आदमी सो भी नहीं सकता, क्योंकि रुपए उसके पास हैं। जिनके भी पास रुपए हों वे कहीं सो सकते हैं? तो वह बार-बार अपनी बसनी को, जो उसने कमर में बांध रखी है रुपयों से भरी हुई, उसको टटोल कर देख लेता है। फिर रात घनी होने लगी और सन्नाटा छा गया। स्टेशन पर कोई नहीं है। तो वह उठ कर टहलने लगा। स्टेशन मास्टर देखने आया। वह उठ कर टहल रहा है। जब बैठे तभी कुछ किया जा सकता है। कहीं लेटे, सो जाए, तो सुविधा होगी; चीख-पुकार न मचा पाए। तो वह उसी बेंच पर बैठ कर देखने लगा कि यह कहां बैठता है, क्या करता है। स्टेशन मास्टर को झपकी आ गई। वह उसी बेंच पर लेट कर सो गया।

और पोर्टर ने ठीक ग्यारह बजे उसकी हत्या कर दी। पोर्टर तो यही समझ कर मारा उसे कि यह वही आदमी लेटा हुआ है रात के अंधेरे में। बिजली नहीं है; छोटी सी लालटेन स्टेशन पर जली थी। और वह पोर्टर इतना भयभीत रहा होगा, इतना चिंतित रहा होगा कि उसने ख्याल भी नहीं किया कि क्या हो रहा है। स्टेशन मास्टर की हत्या हो गई। इंतजाम स्टेशन मास्टर ने ही किया था।

करीब-करीब ऐसा ही हो रहा है। तुम्हारी हत्या हो रही है; तुम्हारा ही इंतजाम है। गड्ढा तुमने ही खोदा है। अब तुम्हीं गिर गए हो और चिल्ला रहे हो। मन मानने को भी नहीं होता कि गड्ढा हम अपने लिए क्यों खोदेंगे! इसलिए जो भी तुमसे कहते हैं कि तुम्हीं ने गड्ढा खोदा, वे जंचते नहीं। जो तुमसे कहते हैं कि गड्ढा किसी और ने खोदा, वे तुम्हें जंचते हैं। उनमें तुम्हारे अहंकार का बचाव है।

लाओत्से कहता है कि हानि से पूरा जीवन बचाया जा सकता है, लेकिन लौटना पड़ेगा। चौराहा तुम पीछे छोड़ आए। आगे ही बढ़ते गए। तो जितना आ गए हो, यह भी काफी फासला है। और अगर बढ़ते गए तो फासला बढ़ता जाएगा। रुक जाओ और पीछे की तरफ लौटो, मूल स्रोत की तरफ देखो। फेर लो अपनी पीठ जिस तरफ जा रहे थे; कर लो अपना मुंह उस तरफ जहां से आ रहे हो--उदगम की तरफ।

"ब्रह्मांड का एक आदि था, जिसे ब्रह्मांड की माता माना जा सकता है।"

और लाओत्से के लिए जो परम प्रतीक है वह पिता नहीं है, मां है। और यह उचित है। क्योंकि अस्तित्व एक गर्भ है। अस्तित्व स्त्रैण है। पुरुष सांयोगिक है। स्त्री अपरिहार्य है। अब तो आर्टिफीशियल इनसेमिनेशन संभव है। तो पुरुष का काम इंजेक्शन भी कर देगा। तो पुरुष तो बिल्कुल ही अपरिहार्य नहीं है; उसके बिना चल सकता है। स्त्री अपरिहार्य है। और पुरुष तो एक क्षण में घटना के बाहर हो जाता है। स्त्री को तो बच्चे को बड़ा करने में नौ महीने तो पेट में सम्हालना होता है और फिर सालों तक पेट के बाहर सम्हालना होता है।

प्रकृति एक गर्भ है। इसलिए परमात्मा लाओत्से के लिए स्त्रैण है, पुरुष जैसा नहीं। असल में, पुरुष के अहंकार ने ही परमात्मा को पुरुष का रूप दे रखा है। तो हम कहते हैं पिता-परमात्मा, गॉड दि फादर। पर वह बात सिर्फ पुरुष के अहंकार के कारण है। मौलिक रूप से परमात्मा मां की तरह ही होगा। क्योंकि अस्तित्व एक गर्भ है, और अस्तित्व के गर्भ से सब निकल रहा है।

"ब्रह्मांड का एक आदि था... ।"

और वही तुम्हारा आदि भी है। क्योंकि तुम और ब्रह्मांड दो नहीं हो। अस्तित्व एक है और इकट्ठा है। यहां कोई खंड-खंड बंटे नहीं हैं। वृक्ष से तुम जुड़े हो, झरने से तुम जुड़े हो, पत्थरों से, पहाड़ों से तुम जुड़े हो। अस्तित्व एक जुड़ाव है, एक जुड़ापन है। यहां कोई अलग नहीं है। क्या तुम अलग हो सकते हो? अगर सारा अस्तित्व खो जाए तो क्या तुम हो सकते हो? असंभव है। यहां सब चीजें साथ हैं।

कल मैं बाइबिल पढ़ रहा था। और बाइबिल का उल्लेख देख कर मुझे बहुत हंसी आई कि बाइबिल में लिखा है, पहले दिन परमात्मा ने प्रकाश और अंधेरा पैदा किया और चौथे दिन सूरज-चांद-तारे पैदा किए।

अब पहले दिन प्रकाश और अंधेरा हो कैसे सकता है? और चौथे दिन सूरज-चांद-तारे पैदा किए! असल में, यह ख्याल ही कि पहले दिन कुछ किया, दूसरे दिन कुछ किया, तीसरे दिन कुछ किया, खंड-खंड है। अस्तित्व इकट्ठा है। इसको तुमने एक दिन थोड़ा सा कर लिया, फिर दूसरे दिन थोड़ा सा कर लिया, मुश्किल में पड़ोगे। पहले दिन अगर प्रकाश और अंधकार पैदा करोगे तो करोगे कैसे बिना सूरज के, बिना चांद-तारों के? और चौथे दिन चांद-तारे पैदा करोगे? नहीं, अस्तित्व अखंड है। सारा अस्तित्व इकट्ठा है।

एक बहुत बड़ा विचारक हुआ पश्चिम में, लुडविग विटगिंस्टीन। उससे किसी ने कहा कि तुम अपनी आत्मकथा लिख दो। उसने कहा, बहुत मुश्किल है। तब मुझे सारे अस्तित्व की आत्मकथा लिखनी पड़ेगी, क्योंकि सब चीजें जुड़ी हैं। मैं कहां से शुरू करूंगा और कहां अंत करूंगा?

यह बाइबिल की घटना बच्चों के लिए समझाने के लिए तो ठीक है, लेकिन बुद्धिमानों के समझाने के लिए ठीक नहीं है--कि पहले दिन यह किया, दूसरे दिन यह किया, तीसरे दिन यह किया, और छह दिन में सृष्टि पूरी हो गई; और सातवें दिन विश्राम किया, छुट्टी का दिन आ गया। बात ठीक है, बच्चों को समझानी हो ठीक है। लेकिन अस्तित्व एक साथ है; इसे तुम बांट न सकोगे। यहां सब जुड़ा है। यहां तुम एक फूल को हिलाओ, और आकाश के चांद-तारों तक खबर पहुंच जाती है। तुम यहां एक फूल तोड़ो, और परमात्मा के हृदय तक कंपन पहुंच जाता है। सब संयुक्त है। यह जो संयुक्तता है, इसे जान लेना ही परमात्मा को जानना है। और इस संयुक्तता को अगर पहचानना हो तो तुम मूल में ही पहचान सकोगे। क्योंकि वहां चीजें सब साथ-साथ होती हैं, संगठित होती हैं, सूक्ष्म होती हैं, शुद्ध होती हैं। यात्रा की धूल नहीं होती। फिर तो बहुत कुछ जुड़ता चला जाता है। गंगोत्री में गंगा शुद्धतम है; फिर तो बहुत नदी-नाले गिरते हैं। फिर तो गंगा उन नदी-नालों में खो ही जाती है। काशी में आकर अपवित्रतम हो जाती है, जहां तुम जाकर पूजा करते हो। क्योंकि वहां कितने नदी-नाले, कितने कानपुर और कितने इलाहाबाद और कितना कूड़ा-कर्कट, सब आकर मिल गया। गंगोत्री में शुद्ध है; वहां सिर्फ गंगा गंगा है। जैसे-जैसे विस्तार होता है वैसे-वैसे चीजें अशुद्ध होती जाती हैं। सूक्ष्म को ही जानना पड़ेगा।

"जिसे ब्रह्मांड की माता कहा जा सकता है।"

उससे हम विस्तार को समझ लेंगे। लेकिन विस्तार से तुम उसे न समझ सकोगे।

"माता से जुड़े रहो--मूल उदगम के साथ बने रहो--फिर तुम्हारे जीवन में कोई हानि न होगी।"

तुम खोज लो अपने भीतर ही गंगोत्री को और उससे जुड़े रहो। करो कुछ भी, जुड़े रहो उससे जहां से चेतना जन्मी है। उस पहले प्रकाश-क्षण को, उस पहले अलौकिक ज्योतिर्मय क्षण को तुम पकड़ लो; तुम समय के बाहर हो गए। अगर तुमने मूल को समझ लिया, उदगम को, तो उसको समझ कर तुम एक काम करोगे।

"छिद्रों को भर दो, द्वारों को बंद करो, और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम-मुक्त हो जाता है।"

छिद्र क्या हैं? द्वार कहां हैं? छिद्र हैं तुम्हारे, द्वार हैं। द्वार हैं तुम्हारी वासनाएं। तुम कभी सोचो। तुम्हारे मन में कामवासना उठी, तो मस्तिष्क एक कामवासना के धुएं से आच्छादित हो जाता है; विचार चलने लगते हैं, कामोत्तेजना प्रगाढ़ होने लगती है। यह द्वार है, क्योंकि यहां से तुम बाहर जाते हो। तुम्हारे सब द्वार तुम्हारे मस्तिष्क में हैं, और तुम्हारे जब छिद्र तुम्हारे शरीर में हैं। फिर जब बहुत कामवासना घनी हो जाती है तो कोई उपाय नहीं रह जाता; तुम अपनी जीवन-ऊर्जा को शरीर के छिद्रों से बाहर फेंक देते हो। तभी तुम्हें राहत मिलती है। वासना पैदा होती है मन में, शरीर में पूर्ण होती है। द्वार मन में है; छिद्र शरीर में है। जननेंद्रिय छिद्र है, कामवासना द्वार है। और जब भी तुम वासना से भरे तब द्वार खुल गया; तुम चले बाहर। और इसका आखिरी परिणाम यह होगा कि तुम कुछ खोकर लौटोगे, कुछ गंवा कर लौटोगे। इसीलिए तो संभोग के बाद ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो किंचित विषाद से न भर जाता हो। क्योंकि कुछ खोया, पाया कुछ भी नहीं। कुछ गंवाया, जीवन-ऊर्जा बाहर गई, तुम थोड़े दरिद्र हुए। मरते वक्त भी ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो विषाद से न भर जाता हो; क्योंकि पूरा जीवन सिवाय खोने के कुछ भी न रहा। कभी इस वासना में गंवाया, कभी उस वासना में गंवाया।

लाओत्से कहता है, "छिद्रों को भर दो।"

निर्वासना छिद्रों का भर जाना हो जाएगी।

"द्वारों को बंद करो।"

मन को दौड़ाओ मत, क्योंकि मन के घोड़े दौड़े कि जल्दी ही शरीर भी पीछा करेगा। शरीर को पीछा करना पड़ता है; जहां मन जाता है वहीं शरीर जाता है।

"और व्यक्ति का पूरा जीवन श्रम-मुक्त हो जाता है।"

तब तुम अपने भीतर परिपूर्ण हो जाते हो। न ऊर्जा बाहर जाती है, न तुम्हारा चित्त बाहर जाता; तुम अपने एकांत में परिपूर्ण हो जाते हो, तुम अपने भीतर आत्मवान हो जाते हो, अब तुम दीन न रहे। अब तुम किसी के ऊपर निर्भर न रहे। अब तुम्हारा आनंद अपना है। अब कोई उसे दे, ऐसी आकांक्षा न रही। अब तुम भिखारी न रहे। अब तुम भिक्षा-पात्र न फैलाओगे किसी के सामने; तुम मांगोगे नहीं। यही तो संन्यास की गरिमा है। यही तो संत का गौरव है कि वह अपने में ऐसा भरा-पूरा हो जाता है। और भरा-पूरा तुम भी हो सकते हो, लेकिन तुम छेद भरी बाल्टी हो। भरते तुम भी हो, लेकिन छिद्रों से सब बह जाता है। भरो छिद्रों को, रोक दो द्वारों को। लेकिन यह तुम तभी कर पाओगे जब तुम मूल स्रोत से जुड़े रहो। इसको ख्याल में रखना, क्योंकि बहुत से लोग बिना मूल स्रोत से जुड़े छिद्रों को भरने की कोशिश करते हैं। वे और मुश्किल में पड़ जाते हैं। उनसे तो तुम्हीं बेहतर हो। वे पागल हो जाते हैं।

मनसविद कहते हैं कि पागलखानों में बंद नब्बे प्रतिशत लोग कामवासना के साथ दमन करने के कारण पागल हैं। तो तुम ऐसा मत करना कि मूल स्रोत से बिना जुड़े और तुम अगर कामवासना से लड़ने लगे, तो तुम्हारी वही दशा हो जाएगी जो चाय बनाते वक्त कभी केतली की हो जाती है--कि ढक्कन मजबूत है, खुलता नहीं; सब द्वार-छिद्र बंद हैं और भाप भयंकर है, और आग नीचे जल रही है। तो विस्फोट होगा। वही विक्षिप्तता है। ऐसा

ही जब तुम्हारे भीतर विस्फोट होता है--शक्ति तुम लेते चले जाते हो; द्वार-छिद्र बंद कर देते हो; आश्रमों में, हिमालय में छिपे अनेक संन्यासी यही कर रहे हैं--तब एक विस्फोट होता है। तब सब टूट-फूट जाता है। वह विस्फोट परमात्मा से मिलना नहीं है। वह विस्फोट तो सबसे बड़ी दूरी है। फिर तो रास्ता बिल्कुल भटक गया।

पहले मूल स्रोत से जुड़ो। ध्यान पहले है। फिर ही जीवन-ऊर्जा का रूपांतरण हो सकता है। पहले तुम चेतना को शुद्ध, निर्मल, प्रथम क्षण में ले चलो। उस प्रथम क्षण में बैठ कर द्वार को बंद कर लेना बिल्कुल आसान है। क्योंकि उस प्रथम क्षण में तुम इतने आनंदित हो कि अब कोई आकांक्षा नहीं है, जबर्दस्ती करने की कोई जरूरत नहीं है, द्वार जैसे अपने आप ही बंद हो जाते हैं। छिद्र जैसे न उपयोग में आने के कारण धीरे-धीरे अपने आप बंद हो जाते हैं। तुम अपने भीतर समाविष्ट हो जाते हो। तुम अपने भीतर काफी, पर्याप्त हो जाते हो। और तुम इतनी ऊर्जा से भरे होते हो, बाढ़ जैसे आ गई हो। तुम्हारी दीनता, दारिद्र्य सब मिट जाता है। तुम पहली दफा सम्राट हो जाते हो।

"उसके छिद्रों को खुला छोड़ दो, उसके कारोबार में व्यस्त रहो, और फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।"

वासना को बना लो अपना कारोबार--जो कि तुमने बनाया है--फिर जीवन भर उसमें व्यस्त रहो, छिद्र खुले रहें, द्वार खुले रहें, तुम रिसते जाओगे, तुम धीरे-धीरे खाली होकर मर जाओगे। खाली होकर मरे तो दुख में मरोगे। भरे हुए मरे तो जैसा कबीर कहते हैं, जिस मरने से जग डरे मेरो मन आनंद, कब मरिहों कब भेटिहों पूरन परमानंद।

और जिससे सब जग डर रहा है! ये डर कौन रहे हैं लोग? ये खाली घड़े हैं, छिद्र भरे घड़े, जिनका सब जीवन रिस गया और अब मौत द्वार पर खड़ी है। मौत को भेंट करने के लिए जिनके पास कुछ भी नहीं, जो भिखारी होकर मौत के द्वार पर आ गए हैं। जीवन की परिसमाप्ति आ गई और संपदा का जिनको स्वाद भी न लगा। ये न घबड़ाएंगे तो कौन घबड़ाएगा? ये न रोएंगे-चिल्लाएंगे तो कौन रोएगा-चिल्लाएगा?

वही जिसने अपने को बचाया है; जो मृत्यु के क्षण में साबित चला आया है। इसलिए कबीर कहते हैं, ऐसे जतन से ओढ़ी चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। जैसी पाई थी उसे वैसी की वैसी वापस लौटा दी। जैसी पूर्ण लेकर आए थे जन्म के साथ वैसी ही पूर्ण परमात्मा को भेंट कर दी मृत्यु के समय, जरा भी मैली न होने दी। ऐसे जतन से ओढ़ी चदरिया। वह जो जतन है वही योग का सार है। वह जो जतन से ओढ़ना है वही साधना का सूत्र है।

और जिसने छिद्रों को खुला छोड़ा; और छिद्रों के, वासना के कारोबार में व्यस्त रहा; फिर आजीवन मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

"जो लघु को देख सके... ।"

सूक्ष्म को, आणविक को, मूल को, क्योंकि मूल में सब चीजें बहुत सूक्ष्म हैं; गंगोत्री को जो देख सके।

"वह स्पष्ट दृष्टि वाला है।"

उसके पास ही दृष्टि है।

"जो कुलीनता के साथ जीता है, वही बलवान है।"

क्या है कुलीनता? कुलीनता का अर्थ किसी कुलीन घर में पैदा होना नहीं है। कुलीनता का अर्थ है कि जिसकी भीतरी संपदा अक्षुण्ण है। तुम उसे पहचान सकते हो। सिंहासनों पर बैठना उसके लिए जरूरी नहीं है। तुम उसे भिखारी के वेश में भी पहचान सकते हो। क्या तुम्हें कभी कोई ऐसा आदमी देखने मिला? न मिला हो तो

तुम एक बड़े अनूठे अनुभव से वंचित रह गए। जो भिखारी के वस्त्रों में खड़ा हो, लेकिन जिसके चारों तरफ हवा बादशाहत की हो! जिसके वस्त्र चाहे फटे-पुराने हों, चीथड़े हों, लेकिन जिसकी आंखों में झलक किसी सम्राट की हो! उसी को कुलीनता कह रहा है लाओत्से। किसी परिवार से संबंध नहीं, इस जगत के धन से कोई नाता नहीं, इस जगत के पद से कोई सवाल नहीं; जो कुछ भी है उसके भीतर है। तुम उसे छीन नहीं सकते। वह जहां भी चलेगा एक हवा उसके साथ चलेगी, एक प्रभामंडल उसे घेरे रहेगा। तुम उसके प्रभामंडल में जाओगे तो तुम अचानक पाओगे कि तुम शांत होने लगे। वह ऐसे ही है जैसे कि रेगिस्तान में एक मेघ आ जाए--वर्षा से भरा। जैसे सूखी धरती पर बादल बरस जाएं, तुम उसके पास ऐसी ही वर्षा अनुभव करोगे। तुम्हारा रोआं-रोआं एक अननुभूत तृप्ति से भरने लगेगा। उसका सान्निध्य, उसका सत्संग तुम्हें समृद्ध करेगा। कोई सूक्ष्म ऊर्जा बांटी जा रही है। वह कुछ दे रहा है। उसका पूरा जीवन एक दान है। लेकिन दान सिक्कों का नहीं है, दान वस्तुओं का नहीं है; दान जीवन का है।

इसको लाओत्से कुलीनता कहता है। और जब तक ऐसी कुलीनता तुम्हें उपलब्ध न हो जाए तब तक संन्यास फलित नहीं हुआ। जब तक बिना कुछ कारण के, अकारण तुम प्रसन्न न हो जाओ, तब तक तुम ठीक अर्थों में संन्यासी नहीं। जब तुम बिना कारण के प्रसन्न हो, जब तुम बिना कारण, कुछ दिखाई नहीं पड़ता तुम्हारे पास और तुम ऐसे लगते हो जैसे अनंत संपदा के धनी हो, तुम्हारे फटे वस्त्रों से भी जिस दिन तुम्हारे भीतर की गरिमा झलकती है--कुलीनता!

एक अंग्रेज चिकित्सक के मैं संस्मरण पढ़ रहा था। वैज्ञानिक है, बड़ा डाक्टर है। पूरब आया था सम्मोहन की कुछ विधियां सीखने, ताकि सर्जरी में उनका प्रयोग किया जा सके। तो वह अनेक साधुओं से मिला, संन्यासियों से मिला। बर्मा में उसे एक भिक्षु मिला, एक फकीर, जो एक खंडहर में रहता था। दूसरे महायुद्ध में मकान खंडहर हो गया था बम के गिरने से और आस-पास सिवाय कूड़ा-कबाड़ और खंडहर के टूटे-फूटे सामान के कुछ भी न था। दीवारों पर छप्पर भी न था। और वह इलाका बर्बाद हो गया था। लोगों ने उसे छोड़ दिया था; उसको सुधारा भी नहीं गया था। उसको उसने अपना आवास बना लिया था। इस डाक्टर ने लिखा कि जो चीज पहली मुझे प्रभावित की वह यह थी कि उस खंडहर में वह इस तरह रह रहा था जैसे कोई किसी आलीशान महल में रह रहा हो। उसकी शालीनता का अंत नहीं था। वह इस शान से बैठा था उस खंडहर में कि बड़े-बड़े सम्राटों के महल फीके पड़ जाएं। खंडहर भी दीप्त था उसकी मौजूदगी से। और उस चिकित्सक ने लिखा है कि मैं हैरान हो गया, क्योंकि मैंने ऐसा आदमी पहले कभी देखा नहीं था। यह इतना अनूठा था।

इसे कुलीनता कहता है लाओत्से। कुलीनता क्यों कहता है? क्योंकि कुलीनता शब्द तो कुल से आता है। कुलीनता इसीलिए कहता है कि तुम्हारा मूल कुल, जहां से तुम पैदा हुए हो, वह परमात्मा है; तुम्हारा परिवार नहीं। वही तुम्हारा कुल है; वस्तुतः वही तुम्हारी कोख है। वही, जहां से सारा अस्तित्व आया है, वही माता है। वही तुम्हारा कुल है। और जिस दिन तुम परमात्मा की तरह चलने, उठने-बैठने लगोगे, जीने लगोगे, उसी दिन तुम कुलीन हो। उसके पहले नहीं। उस दिन तुम्हारी देह बूढ़ी हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि देह वस्त्रों से ज्यादा नहीं है। उस दिन तुम्हारी देह पर झुर्रियां पड़ जाएं, कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हारी भीतर की आभा उन झुर्रियों के पार भी प्रकट होती रहेगी। उस दिन तुम्हें बाहर की दीनता दीन नहीं बना सकेगी। उस दिन तुम्हारी संपदा इस संसार की न रही, पारलौकिक हो गई।

वही संपदा संपदा भी है। इस संसार की संपदा, छिपा ले तुम्हारी दीनता को, मिटाती नहीं। तुम धनी लोगों को देखो। धन का अंबार उनके चारों तरफ होगा, और गौर से तुम उन्हें देखोगे, तुम उन्हें दीन पाओगे। तुम बड़े

राजनीतिज्ञों को देखो। बड़ी शक्ति उनके पास होगी, वे विध्वंस कर सकते हैं, लाखों को मार-जिला सकते हैं। लेकिन अगर तुम उन्हें देखोगे तो तुम उन्हें बड़ा दीन पाओगे। जिसने भी बाहर की संपत्ति को संपत्ति समझा वह कभी संपत्तिशाली नहीं हो पाता। भीतर एक संपदा का अजस्र स्रोत है।

"जो लघु को देख सके, वह स्पष्ट दृष्टि वाला है। जो कुलीनता के साथ जीता है, वह बलवान है। प्रकाश को काम में लाओ... ।"

तुम प्रकाश से ही आए हो; प्रकाश तुम्हारा स्वभाव है। उसे काम में लाओ।

"... और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो।"

क्योंकि वह दृष्टि कभी तुम्हारे पास थी। इसलिए लाओत्से कहता है, पुनः। वह कोई नई बात नहीं है। तुमने उसे खोया है; वह तुम्हारे पास थी। लेकिन शायद जरूरी है कि जो हमारे पास है, उसे जानने के लिए कि वह हमारे पास है, उसे खोना जरूरी है। नहीं तो हमें पता ही नहीं चलता कि हमारे पास क्या है, जब तक तुम खोओ न। जो भी तुम्हारे पास होता है उसे ही तुम भूल जाते हो। और उस प्रकाश से ज्यादा पास तुम्हारे कुछ भी नहीं। पास कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पास में भी थोड़ी दूरी होती है। तुम प्रकाश हो। तुम उसे भूल गए हो। उसे भूलना जरूरी था। अब तुम जब दुबारा पाओगे तभी तुम उसे आनंद से पा सकोगे।

बचपन खोना जरूरी है, क्योंकि वह मुफ्त मिलता है। मुफ्त की कोई कीमत करता है? फिर जब तुम उसे अथक श्रम और साधना से पुनः पाओगे तभी तुम समझोगे उसका मूल्य। हर चीज का मूल्य चुकाना पड़ता है। बिना मूल्य चुकाए हमें कोई चीज मूल्यवान नहीं मालूम होती। तुमने गंवाया है परमात्मा को। यह भी जीवन की एक अनिवार्य प्रक्रिया है कि गंवा कर ही तुम जब उसे श्रम से पाओगे, चेष्टा से पाओगे, तभी तुम पाओगे उसे पहली दफा। तभी तुम समझोगे कि अरे इतनी बड़ी संपदा, मैं ऐसे ही गंवा आया था! तो गंवाना भी प्रौढ़ता का अंग है। एक बार खोना जरूरी है। लेकिन खोए बैठे रहना उचित नहीं। खो चुके, अब उसकी खोज जरूरी है।

"प्रकाश को काम में लाओ, और स्पष्ट दृष्टि को पुनः प्राप्त करो। इस प्रकार अपने को बाद में आने वाली पीड़ा से बचा सकते हो।"

पीछे तो बहुत पीड़ा हो गई। अब उसको बदलने का कोई उपाय नहीं। अतीत जा चुका; अब कुछ किया नहीं जा सकता। उसके लिए बैठे मत पछताते रहो। भविष्य आ रहा है। अतीत की चिंता छोड़ो। प्रकाश को काम में लाओ, ताकि जो अतीत में हुआ वह भविष्य में न हो, वह पुनरुक्त न हो। लोग पीछे के लिए बैठे रोते रहते हैं। लोग अपने घावों को उघाड़-उघाड़ कर देखते रहते हैं। घावों में अंगुली डाल-डाल कर देखते रहते हैं। जो जा चुका, जा चुका; अब कुछ भी किया नहीं जा सकता। जो आ रहा है, जो हो रहा है, जो होने वाला है, उसे बदला जा सकता है।

लेकिन अगर तुम पछताते रहे अतीत के लिए तो भविष्य तुम्हारे लिए रुका नहीं रहेगा। वह आ ही रहा है। और तुम अतीत के लिए पछता रहे हो। और अतीत के लिए पछताने में तुम अपने को रूपांतरित भी नहीं कर पा रहे हो। फिर तुम अतीत को दुहराओगे। तुम्हारा भविष्य भी तुम्हारे अतीत की पुनरुक्ति होगा। यही दुर्भाग्य है। तुमने जो कल किया था वही तुम कल भी करोगे। क्योंकि आज को तुम गंवा रहो हो। प्रकाश को काम में नहीं ला रहे, और जीवन-ऊर्जा को उसके मूल स्रोत से नहीं जोड़ रहे। वही ध्यान है।

हम क्या सिखा रहे हैं ध्यान में? इतना ही कि तुम वापस अपने मूल स्रोत में गिर जाओ। तुम उसे भीतर लिए चल रहे हो। वह सरोवर तुम्हारे पास ही है। एक डुबकी लगानी है, और तुम नए हो जाओगे। तुम्हारी सब अतीत की धूल झड़ जाएगी। तुम्हारा सब अंधेरा मिट जाएगा। ध्यान रखो, करोड़ों-करोड़ों जन्मों का अंधेरा भी

हो, दीया जल जाए तो मिट जाता है। अंधेरा यह नहीं कहता कि मैं करोड़ों वर्ष पुराना हूं, इस छोटे से दीए से कैसे मिटूंगा? और तुमने कितने ही मार्गों पर यात्रा की हो, कितनी ही धूल-धवांस इकट्ठी कर ली हो, एक डुबकी पानी में, और धूल बह जाती है। एक डुबकी अपने में, सब अतीत धुल जाता है।

बैठे पश्चात्ताप मत करो। प्रकाश को काम में लाओ। और तब अतीत में पुनरुक्ति नहीं होती, तब अतीत की पुनरुक्ति नहीं होती। तब भविष्य तुम्हारा नया होगा; सुबह की ओस जैसा ताजा, नई कोंपल जैसा नया। उस नए को द्वार दो। वह तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे रहा है।

तुम पछता रहे हो, रो रहे हो। या तो तुम गलत करते हो या गलत करने के लिए पछताते हो। दोनों गलत हैं। गलत करना तो गलत है ही, अब गलत के लिए पछताना और भी गलत है। जो हो चुका, हो चुका; जा चुका, जा चुका। मुर्दों को दफना दो। उनको ढोने की कोई भी जरूरत नहीं है।

लाओत्से कहता है, "इसे ही परम में विश्राम कहते हैं।"

प्रकाश को काम में ले आना, मूल में उतर जाना, छिद्रों का बंद हो जाना, द्वारों का अपने आप अवरुद्ध हो जाना, भीतर की ऊर्जा का संगृहीत होना, कुलीनता की उपलब्धि, एक समृद्धि जो भीतर की है, एक धन जो आत्मा का है--इसे ही परम में विश्राम कहते हैं। और ऐसा व्यक्ति ही परमात्मा की चोरी करने में सफल हो जाता है।

चोरी ही करनी है तो परमात्मा की करो। क्यों व्यर्थ चीजों को चुराने में लगे हो? संगृहीत ही करना है तो परमात्मा को करो। कूड़ा-कर्कट संगृहीत करके होगा भी क्या? अगर जीना ही है तो परमात्मा में जीओ। अगर मरना ही है तो परमात्मा में मरो। छोटे से राजी मत हो जाना। व्यर्थ से, क्षुद्र से राजी मत हो जाना।

आज इतना ही।

इक्यानबेवां प्रवचन

धर्म का मुख्य पथ सरल है

Chapter 53

Brigandage

If I were possessed of Austere Knowledge,
Walking on the Main Path (Tao)
I would avoid the by-paths.
The Main Path is easy to walk on,
Yet people love the small by-paths.
The (official) courts are spick and span,
(While) the fields go untilled,
And the (people's) granaries are very low.
(Yet) clad in embroidered gowns,
And carrying fine swords,
Surfeited with good food and drinks,
(They are) splitting with wealth and possessions.
— This is to lead the world towards brigandage.
Is it not the corruption of Tao?

अध्याय 53

लूटपाट

मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर,
मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता,
तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता।
मुख्य पथ पर चलना आसान है;
तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।
दरबार चाकचिक्य से भरे हैं,
जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।
तथापि जड़ीदार चोगे पहने, चमचमाती तलवारें हाथों में लिए,
श्रेष्ठ भोजन और पेय से अघाए, वे धन-संपत्ति में सराबोर हैं।

-- इससे ही संसार लूटपाट पर उतारू होता है।

क्या यह ताओ का भ्रष्टाचरण नहीं है?

सत्य सरल है। क्योंकि सत्य स्वभाव है। और स्वभाव का मार्ग सभी जगह है। पंखुड़ी-पंखुड़ी पर, तारे-तारे में, झरनों में, पहाड़ों में, पशुओं में, पक्षियों में, आदमियों में स्वभाव ऐसे ही पिरोया हुआ है जैसे मनके पिरोए हों धागे में। हर मनके के भीतर धागा है, ऐसे ही हर जीवन के भीतर स्वभाव का मार्ग है।

उसे पाना कठिन नहीं; क्योंकि तुम उसे पाए ही हुए हो। वस्तुतः उसे खोना ही कठिन है। उस पर चलना भी कठिन नहीं; चलना अति आसान है। आसान कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि आसान से भी ऐसा लगता है कि कुछ कठिनाई से संबंध होगा। कठिनाई से कोई संबंध ही नहीं है। अगर कठिन हो तो तुम हो। मार्ग तो सरल है। जटिल हो तो तुम हो। नहीं चल पाते तो इसलिए नहीं कि मार्ग दूर है; नहीं चल पाते तो इसलिए कि तुम जैसे हो उस होने में चलने में अवरोध आता है। ऐसा समझो कि मार्ग तो सपाट है, कंटकाकीर्ण नहीं, लेकिन तुम लंगड़े हो। तो मार्ग के सपाट होने से कुछ न होगा; तुम न चल पाओगे।

लेकिन मन हमेशा यही कहेगा कि मार्ग कठिन है, इसलिए हम नहीं चलते। क्योंकि अहंकार मानने को राजी नहीं होता कि हम लंगड़े हैं। अंधे को भी अंधा कहो तो बुरा मानता है, झगड़ने पर उतारू हो जाता है। अंधे को भी सूरदास कहो तो प्रसन्न होता है, क्योंकि सूरदास शब्द से अंधे का कुछ सीधा संबंध नहीं जुड़ता। या अगर और तुम कुशल हुए तो अंधे को तुम कहोगे प्रज्ञाचक्षु। तब अंधा और प्रसन्न होता है।

अब शरीर की आंखों के खोने से कोई प्रज्ञाचक्षु नहीं होता, और न ही सभी अंधे सूरदास होते हैं। लेकिन औपचारिकताएं सत्य को छिपाने के उपाय हैं। किसी भी स्त्री की शादी हो, सभी दुलहनें, लोग आते हैं, कहते हैं, कैसी सुंदर है! तुमने कभी किसी को कहते सुना किसी दुलहन को कि सुंदर न हो। और जब भी कोई आदमी मर जाता है तो सभी कहते हैं, स्वर्गीय हो गए। जिंदगी में जिनको नरक में भी जगह न मिलती, मर कर वे सभी स्वर्ग जाते हैं। सुंदर स्त्री खोजना कठिन है, लेकिन सभी दुलहनें सुंदर होती हैं।

औपचारिकता का जाल है। और औपचारिकता के जाल में तुम सत्य को छिपाते हो। नहीं चल पाते हो तो यह नहीं सोचते कि मैं लंगड़ा हूं; नहीं देख पाते हो तो यह नहीं सोचते कि मैं अंधा हूं। नहीं देख पाते तो कहते हो, अंधेरा है। नहीं चल पाते तो कहते हो, मार्ग ऊबड़-खाबड़ है। कहावत तो सुनी है नः नाच न आवे आंगन टेढ़ा। जब नाच नहीं आता तो लोग कहते हैं, आंगन टेढ़ा है, नाचें कैसे! नाच आता हो तो आंगन टेढ़ा हो कि चौकोर, क्या फर्क पड़ता है? आंगन के टेढ़ेपन से नाचने का क्या लेना-देना? लेकिन नाच आता हो।

पहली बात, इसके पहले कि हम सूत्र में प्रवेश करें, यह समझ लेने की है कि सत्य बहुत सरल है। सारी जटिलता तुम्हारे मन की है। सारा उलझाव तुम्हारे भीतर है। बाहर तो सब सुलझा पड़ा है। रास्ता बिल्कुल खुला है। न कोई रोक रहा है, न कोई द्वार बंद है। लेकिन तुम ऐसे जकड़े हो अपने भीतर, तुम्हारी जकड़न ही तुम्हारे पैरों को नहीं उठने देती। नाच तो दूर, चलना ही मुश्किल है। चलना भी दूर, उठना ही मुश्किल है। क्योंकि जहां तुम बैठे हो, तुम सोचते हो, वहां खजाना गड़ा है। वह खजाने की आशा तुम्हें जकड़े हुए है। तुम जैसे हो, तुम सोचते हो कि यहां कुछ मिलने को है। वह मिलने की आशा तुम्हें हटने नहीं देती। तुम किसी वासना से भरे हो, इसलिए संसार को, भ्रम को, झूठ को तुमने अपना घर बना लिया है। फिर तुम चर्चा जरूर करते हो मार्ग की, सत्य की, धर्म की, लेकिन कभी चलते नहीं। तुम चर्चा से ही हल कर लेते हो। तुम बैठे-बैठे सोचते ही रहते हो।

ऐसा हुआ एक गांव में, एक धनपति के पास एक बहुत कीमती घोड़ा था। वह सदा डरा रहता था, कहीं घोड़ा चोरी न चला जाए, क्योंकि हजारों की आंखें उस घोड़े पर थीं। तो एक दार्शनिक को, जो उसके पड़ोस में ही रहता था, उसने पूछा कि इसको बचाने के लिए मैं क्या करूं? क्योंकि मैं रात सो भी नहीं पाता; यही चिंता लगी रहती है कि घोड़ा अस्तबल में है या गया!

उस दार्शनिक ने कहा, घबड़ाओ मत। मैं अनिद्रा के रोग से पीड़ित हूं, मुझे नींद आती ही नहीं। तो अगर तुम्हें कोई पहरेदार रखना हो तो तुम मुझसे बेहतर पहरेदार न पा सकोगे। मैं वैसे ही पहरा देता रहता हूं घर में घूम-घूम कर, उठ-उठ कर, क्योंकि नींद मुझे आती नहीं।

इतनी चिंताएं हैं, सोए भी आदमी तो कैसे सोए? और इतने सवाल हल करने हैं। और जिंदगी एक पहेली है। और जब तक उत्तर न मिले तब तक विश्राम कैसा? दार्शनिकों की जैसी गति होती है! ऐसा दार्शनिक खोजना मुश्किल है जो अनिद्रा से पीड़ित न हो। क्योंकि जब तुम बहुत सोचोगे, व्यर्थ की उलझनों में उलझोगे, तो विश्राम असंभव हो जाता है।

धनपति बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि तुम क्या चाहोगे, मैं वह तुम्हें दूंगा तनख्वाह। मैं कम से कम सो सकूं। तुम आज ही पहरे पर आ जाओ।

पहरे पर आ गया दार्शनिक, बैठ गया आकर। ताले पड़े हैं अस्तबल में और वह बाहर सीढ़ियों के पास बैठा है, सोच रहा है। पहला ही दिन है पहरेदार का, और पहरेदार एक दार्शनिक है, तो धनपति पूरा आश्वस्त नहीं है। थोड़ा संदिग्ध है। क्योंकि यह आदमी कोई कृत्य का आदमी नहीं है, कुछ कर सके ऐसा आदमी नहीं है। सोच भला सकता हो, लेकिन सोचने का कोई लेना-देना नहीं है अगर घोड़ा चोरी चला जाए तो। यह कहीं बैठा-बैठा सोचता ही न रहे।

तो उठा एक बार रात, आधी रात उठ कर गया, जागा हुआ देख कर प्रसन्न हुआ; कहा, क्या कर रहे हो? दार्शनिक ने कहा, एक बड़ी उलझन आ गई है। सोच रहा हूं कि लोग जब खीली ठोकते हैं दीवार में, तो दीवार के जिस हिस्से में खीली प्रवेश करती है वह हिस्सा चला कहां जाता है? बड़ी जटिल समस्या है, और हल नहीं मिल रहा है। धनपति ने कहा--खुशी से कहा बहुत--कि सोचते रहो, मगर जागे रहना। और धनपति ने सोचा कि यह जागा ही रहेगा; ऐसी उलझनों वाला आदमी सो कैसे सकता है? अब यह हल भी कैसे होगी?

घड़ी भर बाद लेकिन उसे फिर बेचैनी लगी; क्योंकि आदमी भरोसे का नहीं है। और जो ऐसी फिजूल की बातें सोच रहा है, कहीं ऐसा न हो कि सोचता ही रहे और कोई घोड़ा ले जाए। वह फिर आया। उसने पूछा कि क्या कर रहे हो? जागे हुए हो? कहा, बिल्कुल जागा हुआ हूं, नींद तो मुझे आती ही नहीं। अब सवाल यह है कि टूथपेस्ट को दबाते हैं तो बाहर आ जाता है, फिर भीतर क्यों नहीं डाल सकते? धनपति ने कहा, सोचते रहो, मगर जागे रहना। और धनपति बड़ा प्रसन्न हुआ कि यह सोने वाला है ही नहीं, क्योंकि अब जो टूथपेस्ट को दबा कर निकल आता है उसको वापस कैसे डालना ऐसी उलझन में पड़ा है, यह जिंदगी नहीं सो पाएगा।

लेकिन फिर सुबह चार बजे के करीब उसे लगा कि यह आदमी उलटी-सीधी बातें सोच रहा है, कहीं ऐसा न हो कि घोड़ा चला जाए। फिर आया। उसने पूछा कि कहो, जाग रहे हो? बिल्कुल जाग रहा हूं। अब क्या सोच रहे हो? उसने कहा, यही सोच रहा हूं कि मैं यहां बैठा हूं, ताला भी पड़ा है; घोड़ा चोरी कैसे चला गया?

कुछ लोग हैं जो सोचते ही रहते हैं और घोड़ा ही चोरी नहीं चला जाता, जिंदगी चोरी चली जाती है। वे खड़े-खड़े सोचते ही रहते हैं, भीतर सारी आत्मा चोरी चली जाती है। वे खड़े-खड़े बड़ी ऊंची बातें विचार करते रहते हैं, और सब गंवा देते हैं। मौत के क्षण में वे पाते हैं कि मैं इतना सोच-विचार वाला, सयाना आदमी, इतना

समझदार, कुशल, कोई मुझे धोखा न दे सके एक कौड़ी का, और मैं बैठा रहा और सारी संपदा गंवा दी! घोड़ा चोरी ही चला गया! आत्मा ही चोरी चली गई!

समझदारी से धर्म का कोई संबंध नहीं है--उस समझदारी से जिसे तुम समझदारी समझे बैठे हो। तुम्हारी समझदारी तो तुम्हारे पागलपन का एक हिस्सा है। तुम्हारे प्रश्न भी तुम्हारी विक्षिप्तता से उठते हैं और तुम्हारे उत्तर भी तुम्हारे मनगढ़ंत होते हैं। तुम्हारे उत्तर हल नहीं करते, ज्यादा से ज्यादा राहत देते हैं। तुम्हारे उत्तर सिर्फ आशा बंधाते हैं कि करीब आ रहा है हल। हल कभी करीब नहीं आता। क्योंकि हल तो केवल उन्हीं को मिलता है जो जीवंत ऊर्जा से उसे हल करते हैं। हल तो केवल उन्हीं को मिलता है जो किसी गहन प्रक्रिया से गुजर कर अपने को रूपांतरित करते हैं। हल तो उन्हीं को मिलता है जो मन की पगडंडियों को हटा कर रख देते हैं और स्वभाव के मार्ग पर चल पड़ते हैं। मन पगडंडियां देता है। और स्वभाव का राजपथ तुम्हारे चारों तरफ फैला हुआ है। सब तरफ वही है। ताओ यानी स्वभाव। लाओत्से उसे ताओ कहता है, वेद ऋत, बुद्ध धर्म।

धर्म शब्द बड़ा प्रीतिकर है। उसके अनेक अर्थ होते हैं; पर गहरे से गहरा अर्थ होता है स्वभाव। जैसे हम कहते हैं, अग्नि का धर्म है गर्म होना, पानी का धर्म है नीचे की तरफ बहना। वह उसका स्वभाव है। और धर्म का एक अर्थ बड़ा महत्वपूर्ण है और वह यह है कि जो सबको धारण किए है, जो सभी को सम्हाले है। जो सभी को सम्हाले है वह सभी के भीतर होगा, धागे की तरह पिरोया होगा हर माले में, हर माला के मनके में।

जहां भी तुम देखते हो वहीं राजपथ खुला है। अनंत-असीम वह मार्ग है। सीधा और सरल है कि तुम उसी पर बैठे हुए हो। उस मार्ग को पाने के लिए तुम्हें रत्ती भर चलना नहीं है। लेकिन मन सुझाता है पगडंडियां। वे पगडंडियां कहीं भी नहीं जातीं, वे वर्तुलाकार घूमती हैं। तुम मन का निरीक्षण करो और समझ जाओगे।

मन वर्तुलाकार घूमता है, कोल्हू के बैल की तरह घूमता है। कोल्हू के बैल को भी लगता है कि काफी यात्रा हो रही है। क्योंकि कोल्हू के बैल को कोल्हू चलाने वाला बड़ी व्यवस्था में रखता है; उसकी दोनों आंखों पर पट्टियां बांध देता है। उसको आस-पास तो दिखाई ही नहीं पड़ता, बस सामने ही दिखाई पड़ता है। तो वह यह भी अंदाज नहीं लगा सकता कि गोल-गोल घूम रहा है। नहीं तो वह भी खड़ा हो जाए। अगर बैल की आंख पर पट्टियां न हों तो तुम उसे कोल्हू में नहीं जोत सकते। क्योंकि वह कहेगा, यह क्या पागलपन है! वह भी समझ लेगा कि यह क्या पागलपन है कि मैं गोल-गोल, यहीं-यहीं घूमता रहूं। वह खड़ा हो जाएगा। आंख पर इसीलिए पट्टी बांधते हैं ताकि वह किनारे न देख सके। सामने देखता है; उसको दिखाता है हमेशा कि मार्ग सीधा है, कहीं जा रहा है वह। बैल को भी भरोसा दिलाना पड़ रहा है कि तुम कहीं पहुंच रहे हो, कोई मंजिल करीब आ रही है, ऐसे ही बेकार नहीं चल रहे हो।

ऐसे ही तुम्हारे मन पर पट्टियां हैं। मन भी किनारे नहीं देख पाता, मन भी आगे ही देखता है। मन को तुम जरा समझने की कोशिश करना। तो ठीक कोल्हू के बैल जैसी हालत है। घूमता है चक्कर में, लेकिन सोचता है कि कहीं पहुंच रहे हैं। कल भी तुमने क्रोध किया था, परसों भी तुमने क्रोध किया था। परसों भी पछताए थे, कल भी पछताए थे। आज भी क्रोध करोगे और आज भी पछताओगे। और अगर उस सौभाग्य का उदय न हुआ जिससे तुम जाग जाओ तो कल भी तुम क्रोध करोगे, कल भी पछताओगे। और तुम दोहराओगे वही-वही। पुनरुक्ति का अर्थ है कि हम गोल-गोल घूम रहे हैं। वहीं से चलते हैं, वहीं पहुंच जाते हैं। फिर चलने लगते हैं, फिर पहुंच जाते हैं। लेकिन आंख पर कोई गहरी पट्टी है।

और वह पट्टी यह है कि आंख सब दिशाओं में एक साथ नहीं देख सकती। मन सब दिशाओं में एक साथ नहीं देख सकता, मन एक दिशा में ही देख सकता है। मन वन-डायमेंशनल है, एक आयामी है। और चेतना मल्टी

डायमेंशनल है, बहुआयामी है। तो जब तक तुम मन को न हटा दोगे तब तक तुम बहुआयामी राजपथ को न देख पाओगे, जो सब तरफ खुला है। जहां कहीं कोई दीवार भी नहीं, कोई बाधा भी नहीं। बस तुम उठो और चलो, और तुम उस पर ही हो।

ध्यान बहुआयामी है। ध्यान और मन का यही फर्क है। मन एक तरफ देखता रहता है। जब क्रोध करता है तो क्रोध को ही देखता है, करुणा को नहीं देख पाता। जब प्रेम करता है तो प्रेम को ही देखता है, घृणा को नहीं देख पाता। जब प्रसन्न होता है तो प्रसन्नता को देखता है, अप्रसन्नता को नहीं देख पाता, खिन्नता को नहीं देख पाता। जब खुश होता है तो खुशी को देख पाता है, उदासी को नहीं देख पाता, जो कि किनारे ही खड़ी है, जो कि पास ही खड़ी है, जो कि खुशी का हिस्सा है, जो कि उसका दूसरा पहलू है। विपरीत को नहीं देख पाता, बस एक को देख पाता है। जैसे ही तुम मन को हटा कर रख देते हो और तुम्हारी चेतना के बहुआयामी द्वार खुलते हैं, तुम सब एक साथ देख पाते हो--युगपत। खुशी आती है तो उसके पीछे छिपा हुआ दुख भी तुम देख पाते हो। तब खुशी खुशी नहीं रह जाती, दुख दुख नहीं रह जाता। दुख आता है तो उसमें छिपे सुख को भी तुम देख पाते हो। रात तुम्हें सुबह दिखाई पड़ती है, भरी दुपहरी में तुम्हें रात दिखाई पड़ती है; क्योंकि वे दोनों एक हैं। तब तुम्हारे दुख में पीड़ा नहीं रह जाती, तब तुम्हारे सुख में उत्तेजना नहीं रह जाती; तब तुम जानते हो कि सुख दुख है, दुख सुख है। तब तुम दोनों से दूर अलग हो जाते हो। तब तुम स्वभाव में ठहर जाते हो।

स्वभाव न तो सुख है, न दुख। स्वभाव परम शांत, परम मौन, परम विराम, विश्राम है, जहां सब उत्तेजनाएं खो गईं--प्रीतिकर, अप्रीतिकर। यह स्वभाव तुम्हारे पास मौजूद है। लेकिन मन तुम्हें पगडंडियां सुझाता है। और मन कहता है, यह मार्ग तो बहुत लंबा है, मैं तुम्हें छोटा शार्टकट बता देता हूं, ऐसे चले जाओ, जल्दी पहुंच जाओगे। छोड़ो रास्ते को, मैं तुम्हें शार्टकट, छोटा सा सूक्ष्म रास्ता बता देता हूं। मन हमेशा शार्टकट खोज रहा है। और ध्यान रखना, परमात्मा की तरफ कोई शार्टकट नहीं है। जो भी परमात्मा की तरफ छोटा रास्ता खोज रहा है... ।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, कोई ऐसी तरकीब बता दें कि जल्दी हो जाए। मन हमेशा जल्दी कर रहा है। और तुमने जल्दी की कि तुम हमेशा गलती करोगे। धैर्य चाहिए, जल्दी नहीं। तुम्हारी जल्दी के कारण तुम मन की अड़चन में पड़ जाते हो, मन की उलझन में पड़ जाते हो। और मन कहता है, यह जल्दी का रास्ता है, उस रास्ते पर तो बहुत वक्त लगेगा। इतना बड़ा रास्ता है, तुम जल्दी न पहुंच पाओगे। जिसके ओर-छोर का पता नहीं है, आदि-अंत का कोई पता नहीं है, इतने विराट स्वभाव में उतर कर तुम खो जाओगे। तुम कहां सागर में अपनी नौका उतार रहे हो! मैं तुम्हें छोटी सी नहर बता देता हूं, इसमें यात्रा सुगम होगी, सुरक्षित होगी, डूबने का डर न होगा। मन तुम्हें सुरक्षा का आश्वासन देता है। उसी आश्वासन में तुम भटक जाते हो। मन भरोसे दिलाने में बड़ा कुशल है। और बार-बार तुम भूल जाओ और बार-बार भटको, तो भी मन भरोसे दिलाता है, फिर भी तुम उसकी मान लेते हो। तो मान लेने के तुम्हारे भीतर एक ही कारण है कि तुम भी जल्दी की इच्छा कर रहे हो।

इसलिए मैं साधकों को कहता हूं कि तुम जल्दी की इच्छा छोड़ देना, तो ही तुम स्वभाव के मार्ग से चल सकोगे। जल्दी शैतान की। जल्दी जिसने की वह शैतान के पास पहुंच जाएगा। जो धैर्य से चला वही परमात्मा तक पहुंचता है; क्योंकि धैर्य के खेत में ही परमात्मा के बीज बोए जा सकते हैं। और जिसका धीरज इतना अनंत है कि जो किसी जल्दी में ही नहीं है, जो कहता है अगर अनंत में होना हो तो ठीक, अगर अनंत काल में होता हो तो भी हम राजी हैं। और तब बड़ी अनूठी घटना घटती है कि जो अनंत काल ठहरने को राजी है वह इसी क्षण भी पहुंच जाता है। क्योंकि यह जो पथ है स्वभाव का, यहां पथ और मंजिल अलग-अलग नहीं हैं, मार्ग ही मंजिल है। यहां

तुम जहां खड़े हो वहीं परमात्मा भी खड़ा है। फासला जरा भी नहीं है। तुम राजी हुए विश्राम के लिए, तुम राजी हुए तनाव छोड़ने को, तुमने जल्दी की आकांक्षा छोड़ी, तुम्हारे मन ने जल्दी के कारण यहां-वहां भटकना बंद किया, तुम अपने गृह-नीड़ में बैठ गए, जैसे सांझ पक्षी अपने नीड़ में आकर बैठ जाता है ऐसे संसार को छोड़ कर तुम अपने भीतर के नीड़ में आ गए और विश्राम से बैठ गए, और तुमने कहा, मुझे कोई जल्दी नहीं है--इसी क्षण भी घटना घट सकती है।

जिस स्कूल में, जिस गुरुकुल में जीसस ने शिक्षा पाई उस गुरुकुल का नाम था इसेनीस। उस परंपरा को मानने वाले लोग इसेनीस कहलाते थे। यह शब्द बड़ा अदभुत है। इस शब्द का अर्थ हैः धैर्य रखने वाले, जो धीरज रख सकते हैं। बस यही उनका गुण था। लेकिन जो धीरज रख सकता है उसे सब मिल जाता है। क्योंकि धीरज रखते ही मन की पगडंडियों का जो हमारे मन में प्रलोभन है वह छूट जाता है। मन कहता है, मैं जल्दी करवा दूंगा; हम कहते हैं, जल्दी ही नहीं है। मन कहता है, मैं छोटा रास्ता बता देता हूं; हम कहते हैं, हमें कहीं जाना नहीं है, हम जहां हैं तृप्त हैं, हम जैसे हैं ठीक हैं। उसकी मर्जी ही हमारी मर्जी है। अब हमारा कोई मार्ग नहीं, उसका मार्ग ही हमारा मार्ग है। तब बड़ा सरल है। तब कुछ भी इससे ज्यादा सरल नहीं है।

लेकिन सरलता कठिन हो गई। सरलता इसलिए कठिन हो गई कि सरलता में चुनौती नहीं मालूम होती तुम्हें। सरलता में चुनौती हो भी नहीं सकती। कठिनता में चुनौती होती है। तो तुम ध्यान रखना कि तुम अक्सर कठिन चीजों को चुनते हो। तुम इसीलिए चुनते हो कि वह कठिन है। क्योंकि कठिन लगने से तुम्हें लगता है कि जीतने का कोई उपाय है, जीत कर दिखा देंगे। अहंकार को तृप्ति मिलती है, अहंकार हमेशा कठिन के प्रति आकर्षित होता है। सरल के प्रति अहंकार को क्या आकर्षण? क्योंकि सरल को कर लिया तो भी तो कर्ता का भाव न जगेगा। कठिन को किया तो कर्ता का भाव जगेगा। अति कठिन को किया तो बड़ा कर्तृत्व का बोध पैदा होगा। अगर महा कठिन को कर लिया, अगर तुम गौरीशंकर के शिखर पर चढ़ गए, तो तुम्हारे अहंकार का कोई ओर-छोर न रहेगा।

कठिन में बुलावा है; सरल में कोई बुलावा नहीं है। और ध्यान रखना, कठिन में जैसे अहंकार की तृप्ति है और जीत का आकर्षण है, ठीक उससे उलटी दशा सरल की है। सरल में कोई चुनौती नहीं है, जीत का कोई उपाय नहीं है। जो हारने को राजी है वही सरल में उतर सकता है। क्योंकि सरल में उतरना तो समर्पण है, चुनौती नहीं। सरल में उतरने में कोई संकल्प ही नहीं है, विश्राम है। कठिन में कर्तृत्व है। सरल में तो समर्पण है। कठिन में तुम हो, सरल में तुम न रहोगे। कठिन तैरने जैसा है, सरल बहने जैसा है। धारा ले जाएगी। तो कठिन को तुम चुनना पसंद करते हो। तुम कहते कितना ही हो कि जल्दी कैसे हो जाए, कुछ सरल मार्ग बता दें, लेकिन तुम्हारे भीतर गहन आकांक्षा कठिन की है। और तुम जब तक कोई कठिन न बताए तब तक तुम कहोगे, यह इतना सरल है, इससे क्या होगा?

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि क्या होगा? शांत ही बैठने से क्या हो जाएगा? न वे कभी बैठे हैं, न कभी उन्होंने स्वाद चखा। वे कहते हैं, ऐसा खाली आंख बंद करके बैठने से क्या होगा? क्या परमात्मा इससे मिल जाएगा? क्या नाचने-कूदने, नृत्य, इससे परमात्मा मिल जाएगा? तब तो नाचने वालों को ही मिल जाता।

उन्हें पता नहीं कि नाचने वाला परमात्मा से मिलने के लिए नाच ही नहीं रहा है; नाचने वाला पैसे के लिए नाच रहा है। ध्यानी किसी और बात के लिए नाचता है। ऊपर से दोनों नाचते हुए दिखाई पड़ते हैं। मीरा भी नाचती दिखाई पड़ती है। एक फिल्म अभिनेत्री भी नाचती दिखाई पड़ती है। और हो सकता है, फिल्म अभिनेत्री ज्यादा कुशलता से नाच रही हो। मीरा का नाच तो अनगढ़ होगा; किसी विद्यापीठ में सीखा तो नहीं। यह नाच

तो मौज का है। यह नाच किसी को दिखाने को थोड़े ही है। और मीरा तुम्हारे सामने थोड़े ही नाच रही है, मीरा अपने परमात्मा के सामने नाच रही है। वहां कला नहीं पहचानी जाती, वहां हृदय की पहचान है। और मीरा का नाच एक प्रार्थना है, एक पूजा है। लेकिन ऊपर से तो एक जैसा है।

तो लोग मुझसे कहते हैं, नाचने से क्या होगा? कहीं नाचने से मिलता होता तो नाचने वालों को मिल जाता। ये लोग क्या कह रहे हैं? ये यह कह रहे हैं कि ये इतनी सरल बातें हैं कि इनसे नहीं हो सकता। कोई उलटी बात बताएं, कोई कठिन बात बताएं, जिसमें चुनौती हो।

इन नासमझों की वजह से दुनिया में ऐसी पद्धतियां भी विकसित हो गई हैं जिनका आकर्षण कुल इतना है कि वे बहुत कठिन हैं, दुर्गम हैं। उनसे कोई कभी नहीं पहुंचता कहीं, लेकिन उनकी दुर्गमता के कारण आकर्षण है। क्योंकि अहंकारी उनकी तरफ आंदोलित हो जाते हैं। इसे बहुत ठीक से समझ लेना। अहंकार चाहता है चुनौती, संघर्ष का मौका, लड़ने का उपाय, जीत की सुविधा, कि वह बता दे कि मैं जीत गया। तब छोटे बच्चे से थोड़े ही तुम कुश्ती लड़ोगे! अगर एक छोटा बच्चा और गामा को चुनौती दे दे कि आओ, लड़ो! तो गामा चुपचाप वहां से चला जाएगा। इससे लड़ कर फायदा क्या? इसको अगर जीत भी लिया तो लोग हंसेंगे कि इसमें जीतने का कोई सवाल न था। और अगर हार गए तो मारे गए। मुस्कुरा कर बच्चे की पीठ थपथपा कर गामा चला जाएगा। वह चुनौती नहीं है।

अहंकार के लिए समर्पण तो बच्चे जैसा है। उससे चुनौती नहीं मिलती, उससे लड़ कर कोई सार नहीं है। कोई कठिन बात बताओ! कोई बात जो बड़ी दुर्गम हो। कोई बात जो विरले ही कर सकें। कोई बात जो तलवार की धार पर चलने जैसी हो। तब! तब तुम्हें लगेगा कि हां, करने जैसा है।

और यही करने जैसा नहीं है। करने जैसा तो वही है जहां कोई चुनौती नहीं है, जहां कानों-कान किसी को खबर भी न पड़ेगी कि तुम कुछ किए, जो अक्रिया जैसी है। जो विश्राम है, जहां समर्पण है, और बहने की तैयारी है, और नदी को कहना है कि अब तू जहां ले जाए, तेरी जो मर्जी! तब सरल है।

अब हम लाओत्से के सूत्र समझने की कोशिश करें।

'मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता, तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता।'

जब ज्ञान उपलब्ध हो रहा हो और जीवन तैयार हो बांटने को, देने को, तब भी तुम पगडंडियां चुनते हो। ताओ है धर्म। ताओ है स्वभाव। संप्रदाय हैं पगडंडियां। अगर मैं तुम्हें धर्म दूं, तुम लेने को राजी नहीं। तुम हिंदू धर्म चाहते हो। तुम इसलाम धर्म चाहते हो। तुम बौद्ध धर्म चाहते हो। मैं नानक पर बोल रहा था कुछ दिन पहले तो कुछ सिक्ख दिखाई पड़ते थे। वे पहले भी कभी दिखाई नहीं पड़े थे, उसके बाद फिर नदारद हो गए, फिर दिखाई नहीं पड़ते। मैं महावीर पर बोलता हूं तो जैनी शक्लें मुझे दिखाई पड़ने लगती हैं। महावीर पर नहीं बोलता हूं, वे विलीन हो जाते हैं, वे फिर नहीं दिखाई पड़ते। लोगों को धर्म से कोई प्रयोजन नहीं है, पगडंडियों से प्रयोजन है। मार्ग से कोई प्रयोजन नहीं है, मार्गों से प्रयोजन है। धर्म तो एक है; संप्रदाय अनेक हैं। एक से कोई नाता नहीं है, अनेक की आकांक्षा है।

लोग जानना चाहते हैं कि जैन धर्म क्या है? हिंदू धर्म क्या है? इसलाम धर्म क्या है?

धर्म भी कहीं हिंदू, मुसलमान और इसलाम होता है? धर्म का भी कोई विशेषण है? नाम है? लेकिन ये जो संप्रदाय हैं ये मन को लुभाते हैं। और सभी संप्रदाय कठिन हैं। धर्म बिल्कुल सरल है। धर्म ऐसा सरल है कि जैसे घर के सामने से गंगा बह रही हो और तुम प्यासे खड़े हो। संप्रदाय बहुत कठिन है। कठिन होने का कारण है। क्योंकि धर्म तो स्वभाव है अस्तित्व का, संप्रदाय मनुष्य-निर्मित है। धर्म मनुष्य-निर्मित नहीं है, धर्म ने ही मनुष्य को

निर्मित किया है। धर्म से ही मनुष्य आया है। वह उसका मूल स्रोत और उदगम है। लेकिन संप्रदाय मनुष्य-निर्मित हैं। वे मनुष्य ने बनाए हैं। और जो मनुष्य ने बनाया है, वह सत्य तक न ले जा सकेगा। मनुष्य के बनाए को तो छोड़ना है। मनुष्य के बनाए से तो पार उठना है। मनुष्य के बनाए से तो हटना है।

लेकिन जो भी मनुष्य ने बनाया है वह हमें आकर्षित करता है। क्योंकि वह हमारे मन के अनुकूल बैठता है। वह हमने ही बनाया है; वह हमारा ही खिलौना है। मंदिरों में जो भगवान की मूर्तियां हैं वे आदमी की बनाई हैं। उनके सामने हम झुक सकते हैं। क्योंकि हमें पता है कि हम झुक किसी के भी सामने नहीं रहे हैं; अपनी ही बनाई हुई मूर्ति है। झुकना झूठा है। समर्पण भ्रांति है। क्योंकि इस मूर्ति को हम ही खरीद लाए थे और हम ही ने प्रतिष्ठित किया है। और जिस दिन चाहें इसको उठा कर फेंक दे सकते हैं। यह समर्पण खेल है; यह वास्तविक नहीं है। और मंदिर की मूर्ति कुछ भी न कह सकेगी। अगर हम इसे उठा कर मंदिर के बाहर फेंक दें तो क्या करेगी मंदिर की मूर्ति?

लेकिन इसके सामने हम झुकते हैं। और अस्तित्व का परमात्मा चारों तरफ है; वहां हम कभी नहीं झुकते। क्योंकि वहां जो झुका वह फिर कभी उठ न सकेगा। वहां जो झुका वह गया। वहां जो झुका वह खोया। वहां से वापस आने की कोई घड़ी नहीं है। उस मंदिर में प्रवेश हुआ कि लौटना नहीं होता। उस मंदिर में प्रवेश ही तब होता है जब जो चीज लौट सकती थी उसे तुम मंदिर के बाहर छोड़ जाते हो। वह अहंकार है जो वापस लौट सकता था।

लेकिन पत्थर की मूर्तियां कहीं तुम्हारे अहंकार को मिटा सकेंगी? पत्थर की मूर्तियों की सामर्थ्य क्या है? तुमने ही गढ़ी हैं। और आदमी बड़ा चालबाज है। अपनी ही गढ़ी मूर्तियों के सामने घुटने टेक कर खड़ा होता है। यह प्रार्थना नहीं है, प्रार्थना का अभिनय है। धोखा किसको दे रहे हो तुम? सारा अस्तित्व तुम पर हंसता है। छोटे बच्चों को तो तुम मुस्कुराते हो अगर वे अपने गुड्डा-गुड्डी का विवाह रचा रहे हों। तो तुम हंसते हो, कहते हो, क्या कर रहे पागलपन! सोचते हो मन में कि बच्चे हैं। लेकिन तब, जब तुम रामलीला खेलते हो और एक लड़के को राम बना लेते हो और एक लड़की को सीता बना देते हो और तुम इन अभिनेताओं के चरणों में सिर रखते हो और जुलूस निकालते हो, शोभा-यात्रा, बारात जा रही है राम की और तुम बड़े उत्तेजित हो उठते हो; तुम छोटे बच्चों से कुछ भिन्न कर रहे हो? कुछ भेद है? तुम्हारी इस शोभा-यात्रा में और छोटे बच्चों की बारात में कुछ फर्क है? खेल-खिलौने हैं। तुम बूढ़े हो गए, फिर भी बचपना न गया।

मंदिरों में तुम झुकते हो, वह बचपना है। अस्तित्व के सामने झुको। वहां तुम अकड़े खड़े रहते हो। वहां तुम अपनी चलाने की कोशिश करते हो। और तुम जानते हो कि वहां अगर तुम झुके तो तुम गए। क्योंकि वहां झुकना वास्तविक ही हो सकता है। वास्तविक परमात्मा के सामने झुकना भी वास्तविक होगा। वहां असली सिक्के ही स्वीकार किए जाते हैं। नकली परमात्मा के सामने झुकोगे, वहां नकली सिक्के ही चलते हैं, वहां असली का कोई सवाल ही नहीं है। तुम्हारे मंदिर, तुम्हारी मस्जिद, तुम्हारे गुरुद्वारे तुम्हारे बनाए हुए हैं।

और परमात्मा का मंदिर तो मौजूद ही है। तुम नहीं थे तब भी था; तुम नहीं रहोगे तब भी रहेगा। यह आकाश ही उसका गुंबज है। यह पृथ्वी ही उसकी आधारशिला है। उसे बनाने की कोई जरूरत नहीं है। वह बना ही हुआ है। वह तुमसे ज्यादा प्राचीन है। वह तुमसे ज्यादा सनातन है। तुम उससे ही आए हो। तुम उसी में वापस जाओगे। लेकिन वहां सचाई का सिक्का ही चल सकता है।

तुम धार्मिक होना नहीं चाहते, इसलिए तुमने मंदिर बनाए हैं। वह तुम्हारी तरकीब है बचने की। तुम जो हो वैसे ही रहना चाहते हो। उसमें ही तुमने एक कोना निकाल कर मंदिर भी बना दिया है। लेकिन वह तुम्हारे

होने का ही हिस्सा है। वह तुम्हारी बेईमानी और तुम्हारे धोखे का ही हिस्सा है। तुम अपने को समझा रहे हो। और तुमने खूब गहरा धोखा दे लिया है। मंदिर जाकर तुम समझ लेते हो, बात पूरी हो गई, हो गए तुम धार्मिक। कभी एक व्रत-उपवास कर लिया। कभी चार पैसे मंदिर में चढ़ा दिए। वह भी तुम चार चढ़ाते हो चार हजार मिलने की आशा में। तुम्हारी दुकान बंद नहीं होती, वह तुम्हारे मंदिर में भी खुली है। और तुम्हारा दुकानदार वहां भी अपने काम में लगा है। इस धोखे को ठीक से पहचानो। ये पगडंडियां हैं जिनसे तुम भटके हो।

सत्य को जानना हो तो किसी भी शास्त्र की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि शास्त्र तो शब्द ही देगा। शब्दों से कैसे स्वाद आएगा? शब्दों में कोई स्वाद नहीं। शब्दों से कैसे गंध आएगी? शब्दों में कोई गंध नहीं। शब्दों से ज्यादा निर्जीव कोई चीज जगत में तुमने देखी है? कोई शब्द जिंदा नहीं होता, सभी शब्द मरे हुए हैं। हवा में पैदा हुई लकीरें खो जाती हैं। बबूले हैं पानी में बने, वे भी शब्दों से ज्यादा वास्तविक हैं। शब्द तो हवा में बने बबूले हैं। पानी के बबूले में तो कम से कम पानी की एक बड़ी झीनी और पारदर्शी दीवार होती है, शब्द में उतनी भी दीवार नहीं है। वह हवा का ही बबूला है; हवा में उठी लहर है, खो जाएगी। सभी शास्त्र शब्द हैं। शास्त्रों को तुम पकड़ कर बैठे हो। सत्य की तुम्हें कोई आकांक्षा नहीं है। शास्त्र पगडंडियां हैं। सत्य ताओ का राजपथ है। वह खुला है। सत्य को जानना हो तो ठीक उलटे चलना पड़ेगा उस चाल से, जो तुम शास्त्र को जानने के लिए चलते हो।

शास्त्र को जानना हो तो कुशल स्मृति चाहिए, याददाश्त चाहिए, तर्क-बुद्धि चाहिए, विचार की क्षमता चाहिए, मनन-चिंतन चाहिए, गणित-तर्क चाहिए। सत्य को जानना हो तो ये कुछ भी नहीं चाहिए--न मनन, न चिंतन, न तर्क, न बुद्धि। सत्य को जानना हो तो शून्यता चाहिए। सत्य को जानना हो तो तुम दर्पण की भांति हो रहो, ताकि सत्य का प्रतिफलन बन सके। तुम्हारा भराव नहीं चाहिए, तुम्हारा खालीपन चाहिए। इसलिए तो लाओत्से कहता है कि जो सीखने से मिल जाए वह ज्ञान नहीं। और संत सिखाते नहीं, संत भुलाते हैं। संत तुम्हें एक ही बात सिखाता है कि कैसे तुम सब सीखे हुए को हटा दो। संत तुम्हारे मन को हटाता है, ताकि तुम्हारी आंख पर बंधी हुई कोल्हू के बैल जैसी जो पट्टियां हैं वे हट जाएं; तुम सब तरफ खुले होकर देख सको।

हिंदू गीता को पढ़ सकता है, लेकिन कुरान को नहीं। यह कोल्हू का बैल है, एकतरफा है। गीता तो पढ़ सकता है, क्योंकि उतनी आंख हिंदुओं ने इसकी खुली छोड़ी है; बाकी दोनों तरफ पट्टियां बंधी हैं। उन पट्टियों में फिर मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब छिप गए हैं।

मुसलमान कुरान पढ़ सकता है, गीता नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि नहीं पढ़ सकता। पढ़ सकता है, मुसलमान गीता पढ़ सकता है, क्योंकि वह भी भाषा पढ़ सकता है। भाषा में क्या अड़चन है? गीता उर्दू में लिखी है, अरबी में लिखी है, पढ़ सकता है। लेकिन हृदय पर कहीं कोई चोट न पड़ेगी। हां, अनेक बार गीता में भूलें दिखाई पड़ेंगी। अनेक बार, जगह-जगह, जगह-जगह गीता में भूलें दिखाई पड़ेंगी। जब कृष्ण कहेंगे, सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, सब छोड़ कर मेरी शरण आ, मुसलमान हंसेगा। अहंकार हो गया। यह आदमी कुफ्र बोल रहा है। पापी है। ऐसे मंसूर को ही तो मारा मुसलमानों ने। वह ऐसी ही बकवास कर रहा था, कृष्ण जैसी। कह रहा थाः अनलहक, अहं ब्रह्मास्मि। हिंदू की भाषा बोल रहा था। मुसलमान को नहीं जंचा। यह बात ही गलत है। तुम खुदा के चरणों तक पहुंच सकते हो, खुदा कभी नहीं हो सकते। यह मुसलमान की आंख है।

हिंदू कहते हैं कि अगर चरणों तक ही पहुंच पाए और खुदा न हो पाए तो पहुंच ही न पाए। बात अधूरी रह गई। यात्रा पूरी न हुई। तो जब तक अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष न हो जाए, जब तक तुम्हारा पूरा तन-प्राण न कह दे कि मैं ब्रह्म हूं, तब तक अधूरी है बात। जब हिंदू कुरान को पढ़ता है तो वह मुस्कुराता है। वह कहता है, ठीक है, कामचलाऊ है, कुछ बड़ी गहरी बात नहीं है। क्योंकि मोहम्मद कहते हैं, मैं उसका केवल पैगंबर हूं, उसका

संदेशवाहक हूं, उसका दूत हूं। हिंदू का मन कहता है कि दूत की क्या सुनना? कृष्ण की ही क्यों न सुनें जो कहते हैं, अहं ब्रह्मास्मि, मैं स्वयं वही हूं। दूत से गलती हो सकती है। मध्यस्थों को क्यों बीच में लें? दलालों की क्या जरूरत? और जिनकी इतनी ही हिम्मत नहीं है कहने की कि मैं वही हूं इनकी बात का भरोसा क्या? इनकी अथारिटी क्या?

मुसलमान जब कृष्ण को पढ़ता है तो वह सोचता है, यह दावेदार, यह अहंकार है। क्योंकि ज्ञानी कहीं दावा करता है! ज्ञानी तो विनम्र होता है। वह तो कहता है, मैं कुछ भी नहीं हूं। जैसा मोहम्मद कहते हैं कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, उसका एक दूत हूं--एक खबर लाने वाला, एक डाकिया। उसकी चिट्ठी तुम तक पहुंचा दी, बात खत्म हो गई। इससे ज्यादा मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह विनम्र आदमी का लक्षण है। यह संतत्व की बात है। यह कृष्ण, यह तो दंभी मालूम पड़ता है। यह तो हद, आखिरी दंभ है। ये उपनिषद, ये तो अहंकारियों की घोषणाएं मालूम पड़ते हैं।

जैन हिंदुओं को पढ़े, नहीं पढ़ पाता। यह सब पागलपन दिखाई पड़ता है। जैन जब गीता को पढ़ता है तो सिवाय महा हिंसा के कुछ भी नहीं दिखाई पड़ती। और यह आदमी कृष्ण जो हिंसा करवाने की सहायता कर रहा है। अर्जुन जैनी मालूम पड़ता है कि कह रहा है कि क्यों मारूं? क्यों हत्या करूं? पहला गांधीवादी। वह यही तो कह रहा है कि मैं हिंसा करने से बचना चाहता हूं, क्यों मारूं? और अपने ही हैं लोग। और वह भी धन के लिए मारूं? पद के लिए? प्रतिष्ठा के लिए? राज्य के लिए? राज्य किस काम आएगा? वह बड़ी ज्ञान की बातें बोल रहा है।

तो जैनी अगर पढ़े या गांधीवादी अगर पढ़े, खुद गांधी पढ़ते थे तो भी वह अर्जुन ही उनको जंचता है, कि बात तो अर्जुन ही ठीक कह रहा है। गांधी संकोच के वश कह नहीं पाते, लेकिन तरकीब निकालते हैं। कह नहीं पाते, जंचती तो बात अर्जुन की ही है। मगर अब हिंदू हैं गांधी, इसलिए गांधी की मुसीबत है। गांधी की नब्बे परसेंट बुद्धि तो जैन की है। क्योंकि वे गुजरात में पैदा हुए। गुजरात में हिंदू भी जैन हैं। गुजरात की हवा जैन की है। तो यह कह भी नहीं सकते कि कृष्ण गलत हैं। हिंदुओं को चोट पहुंचेगी।

जैनियों ने तो कहा कि कृष्ण गलत हैं, क्योंकि उनको कोई लेना-देना नहीं। उन्होंने नरक में डाला हुआ है; कृष्ण मर कर नरक में गए हैं। अभी भी पड़े हैं--जैनियों के शास्त्रों में। और इस कल्प के आखिर तक पड़े रहेंगे। क्योंकि अर्जुन तो भाग रहा था हिंसा से, महा हिंसा से, महा पातक से। और इस आदमी ने सब तरफ से समझा-बुझा कर... । कितनी कोशिश की अर्जुन ने निकलने की इसके जाल के बाहर! तब तो अठारह अध्याय पैदा हुए! वह पूछता ही गया, वह हर तरफ से कहता गया, मुझे बचाओ, मुझे जाने दो। मगर कृष्ण हिंसा के बड़े से बड़े सेल्समैन मालूम होते हैं। आखिर उसको समझा-बुझा कर पट्टी पढ़ा दी। और वह आदमी इस आदमी के चक्कर में आ गया। और आखिर घबड़ा कर या परेशान होकर उसने कहा कि ठीक, मेरे भ्रम सब दूर हो गए, अब मैं लड़ता हूं। जैन कैसे पढ़ सकता है हिंदू की गीता को?

गांधी कहते हैं कि यह गीता तो सिर्फ कहानी है; यह युद्ध असली में हुआ नहीं। क्योंकि अगर युद्ध हुआ है तब तो फिर कृष्ण ने हिंसा करवाई। असली में युद्ध हुआ ही नहीं; यह तो एक पुराण कल्पना है। और युद्ध असली में कौरव-पांडव के बीच नहीं है, युद्ध तो बुराई और भलाई के बीच है। बस, तब रास्ता गांधी ने निकाल लिया। अब कोई हिंसा नहीं। बुराई को मारने में कोई हिंसा है? यह सत और असत के बीच युद्ध है। इस युद्ध में वास्तविक खून नहीं गिरा है। इसलिए कृष्ण जोर दे रहे हैं कि तू काट! यह असलियों को काटने के लिए जोर नहीं दे रहे हैं।

यह तो सिर्फ असत को, बुराई को! तो पुराण-कथा कह कर रास्ता निकाल लिया। महाभारत एक सत्य है जो हुआ; उस सत्य को भी झुठला दिया।

कोई एक पंथ को मानने वाला दूसरे पंथ को नहीं पढ़ सकता है। हिंदुओं ने जैन तीर्थंकरों का उल्लेख ही नहीं किया, सिर्फ एक पहले को छोड़ कर। और पहले का भी उल्लेख इसीलिए किया है कि पहला करीब-करीब हिंदू रहा होगा। क्योंकि वह हिंदू घर में पैदा हुआ था। अभी जैन पैदा नहीं हुए थे। तो पहले का उल्लेख है, ऋषभदेव का वेदों में। फिर इसके बाद किसी का उल्लेख नहीं करते वे। तेईस तीर्थंकर, जो जैनों के लिए महिमापुरुष हैं, जिनसे ऊंचा कुछ हो नहीं सकता, इसी पृथ्वी पर, इसी पृथ्वी खंड पर होते हैं, लेकिन हिंदुओं ने अपनी किताबों में उल्लेख भी नहीं किया। भयंकर उपेक्षा की। बात ही नहीं उठाई। इस योग्य भी नहीं माना कि विरोध करें। जिसका हम विरोध करते हैं, उसको भी हम स्वीकार तो करते हैं कि कोई योग्यता है उसकी। जिसकी हम उपेक्षा करते हैं उसको हम इस योग्य भी नहीं मानते कि क्या तुम्हारा विरोध करना! बकवास है सब, इतना भी नहीं कहते हम। हिंदू ऐसे निकल गए हैं तेईस तीर्थंकरों के पास से कि जैसे वे तेईस तीर्थंकर हुए ही नहीं। अगर हिंदू शास्त्रों में देखें तो कोई उल्लेख नहीं आता; कहीं कोई उल्लेख नहीं आता। आश्चर्यजनक है!

मगर अगर हम मनुष्य के मन को समझें तो सब आश्चर्य समझ में आ जाता है। सबकी आंखों पर पट्टियां हैं। हिंदू पट्टी बांधे हुए निकल गए; तीर्थंकर रास्ते पर पड़ते नहीं पट्टी के। फोकस है, बाकी सब अंधकार है। उस फोकस में राम और कृष्ण पड़ते हैं, जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभदेव पड़ जाते हैं, क्योंकि वे हिंदू थे। ऋषभ के मरने के बाद धीरे-धीरे जैन धर्म संगठित हुआ और अलग धारा बनी। जैसे कि जीसस का उल्लेख तो यहूदियों में मिल जाएगा, लेकिन फिर जीसस के बाद जो जीसस के मानने वाले संत हुए उनका कोई उल्लेख नहीं मिलेगा। क्योंकि उनसे कोई संबंध ही न रहा। वह अलग धारा हो गई।

पगडंडियों की तलाश होती है जब कि राजपथ द्वार से फैला हुआ है। गंगा बह रही है, तब भी तुम नल की टोंटियां खोले बैठे हो, जिनसे बूंद-बूंद पानी भी शायद ही कभी टपकता है। गंगा द्वार से बह रही है, तुम अपने नल के पास बैठे प्रार्थना कर रहे हो कि हे नल, पानी दे! कभी बूंद-बूंद टपकता है। संप्रदाय से बूंद-बूंद पानी भी टपक जाए तो काफी है। क्योंकि उतना पानी भी संप्रदाय में नहीं है।

ऐसा हुआ कि एक यहूदी फकीर के संबंध में बड़ी ख्याति थी कि वह जब बोलता था तो लोगों के मनोभाव को इस तरह छू देता था, उनकी हृदय-तंत्री ऐसी बज उठती थी कि कोई रोता, कोई हंसता; भावावेश पैदा हो जाता था। गांव के एक अमीर आदमी की मृत्यु हुई। जैसा कि अमीर आदमियों के साथ होता है, सारा गांव जी-हजूरी करता था, लेकिन मन ही मन तो ईर्ष्या से भरा था। तो ऊपर से तो लोगों ने कहा बड़ा बुरा हुआ, लेकिन भीतर से प्रसन्न भी हुए कि अच्छा हुआ मरा यह दुष्ट, झंझट मिटी। अमीर आदमी मरा था तो घर के लोगों ने इस सूफी फकीर को बोलने के लिए बुलाया उसकी मृत्यु पर। वह बोला जैसा कि वह सदा बोलता था। उसने बड़ी महिमा का गुणगान किया, लेकिन एक भी आंख गीली न हुई। परायों की तो छोड़ दो, घर के लोगों की भी आंख से आंसू न गिरा।

लोग बड़े चकित हुए। जब फकीर बोल चुका तो एक आदमी ने उससे पूछा कि क्या मामला हुआ आज? सदा तुम भाव-उन्माद से भर देते हो! तुम बोलते क्या हो, हृदय तक छिद जाते हैं तीर, लोग रोते हैं। आज एक आंख गीली नहीं हुई! उस फकीर ने कहा, हम क्या करें? हमारा काम टोंटी खोल देना है। अब पानी हो ही न। टोंटी हमने खोल दी, पानी हो ही न तो हम क्या करें? उसमें हमारा कोई जिम्मा नहीं है।

संप्रदाय की टोंटी खोले तुम बैठे रहो; पानी वहां है नहीं। और वहां संप्रदाय की टोंटी के सामने तुम कितनी ही पूजा करो, कुछ पाओगे न। क्योंकि संप्रदाय आदमी निर्मित है। महावीर तो धर्म के महान पथ पर हैं, महावीर के पीछे चलने वाला महावीर की पीठ पर फोकस लगा कर चल रहा है। वह पथ का उसे पता नहीं है। वही संप्रदाय और धर्म का फर्क है। महावीर तो धर्म में चल रहे हैं। सांप्रदायिक वह है जो महावीर की पीठ देख कर चल रहा है कि वे कहां जा रहे हैं। उसकी नजर पीठ पर लगी है। अनुयायी पीठ देख रहा है, वह राजपथ नहीं जिस पर महावीर चल रहे हैं। बड़ा फर्क है। महावीर की पीठ देख कर तुम यह मत सोचना कि तुम पहुंच जाओगे कभी। क्योंकि महावीर को भी जो ले जा रहा है वही तुम्हें ले जाएगा; लेकिन वह पथ तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। और तुम्हारी आंखें अगर बहुत ही ज्यादा जड़ हो गईं महावीर की पीठ पर लगी-लगी, तो फिर तुम्हें वह पथ कभी भी दिखाई न पड़ेगा। तुम इतने सांप्रदायिक हो जा सकते हो कि धर्म को देखने की सुविधा ही समाप्त हो जाए।

जितना ज्यादा सांप्रदायिक आदमी उतना ही कम धर्म की संभावना रह जाती है। आकाश तो खुला रहता है, लेकिन उसकी आंखें जड़ हो गई होती हैं। अब महावीर खो गए हैं, वह अभी भी उन्हीं की पीठ पर आंख लगाए हुए है। अब वह पीठ भी नहीं है। अब वह चला जा रहा है अंधेरे में। अब अपनी ही कल्पना है।

तुमने कभी ख्याल किया, तुम एक खिड़की को देखते रहो, फिर आंख बंद कर लो, तो खिड़की का निगेटिव बनता है आंख में। बस संप्रदाय वैसा ही है। महावीर कभी थे एक महिमावान पुरुष। कभी बुद्ध थे, कभी राम थे, कृष्ण थे, मोहम्मद थे, जिन्होंने जाना। फिर उनके पीछे चलने वाला उनकी पीठ पर आंख लगाए हुए है। फिर धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे महावीर तो अनंत में खो गए। अब तुम्हारी आंख में निगेटिव रह गया है। अब भी तुम आंख बंद करते हो तो पीठ दिखाई पड़ती है। और तुम इस पीठ का पीछा कर रहे हो। अब तुम पागलपन में उतरोगे। अब तुम कहीं भी नहीं जा सकते, क्योंकि यह पीठ कहीं है ही नहीं, सिर्फ तुम्हारी आंख में बनी हुई प्रतिमा है। वह भी नकारात्मक प्रतिमा है। पाजिटिव तो खो गया, निगेटिव को तुम लिए बैठे हो। वह तुम्हारे मन में है।

संप्रदाय तुम्हारी व्याख्या, तुम्हारा शास्त्र। संप्रदाय यानी तुम। महावीर के नाम से तुम्हीं बैठे हो अब। बुद्ध के नाम से तुम्हीं बैठे हो। बुद्ध को गए बहुत वक्त हो गया। महावीर को गए बहुत वक्त हो गया। जीसस को खोए अनंत में बहुत समय हो चुका। तुम पूजा किए जा रहे हो। तुम उन मेघों की पूजा कर रहे हो जो बरस चुके। अब खाली आकाश में धुआं रह गया है। जैसे जेट निकलता है कभी आकाश से, जेट तो जा चुका होता है, एक धुएं की लकीर छूट जाती है। ऐसे ही जब भी महावीर, बुद्ध या कृष्ण जैसे पुरुष गुजरते हैं आकाश से, तो वे तो तीव्रता से गुजर जाते हैं, देर नहीं लगती, धुएं की लकीर छूट जाती है; उनके पीछे उनके पदचिह्न छूट जाते हैं। उन पदचिह्नों की पूजा चलती है। तुम उनका अनुसरण करते रहते हो। वही संप्रदाय है।

महावीर जैसे होने का ढंग महावीर के पीछे चलना नहीं है। बुद्ध जैसे होने का ढंग बुद्ध के पीछे चलना नहीं है। क्योंकि बुद्ध किसी बुद्ध के पीछे नहीं चल रहे थे। अगर तुम बुद्ध ही हो जाना चाहते हो तो तुम्हें अपने ही तरह अपने ही मार्ग से स्वभाव को खोज लेना पड़ेगा। जिस दिन तुम स्वभाव को पहुंच जाओगे उस दिन तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां कोई भी कभी पहुंचा है। सब बुद्ध जहां पहुंचे, सब जिन जहां पहुंचे, जहां सब अवतार-पैगंबर पहुंचे, वहां तुम भी पहुंच जाओगे। लेकिन पहुंचने का ढंग होगाः उस पथ को खोज लेना जो चारों तरफ मौजूद है। तुम्हारा ध्यान ही तुम्हें ले जाएगा। तुम्हारी समाधि ही तुम्हें जोड़ेगी। अनुसरण से कुछ भी न होगा।

'मुख्य पथ (ताओ) पर चल कर मैं यदि तपःपूत ज्ञान को प्राप्त होता, तो मैं पगडंडियों से नहीं चलता। मुख्य पथ पर चलना आसान है; तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।'

क्यों पसंद करते हैं लोग छोटी पगडंडियां? छोटी पगडंडियां सुविधापूर्ण मालूम होती हैं। क्योंकि तुम उनसे बड़े होते हो। उन पगडंडियों पर चल कर तुम बड़े मालूम पड़ते हो। और लगता है पगडंडी तुम्हारी कब्जे में है; जहां ले जाना चाहो वहीं जाएगी। तुम मालिक रहते हो। सच तो यह है कि पगडंडी पर तुम नहीं चलते, पगडंडी तुम्हारे पीछे चलती है। क्योंकि पगडंडी मनुष्य की बनाई हुई है। तुम अपने हिसाब से व्याख्या करते जाते हो। पगडंडी तुम्हारे पीछे चलती है।

कृष्ण के पीछे तुम चलते हो, ऐसा मत सोचना तुम। तुम पहले कृष्ण की व्याख्या करते हो--व्याख्या तुम्हारी है--फिर अपनी व्याख्या के पीछे तुम चलते हो। इसलिए तो कृष्ण को मानने वाले बहुत हैं, लेकिन सब अलग-अलग ढंग से चलते हैं। क्योंकि सबकी व्याख्या अलग है। निम्बार्क, वल्लभ, रामानुज, वे भक्ति से चलते हैं, और कृष्ण को मानते हैं। गीता से भक्ति निकाल लेते हैं। शब्दों का जाल जमाते हैं; गीता में से भक्ति निकल आती है। फिर वे भक्ति को चलते हैं। वे कहते हैं, कृष्ण के पीछे चल रहे हैं। पगडंडी उनका पीछा कर रही है, क्योंकि पगडंडी वे अपनी निकाल लेते हैं। शंकर और दूसरे अद्वैतवादी कृष्ण से ज्ञान निकाल लेते हैं, ज्ञान का मार्ग निकाल लेते हैं; उसके पीछे चलते हैं। लोकमान्य तिलक ने गीता से कर्म निकाल लिया और फिर वे कर्म के पीछे चलने लगे। फिर लोकमान्य के पीछे गांधी और विनोबा की कतार लगी। वे सब फिर कर्म को मान लिए। कृष्ण से किसी को मतलब है? तुम अपनी व्याख्या के पीछे चलते हो। और तुम अपने को समझाते हो कि हम कृष्ण के पीछे चल रहे हैं। धोखा किससे कहें?

तुम मुझे सुनते हो। तुम इस ख्याल में मत रहना कि तुम वही सुनते हो जो मैं कहता हूं। उस भ्रांति में पड़ना मत। क्योंकि वह बहुत आसान है। लेकिन तुम वह करोगे न। तुम जो करोगे वह आसान नहीं है, कठिन है। न केवल कठिन है, भ्रांत है, गलत है। लेकिन करोगे तुम वहीं। तुम पहले, मैं जो कहूंगा, उसकी व्याख्या करोगे; व्याख्या करके तुम उसे अपने अनुकूल बना लोगे; फिर तुम उसके पीछे चलोगे।

पगडंडी का अर्थ है, जो तुम्हारा पीछा करती हो। वह जो विराट पथ है ताओ का वह तुम्हारा पीछा नहीं करेगा; तुम्हें उसमें डूबना होगा। तुम उसे अपने पीछे आने वाली छाया नहीं बना सकते। महावीर ने तो एक ही बात कही, लेकिन दिगंबर एक व्याख्या करता है, श्वेतांबर दूसरी व्याख्या करता है। फिर दिगंबरों में भी छोटे-छोटे पंथ हैं जो अलग-अलग व्याख्या करते हैं। श्वेतांबरों में भी छोटे-छोटे पंथ हैं जो अलग-अलग व्याख्या करते हैं। और अगर तुम गौर से देखो तो हर आदमी का अपना ही पंथ है; वह अपनी व्याख्या करता है। धर्म के अनुसार तुम अपने को निर्मित नहीं करते, तुम धर्म को अपने अनुसार निर्मित करते हो।

और दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं। एक जो सत्य के पीछे चलते हैं, और दूसरे वे जो सत्य को अपने पीछे चलाने की कोशिश करते हैं। सुगम मालूम पड़ेगा तुम्हें सत्य को अपने पीछे चलाना। क्योंकि सत्य का दावा भी हो गया और सत्य होने की जो झंझट है उससे भी बच गए। धार्मिक बिना हुए धार्मिक होने का मजा लोग ले रहे हैं।

व्याख्या मत करना। तुम व्याख्या कर भी कैसे सकोगे? सत्य की कोई व्याख्या नहीं हो सकती, सत्य का अनुभव होता है। अनुभव को कोई व्याख्या की जरूरत नहीं। और जब तुम व्याख्या करोगे अपनी अज्ञान की दशा से, तुम जो भी व्याख्या करोगे वह गलत होगी, वह भ्रांत होगी। फिर उसी व्याख्या को मान कर तुम चलते रहोगे। कहीं न पहुंचोगे।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हम आपको दस साल से सुन रहे हैं और आपकी मान कर चलते हैं, लेकिन कहीं पहुंचे नहीं। मैं उनसे कहता हूं, तुम मेरी मान कर कभी चले नहीं। वे मुझसे विवाद करते हैं कि नहीं, हम मान कर चलते हैं। मैं कहता हूं, देखो, अभी भी मैं कह रहा हूं उसको भी तुम नहीं मान रहे! मैं कह रहा हूं कि

तुम मेरी मान कर नहीं चले, उसमें भी तुम कह रहे हो कि नहीं, हम मान कर ही चलते हैं। तुम अपनी जिद्द कायम रखते हो।

तुम्हारी जिद्द ही तुम्हारा अहंकार है। तुम अपनी व्याख्या के अनुसार चल रहे हो। अगर पहुंच गए तो तुम कहोगे, अपनी व्याख्या से पहुंचे; अगर न पहुंचे तो गुरु गलत था। तुम्हारा गणित बिल्कुल साफ है। अगर पहुंच गए तो तुम अपनी पीठ थपथपाओगे; अगर नहीं पहुंचे तो तुम कहोगे कि तुम्हारे पीछे दस साल से चल रहे हैं और भटक रहे हैं। पहुंच गए तो तुम कहोगे, कैसे कुशल हम! ठीक बिल्कुल व्याख्या कर ली और पहुंच गए। तब तुम धन्यवाद देने भी न आओगे।

'मुख्य पथ पर चलना आसान है, तो भी लोग छोटी पगडंडियां पसंद करते हैं।'

छोटी, तुमसे भी छोटी। तुम वही पगडंडी पसंद करोगे जो तुमसे छोटी है। लोग अपने से छोटी चीजें पसंद करते हैं। क्योंकि उन छोटी चीजों के कारण वे बड़े मालूम पड़ते हैं। लोग अपने से छोटे लोगों का संग-साथ करते हैं। क्योंकि उनके बीच वे बड़े मालूम पड़ते हैं। हमेशा लोग अपने से छोटे की तलाश करते हैं। उस छोटे के पास खड़े होकर वे बड़े महिमावान मालूम पड़ने लगते हैं।

इससे ठीक उलटा मार्ग है धर्म का--जब तुम अपने से बड़े की तलाश करते हो। बड़ी पीड़ा होगी। क्योंकि तुम छोटे मालूम पड़ोगे। जितने बड़े के पास तुम जाओगे उतने छोटे मालूम पड़ोगे। कहते हैं, ऊंट हिमालय के पास जाना पसंद नहीं करते, रेगिस्तान में रहते हैं इसीलिए जहां पहाड़ वगैरह से मिलना ही न हो। रेत की छोटी-मोटी पहाड़ियां भी मिल जाएं उनसे कुछ डर नहीं। ऊंट की ऊंचाई कायम रहती है। और जब ऊंट पहाड़ के पास आता है तो बड़ी दीनता अनुभव करता है। ऐसे ही शिष्य जब गुरु के पास आता है, आने की चेष्टा में ही एक क्रांति शुरू हो जाती है। आना ही क्रांति है। क्योंकि तुमने यह अनुभव कर लिया कि अपने से छोटे को खोज कर तुम छोटे होते जाओगे। अपने से बड़े को खोज कर ही तुम्हारे बड़े होने का उपाय है। यद्यपि बड़े होने में पहले तुम्हें छोटे होने की बड़ी गहरी पीड़ा होगी। उस पीड़ा से गुजरना होगा।

छोटे लोगों का साथ खोज कर तुम्हें बड़ा सुख मिलेगा, लेकिन वह सुख दो कौड़ी का है। क्योंकि उस सुख के कारण तुम्हें और भी पीड़ाओं में उतरना पड़ेगा। तुम्हें रोज छोटे, और छोटे को खोजना पड़ेगा। क्योंकि तुम छोटे होते जाओगे। जिनके साथ तुम रहोगे, वैसे ही हो जाओगे। संग का बड़ा परिणाम है; क्योंकि चेतना की आदत है सम्मिलित हो जाने की। अगर तुम क्षुद्र लोगों के साथ रहे तो तुम थोड़े दिन में सम्मिलित हो जाओगे।

तुम ख्याल न किए हो, अगर दो-चार आदमी बड़े प्रसन्न मिल जाएं तुम्हें--हंस रहे हों, गपशप कर रहे हों--तुम उदास भी हो तो तुम भूल जाते हो कि उदास हो, तुम भी हंसने लगते हो। संक्रामक है हंसी। कोई उदास बैठे हों दो-चार सज्जन और तुम उनके पास बैठ जाओ थोड़ी देर, तुम उदास हो जाओगे। तुम्हारे मन में विचार उठने लगेंगे कि कैसे उदासीन संप्रदाय में सम्मिलित हो जाएं! वैराग्य का भाव उदय होने लगेगा कि सब संसार असार है, तो जीवन व्यर्थ है। आत्महत्या मन में उठने लगेगी। चेतना तुम्हारे शरीर में सीमित नहीं है। चेतना तुम्हारे चारों तरफ बहती है और मिलती है। सदा पहाड़ को खोजना, सदा अपने से ऊंचे को खोजना। तो तुम्हारी ऊंचाई बढ़ेगी और गहराई बढ़ेगी। तुम जिनके साथ रहोगे, वैसे होते जाओगे।

इसीलिए तो सत्संग की इतनी महिमा है। सत्संग का अर्थ है, सदा अपने से श्रेष्ठ को खोजते रहना, उसकी हवा में जीने की कोशिश, उसकी आभा को पीना, उसकी चेतना को बहने देना अपने भीतर। गुरु का अर्थ यही है कि जिसके पास तुम रहो तो वह तुम्हें उठाए, तुम उसे न गिरा सको। अगर तुम उसे गिरा लो तो वह गुरु नहीं। क्योंकि एक घटना साफ है। जब तुम एक गुरु के पास जाते हो तो दो तरफ से सोचो। तुम गुरु के पास जा रहे हो,

तुम अपने से बड़े के पास जा रहे हो। लेकिन गुरु तुम्हें आज्ञा दे रहा है पास आने की, वह अपने से छोटे को आज्ञा दे रहा है। तो गुरु की कसौटी यही है कि जिसे तुम अपने तल पर न उतार सको। हालांकि तुम पूरी कोशिश करोगे अपने तल पर उतार लेने की। पगडंडियों और संप्रदायों में तुम पाओगे, अनुयायी अपने साधुओं को चला रहा है। जैनियों की पंचायत होती है, वह साधु पर नजर रखती है कि वह कहीं आचरण से भ्रष्ट तो नहीं हो रहा।

तुम कैसे तय करोगे कि वह आचरण से भ्रष्ट हो रहा है कि नहीं? और वह भी राजी है तुमसे कि तुम उसके नियंता हो। तुम मर्यादा तय करते हो, वह अनुसरण करता है। फिर तुम उसे गुरु मानते हो! पहले तुम उसे उतार लेते हो अपने तल पर, अपने से भी नीचे, तभी तुम उसे गुरु मानते हो।

गुरु वही है जो तुम्हारी न सुने, जो तुम्हारे तल पर उतरने को राजी न हो; जिसे तुम कुछ भी करो तो अपने तल पर न उतार सको; जिसकी चेतना संगठित हो गई हो एक ऊंचाई के तल पर जहां से कि बिखर न सके। वही उसकी गुरुता है, वही उसका घनत्व है कि वह तुमसे इतना घना है कि तुम उसे बिखरा न सकोगे। तुम उसके पास जाओगे तो तुम्हें ही ऊपर उठना पड़ेगा। हालांकि तुम हर उपाय करोगे। यह कोई जानकारी से करोगे, ऐसा भी नहीं है। यह सब अचेतन प्रक्रिया है। तुम हर उपाय करोगे कि वह तुम्हारे तल पर आ जाए।

मेरे पास अनेक मित्र आते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि आपकी बातें ठीक लगती हैं, लेकिन क्या यह नहीं हो सकता कि हम आपके प्रति मित्र-भाव रखें और शिष्य-भाव न रखें। तो क्रांति नहीं होगी?

कुछ बुरी बात नहीं कह रहे हैं; बिल्कुल ठीक बात कह रहे हैं। कौन उनकी बात को गलत कहेगा? और अगर मैं कहूं कि नहीं, मित्र-भाव से काम न चलेगा; तो स्वभावतः उनके मन में ख्याल उठेगा, यह आदमी बड़ा अहंकारी है, यह गुरु बनना चाहता है। और अगर मैं कहूं कि ठीक, बिल्कुल मित्र-भाव रखो तो वे मुझे अपने तल पर लाने की कोशिश में लगे हैं। आज वे कहेंगे मित्र-भाव, कल वे मेरे कंधे पर हाथ रख कर हंसी-मजाक करना चाहेंगे।

शिष्य जब गुरु के पास आता है तब भी उसकी अचेतन बीमारियां लेकर आता है। उसका कोई कसूर नहीं है। वह जैसा है वैसा ही आएगा, बदल कर नहीं आ सकता। बदलने आया है। बीमार है, इसीलिए आया है। लेकिन वह अपनी बीमारी भी लाया है। और गुरु अगर उसके तल पर जरा भी उतर जाए तो उसे बदल न पाएगा। बिना उतरे भी अगर वह उसको सहमति दे दे इतनी भी कि ठीक है, मित्र रहो--मित्रता बड़ी कीमती बात है, और गुरु की तरफ से कोई अड़चन नहीं है, गुरु की तरफ से वस्तुतः तुम मित्र ही हो--लेकिन स्वीकृति भी दे दे, तो तुम्हें उठा नहीं सकेगा।

कृष्णमूर्ति चालीस साल की निरंतर मेहनत के बाद किसी को भी उठा नहीं सके, क्योंकि एक भ्रांति की स्वीकृति उन्होंने दे दी, जो उनकी तरफ से बिल्कुल ठीक थी। उन्होंने कहा, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, ज्यादा से ज्यादा एक मित्र। कृष्णमूर्ति की तरफ से बात बिल्कुल ठीक है; गुरु की तरफ से मित्रता ही है। लेकिन सुनने वाले का अहंकार परिपुष्ट हुआ। जो शिष्य होने आए थे वे मित्र होकर वापस लौट गए। बात ही खतम हो गई। अब क्रांति का कोई उपाय न रहा। क्योंकि क्रांति का उपाय तभी है जब तुम किसी को ऊपर देख सको--इतनी ऊंचाई पर कि तुम्हारा सिर झुक जाए तो भी तुम उसे पूरा न देख पाओ, उसका अंतिम शिखर दूर आकाश में खोया हो--तभी तुम चढ़ोगे, तभी तुम उठोगे, तभी तुम यात्रा पर निकलोगे।

छोटी पगडंडियां लोग पसंद करते हैं। इसलिए छोटे-छोटे गुरु लोग पसंद करते हैं। जिनको तुम मैनेज कर सको, जिनको तुम व्यवस्था दे सको, जो तुम्हारी आज्ञा से इधर-उधर न जाएं। अगर कबीर होते तो वे कहते, एक अचंभा मैंने देखा कि शिष्य गुरु को ज्ञान बताए। पर ऐसा हो रहा है। शिष्य गुरुओं को चला रहे हैं। संप्रदाय धर्म

बन बैठे हैं। पगडंडियां राजपथ होने का दावा कर रही हैं। और तुम्हें सुखद लगता है। क्योंकि तुम उन पगडंडियों से बड़े बने रहते हो। तुम अपने गुरु से भी बड़े बने रहते हो।

मेरे पास जैन साधु आकर कई बार कह कर गए हैं कि बड़ी मुश्किल है, समाज आने नहीं देता आपके पास; अनुयायी कहते हैं कि वहां मत जाना। और अनुयायियों की उन्हें माननी पड़ती है। मुझसे चोरी से भी मिलने जैन साधु आए हैं, क्योंकि वे प्रकट नहीं आ सकते। किसी को पता न हो। किसी को पता चल जाए तो वे कहेंगे, तुम वहां क्यों गए?

इसको मैं कह रहा हूं कि जिसको तुम मैनेज कर सको। अब इस गुरु से तुम क्या पाओगे? यह तुम्हारी कठपुतली है। यह तुमसे डरा हुआ है; यह तुमसे भयभीत है। जो तुमसे भयभीत है उसका परमात्मा से क्या संबंध? जो तुमसे डरा है वह तुमसे गया-बीता है। तुम्हारे गुरु तुमसे गए-बीते हैं। लेकिन पगडंडियों पर यही तो चलने का मजा है कि तुम गुरुओं को भी चला पाते हो।

'दरबार चाकचिक्य से भरे हैं, जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।'

लाओत्से कहता है कि मनुष्य स्वभाव से इस बुरी तरह छूट गया है कि उसे ख्याल में नहीं रहा है कि जीवन को उसने कितने असार से भर लिया स्वभाव से छूट कर। और असार इतना सारपूर्ण मालूम होने लगा है कि तुम बिल्कुल अंधे ही होओगे, तुम्हें बिल्कुल बोध की एक किरण भी न होगी, तभी ऐसा हो सकता है।

थोड़ा सोचो। लोग सोने को इकट्ठा करने के पीछे पागल हैं। न खा सकते हो सोने को, न पी सकते हो, न ओढ़ सकते हो। और जीवन का बहुमूल्य अवसर उसे इकट्ठा करने में गंवाया जा रहा है। रोटी जरूरी है, मगर लोग रोटी चाहे न खाएं, सोना जरूर चाहिए। भूखे सो जाएं, लेकिन सोना जरूर चाहिए। क्या कारण होगा कि लोग अपनी वास्तविक जरूरतों को छोड़ कर भी गैर-जरूरी जरूरतों को भरने की पहले कोशिश करते हैं? क्या कारण है? क्योंकि जरूरतें तो साधारण हैं; उनको तुम पूरा भी कर लो तो भी तुम असाधारण की तरह दिखाई न पड़ोगे। भूख तुमने भर भी ली तो जानवर भी भर लेते हैं, पशु-पक्षी भी भर लेते हैं; उसमें क्या खूबी? सोना अगर तुमने ढेर लगा लिया तो कोई पशु-पक्षी ऐसा नहीं करता। पशु-पक्षी इतने नासमझ नहीं हैं।

और सोना न्यून है, और अहंकार न्यून से ही भरता है। जो जितना कम है उतना मूल्यवान है। बड़ी हैरानी की बात है! उसकी उपयोगिता के कारण कोई चीज मूल्यवान नहीं है; उसकी कमी के कारण। सोने का क्या उपयोग है? एक ही उपयोग है कि वह न्यून है; इतना कम है कि सभी लोग उसको नहीं पा सकते। कुछ थोड़े से लोग ही ढेर लगा सकते हैं। उस ढेर के कारण वे विशिष्ट हो जाएंगे, खास हो जाएंगे, असाधारण हो जाएंगे। सोना न्यून है, इसलिए उसकी कीमत है। व्हाइट गोल्ड और भी कम है तो उसकी दुगुनी कीमत है। फिर प्लेटिनम और भी कम है तो उसकी और भी ज्यादा कीमत है। जो चीज जितनी न्यून है, उसके आधार पर उसका मूल्य हो रहा है। इसकी कोई चिंता ही नहीं कि उसका कोई उपयोग है?

अहंकार को उपयोग से मतलब ही नहीं है। अहंकार को सिर्फ एक घोषणा करनी है जगत में कि मैं असाधारण हूं। पेट भूखा रह जाए, कंठ प्यासा हो, कोई फिक्र नहीं; शरीर गहनों से सजा हो। जीवन की गहरी से गहरी जरूरतें खाली रह जाएं, प्रेम से तुम वंचित रह जाओ, कोई फिक्र नहीं; हीरे-जवाहरात चाहिए।

अन्यथा जीवन की तो जरूरतें बड़ी थोड़ी हैं। अगर अहंकार बीच में न आए तो पृथ्वी पर बड़ा संतोष हो। असंतोष का स्वर अहंकार से आता है। क्या है जरूरत तुम्हारी? कि पेट भरा हो!

जीसस अपने शिष्यों से कहे हैं। कई बार लगता है कि जीसस इतनी सी छोटी सी बात क्यों प्रार्थना में जोड़े हैं! जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है कि तुम यह प्रार्थना रोज करना; उसमें एक पंक्ति हैः हे प्रभु, मुझे मेरी रोज

की रोटी दे, गिव मी माइ डेली ब्रेड। समझ में नहीं आता कि इसको मांगने की क्या जरूरत है? रोटी! पर जीसस रोटी शब्द को प्रतीक की तरह चुन रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि जीवन की मेरी जो छोटी-छोटी जरूरतें हैं--प्यास है तो पानी चाहिए, भूख है तो रोटी चाहिए, जीवन है तो प्रेम चाहिए--यह मेरी छोटी सी रोटी है, दि डेली ब्रेड, पानी, रोटी, प्रेम, छप्पर। इतना ही चाहिए जीवन के लिए और जीवन परम महिमा को उपलब्ध हो जाता है, उस कुलीनता को, जिसकी चर्चा लाओत्से करता है कि बाहर कुछ भी न हो, भीतर एक ऐसी संपदा हो जाती है; बाहर फटे कपड़े हों तो भी भीतर का सम्राट जगमगाता है।

नहीं, लेकिन दुनिया उलटे रास्ते चलती है। भीतर कुछ भी न हो, भीतर भिखारी हो, भिखारी का पात्र हो, खंडहर आत्मा हो, बाहर चाकचिक्य हो, बाहर सब हो। क्योंकि भीतर की आत्मा तो किसको दिखाई पड़ेगी? बाहर की चीजें लोगों को दिखाई पड़ती हैं। आत्मा को गंवाओ। बदल लो आत्मा को धन-दौलत में, तिजोड़ी भर लो, खुद खाली हो जाओ।

लाओत्से कह रहा है, इसलिए लोग स्वभाव से टूट गए हैं। क्योंकि स्वभाव में होने के लिए इतनी तो समझ होनी ही चाहिए कि जो जरूरी है वही जरूरी है; जो गैर-जरूरी है वह जरूरी नहीं है।

और जो एक दफा गैर-जरूरी की दा.ैड पर निकल गया वह माया में जा रहा है। अब उसका कोई अंत नहीं है। तुम कुछ भी पा लो तो भी बहुत कुछ पाने को शेष रहेगा। वह घड़ी कभी न आएगी जब तुम कह सको कि मैंने सब पा लिया। सिकंदर को नहीं आई तो तुम्हें कैसे आएगी? आज तक दुनिया में बड़े से बड़े धनपति को नहीं आई तो तुम्हें कैसे आएगी? कुबेर भी रो रहा है। सोलोमन भी मरते वक्त परेशान है। सब नहीं हो पाया; सब नहीं मिल पाया।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों को कि देखो खेत में खिले हुए लिली के फूल! देखो इनकी शान! सोलोमन, सम्राट सोलोमन, अपनी पूरी सफलता के क्षणों में भी इतना सुंदर नहीं था।

लिली के फूल के पास है भी क्या? साधारण जंगली फूल है। लेकिन क्या कमी है? तुमने कभी लिली के फूल को कोई शिकायत करते देखा कि उसने कहा हो कुछ कम है? जल मिलता है पृथ्वी से, प्यास तृप्त हो जाती है। सूरज की किरणें मिलती हैं, जीवन प्रफुल्लित हो जाता है, सुवास आ जाती है। और चाहिए क्या?

लाओत्से कहता है, जीवन की जो साधारण जरूरतें हैं जो उनसे ही राजी हो गया वह उस महा पथ को उपलब्ध हो जाएगा। क्योंकि उसकी जीवन-ऊर्जा व्यर्थ की दौड़ में नहीं पड़ेगी। वह जीवन-ऊर्जा बच रहेगी। वह जीवन-ऊर्जा उसे ऐसा संपन्न बना देगी, भीतर की गरिमा से ऐसा भर देगी जैसा हर फूल भरा है। उसके भीतर का दीया जल जाएगा।

'दरबार चाकचिक्य से भरे हैं, जब कि खेत जुताई के बिना पड़े हैं और बखारियां खाली हैं।'

खेत की किसी को चिंता नहीं। खलिहान खाली पड़े हैं। बखारियां रिक्त हैं। जीवन की मूल जरूरतें लोग चूक गए हैं। और व्यर्थ की बातें, दरबार, दिल्लियां, बड़ी महत्वपूर्ण हो गई हैं। सब दिल्ली की तरफ भाग रहे हैं। राजनीतिज्ञ भाग रहे हैं; जो सोचते हैं कि राजनीतिज्ञ नहीं हैं वे भी भाग रहे हैं। साधु-संन्यासी भाग रहे हैं। क्या है दरबार में? दरबार प्रतीक है लाओत्से के लिए व्यर्थता का, असार का। क्या है राजधानियों में? वे आदमी की मूढ़ता के स्तंभ हैं। वे आदमी की नासमझी के प्रतीक हैं। लेकिन सभी भाग रहे हैं। मन में एक ही दौड़ लगी है कि कैसे दरबार में पहुंच जाएं। दरबार में पहुंच कर क्या होगा? खाली पेट, खाली आत्मा। तुम बाहर स्वर्ण से थोप भी दिए जाओगे तो क्या होगा?

'तथापि जड़ीदार चोगे पहने, चमचमाती तलवारें हाथों में लिए, श्रेष्ठ भोजन और पेय से अघाए, वे धन-संपत्ति में सरोबोर हैं। इससे ही संसार लूटपाट पर उतारू होता है। क्या यह ताओ का भ्रष्टाचरण नहीं है?'

ताओ का एक ही भ्रष्टाचरण है, ताओ से वंचित हो जाने का एक ही ढंग है--कि तुम गैर-जरूरी को जरूरी समझ लो। फिर सब भ्रष्ट हो जाएगा। हर समाज भ्रष्टाचार से मुक्त होना चाहता है, लेकिन हो नहीं सकता।

इधर भारत में बड़ी चर्चा चलती हैः भ्रष्टाचार है, इससे मुक्त होना है। भ्रष्टाचार सदा से है। और सदा से लोग मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं। और बिना लाओत्से की आवाज सुने कोशिश कर रहे हैं। भ्रष्टाचार मिट नहीं सकता, जब तक असार सार मालूम पड़ता है। इसलिए भ्रष्टाचार मिटाने का कोई ढंग कानून बनाना नहीं है पार्लियामेंट में और न ही कोई जयप्रकाश की तरह आंदोलन चलाने से भ्रष्टाचार मिटता है। क्योंकि वह आंदोलन भी कानून को ही बदलने का जोर करेगा। और क्या करेगा? और आंदोलन चलाने वाले भी उतने ही भ्रष्टाचारी हैं जितने कि जो पद में बैठे हैं। कोई फर्क नहीं है। क्योंकि भ्रष्टाचार का मूल तो दोनों के भीतर एक है। और वह मूल यह है कि जो व्यर्थ है वह सार्थक मालूम होता है।

तो भ्रष्टाचार तो तभी मिट सकता है जब लोग ताओ से जुड़ जाएं, लोग धार्मिक हों; उसके पहले नहीं मिट सकता। जब तक हीरा मूल्यवान मालूम होता है, स्वर्ण मूल्यवान मालूम होता है, पद मूल्यवान मालूम होता है, प्रतिष्ठा मूल्यवान मालूम होती है, राजनीति मूल्यवान मालूम होती है, दरबार, राजधानियां मूल्यवान मालूम होती हैं, सिंहासन का जब तक कोई भी मूल्य है, तब तक भ्रष्टाचार नहीं मिट सकता। क्योंकि भ्रष्टाचार का एक ही अर्थ है कि तुम अपने स्वभाव से च्युत हो गए। कौन सी जगह से तुम च्युत हुए हो? कहां तुम्हारी पहली भूल है?

वह पहली भूल यह है कि तुमने जीवन में साधारण होने का राजीपन न दिखाया। तुम असाधारण होना चाहते हो। और आदमी का मन बड़ा अजीब है। तुम साधुता से असाधारण होने की कोशिश करो तो भी तुम भ्रष्टाचारी हो। कोई नहीं पहचान पाएगा तुम्हारे भ्रष्टाचार को। लोग कहेंगे कि इस आदमी के पास तो कुछ भी नहीं है, नंगा खड़ा है; इसको कैसे भ्रष्टाचारी कहते हो? यह तो कोई राजधानी में भी नहीं गया, राजनीति में भी नहीं है, धन-दौलत भी इकट्ठी नहीं की, कोई लाइसेंस का घोटाला भी नहीं करता, कुछ भी नहीं है; यह तो बेचारा अपना नंगा खड़ा है; भगवान का भजन करता है।

यह भी भ्रष्टाचारी है, अगर यह विशिष्ट होना चाहता है। अगर यह भगवान का भजन भी बीच बाजार में करता है ताकि लोग सुन लें, अगर यह भगवान का भजन भी जोर-जोर से करने लगता है अगर लोग पास हों तो यह भ्रष्टाचारी है। क्योंकि मूल स्रोत भ्रष्टाचार का एक ही है और वह यह, कि तुम असाधारण होने की कोशिश करो।

लाओत्से कहता है कि इस जगत में साधारण हो जाना ही कला है। और जो साधारण हो गया--सब अर्थों में साधारण--जिसका कोई दावा ही नहीं है, जो किसी पद, इस जगत में या परलोक में, कोई फिक्र नहीं कर रहा है, जिसने व्यर्थता समझ ली इस बात की, जो जीवन की बहुत छोटी चीजों से प्रसन्न है, कि रोटी मिल गई, कि पानी मिल गया, कि श्वास मिल गई, कि प्रेम मिला, कि प्रार्थना मिल गई, बस काफी है; जो इतने ना-कुछ से राजी है, वही राजी हो पाएगा, और उसके जीवन में ही असाधारण का जन्म होता है। जो साधारण होने को राजी है, उससे ज्यादा असाधारण पुरुष कोई भी नहीं।

नहीं तो भ्रष्टाचार है। और जब तक हम भ्रष्टाचार के इस मूल को न समझें तब तक हम ऊपर-ऊपर सब कुछ करते रहें, कुछ भी न होगा। जो पद में होते हैं वे भ्रष्टाचारी मालूम होते हैं। जब वे पद में नहीं थे तब वे भी क्रांतिकारी थे। फिर दूसरे खड़े हो जाते हैं जो पद पर नहीं हैं, वे क्रांति की चर्चा करते हैं। वे भ्रष्टाचार के विरोध में

हैं; लेकिन उनको पद दो, वे भी भ्रष्टाचारी हो जाते हैं। अब तक सभी क्रांतियां असफल हो गई हैं। आदमी की आशा अदभुत है! कोई क्रांति कभी सफल नहीं हुई, फिर भी आदमी सोचता है क्रांति से सब ठीक हो जाएगा। क्रांति करने वाले भी छिपे भ्रष्टाचारी हैं जो अपने समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे आज भ्रष्टाचार के खिलाफ हैं, क्योंकि जनता भ्रष्टाचार से परेशान है, लोग पीड़ित हैं, जनता का साथ मिलेगा। कल वे सत्ता में पहुंचे कि सब वही का वही हो जाएगा। क्योंकि उनको भी मौलिक भूल का कोई पता नहीं है। मौलिक भूल विशिष्ट होने की भूल है। फिर विशिष्ट होने के हजार ढंग हैं। तुम विशिष्ट हो सकते हो धन से, पद से, ज्ञान से, त्याग से, लेकिन विशिष्ट होना।

लाओत्से कहता है, एक बात ही भ्रष्टाचार है स्वभाव का। जहां तुमने विशिष्ट होना चाहा, तुम भ्रष्ट हुए, और तुमने भ्रष्टाचार की हवा पैदा की। साधारण हो रहो! भूख लगे, खा लो; प्यास लगे, पी लो; प्रार्थना लगे, कर लो। किसी को दिखाना क्या? किसी को बताना क्या? ऐसे जीओ जैसे तुम हो ही नहीं। चुपचाप जी लो कि तुम्हारी कोई रेखा भी न छूटे।

लेकिन मन कहता है, इतिहास में नाम रह जाए। अगर इतिहास में नाम रखना है तो तुम फिर भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि इतिहास तो सिर्फ भ्रष्टाचारियों का है। इतिहास में तो जो जितना भ्रष्ट है उतना ही ज्यादा नाम आएगा। क्योंकि वह उतने ही उपद्रव करता है, उतनी ही घटनाएं पैदा होती हैं। अच्छे आदमी का कोई इतिहास होता है? वह कुछ करता ही नहीं जिससे इतिहास बने। या वह जो कुछ भी करता है वह अखबारों में छापने योग्य नहीं होता, सुर्खियां उससे नहीं बनतीं।

तुम ध्यान कर रहे हो। कोई अखबार उसको पहले पेज पर छापेगा कि फलां-फलां सज्जन ध्यान में बैठे हैं? कोई नहीं छापेगा। तुम जाओ और किसी की छाती में छुरा भोंक दो; तुम सुर्खी में आ गए। दुनिया में छुरा भोंकना ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ता है ध्यान करने की बजाय। तुम उपद्रव करो कुछ, तुम कुछ मिटाओ तो तुम सुर्खियों में आ जाओगे अखबार की। तुम कुछ बनाओ; कौन पूछता है? तुम्हारे होने का कोई मूल्य नहीं है। तुम कुछ व्याघात पैदा करो, तुम चारों तरफ कुछ हलचल पैदा करो; तब तुम पूछे जाते हो।

अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें आत्मा खोनी पड़ेगी। क्योंकि आत्मा की कोई पूछ इतिहास में नहीं है। अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें ताओ खोना पड़ेगा। क्योंकि ताओ का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं है। अगर तुम्हें इतिहास में रहना है तो तुम्हें दुख और पीड़ा और अशांति में और नरक में जीना पड़ेगा। क्योंकि नरक का ही केवल इतिहास लिखा जाता है। स्वर्ग का क्या इतिहास? स्वर्ग में कहीं अखबार छपते हैं? नरक में छपते हैं। वहां कुछ घटता ही नहीं; घटना ही नहीं घटती तो अखबार क्या छपेगा?

नहीं, अगर दुनिया शांत और आनंदित हो तो इतिहास धीरे-धीरे खो जाएगा। अगर लोग सिर्फ जीएं, और लोग सिर्फ प्रसन्न हों अपने न होने में, और कोई दौड़ न हो किसी से आगे निकलने की, लोग अपनी-अपनी जगह राजी हों--इतिहास खो जाएगा। इसीलिए तो पूरब के देशों के पास इतिहास नहीं है। हमने लिखना न चाहा। हमने लिखने योग्य न माना। क्योंकि जो भी लिखने योग्य लगता था वह कचरा था। जो लिखने योग्य था उसकी लहर ही न बनती थी, वह लिखा नहीं जा सकता था।

इसलिए हमने पुराण लिखे; इतिहास नहीं लिखा। पुराण बड़ी अलग बात है। पुराण सार की बात है। पुराण का मतलब यह है कि हम एक बुद्ध के संबंध में नहीं लिखे, दूसरे बुद्ध के संबंध में नहीं लिखे, हमने बुद्धत्व के संबंध में लिखा। एक कहानी गढ़ ली जिसमें बुद्धत्व की कथा समा जाए, सार आ जाए। इसीलिए तो पश्चिम के लोग

कहते हैं कि तुम्हारे बुद्ध संदिग्ध हैं--हुए या नहीं! तुम्हारे तीर्थंकर संदिग्ध हैं। इनका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं है। किस पत्थर पर इनका नाम लिखा है? न, हमने अलग-अलग तीर्थंकरों की फिक्र न की।

तुम जाओ जैन मंदिर में, चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा हैं। तुम कुछ फर्क न कर पाओगे कि कौन कौन है। शक्लें एक सी, बैठे एक से पालथी मारे, एक ही ध्यान में लीन। यह भी हमें पक्का पता नहीं कि इनकी शक्लें तो निश्चित अलग-अलग रही होंगी। चौबीस आदमी थे, शक्ल अलग थी, एक ही शक्ल के कैसे हो सकते हैं? लेकिन अब बिल्कुल एक शक्ल के हैं; कोई फर्क नहीं है। भेद करने के लिए जैनियों को हर प्रतिमा के नीचे एक चिह्न बनाना पड़ता है। तो उन्होंने चिह्न बना दिए हैं। किसी के नीचे सिंह, किसी के नीचे कमल, किसी के नीचे सांप; वे चिह्न बनाने पड़े हैं, ताकि पता चले कि यह प्रतिमा है किसकी। नहीं तो वे चौबीस ही एक जैसे हैं।

पश्चिम कहता है कि ये गैर-ऐतिहासिक हैं, क्योंकि चौबीस आदमी एक जैसी शक्ल के, एक जैसी ऊंचाई के, एक जैसे शरीर के कैसे हो सकते हैं? और अनंत काल में? यह बात कथा मालूम होती है।

यह है भी कथा। हमने फिक्र नहीं की एक-एक तीर्थंकर की। क्योंकि तीर्थंकर का क्या प्रयोजन है? एक-एक का क्या अर्थ है? वह भीतर जो उसने पाया है वह इतना एक जैसा है, वह इतना सारभूत है, वह कथा इतनी एक जैसी है कि हमने एक ही कथा गढ़ ली और एक ही प्रतिमा बना ली। हमने सब बुद्धों को एक घटना में समा लिया, और हमने सब अवतारों को एक अवतार में समा लिया। सार को हमने सिद्धांत बना लिया। इतिहास की चिंता छोड़ दी, क्योंकि इतिहास घटनाओं की फिक्र करता है। हमने उसकी फिक्र की जो भीतर है; जो घटता नहीं, जो है ही; जो कोई घटना नहीं है, जो अस्तित्व है।

इसलिए पुराण हमने रचा। पुराण बड़ी अनूठी बात है। पुराण उनका है जिनकी कोई लकीर पार्थिव जगत में नहीं छूटती; हमने उनकी सार-सुगंध इकट्ठी कर ली। अब हर गुलाब की क्या कथा लिखनी? हमने गुलाब का इत्र निचोड़ लिया। वह पुराण है। क्योंकि हर गुलाब की कथा एक है। बार-बार दुहराने का सार भी क्या है? गैर-जरूरी बातें भिन्न होंगी कि कोई इस बाप से पैदा हुआ, कोई उस बाप से पैदा हुआ। इसका क्या लेना-देना है कि कोई इस मां की कोख में आया, कोई उस मां की कोख में आया। कोख एक है; जन्म की घटना एक है। कोई इधर मरा, कोई उधर मरा, इस गांव में या उस गांव में; इससे क्या फर्क पड़ता है। यह सांयोगिक है। मृत्यु घटी; जन्म हुआ, मृत्यु घटी। कोई इस दुख से ऊबा और ध्यान में गया, कोई उस दुख से ऊबा और ध्यान में गया; इससे क्या फर्क पड़ता है? लोग दुख से ऊबे और दुख-निरोध की तरफ ध्यान में गए। हमने निचोड़ लिया सार। सब गुलाबों की अलग-अलग कथा लिखना नासमझी है; हमने तो निकाल लिया इत्र, सुवास पकड़ ली, उस सुवास को लिख लिया।

इसलिए पुराण शाश्वत है। पुराण का मतलब यह नहीं कि जो पहले हुआ। पुराण का मतलबः जो पहले हुआ, अभी भी हो रहा है, आगे भी होगा। इतिहास का मतलबः जो हुआ और चुक गया; अभी नहीं हो रहा वैसा, कुछ अन्य हो रहा है; आगे कुछ अन्य होगा। इतिहास गैर-जरूरी विस्तार है। पुराण आत्मा है, सार है।

लाओत्से कहता है, इस संसार में लूटपाट चल रही है, शोषण चल रहा है, हिंसा है, घृणा है, प्रतिस्पर्धा है। और कारण क्या है? कारण इतना है कि कोई भी साधारण होने को राजी नहीं।

इसे तुम ठीक से समझ लो। जो साधारण हो गया वह संन्यासी है। जो असाधारण होने की दौड़ में लगा है वह संसारी है। अगर तुम संन्यास से भी असाधारण होने की दौड़ में लगे हो, तुम संसारी हो।

एक युवक ने दो दिन पहले मुझे आकर कहा कि वह लंदन वापस जाता है तो मन नहीं लगता, यहां आने की इच्छा बनी रहती है। मैंने पूछा कि तू ठीक से सोच, क्या कारण होगा? क्योंकि लंदन और यहां में क्या है फर्क?

ध्यान यहां करना है, ध्यान तुझे वहां करना; जीना यहां, श्वास यहां लेनी, श्वास वहां लेनी है। उसने कहा, यह बात नहीं है। वहां मैं एक साधारण सा मजदूर हूं; यहां मैं एक विशिष्ट संन्यासी हूं। तो वहां जाता हूं, एक साधारण आदमी हूं, एक मजदूर; यहां आता हूं तो हर आदमी देखता है कि पश्चिम से आया हुआ एक विशेष संन्यासी! यहां एक विशिष्टता है।

अगर ऐसे कारण से कोई संन्यासी है, संसारी है। क्योंकि संन्यास का अर्थ ही इतना हैः साधारण हो जाना; ऐसे हो जाना कि तुम जैसे हो ही नहीं; जैसे तुम न होते तो कोई फर्क न पड़ता; जैसे तुम्हारे जाने से कोई कमी न होगी। जब कोई मर जाता है तो हम कहते हैं, यह कमी कभी न भरेगी, यह पूर्ति असंभव है अब इसको करना, यह जगह सदा खाली रहेगी। ये संसारियों के लक्षण हैं। तुम इस तरह जीना कि जब तुम हट जाओ तो किसी को पता ही न चले; जब तुम विदा हो जाओ, तुम्हारी कोई कमी किसी को मालूम न पड़े। क्योंकि जब तुम थे तब तुम्हारी मौजूदगी ही पता न चली तो अब तुम्हारी गैर-मौजूदगी कैसे पता चलेगी? न, तुम्हें कोई उल्लेख न करे, कोई तुम्हारी चर्चा न करे। कोई तुम्हारी बात न उठाए। तुम ऐसे भूल जाओ जैसे थे ही नहीं। तुम ऐसे खो जाओ जैसे भाप खो जाती है आकाश में; कहीं कोई पता नहीं चलता। ऐसे साधारण हो जाने का नाम संन्यास है।

और जब तक संसार संन्यास न बन जाए तब तक भ्रष्टाचार जारी रहेगा। अभी तो जिनको हम संन्यासी कहते हैं वे भी संसारी हैं। वे चाहे कितनी ही बात करते हों भ्रष्टाचार मिटाने की, इसकी उसकी, वे भी संसारी हैं। उनकी भी दौड़ वही है, जो संसारी की है। वे भी कुछ होने के पीछे पड़े हैं।

होने की कुछ जरूरत ही नहीं। क्योंकि तुम जो हो सकते थे वह तुम हो। तुम्हारी महिमा में एक कण भी जोड़ना आवश्यक नहीं है; क्योंकि तुम्हारी महिमा अनंत है। तुम्हारी ज्योति में अब और ज्योतियां जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि तुम महा ज्योति हो, तुम परमात्मा हो। यही अर्थ है अहं ब्रह्मास्मि का। यह उदघोष यह कह रहा है कि अब तुम्हें कुछ करना नहीं है। कभी कुछ करना नहीं था। तुम परम पहले से ही हो। तुम आखिरी हो। तुमसे ऊपर जाने का कोई उपाय भी नहीं है।

जब कोई साधारण हो जाता है तब श्वास-श्वास ऐसे आनंद से भर जाती है; संघर्ष खो जाता है, समर्पण फलित होता है, तब सारा जीवन एक ऐसे संतोष, एक ऐसी तृप्ति, एक ऐसी दीप्ति से भर जाता है कि उसी दीप्ति और तृप्ति में तुम पहचान पाते हो अपने भीतर के स्वभाव को, ताओ को।

अन्यथा तुम भ्रष्टाचार में ही जीओगे। और उस भ्रष्टाचार में तुम कुछ पाओगे न, सिर्फ अपने को खोओगे। खोने का रास्ता है पाने की दौड़; पाने का रास्ता है खोने की तैयारी।

आज इतना ही।

बानबेवां प्रवचन

संगठन, संप्रदाय, समृद्धि, समझ और सुरक्षा

पहला प्रश्नः आपने कल संप्रदायों को पगडंडी की संज्ञा दी और धर्म को राजपथ की। लेकिन प्रायः सभी संप्रदाय राजपथ से गुजरने वाले ज्ञानियों के पीछे निर्मित हुए। फिर इन परम ज्ञानियों ने इसकी चिंता क्यों नहीं की कि उनके पीछे संप्रदाय न बनें? और इसके निवारण के लिए आप क्या कर रहे हैं?

पहली बात कि ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति चिंता नहीं करते कि पीछे क्या होगा। पीछे की चिंता अज्ञानी करता है; ज्ञानी कोई चिंता ही नहीं करता। चिंता के विसर्जित हो जाने पर ही तो ज्ञान होता है। ज्ञानी सिर्फ जीता है। जो हो, हो। जो न हो, न हो।

ज्ञानी का जीवन कोई आयोजना नहीं है। ज्ञानी का जीवन एक सहज प्रवाह है। ज्ञानी तो ऐसे हो रहता है जैसे पौधे हैं, वृक्ष हैं, पहाड़ हैं। न आगा है कुछ, न पीछा है कुछ। न कुछ बुरा है, न कुछ भला है। तो ज्ञानी तो परम निर्दोषता में जीता है; इसलिए चिंता कर भी नहीं सकता। और चिंता करे भी तो भी संप्रदाय बनने से रुक नहीं सकता। बिना चिंता किए हुए भी ज्ञानी इस ढंग से जीए हैं कि संप्रदाय न बने; फिर भी संप्रदाय बना है।

बुद्ध ऐसे ही जीए; नहीं कि चिंता की। क्योंकि चिंता ज्ञानी कर ही नहीं सकता। पर इस ढंग से जीए कि संप्रदाय निर्मित न हो। कहा कि कोई भगवान नहीं है, और कहा कि मुझे भी भगवान मत कहना। कहा कि पूजा का कोई उपाय नहीं है, मेरी भी पूजा मत करना। कहा कि प्रतिमा से कोई लाभ न होगा, और तुम मेरी प्रतिमा मत बनाना। लेकिन इससे कोई फर्क न पड़ा। इससे लोगों का प्रेम और भी उपजा। इसका उलटा ही परिणाम हुआ। जितनी प्रतिमा बुद्ध की बनीं उतनी कभी किसी की न बनी थीं। और बुद्ध को जितने लोगों ने भगवान कहा इतना किसी को भी कभी लोगों ने न कहा था। और बुद्ध की शरण जितने लोग गए, किसी की शरण नहीं गए।

संप्रदाय बनेगा ही। बनने का कारण ज्ञानी के जीवन और ढंग में नहीं है; बनने का कारण तो पीछे आने वाले अन्य अज्ञानियों के भीतर है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है। एक ही उपाय है कि कोई अज्ञानी न हो। वह तो कैसे किया जा सकता है? वह तो अज्ञानी की मर्जी पर निर्भर है कि कब वह ज्ञानी होगा। अज्ञानी तो पीछे आएगा ही। और अज्ञानी पूजा भी करेगा। और अज्ञानी मूर्ति भी बनाएगा।

इसलिए दूसरे ज्ञानी हैं जो इसको चुपचाप स्वीकार करके जीए। तो कृष्ण ने नहीं कहा कि मेरी मूर्ति बनाना या मत बनाना। कृष्ण ने नहीं कहा कि मेरी पूजा करना कि नहीं करना। जो करोगे वह तुम करोगे ही। कोई कहे कि करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता; कोई कहे कि न करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि तुम्हारे अज्ञान में जो हो सकता है वही होगा। ज्ञानी के कहने से तुम चलते नहीं हो; चलो तो तुम अज्ञानी न रह जाओ।

तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं है। तुम जैसे हो वैसे हो। जैसे हम पानी में सीधी लकड़ी को भी डालें तो वह तिरछी होकर दिखाई पड़ने लगती है। क्योंकि पानी का स्वभाव पानी का स्वभाव है। पानी में जैसे ही कोई किरण प्रवेश करती है प्रकाश की, वह तिरछी हो जाती है। लकड़ी को जब तुम देखते हो पानी में तो वह तिरछी दिखाई पड़ती है, क्योंकि प्रकाश की किरण के द्वारा ही देखी जा सकती है। सीधी लकड़ी पानी में तिरछी दिखाई पड़ती है।

राजपथ पर चलने वाले ज्ञानियों के पीछे पगडंडियां निर्मित होती हैं, क्योंकि अज्ञानी का मन और अज्ञानी के मन के नियम हैं। और दो ही उपाय हैं ज्ञानियों के लिए; दोनों उपाय किए जा चुके हैं।

एक उपाय है बुद्ध का जो कृष्णमूर्ति कर रहे हैंः मत करो पूजा, मत मानो गुरु, मत कहो भगवान। कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्णमूर्ति को मानने वाले भक्त हैं, जो उन्हीं को मानते हैं और किसी को नहीं मानते, और जो उनके शास्त्रों की पूजा करेंगे। जो अभी भी पूजा कर रहे हैं; और जिनके हृदय में संप्रदाय पैदा हो ही चुका है। कृष्णमूर्ति के मरते ही संप्रदाय गठित हो जाएगा। एक उपाय यह है जो बुद्ध, कृष्णमूर्ति ने किया।

दूसरा उपाय कृष्ण का, महावीर का है; जो मैं कर रहा हूं। वह उपाय यह है कि जब तुम बनाओगे ही संप्रदाय तो बेहतर है कि मैं खुद ही बना दूं। कम से कम तुम जैसा बनाओगे, उससे बेहतर मैं बना सकता हूं। और जब यह होने ही वाला हो तो बेहतर है कि इसे मैं अपने रहते ही तैयार कर दूं। तुम जैसा बनाओगे, उससे यह बेहतर होगा।

कृष्णमूर्ति का संप्रदाय तुम बनाओगे; मेरा संप्रदाय मैं बनाए देता हूं।

और तुम पक्का जानना कि कृष्णमूर्ति के पीछे जो संप्रदाय बनेगा वह ज्यादा खतरनाक होगा। होगा ही, क्योंकि कृष्णमूर्ति ने बनाने में कोई सहायता न दी। मेरे पीछे जो बनेगा, संप्रदाय तो जितना खतरनाक होता है उतना होगा, लेकिन कृष्णमूर्ति वाले संप्रदाय से कम खतरनाक होगा। क्योंकि मैंने तुम्हें साथ दिया। मैंने तुम्हें वस्त्र दिए, नाम दिए, संन्यास दिया। मैंने तुम्हें सब सुविधा दी है संप्रदाय के बना लेने की। क्योंकि मैं जानता हूं, जो होने ही वाला है वह होने ही वाला है। अच्छा यही होगा कि मैं साथ दे दूं। थोड़ा सुगढ़ होगा। थोड़ा ज्यादा दूरगामी होगा। राजपथ के थोड़ा करीब होगी पगडंडी। तुम जो बनाओगे वह बहुत दूर निकल जाएगी। राजपथ के सहारे ही बनेगी तो राजपथ के किनारे-किनारे ही होगी। उस पगडंडी से राजपथ पर आ जाना ज्यादा मुश्किल न होगा। जब भी तुम चाहोगे, एक छलांग, और तुम राजपथ पर आ जाओगे।

अगर तुम, मैं कहूं कि मत बनाओ संप्रदाय, फिर बनाओगे तो मेरे विपरीत बनाओगे, जैसा कि बुद्ध के विपरीत बना, जैसा कि कृष्णमूर्ति के विपरीत बन रहा है, बनेगा। जब तुम मेरे विपरीत बनाओगे तो राजपथ से बहुत दूर हट कर बनाओगे। बनाना ही पड़ेगा, क्योंकि मेरे विपरीत बनाओगे। राजपथ के पास मैं बनाने भी न दूंगा। तब उस पगडंडी से लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

और दो ही उपाय हैं। ज्ञानियों ने दोनों उपाय कर लिए हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने-अपने चुनाव की बात है। सवाल ज्ञानी की चिंता का नहीं है, सवाल तुम्हारी समझ का है। तुम्हारी समझ ही अंततः निर्णायक होगी। क्योंकि ज्ञानी तो जा चुकेगा; सिर्फ उसकी याद रह जाएगी तुम्हारे हृदय में गूंजती। उस याद का तुम क्या करोगे? उससे तुम संप्रदाय बनाओगे? या उस याद से तुम धर्म के राजपथ पर प्रवेश करोगे? वह याददाश्त तुम्हें पुकारेगी स्वभाव और धर्म की तरफ; या उस याददाश्त को तुम अपनी तिजोड़ी में छिपा कर पूजा करने लगोगे? वह याददाश्त पुकार बनेगी, आवाहन, प्यास; या वह याददाश्त एक खिलौना हो जाएगी और तुम उससे अपना मन बहलाओगे? यह तुम पर निर्भर है। ज्ञानी धर्म में जीता है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम धर्म में जीओगे या संप्रदाय में। यह तुम्हारा निर्णय है। और ज्ञानी क्या कर सकता है?

ज्ञानी के लिए दो विकल्प हैं। वे दोनों ही किए गए हैं।

मेरे अनुकूल यही है कि मैं तुम्हें सहायता दे दूं, ताकि तुम पास ही अपनी पगडंडी बनाओ। तुम्हारी पगडंडी और मुझमें ज्यादा फासला न हो। तो जब तुम जागो, या तुम्हें जरा होश आए, तो तुम छलांग ले सको, राजपथ पास ही हो।

दूसरा प्रश्न हैः आप कहते हैं कि आदमी की जरूरतें बहुत थोड़ी हैं। फिर आदमी यदि जरूरत भर ही पैदा करे तो सभ्यता का, समृद्धि का निर्माण असंभव हो जाएगा। और आप यह भी कहते हैं कि समृद्धि में ही धर्म का उदय होता है। फिर आदमी क्या करे?

निश्चित ही, समृद्धि में ही धर्म का उदय होता है। लेकिन जितनी तुम्हारी वासनाएं कम हों उतने ही जल्दी तुम समृद्ध हो जाते हो। जितनी वासनाएं ज्यादा हों उतनी ही देर लगती है समृद्ध होने में। अगर वासनाएं बहुत हों तो तुम समृद्ध कभी नहीं हो पाते। तो समृद्धि तुम्हारे धन से नहीं आंकी जाएगी। समृद्धि तो तुम्हारे धन और तुम्हारी वासनाओं के बीच का फासला है। जब फासला कम होता है तब तुम समृद्ध हो। अगर फासला बिल्कुल नहीं है तो तुम सम्राट हो, शाहंशाह हो। अगर फासला बहुत बड़ा है तो तुम दरिद्र हो, भिखारी हो। समझो!

अगर तुम्हारी जरूरतें एक रुपए में पूरी हो जाती हैं, और तुम्हारे पास दस रुपए हैं। दूसरा आदमी है जिसकी जरूरतें गैर-जरूरतों से जुड़ी हैं, सार असार से जुड़ा है; उसे दस अरब रुपए भी मिल जाएं तो भी पूरा नहीं हो सकता; और उसके पास पांच अरब रुपए हैं। पांच अरब रुपए हैं, दस अरब में भी वासनाएं पूरी न हों इतनी वासनाएं हैं। तुम्हारे पास दस रुपए हैं, एक रुपए में पूरी हो जाएं इतनी जरूरतें हैं। दोनों में कौन समृद्ध है? वह आदमी जिसके पास दस रुपए हैं, उस आदमी से ज्यादा समृद्ध है जिसके पास पांच अरब रुपए हैं। क्योंकि पांच अरब वाले के पास आधे हैं उसकी जरूरतों से, और इस आदमी के पास दस गुने हैं उसकी जरूरतों से। समृद्ध कौन है?

और निश्चित ही, मैं फिर कहता हूं, बार-बार कहता हूं कि समृद्ध ही धर्म में प्रवेश करेगा। लेकिन तुम समृद्धि का यह मतलब मत समझ लेना कि जब तुम सिकंदर हो जाओगे तब तुम धर्म में प्रवेश करोगे। तब तो तुम कभी प्रवेश करोगे ही नहीं। समृद्धि का अर्थ है कि तुम्हारी जरूरतें इतनी कम हों कि तुम जब भी, जैसे भी हो, वहीं पाओ कि समृद्ध हो। जब जरूरतें पूरी हो जाती हैं--थोड़ी हैं तो जल्दी पूरी हो जाती हैं, देर ही नहीं लगती, तुम पाते हो कि पूरी ही हैं--तब तुम्हारी जीवन-ऊर्जा क्या करेगी? वही जीवन-ऊर्जा तो धर्म की यात्रा पर निकलती है। तुम्हारी जरूरतें पूरी हैं, अब तुम क्या करोगे? अब तुम्हारे होने में क्या होगा? तुम्हारा होना किस दिशा में बहेगा? संसार की जरूरतें तुम्हारी पूरी हो गईं, इतनी थोड़ी थीं कि पूरी हो गईं, अब तुम मुक्त हो उस दूसरे संसार की यात्रा के लिए, अब तुम्हें यहां रोकने को कोई भी नहीं है। अब इस किनारे पर तुम्हारी नाव बंधी रहे, इसकी कोई जरूरत नहीं। तुम तैयार हो दूसरे किनारे पर जाने को; नाव खोल सकते हो, खूंटियां छोड़ सकते हो, पाल फैला सकते हो। इस किनारे की जरूरतें पूरी हो चुकीं।

तो ध्यान रखना। यही तो मैं कहता हूं कि जो मैं कहता हूं तुम वही सुनोगे, इसमें संदेह है; जो मेरा अर्थ है तुम वही समझोगे, इसमें संदेह है। मैं निरंतर कहता हूं कि जब तक तुम समृद्ध न हो जाओगे तब तक तुम धार्मिक न हो सकोगे। और तुम जरूर अपने मन में यही अर्थ निकालते रहे, तभी तो यह प्रश्न उठा, कि पहले सिकंदर हो जाना है, सारी दुनिया को जीत लेना है, तब फिर धार्मिक होंगे। वह मैंने कहा नहीं; तुमने उलटा ही समझा। तुम समझे कि जरूरतों को बढ़ाते जाना है, समृद्ध होना है।

मैंने कहा है कि तुम जरूरतों को घटाते जाना, व्यर्थ को छोड़ देना। जो बिल्कुल जरूरी है वह बहुत थोड़ा है। बहुत थोड़े में आदमी की तृप्ति हो जाती है। तुम्हारी प्यास के लिए समुद्र की जरूरत नहीं है; छोटा सा झरना काफी है। और समुद्र से कभी किसी की तृप्ति हुई? वह दिखता ही बहुत बड़ा है; जाओगे तो पाओगे, वह तो प्यास

बुझाता नहीं, प्यास को बढ़ाता है। धन से कभी किसी की तृप्ति हुई? धन समुद्र का खारा पानी है, जितना पीते हो उतनी प्यास बढ़ती है। क्योंकि नमक ही नमक है। उतना ही कंठ सूखता है। आदमी मर जाए भला समुद्र का पानी पीकर, जी नहीं सकता। पानी पीना हो तो छोटा सा कुआं, जो तुम अपने आंगन में खोद ले सकते हो, जिसके लिए तुम्हारा आंगन भी काफी बड़ा है, छोटा सा झरना, छोटी सी झिर जिससे चुल्लू भर पानी वक्त पर निकल आए, उतना काफी है।

तब तुम कैसे दरिद्र रह पाओगे, अगर तुम थोड़े से राजी हुए?

और जब मैं कहता हूं, थोड़े से राजी हुए, तो तुम यह मतलब मत समझना कि मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम अपनी जरूरतों को दबाना, कि भूखे सो रहना, कि नंगे घूमना। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे इतना ही कह रहा हूं कि तुम्हारी जरूरतें ही समझ लेना ठीक से, कौन सी जरूरतें हैं, उनको पूरा करना। गैर-जरूरी जरूरतों को बीच में मत आने देना, क्योंकि उनका कोई अंत नहीं है। शरीर की सुनना, मन की मत सुनना। और सभी धर्मों ने तुम्हें कुछ उलटा ही सिखाया है। वे कहते हैं, मन की सुनना, शरीर की भर मत सुनना। और शरीर बिल्कुल थोड़े में तृप्त हो जाता है। मन ही अतृप्त है। कितना करोगे भोजन? कितना पानी पीओगे? शरीर के लिए चाहिए क्या?

इसीलिए तो तुम देखते हो कि शरीर में जीने वाले पशु-पक्षी इतने प्रसन्न हैं, क्योंकि जरूरत बिल्कुल थोड़ी है। आदमी भर अप्रसन्न है। क्योंकि आदमी की जरूरत मन की जरूरत है। मन का कोई अंत नहीं है। वह कामना किए जाता है। वह वासना को बढ़ाए चला जाता है। तुम जहां भी पहुंचो वह वहीं कहता है कि यह मंजिल नहीं, मंजिल अभी दूर है। अभी पहुंचे कहां? थोड़ा और दौड़ो। तुम दौड़ते-दौड़ते मर जाते हो, तृप्ति हाथ नहीं लगती।

तो यह तो पहली बात समझ लो कि समृद्ध वही है जो अपनी जरूरतों को जरूरत समझता है और गैर-जरूरतों को गैर-जरूरत समझता है, जो अपनी आधार की जरूरतों को भर लेता है, और जो व्यर्थ की बातों को जो सिर्फ दिखावा है... । सोने-चांदी से न तो प्यास बुझती है, हीरे-जवाहरातों से न तो भूख मरती है। तुम ही मर जाओ उनमें दबकर, लेकिन भूख नहीं मर सकती उनसे। जिसने यह ठीक से समझ लिया कि व्यर्थ के विस्तार को छोड़ देना है, जो आवश्यक है वह शरीर को दे देना है, उसके जीवन में परम तृप्ति का स्वाद आता है। वही तृप्ति समृद्धि है, उसी समृद्धि के बाद धर्म की कोई संभावना है। नहीं तो नहीं।

और आप पूछते हैं कि क्या होगा फिर सभ्यता का, समृद्धि का?

असली सभ्यता की सुविधा बनेगी। असली समृद्धि आएगी; असली संस्कृति आएगी। अभी तो सब नकली है। क्योंकि नकली आदमी की आकांक्षा है। उसी पर सारा फैलाव है। तुम दौड़ रहे हो। बहुत कुछ होता हुआ दिखाई पड़ता है। बड़ा विराट उपक्रम है। सभी लोग काम में लगे हैं। लेकिन क्या पैदा कर रहे हैं?

मैं हिसाब देखता था। अमरीका में पचास प्रतिशत श्रम व्यर्थ की चीजों को पैदा करने में लगाया जा रहा है, जिनकी कोई जरूरत ही नहीं। स्त्रियों के साज-शृंगार का सामान! उसकी बिल्कुल भी जरूरत नहीं है। उससे स्त्रियां सुंदर नहीं होतीं, बल्कि उनका जो सहज सौंदर्य है वह भी खो जाता है, उनका जो लावण्य है वह भी खो जाता है।

ओंठों पर लिपिस्टिक लगाई हुई स्त्री का चेहरा तुम सुंदर समझते हो?

तो तुम्हारी सुंदर की परिभाषा में कहीं कोई भ्रांति है। जिस ओंठ पर लिपिस्टिक लगा है वह खबर दे रहा है कि ओंठ की अपनी लाली खो गई है, ओंठ बीमार है; अब उसको ऊपर की पालिश से छिपाना पड़ रहा है। ओंठ जब सुंदर होता है खून की गति से तब उसकी बात और है। ऊपर के रंग-रोगन से जब ओंठ लाल दिखाई पड़ता है तब तुम मूढ़ हो, अगर तुम उसे सुंदर समझ रहे हो। वह तो घोषणा है इस बात की कि ओंठ का अपना लावण्य खो गया है, अब ओंठ का अपना सौंदर्य नहीं है, यह छिपावा है।

जब कोई व्यक्ति सुंदर होता है तो आभूषण की कोई जरूरत नहीं रह जाती, तब ऊपर से रंग-रोगन का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। पक्षी हैं, पौधे हैं, पशु हैं, बिना रंग-रोगन के कितने सुंदर हैं! आदमी को क्या जरूरत है? आदमी ने सभी वास्तविकता खो दी है। सब धोखा है। और अदभुत हो तुम कि इसको तुम सौंदर्य भी मान लेते हो। स्वास्थ्य सौंदर्य हो सकता है, ऊपर से पोती गई कृत्रिम प्रसाधन की सामग्री सौंदर्य नहीं हो सकती।

जब कोई व्यक्ति ठीक-ठीक सुंदर होता है, शांत होता है, प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है, तो उसकी देह से एक गंध आती है जो गंध बड़ी सोंधी है। जैसे कि जब पहली वर्षा होती है और पृथ्वी से गंध उठती है, क्योंकि पृथ्वी प्रसन्न होती है, तृप्त होती है, प्यास बुझती है; वैसी ही गंध शरीर से भी उठती है, जब कोई व्यक्ति तृप्त होता है, शांत होता है। वैसी गंध को तुम खो चुके हो। वह नहीं उठती। शरीर से दुर्गंध उठती है। तो उसे छिपाने के लिए तुम्हें फिर बाजार से खरीदी हुई सुगंधों का उपयोग करना पड़ता है। वे सुगंधें केवल इतनी ही खबर देती हैं कि तुम्हारा शरीर दुर्गंध से भरा होगा। अन्यथा छिपाते क्यों? अन्यथा दबाते क्यों?

तुम जितना उपाय करते हो, वह सब प्रवंचना है। और यह सारी दौड़-धूप जो इतनी दिखाई पड़ती है सारे संसार में चलती हुई कि बड़ा काम हो रहा है, बड़ी समृद्धि हो रही है, बड़ा विकास हो रहा है, कुछ भी नहीं हो रहा। इसमें से पचास प्रतिशत तो बिल्कुल व्यर्थ है। शेष पचास प्रतिशत में चालीस प्रतिशत ऐसा है जो कि युद्ध, संघर्ष, कलह की तैयारी में जा रहा है। पचास प्रतिशत प्रसाधन के साधन हैं कि खो गया सौंदर्य कैसे बचाया जाए या कैसे दिखाया जाए कि नहीं खो गया है, कैसे आदमी को अभिनेता बनाया जाए--धोखा, प्रवंचना। बाकी चालीस प्रतिशत युद्ध के लिए है। पचास प्रतिशत खो गए जीवन के सौंदर्य को धोखा देने के लिए; और चालीस प्रतिशत जीवन को अंत करने के लिए कि जो थोड़ा-बहुत जीवन बचा है उस पर हाइड्रोजन बम और एटम बम कैसे गिराया जाए। यह नब्बे प्रतिशत मनुष्य की सभ्यता है। बाकी दस प्रतिशत बचता है। उस दस प्रतिशत में आधी दुनिया भूखी है। एक जून रोटी लोगों को नहीं है, छप्पर नहीं है, औषधि नहीं है। और जीवन कीड़े-मकोड़ों जैसा है। यह हमारी सभ्यता है।

अगर हम जीवन की जरूरतों को ही पूरा करने में लगें--जैसा लाओत्से चाहता है, जैसा मैं चाहूंगा--तो न तो झूठे सौंदर्य के प्रसाधन, झूठी प्रतिष्ठा के उपाय, झूठी महत्वाकांक्षा की तृप्ति में पचास प्रतिशत श्रम का अंत होगा। और उसी प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता से पैदा होता है युद्ध जिसमें चालीस प्रतिशत शक्ति व्यय हो रही है। अगर यह पूरी नब्बे प्रतिशत शक्ति जीवन की जरूरतों को पूरा करने में लगाई जाए तो जरूरतें पूरी हो जाएंगी और इतनी विराट ऊर्जा बचेगी मनुष्य के पास कि उसी विराट ऊर्जा से संस्कृति का निर्माण होगा।

लेकिन वह संस्कृति बड़ी भिन्न होगी। वह ऊर्जा प्रार्थना में लगेगी। वह ऊर्जा ध्यान में लगेगी। वही ऊर्जा संगीत बनेगी। वह ऊर्जा सृजनात्मक गतिविधियों में लीन होगी। और जब भी तुम कुछ बना लेते हो, एक छोटी मूर्ति, एक छोटा चित्र, एक नया गीत, एक नई धुन निकाल लेते हो, और जब यह धुन तुम्हारे भीतर की तृप्ति से निकलती है, तब संस्कृति का जन्म होता है। संस्कृति है साहित्य, संस्कृति है कला, संस्कृति है सत्य की खोज। संस्कृति है एक प्रेम के समाज का निर्माण; एक शांत, आनंदित, प्रफुल्लित समाधि की ओर उत्सुक समाज का जन्म।

लेकिन ऊर्जा हो तभी। अभी तो ऊर्जा बचती नहीं। अभी तो तुम व्यर्थ के गोरखधंधे में समय व्यतीत कर देते हो। थके-हारे रात तुम लौटते हो, किसी तरह सो भी नहीं पाते रात भर; क्योंकि दिन में जो तुमने चिंताएं समाई हैं, इकट्ठी की हैं, वे रात भर तुम्हारा पीछा करती हैं। तो रात बन जाती है दुख-स्वप्न। दिन है एक व्यर्थ की दौड़-

धूप। ऐसे ही तुम चुक जाते हो। एक दिन पाते होः जीवन समाप्त हो गया, मौत द्वार पर खड़ी है। इसे तुम संस्कृति कहते हो? इसे तुम सभ्यता कहते हो?

न तो यह सभ्यता है, न यह संस्कृति है। क्योंकि न तो इसमें प्रेम है, न इसमें प्रार्थना है, न इसमें पूजा-अर्चना है, न इसमें समाधि का सौरभ है, न इसमें ध्यान की गरिमा है। इसमें भीतर की कुलीनता नहीं। इसमें सब बाहर का दिखावा है, दरबार का चाकचिक्य है। और खेत-खलिहान सूखे पड़े हैं। और दरबार में बड़ी रोशनी है। लोग तलवारें लिए खड़े हैं, चोगे पहने हैं कीमती। सम्राट हीरे-जवाहरातों से जड़े सिंहासन पर बैठा है। वे ज्यादा खा-पीकर अघा गए हैं और रुग्ण हैं। और इधर खेत-खलिहान खाली पड़े हैं। और आदमी की बुनियादी जरूरतें पूरी नहीं हो रही हैं।

कुछ हैं जो ज्यादा खाकर बीमार हैं; कुछ हैं जो भूख की वजह से बीमार हैं। सारी दुनिया बीमार है। कुछ इसलिए बीमार हैं कि जीवन को सम्हालने के उपाय नहीं; कुछ इसलिए बीमार हैं कि उनके पास इतना ज्यादा है कि वे जानते नहीं करें क्या, वे उस ज्यादा से दबे जा रहे हैं। इसे तुम सभ्यता कहते हो? इससे ज्यादा और बर्बरता क्या होगी? यह एक असभ्य स्थिति है। और इसमें कैसे संस्कृति का जन्म होगा? इससे जो भी निर्मित होता है उसमें भी बर्बरता होती है। फर्क तुम देखोगे।

पुराना संगीत है--पूरब का या पश्चिम का। बीथोवन है या मोझर्ट है। तो उस संगीत की बात ही और है। उस संगीत में एक शांति है; तुम सुनोगे तो शांत हो जाओगे, तुम सुनोगे तो तृप्त हो जाओगे। फिर आज का नया संगीत है; नए युवक-युवतियां जो संगीत पश्चिम में पैदा कर रहे हैं। जो संगीत एक उपद्रव है और एक अराजकता जैसा मालूम होता है, जिसे सुन कर तुम्हारे भीतर भी अराजकता पैदा होती है, तुम भी हिंसात्मक हो उठते हो या कामातुर हो उठते हो।

पुराने चित्र हैं। अजंता हैं, एलोरा हैं, ताजमहल है। किसी एक और ढंग की चित्त-दशा से पैदा हुए। ताजमहल को तुम अगर अशांत होकर भी देखते रहो थोड़ी देर तो तुम पाओगे, भीतर सब शांत होने लगा। फिर आधुनिक चित्रकला है। पिकासो है। चित्र को अगर तुम थोड़ी देर देखो तो तुम्हें लगेगा कि तुम भीतर पागल हुए जा रहे हो। चित्र को ज्यादा देर देखा नहीं जा सकता; आंख गड़ा कर देखोगे, मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि चित्र में सिर्फ बेचैनी है, विक्षिप्तता है, तनाव है, अशांति है, संताप है।

जब सभ्यता रुग्ण होती है तो संस्कृति भी रुग्ण हो जाती है। क्योंकि संस्कृति तो सौरभ है। जब फूल बीमार होता है तो उसकी सुगंध में सुगंध नहीं होती, दुर्गंध हो जाती है। सभ्यता फूल है; संस्कृति उसकी सुवास है। लेकिन जब फूल ही सड़ा हो तो फिर सुवास कहां? इसलिए सब दिशाओं में संस्कृति भी रुग्ण हो गई है।

नहीं, संस्कृति तो तभी पैदा होगी जब लोग इतने तृप्त होंगे और लोगों के पास इतना जीवन बचेगा। जो बचता है अभी, युद्ध में खो जाता है। युद्ध कोई संस्कृति है? युद्ध तो एक भयानक रोग है, और खबर देता है कि हमारे भीतर कितने नासूर होंगे। रोग तो कैंसर है समाज के भीतर लगा हुआ।

लेकिन रोग को हम पहले पालते-पोसते हैं। अगर तुम दुनिया भर की सरकारों के बजट देखो तो पचास से साठ प्रतिशत उनका बजट युद्ध की तैयारी में जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। ये सरकारें जीवन को सम्हालने को हैं या मौत लाने को? इनका प्रयोजन क्या है? ये साठ प्रतिशत मुल्क की धन-संपदा को युद्ध में लगा रहे हैं। जीवन के लिए तो कुछ बचता ही नहीं। जैसे मरने का आयोजन करने के लिए हमने इन सरकारों को बनाया हो। यह किस भांति का जीवन है, जहां मरने की तैयारी इतनी प्रगाढ़ता से चलती है; मारने और मरने के सिवाय कोई दूसरी महत्वपूर्ण बात नहीं दिखाई पड़ती।

अगर लाओत्से की हम सुनें, संतों को हम समझें, तो एक दूसरी ही तरह की जीने की व्यवस्था पैदा होगी। उस जीवन-व्यवस्था का मूल आधार यह होगा कि तुम्हारी जरूरतें जरूर पूरी होनी चाहिए। लेकिन जरूरतें तो बहुत कम में पूरी हो जाती हैं। असली काम गैर-जरूरतों को छांटना है, जरूरतों से अलग करना है। घास-फूस को अलग करो। तुम्हारी बगिया में बहुत ज्यादा घास-फूस है, उसमें गुलाब पैदा नहीं हो सकते। वह घास-फूस ही सब पृथ्वी की शक्ति को खा जाता है। उसे अलग करो, अगर तुम चाहते हो कि फूल खिलें। फूल तो बड़े कम में खिल सकते हैं, लेकिन उतना भी तो बचता नहीं।

समृद्ध है वह व्यक्ति जिसकी जरूरतें इतनी कम हैं कि अल्प में पूरी हो जाती हैं, और जिसका पूरा जीवन शेष रह जाता है, पूरी ऊर्जा बच जाती है। उस ऊर्जा को वह सृजन में, संगीत में, समाधि में संलग्न कर सकता है। वही ऊर्जा उसे परमात्मा तक ले जाएगी।

समृद्ध ही धार्मिक हो सकता है। लेकिन समृद्धि का तुम ठीक से अर्थ समझ लेना।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि भगवान सदा सबको जरूरत से ज्यादा ही देता है और यह कि उसकी स्वीकृति ही संन्यास है। तब प्रश्न उठता है कि वही भगवान हमारे भीतर इच्छाओं और वासनाओं का एक समुद्र ही क्यों भर देता है, जिसके चलते कि जीवन सब गुड़-गोबर हो जाता है?

वासना जरा भी बुरी नहीं; वासना से कुछ भी नहीं बिगड़ रहा है। वासना तो तुम्हारे जीवन को प्रौढ़ता देने की एक विधि है। वह तो विद्यापीठ है जहां तुम सीखते हो, जहां तुम बढ़ते हो, जहां तुम्हारी चेतना सुदृढ़ होती है, सुकेंद्रित होती है, क्रिस्टलाइज होती है। बिना वासना के तो तुम अबोध रह जाओगे। वासना से गुजर कर ही तुम बोध को उपलब्ध होओगे। वासना तो ऐसे है जैसे आग है। और सोना आग से गुजरे तो ही निखरता है और शुद्ध होता है।

वासना को तुम बुरा मत समझना। वासना को बुरा समझा तो तुम अड़चन में पड़ जाओगे। वासना को जीना, समझपूर्वक जीना, वासना से गुजरना। क्योंकि परमात्मा की यही मर्जी है कि तुम वहां से गुजरो। तुम आग को देख कर भाग मत खड़े होना जैसा कि बहुत लोग भाग खड़े होते हैं। दो तरह के लोग हैं साधारणतः। और परमात्मा की मर्जी है कि तुम तीसरे तरह के व्यक्ति बनो।

एक, जो आग को ही जीवन समझ लेता है, जैसे सोना आग में ही पड़ा रहे। सोने को डालना जरूरी है, निकालना भी जरूरी है। डालना आधा हिस्सा है। और जब कचरा जल जाए सोने का तो उसे खींच लेना जरूरी है।

तो एक तो ऐसा व्यक्ति है जो कि समझता है कि आग ही जीवन है। उसने डाल दिया सोने को, फिर निकालने की बात ही भूल जाता है। उसका सोना जलेगा, शुद्ध भी होगा, और फिर अशुद्ध हो जाएगा। क्योंकि राख मिल जाएगी अब, कूड़ा-कर्कट फिर वापस मिल जाएगा। शुद्ध होने के बाद एक क्षण भी वासना के भीतर रहना फिर अशुद्ध हो जाना है।

दूसरे तरह का आदमी, यह देख कर कि कुछ लोग आग में पड़े-पड़े राख, कचरे-कूड़े से भर गए हैं, भाग खड़ा होता है आग से--हिमालय चला जाता है, संन्यास ले लेता है, साधु-मुनि बन जाता है। वह भाग खड़ा हुआ, आग से डर गया। यह भी कचरे से भरा रह जाएगा। क्योंकि आग कचरा जलाने को थी। और यह कभी प्रौढ़ न हो पाएगा। जो लोग भाग गए हैं जीवन से, अगर तुम उन्हें ठीक से निरीक्षण करोगे तो तुम पाओगे, उनमें कुछ कमी

रह जाती है। तुम अपने साधु-संन्यासियों को, जो कि वस्तुतः भाग गए हैं, हमेशा पाओगे, उनमें थोड़ा सा बचकानापन रह जाता है। जीवन उन्हें तपा नहीं पाया; वे बड़ी छोटी स्थिति में रह जाते हैं।

एक जैन मुनि मेरे पास मेहमान थे। जब मुझसे निकटता उनकी बढ़ गई और आत्मीय हुए तो उन्होंने कहा कि एक दफा मुझे सिनेमा देखना है। क्योंकि मैं नौ साल का था, तब संन्यासी हो गया। मेरे पिता जैन संन्यासी थे। मां मेरी मर गई थी; पिता ने संन्यास लिया। मेरे लिए कोई उपाय न था तो पिता ने मुझे भी दीक्षा दिलवा दी।

नौ साल का बच्चा जब संन्यासी हो जाए! और जैन संन्यासी! क्योंकि जैन संन्यास का मतलब है कि जीवन से बड़ी गहरी खाई खोद ली, दीवार खड़ी कर ली। हिंदू संन्यासी को तो थोड़े उपाय भी हैं कि कहीं भी जाकर सिनेमा देख ले, जैन संन्यासी को कोई उपाय नहीं। क्योंकि समाज चौबीस घंटे पीछे रहता है और जांच रखता है--कहां जाते, कहां उठते, क्या करते, कैसे बैठते, कब सोते।

तो नौ साल का बच्चा, उसके मन में नौ साल की अवस्था अटकी रह गई। तो वे मुझसे बोले कि मुझे बड़ी जिज्ञासा होती है कि क्या होता होगा अंदर! बाहर से मैं निकलता हूं भीड़ लगी देखता हूं, कि वहां भीड़ लगी है, क्यू लगा है, जरूर अंदर कुछ... । और अंदर क्या हो रहा है, यह मुझे पता नहीं। अब यह एक छोटे बच्चे की दशा है। इसमें कुछ भी बुरा नहीं है। लेकिन यह आदमी अगर अपने भक्तों से कहेगा कि मुझे सिनेमा देखना है तो वे कहेंगे, तुम क्या कह रहे हो? जैन मुनि होकर और सिनेमा?

तो मैंने कहा कि ठीक, मैं तुम्हें सिनेमा भिजवा देता हूं। इसमें कोई हर्जा नहीं है, एक दफे देख कर झंझट खतम करो। एक मित्र को मैंने कहा कि इन्हें ले जाओ।

मित्र भी जैन थे। उन्होंने कहा, आप भी क्या कहते हैं? हमको भी फंसाएंगे इनके साथ! पर वे समझदार थे, कहा कि मैं समझता हूं बात, अगर उनकी ऐसी जिज्ञासा है तो देखने में कुछ हर्जा नहीं है; एक बार देख कर छुटकारा हो जाएगा। तो उन्होंने कहा कि मैं ले जा सकता हूं, लेकिन कैनटोनमेंट एरिया में ले जाऊंगा। क्योंकि वहां मुझे कोई जानता-वानता नहीं।

पर वहां अंग्रेजी फिल्म चलती है। जैन मुनि अंग्रेजी भी नहीं जानता। तो वह जैन मुनि ने कहा कि कोई हर्जा नहीं; कम से कम देख तो लेंगे। अंग्रेजी हो कि हिंदी हो, इससे कोई बड़ा सवाल नहीं है; देख तो लेंगे। तो वे उन्हें छिपा कर किसी तरह सिनेमा दिखा लाए।

वे जैन मुनि लौट कर मुझसे बोले कि मेरा मन ऐसा हलका हो गया है जैसे कि भार उतर गया है, कि कुछ भी नहीं है। पर लोगों की कतार लगी बाहर ही देखता था--भीतर क्या हो रहा होगा? जरूर कुछ महत्वपूर्ण हो रहा होगा, रसपूर्ण हो रहा होगा। नहीं तो ये इतने लोग क्यों दीवाने हैं! यह मैं किसी से कह भी नहीं सकता था।

जब सिनेमा के संबंध में ऐसी हालत होगी तो तुम सोच सकते हो, और संबंधों में कैसी हालत होगी। नौ साल का बच्चा अगर संन्यासी हो गया हो, संसार छोड़ कर हट गया हो, तो जरूर सोचता होगा कि क्यों हर आदमी स्त्री के प्रेम में पड़ता है? क्या होता होगा? और उसके भीतर भी कामवासना की ऊर्जा है, जो उसकी छाती में धक्के मारती रहेगी। क्योंकि उसका शरीर भी वैसे ही निर्मित हुआ है, जैसे और सब शरीर हैं। उसके शरीर में भी वैसे ही काम-ऊर्जा बनती है रोज, जैसे सबके शरीरों में बनती है। वह विक्षिप्त होगा, वह भीतर ही भीतर परेशान होगा। लेकिन वह किसी से कह भी नहीं सकता। और जितना परेशान होगा उतना ही सुबह अपने प्रवचन में मंदिर में ब्रह्मचर्य का समर्थन करेगा। यह वीसियस सर्किल है, यह उसमें दुष्ट-चक्र है। वह उतना ही कामवासना की निंदा करेगा। क्योंकि उसको लगेगा, यह कामवासना मुझे डांवाडोल कर रही है, डिगा रही है।

जब मैं संभोग से समाधि पर बोला तो सारे मुल्क में भगोड़ों ने उसका विरोध किया। जैन मुनि उसमें सबसे ज्यादा आगे थे कि यह मैं क्या कह रहा हूं कि संभोग से समाधि! लेकिन ऐसा एक जैन मुनि नहीं है जिसने वह किताब चोरी से न पढ़ी हो। और वह किताब सबसे ज्यादा बिकी; उसके बहुत संस्करण हुए। और जो थोड़े ईमानदार थे उन्होंने मुझे पत्र भी लिखे, जैन मुनियों ने भी पत्र लिखे, कि आप किसी को कहना मत, लेकिन इससे हमारे मन को बड़ा साफ रास्ता हुआ, हम हलके हुए। मगर किसी को कहना मत। दस्तखत भी नहीं किए कि कहीं किसी की पकड़ में आ जाए पत्र।

जो आदमी भाग जाएगा आग में उतरने से वह भी वंचित रह जाएगा; जो आग में ही पड़ा रहेगा वह भी वंचित रह गया। आग में जाना जरूरी है और निकलना जरूरी है। तब तुम आग का पूरा लाभ ले पाओगे।

वासनाएं अग्नि की तरह हैं; वे तुम्हें निखारने के लिए हैं। उनसे गुजर कर तुम कुंदन बनोगे। स्वच्छ होगा तुम्हारा स्वर्ण; तुम शुद्ध होओगे। कोई वासना बुरी नहीं है। भागे, तो मुश्किल में पड़ोगे; अटक गए, तो मुश्किल में पड़ोगे। बिना अटके गए और निकल आए, वही तो कला है। काजल की कोठरी में जाना जरूरी है, लेकिन काजल की कोठरी में रह जाना आवश्यक नहीं है।

और काजल की कोठरी से अगर तुम अपने को बचा कर निकल आए, बिना कालिख लगाए निकल आए, अगर तुम कह सके कबीर की भांति कि ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी।

कबीर तो गृहस्थ हैं। पत्नी है, बच्चा है; फिर भी कह रहे हैं, खूब जतन से ओढ़ी।

क्या मतलब है? कबीर कोई भगोड़े नहीं हैं। भगोड़ा तो चादर छोड़ कर ही भाग गया, उसने तो ओढ़ी ही नहीं। और कबीर कोई भोगी भी नहीं हैं कि चादर ओढ़े ही पड़े रहे जब तक कि चादर कफन न बन जाए। कबीर ने ओढ़ी भी, जतन से ओढ़ी, सम्हाल कर रख दी। और कहते हैं, परमात्मा को वैसी की वैसी वापस लौटा दी जैसी उसने दी थी; जरा भी मैली न होने दी।

तुम्हारी देह तुम्हारी चादर है; उसे जतन से ओढ़ना। तुम्हारी वासनाएं तुम्हारी चादर हैं; उन्हें जतन से ओढ़ना। और परमात्मा का दान उनमें भी देखना। क्योंकि उनके बिना तुम कभी भी निखार को उपलब्ध न हो सकोगे। तुम्हें गलत से गुजरना ही पड़ेगा, ताकि तुम अपने ठीक को ठीक से पहचान पाओ। गलत पृष्ठभूमि है, काला ब्लैकबोर्ड है, जिसमें हम सफेद रेखा खींचते हैं। तुम्हारी वासना काला ब्लैकबोर्ड है। उस पर ही तुम्हारी आत्मा की सफेद लकीर खिंचेगी। तुम ब्लैकबोर्ड के दुश्मन मत हो जाना, नहीं तो तुम सफेद लकीर कभी खींच ही न पाओगे।

वासना और आत्मा एक कंट्रास्ट है, एक विपरीतता है। तुम वासना को पृष्ठभूमि बनाओ और आत्मा को तुम बनाओ सफेद लकीर। फिर तुम धन्यवाद दे पाओगे परमात्मा को; फिर तुम यह न कहोगे कि इतनी वासनाएं हमें क्यों दीं। तब तुम यह कहोगे कि तेरी बड़ी कृपा है कि तूने वासनाएं दीं, अन्यथा हम इस आत्मा को कैसे पहचानते? तूने यह जो काली रात दे दी, बड़ी तेरी कृपा है, क्योंकि बिना काली रात के ये आत्मा के तारे कैसे चमकते? हम इनको कैसे पहचानते? दिन में तो इनका पता ही नहीं चलता।

अगर परमात्मा तुम्हें शुद्ध ही बना दे तो तुम्हें शुद्धि का कोई अनुभव न होगा। शुद्धि होगी, लेकिन तुम अनुभव से वंचित रह जाओगे। इसलिए परमात्मा तुम्हें शुद्ध भी बनाता है और तुम्हें अशुद्धि का अवसर भी देता है। उस अवसर से अगर तुम सम्हल कर गुजरे--सम्हल कर गुजरना ही संतत्व है; सम्हल कर गुजरना संन्यास है। भाग जाना संन्यास नहीं है, भोग संन्यास नहीं है, सम्हल कर गुजरना संन्यास है। भोग में योग को साध लेना

संन्यास है। संसार में वीतरागता को बना लेना संन्यास है। ऐसे रहो संसार में कि संसार तुम्हारे भीतर न रहे। बस फिर तुम सम्हाल कर जतन से ओढ़ लोगे चादर को, लौटा दोगे धन्यवाद सहित।

और अगर तुम जीवन को लौटाते वक्त परमात्मा को धन्यवाद न दे सके तो फिर-फिर आना पड़ेगा। क्योंकि तुम प्रौढ़ न हो पाए, तुम अधकच्चे रहे। और अधकच्चा स्वीकार नहीं किया जा सकता। तुम पक जाओ, तभी तुम स्वीकार होओगे।

तुम्हारा नैवेद्य तभी परमात्मा के चरणों में स्वीकार होगा, तभी तुम उसके हृदय के हिस्से बन सकोगे, जब तुम धन्यवाद देकर विदा होओगे, जब तुम मरते क्षण कह सकोगे, तेरी बड़ी अनुकंपा कि तूने शुद्धि की इतनी बड़ी संभावना दी और अशुद्धि का इतना बड़ा अवसर दिया।

चौथा प्रश्नः माना जाता है कि मनुष्य विकास का श्रेष्ठतम बिंदु है और मनुष्य ही विकसित होकर भगवान हो जाता है। तब ताओ में प्रवेश आगे का विकास है या पीछे लौटना है?

दोनों। पीछे लौटना ही आगे का विकास है। पीछे जाना ही आगे जाना है। क्योंकि पीछे मूल स्रोत है। जहां से तुम आए हो, वही पहुंच जाना अंतिम लक्ष्य है। क्योंकि मूल उदगम ही आखिरी मंजिल है। तुम वर्तुल बन जाओगे, तभी तुम पूर्ण होओगे। तुम एक वर्तुल खींचते हो; तो जहां से तुम शुरू करते हो, जिस बिंदु से वर्तुल को, वहीं वर्तुल वापस लौट जाता है। और वर्तुल इस जगत में पूर्णता का चिह्न है। इसलिए तो हमने वर्तुल को शून्य का भी चिह्न बनाया है। शून्य और पूर्ण एक ही चीज को कहने के दो ढंग हैं। तुम्हें वहीं लौट जाना है जहां से तुम आए हो। और ध्यान रखना, जब तुम लौटोगे तो तुम वही न रहोगे जैसे कि तुम तब थे जब आए। क्योंकि यह सारी यात्रा, यह यात्रा-पथ तुम्हें प्रौढ़ कर देगा, तुम्हें जगा देगा, होश से भर देगा।

संसार से गुजरना है, और पहुंच जाना है वापस मूल स्रोत पर। इसलिए तो कहते हैं कि जब कोई दुबारा बच्चा हो जाता है फिर से बुढ़ापे में, जब कभी बूढ़ा फिर बालक जैसा हो जाता है, तो संतत्व का उदय हुआ। फिर से वर्तुल पूरा हो गया। अगर तुम बुढ़ापे तक चालाक रहे, जैसा कि अक्सर होता है, तो वर्तुल पूरा नहीं हुआ। तुम फिर-फिर फेंके जाओगे, तुम स्वीकार नहीं किए जा सकते। तुम अभी योग्य नहीं हुए। तुम आधे हो। जब कोई बुढ़ापा आते-आते फिर इतना ही सरल हो जाता है जैसे छोटा बच्चा; इसी को हम संतत्व कहते हैं। इसी को लाओत्से परम उपलब्धि कहता है। बच्चे के पास सब है, सिर्फ होश नहीं है। होश अनुभव से आएगा। अगर तुम फिर से होशपूर्वक बालक हो गए तो सब पा लिया।

तो पीछे लौटना है, वही आगे जाना है; मूल को पाना है, क्योंकि वही अंत है। स्वभाव को उपलब्ध करना है। स्वभाव था ही तुम्हारे पास, लेकिन तब तुम होशपूर्ण न थे। होशपूर्वक पुनः स्वभाव को उपलब्ध कर लेना है। कहावत है कि जब कोई व्यक्ति दूसरे मुल्कों में जाता है और वापस लौटता है अपने देश, तभी अपने देश को ठीक से समझ पाता है। क्योंकि पहले अपना ही देश था, तौलने का कोई उपाय न था; ठीक है कि गलत, अच्छा है कि बुरा, सुंदर है कि कुरूप, नैतिक कि अनैतिक; कुछ भी पता नहीं चलता था। क्योंकि तुलना ही न थी। जब कोई व्यक्ति अनेक देशों में भटकता है--यात्रा का वही तो फायदा है--और फिर घर वापस लौटता है, तभी अपने देश को ठीक से पहचान पाता है।

ठीक यही यात्रा संसार है। इसीलिए तो हम उसे आवागमन कहते हैं। वह यात्रा है। और जब तुम अपने देश वापस लौटोगे... । जैसे मानसरोवर से हंस आता है; भटकता है अनेक-अनेक स्थानों में, और अनेक स्थानों में

भटक-भटक कर उसे याद आनी शुरू होती है मानसरोवर की, घर की याद आती है; और जब वापस मानसरोवर पहुंचता है, तो तुम जानते हो उसका आनंद! इतनी अशुद्धियों से गुजरकर, इतने अशुद्ध वातावरणों से गुजरकर, इतनी धूल-धवांस और व्यर्थ की दुनिया से गुजर कर पहली दफा मानसरोवर की शुद्धि, निर्मलता, निर्दोष वातावरण, मानसरोवर का महासुख पहली दफा उसकी समझ में आता है।

कबीर कहते हैं बार-बारः चल हंसा वा देश! अपने घर लौट चल, उस देश लौट चल जहां से हम आए हैं। अब बहुत हो गई यात्रा, देख लिया सब, पाया कुछ भी नहीं; अब अपने घर लौट चलें।

यह घर लौटना यद्यपि उसी घर में लौटना है जहां से तुम आए, लेकिन बड़ा नया है। क्योंकि तुम नए हो गए; तुम्हारे अनुभव ने तुम्हें निखारा। पीछे लौटना ही आगे जाना है। और आगे जाने का एक ही उपाय है कि तुम पीछे लौटो। स्वभाव में पहुंच जाना ही मनुष्य का चरम उत्कर्ष है। वही परमात्मा हो जाना है।

पांचवां प्रश्नः लाओत्से कहते हैं, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है, समझ काफी है। समझाएं कि समझना होना कब और कैसे बन पाता है?

कब और कैसे का सवाल ही नहीं; समझना होना है।

लेकिन तुम्हें सवाल उठता है। तुम्हें सवाल इसलिए उठता है कि तुम सोचते हो कि समझना एक चीज है और होना दूसरी चीज है। तुम सोचते हो, समझना शुरुआत है यात्रा का, प्रारंभ है, और होना अंत है। नहीं, समझने होने में रत्ती भर का भी फासला नहीं, इंच भर का भी फासला नहीं। हां, तुम्हें ऐसा अनुभव में आता है कि समझ लेते हो तुम कई चीजें, फिर भी हो तो नहीं पाते। तो उसका एक ही अर्थ हुआ कि तुम समझ ही न पाए।

बौद्धिक समझ को समझ नहीं कहा जाता। मैं कुछ बोल रहा हूं, तुम समझ रहे हो; क्योंकि तुम भाषा समझते हो। हो सकता है, मुझसे बेहतर समझते होओ। तुम भाषा का गणित समझते हो, भाषा का तर्क समझते हो। तुम पढ़े-लिखे हो, बुद्धिमान हो, विचार कर सकते हो; सब तुम्हें समझ में आ जाता है। मैं कोई कठिन बातें तो नहीं बोल रहा हूं; कोई पहेलियां तो नहीं बूझ रहा हूं। सीधी-साधी बात है; बिल्कुल समझ में आ जाती है।

तब सवाल उठता है, अब करें कैसे? जैसे ही सवाल उठता है करें कैसे, खबर आ जाती है कि तुम समझे नहीं। बुद्धि से समझे, विचार से समझे, लेकिन आत्मसात न हुआ, तुम्हारे हृदय तक न पहुंचा; खोपड़ी में अटक गया। वहां कोई समझ नहीं है; वहां समझ का धोखा है। हृदय में उतर जाए।

ऐसा समझो कि घर में आग लग गई और मैंने तुमसे कहा कि घर में आग लगी है। क्या तुम मुझसे कहोगे कि समझ गए, अब बाहर कैसे निकलें? समझ गए, यह तो शुरुआत हुई, अब धीरे-धीरे कोशिश करेंगे बाहर निकलने की; तो बाहर निकलने का उपाय बताइए। क्या तुम ऐसा कहोगे? जैसे ही तुम समझे कि घर में आग लगी है, तुम मुझे तो पीछे ही छोड़ दोगे, तुम छलांग लगा कर पहले बाहर निकल जाओगे। घर में आग लगी हो तो जैसी समझ आती है वह समझ बुद्धि की नहीं है। तुम्हारे तन-प्राण से, तुम्हारे रोएं-रोएं से, तुम्हारी श्वास-श्वास से समझ उठती है; तुम्हारे पूरे अस्तित्व से समझ आती है; तुम अपनी समग्रता में समझते हो। खोपड़ी का सवाल नहीं है। खोपड़ी को मौका भी नहीं दिया जा सकता सोचने का, क्योंकि समय है नहीं। और खोपड़ी बड़ा समय लेती है।

तो जहां भी कहीं तत्क्षण कुछ करना हो वहां तुम बुद्धि को सोचने का मौका ही नहीं देते; वहां तुम बुद्धि को हटा देते हो और कुछ कर गुजरते हो; खिड़की से कूद कर बाहर हो जाते हो।

सांप रास्ते पर आ गया हो, दिखाई पड़ते ही तुम छलांग लगा लेते हो। इतना भी शब्द भीतर नहीं बनता कि सांप आ रहा है, कि सांप खतरनाक है, कि अनुभव कहता है, सांप से उछल कर बच जाना चाहिए। इतना भी तर्क नहीं चलता, इतना भी विचार नहीं चलता। विचार को मौका ही नहीं मिलता। तुम अपनी समग्रता से, इधर सांप दिखा नहीं कि उधर तुम कूदे नहीं। इन दोनों के बीच फासला नहीं होता। हां, कूदने के बाद फिर तुम बैठ कर वृक्ष के नीचे आराम से सोच सकते हो सांप के संबंध में, दर्शन-शास्त्र खड़ा कर सकते हो। लेकिन जब सांप सामने था तब तुम छलांग लगा कर कूद गए। न तुमने गुरु से पूछा, गुरु कोई इतना आसानी से मिलेगा भी नहीं वहां। न तुम शास्त्र को अध्ययन करने गए, क्योंकि कहां अध्ययन करने जाओगे, सांप सामने खड़ा है! न तुमने अपनी स्मृति से पूछा, क्योंकि हो सकता है पहले कभी सांप का मुकाबला ही न हुआ हो। तो स्मृति क्या कहेगी कि क्या करो। नहीं, अब तुमने किसी से न पूछा; अब तो तुम्हारी समग्रता ने एक कृत्य किया।

समझ समग्रता का कृत्य है।

जब मैं कहता हूं, तुम्हारे जीवन में आग लगी है, तो तुम बुद्धि से समझते हो। जब मैं कहता हूं, तुम्हारे घर में आग लगी है, तब तुम समग्रता से समझते हो। जब मैं कहता हूं, यह जीवन सांप जैसा है, इससे बचो, तब तुम बुद्धि से समझते हो। लेकिन जब सांप रास्ते पर मिल जाता है तब! जिस दिन तुम इस तरह समझोगे धर्म को भी, उसी दिन तुमने समझा। फिर तुम्हारी समझ और करने में फर्क न होगा। समझ ही करना है। समझ मुक्ति है।

अगर तुमने समझ लिया कि क्रोध जहर है तो क्या तुम मुझसे पूछोगे कि अब क्रोध को कैसे रोकें? अगर पूछते हो तो साफ है, अभी भी समझे नहीं; अभी भी लगाव बना है; अभी भी तुम सोचते हो कि हां, कहते हैं लोग कि जहर है; लेकिन यह तुम्हारा अनुभव नहीं बना है। और अभी भी तुम्हें रस है उसमें और क्रोध में अभी भी तुमने कुछ नियोजित किया हुआ है, अभी भी तुम्हारा इनवेस्टमेंट है। अभी भी तुम मानते हो कि किन्हीं-किन्हीं समय में क्रोध करने की जरूरत है। अब बच्चा कुछ गलती कर रहा हो, क्रोध कैसे न करें? कि अगर क्रोध न करें तो पत्नी सुनती ही नहीं! और अगर क्रोध न करेंगे तो किसी का सुधार कैसे होगा?

अभी क्रोध से तुम्हारे लगाव भीतर बने हैं। अभी क्रोध का जहर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा। क्योंकि अगर जहर दिखाई पड़ जाए तो तुम यह न कहोगे कि जहर तो है माना, लेकिन बच्चे को सुधारने के लिए थोड़ा पिलाना पड़ेगा। जहर कोई पिलाता है सुधारने के लिए? और जहर से कभी किसी ने किसी को सुधारा? क्रोध से कभी कोई बच्चा सुधरा है? तुम्हें पता है? बिगड़ सकता है, क्रोध से कभी कोई बच्चा नहीं सुधरा।

क्रोध से कोई व्यवस्था बनी है? बिगड़ सकती है; बनने की क्या संभावना है? और अगर क्रोध से कोई व्यवस्था बनेगी भी तो धोखा होगा, झूठ होगा। तुम्हारी पत्नी अगर तुम्हारे क्रोध के कारण शांत भी रहेगी तो वह शांति शांति नहीं हो सकती; उसके भीतर आग जलती रहेगी। और उस शांति से प्रेम का कोई जन्म नहीं हो सकता। वह तुम्हारी गुलाम हो जाएगी, लेकिन तुम्हारी प्रेयसी न हो पाएगी। और गुलाम घृणा करता है, प्रेम नहीं।

अगर तुमने किसी तरह जबर्दस्ती क्रोध के आधार पर कुछ कर भी लिया तो यह बहुत ही अस्थायी है। और इसके भीतर इसका विरोध मौजूद है जो इसे तोड़ देगा। तुमने एक ऐसा भवन बनाया जिसकी कोई बुनियाद नहीं है, जो रेत पर खड़ा है, और किसी भी दिन गिरेगा। इससे तो बेहतर था तुम खुले आकाश के नीचे सो जाते; कम से कम खतरा तो न था। यह महल खतरनाक है। यह गिरेगा। और इसके गिरने में तुम मिटोगे।

क्रोध को पूरा देखो। तब क्रोध को देखने से तुम्हें एक समझ आएगी। कामवासना को पूरा देखो, जानो, पहचानो। जल्दी कुछ नहीं है। किसी की मान कर मत चल पड़ो। तब तुम पाओगे कि यह तो व्यर्थ है। यह इतनी

व्यर्थ है कि इसकी व्यर्थता ही काफी है इससे मुक्ति के लिए। अगर अतिरिक्त कुछ करना पड़े, कि जाकर मंदिर में कसम लेनी पड़े कि अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं, तो वह तुम्हारा कसम लेना ही बता रहा है कि तुम अभी समझ नहीं पाए, और समझ की जो कमी है वह तुम व्रत से पूरा कर रहे हो। जिसने जान लिया, वह व्रत लेगा ब्रह्मचर्य का? जिसने जान लिया, बात खतम हो गई। वह मंदिर जाएगा? वह किसी के सामने घोषणा करेगा?

वह घोषणा और मंदिर और किसी गुरु के सामने व्रत लेना सिर्फ तरकीब है। वह तरकीब है कि अब चार आदमियों के सामने इज्जत का सवाल हो गया। तो अब इज्जत के नाम से किसी तरह अपने को रोकेंगे। लेकिन ब्रह्मचर्य कहीं इज्जत के कारण आता है? ब्रह्मचर्य समझ से आता है। ब्रह्मचर्य कहीं अहंकार, प्रतिष्ठा--कि अब लोग हमको ब्रह्मचारी मानते हैं इसलिए अब कैसे ब्रह्मचर्य को छोड़ें--इससे आता है? ऐसा ब्रह्मचर्य दो कौड़ी का है; आ ही नहीं सकता। तब तुम रास्ते निकाल लोगे। तब तुम प्रतिष्ठा को भी बचाओगे, छिपे रास्ते भी निकाल लोगे ब्रह्मचर्य से बचने के। तब तुम्हारे जीवन में पाखंड होगा। और पाखंड इस जगत में सबसे बड़ा पतन है; पाप नहीं। पापी भी सीधा-साफ है। पाखंडी इस जगत में सबसे ज्यादा कठिन अवस्था में है। उसके जीवन में बड़ी जटिलता है। दिखाता कुछ है; करता कुछ है। कहता कुछ है; होता कुछ है। उसका जीवन बिल्कुल अस्तव्यस्त है।

समझ को पहले समझ लो कि समझ क्या है। जब समग्र की है तभी हम उसे समझ कहते हैं। तुम बुद्धि की समझ को समझ मत मानना। वह काफी नहीं है। क्योंकि तुम बुद्धि से बहुत बड़े हो।

इसलिए तो अनेक बार तुमने तय कर लिया कि अब क्रोध न करेंगे, समझ कर तय कर लिया कि अब क्रोध न करेंगे। फिर टूट जाता है दूसरे दिन। घड़ी भर बाद टूट सकता है। इधर तुम तय किए बैठे थे कि क्रोध न करेंगे, और कोई आ गया और उसने गाली दे दी, तुम्हें याद ही नहीं रहता कि हमने क्या तय किया था। उस क्षण में सब भूल जाता है। फिर पछताते हो; फिर कसम खाते हो। यही तो तुम कर रहे हो--करो, पछताओ, कसम खाओ। फिर कसम टूट जाती है, फिर पछताते हो। इसी तरह तो तुम दीन होते गए हो।

बुद्धि बहुत छोटी है। और बुद्धि जो तय करती है, वह तुम्हारे प्राणों तक पहुंचता ही नहीं। यह ऐसा ही है कि घर का मालिक तो भीतर बैठा है; द्वार पर पहरेदार बैठा है; और तुम पहरेदार से मिल कर लौट आते हो। पहरेदार कहता है, ठीक, चलो मकान तुम्हें बेच दिया। और घर के मालिक को पता ही नहीं है। तुम्हारी बुद्धि पहरेदार से ज्यादा नहीं है। वह राडार है। वह तुम्हारे बाहर की जांच-परख के लिए है। मालिक तो भीतर बैठा है। बुद्धि कोई निर्णय ले कैसे सकती है मालिक से पूछे बिना? मालिक निर्णय लेता है। बुद्धि क्या निर्णय लेगी? इसीलिए तो बुद्धि के निर्णय रोज टूटते हैं; छोटे-छोटे निर्णय टूट जाते हैं।

एक आदमी सिगरेट पीता है; वह कसम खाता है। एक तो सिगरेट पीने के लिए कसम खाना ही मूढ़ता है। इतनी क्षुद्र बात के लिए व्रत लेना ही मूढ़ता है। व्रत बताता है कि तुम हद दर्जे के नासमझ हो। धुआं निकालते हो बाहर-भीतर, कुछ खास कर भी नहीं रहे हो; इतना कुछ मूल्य का भी नहीं है। और इसके लिए तुम्हें कसम लेनी पड़ती है, और वह भी टूट जाती है।

तुमसे तो मुल्ला नसरुद्दीन ज्यादा होशियार है। वह मुझसे कह रहा था कि मैंने सब पढ़ा। धूम्रपान कैसा बुरा है, कैसा घातक है, कैसे अस्थमा पैदा कर सकता है, कैंसर आ सकता है; सब पढ़ डाला। फिर मैंने निर्णय कर लिया। मैंने पूछा, क्या निर्णय किया--धूम्रपान छोड़ने का? उसने कहा कि नहीं, पढ़ना छोड़ दिया। पक्का कर लिया, अब पढ़ना ही नहीं। वह तुमसे ज्यादा समझदार है। कम से कम पछताएगा नहीं।

एक मेरे मित्र हैं; दिमाग थोड़ा खराब है। अक्सर पागल समझदारों से ज्यादा समझदार साबित होते हैं। जैन हैं। तीर्थयात्रा को गए। वहां जैन मुनि कोई ठहरे थे उनके; उनको नमस्कार करने गए। तो जैसा जैन मुनि कहते

हैं कि कोई नियम ले लो, कोई व्रत ले लो; तीर्थयात्रा में आए हो तो कुछ करके जाओ। तो उन्होंने कहा, अच्छी बात, ले लिया व्रत। तो मुनि ने पूछा, क्या व्रत लिया? उन्होंने कहा, अब तक धूम्रपान नहीं करता था, अब से करूंगा।

पागल हैं। लेकिन जब वे मेरे पास आए तो मैंने पूछा, तुमने ऐसा क्यों किया? तो उन्होंने कहा कि इसमें कम से कम पछताने का मौका नहीं आएगा। कुछ छोड़ो; छूटता नहीं है। तो उसमें पछतावा होता है, और व्रत टूट जाता है। यह कम से कम टूटेगा नहीं, इतना पक्का है। पीते रहेंगे मरते दम तक। इतना तो रहेगा कि एक व्रत पूरा किया।

तुम्हारे व्रत टूटते हैं, क्योंकि बुद्धि से तुम सोचते हो। व्रत लेती ही बुद्धि है, और बिना जाने कि बुद्धि केवल पहरेदार है, घर का मालिक नहीं है। मालिक से पूछे बिना तुम क्या कर रहे हो? मेरी सुन कर अगर तुमने समझा कि समझ आ गई तो तुम गलती में पड़ोगे। मुझे सुन कर समझ आती होती तो समझ बड़ी सस्ती चीज है। शास्त्र को पढ़ कर आती, बड़ी सस्ती चीज है। समझ तो जीवन को जीने से आएगी।

मैं तुमसे नहीं कहता कि क्रोध बुरा है। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि क्रोध को परखो, जानो, पहचानो। जल्दी क्या है? क्रोध करो। क्रोध की पीड़ा झेलो। पछताओ। क्रोध को जीओ। क्रोध के अंग-अंग जानो। क्रोध को सब दिशाओं से पहचानो। तब समझ का उदय होगा। वह समझ मुझे सुन कर न आएगी। वह तो तुम क्रोध के साथ सत्संग में रहोगे, तभी आएगी। हां, होशपूर्वक रहना, उतना मैं तुमसे कहता हूं। नहीं तो क्रोध के साथ तो तुम जन्मों से रह रहे हो, समझ नहीं आई। क्योंकि जब तुम क्रोध करते हो, तुम समझ का हिसाब ही छोड़ देते हो। तुम बेहोशी में क्रोध करते हो। उतना ही मैं तुमसे कहता हूं मत करो। क्रोध जब आए तो तुम होश के धागे को सम्हाले रहो।

पहले कठिन होगा। धीरे-धीरे सुगम हो जाएगा। धीरे-धीरे तुम क्रोध भी करोगे और भीतर तुम जानते भी रहोगे कि क्या हो रहा है। इस जानने वाले तत्व का ही नाम तुम्हारा मालिक है। यह साक्षी ही भीतर बैठा मालिक है। इस साक्षी को जगाओ। क्रोध को छोड़ने की फिक्र मत करो, साक्षी को जगाओ। सो रहा है भीतर; दरवाजे खोलो, उसे उठाओ, और उसे और क्रोध को सामने-आमने कर दो; बस। तब तुम पाओगे एक दिन, कोई सांप इतना जहरीला नहीं जितना क्रोध है।

वस्तुतः सत्तानबे प्रतिशत सांप में तो कोई जहर होता ही नहीं; केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। हालांकि लोग मर जाते हैं उन सांपों के काटे हुए भी जिनमें जहर नहीं होता। वे अपने ख्याल से ही मर जाते हैं; कोई उन्हें मारता-वारता नहीं। सांप ने काट लिया, बस इसलिए मर जाते हैं। यह बड़ा चमत्कार है। चिकित्सा-शास्त्र के सामने बड़ा सवाल है। क्योंकि सांप तो बहुत कम हैं जिनके जहर से कोई मरता है--तीन प्रतिशत। आम तौर से वे तुम्हें काटते भी नहीं। क्योंकि उतना जहरीला सांप बहुत छिप कर रहता है। जो सांप तुम आस-पास घूमते देखते हो ये कोई जहरीले नहीं हैं। इनके काटने में कोई मामला ही नहीं है। लेकिन मर तुम जाओगे अगर सांप काट ले। यह मन का ही भाव है कि सांप ने काट लिया, अब मरे! अब कैसे बच सकते हैं! यह सम्मोहन है।

सूफियों की एक कहानी है कि एक फकीर बैठा था एक नगर के द्वार पर और उसने एक बड़ी भयंकर काली छाया गुजरते देखी। उसने कहा कि रुक, तू कौन है? सूफी फकीर था, तो उसने कहा फकीर का जवाब दे देना उचित। उसने कहा, मैं मौत हूं, इस नगर में जा रही हूं। इस नगर में मुझे पांच सौ आदमी मारने हैं। फकीर ने कहा, ठीक। कुछ दिनों बाद मौत वापस निकली तो फकीर ने रोका, कहा कि रुक, तूने धोखा दिया। कहा था पांच सौ मारने हैं, पांच हजार मार डाले। उसने कहा, बाकी साढ़े चार हजार अपने आप मरे हैं; मैंने तो पांच सौ ही मारे। लेकिन हवा फैल गई मौत की। बाकी साढ़े चार हजार का जिम्मा तुम मुझे मत देना।

बहुत से लोग अस्पतालों में हवा के कारण पड़े हैं। बहुत से लोग इसलिए मर जाते हैं कि और लोग मर रहे हैं। प्लेग फैल गई; हैजा फैल गया। संक्रामक हो जाता है रोग; शरीर में कम, मन में ज्यादा। सांप ने काट लिया, मर गए। कैसे बच सकते हैं जब सांप ने काट लिया?

सांप इतना जहरीला नहीं है। सांप का काटा बच जाता है; क्रोध का काटा नहीं बचता, लोभ का काटा नहीं बचता, मोह का काटा नहीं बचता, काम का काटा नहीं बचता। तुम कितनी बार मर चुके हो? सांप ने कब काटा था? तुम इतनी बार क्यों मरे? किसी ने तुम्हें जहर नहीं दिया; जहर तुम अपने को ही देते रहे। लोभ, क्रोध, माया, मोह, सब जहर हैं। लेकिन धीरे-धीरे तुम जहर पीते रहे और उससे ही मरते रहे।

अगर तुम चाहते हो अमृत को पा लेना, तो जागो, इन जहरों को देखो; साक्षी को उठाओ। निर्णय की कोई जरूरत न आएगी। करने को कुछ है ही नहीं, सिर्फ साक्षी देख ले और पहचान ले भरपूर आंख--जहर कहां है? आग कहां है? बात खतम हो गई। आगे सवाल नहीं उठता। तुम छलांग लगा कर बाहर हो जाते हो। समझ क्रांति है। समझ ही एकमात्र क्रांति है। शेष सब क्रांतियां ऊपर-ऊपर हैं, धोखे की हैं। और तुम उन पर भरोसा मत करना। उन पर भरोसे के कारण तुम बहुत भटके हो। अगर और भटकना चाहते हो तो बात अलग। अन्यथा बुद्धि की बातों पर भरोसा मत करना। बुद्धि पहरेदार है। मालिक को जगाओ। मालिक से पूछो कि तेरी मर्जी क्या है। और मालिक की मर्जी तत्क्षण कृत्य बन जाती है।

आखिरी सवालः लाओत्से पर बोलते हुए आपने कहा कि जिस पर भरोसा न हो उसके लिए नीति, नियम और पुलिस की व्यवस्था की जाती है; और आपने यह भी कहा कि बुरे आदमी में भी शुभ देखना गरिमा है। तो प्रश्न यह उठता है कि यहां आश्रम में सुरक्षा की इतनी कड़ी व्यवस्था क्यों है?

बहुत सी बातें समझनी पड़ें; और समझ लेनी उचित हैं।

मेरे लिए तो कोई बुरा नहीं है, कोई शत्रु नहीं है। आश्रम में जो व्यवस्था है वह किसी शत्रु से बचने की व्यवस्था भी नहीं है। तुम्हें ऐसा दिखाई पड़ता होगा, वह तुम्हारी व्याख्या है। आश्रम में जो व्यवस्था है, वह मित्रों से बचने की है। और शत्रुओं से कभी कोई किसी को बचा भी नहीं सका; कैसे बचा सकते हो?

जीसस को सूली लग गई; बारह ही पहरेदार, बारह शिष्य पहरा दे रहे थे। तो अब क्या करोगे? बारह शिष्य क्या करोगे? दुश्मन पांच सौ की भीड़ लेकर आ गया था। सब व्यवस्था तोड़ी जा सकती है।

फिर जीसस तो फकीर थे, लेकिन अमरीका के पास जितनी व्यवस्था है लिंकन को, केनेडी को बचाने की--वे भी नहीं बचा सकते। बचाना तो करीब-करीब असंभव है शत्रु से। कभी नहीं बचा सकते।

गांधी के लिए बचाने के सब उपाय थे। क्या करोगे? एक पागल आदमी खतम कर दे सकता है। जिनसे तुम बचा लेते हो, उनसे बचाने की कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि वे कोई खतम करने को हैं नहीं। लेकिन जो खतम करना चाहता है, उससे तुम नहीं बचा पाते। अभी ललित नारायण मिश्र की जो मृत्यु हुई, उसमें एक हजार सैनिक चारों तरफ खड़े थे। क्या करोगे? एक पागल आदमी बम फेंक देता है।

शत्रु से बचाने का तो कोई उपाय ही नहीं है। उस भूल में तो कोई कभी पड़े ही नहीं कि कोई शत्रु से कभी किसी को बचा सकता है। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मेरे लिए कोई शत्रु है भी नहीं। उस दिशा में सोचने का कोई कारण नहीं है।

यह व्यवस्था है मित्रों से बचाने की। मेरी परेशानी मित्रों से है। और परेशानी का कारण मुझे नहीं है, वह भी समझ लेना चाहिए।

वर्षों तक मैं अकेला घूम रहा था सारे मुल्क में। काम करना असंभव हो गया; काम--जिसको करने के लिए इस शरीर में मैं रुका हूं। रात सो रहा हूं, कोई दो बजे रात कमरे में घुस जाता है। वह कहता है, पैर दबाने हैं। वह बड़े भाव वाला आदमी है। वह रात भर पैर ही दबाता रहता है; सोना ही मुश्किल है। रात मैं कुछ और कर रहा हूं, वह भी करना मुश्किल है।

ट्रेन में सवार हूं, चार आदमी ट्रेन में चढ़ आते हैं। वे कमरे में बैठे हैं; वे बातचीत कर रहे हैं। ट्रेन में मुझे इतने लोगों ने बातचीत की कि जब मैं पहुंचूं जहां मुझे बोलना है, तो मेरा गला ही बिठा दिया उन्होंने! ट्रेन में जरा जोर से बोलना पड़ता है। और उन्हें सुविधा मिल गई कि आठ-दस घंटे वे बातचीत में लगाए हुए हैं। उनको मैं कितना ही कहूं कि अब मुझे छोड़ दें, कृपा करें! पर वे प्रेमी हैं, वे कहते हैं, छोड़ने का मन नहीं होता।

यहां भी खुला छोड़ा जा सकता है। मैं वृक्ष के नीचे हो सकता हूं। लेकिन तब, जो मैं कर रहा हूं, वह करना असंभव हो जाएगा। बिल्कुल असंभव! और जो मैं कर रहा हूं, उनमें से बहुत सी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है।

शंकराचार्य के जीवन में एक उल्लेख है। एक बड़ा महत्वपूर्ण विवाद हुआ मंडन मिश्र के साथ। बड़ा मुश्किल था, किसको खोजें अध्यक्षता के लिए? क्योंकि शंकर और मंडन का विवाद था--दो बड़ी महिमाशाली प्रतिभाएं! खोज मुश्किल थी। लेकिन मंडन की पत्नी एकमात्र दिखाई पड़ती थी, जो अध्यक्ष हो सकती। लेकिन शंकर के अनुयायियों को चिंता थी कि मंडन की पत्नी कहीं पक्षपात न करे! क्योंकि पति एक प्रतियोगी है।

कोई उपाय न सोच कर--शंकर को तो चिंता न थी, शंकर ने कहा कि ठीक। विवाद हुआ। और मंडन मिश्र की पत्नी ने जितना निष्पक्ष होकर निर्णय दिया, बड़ा कठिन है। उसने मंडन मिश्र को पराजित घोषित किया। लेकिन एक शर्त लगा दी, और शर्त बड़ी मुश्किल की हो गई। उसने कहा कि ये तो मंडन तो हार गए, लेकिन यह हार आधी है, क्योंकि अभी पत्नी... । और शंकर से कहा, यह तो आप भी मानेंगे कि पत्नी अर्धांग है; तो अब मुझे भी हराना पड़ेगा आपको; तभी पूरी जीत समझना; नहीं तो आधी जीत है।

शंकर इसके लिए तैयार भी न थे। यह कभी सोचा भी न था कि यह दांव-पेंच हो सकता है इसमें। विवाद के लिए तैयार होना पड़ा। और मंडन मिश्र की पत्नी ने बड़ी कुशलता की; उसने ब्रह्म और माया, ये सब बातें ही नहीं पूछीं; उसने तो काम-ऊर्जा और कामवासना के संबंध में सवाल उठाए।

शंकर ब्रह्मचारी, मुश्किल में पड़ गए। उन्होंने कहा कि तुम ऐसे सवाल उठा रही हो जिनका मुझे अनुभव नहीं है। तो मंडन मिश्र की पत्नी ने कहा, तुम समय चाहो तो समय ले लो। अनुभव करके आ जाओ।

छह महीने का समय मांग कर शंकर किसी तरह विदा हुए। बड़ी मुश्किल में पड़ गए कि क्या किया जाए! तो छह महीने तक शंकर ने अपनी देह छोड़ दी और उनकी लाश पर छह महीने तक सतत उनके बारह शिष्य पहरा देते रहे। चौबीस घंटे पहरा देना पड़ा। क्योंकि शंकर एक दूसरे आदमी के शरीर में प्रविष्ट हुए जो कि गृहस्थ था--जो अभी-अभी मरा था--एक राजा। उसके शरीर में प्रविष्ट हो गए। उसकी पत्नी के साथ काम के सारे रहस्यों का अनुभव करके वापस अपनी देह में लौटे। वह सतत पहरा था, कि उसमें एक क्षण भी पहरे में चूक हो जाती तो वह देह अस्तव्यस्त हो जाती, वापस लौटना मुश्किल हो जाता।

बहुत क्षणों में मैं देह के बाहर हूं। अब मैंने जितने लोगों को दीक्षा दी है, जितने लोगों को संन्यास दिया है, उन पर बहुत तरह के काम मुझे करने हैं। कोई हजारों मील दूर है और उसे जरूरत है; तो मैं इस शरीर के बाहर हूं। और मेरे कमरे में उस समय अगर कोई भी घुस जाए तो मेरा लौटना मुश्किल है। अगर मेरे शरीर को कोई हिला दे, कोई पैर ही दाबने लगे, तो फिर मेरे लौटने का कोई उपाय नहीं है।

इन सारी बातों का तुम्हें कोई ख्याल नहीं है। इसलिए तुम अपनी बुद्धि से जितना सोच सकते हो, सोच लेते हो। तुम सोचते हो कि इतने पहरेदार यहां खड़े हैं; इसकी क्या जरूरत? तुम बड़े तर्क अपने मन में उठा लेते हो।

ये पहरेदार अभी कम हैं। जैसा काम मैं कर रहा हूं, उसके लिए और भी व्यवस्था की जरूरत है। क्योंकि अभी इनको भी पार करके लोग पहुंच जाते हैं। दो महीने पहले ही यहां मीटिंग पूरी हुई, दो महिलाएं पीछे की गैलरी में पहुंच गईं। मैं अंदर कमरे में पहुंचा और वे दोनों वहां पीछे से दरवाजा खटखटा रही हैं। वे सब प्रेमी हैं, भाव से भरे हुए लोग हैं! यह जो पहरा है, यह कोई शत्रुओं से बचाने के लिए नहीं है; यह तुमसे ही बचाने के लिए है और तुम्हारे ही काम के लिए है। और तुम अपने भावावेश में कुछ कर सकते हो। लेकिन तुम्हारा भावावेश सवाल नहीं है; तुम्हारा भावावेश बिल्कुल ठीक है। लेकिन तुम कुछ कर सकते हो जो तुम्हारे लिए ही अंततः घातक हो जाए।

मुझे लोग पूछते हैं कि आपसे मिलने-जुलने में इतनी अड़चन क्यों है? साधु-संतों से मिलने-जुलने में कोई अड़चन नहीं होती।

मैं भी जानता हूं। मैं भी झाड़ के नीचे बैठ सकता हूं। पर तब मैं सिर्फ तुम्हारी पूजा ले सकता हूं; तुम्हारे लिए कुछ कर नहीं सकता। सो तुम्हारे साधु-संत तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं कर रहे हैं। मगर तुम बड़े प्रसन्न हो, क्योंकि जब चाहो तब तुम जाकर मिल सकते हो। लेकिन काम असंभव है।

तुम्हारे लिए कुछ करना हो मुझे तो मैं झाड़ के नीचे नहीं हो सकता। तुम्हारी बुद्धि से तुम सोचते हो कि क्यों मैं एयरकंडीशंड कमरे में हूं? साधु-संत को एयरकंडीशंड कमरे की क्या जरूरत?

लेकिन तुम्हें कुछ भी अंदाज नहीं, इसलिए तुम्हारी अपनी मुश्किलें हैं। और बहुत सी बातें तुमसे कही भी नहीं जा सकतीं। अगर मैं शरीर छोड़ता हूं तो मेरे कमरे का टेंपरेचर वही का वही रहना चाहिए। जिस टेंपरेचर में मैंने छोड़ा, उसी टेंपरेचर में मैं शरीर में प्रवेश हो सकता हूं, नहीं तो संभव नहीं है।

तो दो ही उपाय हैं। या तो मैं हिमालय की गुफा में चला जाऊं जहां टेंपरेचर बराबर रहता है। इसीलिए हिमालय की गुफा खोजते रहे लोग। लेकिन तब तुम पर इतना काम न कर सकूंगा। अगर मुझे अपने पर ही काम करना हो तो हिमालय की गुफा ठीक है। लेकिन वह काम पूरा हो चुका है। मुझे अपने पर कोई काम नहीं करना है। अगर तुम पर काम करना है तो यहां भीड़ और बाजार और बस्ती में मुझे होना जरूरी है।

तुम्हारी धारणाएं तुम्हारी समझ के ऊपर नहीं जा सकतीं। तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं है। लेकिन जब भी तुम्हें यहां कुछ ऐसा मालूम पड़े जो तुम्हारी समझ के पार जा रहा है तो जल्दी निर्णय लेने की कोशिश मत करना; कोशिश करना कि समझ थोड़ी और बढ़ जाए। जैसे-जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे चीजें तुम्हें साफ होने लगेंगी; वैसे-वैसे तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा कि क्या प्रयोजन है।

शत्रु से बचने का कोई सवाल नहीं है; कोई कभी किसी को शत्रु से बचा नहीं सकता। उसकी कोई जरूरत भी नहीं है। मित्रों से बचाने का सवाल है। क्योंकि वे ही अपने भावावेश में सारे काम को बाधा डाल दे सकते हैं। तो मुझे निरंतर सख्त होता जाना पड़ेगा। अगर मैं सच में ही तुम्हें इसी जीवन में कहीं पहुंचा देना चाहता हूं तो मुझे और सख्त होता जाना पड़ेगा। वह भी तुम तभी समझ पाओगे जब तुम उस ऊंचाई पर पहुंचोगे। तभी तुम

मुझे धन्यवाद दे पाओगे, उसके पहले तुम धन्यवाद भी नहीं दे सकते। तब तक तुम न मालूम कितने तरह की आलोचना करते रहोगे। और तुम ऐसा मत सोचना कि तुम्हारी आलोचना का मुझे पता नहीं चलता है। तुम्हारी बुद्धि को मैं जानता हूं। इसलिए मुझे पता है कि उस बुद्धि से क्या-क्या सवाल उठ सकते हैं। तुम्हारे बिना कहे मैं जानता हूं कि तुम्हारे सवाल क्या हैं।

निर्णय भर मत लेना। कोई मत मत बनाना। जल्दी मत करना। समझ को थोड़ा बढ़ने दो, थोड़ी ऊंचाई पर आने दो; थोड़ा प्रकाश फैलने दो। तुम्हें सब चीजें साफ दिखाई पड़ने लगेंगी कि क्यों ऐसा है।

लाओत्से कुछ काम नहीं कर सका, क्योंकि झाड़ के नीचे बैठा था। बहुत से ज्ञानी इस संसार से ऐसे ही चले गए हैं बिना काम किए। क्योंकि तुम्हारी मान्यताएं बड़ी अजीब हैं। तुम्हारी मान्यताओं के अनुसार काम ही करना मुश्किल है। तुम अपनी ही मान्यताओं के कारण हजार तरह की हानियां झेलते रहे हो।

एक संन्यासी को मैं अपने बचपन से जानता रहा हूं, परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति वे हो गए। तुम में से शायद कभी कोई जबलपुर आता-जाता रहा हो, तो शायद कभी उनका देखना भी हुआ हो। जबलपुर में एक परम योगी थे; उनका नाम भी किसी को पता नहीं। लेकिन चूंकि वे अपने हाथ में हमेशा एक मग्गा लिए रहते थे इसलिए उनका नाम मग्गा बाबा था। वे कहीं भी बैठे रहते थे--खुले झाड़ के नीचे, या किसी दुकान के बाहर, छप्पर के नीचे, किसी की दहलान में। और जब भी मैं उनके पास कभी जाता तो उनको हमेशा परेशानी में पाता; और परेशानी यह थी कि उनको लोग छोड़ते ही नहीं थे। रात-दिन लोग बैठे हैं। क्योंकि लोगों को यह ख्याल था कि उनके चरण दबाने से बड़े पुण्य का अर्जन होता है और तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं!

तुम सोच सकते हो कि उनकी क्या गति कर दी! चौबीस घंटे लोग उनके पैर दबा रहे हैं। न वे सो सकते हैं--उनको मतलब ही नहीं लोगों को उनसे--न वे कोई काम कर सकते हैं। कोई उपाय ही नहीं है। वहां कतार लगी रहती लोगों की, एक ने पांव दबा लिए तो दूसरा कतार लगाए खड़ा है। और रात में, जो लोग दिन भर काम करते हैं--रिक्शेवाले हैं, ड्राइवर हैं, फलां हैं, ढिकां हैं--वे सब रात में वहां इकट्ठे हैं। रात में कोई किसी के रिक्शे को काम नहीं है, रिक्शेवाले अपनी कतार लगाए खड़े हैं--मग्गा बाबा का पैर दबा रहे हैं।

मैं उनसे कहा कि यह आपका जीवन यूं ही जा रहा है; इस जीवन-ऊर्जा का कोई उपयोग नहीं हो पा रहा। वे साधारणतः किसी से बोलते नहीं थे। एक दिन एकांत पाकर मैंने उनको कहा तो उन्होंने कहा कि ऐसे ही जाएगा; पहले से ही गलती हो गई। कुछ भी लाभ नहीं हो पा रहा है। और ये जो लोग हैं, इनको भी कोई लाभ नहीं हो रहा है।

उनको ये सब छोटे ख्याल हैं कि बस पैर दबाने से किसी की बीमारी ठीक हो जाएगी। बीमारी ठीक भी हो गई तो क्या ठीक हो गया? किसी को ख्याल है मुकदमा अदालत में जीत जाएगा। जीत भी गए तो क्या हो गया? मग्गा बाबा जैसा आदमी इन कामों के लिए नहीं है। ये तो बिना उसके भी हो जाएंगे। और हों या न हों, उनका मूल्य ही कुछ नहीं है।

उनको देख कर मैंने तभी तय कर लिया था कि जिस दिन भी मुझे काम करना हो उस दिन पहले से ही सावधानी बरतनी जरूरी है। इसलिए जब तक मैं यात्रा करता रहा मैंने कोई व्यवस्था नहीं की, क्योंकि मैंने दूसरी तरह का काम शुरू नहीं किया। तब तक तो मैं लोगों को निमंत्रण देता रहा घूम कर; तब तक मैं अकेला ही घूम रहा था। सुरक्षा की जरूरत तो तब थी। अगर शत्रु से सुरक्षा करनी हो तो जरूरत तब थी जब कि मैं बिना एक आदमी को लिए घूम रहा था पूरे मुल्क में; चौबीस घंटे भीड़ में था। लेकिन तब कोई सुरक्षा का सवाल न था। क्योंकि शत्रु कोई नहीं है; उससे कोई सुरक्षा की जरूरत भी नहीं है।

पूना आते ही मैंने अपनी व्यवस्था का पूरा आयाम बदल दिया है। अब मैं काम कर रहा हूं। अब मुझे भीड़ में उत्सुकता नहीं है; और न मैं चाहता हूं कि यहां भीड़ हो। गलत लोगों को मैं किसी भी कारण भीतर नहीं आने देना चाहता हूं। एक क्षण भी उनको देने को मेरे पास नहीं है। अब मैं सिर्फ उन पर काम कर रहा हूं जिन पर कुछ हो सकता है। और मेरी सारी शक्ति उन पर ही लगा देनी है। इसलिए मेरी शक्ति का एक कण भी यहां-वहां व्यर्थ न जाए, इसलिए सारी व्यवस्था जरूरी है।

मैं व्यवस्था से ही रहूंगा। और यह तुम्हारे लिए है, यद्यपि तुम्हें यह जंचेगा न। तुम पसंद करते कि मैं वृक्ष के नीचे बैठा होता; जब तुम्हारी मौज होती आ जाते, मिल जाते, बकवास कर जाते, पैर दबा लेते, फूल चढ़ा जाते। हालांकि उससे तुम्हें कुछ भी न होता। लेकिन तुम प्रसन्न होते!

तुम्हारे अज्ञान की कोई सीमा नहीं है!

आज इतना ही।

तिरानबेवां प्रवचन

धर्म है समग्र के स्वास्थ्य की खोज

Chapter 54

The Individual And The State

Who is firmly established is not easily shaken.
Who has a firm grasp does not easily let go.
From generation to generation his ancestral sacrifices
shall be continued without fail.
Cultivated in the individual, character will become genuine;
Cultivated in the family, character will become abundant;
Cultivated in the village, character will multiply;
Cultivated in the state, character will prosper;
Cultivated in the world, character will become universal.
Therefore:
According to (the character of) the individual, judge the individual;
According to (the character of) the family, judge the family;
According to (the character of) the village, judge the village;
According to (the character of) the state, judge the state;
According to (the character of) the world, judge the world.
How do I know the world is so?
By this.

अध्याय 54

व्यक्ति और राज्य

जो दृढ़ता से स्थापित है, उसे आसानी से डिगाया नहीं जा सकता।
जिसकी पकड़ पक्की है, वह आसानी से छोड़ता नहीं है।
पीढ़ी दर पीढ़ी उसके पूर्वजों के त्याग अबाध रूप से जारी रहेंगे।
व्यक्ति में उसके पालन से, चरित्र प्रामाणिक होगा; परिवार में उसके पालन से, चरित्र अतिशय होगा;

गांव में उसके पालन से, चरित्र बहुगुणित होगा; राज्य में उसके पालन से, चरित्र समृद्ध होगा;
संसार में उसके पालन से, चरित्र सार्वभौम बनेगा।
इसलिए:
व्यक्ति के चरित्र के अनुसार, व्यक्ति को परखो; परिवार के चरित्र के अनुसार, परिवार को परखो;
गांव के चरित्र के अनुसार, गांव को परखो; राज्य के चरित्र के अनुसार, राज्य को परखो;
संसार के चरित्र के अनुसार, संसार को परखो।
मैं कैसे जानता हूं कि संसार ऐसा है?
इसके द्वारा।

चरित्र के दो आयाम हैं। एक तो चरित्र है जो बाहर-बाहर से आरोपित है। ऐसे चरित्र की कोई दृढ़ता नहीं। ऐसा चरित्र कितना ही मजबूत दिखाई पड़े, मजबूती धोखा है। ऐसा चरित्र किसी भी क्षण टूट सकता है। ऐसा चरित्र टूटा ही हुआ है। क्योंकि ऐसे चरित्र के पीछे उसका विरोधी, बड़ी शक्ति से मौजूद है। ऐसा चरित्र एकरस नहीं है। उसका तोड़ने वाला तत्व दबाया गया है। उसका तोड़ने वाला तत्व रूपांतरित नहीं हुआ है।

दूसरा चरित्र है जो भीतर से आविर्भूत होता है, और बाहर की तरफ फैलता है। जिसे ऊपर से रंग-रोगन की तरह नहीं पोता जाता, बल्कि जो भीतर की गरिमा की तरह, भीतर की अग्नि की भांति बाहर की तरफ दौड़ता है; जिसका जन्म तुम्हारे अंतःकरण में होता है, जिसका जन्म तुम्हारे हृदय में होता है। जिसकी जड़ें स्वभाव में छिपी हैं; जो तुम्हारी आत्मा से आता है।

एक है चरित्र जो आरोपित है, और एक है चरित्र जो अंतस से जाग्रत है। जो अंतस से जाग्रत है वह दृढ़ है; उसे तोड़ा नहीं जा सकता। उसके तोड़ने का उपाय ही नहीं बचा। उसके भीतर विरोधी तत्व मौजूद नहीं है। तुम उसे डिगा भी नहीं सकते। क्योंकि कोई दूसरा थोड़े ही किसी को डिगाता है। जब तुम डिगते हो तब डिगने का कारण तुम्हारे भीतर ही होता है। तुम्हें कोई डिगाता नहीं; तुम डिगने को तैयार होते हो, इसीलिए कोई डिगाता है।

एक स्त्री ने एक पुलिस दफ्तर में जाकर कहा कि मेरे साथ बलात्कार किया गया है, और जिसने किया है वह महामूर्ख है। चकित हुआ जो आफीसर ड्यूटी पर था! और उसने कहा, यह तो मैं समझ सकता हूं, बलात्कार की रोज ही घटनाएं घटती हैं; लेकिन दूसरी बात मेरी समझ में नहीं आती कि यह तुझे कैसे पता चला कि वह महामूर्ख था। उस स्त्री ने कहा, निश्चित महामूर्ख था, क्योंकि बलात्कार कैसे करना यह भी मुझे ही बताना पड़ा।

कोई तुम्हें डिगाता नहीं। बलात्कार भी कोई नहीं कर सकता है, अगर तुम्हारे भीतर ही स्वर न छिपा हो। बलात्कार में भी तुम्हारे साथ की जरूरत पड़ेगी। अन्यथा बलात्कार भी संभव नहीं है।

यह थोड़ा कठिन लगेगा। क्योंकि तुम सोचोगे, बलात्कार तो जबरदस्ती की गई घटना है।

लेकिन जबरदस्ती को भी तुम आमंत्रित करते हो। मनसविद कहते हैं कि कुछ स्त्रियां हैं जो बलात्कार को आमंत्रित करती हैं; कुछ स्त्रियां हैं, जब तक उनके ऊपर बलात्कार न हो तब तक उनको तृप्ति नहीं। वे सब तरह का आयोजन करती हैं कि उन पर बलात्कार हो। और बलात्कार में भी सहयोग की तो जरूरत है ही, क्योंकि अगर स्त्री का बिल्कुल असहयोग हो तो वह मुर्दे की, लाश की भांति हो जाएगी; उससे बलात्कार नहीं किया जा सकता। अगर उसका पूर्ण असहयोग हो तो ठीक बलात्कार के क्षण में ही शरीर से प्राण अलग हो जाएंगे।

भारत के पुराने शास्त्रों में कहा है, सती के साथ बलात्कार नहीं किया जा सकता, सती का सतीत्व भ्रष्ट नहीं किया जा सकता।

ऊपर से देखने पर बात अजीब लगती है। क्योंकि कोई जबरदस्ती दस आदमी इकट्ठे होकर स्त्री का सतीत्व क्यों नष्ट नहीं कर सकते? लेकिन सतीत्व अगर सच में ही सतीत्व है तो स्त्री के प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे, लेकिन बलात्कार नहीं हो सकेगा। सहयोग से ही होगा। सहयोग में ऊपर कितना ही विरोध हो, भीतर गहरी आकांक्षा होगी।

तुम डिगा नहीं सकते, अगर चरित्र की जड़ें स्वभाव में हैं। तुम कैसे किसी को लोभ में डाल सकोगे, अगर भीतर लोभ न बचा हो?

हर आदमी की लोभ की सीमा अलग हो सकती है। कोई तुम्हें पांच रुपया रिश्वत दे तो तुम हो सकता है, कह दो, नहीं लूंगा। क्या समझा है तुमने मुझे? मैं कोई भ्रष्टाचारी नहीं हूं। लेकिन पांच हजार दे तो इतनी आसानी से न कह पाओगे। और अगर पांच लाख दे तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। और अगर पांच करोड़ दे तो तुम्हारे मन में ख्याल ही न उठेगा कि यह भ्रष्टाचार है।

इससे क्या फर्क पड़ता है कि पांच रुपए लिए कि पांच करोड़ लिए? यह भेद तो संख्या का है। इससे एक ही बात पता चलती है कि तुम्हारे लोभ की जो सीमा है वह पांच रुपए के बाद शुरू होती है। बस पांच रुपए तक तुम अलोभ में हो। उतना गहरा तुम्हारा चरित्र है। पांच रुपए की गहराई तुम्हारा चरित्र है। पांच करोड़ की गहराई पर तुम्हारा चरित्र नहीं है। वहां तुम डगमगा जाते हो।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की के साथ गांव के सम्राट ने अनैतिक संबंध स्थापित कर लिया और वह गर्भवती हो गई। मुल्ला बहुत नाराज हुआ; बहुत चीखा-चिल्लाया। उठाई तलवार और चला गांव के सम्राट की तरफ। आगबबूला हो रहा था, क्रोध से जला जा रहा था। और उसने कहा कि तुमने क्या किया? जीवन से मूल्य चुकाना पड़ेगा। तुमने मुझे समझा क्या है? लेकिन गांव का जो राजा था, उसने कहा, बैठो शांति से, पहले मेरी बात सुनो। क्या मामला क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, मेरी लड़की को तुम्हीं ने गर्भ दिया, तुम्हीं ने उसे भ्रष्ट किया; यह मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। राजा ने कहा, चिंता मत करो! क्योंकि अगर सच में ही तुम्हारी लड़की गर्भवती है तो पचास हजार रुपया तो मैं तुम्हें दूंगा, ताकि तुम बच्चे को पाल-पोस सको; और पांच लाख रुपए मैंने जमा कर रखे हैं बच्चे के भविष्य के लिए, वे बैंक में हैं। नसरुद्दीन एकदम हलका हो गया। क्रोध खो गया। और उसने कहा कि और अगर इस बार बच्चा पैदा न हुआ, कुछ भूल-चूक हो गई, मुर्दा पैदा हुआ, समय के पहले पैदा हो गया, मर गया, या कुछ हो गया, तो आप एक और अवसर देंगे या नहीं? मैं यही पूछने आया हूं कि मेरी लड़की को एक और अवसर देंगे या नहीं?

सीमा है। कोई तुम्हें कुछ कहे, तुम क्रोधित न होओ, फिर कोई तुम्हें और बड़ी गाली दे तो तुम क्रोधित हो जाओ, तो यह मत समझना कि तुम अक्रोध को उपलब्ध हुए हो। इतना ही समझना कि क्रोध की और तुम्हारे अक्रोध की पर्त की एक व्यवस्था है। एक सीमा तक तुम क्रोधित नहीं होते, वहां तक तुम्हारा आचरण है। उसके भीतर क्रोध उबल रहा है, वही तुम्हारी असली स्थिति है। जब तक तुम डिगाने के बाहर न हो जाओ तब तक तुम्हारा चरित्र चमड़ी के जैसा है, ऊपर-ऊपर है। जरा सा कांटा चुभे और उखड़ जाएगा। जिस दिन तुम डिग ही न सको, आसान न रह जाए यह बात, आसान क्या असंभव ही हो जाए।

तो ये दो हैं चरित्र के आयाम। एक आयाम है ऊपर से आरोपित करना। वह व्यवहार-कुशलता है, चरित्र नहीं है। लोगों के साथ व्यवहार करने के लिए तुम्हें थोड़ा शिष्टाचार सीखना पड़ता है। हर जगह, हर स्थिति में

क्रोधित होना मंहगा है। तुम चालाक हो। तो तुम जानते हो, कहां क्रोधित होना, कहां नहीं होना, किस पर होना, किस पर नहीं होना। क्रोध में भी तुम मुस्कुराते रहते हो, अगर जिस पर क्रोध करने का मौका आया है वह बली है, शक्तिशाली है। अगर यही बात कमजोर ने कही होती, तुम गर्दन दबा देते। तो यह तुम्हारी चालाकी हो सकती है; चरित्र नहीं है। समाज में जीना है तो कुशलता चाहिए। अकेले तुम नहीं हो; चारों तरफ हजारों लोग हैं। उनके साथ चलना है, उठना है, बैठना है, व्यवहार करना है। तो तुम्हें एक गणित सीखना पड़ेगा। तुम अपने मनोवेगों को स्वतंत्रता नहीं दे सकते हो; अन्यथा जीना मुश्किल हो जाएगा। और तुम चौबीस घंटे अड़चन में रहोगे।

इस गणित को तुम चरित्र मत समझ लेना। यह गणित तो ऊपर-ऊपर है। इसीलिए तो निरंतर यह होता है कि जब भी तुम थोड़े ज्यादा शक्तिशाली हो जाते हो, यह गणित बदलने लगता है। क्योंकि यह गणित तभी तक काम देता है जब तक तुम कमजोर थे। जैसे ही तुम्हारी शक्ति बढ़ती है, थोड़ा धन बढ़ता है, थोड़ा पद बढ़ता है, तो सारी स्थिति बदल जाती है। जो कल ताकतवर थे वे कमजोर हो जाते हैं। अब तुम उन पर क्रोध कर सकते हो। कल जो कमजोर थे वे और कमजोर हो जाते हैं; अब तुम उनके सिर पर पैर रख कर सीढ़ियां बना सकते हो।

जो लार्ड एक्टन ने कहा है, पावर करप्ट्स, एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली, कि शक्ति लोगों को भ्रष्ट करती है और परिपूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है, वह एक अर्थ में सही है और एक अर्थ में सही नहीं। ऐसा होता है, यह निश्चित है। तो लार्ड एक्टन जो कह रहा है वह ठीक कह रहा है। उसका निरीक्षण सही है कि जो भी व्यक्ति शक्ति में पहुंचता है वही भ्रष्ट हो जाता है। लेकिन फिर भी यह सही नहीं है। क्योंकि शक्ति किसी को भ्रष्ट नहीं करती। वह व्यक्ति भ्रष्ट तो था ही। कमजोर था, इसलिए भ्रष्टता को प्रकट नहीं कर सकता था। शक्ति ने, जो छिपा था, उसे प्रकट करने का मौका दिया। यह करना तो वह सदा से चाहता था, लेकिन करने की सुविधा नहीं जुटा पाता था। अब उसके पास सुविधा है।

तुम देखते हो, भारत में ऐसा हुआ। आजादी के पहले जो राजनीतिज्ञ सेवक थे वे ही आजादी के बाद शोषक हो गए। आजादी के पहले जो बड़े त्यागी मालूम होते थे वे ही आजादी के बाद बड़े भोगी हो गए। उनका त्याग ऊपर से थोपा हुआ आचरण था, जो परिस्थिति की मजबूरी थी, जो वास्तविक नहीं थी। उनकी अहिंसा ऊपर-ऊपर थी। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि इन पच्चीस वर्षों में इन्हीं राजनीतिज्ञों ने, जो अहिंसा का दिन-रात उदघोष करते रहते हैं, जितनी हत्या की है इतनी अंग्रेजों ने भारत में कभी भी न की थी। इसे कोई सोचता भी नहीं। जितनी गोली इन्होंने चलाई है उतनी एक विजातीय, एक परदेशी सत्ता ने भी न चलाई थी। अगर अंग्रेज इतनी ही गोली चलाने को राजी होते तो तुम कभी स्वतंत्र ही न हो पाते। जितने लोगों को तुमने जेल में डाला है इतनों को अगर अंग्रेज डालने को तैयार होते और इस बुरी तरह दमन करने को राजी होते तो गुलामी कभी टूट नहीं सकती थी।

गोली चलाना खेल हो गया है। रोज कहीं न कहीं भारत में गोली चलती है। दो-चार, पांच आदमियों के मरने की कोई बात ही खास नहीं रही है। लाठी तो रोज पड़ती है। जेलों में बहुत बुरी दशा है। और ये सब अहिंसक हाथों से हो रहा है। हिंसा के करने वाले लोग अगर ऐसा करें तो संगति है। लेकिन अहिंसक दावेदार, जो गांधी की छाया में बड़े हुए और जो दिन-रात गांधी का गुणगान करते रहते हैं, उनके हाथ तले यह सब हो रहा हो, तो एक बात समझ लेनी चाहिए कि गांधी इस देश को चरित्र नहीं दे सके। गांधी ने इस देश को कुशलता दी, चालाकी दी। ऊपर-ऊपर रही बात, भीतर गहरे में न गई। और उनके सारे अनुयायी भ्रष्ट साबित हुए।

लेकिन भ्रष्टता का पता सैंतालीस के पहले नहीं चला। चल नहीं सकता था। ताकत ही हाथ में न थी तो भ्रष्ट कैसे होंगे? तब वे बड़े शुद्ध मालूम पड़ते थे। शुभ्र खादी के वस्त्रों में उन जैसे साधु खोजना कठिन थे। वस्त्र अब भी वही हैं। शुभ्रता और भी बढ़ गई है। लेकिन भीतर का कालापन पूरी तरह प्रकट हो गया है।

एक आचरण है जो आदमी सामाजिक व्यवहार की तरह सीखता है--कैसे बोलना, कैसे उठना, कैसे चलना--ताकि तुम व्यर्थ ही किसी के विरोध में न पड़ जाओ, व्यर्थ ही शत्रु न बना लो, कुशलता से काम लो, ताकि जो लक्ष्य तुम्हारे जीवन की महत्वाकांक्षा है, वह पूरी हो सके।

राजनीतिज्ञ जब चुनाव के समय तुम्हारे पास आता है तो कैसे हाथ जोड़ कर मुस्कुरा कर खड़ा हो जाता है! इनकी मुस्कुराहट और हाथ जुड़े देख कर बुद्ध और महावीर की विनम्रता भी छोटी मालूम पड़ेगी। एकदम विनम्र हो जाता है, पानी-पानी मालूम होता है। ऐसा लगता है कि तुम्हारे चरणों में सिर रख देने को लालायित है। फिर पद पर पहुंच जाने पर यह तुम्हें पहचानेगा नहीं। यह यह बात भी नहीं मानेगा कि कभी यह तुम्हारे द्वार गया था। तुम भूल कर इसके पास मत चले जाना कि आप हमारे द्वार आए थे और हमने आपको मत दिया था, और आप हाथ जोड़ कर खड़े हुए थे। सच तो यह है कि चूंकि इसे हाथ जोड़ना पड़ा, यह तुमसे बदला लेकर रहेगा, यह तुम्हें नीचा दिखा कर रहेगा। क्योंकि परिस्थिति ऐसी थी, हाथ जोड़ने पड़े, तुम्हें भुला नहीं सकता; यह तुम्हारा अपमान करके रहेगा।

तो यह एक आचरण है। ऐसा आचरण ऊपर आचरण भीतर गहन पाखंड है। जीसस निरंतर अपने वचनों में कहते हैं, अरे ओ पाखंडियो! अपने शिष्यों को कहते हैं कि तुम पाखंडियों जैसे आचरण से मत भर जाना, उससे तो दुराचरण भी ठीक है। कम से कम ईमानदार तो है; कम से कम सच्चा तो है। जीसस अपने शिष्यों को कहते हैं कि ध्यान रखना, दुराचारी पहले पहुंच जाएंगे तुम्हारे सदाचारियों से। क्योंकि दुराचारी कम से कम सीधे-साफ हैं, चालाक नहीं हैं। ये तुम्हारे सदाचारी बिल्कुल चालाक हैं और पाखंडी हैं। और जिस-जिस को ये दिखा रहे हैं कि इनमें नहीं है, वही-वही इनमें छिपा है।

अगर तुम्हारे साधुओं के सिर में एक खिड़की बनाई जा सके और तुम उसके भीतर झांक सको तो तुम बहुत हैरान होओगे। वहां तुम महान अपराध को होते देखोगे; यद्यपि वे आचरण से नहीं करते ऐसा अपराध, यह उनके विचार में ही चलता है। पर विचार और आचरण का कोई फर्क नहीं है धर्म के लिए। तुमने सोचा कि हो गया; तुमने किया या नहीं, यह सवाल नहीं है। क्योंकि धर्म का इससे कुछ लेना-देना नहीं है कि तुमने क्या किया। धर्म का इससे ही संबंध है कि तुमने क्या करना चाहा, तुम्हारे भीतर क्या करने का विचार उठा। अगर तुमने व्यभिचार सोचा तो व्यभिचार हो गया। कानून तुम्हें न पकड़ पाएगा, लेकिन परमात्मा के कानून से तुम बच न सकोगे। इस जमीन का कानून तुम्हें न पकड़ पाएगा। तुम अपने मन में बैठ कर किसी की भी हत्या करते रहो, कोई अदालत तुम पर मुकदमा नहीं चला सकती। कम से कम सपने की स्वतंत्रता है। तुम स्वप्न देख सकते हो हत्या के, कोई कुछ नहीं कह सकता। जब तक तुम कृत्य न करो तब तक तुम गिरफ्त में नहीं आते। क्योंकि संसार कृत्य से जीता, कृत्य से सोचता है। संसार का सिक्का कृत्य है। लेकिन परमात्मा का सिक्का और। वहां सोच-विचार... आखिरी हिसाब इसका नहीं है कि तुमने क्या किया, आखिरी हिसाब इसका है कि तुम क्या करना चाहते थे।

तब तुम पापियों में और पुण्यात्माओं में बहुत फर्क न पाओगे। तब तुम अपने पुण्यात्माओं को पापियों से भी बड़ा पापी पाओगे। क्योंकि पापी तो गुजर जाता है, कर लेता है, निपट जाता है; पुण्यात्मा सोचता ही रहता है, सोचता ही रहता है। वही-वही पुनरुक्त होता रहता है। उसकी आत्मा एक गर्त में पड़ती जाती है। उसकी आत्मा के चारों तरफ एक ही धुआं घूमने लगता है; वह पाप का धुआं है।

ऐसा आचरण बेबुनियाद है। और ऐसा आचरण रेत पर बनाए गए भवन की तरह है जो गिरेगा ही देर-अबेर। संयोग है कि थोड़ी देर टिक जाए। कागज की नाव है, इससे तुम यात्रा न कर सकोगे। यह तुम्हें डुबाएगी। इससे तो बेहतर है तुम बिना नाव के ही यात्रा कर लो। क्योंकि बिना नाव के जो यात्रा करता है वह तैरने का इंतजाम करके चलता है। कागज की नाव में जो चलता है वह सोचता है, नाव पास है; तैरने की जरूरत क्या? तैरना सीखने का प्रयोजन क्या? लेकिन कागज की नावें पार नहीं जातीं, बीच में डूब जाती हैं।

और फिर यह जो ऊपर-ऊपर से साधा गया आचरण है, यह तुम्हें बड़ी भीतरी कलह में डाल देगा। एक कांफ्लिक्ट, एक द्वंद्व तुम्हारे भीतर चलता ही रहेगा। क्योंकि जो भी तुम करना चाहोगे, करोगे नहीं; और जो भी तुम करोगे वह तुम करना न चाहोगे। मुस्कुराओगे ऊपर, भीतर क्रोध से भरे रहोगे। तुम्हारा जीवन नरक बन जाएगा। तुम दोनों दिशाओं में तने रहोगे।

अशांति और क्या है? पाखंड के बीज अशांति लाते हैं। संताप और क्या है? कि तुम इस तरह खिंचे हो दो चीजों में कि न इस तरफ हो पाते हो, न उस तरफ हो पाते हो। ऊपर से तुम्हें लगता है कि क्रोध बुरा है, क्रोध करना नहीं; और भीतर क्रोध उबलता है। तब तुम एक मुखौटा ओढ़े लेते हो, मुंह छिपा लेते हो, झूठे चेहरे मुंह पर ढांक लेते हो। पर तुम किसको धोखा दे रहे हो? दूसरे को चाहे तुम देने में सफल भी हो जाओ, अपनी ही अंतरात्मा के समक्ष तो तुम नग्न ही रहोगे। वहां तो कोई मुखौटे काम न देंगे। और वहां तो तुम जानोगे ही कि असलियत क्या है। सत्य इस तरह के मुखौटों से कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। और इनको जरा में हिलाया जा सकता है।

लाओत्से कहता है कि एक ऐसा चरित्र भी है जिसे हिलाना आसान नहीं। उस चरित्र की बुनियाद तुम्हारे स्वभाव में है; चालाकी में नहीं, तुम्हारी प्रज्ञा में है; गणित में नहीं, तुम्हारी अंतस चेतना में है। होशियारी में नहीं; होशियारी को बहुत होशियारी मत समझना। होशियारी अंत में बड़ी नासमझी सिद्ध होती है। होशियारी में नहीं, होश में असली चरित्र की बुनियाद रखी जाती है। फर्क को समझ लो। फिर हमें इस सूत्र को समझना आसान हो जाएगा।

क्रोध तुम्हारे जीवन में है--एक तथ्य। इस क्रोध के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो है कि तुम इसे दबा दो, छिपा दो अपने ही भीतर। लेकिन जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह मिट नहीं गया है। और जो तुम्हारे भीतर छिपा है उसे रोज-रोज छिपाना पड़ेगा; क्योंकि वह रोज-रोज बाहर आना चाहेगा। और जिसे तुम भरते ही जाओगे भीतर वह धीरे-धीरे तुम्हारे ऊपर से बहने लगेगा। क्योंकि भरने की भी एक सीमा है। जगह भी सीमित है तुम्हारे भीतर।

इसलिए एक बहुत अनूठी बात समझ लेना। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो लोग रोज-रोज क्रोध कर लेते हैं और उसे दबाते नहीं, इनमें से कभी शायद ही कोई आदमी हत्या करता है। शायद ही। असंभव है। लेकिन जो लोग क्रोध को दबाते रहते हैं इनमें से अधिक लोग हत्या करते हैं। क्योंकि इतना क्रोध इकट्ठा हो जाता है कि फिर छोटी-मोटी घटना से तृप्त नहीं होता, फिर हत्या ही चाहिए। जब तक तुम किसी की गर्दन ही न तोड़ दोगे, सिर ही न फोड़ दोगे, लहूलुहान ही न कर दोगे, जब तक तुम जीवन को सामने ही अपने तड़पते हुए, मिटते हुए न देख लोगे, तब तक तुम्हारी आत्मा को शांति न मिलेगी।

अगर कोई मुझसे पूछे कि क्रोध करना ही हो और बचने का कोई उपाय ही न हो तो क्या करना, तो मैं उससे कहूंगा, जब भी करना हो कर लेना, उसे इकट्ठा मत करना। छोटे बच्चों जैसा करना; क्रोध आए जब, पूरा निकाल लेना। इसलिए छोटे बच्चे घड़ी भर बाद हंस रहे हैं; जिस बच्चे से घड़ी भर पहले लड़े थे और कहा था कि

अब जिंदगी भर बोलेंगे नहीं, खत्म हो गई बात, अब तुम्हारी शक्ल न देखेंगे, घड़ी भर बाद फिर दोनों पास बैठे हैं और गपशप कर रहे हैं। जैसे वह बात आई और गई, जैसे उससे कोई जीवन का लेना-देना नहीं है। एक झोंका था हवा का, आया और गया। और झोंका साफ कर गया, धूल-धवांस झाड़ गया।

अगर क्रोध करना ही हो तो बच्चों जैसा करना--कर लेना और इकट्ठा मत करना। क्योंकि इकट्ठा करने वाला ही मुसीबत में पड़ेगा। वह हत्या करेगा। वह कोई भयानक अपराध करेगा। जब क्रोध ज्यादा हो जाएगा तो छोटे-मोटे कृत्य से तृप्त न होगा; अकारण बहेगा। जो आदमी रोज-रोज क्रोध कर लेता है, जब जरूरत होती है तब क्रोध कर लेता है, वह आदमी क्रोधी नहीं है। उसका कोई कृत्य क्रोध का होता है, लेकिन बस कृत्य ही होता है। चौबीस घंटे वह आदमी हलका-फुलका होता है। और जो आदमी क्रोध नहीं करता, इकट्ठा करता है, उसके कृत्य में क्रोध नहीं होता, उसके व्यक्तित्व में क्रोध हो जाता है। जहर सबमें फैल जाता है; वह चौबीस घंटे क्रोधी होता है। उसके चौबीस घंटे में क्रोध की छाया पड़ती रहती है। वह सामान भी रखेगा तो जोर से रखेगा; दरवाजा खोलेगा तो जोर से खोलेगा। जूते उतारेगा तो ऐसे कि जैसे दुश्मन को फेंक रहा हो। वह बात करेगा तो उसकी बात में जहर होगा। वह देखेगा तो उसकी आंखों में कांटे होंगे। वह प्रेम भी करेगा तो उसके प्रेम में भी हिंसा होगी।

वात्स्यायन ने, जिसने सबसे पहले जगत में कामशास्त्र पर विचार किया, उसने लिखा है कि प्रेम तब तक अधूरा है जब तक प्रेमी एक-दूसरे को काटें न, लोचें न। तो प्रेम की अनेक बातों में नखदंश और प्रेम की अनेक बातों में दांतों के चिह्न प्रेमी पर न छूट जाएं तब तक प्रेम अधूरा है। लेकिन प्रेम में तुम काटना चाहोगे? कि लोंचना चाहोगे? यद्यपि प्रेमी यह करते हैं।

निश्चित ही, यह जहर कहीं और से आ रहा है। अन्यथा प्रेम में तो आदमी अति कोमल होगा। काटने की बात ही बेहूदी है। पशु भी नहीं करते प्रेम में काटना या लोंचना तो आदमी क्यों करेगा?

लेकिन आदमी करता है। और ऐसी घटनाएं घटी हैं कि कभी-कभी प्रेमियों ने एक-दूसरे की हत्या कर दी--प्रेम में। ऐसे कुछ मुकदमे दुनिया में चले हैं जब कि पहली ही सुहागरात, पति ने गर्दन दबा दी पत्नी की। और वह बड़े प्रेम में था। और वह खुद भी भरोसा न कर सका कि क्या हो गया। और अदालत में वह कहता है तो कोई उसकी मानता नहीं! वह कहता है कि मैं तो इतना प्रेम करता था, जार-जार रोता हूं कि मुझसे क्या हो गया। यह किस प्रेत ने मुझे पकड़ लिया! किस शैतान ने मुझे पकड़ लिया! मैं आविष्ट हो गया; मैं मैं नहीं था। यह मुझसे हो नहीं सकता, क्योंकि अपनी प्रेयसी को मैं क्यों मारूंगा? और कोई कारण नहीं मारने का। और अभी तो पहली ही रात थी। और कितने दिन से आशा संजोई थी।

लेकिन अगर तुम क्रोध को इकट्ठा करते जाओ तो वह किसी भी क्षण बह सकता है। और प्रेम का क्षण बड़े खुलने का क्षण है। क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम सब खिड़की-दरवाजे खोल देते हो। अगर क्रोध बहुत भरा हो तो बह जाएगा। तुम करोगे क्या? घड़े में जो भरा है वह बाहर आ जाएगा, अगर सब खुल जाए। तो प्रेम में तुम अपने को सम्हाले नहीं रख सकते, नहीं तो प्रेम न कर पाओगे। और सम्हालना छोड़ा कि जो तुम्हारे भीतर भरा है वही बाहर आ जाएगा।

तो क्रोध के साथ एक तो रास्ता है कि तुम उसे दबाओ, भीतर-भीतर सरकाते जाओ; तुम्हारे अचेतन में लबालब क्रोध हो जाए। तब तुम क्रोधी व्यक्ति हो जाओगे। भला तुम्हारा क्रोध का कृत्य हो या न हो, तुम्हारे व्यक्तित्व में क्रोध का जहर होगा। तुम्हारे साधु-संन्यासियों में तुम ऐसे आदमियों को पाओगे। दुर्वासा तुम्हें सब जगह मिल जाएंगे। दुर्वासा ऋषि बड़े रिप्रेजेंटेटिव, प्रतिनिधि ऋषि हैं। उन जैसे ऋषि तुम्हें जगह-जगह मिलेंगे। छोटी सी बात उन्हें आगबबूला कर देगी। बात का बतंगड़ हो जाएगा। बहुत क्षुद्र सी बात उन्हें क्रोध से भर देगी।

वे विनाश को उतारू हो जाएंगे, अभिशाप उनसे बहने लगेगा। क्रोध को अगर दबाया तो तुम्हारा अचेतन जहरीला हो जाएगा।

और यही पहले तरह का चरित्र करता है; क्रोध को, काम को, लोभ को, मोह को दबाता है। कचरा भीतर भरता है। और जितना यह कचरा भीतर भरता जाता है, तुम्हारी आत्मा तुमसे उतनी ही दूर होती चली जाती है। फिर तुम भीतर जाने में भी डरने लगोगे। क्योंकि भीतर गए तो यही कचरा पहले मिलेगा। तब तुम बाहर ही बाहर रहोगे, घर के बाहर ही घूमोगे, पोर्च में ही विश्राम करोगे। उससे भीतर जाने की तुम्हारी हिम्मत टूट जाएगी।

आखिर इतना तुम सुनते हो, सारी दुनिया के बुद्ध पुरुष कहते हैं, भीतर जाओ, जानो अपने को, आत्मज्ञान, अपनी पहचान; तुम जाते नहीं। तुम सुन लेते हो। कहते हो, ठीक है, जाएंगे कभी; लेकिन जाते नहीं। तुम जानते हो कि भीतर गए तो ब्रह्म से मिलने की तो कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती, मिलेगा यह कचरा जो तुमने दबाया है। और जब भी कभी तुम भीतर गए हो थोड़े तो यही कचरा मिला है। इसीलिए तो तुम अकेले तक रहने में डरते हो। कोई दूसरा रहे तो मुखौटा लगा रहता है। दूसरे को दिखाने के लिए तुम अभिनय करते रहते हो। जब तुम बिल्कुल अकेले रहते हो, मुखौटा उतर जाता है। जब दूसरा है ही नहीं तो दिखाना किसको? तब अपने से संबंध होने शुरू हो जाते हैं। और अपने से तुम बड़े भयभीत हो। तुम जानते हो, कुछ उपद्रव हो जाएगा।

बहुत से प्रयोग किए गए हैं वैज्ञानिक ढंग से, कि लोगों को तीन सप्ताह के लिए एकांत में रख दिया गया, बिल्कुल एकांत, गहन अंधेरी कोठरी में। सब सुविधा जुटा दी गई है, कोई कमी नहीं है। तीन सप्ताह में लोग पागल हो जाते हैं। क्या हो जाता है? पागल? और यह आदमी स्वस्थ था, ठीक था, सब तरह से साधारण था। अचानक पागल क्यों हो गया?

तीन सप्ताह बहुत ज्यादा है अपने साथ रहना। और तीन सप्ताह अंधेरे में अपने को ही देखना, अपने से ही मिलना, तो सब कचरा दिखाई पड़ने लगता है। सब घाव फिर से हरे हो जाते हैं, मवाद ही मवाद मालूम होती है। घबड़ाहट हो जाती है। उस घबड़ाहट में आदमी पागल हो जाता है।

कोई अपने साथ रहना नहीं चाहता। अकेलेपन से तुम बचते हो। मैंने ट्रेन में बहुत वर्षों तक सफर की, तो मैं देख कर हैरान हुआ कि लोग एक ही अखबार को चार-चार दफे पढ़ते हैं, लेकिन खाली नहीं बैठ सकते। उस अखबार को पहले पढ़ लेते हैं। ठीक शुरू से, जहां लिपटन की चाय का विज्ञापन कोने में है, आखिर तक कि कौन संपादक है, कौन प्रकाशक है, वहां तक पढ़ गए। फिर से शुरू कर देते हैं; थोड़ी देर रख देते हैं साइड में, फिर से शुरू कर देते हैं; उलझाए रखते हैं अपने को। खोलते हैं खिड़की, फिर बंद कर देते हैं; फिर थोड़ी देर में खोलते हैं। फिर सूटकेस खोलते हैं; फिर कुछ इधर-उधर सामान जमा कर फिर बंद कर देते हैं।

लंबी यात्रा में अगर तुम चुपचाप किसी आदमी को देखते रहो तो तुम बहुत हैरान होओगे कि यह कर क्या रहा है! क्यों कर रहा है! उसे भी पता हो जाए तो वह भी हैरान होगा। लेकिन करने का वह सब उपाय कर रहा है अपने से बचने के लिए इस अकेलेपन में। इसलिए अजनबी से लोग बातचीत शुरू कर देते हैं; व्यर्थ की बातचीत शुरू कर देते हैं। मौसम की चर्चा शुरू कर देते हैं। अब दोनों को दिखाई पड़ रहा है कि बाहर पानी गिर रहा है; इसमें कुछ कहने का नहीं है। लेकिन कुछ भी बात चाहिए।

अजनबियों से लोग मौसम की ही चर्चा शुरू करते हैं पहले कि कैसी सुंदर रात है। क्योंकि दूसरी कोई भी चर्चा खतरनाक हो सकती है। अभी पक्का पता नहीं है कि अजनबी कम्युनिस्ट है, कि हिंदू है, कि मुसलमान है। मौसम बिल्कुल निष्पक्ष बात है। इसमें कोई ज्यादा मत का सवाल नहीं है, झगड़े का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि

जब चांद निकला है तो यह भी कहेगा कि हां, सुंदर है, इसमें एकमत हो जाएगा। और कोई दूसरी बात उठाना खतरे से खाली नहीं है; कहीं विरोध हो जाए। और यह मौका विरोध करने का नहीं है; यहां साथ चाहिए।

मुल्ला नसरुद्दीन से उसके लड़के ने एक दिन पूछा कि जब भी आप बाल बनवाने नाई के यहां जाते हैं तो आप हमेशा मौसम-मौसम की चर्चा क्यों करते हैं नाई से? दूसरी बात क्यों नहीं करते? घर पर तो आप और कई बातें करते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, तू समझता नहीं। जब एक आदमी के हाथ में उस्तरा हो तो कोई भी ऐसी बात करना, जिसमें विरोध हो जाए, उचित नहीं है। मौसम बिल्कुल ठीक है। राजनीति में भेद हो सकता है, धर्म में विरोध हो सकता है, दर्शन-शास्त्र में अलग मत हो सकता है। और उस आदमी के हाथ में छुरा है! अपनी गर्दन कटवानी है? गुस्से में आ जाए, क्रोध हो जाए। ऐसी बात करनी उचित है जो बिल्कुल तटस्थ है, जिसमें कोई झगड़े का उपाय नहीं।

आदमी अपने से भयभीत है। और भय का कारण है कि सब जो बुरा है भीतर दबा लिया।

ऐसे चरित्र की कितनी जड़ें हो सकती हैं? कोई जड़ ही नहीं है, बिना जड़ का चरित्र है। इसे हिलाने में कोई कठिनाई है? इसे कोई भी हिला दे सकता है। तुम बिल्कुल अपनी पत्नी से मात्र प्रेम करते हो। अगर ऐसा ही प्रेम है तो कोई भी सुंदर स्त्री सड़क से निकलती हुई इसे हिला दे सकती है। हिलाने की जरूरत भी नहीं है। उस स्त्री को पता भी नहीं होगा कि आप हिल गए, कि आपके मन में विचार चल पड़ा, कि कामवासना जग गई। कोई भी छोटी सी घटना आंदोलित कर देगी।

दूसरा चरित्र है जो दमन से पैदा नहीं होता, जो जागरण से पैदा होता है। क्रोध को दबाना नहीं है, क्रोध को समझना है। लोभ को दबाना नहीं है, लोभ को समझना है। लोभ क्या है? उसके पक्ष-विपक्ष में होने की आवश्यकता नहीं है, उसकी निंदा भी नहीं करनी है, क्योंकि परमात्मा ने जो भी दिया है कोई प्रयोजन होगा। अस्तित्व में निष्प्रयोजन तो कुछ भी नहीं है। अगर क्रोध दिया है तो कोई आधार होगा। क्रोध दिया है तो कारण होगा। क्रोध दिया है तो कोई सदुपयोग होगा। क्रोध दिया है तो इस ऊर्जा से कुछ निर्मित हो सकता होगा। तुम्हें पता न हो आज कि क्या करें।

तुम्हें पता न हो कि घर में सितार रखा है, यह संगीत इससे पैदा होता है। और तुमने कभी संगीत इससे पैदा होते देखा भी नहीं। कभी कोई चूहा धक्का मार देता है तो रात में नींद टूट जाती है। कभी कोई बच्चा आकर तार छेड़ देता है तो घर में सिर्फ शोरगुल मच जाता है। इससे तुमने संगीत पैदा होते देखा नहीं; क्योंकि संगीतज्ञ के हाथों ने इसे छुआ नहीं। तुम अपरिचित हो। सितार भी शोरगुल पैदा करेगा, अगर तुम जानते नहीं कि कैसे बजाएं। ऐसा ही शोरगुल तुम्हारे व्यक्तित्व में हो रहा है। तुम जानते नहीं कि कैसे जीवन को बजाएं, जीवन की बांसुरी से कैसे सौंदर्य उठे, संगीत उठे। इससे क्रोध उठ रहा है, इससे लोभ उठ रहा है। लोभ और क्रोध तो सिर्फ अभाव हैं। वे तो यह बताते हैं कि तुम्हें बजाना न आया। वे तो यह बताते हैं कि तुम राग को सम्हाल न पाए। वे तो यह बताते हैं कि जो तुम्हें मिला था, उसका तुम संयोजन न बिठा पाए।

तुम्हारी दशा वैसी है कि आटा रखा हो, पानी रखा हो, घी रखा हो, सिगड़ी जल रही हो--और तुम भूखे बैठे हो, क्योंकि रोटी बनाने का तुम्हें कुछ पता नहीं है। सब मौजूद है, सिर्फ मिलाना है ठीक अनुपात में, अंगीठी पर चढ़ाना है; ठीक समय देना है। जब भूख है तो पास ही कहीं भोजन छिपा होगा; क्योंकि भूख अकारण नहीं हो सकती। और भोजन न हो तो भूख नहीं दी जा सकती। और फिर हमने उनको भी देखा है जो तृप्त हो गए। हमने बुद्ध को देखा है, जिनकी भूख जा चुकी। उन्होंने भोजन बना लिया है; उन्होंने रोटी तैयार कर ली है। आटा अकेला नहीं खाया जा सकता। खाओगे, पेट में दर्द होगा, तकलीफ होगी। आटे के दुश्मन हो जाओगे। पानी अकेला

पीओगे, भूख नहीं मिटेगी। थोड़ी देर पेट भर जाएगा, फिर खाली हो जाएगा। और जोर से भूख लगेगी। आग से सेंकते रहोगे हाथ, पसीना बहेगा, भूख न मिटेगी। तत्व सब मौजूद हैं; रोटी बनानी है। सितार तैयार है; सिर्फ अंगुलियां साधनी हैं।

जिसे तुम क्रोध कह रहे हो, वही करुणा बनेगा। वही ऊर्जा जिसे तुम लोभ कह रहे हो, वही दान बनेगा। वही ऊर्जा--जिस दिन तुम संगीतज्ञ हो जाओगे, जिस दिन तुम बजाना सीख लोगे--जिसे तुम काम कह रहे हो, वही ब्रह्मचर्य बनेगा। वही ऊर्जा! एक ही ऊर्जा है; जब तुम उसे भ्रष्ट होने देते हो तो क्रोध हो जाती है, जब तुम उसे सम्हाल लेते हो, रूपांतरित कर लेते हो, करुणा हो जाती है। एक ही ऊर्जा है। जब तुम छिद्रों से बहने देते हो तो कामवासना हो जाती है, जब तुम अछिद्र हो जाते हो और उसे संयम में साध लेते हो--संयम यानी संगीत--वही ऊर्जा ब्रह्मचर्य हो जाती है।

जो भी तुम्हारे पास है, सभी सार्थक है। तुम बड़े धनी हो। यह अस्तित्व इतना समृद्ध है कि यहां गरीब पैदा होते ही नहीं। और अगर गरीब हो, अपने कारण हो। अगर रो रहे हो, अपने कारण। यह सारा जगत हंसता हुआ है। यहां रोने में तुम्हारी कोई भूल हो रही है। और उस भूल में तुम ऐसा मत करना कि यह आटा गलत है, फेंक दो; कि यह आग गलत है, बुझा दो; कि पानी भूख नहीं मिटाता, उलटा दो। फिर तो तुम भूख को कभी भी न बुझा पाओगे; क्योंकि तुमने साधन ही नष्ट कर दिए।

तो मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम क्रोध को फेंक दो। वह आटा है। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम कामवासना को बुझा दो। वह आग है। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम लोभ के दुश्मन हो जाओ। क्योंकि वह जल है। उन सबसे मिल कर तुम्हारी भूख मिटेगी। उन्हें समझो, उन्हें पहचानो, उनका सम्यक अनुपात खोजो। उनके प्रति बोध।

बोध आने में बाधा पड़ रही है, क्योंकि तुम पहले ही से दुश्मनी लिए बैठे हो। अब जिस आदमी ने पहले ही से आटे से दुश्मनी बांध ली, वह आकर बैठेगा तो पीठ करके बैठेगा आटे की तरफ। दुश्मन को क्या देखना? तुमने जीवन में जो भी ऊर्जाएं हैं उनके साथ दुश्मनी समझ ली है। छोड़ो दुश्मनी। समझ को पकड़ो। पहले पहचानो, निंदा मत करो। क्योंकि निंदा जो करेगा वह पहचान न पाएगा। कहीं हम अपने शत्रु को पहचान सकते हैं? जिसका हमारे मन में विरोध है उसे हम पहचानना ही नहीं चाहते; उसे हम चाहते हैं कि वह हो ही न। पहचान का क्या सवाल है? वह रास्ते पर मिल जाए तो हम आंखें नीचे झुका कर गुजर जाते हैं। वह हाथ बढ़ाए तो हम पीठ फेर लेते हैं।

नहीं, तुम जीवन की ऊर्जाओं से शत्रुता मत बांधना। क्योंकि जीवन की ऊर्जाएं जीवन की ऊर्जाएं हैं। कुछ भी निरर्थक नहीं है। इस अस्तित्व में एक छोटा सा तिनका भी निरर्थक नहीं है। सार्थकता तुम्हें पता न हो, यह बात तुम्हारी रही। समझ बढ़ाओ, सार्थकता का पता चलेगा। लड़ो मत, जागो।

जैसे-जैसे तुम जागोगे वैसे-वैसे तुम चकित होओगे। इधर तुम जागते हो, इधर क्रोध क्षीण होने लगता है--बिना कुछ किए, बिना छुए। इधर तुम्हारा जागरण बढ़ता है, इधर तुम पाते हो, क्रोध असंभव होने लगा। क्योंकि जो ऊर्जा तुम्हें जगा रही है वह ऊर्जा भी तो क्रोध से ही ली जाएगी, वह ऊर्जा लोभ से ली जाएगी। जो व्यक्ति ध्यान करने लगता है, धन की तरफ जाने की उसकी दौड़ अपने आप कम हो जाती है। क्योंकि अब बड़ा धन उपलब्ध होने लगा, छोटी दौड़ छूटने लगी। जब हीरे मिलते हों तो कंकड़-पत्थर कौन इकट्ठे करता है? तुम छोटे से मत लड़ो, तुम बड़े को जगाओ। छुद्र से लड़े कि भटक जाओगे। विराट से जुड़ो; छोटा अपने आप विराट में लीन हो जाएगा। और विराट में लीन होकर छोटा भी विराट हो जाता है।

बुद्ध में भी क्रोध था, जैसा तुममें है; विराट में लीन होकर क्रोध करुणा बन गया। क्रोध का अर्थ हैः दूसरे को विनष्ट करने की आकांक्षा। करुणा का अर्थ हैः दूसरा फले-फूले, ऐसी आकांक्षा। बात वही है। दूसरा मिटे; दूसरा बने। वही ऊर्जा है, यात्रा बदल गई। लोभ का अर्थ है छीनना, और दान का अर्थ है देना। बात वही है। वे ही हाथ छीनते हैं, वे ही हाथ देते हैं। दूसरों से छीना जाता है, दूसरों को दिया जाता है। वे ही चीजें छीनी जाती हैं, वे ही चीजें दी जाती हैं। कुछ भी फर्क नहीं है। यात्रा वही है। सीढ़ी वही है, जिससे तुम नीचे आते हो और जिससे तुम ऊपर जाते हो। स्वर्ग और नरक तुम्हारी दिशाएं हैं; सीढ़ी तो एक ही लगी है।

जितनी तुम्हारी समझ होगी जीवन की ऊर्जाओं की, वैसे-वैसे तुम धन्यभाग अपना समझोगे। वैसे-वैसे तुम परमात्मा के अनुगृहीत होओगे कि कितना दिया है! और कैसा संगीत संभव था! घर में ही वाद्य रखा था; तुम बजाना न जान पाए। तुम नाच न सके; आकाश था, फूल खिले थे, पक्षी गीत गा रहे थे। तुम्हारे पैर नाच न पाए, तुम इस पूरी धुन को समझ न पाए कि क्या हो रहा है। अस्तित्व एक उत्सव है। जैसे-जैसे तुम्हारा बोध बढ़ेगा वैसे-वैसे तुम्हें चारों तरफ उत्सव दिखाई पड़ेगा। अस्तित्व दरिद्र नहीं है, बड़ा समृद्ध है। उसकी समृद्धि का कोई अंत नहीं है। फूल चुकते नहीं हैं, कितने-कितने अरबों वर्ष से खिलते हैं। चांद-तारे चुकते नहीं, कितने-कितने अरबों वर्ष से रोशनी बांटते हैं। जीवन का न कोई आदि है, न कोई अंत। उसी से तुम जुड़े हो।

इतने विराट से जुड़े हो। लेकिन तुम्हारी नजर क्षुद्र पर लगी है।

नजर को लौटाओ। चलो उलटे--गंगोत्री की तरफ, स्रोत की तरफ, भीतर की तरफ। करो प्रतिक्रमण। और तब तुम स्वभाव में प्रतिष्ठित हो जाओगे। और ऐसा चरित्र उपलब्ध होता है जो फिर डिगाया नहीं जा सकता। जिसका क्रोध करुणा बन गया, तुम उसे क्रोधित कैसे करोगे? क्रोध वहां बचा नहीं। और जिसने करुणा जान ली, जिसने क्रोध का इतना परम संगीत जान लिया, तुम उसे गाली दोगे तो वह मुस्कुराएगा। क्योंकि जिसने अपनी क्रोध की ऊर्जा से करुणा की संपदा पा ली, अब उस ऊर्जा को वह क्रोध में व्यय न करेगा।

बुद्ध को कोई गाली देता है तो वे कहते हैं, तुम जरा देर से आए; थोड़े पहले आना था। अब तो मुश्किल हो गई। अब तुम मुझे क्रोधित न कर पाओगे। और तुम पर मुझे बड़ी दया आती है, क्योंकि तुम खाली हाथ लौटोगे। और तुम कितनी धारणाएं लेकर आए होगे कि अपमान करूंगा, गाली दूंगा, नीचा दिखाऊंगा, और तुम असफल लौटोगे। और मैं कुछ भी तुम्हें सहायता नहीं कर सकता; तुम जरा देर से आए, दस साल पहले आना था। तब मैं भी क्रोधित होता; तुमने गाली दी, इससे वजनी गाली मैं तुम्हें देता। तब मैं नासमझ था। तब जीवन-ऊर्जा को मैं ऐसे ही फेंक रहा था। ठीक-ठीक पता नहीं था कि इससे क्या खरीदा जा सकता है।

जिस जीवन से तुम परमात्मा खरीद सकते हो उस जीवन से तुम क्या खरीद रहे हो? उसे तुम क्षुद्र के साथ व्यर्थ ही खो रहे हो। तुम गंवा रहे हो, कमा नहीं रहे हो। और बड़ी उलटी दुनिया है। संसारी जो गंवाते हैं, लोग उन्हें समझते हैं, कमा रहे हैं; संन्यासी जो कमाते हैं, लोग समझते हैं, गंवा रहे हैं। एक ही कमाई है कि तुम्हारा जीवन उस परम संगीत से भर जाए जिसका सारा साज-सामान तुम्हारे भीतर मौजूद है, जिसे तुम जन्म के साथ लेकर आए हो। वह गीत तुम गाकर जाना--एक ही कमाई है। वह संगीत तुम बजा कर जाना--एक ही कमाई है। तब तुम हंसते हुए जाओगे। तब तुम कहते हुए जाओगे कबीर के साथ कि जिस मरने से जग डरे मेरो मन आनंद; कब मरिहों कब भेंटिहों पूरन परमानंद। तब मृत्यु का स्वागत भी तुम नृत्य से करोगे। अभी तुमने जीवन का स्वागत भी क्रोध से किया है, लोभ से किया है, क्षुद्रताओं से किया है, बीमारियों से किया है। ये दो आयाम हैं।

"जो दृढ़ता से स्थापित है, आसानी से डिगाया नहीं जा सकता।"

तुम डिग जाते हो। दूसरे को कसूर मत देना; इतना ही समझना कि तुम दृढ़ता से स्थापित नहीं हो। जब कोई गाली दे और तुम क्रोध से भर जाओ तब यह मत समझना कि दूसरे ने तुम्हें कोई नुकसान पहुंचाया; इतना ही जानना कि तुम्हारा चरित्र दृढ़ता से स्थापित नहीं है। और इस आदमी को धन्यवाद देना कि तेरी बड़ी कृपा है कि तूने बता दिया कि कितना गहरा हमारा चरित्र है। हमें पता ही न चलता अकेले रहते तो। अकेले रहते तो हमें कैसे पता चलता कि हम दृढ़ता से स्थापित नहीं हैं।

अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग घर-द्वार छोड़ कर हिमालय चले जाते हैं वे वहां समझने लगते हैं कि उनको चरित्र उपलब्ध हो गया। क्योंकि वहां कोई हिलाने वाला नहीं है। और जब वापस लौटते हैं, तत्क्षण हिल जाता है। फिर डरने लगते हैं तुम्हारे पास आने से, क्योंकि वे समझते हैं कि तुम उनके पतन का कारण हो। तुम उनके पतन का कारण नहीं, तुम केवल परीक्षा हो। तुम्हारे पास आकर कसौटी मिल जाती है, पहचान हो जाती है कि कितना गहरा है।

एक संन्यासी तीस वर्षों तक हिमालय में रहा। आश्वस्त हो गया कि सब ठीक है। न क्रोध, न लोभ, न मोह, न काम, शांत हो गया हूं। अब क्या डर रहा? तो कुंभ का मेला था, नीचे उतरा कि अब तो कोई भय नहीं संसार से। मेले में आया। किसी आदमी का पैर पर पैर पड़ गया। भीड़ थी, धक्कम-धुक्का था, पैर पर पैर पड़ गया। एक क्षण में तीस साल हिमालय के खो गए। एक क्षण न लगा, तीस साल ऐसे पुछ गए जैसे पानी पर खिंची लकीर मिट जाती है। उचक कर गर्दन पकड़ ली उस आदमी की और कहा कि तुमने समझा क्या है? अंधा है? देख कर नहीं चलता! तब होश आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं। पर वह संन्यासी ईमानदार आदमी रहा होगा। वह वापस हिमालय न गया। उसने कहा, इस हिमालय का क्या मूल्य है? भीड़ में ही रहूंगा अब, अब यहीं साधना है; क्योंकि हिमालय में तीस साल साधा और भ्रांति पैदा हो गई कि सध गया। और इधर भीड़ ने एक क्षण में मिटा दिया।

भीड़ का कोई कसूर नहीं है। कोई दृढ़ता के आधार न थे। समाज में ही साधना, भीड़ में ही साधना, संसार में ही रहते हुए साधना। क्योंकि जहां निरंतर कसौटी हो रही है वहीं तुम जांच पाओगे कि दृढ़ता गहरी हो रही है या नहीं, जड़ें उपलब्ध हो रही हैं या नहीं। मत छोड़ना पत्नी को, मत छोड़ना बच्चों को, मत छोड़ना दुकान-बाजार को। जहां हो वहीं रहना और होश को सम्हालना। तब तुम बड़े चकित होओगे कि ये सारे मित्र, प्रियजन, परिजन, दुश्मन, भीड़, बाजार, कोई भी तुम्हारे विरोधी नहीं हैं; सब तुम्हें सहारा दे रहे हैं। क्योंकि सभी तुम्हारी परीक्षा हैं; और सभी तुम्हारी कसौटी हैं। तब मरते वक्त तुम मित्रों को ही धन्यवाद न दोगे, तुम अपने शत्रुओं को भी धन्यवाद दोगे। क्योंकि उनके बिना भी तुम पा न सकते थे।

"जिसकी पकड़ पक्की है, वह आसानी से छोड़ता नहीं है।"

तुम्हारी पकड़ तो छूट-छूट जाती है। वह है ही नहीं।

"पीढ़ी दर पीढ़ी उसके पूर्वजों के त्याग अबाध रूप से जारी रहेंगे।"

दो तरह की पूर्वजों की यात्रा है। एकः तुम्हारे पिता, तुम्हारे पिता के पिता; तुम्हारी शरीर की परंपरा। और एकः तुम्हारा यह जन्म, और तुम्हारा पिछला जन्म, और तुम्हारा पिछला जन्म; तुम्हारी आत्मा की परंपरा। तुम दो तरह की वसीयत लेकर पैदा हुए हो। दोनों वसीयत सनातन हैं। क्योंकि तुम सदा से हो। तुम्हारा शरीर सदा से है। शरीर भी अपनी संपदा को संगृहीत करके चलता है, और आत्मा भी अपनी संपदा को संगृहीत करके चलती है। जो तुमने किया है अतीत जन्मों में, उसकी हवा तुम्हारे साथ आज भी है। क्योंकि तुम्हारा सारा अतीत सिमट आया है इस वर्तमान के क्षण में। ऐसा मत सोचना कि अतीत नष्ट हो गया; कुछ भी नष्ट नहीं होता। इस वर्तमान में तुम्हारा सारा अतीत समाया हुआ है।

इसलिए तो हिंदू कर्म की बहुत-बहुत धारणा और विचारणा करते हैं। क्योंकि कर्म का अर्थ है, तुमने जो किया है कभी भी वह सब समाया हुआ है आज। तुम आज ही पैदा नहीं हुए हो, तुम्हारा सारा अतीत आज के भीतर छिपा है। न केवल तुम्हारा अकेला। इस संबंध में लाओत्से हिंदुओं से बड़ा भिन्न है, और ज्यादा सही है। हिंदू तो सिर्फ तुम्हारे अतीत की बात करते हैं। लाओत्से कहता है कि तुम्हारा अतीत तो समाया हुआ ही है, तुम्हारे पूर्वजों का अतीत भी समाया हुआ है। क्योंकि तुम जिनसे पैदा हुए हो, जिनका कण तुम्हारे जीवन का आधार बना है, जिनकी वीर्य-ऊर्जा ने तुम्हारे शरीर और मन को ढांचा दिया है, वे भी तुममें छिपे हैं, वे भी तुम्हारे भीतर छिपे हैं। और तुम्हारे चरित्र में उन सबका प्रकटन होता है। अगर तुम्हारी परंपरा पाखंड की ही रही हो तो वह पाखंड प्रकट होगा।

इसलिए तुम अकेले नहीं हो। और तुम सिर्फ अपने लिए ही मत सोचना। सारा अस्तित्व तुम्हारे पीछे गुंथा है। ताने-बाने हैं जीवन के; कोई व्यक्ति अकेला नहीं है। और तुम जो भी कर रहे हो वह सिर्फ तुम्हारे लिए ही नहीं है। तुम्हारा कृत्य तुम्हारे पूरे अतीत की कथा भी कहेगा।

हिंदू कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऋण लेकर चल रहा है--पिता का ऋण, माता का ऋण, गुरु का ऋण। क्या है वह ऋण? वह ऋण यह है कि अगर तुम खिल गए वास्तविकता से तो तुम्हारे माता और पिता और तुम्हारी अनंत काल की परंपरा तुममें खिल कर प्रफुल्लित होगी। तुम जब तक न खिलोगे, वे भी पूरी तरह न खिल पाएंगे। क्योंकि वे तुममें समाविष्ट हैं। उनका खिलना भी अधूरा-अधूरा रहेगा।

इससे तुम कुछ बातें समझ पाओ; क्योंकि प्रत्येक बात बहुत सी बातों से जुड़ी है।

अधिकतम बुद्ध पुरुष अविवाहित रहे हैं। और रहने का एक कारण यह है कि अगर तुम्हें परिपूर्ण बुद्धत्व पाना हो तो तुम्हारे बच्चे भी जब तक बुद्धत्व को प्राप्त न हो जाएं, तुम्हारीशृंखला अधूरी रहेगी। क्योंकि जो मुझसे पैदा हो रहा है, जब तक वह भी न पा लेगा तब तक मैं अधूरा रहूंगा। क्योंकि वह मेरी ही यात्रा है। अधिक बुद्ध पुरुष अविवाहित रहे हैं। रहने के कारण बहुत हैं। उनमें एक बुनियादी कारण यह है--प्रसंगवशात तुमसे कहता हूं। तुम जब तक मुक्त न हो जाओगे, तुम्हारे पिता और पिता के पिता और पिता के पिता बंधे हैं। तुम्हारी मुक्ति उनकी मुक्ति भी बनेगी। व्यक्ति अकेला नहीं है, बंटा हुआ नहीं है, कटा हुआ नहीं है। हम सब एक बड़े ताने-बाने के धागे हैं।

बुद्ध ने तो इस बात को उसकी आखिरी, चरम तार्किक निष्पत्ति तक पहुंचा दिया है। कथा है कि बुद्ध जब स्वर्ग के, मोक्ष के द्वार पर पहुंचे, द्वार खुला स्वागत के लिए तैयार, लेकिन बुद्ध पीठ करके खड़े हो गए। द्वारपाल ने कहा, आप भीतर आएं। बुद्ध ने कहा, यह संभव नहीं है। जब तक अंतिम व्यक्ति मुक्त न हो जाए तब तक मैं द्वार पर ही रुकूंगा।

यह तो कथा है, लेकिन बहुत गहरे अर्थों में सही है। क्योंकि अगर अस्तित्व इकट्ठा है तो एक व्यक्ति कैसे बुद्धत्व को प्राप्त होगा? अगर हम सब जुड़े हैं और द्वीप की तरह अलग-अलग नहीं हैं, महाद्वीप की तरह हैं, तो कैसे एक व्यक्ति मुक्त होगा? एक की मुक्ति सबकी मुक्ति होगी। एक अलग होता तो अलग मुक्त हो सकता था।

लाओत्से कहता है कि तुम जिस दिन खिलोगे और तुम जिस दिन आधारित हो जाओगे, केंद्र को पा लोगे, तुम्हारी जड़ें पहुंच जाएंगी स्वभाव में, उस दिन तुम्हीं नहीं, तुम्हारी पीढ़ी दर पीढ़ी से चल रही अबाध त्यागों की परंपरा अपनी पूर्णाहुति पर आएगी। और तुम्हारे आधार पर आने वाला भविष्य एक नई सीढ़ी को पार कर लेगा।

"व्यक्ति में उसके पालन से चरित्र प्रामाणिक होगा।"

ताने-बाने की पूरी कथा लाओत्से कहता है।

"कल्टीवेटेड इन दि इंडिविजुअल, कैरेक्टर विल बिकम जिन्यून।"

जब कोई एक व्यक्ति अपने भीतर गहरा उतरता है और अपनी जड़ों से संबंध जोड़ लेता है और अपने स्वभाव के साथ एकरस हो जाता है, जब किसी व्यक्ति का चरित्र उसके अंतस से जगता है, तो चरित्र प्रामाणिक होता है, आथेंटिक होता है। नहीं तो पाखंड होता है। अगर एक व्यक्ति भी प्रामाणिक चरित्र को उपलब्ध हो जाता है, तो उसके आधार पर उसका परिवार प्रामाणिक क्षेत्र की तरफ बढ़ सकता है। क्योंकि हम अलग-अलग नहीं हैं। इससे विपरीत भी सही है। अगर परिवार चरित्र को उपलब्ध हुआ हो तो उसके भीतर पैदा हुआ व्यक्ति दुश्चरित्रता की तरफ जाने में बड़ी कठिनाइयां पाएगा, और चरित्र की तरफ जाने में बड़ी सुगमता पाएगा।

इस सत्य को अब पश्चिम में मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है, एक दूसरी दिशा से। पहले जब कोई आदमी पागल, विक्षिप्त, मानसिक रोग-ग्रस्त हो जाता था तो हम उसका इलाज करते थे। फिर धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिकों को समझ में आना शुरू हुआ कि इस व्यक्ति के इलाज से कुछ भी न होगा जब तक इसका परिवार न बदले। क्योंकि यह अनुभव में आया कि व्यक्ति को अगर अस्पताल में रखो, वह ठीक हो जाता है। घर भेज दो, फिर महीने, दो महीने में वापस बीमारी शुरू हो जाती है। तो निरंतर अध्ययन करने से पता चला कि व्यक्ति तो एक हिस्सा है परिवार का, और जब तक पूरे परिवार में कोई गहरा रोग न हो मानसिक तब तक यह व्यक्ति रुग्ण नहीं हो सकता। लेकिन पूरा परिवार सामान्य मालूम पड़ता है; कोई पागल नहीं है दूसरा आदमी।

तब इस बात की खोज की गई कि यह कारण क्या है? तो पता चला कि जैसे परिवार में अगर दस आदमी हैं तो जो सबसे ज्यादा कमजोर है वह सबसे पहले पूरे परिवार के पागलपन को प्रकट करने का आधार बन जाएगा--जो सबसे ज्यादा कमजोर है। जैसे यह मकान गिरे तो इसमें सबसे पहले वह खंभा गिरेगा जो सबसे ज्यादा कमजोर है। परिवार इकट्ठा है; उसमें एक व्यक्ति गिरेगा जो सबसे ज्यादा कमजोर है।

इसलिए अक्सर छोटे बच्चे पागल हो जाएंगे, या पैदाइश से ही विक्षिप्त होंगे। या पैदाइश से ही उनके मन में कुछ गड़बड़ होगी, व्यक्तित्व में कुछ गड़बड़ होगी। क्योंकि वे कमजोर हैं। या स्त्रियों पर निकलेगा; स्त्रियां पागल होंगी। क्योंकि वे कमजोर हैं। पुरुषों पर आते-आते देर लगती है। पहले बच्चे पागल होते हैं। अगर बच्चे न हों तो स्त्रियां पागल होती हैं। तब पुरुषों तक बात आती है। क्योंकि जो जितना कमजोर है, उतना ही संभव है कि रोग उससे प्रकट हो।

तो अगर घर में एक आदमी पागल होता है, पागल तो पूरा घर है, वह एक आदमी तो सिर्फ शिकार है कमजोर होने के कारण। वह सबसे कमजोर कड़ी है जो टूट जाती है। और हम सब उसको जिम्मेवार ठहराते हैं। और तुम्हें पता नहीं कि वह सिर्फ तुम्हारा निकास है। अगर उस व्यक्ति को हटा लिया जाए तुम्हारे घर से सदा के लिए तो दूसरा व्यक्ति पागल होगा। अब जो कमजोर होगा वह पागल होगा।

ये तथ्य बड़े वैज्ञानिक अध्ययन से जाहिर हुए तो पश्चिम में एक नई मनोचिकित्सा शुरू हुई। वह है परिवार की चिकित्सा। अकेले एक आदमी की चिकित्सा से कुछ न होगा। लेकिन यह बड़ी मुश्किल बात है। जब और थोड़ी खोज-बीन की तो पता चला कि परिवार तो पूरे गांव का एक हिस्सा है आर्गेनिक। जैसे व्यक्ति एक परिवार का हिस्सा है ऐसा परिवार गांव का हिस्सा है। तब तो झंझट बढ़ गई। वह पूरे गांव में जो पागलपन है, सबसे कमजोर परिवार से प्रकट हो रहा है। तो ग्रुप थेरेपी पैदा हुईः समूह की चिकित्सा करो।

लेकिन वह सफलता की तरफ जा नहीं सकते, क्योंकि गांव पूरे राष्ट्र से जुड़ा है, राष्ट्र पूरे संसार से जुड़ा है, संसार पूरे विश्व से जुड़ा है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जब तक पूरी विश्वसत्ता शुद्ध न हो, स्वस्थ न हो, तब तक हम आशा नहीं बांध सकते। एक-एक व्यक्ति को ठीक करके भी कुछ होगा न, कहीं और से बीमारी निकलने

लगेगी। समग्र स्वस्थ होना चाहिए। इस समग्र की स्वस्थता की खोज ही धर्म है। एक-एक की चिकित्सा से हल नहीं होने वाला। अगर हम अलग-अलग होते तो हल हो जाता।

इसलिए तुम जब रास्ते पर किसी को पागल देखो तो यह मत सोचना कि तुम सौभाग्यशाली हो, यह दुर्भाग्यशाली है। तुम उसे धन्यवाद देना, क्योंकि तुम्हारा पागलपन वह प्रकट कर रहा है। हर गांव में एकाध-दो पागलों की जरूरत है--छोटे से छोटे गांव में भी। हर गांव का पागल होता है। और वह पागल पूरे गांव के पागलपन का निकास-द्वार है, जैसे घर में एक नाली होती है जिससे कचरा-कूड़ा सब निकल जाता है। ठीक ऐसे ही वह पागल तुम्हें स्वस्थ रख रहा है। तुम उसको धन्यवाद देना। और तुम उसके अनुगृहीत रहना। क्योंकि अगर वह पागल मर जाए तो दूसरे आदमी को पागल होना पड़ेगा। एक नाली टूट जाए तो दूसरी बनानी पड़ेगी। क्योंकि घर का कचरा तो बहना ही है। कचरा है।

समग्र का स्वास्थ्य!

तो लाओत्से कहता है, "चरित्र जब व्यक्ति में पालन किया जाता है--वास्तविक चरित्र जो स्वभाव से उठता है--तो चरित्र प्रामाणिक होता है। परिवार में उसके पालन से चरित्र अतिशय होता है, एबनडेंट।"

क्योंकि एक व्यक्ति अगर चरित्र का पालन भी करे और घर भर के लोग पाखंडी हों, तो एक तो उसे चरित्र के पालन में बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि सारा घर उसके विरोध में होगा। ऊपर-ऊपर भला प्रशंसा करे, लेकिन भीतर विरोध में होगा। इसलिए तुम जान कर हैरान होओगे कि ज्ञानियों के घरों में ज्ञानियों का बड़ा विरोध रहा है।

जीसस ने कहा है कि पैगंबर को उसके गांव में कोई पूजा नहीं मिलती। ऐसा हुआ कि जीसस ने बड़े चमत्कार किए। जहां वे गए चमत्कार हुए। व्यक्तित्व उनका वैसा था। लेकिन जब वे अपने गांव आए तो कुछ भी न कर सके। तो बाइबिल में इस बात का उल्लेख है कि उनके शिष्य बड़े चकित हुए कि आप दूर-दूर इतना चमत्कार किए हैं, हजारों लोग प्रभावित हुए हैं, गांव में कोई भी प्रभावित नहीं हो रहा आपसे? तो उन्होंने कहा, गांव में पैगंबर की पूजा नहीं होती। और गांव में लोग समझते हैं कि यह जीसस! वह जोसेफ बढ़ई का लड़का है, इसका दिमाग कुछ खराब है, अनाप-शनाप बातें करता है। किसी को गांव में आस्था नहीं है। आस्था नहीं तो चमत्कार असंभव है। क्योंकि चमत्कार पैगंबर से नहीं होता, आस्था से होता है। फिर जीसस दुबारा उस गांव नहीं गए, क्योंकि उस गांव का परिणाम उनके शिष्यों पर भी बुरा पड़ता था, यह देख कर कि अपने ही गांव में... । क्योंकि शिष्य बड़ी अपेक्षा रखते थे।

पैगंबर अपने ही गांव में बड़ी मुश्किल में पड़ता है। और अपने ही परिवार में तो और भी मुश्किल में पड़ जाता है। पूरा परिवार कितनी ही बातें करे, लेकिन भीतर एक विरोध होता है। क्योंकि यह परिवार भरोसा ही नहीं कर सकता कि हमारे बीच और ऐसा आदमी पैदा हो जाए! और हम इतने छोटे रह जाएं और यह आदमी इतना आगे चला जाए! वे अनजाने मार्गों से उसे नीचे खींच कर अपनी सतह पर लाना चाहते हैं।

इसलिए जब कोई एक व्यक्ति चरित्र की तरफ जाता है और परिवार नहीं जाता तो वह धारा के विपरीत उसे बहना पड़ता है। उसमें उसकी शक्ति बड़ी व्यय होती है। और चरित्र उसका हो भी जाए तो भी अतिशय न होगा। वह एक ऐसा वृक्ष होगा जो बामुश्किल जिंदा है, किसी तरह पानी प्राप्त कर रहा है। फूल खिलेंगे भी तो अधखिले होंगे, क्योंकि सब तरफ विरोध है। हवाओं में विरोध है, सूरज की किरणों में विरोध है, जमीन में विरोध है।

लाओत्से कहता है, "परिवार में उसका पालन हो तो चरित्र अतिशय होगा।"

तब प्रगाढ़ता से होगा; बड़ी समृद्धि होगी। और तब उस धारा में कोई भी बह सकेगा।

"गांव में उसके पालन से चरित्र बहुगुणित होगा।"

और अगर पूरा गांव पाखंडी न हो और लोग स्वभाव में थिर हों तो हजार-हजार गुना हो जाएगा। जरा सा करो और बहुत हो जाएगा। एक कदम चलो और हजार कदम हो जाएंगे। शुभ भी भूमि चाहता है, सत्य भी भूमि चाहता है।

"राज्य में उसके पालन से चरित्र महान समृद्धि को उपलब्ध होगा। संसार में उसके पालन से चरित्र सार्वभौम होगा।"

इसीलिए तो यह होता है कि कभी-कभी एक प्रगाढ़ धारा उठती है और एकशृंखलाबद्ध ज्ञानियों का जन्म होता है; जैसा बुद्ध के समय में हुआ। क्योंकि एक ज्ञानी दूसरे ज्ञानी के लिए सहारा बन जाता है। दूसरा ज्ञानी तीसरे के लिए सहारा बन जाता है। हवा भर जाती है एक नई उत्तेजना और गरिमा से, और उस गरिमा में लोग सहजता से बह जाते हैं। बुद्ध हुए, उसी वक्त जरथुस्त्र हुआ, उसी वक्त हेराक्लाइटस हुआ, उसी वक्त लाओत्से हुआ। उसी वक्त महावीर हुए, उसी वक्त च्वांगत्से हुआ। सारे जगत में एक प्रगाढ़ लहर उठी और उस लहर में हजारों लोग पार हो गए। ये लोग और किसी समय में शायद पार न हो पाते।

इसलिए जब हिंदू कहते हैं कि पंचम काल में या कलियुग में बुद्धत्व को उपलब्ध होना कठिन है, तो उसका कारण है। कठिन इसीलिए है कि परिवार झूठा, गांव झूठा, राज्य झूठा, समाज झूठा, सारी दुनिया ही झूठी है। इस पाखंड के बीच जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो तो उसे बड़ी धारा के विपरीत बहना पड़ेगा। उसकी सारी शक्ति तो धारा के विपरीत बहने में लग जाएगी। इसलिए कठिन है। और समय में कोई कठिनाई नहीं है।

लेकिन ठीक फिर वह घड़ी आ रही है। जैसा मैं बार-बार तुमसे कहा हूं कि हर पच्चीस सौ वर्ष में मनुष्य-जाति का इतिहास एक वर्तुल पूरा करता है। बुद्ध के पच्चीस सौ वर्ष पहले कृष्ण, पतंजलि। बुद्ध के समय में बड़े ज्ञानियों कीशृंखला। फिर पच्चीस सौ वर्ष पूरे होने के करीब आ गए हैं। इन आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में दुनिया में बड़ा प्रगाढ़ वेग उठेगा और तुम उस वेग को चूक मत जाना। क्योंकि वह चूक जाने पर फिर बहुत कठिनाई है। फिर शायद तुम पच्चीस सौ साल प्रतीक्षा करोगे, तब दुबारा उस वेग की घड़ी आएगी। ऐसे ही जैसे कि जब हवा बह रही हो पूरब की दिशा में, तुम नाव को खोल दो तो बिना पतवार उठाए नाव पूरब की तरफ बहने लगती है। और जब हवा पश्चिम की तरफ बह रही हो तब तुम्हें पूरब जाना हो तो तुम्हें बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। पहुंच भी जाओ तो बिल्कुल थके हुए पहुंचोगे।

फिर एक घड़ी आ रही है। उत्तुंग लहर उठ रही है सारी दुनिया में, बड़ी नई चहल-पहल है अंतःकरण में; लोग सत्य के संबंध में, परमात्मा के संबंध में पुनर्विचार कर रहे हैं। जैसे रात करीब है टूटने के और सुबह होने के पास आ रही है। इस क्षण को तुम मत खो देना। इस क्षण का अगर तुम ठीक उपयोग कर लोगे तो तुम्हें सिर्फ बह जाना है, लहर ले जाएगी। यह क्षण खो गया तो फिर तुम्हें तैरना होगा। फिर लहर न ले जाएगी।

इसलिए जब भी यह क्षण आता है तब ऐसे ज्ञानी पैदा होते हैं जो कहते हैंः लेट गो, छोड़ दो। जब यह लहर नहीं होती, बीच के पच्चीस सौ वर्षों में ऐसे ज्ञानी आते हैं जो कहते हैंः बड़ा श्रम करना पड़ेगा। अगर तुम बीच के पच्चीस सौ वर्षों में पड़ जाओ तो पतंजलि रास्ता है; अगर तुम पच्चीस सौ वर्ष के किनारे पड़ जाओ तो लाओत्से रास्ता है। इसलिए मैं तुमसे निरंतर कह रहा हूं कि प्रयास का बड़ा सवाल नहीं है, समर्पण की बात है। संकल्प की कोई जरूरत नहीं है। तुम छोड़ दो। अभी तैयार हो रही है लहर, और जल्दी ही यह किनारा छोड़ देगी लहर। तुम अगर छोड़ने को तैयार हो गए तो बह जाओगे। सुगम है अभी।

इसलिए दो धाराएं हैं धर्मों की। एक धारा है जो मध्य के काल में पैदा होती है, पच्चीस सौ वर्ष के बीच में। वह धारा सदा जोर देती हैः श्रम, संकल्प, योग, हठ। दूसरी धारा है धर्म की जो पच्चीस सौ साल पूरे होने पर पैदा होती हैः झेन, लाओत्से। छोड़ दो; तुम्हें कुछ करना नहीं है। तुम्हें कोई श्रम नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ बह जाना है। ऐसी घड़ियों में सारा अस्तित्व तुम्हें साथ देता है। एक वर्तुल पूरा होने के करीब होता है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप इतने लोगों को संन्यासी बना रहे हैं! संन्यासी बनना तो बड़ा कठिन है।

वे ठीक कहते हैं। ऐसी घड़ियां होती हैं जब संन्यासी बनना अति कठिन है। एक ऐसी घड़ी करीब आ रही है जब संन्यासी बनना अति सरल है और संसारी बनना अति कठिन है। बस तुम राजी भर होओ कि घटना घट सकती है। यह ऐसे है जैसे सुबह तुम आंख खोलो, और सब तरफ रोशनी है, सब दिखाई पड़ता है। और आधी रात में आंख खोलो, आंख भी खोलो तो क्या होता है, अंधेरा है। रात के क्षण होते हैं, और दिन के क्षण होते हैं। पच्चीस सौ साल रात चलती है। बीच में थोड़े से समय के लिए अस्तित्व शिथिल होता है, चीजें विश्राम को उपलब्ध होती हैं। उस क्षण का जो उपयोग जान लेता है वह द्वार से प्रवेश कर गया। अन्यथा फिर दीवार में सेंध मारनी पड़ती है। उसमें बड़ा श्रम है।

"इसलिएः व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो।"

लाओत्से कहता है कि धारणाओं से नहीं, पहले से पूर्व-निर्धारित विचारों से नहीं, व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो।

तुम इससे ठीक उलटा करते हो। किसी ने कहा कि यह आदमी मुसलमान है और तुम हिंदू हो, तुमने बस मुसलमान सुनते ही से मान लिया कि आदमी बुरा है। मुसलमान और अच्छा हो सकता है? तुम व्यक्ति का चरित्र नहीं परखते। तुम्हारी पूर्व-धारणा है, उस पूर्व-धारणा से तुम तय करके चलते हो।

यह गलत है। एक-एक व्यक्ति को सीधा-सीधा परखो। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई में मत बांटो। व्यक्ति को सीधा देखो। क्योंकि जब तुम व्यक्ति को सीधा देखोगे तब तुम अपने को भी सीधा देखने में समर्थ हो पाओगे। और पूर्व-निर्धारित धारणाओं में किसी को मत ढालो। क्योंकि कल जो आदमी बेईमान था, आज ईमानदार हो गया होगा। तुम कल की धारणा मत खींचो। कल जो तुम्हें गाली दे गया था वह आज फिर आ रहा है। तुम देख कर लकड़ी लेकर खड़े मत हो जाओ, क्योंकि हो सकता है, वह क्षमा मांगने आ रहा हो।

तुम कल को जाने दो; तुम आज ही देखो सीधा। सब बदलता है, तो आदमी की चेतना क्यों न बदलेगी? पापी पुण्यात्मा हो जाते हैं। असाधु साधु हो जाते हैं। जो दूर थे वे पास आ जाते हैं, जो पास थे वे दूर हो जाते हैं। यह बदलाहट रोज होती है। इसलिए तुम पूर्व-धारणाओं को मत बनाओ। तुम सदा तथ्य को सीधा देखो। आज जो हो उसे देखो। कल को बीच में मत लाओ।

"व्यक्ति के चरित्र के अनुसार व्यक्ति को परखो। परिवार के चरित्र के अनुसार परिवार को परखो। गांव के चरित्र के अनुसार गांव को परखो।"

क्योंकि होता क्या है, परिवार की भी धारणा होती है। ख्याल होता है कि फलां परिवार कुलीन है; तो उसमें जो पैदा होगा वह कुलीन होगा। फलां परिवार बुरा है। यहूदी जीसस को स्वीकार न कर पाए, क्योंकि जीसस का जो गांव था, बेथलहम, ऐसी धारणा थी वहां कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ है? हुआ भी नहीं था पहले। तो लोग जीसस से सवाल पूछते थे कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ है जो तुम हो गए?

बेथलहम की वैसी ही दशा थी जैसी हिंदुस्तान में भी कुछ गांव हैं; जैसे पंजाब में होशियारपुर है। होशियारपुर में लोगों की धारणा है कि सिर्फ गधे रहते हैं। और इसीलिए उन्होंने नाम होशियारपुर रख लिया है

छिपाने के लिए। अगर कोई आदमी होशियारपुर रहता है और तुम उससे पूछो, कहां रहते हो? तो वह झगड़े पर उतारू हो जाता है। वह कहता है, क्या मतलब है आपका पूछने से? क्या चाहते हैं? आपको क्या जरूरत? कहीं रहते हों। वह सीधा नहीं बताता कि होशियारपुर रहता है। क्योंकि जैसे ही उसने कहा कि होशियारपुर रहता है कि आपने धारणा बना ली कि... ।

ऐसी कथा है कि अकबर के जमाने में होशियारपुर के लोगों ने प्रार्थना की अकबर को कि हम नाहक बदनाम हैं और हम बड़े लज्जित होते हैं कि हम जहां भी... बता नहीं सकते कि कहां रहते हैं। क्योंकि जिसको हमने बताया होशियारपुर रहते हैं कि बस वह मुस्कुराने लगता है। तो आप जांच-पड़ताल करवाएं और यह भ्रांति तुड़वाएं।

अकबर ने कहा कि बात ठीक है, सुना तो मैंने भी है। वह भी सुन कर होशियारपुर मुस्कुराने लगा। उसने एक कमीशन, एक आयोग बिठाया। सात आदमी भेजे, विचारशील आदमी, कि तुम जाकर पता लगाओ, कुछ दिन रहो वहां, जांच-पड़ताल करो कि यह बात कहां तक सच है।

होशियारपुर के लोगों ने बड़ी तैयारी की, क्योंकि तैयारी करनी जरूरी थी। यह कमीशन का आखिरी फैसला है। एक दफा अकबर कह दे तो मामला ठीक हो जाए। तो उन्होंने रत्ती भर भूल-चूक न की। ऐसा स्वागत किया कि वे लोग भी दंग हो गए। बहुत ज्यादा जब कोई सावधानी से करे, जब कोई अतिशय सावधानी से करे, तो अतिशय सावधानी भी चिंता बन जाती है। सब ठीक गया, सब ठीक गुजर गया। तीसरे दिन आयोग बड़ा प्रसन्न और विचार करके कि नहीं, यह बात गलत है, लोग नाहक इनको बदनाम करते हैं, वापस लौटा। गांव के बाहर दूर तक होशियारपुर के लोग पहुंचाने आए।

जब कमीशन विदा हो गया बड़ा तृप्त, सब लोग गांव वापस लौटे। और उन्होंने कहा, भाई, कोई भूल-चूक तो नहीं हुई? अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, अभी कमीशन पास ही है; अगर कोई भूल-चूक हुई हो तो माफी मांग लें। तब रसोइए ने बताया कि मैं जीरा डालना भूल गया सब्जी में। कहीं ऐसा न हो कि वे समझें कि ये गधे जीरा ही खाना नहीं जानते। क्योंकि लोग कहते हैं न, बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद! तो उन्होंने कहा, यह तो भारी भूल हो गई, जीरा भूल गया। अब क्या करना? गांव भर से, जितना जीरा था, गाड़ियों में भर कर, घोड़ों पर लाद कर भागे एकदम। जाकर बीच में बड़ी चीख-पुकार मचाई कि रुको, रुको, रुको! आप यह मत समझना कि हमें जीरे का स्वाद नहीं है। कतारें गाड़ियों की बंधी हैं, घोड़ों पर, गधों पर जीरा लदा है, कि आप देख लो।

वह कमीशन बिल्कुल तय कर लिया था कि ठीक है। उसने कहा, नहीं, गड़बड़ ही हैं। ये हैं ही गधे, इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। अब ये जीरा लाने की इतनी क्या जरूरत थी?

अतिशय कभी भूल हो जाती है। ऐसा बेथलहम के संबंध में ख्याल था लोगों का कि बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी हुआ? तो जीसस से जगह-जगह लोग पूछते, अच्छा आप बेथलहम में पैदा हुए। बेथलहम में कभी कोई ज्ञानी पैदा हुआ जो आप हो गए?

ज्ञानी का न तो गांव से कुछ लेना है, न परिवार से कुछ लेना है।

जैनों की कथा है, और कथा का कारण है। क्योंकि जैनों के तेईस तीर्थंकर क्षत्रियों के घर में पैदा हुए तो जैनियों की धारणा है कि तीर्थंकर क्षत्रिय के घर में ही पैदा होता है। तो बड़ी मीठी कथा है, नासमझी की भी है, मीठी भी है, और आदमी के मन को समझने के लिए उपयोगी है। महावीर एक ब्राह्मणी की कोख में आए। तो कहते हैं, बड़ी मुश्किल, बड़ा तहलका मच गया देवताओं में कि यह तो सब गड़बड़ हो जाएगा। कहीं कोई तीर्थंकर ब्राह्मण के घर में कभी पैदा हुआ है? और जैनी तो ब्राह्मण के विरोधी हैं। और ब्राह्मण के घर में तीर्थंकर पैदा हो

जाए तो सब गड़बड़ हो जाएगा। क्षत्रिय के घर में पैदा होता है तीर्थंकर। सदा से ऐसा हुआ है। तो कहानी है कि देवता बड़े बेचैन हुए। फिर कोई उपाय न देख कर उन्होंने एक बड़ी सर्जरी की। गर्भ को ब्राह्मणी की कोख से निकाला और राजा की पत्नी की कोख में जाकर रखा, और उसकी कोख में जो लड़की थी उसको निकाला और उसको जाकर ब्राह्मणी के गर्भ में रखा। फिर तृप्ति, शांति हुई। क्योंकि फिर महावीर क्षत्रिय के घर पैदा हो सके।

अब यह कहानी जिन्होंने गढ़ी है वह ब्राह्मणों के अपमान के लिए गढ़ी है--कि कहीं ब्राह्मणों के घर में कोई तीर्थंकर हुआ? ब्राह्मण यानी भिखमंगे। इनके घर में कभी कोई तीर्थंकर हुआ है? कोई ज्ञानी कभी हुआ है इनके घर में? पंडित-पुरोहित, भीख मांगने वाले लोग, इनका क्या बल है कि तीर्थंकर को पैदा करें! भूल-चूक हो गई तो उसे ठीक कर लेना जरूरी हो गया।

न तो कुल से कुछ लेना-देना है, न गांव से कुछ लेना-देना है। इस तरह मत सोचना, सीधा देखना। व्यक्ति को सीधा देखना, परिवार को सीधा देखना, गांव को सीधा देखना। पूर्व-धारणाएं मत रखना।

"राज्य के चरित्र के अनुसार राज्य को परखो।"

मगर कोई परखता नहीं। हम परखते अपनी धारणाओं के अनुसार हैं। तुमने कभी ख्याल किया? हिंदुस्तान और चीन की दोस्ती थी तो हिंदी-चीनी भाई-भाई चाऊ एन लाई और नेहरू दोनों दोहराते थे। और सारा बड़ा सब ठीक था। फिर दुश्मनी हो गई। फिर चीन राक्षसों का देश हो गया। फिर हिंदुस्तानी नेता चिल्लाने लगे कि ये तो राक्षस हैं, ये तो दानव हैं, ये तो बड़े भ्रष्ट हैं। एक घड़ी पहले भाई-भाई थे। और चीनी नेता वहां चिल्लाने लगे कि भारतीयों को तो नष्ट करना ही पड़ेगा, ये ही तो पूंजीवाद की जड़ हैं एशिया में। इनको मिटाना पड़ेगा, ये महारोग हैं। एक क्षण में सब बदल जाता है। और सारा मुल्क दोहराने लगता है। और कभी तुम सोचते भी नहीं कि पूरे मुल्क को दानव कहना नासमझी है। दोस्ती-झगड़ा एक बात है; बनती बिगड़ती है। लेकिन यह अतिशय पैदा हो जाता है तत्क्षण।

जो आदमी कल तक मित्र था, उससे अच्छा आदमी नहीं था, आज वह शत्रु हो गया, उससे बुरा आदमी नहीं है। एक दिन में यह हो कैसे गया? जो स्त्री कल तक बड़ी सुंदर मालूम पड़ती थी, आज बनाव बिगड़ गया, बस वह कुरूप हो गई। अब उससे ज्यादा डायन इस दुनिया में कोई है ही नहीं। पूरे समूह, पूरे राष्ट्र इस तरह जीते हैं। और पूरे राष्ट्र को तुम छापा लगा देते हो कि यह बुरा या अच्छा।

सीधे-सीधे देखना। यह धारणाओं का जाल उचित नहीं है। इससे तुम्हारी आंखें धुएं से भर जाएंगी, और तुम कभी सीधे देखने में समर्थ न हो पाओगे। दुश्मन भी अच्छा हो सकता है।

जरूरी नहीं है कि रावण राक्षस रहा हो। वह राम के मानने वालों की धारणा है। और अब अगर उन्होंने राम के पुतले जला दिए दक्षिण में तो बड़ी बेचैनी फैलती है। और तुम पुतले जलाते रहे रावण के और अभी भी जलाओगे और जरा भी बेचैनी नहीं फैलती। रावण राक्षस रहा हो, ऐसा जरूरी नहीं है। राक्षस कोई भी नहीं है। दुश्मन हमेशा राक्षस मालूम होता है; मित्र अच्छे मालूम पड़ते हैं, शत्रु राक्षस मालूम होता है। तो तुम फिर विकराल मूर्तियां रावण की बनाते हो। जरूरी नहीं है कि विकराल रहा हो। संभावना तो बहुत है कि बहुत सुंदर आदमी रहा होगा। क्योंकि डर ऐसा है, और शक्तिशाली आदमी था, डर ऐसा था राम के भक्तों को, मित्रों को कि अगर रावण स्वयंवर में मौजूद रहा तो वह शिव का धनुष तोड़ देगा। वह शिव का भक्त भी था। और भक्ति उसकी अपरिसीम थी। कथा है कि अपनी गर्दन चढ़ा देता था। वही तो भक्ति है जब तुम अपना सिर रख दो। तो डर था कि वह शिव का भक्त है, और धनुष भी शिव का है; तोड़ दे सकता है। और बलशाली था। और सुंदर था। समृद्धशाली था। प्रतापी था। बड़ा राज्य था। स्वर्ण की उसकी लंका थी। डर था। इसलिए एक शड्यंत्र रचा गया।

और ऐन वक्त पर जब स्वयंवर रचा था तब उसको झूठी खबर दी गई कि लंका में आग लग गई है। वह खबर झूठी थी। लेकिन लंका में आग लग गई है, इसलिए वह भागा हुआ लंका गया। इस बीच स्वयंवर हो गया। राम ने धनुष तोड़ दिया। सीता ब्याह कर चली गई।

यहीं सारी उपद्रव की बात शुरू हुई। सीता का चुराना सिर्फ प्रत्युत्तर है। और रावण बुरा आदमी नहीं था। क्योंकि सीता को ले जाकर भी कोई दुराचरण नहीं किया; सीता को सुरक्षित रखा। सीता के ऊपर कोई जबरदस्ती नहीं की। राम ने जितनी जबरदस्ती सीता पर की उतनी रावण ने नहीं की है। क्योंकि कथा बड़ी अजीब है। जब रावण हार गया और सीता को राम वापस ले आए, तो वाल्मीकि में जो शब्द हैं वे बड़े दुखद हैं। क्योंकि राम ने सीता से कहा कि तू यह मत समझना कि यह युद्ध हमने तेरे लिए किया। यह युद्ध तो परंपरा के लिए, वंश की प्रतिष्ठा के लिए। ये शब्द अभद्र हैं। और फिर एक धोबी के कहने पर सीता को जंगल में फेंक दिया; गर्भिणी को जंगल में छोड़ दिया बिना चिंता किए।

फिर भी राम के भक्त को यह कुछ भी दिखाई न पड़ेगा। रावण की सब बुराई दिखाई पड़ेगी; राम की सब भलाई दिखाई पड़ेगी। अब दक्षिण में रावण के भक्त पैदा हो रहे हैं। उनको रावण की सब भलाई दिखाई पड़ती है; राम की सब बुराई दिखाई पड़ती है।

आंख साफ होनी चाहिए और सीधा देखना चाहिए। भलाई राम में भी है; और बुराई रावण में भी है। बुराई राम में भी है; भलाई रावण में भी है। असल में, इस पृथ्वी पर कोई पूर्ण नहीं हो सकता। जो पूर्ण हो जाते हैं वे तिरोहित हो जाते हैं। इस पृथ्वी पर कोई आदमी इतना कर सकता है कि निन्यानबे प्रतिशत भला हो जाए। लेकिन एक प्रतिशत बुराई बची ही रहेगी। नहीं तो इस जमीन से संबंध ही टूट जाता है। बुराई ही तो बांधती है। और इस दुनिया में कोई आदमी चाहे तो निन्यानबे प्रतिशत बुरा हो सकता है। लेकिन एक प्रतिशत भलाई बची रहेगी। न तो सौ प्रतिशत बुरा आदमी मिलता है कहीं, न सौ प्रतिशत भला आदमी मिलता है कहीं। पुण्यात्मा में छोटा सा पापी छिपा रहता है; पापी में छोटा सा पुण्यात्मा छिपा रहता है। तभी तो वह बदलाहट की संभावना है, नहीं तो बदलाहट की संभावना भी खो जाएगी। न तो कोई रावण और न कोई देव है। सब मिश्रित है।

और तुम सीधा देखना। और अपनी धारणा को बना कर मत देखना। जैसे ही तुमने धारणा बना ली वैसे ही तुम्हारी आंखें अंधी हो गईं। धारणा अंधापन है।

"संसार के चरित्र के अनुसार संसार को परखो। मैं कैसे जानता हूं कि संसार ऐसा है?"

इस परख के द्वारा कि मैं सीधे देखता हूं। मेरा कोई लगाव नहीं। मेरा कोई पक्ष-विपक्ष नहीं।

ध्यान रखना, पक्ष-विपक्ष बुद्धि के खेल हैं। निष्पक्ष जब तुम देखोगे तभी तुम्हारा हृदय देखने में समर्थ हो पाएगा। तुम पक्ष-विपक्ष में खड़े ही मत होना। तुम सीधे-सीधे देखना। तुम आंख को दर्पण बना कर देखना। तुम्हारी आंख देखने में कुछ भी न जोड़े। जो तुम्हारे सामने हो उसी को देखना। अगर तुम्हें राम में भी बुराई दिखाई पड़े तो देखना। अगर रावण में भी भलाई दिखाई पड़े तो देखना। तुम यह मत कहना कि यह रावण है, इसमें भलाई कैसे हो सकती है! यह तुम मत कहना कि ये राम हैं, इनमें बुराई कैसे हो सकती है! अगर तुमने ऐसी धारणाएं रखीं तो तुम अंधे हो। तब तुम न तो चरित्र को देख पाओगे और न चरित्र को उपलब्ध कर पाओगे। निष्पक्ष होकर देखना।

मुश्किल है निष्पक्ष आदमी खोजना, क्योंकि निष्पक्ष आदमी अगर हो तो कोई भी उसके पक्ष में न होगा। वह इतना सीधा देखेगा कि न तो वह तुम्हारे राम को राम कहेगा और न तुम्हारे रावण को रावण कहेगा। रावण के मानने वाले उस पर नाराज होंगे कि तुम रावण में कुछ बुराई देखते हो? राम के मानने वाले नाराज होंगे कि

तुम राम में कुछ बुराई देखते हो? सब अंधे उससे नाराज होंगे। आंख वाला अंधों के बीच में पड़ जाए तो सभी नाराज होंगे। और अंधे पूरी कोशिश करेंगे कि तुम्हारी आंखों में कुछ गड़बड़ है। क्योंकि हम सब जैसा देखते हैं, तुम क्यों नहीं देखते? अंधे कोशिश करेंगे कि तुम्हारी आंखों का आपरेशन कर दिया जाए। तब तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे।

एक गांव में ऐसा हुआ। एक जादूगर ने एक कुएं में मंत्र फेंक दिया और कहा कि अब जो भी इसका पानी पीएगा, पागल हो जाएगा। सारे गांव ने पानी पीया। एक ही कुआं था गांव में। एक और कुआं था, लेकिन वह राजा के महल में था। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, और वजीर बड़े प्रसन्न हुए कि कम से कम हमारा अलग कुआं है। तो वजीर और राजा तो पागल नहीं हुए, पूरा गांव पागल हो गया।

लेकिन शाम तक बड़ा तनाव फैलने लगा। क्योंकि राजा के पहरेदार, सिपाही, सैनिक सब पागल हो गए। और गांव में एक अफवाह उड़ने लगी कि मालूम होता है, राजा पागल हो गया है। शाम होते-होते गांव में आंदोलन तैयार हो गया। लोग भीड़ लगा कर राजमहल के चारों तरफ इकट्ठा हो गए और उन सबने चिल्ला कर कहा कि यह राजा पागल हो गया है, हम राजा को बदलना चाहते हैं!

राजा छत पर आया; उसने वजीर से पूछा, अब क्या करना? उसने कहा, एक ही रास्ता है कि हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। अब ये सब पागल हो गए हैं, मगर अब इनको कौन समझाए? और ये सभी हैं सहमत, अब हम इन्हें पागल दिखाई पड़ रहे हैं। हालांकि हमें पता है कि हम पागल नहीं हैं, लेकिन इससे अब कुछ होगा नहीं। अब देर न करें। वजीर ने राजा से कहा कि आप लोगों को समझा कर रोकें, थोड़ी देर में मैं पानी लेकर आता हूं भागा हुआ। वह गया और कुएं से पानी भर लाया। दोनों ने पानी पीया, दोनों पागल हो गए। गांव उस रात भर उत्सव मनाता रहा कि हमारे राजा और वजीर की बुद्धि ठीक हो गई; धन्यवाद परमात्मा का!

तुम जिस बस्ती में हो वह पागलों की है, पाखंडियों की है। तुम जिनके बीच हो उनके बीच शुद्ध आंख को पैदा करने में बड़ी कठिनाई होगी। लेकिन वह कठिनाई गुजरने जैसी है। शुद्ध आंख पैदा कर लो। क्योंकि उसके बिना परमात्मा को देखने का कोई उपाय नहीं। सत्य को निष्पक्ष आंख ही देख सकती है। पक्षपात सभी असत्य हैं।

आज इतना ही।

चौरानबेवां प्रवचन

शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है

Chapter 55

The Character Of The Child

Who is rich in character is like a child.
No poisonous insects sting him, no wild beasts attack him,
And no birds of prey pounce upon him.
His bones are soft, his sinews tender, yet his grip is strong,
Not knowing the union of male and female, yet his organs are complete,
Which means his vigour is unspoiled.
Crying the whole day, yet his voice never runs hoarse,
Which means his (natural) harmony is perfect.
To know harmony is to be in accord with the eternal,
(And) to know eternity is called discerning.
(But) to improve upon life is called an ill-omen;
To let go the emotions through impulse is called assertiveness.
(For) things age after reaching their prime;
That (assertiveness) would be against Tao.
And he who is against Tao perishes young.

अध्याय 55

शिशु का चरित्र

जो चरित्र का धनी है, वह शिशुवत होता है।
जहरीले कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते,
और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।
यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें कोमल, तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है।
यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।
जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है।

दिन भर चीखते रहने पर भी उसकी आवाज भर्राती नहीं है;

जिसका अर्थ हुआ कि उसकी स्वाभाविक लयबद्धता पूर्ण है।

लयबद्धता को जानना शाश्वत के साथ तथाता में होना है, और शाश्वतता को जानना विवेक कहलाता है।

लेकिन जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण कहाता है; और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।

क्योंकि चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं; वह आक्रामक दावेदारी ताओ के खिलाफ है।

और जो ताओ के खिलाफ है वह युवापन में ही नष्ट होता है।

शिशुवत चरित्र ताओ का लक्ष्य है। पुनः बच्चे की भांति हो जाना, स्रोत की तरफ लौट जाना, मूल के साथ एक हो जाना; उस अवस्था को फिर पा लेना, जब भेद नहीं था।

पहले हम शिशु की धारणा को समझ लें।

तीन अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है भेद-पूर्व, द्वैत-पूर्व, जब दो का पता न था, अबोध, अज्ञानी की। दूसरी अवस्था है द्वैत की, जब भेद हुआ, जब हमने दो को जाना, जब सब चीजें टूट कर विभाजित हो गईं। यह दशा है तथाकथित ज्ञानी की। और फिर एक तीसरी दशा है कि पुनः टूटी हुई चीजें जुड़ गईं। जो अलग-अलग हो गया था, वापस एक हो गया; जो लयबद्धता छिन्न हो गई थी, वह फिर छंद में बंध गई। फासले समाप्त हुए। अद्वैत का पुनर्भाव हुआ। फिर एक दिखाई पड़ने लगा। यह अवस्था है परम ज्ञानी की।

परम ज्ञानी शिशुवत है। परम ज्ञान अज्ञान जैसा है। अज्ञान से बड़ा भिन्न, फिर भी अज्ञान जैसा। भेद है परम ज्ञान का, उसका विवेक, भेद है उसकी बोध की अवस्था, भेद है जानते हुए एक को जानना।

शिशु भी एक को ही जानता है, लेकिन जानता नहीं। पहचान नहीं है। दो को करने की क्षमता नहीं है, इसलिए एक को जानता है। उसकी अवस्था अबोध है। उसे पता ही नहीं कि दो होता है। अभी विभाजन नहीं हुआ। विभाजन होगा; चीजें टूटेंगी। सब चीजें भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ने लगेंगी। मैं और तू का पता चलेगा। मैं अलग हूं, तू अलग है, इसका पता चलेगा। सफलता-असफलता में भेद पैदा होगा। धन-मिट्टी में फर्क दिखाई पड़ेगा। सोना अलग हो जाएगा, हीरे अलग हो जाएंगे, कंकड़-पत्थर अलग हो जाएंगे। सुख और दुख भिन्न होंगे। स्वर्ग और नरक का फासला हो जाएगा। यह मैं पाना चाहता हूं, यह मैं नहीं पाना चाहता हूं; वासना जगेगी, सारा संसार खड़ा होगा।

बालक तो मिटेगा; मिटने को है। मिटने के पूर्व की दशा है। बालक तो पाप में उतरेगा, उतरना ही पड़ेगा। क्योंकि पाप के बिना कोई प्रौढ़ता नहीं। बालक तो खोएगा इस निर्दोष स्वभाव को, क्योंकि यह निर्दोष स्वभाव अन-अर्जित है, यह मुफ्त मिला है। और ध्यान रखना, जो मुफ्त मिलता है वह तुम्हारा कभी भी न हो पाएगा। जो तुमने कमाया है वही तुम्हारा होगा। बालक का संतत्व मुफ्त मिला है; उसने कमाया नहीं है। वह प्रकृति का दान है। उसे छोड़ना पड़ेगा।

इसे बहुत गहरे समझ लेना कि जो तुम कमाओगे अपने ही श्रम, अपने ही बोध, अपनी ही जीवन-ऊर्जा से, केवल वही तुम्हारा होगा। बाकी सब धोखा है। आज है, कल नहीं होगा।

बालक का संतत्व धोखा है। क्योंकि जा रहा है, जा रहा है; अभी गया, अभी गया। देर नहीं है। क्षण भर का है। नींद जैसा है, जो टूटेगी। कब तक सोए रहोगे? सुबह हर क्षण करीब आ रही है; नींद टूटेगी। नींद में तो पापी भी पुण्यात्मा जैसा हो जाता है। नींद में तो असाधु भी साधु जैसा शांत रहता है; न हिंसा करता, न हत्या करता,

न चोरी करता। लेकिन नींद टूटेगी। भेद शुरू होगा। बचपन तो जाएगा। पानी की लहर है। बच्चा तैयार हो रहा है टूटने को; संसार में उतरने को। वह तैयारी के पहले का क्षण है।

संत तैयार नहीं हो रहा है संसार के लिए; संत संसार से गुजर चुका। संत संसार के पार हो चुका। जान लिया जो जानना था; भटक लिया व्यर्थ में। क्योंकि व्यर्थ के भटकाव में ही सार्थकता की तलाश थी। असार को जान लिया, उसे सार की पहचान आ गई। कांटों में गिरा, क्योंकि बिना गिरे फूलों को पहचानने का कोई उपाय न था। कंकड़-पत्थर भी बीने, क्योंकि हीरों को जांचने की तब कोई सुविधा न थी। अब विवेक जगा।

अनुभव से जगता है विवेक। बच्चा गैर-अनुभवी है। निर्दोष है, लेकिन अनुभव के न होने के कारण निर्दोष है। तो बचपन की निर्दोषता नकारात्मक है। इस बात को ठीक से समझ लेना। वह विधायक नहीं है। संत की निर्दोषता विधायक है। जानने के कारण है, अज्ञान के कारण नहीं। अंधेरे के कारण नहीं है, रोशनी के कारण है। अंधेरी रात में नींद के कारण वह साधु नहीं है, खुले प्रकाश में भरी दुपहरी में अपने बोध के कारण साधु है। लेकिन है बच्चे जैसा। जो बच्चे को अज्ञान में हो रहा था अब उसे वह ज्ञान में हो रहा है। बच्चे का तो मिटता; उसका अब कभी न मिटेगा। उसने शाश्वत को पा लिया। बच्चे को भेंट मिली थी प्रकृति से; उसने अर्जित किया है। उसने खोजा, पीड़ा पाई, अग्नि से गुजरा, निखरा। यह निखार अब उसे छोड़ न सकेगा। यह किसी की देन नहीं है जो छीन ली जाए। न यह बाहर की भेंट है जो चोरी चली जाए। यह अब आविर्भाव हुआ है अंतस में, अब इसे कोई भी छीन न सकेगा। इसकी चोरी नहीं हो सकती। इस पर जंग भी नहीं लग सकती। क्योंकि यह चैतन्य का आविर्भाव है। प्रकृति जो भी देती है उस पर तो जंग लग जाएगी; क्योंकि वह पदार्थ से आया है। बचपन शरीर से आया है; संतत्व चेतना से। बच्चे की निर्दोषता प्रकृति से जुड़ी है; संत की परमात्मा से। बच्चा अवश है; संत अवश नहीं है, अपने वश में है।

लेकिन फिर भी दोनों में एक समानता है। और वह समानता यह है कि दोनों अद्वैत में जी रहे हैं। इसलिए संत शिशुवत है। शिशु ही नहीं, शिशुवत। इस फर्क को भी ख्याल में ले लेना। नहीं तो तुम कहीं शिशुवत होने के ख्याल से शिशु जैसे होने मत लग जाना। वह तो मूढ़ता होगी। तुमने अगर मूढ़ों को देखा हो तो वे भी बच्चों जैसे हैं। पागलखानों में जाकर तुम उन्हें देख सकते हो। उनका विकास ही नहीं हुआ; वे अटक गए। उनकी ऊर्जा कहीं उलझ गई; वे जवान नहीं हो पाए। वे भटक न पाए संसार में।

मूढ़ कौन है? मूढ़ वह बालक है जिसका बालपन अटक गया। इसलिए तो हम उसे रिटार्डेड कहते हैं, उसे कहते हैं कि वह विकसित नहीं हो पाया। तो बचपन में तो बालपन सुंदर मालूम पड़ता है, मूढ़ में बड़ा कुरूप हो जाता है। तो तुम मूढ़ता को मत आरोपित कर लेना।

ऐसा हुआ है। भारत में ऐसे कई मूढ़ हैं जो संतों की तरह पूजे जाते हैं। वे सिर्फ मूढ़ हैं। अगर दूसरे किसी मुल्क में होते तो पागलखानों में होते या मनोचिकित्सालय में होते, उनका इलाज हो रहा होता। यहां वे संतों की भांति पूजे जाते हैं। उनकी मूढ़ता के कारण उन्हें भेद नहीं है।

एक बार मैं एक गांव में मेहमान था। वहां एक संत की बड़ी पूजा थी। तो मैं देखने गया। वे संत थे ही नहीं, वे मूढ़ थे। लेकिन लोग व्याख्या कर रहे थे। जैसे कि वे वहीं पाखाना कर लेते, वहीं बैठे खाना खाते रहते; इसको लोग समझते थे परमहंस की अवस्था हो गई। यह परमहंस की अवस्था नहीं है, सिर्फ मूढ़ता है। उनमें बोध जन्मा ही नहीं; वे छोटे बच्चे जैसे हैं। जैसे छोटा बच्चा कर सकता है यह। पाखाना कर ले, वहीं बैठ कर खाना खाता रहे। अभी पाखाने और खाने का फर्क उसे हुआ नहीं है। ये संत भी उसी दशा में थे। उनके मुंह से लार टपक रही, जैसे

छोटे बच्चों को टपकती रहती है। लोग उनकी लार का प्रसाद ले रहे थे। और वह लार इसलिए टपक रही थी कि उनका जबड़ा लटका हुआ था। मूढ़ों का जबड़ा लटका होता है।

तुम्हें पता नहीं होगा, शरीरशास्त्री जबड़े के कारण बड़े चकित हैं। क्योंकि जबड़े को तुम चौबीस घंटे सम्हाले रहते हो, तभी वह ऊपर है। नहीं तो गुरुत्वाकर्षण के कारण वह नीचे लटक ही जाना चाहिए। तुम्हारा मुंह खुला रहना चाहिए साधारणतः। और अगर तुम बिल्कुल ढीला छोड़ दो तो तुम पाओगे, तुम्हारा मुंह खुल गया।

मूढ़ आदमी का एक लक्षण है, उसका जबड़ा खुला होगा; छोटे बच्चों जैसा होगा जबड़ा उसका। इसीलिए तो छोटे बच्चे के गले पर टावेल बांधना पड़ता है कि उसका थूक टपकता रहे तो कोई चिंता नहीं। थूक तो तुम्हारे मुंह में भी चौबीस घंटे बनता है, लेकिन तुम उसे लील जाते हो। जबड़ा खुला रहे तो वह बाहर की तरफ बहता है।

थूक टपक रहा था, उसे लोग हाथ में ले-लेकर प्रसाद की भांति ग्रहण कर रहे थे। वह आदमी निपट मूढ़ था।

लेकिन मूढ़ भी संतों जैसा मालूम हो सकता है; क्योंकि उसे भी अभेद तो है। भारत में बहुत से मूढ़ पूजे जाते रहे हैं। अभी भी पूजे जा रहे हैं। क्योंकि परमहंस और उनमें कुछ साम्यता है। परमहंस का भेद खो जाता है।

लेकिन भेद खो जाने का यह मतलब नहीं है कि वह भोजन की जगह मिट्टी खाने लगता है। वह जानता है कि भोजन भी मिट्टी है, मिट्टी से ही पैदा होता है। आखिर मिट्टी ही तो गेहूं बनती है; गेहूं रोटी बनता है। वह जानता है कि भेद जरा भी नहीं है। लेकिन फिर भी मिट्टी को नहीं खाने लगता। क्योंकि यह अज्ञान नहीं है, यह विवेक है। मिट्टी पचाई नहीं जा सकती। भेद तो नहीं है, मिट्टी ही गेहूं बनती है; लेकिन गेहूं मिट्टी का ऐसा ढंग है जो शरीर में पच सकता है। यह विवेक कायम रहता है।

आखिर पाखाने और खाने में फर्क क्या है? खाना ही तो पाखाना हो जाता है। फर्क तो जरा भी नहीं है। जिसे तुम मुंह से डालते हो वही तो आखिर पाखाना होकर निकल जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संत पाखाने को खाने लगेगा। क्योंकि खाते हम इसलिए हैं, ताकि उससे शरीर चल सके। वे सब तत्व तो पाखाने से खींच लिए गए जो शरीर के काम के थे। अब तो जो असार है वह छोड़ दिया गया है।

भेद कुछ भी नहीं है, लेकिन व्यावहारिक भेद है। पारमार्थिक भेद कुछ भी नहीं है, व्यावहारिक भेद है। तुम्हारा शरीर किन्हीं चीजों को स्वीकार करता है, किन्हीं को स्वीकार नहीं करता। शरीर की सीमाएं हैं। शरीर पत्थर नहीं खा सकता, मिट्टी नहीं खा सकता। मिट्टी से ही सब बनता है, लेकिन बनने की प्रक्रिया में वह इस योग्य हो जाता है कि तुम उसे खा सकोगे। पौधे कर क्या रहे हैं? पौधे यही कर रहे हैं कि मिट्टी को फल बना रहे हैं। फल को तुम पचा सकते हो। पौधे मिट्टी को पचा सकते हैं। मिट्टी पौधों के द्वारा पचा कर एक रूपांतरण से गुजरती है। एक केमिकल, रासायनिक परिवर्तन हो जाता है उसमें, वह तुम्हारे भोजन के योग्य हो जाती है।

संत यह जानता है कि जीवन इकट्ठा है, अद्वैत है। यह वृक्ष तुम्हारा साथी है; इसके बिना तुम न जी सकोगे। क्योंकि यह फल बना रहा है तुम्हारे लिए। सारा अस्तित्व जुड़ा है और एक है। सूरज की किरणें पड़ रही हैं, वृक्ष उन्हें पी रहा है; उन किरणों को फलों में इकट्ठा कर रहा है। फलों में इकट्ठी होकर वे विटामिन बन गई हैं। तुम सूरज की किरण को सीधी ज्यादा न पी सकोगे। थोड़ी सी पी सकते हो चमड़ी के द्वारा; डी विटामिन थोड़ा सा तुम चमड़ी के द्वारा पी सकते हो। लेकिन वह भी ज्यादा नहीं। ज्यादा पीओगे तो सारा शरीर काला पड़ जाएगा। इसलिए तो गर्म मुल्कों में शरीर काला हो जाता है। अगर बहुत पी जाओगे डी विटामिन तो चमड़ी बिल्कुल काली हो जाएगी। शरीर से नहीं पीया जा सकता सीधा, लेकिन फलों के माध्यम से डी विटामिन की जो जलाने की क्षमता है वह कम हो जाती है। फिर तुम कितने ही फल ले सकते हो; फिर वे जीवनदायी हैं। जीवन संयुक्त है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम चीजों में भेद करना छोड़ दोगे। मूढ़ भेद ही नहीं कर सकता। ज्ञानी भेद कर सकता है, विवेक को उपलब्ध हुआ है, फिर भी भेद में अभेद को जानता है। ज्ञानी निकलेगा तो दरवाजे से निकलेगा, यद्यपि दरवाजा और दीवार में अभेद है। दोनों एक ही घर के हिस्से हैं। लेकिन निकलना तो दरवाजे से होगा ज्ञानी को भी। दीवार से निकलने लगे तो मूढ़ है। दरवाजे से निकले और जाने कि दरवाजा भी दीवार का ही हिस्सा है, दोनों संयुक्त हैं, दोनों में भेद है व्यावहारिक। अगर निकलना हो तो भेद है; न निकलना हो तो दोनों एक ही अखंड भवन के हिस्से हैं। पारमार्थिक भेद नहीं है। अंततः भेद नहीं है। लेकिन व्यावहारिक रूप से बड़ा भेद है। ज्ञानी भेद को जानते हुए अभेद को पहचानता रहता है। स्वर अलग-अलग हैं, लेकिन ज्ञानी की दृष्टि स्वरों पर नहीं होती, स्वरों के बीच जो लयबद्धता है उस पर होती है। ज्ञानी भेद कर सकता है, करता है; लेकिन अभेद में जीता है। अज्ञानी भेद नहीं कर सकता; करना भी चाहे तो करने का उसके पास उपाय नहीं है। वह भी अभेद में जीता है।

तो तुम बच्चे जैसे होने की कोशिश में मूढ़ जैसे मत हो जाना। अन्यथा तुम चूक गए, तुम समझ न पाए।

मूढ़ता परमहंसत्व नहीं है। परमहंसत्व में मूढ़ता का एक तत्व है; और वह तत्व है अभेद। और परमहंसत्व में साधारण सांसारिक का भी एक तत्व है; वह है भेद। परमहंस का अर्थ है, जिसमें संसार और परमात्मा मिल गए, एक हो गए। जो संसारी जैसा भेद करता है और मूढ़ जैसे अभेद में जीता है; जो दोनों का परम संगीत है। इस परम संगीत को लाओत्से तथाता कहता है। सब उसे स्वीकार है। और सब स्वीकार के माध्यम से उसने एक लयबद्धता खोज ली है। अब उसका संगीत अखंडित है।

शिशुवत होना! हमारे पास दो शब्द हैं भाषा में, एक शब्द है बालपन और दूसरा शब्द है बचकाना। बचकाने मत हो जाना। क्योंकि वह तो मूढ़ता का लक्षण है। शिशुवत होना, बालपन को उपलब्ध होना। वह शिशु जैसा है, फिर भी शिशु से बहुत दूर है। शिशु से बहुत भेद है।

"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है।"

हमने चर्चा की पीछे कि किस बात को लाओत्से वास्तविक चरित्र कहता है। वह कहता है, स्वभाव से जिस जीवन का आविर्भाव हो वह चरित्र है।

अब कहता है, "जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत है।"

जिसके पास भीतर से आ रहा है चरित्र, जिसकी धारा भीतर से बाहर की तरफ बह रही है, जो केंद्र से परिधि की तरफ बह रहा है, जैसे सूरज की किरणें उसके अंतस से निकलती हैं और सारे संसार में व्याप्त हो जाती हैं, ऐसा जो बह रहा है केंद्र से परिधि की ओर सूर्य की भांति, ऐसे धनी व्यक्ति का, चरित्र के धनी व्यक्ति का स्वभाव शिशु के जैसा होगा। शिशु के क्या लक्षण हैं?

एक लक्षण है कि अभी वह अभेद में है, उसे मेरा-तेरा पता नहीं। छोटा बच्चा दूसरे के हाथ में खिलौना देख कर चीखने-चिल्लाने लगता है कि मुझे चाहिए। हम उस पर नाराज नहीं होते। हम कहते हैं, बालक है। लेकिन यही बालक कल बीस साल का हो जाएगा और फिर भी दूसरों की चीजें देख कर चिल्लाने लगे तो हम नाराज होंगे। हम कहेंगे, क्या बचकानापन कर रहे हो? वह तुम्हारी नहीं है। मेरे-तेरे का भेद करो। जो अपना है वह तुम मांग सकते हो; जो दूसरे का है उसे मांगना अनुचित है। अपने के तुम मालिक हो, दूसरे की चीज उठा लेना चोरी है।

इसलिए छोटे बच्चों को अदालतें दंड नहीं देती हैं अगर वे चोरी भी कर लें। क्योंकि जिन्हें अपने-तेरे का भेद नहीं है, उनको चोरी का क्या सवाल है? उन्हें पता ही नहीं है कि चीजें किसी की होती हैं या मालकियत जैसी कोई चीज है। स्वामित्व अभी पैदा नहीं हुआ।

संत भी स्वामित्व को नहीं मानता। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह तुम्हारी चीज उठा लेगा। संत भी स्वामित्व को नहीं मानता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह तुम्हारे घर में घुस जाएगा और चोरी करेगा। जानता है कि चीजें किसी की भी नहीं हैं, सभी कुछ परमात्मा का है, स्वामित्व के सभी दावे गलत हैं; यह जानते हुए भी होशपूर्ण जीएगा और सर्वाधिक अपनी चीजों पर कोई स्वामित्व नहीं रखेगा। और कोई अगर उसकी चीजें छीन ले तो तुम उसे रोता हुआ न पाओगे। और कोई उसकी चीज छीन ले तो तुम उसे अदालत जाते हुए न पाओगे। वह किसी की चीज नहीं छीनेगा। क्योंकि जो अज्ञान में जी रहे हैं, उनकी तो धारणा में स्वामित्व है; वे चीजें उनकी हैं। अगर उसकी चीज तुम छीन लोगे तो वह स्वामित्व का दावा नहीं करेगा। वह दावा उसके बाहर है। स्वामित्व का बोध उसका गिर गया है। क्योंकि उसने परम स्वामी को जान लिया; वही मालिक है।

शिशुवत होगा, लेकिन फर्क होंगे। चरित्र का धनी होगा। भीतर से आता उसका स्वभाव, बहता हुआ, उसके चरित्र में होगा। और जिसके पास चरित्र का धन है उसे किसी और धन की आकांक्षा नहीं है। इसलिए कई बार तुम संत को समझ भी न पाओगे। कई बार तुम्हें भूल हो जाएगी।

कबीर ने अपने बेटे को अलग कर दिया था, क्योंकि बेटा बड़ा विद्रोही था। कबीर तो समझते थे। निश्चित समझते रहे होंगे। कबीर न समझेंगे तो कौन समझेगा! लेकिन कबीर के शिष्यों को उससे अड़चन होती थी। तो कबीर ने उससे कहा कि तू ऐसा कर कमाल, कि तू अलग ही हो जा। इनको बार-बार कष्ट क्यों देना? तो कमाल पास ही एक अलग झोपड़े में रहने लगा था। काशी के नरेश कबीर को मिलने आते थे। पूछा, कमाल दिखाई नहीं पड़ता! तो कबीर ने कहा कि उसे अलग कर दिया है। शिष्यों के साथ तालमेल नहीं खाता। तो नरेश मिलने गए। शिष्यों से पूछा तो उन्होंने कहा कि वह लोभी है। और कबीर के पास उसका होना ठीक नहीं। कोई कुछ भेंट लाता है तो कबीर तो कहते हैं, कोई जरूरत नहीं, लेकिन वह रख लेता है सम्हाल कर। तो वह संग्रह कर रहा है।

तो नरेश ने कमाल से पूछा कि तू ऐसा क्यों करता है? तो उसने कहा कि जब चीजों का कोई मूल्य ही नहीं है तो क्या लौटाना? वह ले आया बेचारा, यहां तक बोझ ढोया, अब फिर वापस ले जाए। कबीर की कबीर समझें, बाकी मैं समझ पाया हूं कि जब कोई मतलब ही नहीं है और चीज किसी की भी नहीं है, न तुम्हारी है, न मेरी है, तो किसी के पास रहे क्या फर्क पड़ता है!

नरेश को थोड़ा संदेह हुआ कि बात तो ज्ञान की कर रहा है, लेकिन चालाक मालूम पड़ता है। तो उसने अपनी जेब से एक बड़ा बहुमूल्य हीरा निकाला और कहा कि यह रख। कमाल ने कहा, है तो पत्थर, लेकिन अब ले ही आए तो रख जाओ। कहां रख दूं, नरेश ने पूछा। तो कमाल ने कहा, तुम समझे नहीं। क्योंकि तुम पूछते हो कहां रख दूं, तो तुम्हें यह पत्थर नहीं है, तुम इसे हीरा ही मान रहे हो। कहीं भी रख दो, पत्थर ही है! तो नरेश ने उसकी झोपड़ी में, छप्पर में खोंस दिया। सनौलियों का छप्पर था, उसमें खोंस दिया।

पंद्रह दिन बाद वापस आया देखने कि हालत क्या है। पक्का था उसे कि मैं इधर बाहर निकला कि उसने हीरा निकाल लिया होगा। अब तक तो हीरा बिक भी चुका होगा, बाजार पहुंच चुका होगा। लाखों की कीमत का था। पहुंचा, बैठा। पूछा कि हीरे का क्या हुआ? कमाल ने कहा, फिर वही बात! जब पत्थर ही है तो भूल क्यों नहीं जाते! और फिर भेंट भी दे दी, फिर भी याद जारी रखते हो। अगर बहुत ही उत्सुकता है तो जहां रख गए वहीं देख

लो। अगर किसी ने न निकाला हो तो वहीं होगा। नरेश समझ गया कि है तो चालाक। यह कह रहा है अगर किसी ने न निकाला हो! निकाला खुद ने ही होगा। उठ कर देखा, हीरा वहीं का वहीं रखा था।

यह संत का व्यवहार है। बड़ा कठिन है इस धनी आदमी को पहचानना।

तुम पहचान लोगे अगर वह कहे कि ले जाओ, मैं छूता नहीं। तुम कहोगे, परम साधु है। तुम त्यागी को परम साधु कहते हो। लेकिन त्यागी भोगी का ही विपरीत है; त्यागी भोगी का ही उलटा छोर है। भोगी पकड़ता है, त्यागी छोड़ता है; लेकिन दोनों की संपदा मध्य में है। पकड़ो या छोड़ो, लेकिन दोनों मानते हो धन का मूल्य है। संत शिशुवत है। धन का कोई मूल्य नहीं है; न पकड़ने में आतुर है, न छोड़ने में आतुर है। क्योंकि छोड़ने की आतुरता भी बताती है कि तुम्हारे मन में अभी जागरण नहीं हुआ, अभी विवेक का उदय नहीं हुआ।

तो संत कभी भोगी जैसा दिख सकता है तुम्हें, कभी त्यागी जैसा दिख सकता है तुम्हें। यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कैसे व्याख्या करोगे। लेकिन संत न भोगी है और न त्यागी है; शिशुवत है। जीवन जैसे एक खेल है। उस खेल में गंभीरता नहीं है। हो नहीं सकती। खेल में कहीं गंभीरता होती है?

इसलिए साधु को जब भी तुम गंभीर देखो तो समझना कि कहीं कोई चीज गड़बड़ हो गई; कोई रोग लग गया; त्याग का रोग लग गया। पहले भोग का रोग लगा था, अब त्याग का रोग लग गया। और अगर भोग निमोनिया है तो त्याग डबल निमोनिया है। जब भोग ही गलत है तो भोग का छोड़ना तो और भी गलत होगा। भोग के पार होना है; छोड़ने में ग्रसित नहीं हो जाना।

इसलिए संत को पहचानना कठिन है। इन दो को तुम पहचान सकते हो। भोगी को तुम भलीभांति जानते हो; तुम्हारा अपना अनुभव भी भोग का है। त्यागी को भी तुम जानते हो, क्योंकि वह तुमसे विपरीत है। उसको तौलने में कठिनाई नहीं है। तुम पूरब जा रहे हो, वह पश्चिम जा रहा है। साफ दिखाई पड़ता है कि उसकी पीठ दिखाई पड़ रही है। जिस तरफ तुम चेहरा किए हो उस तरफ वह पीठ किए है। जहां तुम उन्मुख हो वहां वह विमुख है। भाषा एक ही है। मार्ग एक ही है। सीढ़ी एक ही है। साफ-साफ पहचान हो जाती है। लेकिन संत को तुम न पहचान पाओगे।

इसलिए संत अक्सर बिना पहचाने मर जाते हैं। क्योंकि वे कहां जा रहे हैं, तुम पक्का ही नहीं कर पाते। तुम अगर उनसे कहो कि चलो पूरब की तरफ, तो तुम्हारे साथ हो लेते हैं कि चलो, थोड़ा टहलना ही हो जाएगा। तभी संदेह पकड़ जाता है कि यह कैसा संत! हमको ले जाना था पश्चिम की तरफ, सो उलटा हमारे साथ आ रहा है और कहता है टहलना हो जाएगा।

झेन कथा है। एक सम्राट एक फकीर के प्रेम में था। और सम्राट अक्सर फकीरों के प्रेम में पड़ जाते हैं। क्योंकि फकीर बड़ी दूसरी दुनिया का अजनबी मालूम पड़ता है। अपने ही जैसा नहीं, अपने से बड़ा अजीब लगता है। और अजनबी में आकर्षण होता है। जो अपने से बहुत भिन्न है उसमें एक रस होता है। जो अपने से विपरीत है उसको जानने की जिज्ञासा जगती है। वह किसी और लोक का निवासी है। जैसे कोई खबर कर दे कि कोई चांद का आदमी चांद से उतर कर बाजार में आ गया है, माणिक चौक में खड़ा है, तो सारे लोग भागें अजनबी को देखने, चांद से आए आदमी को देखने। ऐसे ही सम्राट अक्सर फकीरों के प्रेम में पड़ जाते हैं।

यह सम्राट प्रेम में था। और प्रेम से ही इसने एक दिन निवेदन किया कि मुझे बड़ा दुख होता है कि तुम वृक्ष के नीचे पड़े हो। मैं यहां मौजूद हूं सेवा के लिए, महल मेरा मौजूद है, खाली पड़ा है। इन सैकड़ों कक्षों में कोई रहने वाला नहीं है। मैं अकेला हूं। तुम चलो!

लेकिन कभी उसने यह न सोचा था कि फकीर राजी हो जाएगा। फकीर अपना बोरा-बिस्तर बांध कर खड़ा हो गया। उसने यह भी न कहा कि सोचूंगा। सम्राट एकदम हताश हो गया कि यह आदमी तो अपने ही जैसा निकला। फंस गए। कहां भूल में पड़े रहे! यह तो ठीक भोगी मालूम पड़ता है। इसने एक दफा न भी न की। जैसे प्रतीक्षा ही कर रहा था। जैसे सब आयोजन यह फकीरी का इसीलिए था कि कब महल में निमंत्रण मिल जाए। फंस गए। इसके जाल में उलझ गए। अब अपना शब्द वापस भी कैसे लें? लाना पड़ा फकीर को, लेकिन बेमन से। खुशी चली गई। ठहराया, लेकिन बेमन से। लेकिन अब अपने शब्द को कैसे वापस लेना?

छह महीने फकीर राजा के महल में रहा। धीरे-धीरे तो राजा ने आना भी बंद कर दिया कि इसकी क्या सुनना; हमारे ही जैसा आदमी है। ठीक है, रहता है। सब व्यवस्था कर दी और बिल्कुल भूल गया। छह महीने बाद एक दिन सुबह फकीर को बगीचे में टहलते देखा तो आया और कहा, महाराज, अब तो मुझमें और आप में कोई फर्क ही नहीं; जैसा मैं वैसे आप। अब क्या फर्क रहा?

फकीर ने कहा, चलो, थोड़ा गांव के बाहर चलें, वहां फर्क बताऊंगा। राजा साथ हो लिया; गांव के बाहर पहुंच गए। नदी आ गई जो गांव की सीमा बनाती थी। फकीर ने कहा कि उस तरफ चलें। पार हो गए नदी। राजा ने कहा, अब देर हुई जाती है, सूरज भी खूब चढ़ आया, अब आप बता दें। दूर जाने की क्या जरूरत है? अब यहां कोई भी नहीं है, वृक्ष के नीचे बैठ कर बता दें। उसने कहा कि थोड़ा और। दोपहर तक वह सम्राट को चलाता रहा। आखिर सम्राट खड़ा हो गया। उसने कहा, अब बहुत हो गया। व्यर्थ चलाए जा रहे हैं। जो कहना है कह दें!

फकीर ने कहा, अब मैं वापस नहीं लौटूंगा। तुम मेरे साथ चलते हो? सम्राट ने कहा, मैं कैसे साथ चल सकता हूं? राज्य है, महल है, व्यवस्था, काम-धाम, हजार उलझनें हैं। आपको क्या? तो फकीर ने कहा, अब समझ सको तो समझ लेना। हम जाते हैं, तुम नहीं जा सकते हो; वहीं भेद है। हम महल में थे, महल हममें न था। तुम महल में हो और महल भी तुममें है। भेद बारीक है। समझ सको, समझ लेना।

सम्राट रोने लगा, पैर पकड़ लिया, कहा कि मैं पहचान ही न पाया। और आप छह महीने वहां थे और मैं धीरे-धीरे आपको भूल ही गया। और मैं तो समझा कि आप भी भोगी हैं। वापस चलिए!

फकीर ने कहा, मुझे चलने में कोई हर्जा नहीं, लेकिन फिर वही गलती हो जाएगी। मेरी तरफ से कोई अड़चन नहीं है। कहो कि मैं चला। सम्राट फिर चौंका। और उस फकीर ने कहा कि देखो, तुम भोग को समझ सकते हो, तुम त्याग को समझ सकते हो; तुम संत को नहीं समझ सकते। मुझे क्या अड़चन है? इधर गए कि उधर गए, सब बराबर है। सब दिशाएं उसी की हैं। महल में रहे कि झोपड़े में, सब महल, सब झोपड़े उसी के हैं। फटे कपड़े पहने कि शाही कपड़े पहने, जमीन पर सोए कि शय्या पर, बहुमूल्य शय्या पर सोए; सभी उसका। जो दे दे वही ले लेते हैं। जो दिखा दे वही देख लेते हैं। अपनी कोई मर्जी नहीं। बोलो, क्या इरादा है? कहो तो हम लौट पड़ें। मगर तुम पर फिर बुरी गुजरेगी। इसलिए बेहतर है तुम हमें जाने दो; कम से कम श्रद्धा तो बनी रहेगी। तुम कम से कम कभी याद तो कर लिया करोगे कि किसी त्यागी से मिलना हुआ था। शायद वह याद तुम्हारे लिए उपयोगी हो जाए।

तुम्हारे कारण बहुत से संत त्याग में जीए हैं, झोपड़ों में पड़े रहे हैं, वृक्षों के नीचे बैठे रहे हैं। तुम्हारे कारण! क्योंकि तुम समझ ही न पाओगे। तुम समझ ही व्यर्थ बातें सकते हो। सार्थक की तुम्हें कोई पहचान नहीं है। सार्थक की पहचान हो भी नहीं सकती, जब तक तुम उस सार्थकता को स्वयं उपलब्ध न हो जाओ। तुम कैसे पहचानोगे संत को बिना संत हुए? वही गुणधर्म तुम्हारी चेतना का भी हो जाए, वही सुगंध तुम्हें भी आ जाए, तभी तुम

पहचानोगे। कृष्ण हुए बिना कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। लाओत्से हुए बिना लाओत्से को पहचानना मुश्किल है।

तुम यहां मेरे पास हो; निरंतर मुझे सुनते हो; हर भांति मेरे रंग में रंगे हो; फिर भी तुम मुझे पहचान नहीं सकते जब तक तुम ठीक मेरे जैसे ही न हो जाओ। तब तक तुम्हारी सब पहचान बाहर-बाहर की, तब तक तुम्हारी सब पहचान अधूरी, तब तक तुम्हारी सब पहचान तुम्हारी ही व्याख्या। उससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। अगर तुम इतना भी समझ लो तो काफी समझना है। क्योंकि यह समझ तुम्हें और आगे की समझ की तरफ सीढ़ी बन जाएगी।

"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है।"

बचकाना नहीं, बालक जैसा। अविकसित नहीं; कहीं बचपन में अटक नहीं गया कि बढ़ न पाया हो। इतना बढ़ा, इतना बढ़ा, इतना बढ़ा कि वापस बच्चा हो गया। क्योंकि सभी चीजें बढ़ कर अपने मूल स्रोत पर आ जाती हैं।

जीवन वर्तुलाकार है। जीवन की सभी गति वर्तुलाकार है। चांद-तारे घूमते हैं वर्तुल में, पृथ्वी घूमती है वर्तुल में, सूरज घूमता है वर्तुल में। पृथ्वी एक वर्ष में चक्कर लगा लेती है सूरज का; एक वर्तुल पूरा हो जाता है। सूरज स्वयं पच्चीस सौ वर्षों में किसी महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। इसीलिए तो पच्चीस सौ वर्षों में चेतना में फिर से ज्वार-भाटा आता है। एक वर्ष पूरा हुआ सूरज का। एक वर्ष में पृथ्वी चक्कर लगाती है; इसीलिए तो मौसम पैदा होते हैं। गर्मी आती है, वर्षा आती है, शीत आती है; फिर गर्मी लौट आती है। यह जो तुम्हें मौसम की बदलाहट दिखाई पड़ती है, पृथ्वी के चक्कर के कारण। तुम्हारी चेतना भी ऐसे ही वर्तुलाकार में घूम रही है। इससे तुम बच्चे होते हो, जवान होते हो, बूढ़े होते हो। वे तुम्हारे मौसम हैं।

सूरज चक्कर लगा रहा है किसी महासूर्य के किसी अज्ञात केंद्र का। पच्चीस सौ वर्ष में उसका एक चक्कर पूरा होता है। तो चेतना के उस परम जगत में भी बचपन आता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है। हर पच्चीस सौ वर्षों में जगत की चेतना अपनी आखिरी ऊंचाई पर पहुंचती है। उस समय जैसे द्वार खुले होते हैं; जो प्रवेश कर जाए, कर जाए। उस समय तुम बाढ़ के साथ जा सकते हो। उस समय भयंकर लहरें जा रही हैं परमात्मा की तरफ, उनके साथ तुम बह सकते हो। उस समय बुद्ध पैदा होते हैं, महावीर पैदा होते हैं, कृष्ण, पतंजलि पैदा होते हैं, जरथुस्त्र। उनकी प्रगाढ़ धारा में कोई भी बह जा सकता है।

इन आने वाले पच्चीस वर्षों में, इस सदी के पूरे होते-होते, वैसी प्रगाढ़ता का क्षण आएगा। तुम्हारे साथ मेहनत उसी क्षण के लिए तुम्हें तैयार करने को कर रहा हूं कि उस क्षण तुम्हें वह समय तैयार पाए। और इसलिए मैं इतनी जल्दी में हूं, क्योंकि वह समय आ सकता है और हो सकता है तुम सुनते ही बैठे रहो, तुम विचार ही करते रहो, द्वार खुले और बंद हो जाए।

सभी चीजें वर्तुल में घूमती हैं; जहां से शुरू होती हैं वहीं वापस पहुंच जाती हैं। तुम्हारी चेतना भी अगर बढ़ती ही जाए, बढ़ती ही जाए, तो फिर बालवत, शिशुवत हो जाएगी। तुम अगर बहुत आगे निकल जाओ तो तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां से तुम आए थे।

इसलिए जब तुम पूछते हो कि लाओत्से को मान कर पीछे लौट रहे हैं, तो यह आगे जाना है? आगे जाएं कि पीछे लौटें? तुम ठीक से आगे चले जाओ तो तुम पीछे पहुंच जाओगे। तुम ठीक से पीछे पहुंचने को सम्हाल लो तो

तुम आगे निकल जाओगे। वहां विरोध नहीं है। वर्तुल में कोई विरोध नहीं है। वर्तुल से चूकता वही है जो बैठा है और चलता ही नहीं; कहीं भी नहीं जाता--न पीछे, न आगे।

"जो चरित्र का धनी है वह शिशुवत होता है। जहरीले कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।"

शिशु पर हमला करना मुश्किल है। नहीं कि हमला नहीं किया जा सकता; मुश्किल है। क्या कारण है? कई बार तुम देखते हो, ऐसा होता है कि मकान में आग लग गई, सब मर गए; एक छोटा बच्चा बच गया। मकान से, ऊंचाई से एक छोटा बच्चा गिरता है और जरा भी चोट नहीं लगती। लोग कहते हैं, जाको राखे साईयां मार सके न कोय! नहीं, परमात्मा को इसमें कुछ करना नहीं पड़ता। साईयां का इसमें कुछ हाथ नहीं है, कुछ लेना-देना नहीं है। यह शिशुवत होने में कुछ खूबी है। शिशु गिरते हैं, टूट नहीं पाते। क्योंकि गिरने की उन्हें समझ नहीं है। वे जब गिर रहे हैं तब भी वे खेल ही समझ रहे हैं। तन नहीं गए हैं, घबड़ा नहीं गए हैं, हड्डियां खिंच नहीं गईं, मस्तिष्क में तनाव नहीं है। क्योंकि तुम जब पृथ्वी से जाकर टकराओगे खिड़की से गिर कर तो पृथ्वी नहीं मारेगी तुम्हें, तुम्हारा तनाव मारेगा। अगर तुम बहुत तने हुए हो तो तुम्हारे तनाव पर पड़ी चोट को तुम झेल न पाओगे, टूट जाओगे।

कड़ी चीज टूट जाएगी, मुलायम चीज क्षण भर को झुकेगी, फिर अपनी जगह आ जाएगी। जितनी कोमल चीज होगी उतनी ही लोचपूर्ण होती है। शिशु लोचपूर्ण है। वह चोट खा जाएगा, टूटेगा नहीं। तूफान आता है; छोटे पौधे झुक जाते हैं, अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। तूफान को हरा दिया उन्होंने, झुकने में उनकी कला थी। बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, फिर उठ नहीं पाते। क्योंकि बड़े वृक्ष पहले तो लड़ते हैं, पहले तो पूरी कोशिश करते हैं तूफान के खिलाफ खड़े रहने की; उस लड़ाई में, उस प्रतिरोध में, उस रेसिस्टेंस में ही जड़ें उखड़ जाती हैं। कहां तूफान? छोटे पौधे इस झंझट में नहीं पड़ते। वे अपने को छोटा मानते हैं, झुक जाते हैं। झुक गए, तूफान तो निकल जाता है। बड़े वृक्षों को मिटा जाता है, छोटों को नया जीवन दे जाता है। फिर खड़े हो जाते हैं लहलहाते। तूफान में सिर्फ उनकी धूल झड़ जाती है। तूफान और कुछ नहीं कर पाता।

अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि छोटे पौधे बच जाते हैं, बड़े वृक्ष नहीं बच पाते। नहीं, इसमें परमात्मा का कुछ हाथ नहीं है। छोटे वृक्ष की खूबी है उसका लोचपूर्ण होना। छोटे बच्चे लोचपूर्ण हैं। इसलिए तो दिन भर गिरते रहते हैं। तुम जरा दिन भर एक दिन बच्चे के साथ गिर कर देखो; फिर जिंदगी भर उठ न सकोगे।

पश्चिम में उन्होंने एक प्रयोग किया है, एक बहुत बड़े पहलवान को... । एक मनोवैज्ञानिक लाओत्से को पढ़ रहा था। तो उसे लगा कि इस पर प्रयोग करने जैसा है। तो हार्वर्ड युनिवर्सिटी में प्रयोग किया गया। एक बड़े से बड़े पहलवान को बुलाया गया, जिसका शरीर बड़ा शक्तिशाली है। और उसे एक काम दिया गया है कि आठ घंटे वह एक बच्चे का अनुकरण करे, बच्चा जो करे वही वह भी करे। बस कुछ और नहीं करना है, एक आठ घंटे बच्चा बैठे तो बैठ जाए, बच्चा खड़ा हो तो खड़ा हो जाए, बच्चा घिसटे तो घिसटे, बच्चा लोटे तो लोटे, बच्चा उचके तो उचके, रोए तो रोए, चिल्लाए तो चिल्लाए। जो भी बच्चा करे, बस उसका अनुकरण करता रहे।

वह पहलवान छह घंटे में चारों खाने चित्त हो गया। और बच्चे को बहुत मजा आया तो वह और ज्यादा करने लगा। जब कोई आदमी उसकी नकल कर रहा था तो उसने ऐसे-ऐसे काम किए कि वह पहलवान को उसने पस्त कर दिया। छह घंटे में वह पड़ गया। और उसने कहा कि मेरी हिम्मत अब आगे खींचने की नहीं, यह मार डालेगा। और बच्चा प्रसन्न है; उसे कुछ हुआ ही नहीं है। वह खेल समझ रहा है।

लाओत्से ठीक है। क्योंकि बच्चे के लिए जीवन अभी खेल है। काम जिस दिन हुआ उसी दिन थकान शुरू हुई। जिस दिन काम आया चित्त में उसी दिन थकान शुरू हुई। जब तक खेल है तब तक सब मौज है। खेल में कभी कोई थकता है?

मैं एक गांव में रहता था। एक वकील मेरे पास रहते थे। बड़े से बड़े वकील थे उस गांव के। बड़े थके-मांदे सांझ वे अदालत से लौटते। हाईकोर्ट का बड़ा कारोबार था उनका। और फिर वे आते ही से कि बहुत थक गया हूं, अब जरा टेनिस खेलने जा रहा हूं। मैंने उनसे पूछा कि तुम कभी सोचो भी तो कि थक कर आए हो और अब टेनिस खेलने जाओगे तो और थकोगे। उन्होंने कहा कि नहीं, कभी इस पर सोचा नहीं, क्योंकि टेनिस खेल है। तो फिर, मैंने कहा, तुम अदालत भी खेल की तरह क्यों नहीं जाते कि थको ही न? और जब बात ही साफ है, क्योंकि तुम इतना काम करके आए, अब टेनिस खेलने जा रहे हो तो शरीर तो थकेगा ही! पर वे कहते हैं, नहीं, टेनिस खेल कर घंटे भर बाद आता हूं, बिल्कुल ताजा हो जाता हूं। तो फिर तुम इतनी सी बात के सूत्र को समझ क्यों नहीं ले रहे हो कि अदालत को भी खेल बना लो।

श्रम से कोई भी नहीं थकता, काम से थकता है। क्योंकि श्रम से थकता होता तो खेल से भी थकता। क्योंकि खेल भी श्रम है। काम से थकता है आदमी। और जिस काम को तुम प्रेम करते हो वह खेल हो जाता है। जिस काम को तुम प्रेम नहीं करते, वही काम है। अगर तुम खेल को भी प्रेम न करो, वह भी काम हो जाएगा। प्रोफेशनल खिलाड़ी होते हैं, वे थक जाते हैं। क्योंकि उनका धंधा है, एक घंटा खेलना है। यह काम है। इससे कमाई करनी है।

खेल और काम में एक ही फर्क है। खेल है क्षण में जीना। यहीं प्रारंभ है, यहीं अंत है। यही साधन है, यही साध्य है। काम का अर्थ हैः यह साधन है, साध्य आगे है, फल में है। अगर कृष्ण की पूरी गीता का कोई सार है तो वह इतने से में है कि तुम जीवन को खेल बना लो, फल की आकांक्षा मत करो। फल की आकांक्षा से प्रत्येक चीज काम हो जाती है। खेल में कुछ फल थोड़े ही है। खेलना ही फल है।

शिशु थकता नहीं। उसकी ऊर्जा सदा बहती रहती है। मां-बाप थक जाते हैं, पूरा घर थक जाता है; एक छोटा सा बच्चा सबको नचा डालता है, थका डालता है अच्छी तरह से। और जब वे थक कर विश्राम के लिए जा रहे हैं तब भी वह अपने बिस्तर पर बैठा है, अभी उसे नींद नहीं आ रही। अब उसको सुलाने की भी कोशिश करनी पड़ती है। क्या कारण होगा उसकी इस अथक ऊर्जा का?

लाओत्से कहता है, वही सूत्र बना लो। और जिसकी ऊर्जा लोचपूर्ण है, और जिसकी ऊर्जा सरल है, और जिसकी ऊर्जा निर्दोष है, उस पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहता। तुम्हारी कोई जेब भी काट ले, बच्चे की कोई जेब नहीं काटता। और बच्चे को तुम एक रुपया हाथ में दे दो और वह चला जाए, गिर जाए रुपया, तो चोर भी पास में खड़ा हो तो वह भी ढूंढ़ कर उसका रुपया उसको दे देता है। बच्चा खो जाए तो लोग उसे कंधे पर रख कर घूमते हैं कि भई, किसका बच्चा है! मिठाई खिलाते हैं, खिलौना खरीद देते हैं। इस बच्चे में मामला क्या है? यही बच्चा अगर बड़ा होता तो इसकी ये ही आदमी जेब काट लेते। बच्चे पर लोग आक्रमण नहीं करते। रहस्य कहां है? अगर वह दिख जाए तो तुम उस रहस्य को कुंजी की तरह उपयोग कर सकते हो।

क्योंकि बच्चा किसी पर आक्रमण नहीं करता। बच्चा अनाक्रामक है। इसलिए उस पर करुणा आती है, इसलिए उस पर दया का प्रवाह होता है, इसलिए उस पर प्रेम उपजता है। वह अहिंसात्मक है। वह किसी को कुछ नुकसान नहीं करना चाहता। इसलिए किसी का भी मन उसका नुकसान करने का नहीं होता है।

तुम इसीलिए नुकसान उठाते हो, क्योंकि तुम किसी का नुकसान करना चाहते हो। यह भी हो सकता है, आज तुम न करना चाहते होओ नुकसान, पीछे कभी किया हो। इसलिए तो हिंदू कहते हैं कि जो भी किया है

उसका निबटारा करना होता है। कभी पीछे नुकसान किया हो तो भी उसका फल भुगताना पड़ेगा। या कभी आगे करने की योजना बना रहे होओ तो भी उसका फल भुगताना पड़ेगा।

अभी तुम बिल्कुल निरीह चले जा रहे हो रास्ते से, किसी का नुकसान करने का अभी इरादा भी न हो, ख्याल भी न हो, लेकिन तुम आदमी नुकसान करने वाले हो। तुम पर किसी को प्रेम नहीं आता। तुम गिर पड़ो तो लोग हंसते हैं, प्रसन्न होते हैं। तुम हार जाओ तो लोग मिठाइयां बांटते हैं।

एक बच्चा गिर पड़ता है तो कोई नहीं हंसता; लोग उसे दौड़ कर उठा लेते हैं। क्या है बच्चे का राज? वही राज तुम्हारी साधना का सूत्र हो जाना चाहिए। अनाक्रामक! उसकी ऊर्जा अपने में है, वह किसी पर हमला नहीं करना चाहता। वह अपने में जीता है। न किसी के लेने में है, न किसी के देने में है। न माधो का लेना, न साधो का देना। अपने में काफी है। छोटे बच्चे की एक पर्याप्तता है, वह अपने में पूरा है। कोई कमी नहीं है। वासना की कोई दौड़ नहीं है। कोई भविष्य नहीं है। इसी क्षण में पूरा का पूरा जी रहा है। तितली के पीछे दौड़ रहा है तो बस यह दौड़ना ही सब कुछ है। कंकड़-पत्थर नदी के किनारे बीन रहा है तो यह बीनना ही सब कुछ है। इस क्षण में उसकी समग्रता है, उसका पूरा अस्तित्व लीन है।

इस पर प्रेम उपजेगा। और जिस दिन तुम शिशुवत हो जाओगे, तुम पर भी प्रेम उपजेगा। इसलिए संतों पर बड़ा प्रेम आता है। उनके पास होना ही, और उनके प्रति प्रेम से भर जाना हो जाता है। कोई अंतस का एक संबंध जुड़ने लगता है। तुम बचाना चाहोगे। तुम संत के साथ ऐसा ही व्यवहार करोगे जैसे वह छोटा बच्चा है। उसके तुम चरणों में भी झुकोगे, क्योंकि उसकी ऊंचाई अनंत; और तुम उसे पंख फैला कर अपने में बचा भी लेना चाहोगे, क्योंकि वह शिशुवत है। इसलिए संत के प्रति बड़ी अनूठी प्रतीति होती है। श्रद्धा की, प्रेम की, करुणा की, सबकी सम्मिलित अनुभूति होती है। जो जानता है वही जानता है। न तुम्हें वैसी अनुभूति हुई हो तो बड़ा कठिन हो जाएगा। तुम संत को छिपा लेना चाहोगे, बचाना चाहोगे, उसे कांटा न गड़ जाए, पत्थर न लग जाए। क्योंकि वह शिशुवत हो गया है। तुम उसके चरणों में सिर भी रखोगे; क्योंकि उससे और बड़ी कोई ऊंचाई नहीं। तुम्हारा सारा हृदय उसकी तरफ बहेगा; क्योंकि उससे बड़ा तुम कोई प्रेम-पात्र न पा सकोगे।

संतों को जिन्होंने मारा है वे निश्चित विचारणीय लोग हैं। क्योंकि संतत्व के निकट सहज ही प्रेम उपजता है, बचाने का भाव उपजता है। तुम संत को आशीर्वाद भी देना चाहोगे--अपने गहनतम हृदय से! तुम उससे आशीर्वाद भी पाना चाहोगे और उसे आशीर्वाद भी देना चाहोगे। तुम अपने जीवन को खोकर भी उसके जीवन को बचाने की आकांक्षा करोगे। इसलिए बड़ी अनूठी घटना है कि जब कोई जुदास जीसस को धोखा देता है। क्योंकि असंभव जैसी घटना है, पर घटती है। इससे पता चलता है कि कितनी आदमी की ऊंचाई हो सकती है और कितनी आदमी की नीचाई हो सकती है। जीसस जैसी ऊंचाई हो सकती है, जुदास जैसी नीचाई हो सकती है।

इसलिए जुदास नाम भी अपमानित हो गया। यहूदियों में जुदास का नाम बहुत प्रचलित नाम था। जीसस के बारह शिष्यों में दो का नाम जुदास था। बहुत प्रचलित नाम था। जिस गांव में जाओगे सौ-पचास जुदास पाओगे। कुछ नाम सभी जगह प्रचलित होते हैं। लेकिन जीसस को सूली देने के बाद वह नाम रखना भी मुश्किल हो गया। उस नाम में ही निंदा हो गई। वह नाम ही घृणित हो गया। क्या हो गया? क्योंकि इससे और नीचाई क्या हो सकती है कि एक शिशुवत व्यक्ति को इस जुदास ने सूली पर लटकवा दिया? पीड़ा फिर उसको भी अनुभव हुई तत्क्षण, क्योंकि इतना बुरा आदमी भी नहीं हो सकता न! कितना ही बुरा रहा हो, उसे भी यह प्रगाढ़ अनुभव हुआ कि यह मैंने क्या किया? तीस रुपए में बेच दिया! केवल तीस रुपए मिल थे उसे, तीस चांदी के सिक्के। उस आधार पर उसने जीसस को धोखा दे दिया, पकड़वा दिया।

और एक आदमी यह जीसस है कि जाने के पहले, विदा होने के पहले उसने सबके पैर धोए। उसमें जुदास के पैर भी थे। एक शिष्य ने पूछा कि यह आप क्या कर रहे हैं? आप और हमारे पैर धो रहे हैं! हम अपने आंसुओं से धोएं, अपने प्राणों से धोएं, तो भी थोड़ा है। लेकिन आप क्यों यह कर रहे हैं? तो जीसस ने कहा, ताकि तुम्हें याद रहे। क्योंकि ये मेरे आखिरी क्षण हैं। जल्दी ही तुममें से कोई मुझे धोखा देगा। यह रात आखिरी है। ताकि तुम्हें याद रहे। और जो मैंने तुम्हारे साथ किया, तुम नीचे से नीचे व्यक्ति के साथ वही करना। क्योंकि अगर मैं तुम्हारे पैर धो सकता हूं तो फिर तुम किसी के भी पैर धोने के योग्य हो और कोई भी तुमसे पैर धुलाने के योग्य है। तुम छोटे से छोटे हो जाना। जो मैंने तुम्हारे साथ किया है वह तुम दूसरों के साथ करना, और सदा याद रखना। और यह भी याद रखना कि जो मुझे धोखा देगा क्षण भर बाद, उसके भी मैं पैर धो रहा हूं। तुम उस पर भी नाराज मत होना।

एक ऊंचाई यह हो सकती है!

और तब जीसस ने जुदास के पैर धोने के बाद कहा कि अब तू जल्दी कर, क्योंकि रात बीतने के करीब है। कोई भी नहीं समझा कि जीसस क्या कह रहे हैं। तू जल्दी कर, तुझे जो भी करना है जल्दी कर। क्योंकि अब रात बीतने के करीब है। और जुदास वहां से नदारद हो गया। उसने तीस रुपए लिए और लोगों को खबर दे दी कि जीसस कहां हैं। जीसस को जब पकड़ कर ले जाया गया तब उसके प्राणों को पीड़ा हुई। तब वह समझा कि उसने क्या कर दिया है! तीस रुपए के अंधेपन में उसने क्या कर दिया है! ये तीस ठीकरे किस काम के हैं? उसे बोध हुआ। वह भागा और जाकर उसने प्रधान पुरोहित को, जिसने तीस रुपए दिए थे, जाकर तीस रुपए उसके ऊपर फेंक दिए और कहा कि रख लो अपने ये रुपए। और उसने जाकर आत्महत्या कर ली। जुदास जीसस को सूली लगने के बाद ही आत्महत्या कर लिया उसी दिन।

ये दो छोर हैं। नीचे-नीचे तुम अगर जाओ तो अंत में सिर्फ आत्महत्या के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और इससे बड़ी क्या नीचाई होगी--एक शिशुवत व्यक्ति को धोखा दे दिया! जिसका तुम पर इतना भरोसा था कि तुम्हारे पैर धोए, और जिसका तुम पर इतना प्रेम था कि तुम उसकी हत्या करवाने जा रहे थे तो भी उसने कहा, अब तू जल्दी कर जो भी तुझे करना है, क्योंकि रात फिर बीती जाती है।

जिस पुरोहित ने तीस रुपए दिए थे और जीसस को फांसी लगवाई थी वह भी डरा कि इन तीस रुपयों को वापस कैसे रखना? उसको भी लगा कि ये हैं तो रुपए बहुत घृणित, इनका कोई उपयोग तो हो नहीं सकता। तो उसने अपने सब पुरोहितों को इकट्ठा किया और पूछा, इनका क्या करना? उन्होंने कहा, इनका कुछ उपयोग नहीं हो सकता, एक ही काम हो सकता है कि एक जमीन बिकती है उसे हम खरीद लें इन रुपयों से और भिखमंगों और गरीबों के लिए मरघट नहीं है तो उनके लिए मरघट हो जाए। बस इन रुपयों से मरघट ही खरीदा जा सकता है।

वह मरघट जेरूसलम में अब भी है। उन तीस रुपयों से सिर्फ मरघट खरीदा जा सकता है। जीवन का कुछ भी उनसे खरीदना जीवन को कलुषित करना होगा। सिर्फ लाशें ही दफनाई जा सकती हैं उन तीस रुपयों से। यह पुरोहित को भी लगा, जिसने कि फांसी लगवाई है। वह भी उन रुपयों को रख न सका वापस। वे रुपए भारी थे पाप से। और बड़े से बड़े पाप से भारी थे। क्योंकि एक शिशुवत, बच्चे को... । एक छोटा सा बच्चा रास्ते पर जा रहा हो और तुम उसकी हत्या कर दो।

लाओत्से कहता है, "जंगली कीड़े उसे दंश नहीं देते, जंगली जानवर उस पर हमला नहीं करते, और शिकारी परिन्दे उस पर झपट्टा नहीं मारते।"

पर आदमी उन सबसे गया-बीता है। और आदमी ने शिशुवत व्यक्तियों की भी हत्याएं की हैं; उनको भी जहर पिला दिया है। इसे तुम ख्याल रखना कि आदमी की ऊंचाई कोई जानवर नहीं पा सकता और आदमी की

नीचाई भी कोई जानवर नहीं पा सकता। अगर आदमी ऊंचा होना चाहे तो परमात्मा की ऊंचाई उसकी ऊंचाई हो जाती है। और अगर नीचा होना चाहे तो कोई जानवर उससे प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। कोई जानवर प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता; हिंस्र से हिंस्र पशु भी पीछे छूट जाएंगे। आदमी का कोई मुकाबला नहीं है। नीचे गिरे तो नरक तक जा सकता है; ऊंचा उठे तो स्वर्ग उसकी श्वास-श्वास में बस जाता है।

लेकिन लाओत्से कहता है कि जब तुम शिशुवत हो जाते हो तो सारा अस्तित्व जैसे तुम्हारी सुरक्षा करता है। तुम जब आक्रामक नहीं हो तो कोई क्यों आक्रामक होगा?

"यद्यपि उसकी हड्डियां मुलायम हैं, उसकी नसें कोमल, तो भी उसकी पकड़ मजबूत होती है।"

छोटे बच्चे की पकड़ का तुम्हें ख्याल है? तुम एक अंगुली दे दो, वह अंगुली को पकड़ ले, तब तुम्हें पता चलेगा कि उसकी पकड़ मजबूत है। कोमल की पकड़ मजबूत! छोटा पौधा झुकता है तो भी जड़ों की पकड़ मजबूत है। जड़ें बड़ी छोटी हैं और बड़ी कोमल हैं। कोमलता की भी एक पकड़ है जो बड़ी मजबूत है। सच तो यह है कि कोमलता से बड़ी मजबूत जड़ें किसी चीज की नहीं हैं। कोमल से ज्यादा शक्तिशाली कोई नहीं है। निर्मल से ज्यादा शक्तिशाली कोई नहीं है। सरलता से ज्यादा शक्तिशाली कोई भी नहीं है। निर्दोषता परम शक्ति है, इनोसेंस, उसकी पकड़ मजबूत है। और अगर तुम्हारे हृदय से बहा हो तुम्हारा चरित्र तो उस चरित्र की भी पकड़ ऐसी ही मजबूत होगी; उसे कोई हिला न सकेगा। तूफान आएं, चले जाएं; तुम पर कोई चोट, कोई निशान भी नहीं छूटेगा।

"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।"

यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। छोटा बच्चा अभी विभाजित नहीं है सेक्स की दृष्टि से भी। छोटे बच्चे के भीतर की स्त्री और पुरुष अभी मिले हुए हैं। इसीलिए तो छोटा बच्चा, चाहे वह लड़का हो, तो भी स्त्रैण मालूम होता है। लड़के और लड़कियों में एक उम्र तक कोई फर्क नहीं होता; दोनों एक जैसे कोमल होते हैं। फर्क इतना ही होता है, कपड़े हम उनको अलग-अलग पहना देते हैं। संभावनाएं भिन्न हैं उनकी, लेकिन एक सीमा तक उनमें कोई फर्क नहीं होता; तब तक वे दोनों एक ही जैसे होते हैं। क्योंकि दोनों के भीतर के स्त्री और पुरुष संयुक्त हैं। अभी वर्तुल पूरा है। अभी वर्तुल कहीं से टूटा नहीं है।

इसलिए तो बच्चे के अंग-अंग पूरे हैं। और बच्चा एक गहन ब्रह्मचर्य में जीता है। अभी वासना नहीं जगी। वासना के साथ ही भेद शुरू होगा। वासना जगेगी, तभी तो वह पुरुष और स्त्री बनेगा। और वासना के जगते ही भीतर का वर्तुल टूट जाएगा। भीतर की स्त्री से मिलन छूट जाएगा, भीतर के पुरुष से मिलन छूट जाएगा। फिर बाहर खोज शुरू होगी। जिससे भीतर हम टूट जाते हैं उसको हम बाहर खोजते हैं।

बच्चा काफी है। बच्चा एक तृप्त अवस्था है। उसकी सारी जीवन-ऊर्जा भीतर ही संयुक्त है। इसलिए तुम किसी बच्चे को कुरूप न पाओगे। सभी बच्चे सुंदर होते हैं। फिर क्या हो जाता है बाद में? यही सुंदर बच्चे बड़े कुरूप व्यक्तियों में परिवर्तित हो जाते हैं। फिर ऐसा सौंदर्य संतत्व को पुनः उपलब्ध होता है, अन्यथा नहीं उपलब्ध होता। जब फिर दुबारा भीतर की स्त्री और पुरुष मिल जाते हैं, तब फिर ब्रह्मचर्य आता है। तब कोई जरूरत नहीं रह जाती बाहर की खोज की। वही ब्रह्मचर्य का अर्थ है।

तो दो ब्रह्मचर्य हैं। एक बच्चे का ब्रह्मचर्य, क्योंकि वह भेद के पूर्व। और एक संत का ब्रह्मचर्य, क्योंकि वह भेद के बाद।

"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है... ।"

उसे कोई पता नहीं कि नर और नारी का कोई मिलन होता है। वह अभी मिला ही हुआ है; अभी उसके भीतर सब पूरा है।

"तो भी उसके अंग-अंग पूरे हैं।"

अंग-अंग पूरे हैं, क्योंकि वह पूरा है। जब भीतर पूर्णता होती है तो रोएं-रोएं में पूर्णता होती है।

"जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है।"

अभी उसका बल विभाजित नहीं हुआ; अभी उसका वर्तुल टूटेगा। चौदह वर्ष की उम्र में लड़की का मासिक धर्म शुरू होगा। वर्तुल टूट गया। लड़के की काम प्रौढ़ता होगी; चौदह वर्ष में वह योग्य हो गया, अब बच्चों को जन्म दे सकता है। उसका वर्तुल टूट गया। जब भीतर का वर्तुल टूट जाता है तो जिससे हमारा संबंध अब तक भीतर था उसको हम बाहर खोजते हैं; बेचैनी शुरू होती है।

इसलिए चौदह वर्ष की उम्र सबसे ज्यादा बेचैन उम्र है। सबसे ज्यादा बेचैन। समझ ही नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है! क्यों हो रहा है! चौदह वर्ष का लड़का और लड़की बड़ी संकट की अवस्था में होते हैं। जानते भी नहीं क्या हो रहा है। जो अतीत था वह खो गया; जो सुख था, जो शांति थी, वह खो गई। एक बेचैनी है; एक अनजानी प्यास है। किस पानी से बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। कैसे बुझेगी, इसका भी कोई पता नहीं है। सब स्वप्न वासना से भर जाते हैं। सारा चित्त वासना से भर जाता है। किसी से कह भी नहीं सकता; कोई उसकी सुनने को भी नहीं है। किसी के साथ अपने भीतर की अवस्था को बता भी नहीं सकता। बताना भी चाहे तो उसके पास शब्द भी नहीं हैं अभी कि क्या हो रहा है। बस सिर्फ बेचैन है। कुछ खोया-खोया है।

तुम चौदह वर्ष के लड़के-लड़कियों को देखो, उनकी आंखों में तुम्हें पता लगेगा, कुछ खोया-खोया है। कुछ था जो खो गया है। और कुछ मिलने की तलाश है जिसका पता नहीं, वह कहां मिलेगा। वर्तुल टूट गया है। भीतर की ऊर्जा अब खंडित हो गई है। इसलिए चौदह साल के लड़के और लड़कियां बहुत उत्तेजित अवस्था में होते हैं। और उनको सहना मां-बाप को भी मुश्किल होता है। वे जहां भी जाते हैं अपने साथ एक उत्तेजना का वातावरण ले जाते हैं। क्योंकि न तो वे अब बच्चे रहे और न अभी जवान हुए। एक बड़ी बेहूदी अवस्था है। उनकी आवाज कठोर हो जाती है लड़कों की, भर्रायी हुई हो जाती है। वह भर्रायी हुई आवाज भीतर के संगीत के टूट जाने के कारण है। लड़कियां शरमाई-शरमाई हो जाती हैं, अपने को छुपाई-छुपाई रखना चाहती हैं। कुछ शरीर में हो रहा है जो समझ के बाहर हो रहा है। लड़कियां बड़ी पीड़ित होती हैं जब उनका मासिक धर्म शुरू होता है। क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, कोई उत्तर नहीं है आस-पास। और अपने ही सहारे अंधेरे में रास्ता खोजना है।

इन्हीं क्षणों में भटकाव हो जाता है। समाज ऐसा चाहिए जो इस क्षण में बड़ा सहयोग दे। मां-बाप, शिक्षक। क्योंकि इस समय से ज्यादा फिर और कोई महत्वपूर्ण क्षण कभी नहीं आएगा। इस क्षण में जो चूक हो गई तो पूरे जीवन भटकाव होगा। और बड़े दुख की बात यह है कि इस क्षण में गलत लोग ही सहायता देने आते हैं, ठीक लोग नहीं। तुम किसी संत के पास नहीं जा सकते पूछने; जाना चाहिए संत के पास पूछने। मुहल्ले-पड़ोस के उपद्रवी लफंगे, उनसे तुम पूछोगे, उनका सत्संग करोगे। क्योंकि वे ही इन बातों को बता सकते हैं। गलत का शिक्षण गलत लोगों से होता है।

मैं अपने संन्यासियों को कहता हूं कि तुम अपनी सारी चिंतना को, सारी चिंता को मेरे पास ले आओ। तो कभी-कभी कोई बुजुर्ग बैठा होता है मेरे पास तो उसे बड़ी बेचैनी होती है। एक सज्जन मुझसे कहने लगे कि यह क्या मामला है! आपको तो सिर्फ ध्यान के संबंध में ही इन्हें समझाना चाहिए। परमात्मा के संबंध में। यह लड़का अपनी कामवासना की बात कर रहा है। इसको आप क्यों समझा रहे हैं? इससे आपको क्या लेना-देना?

अगर इसे ठीक लोग न बताएंगे तो इसे गलत लोग बताएंगे। यह सीखेगा तो ही। अगर इसके लिए कोई सम्यक मार्ग न होगा जानने का तो भी यह जानेगा--गलत लोगों से जानेगा। और सारे लोग जीवन की बड़ी महत्वपूर्ण बातें गलत लोगों से जानते हैं। फिर जीवन भर अड़चन बनी रहती है। और जो संत हैं वे निंदा किए जा रहे हैं। इसलिए वे सिखाएंगे कैसे? साधु हैं, वे गाली दिए जा रहे हैं। इसलिए वहां तो सीखने का कोई उपाय नहीं है। असाधु तैयार हैं सिखाने को। लेकिन उनसे जो भी सीखा जाएगा वह गंदे कुएं का पानी है। उसको पीना जहरीला है।

यह समाज इतना विकृत है इसीलिए कि हम चौदह साल की उम्र में, जो बहुत महत्वपूर्ण क्षण है, क्योंकि वहीं बच्चा टूटता है। अगर यह क्षण चूक गया तो जोड़ने का क्षण बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि कैसे टूटता है इस पर ही निर्भर होगा कैसे जुड़ेगा। अगर बहुत व्यवस्था से टूट हो सके, होशपूर्वक उसके भीतर के स्त्री और पुरुष अलग हो सकें, उसकी जानकारी में यह सब हो सके कि क्या हो रहा है, तो जिस दिन उसे इन दोनों को मिलाना होगा उसके पास कुंजी होगी। क्योंकि जिस तरह वह अलग हुआ था उसी तरह मिलने का इंतजाम कर लेगा।

इसलिए दो अड़चन के क्षण हैंः एक चौदह वर्ष के करीब और एक उनचास वर्ष के करीब। चौदह वर्ष के करीब आदमी टूटता है और उनचासवें वर्ष के करीब फिर दूसरा क्षण आता है, पचास वर्ष के करीब, जहां जुड़ाव होना चाहिए। और हर सात वर्ष के बाद मंजिलें हैं। इसलिए पचास नहीं कह रहा हूं, उनचास।

सात वर्ष बच्चा बालक है। सात वर्ष के बाद काम-ऊर्जा सघन होनी शुरू होती है। चौदहवें वर्ष में काम-ऊर्जा प्रकट होती है। इक्कीसवें वर्ष में काम-ऊर्जा अपनी पूरी चरम उत्कर्ष स्थिति में होती है। अट्ठाइसवें वर्ष में व्यवस्थित हो जाती है। वह जो ऊंचाई थी इक्कीस वर्ष की वह खो जाती है, और एक संतुलन आ जाता है। पैंतीसवें वर्ष में उतार शुरू हो जाता है; पैंतीसवें वर्ष में जवानी उतरने लगती है। घाटी शुरू हो गई। बयालीसवें वर्ष में चिंतन फिर शुरू होता है, जैसा सात वर्ष में शुरू हुआ था। इसलिए धर्म का आविर्भाव करीब-करीब लोगों के मन में बयालीसवें वर्ष के करीब होना शुरू होता है। थोड़ा हेर-फेर होता है, बाकी औसत।

जुंग ने, पश्चिम के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि मैंने जितने मरीज देखे चालीसवें साल के बाद, उनकी बीमारी धार्मिक है। उनको धर्म चाहिए।

बयालीसवें वर्ष के करीब धर्म का चिंतन शुरू होता है। देख ली जिंदगी, समझ लिया सब; कुछ सार न पाया। यह अवस्था फिर वैसी है जैसी सात साल में थी। अब एक नया उपक्रम शुरू हो रहा है। उनचासवें वर्ष में जोड़ का क्षण आता है, जैसा चौदह वर्ष में आया था। अगर चौदह वर्ष की घटना ठीक से घटी हो तो उनचासवें वर्ष की घटना सुगमता से घट जाती है। जो टूटा था वह फिर जुड़ जाता है।

इसलिए हमने पचास वर्ष में वानप्रस्थ की अवस्था मानी थी कि पचास वर्ष में आदमी वानप्रस्थ हो जाए। वानप्रस्थ का अर्थ हैः मुंह जंगल की तरफ हो जाए। जंगल न जाए, लेकिन मुंह जंगल की तरफ हो जाए। पीठ हो जाए संसार की तरफ। गया, वह वक्त गया। सपना, दुख-सपना, जो भी था, बीत गया। उसे देख लिया, जान लिया। अब फिर भीतर जुड़ गए। यह जो भीतर का जुड़ना है यह फिर एक नए ब्रह्मचर्य का उदय है। इस क्षण में फिर आदमी बालक जैसा हो जाना चाहिए। न हो पाए तो जिंदगी में कहीं कोई भूल हो गई।

"यद्यपि वह नर और नारी के मिलन से अनभिज्ञ है, तो भी उसके अंग पूरे-पूरे हैं।"

पचास वर्ष में फिर नर और नारी का मिलन व्यर्थ हो जाएगा। अब भीतर के नर और नारी का फिर मिलन होगा। वह फिर शिशुवत हो जाएगा। अब फिर उसके अंग पूरे-पूरे हो जाएंगे। और जब कभी यह घटना घटती है तो इससे ज्यादा सुंदर आदमी फिर न पा सकोगे। इसका बुढ़ापा बड़ा सौंदर्य से भरा हुआ होगा।

आमतौर से बुढ़ापा बड़ी दरिद्रता से भरा हुआ होता है। क्योंकि वर्तुल फिर जुड़ ही नहीं पाता। टूटा कैसे, उसका पता नहीं है, तो जोड़ कैसे पाओगे? जैसे टूटा है उसके ही विपरीत चल कर तो जुड़ना होगा।

"जिसका अर्थ हुआ कि उसका बल अक्षुण्ण है। दिन भर चीखते रहने पर भी उसकी आवाज भर्राती नहीं।"

बच्चा दिन भर रोता है, चिल्लाता है, चीखता है, आवाज नहीं भर्राती। क्योंकि भीतर एक अहर्निश नाद बज रहा है; भीतर की स्त्री और पुरुष मिल रहे हैं। अधूरापन नहीं है।

"जिसका अर्थ हुआ कि उसकी स्वाभाविक लयबद्धता पूर्ण है।"

लयबद्धता का क्या अर्थ है? लयबद्धता का अर्थ हैः तुम पूरे हो, कुछ कमी नहीं है। तुम्हारी प्रेयसी, तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे भीतर है। मैं-तू दोनों भीतर हैं, इकट्ठे हैं। उन दोनों के मिलन से जो संगीत पैदा होता है वही लयबद्धता है।

संभोग में उसकी ही तो क्षण भर को झलक मिलती है। वह झलक क्षण भर की ही होगी। क्योंकि बाहर की स्त्री से तुम कितनी देर मिले रहोगे? क्षण भर को भी मिलना हो जाए तो बहुत है। पराए से तो तुम दूर हो ही; एक क्षण को भी पास आना हो जाए तो काफी है। समाधि में वही सतत मिलता है, संभोग में जो क्षण भर को मिलता है। समाधि का अर्थ हैः अब भीतर संभोग हो गया, अब भीतर लयबद्धता बजने लगी; भीतर का तार पूरा जुड़ गया। अब कोई कमी नहीं है।

संत है पूरा अस्तित्व अपने में। कोई जरूरत न रही; कोई कमी न रही। तभी तो संत के आस-पास एक तृप्ति की वर्षा होती रहती है। तुम उसके पास भी बैठोगे, तुम उसे देखोगे भी, तो भी तुम पाओगे कि कुछ बरस रहा है, कुछ अहर्निश बरस रहा है। इसलिए तो हिंदुओं ने, जो कि पुराने से पुराने धर्म के तलाशी हैं, दर्शन को इतना मूल्य दिया है। पश्चिम के लोग समझ ही नहीं पाते कि दर्शन का क्या मतलब? पश्चिम से कोई आता है तो वह पूछने को आता है, संत को देखने को नहीं। देखने से क्या लेना-देना है? देख तो तस्वीर ही लेते हैं। यहां आने की क्या जरूरत थी! सवाल लेकर आता है। पश्चिम से जब कोई आता है तो सवाल लेकर आता है, पूछने आता है, विचार करने आता है। पूरब ने जान लिया राज। पूरब कहता हैः संत को देख लिया, आंखें भर गईं; बस बहुत है। पूछना क्या है? और जो देखने से न दिखा वह पूछने से कैसे दिखेगा? सवाल लेकर थोड़े ही संत के पास जाना है। संत के पास तो खुला हुआ मन लेकर जाना है, ताकि दर्शन हो जाए।

यह दर्शन जैसी घटना हिंदुस्तान के बाहर कहीं भी नहीं घटी है। क्योंकि इस राज को वे पहचान ही न पाए कि संत एक अहर्निश वर्षा है, एक तृप्ति है, एक परितोष है; जहां कोई कमी नहीं है, जहां सब भरा-भरा है। और जिसका भराव इतना है कि ऊपर से बह रहा है; एक बाढ़ आई है। तुम कहां पूछने जा रहे हो? तुम सिर्फ बैठ जाओ और बाढ़ में थोड़े नहा लो, थोड़ी सुगंध से भर जाओ। संत बंट रहा है--तुम थोड़ा बांट लो, और अपने साथ ले जाओ।

यह जो घटना घटती है, तभी घटती है, जब भीतर के स्त्री-पुरुष का मिलन हो जाता है। तब फिर से बच्चा पैदा हो गया; एक नया जन्म हुआ। यह द्विज की अवस्था है, जिसको जीसस ने रिबर्थ कहा है।

निकोडेमस से जीसस ने कहा कि जब तक तू फिर से पैदा न हो जाए तब तक तू मेरे परमात्मा के राज्य में प्रविष्ट न हो सकेगा। निकोडेमस ने कहा, तो फिर से पैदा होने का तो मतलब हुआ कि मरना पड़े, फिर जन्म लेना पड़े। जीसस ने कहा कि नहीं, जीते जी मरने की विधि है।

तब जन्म होता है, तब फिर से बच्चा आया संसार में। इसके बाल सफेद होंगे, इसके चेहरे पर झुर्रियां होंगी। लेकिन नहीं, इस जगत ने इससे बड़ा सौंदर्य नहीं देखा है। जब कोई ब.ूढा फिर से बच्चा हो जाता है तब अप्रतिम

सौंदर्य का जन्म होता है। क्योंकि यह सौंदर्य अब भीतर का है। चरित्र भीतर का था, अब यह सौंदर्य भी भीतर का है। अब कुछ भी बाहर का नहीं है। अब यह लेता नहीं, अब यह सिर्फ देता है। अब यह सिर्फ बांटता है। यह अनंत के स्रोत से जुड़ गया। जितना बांटता है उतना बढ़ता है। संत एक सतत प्रसाद है। वह बांट रहा है, बंट रहा है। जो भी ले सकते हैं वे ले लें। जो भी देख सकते हैं वे देख लें। जो भी सुन सकते हैं वे सुन लें।

"लयबद्धता को जानना शाश्वत के साथ तथाता में होना है।"

और जैसे ही भीतर लय हो जाती है बाहर सब विसंगीत खो जाता है। जो अपने से जुड़ गया वह परमात्मा से जुड़ गया। इसलिए तो याद आती है बचपन की बार-बार; बार-बार पछताते हो कि कहीं बचपन थोड़ी देर और टिक जाता। बार-बार सपना देखते हो कि कैसे प्यारे दिन थे बचपन के! एक-एक क्षण कैसी गरिमा से भरा था! न कोई चिंता थी, न कोई संताप था, न कोई दायित्व था, न कोई विचार पीड़ित करते थे। हर घड़ी कितनी आनंदपूर्ण थी! बचपन की तरफ बार-बार लौट कर तुम देखते हो।

उस लौट कर देखने में कुछ सार नहीं। एक और बचपन आगे प्रतीक्षा कर रहा है, जो पहले बचपन से बहुत बड़ा है। जिस दिन तुम उस बचपन को जान लोगे उस दिन पहला बचपन एकदम फीका पड़ जाएगा। वह जैसे केवल दूसरे आने वाले परम बचपन का संकेत मात्र था, सिर्फ सूचना मात्र थी, सिर्फ एक झलक थी। तुम जब तक अपने पीछे लौट कर देख रहे हो तब तक तुम्हें पता नहीं कि आगे एक और बचपन आ सकता है। तुम्हारे हाथ में है वह घड़ी।

अगर तुम उस बचपन को पा लिए तो फिर तुम्हारा कोई जन्म-मरण न होगा। अगर तुमने उसे न पाया, फिर आएगा बचपन जो तुम मांग रहे हो, लेकिन वह फिर बाहर से आएगा। जब तक तुम भीतर से न ला सकोगे बचपन को तब तक तुम्हें बाहर से बचपन आता रहेगा। और जब तक तुम भीतर से न ला सकोगे मृत्यु को तब तक बाहर की मृत्यु तुम्हें झेलनी पड़ेगी। तब तक तुम पैदा होओगे, मरोगे; आवागमन जारी रहेगा। जिस दिन तुम भीतर से ले आओगे बचपन को, फिर बाहर के बचपन की कोई जरूरत न रही। तुम खुद ही गर्भ बन गए और तुमने स्वयं को ही स्वयं से जन्म दे दिया। तुम स्वयंभू हो गए। तुम न केवल अपने बच्चे हो, अपने मां-बाप भी हो गए। अब तुम पूरे हो गए। अब कुछ कमी न रही। अब तुम्हें मरने की कोई जरूरत नहीं। अब तुमने अमृत को पा लिया।

"शाश्वतता को जानना विवेक कहलाता है। लेकिन जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण है; और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।"

लाओत्से कहता है, जीवन में संशोधन करना अशुभ है।

"टु इम्प्रूव अपान लाइफ इ.ज काल्ड एन इल ओमेन।"

वह यह नहीं कहता कि तुम अपने चरित्र को सम्हालो, संशोधन करो, शुद्ध करो, चरित्रवान बनो, नैतिक बनो। वह कहता है, यह सब तो अशुभ लक्षण है, क्योंकि यह सब ऊपर-ऊपर होगा। तुम फिर से जन्मो। इम्प्रूवमेंट नहीं, रिबर्थ; सुधार नहीं, नया जन्म।

सुधार से कुछ भी न होगा। वह तो घर को सजाना है; उससे आत्मा में कोई क्रांति न होगी। तुम कितने ही अच्छे हो जाओ, सज्जन से सज्जन हो जाओ, तो भी तुम संत न हो सकोगे। दुर्जन न रहोगे, सज्जन हो जाओगे। दुर्जन भी मरते हैं, सज्जन भी मरते हैं। क्योंकि दोनों की संपदा बाहर है। दुर्जन फिर पैदा होते हैं; सज्जन फिर पैदा होते हैं। क्योंकि दोनों की संपदा बाहर है। सिर्फ भीतर की संपदा का आदमी फिर पैदा नहीं होता।

तो तुम सुधार में मत लगना। क्रांति से कम में काम न चलेगा। आमूल रूपांतरण चाहिए। टोटल, समग्र ट्रांसफार्मेशन। रत्ती भर कम से काम नहीं चलेगा। तुम ऊपर से रंग-रोगन मत लगाना। क्रोध को दबा कर तुम करुणा मत दिखाना। लोभ को थोड़ा काट कर दान मत कर देना। इससे कुछ भी न होगा। तुम्हारा नया जन्म चाहिए। तुम पूरे के पूरे ही गलत हो। तुम ऐसे मकान नहीं हो कि जिसमें थोड़ा सा यहां पलस्तर बदल दिया और वहां थोड़ा डंडा खड़ा कर दिया और खंभा बदल दिया और सब ठीक हो गया। रिनोवेशन से काम न चलेगा। तुम बिल्कुल जीर्ण-जर्जर भवन हो। तुम खंडहर हो। कितना ही तुम्हें ऊपर-ऊपर से सुधारें, तुम सुधरोगे न। और जब तक एक कोने को ठीक कर पाओगे, पाओगे दूसरा कोना बिगड़ गया। दूसरे कोने को ठीक करने जाओगे, पहला तब तक जराजीर्ण हो चुका होगा।

नहीं, इस पूरे भवन को गिरा देना है। पुनर्जन्म चाहिए। इस भवन को बिल्कुल ही गिरा देना है; नये आधार रखने हैं। तुम जैसे हो, इसको सुधारने की चिंता मत करो। वही तो सज्जन लोग सारी दुनिया में कर रहे हैं। तुम पूरे नए भवन को बनाने का विचार करो। उसी का नाम संन्यास है।

संन्यास का अर्थ है कि मैं आमूल बदलने को तत्पर हुआ हूं। संन्यास क्रांति है, सुधार नहीं। संन्यास कपड़े बदल लेना नहीं है। संन्यास नाम बदल लेना नहीं है। संन्यास आमूल क्रांति है; सब बदल देना है। रत्ती भर इसमें से बचाने योग्य नहीं है। यह सब जहरीला है जो तुम्हारे पास है। यह सब विषाक्त हो गया है। तुम्हारा क्रोध ही बुरा नहीं है, तुम्हारे प्रेम तक में तुम्हारा क्रोध घुस गया है। वह भी विषाक्त हो गया है। तुम्हारी घृणा तो बुरी है ही, तुम्हारे प्रेम में भी तुम्हारी घृणा की छाया पड़ गई है। वह भी नष्ट हो गया है। तो तुम अगर सोचो कि घृणा को काट दें, प्रेम को बचा लें, तो तुम गलती में हो। उस प्रेम में तुम्हारी घृणा बच जाएगी। उस पर छाया पड़ गई है। वह प्रेम तुम्हारी घृणा को काफी सोख गया है। बहुत दिन से साथ-साथ रहे हैं; वे दोनों ही विकृत हो गए हैं। तुम्हारा बुरा तो बुरा है ही, तुम्हारा जिसको तुम भला कहते हो वह भी बुरा हो गया है। इसलिए आमूल!

लाओत्से कहता है, "जीवन में संशोधन करना अशुभ लक्षण है।"

इस भूल में तुम पड़ना ही मत। क्योंकि इसमें जीवन गंवाओगे, कुछ होगा नहीं। अशुभ लक्षण है।

"और मनोवेगों को राह देना आक्रामक है।"

लेकिन इसका तुम यह मतलब भी मत समझ लेना कि जो भी बुरा है उसको राह देनी है। लाओत्से कहता है, क्रोध को काटने से कुछ भी न होगा। क्रोध को काट-काट कर करुणा न आएगी। लेकिन लाओत्से तत्क्षण यह भी कहता है कि इसका यह मतलब नहीं है कि तुम क्रोध करने में लग जाना। क्योंकि कर-करके भी कोई करुणा न आएगी।

तुम्हें दो ही रास्ते दिखाई पड़ते हैंः या तो क्रोध करो या क्रोध दबाओ। अगर कोई कहता है, मत दबाओ! तुम फौरन समझते हो, करो। क्योंकि तुम्हें तीसरे विकल्प का पता नहीं है। वही तीसरा विकल्प नव-जीवन का सूत्र हैः तुम साक्षी बनो। न तो तुम करो और न तुम दबाओ। क्योंकि दोनों में तुम कर्ता हो जाते हो। और कर्ता ही तुम्हारा रोग है। अहंकार ही तुम्हारा रोग है।

ऐसा हुआ कि सिकंदर भारत की तरफ यात्रा पर आ रहा था। तो उसे खबर मिली एक मरुस्थल को पार करते समय कि एक मरूद्यान, शिवा नाम के मरूद्यान में एक छोटा सा मंदिर है और उस मंदिर का पुजारी बड़ा अनूठा पुरुष है। सिकंदर अपने से अनूठा तो किसी को मानता नहीं था। जब बार-बार लोगों ने खबर दी कि सच ही अनूठा पुरुष है, इसके दर्शन कर ही लेने चाहिए, तो वह दर्शन करने गया।

संत को यूनानी भाषा नहीं आती थी। सिकंदर के आदमियों ने पहुंच कर उसे थोड़ी यूनानी भाषा पहले सिखाई कि सिकंदर आ रहा है तो आप कम से कम कुछ शब्द तो उससे बोल दें। संत ने बहुत कहा कि बोलने से हमेशा भूल होती है, मैं चुप रहना ही पसंद करता हूं। क्योंकि चुप रहने में, कम से कम जो मैं हूं वही तुम देखोगे। शब्द बोलने में खतरा है, तुम अपनी व्याख्या करोगे। लेकिन उन लोगों ने नहीं माना। उन्होंने कहा, सिकंदर आता है, वह अगर कुछ पूछ बैठा, और कम से कम स्वागत में तो दो शब्द कहने ही पड़ेंगे। संत राजी हो गया। संत सदा ही राजी है। उसने कहा, ठीक। तो उन्होंने कुछ शब्द सिखा दिए।

सिकंदर आया। तो संत को आदत थी कहने की किसी को भी, जब वह बोलना था तो कहता था, मेरे बेटे! वत्स! तो ग्रीक में शब्द है मेरे बेटे के लिए पायदीयान। तो जब सिकंदर आया, अपनी अकड़... सिकंदर अपनी अकड़ कहां छोड़ कर आएगा? अकड़ के अलावा उसमें कुछ है भी नहीं। अकड़ ही तो उसकी सब संपदा है। वह आया अपने दरबारियों के साथ, नंगी तलवारों के साथ, अपना मुकुट लगाए हुए।

फकीर ने कहा, पायदीयान! कि मेरे बेटे! सिकंदर बड़ा प्रसन्न हो गया और उसने कहा, अब कुछ और कहने की जरूरत नहीं। जो मैं सुनने आया था सुन लिया। क्योंकि सिकंदर ने समझा, वह कह रहा हैः पायदीयाज। पायदीयाज का मतलब होता है सन ऑफ गॉड, ईश्वर के बेटे। उसने कहा था, मेरे बेटे, पायदीयान। और सिकंदर ने समझा कि वह कह रहा है, ईश्वर के बेटे, ईश्वर के पुत्र, पायदीयाज।

जरा ही सा फर्क है पायदीयान और पायदीयाज में। और सिकंदर को फिर लोगों ने बहुत कहा कि नहीं, उसने पायदीयान कहा था। उसने कहा, अपनी जबान बंद! नहीं तो जबान खिंचवा दूंगा। पायदीयाज कहा था, लिखो! और उसके इतिहासकारों ने लिखा है कि ठीक, पायदीयाज कहा था।

तुम वही सुन लेते हो जो तुम सुनना चाहते हो। तुम वही समझ लेते हो जो तुम समझना चाहते हो।

अहंकार सुधार के लिए तो राजी होता है, क्रांति के लिए राजी नहीं होता। क्योंकि सुधार से अहंकार को और आभूषण मिलेंगे; अहंकार और अहंकारी हो जाएगा। चरित्र भी तो आभूषण बन जाता है। तुम सत्य बोलते हो, ईमानदार हो, साधु हो, चोरी नहीं करते, बेईमानी नहीं करते, तुम कोई भ्रष्टाचारी नहीं हो, तो अहंकार की अपनी अकड़ हो जाती है। साधुओं का अहंकार हो जाता है।

जयप्रकाश को किसी ने पटना में पूछा कि अगर इंदिरा गांधी मिलना चाहें तो आप तैयार हैं? तो उन्होंने कहा, हां, मैं तैयार हूं। और अगर इंदिरा गांधी मिलना चाहें तो मैं दिल्ली आने को तैयार हूं, क्योंकि मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं कि इंदिरा गांधी को पटना आना पड़े।

लेकिन यह बात ही ख्याल में आनी कि मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं! और जिस ढंग से कही गई बात! कोई पूछ ही नहीं रहा था कि तुम कितने बड़े आदमी हो या नहीं हो। यह बात ही कहां थी? लेकिन मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूं। आकांक्षा, वासना, अहंकार साधुता में और गहन हो जाता है। जयप्रकाश साधु की तरह जीए हैं; उनका अहंकार और भी सूक्ष्म है। और वे और भी खतरे में ले जा सकते हैं इस मुल्क को, क्योंकि अहंकार साधु का है। अकड़ इस बात की है कि मैंने पदों पर लात मारी है। और बुढ़ापे में--जीवन भर पदों को लात मारी, वह बाहर-बाहर से मारी है--इसलिए अब बुढ़ापे में जब जीवन चुकता जा रहा है तो पद की प्रगाढ़ आकांक्षा भीतर पैदा हो गई है।

ऐसा होगा ही। अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य को ऊपर-ऊपर साधे तो मरते वक्त कामवासना इस बुरी तरह सताएगी कि वह पागल हो जाएगा। क्योंकि जीवन हाथ से जा रहा है, और सारी वासना इकट्ठी हो गई। कोई

आदमी उपवास करता रहे तो मरते वक्त सिवाय भोजन की याद करने के और कोई चीज में नहीं मरेगा; भोजन ही करता हुआ मरेगा--मन में करेगा।

अब जयप्रकाश जीवन भर पद को छोड़ते रहे कि पद छोड़ने से भी तो भारत में बड़ा आदर मिलता है। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें ऐसा लगने लगा इन पीछे के दिनों में कि अब कोई फिक्र नहीं कर रहा है, और जीवन हाथ से चुका जा रहा है, तो अब पद की प्रगाढ़ आकांक्षा पैदा हो गई। जयप्रकाश को किसी को जाकर कहना चाहिए कि जय जय जयप्रकाश, गए राम भजन को, ओटन लगे कपास।

लेकिन वह होता है। वह होता है। अगर तुम क्रोध को ऊपर से दबाओगे तो भीतर क्रोध इकट्ठा होगा। और किसी न किसी दिन कपास ओटोगे। कामवासना दबाओगे, किसी न किसी दिन कपास ओटोगे। दबाना भूल कर मत। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि प्रकट करना। तब तुम कहोगे, बड़ी अड़चन में डालते हो। न दबाने देते, न प्रकट करने देते, तो फिर हम करें क्या?

वहीं सारी खूबी है। तुम साक्षी होना। कर्ता मत बनना, तुम सिर्फ देखना। जब क्रोध है तो सिर्फ देखना। करने की जरूरत क्या है? दबाने की भी कोई जरूरत नहीं है। तुम आंख बंद करके क्रोध को देखना। बड़े प्रेम से देखना; शांति से देखना। यह क्रोध उठ रहा है, यह धुआं उठ रहा है, यह चारों तरफ फैल रहा है, यह हत्या करना चाहता है, यह उपद्रव करना चाहता है, यह पद पाना चाहता है, यह यह करना चाहता है--इसको देखना। तुम चुपचाप अपने भीतर छिप कर अपनी गुफा में बैठ जाना और वहीं से टकटकी लगा कर देखना। यह सब ट्रैफिक गुजर रहा है क्रोध का। बड़ा बनजारा है क्रोध का, तुम गुजरने देना। तुम न पक्ष में, न विपक्ष में; तुम निष्पक्ष हो जाना।

उस निष्पक्षता से ही, उस सिर्फ देखने मात्र से तुम पाओगे, यह बनजारा धीरे-धीरे, यह लंबा काफिला धीरे-धीरे छोटा होने लगा, तुमसे दूर होने लगा। एक ऐसी घड़ी आती है जब न तो दबा कर और न करके तुम अचानक मुक्त हो जाते हो। सिर्फ देख कर, दर्शन से, द्रष्टा-भाव से, साक्षी से। वहीं तुम्हारा नया जन्म है, जब तुम साक्षी-भाव से मुक्त हो जाते हो।

अन्यथा तुम कुछ भी करो, क्रोध करो तो मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि क्रोध करने से क्रोध कीशृंखला पैदा होती है; अभ्यास घना होता है। क्रोध को दबाओ तो मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि दबाने से क्रोध भीतर इकट्ठा होता है, और उसका नासूर बड़ा होता जाता है। सज्जन बनने की कोशिश मत करना। दुर्जन होने में कोई सार नहीं है। सज्जन होने में भी कोई सार नहीं है। तुम संत होने की कोशिश करना। उससे कम पर राजी मत होना।

और संत, दुर्जन और सज्जन दोनों के पार है। संत फिर बालक हुआ। भेद मिट गया। अब न कोई दुर्जन, न कोई सज्जन। अब न कुछ अच्छा, न कुछ बुरा। अब सिर्फ साक्षी-भाव ही एकमात्र संगीत रह गया।

"और मनोवेगों को मन की राह देना आक्रामक है।"

संशोधन अशुभ। मनोवेगों को राह देना आक्रामक।

"और चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं। वह आक्रामक दावेदारी ताओ के खिलाफ है।"

और तुम किसी चीज को उसकी अति पर मत ले जाना। क्योंकि अति पर जाकर चीजें बुढ़ा जाती हैं। किसी भी चीज को अति पर मत ले जाना। भोग को भी नहीं, त्याग को भी नहीं। क्योंकि जब कोई चीज अति हो जाती है तभी तुम्हारे जीवन का संतुलन खो जाता है। जहां संतुलन खो जाता है वहीं तुम्हारी जीवन-ऊर्जा मर गई। तब तुम बहते नहीं। तब तुम बर्फ की तरह हो जाते हो, धार की तरह नहीं नदी की।

"चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं।"

जब तुम किसी चीज को उसके पूरे पर खींच देते हो, बस बात वहीं मर जाती है। तो करो क्या?

लाओत्से कहता है, किसी चीज को अति पर मत ले जाओ; समय रहते रुक जाओ। मध्य में ठहर जाओ। न इस तरफ, न उस तरफ। वहीं साक्षी-भाव का उदय होता है, मध्य में।

अगर चौदह वर्ष के बच्चे को ठीक से शिक्षित किया जा सके तो हम उसे तरकीब बताएंगे कि वह जीवन में उतरे, लेकिन अति पर न जाए; मध्य में रहे। जीवन के अनुभव से गुजरे, लेकिन अति पर न जाए। क्योंकि एक अति दूसरे अति पर ले जाती है। अगर वह भोग में बहुत उतर गया तो त्यागी हो जाएगा कभी न कभी। और दोनों गलत हैं। अगर दुर्जन हुआ तो कभी न कभी सज्जन हो जाएगा। अगर सज्जन हुआ तो कभी न कभी दुर्जन हो जाएगा। क्योंकि एक अति पर पहुंच कर चीजें बुढ़ा जाती हैं। फिर वहां से लौटना पड़ता है दूसरी अति पर। क्योंकि एक अति पर जब तुम जाते हो तो तुम्हें दिखता है कि जीवन दूसरी अति पर है।

भोगी सोचता है, त्यागी बड़े आनंद में है। तुम्हें त्यागी का पता नहीं। त्यागी सोचता है, भोगी सारी दुनिया का मजा ले रहा है; हम मुफ्त मारे गए। हम न मालूम किस बात में फंस गए। मैं दोनों को जानता हूं। भोगी दुखी है, भोग की चिंताएं हैं। त्यागी दुखी है, क्योंकि त्याग की चिंताएं हैं। भोगी वासना के कारण दुखी है, क्योंकि वह उलझा रही है। त्यागी वासना को दबाने के कारण दुखी है, क्योंकि वह मवाद की तरह भीतर बढ़ रही है।

अगर व्यक्ति ठीक, सम्यक राह पकड़े तो इतना भोग में जाने की जरूरत नहीं है कि त्याग पैदा हो जाए। मध्य में ठहर जाना जरूरी है कि भोग से साक्षी-भाव आ जाए। बस इतना काफी है। वहीं रुक जाए। ऐसा व्यक्ति कभी नहीं बुढ़ाता। ऐसे व्यक्ति के भीतर की जीवन-धार सदा युवा बनी रहती है। ऐसे व्यक्ति के भीतर जीवन सदा अपनी उत्कृष्टता में, संतुलन में, गरिमा में ठहरा रहता है। ऐसा व्यक्ति कभी चुकता नहीं। ऐसा व्यक्ति सदा ही भरा रहता है।

"क्योंकि चीजें अपने यौवन पर पहुंच कर बुढ़ाती हैं; वह आक्रामक दावेदारी ताओ के खिलाफ है।"

और जब भी तुम अति पर गए तुम स्वभाव के विपरीत चले गए। क्योंकि स्वभाव मध्य में है, संतुलन में है, संयम में है। न भोग, न त्याग; दोनों के मध्य में है, साक्षी-भाव में है।

"और जो ताओ के खिलाफ है वह युवापन में ही नष्ट हो जाता है।"

और जो व्यक्ति भी स्वभाव के विपरीत गया वह मरने के पहले मर जाता है। उसकी मौत तो बाद में आती है, वह मर जाता है तीस साल में। सत्तर साल में मौत आती है, चालीस साल वह मुर्दे की तरह जीता है। उसका जीवन एक बोझ हो जाता है। वह लाश की तरह अपने को ढोता है। वह एक कब्र हो जाता है। जीसस ने बहुत जगह कहा है कि तुम सफेद पुती हुई कब्रों की भांति हो। ऊपर सफेद-सफेद, भीतर सिवाय हड्डियों के और कुछ भी नहीं।

तुम मुर्दे हो। तुम दिखाई पड़ते हो कि जी रहे हो। क्या तुम जी रहे हो? तुम्हारे जीने की कहां है गरिमा? कहां है गौरव? तुम्हारे जीवन का कहां है आनंद? कहां है नृत्य? तुम्हारे जीवन का गीत कहां है? चिंताओं को तुम जीवन कहते हो? संताप को तुम जीवन कहते हो? हताशा को तुम जीवन कहते हो? तो फिर मृत्यु क्या है?

तुम एक अर्थ में जी नहीं रहे हो, मरे-मरे हो। और तुम जीवन को ही नहीं जान पा रहे हो तो तुम मृत्यु को कैसे जान पाओगे? तुम वंचित हुए जा रहे हो।

लाओत्से कहता है, जो स्वभाव में जीता है वह सतत शाश्वत जीवन को उपलब्ध हो जाता है। उसके भीतर फिर कभी कुछ मरता नहीं।

भीतर कभी कुछ मरता ही नहीं। तुम बाहर इतने अटके हो, इसलिए तुम्हें मौत मालूम पड़ती है। और भीतर वही पहुंचता है जो दो से बच जाए--दुर्जन से और सज्जन से, जो भोग से और त्याग से बच जाए। जो अति से बच जाए, वही शाश्वत जीवन को उपलब्ध हो जाता है।

अति से सावधान! और साक्षी-भाव में जितनी ज्यादा लीनता ला सको लाना। साक्षी-भाव से तुम्हारा पुनर्जन्म होगा, तुम नए हो जाओगे। और ऐसे नए कि वह नयापन फिर कभी बासा नहीं होता है। ऐसे नए कि वह कुंआरापन फिर सदा कुंआरा ही रहता है। ऐसे नए कि उस नएपन में शाश्वतता है। वह जराजीर्ण नहीं होता है। वह टिकता है, सदा टिकता है। और उसे पाए बिना कभी कोई परितोष को उपलब्ध नहीं हो सकता। जो खो जाएगा, उसे पाकर कोई कैसे परितोष पा सकता है! जो नहीं खोएगा, कभी नहीं खोएगा, वहीं घर बनाया जा सकता है। वही घर है।

आज इतना ही।

पंचानबेवां प्रवचन

सत्य कह कर भी नहीं कहा जा सकता

Chapter 56

Beyond Honour And Disgrace

He who knows does not speak;
He who speaks does not know.
Fill up its apertures,
Close its doors,
Dull its edges,
Untie its tangles,
Soften its lights,
Submerge its turmoil,
-- This is the Mystic Unity.
Then love and hatred cannot touch him.
Profit and loss cannot reach him.
Honour and disgrace cannot affect him.
Therefore he is always the honored one of the world.

अध्याय 56

मान और अपमान के पार

जो जानता है, वह बोलता नहीं है;
जो बोलता है, वह जानता नहीं है।
इसके छिद्रों को भर दो, इसके द्वारों को बंद करो,
इसकी धारों को घिस दो, इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो,
इसके प्रकाश को धीमा करो, इसके शोरगुल को चुप करो;
-- यही रहस्यमयी एकता है।
तब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं।
लाभ और हानि उससे दूर रहती हैं।

मान और अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते।

इसलिए वह सदा संसार से सम्मानित है।

जो जानता है वह बोलता नहीं; और जो बोलता है वह जानता नहीं।"

यह तो बड़ी पहेली है। क्योंकि लाओत्से बोलता है। उपनिषद भी यही कहते हैं कि जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता है वह जानता नहीं। और उपनिषद भी बोलते हैं। सुकरात भी यही कहता है। मैं भी यही कहता हूं, और रोज बोले चला जाता हूं। इस पहेली को ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है।

इसका क्या अर्थ है? क्या गूंगे जानते हैं, क्योंकि वे बोलते नहीं? और क्या बोलने वाले नहीं जानते, क्योंकि बुद्ध बोलते हैं, कृष्ण बोलते हैं, मोहम्मद बोलते हैं, जीसस बोलते हैं? तब तो गूंगे उनसे आगे पहुंच गए होंगे। और मजा यह है कि ये सब बोलने वाले यही कहते हैं कि वह गूंगे का गुड़ है, गूंगे केरी सरकरा! उसे जो खाता है वह चुप होता है, मुस्कुराता है, बोलता नहीं। फिर ये सारे लोग क्यों बोले चले जाते हैं?

यह बात तो बड़ी अतर्क्य मालूम होती है। अगर ये सही कहते हैं तो ये सही नहीं हो सकते। अगर ये सही हैं तो ये जो कहते हैं वह सही नहीं हो सकता। अगर लाओत्से को हम समझें कि इसने पा लिया है तो इसे चुप हो जाना चाहिए। और अगर हम समझें कि यह बोल रहा है तो जाहिर है कि इसने पाया नहीं है। अगर हम लाओत्से की ही मानें तो लाओत्से गलत हो जाता है। हम करें क्या?

नहीं, बोलने और न बोलने का जो अर्थ लाओत्से, उपनिषद और सुकरात का है वह हम समझ नहीं पाए। हमें उस न बोलने का पता ही नहीं है, जिसकी तरफ वे इशारा कर रहे हैं। हम तो जिस बोलने को और न बोलने को जानते हैं उसी को समझ रहे हैं। तुम बोलते हो दूसरे से। वहां तक तो ठीक है, क्योंकि दूसरे से बोले बिना कोई उपाय नहीं। शब्द दूसरे से जुड़ने का सेतु है, संवाद का मार्ग है। स्वाभाविक है। अगर यह भी लाओत्से को कहना हो कि जानने वाला नहीं बोलता तो भी शब्द में ही कहना पड़ेगा, बोल कर ही कहना पड़ेगा। असंगत होना पड़ेगा, क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता बिना बोले। बोलने के विपरीत भी बोलना हो तो बोलना ही एक उपाय है।

लेकिन तुम जब अकेले हो तब तुम क्यों बोलते हो? दूसरे से जुड़ने का उपाय है शब्द, अपने से जुड़ने का नहीं। जब तुम अकेले बैठे हो तब भी तुम्हारे भीतर बोलना क्यों चलता रहता है?

वही बोलना रुक जाता है जानने वाले का। जो जान लेता है उसके भीतर बोली रुक जाती है--भीतर, याद रखना। वह भीतर नहीं बोलता। वह अपने से नहीं बोलता। अपने से बोलने का क्या अर्थ है? दूसरे से बोलने की तो सार्थकता है, अपने से बोलना तो विक्षिप्तता है। वह तो पागलपन का लक्षण है। लेकिन तुम खाली बैठे हो और अपने से बोले चले जाते हो; भीतर ही बात करते हो। अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ लेते हो; एक बोलता है, एक जवाब देता है, एक पूछता है। सारा विचार विक्षिप्तता है।

जो जान लेता है वह नहीं बोलता, इसका अर्थ है कि वह विचार नहीं करता। जब वह अकेला है तो निश्चित ही बिल्कुल अकेला है। उसका एकांत परिशुद्ध एकांत है। उस एकांत में कोई भी नहीं है; वही है। शब्द भी नहीं है; वहां परम मौन है। जब दूसरे के साथ है तो जरूरत हो तो बोलता है। जब अपने साथ है तो बोलना तो बिल्कुल ही गैर-जरूरी है। अपने साथ तो बोलने की कभी कोई जरूरत नहीं पड़ती। अपने साथ क्या बोलना है? कौन बोलेगा? कौन सुनेगा? वहां तो द्वैत नहीं है, वहां तो तुम अकेले हो।

लेकिन तुमने वहां भी द्वैत निर्मित कर लिया है। वहां भी तुम बंटे हो, खंड-खंड हो। तुम अपने भीतर बोलते हो, वह बताता है कि तुम खंडित हो, टूटे हुए हो। तुम एक नहीं हो, तुम अनेक हो।

जानने वाला एक हो जाता है। उसके भीतर कोई अनेकता नहीं है। वह किससे बोलेगा? उसके भीतर परम मौन है। उसका एकांत भरपूर है। उसके एकांत में रत्ती भर भी जगह नहीं है किसी और के लिए। और वह अपने भीतर एक है, इसलिए अपने को तोड़ नहीं सकता दो में कि बोले और सुने। खुद ही बोले, खुद ही सुने, खुद ही जवाब दे; ऐसे खंड उसके भीतर नहीं हैं। मौन उसकी सहज स्थिति है, जब वह अकेला है। जब वह दूसरे के साथ है तब जरूरत हो तो बोलता है। तब भी शर्त ख्याल रखना, जरूरत हो तब बोलता है। अन्यथा वह दूसरे के साथ भी चुप होता है।

तुम दूसरे के साथ भी गैर-जरूरत बोलते हो। ऐसा लगता है, बोलना ही तुम्हारी जरूरत है। और कोई जरूरत के कारण तुम नहीं बोलते हो, बोलना तुम्हारी बेचैनी है। बोलना तुम्हारी कैथार्सिस, रेचन है। तुम बोलते हो तो व्यस्त मालूम होते हो। तुम बोलने के लिए बोलते हो। तुम कुछ कहने के लिए नहीं बोलते हो। तुम बस बोलते हो, ताकि बोलने से दूसरे से संबंध जुड़ा रहे, और तुम अकेले न छूट जाओ। क्योंकि दूसरे से संबंध जुड़े रहने का एक ही ढंग हैः बोलना। अगर दूसरा आदमी मौजूद हो और तुम न बोलो तो तुम दूसरे की मौजूदगी में भी अकेले हो जाओगे। इस अकेलेपन से बचने के लिए तुम बोलते हो।

इसलिए तो तुम अकेले में भी बोलते हो। क्योंकि वहां भी अकेलेपन से बचने का एक ही उपाय है कि तुम बोले चले जाओ। अपने को ही दो हिस्सों में कर लो। एक नाटक चलाओ। खुद ही बोलो, खुद ही सुनो। वहां अभिनेता भी तुम्हीं हो, वहां दिग्दर्शक भी तुम्हीं हो, वहां कथा-लेखक भी तुम्हीं हो, वहां दर्शक भी तुम्हीं हो। वहां पूरी कहानी के पात्र, निर्माता, देखने वाले, सभी तुम्हीं हो। तुम्हारा अंतस्तल एक ड्रामा बन जाता है, एक आंतरिक नाट्य बन जाता है। और तब तुम अकेले नहीं मालूम होते। तब तुमने एक झूठ पैदा कर लिया। उस झूठ के कारण तुम अपने से बच जाते हो। तुम्हारा बोलना अपने से बचने का एक उपाय है। तुम्हारे बोलने में कोई सार्थकता नहीं है। तुम्हारा बोलना एक रुग्ण प्रतीक है कि तुम चुप नहीं हो सकते इसलिए बोलते हो। बोलना किसी कारण से नहीं है। इसीलिए तो तुम्हारे बोलने से कुछ सार नहीं निकलता; दूसरा सिर्फ ऊबता है, परेशान होता है।

लेकिन तुम कहोगे कि फिर उसे सुनने की क्या जरूरत है अगर वह ऊबता है?

ऊबना भी बेहतर है, परेशान होना भी बेहतर है; अकेले होना उसको भी मुश्किल है। वह सुनता है। फिर सुनने में भी उसका भीतरी कारण यह है कि कभी तो तुम चुप होओगे और उसको भी बोलने का मौका दोगे। वह एक साझेदारी है, वह एक पारस्परिक सहयोग है एक-दूसरे के रेचन के लिए।

इसलिए तो जो आदमी तुम्हें बोलने का मौका न दे उस पर तुम बहुत नाराज हो जाते हो; तुम कहते हो कि बहुत बोर है, बड़ा उबाने वाला है। उबाने वाला का मतलब क्या है?

उबाने वाले का इतना ही मतलब है कि तुम्हें वह मौका नहीं देता। तुम भी उसे उबा लो उतना जितना वह तुम्हें उबाता है, सौदा पूरा हो गया, निबटारा हो गया। फिर तुम उस पर नाराज नहीं हो। और जो आदमी तुम्हारी चुपचाप सुनता है, और जितना तुम चाहो उसे उबाना तुम्हें उबाने देता है, तुम कहते हो, बड़ा गजब का आदमी है, बड़ा भला आदमी है, सज्जन है, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, उससे वार्तालाप में बड़ा मजा आता है। वार्तालाप का तुम उसे मौका ही नहीं देते, तुम्हीं बोलते हो। लेकिन इसको तुम वार्तालाप कहते हो।

तुम्हारा बोलना एक आंतरिक रोग है। तुम्हारे भीतर इतने विचार चल रहे हैं कि तुम उन्हें अगर बाहर न फेंक सके तो तुम पगला जाओगे। तुम दूसरे का उपयोग कर रहे हो एक कचरे की टोकरी की भांति। तुम उसमें डाल रहे हो। अगर यह दूसरा न होगा तो तुम अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ लोगे और एक नाटक शुरू कर दोगे। तुमने पागलों को देखा है? बैठ कर वे बातें करते रहते हैं। तुम धीरे-धीरे करते हो, वे जरा जोर से करते हैं। तुम भीतर-भीतर करते हो, ओंठ के भीतर-भीतर करते हो। हालांकि तुम्हारे भी ओंठ थोड़े से कंपते हैं, और कोई अगर सूक्ष्म निरीक्षण करे तो पहचान सकता है कि तुम भीतर बात कर रहे हो कि नहीं। क्योंकि थोड़ा सा तुम्हारा ओंठ खबर देता है। पागल जोर से बोलने लगता है।

पागल और तुममें सिर्फ मात्रा का भेद है। तुम निन्यानबे डिग्री हो, वह एक सौ एक डिग्री, बस। वह सौ की सीमा पार कर गया। अब उसने फिक्र छोड़ दी दुनिया की। अब वह अपने भीतर के जगत में ही पूरा रहता है। अब उसके मित्र, संगी, साथी, प्रेमी, प्रेयसी, दुश्मन, सब उसके भीतर ही हैं। अब वह उनको खुद ही बनाता है, दिल खोल कर बात करता है, खुद ही मिटाता है। पागल का अर्थ यह हैः जिसने बाहर के वस्तुगत संसार को बिल्कुल भुला दिया और जिसने एक भीतरी संसार खड़ा कर लिया जो उसका अपना ही निर्मित है। पागल बड़ा स्रष्टा है।

इसलिए अक्सर तो कवि और दार्शनिक पागल हो जाते हैं। क्योंकि वे भी स्रष्टा हैं; शब्दों के, विचारों के, सिद्धांतों के, कल्पनाओं के जाल को बुनने में कुशल हैं। बुनते-बुनते एक घड़ी आ जाती है जब कि उन्हें अपना जाल ही सच मालूम होने लगता है। तब तुम फीके पड़ जाते हो, तुम बड़े दूर मालूम पड़ते हो। तुम झूठे लगने लगते हो, तुम असत्य हो जाते हो। उनके शब्दों का जाल इतना सघन हो जाता है, और उनके ही प्राणों से चूस-चूस कर वे शब्द और कल्पनाएं बड़ी यथार्थ हो जाती हैं। तब वह अपने यथार्थ में जीने लगता है। उसका अपना निजी यथार्थ है, प्राइवेट ट्रुथ, उसका अपना सत्य है। वह किसी सार्वजनिक सत्य में विश्वास नहीं करता। तुम्हें न दिखाई पड़ रहा हो उसका मित्र, वह किससे बात कर रहा है, उसे दिखाई पड़ रहा है। तुमसे प्रयोजन भी नहीं है। तुम्हें नहीं दिखाई पड़ रहा है तो तुम कहीं भूल में हो। उसने अपना निजी सत्य बना लिया है।

इस बात को ठीक से समझ लो। सत्य तो सार्वभौमिक है, कभी निजी नहीं। और जब भी तुम्हें ऐसी भ्रांति हो कि निजी है तभी समझ लेना कि पागलपन के करीब हो। निजी तो सपने होते हैं। सत्य तो सार्वभौम है, युनिवर्सल है। सत्य तो सभी का है। सपने भर निजी होते हैं।

इसलिए तुम्हारे सपने में दूसरे का कोई हाथ नहीं है। तुम्हारा सपना बस बिल्कुल तुम्हारा अपना है। तुम दूसरे को अपना सपना दिखा भी नहीं सकते। तुम अपने प्रियतम को भी, अपनी पत्नी को, अपने पति को, अपने निकटतम आत्मीय मित्र को भी अपने सपने में निमंत्रित नहीं कर सकते कि आना आज रात, आज एक बड़ा सुंदर सपना देखने जा रहा हूं। तुम भी देख लेना। मैं बांटना चाहूंगा; ऐसा सुंदर है, अकेले लूटता हूं तो अपराधी लगता हूं। नहीं, तुम किसी को निमंत्रित न कर सकोगे। किसी का उपाय नहीं है। सपना बिल्कुल निजी है।

पागल का क्या लक्षण है? उसका सारा संसार निजी है। उसने सारे संसार को सपने जैसा कर लिया। अब वह खुली आंखों से सपना देख रहा है। मजे से बात करता है, जो चाहे बात करता है। चाहे अपने को सम्राट मान ले, क्योंकि उसके सपने के जो चाकर हैं वे फौरन गुलाम बनने को तैयार हैं। उसका ही सपना है, कोई बाधा नहीं है। तो पागल अपने को सम्राट समझ लेता है। भिखमंगा हो तो भी तुम उसे समझा नहीं सकते कि तुम भिखमंगे हो, कैसे तुमने सम्राट समझ लिया! वह कोई न कोई रास्ता निकाल लेगा अपने को समझाने का।

सपना होता है निजी और सत्य होता है सार्वभौम। ये कसौटियां हैं। जितने तुम सत्य के करीब पहुंचोगे उतना ही तुम दूसरे को भागीदार बना सकते हो। इसलिए तो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, लाओत्से हजारों लोगों को

भागीदार बना लेते हैं; हजारों लोगों को उस चीज के निकट ले आते हैं जो उन्हें दिखाई पड़ रही है। और हजारों लोगों को भी वह चीज दिखाई पड़ जाती है। अगर यह सपना हो तो इसमें कोई भागीदार नहीं हो सकता।

इसलिए तुमने कभी कवियों के अनुयायी न देखे होंगे। कवियों का कोई अनुयायी नहीं हो सकता। कैसे होगा? क्योंकि कवि का जो सत्य है वह सपने जैसा है। कवि ने जो जाना है वह उसकी कल्पना है। वह तुम्हें बुला कर दिखा नहीं सकता कि आओ, तुम भी देख लो। कवि बिल्कुल असहाय है उस संबंध में।

कवि और ऋषि का यही फर्क है। ऋषि उस सत्य की बात कर रहा है जो है, जो उसने अपनी सारी कल्पनाओं को हटा कर जाना है। इसलिए सारी चेष्टा यही है साधक की कि कल्पनाएं हट जाएं, और वह प्रकट हो जाए जो है, उसे जान लूं जो है अपने आप में, मेरी कल्पनाओं के कारण नहीं। मेरे प्रत्यय, मेरी धारणाएं, मेरे विचार, सब हट जाएं, ताकि निर्मल सत्य का उदय हो सके, सार्वभौम सत्य का।

तुम बोले चले जा रहे हो--अकेले हो तो, नहीं अकेले हो तो। ज्ञानी ऐसा नहीं बोलता। ज्ञानी अपने अकेले में तो बोलता ही नहीं। अपने अकेले में तो वह शून्य मंदिर की भांति होता है, जहां गहन सन्नाटा है, जहां निबिड़ मौन है, जहां विचार की एक तरंग भी नहीं आती। झील बिल्कुल बिल्कुल शांत है, जहां एक शब्द नहीं उठता, एक ध्वनि नहीं उठती। अपने अकेले में तो बोलना बिल्कुल निष्प्रयोजन है। तो ज्ञानी चुप है अपने एकांत में। और जब वह दूसरे से भी बोलता है तब भी उसका बोलना रेचन नहीं है। बोलना उसकी बीमारी नहीं है। चुप होने में वह कुशल है। बोलना उसकी आवश्यकता नहीं है। वह अगर दो-चार साल न बोले तो कोई परेशानी नहीं होगी। वह वैसा ही होगा जैसा बोलता था तब था। शायद बोलने में थोड़ी परेशानी हो, मौन में उसे कोई परेशानी न होगी। बोलने में परेशानी होती है। क्योंकि उसे उन सत्यों के लिए शब्द खोजने पड़ते हैं, जिनके लिए कोई शब्द नहीं। उसे उन अनुभूतियों को बांधना पड़ता है रूप में, आकार में, जो निराकार की हैं। उसकी कठिनता बड़ी गहन है। और सब कुछ करके भी उसे पता चलता है कि वह जो कहना चाहता था वह तो नहीं कह पाया। शब्दों का कितना ही मालिक हो वह, कितना ही धनी हो शब्दों का, विचार उसके कितने ही साफ, निखरे हुए हों, तो भी जब वह सत्य को कहता है तो पाता है, सब धूमिल हो गया, बात कुछ बनी नहीं। इसीलिए तो बार-बार कहता है।

तुम मुझसे पूछते हो कि मैं रोज तुमसे कहे चला जाता हूं! इसीलिए तो बार-बार कहता हूं। इस कोने से हार जाता हूं, उस कोने से कहता हूं। इस दिशा से नहीं सफल हो पाता, दूसरी दिशा खोज लेता हूं। और जब तक तुम न हार जाओगे तब तक मैं हारने वाला नहीं हूं। जहां से भी तुम राह दोगे वहीं से।

यह बात ही ऐसी है कि इसे कहा नहीं जा सकता, और यह बात ही ऐसी है कि इसे बिना कहे नहीं रहा जा सकता। नहीं कहा जा सकता, यह बात का स्वरूप ऐसा है। क्योंकि मौन में उपलब्ध होती है, परम शून्य में इसकी प्रतीति होती है। इसका साक्षात ही वहां होता है जहां एक भी विचार गवाही नहीं होता। फिर विचार से गवाही दिलवानी है जो वहां मौजूद न था। तो अड़चन तुम समझ सकते हो। फिर मन को लाना है बीच में, जिसके पार घटना घटी। तो मन बेचारा कहता है कि मैं करूं क्या, मुझे कुछ पता नहीं है। जिसको पता है वह बोल नहीं सकता है। और मन मौजूद न था, उसे बोलना है। और मन को फुसला-फुसला कर राजी करना है कि तू बोल दे। हर बार असफलता होनी है। इसलिए ज्ञानियों की--समस्त ज्ञानियों की--धारणाओं में कितना ही भेद हो, उन्होंने कितने ही भिन्न ढंग से अपने विचार कहे हों, बड़े विपरीत उपाय खोजे हों, लेकिन हर ज्ञानी की आखिरी गवाही यही है कि कहा नहीं जा सकता कह-कह कर भी।

बुद्ध चालीस वर्ष बोलते ही रहे, सतत बोलते रहे। और आखिर में वे यही कहते हैं कि अपने दीए खुद हो जाओ। तुम जानोगे तभी जानोगे; दूसरे के बताए न बनेगी बात।

तो एक तो सत्य का स्वभाव ऐसा है कि वह शून्य में उपलब्ध होता है जहां मन की कोई छाया भी नहीं पहुंच सकती। और जिसने जाना ही नहीं वह बेचारा मन करे भी क्या? उसका कोई कसूर भी नहीं है। जाना मैंने, गवाही तुमसे दिलवाता हूं। तुम भीतर न गए थे, भीतर मैं गया था। तुम बाहर द्वार पर खड़े रहे थे, भीतर क्या हुआ तुम्हें कुछ पता नहीं है। मैं द्वार पर वापस लौट कर तुमसे कहता हूं कि कहो कि ऐसा-ऐसा जाना। मन सकुचाता है।

इसलिए ज्ञानी हमेशा सकुचाता है। अज्ञानी बिना सकुचाए बोलते हैं, चिल्ला कर बोलते हैं, मकानों के छप्परों पर चढ़ कर बोलते हैं। ज्ञानी सकुचाता है, झिझकता है, एक-एक कदम सम्हाल कर रखता है। क्योंकि उसे पक्का ही पता है कि सब सम्हाल कर कहने पर भी गलती हो जाती है। शब्द उसे नहीं कह पाते।

इसलिए कहा नहीं जा सकता और बिना कहे नहीं रहा जा सकता। क्योंकि जो जाना है उसके अनुभव में ही उसे बांटने की बात भी छिपी है। आनंद का स्वभाव है कि वह बंटना चाहता है। दुख का स्वभाव है कि वह सिकुड़ना चाहता है। जब तुम दुखी होते हो तो द्वार-दरवाजे बंद करके अपने बिस्तर में पड़े रहते हो, ओढ़ लेते हो रजाई, छिप जाते हो, चाहते हो कोई मिलने न आए। कोई मिलने भी आए तो कहते हैं, फिर कभी आना, अभी मिलना न हो सकेगा। अपने निकटतम, प्रियतम व्यक्ति से भी तुम कुछ कहना नहीं चाहते। दुख सिकोड़ता है।

इसलिए दुख की आखिरी अवस्था में लोग आत्मघात कर लेते हैं। आत्मघात का मतलब है बिल्कुल सिकुड़ जाना, सब संबंध तोड़ लेना। अब इतना भी नहीं संबंध जोड़ना है जरा सा कि जीवन का भी संबंध रहे। जीएंगे तो कुछ संबंध रहेगा ही; श्वास चलेगी तो कुछ संबंध रहेगा ही। आत्मघात का इतना ही अर्थ है कि दुख का इतना प्रगाढ़ संघात हुआ है कि अब आदमी कहता है, मैं पूरा सिकुड़ जाता हूं, मैं जीवन से विदा हो जाता हूं। अब मैं महान अंधकार में खो जाना चाहता हूं; अब रोशनी में खड़ा नहीं रहना चाहता। क्योंकि रोशनी में तो बांटूंगा; कुछ न कुछ संबंध होगा।

आनंद ठीक विपरीत है। जब तुम आनंद से भरते हो तब तुम बांटना चाहते हो। तब तुम किसी को निमंत्रण करना चाहते हो। तब तुम उत्सव मनाना चाहते हो। तब तुम चाहते हो, जो तुम्हारे हैं, जिनके साथ तुम जीए हो, बढ़े हो, खेले हो, जो अभी भटक रहे हैं अंधेरे में, उनको भी खबर मिल जाए कि तुम्हें मिल गया है। तुम सारी दुनिया को जगा देना चाहते हो। तुम एक प्रगाढ़ करुणा से भर जाते हो कि जो तुमने पाया है वह सभी को मिल जाए।

आनंद का स्वभाव बंटना है, विस्तार है। इसलिए हमने ब्रह्म को सच्चिदानंद कहा है। उसके आनंद को हमने उसमें एक अपरिहार्य अंग माना है। क्यों? और उसको ब्रह्म भी कहा है। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः जो विस्तीर्ण होता जाए, फैलता जाए, फैलता जाए; जिसके फैलाव का कोई अंत न हो, जिसकी कोई सीमा न आती हो।

अभी वैज्ञानिक इस सत्य पर पहुंचे हैं कि अस्तित्व फैल रहा है। एक्सपैंडिंग युनिवर्स। इसके पहले ऐसा ख्याल था पश्चिम में कि अस्तित्व की कोई सीमा है। लेकिन अब पता चला है कि अस्तित्व फैल रहा है। लेकिन हिंदू इसे सदियों से कहते रहे हैं। उनके ब्रह्म शब्द में ही यह बात छिपी है। ब्रह्म वहीं से आता है, उसी धातु से, जहां से विस्तार। ब्रह्म का अर्थ हैः फैलता जाता है जो, जिसके फैलाव की कोई सीमा नहीं, जो रुकता ही नहीं, फैलता ही जाता है। उसका ही अनिवार्य अंग है आनंद। सत्य, चैतन्य और आनंद--ये तीनों फैलने वाले तत्व हैं। इसलिए हमने इनको ब्रह्म कहा है, और ब्रह्म का स्वभाव कहा है। और जब कोई व्यक्ति अपनी गहन आत्मा में उतरता है और उस द्वार को खोल लेता है जो स्वयं के भीतर ही छिपा था, जब कोई मन के पार जाता है, विचार

दूर छूट जाते हैं, बहुत दूर, जैसे अपने न रहे, और कोई अपने केंद्र को छू लेता है, उसी क्षण उस महा विस्तार से एक हो जाता है। फिर वह भी फैलना चाहता है। फिर वह भी बंटना चाहता है।

जीवन का स्वभाव फैलाव का है। एक बीज तुम बोते हो छोटा सा, एक विराट वृक्ष पैदा होता है। कितना फैल गया! इसी को हम ब्रह्म कहते हैं। फिर एक बीज बोया था, एक बड़ा वृक्ष लगा, और वृक्ष पर कितने अरबों-खरबों बीज लगते हैं! अब तुम एक-एक बीज को फिर बो दो, अरबों-खरबों वृक्ष होंगे और हर वृक्ष पर अरबों-खरबों बीज लगेंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि एक बीज पूरी पृथ्वी को हरा कर सकता है, एक बीज पूरी पृथ्वी को जंगलों से ढंक दे सकता है। एक बीज की इतनी क्षमता! यही अस्तित्व का लक्षण हैः फैलते जाना, फैलते जाना, फैलते जाना। कहां रुकेगा यह बीज? कहीं नहीं रुकने वाला है। इसका कोई रुकना नहीं है।

आनंद आखिरी बीज है जीवन का। उससे ऊपर कुछ नहीं है। उसके पार कुछ नहीं है। उसका फैलना कहीं रुकता नहीं। इसलिए जिन्होंने जाना है, वे बोल नहीं सकते और बिना बोले नहीं रह सकते। यह पहेली है। बोलेंगे ही, और बोल-बोल कर बार-बार कहेंगे कि जो जानता है वह बोल नहीं सकता, वह कह नहीं सकता। यह शर्त भी बता देंगे कि तुम कहीं उनके शब्दों को न पकड़ लो। क्योंकि शब्दों को पकड़ा कि तुम चूक गए।

जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह मेरे शब्दों में नहीं है। जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं वह मेरे शब्दों से तुम्हें नहीं मिलेगा। तुम मेरे शब्दों को पकड़ कर रुक गए तो तुम वह न जान पाए जो मैं कहना चाहता था। शब्द तो इंगित थे, इशारे थे। उनके पार जाना जरूरी था। तुम मेरे शब्दों को सुनना, लेकिन उन पर रुक मत जाना। क्योंकि शब्द सत्य नहीं हैं। तुम शब्दों को सुनना और शब्द के पार देखना। शब्द को समझना और शब्द के पार उठना। मैं जो कहूं उसे सुनना और मैं जो हूं उसे देखना। अंततः तो दर्शन ही काम आएगा, श्रवण काम नहीं आएगा। श्रवण केवल दर्शन के योग्य बना दे, बस काफी है। तुम सुन-सुन कर इस योग्य हो जाओ कि देखने की कला और कुशलता आ जाए।

इसलिए तो हम ज्ञानी को द्रष्टा कहते हैं, श्रोता नहीं। सुन-सुन कर तो कोई ज्ञानी नहीं होता; देख कर कोई ज्ञानी होता है। इसलिए द्रष्टा कहते हैं। इसीलिए तो हम उसे आंख वाला कहते हैं। इसीलिए तो हम इस सत्य की पूरी खोज को दर्शन कहते हैं। सुन कर तुम इस योग्य हो जाओ कि देखने की कला आ जाए। कान पर पड़ती चोट तुम्हारी आंख को खोल दे। और जैसे साधारणतया शरीर की आंख और कान जुड़े हैं--इसीलिए तो आंख का, कान का और नाक का एक ही विशेषज्ञ होता है, क्योंकि वे शरीर में भी जुड़े हैं, उनके तीनों का केंद्र एक है--और ऐसे ही वे चेतना में भी जुड़े हैं। कान पर चोट कर-कर के सारी कोशिश यह है कि तुम्हारी आंख खुल जाए।

कोई आदमी सो रहा है, तुम क्या करते हो? क्या तुम उसकी आंख खोलते हो? तुम कान पर चोट करते हो कि उठो! जागो! कभी तुम्हें किसी को सोते से जगाने के लिए पलकें खोलनी पड़ती हैं? कान पर करते हो चोट, पलकें खुलती हैं। बस वही ज्ञानी भी कर रहा है। कान पर करता है चोट कि पलकें खुल जाएं। सोए हो तुम, जगाता है। और पलकें खोलना सीधा थोड़ा आक्रामक होगा। सीधे किसी सोए आदमी की पलकें खोल दो, नाराज हो जाएगा, क्रोध से भर जाएगा, लड़ने-मारने को उतारू हो जाएगा कि यह तुमने क्या किया! कान पर चोट करने से आहिस्ता-आहिस्ता आंख पर चोट पड़ती है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे एक माधुर्य के साथ आंखें खुल जाती हैं। इसलिए ज्ञानी को बोलना पड़ता है। और ज्ञानी भलीभांति जानता है कि बोल कर बोलने का कोई उपाय नहीं है। तो बोलना एक विधि है। सत्य उससे न मिलेगा। सत्य तो आंख से ही दिखेगा; तुम्हारे ही अनुभव से मिलेगा।

इसलिए निरंतर यह शर्त कही गई है कि जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता है वह जानता नहीं। पंडित सिर्फ बोलता है। वह तुम्हारे कानों को भरता है। ज्ञानी बोलता भी है तो तुम्हारी आंखों को ही खोलने के

लिए। लक्ष्य अलग-अलग हैं। पंडित बोलता है तो तुम्हारे ज्ञान को बढ़ाता है, ज्ञानी बोलता है तो तुम्हारे अस्तित्व को बढ़ाता है, तुम्हारे ज्ञान को नहीं। ज्ञान तो कचरा है। ज्ञान तो जूठन है। ज्ञान तो बासा है। और परमात्मा सदा ताजा है। तुम उसे जूठन की तरह न पाओगे। तुम उसे सदा ताजी अनुभूति की तरह पाओगे।

जब तुम उसे पाओगे तब तुम जानोगे कि ज्ञानियों ने जो भी कहा, इससे इसका कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन जब तुम जानोगे तब! तब तुम पाओगे कि ज्ञानी तुतला रहे थे और जो कहना चाह रहे थे वह कह नहीं पा रहे थे। सभी ज्ञानी तुतला रहे हैं। और एक अर्थ में यह सही भी है। क्योंकि ज्ञानी का अर्थ ही हैः जिसका नया जन्म हुआ। जैसे छोटे बच्चे तुतलाते हैं; कुछ कहना चाहते हैं, कुछ निकलता है। और तुम कुछ समझ ही नहीं पाते कि वे क्या कह रहे हैं। वे काफी कहें भी तो भी कुछ पकड़ में नहीं आता।

तुम फिर क्या करते हो? एक मां क्या करती है छोटे बच्चे के साथ? जब वह कुछ-कुछ कहता है तो वह इसकी फिक्र नहीं करती कि वह क्या कह रहा है, वह यह समझने की कोशिश करती है कि उसका इशारा क्या है--भूख लगी है? प्यास लगी है? वह उसका इशारा समझने की कोशिश करती है। वह पानी नहीं कहता, वह कहता है पम्मा। वह पानी कह नहीं सकता अभी। वह प्यास लगी है, यह कहना बहुत मुश्किल है। लेकिन मां उसकी समझ लेती है कि वह क्या कह रहा है। वह जो कह रहा है उससे नहीं समझती, वह जो उस दशा में प्रकट कर रहा है उससे समझती है। धीरे-धीरे शब्दों की जरूरत नहीं रह जाती। धीरे-धीरे मां उसका इशारा समझने लगती है।

ज्ञानी भी फिर से हो गए बच्चे हैं। वे किसी और ही प्यास और किसी और ही पानी और किसी और ही परमात्मा की बात कर रहे हैं। उन्होंने फिर तुतलाना शुरू कर दिया है। और पहले बचपन का तुतलाना था, वह तो किसी दिन ठीक भी हो जाता है। क्योंकि वह बचपन आता है और चला जाता है। यह बचपन न जाने वाला बचपन है। यह अब सदा रहेगा। इससे ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है। ज्ञानी तुतलाते ही रहेंगे। वे जो भी कहेंगे वह हमेशा इशारा ही होगा; इससे ज्यादा नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञानी ने अब उस निर्दोष बालपन को पा लिया जो सदा रहेगा, जो शाश्वत है। इस तुतलाहट के ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है।

तो तुम ज्ञानी का इशारा समझना। ज्ञानी क्या कहता है, यह कम फिक्र करना; ज्ञानी क्या है, इसकी तुम ज्यादा फिक्र करना। इसीलिए तो श्रद्धा का इतना मूल्य है। क्योंकि अगर तुम श्रद्धा से न सुन पाओगे तो तुम कहोगे, यह सब बकवास है। क्योंकि तुम्हारी कुछ समझ में नहीं आएगा। जो समझ में न आए वह बकवास है। छोटे बच्चे की मां तो समझ लेती है, लेकिन इस छोटे बच्चे को दूसरा आदमी अगर बिठा दो तो वह परेशान हो जाएगा। वह कहेगा, हटाओ इस उपद्रव को! यह क्या बक रहा है, कुछ पता भी नहीं चलता। क्योंकि मां का तो प्रेम है इसलिए वह समझने की कोशिश करती है। इसका कोई प्रेम तो है नहीं। वह यह कहेगा कि जो कहना है ठीक से बोल, नहीं बोल सकता है, चुप बैठ।

तो जब तक गुरु से कोई प्रेम का संबंध न जुड़ जाए, जब तक कोई ऐसा हृदय का नाता न हो जाए कि वह जो भी कह रहा है उसे समझने की एक आतुरता हो, एक तैयारी हो, एक त्वरा, तीव्रता हो, तो ही तुम समझ पाओगे। अन्यथा वह बकवास मालूम पड़ेगी। अनेक समझदारों ने बुद्धों को बकवासी समझ कर छोड़ दिया है। क्योंकि लगता है कि बातचीत ही करते हैं। क्या कहना चाहते हैं, कुछ साफ नहीं है। खुद को भी साफ नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि कहते हैं, ज्ञानी बोलता नहीं है।

इसको मैं तुतलाहट कहता हूं। यह उस शाश्वत बालपन का हिस्सा है, उस निर्दोषता का, जो ज्ञानी को उपलब्ध होती है। उसका पुनर्जन्म हुआ है। श्रद्धा से तुम सुनोगे--श्रद्धा से सुनने का अर्थ है हृदय से सुनना। शब्दों पर बहुत जोर नहीं देना, उनका बहुत मूल्य नहीं है। तर्क और विचार से नहीं, वरन एक लगाव से, एक लगाव से

कि शायद कुछ हो। खोज की तैयारी से, आतुरता से। जब तुम ज्ञानी के साथ श्रद्धा से जुड़ोगे तभी तुम थोड़ा-बहुत समझ पाओगे। और तब तुम यह भी समझ लोगे कि इस आदमी की कठिनाई क्या है। यह ऐसी कुछ बात कहना चाहता है जो कही नहीं जा सकती। तब तुम यह भी समझ पाओगे कि इस आदमी की करुणा कैसी है कि उस बात को भी कहने की कोशिश करता है जो कही नहीं जा सकती। लेकिन इसकी करुणा के कारण रुक भी नहीं सकता, बिना कहे रह भी नहीं सकता।

"जो जानता है वह बोलता नहीं; जो बोलता है वह जानता नहीं।"

इसका एक और अर्थ है, वह भी ख्याल में ले लेना। इसकी एक और भाव-भंगिमा है। जो जाना जाता है, जो सत्य, जो अनुभव, जो प्रतीति, वह नहीं कही जा सकती; लेकिन कैसे जानी जाती है वह प्रतीति, वह कहा जा सकता है। इसलिए ज्ञानी विधियों की बात करते हैं। मंजिल की बात नहीं करते, मार्ग की बात करते हैं। साध्य की बात नहीं करते, साधन की बात करते हैं। और पंडित हमेशा मंजिल की बात करते हैं। तुम उससे फर्क समझ लोगे। पंडित हमेशा ब्रह्म की चर्चा करेगा; ज्ञानी ध्यान की। पंडित तर्क जुटाएगा और सिद्ध करेगा कि ईश्वर है, क्यों ईश्वर को मानो। ज्ञानी न कोई तर्क जुटाएगा, न ईश्वर की बहुत चर्चा करेगा। प्रासंगिक बात और, अन्यथा सीधा ईश्वर से कुछ लेना-देना नहीं है। ज्ञानी चर्चा करेगा उस विधि की कि कैसे ईश्वर जाना जाता है, किस मार्ग से मिलती है झलक, किस द्वार से होती है प्रतीति, कैसे तुम उठाओ पैर कि पहुंच जाओ वहां। पंडित तर्क देता है, प्रमाण देता है। ज्ञानी विधि देता है; न तर्क देता, न प्रमाण देता। और विधि से अनुभव होगा।

बुद्ध ने कहा है, मैं तो वैद्य की भांति हूं, मैं तुम्हें औषधि देता हूं कि तुम्हारी बीमारी हट जाए। स्वास्थ्य की व्याख्या कैसे करूं? औषधि देता हूं, बीमारी मिटा दूंगा। स्वास्थ्य तुम जान लेना। तुम आज पूछो कि स्वास्थ्य कैसा होगा? मैं तुम्हें कैसे समझाऊं! स्वास्थ्य की कोई भी तो परिभाषा नहीं है।

सब परिभाषाएं बीमारियों की हैं। दुख की परिभाषा हो सकती है, आनंद की कोई परिभाषा नहीं। क्योंकि दुख की सीमा है, आनंद की कोई सीमा नहीं। दुख छोटा है, क्षुद्र है; परिभाषा से बंध जाता है। आनंद विराट है, विस्तीर्ण है; सब परिभाषाएं छोटी पड़ जाती हैं, आनंद बहता चला जाता है, आगे निकल जाता है। परिभाषा का अर्थ हैः जिसको बांधा जा सके शब्द के धागे से।

तो बुद्ध कहते हैं, मैं स्वास्थ्य की बात ही न करूंगा, और तुम मुझसे स्वास्थ्य की बात पूछना ही मत। मैं तो एक वैद्य हूं, निदान कर दूंगा बीमारी का, औषधि का इंतजाम कर दूंगा। तुम औषधि लेने की तैयारी दिखाना, बस इतना काफी है। बीमारी जब मिट जाएगी तो जो शेष रहेगा वही स्वास्थ्य है। जब तुम मिट जाओगे तो जो शेष रहेगा वही परमात्मा है। प्रमाण कहां हो सकता है?

और तुम जो मांग रहे हो प्रमाण, तुम्हीं बाधा हो, तुम्हीं उपद्रव हो, जिसके कारण परमात्मा की प्रतीति नहीं हो रही। तुम खोज रहे हो परमात्मा को, और तुम्हीं अवरोध हो। और तुम पूछते हो कि तर्क, सिद्ध करो, प्रमाण दो, तब मैं आगे बढ़ूंगा। तुम्हारे आगे बढ़ने की जरूरत ही नहीं है। सब तर्क, सब प्रमाण तुम्हारे अहंकार को ही परिपोषित करेंगे। और अहंकार को खोए बिना कौन कब उसे जानता है?

ज्ञानी नहीं देता तर्क, नहीं देता प्रमाण, ज्ञानी तो संक्रामक है। ज्ञानी को तो स्वास्थ्य लग गया, जैसे तुम्हें बीमारी लग गई। ज्ञानी संक्रामक है, स्वास्थ्य देता है। लेकिन स्वास्थ्य को देने का और तो कोई उपाय नहीं। बीमारी काटो, बीमारी हटाओ, मिटाओ; स्वास्थ्य बच रहता है।

जो सदा बच रहता है सब हट जाने पर, वही परमात्मा है। जब तुम नहीं हो, विचार नहीं है, मन नहीं है, भाव नहीं है, शून्य निर्मित हो गया, भीतर कोई भी नहीं है, एक गहन सन्नाटा है, तब जो बच रहा, जो सदा शेष

है, वही परमात्मा है। जो सदा शेष है वही सत्य है। क्योंकि फिर उसको मिटाया नहीं जा सकता। जो-जो मिटाया जा सकता है, जो-जो काटा जा सकता है, काट दो; जो-जो हटाया जा सकता है, हटा दो। और जब तुम ऐसी घड़ी में आ जाओ कि तुम पाओ, अब हटाने को कुछ बचा ही नहीं, घर बिल्कुल खाली है; अब कोई फर्नीचर नहीं है जिसको हटाएं, अब कोई सामान नहीं बचा, कूड़ा-कर्कट नहीं जिसको हटाएं, अब तो सिर्फ खालीपन बचा है; यही खालीपन तत्क्षण एक विस्फोट हो जाता है। तत्क्षण तुम पाते हो, यह खालीपन खालीपन नहीं है। तुम्हारी नजरें फर्नीचर से बंधी थीं, इसलिए यह खाली मालूम होता है। क्योंकि फर्नीचर हट गया। जरा आंखों को सध जाने दो, जरा प्राणों को लयबद्ध हो जाने दो, जरा थोड़ा सा इस नए की प्रतीति को गहन में उतर जाने दो। अचानक तुम पाओगे, खालीपन? मैं पागल हूं, यह तो भरा है! जिससे तुम इसे भरा पाते हो, सब हटा देने पर, वही परमात्मा है। चाहे तुम उसे शून्य कहो, अगर तुम फर्नीचर के हिसाब से सोचते हो; चाहे तुम उसे पूर्ण कहो, अगर तुम जो उस शून्य में भरा हुआ पाते हो।

लेकिन औषधि है धर्म, और गुरु चिकित्सक है। वह कोई व्याख्याकार नहीं है। विधि देता है।

अब बड़ा मुश्किल है। तुम कहते हो, जिस परमात्मा का हमें पक्का भरोसा न हो उसको खोजने की हम विधि का भी क्या करेंगे?

तो जो परम ज्ञानी है वह तुम्हें परमात्मा की खोजने की विधि भी नहीं देता। वह तो तुमसे कहता है, तुम परमात्मा की बात ही मत उठाओ; तुम्हारी तकलीफ क्या है वह बोलो। तुम अशांत हो? अशांति को काटने की विधि है। तुम दुखी हो? दुख को काटने की विधि है। तुम चिंतित हो? चिंता को काटने की विधि है। परमात्मा को तुम बीच में ही मत लाओ। तुम्हारा परमात्मा किसी मतलब का भी नहीं है। उसकी खोज का भी कोई सार नहीं है। तुम्हारी तकलीफ क्या है? उसे काट लो। जिस दिन तुम ऐसे क्षण में पहुंच जाओगे जहां कोई तकलीफ नहीं है, कोई चिंता नहीं है, कोई संताप नहीं है, जहां तुम अचानक पाओगे कि तुम परितुष्ट हो, उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो जाएगा। तुम्हारा संतोष सत्य से मिलने का द्वार है। तो तुम कैसे संतुष्ट हो जाओ, इसकी ही बात करो।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि हम तो नास्तिक हैं। तो मैं कहता हूं, मजे से रहो। इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं। बिना जाने तुम आस्तिक हो कैसे सकते हो? आश्चर्य तो उन पर है मुझे जो आस्तिक हैं बिना जाने! वे अदभुत लोग हैं। जिनको कोई पता ही नहीं है परमात्मा का, आस्तिक बने बैठे हैं। उनसे बड़े धोखेबाज तुम कहीं भी न पाओगे।

इसलिए जितना मुल्क आस्तिक होता है उतना धोखेबाज होता है। भारत इसका प्रमाण है। यहां तुम जितना धोखा पाओगे, नास्तिक मुल्कों में न पाओगे, रूस में न पाओगे। यहां धोखाधड़ी जन्मजात है; यहां खून में है। क्योंकि बड़े से बड़ा धोखा तुम दे रहे हो आस्तिक होने का। जिसकी तुम्हें कोई भी खबर नहीं है, जहां तुम खड़े हो उस अंधकार में जिसकी कोई किरण तुम्हें कभी दिखाई नहीं पड़ी, और तुम आस्तिक हो। और तुम मरने-मारने को उतारू हो, अगर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है। झगड़ा-झांसा करने में तुम कुशल हो। तलवारें उठा लोगे। और तुम्हारी आस्तिकता बिल्कुल ही पोच, उसमें कोई प्राण नहीं है। वह बिल्कुल निर्जीव है।

आश्चर्य इसमें कुछ भी नहीं है, स्वाभाविक है। जब मेरे पास कोई आकर कहता है, मैं नास्तिक हूं, क्या मैं भी ध्यान कर सकता हूं? तो मैं कहता हूं, इसमें अड़चन कहां है? आस्तिक तक ध्यान कर रहे हैं तो तू तो नास्तिक है। बिल्कुल ठीक है। स्वाभाविक है। क्योंकि जिसे हमने जाना नहीं उसे मानने का दावा, इससे बड़ा धोखा और क्या होगा? नास्तिक कम से कम ईमानदार तो है। कम से कम यह तो एहसास करता है कि मुझे पता नहीं तो मैं कैसे मानूं? कम से कम साफ तो है। किसी प्रवंचना में तो नहीं है।

आस्तिकता-नास्तिकता से कुछ लेना-देना नहीं है, धर्म का कोई संबंध नहीं है। धर्म का तो संबंध है तुम्हारे जीवन की चिकित्सा से। तुम आस्तिक हो या नास्तिक, क्या फर्क पड़ता है!

जब तुम डाक्टर के पास जाते हो वह तुमसे पूछता है? तुम्हें सर्दी-जुकाम, पहले पूछता है, आस्तिक कि नास्तिक? क्या लेना-देना आस्तिकता-नास्तिकता से! सर्दी-जुकाम का इलाज करना है; आस्तिक-नास्तिक से क्या लेना-देना है! हिंदू या मुसलमान, ईसाई कि जैन--पूछता है? क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ता है! सर्दी-जुकाम को पता ही नहीं हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई का; सर्दी-जुकाम सभी को होती है, एक ही नियम से होती है; वह कोई धर्म का भेद नहीं मानती। वह तो चिकित्सा देता है। मुसलमान पर भी वही दवा काम करती है; हिंदू पर भी वही दवा काम करती है; ईसाई पर भी वही दवा काम करती है। दवा ही वही है जो सार्वभौम है। अगर कोई दवा का यह हो कि पहले हिंदू होना पड़ेगा तब काम करेगी, तो वह दवा नहीं है, धोखा है। ताबीज होगा; दवा नहीं है। किसी भ्रांति पर खड़ी होगी, किसी सत्य पर नहीं।

ध्यान का क्या लेना-देना कि तुम कौन हो--काले हो कि गोरे? स्त्री हो कि पुरुष? बच्चे हो कि बूढ़े? कोई लेना-देना नहीं है। ध्यान का सीधा संबंध, तुम्हारा रोग क्या है, उस रोग से है। और रोग सबके हैं। मुसलमान अशांत है, हिंदू अशांत है, जैन अशांत है। उनकी अशांति में जरा भी फर्क नहीं है। अशांति का नियम एक है। शांति का भी नियम एक है। लाओत्से अब उसकी चर्चा करता है। पहले वह कह देता हैः जो जानता है वह बोलता नहीं, जो बोलता है वह जानता नहीं। क्योंकि सत्य के संबंध में कुछ नहीं बोला जा सकता। लेकिन विधि के संबंध में निश्चित बोला जा सकता है। अब वह विधि की बात करता है।

"इसके छिद्रों को भर दो, इसके द्वारों को बंद करो; इसकी धारों को घिस दो, इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो; इसके प्रकाश को धीमा, इसके शोरगुल को चुप; यही रहस्यमयी एकता है।"

यही ध्यान की परम स्थिति है। जितनी बातें वह कहता है वे समझ लेने जैसी हैं। एक-एक बात ध्यान के लिए संभावनाओं को बढ़ाएगी। एक-एक औषधि स्वास्थ्य को करीब लाएगी। एक-एक बीमारी गिरे, स्वास्थ्य की क्षमता बढ़े।

"इसके छिद्रों को भर दो।"

इंद्रियां छिद्र हैं, जिनसे तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बाहर जाती है। आंख से तुम सिर्फ देखते ही नहीं हो, आंख से तुम्हारे देखने की क्षमता बाहर जाती है। इसीलिए तो तुम बहुत देर देखते रहो तो बड़े थके हुए अनुभव करते हो। क्योंकि दर्शन की तुम्हारी जो क्षमता है वह प्रतिपल आंख से बाहर जा रही है। तुम यह मत समझना कि आंख सिर्फ एक खिड़की है। आंख एक सक्रिय इंद्रिय है। जब तुम देख रहे हो तो हजारों स्नायुओं पर तनाव पड़ रहा है। एक-एक आंख के पीछे लाखों-करोड़ों स्नायु हैं। बड़ा सूक्ष्म जाल है। उससे सूक्ष्म कोई चीज जगत में नहीं है। आंख से सूक्ष्म कोई इंद्रिय जगत में नहीं है। तुम्हारे भीतर आंख के पीछे छिपा हुआ तुम्हारा तंतुओं का जाल, तुम्हारा पूरा मस्तिष्क है। और जब तुम आंख से देख रहे हो तो आंख के भीतर रोशनी जा रही है, बाहर की चीजों के चित्र जा रहे, प्रतिबिंब जा रहे; आंख से भी कुछ बाहर जा रहा है। तुम्हारी देखने की क्षमता, तुम्हारी देखने की ऊर्जा बाहर जा रही है।

इसलिए अगर ज्ञानी हजारों वर्षों से आंख बंद करके ध्यान करते रहे हैं तो पागल नहीं थे। क्योंकि अगर परमात्मा को देखना हो तो देखने की ऊर्जा तो संगृहीत कर लो! देखने की क्षमता तो इकट्ठी हो जाने दो! देखोगे कैसे? और जितने विराट को देखना हो उतनी बड़ी ऊर्जा संगृहीत होनी चाहिए।

बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे, बैठते वक्त तो देखना ही मत, आंख खोलने की कोई जरूरत नहीं है। चलते वक्त चार कदम आगे, बस इतना देख लेना। आंख आधी खुली रहे, पूरी भी मत खोलना, और चार कदम आगे देखते हुए चलना। उतना काफी है। चार कदम देख लोगे, चार कदम चल लोगे, फिर चार कदम आगे दिखाई पड़ने लगेगा। चार कदम देख-देख कर तो आदमी हजारों मील की यात्रा कर लेता है। और ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जितना तुम देखोगे उतने देखने की क्षमता का व्यय हो रहा है। और तुम परमात्मा को देखने की आकांक्षा से भरे हो। और तुमने सत्य को देखने का संकल्प किया है। और तुम वह जानना चाहते हो इस जीवन का जो परम रहस्य है। तो उसको जानने की क्षमता तो इकट्ठी कर लो। आंख तो चाहिए जो देख सके।

तुम्हारी थकी आंखें उसे न देख पाएंगी। और तुम कहां आंखों को थका रहे हो, कभी तुमने ख्याल ही नहीं किया। रास्ते के किनारे दीवारों पर लगे--हमदर्द दवाखाना--उसको पढ़ रहे हो। कितनी बार पढ़ चुके हो? उसी दीवार से बार-बार गुजरते हो; उसी को बार-बार पढ़ते हो। कचरा, कूड़ा-कबाड़; अखबार बैठते हो पढ़ने, कचरा, कूड़ा-कबाड़, उसको तुम रोज पढ़ रहे हो। कुछ भी बोले प्रधानमंत्री, तुम उसको पढ़ रहे हो, बिना इसकी फिक्र किए कि कभी प्रधानमंत्री में कोई बुद्धिमान आदमी हुआ है। कभी एकाध प्रधानमंत्री ने भी कोई ऐसी बात कही जिसमें कोई सार हो। लेकिन उसको ऐसे आत्मसात कर रहे हो जैसे वेद-वचन है। सुबह से लोग एकदम अखबार की तलाश में लग जाते हैं। अगर थोड़ी देर हो जाए तो बड़ी खलबली मच जाती है।

क्या पढ़ रहे हो? और पढ़ना साधारण बात नहीं है, क्योंकि उतनी क्षमता व्यय हो रही है। आंख उतनी थक रही है। क्या देख रहे हो? कुछ भी देख रहे हो। रास्ते पर कुछ भी हो रहा है--मदारी खड़ा डमरू बजा रहा है, बंदर नचा रहा है--वहीं खड़े हो। ये आंखें परमात्मा को कैसे देख पाएंगी जो बंदर का नाच देख रही हैं! यह बुद्धि अभी बड़े नीचे तल पर है। इस बुद्धि को अभी कुतूहल के ऊपर उठने का मौका नहीं मिला। तो मदारी भी जानता है कि सिर्फ डमरू बजा दो, एक बंदर को नचा दो, बंदर इकट्ठे हो जाएंगे। आदमी किसलिए इकट्ठा होगा? बंदर नाच रहा हो, इसमें क्या देखने जैसा है?

सारी दुनिया बंदरों से भरी है। सभी बंदर नाच रहे हैं। सभी जगह मदारी हैं, तरह-तरह के डमरू बजा रहे हैं। वहां भीड़ लगी है। हजार काम छोड़ कर लोग खड़े हो जाते हैं। कहीं दंगा-फसाद हो रहा है, दो आदमी एक-दूसरे को गाली दे रहे हैं। तुम बड़ी उत्सुकता से खड़े हो। दवा लेने जा रहे थे पत्नी के लिए, वह काम गौण हो गया। बच्चे के लिए दूध खरीदने जा रहे थे, वह अभी थोड़ी देर ठहर सकता है। लेकिन यह घटना देखने जैसी है। और कभी अगर ऐसा हो जाता है कि दो आदमी लड़ने के बिल्कुल करीब आ गए और फिर अलग हो गए, तुम बड़े उदास लौटते हो कि कुछ भी न हुआ। बेकार ही खड़े रहे। खून बह जाए, सिर खुल जाएं, थोड़ा रस आता है। तुम्हारे भीतर की हिंसा थोड़ी तृप्त होती है। तुम जो करना चाहते थे, दूसरे ने कर दिया तुम्हारे एवज। थोड़ा सुख मिलता है। तुम थोड़े हलके होकर घर जरा तेज कदम से कोई फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए लौटते हो। जिंदगी में रस आ जाता है।

तुम्हारा रस क्या है, क्या तुम देखते हो, क्या तुम सुनते हो, उस सब में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बह रही है। यहां कुछ भी मुफ्त नहीं है। हर चीज के लिए चुकाना पड़ रहा है। कचरा भी खरीदोगे, उसके लिए भी चुकाना पड़ रहा है। क्योंकि जीवन-ऊर्जा जा रही है, समय जा रहा है। प्रतिपल हाथ से जीवन का जल गिरा जा रहा है। थोड़ी ही देर में मुट्ठी खाली हो जाएगी। फिर तुम पछताओगे। लेकिन फिर पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! जब जीवन जा चुका, फिर पछताने से क्या होगा? जब तक जीवन हाथ में है, कुछ बचा लो। अगर तुम आंख से

देखने का उतना ही उपयोग लो जितना जरूरी है, तो तुम पाओगे तुम्हारे भीतर तीसरी आंख का जन्म शुरू हो गया।

लोग मुझसे पूछते हैं कि तीसरी आंख कैसे खुले? मैं उनसे कहता हूं, पहले दो आंखें थोड़ी बंद करो। तीसरी आंख को खोलने की और क्या जल्दी है? कुछ और उपद्रव देखना है? दो से तृप्ति नहीं हो रही?

तुम दो को थोड़ा कम करो, तीसरी अपने आप खुलती है। क्योंकि जब तुम्हारे भीतर देखने की क्षमता प्रगाढ़ हो जाती है, उस प्रगाढ़ता की चोट से ही तीसरी आंख खुलती है। और कोई उपाय नहीं है। इन दो को तुम व्यय कर दो; तीसरी कभी न खुलेगी। जीवन में एक व्यवस्था है; भीतर एक बड़ी सूक्ष्म यंत्र की व्यवस्था है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाए उसकी ऊर्जा ऊपर की तरफ अपने आप बहनी शुरू हो जाती है। क्योंकि इकट्ठी होती है ऊर्जा, कहां जाएगी? नीचे जाना बंद हो गया। अपने आप ऊर्जा ऊपर चढ़ने लगती है। अपने आप उसके भीतर के नए चक्र खुलने शुरू हो जाते हैं और नए अनुभव के द्वार। तुम चक्रों को खोलना चाहते हो, वह ऊर्जा पास नहीं है। तुम बटन दबाते हो, बिजली नहीं जलती। बिजली चाहिए भी तो, बहनी भी तो चाहिए, होनी भी तो चाहिए भीतर जुड़े तारों में। वह प्रवाह वहां न हो तो क्या होगा? जब दो आंख धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शांत होने लगती हैं... ।

तुम एक छोटा सा प्रयोग करो। जब भी तुम अकारण बैठे हो, कोई काम नहीं है, मत आंख को खोलो। और तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर एक शक्ति का जन्म हो रहा है। तुम जल्दी ही पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक नई शक्ति और एक नई क्षमता इकट्ठी हो रही है। तुम चीजों को पैना देखने लगोगे, गहरा देखने लगोगे। कल जो चीज ऊपर से उथली-उथली दिखाई पड़ती थी, अब तुम गहरा देख सकोगे। तुम मुझे सुनोगे उसके बाद, तब तुम पाओगे कि तुम उस मेरे सुनने में कुछ और देखने लगे जो तुमने कभी न देखा था। मेरे शब्द वही थे, मैं वही था, लेकिन तुम्हारी देखने की क्षमता गहरी हो गई। जितनी बड़ी ऊर्जा हो उतनी गहरी जाती है।

अभी तुम्हारी देखने की क्षमता सुई की तरह है; अगर तुम इकट्ठा करो तो तलवार की तरह हो जाती है। तब बड़े गहरे तक उसकी चोट होती है। तब तुम देख कर कुछ चीजें देख लोगे जो तुम पहले हजार बार उपाय करते सोच कर तो भी नहीं सोच पाते थे। सोचने का सवाल नहीं है, देखने का सवाल है; दृष्टि पैनी चाहिए। वह पैनी होती है, उसमें निखार आता है, जितना तुम संजोओगे, जितना इकट्ठा करोगे। जब तुम व्यर्थ हो, कुछ नहीं कर रहे हो, आंख की कोई जरूरत नहीं है, मत खोलो। कार में बैठे हो, ट्रेन में बैठे हो, बस में सवार हो; तुम्हारी आंख की क्या जरूरत है? वह काम ड्राइवर कर रहा है। तुम नाहक ही अपनी आंख को दुखा रहे हो खिड़की में झांक-झांक कर। सड़क पर चलते हुए चेहरे, जिनका कोई प्रयोजन देखने का नहीं है। तुम आंख बंद कर लो। तुम मत देखो। तुम सिर्फ शांत रहो।

और एक ख्याल करो। एक बहुत पुरानी तिब्बतन विधि है जो बड़े काम की है। जब भी तुम खाली बैठे हो, अगर आंख खोलनी भी पड़े, तो बहुत आहिस्ता खोलो। जैसे कोई पर्दा उठाया जा रहा है, बड़े धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, ऐसी तुम्हारी पलक उठे। फिर जब तुम पलक झपकाओ तो वैसी ही वापस धीरे-धीरे जाए, जैसे कोई पर्दा गिराया जा रहा है। और तुम एक बड़ी गहन शांति अनुभव करोगे। क्योंकि तुम्हारी आंख जितनी जल्दी खुलती है, जितनी जल्दी बंद होती है, उतना ही तनाव तुम्हारे भीतर के मस्तिष्क पर पड़ता है।

तुम हमेशा पाओगे, जब भी कोई व्यक्ति शांत होगा तो उसकी आंख की पलकें, तुम पाओगे, बड़ी आहिस्ता से गिरती हैं, आहिस्ता से उठती हैं। अशांत व्यक्ति की आंखें बड़ी तेजी से। बहुत बेचैन आदमी की आंखें अगर तुम नींद में भी देखोगे तो पाओगे कि हिल रही हैं पलकें, तनाव अभी भी बाकी है, कंपन जारी है।

इंद्रियां हैं छिद्र, उन्हें भर दो।

उन्हें भरने का एक ही उपाय है कि उनकी ऊर्जा को व्यर्थ मत बहाओ; वही ऊर्जा उन्हें भर देगी।

"इसके द्वारों को बंद कर दो।"

तुम्हारे मस्तिष्क में उठने वाली वासना हैं द्वार। जैसे ही मन में कोई वासना उठती है वैसे ही सजग हो जाओ, उसको ज्यादा देर साथ मत दो। क्योंकि ज्यादा देर साथ देने का अर्थ है कि उसकी जड़ें फैल जाएंगी। राह से तुम गुजरते हो, देखते हो एक बड़ा भवन। एक वासना मन में उठती है, ऐसा मकान अपना भी हो। इस पर अगर तुम ज्यादा देर सोचते रहे तो यह वासना जड़ें जमा लेगी। और जब वासना की जड़ें जम जाती हैं तो इंद्रियां उसका अनुगमन करती हैं। करना ही पड़ता है। क्योंकि शरीर तुम्हारा अनुगामी है।

तो पहले वासना का द्वार खुलता है, फिर इंद्रियों के छिद्र खुल जाते हैं। अगर तुम्हारे मन में मकान की वासना आ गई तो जहां भी तुम्हें मकान दिखाई पड़ेंगे वहीं तुम गौर से देखोगे। अगर तुम्हारे मन में कोई भी चीज की वासना आ गई, जिस चीज की वासना आ गई, उसी पर तुम्हारी सारी इंद्रियां संलग्न हो जाएंगी। अगर तुमने भोजन को मन में जगह दे दी, रूप को मन में जगह दे दी, तो उसी तरफ तुम्हारी सारी इंद्रियां भागने लगेंगी।

"इसके द्वारों को बंद करो।"

और ध्यान रखना, जब भी वासना की पहली झलक भीतर उठती है उसी वक्त उससे सहयोग तोड़ लेना सुगम है। जितनी देर कर दोगे उतना ही मुश्किल हो जाएगा। और क्यों व्यर्थ समय नष्ट करना; पहले उसको जमाना, फिर उखाड़ना; जमने ही मत दो। उस फसल में कोई सार नहीं है। कभी किसी ने कुछ सार पाया नहीं है। और जब वासना तुम्हें पकड़ लेगी तो फिर उसके न पूरे होने से अतृप्ति होगी, असंतोष होगा, अशांति होगी, तनाव होगा, चिंता होगी। फिर तुम सो न सकोगे। फिर तुम बेचैन रहोगे। ध्यान पर न बैठ सकोगे। जो वासना है वह तुम्हारा पीछा करेगी। वह सब जगह तुम्हें बेचैन रखेगी।

वासना एक ज्वर है, चेतना का ज्वर। चेतना का तापमान ऊपर चला जाता है। तब एक उद्विग्नता भीतर समा जाती है। वह उद्विग्नता हर घड़ी मौजूद रहती है। और कठिनाई यह है कि अगर तुम ऐसा वर्षों उद्विग्न रह कर अपनी वासना को पूरा भी कर लो, तब भी कुछ हल नहीं। पूरा करके तुम पाते हो, नाहक ही इतने परेशान हुए। जब तक मिला नहीं तब तक दौड़ते थे; अब मिल गया तो कुछ सार नहीं मालूम पड़ता। क्या करोगे बड़े महल में होकर भी? जितना सपने में सुंदर मालूम पड़ता है उतना यथार्थ में कुछ भी सुंदर नहीं है। लेकिन पाकर ही तुम पाओगे। लेकिन तब तक जीवन जा चुका।

और मन की यह खूबी है, वासना का यह जाल है कि वह तुम्हें नई आशाएं और नए आश्वासन देता है। वह कहता है, इस मकान में नहीं हो सका रस, नहीं आनंद आ सका, लेकिन और बड़े मकान हैं। अभी हारने की कोई जरूरत नहीं। इतने धन से नहीं मिली तृप्ति, स्वाभाविक है। इतने धन में किसको मिलती है? अभी धन का बड़ा विस्तार है; अभी और बड़ा धन पाया जा सकता है। अभी खजाने कायम हैं। और अभी जिंदगी शेष है। क्यों थकते हो? क्यों हारते हो? मन कहता है, बढ़े जाओ! बढ़े जाओ! मन आखिरी क्षण तक, जब मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है, तब तक कहे जाता है कि अभी भी कुछ हो सकता है। मन से बड़ा आश्वासन देने वाला तुम दूसरा न पाओगे। और तुमसे बड़ा नासमझ तुम न खोज सकोगे जो इसकी माने चला जाता है। यह किसी भी आश्वासन को कभी पूरा नहीं करता। इसने कोई आश्वासन अतीत में पूरे नहीं किए हैं। लेकिन फिर भी तुम माने चले जाते हो। थोड़ा जागो!

"इसके द्वारों को बंद करो; इसकी धारों को घिस दो।"

धार क्या है? इंद्रियां हैं छिद्र; मन में उठी वासनाएं हैं द्वार। धार क्या है? तुम्हारे नकारात्मक मनोवेग, निगेटिव इमोशंस धार हैं। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी घृणा, तुम्हारा वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, ये तुम्हारी धारें हैं। इनके कारण जो भी तुम्हारे पास आएगा उसको तुम चुभोगे। तुम्हारा क्रोध दूसरों के लिए कांटे की तरह है। तुम्हारी घृणा दूसरों के लिए जहर की तरह है। तुम्हारे पास जो भी आएगा वही पीड़ित होगा। तुम चाहे किसी को प्रेम में ही छाती से आलिंगन क्यों न कर लो, लेकिन तुम्हारे कांटे उसे भी चुभेंगे।

"धारों को घिस दो।"

ये चारों तरफ तुम्हारी जो धारें हैं इनको घिसो। क्रोध से न किसी दूसरे को सुख मिलने वाला है, न तुम्हें। घृणा से न किसी और को स्वर्ग मिलेगा, न तुम्हें। और तुम जब तक दूसरे के लिए नरक बनाते रहोगे तब तक तुम अपने लिए ही नरक बना रहे हो, इसे ठीक से जान लेना। कोई इस दुनिया में दूसरों के लिए गड्ढे नहीं खोद सकता। तुम भला दूसरों के लिए खोदते हो; आखिर में तुम पाओगे, तुम्हीं उनमें गिर गए हो। तुम और तुम्हारे गड्ढे! दूसरे के अपने गड्ढे हैं जो उसने खुद खोदे हैं। वह तुम्हारे गड्ढों में गिरने क्यों आएगा? प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के गड्ढों में गिरता है। दूसरों के अपने गड्ढे हैं। तुम्हें मेहनत करने की जरूरत भी नहीं है। वे खुद अपनी तरफ से गिरेंगे। लेकिन तुम खोदते दूसरे के लिए हो; आखिर में पाते हो कि खुद गिर गए। फसल बोते हो दूसरे के लिए, काटनी खुद पड़ती है। जो तुम बोओगे वह तुम्हीं काटोगे। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। यह भी हो सकता है, तुम भूल ही जाओ कि हमने बोई थी फसल। जब काटो, समय बहुत बीत चुका हो। लेकिन काटोगे तुम्हीं। यह जीवन का शाश्वत नियम है।

आखिर तुम्हारे कांटे तुम्हें ही चुभेंगे। और तुम अगर गौर से देख सको तो आज भी तुम्हें ही चुभते हैं। तुम्हारा क्रोध जरूरी नहीं है कि जिस पर तुमने क्रोध किया उसे दुख दे। अगर वह नासमझ है तो देगा; वह उसकी नासमझी का दुख है, तुम्हारे क्रोध का नहीं। लेकिन तुमने क्रोध किया, तुम तो दुखी होओगे ही। तुम अगर बुद्ध को जाकर गाली दो तो बुद्ध को तुम दुखी नहीं कर सकते। तुम्हारी गाली वहां निस्तेज है। क्योंकि तुम्हारी गाली थोड़े ही दुख देती है; उस आदमी का अपना अज्ञान दुख देता है। अज्ञान गाली को पकड़ लेता है। अज्ञान गाली से चिपक जाता है। अज्ञान कांटे से उलझ जाता है। अज्ञान ही दुख देता है। बुद्ध को गाली दोगे, तुम दुख न दे पाओगे; लेकिन तुम दुख पाओगे। क्योंकि गाली देना कुछ आसान थोड़े ही है। उसे ढालना पड़ता है; उसे तैयार करना पड़ता है। जहर को तुम अपने ही भीतर की प्रयोगशाला में पहले निर्मित करते हो। उसमें तुम जहरीले हो जाते हो।

"धारों को घिस दो; इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो।"

ग्रंथियां क्या हैं? गांठ कहां लगी है तुम्हारे भीतर? कई गांठें हैं। और लाओत्से के हिसाब से गांठ का अर्थ होता है कि तुम्हारी एक इंद्रिय दूसरी इंद्रिय के साथ उलझ जाए तो गांठ पैदा होती है। जैसे एक धागा दूसरे धागे से उलझ जाए तो गांठ पैदा होती है। और तुम्हारी सब इंद्रियां एक-दूसरे में उलझ गई हैं।

प्रत्येक इंद्रिय का एक सम्यक कृत्य है। यह बड़ी रहस्यपूर्ण बात है। इसे तुम ठीक से समझ लेना। कामवासना जननेंद्रिय का कृत्य है। मन को उस संबंध में सोचने की कोई जरूरत भी नहीं है। वह कृत्य मन का नहीं है। कामवासना जननेंद्रिय का कृत्य है। वह जननेंद्रिय के पास ही सीमित रहना चाहिए। उसके लिए मन तक ले जाने का अर्थ है, मन और जननेंद्रिय एक-दूसरे में गुंथ गए, उलझ गए।

गुरजिएफ ने इस पर बहुत काम किया इस सदी में। वह अपने साधकों की ग्रंथियां खोलने का पहले काम करता था। वह कहता था, जब तक तुम्हारी ग्रंथियां न सुलझ जाएं, कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि अगर कामवासना जननेंद्रिय में हो तो कुछ किया जा सकता है। लेकिन कामवासना खोपड़ी में हो तो क्या करें? क्योंकि

वह कामवासना की इंद्रिय ही नहीं है। बीमारी ठीक जगह हो तो सुधारी जा सकती है। बीमारी ऐसी जगह हो जहां उसकी जगह ही नहीं है तो सुधारना बहुत मुश्किल है। जो जहां है पहले वहां रख देना जरूरी है। तो गुरजिएफ कहता था, पहले कामवासना को वापस जननेंद्रिय में ले आओ।

भूख पेट में लगनी चाहिए, खोपड़ी में नहीं। खोपड़ी की भूख अलग होती है; पेट की भूख अलग होती है। पेट की भूख तो वास्तविक है, उसे भोजन से भरा जा सकता है। वह कोई कठिन काम नहीं है। लेकिन खोपड़ी में भूख समा जाए, फिर भरने का कोई उपाय नहीं है। नीरो के संबंध में कथा है कि उसने डाक्टर रख छोड़े थे। खाना खाता, उलटी करवाता, ताकि फिर खाना खा सके। यह भूख पेट की नहीं हो सकती। बीस-बीस बार खाना खाता था। अब खाना बीस बार कोई भी नहीं खा सकता। तो एक ही उपाय है कि खाना खा लो, फिर उलटी कर दो; फिर से खाना खा लो। यह खोपड़ी में चली गई बात।

कामवासना अगर जननेंद्रिय में हो तो वास्तविक होती है। खोपड़ी में चली गई, फिर मुश्किल हो जाती है। खोपड़ी के साथ सभी इंद्रियां गुंथ गई हैं।

तो गुरजिएफ कहता था, हर चीज को पहले तो सुधार लो, अपनी जगह ले आओ। फिर बहुत आसान है। क्योंकि जननेंद्रिय से ब्रह्मचर्य को ले आना बिल्कुल आसान है, कठिन नहीं। बहुत सीधी, सुगम, साधारण, सरल बात है। कोई अड़चन नहीं है। पेट की भूख हो, जरा भी अड़चन नहीं है। अड़चन तो तब खड़ी होती है जब कि भूख उन जगहों पर पहुंच जाती है जो भूख के लिए बने नहीं हैं। तब सब चीजें भीतर उलझ जाती हैं। तुम बाहर से साफ-सुथरे दिखाई पड़ते हो, कि तुम्हारे हाथ हाथ हैं, आंख आंख है, कान कान है, लेकिन भीतर सब गड़बड़ है, भीतर सब उलझा हुआ है और ग्रंथियां पड़ गई हैं। ये ग्रंथियां सुलझ जानी चाहिए। कैसे यह होगा?

एक-एक ग्रंथि को अपनी जगह लाने की कोशिश करो। भूख पेट की होनी चाहिए। घड़ी के कारण भूख नहीं लगनी चाहिए। जब भूख लगे तभी खाओ। कभी ऐसा हो कि आज भूख नहीं है तो मत खाओ। कोई आवश्यकता नहीं है। तुम उपवास भी करते हो, वह भी मन का होता है। वह भी पेट का नहीं होता; वह भी झूठा है। पेट का उपवास तब है जब पेट कह रहा है कि मुझे नहीं खाना, भूख नहीं है। बात खतम हो गई। मत खाओ। क्योंकि जब भूख ही नहीं है तो भोजन जहर हो जाएगा। और तब उलझन बढ़ती जाएगी।

और जब भूख नहीं होती तब अगर खाना हो तो स्वाद पर ध्यान देना पड़ता है, जो कि मन का है, जो कि पेट का नहीं। पेट को स्वाद से क्या लेना-देना? पेट में कोई स्वाद का उपाय भी नहीं है। पेट को स्वाद का पता भी नहीं चलता है। स्वाद मन का है, पेट का कोई स्वाद ही नहीं है। और जब पेट में भूख न हो तो फिर तुम्हें झूठी भूख पैदा करने के लिए स्वाद का उपाय करना पड़ता है। तब तुम ऐसी चीजें खाना शुरू कर देते हो जिनका कोई भी मूल्य शरीर के लिए नहीं है। आइसक्रीम खा रहे हो; उसका कोई मूल्य शरीर के लिए नहीं है। नुकसानदायक है शरीर के लिए। लेकिन मन का स्वाद है। मिठाइयां खा रहे हो, जिनका शरीर के लिए कोई भी मूल्य नहीं है। घातक है। लेकिन मन के लिए मूल्य है। मन के लिए स्वाद है उनमें।

और ध्यान रखना, जब तुम स्वाद से खाओगे तो तुम ज्यादा खा जाओगे। क्योंकि तुम शरीर की सुनोगे ही नहीं। मन कहेगा, थोड़ा और खा लो। अभी क्या बिगड़ा है, अभी थोड़ा और खा सकते हो। अभी और थोड़ी जगह है। पेट से तो तुम पूछते ही नहीं। यह उलझाव है। यह ग्रंथि है।

तब ऐसा आदमी उपवास करे तो भी मन से ही करेगा। वह कहेगा कि अब ये पर्युषण आ गए जैनियों के, अब उपवास करना है; कि रमजान के दिन आ गए मुसलमानों के, अब उपवास करना है। शरीर के लिए कोई रमजान है? कोई पर्युषण है? शरीर के लिए तो तब उपवास है जब शरीर रुग्ण अनुभव कर रहा है, खाने की

इच्छा नहीं है। शरीर कह रहा है कि नहीं कोई भूख है, तब शरीर का उपवास। वह उपवास शुद्ध है, वह कीमती है। उस उपवास से तुम्हें लाभ होगा। उस उपवास से तुम्हारी वास्तविक भूख जगेगी। लेकिन मन का उपवास झूठा है कि पर्युषण के दिन हैं, रमजान है, इसलिए उपवास कर रहे हैं। तुम शरीर को नुकसान पहुंचा रहे हो। तुमने खाकर भी शरीर को नुकसान पहुंचाया; तुम उपवास करके भी नुकसान पहुंचा रहे हो।

तुम नुकसान पहुंचाने में ऐसे कुशल हो गए हो कि तुम कुछ भी करो, तुम नुकसान पहुंचाते हो। भूख लगे तब भोजन, नींद आए तब नींद, प्यास लगे तब पानी। लेकिन कोका-कोला दिखाई पड़ गया, प्यास नहीं लगी है, और एक तरह की प्यास लगती है जो झूठी है। तुम्हें एक क्षण पहले तक कोई पता नहीं था कि प्यास लगी है। कोका-कोला दिखाई पड़ गया। पेट को कोका-कोला से क्या लेना-देना है? लेकिन मन को स्वाद आ गया, मन को अतीत की याद आ गई। पहले भी कोका-कोला पीया है, बड़ा स्वादिष्ट था। अब एक रस जगा, जो झूठा है। अब तुम एक ग्रंथि पैदा कर रहे हो।

मन कहता है, कल संभोग किया था बड़ा सुख आया, आज भी संभोग करो। यह शरीर की भूख नहीं है।

शरीर की भूख एक-एक इंद्रिय की अलग-अलग है। तुम अगर इंद्रिय की भूख को सुनो तो तुम भोजन ठीक से कर पाओगे। और जो भोजन ठीक से कर पाता है उसके जीवन में उपवास की भी जगह हो जाती है। तुम अगर कामेंद्रिय की बात सुनोगे तो कभी-कभी संभोग जीवन में होगा, और बड़ा कीमती होगा। और उसका अनुभव बड़ा मूल्यवान होगा। और वही अनुभव तुम्हें ब्रह्मचर्य की तरफ ले जाएगा। धीरे-धीरे संभोग विदा हो जाएगा। अगर इंद्रियां सुलझी हों तो जीवन से वासना का विदा हो जाना बड़ा आसान है। अगर उलझी हों तो बिल्कुल असंभव है। तब इलाज तुम कहीं करते हो, बीमारी कहीं और। आपरेशन कहीं करते हो, ग्रंथि कहीं और। तब तुम्हारे आपरेशन से और सब उलझ जाता है।

लाओत्से कहता है, "इसकी ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो।"

पहले इसकी ग्रंथियों को खोलो। पहला काम है इसे खोल लेना; साफ सब चीजों को अपनी जगह रख देना।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बीमारी थी और वह चौके में कुछ तैयार कर रहा था। भागा हुआ आया और उसने कहा कि मुझे नमक नहीं मिल रहा है। उसने कहा कि तुममें बुद्धि नहीं है। पत्नी ने कहा, सामने ही जिस डिब्बे में जीरा लिखा है उसी में तो नमक रखा है। आंख के सामने रखा है, और तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता!

अब जिस डिब्बे में जीरा लिखा है उसमें नमक रखा है! इसमें मुल्ला नसरुद्दीन का कसूर भी क्या है बेचारे का? वह तो डिब्बा उसको भी दिखाई पड़ रहा है। लेकिन पत्नी के अपने कोड हैं। सभी स्त्रियों के होते हैं। उनके चौके में घुस कर आप ठीक पता नहीं लगा सकते कि मामला क्या है। कहां कौन सी चीज है, वह उनको ही पता है। और जहां-जहां जो-जो लिखा है, उस भूल में मत पड़ना, वह वहां हो नहीं सकता। लिखने से कुछ लेना-देना नहीं है।

और वैसी ही दशा तुम्हारी है। जहां जननेंद्रिय लिखी है प्रकृति ने, वहां जननेंद्रिय नहीं है। जहां प्रकृति ने पेट लिखा है, वहां पेट नहीं है। तुम एक अराजकता हो। तुम्हारे भीतर सब असंगत हो गया है, अस्तव्यस्त हो गया है।

तो लाओत्से कहता है, "ग्रंथियों को निर्ग्रंथ करो। इसके प्रकाश को धीमा करो; इसके शोरगुल को चुप करो"

एक प्रकाश है तुम्हारे भीतर जिसको हम बुद्धि कहें, तर्क कहें, विचार कहें। वह अतिशय है। तुम हर चीज को उसी प्रकाश से देख रहे हो। वह प्रकाश तुम्हारे अंधेपन का कारण हो गया है। लाओत्से कहता है, इस प्रकाश को धीमा करो। इतना ज्यादा विचार करने की जरूरत नहीं है। और पाया भी क्या विचार करके? इस दीए को इतना मत जलाओ। कभी-कभी इसे बुझा भी दो, और गहन अंधकार में हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में एक नए

प्रकाश का उदय होगा जो बुद्धि का नहीं है, जो आत्मा का है। तुम्हारे जीवन में एक नया प्रकाश आएगा जो तर्क का नहीं है, जो श्रद्धा का है। एक नया प्रकाश आएगा जो विवाद का नहीं है, संवाद का है। वह धीमा होगा शुरू में। और अगर तुम यह बुद्धि का प्रकाश ही जलाए रखे तो उसका तुम्हें पता ही न चलेगा। तुम इसे हटाओ। तुम इसे पहले धीमा करो, फिर इसे तुम बिल्कुल बुझा दो।

"इसके शोरगुल को चुप करो।"

और तुम इसे विचार समझ रहे हो, यह सिर्फ शोरगुल है। तुम इसे विचार समझ रहे हो, यह सिर्फ बाजार है। इससे तुम कहीं भी नहीं जा रहे हो। तुमने व्यर्थ कचरा सब तरफ से इकट्ठा कर लिया है; वह कचरा तुम्हारे भीतर घूम रहा है। कोई विचार कहीं से, कोई विचार कहीं और से; कोई शास्त्र से, कोई अखबार से, कोई रेडियो से, कोई मित्र से, कोई दुश्मन से; सब तुमने इकट्ठा कर लिया है। वह सब तुम्हारे भीतर है। उसका शोरगुल मचा हुआ है। और तुम इस पर भरोसा किए हो। और यही भरोसा तुम्हें भटका रहा है।

निर्विचार ले जाता है; विचार भटकाता है। निर्विचार का एक संगीत है; विचार में केवल एक शोरगुल है।

लेकिन लोग शोरगुल के आदी हो जाते हैं। रेलवे स्टेशन पर जो लोग सोते हैं, अगर रेलगाड़ियां आती-जाती रहें तो उनकी नींद लगी रहती है। अगर उस दिन रेलगाड़ियां न आएं, हड़ताल हो जाए, तो उनको नींद नहीं आती, नींद टूट जाती है। जो लोग ज्यादा यात्रा करते हैं, जब तक रोज बदलाहट न हो तब तक उनको नींद नहीं आती। अपने घर में आकर दो-चार दिन शांति से रहें तो उनकी नींद खो जाती है। शोरगुल की भी आदत हो जाती है।

तुम पहाड़ पर जाओ, तुम्हें बड़ी बेचैनी लगेगी। शोरगुल याद आएगा बाजार का।

मैं एक नगर में जहां रहता था एक मित्र के बंगले में, वह थोड़ा गांव के बाहर था। मित्र मेरे कारण आने को उत्सुक थे, लेकिन पत्नी सख्त विरोध में थी। मैंने पूछा कि कारण क्या है? तो उसने कहा, यहां कोई न बाजार, न शोरगुल; सड़क पर भी जाकर खड़े हो जाओ तो कोई निकलता ही नहीं है, देखने को कुछ भी नहीं।

वह जिंदगी भर बाजार में रही; वहां छज्जे पर खड़े होकर नीचे का सारा उपद्रव देखती रही। आधी रात तक शोरगुल जारी रहता। सुबह पांच-चार बजे फिर उपद्रव शुरू हो जाता। सामने ही सिनेमाघर, वहां निरंतर भीड़ लगी रहती। उस बंगले की शांति उसे बड़ी कठिन पड़ी। और जैसे ही मैंने वह गांव छोड़ा वे वापस अपने शहर के घर में चले गए। मुझे पीछे मिलने आए तो पत्नी बोली कि अब बड़ा सब ठीक है।

शोरगुल की आदत! शोरगुल न हो तो ऐसा लगता है कि मर गए, कुछ जीवन ही नहीं है। लोग बाजार में घूमने जाते हैं, लोग उपद्रव की तलाश करते हैं। स्वाद लग गया उपद्रव का। जब भी शांति होती है तभी उनको बेचैनी लगती है कि कुछ गड़बड़ हो रहा है। यह जो बुद्धि का शोरगुल है इसके भी तुम आदी हो गए हो। इस आदत को छोड़ो।

"यही रहस्यमयी एकता है।"

और क्या होगा फिर? अगर छिद्र हो जाएं बंद, द्वार हो जाएं बंद, धारों को घिस डाला जाए, ग्रंथियां खुल जाएं, बुद्धि का प्रकाश शांत हो जाए, भीतर चलता बाजार बंद हो जाए; क्या होगा? लाओत्से कहता है, एक रहस्यमयी एकता का जन्म होता है। तुम एक हो जाओगे। तुम्हारी अनेकता समाप्त हो जाएगी। तुम्हारे खंड-खंड सब जम कर अखंड हो जाएंगे। वही पाने योग्य है। वही एक सत्य है।

जो उसे जान लेता है वह कैसे उसे कहे? जो उसे जान लेता है वह बिना कहे कैसे रहे? वह स्वाद ही ऐसा है; कहा नहीं जा सकता और कहे बिना नहीं रहा जा सकता।

"तब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं।

जिसने इस रहस्यमयी एकता को उपलब्ध कर लिया वह सभी द्वंद्वों के पार हो गया। अब दो का कोई अर्थ न रहा। जो-जो चीजें दो हैं अब उसे नहीं छू सकतीं। अब प्रेम और घृणा उसे नहीं छू सकतीं। अब वह दोनों के मध्य में स्थिर हो गया जहां करुणा का वास है। करुणा न तो घृणा है, करुणा न तो प्रेम है। या करुणा में कुछ है जो प्रेम जैसा है और करुणा में कुछ है जो घृणा जैसा है।

इसे थोड़ा समझ लो। क्योंकि करुणा बड़ा रहस्यपूर्ण तत्व है जो उस एक के साथ आता है। करुणा में कुछ प्रेम जैसा है। क्योंकि करुणा तुम्हें रूपांतरित करना चाहेगी। करुणा तुम्हें आनंदित देखना चाहेगी। करुणा तुम्हें परम सुख की तरफ ले जाने में सहारा देना चाहेगी। करुणा, तुम धूप में थके-मांदे आए हो, तुम्हारे लिए छाया बनना चाहेगी। करुणा में कुछ प्रेम जैसा है। लेकिन करुणा में कुछ घृणा जैसा भी है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो-जो गलत है करुणा उसे मिटाना चाहेगी, नष्ट करना चाहेगी। तुम जैसे हो, करुणा तुम्हें वैसा ही नहीं बचाना चाहेगी। प्रेम तुम्हें वैसा ही बचाना चाहता है; करुणा तुम्हें बदलना चाहेगी। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारी धारों को घिस डालेगी, तोड़ेगी।

करुणा तुम्हारी मित्र है, अगर तुम्हारी अंतिम नियति को ख्याल में रखा जाए; करुणा तुम्हारी दुश्मन है, अगर तुम्हारी आज की वास्तविकता को समझा जाए। करुणा तुम्हें मिटाएगी और बनाएगी। करुणा तुम्हें मारेगी तुम जैसे हो, और जन्माएगी तुम्हें जैसे तुम होने चाहिए। तो करुणा में घृणा का तत्व भी होगा, विध्वंसक, और करुणा में प्रेम का तत्व भी होगा, सृजनात्मक। करुणा दोनों जैसी है और दोनों जैसी भी नहीं है। क्योंकि अगर तुम करुणावान व्यक्ति की न सुनो तो वह बेचैन न होगा, जैसा कि प्रेम बेचैन होता है। नहीं सुनी, तुम्हारी मर्जी। इससे कुछ करुणावान आदमी को तुम चिंतित न कर पाओगे। करुणा घृणा से भी भिन्न है। क्योंकि जिसको हम घृणा करते हैं, अगर उसको न मिटा पाएं, या न मिटाने के लिए रास्ते पर लगा पाएं, कुछ उपाय न कर पाएं, तो चिंता, बेचैनी पकड़ती है। लेकिन करुणावान व्यक्ति अगर तुम्हारे बुरे को, तुम्हारे व्यर्थ को न मिटा पाए, तो इससे चिंतित नहीं होता। तुम उसकी नींद को नहीं नष्ट कर सकते। करुणावान व्यक्ति घृणा की तरह ठंडा होगा और प्रेम की भांति सौहार्द से परिपूर्ण। एक शीतल प्रेम, जिसमें कोई उत्ताप नहीं है, जिसमें कोई ज्वर नहीं है। करुणा बड़ी रहस्यपूर्ण है, क्योंकि उसमें दोनों विरोध खो जाते हैं।

"तब प्रेम और घृणा नहीं छू सकतीं। लाभ और हानि उससे दूर रहती हैं।"

क्योंकि अब कुछ पाने योग्य ही न रहा; लाभ कहां? सब पा लिया; हानि कैसी?

"मान और अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते।"

क्योंकि नजर अब अपने पर लग गई है। अब नजर दूसरे पर नहीं है। अब दूसरा क्या कहता है, इससे कोई अर्थ नहीं बनता। अब अपना होना इतना महत्वपूर्ण है, ऐसी गरिमा से भरा है कि तुम अपमान करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम सम्मान करो तो कोई फर्क नहीं पड़ता। अपमान करके तुम मुझसे कुछ छीन नहीं सकते, सम्मान करके तुम मुझे कुछ दे नहीं सकते। तो क्या अर्थ रहा तुम्हारे अपमान और सम्मान का? व्यक्ति पहली दफा उस परम धन का धनी हो जाता है जिसमें न कुछ घटाया जा सकता, न कुछ बढ़ाया जा सकता। यह आत्म-गरिमा है, जिसको लाओत्से कुलीनता कहता है। उसके भीतर से प्रकाश आता है। अब तुम्हारा मान-अपमान कुछ भी जोड़ता नहीं। अब वह परम स्वतंत्र है। अब उसकी निर्भरता नहीं है। अब तुम्हारे विचारों पर, मंतव्यों पर उसका कुछ भी फर्क नहीं पड़ता--ऐसा या वैसा, इधर या उधर, पक्ष या विपक्ष। सारी दुनिया साथ हो तो भी उसकी चाल वही

होगी। और सारी दुनिया विरोध में हो जाए तो भी उसकी चाल वही होगी। उसकी चाल में कोई अंतर नहीं पड़ता।

"मान-अपमान उसे प्रभावित नहीं कर सकते। इसलिए वह संसार में सदा ही सम्मानित है।

और इसलिए उसका सम्मान अंतिम है। तुम उसका अपमान नहीं कर सकते; उसका सम्मान आखिरी है। क्योंकि तुम उसका सम्मान भी करके सम्मान नहीं कर सकते। उसका सम्मान अब भीतरी है, उसकी प्रतिष्ठा आंतरिक है।

जो तुम पर निर्भर है उसकी प्रतिष्ठा तुम पर निर्भर है। तुम साथ दो तो वह सम्राट है; तुम साथ न दो, सड़क का भिखारी है। तुम प्रशंसा करो तो वह गौरवान्वित है; तुम अपमान करो, गौरव भ्रष्ट धूल-धूसरित हो गया।

आत्म-प्रतिष्ठावान व्यक्ति की स्थिति में तुम कुछ भी तो नहीं घटा-बढ़ा सकते। तुम प्रशंसा करो तो भी वह साक्षी है; तुम निंदा करो तो भी वह साक्षी है। तुम्हारी प्रशंसा से तुम्हीं को लाभ हो सकता है, तुम्हारी निंदा से तुम्हारी ही हानि हो सकती है। तुम्हारी गालियां तुम पर ही लौट आएंगी। तुम्हारे फूल भी तुम पर ही बरस जाएंगे।

इसलिए क्या तुम करते हो, सोच कर करना। ऐसे आदमी के साथ बड़ा खतरा है। क्योंकि जो भी तुम करोगे वही तुम्हें वापस मिल जाएगा। ऐसा आदमी तो ऐसा है जैसा कभी तुम किसी पहाड़ में गए हो। माथेरान की पहाड़ियों में एक जगह है, इको प्वाइंट। तुम जो भी बोलो वही आवाज लौट कर वापस आ जाती है। तुम कुत्ते की तरह भौंको, सारी घाटी कुत्तों की आवाज लौटा कर तुम पर बरसा देती है। तुम कोई प्रेम का गीत गाओ, घाटी उसे दोहरा देती है। तुम ओंकार का मंत्र पढ़ो, घाटी उसे दोहरा देती है।

आत्म-प्रतिष्ठा को उपलब्ध हुआ व्यक्ति, ताओ को उपलब्ध हुआ व्यक्ति एक शून्य घाटी है। उसमें तुम जो भी ले जाओगे, वापस आ जाएगा। वह एक प्रतिध्वनि है। इसलिए उसे सोच कर देना। जो तुम पाना चाहते हो वही उसे देना। अगर गाली पाना चाहते हो, गाली दे देना; सम्मान पाना चाहते हो, सम्मान दे देना। उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता; तुम अपने को ही उसके बहाने कुछ दोगे; दे रहे हो। सब तुम्हीं पर वापस लौट आता है।

यह रहस्यमयी एकता को सोचो, समझो, कुछ कदम उठाओ। थोड़ी-थोड़ी धारों को घिसो। थोड़ा-थोड़ा बुद्धि का प्रकाश धीमा करो। थोड़े-थोड़े शांति में विराजमान होओ। बचाओ अपनी इंद्रियों की ऊर्जा को, ताकि छिद्र बंद हो जाएं। सजग बनो, ताकि भीतर उठती वासनाएं पहले ही क्षण में काट दी जाएं, उनकी जड़ें न जम पाएं। और तुम जानोगे। तभी मेरे शब्द तुम्हें साफ होंगे। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह शब्दों में कहा नहीं जा सकता है। जो तुम सुन रहे हो वह सिर्फ सुनने से समझा नहीं जा सकता है।

इसलिए तो लाओत्से कहता है, "जो जानता है वह बोलता नहीं; जो बोलता है वह जानता नहीं।"

आज इतना ही।

छियानबेवां प्रवचन

आदर्श रोग है; सामान्य व स्वयं होना स्वास्थ्य

Chapter 57

The Art Of Government

Rule a kingdom by the Normal.
Fight a battle by (abnormal) tactics of surprise.
Win the world by doing nothing.
How do I know it is so?
Through this:
The more prohibitions there are, the poorer the people become.
The more sharp weapons there are, the greater the chaos in the state.
The more skills of technique, the more cunning things are produced.
The greater the number of statutes,
The greater the number of thieves and brigands.
Therefore the Sage says:
I do nothing and the people are reformed of themselves.
I love quietude and the people are righteous of themselves.
I deal in no business and the people grow rich by themselves.
I have no desires and the people are simple and honest by themselves.

अध्याय 57

शासन की कला

राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो।
युद्ध असामान्य, अचरज भरी युक्तियों से लड़ो।
संसार को बिना कुछ किए जीतो।
मैं कैसे जानता हूं कि यह ऐसा है?
इसके द्वारा:
जितने अधिक निषेध होते हैं, लोग उतने ही अधिक गरीब होते हैं।

जितने अधिक तेज शस्त्र होते हैं, राज्य में उतनी ही अधिक अराजकता होती है।

जितने अधिक तकनीकी कौशल होते हैं, उतने ही अधिक चतुराई के सामान बनते हैं।

जितने ही अधिक कानून होते हैं, उतने ही अधिक चोर और लुटेरे होते हैं।

इसलिए संत कहते हैंः

मैं कुछ नहीं करता हूं और लोग आप ही सुधर जाते हैं।

मैं मौन पसंद करता हूं और लोग आप ही पुण्यवान होते हैं।

मैं कोई व्यवसाय नहीं करता और लोग आप ही समृद्ध होते हैं।

मेरी कोई कामना नहीं और लोग आप ही सरल और ईमानदार हैं।

मनुष्य को जिस बड़ी से बड़ी बीमारी ने पकड़ा है और जिससे कोई छुटकारा होता दिखाई नहीं पड़ता, उस बीमारी का नाम है आदर्श।

समझना कठिन होगा, क्योंकि हम सब उसी बीमारी में दीक्षित किए गए हैं। और हम इस कुशलता से दीक्षित किए गए हैं कि आदर्श हमें बीमारी नहीं मालूम पड़ती, जीवन का लक्ष्य मालूम पड़ता है। लगता है वही परम ध्येय है। बीमारी ही स्वास्थ्य की तरह हमें समझाई गई है। और हमारे मन पूरी तरह से बीमारी से ही भर दिए गए हैं।

दूध पीने के साथ बच्चे को आदर्श का जहर दिया जा रहा है। आदर्श का अर्थ हैः तुम किसी और जैसे होने की कोशिश करना। एक बात भर आदर्श समझाता है कि तुम अपने जैसे मत होना, किसी और जैसे होना; कोई महावीर, कोई बुद्ध बनना। जैसे तुम अपने लिए पैदा नहीं हुए हो। जैसे यहां तुम इसलिए हो कि किसी और का अभिनय करो। जैसे यहां तुम उधार जीवन जीने को पैदा हुए हो। जैसे परमात्मा के द्वारा तुम तिरस्कृत हो। और कोई और व्यक्ति तुम्हारा आदर्श है जिसके अनुसार तुम्हें अपने को ढालना है।

बस फिर तुम्हारे जीवन में सब रुग्ण हो जाएगा। जिस व्यक्ति ने स्वयं होने को छोड़ा और कुछ और होने की कोशिश की, उसके रोगों का कोई अंत नहीं है। वह रोज नए रोग खड़े कर लेगा; क्योंकि उसकी पूरी जीवन-शैली ही रुग्ण है। व्यक्ति, समाज, राज्य, सभी आदर्श से अनुप्राणित होकर चल रहे हैं। इसलिए जगत एक पागलखाना हो गया; पृथ्वी रुग्णचित्त लोगों की भीड़ हो गई है।

लाओत्से कहता है, सामान्य को ध्यान में रखो, असामान्य को नहीं। और सामान्य के द्वारा अनुशासन हो, सामान्य के आधार पर अनुशासन हो। राज्य, समाज, व्यक्ति सामान्य को सूत्र मान कर चलें। सामान्य नियम हो, असामान्य नहीं।

इसे थोड़ा समझें। असामान्य व्यक्ति कथा के आधार बन जाते हैं, क्योंकि वे विशिष्ट होते हैं। विशिष्ट यानी भिन्न। मैं विशिष्ट शब्द का उपयोग किसी आदर के कारण नहीं कर रहा हूं। सामान्य से भिन्न होते हैं।

मैं एक महाविद्यालय में अध्यापक था। नया-नया पहुंचा; एक शिक्षक से मेरा परिचय करवाया गया। शिक्षक की ऊंचाई साढ़े सात फीट थी। जिन मित्र ने परिचय करवाया उन्होंने बड़ी प्रशंसा की कि देखिए, ऊंचाई हो तो ऐसी हो! मैंने उन मित्र को देखा। सभी उनकी प्रशंसा करते रहे होंगे; शायद मैं पहला ही आदमी था जिसने उन्हें चेताया। मैंने कहा कि मैं समझता हूं कि आपकी ग्लैंड्स ठीक से काम नहीं कर रही हैं; यह ऊंचाई रोग है। आप चिकित्सक को दिखाएं, कहीं कोई गड़बड़ हो गई है। क्योंकि आपकी आंखें बाहर निकली पड़ रही हैं। आपका

शरीर स्वस्थ नहीं मालूम पड़ता, शांत नहीं मालूम पड़ता; कोई बड़ी गहन बेचैनी भीतर है। और मैंने उनसे पूछा कि क्या अभी भी आपकी ऊंचाई बढ़ रही है?

उन्होंने कहा, हां। तो मैंने कहा, पूरा खतरा है। आप चिकित्सक को दिखाएं, और इसको गौरव मत मानें।

उन्हें कुछ मेरी बात पर भरोसा आया, क्योंकि बेचैनी तो उनको भी अनुभव होती थी। प्रशंसा के कारण वे कभी किसी को बेचैनी कहते नहीं थे। चिकित्सक को दिखाया तो पाया कि वे तो बड़े महारोग से ग्रस्त हैं जिसका कोई इलाज नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति का ऊंचाई का मापदंड पहले वीर्याणु में छिपा होता है। उसमें ब्लू-प्रिंट छिपा होता है कि वह छह फीट ऊंचा होगा, कि पांच फीट ऊंचा होगा। उतनी ऊंचाई, जैसे ही व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से प्रौढ़ होता है, पूरी हो जाती है। उसके बाद ऊंचाई का बढ़ना खतरनाक है। और उसके बाद ऊंचाई का बढ़ता ही जाना, और उनकी उम्र अब तो कोई अट्ठाइस वर्ष थी, अभी भी ऊंचाई बढ़ रही है तो उसका अर्थ ही यह है कि ब्लू-प्रिंट कहीं खो गया, कोई प्राकृतिक भूल हो गई, और सेल को पता नहीं है कि अब कहां रोकना; रुकने की व्यवस्था भीतर नहीं है।

जिस दिन से वे चिकित्सकों के पास गए उस दिन से उनकी अकड़ चली गई। न केवल अकड़ चली गई, बल्कि उलटी हालत हो गई। वे अब झुक कर चलने लगे और छिपाने लगे ऊंचाई को।

मैंने कहा कि अब यह दूसरा रोग मत पालो। पहला रोग यह था कि तुम अकड़े हुए थे कि बड़ी ऊंचाई है तुम्हारी, तुम जैसे मापदंड थे। और तुम्हारे आस-पास सब बौने मालूम पड़ते थे। और तुम प्रत्येक को एक हीनता की ग्रंथि से भर रहे थे। अब बीमारी उलटी पकड़ रहे हो तुम। अब इसका इलाज करो, लेकिन अब दूसरी हीनता मत पकड़ो कि तुम झुक कर चलो, कि तुम छिपाओ।

जिन व्यक्तियों को मैं विशिष्ट कहता हूं, इसी अर्थ में कह रहा हूं। कहीं इस जीवन का सामान्य सूत्र खो गया है। तुम कितना ही उनका सम्मान करो, कहीं बुनियादी भूल है। उसके कारण वे, जीवन की जो सहज व्यवस्था है, उससे भिन्न हो गए हैं। समझो। चाहे वे कितने ही बड़े व्यक्ति हों, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। क्योंकि लाओत्से या मेरे लिए बड़े से बड़ा व्यक्ति वही है जो अति सामान्य हो जाए। क्योंकि सामान्य में छिपा है स्वभाव। सत्य सार्वभौम है। सत्य कोई विशिष्टता नहीं है। सत्य तो कण-कण में छिपा है। वह जो स्वभाव के अनुसार बहने की व्यवस्था है वही सत्य है। तो जो अति सामान्य है, जिसमें तुम कुछ भी विशिष्ट न खोज पाओगे, वही स्वास्थ्य का मापदंड है। लेकिन ऐसा हुआ नहीं है।

धृतराष्ट्र की कथा में उल्लेख है कि उन्होंने जिस स्त्री से विवाह किया, गांधारी से--तो धृतराष्ट्र तो अंधे थे--गांधारी ने पति के प्रेम में अपनी आंखें बंद कर लीं और जीवन भर आंखें न खोलीं, पट्टी बांधे रही। गांधारी का उल्लेख किया जाता है कि स्त्री हो तो ऐसी हो।

एक आदमी अंधा है, उसकी पत्नी के पास चार आंखें होनी चाहिए। न कि अपनी और दो आंख बंद कर लेना। पति के लिए जरूरत थी पत्नी की जो कि आंख वाली हो। पति को आंख की कमी है; आंख की कमी पूर्ति होनी थी। लेकिन गांधारी को कहानियां कहती हैं, प्रेम में उसने अपनी दोनों आंखें भी करीब-करीब फोड़ लीं, क्योंकि कभी खोलीं नहीं। बड़ी प्रशंसा है शास्त्रों में गांधारी की कि पत्नी हो तो गांधारी जैसी।

यह पत्नी थोड़ी सी विशिष्ट है, लेकिन स्वाभाविक नहीं। कथा इसके आधार पर अच्छी बनेगी, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य के आधार पर कोई कथा नहीं बन सकती। इसलिए पुराणों में तो कथा ही उनकी लिखी होती है जो कुछ स्वभाव से भिन्न, अन्यथा हो गए होते हैं। स्वाभाविक आदमी की क्या कथा?

एक धोबी ने कह दिया कि सीता के आचरण पर शक है और राम ने उसे निकाल कर फेंक दिया। अब राम जो हैं वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। पति हो तो ऐसा!

अगर सभी लोग ऐसा करें तो एक भी पत्नी घर में न रह पाएगी। क्योंकि धोबियों की कोई कमी है? बिना किसी विचार के, बिना पूछताछ के, बिना सीता को कोई न्याय दिए सीता को जंगल में फिंकवा दिया। यह अहंकार पति का हो भला, लेकिन यह कोई स्वाभाविक घटना नहीं है। इतने हजार-हजार लोग हैं, हजार-हजार उनके मंतव्य हैं। उनके मंतव्यों के आधार पर अगर कोई जीवन को इस तरह छिन्न-भिन्न करने लगे तो यह जीवन का कोई सामान्य मापदंड नहीं बन सकता। इस आदमी के आस-पास कहानी अच्छी बन सकती है, यह कथा का पात्र होगा, लेकिन यह जीवन का आदर्श नहीं हो सकता।

महावीर नग्न हो गए। सर्दी हो, धूप हो, छाया हो, गर्मी हो, नग्न खड़े हैं। इनको आधार नहीं बनाया जा सकता। इनको आधार मान कर अगर लोग नग्न खड़े हो जाएं तो आत्मा को पहचान पाएंगे इसमें तो संदेह है, शरीर को जरूर खो देंगे। लेकिन महावीर के आस-पास कथा गढ़ने की बड़ी सुविधा है। विशिष्ट के पास कथा निर्मित होती है, ध्यान रखना। और कथा को तुम मनोरंजन की तरह लेना, आदर्श मत बना लेना। उसको पढ़ना, समझना। सुंदर है। लेकिन साहित्य की कृति है, जीवन का आधार नहीं

बुद्ध पत्नी को छोड़ कर चले गए, घर-द्वार छोड़ जंगल में भाग गए। सभी लोग घर-द्वार छोड़ कर जंगल में भाग जाएं तो बुद्धों का पैदा होना भी बंद हो जाएगा। जीवन उससे गरिमा को उपलब्ध न होगा। जीवन की सारी गरिमा खो जाएगी। और बुद्ध से इस संसार में फूल न खिलेंगे फिर, संसार मरुस्थल जैसा हो जाएगा। उदासी-उदासी के मरुस्थल फैल जाएंगे। दुख और रुदन के सिवाय यहां कुछ भी दिखाई न पड़ेगा।

पर बुद्ध की कथा में इस घटना से बड़ा कुतूहल आ जाता है। और बुद्ध की कथा एक अनूठापन ले लेती है। अनूठे लोग कथाओं के लिए ठीक हैं; जीवन के लिए तो सामान्य ही सूत्र है। जब तुम जीवन को बनाना चाहो तो कभी किसी अनूठी बात के प्रभाव में जीवन को मत बनाना। अन्यथा तुम रुग्ण होओगे; तुम परेशान होओगे।

और फिर यह भी हो सकता है कि जो महावीर को हुआ, जो बुद्ध को हुआ, जो राम को हुआ, वह उनके लिए स्वाभाविक रहा हो। तुम अपने स्वभाव की परख करना। और तुम अपने स्वभाव को ही अपने जीवन का मापदंड बनाना। अगर तुमने आदर्श को अपने जीवन का मापदंड बनाया तो तुम एक कारागृह में जीने लगोगे। वह आदर्श तो कभी पूरा न होगा, क्योंकि स्वभाव के प्रतिकूल कुछ भी पूरा नहीं हो सकता। न पूरा होने के कारण तुम हमेशा दंश से पीड़ित रहोगे, तुम हमेशा अपने को हीन मानते रहोगे कि यह आदर्श पूरा नहीं हो रहा, मुझ जैसा क्षुद्र कौन! पापी! पतित! तुम पापी-पतित अपने आदर्श के कारण हो रहे हो; तुम पापी-पतित हो नहीं। तुम्हें पापी और पतित होने का ख्याल इसलिए पैदा हो रहा है कि तुमने एक आदर्श बना लिया जो पूरा नहीं होता। तुमने कसम ले ली ब्रह्मचर्य की जो पूरी नहीं होती। अब तुम पापी हो गए। न ली होती कसम तो? और न तुमने ब्रह्मचर्य का आदर्श बनाया होता तो? तो तुम पापी होते?

एक और ब्रह्मचर्य है जो कामवासना की स्वाभाविकता में से खिलता है, किसी आदर्श के कारण नहीं; अपने जीवन को जीने की प्रक्रिया से ही निकलता है, किसी दूसरे के जीवन के पीछे चलने के कारण नहीं। अपने ही जीवन के आविर्भाव में एक क्षण आता है। कामवासना तुम्हारी है, ब्रह्मचर्य भी तुम्हारा ही होगा तभी सत्य होगा। तुम दूसरे से ब्रह्मचर्य सीखते हो; कामवासना तुमने किससे सीखी है? तुम कामवासना सीखने पापियों के पास नहीं जाते तो ब्रह्मचर्य सीखने के लिए पुण्यात्माओं के पास क्यों जाते हो? जब कामवासना प्रकृति से मिली है तो

तुम कामवासना की प्रकृति को ही समझो, कामवासना की प्रकृति को बोधपूर्वक जीओ। और उसी से आने दो तुम्हारे ब्रह्मचर्य को। तभी तुम्हारे जीवन में वास्तविक फूल आएगा।

आदर्श थोथे हैं, क्योंकि उधार हैं। और आदर्श तुम बाहर से थोपोगे, भीतर की समझ से नहीं निकलेंगे। वे तुम्हारे भीतर के प्रकाश से न आएंगे, बाहर के संस्कार से आएंगे। वे नैतिक होंगे, धार्मिक न होंगे।

अंतस को खिलने दो। अड़चनें तो हैं ही। पर तुम्हारी अड़चनें कोई दूसरा थोड़े ही चलेगा; तुम्हीं को चलना होगा। सपना देखना एक बात है। महावीर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होते हैं, तो कामवासना की अड़चनें महावीर ने झेली हैं। ऐसे ही मुफ्त कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होता। तुम बिना यात्रा किए घर बैठे महावीर का ब्रह्मचर्य पाना चाहते हो। तो महावीर की यात्रा कौन करेगा? तुम फूल तो चाहते हो; बीज बोने की, वृक्ष को सम्हालने की कठिनाई को नहीं झेलना चाहते। तब तुम्हारे फूल प्लास्टिक के होंगे।

सभी आदर्श प्लास्टिक के हैं, कागजी हैं, असली नहीं हैं। असली तो सदा स्वभाव से आता है। असली तो सदा सामान्य से आता है। नकली सदा आदर्श से आता है, जो कि झूठा है, जो कि दूर आकाश में तुमने अपनी कामनाओं के आधार पर बनाया है।

अब यह भी समझ लेना जरूरी हैः आवश्यक नहीं है कि तुम जैसा महावीर को कहते हो वैसे वे रहे हों। न यह आवश्यक है कि तुमने राम की जो प्रतिमा गढ़ी है वैसी राम की रही हो। तब जाल और गहरा है। पहले तो तुम राम के जीवन में आदर्श को थोप देते हो--जो कि रहा हो, न रहा हो। पहले तो तुम महावीर के आस-पास प्रकाश की कल्पना कर लेते हो--जो कि रहा हो, न रहा हो। फिर तुम उसको आदर्श बना कर उसका अनुसरण करते हो। और जब तुम उसका अनुसरण करने लगते हो तो पहले तुमने ही तो आरोपित किया। तुम्हें क्या पता कि महावीर कैसे व्यक्ति हैं?

तुम शास्त्रों से पढ़ते हो। शास्त्र प्रशंसक लिखते हैं, प्रशंसक अतिशयोक्ति करते हैं, प्रशंसक भावावेश में होते हैं। जो नहीं होता वह भी उन्हें दिखाई पड़ता है। प्रशंसक और निंदक, दो का भरोसा कभी मत करना। दोनों ही अंधे होते हैं। और दो के अलावा तीसरा आदमी तो खोजना मुश्किल है। और तीसरा आदमी अगर होगा तो वह कोई महावीर का चरित्र लिखने जाएगा? वह अपना चरित्र निर्मित करेगा। क्योंकि तीसरा आदमी जो इतना तटस्थ होगा कि न प्रशंसा न निंदा, वह किसकी फिक्र करेगा? अपने जीवन को वह क्यों गंवाएगा किसी दूसरे के जीवन को लिखने में? वह अपने को ही लिखेगा। उसकी कथा उसकी भीतरी कथा होगी।

निंदक को अगर सुनो तो जीसस सूली पर लटकाने जैसे योग्य हैं; प्रशंसक को सुनो तो वे ईश्वर के पुत्र हैं। दोनों अतिशय कर रहे हैं। और दोनों अतिशय को खींचे चले जा रहे हैं। निंदक और प्रशंसक में होड़ लगी है। और दोनों खींच रहे हैं अति की ओर। जिन्होंने जीसस को सूली दी उन्होंने दो चोरों को भी साथ में सूली दी, सिर्फ यह बताने को कि हम चोरों से ज्यादा हैसियत नहीं मानते जीसस की। और प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को माफ करने का अधिकार था गवर्नर जनरल को, क्योंकि यहूदियों का मुल्क इजरायल रोमन साम्राज्य के अंतर्गत था। तो जो रोमन वाइसराय था उसको हक था प्रतिवर्ष एक व्यक्ति को मुक्त करने का। चार व्यक्तियों को फांसी दी जानी थी इस वर्ष, एक जीसस और तीन चोर। तो उसने पूछा लोगों से कि इन चार में से तुम किसकी मुक्ति चाहते हो? तो उन्होंने एक चोर चुना जिसकी मुक्ति मांगी, जीसस की मुक्ति नहीं।

वाइसराय थोड़ा जीसस के प्रति सदय था, क्योंकि वाइसराय को यहूदियों की निंदा से कुछ लेना-देना न था। वह ज्यादा निष्पक्ष आदमी था, बाहर का आदमी था। उसका मन था कि किसी तरह जीसस छूट जाए। यह सीधा-सरल आदमी मालूम पड़ता है; नाहक फंस गया है। इसके प्रशंसक इसको परमात्मा का बेटा कह रहे हैं; वैसा

भी यह नहीं है। इसके दुश्मन इसको कह रहे हैं कि यह महापापी है, इससे देश का विनाश हो जाएगा; वैसा भी नहीं है। सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त का आदमी है; कुछ कीमती बातें कहता है। कुछ किसी का उपद्रव भी नहीं कर रहा है। उसके भीतर आकांक्षा थी, यह छूट जाए। उसने तीन बार, बार-बार पूछा कि तुम फिर से सोच लो कि तुम उस चोर को छोड़ना चाहते हो या जीसस को? तीनों बार भीड़ ने हाथ उठा कर चिल्लाया कि जीसस को हम मारना चाहते हैं; चोर को हम छोड़ने को राजी हैं।

यह तो विरोधी था जो यहां तक खींच लिया बात को। और पक्ष में लोग थे जिन्होंने ईश्वर का बेटा जीसस को घोषित किया। न केवल बेटा, बल्कि एकमात्र बेटा! ताकि कोई दूसरे बेटे का दावा भी न कर सके। निंदक और प्रशंसक दोनों ही अति पर चले जाते हैं। मध्य में कहीं सत्य होता है, जो कि छिप ही जाता है।

तो पक्का पता भी नहीं है कि तुम पहले आदर्श थोप देते हो, फिर उस आदर्श को मान कर तुम अपने अनुसरण करना शुरू कर देते हो। तुम्हारे आदर्श तुम्हारी आकांक्षाओं की सूचना देते हैं, सत्यों की नहीं। तुम चाहोगे कि ऐसा हो सके। जो तुम चाहते हो, तुम आरोपित कर लेते हो किसी व्यक्ति में। आरोपित इसलिए कर लेते हो कि अगर यह किसी व्यक्ति में कभी हुआ ही नहीं तो फिर तुम भरोसा न कर सकोगे।

तो अगर तुम ब्रह्मचर्य चाहते हो, जो कि कौन नहीं चाहता? क्योंकि जो भी काम की पीड़ा को झेलता है उसके मन में ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। जो काम की व्यर्थता को झेलता है उसके मन में ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। उसे लगता है, कब आएगी वह घड़ी, परम सौभाग्य का क्षण, जब मेरी ऊर्जा मुझमें ही बसेगी और मैं व्यर्थ उसे फेंकता न फिरूंगा। कब होगा वह मधुर क्षण जीवन में जब दूसरे की मुझे कोई जरूरत न रह जाएगी और मैं अपनी परम शुद्धि में, अपने एकांत में तृप्त हो सकूंगा? स्वाभाविक है। लेकिन तुम्हें भरोसा कैसे आएगा कि यह हो भी सकता है? यह आकांक्षा है। लेकिन यह हो कैसे सकता है?

अपने आपको अगर तुम जांचोगे तब तो तुमको भरोसा नहीं आ सकता। क्योंकि तुम जानते हो, कितनी बार तुमने तय किया और कितनी बार तोड़ा। कितनी बार व्रत लिया और कितनी बार उल्लंघन किया। कितनी बार निर्णय लिया और निर्णय तुम ले भी नहीं पाते हो कि निर्णय टूट जाता है, एक दिन भी तो नहीं टिकता। अगर तुम गौर से जांचो, तो इधर तुम निर्णय ले रहे हो और उसी वक्त मन का दूसरा कोना वासना की तैयारी कर रहा है। एक क्षण भी, जब तुम निर्णय ले रहे हो उस क्षण में भी, तुम ईमानदार नहीं हो। अगर तुम पूरा मन देखोगे तो तुम पाओगे, तुम क्या कर रहे हो! भीतर तो तुम्हारे मन में तैयारी हो रही है वासना की, और ब्रह्मचर्य का तुम निर्णय ले रहे हो। तो तुम अपने पर तो भरोसा कर नहीं सकते, और ब्रह्मचर्य की आकांक्षा पैदा होती है। फिर क्या करो?

फिर यही करो कि तुम किसी में मान लो कि वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया है। और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होकर तुम जो-जो कल्पना करते हो अपने लिए वह-वह सब कल्पनाएं कर लो। महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर के शरीर से पसीने की दुर्गंध नहीं उठती, सुगंध आती है। ये तुम्हारी कल्पनाएं हैं। पसीना पसीना है। पसीना जिस नियम से बहता है वह नियम महावीर और गैर-महावीर में फर्क नहीं करता। महावीर के अनुयायी कहते हैं कि महावीर मल-मूत्र विसर्जन नहीं करते। क्योंकि मल-मूत्र विसर्जन करने जैसी क्षुद्र बात महावीर करेंगे, यह सोच कर ही मन को धक्का लगता है। तुम्हीं सोचो कि बुद्ध और महावीर टॉयलेट पर बैठे हैं। मन इनकार करता है कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता। वे तो बोधिवृक्ष के नीचे ही ठीक मालूम पड़ते हैं।

तुम भी चाहोगे कि तुम्हारे जीवन से मल-मूत्र बिल्कुल विदा हो जाए। तुम परिशुद्ध, खालिस सोना हो जाओ। यह आकांक्षा है। इस आकांक्षा को पहले तुम आरोपित करते हो। वर्तमान में करोगे तो मुश्किल पड़ेगी।

क्योंकि वर्तमान का महावीर तो मल-मूत्र विसर्जन करेगा। इसलिए अतीत के महावीर सुखद हैं। वे चिल्ला कर कह भी नहीं सकते कि क्या कर रहे हो! और तुम उनको कभी उलटा काम करते हुए पकड़ भी न पाओगे। तुम जो कहोगे, अतीत पर थुप जाता है। इसलिए तो मरे हुए गुरु ज्यादा आदृत हो जाते हैं जीवित गुरुओं की बजाय। जैसे ही गुरु मरता है कि कथा रचनी शुरू हो जाती है। तुम्हारी सब आकांक्षाएं हमला कर देती हैं गुरु पर। जो-जो मानवीय था, तुम सब काट देते हो। जो-जो सामान्य था, तुम सब अलग कर देते हो। जो-जो असामान्य तुम्हारे सपनों में उठता है, वह सब तुम आरोपित कर देते हो।

अब ये सपने हैं और झूठे हैं। और अगर इनको तुमने आदर्श मान लिया तो तुम सोच लो कि तुम हमेशा ही अतृप्त रहोगे। जब तक पसीने में बदबू आएगी और जब तक तुम्हें मल-मूत्र विसर्जन करना पड़ेगा, तब तक तुम जानते हो कि तुम पापी हो। और यह तृप्ति कभी होने वाली नहीं है। और अगर इसकी दौड़ में तुम लग गए तो तुम एक ऐसी रुग्णता की तरफ जा रहे हो जिसका कोई इलाज नहीं हो सकता और कोई औषधि नहीं है। यह तो कैंसर से भी ज्यादा घातक बीमारी है आदर्श की। कैंसर का मारा बच जाए, आदर्श का मारा नहीं बचता।

इसे समझने के लिए बड़ी समझ चाहिए। यह पूरा का पूरा जाल है तुम्हारे मन का। तुम महिमा-पुरुषों को उठाते चले जाते हो आकाश में; उस जगह रख देते हो जहां वे मनुष्यता के बिल्कुल पार हैं। मैं तुमसे कहता हूं कि सभी महिमावान पुरुष तुम्हारे जैसे ही मनुष्य थे। उनमें वह सब था जो तुममें है; सिर्फ उन्होंने, तुममें जो सब है, उसका आयोजन भर बदला था। वीणा तुम्हारे पास भी है। अंगुलियां तुम्हारे पास भी हैं। उन्होंने वीणा और अंगुली को जोड़ दिया था और उनकी अंगुलियां सध गई थीं और वीणा में संगीत उठ गया था। तुम भी छेड़ते हो तो सिर्फ विसंगीत उठता है और मुहल्ले-पड़ोस के लोग लड़ने-झगड़ने को खड़े हो जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा एक दिन कि कैसा अभ्यास चल रहा है हारमोनियम पर?

उसने कहा, फुरसत कहां! कार में ही उलझा रहता हूं।

तुम्हें कार किसने दे दी? कहां से कार मिल गई?

उसने कहा कि मुहल्ले वालों ने हारमोनियम के बदले में कार दी है।

तुम एक हारमोनियम ले आओ और बजाने-पीटने लगो, मुहल्ले वाले देंगे ही। आखिर उनको अपनी सुख-शांति की थोड़ी चिंता... ।

सिर्फ आयोजन बदलता है। महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण, ठीक तुम जैसे व्यक्ति हैं। तुम्हारे पास जितना है उतना ही उनके पास है; रत्ती भर ज्यादा नहीं। इस जगत में अन्याय है भी नहीं; रत्ती भर ज्यादा हो भी नहीं सकता। यहां न किसी को कम मिलता है, न ज्यादा; बराबर मिलता है। फर्क इतना है कि कोई अपने आटे और पानी को मिला कर आग पर सेंक कर रोटी बना लेता है और तृप्त हो जाता है। और तुम बैठे हो, आग जल रही है, उससे पसीना बह रहा है। आटा पड़ा है, वह सड़ रहा है, और तुम भूखे हो। पानी भरा है, सब मौजूद है। मौजूद सब है पूरा का पूरा, उसका सरंजाम, संगीत, उसका समन्वय बिठाने का फर्क है।

महावीर जब तीर्थंकर हो जाते हैं तब भी वे तुम्हारे ही जैसे हैं। तीर्थंकर तो संगीत है जो उन्होंने पैदा कर लिया, उसी इंतजाम से जो तुम्हारे पास भी है। जीसस जब ईश्वर जैसे हो जाते हैं तो वह संगीत है। जीसस में तुमसे जरा भी भेद नहीं है। भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, मल-मूत्र भी--सब कुछ वही है। लेकिन उस इंतजाम में से अब एक नई सुवास उठ रही है, एक नया संगीत उठ रहा है, जो तुममें से भी उठ सकता है।

लेकिन तुम दीन हो अपनी ही नासमझी से। तुमने अपने प्राणों की पूरी व्यवस्था को नहीं पहचाना, और इन विभिन्न विपरीत जाते स्वरों को कैसे बिठाएं एक राग में, वह तुमने न सीखा।

एक नर्तक को देखो। उसके पास शरीर तुम्हारे ही जैसा है, लेकिन नृत्य के क्षणों में नर्तक ऐसा लगता है जैसे वेटलेस, भाररहित हो गया। उसकी छलांग, उसकी कूद, उसकी भाव-भंगिमाएं किसी अलौकिक को उतार लाती हैं। एक समां बंध जाता है। तुम विमुग्ध हो जाते हो, क्षण भर को तुम भूल ही जाते हो कि तुम हो भी। तुम्हारे ही जैसा शरीर है, तुम्हारे ही जैसे अंग हैं, सब कुछ तुम्हारे जैसा है; लेकिन इसी शरीर से एक कला को जन्मा लिया, एक नया कौशल पैदा हुआ। वह कौशल सब कुछ बदल देता है। शरीर को एक नया रूप दे देता है। शरीर को एक नया ढंग दे देता है। जीवन की एक नई शैली का जन्म हो जाता है।

और यह जो जीवन की नई शैली है यह आदर्श को स्थापित करने से कभी भी नहीं फलित होगी। आदर्श झूठे हैं। तुम्हारी मनोकांक्षाएं हैं, मृग-मरीचिकाएं हैं। दिखाई पड़ते हैं दूर से मरुस्थल में सरोवर, जब तुम पास जाते हो तब वहां कुछ भी नहीं है। सरोवर और आगे हट गया। क्षितिज की भांति हैं तुम्हारे आदर्श। तुम इन्हें कभी पा न सकोगे। जैसे जमीन और आकाश कहीं भी मिलते नहीं, सिर्फ मिलते मालूम होते हैं, ऐसे हैं तुम्हारे आदर्श। कभी मिलते नहीं, बस ऐसा लगता है कि मिल रहे हैं, मिल रहे हैं।

सामान्य को स्वर बनाओ, सहज को पहचानो; असहज से बचो। विशिष्ट को मत अपने ऊपर थोपो, सामान्य को उघाड़ो। जो तुम्हारे भीतर है उसे विकसित करो। और किसी ढांचे में नहीं। क्योंकि ढांचा विकास नहीं देता, बंधन देता है। तुम तुम्हारे जैसे ही होओगे। जब तुम खिलोगे अपनी परिपूर्णता में तो तुम न महावीर जैसे होओगे, न कृष्ण जैसे, न मेरे जैसे, न किसी और जैसे। जब तुम खिलोगे तो तुम्हारा फूल अनूठा होगा, तुम्हारे जैसा ही होगा। आनंद वही होगा, जो महावीर का है, बुद्ध का है, लाओत्से का है; भीतर की शांति वही होगी। लेकिन तुम्हारे जीवन की रूप-शैली बिल्कुल भिन्न होगी।

लाओत्से कहता है, "राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो।"

समाज को सामान्य से सम्हालो; आदर्श मत थोपो। इसलिए जितना आदर्शवादी समाज होता है उतना ही भ्रष्ट हो जाता है। भारत इसका प्रमाण है। हमने जितने आदर्श थोपे हैं, दुनिया में कभी किसी ने नहीं थोपे। और इससे ज्यादा भ्रष्ट समाज तुम कहीं खोज पाओगे?

और बड़े मजे की बात और बड़ा दुष्ट-चक्र है। बड़ा दुष्ट-चक्र है और वह दुष्ट-चक्र यह है कि आदर्शवादी जब भी देखता है कि समाज भ्रष्ट हो रहा है तो वह और नए आदर्शों की तजवीज करता है। वह कहता है, आदर्श नष्ट हो रहे हैं। और बड़े आदर्श लाओ। और सख्ती से आरोपित करो आदर्श। और नियम बनाओ। और नीति खोजो। आचरण को शिथिल मत छोड़ो, अनुशासन दो। और उस बेचारे को पता नहीं कि वही बीमारी की जड़ है--उसके आदर्श ही। जब आदर्श को टूटते देखता है वह तो और आदर्श ले आता है। और आदर्श के साथ और भ्रष्टाचार आता है।

भारत के भ्रष्टाचार में गांधी का जितना हाथ है उतना किसी का भी नहीं। इसे कोई कहता नहीं; कोई कहेगा भी नहीं। इसे कहने के लिए लाओत्से की समझ चाहिए। क्योंकि गांधी ने ऐसे-ऐसे आदर्श थोपने की कोशिश की जो संभव नहीं हैं। जिनको गांधी चाहें तो अपने आश्रम में भी नहीं थोप सकते, इतने बड़े समाज में तो थोपने का सवाल क्या है!

गांधी अचौर्य को आदर्श मानते हैं कि चोरी बिल्कुल न हो।

यह असंभव है। क्योंकि जब तक संपदा है तब तक चोरी होगी। संपदा मिट जाए तो चोरी मिट सकती है। क्योंकि चोरी सिर्फ इस बात की कोशिश है कि किसी के पास ज्यादा है और किसी के पास कम है। और जिसके पास ज्यादा है और जिसके पास कम है, उनके बीच चोरी पैदा होती है।

तुम्हारा नौकर चोरी करता है। तुम सोचते हो, शायद इसलिए चोरी करता है कि कोई आदर्श नहीं रहे। तो तुम गलती में हो। उसके पास कम है; तुम्हारे पास ज्यादा है। और जीवन का एक सहज नियम है कि चीजों को एक तल पर ले आओ। जैसे पानी है। तुम घड़ा भर लो नदी से, फिर तल बराबर हो जाता है; तुम घड़ा भर डाल दो नदी में, फिर तल बराबर हो जाता है। नदी का जल अपना तल समान रखता है--कितना ही निकालो, कितना ही डालो। और समाज के जीवन का तल इतना भिन्न है कि चोरी अनिवार्य है। अगर तुम अचौर्य को लक्ष्य बना लोगे तो कुछ हल न होगा; सिर्फ चोर और बढ़ जाएंगे।

अगर चोरी को तुम समझने की कोशिश करो कि चोरी इसलिए है--कोई पाप नहीं है चोरी--चोरी इसलिए है, क्योंकि किन्हीं के पास बहुत है और किन्हीं के पास ना-कुछ है। यह फासला इतना ज्यादा है कि इस फासले में चोरी होगी, तुम कितना ही रोको। तुम जितना रोकोगे, चोर नए उपाय खोजेगा। तो असली सवाल फासले को कम करने का है। चोर को मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। फासला अस्वाभाविक है।

इसे हम उदाहरण से समझें। स्मगलर या तस्करी नया शब्द है। आज से पचास साल पहले कोई भी नहीं जानता था, स्मगलर कौन है? तस्कर कौन है? लेकिन अभी तस्कर सबसे बड़ा पापी है, सबसे बड़ा चोर है। तस्करी क्या है? चीन में एक दाम है सोने का, भारत में दूसरा दाम है, पाकिस्तान में तीसरा दाम है। सोने का दाम एक होने की कोशिश करता है, जैसे पानी एक होने की कोशिश करता है। सोना एक ही दाम का हो सकता है, अगर दुनिया में कोई व्यर्थ की दीवारें न हों; राज्य बंटे न हों तो सोने का एक ही दाम होगा। क्योंकि जहां खड्डा होगा वहां सोना भागेगा, जैसे पानी भागता है खड्डे की तरफ। अगर इस मुल्क में सोने का दाम ज्यादा है और पाकिस्तान में कम है तो पाकिस्तान से सोना भारत की तरफ दौड़ेगा। यहां खड्डा है। जैसे ही खड्डा भर जाएगा, दाम बराबर हो जाएगा; सोने की दौड़ बंद हो जाएगी। तस्कर कौन है?

तस्कर कानून के खिलाफ है, सोने के पक्ष में है। वह सोने को सहायता दे रहा है, इधर से उधर ला रहा है। वह स्वभाव को सम्हालने की कोशिश कर रहा है। कानून स्वभाव के विपरीत खड़ा है। पूरी राज्य की सत्ता खड़ी है कि नहीं, सोने का जो दाम हमारे मुल्क में है हम उसको जारी रखेंगे। दूसरे मुल्क में अगर कम है तो वह उनकी बात, लेकिन हम अपने मुल्क का दाम न गिरने देंगे। तस्कर बेचारा कुछ भी नहीं कर रहा है, तस्कर इतना ही कर रहा है कि वह जीवन की जो सामान्य व्यवस्था है उसमें सहायता पहुंचा रहा है। लेकिन वह पापी है। होना यह चाहिए, अगर तस्करी मिटानी है, तो दुनिया में लैसे-फेअर की व्यवस्था होनी चाहिए। तो ही तस्करी मिटेगी। बाजार खुले होने चाहिए, नहीं तो तस्करी जारी रहेगी।

हिंदुस्तान में तो तस्करी मुल्क के भीतर भी चलती है। अगर बंबई से दिल्ली जाओ तो कम से कम बीस दफा कार खोल कर देखी जाएगी, जांच-पड़ताल की जाएगी। क्या पागलपन है! अपने ही मुल्क में चलने में स्वतंत्रता नहीं है! क्योंकि यहां भी प्रांत-प्रांत नियम की दीवार खड़ी है। गेहूं कहीं सस्ता बिक रहा है, कहीं मंहगा बिक रहा है। कहीं चावल को खरीदने वाला कोई नहीं है, कहीं लोग कतार लगाए खड़े हैं। चावल भागता है। वह नियम की व्यवस्था है, सीधी जीवन की व्यवस्था है। लोग चावल को लाने लगते हैं वहां जहां कतार लगी है। और ठीक ही कर रहे हैं, क्योंकि कतार को हटाने का यही एक उपाय है।

लेकिन सरकार नियम बना कर खड़ी है। जितने नियम होंगे उतनी चोरी होगी। चोरी का कुल मतलब इतना है कि तुमने जरूरत से ज्यादा, स्वभाव के विपरीत नियम बना दिए। नियम को कम करो, चोरी कम हो जाएगी।

भ्रष्टाचार है मुल्क में। तो जयप्रकाश कहते हैं, नियम को बढ़ाओ तो भ्रष्टाचार कम हो जाएगा; सख्ती करो तो भ्रष्टाचार कम हो जाएगा।

भ्रष्टाचार और बढ़ेगा। जयप्रकाश गांधी की संतान हैं। गांधी ने जो उपद्रव मुल्क को दिया उसको वे फिर थोपना चाहते हैं। जरूरत इस बात की है कि नियम को कम करो, छांटो। यह तो पक्का है कि बिल्कुल बिना नियम के हम समाज नहीं बना सकते; आदमी की अभी इतनी ऊंचाई नहीं। लेकिन लक्ष्य वही है कि कभी ऐसा वक्त आए कि कोई नियम न हो, ताकि कोई चोर न हो, ताकि कोई नियम का उल्लंघन करने वाला न हो।

पहले तुम नियम बनाते हो, फिर तुम चोर को पकड़ लेते हो। समझ लो कि एक कानून बना दिया जाए, अगर योगियों के हाथ में सत्ता आ जाए जैसे गांधीवादियों के हाथ में आ गई तो योगी नियम बना दें कि सुबह उठते वक्त दाएं स्वर से ही सांस लेते हुए उठना! जो बाएं स्वर से सांस लेता उठा, वह पकड़ा जाएगा; क्योंकि दाएं स्वर से ही सांस लेना सुबह अच्छा है। अब फंसे तुम। अगर सुबह तुम बाएं स्वर से सांस लेते उठ गए, अदालत में पहुंचाए गए--क्यों तुमने बाएं स्वर से सांस ली? तो तुम कृत्रिम उपाय करोगे, बाएं स्वर में रुई लगा कर सोओगे, ताकि सुबह कुछ भी हो दाएं स्वर से सांस चले।

फिर कुछ ऐसे होंगे जो इस बात को व्यर्थ मानेंगे कि क्या फिजूल है! हम सांस भी नहीं ले सकते? सांस हमारी स्वतंत्रता है। अगर उनके दाएं स्वर से भी सांस चल रही होगी तो वे बाएं से लेते हुए उठेंगे। क्योंकि कानून को तोड़ने में भी एक रस है, एक बगावत है, एक विद्रोह है। और अहंकार कानून को तोड़ने में बड़ा रस लेता है। अपराधी पैदा होते हैं, डाकू पैदा होते हैं, चोर पैदा होते हैं। और इन सबके पैदा होने के पीछे बुनियादी कारण यह है कि तुम ऐसे असंभव आदर्श सिर पर खड़े कर देते हो जो पूरे नहीं किए जा सकते।

गांधी ने आश्रम में आदर्श बना दिया ब्रह्मचर्य का, सब ब्रह्मचर्य का पालन करें। गांधी के सेक्रेटरी खुद न कर पाए, प्यारेलाल। और बुढ़ापे में गांधी को खुद अपने ब्रह्मचर्य पर संदेह होने लगा था। और संदेह उनका इतना बढ़ गया--बढ़ेगा ही, क्योंकि ऊपर से थोपा हुआ आदर्श था--कि एक युवती को नग्न लेकर एक वर्ष तक वे सोते रहे अंतिम दिनों में, सिर्फ यह जांचने के लिए मेरा ब्रह्मचर्य सच्चा है या नहीं।

लेकिन जब ब्रह्मचर्य सच्चा होता है तो जांचने का सवाल ही नहीं उठता। जांचने का ख्याल ही बताता है कि कोई चीज ऊपर से थोप ली है, पक्का भरोसा खुद भी नहीं आ रहा है। जब तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम्हें किसी से पूछना पड़ता है? जांच करनी पड़ती है? जांच इसलिए करवा सकते हो तुम कि क्यों दर्द हो रहा है। लेकिन यह तो नहीं कि तुम संदिग्ध हो कि दर्द हो रहा है कि नहीं हो रहा है। जब तुम प्रसन्न होते हो तो प्रसन्नता अपने आप में प्रमाण होती है। जब तुम दुखी होते हो तो दुख प्रमाण होता है। ब्रह्मचर्य का आनंद तो ऐसा, ऐसा अपूर्व है कि जब ब्रह्मचर्य फलता है तो किसी से पूछना पड़ेगा, कोई परिणाम की जांच-परीक्षा करनी पड़ेगी?

लेकिन गांधी का ब्रह्मचर्य ऊपर से थोपा हुआ था। वह जबरदस्ती थोपा गया था। आखिरी क्षणों में डर पैदा होने लगा उन्हें खुद भी कि मैं ब्रह्मचारी हूं या नहीं! और डर के कारण भी थे। क्योंकि आखिरी, सत्तर वर्ष, पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी, स्वप्न में कामवासना पीछा करती थी। स्वप्नदोष भी आखिरी उम्र तक जारी रहा। तो घबड़ाहट स्वाभाविक थी। चिंता, भय था। इस भय को पार करने के लिए एक युवती को साथ लेकर सोने लगे--यह जांच के लिए कि मेरे मन में वासना उठती है कि नहीं उठती।

गांधी के अनुयायियों ने बुरी तरह इस बात को छिपाने की कोशिश की है कि यह कभी जैसे हुआ ही नहीं। क्योंकि यह तो सारी की सारी ढांचे को तोड़ देने वाली बात है। अगर गांधी खुद संदिग्ध हैं तो अनुयायियों का क्या भरोसा? गांधी को खुद ही अपने पर भरोसा नहीं है, तो क्या दूसरे को सिखाना? और क्या हुआ गांधी का

अनुभव इस युवती के साथ सोकर, उसकी कोई जाहिर खबर नहीं की गई--उन्होंने पाया कि नहीं पाया कि ब्रह्मचर्य सही था कि नहीं था। और बड़ी कठिनाई है। क्योंकि एक आदर्श को ऊपर से थोप लिया है; अब उसको पूरा करने की जिद्द है। और वासना भीतर कहीं न कहीं छिपी है, कहीं न कहीं अचेतन में दबी है। घाव की तरह है। उसे हमने ऊपर से ढांक लिया, मलहम-पट्टी कर दी है। लेकिन घाव मिटा नहीं है।

असंभव को मत थोपो, असाधारण को मत थोपो, अगर तुम चाहते हो कि लोग पुण्यात्मा हों। क्योंकि जितना तुम असंभव थोपोगे उतने ही लोगों के मन में अपराध और पाप का भाव पैदा होगा कि हम पापी हैं, हम पापी हैं; हमसे कुछ भी नहीं हो रहा। न हम उपवास कर सकते, न हम ब्रह्मचर्य साध सकते, न हम लोभ छोड़ सकते, न क्रोध छोड़ सकते। कुछ भी तो नहीं कर सकते। तो हमसे ज्यादा महागर्त में कोई भी नहीं है।

और जिसको यह भरोसा आ गया कि मैं महागर्त में हूं, उसके उठने के उपाय बंद हो गए। कौन उठेगा अब जब तुम्हीं गिर पड़े, और जब तुम्हीं ने हताशा ले ली, और जब तुमने आशा छोड़ दी। अब तुम्हारा आकाश दूर आकाश का तारा है जिसको तुम अपने गड्ढे में पड़े हुए देखते रहते हो। गड्ढा असलियत है, आकाश का तारा तो बहुत दूर है।

और तुम्हें पता नहीं है, जहां तारे दिखाई पड़ते हैं वहां होते नहीं। वहां कभी थे वे; क्योंकि प्रकाश को आने में बड़ा समय लगता है। जो निकटतम तारा है जमीन के उससे आने में चार साल लगते हैं। चार साल पहले वह तारा वहां था, अब है नहीं। तो रात तो तुम्हारी बिल्कुल झूठी है। जो तारे तुम्हें दिखाई पड़ते हैं बिल्कुल झूठे हैं। वहां कोई तारा नहीं है जहां तुम्हें दिखाई पड़ रहा है, वहां वह कभी था। चार साल में यह भी हो सकता है, वह नष्ट हो गया हो। लेकिन चार साल तक दिखाई पड़ता रहेगा, क्योंकि जब तक रोशनी आती रहेगी। चार साल तक का फासला रहेगा।

और यह तो निकटतम तारा है। फिर दूर के तारे हैं, जिनसे करोड़ वर्ष में रोशनी आती है, दस करोड़ वर्ष में रोशनी आती है, अरब वर्ष में रोशनी आती है। और ऐसे तारे हैं जिनकी रोशनी उस दिन चली थी जब पृथ्वी नहीं बनी थी और अभी तक पहुंची नहीं है। वे तारे कहां खो गए होंगे, कुछ पता नहीं। लेकिन दिखाई पड़ते हैं।

तुम्हारे अतीत के महावीर, बुद्ध, कृष्ण, बस ऐसे ही तारे हैं जो कभी थे। और तुम अपने गड्ढे में पड़े हो और दूर तारों पर आंखें लगाए हो जो हैं ही नहीं। तुम्हारा गड्ढा तुम्हारी असलियत है। और उस असलियत को तुम जितना ढांकना चाहते हो उतने ही आदर्श की तरफ देखते हो। आदर्श की तरफ देखने में एक सुविधा है, अपना नरक नहीं दिखाई पड़ता। पड़े रहते हो लोभ में, पड़े रहते हो कामवासना में; ब्रह्मचर्य के तारे पर आंखें लगाए रहते हो। तो जो है असलियत वह दिखाई नहीं पड़ती। और ध्यान रखना, जो है उसे देखना पड़ेगा; तभी किसी दिन ब्रह्मचर्य का जन्म होगा। तुम्हारा आदर्श तुम्हारा पलायन है, एस्केप है, बचने की तरकीब है। कब तक बचे रहोगे? तारे को देखते पड़े रहोगे, गड्ढा नहीं मिट जाएगा। तारे को देखने से कभी गड्ढा नहीं मिटा है। गड्ढे को ही देखना पड़ेगा। उठना पड़ेगा, चलना पड़ेगा। तारे को तो छोड़ो; असलियत को, यथार्थ को पकड़ो। क्योंकि यथार्थ में ही सत्य छिपा है; तुम्हारी कल्पनाओं, मनोवांछाओं में नहीं, तुम्हारे सपनों में नहीं।

क्रोधी आदमी अक्सर अहिंसा का आदर्श बना लेता है। उससे सुविधा हो जाती है। क्रोध को कहता है, है, माना। लेकिन अहिंसा की कोशिश कर रहा हूं; देखो, पानी छान कर पीता हूं, रात भोजन नहीं करता। धीरे-धीरे सधेगा। कोई जल्दी तो हो भी नहीं सकती; लंबा सवाल है, जन्मों-जन्मों की बात है। कभी न कभी अहिंसा को उपलब्ध हो जाऊंगा। आज तो क्रोध करूंगा, क्योंकि अभी तो अहिंसा सधी नहीं है। कभी! भविष्य में टालता है। और आज जो कर रहा है उसी में से भविष्य निकलेगा; वह जो कह रहा है उसमें से नहीं।

इसे तुम ठीक से समझ लेना, बारीकी से। तुम जो कर रहे हो उसी से तुम्हारा भविष्य निकलेगा। आज क्रोध कर रहे हो और सोच रहे हो, कल अहिंसा! तो अहिंसा तुम्हें राहत दे रही है। कंसोलेशन है, सांत्वना है। कोई फिक्र नहीं; तुम्हारा अहंकार कहता है कि मान लिया क्रोध कर रहे हो, क्योंकि मजबूरी है, जरूरत है, वैसे अहिंसा तुम्हारा लक्ष्य है। तुम आदमी तो बड़े गजब के हो। अभी तुम्हारा वक्त नहीं आया; तुम तो छिपे हुए प्रकाश हो; कल प्रकट होगा। तो इससे तुम्हें आज क्रोध करने में सुविधा मिल जाती है। अहिंसा कल पर टल गई। आज खाली बचा, क्रोध से भर लो। दिल खोल कर भर लो; क्योंकि कल तो अहिंसा हो जानी है। कल तो ब्रह्मचर्य आ जाएगा; आज आखिरी दिन और है, भोग कर लो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य तुम्हें भोगी बनाता है। क्योंकि आदर्श तुम्हारी असलियत छिपाता है।

तुम छोड़ो आदर्शों को। तुम सामान्य सत्य को पहचानो। क्या स्थिति है? और उसी स्थिति को जीओ सजगता से। आदर्श नहीं; जागरूकता! भविष्य नहीं; वर्तमान! यह तो क्रांति घटित होगी। और जब तुम आज को बदलोगे बोधपूर्वक, समझपूर्वक। क्योंकि समझ ही एकमात्र बदलाहट है, और कोई बदलाहट नहीं। समझ ही एकमात्र मुक्ति है, और कोई मुक्ति नहीं। आज जब तुम्हारी समझ के प्रकाश से प्रकाशित होगा और बदलेगा, उसी से तो कल का जन्म होगा। आज अगर तुम कम क्रोध किए--होशपूर्वक--तो कल और कम होगा, परसों और कम होगा, एक दिन अक्रोध की दशा आ जाएगी। उस दिन अहिंसा का फूल खिलेगा। वह आदर्श की तरह नहीं, वह जीवन के यथार्थ से गुजर कर मिलता है।

लाओत्से कहता है, सामान्य को सूत्र बना लो। तुम जैसे हो उसे देखो। और राज्य को कहता है कि राज्य भी मनुष्य के सामान्य को नियम बनाए, असामान्य को आदर्श न बनाए।

अब हम क्या कर रहे हैं? हम चाहते हैं कि हमारे मंत्री, प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति झोपड़े में रहें। तब तुम आदमी की सामान्य स्थिति को नहीं समझ रहे। जिसको झोपड़े में रहना है वह पागल है जो प्रधान मंत्री बनने जाए! जब झोपड़े में ही रहना है तो तुम्हारे पैर दबा-दबा कर वोट पाने की जरूरत क्या है? झोपड़े में रहने के लिए तुम से कोई आज्ञा नहीं लेनी। सामान्य आदमी की सामान्य मनोदशा है। वह महल में रहने के लिए तो जा रहा है, तुम्हारे पैर दबा रहा है, तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खड़ा है। तुम, जिनसे कुछ लेना-देना नहीं है, तुम्हारे सामने झुक रहा है, जी-हुजूरी कर रहा है। तुम अकड़े खड़े हो और वह तुम्हें फुसला रहा है।

मुल्ला नसरुद्दीन चुनाव में खड़ा हुआ। तो गांव भर में उसने चक्कर लगाया जांच-पड़ताल के लिए--कौन अपने पक्ष में है, कौन विपक्ष में है। तो वोटर-लिस्ट लेकर निशान लगाता गया। जिसने कहा पक्ष में उस पर लगा दिया पक्ष, जिसने कहा विपक्ष में उस पर लगा दिया विपक्ष। एक महिला के द्वार पर गया, वह अपने बगीचे में काम कर रही है। उसने वहीं से कहा कि बाहर रहो, भीतर मत आओ! तो भी मुस्कुराया, फाटक खोल कर कहा कि और किसी कारण से नहीं आया हूं, सिर्फ यह पूछने आया हूं कि चुनाव में खड़ा हो रहा हूं मेयर के, तो आपका मत तो मुझे मिलेगा? वह स्त्री आगबबूला हो गई। उसने कहा, लावारिस! आवारा! तुम्हें मत? और मेयर बनना है? तुम सड़क पर भीख मांगने के योग्य भी नहीं। तुम्हें तो असल में गांव के बाहर निकाला जाना चाहिए। हटो बाहर! वह झाड़ू से जिससे साफ कर रही थी, झाड़ू उसने उठा ली। नसरुद्दीन पीछे हटता जा रहा है, मुस्कुराता जा रहा है, और कह रहा है कि नहीं, कोई बात नहीं, सोच लेना, अभी कोई जल्दी भी नहीं है। उस स्त्री ने कहा, सोचने का सवाल ही नहीं। तुम निकलते हो कि मैं झाड़ू चलाऊं? तो वह बाहर आ गया। बाहर से उसने फिर नमस्कार किया, अपनी डायरी देखी, और उसने डायरी पर लिखाः डाउटफुल, संदिग्ध।

विपक्ष में है, उसको भी विपक्ष में राजनीतिज्ञ नहीं मानता। तुम्हारे हाथ-पैर जोड़ रहा है।

फिर मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया और उसका बेटा एक दफा चुनाव में खड़ा हुआ, तो यही गुजरी बेटे पर। उसने बाप से आकर कहा कि यह तो बड़ा कठिन काम है, लोग बड़ा अपमान करते हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, अपमान? कितने चुनाव मैं लड़ा, ऐसी भी नौबत आ गई कि पीटा गया, फेंका गया, घरों से धक्के देकर निकाला गया, लोगों ने जूते मारे, केले के छिलके फेंके, सड़े टमाटर मारे। लेकिन अपमान? अपमान कभी किसी ने नहीं किया।

सब तरह झुकता है, और तुम चाहते हो झोपड़े में रहने के लिए! तो झोपड़े में रहने के लिए यहीं कौन सी तकलीफ थी? और जब वह जाकर महल में रहता है, तुम कहते हो भ्रष्टाचारी। तुम अजीब हो। सीधी-सीधी बात है। आदमी का सामान्य मन है। तुम जैसा ही आदमी है। उसी आकांक्षा से बेचारा दिल्ली की यात्रा किया है। जूते खाता है, सड़े टमाटर खाता है, छिलके फेंके जाते हैं, गाली-गलौज झेलता है। जगह-जगह काले झंडे, और लोग मुर्दाबाद कर रहे हैं; वह सब झेल कर जाता है--झोपड़े में रहने के लिए? तो जाएगा ही काहे के लिए? इतनी सीधी सी बात है। वह जाता इसीलिए है कि महल में रह सके थोड़ी देर। यह आदमी का सामान्य मन है। फिर जब वह महल में रहता है तो भ्रष्टाचारी है। वह साइकिल पर चलना चाहिए तो तुम्हें ठीक लगता है। साइकिल पर ही चलना था तो यहां कौन सी दिक्कत थी? वहां अगर वह बड़ी कार में चलता है तो मुसीबत। वह जाता इसीलिए है।

जीवन को सामान्य की तरह सोचो। तब तुम्हें तुम्हारे राजनेता इतने भ्रष्टाचारी न दिखेंगे जितने दिखाई पड़ते हैं। और तब तुम्हें मुल्क भी इतना भ्रष्टाचारी नहीं मालूम पड़ेगा जितना मालूम पड़ता है। इतना है भी नहीं। क्योंकि इतना भ्रष्टाचारी हो तो कोई समाज टिक ही नहीं सकता; वह नष्ट ही जो जाए। सम्हल ही नहीं सकता।

लेकिन भ्रष्टाचार तुम बड़ा करके देखते हो; क्योंकि तुम्हारे आदर्श बड़े असामान्य हैं। झूठे तुम्हारे आदर्श हैं, उनके आधार पर तुम नियम बनाते हो। और वही आदर्श तुम्हारा नेता भी मानता है। उसी के आधार से वह तुमको कहता है कि जनता भ्रष्ट है। और जनता कहती है, नेता भ्रष्ट है।

सामान्य को देखो। मनुष्य की सामान्य आकांक्षा पर दया करो। सामान्य को समझने की कोशिश करो। उससे ही असामान्य को पैदा करना है। असामान्य को ऊपर से नहीं थोपना है।

कहता है लाओत्से, "राज्य का शासन सामान्य के द्वारा करो। रूल ए किंगडम बाइ दि नार्मल।"

तब जीवन व्यवस्थित हो पाता है। क्या है नार्मल? आदमी को समझो, आदर्शों को मत। वहीं से सूत्र खोजो। सामान्य आदमी क्या चाहता है? चाहता हैः छप्पर हो, रोटी हो, कपड़ा हो, प्रेम हो जीवन में, सुरक्षा हो। यह सामान्य आदमी की आकांक्षा है। न तो सामान्य आदमी चाहता है कि कोई परमात्मा मिल जाए आज, न कोई मोक्ष, न कोई ब्रह्मचर्य। तुम जो सामान्य आदमी चाहता है उसको देख कर व्यवस्था दो। उसी व्यवस्था में जब वह शांत होने लगेगा तभी उस शांति की समृद्धि से ये नई अभीप्साएं पैदा होंगी।

छोटे-छोटे बच्चों को हम ब्रह्मचर्य का पाठ सिखा रहे हैं। छोटे बच्चों को पहले कामवासना का पाठ सिखाओ, ताकि वे कामवासना में गलत न चले जाएं। अभी ब्रह्मचर्य का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन स्कूलों में लिखा है कि ब्रह्मचर्य परम धर्म है। छोटे-छोटे प्राइमरी स्कूलों में मैंने तख्तियां लगी देखी हैं कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। यह प्राइमरी के बच्चे को, ब्रह्मचर्य ही जीवन है, इससे क्या मतलब है? यहां कोई बूढ़े पढ़ने आते हैं? अभी इस बच्चे को पता ही नहीं कि ब्रह्मचर्य क्या है। अभी तुम इसे क्षमा करो। अभी तुम इसे समझाओ कि जीवन में कामवासना आएगी, उसे कैसे सम्यकरूपेण जीया जाए, कैसे तू कामवासना में ठीक-ठीक कुशलता से प्रवेश करे, ताकि तू भटके न। अगर कोई व्यक्ति कामवासना में ठीक से प्रवेश कर गया तो दूसरा कदम ब्रह्मचर्य का स्वाभाविक है। बिना कामवासना में गए हुए बच्चे को अगर तुमने ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ा दिया तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।

मेरे पास लोग आते हैं, युवक, वे कहते हैं कि विवाह करें या नहीं, क्योंकि है तो ब्रह्मचर्य ऊंची बात। युवकों के मन में भी विवाह की निंदा हो जाती है। है तो ब्रह्मचर्य ऊंची बात। मैं उनसे पूछता हूं, ब्रह्मचर्य की तुम बात ही मत करो, तुम अपने हृदय की कहो। कहते हैं, हृदय तो वासना से भरा है। लेकिन आप कोई तरकीब बताएं लड़ने की, ताकि वासना को काट कर अलग कर दें।

वासना को कभी किसी ने काट कर अलग किया है? और अगर वासना को ही काट दिया तो फिर ब्रह्मचर्य कैसे लाओगे? जो पैर वेश्याघर की तरफ जाते हैं उनको तुमने काट दिया तो वे ही पैर तो मंदिर की तरफ भी ले जाते थे। पैर तो वही हैं, चाहे वेश्याघर जाओ, चाहे मंदिर जाओ। दिशा बदलनी है; पैर थोड़े ही काट देने हैं।

ऊर्जा तो वही है, शक्ति तो वही है; चाहे व्यर्थता में खोओ, चाहे सार्थकता में उठाओ; चाहे अधोगामी बनाओ और चले जाओ नरक में और चाहे ऊर्ध्वगमन करो और पहुंच जाओ परम उत्कृष्ट जीवन की अवस्था में, ब्रह्मचर्य को। काटना थोड़े ही है; जानना है, पहचानना है, ठीक से जमाना है; सीढ़ियां बनानी हैं पत्थरों की। होशियार कारीगर तिरस्कृत पत्थर को भी उपयोग में ले आता है, नासमझ उस बहुमूल्य पत्थर को भी फेंक देता है जिसमें कोई महान प्रतिमा छिपी थी। जरा छेनी लेकर साफ करने की बात थी और प्रतिमा उघड़ आती। अगर तुम बड़े मूर्तिकारों से पूछो तो वे यह नहीं कहते कि हम मूर्ति बनाते हैं, वे कहते हैं, मूर्ति तो छिपी ही होती है, किसी-किसी पत्थर में हमें दिखाई पड़ जाती है कि इसमें छिपी है। बस, फिर हम जो उसमें व्यर्थ है उसको छांट देते हैं, जो आवरण है उसको हटा देते हैं। मूर्ति तो थी ही। सिर्फ आवरण को हटाने की कुशलता है। कूड़े-कर्कट को अलग कर देते हैं, मूर्ति प्रकट हो जाती है। हम मूर्ति बनाते थोड़े ही हैं। कभी किसी ने कोई मूर्ति बनाई है!

इसलिए मूर्तिकार जाता है पहाड़ों में, पत्थरों को देखता है--किस पत्थर में छिपी है?

जब तुम मेरे पास आते हो तो मैं भी तुम्हें ऐसे ही देखता हूं। क्योंकि तुम अनगढ़ पत्थर हो। देखता हूं, मूर्ति छिपी है, थोड़ा सा अनगढ़पन है। थोड़ा यहां-वहां छेनी के लगाने की जरूरत है; जल्दी ही रूप उघड़ आएगा। मिटाना कुछ भी नहीं है; संवारना है, सजाना है, ठीक दिशा देनी है।

और ठीक दिशा सामान्य से मिलती है। तुम सामान्य होने की आकांक्षा करो। असामान्य होने से तुम रुग्ण हो।

कहता है लाओत्से, "युद्ध हो तो ठीक, चलो, असामान्य अचरज भरी युक्तियों से लड़ो।"

क्योंकि युद्ध तो गलत है ही। तो उसमें अगर गलत चलता हो तो चले, लेकिन कम से कम जीवन के शांत क्षणों में तो गलत को मत चलाओ। युद्ध तो गलत है, इसलिए गलत से ही चलता है।

रोमन सम्राट एक तरकीब करते थे। उनका सिंहासन दीवार के पीछे एक यंत्र से जुड़ा हुआ था। जब सम्राट उस पर बैठता था, सिंहासन ऊपर उठ जाता था। चमत्कृत हो जाते थे लोग कि सम्राट कोई साधारण पृथ्वी का आदमी नहीं है। गुरुत्वाकर्षण का भी कोई प्रभाव नहीं सम्राट पर, बैठते ही सिंहासन ऊपर उठ जाता है। यह तो बहुत बाद में पता चला लोगों को, जब सम्राट खो गए, कि दीवार के पीछे यंत्र लगा रखा था जिसको एक आदमी चलाता था। मगर इसका बड़ा प्रभाव था।

रोमन सम्राट जब वर्ष के प्रथम दिन पर अपनी परेड का निरीक्षण करता था तो इस तरह का इंतजाम किया था कि दस हजार सैनिक लाखों सैनिकों जैसे मालूम पड़ें। क्योंकि सैनिक सामने से गुजरते और वे ही लौट कर फिर पीछे से पंक्ति में जुड़ जाते। तो जो दूसरे राजाओं के राजदूत थे या मित्र राजा थे वे खड़े होकर जब देखते परेड तो उनकी छाती बैठ जाती कि इस सम्राट से झगड़ना खतरे से खाली नहीं है। इतनी भयंकर फौज-फांटा! इतनी तोपें! बस उनको देख कर ही उनके प्राण ठंडे हो जाते थे। था कुछ भी नहीं। थोड़े से सैनिक थे, थोड़ी सी

तोपें थीं, लेकिन उस्तादी यह थी कि उनको फिर वापस--एक गोल वर्तुल में घूमता था पूरा का पूरा मामला। और सैनिकों की शक्लें तो होती नहीं, इसलिए तुम पहचान भी नहीं सकते कि ये सैनिक। वर्दी होती है। सैनिक यानी वर्दी। शक्ल तो होती नहीं। पहचानना बिल्कुल मुश्किल है कि ये वे ही आदमी आ रहे हैं। दूसरे राजा हतप्रभ हो जाते थे।

लाओत्से कहता है, युद्ध में तुम चालाकियों का उपयोग करो, अचरज भरी बातों का, असामान्य का, समझ में आता है। क्योंकि युद्ध तो बीमारी ही है। वहां और बीमारियां भी चलेंगी। लेकिन कम से कम जीवन के शांत क्षणों में, सामान्य जीवन में तो अचरज को, विशिष्ट को, असामान्य को मत लाओ।

"संसार को बिना कुछ किए जीतो।"

करके जीता तो क्या जीता? क्योंकि करके जो जीत मिलती है वह जीत होती ही नहीं। तुम जबरदस्ती किसी को भी हरा नहीं सकते। हरा सकते हो, उसकी छाती पर बैठ सकते हो, लेकिन बस ऊपर ही ऊपर रहोगे। भीतर वह आदमी बिना हारा है, उसका हृदय नहीं हारता। तुम गर्दन काट सकते हो, लेकिन वह आदमी बिना हारा मरेगा। करके कभी किसी ने किसी को जीता है? सिर्फ प्रेम जीतता है। और प्रेम कोई कृत्य नहीं है, भाव की दशा है। प्रेम कुछ करना नहीं है, प्रेम तो एक मनोदशा है, ए स्टेट ऑफ बीइंग है, एक होने का ढंग है।

लाओत्से कहता है, संसार को बिना कुछ किए जीतो, प्रेम से जीतो।

"मैं कैसे जानता हूं कि ऐसा है? इसके द्वारा।"

और तब वह कहता है, ये मेरे अनुभव हैं।

"जितने अधिक निषेध होते हैं, लोग उतने ही अधिक गरीब होते हैं।"

निषेध का बड़ा आकर्षण है। जिन मुल्कों में कानून बन जाता है कि शराब बंद, प्रोहिबीशन लागू, उन मुल्कों में लोग दुगुनी शराब पीने लगते हैं। यह सारी दुनिया जानती है। फिर भी मूढ़ता का कोई अंत नहीं है। फिर भी पागल लोग पीछे पड़े हैं कि शराब बंद करो। सारी दुनिया का अनुभव यह है कि जिस मुल्क में शराब बंद होती है उस मुल्क में लोग दुगुनी-तिगुनी शराब पीने लगते हैं। चोरी से शराब बनने लगती है। चोरों के लिए रास्ता खुल जाता है।

सब निषेध चोरी को बढ़ाते हैं। और सब निषेध लोगों को गरीब करते हैं। क्योंकि जितना तुम कहते हो कि मत करो! उतना लोगों के अहंकार को चोट लगती है; वे करने को तत्पर हो जाते हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि क्या जरूरी था, क्या गैर-जरूरी था। ऐसे ही जैसे इस दरवाजे पर हम एक तख्ती लगा दें कि भीतर झांकना मना है। फिर तुम बिना झांके निकल सकोगे? तख्ती पढ़ना न आता हो तो बात और, लेकिन तख्ती लगी है कि झांकना मना है तो तुम बिना झांके नहीं निकल सकते। क्योंकि तख्ती खबर देती है कि कुछ झांकने योग्य भीतर होना ही चाहिए। कोई सुंदरी बैठी हो। कुछ न कुछ मामला है, नहीं तो तख्ती क्यों है? तुम झांकोगे। अगर दुर्जन हुए तो वहीं अड़ कर खड़े हो जाओगे। अगर सज्जन हुए तो जरा चोरी-छिपे से झांकोगे। चलोगे इधर को, देखोगे उधर को। अगर बहुत ही सज्जन हुए, कमजोर, बिल्कुल लचर, तो रात को लौटोगे जब भीड़-भाड़ न रहे, कोई न रहे, तब झांक कर देखोगे। अगर बिल्कुल ही कमजोर रहे, बिल्कुल नपुंसक, सपने में झांकोगे, मगर झांकोगे। बिल्कुल असंभव है।

तुमने देखा, दीवारों पर जहां लगा रहता है कि यहां पेशाब करना मना है, वहां पहुंचते ही से पेशाब लग आती है। पढ़ा नहीं कि बस एकदम ख्याल... अभी तक ख्याल भी नहीं था। तो जिस दीवार पर लिखा हो वहां तुम देख लो, हजार निशान पेशाब के बने होंगे। सामान्य आदमी है। अगर दीवार बचानी हो तो भूल कर लिखना मत।

अगर बिल्कुल ही बचानी हो तो लिखना कि यहां करना सख्त अनिवार्य है। अगर यहां पेशाब न की तो पकड़े जाओगे, मारे जाओगे। फिर तुम देखना, जिसको लगी भी है वह भी सम्हाल कर निकल जाएगा कि यह क्या मामला है। कोई परतंत्र हैं! कोई हम किसी के गुलाम हैं कि तुम हमको आज्ञा दो कि कहां हम करें और कहां हम न करें!

निषेध लोगों को दीन और दरिद्र बना रहा है। क्योंकि निषेध के कारण लोग व्यर्थ चीजों की तरफ आकर्षित होते हैं। शराब बंद है तो लोग शराब की तरफ आकर्षित होते हैं। खाना छोड़ देंगे, लेकिन शराब पीएंगे। क्योंकि जब बंद है तो जरूर कोई मामला होगा। शराब में कुछ न कुछ होगा रहस्य। मिलता होगा कोई न कोई आनंद। कोई न कोई हर्षोन्माद आता होगा। नहीं तो क्यों इतने लोग पीछे पड़े हैं? कानून इतने पीछे क्यों पड़ा है? सरकारें इतने पीछे क्यों पड़ी हैं? नेतागण इतने पीछे क्यों पड़े हैं? और लोग जानते हैं कि नेतागण खुद पी रहे हैं; दूसरों को रोक रहे हैं। जरूर कुछ रहस्य है। जरूर कोई बात है। और एक दफा आदमी पड़ जाए जाल में तो उस जाल के बाहर आना मुश्किल होता जाता है।

अगर दुनिया को कम शराबी बनाना हो, शराब को खुला छोड़ दो। तुम्हारे रोकने से कोई रुकता नहीं, तुम्हारे रोकने से सिर्फ और गलत शराब पीयी जाती है। कोई स्पिरिट पी लेता है, कोई पेंट पी जाता है। सैकड़ों लोग मर जाते हैं। अगर शराब खुली हो तो कम से कम कोई स्पिरिट तो न पीएगा, पेट्रोल तो न पीएगा। अगर शराब खुली हो तो कम से कम ठीक शराब तो पीएगा। बंद होते ही से अंधेरे में चला जाता है सब काम। और अंधेरे के व्यवसायी हैं, वे तत्क्षण हाथ में ले लेते हैं। अगर तुम ठीक से समझो तो जो लोग शराब बेचते हैं, उनके पक्ष में है कि कानून हो शराब-बंदी का। मोरारजी भाई सोचते हों कि वे शराब-बंदी के पीछे पड़े हैं तो उन लोगों के साथ शराब-बंदी वाले लोग खड़े हैं; वे गलती में हैं। उनसे लाभ तो होने वाला है उन्हीं का जो शराब बेचते हैं। क्योंकि शराब बढ़ जाती है एकदम से, जैसे ही निषेध हो जाता है।

जिस फिल्म पर लिख दिया गया कि यह सिर्फ, केवल वयस्कों के लिए है, ओनली फॉर एडल्ट्स, उसको छोटे-छोटे बच्चे भी देखने पहुंच जाते हैं। वह ज्यादा चलती है। उसमें वयस्क तो पहुंचते ही हैं, जो वैसे न गए होते, कि कुछ मामला है, उसमें छोटे-छोटे बच्चे भी पहुंच जाते हैं।

जितने होंगे निषेध उतना ही लोगों का आकर्षण बढ़ता है और गलत दिशाओं में यात्रा शुरू हो जाती है। गलत को इतना महत्वपूर्ण मत बनाओ। निषेध महत्व दे देता है। गलत की उपेक्षा करो; इतना आकर्षक मत बनाओ। गलत की बात ही मत उठाओ। बच्चे से भूल कर मत कहो कि झूठ बोलना मना है, झूठ मत बोलना। क्योंकि इससे बच्चे को रस आता है। और बच्चे को लगता है, झूठ में जरूर कोई मजा है।

है तो मजा, क्योंकि दूसरे को धोखा देने में अहंकार की एक तृप्ति है। और बच्चा ऐसे कमजोर है; जब उसे पता चल जाता है कि झूठ बोल कर भी हम हरा सकते हैं लोगों को तो वह झूठ बोलने लगता है। फिर वह कुशल होने लगता है धीरे-धीरे। फिर झूठ एक कला बन जाती है। वह इस तरकीब से बोलता है कि तुम पहचान ही न पाओ। छोटे-छोटे बच्चे बड़े कुशल कारीगर हो जाते हैं। उन्होंने अभी कोई शैतानी की; और तुम पहुंच जाओ, देखोगे कि बिल्कुल ऐसे शांत बैठे हैं। तुम उनसे कहो, तो वे कहेंगेः क्या? जैसे उन्हें कुछ पता ही नहीं है। किसने किया? यह वे एक खेल खेल रहे हैं। वे यह दिखा रहे हैं कि तुम बड़े समझदार होओगे, ऊंचाई तुम्हारी छह फीट होगी, होगी! लेकिन हम भी तुम्हें मात दे सकते हैं।

बच्चे से भूल कर मत कहना कि झूठ बोलना मना है। क्योंकि जो मना है वह किया जाएगा। और बच्चे ही हैं सब तरफ। उनकी उम्र ज्यादा हो जाए, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई पांच साल का बच्चा है, कोई पचास साल का बच्चा है। बस बच्चे ही हैं सब तरफ।

और इसलिए लाओत्से कहता है, कैसे मैंने जाना यह? मैंने जाना यह देख कर कि जितने अधिक निषेध, उतने लोग दरिद्र। जितने तेज शस्त्र, उतनी अराजकता। जितना राज्य कोशिश करता है दबाने की, उतने ही लोग दबंग होते जाते हैं, दबते नहीं।

पच्चीस सालों से भारत में हम कोशिश कर रहे हैं लोगों को दबाने की, वे और दबंग होते जाते हैं। जितनी तुम व्यवस्था जमाते हो, पुलिस के हाथ में बम हैं, बंदूक हैं; क्या फर्क पड़ता है? तुम रोज लोगों को मार रहे हो; इससे कुछ हल नहीं होता। लोगों का उपद्रव बढ़ता जाता है। लोगों का उपद्रव दबाने से नहीं दबता। उपद्रव को समझो; उपद्रव के पीछे के कारण को समझो। कारण को बदलो। दबाने से कुछ भी न होगा। कारण को कोई बदलने की नहीं सोचता। लोग सोचते हैं कि बस दबाने में। हर सत्ता यही सोचती है कि शक्ति काफी है।

लोग भूखे हैं; शक्ति से कोई पेट भरता है? कि तलवार से कोई पेट भरता है? लोग अगर भूखे हैं तो रोटी का इंतजाम करो। दबाने से न होगा। और भूखे आदमी को जब तुम दबाते हो तो एक ऐसी घड़ी आ जाती है जब वह देखता है कि भूख तो मिटती ही नहीं, जीवन में कोई सार है नहीं, कुछ खोने को बचता नहीं, वह पागल हो जाता है। फिर तुम उसे नहीं दबा सकते। और व्यवस्था चलती है सिर्फ धारणा से। नहीं तो क्या कीमत है पुलिसवाले की? अब इस गांव में दस लाख लोग हैं। दस लाख आदमियों को कंट्रोल में अगर रखना हो तो कितने पुलिसवाले चाहिए? कम से कम दस लाख तो चाहिए ही। लेकिन दस पुलिसवालों से काम चलता है। क्योंकि मान्यता है। पुलिसवाले को देख कर लोग रुक जाते हैं।

लेकिन अगर तुमने ज्यादा जबरदस्ती की तो पुलिसवाले की स्थिति खुल जाती है। तब लोग देख लेते हैं कि इस वर्दी के पीछे भी छिपा तो साधारण आदमी ही है। मारो पत्थर, यह भी भागता है। उठाओ लट्ठ, यह भी छिपता है। एक बार लोगों को पता चल गया कि पुलिसवाले के पीछे भी साधारण आदमी है और राष्ट्रपति के पीछे भी साधारण आदमी है, और बाकी सब ऊपरी चाकचिक्य है, भीतर कुछ खास नहीं है; यह भी वैसे ही डरा हुआ है जैसे कि हम डरे हुए हैं; यह भी वैसे ही घबड़ाया हुआ है जैसे हम घबड़ाए हुए हैं; एक बार आस्था उठ गई, फिर जमानी बहुत-बहुत मुश्किल है।

वही हो जाता है जब तुम ज्यादा उपाय करने लगते हो। पुलिस सब उपाय कर रही है। अब उसके पास कुछ सुरक्षित उपाय बचा भी नहीं है। व्यवस्था तुम्हारी बड़ी तलवारों से नहीं चलती। तुम्हारा तलवार उठाना यह बताता है कि तुम घबड़ा गए हो। पुलिस का गोली चलाना यह बताता है कि पुलिस घबड़ा गई है और जनता ने पुलिस की हिम्मत तोड़ दी है।

इंग्लैंड की पुलिस को सूचना है कि बिल्कुल असंभव स्थिति में ही चोट की जाए, क्योंकि चोट खतरनाक है। क्योंकि चोट करके तुम यह बता रहे हो कि तुम्हारा होना काफी नहीं है, तुम्हारी मौजूदगी काफी नहीं है। इंग्लैंड भर अकेला मुल्क है जो इस पूरी सदी में सबसे ज्यादा व्यवस्थित है। और कारण है कि व्यवस्था करने की बहुत चेष्टा नहीं है। क्योंकि चेष्टा जितनी ज्यादा की जाए उतना ही साफ होता जाता है कि चेष्टा करने वालों की भी कोई ताकत नहीं है। क्या करोगे तुम? भीड़ बड़ी है, अराजकता फैल जाएगी।

लाओत्से कहता है, कैसे मैंने जाना? कहता है, मैंने जाना यह देख कर कि जितने तेज शस्त्र होते हैं, उतनी ही अराजकता बढ़ती है।

शस्त्रों पर भरोसा मत करो। व्यवस्था एक मनोदशा है, व्यवस्था कोई तलवार नहीं है। और ध्यान रखो, मरता क्या न करता! क्योंकि अगर तुम मारने पर उतारू हो गए तो जो मर रहा है वह भी मारने पर उतारू हो जाता है। और एक बार जनता मारने पर उतारू हो जाए, फिर कोई उपाय नहीं है; फिर तुम कुछ भी नहीं कर सकते। बड़े से बड़े सम्राट धूल में गिरते देखे जाते हैं। हेलसिलासी अभी-अभी गिरा धूल में। वह शक्तिशाली आदमी था। चालीस साल तक सख्ती से उसने हुकूमत की। और ऐसे गिर गया जैसे कि घास का पुतला हो। क्या हो गया?

सख्ती ही यहां ले आई। जनता उस सीमा पर आ गई जहां अब कुछ खोने का डर न रहा। उलटा दिया। हेलसिलासी को उलटाना बड़ी अनूठी घटना है; कोई सोच भी नहीं सकता था। क्योंकि वह कहता था किंग ऑफ किंग्स अपने को, कि वह राजाओं का राजा है। और था भी वह शक्तिशाली आदमी। और चालीस साल तलवार के बल पर उसने हुकूमत की। लेकिन ऐसे गिर गया जैसे खेत में खड़ा हुआ धोखे का आदमी गिर जाता है, आवाज भी न हुई। जिस दिन उसको उतारा राज-सिंहासन से उस दिन सिर्फ दो आदमी अंदर गए और उन्होंने उससे कहा कि आप बाहर चल कर कार में बैठ जाएं। स्थिति को भांप कर... । क्योंकि जनता पूरे विरोध में है, और पूरा सैनिक धीरे-धीरे जनता के साथ हो गया। क्योंकि आखिर सैनिक जनता का हिस्सा है। कब तक तुम सैनिक से जनता को पिटवाओगे?

अगर जनता को तुम सैनिक से पिटवाओगे तो आज नहीं कल सैनिक भी समझ जाएगा कि मैं अपने को ही पीट रहा हूं। ये मेरी मां है, मेरे पिता हैं, मेरे भाई हैं, मेरे बेटे हैं। यह कितनी देर चल सकता है? तुम सैनिक और जनता के बीच कितनी देर फासला रख सकते हो? क्योंकि सैनिक आता तो जनता से है। वर्दी उतारी कि वह भी जनता का हिस्सा हो जाता है। यह वर्दी का धोखा कितनी देर?

सैनिक भी विरोध में हो गया। सिर्फ दो सैनिक भीतर गए और हेलसिलासी से कहा कि आप उठें, बिना कुछ ना-नुच किए, बाहर खड़ी गाड़ी में बैठ जाएं। हेलसिलासी ने चारों तरफ देखा और चुपचाप उठ कर बाहर आया। सिर्फ उसने एक बात कही, क्योंकि वह इतनी छोटी गाड़ी में कभी नहीं बैठा था। एक फिएट! वह बैठता था बड़ी गाड़ियों में, लंबी से लंबी गाड़ियों में। उसने कहा, इस छोटी गाड़ी में? उस सैनिक ने कहा, चुपचाप बैठ जाएं। हेलसिलासी चुपचाप सरक कर भीतर बैठ गया। गाड़ी चली गई। उसे ले जाकर उन्होंने गांव के एक छोटे से मकान में रख दिया। जैसे कि कोई खेत में खड़ा हुआ पुतला गिर जाए।

व्यवस्था एक भाव-दशा है; तलवारों से नहीं चलती। और जब कोई राज्य तलवार का भरोसा करने लगता है, समझो कि उसके गिरने के दिन आ गए; आखिरी वक्त आ गया। यह मौत की घड़ी है। जैसे मौत के क्षण में एक भभक आती है जीवन की, और लपट बुझने के पहले जोर से भभकती है, ऐसे ही जिस दिन बड़ी तलवार राज्य के हाथ में उठी देखो, समझो कि मौत करीब आ गई। यह आखिरी भभक है। अब आखिरी उपाय किया जा रहा है।

लाओत्से कहता है, "जितने तकनीकी कौशल होते हैं, उतने ही लोग ज्यादा चालाक हो जाते हैं।"

लाओत्से यंत्रों के विरोध में था। और उसकी बात सच है। क्योंकि यंत्र एक तरह की चालाकी है, प्रकृति के साथ एक तरह की कनिंगनेस। तुम प्रकृति से वह निकाल लेने की कोशिश कर रहे हो जो प्रकृति देने को तैयार न थी। यंत्र का मतलब यही है। तो जितने तकनीकी कौशल बढ़ते जाते हैं उतने लोग चालाक होते जाते हैं। जब तुम प्रकृति के साथ चालाक हो तो क्या वजह है कि मनुष्य के साथ चालाकी न की जाए? कोई कारण नहीं है। चालाकी चालाकी है। तुम जब चीजों को धोखा दे रहो हो... ।

अब अमरीका में हर चीज को धोखा दिया जा रहा है। फलों में इंजेक्शन लगाए जाते हैं, ताकि फल खूब बड़ा हो जाए। अब फल को इंजेक्शन देकर तुम वृक्ष के प्राण सोख रहे हो। मुर्गियां, भैंसें, सब इंजेक्शन देकर उनसे ज्यादा दूध लिया जा रहा है। कोई फर्क नहीं पड़ता, बेहूदे ढंग से या सुसभ्य ढंग से।

कलकत्ते में एक पाप चलता है कि गाय या भैंस की योनि में एक डंडा डाल देते हैं दूध लगाते वक्त। उससे उसे इतनी बेचैनी होती है, लेकिन उस बेचैनी के कारण वह ज्यादा दूध दे देती है घबड़ाहट में। उसे पीड़ा होती है, लेकिन ज्यादा दूध दे देती है। अब यह बहुत अभद्र ढंग हुआ। एक इंजेक्शन लगा दिया, उस इंजेक्शन के कारण, हार्मोन्स के कारण ज्यादा दूध निकल आता है। लेकिन अब तुम गाय को धोखा दे रहो हो।

जो गाएं मांसाहार के लिए काटी जाती हैं, उनको तो वे बिल्कुल इंजेक्शन देकर कोमा में रखते हैं। उनको बाहर भी नहीं लाते, रोशनी में भी नहीं लाते। उनको तो बिल्कुल वातानुकूलित गृहों में इंजेक्शन देकर ही रखते हैं। वे कोमा में पड़ी रहती हैं बेहोश, लेकिन उनका मांस बढ़ता जाता है इंजेक्शन दे-देकर। इतना मांस बाहर नहीं बढ़ सकता। क्योंकि वे चलेंगी-फिरेंगी तो मांस पचता है। तो उतना नुकसान होता है धंधे वाले को। तो उनको चलने-फिरने ही नहीं दिया जाता। उनका जीवन बिल्कुल पौधों की तरह कर दिया जाता है। पड़ी है गाय, उसको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं। उसका मांस बढ़ता ही जाता है। वह मांस का लोथड़ा है सिर्फ। वह बेहोश है। बस उसको काट देंगे। वह जीयी, इसका भी उसको कभी पता नहीं चलेगा। उसने कभी सांस भी जीवन की ली, इसका उसे कोई पता नहीं चलेगा। अब यह सब चालाकी है।

लाओत्से कहता है कि जितना तकनीकी कौशल बढ़ता है, उतनी ही चालाकी बढ़ती जाती है।

एक घटना घटी। एक आदमी ने किसी को गोली मारी अमरीका के एक नगर में। जिस आदमी ने गोली मारी वह तो भाग गया; और यह आदमी मर गया, और तत्क्षण उसका हृदय निकाल लिया गया। क्योंकि आदमी मर ही रहा था तो उसका हृदय निकाल लिया ताजा। और वह हृदय दूसरे आदमी को लगा दिया गया। कोई हजार मील दूर तत्क्षण एरोप्लेन से ले जाकर वह, किसी मरते हुए मरीज को हृदय के, लगा दिया गया। फिर एक बड़ी कानूनी दिक्कत आई। वह आदमी पकड़ लिया गया जिसने गोली मारी थी। उसके वकील ने अदालत में कहा कि जब तक हृदय बंद न हो जाए तब तक किसी को मरा हुआ नहीं माना जा सकता। और उस आदमी का हृदय अब भी चल रहा है--दूसरे आदमी के भीतर। इसलिए पहले तो यह प्रमाणित करना जरूरी है कि वह आदमी मर गया। अब ऐसी कोई घटना पहले कानून के इतिहास में घटी नहीं थी। यह बड़ी मुसीबत हो गई अदालत को कि करना क्या! क्योंकि जब तक हृदय बंद न हो जाए तब तक आदमी मरा नहीं है। तो वकील का कहना यह था कि आप उसको दंड दे सकते हैं हमला करने का, लेकिन हत्या का नहीं। हमला करने का दंड तो साधारण है, हत्या का दंड भयंकर है।

संयोग की बात थी, इसलिए निबटारा हो गया। लेकिन अब कानूनविद बड़ी चिंता में पड़े हैं। क्योंकि यह तो रोज मामला बढ़ेगा। संयोग की बात थी कि जिसको हृदय का आरोपण किया था वह मर गया। इसलिए कानून का मामला सुलझ गया कि ठीक है, अब हृदय भी बंद हो गया, वह आदमी मर गया पूरा। इसको अब हम फांसी की सजा दे सकते हैं, अपराधी को। लेकिन अगर वह न मरता?

जैसे-जैसे तकनीकी कौशल बढ़ता है वैसे-वैसे लोग सब तरफ से चालाक भी होते जाते हैं। विज्ञान चालाकी है, कनिंगनेस है। वह प्रकृति के छिपे हुए रहस्यों को जबरदस्ती उघाड़ना है। प्रकृति देना भी नहीं चाहती तो भी ले लेना है। वह बलात्कार है। और उस बलात्कार की जितनी ज्यादा व्यवस्था हो जाती है उतना आदमी फिर सब

तरफ से चालाक हो जाता है। फिर आदमी से भी क्या फर्क है? आदमी को भी धोखा देने में क्या अड़चन है? निकालना ही ज्यादा है तो आदमी से भी ज्यादा निकाला जा सकता है।

"जितने ही अधिक कानून होते हैं, उतने ही अधिक चोर और लुटेरे होते हैं।"

कानून से चोर-लुटेरे मिटते नहीं, कानून से ही बनते हैं। अगर तुम चाहते हो कि दुनिया में कम चोर-लुटेरे हों तो कम से कम, न्यूनतम कानून चाहिए। जितने कम कानून होंगे उतने कम चोर-लुटेरे होंगे। क्योंकि कानून परिभाषा देता है--कौन चोर है, कौन लुटेरा है। कानून पर निर्भर करता है चोर-लुटेरा। जैसे मैंने अभी तस्करों की बात की। अगर दुनिया में कोई कानून न हो कि एक राज्य से दूसरे राज्य में सामान को ले जाने में कोई बाधा नहीं है, कोई पहरेदार नहीं खड़ा है, तस्कर विदा हो जाएगा। तस्कर की कोई जरूरत न रही। अगर दुनिया में संपत्ति समान रूप से विभाजित हो या संपत्ति न हो, चोर विदा हो जाएंगे। चोर की कोई जरूरत न रही।

लेकिन बड़ी कठिनाई है; चोर विदा नहीं किए जा सकते। क्योंकि अगर चोर विदा हो जाए तो न्यायाधीश कहां रहेगा? वह उसका दूसरा पहलू है। अगर तस्कर विदा हो जाए तो तस्कर को पकड़ने वाले लोग कहां जाएंगे? अगर चोर-लुटेरे चले जाएं तो वकीलों का क्या होगा? न्यायाधीशों का क्या होगा? मजिस्ट्रेटों का क्या होगा? कानूनविद, जिनको तुम पद्म-विभूषण की उपाधियां देते हो, इनका क्या होगा? ये सब एक ही धंधे के साझेदार हैं। चोर और न्यायाधीश एक ही धंधे के हिस्से हैं। उनका संबंध वैसे ही है जैसा ग्राहक का और दुकानदार का। उनमें से एक गया कि दूसरा नहीं बचेगा। पुलिस का क्या होगा अगर लोग चोर न हों? सच तो यह है कि अगर लोग बुरे न हों तो नेता का क्या होगा? राष्ट्रपति को किसलिए सिर पर बिठा कर रखोगे? प्रधानमंत्रियों की क्या जरूरत है? क्योंकि लोग बुरे हैं, उनको सुधारने की उनको जरूरत है।

तुम्हें लगता है ऊपर से, वे सुधारने में लगे हैं। वे सुधार नहीं सकते, क्योंकि यह उनका आत्मघात है। वे खुद मरेंगे, अगर लोग सुधर गए। कोई राजनीतिज्ञ नहीं चाहता कि लोग सुधर जाएं। कहता कितना ही हो, चाह नहीं सकता। क्योंकि चाहने का तो मतलब होगा कि मैं मरा, मैं गया। कानून चोरों को बना रहा है। और फिर तुम और कानून बनाते हो, क्योंकि चोरों को रोकना है। तब और चोर बनते हैं। तब तुम और कानून बनाते हो। कानून बढ़ते जाते हैं, चोर बढ़ते जाते हैं। अदालत बड़ी होती जाती है। कारागृह बड़े होते जाते हैं। चोर-लुटेरे बढ़ते चले जाते हैं। एक बड़ा जाल है। फिर वकील चाहिए। फिर विशेषज्ञ चाहिए।

अगर तुम गौर से देखो तो सारी बात कहां से पैदा हो रही है? क्योंकि तुमने कानून बनाया। इसका यह मतलब नहीं है कि कानून बिल्कुल न हो तो चोर बिल्कुल न होंगे। न्यून रह जाएंगे। अति न्यून रह जाएंगे। और अगर कानून बिल्कुल ही खो जाए और जिस वजह से हम कानून बनाते हैं वह वजह मिटा दी जाए--जो कि मिट सकती है, जिसमें कोई अड़चन नहीं है।

अभी कोई पानी नहीं चुराता, क्योंकि पानी खुला है, कोई भी ले सकता है। और अभी पानी के चोर नहीं हैं, न पानी के चोरों के वकील हैं, न अदालतें हैं। क्योंकि पानी सुलभ है, सभी को उपलब्ध है। और सबकी जरूरत है। लेकिन मरुस्थल में पानी चोरी होने लगता है। और मरुस्थल में कानून बनाना पड़ता है कि कोई पानी न चुरा ले।

तुम्हारी जिंदगी में जरूर बहुत से मरुस्थल हैं, जिनके कारण चोरी-बेईमानी है। उनको मिटाओ मरुस्थलों को। कानूनों से वे नहीं मिटते। कानूनों से चोर बढ़ते हैं, मरुस्थल बढ़ते हैं। करीब-करीब सारी दुनिया चोर होने की हालत में आ गई है। इस वक्त ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो किसी न किसी तरह की चोरी न कर रहा हो। टैक्स बचा रहा होगा; टिकट न दे रहा होगा ट्रेन में; कोई और तरकीब लगा रहा होगा।

और मैं कहता हूं कि इसमें लोग जिम्मेवार नहीं हैं। लोगों को जीना है; तुमने जीना ही असंभव कर दिया है। तुमने सब तरफ से उपद्रव बांध दिया है। और उपद्रव इतना ज्यादा हो गया है कि उसे बिना तोड़े कोई जी नहीं सकता। और जब कोई तोड़ता है तो वह चोर हो जाता है। और जब तुम एक चोरी कर लेते हो तो तुम दूसरे के लिए तैयार हो जाते हो। फिर धीरे-धीरे चोरी सुलभ हो जाती है। वह जीवन का ढंग हो जाता है। फिर तुम्हें ख्याल भी नहीं रहता कि कुछ गलत कर रहे हैं। कोई गलत का सवाल ही नहीं है। तुम अगर इनकम टैक्स बचा रहे हो तो कोई गलत का सवाल नहीं है। तुम भूल ही गए हो कि इसमें कुछ गलत है। चोरी बढ़ती है, जितने कानून की जकड़ बढ़ती है।

लाओत्से कहता है, "इसलिए संत कहते हैं, मैं कुछ नहीं करता हूं और लोग आप ही सुधर जाते हैं।"

एक और ढंग है। शासक का ढंग है, उससे संसार भ्रष्ट हुआ। एक संत का ढंग है जिसका उपयोग भी कभी नहीं हुआ। कभी छोटे-छोटे कबीलों में उपयोग हुआ है। बुद्ध के पास कुछ साधु इकट्ठे हो गए, उनके जीवन में एक उपयोग हुआ। लाओत्से के पास कुछ लोग इकट्ठे हो गए। छोटे-छोटे समुदायों में प्रयोग हुआ है। लेकिन जहां भी प्रयोग हुआ है, अनूठा है। संत कुछ कहता नहीं... ।

"मैं कुछ नहीं करता, लोग आप ही सुधर जाते हैं।"

संत के होने में, संत के होने मात्र में, मौजूदगी में कोई बात है जो लोगों को बदलती है।

"मैं मौन पसंद करता हूं, लोग अपने आप पुण्यवान हो जाते हैं। मैं कोई व्यवसाय नहीं करता और लोग आप ही समृद्ध होते हैं। मेरी कोई कामना नहीं है, लोग आप ही सरल और ईमानदार हैं।"

संत के होने का ढंग संक्रामक है। वह तुम्हें नियम नहीं देता, न तुम्हें कोई अनुशासन देता है। वह तुम्हें सिर्फ अपनी मौजूदगी देता है। उसकी मौजूदगी से तुम्हारे जीवन में नियम आने शुरू होते हैं। उन नियम के निर्धाता तुम होते हो। एक अनुशासन पैदा होता है जो भीतरी है, जो तुम्हारा बनाया हुआ है, जो किसी और के निषेध पर खड़ा नहीं है। वह तुम्हें कोई आज्ञा नहीं देता, वह तुम्हें कोई आदेश नहीं देता। उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर एक आज्ञा बन जाती है। उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर एक आग बन जाती है। उसकी मौजूदगी तुम्हें एक नई दिशा में इंगित देने लगती है, और तुम चल पड़ते हो। वह तुम्हें चलाता नहीं। उसकी कोई कामना नहीं है। और तुम रूपांतरित हो जाते हो।

संसार तब तक भ्रष्ट रहेगा जब तक शासक संसार का केंद्र है। जब संत संसार का केंद्र होंगे, और संत शासक नहीं हैं, क्योंकि वे अनुशासन देते ही नहीं। संत का होना ही, उसके होने का स्वाद ऐसा है कि तुम्हें उसका स्वाद एक बार लग जाए कि फिर तुम वही न रह सकोगे जो तुम थे। उसकी सुगंध ऐसी है कि तुम्हारे नासापुट एक बार पहचान लें तो सभी सुगंधें दुर्गंध हो जाएंगी। उसके होने का ढंग, उसकी ऊर्जा, उसका वायुमंडल ऐसा है कि तुम पहली बार उसकी मौजूदगी में स्वस्थ, शांत और आनंदित अनुभव करोगे। उसकी मौजूदगी समाधि बन जाएगी। और जब स्वाद लग जाता है तब फिर तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तब तुम जीवन के अंतिम शिखर तक पहुंचे बिना न रुकोगे। स्वाद खींचेगा। स्वाद एक चुंबक हो जाएगा।

तो दो ढंग हैं दुनिया को चलाने के। एक शासक का ढंग है। अतीत पूरा कह रहा है कि वह हार गया ढंग, असफल हुआ। उससे दुनिया ठीक न हुई; बिगड़ी, बुरी हुई। एक संत का ढंग है। दुनिया को चलाने के दो ढंग हैं--एक राजनीति का, एक धर्म का। राजनीति का ढंग असफल हो गया है। लेकिन चलता क्यों जाता है?

चलता इसलिए जाता है कि तुम सदा सोचते हो कि एक राजनीतिज्ञ असफल हो गया तो दूसरा सफल होगा। इंदिरा असफल हुई तो जयप्रकाश सफल हो सकते हैं। इस तरकीब से राजनीतिज्ञ जीते हैं। जब इंदिरा की

हवा आती है तो लोग कहते हैं, बस अब बड़ी आशा आ गई, अब इंदिरा कुछ करके दिखाएगी। लोग पूछते नहीं कि राजनीतिज्ञों ने कभी कुछ करके दिखाया--कभी? पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में उनसे कुछ हुआ है? वे सिर्फ आश्वासन देते हैं, कभी पूरा नहीं करते। लेकिन तरकीब कहां है?

तरकीब यह है कि जब एक राजनीतिज्ञ हारता है, दूसरा खड़ा हो जाता है। और वह कहता है कि यह हार गया, यह गलत सिद्ध हुआ; इसकी नीति गलत थी, इसकी व्यवस्था गलत थी। हम नई व्यवस्था देते हैं, हम नई नीति देते हैं; इससे सब ठीक हो जाएगा। तुम्हारी आशा फिर जग जाती है। तुम इसके पीछे हो लेते हो। तुम जैसा पागल आदमी खोजना मुश्किल है। तुम कितनों के पीछे हो लिए! इसकी बात तुम्हें भरोसे की लगती है। क्योंकि इसके हाथ में सत्ता नहीं है। यह सेवक मालूम पड़ता है। फिर तुम इसे सत्ता पर बिठा दोगे। चार-पांच साल लगेंगे तुम्हें फिर आशा को खोने में, फिर तुम निराश होओगे। तब तक कोई दूसरा राजनीतिज्ञ खड़ा हो जाएगा।

राजनीतिज्ञ एक-दूसरे के विरोधी हैं, यह तुम समझते हो। तुम्हें यह पता नहीं है कि नीचे दोनों मिले हैं; शड्यंत्र सम्मिलित है। एक हारता है तो दूसरा खड़ा हो जाता है। राजनीति को वे नहीं हारने देते।

और जिस दिन राजनीतिज्ञ नहीं, राजनीति हारेगी, उस दिन भाग्य उदय होगा। जिस दिन तुम यह सारा उपद्रव देख पाओगे कि ये सब हार जाते हैं और ये एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इनमें जरा भी कोई फर्क नहीं है। हां, एक सत्ता में है, एक सत्ता के बाहर। सत्ता में जो है वह हार गया तो सत्ता के बाहर वाला खड़ा हो जाता है कि मुझसे आएगा, अब पूर्ण क्रांति मुझसे होने वाली है।

पूर्ण क्रांति कभी हुई नहीं; क्रांति ही कभी नहीं हुई। सिर्फ वे बदल जाते हैं। एक राजनीतिज्ञ दूसरे को बदल देता है। तुम्हारी आशा थोड़ी देर के लिए फिर लग जाती है। तुम्हारी आशा वैसी ही है जैसे लोग मरघट ले जाते हैं किसी को, अरथी को, तो एक कंधा थक जाता है तो अरथी को दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर दूसरा थक जाता है, तब तक पहला आराम कर लेता है; फिर अरथी बदल लेते हैं। राजनीतिज्ञ तुम्हारे एक-दूसरे को राहत दे रहे हैं।

राजनीति असफल हो जाए तो तुम्हारे जीवन में पहली दफा धर्म का बोध आएगा। तब तुम समझोगे कि सफलता सिर्फ एक मार्ग से मिल सकती है, और वह है ऐसे लोगों का प्रादुर्भाव जो बिना कुछ किए करने की कला जानते हैं।

आज इतना ही।

सत्तानबेवां प्रवचन

शासन जितना कम हो उतना ही शुभ

Chapter 58

Lazy Government

When the government is lazy and dull,
Its people are unspoiled;
When the government is efficient and smart,
Its people are discontented.
Disaster is the avenue of fortune,
(And) fortune is the concealment for disaster,
Who would be able to know its ultimate results?
(As it is), there would never be the normal,
But the normal would (immediately) revert to the deceitful,
And the good revert to the sinister.
Thus long has mankind gone astray!
Therefore the Sage is square (has firm principles),
But not cutting (sharp-cornered),
Has integrity, but does not hurt (others),
Is straight, but not high-handed,
Bright, but not dazzling.

अध्याय 58

आलसी शासन

शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।
जब शासन दक्ष और साफ-सुथरा होता है, तब प्रजा असंतुष्ट रहती है।
विपत्ति भाग्य के लिए छांहदार रास्ता है, और भाग्य विपत्ति के लिए ओट है।
इसके अंतिम नतीजों को जानने योग्य कौन है?
जैसा यह है, सामान्य कभी भी अस्तित्व में नहीं होगा,

लेकिन सामान्य शीघ्र ही पलट कर छलावा बन जाएगा,

और मंगल पलट कर अमंगल।

इस हद तक मनुष्य-जाति भटक गई है!

इसलिए संत ईमानदार या दृढ़ सिद्धांत वाले होते हैं,

लेकिन काट करने वाले या तीखे नोकों वाले नहीं;

उनमें अखंडता, निष्ठा होती है, लेकिन वे दूसरों की हानि नहीं करते;

वे सीधे होते हैं, पर निरंकुश नहीं;

दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।

शासन एक अपरिहार्य बुराई है, ए नेसेसरी ईविल; उससे बचना मुश्किल है।

लेकिन जितना बचा जा सके उतना शुभ।

शासन का मूलभूत हिंसा है; शासन अहिंसक नहीं हो सकता। इसलिए शासन है तो बीमारी। शासन औषधि नहीं है; उपचार का धोखा है।

शासन भी वही करता है जिस बुराई को कि शासन मिटाना चाहता है। एक आदमी हत्या करता है तो शासन उसे फांसी देता है। हत्या मिटती नहीं, हत्या दो गुनी हो जाती है। आदमी की भूल थी कि उसने किसी की हत्या की; अब शासन उसकी हत्या करता है। हत्या बुरी है, ऐसा मालूम नहीं होता। कौन हत्या करता है, इस पर सब कुछ निर्भर है। अगर शासन करे तो शुभ, अगर लोग करें तो अशुभ। यह कैसा शुभ है और कैसा अशुभ है?

शासन जब अदालतों के द्वारा हत्याएं करवाता है तो न्यायाधीश जरा भी अपने को अपराधी नहीं समझते, बल्कि समाज के सेवक समझते हैं। न्यायाधीश कभी एहसास नहीं करता अपने अंतःकरण में कि उसने कुछ बुरा किया है। क्योंकि शासन की स्वीकृति है। न्यायाधीश तो राज्य में व्यवस्था ला रहा है; बुरों को मिटा रहा है। लेकिन मिटाना ही बुराई है, यह उसके ख्याल में नहीं है।

दूसरे महायुद्ध के बाद जब जर्मन अपराधियों पर मुकदमे चले तो यह बात बड़ी प्रगाढ़ रूप से सामने आई। क्योंकि जिन्होंने लाखों हत्याएं की थीं हिटलर की आज्ञा से उन्होंने अदालत से कहा कि हमारा कोई कसूर नहीं है, हम तो सिर्फ आज्ञा का पालन कर रहे थे। और इस बात में सचाई है। ऊपर से आज्ञा मिली थी, हम वही कर रहे थे। और सारी दुनिया चकित होकर यह बात अनुभव की कि जो लोग अपने सामान्य जीवन में भले थे, जो किसी को कांटा भी न चुभाएंगे, जो किसी का बुरा और अहित भी न चाहेंगे, उन लोगों ने लाखों लोग इस तरह जला दिए जैसे घास-पात हों।

जो आदमी हिटलर के सबसे बड़े कारागृह का प्रधान था, कहते हैं, अंदाजन उसने दस लाख लोगों को जलाया। हिटलर ने ऐसी भट्टियां बनाई थीं जिनमें दस-दस हजार लोग एक साथ एक सेकेंड में जलाए जा सकें। उन भट्टियों का वह आदमी मालिक था। लेकिन वह रोज बाइबिल पढ़ता था, चर्च नियमित जाता था; जो भी थोड़ा दान कर सकता था, दान भी करता था। और कभी किसी ने नहीं जाना कि वह आदमी बुरा हो या किसी का उसने कोई अहित किया हो। रात प्रार्थना करके ही सोता था। उसके कमरे में जीसस का चित्र सूली पर लटका हुआ टंगा था। और यह आदमी दस लाख आदमियों की हत्या के लिए जिम्मेवार था। उसने अदालत से कहा, मेरा कोई कसूर नहीं, मैं सीधा-सादा आदमी हूं। मैंने सिर्फ आज्ञा का पालन किया है। और आज्ञा का पालन बुराई नहीं है।

जिस अदालत के सामने इस आदमी ने यह कहा उस अदालत ने भी इसे फांसी की सजा दी। अगर कल कहीं कोई और ऊपर बड़ी अदालत हो और वह इस अदालत के न्यायाधीशों से पूछे कि तुमने यह क्या किया? तो वे भी कहेंगे कि हमने तो न्याय का पालन किया, जो न्याययुक्त था वही किया।

अपराधी में और न्यायाधीश में फर्क क्या है?

अपराधी और न्यायाधीश में इतना ही फर्क हैः अपराध तो दोनों करते हैं, एक समाज की सहमति से करता है और एक समाज की असहमति से करता है। बस इतना ही फर्क है।

शासन से बड़ा अपराधी संसार में कोई भी नहीं। क्योंकि जब तुम अपराध को न्याय के नाम पर करते हो तब करने का मजा ही और हो जाता है। बड़े से बड़े अपराधी को भी पीड़ा अनुभव होती है। उसका भी अंतःकरण कभी उसे कहता है, चोट करता है; उसके अंतःकरण में भी कभी आवाज उठती है कि तू जो कर रहा है वह गलत है। लेकिन अदालतों के न्यायाधीशों के मन में यह कभी सवाल नहीं उठता। उनका गलत भी सही है; वे जो बुरा कर रहे हैं वह भी ठीक है। क्योंकि वे न्याय के नाम पर कर रहे हैं; सत्य, शासन, सुव्यवस्था के नाम पर कर रहे हैं।

एक बात ठीक से समझ लेना कि बुराई कभी इससे ज्यादा बुराई नहीं होती जब तुम उसे भलाई के नाम में करते हो। क्योंकि भलाई का आवरण उसे छिपा लेता है। भलाई के आवरण में बुराई जितनी जहरीली हो जाती है उतनी जहरीली कभी भी नहीं होती। क्योंकि तुम जहर के ऊपर शक्कर चढ़ा लेते हो। कंठ में उतर जाना बड़ा आसान हो जाता है। लेकिन जहर पर तुम शक्कर भी चढ़ा लो, इससे जहर अमृत नहीं हो जाता।

दुनिया का इतिहास दो तरह के लुटेरों से भरा है। एक तो वे लुटेरे हैं जो समाज के विपरीत हैं; वे डाकू हैं जो समाज के विपरीत हैं। और एक वे लुटेरे हैं जो समाज के अनुकूल हैं। वे लुटेरे शासन की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं। वे अपराध भी करते हैं गहन, तो भी धर्म के नाम पर करते हैं। वे तुम्हें मारते भी हैं, तो तुम्हारे हित में और तुम्हारे मंगल में। वे तुम पर गोली भी चलाते हैं, तुम्हारी छाती भी बेध देते हैं, वे तुम्हारी आत्मा को भी कुचल डालते हैं जूतों के तले, तो भी तुम्हारे उत्कर्ष के लिए।

इसलिए लाओत्से जो कहता है वह तुम्हें बहुत हैरानी का मालूम पड़ेगा। लेकिन वह सत्य है।

लाओत्से कहता है, "शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"

यह तुम भरोसा ही न करोगे कि कोई संत ऐसी बात कहेगा!

"व्हेन दि गवर्नमेंट इ.ज लेजी एंड डल, इट्स पीपुल आर अनस्पॉइल्ड।"

क्या मतलब है? शासन सुस्त, आलसी? तुम तो सभी चाहते हो कि शासन आलसी है, सुस्त है, उसे सजग होना चाहिए, चुस्त होना चाहिए, कर्मठ होना चाहिए। तुम तो सोचते हो कि समाज में इतनी बुराई है, क्योंकि शासन आलसी है। और लाओत्से तुमसे ठीक उलटा देखता है। और लाओत्से के पास तुमसे बहुत दूर देखने वाली आंखें हैं। वह तुमसे बहुत गहरे देखता है। लाओत्से कहता है, शासन जब आलसी और सुस्त होता है तब लोग निर्दोष होते हैं। क्या मतलब है? इसे बहुत गहरे में जाकर समझना पड़े।

आलस्य भी कभी-कभी बड़ा गरिमावान होता है, और सुस्ती में भी गुण है। एक बात तो तुम ध्यान रख लो कि दुनिया में आलसी लोगों ने कभी भी कुछ बहुत बुरा नहीं किया है। तुम कितने ही आलसियों को गाली दो, लेकिन आलसियों के ऊपर कोई बड़ा अपराध नहीं है। क्योंकि अपराध करने के लिए भी आलस्य तो तोड़ना ही पड़ेगा। दुनिया में जितना उत्पात-उपद्रव है वह कर्मठ, जिनमें से कुछ को तुम कर्मयोगी भी कहते हो, उन्हीं के कारण है। आलसी तो उपद्रव करने की झंझट भी नहीं लेगा। उपद्रव करने में भी तो समृद्ध होना पड़ेगा, कुछ

करना पड़ेगा। कौन आलसी तैमूरलंग हुआ है? कौन आलसी सिकंदर हुआ है कभी? कौन आलसी कभी हिटलर हुआ है?

नहीं, आलसी राजनीतिज्ञ हो ही नहीं सकता। आलसी बुराई करने जाएगा कैसे? उसे जाने और उठने की भी फुरसत नहीं है। आलसियों ने भला न किया हो, बुरा भी नहीं किया है। आलसी यहां इस समाज से निर्दोष गुजर गए हैं, बुरे-भले की कोई लकीर उनके ऊपर नहीं है।

नादिरशाह ने किसी ज्योतिषी को पूछा; नादिरशाह को नींद बहुत आती थी तो उसने ज्योतिषी को पूछा कि मुझे नींद बहुत आती है; और सभी धर्मग्रंथ कहते हैं कि आलस्य बुरा है, और मैं ज्यादा सोता हूं; इससे छूटने का उपाय क्या है? उस ज्योतिषी ने कहा कि धर्मग्रंथ की आप मत सुनें, वे किसी और के लिए कहते होंगे, आप तो चौबीस घंटे सोए रहें; यही आपके लिए सदगुण है।

नादिरशाह समझा नहीं। क्योंकि राजनीतिज्ञ आमतौर से प्रतिभा के धनी नहीं होते, आमतौर से उनकी बुद्धि में जंग लगा होता है। नहीं तो वे राजनीतिज्ञ ही क्यों हों?

नादिरशाह ने कहा, मैं समझा नहीं। तुम्हारा मतलब? उसने कहा, ज्यादा खोल कर मैं कहूंगा तो मुश्किल में पड़ूंगा। नादिरशाह जिद्द पकड़ गया कि मैं तुम्हें किसी मुश्किल में न डालूंगा, तुम बात पूरी खोल कर कहो। तो ज्योतिषी ने कहा कि बात सीधी-साफ है। आप जितनी देर जगेंगे उतनी ही बुराई होती है। जितना आप जागते हैं उतना ही उपद्रव होता है। आप चौबीस घंटे के लिए सो जाएं, आप सोए ही रहें, ताकि संसार में शांति रहे। आपका आलस्य बड़ा हितकर है। धर्मग्रंथ किसी और के लिए कहते होंगे; वे आपके लिए नहीं लिखे गए हैं।

वह ज्योतिषी यह कह रहा है कि सबसे बड़ी बात तो यह होती कि आप पैदा ही न होते। फिर दूसरी बड़ी बात यह होती कि आप पैदा ही हो गए हैं तो सोए रहें। और तीसरी बड़ी घटना जो आपके जीवन से घट सकती है वह यह कि आप जितने जल्दी मर जाएं उतना अच्छा।

इसलिए लाओत्से कहता है, शासन सुस्त हो, आलसी हो।

सुस्त का अर्थ ही यह है कि शासन प्रत्यक्ष न हो, परोक्ष हो। सुस्त का मतलब यह है कि शासन हर जगह तुम्हारे बीच में न आ जाए, कि तुम उठो तो शासन खड़ा है तुम्हारे साथ, तुम चलो तो शासन खड़ा है, तुम हिलो तो शासन में बंधे हो। कानून इतना न हो कि तुम कारागृह में बंध जाओ।

आज कारागृह में जो लोग हैं वे तुमसे ज्यादा स्वतंत्र हैं। दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि उनकी दीवारें बहुत स्थूल हैं। तुम्हारे पास पारदर्शी दीवारें हैं कानून की, इसलिए तुम सोचते हो तुम स्वतंत्र हो। हो तुम नहीं स्वतंत्र। तुम्हारे चारों तरफ कानून है। और सब तरफ से कानून तुम्हें घेरे हुए है। तुम जरा भी हिलने के लिए तुम्हें आजादी नहीं है। तुम बंधे हो। तुम्हारा कंठ घुट रहा है।

शासन के सुस्त होने का अर्थ है कि शासन तुम्हें थोड़ी सुविधा दे, स्वतंत्रता दे, और बीच में न आए। जब तक कि तुम किसी के लिए विधायक रूप से हानिकर न हो जाओ तब तक शासन को बीच में नहीं आना चाहिए। जब कि तुम किसी की दूसरे की स्वतंत्रता छीनने जा रहे हो तब शासन को बीच में आना चाहिए, लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता के बीच में नहीं आना चाहिए। जब तक तुम अपने में जी रहे हो तब तक शासन को ऐसा होना चाहिए जैसे वह है ही नहीं।

लेकिन तुम अगर रात रास्ते पर शांत भी खड़े हो आंख बंद करके तो पुलिसवाला आ जाएगा कि यहां क्यों खड़े हो? आंख क्यों बंद की? मतलब क्या है? क्या कर रहे हो यहां? तुम किसी का कोई नुकसान नहीं कर रहे हो,

तुम आंखें बंद किए रास्ते के किनारे खड़े हो। इतनी भी स्वतंत्रता नहीं है; होने के लिए इतनी भी जगह नहीं बची है। कानून सब तरफ खड़ा है; कोने-कोने में, जगह-जगह, छिपा हुआ, गैर छिपा हुआ तुम्हारा पीछा कर रहा है।

लाओत्से कहता है, शासन सुस्त हो। उसका अर्थ है कि शासन कम से कम हो। दि लीस्ट गवर्नमेंट इ.ज दि बेस्ट। जितना कम हो, न के बराबर हो, उतना ही शुभ है। क्योंकि उतने ही तुम स्वतंत्र होओगे। और उतने ही तुम स्वयं होने के लिए मुक्त होओगे। उतनी ही तुम्हारे व्यक्तित्व की गरिमा अक्षुण्ण रहेगी।

शासन कोई सौभाग्य नहीं है कि उसे बढ़ाए चले जाओ। शासन एक दुर्भाग्य है जिसे कम करना है। शासन का अर्थ है, परतंत्रता। शासन का अर्थ है, व्यक्ति का मूल्य कम है, समाज का मूल्य ज्यादा है। शासन का अर्थ है कि व्यक्ति को समाज का अनुसरण करना चाहिए हर कीमत पर। और अगर कोई झंझट हो तो व्यक्ति की कुर्बानी दी जाएगी समाज के लिए। यह तो बिल्कुल उलटा है धर्म के।

धर्म का सूत्र है कि व्यक्ति की गरिमा अंतिम है; व्यक्ति के ऊपर कुछ भी नहीं। और व्यक्ति की आत्मा का मूल्य चरम है; उसे किसी भी बलिवेदी पर चढ़ाया नहीं जा सकता। समाज सिर्फ शब्द है, राज्य केवल शब्द है। न तो समाज के पास कोई आत्मा है और न राज्य के पास कोई आत्मा है। ये मुर्दा संस्थाएं हैं। इनके लिए जीवंत व्यक्ति को चढ़ाया नहीं जा सकता। जीवित व्यक्ति आखिरी मूल्य है। और व्यक्तित्व की गरिमा को अक्षुण्ण रखना हो तो शासन जितना कम हो उतना ही शुभ है।

शासन जितना ज्यादा होगा उतना व्यक्ति कम हो जाता है। अगर शासन परिपूर्ण हो तो व्यक्ति बिल्कुल खो जाता है। व्यक्ति का फिर कोई पता नहीं रह जाता। नाजी जर्मनी में या फासिस्ट इटली में व्यक्ति की कोई गरिमा नहीं है। व्यक्ति जैसी कोई चीज ही नहीं है। राष्ट्र के नाम पर सब कुर्बान है। व्यक्ति को पोंछ कर मिटा दिया गया। एक भीड़ है अब--आत्मारहित। क्योंकि स्वतंत्रता के बिना आत्मा होती ही नहीं। इसीलिए तो हम आत्मा की परम दशा को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का अर्थ है, आत्मा इतनी मुक्त होती जाती है, इतनी मुक्त होती जाती है कि आत्मा के होने में और मुक्ति में कोई फासला नहीं रह जाता; दोनों एक ही चीज के नाम हो जाते हैं। तुम स्वतंत्रता हो। और व्यक्ति की गहनतम प्रतीति स्वतंत्रता की है। वही उसकी आकांक्षा है, मोक्ष की खोज है।

लेकिन अगर शासन बहुत हो तो तुम बंधे हो जाओगे; तुम मुक्त नहीं हो सकते। इसीलिए तो संन्यासी को जंगलों में भागना पड़ा। जंगलों की किसी खूबी के कारण नहीं; जंगल में क्या रखा है? समाज की बेहूदगी की वजह से एकांत में जाना पड़ा। क्योंकि समाज इतना अतिशय है कि वह तुम्हें होने ही नहीं देता।

बर्ट्रेंड रसेल ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में लिखा है कि एक आदिवासी कबीले में जाकर मुझे प्रतीति हुई कि काश, मैं भी इतना ही स्वतंत्र होता कि जब मौज होती तब गीत गाते! चाहे रास्ते पर नाचना होता तो नाचते, कोई बाधा न देता!

लेकिन लंदन के रास्ते पर तो नहीं नाच सकते। फौरन जेलखाने पहुंचा दिए जाओगे। जोर से गीत भी नहीं गाकर निकल सकते रास्ते पर, क्योंकि दूसरों को अड़चन आ जाएगी। गीत गाना दूर, तुम बिल्कुल चुप भी खड़े हो जाओ लंदन या दिल्ली या बंबई के रास्ते पर, तुम किसी का कुछ भी नहीं कर रहे हो, तुम सिर्फ चुप्पी साधे हो, कठिनाई शुरू हो जाएगी।

अभी तीन दिन पहले ही पूना के अखबार में किसी का पत्र छपा है मेरे किसी संन्यासी के विरोध में कि वह रास्ते पर चुपचाप खड़ा था। और भीड़ लग गई और लोगों को इससे बाधा हुई। वह कुछ भी नहीं कर रहा था। जिसने लिखा है उसने भी लिखा है कि वह आंख बंद किए शांत खड़ा था, किसी का कुछ नहीं कर रहा था। लेकिन

ट्रैफिक में उससे उपद्रव हुआ, लोगों को उससे बच कर निकलना पड़ा और वहां भीड़ लग गई। और उसके कारण अड़चन हुई। इस तरह की घटनाएं रोकी जानी चाहिए।

तुम किसी को चुपचाप खड़े होने का मौका भी नहीं देते। तुम्हें इतना भय है व्यक्ति की स्वतंत्रता से। तुम करीब-करीब भीड़ के हिस्से हो गए। तुम्हारा अपना कोई होना नहीं है।

लाओत्से संन्यास का पक्षपाती है, इसलिए शासन का विरोधी। जो भी इस संसार में संन्यास का पक्षपाती है वह शासन का विरोधी होगा। क्योंकि संन्यास का मतलब है, आखिरी मूल्य है व्यक्ति का, समाज का कोई मूल्य नहीं है। समाज तो केवल एक व्यवस्था मात्र है। समाज व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति समाज के लिए नहीं। ऐसी चरम उदघोषणा संन्यास है।

जीसस पर यहूदियों का सबसे बड़ा जो विरोध था, वह यही था कि उन्होंने कानून तोड़े। कानून ऐसे जिन्हें तोड़ कर उन्होंने किसी को नुकसान नहीं पहुंचाया, कानून तोड़ कर लाभ पहुंचाए। लेकिन यह सवाल नहीं है; कानून तोड़े।

यहूदी मानते हैं कि सप्ताह के एक दिन, जिसको वे सबथ का दिन कहते हैं, उस दिन कोई काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस दिन परमात्मा ने भी विश्राम किया। और जो सबथ के दिन काम करे वह आदमी बड़ा अपराधी है, क्योंकि वह नियम तोड़ रहा है।

जीसस जेरूसलम के मंदिर में जा रहे थे और एक अंधे आदमी ने आवाज दी और कहा कि सुनो मेरी आवाज, मेरी पुकार, मैं अंधा हूं। और मैंने सुना है कि तुम्हारे छूने से आंखें ठीक हो जाती हैं! तो जीसस लौटे। प्रार्थना करने जा रहे थे; वह उन्होंने एक तरफ सरका दी बात। लौटे; उसकी आंखें छुईं। कहानी कहती है, उसकी आंखें ठीक हो गईं। मंदिर के पुरोहित बड़े नाराज हुए। भीड़ लगा ली। और उन्होंने कहा, यह तुमने कैसे किया? सबथ के दिन कोई कृत्य नहीं किया जा सकता।

तो जीसस ने कहा कि मैंने किसी का नुकसान नहीं किया, किसी की आंखें नहीं फोड़ दीं। यह अंधा आदमी चिल्लाया और मैं इस प्रार्थना के क्षण में था कि यह चमत्कार हो सकता था। तो मैं प्रार्थना करने जाता या इस आदमी की आंखें ठीक करता! उन्होंने कहा कि यह प्रार्थना का दिन है। तो जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है; जीसस ने कहा, दि सबथ इ.ज फॉर मैन, दि मैन इ.ज नाट फॉर सबथ। कानून मनुष्य के लिए है, मनुष्य कानून के लिए नहीं।

यह सबसे बड़ा अपराध था जिसके लिए यहूदी जीसस को माफ न कर पाए। क्योंकि कानून तोड़ा गया।

समाज, मनुष्यता नियमों के लिए है या नियम तुम्हारे लिए?

वही प्रयोजन है लाओत्से का जब वह कहता है, राज्य आलसी और सुस्त हो। सोया हुआ हो, खड़ा हुआ नहीं। इतनी कर्मठता की जरूरत नहीं है, विश्राम करता हुआ हो। जब बहुत ही जरूरत पड़े तभी बीच में आए उठ कर। आलसी का यह अर्थ है। जैसे घर में आग लगी हो तो आलसी चलता हुआ दिखाई पड़ेगा। ऐसे बाहर से कोई बारात निकल रही हो तो आलसी कोई देखने नहीं आने वाला, कि बाहर कोई झगड़ा हो गया है तो आलसी कोई बाहर उठ कर आने वाला नहीं। लेकिन घर में आग लग गई हो तो शायद उठ कर आए, तो शायद कुछ करे।

आलस्य प्रतीक है। वह प्रतीक है इस बात का कि जब तुम्हारी अनिवार्य जरूरत हो तभी कृपा करके तुम प्रकट होओ, अन्यथा तुम्हारे प्रकट होने की कोई आवश्यकता नहीं है। राजधानियां मरघटों जैसी होनी चाहिए--गांव के बाहर। जब बहुत जरूरत हो तभी पता चलना चाहिए कि राजधानी है। राजनेता को छिपा कर रखना

चाहिए, जैसे पहले लोग कोढ़ के बीमारों को गांव के बाहर कर देते थे--अंत्यज, छूने योग्य नहीं, अछूत। जब बहुत ही जरूरत हो तब उनको भीतर लाना चाहिए, अन्यथा गांव के बाहर। उनकी कोई आवश्यकता जब पड़े तभी।

लेकिन वे अतिशय हैं; जरूरत, गैर-जरूरत वे हमेशा खड़े हैं, हमेशा आगे खड़े हैं। जहां उनकी कोई भी आवश्यकता नहीं है वहां भी वे मौजूद हैं। अतिशय, उन्होंने सब तरफ से तुम्हें घेर लिया है। इतनी अतिशय कर्मठता नहीं चाहिए। उनके कर्म से शुभ नहीं हो सकता। स्वभाव शासन का शुभ नहीं है।

शासन का मतलब हैः किसी को दबाओ, परतंत्र करो; वह जो करना चाहता हो वह न करने दो; जो तुम करवाना चाहते हो वह करवाओ। ठीक है, एक जगह जरूरत मालूम पड़ती है, इसलिए अपरिहार्य बीमारी है। जब तक कि मनुष्य--सभी मनुष्य--संतत्व को उपलब्ध न हो जाएं तब तक शासन रहेगा। लेकिन कोई गुण-गरिमा नहीं है शासन की। तुम चिकित्सक के पास जाते हो जब तुम बीमार हो। राजनीतिज्ञ, शासन, राज्य तभी तुम्हारे पास आने चाहिए जब तुम कुछ ऐसा उपद्रव कर रहे हो जिससे दूसरों को हानि हो; अन्यथा नहीं। बस एक ही जगह उनकी जरूरत होनी चाहिएः जब तुम अपनी सीमा के बाहर जाकर दूसरे की स्वतंत्रता को नुकसान पहुंचा रहे हो। जब तक तुम अपनी सीमा के भीतर हो, जब तक तुम किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहे, जब तक तुम अपने भीतर अपने सुख में लीन हो, तब तक शासन को आलसी होना चाहिए।

लाओत्से कहता है, "जब शासन आलसी और सुस्त होता है तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"

यह जरा हैरानी का है। क्योंकि तुम इससे उलटी बात के लिए तो राजी हो जाओगे कि जब प्रजा निष्कलुष होती है तब शासन सुस्त और आलसी होता है। यह तो तुम्हें समझ में आ जाएगा, गणित साफ है कि जब प्रज्ञा निष्कलुष है तो अपने आप शासन सुस्त होता है, कोई प्रयोजन नहीं होता शासन को बीच में आने का। लेकिन लाओत्से उससे उलटी बात कह रहा है। और उलटी बात भी उतनी ही सही है। यह बात वैसी ही है जैसे मुर्गी पहले या अंडा पहले; तय करना मुश्किल है। मुर्गी से अंडा पैदा होता है, अंडे से मुर्गी पैदा होती है। वे अन्योन्याश्रित हैं, इंटरडिपेंडेंट हैं।

लाओत्से कहता है, प्रजा को निष्कलुष करो और शासन को सुस्त। क्योंकि वे दोनों अन्योन्याश्रित हैं। प्रजा को निर्दोष बनाओ और शासन को अकर्मठ। क्योंकि वे दोनों मुर्गे-अंडे की तरह जुड़े हैं। जब प्रजा निर्दोष होती है तो शासन की कोई जरूरत नहीं होती। जब शासन जरूरत से पीछे हट जाता है, अपनी जरूरत नहीं बनाता, तब प्रजा अपने आप निर्दोष होने लगती है।

अब यहां यह भी समझ लेना जरूरी है कि शासन प्रजा को निर्दोष होने नहीं देगा। क्योंकि अगर शासन प्रजा को निर्दोष होने दे तो शासन की जरूरत कम होती है। इसलिए शासन की पूरी चेष्टा होती है कि प्रजा कभी भी निष्कलुष न हो जाए। इसलिए शासन नए कानून बनाता है ताकि नए कानून तोड़े जा सकें। और शासन करीब-करीब ऐसी स्थिति पैदा कर देता है कि तुम बिना कानून तोड़े जी नहीं सकते। जब तुम जी नहीं सकते तब शासन की जरूरत आ जाती है। तब शासन कहता है, हम कैसे शिथिल हो सकते हैं, क्योंकि लोग अनाचारी हैं। और शासन इतने कानून बना देता है कि या तो अनाचार करें लोग या मर जाएं, आत्मघात कर लें। दो के बिना कोई उपाय नहीं रह जाता।

अब इतने कानून हैं, इतने कर हैं, इतना टैक्सेशन है कि अगर कोई आदमी ईमानदार हो तो जितना वह कमाए उससे ज्यादा उसे कर देना पड़े। तो वह कमाए किसलिए? वह जीए कैसे? अगर वह निर्दोष हो तो वह लुट जाए। और फिर भी कोई उसका भरोसा न करेगा।

अगर तुम इनकम टैक्स आफिसर के पास जाओगे, और तुमने दस हजार रुपए ही कमाए हैं और तुम पूरे ही बता दो कि मैंने दस हजार कमाए हैं, तो भी वह कहेगा, कम से कम पचास हजार कमाए होंगे। क्योंकि कौन सच बोलता है? तुम्हारा कोई भरोसा करने वाला नहीं है। इस समय सच्चा आदमी जितना झूठा मालूम होगा उतना कोई झूठा नहीं मालूम होता। क्योंकि कोई सच्चा है ही नहीं। तो तुम्हें भी दो हजार से शुरू करना पड़ता है। तुम दो हजार कहते हो, वह पांच हजार कहता है। ऐसा खींचतान करके कहीं तीन-चार हजार पर राजी हो जाते हो। तुम भी जानते हो, वह राजी नहीं होगा, अगर तुम सच बोल दो। वह भी जानता है कि तुम सच बोलोगे नहीं, इसलिए राजी हो जाना जल्दी आसान नहीं है। खींचतान चलेगी।

कानून अगर अतिशय हो तो लोगों को अपराधी बनाता है। क्योंकि इतना कानून कोई भी बरदाश्त नहीं कर सकता कि जीना मुश्किल हो जाए। कानून जीने में सहायता देने को है, जीने को मिटा देने को नहीं। इसलिए कम से कम कर होने चाहिए और कम से कम कानून होने चाहिए। न्यूनतम कानून से काम चलेगा तो कम से कम अपराधी होंगे। जब तक कि अपरिहार्य न हो जाए तब तक कानून मत बनाओ। यह अर्थ है लाओत्से का कि शासन सुस्त हो, आलसी हो। अति आवश्यक घड़ी में ही आए। अनावश्यक घड़ियों में बीच से हट जाए; लोगों को मुक्ति की श्वास दे। तो लोग निष्कलुष होंगे।

आखिर कलुषता क्या है? तुमने कभी ख्याल किया कि तुम जितने कानून बनाओ उतनी ही कलुषता बढ़ती जाती है, क्योंकि उतने ही कानून के टूटने की संभावना बढ़ती जाती है।

मैं घरों में देखता हूं। बच्चा कहता है, मुझे बाहर खेलने जाना है; मां कहती है, नहीं। बच्चा कहता है, आइसक्रीम चाहिए; मां कहती है, गला खराब हो जाएगा। बच्चा कहता है, चलो तो मिठाई ही ले लें; मां कहती है, ज्यादा मिठाई खाने से ये-ये नुकसान हो जाएंगे। तुम खड़े करते जाते हो कानून चारों तरफ से, बच्चे को कुछ होने का उपाय छोड़ते हो? कुछ भी सुविधा है उसको बच्चा होने की या नहीं है? रेत में खेले तो कपड़े खराब होते हैं, मिट्टी में खेले तो गंदगी हो जाती है। पड़ोस के बच्चों के साथ खेले तो वे बच्चे भ्रष्ट हैं, उनके साथ बिगड़ जाएगा। एक छोटे बच्चे से एक औरत ने पूछा कि तू तो अच्छा बच्चा है न? उसने कहा कि अगर सच पूछो तो मैं उस भांति का बच्चा हूं जिसके साथ मेरी मां मुझको खेलने न देगी।

कोई सुविधा नहीं है। तब बच्चा अपराधी मालूम होने लगता है। उसे बाहर जाना जरूरी है। बच्चा है, बाहर जाएगा। खुले आकाश के नीचे सांस लेनी जरूरी है। अब अगर जाता है तो अपराधी हो जाता है; नहीं जाता है तो अभी से बूढ़ा होने लगता है। तुम ऐसी असुविधा खड़ी कर देते हो। रोको, आग में जाने की आज्ञा मांग रहा हो, मत जाने दो; समझ में आता है। लेकिन बाहर खुले आकाश में खेलने दो। कपड़े इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना रेत के साथ खेलना। फिर यह उम्र दुबारा न आएगी। कपड़े धोए जा सकते हैं, लेकिन जो बच्चा खेलने से वंचित रह गया वह सदा कुछ न कुछ कमी अनुभव करेगा। उसका जीवन कभी पूरा न होगा। जो बच्चा मिट्टी में न लोट पाया, खेल न पाया, उसके जीवन में उत्सव की क्षमता कम हो जाएगी। वह कभी नाच न सकेगा, गीत न गा सकेगा। तुम उसे मारे डाल रहे हो। अब अगर बच्चा अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करे तो बगावती है। अगर स्वतंत्रता की घोषणा न करे, आज्ञा मान ले, तो जीवन का घात कर रहा है अपने। क्या करे?

और जो तुम बच्चे की हालत घर में कर देते हो वही शासन तुम्हारी हालत किए हुए है। कहीं कोई सुविधा नहीं है। कहीं कोई जगह नहीं है, जहां तुम खुल सको और मुक्त हो सको। तुम किसी का कोई नुकसान नहीं पहुंचा रहे हो। तुम किसी की हानि नहीं कर रहे हो।

मेरे कैंपों में मैंने लोगों को आज्ञा दी थी कि अगर उन्हें उचित लगे और वे आनंदपूर्ण समझें, तो वस्त्र निकाल दें। तो राजनीतिज्ञ बड़े बेचैन हो गए। विधान सभाओं में चर्चा हो गई। कानून सख्त हो गया।

अब जब तुम नग्न हो रहे हो तो तुम किसी दूसरे को नग्न नहीं कर रहे हो। तुम खुद नग्न हो रहे हो। तुम्हारे शरीर को खुले सूरज के नीचे खड़े करने की तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है! तुम किसी के भी तो जीवन में कोई बाधा नहीं डाल रहे। तुम किसी से यह भी नहीं कह रहे कि आओ और हमें देखो। अगर वे देखते हैं तो उनकी मर्जी। अगर वे नहीं देखना चाहते, वे अपनी आंख बचा कर जा सकते हैं। तुम्हारी कोई जबरदस्ती भी नहीं है।

लेकिन राजनीति बहुत जरूरत से ज्यादा है। अब इस छोटी सी स्वतंत्रता में, जो कि व्यक्ति का निजी अधिकार है। अगर मुझे ठीक लगता है कि मैं नग्न चलूं तो किसी को भी अधिकार नहीं होना चाहिए कि मुझे रोके। हां, मैं किसी को दबाव डालूं कि तुम नग्न चलो, तब राज्य को बीच में आ जाना चाहिए कि भई गलत बात हो रही है; दूसरे पर दबाव मत डालो! तुम्हारी मौज है, तुम्हें नग्न चलना है, तुम नग्न चलो। मेरी नग्नता से किसी दूसरे का क्या लेना-देना है?

तुम तो महावीर को भी नग्न न होने दोगे। महावीर अच्छा हुआ पहले हो गए; तब शासन थोड़ा सुस्त था। खुला आकाश था, स्वतंत्रता थी। लोगों ने महावीर की महिमा में कोई बाधा न डाली; कोई कानून बीच में न आया। आज बड़ी मुश्किल में पड़ते। आज बड़ी अड़चन हो जाती।

छोटे से, थोड़ी सी संख्या है दिगंबर जैन मुनियों की, बीस-बाईस। इस समय भारत में बीस-बाईस दिगंबर जैन मुनि हैं, जो नग्न हैं। बड़े-बड़े नगरों में उन पर रुकावट है। बंबई में, दिल्ली में वे ऐसे ही नहीं जा सकते, पुलिस को खबर करनी पड़ती है। तो उनके अनुयायी पुलिस को खबर करते हैं कि हमारे गुरु इस-इस रास्ते से, इस-इस जगह से निकलेंगे। और तब भी वे ऐसा नहीं जा सकते खुले, उनके शिष्य उनके चारों तरफ घेरा बांध कर चलते हैं, ताकि वे किसी को दिखाई न पड़ें।

तुमने कभी जैन मुनि की सीधी खड़ी हुई फोटो किसी अखबार में कभी छपते देखी? नहीं। जैन मुनि की तुम जितनी फोटो देखोगे उन सब में वह इस भांति बैठता है पालथी लगा कर कि उसकी नग्नता दिखाई न पड़े। क्योंकि वह सीधी फोटो खतरनाक होगी। कानून उसके खिलाफ है।

समझ में आता है कि कानून बीच में आए जब तुम किसी का अहित करो, अकल्याण करो, लेकिन जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो तब कानून को बीच में आने का क्या प्रयोजन है? पार्लियामेंट-असेंबलियों में चर्चा करने की कोई जरूरत नहीं है। अगर कोई ध्यान में नग्न खड़े होकर ध्यान करना चाहता है तो किसी का भी इसमें कोई लेना-देना नहीं है। और अगर किसी का लेना-देना है तो यह उसका रोग है; उसको अपने रोग की चिकित्सा करवानी चाहिए। अगर उसको लगता है कि किसी की नग्नता से उसके मन में वासना उठती है तो यह उसका रोग है; इससे नग्न होने वाले का कोई लेना-देना नहीं है। और जिसको नग्न देख कर वासना उठती है क्या तुम सोचते हो कपड़ों में छिपे शरीर को देख कर उसे वासना न उठेगी? थोड़ी ज्यादा उठेगी। क्योंकि जो छिपा हो उसे उघाड़ने का मन होता है; जो उघड़ा हो उसे उघाड़ने का मन नहीं होता।

सच तो यह है कि नग्न आदमी या नग्न स्त्री कम से कम वासना उठाती है। छिपा हुआ शरीर निषेध बन जाता है, ज्यादा वासना उठाता है। स्त्रियां इतनी सुंदर नहीं हैं जितनी कपड़ों में ढंकी हुई मालूम पड़ती हैं। अगर स्त्रियों की नग्न कतार खड़ी हो, तो तुम बड़े चकित हो जाओगे, उसमें शायद ही कोई एकाध स्त्री सुंदर मालूम पड़े। लेकिन कपड़ों में ढंकी हैं; कुछ भी पता नहीं चलता। कपड़ों में ढंकी सभी स्त्रियां सुंदर मालूम पड़ती हैं। और अगर बुरका ओढ़ा हो, तब तो कहना ही क्या! तो कुरूप से कुरूप स्त्री भी बुरका पहने सड़क से निकल जाए तो हर

आदमी सचेत हो जाता है। और सभी झांक कर देखने की कोशिश करते हैं मामला क्या है। यही स्त्री बिना बुरके के निकले, कोई देखने की फिक्र नहीं करता।

जीवन के सीधे-सीधे सत्य हैं कि जो छिपा हो वह आकर्षक हो जाता है, जो प्रकट हो वह आकर्षक नहीं रह जाता। आदिवासियों को जाकर देखो, नग्न हैं। तुम्हें भी कुछ न लगेगा कि उनके नग्न होने में कुछ अपराध हो रहा है। तुम भी थोड़े दिन में राजी हो जाओगे। तुम्हें लगेगा कि अगर तुम्हें कुछ लग रहा है तो वह तुम्हारी अपनी बेचैनी है, जिसका इलाज चाहिए।

पार्लियामेंट में जो लोग बैठे हैं, जिनको चिंता होती है कि कोई ध्यानी नग्न खड़ा न हो, इनको अपनी मनोचिकित्सा करवानी चाहिए। लेकिन नहीं, उनके ऊपर पूरे देश का भार है। यह किसी ने दिया भी नहीं है भार, यह अपने हाथ से ले लिया है। सारे देश के कल्याण का उन्हें विचार करना है।

लाओत्से कहता है, कृपा करो, तुम अपना ही कल्याण कर लो तो काफी है। तुम सबका कल्याण मत करो; क्योंकि तुमसे अकल्याण होगा।

"शासन जब आलसी और सुस्त होता है, तब उसकी प्रजा निष्कलुष होती है।"

कानून कम से कम, शासन कम से कम, स्वतंत्रता ज्यादा से ज्यादा। क्योंकि स्वतंत्रता के बिना निष्कलुषता का फूल खिलता नहीं। स्वतंत्रता की भूमि चाहिए।

"जब शासन दक्ष और साफ-सुथरा होता है, तब प्रजा असंतुष्ट होती है। व्हेन दि गवर्नमेंट इ.ज एफीशिएंट एंड स्मार्ट, इट्स पीपुल आर डिसकंटेंटेड।"

क्यों ऐसा हो जाता है? क्योंकि जब शासन बहुत दक्ष होता है, उतनी ही परतंत्रता बढ़ जाती है। जितना शासन कुशल होता है, उतनी ही गर्दन का फंदा कस जाता है। शासन की कुशलता का अर्थ ही यह है कि परतंत्रता बहुत कुशल हो गई और तुम्हें सब तरफ से बांध लेगी। तुम्हें पता भी न चले, इस तरह बांध लेगी; तुम्हारे होश में भी न आए, इस तरह बांध लेगी। तुम लगोगे स्वतंत्र, और तुम स्वतंत्र बिल्कुल भी नहीं रहोगे।

तुम्हारी स्वतंत्रता करीब-करीब धोखा है। शासन ने तुम्हें सब तरफ से कस लिया है। और शासन ने सब इंतजाम कर रखा है कि अगर तुम जरा भी स्वतंत्रता की घोषणा करो तो शासन और कसता जाता है। तत्क्षण इमरजेंसी घोषित हो जाती है। अगर जनता जरा स्वतंत्रता की घोषणा करे तो तत्क्षण इमरजेंसी हो जाती है। सारा शासन लोकतंत्र को भूल जाता है और तानाशाही हो जाता है।

जितना दक्ष होगा शासन, उतने ही तुम्हारी आत्मा को बंधन होंगे। शासन की दक्षता नहीं चाहिए। शासन ऐसा होना चाहिए जैसा परमात्मा है--अदृश्य। न दिखाई पड़ता, न बीच में आता, न नियम और अनुशासन की घोषणा करता। पता ही नहीं चलता है। जिस दिन शासन ऐसा हो कि उसका कोई बोध न हो, दंश मालूम न पड़े, उसी दिन ठीक शासन उपलब्ध हुआ। और न केवल यह बाहरी शासन के संबंध में सही है, यह अनुशासन के संबंध में भी सही है।

तुम मेरे पास हो। मेरे पास बहुत से लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप अपने संन्यासी को ठीक-ठीक डिसिप्लिन, अनुशासन क्यों नहीं देते?

मैं कौन हूं किसी को अनुशासन देने वाला? और जो अनुशासन दूसरे के द्वारा दिया जाए वह तुम्हें कैसे मोक्ष की तरफ ले जाएगा? अनुशासन तो कम करना है, आत्मानुशासन बढ़ाना है। बाहर से थोपा गया शासन तो हटा लेना है; भीतर की प्रज्ञा ही एकमात्र अनुशासन बने, ऐसी स्थिति लानी है। मैं तुमसे न कहूंगा, कब तुम उठो, कब

तुम बैठो, कब तुम सोओ, क्या तुम खाओ। ये मूढ़ता की बातें मैं तुमसे न करूंगा। मैं तो सिर्फ तुम्हारे परिशुद्ध चैतन्य को तुम कैसे खोज लो, उसकी विधि तुम्हें दूंगा। तुम्हारी चेतना फिर तुम्हारे अनुशासन को बनाएगी।

लेकिन गुरु भी शासकों की भांति हैं। वे भी बांध लेते हैं। वे रत्ती-रत्ती तुम्हारी फिक्र रखते हैं कि तुम क्या खाते, क्या पीते, कब सोते, कब उठते। गुरु जैसे पुलिसवाले हैं। और पुलिसवाला तो उतना गहरा नहीं जाता जितने गुरु जाते हैं। क्योंकि पुलिसवाले की उतनी समझ भी नहीं है गहरे जाने की। गुरु तो बिल्कुल भीतर तुम्हें हर चीज में बांध लेता है। तुम्हारी मुक्ति के नाम पर गुरुओं ने तुम्हारे लिए कारागृह खड़े कर रखे हैं। तुम मुक्त नहीं होते, गुलाम हो जाते हो। तुम आत्मवान नहीं होते, आत्मा को खो देते हो। आशा तुम यह रखते हो कि शायद इस अनुशासन से आत्मा मिलेगी। लेकिन जो पहले ही कदम पर परतंत्रता है वह अंतिम समय में कैसे स्वतंत्रता हो जाएगी? स्वतंत्रता पहले कदम पर भी स्वतंत्रता है, और अंतिम कदम पर भी। जो काटनी है फसल, उसके ही बीज बोने होंगे।

तो मैं स्वतंत्रता के बीज बोता हूं। मैं तुम्हें पूरा स्वतंत्र करता हूं; तुम्हारे बोध पर ही तुम्हें छोड़ता हूं। तुम्हारा बोध भर जगे। और तुम अपने बोध से ही अपने जीवन को अनुशासन देना। तो ही किसी दिन संभव है कि तुम्हें मुक्ति की झलक आ सके।

"विपत्ति भाग्य के लिए छायादार रास्ता है, और भाग्य विपत्ति के लिए ओट है।"

लाओत्से कहता है कि सदा विपरीत जुड़े हुए हैं। इसे जिसने देख लिया उसने जीवन की कुंजी पा ली।

जब विपत्ति आए तो तुम घबड़ाना मत, क्योंकि विपत्ति के ही छाएदार रास्ते से भाग्य भी यात्रा करता है। विपत्ति के पीछे ही भाग्य आता है। विपत्ति के पीछे ही सुख, महासुख की संभावना छिपी है। जब विपत्ति आए तो तुम घबड़ा मत जाना, उद्विग्न मत हो जाना, जल्दी ही भाग्य तुम्हारे द्वार पर दस्तक देगा। विपत्ति तो उसकी आने की खबर है। वह पूर्व-सूचक है, संदेशवाहक है; पत्र है कि मैं आ रहा हूं।

तो जब विपत्ति आए तुम उत्तेजित मत होना, परेशान मत होना, क्योंकि जल्दी ही भाग्य आ रहा है। और जब भाग्य के फूल खिलें तब तुम सुख के कारण हर्षोन्मत्त मत हो जाना। क्योंकि भाग्य के पीछे ही फिर विपत्ति छिपी है। जैसे दिन के पीछे रात है और रात के पीछे दिन है, ऐसा सुख के पीछे दुख है, दुख के पीछे सुख है, सफलता के पीछे असफलता है, असफलता के पीछे सफलता है। सब विरोधी जुड़े हैं।

तो न तो दुख तुम्हें उद्विग्न करे, और न सुख तुम्हें उत्तेजित करे। तुम दोनों ही स्थिति में साक्षी बने रहना। क्योंकि दोनों में से कोई भी ठहरने वाला नहीं है। जो भी आया है, चला जाएगा। जो भी आया है, जल्दी ही उसका विपरीत आएगा। तो यहां पकड़ने को कुछ भी नहीं। यहां किसी भी चीज के साथ मोह बना लेने की कोई सुविधा नहीं है। न तो तुम विपत्ति को हटाने की कोशिश करना; क्योंकि विपत्ति को हटाओगे तो भाग्य भी हट जाएगा जो उसके पीछे आ रहा था। न तुम भाग्य को पकड़ने की कोशिश करना; क्योंकि भाग्य को पकड़ोगे तो विपत्ति भी पकड़ में आ जाएगी जो कि उसके पीछे ही छिपी है। तो तुम करोगे क्या?

तुम साक्षी रहना। तुम देखते रहना। तुम सिर्फ हंसना। क्योंकि तुम्हें दोनों दिखाई पड़ जाएं तो तुम हंसने लगोगे। किसी ने दी गाली तो तुम दुखी न होओगे, क्योंकि तुम जानते हो कि कहीं से कोई प्रशंसा शीघ्र ही मिलने वाली है। तुम गिर पड़े, घबड़ाना मत। क्योंकि जो ऊर्जा गिराती है वही उठा भी लेती है। तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम बीमार पड़े, तो जिस ऊर्जा से बीमारी आती है उसी ऊर्जा से स्वास्थ्य भी आता है। तुम एक ही काम कर सकते हो कि तुम देखते रहना। आने देना, जाने देना, और तुम देखते रहना।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम्हारे देखने की क्षमता सघन हो जाएगी, जैसे-जैसे तुम्हारा द्रष्टा जड़ें जमा लेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कुछ भी नहीं छूता; तुम कमलवत हो गए। वर्षा भी हो जाती है, पानी गिरता भी है, तो भी छूता नहीं; अनछुआ गुजर जाता है। तुम अस्पर्शित रह जाते हो।

और अगर तुम यह न कर पाए तो तुम कभी भी सामान्य न हो पाओगे।

"जैसी स्थिति है, सामान्य कभी भी अस्तित्व में नहीं आएगा।"

तुम एक अति से दूसरी अति पर भटकते रहोगे। कभी दुख, कभी सुख; कभी छांव, कभी धूप; कभी दिन, कभी रात; कभी जन्म, कभी मृत्यु; बस तुम एक से दूसरे पर भटकते रहोगे। दोनों के बीच में छिपा है जीवन का राज।

"जैसी स्थिति है, सामान्य कभी अस्तित्व में नहीं होगा। लेकिन सामान्य शीघ्र ही पलट कर छलावा बन जाएगा, और मंगल पलट कर अमंगल हो जाएगा। इस हद तक मनुष्य-जाति भटक गई है।"

उसे यह भी पता नहीं है कि हम जो भी करते हैं वह हमेशा विपरीत में पलट जाता है। तुम सोचते हो, यह बड़ी मंगल घड़ी है और पकड़ लेते हो। जल्दी ही तुम पाते हो कि मंगल घड़ी तो कहीं खो गई, उसकी जगह सिर्फ अमंगल रह गया है। देखते हो प्रेम, पकड़ लेते हो; मुट्ठी खोल भी नहीं पाते कि पता चलता है, प्रेम तो कहीं तिरोहित हो गया, घृणा हाथ में रह गई है। आकर्षण खो जाता है, विकर्षण रह जाता है। पकड़ने गए थे सुबह को, सांझ हाथ में आती है।

लाओत्से कहता है, यह आखिरी भटकाव है। इससे ज्यादा और क्या भटकना होगा? लौटो पीछे, थोड़ा सम्हलो। और सम्हलने का एक ही मतलब हैः द्वंद्व से बच जाओ। एक ही सम्हलना है कि जहां-जहां तुम्हें दो दिखाई पड़ें, तुम उनमें से चुनाव मत करना; तुम चुनावरहित साक्षी हो जाना। मन तो कहेगा, सुख को पकड़ लो; इतने दिन तो प्रतीक्षा की, अब द्वार पर आया है, अब जाने मत दो। मन तो कहेगा, दुख को हटाओ। हटाओगे तो जल्दी हट जाएगा, अन्यथा न मालूम कितनी देर टिक जाए।

न तुम्हारे टिकाए कुछ टिकता है, और न तुम्हारे हटाए कुछ हटता है। इसे अगर तुमने जान लिया तो तुम समझदार हो। क्या हटता है तुम्हारे हटाए? किस दुख को तुम हटा पाते हो? चित्त जब उदास होता है, तुम कोई उपाय करके उदासी से बाहर हो सकते हो? चित्त जब प्रसन्न होता है, कोई उपाय है जिससे तुम प्रसन्नता को पकड़ लो और तिजोड़ी में कैद कर लो कि जब चाहो तब निकाल लिया तिजोड़ी से, थोड़ी देर खेले, प्रसन्न हुए, बंद कर दिया। इतना लंबा जीकर भी तुम्हें यह समझ में नहीं आया कि न तुम्हारे पकड़े कुछ बचता है, न तुम्हारे हटाए कुछ हटता है। आती है प्रसन्नता और चली जाती है, जैसे तुमसे अलग ही उसकी यात्रा का पथ है। छाया आती है, धूप आती है; तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। जैसे उसके आने-जाने का अलग ही वर्तुल है। तुम तो सिर्फ दर्शक हो। तुम्हारी भ्रांति एक ही है कि तुमने अपने को कर्ता मान लिया।

अगर तुम कर्ता न मानो तो तुम बड़े हैरान होओगे, जैसे उदासी आती है वैसे ही चली जाती है; तुम अनछुए, अस्पर्शित पीछे खड़े रहते हो। तब खुशी-हंसी भी आती है, वह भी चली जाती है। जैसे-जैसे यह भाव प्रगाढ़ होता है वैसे-वैसे तुम मुक्त होने लगते हो। तब तुम अपने जीवन को भी अनुशासन नहीं देते।

लाओत्से कह रहा है, अनुशासन के बहुत तल हैं। दूसरे तुम्हें अनुशासन दे रहे हैं--वह राज्य। फिर तुम अपने को अनुशासन देने की कोशिश करते हो--वह नीति। इसलिए तो हम राजनीति और नीति शब्द का उपयोग करते हैं। क्योंकि दोनों का मतलब एक ही है गहरे में। राजनीति का अर्थ है, दूसरे तुम्हें नैतिक बनाने की कोशिश कर रहे हैं। और नीति का अर्थ है, तुम खुद ही अपने को नैतिक बनाने की कोशिश कर रहे हो।

न दूसरे तुम्हें बना सकते हैं, न तुम खुद अपने को बना सकते हो। दूसरे भ्रांति में हैं कि उनके ऊपर दुनिया का भार है सुधारने का। तुम भी इस भ्रांति में हो कि यह कर्तृत्व तुम्हारा है कि तुम अपने को शुद्ध, चरित्रवान, शीलवान बना कर रहोगे। राजधानियों का अहंकार भी झूठा है, और तुम्हारा अहंकार भी झूठा है। इस जगत में चेतना साक्षी की भांति है, कर्ता की भांति नहीं। कर तो तुम कुछ भी न पाओगे। करने की भ्रांति के कारण ही तो इतना भटके हो जन्मों-जन्मों तक। कब तक भटकते रहोगे? क्यों नहीं छोड़ देते उस भ्रांति को और एक बार साक्षी होकर देखते?

और तब साक्षी के पीछे एक अनुशासन आता है जो लाया गया नहीं है, जो प्रयास से नहीं आया है, जो निष्प्रयत्न फला है। तब एक वर्षा हो जाती है आशीर्वादों की, तब सब तरफ से आनंद सघन होकर तुम्हारे ऊपर गिरने लगता है। बिन घन परत फुहार। कोई बादल भी दिखाई नहीं पड़ता और वर्षा होती है। कोई कारण समझ में नहीं आता, कोई कर्ता नहीं है, कोई लाने वाला नहीं है, और आनंद बरसता चला जाता है। जब तक यह घड़ी न आ जाए, बिन घन परत फुहार, तब तक समझना कि भटक रहे हो।

लाओत्से कहता है, मनुष्य-जाति इस सीमा तक भटक गई है कि जो आनंद बिना किए मिल सकता है, उसको भी वह उपलब्ध नहीं कर पाती। इससे ज्यादा भटकाव और क्या होगा? जो संपदा बिना कुछ किए मिल सकती है, तुम उसको भी नहीं खोज पा रहे! नहीं खोज पा रहे हो, क्योंकि तुम उस संपदा को खोजने में लगे हो जो कि मिल ही नहीं सकती। तो सारी ऊर्जा गलत दिशा में प्रवाहित है।

"इसलिए संत ईमानदार, दृढ़ सिद्धांत वाले होते हैं, लेकिन काट करने वाले या तीखे नोकों वाले नहीं।"

यह संत के स्वभाव को समझने की कोशिश करो।

"देयरफोर दि सेज इ.ज स्क्वायर, हैज फर्म प्रिंसिपल्स, बट नाट कटिंग, शार्प कार्नर्ड।"

चौकोन आकार का है संत, क्योंकि चौकोन आकृति की कोई भी चीज दृढ़ होती है। उसे तुम जमीन पर रख दो, वह जम जाती है, वह थिर होती है। उसे हटाना आसान नहीं होता। उसे कंपन नहीं आता, वह निष्कंप होती है।

तो लाओत्से कहता है, "दि सेज इ.ज स्क्वायर।"

एक दृढ़ता है संत की जो बड़ी अनूठी है, जो उसके होने के ढंग से आती है। इसलिए स्क्वायर, इसलिए चौकोन आकृति वाला है संत।

तुमने अगर एक जापानी गुड़िया दारुमा देखी हो--दारुमा डॉल। उस गुड़िया को तुम कैसा ही फेंको, वह सदा पालथी मार कर बैठ जाती है। दारुमा जापानी में भारतीय अनूठे पुरुष बोधिधर्म का नाम है। जापानी भाषा में बोधिधर्म का नाम दारुमा है। और वह जो पुतली है वह बोधिधर्म की है, जिसने भारत से चीन में बौद्ध-धर्म की शाखाएं आरोपित कीं। स्क्वायर का वह अर्थ है कि तुम संत को कैसा ही घुमाओ-फिराओ, उलटा-सीधा पटको, कुछ भी करो, हमेशा तुम सिद्धासन में बैठा हुआ पाओगे। वह दारुमा डॉल घर में रखनी चाहिए, उसे फेंक-फेंक कर देखना चाहिए कि वह संत का स्वभाव है। तुम उसे उलटा सिर के बल फेंको, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि वह वजनी है पैरों में, वह तत्क्षण बैठ जाती है।

संत को हिलाने का उपाय नहीं; वह दारुमा डॉल है। वह कंपित नहीं होता। तूफान आएं, सुख आएं, दुख आएं, कुछ उसे उत्तेजित नहीं करता। वह हर घड़ी अपने सिद्धासन में बैठा रहता है। उसके भीतर सिद्धासन लगा है।

यह सिद्धासन शरीर का नहीं है। हमने जो तीर्थंकरों, बुद्धों की, सबकी प्रतिमाएं सिद्धासन में बनाई हैं, इससे तुम यह मत समझना कि वे इसी तरह बैठे रहते थे चौबीस घंटे। ये तो भीतर के प्रतीक हैं; इस भांति भीतर हो गए थे, दारुमा डॉल की भांति। इनकी पालथी ऐसी लग गई थी कि अब उसे हिलाने का कोई उपाय न था। ये ऐसे दृढ़ हो गए थे।

तो एक तो दृढ़ता मन की भी होती है। वह दृढ़ता झूठी होती है। उसके भीतर डर छिपा होता है।

मैं जहां पढ़ता था, मेरे स्कूल में एक शिक्षक थे जो हमेशा कहते कि अंधेरे से मुझे बिल्कुल डर नहीं लगता; अंधेरी रात में मैं मरघट भी चला जाता हूं।

तो मैंने उनसे कहा कि आप इतनी बार यह बात कहते हैं कि शक होता है। इस बात को बार-बार कहने की क्या जरूरत हम छोटे बच्चों के सामने कि मैं बिल्कुल नहीं डरता? यह कोई बात है! नहीं डरते तो अच्छा। मगर आप किस पर रोब गांठ रहे हैं कि मरघट अकेला चला जाता हूं? जरूर इसमें कहीं आपके भीतर डर है। डर को आप अपने मन की बातों से भुलाने की कोशिश कर रहे हैं कि मैं बिल्कुल सुदृढ़ आदमी हूं, मैं भयभीत नहीं होता।

अक्सर तुम ऐसी दृढ़ता करते हो। तुम कहते हो कि मैं जो कसम खा रहा हूं, सदा इसका पालन करूंगा। लेकिन अगर तुम उसी वक्त भी भीतर झांक कर देखो तो तुम पाते हो तुम जानते हो कि यह पूरा होने वाला है नहीं। अपने को भुला रहे हो। और जितना तुम अपने को भुलाना चाहते हो उतने ही जोर से बोलते हो। खुद की आवाज सुन कर भरोसा लाने की कोशिश कर रहे हो।

तुम्हारी दृढ़ता का कोई मतलब नहीं, तुम्हारी दृढ़ता के पीछे जब तक कि तुम्हारी चेतना न हो। मन के संकल्प कोई संकल्प नहीं, पानी पर खींची लकीरें हैं। वे टिकने वाली नहीं, तुम कितने ही जोर से खींचो। कुछ टिकेगा नहीं मन पर; मन कभी दृढ़ होता ही नहीं। मन का स्वभाव दृढ़ता नहीं है, चंचलता है। वह कभी चौकोर नहीं है। तुम मन की दारुमा पुतली नहीं बना सकते, तुम लाख उपाय करो। वह पालथी तो चेतना की ही लगती है। वह सिद्धासन तो आत्मा का ही है। उसके पहले नहीं हो सकती वह दृढ़ता।

संत दृढ़ होता है। उसे खुद पता भी नहीं होता कि वह दृढ़ है। क्योंकि पता अगर हो तो विपरीत का भी पता होगा। वह दृढ़ होता है। उसकी दृढ़ता स्वाभाविक है। संत दृढ़ होते हैं और उनकी दृढ़ता से ही उनका ईमान प्रकट होता है। उनकी दृढ़ता से ही उनकी प्रामाणिकता आती है, उनके संकल्प से नहीं। वह उनके स्वभाव से आविर्भूत होती है।

एक तो ईमान है जो तुम सोच-विचार कर लाते हो। और एक ईमान है जो तुम्हारे स्वभाव की अनुभूति से प्रकट होता है।

ऐसा हुआ कि मोहम्मद का एक शिष्य यहूदियों की किताब तालमुद पढ़ रहा था। मोहम्मद ने उसे तालमुद पढ़ते देखा तो उससे कहा, देख, अगर तालमुद पढ़नी हो तो यहूदी हो जा! क्योंकि बिना यहूदी हुए तू कैसे तालमुद समझ पाएगा? मुसलमान रहते हुए तू तालमुद समझ न पाएगा, क्योंकि तेरा पूरापन तालमुद से नहीं जुड़ेगा। अगर मुसलमान रहना है तो कुरान पढ़। अगर तालमुद पढ़नी है तो यहूदी हो जा। कुछ भी बुराई नहीं है यहूदी होने में, लेकिन जो भी करना है पूरे मन से कर।

और जहां तुम पूरे मन से कुछ करते हो वहीं मन विदा हो जाता है। क्योंकि मन पूरा हो ही नहीं सकता; वह उसका स्वभाव नहीं है। वह आधा-आधा ही हो सकता है। जब भी तुम पूरे मन से कोई भी चीज करते हो--अगर तुम गड्ढा भी खोद रहे हो जमीन में और पूरे मन से खोद रहे हो--तत्क्षण तुम पाते हो ध्यान लग गया। तुम खाना बना रहे हो, पूरे मन से बना रहे हो, तत्क्षण तुम पाते हो ध्यान लग गया। जहां-जहां मन को तुम पूरा कर लोगे

वहीं तुम पाओगे, मन विसर्जित हो गया और ध्यान लग गया। और वह ध्यान दृढ़ स्वभाव वाला है। वह ध्यान सिद्धासन है।

अब तुम इसे ठीक से समझ लो। लोग सोचते हैं, सिद्धासन में बैठने से ध्यान लगेगा। वे गलत सोचते हैं। ध्यान लगने से सिद्धासन उपलब्ध होता है। सिद्धासन तो कोई भी मदारी लगा लेगा। सिद्धासन में क्या है लगाने में? थोड़े दिन का अभ्यास किया जाए, एकदम सिद्धासन लग जाएगा। पैर थोड़े दिन बाद मुड़ने लगेंगे। थोड़े दिन तकलीफ हुई तो मसाज करवा लेना। सिद्धासन तो कोई भी लगा लेगा। सिद्धासन से अगर ध्यान लगता होता तो बड़ी सरल बात थी। ध्यान से सिद्धासन लगता है। जिसका भी ध्यान लग गया... । मोहम्मद की कोई प्रतिमा नहीं है, जीसस की कोई प्रतिमा नहीं है सिद्धासन लगाए हुए। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि जीसस का सिद्धासन लग गया। कभी बैठे नहीं वे बुद्ध जैसे, महावीर जैसे। लेकिन भीतर वह बैठक लग गई। वह बात भीतर की है। बाहर से सहारा मिल जाए, लेकिन बाहर को तुम पर्याप्त मत समझ लेना।

संत ईमानदार हैं। उनका ईमान भीतरी है। वह उनके होने का ढंग है। और इसीलिए वे काट करने वाले और तीखे नोकों वाले नहीं हैं। इस फर्क को ख्याल में ले लो। अगर तुम्हारा ईमान ऊपर-ऊपर है, चेष्टित है, तो तुम बेईमान की निंदा करोगे, बेईमान को काटोगे। तुम घोषणा करोगे कि मैं ईमानदार, तुम बेईमान! तुम जहां जरा सा भी कुछ गलत होते देखोगे, तुम टूट पड़ोगे। तुम इस मौके को न छोड़ोगे अपनी घोषणा किए कि मैं श्रेष्ठ और तुम अश्रेष्ठ! तुम सारी दुनिया को ऐसे देखोगे कि सारी दुनिया नरक की तरफ जा रही है एक तुमको छोड़ कर--तुम स्वर्ग की तरफ जा रहे हो।

अगर तुम्हारी गुणवत्ता दूसरे की निंदा बन जाए तो समझ लेना कि यह आत्मा से नहीं आ रही, यह मन का ही धोखा है। संत दृढ़ होते हैं, लेकिन तीखे नोकों वाले नहीं। उनमें कोने नहीं होते। वे किसी को चोट पहुंचाने में रस नहीं लेते। निंदा उनसे नहीं हो सकती; बुरे को भी बुरा कहने में वे संकोच करेंगे। बुरे में भी भले को देखने का उनका स्वभाव होगा। बुरे से बुरे में भी, कितने ही गहरी छिपी हो ज्योति, कितने ही अंधेरे में दबी हो, उसे वे देख लेंगे।

तीखी नोक वाला तुम संत को न पाओगे। मृदु होगा। उसके व्यक्तित्व में एक गोलाई होगी, स्त्रैण गोलाई। उसमें नोक नहीं होगी।

"उनमें अखंडता, निष्ठा होती है, लेकिन वे दूसरों की हानि नहीं करते।"

वे अखंड होंगे, लेकिन तुम्हारे खंडित व्यक्तित्व को वे अपनी अखंडता से दबाएंगे नहीं, परतंत्र नहीं करेंगे। वे तुम पर शासन करने के काम में अपनी अखंडता का उपयोग न करेंगे। वे अखंड होंगे, गहन निष्ठा से भरे होंगे, लेकिन उनके कारण वे तुम्हें हीन दर्शित न करेंगे। ध्यान रखना, जब भी तुम अपने चरित्र का उपयोग किसी की हीनता के लिए करने लगो, तब तक समझ लेना कि तुम चरित्र का उपयोग भी दुश्चरित्रता की तरह कर रहे हो।

वे सीधे होते हैं, लेकिन यह सीधे होने का कोई दंभ उनमें नहीं होता। इसलिए उनमें कोई निरंकुशता नहीं होती।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक डाक्टर के पास गया। सिर में उसे दर्द था। और बहुत तेज दर्द था, जैसे कोई स्क्रू भीतर घुमा रहा हो, या कि कोई छुरी से भीतर काट रहा हो। तो वह बड़ा बेचैन था, सिर पकड़े हुए प्रवेश किया। डाक्टर ने उससे पूछा, बीमारी की जांच-पड़ताल की, तो पूछा कि सिगरेट, सिगार, ऐसी कोई चीज तो नहीं पीते? धूम्रपान तो नहीं करते? नसरुद्दीन ने कहा, नहीं, कभी नहीं। चाय-काफी, पूछा डाक्टर ने, इस तरह की कोई चीज तो नहीं लेते जिसमें निकोटिन हो? नसरुद्दीन ने और भी जोर से कहा कि कभी नहीं! उस

आदमी ने पूछा, और शराब इत्यादि का तो उपयोग नहीं करते? नसरुद्दीन क्रोध से खड़ा हो गया। उसने कहा, तुमने समझा क्या है? डाक्टर ने कहा, और आखिरी बात और कि कोई परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, कोई इस तरह की लत में तो नहीं पड़े हैं? नसरुद्दीन तो झपट्टा मार दिया उस डाक्टर पर। नसें खिंच गईं। उसने कहा, तुमने समझा क्या है? कोई चोर-लफंगा? कोई ऐरा गैरा नत्थू खैरा? तुम्हें पता नहीं मैं कौन हूं? मैं अखंड ब्रह्मचारी हूं, बाल ब्रह्मचारी। और इतना ही नहीं कि मैं ब्रह्मचारी हूं, मेरे पिता भी अखंड बाल ब्रह्मचारी थे। यह हमारे वंश में सदा से ही चला आया है। उस डाक्टर ने कहा, इलाज हो जाएगा; बीमारी पकड़ ली गई। तुम शांति से बैठो। तुम्हारा चरित्र तुम्हारे सिर में जरूरत से ज्यादा घुस गया है; उससे दर्द हो रहा है।

जब चरित्र तुम्हें सिरदर्द देने लगे तो थोड़ा सावधान हो जाना। जब चरित्र तुम्हारा दंभ बन जाए और अकड़ बन जाए और तुम्हारी चाल बदल जाए तो तुम सावधान हो जाना। यह चरित्र न हुआ, दुश्चरित्रता हो गई। इससे तो दुश्चरित्र बेहतर, कम से कम विनम्र तो है। दुश्चरित्रता इतनी बुरी नहीं जितना दंभ बुरा है।

संत में चरित्र होगा और चरित्र का कोई एहसास नहीं होगा, सेल्फ-कांशसनेस नहीं होगी। चरित्र ऐसे होगा जैसे कि हाथ हैं, कान हैं, नाक है; इनके लिए कोई अलग से घोषणा नहीं करनी पड़ती, हैं। चरित्र ऐसे होगा जैसे श्वास चलती है। अब इसकी कोई घोषणा तो नहीं करनी पड़ती कि हम श्वास ले रहे हैं, देखो। इसके लिए कोई यश-गौरव करे, ऐसी तो आकांक्षा नहीं होती कि हम श्वास ले रहे हैं। उसमें कोई खास बात ही नहीं है। चरित्र श्वास जैसा होगा संत का। और अगर चरित्र ऐसा न हो तो समझ लेना कि वह चरित्र असाधु का है, साधु का नहीं।

"वे सीधे होते हैं।"

उनकी सादगी इतनी सादी होती है कि उन्हें उसका पता भी नहीं होता। क्योंकि जिस सादगी का पता चल जाए वह सादी न रही। जिस सीधेपन का पता चल जाए वह सीधापन तिरछापन हो गया। उसमें नोक आ गई। उसमें अकड़ पैदा हो गई।

"वे दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।"

बड़ा कीमती वचन है!

"ब्राइट, बट नाट डैजलिंग।"

उनमें एक माधुर्य और माधुर्य से भरी ज्योति होती है, लेकिन शीतल। तुम उससे जल न सकोगे। उसमें कोई उत्ताप नहीं होता, कोई बुखार नहीं होता, कोई ज्वर नहीं होता। संत के पास तुम जल न सकोगे। तुम उसके प्रकाश को कितना ही पी लो तो भी वह शीतल ही अनुभव होगा। वह तुम्हारे रोएं-रोएं को पुलकित करेगा, लेकिन पसीने से न भर देगा।

इस फर्क को ठीक से समझ लो। क्योंकि संत ठंडी आग है। आग होना भी बहुत आसान है, ठंडा होना भी बहुत आसान है। ठंडी आग होना बहुत कठिन है। वह परम ज्ञान का लक्षण है। जब दीप्ति तो होती है, लेकिन दीप्ति में कोई ज्वर, त्वरा, चोट नहीं होती। आंखें चकाचौंध से नहीं भर जातीं संत के पास। वैसा चाकचिक्य देखना हो तो सिंहासन के पास होगा, राजधानी में होगा, सम्राटों के पास होगा। वहां तुम्हारी आंखें चकाचौंध से भर जाएंगी। वहां तुम्हारी आंखें थक जाएंगी। वहां से तुम ताजे होकर न लौटोगे। वहां से तुम कितने ही अभिभूत हो जाओ, प्रभावित हो जाओ, लेकिन वह प्रभाव बीमारी की भांति होगा, भारी होगा। सम्राट भी लोगों को प्रभावित करते हैं, लेकिन उनके प्रभाव में बड़ा दंश है। फफोले उठ आएंगे उनके प्रभाव से तुम्हारे ऊपर। तुम्हारे व्यक्तित्व में घाव की तरह उनका प्रभाव पड़ेगा। तुम वहां से दीन होकर लौटोगे। तुम उस चाकचिक्य से, चकाचौंध से भर कर तुम्हारी आंखें अंधेरे में होकर लौटेंगी, तुम अंधे होकर लौटोगे। एक प्रभाव सम्राटों का है।

इसलिए तो हमने इस देश में कहा है कि चक्रवर्ती भी कुछ नहीं है एक संत के सामने। चक्रवर्ती हम उसको कहते हैं जो सारी पृथ्वी का सम्राट हो। तलवार की धार की तरह वह तुम्हें काट देगा। लेकिन तुम कट कर लौटोगे। तुम खंड-खंड होकर आओगे। तुम जल कर आओगे। उतनी आग तुम्हें केवल बीमारी दे सकती है। संत भी अनूठी महिमा को उपलब्ध होता है। सब सिंहासन फीके हैं, चक्रवर्ती भी चरण छुएं।

क्या होगा? संत की क्या खूबी है?

उसकी खूबी है कि उसके पास एक और तरह की आग है। तुम उसकी आग को पी सकते हो, तुम उसकी आग को भोजन बना सकते हो, तुम जलोगे न। उसकी आग में कहीं भी चोट नहीं है।

दीप्ति बड़ा कीमती शब्द है। जैसे सुबह जब सूरज नहीं उगा होता, रात जा चुकी, सूरज अभी नहीं उगा, तब जैसा प्रकाश होता है वह दीप्ति है। रात गई, अंधेरा अब नहीं है, सूरज अभी आया नहीं। क्योंकि सूरज चक्रवर्तियों जैसा है, वह जला देगा। तुम उसकी तरफ आंख उठा कर न देख सकोगे, तुम्हारी आंखें अंधेरे से भर जाएंगी। अगर ज्यादा देखा तो अंधे हो जाओगे। सुबह का आलोक दीप्ति है। या सांझ को जब सूरज जा चुका और अभी रात नहीं आई, वह बीच का जो संध्या काल है, वह दीप्ति है।

इसलिए हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या कहते हैं। वह दीप्ति जैसी होनी चाहिए प्रार्थना। आग तो हो विरह की, पर बड़ी ठंडी और शीतल हो। तृप्त करे, भरे; जलाए न, जिलाए; राख न कर दे तुम्हें, तुम्हारी राख को अंकुरित करे, तुम्हें नया जन्म दे।

"संत दीप्त होते हैं, पर कौंध वाले नहीं।"

लाओत्से क्या कहना चाहता है? लाओत्से यह कहना चाहता है कि शासन संतों जैसा होना चाहिए। दीप्ति तो हो, कौंध न हो। लाओत्से यह कह रहा है कि वस्तुतः शासन संत का होना चाहिए, जो कि जला नहीं सकता, जो कि मिटा नहीं सकता, जो कि तुम्हें लूट नहीं सकता। क्योंकि जो भी पाने योग्य है उसने पा लिया है। जिसे तुम कुछ भी नहीं दे सकते, जिसके पास सब कुछ है, जो भरपूर है, जो आकंठ डूबा है आनंद में, जिसे तुमसे लेने को कुछ भी नहीं बचा है, उसका ही शासन होना चाहिए। उसका शासन अदृश्य होगा।

जैनों ने महावीर के वचनों को महावीर का शासन कहा है। बौद्धों ने भी बुद्ध के वचनों को बुद्ध का शासन कहा है। बौद्धों और जैनों ने, दोनों ने महावीर और बुद्ध को शास्ता कहा है--जो शासन दें, जिनसे शासन मिले। शासन उससे मिलना चाहिए जो स्वयं स्वतंत्र हो गया है। जो स्वयं स्वतंत्र हो गया है वह किसी को परतंत्र नहीं करता। उसकी स्वतंत्रता दूसरों के भी बंधन खोलती है, निर्ग्रंथ करती है। उसकी स्वतंत्रता दूसरों को भी स्वतंत्र करती है। वह वही दूसरों के लिए करता है जो उसके लिए हो गया है।

संत का शासन लाओत्से की अभीप्सा है, कि कभी ऐसी घड़ी आएगी जब संत से हम शासन लेंगे। दीप्ति की तरह फैल जाएगा उसका शासन। कुछ सौभाग्यशाली लोग संतों से शासन ले लेते हैं। पूरी पृथ्वी कब लेगी, न लेगी, कुछ कहना कठिन है। कुछ सौभाग्यशाली ले लेते हैं।

बौद्धों ने अपने भिक्षुओं का जो समूह है उसको संघ कहा है; बुद्ध को शास्ता कहा है। शास्ता वह है जिससे शासन मिले, और संघ वह है जो शासन ले। थोड़े से लोगों ने बुद्ध से शासन लिया, और उनके जीवन रूपांतरित हो गए। जिसने भी कभी किसी संत से शासन लिया उसका जीवन रूपांतरित हो जाता है। वही तो दीक्षा है। इनीशिएशन का वही अर्थ हैः संत से शासन लेने की कामना कि अब मैं तुमसे शासित होऊंगा। तुम मुझे चलाना, जिनकी अब किसी को चलाने की कोई आकांक्षा न रही।

इसे बहुत गौर से सोचना। क्योंकि लाओत्से जो भी कह रहा है एक-एक शब्द बहुमूल्य है। जिस दिन तुम तैयार हो जाते हो संत से शासन लेने को, उसी दिन संन्यास फलित होता है। उस दिन तुम इस पृथ्वी के हिस्से न रहे, उस दिन तुम राजनीति के बाहर हुए। उस दिन इस पार्थिव में जो उपद्रव चल रहा है उससे तुम्हारा कोई लेना-देना न रहा। तुमने एक और ही राह पकड़ ली। तुम्हें अब इस जगत में अंधे शासन नहीं देंगे।

कबीर कहते हैं, अंधे अंधे ठेलिया दोऊ कूप पड़ंत। अंधे अंधों को चलाते हैं, फिर दोनों कुएं में गिर जाते हैं।

एक तो है अंधों का शासन जो तुम्हें परतंत्र करेगा, जो तुम्हें जकड़ेगा, जो तुम्हें जंजीरें पहना देगा। और एक है संतों का शासन जो तुम्हें मुक्त करेगा। जो तुम्हें परतंत्र करते हैं उनसे तुम्हें शासन मांगना नहीं पड़ता, वे बिना मांगे देते हैं। तुम भागो भी तो तुम्हारा पीछा करेंगे। तुम न भी चाहो तो भी तुम्हें शासित करेंगे। संत तुम्हें पीछा नहीं करेंगे और न तुम्हें शासित करने की कोई चेष्टा करेंगे। तुम्हें मांगना पड़ेगा, तुम्हें अपनी झोली फैलानी पड़ेगी। और जिस दिन तुम्हारी झोली में किसी संत का शासन पड़ जाए, तुम्हें एक गर्भ मिला। अब तुम दूसरे ही हो गए। अब तुम्हारा पुनर्जन्म बहुत करीब है।

आज इतना ही।

अट्ठानबेवां प्रवचन

नियमों का नियम प्रेम व स्वतंत्रता है

Chapter 59

Be Sparing

In managing human affairs, there is no better rule than
to be sparing.
To be sparing is to forestall;
To forestall is to be prepared and strengthened;
To be prepared and strengthened is to be ever-victorious;
To be ever-victorious is to have infinite capacity;
He who has infinite capacity is fit to rule a country,
And the Mother (Principle) of a ruling country can long endure.
This is to be firmly rooted, to have deep strength,
The road to immortality and enduring vision.

अध्याय 59

मिताचारी बनो

मानवीय कारबार की व्यवस्था में मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।
मिताचार पूर्व-निवारण करना है;
पूर्व-निवारण करना तैयार रहने और सुदृढ़ होने जैसा है;
तैयार रहना और सुदृढ़ होना सदाजयी होना है;
सदाजयी होना अशेष क्षमता प्राप्त करना है;
जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने योग्य है;
और शासक देश की माता (सिद्धांत) दीर्घजीवी हो सकती है।
यही है ठोस आधार प्राप्त करना, यही है गहरा बल पाना;
और यही अमरता और चिर-दृष्टि का मार्ग है।

सूत्र के पूर्व कुछ बातें समझ लें।

मनुष्य के व्यवहार में और मनुष्य की व्यवस्था में स्वतंत्रता सूत्र है। जितने कम होंगे नियम, जितनी कम व्यवस्था करने की चेष्टा होगी, उतनी ही व्यवस्था आती है। जितने ज्यादा होंगे नियम, जितनी चेष्टा होगी व्यवस्था को आरोपित करने की, उतनी ही अराजकता पैदा होती है। इसे हम ऐसा कहें, मनुष्य और मनुष्य के बीच जितनी अराजकता हो उतनी व्यवस्था होगी, और जितनी व्यवस्था हो उतनी अराजकता हो जाएगी।

इसका कारण है। क्योंकि जब भी कोई एक व्यक्ति दूसरे को व्यवस्था देता है तब उसके अहंकार को चोट पहुंचती है। छोटे से बच्चे तक को व्यवस्था देने में अहंकार को चोट पहुंचती है तो बड़े बच्चों की तो कहना ही क्या! छोटे से बच्चे को भी तुम कहो कि बैठ जाओ शांत होकर! तो तुम जो कहते हो वह महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ता, छोटे बच्चे को पीड़ा मालूम पड़ती है। वह पीड़ा यह है कि उसे बिठाया जा रहा है। उसे अपनी असहाय अवस्था मालूम पड़ती है कि मेरे ऊपर अन्याय किया जा रहा है। आज मैं छोटा हूं तो मुझे दबाया जा रहा है। यह बच्चा बैठ भी जाए तो भी बड़े प्रतिशोध से भरा हुआ बैठेगा। और बैठने का तो कुछ भी मूल्य न था, प्रतिशोध का जहर जीवन भर पीछा करेगा।

इसलिए बच्चे अपने माता-पिता को कभी माफ नहीं कर पाते। असंभव है। नहीं माफ करने का कारण यह है कि इतनी व्यवस्था दी जाती है कि बच्चे के अहंकार को प्रतिपल चोट पहुंचती है। उसे लगता है, जैसे उसका अपना कोई होना ही नहीं; दूसरों के इशारे सब कुछ हैं--जहां वे चलाएं, चलो; जो वे बताएं, देखो; जो वे करने को कहें, करो। तुम्हारे भीतर स्वतंत्रता का कोई सूत्र वे बचने नहीं देते हैं। एक बोझ की भांति मालूम होता है यह व्यवस्था आरोपित किया जाना। यह बोझ इतना हो जा सकता है कि फिर बच्चा सारे ही बोझ को तोड़ दे और ठीक और गलत का हिसाब भी भूल जाए, और हर चीज के विरोध में खड़े होने की प्रवृत्ति से भर जाए।

इसीलिए तो अक्सर सज्जन माता-पिता के घर में सज्जन बच्चे पैदा नहीं हो पाते। क्योंकि सज्जन माता-पिता बच्चे को सज्जन बनाने में इतनी शीघ्रता से लग जाते हैं, उनकी चेष्टा का परिणाम दुर्जन का जन्म होता है। तो कभी-कभी जुआरी-शराबी के घर में अच्छा बच्चा पैदा हो जाए, लेकिन सज्जनों के घर में अच्छा बच्चा पैदा नहीं होता। जुआरी और शराबी के घर में कोई नियम तो है नहीं। जुआरी-शराबी नियम बनाएगा भी कैसे? जुआरी-शराबी खुद ही अपने को व्यवस्थित नहीं कर पा रहा है, बच्चे को क्या व्यवस्था देगा?

और एक अनूठी घटना घटती है--और मनसविद बड़ी चिंता में रहे हैं कि ऐसा क्यों होता है--कि बच्चा खुद अपनी व्यवस्था अपने हाथ में ले लेता है। यह देख कर कि कोई व्यवस्था करने वाला नहीं है, यह अनुभव करके कि मैं अंधेरे में खड़ा हूं, खुद ही सम्हलने लगता है। यह देख कर कि माता-पिता, परिवार गलत रास्ते पर जा रहा है... । इसे देखने में किसी बच्चे को अड़चन नहीं होती कि गलत क्या है। क्योंकि जहां से जीवन में दुख आता है वह गलत है; इसके लिए कोई अनुभव की जरूरत नहीं है। इस जांच को तो हम लेकर ही पैदा होते हैं कि जिससे दुख मिलता है वह गलत है। बच्चा रोज देखता है, शराब दुख दे रही है, जुआ दुख दे रहा है; परिवार पीड़ा में जी रहा है, नरक में जी रहा है; सचेत हो जाता है, अपने को सम्हालने लगता है। जब कोई सम्हालने वाला नहीं होता तो बच्चा अपने को सम्हालता है।

तुमने कभी देखा हो, छोटा बच्चा गिर जाए तो पहले वह चारों तरफ देखता है गिरने के बाद, रोना एकदम शुरू नहीं कर देता। पहले वह देखता है कि कोई है भी? मां है पास? तो ही रोने में कोई सार है। अगर मां पास नहीं है, चारों तरफ देख कर, कपड़े झाड़ कर अपने रास्ते पर चल देता है। गिरने के कारण नहीं रोता, मां की मौजूदगी के कारण रोता है। जब देखता है, कोई सम्हालने वाला नहीं, उठाने वाला नहीं, कोई संवेदना प्रकट करने

वाला नहीं, अपने पैरों पर चुपचाप खड़ा हो जाता है। रोना किसके आगे? किसकी प्रतीक्षा करनी? कोई है नहीं उठाने वाला। खुद झाड़ देता है धूल को, उठ कर खड़ा हो जाता है।

यह बच्चा प्रौढ़ हो गया। अकेला पाकर एक प्रौढ़ता इसमें आई कि रोना व्यर्थ है। लेकिन मां पास हो तो यह रोएगा, चीखेगा, चिल्लाएगा। क्योंकि संवेदना किसी से मिल सकती है, कोई फिक्र करेगा, कोई ध्यान देगा।

इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिन बच्चों को बहुत ध्यान दिया जाएगा, बहुत फिक्र की जाएगी, वे हमेशा निर्बल रह जाएंगे। वे ऐसे पौधे होंगे जो अपने तईं जी ही न सकेंगे। हॉट हाऊस प्लांट! उनके लिए कांच की दीवार चाहिए। सूरज की रोशनी भी उन्हें मुर्झाएगी; हवा का झोंका भी उन्हें मार डालेगा; जरा सी ज्यादा वर्षा और उनकी जड़ें उखड़ जाएंगी। उनके पास कोई जड़ें नहीं हैं। और कारण क्या है? कारण इतना ही है कि उनकी अतिशय सुरक्षा की गई। अतिशय सुरक्षा स्वयं को सुरक्षित करने की सारी क्षमता का नाश कर देती है।

तुम बच्चों को बचाना, लेकिन अति सुरक्षा मत देना। बचाना तो भी परोक्ष; सीधी व्यवस्था मत देना। तुम बच्चों के आस-पास एक वातावरण की तरह होना, जंजीरों की तरह नहीं। एक हवा हो तुम्हारी उनके आस-पास जो दीवार नहीं बनती। लेकिन कारागृह न हो। अगर बच्चे को तुम यह भी कहना चाहो कि मत करो इसे, तो भी इस ढंग से कहना कि उसके अहंकार को चोट न पहुंचे। रास्ते हैं, निषेध को कहने के भी विधायक रास्ते हैं। विधेय को भी कहने के निषेधात्मक रास्ते हैं। अगर बच्चा आग के पास जा रहा हो तो बजाय यह कहने के कि वहां मत जाओ, उसका ध्यान आकर्षित करना कि देखो, बगीचे में कैसा सुंदर फूल खिला है! तुम यहां क्या कर रहे हो? तुम उसे विधेय देना कि वह फूल की तरफ चला जाए। आग की तरफ मत जाओ, यह बात ही खतरनाक है; क्योंकि यह निमंत्रण बन जाएगी। तुम जब मौजूद न होओगे तब बच्चा आग के पास जाना चाहेगा। क्योंकि निषेध किया गया है, और निषेध को तोड़ना जरूरी है। नहीं तो बच्चे का अपना अहंकार कैसे निर्मित होगा?

इसे तुम ठीक से समझ लो। अहंकार निर्मित होने के लिए निषेध को तोड़ना जरूरी है; जो-जो कहा जाए, मत करो, वह करना जरूरी है। नहीं तो बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होना नहीं सीख पाएगा। इसीलिए तो तुम जो-जो कहते हो मत करो, वही-वही बच्चे करते हैं। और तुम परेशान होते हो, सिर पीटते हो कि क्या मामला है! इतना समझा रहे हैं, इतना रोक रहे हैं।

समझाने-रोकने के कारण ही किया जा रहा है। निषेध की दीवार बनाई तुमने कि बगावत पैदा होती है। तुमने कहा, धूम्रपान मत करना। शायद अभी बच्चे ने इसके पहले सोचा भी न हो कि धूम्रपान करना है। कौन बच्चा सोचता है? या कभी किसी को देखता भी करते हुए और अनुकरण कर लेता--कोई निषेध न होता--तो एक ही बार बच्चा धूम्रपान करेगा, दुबारा नहीं। खुद ही अनुभव से छूट जाएगा। क्योंकि सिवाय आंसू आने के, खांसी आने के और परेशानी के कुछ होगा नहीं। बुद्धिमान पिता तो बच्चे को सिगरेट लाकर दे देगा। क्योंकि आज नहीं कल किसी न किसी का अनुकरण तुम करोगे ही, तुम खुद ही अनुभव से जान लो। मैं कुछ कहता नहीं, तुम अनुभव से जान लो। अगर प्रीतिकर लगे तो आगे बढ़ना, अगर अप्रीतिकर लगे तो रुक जाना। लेकिन तुम्हीं निर्णायक हो, मैं निर्णायक नहीं हूं। और अगर पिता यह कर सके तो बच्चे के जीवन में धूम्रपान का जो पहला आकर्षण था वह नष्ट कर दिया। और तब बच्चा दूसरों को धूम्रपान करते देख कर सिर्फ हंसेगा कि कैसे मूढ़ हैं!

लेकिन तुमने कहा, मत करना! रस पैदा हुआ। इनकार में बड़ा रस है। अब बच्चे के मन में एक ही बात घूमेगी, उसके सपनों में एक ही बात घूमेगी कि कब मौका पा जाए, कोई एकांत क्षण में धूम्रपान करके देख ले। और तुम्हारा जितना निषेध होगा उतना ही बच्चा धूम्रपान की पीड़ा भी झेल लेगा, लेकिन तुम्हारे निषेध को तोड़

कर रहेगा। तोड़ कर ही तो उसको बल मिलेगा। तोड़ कर ही तो वह भी अनुभव करेगा कि मैं भी कुछ हूं, तुम्हीं सब कुछ नहीं हो।

एक संघर्ष है जो पिता और बेटे में चलता है। एक संघर्ष है जो मां और बेटी में चलता है। वह संघर्ष बिल्कुल स्वाभाविक है। उस संघर्ष से ही तो बच्चा बड़ा होता है। इसे तुम ऐसा समझो। संघर्ष बड़े प्राथमिक क्षण से शुरू हो जाता है; मां के गर्भ में शुरू हो जाता है। इसीलिए तो बच्चे के जन्म के समय इतनी पीड़ा होती है। क्योंकि बच्चा इनकार करता है बाहर आने से। वह जहां है सुख में है। वह जकड़ता है अपने को, रोकता है अपने को। एक संघर्ष शुरू हो गया। एक कलह शुरू हो गई। यह कलह फिर जीवन भर जारी रहेगी।

पिता और मां और उनके बच्चों के बीच या तो समझदारी का संगीत हो तो कलह को सृजनात्मक रूप दिया जा सकता है। अगर यह संगीत न हो, और ध्यान रखना, इसका जिम्मा बच्चे पर नहीं हो सकता, क्योंकि बच्चा तो अभी कुछ भी नहीं जानता है। इसका जिम्मा तो बड़ों पर होगा। और बड़ों ने अगर छोटी, क्षुद्र बातों के ऊपर बड़ी सख्ती की, तो यह बच्चा उनके हाथ से छूट जाएगा। फिर वे रोएं, चीखें-चिल्लाएं, इससे कुछ भी होने वाला नहीं है। बच्चा इसमें आनंदित होगा कि तुम पीड़ित हो; क्योंकि इसका मतलब होता है, बच्चा शक्तिशाली हो रहा है; तुम्हें पीड़ित कर सकता है। तुम ही उसे पीड़ित नहीं कर सकते, वह भी पीड़ित कर सकता है। अब एक राजनीतिक दांव-पेंच बाप और बेटे के बीच चलेगा।

जो बाप और बेटे के लिए सही है वही बहुत से आयामों में सही है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच भी वही सही है। शासक और शासित के बीच भी वही सही है। जहां-जहां किसी को चलाना है, कोई दिशा देनी है, किसी मार्ग को पकड़ाना है, वहां-वहां वही कठिनाई आएगी।

लाओत्से कहता है, कम से कम नियम, न्यूनतम नियम, बस उतने ही नियम चाहिए जिनके बिना चल ही न सके। जिनके बिना चल सके वे नियम काट देना।

दो व्यक्तियों के बीच का संबंध स्वतंत्रता पर आधारित हो, शासन पर नहीं। और मजा यही है कि तुम जितना किसी दूसरे को स्वतंत्र करोगे उतना ही वह तुमसे शासित होने को तत्पर और राजी हो जाता है। क्योंकि अब तुम्हारा शासन उसके अहंकार को चोट नहीं पहुंचाता। अब तुम्हारा शासन मित्र है, अब तुम्हारा शासन शत्रु की भांति नहीं है। इसलिए जो भी तुम किसी को कहो वह इस भांति कहना कि वह सुझाव से ज्यादा न हो; आदेश कभी न बने। वही मिताचार है।

लेकिन बाप की अपनी अकड़ है। वह सोचता है, बेटे को सुझाव क्या देना, सीधा आदेश, आज्ञा। वहां भूल है। सुझाव से ज्यादा कुछ भी नहीं किया जा सकता। और सुझाव भी ऐसा होना चाहिए कि अगर तुम ठीक कुशल होओ तो दूसरे को ऐसा लगेगा कि उसके भीतर से ही आया है।

किसी ने अमरीका के बहुत बड़े करोड़पति-अरबपति एंड्रू कारनेगी से पूछा कि तुम्हारे जीवन की सफलता का राज क्या है? तो एंड्रू कारनेगी ने कहा, मेरी सफलता का राज एक ही है--और अब मैं बता सकता हूं, क्योंकि अब मेरी मौत करीब है और मेरी यात्रा पूरी हो गई--और वह राज यह है कि मैं अपने से भी बुद्धिमान लोगों से काम लेता हूं और इस ढंग से काम लेता हूं कि उन सबको यह प्रतीति होती है कि उनके सुझाव मैं मान रहा हूं, हालांकि वे सुझाव मेरे ही होते हैं। तो एंड्रू कारनेगी अपने साथियों को, सहयोगियों को बुला लेता था। उन सबसे कहता था, कोई समस्या है, हल करनी है, तो सब सुझाव दें। उसका सुझाव तो पक्का ही है; वह पहले अपना तय कर चुका है कि क्या करना है, वह उसे रखे बैठा है भीतर। लेकिन सबसे सुझाव मांगेगा। फिर मौका देख कर कोई सुझाव, जो उसके भीतर के सुझाव के करीब पड़ता होगा, वह उस सुझाव की चर्चा के बहाने चर्चा शुरू करेगा और

वह ऐसा प्रतीत करवाएगा कि तुम्हारे में से ही किसी का सुझाव उसने स्वीकार कर लिया है। लेकिन वह कभी यह एहसास न होने देगा कि मैंने कोई सुझाव दिया जिसे तुम्हें मानना पड़ा है। एंड्रू कारनेगी के पास जिन लोगों ने भी काम किया उन सबका भी वही एहसास है कि उसने कभी कोई सुझाव नहीं दिया। बहुत कुशल आदमी होगा। और ऐसा ही आदमी मानवीय जीवन को व्यवस्था देने में सफल हो पाता है।

तुम दूसरे को आदेश भी दो तो ऐसे देना जैसे वह सुझाव है। और इस भांति देना कि मानने की कोई मजबूरी नहीं है। वह मानना चाहे तो माने, न मानना चाहे तो न माने। वह नहीं मानेगा तो तुम्हें कोई दुख होने वाला नहीं है, यह तुम साफ कर देना। क्योंकि न मान कर तुम्हें दुख देने की जो वृत्ति होती है वह तुम खुद ही काट देना। छोटा बच्चा नहीं मानना चाहता, क्योंकि वह जानता है, नहीं मानेगा तो तुम परेशान-पीड़ित होओगे। तो वह भी तुमको पीड़ित कर सकता है, यह शक्ति अनुभव होगी। तुम यह पहले ही जाहिर कर देना कि तू नहीं मानेगा तो कोई अड़चन नहीं है; मैं दोनों तरह से राजी हूं, दोनों में मेरी खुशी है--माने तो, न माने तो। तो तुमने दंश काट दिया। तुमने निषेध का जो रस था वह तोड़ दिया। तुमने जीवन-व्यवस्था को विधायक बना दिया।

सारी जीवन-व्यवस्था निषेधात्मक है। यहूदियों के, ईसाइयों के पास दस आज्ञाएं हैं। तुम अगर पश्चिम को समझने की कोशिश करो तो लाओत्से का सूत्र समझना बहुत आसान हो जाएगा। पश्चिम में बड़ी बगावत है। हर बाप के खिलाफ बगावत है। नई पीढ़ी कुछ भी मानने को राजी नहीं है। कुछ भी! जीवन के छोटे-छोटे नियम भी मानने को राजी नहीं है। स्नान भी करने को राजी नहीं है। गंदगी को आचरण बना लिया है। साफ-सुथरा दिखना बुर्जुआ, गए-गुजरे लोगों की आदत है। तो हिप्पी हैं और हिप्पियों जैसा सारा वर्ग है पश्चिम में, जो स्नान नहीं करेगा, गंदा रहेगा, गंदे कपड़े पहनेगा, धोएगा नहीं। कारण हैः ईसाइयत ने बड़ा आग्रह किया पिछले दो हजार साल में, ईसाइयत ने कहा कि क्लीनलीनेस इ.ज नेक्स्ट टु गॉड; स्वच्छता बस परमात्मा से नीचे है, स्वच्छता के ऊपर बस केवल परमात्मा है। इसका आग्रह इतना प्रगाढ़ हो गया कि हिप्पी पैदा हो गया। तो नई पीढ़ी ने कहा कि हमारे लिए तो दुर्गंध और अस्वच्छता ही दिव्यता है। ईसाइयत ने दस आज्ञाएं निर्धारित की हैंः चोरी मत करो, पर-स्त्री को मत देखो, धोखा मत दो... । लेकिन सभी नकारात्मक हैं।

एक ईसाई पादरी क्रिसमस के पहले पोस्ट आफिस गया था। वह कोई पार्सल किसी को भेंट भेज रहा था, और उस पर लिखा ऊपरः हैंडल विद केयर। तो पोस्ट मास्टर ने पूछा कि कुछ कांच इत्यादि का सामान है? उसने कहा कि नहीं, बाइबिल भेज रहा हूं। तो उसने कहा कि बाइबिल में क्या टूटने जैसा है? उसने कहा, दस आज्ञाएं! वे कांच से भी ज्यादा नाजुक हैं।

असल में, नहीं और निषेध से ज्यादा नाजुक चीज जगत में दूसरी नहीं है। तुमने नहीं कहा कि तुमने आधार बना दिया तोड़ने का। तुमने किसी को भी कहा कि नहीं कि तुमने उसको निमंत्रण दे दिया कि तोड़ो।

उपनिषद में ऐसी एक भी आज्ञा नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं, उपनिषद जिन्होंने रचा वे बहुत बुद्धिमान लोग थे। उपनिषद में एक भी निषेधात्मक आज्ञा नहीं है। उपनिषद यह नहीं कहता कि चोरी मत करो। उपनिषद कहता है, दान दो, बांटो। उपनिषद यह नहीं कहता कि व्यभिचार मत करो। उपनिषद कहता है, ब्रह्मचर्य को उपलब्ध करो। उपनिषद यह नहीं कहता, यह संसार बुरा है, छोड़ो। उपनिषद कहता है, परमात्मा परम भोग है, खोजो।

बात वही है। लेकिन जहां विधेय होता है वहां तोड़ने का सवाल नहीं उठता। जहां विधेय है, जहां कोई चीज पाजिटिव है--परमात्मा को खोजो; इसमें क्या तोड़ना है? तोड़ने का कोई मजा ही नहीं है इसमें। तोड़ने का तो मजा ही तब आता है जब कोई कहे, नहीं। वहीं तुम्हारे भीतर भी अहंकार मजबूत हो जाता है। वहीं तुम तोड़ने

को तत्पर हो जाते हो। वहीं तुम्हारे अहंकार पर कोई आक्रमण कर रहा है। "नहीं" आक्रामक है अहंकार के लिए, और अहंकार उसे बरदाश्त नहीं करेगा; उसे तोड़ कर दिखलाएगा।

इसे स्मरण रखना। मानवीय व्यवस्था में नहीं जितना कम बीच में आए उतना अच्छा। हां को बीच में आने दो, क्योंकि हां जोड़ता है। नहीं तोड़ता है। और तुम्हारे सब नियम नहीं पर आधारित होते हैं। हां पर करो उन्हें आधारित, और तब तुम पाओगे कि पचास नहीं पर आधारित नियम एक हां पर आधारित नियम में समाविष्ट हो जाते हैं। इतने नियमों की जरूरत नहीं है।

संत अगस्तीन से किसी ने पूछा कि मुझे जीवन अपना सुधारना है तो मैं कौन-कौन से नियमों का पालन करूं? तो संत अगस्तीन ने कहा, अगर नियमों का पालन करने गया और यह पूछा कि कौन-कौन से, तो नियम हजार हैं, जिंदगी बहुत थोड़ी है। तो तुझे मैं एक ही नियम बता देता हूं कि तू प्रेम कर। तो उस आदमी ने कहा, इससे सब हो जाएगा? अगस्तीन ने कहा, सब हो जाएगा। क्योंकि जो प्रेम करेगा वह चोरी कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा वह हिंसा कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा वह किसी का अपमान कैसे कर सकता है? जो प्रेम करेगा उसके जीवन में जो-जो कांटे हैं वे अपने से झर जाएंगे। क्योंकि प्रेम केवल फूल को ही खिला सकता है; प्रेम में कोई कांटे नहीं हैं। जो प्रेम करता है, वह क्रोध और घृणा और वैमनस्य और प्रतिस्पर्धा कैसे कर सकेगा? जो प्रेम करता है उसे तुमने कभी लोभ करते देखा? उनका कोई मेल ही नहीं होता।

अगर लोभ करना हो तो प्रेम भूल कर मत करना। अगर लोभ करना हो तो प्रेम की बात में ही मत पड़ना। इसीलिए तो कृपण आदमी कभी प्रेम नहीं करता; कर ही नहीं सकता। कृपणता का प्रेम से कोई संबंध नहीं है। लोभी धन इकट्ठा करता है। और प्रेम खतरनाक है उसके लिए। प्रेम से ज्यादा खतरनाक कुछ भी नहीं है। क्योंकि प्रेम का मतलब है--बांटो। इसलिए लोभी प्रेम की झंझट में कभी नहीं पड़ता, हालांकि वह भी सिद्धांत खोज लेता है। लोग बड़े कुशल हैं। वह कहता है, राग से मैं दूर ही रहता हूं। कृपण अपने को वीतराग समझता है। कृपण कहता है, क्या रखा है संबंधों में? यह तो वह कहता है, लेकिन तिजोड़ी में रखता चला जाता है। धन ही उसका एकमात्र संबंध है।

और जिसका धन से संबंध है उसका जीवन से कोई संबंध नहीं रह जाता। प्रेम तो जीवंत संबंध है। धन तो मृत वस्तु से संबंध है। धन से ज्यादा मरी हुई कोई चीज है? रुपये से ज्यादा मुर्दा कोई चीज तुम दुनिया में खोज सकते हो? पत्थर भी पड़ा-पड़ा बढ़ता है, पत्थर भी फैलता है। सारा अस्तित्व जीवंत है। लेकिन रुपया तुम बिल्कुल मरा हुआ पाओगे। रुपये में कोई जीवन नहीं है। और जो आदमी रुपये को इकट्ठा करने में लग जाता है उसकी आत्मा भी मर जाती है। और प्रेम तो वहां खिलता है जहां आत्मा जीवंत होती है।

तो जो प्रेम करता है वह लोभ नहीं कर सकता। जो प्रेम करता है वह कृपण नहीं हो सकता, परिग्रही नहीं हो सकता। एक प्रेम हजार नहीं वाले नियमों को अकेला सम्हाल लेता है। एक हां इतना बड़ा आकाश है कि हजारों नियमों के छोटे-छोटे पौधे उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। और बिना दंश के, बिना कांटे के।

तो अगस्तीन कहता है, प्रेम कर सको तो काफी है। प्रेम न कर सको तो फिर तुम्हें लंबी फेहरिस्त नियमों की मैं बताऊं। वे उनके लिए हैं जो प्रेम नहीं कर सकते हैं।

सब धर्मशास्त्र, सब आज्ञाएं उनके लिए हैं जो प्रेम नहीं कर सकते हैं। जो प्रेम कर सकता है उसके लिए बड़े से बड़ा शास्त्र मिल गया। अब किसी और शास्त्र की कोई जरूरत नहीं।

इसलिए तो जीसस कहते हैं कि प्रेम परमात्मा है। तुम कुछ मत करो, सिर्फ प्रेम कर लो। प्रेम का सार सूत्र क्या है--कि जो तुम अपने लिए चाहते हो वही तुम दूसरे के लिए करने लगो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह तुम दूसरे के साथ मत करो। प्रेम का अर्थ यह है कि दूसरे को तुम अपने जैसा देखो, आत्मवत।

एक व्यक्ति भी तुम्हें अपने जैसा दिखाई पड़ने लगे तो तुम्हारे जीवन में झरोखा खुल गया। फिर यह झरोखा बड़ा होता जाता है। एक ऐसी घड़ी आती है कि सारे अस्तित्व के साथ तुम ऐसे ही व्यवहार करते हो जैसे तुम अपने साथ करना चाहोगे। और जब तुम सारे अस्तित्व के साथ ऐसा व्यवहार करते हो जैसे अस्तित्व तुम्हारा ही फैलाव है तो सारा अस्तित्व भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करता है। तुम जो देते हो वही तुम पर लौट आता है। तुम थोड़ा सा प्रेम देते हो, हजार गुना होकर तुम पर बरस जाता है। तुम थोड़ा सा मुस्कुराते हो, सारा जगत तुम्हारे साथ मुस्कुराता है। कहावत है कि रोओ तो अकेले रोओगे, हंसो तो सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ हंसता है। बड़ी ठीक कहावत है। रोने में कोई साथी नहीं है। क्योंकि अस्तित्व रोना जानता ही नहीं। अस्तित्व केवल उत्सव जानता है। उसका कसूर भी नहीं है। रोओ--अकेले रोओगे। हंसो--फूल, पहाड़, पत्थर, चांद-तारे, सभी तुम्हारे साथ तुम हंसते हुए पाओगे। रोने वाला अकेला रह जाता है। हंसने वाले के लिए सभी साथी हो जाते हैं, सारा अस्तित्व सम्मिलित हो जाता है।

प्रेम तुम्हें हंसा देगा। प्रेम तुम्हें एक ऐसी मुस्कुराहट देगा जो बनी ही रहती है, जो एक गहरी मिठास की तरह तुम्हारे रोएं-रोएं में फैल जाती है। प्रेम काफी नियम है। और प्रेम नियम जैसा लगता ही नहीं।

तुम बच्चों को प्रेम दो, नियम नहीं। तुम्हारा प्रेम उनके जीवन में सारे नियमों की आधारशिला रख देगा। तुम उन्हें सिद्धांत मत दो। सिद्धांत तो कूड़ा-कर्कट है। तुम तो उन्हें हृदय की छांव दो। तुम तो उन्हें प्रेम का भाव दो। तुम इतना ही बच्चों को सिखा दो कि वे भी तुम जैसा प्रेम करने लगें; तुमने सब सिखा दिया। फिर तुम उन्हें छोड़ दे सकते हो इस विराट संसार में; उनसे कोई भूल न होगी।

और तुम सब तरह के सिद्धांत उन्हें दे दो, और सब शास्त्र उनके सिर पर रख दो--और उन्हें प्रेम मत दो--तुम्हारी आंख बचते ही तुम्हारे शास्त्रों को एक तरफ फेंक कर लात मार कर वे वहीं चले जाएंगे जहां जाने से तुमने उन्हें रोका था। तुम्हारे निषेध उनके चरित्र को रूपांतरित न करेंगे। तुम्हारा विधायक भाव!

और जो दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है वही समाज और शासन का संबंध है। शासन ऐसे है जैसे माता-पिता, प्रजा ऐसे है जैसे बच्चे। इसीलिए तो हम राजा को पिता कहते थे पुराने दिनों में। चाहे राजा की उम्र कम भी हो तो भी वह पिता था। और प्रजा उसकी संतान थी। इसके पीछे कारण है कहने का। कारण यही है कि जिसको भी शासन देना है उसे एक गहरे प्रेम के आत्मीय संबंध में बंध जाना जरूरी है। यह तुम्हें ख्याल में आ जाए तो लाओत्से का सूत्र बड़ा आसान हो जाएगा। एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें।

"मानवीय कारबार की व्यवस्था में, मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।"

मिताचार का अर्थ है बहुत गहन, अनेक आयामी। एक आयाम है मिताचार का कि आचरण के नियम जितने कम हों--कम से कम हों--उतना अच्छा। अंगुलियों पर गिने जा सकें; बहुत ज्यादा नियमों का जाल न हो। अक्सर अधिक नियमों के जाल में ही भटकाव पैदा हो जाता है। बहुत नियम चाहिए भी नहीं। एक ऐसा नियम चाहिए जो सभी नियमों को समाविष्ट कर लेता हो। और जीवन की व्यवस्था बड़ी सरल चाहिए।

अतिशय नियम में जीवन भी जटिल हो जाता है; और तुम ऐसे जीने लगते हो जैसे कोई सैनिक हो। सैनिक से आदमियत खो जाती है, उसका मानवीयपन खो जाता है। वह यंत्रवत हो जाता है--रोबोट। कब उठना, नियम से उठता है; कब बैठना, नियम से बैठता है; कब खाना, नियम से खाता है। सब व्यवस्थित हो जाता है। सैनिक

आज्ञा में जीता है और नियम में बंध कर जीता है। सैनिक मनुष्यता का आखिरी पतन है। क्योंकि उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं है। वह अपने सपने में भी स्वतंत्र नहीं होता। सपने तक में नियम घुस जाते हैं; उसकी नींद तक नियमों से आविष्ट हो जाती है। किसी पक्के सैनिक के पास अगर नींद में भी तुम खड़े होकर कह दो, लेफ्ट टर्न! वह नींद में भी करवट ले लेगा उसी वक्त। नियम अचेतन तक चले जाते हैं।

विलियम जेम्स ने अपना एक संस्मरण लिखा है कि एक होटल में बैठ कर वह बातचीत कर रहा है। एक रिटायर्ड सैनिक रास्ते से गुजर रहा है अंडों की एक टोकरी लिए। उसने सिर्फ मजाक में, अपने मित्रों को दिखाने के लिए कि नियम कितने गहन घुस जाते हैं, जोर से चिल्ला कर कहा, अटेंशन! उस सैनिक को रिटायर हुए बीस साल हो गए। वह अटेंशन खड़ा हो गया। टोकरी नीचे गिर गई। अंडे सब जमीन पर फूट गए। वह सैनिक बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, यह क्या मजाक है? विलियम जेम्स ने कहा कि हमें अटेंशन कहने का हक नहीं? तुम मत मानो। उसने कहा, यह कोई अपने बस में है मानना न मानना? आज्ञा आज्ञा है!

रोबोट का मतलब है यंत्रवत। यहां तुमने बटन दबाई वहां प्रकाश जल गया। प्रकाश कोई रुक कर प्रतीक्षा थोड़े ही करता है, सोचता थोड़े ही है कि जलूं, न जलूं। सैनिक भी वही है जो सोचने से बाहर हो गया।

सोचने से दुनिया में दो लोग बाहर होते हैं, एक संत और एक सैनिक। संत सोचने के पार हो जाता है और सैनिक सोचने के नीचे गिर जाता है। दोनों पार हो जाते हैं। सैनिक पतित हो जाता है सोचने के स्थान से। उसको सोचने की जगह से पदच्युत करने के लिए ही सारी सैनिक व्यवस्था है। युद्ध चले या न चले, सैनिक के लिए जैसे युद्ध चलता ही रहता है। उसके क्रम में कोई भेद नहीं पड़ता। सुबह-शाम उसे घंटों लेफ्ट-राइट और कवायद करनी ही पड़ती है। उसे जरा भी शिथिल नहीं छोड़ा जा सकता।

और क्यों इतनी कवायद करवाते हैं? लेफ्ट-राइट का क्या संबंध है?

कोई संबंध नहीं है, लेकिन बहुत गहरी कंडीशनिंग की व्यवस्था है। सैनिक को हम कहते हैं, बाएं घूमो, वह बाएं घूमता है। हम कहते हैं, दाएं घूमो, वह दाएं घूमता है। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे यह बात इतनी प्रगाढ़ हो जाती है, उसकी चेतन पर्तों से उतरते-उतरते अचेतन में चली जाती है। तब तुम्हारा कहना बाएं घूमो बटन दबाने की तरह काम करता है। सैनिक के बस के बाहर है कि न घूमे। घूमना ही पड़ेगा। यह घूमना अब यंत्रवत है।

और जब एक सैनिक यंत्रवत घूमने लगा तब उसका भरोसा किया जा सकता है। तब उससे कहो, चलाओ गोली! तो वह गोली चलाएगा, चाहे सामने उसकी मां ही क्यों न खड़ी हो। तब वह अजनबी आदमी पर गोली चला देगा जिससे उसको कुछ लेना-देना नहीं है, जिससे कोई झगड़ा-झांसा नहीं है; जो उसी जैसा आदमी है, जिसके घर मां होगी, पत्नी होगी, बच्चे प्रतीक्षा कर रहे होंगे, प्रार्थना करते होंगे कि कब वापस लौट आए; और जिसने कुछ बिगाड़ा नहीं है। लेकिन सोच-विचार के सैनिक नीचे गिर जाता है। उसे यंत्रवत गोली चलानी है। उसे बंदूक का ही हिस्सा हो जाना है।

सोचे-विचारे, यह मौका राज्य उसे नहीं दे सकता। क्योंकि सैनिक अगर खुद सोचने लगे तो हिरोशिमा पर बम गिराना मुश्किल है। क्योंकि वह सैनिक कहेगा, यह मैं न करूंगा; एक लाख आदमी राख हो जाएंगे क्षण भर में! इससे तो बेहतर तुम मुझे मार डालो। अगर मैं अपराध कर रहा हूं आज्ञा के उल्लंघन का, तुम मुझे गोली मार दो। लेकिन एक लाख लोगों को अकारण मारने मैं नहीं जा रहा हूं।

जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम डाला, वह बम फेंक कर वापस सो गया आकर। आठ बज कर दस मिनट पर उसने बम फेंका; नौ बजे वापस आकर वह गहरी नींद में सो गया। उधर एक लाख लोग आग में भुन गए। छोटे-छोटे बच्चे थे; अभी गर्भ से बाहर भी न आए थे, वे भी बच्चे थे। स्त्रियां थीं, बूढ़े थे, जिनका कोई युद्ध से लेना-

देना न था; नागरिक, जो न युद्ध कर रहे थे, न जो युद्ध चला रहे थे; बिल्कुल निहत्थे, जिनके पास कोई बचाव भी नहीं था। वे आग में भुन गए। हिरोशिमा में एक बैंक है जो जल गया। उसकी घड़ी किसी तरह बच गई है। वह ठीक आठ बज कर दस मिनट पर रुक गई। उस घड़ी को बचा लिया गया है। वह हिरोशिमा की याददाश्त है। उस दिन समय जैसे रुक गया। और आदमी ने गैर-आदमी होने की, अमानवीय होने की आखिरी छलांग ले ली।

यह आदमी सो गया। सुबह जब उठा तो पत्रकारों ने उससे पूछा कि तुम रात ठीक से सो सके? उसने कहा कि बहुत मजे से! ऐसी गहरी नींद कभी नहीं आई। क्योंकि काम पूरा कर दिया; जो मुझे आज्ञा मिली थी वह पूरा कर दिया। आज्ञा पूरी हो गई; मैं विश्राम में चला गया।

इस आदमी के मन पर जरा सा दंश भी नहीं है। तुम्हारे पैर से चींटी भी कुचल जाए तो भी थोड़ा सा लगता है कि अकारण, थोड़े होश से चल सकता था। एक लाख लोग! थोड़ी संख्या नहीं है। और मैं एक लाख लोगों को मार आऊं और रात आराम से नींद आ जाए, यह सिर्फ सैनिक को हो सकता है। वह विचार से नीचे गिर गया। इसके पास अब कोई विचार-विमर्श की क्षमता न रही। इसका अपना विवेक न रहा। इसका अब कोई होश नहीं है। यह मशीन है।

नियम व्यक्ति को मशीन बनाते हैं। नियम मनुष्यता की हत्या है। इसलिए पहला तो ख्याल ले लेना कि जितने कम नियम तुम्हारे अंतर्संबंधों में हों उतना अच्छा। न हों तो वह परम दशा है।

संत तुम्हारे साथ बिना नियम के जीता है। प्रेम उसका नियम कह सकते हो। लेकिन वह कोई नियम नहीं है, वह उसका स्वभाव है। संत तुम्हारे साथ ऐसे जीता है जैसे तुम्हारे-उसके बीच कोई भी नियम नहीं है। क्षण-क्षण, क्षण की संवेदना, क्षण का प्रतिसंवेदन जो ले आता है, उसी को जीता है।

नियम अतीत से आते हैं। एक ढांचा भीतर होता है। अगर तुम मेरे पास आओ और इसलिए मेरे पैर छुओ कि परंपरागत है कि गुरु के पास जाओ तो पैर छूने चाहिए--इसलिए अगर पैर छुओ--तो छूना ही मत। क्योंकि यह नियम से आ रहा है।

न, अचानक तुम मेरे पास झुकने के भाव से भर जाओ, वह भाव किसी नियम से न आए, वह तुम्हारे अंतस से आए, वह तुम्हारे प्रेम का हिस्सा हो। तब बात और है। तब गुण और है। तब उस झुकने का रस और है। तब तुम उस झुकने में कुछ पाओगे। तब तुम उस झुकने में भर जाओगे, तब तुम उस झुकने में पाओगे कि तुम्हारा घड़ा झुका और नदी से भर गया। लेकिन अगर नियम से तुम झुके तो तुम व्यर्थ ही झुकोगे। वह कवायद हो सकती है, उससे तुम्हारे शरीर को शायद थोड़ा लाभ हो, लेकिन आत्मा को कोई लाभ न होगा। नियम से आत्मा को कभी कोई लाभ नहीं होता, हानि भला हो जाए।

तुम घर जा रहे हो। तुम पत्नी के लिए बाजार से एक फूल खरीद लेते हो। यह तुम नियम की तरह खरीद रहे हो? तो मत खरीदो। ये पैसे व्यर्थ जा रहे हैं। या कि तुम एक प्रेम, एक अनुग्रह के भाव से खरीदते हो--कि पत्नी दिन भर प्रतीक्षा करती रही होगी, कि न मालूम कितना काम उसने किया होगा, खाना बनाया होगा, सब्जी तैयार की होगी, वह राह देखती होगी, और ऐसे ही मैं खाली हाथ चला जाऊं! और फूल तुम्हें दिख जाता है, तो तुम फूल ले लेते हो एक भाव-प्रवण दशा में--पत्नी तुम्हें इतना दे रही है, तुम उसे कुछ भी नहीं दे पा रहे! तब तुम्हारा फूल एक मूल्य रखता है। वह मूल्य बाजार का मूल्य नहीं है। तब चाहे तुमने यह फूल दो पैसे में खरीदा हो, यह बहुमूल्य हो गया। और कोहिनूर भी फीका है इसके सामने, क्योंकि अब तुम्हारे हृदय का संवेग लेकर जा रहा है। अब इस फूल का काव्य ही अनूठा है। अब यह फूल साधारण इस पृथ्वी का फूल न रहा। तुमने इसमें कुछ डाल दिया, यह पारलौकिक हो गया।

लेकिन तुम नियम से खरीद सकते हो। तुमने किताब पढ़ी हो, मैरिज मैनुअल्स में लिखा हुआ है कि जब घर जाओ तो आइसक्रीम, फूल या कुछ खरीद कर ले जाओ। क्योंकि पत्नी वहां बैठी है खतरनाक, उसे थोड़ा संतुष्ट करना है। जैसे देवी पर कोई चढ़ोत्तरी चढ़ाते हैं, ऐसा वह देवी घर में बैठी है, पता नहीं क्रुद्ध हो, नाराज हो, तुम्हारे फूल के ले जाने से थोड़ा सा समझौता होगा--एक रिश्वत की भांति। तब यह फूल कुरूप हो गया। यह दो पैसे का भी न रहा। तब यह फूल गंदा हो गया। क्योंकि फूल तो वही है जो तुम्हारे भीतर से तुम उसमें डालते हो।

पति लाते हैं। जिस दिन वे अपराधी अनुभव करते हैं उस दिन जरूर कुछ खरीद कर लाते हैं। आइसक्रीम खरीद लाते हैं। और पत्नियां भी जानती हैं कि आज जरूर किसी और स्त्री की तरफ गौर से देखा है। नहीं तो आइसक्रीम की क्या जरूरत है? आज पति कुछ गिल्टी है, कुछ अपराधी है, कहीं भीतर कोई दंश है। तो आइसक्रीम खरीद कर लाया है। नहीं तो नहीं। अगर हार ही खरीद लाया हो तो पक्का ही है यह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ गया है। वह जितनी बड़ी भेंट लाता है उतने ही बड़े अपराध की खबर लाता है।

दो व्यक्तियों के बीच जब नियम होता है तो प्रेम नहीं होता। नियम का अर्थ ही यह होता है कि तुम बाजार में चल रहो हो, बुद्धि से चल रहे हो। हृदय के कोई नियम हैं, कोई अनुशासन हैं? न कोई नियम है, न कोई अनुशासन है। फिर भी हृदय का एक अनुशासन है जो बड़ा अनूठा है; जो बिना लाए आता है, जो बिना आरोपित किए मौजूद हो जाता है। जो खिलता है क्षण-क्षण, जो अतीत से नहीं आता, जो वर्तमान में जन्मता है।

तुमने पत्नी को देखा घर जाकर और तुमने उसे हृदय से लगा लिया। यह तुम नियम से भी कर सकते हो। करना चाहिए। डेल कारनेगी जैसे लोग किताबें लिखते हैं, और वे किताबें लाखों में बिकती हैं। बाइबिल के बाद डेल कारनेगी की किताबें बिकी हैं दुनिया में। और सब कचरा हैं। और सब आदमी को झूठा और पाखंडी बनाती हैं। तो डेल कारनेगी कहता है, चाहे तुम्हें लगता हो चाहे न लगता हो, लेकिन पत्नी से दिन में कम से कम दो-चार बार कहना जरूरी है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तेरी जैसी सुंदर कोई स्त्री नहीं है। लगे चाहे न लगे, यह सवाल नहीं है, यह कहना जरूरी है। इसको तोते की तरह दोहरा देना जरूरी है। डेल कारनेगी कहता है, इससे संबंध सुमधुर बने रहते हैं। कैसी झूठी दुनिया है! जहां न लगता हो तब दोहराना, तो जिंदगी एक पाखंड हो जाती है।

जीवन एक कला है, पाखंड नहीं। और कला का यह अर्थ नहीं है कि तुम किसी स्कूल में उस कला को सीख सकते हो। जीकर ही तुम सीखते हो। जैसे कोई पानी में उतर कर तैरना सीखता है, ऐसे ही जी-जीकर तुम जीवन की कला सीखते हो। एक ही सूत्र ख्याल में रखना जरूरी है कि तुम होशपूर्वक जीओ और देखो कि जीवन कैसा है। और पाखंड से बचो। पाखंड धोखा ही बनाएगा। यह भी हो सकता है कि दो व्यक्तियों के संबंध पाखंड के कारण थोड़े से सुविधापूर्ण हों। लेकिन कभी भी आनंदपूर्ण न होंगे। सुविधा सस्ती चीज है। सुविधा को ले लेना और आनंद को गंवा देना मंहगा सौदा है।

लाओत्से कहता है, मिताचारी। मिताचारी का पहला आयाम हैः कम से कम आचरण के नियम हों।

"इन मैनेजिंग ह्यूमन अफेयर्स, देयर इ.ज नो बेटर रूल दैन टु बी स्पेयरिंग।"

जब नियम कम होते हैं तो तुम दूसरे व्यक्ति को मौका देते हो उसके स्वयं होने का। यह बड़े से बड़ा प्रेम है इस जगत में कि तुम दूसरे को वही होने दो जो वह होना चाहता है; तुम दूसरे को वही होने दो जो वह होने को पैदा हुआ है। तुम दूसरे की नियति में बाधा मत बनो।

प्रेम सहारा देता है; तुम जो भी होने को बने हो वही होने में सहयोगी होता है। प्रेम तुम्हें काट-छांट कर अपनी मर्जी के अनुसार नहीं बनाना चाहता। क्योंकि मैं कौन हूं जो तुम्हें काटूं-छांटूं? मैं कौन हूं जो तुम्हें तुम्हारे रास्ते से च्युत करूं और कहीं और ले जाऊं? मैं कौन हूं जो तुम्हारा नियंता बनूं? प्रेम नियंता नहीं है। प्रेम की कोई

मालकियत नहीं है। प्रेम तुम्हें स्वतंत्रता देता है वही होने की जो तुम होना चाहते हो। प्रेम तुम्हें खुला आकाश देता है। प्रेम तुम्हें छोटे से आंगन में बंद नहीं करता। और प्रेमी प्रसन्न होता है, तुम जितने मुक्त आकाश में विचरण करते हो। तुम जितने दूर निकल जाते हो बादलों के पार उड़ते हुए कि प्रेमी को दिखाई भी नहीं पड़ता कि तुम कहां चले गए हो, उतना ही प्रसन्न होता है। क्योंकि तुम जितने स्वतंत्र हो उतनी ही तुम्हारी गरिमा प्रकट होगी। तुम जितने स्वतंत्र हो उतनी ही तुम्हारी आत्मा सुदृढ़ होगी। तुम जितने स्वतंत्र हो उतने ही तुम्हारे जीवन में प्रेम का झरना बढ़ेगा और बहेगा।

परतंत्र व्यक्ति प्रेम नहीं दे सकता। इसलिए जब तक स्त्रियां परतंत्र हैं, मैं निरंतर कहूंगा, कहे जाऊंगा कि दुनिया में प्रेम नहीं हो सकता। स्त्रियां परतंत्र हैं तो प्रेम असंभव है। क्योंकि दो स्वतंत्र व्यक्ति ही प्रेम का आदान-प्रदान कर सकते हैं। जिस स्त्री को तुम दहेज देकर ले आए हो, जिस स्त्री को तुमने कभी देखा भी नहीं था और तुम्हारे मां-बाप ने तय कर दिया है और कोई पंडे-पुरोहितों ने जन्मकुंडली देख कर निर्णय लिया है; जिसका निर्णय तुम्हारे हृदय से नहीं आया; जिसका निर्णय उधार, बासा, दूसरों का है, ऐसी स्त्री को तुम घर ले आए हो। इसमें सुविधा तो बहुत है, इसमें झंझट कम है; इसमें घर-गृहस्थी ठीक से चलेगी। लेकिन एक बात ख्याल रखना, तुम्हारे जीवन में नृत्य का कृषण कभी भी न आ पाएगा; तुम्हारा प्रेम कभी समाधिस्थ न हो सकेगा। तुम इस प्रेम के मार्ग से परमात्मा को न जान सकोगे।

एक स्वतंत्र व्यक्ति ही प्रेम दे सकता है। गुलाम सेवा कर सकता है, प्रेम नहीं दे सकता। मालिक सहानुभूति दे सकता है, प्रेम नहीं दे सकता। पति अगर मालिक है तो ज्यादा से ज्यादा दया कर सकता है। दया प्रेम है? कोई स्त्री दया नहीं चाहती। तुम जरा थोड़े हैरान होओगे, जहां प्रेम का सवाल हो वहां दया बड़ी बेहूदी और कुरूप है। कौन दया चाहता है? क्योंकि दया का अर्थ ही होता है कि मैं कीड़ा-मकोड़ा हूं और तुम आकाश के देवदूत हो। दया का अर्थ ही यह होता है कि मैं दयनीय हूं; तुम देने वाले हो, दाता हो, मैं भिखारी हूं। प्रेमी कभी दया से तृप्त नहीं होता। लेकिन मालिक दया दे सकता है, प्रेम कैसे देगा? और गुलाम सेवा कर सकता है, लेकिन सेवा प्रेम नहीं है। सेवा कर्तव्य है; करना चाहिए इसलिए करते हैं। पत्नी पति के पैर दबा रही है, क्योंकि पति परमात्मा है, पैर दबाने चाहिए; ऐसा शास्त्रों में कहा है। वह पैर दबा रही है शास्त्रों के कारण, अपने कारण नहीं। और जो पैर शास्त्रों के कारण दबाए जा रहे हैं वे न दबाए जाएं तो बेहतर। क्योंकि इन पैरों से कोई लगाव नहीं है, इन पैरों में कोई आस्था नहीं है, कोई श्रद्धा नहीं है, कोई प्रेम नहीं है। यह एक गुलामी का संबंध है। इन पैरों के साथ जंजीरें बंधी हैं। ये आकाश में उड़ते दो मुक्त पक्षी नहीं हैं; एक कारागृह में बंद हैं।

यहूदियों में कहावत है कि शैतान एक बूढ़ा और मूर्ख सम्राट है। एक यहूदी फकीर हुआ झुसिया। वह बड़ा चिंतित था कि यह समझ में नहीं आता, यह कहावत समझ में नहीं आती। बूढ़ा समझ में आता है, क्योंकि आदमी से पुराना शैतान है; आदमियत नहीं थी तब भी शैतान था। अदम को भड़काया। तो बूढ़ा तो समझ में आता है। सम्राट भी समझ में आता है, क्योंकि सारी दुनिया का मालिक वही मालूम पड़ता है। लोग भला चर्चों में प्रार्थना करते हों परमात्मा की, लेकिन हृदय में प्रार्थना शैतान की करते हैं। शैतान की ही चीजों की तो मांग करते हैं परमात्मा से भी। तो असली मालिक तो वही है। तो सम्राट भी समझ में आता है। लेकिन मूर्ख, मूढ़ क्यों? यह समझ में नहीं आता।

फिर झुसिया ने कहा कि मुझे सजा हो गई, जेल में डाल दिया गया; वहां मेरी समझ में रहस्य आ गया। जेल में हथकड़ी बंधी हैं और झुसिया ने देखा कि शैतान पास में बैठा है। तो उसने शैतान से कहा, अब समझ गए कहावत का अर्थ। बूढ़े तो तुम हो, यह पहले से ही हम समझ गए थे, क्योंकि आदमी से पुराने हो। सम्राट भी तुम

हो, क्योंकि सारे आदमी तुम्हारी ही प्रार्थना कर रहे हैं और तुम जो दे सकते हो वही मांग रहे हैं, यह भी हम समझते थे। लेकिन मूर्ख हो, यह हम पहली दफा समझे। शैतान ने पूछा, क्या मतलब? तो उसने कहा, यहां कारागृह में, जहां मेरे हाथ में हथकड़ियां बंधी हैं, जहां मैं भला तो कर ही नहीं सकता, वहां तुम मेरे पास बैठे क्या कर रहे हो? यहां तो कुछ करने का उपाय ही नहीं है। कोई दूसरा विकल्प ही नहीं है तुम्हारे सिवाय; तुम यहां बैठे क्या कर रहे हो? यहां तो प्रार्थना भी नहीं कर सकता हूं। शुभ का तो कोई उपाय ही नहीं है। इसलिए समझ गया कि तुम महामूढ़ हो। कहावत ठीक है। तुम अकारण यहां बैठे हो, क्योंकि यहां तो तुम्हारे राज्य में बिल्कुल बंधा हूं। इसके बाहर जाने का कोई उपाय ही नहीं है। इसकी दीवारें बड़ी हैं; हाथ में जंजीरें पड़ी हैं।

जब मैं झुसिया की आत्मकथा पढ़ रहा था तब मुझे लगा कि जंजीरों में तुम्हारे पास तुम जिसे पाओगे वह परमात्मा नहीं हो सकता, वह शैतान ही होगा। क्योंकि परमात्मा की संभावना ही स्वतंत्रता में है। इसीलिए तो हम परमात्मा को मोक्ष कहते हैं।

और हमने ऐसे लोग भी पैदा किए इस मुल्क में जिन्होंने परमात्मा की भी फिक्र नहीं की, मोक्ष की ही फिक्र की। क्योंकि उन्होंने कहा, जहां मोक्ष मिल गया, परमात्मा मिल ही गया। महावीर परमात्मा की बात नहीं करते। बुद्ध परमात्मा की बात नहीं करते। वे कहते हैं, मुक्ति काफी है। जिस दिन तुम परम स्वतंत्र हो गए उस दिन परमात्मा मिल ही गया। उसकी बात क्या करनी है!

परम स्वतंत्रता में तुम्हारे जो साथ है वह परमात्मा हो जाता है। और परम परतंत्रता में तुम्हारे साथ जो रह जाता है वह केवल शैतान है। तुम जिसको गुलाम बनाते हो उसको शैतान बनाते हो। और तुम जिसके मालिक बनते हो, तुम मालिक बनने में भी शैतान बनते हो। क्योंकि गुलामी में सिर्फ शैतानी का ही फूल खिल सकता है। गुलामी की भूमि में शैतानी के अतिरिक्त और कोई पौधा नहीं पनप सकता।

मिताचार का अर्थ है, नियम को कम करते जाओ--यह पहला आयाम--और धीरे-धीरे हार्दिकता को बढ़ाते जाओ। एक ऐसी घड़ी आ जाए कि कोई नियम न रह जाए, सिर्फ हृदय ही नियम हो। और ध्यान रखना, एक को जो साध लेता है अनेक सध जाते हैं। और जो अनेक को साधने में लगता है वह एक से भी वंचित रह जाता है। वह एक है प्रेम। अनेक नियमों को साधने की जरूरत नहीं है। प्रेम मिताचार है।

दूसरा आयाम है मिताचार काः कि तुम्हारे जीवन में न्यून से राजी होने की क्षमता बढ़नी चाहिए। ज्यादा की मांग अंततः विक्षिप्तता लाती है। तुम्हें न्यून से राजी होना चाहिए। तुम जितने न्यून से राजी हो जाओगे उतने ही तुम विराट होने लगोगे। और यह न्यून से राजी होना सभी दिशाओं में लागू है। चाहे धन हो, चाहे पद हो, चाहे यश हो, चाहे त्याग हो, चाहे व्रत हो, न्यून से राजी हो जाना।

यहां थोड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर कोई आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है तो हम कहते हैं यह पागल है। हमारे सब साधु-संन्यासी कहते हैं, यह पागल है। और-और-और की मांग किए चला जा रहा है। रुको! यह दौड़ का कहां अंत होगा? हमें भी दिखता है। लेकिन त्यागी? वह भी और की मांग किए चला जाता है। वह हमें नहीं दिखाई पड़ता। पिछले साल उसने बीस दिन का उपवास किया था, इस साल वह पच्चीस दिन का करने वाला है। अगले साल वह तीस दिन का करेगा। यह भी और की मांग है। बीस लाख रुपये थे, पच्चीस लाख रुपये चाहिए। बीस दिन का उपवास कर सकते थे, अब पच्चीस दिन का कर सकते हैं, तीस की आकांक्षा है। फर्क क्या है? अनुपात वही है। बीस की जगह पच्चीस चाहिए, पच्चीस की जगह तीस चाहिए। धन के ही सिक्के लोग इकट्ठे नहीं करते, त्याग के भी सिक्के इकट्ठे करते हैं। और दौड़ वही की वही जारी रहती है।

तो मिताचार का दूसरा आयाम है कि तुम व्रत, त्याग, उसमें भी थोड़े से राजी हो जाना; आचरण में भी थोड़े से राजी हो जाना। आचरण में भी तुमको बहुत बड़ा महात्मा होना चाहिए, इस पागलपन में मत पड़ना। क्योंकि वह पागलपन तो एक ही जैसा है। क्योंकि उसका सूत्र एक ही हैः और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए। जब तक सारी दुनिया तुमको महात्मा न कहे तब तक तुम कैसे राजी हो सकते हो? वहां भी तुम थोड़े से राजी हो जाना।

असल में, थोड़े से राजी हो जाना ही महात्मापन है। इसलिए तुम महात्मापन की अगर तलाश करते रहे तो मुश्किल में पड़ोगे। तब दौड़ वही की वही रहेगी। दिशा बदल गई, लेकिन दिशा का स्वभाव नहीं बदला। गुण वही का वही है। तुम त्याग की भी ज्यादा आकांक्षा मत करना। जो सुखपूर्वक तुम कर सको, जो तुम सहजता से कर सको, बस उतने पर राजी हो जाना। असहजता की तरफ मत जाना।

एक साधु मेरे पास आए; कहने लगे, बहुत अड़चन है। एक ही अड़चन है, उसकी वजह से आया हूं। वह अड़चन यह है कि नींद बहुत सताती है। और शास्त्रों में कहा है कि जो नींद में ज्यादा लिप्त है वह तामसी है। तो मैंने पूछा कि कितना सोते हो? तो उन्होंने कहा कि रात तीन बजे उठता हूं और कोई ग्यारह बजे सोने जाता हूं। तो चार ही घंटे सोते हैं। और उन्होंने कहा, शास्त्रों में कहा है कि योगी को दो घंटा काफी है। मैंने कहा, शास्त्रों में तो यह भी कहा है कि जब सब सोते हैं तब भी योगी जागता है। तुम बड़ी मुश्किल में हो।

वे कहते हैं, दिन भर नींद आती है। आएगी ही। तीन बजे उठोगे तो इसमें कसूर किसका है? तो वे कहते हैं, प्रार्थना भी करता हूं तो झपकी आती है। आएगी ही। ध्यान लगता ही नहीं; क्योंकि ध्यान के पहले नींद लग जाती है। आएगी ही। बिल्कुल सीधा-साफ है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। शरीर की जरूरत है। अतिशय मत खींचो। पागल हो जाओगे। और अगर नींद जैसी सरल चीज के प्रति भी अपराध का भाव आ गया--नींद जैसी सरल चीज, इससे ज्यादा सरल और क्या होगा? कुछ भी तो नहीं करना है, सिर्फ सो जाना है। और नींद में कम से कम तुम महात्मा होते हो। कुछ उपद्रव नहीं करते, कोई की हत्या नहीं करते, कोई की चोरी नहीं, कोई जेब नहीं काटते। इतनी सरल सी चीज से ऐसा क्या विरोध बना रखा है?

वे थोड़े चौंके। उन्होंने कहा, क्या आपका मतलब है ज्यादा सोना शुरू करूं? तो वह तो तामस हो जाएगा।

क्या होगा कि नहीं होगा, यह मुझे मतलब नहीं है। जो जरूरत है! तो उसका अर्थ हुआ कि तामस की जरूरत है। क्योंकि शरीर तामस का हिस्सा है। जब तक तुम शरीर में हो तब तक शरीर थकता है; थकता है तो विश्राम चाहिए। और अगर तामस की जरूरत ही न होती तो परमात्मा तामस को बनाता ही क्यों? दो ही गुणों से काम चला लेता। तीन गुण की क्या जरूरत है? परमात्मा भी बिना तामस के नहीं बना सकता अस्तित्व को। तुम कोशिश में लगे हो परमात्मा से आगे जाने की। प्रतिस्पर्धा बड़ी है।

परमात्मा भी सत्व और रज से अस्तित्व को नहीं बना सकता। क्योंकि तमस की बड़ी खूबी है। उसका अपना रहस्य है। तमस के बिना कोई चीज थिर ही नहीं होती। रज में बड़ी गति है। लेकिन अकेली गति से थोड़े ही संसार बनता है! कोई चीज ठहराने वाली चाहिए। तुम दौड़ते ही रहोगे, दौड़ते ही रहोगे, तो मुश्किल में पड़ोगे। कहीं तो रुकना पड़ेगा। रुकोगे, वहीं तमस शुरू होगा। तमस तो एक सिद्धांत है। लेकिन लोगों ने तमस शब्द का बड़ा अपमानजनक उपयोग शुरू कर दिया। तमस का तो इतना ही मतलब हैः रुकने का सिद्धांत, विश्राम का सिद्धांत।

परमात्मा को भी विश्राम करना पड़ता है। इसलिए तो हम कहते हैं कि ब्रह्मा का दिन सृष्टि है। फिर ब्रह्मा की रात आती है तो प्रलय हो जाता है। सारा अस्तित्व सिकुड़ कर शांत हो जाता है, नींद में चला जाता है। तो

अगर हम पूरे अस्तित्व को बारह घंटा मान लें, दिन, तो फिर बारह घंटा, इतनी ही बड़ी रात है जब सब सो जाता है। खुद परमात्मा सो जाता है। तो तुम परमात्मा से किसलिए होड़ में लगे हो? तुम शांति से सो जाओ।

और तब तुमने क्या अड़चन कर ली! अब तुमसे ध्यान भी नहीं हो सकता। ध्यान नहीं हो सकता तो वे समझते क्या हैं? ये मन के गणित बड़े अजीब हैं। वे समझते हैं कि तमस की वजह से ध्यान नहीं लग रहा। और कम सोओ, तमस को काटो। जितना तमस काटोगे उतनी तमस की जरूरत बढ़ती जाएगी। क्योंकि कहीं न कहीं से जरूरत पूरी होगी। इसलिए तुम मंदिरों में जाओ, वहां लोगों को तुम झपकी लेते पाओगे।

मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद जाता है तो सोने के लिए ही। जो पुरोहित वहां व्याख्यान करता है, वह थोड़ा परेशान हुआ, क्योंकि वह सिर्फ सोता ही नहीं, वह घुर्राता भी है। और बुजुर्ग आदमी है, पंचायत का प्रमुख है, तो आगे ही बैठता है। और आगे ही घुर्राता है। उससे पुरोहित को बड़ी अड़चन होती है; बोलने में भी अड़चन होती है। और अभद्र भी मालूम पड़ता है, इससे वह कुछ कह भी नहीं सकता। उसके लड़के का लड़का, नाती भी साथ आता है। तो पुरोहित ने तरकीब निकाली। और पुरोहित तो तरकीब निकालने वाले लोग हैं, उनसे ज्यादा चालाक आदमी नहीं। क्योंकि उनका धंधा ही चालाकी का है। बड़ा सूक्ष्म धंधा है, उसमें चालाकी होगी ही। तो उसने बगल में, सभा के बाद, लड़के को बुलाया और कहा, देख, तुझे मैं चार आने दूंगा; जब भी तेरे दादा को नींद लग जाए तो तू जरा हिला कर जगा दिया कर। लड़के ने कहा, ठीक।

दो-तीन सप्ताह तो सब ठीक चला। चौथे सप्ताह लड़का बिल्कुल शांत बैठा रहा और बूढ़ा घुर्राने लगा। फिर पुरोहित ने उसे बुलाया कि क्यों भाई, तुझे मैं चार आने देता हूं! उसने कहा, वह आप देते हैं, लेकिन मेरे दादा मुझे आठ आने देने का कहे हैं; कि अगर बीच में बाधा नहीं देगा तो आठ आने दूंगा, वे कहते हैं। अब मैं क्या कर सकता हूं?

मंदिरों में, मस्जिदों में, चर्चों में लोग सो रहे हैं।

ध्यान रखना कि अगर नींद पूरी न होगी तो ध्यान तुम कर ही न सकोगे। नींद एक जरूरत है। नींद कोई पाप नहीं है। नींद कुछ बुराई नहीं है, कोई अपराध नहीं है। पूरी नींद कर लोगे, तभी तुम ध्यान कर पाओगे। क्योंकि ध्यान भी बड़ी विश्राम की अवस्था है। अगर तुम नींद ही में पूरे न गए तो जैसे ही तुम शांत बैठोगे वैसे ही नींद लग जाएगी। क्योंकि जरूरत शरीर की पहले पूरी होती है। इसे ध्यान रखनाः शरीर की जरूरत पहले है, आत्मा की जरूरत बाद में है। और शरीर की जरूरत जिसने पूरी नहीं की उसकी आत्मा की जरूरत कभी भी वह पूरी नहीं कर पाएगा। इसलिए तो हम कहते हैं, भूखे भजन न होंहि गुपाला। भूख लगी हो तो भजन कैसे करोगे? भूख ही भजन में गूंजती रहेगी। पेट भरा हो तो ही भजन हो सकता है।

इसका यह मतलब भी नहीं है कि पेट बहुत भरा हो। बहुत भरा हो तो भी भजन नहीं हो सकता। एक सम्यक अवस्था चाहिए शरीर की। न तो बहुत भोजन, न बहुत कम। न बहुत ज्यादा नींद, न बहुत कम। न बहुत ज्यादा श्रम, न बहुत कम। और हर व्यक्ति को अपना सूत्र खुद ही खोजना पड़ता है। क्योंकि हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अलग है। इसलिए दुनिया में कोई तुम्हारे लिए नियम नहीं बना सकता। लेकिन अक्सर यह भ्रांति होती है। यह भी तुम समझ लेना कि मिताचारी होने का यह भी अर्थ है कि तुम दूसरे के लिए नियम बनाने की कोशिश मत करना। क्योंकि जो तुम्हारे लिए नियम है वह दूसरे के लिए घातक फंदा हो सकता है।

शास्त्र अक्सर, हिंदू शास्त्र, बूढ़ों ने लिखे हैं। बूढ़ों की नींद कम हो जाती है। शरीर की जरूरत खतम हो जाती है। तो बूढ़े अक्सर, चाहे वे ज्ञानी न भी हों, तो भी तीन बजे के करीब जग जाते हैं। पड़े रहें, बात अलग। जब बूढ़े शास्त्र बनाएंगे तो वे लिखेंगे कि तीन बजे उठना नियम है। लेकिन यह शास्त्र बच्चों के काम में नहीं लाया

जा सकता। क्योंकि मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है। उसकी जरूरत उतनी है। जब शरीर में इतना काम हो रहा है, सृजन हो रहा है, हर चीज बन रही है, तो बच्चे के जागने से बाधा पड़ जाएगी। वह सोया रहता है; शरीर में सृजन का काम चल रहा है। बच्चे को बीच में आने की जरूरत नहीं है। वह चौबीस घंटे सोता है मां के पेट में। फिर पैदा होने के बाद अठारह घंटे सोता है। फिर सोलह घंटे सोता है। फिर धीरे-धीरे जरूरत कम होती जाती है। जैसे-जैसे बच्चे का शरीर पूरा हो जाता है, सृजन का काम बंद हो जाता है, आठ घंटे के करीब, सात-आठ घंटे के करीब ठहर जाती है बात। फिर पैंतीस साल के बाद शरीर में दूसरी क्रिया शुरू होती है, टूटने की। जब टूटने की क्रिया शुरू होती है तो नींद कम होने लगती है। क्योंकि जब नींद कम होगी तभी शरीर टूट सकता है, नहीं तो टूट नहीं सकता। जैसे कि बच्चे के शरीर के बनने में नींद की जरूरत है बूढ़े के शरीर के टूटने में नींद की बिल्कुल जरूरत नहीं है। नहीं तो बूढ़ा मरेगा ही नहीं। तो नींद कम होने लगेगी। नींद के कम होने का मतलब यह है कि शरीर में अब बनने का काम बंद हो गया।

हिंदुओं के शास्त्र बूढ़ों ने लिखे। तो बूढ़े अपने हिसाब से लिखते हैं। अगर दो माह का बच्चा शास्त्र लिख सके तो वह लिखेगा कि बीस घंटे सोना नियम है। जवान अगर लिखेगा तो सात-आठ घंटे सोना नियम है। बूढ़ा अगर लिखेगा तो तीन-चार घंटे काफी हैं।

फिर एक-एक व्यक्ति में भेद है। तुम भोजन अलग-अलग ढंग का करते हो। अब जो मांसाहारी है वह थोड़ा ज्यादा सोएगा। जो शाकाहारी है वह थोड़ा कम सोएगा। क्योंकि मांस को पचाने के लिए शरीर को ज्यादा श्रम करना पड़ता है। शाक-सब्जी को पचाने के लिए उस तरह का श्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए शाकाहारी कम सोएगा।

जो मजदूर है वह ज्यादा सोएगा। क्योंकि दिन में इतना श्रम किया है कि शरीर के बहुत से सेल टूट गए; उनको पूरा करने के लिए उसे गहरी नींद जरूरी है। जो करोड़पति है उसको सोने के लिए ट्रैंक्वेलाइजर लेना पड़ेगा। क्योंकि उसने कोई श्रम किया नहीं, कुछ टूटा नहीं। जब कुछ टूटा नहीं तो बनने का सवाल नहीं है। इसलिए नींद की कोई जरूरत नहीं है उसकी। तो रात करवटें बदलेगा। करवटें बदलना, असल में, शरीर की तरकीब है नींद में श्रम करने की। करवट बदलने का इतना ही मतलब है कि कुछ भी नहीं किया तो कम से कम करवट तो बदलो, तो थोड़ा श्रम हो जाए। थोड़ा श्रम हो जाए तो थोड़ी नींद लग जाए। अगर तुमने बौद्धिक श्रम किया है दिन में तो नींद कठिन हो जाएगी; अगर शारीरिक श्रम किया है तो नींद बड़ी सुगम होगी।

फिर हर आदमी पर अपनी-अपनी... । इसलिए किसी शास्त्र के नियम में मत पड़ना। क्योंकि जिसने नियम बनाया था वह तुम नहीं हो। जिसने नियम बनाया था वह अपने लिए होगा; उसके लिए ठीक रहा होगा। दुनिया में हजारों अड़चनें कम हो जाएं अगर प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की सहजता को खोज कर नियम बनाने लगे।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पुरुष अगर पांच बजे उठ जाएं तो कोई हर्जा नहीं है। उनकी नींद पांच बजे पूरी हो जाती है। लेकिन स्त्रियों की नींद कोई साढ़े छह बजे पूरी होती है, या सात बजे पूरी होती है। लेकिन नियम यह है कि पत्नी को पहले उठना चाहिए, नहीं तो पति नाराज होगा।

वैज्ञानिकों ने बहुत खोज की है नींद पर। चौबीस घंटे में दो घंटे शरीर का तापमान नीचे गिरता है। वे ही दो घंटे गहरी नींद के घंटे हैं। पुरुषों का तापमान गिरता है कोई तीन और पांच के बीच में; स्त्रियों का तापमान गिरता है कोई छह और आठ के बीच में। वे गहरे से गहरे नींद के क्षण हैं। अगर वे दो घंटे तुमने सो लिए तो तुम ताजा अनुभव करोगे। अगर उन दो घंटों में व्याघात पड़ गया तो तुम दिन भर परेशान अनुभव करोगे।

तो अगर हम वैज्ञानिक की सलाह मानें तो सुबह की चाय पति को बनानी चाहिए, पत्नी को बिल्कुल नहीं। उसे सोए रहना चाहिए बिस्तर पर; पति को लाना चाहिए चाय बना कर; अगर वैज्ञानिक की हम बात सुनें। क्योंकि स्त्रियों के शरीर का ढंग और है, पुरुष के शरीर का ढंग और है। उनके हारमोन अलग हैं। उनके शरीर की भीतरी बनावट और है। और उसके अनुसार सारी जीवन-व्यवस्था होनी चाहिए।

मिताचार का अर्थ है कि तुम थोड़े से नियम बनाना, और नियम भी उधार मत लेना। और कठिन नहीं है, अगर तुम थोड़े से प्रयोग करो। कितना कठिन है? अगर तुम एक तीन सप्ताह प्रयोग करके देख लो, सब तरह से उठ कर--तीन बजे उठ कर देख लो दो दिन, चार बजे उठ कर देख लो दो दिन, पांच बजे उठ कर देख लो, छह बजे, सात बजे, आठ बजे--एक तीन सप्ताह प्रयोग करके देख लो। जो घड़ी तुम्हें सबसे ज्यादा जम जाए, जिसमें तुम रम जाओ, जिसमें चौबीस घंटे तुम ताजा मालूम पड़ो, वही तुम्हारे लिए नियम है।

कुछ लोग हैं जो रात में बारह बजे सोएं तो ही सुबह उनको ताजगी रहेगी। कुछ हैं जो नौ बजे सोएं तो ही सुबह ताजगी रहेगी। और कोई किसी के लिए नियम नहीं बना सकता। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा और अलग-अलग है। अपना नियम खोजना। और अपने नियम को ठीक से, समझ के अनुसार चलने पर तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में बड़ी सहजता और स्वाभाविकता आ जाती है। अड़चन कम हो जाती है। दूसरे का नियम हमेशा अड़चन देगा।

जैसे विनोबा के आश्रम में, विनोबा तीन बजे उठते हैं, तो सबको तीन बजे उठना चाहिए। अब यह अड़चन की बात है। विनोबा बूढ़े आदमी हैं। उनकी जरूरत होगी तो वे नौ बजे सो जाते हैं। लेकिन नौ बजे दूसरों को नींद ही नहीं आती, वे पड़े हैं। लेकिन नौ बजे नियम है आश्रम का तो नौ बजे सो जाना है, तीन बजे उठ आना है। फिर दिन भर बेचैनी है; फिर बेचैनी से इरिटेशन है; फिर बेचैनी से हर छोटी-छोटी बात में क्रोध है।

इसलिए तुम साधु-संतों को बड़ा क्रोधी पाओगे। उनके भीतर जीवन-ऊर्जा सम्यक नहीं है। इसलिए हर छोटी चीज परेशान करेगी, हर छोटी चीज पर नाराजगी आएगी। नाराजगी का कारण भीतर है कि तुम बेचैन हो। न ठीक भोजन कर रहे हो, न ठीक सो रहे हो; न ठीक श्रम कर रहे हो। तुम्हारी अड़चन स्वाभाविक है।

अपना नियम खोज लेना। आने देना अनुशासन को भीतर से। इसलिए मैं तुम्हें सिर्फ विवेक सिखाता हूं कि तुम होशपूर्वक अपने को समझने की कोशिश करो। दुनिया में कोई तुम्हारा मालिक नहीं है। और किसी ने तुम्हारे लिए आखिरी नियम नहीं लिख दिए हैं। तुम्हारा धर्मशास्त्र तुम्हारे शरीर और तुम्हारे मन में छिपा है। तुम उसे पढ़ना सीखो। और वहीं से अगर तुमने आदेश लिया तो तुम पाओगे कि तुम शांत होते चले जाते हो। जितने तुम शांत होते हो उतने आनंद की क्षमता बढ़ती है। और तब तुम यह भी पाओगे कि बहुत नियम की जरूरत नहीं है। बड़े छोटे से नियम, जिनको नियम कहना भी ठीक नहीं है, तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर देंगे।

"मानवीय कारबार की व्यवस्था में, मिताचारी होने से बढ़िया दूसरा नियम नहीं है।"

अगर लाओत्से से तुम पूछो कि तुम्हारे जीवन का नियम क्या है? तो लाओत्से कहता है, जब मुझे नींद आती है मैं सो जाता हूं; जब मुझे भूख लगती है तब मैं भोजन कर लेता हूं; जब नींद खुल जाती है तब जाग जाता हूं। बस ऐसे नियम हैं, और कोई नियम नहीं है। और लाओत्से परम अवस्था को उपलब्ध हुआ।

फिर नियम भी सख्त नहीं हो सकते, लोचपूर्ण होंगे। क्योंकि तुम्हारी जरूरत रोज बदलेगी। जो नियम तुमने जवानी में बनाया, वह बुढ़ापे में काम न आएगा। जो आज बनाया, कल काम न आएगा। इसलिए तुम नियम को भी सख्त मत बना लेना। अपना भी बनाया हुआ नियम सख्त नहीं होना चाहिए। अगर सख्त हुआ तो तुम जाल में पड़ जाओगे। क्योंकि तुम्हारी शरीर की जरूरत रोज बदलेगी। आवश्यकता के अनुसार तुम जागते हुए

बदलते जाना। नियम लोचपूर्ण चाहिए। तुम नियम के लिए नहीं हो, नियम तुम्हारे लिए हैं। नियम तुम्हें व्यवस्था देने के लिए हैं। तुम यहां इसलिए नहीं हो कि कुछ नियमों को तुम अपने में व्यवस्था दो।

"मिताचार पूर्व-निवारण करना है।"

और जिस व्यक्ति के जीवन में लोचपूर्ण, कम से कम, अपरिहार्य नियम होंगे, अपने ही खोजे हुए, वह व्यक्ति पूर्व-निवारण कर लेता है। उसकी हजारों मुसीबतें आती ही नहीं। पहले तो मुसीबत को बुलाना और फिर निवारण करना नासमझी है। मुसीबत तो पहले ही रोकी जा सकती है। मुसीबत का तो पूर्व-निवारण हो सकता है। लेकिन बड़ा होश चाहिए तब। बड़ी सजगता चाहिए।

तुमने भी कई बार अनुभव किया है कि क्रोध तुम करते हो, पीछे पछताते हो, दुखी होते हो, निर्णय लेते हो--नहीं करूंगा क्रोध। लेकिन फिर क्रोध हो जाता है। क्या कारण होगा? तुम पूर्व-निवारण नहीं कर पा रहे हो। बीमारी जब आ जाती है तब तुम उसे हटाते हो। तब तक तो बीमारी ने जड़ें जमा लीं। क्रोध कोई अकेली घटना नहीं है, मल्टी कॉजल है; उसके बहुत कारण हैं।

एक आदमी ने तुम्हें गाली दी। तुम यह मत समझना कि बस यही कारण है क्रोध का। तुम अगर ठीक से न सोए तो वह भी कारण बनेगा क्रोध का। तुम्हें अगर ठीक से भोजन न मिला तो वह भी कारण बनेगा क्रोध का। तुम्हारे जीवन में अगर प्रेम की धारा न बही तो तुम हर घड़ी राजी हो क्रोधित होने के लिए। यह आदमी का गाली देना तो सिर्फ बहाना है। ये सब चीजें तुम्हारे भीतर तैयार हैं। बारूद तैयार है, यह आदमी तो सिर्फ एक अधजली सिगरेट फेंक देता है; विस्फोट हो जाता है। तुम समझते हो, यह आदमी बम फेंक दिया। इस आदमी ने कुछ भी नहीं किया है। इस आदमी का कोई संबंध ही नहीं है। तुम अगर भीतर शांत हो तो यह सिगरेट उस शांति के जल में जाकर बुझ जाती, पता भी न चलता। तुम भीतर अशांत थे, बारूद मौजूद थी। सूखी बारूद लिए घूम रहे हो, और तुम सोचते हो कोई दूसरा तुम्हें क्रोधित करवा रहा है।

फिर तुम कसमें खाते हो, व्रत-नियम लेते हो कि मैं क्रोध न करूंगा। तुम और दूसरा पागलपन कर रहे हो। क्योंकि जब बारूद भीतर मौजूद है, तुम कैसे क्रोध न करोगे? वैसे ही झंझट थी, अब दुगुनी हो गई। अब तुम इस बारूद को दबाए फिर रहे हो। अब यह विस्फोट भयंकर होगा। जिस दिन फूटेगा उस दिन तुम बचोगे ही नहीं। तुम किसी की हत्या करोगे या आत्महत्या करोगे।

पुरुष ज्यादा आत्महत्याएं करते हैं। इसे तुम्हें जान कर हैरानी होगी। स्त्रियां कोशिश करती हैं ज्यादा, लेकिन सफल नहीं होतीं। स्त्रियों का काम-धंधा ही ऐसा है। सौ स्त्रियां आत्महत्या की कोशिश करती हैं तो मुश्किल से बीस सफल होती हैं। उनकी कोशिश भी अधूरी-अधूरी है। उस कोशिश के कारण दूसरे हैं। वे ठीक मरना नहीं चाहतीं। अगर सौ पुरुष आत्महत्या की कोशिश करते हैं तो पचास सफल होते हैं। स्त्रियां कोशिश ज्यादा करती हैं, इसलिए तुम्हें यह भ्रांति होगी कि स्त्रियां बहुत आत्महत्या करती हैं। नहीं, आत्महत्या पुरुष ज्यादा करते हैं--दो गुनी ज्यादा। स्त्रियों से दुगुनी आत्महत्या करते हैं। और कारण क्या है?

कारण यह है कि स्त्रियां अपने क्रोध को निकाल लेती हैं। बर्तन तोड़ देंगी, प्लेट पटक देंगी, बच्चे की पिटाई कर देंगी। निकाल लेती हैं। रो लेंगी, चीख-चिल्ला लेंगी, कपड़े फाड़ लेंगी, सिर के बाल खींच लेंगी। आत्महत्या के लायक क्रोध इकट्ठा नहीं हो पाता। और पुरुष अकड़ा हुआ रहता है। रो कैसे सकता है! मर्द कहीं रोता है?

अब मर्द नहीं रोता तो भगवान ने मर्द की आंखों में आंसू की ग्रंथि क्यों बनाई? तो भगवान ने कुछ गलती की। उतनी ही बड़ी ग्रंथि आदमी की आंखों में है जितनी स्त्री की। उसमें उतने ही आंसू भरे हैं। वे निकलने चाहिए।

लेकिन मर्द रो नहीं सकता। छोटे-छोटे बच्चों को हम सिखलाते हैं कि क्या रो रहा है! लड़कियों जैसा व्यवहार कर रहा है!

आंख में लड़के और लड़की के कोई फर्क नहीं है। और रोना एक निकास है। और जो रो नहीं सकता वह ठीक से हंस भी नहीं सकता। क्योंकि हंसी में भी आंसू निकल आते हैं। रोना और हंसी दोनों तरफ से एक ही दिशा में यात्रा करते हैं।

तो पुरुष न तो हंसता है ठीक से, न रोता है ठीक से, न क्रोध करता है। अकड़ में बना रहता है। तो इतना इकट्ठा हो जाता है मवाद कि जब फूटता है तो या तो हत्या करता है या आत्महत्या करता है। अगर दुर्जन हुआ तो हत्या करता है, सज्जन हुआ तो आत्महत्या करता है। बस इतना ही फर्क है। दोनों ही हत्या करते हैं। दुर्जन दूसरे को मिटाता है, सज्जन अपने को मिटाता है। लेकिन मिटाने में दोनों एक जैसे हैं।

जो व्यक्ति क्रोध से पीड़ित हो उसको पूर्व-निवारण करना चाहिए। और अपनी पूरी जीवन-स्थिति को समझना चाहिए कि यह मैं बारूद कैसे इकट्ठी कर रहा हूं! और बारूद को सूखा रखा हुआ हूं। मैं खतरा लेकर घूम रहा हूं। जैसे पेट्रोल की टंकी पर लिखा रहता हैः एनफ्लेमेबल। ऐसे ही सबकी खोपड़ी पर लिखा रहना चाहिएः एनफ्लेमेबल। जरा कोई ने माचिस जलाई कि झंझट खड़ी हो जाएगी।

लाओत्से कहता है, जिसने जीवन को समझने की कोशिश की और जीवन के छोटे-छोटे नियम, जो सहजता से आने चाहिए, शास्त्रों से नहीं, वह पूर्व-निवारण कर लेता है।

"मिताचार पूर्व-निवारण करना है। टु बी स्पेयरिंग इ.ज टु फोरस्टाल।"

पहले से ही तुम काट देते हो वे जड़ें। ठीक से सोओ; सम्यक निद्रा जरूरी है। ठीक से भोजन करो; सम्यक भोजन जरूरी है। होशपूर्वक उठो, बैठो, चलो; होश जरूरी है। स्वाभाविक बनो; अस्वाभाविक की आकांक्षा मत करो। जरूरतों को पूरा करो; वासनाओं की उपेक्षा करो। व्यर्थ की दौड़ में मत लगो; सार्थक को ही बस पा लेना काफी है। शक्ति को बचाओ; अकारण खर्च मत करो। जितनी शक्ति तुम्हारे पास संगृहीत होगी, जितने तुम शक्तिशाली होओगे, उतना ही कम क्रोध होगा। जितने तुम शक्तिशाली होओगे उतना ही दूसरे लोग तुम्हें कम उत्तेजित कर सकेंगे। तुम्हारी ऊर्जा ही तुम्हारा कवच है।

"पूर्व-निवारण करना तैयार रहने और सुदृढ़ होने जैसा है; तैयार रहना और सुदृढ़ होना सदाजयी होना है।"

और जो आदमी पूर्व-निवारण कर लेता है अपनी बीमारियों का, जो अपने भीतर एक शांति का स्थल बना लेता है, एक छोटा सा मंदिर बना लेता है जहां सब शांत और मौन है, जहां बड़ी गहन तृप्ति है, परितोष है, उसे तुम उद्वेलित नहीं कर सकते, उसे तुम पराजित नहीं कर सकते। तुम उसे हराओगे कैसे? क्योंकि वह जीत की आकांक्षा ही नहीं करता। तुम उसे मिटाओगे कैसे? क्योंकि उसने खुद ही अपने को मिटा दिया है। उसके जीवन में कोई असफलता नहीं हो सकती, क्योंकि सफलता की कामना और वासना को उसने उपेक्षा कर दी है। सफलता को खाओगे या पीओगे या पहनोगे?

जीवन तो बहुत छोटी-छोटी चीजों से भर जाता है। रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, प्रेम चाहिए, एक छप्पर चाहिए। जीवन किसी बहुत बड़ी-बड़ी आकांक्षा के कारण सुखी नहीं होता। नहीं तो पक्षी कभी सुखी नहीं हो सकते थे, पौधे कभी फूल नहीं दे सकते थे। क्योंकि पौधे राष्ट्रपति कैसे बनेंगे? पक्षी प्रधान मंत्री कैसे बनेंगे?

सारा अस्तित्व प्रसन्न है, क्योंकि थोड़े से राजी है, जरूरत से राजी है। सिर्फ आदमी बेचैन है। अकेला आदमी पागल है। अकेला आदमी भटक गया है। जरूरत की तो फिक्र ही नहीं है, गैर-जरूरत की फिक्र है। पेट भरे न भरे, गले में सोने का हार चाहिए। नींद मिले या न मिले, सिर पर ताज चाहिए। प्यास बुझे न बुझे, वासना! व्यर्थ की

दौड़ का नाम वासना है कि जिसको पा भी लोगे तो कुछ पाया नहीं। न पाए तो परेशान हुए, पा लिए तो पाया कि हाथ खाली हैं। वासना दुष्पूर है। उसको कभी कोई नहीं भर पाता। दौड़ना बहुत होता है उसमें, पहुंचना कभी भी नहीं होता।

तो लाओत्से कहता है, जिसने पूर्व-निवारण कर लिया, जो अपनी छोटी-छोटी जरूरतों में राजी हो गया...।

और तुम सोच भी नहीं सकते, क्योंकि इतनी वासनाएं मन को पकड़े हैं, अन्यथा तुम इतने अनुगृहीत हो जाओगे परमात्मा के! श्वास भी तुम्हारी इतनी शांत और आनंदपूर्ण हो जाएगी। उठने-बैठने में एक नृत्य भीतर चलने लगेगा। बोलने में, चुप रहने में एक संगीत बजने लगेगा।

जो पक्षियों को उपलब्ध है वह तुम्हें उपलब्ध नहीं हो पाता, यह हैरानी की बात है। तुम पक्षियों से श्रेष्ठ हो, तुम पौधों से बहुत आगे जा चुके हो, तुम शिखर हो इस पूरे अस्तित्व के। और तुमसे ज्यादा दीन कोई नहीं दिखाई पड़ता। तुम्हारे जीवन में कभी फूल लगते ही नहीं; संगीत कभी लगता ही नहीं; कभी तुम नाचने की घड़ी में आ ही नहीं पाते। तुम कभी मदमस्त नहीं हो पाते, जब कि पूरी मधुशाला खुली है अस्तित्व की, कि तुम पी लो पूरी मधुशाला।

कबीर कहते हैं, सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।

कबीर कहते हैं कि मैं तो अब बिना तौले सारी मधुशाला ही को पी गया। तौलना भी क्या? अनंत उपलब्ध है। तौल कर भी क्या करोगे? बिना तौले पी जाओ।

लेकिन नहीं पी पाओगे। क्योंकि तुम जरूरत को तो काट रहे हो और गैर-जरूरत को सिर पर रखे ढो रहे हो। हम अपनी जरूरतों को महत्वाकांक्षा के लिए काटते चले जाते हैं। हम कहते हैं, कल महत्वाकांक्षा पूरी हो जाएगी तब सब ठीक हो जाएगा। तुमने एक दुकानदार को भोजन करते देखा है? भागा-भागा भोजन करता है। उसकी हालत देखो तुम, भागा-भागा किसी तरह भोजन कर रहा है। दुकान पर पहुंच ही चुका है असली में; शरीर ही यहां है, आत्मा तो दुकान पर है। स्वाद का रहस्य इसे पता ही न चल पाएगा।

हिंदुओं ने अन्न को ब्रह्म कहा है। जिन्होंने अन्न को ब्रह्म कहा है उन्होंने जरूर स्वाद लिया होगा। उन्होंने तुम जैसे ही भोजन न किया होगा। वे बड़े होशियार लोग रहे होंगे, बड़े कुशल रहे होंगे। कोई गहरी कला उन्हें आती थी कि रोटी में उन्होंने ब्रह्म को देख लिया। दुनिया में किसी ने भी नहीं कहा है अन्नं ब्रह्म। कैसे लोग थे! रोटी में ब्रह्म! जरूर उन्होंने रोटी कुछ और ढंग से खाई होगी। उन्होंने भोजन को ध्यान बना लिया होगा। वे भागे-भागे नहीं थे। वे जब भोजन कर रहे थे तो भोजन ही कर रहे थे। उनकी पूरी प्राण-ऊर्जा भोजन में लीन थी। और तब जरूर रूखी रोटी में भी वह रस है जिसको ब्रह्म कहा है। तुम्हें भोजन करना आना चाहिए।

इसलिए मैं कहता हूं कि जब अन्न में ब्रह्म है तो निद्रा में भी है। उसे लेना आना चाहिए। तुम अगर ठीक से सोना जान जाओ, जहां सपने खो जाएं। क्योंकि सपने का अर्थ है, तुम्हें सोना नहीं आता। तुम आधे-आधे सो रहे हो। सपने का अर्थ है, कुछ जागे हो, कुछ सोए हो। इसीलिए तो बेचैनी है। जब सपना रहित नींद हो जाती है तब नींद में भी ब्रह्म है। तब तुम पाओगे कि श्वास-श्वास में उसी का वास है। तब तुम पाओगे, वही श्वास से भीतर आता, वही श्वास से बाहर जाता। तब हर तरफ तुम्हें उसकी ही झलक मिलेगी।

घट-घट मेरा साईयां, सब सांसों की सांस में।

कोई परमात्मा दूर नहीं है; तुम जरा पास आ जाओ अपने। तुम बहुत दूर भागे हुए फिर रहे हो। इसको लाओत्से कहता है कि जैसे ही कोई मिताचार को उपलब्ध होता, पूर्व-निवारण करता, तैयार हो जाता, सुदृढ़ हो जाता, सदाजयी हो जाता। उसकी विजय शाश्वत है। फिर उसे कोई हरा नहीं सकता। उसने ब्रह्म को पा लिया, अब उसकी कोई हार संभव नहीं है।

हार तो वहां होती है--तुमने कोई ऐसी चीज पा ली जो संसार की है, तो तुम हारोगे; क्योंकि वह तुमसे छीनी जाएगी। आज नहीं कल तुम उसे खोओगे। कुछ ऐसी चीज खोज लो जिसे चोर चुरा न पाएं, जिसे आग जलाए नहीं, जिसे मृत्यु छीन न सके। फिर तुम सदाजयी हो।

"सदाजयी होना अशेष क्षमता प्राप्त करना है।"

और जो सदाजयी हो जाता है, ऐसे सदाजयियों को हमने जिन कहा है, महावीर कहा है। जीत लिया जिन्होंने। क्या जीत लिया उन्होंने? स्वयं को जीत लिया।

दो तरह की जय है। एक तो दूसरों को जीतना। उसे मैं राजनीति कहता हूं। लाओत्से भी राजनीति कहता है। और एक स्वयं को जीतना। उसे धर्म कहते हैं। जब तक तुम दूसरों को जीतने में लगे हो तब तक तुम विक्षिप्त ही रहोगे। जिस दिन तुम अपने को जीतने में लगोगे उसी दिन तुम यात्रा पर, ठीक यात्रा शुरू हुई, यात्रा-पथ पर आए।

जो व्यक्ति अपने को जीत लेता है वह अशेष क्षमता को प्राप्त होता है। यह समझ लेने जैसा है। उसकी क्षमता कभी भी चुकती नहीं। उसके जीवन की क्षमता अशेष है। कितना ही जीए, क्षमता कायम रहती है। जैसा उपनिषद कहते हैं, निकाल लो पूर्ण को पूर्ण से, तो भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। ऐसी उसकी क्षमता होती है। वह कितना ही जीए, चुकता नहीं। जितना जीता है उतना ही पाता है कि जीने के लिए और तत्पर हो गया।

तुम चाहते तो हो कि तुम्हें और जीवन मिले, लेकिन तुमने कभी ठीक से सोचा नहीं कि तुम और जीवन लेकर करोगे भी क्या? तुम वैसे ही थक गए हो! कभी विचार करके सोचना कि और जीवन लेकर करोगे क्या? एक ही जीवन काफी थका देता है। क्षमता कुछ बचती ही नहीं। खोखले हो जाते हो दौड़-दौड़ कर वासना के पीछे।

जैसे ही व्यक्ति दौड़ बंद कर देता है, अपने में ठहरता है, ऊर्जा नष्ट नहीं होती, सब छिद्र बंद हो जाते हैं, सब द्वार बंद हो जाते हैं, ऊर्जा की एक विराट लपट उसके भीतर उठती है। उसके पास अनंत ऊर्जा होती है। महावीर ने कहा है, वह अनंत वीर्य हो जाता है। उसकी क्षमता अशेष है। वह जीता जाता है, बांटता जाता है, देता जाता है, कभी चुकता नहीं। वह जितना देता है उतना ही और पाता है। वह जितना उलीचता है उतना ही पाता है कि और भर गया है।

और जब तक तुम ऐसी अशेष क्षमता के धनी न हो जाओ तब तक तुम दीन ही रहोगे। जब तुम ऐसी अशेष क्षमता के धनी हो जाओगे तभी तुम सम्राट हुए। इसीलिए हमने फकीरों को सम्राट कहा है। हमने ऐसे सम्राट जाने जो फकीर थे, भिखारी थे--बुद्ध, महावीर। और हमारे सम्राट निश्चित ही फकीर हैं, भिखमंगे हैं।

सम्राट मांगते चले जाते हैं, मांग का कोई अंत नहीं। फकीर देते चले जाते हैं, देने का कोई अंत नहीं। सम्राट की आत्मा भिखारी की आत्मा है। फकीर की आत्मा सम्राट की आत्मा है। चूंकि जब तुम मांगते हो तब तुम भिखमंगे हो। जब तुम देते हो तभी पहली बार तुम्हारे सुर परमात्मा से बंधे। तुम्हारा झरना उसके अनंत झरने से जुड़ गया। अब कोई चुका न सकेगा।

लाओत्से कहता है, "जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने के योग्य है।"

तो जो लोग शासन करते हैं देशों में उनमें से तो कोई भी योग्य नहीं हो सकता। लाओत्से कहता है कि सिर्फ संत ही शासन करने के योग्य है। वही व्यक्ति शासन करने के योग्य है जो शासन करना ही नहीं चाहता। जिसकी शासन करने की कोई आकांक्षा नहीं है वही योग्य है। जो शासन करना चाहता है उसकी करने की चाह में ही अयोग्यता छिपी है।

मनसविद भी राजी हैं लाओत्से से। वे कहते हैं, जो व्यक्ति शासन करना चाहता है वह हीनता की ग्रंथि से पीड़ित है, उसके भीतर हीन भाव है। पद पर खड़े होकर वह दुनिया को बताना चाहता है कि मैं हीन नहीं हूं, देखो कैसे सिंहासन पर खड़ा हूं। इसलिए लंगड़े-लूले, अंधे-काने सब दिल्ली की तरफ जाते हैं। जाएंगे ही। क्योंकि उनके पास और कोई उपाय नहीं है घोषणा करने का। तुम राजनीतिक को कभी साबित न पाओगे। कहीं न कहीं कानापन, कहीं न कहीं तिरछापन, कहीं न कहीं कोई कमी, कोई भीतरी अभाव होगा, कोई हीनता की ग्रंथि होगी। उस हीनता की ग्रंथि को दिखाने के लिए कि वह नहीं है वह बड़े आयोजन रचता है। लेकिन कितना ही आयोजन करो हीनता की ग्रंथि मिटती नहीं। हीनता की ग्रंथि का मिटने का यह उपाय नहीं है। हीनता की ग्रंथि तो तभी मिटती है जब तुम अशेष क्षमता के धनी हो जाते हो।

"जिसमें अशेष क्षमता है, वही किसी देश का शासन करने के योग्य है।"

और ऐसा जब कोई शासक उपलब्ध हो जाए किसी देश को तो उस देश की जो मातृत्व की क्षमता है, उस देश की जो प्रेम की क्षमता है, प्रेम जो कि जीवन का गहरे से गहरा सिद्धांत है, आधार है, उसमें फूल आने शुरू होते हैं। वह विकसित होता है, वह सुरक्षित होता है।

"और शासक देश की माता (सिद्धांत) दीर्घजीवी हो सकती है।"

तभी वस्तुतः एक परिवार बनता है समाज का प्रेम के आधार पर। अन्यथा समाज एक भीड़ है। और उस भीड़ को किसी तरह व्यवस्थित रखने की ही कोशिश में शासन व्यस्त रहता है--किसी तरह व्यवस्थित करने की कोशिश में--कि भीड़ कोई उपद्रव न करे। बस भीड़ को किसी तरह शांत रखा जा सके, इतनी ही शासन की कुल चेष्टा बनी रहती है। लेकिन जब कभी कोई संत शासक हो जाए... ।

कभी-कभी वैसा हुआ है। और अगर बड़े पैमाने पर नहीं हुआ तो छोटे पैमाने पर तो बहुत बार हुआ है। बुद्ध या महावीर या लाओत्से एक दूसरा ही छोटा समाज समाज के भीतर निर्मित कर लेते हैं। बुद्ध के दस हजार भिक्षु हैं। बुद्ध ने एक छोटा सा समाज निर्मित कर लिया इनका। इस समाज की हवा और है।

अजातशत्रु बड़ा शासक था बुद्ध के समय में। उसके आमात्यों ने कहा कि बुद्ध का आगमन हुआ है, आप भी चलें। आमात्यों को, प्रजा को प्रसन्न करने के लिए वह गया। जाने की कोई इच्छा न थी, लेकिन लोग समझेंगे, अच्छा राजा है, साधु का सम्मान किया, तो वह गया।

जब वे करीब पहुंचे उस आम्रवन के जहां बुद्ध ठहरे थे तो वह ठिठक कर खड़ा हो गया और उसने अपनी तलवार म्यान से निकाल ली। और उसने अपने मंत्रियों को कहा कि क्या तुम मुझे कुछ शड्यंत्र में डाल रहे हो? तुम कहते थे, दस हजार भिक्षु बुद्ध के साथ हैं। जहां दस हजार आदमी हों वहां बाजार मच जाता है, और यहां तो सन्नाटा है। यहां तो ऐसा नहीं है कि एक भी आदमी हो इस आम्रवन के भीतर। तुम चाहते क्या हो? तुम मुझे कहीं धोखे में ले जाकर कोई खतरा करना चाहते हो? वे आमात्य हंसने लगे। उन्होंने कहा, आप बुद्ध के परिवार को जानते नहीं; आप तलवार भीतर रख लें और निःशंक हो जाएं। जल्दी ही इन झाड़ों के पार आपको खुद ही दिखाई पड़ जाएगा।

जैसे ही उन झाड़ों की पंक्ति को अजातशत्रु पार हुआ, वह चकित हुआ! वहां दस हजार लोग थे। उसने बुद्ध से पूछा कि यह मेरी समझ में नहीं आता, ये किस तरह के लोग हैं? क्योंकि दस हजार आदमी जहां हों वहां तो उपद्रव होना ही है। वहां तो हमें पुलिस का और इसका इंतजाम करना पड़ता है सब कि कैसे लोग शांत रहें। और ये दस हजार लोग बिना किसी व्यवस्था के और बिना किसी शासन के क्यों शांत हैं? इनको क्या हो गया है?

बुद्ध ने कहा, यह और ही तरह का परिवार है; इससे तुम अपरिचित हो।

तो कभी-कभी बुद्धों के करीब छोटे-छोटे समाज निर्मित हुए हैं। वे समाज इस पृथ्वी पर किसी दूसरे ही लोक के प्रतिनिधि हैं। बुद्ध का शासन है उन पर--जो शासन नहीं करना चाहता। और वे शासित नहीं हैं जो उनके आस-पास इकट्ठे हैं। क्योंकि उन्होंने खुद ही समर्पण किया है; वे हराए नहीं गए हैं, वे हारे हैं। जब तुम किसी को हराते हो तब घृणा पैदा होती है और जब तुम खुद ही हार जाते हो तो प्रेम का जन्म होता है। वे समर्पित हैं। उन्होंने खुद ही अपने को बुद्ध के चरणों में डाल दिया है। एक दूसरे ही तरह की गंध वहां है--शांति की, आनंद की।

ऐसे छोटे-छोटे परिवार दुनिया में बने हैं। कभी यह भी हो सकता है कि सारी दुनिया का ऐसा पूरा परिवार बने। क्योंकि जो दस हजार के लिए संभव है वह दस लाख के लिए संभव है। जो दस लाख के लिए संभव है वह दस करोड़ के लिए भी संभव हो सकता है। लाओत्से उसी सपने को तुम्हें दे रहा है। लाओत्से कह रहा है, यह पृथ्वी तभी शांत होगी जब हम यहां एक गुणात्मक रूप से भिन्न तरह का परिवार बना सकेंगे; जिसमें कम से कम नियम होगा, अधिक से अधिक प्रेम होगा। जिसमें ज्यादा से ज्यादा स्वतंत्रता होगी, न के बराबर परतंत्रता होगी। जिसमें निषेध न होंगे, विधेय होंगे। जिसमें लोगों पर कुछ थोपा न जाएगा, लोग अपनी ही अंतःप्रज्ञा से संचालित होंगे। जहां उनकी जीवन-व्यवस्था उनके बोध से आएगी; किसी के दबाव, किसी के आरोपण से नहीं। जहां उनका जीवन उनके अंतस से बहेगा। जहां उनका आचरण उनकी अपनी ही सजगता का हिस्सा होगा।

"यही है ठोस आधार प्राप्त करना, यही है गहरा बल पाना; और यही अमरता और चिर-दृष्टि का मार्ग है। दिस इ.ज टु बी फर्मली रूटेड, टु हैव डीप स्ट्रेंग्थ, दि रोड टु इम्मारटेलटी एंड एंड्योरिंग विजन।"

ऐसे तुम हो जाओ। इसकी फिक्र मत करो, समाज कब होगा। इसकी फिक्र मत करो, क्योंकि समाज तो सदा रहेगा। तुम सदा नहीं रहोगे। तुम आज हो, कल डेरा कूच करना पड़े। कुछ कहना मुश्किल है, कब बांध चलेगा बनजारा। किसी भी घड़ी! तुम फिक्र मत करो इसकी कि यह दुनिया कब बदलेगी। यह कोई क्रांति का चिंतन नहीं है। यह आत्म-रूपांतरण का चिंतन है। तुम अपने को बदल लो। तुम चाहो तो अभी उस परिवार के हिस्से बन सकते हो जो इस पृथ्वी का नहीं है। और तुम चाहो तो उस खुले आकाश में जी सकते हो जिसकी लाओत्से बात कर रहा है।

इधर मैं हूं तुम्हें केवल उतना खुला आकाश देने को। तुम चाहो तो उड़ सकते हो उस खुले आकाश में। इसलिए मेरे पास न कोई नियम है, न कोई तुमसे व्रत लेता हूं, न तुम्हें कोई कसमें दिलाता हूं। तुम्हें किसी परतंत्रता में बांधने का कोई आयोजन नहीं है। तुम्हारी सब जंजीरें कैसे गिर जाएं और तुम्हारे पंख फिर कैसे सबल हो जाएं कि उड़ सकें। खुला आकाश ही काफी नहीं है। क्योंकि पिंजड़े में अगर बहुत दिन बंद रह गए तो पंखों की उड़ने की क्षमता चली जाती है। खुला आकाश चाहिए तुम्हें, और तुम्हारे पंखों को फिर से सबल बनाने की जरूरत है। तो तुम्हें कोई नियम नहीं देता, ताकि तुम्हें खुला आकाश मिल जाए। और तुम्हें ध्यान देता हूं, ताकि तुम्हारे पंख सबल हो जाएं और तुम उड़ सको।

तुम्हें भरोसा एक बार आ जाए कि तुम उड़ सकते हो दूर आकाश की नीलिमा में, एक बार उड़ कर तुम्हें स्वाद आ जाए, तो तुम इसी पृथ्वी पर, इन्हीं साधारणजनों के बीच में, अचानक असाधारण हो जाते हो। और

मजा यह है कि यह असाधारणता आती है तब जब तुम बिल्कुल साधारण होने को राजी होते हो। साधारण होने को राजी हो जाना इस जगत में अति असाधारण घटना है।

आज इतना ही।

निन्यानबेवां प्रवचन

मेरी बातें छत पर चढ़ कर कहा

पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि कुछ होने, बनने या बिकमिंग की चेष्टा मत करो, बस जो हो वही हो रहो--जस्ट बीइंग। विस्तार से बताएं कि यह कैसे साधा जाए?

साधने की बात ही पूछी कि समझने से चूक गए। क्योंकि साधने का अर्थ ही यह होता है कि कुछ होने की चेष्टा शुरू हो गई। जब मैं कहता हूं, जो हैं, जैसे हैं, वैसे ही रहें, तो साधने का सवाल नहीं उठता। साधने का तो मतलब ही यह है कि जो हम नहीं हैं वह होने की कोशिश शुरू हो गई। तो समझे नहीं।

कुछ भी साधने का अर्थ है कि असंतोष है; जैसे हैं वैसे होने में तृप्ति नहीं है। मन कह रहा है, कुछ और हो जाएं। थोड़ा धन है, ज्यादा धन इकट्ठा कर लें। थोड़ा ज्ञान है, ज्यादा ज्ञान इकट्ठा कर लें। थोड़ा त्याग है, और बड़े त्यागी हो जाएं। ध्यान का थोड़ा-थोड़ा रस आ रहा है, समाधि का रस बना लें। सभी एक सा है; कुछ फर्क नहीं। क्योंकि सवाल न धन का है और न ध्यान का, सवाल तो और ज्यादा की मांग का है।

तो चाहे धन मांगो तो भी सांसारिक, चाहे ध्यान मांगो तो भी सांसारिक। जहां और की मांग है वहां संसार है। और जब तुम और नहीं मांगते, तुम जैसे हो परम प्रफुल्लित हो, अनुगृहीत हो; जैसे हो--बुरे-भले, काले-गोरे, छोटे-बड़े--जैसे हो उस होने में ही तुमने परमात्मा को धन्यवाद दिया है, तत्क्षण क्रांति घटित हो जाएगी। कुछ साधना न पड़ेगा। क्योंकि जब तक तुम साधते हो, तुम्हारा अहंकार खड़ा रहेगा। तुम्हीं तो ध्यान करोगे। अहंकार ही तो तुमसे कहेगा कि देखो कुंडलिनी जाग रही है, कि देखो प्रकाश दिखाई पड़ता है, कि नील-तारा प्रकट होने लगा, कि चक्र जागने लगे। कौन कहेगा तुमसे? कौन अकड़ेगा? कौन रस लेगा इसका? वह सब अहंकार है। वही अहंकार तो बाधा है।

परम संतुष्ट व्यक्ति का कोई अहंकार नहीं हो सकता, क्योंकि वह कुछ कर ही नहीं रहा है जिससे अहंकार भर जाए। वह ध्यान भी नहीं कर रहा है। ध्यान कभी कोई कर सकता है? ध्यान का अर्थ है परितोष, ए डीप कंटेंटमेंट, जहां कोई एक लहर भी असंतोष की नहीं उठती।

फिर तुम कहोगे, बड़ी मुश्किल है; असंतोष की लहर तो उठती है, कुछ और होने का मन होता है।

मन का स्वभाव यही है कि वह तुमसे कहता है, कुछ और हो जाओ। तुम मोक्ष में भी चले जाओगे तो मन कहेगा, और खोजो, कुछ और हो जाओ। तुम परमात्मा भी हो जाओगे तो मन कहेगा, इतने से कहीं कुछ होता है, कुछ और हो जाओ। मन और की मांग है। और जहां तक मन है वहां तक ध्यान नहीं। मन असंतोष है। जहां तक असंतोष है वहां तक कोई धन्यवाद नहीं, कोई अनुग्रह का भाव नहीं, वहां तक शिकायत है।

होने की दौड़ को समझ लो कि होने की दौड़ ही भ्रांत है। तुम जो भी हो सकते हो वह तुम हो। जब तक दौड़ोगे तब तक चूकोगे। जब तक खोजोगे तब तक खोओगे। जिस दिन खोज भी छोड़ दोगे, दौड़ भी छोड़ दोगे, बैठ जाओगे शांत होकर कि न कहीं जाना है, यही जगह मंजिल है; न कुछ होना है, यही होना आखिरी है; उसी क्षण क्रांति घटित हो जाती। तुम्हारे करने से क्रांति घटित नहीं होती। तुम्हारे किए तो जो भी होगा उपद्रव ही होगा, क्रांति नहीं होगी। जब तुम्हारा करने का भाव ही खो जाता है, तत्क्षण क्रांति हो जाती है। क्रांति आती है,

अवतरित होती है तुम पर। तुम जिस दिन कुछ भी न करने की अवस्था में होते हो उसी क्षण तालमेल बैठ जाता है, उसी क्षण सब सुर सध जाते हैं। उसी क्षण तुम और विराट के बीच जो विरोध था वह खो जाता है।

विरोध क्या है? विरोध यह है कि परमात्मा तुम्हें कुछ बनाया है, तुम कुछ और बनने की कोशिश में लगे हो। गुरजिएफ का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है। बहुत मुश्किल है समझना, लेकिन मेरी बात समझते हो तो समझ में आ जाएगा। गुरजिएफ कहता है कि सभी साधक, सभी महात्मा परमात्मा से लड़ रहे हैं। परमात्मा ने तो तुम्हें यह बनाया है जो तुम हो। अब तुम परमात्मा पर भी सुधार करने की कोशिश में लगे हो। इसलिए गुरजिएफ कहता है, सभी धर्म परमात्मा के खिलाफ हैं। समझना बहुत मुश्किल होगा। बात बिल्कुल ठीक कह रहा है। परमात्मा के जो पक्ष में है उसका क्या धर्म? जब साधने को कुछ न बचा तो धर्म कहां बचेगा? न वह साधता है, न वह दौड़ता है, न वह मांगता है। उसकी कोई आकांक्षा नहीं।

इसलिए तो कबीर कहते हैंः साधो सहज समाधि भली।

सहज समाधि का यह अर्थ है जो मैं कह रहा हूंः कुछ न किए सध जाए वही सहज समाधि। तुम्हारे करने से जो सधे वह तो असहज होगी; वह सहज नहीं होगी। वह चेष्टित होगी। और जो चेष्टा से होगी वह तुमसे बड़ी नहीं होगी। तुम्हारी चेष्टा तुमसे बड़ी कैसे हो सकेगी, थोड़ा सोचो! तुम ही जो करोगे वह तुम्हें तुमसे ऊपर कैसे ले जा सकेगा, जरा विचारो! यह तो ऐसे ही है जैसे कोई जूते के बंद पकड़ कर खुद को उठाने की कोशिश में लगा हो। सभी साधक यही कर रहे हैं।

छोड़ो यह नासमझी। साधक कभी नहीं पहुंचता। साधक पहुंच ही नहीं सकता, सिद्ध ही पहुंचता है। और सिद्ध का अर्थ साध-साध कर नहीं सधता। सिद्ध तुम हो। तुम्हें जो भी मिल सकता है मिला ही हुआ है; जरा सी पहचान की कमी है। जिस खजाने की तुम तलाश कर रहे हो वह छिपा ही हुआ है; जरा पर्दे का उठाना है।

दिल के आईने में है तस्वीर-यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली

थोड़ी सी गर्दन झुकने की बात है। वह गर्दन झुकना ही अहंकार का झुकना है। और जब तक तुम करोगे तब तक गर्दन अकड़ी रहेगी। कर्ता का भाव गर्दन का न झुकना है। अकर्ता का भाव कि मेरे किए क्या होगा। मैं हूं कौन? मेरी सामर्थ्य क्या? असहाय हूं। न कोई सामर्थ्य है, न कुछ कर सकता हूं। श्वास चलती है तो चलती है, नहीं चलेगी तो क्या करोगे? सूरज निकलता है तो निकलता है, नहीं निकलेगा तो क्या करोगे? जीवन है तो है, नहीं हो जाएगा तो क्या करोगे? तुम्हारा बस कितना है? और तुम मोक्ष खोजने चले हो! और तुम परमात्मा की तलाश कर रहे हो! और तुम अमृत-पथ के यात्री बनने की आकांक्षा रखे हो! तुम्हारी सामर्थ्य कितनी है?

जैसे ही कोई अपनी सामर्थ्य को समझता है, अर्थात अपनी असामर्थ्य को पहचान लेता है, जैसे ही कोई अपनी शक्ति को पहचानता है, वैसे ही अपनी अशक्ति की परिपूर्णता पता चल जाती है। उसी क्षण तुम ठहर जाते हो, दौड़ना रुक जाता है। तुम बैठ जाते हो, खड़े होना विदा हो जाता है। तुम झुक जाते हो, अकड़ खो जाती है। उसी झुकाव में--जब जरा गर्दन झुकाई--वह घड़ी आ जाती है जिसको तुम खोज-खोज कर न खोज सके। जिसे तुम खोज रहे थे वह खुद ही तुम्हारे द्वार पर आ जाता है। वह द्वार पर ही खड़ा था। लेकिन तुम खोज में इतने व्यस्त थे कि फुरसत न थी कि तुम उसे देख लो। वह तुम्हारे भीतर बैठा था, तुम कहीं और तलाश रहे थे।

जब तलाश बंद हो जाती है तो तुम अपने भीतर देखोगे। करोगे क्या और? जब सब तलाश खो जाएगी, जब तुम पहली दफा अपने आमने-सामने खड़े होओगे, उस घड़ी में ही सब सध जाता है बिना साधे।

कबीर कहते हैंः अनकिए सब होय।

तुमने किया कि बिगाड़ा। तुमने कर-करके ही तो बिगाड़ा है। इतनी लंबी यात्रा कर रहे हो। तुम न करो। थोड़ी देर भी न करके देखो; सब सुधर जाता है। तुम चुप हुए कि अस्तित्व तुम्हारे आस-पास ठीक होने लगता है। तुम मौन हुए कि विकृतियां अपने आप बैठने लगती हैं। ऐसे ही जैसे नदी बहती है, कूड़ा-कर्कट उठ आता है; तुम किनारे बैठ जाते हो, थोड़ी देर में कूड़ा-कर्कट अपने से बह जाता है, धूल-धवांस नीचे बैठ जाती है।

भूल कर भी नदी में मत उतर जाना सफाई करने के लिए। नहीं तो तुम्हारी सफाई करने की कोशिश, तुम और कीचड़-कबाड़ को उठा दोगे। नदी और गंदी हो जाएगी। अनकिए सब होय। तुम न करना सीख लो। मत पूछो कैसे साधें! क्योंकि तुम फिर वही अपनी नासमझी ले आए। इतना ही पूछो कि कैसे समझें? साधने में कृत्य है; समझ में कोई कृत्य नहीं है। और ध्यान रखना, जितने लोग तुम्हें साधते हुए मिलेंगे, तुम उन्हें नासमझ पाओगे। असल में, बुद्धू ही साधते हैं; ज्ञानी समझते हैं। साधने को यहां कुछ है नहीं। सब सधा ही हुआ है। तुम्हारे लिए रुका था कुछ? तुम नहीं थे तब भी सब सधा था; तुम नहीं हो जाओगे तब भी सब सधा रहेगा। चांद-तारे चल रहे हैं। सूरज निकल रहा है। इतना विराट विश्व सधा है--तुम्हारे बिना साधे।

लेकिन तुम उसी भ्रांति में हो। मैंने सुना है, एक छिपकली को उसके मित्रों ने भोज के लिए निमंत्रित किया। कहीं शादी-विवाह था। छिपकली ने कहा, मैं न आ सकूंगी। इस महल को कौन सम्हालेगा? मैं रहती हूं तो छप्पर सम्हला रहता है। मैं गई कि छप्पर गिरा।

तुम उस छिपकली की भांति हो जो नाहक परेशान हो रहे हो। महल का छप्पर छिपकली से नहीं सधा है, छप्पर के कारण छिपकली सधी है। तुम्हारे साधने के लिए बचा क्या है? सब सधा ही हुआ है। तुम अकारण श्रम मत उठाओ। जैसे ही तुम समझोगे, सब साधना व्यर्थ हो जाती है।

तो अगर तुम मुझसे पूछो कि फिर साधना का प्रयोजन क्या है? साधना का कुल प्रयोजन इतना है कि जब तक तुम समझे नहीं हो और समझने को राजी नहीं हो तब तक तुमसे कुछ करवाए रखना जरूरी है। यह करवाना ऐसे है जैसे बच्चों को मिठाई दे दी जाती है; मिठाई के कारण वे रुके रहते हैं। यह करवाना वैसे ही है जैसे दवा के ऊपर हम शक्कर की एक पर्त चढ़ा देते हैं। तुम बिना किए न मानोगे, तुम्हारा मन कहता है, कुछ करना है, इसलिए तुम्हारे मन को करने को कुछ दे देते हैं।

ये जितनी विधियां हैं ध्यान की, सब तुम्हारे मन को कुछ करने के लिए देना है। धीरे-धीरे ताकि तुम्हें खुद ही बोध आए कि किए कहीं कुछ होता है! एक दिन ऐसी घड़ी आएगी कि करते-करते तुम जाग जाओगे और देखोगे कि क्या कर रहे हो, इस करने से कुछ भी नहीं होता। करना हाथ से छूट जाएगा और टूट जाएगा और बिखर जाएगा पारे की तरह। फिर तुम उसे इकट्ठा न कर पाओगे। और उसी घड़ी सब हो जाएगा।

सब तैयारी उस घड़ी को लाने की है जब तुम थोड़ी देर के लिए न करने को राजी हो जाओ। अगर तुम अभी राजी हो तो अभी हो जाएगा। इसी क्षण हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन, आत्मिक जीवन का रूपांतरण, भविष्य की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है; वह इसी क्षण हो सकता है। तुम बिल्कुल पूरे हो। कुछ कमी नहीं है जिसको पूरा करने के लिए समय लगे। सिर्फ आंख झुकानी थोड़ी। अपने को देखना थोड़ा। उसमें तुम जितनी देर लगा दो, तुम्हारी मर्जी। तुम मंदिर के चारों तरफ जितनी देर परिक्रमा करते रहो, तुम्हारी मर्जी। अन्यथा मंदिर का सिंहासन खाली है, आ जाओ और बैठ जाओ। तुम किसकी परिक्रमा लगा रहे हो? तुम मंदिर के सिंहासन पर बैठने को बने हो, परिक्रमा लगाने को नहीं। और जब तक परिक्रमा लगाते रहोगे, साफ है कि सिंहासन पर बैठ न सकोगे।

मत पूछो कैसे साधें! बस समझो। समझे कि तुम पाओगेः गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। कुछ साधने को नहीं है।

यह बड़ा कठिन लगता है। मन कहता है कि पहाड़ पर भी चढ़ना हो, हिमालय पर, तो भी कोई हर्जा नहीं। कुछ तो करने को कहो, हम कर लेंगे। गौरीशंकर भी चढ़ जाएंगे। कितनी ही मुसीबत होगी, पार कर लेंगे। मन हर तरह की कठिनाई से लड़ने को तैयार है। मन लड़ने की तैयारी है। और जब मैं कहता हूं, कुछ भी नहीं करना, तो मन कहता है, बड़ी मुसीबत हो गई। लड़ने को कुछ नहीं, करने को कुछ नहीं; फिर होगा कैसे? जैसे तुम्हारे करने से सब हो रहा है।

तुमने सुनी है कहानी उस बूढ़ी औरत की जो नाराज हो गई गांव से और अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। क्योंकि गांव वालों से उसने कहा कि मेरा मुर्गा बांग देता है इसलिए सूरज निकलता है। गांव में लोग हंसने लगे। किसी ने उसकी मानी नहीं। उसने कहा, फिर पछताओगे। अगर मैं दूसरे गांव चली गई तो सूरज वहां निकलेगा; जहां मेरा मुर्गा बांग देगा वहां सूरज निकलेगा। फिर रोओगे, छाती पीटोगे अंधेरे में। लोग हंसते रहे; किसी ने उसकी मानी नहीं। बूढ़ी अपने मुर्गे को लेकर दूसरे गांव चली गई। दूसरे दिन सुबह मुर्गे ने बांग दी दूसरे गांव में, सूरज निकला। बूढ़ी ने कहा, अब रोते होंगे।

सूरज के निकलने के कारण मुर्गा बांग देता है; मुर्गे के बांग देने के कारण सूरज नहीं निकलता। परमात्मा के निकट आने के कारण ध्यान लगता है; ध्यान लगने के कारण परमात्मा निकट नहीं आता। तुम्हारे करने का कुछ नहीं है। एक गहन प्रतीक्षा मौन। एक गहन प्रतीक्षा; और जो हो, जैसे हो, उससे राजी हो जाना। इसको लाओत्से तथाता कहता है--टोटल एक्सेप्टबिलिटी। और ख्याल रखना, समग्र, टोटल, उससे कम में न चलेगा।

तब तुम पूछते हो, लेकिन मन में अशांति है, क्या करें? स्वीकार करो कि है; कुछ मत करो। तुम कहते हो, क्रोध होता है। स्वीकार करो कि क्रोध होता है--है। कुछ मत करो। होने दो क्रोध, राजी रहो। तुम कहते हो, कामवासना है। है। न तुमने बनाई है, न तुम मिटा सकोगे। जो तुमने बनाया ही नहीं उसे तुम मिटाओगे कैसे? कामवासना न होती तो तुम पैदा कर सकते थे? है तो तुम कैसे मिटा सकोगे? जिसने दी है वही ले लेगा। जिसने बनाई है वही मिटाएगा। तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। तुम राजी हो जाओ कि जो तेरी मर्जी।

इसी को मैं प्रार्थना कहता हूं। जिस दिन तुम्हारा हृदय परिपूर्ण रूप से कह सकेः जो तेरी मर्जी। अगर वासना में भटकाना है, राजी हूं। अगर ब्रह्मचर्य में ले जाना है, राजी हूं। अगर क्रोध करवाना है और जगत का निकृष्टतम आदमी बनाना है, राजी हूं। अगर करुणा से भरना है और जगत में श्रेष्ठतम उठाना है, राजी हूं। मेरी कोई मर्जी नहीं, तेरी मर्जी। तेरी मर्जी का भाव! कोई शिकायत नहीं! और तुम पाओगे, क्षण की देर नहीं लगती। एक पल भी नहीं खोता और द्वार पर मंजिल आ जाती है। बिना चले आती है मंजिल; बिना हिले-डुले मोक्ष मिल जाता है।

यह गहनतम सार है समस्त ज्ञानियों का।

न रुचे, न जंचे, फिर अज्ञानियों से पूछो। वे तुम्हें बहुत रास्ते बताएंगे। जब अज्ञानियों से थक जाओ तब मेरे पास आना। उसके पहले तुम मुझे समझ ही न पाओगे। पहले तुम अज्ञानियों के साथ खूब उलटा-सीधा कर लो, शीर्षासन लगा लो, आड़े-टेढ़े व्यायाम कर लो, तंत्र-मंत्र सब कर आओ। जब तुम थक जाओ कर-करके, न पाओ, तब मेरे पास आ जाना। क्योंकि मैं तो न करना सिखाता हूं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि व्यक्ति में सौ प्रतिशत अच्छा या बुरा हो नहीं सकता। लेकिन क्या आप स्वयं ही सौ प्रतिशत शुभ के प्रतीक नहीं? मैं आपमें कुछ भी बुराई नहीं देख पाता हूं। या यह प्रश्न इसलिए ही उठ रहा है कि मैं कुछ न कुछ बुराई देखने की कामना रखता हूं?

निश्चित ही! मन किसी भी चीज में सौ प्रतिशत नहीं देख सकता। वह मन की क्षमता नहीं है। क्योंकि मन द्वंद्व के बिना सोच नहीं सकता। अगर तुमने कहा कि सौ प्रतिशत भलाई दिखाई पड़ती है तो कहीं न कहीं अचेतन में बुराई का कोई न कोई बादल भटक रहा है। अन्यथा भलाई भी कैसे दिखाई पड़ेगी?

भलाई के लिए भी बुराई की पृष्ठभूमि चाहिए। सफेद खड़िया की लकीर खींचनी हो तो काला ब्लैकबोर्ड चाहिए। कैसे पहचानोगे कि यह भलाई है? मुझसे लगाव हो, मुझसे प्रेम हो, मुझसे मोह बन गया हो, तो मन सारी बुराई को अचेतन में डाल देगा, सारी भलाई को ऊपर उठा लेगा। सौ प्रतिशत दिखाई पड़ेगी, लेकिन हो नहीं सकती। अचेतन में खोजोगे तो पाओगे, कुछ बुराई दिखाई पड़ती है। शायद वह बुराई दिखाई न पड़े, इसीलिए चेतन मन दोहराए चला जाता है कि नहीं, सौ प्रतिशत ठीक।

पर यह स्वाभाविक है। इससे कुछ चिंता लेने जैसी नहीं है। मन द्वंद्व में ही देख सकता है। जिस दिन तुम मन के बाहर होकर मुझे देखोगे, न मैं बुरा दिखाई पड़ूंगा, न भला; न साधु, न असाधु; न शुभ, न अशुभ। क्योंकि दोनों एक साथ चले जाते हैं, या दोनों साथ-साथ रहते हैं। जैसे सिक्के के दो पहलू साथ ही साथ होंगे, तुम एक पहलू न बचा सकोगे। हां, इतना कर सकते हो, एक पहलू नीचे दबा दो, एक पहलू ऊपर उठा लो; जो ऊपर का है वह दिखाई पड़े, जो नीचा है वह दबा रहे। लेकिन नष्ट नहीं हो गया, वह मौजूद है। सिक्के को या तो पूरा बचाओ तो दोनों पहलू बचते हैं, या पूरा फेंको तो दोनों पहलू जाते हैं। तो जब तक तुम्हें शुभ दिखाई पड़े, जानना कि कहीं न कहीं पृष्ठभूमि में अशुभ छिपा हुआ है। नहीं तो बैकग्राउंड कौन बनेगा? शुभ दिखाई कैसे पड़ेगा?

जब कोई व्यक्ति समर्पित होता है तो पहली घटना यही घटती है कि सौ प्रतिशत अच्छा दिखाई पड़ता है गुरु। यहां रुक मत जाना। क्योंकि यहां अंधेरे में छिपी पृष्ठभूमि मौजूद है। यह घड़ी भी कीमती है। ऐसा अनुभव होना भी कि कोई सौ प्रतिशत ठीक है, श्रद्धा की बड़ी ऊंचाई है। लेकिन यह अंतिम नहीं है। एक कदम और लेना जरूरी है। तब श्रद्धा की अंतिम छलांग लगती है। तब न गुरु भला रह जाता, न बुरा। क्योंकि जब तक मैं भला हूं तब तक मेरे बुरे होने की संभावना शेष है। कभी भी पांसा पलट सकता है। कभी भी जो पहलू नीचे दबा है ऊपर आ सकता है। हवा का जरा सा झोंका और सब बदल जा सकता है। इस पर बहुत भरोसा मत करना।

एक छलांग और, जब मैं न बुरा रह जाऊं, न भला। फिर तुम मुझसे दूर न जा सकोगे। फिर तुम मेरे विपरीत न हो सकोगे। फिर कोई उपाय ही न रहा। फिर मैं भला भी नहीं हूं, बुरा भी नहीं हूं। तो अश्रद्धा कैसे जगेगी? क्योंकि श्रद्धा भी गई। जब तक श्रद्धा है तब तक अश्रद्धा भी छिपी है। जब तक आदर है तब तक अनादर भी छिपा है। जब तक मान है तब तक अपमान भी छिपा है। जब तक मैं मित्र की भांति लगता हूं तब तक मैं कभी भी शत्रु की भांति लग सकता हूं। क्योंकि दूसरा मिट नहीं गया है, सिर्फ छिपा है।

और ध्यान रखना कि मन का एक नियम हैः जो छिपा है वह धीरे-धीरे शक्तिशाली हो जाता है, और जो प्रकट है वह धीरे-धीरे धूमिल हो जाता है। क्योंकि जो छिपा है उसकी शक्ति व्यय नहीं होती, और जो प्रकट है उसकी शक्ति व्यय होने लगती है। फिर मन का एक दूसरा नियम भी ख्याल रखना कि जिसको तुम बहुत देर तक देखते रहते हो उससे तुम ऊबने लगते हो; फिर स्वाद के परिवर्तन की आकांक्षा होने लगती है। सो रोज श्रद्धा, रोज श्रद्धा, रोज श्रद्धा; वही भोजन रोज, वही भोजन रोज।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मुझसे एक दिन कह रही थी कि आपको कुछ करना पड़े; पति का दिमाग खराब हो गया मालूम होता है। मैंने पूछा कि क्या हुआ? उसने कहा कि शनिवार के दिन भी उन्होंने, जब मैंने भिंडी की सब्जी बनाई, बड़ी प्रशंसा की और कहा, बहुत अदभुत है। रविवार के दिन कहा, अच्छी है। सोमवार के दिन कुछ बोले नहीं। मंगल को बड़े उदास दिखाई पड़े। बुध को बड़े क्रोधित थे। बृहस्पति को उन्होंने थाली फेंक दी; कहने लगे, जीवन नष्ट कर दिया मेरा! भिंडी, भिंडी, भिंडी! इनका दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि शनिवार के दिन कहा था, बहुत अच्छी है। और एक सप्ताह भी पूरा नहीं बीता और थाली फेंकते हैं।

कोई भी फेंक देगा। स्वाद मरने लगता है। स्वाद परिवर्तन मांगता है। सुख भी रोज-रोज मिले तो तुम दुख की आकांक्षा करने लगते हो। फूल ही फूल की शय्या पर लेटे रहो; कांटे की इच्छा पैदा हो जाती है। स्वाद परिवर्तन चाहता है। तुम अगर श्रद्धा ही श्रद्धा मुझ पर रखोगे तो आज नहीं कल श्रद्धा का स्वाद मर जाएगा। फिर तुम अश्रद्धा रखना चाहोगे। तब एक वर्तुल पैदा होता है। श्रद्धा अश्रद्धा में बदल जाती है, अश्रद्धा श्रद्धा में। और तब तुम एक ऐसे चक्र में पड़े जिससे निकलना मुश्किल हो जाएगा।

श्रद्धा पहला कदम है, अंतिम मंजिल नहीं। अश्रद्धा से श्रद्धा बेहतर है। फिर श्रद्धा से भी बेहतर एक घड़ी है; जहां न श्रद्धा है, न अश्रद्धा। उसके बाद फिर कोई टूटने का उपाय नहीं है। सौ प्रतिशत अच्छा देखते हो, शुभ है। क्योंकि इससे तुम्हारे भीतर की श्रद्धा प्रगाढ़ होगी। लेकिन इसको अंतिम मत मान लेना। ऐसी घड़ी लानी है जब शुभ-अशुभ दोनों ही व्यर्थ हो जाएं, फीके हो जाएं, दूर निकल जाएं। तभी तुम आमने-सामने मुझे जान सकोगे। और तब मुझसे टूटने की कोई व्यवस्था न होगी। यह मेरा शरीर भी गिर जाए तो भी मैं जुड़ा रहूंगा। तुम लाखों मील दूर रहो तो भी जुड़े रहोगे। तब टूटने की जगह ही न रही। तब बीच में फासला ही न रहा। एक बात!

दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जो व्यक्ति, जैसा मैंने कहा, कि भले से भले व्यक्ति में भी एक प्रतिशत बुराई रहनी जरूरी है, नहीं तो वह पृथ्वी पर न रह जाएगा। नाव को अगर इस किनारे पर रखना हो तो कम से कम एक खूंटी से तो बंधा रहना जरूरी है। नहीं तो नाव दूसरे किनारे की तरफ यात्रा पर निकल जाएगी। तो अच्छे से अच्छे आदमी में भी एक प्रतिशत बुराई होती है। उसकी बुराई भी बड़ी प्रीतिकर होती है, यह जरूर सच है। और शायद इसीलिए तुम्हें वह बुराई दिखाई न पड़े। बुरे से बुरे आदमी में भी एक प्रतिशत भलाई होती है। लेकिन वह भलाई भी बड़ी बुरी होती है; शायद इसीलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। इसे थोड़ा समझो।

बड़े से बड़े सिद्धपुरुष में भी इस पृथ्वी पर होने के लिए एक खूंटी चाहिए। बिना खूंटी के उसकी नाव दूसरे तट पर चली जाएगी। खूंटी बांध कर रखनी पड़ती है, नहीं तो रुक नहीं सकता। वह खूंटी क्या है? उस खूंटी को तुम तो बुराई की तरह देख भी न पाओगे, क्योंकि जिस व्यक्ति में निन्यानबे प्रतिशत शुभ हो, उसका निन्यानबे प्रतिशत इतना आलोकित होता है कि वह जो एक प्रतिशत बुरा होता है वह भी उसके प्रकाश में स्वर्ण जैसा चमकता है। वह ऐसा ही समझो कि जैसे निन्यानबे बहुमूल्य हीरों के बीच में एक साधारण सा पत्थर जड़ा हो। वह निन्यानबे हीरों की चमक-दमक इतनी होगी कि तुम उस एक पत्थर को भी चमकता हुआ पाओगे। वह एक पत्थर भी पास की चमक से दीप्त होगा। निकट के हीरे उसमें झलकेंगे, वह शायद कांच का टुकड़ा ही हो। और अगर निन्यानबे पत्थर हों रद्दी-सद्दी इकट्ठे और उनके बीच में एक हीरा भी जड़ा हो तो भी यही घटेगाः तुम उस हीरे को न पहचान पाओगे।

इसीलिए तो ऐसा होता है कि अगर गरीब आदमी हीरे की अंगूठी भी पहने हो, कोई नहीं सोचता कि हीरा है। अमीर आदमी नकली पत्थर भी लगाए हो तो लोग समझते हैं करोड़ों का होगा। आदमी पर निर्भर है। गरीब पर तुम अपेक्षा कहां करते हो कि उसके पास हीरे की अंगूठी होगी। इसलिए अमीर अगर नकली हीरे भी पहने

रहता है तो भी प्रशंसित होता है, और गरीब अगर असली हीरे भी लिए फिरे तो कोई देखता नहीं; कोई मान ही नहीं सकता।

बुरे से बुरे आदमी में भी एक तो हीरा होता ही है। अगर वह हीरा न हो तो उसकी मनुष्यता ही खो गई। उतना बुरा कोई कभी नहीं है। अंधेरे से अंधेरे में भी प्रकाश की किरण मौजूद होती है। कितना ही गहन अंधकार हो, वह भी प्रकाश का ही एक अभाव है, वह भी प्रकाश का ही एक रूप है। अगर तुम देख सको तो तुम्हें बुरे से बुरे आदमी में भी वह किरण दिखाई पड़ जाएगी। लेकिन उसके लिए बड़ी सधी आंखें चाहिए।

और वही भले से भले आदमी के जीवन में है। उसके जीवन में भी एक बुराई होगी। लेकिन तुम उसे पहचान न पाओगे। इतनी भलाई के बीच, जहां चारों तरफ मिठास हो वहां नमक की एक डली अगर तुम डाल भी दो तो खो जाती है; वह भी मिठास बन जाती है, उसका पता नहीं चलता। लेकिन इस पृथ्वी पर होने का अर्थ ही यह है कि शुद्धि पूर्ण नहीं हो सकती।

इसलिए हम समाधि की दो अवस्थाएं मानते रहे हैं, या निर्वाण की दो अवस्थाएं मानते रहे हैं। बुद्ध को ज्ञान हुआ चालीस वर्ष की उम्र में, उसे हम कहते हैं निर्वाण। फिर बुद्ध अस्सी वर्ष में शरीर को छोड़े, उसे हम कहते हैं महापरिनिर्वाण। वह निर्वाण था, लेकिन उसमें एक प्रतिशत अशुद्धि थी। सोना था, लेकिन ठीक चौबीस कैरेट नहीं। जरा सी भी अशुद्धि तो चाहिए, नहीं तो सोने का कोई गहना न बन सकेगा। उसमें थोड़ा तांबा, कुछ और मिला होना चाहिए। चौबीस कैरेट सोने का कोई गहना नहीं बनता। क्योंकि गहना थोड़ी सी सख्ती चाहता है। चौबीस कैरेट सोना इतना कोमल हो जाता है कि उसका कुछ बन नहीं सकता। चौबीस कैरेट बुद्धत्व इतना पारदर्शी हो जाता है कि वह दिखाई नहीं पड़ सकता। चौबीस कैरेट बुद्धत्व इतना अदृश्य हो जाता है, इतना अरूप हो जाता है कि फिर तुम्हें उसकी छाया भी बनती हुई दिखाई नहीं पड़ सकती। चौबीस कैरेट बुद्धत्व का अर्थ हुआ कि बुद्ध अब शरीर में नहीं रह सकते। शरीर अशुद्धि है। और चेतना जब तक शरीर में है तब तक थोड़ी सी अशुद्धि रहेगी।

वह अशुद्धि क्या है? जैनों और बौद्धों ने इस पर बड़ा गहन विचार किया है। जैनों ने तो इस संबंध में बड़ी गहन खोज की है। क्योंकि यह सवाल उनके सामने रहा है कि तीर्थंकर क्यों शरीर में हैं? तो उन्होंने तीर्थंकर-बंध की खोज की है। वे कहते हैं, तीर्थंकर का भी एक बंधन है। तो तीर्थंकरत्व भी आखिरी जंजीर है। इसलिए वे कहते हैं, तभी कोई व्यक्ति तीर्थंकर होता है जब उसने पिछले जन्मों में कोई कर्मबंध किया हो तीर्थंकर होने का। वह भी आखिरी पाप है। हमें तो तीर्थंकर एकदम पुण्य मालूम होता है। लेकिन तीर्थंकर स्वयं जानता है कि अभी एक कड़ी बाकी है; अन्यथा वह खो जाएगा। वह कड़ी क्या है?

जैन कहते हैं, वह कड़ी करुणा है। बौद्ध भी कहते हैं, वह कड़ी करुणा है। हमें तो क्रोध बुरा लगता है; करुणा से शुभ और क्या? लेकिन बुद्ध को, महावीर को करुणा भी बुरी लगती है। क्योंकि वह भी है तो क्रोध का ही रूपांतरण। क्रोध में हम दूसरे को नष्ट करना चाहते हैं, करुणा में हम दूसरे को फला-फूला देखना चाहते हैं। लेकिन नजर तो दूसरे पर ही है। क्रोध और करुणा दोनों ही दूसरे की तरफ बहते हैं। एक विध्वंसात्मक, एक सृजनात्मक; लेकिन ऊर्जा तो वही है। करुणा की खूंटी से बुद्ध बंधे हैं। उतनी अशुद्धि है।

अगर मैं तुम्हें चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो जाए, रूपांतरण हो जाए, यह करुणा ही वह एक प्रतिशत अशुद्धि है। नहीं तो तुम्हारे लिए मैं क्यों परेशान होऊं? क्या प्रयोजन है? एक खूंटी उखाड़ी जा सकती है, नाव दूसरे किनारे पर यात्रा पर निकल जाएगी। माना कि खूंटी सोने की है, लेकिन खूंटी खूंटी है--सोने

की हो कि लोहे की हो। माना कि जंजीर हीरे-जवाहरातों से जड़ी है, लेकिन जंजीर जंजीर है--जंग खाई लोहे की हो कि हीरे-जवाहरातों से चमकती हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। एक प्रतिशत अशुद्धि करुणा है।

बुरे से बुरे आदमी में एक प्रतिशत शुद्धि बोध है। क्योंकि बुरे से बुरे आदमी को यह बोध तो होता ही रहता है कि मैं बुरा कर रहा हूं। यह बोध कभी नहीं जाता। यह एक किरण उस गहन अंधकार में भी बनी रहती है। चोरी कर रहा हो, हत्या कर रहा हो, लेकिन मैं कर रहा हूं, और ठीक नहीं है, यह होश एकमात्र किरण है बुरे से बुरे आदमी में। यही किरण उसे उबारेगी। इसी किरण के सहारे वह ऊपर चढ़ेगा। इसी किरण के पायदानों पर यात्रा होगी। बोध बढ़ेगा, बढ़ेगा, बढ़ेगा, और एक दिन मुक्ति की घड़ी आ जाएगी।

भले से भले आदमी में एक प्रतिशत जो बुराई है वह करुणा है। क्योंकि करुणा ही उसे अंत में बांधे रखती है। जब सब बंधन टूट गया, न कोई मोह है, न कोई आसक्ति है, न कोई लोभ है, न कोई क्रोध है, उस दिन करुणा ही उसे बांधे रखती है। संसार की तरफ से देखने पर करुणा अदभुत है। हम तो कहते हैं, करुणा से बड़ा और कोई गुण नहीं। लेकिन अगर तुम परमात्मा की तरफ से जिस दिन देख पाओगे उस दिन तुम पाओगे, करुणा आखिरी बंधन है। संसार की तरफ से करुणा सबसे ऊपर है, लेकिन आखिरी ऊंचाई की तरफ से करुणा सबसे नीचे है। इस तरफ से, जहां हम हजारों बंधन से बंधे हैं, वहां करुणा मुक्ति मालूम होती है। लेकिन जो करुणा में खड़ा हो गया उसे पता लगता है, अब यह आखिरी बंधन है, यह भी टूट जाना चाहिए।

इसलिए बहुत लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, लेकिन सभी तीर्थंकर नहीं होते, सभी बुद्ध नहीं होते। ज्ञान को तो बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, मोक्ष को भी उपलब्ध हो जाते हैं, लेकिन सभी लोग सदगुरु नहीं हो सकते। सदगुरु वही व्यक्ति हो सकता है जिसने जन्मों-जन्मों में करुणा का बंधन ढाला हो।

इसलिए बुद्ध ने तो एक नियम बनाया है कि ध्यान और करुणा का साथ-साथ ही विकास होना चाहिए। अगर ध्यान का अकेला विकास हो और करुणा का विकास न हो तो जिस दिन व्यक्ति ज्ञानी होगा उसी दिन तिरोहित हो जाएगा। व्यर्थ की खूंटियां उखाड़ो, लेकिन बुद्ध कहते हैं, एक सोने की खूंटी को गाड़ते भी रहो। क्योंकि जब सब खूंटियां टूट जाएं तब तुम्हारी नाव अगर एकदम से उस पार चली जाए तो इस तरफ तुम्हारा कोई भी लाभ न ले पाएगा। थोड़ी देर ठहर जाओ। मुक्त होकर थोड़ी देर इस किनारे रुक जाओ। ताकि जो राह पर हैं, जो भटक रहे हैं, जिन्हें कुछ सूझ नहीं रहा है, वे थोड़ी सी तुम्हारी रोशनी पी लें। थोड़ी देर!

और जब नाव तैयार हो गई हो और पाल खिंच गया हो और दूसरे किनारे का आमंत्रण आ गया हो, तब रुकना बड़ा मुश्किल हो जाता है। उस दिन कोई पीछे लौट कर देखना भी नहीं चाहता। इतने दिनों से जिस नाव की प्रतीक्षा की थी, जन्मों-जन्मों जिसके लिए यात्रा की थी, वह आज किनारे आ लगी। सब तैयारी हो गई, अब बस बैठना है और नाव खुल जाएगी। उस क्षण कौन किनारे रुकता है?

तो बुद्ध कहते हैं, ध्यान के साथ-साथ करुणा को भी पोषित करो। ताकि जब नाव सामने आ जाए तो तुम तत्क्षण बैठ न जाओ, थोड़ी देर, थोड़ी देर नाव खड़ी रहने दो। कोई जल्दी नहीं है, थोड़ी देर दूसरों को तुम्हारा रस ले लेने दो। थोड़ी देर तुम्हारी प्रभा दूसरों के अंधकार में प्रविष्ट हो जाने दो। थोड़ी देर तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का दान बंटने दो। थोड़ी ही देर सही, ज्यादा देर यह नहीं हो सकता, लेकिन थोड़ी देर संयम रखो। बुद्ध कहते हैं, थोड़ी देर संयम रखो; मत सवार हो जाओ नाव पर। जन्मों-जन्मों की खोज है, इसलिए पूरे प्राण कहेंगे, बैठ जाओ, आ गई मंजिल; अब क्या बाहर रुकना। देखो, पीछे बहुत लोग चल रहे हैं; तुम्हारे कारण शायद उन्हें थोड़ी रोशनी मिल जाए। शायद उस तरफ की थोड़ी झलक तुम्हारे झरोखे से उन्हें मिल जाए। शायद तुम्हारे माध्यम से वे उस अलौकिक का थोड़ा सा स्वाद ले लें। उससे उन्हें वंचित मत करो।

करुणा का इतना ही अर्थ है। लेकिन है यह बुराई। बुराई इसलिए है कि तुम्हारी परम मुक्ति के लिए यह आखिरी बाधा है। दूसरों के लिए हितकर है, लेकिन तुम्हारी परम मुक्ति के लिए आखिरी बंधन है। यह करुणा शुभ ही मालूम पड़ेगी, लेकिन यह शुभ नहीं है। इसे भी छोड़ देना होगा। क्रोध तो छोड़ना ही है, एक दिन करुणा भी छोड़ देनी है। तभी तुम परम शून्य हो सकोगे। अभी तुम क्रोध से भरे हो, कल करुणा से भर जाओगे। बड़ा भेद पड़ गया। लेकिन फिर भी तुम भरे रहोगे, खाली न हो पाए। कल तक तुम दूसरों का अहित करने के लिए चिंतन करते थे और सो न पाते थे; अब तुम दूसरों का हित करने का सोचोगे और सो न पाओगे। आखिरी अर्थों में तो यह भी उपद्रव है।

इसलिए जैन कहते हैं, तीर्थंकर भी बंधन है, और किसी कर्म का फल है; इसे भी भोगना पड़ेगा।

बड़ा सूक्ष्म विवेचन हुआ है इस पृथ्वी के टुकड़े पर और लोग इतनी गहराई में गए हैं कि दुनिया के शेष सारे धर्म बहुत बचकाने मालूम होते हैं। तुमने कभी सोचा भी न होगा कि तीर्थंकरत्व भी एक कर्म का फल है, और इससे भी छुटकारा पाना है। वह बुराई है। वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी। लेकिन उसे ख्याल में रखना। और उससे पार जाना है। तुम्हें शुभ और अशुभ दोनों के पार जाना है।

और अगर तुम मेरी मौजूदगी का इतना उपयोग कर सको कि शुभ और अशुभ को कम से कम मेरे तरफ छोड़ दो, कम से कम एक आदमी तुम्हारी जिंदगी में ऐसा आ जाए जो न बुरा है और न भला, तो भी बहुत बड़ी घटना घट गई। क्योंकि और तरह के लोग तो तुम्हारी जिंदगी में आएंगे ही, जो भले हैं, बुरे हैं। उनका तुम्हें काफी अनुभव है। अच्छे लोगों का अनुभव है, सज्जन का; बुरे लोगों का अनुभव है, दुर्जन का। संत न तो सज्जन है और न दुर्जन। तुम्हारी जिंदगी में यह स्वाद भी आ जाने दो कि तुम एक ऐसे आदमी से भी जुड़े हो जो अच्छा है न बुरा है, जिसका होना न होने के बराबर है; जिसकी मौजूदगी एक तरह की अनुपस्थिति है; जिसके आकार के भीतर कुछ निराकार घटित हुआ है; जिसके जीवन से तुम्हें कुछ जीवन के पार का सूचन और किरण मिल रही है।

तीसरा प्रश्नः आप जो भी कहते हैं वह पूरा का पूरा इतना सत्य और फलदायी प्रतीत होता है कि वह सब का सब दूसरों को, पूरे जगत को बता देने का एक अतीव भाव घेर लेता है। परिणाम में आपकी बातें अनिवार्यरूपेण मन इकट्ठा करता है; दूसरों तक बातों को कैसे पहुंचाया जाए, इसका भी निरंतर विचार चलता है। साथ ही साथ इसका भी अनुभव होता है कि जब तक मैं खुद कुछ न पा लूं तब तक मैं दूसरों को कैसे कुछ कह सकता हूं। तो हम क्या करें?

उचित है। यही तो मैं अभी कह रहा था कि ध्यान को और करुणा को साथ-साथ बढ़ने दो। अगर ध्यान पूरा हो गया और तुमने पा लिया, और बीच में करुणा के आधार न रखे, तो तुम खो जाओगे। जिस दिन नाव तुम्हारी तैयार होगी उस दिन तुम चले जाओगे। इसलिए यह प्रतीक्षा मत करो कि जब तुम पूरे हो जाओगे तब तुम कुछ कहोगे। क्योंकि तब तुम कह ही न पाओगे। तुम पूरे नहीं हुए हो, तभी तुम करुणा के बीज बोने लगो।

यह जो भाव उठ रहा है निरंतर कि दूसरों को भी कहूं, यह करुणा का भाव है। क्योंकि दूसरों से कुछ लेना नहीं है, सिर्फ देना ही है। दूसरों को कुछ मिल जाए जो तुम्हें मिल रहा है, यह बड़ी प्रेम की भाव-भीनी दशा है। इसे बुरा मत समझो।

ध्यान रखो कि अगर अभी तुमने कहने का अभ्यास जारी रखा तो ही अंतिम घड़ी में, जब आखिरी कड़ी बचेगी, तब भी तुम थोड़ी देर कुछ कह पाओगे। नहीं तो तुम न कह पाओगे। बहुत से ज्ञानी ऐसे ही शून्य में खो

जाते हैं; उनके महान अनुभव का कोई लाभ जगत को नहीं हो पाता। वे तैयारी ही नहीं कर पाते। सिर्फ ध्यान में जो लीन है, वह एक दिन पूरा हो जाएगा। उस तक तो बात पूरी हो गई, लेकिन उससे अंधेरे में भटकते लोगों को कुछ भी न मिल पाएगा। इसलिए करुणा को साथ-साथ साधो।

दूसरी बात भी ठीक है कि मन में यह लगेगा कि अभी मेरा तो कुछ पूरा हुआ नहीं, मैं कैसे कहूं!

अधूरे हो, तभी तक कहने का अभ्यास कर लो। पूरे हो जाने के बाद अभ्यास का मौका नहीं मिलता; आदमी खो जाता है, गहन सन्नाटे में डूब जाता है, वाणी नहीं निकलती। सोने की खूंटी तैयार कर लो, इसके पहले कि सब खूंटियां टूट जाएं। तो थोड़ी देर नाव को अटकाने का मौका रहेगा। नहीं तो तुम्हें पता ही नहीं चलेगा, तुम कब नाव में सवार हो गए, कब नाव की यात्रा शुरू हो गई, कब तुम दूसरे तट पर पहुंच गए। और एक बार नाव छूट जाए, तो तुमने जो पाया है वह तुम्हारे लिए महा आनंद होगा, लेकिन तुम उसे बांट न पाओगे।

बांटो! अधूरे हो, अभी पूरा हुआ नहीं है, पर बांटना जारी रखो, ताकि बांटने का अभ्यास बना रहे। और जब तुम पूरे हो जाओ तब भी बांटने की क्रिया थोड़ी देर चल जाए। थोड़ी देर ही सही! लेकिन बहुत लोग प्यासे हैं। एक बूंद भी उनके कंठ में पड़ जाए तो महाशुभ है, महामंगलदायी है।

मन में यह भाव उठता है कि अभी मैं पूरा नहीं हुआ, कैसे कहूं!

इस भाव को याद रखो। नहीं तो खतरा है। इसको भी भूलो मत कि मुझे पूरा होना है। कहीं ऐसा न हो कि करुणा महाफंदा बन जाए। कहीं ऐसा न हो कि तुम यह भूल ही जाओ कि अभी तुम्हें तो हुआ नहीं और तुम लोगों को समझाने में ही निरंतर रत हो जाओ। तब जो हुआ है वह भी खो जाएगा। तब तो तुम एक दिन पाओगे कि प्रज्ञा तो नहीं जगी, तुम एक पंडित होकर रह गए हो।

तो बड़ा बारीक रास्ता है। बड़ा सम्हल कर चलना है। करुणा को बोना है, ताकि अंतिम क्षण में तुम ऐसे ही न लीन हो जाओ बिना कुछ दिए। इस जगत ने तुम्हें बहुत कुछ दिया है। इस जगत को वापस कुछ दे जाना जरूरी है। इस जगत में तुम बहुत दिन रहे हो। इस घर में बहुत दिन बसे हो। इसे आखिरी अनुग्रह के रूप में कुछ दे जाना जरूरी है। तुम ऐसे ही चुपचाप चोरी-छिपे विदा मत हो जाना। जहां इतने दिन रहे हो, जहां तुमने बहुत से दुष्कृत्यों की छापें छोड़ी हैं, जहां तुम्हारे बहुत से सुकृत्यों की भी छापें हैं, वहां तुम्हारे उस कृत्य की छाप भी छोड़ जाना जो न तो शुभ की है और न अशुभ की है, जो पारमार्थिक है, जो आत्यंतिक है। तुम एक झलक उसकी भी छोड़ जाना। इसलिए करुणा को साधना जरूरी है। और बताओ लोगों को, कहो।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, खड़े हो जाओ मकानों के छप्परों पर और चिल्ला कर कहो, क्योंकि लोग बहरे हैं। तुम जब बहुत चिल्ला कर कहोगे तभी शायद उनकी नींद में कोई खबर पहुंच पाए।

कहो! लेकिन होश बनाए रखना कि यह कहना ही सब कुछ नहीं है। नहीं तो तुम्हारी प्रज्ञा खो जाए और तुम कहने में ही लीन हो जाओ; तब तुम एक पंडित हो जाओगे, एक उपदेशक, लेकिन ज्ञानी नहीं। इसलिए बारीक और नाजुक है रास्ता। होश रखना है कि मेरी प्रज्ञा बढ़ती रहे, और होश रखना है कि मेरी करुणा भी साथ-साथ आरोपित होती रहे। ध्यान और करुणा दोनों साथ-साथ बढ़ें; एक उनमें संतुलन बना रहे।

यह तुमने अभी से शुरू किया तो ही हो पाएगा। जरा भी देर हो जाने के बाद... । क्योंकि हर चीज का मौसम है। और हर चीज का वक्त है, जब बीज बोए जा सकते हैं। वक्त के गुजर जाने पर फिर बीज नहीं बोए जा सकते। अगर तुम ध्यान में बहुत गहरे चले गए तो फिर बीज न बो सकोगे करुणा के। क्योंकि ध्यान का अर्थ है अपने में डूबना, और करुणा का अर्थ है दूसरे में थोड़ा रस कायम रखना। ध्यान का आखिरी अर्थ है कि दूसरा बचे ही न, तुम्हीं बचे; कोई न रहा, सब खो गया, तुम्हारा होना ही बचा। तो ध्यान अगर बहुत गहन हो जाए तो

करुणा का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि कोई दूसरा बचा ही नहीं। दूसरे का चिंतन भी नहीं उठता; विचार की आखिरी लकीर भी खो जाती है। इसके पहले कि दूसरा बिल्कुल खो जाए, तुम दूसरे से थोड़े से सेतु बना रखना।

वे सेतु माया के न हों। क्योंकि अगर वे माया के हों, मोह के हों, क्रोध के हों, मैत्री के, शत्रुता के हों, तो फिर तुम भीतर न जा सकोगे। सिर्फ एक ही संबंध है करुणा का जो तुम्हारे भीतर जाने में बाधा न बनेगा। इसलिए उसको हम आखिरी बंधन कहते हैं और स्वर्ण का बंधन कहते हैं। करुणा का एकमात्र सेतु है जो तुम्हें दूसरे से भी जोड़े रखेगा और अपने से तोड़ने का कारण नहीं बनेगा।

इसलिए करुणा की महिमा अपार है। उसमें क्रोध का गुण है उतना जितना कि दूसरे से संबंध है और उसमें अक्रोध का गुण है उतना जितना कि दूसरे को शुभ हो, मंगल हो, ऐसी भावना का संबंध है। करुणा--क्रोध और अक्रोध के मध्य में है। करुणा बड़ा गहरा संतुलन है। करुणा में मोह जैसा भाव है, क्योंकि दूसरे का हित हो जाए। लेकिन करुणा मोह जैसी नहीं है, क्योंकि दूसरे का हित हो ही जाए ऐसा आग्रह नहीं है। हो जाए, ऐसी भावना है। हो ही जाए, ऐसा आग्रह नहीं है। अगर हो जाए तो ठीक, अगर न हो तो कोई पीड़ा न होगी। एक उदासीनता भी है, एक रस भी है। करुणा दोनों के मध्य में है।

तो ध्यान अगर गहरा होता जाए तो तुम उदासीन हो जाओगे; फिर करुणा पैदा करना मुश्किल हो जाएगा। ध्यान के साथ-साथ करुणा को जगाए चलो। ताकि आखिरी घड़ी में तुम्हारा अनुभव सिर्फ तुम्हारा न हो, आखिरी घड़ी में तुम्हारे आनंद का उत्सव तुम्हारा ही न हो, और भी उसमें भागीदार हो सकें, दूसरे लोग भी साझीदार हो सकें।

इसलिए शुरू करो। और कहता हूं मैं भी तुमसे, घरों के छप्परों पर चढ़ कर, क्योंकि लोग बहरे हैं, तुम जब बहुत जोर से चिल्लाओगे तभी शायद वे सुनें। उनकी नींद हिलानी पड़ेगी। वे नाराज भी होंगे, क्योंकि किसी की भी नींद तोड़ो तो स्वाभाविक है नाराजगी। तो तुम उससे--उनकी नाराजगी से, उनकी अवहेलना से, उनकी उपेक्षा से--निराश मत हो जाना, हताश मत हो जाना। तुम कहे ही चले जाना।

तो तुम हजार को कहोगे तो शायद दस सुन सकेंगे। दस सुनेंगे तो शायद एक चल सकेगा। इसलिए तुम बीज जितने दूर-दूर तक फेंको, फेंकना। क्योंकि हजार बीज फेंकोगे तो शायद एक बीज फल तक पहुंच सकेगा।

और यह मत सोचो कि जब तुम पूरे हो जाओगे तब यह कर सकोगे। तब तुम न कर सकोगे। और यह भी याद रखो हर वक्त कि जब तुम दूसरे से कह रहे हो तब उस कहने में इतने मत भूल जाना कि तुम्हारा ध्यान, तुम्हारा आत्म-भाव, तुम्हारी आत्म-स्मृति खो जाए। दूसरे की सहायता करना स्वयं को खोए बिना।

अगर ऐसा लगे कि दूसरे की सहायता करने में स्वयं अनिवार्यतः खोता है तो फिर दूसरे की फिकर छोड़ देना। क्योंकि अंतिम बात, महत्वपूर्ण बात, आखिरी चुनने की बात तो तुम्हारे जीवन का ज्योतिर्मय हो जाना है। अगर साथ-साथ, लगे हाथ, किसी दूसरे पर भी रोशनी पड़ जाए तो ठीक, लेकिन उसे लक्ष्य मत बना लेना।

चौथा प्रश्नः कितने वर्षों से मन एक होने की बात सीखता है, पर वह एक देखता नहीं। अच्छी लगती हैं ज्ञान की बातें, पर मन करने को राजी नहीं होता। इतने वर्ष चले गए सुनने में, पर परिवर्तन नहीं आता। वही द्वेष और अलग-अलग रूप दिखाई देते हैं। हमें भी वह दृष्टि दें जैसा आप देखते हैं, जिससे आप देखते हैं।

अड़चन परिवर्तन की आकांक्षा में है। क्या जरूरत है परिवर्तन की? द्वेष है तो है। उस पर इतना ध्यान क्यों दे रहे हैं? उससे लड़ने की जरूरत क्या है? माना कि गुलाब के पौधे में कांटे हैं। पर उन कांटों पर इतना ध्यान देने

की जरूरत क्या है? फूल का ध्यान करें। और कांटे भी फूल की रक्षा के लिए हैं, कोई दुश्मन नहीं हैं। शुभ का फूल खिलाएं; अशुभ के कांटों की बहुत चिंता न करें। हैं तो हैं। राजी हो जाएं।

तो परिवर्तन आएगा। परिवर्तन चाहने से कभी परिवर्तन नहीं आता। परिवर्तन की चाह ही छोड़ दें। वह शिकायत शुभ नहीं, शोभा नहीं देती। प्रार्थना का भाव रखें, परिवर्तन का नहीं। परिवर्तन भी तो स्वयं को सजाने की ही आकांक्षा है--कि द्वेष न हो, कि क्रोध न हो, कि घृणा न हो। चरित्र हो चमकता हुआ, ज्योतिर्मय चरित्र हो। करुणा हो, अहिंसा हो, वीतरागता हो। यह आभूषणों की चाह भी क्यों? यह भी तो सजावट है। यह भी तोशृंगार की ही आकांक्षा है। यही चाह बाधा है। परिवर्तन की चाह ही परिवर्तन में बाधा है। मत चाहें।

तुमसे यह कहने को कोई दूसरा न मिलेगा। तुम जहां भी जाओगे लोग तुम्हें सिखाएंगे परिवर्तित होओ। छोड़ो क्रोध, यह बुरा है। छोड़ो काम, यह बुरा है। तुम जहां भी जाओगे लोग तुम्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित करेंगे। और तुम परिवर्तित न हो सकोगे। और मैं तुम्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित नहीं करता; क्योंकि मैं जानता हूं कि वही एकमात्र उपाय है परिवर्तन का। तुम सिर्फ राजी हो जाओ।

क्या करोगे वीतरागता का? राग है तो राग सही। जो उसकी मर्जी। परमात्मा तुमसे ज्यादा जानता है, इस भाव को गहन करो। और जो दे उसमें राजी रहो। चोर बनाए तो चोर, और बेईमान बनाए तो बेईमान, उसकी मर्जी। नाटक से ज्यादा मत समझो।

एक आदमी रावण बनता है नाटक में। तो क्या रोता है, चिल्लाता है कि मुझे राम बना दो? कि जाकर हाथ-पैर जोड़ता है कि मैं राम बनूंगा, रावण नहीं बन सकता? नहीं, इसकी कोई चिंता ही नहीं करता। क्योंकि सवाल रावण और राम बनने का नहीं है, सवाल अभिनय की कुशलता का है। रावण भी राम से बेहतर अभिनेता हो सकता है। तो प्रतिस्पर्धा वहां है। राम और रावण से क्या लेना-देना है? दोनों ही नाटक के पात्र हैं। दोनों ही कथानक के हिस्से हैं। बुरा भी कथा का हिस्सा है, भला भी कथा का हिस्सा है।

तुम्हें जो बना दिया, तुम्हें जो पात्र मिल गया पूरा करने को, उसे समग्रता से पूरा कर दो। वहीं से तुम्हारी धन्यता शुरू होगी। तुम कथा को बदलने का आग्रह मत करो। और तुम यह मत कहो कि मुझे यह बनाओ, मुझे वह बनाओ। मैं तो राम होना चाहता था; रावण बना दिया! तुम थोड़ा सोचो कि सभी राम होना चाहें--रामलीला खत्म। रामलीला चलती इसीलिए है, चल सकती इसीलिए है, कि कोई रावण भी बनने को राजी है।

इस जगत को एक बहुत बड़ा नाट्यघर समझो। इस पृथ्वी को समझो एक बड़ा मंच। जीवन को अभिनय से ज्यादा मत समझो। जो उसने दिया है उसे पूरा कर दो। उसे पूरे मन से पूरा कर दो। और तुम पाओगे, परिवर्तन हो गया। मैं तुमसे कहता हूं कि अगर रावण अपने पात्र को, अपने अभिनय को पूरा का पूरा कर दे तो राम हो गया। क्योंकि परिपूर्ण कुछ भी कर देने में परमात्मा प्रविष्ट हो जाता है। वह परिपूर्ण है। हम जब भी कुछ जीवन के हिस्से को पूरा का पूरा भाव से कर देते हैं, हम उससे जुड़ जाते हैं। और अगर राम भी बेमन से अभिनय कर रहे हों कि उन्हें कुछ रस न आ रहा हो, या उनकी भी कुछ इच्छा हो कि क्या जरूरत मुझे वनवास भेजने की चौदह वर्ष, यह मेरी सीता क्यों चुराई जाए, या इस तरह की बातें हों, तो राम भी रावण ही रह जाएंगे।

तो मेरी बात को ठीक से समझ लेना। अगर रावण भी पूरा कर दे कृत्य, बिना अपने को बीच में लाए, तो राम हो जाता है। अगर राम भी अपने कृत्य में ना-नुच करें, शिकायत करें, कहें कि थोड़ा यहां बदल दो कहानी को, तो राम भी राम होने से चूक जाते हैं। राम को जो दिया गया है रूप, जो पात्र होने का अभिनय मिला है, उसमें कोई मूल्य नहीं है। कैसे तुम उस पात्रता को निभाते हो, कितनी परिपूर्णता से, कितनी समग्रता से तुम निभाते हो, उस पर ही सब निर्भर है। वही गुणधर्म आना चाहिए।

तो मैं तुमसे कहूंगा, तुम राजी हो जाओ। परिवर्तन की जरूरत क्या है? तुम जैसे हो इतने भले हो, ऐसे सुंदर, तुम्हारी महिमा ऐसी है कि अब और क्या चाहिए? तुम्हें जो मिला है उसे तुम पूरा कर दो। दुकानदार हो, दुकानदार सही; संन्यासी की आकांक्षा मत करो। दुकान पर ही संन्यासी हो जाओगे। नौकर हो, नौकर; मालिक की आकांक्षा मत करो। अगर नौकर का भाव तुमने पूरा का पूरा प्रकट कर दिया तो तुम मालिक हो जाओगे। जंजीरें पड़ी रहें तुम्हारे हाथों पर, गुलामी तुम्हारा अभिनय हो, लेकिन अगर तुमने पूरे भाव से, समग्रता से कर दिया और तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सके बिना किसी शिकायत के, तो तुम्हारी स्वतंत्रता अबाध है। कोई जंजीर तुम्हें रोक नहीं सकती; तुम्हारी मालकियत असीम है।

तो मैं तुम्हें स्क्रिप्ट बदलने को नहीं कहता कि तुम कथानक बदलो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम स्वीकार करो। स्वीकार मेरा सूत्र है। और लाओत्से की भी सारी जीवन-दृष्टि स्वीकार की है।

और तुम चाहते हो, मेरी जीवन-दृष्टि तुम्हारी कैसे हो जाए।

यही रास्ता है। मैंने सब स्वीकार कर लिया है। मैं जैसा हूं, मैंने स्वीकार कर लिया है। फिर कोई कमी न रही। फिर सब भराव-भराव हो गया। फिर कोई रिक्तता न रही, सब पूर्णता हो गई। मैंने अपने में जरा भी फर्क नहीं किया है। इस राज को तुम ठीक से समझ लो। मैंने इंच भर भी कुछ अपने में कभी बदला नहीं है। जैसा था, मैं उससे राजी रहा हूं। उसी राजीपन से सब कुछ हो गया है।

अगर तुम मेरी जैसी जीवन-दृष्टि चाहते हो तो तुम्हें राजी होना पड़े। जो राजी है उसी को मैं आस्तिक कहता हूं। जो ना-राजी है उसी को मैं नास्तिक कहता हूं। ईश्वर को मानने न मानने का कोई सवाल आस्तिकता-नास्तिकता का नहीं है। आस्तिक वह है जो सारे जीवन को हां कह सकता है। और नास्तिक वह है जो कहता है--नहीं। नहीं में नास्तिकता है, हां में आस्तिकता है।

आखिरी सवालः लाओत्से कहते हैं कि संत ही किसी देश का शासन करने की योग्यता रखते हैं। लेकिन कथा है कि उनके ज्ञानी शिष्य च्वांग्त्से ने उन्हें देश का प्रधानमंत्री बनाने का चीनी सम्राट का प्रस्ताव ठुकरा दिया था। लाओत्से के वचन की दृष्टि से तो सम्राट का प्रस्ताव सही है और च्वांग्त्से की अस्वीकृति गलत मालूम होती है, जब कि सब संत च्वांग्त्से के कृत्य की सराहना करने से नहीं थकते। संत के वचन और कृत्य के इस विरोधाभास पर प्रकाश डालें।

कथा है कि लाओत्से का शिष्य च्वांग्त्से नदी के किनारे बैठा मछली मार रहा था। उसके ज्ञान की खबर लोक-लोकांतर में पहुंच गई थी। सम्राट ने अपने वजीर भेजे कि वे च्वांग्त्से को पकड़ लाएं; जहां भी हो, खोज लाएं; उसे प्रधानमंत्री बनाना है।

सम्राट निश्चित लाओत्से के वचन पढ़ता रहा होगा। और संत शासक हो, यह बात उसे जंची होगी। अन्यथा च्वांग्त्से की कौन तलाश करता? लाओत्से तो चल बसा था इस संसार से, च्वांग्त्से मौजूद था। और ठीक उसी हैसियत का आदमी था। इंच भर फर्क नहीं। च्वांग्त्से यानी लाओत्से। ठीक वही भाव-दशा थी।

वजीर खोजते हुए आए। पहले तो बड़ी मुश्किल पता लगाने की हुई कि च्वांग्त्से कहां है। क्योंकि च्वांग्त्से तो आवारा फकीर था। आज इस गांव, कल दूसरे गांव। क्योंकि लाओत्से ने उससे कहा था, ज्यादा देर एक जगह मत रुकना। क्योंकि लोग जब जान लेते हैं, प्रसिद्धि फैल जाती है। लोग जब मानने लगते हैं कि तुम कुछ बहुत विशिष्ट हो, उसके पहले वहां से हट जाना। जहां लोग तुम्हें न जानते हों वहीं रहना। क्योंकि वहीं तुम साधारण

रह सकोगे। तो वह एक गांव से दूसरे गांव चलता रहता था। बामुश्किल तो वजीर पता लगा पाए। फिर उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि च्वांग्त्से जैसा आदमी और मछली मारता मिलेगा।

लाओत्से के शिष्य बड़े अनूठे हैं, बड़े असाधारण। क्योंकि उन्होंने एक बड़ी अदभुत कला सीखी है, वह है साधारण होने की कला। वे साधारण आदमी से भिन्न कुछ भी नहीं करते। फिर साधारण आदमी मछली मारता तो च्वांग्त्से भी मछली मारता। कहीं अपने को विशिष्ट करके खड़ा नहीं करता। और यह बड़ी गहरी बात है। कभी भी यह नहीं कहता कि यह बुरा है, वह भला है। जैसा साधारण आदमी जीता है, वैसा जीता है। साधारणता ही उसकी साधना है।

वजीर पहुंचे और उन्होंने च्वांग्त्से को कहा कि हम निमंत्रण लाए हैं सम्राट का, प्रसन्न हो जाओ। तुम्हारे भाग्य कि प्रधानमंत्री बनाने को सम्राट राजी है। चलो राजधानी!

च्वांग्त्से वैसे ही बैठा रहा अपनी बंसी हाथ में लिए। उसने कहा कि मैंने सुना है--उसके चेहरे पर कोई भाव-परिवर्तन न हुआ, मछली के मारने का काम जारी रहा--उसने कहा, मैंने सुना है कि राजमहल में एक कछुआ है तीन हजार साल पुराना। और उस कछुए की पूजा की जाती है, और विशेष पर्वों पर उसे निकाला जाता है स्वर्ण के रथों में। और खुद सम्राट उसके चरणों में झुकता है। और वह सोने के पात्र में रखा गया है। और उसके ऊपर हीरे-जवाहरात जड़े हुए हैं। लेकिन मैं तुमसे यह पूछता हूं कि देखो, वह नदी के किनारे पर एक कछुआ मिट्टी के गड्ढे में कीचड़ में अपनी पूंछ हिला रहा है। अगर तुम इस कछुए से कहो कि तू राजमहल का सोने की पेटी में बंद कछुआ होना चाहेगा या तू मिट्टी में अपनी पूंछ हिलाना ही पसंद करता है, तो यह कछुआ क्या कहेगा?

वजीरों ने कहा कि साफ है कि कछुआ कहेगा कि मैं मिट्टी में ही अपनी पूंछ हिलाऊंगा। क्योंकि जीवित हूं।

तो च्वांग्त्से ने कहा, यही मेरी भी खबर सम्राट से कह देना कि मैं भी मिट्टी में ही पूंछ हिलाना पसंद करता हूं। कम से कम जीवित हूं।

यह कथा है। तो प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि लाओत्से कहता है कि शासक संत को होना चाहिए, और यह मौका सम्राट ने खुद दिया था च्वांग्त्से को, तो अपने गुरु का वचन मान कर उसे शासक हो जाना था। और एक मौका था कि वह दिखाता कि संत का शासन कैसे होता है। तो इसमें तो ऐसा लगता है कि च्वांग्त्से ने अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया इनकार करके। सम्राट ही लाओत्से के ज्यादा अनुकूल मालूम पड़ता है बजाय च्वांग्त्से के।

नहीं! च्वांग्त्से बिल्कुल अनुकूल है। बहुत सी बातें समझनी जरूरी हैं।

पहली बात, सम्राट प्रधानमंत्री बनाना चाहता था, शासक नहीं। अगर सम्राट ने ठीक से लाओत्से को समझा होता तो वह कहता कि तुम हो जाओ सम्राट, मैं तुम्हारा सेवक। च्वांग्त्से सेवक ही रहता, शासक नहीं होने वाला था। प्रधानमंत्री नौकर है। आज लिया, कल अलग किया। कोई शासक होने वाला नहीं था। वह गुलाम ही रहता। सम्राट ही उसे चलाता। और जैसा सम्राट कहता वैसा उसे करना पड़ता। और कोई भी ज्ञानी पुरुष अज्ञानी पुरुष की आज्ञाएं मान कर चलने को राजी नहीं हो सकता; क्योंकि वह बात ही बेहूदी है। अगर सम्राट बनाने का आमंत्रण होता तो कथा दूसरी होती। निमंत्रण सम्राट होने का नहीं था। वह सम्राट समझ नहीं पाया। लाओत्से को पढ़ता होगा, समझ नहीं पाया। प्रधानमंत्री बनाने के लिए बुलाने की बात ही गलत थी।

फिर दूसरी बात। लाओत्से कहता है, संत वही है जिसके मन में शासक होने की इच्छा नहीं है।

अब जरा हम गहरे जल में उतरते हैं। क्योंकि यह विरोधाभास हो गया। लाओत्से कहता है, संत वही है जिसकी शासक की कोई इच्छा नहीं है, शासक होने की। दूसरों के ऊपर मालकियत करने की जिसकी कोई आकांक्षा नहीं, वही संत है।

अगर लाओत्से की बात ठीक है तो च्वांग्त्से ने इनकार करके ठीक किया। इससे उसने जाहिर किया कि उसके मन में शासक होने की कोई इच्छा नहीं है। और शासकों को वह मुर्दे समझता है, मरे हुए, चाहे वे सिंहासनों पर बैठे हों। उनसे बेहतर तो वह समझता है एक कछुए को जो कीचड़ में पूंछ हिला रहा है और मस्त है, जो अपने स्वभाव में जी रहा है और मस्त है। च्वांग्त्से ने खबर दी कि वह पहुंच चुका है संतत्व को; कोई आकांक्षा नहीं है। कोई दूसरा होता तो फेंक कर बंसी उठ कर खड़ा हो जाता कि जल्दी करो, कहां चलना है!

शासक होने की कोई आकांक्षा नहीं है, यह संत का लक्षण है। सम्राट अगर सच में ही लाओत्से को समझता था, तो च्वांग्त्से को इतनी आसानी से छोड़ नहीं देना था। क्योंकि च्वांग्त्से ने तो सिर्फ खबर दी थी अपनी भाव-दशा की। सम्राट को भागा हुआ जाना था इसके चरणों में, गिर पड़ना था चरणों में। तो कथा दूसरी होती। लेकिन च्वांग्त्से ने इतना कहा, फिर कोई पता नहीं कि कहानी का क्या हुआ। फिर दुबारा कभी सम्राट के आदमी न आए। च्वांग्त्से जैसे आदमी को निमंत्रण करना हो तो आदमियों को नहीं भेजना चाहिए निमंत्रण पर। सम्राट की अकड़ है वह। च्वांग्त्से जैसी महाप्रतिभा को लाना हो तो सम्राट को खुद आना था। और यह खबर पाकर तो आना ही था।

अब तुम समझ लो बात को। अगर च्वांग्त्से राजी हो जाता तो वह संत ही न था। सम्राट राजी हो गया उसके इनकार को, वह लाओत्से को समझा ही न था। तब कथा बिल्कुल दूसरी होती। और संत को बुलाने के ये ढंग नहीं हैं। क्योंकि संत का अर्थ है परम स्वतंत्रता। यही वह कह रहा है कि एक कछुआ परम स्वतंत्रता में भी ठीक है; अपना स्वभाव तो है। तुम मुझे वजीर बनाना चाहते हो, बड़ा वजीर सही, लेकिन हो तो जाऊंगा गुलाम। तुम चलाने लगोगे मुझे, तुम बताने लगोगे क्या करना उचित है, क्या करना उचित नहीं है। तुम्हारे रीति-नियम मुझे चलाने लगेंगे। और मेरा उपयोग इतना ही हो सकता है कि मेरी जीवन-चेतना तुम्हें चलाए।

यह नहीं होने वाला था। इसलिए दुबारा सम्राट ने फिकर न की। इनकार हो गया, बात खत्म हो गई। इनकार से तो समझना था कि यह आदमी सच में ही बहुमूल्य है। स्वीकार कर लेता तो बेकार था। अगर लाओत्से की बात मान कर च्वांग्त्से चला जाता तो बेकार था। तुम्हें एक कहानी कहूं, उससे तुम्हें समझ में आ सके।

एक झेन फकीर मर रहा था। उसने अपने एक शिष्य को पास बुलाया। उसके हजारों शिष्य थे। और उसने इस शिष्य को कहा कि देखो, मैं मर रहा हूं। और मेरे गुरु ने मरते वक्त मुझे यह शास्त्र दिया था जिसे मैंने जीवन भर सम्हाल कर रखा है। और तुम भी जानते हो कि यह हमेशा मेरे तकिए के पास रखा रहता है। इसे मैंने अपने प्राणों की संपदा समझी। इसमें हमारे प्राचीन गुरुओं के सब अनुभव लिखे हैं। और इसमें मैंने मेरे अनुभव भी संयुक्त कर दिए हैं। इसे तुम सम्हाल कर रखना। यह बहुमूल्य थाती है; खो न जाए!

शिष्य ने कहा, व्यर्थ की बातचीत न करो। जो मुझे पाना था वह मैंने बिना शास्त्र के पा लिया है। इस कचरे को तुम्हीं रखो। शिष्य ने ऐसा कहा!

गुरु ने कहा, यह अभद्रता है। और जब मैं तुम्हें आज्ञा दे रहा हूं, मरता हुआ गुरु, तो तुम्हें इस तरह की बात शोभा नहीं देती। शास्त्र को सम्हालो! क्योंकि मैं मर रहा हूं, अब कौन सम्हालेगा इसको?

शिष्य ने हाथ में शास्त्र ले लिया; पास में जलती थी आग, सर्द रात थी, उस आग में फेंक दिया।

गुरु प्रसन्न हुआ, आनंदित हुआ। और उसने कहा कि अगर तुम सम्हाल कर रख लेते तो मैं समझता सब खो गया, मेरी मेहनत बेकार गई। और अब मैं तुम्हें बता देता हूं, उस शास्त्र में कुछ भी न था, वह कोरी किताब है। मेरे

गुरु ने मुझे धोखा दिया; उनके गुरु ने उन्हें धोखा दिया; मैं तुझे देने की कोशिश कर रहा था। उसमें कुछ है नहीं। किसी ने कुछ लिखा नहीं है। क्योंकि एक ही तो अनुभव हैः आखिरी कोरापन। जिस दिन तुम कोरी किताब हो गए उस दिन तुम शास्त्र हो गए। और तूने आज भला किया कि तूने आग में फेंक दिया। अगर तू जरा भी चूक जाता और सम्हाल कर रख लेता तो मैं बड़ा दुखी मरता। अब मैं तेरे साथ अपना शास्त्र छोड़े जा रहा हूं। तूने ठीक से बचा लिया। जो बचाने योग्य था वह बचा लिया; जो फेंकने योग्य था वह फेंक दिया।

लाओत्से जरूर प्रसन्न हुआ होगा, उसकी आत्मा आनंदित हुई होगी, जब च्वांग्त्से ने कह दिया कि जाओ, भाग जाओ, मैं भी इस कछुए की भांति अपने स्वभाव, अपनी साधारणता में मस्त हूं। तुम्हारे राजमहलों में मरे हुए मुर्दे रहते हैं, जिंदों का वहां वास नहीं। तुम किसी मरे हुए आदमी को खोज लो। मेरी वहां क्या जरूरत है?

नहीं, च्वांग्त्से लाओत्से के विपरीत नहीं जा रहा है, ठीक अनुसरण कर रहा है। अगर चला जाता तो लाओत्से की आत्मा रोती।

संतत्व का शासन साधारण शासन जैसा शासन नहीं है। वह ऊपर से आरोपित नहीं किया जाता। कोई राजा किसी संत को बिठाल दे वजीर बना कर तो कोई संत का शासन नहीं हो जाता। शासन तो राजा का ही रहेगा। वह संत की महिमा का भी उपयोग कर लेगा अपनी राजनीति में।

संत का शासन तो शासित के हृदय से आता है; कोई उसे आरोपित नहीं कर सकता। जिन्हें संत से शासित होना है वे स्वयं ही दूर-दूर की यात्रा करके चले आते हैं। वह शासन अंतर्हृदय का है। वह समर्पण से फलित होता है। तुम खुद ही आकर कह देते हो कि अब मुझे शासन दो। तुम खुद ही अपने को समर्पित कर देते हो। तब च्वांग्त्से इनकार नहीं करता। तब वह तुम्हें स्वीकार कर लेता है।

जिस दिन तुम उसके सामने झुक जाते हो, उसी दिन--उसी दिन उसका होना, उसका अस्तित्व तुम्हारे रूपांतरण में संलग्न हो जाता है। वह कोई कृत्य नहीं है संत के लिए कि वह कुछ करके तुम्हारा रूपांतरण करता है। उसका होना ही पर्याप्त है। तुम झुको भर, गंगा तो बह ही रही है। तुम जरा झुको भर और प्यास को बुझा लो।

आज इतना ही।

सौवां प्रवचन

कृष्ण में राम-रावण आलिंगन में हैं

Chapter 60

Ruling A Big Country

Rule a big country as you would fry small fish.
Who rules the world in accord with Tao,
shall find that the spirits lose their power.
It is not that the spirits lose their power,
But that they cease to do people harm.
It is not (only) that they cease to do people harm,
The Sage (himself) also does no harm to the people.
When both do not do each other harm,
The original character is restored.

अध्याय 60

बड़े देश की हुकूमत

एक बड़े देश की हुकूमत ऐसे करो जैसे कि तुम छोटी मछली भूंजते हो।
जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है,
उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं।
यह नहीं कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो देती हैं,
लेकिन वे लोगों को कष्ट देना बंद कर देती हैं।
इतना ही नहीं कि वे लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती हैं,
संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।
जब दोनों एक-दूसरे की हानि नहीं करते,
तब मौलिक चरित्र पुनःस्थापित होता है।

कुछ बातें सूत्र के पूर्व।

एक ऐसा शुभ है जो अशुभ के विपरीत साधा जाता है। जैसे कोई करुणा को साधे क्रोध के विरोध में, अहिंसा को साधे हिंसा के विरोध में, सत्य को साधे असत्य के विरोध में। जिसका विरोध होगा, वह भी भीतर दबा हुआ सदा मौजूद रहेगा। विरोध से कोई छुटकारा नहीं है। विरोध से बड़ी नासमझी नहीं है। क्योंकि विरोध का अर्थ है, मैं क्रोधी हूं और अक्रोध को मैंने अगर आदर्श बना लिया, तो अक्रोध को अपने आचरण में ऊपर से थोपूंगा, क्रोध को भीतर-भीतर दबाए जाऊंगा। ऐसी घड़ी भी आ जाएगी कि कोई भी दूसरा पहचान न सके कि मैं क्रोधी हूं। लेकिन मैं अपने सामने तो क्रोधी ही रहूंगा। यह भी हो सकता है कि मेरे व्यवहार में क्रोध की झलक भी न आए, लेकिन मेरी अंतरात्मा में क्रोध ही क्रोध उबलेगा।

दमन से कुछ मिटाया नहीं जाता; दमन से तो मन और भर जाता है। इसलिए जो ब्रह्मचर्य को साधेगा कामवासना के विरोध में, जितनी कामवासना उसके मन में होगी उतनी तुम कामी से कामी व्यक्ति के भीतर न पाओगे। तुम्हारे साधु जितने क्रोधी हैं उतने तुम साधारणजनों को क्रोधी न पाओगे। और तुम्हारे साधुओं की आंखों से जैसी हिंसा झलकेगी वैसी तुम सैनिक की आंखों में भी न पाओगे जो कि हिंसा का ही व्यवसाय करता है।

अक्सर तो उलटा देखने में आता है। अगर तुम गौर से देखोगे तो शिकारी को तुम बड़ा सीधा-सादा पाओगे, जो कि खेल में हिंसा कर रहा है, जिसने हिंसा को कोई मूल्य ही नहीं दिया है, जो हिंसा में मजा ले रहा है। शिकारी को तुम सीधा-सादा पाओगे। शिकारियों के संबंध में सभी लोगों का अनुभव है कि वे बड़े मिलनसार होते हैं। अगर तुम कारागृह में जाओ, अपराधियों को देखो, तो उनकी आंखों में तुम्हें बच्चों जैसी झलक दिखाई पड़ेगी। अपराधी बहुत जटिल नहीं होता, बहुत साफ-सुथरा होता है। शायद इसीलिए अपराधी हो गया कि तुम जैसा चालाक नहीं है। शायद इसीलिए अपराध में पड़ गया कि चालाक समाज की चालाकी न सीख पाया। चालाक भी अपराध करते हैं, लेकिन उनका अपराध व्यवस्थित होता है, उनके अपराध के पीछे कानून का सहारा होता है। सीधा-सादा आदमी अपराध करता है, तत्क्षण फंस जाता है।

अपराधी की आंखों में भी तुम्हें बच्चों जैसी झलक मिलेगी। लेकिन वैसी झलक तुम्हारे मंदिरों में बैठे हुए साधुओं में न मिलेगी। साधु बहुत जटिल होगा।

अपराधी सरल हो सकता है। क्योंकि अपराधी ने कुछ दबाया नहीं है। अपराधी बुरा है, दुर्जन है, लेकिन सरल है। साधु सज्जन है, किसी की बुराई नहीं करता, लेकिन बड़ा कांप्लेक्स और बड़ा जटिल है। उसकी सरलता तो ऊपर से थोपी हुई है। और भीतर ठीक विपरीत, भीतर ठीक उससे उलटा आदमी छिपा है। इसलिए उसका प्रत्येक कृत्य दोहरा है। और जहां दोहराव है वहीं जटिलता खड़ी हो जाती है। साधु चालाक है। सीधे-सादे आदमी को तो साधु होना मुश्किल है। क्योंकि वह हजार दूसरी झंझटों में पड़ जाएगा सीधा-सादा आदमी। और इतनी बड़ी चालाकी नहीं कर सकता, इतना बड़ा पाखंड नहीं कर सकता।

जीसस अपने शिष्यों से बार-बार कहे हैं कि जब तक तुम्हारी नैतिकता तथाकथित सज्जनों से ऊंची न होगी तब तक तुम अपने को नैतिक मत समझना। जब तक तुम्हारा बोध पंडित के बोध से ज्यादा न हो तब तक तुम उसे ज्ञान मत समझना। और अगर तुम्हारी सच्चरित्रता पाखंडियों जैसी ही हो तो उसका दो कौड़ी मूल्य है; तुम मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न पा सकोगे।

क्या फर्क है पाखंडी की नैतिकता में?

पाखंडी की नैतिकता ऊपर-ऊपर है; वह केवल आचरण मात्र है। उसके पीछे अंतस का हाथ नहीं है। अंतस विपरीत खड़ा है। इसलिए वह कर कुछ रहा है, है कुछ और; होने में और करने में बड़ा फासला है। एक बात।

दूसरी बात ध्यान रखनी चाहिए कि जो व्यक्ति भी जीवन को अपने ही विपरीत साधेगा वह आत्म-हिंसा भी करेगा और पर-हिंसा भी करेगा। वह अपने को भी जबरदस्ती तोड़ेगा-मरोड़ेगा। और जो अपने को तोड़ेगा-मरोड़ेगा वह दूसरे को भी छोड़ नहीं सकता। इसलिए तथाकथित साधु अपने शिष्यों के साथ हजार तरह की हिंसा करेंगे। वह हिंसा तुम्हें दिखाई भी न पड़ेगी, क्योंकि वह शिष्यों के हित में ही करेंगे।

तुम्हें समझ में आ सके इसलिए मैं गांधी का उदाहरण दूं। क्योंकि तुम गांधी से ज्यादा सज्जन आदमी न पा सकोगे इस सदी में। अति सज्जन हैं वे। लेकिन ध्यान रखना, सज्जन और संत का अंतर। उनकी सज्जनता बड़ी ऊंची है, लेकिन उसके भीतर वह सब छिपा है जो उन्होंने आचरण में थोपा है। लाओत्से अगर गांधी को देखता तो हंसता। वह हंसा था कनफ्यूशियस पर, क्योंकि कनफ्यूशियस उस समय गांधी जैसे आदमी थे।

अफ्रीका के फीनिक्स आश्रम में गांधी कस्तूरबा से भी पाखाना साफ करवाना चाहते थे। बात में कुछ बुराई नहीं है। क्योंकि यही तो मजा है, सज्जन की बात तो बिल्कुल तर्कयुक्त और सीधी मालूम पड़ेगी। क्योंकि वे कहते, पाखाना तुम करते हो तो फेंकेगा कोई दूसरा क्यों? तो न केवल अपना, बल्कि पूरे आश्रम के दिन बंटे हुए थे कि एक-एक दिन लोग पाखाने को फेंकें। कस्तूरबा के लिए यह कठिन था। उसकी पूरी दीक्षा, संस्कार इसके अनुकूल न थे। वह इतने तक राजी थी कि मैं अपना पाखाना फेंक दूं। लेकिन मैं किसी दूसरे का फेंकने के लिए राजी नहीं हूं। एक रात यह कलह इतनी बढ़ गई, क्योंकि गांधी कहते कि तुम दूसरे को दूसरा क्यों समझती हो! पाखाना फेंकना ही पड़ेगा। यह कलह इतनी बढ़ गई कि रात दो बजे गांधी ने कस्तूरबा का हाथ खींच कर आश्रम के बाहर निकाल दिया। कस्तूरबा गर्भवती थी, नौ महीने का गर्भ था। अंधेरी रात दो बजे उसे आश्रम के बाहर घसीट कर बाहर कर दिया।

इस सज्जनता में बड़ी हिंसा छिपी हुई मालूम पड़ती है। और तुम अपनी धारणा को दूसरे पर थोपना क्यों चाहो? तुम्हारी धारणा अच्छी भी हो तो तुम्हारे लिए है। इससे क्रोध क्यों उठे? और जब भी कोई अपनी धारणा दूसरे पर आरोपित करना चाहता है तो वह एक बड़ी सूक्ष्म हिंसा कर रहा है।

तुम दूसरे के सामने निवेदन कर सकते हो, तुम अपना मनोभाव प्रकट कर सकते हो; मानना न मानना दूसरे की मर्जी है--चाहे वह दूसरा पत्नी ही क्यों न हो। पत्नी भी तुम्हारी गुलाम नहीं है। और पत्नी को भी अपने जीने के ढंग की स्वतंत्रता है। अगर वह तुमसे राजी नहीं है तो क्रोधित होने का कोई कारण नहीं है। और क्रोध इस सीमा तक चला जाए, इस अति तक चला जाए, तो कठिनाई होती है।

लेकिन सज्जन हमेशा अति पर चला आएगा। सज्जन कभी मध्य में नहीं रह सकता। उसको अति पर जाना ही होगा। क्योंकि अगर वह मध्य में रहे तो खुद के भीतर जो दबा है वह बाहर आ जाएगा। यह मन की आंतरिक व्यवस्था है कि अगर तुम्हें किसी चीज को दबाना है तो तुम्हें बिल्कुल मतांध होकर दबाना पड़ेगा। अगर तुमने थोड़ी सी भी उदारता बरती तो तुम अपने को दबा न सकोगे। क्योंकि जब तुम दूसरे के साथ उदारता बरतोगे तो अपने साथ भी उदारता बरतोगे।

इस क्रोध में ऐसा लगता है कि भीतर तो कहीं गांधी को भी पाखाना फेंकने का मन नहीं है, जबरदस्ती फेंक रहे हैं। और यह कस्तूरबा उपद्रव खड़ा कर रही है। कस्तूरबा के विरोध में गांधी का इतना क्रोधित हो जाना अपने ही भीतर दबे हुए मन के विरोध में क्रोधित होना है। और इसलिए पत्नी पर वे ज्यादा क्रुद्ध हुए होंगे, क्योंकि पत्नी बहुत निकट है। वह तुम्हारा अचेतन जैसा है; तुम्हारे बहुत करीब है।

गांधी के सभी बच्चे मुश्किल में जीए। गांधी का एक बेटा हरिदास तो मुसलमान हो गया, शराबी हो गया, जुआरी हो गया--गांधी के कारण। क्योंकि अतिशय हो गई हर बात। हरिदास चाहता था कि पढ़ने जाए, शिक्षित

हो। लेकिन गांधी शिक्षा के विपरीत थे। वे कहते थे, यह शिक्षा तो बिगाड़ती है। तो बस आश्रम में ही पढ़ो-लिखो, जो भी पढ़-लिख सकते हो।

बाप को भी यह हक नहीं है बेटे के ऊपर अपनी धारणा को थोपने का। लेकिन सज्जन बाप दुष्ट होता है। सज्जन बाप यह देखता ही नहीं कि बेटे की भी कोई आकांक्षाएं हैं, अभिलाषाएं हैं। और वह स्वतंत्र है अपनी आकांक्षाओं-अभिलाषाओं में। अगर वह गलत भी है तो भी स्वतंत्र है।

फिर हरिदास को हर छोटी-छोटी चीज पर बाधा थी। आश्रम में खाने-पीने पर नियंत्रण था; मिठाई नहीं लाई जा सकती, शक्कर नहीं लाई जा सकती, चाय नहीं पी जा सकती, आइसक्रीम नहीं खाई जा सकती। कुछ भी नहीं किया जा सकता। छोटे बच्चे छोटे बच्चे हैं। चोरी की शुरुआत हो गई। तो हरिदास बाहर जाकर चोरी से चीजें खाने लगा। फिर यह चोरी पकड़ी जाने लगी। फिर हरिदास को इसके लिए दंड मिलने लगा। यह संघर्ष घना हो गया। एक ऐसी घड़ी आ गई जहां कि बेटे को बाप से बिल्कुल टूट जाना पड़ा। और प्रतिशोध में वह शराब पीने लगा। और आखिरी प्रतिशोध में वह मुसलमान हो गया।

जब गांधी को खबर मिली कि हरिदास मुसलमान हो गया और उसने अपना नाम अब्दुल्ला गांधी कर लिया तो उनको बड़ी चोट लगी। जब हरिदास को वापस खबर मिली कि गांधी को पता चला तो उनको चोट लगी तो वह बहुत हंसा। उसने कहा, चोट का क्या सवाल है? वे तो कहते हैं, हिंदू-मुसलमान सब एक ही हैं। मैं तो उनकी ही बात मान कर चल रहा हूं। इसमें चोट क्यों लगती है? और अगर चोट लगती है तो उनको खुद अपनी बात पर भरोसा नहीं है कि हिंदू-मुसलमान एक ही हैं। अगर सच में ही एक ही हैं तो क्या फर्क पड़ता है हिंदू रहे कि मुसलमान रहे!

गांधी कहते तो हैं कि हिंदू-मुसलमान एक ही हैं, लेकिन गांधी पक्के हिंदू हैं। इसलिए वे किसी और को धोखा दे पाएं, मुसलमान को धोखा नहीं दे पाए। गहरे में हिंदू हैं। गीता को माता कहते हैं, कुरान को तो माता या पिता नहीं कहते। और एक बड़ी चालाकी है बात में। कुरान में उन-उन चीजों की वे प्रशंसा करते हैं जिनका गीता से मेल है; कुरान के वे हिस्से काट डालते हैं जिनका गीता से मेल नहीं है। यह कौन सी प्रशंसा हुई? यह तो कुरान में भी गीता की ही प्रशंसा हुई। जहां कुरान गीता के विपरीत है वहीं सवाल है। ऐसे तो मुसलमान भी गीता की प्रशंसा कर देता है। लेकिन उन्हीं हिस्सों की प्रशंसा करता है जो कुरान का ही अनुवाद मालूम पड़ते हैं; बाकी हिस्सों को छोड़ देता है। ऐसे तो जैन भी प्रशंसा कर देता है।

यह एक बहुत अनूठा प्रयोग हो। अगर जैनों से कहा जाए कि तुम सभी धर्मों में जो सार-धर्म है उसको संगृहीत करके बताओ; मुसलमानों से कहा जाए, हिंदुओं से, बौद्धों से। तो तुम पाओगे, वे जो सारभूत निकालेंगे वह सबका अलग-अलग होगा। क्योंकि जैन यह तो मानता ही है कि सत्य तो महावीर के पास है। अब यह हो सकता है कि उसकी प्रतिध्वनि कुरान में भी कहीं हो थोड़ी-बहुत। लेकिन प्रतिध्वनि! उतनी दूर तक हम कुरान की भी प्रशंसा करेंगे।

लेकिन पूरे कुरान की प्रशंसा गांधी के बस की बात नहीं है। हिंदू भीतर है। हिंदू को दबाया हुआ है। ऊपर से वे कहते हैं कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, पर गहरे में तो राम ही बैठा है। इसलिए मरते वक्त जब गोली लगी तो अल्लाह नहीं निकला। जब गोली लगी तो राम--हे राम--की आवाज निकली। जो गहरे में दबा था वही तो मरते वक्त निकलेगा। उस वक्त अल्लाह खो गया। उस वक्त बुद्ध-महावीर की कोई याद न आई। उस घड़ी में धोखा भी तो नहीं दिया जा सकता। मौत की घड़ी में, आदमी के भीतर जो छिपा है, वही तो प्रकट होगा। तो राम की आवाज निकली।

व्यक्ति अपने को ऊपर से दबा ले तो अपने साथ तो आत्म-हिंसा करता ही है, उसी अनुपात में, जो उसके पास हों, उनके साथ भी हिंसा करता है। इसलिए तुम गुरुओं को पाओगे कि वे शिष्यों को करीब-करीब मार डालते हैं। उनका काम ही यही है कि शिष्य को बिल्कुल मिटा दें। और जब शिष्य बिल्कुल नकली हो जाए, न के बराबर हो जाए, तभी वे समझते हैं कि आज्ञा का पालन हुआ, दीक्षा पूरी हुई।

एक तो शुभ है जो हम अशुभ से लड़ कर निर्मित करते हैं; लाओत्से इसको शुभ नहीं कहता। एक दूसरा शुभ भी है जो हम अशुभ से लड़ कर नहीं, अशुभ से एक गहन सामंजस्य स्थापित करके उपलब्ध करते हैं। रात और दिन को हम लड़ाते नहीं। लड़ाने में भूल है; क्योंकि लड़ाई वहां हो नहीं रही है। रात और दिन एक ही अस्तित्व के हिस्से हैं। फूल और कांटे को हम लड़ाते नहीं। लड़ाने में भ्रांति है; क्योंकि फूल और कांटे एक ही जीवन-धार से निकले हैं। शुभ और अशुभ को हम लड़ाते नहीं; शुभ और अशुभ को हम एक संगीत और सामंजस्य में बांधते हैं। एक ऐसी व्यवस्था लाते हैं जिसमें शुभ अशुभ को तोड़ता नहीं, बचाता है; जहां शुभ अशुभ के विपरीत नहीं होता, बल्कि अशुभ की ही पूर्णाहुति होता है; जहां अंधेरा और प्रकाश मिल जाते हैं; और जहां शैतान और ईश्वर में कोई विरोध नहीं रह जाता।

लाओत्से कहता है, जब ऐसे शुभ की दशा आ जाए तभी तुम समझना कि मौलिक स्वभाव उपलब्ध हुआ। क्योंकि स्वभाव में कोई संघर्ष नहीं हो सकता। और तभी तुम शांत हो सकोगे, उसके पहले नहीं। तब न तो तुम किसी को दबाओगे, न अपने को दबाओगे। तब तुमने सारे स्वरों को सजा लिया, और सारे स्वरों के बीच जो तनाव था वह विसर्जित कर दिया, और सारे स्वरों को एक लयबद्धता में बांध लिया।

एक पागल आदमी उन्हीं शब्दों को बोलता है जिनको एक संगीतज्ञ भी गीत में बांधता है। शब्दों में कोई भेद नहीं है; वही अल्फाबेट है। लेकिन पागल आदमी के बोलने में और संगीतज्ञ के गीत में क्या फर्क है? शब्द वही हैं; व्यवस्था का भेद है। संयोजन अलग-अलग है।

तुम भी वही शब्द बोलते हो और एक कवि भी वही शब्द बोलता है। भेद क्या है? तुम शब्दों के बीच संगीत को नहीं खोजते; कवि शब्दों के बीच संगीत को खोजता है। शब्दों को इस भांति जमाता है कि शब्द गौण हो जाते हैं, लयबद्धता प्रमुख हो जाती है। शब्द केवल सहारे हो जाते हैं लयबद्धता को प्रकट करने के। शब्द तो तुम्हें भूल भी जाएंगे, लेकिन लयबद्धता तुम्हारे भीतर गूंजती रह जाएगी। जितना बड़ा संगीतज्ञ हो उतनी ही बड़ी उसकी कला होती है--विरोध के बीच सामंजस्य स्थापित कर लेने की।

विरोध के बीच अविरोध को खोज लेना ही परम ज्ञान है। और जहां-जहां तुम्हें विरोध दिखाई पड़े, अगर तुम लड़ने में पड़ गए तो तुम सदा अधूरे रहोगे। अगर तुम्हारे संतत्व में केवल शुभ ही रहा और अशुभ को तुमने काट डाला तो तुम्हारा संतत्व मुर्दा रहेगा, या बेस्वाद। उसमें नमक न होगा। अगर तुम्हारे संतत्व में तुम्हारे भीतर का शैतान समाविष्ट हो गया हो, अगर तुम्हारे संतत्व ने शैतान का विरोध न किया हो, बल्कि शैतान को आत्मसात कर लिया हो, तुम्हारा दिन तुम्हारी रात को पी गया हो, और दोनों एक ही नदी के दो कूल-किनारे रह गए हों, जरा भी विरोध न हो, तभी तुम पूरे हो सकोगे। तभी तुम टोटल, समग्र हो सकोगे।

सज्जन अधूरा है; दुर्जन अधूरा है। संत पूरा है। पूरे का मतलब क्या है कि वहां सज्जन और दुर्जन का जो भी दंश था वह खो गया, सज्जन-दुर्जन का जो विरोध था वह विलीन हो गया। वहां सज्जन और दुर्जन गले लग गए, आलिंगन में आबद्ध हो गए।

इसलिए हिंदुओं ने बड़ी गहरी खोज की है, और वह गहरी खोज यह है कि हमने परमात्मा में सब कुछ समाविष्ट किया है। ईसाई तो भरोसा ही नहीं कर पाते, यहूदी विश्वास नहीं कर पाते, पारसी मान ही नहीं सकते

कि यह कैसी हिंदुओं की ईश्वर की धारणा है! हिंदू कहते हैं, ईश्वर के तीन मुख हैं, वह त्रिमूर्ति है। उनमें एक विष्णु है, एक ब्रह्मा है, एक शिव है। उसमें ब्रह्मा तो जन्मदाता है, सृजनात्मक है, वह क्रिएटिव फोर्स है। उसमें विष्णु सम्हालने वाला है, व्यवस्था को बनाए रखने वाला है। और शिव विध्वंस है, वह डिस्ट्रक्टिव फोर्स है। और ये तीनों चेहरे एक के ही हैं। वहां विध्वंस और सृजन दोनों मिल गए हैं। वहां कोई विरोध नहीं रह गया बुरे और भले में। वहां सब समाविष्ट हो गया है। और तब एक अपरिसीम ऊंचाई आती है।

तुम ऐसा ही समझो कि जैसे तुम कपड़ा बुनते हो ताने-बाने से। ताने-बाने एक-दूसरे के विपरीत रखने पड़ते हैं। तो ही तो कपड़ा बनता है। तुम अगर ताने ही ताने से कपड़ा बुन दो तो कपड़ा बनेगा ही नहीं। तुम अगर बाने ही बाने से कपड़ा बुन दो तो भी कपड़ा न बनेगा। दोनों ही अधूरे रहेंगे। दोनों को मिला दो, वह जो विरोध है ताने-बाने का उस विरोध को तुम संयुक्त कर दो--उस विरोध पर ही तो कपड़ा निर्मित होता है।

राजगीर भवन बनाना है तो विपरीत ईंटों को दरवाजे पर जोड़ देता है। उनके विपरीत के तनाव में ही तो दरवाजे की ताकत है; उस पर ही तो भवन खड़ा होगा।

तुम्हारा सज्जन एकतरफा जुड़ी हुई ईंटें है। यह भवन गिरेगा। तुम्हारा दुर्जन भी एकतरफा है, यह भवन भी गिरेगा। एक ताना है, एक बाना है; एक काला है, एक सफेद है। लेकिन तुम दोनों को जोड़ दो। और दोनों के विरोध को विरोध में मत खड़ा करो; दोनों के विरोध को एक सामंजस्य बना लो। तब तक भवन बनेगा जो मजबूत है।

संत ऐसा भवन है जहां बुराई और भलाई दोनों एक ही तत्व में लीन हो गई हैं। ऐसे संत से किसी का अहित नहीं होता, क्योंकि ऐसे संत के भीतर कोई घृणा ही नहीं रह जाती, कोई हिंसा नहीं रह जाती, कोई क्रोध नहीं रह जाता, कोई तनाव नहीं रह जाता। ऐसा संत तुम्हें बदलना भी नहीं चाहता। ऐसे संत के पास तुम बदल जाओ, यह तुम्हारी मर्जी। ऐसा संत तुम्हारे पीछे आग्रहपूर्वक नहीं चलता। ऐसा संत तुम्हें तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहता। ऐसा संत तुम्हारे विरोध में नहीं है। और ऐसा संत तुम्हारे ऊपर खड़े होकर तुम्हारी निंदा, तुम्हारा तिरस्कार भी नहीं करता। तुम गलत भी हो तो भी तुम्हें नरक भेजने की आकांक्षा उसके भीतर नहीं उठती, क्योंकि वह जानता है, गलत भी स्वर्ग की सीढ़ी पर उपयोग में आ जाता है। क्योंकि वह जानता है कि इस अस्तित्व में तिरस्कार योग्य कुछ भी नहीं है। क्योंकि वह जानता है, सभी चीजों का उपयोग हो जाता है, और सभी चीजें उस परम संगीत में सहयोगी हैं। इनमें से कुछ भी हट जाए... ।

तुम थोड़ा सोचो; एक बच्चा पैदा हो जो बिना क्रोध का हो। क्योंकि ऐसा बच्चा पैदा किया जा सकता है। क्रोध के हार्मोन हैं, वे काटे जा सकते हैं। जैसे कि सेक्स के हार्मोन हैं। एक नपुंसक बच्चा पैदा होता है। नपुंसक व्यक्ति की तकलीफ क्या है? और नपुंसक का इतना हीन-भाव क्या है?

नपुंसक के भीतर स्त्री-पुरुष के ताने-बाने नहीं हैं। साधारण पुरुष के भीतर स्त्री भी छिपी है। साधारण स्त्री के भीतर पुरुष भी छिपा है। वे ताने-बाने हैं। कोई पुरुष न तो पुरुष है अकेला और न कोई स्त्री अकेली स्त्री है। सभी दोनों का जोड़ हैं। होना ही चाहिए। क्योंकि तुम अपनी मां और बाप के जोड़ से पैदा हुए हो। आधा तुम्हारे बाप का हाथ है, आधा तुम्हारी मां का। तुम्हारे आधे सेल पिता से आए हैं, आधे मां से। आधा तुम्हारे भीतर पुरुष है, आधा तुम्हारे भीतर स्त्री है। फर्क इतना ही है। जैसे एक सिक्के के दो पहलू होते हैं; एक सिक्के का पहलू ऊपर होता है, एक नीचे दबा होता है। अगर तुम पुरुष हो, तुम्हारी स्त्री पीछे छिपी है। अगर तुम स्त्री हो, तुम्हारा पुरुष पीछे छिपा है। इसलिए तो वैज्ञानिक कहते हैं कि हार्मोन के परिवर्तन से स्त्री को पुरुष बनाया जा सकता है, पुरुष को स्त्री बनाया जा सकता है। जरा सिक्के को पलटने की बात है। कुछ अड़चन नहीं है। और भविष्य में यह घटना

बढ़ेगी। बहुत से प्रयोग हो गए हैं। बहुत से पुरुष स्त्रियां हो गए हैं, बहुत सी स्त्रियां पुरुष हो गई हैं। भविष्य में यह अनुपात बढ़ता जाएगा। क्योंकि जब कोई ऊब जाएगा पुरुष होने से तो स्त्री हो जाना पसंद करेगा। जब कोई ऊब जाएगा स्त्री होने से तो पुरुष हो जाना पसंद करेगा। स्वतंत्रता और भी खुल जाएगी। तो तुम दोनों अनुभव कर सकते हो जीवन में।

नपुंसक की तकलीफ क्या है? न तो वह स्त्री है, न वह पुरुष है। उसके भीतर ताना-बाना नहीं है। उसके भीतर तनाव नहीं है। तनाव में शक्ति है। उसके भीतर कोई विरोध नहीं है जिसको जोड़ कर संगीत पैदा किया जा सके। इसलिए वह दीन है। इसलिए वह दया योग्य है। एक अर्थ में वह है ही नहीं; वह सिर्फ दिखाई पड़ता है कि है। उसका व्यक्तित्व एक धोखा है। क्योंकि व्यक्तित्व की गरिमा दो विरोधों के बीच पैदा हुए तनाव और शक्ति और ऊर्जा से आती है।

हम एक बच्चा पैदा कर सकते हैं जिसमें क्रोध न हो। वह बच्चा जी न सकेगा। और अगर जीएगा भी तो बड़ा दयनीय होगा। जिस बच्चे में क्रोध न हो उसमें गरिमा न होगी। उसमें तेज न होगा। उसमें चमक न होगी। उसमें प्रतिरोध की क्षमता न होगी। वह बिना रीढ़ का होगा। वह सांप की तरह सरकेगा जमीन पर, मनुष्य की तरह खड़ा न हो सकेगा। रेंग सकेगा, चल न सकेगा। दौड़ना तो असंभव है। और अगर उसमें क्रोध न हो तो उसके भीतर अस्मिता पैदा न होगी। मैं हूं, यह भाव पैदा न होगा। अहंकार का जन्म न होगा। और जिसमें अहंकार ही न जन्मा वह अहंकार का समर्पण कैसे करेगा? जो तुम्हारे पास है ही नहीं उसे तुम छोड़ोगे कैसे? उसके जीवन में परमात्मा की कभी कोई अनुभूति न हो सकेगी।

फर्क को ठीक से समझ लेना। एक भिखारी रास्ते पर खड़ा है। बुद्ध भी रास्ते पर खड़े हैं भिखारी की तरह। लेकिन तुम यह मत समझना कि वे दोनों एक ही हैं। उनमें गुणात्मक भेद है। एक ने साम्राज्य छोड़ा है; एक ने अभी पाया नहीं। और जिसने साम्राज्य छोड़ा है उसके भिखारीपन में भी सम्राट की आभा होगी। जिसने सब जान लिया है, और इसलिए छोड़ दिया है, उसके छोड़ने में एक परम संतोष होगा, एक अनुभव का प्रकाश होगा। वह प्रौढ़ हो गया है; सम्राट पीछे छूट गया है। इसलिए हम उसे भिखारी नहीं कहते हैं।

हमने भिखारी के लिए दो शब्द चुने हैं। उसको हम भिक्षु कहते हैं। भिक्षु और भिखारी बड़े अलग-अलग शब्द हैं। भिखारी वह है जिसकी वासनाएं जीवित हैं; जो चाहता तो सम्राट होना है, लेकिन नहीं हो पा रहा; जिसकी आकांक्षा तो समृद्धि की है, लेकिन असफल है। उसके भीतर एक विषाद है, एक हताशा है। यह भी हो सकता है, वह अपने मन को समझा ले कि क्या रखा है संपत्ति में और क्या रखा है महलों में! ऐसे बहुत से भिखारी भिक्षु बने भी बैठे हुए हैं, जो सोचते हैं, क्या रखा है महलों में! लेकिन जब तक तुम्हारे मन में यह सवाल उठता है कि क्या रखा है महलों में, तब तक तुम अपने को समझा रहे हो और तुमने महल जाने नहीं। तुम कंसोलेशन, सांत्वना कर रहे हो।

एक जैन मुनि अपना गीत पढ़ कर मुझे सुना रहे थे। सुनने वाले बड़ी प्रशंसा से भर गए। गीत अच्छा था। लेकिन गीत से मुझे प्रयोजन नहीं था; जो उसमें कहा था वह बड़ा बेहूदा था। लेकिन न जैन मुनि को ख्याल था, न उनके सुनने वालों को ख्याल था। गीत था, एक संन्यासी के भाव गीत में प्रकट थे कि मुझे तुम्हारे महलों से कोई सरोकार नहीं। तुम्हारे तख्तोताज मेरे लिए दो कौड़ी के हैं। तुम्हारा स्वर्ण मेरी इस धूल जैसा है।

मैंने उनसे पूछा, इसको गीत में लिखने की जरूरत क्या है? अगर सच में ही तुम्हें ताज और सिंहासन से कोई मतलब नहीं है तो गीत लिख कर समय क्यों खराब किया? और अगर सच में ही सोना धूल जैसा है तो कहने की जरूरत नहीं है। कोई भी तो नहीं कहता कि धूल धूल जैसी है। नहीं, तुम्हें सोना सोना जैसा ही है, और तख्त

और ताज का तुम्हें कोई रस है। फिर बड़े मजे की बात यह है कि तुम इसमें कहते हो कि मुझे तुम्हारे महलों से कुछ भी लेना-देना नहीं, मेरे लिए उनका मूल्य दो कौड़ी का है। लेकिन तुमसे कह कौन रहा है कि तुम महलों में आओ? तुम किससे यह बात कर रहे हो?

और बड़ा आश्चर्य यह है कि साधुओं ने, संन्यासियों ने इस तरह के गीत लिखे हैं, सम्राटों ने कभी नहीं लिखे। सम्राट को लिखना चाहिए कि मुझे तुम्हारी धूल से कोई प्रयोजन नहीं; तुम्हारा झोपड़ा मेरे लिए दो कौड़ी का है; रहे आओ तुम, मेरी कोई प्रतिस्पर्धा नहीं। सम्राट लिखते नहीं यह बात। संन्यासी क्यों लिखता है? साधु क्यों लिखता है?

न, यह भिखारी है, भिक्षु नहीं है। आकांक्षा तो इसकी भी महल में होने की है। अब यह अपने दंभ को किसी तरह भर रहा है कि नहीं, तुम्हारा महल दो कौड़ी का है। अगर दो कौड़ी का ही है तो दो कौड़ी के महल पर यह गीत क्यों लिख रहे हो? और सुनने वाले जो चारों तरफ बैठे हैं--जो उतने ही अंधे हैं जितने उनको चलाने वाले--वे सब सिर हिला रहे हैं कि बड़ी गजब की बात है। क्योंकि वे भी भिखमंगे हैं, उनको भी इससे राहत मिलती है। उनको भी लगता है कि हां, रखा क्या है महल में!

इसलिए नहीं कि महल में कुछ रखा नहीं है। तुमने कहानी सुनी है लोमड़ी की जो अंगूरों तक न पहुंच सकी। क्योंकि अंगूर बड़े ऊंचे थे, छलांग बड़ी छोटी थी। लेकिन लोमड़ी का भी अहंकार यह मानने को नहीं होता कि मैं पहुंच नहीं सकी। जब वह वहां से वापस लौटने लगी और एक खरगोश ने उससे पूछा कि क्या हुआ मौसी? तो उसने कहा, अंगूर खट्टे हैं, खाने योग्य नहीं।

जिन अंगूरों तक तुम पहुंच नहीं पाते वे खट्टे हो जाते हैं। उनके खट्टेपन में तुम अपने अहंकार को बचा लेते हो, अपने दंभ को सम्हाल लेते हो।

भिखारी कहता है, अंगूर खट्टे हैं; बुद्ध जानते हैं। वह सांत्वना नहीं है, वह अनुभव है। इसलिए बुद्ध के भीतर सम्राट की प्रतिभा है। भिखारी सिर्फ दीन-हीन है। बुद्ध का भिखारीपन बड़ा समृद्ध है। बुद्ध के भिखारीपन में बड़ा साम्राज्य छिपा है। भिखारी के हाथ में सिर्फ खाली पात्र है, उसमें कुछ छिपा नहीं है। उसमें सिर्फ वासना के इंद्रधनुष टूटे पड़े हैं, सपने उजड़े पड़े हैं; एक हताशा है, एक दीनता है। फिर अपनी दीनता को छिपाने की वह कोशिश कर रहा है।

अगर तुम एक ऐसा बच्चा पैदा कर सको जिसमें क्रोध न हो तो तुम पाओगे उसमें रीढ़ नहीं है। वह जीवन में खड़ा ही न हो सकेगा। उसमें अस्मिता भी न जगेगी। उसका अहंकार भी निर्मित न होगा। और जिसका अहंकार निर्मित न हो गया हो वह समर्पण नहीं कर सकता। वास्तविक समर्पण तभी आता है जब तुम्हारे भीतर बड़ा प्रगाढ़ अहंकार होता है। जैसे कि वास्तविक भिक्षु तुम तभी बनते हो जब तुम सम्राट रह चुके हो।

इसलिए तुम्हें मेरी बात बड़ी उलटी लगेगी। मैं चाहता हूं कि पहले तुम अपने अहंकार को निर्मित करो, सबल करो, शक्तिशाली करो। लड़ो संसार से, अपने व्यक्तित्व को संगठित करो। एक इंटीग्रेशन, एक क्रिस्टलाइजेशन तुममें आ जाए; तुम एक मजबूत अहंकार के बिंदु हो जाओ। उसके बाद ही समर्पण संभव है। क्योंकि जो तुम्हारे पास है ही नहीं, उसे तुम छोड़ोगे कैसे? जो तुमने कभी पाया ही नहीं, उसका विसर्जन कैसे करोगे?

आधा जीवन आदमी को अहंकार संयोजित करने में लगाना चाहिए, और आधा जीवन विसर्जित करने में। और जब संयोजित करना और विसर्जित करना दोनों संयुक्त हो जाते हैं तब तुम्हारे जीवन में विरोध के बीच सामंजस्य, संगीत का जन्म होता है।

नहीं, क्रोध भी जरूरी है, अहंकार भी जरूरी है। इसलिए दबाना मत, काटना मत। नहीं तो तुम अपंग हो जाओगे। जैसे हाथ को काट दे कोई, आंख को काट दे कोई, तो शरीर अपंग हो जाता है। ऐसे ही क्रोध को कोई काट दे, काम को कोई काट दे, लोभ को कोई काट दे, तो आत्मा अपंग हो जाती है। सभी कुछ अनिवार्य है।

इसका मतलब यह नहीं है कि तुम क्रोध में ही जीते रहना। इसका मतलब यह है कि तुम क्रोध में खोज करना कि कैसे करुणा का जन्म हो सके, क्रोध में कैसे करुणा का जन्म हो सके, कैसे करुणा क्रोध को समाविष्ट कर ले, कैसे क्रोध की ऊर्जा और शक्ति करुणा में लीन हो जाए, करुणा बन जाए।

महावीर निश्चित ही बहुत क्रोधी रहे होंगे। नहीं तो इतनी बड़ी अहिंसा पैदा नहीं हो सकती थी। और इसमें कारण साफ दिखाई पड़ता है। बुद्ध भी बड़े क्रोधी रहे होंगे। नहीं तो इतनी बड़ी महाकरुणा कहां से पैदा होती? और इसीलिए जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। क्योंकि क्षत्रियों से बड़ा क्रोधी खोजना मुश्किल है। बुद्ध भी क्षत्रिय हैं। एक भी तीर्थंकर ब्राह्मण नहीं हुआ, बनिया नहीं हुआ। कारण है। क्योंकि अगर अहिंसा का जन्म होना हो तो महाक्रोध से ही हो सकता है। और क्षत्रियों से ज्यादा महाक्रोधी तुम नहीं खोज सकते हो।

क्रोध की ऊर्जा को बदलो।

कुछ ही समय पहले, आकाश में बिजली कौंधती थी और आदमी सिर्फ डरता था और कंपता था। अब हम उसी बिजली को घर में बांधे हुए हैं। वही बिजली तुम्हारा पंखा चलाती है। गर्मी हो तो शीतलता देती है; शीतलता हो तो गर्मी देती है। वही बिजली चाकर की तरह, नौकर की तरह काम में संलग्न है चौबीस घंटे। यह वही बिजली है जिससे वेद के ऋषि घबड़ा रहे थे। यह वही बिजली है जिसको वे सोच रहे थे कि इंद्र नाराज होकर भेज रहा है। यह वही बिजली है जो आकाश में कड़कती थी तो छाती कंप जाती थी। वही बिजली नौकर हो गई।

आज तुम सोच भी नहीं सकते, अगर बिजली खो जाए तो सभ्यता कहां होगी? थोड़ी देर सोचो, अगर बिजली अचानक खो जाए तो तुम दस हजार साल पीछे एकदम गिर जाओगे। इससे कम नहीं। तुम वहीं पहुंच जाओगे जहां आदमी ने सभ्यता की शुरुआत की थी। आज सारी सभ्यता और संस्कृति का आधार बिजली है।

कोई तीन वर्ष पहले अमरीका में कुछ आटोमैटिक यंत्रों की भूल से--अमरीका चार हिस्सों में बंटा है बिजली के हिसाब से, चार केंद्र हैं--एक केंद्र की बिजली गड़बड़ हो गई तो सैकड़ों नगरों की बिजली चली गई तीन दिन तक। और जो अनुभव वहां हुए, किसी ने सोचे भी न थे। क्योंकि बिजली क्या चली गई सारा जीवन चला गया। बिजली नहीं तो पानी मिलना बंद हो गया। बिजली नहीं तो लोग पचास-पचास ऊपर की मंजिल में कैद हो गए; नीचे आना मुश्किल हो गया। बिजली नहीं तो ट्रेनें बंद हो गईं। बिजली नहीं तो सब ठप्प हो गया। दस हजार साल पीछे तीन दिन के लिए पूरी व्यवस्था गिर गई। गांव उजाड़ मालूम पड़ने लगे। सब तरफ सन्नाटा हो गया। सब शोरगुल, सब चहल-पहल सब विदा हो गई। सब दफ्तर बंद हो गए। सब दुकानें बंद हो गईं। उन तीन दिनों में अमरीका के उस हिस्से में जो अनुभव हुआ वह अनुभव ऐसा हुआ कि जैसे कि अब बिजली हमारा प्राण है।

कभी यह बिजली हमारी दुश्मन थी, शत्रु की तरह कौंधती थी। और वेद के ऋषि प्रार्थना करते हैं, हे इंद्र, कृपा कर! यज्ञ करते हैं, आहुति चढ़ाते हैं, ताकि तू नाराज न हो जाना, बिजली मत भेज देना। जिस बिजली से मौत आती थी वह अब जीवन का आधार हो गई।

ठीक ऐसी ही घटना मनुष्य के भीतर भी घटती है। जिस क्रोध से तुम्हें लगता है जीवन दुखपूर्ण है, वही क्रोध करुणा बन जाता है। जिस कामवासना से तुम्हें लगता है कि जीवन नरक हो गया है, वही कामवासना

ब्रह्मचर्य की परम अनुभूति बन जाती है। एक बात ध्यान रख लेना तो लाओत्से का सूत्र तुम्हें सहज ही समझ में आ जाएगा कि जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। अगर तुम्हें पता न चल रहा हो तो जल्दी मत करना।

बीस साल पहले तक शरीरशास्त्री, फिजियोलाजिस्ट कहते थे कि मनुष्य के मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल बेकार है, किसी काम का नहीं। क्योंकि कुछ काम समझ में नहीं आता था। बहुत से शरीर के हिस्से शरीरशास्त्री यों ही काट देते हैं, सर्जन ऐसे ही अलग कर देता है, कि यह बेकार है। टांसिल का कोई उपयोग नहीं, निकालो, जितनी जल्दी बने निकाल डालो। जरा सी गड़बड़ हुई कि टांसिल अलग कर दो। एपेंडिक्स का कोई उपयोग ही नहीं है; काट कर फेंक दो।

लेकिन यह हो कैसे सकता है कि एपेंडिक्स है और बिना उपयोग के हो? नहीं तो होगी क्यों? अस्तित्व किसी चीज को किस लिए पैदा कर लेगा? जहां इतनी व्यवस्था है, जहां अस्तित्व इंच-इंच किसी बड़े गहन नियम के अनुसार चल रहा है, अस्तित्व कोई अराजकता नहीं है, जहां इतना सूक्ष्म तत्व मनुष्य का मन पैदा हो गया है, वहां कोई चीज अकारण होगी, व्यर्थ होगी?

हां, अगर अस्तित्व एक्सीडेंटल होता, सिर्फ एक संयोग मात्र होता, तो ठीक था।

लेकिन विज्ञान भी मानता है कि अस्तित्व संयोग मात्र नहीं है। अगर संयोग मात्र हो तब तो विज्ञान को बनाने का उपाय ही नहीं है फिर! कि संयोग का क्या भरोसा? विज्ञान तो जीता ही इस भरोसे पर है कि अस्तित्व एक गहन नियम से चल रहा है। उस नियम की खोज पर तो सारे विज्ञान का आधार है, कि हम उसको खोज लेंगे। तो बस सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, यह नियम है। अगर यह संयोग हो तो पूना में हो जाए सौ डिग्री पर, बंबई में न हो। हिंदुस्तान में हो जाए कि चलो, यह धार्मिकों का देश है, सौ डिग्री पर हो जाओ; रूस में न हो, कि नास्तिकों के देश में तीन सौ डिग्री पर होंगे गरम। संयोग नहीं है। सौ डिग्री पर गरम होता है; नियम है। नियम की आस्था तो सारे विज्ञान का आधार है। और तुम विज्ञान से ज्यादा आस्थावान दूसरी कोई चीज न पाओगे। क्योंकि सारी आस्था इस पर है कि जगत दुर्घटना नहीं है, संयोग नहीं है, एक्सीडेंट नहीं है।

जब पूरा अस्तित्व एक किसी गहन नियम से चलता है तो मनुष्य के भीतर भी कुछ भी अकारण नहीं हो सकता। यह हो सकता है, हमें पता न हो। आज नहीं कल एपेंडिक्स का प्रयोजन पता चलेगा। आज नहीं कल टांसिल्स का प्रयोजन पता चलेगा।

मस्तिष्क का आधा हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा है। तो वैज्ञानिक बीस साल पहले तक कहता था, इसका कोई प्रयोजन नहीं है, एक्सीडेंटल है। लेकिन अब उसका प्रयोजन पता चलना शुरू हुआ है। इधर बीस वर्षों में जो खोज-बीन हुई है मस्तिष्क पर उससे पता चलता है कि जीवन में जितनी चमत्कारी बातें दिखाई पड़ती हैं उन सबमें उस मस्तिष्क के हिस्से का काम है जिसका हमें कोई अर्थ पता नहीं चलता। कोई आदमी दूसरे के विचार पढ़ लेता है, तब वह हिस्सा सक्रिय हो जाता है जो साधारणतया निष्क्रिय पड़ा है। या कोई आदमी, जैसे रूस में एक महिला है मिखालोवा, वह बीस फीट दूर की चीजों को भी प्रभावित कर देती है। बीस फीट दूर से खड़े होकर किसी चीज को हाथ से खींचना चाहे तो वह चीज सरकती हुई चली आती है। उस पर बड़े प्रयोग हुए हैं रूस में कि वह कैसे कर रही है! बहुत सी बातें जाहिर हुईं। एक बात खास जाहिर हुई कि जब वह यह करती है तब उसका वह मस्तिष्क का हिस्सा काम करता है जो साधारणतः काम नहीं करता।

तो इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन में जो भी परा-मनोवैज्ञानिक, पैरा-साइकोलाजिकल घटनाएं हैं--वे सामान्य नहीं हैं, कभी-कभी कोई आदमी कर पाता है--वे सदा उस मस्तिष्क के हिस्से से होती हैं जो साधारणतः बेकार पड़ा है। उसको काट मत देना। क्योंकि उसमें ही तुम्हारी सारी परा-मनोवैज्ञानिक क्षमताएं छिपी पड़ी हैं।

और आज नहीं कल हम उपाय खोज लेंगे कि ये परा-मनोवैज्ञानिक क्षमताएं भी सिखाई जा सकें और तुम्हारे मस्तिष्क का वह हिस्सा काम करने लगे।

कुछ आदिवासी जातियों में वह हिस्सा काम करता हुआ मालूम पड़ता है। तो आस्ट्रेलिया में एक छोटा सा कबीला है। वैज्ञानिक बड़े चकित हुए हैं कि उसका वह हिस्सा काम करता है। और जो हमारा हिस्सा काम कर रहा है वह उसका काम नहीं करता। मगर वह बड़ा चमत्कारी कबीला है। उसके बड़े गहरे अनुभव हैं जो कि समझ के बाहर हैं। उस कबीले के पास कोई भाषा नहीं है, कोई लिखने की लिपि नहीं है। लेकिन उस कबीले के गांव में बीच में वे एक वृक्ष लगाते हैं। उस वृक्ष का उपयोग वे मंदिर की तरह करते हैं। समझो कि किसी का बेटा शहर गया है कुछ खरीदने और बाप को बाद में याद आया कि मैं यह तो कहना भूल ही गया कि तुम फलां चीज खरीद लाना। तो वह उस वृक्ष के पास जाता है। उस वृक्ष के पास आंख बंद करके खड़ा हो जाता है। और बेटे को संदेश देता है बोल कर कि बेटा, यह चीज मैं भूल गया, तू यह और ले आना।

इस पर कोई दस साल से अध्ययन चल रहा है। और हर मौके पर बेटे को संदेश पहुंच जाता है। लेकिन उस वक्त यह भीतर का मस्तिष्क काम कर रहा है जो साधारणतः काम नहीं करता। उस जाति का वह मस्तिष्क बड़ी तीव्रता से काम कर रहा है।

इजरायल में एक आदमी है, ऊरी। वह दस फीट की दूरी से सिर्फ हाथ के इशारे से किसी भी चीज को तोड़-मरोड़ देता है। चम्मच रखी है दस फीट की दूरी पर, वह सिर्फ हाथ का इशारा करता है, चम्मच मुड़ कर गोल हो जाती है। ऐसे उसने हजारों प्रयोग किए। बड़ा, सबसे बड़ा चमत्कारी प्रयोग तो हुआ, लंदन में पिछले वर्ष टेलीविजन पर उसने यह दिखाया। टेलीविजन पर उसने दस-पचास चीजें टेबल पर रखी हुई दूर से खड़े होकर हाथ के इशारों से मरोड़ दीं, तोड़ दीं। जैसे कि साधारणतः तुम जिस चम्मच को हाथ से भी नहीं घुमा सकते उसे वह दूर से खड़े होकर घुमा देता। पर यह तो ठीक ही था, संयोगवशात एक और बड़ी घटना घटी कि जो लोग टेलीविजन देख रहे थे, उनके घर में कई चीजें तोड़ी-मरोड़ी हो गईं--हजारों। टेलीविजन देख रहे थे लाखों लोग, उनके घरों में, जैसे कि टेलीविजन बैठे देख रहे हैं और टेबल पर कोई गमला रखा है, वह एकदम बिना किसी कारण के आड़ा-तिरछा हो गया।

इस आदमी का वह मस्तिष्क काम कर रहा है जो साधारणतः काम नहीं करता। जिस दिन विज्ञान इसको ठीक से समझ लेगा उस दिन यह हमारा सबसे महत्वपूर्ण मस्तिष्क सिद्ध होने वाला है। संभवतः इसी मस्तिष्क में योग की, पतंजलि की सारी सिद्धियां छिपी हैं। शायद इसी मस्तिष्क को सक्रिय करने के सारे योग के साधन हैं, प्रक्रियाएं हैं। शायद ध्यान की गहनता में यही मस्तिष्क सबसे पहले सक्रिय हो जाता है, और चमत्कार शुरू हो जाते हैं।

मैं यह इसलिए कह रहा हूं, ताकि तुम्हें समझ में आ सके कि जीवन में कुछ भी अकारण नहीं है। तुम्हारा क्रोध, तुम्हारा लोभ, तुम्हारा मोह, कुछ भी अकारण नहीं है। उसका उपयोग करना है। अशुभ का भी उपयोग कर लेना है। तब अशुभ भी शुभ हो जाता है। और अगर तुमने शुभ का भी उपयोग न किया तो वह भी सड़ जाता है और अशुभ हो जाता है। जीवन की सारी कला एक बात में है कि कैसे जो तुम्हें मिला है उस सबको तुम एक लयबद्धता में बांध लो।

अब हम इस सूत्र को समझें।

"एक बड़े देश की हुकूमत ऐसे करो जैसे कि एक छोटी मछली भूंजते हो। रूल ए बिग कंट्री एज यू वुड फ्राय ए स्माल फिश।"

छोटी मछली भूंजना एक कला है। बड़ा सावधान होना जरूरी है। क्योंकि मछली इतनी छोटी है कि अगर तुम जरा ही ज्यादा भूंज दो तो जल जाएगी। अगर जरा ही कम भूंजो तो कच्ची रह जाएगी। लाओत्से यह कह रहा है कि जीवन को शासित करना, अनुशासित करना, अपने या दूसरे के, बड़ा नाजुक मामला है--छोटी मछली भूंजने जैसा नाजुक। जरा अति हो गई कि भूल हो जाएगी। अतिशय से बचना।

एक ही चीज बचने जैसी है और वह है अति। और मन की पूरी वृत्ति ऐसी है कि वह अति पर जाना पसंद करता है। या तो तुम ज्यादा खाओगे या उपवास करोगे। या तो दिन भर होटल में बैठे हुए पाओगे या उरली कांचन चले जाओगे। बीच में न रुकोगे। या तो भोग में पागल रहोगे या त्याग में पागल हो जाओगे। बीच में न रुकोगे। घड़ी के पेंडुलम की तरह हो; या तो बाएं जाओगे या दाएं जाओगे; बीच में न ठहरोगे।

और लाओत्से कहता है, बीच में ठहर जाना ही वह नाजुक कला है। कभी अति पर मत जाओ। सभी अतियां गलत हैं। क्योंकि अति पर जाने का अर्थ ही यह हुआ कि तुम किसी चीज के विपरीत जा रहे हो।

अगर तुम्हारे मन में क्रोध है तो अति है कि तुम कसम खा लो कि मैं कभी क्रोध न करूंगा। अब यह अति हो गई। अब तुम क्रोध के दुश्मन होकर बैठ गए। जिसके तुम दुश्मन हो गए उसका उपयोग कैसे करोगे? जिससे झगड़ा मोल ले लिया अब तुम उसे संजोओगे कैसे? संगीत कैसे बनाओगे उसका? अब तो तुमने पीठ कर ली। अब तुमने एक अंग काटने की कसम खा ली। तुम पंगु हो जाओगे।

इसलिए धर्म के नाम पर कुछ लोग अंधे हो गए हैं, कुछ लोग लंगड़े होकर बैठे हैं, कोई लूला हो गया है, कोई बहरा हो गया है। धर्म के नाम पर लोग अंगों को काट रहे हैं; उनका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं।

अति पर तुम गए कि विरोध शुरू हुआ। कामवासना जीवन में है; तुम ब्रह्मचर्य की कसम ले लो। फिर तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि यह अति हो गई। और अति पर कोई भी ज्यादा देर तक नहीं रह सकता। घड़ी का पेंडुलम भी अति तक जाता है कि फिर लौटता है। मध्य में ही कोई सदा रह सकता है, लेकिन अति पर कोई सदा नहीं रह सकता। तुम कोशिश करो घड़ी के पेंडुलम पर कि एक कोने पर, अति पर वह रुक जाए। कैसे रुकेगा? हां, बीच में अगर रोक दो तो रुक सकता है। वहां शाश्वत विश्राम हो सकता है।

मध्य शाश्वत विश्राम है। अति, छोर तो परिवर्तन है। वहां से तो जाना पड़ेगा। सुख एक अति है; दुख एक अति है। इसीलिए तो ज्यादा देर तुम दुखी भी नहीं रह सकते, ज्यादा देर सुखी भी नहीं रह सकते। सुख भी आएगा और जाएगा। दुख भी आएगा और जाएगा। लेकिन अगर तुम दोनों के मध्य ठहर जाओ। उस मध्य के ठहरने को हमने शांति कहा है, संतोष कहा है। वह न सुख है, न दुख। वह दोनों के ठीक बीच में रुक जाना है। बड़ी नाजुक कला है। और जरा सा ही तुम मध्य से इधर-उधर हुए कि अड़चन शुरू हो जाएगी। इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं, खड्ग की धार है, रेजर्स एज; इधर गिरे तो कुआं है, उधर गिरे तो खाई है। मध्य में मार्ग है।

बुद्ध ने अपने मार्ग को नाम दिया हैः मज्झिम निकाय, दि मिडल वे। और लाओत्से की सारी शिक्षा गोल्डन मीन, मध्य में रुक जाने की है। इसको वह कहता है, छोटी मछली को भूंजने की कला। जरा इधर-उधर हुए कि भटके। ठीक मध्य में रहे तो ही मछली बचेगी। तो ही ज्यादा न भुंजेगी, कम भुंजी न रहेगी।

"जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है, उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं। यह नहीं कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो देती हैं, लेकिन वे लोगों को कष्ट देना बंद कर देती हैं। इतना ही नहीं कि वे लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती हैं, संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।"

इस वचन को याद रख लेना। क्योंकि साधारणतः तुम्हें लगेगा, संत तो वही है जो किसी की हानि नहीं करता। और लाओत्से कह रहा है कि संत भी स्वयं लोगों की हानि नहीं करते। इसका मतलब है, संत से भी हानि की संभावना है।

अगर संत सज्जन हो तो हानि होगी। और सज्जन और संत में फासला करना बहुत ही मुश्किल है। छोटी मछली भूंजना भी आसान, संत और सज्जन में फासला करना बहुत मुश्किल है। अक्सर तो यह होगा कि सज्जन तुम्हें संत मालूम पड़ेगा और संत को तुम चूक जाओगे। क्योंकि अति दिखाई पड़ती है, मध्य दिखाई नहीं पड़ता। अति की उत्तेजना होती है, मध्य तो शांत होता है। मध्य तो ऐसे होता है जैसे है ही नहीं। अति में तो बड़ा शोरगुल होता है; मध्य में तो सब शांत हो गया होता है। सिर्फ मौन संगीत होता है। तुम संत को चूक जाते हो अक्सर, सज्जन को कभी नहीं चूकते। सज्जन को तुम महात्मा बना लेते हो; संत तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ेगा।

इसे थोड़ा ठीक से समझो। अपराधी भी दिखाई पड़ जाएगा। जो आदमी किसी की हत्या करेगा, बराबर दिखाई पड़ जाएगा। सज्जन भी दिखाई पड़ जाएगा। जो किसी को बचाने में अपनी हत्या करेगा, वह भी दिखाई पड़ जाएगा। लेकिन जो न किसी की हत्या करेगा न अपनी हत्या करेगा, वह तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा? संत कोई ईवेंट नहीं है, वह कोई घटना ही नहीं है। इसलिए अखबार में उसकी खबर ही न छपेगी। दुर्जन की खबर छपेगी; सज्जन की छपेगी। कोई किसी की हत्या कर देगा तो छपेगी; कोई अस्पताल को दान दे देगा तो छपेगी। संत न किसी की हत्या करता है और न जाकर कोढ़ियों के पैर दबाता है। अखबार के बाहर रह जाता है। संत जैसे इतिहास के बाहर पड़ जाता है।

घटनाओं का जहां जाल है वहां तो अतियां हैं। हिटलर की खबर छपती है, गांधी की खबर छपती है। लाओत्से की क्या खबर छपनी है? लाओत्से होता भी है कि नहीं, इसका भी पक्का पता नहीं है। संत सदा संदिग्ध बने रहते हैं। बाद में भी लोग पूछते हैं, ऐसा आदमी हुआ? जब वह मौजूद होता है तब लोग उसे देख नहीं पाते, पहचान नहीं पाते। बाद में संदेह उठता है, क्योंकि इतिहास में कहीं उसकी कोई लकीर नहीं छूट जाती। दुर्जन भी बड़ी लकीर छोड़ता है।

एक आदमी ने कैलिफोर्निया में पिछले कुछ दिनों पहले नौ आदमियों की हत्या की। सारे अखबार अमरीका के उसकी हत्या की चर्चा से भर गए। सुर्खियां बड़े अक्षरों में। अदालत में जब उससे पूछा गया कि तुमने क्यों ये हत्याएं कीं? उसने कहा कि जिंदगी हो गई, मैंने कभी अपना नाम अखबार में नहीं देखा। ऐसे ही गुजर जाएं? इन आदमियों से मुझे कोई विरोध न था। इनमें से कुछ को तो मैं जानता ही नहीं कि वे कौन हैं, क्योंकि मैंने पीठ के पीछे से गोली मारी है। तो मुझे चेहरे का भी कोई पता नहीं है। लेकिन अखबार में बिना छपे नहीं मरना चाहता था।

जैसे पानी की प्यास लगती है, ऐसे अखबार में छपने की छपास लगती है। बुरा आदमी छपता है। इसीलिए तो राजनीतिज्ञों से भरा रहता है अखबार। क्योंकि इनसे ज्यादा दुर्जन तुम खोज न सकोगे। सज्जनों की भी खबर छपती है। कोई दान करता, कोई बड़ा मंदिर बनाता, कोई अस्पताल खड़ा करता, कोई कालेज-स्कूल खोलता, उसकी भी खबर छपती है। लेकिन संत की खबर छपने का कोई कारण नहीं है।

संत बिल्कुल अकारण है। वह पानी पर खींची लकीर जैसा है; कुछ पीछे बनता नहीं। लाओत्से ने कहा है, संत ऐसा है जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, चिह्न नहीं छूट जाते। पक्षी उड़ गया; आकाश खाली का खाली रह जाता है। पीछे लोग खोज-बीन करते हैं कि यह आदमी हुआ भी!

लाओत्से अभी तक संदिग्ध है। अभी तक इतिहासज्ञ राजी नहीं हैं कि यह आदमी हुआ। और संत के पास लोगों पर जो प्रभाव भी पड़ता है वह प्रभाव इतना काव्यात्मक होने वाला है--क्योंकि संत एक संगीत है, उसका प्रभाव भी एक काव्य है--उस काव्य के कारण वह पुराण जैसा लगेगा, इतिहास जैसा कभी नहीं लगेगा।

समझने की कोशिश करो। लाओत्से को प्रेम करने वाले लोगों ने लिखा है कि लाओत्से बूढ़ा ही पैदा हुआ। अब यह कहीं होता है? यह तो बात पागलपन की हो गई। अस्सी साल का पैदा हुआ। अस्सी साल मां के गर्भ में रहा। और जब पैदा हुआ तो उसके बाल सफेद थे--हिमश्वेत। एक भी बाल काला नहीं था। अब यह तो अपने हाथ से लाओत्से को बाहर फेंकना है इतिहास के। ऐसा तो कहीं होता नहीं। लेकिन यह काव्य है, यह मिथ है, पुराण है। और लाओत्से जैसे व्यक्ति के जीवन में इतना अंतर-संगीत है कि उसका प्रभाव भी काव्य में ही पड़ता है। मानने वाले यह कह रहे हैं कि लाओत्से जन्म के साथ ही बोधपूर्वक जीया। इसलिए बूढ़ा है। अधिक लोग तो बचकाने ही मर जाते हैं। इसमें हमें कोई अड़चन नहीं है। अस्सी साल का आदमी भी बचकाना ही मरता है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोचिकित्सक के पास जाकर कह रहा था कि अब आपको कुछ करना पड़े। यह जरा जरूरत से ज्यादा हुआ जा रहा है। मेरी पत्नी टब में बैठ कर रबर की बतख से घंटों खेलती रहती है। रोकिए! मनोचिकित्सक ने कहा कि इसमें कुछ ऐसा चिंतित होने का कारण नहीं है। अगर खेलती भी रहे तो बतख से ही खेलती है; किसी का कुछ नुकसान भी नहीं कर रही, कोई हानि भी नहीं कर रही। और पत्नी अगर बतख से खेल रही है तो घर में भी शांति रहेगी, तुम भी चैन में रहोगे। इसमें हर्ज क्या है? यह तो बहुत बेहतर ही है। जिनकी पत्नियां नहीं खेलती हैं, उनको भी खेलना सिखाना चाहिए। इससे तुम चिंतित मत होओ। यह तो बिल्कुल इनोसेंट है, निर्दोष बात है। खेलने दो। नसरुद्दीन ने कहा, कैसे खेलने दो? मुझे खेलने का वक्त ही नहीं मिलता। चौबीस घंटे बतख लिए बैठी है। तो हम कब खेलें?

अस्सी साल के भी हो जाओ तो भी खिलौनों का ही तो खेल चलता है। खिलौनों के बाहर कहां हो पाते हो? धन-संपत्ति खिलौना है। यश-पद-प्रतिष्ठा खिलौना है। खिलौने का मतलब समझते हो? खिलौने का मतलब जो खेल में उलझाए रहे, उलझाए रखे। खिलौने का मतलब है जो खेल में लगाए रखे। तो जिन-जिन खेलों में तुम्हें जो-जो चीजें लगाए रखी हैं वे सब खिलौना हैं। कोई राजनीति के खेल में लगा है तो राजनीति खिलौना है। तो जिंदगी भर दिल्ली जाने में लगी है बिना इस बात की फिक्र किए कि दिल्ली पहुंच कर करना क्या है। यह पहुंच कर ही सोचेंगे, क्योंकि फुरसत भी नहीं है सोचने की। पहुंच कर ही पता चलता है, पहुंच गए, अब करने को क्या है? अब पीछे लौटते जाते भी नहीं बनता, क्योंकि नाहक बदनामी होगी। अब पूंछ कट गई। अब पीछे जाकर भी लोगों को क्या बताएंगे? तो पहले लोग दिल्ली जाने की कोशिश में लगे रहते हैं, फिर दिल्ली में अड़े रहने की कोशिश में लगे रहते हैं कि अब यहां से जाना कैसे! अब कट गई पूंछ तो अब यहां टिके रहो, बताए रहो कि सब ठीक है, बड़ा आनंद आ रहा है। खेल चल रहे हैं बुढ़ापे तक।

तो इसको तो मानने में हमें कोई अड़चन नहीं है कि आदमी बचकाना ही मर गया। इससे उलटी घटना घटी है लाओत्से के जीवन में कि वह बचकाना कभी था ही नहीं; चाइल्डिश, बचकाना कभी भी न था। बूढ़ा ही पैदा हुआ। बड़ा काव्यपूर्ण वक्तव्य है। लेकिन इतिहास में कैसे इसे जमाओगे? इसको जमाना मुश्किल है। इसको इतिहास में बिठाना मुश्किल है।

जो मध्य में जीता है वह संगीत में जीता है। उसका प्रभाव भी पड़ता है तो प्रभाव भी बड़ा सपनीला, बड़ा काव्यात्मक, जैसे एक झोंका आया, फूल की एक सुगंध आई और चली गई, और फिर तुम याद करते रह गए। लेकिन फूल की सुगंध किसी को बताओ भी तो कैसे बताओ? और लाओत्से जैसे फूल कभी-कभी खिलते हैं,

आकाश-कुसुम की भांति, पृथ्वी के फूल नहीं हैं। इसलिए उनकी सुगंध की याद जिन पर छूट जाती है वे गीत गाते हैं, नाचते हैं, उत्सव मनाते हैं, लेकिन बता नहीं पाते कि हुआ क्या है। मदमस्त हो जाते हैं।

इस सारी बात के पीछे कारण है कि संत मध्य में जीता है। नहीं तो इतिहास में कोई परिणाम छोड़ जाएगा।

"जो संसार की हुकूमत ताओ के अनुसार चलाता है, उसे पता चलेगा कि अशुभ आत्माएं अपना बल खो बैठती हैं।"

जो अशुभ है, जो हमारे भीतर बुराई है, जिसको शैतान कहें, जिसको लाओत्से अशुभ आत्मा कह रहा है, इसका बल खो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि इसकी ऊर्जा खो जाती है। इसका इतना ही अर्थ है कि इसका बल रूपांतरित हो जाता है। ऊर्जा तो शेष रहती है, क्योंकि ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। संसार में कुछ भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ बदलता है, रूपांतरित होता है। रूप बदलते हैं, ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। ऊर्जा तो बनी रहती है, लेकिन लोगों को कष्ट देना बंद कर देती है।

"इतना ही नहीं कि लोगों को हानि पहुंचाना बंद कर देती है... ।"

वह जो अशुभ चेतना के प्रभाव में या अशुभ के प्रभाव में पड़ी हुई आत्मा है वह लोगों को नुकसान करना बंद कर देती है, इतना ही नहीं।

"संत स्वयं भी लोगों की हानि नहीं करते।"

संत ऐसे जीता है जैसे नहीं है; हवा के झोंके की तरह जीता है। तुम्हारे पास से भी गुजर जाता है, तुम्हें याद भी आती है, स्पर्श भी होता है, अनुभव भी होता है, लेकिन अदृश्य। तुम पर आक्रामक नहीं, तुम्हें बदलने को आतुर नहीं। तुम्हें अच्छा बनाने की भी चेष्टा नहीं है संत की, क्योंकि अक्सर होता है तुम्हें अच्छा बनाने की चेष्टा में ही तुम बुरे हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारे अहंकार को वह चेष्टा भी बाधा डालती है।

किसी को भूल कर अच्छा बनाने की कोशिश मत करना। और अगर कोशिश की और वह बुरा हो जाए तो अपने को जिम्मेवार समझना। लोग सोचते हैं, हमने इतनी कोशिश की, फिर यह आदमी अच्छा न हो पाया! असलियत उलटी है। तुम्हारी इतनी कोशिश के कारण ही हो गया।

अच्छे बाप के घर बुरे बेटे पैदा होते हैं, क्योंकि अच्छा बाप बड़ी कोशिश करता है बेटे को अच्छा बनाने की। अपने से ऊंचा न जा सके तो कम से कम अपने तक तो हो जाए। यह कोशिश इतनी ज्यादा हो जाती है कि बेटे के लिए फंदे जैसी लगने लगती है। बेटे की अस्मिता को चोट पहुंचती है। बेटा इस बाप की अगर माने तो मुर्दा हो जाएगा। आज्ञा तोड़नी जरूरी है। बाप से विपरीत जाना जरूरी है। क्योंकि विपरीत जाकर ही बेटे अपने अस्तित्व को अनुभव करेंगे। यह अनिवार्य है।

जैसे मां के पेट के बाहर बच्चा जाएगा, यह जरूरी है नौ महीने के बाद। जाना ही चाहिए। जिस दिन मां के पेट के बाहर बच्चा जाता है उस दिन दूर जाने की प्रक्रिया शुरू हुई। यह चलती रहेगी। फिर जिस दिन बेटा पड़ोस के बच्चों के साथ खेलने लगेगा, वह मां से और दूर गया। मां बड़ी कोशिश करेगी कि किसी के साथ खेलने न जाने दे, घर में ही बंद रख ले। लेकिन फिर बेटा बड़ा कैसे होगा? उसका अहंकार कैसे निर्मित होगा? फिर बेटा स्कूल जाएगा, और दूर गया। फिर हॉस्टल में रहने लगेगा, और दूर गया। फिर किसी एक स्त्री के प्रेम में पड़ जाएगा। उस दिन, उस दिन गर्भ से जो काम शुरू हुआ था, पूरा हुआ। अब वह खुद ही गर्भ देने के योग्य हो गया, प्रक्रिया पूरी हो गई।

और जिस दिन बेटा किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, मां कितना ही उत्सव मनाए, भीतर दुखी और पीड़ित होती है। इसीलिए तो मां-बाप प्रेम को बिल्कुल बरदाश्त नहीं करते। विवाह को बरदाश्त कर लेते हैं, प्रेम को बरदाश्त नहीं करते। क्योंकि विवाह के आयोजक वे ही होते हैं, प्रेम का आयोजन बेटा खुद कर लेता है। उसका मतलब वह बिल्कुल इतनी दूर चला गया कि जीवन की इतनी गहनतम बात का भी निर्णय खुद ले रहा है। उस संबंध में भी बाप से पूछने नहीं आया। प्रेम को स्वीकार करना बाप को कठिन पड़ता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की लड़की एक अभिनेता के प्रेम में पड़ गई। जैसा कि अक्सर लड़कियां पड़ जाती हैं; फिर पछताती हैं, क्योंकि अभिनेता यानी अभिनेता। बाप को आकर कहा, डरते हुए कहा। मुल्ला नसरुद्दीन ने सुन कर कहा कि बकवास बंद! अभिनेता? ये लुच्चे-लफंगे? इनके साथ प्रेम? जिंदगी खराब करनी है? पर उस लड़की ने कहा, पापा, मेरा प्रेम हो गया है। उसने कहा, छोड़, प्रेम-व्रेम से क्या लेना-देना? जिंदगी भर का सवाल है। यह मैं कभी बरदाश्त न करूंगा। तू कोई भी खोज ले अभिनेता को छोड़ कर।

लेकिन बेटी पीछे ही लगी रही। आखिर धीरे-धीरे बाप को उसने फुसलाना शुरू कर लिया। गांव में नाटक कंपनी आई जिसमें वह लड़का अभिनेता था। तो बेटी ने नसरुद्दीन को राजी कर लिया कि आप एक दफा देख तो लें उसको चल कर। नसरुद्दीन ने अभिनय देखा। अभिनय के पूरे होने पर लड़की से कहा कि नहीं, लड़का अच्छा है, देख-दिखाव भी अच्छा, व्यक्तित्व शानदार, प्रभावशाली। तू शादी कर सकती है; लड़का मुझे पसंद आ गया। और जिस बात से मुझे अड़चन थी वह अब न रही। क्योंकि उसके अभिनय से पक्का मुझे भरोसा आ गया कि यह कोई अभिनेता नहीं है। उसके अभिनय से मुझे पक्का भरोसा आ गया कि यह कोई अभिनेता नहीं है। तू कर सकती है शादी।

मैंने नसरुद्दीन को पूछा कि यह तुमने क्या किया? उसने कहा, बाप की इज्जत भी तो बचानी पड़ती है। अब जब बात इस सीमा तक चली गई कि लौटने का उपाय ही नहीं दिखता तो आज्ञा देना ही उचित है।

प्रेम की आज्ञा भी बाप तभी देता है, मां तभी देती है, जब बात इस सीमा तक पहुंच गई कि लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। बेमर्जी से ही देता है। क्योंकि यह आखिरी टूट है। अब यह बेटी, यह बेटा किसी और का हो गया। मगर यह जरूरी है।

मां तो चाहेगी कि बेटा कभी किसी के प्रेम में न पड़े। ऐसी भी मां हैं जो इतना दबा देती हैं गर्दन को कि बेटा किसी के प्रेम में पड़ ही नहीं सकता। पर उन्होंने मार डाला। उन्होंने हत्या कर दी। उन्होंने जन्म न दिया, मौत दे दी।

इसीलिए तो सास और बहू की कलह शाश्वत है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं दिखता। क्योंकि मां अकेली अधिकारिणी थी प्रेम की। फिर अचानक एक अजनबी औरत को यह लड़का घर ले आया, जिसका न कोई पता-ठिकाना, न कोई हिसाब। कल की अजनबी और अचानक पूरे हृदय पर काबू कर लिया उसने! और जिस बेटे को मैंने जन्म दिया--मां सोचती है--वह मेरा न रहा, और एक दूसरी औरत का हो गया! यह कलह बड़ी गहरी है।

भला करने की भी अतिशय कोशिश बुरे में ले जाएगी। क्योंकि बेटे को अहंकार, बेटी को अपना अहंकार निर्मित करना जरूरी है। प्रकृति चाहती है कि वे व्यक्ति बनें। और व्यक्ति बनने का उनके पास एक ही उपाय है कि वे आज्ञा तोड़ें। इसलिए बेटों को इस तरह की आज्ञा देना जिनको वे तोड़ भी सकें और उनका कोई नुकसान भी न हो। यह बड़ी नाजुक कला है। बेटे को ऐसी कुछ आज्ञाएं जरूर देना जिनको वह तोड़ सके, और तोड़ कर उसका अहंकार निर्मित हो सके, लेकिन उनको तोड़ने में वह बर्बाद न हो जाए।

बच्चों को जन्म देना बहुत आसान, मां-बाप बनना बहुत कठिन है।

लाओत्से कहता है, "संत भी लोगों की हानि नहीं करते।"

वह तभी होता है जब शुभ-अशुभ दोनों संगीत को उपलब्ध हो जाते हैं। तब संत चेष्टा नहीं करता किसी को बदलने की, पर उसकी निश्चेष्टा में ही दूसरे बदलते हैं। वह किसी की गर्दन को नहीं जकड़ लेता, लेकिन उसकी मौजूदगी में, उसकी हवा में लोग बदलते हैं। वह किसी को बदलने नहीं जाता, लेकिन परोक्ष, उसका होना ही, लोगों के लिए परिवर्तन का कारण हो जाता है।

इसी को तो लाओत्से कहता है, बिना किए करने की कला। संत तो सिर्फ एक दीए की भांति है, जिसकी रोशनी में तुम्हें चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं। और तुम खुद ही अपने को बदलने में लग जाते हो। क्योंकि जब तुम्हें दिखाई पड़ता है मार्ग तो तुम कब तक भटकोगे?

मगर दो तरह के लोग हैं दुनिया में। बड़ी पुरानी सूफी कथा है कि एक मूढ़ और एक ज्ञानी एक जंगल से गुजरते थे। दोनों रास्ता भूल गए थे। बिजली चमकी। बड़ी प्रगाढ़ बिजली थी। अंधकार क्षण भर को कट गया। मूढ़ ने आकाश में बिजली को देखा। ज्ञानी ने नीचे रास्ते को देखा। मूढ़ ने जब बिजली चमकी तो ऊपर देखा। जब बिजली चमकी तो ज्ञानी ने नीचे देखा। उस नीचे देखने में रास्ता साफ हो गया।

जब कभी तुम किसी संत के पास रहो, नीचे देखना, अपने पैरों के पास देखना। क्योंकि उसकी रोशनी वहां पड़ रही है। संत के चेहरे को देखने से कुछ भी न होगा; उसका चेहरा कितना ही मनमोहक हो। संत के शब्दों से प्रभावित होने से कुछ भी न होगा; उसके शब्द कितने ही गहरे हों। संत की महिमा को गाने से कुछ भी न होगा; उसकी महिमा कितनी ही ऊंची हो। जब तुम संत के करीब जाओ तो अपने पैरों के पास नीचे देखना। क्योंकि संत एक चमकती हुई कौंध है। अगर तुम समझदार हो तो तुम अपने रास्ते को खोज लोगे। और अगर नासमझ हो तो या तो तुम संत के पक्ष में हो जाओगे उसके चेहरे को देख कर, शब्दों को सुन कर, उसके व्यक्तित्व के प्रभाव में या विपक्ष में हो जाओगे। दोनों मूढ़ताएं हैं। ज्ञानी नीचे देख कर अपने रास्ते को समझ लेता है। संत के पास एक रोशनी है। और अगर तुम्हें दिखाई पड़ जाए रास्ता तो तुम कब तक उससे भटकोगे? भटकते हो, क्योंकि दिखाई नहीं पड़ता है। भटकते हो, क्योंकि आंखें अंधेरे से भरी हैं।

और ध्यान रखना अपने जीवन में भी कि कभी किसी दूसरे को बदलने की चेष्टा मत करना। उलटे परिणाम आएंगे। तुम जो चाहोगे उससे उलटा हो जाएगा। अगर किसी को बदलना चाहते हो तो बदलने की कोशिश ही मत करना। सिर्फ अपने को वैसा बना लेना जैसा तुम चाहते हो कि दूसरा बने; बस। फिर अगर तुम्हारे माधुर्य से ही, तुम्हारी मौजूदगी से कुछ हो जाए हो जाए, न हो न हो। प्रत्यक्ष चेष्टा घातक है, हिंसात्मक है। परोक्ष इशारा बहुमूल्य है।

"और जब दोनों एक-दूसरे की हानि नहीं करते--न शुभ अशुभ की हानि करता है, न अशुभ शुभ की--तब मौलिक चरित्र स्थापित होता है। व्हेन बोथ डू नाट डू ईच अदर हार्म दि ओरिजिनल कैरेक्टर इ.ज रिस्टोर्ड।"

वही चरित्र वास्तविक चरित्र है, जब तुम्हारे भीतर न शुभ को अशुभ हानि पहुंचाता है, न शुभ अशुभ को हानि पहुंचाता है। जब तुम्हारे भीतर क्रोध और करुणा में कोई संघर्ष नहीं, काम और ब्रह्मचर्य में कोई विरोध नहीं, बुरे और भले का संघर्ष बंद हो जाता है, जब तुम्हारे भीतर राम और रावण गले में हाथ डाल कर आलिंगनबद्ध खड़े होते हैं, तभी तुम्हारा मौलिक चरित्र, तुम्हारा स्वभाव जो द्वंद्व के अतीत है, जो दुई के बाहर है, जो द्वैत के पार है, जो अद्वैत है, उसकी पहली झलक, उसकी कली खिलनी शुरू होती है, उसका फूल बनना शुरू होता है। अकेले राम तुम अधूरे हो, अकेले रावण तुम अधूरे हो; कथा चलेगी, लेकिन तुम पूरे न हो पाओगे।

हिंदू बहुत ही इस गणित में कुशल हैं। इसलिए राम को उन्होंने पूर्णावतार नहीं कहा; कृष्ण को कहा। क्योंकि कृष्ण में राम और रावण दोनों संयुक्त हो गए हैं। कृष्ण में बुराई भी है, भलाई भी है, और दोनों के बीच एक तालमेल है। कृष्ण से ज्यादा बेईमान आदमी न खोज सकोगे। ईमानदार भी खोजना मुश्किल है। वचन दे और तोड़ दे। कहा युद्ध में अस्त्र न उठाऊंगा और उठा लिया। यह कोई भरोसे का आदमी नहीं है। अगर तुम न समझो तो कृष्ण तुम्हें अवसरवादी मालूम पड़ेंगे। और अगर तुम समझो तो तुम्हें परम संत का दर्शन कृष्ण में हो जाएगा। क्योंकि कृष्ण क्षण-क्षण जीते हैं, और समग्रता से जीते हैं। क्षण का यथार्थ जो पैदा करवा देता है उसी को जी लेते हैं। कृष्ण में राम और रावण का मेल हो गया है। और इसीलिए कृष्ण को हिंदुओं ने पूर्णावतार कहा है। राम अधूरे हैं।

दो दिन पहले ही कोई मुझसे पूछता था। जो पूछता था व्यक्ति वे रामचरित मानस के कथा-वाचक हैं। तो वे मुझसे पूछते थे कि आप राम पर क्यों नहीं बोलते? तो मैंने कहा कि मुझे राम में ज्यादा रस नहीं है। उनको बड़ी चोट लगी होगी। पूछने लगे, क्यों रस नहीं है? मैंने कहा, यह जरा लंबी बात है। रस इसीलिए नहीं है कि राम अधूरे हैं। और कृष्ण में मुझे रस है, क्योंकि कृष्ण पूरे हैं।

और पूरा आदमी बेबूझ होगा। क्योंकि उसमें बुराई-भलाई दोनों का ऐसा सम्मिलन होगा कि तुम पहचान ही न पाओगे कि क्या बुरा है और क्या भला। पूरा आदमी अनूठा होगा; पकड़ मुश्किल हो जाएगी।

राम को पकड़ना आसान है। इसलिए लोग राम के भक्त हैं। इसलिए राम का बड़ा व्यापी प्रभाव पड़ा। कृष्ण का अगर कोई भक्त भी है तो वह भी चुनाव करता है; पूरे कृष्ण को नहीं मानता वह। कुछ हैं जो गीता के कृष्ण को मानते हैं; उनको भागवत का कृष्ण पसंद नहीं पड़ता। कुछ हैं जो कृष्ण के बाल-चरित्र को मानते हैं; उनका युवा चरित्र पसंद नहीं पड़ता।

सूरदास को युवा चरित्र पसंद नहीं है। बच्चा लड़कियों के साथ छेड़खानी करे, चल सकता है; जवान आदमी छेड़खानी करे, बरदाश्त के बाहर है। तो सूरदास के कृष्ण बालक ही बने रहते हैं। वे पैरों में घुंघरू बांध कर ही चलते रहते हैं। उनके पांव की पैजनियां बजती रहती है। उससे बड़ा नहीं होने देते वे उनको। क्योंकि उससे बड़ा हुआ तो यह आदमी खतरनाक है। बालक को हम पसंद कर लेते हैं। छोटा बच्चा अगर कपड़े चुरा कर चढ़ जाए स्त्रियों के वृक्ष पर तो कोई ऐसी बड़ी एतराज की बात नहीं है। लेकिन जवान? तो फिर जरा अड़चन शुरू होती है। हमारी नीति को बाधा आनी शुरू होती है। तो यह हम रावण में तो बरदाश्त कर सकते हैं, लेकिन कृष्ण में कैसे बरदाश्त करेंगे?

इसलिए हमने अशुभ को और शुभ को बिल्कुल अलग-अलग कर रखा है। और ध्यान रखना, जिंदगी में दोनों इकट्ठे हैं। और जिंदगी का पूरा राज उसी ने जाना जिसने दोनों को साथ जी लिया। जिंदगी की आखिरी ऊंचाई उसी की है जिसने पूरे जीवन को जीया--बिना चुनाव किए, बिना काटे। कठिन तो जरूर है।

राम का जीवन आसान है, क्योंकि एकंगा है, साफ-सुथरा है, गणित पक्का है। जो-जो ठीक-ठीक है वह-वह करना है। जो गैर-ठीक है, बिल्कुल नहीं करना है। रावण का जीवन भी साफ-सुथरा है। दोनों के गणित सीधे हैं। उलझन है कृष्ण के जीवन में। वहां गणित खो जाता है और पहेली निर्मित होती है। वहां साफ-सुथरापन विलीन हो जाता है और रहस्य का जन्म होता है। क्योंकि वहां सभी द्वंद्व एक साथ हो गए; सभी द्वैत मिल गए। कृष्ण अद्वैत हैं।

लाओत्से को अगर तुम्हें समझना हो तो लाओत्से उस परम बिंदु की तरफ इशारा कर रहा है। उसको वह कहता है मौलिक चरित्र। तुम्हारा स्वभाव उसी दिन प्रकट होगा जिस दिन राम और रावण तुम्हारे भीतर

आलिंगनबद्ध हो जाएं। यह बहुत कठिन है। इससे कठिन और कुछ भी नहीं। लेकिन इसे बिना किए जीवन की निष्पत्ति नहीं होती। जब तक यह घटित न हो जाए तब तक तुम अधूरे रहोगे और बेचैन रहोगे। पूरे होने की बेचैनी है। अधूरा कभी भी चैन को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह तुम्हारा वर्तुल आधा न रहे, पूरा हो जाए, कि फिर परम चैन शुरू हो जाता है।

आज इतना ही।

एक सौ एकवां प्रवचन

स्त्रैण गुण से बड़ी कोई शक्ति नहीं

Chapter 61

Big And Small Countries

A big country (should be like) the delta low-regions,
Being the concourse of the world, (and) the Female of the world.
The Female overcome the Male by quietude,
And achieves the lowly position by quietude.
Therefore if a big country places itself below a small country,
It absorbs the small country;
(And) if a small country places itself below a big country,
It absorbs the big country.
Therefore some place themselves low to absorb (others),
Some are (naturally) low and absorb (others).
What a big country wants is but to shelter others,
And what a small country wants is but to be able to come in
And be sheltered.
Thus (considering) that both may have what they want,
A big country ought to place itself low.

अध्याय 61

बड़े और छोटे देश

बड़े देश को नदीमुख नीची भूमि की तरह होना चाहिए,
क्योंकि वह संसार का संगम है, और संसार का स्त्रैण गुण है।
स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है, और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।
इसलिए यदि एक बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रखता है,
तो वह छोटे देश को आत्मसात कर लेता है।
और यदि छोटा देश अपने को बड़े देश के नीचे रखता है,

तो वह बड़े देश को आत्मसात कर लेता है।
इसलिए कुछ दूसरों को आत्मसात करने के लिए अपने को नीचे रखते हैं;
कुछ स्वभावतः ही नीचे होते हैं और दूसरों को आत्मसात करते हैं।
बड़ा देश यही तो चाहता है कि दूसरों को शरण दे,
और छोटा देश चाहता है कि वह प्रवेश पा सके और शरण पाए।
इस प्रकार यह विचार कर कि वे दोनों वह पा सकें जो वे चाहते हैं,
बड़े देश को अपने को नीचे रखना चाहिए।

वर्षा होती है तो बड़े-बड़े पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं; झील, गड्ढे, घाटियां पानी से भर जाती हैं, भरपूर हो जाती हैं। पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहले से ही भरे हुए हैं, अपने से ही भरे हुए हैं; गड्ढे, घाटियां, झीलें भर जाती हैं, क्योंकि वे खाली हैं। वहां जगह है, अवकाश है, दूसरे को आत्मसात कर लेने की सुविधा है।

परमात्मा भी प्रतिपल बरस रहा है। अगर तुम पहाड़ों की तरह हो--अपने ही अहंकार से भरे हुए--तो खाली रह जाओगे। अगर तुम झील, घाटियों की तरह हो--शून्य, रिक्त--तो तुम भर जाओगे। खाली रहना हो अगर तो अहंकार से भरे रहना। भरना हो अगर तो अहंकार से खाली हो जाना। जो शून्य की भांति हो जाता है वह पूर्ण से भर जाता है। और जो अपने को सोचता है कि मैं पूर्ण ही हूं वह खाली ही मर जाता है। यह बड़ा विरोधाभास है। लेकिन समझो तो सीधा-साफ है।

जीसस ने कहा है, अपने को बचाना चाहो तो मिट जाना, और अपने को मिटाने पर ही तुले हो तो फिर अपने को बचाए रखना। जो मिटेगा वह पा लेगा; और जो अपने को बचाएगा वह अपने बचाने की कोशिश में ही खो देता है।

इस राज को ठीक से समझ लो। यह व्यक्ति के संबंध में भी लागू है, समाज के संबंध में भी, राज्य के संबंध में भी, देशों-राष्ट्रों के संबंध में भी। नियम तो एक ही है। फिर उस नियम की अनेक अभिव्यक्तियां हैं। नियम यह है कि तुम खाली होना सीखो। पहली बात, इस सूत्र को समझने के पहले, खाली होने की कला।

गुरु के पास शिष्य बैठता है। अगर वह भरा हो, कुछ भी न सीख पाएगा। तुम अगर मेरे पास भरे हुए आए हो, अपने ही ज्ञान, अपने ही शास्त्र से, तो तुम खाली ही लौट जाओगे। मैं लाख उपाय करूं, मैं लाख तुम्हारे चारों तरफ हवा निर्मित करूं, कुछ भी न होगा। तुम अगर खाली ही नहीं हो तो तुममें द्वार कहां? जगह कहां है जहां से मैं प्रवेश कर सकूं? तुम्हारे सिंहासन पर तुम स्वयं ही बैठे हो; वहां और किसी को बिठाने का अब कोई उपाय नहीं।

गुरु के पास शिष्य अगर ज्ञान से भरा हुआ आए तो व्यर्थ ही समय गंवाता है। गुरु के पास शिष्य खाली होकर आए तो भरा हुआ लौटता है।

इसीलिए तो बहुत प्राचीन समय से शिष्य को गुरु के पास आने की कला सीखनी होती थी। कला का पहला सूत्र है कि तुम जो भी जानते हो वह द्वार के बाहर ही छोड़ आना। तुम ऐसे आना जैसे तुम अज्ञानी हो, जैसे तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। क्योंकि अगर तुम्हें कुछ भी पता है तो वह पता ही तो दीवार बन जाएगा। अगर तुम कुछ भी जानते हो तो वह जानने की अकड़ रुकावट हो जाएगी। तुम्हारी लोच समाप्त हो जाएगी। तुम्हारे द्वार बंद हो जाएंगे। फिर तुम्हारे भीतर, मैं लाख उपाय करूं, तुम मुझे घुसने ही न दोगे। तुम अपनी रक्षा करते रहोगे।

गुरु से शिष्य रक्षा करता रहे तो क्या सीख पाएगा? या कि तुम गुरु से तर्क करते रहोगे। तर्क भी रक्षा है। तर्क भी तलवार की तरह है जिससे तुम अपना बचाव करते रहते हो। ताकि वही प्रवेश पा सके तुममें जिसे तुमने पहले से ही जान रखा है। ताकि तुम्हारी ही बढ़ती हो, तुम मिटो न, बढ़ो, तुममें से कुछ बाहर न निकल जाए, भीतर ही आए! तर्क कंजूस की तरह है जो अपनी तिजोरी के सामने रक्षा करता है। कहानियां कहती हैं कि कंजूस मर भी जाए तो सर्प होकर तिजोरी पर कुंडल मार कर बैठ जाता है। वह रक्षा करता है कि जो भीतर है वह बाहर न चला जाए।

पंडित भी अपने ज्ञान की रक्षा करता है। इसलिए पंडित अज्ञानी ही मरता है। अगर तुम्हें पंडित होकर मरना हो--सही-सही अर्थों में पंडित होकर मरना हो--तो तुम अज्ञानी होने को राजी हो जाना। अज्ञान यानी खाली।

कबीर कहते हैं, पढ़-पढ़ जग मुवा पंडित भया न कोय।

पढ़-पढ़ कर लोग मर गए और पंडित न हुए।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ा सो पंडित होए।

लेकिन जिसने छोटा सा प्रेम का शब्द सीख लिया, वह पंडित हो गया।

क्या है प्रेम का राज? प्रेम का राज हैः निरहंकारिता, खाली होना। जिस दिन तुम खाली हो उसी दिन सारे जगत की ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहनी शुरू हो जाती है। गड्ढा बन कर देखो; तुम पाओगे, सब तरफ से दौड़ने लगा परमात्मा तुम्हें भरने को। गड्ढा बनना हो तो दूसरी बात ख्याल रखनी जरूरी हैः नीचे होना सीखो!

नदी गिरती है समुद्र में, क्योंकि समुद्र नदी से नीचा है। समुद्र इतना विराट है कि नदी से ऊपर होता अगर जरा सी भी अकड़ होती। विराट सागर नीचे है, छोटी-छोटी नदियां ऊपर हैं। लेकिन सभी नदियों को सागर में पहुंच जाना पड़ता है। सागर की कला क्या है? क्योंकि उसने अपने को नीचा बना कर बिठा लिया है। जितना नीचा सागर, उतना बड़ा सागर। प्रशांत महासागर बड़े से बड़ा सागर है, क्योंकि पांच मील गहरा खड्डा है। कोई बच कैसे सकेगा इस गड्ढे से? सारे जल को इसी तरफ भाग जाना पड़ेगा। सारी दुनिया की नदियां इसी तरफ दौड़ती रहेंगी। इसीलिए तो इस सागर को प्रशांत महासागर कहते हैं। बड़ा शांत है! इतना नीचा जो है, वह अशांत कैसे होगा?

अशांति तो तुम्हारे ऊपर होने की आकांक्षा से आती है। अशांति तो तुम जितने सिंहासन पर चढ़ने की कोशिश करते हो उतनी ही बढ़ती जाती है। जब तुम नीचे से नीचे हो जाते हो तब कैसी अशांति? वहां से तो तुम्हें कोई भी हटा न सकेगा। और नीचे जाने का तो कोई उपाय न रहा। वहां से तो तुम्हारा कभी कोई अपमान न कर सकेगा। तुमने आखिरी से आखिरी जगह चुन ली। अब पीछे हटने की जगह ही नहीं है। अब तुम हारोगे कैसे? अब तुम्हें कोई हराएगा कैसे? अब तुम परम विजय में सुदृढ़ हो गए। अब तुमने जिनत्व पा लिया। अब तुम्हारी जीत आखिरी है। अब तुम अपराजेय हो। अब तुम्हें कोई भी नहीं हरा सकता। तुम उस जगह खुद ही पहुंच गए जहां हराने वाले तुम्हें पहुंचाना चाहते हैं। और मजा यह है कि उस जगह पहुंचते ही सारी दुनिया की सभी नदियां तुम्हारी तरफ दौड़नी शुरू हो जाती हैं; ज्ञान की, प्रेम की, प्रकाश की, परमात्मा की सभी नदियां तुम्हारी तरफ दौड़नी शुरू हो जाती हैं।

यह स्वाभाविक है कि जो जितना नीचा है, उतना धनी हो जाता है। जो जितना अकड़ता है, ऊपर चढ़ता है, उतना निर्धन हो जाता है।

इसीलिए तो महावीर और बुद्ध राज-सिंहासन से उतर आए; सड़क पर भिखारी बन कर खड़े हो गए। क्या पागल थे? कुछ बात समझ में आ गई--कि जितने तुम ऊपर चढ़ोगे उतनी ही तुम्हारी तरफ जीवन की धाराएं बहनी बंद हो जाती हैं, जितने तुम नीचे उतरते हो उतने ही तुम पात्र होते चले जाते हो। जिस दिन तुम गड्ढे की भांति हो जाते हो, सबसे नीचे, उस दिन तुम्हारी पात्रता विराट है। उस दिन परमात्मा तुम्हें भरेगा--सब द्वारों से, सब दिशाओं से, सब आयामों से।

तो अगर गड्ढा बनना हो तो नीचे से नीचे हो रहना। मगर मन उलटा ही समझता है। मन उलटा ही मार्ग दिखाता है। और मन तुमसे जो-जो करने को कहता है वह इतना तर्कयुक्त है कि उसमें छिपा हुआ भ्रांति का, भूल का, अज्ञान का मूल स्वर दिखाई नहीं पड़ता। और मन का गणित विरोधाभासी नहीं है। मन कहता है, ऊपर होना हो तो ऊपर चढ़ो। ऊपर होना हो तो नीचे जाना, यह कौन सी बुद्धिमानी है? ऊपर जाना हो, सीढ़ी लगाओ। धन पाना हो; राजमहलों में है। यश-कीर्ति पानी हो; पदों में, प्रतिष्ठा में है।

और मन का गणित बिल्कुल सीधा साफ-सुथरा है। बात जंचती है। धन पाना हो तो धन पाओ, यश पाना हो तो यश पाओ, बचना हो तो बचाओ। ये जीसस, ये बुद्ध, ये लाओत्से, इन सबकी खोपड़ी कुछ उलटी मालूम होती है। मन कहता है, इनकी बातों में फंसे कि उलझ जाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। ये क्या समझा रहे हैं? ये तो बिल्कुल अतर्क्य बातें कर रहे हैं। ये कह रहे हैं, ऊपर जाना हो तो नीचे जाओ। ये कह रहे हैं, बड़ा होना हो तो छोटे हो जाओ। ये कहते हैं, धन पाना हो तो भिखारी हो जाओ। ये कहते हैं, भिक्षा-पात्र में छिपा है सिंहासन, और सिंहासनों में सिवा भिक्षा-पात्रों के कुछ भी नहीं।

साफ है कि हम मन की मान लेते हैं, क्योंकि मन का गणित बहुत साफ मालूम पड़ता है। काश, मन का जो गणित है वही जीवन का भी गणित होता तो तुम हारे हुए न होते, तो तुम्हारे जीवन में कोई पराजय न होती, तो तुम्हारी आंखों में हताशा न होती। तो तुम जीत चुके होते।

लेकिन जीवन मन के गणित से बिल्कुल भिन्न है। मन का गणित मनुष्य का गणित है; कितना ही साफ-सुथरा हो, मनुष्य-निर्मित है। जीवन का गणित बिल्कुल उलटा है। और जीसस, बुद्ध और लाओत्से ठीक कहते हैं, क्योंकि वे जीवन के गणित को पहचान लिए हैं। वे कहते हैं कि बड़े होना है, अगर सच में ही बड़े होना है, नीचे हो जाओ। ऐसा उन्होंने जाना है होकर। और हम भी उनकी महिमा को देखते हैं; उनसे महिमावान कोई भी नहीं दिखाई पड़ता। सम्राट उनके सामने फीके दिखाई पड़ते हैं। बड़े से बड़े साम्राज्य भी उनके चरण की धूल मालूम पड़ते हैं। यह भी समझ में आता है। इसलिए बिगूचन और बढ़ जाती है, उलझन और बढ़ जाती है। क्या करें?

मन भीतर एक गणित सुझाता है; जीवन का गणित बिल्कुल अलग है। मन के गणित को छोड़ देना संन्यास है। जीवन के गणित को पकड़ लेना संन्यास है। मन के गणित से जाग जाना होश है। जीवन के गणित को पहचान लेना बुद्धत्व है। और जीवन का गणित बिल्कुल विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। और तुम्हें भी अपने जीवन में कभी-कभी उसकी झलक मिलती है, क्योंकि तुम भी जीवन से जुड़े हो। मन कुछ भी कहे, तुम भी जीवन में कभी-कभी झलक पाते हो। लेकिन चूंकि मन के गणित को तुमने इतने जोर से पकड़ लिया है, उन झलकों को तुम हटा देते हो; कभी तुम उन पर सोचते नहीं।

कभी तुमने ख्याल किया कि जब तुम दूसरे के सामने झुकते हो तो अचानक दूसरा तुम्हारे सामने झुक जाता है। ऐसा अनुभव तुम्हें बिल्कुल नहीं आया?

जरूर आया होगा। जब तुम किसी के सामने बिल्कुल छोटे हो जाते हो, तभी तुम अचानक पाते हो कि दूसरे के हृदय में तुम्हारे लिए अति सम्मान पैदा हो गया। तुमने जब भी थोड़ी-बहुत अपनी महिमा का स्वर सुना होगा

वह विनम्रता में सुना होगा। जब तुम किसी को कुछ देते हो तब तुम्हारे भीतर के धन की कोई सीमा है! और जब भी तुम किसी से कुछ छीन लेते हो तब तुमने ख्याल किया कि भीतर तुम कैसे दरिद्र हो जाते हो! यह तुम्हें अनुभव में भी आता है, लेकिन इस अनुभव को तुम कभी विचार नहीं करते।

कभी कुछ देकर देखो किसी को। चीज तो जाती है हाथ से, धन जाता है; लेकिन कुछ और, जो सभी धनों से बड़ा धन है, अचानक तुम्हें भर देता है। दान का वही तो मजा है। इसलिए तो लोग इतना रस लेते हैं कुछ भेंट देने में। मित्र को, प्रिय को, परिजन को तुम कुछ भेंट देते हो। उस भेंट देने में तुमने जो स्वर सुना है, उसको थोड़ा समझो। वह जीवन का स्वर है। देकर तुम पाते हो; देने में कुछ मिलता है।

और जब तुम किसी चीज को पकड़ लेते हो, तभी तुम खो देते हो। कृपण के पास धन होता ही नहीं, दिखाई पड़ता है। क्योंकि दान तो उसने सीखा नहीं; देना तो उसने जाना नहीं; तो धन को देकर जो मिल सकता था, वह वंचित रह गया है। वह पकड़ना जानता है; वह धन का भोग करना नहीं जानता। धन का एक ही भोग है कि तुम उसे दो। जब तुम देते हो तो तुम किसी परम धन को पाने के अधिकारी हो जाते हो। बांटो, तब तुम पाते हो कि तुम बढ़ते हो। बचाओ, और तुम पाते हो कि तुम सिकुड़ते हो।

यह ऐसे ही है कि अगर तुम्हें गहरी श्वास लेनी हो तो उतनी ही गहरी श्वास बाहर फेंकनी पड़ती है। तुम जितने जोर से बाहर श्वास फेंकते हो उतनी ही तीव्रता से नई हवाएं तुम्हारे अंतःकक्ष को भर देती हैं। तुम अगर भीतर की श्वास को पकड़ लो कृपण की तरह, बाहर न जाने दो--कि श्वास तो जीवन है, इसको बचाएं, भीतर रोकें, सम्हालें। तो तुम जिस श्वास को रोक रहे हो वह मरी हुई श्वास है; उससे आक्सीजन तो विदा हो चुकी, अब तो वह सिर्फ कार्बन डाय आक्साइड है। उससे तुम्हारी मौत होगी। उससे तुम जीवन को न पा सकोगे। और जितनी श्वास तुम भीतर रोके रखोगे उतनी ही नई श्वास को जाने की जगह न रह जाएगी।

और ध्यान रखना कि यही तुम कर रहे हो। फेफड़े में कोई छह हजार छिद्र हैं। लेकिन अच्छी से अच्छी श्वास लेने वाला आदमी भी दो हजार छिद्रों तक ही आक्सीजन को पहुंचा पाता है। चार हजार छिद्र जहर से भरे रह जाते हैं। तुम्हारा पूरा फेफड़ा कभी नई हवा को नहीं ले पाता--तुम ऐसे कृपण हो! यह तुम्हारे पूरे जीवन का ढंग है, इसलिए तुम्हारी हर वृत्ति में छिपा हुआ है। तुम श्वास लेने में भी डर रहे हो। तुम भीतर की श्वास को छोड़ने में भी डरते हो। लेकिन जिस श्वास को तुमने भीतर पकड़ लिया, वह श्वास जहर है। उसे बाहर फेंकना जरूरी था।

इसलिए तो सारे योगी प्राणायाम पर इतना जोर देते हैं। प्राणायाम का अर्थ क्या है?

प्राण धन आयाम, दो शब्द हैं प्राणायाम में। प्राणायाम का अर्थ हैः प्राण को विस्तीर्ण करो, उसके आयाम को बड़ा करो, फैलाओ। श्वास को भीतर मत रोको, बाहर फेंको। जितने जोर से तुम फेंकोगे, भीतर गड्ढा निर्मित होता है, जगह खाली हो जाती है, प्यास पैदा होती है, रोआं-रोआं मांगता है। तत्क्षण नई हवाएं, ताजी हवाएं गंदी हवाओं को बाहर फेंकने के बाद भीतर भर जाती हैं। जीवन आ रहा है। श्वास प्राण है। तुम जितना फेंक सकोगे, उलीच सकोगे श्वास को, उतनी ही ताजी श्वास तुम पा सकोगे।

और यही सूत्र जीवन की सभी प्रक्रियाओं में है--उलीचो बेशर्त। जो तुम्हारे पास है उसे दो। बांट दो। प्रेम को बांटो। हृदय को बांटो। अपने बोध, अपनी समझ को बांटो। जो बांट सको, बांटो। कंजूसी मत करो। जीवन तो तुम्हारे हाथ से ऐसे ही निकल जाएगा। अगर तुमने इसे बांट लिया तो तुम महा जीवन को पा लोगे।

और यह जीवन तो ऐसे ही निकल जाएगा--बांटो या न बांटो। मरते वक्त तुम पाओगे, जिसे बचाया वह जा रहा है। यह जीवन तो ऐसे ही चला जाएगा, तुम बचाते रहो तो भी। और बिना उपयोग किए चला जाएगा। मौत

की घड़ी में तुम पाओगे कि तुमने जो-जो बचाया वह सब जा रहा है। काश, तुम इसका उपयोग कर लेते और इसे बांट देते और उसे पा लेते जो कि कभी नहीं जाता है।

जीवन का अवसर बांटने के लिए है, ताकि तुम उसे पा लो जो कभी भी नहीं खोता है, ताकि शाश्वत तुम्हारा हो जाए। लेकिन तुम क्षुद्र को पकड़ लेते हो; शाश्वत से वंचित रह जाते हो। और क्षुद्र तो छीन ही लिया जाएगा।

यह बड़े मजे की बात है। जो छिन ही जाना है उसे देने में क्या कृपणता कर रहे हो? जो चला ही जाएगा अपने आप, जिसका जाना सुनिश्चित है, तुम मालिक क्यों नहीं हो जाते और उसका दान ही क्यों नहीं कर देते हो? तुम मुफ्त में ही कुछ पा लोगे। जो जा ही रहा था, वह जाता ही; तुमने कुछ दिया नहीं। लेकिन देने की भाव-दशा में तुम गड्ढे हो जाते हो; और उस गड्ढे में वह भर जाता है जो कभी नहीं जाता।

अगर अमृत को पाना हो तो मरणधर्मा को बांटो। अगर शाश्वत को पाना हो तो क्षणभंगुर को पकड़ो मत, जाने दो, और जाते क्षण आनंद-उत्सव से जाने दो। क्योंकि अगर तुमने दिया भी और देने में उत्सव न रहा, तो भी देना व्यर्थ हो जाएगा। अगर बेमन से दिया, तो तुम दे भी दोगे, लेकिन तुम जो मिलता देने से वह न मिल पाएगा। बेमन से दिया, दिया ही नहीं। देना ऊपर-ऊपर रहा, भीतर गड्ढा न बना।

लाओत्से कहता है, पहला सूत्र है कि तुम खाली हो जाओ। दूसरा सूत्र है कि खाली होने के लिए तुम समुद्र की तरह नीचे हो जाओ, जहां सारी नदियां आकर गिर जाती हैं।

तुमने समुद्र का कभी विचार किया? सबसे बड़ा, सबसे नीचे! यही बड़े होने का राज है, यही बड़े होने का मार्ग है। और तुमने कभी ख्याल किया? समुद्र में इतनी नदियां गिरती हैं, बाढ़ नहीं आती; इतने बादल जाते हैं, समुद्र सूखता नहीं। क्या राज है? इतनी नदियां गिरती हैं, बाढ़ नहीं आती। गड्ढा बड़ा विराट है। तुम इसमें बाढ़ न ला सकोगे। बाढ़ तो केवल चाय की प्यालियों में आती है। गड्ढा बहुत छोटा है, न के बराबर है; जरा से में भर जाता है। समुद्र में कहीं कोई बाढ़ आती है? गड्ढा इतना विराट है कि डालते जाओ संसार की सारी नदियों को, सागर पीता चला जाता है, कोई बाढ़ नहीं आती। सागर उत्तेजित नहीं होता।

जिस दिन तुम्हारा गड्ढा भी अनंत होगा उस दिन महा सुख की वर्षा होती रहेगी, और तुम उत्तेजित न होओगे।

अभी तो क्षुद्र सुख भी तुम्हें ऐसा उत्तेजित कर देता है, दीवाना कर देता है। तुम चाय की प्याली हो। उसमें बड़े जल्दी तूफान आ जाते हैं। और अभी तो जरा सा भी छलक जाए तो तुम खाली हो जाते हो।

सागर से इतने विराट बादल उठते रहते हैं, कहीं कुछ पता भी नहीं चलता। जिसे लेने का पता न चला उसे देने का पता भी नहीं चलेगा। जो लेते वक्त शांत रहा वह देते वक्त भी शांत रहेगा। सागर अपने में रमा रहता है; जैसा है वैसा बना रहता है। सागर में उतार-चढ़ाव नहीं हैं, बाढ़ नहीं आती, गड्ढा नहीं बनता। सागर करीब-करीब अपने को अपने स्वभाव में लीन रखता है। जिस दिन तुम गड्ढे हो जाओगे, तुम्हारी लीनता भी ऐसी ही होगी। न तो तुम पागल हो जाओगे सुख से और न पागल हो जाओगे दुख से।

अभी दोनों तुम्हें पागल करते हैं। और जब तक सुख-दुख तुम्हें पागल कर सकते हैं, तब तक तुम जानना कि तुम्हें अभी उसका स्वाद नहीं मिला जिसको बुद्धत्व कहते हैं, जिसको लाओत्से ताओ की प्रतीति कहता है। उस स्वाद के मिलते ही सब सुख फीके हैं, सब दुख झूठे हैं, आना-जाना भ्रांति है। तुम उससे जुड़ गए जिसका न कोई आना है, न कोई जाना है। जिसका कोई आवागमन नहीं, जो सदा एकरस है। उसे ही हमने ब्रह्म कहा है।

एक बात और, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

लाओत्से की अनूठी से अनूठी खोज हैः स्त्रैण का सिद्धांत। लाओत्से कहता है कि जीवन-सत्य की खोज में तुम स्त्रैण सिद्धांत का अनुसरण करो। तो पहले हम समझ लें कि स्त्रैण सिद्धांत है क्या।

साधारणतः तो तुम समझते हो कि पुरुष शक्तिशाली है। लेकिन तुम बड़ी भ्रांति में हो। अब तो बायोलाजिस्ट्स, जीव-वैज्ञानिक भी राजी हैं कि स्त्री ही ज्यादा शक्तिशाली है। और यह केवल पुरुष का अहंकार है, सदियों से पोसा गया, कि पुरुष यह मानता है कि वह शक्तिशाली है।

थोड़ा सोचो! स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा जीती हैं--पांच साल औसत उम्र ज्यादा। पुरुष पचहत्तर साल जीएगा तो स्त्री अस्सी साल जीएगी। क्यों स्त्रियां पुरुष से ज्यादा जीती हैं अगर पुरुष शक्तिशाली है? स्त्रियां कम बीमार पड़ती हैं। और स्त्रियां दुख को सहने में बड़ी क्षमताशाली हैं। पुरुष छोटे-छोटे दुख से उद्विग्न हो जाता है।

तुम थोड़ा सोचो कि पुरुष हो और अगर तुम्हें गर्भ नौ महीने तक खींचना पड़े! तो मैं नहीं सोचता कि एक पुरुष भी नौ महीने तक जिंदा रह सकेगा। एक रात के लिए पत्नी बाहर चली गई हो और बच्चे को तुम्हारे पास छोड़ गई हो, तब तुम्हें पता चल जाता है कि बच्चा कितने उपद्रव मचा रहा है! कि तबीयत होने लगती है कि गर्दन दबा दो! अपनी दबा लो या इसकी दबा दो!

मुल्ला नसरुद्दीन एक बगीचे के पास अपने बच्चे को लेकर टहल रहा था। छोटी सी गाड़ी में बच्चे को बिठाए हुए था और बार-बार कहता जा रहा था, नसरुद्दीन, शांत रहो। नसरुद्दीन, शांत रहो। कोई बात नहीं नसरुद्दीन।

एक बूढ़ी महिला यह सुन रही थी। उसने कहा, बड़ा प्यारा बच्चा है!

और बच्चा चीख रहा है, चिल्ला रहा है, रो रहा है, हाथ-पैर फेंक रहा है। तो वह बुढ़िया पास आई और उसने बच्चे को कहा कि बेटा नसरुद्दीन, शांत हो जाओ।

नसरुद्दीन ने कहा, उसका नाम नहीं है नसरुद्दीन; नसरुद्दीन मेरा नाम है। मैं अपने को शांत रख रहा हूं किसी तरह; नहीं तो या तो इसकी गर्दन दबा दूंगा या अपनी दबा लूंगा।

स्त्री नौ महीने तक पेट में गर्भ को झेलती है, प्रजनन की पीड़ा को झेलती है। फिर बच्चे को बड़ा करना छोटा काम नहीं। पुरुष तो यह समझते हैं कि स्त्रियों के पास काम ही क्या है! क्योंकि वे दुकान चला रहे हैं। स्त्रियां कर ही क्या रही हैं! भ्रांति में हैं। दुकान चलाना जरा भी कठिन नहीं। हजार ग्राहक आसान हैं; यह एक बच्चा उपद्रव ज्यादा है। फिर इसे बड़ा करती हैं। बड़ा करने में इसका लगाव, इसका प्रेम। फिर एक दिन यह विदा हो जाता है; यह किसी दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता है। उस घाव को भी झेलती हैं।

स्त्रियों की सहनशक्ति पुरुषों से कई गुनी ज्यादा है। पुरुष की सहनशक्ति न के बराबर है। लेकिन पुरुष एक ही शक्ति का हिसाब लगाता रहा है, वह है मसल्स की। क्योंकि वह बड़ा पत्थर उठा लेता है, इसलिए वह सोचता रहा है कि मैं शक्तिशाली हूं। लेकिन बड़ा पत्थर उठाना अकेला आयाम अगर शक्ति का होता तो ठीक है; सहनशीलता भी बड़ी शक्ति है--जीवन के दुखों को झेल जाना।

स्त्रियां देर तक जवान रहती हैं, अगर उन्हें दस-पंद्रह बच्चे पैदा न करना पड़ें। तो पुरुष जल्दी बूढ़े हो जाते हैं; स्त्रियां देर तक युवा और ताजी रहती हैं।

जब बच्चे पैदा होते हैं तो प्रकृति को भी, परमात्मा को भी पता है, सौ लड़कियां पैदा करता है, एक सौ पंद्रह लड़के पैदा करता है। क्योंकि चौदह साल के होते-होते पंद्रह लड़के मर जाएंगे; तब संख्या बराबर हो जाएगी। लड़के ज्यादा पैदा होते हैं, लड़कियां कम पैदा होती हैं। क्योंकि विवाह की उम्र आते-आते पंद्रह प्रतिशत लड़के तो समाप्त हो चुके होंगे।

लड़कियां पहले बोलना शुरू करती हैं। बुद्धिमत्ता लड़कियों में पहले प्रकट होती है। लड़कियां ज्यादा सतेज होती हैं, ज्यादा शांत होती हैं। विश्वविद्यालयों में भी प्रतिस्पर्धा में लड़कियां आगे होती हैं।

ऐसा होना भी चाहिए। क्योंकि पुरुष अपरिहार्य नहीं है। पुरुष के बिना काम चल सकता है; स्त्री के बिना काम नहीं चल सकता। स्त्री अपरिहार्य है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। अब तो आर्टिफीशियल इनसेमिनेशन संभव है, पुरुष को बिल्कुल विदा किया जा सकता है। लेकिन स्त्री को विदा नहीं किया जा सकता।

इस पर बड़े प्रयोग चलते हैं। पुरुष का उपयोग प्रकृति के सृजन में कितना है?

पुरुष संभोग के क्षण में क्षण भर में तो चुक जाता है; उसका काम पूर्ण हो गया। जो काम पुरुष के लिए क्षण भर में पूरा हो गया है, वह स्त्री के लिए कोई बीस वर्ष लगेंगे। वह उसके पूरे जीवन का ढांचा हो जाएगा। एक बच्चा पैदा होगा; बड़ा होगा; उसका विवाह होगा।

पिता प्राकृतिक नहीं है, सामाजिक है; क्योंकि पशुओं में कोई पिता नहीं है, लेकिन माता है। आदिम युगों में मनुष्यों में भी कोई पिता नहीं था, मां ही थी। पिता तो सामाजिक व्यवस्था है। और इसीलिए तो पुरुष को रोक रखना एक स्त्री के पास बड़ा कठिन काम है। पुलिस लगी है, अदालतें लगी हैं, कानून लगा है, सब भांति कि पुरुष एक स्त्री के पास रुका रहे। लेकिन स्त्री एक पुरुष के पास रुकना चाहती है; कोई कानून को लगाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि पिता बिल्कुल ही अप्राकृतिक है, कृत्रिम है; उसको जोर-जबरदस्ती से रोका गया है।

नसरुद्दीन का बेटा अपने बाप से पूछ रहा था कि मैं कानून की किताब पढ़ रहा हूं। आखिर दो शादी करने पर इतनी मनाही क्यों है? यह जुर्म क्यों है?

तो नसरुद्दीन ने कहा, बेटा, तुझे पता नहीं; जो अपनी रक्षा नहीं कर सकते, उनकी कानून को रक्षा करनी पड़ती है। अगर कानून रक्षा न करे तो दो पर भी नहीं रुकेगा पुरुष। फिर मुसीबत में पड़ेगा।

पुरुष, पिता, सामाजिक संस्कार है। असली नाता तो बच्चे का मां से है। और पिता का काम बड़ा थोड़ा सा है; वह काम इंजेक्शन भी कर सकता है। लेकिन मां का काम कोई व्यवस्था नहीं कर सकती।

इस पर प्रयोग चले हैं कि क्या मां के गर्भ को भी हम यंत्र में, यांत्रिक गर्भ में भी बच्चे को रख कर बड़ा कर सकते हैं? बच्चा बड़ा हो जाता है--पशुओं के बच्चों पर प्रयोग किए गए हैं--लेकिन वह पागल ही बड़ा होता है। विक्षिप्त हो जाता है पहले ही से। क्योंकि मां का गर्भ सिर्फ यंत्र नहीं है; एक बड़े गहन प्रेम की छाया भी भीतर है जो यंत्र नहीं दे सकता। यंत्र गर्मी दे देगा, प्रेम नहीं दे सकता। गर्मी तो बिजली से भी मिल सकती है। लेकिन मां से जो गर्मी मिलती है, उसमें जो प्रेम का तत्व जुड़ा है, वह बिजली से नहीं मिल सकती।

बंदरों पर एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था हार्वर्ड में। तो उसने दो बंदर-माताएं बनाई थीं। एक बंदर-माता; बिजली का ही सब इंतजाम, उसके स्तन, दूध की सब व्यवस्था, और कंबल से लपेटी हुई थी उसे। और दूसरी माता सिर्फ तारों से बनी थी; उसमें भी सब दूध का सब इंतजाम, गर्मी का इंतजाम। लेकिन बंदर उस मां से दूध पीना पसंद करते थे जिसमें थोड़ा कंबल लिपटा हुआ था। क्योंकि थोड़ा सा मां के शरीर का एहसास, थोड़ा सा मां की चमड़ी का स्पर्श, ऐसी कुछ प्रतीति उसमें थी।

अलग-अलग बंदर पाले गए। जो बंदर मां के पास पाले गए वे, जो कंबल से लिपटी मां के यंत्र से पाले गए वे, और जो तारों से लिपटी मां से पाले गए--उन तीनों में बुनियादी फर्क थे। पहले बच्चे बिल्कुल स्वस्थ थे। दूसरे बच्चे शरीर से बिल्कुल स्वस्थ थे, लेकिन मन से कुछ-कुछ विक्षिप्त थे। और तीसरे बच्चे शरीर से बिल्कुल स्वस्थ थे, लेकिन मन से बिल्कुल विक्षिप्त थे।

मां कुछ और भी दे रही है। पिता तो केवल जीवाणु दे रहा है, जो कि इंजेक्शन से भी दिया जा सकता है; मां कुछ और भी दे रही है। शरीर ही नहीं, उसके जीवन की ऊर्जा, उसके भीतर छिपे हुए प्राण बच्चे को सब तरफ से सम्हाल रहे हैं। यह संभव नहीं है कि यंत्र से किया जा सके। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं, पुरुष को कभी हम विदा भी कर सकते हैं, लेकिन स्त्री को विदा नहीं किया जा सकता। वह ज्यादा मौलिक है, ज्यादा आधारभूत है।

लाओत्से कहता है कि स्त्रैण तत्व सृष्टि का मूल है। पुरुष सहयोगी है, आधार नहीं।

और स्त्रैण तत्व क्या है? स्त्रैण तत्व है, पहली बात समझ लेनी, गड्ढे की भांति। स्त्री क्या है? स्त्री एक गर्भ, एक गड्ढा है। एक रिसेप्टिविटी, एक ग्राहकता है। स्त्री में जगह है, स्पेस है। तभी तो उसमें बच्चा बड़ा हो सकता है। एक दूसरे जीवन को भीतर लेने की संभावना है।

लाओत्से कहता है कि तुम भी स्त्रैण बनो, ताकि तुम भीतर ले सको। परमात्मा भी तुम्हारे भीतर तभी प्रवेश कर सकेगा जब तुम गर्भ की भांति हो जाओगे। जगह बनाओ, गड्ढा करो, स्थान बनाओ। और परमात्मा को भी तुम तभी सम्हाल सकोगे जब तुम्हारे भीतर स्त्रैण प्रेम--समर्पण होगा। नहीं तो तुम न सम्हाल सकोगे। क्योंकि परमात्मा को सम्हालना एक महानतम गर्भ है, उससे बड़ा कोई गर्भ नहीं। क्योंकि उससे तुम्हारा ही पुनर्जन्म होगा, नया जन्म होगा। तुम अपने ही भीतर को पुनः नए रूप, नए आयाम में उदघाटित करोगे। तुम ही तो जन्मोगे अपने भीतर से।

स्त्रैण का अर्थ हैः भीतर जो खाली है और जिसमें ग्राहकता है। स्त्री लेती है; पुरुष देता है। तुम लेने वाले बनो, गड्ढे की भांति। क्योंकि परमात्मा तो दे ही रहा है; उसकी वर्षा तो हो ही रही है।

पुरुष आक्रामक है। कोई स्त्री इतना भी आक्रमण नहीं करती पुरुष पर कि उससे कहे कि मैं तुझसे प्रेम करती हूं। स्त्री प्रतीक्षा है; पुरुष की प्रतीक्षा करेगी कि वह कहे कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। वह स्वीकार करेगी, अस्वीकार करेगी; लेकिन आक्रमण नहीं करेगी। वह राह देखेगी।

जो सत्य की खोज में चले हैं, उन्हें आक्रामक नहीं होना चाहिए। अन्यथा वे न पहुंच सकेंगे। पुरुष की तरह परमात्मा तक न पहुंचा जा सकेगा--अकड़ से भरे हुए। विनम्र, प्रतीक्षा से, राह जोहते, जैसे एक प्रेयसी राह देख रही हो बैठे घर के द्वार पर अपने प्रेमी के आने की, सब तरह से आकुल, फिर भी आक्रामक नहीं।

अनाक्रामक आकुलता भक्ति है। व्याकुलता पूरी है, लेकिन व्याकुलता में आक्रमण नहीं है कि उठ पड़े, कि हमला कर दे।

जो भी स्त्री आक्रामक होती है वह आकर्षक नहीं होती। अगर कोई स्त्री तुम्हारे पीछे पड़ जाए और प्रेम का निवेदन करने लगे तो तुम घबड़ा जाओगे। तुम भागोगे। क्योंकि वह स्त्री पुरुष जैसा व्यवहार कर रही है, स्त्रैण नहीं है। स्त्री का स्त्रैण होना, उसका माधुर्य इसी में है कि वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है। वह तुम्हें उकसाती है, लेकिन आक्रमण नहीं करती। वह तुम्हें बुलाती है, लेकिन चिल्लाती नहीं। उसका बुलाना भी बड़ा मौन है। वह तुम्हें सब तरफ से घेर लेती है, लेकिन तुम्हें पता भी नहीं चलता। उसकी जंजीरें बड़ी सूक्ष्म हैं; वे दिखाई भी नहीं पड़तीं। वह बड़े पतले धागों से, सूक्ष्म धागों से तुम्हें सब तरफ से बांध लेती है; लेकिन उसका बंधन कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता। पुरुष के बंधन बड़े पार्थिव हैं, दिखाई पड़ने वाले हैं। स्त्री के बंधन बड़े अदृश्य हैं, बड़े आत्मिक हैं, अपार्थिव हैं; दिखाई नहीं पड़ते।

सत्य या परमात्मा की तरफ तुम स्त्री की भांति जाना।

कृष्ण के आस-पास जो परम धारणाओं का जाल रचा गया, वह यही है। कृष्ण यानी परमात्मा। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है, जो आकृष्ट करे, जो खींचे। और सारा जगत उस परमात्मा की प्रेयसी है, गोपी है। धारणा यही है कि परमात्मा को पाना हो तो परमात्मा पुरुष और तुम स्त्री बन जाना। और तुम जो ताना-बाना बुनो, वह प्रेम का और प्रार्थना का हो। उसमें अगाध समर्पण हो, अगाध श्रद्धा हो; पर कोई भी चीज आक्रमण का रंग न ले पाए।

स्त्री अपने को नीचे रखती है। लोग गलत सोचते हैं कि पुरुषों ने स्त्रियों को दासी बना लिया। नहीं, स्त्री दासी बनने की कला है। मगर तुम्हें पता नहीं, उसकी कला बड़ी महत्वपूर्ण है। और लाओत्से उसी कला का उदघाटन कर रहा है। कोई पुरुष किसी स्त्री को दासी नहीं बनाता। दुनिया के किसी भी कोने में जब भी कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती है, तत्क्षण अपने को दासी बना लेती है। क्योंकि दासी होना ही गहरी मालकियत है। वह जीवन का राज समझती है।

मालिक बनने का अर्थ अकड़ है। और जो अकड़ा हुआ है वह मालिक न हो पाएगा। वह टूटेगा। स्त्री अपने को नीचे रखती है; चरणों में रखती है। और तुमने देखा है कि जब भी कोई स्त्री अपने को तुम्हारे चरणों में रख देती है तब अचानक तुम्हारे सिर पर ताज की तरह बैठ जाती है। रखती चरणों में है, पहुंच जाती है बहुत गहरे, बहुत ऊपर। तुम चौबीस घंटे उसी का चिंतन करने लगते हो। छोड़ देती है अपने को तुम्हारे चरणों में, तुम्हारी छाया बन जाती है। और तुम्हें पता भी नहीं चलता कि छाया तुम्हें चलाने लगती है; छाया के इशारे से तुम चलने लगते हो। स्त्री कभी यह भी नहीं कहती सीधा कि यह करो, लेकिन वह जो चाहती है करवा लेती है। वह कभी नहीं कहती कि यह ऐसा ही हो, लेकिन वह जैसा चाहती है वैसा करवा लेती है।

लाओत्से यह कह रहा है कि उसकी शक्ति बड़ी है। और शक्ति उसकी क्या है? क्योंकि वह दासी है। शक्ति उसकी यह है कि वह छाया हो गई है। बड़े से बड़े शक्तिशाली पुरुष किसी के प्रेम में पड़ जाते हैं, और एकदम अशक्त हो जाते हैं। चाहे नेपोलियन हो, तो अपनी प्रेयसी जोसेफाइन के सामने वह बिल्कुल साधारण बच्चा है। लाखों सैनिकों को आज्ञा देता है। आल्प्स पर्वत को कह देता है कि मेरी आज्ञा है, पार होना ही होगा; इससे हम पार होकर ही रहेंगे। इसके पहले कभी पार नहीं किया था किसी सेना ने। आल्प्स को पार कर लेता है। युद्ध के मैदान पर उसका कोई मुकाबला नहीं है। लेकिन जोसेफाइन के सामने वह छोटा बच्चा हो जाता है। भयंकर युद्ध चलता हो तो भी रोज एक पत्र वह रात, आधी रात को भी मौका मिले उसे, रोज एक पत्र जोसेफाइन को जरूर लिखता है। और जोसेफाइन छाया की तरह है। और कभी उसने उसे चलाना नहीं चाहा; कोई आतुरता नहीं है कि नेपोलियन को वह चलाए। लेकिन नेपोलियन चलता है। क्या हो गया है?

लाओत्से कहता है, स्त्रैण शक्ति की बड़ी खूबी है। वह खूबी यही है जो कि अस्तित्व की खूबी है। तो अगर तुम्हें अस्तित्व को समझना है तो स्त्रैण चित्त की धारणा को ठीक-ठीक समझ लेना। अस्तित्व भी ऐसे ही चल रहा है। स्त्री अब भी अस्तित्व के पास है। पुरुष अपने विचार में बहुत दूर खो गया है।

नीचे हो जाना; तब तुम ऊंचे हो जाओगे। छाया बन जाना; तब तुम्हीं मार्गदर्शक हो जाओगे। अपने को मिटा देना, रेखा भी मत बचाना; तब तुम्हारी विजय की कोई सीमा नहीं है।

अभी तुम बिल्कुल हारे हुए हो। अभी तुम बिल्कुल खंडहर हो, टूटे हुए हो। अभी तुम्हारी आंखों में सिवाय पराजय के, हारेपन के, सर्वहारा भाव के, कुछ भी नहीं है। तुमने अपनी अकड़ से जीकर बहुत देख लिया। अगर तुम्हारे पास कान हों और मेरी बात तुम्हें सुनाई पड़े तो तुम अब बिना अकड़ के जीना शुरू कर दो। पुरुष की भांति दंभ से भरे हुए बहुत जी लिए जन्मों-जन्मों।

यहां एक बड़ी मजेदार बात है। महावीर के अनुयायी मानते हैं कि जब तक कोई व्यक्ति पुरुष की पर्याय में न आ जाए तब तक मुक्त नहीं हो सकता। अगर ठीक उसके सामने तुम्हें लाओत्से को समझना हो तो लाओत्से कहता है, जब तक कोई स्त्री पर्याय में न आ जाए तब तक मुक्त नहीं हो सकता।

महावीर और लाओत्से ठीक विरोधी छोर हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि सौ में निन्यानबे लोग लाओत्से के मार्ग से पहुंच सकेंगे; सौ में से एक ही महावीर के मार्ग से पहुंच सकता है। क्योंकि महावीर का मार्ग संघर्ष का है, समर्पण का नहीं। झगड़े का है; वह प्रकृति से झगड़ा है, संघर्ष है। उसमें कभी कोई एकाध ही सफल हो पाता है। लेकिन लाओत्से के मार्ग से सौ में से निन्यानबे लोग पहुंच सकते हैं। क्योंकि वह संघर्ष का नहीं है, वह समर्पण का है। वह परमात्मा को जीतने की कोशिश नहीं है; वह परमात्मा के सामने हार जाने की कोशिश है। अब जो हारने को राजी है, उसको तुम कैसे हराओगे? जो जीतना ही नहीं चाहा, उसकी जीत को तुम कैसे मिटाओगे?

यही पुरुष और स्त्री का भाव है। पुरुष जब भी स्त्री के संबंध में सोचता है तो जीत के भाव से सोचता है कि कैसे इस स्त्री को जीतूं! स्त्री जब भी किसी पुरुष के संबंध में अपने गहन भाव में सोचती है तो वह यही सोचती है, कैसे इस पुरुष से हारूं! कब वह महत क्षण आएगा जब मैं इस पुरुष से हार जाऊंगी!

लाओत्से कहता है, हारने की कला ही जीतने की कला है--स्त्रैण भाव में। और मैं भी तुमसे कहता हूं कि सौ में निन्यानबे मौके तुम्हारे लिए भी लाओत्से के मार्ग से ही खुलेंगे। नदी की धार के विपरीत तैर कर कोई एकाध आदमी शायद पहुंच जाए; वह भी संदिग्ध मालूम पड़ता है। क्योंकि नदी से लड़ोगे तो टूटोगे। नदी की धार में बह कर सभी पहुंच सकते हैं--कमजोर भी, शक्तिशाली भी। किसी को बाधा नहीं है; क्योंकि बहना ही है धार के साथ।

रामकृष्ण कहते थे, एक ढंग तो है पतवार चलाने का; वह नदी से लड़ना है। उससे थकान आएगी ही। और एक रास्ता है प्रतीक्षा करने का कि जब हवा दूसरे किनारे की तरफ बह रही हो तब पाल तान देना। पतवार की कोई जरूरत नहीं, हवा का ही उपयोग कर लेना। हवा दूसरे किनारे की तरफ जा रही है, पाल खोल देना। हवा के साथ ही नाव चली जाती है। प्रतीक्षा करना ठीक समय की और समर्पण कर देना। फिर तुम्हें पतवार नहीं चलानी पड़ती।

और पतवार चला कर शायद ही कभी कोई थोड़े से लोग पहुंचे हैं। उनको अंगुलियों पर गिना जा सकता है। इसलिए तो जैन धर्म बहुत प्रभावी नहीं हुआ; जगत में उसकी दूर-दूर तक खबर नहीं पहुंच सकी; करोड़ों-करोड़ों लोग उस मार्ग पर चल नहीं सके। जो थोड़े से इने-गिने अनुयायी हैं, वे भी चलते नहीं, नाम-मात्र को जैन हैं। जैन शब्द आता है जिन शब्द से। जिन का अर्थ हैः जीतने वाला; जिसने जीता, जिसने जीत कर दिखला दिया।

लाओत्से कहता है कि हार जाओ, सर्वहारा हो जाओ, स्त्रैण हो जाओ। तो तुम पहुंच जाओगे। स्त्रैण होने का अर्थ हैः नदी में पतवार मत उठाओ, पाल तान दो।

अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।

"बड़े देश को नदीमुख नीची भूमि की तरह होना चाहिए।"

जहां नदी गिरती है सागर में, वैसा होना चाहिए।

"क्योंकि वह संसार का संगम है, और संसार का स्त्रैण गुण है। स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है, और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।"

नीचे रखती है स्त्री अपने को, पीछे रखती है स्त्री अपने को, और सदा आगे रहती है। और सदा ऊपर रहती है।

कहानी है, सुनी होगी तुमने, कि अकबर ने बीरबल को कहा कि मेरे इस दरबार में क्या ऐसे लोग भी हैं जो अपनी स्त्री से डरते न हों? बीरबल ने कहा, बड़ा जटिल है पता लगाना। क्योंकि उनके अंतःकक्षों में कौन प्रवेश करे? लेकिन कोई तरकीब निकालेंगे। कुछ लोग जरूर होंगे।

तरकीब निकाली गई। सारे दरबारी बुला लिए गए। और अकबर ने कहा कि ईमान से, धोखा मत देना, यह तुम्हारी सच्चाई की कसौटी है कि जो भी लोग स्त्रियों से डरते हों, अपनी स्त्रियों से, वे एक कतार में खड़े हो जाएं। सारे लोग खड़े हो गए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर। अकबर भी हैरान हुआ, इतने लोग स्त्रियों से डरते हैं! फिर इससे भी हैरान हुआ कि कम से कम एक आदमी तो है, और इस आदमी को वह हमेशा दब्बू समझता था। यह आदमी कोई बड़ी अकड़ का आदमी न था। फिर भी उसने कहा कि धन्य है मेरा भाग्य; कम से कम मेरे दरबार में एक आदमी है। तुम अपनी स्त्री से नहीं डरते?

उसने कहा, आप मुझे गलत मत समझें। घर से जब निकलने लगा, मेरी पत्नी ने कहा, जहां भी भीड़-भाड़ हो वहां खड़े मत होना। अब उधर सब खड़े हैं, तो मैं उधर भीड़-भाड़ में खड़ा नहीं हो सकता।

ऐसा पुरुष खोजना कठिन है जो अपनी स्त्री की नहीं मान कर चलता। इसमें कुछ बुरा भी नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। लाओत्से यही समझा रहा है। लाओत्से यही कह रहा है कि यह स्वाभाविक है। अगर प्रेम है पुरुष का स्त्री से तो वह मान कर चलता ही है। जैसे तुम्हारे भीतर मस्तिष्क है और हृदय है; मस्तिष्क पुरुष है और हृदय स्त्री है। अगर तुम प्रेमपूर्ण हो तो तुम हृदय की मान कर चलोगे, मस्तिष्क की मान कर नहीं। वैसे ही दो व्यक्ति जब प्रेम में पड़ जाते हैं तो स्त्री हृदय है और पुरुष मस्तिष्क है। तब भी हृदय की ही मान कर चलोगे जब तुम प्रेम में पड़ जाते हो।

हां, प्रेम न हो तब बात अलग। प्रेम हो तो स्त्री हमेशा जीतती है। नदी ही न हो तो बात अलग। तो गिरेगा क्या? लेकिन अगर नदी हो प्रेम की तो स्त्री हमेशा जीतती है। क्योंकि वह नीचे रखती है अपने को; तुम्हारी नदी को उसमें गिरना ही पड़ेगा। इसमें कोई उपाय नहीं है।

और स्त्री मौन से जीतती है, वह बोलती नहीं। वह कहती भी नहीं, यद्यपि उसका पूरा व्यक्तित्व कह देता है। अगर स्त्री को कहीं नहीं जाना है और चाहते हो तुम कि जाए तो उसके पूरे व्यक्तित्व से भनक पड़ने लगती है कि वह जाना नहीं चाहती। कहेगी नहीं। जो स्त्री कह दे वह ठीक-ठीक स्त्री नहीं है। क्योंकि जो बिना कहे हो जाए उसे कह कर क्या करवाना? जो मौन से हो जाता हो उसे बोल कर कहलवाना बिल्कुल व्यर्थ है। और बात का रस ही खो जाता है। स्त्री पूरे व्यक्तित्व से कहती है। स्त्री ज्यादा टोटल है, समग्र है।

अक्सर ऐसा होता है--मनोवैज्ञानिक इस खोज पर बड़े हैरान हुए हैं--अक्सर ऐसा होता है कि पति है, पत्नी है, छोटा बच्चा है। पति चाहता है कि क्लब जाना, या कहीं मंदिर जाना, सिनेमा जाना; पत्नी नहीं जाना चाहती। वह कहेगी नहीं; अगर प्रेम है तो वह बिल्कुल नहीं कहेगी। क्योंकि प्रेम का मतलब ही यह है कि वह छाया है; पति जहां जाए वह जाए। वह नहीं कहेगी। लेकिन वह जाना नहीं चाहती। उसके सारे व्यक्तित्व से तरंगें उठती हैं न जाने की। बच्चा फौरन इनकार करने लगेगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा माध्यम हो जाता है तत्क्षण। वह खांसने लगेगा कि मेरी तबीयत खराब है, यह है, वह है। और वह बच्चा बाधा खड़ी करेगा। इस पर बहुत से अध्ययन किए गए हैं कि यह मामला क्या है? यह बच्चा कैसे पहचान लेता है?

बच्चा अभी ज्यादा सरल है। अभी बच्चा हृदय ही हृदय है। अभी बच्चा स्त्री के ज्यादा करीब है, पुरुष के उतने करीब नहीं है। इसलिए मां के भीतर जो भी घटित होता है उसकी तरंगें बच्चे को पहले लग जाती हैं। पति को देर लगेगी तरंगें पहुंचने में; वह काफी फासले पर है। और बच्चा फौरन घोषणा कर देगा कि उसकी तबीयत खराब है,

या उसे बुखार मालूम हो रहा है, या वह नहीं जाना चाहता। और मां ने एक शब्द नहीं कहा है बच्चे को। लेकिन उसकी भाव-भंगिमा, उसके होने का ढंग--और बच्चा पकड़ लेता है।

अगर पुरुष बहुत प्रेम करता है तो वह भी पकड़ लेता है। क्योंकि जो पुरुष प्रेम करता है अपनी पत्नी को वह अपनी पत्नी के पास बच्चे जैसा ही हो जाता है। पत्नी का स्वभाव बहुत गहरे में मां का स्वभाव है। स्त्री का स्वभाव मां का स्वभाव है, और पुरुष का स्वभाव बहुत गहरे में बेटे का स्वभाव है।

इसलिए हिंदू ऋषिओं ने तो आशीर्वाद दिया है कि वही विवाह सफल है जिसमें अंत में पति बेटे की तरह हो जाए। हिंदू ऋषि आशीर्वाद देते थे नव वर-वधू को तो वे कहते थे कि दस तुम्हारे बेटे हों और ग्यारहवां पति तुम्हारा बेटा हो जाए।

अंतिम सफलता प्रेम की वहां है जहां पत्नी मां हो गई और पति बेटा हो गया। उसका अर्थ इतना ही हुआ कि अब पति भी इतने करीब आ गया, जैसे कि स्त्री के गर्भ में समा गया। इतनी निकटता आ गई कि अब स्त्री का मौन भी उसे समझ में आता है। स्त्री अपने मुंह से "नहीं" कहे, वह शोभा नहीं देता, लेकिन उसकी तरंगें कह दें और पति समझ ले, वही शोभा देता है।

छाया की तरह स्त्री रहेगी और चलाएगी। मौन रहेगी और उसका मौन भी बड़ा वाचाल है। वह मौन से कह देगी। और जहां प्रेम है वहां यह अंतरंग वार्ता समझ में आ जाती है।

प्रेमी बहुत ज्यादा बोलते नहीं। पति-पत्नी बोलते हैं, क्योंकि वहां प्रेम ज्यादा होता नहीं। प्रेमी ज्यादातर चुप बैठते हैं। क्योंकि मौन इतना सुखद है कि बोलना क्या! पति-पत्नी बोलते हैं कि न बोलें तो न मालूम कोई झगड़ा-कलह न खड़ा हो जाए। तो कुछ न कुछ बातचीत चलाते हैं। पति सोच-सोच कर कुछ बात निकालता है कि ऐसा हो गया दफ्तर में, वैसा हो गया। पत्नी कुछ बात चलाती है। बातचीत से भरते हैं दोनों के बीच की खाली जगह को। क्योंकि वहां खाली है; और बातचीत न रही तो खालीपन एकदम दिखाई पड़ेगा। बातचीत न रही तो फासला साफ हो जाएगा। बातचीत ही जोड़े हुए है।

लेकिन प्रेमी चुपचाप बैठे रहते हैं; एक-दूसरे से सटे बैठे हैं नदी के तट पर, न कुछ बोलते हैं। बोलने की कोई जरूरत नहीं। जो बिन बोले हो जाए उसे बोल कर क्या कहना? जो ऐसे ही हो जाए मौन में संवाद, उसके लिए शब्द का क्या उपयोग करना?

और यही घटना धीरे-धीरे गुरु और शिष्य के बीच घटनी शुरू होती है। बोलना तभी तक पड़ता है जब तक बिन बोले तुम न समझ सको। जब तुम बिन बोले समझने लगोगे तब बोलने की कोई जरूरत न रह जाएगी। तब तुम आओगे चुपचाप मेरे पास, बैठोगे, समझ लोगे, और चले जाओगे। जैसे-जैसे करीब हम होने लगते हैं वैसे-वैसे बोलना न बोलने जैसा होने लगता है।

अभी भी जो मेरे करीब आ गए हैं, वह मैं जो बोलता हूं उससे उनका बहुत प्रयोजन नहीं है। मेरे दो शब्दों के बीच में जो खाली जगह है, उससे ही उनका ज्यादा प्रयोजन है। अब वे लकीरों के बीच पढ़ने लगे हैं और शब्दों के बीच सुनने लगे हैं। अब शब्द तो केवल बहाना है।

लेकिन जो नए होंगे उनके लिए शब्द ही सेतु होंगे।

दूर को जोड़ना हो, शब्द चाहिए। पास को जोड़ना हो, मौन काफी है।

लाओत्से कहता है, बड़े देश को भी स्त्री जैसा होना चाहिए, और छोटे देशों के नीचे रख लेना चाहिए। यह बड़ी महत्व की बात है। काश, कभी यह हो सके तो दुनिया में युद्ध बंद हो जाएं। लाओत्से की बात सुनी जाए तो

ही दुनिया से युद्ध समाप्त हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। क्योंकि लाओत्से यह कह रहा है कि बड़ा देश अपने को नीचे रख ले। तुम इतने बड़े हो कि ऊपर रखने की बात ही बेहूदी मालूम पड़ती है। जो बड़ा है वह विनम्र हो जाता है।

रहीम ने कहा है, जब वृक्ष फलों से लद जाता है तो डालियां झुक जाती हैं। जो जितना भर जाता है, जितना बड़ा हो जाता है, उतना झुक जाता है। जमीन छूने लगती हैं उसकी डालियां। ये तो बिना फल के वृक्ष हैं जो अकड़े खड़े रहते हैं।

छोटा आदमी अकड़ा रहता है, क्योंकि उसे डर है कि अगर झुका तो लोग समझ लेंगे छोटा है। बड़े को क्या डर है? बड़ा झुक सकता है। क्योंकि कितना ही झुके, बड़प्पन तो खोता नहीं, बल्कि झुकने से बढ़ता है। जिसके भीतर हीनता की ग्रंथि छिपी है, वह डरता है।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं उनको देखता हूं। उनमें जिनमें भी थोड़ा सा भी बड़प्पन है, वे सरलता से झुक जाते हैं। उनमें जो बहुत क्षुद्र हैं और बहुत हीनता की ग्रंथि से भरे हैं, वे अकड़े खड़े रह जाते हैं। उनका झुकना मुश्किल है। क्योंकि उनको डर है, अगर वे झुके, उन्हें पता है कि वे हीन हैं, दूसरों को भी पता चल जाएगा कि हीन हैं।

जो झुक सकता है सरलता से, जिसे झुकने में जरा भी अड़चन नहीं आती, जिसे झुकना सहज बात है, उसका अर्थ है कि उसके भीतर कोई हीनता का बोध नहीं, कोई इनफीरियारिटी कांप्लेक्स नहीं है।

छोटे डरते हैं झुकने से; बड़े अवसर खोजते हैं झुकने का। क्षुद्र भयभीत रहता है कि कहीं कोई ऐसा मौका न आ जाए कि झुकना पड़े। जो क्षुद्र नहीं है उसका भय क्या? इसलिए जितनी श्रेष्ठता होती है उतनी विनम्र होती है। और जितनी क्षुद्रता होती है उतनी ही अहंकारपूर्ण होती है।

लाओत्से कहता है, बड़े हो--चाहे व्यक्ति, चाहे देश--तो झुक रहो। नदीमुख नीची भूमि की तरह हो जाओ। क्योंकि तुम संसार के संगम हो। झुकोगे तो ही संगम बन पाओगे। संगम की भूमि तो नीची होनी चाहिए, तभी तो नदियां वहां गिरेंगी। अकड़े, ऊपर उठे, तो संगम न बन पाओगे। और संगम संसार का स्त्रैण गुण है। वहीं तो मिलन होता है।

हम इस देश में संगम को तीर्थ मानते रहे हैं। क्यों मानते रहे हैं तीर्थ? तीर्थ बड़ा विनम्र है। वहां बहुत सी नदियां आकर गिरी हैं। तीर्थ गड्ढा है। वह स्त्रैण गुण है। तुम भी तीर्थ में जाकर झुक जाना; स्त्रैण गुण से भर जाना; खाली हो जाना। तो भरे हुए लौटोगे।

लेकिन होता उलटा है। लोग तीर्थ जाते हैं, और अकड़ कर लौटते हैं कि हम तीर्थयात्री हैं, हम हज होकर आए, हाजी हैं। अब उनकी अकड़ ही अलग है। अब उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते।

तीर्थ यानी संगम। संगम यानी झुका हुआ, जहां नदियां गिर रही हैं। वहां जाकर तुम भी देख लेना। इसलिए तीर्थयात्रा उपयोगी है कि वहां देखना, जो झुका हुआ स्थल है, वहां तीन नदियां गिर रही हैं। ऐसे ही तुम झुक जाना, तो तुम भी बहुत सी नदियों के गिरने के स्वाभाविक स्थल बन जाओगे। कुछ करना न पड़ेगा। संगम में कुछ किया थोड़े ही है। नदियों को न बुलावा दिया है, न खींच कर नदियों को लाया गया है। ये नदियां कोई नहरें तो नहीं हैं। ये अपने से आई हैं। कोई इनको ले नहीं आया है। ये क्यों आई हैं? ये किसकी तलाश करती आई हैं? ये एक गड्ढे को खोज रही थीं जहां समा जाएं; कोई गर्भ खोज रही थीं जहां लीन हो जाएं; कोई पात्र की तलाश थी जिसको भर दें।

"स्त्री पुरुष को मौन से जीत लेती है, और मौन से वह नीचा स्थान प्राप्त करती है।"

कहती है दासी अपने को, हो जाती है मालकिन। कहती है दासी, बन जाती है रानी। अगर परमात्मा के हृदय में भी तुम्हें ऊंचा स्थान पाना हो तो तुम आखिरी से भी आखिरी हो रहना।

"इसलिए यदि एक बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रखता है, तो वह छोटे देश को आत्मसात कर लेता है।"

कर ही लेगा। यही तो पूरा का पूरा उपाय है गुरु को आत्मसात कर लेने का कि तुम गुरु के नीचे अपने को रख देना। तुम गड्ढा बन कर बैठ जाना वहां; गुरु की नदी तुममें गिर जाएगी, तुम भर जाओगे। जिसे भी आत्मसात करना हो, उसके नीचे गड्ढे बन कर बैठ जाना, उसके चरण पकड़ लेना।

लाओत्से कहता है, अगर बड़ा देश छोटे देश के नीचे अपने को रख दे, तत्क्षण छोटे देश को पी जाएगा। और यह पीना बड़ा प्रेम का होगा। यह कोई युद्ध से दबाया हुआ नहीं होगा, यह कोई तलवार के बल पर नहीं हुआ होगा। यह संगम होगा। यह स्त्रैण गुण से होगा।

इसलिए तो भारत ने कभी किसी पर हमला नहीं किया; कभी चाहा नहीं हमला करना। कारण था। हमला करने की बात ही बेहूदी है। यह देश इतना बड़ा है। और इसने बहुतों को आत्मसात कर लिया। जो भी विदेशी आया, जिसने भी इस पर हमला किया, जो भी इसका मालिक बन कर बैठा, उसको यह पी गया, उसको आत्मसात कर लिया। इसका आत्मसात करना बड़ा सूक्ष्म है! जो कुछ लाओत्से कह रहा है वह भारत का पूरा इतिहास है। इसने इंच भर भी अपने से बाहर जाकर फैलाव नहीं करना चाहा। छोटी-छोटी कौमें आईं; बड़ी छोटी कौमें थीं। इस मुल्क के सामने उनका कोई इतिहास न था, कोई गौरव न था। हूण आए, यवन आए, तुर्क आए, मुगल आए; उनका कोई इतिहास न था। भटकते कबीले थे, खानाबदोश थे; कोई संस्कृति न थी। इस मुल्क में उन्होंने शासन किया। वे इस भ्रांति में रहे कि वे शासन कर रहे हैं। वे अब कहां हैं? उन सबको भारत पी गया। इसने उनके नीचे रख लिया। यह चुपचाप उनको आत्मसात कर गया।

और अब पश्चिम में पता चलना शुरू हो रहा है। और भविष्य बताएगा इस घटना को। क्योंकि ये तो बहुत सूक्ष्म रास्ते हैं। अंग्रेजों ने इतने दिन तक इस मुल्क में हुकूमत की। वह हुकूमत तो क्षणभंगुर थी; आई-गई हो गई। लेकिन उनके माध्यम से भारत का हृदय पश्चिम में प्रविष्ट हो गया। सारी दुनिया भारत की तरफ दौड़ रही है। यह एक दूसरी ही विजय-यात्रा है, जिसको मिटाने का कोई उपाय नहीं है।

पश्चिम भारत पर हुकूमत करता रहा दो-तीन सौ वर्ष। भारत ने उसकी बहुत फिक्र न की। शासक ही फिर भारत के उपनिषद, वेद, गीता के अनुवादक बन गए। शासक ही फिर भारत के साधुओं-संन्यासियों के सत्संग में पहुंच गए। पश्चिम की हुकूमत के द्वारा ही भारत ने पश्चिम पर अपनी हुकूमत का जाल फैला दिया।

लंबा समय लगेगा, तब जाहिर होगा कि कौन जीता, कौन हारा। भारत को हराना मुश्किल है, एकदम असंभव है। वह नदी को उलटी धार बहाना है। आज पश्चिम के कोने-कोने में भारत का संन्यासी है। पश्चिम के कोने-कोने में भारत के मंदिर उठ रहे हैं। पश्चिम के कोने-कोने में ध्यान करने वाले लोग हैं, प्रार्थना करने वाले लोग हैं।

पर यह बड़ा धीमा है, बड़ा सूक्ष्म है--स्त्रैण है। इसलिए तुम इसकी अखबारों में खबर न पढ़ पाओगे। यह इतने चुपचाप हो रहा है, इतने मौन हो रहा है।

मैं यहां बैठा हूं। मैं तो उन गुरुओं को भी थोड़ा आक्रामक मानता हूं जो पश्चिम जाते हैं। क्योंकि उतना भी क्या जाना? उसमें भी थोड़ा पुरुष-गुण हो गया। मैं चुपचाप यहां बैठा रहता हूं। जिसको आना है वह आ ही जाएगा। अगर गड्ढा पूरा है तो कितनी देर तक नदी यहां-वहां भटकेगी? उसे आना ही पड़ेगा।

एक गड्ढा होकर बैठ जाओ। तो दूर-दूर देशों से, देश-देशांतर से नदियां बहती चली आती हैं।

लाओत्से कहता है कि बड़ा देश अपने को छोटे देश के नीचे रख ले तो वह छोटे को आत्मसात कर लेता है। और यदि छोटा देश भी होशियार और कुशल हो और बड़े देश के नीचे अपने को रख ले तो वह बड़े देश को आत्मसात कर लेता है।

छोटे-बड़े का सवाल नहीं है; जो नीचे रखता है वही अंततः बड़ा हो जाता है।

"इसलिए कुछ दूसरों को आत्मसात करने के लिए अपने को नीचे रखते हैं; कुछ स्वभावतः ही नीचे होते हैं और दूसरों को आत्मसात करते हैं।"

पर सूत्र वही है, नियम वही है। चाहे तुम होशपूर्वक करो, चाहे तुम बिन जाने करो; लेकिन जो नीचे है, आखिर में वही जीत जाता है। बीच में कितना ही शोरगुल मचे, और नदी कितने ही उफान ले और बाढ़ आए, और नदी कितने ही मनसूबे बांधे, लेकिन वे मनसूबे बीच के हैं। आखिर में गड्ढा नदी को आत्मसात कर लेता है।

"फिर बड़ा देश भी यही चाहता है कि दूसरों को शरण दे, और छोटा देश भी यही चाहता है कि प्रवेश पा सके और शरण पाए। इस प्रकार यह विचार कर कि वे दोनों वह पा सकें जो वे चाहते हैं, बड़े देश को अपने आप को नीचे रख लेना चाहिए।"

क्योंकि छोटे देश को नीचे रखने में वही अड़चन होगी जो छोटे आदमी को नीचे रखने में होती है। उसका अहंकार, हीनता का बोध कि मैं छोटा हूं, अड़चन देगा। बड़े को तो कोई हीनता नहीं है; वह नीचे रख सकता है।

यह जो सूत्र है, राष्ट्र, समाज, व्यक्ति, सबके लिए लागू है। क्योंकि नियम एक है। जीतना हो, हारने को मार्ग बनाओ। पाना हो, खोने की विधि सीखो। अमृत हो जाना हो, मर जाओ, मिट जाओ अपने हाथ से। अगर सब पाना हो, सब छोड़ दो। और तुम अपराजेय हो जाओगे। मैं इसे ही जिनत्व कहूंगा। और जो बिना लड़े मिलता हो उसको लड़ कर लेने वाला नासमझ है।

कबीर ने कहा है कि जो काम सुई से हो जाता हो, तलवार क्यों उठाते हो? और सच तो यह है कि यह काम बिना सुई उठाए हो जाता है। फिर तलवार क्यों उठाते हो?

इसे अपने जीवन का ढंग बनाओ। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में, धड़कन-धड़कन में समा जाए। जल्दी ही तुम एक महासुख के द्वार पर अपने को खड़ा हुआ पाओगे। जिससे तुम अब तक वंचित रहे हो, लगेगा आ गया क्षण मिलने का। जिसको अब तक तुमने अपनी नासमझी से गंवाया है, सोचते थे कमा रहे हो और गंवाते थे, उसे तुम पहली दफा कमा लोगे।

तुम ही हो कारण अपनी असफलता के, क्योंकि तुम सफल होने की कोशिश कर रहे हो। तुम ही आधार बन जाओगे परम सफलता के। एक बार असफल होकर देखो। एक बार हारो। सीख लो स्त्री का गुण।

स्त्रैण गुण इस जगत में सबसे प्रबल शक्ति है। उससे बड़ी कोई शक्ति नहीं।

आज इतना ही।

एक सौ दोवां प्रवचन

ताओ की भेंट श्रेयस्कर है

Chapter 62

The Good Man's Treasure

Tao is the mysterious secret of the universe,
The good man"s treasure, and the bad man's refuge.
Beautiful sayings can be sold at the market,
Noble conduct can be presented as a gift.
Though there be bad people, why reject them?
Therefore on the crowning of an emperor,
On the appointment of the Three Ministers,
Rather than send tributes of jade and teams of four horses,
Send in the tribute of Tao.
Wherein did the ancients prize this Tao?
Did they not say, "to search for the guilty ones and pardon them?"
Therefore is (Tao) the treasure of the world.

अध्याय 62

सज्जन का खजाना

ताओ संसार का रहस्य भरा मर्म है,
सज्जन का खजाना, और दुर्जन की पनाह।
सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं,
श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।
यद्यपि बुरे लोग हो सकते हैं, तथापि उन्हें अस्वीकृत क्यों किया जाए?
इसलिए सम्राट के राज्याभिषेक पर, तीन मंत्रियों की नियुक्ति पर,
मणि-माणिक्य और चार-चार घोड़ों के दल भेंट में भेजने के बजाय,
ताओ की भेंट भेजना श्रेयस्कर है।
किस बात में पूर्व-पुरुषों ने इस ताओ को मूल्य दिया था?

क्या उन्होंने नहीं कहा था, "अपराधियों को खोजने और उन्हें माफ कर देने को?"

इसलिए ताओ संसार का खजाना है।

लाओत्से के सूत्रों में प्रवेश के पूर्व कुछ प्राथमिक बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, लाओत्से किसे रहस्य कहता है?

इस शब्द से ज्यादा कीमती दूसरा कोई शब्द धर्म की यात्रा में नहीं है। रहस्य को समझ लिया तो सब समझ लिया। वही गहरे से गहरा मर्म है। वही है गुप्त से गुप्त खजाना। रहस्य क्या है?

रहस्य ऐसी समझ है कि तुम उसे समझ भी न कह पाओगे। रहस्य एक ऐसा जानना है कि तुम जान कर ज्ञानी न बन पाओगे, दावा न कर सकोगे कि जान लिया। जान लोगे, लेकिन दावा न कर पाओगे। गूंगे केरी सरकरा, खाय और मुस्काय। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व कहेगा, तुम न कह सकोगे कि जान लिया। तुम्हारा रोआं-रोआं कहेगा, लेकिन तुम्हारा अहंकार निर्मित न हो सकेगा कि जान लिया।

जानने वाला मिट जाए जिस ज्ञान में वही रहस्य है।

ज्ञान दो तरह के हैं। एक ज्ञान है जिससे जानने वाला मजबूत होता है। एक ज्ञान है जिससे जानने वाला धीरे-धीरे पिघलता है; अंततः वाष्पीभूत हो जाता है। ज्ञान तो बच रहता है, जानने वाला खो जाता है।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।

रहस्य ऐसा ज्ञान है जो ज्ञानी को मार देता है। रहस्य एक ऐसी अनुभूति है जिसमें जानने वाला और जिसे जाना है, दोनों एक हो जाते हैं। फासला नहीं रह जाता, अंतराल नहीं बचता। तो कौन कहे कि जान लिया? किसको कहे कि जान लिया? दावा कौन करे? किसके संबंध में करे? दावेदारी खो जाती है। ऐसा ज्ञान रहस्य है।

रहस्य गणित का साफ-सुथरा रास्ता नहीं है; सुगढ़, साफ, व्यवस्थित राज-मार्ग नहीं है। पहाड़ों में घूमता हुआ, वन-प्रांतों में उलझा हुआ, पगडंडी की तरह है। तुम उस पर चल सकते हो, लेकिन अकेले; भीड़ वहां न हो सकेगी। तुम उसे जान भी सकते हो, लेकिन अपने परम एकांत में। वहां दूसरा गवाह न हो सकेगा। तो अगर तुम कहोगे कि मैंने जान लिया तो तुम गवाही न खोज पाओगे। क्योंकि जब भी तुम जानोगे अकेले जानोगे, वहां दूसरे न होंगे। इसलिए रहस्य ऐसा ज्ञान है जो आत्यंतिक रूप में सब्जेक्टिव है, आत्मिक है; आब्जेक्टिव नहीं है, विषयगत नहीं है। यही तो धर्म और विज्ञान का फासला है।

विज्ञान भी सत्य को खोजता है, लेकिन खोज का ढंग आब्जेक्टिव है, बाहर खोजता है, दूसरे में खोजता है, पर में खोजता है, वस्तु में खोजता है। इसलिए तो विज्ञान सार्वभौम बन जाता है। एक दफा खोज लिया तो सभी को साफ हो जाता है। खोजने वाले को ही नहीं, जिन्होंने खोजने में कोई हिस्सा नहीं बंटाया उनको भी साफ हो जाता है। एडीसन या आइंस्टीन वर्षों मेहनत करके कुछ खोजते हैं; सारी दुनिया जान लेती है। हर एक को अलग-अलग खोजने की कोई जरूरत नहीं। एक ने खोज लिया, सब ने पा लिया। स्कूल में विद्यार्थी पढ़ेगा फिर, और जान लेगा।

विज्ञान में खोजता एक है, ज्ञान सबका हो जाता है। धर्म में खोजता एक है, उसका ही ज्ञान रहता है, दूसरे का नहीं हो पाता। इसलिए गवाह नहीं जुटाए जा सकते। तुम कहोगे भी तो कोई तुम्हारी मानेगा न। लोग हंसेंगे। लोग पागल समझेंगे। क्योंकि जिस बात के लिए गवाह न हो और जिसे तुम दूसरे के सामने प्रकट न कर सको उसकी मान्यता कौन करेगा?

तुम कहते हो, मैंने ईश्वर को पा लिया। लोग कहेंगे, दिखाओ कहां है ईश्वर? जब तुमने पा लिया, हमें भी दिखा दो। तब तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम कहोगे, जान लिया आत्मा को। लोग कहेंगे, थोड़ा झलक हमें भी दिखा दो। तब तुम कठिनाई में हो जाओगे। क्योंकि तुमने जो झलक पाई है वह नितांत वैयक्तिक है। तुमने जो जाना है वह तुम दूसरे को न जना सकोगे। तुम ज्ञान को ऐसा दे न सकोगे, हस्तांतरित न कर सकोगे। ट्रांसफरेबल नहीं है। तुम्हारे भीतर पैदा होता है; तुम उससे आपूर भर जाते हो, आकंठ भर जाते हो। तुम्हारा रोआं-रोआं उसे ध्वनित करने लगता है; तुम्हारी धड़कन-धड़कन में उसका गीत होता है। उठते हो, बैठते हो, तो उसी में; चलते हो, फिरते हो, तो उसी में; वही सब कुछ हो जाता है तुम्हारे जीवन का। एक अपूर्व वातावरण की तरह तुम्हें घेर कर चलता है तुम्हारा अनुभव। लेकिन तुम किसी को भी भागीदार न बना सकोगे। निकटतम भी, तुम्हारा प्रिय से प्रिय व्यक्ति भी बाहर ही खड़ा रहेगा, तुम्हारे अंतःकक्ष में प्रवेश न पा सकेगा।

इसलिए धर्म हर बार खोजा जाता है, हर बार खो जाता है। बुद्ध खोज लेते हैं, खो जाता है। लाओत्से खोज लेता है, खो जाता है। हजार बार खोजा जाता है, फिर-फिर खो जाता है। और जब भी तुम्हें खोजना होगा तो तुम्हें नए सिरे से ही खोजना होगा। इसलिए धर्म का कोई विज्ञान नहीं बन सकता; उसे पाठशालाओं में पढ़ाया नहीं जा सकता। उसका कोई शास्त्र नहीं बन सकता। कोई दूसरा तुम्हें दे ही नहीं सकता। यह है उसका रहस्य। खजाना इतना रहस्यपूर्ण है कि अकेला अपने अकेलेपन में ही पाता है। वह अंतरतम का स्वाद है। पगडंडी है एकांत की।

इसलिए तो महावीर ने उस परम रहस्य को कैवल्य कहा है। महावीर ने बड़ा अनूठा शब्द चुना है। सब शब्द फीके हैं। औरों ने भी शब्द चुने हैं, लेकिन महावीर का शब्द निश्चित अनूठा है। कैवल्य का अर्थ हैः टोटल, एब्सोल्यूट लोनलीनेस। कैवल्य का अर्थ हैः बिल्कुल अकेले; केवल तुम, और कोई भी नहीं। केवल तुम्हारी चेतना, और कोई भी नहीं। वह ज्ञान कैवल्य है। वह रहस्यपूर्ण है। बंधे हुए रास्तों की तरह नहीं है जहां भीड़ चल सके; बड़ा बारीक और महीन रास्ता है।

जीसस ने कहा है, अगर मेरे मार्ग पर चलना है तो बड़ा संकीर्ण है मार्ग, नैरो इ.ज दि गेट। बड़ा संकीर्ण है द्वार।

कबीर ने कहा है, प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय।

वहां दो भी न बन सकेंगे, तीन का तो सवाल ही नहीं उठता। तुम अकेले ही जाओगे--नग्न, निर्वस्त्र, धारणा-शून्य। तुम एक विचार भी अपने साथ न ले जा सकोगे, व्यक्ति की तो बात और। तुम शास्त्र अपने साथ न ले जा सकोगे। तुम अपना ज्ञान भी अपने साथ न ले जा सकोगे।

इसीलिए तो ज्ञानी कहते हैं, हो जाओ छोटे बच्चे की भांति अज्ञानी। क्योंकि तुम्हारा ज्ञान भी वहां साथ न जा सकेगा। तुमने जो भी कूड़ा-कर्कट सम्हाला है संसार में, बचाया है, कुछ भी तुम वहां न ले जा सकोगे। मंदिर के बाहर ही सब छोड़ देना होगा। जाएगी निर्वस्त्र चेतना, नग्न, नितांत अकेली। केवल तुम्हारा होश जाएगा, और कुछ भी नहीं जाएगा। लौट कर तुम गूंगे हो जाओगे। कहना चाहोगे, शब्द न मिलेंगे। बताना चाहोगे, हाथ न उठेगा। इसलिए है रहस्यः जान लिया जाए और कहा न जा सके।

वैज्ञानिक कहते हैं, जिसको जान लिया उसे कहने में अड़चन क्या? कहते क्यों नहीं? जब जान ही लिया तो कह दो! पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक और बहुत योग्य प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति लुडविग विटगिंस्टीन ने कहा है कि जो तुम न कह सको, फिर यह भी मत कहो कि नहीं कह सकते हैं, फिर बिल्कुल ही चुप रहो। यह इतना और क्यों कहते हो कि कह नहीं सकते हैं? अगर इतना ही कहते हो तो बाकी और भी कह दो।

विटगिंस्टीन भी ठीक कह रहा है, कि क्यों परेशानी में डालते हो? तुम परेशानी में खुद हो और दूसरों को डालते हो। नहीं कह सकते तो चुप ही रहो। दैट व्हिच कैन नाट बी सेड शुड नाट बी सेड। मत कहो जो नहीं कहा जा सकता। लेकिन इतना तो तुम कहते हो कि नहीं कहा जा सकता, और फिर चुप हो जाते हो।

रहस्य का अर्थ यही है। कहा भी नहीं जा सकता; बिन कहे भी नहीं रहा जा सकता। कहो तो मौत, न कहो तो मौत। कहो तो उलझन, न कहो तो उलझन। पहेली ऐसी कि सुलझाई भी नहीं जा सकती और बिना सुलझाए रहा भी नहीं जा सकता। और मजा तो यह है कि कहीं भीतर गहरे में सुलझ भी जाती है। लेकिन जब तुम बाहर सुलझाने की कोशिश करते हो तो तुम पाते हो, बाहर सुलझाना असंभव है।

रहस्य का यह भी अर्थ है कि तुम पा तो लोगे, लेकिन जान न पाओगे। तुम एक हो जाओगे सत्य के साथ, तुम सत्य हो जाओगे, लेकिन जान न पाओगे। क्योंकि तुम उसके ही हिस्से हो।

एक ऊर्मि उठती है सागर के तट पर, एक लहर उठती है। वह लहर सागर है, लेकिन सागर को जान न पाएगी। सागर से उठी है, सागर में गिरेगी, वापस लीन होगी, सागर ही है, रंच मात्र भी फासला नहीं, फिर भी लहर सागर को जान न पाएगी। क्योंकि सागर बहुत बड़ा, लहर बहुत छोटी।

तुम परमात्मा में हो। लेकिन तुम लहर की भांति हो, परमात्मा सागर की भांति है। तुम रत्ती भर भी उससे दूर नहीं। रंच भर भी फासला नहीं। दूर होने का उपाय ही नहीं है। अभिन्न हो। लेकिन फिर भी तुम जान न पाओगे। जी सकते हो परमात्मा को, जान नहीं सकते। क्योंकि जीने में कोई असुविधा नहीं है, जानने में असुविधा है। क्योंकि जानने का स्वभाव है कि तुम उसे ही जान सकते हो जो तुमसे अलग है, जो तुमसे भिन्न है। जानने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए, फासला चाहिए, थोड़ा अंतराल चाहिए। नहीं तो परिप्रेक्ष्य बनेगा नहीं। पर्सपेक्टिव चाहिए।

परमात्मा को जानने में बड़ी से बड़ी कठिनाई यही है कि उसके और तुम्हारे बीच इंच भर की भी दूरी नहीं है। कहां से खड़े होकर देखो उसे? कौन देखे दूर खड़े होकर? दूर हुआ नहीं जा सकता। तुम उससे ही जुड़े हो। तुम एक हो। दूरी होती तो हम पार कर लेते। हमने जेट ईजाद कर लिया, हम और बड़े महा जेट बना लेते; दूरी होती हम पार कर लेते। चांद पर हम पहुंच गए, कभी परमात्मा पर भी पहुंच जाते।

सोवियत रूस का अंतरिक्ष यान जब पहली बार मंगल के पास पहुंचा और मंगल का परिभ्रमण किया, तो वहां से अंतरिक्ष यात्रियों ने जो सूचना दी वह बड़ी विचारणीय है। उन्होंने सूचना दी कि यहां तक परमात्मा का हमें कोई पता नहीं चला; अभी तक हमें ईश्वर नहीं मिला। इतनी दूर आ गए हैं, अभी तक ईश्वर नहीं मिला। इसलिए निश्चित ही ईश्वर नहीं है।

अगर परमात्मा दूर होता तो हम जरूर पहुंच जाते। परमात्मा को खोजने मंगल जाने की थोड़े ही जरूरत है! बुद्ध को गया के पास एक छोटे से वृक्ष के नीचे बैठ कर मिल गया। लाओत्से को अपने गांव में बैठे-बैठे मिल गया। कोई चांद-मंगल-तारों पर जाने की जरूरत है? दूर है ही नहीं। तुम कहीं गए कि भटके। तुम अपने में ही रहे तो पा लिया। अपने में ही बसे तो मिल गया। जरा भी यहां-वहां सरके, हिले-डुले कि मुश्किल में पड़े।

खोया है खोजने के कारण। खोज रुक जाए तो तुम अभी उसे पा लो। परमात्मा को खोजना नहीं है, अपने को विश्राम में ले आना है। दौड़ शून्य हो जाए। क्योंकि दौड़ उसके लिए जो दूर हो। और जो पास हो उसके लिए दौड़ का क्या प्रयोजन है? दौड़-दौड़ कर और दूर निकल जाओगे। रुक जाओ, ठहर जाओ। वह मिला ही हुआ है। वह प्राप्त ही है। वह सदा से तुम्हारे भीतर रमा ही हुआ है। इसलिए रहस्य!

जीवन के सारे गणित को तोड़ देता है। गणित तो साफ है कि जो नहीं मिल रहा हो, दौड़ो! खोजो! यह गणित से बिल्कुल उलटी बात है--रुको, ठहरो, कहीं मत जाओ। घर में ही छिपा है इसलिए खजाना। तुम जहां खड़े हो वहीं खड़ा है। तुम जहां हो वहीं बैठा है। तुम जो हो वही है। रहस्य इसलिए भी!

एक तो तर्कनिष्ठ वक्तव्य होता है जिसमें सब रेखाएं साफ होती हैं, जिसकी परिभाषा सुनिश्चित होती है। एक काव्य का वक्तव्य होता है जिसकी सब रेखाएं धूमिल होती हैं; परिभाषा सुस्पष्ट नहीं होती। लगता है कुछ कहा जा रहा है, लेकिन जितना ही तुम गौर करो, विचार करो, उतनी ही पकड़ छूटती जाती है।

संत अगस्तीन ने कहा है, लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा क्या है? और मेरी दशा वैसी हो जाती है जैसे लोग कभी पूछ लेते हैं कि समय क्या है? व्हाट इ.ज टाइम? जब मुझसे कोई नहीं पूछता, तब मैं भलीभांति जानता हूं कि समय क्या है। जैसे ही किसी ने पूछा कि मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं।

तुम भी जानते हो कि समय क्या है। कहते हो, सुबह छह बजे उठना है। क्या मतलब है? कहते हो कि आठ बजे यहां पहुंचे। क्या मतलब है तुम्हारा? कहते हो, फलां आदमी कल सांझ मर गया। क्या कह रहे हो? कहते हो, तीस साल गुजर गए जिंदगी के। क्या है तुम्हारा अर्थ? समय का तुम चौबीस घंटे उपयोग कर रहे हो। लेकिन अगर कोई पूछ ले कि समय है क्या? तो अब तक कोई भी जवाब नहीं दे पाया है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक सिर फोड़ते रहे हैं कि किसी तरह समय की कोई परिभाषा बना लें। कोई परिभाषा बनती नहीं। समय में जीते हो, समय में उठते-बैठते हो।

महावीर ने तो यह देख कर कि समय की परिभाषा नहीं की जा सकती और आत्मा की भी परिभाषा नहीं की जा सकती, आत्मा का नाम ही समय रख दिया। इसलिए जैन ध्यान को सामायिक कहते हैं। सामायिक का अर्थ है, समय में प्रवेश, आत्मा में प्रवेश। महावीर ने तो कहा कि स्वभाव ही आत्मा का समय जैसा है।

तुम जानते नहीं क्या है, फिर भी जीते तो बड़े मजे से हो। समय का उपयोग भी करते हो। जवान होते हो, बूढ़े होते हो; आते हो, जाते हो; समय का ठीक-ठीक उपयोग करते हो। लेकिन कोई परिभाषा नहीं बनती। जैसे ही परिभाषा बांधते हो वैसे ही, पारे पर जैसे कोई मुट्ठी बांधे, समय बिखर जाता है।

तर्क की परिभाषाएं सुस्पष्ट रेखाएं हैं; विभाजन साफ है। रहस्य का अर्थ है कि परम सत्य गणित और तर्क जैसा नहीं, काव्यात्मक है, पोएटिक है, धूमिल है। पकी दुपहरी की तरह नहीं, जब सब रोशनी में साफ-साफ होता है, हर चीज अलग-अलग होती है। सुबह की भांति है, धुंध में दबी कुंआरी सुबह की भांति है, जहां कुछ भी साफ नहीं होता। शीतकाल की सुबह, सब धुआं-धुआं, सब रेखाएं धूमिल, एक चीज दूसरे में मिलती, खोती, लीन। सब इकट्ठा-इकट्ठा; खंड-खंड कुछ भी नहीं, सब अखंड। दिन की तरह नहीं है वह रहस्य, अंधेरी रात की तरह है। अमावस की रात। बस--चांद भी नहीं--तारों की टिमटिमाहट। बस इतनी ही रोशनी कि अंधेरा साफ हो, मिटे न। इतनी ही रोशनी कि अंधेरे का पता चले, और अंधेरा गहन होकर मालूम पड़े।

बुद्ध को पूर्णिमा की रात ज्ञान हुआ। पता नहीं, ऐसा हुआ या केवल काव्य है यह। पूर्णिमा की रात चांद तो होता है, लेकिन चांद की बड़ी से बड़ी खूबी यही है कि वह चीजों को धूमिल करता है। पूरे चांद की रात रोशनी तो होती है, लेकिन रेखाएं साफ नहीं होतीं। रोशनी का एक सागर होता है, लेकिन बड़ा धुआं-धुआं, रहस्यपूर्ण। चांद चीजों को एक रहस्य दे देता है।

इसलिए तो कवि प्रेम करते हैं, प्रेमी प्रेम करते हैं। चांद चीजों को ऐसा सौंदर्य दे देता है जो दिन की दुपहरी में छिन जाता है। वही वृक्ष रात देखो, वही फूल रात चांद की रोशनी में देखो; वही चेहरा रात चांद की

रोशनी में देखो, वही चेहरा दिन की दुपहरी में। बड़ा जमीन-आसमान का अंतर है। चांद बहुत कुछ छिपा लेता है, बहुत कुछ प्रकट करता है। उसका संयोजन अलग है।

बुद्ध को ज्ञान हुआ पूर्णिमा की रात; सब आकाश बड़े रहस्य से भरा था। महावीर को ज्ञान हुआ अमावस की रात; सारा अस्तित्व सिर्फ तारों की टिमटिमाहट से भरा था। और यह जान कर मैं हैरान हुआ हूं कि अब तक दिन की दुपहरी में किसी को ज्ञान नहीं हुआ; कोई निर्वाण को उपलब्ध नहीं हुआ। कोई भी, जब भी यह घटना घटी है, रात में घटी है। सांयोगिक नहीं हो सकती, रात से कुछ गहरा संबंध है। रात में कुछ बात है जो दिन में नहीं है। रात में कुछ गीत है जो दिन में नहीं है। दिन बहुत साफ-सुथरा है। और वह परम रहस्य इतना साफ-सुथरा नहीं है। दिन में चीजें अलग-अलग हैं, पृथक-पृथक हैं। और वह सत्य अपृथक है, अभिन्न है। एक चीज से दूसरे से मिला है। रात की निबिड़ता में कुछ बात है जो निर्वाण के, परम मुक्ति के ज्यादा अनुकूल और निकट है।

ध्यान रखना, रहस्य का अर्थ है वह एक काव्य है। कविता को पीना, स्वाद लेना; समझने की भर कोशिश मत करना। किसी ने पिकासो को पूछा कि तुम्हारे इन चित्रों का मतलब क्या है? तो पिकासो ने कहा, चांद-तारों से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? फूलों और वृक्षों से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? पक्षियों से, पशुओं से क्यों नहीं पूछते कि तुम्हारा मतलब क्या है? मुझसे ही क्यों पूछते हो?

मेरे बचपन में एक कबाड़ी की दुकान से मैं एक कैमरा खरीद लाया। पांच रुपए में उसने दिया। अब पांच रुपए में कोई कैमरा मिलता है? खाली डिब्बा ही था। किसी ने कूड़े-कबाड़े में फेंक दिया होगा। पर मुझे उसके चित्र बहुत पसंद आए। उससे जो चित्र आते थे वे बड़े रहस्यपूर्ण थे। उनमें पक्का पता लगाना ही कठिन था कि क्या है। वृक्ष उतारो, आदमी की शक्ल है, नदी है, पहाड़ है; कुछ पता न चलता। बारह चित्रों में आठ तो आते ही नहीं; चार ही आते। उनमें भी पक्का लगाना मुश्किल था। मैं ही जानता था कि यह क्या है; क्योंकि मैंने ही लिया था। बाकी दूसरा तो कोई पहचान ही नहीं सकता था।

मेरी नानी थीं, वह मेरे कैमरे पर बहुत नाराज थीं। वह जब भी मुझे कैमरा लटकाए देखतीं, वह कहतीं, फेंको इस ठीकरे को! कभी इससे कुछ आया है? क्यों इसको लटकाए फिरते हो फिजूल? मेरे गांव में एक छोटा सा ही फोटोग्राफर है। वह भी अपना दिमाग ठोंक लेता था, जब मैं उसके पास अपने चित्र डेवलप करवाने ले जाता। वह कहता, क्यों मेहनत करवाते हैं? और क्यों पैसा खराब करते हैं? मेरी समझ में ही नहीं आता कि यह है क्या!

लेंस खराब था। लेकिन चीजें बड़ी रहस्यपूर्ण हो जाती थीं। पक्का पता लगाना ही मुश्किल था कि क्या क्या है। एक धूमिलता आ जाती थी। लो आदमी की तस्वीर, वृक्ष की मालूम पड़े। लो वृक्ष की तस्वीर, आदमी समझ में आए। जैसे कभी-कभी आकाश में बादलों को देख कर होता है कि बादल बनते-बिगड़ते रहते हैं और तुम रूप-आकृतियां बनाते रहते हो। वे आकृतियां भी तुम्हें कल्पित करनी पड़ती हैं।

परमात्मा का अर्थ हैः यह सारा विराट वहां संयुक्त है। वहां चांद-तारे बन रहे हैं एक कोने पर; एक कोने पर चांद-तारे मिट रहे हैं। एक तरफ पृथ्वियां बस रही हैं, दूसरी तरफ विनष्ट हो रही हैं। एक तरफ सूरज जनम रहा है, दूसरी तरफ सूरज अस्त हो रहा है। एक तरफ प्रकाश है, एक तरफ अंधकार है। सब इकट्ठा है।

उस इकट्ठे को हम झेल न पाएंगे, इसलिए हमने छोटे साफ-सुथरे कोने बना लिए हैं जिंदगी में। अपना आंगन साफ-सुथरा कर लिया है; उसके भीतर हम रहते हैं। हमारी बुद्धि हमारा आंगन है। उसके बाहर फैला है विराट।

एक बार मैं गांव के बाहर गया। मेरे घर के लोगों ने वह कैमरा कहीं फेंक दिया, और मेरे सब चित्र भी उठा कर फेंक दिए। क्योंकि वे मानने को राजी ही नहीं थे कि ये चित्र हैं, या यह कोई कैमरा है।

जब तुम परमात्मा की तरफ जाओगे तब तुम्हारी ये आंखें, जो साफ-सुथरे को देखने की ही आदी हो गई हैं, काम न आएंगी। तुम्हें जरा धूमिल आंखें चाहिए, जिनमें चांद का प्रकाश हो या अमावस के तारों की टिमटिमाहट हो। इतनी रोशनी जितने में तुम रहने के आदी हो गए हो उचित नहीं है। यह रोशनी चीजों को खंड-खंड कर रही है।

हम यहां बैठे हैं। सांझ हो जाए, सूरज डूब जाए, धीरे-धीरे अंधकार उतरने लगे और तुम्हारे बीच की जो जगह है वह अंधकार से भरने लगे, तो एक सेतु बनता है। फिर गहन अंधकार हो जाए, फिर तुम्हारे पृथक भेद सब समाप्त हो गए। कौन है गरीब, कौन है अमीर; कौन है ज्ञानी, कौन है अज्ञानी; कौन है पापी, कौन है पुण्यात्मा; सब खो गया। अंधकार ने सब को लील लिया। तब जो एक चेतना बच रह जाती है, सब भेदों के पार कंपित होती, सब लहरें जहां सो गईं और केवल सागर रह गया, वही है रहस्य।

रहस्य को गा सकते हो, कह नहीं सकते। इसलिए संत गाते रहे। रहस्य को नाच सकते हो, कह नहीं सकते। इसलिए मीरा और चैतन्य नाचे। रहस्य को कह नहीं सकते, मौन में दर्शा सकते हो। इसलिए बहुत ज्ञानी चुप बैठे रहे; मौन में दर्शाया। सारी बात एक तरफ इशारा करती है कि रहस्य इतना बड़ा है, इतना अपरिसीम है, इतना अनंत-अनादि है कि हमारे शब्द, हमारी परिभाषाएं, हमारी धारणाएं, प्रत्यय, सभी व्यर्थ हो जाते हैं। जी सकते हो सत्य को, कह नहीं सकते।

अंतिम अर्थों में भी रहस्य को समझ लेना चाहिए।

विज्ञान संसार को--संसार के यथार्थ को--दो हिस्सों में बांटता है। एक को वह कहता है ज्ञात; जो जान लिया। और एक को वह कहता है अज्ञात; जो जाना जाएगा। दि नोन एक को कहता है, जो जान लिया। दि अननोन, जिसे हम कल जानेंगे। धर्म कहता है, एक तीसरी बात तुम छोड़े दे रहे होः दि अननोएबल, अज्ञेय, जिसे तुम कभी भी न जानोगे।

ज्ञात अतीत है हमारा; अज्ञात भविष्य में ज्ञात बन जाएगा। अगर विज्ञान की बात सच है तो एक दिन ऐसी घड़ी आ जाएगी कि जानने को कुछ न बचेगा। सब अतीत हो जाएगा, सब जान लिया जाएगा। उस दिन एक ही कोटि रहेगीः ज्ञात। अज्ञात की कोटि समाप्त हो जाएगी।

धर्म कहता है, ऐसा कभी नहीं होगा; कुछ जानने को सदा ही शेष रहेगा--तुम कितना ही जानो। और कुछ ऐसा भी है जिसे तुम जान ही न सकोगे। इसलिए नहीं कि तुम्हारी क्षमता कम है, क्योंकि क्षमता कम हो तो बढ़ाई जा सकती है। यंत्र-संयंत्र कम हों, बड़े किए जा सकते हैं। विज्ञान रोज बढ़ता जाता है। नहीं, यह सवाल नहीं है। कुछ ऐसा भी है इस अस्तित्व में जिसका स्वभाव ही उसकी अज्ञेयता है, अननोएबिलिटी है। इसलिए तुम्हारे जानने के यंत्रों, प्रयोगशालाओं, तुम्हारी बुद्धि, प्रतिभा, गणित के विकास से उसका कोई लेना-देना नहीं। उसका होना ही ऐसा है। वह उसका गुण है। जैसे आग ठंडी नहीं हो सकती। ठंडी हो तो आग नहीं है। सूरज बिना रोशनी के नहीं हो सकता। हो तो सूरज नहीं है। वह उसका स्वभाव है।

लाओत्से कहता है, जीवन के आत्यंतिक, गहनतम सत्य का स्वभाव उसकी अज्ञेयता है। इसलिए तुम कुछ भी करो, तुम उसे जान न सकोगे। वह सदा ही दूर क्षितिज पर अज्ञेय की तरह बना रहेगा। उससे अगर नाता जुड़ाना हो, तो ज्ञान का नाता नहीं। उससे वह नाता बनता ही नहीं। वह उसका स्वभाव नहीं है। उससे तो सिर्फ प्रेम का नाता बनता है; जानने का नाता नहीं, बुद्धि का नाता नहीं। उससे तो हृदय का रास्ता जोड़ता है।

हृदय जानने की चिंता ही नहीं करता। हृदय जानने न जानने का विचार ही नहीं करता। हृदय तो आनंदित, प्रफुल्लित होता है उसमें, खिलता है उसमें, तिरता है, तैरता है, नाचता है उसमें; जानने की चिंता ही

नहीं करता। हृदय कहता है, जानने का प्रयोजन क्या है? होना वास्तविक बात है। जान कर क्या करेंगे? जब होने का रास्ता खुला हो तो मूढ़ जानने की कोशिश करेंगे।

जब प्यास लगी हो तो तुम जल को जानना चाहते हो या पीना चाहते हो? क्या होगा जान कर कि एच-टू-ओ से जल बना हुआ है, कि इसमें इतने परमाणु आक्सीजन के, इतने हाइड्रोजन के? क्या होगा? एच-टू-ओ के फार्मूला को तुम अगर कंठ में भी ले जाओगे तो प्यास मिटेगी नहीं, कंठ अवरुद्ध हो जाएगा। पानी चाहिए, ज्ञान नहीं। कंठ पर पानी की शीतलता चाहिए, पानी के संबंध में जानकारी नहीं।

बुद्धि जानने में लगी है; हृदय जीना चाहता है।

रहस्य का अर्थ हैः जिसे जाना कभी न जा सके, लेकिन जीया जा सके। अगर जानने की कोशिश तुमने की तो तुम दूर होते जाओगे। क्योंकि उसका स्वभाव ही जानने में नहीं आता। अगर तुमने जीने की कोशिश की तो तुम उसमें डूब जाओगे, तुम उसके साथ एक हो जाओगे। वही एकमात्र जानना है।

प्रेम ही एकमात्र जानना है परमात्मा का। और ध्यान ही एकमात्र ज्ञान है परमात्मा का। और समाधि ही एकमात्र शास्त्र है परमात्मा का। इससे नीचे तुमने अगर कुछ भी कोशिश की, इससे भिन्न अगर कोई भी कोशिश की, तो तुम व्यर्थ ही अड़चन में पड़ोगे और भटकोगे।

यह है रहस्य भरा ताओ।

अब हम समझने की कोशिश करें।

"ताओ संसार का रहस्य भरा मर्म है। ताओ इ.ज दि मिस्टीरियस सीक्रेट ऑफ दि यूनिवर्स।"

रहस्य है, छिपा हुआ रहस्य है। उघाड़ो, कितना ही उघाड़ो, तुम उसके घूंघट को न उठा पाओगे। क्योंकि घूंघट उसके स्वभाव का अंग है। घूंघट ऊपर से डाला हुआ होता तो उठ जाता। घूंघट उसके होने की व्यवस्था है; उसके जीवन की शैली है। एक तो घूंघट है वस्त्रों का; उसे तुम उठा सकते हो। क्योंकि वह बाहर से डाला गया है। एक घूंघट लज्जा का भी होता है; तुम उसे न उठा सकोगे। तुम उसे कैसे उठाओगे? नग्न स्त्री भी तुम कर दो, लेकिन लज्जा का घूंघट तो पड़ा ही रहेगा। और गहन हो जाएगा। कपड़े उतारे जा सकते हैं। और अगर तुमने कपड़ों को ही घूंघट समझा है और तुमने समझा है कि कपड़े उतारने से ही तुम स्त्री के मर्म को समझ लोगे, तो तुम गलती में हो। देह दिखाई पड़ जाएगी, चेतना अपरिचित रह जाएगी।

विज्ञान वही तो कर रहा है; घूंघट को उघाड़ रहा है, वस्त्र उघाड़ कर फेंक रहा है। उससे परमात्मा का शरीर तो पता चल रहा है--पदार्थ--लेकिन परमात्मा की कोई खबर नहीं मिल रही। प्रयोगशाला में उसकी पग-ध्वनि सुनी ही नहीं जा रही। इसलिए तो वैज्ञानिक बेचारा कहता है कि हम कहीं नहीं पाते। इतना खोजते हैं, नहीं पाते। और हम कैसे भरोसा करें कि तुम झाड़ के नीचे बैठे-बैठे पा गए? शक होता है। हम इतनी चेष्टा कर रहे हैं और नहीं पा रहे हैं।

उसकी हालत वैसी ही है जैसे कोई एक सुंदर स्त्री राह से गुजरती हो, कुछ गुंडे उस पर हमला कर दें, उसके वस्त्र निकाल कर फेंक दें, बलात्कार कर दें। तो भी वे बाहर ही बाहर रहे, स्त्री के मर्म को न पहचान पाए। क्योंकि यह ढंग ही न था मर्म को पहचानने का।

विज्ञान प्रकृति के साथ एक तरह का बलात्कार है, जबरदस्ती है, हिंसा है, आक्रमण है।

फिर इस स्त्री का प्रेमी हो। समझो कि स्त्री लैला थी, मजनू हो। और मजनू इस स्त्री के गीत गाए। और ये गुंडे कहें कि हम उस स्त्री का सब कुछ जान चुके हैं, तुम व्यर्थ की बकवास मत करो। यह वहां कुछ है ही नहीं। हमने

उस स्त्री को नग्न देख लिया है। न केवल नग्न देख लिया है, हमने उस स्त्री का उपभोग कर लिया है। तुम यह बकवास छोड़ो। ये जो गीत तुम गा रहे हो, ये हमने उसमें कभी पाए नहीं।

तो वे गुंडे भी ठीक ही कह रहे हैं, लेकिन फिर भी गलत हैं। क्योंकि स्त्री का मर्म तो खुला नहीं; वह तो प्रेम में ही खुलता है। उसकी लज्जा का अवगुंठन तो तभी मिटता है जब तुम उसमें इतने डूब जाते हो कि उसे पता ही नहीं रहता कि दूसरा मौजूद है। तभी वह घूंघट उठता है जो उसकी आत्मा पर पड़ा है। लेकिन तब तुम रहते नहीं। तुम जब मिट जाते हो तभी वह पूर्ण रूप में प्रकट हो पाती है।

परमात्मा ऐसी ही दुलहन है, जिस पर घूंघट आंतरिक है।

लाओत्से कहता है, यह उसका, ताओ का रहस्य भरा मर्म है। इस मर्म को अगर पहचानना हो तो तुम तीन जगह इसे पा सकोगेः सज्जन के खजाने में, दुर्जन की पनाह में, संत के स्वभाव में। इस सूत्र में संत के स्वभाव की बात नहीं की है, क्योंकि उसी की बात लाओत्से पीछे प्रगाढ़ता से कर लिया है।

सज्जन का खजाना है यह स्वभाव। खजाने का अर्थ होता हैः सज्जन ने अभी इसे बाहर-बाहर से ही जाना है, अभी यह सज्जन का स्वभाव नहीं बना। अभी उसने तिजोरी में भर लिए हैं पुण्य, अच्छे कृत्य; सत्कर्म, दान, दया, सब उसने तिजोरी में भर लिए हैं। सज्जन का खजाना है।

लेकिन सज्जन भी अभी पूरी तरह परिचित नहीं है; अभी दूरी कायम है। खजाना लुट सकता है। चोर-डाकू खजाने को ले जा सकते हैं। और सज्जन को हमेशा चोर-डाकुओं का डर बना रहता है। सज्जन शैतान से बहुत डरता है। सज्जन ऐसी जगह जाने से डरता है जहां उसके खजाने पर कोई चोट न पड़ जाए।

विवेकानंद ने लिखा है कि मुझे पता नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूं, लेकिन मैं कलकत्ते में उन गलियों से निकलता ही नहीं था जहां वेश्याओं का निवास था। यह तो मुझे बहुत बाद में पता चला कि वह मेरा भय था।

सज्जन डरता है कि कहीं वेश्याओं के निकट से न गुजरना हो जाए। क्योंकि सज्जनता अभी खजाना है, छीनी जा सकती है। वेश्या हमला कर सकती है।

सज्जन धर्म को भी धन की तरह ले रहा है। सज्जन धर्म को भी कृत्य की तरह ले रहा है। वह सोचता है, धार्मिक कृत्य! मेरे पास कुछ सज्जन आते हैं, तो वे पूछते हैं कि हम क्या करें जिससे हम धार्मिक हो जाएं? उनका जोर करने पर है। वे यह नहीं पूछते कि हम क्या हो जाएं। वे पूछते हैं, व्हाट टु डू, नाट व्हाट टु बी। वही फर्क है। सज्जन पूछता है, क्या करूं? वह सोचता है, करने की बात है। कुछ कृत्य करो, धार्मिक हो जाओगे।

संत पूछता है, मैं क्या हो जाऊं? करने का क्या सवाल है! करना तो होने से निकलता है। अगर मैं हो गया तो करना तो अपने आप ठीक हो जाएगा।

लेकिन उलटा सही नहीं है। तुम अपने सारे कृत्यों को धार्मिक कर लो तो भी जरूरी नहीं है कि तुम धार्मिक हो जाओ। हो सकता है, यह सब ऊपर-ऊपर पाखंड हो। कृत्य आत्मा को नहीं बदलते, आत्मा कृत्यों को बदलती है। बाहर भीतर को नहीं बदलता, भीतर बाहर को बदलता है। आचरण नहीं बदलता अंतस को, अंतस आचरण को बदलता है। अगर बिना अंतस को बदले तुमने आचरण बदला तो ऊपर की सजावट होगी,शृंगार होगा। वह ओंठों पर लगा लिपिस्टिक होगा, भीतर से खून की लाली नहीं। दुनिया तुम्हें पूजेगी, क्योंकि दुनिया खजाने को पूजती है। तुम्हारा धन दिखाई पड़ेगा। तुम्हारे पास बड़ी संपदा मालूम होगी। लेकिन फिर भी यह आखिरी घड़ी नहीं आई है।

लाओत्से कहता है, वह रहस्य है सज्जन का खजाना। रहस्य को सज्जन खजाना बना लेता है। दुर्जन की पनाह है। और वही दुर्जन के लिए शरण-स्थल है।

इसे तुम सोचो। सज्जन हमेशा अकड़ा रहता है कि मैंने यह किया, यह किया, यह किया। इतने दान दिए, इतने भिक्षुओं को भोजन दिया, इतनी धर्मशालाएं बनाईं, इतने मंदिर-मस्जिद खड़े किए। क्या किया, उसको वह जोड़ता है, हिसाब रखता है, खाते-बही में लिखता है।

इन्हीं सज्जनों ने कथाएं गढ़ी हैं कि वहां आकाश में, स्वर्ग के द्वार पर भी, खाते-बही में सब लिखा जा रहा है। तुमने क्या किया, वह सब अंकित किया जा रहा है। एक-एक चीज के लिए चुकतारा होगा, आखिर में जवाब देना पड़ेगा। इसलिए बुरा मत करो। बुरा मत करो, इसलिए नहीं कि बुरे में कोई बुराई है; बुरा मत करो, क्योंकि उसके लिए जवाब देना पड़ेगा। अगर जवाब न देना पड़े तो फिर कोई बुराई नहीं है।

सज्जन बुराई के विपरीत नहीं है, बुराई से डरा हुआ है। सज्जन भलाई के पक्ष में नहीं है, लेकिन भलाई उसके अहंकार को सुरक्षा देती है। तो भलाई का खजाना बनाता है। भलाई यहां भी बचाएगी, आगे भी बचाएगी।

दुर्जन के लिए पनाह है, शरण-स्थल है। बुरा आदमी हमेशा सोचता रहता हैः भला करना है। चोर सोचता है, चोरी छोड़नी है। कामी सोचता है, ब्रह्मचर्य का व्रत लेना है। झूठा सोचता है, सच बोलना है। अभ्यास करना है, यद्यपि कल करना है। आज तो जा ही चुका है; आज चोरी और कर लो, कल अचौर्य का व्रत ले लेना है। यह पनाह है दुर्जन की। इस तरकीब से वह दुर्जन बना रहता है; कल पर टालता रहता है अच्छे को। वह उसका शरण-स्थल है। उसके सहारे वह बुरा है।

यह बड़े मजे की बात है--लोग भलाई के सहारे बुरे होते हैं। बुरा होना इतना बुरा है कि बिना भलाई के सहारे तुम बुरे भी नहीं हो सकते; तुम किसी भलाई में रास्ता खोजते हो बुरे होने का। तुम यह कहते हो कि अगर मैं झूठ भी बोल रहा हूं तो इसलिए बोल रहा हूं कि उस आदमी को बचाना है; नहीं तो उसकी हत्या हो जाएगी। तुम कहते हो, मैं झूठ बोल रहा हूं इसलिए कि बच्चों को पालना है, नहीं तो मर जाएंगे। तुम झूठ बोलने के लिए भी या तो प्रेम की शरण लेते हो, या दान की शरण लेते हो, या सत्य की शरण लेते हो। पर तुम शरण लेते हो। और तब तुम अपने झूठ में भी प्रफुल्लित हो। तब कोई डर न रहा। क्योंकि तुम झूठ भी सच के लिए बोल रहे हो। तुम बुरा भी भले के लिए कर रहे हो।

स्टैलिन ने लाखों लोगों की हत्या की, लेकिन उसके मन पर जरा भी दंश नहीं पड़ा। क्योंकि ये बुरे लोग हैं, और इनको वह समाज के भविष्य के लिए नष्ट कर रहा है। माओ ने हजारों-लाखों लोगों को गोली मार दी है, जिनका कोई हिसाब भी रखना कठिन है। लेकिन माओ के मन पर कोई दंश नहीं है, नींद में कोई खलल नहीं पड़ती। क्योंकि समाजवाद लाने के लिए, भविष्य का एक उटोपिया है, एक कल्पना है, उसको पूरा करने के लिए, एक महान कार्य के लिए यह सब होगा ही। यह बलिदान जरूरी है।

इसे तुम छोटे से लेकर बड़े तक पहचान लोगे। हिंदू पुरोहित सदियों से जानवरों की बलि देता रहा है। कथाएं तो यह भी हैं कि उसने आदमियों की बलि भी दी है। अश्वमेध यज्ञ तो होते ही थे जिनमें घोड़ों की बलि दी जाती, नरमेध यज्ञ भी होते थे। लेकिन ब्राह्मण को, पुरोहित को कभी इससे पीड़ा नहीं हुई। क्योंकि बलि तो परमात्मा के लिए दी जा रही है। परमात्मा का सहारा है।

आज भी कलकत्ता के काली के मंदिर में सैकड़ों पशुओं की बलि दी जाती है। लेकिन पुरोहित को कोई कष्ट नहीं है, क्योंकि यह तो परमात्मा के चरणों में चढ़ाया जा रहा है।

ताओ का यह उपयोग शरण-स्थल की तरह हो रहा है। काट रहे हो पशुओं को, हिंसा कर रहे हो स्पष्ट, पाप सीधा-साफ है। लेकिन पुण्य की आड़ में हो रहा है; प्रार्थना के लिए किया जा रहा है; पूजा का हिस्सा है।

दुनिया में जो बड़े से बड़े बेईमान लोग हैं, वे भी अपनी बेईमानी को किसी प्रार्थना और पूजा का हिस्सा बना लेते हैं। फिर दंश मिट जाता है। फिर दिल खोल कर पाप करो।

सज्जन अहंकार निर्मित करता है अपने कृत्यों से और दुर्जन सत्य के नाम पर असत्य की प्रक्रियाओं में गुजरता रहता है। करता है बेईमानी, लेकिन बहाना ईमानदारी का लेता है। अपने को धोखा देता है।

"सज्जन का खजाना और दुर्जन की पनाह।"

एक और अर्थ में भी यह सच है। बात तो एक ही है, सत्य तो एक ही है, तुम चाहो तो उसका खजाना बना लो और तुम चाहो तो उसकी पनाह बना लो। तुम पर सब निर्भर है। और तीसरी बात मैं जोड़ देना चाहता हूं जो इस सूत्र में नहीं है, लेकिन लाओत्से का मूल स्वर है, संत का स्वभाव। संत के लिए न तो यह कृत्य है और न पनाह है। संत तो इसे अपने स्वभाव की तरह पहचान लेता है। और जब यह स्वभाव हो जाता है, तभी कोई तुम्हें लूट नहीं सकता। और जब यह स्वभाव हो जाता है, तभी भय समाप्त हुआ। अब यह कभी तुमसे छीना न जा सकेगा। संत आश्वस्त हो जाता है। इसलिए तो तुम संत को इतना शांत पाते हो, क्योंकि उसे आश्वासन मिल गया, अब उससे कुछ छीना नहीं जा सकता। और उसने जो पा लिया है उसका अब कोई अंत नहीं है। अब वापस लौटने का उपाय न रहा। अब वह मंजिल के साथ एक हो गया।

तब तक मत रुकना। खजाना बना कर मत अपने को समझा लेना। वह काफी नहीं है। अच्छा है, काफी नहीं है। कुछ न कर सको तो ठीक है, लेकिन अंत नहीं है। मार्ग हो सकता है, मंजिल नहीं है। उससे भी आगे जाना है। उसे अगर पड़ाव बनाओ तो चल जाएगा, लेकिन आखिरी विश्राम मत बना लेना। वह घर नहीं है, राह की धर्मशाला हो सकती है। वहां सदा के लिए नहीं रुक जाना है। वहां एक रात विश्राम करके आगे बढ़ जाना है।

"और दुर्जन की पनाह।"

अगर ताओ को पनाह बनाओ, परमात्मा को पनाह बनाओ, तो भी जितने जल्दी हो उतनी जल्दी करना। कहीं यह पनाह बनाना सिर्फ पोस्टपोन करने का, स्थगन करने का उपाय न हो जाए।

लोग मेरे पास आते हैं, वे हमेशा कहते हैं, कल करेंगे, संन्यास कल लेना है। कल बीतते चले जाते हैं। वे जब भी आते हैं, वे फिर कहते हैं, कल लेंगे। कुछ तो ऐसे लोग हैं जो पांच साल से मेरे पास आते होंगे। जब भी आते हैं, वे कहते हैं, बस तैयारी कर रहा हूं; थोड़े दिन की बात है। पांच साल गुजार दिए उन्होंने, वे पचास साल भी गुजार देंगे। उन्हें अपने धोखे का पता नहीं चल रहा है।

जो करना हो उसे कर लेना; उसे तत्क्षण कर लेना। कल का क्या भरोसा है? कल कभी आता है? कल कभी आया है? कभी सुना कि कल आया हो? जो आता ही नहीं, उस पर टालना मत। टालना ही हो तो साफ कह देना कि यह मेरे लिए करना ही नहीं है। बात साफ हो गई। लेकिन टाल कर धोखा मत देना। क्योंकि टालने में एक तरकीब है। तुम अपने को यह भी समझाए रहते हो कि यह करना तो है, कल करना है। इसलिए मन अहंकार से भी भरा रहता है कि करना तो जरूर है, सिर्फ समय की बात है। स्थिति साफ नहीं हो पाती कि तुम कहां खड़े हो।

दुर्जन की पनाह है धर्म। तुम उसे पनाह मत बनाना; बचना। खजाना बनाना। और खजाने को भी पर्याप्त मत समझना। स्वभाव तक ले जाना है यात्रा को। जब तक स्वभाव न हो जाए तब तक भटकने के उपाय कायम हैं। खजाना भी खो जाएगा। पनाह में तो मिला ही नहीं है, खोया ही हुआ है।

"सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं, श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।"

लेकिन होगा यह सब ऊपर-ऊपर। ऐसे ही तो तुम ज्ञानी बने हो कि सुंदर वचन तुमने बाजार से खरीद लिए हैं। लेकिन लाओत्से कहता है, कुछ खरीदना ही हो तो सुंदर वचन ही खरीदना, क्योंकि वहां और कचरा चीजें भी

बिक रही हैं। सुंदर वचन भी अंततः कचरा हैं, लेकिन कम से कम उनमें तुम्हारी प्यास की थोड़ी झलक तो मिलती है। खरीदना ही हो तो कुछ और न खरीद कर आचरण खरीदना; हालांकि वह आचरण बहुत गहरा नहीं होगा। लेकिन कम से कम कुछ तो होगा। खजाना ही बनाना हो तो इस संसार के सिक्कों का मत बनाना; जब उस संसार के सिक्कों का खजाना बनने की सुविधा है तो उसको ही बनाना। धन ही इकट्ठा करना हो तो पुण्य का करना।

लाओत्से यह नहीं कह रहा है कि यहां रुक जाना।

"सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं।"

बिक रहे हैं। बाइबिल खरीद सकते हो। गीता खरीद सकते हो। वेद खरीद सकते हो। सब खरीदा जा सकता है। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, सब के वचन बाजार में बिक रहे हैं। अगर कुछ खरीदना ही हो तो वचन खरीदना। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी क्षण में कोई वचन तुम्हारे भीतर इतना गहरा बैठ जाता है कि उससे क्रांति घटित हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक वचन विस्फोटक है। सिर्फ वचन को इकट्ठा कर लेने से कुछ होने वाला नहीं है, लेकिन कभी किसी क्षण में, किसी नाजुक क्षण में कोई वचन बहुत गहरे बैठ सकता है; किसी ऐसे क्षण में जब तुम्हारे मन के द्वार खुले हैं।

इसलिए तो हिंदुओं ने एक व्यवस्था की है। वे कहते हैं, गीता तुम रोज पढ़ो, उसे पाठ बनाओ। पश्चिम के लोग बड़े हैरान होते हैं कि रोज पढ़ने से क्या होगा? एक दफा किताब पढ़ ली, खतम हो गई बात। अब रोज क्या पढ़ना है? समझ लिया, बात खतम हो गई। न समझे होओ, दुबारा पढ़ लो, तिबारा पढ़ लो। मगर रोज पढ़ रहे हो?

हिंदुओं का कारण है। रोज इसलिए पढ़ने को वे कह रहे हैं कि तुम्हें अपने मन का कोई पता नहीं। कभी-कभी तुम्हारे मन का झरोखा खुला होता है--संयोगवशात। किसी रात तुम गहरी नींद सोए, क्योंकि उसके पहले दिन तुमने काफी श्रम किया। किसी रात तुम्हारा मन शांत रहा, बहुत सपने न आए, क्योंकि उसके पहले दिन बहुत वासनाओं की दौड़ न हुई। सुबह तुमने गीता पढ़ी। ये शब्द बहुत गहरे चले जाएंगे। किसी दिन तुम क्रोध से भरे हो; वासनाएं मन को घेरे हुए हैं; उद्विग्न हो, अशांत, बेचैन हो। गीता पढ़ी। ये शब्द भीतर नहीं जाएंगे। तुम पढ़ते रहना। कभी तो संयोग मिलेगा। कभी तो ऐसा होगा कि तुम किसी ठीक क्षण में गीता पढ़ लोगे। तुम रोज ही पढ़ते जाना।

मैं रोज बोले जाता हूं। कारण इतना ही है कि तुम्हारा भरोसा नहीं है। नहीं तो एक दफा बोल दूं, बात खतम। जो मैं कह रहा हूं रोज वह एक दिन में भी कह सकता हूं। जो मैं कह रहा हूं वह एक पोस्टकार्ड पर लिखा जा सकता है। उसके लिए कुछ बहुत इतना कहने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा भरोसा नहीं है। मैं तो पोस्टकार्ड पर लिख दूं, लेकिन तुम वहां मौजूद न हुए! मैं तो एक दिन कह दूं, पांच वचनों में सारी बात खतम हो जाए। लेकिन तुम? सवाल तुम्हारा है। इसलिए रोज कहे जाता हूं। किसी दिन तो तालमेल बैठेगा। किसी दिन तो तुम्हें घर पाऊंगा। किसी दिन तो ऐसा होगा कि तुम घर के भीतर होओगे और मैं दस्तक दूंगा। तो मैं दस्तक देता रहूंगा। किसी दिन यह संयोग बैठ जाएगा। उसी क्षण तालमेल बैठ जाएगा। उसी क्षण अंधेरा टूट जाता है, प्रकाश फैल जाता है। उस क्षण में, उस संधि में तुम देख लेते हो। एक दफा तुमने देख लिया, नाता जुड़ गया। अब तुम्हारे जीवन में एक दूसरी यात्रा शुरू हो गई।

इसलिए सत्संग का इतना महत्व है। वचन ही तो सुनोगे सत्संग में, लेकिन क्या मूल्य है? मूल्य यह है कि कभी यह हो सकता है संयोगवशात कि ऐसी घड़ी हो तुम्हारे भीतर सुख की, शांति की, प्रफुल्लता की, कि तालमेल बैठ जाए। बैठ जाए एक बार तो फिर बार-बार बैठने लगेगा। क्योंकि जो एक बार हो गया उसके बार-

बार होने की संभावना हो गई। और जिसका स्वाद तुमने एक बार ले लिया, अब तुम बार-बार उसके स्वाद के लिए आतुर रहोगे। और धीरे-धीरे तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि क्यों इस घड़ी में यह हुआ। तो जिस कारण इस घड़ी में हुआ है उन-उन कारणों को सम्हालने लगो। इतनी ही तो साधना है।

अगर किसी दिन रात गहरी नींद आई, और तुमने सुबह मुझे सुना और तुम्हारे हृदय में झनकार पहुंच गई, उसका मतलब है, गहरी नींद रोज सोना जरूरी है; तो फिर इस तरह जीयो कि गहरी नींद आ सके। तो तुमने पाया कि अगर दिन में तुम ठीक शारीरिक श्रम करते हो तो गहरी नींद हो जाती है। तो इसका अर्थ हुआ कि ठीक शारीरिक श्रम करते ही रहो; उससे बचो मत। कि तुमने पाया कि तुम क्रोध नहीं किए दो दिन तक, इसलिए तुम्हारे मन में एक शांत आभा थी; तुम सुन सके। या तुमने पाया कि तुम कामवासना में नहीं उतरे एक सप्ताह तक, इसलिए तुम्हारे भीतर एक ऊर्जा थी, एक शक्ति थी; उस शक्ति के कारण तालमेल बैठ गया। तो फिर तुम जमाने लगोगे। फिर तुम्हारे जीवन में दृष्टि आ गई। और कोई पतंजलि के शास्त्र से तुम्हें नहीं मिलेगा ज्ञान; अपने ही जीवन के स्वाद से तुम पहचानोगे, क्या करना है। कैसे यह हुआ, इसकी पहचान तुम बढ़ाते जाओगे। तुम्हारे जीवन में साधक का जन्म हो जाएगा।

साधक हो जाओ, सिद्ध होना बहुत दूर नहीं है। गैर-साधक से साधक की दूरी बहुत बड़ी है; साधक और सिद्ध की दूरी बहुत बड़ी नहीं है। जो चल पड़ा वह पहुंच ही जाएगा। जो नहीं चला है, वह कैसे चलेगा, यह कठिनाई है। बैठे हुए और चलने वाले के बीच फासला बहुत बड़ा है। जो चल पड़ा और जो पहुंच गया, उसके बीच फासला बहुत बड़ा नहीं है। जो चल ही पड़ा वह पहुंच ही जाएगा।

महावीर कहते थे, चल गए कि आधे पहुंच गए। आधी यात्रा तो हो ही गई, जिस क्षण पहला कदम उठा।

लेकिन वह पहला कदम बहुत समय लेता है।

लाओत्से कहता है, "सुंदर वचन बाजार में बिक सकते हैं, श्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया जा सकता है।"

यह बड़ा कठिन लगेगा कि श्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया जा सकता है। निश्चित ही। हम सब कुछ न कुछ तो भेंट देते ही हैं। अश्रेष्ठ तो हम भेंट देते ही हैं। तुम बैठे हो अपने घर में, उदास बैठे हो। तुम्हारा बच्चा तुम्हें उदास देख रहा है, तुम कुछ भेंट दे रहे हो। तुम उसे उदास बैठना सिखा रहे हो। तुम प्रफुल्लित हो; तुम आनंदित हो। तुम्हारा बच्चा तुम्हारे पास बैठा है। वह तुम्हारी प्रफुल्लता को पी रहा है। तुम उसे श्रेष्ठ चरित्र भेंट दे रहे हो।

और ध्यान रखना, बच्चे तुम्हारे शब्दों की फिक्र नहीं करते; तुम क्या हो, उसकी फिक्र करते हैं। तुम क्या कहते हो, उसको वे बहुत ज्यादा ध्यान नहीं देते। क्योंकि वे जानते हैं, तुम्हारे कहने और तुम्हारे होने में बड़ा फर्क है। तुम कहते कुछ हो, तुम करते कुछ हो। वे तुम्हें देखते हैं। वे तुम्हें पीते हैं। अगर बच्चा बिगड़ जाए तो तुम समझना कि तुमने उसे अश्रेष्ठ चरित्र भेंट दिया। तुम ही जिम्मेवार हो। तुम सिर मत ठोंकना कि यह दुर्जन हमारे घर में कैसे पैदा हो गया! यह अकारण नहीं है। यह तुम्हारे घर में ही पैदा हो सकता था, इसीलिए तुम्हारे घर में पैदा हुआ। यह तुम्हारा फूल है। इसे तुमने सींचा-संवारा। यही तुमने इसे दिया। अब जब इसमें फल आने लगे तब तुम घबड़ाते हो। धोखा मत देना बच्चे के सामने, अन्यथा वह धोखे को पी जाता है।

अब वह देखता रहता है। बच्चे बड़े आब्जर्वर्स हैं। क्योंकि अभी सोच-विचार तो ज्यादा नहीं है, निरीक्षण करते हैं। तुम सोच-विचार के कारण निरीक्षण नहीं कर पाते; उनकी सारी ऊर्जा निरीक्षण कर रही है। वे देखते हैं कि मां और बाप लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे, और कोई मेहमान आ गया और वे दोनों मुस्कुराने लगे और ऐसा व्यवहार करने लगे जैसे कि जैसा प्रेम इनके जीवन में है ऐसा तो कहीं है ही नहीं। अब बच्चा देख रहा है। वह देख

रहा है कि धोखा चल रहा है। अभी ये लड़ रहे थे, अभी एक-दूसरे की गर्दन दबाने को तैयार थे, अब मुस्कुरा रहे हैं। पाखंड चल रहा है। बच्चा देख रहा है। वह पी रहा है। तुम भेंट दे रहे हो।

उठते-बैठते, जाने-बिनजाने तुम जिनसे भी मिल रहे हो तुम उनको कुछ भेंट दे रहे हो। यह सारा जीवन एक शेयरिंग है। हम बांट रहे हैं। तुम जिससे भी मिलते हो, कुछ तुम्हें वह दे रहा है, तुम उसे कुछ दे रहे हो। जीवन-ऊर्जा का आदान-प्रदान चल रहा है।

इसलिए उन लोगों से दूर रहना जिनसे गलत मिल सकता है, और उन लोगों के करीब रहना जिनसे शुभ मिल सकता है। बचाव करना अपना। क्योंकि अभी तुम इस योग्य नहीं हो कि गलत कोई दे और तुम न लो। अभी तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है कि तुम कह दो कि नहीं, मैं वैसे ही आकंठ भरा हूं, कृपा करो। वह तुम्हारी हिम्मत नहीं है। कोई देगा तो तुम ले ही लोगे। कचरा इकट्ठा करने की तुम्हें ऐसी सहज सुगमता हो गई है कि तुम्हें इनकार करना आता ही नहीं। तुम्हारे द्वार खुले ही हैं, कोई भी कचरा फेंक जाए।

रास्ते पर एक आदमी मिल जाता है, वह तुम्हें कुछ भी अफवाह सुनाने लगता है। तुम आतुर कानों से सुनने लगते हो। तुम बिना सोचे कि यह अफवाह को भीतर ले जाने का क्या परिणाम होगा? क्यों सुन रहे हो? क्यों नहीं उससे कहते कि माफ करें, इसमें मुझे कोई प्रयोजन नहीं है? कौन आदमी ने चोरी की, किसने हत्या की, कौन किसकी स्त्री को भगा ले गया, इससे मुझे क्या प्रयोजन है? आप क्षमा करें, अपना समय नष्ट न करें। और क्यों कचरा मेरे कान में डाल रहे हैं? तुम्हारे घर में अगर कोई कचरे की टोकरी डाल जाए तो तुम झगड़े को तैयार हो जाते हो। लेकिन तुम्हारी आत्मा में लोग कचरा डालते रहते हैं; तुम इनकार भी नहीं करते।

यह जो तुम सुन रहे हो, परिणाम लाएगा। क्योंकि अगर तुम रोज-रोज सुनते हो--फलां आदमी फलां की स्त्री भगा ले गया, फलां आदमी ने चोरी की, फलां आदमी ने ब्लैक मार्केट किया, फलां आदमी तस्करी कर रहा है, फलाने ने इतना कमा लिया--ये सब बीज हैं। इन सबका एक इकट्ठा परिणाम यह होगा कि तुम पाओगे, जो तुमने इन बीजों में इकट्ठा कर लिया वह तुम्हारे आचरण में आना शुरू हो गया। ये सब आकर्षण हैं, क्योंकि तुम देखते हो कि तस्कर बड़ा मकान बना लिया।

गांव में एक पुरोहित आया। और उसने शराब की बड़ी निंदा की। और निंदा करने के लिए उसने कहा कि देखो, गांव में सबसे बड़ा भवन, सबसे बड़ा मकान किसके पास है? शराब बेचने वाले के पास! तुम्हारा खून उसकी ईंटों में लगा है। सबसे बड़ी कार किसके पास है? शराब बेचने वाले के पास! तुम बरबाद हो रहे हो; उसकी संपत्ति बन रही है। ऐसा उसने वर्णन किया।

मुल्ला नसरुद्दीन भी सुन रहा था। पीछे वह धन्यवाद देने गया। उसने कहा कि आपने मेरा जीवन बदल दिया, धन्यवाद। ऐसा प्रवचन मैंने कभी सुना नहीं, मेरी आत्मा बदल गई। अब मैं एक दूसरा ही आदमी हूं। पुरोहित बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि बड़ी सुख की बात है; क्या आपने तय कर लिया शराब नहीं पीएंगे? उसने कहा कि नहीं, मैंने शराब की दुकान खोलने का तय कर लिया। निर्णय ही ले लिया। आपकी बात ने ऐसा प्रभाव किया।

तुम जो भी सुन रहे हो, वे प्रभाव हैं, इम्प्रेशंस हैं। वे संस्कार हैं। हम एक-दूसरे को दे रहे हैं।

लाओत्से कहता है, "श्रेष्ठ चरित्र भेंट में दिया जा सकता है।"

भेंट ही देनी हो तो चरित्र की भेंट देना।

"यद्यपि बुरे लोग हो सकते हैं, हैं, तथापि उन्हें अस्वीकृत क्यों किया जाए?"

अस्वीकृत करने की कोई जरूरत नहीं है। उनको भी चरित्र की भेंट दी जा सकती है। बुरों को भला बनाया जा सकता है।

"इसलिए सम्राट के राज्याभिषेक पर, मंत्रियों की नियुक्ति पर, मणि-माणिक्य और चार-चार घोड़ों के दल भेजने की बजाय ताओ की भेंट भेजना श्रेयस्कर है।"

लाओत्से यह कह रहा है, देने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। बांटने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। साझा करने योग्य तो बस एक है, वह धर्म है। जितना बन सके, उसे दो।

लेकिन बड़ी कठिनाई है। तुम वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है। तुम कैसे दोगे चरित्र अगर तुम्हारे पास न हो? दुश्चरित्र बाप भी बेटे को सच्चरित्र बनाना चाहता है। पर कैसे देगा? बुरा आदमी भी अपने बच्चों को बुरा नहीं देखना चाहता। चोर भी अपने बच्चों को ईमानदार बनाना चाहता है। मगर कैसे करेगा यह? तुम वही तो दोगे जो तुम्हारे पास है।

अगर तुम्हें देना हो चरित्र दूसरों को तो चरित्र निर्मित करना होगा। और अगर तुम्हें स्वभाव की तरफ लोगों को ले जाना हो तो तुम्हें स्वभाव में आरूढ़ हो जाना होगा। तुम वही दे सकोगे जो तुम्हारे पास है। और अगर लोग तुम्हारी न सुनते हों, तुम देते कुछ हो, उनके पास कुछ और पहुंचता हो, तो तुम लोगों पर नाराज मत होना। मत कहना कि लोग बुरे हैं। तुम अपना ही विचार करना। तुम जो देने की चेष्टा कर रहे हो, वह जो भाव-भंगिमा है, वह थोथी है। उसमें भीतर कुछ है नहीं। तुम खाली हाथ लोगों के हाथ में उंडेल रहे हो। तुम्हारे हाथ में कुछ है नहीं।

इतने धर्मगुरु हैं, इतने मस्जिद-मंदिर, इतने चर्च, इतने गुरुद्वारे, सारी पृथ्वी पटी पड़ी है। सब तरफ चरित्र दिया जा रहा है। और चरित्र मिल किसी को भी नहीं रहा है। सब तरफ ज्ञान बांटा जा रहा है। और ज्ञान किसी के पल्ले नहीं पड़ रहा है। इतनी वर्षा हो रही है ज्ञान की सब तरफ; किसी को ज्ञान पल्ले नहीं आ रहा। बात क्या है?

शायद देने वालों के पास वह नहीं है जो वे देना चाह रहे हैं। उनकी भाव-भंगिमा थोथी और नपुंसक है--इंपोटेंट गेस्चर। वे कोशिश पूरी कर रहे हैं देने की, मगर देने योग्य कुछ है नहीं। वे सिर्फ भाव-भंगिमा दिखला रहे हैं। किसी के हाथ कुछ पड़ता नहीं। पड़ नहीं सकता।

इसे याद रखना। यह तुम्हारे जीवन में क्रांति बन जाएगी।

लाओत्से यह कह रहा है कि अगर भेंट ही देनी हो तो उन वचनों की देना जिनमें अमृत की थोड़ी झलक है; उस चरित्र की देना जिसमें ताओ के खजाने का धन है; या उस स्वभाव की देना जिसको संतों ने जाना और जीया है।

"किस बात में पूर्व-पुरुषों ने इस ताओ को मूल्य दिया था? क्या उन्होंने नहीं कहा था, अपराधियों को खोजने और उन्हें माफ कर देने को? इसलिए ताओ संसार का खजाना है।"

लोग बुरे हैं, तुम उन्हें माफ कर देना। उनके बुरे होने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। अगर उन्हें बहुत लोग माफ करने वाले मिल जाएं, उनका बुरा होना समाप्त हो जाए। लोग बुरे हैं, क्योंकि माफ करने को कोई भी राजी नहीं है। लोग बुरे हैं, क्योंकि चारों तरफ उनकी बुराई को और भी बुराई बना देने के लिए आतुर बैठे हुए लोग हैं। लोग बुरे हैं, क्योंकि जो लोग भले हैं वे उनको बुरे देखना चाहते हैं और उन्हें बुरे रखना चाहते हैं। नहीं तो उनकी भलाई थोथी हो जाएगी। लोग बुरे हैं, क्योंकि सारा समाज उन्हें बुरे की भेंट दे रहा है। कोई उन्हें माफ नहीं करना चाहता।

जीसस ने एक कहानी कही है। जीसस से एक आदमी ने पूछा कि मैंने बहुत पाप किए हैं, और मुझे भरोसा नहीं आता कि परमात्मा मुझे क्षमा कर देगा।

और जीसस की तो सारी प्रक्रिया क्षमा की है। जैसे महावीर की सारी प्रक्रिया अहिंसा की है, और बुद्ध की सारी प्रक्रिया करुणा की है, जीसस की सारी प्रक्रिया क्षमा की है।

जीसस ने कहा कि तुम परमात्मा की फिक्र मत करो, तुम्हारे प्रति जिन लोगों ने अपराध किए हों, तुम उन्हें क्षमा कर दो; बाकी मैं देख लूंगा, मैं गवाह रहूंगा। और जब परमात्मा तुम्हारे पापों की बात उठाएगा तो मैं गवाह रहूंगा कि इस आदमी ने क्षमा किया था हृदयपूर्वक। और जिसने क्षमा किया है वह क्षमा पाने का अधिकारी हो गया।

और जीसस ने उसे एक कहानी कही। कहा कि एक सम्राट ने अपने वजीर को कई करोड़ रुपए उधार दिए थे। उसने सब बरबाद कर दिए, एक कौड़ी वापस न लौटाई। आखिर सम्राट ने उसे बुलाया और कहा कि अब यह बहुत हो गया। तुम धन वापस लौटाते हो? उलटे तुम और मांगे चले जा रहे हो। लौटाते तो नहीं, मांगते हो। वह आदमी सम्राट के चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा, मुझे माफ कर दें। वह सब तो बरबाद हो गया, मेरे पास लौटाने को है भी नहीं; आपकी कृपा का भिखारी हूं। उस सम्राट को दया आई। पुराना सेवक था। हो गई भूल। सम्राट ने कहा, ठीक, मैंने तुझे माफ किया। बात भूल जा, जैसे मैंने तुझे कभी दिए ही नहीं। अपने मन से बोझ हटा दे।

उस वजीर ने उन्हीं रुपयों में से, जो सम्राट के वह पा गया था, कई लोगों को कर्ज दिया था। और वह बहुत सख्त आदमी था। और दूसरे ही दिन ऐसा हुआ कि उसके ही एक नौकर को जिसे उसने कुछ सौ रुपए दिए थे, उसने कोड़ों से पिटवाया, क्योंकि वह वापस नहीं लौटा पा रहा था। सम्राट को खबर लगी। सम्राट ने वजीर को बुलाया और उसने कहा कि तू क्षमा के योग्य नहीं है। जब मैंने तुझे क्षमा कर दिया तो भी तू क्षमा नहीं कर पा रहा है। और वे वे ही रुपए हैं जिनके लिए मैंने तुझे क्षमा कर दिया है। और तूने नौकर को कोड़े लगवाए!

जीसस कहते हैं, सम्राट ने उस आदमी को कोड़े लगवाए और कहा कि वह क्षमा वापस ले ली गई।

अस्तित्व तुम्हें कितना क्षमा किए चला जाता है। तुम बार-बार वही भूल करते हो तो भी तुम्हारा जीवन वापस नहीं ले लिया जाता। तुम बार-बार वही उपद्रव खड़ा करते हो तो भी अस्तित्व तुम्हें माफ किए चला जाता है। इससे अगर तुम इतना भी न सीख पाए कि तुम दूसरों को माफ कर दो तो तुम कुछ भी न सीख पाए। और अगर तुम दूसरों को माफ कर दो तो तुम पाओगे, जिसको भी तुम माफ करते हो उसके जीवन में तुम सुधरने का मार्ग खोल देते हो। जितना तुम दंड देते हो बुरों को उतने ही वे बुरे होते जाते हैं। जितना दंड देते हो उतने निष्णात बुरे हो जाते हैं। जितना दंड देते हो उतना ही मजबूती से बुरे हो जाते हैं। क्योंकि तुम्हारे दंड का बदला भी वे फिर लेना चाहेंगे।

जब तुम एक बच्चे को मारते हो, या एक अपराधी को, तो कई बातें घट रही हैं। एक बच्चे ने झूठ बोला, तुमने एक चांटा मारा। बच्चे ने क्रोध किया, तुमने एक छड़ी मारी। और तुम चाहते हो कि बच्चा इससे सीख ले, अब झूठ न बोले। लेकिन अब बच्चा इससे कई बातें सीखेगा। एक बात तो यह कि झूठ बोलने पर दंड मिलता है। लेकिन झूठ बोलने के कई फायदे भी हैं। अगर झूठ सफल हो जाए तो तुम्हें पुरस्कार भी मिलते हैं। झूठ का पता न लगे, पकड़ा न जाए, तो लाभ भी होता है। और ऐसे भी झूठ बोलने का एक मजा है। और वह मजा यह है कि तुम दूसरे को धोखा दे रहे हो; तुम होशियार हो। एक अहंता है झूठ बोलने की कि तुमने बाप को धोखा दे दिया। और बाप

बड़े बुद्धिमान बने बैठे हैं और पकड़ न पाए। तो बच्चा यह सीखता है कि अब झूठ तो बोलना, लेकिन इस तरह बोलना कि इतनी आसानी से पकड़े न जाओ।

और बच्चा यह भी सीखता है कि बाप कितना ही कहे कि झूठ मत बोलना, लेकिन बाप खुद झूठ बोलता है। बाप खुद ही बेटे को कहता है कि अगर कोई बाहर आए तो कह देना कि वे घर में नहीं हैं, बाहर गए हैं।

बाप कहता है, क्रोध मत करो, अपने से छोटों को मत मारो। और बाप खुद बेटे को मारता है। और बेटा सोचता है, यह कैसा हिसाब है? मैं अपने छोटे भाई को न मारूं यह तो मुझे समझाया जाता है, और बाप मुझसे इतना बड़ा है, मैं इतना छोटा हूं, मुझे पीटा जा रहा है। तो बच्चा समझ लेता है कि छोटे पीटे तो जा सकते हैं, लेकिन निरंकुश सत्ता चाहिए। बाप मुझे पीट रहा है; कोई बाप के ऊपर नहीं है, इसलिए पीट रहा है। जिस दिन मेरे ऊपर भी कोई नहीं होगा उस दिन मैं भी पीट सकूंगा। इसलिए पूरी कोशिश यह है कि मैं सबके ऊपर हो जाऊं, मेरे ऊपर कोई न रहे। अपराध मारने में नहीं है, न पीटने में, न क्रोध करने में; ऊपर होने में कोई अपराध नहीं है। नीचे हो तो अपराधी हो। यह बच्चा सब सीख रहा है। यही अपराधी सीख रहा है।

लाओत्से कहता है, क्षमा कर दो। उन्हें भेंट दो अमृत वचनों की। और उन्हें चरित्र का दान दो। और अगर संभव हो सके तो जैसा स्वभाव तुम्हारे पास है उस स्वभाव की थोड़ी सी झलक और स्वाद दो।

अगर तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि बांटना है, देना है, भेंट करनी है, तो तुम अपने को बदलने में लग जाओगे। क्योंकि वही दिया जा सकता है जो तुम्हारे पास है। मेरी अपनी समझ यह है और मैं तुमसे कहता हूं, क्योंकि यह तुम्हारे काम पड़ेगी।

बहुत से संन्यासी मुझसे आकर पूछते हैं कि अभी हम तो पूरे नहीं हुए, हम दूसरों को बदलने की क्या कोशिश करें! अभी हमने तो पूरा जाना नहीं, तो हम किसको जनाएं!

उनको मैं कहता हूं कि तुम जाओ और दूसरों को जनाओ, तुम जाओ और दूसरों को बताओ और तुम दूसरों को बदलने की फिक्र करो। क्योंकि उनको बदलने की फिक्र में ही तुम पाओगे कि तुमने अपने को बदलने का और भी तीव्रता से आयोजन शुरू कर दिया है। क्योंकि जब भी तुम किसी दूसरे व्यक्ति को सुधारने में लग जाते हो तो तुम्हें साफ दिखाई पड़ने लगता है कि उसे सुधारने के पहले खुद को सुधार लेना जरूरी है। अगर तुम किसी को सुधारने में नहीं लगते तो खुद को सुधारने की जरूरत का भी एहसास नहीं होता है।

अगर हर व्यक्ति एक बुरे आदमी को सुधारने में लग जाए, भला वह बुरा आदमी सुधरे या न सुधरे, लेकिन आखिर में वह व्यक्ति पाएगा कि उसकी सुधारने की कोशिश में मैं सुधर गया हूं। एक छोटा बच्चा पूरे परिवार को बदल सकता है। क्योंकि बाप को मुश्किल हो जाता है--कैसे सिगरेट पीए इस बच्चे के सामने? अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो सिगरेट फेंक देगा। अगर बाप को बच्चे से प्रेम है तो झूठ बोलना बंद कर देगा। अगर तुम किसी एक आदमी के भी जीवन को रूपांतरित करने के ख्याल से भर जाओ तो अनिवार्य हो जाएगा कि तुम अपने को बदल लो। अन्यथा तुम बदलोगे कैसे? दूसरे को बदलने की कोशिश अपने को बदलने की बड़ी खूबसूरत कीमिया है। दूसरे को बदलने की चेष्टा स्वयं के लिए बड़ी से बड़ी साधना है।

इसलिए इसकी फिक्र मत करो कि कब तुम पूरे होओगे, कब तुम्हारा रूपांतरण पूरा होगा। तुम्हारे पास जो भी छोटा-मोटा है तुम उसी को बांटना शुरू कर दो। अगर कुछ न हो तो जो अमृत वचन तुमने मुझसे सुने हैं, वही तुम लोगों को कहो। अगर तुमने कुछ थोड़ा सा आचरण का खजाना निर्मित किया है, उसमें से बांटो। अगर स्वभाव की तुम्हें कोई झलक मिली है तो उसमें लोगों को भागीदार बनाओ। और तुम पाओगे, जितना तुम बांटते

हो उतना बढ़ता है। और जितना तुम दूसरों को बदलने में लगते हो, उतना तुम्हारी क्रांति होती चली जाती है। तुम परोक्ष में बदलते जाते हो।

दुनिया में कोई भी व्यक्ति अपने को सीधा बदलना बहुत कठिन पाता है। तुम्हारी अपनी सब पहचान दूसरे के द्वारा है। तुम्हें लोग सुंदर कहते हैं तो तुम अपने को सुंदर समझते हो। तुम्हें लोग भला कहते हैं तो तुम भला समझते हो। तुम्हारी पहचान के लिए दूसरे का दर्पण जरूरी है। अकेले में तुम कुछ भी न समझ पाओगे कि तुम कौन हो, क्या हो।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा यहूदी विचारक हुआ, मार्टिन बूवर। वह कहता है कि तुम्हारे संबंधों में ही तुम्हारे जीवन की सारी क्रांति फलित होगी। कृष्णमूर्ति का जोर भी अंतर-संबंधों पर है। वे कहते हैं कि जितना ही तुम अपने संबंधों को समझोगे--पति-पत्नी के संबंध को, मां-बेटे के संबंध को, बेटे-बाप के संबंध को, मित्र-मित्र के संबंध को--और जितने ही तुम प्रेम से भरोगे, और जितना ही तुम दूसरे के जीवन में शुभ का पदार्पण चाहोगे, चाहोगे कि इसके जीवन में मंगल की वर्षा हो जाए, तुम अचानक पाओगे कि तुम तो दूसरे के जीवन में मंगल की वर्षा कर रहे थे, लेकिन तुम्हारे आंगन में वर्षा हो चुकी। जिसने दूसरों के लिए फूल बरसाने चाहे, उसे पता ही नहीं चलता कि कब आकाश खुल जाता है और उसके जीवन में फूल ही फूल बरस जाते हैं।

आज इतना ही।

एक सौ तीनवां प्रवचन

स्वादहीन का स्वाद लो

Chapter 63

Difficult And Easy

Accomplish do-nothing. Attend to no-affairs. Taste the flavourless.
Whether it is big or small, many or few, requite hatred with virtue.
Deal with the difficult while yet it is easy;
Deal with the big while yet it is small.
The difficult (problems) of the world
Must be dealt with while they are yet easy;
The great (problems) of the world
Must be dealt with while they are yet small.
Therefore the Sage by never dealing with great (problems),
Accomplishes greatness.
He who lightly makes a promise
Will find it often hard to keep his faith.
He who makes light of many things
Will encounter many difficulties.
Hence even the Sage regards things as difficult,
And for that reason never meets with difficulties.

अध्याय 63

कठिन और सरल

निष्क्रियता को साधो। अकर्म पर अवधान दो। स्वादहीन का स्वाद लो।
चाहे वह बड़ी हो या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।
कठिन से तभी निबट लो, जब वह सरल ही हो;
बड़े से तभी निबट लो, जब वह छोटा ही हो;
संसार की कठिन समस्याएं तभी हल की जाएं, जब वे सरल ही हों;

संसार की महान समस्याएं तभी हल की जाएं, जब वे छोटी ही हों।

इसलिए संत सदा बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं।

जो फूहड़पन के साथ वचन देता है,

उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा।

जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा।

इसलिए संत भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं,

और उसी कारण से उन्हें कठिनाइयों का सामना नहीं होता।

निष्क्रियता लाओत्से का मूल स्वर है।

इसे बहुत गहरे से समझ लेना जरूरी है। कठिनाई बढ़ जाती है और भी, क्योंकि निष्क्रियता को हम अक्सर अकर्मण्यता समझ लेते हैं। शब्द निषेधात्मक है, लेकिन स्थिति निषेध की नहीं है। निष्क्रियता शब्द तो नकार का है, लेकिन स्थिति बड़ी अकारात्मक है।

निष्क्रियता का अर्थ आलस्य नहीं है, और न अकर्मण्यता है। निष्क्रियता का अर्थ हैः शक्ति तो पूरी है, ऊर्जा तो भरपूर है; उपयोग नहीं है। भीतर तो ऊर्जा पूरी भरी है, लेकिन वासनाओं की दिशा में उसकी दौड़ रोक दी गई है। आलस्य में ऊर्जा का अभाव है। सुबह-सुबह तुम पड़े हो अपने बिस्तर में; उठने की ताकत ही नहीं पाते हो। अभाव है, कुछ कम है; शक्ति ही मालूम नहीं पड़ती। एक करवट और लेकर सो जाते हो। इसे तुम निष्क्रियता मत समझना। यह अकर्मण्यता है। करना तो तुम चाहते हो, करने की शक्ति नहीं है।

ठीक इससे उलटी है निष्क्रियता। करना तुम नहीं चाहते; करने की शक्ति बहुत है। चाह चली गई है, शक्ति नहीं गई। आलसी की चाह तो है, शक्ति नहीं है। ज्ञानी की चाह चली गई; चाह के जाते ही बहुत शक्ति बच गई। क्योंकि चाह में जो शक्ति नष्ट होती थी अब उसके नष्ट होने की कोई जगह न रही। सब छिद्र बंद हो गए। सब द्वार बंद हो गए।

तो ज्ञानी में और आलसी में तुम्हें कभी-कभी समानता दिखाई पड़ेगी; क्योंकि ज्ञानी भी कुछ करता नहीं, आलसी भी कुछ करता नहीं। पर दोनों के कारण अलग-अलग हैं।

और ठीक से समझ लेना, अन्यथा लाओत्से को पढ़ कर बहुत से लोग निष्क्रिय न होकर आलसी हो जाते हैं।

मेरे पास मेरे ही संन्यासी आकर कहते हैं कि आप ही तो समझाते हैं कि निष्क्रिय हो रहो। फिर आप ही कहते हैंः ध्यान करो, काम करो। तो आप तो उलटी बातें समझा रहे हैं।

आलसी होने को नहीं समझा रहा हूं। तुम आलसी होना चाहोगे। कौन नहीं होना चाहता? मैं कह रहा हूं, चाह छोड़ो। चाह को तो तुम भलीभांति पकड़े हो; उसे नहीं छोड़ते सुन कर। लेकिन निष्क्रियता जंच जाती है मन को। यह तो बड़ी अच्छी बात हुई, कुछ भी नहीं करना है; ध्यान भी नहीं करना है।

सुबह छह बजे उठ कर ध्यान के लिए आना पड़ता है। तो संन्यासी मुझसे आकर कहते हैं कि एक तरफ आप समझाते हैं कि सहज हो जाओ और सुबह तो उठने का मन होता ही नहीं। इधर समझाते हैं निष्क्रिय हो जाओ, तो निष्क्रिय हम होते हैं तो बिस्तर में ही पड़े रहते हैं। उधर कहते हैं ध्यान करने आ जाओ।

इसको तुम निष्क्रियता मत समझ लेना। यह शुद्ध आलस्य है। आलस्य जहर है, और निष्क्रियता अमृत है। इतना फासला है उनमें। जमीन-आसमान का अंतर है। और मन बहुत चालाक है। वह हमेशा ठीक को गलत से

मिश्रित कर लेता है। वह बड़ा कुशल कलाकार है। वह तुमसे कहता है कि ठीक है, जब परम ज्ञानियों ने कहा है कुछ न करो, तो तुम क्यों करने में लगे हो!

परम ज्ञानियों ने कहा है कि तुम्हारे भीतर करने की जो आकांक्षा है, वह खो जाए, करने की शक्ति नहीं। करने की आकांक्षा को भी इसलिए छोड़ने को कहा है, ताकि शक्ति बचे।

तो एक तो आलसी आदमी है जो बिस्तर में पड़ा है, कुछ नहीं कर रहा।

फिर तुमने देखा है, दौड़ के लिए तत्पर प्रतियोगी। दौड़ शुरू होने को है। सीटी बजेगी, संकेत मिलेगा, अभी दौड़ शुरू नहीं हुई है। खड़ा है लकीर पर पैर को रखे। अभी कुछ भी नहीं कर रहा है। लेकिन क्या तुम उसको आलसी कहोगे? बड़ी ऊर्जा से भरा है। इधर बजी नहीं सीटी, उधर वह दौड़ा नहीं। तत्पर है, रोआं-रोआं तत्पर है। श्वास-श्वास सजग है। क्योंकि एक-एक क्षण की कीमत है। एक क्षण भी चूक गया, एक क्षण भी पीछे हो गया, तो हार निश्चित है। कुछ भी नहीं कर रहा है; अभी इस क्षण तो खड़ा है मूर्ति की तरह, पत्थर की मूर्ति की तरह। लेकिन तुम उसे आलसी न कह सकोगे। निष्क्रिय है वह अभी। अभी क्रिया नहीं कर रहा है। ऊर्जा इकट्ठी है। ऊर्जा भीतर घनीभूत हो रही है। वह ऊर्जा का एक स्तंभ हो गया है।

मगर यह प्रतियोगी कुछ भी नहीं है। जिसने परमात्मा की तरफ जाना चाहा है उसे तो बहुत-बहुत अनंत ऊर्जा चाहिए। यह दौड़ तो बड़ी छोटी है; मील, आधा मील पर पूरी हो जाएगी। परमात्मा की दौड़ तो विराट है। उससे बड़ी कोई दौड़ नहीं; उससे बड़ी कोई मंजिल नहीं।

लाओत्से कहता है, निष्क्रिय हो रहो, ताकि शक्ति बचे। निष्क्रियता संयम है। व्यर्थ मत खोओ। यहां-वहां अकारण मत दौड़े फिरो। जो-जो दौड़ छोड़ी जा सकती हो, छोड़ दो। जो-जो चाह छोड़ी जा सकती हो, छोड़ दो। न्यूनतम आवश्यकताओं पर ठहर जाओ, ताकि सारी ऊर्जा एक ही दिशा में प्रवाहित होने लगे, उसकी एक ही धारा बन जाए। निष्क्रियता का अर्थ हैः इस संसार से खींच ली ऊर्जा और उस संसार की तरफ यात्रा शुरू हो गई।

आलस्य का अर्थ हैः न उधर के, न इधर के। इस संसार में जाने योग्य ऊर्जा ही नहीं है; उस संसार का सवाल ही कहां उठता है। आलस्य अकर्मण्यता है। वासना मन में पूरी दौड़ती है। इच्छाएं बड़े सपने बनती हैं। पाना सब है; लेकिन पाने की मेहनत करने की शक्ति नहीं, संकल्प नहीं, भरोसा नहीं। कमजोरी है। आलस्य नपुंसकता है, अभाव है। आलस्य नकारात्मक स्थिति है।

निष्क्रियता बड़ी भावात्मक स्थिति है, बहुत पाजिटिव। शक्ति है पूरी, वासना कोई न रही। इस दुनिया में कोई दौड़ आकर्षक न रही, कोई दरवाजा बुलाता नहीं; कहीं जाने को न बचा। सब इकट्ठा हुआ जा रहा है। और जब इस दुनिया में कोई भी द्वार नहीं है और सब द्वार बंद हो गए, सब छिद्र बंद हो गए और तुम्हारे घट में शक्ति भरी जा रही है, तभी तुम्हारे घट में शक्ति ऊपर उठती है। और एक ऐसी घड़ी आती है जहां तुम्हारे घट की बढ़ती हुई ऊर्जा ही तुम्हें इस संसार के पार ले जाती है। अगर ठीक से समझो तो वही कुंडलिनी का जागरण है।

मेरे पास आते हैं बिल्कुल मरे, मुर्दा लोग। उन्होंने कहा, हम फलां बाबा के पास गए और उन्होंने कुंडलिनी जगा दी। उनकी शक्ल देख कर तुम कहोगे कि तुम्हें किसी अस्पताल में होना चाहिए। तुम्हारी कुंडलिनी जग कैसे सकती है? तुमने कोई कल्पना कर ली। तुम किसी भ्रम के शिकार हुए।

कुंडलिनी जगनी कोई आसान घटना नहीं है। वह तो इतनी भरपूर ऊर्जा का परिणाम है कि घट में नीचे कोई छिद्र नहीं है; ऊर्जा इकट्ठी होती है। कहां जाएगी? उठेगी ऊपर और एक घड़ी आएगी कि घट के मुंह से ऊर्जा बहने लगेगी; ओवरफ्लो होगा। तुम्हारी खोपड़ी ही वह मुंह है जहां से ऊर्जा का ओवरफ्लो होगा। इसलिए तो हमने उसको सहस्र-दल कमल का खिलना कहा है; जैसे फूल की पंखुड़ियां खिल जाती हैं।

फूल वृक्ष का ओवरफ्लो है। वहां तक ऊर्जा आ गई है और अब आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। आखिरी क्षण आ गया। शिखर आ गया। वहीं पंखुरियों में ऊर्जा बिखर जाती है। वहीं से सुगंध सारे लोक में फैल जाती है।

कमजोर वृक्ष जिसमें ऊर्जा न हो, उसमें फूल न खिल सकेगा। हां, यह हो सकता है कि तुम बाजार से एक फूल खरीद लाओ और वृक्ष पर लटका दो। पर उस फूल से वृक्ष का कोई लेना-देना नहीं। ऐसे ही आबा-बाबाओं के पास जो ऊर्जा उठती है, कुंडलिनी जगती है, वह ऊपर से थोपे गए फूल हैं।

तुम्हारी ऊर्जा तभी जगेगी जब इस संसार में तुम पूरे निष्क्रिय हो जाओगे; यहां तुम रत्ती भर न गंवाओगे। यहां गंवाने योग्य है ही नहीं। यहां कुछ पाने योग्य नहीं है। तुम किस खरीददारी में लगे हो? तुम सिर्फ खो रहे हो। यहां सिर्फ मरुस्थल है जो तुम्हारी ऊर्जा को पी जाएगा।

सब छिद्र रोक दो। बंद करो सब छिद्र, कहता लाओत्से। बंद करो सब द्वार, ताकि होती जाए संगठित ऊर्जा। ऊर्जा का संगठन और ऊर्जा की बढ़ती हुई मात्रा एक जगह जाकर गुणात्मक परिवर्तन हो जाती है। क्वांटिटेटिव चेंज एक जगह जाकर क्वालिटेटिव चेंज हो जाता है। मात्रा की एक सीमा है, जहां गुणात्मक रूप बदल जाता है। जैसे तुम पानी को गरम करते हो तो निन्यानबे डिग्री तक तो पानी ही रहता है; सौ डिग्री पर भाप हो जाता है। क्या हो रहा है? सिर्फ एक डिग्री गरमी और बढ़ने से कौन सी क्रांति घट जाती है? एक डिग्री का और गरम होना केवल मात्रा का भेद है, क्वांटिटी का भेद है। निन्यानबे डिग्री गरमी थी, अब सौ डिग्री गरमी है। लेकिन गुणात्मक रूपांतरण हो गया; क्वालिटी बदल गई। पानी का गुण और; पानी बहता नीचे की तरफ। भाप का गुण और; भाप उठती ऊपर की तरफ। पानी जाता गड्ढे की तरफ; भाप जाती आकाश की तरफ। पानी अधोगामी है, भाप ऊर्ध्वगामी है। सारा गुण बदल गया। पानी दिखाई पड़ता है; भाप थोड़ी ही देर में अदृश्य हो जाती है, दिखाई नहीं पड़ती।

मात्रा को नीचे गिराओ--शून्य डिग्री से कहीं जाकर पानी बर्फ हो जाता है। तब फिर गुणात्मक परिवर्तन हो गया। तुमने सिर्फ गरमी कम की। फिर गुण बदल गया। पानी बहता था; बर्फ जमा है। पानी में तरलता थी, बहाव था; बर्फ पत्थर की तरह है। उसमें कोई तरलता नहीं, कोई बहाव नहीं। पानी को फेंक कर तुम किसी का सिर न खोल सकते थे; बर्फ को फेंक कर तुम किसी की जान ले सकते हो। बर्फ ठहर गया, जड़ हो गया; गत्यात्मकता खो गई। फर्क क्या है? सिर्फ मात्रा का फर्क है।

सारे जगत में जितने भी रूपांतरण दिखाई पड़ते हैं, सभी मात्रा के रूपांतरण हैं। तुम्हारी ऊर्जा जब एक मात्रा पर आती है--एक सौ डिग्री है तुम्हारी ऊर्जा का भी--वहीं से तत्क्षण तुम दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो; भाप बन जाते हो। हमने जगत को तीन हिस्सों में तोड़ा हुआ है। बीच में संसार है मनुष्य का, मनुष्य की चेतना का; यह पानी जैसा है--तरल। ऊपर दिव्य लोक है; यह भाप जैसा है--अदृश्य, ऊर्ध्वगामी। नीचे मनुष्य से नीचे की योनियां हैं; वृक्ष हैं, पत्थर हैं, पहाड़ हैं। ये बर्फ जैसे हैं--जमे हुए। ये चेतना के तीन रूप हैं। और इनका सारा भेद ऊर्जा की मात्रा का भेद है।

आलस्य से तो तुम बर्फ बन जाओगे। निष्क्रियता से तुम भाप बनोगे। दोनों ही स्थिति में पानी तुम न रहोगे। इसलिए एक तरह की समानता है। लेकिन वह समानता बड़ी ऊपर है; भीतर बड़ा भेद है।

संत भी आलसी मालूम होने लगता है; कुछ करता नहीं दिखाई पड़ता। रमण महर्षि क्या कर रहे थे अरुणाचल में? इसलिए बहुतों को गांधी ज्यादा संत मालूम पड़ते हैं, बजाय रमण के। रमण बैठे हैं। तुमने रमण की तस्वीर देखी? सदा अपने बिस्तर पर ही बैठे हैं। बैठे भी कम हैं, लेटे ही हैं। चार-छह तकिए लगा रखे हैं। अब

इनको संत कहिएगा? उठो, कुछ करो। किसी की सेवा करो। संसार को जरूरत है; कुछ काम करो। मुल्क गुलाम है; आजाद करो। लोग गरीब हैं; अमीर करो। यहां बैठे क्या कर रहे हो?

रमण बैठे ही रहे अरुणाचल पर। इसे साधारण दृष्टि न समझ पाएगी। यह आलस्य नहीं है। यह निष्क्रियता है। रंच भर भी रमण की ऊर्जा इधर-उधर नहीं फेंकी जा रही है; सब संगृहीत है, सब इकट्ठा है। और जो देख सकते हैं वे देख सकते हैं कि ऊपर की यात्रा हो रही है। और उससे बड़ी कोई सेवा नहीं है इस जगत की।

तुम्हारी ऊपर की यात्रा शुरू हो जाए, तुम जगत के लिए बड़ी भारी सेवा का कारण बन गए। तुम स्रोत बन गए एक दूसरे लोक के। तुम्हारे माध्यम से परमात्मा से फिर संसार जुड़ गया। तुम्हारे माध्यम से, तुम्हारे सेतु से पदार्थ और परमात्मा के बीच कड़ी बन गई। तुम्हारे द्वारा बहुत लोग परमात्मा तक जा सकेंगे।

और परमात्मा तक जो पहुंच जाए, वही समृद्ध होता है। उसके पहले कौन समृद्ध है? सभी दरिद्र हैं। और परमात्मा में कोई पहुंच जाए, तभी कोई स्वस्थ होता है। उसके पहले कौन स्वस्थ? सभी रुग्ण हैं। सभी उपाधिग्रस्त हैं। गरीबी-अमीरी, बीमारी-स्वास्थ्य, सफलता-असफलता, सब सपने में देखी गई बातें हैं। सत्य तो उसी दिन शुरू होता है जिस दिन ऊर्जा इतनी अपरिसीम हो जाती है कि घट का मुंह फूल की पंखुड़ियों जैसा खिल जाता है और ऊर्जा तुमसे बरसने लगती है; तुम्हारे पार जब बहने लगती है। अतिक्रमण!

निष्क्रियता में तो अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है। आलस्य में तो सिर्फ पथराव है; तुम पत्थर की तरह हो जाते हो। इसलिए तुम आलसी और निष्क्रिय व्यक्ति को गौर से देखना। आलसी के पास तुम एक तंद्रा पाओगे, एक मूर्च्छा, एक वजनीपन। तुम उसके पास भी बैठोगे तो तुमको भी नींद आने लगेगी। तुम उसके पास बैठोगे, तुमको भी लगेगा, एक गहन ऊब से मन भर गया है; तुम भी नीचे कहीं सरके जा रहे हो। तुम भी पत्थर की तरह वजनी हुए जा रहे हो। गुरुत्वाकर्षण गहन हो गया है।

जब तुम किसी निष्क्रिय आदमी के पास बैठोगे तो तुम पाओगे तुम्हें पंख लग गए हैं, तुम किसी आकाश में उड़े जाते हो; जैसे जमीन ने गुरुत्वाकर्षण खो दिया। तुममें कोई वजन नहीं है, तुम हलके हो गए। वही है सत्संग, जहां से तुम हलके होकर लौटो। जहां से तुम भारी होकर आ जाओ वहां से बचना। वहां सत्संग के नाम पर ठीक उलटा ही कुछ चलता होगा। सत्संग करेगा हलका, निर्भार, कि तुम उड़ सको। और परमात्मा का तो अर्थ है आकाश का आखिरी, आखिरी आत्यंतिक छोर। वहां तो तुम जब तक बिल्कुल भार-शून्य न हो जाओगे--एब्सोल्यूटली वेटलेस--तब तक न पहुंच सकोगे।

निष्क्रियता बड़ा अदभुत फूल है। निष्क्रियता है फूल जैसी। आलस्य जड़ों जैसा--कुरूप, जमीन में दबा, सोया हुआ। निष्क्रियता है फूल जैसी--आकाश में खिली, सुगंध को, सुवास को बिखेरती, बांटती। वृक्ष अपने को लुटा रहा है वहां से, दान कर रहा है। कुछ पाने को नहीं; ज्यादा है, इसलिए दे रहा है। यह तो पहली बात।

दूसरी बात, निष्क्रियता का स्वभाव समझने की कोशिश करो। यह तो मैंने कहा कि निष्क्रियता क्या नहीं है; निष्क्रियता आलस्य नहीं है, अकर्मण्यता नहीं है। फिर निष्क्रियता क्या है?

निष्क्रियता ऊर्जा का संयम है। ज्ञानी एक भाव-भंगिमा भी व्यर्थ और अकारण नहीं करता। अगर वह हिलता भी है तो कारण से ही हिलता है; चलता भी है तो कारण से ही चलता है। ज्ञानी एक कदम भी व्यर्थ नहीं चलता। न्यूनतम है उसका जीवन।

तुम हजारों कदम व्यर्थ चलते हो। तुम चलते ही व्यर्थ हो। तुम हजार काम व्यर्थ करते हो। तुम करते ही व्यर्थ हो। तुम हजार विचार व्यर्थ सोचते हो। तुमने कभी ख्याल किया कि तुम जितने विचार करते हो, उनमें से कितने काटे जा सकते हैं, जिनकी कोई भी जरूरत नहीं है।

तुम थोड़े ही सजग होओगे तो निन्यानबे प्रतिशत विचार तो तुम व्यर्थ ही पाओगे, जिनको न किया होता तो कुछ न खोते, जिनको करके तुमने बहुत कुछ खोया। क्योंकि हर विचार ऊर्जा को समाप्त कर रहा है। एक-एक विचार के लिए कीमत चुकानी पड़ रही है। तुम ऐसा मत समझना कि मुफ्त सपने देख रहे हो। मुफ्त तो इस संसार में कुछ भी नहीं है। मुफ्त तो कुछ हो ही नहीं सकता; जो भी है, उसे तुम्हें चुकाना पड़ रहा है। तुम विचार कर रहे हो; तुम्हारी ऊर्जा खो रही है। वह एक छिद्र है। तुम व्यर्थ कुछ बात कर रहे हो; ऊर्जा खो रही है। तुम व्यर्थ सुन रहो हो; ऊर्जा खो रही है। तुम व्यर्थ देख रहे हो; ऊर्जा खो रही है। एक हाथ भी तुमने हिलाया तो मुफ्त तो नहीं हिला सकते; उतनी ऊर्जा गई, उतना जीवन व्यय हुआ।

संयम का यही अर्थ है। संयम का अर्थ हैः जो अपरिहार्य है उसके साथ जीना; और जो काटा जा सकता है उसे काट देना। संयम ऐसा है जैसे कोई आदमी पोस्ट आफिस जाता है तार करने, तो देखता है, कितने शब्द काटे जा सकते हैं। फिर-फिर काटता है। दस, नौ-दस शब्दों के भीतर में ले आता है। यही आदमी पत्र लिखे तो चार पन्ने लिखता है। और कभी तुमने ख्याल किया, चार पन्ने जो नहीं कह सकते, वह एक तार कहता है।

ज्ञानी कम करता है, लेकिन उससे बहुत होता है। वह टेलीग्रैफिक है। वह बहुत न्यूनतम करता है, लेकिन विराटतम उससे फलित होता है। क्योंकि व्यर्थ उसने काट दिया है; सार्थक को बचा लिया है। तार की भाषा है ज्ञानी। दस शब्दों में, जो जरूरी है, जो एकदम जरूरी है, वही उसके जीवन से प्रकट होता है।

जीवन को टेलीग्रैफिक बनाओ। जितना-जितना व्यर्थ पाओ, हटा दो। तभी तुम्हारी मूर्ति निखरेगी। तभी तुम्हारे भीतर ऊर्जस्वी आत्मा का जन्म होगा। तुम आत्मवान बनोगे। तभी तुम पाओगे कि तुम शक्तिशाली हो। अन्यथा तुम हमेशा निर्बल रहोगे।

निर्बल तुम इसलिए नहीं हो कि निर्बल तुम पैदा किए गए हो; निर्बल इसलिए हो कि तुम अपनी ऊर्जा को व्यर्थ छिद्रों से खोए डाल रहे हो। और तुम भी भलीभांति जानते हो। बहुत बार तुम्हें समझ में भी आता है। बस पुरानी लत है, पुरानी आदत है; किए चले जाते हो।

बुद्ध के सामने एक आदमी बैठा था और बैठा-बैठा अपना पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध ने पूछा कि मेरे भाई, यह क्या कर रहे हो? बीच वचन तोड़ कर बोल रहे थे, प्रवचन तोड़ कर बीच में कहा कि यह क्या कर रहे हो? यह अंगूठा क्यों हिलता है?

वह आदमी थोड़ा घबड़ा गया। और जैसे ही बुद्ध ने पूछा, अंगूठा रुक गया। क्योंकि वह हिलता था बेहोशी में, होश आ गया। कोई काम तो था नहीं अंगूठा हिलाने का। उस आदमी ने कहा कि आप भी खूब हैं! आप अपना प्रवचन दें, मेरे अंगूठे से क्या लेना-देना? और इतना महत्व क्या अंगूठे का?

बुद्ध ने कहा कि अगर तुम्हें यही पता नहीं कि तुम्हारा अंगूठा हिल रहा है, क्यों हिल रहा है, तो मैं बेकार ही प्रवचन दे रहा हूं। तुम समझोगे क्या खाक! जिसमें इतनी भी बुद्धि नहीं कि बिना कारण अंगूठा न हिलाए, वह क्या समझेगा? और फिर तुमने रोका क्यों? जब तक तुम साफ-साफ न बताओगे, मैं आगे न बढ़ूंगा। मेरे कहते ही अंगूठा रुका क्यों? उस आदमी ने कहा, आप भी खूब हैं! मुझे पता ही नहीं था कि अंगूठा हिल रहा है; आपने कहा, तभी मुझे पता चला। बुद्ध ने कहा, यह भी खूब रही। तुम्हारा अंगूठा; हम बताएं, तब तुम्हें पता चले!

इतनी मूर्च्छा में जीओगे और फिर रोओगे कि जीवन में कुछ मिल नहीं रहा है। अपने ही हाथों से खोओगे, और तुम्हें पता भी न चलेगा कि तुमने कैसे खो दिया है। और फिर भी आदमी अपने को होश में समझता है, जागा हुआ समझता है।

तुम भी जरा गौर से देखना। हजार अंगूठे हिल रहे हैं तुम्हारे; अकारण हिल रहे हैं। जैसे-जैसे तुम समझोगे वैसे-वैसे अंगूठे हिलने बंद हो जाएंगे। धीरे-धीरे एक शांत ऊर्जा घनीभूत होगी। तुम एक बादल हो जाओगे वर्षा के, जो भरा हुआ है, जो बरसने को तत्पर है।

बड़ी विराट संभावना है। लेकिन संभावना तभी फलित होगी जब तुम द्वार बंद करो, छिद्र रोको। और ये छिद्र और द्वार रुक जाते हैं सिर्फ होश से। थोड़ा जाग कर देखो, तुम क्या कर रहे हो। और जो-जो तुम पाओ व्यर्थ है, थोड़ा सम्हल कर चलो और व्यर्थ को छोड़ते जाओ।

बहुत बड़े प्रसिद्ध मूर्तिकार रोदिन से किसी ने पूछा। रोदिन ने एक बड़ी सुंदर प्रतिमा अभी-अभी बनाई थी। कोई मित्र देखने आया था। उसने पूछा कि तुम गजब कर देते हो! तुम करते क्या हो? तुम्हारा राज क्या है? यह प्रतिमा इतनी जीवंत प्रकट कैसे हो जाती है साधारण अनगढ़ पत्थरों से?

रोदिन ने कहा, हम कुछ करते नहीं, सिर्फ पत्थर में जो-जो व्यर्थ था, उसे हम अलग कर देते हैं। मूर्ति तो छिपी ही थी। पत्थर जरा नासमझ है तो व्यर्थ को भी जोड़े हुए था। जरा-जरा, जहां-जहां हम पाते हैं, व्यर्थ पत्थर है, वहां हम छैनी चलाते हैं, व्यर्थ को हटा देते हैं। धीरे-धीरे मूर्ति प्रकट होने लगती है।

मूर्तिकार जब जाता है पहाड़ों में पत्थर खोजने, तो वह पत्थरों को देखता है कि किस पत्थर में मूर्ति छिपी है? कौन सा पत्थर मूर्ति को प्रकट कर सकेगा? तुम जाओगे, तुम्हें सभी पत्थर एक जैसे लगेंगे। मूर्तिकार को दिखाई पड़ जाती है छिपी हुई मूर्ति।

तुम जब मेरे पास आते हो तो मैं देखता हूं कि तुममें कैसी मूर्ति छिपी है; क्या-क्या व्यर्थ तुममें है, जो जरा सा काट दिया जाए कि तुम सार्थकता को उपलब्ध हो जाओगे। विराट ऊर्जा तुममें छिपी है। तुम अनगढ़ पत्थर हो, लेकिन परमात्मा की प्रतिमा को छिपाए बैठे हो।

निष्क्रियता का पहला अर्थ है, जो-जो व्यर्थ है, उसे मत करो। सौ में से नब्बे प्रतिशत कृत्य तुम्हारे अपने आप विदा हो जाएंगे। दस प्रतिशत बचेंगे। वे जीवन की अपरिहार्यताएं हैं, कि प्यास लगेगी तो तुम पानी पीओगे, कि नींद आएगी तो तुम उठ कर बिस्तर पर जाकर सो जाओगे, कि भूख लगेगी तो भोजन करोगे, भोजन को पचाओगे, कि सुबह की प्रभात-वेला में थोड़ा घूम आओगे, कि स्नान कर लोगे। बस, ऐसी जरूरत की बातें बचेंगी। तब तुम्हारे भीतर ऊर्जा का स्तंभ निर्मित होगा। उसी ऊर्जा के स्तंभ से तुम चढ़ोगे परमात्मा तक। तुम नहीं, ऊर्जा चढ़ेगी। बिना ऊर्जा के तुम कैसे जाओगे? ऊर्जा ही तो मार्ग बनेगी।

निष्क्रियता का अर्थ है, ऊर्जा का संयम।

अब हम लाओत्से को समझने की कोशिश करें।

"निष्क्रियता को साधो। अकम्पलिश डू-नथिंग। अकर्म पर अवधान दो। अटेंड टु नो-अफेयर्स। और स्वादहीन का स्वाद लो।"

निष्क्रियता को साधो। कैसे साधोगे? निष्क्रियता को कोई साध सकता है? क्योंकि साधना तो क्रिया है। यहीं भाषा की मजबूरी पता चलती है। इसलिए लाओत्से शुरू में कह देता है कि कह न सकूंगा जो मैं कहना चाहता हूं, और जो मैं कहूंगा वह सत्य न होगा। सत्य कहा नहीं जा सकता। यह है कठिनाई। लाओत्से भलीभांति जानता है। क्योंकि साधना तो क्रिया है। निष्क्रियता को साधो, यह तो विरोधाभासी वक्तव्य है। निष्क्रियता को कैसे साधोगे? निष्क्रियता तो साधी नहीं जा सकती। लेकिन फिर भी यही कहना पड़ेगा। क्योंकि तुम कुछ जानते ही नहीं। असाधे भी कुछ सधता है, इसका तुम्हें कुछ पता नहीं। तुम कर्म की भाषा ही समझते हो।

इसलिए मुझे भी कहना पड़ता है, ध्यान करो। अब ध्यान कहीं किया जा सकता है? कहना पड़ता है, प्रेम करो। प्रेम कहीं किया जा सकता है? और जो किया जाएगा वह प्रेम न होगा। प्रेम तो होता है; करोगे कैसे? ध्यान कोई क्रिया तो नहीं है, अवस्था है। तुम ध्यान में हो सकते हो; ध्यान कर नहीं सकते। करेगा कौन? कैसे करोगे? तुम प्रेम में हो सकते हो; प्रेम करोगे कैसे? तुम प्रार्थना में हो सकते हो; लेकिन प्रार्थना करोगे कैसे? तुम्हारे शोरगुल मचाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। मंदिर में जाकर सिर हजार दफे झुकाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। हाथ जोड़-जोड़ कर आकाश की तरफ आंखें उठाने से थोड़े ही प्रार्थना होती है। ये तो भाव-भंगिमाएं हैं, ऊपर-ऊपर हैं। प्रार्थना तो बड़ी दूसरी बात है। प्रार्थना तो तुम्हारे होने का ढंग है। तब तुम भाव-भंगिमा न भी करो तो भी प्रार्थना चलती है। प्रार्थना तो एक भाव-दशा है।

इसलिए जो भी प्रार्थना को समझ लेता है वह मंदिर नहीं जाता। मंदिर जाने की क्या जरूरत? जो भी ध्यान को समझ लेता है फिर वह ध्यान को करता नहीं। क्योंकि करने का कहां सवाल?

लेकिन अभी जहां तुम खड़े हो, तुम्हारी ही भाषा बोलनी पड़ेगी। तुमसे कहना पड़ेगा, ध्यान करो। जानते हुए भलीभांति कि करने से ध्यान का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन तुम समझोगे ही नहीं, अगर पहले से ही कहा जाए ध्यान न करो। क्योंकि तब भी मुझे करने का ही प्रयोग करना पड़ेगा--चाहे न करना कहूं, चाहे करना कहूं।

निष्क्रियता को साधो का अर्थ यह हैः निष्क्रियता को समझो, जीओ; निष्क्रियता को सम्हालो। जीवन जैसा है, उसे समझने की कोशिश से धीरे-धीरे तुम पाओगे कि निष्क्रियता सधती है। क्योंकि जो-जो व्यर्थ है, वह तुम करना बंद कर देते हो। सार्थक को करना थोड़े ही है; सिर्फ व्यर्थ को करना छोड़ देना है। मूर्ति बनानी थोड़े ही है; जो-जो व्यर्थ शिलाखंड जुड़े हैं, उनको काट कर अलग कर देना है।

कर्म की व्यर्थता को पहचानो। भागे चले जा रहे हो। कभी खड़े होकर सोचते भी नहीं कि किसलिए दौड़ रहे हो; किसलिए भाग रहे हो; कहां जाना चाहते हो। फिर अगर कहीं नहीं पहुंचते तो रोते क्यों हो? रोज सुबह उठे, फिर वही चक्कर शुरू कर देते हो। फिर वही दुकान; फिर वही बाजार; फिर वही कृत्य। लेकिन कभी तुमने पूछा कि इनसे तुम कहां जाना चाहते हो? क्या पा लोगे? दुकान अगर ठीक भी चल गई सत्तर साल तक तो क्या पा लोगे?

कर्म को ठीक से जो देखता है, सजग होकर समझता है, अपने एक-एक कृत्य को पहचानता है, एक-एक कृत्य को चारों तरफ से निरीक्षण करता है; देखता है कि इसे करना जरूरी है? सोचता है, विमर्श करता है; होश का प्रकाश कृत्य पर डालता हैः इसे करूं? इतनी बार किया, करके क्या पाया? फिर करूंगा तो क्या पाऊंगा? और अगर इतनी बार करके कुछ न पाया और फिर भी करता रहा हूं, तो इसके करने के पीछे कोई कारण छिपा होगा, जो मुझे पता नहीं है। क्योंकि मिलने के कारण तो मैं इसे नहीं कर रहा हूं, कुछ मिला तो है नहीं। तो कुछ कारण छिपा होगा अचेतन गर्भ में; कहीं भीतर अंधकार में कोई जड़ें छिपी होंगी, जिनके कारण यह कृत्य हो रहा है।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, सिगरेट पीना छोड़ना है। मैं उनसे कहता हूं, यह फिक्र मत करो; तुम पहले यह तो समझो कि पीते क्यों हो! और जब तुम यह ही नहीं समझ पाए पी-पीकर कि पीते क्यों हो तो तुम छोड़ कैसे सकोगे? छोड़ना क्यों चाहते हो? तो वे कहते हैं, अखबार में पढ़ लिया कि कैंसर इससे होता है।

छोड़ना चाहते हो ऊपर के कारणों से कि पत्नी पीछे पड़ी है कि मत पीयो; कि मुंह से बदबू आती है; कि घर में छोटे बच्चे हैं, पीते देखेंगे तो वे भी पीएंगे। पर ये सब कारण तो ऊपर-ऊपर हैं। तुमने पीना शुरू क्यों किया? तुमने इसलिए तो पीना शुरू नहीं किया था कि इससे कैंसर नहीं होता, इसलिए पीएं। तो कैंसर होने से छोड़ोगे कैसे?

अमरीका के पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया कि हर सिगरेट के पैकेट पर लिखा होना चाहिए कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है। लिख दिया गया। अमरीका में बिकने वाली हर सिगरेट के पैकेट पर लिखा हुआ है कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है। कोई बिक्री में फर्क नहीं है। क्योंकि लोग इसे स्वास्थ्य के लिए पी ही नहीं रहे थे। बिक्री वैसी की वैसी है। पहले तो बहुत घबड़ाए थे सिगरेट बनाने वाले निर्माता कि इसको पैकेट पर लिखना बड़े-बड़े अक्षरों में कि यह स्वास्थ्य के लिए घातक है, बुरा परिणाम लाएगा। क्योंकि लोग बार-बार पैकेट निकालेंगे, बार-बार पढ़ेंगे कि स्वास्थ्य के लिए घातक है, तो बिक्री पर असर पड़ेगा।

लेकिन जरा भी असर नहीं पड़ा। रत्ती भर असर नहीं पड़ा। बराबर बिक्री वैसी ही चल रही है। एकाध दफे लोगों ने पढ़ लिया होगा; अब वे पढ़ते भी नहीं होंगे। वह धूमिल हो गया। बार-बार पढ़ने से भूल ही गए।

स्वास्थ्य के लिए तो किसी ने सिगरेट पीनी अगर शुरू की होती, तो स्वास्थ्य के लिए यह घातक है यह जान कर वह बंद कर देता। पत्नी को पसंद पड़ेगी, इसलिए अगर किसी ने सिगरेट पीनी शुरू की होती, तो पत्नी को पसंद नहीं पड़ती तो बंद कर देता। मगर ये तो कारण ही न थे शुरू करने के। तो जिन कारणों से तुम छोड़ना चाहते हो वे तो झूठे हैं और जिस कारण से तुम पीते हो उसको तुमने कभी देखा ही नहीं।

अखबार में जाने की जरूरत नहीं, न पत्नी से पूछने की जरूरत है। अपने भीतर जाओ। अपनी सिगरेट की तलफ को पहचानोः कैसे उठती है? क्यों उठती है? कब उठती है? क्या कारण होता है तुम्हारे भीतर जब तुम अचानक सिगरेट पीना चाहते हो? कब तुम्हारा हाथ खीसे में चला जाता है, पैकेट निकल आता है, माचिस जल जाती है, तुम धुआं को बाहर-भीतर करने लगते हो? उस पूरी मनोदशा को समझो।

और सबकी अलग-अलग मनोदशाएं होंगी। हर आदमी सिगरेट एक ही कारण से नहीं पी रहा है। सबके अलग कारण होंगे। कोई इसलिए पी रहा है कि मां से स्तन जल्दी छूट गया। अभी स्तन से और पीना चाहता था, लेकिन मां ने जल्दी स्तन छुड़वा दिया। आदिवासियों में सात-आठ साल तक, नौ साल तक भी बच्चा मां का स्तन पीता है। वह स्वाभाविक मालूम पड़ता है। कोई सभ्य समाज नौ साल के बच्चे को दूध नहीं पीने देगा। क्योंकि बड़ी बेहूदी बात मालूम पड़ती है। नौ साल का बच्चा तो काफी बड़ा बच्चा है, ढाई साल, तीन साल में, और भी पहले छुड़ाने की कोशिश शुरू हो जाती है। जो बहुत सभ्य समाज हैं, अमरीका, वहां बच्चे को दूध मां देना ही पसंद नहीं करती। वह उसको पहले ही बोतल से पिलाया जाता है।

जिनका बचपन में मां ने स्तन जल्दी छुड़ा लिया है, उनके भीतर एक जरूरत रह गई है अचेतन में कि कोई गरम, कुनकुनी चीज दूध के जैसी उनके भीतर जाती रहे। अब दिन भर अगर आप दूध पीएं तो नुकसानदायक होगा। सिगरेट सुविधापूर्ण है; जब चाहो तब पी सकते हो। बोतल लिए फिरो दूध की, वह भी अच्छा नहीं लगेगा। और ठीक बोतल से पीयो, तो लोग समझेंगे पागल हो गए, कि दिमाग खराब हो गया। सिगरेट पूरा काम कर देती है। पैकेट की तरह खीसे में ले सकते हो। कोई नहीं समझता कि इसमें पागल हो गए। क्योंकि सभी पागल हैं उस तरह के, सभी पी रहे हैं। और फिर यह कोई भोजन भी नहीं है जो पेट को भर दे; सिर्फ दूध का आभास है। वह जो कुनकुनापन है, दूध की जो गरमी है, उष्णता है, और स्तन का आभास है कि मुंह में सिगरेट डाल ली तो स्तन जैसा मालूम होता है। फिर उसमें से गरम धुआं भीतर जाने लगा तो दूध भीतर जाने लगा। सौ में से पचास प्रतिशत लोग स्तन के सब्स्टीट्यूट की तरह सिगरेट पी रहे हैं।

मनुष्य-जाति पागल मालूम होती है स्त्री के स्तनों के लिए। पशुओं में तुमने कभी किसी पुरुष-पशु को मादा-पशु का स्तन जांचते-परखते देखा? कि कोई तस्वीर लिए घूम रहा है, कि प्ले-बॉय की कापी रखे हुए है, कि जब मौका लगा एकांत में तो ध्यान कर रहा है? लेकिन पुरुष-जाति स्त्री के स्तन से बड़ी आकर्षित है। चित्रकार

चित्र बना रहे हैं; फिल्म बनाने वाले फिल्म बना रहे हैं; कवि कविताएं लिख रहे हैं; कहानीकार कहानियां गढ़ रहे हैं; मूर्तिकार मूर्ति बना रहे हैं। जैसे स्त्री के स्तन का एक दीवानापन है। और सब तरफ स्त्री का स्तन उभर कर बैठा हुआ है। चाहे मंदिर में बैठी देवी हो, चाहे वेश्यालय में बैठी हुई वेश्या हो, स्तन उभर कर बैठा है। भक्त की भी नजर उस पर है; प्रेमी की भी नजर उस पर है; राहगीर भी उसी को देख रहा है। आखिर स्तन का ऐसा क्या मैनिया है? यह क्या पागलपन है? अगर कहीं दूसरे चांद-तारे से कोई आदमी यहां उतरे तो बड़ा हैरान होगा कि इन आदमियों को यह स्तन का मैनिया क्यों पकड़ा हुआ है? आखिर क्यों स्तन के दीवाने हैं?

आदिवासियों में नहीं हैं लोग स्तन के दीवाने। क्योंकि बच्चा नौ साल तक मां का दूध पी लेता है, स्तन से छुटकारा हो जाता है। इसलिए आदिवासियों में कोई फिक्र नहीं करता स्तन की। स्त्रियां स्तन उघाड़े घूम रही हैं; कोई खड़े होकर भीड़ नहीं लगा कर देखता। कोई स्ट्रिप-टीज की जरूरत नहीं पड़ती। किसी का प्रयोजन ही नहीं है। जब पहली दफे जंगली जातियों का अध्ययन शुरू हुआ और वैज्ञानिक अध्ययन करने गये, तो वे बड़े हैरान हुए। स्त्रियों से पूछो कि यह क्या है? तो वे कहती हैं, बच्चों को दूध पिलाने का स्तन है। तुम उनके स्तन पर हाथ रख कर पूछो तो भी उनको कोई अड़चन नहीं है, कोई बेचैनी नहीं है; जैसे शरीर के किसी और अंग पर हाथ रख कर पूछो तो कोई बेचैनी नहीं है। लेकिन सभ्य जातियों के लिए बड़ी बेचैनी है।

पचास प्रतिशत लोग तो स्तन के परिपूरक की तरह सिगरेट पी रहे हैं। अब इनसे तुम सिगरेट छोड़ने को कहो, क्योंकि सिगरेट स्वास्थ्य के लिए हानिकर है; इसका कोई तालमेल ही नहीं है। इनके कारण से इसका कोई संबंध नहीं जुड़ता।

कुछ लोग और कारणों से सिगरेट पी रहे हैं। छोटे बच्चे शुरू करते हैं सिगरेट, क्योंकि सिगरेट बड़े होने का प्रतीक है। बड़े लोग पी रहे हैं सिगरेट, अकड़ कर चल रहे हैं। जब आदमी सिगरेट पीता है तब उसकी अकड़ देखो, जैसे कोई महान कार्य कर रहा है। उसकी भाव-भंगिमा देखो, जिस ढंग से वह निकाल कर सिगरेट को बजाता है अपनी डब्बी पर। फिर उसका चेहरा देखो, कैसी गरिमा आ जाती है। अचानक उसके चारों तरफ एक आभामंडल आ जाता है। फिर वह सिगरेट को मुंह में दबाता है; उसका पूरा क्रियाकांड देखो। फिर वह माचिस या लाइटर निकालता है। फिर किस ढंग से और किस शान से सिगरेट को जलाता है। फिर किस शान से वह धुएं को बाहर-भीतर करता है। अचानक वह कोई दीन नहीं रहा।

छोटे-छोटे बच्चे देख रहे हैं। उनको लगता है कि सिगरेट जो है सिंबालिक है; यह प्रतीकात्मक है बड़े होने का, शक्तिशाली होने का। क्योंकि सिर्फ बड़े ही पीते हैं, छोटों को कोई पीने नहीं देता। लोग कहते हैं, तुम अभी बहुत छोटे हो; बड़े हो जाओ फिर पीना। सब तरफ निषेध है। तो छोटे बच्चे इसलिए पीना शुरू कर देते हैं कि बड़प्पन का इसमें भाव है।

कुछ लोग इसलिए पी रहे हैं कि उनके भीतर हीनता की ग्रंथि छिपी है अभी भी। तो जब भी उनको हीनता लगती है तभी वे सिगरेट पीकर अपनी हीनता को छिपा लेते हैं, बड़े हो जाते हैं। सस्ते में बड़े हो जाते हैं। एक सिगरेट पीने से इतना बड़प्पन मिलता है, क्या हर्ज है?

कुछ लोग इसलिए सिगरेट पी रहे हैं कि उनको खाली रहना बहुत मुश्किल है, कोई व्यस्तता चाहिए; नहीं तो उनको घबड़ाहट होने लगती है। तुम जैसे अकेले रहो दिन भर घर के भीतर तो बेचैन होने लगोगे कि जाओ क्लब, कि मंदिर, कि कहीं सत्संग करो, कि कुछ करो। खाली बैठे हो! मन खाली नहीं रहना चाहता। क्योंकि मन खाली रहा कि मिटा। मन को व्यस्तता चाहिए, आकुपेशन चाहिए। अगर कुछ भी न करने को हो तो कम से कम सिगरेट पी सकते हो हर हालत में। सिगरेट संगी-साथी है, सस्ता संगी-साथी है। खीसे में लेकर चल सकते हो,

पोर्टेबल है। अकेले भी बैठे हो कमरे में, कोई कहीं क्लब-घर जाने की जरूरत नहीं; बस सिगरेट निकालो, जलाओ। चैन आ गया; आकुपेशन आ गया; काम शुरू हो गया।

सिगरेट एक तरह की व्यस्तता है कुछ लोगों के लिए। और इस तरह के और-और कारण हैं। हर आदमी को अपना कारण खोजना पड़े। और जब अपना कारण खोज ले कोई आदमी तो मुक्त होना इतना आसान है जितनी और कोई चीज नहीं। लेकिन उधार कारणों से कोई मुक्त नहीं हो सकता; दूसरों के बताने से कोई मुक्त नहीं हो सकता। और छोटी-छोटी चीज भी काफी जटिल है; क्योंकि तुम्हारी पूरी आत्मकथा उसमें छिपी है।

निष्क्रियता को साधने का अर्थ होगा कि तुम कर्म को देखो। तुम जो भी कर रहे हो उसको देखो, पहचानो। उतरो कर्म की गहनता में, क्यों कर रहे हो? और जल्दी से दूसरों के उत्तर मत मान लेना। वही तुम्हारी भूल है। बताने वाले हर जगह तैयार खड़े हैं कि हम बताए देते हैं, क्यों कर रहे हो। लेकिन हर व्यक्ति इतना पृथक और भिन्न है कि कोई भी सामान्य फार्मूला काम नहीं करता। तुम अपने ही कारण कर रहे हो। तुम्हारी आत्मकथा बस तुम्हारी है। जैसे तुम्हारे अंगूठे का निशान बस तुम्हारा है, वैसे ही तुम्हारी आत्मकथा तुम्हारी है, किसी दूसरे की नहीं।

और तुम जब अपने कृत्यों में, अपने निजी कृत्यों में अपने निजी होश से उतरोगे, तभी तुम समझ पाओगे उनकी व्यर्थता। और एक बार व्यर्थता दिख जाए तो जिस कृत्य में व्यर्थता दिख जाती है, वह गिर जाता है। उसे ढोने का उपाय ही नहीं है। यही है साधना निष्क्रियता का।

धीरे-धीरे-धीरे-धीरे व्यर्थ कृत्य गिर जाएंगे; सार्थक बचेंगे। सार्थक से कोई विरोध नहीं है। बिल्कुल जरूरी बचेंगे। बिल्कुल जरूरी जरूरी हैं। उनको तोड़ना भी नहीं है, हटाना भी नहीं है। सिर्फ अकारण समाप्त हो जाए; तुम शुद्ध हो जाओगे, तुम निष्कलुष हो जाओगे; तुम्हारी ऊर्जा संगृहीत होने लगेगी।

यही है निष्क्रियता को साधना। कर्मों को देखना, उनकी व्यर्थता को पहचानना। उनकी व्यर्थता की पहचान से उनका गिरना फलित हो जाता है। धीरे-धीरे काटते-काटते-काटते तुम्हारी मूर्ति निखर आती है। तब तुम बैठे हो; और तुम तब बैठ कर भी आनंदित होते हो, सिगरेट की जरूरत नहीं; क्योंकि तुमने अब खाली होने का रस पहचान लिया। अब तुम्हें व्यस्तता की कोई जरूरत नहीं; तुम अकेले में भी प्रसन्न होते हो। कोई आ जाए तो भी प्रसन्न, कोई न आए तो भी प्रसन्न। अब तुम्हारी प्रसन्नता किसी पर निर्भर नहीं है। कोई आता है तो तुम अपनी प्रसन्नता बांट देते हो; कोई नहीं आता तो तुम अपनी प्रसन्नता में मस्त रहते हो। तुम्हारी मौज अब तुम्हारे भीतर से आती है। अब किसी के द्वारा नहीं है, कि क्लब जाओ, कि मित्रों से मिलो, कि नाच-घर जाओ, यहां भागो, वहां भागो। अब कहीं भागने की कोई जरूरत नहीं। तुमने अपने जीवन का मंदिर खोज लिया; वह तुम्हारे भीतर है। निष्क्रिय जैसे-जैसे तुम होते हो, भीतर का मंदिर उठने लगता है। उसका शिखर ऊपर, और ऊपर, और ऊपर जाने लगता है।

मुसलमानों ने मस्जिदों के पास जो मीनारें बनाई हैं, वे उस ऊपर जाते हुए शिखर के प्रतीक हैं। जैसे-जैसे कोई भीतर शांत होने लगता है वैसे-वैसे शिखर आकाश की तरफ उठने लगते हैं। उस ऊपर उठते शिखर के साथ तुम्हारे जीवन की पूरी ऊर्जा नए अर्थ ग्रहण कर लेती है; नए आयाम, नया रंग, रंगों के नए-नए भेद; नया संगीत, संगीत की नई-नई भाव-भंगिमाएं। एक नए ही काव्य का उदय हो जाता है। जिन्होंने निष्क्रियता जानी उन्होंने सब जाना। और जो कर्म के ही जाल में दौड़ते-दौड़ते नष्ट हो गए वे बिना कुछ जाने मर गए।

"अकर्म पर अवधान दो। अटेंड टु नो-अफेयर्स।"

और जब तुम्हारी निष्क्रियता सध जाए--क्योंकि पहले तो निष्क्रियता साधो--जब सध जाए, तो यह जो निष्क्रियता की स्थिति है, इस पर ध्यान दो। पहल कर्म पर ध्यान दो, ताकि व्यर्थ कर्म कट जाए, निष्क्रियता बचे। अब निष्क्रियता पर ध्यान दो। क्योंकि निष्क्रियता पर अगर तुमने ध्यान दिया तो तुम पाओगे... ।

कर्म पर ध्यान देने से कर्ता मिट जाता है। क्योंकि धीरे-धीरे सब कर्म शांत हो जाते हैं; निष्क्रियता का उदय हो जाता है; तुम्हारे कर्ता का भाव चला जाता है कि मैं कर्ता हूं। जब कुछ कर ही नहीं रहे हो तो कर्ता कहां? तुम होते हो, कर्ता नहीं होते; साक्षी बन जाते हो। फिर निष्क्रियता पर ध्यान दो, तो तुम साक्षी भी न रह जाओगे। बस तुम बचोगे। कहने को कुछ भी न रहेगा कि तुम कौन हो--कर्ता कि साक्षी।

तो तीन स्थितियां हैंः कर्ता; अकर्ता, अकर्ता यानी साक्षी; और फिर एक तीसरी स्थिति है दोनों के पार, अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस।

कर्म को देख कर साक्षी बनोगे। फिर अकर्म को देख कर साक्षी के भी पार हो जाओगे। वहां फिर कोई शब्द सार्थक नहीं है। फिर तुम यह न कह सकोगे मैं कौन हूं।

बोधिधर्म से पूछा चीन के सम्राट ने, तुम कौन हो? तो बोधिधर्म ने कहा, मुझे पता नहीं। चीन के सम्राट ने अपने दरबारियों से कहा, हम तो सोचते थे कि धर्म का संबंध आत्मज्ञान से है। तो यह बोधिधर्म किस तरह का ज्ञानी है? क्योंकि यह कहता है मुझे कुछ पता नहीं।

तुम भी सुनोगे तो यही समझोगे। लेकिन बोधिधर्म तुम्हारे आत्मज्ञानियों से बड़ा ज्ञानी है। वह एक कदम और ऊपर गया है।

अज्ञानी को भी पता नहीं कि मैं कौन हूं। परम ज्ञानी को भी पता नहीं रह जाता कि मैं कौन हूं। अज्ञानी को इसलिए पता नहीं कि उसे होश नहीं है। परम ज्ञानी को इसलिए पता नहीं रहता कि होश ही होश बचता है, रोशनी ही रोशनी बचती है। कुछ दिखाई नहीं पड़ता रोशनी में, कोई आब्जेक्ट नहीं बचता, कोई वस्तु नहीं बचती; सिर्फ प्रकाश रह जाता है। अनंत प्रकाश, और दिखाई कुछ भी नहीं पड़ता, तो किसको कहें कि मैं कौन हूं?

एक अज्ञान है; अंधकार के कारण दिखाई नहीं पड़ता। और ज्ञानी का भी एक परम अज्ञान है, जब रोशनी ही रोशनी रहती है, और कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

बोधिधर्म ने बड़ी अदभुत बात कही है; शायद ही किसी दूसरे ज्ञानी ने इतने हिम्मत से कही है कि मुझे कुछ भी पता नहीं। सम्राट नहीं समझ पाया, क्योंकि यह तो भाषा के पार की बात हो गई। बोधिधर्म के शिष्यों में भी थोड़े ही समझ पाये। उनको भी लगा कि यह तो बोधिधर्म ने कैसा जवाब दिया! ज्ञानी को तो कहना चाहिए कि हां, मुझे पता है कि मैं कौन हूं। ज्ञानी ने कहा कि मुझे भी पता नहीं कि मैं कौन हूं!

वह इसीलिए कहा कि जब न कर्ता बचा, न साक्षी बचा, तो अब क्या उत्तर देना है।

"अकर्म पर अवधान दो।"

फिर तीसरा सूत्र है, "स्वादहीन का स्वाद लो।"

तभी तुम्हें स्वादहीन का स्वाद मिलेगा। अभी तुमने कर्म का स्वाद लिया है। कर्म का स्वाद दो तरह का हैः सुख और दुख। कर्म सफल हो जाए तो सुख का स्वाद मिलता है। कर्म असफल हो जाए तो दुख का स्वाद मिलता है। अगर तुम निष्क्रियता साध लो तो तुम्हें शांति का स्वाद मिलेगा। वहां न सुख होगा, न दुख; बस परम शांति होगी। परम चैन की बंसी बजेगी; अस्खलित चैन ही चैन मालूम होगा। एक विश्राम, विराम; सब ठहर गया; सब कर्म खो चुका। कर्ता खो चुका, तुम सिर्फ देख रहे हो। वहां कोई सुख-दुख नहीं प्रवेश कर पाता। वहां एक गहन

मौन और शांति है। लेकिन लाओत्से उसे भी स्वादहीन स्वाद नहीं कहता। कहता है, अभी अनुभव करने वाला बाकी है, अनुभोक्ता साक्षी बाकी है। थोड़ा सा फासला है, अभी थोड़ी दूरी है। अभी अनुभव घटित हो रहा है।

फिर एक स्वादहीन स्वाद है। जब साक्षी भी खो गया, स्वाद लेने वाला न बचा, तब एक स्वाद है; उसी को हमने आनंद कहा है।

लाओत्से कहता है, "स्वादहीन का स्वाद लो।"

ये तीन सूत्र बड़े कीमती हैंः "निष्क्रियता को साधो। अकर्म पर अवधान दो। स्वादहीन का स्वाद लो।"

"चाहे वह बड़ी हो या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।"

निष्क्रियता को साधना हो तो तुम्हें यह ख्याल रखना पड़े। कोई गाली देता है तो तुम धन्यवाद हो; कोई घृणा करता है तो तुम पुण्य से प्रतिकार करो। छोटी घृणा, बड़ी घृणा, अपमान, तिरस्कार; तुम बुरे का जवाब बुरे से मत देना। अन्यथा तुम कर्म में खींच लिए जाओगे।

जब एक आदमी गाली देता है, तब तुम्हारा मन कहेगा कि उठाओ पत्थर, फोड़ दो सिर।

यह आदमी तुम्हारा मालिक हो गया। इसने जरा सी गाली दे दी, और तुम्हें कर्म में खींच लिया। और अगर ऐसे तुम कर्म में खिंचते रहे दूसरे लोगों के द्वारा तो तुम कब निष्क्रियता को उपलब्ध होओगे? कैसे उपलब्ध होओगे? तो तुम यह मत समझना कि ज्ञानियों ने इसलिए कहा है कि दूसरे तुम्हें गाली दें तो भी तुम उन्हें आशीर्वाद दो, यह मत समझना कि इसलिए कहा है कि दूसरों पर दया करो। नहीं, इसलिए कहा है कि अपने पर दया करो; मालिक अपने बनो। ऐसा रास्ते पर चलते कोई भी कुछ कह दे, कोई हंस ही दे, तुम्हारे भीतर कर्म का जाल शुरू हो गया। किसी ने कुछ कह दिया, एक शब्द, और तुम्हारी झील में शब्द का पत्थर पड़ा और तरंगें ही तरंगें उठने लगीं और कर्म शुरू हो गया। तो तुम कैसे निष्क्रिय हो पाओगे? असंभव है। कहां भागोगे? कहां जाओगे? जंगल भाग जाओगे, कौए ऊपर बैठ कर बीट कर देंगे। गुस्सा आ जाएगा, उठा लोगे पत्थर कि यह कौआ मेरा ध्यान खराब कर रहा है।

कहीं भागने का उपाय नहीं। भाग कर नहीं जा सकते। एक ही भागने का सुगम उपाय है, वह यह कि जब कोई तुम्हारे प्रति घृणा फेंके तब तुम प्रेम देना। प्रेम का मतलब यह है कि हम कर्म में उतरने को राजी नहीं, क्योंकि प्रेम कोई कर्म नहीं है। आशीर्वाद देकर तुम अपने रास्ते पर चले जाना। तुम यह कह रहे हो आशीर्वाद देकर कि आपने कोशिश की, धन्यवाद! बाकी हमारी तैयारी नहीं है। हम इस झंझट में पड़ने को उत्सुक नहीं हैं। भगवान तुम्हारा भला करे! भला करे इसलिए क्योंकि मन तुम्हारा बुरा करना चाहेगा, अगर तुमने आशीर्वाद न दिया तो मन में तुम्हारे भीतर कुछ करने की बेचैनी बनी रहेगी। कुछ करना ही है तो आशीर्वाद देकर निपटारा कर लो।

फिर इसे समझना जरूरी है कि जब भी तुम्हें कोई गाली दे, घृणा करे, अपमान करे और तुम्हारा मन भी अपमान करे, घृणा करे, तो एक अनंतशृंखला का जन्म होता है। वही तो कर्मों का जाल है। फिर वह भी गाली का जवाब गाली से देगा, क्योंकि वह कोई ज्ञानी तो है नहीं; वह भी तुम्हारे जैसा अज्ञानी है। अगर ज्ञानी ही होता तो उसने पहले ही क्यों गाली दी होती? फिर यह कहां रुकेगा? तुम गाली दोगे, वह बड़ी गाली देगा। तुम और बड़ी गाली खोजोगे। इसका अंत कहां है? तुम उसका नुकसान करोगे; वह तुम्हारा नुकसान करेगा। फिर एकशृंखला शुरू होती है अंतहीन। यह समाप्ति कहां होगी?

इसमें से किसी को आशीर्वाद देना होगा, तभी यह समाप्त होगा। तो यह मौका तुम दूसरे को क्यों देते हो? तुम ही आशीर्वाद देकर बाहर हो जाओ। तुम ही जब बाहर हो सकते हो, और अभी बाहर हो सकते हो, तो देर तक क्यों रुको? जब भी कोई घृणा करे, अगर तुम उसके लिए भी प्रेम दे सको तो बड़ी क्रांतिकारी घटना घटती है।

तुमशृंखला के जाल में नहीं पड़ते; तुम्हारा कर्म-विस्तार नहीं होता; और तुम दूसरे आदमी को भी एक मौका देते हो, एक द्वार खोलते हो--समझ के लिए। उसके लिए भी एक समय मिलता है। क्योंकि जब तुम गाली नहीं देते तो वह भी अपेक्षा कर रहा था गाली लौटेगी और जब गाली नहीं लौटती और अपनी ही प्रतिध्वनि उसे सुनाई पड़ती है और गाली के विपरीत तुम्हारा आशीर्वाद लौटता है तो वह बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। वह सो न सकेगा अब चैन से। अब उसकी गाली उसका ही पीछा करेगी। अब उसकी घृणा उस पर ही लौट आई। अब उसे कुछ करना ही पड़ेगा। अगर तुम घृणा का उत्तर घृणा से देते तो बेचैनी नहीं थी; सीधा-सादा मामला था, गणित का मामला था। हमने गाली दी; दूसरे ने गाली दी। तुमने गाली दी और दूसरे ने फूल बरसाए; अब तुम मुश्किल में पड़े। अब जब तक तुम भी फूल बरसाने की कला न सीख लो तब तक बेचैनी जारी रहेगी।

दुनिया को बदलने का एक ही रास्ता है कि तुम सबसे बड़ी अनहोनी घटना करो। अनहोनी घटना हैः घृणा के उत्तर में प्रेम, गाली के उत्तर में आशीष; कांटा कोई चुभाए, उसे फूल भेंट कर दो। इससे तुम भी बाहर होते हो और उसके लिए भी बाहर होने की सुविधा देते हो।

"चाहे हो बड़ी या छोटी, बहुत या थोड़ी, घृणा का प्रतिदान पुण्य से दो।"

तो ही निष्क्रियता सधेगी।

"कठिन से तभी निबट लो जब वह सरल हो। बड़े से तभी निबट लो जब वह छोटा हो। संसार की कठिन समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे सरल हों। महान समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे छोटी हों।"

इस गणित को समझ लेना जरूरी है। यह तुम्हारे रोज के काम के लिए है। तुम भी कोशिश करते हो हल करने की, लेकिन जरा देर कर देते हो, समय चूक जाते हो। बीज से लड़ना आसान है, कुछ करना ही नहीं पड़ता। बीज को फेंक दो, क्या अड़चन है? लेकिन बीज को तो तुम बोते हो, पानी सींचते हो, मेहनत करते हो, सम्हालते हो। पौधा बड़ा होता है। अब पौधा ही बड़ा नहीं हो रहा है, तुम्हारा इनवेस्टमेंट भी बड़ा हो रहा है। क्योंकि तुमने इतना समय लगाया; पानी सींचा; इतनी जिंदगी पौधे को दी; इतनी मेहनत की। अब पौधा एक बड़ा वृक्ष हो गया। तुम तीस साल तक प्रतीक्षा किए। अब उसमें फल आए जो कड़वे हैं; अब उन्हें फेंकना बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। कड़वे फल को भी तुम चख-चख कर समझाना चाहते हो अपने को कि मीठा है। क्योंकि तीस साल व्यर्थ गए, अगर यह कड़वा है। तुम तीस साल मूढ़ थे। और अब इस वृक्ष को तुम फेंकना भी चाहोगे तो बड़ी कठिनाई होगी। इसने बड़ी जड़ें फैला ली हैं; यह विस्तीर्ण हो गया है।

और यह तो वृक्ष बाहर है। भीतर के वृक्षों का क्या कहना? उनकी जड़ें तो तुम्हारी नसों में फैल जाती हैं; तुम्हारे हृदय को जकड़ लेती हैं; तुम्हारे मस्तिष्क में पहुंच जाती हैं। भीतर के वृक्ष तो तुमको भूमि बना लेते हैं, और तुमको सब तरफ से कस लेते हैं।

समझो! क्रोध की कई दशाएं हैं। समय रहते हल हो सकता है। और एक सीमा रेखा है, एक डेड लाइन है; उसके पार जाने पर हल करना मुश्किल हो जाता है। फिर एक सीमा है, जिसके पार जाने पर असंभव, करीब-करीब असंभव हो जाता है।

क्रोध की पहली दशा तो यह है, जो बहुत बुद्धिमान है वह क्रोध का आने के पहले उपचार करेगा। वह पूर्व-निवारण करेगा, लाओत्से कहता है। कल आएगा क्रोध, वह आज निवारण करेगा। अभी तो आया भी नहीं है, अभी किसी ने तुम्हें गाली भी नहीं दी है। लेकिन कोई न कोई तो देगा, कोई न कोई धक्का मारेगा। जिंदगी में संघर्ष है, गहन संघर्ष है; प्रतिस्पर्धा है। कल बिना ही क्रोध के निकल जाएगा, इसका उपाय नहीं है। तो बहुत बुद्धिमान तो अभी बीज भी नहीं है तभी से व्यवस्था करने लगता है। अभी घर में आग नहीं लगी है, कुआं खोदने लगता है। घर

में आग लग गई, फिर कुआं खोद कर भी क्या होगा? तुम कुआं खोदोगे, घर जलता रहेगा। तुम्हारा कुआं खुद भी न पाएगा, घर राख हो जाएगा।

पूर्व-निवारण का अर्थ यह है कि कल, जीवन का संघर्ष तो कल भी रहेगा, तुम अपने भीतर शांति को बसाओ। वह पूर्व-निवारण है, वह एंटीडोट है। तुम जितने शांत हो सको, अभी किसी ने गाली नहीं दी, शांत हो जाओ। क्योंकि जब कोई गाली देगा तब तो शांत होना मुश्किल होगा। अभी बिना दिए भी शांत नहीं हो पाते; तो गाली देने पर तो तुम भूल ही जाओगे। तो ध्यान में रमो। शांत रहो। अकारण शांत बने रहो। बैठो तो सब तरफ से द्वार, छिद्र बंद कर लो। भीतर एक गहन शांति को अनुभव करो। उसका रस लो। शिथिल छोड़ दो सारे शरीर को। मन को कह दो कि तुझे जो करना हो कर, मैं शांत बैठा हूं। मन के साथ तादात्म्य मत करो--न पक्ष, न विपक्ष। जाने दो, चलने दो मन को; जैसे किसी और का है। तुम उपेक्षा में लीन रहो। तुम शांति को बसाओ। यह भूमि है। कल जब कोई क्रोध करेगा, अगर शांति तैयार रही, क्रोध का तीर तो आएगा, शांति के जल में गिर कर बुझ जाएगा। तो तुम्हें कठिनाई न होगी। तुमने निवारण कर लिया पहले ही।

तुम उलटा कर रहे हो। तुम बारूद तैयार करते हो। तुम बारूद को सुखा कर रखते हो कि जरा कोई चिनगारी फेंक दे कि हो जाए विस्फोट। इसलिए अक्सर तुमने अनुभव किया होगा, बात तो बड़ी छोटी थी, विस्फोट बड़ा भारी हो गया। बात इतनी बड़ी थी ही नहीं। बाद में तुम भी कहते हो, इतनी छोटी बात के लिए इतना बड़ा विस्फोट! छोटी-छोटी बात पर कभी-कभी हत्या हो जाती है। कभी छोटे से मजाक पर हत्या हो जाती है। कभी तुमने हंस दिया और इस पर ऐसी भयंकर दुश्मनी बन जाती है कि जिसका परिणाम भयानक हो जाता है।

पूरा महाभारत हुआ एक छोटे से मजाक पर--द्रौपदी हंस दी। कौरव धृतराष्ट्र के बेटे थे। अंधा बाप था। पांडवों ने एक महल बनाया था जिसमें उन्होंने बड़ी कारीगरी की थी। दीवारें ऐसे कांच की बनाई थीं कि दरवाजा मालूम पड़े; दरवाजा इस ढंग से बनाया था कि दीवार मालूम पड़े। बड़ी कुशलता इंजीनियरिंग की थी। फिर कौरवों को निमंत्रण दिया था इस महल को देखने के लिए। वे आए। दुर्योधन टकरा गया; समझ कर दरवाजा दीवार से निकल गया। द्रौपदी हंसी और उसने कहा, अंधे के बेटे हैं, अंधे ही हैं! सारा महाभारत इस वचन पर ठहरा हुआ है। फिर द्रौपदी के वस्त्र अकारण ही नहीं खींचे गए; यही मजाक उसके पीछे कारणभूत है। फिर पांडवों को अकारण ही नहीं सताया गया; यही छोटा सा बीज बड़ा होता गया। फिर इसमें हजार-हजार धाराएं मिल गईं। जो झरने की तरह शुरू हुआ था, वह बड़ी गंगा बन गया।

लाओत्से कहता है, या तो पूर्व-निवारण कर लो--सबसे कुशलता तो पूर्व-निवारण की है--अगर यह न हो सके, तो जब कोई गाली दे तभी सजग हो जाओ। क्योंकि बीज पड़ रहा है।

लेकिन तुम गाली पर सोचना शुरू कर देते हो। तुम भीतर गाली के साथ प्रतिशोध करना शुरू कर देते हो, प्रतिकार का विचार करने लगते हो। तुम सोचते हो कि हम विचार ही कर रहे हैं, कोई उसको मार तो डालने जा नहीं रहे हैं। लेकिन तुमने बीज को सम्हालना शुरू कर दिया, पानी सींचने लगे। अभी फेंक दो!

फिर तुम्हारे भीतर विचार गहन होने लगा। अब तुम्हारे भीतर क्रोध का धुआं उठने लगा। जब क्रोध का धुआं पहली बार उठता है तो बड़ा महीन, बारीक रेखा की तरह होता है। इतना बारीक होता है कि अगर तुम ठीक उसी वक्त उसको देखो तो पहचान ही न पाओगे कि यह क्रोध है या करुणा। सिर्फ ऊर्जा की एक धीमी रेखा उठती हुई मालूम होती है; अचेतन से एक छोटा सा बादल उठ रहा है। अभी रूप साफ नहीं है। अभी यह भी पक्का

नहीं है कि यह क्या है। यह प्रेम है, क्रोध है, घृणा है, क्या है? सिर्फ भीतर एक बेचैनी उठ रही है, एक उत्तेजना उठ रही है, एक ऊर्जा उठ रही है।

अभी सम्हल जाओ। अभी बीज में अंकुर आ रहा है; अभी पक्का नहीं है कि किस तरह का वृक्ष बनेगा। अभी तैयार हो जाओ। अभी फेंक दो। हर तरह की उत्तेजना जहरीली है। उत्तेजना को फेंक दो। अभी ही अपने को शांत कर लो। अभी ही शिथिल हो जाओ। अभी ही ध्यान में लीन हो जाओ।

नहीं, तब तुम सहारा दिए जाओगे। तब तुम भीतर रस लोगे। तब धीरे-धीरे क्रोध का बादल अपना रूप स्पष्ट कर लेता है; उसकी प्रतिमा साफ हो जाती है। वह कहता है, मार डालो इस आदमी को! इसने हंसा, अपमान किया। समझता क्या है? अब तुम भीतर हत्या कर रहे हो; भीतर तलवारें उठा रहे हो। भीतर तलवारें उठाना बाहर तलवारें उठाने की पूर्व-तैयारी है। तुम रिहर्सल कर रहे हो। अभी रिहर्सल है; रुक जाओ। अगर रिहर्सल पूरा तैयार हो गया तो फिर नाटक भी करना पड़ेगा। क्योंकि नहीं तो मन कहेगा, इतना रिहर्सल किया, ऐसा समय बेकार गंवाया; अब करके ही दिखा दो।

और जब तुम भीतर रस ले रहे हो तब क्रोध का जहर तुम्हारे रोएं-रोएं में फैल रहा है, तुम्हारे शरीर को लड़ने के लिए तैयार कर रहा है। तुम्हारी भीतर की पूरी ऊर्जा क्रोध की दिशा में रूपांतरित हो रही है। अब तुम लड़ने पहुंच गए। तुमने तलवार निकाल ली। अभी भी वक्त है, निकली तलवार म्यान में वापस जा सकती है। लेकिन वृक्ष काफी बड़ा हो गया है। तलवार बाहर निकाल ली हो तो वापस डालना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि क्या कहेगी दुनिया अब? इतने दूर आ गए और अब तलवार निकाल ली और अब भीतर डाल रहो हो, लोग हंसेंगे! अब अहंकार दांव पर लगा जा रहा है। लेकिन तलवार भी वापस डाली जा सकती है।

लेकिन तुमने तलवार ही उठा ली और दूसरे की गर्दन पर ही पहुंच गई। और मुश्किल हुआ जा रहा है। दूसरे की गर्दन पर से तलवार लौटानी बहुत असंभव हो जाएगी। क्योंकि एक क्षण में हो जाती है घटना। उतना तुम्हें होश कहां?

लाओत्से कहता है, कठिन से तभी निबट लो जब वह सरल हो; बड़े से तभी निबट लो जब वह छोटा हो। संसार की कठिन समस्याएं हल हो सकती हैं... ।

तुम्हारे जीवन की कठिनतम समस्या हल हो सकती है; लेकिन तुम सरल से निबटो। तुम सलाह लेने तब जाते हो जब मामला बिल्कुल बिगड़ जाता है। जब मरीज बिल्कुल मरने के करीब होता है तब तुम डाक्टर को बुलाते हो।

"संसार की महान समस्याएं तभी हल की जाएं जब वे छोटी हों। इसलिए संत सदा बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं।"

क्या मतलब? संत बड़ी समस्याओं से निबटे बिना ही महानता को संपन्न करते हैं; क्योंकि वे किसी समस्या को बड़ा होने ही नहीं देते। इसलिए कोई बड़ी समस्या से संत कभी नहीं झगड़ता; वह हमेशा छोटी-छोटी चीजों से झगड़ता है। और जितनी समझ बढ़ती जाती है उतनी झगड़े की जरूरत नहीं रह जाती; क्योंकि वह पूर्ण-निवारण करने में कुशल हो जाता है। वह दुश्मन के आने के पहले ही मैत्री स्थापित कर लेता है। वह गाली आने के पहले ही आशीर्वाद तैयार कर लेता है। तुम्हारी घृणा आए, उसके पहले ही वह द्वार पर सुस्वागतम लिख लेता है। उसकी तैयारी पूर्व से है।

"जो फूहड़पन के साथ वचन देता है, उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा। जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा।"

अगर तुमने छोटी समस्याओं को छोटा समझा तो जल्दी ही वे बड़ी हो जाएंगी। उनको बड़े होने का मौका मत दो। छोटी समस्याओं को बड़ी समझो; जल्दी उनसे निबट लो। और होश में सोचो। अन्यथा तुम बहुत सी बातें कहते हो करेंगे, लेकिन बेहोशी में कहते हो। वचन देते हो करने का, लेकिन बिना समझे देते हो कि तुम क्या कह रहे हो।

जीसस ने कहा है। एक बाप के दो बेटे थे। खेत में काम था। बाप ने बड़े बेटे को कहा कि तू खेत पर जा और यह काम जरूरी है। उसने कहा कि मैं न जा सकूंगा; मैं दूसरे कामों में उलझा हूं। क्षमा करें। दूसरे बेटे से कहा कि तो तू जा; खेत पर काम जरूरी है। उसने कहा, मैं अभी जाता हूं, पिताजी। यह गया। एक मेहमान घर में बैठा था। उसने कहा, तुम्हारा बड़ा बेटा अनाज्ञाकारी है; तुम्हारा छोटा बेटा आज्ञाकारी है। उसके बाप ने कहा, सांझ पता चलेगा। सांझ को मेहमान ने पूछा कि समझा नहीं मैं, क्या मामला है? अब बताओ, क्या पता चलेगा?

बड़ा बेटा पहुंचा; छोटा नहीं पहुंचा। छोटा बेटा वचन देने में कुशल है, करने में नहीं। बड़ा बेटा वचन नहीं देता, लेकिन करने में कुशल है। जो वह नहीं कर सकता, उसको तो वह कहता है, नहीं कर सकूंगा; फिर भी कोशिश करता है करने की। छोटा बेटा, जो कर ही नहीं सकता, उसको भी कहता है, हां। अभी, यह गया। मगर वह जाने वाला नहीं है।

जीसस ने कहा है, परमात्मा के सामने तुम्हारी आस्तिकता का मूल्य नहीं है कि तुमने हां कहा, न तुम्हारी नास्तिकता का मूल्य है कि तुमने न कहा; असली बात तो इससे तय होगी कि तुमने किया या नहीं किया।

तो अपने हां कहने पर भरोसा मत करना; अपने न कहने से भयभीत भी मत होना। न कह कर भी तुम कर सकते हो, और हां कह कर भी तुम टाल सकते हो। अधिक लोग हां कहते ही इसलिए हैं, ताकि टालने में सुगमता हो जाती है।

तो लाओत्से कहता है, "जो फूहड़पन के साथ वचन देता है--मूर्च्छा में, प्रमाद में--उसके लिए अक्सर वचन पूरा करना कठिन होगा।"

ऐसा वचन मत देना जिसे पूरा करना कठिन हो। जितना कर सको उससे कम का वचन देना। जो न कर सको, स्पष्ट कहना, न कर सकेंगे। क्योंकि ये सारे गुण तुम्हारे भीतर के जीवन को रूपांतरित करने में, निखारने में काम आएंगे। अन्यथा तुम व्यर्थ की चीजों में उलझते चले जाते हो। जो तुम नहीं कर सकते हो, कहते हो, कर देंगे। अब एक उलझन ले ली। अब यह होगी नहीं तो परेशानी है। और यह हो तो सकती नहीं; इसको करने में लगोगे तो परेशानी है।

अगर बहुत ठीक से समझो तो ज्ञानी वचन देता ही नहीं। वह जो कर सकता है, करता है; जो नहीं कर सकता है, नहीं करता है। वचन नहीं देता। इसलिए तुम ज्ञानी को कभी भी वचन भंग करते न पाओगे। क्योंकि वह वचन देता ही नहीं। वचन पूरे करता है; देता कभी नहीं।

और छोटी से छोटी चीज को भी वह छोटा मान कर नहीं चलता, क्योंकि सब छोटी चीजें बड़ी हो जाती हैं। छोटा मान कर चलोगे तो तुम खतरे में रहोगे। तुम सोचते हो, छोटा है, निबट लेंगे। लेकिन जितनी देर तुम स्थगित करते हो, चीजें बड़ी हो रही हैं। समस्याएं भी बढ़ती हैं, फैलती हैं, बड़ी होती हैं।

"जो अनेक चीजों को हलके-हलके लेता है, उसे अनेक कठिनाइयों से पाला पड़ेगा। इसलिए संत भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं।"

संत भी! जिनके लिए सभी कुछ सरल है। वे भी चीजों को कठिन मान कर हाथ डालते हैं।

"और इसी कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना नहीं करना होता।"

इसे ख्याल रखो। बीज से निबट लो; वृक्ष से निबटना बहुत मुश्किल होगा। हर चीज समय के जाते-जाते बड़ी होती चली जाती है, इसलिए कल पर मत टालो। बुराई से पूर्व-निवारण कर लो। अगर पूर्व-निवारण न हो पाए तो जब बुराई द्वार पर दस्तक दे तभी निवारण कर लो। उसे घर में मेहमान मत बनाओ। उसे अपने भीतर जगह मत दो। क्योंकि सारा संसार तुम्हें कर्म में खींच रहा है। और तुमने अगर निष्क्रिय होना चाहा है तो तुम इस सारे संसार से एक बिल्कुल ही विभिन्न आयाम में प्रवेश कर रहे हो। तुम्हें सारा रंग-ढंग बदलना पड़ेगा।

जीसस ने कहा है, जो तुम्हारा कोट छीने, उसको कमीज भी दे दो; क्योंकि कहीं लौट कर फिर कमीज लेने न आए। जीसस ने कहा है, जो तुम्हें एक मील चलने के लिए बाध्य करे कि मेरा बोझ ले चलो, तुम दो मील तक चले जाओ। क्योंकि हो सकता है, संकोचवश दो मील न कह सका हो। जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, तुम दूसरा भी कर दो। कहीं एक थप्पड़ उसने बचा रखी हो, फिर लौट कर न आए। अभी निबटारा कर लो। चीजों से बीज में निबट लो। उनको वहीं शांत कर दो।

और कर्म के जाल में पूरा संसार घूम रहा है भंवर की तरह! तुम्हें अगर निष्कर्म में जाना है तो बहुत ही सावधानी चाहिए कि कोई तुम्हें कर्म में न खींच ले। सब तुम्हें कर्म में खींचने को आतुर हैं। सब चाह रहे हैं कि तुम कर्म में लीन हो जाओ। क्योंकि सबकी आकांक्षाएं, वासनाएं कर्मों की हैं। और तुमने अकर्म साधना चाहा, तुम इस जगत से किसी दूसरे जगत में प्रवेश करने को तत्पर हुए हो। इस जगत में इससे बड़ी कठिन कोई बात नहीं है। इसलिए बहुत होश चाहिए कि कोई तुम्हें खींच न ले।

जो तुम्हें गाली दे रहा है, वह खींच रहा है। जो तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है, वह भी खींच रहा है। तुम जरा सावधान रहना। एक-एक कदम होश से उठाना, फूंक-फूंक कर रखना। तो ही तुम उस अवस्था को उपलब्ध हो पाओगे, जहां निष्क्रियता तुम्हारे जीवन की शैली हो जाती है। तब दूसरा काम करनाः अकर्म पर ध्यान देना। और तब तीसरा काम अपने आप हो जाएगाः स्वादहीन का स्वाद। वही ब्रह्मानंद है। वही महासुख है। वही निर्वाण है। मुक्ति, कैवल्य, जो भी नाम तुम पसंद करो।

पर स्वादहीन का स्वाद बड़ा प्यारा शब्द है। वहां कोई स्वाद लेने वाला भी नहीं बचता; वहां कोई स्वाद भी नहीं बचता। फिर भी एक अनुभव घटित होता है; बिना अनुभोक्ता के एक घटना घटती है। वही घटना बड़े से बड़ा चमत्कार है! और जिसके जीवन में वह घट गया, फिर कुछ और घटने को नहीं रह जाता। उसके पार कुछ भी नहीं।

उस महान को खोजने में निकले हो तो बड़ी सावधानी चाहिए। तुम्हें दूसरों की तरह चलने की सुविधा नहीं है। तुम्हें दूसरों की तरह व्यवहार करने की सुविधा नहीं है। तुम्हें अनूठा होना पड़ेगा। अगर यह तुम्हें पूरी करनी है अभीप्सा तो गालियों के बदले तुम्हें धन्यवाद देना होगा और जो तुम्हारे लिए कांटे बोएं उनके लिए तुम्हें फूल बोना होगा। कबीर ने कहा हैः जो तोको कांटा बुवै, बाको बो तू फूल।

तभी! तभी स्वादहीन का स्वाद संभव है।

आज इतना ही।

एक सौ चारवां प्रवचन

जो प्रारंभ है वही अंत है

Chapter 64 : Part 1

Beginning And End

That which lies still is easy to hold;
That which is not yet manifest is easy to forestall;
That which is brittle (like ice) easily melts;
That which is minute easily scatters.
Deal with a thing before it is there;
Check disorder before it is rife.
A tree with a full span's girth begins from a tiny sprout;
A nine-storied terrace begins with a clod of earth.
A journey of a thousand li begins at one's feet.

अध्याय 64 : खंड 1

आरंभ और अंत

जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है;
जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है;
जो बर्फ की तरह तुनुक है, वह आसानी से पिघलता है;
जो अत्यंत लघु है, वह आसानी से बिखरता है।
किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो;
परिपक्व होने के पहले ही उपद्रव को रोक दो।
जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है;
नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है;
हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है।

जीवन की सारी समस्या इस एक बात में ही छिपी है कि जब तुम हल कर सकते हो तब तुम हल नहीं करते। जब बात को रोक देना आसान था तब तुम बढ़ाए चले जाते हो। और जब बात सीमा के बाहर निकल जाती

है तब तुम्हें होश आता है। जब कुछ भी नहीं किया जा सकता तब तुम जागते हो। जब कुछ किया जा सकता था तब तुम आलस्य में पड़े विश्राम करते रहे।

तब हजार समस्याएं इकट्ठी होती चली जाती हैं, उन समस्याओं में दबे तुम खंड-खंड, छितर-बितर जाते हो। फिर तुम्हारे जीवन-सूत्र का जो संबंध है, तुम्हारे भीतर की अंतरात्मा से जो तुम्हारी कड़ी है, उसका ओर-छोर खो जाता है। तब तो तुम छोटी सी समस्या भी हल करने में असमर्थ हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा मन एक विभ्रम हो जाता है, एक कनफ्यूजन। वहां इतनी समस्याओं का ढेर लगा पड़ा होता है। उन समस्याओं से दबे तुम सारी सामर्थ्य खो देते हो। तुम्हारा आत्मविश्वास भी तिरोहित हो जाता है। जो कुछ भी हल न कर पाया, वह कुछ हल कर सकेगा, यह भरोसा भी टूट जाता है। तुम समझने लगते हो कि अपने से हल होने वाला है ही नहीं। और एक बार ऐसी दीनता आ गई कि तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन गई। फिर तो तुम उसे भी हल न कर पाओगे जिसे बच्चे हल कर लेते हैं। हल करने का भरोसा और श्रद्धा ही नष्ट हो गई।

इसलिए लाओत्से के इस सूत्र को बहुत गौर से समझना। यह ठीक तुम्हारे लिए है। इसके विपरीत ही तुम करते रहे हो।

पहली दफा मुझे, जब कि लाओत्से का कोई पता भी न था, एक अजीब से आदमी से इस सूत्र की समझ मिली थी। मैं जब विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था तो एक आदमी था गांव में जिसको लोग बन्नू पागल कहते थे। मैं उसमें आकर्षित हो गया था। क्योंकि मुझे वह पागल जैसा नहीं मालूम पड़ता था। भिन्न था; पागल जरा भी नहीं था। लोगों से उलटा था; पागल जरा भी नहीं था। लोगों को भला मैं पागल कह सकता, उस आदमी को पागल कहना मुश्किल था। क्योंकि उस जैसी प्रसन्नता! उसे कभी मैंने रोते, उदास नहीं देखा। उसकी चाल और उसकी मस्ती, सब खबर देती थीं कि कहीं भीतर वह आदमी गहरे में जड़ें जमा लिया है। धीरे-धीरे, वह साधारणतः किसी से बोलता नहीं था, बाद में जब मेरी उससे निकटता बढ़ गई और उसने मुझसे बोलना भी शुरू कर दिया और वह जब मेरी प्रतीक्षा भी करने लगा और जब हम दोनों सांझ-सुबह घूमने भी जाने लगे, तब मैंने उससे कहा कि लोगों से बोलते क्यों नहीं हो? तो उसने मुझे कहा, न बोलने में सुविधा है; बोले कि फंसे। बोलने में उपद्रव है।

एक दिन सांझ घूमते वक्त वह अचानक रुक कर खड़ा हो गया और उसने एक चांटा अपने गाल पर मार लिया। तो मैंने उससे पूछा कि यह क्या किया? यह क्या हुआ? उसने कहा, जब बात रुक सकती हो तभी रोक देना ठीक है। मुझे किसी के प्रति क्रोध आ रहा था। अब मैंने बांके बिहारीलाल जी को ठीक कर दिया।

वह अपने को सदा सम्मान से ही पुकारता थाः बांके बिहारीलाल जी। लोग उसको बन्नू पागल कहते थे। वह मुस्कुराया और उसने कहा, कहो बांके बिहारीलाल जी, रास्ते पर आ गए? जरा सी रेखा उठी थी क्रोध की भीतर, वहीं उसने चांटा मार कर निबटारा कर लिया। उसने कहा, बजाय इसके कि दूसरे चांटा मारें, खुद ही मार लेना बेहतर है। और इसके पहले कि बात आगे बढ़ जाए, उसे रोक देना उचित है।

उसने मुझे कहा था कि आग जब शुरू-शुरू में सुलगती है, जरा से पानी से बुझ जाती है। और हवा का यह नियम है कि छोटे दीए को तो बुझा देता है, बड़ी लपटों को बढ़ाता है। उस पागल ने मुझे यह कहा कि शुरू में मिटा दो तो मिट जाता है, बाद में तो मिटाने से भी लपटें बढ़ती हैं। वह लाओत्से ने भी नहीं कहा है इस सूत्र में। तुमने भी देखा होगा, हवा का झोंका आता है, छोटा दीया बुझ जाता है; और घर में आग लगी हो, उस वक्त अगर हवा चल जाए तो मारे गए, फिर बुझना मुश्किल है। लपटों को हवा भी बढ़ाती है। बढ़े हुए को सब तरफ से बढ़ने की सुविधा मिल जाती है। छोटे में मिटा दो तो हवा भी मिटाती है।

यह जो पागल आदमी था, यह पागल आदमी नहीं था, यह समझ-बूझ कर पागल हो रहा था। इसने पागलपन का एक आवरण अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया था। यह बचाव था। पागल समझ कर लोग न उसकी तरफ ध्यान देते थे, न उसकी चिंता लेते थे। समाज में रहते हुए वह समाज से बिल्कुल दूर हो गया था। उसने अपने चारों तरफ एक छोटी सी गुफा बना ली थी पागलपन की। वह पागलपन बचाव था।

समाज कितना पागल होना चाहिए, जहां कि बचाव के लिए भी आदमी को पागल होना पड़ता हो। बहुत से फकीर दुनिया में पागलपन को आरोपित कर लिए हैं, ताकि लोग उन्हें भूल जाएं, ताकि लोग उन पर ध्यान न दें, ताकि वे क्या कर रहे हैं, लोग उनको अकेला छोड़ दें, ताकि वे अपना जो करना चाहें करते रहें, कोई उनकी चिंता न ले। जब लोग एक दफा मान लेते हैं कि पागल है तो सब क्षमा कर देते हैं।

यह लाओत्से का सूत्र और तुम्हारा ठीक इससे विपरीत होना, इन दोनों को साथ-साथ समझने की कोशिश करो। जब कोई समस्या उठती है तब तुम क्या करते हो?

पहले तो तुम उस पर ध्यान ही नहीं देते। तुम ऐसा रुख रखते हो कि अपने आप चली जाएगी, कोई खास बड़ी बात नहीं है। ऐसे ही सर्दी-जुकाम है, मिट जाएगा। क्या चिकित्सक से पूछना है! क्या उपचार करना है! तुम छोटा करके देखते हो। तुम पहले तो उपेक्षा करते हो, टालते हो। तुम पहले पूरी चेष्टा यह करते हो कि अपने आप ही हल हो जाए।

कहीं दुनिया में कोई चीज अपने आप हल हुई है? उलझाओ तुम और अपने आप हल हो जाए, यह होगा कैसे? बनाओ तुम, अपने आप हल हो जाए; यह होगा कैसे? समस्या तुम खड़ी कर रहे हो; अपने आप हल न होगी। लेकिन यह मनुष्य का पहला रवैया है। सोचता है, शायद कोई चमत्कार घट जाएगा, कोई घटना बदल जाएगी, संयोग बदल जाएंगे। चीज अपने आप हो जाएगी; क्यों झंझट में पड़ना! आदमी नजरअंदाज करना चाहता है; कहीं और देखने लगता है। यह पहली प्रक्रिया है, कि तुम अपने मन को कहीं और लगाते हो, ताकि समस्या दिखाई न पड़े। और यहीं खतरा शुरू होता है। क्योंकि जिस समस्या को तुमने देखना बंद किया वह तुम्हारे अचेतन में गिरने लगती है, वह तुम्हारे अंधकार कुएं में गिरने लगती है, वह तुम्हारी जमीन के भीतर उतर जाती है, वह अंडरग्राउंड हो जाती है।

और एक बार कोई समस्या जमीन के नीचे उतर गई, अंधेरे में उतर गई, तुमने देखा नहीं, नजर न दी, ध्यान न किया, वह बीज की तरह जड़ जमा लेगी। जो समस्या सचेतन में हो, उसे हल करना आसान है। क्योंकि वहां तक तुम मालिक हो। एक बार अचेतन में उतर गई, फिर हल करना मुश्किल है। क्योंकि फिर तुम मालिक रहे ही नहीं। तुम्हारी मालकियत मन के ऊपर की सतह पर ही है। अगर मन को हम दस खंडों में बांटें तो पहले खंड में तुम्हारी मालकियत थोड़ी-बहुत चलती है; नौ खंडों में तुम्हारी मालकियत का कोई... नौ खंडों का तुमसे कोई संबंध ही नहीं रहा है। एक बार कोई समस्या अचेतन में, अनकांशस में चली गई तो बीज जमीन में चला गया। जमीन के ऊपर से झाड़-बुहार देना बड़ा आसान था; जमीन के नीचे बहुत कठिनाई है। और खोदने में डर है। क्योंकि खोदोगे एक, हजार निकल आएंगे। इसलिए कोई अचेतन को खोदता नहीं, छूता नहीं। भय लगता है। क्योंकि एक बीज नहीं दबा है, वहां तुम जन्मों-जन्मों से दबाए हुए पड़े हो। अचेतन तुम्हारा कबाड़खाना है, जिसमें तुमने सब कूड़ा-कर्कट भर दिया है। वहां जाने में भय लगता है कि वहां गए और सब चीजें एकदम से टूट पड़ीं तो क्या होगा?

इसलिए एक बार कोई चीज अचेतन में उतर गई तो तुम जटिलता में पड़ जाओगे।

पर मन पहले टालता है। जब मन टालता हो तब तुम जाग जाना। उस क्षण को खोना उचित नहीं है। हजार काम छोड़ कर पहले इसे निबटा लेना; बड़े काम छोड़ कर इस छोटे को निबटा लेना। क्योंकि जो आज छोटा है, कल बड़ा हो जाएगा। अभी हल हो सकता है, कल हल होना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि अकेली नहीं आती समस्या, अपने साथ हजार समस्याएं लाती है।

तुमने सुनी है कहावत, बीमारी अकेली नहीं आती, एक बीमारी अपने साथ हजार बीमारियां लाती है। सब के संगी-साथी हैं। समस्याओं के भी संगी-साथी हैं। अगर एक समस्या ने जड़ जमा ली तो उसी तरह की हजार समस्याएं भी तुम्हारे द्वार पर दस्तक देने लगेंगी--हमको भी जगह दो! और जब तुमने एक को जगह दी है तो तुम्हारे भीतर छिद्र हो गया। उसी छिद्र से हजार समस्याएं भीतर प्रवेश पा जाएंगी।

अगर तुमने क्रोध को जगह दी तो तुम हिंसा से कितनी देर तक दूर रह सकोगे? अगर तुमने क्रोध को जगह दी तो तुम काम से कितनी देर दूर रह सकोगे? क्योंकि वे सब जुड़े हैं। वे सब एक ही घटना के ताने-बाने हैं।

इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, अगर एक समस्या भी कोई व्यक्ति हल कर ले, उसकी सारी समस्याएं हल हो जाती हैं। क्योंकि एक समस्या को हल करने में तुम पाओगे, सभी समस्याएं समाविष्ट हैं।

अगर तुम कामवासना से मुक्त हो जाओ तो तुम क्रोध न कर सकोगे। क्योंकि कामवासना ही, जब कोई तुम्हारी कामवासना में बाधा डालता है, तो क्रोध बन जाती है। तुम कुछ पाना चाहते थे, और किसी ने अड़चन डाल दी। तुम कहीं जाना चाहते थे, कोई बीच में आ गया। तुम जाना चाहते थे, और एक पत्थर की दीवार किसी ने खड़ी कर दी। जो भी तुम्हारे मार्ग में अवरोध खड़ा करेगा उस पर क्रोध आता है। लेकिन अगर तुम कहीं जाना ही न चाहते थे, अगर तुम्हारी कोई कामना ही न थी, कोई वासना ही न थी, तुम कुछ पाना ही न चाहते थे, तो कौन तुम्हारे मार्ग में अवरोध खड़ा करेगा? कैसे तुम्हें क्रोध आएगा?

जिसकी कामवासना नहीं है उसको लोभ कैसा? लोभ कामवासना का अनुषंग है। क्योंकि कामी लोभी होगा ही। लोभ का मतलब यह है कि कल की वासना के लिए मैं आज इंतजाम कर रहा हूं, परसों की वासना के लिए आज इंतजाम कर रहा हूं। बुढ़ापे के लिए तिजोरी भर रहा हूं। भविष्य के लिए आज तैयारी करनी पड़ेगी। तो लोभ का मतलब हैः इकट्ठा कर रहा हूं, ताकि कल भोग सकूं। जिसकी कामवासना नहीं है उसका लोभ कैसा?

जिसकी कामवासना नहीं है उसका कल ही न रहा; उसका भविष्य ही समाप्त हो गया। उसका समय रुक गया। उसकी घड़ी बंद हो गई। वह यहीं है, आज है। और आज पर्याप्त है। आज से ज्यादा की कोई मांग नहीं है। जो छोटा सा मिल रहा है, वह काफी है। आज के लिए काफी से ज्यादा है। अगर तुम कल को बीच में न लाओ तो जो तुम्हें मिला है काफी है। तुम समृद्ध हो। अगर तुम कल को बीच में ले आओ तो बड़े से बड़े सम्राट भी भिखारी हैं। क्योंकि कल को कोई भी नहीं भर सकता। कल दुष्पूर है।

एक वासना को बदलो, तुम पाओगे, और वासनाओं में बदलाहट होने लगी। एक समस्या को हल कर लो, सब समस्याएं हल हो जाती हैं।

पहला तो मन कहता है, टालो; कल देखेंगे, परसों देखेंगे। ऐसा टालते जाते हो। लेकिन जितना तुम टाल रहे हो उतना समय बीज को मिल रहा है--फूटने को, अंकुरित होने को। फिर मन की दूसरी वृत्ति है, जब टालना मुश्किल ही हो जाए, समस्या सामने ही खड़ी हो जाए, तो तुम समस्या से लड़ना शुरू करते हो।

पहले टालते हो, वह भी गलत। फिर लड़ते हो; दीवार खड़ी है, उसके साथ सिर फोड़ते हो। वह भी गलत। क्योंकि समस्या को कोई लड़ कर हल नहीं कर सकता। तुम लड़े कि समस्या को हल करना असंभव ही हो जाएगा। क्योंकि हल करने के लिए तो शांत चित्त चाहिए; लड़ने वाली वृत्ति तो अशांत है। तो पहले तो क्रोध को पनपते

देते हो। फिर जब क्रोध मुश्किल में डाल देता है, सब तरफ जीवन को उलझा देता है, सब तरफ कांटे बो देता है, कहीं भी चलने की जगह नहीं रह जाती, जहां देखो वहां दुश्मनी दिखाई पड़ने लगती है, सारा संसार विरोध में मालूम पड़ता है, जैसे सब तरफ तुम्हारे तरफ कोई शड्यंत्र चल रहा है, सभी लोग तुम्हारी दुश्मनी में खड़े हैं; तब तुम जागते हो। तब तुम दूसरी भूल करते हो कि तुम लड़ने की कोशिश करते हो कि दबा दो क्रोध को, मिटा दो क्रोध को। लेकिन कभी कोई किसी समस्या से लड़ कर जीता है?

समझ लो कि तुम धागे साफ कर रहे थे और धागे उलझ गए। इनसे लड़ोगे? लड़ कर धागे सुलझ जाएंगे? लड़ कर तो और उलझ जाएंगे, टूट जाएंगे। एक बार धागे उलझ गए हों तो फिर तो बड़ी ही शांति चाहिए, फिर तो बड़ा मैत्री भाव चाहिए। फिर तो बड़ी सरलता और धीरज से एक-एक धागे को निकालोगे तो ही निकल पाएंगे। अगर जरा भी जोर से खींच दिया तो और उलझाव बढ़ जाएगा।

धैर्य बिल्कुल नहीं है। पहले तुम टालते हो; उसे तुम धैर्य मत समझना। वह धैर्य नहीं है, वह आलस्य है। कहते हो, कल कर लेंगे, परसों कर लेंगे। अभी जल्दी क्या है? पहले तुम टालते हो; वह धैर्य नहीं है। कई लोग उसे धीरज समझते हैं कि हम धैर्यवान हैं; कभी भी कर लेंगे, जल्दी क्या है? वह आलस्य है। वह प्रमाद है। वह केवल अपने को धोखा देना है। धैर्य की कसौटी तो उस दिन आएगी जिस दिन उलझाव खड़ा हो जाएगा। और तुम अब क्या करते हो? धैर्य से सुलझाते हो या लड़ते हो? तुम लड़ोगे। छोटी चीजों से लड़ोगे, मुश्किल में पड़ जाओगे।

मैंने सुना है, ऐसा हुआ, जापान में एक बहुत बड़ा योद्धा था। और योद्धा प्रासंगिक है यहां। उसकी तलवार चलाने की कला का कोई मुकाबला न था। जापान में उसकी धाक थी। उसके नाम से लोग कांपते थे। बड़े-बड़े तलवार चलाने वाले उसके सामने क्षणों में धूल-धूसरित हो गए थे। उसके जीवन की एक कहानी है। वह कहानी झेन फकीर बड़ा उपयोग करते हैं, क्योंकि वह बड़ी विचारपूर्ण है, और तुम्हारे जीवन से जुड़ी है।

एक रात ऐसा हुआ कि योद्धा घर लौटा, अपनी तलवार उसने टांगी खूंटी पर, तभी उसने देखा कि एक चूहा उसके बिस्तर पर बैठा है। वह बहुत नाराज हो गया। योद्धा आदमी! उसने गुस्से में तलवार निकाल ली, क्योंकि गुस्से में वह और कुछ करना जानता ही न था। न केवल चूहा बैठा रहा तलवार को देखता, बल्कि चूहे ने इस ढंग से देखा कि योद्धा अपने आपे के बाहर हो गया। चूहा और यह हिम्मत? और चूहे ने ऐसे देखा कि जा जा, तलवार निकालने से क्या होता है? मैं कोई आदमी थोड़े ही हूं जो डर जाऊं? उसने क्रोध में उठा कर तलवार चला दी। चूहा छलांग लगा कर बच गया। बिस्तर कट गया। अब तो क्रोध की कोई सीमा न रही। अब तो अंधाधुंध चलाने लगा तलवार वह जहां चूहा दिखाई पड़े। और चूहा भी गजब का था। वह उचके और बचे। पसीना-पसीना हो गया योद्धा और तलवार टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गई। और चूहा फिर भी बैठा था। वह तो घबड़ा गया; समझ गया कि यह कोई चूहा साधारण नहीं है, कोई प्रेत, कोई भूत। क्योंकि मुझसे बड़े-बड़े योद्धा हार चुके हैं और एक चूहा नहीं हार रहा!

अब योद्धा एक बात है और चूहा बिल्कुल दूसरी बात है। वह घबड़ा कर बाहर आ गया। उसने जाकर अपने मित्रों को पूछा कि क्या करूं? उन्होंने कहा, तुम भी पागल हो! चूहे से कोई तलवार से लड़ता है? अरे, एक बिल्ली ले जाओ, निबटा देगी। हर चीज की औषधि है। और जहां सूई से काम चलता हो वहां तलवार चलाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। बिल्ली ले जाओ।

लेकिन योद्धा की परेशानी और चूहे की तेजस्विता की कथा गांव भर में फैल चुकी। बिल्लियों को भी पता चल गई। बिल्लियां भी डरीं। क्योंकि उनका भी आत्मविश्वास खो गया। इतना बड़ा योद्धा हार गया जिस चूहे से! पकड़-पकड़ कर बिल्लियों को लाया जाए। बिल्लियां बड़ा मुश्किल से; दरवाजे के बाहर ही अपने को खींचने लगें;

बामुश्किल उनको भीतर करें कि वे भीतर चूहे को देख कर बाहर आ जाएं। एक-दो बिल्लियों ने झपटने की भी कोशिश की, लेकिन उन्होंने पाया कि चूहा झपट्टा उन पर मारता है। यह चूहा अजीब था, क्योंकि चूहा कभी बिल्ली पर झपट्टा नहीं मारता जब तक कि उसको एल एस डी न पिला दिया गया हो, या कोई शराब न पिला दी गई हो, जब तक वह होश के बाहर न हो जाए। और चूहा अगर बिल्ली पर झपटे तो बिल्ली का आत्मविश्वास खो जाता है।

तो सारी बिल्लियां इकट्ठी हो गईं। उन्होंने कहा, हमारी इज्जत का भी सवाल है। योद्धा तो एक तरफ रहा, हारे न हारे, हमें कुछ लेना-देना नहीं; ऐसे भी हमारा कोई मित्र न था; चूहे ने ठीक ही किया। मगर अब हमारी इज्जत दांव पर लगी है; अब हम क्या करें? अगर हम हार गए एक दफा और गांव के दूसरे चूहों को पता चल गया, तो यह सब प्रतिष्ठा तो प्रतिष्ठा की ही बात होती है। एक दफा पोल खुल जाए तो बहुत मुश्किल हो जाती है। अगर दूसरे चूहे भी हमला करने लगे तो हम तो गए, कहीं के न रहे। इस योद्धा ने तो डुबा दिया।

तो उन सब ने राजा के महल में एक मास्टर कैट थी--एक बिल्लियों की गुरु--उससे प्रार्थना की कि अब तुम्हीं कुछ करो। उसने कहा, तुम भी पागल हो। इसमें करने जैसा क्या है? मैं अभी आई। वह बिल्ली आई; वह भीतर गई; उसने चूहे को पकड़ा और बाहर ले आई। बिल्लियों ने पूछा कि तुमने किया क्या? उसने कहा, कुछ करने की जरूरत है? मैं बिल्ली हूं, वह चूहा है; बात खतम। इसमें तुमने करने का सोचा कि तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि करने का मतलब हुआ कि डर समा गया। उसका स्वभाव चूहे का है और मेरा स्वभाव बिल्ली का है; बात खतम। हमारा काम पकड़ना है और उसका काम पकड़ा जाना है। यह तो स्वाभाविक है। इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। इसमें कुछ करना नहीं है। न इसमें हम जीत रहे हैं, न इसमें वह हार रहा है। इसमें हार-जीत कहां? यह उसका स्वभाव है; यह हमारा स्वभाव है। दोनों का स्वभाव मेल खाता है; चूहा पकड़ा जाता है। तुमने स्वभाव के अतिरिक्त कुछ करने की कोशिश की। और चूहे से कहीं कोई लड़ कर जीता है? और बिल्ली जिस दिन लड़े, समझना कि हार गई। लड़ने की शुरुआत ही हार की शुरुआत है।

समस्याओं से लड़ना मत। झेन फकीर कहते हैं, समस्याओं के साथ वही व्यवहार करना जो बिल्ली ने चूहे के साथ किया। चेतना का स्वभाव पर्याप्त है, होश काफी है। होश के मुंह में समस्या वैसे ही चली आती है जैसे बिल्ली के मुंह में चूहा चला आता है; इसमें कुछ करना नहीं पड़ता।

लेकिन तुम योद्धा बन कर तलवार लेकर खड़े हो जाते हो। दो कौड़ी की समस्या है; सूई की भी जरूरत न थी, तुम तलवार से लड़ने लगते हो। हारोगे। ध्यान रखना, मरीज हो सर्दी-जुकाम का और कैंसर का इलाज करोगे तो मारोगे। सर्दी-जुकाम तो एक तरफ रहेगा, मरीज मरेगा।

सम्यक विधि का इतना ही अर्थ हैः क्या मौजू है, क्या स्वाभाविक है। लड़ने का सवाल क्या है? किससे लड़ रहे हो तुम? तुम्हारे भीतर जब कोई समस्या है, उससे लड़ने का मतलब ही यह है कि तुमने आत्मविश्वास खो दिया। अन्यथा तुम्हारा होश, जागृति, तुम्हारा ध्यान काफी है। तुम्हारे ध्यान की रोशनी पड़ेगी, समस्या विसर्जित हो जाएगी।

तो पहली तो भूल करते हो कि टालते हो। फिर दूसरी भूल करते हो कि अधैर्यपूर्वक लड़ते हो।

अब तुम्हें हंसी आएगी; तुम कहोगे, योद्धा पागल था। लेकिन तुम अपनी तरफ सोचो। कहानी को अपने जीवन में जरा खोजने की कोशिश करो।

मेरे पास कोई आता है, वह कहता है कि पान खाना नहीं छूटता। बीस साल से लड़ रहे हैं। अब यह चूहा से कोई बड़ी बात हुई पान खाना? चूहा फिर भी बड़ा है। कोई कहता है, सिगरेट नहीं छूटती। तुम बात क्या कर रहे हो? तुम्हारे भीतर आत्मा है या नहीं? तुम किस भांति की बिल्ली हो कि चूहे को देख कर भाग रहे हो और विचार कर रहे हो कि क्या करें क्या न करें? सिगरेट पीने जैसी बात, और बीस साल हो गए और तुमसे छूटती नहीं! और तुम कई बार छोड़ चुके, और फिर-फिर हार गए और फिर-फिर शुरू कर दी! तुम हो कौन? कुछ भी नहीं हो मालूम होता है। तुम्हारे पास ध्यान की कोई भी ऊर्जा नहीं है। तुम्हारे पास आत्मविश्वास नहीं है। अन्यथा सिगरेट पीने से लड़ना पड़े?

ऐसा हुआ कि आज से कोई चालीस साल पहले उत्तरी ध्रुव पर मनुष्य पहली दफा पहुंचा था। और जो यात्री उत्तरी ध्रुव पर होकर लौट कर आए थे उन्होंने जब अपनी कहानी कही तो अखबारों में--सारे जगत के अखबारों में--बड़ी सुर्खियों से छपी। और उनकी कहानी बड़ी करुणा की भी थी। क्योंकि उनका भोजन चुक गया और उन्हें मछलियां मार कर या भालू मार कर किसी तरह अपना जीवन चलाना पड़ा। पर सबसे बड़ी हैरानी की बात यह थी कि जो यात्री-दल का प्रधान था उसने कहा, हमें भोजन के चुकने से उतनी तकलीफ न हुई; लोग भूखे रहने को राजी थे, लोग पानी पीकर रह लेते थे; लेकिन सिगरेट चुक गई तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। लोग जहाज की रस्सियां काट-काट कर पीने लगे। और उनको लाख समझाया कि ये रस्सियां अगर कट गईं तो हम पहुंचेंगे कैसे वापस! इन्हीं रस्सियों पर सारा पाल टिका है! लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं। पहुंचने की उतनी फिक्र नहीं; मर जाएं यहीं, इसकी भी चिंता नहीं; लेकिन लोग कहते कि जब तलफ लगती है, तो फिर हम रुक नहीं सकते। और उन पर पहरा देना मुश्किल था। क्योंकि करीब-करीब नब्बे प्रतिशत साथी उस दल के सिगरेट पीने वाले थे। उन पर पहरा कौन दे? रात को रस्सियां कट जाएं। कप्तान इसलिए परेशान था कि अगर यह चला और लोग रस्सियां ही पी गए तो हमारे पहुंचने का कोई उपाय नहीं।

एक वैज्ञानिक इसको अखबार में पढ़ रहा था। वह भी सिगरेट का चेन स्मोकर था। उसके हाथ में उस वक्त भी सिगरेट थी जब वह पढ़ रहा था। उसे ख्याल आया कि यह तो बड़ी बेहूदी बात है। अगर मैं भी उस यात्री-दल का हिस्सा होता तो मैंने भी क्या रस्सियां पी होतीं--गंदी रस्सियां? उनको मैं धुएं की तरह पी गया होता? हाथ में सिगरेट थी, उसने सिगरेट की तरफ देखा, अपनी तरफ देखा, सिगरेट उसने ऐश-ट्रे में रख दी, वैसी की वैसी अधजली, और उसने कहा, अब मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा जब मुझे इसे फिर उठाना पड़े। उस दिन मैं समझूंगा कि मुझमें कोई आत्मा नहीं है। सिगरेट बड़ी है, आत्मा छोटी है। बीड़ी बड़ी है, ब्रह्म छोटा।

फिर तीस साल गुजर गए और वह सिगरेट को हमेशा अपनी ऐश-ट्रे पर वैसी ही आधी की आधी रखे रहा--उस क्षण की प्रतीक्षा में जब उसे फिर सिगरेट उठानी पड़े। वह क्षण नहीं आया।

बस इतना ही चाहिए। आत्मभाव चाहिए। जरा सा होश। जिन समस्याओं से तुम लड़ रहे हो वे तुम्हारी छायाएं हैं। उनसे लड़ोगे तो हारोगे। क्योंकि लड़ने में तुमने नासमझी दिखला दी। तुम लड़े, इसका मतलब ही यह है कि तुम्हें यह पता ही नहीं है कि तुम अपनी छाया से लड़ रहे हो। आदत तुम्हारी है। समस्या तुम्हारी है। तुम इतने नीचे उतर रहे हो कि उससे लड़ने जाओगे! समस्याएं बोध से मिटती हैं, संघर्ष से नहीं, कसम खाने से नहीं, व्रत लेने से नहीं।

व्रत तो कमजोर लेते हैं। कसमें कमजोर खाते हैं। क्योंकि कसम का मतलब ही यह है कि तुम अपने को बांध रहे हो, ताकि भविष्य में--तुम्हें भरोसा नहीं है अपना। तो तुम कह रहे हो कि मैं ब्रह्मचर्य की कसम लेता हूं। तुम्हें भरोसा नहीं है भविष्य का। कसम लेते हो समाज के सामने, ताकि लोग भी ध्यान रखें। कसम लेते हो दूसरों के

सामने, ताकि दूसरे के सामने प्रतिबद्ध हो जाने के कारण अहंकार का सवाल अड़ जाए। फिर तुम्हारा अहंकार ही रोकेगा कि इतने लोगों के सामने कसम ली, अब तोड़ें कैसे?

तुम अहंकार के माध्यम से अपनी आदतों को बदलना चाहते हो! और अहंकार तो सबसे बुरी और बड़ी से बड़ी खतरनाक आदत है। सिगरेट पीते हुए शायद तुम मोक्ष में चले भी जाओ, क्योंकि मैंने कभी नहीं सुना कि कोई सिगरेट पीने पर मोक्ष के द्वार पर कोई बाधा हो, कि धूम्रपान वर्जित है ऐसा लिखा हो। लेकिन अहंकार लेकर तुम मोक्ष में कभी भी न जा सकोगे। जब तुम अहंकार को लड़ाते हो आदत के खिलाफ तभी तुम भूल कर रहे हो। तब तुम योद्धा की भूल कर रहे हो। अहंकार तो और भी खतरनाक आदत है। तब तो तुम बीमारी का इलाज जो कर रहे हो, वह बीमारी से भी ज्यादा खतरनाक है। उससे तो बीमारी बेहतर थी; इतनी बुरी न थी। बीमारी से बच भी जाते, औषधि से न बच सकोगे।

आत्मा को जगाओ। अहंकार को खड़ा मत करो। समस्याओं को हल करना हो तो कसमें खाकर नहीं, बोध को जगा कर। कसमें खाना भी लड़ने की ही तरकीब है। लड़ कर कभी कोई नहीं जीता। जान कर लोग जीते हैं। और जो ज्ञान से ही हो जाता हो उसके लिए लड़ने की, जद्दोजहद की, व्यर्थ के संघर्ष की क्यों आयोजना करते हो?

तो पहली तो भूल होती है टालने की। फिर दूसरी भूल होती है लड़ने की। लड़ने का परिणाम इतना ही हो सकता है कि अगर तुम बहुत जिद्दी हो तो जो आदत तुम्हारे ऊपर थी उसे तुम अचेतन में दबा दो; जो क्रोध बाहर निकलता था उसे तुम भीतर पी जाओ।

क्रोध बाहर निकल जाता तो तुम्हारा संयंत्र मुक्त हो जाता उससे, हलके हो जाते। भीतर ले जाकर तो जहर इकट्ठा होता जाएगा। तुम मवाद इकट्ठी कर रहे हो। तुम फोड़े को मिटा नहीं रहे हो, ऊपर से पट्टियां बांध कर फूल लगा रहे हो। तुम भीतर विस्फोटक होते जाओगे। तुम एक ज्वालामुखी हो जाओगे, जो कभी भी फूट सकता है। और तुम्हारे हर कृत्य में, तुमने जो-जो दबाया है, उसकी छाप पड़ने लगेगी। तुम उठोगे तो क्रोध से, बैठोगे क्रोध से, चलोगे क्रोध से, बोलोगे क्रोध से। अकारण ही तुम क्रोधित होने लगोगे।

यही तो पागलपन हैः कोई ऐसा काम करना जो अकारण था, जिसकी कोई जरूरत ही न थी, जिसके लिए बाहर कोई भी कारण मौजूद न थे। ऐसा कोई काम करना ही तो पागलपन है। होश और पागलपन में फर्क क्या है? होश और पागलपन में फर्क यह है कि तुम्हें किसी ने पुकारा तो तुम बोले, अगर पुकारने वाला है तब तो होश, और पुकारने वाला है ही नहीं, पुकार तुमने ही सुनी, तो पागलपन। तब तुम बिना कारण बाहर के खोजे अपने भीतर के ही कारणों से जीने लगते हो। बाहर किसी ने गाली दी तब तो ठीक कि तुम क्रोधित हो जाओ। लेकिन कोई गाली दिया ही नहीं है और तुम क्रोधित हो जाते हो, जैसे तुम प्रतीक्षा कर रहे थे कि कोई गाली दे, तो तुम व्याख्या कर लेते हो कि जरूर गाली दी गई है। गाली न भी दी गई हो तो तुम समझ लेते हो कि भाव-भंगिमा से पता चलती थी कि गाली वह आदमी देना चाहता था, कि वह छिपा रहा था, कि वह धोखा दे रहा था, लेकिन गाली वह देना चाहता था, कि उसके ओंठों में लिखी थी, कि उसकी आंख कह रही थी, कि वह आदमी ही ऐसा है, हम उसे जानते हैं, उसके देने की जरूरत ही नहीं है, बिना दिए हम पहचानते हैं कि वह गाली देने ही आया था। तुम व्याख्या करने लगोगे। भीतर के क्रोध को निकालने के लिए कोई न कोई उपाय खोजने पड़ेंगे।

और जितना तुम दबाओगे उतने तुम रुग्ण होते जाओगे। जितने तुम रुग्ण होओगे उतने ही जीवन के इस महा उत्सव में तुम्हारा सम्मिलित होना असंभव हो जाएगा। और तुम्हारे अधिक साधु यही कर रहे हैं। वे दबा रहे हैं, और दबा कर सोचते हैं परमात्मा से मिल सकेंगे। और जिसने जितने रोग दबा लिए उतना ही परमात्मा से दूर हो जाता है।

परमात्मा के निकट तो वही होता है जिसका दमित कुछ भी नहीं है, जो भीतर बिल्कुल खाली है, जिसके अचेतन में कोई रोग नहीं पड़े हैं। वही इस महाविराट उत्सव में सम्मिलित हो पाता है। वही नाच सकता है। उसके ही घूंघर बज सकते हैं। उसके ही ओंठों पर बांसुरी आ जाती है अस्तित्व की। उसके ही जीवन में गीत प्रकट होता है।

तुम तो डरोगे बांसुरी रखते अपने ओंठों पर, क्योंकि तुम जानते हो, भीतर जहर भरा है, वही निकलेगा; तुम गा न सकोगे। तुम गाली ही दे सकते हो। गीत तुमसे निकलेगा कैसे? गीत की स्थिति नहीं है भीतर निकलने की। तुम प्रेम कैसे करोगे? तुम सिर्फ घृणा ही कर सकते हो। तुम वही कर सकते हो जो तुम्हारे भीतर दबा है।

तो तुम्हारा साधु परमात्मा से दूर होता जाता है। जितना दूर होता है उतना वह सोचता है, और जोर से दमन करना है। तब वह अपने भीतर एक नरक को बना लेता है।

मैं साधुओं को जानता हूं। उन्हें निकट से जान कर ही मुझे यह ख्याल आया कि दुनिया को नए संन्यासी की जरूरत है। पुराना संन्यास सड़ चुका है। उसको महा रोग लग गया है दमन का। और पुराना संन्यासी आनंदमग्न नहीं है। भला वह मुस्कुराता भी हो तो भी उसकी मुस्कुराहट झूठी है। क्योंकि एकांत में जब वह मुझे मिला है तो उसने अपना दुख रोया है। सभा में जब उसे मैंने देखा है तो वह मुस्कुराता बैठा है। एकांत में वह दुखी है। और एकांत में वह अस्तव्यस्त है, अराजक है। और एकांत में वह समझ नहीं पाता कि क्या हो रहा है। और एकांत में उसकी वही पीड़ाएं हैं जो तुम्हारी हैं। और तुमसे हजार गुनी हैं; क्योंकि तुमने दबाया नहीं है, उसने दबाया है। वह तुमसे बड़ा गृहस्थ है। तुमसे ज्यादा स्त्रियों की आकांक्षा है। तुमसे ज्यादा धन की लोलुपता है। तुमसे ज्यादा उसकी पकड़ है भोग पर। लेकिन उसने दबाया है; वह उसे प्रकट नहीं होने देता। तुमने प्रकट किया है। तुम थोड़े हलके हो। तुम उतने भारी नहीं। तुम शायद परमात्मा के पास पहुंच भी जाओ; तुम्हारा स्वामी, तुम्हारा गुरु, मुश्किल है।

इसलिए मुझे लगा कि एक बिल्कुल नए संन्यासी के अवतरण की जरूरत है, जो जीवन को दमन के मार्ग से नहीं, वरन होश के मार्ग से रूपांतरित करे।

ये जो सूत्र हैं, अब तुम समझने की कोशिश करो। ये होश के सूत्र हैं। क्योंकि बड़ा होश चाहिए, तभी तुम जीवन की समस्याओं के पैदा होने के पहले उनका निवारण कर पाओगे।

"जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है। जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है।"

निवारण तुम कर ही तब पाओगे जब तुम उसको देखने लगो जो होने वाला है, अभी हुआ भी नहीं है; नहीं तो निवारण न कर पाओगे। जो होने वाला है, जो अभी अस्तित्व में आया नहीं है।

भीतर को तुम समझने की कोशिश करो। तुम अगर भीतर का थोड़ा अध्ययन करो तो चीजें बड़ी साफ होने लगें। थोड़ा स्वाध्याय जरूरी है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं वह कोई सिद्धांत नहीं है, वह तुम्हारे स्वाध्याय के लिए सूचनाएं हैं। तुम भीतर देखने की कोशिश करो, किस तरह घटना घटती है, एक विचार कैसे निर्मित होता है। खाली बैठ जाओ, देखो कि विचार कैसे निर्मित होता है, कहां से आता है।

तो पहले तुम पाओगे कि विचार नहीं होता, भाव होता है। सिर्फ भाव। भाव बड़ा धूमिल होता है; साफ नहीं। कोई चीज जैसे होने वाली है; कोई अंकुर फूटने वाला है; लेकिन साफ नहीं--कहां है, कहां से फूट रहा है, क्या हो रहा है। अभी हृदय में है। अभी फीलिंग, भाव के तल पर है। थोड़ी ही देर में भाव के तल से उठेगा और विचार के तल पर आएगा। तब तुम ज्यादा आसानी से पहचान पाओगे कि क्या है, क्या हो रहा है भीतर। फिर

जैसे ही विचार के तल पर आ गया, तब वह जिद्द करेगा कृत्य के तल पर जाने की। ये तीन तल हैंः भाव, विचार, कृत्य।

क्रोध पहले भाव में रहेगा; तुम्हें भी साफ नहीं है कि क्या है। फिर विचार बनेगा; तब तुम्हें धीरे-धीरे साफ होगा कि क्या है। अभी दूसरे को बिल्कुल साफ नहीं है। फिर वह कृत्य बनेगा। तब दूसरे को पता चलेगा कि क्या है।

अगर तुम भाव के पहले पकड़ लो तो निवारण कर पाओगे--पूर्व-निवारण।

तब तो बड़ा मुश्किल है। अभी तुम्हारा होश तो विचार पर भी नहीं है। अभी तो विचार भी बेहोशी में चल रहे हैं। तुमसे कोई अचानक पूछ ले, क्या सोच रहे हो? तो तुम एकदम से जवाब नहीं दे पाते। लोग कहते हैं, कुछ नहीं। उसका कारण क्या है? अगर कोई बैठा है, उससे पूछो, क्या सोच रहे हो? वह पहले ही उसका उत्तर होता है, कुछ भी नहीं सोच रहे, ऐसे ही बैठे हैं।

ऐसे ही कोई बैठ सकता है? सिर्फ बुद्ध बैठते हैं। इतने बुद्ध नहीं हो सकते दुनिया में जितने कुछ नहीं जवाब देने वाले हैं।

नहीं, वह सोच रहा है। उसे पता नहीं है। विचार चल रहे हैं, लेकिन उसे कुछ पता नहीं है। सब अंधेरे में हो रहा है। उससे कहो कि नहीं, जरा आंख बंद करके ठीक से कहो, कुछ तो सोच ही रहे होओगे! तब वह शायद थोड़ी कोशिश करे तो हैरान हो, कुछ नहीं, काफी सोच रहा है। विचार ही विचार चल रहे हैं--अनर्गल, असंगत, बेतुके, किसीशृंखला में नहीं; कुछ कारण नहीं दिखाई पड़ता कि क्यों चल रहे हैं। जैसे आस-पास मक्खियां भिनभिना रही हों, ऐसे तुम्हारे चारों तरफ विचार भिनभिना रहे हैं। उनकी भिनभिनाहट इतनी ज्यादा है कि तुम धीरे-धीरे उसके आदी हो गए हो, वैसे ही जैसे बाजार में बैठा हुआ आदमी बाजार की भिनभिनाहट का आदी हो जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि चारों तरफ कुछ हो रहा है। पता तो तब चले जब अचानक पूरा बाजार एक सेकेंड के लिए चुप हो जाए। तब उसको एकदम से चौकन्नापन मालूम पड़े कि क्या हो गया!

अगर तुम कार चलाते हो तो इंजन की आवाज तुम्हें पता नहीं चलती, जब तक कि कुछ अंतर न पड़ जाए। अगर आवाज एकदम बंद हो जाए तो तुम्हें पता चलती है, या कोई नई आवाज सम्मिलित हो जाए तो तुम्हें पता चलता है। अन्यथा तुम्हें कुछ पता नहीं चलता। आदी हो जाते हो। विचार के तुम आदी हो। इसलिए कोई अचानक पूछ ले, तुम कहते हो, कुछ नहीं। वह उत्तर ठीक नहीं है। भीतर थोड़ा देखना शुरू करो। पहले विचार के साक्षी बनो। पहचानना शुरू करो कि जो भी चलता है वह जानकारी में चले। बहुत बार चूकोगे। क्योंकि होश को रखना एक सेकेंड से ज्यादा मुश्किल होगा। होश बड़ी कीमती चीज है; इतनी आसानी से नहीं मिलता। आंख खुले होने का नाम होश नहीं है। भीतर क्या चल रहा है, वह दिखाई पड़े, तब होश है। बाहर क्या दिखाई पड़ रहा है, वह होश नहीं है। तो आंख बंद करके अपने विचारों को देखना शुरू करो।

बड़ा अदभुत है विचार का खेल भी, और अगर तुम देख पाओ तो बड़ा मनोरंजक है। भीतर तुम एक बड़ा ड्रामा चला रहे हो; और जिसको तुम्हीं देख सकते हो, कोई दूसरा नहीं देख सकता। बड़ी प्रतिमाएं उठती हैं; बड़ी कहानियां खेली जाती हैं, बड़े नाटक चलते हैं। तुम जरा देखने का अभ्यास बनाओ।

और लड़ो मत। नहीं तो देख न पाओगे। तुम ऐसे ही देखो जैसे फिल्म देखते हो फिल्मगृह में बैठ कर। बस देखो। रस लो एक बात में कि कोई भी चीज बिन देखी न निकल जाए, अनदेखी न निकल जाए, चूक न जाए। जैसे कभी कोई बहुत सेंसेशनल फिल्म तुम देखने जाते हो तब तुम बिल्कुल सीधे बैठते हो, कुर्सी पर टिक कर भी नहीं बैठते, कि टिक कर बैठे कहीं कोई चीज चूक न जाए। तब तुम बिल्कुल आगे झुके रहते हो, तत्पर, कि हर चीज

पकड़ में आ जाए; एक शब्द न छूट जाए। या जब तुम कोई ऐसी बात सुनते हो जो बहुत रसपूर्ण है तो तुम ऐसे तत्पर होकर सुनते हो कि एक शब्द भी चूक गया तोशृंखला पकड़ना मुश्किल हो जाएगी, हाथ से धागा निकल जाएगा। ऐसी ही तत्परता से भीतर के विचारों को देखो।

और यह बड़ा ही उपादेय है। इससे बड़े लाभ की कोई घटना जगत में नहीं है। कुछ और देख कर तुम इतनी कीमती चीज न पा सकोगे जो विचार देख कर पा सकोगे। क्योंकि विचार देखने से तुम्हारा होश प्रगाढ़ होगा, तुम्हारा साक्षी-भाव सघन होगा, तुम्हारा ध्यान ठहरेगा। तुम एक प्रज्ञा की ज्योति भीतर बन जाओगे, जिसमें सब दिखाई पड़ेगा। रोशनी धीरे-धीरे बढ़ेगी और एक-एक विचार पारदर्शी हो जाएगा।

जब विचार पारदर्शी होने लगे और तुम हर विचार को देखने लगो, तब तुम्हें धीरे-धीरे विचार के नीचे छिपे हुए भावों की झलक मिलनी शुरू होगी। हर विचार के नीचे भाव छिपा है, जैसे हर वृक्ष के नीचे जड़ें छिपी हैं। वे भूमि के नीचे हैं। जब तुम विचार को ठीक पहचान लोगे तो तुमको भाव मालूम पड़ेगा कि वह पीछे भाव छिपा है।

और जब भाव दिखाई पड़ने लगेगा तब तुम बड़े गहरे लोक में प्रविष्ट हुए। अब तुम्हारी प्रज्ञा निश्चित ही अकंप होने लगी, उसका कंपन मिटने लगा, थिर होने लगी। जिस दिन तुम विचार को भी देखने के बाद भाव को भी देख लोगे... । भाव का अर्थ हैः सिर्फ फीलिंग की दशा; कोई विचार नहीं बना है, सिर्फ एहसास हो रहा है। अभी क्रोध नहीं आया है, सिर्फ एक बेचैनी है, जो प्रकट नहीं है, जो तुम्हें कुछ करने के लिए उकसा रही है। लेकिन अभी साफ नहीं है, कहां जाना है। अभी काम का विचार नहीं उठा है, लेकिन कामवासना शरीर में बह रही है, शरीर को धक्के दे रही है कि विचार को बनाओ। वह विचार के तल पर आना चाहती है।

ऐसे ही जैसे पानी में बबूला उठता है। तो देखो तुम, बबूला नीचे से उठता है। छिपा था, पानी के नीचे पड़ी मिट्टी में पड़ा था। वहां से उठता है। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जैसे-जैसे ऊपर आता है, बड़ा होने लगता है, क्योंकि पानी का दबाव कम होने लगता है। दबाव कम होता है, बबूला बड़ा होता है। फिर आ जाता है बिल्कुल सतह पर। जब बिल्कुल सतह पर आने लगता है तब तुम्हें दिखाई पड़ता है। और जब बिल्कुल सतह पर आकर बबूला बैठ जाता है तब तुम्हें ठीक से दिखाई पड़ता है।

यह जो बिल्कुल सतह पर आ जाना है यह कृत्य है, एक्ट। मध्य में होना विचार है। वहां पानी में जमीन की पर्त के नीचे छिपा होना भाव है। और जिस दिन तुम भाव को देख लोगे उस दिन एक अनूठी घटना घटती है--तुम अपने संबंध में भविष्यद्रष्टा हो जाओगे। क्योंकि भाव के आने के पहले तुम्हारे भीतर बीज आता है। वह बीज सदा बाहर से आता है। क्योंकि पानी के नीचे बबूला छिपा था; उसके पहले हवा आनी चाहिए जमीन में, अन्यथा कहां से बबूला छिपेगा? तो भाव को जागने के बाद तुम फिर देख सकते हो कि कौन सा भाव आने वाला है। वह सबसे सूक्ष्म दशा है मन की, अति सूक्ष्म, जहां तुम भविष्यद्रष्टा हो जाते हो, जहां तुम अपने बाबत भविष्यवाणी कर सकते हो कि अब यह होने वाला है, कि आज सांझ मैं क्रोध करूंगा, कि क्रोध का भाव दोपहर होते-होते घना होगा, बीज पड़ गया है।

और जिस दिन तुम इतने सूक्ष्मदर्शी हो जाते हो कि तुम भविष्य को देख लो कि कल क्या होने वाला है, उसी दिन लाओत्से का सूत्र तुम्हारे काम का होगा। निवारण हो सकता है भाव बनने के पहले। क्योंकि भाव है जड़। और भाव के जो पूर्व है, जिसके लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं; क्योंकि कोई उतना सूक्ष्म दर्शन नहीं करता; या जो करते हैं वे कभी इतने अकेले होते हैं करने वाले कि किसी को बताने का उपाय नहीं, दूसरा उनको समझता भी नहीं। जो प्रि-फीलिंग स्टेट है, भाव-पूर्व दशा है, वह बीज है। और वह बीज सदा बाहर से आता है। विचार

बाहर से आते हैं; भाव बाहर से आते हैं; बीज बाहर से आता है। सब बाहर से आता है। और उस बाहर से आए में तुम ग्रसित हो जाते हो। जिस दिन तुम यह सब देख लोगे और तुम्हारा द्रष्टा परिपूर्ण हो जाएगा, उस दिन निवारण। उस दिन तुम आने के पहले ही द्वार बंद कर दोगे। उस दिन तुम्हारे जीवन में कोई उत्पात न रह जाएगा।

"जो शांत पड़ा है, उसे नियंत्रण में रखना आसान है। जो अभी प्रकट नहीं हुआ है, उसका निवारण आसान है। दैट व्हिच लाइज स्टिल, इ.ज इजी टु होल्ड। दैट व्हिच इ.ज नाट यट मैनीफेस्ट, इ.ज इजी टु फोरस्टाल।"

यट नाट मेनीफेस्ट, जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ, उसे बदल देना बिल्कुल हाथ की बात है। इस संबंध में तुम्हें मैं कुछ कहूं, कोई समानांतर दृष्टांत, जिससे तुम्हें समझ में आ जाए।

रूस में किर्लियान ने एक नए किस्म की फोटोग्राफी विकसित की है। और वह है बीमारी को अप्रकट अवस्था में पकड़ने के लिए। एक आदमी आज से छह महीने बाद कैंसर का मरीज होगा, तो कोई भी चिकित्सक अभी नहीं पकड़ सकता। क्योंकि शरीर में अभी कहीं भी कोई छाप नहीं पड़ी है। मनोवैज्ञानिक भी नहीं पकड़ सकता, क्योंकि अभी मन में भी कोई छाप नहीं पड़ी है। किर्लियान पकड़ लेता है।

उसने इतनी सूक्ष्म फोटोग्राफिक प्लेटें तैयार की हैं, इतनी संवेदनशील, कि वह शरीर और मन से भी जो गहरा है, जिसको आध्यात्मिक लोग ऑरा कहते रहे हैं, शरीर का आभामंडल, शरीर का इलेक्ट्रिक फील्ड, उसमें पकड़ता है वह। जैसे अगर यह मेरे हाथ की अंगुली छह महीने बाद बीमार होने वाली है तो इस अंगुली के आस-पास विद्युत का एक क्षेत्र है जो अभी बीमार हो गया है। पहले विद्युत के क्षेत्र में बीमारी प्रवेश करती है; फिर उस क्षेत्र के माध्यम से वह मन में आती है। फिर मन के माध्यम से वह शरीर तक आती है। भाव, विचार, कृत्य; विद्युत-क्षेत्र, मन, शरीर। छह महीने पूर्व किर्लियान पकड़ लेता है। और वह कहता है, अभी इलाज कर लिया जाए तो यह बीमारी कभी न आएगी। और अभी इलाज बिल्कुल आसान है, क्योंकि अभी कुछ नहीं करना है। अभी इस व्यक्ति के विद्युत-क्षेत्र को ठीक करना है, जो कि कई साधनों से किया जाता रहा है। चीन में एक्युपंचर के द्वारा किया जाता रहा है।

किर्लियान की फोटोग्राफी ने पांच हजार साल पुराने एक्युपंचर को बड़ी महिमा दे दी। लोग समझते थे, यह तो सिर्फ पूर्वीय लोगों की कल्पना है। एक्युपंचर बड़ा वैज्ञानिक सिद्ध हुआ। और पांच हजार साल पुराना है। और एक्युपंचर का जन्म तभी हुआ जब ताओ की विचारधारा गहन हो रही थी। वह ताओ का ही अंग है। एक्युपंचर ताओ का अंग है, जैसे भारत में आयुर्वेद योग का अंग है। ताओ की जो साधना-पद्धति है उसी साधना-पद्धति का हिस्सा है एक्युपंचर। लाओत्से के ये वचन ही उसका आधार हैं कि पूर्व-निवारण कर लो। इस विचार का ही नियोजन शरीर की बीमारी के लिए है--कि बीमारी जब आ जाए तब लड़ना बहुत मुश्किल, और जब शरीर तक आ जाए तो हटाना बहुत कठिन और असाध्य, लेकिन अगर प्राथमिक चरण में ही मुक्त कर ली जाए बीमारी... ।

तो एक्युपंचर क्या करता है? एक्युपंचर सिर्फ शरीर का जो विद्युत-क्षेत्र है, जो इलेक्ट्रिक फील्ड है, उसको बदलता है। एक्युपंचर ने सात सौ बिंदु खोजे हैं शरीर में जहां से बदलाहट की जा सकती है। और उन बिंदुओं पर एक्युपंचर सिर्फ सूई को चुभा देता है, जरा सी गर्म की हुई सूई चुभा दी जाती है। उस गर्म सूई के कारण उस स्थान पर जहां कि छेद पड़ रहा था विद्युत के फील्ड में, विद्युत के क्षेत्र में, उस सूई के कारण विद्युत की धारा बदल जाती है। उस धारा के परिवर्तन से, जो बीमारी होने वाली थी, वह ठीक हो जाती है।

अब यह बात काल्पनिक रहेगी। काल्पनिक इसलिए रहेगी, क्योंकि यह बीमारी अप्रकट थी। अभी तो बीमार को भी पता नहीं था; अभी तो चिकित्सक भी मानने को राजी नहीं था कि इसको कोई बीमारी है। सिर्फ

एक्युपंचरिस्ट, जिनकी कि सारी की सारी दीक्षा बड़ी सूक्ष्म आंखों को जन्माने की है, जो कि शरीर के पास विद्युत को देखने की कोशिश करते हैं। इसलिए एक्युपंचर की ट्रेनिंग बड़ी दुस्साध्य है। दस-बीस साल, पच्चीस साल, फिर भी पक्का नहीं। क्योंकि आपकी आंखों और ध्यान की गति पर निर्भर करेगी कि आप शरीर के आस-पास विद्युत को देखना शुरू कर दें। यह जो किर्लियान है, इसने काम आसान कर दिया। कैमरा पकड़ कर बता देता है। कैमरे में फोटो आ जाता है पूरे शरीर का; शरीर के आस-पास विद्युत की रेखाएं आ जाती हैं। और जहां-जहां रेखाएं छिन्न-भिन्न हैं, टूटी-फूटी हैं, वहीं कोई बीमारी प्रकट होने वाली है। उस विद्युत-क्षेत्र को ठीक कर दिया जाए, बीमारी कभी प्रकट न होगी।

अब इसमें एक अड़चन है। अगर बीमारी प्रकट न हो तो क्या पक्का कि होने वाली थी या नहीं? अगर प्रकट हो तो साफ है कि एक्युपंचर वाले लोग गलत बातें कह रहे थे। अगर वे सफल हो जाएं तो साफ है कि बकवास है, क्योंकि बीमारी हुई नहीं। होने वाली थी, इसका क्या पक्का?

लेकिन किर्लियान की फोटोग्राफी से बड़ी चीजें साफ हो गईं। अब तो प्लेट को वैसे ही देखा जा सकता है जैसे कि एक्स-रे की प्लेट को चिकित्सक देखता है। जैसे एक्स-रे की प्लेट हर बड़े अस्पताल में जरूरी हो गई, आने वाले दस वर्षों में किर्लियान के यंत्र हर अस्पताल में जरूरी हो जाएंगे। तब उचित यह होगा कि बजाय बीमार पड़ने के, पहले ही आप चले जाएं, हर महीने चेक-अप करवा लें कि कहीं कोई गड़बड़ की शुरुआत तो नहीं है।

और उसको वहीं ठीक किया जा सकता है बड़ी आसानी से। क्योंकि मूल में चीजें बड़ी छोटी होती हैं। गंगोत्री बड़ी छोटी है, गौमुख से गिरती है, जरा सा झरना है। बूंद-बूंद पानी रिसता है। वहां कोई भी बदलाहट करनी हो, आसान है। हरिद्वार में कठिनाई होगी। प्रयाग में बहुत मुश्किल। बनारस तो असंभव। बनारस में तो असाध्य हो गया रोग आकर। अब कुछ नहीं किया जा सकता। अब करने का कोई उपाय न रहा। तुम क्यों बनारस के लिए रुके हो जब कि गंगोत्री में ही चिकित्सा हो सकती है?

जैसा शरीर के संबंध में सत्य है वैसा ही आत्मा के संबंध में भी सत्य है। तुम अपने भीतर अंतस-जीवन को उसी समय हल कर लेना जब कि चीजें होने वाली थीं, हुई नहीं थीं; आने वाली थीं, आई नहीं थीं। तुम भविष्य का निवारण आज ही कर लेना। पर इस निवारण के लिए तुम्हारा बहुत प्रगाढ़ होशपूर्ण, जागरूक होना जरूरी है।

"जो बर्फ की तरह तुनुक है, वह आसानी से पिघलता है। जो अत्यंत लघु है, वह आसानी से बिखरता है।"

किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो। परिपक्व होने के पहले ही उपद्रव को रोक दो।

"जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है। नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है। हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है।"

बहुत चल लेने के बाद बदलना मुश्किल हो जाता है। चलने के पहले बहुत सोच कर चलना, ताकि पहले कदम पर ही चीजें ठीक रखी जा सकें। मकान बनाने के पहले ही ठीक से सोच लेना, ताकि नींव ठीक से भरी जा सके। वहां रह गई भूल सदा पीछा करेगी। लौट कर सुधारना बहुत कठिन हो जाता है। कुछ चीजें तो लौट कर सुधारी ही नहीं जा सकतीं। और तुम्हारे जीवन की यही विपदा है कि तुम हजार-हजार यात्राएं चल लिए हो। पहले कदम पर बेहोशी में चले, अब सुधारने की इच्छा होती है। डरते हो तुम खुद ही, कैसे सुधरेगा?

सुधर सकता है। कितना ही कठिन हो, असंभव नहीं है। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी भी ज्यादा देर नहीं हो गई है। समय हाथ में है। और अभी भी अगर जाग जाओ तो कुछ भी खोया नहीं है। जब जाग गए तभी भोर, जब जाग गए तभी सुबह।

लेकिन अब एक-एक सूत्र को ठीक-ठीक से समझ कर कदम रखना है। आज से एक बात का ख्याल रखोः टालो मत। जो समस्या आए उसे निबटाने की कोशिश करो। मत कहो, कल निबटा लेंगे। अगर पत्नी पर क्रोध आया है तो बैठ कर उससे अभी बात कर लो। अभी गंगोत्री में है। अभी चीजें बड़ी सरल हैं। अभी क्रोध में दंश नहीं है, जहर नहीं है। अभी क्रोध सिर्फ एक भाव-दशा है। उससे कह दो कि मैं क्रोधित अनुभव कर रहा हूं। कारण बता दो। बीच बातचीत कर लो। अभी तुम इतने क्रोधित नहीं हो; बातचीत हो सकती है। क्रोध में कहीं बातचीत होती है? फिर तो झगड़ा ही होता है। फिर तो विवाद हो सकता है; चर्चा तो नहीं हो सकती। अभी क्रोध की पहली झलक आई है, पहला धुआं उठा है। अभी बैठ जाओ। हजार जरूरी काम हों, छोड़ दो। इससे ज्यादा जरूरी कुछ भी नहीं है। बैठ कर बात कर लो। मत कहो कि सांझ को कर लेंगे, कि कल कर लेंगे, और कौन जानता है, आई हवा है, चली जाए, बिना ही किए निकल जाए। बिना किए कुछ भी नहीं निकलता। सब अटका रह जाता है।

अगर तुम गंगोत्री में पकड़ने में कुशल हो जाओ, तुम पाओगे, चीजें इतनी सरल हो गईं, इतनी हलकी हो गईं कि समस्या बनती नहीं। अगर मन में लोभ जगा है तो उसे पड़ा मत रहने दो, आंख बंद करके बैठ जाओ, अपने लोभ को पूरा उठा कर देख लो। जो धीरे-धीरे अपने आप उठेगा उसे तुम खुद ही खींच कर निकाल लो बाहर, अप्रकट से प्रकट में ले आओ। जो वृक्ष वर्षों में बड़ा होगा, तुम जादू का काम कर सकते हो।

तुमने जादूगर देखे? आम की गुठली को छिपा देते हैं टोकरी के नीचे; जंतर-मंतर पढ़ते हैं; टोकरी उठाते हैं--पौधा हो गया। फिर टोकरी रख दी; फिर जंतर-मंतर पढ़ा; फिर थोड़ा डमरू बजाया, फिर टोकरी उठाई--झाड़ बड़ा हो रहा है। फिर टोकरी ढांकी; फिर जंतर-मंतर पढ़ा; फिर डमरू बजाया; फिर उठाया--झाड़ में फल लग गए हैं। फिर टोकरी रखी; फिर जादू किया; टोकरी उठाई--फल पक गए हैं। फल तोड़ कर वे तुम्हें दे देते हैं। यह तो सब हाथ की सफाई है। लेकिन तुम अपने भीतर यह बिल्कुल कर सकते हो। यह जंतर-मंतर करो।

लोभ उठता हो, टालो मत। बैठे जाओ; अंधेरा कर लो कमरा; दरवाजे-द्वार बंद कर दो; टोकरी में ढंक जाओ; फेंको जंतर-मंतर, कहो कि बड़ा हो! और भीतर कोई दिक्कत नहीं है; कहो कि बड़ा हो, बड़ा हो जाता है। कहो कि क्रोध बड़ा हो, लोभ बड़ा हो, तुझे मैं पूरा देख लेना चाहता हूं। कल तू अपने आप बढ़ेगा, अभी बढ़ जा! क्या-क्या चाहता है? महल चाहता है? साम्राज्य चाहता है? क्या चाहता है? अभी बोल दे सब! अभी खोल दे सब! कल के लिए क्या रुकना? क्रोध को पूरा उठा लो। क्रोध बड़ी प्रसन्नता से बढ़ेगा; झाड़ बड़ा होगा; जल्दी फल लग जाएंगे; पक जाएंगे। तुम सिकंदर हो गए। सारी दुनिया का राज्य तुम्हारा है। इसको देख लो। इसको पूरा उठा लो। इसको पूरा पहचान लो। और पूरे वक्त होश रखो कि कैसा खेल मन खेल रहा है!

जो असफलता सिकंदर को जीवन के बाद में दिखाई पड़ी वह तुम्हें घड़ी भर में दिखाई पड़ जाएगी कि पा भी लिया दुनिया का राज्य तो क्या होगा? मिल गई सारी संपदा, क्या होगा? क्या करोगे? खाओगे संपदा को? पीओगे संपदा को? और इसे पाने में पूरा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकंदर को मरते वक्त लगा कि मेरे हाथ खाली हैं। तुम घड़ी भर ध्यान करके लोभ को पूरा बढ़ा लो, फल तक पहुंचा दो; सिकंदर हो जाओ; जीत लो सारी दुनिया। न कोई हत्या करनी पड़ती, न कोई हिंसा करनी पड़ती, न कहीं जाना पड़ता। सिर्फ जादू का एक खेल करना है। जो सिकंदर को आखिरी वक्त जीवन गंवा कर लगा कि मेरे हाथ खाली हैं, वह तुम्हें इस छोटे से खेल में ही लग जाएगा कि हाथ खाली हैं। हाथ खाली हैं; यह दौड़ व्यर्थ है। और यह दौड़ व्यर्थ हो जाए तो तुमने आने वाले को रोक दिया, तुमने होने वाले को बदल दिया।

कुछ भी हो भीतर की समस्या, देर मत करो। बीज मत बनाओ। समय मत दो। बढ़ने का मौका मत दो। अभी बढ़ा लो, देख लो। इसी को आत्म-निरीक्षण कहते हैं। और आत्म-निरीक्षण करने में तुम्हारी दोहरी क्षमता

बढ़ेगी। एक तरफ लोभ की व्यर्थता सिद्ध हो जाएगी, निरीक्षण करते-करते तुम्हारा होश भी सिद्ध होगा। ये दोहरे फायदे होंगे। हर समस्या को तुम सीढ़ी बना सकते हो। अगर देर न करो, तो हर समस्या तुम्हें जीवन में परिपक्वता लाने का साधन बन सकती है। समस्या है ही इसीलिए कि तुम उसे सुलझाओ। क्योंकि सुलझाने से तुम बढ़ोगे, प्रौढ़ होओगे। सुलझाने से तुम मजबूत होओगे। समस्या को टालो मत। पलायन मत करो। एक बात।

पिछली समस्याओं को, जिनको टाल दिया है, पलायन करते रहे हो, उनसे लड़ो मत। उनको भी मन में फैलने का मौका दो। तुम बैठ जाओ नदी के किनारे और बहने दो तुम्हारी समस्याओं की धार को। तुम साक्षी, उपेक्षा से भरे, उदासीन, देखते रहो। न इस तरफ, न उस तरफ; न पक्ष में, न विपक्ष में। कामवासना की धारा बहती है, बहने दो। तुम किनारे पर बैठे हो; कुछ लेना-देना नहीं है। न तुम पक्ष में हो, न तुम विपक्ष में हो। न तुम संसारी हो और न तुम साधु हो। यही मेरे संन्यास का अर्थ है कि न तुम संसारी हो और न तुम साधु हो। न तुम भोगी हो, न तुम त्यागी हो। तुम दोनों पक्ष में नहीं हो।

कबीर कहते हैं, पखापखी के पेखने सब जगत भुलाना। पक्ष-विपक्ष के उपद्रव में सारा जगत भूला है।

तुम न पक्ष में, न विपक्ष में। तुम बैठ गए। तुम देख रहे हो। तुम कहो कि आओ, जो जो है। बनने दो रूप। घबड़ाओ मत। मन अगर सुंदर स्त्रियों को भोगने लगे, भोगने दो। तुम इतना ही ख्याल रखो कि तुम पार बैठे देख रहे हो। तुम कुछ भी मत करो। कृत्य किया कि भूल हुई, कि तुमने तलवार उठा ली, कि तुमने कहा मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लिए बैठा हूं, यह क्या हो रहा है। कृत्य किया कि भूल हुई। लड़े कि चूके। लड़े कि हार की बुनियाद रखी। तुम तलवार मत उठाना। तुम बस दोनों हाथ बांध कर बैठ जाना। इसीलिए तो बुद्ध, महावीर, सब दोनों हाथ बांधे बैठे हैं। नहीं तो भूल से हाथ उठ जाए। तुम दोनों हाथ बांध कर बैठ जाना। शरीर को हिलाना-डुलाना नहीं। भीतर कृत्य को हिलाना-डुलाना नहीं। और जो भी मन चाहता हो वह उसे करने देना। भोगने देना स्वर्ग की अप्सराओं को; कुछ हर्जा नहीं है, भोग लेने दो। कुछ बिगड़ भी नहीं रहा; नाटक है, हो लेने दो। तुम्हारा क्या लेना-देना है?

शरीर में छिपे वासना के कण हैं; मन में छिपी वासना की आकांक्षा है; शरीर और मन का खेल है। शरीर की मंच है; मन के अभिनेता हैं। तुम तो केवल साक्षी हो, तुम तो केवल दर्शक हो। तुम्हें उठ कर मंच पर जाने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सम्मिलित होने की कोई जरूरत नहीं है। तुम तो बैठे रहो। थोड़ी देर में खेल बंद होगा, तुम अपने घर चले जाओगे। यह तुम्हारा घर नहीं है। न तुम अभिनेता हो और न तुम मंच हो। शरीर मंच है। शरीर में छिपी हुई बायोलाजी की भूख है, जो काम बनती है, क्रोध बनती है, लोभ बनती है। फिर मन इस सारी शरीर में छिपी हुई भूख को रूप देता है, विचार देता है, रंग देता है, ढंग देता है, कहानी को लिखता है। स्क्रिप्ट मन की है; मन अभिनेता देता है। तुम नाहक ही बीच में आ जाते हो।

तुम बीच में मत आओ। तुम दूरी कायम रखो और देखते रहो। और तब तुम बड़े प्रसन्न होओगे। मन में जैसा नाटक चलता है ऐसा नाटक कहीं भी नहीं चलता। मनोरम है, मनोरंजक है। और मुफ्त है। कहीं जाना नहीं। किसी टिकट-घर के सामने कतार लगा कर खड़े होना नहीं। जब आंख बंद की तब खेल चल ही रहा है। और तुम जितने शांत होकर बैठोगे, खेल उतना रंगीन हो जाएगा। पहले हो सकता है, शुरू-शुरू में नाटक ब्लैक एंड व्हाइट में हो, पुराने किस्म की फिल्म चले। जल्दी ही मल्टीकलर, अनेक रंग, बहुविध रंग प्रकट होंगे--अगर तुम बैठे रहो। पहले सांसारिक खेल चलेगा। अगर तुम बैठे रहे, जल्दी ही सांसारिक खेल गिर जाएंगे और जिनको आध्यात्मिक खेल कहते हैं, वे चलने शुरू होंगे। कुंडलिनी जग रही है; प्रकाश दिखाई पड़ रहा है; राम खड़े हैं धनुष लिए; कृष्ण बांसुरी बजा रहे हैं; जीसस सूली पर लटके हैं--ये आध्यात्मिक नाटक हैं। ये भी नाटक ही हैं। इनका भी सारा का

सारा खेल मन का ही है। और इनकी मंच भी शरीर है। तुम इनको भी देखते रहो। जैसे संसार बीत गया, ऐसे यह खेल भी बीत जाएगा। तुम देखते ही रहो। तुम दर्शक से ज्यादा इंच भर कुछ और मत बनना।

बड़ा कठिन है। कई बार एकदम दिल हो जाएगा, अरे कूद पड़ो बीच में। कई बार तुम पाओगे कि भूल ही गए और कूद पड़े। जैसे ही पाओ कि कूद पड़े, फिर वापस अपनी कुर्सी पर लौट आना और बैठ जाना। कई बार यह भूल होगी। पुरानी आदत है। इसमें भी कुछ परेशान होने की जरूरत नहीं। जब भूल गए, भूल गए; अब क्या करना। जब याद आ गई, वापस लौट कर फिर बैठ कर देखने लगे। पहले संसार गुजरेगा, फिर अध्यात्म गुजरेगा।

संसार से तो बच जाना बहुत आसान है, अध्यात्म से बचना बहुत कठिन है। क्योंकि वह और भी मनोरंजक है। बहुरंग है; उसके रंग संसार में दिखाई ही नहीं पड़ते। तुमने नीला रंग देखा है, लेकिन वह कुछ भी नहीं है। जिस दिन तुम्हारे भीतर नील तारा दिखाई पड़ेगा, जब तुम अपने ही तीसरे नेत्र में देखोगे कि नील तारा प्रकट हो रहा है, वह नीलिमा अलौकिक है। उसमें तुम तरोबोर हो जाओगे, उसमें तुम डूब जाओगे, उसमें तुम भूल जाओगे कि तुम दर्शक हो, अपनी कुर्सी पर बैठे रहो। तुम भोगी बन जाओगे। क्योंकि कुछ भी नहीं है अप्सराओं में, और कुछ भी नहीं है धन-तिजोरी में, जब भीतर के सूक्ष्म रंग प्रकट होते हैं। और वे उसी के सामने प्रकट होते हैं जो संसार को बिता दे। संसार में जो उलझ गया उसके सामने वे प्रकट होने का मौका ही नहीं आता। जिसने सांसारिक चित्रों को बीत जाने दिया उसके सामने आध्यात्मिक चित्र आने शुरू होते हैं।

वह अच्छा लक्षण है। वह बताता है कि तुम थोड़े शांत हुए हो, तुम थोड़ी देर कुर्सी में बैठे रहे हो, तुम थोड़ी देर उछल-उछल कर मंच पर नहीं पहुंचे हो। इसलिए अब ये रंग आने शुरू हुए। और जब तुम पाओगे भीतर के रंग--बड़े अनूठे। हर चीज अलौकिक हो जाती है। ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं, जो कि बड़े-बड़े संगीतज्ञ पैदा नहीं कर सकते। बड़े से बड़ा संगीतज्ञ जो कर सकता है वह भी उन ध्वनियों की प्रतिध्वनि मालूम होगी। चांद-तारे हजार-हजार, सूरज करोड़ों! बड़ा अनूठा लोक प्रकट होता है।

तुम जैसे-जैसे शांत होते हो, वैसे-वैसे बड़े अनूठे रूप-रंग की दुनिया प्रकट होती है। और वह इतनी वास्तविक मालूम होती है कि यह संसार माया मालूम पड़ेगा। जिसने भीतर का नील तारा देख लिया उसे सब जगत के नीले रंग बस जस्ट फीके-फीके मालूम पड़ेंगे, उसकी ही कुछ छाप, वह भी धुंधली-धुंधली, कार्बन कापी। जिसने भीतर की सुंदर अप्सरा देख ली, उसे बाहर की सब स्त्रियां फीकी-फीकी मालूम पड़ेंगी, उजड़ी-उजड़ी, खंडहर। जिसने भीतर के धन की झलक पा ली, सब तिजोरियां खाली मालूम पड़ेंगी।

लेकिन ध्यान रखना कि वह भी अभी बाहर है; सब दृश्य बाहर हैं। भीतर तो केवल द्रष्टा है। तो इनको भी गुजर जाने देना। बहुत से संसार में उलझे हैं; बहुत से अध्यात्म में उलझ जाते हैं। मेरे पास वे अध्यात्म में उलझे वाले लोग आते हैं। वे मुझसे चाहते हैं, मैं उनकी गवाही दूं।

अब मेरी बड़ी मुश्किल है। अगर मैं उनको कहूं कि हां, बड़ा गजब का काम हो रहा है, तो उसमें उलझते हैं और। अगर उनको कहूं कि इसकी फिक्र न करो, तो वे उदास होते हैं। वे कहते हैं कि मैं सहायता नहीं दे रहा, उलटा उनको उदास कर रहा हूं। हम बड़ी आशा से आए थे। अगर मैं उनको कहूं कि ये नील तारे, ये सूरज हजार-हजार, ये सब भी कल्पनाएं हैं; यह तुम्हारे कृष्ण बंसी बजाते हुए, यह भी तुम्हारे मन का खेल है; ये तुम्हारे बुद्ध, महावीर, ये तुम्हीं बना रहे हो, यह आखिरी मन का भुलावा है; तो उनको पीड़ा होती है कि उनके कृष्ण को मैं कह रहा हूं कि यह मन की कल्पना है। और वे बड़ी मुश्किल से पा सके हैं इसको, और मैं उनसे यह भी छीने ले रहा हूं।

तो या तो वे भाग ही खड़े होते हैं; फिर दोबारा लौट कर नहीं आते; कि ऐसे आदमी के पास क्या जाना! वे तो उन आदमियों की तलाश करते हैं जो कहते हैं, गजब हो गया! तुम तो सिद्ध पुरुष हो गए; तुमने तो पा लिया। यही तो असली रहस्य है। यही तो अध्यात्म है।

नहीं, न तो यह असली रहस्य है और न असली अध्यात्म है। यह भी मन का ही खेल है। मन जब देखता है कि तुम संसार में नहीं उलझाए जा रहे जो मन नई लालच फेंकता है। मन कहता, पुराना लोभ गया, कोई फिक्र नहीं। तुमने मदारी की ट्रिक पकड़ ली, मदारी कहता है, रुको, हम दूसरी दिखाते हैं; इससे भी बढ़िया। यह तो कुछ भी नहीं, यह तो हमने ऐसे ही दिखा दी थी। मन मदारी है। और मन आखिरी तक दिखाएगा। और होश को तुम्हें सम्हाले जाना है।

एक ऐसी घड़ी आती है कि तुम नहीं थकते होश से और मन दिखाने से थक जाता है। बस उसी घड़ी क्रांति घटित होती है। फिर मन का मदारी अपनी टोकरी, अपना सामान और अपने जमूरे को लेकर कहता है, चल बेटा! वह चल पड़ा। वह तुम्हें छोड़ गया। नाटक बंद हुआ। मंच खो गई। तुम अकेले रह गए अपनी कुर्सी पर।

उसी को महावीर ने सिद्धशिला कहा है; कुछ भी न बचा, अकेले बैठे रह गए। वही बैठक सिद्धि है। अब कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अब बस देखने वाला है। अब कोई आब्जेक्ट न रहा, सिर्फ सब्जेक्टिविटी है। अब सिर्फ आत्मा बची, अनुभव न बचा।

इसलिए तो कबीर कहते हैंः शून्य मरे, अजपा मरे, अनहद हू मरि जाए।

शून्य भी मर जाता है। क्योंकि शून्य भी अनुभव है। अगर तुम कहते हो कि मुझे शून्य का अनुभव हो रहा है, यह भी मन का ही नाटक है। अनुभव मात्र मन का है। एक्सपीरिएंस ऐज सच इ.ज ऑफ दि माइंड। जब सब अनुभव चला जाता है। शून्य मरे, अजपा मरे, अनहद हू मरि जाए।

कुछ भी नहीं बचता, वही वास्तविक शून्य है। जहां कोई अनुभव नहीं बचता, वही वास्तविक शून्य है। जहां तुम यह भी नहीं कह सकते कि मुझे शून्य का अनुभव हो रहा है। कुछ बचा ही नहीं; अनुभव किसका? सिर्फ अनुभोक्ता रह गया--अपनी परम महिमा में, अपनी परम ऊर्जा में प्रतिष्ठित। सब खो गया। नाटक बंद हुआ। तुम अपने घर आ गए। यह घर लौट आना मोक्ष है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले उससे निपट लो।"

यही निपटना है। मन में सब सूक्ष्म बीज छिपे हैं। तुम उनसे निपट लो। उनको प्रकट हो जाने दो मन में; कृत्य मत बनाओ उन्हें। कृत्य बनते ही कर्म का जाल शुरू होता है। मन में प्रकट होने दो। तुम उन्हें देखो और साक्षी बन जाओ।

"परिपक्व होने के पहले उपद्रव को रोक दो। जिसका तना भरा-पूरा है, वह वृक्ष नन्हे से अंकुर से शुरू होता है।"

मिटाना हो तो नन्हे अंकुर को मिटा दो। बड़े वृक्ष को मिटाना मुश्किल हो जाएगा। फिर जिसे मिटाना ही है उसे बड़ा क्यों करना? फिर जिससे पार ही होना है उसे सींचना क्यों? फिर जिससे दूर ही जाना है उससे लगाव क्यों बनाना? फिर जिससे मुक्त ही होना है उससे किसी तरह का मोह क्यों बसाना? जब इस जगह से हट ही जाना है, तो इसे धर्मशाला ही समझो, घर क्या बना लेना? पड़ाव को मंजिल मत बनाओ। इसके पहले कि पड़ाव मंजिल बने, हट जाओ। इसके पहले कि कोई चीज तुम्हें पकड़ ले, इसके पहले कि तुम जकड़ जाओ, तभी सावधान हो जाओ।

"नौ मंजिल वाला छज्जा मुट्ठी भर मिट्टी से शुरू होता है। हजार कोसों वाली यात्रा यात्री के पैर से शुरू होती है। ए जर्नी ऑफ ए थाउजैंड ली बिगिन्स एट वंस फीट।"

लाओत्से के प्रसिद्धतम वचनों में से एक यह है।

कथा है--पुरानी चीनी कथा है--कि एक आदमी बहुत वर्षों से सोचता था कि पास के पहाड़ पर एक तीर्थ स्थान था, उसकी यात्रा को जाना है। लेकिन दूरी थी। कोई बीस मील दूर था। तो सुबह लोग बड़ी जल्दी जाते थे; दो बजे रात निकल जाते थे, ताकि ठंडे-ठंडे पहुंच जाएं। पैदल जाना ही एकमात्र उपाय था उस पहाड़ पर। वह टालता रहा था बहुत दिन तक। दूर-दूर से यात्री उसके गांव से गुजरते थे। आखिर उससे न रहा गया। एक दिन उसने तय ही कर लिया। उसने पुराने यात्रियों से पूछा कि साज-सामान क्या ले जाना पड़ेगा? उन्होंने और सब सामान भी बताया और कहा कि एक लालटेन भी ले जाना। क्योंकि रात दो बजे अंधेरा होता है। रास्ता बीहड़ है। रोशनी के बिना चलना खतरनाक है। अनेक लोग गिर गए हैं और मर गए हैं।

तो वह आदमी रात दो बजे उठा। उसने लालटेन जलाई। वह गांव के बाहर आया। वह बड़ा गणितज्ञ रहा होगा। बड़े हिसाब-किताब का आदमी था। उसने गांव के बाहर आकर देखा लालटेन को, कितनी दूर तक रोशनी पड़ती है? मुश्किल से कोई दस कदम रोशनी पड़ती थी। उसने कहा, दस कदम रोशनी पड़ती है और बीस मील का रास्ता है। मारे गए। अंधेरा बहुत, रोशनी कम। गणित साफ है। दस कदम रोशनी पड़ती है; बीस मील का रास्ता है। कैसे पार होगा? वह वहीं बैठ गया, कि क्या करना? लौटना भी शोभा नहीं देता, बामुश्किल तो निकले घर से। कई वर्षों से सोचा, चर्चा की, आखिर घर के लोग भी ऊब गए थे उससे कि जाना हो तो जाओ भी, बातचीत क्या लगा रखी है! तो वह बैठ गया।

एक फकीर और यात्रा पर आ रहा था। उसके पास और भी छोटी लालटेन थी। उसने उस फकीर को रोका कि रुको, झंझट में पड़ोगे। हम पर बड़ी लालटेन है; दस कदम तक रोशनी पड़ती है। तुम ऐसी लालटेन लिए हो कि मुश्किल से चार कदम दिखाई पड़ रहा है। कैसे पहुंचोगे? बीस मील की यात्रा है!

वह फकीर खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, पागल, अगर एक कदम रोशनी पड़ जाए तो काफी है। क्योंकि एक कदम से ज्यादा कोई चलता कहां है! और एक कदम रोशनी से तो लोग हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेते हैं। बस उतनी रोशनी काफी है, एक कदम दिख जाए। तुम एक कदम चल लिए, फिर एक कदम और दिखने लगा, तुम एक कदम और चल लिए। दो कदम तो कोई भी एक साथ चल नहीं सकता।

उस गणितज्ञ ने कहा, तुम मुझे समझाने की कोशिश मत करो। गणित में मैं निष्णात हूं। साफ बात है कि दस मील में दस कदम का भाग दो। इस तरह तुम मुझे धोखा न दे सकोगे। और मैं कोई श्रद्धालु आदमी नहीं हूं, तर्कनिष्ठ आदमी हूं।

लाओत्से कहता है कि वह आदमी कभी भी यात्रा पर न जा पाएगा। एक कदम से हजार मील की यात्रा शुरू होती है; एक कदम से ही पूरी भी हो जाती है। इसलिए तो लाओत्से इसको कहता है, आरंभ और अंत। बिगनिंग एंड एंड। पहले कदम पर ही यात्रा की शुरुआत है और पहले कदम पर ही यात्रा का अंत है।

पहला कदम क्या है? कि तुम समस्याओं को उनके आने के पहले निवारण कर लो; यही प्रथम, यही अंतिम है। इतना तुमने कर लिया, सब हो गया। इतना तुमने साध लिया, सब सध गया। एक कदम तुम साध लो--गंगोत्री का, प्रथम चरण का--फिर कुछ उलझता नहीं। चीजें सुलझती चली जाती हैं। और एक कदम सुलझाना तुम जानते हो। एक कदम से ज्यादा कोई कभी उठाता ही नहीं। जब भी एक कदम उठाओगे, सुलझा लोगे। आज सुलझा लिया, कल भी सुलझा लोगे, परसों भी सुलझा लोगे। एक कदम उठता रहेगा, सुलझता रहेगा; एक कदम रोशनी

पड़ती रहेगी। फिर तीर्थ कितने ही दूर हो, किसको चिंता है? पहला कदम जिसका उठ गया ठीक, सुलझा हुआ, उसकी मंजिल आ गई करीब।

इसलिए लाओत्से कहता है, यही अंत, यही प्रारंभ। और जो प्रारंभ में ही भटक जाए वह कभी अंत तक नहीं पहुंचता। वह एक ऐसी नदी की तरह है जो मरुस्थल में खो जाती है, जो सागर तक नहीं पहुंच पाती। तुम्हें अगर सागर तक पहुंचना हो तो नजर सागर पर मत रखो, नजर एक कदम पर रखो। एक कदम काफी है। उसको सुलझाया हुआ उठा लो बस। इस क्षण सुलझे रहो। सभी क्षण इसी क्षण से निकलेंगे। सभी कदम इसी कदम से निकलेंगे। एक सुलझ गया, दूसरा उस सुलझाव से ही तो निकलेगा। इसलिए उसकी चिंता मत करो। कल की फिक्र मत करो। भविष्य का विचार मत करो। मंजिल मिलेगी या न मिलेगी, इस चिंता में मत पड़ो। तुम एक कदम को सुलझा लो। जिन्होंने एक सुलझा लिया, उन्होंने सदा ही मंजिल पा ली है। क्योंकि वही प्रारंभ है और वही अंत है।

आज इतना ही।

एक सौ पांचवां प्रवचन

वे वही सीखते हैं जो अनसीखा है

Chapter 64 : Part 2

Beginning And End

He who acts, spoils;
He who grasps, lets slip.
Because the Sage does not act, he does not spoil,
Because he does not grasp, he does not let slip.
The affairs of men are often spoiled within an ace of completion,
By being careful at the end as at the beginning Failure is averted.
Therefore the Sage desires to have no desire,
And values not objects difficult to obtain.
Learns that which is unlearned,
And restores what the multitude have lost.
That he may assist in the course of Nature,
And not presume to interfere.

अध्याय 64 : खंड 2

आरंभ और अंत

जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है;
जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।
क्योंकि संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं;
क्योंकि वे पकड़ते नहीं हैं, इसलिए वे छूटने भी नहीं देते।
मनुष्य के कारबार अक्सर पूरे होने के करीब आकर बिगड़ते हैं।
आरंभ की तरह ही अंत में भी सचेत रहने से, असफलता से बचा जाता है।
इसलिए संत कामनारहित होने की कामना करते हैं।
और कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य नहीं देते।
वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो,

और उसे वे पुनः स्थापित करते हैं, जिसे समुदाय ने खो दिया है।

यह कि प्रकृति के क्रम में वे सहायक तो होते हैं,

लेकिन उसमें हस्तक्षेप करने की धृष्टता नहीं करते।

अनंत की यात्रा में जैसे प्रारंभ में अंत छिपा है, वैसे ही अंत में प्रारंभ भी छिपा है। अगर कोई सम्हल कर कदम उठाए तो पहले ही कदम में मंजिल पास आ जाती है। और अगर कोई जरा सी चूक कर दे, बेहोश हो जाए, तो आखिरी कदम में भी मंजिल चूक जाती है। सवाल होश का है।

होश से उठाया पहला कदम आखिरी कदम सिद्ध होता है। लेकिन जरा सी बेहोशी की छाया, और तुम फिर वहीं के वहीं आ जाते हो जहां से यात्रा शुरू हुई थी। बच्चों का छोटा सा खेल तुमने देखा होगाः सांप और सीढ़ी। हर कदम पर सांप है, हर कदम पर सीढ़ी है। सीढ़ी पर पड़ गया पैर तो ऊपर चढ़ जाते हो। सांप पर पड़ गया पैर तो नीचे उतर आते हो।

सांप और सीढ़ी का खेल पूरे जीवन का खेल है। आखिरी मंजिल से भी गिर सकते हो। आखिरी कदम से भी वापस वहीं आ सकते हो जहां से शुरू किया था। और पहले कदम से भी पहुंच सकते हो।

इसलिए जितनी सावधानी पहले कदम पर जरूरी है उससे भी ज्यादा सावधानी आखिरी कदम पर जरूरी है। क्योंकि पहले कदम पर तो कुछ भी खोने को नहीं है, इसलिए थोड़ी सावधानी से भी चल जाएगा। पहले कदम पर तो पाने ही पाने को है, खोने को कुछ भी नहीं है। अगर बेहोश भी रहे तो कुछ खोओगे न, क्योंकि तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं। कदम पहला है। अभी मंजिल शुरू ही नहीं हुई है। अभी यात्रा का प्रारंभ भी नहीं हुआ। तुम हारे ही हुए हो। लेकिन आखिरी कदम पर तो बहुत होश चाहिए, प्रगाढ़ होश चाहिए। क्योंकि जरा सी चूक, और सब खो जाएगा। जो बिल्कुल मिला ही मिला हुआ था, पहुंचने के ही करीब थे, जो हाथ के पास ही आ गया था, जिस पर मुट्ठी बंध ही जाती क्षण भर में, वह चूक जा सकता है।

जैसे खतरे पहले कदम के हैं वैसे ही खतरे--और उससे भी बड़े खतरे--आखिरी कदम के हैं।

कल मैंने तुमसे पहले कदम के खतरों की बात कही। पहला खतरा तो यह है कि तुम टालते होः कल उठाएंगे, परसों उठाएंगे। स्थगित करते हो। पोस्टपोनमेंट पहले कदम का बड़े से बड़ा खतरा है। आशा भर करते हो, उठाएंगे। धीरे-धीरे आशा करना भी एक आदत हो जाती है। फिर तुम रोज ही टालते जाते हो। टालना तुम्हारा ढंग हो जाता है। फिर पहला कदम कभी नहीं उठता। और जिसका पहला ही नहीं उठा उसके अंतिम उठने का तो सवाल नहीं है।

दूसरा खतरा है पहले कदम का कि जब तुम उठाते भी हो कदम तब तुम संघर्ष में उतर जाते हो। तुम यात्रा में बहते नहीं, तैरने लगते हो। तुम एक तरह की लड़ाई शुरू कर देते हो। जैसे कोई दुश्मनी है, जैसे प्रकृति मित्र नहीं, शत्रु है। तब तुम एक-एक चीज से लड़ने लगते हो। पहले स्थगित करके रुके थे, अब लड़ाई के कारण रुक जाते हो।

लड़ाई से कोई कभी पहुंचा नहीं। कोई है ही नहीं जिससे लड़ो। अपना ही आपा है, अपना ही विस्तार है। लड़ना किससे है? लड़ने योग्य कोई दूसरा मौजूद होता तो ठीक था। तो जब भी तुम लड़ोगे, एकांत में अपनी ही छाया से, परछाईं से लड़ोगे। तुम अपनी शक्ति व्यय करोगे। इस तरह जीतोगे किसे? वहां छाया है; जीत भी गए तो हाथ कुछ न लगेगा। और हार गए तो बुरी होगी हार; आत्मविश्वास खो जाएगा।

दो खतरे हैंः स्थगन और संघर्ष। दोनों से खतरे से बचने का उपाय हैः जो करना हो उसे एक क्षण भी टालना मत। यही क्षण है वह जब उसे कर लेना। कल कभी आता नहीं। बस वर्तमान अकेला अस्तित्व है। और इस क्षण से तुम क्षण भर को भी हटे, कहीं तुमने और आशा बांधी कि तुम भटके। और जब कदम उठाओ तो तुम्हारा कदम अस्तित्व के साथ सहयोग का कदम हो, समर्पण का। विरोध का नहीं, संघर्ष का नहीं। क्योंकि जिन्होंने भी जाना है, उन्होंने बह कर जाना है नदी की धार के साथ। तैर कर, धार के विपरीत तैर कर किसी ने कभी नहीं जाना। वह जो धार के विपरीत तैरना चाहता है अहंकार, वही तो बाधा है। जब तुम बहते हो तब कोई अहंकार निर्मित नहीं होता; क्योंकि तुम कुछ कर ही नहीं रहे हो।

इसलिए लाओत्से का बड़ा जोर निष्क्रियता पर है, क्योंकि निष्क्रियता में अहंकार के बनने की कोई संभावना नहीं रह जाती। जरा सा कर्म, और अहंकार बनता है। मैंने किया, मैंने जीता, मैंने पाया; मेरा चरित्र, मेरा ज्ञान, मेरा त्याग, मेरा धन; सब से मैं निर्मित होता है। कुछ किया ही नहीं; न चरित्र करके पाया, न ज्ञान करके पाया। निष्क्रियता में हुआ उदभूत चरित्र; निष्क्रियता में फला ज्ञान, निष्क्रियता में फैला प्रकाश; तुम्हारा किया कुछ न हुआ; अनकिए सब हुआ। फिर कैसा अहंकार? समर्पण निष्क्रियता है; संघर्ष कर्म है।

ये दो खतरे हैं प्रथम चरण के। अंतिम चरण के भी दो खतरे हैं। उन्हें भी हम समझ लें; फिर सूत्र में प्रवेश आसान हो जाए।

अंतिम चरण का पहला खतरा तो यह है, जो कि वे सभी लोग जानते हैं जिन्होंने कभी भी पैदल कोई यात्रा की हो; और यह यात्रा पैदल यात्रा है, कोई यान नहीं है परमात्मा तक जाने के लिए, तुम्हें अपने दो छोटे पैरों पर ही सारा भरोसा रखना है। अगर तुमने कभी भी कोई पैदल यात्रा की है--तुम बद्री-केदार गए हो, तुम कोई तीर्थ पर गए हो, हज गए हो, या ऐसे ही कभी तुम किसी पहाड़ पर सूर्योदय का दर्शन करने गए हो--तो तुम्हें पता होगा, जब मंजिल करीब आ जाती है तभी थकान सबसे ज्यादा मालूम होती है। जब तक दूर होती है तब तक तो तुम आशा के बंधे चलते रहते हो; अपने को किसी तरह खींचते रहते हो कि बस थोड़ी दूर और, बस थोड़ी दूर और। समझाए रखते हो कि चार कदम और चल लो, पहुंच जाओगे। लेकिन जब मंजिल बिल्कुल सामने आ जाती है, तुम मंदिर के द्वार पर पहुंच जाते हो, तब तुम सुस्ताने बैठ जाते हो कि अब तो कोई भय न रहा, मंजिल आ ही गई।

साधारण यात्रा में तो कोई खतरा नहीं है, क्योंकि तुम सुस्ताओ मंदिर की सीढ़ी पर बैठ कर तो मंदिर दूर नहीं हो जाएगा। लेकिन उस परम यात्रा में खतरा है; क्योंकि वह कोई थिर मंदिर नहीं है। वह जो मंदिर है परम सत्य का वह कोई जड़ वस्तु नहीं है कि कहीं रखी है। वह तो तुम्हारी भावदशाओं पर निर्भर है उसकी दूरी और फासला। जब तक तुम चलते रहते हो, वह पास है। जैसे ही तुम ठहरते हो, वह दूर हो गया। जब तक तुम बहते रहते हो, वह पास है। जैसे ही तुम सुस्ताते हो, वह दूर हो गया।

तो अगर परम मंजिल के पास पहुंच कर--जब तुम्हें दिखाई पड़ने लगा सब, तब तुम्हारा पूरा मन कहेगा कि अब तो सुस्ता लो, अब कोई जल्दी नहीं है, अब तो सामने ही द्वार है, थकान मिट जाएगी, उठेंगे, द्वार खोल लेंगे--अगर तुमने तब नींद लगा ली, सुस्ताने लगे, आलस्य ने पकड़ लिया, तो जब तुम आंख खोलोगे तुम अपने को वहीं पाओगे जहां से यात्रा शुरू की थी। मंदिर तुम्हें दिखाई न पड़ेगा। तुम पाओगे, अपने घर के द्वार पर बैठे हो। क्योंकि उससे दूर होने का एक ही रास्ता है, वह है आलस्य। उससे दूर होने की एक ही व्यवस्था है, वह है प्रमाद। यह ख्याल ही, कि पहुंच गए, खतरा है। जैसे ही यह ख्याल आया कि पहुंच गए, पैर ढीले पड़ने लगते हैं, सुस्ताने का मन होने लगता है। और जब पहुंच ही गए तो अब जल्दी क्या है? और जिसने भी यह भूल की, उसकी सारी

की सारी चेष्टा व्यर्थ हो जाती है, पानी फिर जाता है। और तुममें से बहुतों को मैंने बहुत बार उस मंजिल के करीब पहुंचते देखा है। और फिर यह भी देखा है कि तुम सुस्ताने लगे। और फिर यह भी देखा है कि तुम वापस अपने घर के द्वार पर खड़े हो।

आखिरी कदम किसी भी क्षण पहला कदम बन सकता है, जैसे कि पहला कदम आखिरी बन सकता है। जरा तुम थके, जरा तुम्हें आलस्य पकड़ा, जरा तुमने कहा कि दो क्षण आंख बंद कर लें और विश्राम कर लें। विश्राम किस बात से? विश्राम का अर्थ इस यात्रा में है, थोड़ी देर मूर्च्छित हो जाएं। होश तो यात्रा के कदम हैं; बेहोशी सुस्ताना है। थोड़ा बेहोश हो लें, अब क्या डर है? जरा सी बेहोशी, और मंजिल उतनी ही दूर हो जाती है जितनी कभी थी।

दूसरा खतरा है--जो और भी सूक्ष्म और बारीक है--और वह खतरा यह है कि जैसे ही मंजिल सामने आती है, बड़े आनंद से, बड़े पुलक से तन-प्राण भर जाता है। सब तरफ अनाहत का नाद गूंजने लगता है। ऐसा आनंद तुमने कभी जाना न था। बिन घन परत फुहार। तुम भीग-भीग जाते हो। तुम्हारा रोआं-रोआं सरोबोर हो जाता है। तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन में एक नया संगीत आ जाता है। आंख खोलते हो तो रहस्य; आंख बंद करते हो तो रहस्य; जहां देखते हो वहां रहस्य। आश्चर्यचकित, आत्मविभोर, अवाक तुम खड़े रह जाते हो। इस घड़ी में दो संभावनाएं हैं।

एक संभावना तो है कि यह आनंद इसलिए हो रहा है कि तुम निकट पहुंच गए स्वभाव के। यह स्वाभाविक है। और अगर यह आनंद स्वभाव के निकट पहुंचने से फलित हो रहा है तो यह जो उत्सव का वाद्य बजने लगा तुम्हारे भीतर और ये जो फूल खिलने लगे, और ये जो हजार-हजार राग-रागिनियां प्रकट हो गईं, और यह जो धीमा, शीतल प्रकाश तुम्हारे चारों तरफ बरसने लगा, और ये जो करोड़-करोड़ दीए जल गए, यह सब शुभ है और इनके जलने से तुम और करीब आओगे, यह द्वार पर तुम्हारा स्वागत है। बहुत दिन का भटका हुआ कोई वापस लौट आया है घर; सारा अस्तित्व उसके स्वागत में वंदनवार सजाता है। अगर यह उत्सव स्वभाव के निकट आने का है तो तुम्हारी जो आखिरी अस्मिता बची रह गई होगी वह भी यहां आकर पिघल जाएगी--इस उत्सव की ऊष्मा में। इस उत्सव की गर्मी में तुम्हारी आखिरी लकीर जो थोड़ी-बहुत मैं-भाव की बची रही होगी, आत्मबोध जो थोड़ा-बहुत बचा रहा होगा कि मैं हूं--कितना ही शुद्ध, लेकिन मैं हूं तो अशुद्ध ही है--वह लकीर भी पिघल जाएगी इस उत्सव में। इस उत्सव में तुम हिस्से हो जाओगे। तरंग खो जाएगी, सागर बचेगा। यह तो ठीक है।

लेकिन खतरा भी यहीं है। अगर कहीं तुमने ऐसा समझा कि मैं पहुंच गया, मैंने पा लिया, कि तुम पहले कदम पर वापस फेंक दिए जाओगे। शायद पहले कदम से भी पीछे वापस फेंक दिए जाओगे।

फर्क कहां है? फर्क बहुत बारीक है। ज्ञानी तो समझेगा इस क्षण में कि परमात्मा ने मुझे पा लिया, और अज्ञानी समझेगा कि मैंने परमात्मा को पा लिया। बस इतना ही फर्क है। ज्ञानी तो कहेगा कि आ गया घर, लीन होता हूं अब, डूबता हूं अब; अज्ञानी समझेगा, पा लिया आखिरी भी, अब पाने को कुछ न बचा; अब मेरा अहंकार अंतिम शिखर पर है। ज्ञानी तो पिघल जाएगा; क्योंकि परमात्मा ने मुझे पा लिया; उसकी अनुकंपा, उसका प्रसाद। जैसे छोटा बच्चा मां की गोद में सिर रख कर खो जाएगा, ऐसे ज्ञानी खो जाएगा। अज्ञानी अकड़ कर खड़ा हो जाएगा, और कहेगा कि मैंने परमात्मा को भी पा लिया! जो बड़े-बड़े खोजी न पा सके, जहां बड़े-बड़े भटक गए, वहां भी मैं जीत गया! अहंकार अपनी आखिरी भभक से उठेगा। और एक क्षण में तुम आखिरी शिखर से उतर आओगे आखिरी गर्त में।

और दोनों एक जैसे लगते हैं। एंफेसिस, जोर का फर्क है। ज्ञानी कहता है, परमात्मा ने पा लिया मुझे; जोर परमात्मा पर है। अज्ञानी कहता है, मैंने पा लिया परमात्मा को; जोर मैं पर है। ज्ञानी इस महोत्सव में लीन हो जाता है; अज्ञानी इस महोत्सव को भी मुट्ठी में बांधने की कोशिश करता है। ज्ञानी अपने को छोड़ देता है; अज्ञानी इस विराट को पकड़ने की कोशिश करता है। एक क्षण में सब व्यर्थ हो जाता है, जन्मों-जन्मों की चेष्टा पर पानी फिर जाता है।

ये दो खतरे हैं अंत के। प्रथम कदम से लेकर अंतिम कदम तक होश को सम्हाले रखना है। और जैसे-जैसे करीब पहुंचते हो वैसे-वैसे खोने की संभावना बढ़ती है। क्योंकि जिसके पास है वही खो सकता है। अज्ञानी के पास है ही क्या? खोएगा भी क्या? लेकिन जैसे-जैसे तुम परमात्मा के, परम निधि के पास पहुंचते हो, कुछ तुम्हारे पास होना शुरू हो गया। खजाना बरस रहा है। अब और भी होश चाहिए। अब और भी होश चाहिए। आखिरी द्वार पर खड़े, इसके पहले कि मंदिर तुम्हें अपने भीतर समा ले, कि मंदिर का द्वार खुले और तुम मंदिर के गर्भ में लीन हो जाओ, सबसे बड़ा खतरा वहीं आखिरी क्षण में है। और सबसे ज्यादा होश की वहीं जरूरत है।

तुममें से बहुतों को अनेक बार मैं अनुभव करता हूं कि जरा सी झलक मिलती है, और तुम वहीं से फेंक दिए जाते हो। तुम्हारी झलक ही तुम्हारा पतन होती है। जैसे ही झलक मिलती है वैसे ही अहंकार अकड़ जाता है। तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम समझने लगते हो, तुमने कुछ पा लिया, तुम कुछ हो गए, तुम विशिष्ट हो, अब तुम कोई साधारण नहीं।

एक बूढ़े संन्यासी कुछ दिन पहले मेरे पास आए। कुछ भी पाने को नहीं है अभी। ऐसी छोटी-छोटी मन की सूक्ष्मताओं की झलकें मिली हैं, कि कभी शांत बैठे हैं तो प्रकाश दिखाई पड़ गया है, कि कभी शांत बैठे हैं तो भीतर ऊर्जा का उठता हुआ स्तंभ दिखाई पड़ गया है, ऐसी छोटी-छोटी बातें हैं जिनका कोई बड़ा मूल्य नहीं है, जो कि मन के ही खेल हैं; जिनके कि पार जाना है; जिनमें उलझे तो कभी भी परमात्मा तक पहुंचा नहीं जा सकता। बड़े परेशान भी थे, क्योंकि अब आगे कैसे बढ़ें? मैंने उनसे कहा कि साफ सी बात है। आगे कैसे बढ़ें, यह बड़ा सवाल नहीं है; जो आपको अभी तक हुआ है, उसको आप पकड़े हैं तो आगे कैसे बढ़ेंगे? जैसे कोई आदमी रास्ते के किनारे लगे एक वृक्ष को पकड़ ले, फिर पूछे कि अब आगे कैसे बढ़ें?

इसमें क्या मामला है? इस वृक्ष को छोड़ो! इसको पकड़े हो तो आगे कैसे जाओगे? छोड़ कर ही कोई आगे जाता है। एक सीढ़ी छोड़ो तो दूसरी सीढ़ी पर पैर पड़ता है। सीढ़ी पकड़ लो तो आगे पैर पड़ना बंद हो जाता है।

अब वे अकड़े हुए हैं। वे कहते हैं कि उनकी कुंडलिनी जग गई। वह अकड़ बता रही है कि वे जो छोटे-छोटे अनुभव हुए, पकड़ लिए गए। कहते हैं, उन्हें नील-ज्योति दिखाई पड़ रही है। और मुझसे पूछने आए थे कि मैं अब कौन सी अवस्था में हूं?

मैंने उनसे कहा कि यह पूछो ही मत, क्योंकि दो ही अवस्थाएं हैं: ज्ञानी की और अज्ञानी की। तीसरी कोई अवस्था नहीं है। और तीसरी अगर बनाई तो वह अज्ञानी का ही उपद्रव होगा। दो ही अवस्थाएं हैं: या तो उसकी जो पहुंच गया है, या उसकी जो अभी नहीं पहुंचा है। और जो नहीं पहुंचा है उसने अगर कोई अवस्था बना ली मध्य की तो उसी अवस्था को पकड़ लेगा। पकड़ने के कारण पहुंचना मुश्किल हो जाएगा। अवस्था बनाओ मत। अब इन दो में से तय कर लो। तुम्हीं कहो कि इन दो में से तुम्हारी कौन सी अवस्था है?

अज्ञानी की कहने में उनको बड़ी कठिनाई हुई। अगर वे कह सकते कि अज्ञानी की, आखिरी मंजिल का खतरा अलग हो जाता; यात्रा शुरू हो जाती। उन्होंने कहा, कुछ-कुछ ज्ञानी की; पूरा ज्ञानी तो मैं नहीं हूं।

मैंने कहा, कभी सुना है अधूरा ज्ञान? कभी सुना है कि ज्ञान की कोई डिग्री होती है? कि अभी पचास परसेंट हो गया, अब साठ परसेंट हो गया, अब सत्तर परसेंट हो गया? कभी सुना है कि यह बुद्ध दस परसेंट, यह बुद्ध बीस परसेंट, यह बुद्ध सत्तर परसेंट और यह बिल्कुल खालिस, चौबीस कैरेट? बुद्धत्व की कोई अवस्थाएं नहीं हैं। बुद्धत्व या अबुद्धत्व।

लेकिन मन अबुद्धत्व पर तो राजी नहीं होता। और मन यह भी जानता है कि बुद्धत्व का तो दावा कैसे करें। क्योंकि अगर बुद्धत्व का ही दावा करना है तो मेरे पास पूछने क्या आए? बात खतम हो गई। दूसरे तुम्हारे पास पूछने आएंगे। तुम क्यों मेरे पास पूछने आए हो? यह भी नहीं कह सकते कि मैं बुद्ध हो गया हूं। वह तो हुए भी नहीं हैं, अन्यथा कोई जरूरत ही न थी कहीं जाने की। और यह कहने में मन सकुचाता है कि मैं अज्ञानी हूं।

यही खतरा है। जब तक परम ज्ञान न हो जाए तब तक तुम अज्ञान को ही अपनी अवस्था समझना। और इंच भर भी तरकीबें मत निकालना कि हां, कई तरह के अज्ञानी हैं; कुछ मुझसे नीचे हैं।

कोई अज्ञानी तुमसे नीचे नहीं है। और तुम किसी अज्ञानी से ऊंचे नहीं हो। अज्ञानी यानी अज्ञानी। कुछ अज्ञानी धन में खोए होंगे; कुछ अज्ञानी धर्म में खोए हैं। किन्हीं ने तिजोरियां भर ली हैं, किन्हीं ने त्याग कर लिया है। किन्हीं के पास सिक्के चांदी के हैं; किन्हीं के पास सिक्के त्याग के हैं। किन्हीं ने उपवास से खाते-बहियों को भर रखे हैं, त्याग-व्रत से, और किन्हीं ने कुछ और कूड़ा-कबाड़ इकट्ठा कर लिया है। कोई बाहर की रोशनी के लिए दीवाने हैं; किन्हीं ने भीतर की रोशनी को पकड़ रखा है। लेकिन सब अज्ञानी हैं; बाहर और भीतर से कोई फर्क नहीं पड़ता।

ज्ञान की घड़ी के पहले तक--आखिरी क्षण तक--तुम अपने को अज्ञानी ही समझना। अगर आखिरी क्षण को आने देना हो, जब तक कि तुम मंदिर में बुला ही न लिए जाओ भीतर, तब तक तुम अज्ञानी ही बने रहना, तब तक तुम याचक ही रहना; तब तक तुम भिक्षा-पात्र को फेंक मत देना; तब तक तुम अपने को विनम्र ही रखना; तब तक जरा भी अहंकार को निर्मित मत होने देना। अगर इस अहंकार को तुम रास्ते पर निर्मित होने दिए तो आखिरी क्षण में यही अहंकार तुम्हें डुबाएगा; यही सांप है जो तुम्हें आखिरी क्षण से लील जाएगा और वापस पहुंचा देगा जहां उसकी पूंछ है।

इसे तुम पहले ही क्षण से स्मरण रखना। धर्म को संपदा मत बनाना और अनुभवों को इकट्ठा मत करना। कहना कि सब राह के किनारे की बातें हैं; घटती हैं, सामान्य हैं। उन पर ज्यादा ध्यान मत देना। उनका विचार भी मत करना। उनके साथ अकड़ को मत जोड़ना। अगर तुम पहले से ही होशपूर्वक चले और अंतिम क्षण तक अपने को अज्ञानी ही जाना, तो तुम्हें आखिरी मंजिल के कदम से कोई भी वापस न भेज सकेगा।

अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है। और जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"

ये बड़ी गहन बातें हैं। और ऐसे ही अगर ऊपर-ऊपर से सुनीं तो तुम्हारी समझ में न आएंगी। तब ये पहेली जैसी लगेंगी। ये बिल्कुल सीधी-साफ हैं; पहेली कुछ भी नहीं है। अगर तुम समझने को बुद्धि से मत जोड़ो तो ये बिल्कुल आसान हैं। ये सीधे-सीधे सूत्र हैं। अगर बुद्धि से जोड़ो तो कठिनाई बढ़ जाती है। कोई भी चीज को बुद्धि से जोड़ो, वह पहेली हो जाती है।

उसका कारण है। क्योंकि बुद्धि एक-आयामी है। वह एक दिशा में देखती है। अगर वह दक्षिण में देखती है तो दक्षिण की तरफ देखती है। तुमने सुना होगा शिकारियों से कि जंगल में एक खतरनाक जानवर होता है, गेंडा। वह अगर किसी पर हमला करे तो उससे डरने की कोई जरूरत नहीं। जरा सा, जिस तरफ वह आ रहा है, उससे

हट कर खड़े हो जाना जरूरी है। क्योंकि वह एक-आयामी है। वह सीधा ही चला जाता है। अगर तुम उसके रास्ते पर न पड़े तो वह देख ही नहीं सकता। उसकी गर्दन नहीं मुड़ती, उसकी गर्दन बड़ी मोटी है।

बुद्धि की गर्दन भी गेंडे जैसी है; एक-आयामी है। तुम जरा ही बच कर खड़े हो गए तो गेंडा देख ही नहीं सकता। उसके लिए बस एक ही दिशा है, जिस तरफ वह जा रहा है। उसकी दिशा पर जो पड़ जाए बस वही है; बाकी जो उसकी दिशा पर न पड़े वह नहीं है।

बुद्धि एक-आयामी है; वह एक तरफ जाती है। जैसे, बुद्धि कहती है, अगर किसी चीज को पकड़ना है तो जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। बात साफ है कि अगर किसी चीज को पकड़ना है तो जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। यह एक आयाम हुआ। इसमें एक विपरीत आयाम भी है, वह बुद्धि को पता नहीं, कि अगर बहुत जोर से पकड़ोगे तो हाथ थक जाएगा। जितने जोर से पकड़ोगे उतने जल्दी थक जाएगा। और जब हाथ थक जाएगा तब छोड़े बिना कोई रास्ता न रह जाएगा। तब तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा।

तो लाओत्से बुद्धि से बिल्कुल भिन्न आयाम की बात कर रहा है। वह कह रहा है, अगर बहुत जोर से पकड़ा तो छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि पकड़ की एक सीमा है।

तुम कभी गौर करो। मुट्ठी बांधो जोर से, और बांधते चले जाओ, बांधते चले जाओ। जितनी तुममें ताकत हो, पूरी लगा दो। तब तुम एक अनूठा अनुभव करोगे; जब सब ताकत चुक जाएगी, तुम पाओगे तुम्हारे बिना कुछ किए मुट्ठी खुल रही है। तुम खोल नहीं रहे, क्योंकि अब तो खोलने की भी ताकत नहीं है। वह भी तुमने बांधने में ही लगा दी थी। कभी करके प्रयोग देखो, कि बांधते जाओ मुट्ठी को, बांधते जाओ; सारी ताकत लगा दो मुट्ठी पर, और जरा भी खुलने का उपाय मत दो। थोड़े ही क्षणों में तुम थक जाओगे, और तुम पाओगे शिथिल होती जा रही है मुट्ठी, अंगुलियां अपने आप खुल गई हैं। अब तुम्हारा कोई वश नहीं।

लाओत्से कहता है, "जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"

यही तुम्हारी जिंदगी में चौबीस घंटे हो रहा है। लेकिन वह बुद्धि का गेंडा तुम्हें सुनने नहीं देता। क्योंकि उसके मार्ग पर ये चीजें पड़ती नहीं। उसका तर्क सीधा-साफ है कि जो पकड़ना है, जोर से पकड़ो, नहीं छूट जाएगा। अगर कोई चीज छूट जाती है तो बुद्धि कहती है, देखो, पहले ही कहा था, जोर से पकड़ो, नहीं तो छूट जाएगी। अगर कोई चीज बिगड़ जाती है तो बुद्धि कहती है, पहले ही कहा था, ठीक से करते, कभी न बिगड़ती।

और लाओत्से कहता है कि तुम्हें ख्याल ही नहीं है कि चीजें अपने आप हो रही हैं। तुम्हारे करने से क्या हो रहा है? तुम करने से बिगाड़ ही सकते हो। और तुमने अगर ज्यादा करने की कोशिश की तो ज्यादा बिगाड़ दोगे।

इसलिए कर्मठ लोगों से ज्यादा उपद्रवी लोग कहीं भी नहीं होते। उनसे तो आलसी भी बेहतर; कम से कम किसी का कुछ बिगाड़ते तो नहीं। कर्मठ आदमी तो सुबह से झंडा लेकर निकलता है, उसको सुधार करना है, संसार बदलना है। किसने तुम्हें कहा कि तुम संसार बदलो? किसने तुम्हें यह अधिकार दिया? तुम स्वयं अपनी नियुक्ति कर लिए हो संसार बदलने के लिए, कि क्रांति करनी है, कि दुनिया भ्रष्ट हो रही है, भ्रष्टाचार मिटाना है। हजारों-हजारों साल करके भी आदमी क्या कर पाया? कौन सी चीज कर पाया है?

चीजें अपने स्वभाव से चल रही हैं। तुम्हारे किए कुछ होता है? हां, तुम नाहक परेशान हो लेते हो, बड़ा उछलकूद मचाते हो, पसीना-पसीना हो जाते हो। तुम मुफ्त ही शहीद हो जाते हो। और तुम्हारे उपद्रव के कारण बहुत से लोग जीवन में अड़चन अनुभव करते हैं। वे अपने सीधे मार्ग से जा रहे थे; वे जयप्रकाश के पीछे चलने लगते हैं, भ्रष्टाचार मिटाना है। वे बेचारे अपनी दुकान करने जा रहे थे, कि अपनी पत्नी के लिए दवा लेने जा रहे थे; अब उनको ख्याल हो गया कि भ्रष्टाचार मिटाना है।

अगर दुनिया से क्रांतिकारी विदा हो जाएं, दुनिया में बड़ी शांति हो जाए। और दुनिया से अगर समाज-सुधारक उठ जाएं तो समाज अपने आप सुधर जाए। मगर बुद्धि कहेगी, यह कैसे हो सकता है? इतना सुधार करके सुधार नहीं हो रहा है, और आप उलटी बात समझा रहे हो! जब इतना सुधार करके सुधार नहीं हो रहा, तो बिना किए कैसे होगा?

तुम्हारी हालत वैसी है जैसे छोटा बच्चा एक पौधा लगा देता है; बार-बार निकाल कर देखता है बीज को कि अभी तक अंकुर आया कि नहीं! फिर घड़ी भर बाद पहुंच जाता है। अगर किसी तरह अंकुर निकल भी आया, जो कि पहले तो मुश्किल ही है; क्योंकि जब बार-बार तुम बीज निकाल कर देखोगे, अंकुर निकलेगा कैसे? कुछ तो मौका दो उसको अपने आप होने का! वह तुम मौका ही नहीं दे रहे। और बच्चा तो जल्दबाजी में होता है। सभी जल्दबाजी में जो हैं, बच्चे हैं, बचकाने हैं। अगर किसी तरह अंकुर निकल आया, बच्चा भूल-चूक गया, कहीं छुट्टी पर चला गया, कुछ हो गया और किसी तरह अंकुर निकल आया, बच्चे के बावजूद, बच्चा रहता तब तो निकलना मुश्किल ही था, तो अब बच्चा जल्दी में है, उसको वह खींच कर बड़ा करना चाहता है कि जल्दी से खींच कर बड़ा कर दे, जैसे कोई पौधे में स्प्रिंग लगा हो कि तुम उसे खींच लो, वह बड़ा हो जाए। या जैसे कि पौधा कोई इलास्टिक का धागा हो कि तुम खींच लो और बड़ा हो जाए। बच्चा खींचतान में उसको तोड़ डालेगा; रोएगा, चिल्लाएगा, कि मैं कुछ बुरा तो कर नहीं रहा था इसको, सिर्फ बड़ा करने की कोशिश कर रहा था कि जल्दी हो जाए, फूल लग जाएं।

पौधा अपने से बढ़ता है; नदियां अपने से बहती हैं, तुम्हें कोई धक्का देने की जरूरत थोड़े ही है। बच्चे अपने से बड़े होते हैं, तुम्हें बड़े करने की जरूरत थोड़े ही है। जीवन अपने से चलता है। तुम नहीं थे, तब भी चल रहा था; तुम नहीं रहोगे, तब भी चलता रहेगा। क्रांतिकारी मुफ्त ही बीच में शोरगुल मचा कर यह एहसास कर लेता है अपने भीतर कि मेरे बिना सारी दुनिया नरक में चली जाएगी। कोई कहीं नहीं जा रहा है। क्रांतिकारी आते हैं और चले जाते हैं, संसार अपने ढंग से चलता रहता है। बुराई को कोई कभी मिटा नहीं पाया; क्योंकि बुराई भलाई का अनुषांगिक अंग है। रावण को कोई कभी मिटा नहीं पाया; क्योंकि रामलीला ही मिट जाए। वह रावण के साथ चलती है।

ज्ञानी देखता है इस सत्य को कि चीजें अपने से होती हैं। कबीर ने कहा, अनकिए सब होय। तुम करने की व्यर्थ झंझावात में मत पड़ जाना।

और जो सत्य है बाहर के संबंध में वही सत्य भीतर के संबंध में भी है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कामवासना को कैसे विजय करें? क्या करें? ब्रह्मचर्य को कैसे लाएं? मैं उनसे पूछता हूं, कामवासना को तुम लाए थे? हम तो नहीं लाए। जिसको तुम नहीं लाए उसको तुम मिटा कैसे सकोगे? जिसने आते वक्त तुम्हारी आज्ञा नहीं मांगी, जिसका प्रारंभ तुम्हारे हाथ में नहीं है, उसका अंत तुम्हारे हाथ में कैसे हो सकेगा? कहां से कामवासना आई है? वे कहते हैं, हमें कुछ पता नहीं। किसने तुम्हें दी है? वे कहते हैं, आप भी कैसी बातें पूछते हैं? है। प्रकृति से आई है। प्रकृति ही वापस लेगी। जहां से चीजें आती हैं, वहीं वापस जाती हैं। जिसके किए आती हैं, उसके किए वापस लौट जाती हैं। तुम क्यों बीच में व्यर्थ ही अपने को खड़ा कर लेते हो?

क्रोध मिटाना है, लोग पूछते हैं। तुम लाए थे? कब खरीद लाए? खरीदा होता, वापस भी कर देते; बनाया होता, मिटा देते; तुम्हारे हाथ से हुआ होता, तुम्हारे हाथ से अनहुआ हो जाता। तुम सीधी सी बात क्यों नहीं देखते? तुम क्यों व्यर्थ ही दाल-भात में मूसलचंद... ? चीजें सीधी चल रही हैं; तुम उसमें बीच में क्यों आते हो?

क्रोध है। किसी के हटाए कभी नहीं हटा। और जब मैं यह तुमसे कहता हूं तो तुम निराश मत हो जाना। कोई कभी क्रोध को नहीं हटा पाया; कोई कभी कामवासना को नहीं हटा पाया। लेकिन जिस दिन तुम यह स्वीकार कर लेते हो और मूसलचंद होना बंद कर देते हो, अचानक तुम पाते हो कि बहुत सी चीजें हटनी शुरू हो गईं।

प्रकृति सब अपने से ही करती रहती है। जिस दिन तुम इतने शांत हो जाते हो और यह समझ लेते हो कि मेरा होना, मेरा करना किसी भी मूल्य का नहीं है, उसी दिन तुम्हारा अहंकार मिट जाता है। उसी दिन तुम कहां रहे जिस दिन तुमने इस सत्य को समझ लिया कि सब हो रहा है, मेरा कुछ करने का सवाल ही नहीं है; मैं खुद भी अपने को नहीं बनाया हूं। अचानक तुमने पाया है कि तुम हो। जन्म हुआ। अचानक एक दिन पाओगे कि विदा हो गए। अचानक एक दिन पाओगे कि सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा। न तो आते वक्त तुमसे कोई पूछता, न जाते वक्त तुमसे कोई पूछता।

तो तुम इतनी छोटी सी बात क्यों नहीं समझ लेते हो कि कर्तापन मेरे हाथ में नहीं है। और यही परम धर्म हैः जिसको समझ में आ गया कि कर्तापन मेरे हाथ में नहीं है। इसी परम धर्म को लाने के लिए कई प्रयोग किए गए हैं। भाग्य का सिद्धांत सिर्फ एक प्रयोग है इसी को लाने के लिए कि सब भाग्य से हो रहा है।

कृष्ण ने अर्जुन से यही गीता में कहा कि तू सब कर्म परमात्मा पर छोड़ दे, वह जो करवाए तू कर, तू अपने को बीच में मत ला। कृष्ण की पूरी शिक्षा यही है कि तू मूसलचंद मत बन। उसने मार रखा है इन लोगों को पहले से ही जो आज इस युद्ध में आकर खड़े हुए हैं। इनकी मरने की घड़ी आ गई। उसका खेल, तू बीच में मत आ। तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त है। वह तेरे कंधे पर रख कर धनुष को चला रहा है; उसको चलाने दे। कंधा भी तेरा कहां है? वह भी उसी का बनाया हुआ है। और तू भी तेरा कहां है? वह भी उसी का है। इस तरफ जो खड़े हैं युद्ध के मैदान में, वे भी उसी के हैं; उस तरफ जो खड़े हैं वे भी उसी के हैं। कथा भी उसी की लिखी है; खेल भी उसी का है; मंच भी उसी का है; नाटक, नाटक के पात्र सब उसी के हैं। और उसने ही इस तरफ एक तरह की शक्लें बना रखी हैं, और उस तरफ दूसरी तरह की शक्लें बना रखी हैं। तू बीच में मत आ।

सारे जगत के धर्म का सार यह है कि तुम्हें एक बात समझ में आ जाए कि तुम्हारे किए कुछ नहीं होता। और फिर सब होना शुरू हो जाता है। और फिर जो कुछ भी होता है वही तृप्ति देता है। क्योंकि जब मेरे करने का कोई सवाल नहीं तो कैसा विषाद, कैसी हार, कैसी सफलता, कैसी असफलता? जब वही कर रहा है तो वही हारे, वही सफल हो, वही असफल हो। वह जाने, हिसाब-किताब वह रखे। अगर सभी धागे उसी के हैं और हम उसके धागों में लटकी कठपुतलियों की भांति हैं, तो फिर क्या प्रयोजन है? भूल-चूक उसकी, प्रशंसा-निंदा उसकी। हम अपने को बिल्कुल अलग ही कर लेते हैं। और जैसे-जैसे यह समझ गहन होती है वैसे-वैसे अहंकार छोटा होता जाता है। जिस दिन यह बात पूरी दिखाई पड़ जाती है कि अपना कुछ भी नहीं, हम भी अपने नहीं हैं, उसी दिन अहंकार विसर्जित हो जाता है।

और बिना अहंकार के न काम हो सकता है, न क्रोध हो सकता है। बिना अहंकार के न लोभ हो सकता है, न मोह हो सकता है। बिना अहंकार के न गृहस्थी है, न साधुता है। बिना अहंकार के न बुरा है, न भला है। विभाजन का मूल आधार ही टूट गया। और तब, तब तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं बचा। तब तुम साक्षी ही रह गए। और यह साक्षी होना ही परम मंजिल है। कर्ता होना भ्रांति है; साक्षी होना ज्ञान है। बाहर या भीतर, समाज में या व्यक्ति में, दूसरे में या अपने में, तुम ज्यादा से ज्यादा साक्षी हो।

तुम्हारी पत्नी क्रोध करती है; क्या कर सकते हो? कुछ मत करो। किया कि उपद्रव बढ़ेगा। करने से और आग में घी पड़ेगा। तुम कुछ मत करो। तुम कर ही क्या सकते हो? इस पत्नी को तुमने बनाया नहीं। जिसने बनाया

है वह जाने। यह पत्नी तुम्हारे हाथ में कोई वस्तु तो नहीं है कि तुम उसे रंग-रोगन दे दो, बदल दो। इसकी अपनी जीवन-यात्रा है। और क्षण भर का खेल है कि रास्ते पर तुम दोनों मिल गए हो, कि किसी पुरोहित ने एक नाटक रचा दिया और सात चक्कर लगवा दिए हैं। राह पर मिल गए थे; राह पर थोड़ी देर साथ हो; अलग हो जाओगे। दोस्ती क्षण भर की है। साथ चलना क्षण भर का है। उसकी अपनी यात्रा है; तुम्हारी अपनी यात्रा है। अगर वह क्रोधित होती है तो वह जाने। तुम क्या कर सकते हो? तुम सिर्फ साक्षी हो सकते हो।

तुम चेष्टा मत करना उसको सुधारने की। क्योंकि मैं देखता हूं, हजारों गृहस्थियां इसलिए बरबाद हो गई हैं--हो रही हैं--कि या तो पत्नी पति को सुधार रही है या पति पत्नी को सुधार रहा है। और इस सुधारने के धंधे में पत्नियां बहुत ही कुशल हैं; पतियों को सुधारने में लगी हैं। तुम न तो दूसरे को सुधारने की चेष्टा करना। क्योंकि कौन किसको सुधार पाया है? बाप भी बेटे को नहीं सुधार सकता। छोटा सा बेटा, अभी कोई भी ताकत नहीं है; लेकिन उसको भी कोई सुधार नहीं सकता। सुधारा कि तुम बिगाड़ोगे।

लाओत्से कहता है, "जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है।"

जिस बाप ने सोचा कि बेटे को सुधारना है, उसने बिगाड़ा। अच्छे बाप अनिवार्य रूप से बुरे बेटे के जन्मदाता हो जाते हैं। जिस पत्नी ने सोचा कि सुधारना है, कि संबंध नष्ट हुआ, कलह शुरू हुई। जिस समाज ने सोचा कि सुधारना है; यह करना है, वह करना है; जिस समाज में भी सुधारक और क्रांतिकारी पैदा हो गए वही समाज बरबाद हो गया।

दुनिया अपने से चलती है। यह नदी अपने से बहती है। तुम किनारे बैठ रहो। तुम जितना मौज ले सको, ले लो। और अगर कर्ता का भाव चला जाए, तो पत्नी जब क्रुद्ध होगी तब भी नाटक देखने में तुम मजा ले सकते हो। क्योंकि जब अपने हाथ में ही कुछ नहीं तो यह भाव-भंगिमा भी प्यारी है। परमात्मा करवा रहा है, देखो कि भली-चंगी स्त्री, बुद्धिमान, बर्तन तोड़ रही है। यह खेल देखो, कि गीता-रामायण का अर्थ करके बता देती है, ज्ञान में कमी नहीं है, विश्वविद्यालय की उपाधि लिए बैठी है, और कैसा कृत्य कर रही है! जब ऐसा हो, ऊपर देख कर उसको धन्यवाद देना कि खूब मदारी है तू भी! भले-चंगे लोगों से क्या-क्या करवा लेता है! जब पति शराब पीकर घर आ जाए, ऊधम करने लगे, तब पत्नी को कहना चाहिए कि ऐसा बुद्धिमान आदमी है, जिसको कोई नहीं चला सकता, जिसको कोई धोखा नहीं दे सकता, वह खुद को अपने को धोखा देता है। ऊपर देख कर परमात्मा को धन्यवाद देना कि खूब खेल दिखाया! जरूर तेरा कोई राज होगा। और हम क्या कर सकते हैं? तूने ही पिलाई है, अन्यथा यह घटता ही क्यों?

जैसे-जैसे समझ बढ़ती है वैसे-वैसे लगता है, वही एक कर्ता है। और तब सब अहंकार लीन हो जाते हैं। और इस अहंकार-लीनता का ही यह सारा उपाय है अलग-अलग दिशाओं से। ज्ञानी बस एक ही चेष्टा कर रहे हैं कि तुम्हारा अहंकार कैसे गल जाए, तुम कैसे मिट जाओ। तब फिर सब स्वीकार है--बाहर भी, भीतर भी।

ऐसा भी नहीं कि तुम बाहर ही स्वीकार करोगे। यहीं तो लाओत्से की कीमिया बड़ी अदभुत है। लाओत्से कोई साधारण साधु नहीं है। लाओत्से कोई साधारण चरित्रवान नैतिक पुरुष नहीं है; कोई पंडित-पुरोहित नहीं है कि लोगों को चरित्र सिखा रहा है। लाओत्से तो लोगों को जीवन की परम दिशा दे रहा है, जहां चरित्र-दुश्चरित्र किसी चीज का कोई मूल्य नहीं है। लाओत्से कहता है, न तो दूसरे के साथ छेड़खान करना; दूसरे को छोड़ दो उस पर, बीच में बाधा मत डालो। और यही लाओत्से अपने लिए भी कहता है कि अपने साथ भी बहुत छेड़खान मत करो।

क्रोध है; इसको हटाना है। कौन हो तुम हटाने वाले? कि कामवासना है, इसे मिटाना है। कौन हो तुम मिटाने वाले? कामवासना से ही पैदा हुए हो; रोएं-रोएं में कामवासना भरी है। कौन हो तुम मिटाने वाले? कैसे तुम ब्रह्मचर्य को लाओगे? क्या करोगे?

नहीं, अड़चन में पड़ जाओगे। व्यर्थ ही अपने साथ लड़ने लगोगे। और जीवन के जो क्षण उत्सव के हो सकते थे वे अपने ही साथ कलह में बीत जाएंगे। स्वीकार कर लो। और यह स्वीकार आत्यंतिक और परम है। न निंदा करो, न प्रशंसा करो। जैसे हो राजी रहो। और दूसरे के लिए भी। जैसा हो होने का मौका दो दूसरे को। उसे कहो, तू तेरी यात्रा पर है; जो तुझे ठीक लगे, तू कर। जो मुझे ठीक लग रहा है, वह मुझसे हो रहा है। और ठीक और गैर-ठीक लगने का भी क्या सवाल है? जो हो रहा है, वह हो रहा है। जो नहीं हो रहा, वह नहीं हो रहा। तब कैसी अशांति होगी? जब जो हो रहा है, वह हो रहा है, ऐसा भाव बैठ गया, तथाता आ गई, तब फिर कैसी अशांति? कैसी बेचैनी?

और यह भी सब अहंकार का खेल है। अहंकार कहता है कि अच्छे कपड़े पहन कर जाओ, अच्छा चरित्र पहन कर रहो। अहंकार कहता है, तुम इतने बड़े कुल में पैदा हुए, और शराब पीते हो? अहंकार कहता है, तुम्हें यह शोभा नहीं देता, तुम तो मंदिर में ही जंचते हो। कि तुम ऐसे बड़े घर में पैदा हुए, और कामवासना से लिप्त हो? तुम्हें तो ब्रह्मचर्य शोभा देता है। ये सब अहंकार की ही बातें हैं। इन सबको हटाओ। हटाने का मतलब? कुछ हटाने के लिए करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि ये सब भ्रांतियां हैं। इनको हटाने के लिए धक्का देने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ समझने की कोशिश करो।

जीवन की धारा अपने आप बह रही है। वृक्ष बड़े हो रहे हैं। फूल लग रहे हैं। आदमी में वासनाएं लग रही हैं। आकाश में तारे चल रहे हैं। सब अपने से हो रहा है। तुम नियंता नहीं हो, निमित्त हो। विराट तुमसे कुछ करा रहा है, तुम करो। क्रोध करा रहा है, क्रोध करो। वासना में डाल रहा है, वासना में गिरो। जिस दिन उठाएगा, उठ आना। न गिरना तुम्हारा है, न उठना तुम्हारा है। न तो गिरने में दीन बनो, और न उठने में अकड़ लेना।

इसे समझ लेना। क्योंकि अगर तुमने समझा कि गिरने में दीनता है तो फिर जब तुम उठोगे तो अकड़ से भर जाओगे। तो जो-जो वासना में दीनता समझेगा, ब्रह्मचर्य होकर अकड़ से भर जाएगा। फिर उसकी चाल ही और हो जाएगी। उसके दंभ का कोई ठिकाना नहीं। सभी कुछ उसका है। बुरा-भला सभी उसी को दे दो।

"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है।"

तुम बैठ रहो अपने भीतर की अंतरगुहा में, तुम सिर्फ साक्षी रहो।

"जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"

इसलिए निरंतर यह होता है--लेकिन तुम देखते नहीं, ख्याल में नहीं लेते--कि जो कामवासना से लड़ता है वह अक्सर कामवासना में फिसल जाता है। जो क्रोध से भरता है और क्रोध से लड़ता है और क्रोध को दबाता है वह महाक्रोधी हो जाता है। नहीं तो दुर्वासा ऋषि कैसे पैदा हों? जो चरित्र की बहुत पकड़ रखता है, कभी उसके हाथ शिथिल हो जाते हैं। आखिर पकड़-पकड़ कर कोई चीज कितनी देर पकड़े रखोगे? कभी तो हाथ को विश्राम देना पड़ेगा। तो संत को भी छुट्टी लेनी पड़ती है संतत्व से। कभी तो उसको भी विश्राम करना पड़ेगा। कब तक लड़ते रहोगे? चौबीस घंटे तो कोई भी नहीं लड़ सकता। बड़े से बड़ा योद्धा भी थकेगा; थकेगा तो विश्राम में जाएगा। तो संत ब्रह्मचर्य से लड़ेगा बारह घंटे, और बारह घंटे कामवासना में चित्त घूमता रहेगा। बारह घंटे भोजन न करेगा, उपवास करेगा, तो बारह घंटे भोजन का चिंतन करेगा, सपने देखेगा।

"जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है।"

लाओत्से कहता है, हम तुम्हें ऐसी कला सिखाते हैं कि तुम्हारी पकड़ से कोई चीज फिसल ही न पाए। और वह कला यह है कि तुम पकड़ना ही मत। फिर कोई चीज फिसलेगी कैसे? तुम परिग्रह मत करना। तो कोई तुमसे छीन कैसे सकेगा? किसी को तुम जबरदस्ती अपने पास रखने की कोशिश मत करना। नहीं तो जिसको तुम जबरदस्ती पास रखना चाहोगे वह दूर चला जाएगा। तुम पकड़ना ही मत अपने पास रखने के लिए। फिर तुमसे कोई दूर न जा सकेगा।

संत का जीवन बड़ा अतर्क्य है। वह बुद्धि के गेंडे की चाल नहीं है। संत बहुआयामी है। वह जीवन के गहनतम को देखता है। और देखता है कि बड़ी अजीब घटनाएं घटती हैं।

अगर तुमने अपने प्रेम को पकड़ बनाया, तुम्हारा प्रेम नष्ट हो जाएगा। तुमने जिसे प्रेम दिया, उसे अगर तुमने स्वतंत्रता भी दी, दूर जाने की सुविधा भी दी, वह तुमसे कभी दूर न जा सकेगा। उससे हम दूर जाना ही नहीं चाहते जो हमें दूर जाने की सुविधा देता है। दूर तो हम उससे ही जाना चाहते हैं जो हमें पकड़ कर पास रख लेना चाहता है, खूंटे में बांध देना चाहता है। क्योंकि हमारी चेतना स्वतंत्रता चाहती है। जो बांधता है उससे हम मुक्त होना चाहते हैं। जो हमें मुक्त ही रखता है उससे मुक्त होने का क्या उपाय है? उसने हमें किसी ऐसी जंजीर से बांध लिया है, ऐसी सूक्ष्म और अदृश्य जंजीर से, जिससे छूटने का कोई उपाय नहीं। उसने हमें स्वतंत्रता से बांध लिया।

इसलिए अगर तुम सच में ही प्रेम करते हो तो स्वतंत्रता देना। नहीं तो जिसको तुम प्रेम करोगे वही तुमसे दूर जाएगा। तुम्हारे पास अगर सच में ही कोई चीज हो तो तुम उसे दे देना, ताकि कोई तुमसे उसे छीन न सके। तब तुम पहली दफा उसके धनी, मालिक हो जाओगे। लाओत्से कहता था कि जब तक तुम कुछ देते नहीं तब तक तुम उसके मालिक नहीं हो। तुम्हारी पकड़ ही बताती है कि तुम चोर हो। नहीं तो पकड़ोगे क्यों? जो अपनी ही है उसको पकड़ने की क्या जरूरत? देकर ही पहली दफे तुम्हारी मालकियत पता चलती है।

ये बड़ी उलटी बातें लगती हैं बुद्धि को, लेकिन तुम्हारा हृदय समझ सकता है। और तुम्हारे जीवन के अनुभव में भी इसकी छाप जगह-जगह है। अगर तुम थोड़ा विमर्श करो, विचार करो, निरीक्षण करो, तुम जीवन में भी पाओगेः जिसको भी तुमने पकड़ रखना चाहा वह तुमसे दूर जा चुका है। बुद्धि कहती है कि जरा जोर से पकड़ना था; इसलिए दूर चला गया। अगर ठीक से कारागृह बनाया होता और कोई भी रंध्र-द्वार न छोड़ा होता बाहर निकलने का, तो कैसे जाता? और अगर तुमने और जोर से पकड़ा होता तो वह और जल्दी चला गया होता। क्योंकि कारागृह में कौन रहना चाहता है?

जिब्रान ने कहा है, अपने बच्चों को प्रेम देना, लेकिन अपने सिद्धांत नहीं; प्रेम देना, लेकिन अपना अनुभव नहीं; प्रेम देना, लेकिन बांधना नहीं, मुक्त करना। बच्चे तुमसे आते हैं, लेकिन तुम्हारे नहीं हैं। हैं तो वे भी विराट के। इसलिए तुम कौन हो कि उनके ऊपर आचरण का, चरित्र का ढांचा बिठाओ? तुम कौन हो उन्हें कारागृह में डालने वाले? और जितना बड़ा तुम कारागृह बनाओगे, उतने ही जल्दी वे छूट कर बाहर हो जाएंगे। और उचित है कि वे बाहर हो जाएं; नहीं तो वे मर जाएंगे। यह उनकी जीवन-रक्षा के लिए जरूरी है कि वे हट जाएं।

तुमने कभी गौर किया? जीवन में तुमने जो-जो चीज साधनी चाही वही टूट गई। फिर भी तुम जागते नहीं। क्योंकि बुद्धि का गेंडा एक ही बात कहे चला जाता है, वह कहता है, और ठीक से साधनी थी। जो-जो चीज तुमने बचानी चाही वही-वही छूट गई। जिस-जिस को तुमने सदा के लिए सम्हालना चाहा था, वह सदा के लिए खो गई। फिर भी तुम जागते नहीं।

और अगर तुम बुद्धि की सुनते जाओगे तो वह तुम्हें जागने न देगी। क्योंकि उसके पास एक निश्चित तर्क है। उससे विपरीत उसे समझ में नहीं आता। और जीवन एकांगी नहीं है। जीवन अनेकांत है। जीवन बहुआयामी है।

लाओत्से वही बहुआयाम प्रकट कर रहा है। वह कह रहा है कि विरोध नहीं है यहां। यहां जीवन का सीधा सूत्र समझ लो।

"जो कर्म करता है, वह बिगाड़ देता है। जो पकड़ता है, उसकी पकड़ से चीज फिसल जाती है। क्योंकि संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं। क्योंकि वे पकड़ते नहीं हैं, इसलिए वे छूटने भी नहीं देते।"

संत की पकड़ से तुम न छूट पाओगे। तुम लाख उपाय करो, वहां छूटने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि पहले स्थान में वहां पकड़ ही नहीं है। तुम भागोगे कहां? तुम जाओगे कहां? संत वही है जिसके विपरीत जाने का तुम्हारे पास उपाय ही न हो। क्योंकि वह कोई सीमा ही नहीं बनाता। वह कहता ही नहीं कि इस सीमा के बाहर मत जाना। वह तुम्हारे आस-पास कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं खींचता कि इसके बाहर मत निकलना। और जो भी लक्ष्मण-रेखा खींचता हो, समझ लेना, मित्र नहीं है, शत्रु है। क्योंकि अंततः संत तुम्हें स्वतंत्र करना चाहेगा। तुम्हारी स्वतंत्रता ही परम लक्ष्य है। तो वह तुम्हें इस तरह का प्रेम देगा जिसमें पकड़ न हो। तुम दूर जाना चाहोगे तो तुम्हें साथ देगा कि जाओ। तुम्हें पूरा सहयोग देगा दूर जाने में भी।

और तब तुम उससे दूर न जा सकोगे। कैसे जाओगे दूर? कहां जाओगे? ऐसी कोई भी दूरी नहीं है, जहां तुम उसे साथ न पाओगे। क्योंकि वह दूर जाने में तुम्हें साथ देगा।

अगर मां और बाप इस राज को समझ लें कि बेटे को दूर जाने देने में साथ दें तो सदा बेटा पास रहेगा। क्योंकि जहां भी रहेगा पास रहेगा। लेकिन मां-बाप बुद्धि को सुनते हैं, लक्ष्मण-रेखा खींचते हैं, हर जगह निषेध खड़ा करते हैं, बागुड़ लगाते हैं कि कहीं बाहर मत चले जाना। और तब एक दिन वे अचानक पाते हैं कि घोंसला खाली पड़ा है; पक्षी उड़ चुके हैं। तब वे रोते हैं।

मैं अनेक लोगों को उनकी वृद्धावस्था में एक ही रोग से पीड़ित देखता हूं; वह रोग है कि उनके बच्चों ने उन्हें छोड़ दिया।

तुमने पकड़ा क्यों? नहीं तो वे तुम्हें छोड़ते कैसे? तुमने पकड़ा, इसलिए ही छोड़ दिया।

लेकिन बुद्धि कहती है, पकड़ में कमी रह गई। और ठीक से पकड़ना था। पहले ही कहा था कि अच्छी तरह पकड़ो, नहीं तो छूट जाएंगे। तब तुम पछताते हो और रोते हो। और यह बुद्धि का जाल जन्मों-जन्मों से चल रहा है। और इसके दुष्ट-चक्र के तुम बाहर नहीं आ पाते।

"संत कर्म नहीं करते, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं हैं।"

संत बिगाड़ ही नहीं सकता, क्योंकि संत सुधारता नहीं। तुम्हारी सभी धारणाएं लाओत्से के संत को समझने में बाधा बनेंगी। क्योंकि तुम सोचते हो, संत वही है जो सुधारता है; संत वही है जो सारे संसार के उद्धार के लिए पैदा हुआ है। इससे ज्यादा झूठी कोई बात नहीं है। संत किसी का उद्धार नहीं करना चाहता। उद्धार करने वाले ही तो उपद्रव खड़ा कर देते हैं। संत तो तुम जो भी होना चाहते हो उसमें तुम्हें साथ देता है।

ऐसा हुआ। कोई दो सप्ताह पहले एक वृद्ध सांझ को मुझे मिलने आए थे। और एक युवक ने पूछा कि मैं शादी करना चाहता हूं, आप क्या कहते हैं? मैंने कहा, जरूर करो। और मैंने उसे कैसे वह लड़की चुने, क्या करे, सब बताया। वे वृद्ध तो बड़े बेचैन हो गए। उन्होंने कहा कि मेरी समझ के बाहर है। संत तो मनुष्यों को वासना से उठाने के लिए है। और इस युवक को आप क्यों भटका रहे हैं? इसको सचेत करें कि शादी करना ठीक नहीं। और जब वह पूछने आपसे आया है और निर्णय आप पर छोड़ रहा है तो आप उसे ऐसी बात क्यों कह रहे हैं?

मैंने कहा, वह मुझसे पूछने ही इसलिए आया है, क्योंकि अगर वह शादी न करना चाहता तो मुझसे पूछने का कोई सवाल ही न था। वह पूछने ही इसलिए आया है। और अगर मैं कहूं मत कर, तो मैं उसे करने के लिए और भी आकर्षित करूंगा। और अगर वह मेरी मान ले और न करे तो जीवन भर पीड़ित और परेशान रहेगा। क्योंकि विवाह एक अनुभव है जिससे गुजरना जरूरी है। आग से भरा है, फफोले पड़ते हैं; लेकिन उनके बिना कोई प्रौढ़ता भी नहीं आती। दूसरे से गुजरना जरूरी है, ताकि तुम अपने पर आ सको। बहुत से दरवाजे खटखटाने पड़ते हैं, तभी अपना घर मिलता है। और यह अभी बूढ़ा नहीं है; आप बूढ़े हैं। आप उस अनुभव से गुजर चुके हैं। आपको उसकी जलन याद है। आप दूध के जले हैं; अब छाछ भी फूंक-फूंक कर पी रहे हैं। इसको भी जलने दें। तो मेरा कुल काम इतना है कि मैं इसको वह सब कहूं जिससे इतना न जल जाए कि लौटने का उपाय न रहे। जले, अनुभव से गुजरे; लेकिन जीता हुआ वापस लौट आए; नष्ट न हो जाए उस अनुभव में। बस इतना ही मेरा काम है। यह जो भी करना चाहता है, उसमें मैं इसे सहयोग दूं।

अगर चोर भी मुझसे पूछने आए कि मैं कैसे चोरी करूं? तो मैं उसे सम्यक चोरी का रास्ता बताऊंगा। ऐसी चोरी का रास्ता कि वह करे भी और खो भी न जाए; और एक दिन चोरी कर-कर के ही अचोर हो जाए; और एक दिन चोरी के अनुभव से ही ऊपर उठे। कमल कीचड़ से ऊपर उठता है। अचौर्य चोरी से ऊपर उठता है। ब्रह्मचर्य का फूल कामवासना के कीचड़ में ही खिलता है। और जो कीचड़ से ही वंचित हो गया, उसमें फिर फूल कभी न खिल सकेगा। और मैं कौन हूं इसको रोकने वाला? जो जहां जाना चाहता है, मैं तो उसे दीया दे दूंगा बेशर्त कि जहां भी जाए दीए की रोशनी पड़ती रहे। चोरी करने जाए तो दीया दे दूंगा कि चोरी पर रोशनी पड़े, रास्ता अंधेरा न हो; कामवासना में जाए तो दीया दे दूंगा, रोशनी रहे रास्ते पर। क्योंकि असली सवाल यही है कि तुम जो भी करो अगर होश और रोशनी से करो तो तुम्हें कुछ भी बांध न सकेगा। एक न एक दिन रोशनी तुम्हें सब नरकों के बाहर ले आएगी। इसलिए सवाल यह नहीं है कि तुम क्या मत करो, सवाल यह है कि बस होशपूर्वक करो।

संत सुधारते नहीं, इसलिए वे बिगाड़ते भी नहीं। और जो सुधारने की कोशिश में लगे हैं, वे बिगाड़ने के मूल आधार हैं। और जितना ही तुम्हारे तथाकथित साधु, जो संत नहीं हैं, जो खुद भी किसी दूसरे के द्वारा सुधारे गए हैं, यानी गहरे में बिगाड़े गए हैं, जो खुद अपने अनुभव से तिरे नहीं हैं और फूल नहीं बने हैं, जो उधार हैं, जो किसी सुधारक के चक्कर में पड़ गए हैं और किसी ने जिन्हें सुधार कर रख दिया है, बस ऊपर-ऊपर उनका सुधारापन है, भीतर-भीतर सब कचरा इकट्ठा है; ये लोग दूसरों को सुधारने में लगे हैं।

एक बात ध्यान रखना, जिस बीमारी से तुम परेशान होते हो तुम उसे फैलाने में लगते हो। संक्रामक हो जाती है। इन्होंने कामवासना को दबा लिया, इन्होंने ब्रह्मचर्य की कसम ले ली, ये पूंछ कटा बैठे हैं, अब यह तुम्हारी पूंछ पर इनकी नजर है। और जब तक तुम्हारी न काट दें तब तक इनको चैन नहीं है। क्योंकि तुम्हारी भी पूंछ कट जाए तो तुम भी इन्हीं के पूंछ-कटे समाज के हिस्से हो जाते हो। फिर तुम भी दूसरों की काटने में लग जाओगे।

तुमने उस लोमड़ी की कहानी पढ़ी न जो पूंछ कटा बैठी थी। किसी गुरु के चक्कर में पड़ गई। गुरु तो सभी जगह हैं। मनुष्यों में भी हैं, लोमड़ियों में भी हैं। वह किसी और गुरु से कटा चुके थे। तो उसने कहा कि जब तक पूंछ न कटाओ तब तक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। और कष्ट से तो गुजरना ही पड़ता है, तपश्चर्या करनी ही पड़ती है। बिना त्याग किए कहीं कुछ मिला है? और पूंछ को छोड़ो। और पूंछ में है भी क्या! व्यर्थ ही लटकी है; किसी काम

की भी नहीं है। और हम देखो इसी को कटा कर ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं। हमारे गुरु भी इसी को कटा कर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे। और ऐसा सदा से चला आया है।

बातों में पड़ गई लोमड़ी, पूंछ कटा बैठी। कटते ही उसे समझ में आया मिला तो कुछ नहीं, पूंछ भर कट गई। अब दो ही उपाय रहेः या तो वह साफ-साफ कह दे और लोमड़ियों को कि मत कटाना! लेकिन तब अपने अहंकार को बचाने का कोई उपाय न रहा। लोग हंसेंगे, लोमड़ियां हंसेंगी, और कहेंगी, यह पूंछ कटा बैठी। गुरु से उसने कहा, मिला तो कुछ नहीं।

गुरु ने कहा, हमको क्या कुछ मिला है? मगर अब किसी से कहने में कोई सार नहीं। अब तुम भी लोगों को समझाओ कि कटाओ पूंछ। मिला किसको है? मिला किसी को भी नहीं है। यह सदा से ऐसे ही चला आया है। लेकिन जब हम फंस गए तो एक ही रास्ता है अपनी प्रतिष्ठा बचाने का कि अब तुम इसको छिपा लो, अपने दर्द को भीतर रखो, मुस्कुराओ, लोमड़ियों को समझाओ कि कटाओ पूंछ। जब तक हर लोमड़ी की पूंछ न कट जाए तब तक अपनी कोई सुरक्षा नहीं, प्रतिष्ठा नहीं। हम मारे गए।

सब जगह यही चल रहा है। तुम जाते हो एक साधु के पास; उसने संसार छोड़ दिया है। वह देख कर ही तुम्हें कहता है, छोड़ो संसार। पत्नी, घर, बच्चे, यही तो जंजाल है। बात भी जंचती है। क्योंकि तुम भी तो मुसीबत झेल रहे हो, जंजाल तो है। और यह आदमी शांत बैठा है। अब तुम्हें पता नहीं कि इनकी पूंछ कट गई है। और यह आदमी भीतर बड़ा परेशान है। इसके मन में गृहस्थी के ही विचार उठते हैं। यह बार-बार स्त्री के संबंध में सोचता है। बार-बार अपने को समझाता है कि अब ठीक नहीं, प्रतिष्ठा के विपरीत है पीछे लौटना। लोग हंसेंगे; जगहंसाई होगी। लोग कहेंगे, भ्रष्ट हो गया। तुम मौका भी नहीं देते कि कोई आदमी की पूंछ कट जाए और वह वापस आए तो तुम उसे स्वीकार भी न करोगे।

एक जैन साधु मुझसे पूछने आए थे। तो मैंने उनसे यही कहा कि जो सत्य है उसको छिपाने की कोई जरूरत नहीं। अगर तुम्हें कुछ भी नहीं मिला इस सब उपवास, त्याग, ढोंग, उपद्रव से, छोड़ दो। उन्होंने कहा, छोड़ तो दें, लेकिन अभी जो लोग मेरे पैर छूते हैं वे ही मुझे जूते मारेंगे। वे कहेंगे, यह भ्रष्ट हो गया।

बड़ी मजेदार दुनिया है। यानी इस ईमानदार आदमी को, अगर यह कह दे कि मुझे कुछ नहीं मिला, तो लोग कहेंगे, तुम्हें नहीं मिला, क्योंकि तुम पापी हो, तुमने ठीक से प्रयास नहीं किया। कहीं ऐसा हो सकता है कि इतने दिन से, और इतने पूंछ कटे लोग, और किसी को न मिला हो? सदा से जो चली आ रही है, सनातन जो धर्म है, उसमें तुम्हीं एक ज्ञानी पैदा हुए! तुम्हारे पाप कर्मों की बाधा पड़ रही है। तुम्हीं गड़बड़ हो। लोग यह कहेंगे।

तो मैंने कहा, तुम करते क्या हो? उन्होंने कहा, मैं भी वही समझा रहा हूं लोगों को जिसमें मुझे कुछ नहीं मिला। रोज दिन भर समझाता हूं, रात भर सिर ठोकता हूं कि यह क्या मामला हो गया! और यह भी मैं जानता हूं कि इनको समझा कर मैं ज्यादा से ज्यादा यही करवा सकता हूं जो मैंने किया है। भीतर डर भी लगता है कि यह पाप भी है। लेकिन मैं पढ़ा-लिखा भी नहीं हूं। अगर मैं छोड़ भी दूं--अभी मैं सब तरह की प्रतिष्ठा का पात्र हूं--अगर मैं छोड़ दूं तो मुझे कोई पचास रुपए की नौकरी यही भक्त नहीं दे सकेंगे जो अभी मेरे पैर छूते हैं और लाखों रुपए लाकर रखते हैं। फिर भी मैंने कहा कि तुम आदमी ईमानदार अगर हो तो यह कष्ट से भी गुजर जाओ; छोड़ दो। देखें, क्या होता है?

सच में ही उसने छोड़ दिया। और वही हुआ जो उसने कहा था। सारे जैनी उसके पीछे पड़ गए कि वह भ्रष्ट हो गया; पापी है; संसार में वापस लौट आया।

एक सभा में हैदराबाद में मैं बोल रहा था तो वह भ्रष्ट--जैनियों की नजरों में, पूंछ कटा आदमी--वह भी मौजूद था। वह मेरे साथ ही सभा-मंडप तक आया और मेरे साथ ही मंच पर जाकर बैठ गया। वह जैनियों का मंदिर था। वहां उपद्रव मच गया। वे मेरी वजह से कुछ कह भी न सके, लेकिन खुसर-पुसर शुरू हो गई कि यह आदमी मंच पर नहीं होना चाहिए। आखिर मेरे पास एक चिट्ठी आई कि और सब ठीक है, इस आदमी को यहां से हटाइए; यह आदमी भ्रष्ट है।

मैंने उनको बहुत समझाया कि यह आदमी भ्रष्ट नहीं है, बहुत ईमानदार है। और असली त्याग इसने अब किया है कि यह हिम्मत इसने जुटाई। क्योंकि मैं तुम्हारे दूसरे साधुओं को भी जानता हूं। उनसे भी मेरी अंतरंग बातें हुई हैं। और उनको भी मैंने इसी हालत में पाया है। लेकिन यह आदमी ईमानदार है। उन्होंने कहा, यह आप भ्रष्टाचार फैलवा रहे हैं; इसको नीचे उतारो। आखिर उन्होंने इतना उपद्रव मचाया कि वे चढ़ बैठे मंच पर और उस आदमी को खींच लिया नीचे; उसकी मार-पीट कर दी। और वह आदमी सच में ईमानदार है। जब नहीं मिला कुछ तो वह कह रहा है कि भई मुझे नहीं मिला। लेकिन ईमानदारी की थोड़े ही पूजा है! बेईमान पूजे जाते हैं।

यह कटी-पूंछ वाली लोमड़ी अगर लोगों से जाकर कहेगी कि हम फिजूल कट गए, तुम मत कटवाना, तो लोमड़ियां ही इस पर हंसेंगी कि ऐसा कहीं होता है? सनातन से पूंछ कटे हुए लोग ज्ञान को उपलब्ध होते रहे हैं।

बड़ा दुष्ट जाल है। तुम भी जानते हो कि तुमने भी बहुत उपाय करके देख लिए हैं, वे व्यर्थ जाते हैं, फिर भी तुम किसी को कहते नहीं कि वे व्यर्थ जाते हैं। तुम भी अपने मन को समझा लेते हो कि चुप ही रहो। क्योंकि लोग यही कहेंगे कि उपाय तो गलत हो ही नहीं सकते, तुम ही गलत होओगे। अपने को ढांके हुए हो।

लाओत्से उसी को संत कहता है जो न तो किसी को सुधारने में उत्सुक है और इसलिए किसी को बिगाड़ने का कारण नहीं बनता। संत की तो भाव-दशा यह है कि जो हो रहा है उसे वह और सुगमता से होने के लिए तुम्हें मार्ग दे। और तुम्हें सहयोग दे कि ठीक है, तुम पश्चिम जा रहे हो, जाओ; मेरे आशीर्वाद। और पश्चिम में मैं भी गया हूं; उस रास्ते पर ये-ये कठिनाइयां हैं, बच सको तो ठीक। और उससे लौटने के उपाय हैं, ख्याल में रखना। कभी जरूरत पड़े तो लौट आना। लेकिन जहां जा रहे हो, जाओ। क्योंकि दूसरे की नियति में जरा भी अड़चन डालनी पाप है। दूसरे के अपने यात्रा-पथ में जबरदस्ती करनी उपद्रव है। और जो भी जबरदस्ती करते हैं वे इसीलिए करते हैं कि वे खुद अपने साथ जबरदस्ती कर रहे हैं, और वही वे दूसरों के साथ करना चाहेंगे।

इसे तुम नियम समझ लो कि जिस आदमी ने अपने साथ जबरदस्ती की है वह दूसरों के साथ जबरदस्ती करेगा। क्योंकि हम जो अपने साथ करते हैं वही हम दूसरों के साथ करते हैं। और जिस आदमी ने अपने साथ कोई जबरदस्ती नहीं की, जिसने स्वाभाविक रूप से, सरलता से सत्य की प्रतीति की है, जो सहज समाधि को उपलब्ध हुआ है, वह किसी के साथ जबरदस्ती नहीं करता। और असहज कहीं कोई समाधि होती है? सहज ही समाधि है।

संत तुम्हारे साथ कोई जबरदस्ती नहीं करता। यह बड़ा कठिन है हमें समझना। क्योंकि संत की हमारी धारणा यही है कि वह हमें सुधारता है। उसके पास जाओ तो वह सुधारेगा। जब सुधरना हो तो उसके पास जाओ। वह जैसे कोई चिकित्सक है, जब तुम बीमार हुए तब जाओ; वह तुम्हारा इलाज करेगा।

नहीं, संत का होना सिर्फ एक ही अर्थ रखता है और वह अर्थ यह है कि जैसा सरल वह हो गया है वैसा ही सरल होने की तुम्हें भी वह सुविधा जुटा दे। सरलता का अर्थ हैः कर्म नहीं, साक्षी; कर्ता नहीं, द्रष्टा।

"मनुष्य के कारबार अक्सर पूरे होने के करीब आकर बिगड़ते हैं। आरंभ की तरह ही अंत में भी सचेत रहने से असफलता से बचा जा सकता है।"

इसलिए संत सिर्फ एक ही सूत्र देते हैं, एक दीया देते हैं, कि तुम सचेत रहो; तुम जहां भी जाओ, तुम जो भी करो, सचेत रहो। बुरा करने का मन है, करो। क्योंकि तुम कर क्या सकते हो अब? इस मन को दबाओगे तो बुराई इकट्ठी होगी; आज नहीं कल फूटेगी। तुम करो। लेकिन सचेत होकर करो। और बड़ी अदभुत कीमिया है सचेत होने की। क्योंकि जैसे ही तुम सचेत होते हो, बुराई अपने आप कम होती जाती है। सचेत रह कर कभी कोई बुरा कर सका है? सब बुराई बेहोशी में होती है। सब बुराई एक तरह का पागलपन है। सब बुराई तुम जब होश खो देते हो तभी संभव है।

इसलिए एक ही सदगुण संत देते हैं कि तुम जागे रहो; तुम होशपूर्वक करो, तुम जो भी करो। कामवासना में जाओ तो होशपूर्वक जाओ; उसे भी ध्यान बनाओ। जल्दी ही तुम उसके पार हो जाओगे। और वह पार होना अलग होगा। वह दमन न होगा, वह अनुभव से पार होना होगा। वह अतिक्रमण अदभुत है। उस अतिक्रमण में कोई दंश न होगा। वह अतिक्रमण ऐसा ही सहज है जैसे फूल लगते हैं। कोई लगाता थोड़े ही है! जैसे घास बढ़ती है अपने आप। झेन फकीर कहते हैं, दि ग्रास ग्रोज बाई इटसेल्फ। कुछ करना थोड़े ही होता है, घास अपने से बढ़ती है। ऐसे ही ब्रह्मचर्य अपने से बढ़ता है, होश हो तो करुणा अपने से बढ़ती है, होश हो तो अहिंसा अपने आप आती है। कोई व्रत-नियम थोड़े ही लेने पड़ते हैं, कोई ठोंक-पीट कर थोड़े ही अहिंसक हो सकता है। कोई जबरदस्ती अपने को दबा-दबा कर कभी प्रेम से भरा है! घृणा से भला भर जाए, प्रेम से भरने का यह रास्ता नहीं।

संत तो एक ही बात कहते हैं, "कामनारहित होने की कामना करते हैं।"

ये भी सब कामनाएं हैं कि मैं क्रोध से मुक्त हो जाऊं, कि मैं मोक्ष पा लूं, कि ब्रह्मचर्य मेरे जीवन में फलित हो जाए। ये भी सब कामनाएं हैं; ये भी सब वासनाएं हैं; ये भी सब इच्छाएं हैं। संत तो एक ही कामना करते हैं--कामनारहित होने की। और कामनारहित होना होश की छाया से फलित होता है। क्योंकि जितना-जितना तुम होशपूर्वक कामना में उतरते हो उतना ही उतना तुम पाते हो, कैसा पागलपन! यह तुम क्या कर रहे हो! करने योग्य ही नहीं मालूम होता। भीतर से रस ही खो जाता है। भीतर से दौड़ नहीं उठती; वासना के बीज दग्ध हो जाते हैं। होश की अग्नि में वासना के बीज दग्ध हो जाते हैं।

और जिस दिन तुम कामनारहित हो उस दिन कोई ईश्वर की कामना थोड़े ही करनी पड़ती है! कि मोक्ष की कामना करनी पड़ती है! कामनारहित होना मुक्ति है, कामनारहित हो जाना मोक्ष है। कामनारहित हो जाना ईश्वर हो जाना है। इसलिए ईश्वर की कामना शब्द गलत है, मोक्ष की कामना शब्द गलत है।

अब तुम फर्क समझ लोगे। तुम्हारा साधु मोक्ष की कामना कर रहा है। पहले संसार की कामना कर रहा था, अब किसी ने उसकी पूंछ काट दी, अब वह मोक्ष की कामना कर रहा है। लेकिन कामना नहीं कटी, कामना बदल गई। आब्जेक्ट बदल गया, कामना का विषय बदल गया। कल धन चाहते थे, अब आत्मा चाहते हैं। कल यश चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हैं। कल साम्राज्य चाहते थे, अब मोक्ष चाहते हैं। लेकिन चाह जारी है। यही असली साधु और नकली साधु का फर्क है।

चाह जारी है। धार्मिक रंग हो गया चाह पर, लेकिन चाह जारी है। यह झूठा साधु है। यह जीवन से साधुता को उपलब्ध नहीं हुआ, यह किसी का उपदेश सुन कर साधु हो गया है। किसी ने इसका सिर मूंड दिया। यह अपने अनुभव से नहीं आया है। यह किसी की बात में पड़ गया, यह किसी सेल्समैन के चक्कर में आ गया। किसी ने पाठ पढ़ा दिया इसको। और सब तरफ जैसे बाजार में सेल्समैन हैं जो चीजें बेचने की कला जानते हैं, वैसे ही मंदिरों, मस्जिदों और चर्चों में भी सेल्समैन बैठे हैं। उनका नाम पुरोहित, पंडित, पुजारी; तुम जो चाहो कहो। वे भी वहां

धर्म बेच रहे हैं। दुकानें हैं जहां संसार बिकता है; दुकानें हैं जहां धर्म बिकता है। और तुम संसार की दुकानों में भी लूटे जाते हो और धर्म की दुकानों में भी लूटे जाते हो।

मैंने सुना है कि दो सेल्समैन आपस में बात कर रहे थे। एक ने कहा, आज मैंने गजब कर दिया। एक आदमी को जमीन बेची थी, और जमीन कोई आठ फीट गड्ढे में थी। मगर मैंने वह बातें कीं उसको कि जंचा दी; पढ़ा दिया पाठ। जमीन तो उसने खरीद ली। लेकिन दो दिन बाद, संयोग की बात, वर्षा हो गई; और वह पूरा गड्ढा पानी से भर गया। वह मेरे पास चिल्लाता-चीखता आया कि इस जमीन का क्या करेंगे? इसमें तो आठ फीट पानी भर आया, यह तो झील हो गई। इसमें कोई मकान बन सकता है? कि खेतीबाड़ी हो सकती है? कि कुछ भी हो सकता है? तो मैंने उसे एक मोटर बोट भी बेच दी।

दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं। इससे भी बड़ी घटना आज मेरे जीवन में घटी है। एक औरत आई, उसका पति मर गया है। तो मरते वक्त ड्रेस पहनानी पड़ती है एक खास तरह की। मैंने उसको दो जोड़ी ड्रेस बेच दीं कि कभी-कभी बदलाहट के लिए भी ठीक रहेगा। वह आदमी मर चुका है। उसको मरघट पहुंचाने के लिए एक पोशाक की जरूरत है। मैंने दो बेच दीं। और उसको जंच गई बात कि यह तो बात ठीक ही है कि एक ही ड्रेस सदा पहने रहना। तो दूसरी ड्रेस भी ताबूत में साथ रख दी।

बाजार में लूट है; वहां दुकानदार तुम्हें चीजें बेच रहे हैं। मंदिरों में लूट है; वहां भी दुकानदार तुम्हें परलोक की चीजें बेच रहे हैं।

संत तुम्हारी वासना को एक दिशा से दूसरी दिशा में नहीं लगाता। संत तो कहता है कि सभी वासनाएं एक सी हैं, वासना का स्वभाव एक सा है। चाहे तुम धन चाहो, चाहे पुण्य चाहो, वासना की प्रकृति में कोई फर्क नहीं पड़ता। कामना का एक सा ही जाल है। कामना का अर्थ है कि तुम जो हो उससे तृप्त नहीं, कुछ और चाहते हो। संत तो तुम्हें तुम जो हो उससे तृप्त होना सिखाते हैं। वह परितोष, वह कंटेंटमेंट कि तुम जो हो ठीक हो; तुम अपने होने से राजी हो। ऐसा ही क्षण कामनारहित क्षण है। और उसी कामनारहितता में मोक्ष का फूल खिलता है। उसी कामनारहितता में तुम अपने ईश्वरत्व को अनुभव करते हो। उसी कामनारहितता में जीवन की आखिरी घटना घट जाती है। जो न घटे तो तुम रोते रहोगे। दुकानें बदलोगे, मंदिर बदलोगे, इस चर्च से उस चर्च में जाओगे, यह सब फैलाव व्यापार का है।

"संत कामनारहित होने की कामना करते हैं। और कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य नहीं देते।"

लेकिन तुम जिन साधुओं को जानते हो वे सब कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य देते हैं। वे कहते हैं, तप करो, तपश्चर्या करो, यह बड़ी कठिन है; उपवास करो, भूखे मरो, यह बड़ी कठिन है। क्योंकि कोई मोक्ष सस्ता थोड़े ही है? बहुत मंहगी चीज है; अपना सब कुछ नष्ट करो तब मिलेगा।

संत कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य ही नहीं देते, क्योंकि वे कहते हैं, कठिनता से जो भी चीज प्राप्त होती है वह अहंकार का आभूषण है। अहंकार कठिन से आकर्षित होता है। जितना कठिन हो उतनी आकांक्षा पैदा होती है पाने की।

कोहिनूर की कीमत है, क्योंकि वह अकेला है। उसको पाना कठिन है। कोहिनूर अगर सब तरफ पड़े हों कंकड़-पत्थरों की तरह गांव-गांव, राह-राह, कौन फिक्र करेगा? सरल को कोई फिक्र ही नहीं करता, कठिन की लोग फिक्र करते हैं। कोहिनूर की कीमत यही है कि वह न्यून है, न के बराबर है।

संन्यास सरल होना चाहिए, कठिन नहीं। नहीं तो वह कोहिनूर बन जाएगा। इसलिए तो मैं संन्यास ऐसे बांटता हूं। उसमें कठिनता रखने की जरूरत ही नहीं। क्या उत्सव मनाना?

कोई संन्यास लेता है तो बड़ा उत्सव मनाया जाता है, बैंड-बाजे बजाए जाते हैं, जुलूस, शोभा-यात्रा निकलती है; जैसे कोई खास बात हो रही है। तुम संन्यास को भी बाजार में ला देते हो। और ध्यान रखना, जो बैंड-बाजे बजा कर तुम्हें संन्यास दिलवा रहे हैं, अगर तुम संन्यास से हटे तो जूते भी मारेंगे। क्योंकि इनके बैंड-बाजे तुमने बेकार कर दिए। फिर तुमको मंच पर न बैठने देंगे। फिर कहेंगे, यह आदमी पापी है। क्योंकि यह तो ठीक है, यह तो सीधा-साफ सौदा है। गणित में कोई अड़चन नहीं है। इनसे सावधान रहना जो बैंड-बाजे बजाएं, ये बड़े खतरनाक हैं। ये पूंछ भी काटे ले रहे हैं और पीछे लौटने का रास्ता भी बंद किए दे रहे हैं।

संन्यास तो सरल बात है; भाव-दशा है। इसमें कोई बैंड-बाजे की जरूरत है? लोग मुझसे पूछते हैं, आप ऐसे ही दीक्षा दे देते हैं? कोई समारोह नहीं! समारोह में जो दीक्षा मिलती है वह अहंकार की है। यह तो चुपचाप का नाता है, इसमें क्या समारोह? किसको बताना है? यह तुम्हारी बात है। इसका कोई बाजार से लेना-देना नहीं है। चुपचाप।

सरल का मूल्य है संत के सामने; साधुओं के सामने कठिन का मूल्य है। साधु को तुम ऊपर क्यों बिठाते हो? तुम पैर क्यों छूते हो? क्योंकि साधु ने कुछ ऐसी कठिन चीजें कर दिखाई हैं जो तुम नहीं कर सकते। बस और तो कोई कारण नहीं है। साधु कांटे पर लेटा है। चाहे जड़बुद्धि हो, लेकिन कांटे पर लेटा है। तुम नहीं लेट सकते। और ध्यान रखना, जड़बुद्धि आसानी से लेट सकते हैं, क्योंकि उनकी संवेदनशीलता कम होती है। उनमें बुद्धि ही नहीं जिसको पता चले कि कांटा चुभ रहा है। मोटी चमड़ी के लोग हैं। तुम दर्शन करके कृतकृत्य हो जाते हो कि धन्यभाग, जो हम नहीं कर सकते।

लेकिन बड़े आश्चर्य की बात यह है कि सिर्फ कठिन होने से कोई चीज मूल्यवान हो जाती है? माना कि यह कठिन है कांटों पर लेटना, लेकिन कठिन होने से मूल्य क्या है? सिर के बल खड़े होना कठिन है। तो जो आदमी सिर के बल खड़ा है मान लो तीन घंटे, चार घंटे, तुम चमत्कृत हो जाते हो, चरण छूने पहुंच जाते हो कि तुमने गजब कर दिया। क्योंकि तुम पांच मिनट भी नहीं खड़े रह सकते। उलटा-सीधा करना कठिन तो है, लेकिन उससे स्वभाव का क्या लेना-देना है? एक आदमी तीस दिन का उपवास कर लेता है; बस बड़ी महत्व की बात हो गई। माना कि भूखा मरना कठिन है, लेकिन कठिन होने का मूल्य क्या है?

ईसाई फकीर हुए हैं जो कि पैर में कांटे, जूतों में खीलें ठोंके रहते थे अंदर। जरा सा जूता काटता हो तो कितनी तकलीफ होती है! वे दस-पंद्रह खीलें अंदर लगाए रखते थे। उनके पैरों में घाव हो जाते थे, और उन्हीं जूतों पर वे चलते थे। लोग उनके चरणों पर गिरते थे कि बड़ा कठिन कार्य कर रहे हैं। मगर जूतों पर खीलें ठोंकने से कोई मोक्ष का लेना-देना है? कभी तो थोड़ा सोचो कि इससे लेना-देना क्या है? तुम सिर्फ बुद्धिहीन हो, यह तो पता चलता है। तुम जड़ हो, यह भी पता चलता है। तुम्हारी संवेदनशीलता को तुम मार रहे हो, यह भी पता चलता है। लेकिन इससे तुम मोक्ष जा रहे हो, यह तो पता नहीं चलता।

बहुत से फकीर हुए हैं दुनिया में जो कोड़े मारते हैं अपने को। आज भी उनके संप्रदाय हैं। तो जो फकीर जितने ज्यादा कोड़े मारता है उतना ही बड़ा फकीर समझा जाता है। लोग गिनती रखते हैं, कौन सौ मारता है सुबह, कौन डेढ़ सौ मारता है। चमड़ी उधड़ जाती है। और लोग देखने पहुंचते हैं। ये लोग भी हद्द नालायक हैं! ये लोग तो मूढ़ हैं ही जो मार रहे हैं; लेकिन जो देखने पहुंचते हैं ये भी बड़ी दुष्ट प्रकृति के लोग हैं।

मेरा अपना अनुभव यह है कि जहां-जहां कोई अपने को सता रहा है, किसी भी रूप में--उपवास से, कोड़े मार कर, खीलों पर सोकर, कांटों पर लेट कर--जहां-जहां कोई अपने को सता रहा है, और जो लोग उनको पूज

रहे हैं, ये पूजने वाले लोग दुष्ट हैं, ये भयंकर हिंसात्मक लोग हैं, इन्होंने बड़ी तरकीब निकाल ली हैः ये पूजा देकर इन नासमझों को आत्महिंसा करने के लिए उकसा रहे हैं।

दो तरह के लोग हैं दुनिया में। तीसरे तरह के लोग नहीं पाए जाते, क्योंकि वे संत हैं। एक तरह के लोग हैं जिनको मनोवैज्ञानिक मैसोचिस्ट कहते हैं, जो अपने को सताने में मजा लेते हैं। यह भयंकर हिंसात्मक... यह रोग है। और दूसरे तरह के लोग हैं, जिनको मनोवैज्ञानिक सैडिस्ट कहते हैं; ये दूसरों को सताने में मजा लेते हैं। यह भी रोग है। और तीसरे तरह का आदमी संत है--न तो खुद को सताता, न किसी दूसरे को सताता। सताने में उसका कोई रस ही नहीं है। सताना भी कोई बात है? जो सीधा-सरल है।

जैन मुनियों को मैं देखता हूं तो पाता हूं, ये मैसोचिस्ट हैं। अगर ये पश्चिम में हों तो इनका इलाज हो। पूरब में इनको पूजा मिल रही है। ये दुष्ट हैं, ये अपने को सता रहे हैं। और इनके आस-पास जो लोग, कतार देखता हूं मैं बैंड-बाजे बजाने वालों की, ये भी दुष्ट हैं। ये इनके सताए जाने में मजा ले रहे हैं। ये रस ले रहे हैं कि धन्यभाग कि आपने तीस दिन का उपवास किया!

इसमें धन्यभाग क्या है? इस आदमी ने अपने को सताया। इस आदमी ने शरीर के साथ दुष्टता की। इसने शरीर के रोएं-रोएं को तड़फाया। और यह तड़फाना आसान हो जाता है अगर पूजा मिल रही हो। आदमी का अहंकार ऐसा है कि तुम उससे कोई भी मूढ़ता करवा सकते हो अगर पूजा मिले। अगर तुम पूजने लगो उस आदमी को जो नाक कटाएगा, तुम पाओगे कई नाक कटाने वाले तैयार हो गए। क्योंकि पूजा मिलती हो नाक कटाने से... ।

तुम पूजा देने को राजी हो जाओ, और कोई न कोई तत्क्षण वही काम करने को राजी हो जाएगा जिसको तुम पूजा देते हो। क्योंकि इतनी सस्ती पूजा मिलती हो, सिर्फ नाक कटाने से, तो कटा लो; एक दफा कटाई, सदा के लिए पूजा मिल गई।

संत न तो सताता है अपने को, न दूसरे को। संत कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को मूल्य ही नहीं देता। क्योंकि कठिनता का सारा मूल्य अहंकार में है।

एवरेस्ट पर चढ़ने का मजा यही है कि कोई दूसरा नहीं चढ़ पाया और मैं चढ़ कर बता दिया। हिलेरी को कौन सा मजा मिला? यही मजा मिला कि मनुष्य-जाति में मैं पहला हूं जो एवरेस्ट पर चढ़ गया। एक अहंकार की तृप्ति हुई। किसी ने हिलेरी से पूछा कि आखिर एवरेस्ट पर चढ़ने का इतना आकर्षण क्या है? फायदा क्या है? वहां पहुंच कर होगा क्या? हिलेरी भी कुछ किया नहीं, पहुंच कर वापस लौट आया। करने को वहां कुछ है भी नहीं। हिलेरी ने कहा, यह सवाल ही नहीं है। जब तक एवरेस्ट है, तब तक मनुष्य को चुनौती थी; उसे पार करना ही होगा।

पार करना ही होगा! क्यों? चांद पर पहुंचना ही होगा! क्यों? मंगल पर पहुंचना ही होगा! क्यों? क्योंकि मंगल है, और चुनौती है। यह तर्क उतना ही बचकाना है कि एक छोटे बच्चे की मां उससे पूछ रही थी कि तूने स्कूल में उस लड़की के मुंह में मिट्टी क्यों फेंकी? तुझसे ऐसी आशा नहीं है। उसने कहा, मैं क्या करूं, उसका मुंह खुला था।

तुम्हारे एवरेस्ट और चांद पर पहुंचने वाले लोग बस इतनी ही बुद्धि के हैं। चांद है, इसलिए पहुंचना पड़ेगा। अब इसमें कोई वश ही नहीं है। एक अदम्य आकर्षण है--जो किसी ने नहीं किया वह मैं करके दिखा दूं। कठिन में अहंकार को तृप्ति है। सरल में अहंकार कभी उत्सुक नहीं होता।

झेन फकीर बोकोजू ने कहा है। कोई ने पूछा कि क्या हुआ तुम्हारे निर्वाण से? तो उसने कहा, क्या हुआ? लकड़ी काटता हूं, आश्रम में लाता हूं; पानी भरता हूं कुएं से, रोटी बनाता हूं। और तो कुछ भी नहीं हुआ।

इसमें क्या तुम्हें आकर्षण होगा! लकड़ी काटना, पानी भरना, ऐसी सरल बात निर्वाण में? बस यही हुआ?

लेकिन तुम चूक जाओगे। यह बोकोजू संत है जिसकी चर्चा लाओत्से कर रहा है। यह कह रहा है, जीवन सरल हो गया। भूख लगती है, रोटी बनाते हैं; ठंड लगती है, जंगल से लकड़ी काट लाते हैं; प्यास लगती है, कुएं से पानी भरते हैं। ऐसा सरल हो गया। अब कोई जटिलता न रही।

लेकिन कुएं से पानी भरने में कौन पूजा देगा? सभी लोग भर रहे हैं। तुम कहोगे, इसमें क्या सार है! लकड़ी सभी काट रहे हैं। इसमें क्या सार है! फिर संसारी और इस बोकोजू में फर्क क्या है?

फर्क बड़ा गहरा है। संसार के लोग इन साधारण चीजों को बेमन से कर रहे हैं, क्योंकि उनका रस तो असाधारण को करने में है। तुम बाजार जाते हो; दुकान पर बैठ कर अच्छा नहीं लगता। तुम यह मत सोचना कि तुम दुकान से मुक्त हो गए हो। तुम कोई बड़ी दुकान चाहते हो। ये छोटे-मोटे काम तुम जैसे बड़े आदमी को शोभा नहीं देते। बैठे हैं, कपड़ा सी रहे हैं, या कपड़ा बुन रहे हैं। तुम जैसा बड़ा आदमी और ऐसे छोटे-छोटे काम में लगा है; लकड़ी काटे, पानी भरे, तुम्हें शोभा नहीं देते। तुम्हें तो शोभा देता है, बनारस में कांटों की सेज पर लेटे हैं। तुम्हें कुछ विशिष्ट होना तुम्हारा आकर्षण है।

एक दूसरे झेन फकीर दोजो से किसी ने पूछा कि तुम करते क्या हो अब जब कि तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए? उसने कहा, जब नींद आती है, सो जाते हैं; जब प्यास लगती है, पानी पी लेते हैं। और तो कुछ करने को है नहीं।

इन संतों को तुम न समझ पाओगे। क्योंकि ये तुम्हारे करने के जगत में, जहां असंभव को आकर्षण माना जाता है, जहां कठिन की पूजा होती है, उसके बिल्कुल बाहर हैं। ये किसी दूसरे ही मूल्य के इंद्रधनुष पर जीते हैं। तुम्हारे मूल्य के इंद्रधनुष से इनका कोई संबंध नहीं। तुम्हारे मूल्य की पटरी से इनका कोई लेना-देना नहीं। तुम इनको पहचान ही न पाओगे। सच्चा संत तुम्हें रास्ते पर मिले तो पहले तो तुम्हें दिखाई ही न पड़ेगा। दिखाई भी पड़ जाए तो तुम पहचान न सकोगे। कोई तुम्हें कह भी दे तो तुम भरोसा न ला सकोगे। क्योंकि इसमें कुछ खास तो दिखाई नहीं पड़ता। खास का संतत्व से कुछ संबंध नहीं है। अति साधारण हो रहने में ही संतत्व की असाधारणता है।

"कठिनता से प्राप्त होने वाली चीजों को संत मूल्य नहीं देते। वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो।"

तुम्हारे भीतर अनसीखा क्या है? वही सीखने योग्य है। तुम्हारे भीतर अनसीखा वही है जो तुम लेकर आए: स्वभाव। शेष सब तो तुम्हें सिखाया है समाज ने, परिवार ने, माता-पिता ने, गुरुजनों ने। तुम, जो-जो तुम्हें सिखाया गया है, उसे हटाओ। और जो-जो तुम्हारे भीतर अनसीखा है, जो तुम लाए थे जन्म के साथ, उसे उघाड़ो। वह अनसीखा ही सीखने योग्य है। क्योंकि वही तुम्हारी आत्मा है, वही तुम्हारा स्वभाव है।

"वे वही सीखते हैं जो अनसीखा हो।"

वे स्वभाव को सीखते हैं। संस्कृति से उनका कोई लेना-देना नहीं। संस्कृति दूसरों की सिखाई हुई है। नैतिकता से उनका कोई लेना-देना नहीं; दूसरों की सिखाई हुई है। अच्छे-बुरे से उनका कोई लेना-देना नहीं; दूसरों के सिखाए हुए हैं। वे तो उसी को सीखने की कोशिश करते हैं जिसे वे लेकर आए थे, जो परमात्मा का दिया हुआ है, जो प्रकृति का दान है, जो उनका होना है, बीइंग है। वह सब हटा देते हैं जो-जो सिखाया गया है। वह सब

कचरा है। वह सब कंडीशनिंग है, वह संस्कार है। उन संस्कार से संस्कृति पैदा होती है। वह बासा है, उधार है; दूसरों की आज्ञाओं का पालन है। वह दूसरों के द्वारा चलाए जाना है।

नहीं, वे अपने स्वभाव में जीना चाहते हैं; स्वभाव को पहचानते हैं और उसी में डूब रहते हैं। उसी स्वभाव में वे उठते हैं, बैठते हैं। उसी स्वभाव में वे चलते हैं, उसी स्वभाव में बोलते हैं, मौन होते हैं। लेकिन एक चीज से वे जुड़े रहते हैं--जो उनके भीतर अनसीखा है, अनलर्न्ड, जिसको किसी ने उन्हें सिखाया नहीं।

सिखाए से बचना। वही तुम्हारा ज्ञान बन गया है। असली ज्ञान अनसिखाए में छिपा है। और जिस दिन उस अनसिखाए का उदभव होता है उस दिन तुम सरलतम हो जाते हो। तुम फिर से पुनः एक बालक की भांति हो जाते हो।

"और वे उसे ही पुनः स्थापित करते हैं जिसे समुदाय ने खो दिया है।"

समाज के हिस्से होकर ही तो तुम भटक गए हो। भीड़ के साथ तुम एक हो गए हो। लोग जो कहते हैं वह तुम करते हो। लोग जो बताते हैं वह तुम मानते हो। लोग जो समझाते हैं वही तुम्हारी समझ है। तुमने अपना चेहरा खो दिया है। तुमने अपना स्वभाव, स्वरूप खो दिया है। तुम समाज की भीड़ में दब गए हो।

जो समुदाय ने खो दिया है उसे पाने की चेष्टा ही धर्म है। इसलिए धर्म कोई सामाजिक घटना नहीं है।

लोग धर्म को भी सामाजिक घटना बना लिए हैं। लोग चर्च जाते हैं रविवार को, क्योंकि सामाजिक बात है। न जाएं तो समाज में चर्चा होती है। एक औपचारिकता है, निभाना है; चले जाते हैं। लोग मंदिर चले जाते हैं, पूजा कर लेते हैं; क्योंकि समाज को ध्यान में रखना है। धर्म भी समाज से जोड़ कर रखा है तुमने? तो तुम्हारा धर्म भी झूठा है। इसलिए तुम्हारा धर्म जैन है, हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, बौद्ध है। यह सब झूठ है। वास्तविक धर्म का कोई नाम नहीं है। और वास्तविक धर्म एक ही है, वह है अपने स्वभाव में जीना। धर्म का अर्थ ही स्वभाव है। इसलिए धर्म संस्कृति का अतिक्रमण कर जाता है। वह पार है।

"वे उसे ही पुनः स्थापित करते हैं जिसे समुदाय ने खो दिया है।"

वे अपने बालपन को पुनः पाने की कोशिश करते हैं जिसे समाज ने छिपा दिया है, ढांक दिया है। वे फिर से निर्दोष बच्चे की भांति होने के प्रयास में संलग्न हो जाते हैं।

एक बच्चे को देखो। अभी उसके लिए कोई आदर्श नहीं है। अभी वह हंसता है तो हंसता है, रोता है तो रोता है। न रोने में उसे कोई बुराई दिखती है, न हंसने में कोई भलाई दिखती है। प्रेमपूर्ण हो तो बड़ा सदय हो जाता है, क्रोध से भरा हो तो बड़ा निर्दय हो जाता है। अभी उसे कोई नीति नहीं, अभी कोई नियम नहीं। अभी समाज प्रविष्ट नहीं हुआ। अभी वह स्वभाव में है। इसलिए तो सारे बच्चे प्यारे और सुंदर होते हैं। स्वभाव का सौंदर्य अनुपम है।

लेकिन बच्चे भी फीके हैं एक संत के सामने। क्योंकि बच्चों का स्वभाव टूटेगा। संस्कृति आएगी, समाज हावी होगा। बच्चे अज्ञान में निर्दोष हैं। उनका अज्ञान ज्यादा देर न टिकेगा। ज्ञान चारों तरफ से भेजा जा रहा है। और उसकी भी जरूरत है। नहीं तो बच्चा कभी समाज का अंग न हो सकेगा। बच्चा फिर कुछ सीख ही न सकेगा। फिर समाज के अनुभव से वंचित रह जाएगा, जो कि जरूरी है। अपने को खोना जरूरी है, ताकि तुम जब पुनः अपने को पाओ तब तुम समझ पाओ कि अपने होने में क्या राज है। खोए बिना पता नहीं चलता। अगर तुम सदा ही स्वस्थ रहो, बीमार न हो, तुम्हें स्वास्थ्य का पता ही न चलेगा कि स्वास्थ्य क्या है। बीमार हो जाओ तब पहली दफा पता चलता है स्वास्थ्य की गरिमा, अहोभाव। खोना जरूरी है पाने के लिए। वह पाने की प्रक्रिया है।

लेकिन बहुत से लोग खोकर ही मर जाते हैं--बिना पुनः पाए। बच्चे की तरह पैदा होओ, संत की तरह मरो। तुम्हारा जीवन-वर्तुल पूरा हो गया। बच्चे की तरह पैदा होओ, संत की तरह मरो। इसका अर्थ हुआ कि बच्चे में जो निर्दोषता थी अज्ञान में, उसे तुम ज्ञानपूर्वक, अनुभवपूर्वक, जीवन की सारी स्थितियों से गुजर कर, प्रौढ़ता को पाकर पुनः उपलब्ध कर लो, फिर से तुम बच्चे हो जाओ।

और जब कभी कोई बूढ़ा पुनः बच्चे की तरह निर्दोष हो जाता है तब उसके सौंदर्य का क्या कहना? तब उससे परमात्मा इस जगत में उतरता हुआ मालूम होता है। तब उसकी हवा में भनक आ जाती है परलोक की। तब उसके चारों तरफ एक वातावरण निर्मित हो जाता है अलौकिक। वह अपने साथ तरंगों का एक जाल लेकर चलने लगता है। वे किसी दूसरे ही लोक की खबर देते हैं, वे होने के किसी नए ढंग की खबर देते हैं। वह ढंग अनसीखा, वह ढंग स्वभाव का।

"यह कि प्रकृति के क्रम में वे सहायक तो होते हैं, लेकिन उसमें हस्तक्षेप करने की धृष्टता नहीं करते।"

संत सहायक होते हैं प्रकृति के क्रम में। तुम जो होना चाहते हो, तुम जहां जाना चाहते हो, तुम्हारी नियति तुम्हें जहां खींचे लिए जाती है, संत उसमें साथ देते हैं, सहारा देते हैं, सहयोग देते हैं। वे तुम्हारे होने में सहयोग देते हैं। वे अपनी कोई आकांक्षा तुम पर आरोपित नहीं करते कि तुम ऐसे हो जाओ।

यहीं फर्क समझ लेना। साधु वही है जो चेष्टा करेगा कि तुम मेरी प्रतिकृति हो जाओ, तुम मेरी कार्बन कापी बन जाओ। जैसा मैं हूं वही तुम्हारे जीवन का आदर्श हो। जो मैं खाऊं वही तुम खाओ; जब मैं उठूं तभी तुम उठो; जब मैं सोऊं तभी तुम सोओ। मेरा जीवन ही तुम्हारा ब्लू-प्रिंट हो। अब तुमको इसी के अनुसार अपने को ढाल लेना है।

इससे बड़ी कोई हिंसा इस संसार में नहीं है। दूसरे व्यक्ति को अपने अनुसार ढालने की कोशिश सबसे बड़ी हिंसा है। तुम कौन हो? दूसरा स्वयं होने को पैदा हुआ है। उसकी अपनी नियति है। उसकी अपनी यात्रा का पथ है। जन्मों-जन्मों से वह अपने को ही खोज रहा है। तुम कौन हो बीच में अपने आपको उसके ऊपर थोप देने को आतुर?

यह आतुरता आती है, क्योंकि बड़ा रस आता है अहंकार को जब वह देखता है कि मेरे ही जैसे कई लोग पूंछ कटाए खड़े हैं, ठीक मेरी प्रतिकृतियां। इसलिए गुरु जीता है अनुयायियों की भीड़ पर। जितने ज्यादा अनुयायी उतना गुरु को लगता है वह महत्वपूर्ण है। जरूर उसमें कुछ होना चाहिए, तभी तो इतने लोग उस जैसे होने की कोशिश कर रहे हैं। वह जो करता है, वह जो कहता है, वही शाश्वत नियम है।

नहीं, यह संतत्व का लक्षण नहीं। संतत्व का लक्षण हैः तुम ही तुम्हारे शाश्वत नियम हो। वह तुम्हें सहयोग दे सकता है, लेकिन तुम्हें ढांचा न देगा। वह तुम्हें आदर्श न देगा; वह तुम्हें प्रेम देगा, मैत्री देगा। वह तुम्हें अनुशासन न देगा; वह तुम्हें बांधेगा नहीं किसी डिसिप्लिन में, किसी अनुशासन में। वह तुम्हें मुक्त करेगा।

सहारा एक बात है। एक हम वृक्ष लगाते हैं नीम का, एक वृक्ष हम लगाते हैं आम का। सहारा हम देंगे। नीम कड़वी होगी; वह उसके होने की नियति है। उसके कड़वेपन का अपना राज है। उसके कड़वेपन की अपनी खूबी है। वह हवा को शुद्ध करेगी। नीम से ज्यादा शुद्ध कोई वनस्पति नहीं है। उसकी मौजूदगी शुद्ध करती है। उसकी कड़वाहट में भी बड़ी गहरी मिठास है। लेकिन संत नीम को आम बनाने की कोशिश नहीं करेगा। वह साधु की कोशिश है। आम अपने आम होने में रसपूर्ण है। उसका अपना माधुर्य है। नीम का अपना व्यक्तित्व है।

संत दोनों को, वे जो होना चाहते हैं, जो हो सकते हैं, जो उनके भीतर छिपा है, उसे प्रकट करेगा, सहयोग देगा, ताकि उनका बीज टूटे, अंकुरित हो, वृक्ष बने। लेकिन जो भी फूल उनके हों वही आएं, अंततः वे अपनी

मंजिल पर पहुंच जाएं, उनके व्यक्तित्व में कोई बाधा न पड़े। वह व्यर्थ को हटा देगा, सार्थक को सहयोग देगा; लेकिन अपने ढांचे में किसी को भी ढालेगा नहीं।

और जब भी कोई किसी व्यक्ति को ढांचे में ढालता है, मार डालता है। उसकी आत्मा मर जाती है। आत्मा जीती है स्वातंष्य में। उसे खुला आकाश चाहिए। संत तुम्हें सहयोग देगा और सहयोग का खुला आकाश देगा; गंतव्य नहीं देगा। पंख तुम्हारे शक्तिशाली कर देगा। उड़ो तुम। यात्रा तुम्हारी है; मंजिल तुम्हारी है; दिशा तुम्हारी है। शक्ति तुम्हें देगा कि तुम उड़ सको। खुला आकाश तुम्हें देगा, ताकि तुम मुक्ति से उड़ सको।

संत और साधु में बड़ा बारीक, नाजुक भेद है। उसको अगर तुम न समझे तो साधु के चक्कर में पड़ जाना सदा आसान है। और संत को पहचानना सदा कठिन है। क्योंकि वह इतना सरल है। तुम असाधारण को देखते हो। साधारण कहीं दिखाई पड़ता है? विशिष्ट दिखाई पड़ता है। सामान्य कहीं दिखाई पड़ता है? वह तुम्हारी आंख में आता ही नहीं, पकड़ में ही नहीं आता। इसलिए साधु और संत की ठीक-ठीक प्रकृति तुम्हें समझ में आ जाए तो तुम्हारे जीवन में बड़ा सहयोग मिल सकता है। न समझ में आए तो तुम्हें बहुत से सुधारने वाले मिलेंगे जो तुम्हें बिगाड़ कर छोड़ जाएंगे।

आज इतना ही।

एक सौ छटवां प्रवचन

धर्म की राह ही उसकी मंजिल है

पहला प्रश्नः महावीर, बुद्ध, लाओत्से, आप, आप सबके मध्य अलग-अलग प्रतीत होते हैं। क्या हम सामान्य जनों के भी मध्य अलग-अलग होंगे? मज्झिम निकाय की इस बात को हमें समझा दें।

एक-एक व्यक्ति अनूठा है, बेजोड़ है; उस जैसा न कभी कोई हुआ, न कभी कोई फिर और होगा।

इस बात को जितनी गहराई से समझ लें उतना साधना में सहायता मिलेगी। तब नकल का तो कोई उपाय नहीं है। तब दूसरे का अनुसरण करना संभव नहीं है; अनुयायी बनने की सुविधा ही नहीं है। तुम बस तुम जैसे हो, और तुम्हें अपना रास्ता खुद ही खोजना होगा। सहारे मिल सकते हैं, सुझाव मिल सकते हैं, आदेश नहीं। दूसरे की समझ के प्रकाश से तुम अपनी समझ को जगा सकते हो, लेकिन दूसरे के जीवन को ढांचा मान कर अपने को ढाला कि मुक्ति तो दूर, जीवित भी तुम न रह जाओगे। तब तुम एक मुर्दे की भांति होओगे; एक अनुकृति, जिसकी आत्मा खो गई है।

आत्मा का अर्थ है व्यक्तित्व; आत्मा का अर्थ है तुम्हारा अनूठापन; आत्मा का अर्थ है तुम्हारी अद्वितीयता। इसमें कुछ अहंकार मत समझना। क्योंकि जैसे तुम अद्वितीय हो वैसे ही सभी अद्वितीय हैं। अद्वितीयता सामान्य घटना है। यह कोई विशेष बात नहीं। यह समझना मत अपने मन में कि मैं बेजोड़ हूं। तुम ही बेजोड़ नहीं हो, सभी बेजोड़ हैं। राह के किनारे पड़ा एक छोटा सा कंकड़ भी बेजोड़ है। वृक्षों में लगे करोड़ों पत्ते हैं; एक-एक पत्ता बेजोड़ है। तुम उस जैसा पत्ता दूसरा न खोज सकोगे।

बेजोड़ता अस्तित्व का ढंग है। यहां सभी कुछ अनूठा है। होना ही चाहिए। क्योंकि यहां पत्ते-पत्ते पर परमात्मा का हस्ताक्षर है। उसका बनाया हुआ बेजोड़ होगा ही। तुम्हें भी वही बनाता। बुद्ध, कृष्ण, लाओत्से को भी वही बनाता। कंकड़-पत्थरों को भी वही बनाता। सभी पर उसी के निशान हैं। और जो उसके हाथ में पड़ गया वह नकल थोड़े ही हो सकता है। जो उस मूल स्रोत से आता है वह उस मूल स्रोत की अद्वितीयता को अपने साथ लाता है। तुम अद्वितीय हो, क्योंकि परमात्मा अद्वितीय है। तुम उससे ही आते हो। तुम उससे भिन्न नहीं हो सकते।

और तुम्हें अगर कुछ होना है तो बस अपने ही जैसा होना है। कोई दूसरा न तो आदर्श है, न कोई दूसरा तुम्हारे लिए नियम है, न तो कोई दूसरा तुम्हारा अनुशासन है। तुम्हारा बोध, तुम्हारी समझ, तुम्हारे अपने जीवन की भीतर की ज्योति को ही बढ़ाना है। सहारा लो, साथ लो; जो पहुंच गए हैं उनसे स्वाद लो; जो पहुंच गए हैं उनको गौर से देखो, पहचानो; पर नकल मत करो, अनुसरण मत करो।

अनुयायी भूल कर मत बनना। अनुयायियों से ही तो संप्रदाय निर्मित हो गए हैं। अगर तुम अनुयायी न बने तो ही तुम धार्मिक हो सकोगे। अनुयायी बनने का अर्थ यह है कि तुमने समझ को तो ताक पर रख दिया, अब तुम अंधे की तरह पीछे चल पड़े। अब तुमने किसी और के जीवन को अपने ऊपर ओढ़ लिया। अब तुमने अपनी आत्मा को तो दबाया, और किसी और के होने के ढंग को अपने ऊपर बिठा लिया जबरदस्ती।

जबरदस्ती जरूरी है, क्योंकि दूसरे का ढंग दूसरे का ढंग है। तुम्हें पता है, अगर दूसरे का खून भी तुम्हें दिया जाए तो वह भी तुम्हारे टाइप का ही होना चाहिए। नहीं तो शरीर उसे भी फेंक देता है। तुम्हें पता है कि अगर तुम्हारे पैर पर घाव हो जाए और चमड़ी लगानी हो तो तुम्हारे ही हाथ की या शरीर की चमड़ी निकालनी पड़ती

है। किसी दूसरे की चमड़ी तुम लगा दो, वह लगेगी नहीं। शरीर उसे इनकार कर देगा। जब शरीर तक इतना चुनाव करता है तो आत्मा का तो कहना ही क्या! जब शरीर तक पहचान रखता है कि जो अपने जैसा है, जो मेरा ही है, उसी को स्वीकार करूंगा, अंगीकार करूंगा, तो आत्मा की तो अपेक्षा बहुत बड़ी है, आत्यंतिक है।

तुम समझना, सीखना, देखना, स्वाद लेना। उसी स्वाद, समझ और सीखने से तुम्हारी अपनी अंतर्ज्योति जगने लगेगी। उस अंतर्ज्योति के प्रकाश में ही तुम पहुंच सकोगे। दूसरे का प्रकाश न कभी किसी को ले गया है, न ले जा सकता है। वह दूसरे का है। वह कितना ही प्रकाशित मालूम पड़े, उससे अंधकार नहीं मिटेगा। यह बात समझ में आ जाए तो फिर मैं जो बहुत सी बातें कह रहा हूं वे तुम्हारे सामने साफ हो जाएंगी।

हालांकि तुमने बहुत चाहा होगा कि कोई सुगमता से सूत्र दे दे, बता दे कि यह करो। तुम इतने काहिल, सुस्त, आलसी हो कि तुम जीने के संबंध में भी किसी दूसरे की लीक पर चलना पसंद करोगे। कौन झंझट में पड़े सोचने के? विचार का उपद्रव कौन ले? इतना भी बुद्धि को कौन लगाए? कोई बता दे मार्ग, हम चल पड़ें।

तुम यह मत समझना कि यह तुम्हारी श्रद्धा से हो रहा है। नहीं, यह तुम्हारे प्रमाद और आलस्य से हो रहा है। तुम चाहते हो, कोई हमें झंझट से बचा दे--सोचने की, विचारने की, साधना की, ध्यान की। कोई कह दे सीधा-साधा, यह करो, और हम कर लें। जिम्मेवारी छूट जाए।

तुम अंधे होने को उत्सुक हो; क्योंकि आंखें खोलने में पीड़ा होती है, और समझ को बढ़ाने में श्रम लगता है। समझ मुफ्त नहीं मिलती। और सत्य की खोज पूरे जीवन को एक क्रांति से गुजारना है, एक अग्नि से गुजारना है।

तुम चाहोगे दूसरे की बुझी राख में लोटना। तुमने देखे हैं, अनेक भभूत लगाए बैठे हुए हैं सारे मुल्क में। वे सब दूसरों की राख में लोट कर भभूत लगा रहे हैं। दूसरे के द्वारा लिया गया आदर्श बुझी हुई अंगार जैसा है, राख है। कभी वहां अंगार रही होगी; वह जा चुकी है। और जिसके लिए थी उसके लिए थी; तुम्हारे लिए वह अंगार राख है। तुम्हें अपने ही अंगार जलाने होंगे; अपनी ही सजानी पड़ेगी यज्ञशाला; अपने ही जीवन का घृत डालना होगा।

वह मंहगा सौदा लगता है; तुम सस्ते में निबटना चाहते हो। तुम चाहते हो, हमें झंझट न करनी पड़े; कोई सीधा बता दे कि ऐसा करो, ऐसा उठो, ऐसे खाओ, ऐसे पीओ, ऐसे चलो। निबटारा हो जाए; जिम्मेवारी दूसरे की हो जाए।

जिम्मेवारी दूसरे पर मत टालना, क्योंकि अंततः तुम्हीं पूछे जाओगे। तुमसे ही पूछा जाएगा; और कोई उत्तरदायी नहीं है। परमात्मा अगर पूछेगा तो तुमसे पूछेगा कि कहां गंवाए जीवन? कहां खोया सारा अवसर? तब तुम यह न कह सकोगे कि हम दूसरे जैसे बनने की कोशिश में लगते रहे।

एक यहूदी फकीर मर रहा था, हिलेल। बहुत अदभुत आदमी हुआ। मरते वक्त, मरने के ठीक एक क्षण पहले उसके शिष्यों ने देखा कि वह मुस्कुरा रहा है। एक शिष्य ने पूछा कि क्यों मुस्कुरा रहे हो? उसने कहा, इसलिए मुस्कुरा रहा हूं कि आज मुझे समझ में आई बात, अब जब मरने के करीब हूं, सारे जीवन का लेखा-जोखा कर रहा हूं, क्योंकि जल्दी ही जवाब देना होगा, तो अब मुझे समझ में आई बात कि परमात्मा मुझसे यह न पूछेगा कि तुम मूसा जैसे क्यों नहीं हो? क्योंकि मूसा यहूदियों का परम पुरुष, जैसे महावीर, बुद्ध, कृष्ण, लाओत्से। हिलेल ने कहा, परमात्मा मुझसे यह पूछेगा ही नहीं कि तुम मूसा जैसे क्यों नहीं हो, क्योंकि यह तो वह खुद ही जानता है कि उसने मुझे मूसा जैसा नहीं बनाया। इसलिए मूसा जैसा होने का सवाल ही नहीं है। वह मुझसे पूछेगा, कहां गंवाए दिन? कहां गंवाईं रातें? हिलेल जैसे क्यों नहीं हुए? हिलेल उसका खुद का नाम था। इसलिए मैं मुस्कुरा

रहा हूं कि यह तो बड़ा मजा रहा। हम जिंदगी भर मूसा होने की कोशिश करते रहे; आखिर में परीक्षा हिलेल की होगी।

वह अपने शिष्यों को सूचन दे रहा था। उसने कहा, याद रखना, तुमसे भी परमात्मा यह न पूछेगा कि तुम हिलेल जैसे क्यों नहीं हो, जब मुझसे ही नहीं पूछेगा कि मूसा जैसे नहीं। तुमसे भी पूछेगा कि तुम जैसे तुम क्यों नहीं हो। उत्तरदायित्व तुम्हारा है, आत्यंतिक रूप से तुम्हारा है।

तब जटिल हो जाती है बात थोड़ी। जटिल इसलिए हो जाती है कि तुम कदम भी नहीं उठाना चाहते, और मंजिल घर आ जाए ऐसा चाहते हो। अगर तुम कदम उठाने को तैयार हो तो जरा भी जटिल नहीं, बिल्कुल सरल है।

तुम्हें अपना ही मध्य खोजना होगा। मेरा मध्य मेरा मध्य है; बुद्ध का मध्य बुद्ध का मध्य है। ऐसा समझो कि रस्सी लगी है, दो खाइयों के बीच रस्सी बंधी है, और रस्सी पर से तुम्हें गुजरना पड़ता है। हर आदमी का मध्य अलग-अलग होगा। क्योंकि हर आदमी का वजन अलग-अलग है। अगर एक मोटा आदमी चलेगा उस रस्सी पर तो उसे अपने मध्य को साधना होगा--अपने वजन के अनुसार। एक दुबला आदमी चलेगा तो उसे अपना मध्य साधना होगा--अपने वजन के अनुसार। तुम दूसरे को देख कर मध्य मत साधना, अन्यथा गिरोगे। क्योंकि तुम्हें अपने वजन का ध्यान रखना है। अपने को पहचानो। अपनी अतियों को देखो। क्योंकि जो दूसरे के लिए अति है, वह हो सकता है तुम्हारे लिए अति हो ही नहीं। जो दूसरे के लिए समस्या है, हो सकता है वह तुम्हारे लिए समस्या हो ही नहीं।

गुरजिएफ के पास जब भी कोई शिष्य जाता था तो गुरजिएफ कहता था, तू अपनी सबसे बड़ी कमजोरी खोज कर मुझे बता, क्योंकि उसी पर सब निर्भर होगा।

जैसे समझो, एक आदमी कामी है, कामवासना से भरा हुआ है; और एक आदमी लोभी है। अब यह समझने जैसी बात है कि लोभी अक्सर कामवासना पर आसानी से विजय पा लेता है, बहुत आसानी से। लोभी के लिए कामवासना बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है, क्योंकि उसकी सारी ऊर्जा लोभ में लग जाती है।

इसलिए लोभी को न पत्नी की फिक्र है, न बच्चों की फिक्र है; लोभी को तो सिर्फ तिजोरी की फिक्र है। पत्नी चली जाए तो चिंता नहीं है, बच्चे न बचें तो चिंता नहीं है, घर-द्वार रहे न रहे, लेकिन तिजोरी बचे। चौबीस घंटे लोभी अपने लोभ में लगा रहता है। इसलिए अक्सर तुम पाओगे कि लोभी समाजों में कामवासना इतनी क्षीण हो जाती है कि बच्चे गोद लेना पड़ते हैं। मारवाड़ी अक्सर बच्चों को गोद लेंगे। लोभ खास गहराई है। तो कामवासना क्षीण हो जाती है। क्योंकि ऊर्जा तो उतनी ही है; उस ऊर्जा को चाहे लोभ की तरफ लगा दो, चाहे काम की तरफ लगा दो।

अब अगर कोई लोभी ब्रह्मचर्य की बात सुने तो उसे बिल्कुल सरल है, उसे कोई कठिनाई ही नहीं है। वह कहेगा, हम पहले से हैं ही। और ध्यान रखना, कृपण को ब्रह्मचर्य जंचता भी है, क्योंकि ब्रह्मचर्य भी अपनी ऊर्जा को रोकने की कृपणता है। कृपण वैसे ही जानता है कैसे चीजों को रोकना, धन को कैसे रोकना। उसे वीर्य की ऊर्जा भी धन जैसी ही लगती है। कहीं खतम न हो जाए, कहीं चुक न जाए, कहीं नष्ट न हो जाए; रोक लो, बचा लो।

चिकित्सक जानते हैं कि कृपण आदमी हर चीज को रोकता है। कृपण कब्जियत से भर जाता है; वह मल-मूत्र तक को भी छोड़ता नहीं। यह बड़ी हैरानी का अनुसंधान है कि मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जो आदमी भी कब्जियत का परेशान हो, उसमें नब्बे मौकों पर वह लोभ से पीड़ित आदमी होगा। लोभी की वृत्ति पकड़ने की हो जाती है। यह सवाल ही नहीं कि क्या पकड़ना है। छोड़ नहीं सकता; मल को भी नहीं छोड़ सकता।

शरीर उसको भी भीतर जकड़े रहता है। उसके पूरे शरीर की संरचना पकड़ने की हो जाती है। वह वीर्य को भी पकड़ लेता है। वह ब्रह्मचर्य को आसानी से उपलब्ध हो सकता है।

इसलिए तुम अपने मंदिर-मस्जिदों में ऐसे अनेक लोगों को बैठे पाओगे, जो ब्रह्मचर्य जिनके लिए आसान है। और उसका कुल कारण इतना है कि वे परम लोभी हैं।

लेकिन लोभ उनका सवाल है। उन्हें जो मध्य साधना है वह लोभ में साधना है, काम में नहीं साधना है।

कामवासना से भरा हुआ आदमी अक्सर लोभी नहीं होता। अक्सर कामवासना से भरे आदमी के लिए कृपणता नहीं पकड़ती। इसलिए अगर तुम उससे कहो लोभ छोड़ने को, वह बिल्कुल तैयार है। वह छोड़े ही बैठा है; छोड़ने को कुछ है ही नहीं। वह वैसे ही फेंक रहा है अपने जीवन में जो भी है उसके पास। व्यर्थ फेंकने में वह कुशल है। तुम उसे इधर दो, उधर वह फेंक देगा। इधर पैसे आए, उधर गए। इधर शक्ति आई उधर गई। उसका हाथ खुला हुआ है। उससे अगर तुम कहो, ब्रह्मचर्य साधो, तो बहुत कठिन। अगर तुम कहो, अलोभ साधो, अपरिग्रह साधो, बिल्कुल सरल।

जो आदमी क्रोधी है उससे तुम दया साधने को कहो तो बहुत कठिन; उससे तुम कहो करुणा करो तो बहुत कठिन। लेकिन जो आदमी डरपोक है, भयभीत है, भयातुर है, वह जल्दी ही दया साधने को राजी हो जाएगा।

इसलिए तुम जान कर हैरान होओगे कि महावीर ने अहिंसा का उपदेश दिया, दया का, करुणा का, और सिर्फ बनियों ने उसे पकड़ा। क्या कारण होगा? क्योंकि बनिया डरपोक है। उसे यह बात जंची। उसे यह बात जंची कि न हम किसी से झगड़ा करेंगे, न कोई हमसे झगड़ा करेगा। उसको दया की बात जंची कि तुम दूसरे पर दया करो, दूसरा तुम पर दया करेगा, झंझट पैदा न होगी। बनिया झगड़ने से डरता है। लड़ाई-झगड़ा खड़ा न हो, इसलिए बनिया क्रोध को साध लेता है। भय को नहीं साध पाता; जरा सी चीज उसे भयभीत करती है।

अब सवाल यह है कि तुम्हें अपना व्यक्तित्व खोजना पड़ेगा कि तुम्हारा व्यक्तित्व कैसा है। और तुम्हारे व्यक्तित्व को खोज कर ही तुम्हें मध्य खोजना पड़ेगा कि तुम्हारे व्यक्तित्व की क्या अतियां हैं, उनके बीच में मज्झिम निकाय क्या है। अगर तुमने अपने व्यक्तित्व को न खोजा और तुम किसी के अनुयायी बन गए... ।

समझो कि तुम्हारा मन तो लोभ का है और तुमने पतंजलि का शास्त्र पढ़ लिया कि ब्रह्मचर्य साधो, तुम्हें बिल्कुल जंचेगा। तुम साध भी लोगे। लेकिन तुम कहीं न पहुंचोगे; क्योंकि वह तुम्हारी बीमारी न थी। यह तो ऐसे हुआ कि बीमारी कुछ और थी, दवा कुछ और ले ली। माना कि दवा स्वादिष्ट लगी, इससे भी क्या होता है? माना कि दवा तुम्हें रास आई, इससे भी क्या होता है? असली सवाल यह है कि बीमारी क्या है।

ठीक-ठीक निदान व्यक्ति को अपनी बीमारी का कर लेना जरूरी है--बीमारी क्या है? और बीमारी का निदान करके तुम्हें अपनी अतियां देखनी हैं कि तुम किन अतियों के बीच में भटकते हो। समझो, एक आदमी है; वह या तो ज्यादा खाना खाता है; दो, तीन, चार महीने खूब खाएगा। ऐसे मित्रों को मैं जानता हूं जो तीन-चार महीने बिल्कुल खाएंगे कुछ भी; सब भूल जाएंगे नियम-व्यवस्था। फिर उनका वजन बढ़ जाएगा। फिर भारी देह हो जाएगी। फिर हृदय पर धड़कन बढ़ने लगेगी। फिर कमर में दर्द होगा। फिर वे उठ न सकेंगे। फिर ये तकलीफें आएंगी। तब तत्क्षण वे दूसरी अति पर चले जाएंगेः तब वे उपवास करने लगेंगे। या तो तुम उन्हें ओबेराय होटल में पाओगे और या उरली कांचन में। पूना में वे कभी न रुकेंगे। इसलिए तो मैंने पूना बीच में चुना। मध्य! तुम उन्हें यहां न पाओगे। वे उनकी अतियां हैं।

और इस व्यक्ति को मध्य खोजना है तो इसे मध्य अपना समझना पड़ेगा--सम्यक आहार! न तो ज्यादा खाना उचित है और न कम खाना उचित है। ज्यादा खाना उतनी ही बड़ी बीमारी है जितना कम खाना। क्योंकि

दोनों ही हालत में तुम शरीर को नुकसान पहुंचाते हो। सम्यक आहार! जितना जरूरी है बस उतना। न कम, न ज्यादा; ठीक बीच में रुक जाना।

अब यह कौन तुम्हें बताएगा? क्योंकि आहार भी लोगों के भिन्न-भिन्न हैं। एक आदमी श्रम करता है दिन भर, उसका आहार स्वभावतः ज्यादा होगा। तुम दिन भर श्रम नहीं करते, तुम अपनी कुर्सी पर बैठ कर काम करते हो, तुम्हारा आहार कम होगा।

इसलिए कोई बंधे नियम नहीं हो सकते। तुम्हें ही चल कर, सम्हल कर, दोनों अतियों को जांच-परख करके, क्या तुम्हें रास आता है, उस मध्य बिंदु को खोज लेना पड़ेगा। कौन सी जगह है जहां तुम्हारा पेट न तो ज्यादा भरा होता और न कम भरा होता, यह कौन तुम्हें बताएगा? क्योंकि पेट-पेट अलग हैं; पेटों की जरूरतें अलग हैं।

फिर ये भी जरूरतें सदा के लिए एक सी नहीं हैं। ये भी रोज बदलती जाती हैं। इसलिए तुम यह भी मत सोचना कि आज तुम्हारा जो मध्य था वह कल भी मध्य होगा। जिंदगी सतत जागरूकता मांगती है। एक दफा नियम बना लिया और फिर जरूरत न रही, ऐसा मत सोचना। क्योंकि बच्चे की जरूरत अलग है, जवान की जरूरत अलग है, बूढ़े की जरूरत अलग है। तुम्हारे ही बचपन में तुम्हें ज्यादा भोजन की जरूरत थी। फिर तुम्हारी जवानी आई। फिर तुम्हारा बुढ़ापा आएगा। रोज जरूरत बदलेगी।

इसलिए एक बड़ी समझने की बात है, लोगों की मोटाई और शरीर का वजन बढ़ना शुरू होता है कोई पैंतीस साल की उम्र के करीब। कारण क्या है? कारण सीधा है। पैंतीस साल के पहले तक आदमी शिखर की तरफ जा रहा था जवानी के। उसे ज्यादा से ज्यादा भोजन की जरूरत थी। पैंतीस साल तक उसने जिस तरह भोजन किया वह उसकी आदत बन गई। अब पैंतीस साल के बाद जीवन की गाड़ी तो उतरने लगी पहाड़ से नीचे, उतार शुरू हो गया। मौत करीब आने लगी, बुढ़ापा शुरू हो गया। और आदत खाने की उसने पुरानी जारी रखी। अब उतना खाना पचता नहीं। अब उतने खाने की शरीर को जरूरत ही नहीं, क्योंकि शरीर अब मरने की तैयारी कर रहा है। जब शरीर जीने की तैयारी कर रहा था तब ज्यादा भोजन की जरूरत थी। अब तो मरने की तैयारी कर रहा है। अब तो शरीर को धीरे-धीरे-धीरे भोजन को छोड़ने की तैयारी करनी है। भोजन रोज कम होता जाएगा।

इसलिए पैंतीस और चालीस साल के बीच लोगों के जीवन में असुविधा आती है। खाने की आदत पुरानी है; वे आदत को जारी रखते हैं। जितना खाते थे उतना ही खाते हैं। वे कहते हैं, इतना हम सदा से खाते रहे हैं, और कभी गड़बड़ न हुई; आज क्यों गड़बड़ हो रही है? आज तुम बदल गए हो। तुम जो सदा से थे वह अब तुम नहीं हो। अब जीवन उतर रहा है। अब घाट से नीचे जा रहे हो। अब जरूरत नहीं है इतनी। इसलिए हार्ट अटैक कोई चालीस साल के करीब घटता है। हृदय पर दौरे पड़ने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि तुम इतना बोझ चरबी का बढ़ा रहे हो हृदय पर जितना वह नहीं झेल सकता। पैंतीस साल के साथ, तुम्हें अगर थोड़ी भी सम्यक जागरूकता हो, तो तुम खुद ही अपने भोजन को कम करते जाओगे।

बच्चा पैदा होता है; बीस घंटे सोता है। मां के पेट में चौबीस घंटे सोता है। उसकी जरूरत उतनी है। क्योंकि जब शरीर निर्मित हो रहा है तो जागने से नुकसान होगा। नींद में शरीर को निर्मित होने में सुविधा होती है। तुम्हारे होश के कारण बाधा पड़ती है।

इसलिए तो चिकित्सक कहता है जब कोई बीमारी हो तो नींद बहुत जरूरी है। जब तक तुम जागे रहोगे, बीमारी दूर न हो सकेगी। क्योंकि तुम्हारे जागने के कारण तुम शरीर को मौका नहीं देते कि वह शांत होकर अपने को सुधारने का काम कर ले। इसलिए चिकित्सक कहता है पहली चीज कि तुम सो जाओ। क्योंकि नींद में ही शरीर सुधरता है। क्यों? क्योंकि जागे में तुम कुछ न कुछ खटर-पटर करोगे ही। वही तो लाओत्से कहता है कि

करने वाले बिगाड़ देते हैं, न करने से सब सुधर जाता है। नींद में सब ठीक हो जाता है। सुबह तुम ताजे उठते हो। क्या है नींद का मतलब? कि तुम मौजूद न थे, खटर-पटर न कर सके, कुछ सुधार की कोशिश न कर सके, कोई चिंता न कर सके। तुम थे ही नहीं। शरीर ने अपने को ठीक जमा लिया। शरीर तुमसे छुट्टी चाहता है थोड़ी देर को, इसलिए नींद की जरूरत है।

बच्चा चौबीस घंटे सोएगा मां के पेट में; पूरा शरीर बन रहा है। जवान सात-आठ घंटे पर आ जाएगा। बूढ़ा तीन-चार घंटे पर रुक जाएगा, दो घंटे पर रुक जाएगा। मेरे पास बूढ़े आते हैं। कुछ दिन पहले कोई अस्सी साल के एक आदमी ने आकर कहा कि और कुछ भी हो, मुझे नींद नहीं आती; नींद की वजह से मैं परेशान हूं। पूछा, कितनी देर सोते हो? उन्होंने कहा, मुश्किल से दो-तीन घंटे ही सो पाता हूं। अब तुम बूढ़े हुए, अस्सी साल तुम्हारी उमर होने को आ रही है; अब दो-तीन घंटे जरूरत से ज्यादा नींद है। अब तुम अगर बच्चे की तरह बीस घंटे सोना चाहो, संभव नहीं है। तुम बच्चे नहीं हो। अब तुम जवान की तरह सात-आठ घंटे सोना चाहो, संभव नहीं।

लेकिन बूढ़े की तकलीफ क्या है? यह अभी भी सोच रहा है कि सात-आठ घंटे जीवन भर सोता था, अब केवल तीन घंटे सोता हूं; पांच घंटे कम हो गए, मुश्किल बात है! यह यह देख ही नहीं रहा है कि तुम उतार पर आ गए; अब जाने का वक्त आ रहा है। अब इतनी नींद की कोई जरूरत न रही। अब तुम्हारे शरीर में चीजें टूटती हैं, बनती नहीं हैं। अब तुम्हारे शरीर के सेल बाहर जा रहे हैं, निर्मित नहीं होते। अब जो भी तुम्हारे भीतर टूट जाता है वह फिर से नहीं बनता। जब बनने का काम ही बंद हो गया तो नींद की जरूरत न रही। अब तो टूटने का काम शुरू है। तुम जागे रहो रात भर तो भी कोई हर्जा नहीं है। आदत लेकिन पुरानी है कि मैं पांच-सात घंटे, आठ घंटे सोता था! और अब दो घंटे सोता हूं; बड़ा बुरा हो रहा है।

न केवल तुम दूसरे का अनुसरण नहीं कर सकते हो, तुम अपने भी बनाए नियम को सदा के लिए नहीं बना सकते। जीवन रोज-रोज तौलना पड़ता है। रोज स्थिति बदल जाती है। कभी तुम स्वस्थ हो, तब तुम ज्यादा श्रम करते हो। कभी तुम बीमार हो, तब तुम ज्यादा विश्राम करते हो। तुम्हें चौबीस घंटे अपनी नब्ज पर हाथ रखे रहना पड़ेगा। तभी तुम सम्यक हो पाओगे। नब्ज पर हाथ रखे रहने की इस कला का नाम ही जागरूकता है। जैसी स्थिति हो उस स्थिति के अनुकूल तुम्हारी प्रतिसंवेदना हो, रिस्पांस हो। कोई बंधी हुई लकीर पर चलने से कभी लाभ नहीं होता; क्योंकि लकीर तो बंधी हो सकती है, लेकिन तुम रोज बदल रहे हो।

यह तो ऐसे हुआ कि एक छोटे बच्चे के लिए कपड़े बनाए थे और जिंदगी भर पहनाए। अब वह छोटा सा पैंट पहने फिर रहा है; बेहूदा लग रहा है। चल भी नहीं सकता, क्योंकि पैंट छोटा है, शरीर बड़ा है। तुम रोज कपड़े बनाओगे, रोज बदलने पड़ेंगे। बंधी लकीरों से नहीं। लकीर के फकीर मत बनना। बोध ही तुम्हारा नियंता हो। इसलिए दूसरा तो तुम्हारे लिए तय कर ही नहीं सकता, तुम खुद भी अपने लिए सदा-सदा के लिए तय नहीं कर सकते।

तो मैं तुम्हें एक ही अनुशासन देता हूं; वह अनुशासन होश का है। मैं तुम्हें एक ही नियम देता हूं कि तुम जाग कर जीना। बस काफी है। जब जैसी जरूरत हो तब तुम वैसे हो जाना, ढल जाना। तुम लड़ना मत परिस्थिति से; तुम परिस्थिति के अनुसार बह जाना। बुढ़ापे में जवान होने की कोशिश मत करना; जवानी में बूढ़े होने की कोशिश मत करना। बचपन में बच्चे रहना; स्वास्थ्य जब हो तब स्वास्थ्य के अनुसार चलना।

सिर्फ आदमी को छोड़ कर सभी पशु प्रतिपल अपनी संवेदना को सम्हालते हैं। अगर तुम्हारा कुत्ता भी बीमार है, खाने से इनकार कर देगा। लेकिन बीमारी में भी तुम खाए चले जाते हो। तुम्हें इतना भी बोध नहीं है जितना तुम्हारे कुत्ते को है। अगर कुत्ता बीमार अनुभव कर रहा है, फौरन जाकर घास खाकर वमन कर देगा,

उलटी कर देगा। क्यों? क्योंकि जब शरीर रुग्ण है तब जरा सा भी भोजन शरीर में घातक है। जब शरीर रुग्ण है तो सारी शरीर की ऊर्जा शरीर को ठीक करने में लगनी चाहिए, भोजन के पचाने में नहीं। क्योंकि यह इमरजेंसी है, यह घटना संकटकालीन है। भोजन अभी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि भोजन को पचाने में बड़ी शक्ति लगती है।

इसीलिए तो जब तुम भोजन करते हो तो तत्क्षण नींद आने लगती है भोजन के बाद। क्योंकि मस्तिष्क जिस शक्ति से काम करता था वह शक्ति भी पेट ने वापस बुला ली। पेट ने कहा कि अभी पचाना जरूरी है। सब चीजें गैर-जरूरी हो जाती हैं, क्योंकि भोजन इतनी बड़ी जरूरत है, उससे जीवन चलता है। पेट सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब पेट को जरूरत न हो तब वह शक्ति देता है, कहीं भी उसका उपयोग कर लो। लेकिन जब पेट को जरूरत है तब सब तरफ से शक्ति को खींच लेता है। इसीलिए तो भोजन करने के बाद मन होता है कि थोड़ा लेट जाएं। क्यों ऐसा मन होता है? क्योंकि पेट ने सब शक्ति खींच ली; हाथ-पैर ढीले हो गए। खाने के बाद तुम ठीक से सोच नहीं सकते; नींद आती है। विद्यार्थी जानते हैं परीक्षा के दिनों में कि अगर पढ़ना हो तो खाना मत खाओ। चाय पी लो, कुछ भी और कर लो, लेकिन भोजन मत डालो शरीर में ज्यादा। तो ही पढ़ पाओगे। क्योंकि मस्तिष्क को तभी शक्ति मिलती है जब शरीर का पचाने का काम बंद रहता है।

बीमारी में कोई जानवर खाना नहीं खाता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। बीमारी में सभी जानवर उपवास करते हैं, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। और स्वस्थ दशा में कोई जानवर कभी उपवास नहीं करता, सिर्फ आदमी को छोड़ कर। तुम आदमी से ज्यादा पागल जानवर न खोज सकोगे। स्वस्थ हालत में उपवास उतना ही गलत है जितना अस्वस्थ हालत में भोजन। जब तुम स्वस्थ हो तब तो भोजन की जरूरत है; तब अगर तुम शरीर को तड़पाओगे तो नुकसान कर रहे हो। जब तुम अस्वस्थ हो तब भोजन की जरूरत नहीं है।

लेकिन लोग नियम से चलते हैं। जैन हैं; उनका पर्यूषण आ गया। अब ये पर्यूषण तो बंधे हुए दिन हैं; हर वर्ष भादों में आ जाते हैं। अब दस दिन का उपवास चलेगा। हो सकता है, लाख आदमी उपवास करें तो दो-चार को शायद ये दिन ठीक पड़ें, संयोगवशात इन दिनों में ही उनकी हालत उपवास के योग्य हो। लेकिन बाकी जो लाख करेंगे, वे तो कष्ट में पड़ेंगे।

अपना पर्यूषण तुम्हें खोजना पड़ेगा। साल में कभी जब तुम्हारी स्थिति उपवास के योग्य हो तब तुम्हारा पर्यूषण है। कोई दिन बांधे नहीं हो सकते। और हर आदमी के लिए एक ही नियम नहीं हो सकता।

छोटे-छोटे बच्चे तक जोश में आ जाते हैं, पर्यूषण के दिन में उपवास कर लेते हैं। क्योंकि उनको बड़ी प्रशंसा मिलती है। सब कहते हैं, कितना गजब का बच्चा है, अभी इतनी उम्र और उपवास कर रहा है! बड़े-बड़े नहीं कर पा रहे, और यह कर रहा है! इसी बकवास में बच्चा बुद्धू बन जाता है; अकड़ में कर जाता है।

अब बच्चे को उपवास की बिल्कुल जरूरत नहीं है; बूढ़ों को जरूरत हो सकती है। बच्चे को उपवास तो घातक हो सकता है। दस दिन भोजन न देने का मतलब बच्चे के मस्तिष्क में कुछ तंतु सदा के लिए टूट सकते हैं, जिनको वह फिर कभी पूरा नहीं कर पाएगा। लेकिन उनका हिसाब कौन रखे? और कौन समझाए नासमझों को कि तुम क्या कर रहे हो? बच्चे को तो बिल्कुल उपवास की जरूरत नहीं है। बूढ़े कर लें, चलेगा।

जीवन को प्रतिपल जीना है। तुम मुझसे अगर कुछ सीखो तो इतना ही सीखना कि जीवन को प्रतिपल जीना है और प्रतिपल देखना है। और उसी पल से तुम्हारे जीवन का अनुशासन निकले। और वह अनुशासन उसी पल के लिए हो; अगले पल के लिए तुम कसम मत खाना। क्योंकि कौन जानता है कल क्या होगा? कल के लिए उपवास आज मत लेना। कल परिस्थिति हो, तब देखेंगे। कसम खाकर बंधना मत। अगर आज सुबह तुम्हें ऐसा

लगता हो कि भोजन नहीं करना है, तो मत करना। लेकिन सांझ तक लगने लगे कि करना है, तो करना। आधी रात तक लगने लगे कि करना है, तो करना। नियम का कोई सवाल नहीं है।

शरीर की स्थिति, मन की स्थिति, जीवन की स्थिति, इनको देखते-देखते-देखते तुम एक चीज पा लोगे, वह कसौटी है जिस पर सब सोना कसा जाता है। वह कसौटी होश की है।

तो मैं तुम्हें नहीं बता सकता कि तुम्हारा मध्य क्या है। मैं तुम्हें बता सकता हूं कि मध्य को कैसे खोजो। मैं तुम्हें बता सकता हूं कि यह कसौटी है, इस पर कस लेना। मध्य की अवस्था बड़ी शांत, आनंद, प्रफुल्लता की अवस्था है। वहां कोई तनाव नहीं होता। शरीर को जितनी जरूरत होती है उतना तुम दे देते हो; शरीर तृप्त हो जाता है। ज्यादा भर देते हो, अशांति हो जाती है। कम देते हो, पीड़ा बनी रहती है। भोजन करते वक्त वह बिंदु देखना जहां--वह बिंदु बारीक है; अगर बहुत होश रखोगे तो तुम्हें मिल जाएगा--जहां तुम पाओगे, शरीर न तो भर गया ज्यादा और न खाली है, जहां तुम पाओगे कि तृप्ति का बिंदु आ गया, वहीं रुक जाना। रोज-रोज यह बिंदु अलग-अलग होगा, क्योंकि रोज स्थिति अलग होगी।

तो मैं तुम्हें बताता हूं कि बिंदु की परिभाषा क्या है। और यही मैं तुमसे पूरे जीवन के लिए कहता हूं। आज हो सकता है ध्यान की घंटे भर जरूरत हो, कल दो घंटा जरूरत हो। आज हो सकता है ध्यान की सुबह जरूरत हो, कल सांझ जरूरत हो। तुम जरूरत से जीना। बंधी लकीरों की क्या जरूरत है? क्योंकि लोगों ने तय कर लिया है कि रोज सुबह ध्यान करना है एक घंटा।

अब यह भी हो सकता है कि सुबह जब तुम उठे तब चित्त इतना प्रसन्न है, इतना आनंदित है कि ध्यान करने की प्रक्रिया में ही यह आनंद और चित्त की प्रसन्नता खो जाएगी। जब चित्त आनंदित ही है तो ध्यान क्यों करना? ध्यान तो हो ही रहा है। इस क्षण उत्सव कर लो। इस क्षण नाच लो बाहर जाकर सूरज की खुली रोशनी में। पक्षियों के साथ गीत गा लो, गुनगुना लो। वृक्षों से थोड़ा तालमेल कर लो। मन इतना आनंदित है, अब यह ध्यान करने किसलिए बैठे हो? ध्यान तो इलाज है; जब मन अशांत हो तब बैठना। जब मन रुग्ण हो तब औषधि को खोजना। लेकिन तुमने कसम खा ली कि ध्यान रोज करेंगे। और गुरु हैं पूरे मुल्क में बैठे जगह-जगह जो कहते हैं, नियम से एक ही समय रोज ध्यान करना।

ध्यान कोई नियम है? ध्यान तो संतुलन जमाने की प्रक्रिया है। जब चित्त असंतुलित हो, तब जमाना; जब चित्त क्रोधित हो, अशांत हो, तनाव से भरा हो, तब हजार काम छोड़ कर द्वार बंद करके ध्यान करना। क्योंकि इस समय इलाज की जरूरत है। ध्यान औषधि है। प्यास जब लगे तब पानी पीना। नियम से क्यों पानी पी रहे हो? प्यास लगी नहीं है, लेकिन नियम है कि पानी पीना है तो पी रहे हैं। ध्यान भी जब तुम्हें प्यास लगे--जब चित्त अशांत है तो प्यास की खबर आ रही है--तब तुम ध्यान करना।

और कभी यह होगा कि घड़ी भर में ध्यान हो जाएगा, कभी दो घड़ी में होगा, कभी तीन घड़ी लग जाएंगी। निर्भर होगा कि बीमारी कितनी गहरी है, उतनी देर तक औषधि का उपयोग करना पड़ेगा। कभी संतुलन क्षण में सम्हल जाता है; कभी तुम बैठते नहीं हो ध्यान में और क्षण में ज्योति जग जाती है; कभी घड़ी लग जाती है। लेकिन अगर तुमने नियम बना लिया कि बस इतनी देर करना है तो तुम व्यर्थ ही चूकोगे। कभी संयोग से ठीक पड़ेगा, अन्यथा अधिकतर तुम खोओगे। निन्यानबे दिन बेकार जाएंगे; कभी एक दिन संयोगवशात ठीक होगा।

तो मैं तुम्हें कोई बंधी लकीर नहीं देता; मैं तुम्हें सिर्फ बोध देता हूं कि तुम देखना कब जरूरत है। जब जरूरत हो तब हजार काम छोड़ देना। ध्यान सबसे बड़ी चीज है, सबसे बड़ा भोजन है। एक बार शरीर भूखा रह

जाए, कोई हर्ज नहीं; आत्मा को भूखा मत रखना। ध्यान आत्मा का भोजन है। लेकिन जब भूख लगी हो, तभी भोजन का मजा है।

अब यही तकलीफ है। जिन्होंने ध्यान किया है सच में, वे कहते हैं, बड़ा आनंद आता है। जिन्होंने भूख लगने पर खाना खाया है, उनके स्वाद का मजा और। अब तुम ऐसे ही भरे जाते हो। तुमने शरीर को थैली समझा है कि उसमें डालते जाओ। तुम्हें स्वाद नहीं आता। जब तुम सुनते हो किसी की बात कि भोजन में अदभुत स्वाद है, तुम्हें भरोसा नहीं आता। जब कोई ऋषि कहता है, अन्न ब्रह्म है, तुम्हें क्या खाक भरोसा आएगा? क्योंकि तुमने कभी भूख ही नहीं जानी। जिसने भूख नहीं जानी उसने स्वाद के ब्रह्म को नहीं जाना। क्योंकि भूख से ही स्वाद आता है। मरुस्थल में मजा है पानी पीने का। तब कंठ पर पड़ती एक-एक ठंडी बूंद ऐसी तृप्ति दे जाती है कि तुम सोच ही नहीं सकते थे कि पानी से और ऐसी तृप्ति मिल सकती है।

ठीक संयोग की बात है। जब प्यास गहन हो तब पीना पानी; जब भूख गहन हो तब लेना स्वाद; और जब मन अशांत हो, अतृप्त हो, बेचैन हो, तब उतरना ध्यान में। देर लगेगी उतरने में, क्योंकि अशांति बाधा डालेगी। लेकिन उसी वक्त उतरने का मजा है; उसी वक्त उतरने की जरूरत है।

और जब चित्त आनंदित ही हो तब ध्यान की झंझट में मत पड़ना। नहीं तो वह आनंद जो आया वह खो जाएगा। चित्त तो नाचना चाहता था, तुम पालथी लगा कर सिद्धासन में बैठ गए। चित्त तो बांसुरी बजाना चाहता था, तुम आंखें बंद करके राम-राम राम-राम जपने लगे। चित्त तो चाहता था कि निकल जाए प्रकृति में, खुले आकाश के साथ हो, थोड़ा वृक्षों से बतियाए, थोड़ा पक्षियों से गुनगुनाए, थोड़ा घास पर लेटे, कि नदी में तैरे, चित्त तो अभी किसी उत्सव में जाना चाहता था; तुम जबरदस्ती उसे बिठा रहे हो सिद्धासन में। नहीं, सहज होना। सहजता ही एकमात्र साधना है। और सहज का मतलब यह हैः जो होना चाहता हो तुम्हारे अस्तित्व में उसे होने देना, विपरीत खींचने की कोशिश मत करना।

निश्चित ही, मेरे साथ काम करना कठिन मालूम पड़ता है। मैं तुम्हारी जिम्मेवारी बढ़ाता हूं, क्योंकि पल-पल तुम्हें जागना होगा। मैं तुम्हें बंधी लकीर दे देता, तुम्हें आसानी होती। लेकिन वह तुम मुझसे न पा सकोगे। बहुत से लोग मेरे पास आकर इसीलिए दूर चले जाते हैं, क्योंकि वे आए थे कुछ अंधी लकीरें पाने; मैं जो उन्हें देना चाहता था, वह उनके सामर्थ्य के बाहर था लेना। वे आए थे अनुयायी बनने, मैं चाहता था कि वे प्रबुद्ध बनें। वे छोटे-मोटे से राजी होने को आए थे, कूड़ा-कर्कट बटोरने आए थे; मैं उन्हें जगत की सारी संपदा देना चाहता था। उनको न जंची। उनको दिखाई ही न पड़ी। उनकी आंखों ने वैसी संपदा देखी ही नहीं थी। उन्होंने सोचा, यहां तो कुछ भी नहीं है। क्योंकि उनको जो कचरा चाहिए था वह नहीं मिला।

सब आदेश कचरा हैं; इसलिए मैं तुम्हें कोई आदेश नहीं देता। उपदेश और आदेश का यही तो फर्क है। आदेश का मतलब है यह कहना कि ऐसा-ऐसा करो, सीधा-सीधा, साफ। उपदेश का अर्थ है परोक्ष; सिर्फ हवा हम पैदा करते हैं; उस हवा में तुम खोज लेना कि क्या करने योग्य है। हम तुम्हें सिर्फ झलक देते हैं; रास्ता तुम बना लेना। हम सिर्फ दिखा देते हैं; जैसे बिजली कौंध जाती है, सब साफ हो जाता है; अब तुम अपना रास्ता बना लेना।

मैं तुम्हें आंखें देना चाहता हूं, अंधे की लकड़ी नहीं कि जिससे तुम टटोल कर और रास्ता खोज लो। मैं तुम्हें कोई नक्शा नहीं देना चाहता, क्योंकि सभी नक्शे परतंत्रताएं हैं। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम ऐसे ही चलो तो ही अच्छे रहोगे। न, मैं तो तुम्हारे अस्तित्व का एक गुण जगाना चाहता हूं कि तुम होश से चलना, कहीं भी चलना, किसी रास्ते पर चलना। कोई नक्शा तुम्हारे पास हो--हिंदू का हो, मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का--नक्शों से तुम सुलझो। मैं तो तुम्हें सिर्फ होश देना चाहता हूं। और अगर तुम्हारे पास होश है तो हर

नक्शा तुम्हें मोक्ष तक पहुंचा देगा। और अगर तुम्हारे पास होश नहीं है तो सभी शास्त्र तुम्हारी गर्दनों में बंधे हुए पत्थर हैं, डुबाएंगे और तुम्हें नष्ट कर देंगे।

दूसरा प्रश्नः यह तो घबड़ाने वाली बात हुई कि कोई साधक ठीक मंजिल के पास पहुंच कर भी जरा सी चूक के कारण इतना पीछे फेंक दिया जा सकता है कि उसे फिर आरंभ से ही आरंभ करना पड़े। तो क्या इतना सारा श्रम रत्ती भर चूक के लिए व्यर्थ हो गया?

पहली बात, चूक जरा सी चूक नहीं है; चूक बड़ी से बड़ी चूक है। क्योंकि पूरे रास्ते पर जिस होश को साधा उसको अंत में खो दिया! साधा ही न होगा ठीक से; रास्ता ऐसे ही गुजर गया। तुम धक्के-मुक्के में आ गए होओगे। किन्हीं और कारणों से आ गए होओगे; होश के कारण नहीं आए हो मंजिल के करीब।

बहुत बार ऐसा होता है। अगर तुम किसी गुरु की श्रद्धा में पड़ जाओ तो उसके झोंके में ही पहुंच जाते हो मंजिल के करीब, लेकिन मंजिल के भीतर नहीं घुस सकते। उसकी लहर में तुम चले जाते हो; तुम सोचते हो कि तुम जा रहे हो। उसका पक्का पता तो मंजिल पर चलेगा। क्योंकि गुरु भी द्वार तक ले जा सकता है; गुरु को भी आखिरी मंजिल के द्वार पर विदा दे देनी पड़ती है। क्योंकि उसके भीतर तो अकेले का ही प्रवेश है। वहां दुई को जगह नहीं। ता में दो न समाय, प्रेम गली अति सांकरी। बड़ी संकरी गली है, वहां गुरु भी साथ नहीं हो सकता। द्वार पर उससे भी विदा ले लेनी होती है। तभी तो पता चलता है कि अब तुम भीतर जा सकते कि नहीं। अगर तुम अपने ही होश से आए हो द्वार तक तो ही जा सकोगे, अन्यथा गहरी नींद पकड़ लेगी। गुरु विदा हो गया; तुम्हारा होश भी विदा हो गया।

गुरु के पास रहते बहुत बार तुम्हें ऐसा लगने लगेगा कि तुम भी जाग गए हो। क्योंकि जागे आदमी के पास की हवा का कण-कण जागने के लिए आभास देता है। गुरु के दर्पण में अपने चेहरे को देख कर तुम समझोगे कि तुम आत्मवान हो गए हो। लेकिन वह खूबी दर्पण की हो सकती है। असली पता तो आखिरी वक्त ही पता चलेगा जब कि गुरु का दर्पण भी छूट जाएगा। तब तुम्हें अपना चेहरा दिखाई पड़ता है या नहीं? तब महिमा, जो तुमने आज तक जानी थी, वह तुम्हारे साथ रही कि नहीं? ऐसा निरंतर हुआ है कि गुरु की लहर में बहुत से लोग आखिरी किनारे तक पहुंच गए। बस किनारे लगते-लगते चूक गए।

छोटी सी चूक नहीं है। वह तो परीक्षा है आखिरी। वह तो ऐसे है जैसे कि रात भर तुमने रामकथा देखी और सुबह पूछने लगे कि सीता राम की कौन? वह कोई छोटी चूक है? रात भर राम की कथा देखी; सारी कथा सीता राम की कौन, इसी के आस-पास चल रही थी, और सुबह पूछने लगे कि सीता राम की कौन? तुम्हारा प्रश्न छोटी सी चूक नहीं है। परीक्षा हो गई। तुम सोए रहे। रामलीला तुम देखे ही नहीं; झपकी खाते रहे। मूल ही चूक गया। और तुम कहते हो, छोटी सी चूक। यह छोटा ही सा तो सवाल पूछ रहे हैं।

अगर मंजिल पर पहुंच कर होश न रहा, झपकी लग गई, छोटी चूक नहीं; बड़ी से बड़ी चूक है। परीक्षा में असफल हो गए। जो व्यक्ति होश को साध कर आया है, मंजिल को पास देख कर तो दौड़ने लगेगा, चलेगा नहीं। बैठना तो असंभव। जन्मों-जन्मों से जिसकी प्रतीक्षा थी वह घर आ गया। लाखों-लाखों स्वप्नों में जिसे संजोया था; कितने-कितने रूपों में जिसे चाहा था; कहां-कहां मृग-मरीचिकाओं में भी उसे ही खोजा था; भटके भी थे तो उसी के लिए भटके थे; जहां-जहां भटके थे वह भी इसी के कोई आभास के रंग को देख कर भटक गए थे; इतने-इतने यात्रा-पथों के बाद आज घर करीब आया--तुम थके हुए अनुभव करोगे? तुम सोचोगे कि थोड़ा विश्राम कर लें?

तुम्हें याद भी रहेगी विश्राम की? प्रेमी सामने खड़ा हो, तुम दौड़ कर गले लग जाना चाहोगे, मिट जाना चाहोगे, डूब जाना चाहोगे या थोड़ा विश्राम करना चाहोगे? अब तक तुम चलते रहे; अब तुम दौड़ोगे। अब तक तुम थे; अब तो तुम रहोगे ही न, सिर्फ एक चाह मिलन की रह जाएगी। तुम तो मिट जाओगे। तुम तो एक आंधी-तूफान की तरह इस भवन में प्रवेश करोगे। एक क्षण भी अब और देर नहीं हो सकती। बहुत देर वैसे ही हो गई। बहुत भटकाव हो गया।

नहीं, असंभव है कि तुम द्वार पर बैठ कर विश्राम करो। संभव हो सकता है तभी जब कि तुम किसी और के धक्के में आ गए होओ। इसीलिए तो बड़े गुरुओं ने कहा है, गुरुओं से सावधान रहना। छोटे गुरु भर कहते हैं कि गुरु को कभी मत छोड़ना। छोटे गुरु यानि जो गुरु हैं ही नहीं। क्योंकि गुरु और छोटा कैसे हो सकता है? गुरु का मतलब ही होता है गुरु, बड़ा, गुरुत्व, भारी। सभी बड़े गुरुओं ने यही कहा है।

जरथुस्त्र जब विदा होने लगा अपने शिष्यों से तो उसने कहाः अब आखिरी संदेश, बीवेयर ऑफ जरथुस्त्र! अब आखिरी बात सुन लो, जरथुस्त्र से सावधान! शिष्यों ने कहा, यह भी कोई बात हुई? तुमसे और सावधान? जिसके लिए हमारी सारी श्रद्धा और प्रेम है उससे क्या सावधान? जरथुस्त्र ने कहा, इसीलिए कहता हूं, इसे याद रखना; नहीं तो यही तुम्हें चुकाएगा।

गुरु के पास होना, गुरु के निकटतम होना, गुरु को जितनी श्रद्धा दे सको देना, जितना प्रेम दे सको देना, लेकिन फिर भी सावधान। क्योंकि आखिरी क्षण में गुरु भी छूट जाना है। कहीं यह मोह भारी न हो जाए, कहीं श्रद्धा मोह न बन जाए, कहीं निकटता राग न बन जाए, कहीं यह स्वाद परतंत्रता की बेड़ियां न बन जाए! क्योंकि आखिरी क्षण इसे भी छोड़ देना है। द्वार पर विदा हो जाएगा गुरु भी। यहीं तक उसकी जरूरत थी।

अगर तुम गुरु के धक्के में आ गए हो तो तुम्हें लगेगा, छोटी सी चूक। अन्यथा छोटी सी चूक नहीं है, बड़ी से बड़ी चूक है।

दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि जितने ही तुम बढ़ते हो उतना ही तुम्हारा दायित्व बढ़ता है; जितने ही तुम विकसित होते हो उतनी ही तुम्हारी जिम्मेवारी बढ़ती है और अस्तित्व तुमसे ज्यादा से ज्यादा मांगता है।

तुम्हें एक छोटी कहानी कहूं। वास्तविक घटना है।

बंगाल में एक बहुत बड़े कलाकार हुए अवनींद्रनाथ ठाकुर। रवींद्रनाथ के चाचा थे। उन जैसा चित्रकार भारत में इधर पीछे सौ वर्षों में नहीं हुआ। और उनका शिष्य, उनका बड़े से बड़ा शिष्य था नंदलाल। उस जैसा भी चित्रकार फिर खोजना मुश्किल है। एक दिन ऐसा हुआ कि रवींद्रनाथ बैठे हैं और अवनींद्रनाथ बैठे हैं, और नंदलाल कृष्ण की एक छबि बना कर लाया, एक चित्र बना कर लाया। रवींद्रनाथ ने अपने संस्मरणों में लिखा है, मैंने इससे प्यारा कृष्ण का चित्र कभी देखा ही नहीं; अनूठा था। और मुझे शक है कि अवनींद्रनाथ भी उसे बना सकते थे या नहीं। लेकिन मेरा तो कोई सवाल नहीं था, रवींद्रनाथ ने लिखा है, बीच में बोलने का। अवनींद्रनाथ ने चित्र देखा और बाहर फेंक दिया सड़क पर, और नंदलाल से कहा, तुझसे अच्छा तो बंगाल के पटिए बना लेते हैं।

बंगाल में पटिए होते हैं, गरीब चित्रकार, जो कृष्णाष्टमी के समय कृष्ण के चित्र बना कर बेचते हैं दो-दो पैसे में। वह आखिरी दर्जे का चित्रकार है। अब उससे और नीचे क्या होता है! दो-दो पैसे में कृष्ण के चित्र बना कर बेचता है।

अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुझसे अच्छा तो बंगाल के पटिए बना लेते हैं। जा, उनसे सीख!

रवींद्रनाथ को लगा, मुझे बहुत चोट पहुंची। यह तो बहुत हद हो गई। चित्र ऐसा अदभुत था कि मैंने अवनींद्रनाथ के भी चित्र देखे हैं कृष्ण के, लेकिन इतने अदभुत नहीं। और इतना दुर्व्यवहार?

नंदलाल ने पैर छुए, विदा हो गया। और तीन साल तक उसका कोई पता न चला। उसके द्वार पर छात्रावास में ताला पड़ा रहा। तीन साल बाद वह लौटा; उसे पहचानना ही मुश्किल था। वह बिल्कुल पटिया ही हो गया था। क्योंकि एक पैसा पास नहीं था; गांव-गांव पटियों को खोजता रहा। क्योंकि गुरु ने कहा, जा पटियों से सीख! गांव-गांव सीखता रहा। तीन साल बाद लौटा, अवनींद्रनाथ के चरणों पर सिर रखा। उसने कहा, आपने ठीक कहा था।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैंने पूछा, यह क्या पागलपन है? अवनींद्रनाथ से कहा कि यह तो हद ज्यादती है। लेकिन अवनींद्रनाथ ने कहा कि यह मेरा श्रेष्ठतम शिष्य है, और यह मैं भी जानता हूं कि मैं भी शायद उस चित्र को नहीं बना सकता था। इससे मुझे बड़ी अपेक्षाएं हैं। इसलिए इसे सस्ते में नहीं छोड़ा जा सकता। यह कोई साधारण चित्रकार होता तो मैं प्रशंसा करके इसे विदा कर देता। लेकिन मेरी प्रशंसा का तो अर्थ होगा अंत, बात खतम हो गई। इसे अभी और खींचा जा सकता है; अभी इसे और उठाया जा सकता है। अभी इसकी संभावनाएं और शेष थीं। इसे मैं जल्दी नहीं छोड़ सकता। इससे मेरी बड़ी आशा है। छोटा चित्रकार होता तो कह देता कि ठीक, बहुत। लेकिन इसकी संभावना इसके कृत्य से बड़ी है।

इसे समझ लो ठीक से। जितनी बड़ी तुम्हारी संभावना होगी उतने ही तुम कसे जाओगे। जितनी छोटी संभावना होगी उतने जल्दी छूट जाओगे। जैसे-जैसे घड़ी करीब आती है परमात्मा के पहुंचने के पास, उतनी ही कसान बढ़ती है, उतने ही तुम ज्यादा कसे जाते हो। क्योंकि अब तुम अपनी अंतिम संभावना के निकट पहुंच रहे हो। अब सब परीक्षाएं हो जानी जरूरी हैं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जिसके आगे फिर और कोई जाना नहीं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जिसके आगे फिर और कोई विकास नहीं। अब तुम वहां पहुंच रहे हो जो चरम उत्कर्ष है, जो कैलाश का शिखर है। अब तुम्हारी सब परीक्षा हो जानी जरूरी है। अब तुम्हारा रोआं-रोआं कस लिया जाना जरूरी है। अब तुम खालिस सोना बचो। तुममें कुछ भी तंद्रा न रह जाए; तुम शुद्ध-बुद्ध बचो। तुममें कुछ भी कूड़ा-कर्कट न रह जाए। अब तुम्हें आखिरी आग में फेंक देना जरूरी है।

इसलिए आखिरी मंजिल से अगर तुम जरा भी चूके तो ठीक पहले कदम पर फेंक दिए जाते हो। क्योंकि तुम बड़े संभावना के व्यक्ति हो; आखिरी तक आ गए थे। तुम्हारा होना है तो बहुमूल्य कि तुम द्वार तक किसी तरह पहुंच गए थे, जो कि कभी करोड़ों में एक को संभव हो पाता है और करोड़ों जन्मों दौड़ कर कभी संभव हो पाता है। तुम्हें वापस पहले कदम पर फेंक दिया जाए, यही उचित है। यही उचित है, इसे तुम अन्याय मत समझना। क्योंकि तुम्हारी जितनी बड़ी संभावना है उतनी ही बड़ी तुमसे अपेक्षा है।

तुम थोड़े ही उन कठिनाइयों में से गुजर रहे हो जिनमें से कोई बुद्ध और लाओत्से गुजरता है। जिस दिन गुजरो उस दिन सौभाग्य समझना। तुम्हें पता ही नहीं--क्योंकि उस कथा को कोई कहेगा भी नहीं, कहने का कोई उपाय भी नहीं है--कि आखिरी क्षणों में बुद्ध किस कसौटी से गुजरते हैं; कितनी बार फेंके जाते हैं; कितनी बार अपने को पहले कदम पर पाते हैं। पुनः-पुनः। यह जरूरी है। क्योंकि एक बार तुम इस आखिरी मंदिर में प्रविष्ट हो गए कुछ कचरा लेकर, तो फिर वह तुमसे कभी न छूट सकेगा। फिर कोई उपाय न रहा। इसलिए इस मंदिर का द्वार खुलता ही तब है जब तुम बिल्कुल खालिस होकर पहुंचते हो।

तुम्हें पता हो, जितना कीमती हीरा हो उतना ही जरा सी भी लकीर उसकी कीमत को करोड़ गुना नीचे गिरा देती है। जरा सी लकीर! वही लकीर साधारण हीरे में कोई देखता भी नहीं। लेकिन कोहिनूर में छोटी सी लकीर की भी कीमत है करोड़ों रुपया। उस लकीर के होने पर दाम कुछ हो जाएगा, न होने पर दाम कुछ का कुछ हो जाएगा। जरा सी लकीर। तुम कहोगे, जरा सी लकीर! लेकिन कोहिनूर से बड़ी अपेक्षा है।

और जब तुम परमात्मा के द्वार पर हो तो जिस आत्मा को तुमने अब तक कंकड़-पत्थर समझा था वह कोहिनूर की स्थिति में पहुंच रही है। अब उसे आखिरी नूर उपलब्ध हो रहा है, आखिरी प्रकाश उपलब्ध हो रहा है। इस परम प्रकाश में छोटी सी भी कमी और खामी दिखाई पड़ेगी। आखिरी जौहरी के सामने जा रहा है अब तुम्हारा हीरा। यहां बचने का, धोखे का कोई भी उपाय नहीं है। और जितना बड़ा हीरा है उतने ही दूर फेंक दिया जाएगा; क्योंकि उतने ही शुद्ध होने की जरूरत और अपेक्षा है।

तो पहली तो बात, इसे जरा सी चूक मत कहना। क्योंकि अगर तुमने अपने मन में अभी से यह समझ लिया कि यह जरा सी चूक है तो तुम्हारे करने की संभावना बढ़ जाती है। तुम इस चूक को कर गुजरोगे। जिस चीज को भी हम जरा सा कहते हैं उसका खतरा है।

इसीलिए तो लाओत्से कहता है कि संत किसी भी चीज को छोटा नहीं मानते, छोटी से छोटी चीज को बड़ा मानते हैं। इसलिए उनको किसी बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।

तुम इसे छोटा मत कहना। और यह भी मत सोचना कि क्या इतना सारा श्रम रत्ती भर चूक के लिए व्यर्थ हो गया! इसे भी थोड़ा समझ लो। क्योंकि साधना को अगर तुमने श्रम समझा तो तुम कभी उस मंदिर में न पहुंच पाओगे। उस मंदिर में तो वे ही पहुंचते हैं जिन्होंने साधना को प्रेम समझा।

प्रेम और श्रम में बड़ा फर्क है। श्रम तो वह है जो तुम बेमन से करते हो। श्रम तो वह है जो तुम करते हो, क्योंकि करना पड़ रहा है। श्रम तो वह है जिससे तुम बच सकते तो बच जाते। श्रम तो मजबूरी है, परवशता है। प्रेम? प्रेम वह है जो तुम करना चाहते हो। प्रेम वह है कि तुम बचना भी संभव होता तो बचना न चाहते। प्रेम वह है जो तुम्हारी परवशता नहीं है, तुम्हारी स्वतंत्रता है। प्रेम वह है जो तुम बार-बार करना चाहोगे और थकोगे न। तुमसे हजार बार करने को कहा जाए तो तुम एक हजार एक बार करोगे।

मुझे बचपन में व्यायाम से बड़ा प्रेम था। और जब मैं पहली दफा स्कूल में भरती हुआ तो जो मुझे शिक्षक मिले, वे दिखता है व्यायाम के बड़े दुश्मन थे। वे सजा ही देते थे दंड-बैठक लगाने की। अगर कुछ भूल-चूक हो जाए, देर से आऊं या कुछ हो, तो वे कहते, लगाओ पच्चीस बैठक। तो मैं पच्चीस की जगह पचास लगाता।

तो वे कहते, तेरा दिमाग खराब है? हम दंड दे रहे हैं!

मैं उनको कहता कि मुझे लगाव है; आप दंड दे रहे हैं; हम व्यायाम कर रहे हैं। और जब आप मुझे दें तो मुक्तहस्त दिया करें, इसमें आप संकोच न करें कि पच्चीस।

वे अपना सिर ठोंक लेते कि अब इसको क्या दंड देना।

श्रम का अर्थ है, जो तुम मजबूरी से कर रहे हो; प्रेम का अर्थ है, जो तुम अपने आनंद और अहोभाव से कर रहे हो। तब दंड भी दंड नहीं रह जाएगा। और अगर तुमने श्रम की भांति किया साधना को तो जो पुरस्कार था वह पुरस्कार की भांति न रह जाएगा। पुरस्कार दंड में परिवर्तित हो सकता है; दंड पुरस्कार बन सकता है।

एक अफ्रीकी संन्यासी--हिंदू संन्यासी--यात्रा पर भारत आया। वह हिमालय यात्रा पर गया। पहाड़ चढ़ रहा था, भरी दुपहरी, पसीना चू रहा था। पोटली अपने कंधे पर बांध रखी है। वजन भारी लगता है। जैसे-जैसे पहाड़ चढ़ता, उतना वजनी मालूम पड़ता है। और उसके सामने ही एक लड़की अपने भाई को कंधे पर बिठा कर चढ़ रही है। दयावश, प्रेमवश उसने उस लड़की से कहा, बेटी, बड़ा वजन लग रहा होगा। वह बेटी बड़ी क्रुद्ध हो गई। उसने कहा, वजन आप लिए हैं स्वामी जी, यह मेरा छोटा भाई है!

छोटे भाई में भी वजन होता है, तराजू पर तौलोगे तो वजन बताएगा; लेकिन हृदय पर तौलोगे तो वजन खो जाता है। उस लड़की ने ठीक ही कहा। और उस संन्यासी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे उस दिन पहली बार पता चला कि वजन भी प्रेम में तिरोहित हो जाता है, निर्भार हो जाता है।

श्रम मत समझना साधना को। साधना प्रेम है। तुम इसे आनंद-भाव से करना। तुम ऐसे मत चलना कि चलना पड़ रहा है मजबूरी में, और किसी तरह चल रहे हैं; क्योंकि क्या करें, बिना चले नहीं पहुंच सकेंगे। अगर कोई शार्टकट होता तो उससे गुजर जाते, अगर कोई रिश्वत चलती होती तो रिश्वत देकर मंदिर में प्रवेश कर जाते परमात्मा के, कोई चोर-दरवाजा होता तो हम वहीं से घुस जाते। लेकिन यह इतनी यात्रा करनी पड़ रही है।

इसे अगर तुमने श्रम की तरह लिया तो याद रखो, जिसको तुम चूक कह रहे हो जरा सी, वह होकर रहेगी। क्योंकि श्रम करने वाला जब मंजिल के करीब जाता है तो थक जाता है, वह विश्राम करने लगता है। वह आंख बंद करके सोचता है, अब तो आ गई मंजिल, अब तो कोई जाने की जल्दी भी नहीं है। अब तो थोड़ा आराम कर लो।

इसलिए लाओत्से कहता है, बहुत से लोग करीब पहुंच कर भटक जाते हैं; आखिरी क्षण में, जब कि द्वार खुलने को ही था, तभी चूक जाते हैं।

तुम प्रेम की तरह करना यात्रा। यह प्रेम-यात्रा है, श्रम-यात्रा नहीं। तुम एक-एक कदम इतने प्रेम से चलना कि जैसे एक-एक कदम मंजिल हो। तुम मंजिल की फिक्र ही छोड़ देना। तुम चलने में इतने आनंदित होना कि चलना ही जैसे मंजिल बन जाए। साधन अगर साध्य जैसा हो जाए तो तुम आखिरी क्षण में कभी भी चूक न कर पाओगे। क्योंकि तुमने प्रत्येक चरण को मंजिल समझा था, मंजिल को सामने देख कर थकने का क्या सवाल है? तुम तो हर कदम पर ही मंजिल से गुजर रहे थे। तुम प्रेम बनाना अपनी साधना को।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि हमारे पास योग-भ्रष्ट जैसा शब्द तो है, लेकिन भक्ति-भ्रष्ट जैसा शब्द नहीं है। क्योंकि योगी आखिरी मंजिल से भी भटक सकता है। क्योंकि योगी श्रम जैसा कर रहा है, बड़ी मेहनत उठा रहा है; जैसे परमात्मा पर कोई एहसान कर रहा है। क्योंकि तुम शीर्षासन लगा रहे, जैसे कि तुम अस्तित्व पर कोई एहसान कर रहे हो, जैसे तुम अस्तित्व को कर्जदार बना रहे हो कि देखो, मैंने कितना किया! योगी इसी भाव से खड़ा है कि देखो, मैंने कितना किया, और अभी तक नहीं मिला! एक शिकायत है।

प्रेमी की कोई शिकायत नहीं है। इसलिए भक्ति से कभी कोई भ्रष्ट नहीं होता। हो ही नहीं सकता; क्योंकि प्रेम से कभी कोई कैसे भ्रष्ट हो सकता है? प्रेम की कोई शिकायत ही नहीं है। प्रेम का तो सिर्फ धन्यवाद है। प्रेम तो कहता है कि मुझ जैसा आदमी और इतने जल्दी मंजिल के करीब आ गया! कुछ भी न करना पड़ा और मंजिल आ गई! तेरी अपरंपार कृपा है। चले भी नहीं और तेरा द्वार सामने आ गया! चलना भी कोई चलना था? चार कदम चले, वह कोई चलना था? वह कोई बात कहने की है?

प्रेमी सदा परमात्मा के द्वार पर कहता है कि मैंने कुछ भी न किया और तेरे प्रसाद की वर्षा हो गई। तेरी अनुकंपा अपार है। योगी ऐसे जाता है जैसे कि दावेदार है। प्रेमी ऐसे जाता है कि हमारा दावा क्या? अगर जन्मों-जन्मों तक न मिलता तो भी शिकायत क्या थी? शिकायत उठती है अहंकार से; शिकायत उठती है श्रम से; शिकायत उठती है तप से। प्रेम की कोई शिकायत नहीं।

और ध्यान रखना, अगर परमात्मा से ही मिलना है तो प्रेम के अतिरिक्त सभी कुछ साधारण है। तुम प्रेम से ही जाना। तुम साधन को साध्य की तरह समझ लेना, एक-एक कदम उसी की मंजिल पर पहुंच रहा है। और तुम अनुग्रह-भाव से जाना। तुम किसी को कर्जदार नहीं बना रहे हो।

और जिस दिन तुम पाओगे, याद रखना, जिन्होंने भी पाया है उन सभी ने यह कहा है कि प्रसाद है, ग्रेस है। क्यों? क्योंकि हमने जो किया वह कुछ भी नहीं सिद्ध होता है आखिर में; वह कुछ भी नहीं था। क्या कर रहे हो तुम? क्या कर सकते हो? उपवास कर लिया, कि सिर के बल खड़े हो गए, कि नंगे खड़े हो गए, कि धूप में खड़े हो गए। इससे क्या लेना-देना है उसके मिलने का? यह तुम क्या कर रहे हो? जिस दिन वह मिलेगा और जिस दिन वर्षा होगी तुम्हारे ऊपर उसके अमृत की, उस दिन क्या तुम सोचोगे जो हमने किया उससे मूल्य चुका दिया, हम पाने के अधिकारी होकर आए? उस दिन पहली दफे तुम पाओगे कि तुम्हारा तो कोई अधिकार ही नहीं बना था। यह मिला है उसके प्रसाद से, यह उसकी अनुकंपा से।

तुम अधिकारी की तरह कभी उस मंदिर में प्रवेश न कर पाओगे। तुम जब भी प्रवेश करोगे तब एक विनम्र याचक की भांति, एक विनम्र प्रेमी की भांति। अहोभाव से तुम प्रवेश कर पाओगे।

इसलिए तो मैं कहता हूं, यह यात्रा तुम नाच कर पूरी करना। इस यात्रा पर तुम्हारे पसीने के चिह्न न छूटें, तुम्हारे गीतों की छाप छूटे। तुम्हारे हर पद-चिह्न पर तुम्हारा अहोभाव छूटे। तुम्हारे अधिकारी का भाव न बढ़े, तुम्हारी विनम्रता गहन होती जाए, तुम निरहंकार होते जाओ। मंजिल आते-आते वह घड़ी आ जाए कि तुम मिट ही चुके हो--एक धुएं की रेखा, जो खो चुकी।

अगर नाच कर पूरी हो सकती हो यात्रा तो ही पूरी होगी। जो भी मिले हैं उस आखिरी सत्य को वे नाच कर ही मिले हैं। हंसते हुए जाना, नाचते हुए जाना, गीत गाते जाना, मस्ती में जाना। श्रम की बात ही मत उठाओ। श्रम की बात ही बेतुकी है। प्रेम की चर्चा करो। प्रेम को गुनगुनाओ। और तब तुम पाओगे कि हर कदम मंजिल है। और अगर इस प्रेम में तुम डूब भी गए मझधार में तो तुम पाओगे, मझधार ही किनारा है।

आखिरी सवालः लाओत्से ने कहा कि संत किसी में कोई सुधार नहीं करता। लेकिन कृष्ण के वचन हैं कि वे जन्म ही बुराई को कम करने और भलाई को बढ़ाने के लिए लेते हैं। और हमारा अनुभव भी है कि जो भी आपके निकट आया है उसमें आमूल परिवर्तन शुरू हुआ। लगता है, आपकी करुणा इसलिए बरसती है कि हरेक के जीवन में संपूर्ण परिवर्तन हो। तो लगता है, संत ही पूरा सुधार करता है।

दोनों ही बातें एक हैं। संत ही सुधार करता है, लाओत्से को इससे कोई विरोध नहीं। लेकिन संत सुधार करना नहीं चाहता। जो नहीं करना चाहता उसी से सुधार फलित होता है। जो करना चाहता है वही नहीं कर पाता।

लाओत्से इतना ही कह रहा है कि अगर तुमने किसी का सुधार करना चाहा तो इसका क्या अर्थ होता है? इसका पहला तो अर्थ होता है कि तुमने अपने को ऊपर रख लिया। मैं सुधार करने वाला! अकड़ छा गई। संत में कहीं कोई अकड़ नहीं। संत अपने को ऊपर रख ही नहीं सकता। संत है ही नहीं, रखेगा कहां? और जब तुमने कहा, मैं सुधार करना चाहता हूं, तब तुमने दूसरे को नीचे रख दिया--निंदित, पापी, गलत, बुरा। संत कहीं किसी की निंदा कर सकता है? संत के मन में कभी किसी को नीचे रखने का सवाल उठ सकता है?

और जहां निंदा है वहां संतत्व के होने का कोई उपाय नहीं। और जिस क्षण तुमने दूसरे को नीचे रखा और दूसरे की निंदा की, उसी क्षण तुमने दूसरे को बदलने के सब द्वार बंद कर दिए। अब तो संभावना यह है कि तुमने जितना नीचे उस आदमी को रखा है वह उससे और भी नीचे गिर जाए, और तुमने जितनी उसकी निंदा की है वह

उससे भी ज्यादा निंदित होने के योग्य हो जाए। क्यों? क्योंकि हम जो भाव किसी दूसरे व्यक्ति की तरफ बनाते हैं वह भाव उसे चारों तरफ से घेरने लगता है।

अगर एक व्यक्ति को सारे लोग बुरा मानते हों तो वे उसके बुरे होने में सहयोगी हो रहे हैं। क्योंकि वे उसके चारों तरफ बुरी तरंगों को निर्मित कर रहे हैं। वे उस व्यक्ति को निकलने न देंगे उन तरंगों के बाहर। अगर वह व्यक्ति कुछ अच्छा भी करेगा तो भी वे कहेंगे कि अभी पूरी बात पता चल जाने दो, यह अच्छा कर ही नहीं सकता। इसका मतलब जरूर कुछ बुरा रहा होगा। या यह भी हो सकता है कि यह करना तो बुरा चाहता रहा हो, अच्छा हो गया हो। यह दुर्घटना मालूम होती है। तुम जिस आदमी को बुरा मानते हो उसमें से तुम अच्छा देख ही नहीं सकते।

अगर तुम किसी बुरे आदमी को बुरा न मानो, तभी सुधार का रास्ता खुलता है। इसलिए संत बुराई को तो मिटाता है, लेकिन बिना बुरे को बुरा माने। इसलिए मिटाना कोई कृत्य नहीं है उसका। वह बुरे को भी स्वीकार करता है, अंगीकार करता है। उसके अंगीकार करने में ही बुरे को पहली दफा अपने आत्मभाव का स्मरण होता है।

एक चोर संत के पास आता है; संत उसे अंगीकार कर लेता है। चोर को पहली दफा यह बोध आता है कि मैं भी इस योग्य हो सकता हूं क्या? क्या मेरी यह भी पात्रता है? और चोर को यह भी बोध आता है कि जब संत ने इतने सरल भाव से स्वीकार कर लिया है तो अब चोरी करनी बहुत मुश्किल है। अब यह जो आस्था संत ने दी है उसे, यह आस्था ही उसके लिए चोरी से विपरीत जाने के लिए सब से बड़ा सबल आधार हो जाएगा। यह जो सहज स्वीकार किया है संत ने, इस स्वीकार में ही रूपांतरण है।

संत निंदा नहीं करता और बदलता है। संत बुरा नहीं कहता और बदलता है। संत बदलता नहीं और बदलता है। संत के होने में कीमिया है; उसकी सारी अल्केमी उसके अस्तित्व में है। वह आश्वस्त करता है कि तुम बुरे नहीं हो। कौन कहता है कि तुम बुरे हो? किसने कहा कि तुम बुरे हो?

उसका यह आश्वासन तुम्हें उठाता है तुम्हारे गर्त से ऊपर। तुम्हें पहली दफा तुम्हारी प्रतिष्ठा मिलती है। पहली बार तुम्हें अपनी आत्मा का भाव-बोध उठता है कि मैं बुरा नहीं हूं। और एक ऐसे सरल व्यक्ति ने स्वीकार कर लिया है कि मैं बुरा नहीं हूं, अब बुरा होना बहुत मुश्किल हो गया। तुमने कितनी दफे जीवन में चाहा था कि लोग तुम्हें बुरा न समझें, लेकिन लोग तुम्हें बुरा समझते रहे। आज पहली दफे एक आदमी मिला है जिसने तुम्हें बुरा नहीं समझा। तुम्हें पहली दफे तुम्हारी गरिमा मिली है, गौरव मिला है। और जब संत से गरिमा मिलती है तो उसका मुकाबला नहीं। सारी दुनिया एक तरफ, सारी दुनिया की प्रशंसा-निंदा एक तरफ, संत की एक नजर, उसके स्वीकार की एक भाव-भंगिमा अकेली काफी है। तुम पहली दफे खींच लिए जाते हो तुम्हारे कुएं से, तुम्हारे गर्त से, तुम्हारे अंधकार से। संत तुम्हें छाती से लगा लेता है। उसी क्षण तुम बदलने शुरू हो गए।

एक मित्र ने पूछा है कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं?

उनके हर किसी शब्द में ही निंदा छिपी है। वे यह कह रहे हैं, हर किसी को! कौन है हर किसी? उनका मतलब है, ऐरे गैरे नत्थू-खैरे, कोई भी! लेकिन इस अस्तित्व में कोई भी ऐरा गैरा नत्थू-खैरा है? तुमने ऐसा आदमी जाना जो ऐरा गैरा नत्थू-खैरा है? तुमने यहां कहीं क्षुद्र को देखा? और अगर तुमने क्षुद्र को देखा तो वह तुम्हारी क्षुद्रता की दृष्टि में है, वह तुम्हारी आंख पर पड़ा हुआ पर्दा है। यहां तो सभी परमात्मा हैं। यहां हर किसी शब्द का तो उपयोग ही मत करना। यहां तो तुम तुम्हारी आखिरी गरिमा में स्वीकार हो। तुम्हारे इतिहास से मुझे क्या लेना-देना? तुमने क्या किया है, उससे क्या प्रयोजन? तुम्हारी क्या अंतिम संभावना है, उस पर ही मेरी आंख है। तुम जो हो सकते हो, उसी पर मेरी आंख है। तुम जो हो, उससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। तुम जो रहे हो,

उससे मुझे क्या हिसाब-किताब रखना है? तुम जो हो जाओगे, अंततः तुम जो हो जाओगे, एक दिन, किसी पल, किसी घड़ी जो सूर्य तुम्हारे भीतर प्रकट होगा, वह तुम्हें पता न हो, मुझे तो अभी दिखाई पड़ रहा है।

तो जब संत किसी व्यक्ति में उसे देख लेता है जो उसकी आखिरी चरमता है। तो संत के माध्यम से वह व्यक्ति भी उस आखिरी चरमता के प्रति पहली दफा सजग होता है। और यही सजगता रूपांतरण है।

कृष्ण गलत नहीं कहते, वे ठीक कहते हैं कि मैं आऊंगा। वे ठीक कहते हैं कि मैं बुराई को बदलूंगा, मैं भलाई को प्रकट करूंगा। लेकिन वह ढंग भी वही है, करने का उपाय तो वही है जो लाओत्से कहता है।

संत बदलता है, लेकिन बदलने में वह कर्ता नहीं है। संत तुम्हें बदलता है एक बड़े अनूठे उपाय से। वह उपाय है तुम्हारा स्वीकार, वह उपाय है तुम्हारे होने की आखिरी चरम शिखर की प्रतीति तुम्हें दिला देना।

बुद्ध ने कहा है कि मैं अपने पिछले जन्म में एक बुद्ध पुरुष के पास गया था। तब मैं अज्ञानी था। उस बुद्ध पुरुष का नाम था विरोचन। मैं बिल्कुल अज्ञानी था। और जब मैंने जाकर विरोचन के पैर छुए, मैं उठ भी न पाया, और मैं चकित रह गया और मैं रोक भी न पाया, मैं अवाक रह गया, मैं हतप्रभ हो गया, क्योंकि मैंने देखा, विरोचन मेरे चरण छू रहे हैं! मैंने उनसे कहा, यह आप क्या करते हैं? मेरे चरण छूकर आप मुझे और पाप में डालते हैं। मैं बहुत गया-बीता हूं; मुझसे बुरा आदमी नहीं है। मैं बिल्कुल अंधेरे में हूं। मैं आपके चरण छुऊं, यह समझ में आता है। आप मेरे चरण किसलिए छूते हैं?

विरोचन ने कहा, मुझे पता नहीं कि तुम कौन हो, मुझे तो सिर्फ उसी का पता है जो तुम हो सकते हो। एक दिन तुम बुद्ध पुरुष हो जाओगे। मैं उसके लिए ही तुम्हारे चरण छूता हूं।

और बुद्ध ने कहा है, उसी दिन मेरे भीतर क्रांति घट गई। उसी दिन मेरा संबंध उससे टूट गया जो मैं था, और मेरा संबंध उससे हो गया जो मैं हो सकता हूं। विरोचन ने पैर छुए हैं! अब विरोचन ने जो इतनी आस्था दी है इसको तोड़ा भी तो नहीं जा सकता। और विरोचन ने जो इतना भरोसा किया है इस भरोसे को पूरा करना ही पड़ेगा। बुद्ध ने कहा है, मेरे भीतर विरोचन ने एक दीया जला दिया। अब कुछ भी हो, विरोचन के वचन को सिद्ध करना ही होगा। विरोचन ने पैर छू लिए हैं। दीया झुका है, अंधेरे के पैर छू लिए हैं। अब अंधेरा कितनी देर अंधेरा रह सकता है?

संत बदलता है। उसके बदलने के ढंग बड़े अनूठे हैं। विरोचन ने जन्म दे दिया बुद्ध को उसी दिन। पैर छूकर विरोचन ने सोए आदमी को जगा दिया। बुद्ध की पूरी जीवन-यात्रा में इससे बड़ी कोई घटना नहीं है। सब बाकी साधारण है। यह विरोचन है क्रांति का सूत्र। इस विरोचन ने बुद्ध को तत्काल क्षण भर में कुछ का कुछ कर दिया--सिर्फ पैर छूकर। जरा सा स्पर्श, मिट्टी सोना हो गई।

संत स्पर्श से ही मिट्टी को सोना बना देते हैं। और जब सूई से काम चल जाए तो तलवार नासमझ उठाते हैं। जब बिना किए ही हो जाता हो तो करने की बात ही पागलपन है।

आज इतना ही।

107-127

प्रवचन-क्रम

107. मेरे तीन खजानेः प्रेम और अन-अति और अंतिम होना 2
108. प्रेम को सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा 27
109. परमात्मा परम लयबद्धता है 45
110. श्रेष्ठता वह जो अकेली रह सके 63
111. असंघर्षः सारा अस्तित्व सहोदर है 83
112. आक्रामक नहीं, आक्रांत होना श्रेयस्कर है 100
113. मुझसे भी सावधान रहना 121
114. संत को पहचानना महा कठिन है 138
115. मूर्च्छा रोग है और जागरण स्वास्थ्य 157
116. संत स्वयं को प्रेम करते हैं 175
117. मुक्त व्यवस्था--संत और स्वर्ग की 195
118. अभय और प्रेम जीवन के आधार हों 214
119. राजनीति को उतारो सिंहासन से 233
120. धर्म का सूर्य अब पश्चिम में उगेगा 250
121. जीवन कोमल है और मृत्यु कठोर 271
122. संत संसार भर को देता है, और बेशर्त 290
123. निर्बल के बल राम 311
124. प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जिम्मेवार है 331
125. राज्य छोटा और निसर्गोन्मुख हो 349
126. परमात्मा का आशीर्वाद बरस रहा है 369
127. प्रेम और प्रेम में भेद है 389

एक सौ सातवां प्रवचन

मेरे तीन खजानेः प्रेम और अन-अति और अंतिम होना

Chapter 67 : Part 1

The Three Treasures

All the world says: my teaching (Tao) greatly resembles folly.
Because it is great; therefore it resembles folly.
If it did not resemble folly,
It would have long ago become petty indeed!
I have Three Treasures;
Guard them and keep them safe:
The first is love.
The second is, never too much.
The third is, never be the first in the world.
Through love, one has no fear;
Through not doing too much, one has amplitude
(of reserve power);
Through not presuming to be the first in the world,
One can develop one's talent and let it mature.

अध्याय 67 : खंड 1

तीन खजाने

सब संसार कहता हैः मेरा उपदेश (ताओ) मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है।
क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।
और यदि मूढ़ता जैसा नहीं लगता, तो यह कब का तुच्छ हो गया होता।
मेरे तीन खजाने हैं; उन पर पहरा दो, और उन्हें सुरक्षित रखो।
पहला हैः प्रेम।
दूसरा हैः अति कभी नहीं।
तीसरा हैः संसार में प्रथम कभी मत हो।

प्रेम के जरिए आदमी अभय को उपलब्ध होता है।

अति नहीं करने से आदमी के पास आरक्षित शक्ति का अतिरेक होता है।

और संसार में प्रथम होने की धृष्टता नहीं करने से

आदमी अपनी प्रतिभा का विकास कर सकता है और उसे प्रौढ़ बना सकता है।

आंखें जब अंधेरे की आदी हो जाएं तो प्रकाश अंधकार जैसा मालूम होगा। अंधेरे में ही तुम जीए हो; तो आज अचानक सूरज द्वार पर आ जाए तो उसकी चकाचौंध में तुम्हारी आंखें बंद ही हो जाएंगी। प्रकाश को समझने के लिए प्रकाश की यात्रा, प्रकाश का स्वाद, प्रकाश का जीवन में प्रशिक्षण चाहिए।

परमात्मा को खोजने बहुत लोग निकलते हैं, लेकिन परमात्मा अगर तुम्हें राह पर मिल जाए--और बहुत बार मिलता है--तो तुम उसे पहचान न पाओगे। तुम उसे पहचानोगे कैसे? तुमने अब तक जो जाना है उससे तो वह बिल्कुल भिन्न है। तुम्हारा अब तक जो भी ज्ञान है उस ज्ञान से तो उस परमात्मा को तुम बिल्कुल भी न पहचान पाओगे।

दो ही उपाय हैं। अगर तुमने अपना ज्ञान पकड़ा तो परमात्मा सामने भी होगा तो दिखाई न पड़ेगा। दूसरा उपाय है, अगर तुमने अपना ज्ञान छोड़ दिया तो परमात्मा सामने न भी हो तो भी सब तरफ वही दिखाई पड़ेगा। तुम्हारी ज्ञान की पकड़ तुम्हें अंधा बनाए हुए है।

इसलिए जब भी कभी किसी व्यक्तित्व में परमात्मा की ज्योति उतरती है तो हम उसे पहचान नहीं पाते। अन्यथा जीसस को सूली पर चढ़ाने की जरूरत क्या थी? और जिन्होंने जीसस को सूली पर चढ़ाया उनको भी भ्रांति है कि वे परमात्मा के खोजी और प्रेमी हैं। न केवल यही, बल्कि उन्हें लगता है कि जीसस परमात्मा का दुश्मन है।

जीसस को वे न पहचान पाए, परमात्मा को तो कैसे पहचानेंगे! जीसस तो एक किरण हैं उसकी, वह भी पहचानी न जा सकी, तो जब समग्र सूर्य तुम्हारे सामने होगा तब तो तुम बिल्कुल अंधे हो जाओगे। तुम्हें सिवाय अंधकार के और कुछ भी दिखाई न पड़ेगा।

इसलिए ज्ञानी अक्सर अज्ञानियों के बीच महा अज्ञानी मालूम पड़ता है। ऐसा ही समझो कि तुम सब अंधे होओ और एक आंख वाला व्यक्ति भूल-चूक से पैदा हो जाए। तो सारे अंधे मिल कर या तो उसकी आंखें फोड़ देंगे, क्योंकि वे बरदाश्त न कर सकेंगे। और अंधों का तर्क यह होगा कि कभी तुमने सुना है कि आंख वाला आदमी होता है! जरूर प्रकृति की कहीं कोई भूल हो गई है। अंधा ही होता है आदमी; आंखों में कहीं कुछ भूल है।

यही ज्ञानियों के साथ हमारा व्यवहार रहा है। हम पूजते हैं उन्हें जब वे मर जाते हैं, क्योंकि मृत्यु की भाषा हम समझते हैं। जीवन की भाषा का हमें कुछ भी पता नहीं। जब उन्हें कब्रों में दफना देते हैं तब हमारे पूजा के फूल बड़े मुखर हो उठते हैं, तब हमारे अर्चना के दीये जलने लगते हैं। क्योंकि अब हम समझ सकते हैं; कब्र में जो मौत है वह हमारी समझ में आ सकती है। कब्र में सिर्फ अंधेरा है; अंधेरे के हम आदी हैं। हम मृत्यु में ही जीते रहे हैं; जीवन को हमने कभी जाना नहीं। जीवन हमारी आशाओं में रहा है, सपनों में, लेकिन उसकी कोई प्रतीति हमें कभी हुई नहीं। हम केवल मृत्यु से भयातुर, मृत्यु से घिरे कंपते हुए जीए हैं। मृत्यु को हम समझ सकते हैं। इसलिए जैसे ही कोई ज्ञानी व्यक्ति मर जाता है, हजारों उसकी कब्र की पूजा पर संलग्न हो जाते हैं; मंदिर-मस्जिदें खड़ी होती हैं, गुरुद्वारे बनते हैं। और जब ज्ञानी जीवित होता है तब सिर्फ लोग पत्थर ही फेंकते हैं, तब सिर्फ लोग निंदा ही करते हैं।

गणित साफ है। जब ज्ञानी जीवित होता है तब तुमसे उसका कोई तालमेल नहीं बैठता। तुम अंधेरे के निवासी हो; वह रोशनी की खबर लाया। यह शब्द तुमने कभी सुना नहीं। शब्द भी सुना हो तो इस शब्द के रहस्य को तुमने कभी अनुभव नहीं किया। वह किसी अनजान देश से आया है; वह कुछ अजनबी बातें कह रहा है। और उन बातों पर भरोसा करना खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि अगर तुम उन बातों पर भरोसा करोगे तो तुम्हारी जो सुव्यवस्थित गुलामी है वह खंड-खंड हो जाएगी; जो तुम्हारा सुव्यवस्थित अंधकार है... । अंधकार में तुमने अपना घर बना लिया है। अंधकार को तुमने खूब साज-संवार लिया है। तुमने अंधकार को खूब सजावट औरशृंगार से भर लिया है। तुम भूल ही गए हो कि यह अंधकार है। तुमने अपनी जंजीरों पर भी हीरे-माणिक लगा लिए हैं, और तुमने उनको आभूषण मान लिया है। तुमने अपनी मृत्यु को भी जीवन समझ रखा है।

अगर तुम ज्ञानी की बात सुनोगे तो खतरा है। खतरा यही है कि वह तुम्हें अस्तव्यस्त कर देगा। वह तुम्हारी सारी व्यवस्था को तोड़ देगा। तुम्हारी सारी सुरक्षा की नींवें हिल जाएंगी। और तुमने जो भवन बड़ी मेहनत से बनाया है जन्मों-जन्मों में, अगर तुमने ज्ञानी का एक शब्द भी सुन लिया तो तुम पाओगे कि वह रेत का भवन है--अब गिरा, तब गिरा। तुमने ताश के पत्तों का घर बना लिया है। तुम उसके भीतर बड़े प्रसन्न हो। पता चल जाए कि ताश का घर है, तुम फिर कैसे प्रसन्न रह पाओगे? फिर दूसरे और असली घर की खोज पर निकलना होगा। और यात्रा दुर्गम है। और कभी कोई पहुंचता है; हजारों चलते हैं, एकाध पहुंचता है।

इसलिए सरल यही है तुम्हारे अज्ञान में कि तुम कह दो इस ज्ञानी को कि यह मूढ़ है, पागल है। यह तुम्हारे बचने का उपाय है। यह तुम्हारी सुरक्षा है। जब तुम ज्ञानी को कह देते हो कि मूढ़ है, तब तुम अपनी मूढ़ता को बचा लेते हो। जब तुम ज्ञानी को कह देते हो पागल है, तब तुम अपने पागलपन को बचा लेते हो। क्योंकि तुम दो में से कोई एक ही सही हो सकता है, दोनों नहीं। अगर बुद्ध सही हैं, अगर क्राइस्ट सही हैं, अगर मैं सही हूं, तो तुम गलत हो। और समझौता यहां न चलेगा। या तो मैं सही हूं, या तुम सही हो। ज्ञानी का कोई समझौता अज्ञानी से नहीं हो सकता। क्या समझौता करोगे? कैसे मिलाओगे अंधेरे और रोशनी को? कभी कोशिश की है?

लोग कहते हैं, पानी में तेल नहीं मिलाया जा सकता। लेकिन यह भी हो सकता है कि पानी में तेल किसी तरकीब से मिला लिया जाए, लेकिन अंधेरे में रोशनी कैसे मिलाओगे? अंधेरा अभाव है प्रकाश का। तो अभाव को भाव से कैसे मिलाओगे? प्रकाश होता है तो अंधेरा हो नहीं सकता; अंधेरा होता है तो प्रकाश हो नहीं सकता। दोनों अलग-अलग ही हो सकते हैं। उनके बीच कोई समझौता नहीं है।

एक ही उपाय हैः अगर तुम ज्ञानी को सुनने को राजी हो जाओ; एक क्षण भी मौका दो, जरा सा झरोखा खोलो अपने हृदय का। तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम्हारे बनाए हुए सब घर झूठे हो जाएंगे, तुम्हारे बनाए हुए सारे इंतजाम व्यर्थ हो जाएंगे। तुमने जो सजावट की है वह सारी सजावट तुमने कागज के घर में कर रखी है। वह घर गिरेगा। वह घर गिर ही रहा है। उस घर में आग लगने वाली है। उस घर में आग लगी ही है। अगर तुम ज्ञानी की सुनोगे तो तुम्हें अपने इन घरघूलों को छोड़ कर बाहर आना होगा। वह तुम्हें खुले आकाश का निमंत्रण देता है। वह तुम्हें स्वतंत्रता के लिए पुकारता है। परम मोक्ष की तरफ उसका इशारा है। डर लगता है। अज्ञात में जाने में भय पकड़ता है। जिन रास्तों पर हम चले नहीं, उन पर वह बुलाता है। जिन मार्गों को हमने कभी छुआ नहीं, उन पर निमंत्रण देता है। और कोई नक्शा नहीं है उन मार्गों का कि तुम्हें आश्वस्त किया जा सके। उन मार्गों को कोई भी पूरा जान नहीं पाया है कि नक्शे बनाए जा सकें।

परमात्मा के नक्शे कभी भी न बनाए जा सकेंगे। क्योंकि वह कोई जड़ वस्तु नहीं है; गत्यात्मक है, प्रतिपल रूपांतरित हो रहा है, प्रतिपल पूर्ण से पूर्णतर की तरफ जा रहा है। तो केवल साहसी ही आ सकते हैं इस अभियान में। तो फिर तुम क्या करोगे अपने भय को? अपनी कायरता को कैसे छिपाओगे? क्योंकि यह स्वीकार करने से भी पीड़ा होती है कि मैं कायर हूं। यह स्वीकार करने से भी अहंकार को बड़ी चोट पहुंचती है कि मैं अज्ञानी हूं।

इसलिए जो भी ज्ञान का संदेश लेकर तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है वह तुम्हारे अहंकार पर चोट करता है। जो भी तुम्हारे पास लेकर आता है ज्ञान बांटने को वही तुम्हें दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है। क्योंकि अगर तुम ज्ञान लेते हो तो तुम अज्ञानी थे। अगर तुम उसका निमंत्रण स्वीकार करते हो तो अब तक तुमने जो यात्राएं कीं वे व्यर्थ ही गईं, उनमें कोई भी तीर्थयात्रा न थी; अब तक तुम भटके। अगर तुम गुरु को स्वीकार करते हो तो उस स्वीकार में यह छिपा है कि अनंत-अनंत जन्मों तक तुमने जो यात्रा की वह तुम्हारी भटकन थी, भटकाव था। गुरु को स्वीकार करने का अर्थ हैः जन्मों-जन्मों के अहंकार को छोड़ देना।

बहुत कठिन है। अहंकार तर्क खोजता है। अहंकार कहता है, यह आदमी मूढ़ मालूम होता है।

मैंने सुना है, एक सूफी कथा है कि एक आदमी परम गुरु की तलाश में था। बीस वर्षों तक उसने खोज की। न मालूम कितने गुरुओं के पास गया। लेकिन कुछ न कुछ भूल उसने निकाल ही ली। गुरु में कुछ न कुछ कमी मालूम पड़ी। कोई गुरु हंसता हुआ मिला। तो उसने सोचा, यह भी कोई गुरु हो सकता है! गुरु तो गंभीर होते हैं। हमारे पास शब्द हैः गुरु-गंभीरता। उसने कहा, यह भी कोई गुरु हो सकता है; संसारियों जैसा हंस रहा है! और गुरु मिले जो बिल्कुल उदासीन थे, उदास थे। उसने कहा, यह भी कोई गुरु है जिसके चेहरे पर आनंद की जरा भी झलक नहीं! ऐसा हर जगह उसने कुछ न कुछ खोज लिया। कोई गुरु उपवास करता था। तो उसने सोचा, यह तो आत्मघात है। और कोई गुरु ठीक से खाता-पीता था। तो उसने कहा, यह तो निपट भोगी है। बीस वर्ष अनेकों गुरुओं के पास गया, लेकिन परम गुरु, परफेक्ट मास्टर, नहीं मिल सका।

बीस साल बाद थक गया। मौत भी करीब आने लगी। इसलिए मापदंड उसने थोड़े शिथिल कर लिए, कि अब तो मरने के करीब आ रहा हूं, अब तो थोड़ा कमोबेश भी मिल जाए, अठारह-उन्नीस भी चलेगा। न हुआ बीस, लेकिन अब मौत करीब आ रही है। तो जब उसने अपने मापदंड थोड़े शिथिल किए, एक गुरु मिल गया, जो उसे लगा कि परिपूर्ण है। सब तरफ से जांच-परख करके उसने भरोसा कर लिया।

एक दिन सुबह जाकर गुरु के चरणों में उसने निवेदन किया कि मैं परम गुरु की तलाश में था; बीस साल भटका; अंततः आप मिल गए; मेरी यात्रा पूरी हुई। क्या आप परम गुरु हैं? गुरु ने कहा, अगर मैं कहूं हूं, तो वही कारण बन जाएगा मेरे परम गुरु न होने का; अगर मैं कहूं नहीं हूं, तो जब मैं खुद ही कह रहा हूं कि नहीं हूं तो सवाल ही कहां उठता है। लेकिन अब तुमने पूछ ही लिया है तो मुझे तो पता नहीं कि मैं परम गुरु हूं या नहीं, लेकिन ऐसी मेरी ख्याति है; लोग कहते हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि यह परम गुरु है। तो उसने कहा, ठीक, अब मैं भी थक गया हूं खोजते-खोजते, और आप ने भी मुझे डरा दिया। लेकिन अब बहुत हो गई खोज, अब मौत करीब आती है, तो मैं तो स्वीकार करने को राजी हूं। मैं परम गुरु की तलाश में था, आप मिल गए, मुझे शिष्य की तरह स्वीकार कर लें।

उस गुरु ने कहा, यह जरा मुश्किल है।

शिष्य ने कहा, क्यों मुश्किल है? मैं मरने के करीब आ गया।

तुम्हारी मृत्यु से मेरा क्या लेना-देना, मैं परम शिष्य की तलाश में हूं।

अहंकार के बड़े रंग हैं, बड़े रूप हैं। और अहंकार हर जगह भूल-चूक खोज ही लेता है। अहंकार भूल-चूक खोजता है, उसका भीतरी अचेतन कारण हैः अपने लिए सांत्वना खोजना। तुम डरते हो कि अगर गुरु मिल ही गया, तो फिर तुम्हें रूपांतरित होना पड़ेगा। और मन तो रूपांतरित नहीं होना चाहता। क्योंकि मन तो जीता है आदतों में, बंधी हुई यांत्रिकता में। कम से कम प्रतिरोध उसका मार्ग है। बदलाहट में तो बड़ी मुसीबत होगी, सब बदलना पड़ेगा। इसलिए अचेतन रास्ता खोजता रहता है कि नहीं, यह भी गुरु नहीं; यह भी गुरु नहीं; यह भी गुरु नहीं; यह भी ज्ञान नहीं है। इस तरह तुम अपने को सुरक्षित करते हो। जब तुम कह देते हो कि यह गुरु नहीं है तो असली में तुम यह कह रहे हो कि शिष्य होने की झंझट से एक बार फिर बचे।

शिष्य होना बड़ी कठिन बात है। इस संसार में उससे ज्यादा कठिन बात कोई भी नहीं। क्योंकि शिष्य होने का अर्थ है कि हमने किसी और का सहारा पकड़ लिया। और हमने सहारा बेशर्त पकड़ा; पाने की आशा से नहीं, प्रेम के भरोसे में पकड़ा। कहीं पहुंच जाएंगे, इस लोभ से नहीं; किसी ने हमारे भीतर वीणा जगा दी, किसी ने हमारे भीतर एक नये संगीत को जन्म दे दिया, और हमारे पैर बंधे हुए उसके पीछे चलने लगे। जैसे सांप नाचने लगता है बांसुरी को सुन कर ऐसा ही गुरु को देख कर, सदगुरु को देख कर शिष्य अपना भान खो देता है। अपनी अकड़, अपना होना खो देता है। दूर की बांसुरी बजने लगी; अज्ञात की पुकार आ गई। बिना पूछे--कहां जा रहा हूं! कहां ले जा रहे हो! क्योंकि बताने का कोई उपाय नहीं है। पूछा, कि बताने का कोई उपाय नहीं है। जाने से ही जाना जाता है। होने से ही हुआ जाता है। उस मंजिल के संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। तुम जाओगे, जानोगे, देखोगे, तो ही। श्रद्धा के किसी गहन क्षण में यात्रा शुरू होती है शिष्य की।

शिष्य का अर्थ है जो सीखने को तैयार है। सीखने को तैयार कौन है?

सीखने को वही तैयार है जिसने यह अनुभव कर लिया कि अब तक अपने तईं बहुत उपाय किए, कुछ भी सीख न पाया। सीखने को वही तैयार है जिसने अपने अज्ञान की पीड़ा की प्रतीति कर ली। सीखने को वही तैयार है जिसने देख लिया अपने हृदय के गहन अंधकार को। सीखने को वही तैयार है जिसने देख लिया कि मैं अपने जीवन को सिर्फ उलझा रहा हूं, सुलझा नहीं रहा। और जितना सुलझाने की कोशिश करता हूं, बात और उलझती चली जाती है। ऐसे पीड़ा के क्षण में, ऐसी संताप की अवस्था में, अपनी परिस्थिति को पूरा-पूरा देख कर, अपनी यात्रा की व्यर्थता को समझ कर शिष्यत्व का जन्म होता है। तब कोई सीखने को तैयार होता है।

और जो सीखने को तैयार है उसे अपनी अस्मिता और अहंकार को छोड़ देना पड़ता है। क्योंकि अहंकार सीखने न देगा। अहंकार बदलने न देगा। अहंकार अपने से ऊपर किसी को रखने को कभी राजी ही नहीं है। परमात्मा को भी करोड़ों लोग इनकार करते हैं सिर्फ इसी कारण; इसलिए नहीं कि उन्हें पक्का पता है कि परमात्मा नहीं है। कैसे पता हो सकता है?

मेरे पास कभी-कभी नास्तिक आ जाते हैं। कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। मैं उनसे कहता हूं, तुमने खोजा? तुमने सब खोज डाला? तुमने अस्तित्व के सब कोने-कातर देख डाले हैं? कुछ खोजने को जगह नहीं बची? अगर सब देख डाला हो और परमात्मा को न पाया हो, तब तो बात समझ में आती है। लेकिन खोजा कितना है? जब तक तुम पूरे अस्तित्व को रत्ती-रत्ती नाप न डालो तब तक यह कहने का हक नहीं है कि परमात्मा नहीं है। क्योंकि जो हिस्सा शेष रह गया है, कौन जाने वहां हो! और शेष तो बहुत बड़ा रह गया है। जो जाना है वह तो ना-कुछ है। जो शेष है उसका तो कोई अंत नहीं।

इसलिए नास्तिक अक्सर सोचता है कि मैं तर्कयुक्त हूं, लेकिन तर्कयुक्त होता नहीं। यहीं तो सारा तर्क व्यर्थ हो गया। बिना खोजे कहते हो नहीं है! अंधापन है यह तो। खोज लो, फिर न पाओ तो कह देना।

लेकिन असली सवाल नास्तिक को खोजने का नहीं है। वह यह कह रहा है, कोई परमात्मा नहीं है। इस कहने में वास्तविक क्या कह रहा है? वह यह कह रहा है कि मेरे ऊपर किसी को मानने की मुझे सुविधा नहीं है। और परमात्मा है तो मुझसे ऊपर कुछ है। अहंकार इनकार करता है परमात्मा का। अहंकार और परमात्मा के बीच गहन संघर्ष है। या तो तुम अहंकार को बचा लो, और या तुम परमात्मा को पा लो। दोनों तुम एक साथ न कर सकोगे। और वैसी करने की कोशिश की तो सिर्फ विक्षिप्त हो जाओगे, विमुक्त नहीं।

लाओत्से इन सूत्रों में बड़ी गहन बातें कह रहा है।

पहली गहन बात तो वह यह कह रहा है कि "सब संसार कहता है कि मेरा उपदेश (ताओ) मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है। क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।"

क्षुद्र को तुम पहचानते हो। महान से तुम्हारा कोई परिचय नहीं। क्षुद्र की ही तुम्हारी भाषा है। महान के साथ तुम्हारी भाषा एकदम अड़चन में पड़ जाती है। या तो तुम मौन हो जाओ तो महान तुम्हारे भीतर छा जाए, थोड़ा सा स्वाद तुम्हारी छाती में लगे। अगर तुम बोलते ही चले जाओ तो महान की जो भी चर्चा है वह मूढ़ता जैसी मालूम पड़ेगी। इसलिए परम ज्ञानी अक्सर पागल मालूम हुए हैं। और तुम्हारी भीड़ है। अगर तुम ही तय करने वाले हो तो एक ज्ञानी की कौन सुनेगा? तुम सब मताधिकारी हो। तुम मत डाल सकते हो, वोट डाल सकते हो, और तय कर सकते हो कि यह आदमी पागल है। क्योंकि यह जो बातें कह रहा है वे तुम्हारे मन से बड़ी हैं। या तो तुम मन को छोड़ने को राजी होओ तो इन बातें को समझ लो। अगर तुम मन को ही पकड़ते हो तो ये बातें इतनी बड़ी हैं। यह ऐसे ही है जैसे कोई चुल्लू में सागर को भरने की कोशिश कर रहा हो, या कोई मुट्ठी में आकाश को पकड़ने निकला हो, और न पकड़ पाए तो कहे कि आकाश है ही नहीं।

महान बातों की एक कठिनाई है कि महान बातें विरोधाभासी होती हैं, पैराडाक्सिकल होती हैं। क्षुद्र बातें तर्कयुक्त होती हैं। क्षुद्र बातों का तर्क बिल्कुल सीधा-साफ होता है। जितनी विराट होने लगती है बात उतनी ही अतर्क्य होने लगती है। क्योंकि विराट अतर्क्य है। सामान्य जीवन में रात अलग है, दिन अलग है; जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। विराट में तो दोनों इकट्ठे हैं; जन्म भी उसी में, मृत्यु भी उसी में। वहां तुम जन्म और मृत्यु को अलग-अलग न रख पाओगे। वहां तुम्हारे खंड करने की जो बुद्धिमत्ता है वह व्यर्थ हो जाएगी। वहां तो अखंड का निवास है। वहां तो मृत्यु में जन्म छिपा है, जन्म में मृत्यु छिपी है। वहां तो मृत्यु भी जन्म का एक चेहरा है, और जन्म भी मृत्यु का एक ढंग है, वेश है। वहां तो सब विरोध गिर जाते हैं। और जहां विरोध गिर जाते हैं वहां मुश्किल हो जाती है।

उपनिषद कहते हैं, ईश्वर पास से भी पास, दूर से भी दूर।

तुम कहोगे, यह पागलपन की बात है। या तो पास, या दूर, समझ में आता है। अगर दूर है तो कहो दूर, अगर पास है तो कहो पास। लेकिन तुम दोनों कहते हो, पास से भी पास, दूर से भी दूर। तो जो तर्कनिष्ठ मन है वह दुविधा में पड़ जाता है। करो क्या? तर्कनिष्ठ मन कहता है, जो चीज दूर होती है वह दूर होती है, जो पास होती है वह पास होती है। और दोनों तो कैसे हो सकती है?

लेकिन परमात्मा ऐसा ही है, पास से भी पास, दूर से भी दूर। और जिन्होंने जाना है, उनकी मजबूरी है। वे भी चाहते हैं कि तुम्हारी भाषा में बोल दें, लेकिन तब जो वे बोलते हैं वह परमात्मा के प्रति अन्याय हो जाता है। अगर तुम्हारी भाषा में बोलें तो परमात्मा के प्रति अन्याय होता है। अगर परमात्मा जैसा है वैसा ही बोलें, तुम्हारी भाषा के कटघरे टूट जाते हैं।

उपनिषद ठीक ही कहते हैं। क्योंकि वह पास से भी पास है। उससे ज्यादा पास कोई भी नहीं। तुम भी अपने उतने पास नहीं जितने वह तुम्हारे पास है। क्योंकि तुम्हारे हृदय की धड़कन वही है। कबीर ने कहा है, सब सांसों की सांस में, तेरा साईं तुज्झ में। वह तुझमें ही छिपा है। अगर ठीक से कहें तो तेरा होना उस साईं का ही होना है। दूरी तो दूर, पास कहना भी बहुत दूर कहना है। पास भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि पास में भी थोड़ी तो दूरी होती ही है। तुम मेरे पास बैठे हो, लेकिन फासला तो है। तुम और पास आ जाओ, फासला कम हो लाएगा, रहेगा तो। तुम बिल्कुल आकर मेरे गले से मिल जाओ, फासला न के बराबर हो जाएगा, लेकिन न के बराबर भी फासला तो है ही। पास भी तो दूर ही है। परमात्मा पास से पास है, यह परम सत्य है।

लेकिन फिर तुम्हें मिल क्यों नहीं रहा है? अगर इतना पास है तो मिल ही जाना चाहिए था। अगर इतना पास है तो खोने का उपाय ही कहां था? अगर इतना पास है तो अब तक भटकन क्यों है?

इसलिए ज्ञानी कहते हैं, दूर से भी दूर। अगर इसको हम और सुलझा कर कहना चाहें तो यूं कह सकते हैं कि परमात्मा तो तुम्हारे बहुत पास है, तुम परमात्मा से बहुत दूर। मगर वह भी अतर्क्य है। क्योंकि तुम कहोगे, जब परमात्मा हमारे पास है तो हम भी उसके पास हैं। परमात्मा तो तुम्हारे पास है, तुम्हारे भीतर है, तुम हो; लेकिन तुम परमात्मा से बहुत दूर हो। तुम परमात्मा के भीतर नहीं हो। तुम्हारा फासला अनंत है।

अतर्क्य हो जाती है जितनी होती है विराट बात। और जब अतर्क्य हो जाती है तो तर्कनिष्ठ मन कहता है, ये तो मूढ़ता की बातें हैं। और लाओत्से जैसा मूढ़ तुम न पा सकोगे; सब उपनिषदों को हरा देता है लाओत्से। उस जैसा पैराडाक्सिकल, उस जैसा विरोधाभासी कभी कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं। मैं उसे हराने की कोशिश कर रहा हूं, सफलता मुश्किल है; कोई उपाय नहीं दिखता। लाओत्से से ज्यादा विरोधाभासी होने की जगह नहीं बची है।

तुम पूछो लाओत्से से, कैसे पाएंगे परमात्मा को? वह कहता है, पाने की कोशिश की कि खो दोगे; भूल कर भी कोशिश मत करना। कोशिश में ही तो लोग भटक गए हैं। जो मिला ही हुआ है, उसे कहीं कोशिश करके कोई पाता है? तुम फिर भी पूछोगे, फिर क्या करें? वह कहता है, किया कि चूके; पाने का ढंग है न खोजना। लाओत्से कहता है, पाने का ढंग है न खोजना; खोजना ही नहीं। लाओत्से कहता है, उसकी तरफ जाने का ढंग है बैठ रहना, उठता ही मत। चले कि भटके; चले कि दूर निकले। वह तो पास था। तुम चल कर कहां जा रहे हो? शरीर ही न बैठ जाए, मन भी बैठ जाए, तुम्हारे भीतर कोई गति ही न रह जाए--और तुम उसे पा लोगे। पा लोगे कहना ठीक नहीं है! तुम अचानक हंसोगे और कहोगे, जिसे सदा से पाया हुआ था, उसे खोया कैसे था? यह अनहोनी घटी कैसे? यह चमत्कार कैसे संभव हुआ कि जो भीतर जाग रहा था, जो खोजने वाले में छिपा था, जो खोजी का हृदय था, उसको हम चूक कैसे गए?

अगर और ठीक से समझना चाहो तो लाओत्से यह कहता है कि वह पास है इसीलिए तुम्हें दूर मालूम पड़ता है। वह पास है इसीलिए तुम चूक गए हो। जैसे सागर की मछली चूक जाती है सागर को, उसे पता ही नहीं चलता कि सागर कहां है। पता चलेगा भी कैसे? पता चलने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। मछली सागर में ही पैदा होती है; सागर में ही जवान होती है; सागर में ही जीती है; सागर में ही मर जाती है। मछली को पता कैसे चलेगा कि सागर है? कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कोई मछुआ मछली को पकड़ लेता है, कोई मछुआ जाल में फांस लेता है, कोई मछुआ सागर से उठा लेता है दूर मछली को, तट पर पटक देता है। तब मछली को पहली बार पता चलता है कि सागर क्या है! खोकर पता चलता है कि क्या है, होकर पता नहीं चलता।

लेकिन परमात्मा के साथ और भी अड़चन है। उसका कोई किनारा नहीं। और बहुत मछुओं ने जाल डाले हैं, मैं भी वही कर रहा हूं। मछलियां फंस भी जाएं तो भी उन्हें किनारे पर पटकने का कोई उपाय नहीं। किनारा ही नहीं है! परमात्मा तटहीन सागर है।

इसलिए तुम उसे जान नहीं पा रहे, क्योंकि वह बहुत करीब है। तुम उसे जान नहीं पा रहे, क्योंकि वह तुम में ही छिपा है। कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढे बन मांहि। छिपी है वास भीतर और मृग पागल हो जाता है। और खोजता है जंगल में दूर-दूर। लहूलुहान हो जाता है, टकराता है, भागता है। सुगंध कहीं से आती मालूम पड़ती है। लगता है कहीं कोई प्रगाढ़ आकर्षण खींचे ले रहा है, कोई चुंबकीय शक्ति है। और कस्तूरी भीतर है। और कस्तूरी मृग की नाभि में छिपी है। पक गया है नाफा, गंध बाहर आ रही है।

तुम परमात्मा को खोजते फिरते हो जगह-जगह--काशी, कैलाश, काबा--और कस्तूरी कुंडल बसे। जो गंध तुम्हें मिल रही है जीवन की, वह तुम्हारे भीतर से आ रही है। लेकिन बाहर की प्रतिध्वनि तुम्हें सुनाई पड़ती है।

यूनान में एक कथा है। एक बहुत सुंदर युवक हुआ, नार्सीसस। वह इतना सुंदर था कि वह अपने ही प्रेम में पड़ गया। उसने अपनी छांह देख ली एक सरोवर में। तब दर्पण न रहे होंगे। बहुत पुरानी कथा है। एक सरोवर में अपनी छांह देख ली; इतनी सुंदर थी! निश्चित ही युवक बहुत सुंदर था। फिर बहुत युवतियों ने उस पर अपने तीर फेंके, वे कारगर न हो सकीं। क्योंकि वह जो छांव में उसने देख लिया था वैसा सुंदर फिर उसने किसी को पाया नहीं। वह भटकता रहा, वह खोजता रहा उस व्यक्ति को, जो उसने देख लिया था सरोवर के भीतर छिपा हुआ। वह घंटों, और दिनों, और महीनों सरोवर के किनारे बैठा रहता और देखता रहता टकटकी लगा कर। पानी में छलांग लगाता, प्रतिबिंब खो जाता; डुबकी मारता, खोजता, कुछ भी न पाता। वहां कुछ था तो नहीं, वहां तो बस प्रतिफलन था, वहां तो सिर्फ प्रतिछाया थी। उसके कूदते ही खो जाती। कहते हैं, नार्सीसस पागल हो गया। सरोवर दर्पण, प्रतिफलन, छलांग लगाना, खोजना; खाना-पीना भूल गया। जंगल-जंगल खोजता फिरा। पहाड़-पहाड़ उसकी आवाज से गूंजने लगे।

जो नार्सीसस की कथा है, वही तुम्हारी कथा है। तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम्हारे भीतर छिपा है।

हो सकता है किसी की आंख के सरोवर में तुम्हें दिखाई पड़ा हो अपना प्रतिबिंब। हो सकता है किसी के चेहरे पर तुम्हारा प्रतिबिंब दिखाई पड़ा हो। हो सकता है कभी संगीत के माधुर्य में झलक गई हो बात। किसी सुबह सूरज के उगते क्षण में, आकाश के मौन में, पक्षियों के कलरव में, खिलते हुए गुलाब के फूल में तुम्हें दर्पण मिल गया हो। लेकिन जो तुमने देखा है, जो तुमने सुना है, जो तुमने पाया है कहीं भी बाहर, सब खोजियों की खोज एक है कि वह तुम्हारे भीतर छिपा है।

तो लाओत्से से पूछो, कहां खोजें? वह कहता है, कहीं भी खोजा तो मुश्किल में पड़ोगे। खोजो मत, रुक जाओ। बिल्कुल रुक जाओ। और तुम पा लोगे। निष्क्रियता है राज पाने का। लाओत्से कहता है, मिट जाओ तो हो जाओगे। अगर बने रहे तो मिटोगे, बुरी तरह मिटोगे। लाओत्से कहता है, अगर सफल होना हो तो सफल होने की कामना ही छोड़ देना; अगर तृप्ति चाहिए हो तो तृप्त होने की वासना ही मत रखना। सब कामनाएं परिपूर्ण हो जाती हैं जैसे ही कामना छूट जाती है। निर्वासना से भरे मन में वह परम गुह्य उतर आता है, उस परम गुह्य का नर्तन शुरू हो जाता है। घिर जाते हैं मेघ आनंद के उसके पास, जिसकी कोई चाह नहीं।

तुम्हारी मुसीबत यह है कि तुम कहते हो, चाह नहीं! हम तो लाओत्से के पास भी इसीलिए जाते हैं कि चाह है। लाओत्से की बात भी तुम इसीलिए सुनते हो कि सोचते हो शायद इसकी बात सुनने से आनंद मिल

जाए। तुम ज्ञानियों के पास भी अपने लोभ के कारण जाते हो। और ज्ञानी यह कह रहा है, तुम हमारे पास आ सकोगे तभी जब तुम्हारे पास कोई लोभ न हो।

बड़ी अड़चन है। गुरु और शिष्य के बीच बड़ा गहन संघर्ष है। उससे बड़ा कोई युद्ध संसार में नहीं। और अगर शिष्य जीत जाए तो वही उसकी हार होगी। और शिष्य अगर हार जाए तो वही उसकी जीत होगी।

अब यह सब विरोधाभास है। और जब लाओत्से ने ये सब बातें कहीं, और अपना ताओ तेह किंग का पहला वचन कहा, कि जो कहा जा सके वह सत्य है ही नहीं, और फिर कहना शुरू किया तो अगर लोगों ने समझा कि इस लाओत्से का उपदेश मूढ़ता से बहुत मिलता-जुलता है, तो कुछ हैरानी की बात नहीं।

तुम्हीं थे वे लोग। कुछ बदलता नहीं, नाटक की मंच बदल जाती है। वही हैं अभिनेता, वही हैं दर्शक; कथा वही है। जैसे रामलीला चलती है, हर गांव में चलती है; कथा वही है, मंच अलग है, राम भी अलग रूप के हैं, सीता भी अलग रूप की है; कथा वही है। सार वही है। जो लाओत्से के साथ तुमने किया वही तुम मेरे साथ करोगे। जो लाओत्से तुम्हारे साथ करना चाहता था वही मैं तुम्हारे साथ करना चाहता हूं। कथा वही है। हर गुरु-शिष्य के बीच कथा वही है। उसमें कुछ बहुत भेद नहीं है। रूप का भेद है, रंग का भेद है, नाम का भेद है। भीतर की धारा एक है।

तुम्हें मेरी बातें मूढ़ता जैसी ही लगेंगी। तुम अगर मेरे प्रेम में पड़ गए तो शायद तुम कहो न, लेकिन भीतर कहीं तुम्हारा तर्क कसमसाता रहेगा, और कहता रहेगा, इन बातों में कहां पड़े हो? मन इन बातों को समझ नहीं सकता।

लाओत्से कहता है, "क्योंकि यह महान है--यह उपदेश--इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है।"

यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। क्योंकि ज्ञानी करीब-करीब एक अर्थ में मूढ़ जैसा हो जाता है। वर्तुल पूरा हो जाता है। तुमने कभी किसी मूढ़ व्यक्ति को देखा है? मूर्खों की बात नहीं कर रहा हूं। मूढ़! मूढ़ का मतलब होता है ईडियट, जो सोच ही नहीं सकता। ज्ञानी का भी सोचना खो जाता है। फर्क बड़ा है; तालमेल भी बड़ा है। अगर तुम इतना ही देखो तो जिसको हम मूढ़ कहते हैं उसमें भी विचार की तरंगें नहीं होतीं। वह बैठा रहता है सुस्त--पत्थर की तरह। उसके भीतर कोई ऊहापोह नहीं होता। ज्ञानी भी बैठा रहता है, लेकिन पत्थर की तरह नहीं। बड़ा गतिमान, बड़ा प्रवाहमान; सतत धारा बहती है चैतन्य की; लेकिन विचार नहीं होता।

तो अगर तुम विचार से ही नापने चलो तो तुम्हें ज्ञानी और मूढ़ समान मालूम पड़ेंगे। अगर तुम चैतन्य से नापने चलो तो वे दो विपरीत छोर हैं। मूढ़ के पास कोई चैतन्य नहीं है, ज्ञानी के पास परम चैतन्य है। मूढ़ विचार से नीचे है, ज्ञानी विचार के ऊपर है, लेकिन दोनों के विचार... । मध्य में तुम हो जहां विचारों का झंझावात है। तुमसे नीचे है मूढ़, वहां कोई झंझावात नहीं है।

इसलिए मूढ़ भी कभी-कभी बड़ा प्रसन्न दिखता है। मूढ़ तुमसे ज्यादा आनंदित दिखता है। क्योंकि न कोई चिंता है, न कोई विचार है। मूढ़ जानवर जैसा है। वह तुमसे ज्यादा सुखी है, इसमें कोई शक नहीं। क्योंकि दुखी होने के लिए काफी चिंतन की जरूरत है। दुखी होने के लिए काफी विचार करना जरूरी है। जितना विचारशील आदमी हो, उतना दुख का जाल खड़ा कर लेता है।

संतों ने कहा है, सब ते भले मूढ़, जिन्हें न व्यापै जगत गति।

जगत चलता रहता है, मगर मूढ़ में व्यापती ही नहीं कुछ बात। उसे कुछ मतलब ही नहीं है; खा लिया, पी लिया, सो गए। ज्ञानी भी ऐसा ही है; खा लिया, पी लिया, सो गए। लेकिन मूढ़ है अंधकार से भरा और ज्ञानी है प्रकाश से भरा। मूढ़ में विचार नहीं उठते, क्योंकि प्रकाश की जरा सी भी झलक वहां नहीं है। ज्ञानी में विचार

नहीं उठते, क्योंकि प्रकाश परिपूर्ण हो गया, अंधकार का जरा सा भी कोना नहीं रह गया। मूढ़ अंधकार की दृष्टि से पूर्ण है, ज्ञानी प्रकाश की दृष्टि से पूर्ण है, तुम मध्य में हो। इसलिए तुम्हारी बड़ी दुर्गति है।

मध्य में सदा दुर्गति रहेगी, क्योंकि खिंचाव रहेगा, तनाव रहेगा। एक तरफ मूढ़ता खींचती है कि चले आओ इसी किनारे, क्यों परेशान हो रहे हो? तो कभी-कभी तुम शराब पीकर मूढ़ हो जाते हो। इसलिए तो दुनिया में नशों का इतना प्रभाव है। वे मूढ़ होने के ढंग हैं। मूढ़ता खींचती है, लौट आओ पुराने किनारे पर! इस मध्य में खड़े-खड़े तुम बहुत परेशान, अशांत, बेचैन हो रहे हो।

लेकिन कोई पीछे लौट नहीं सकता। जीवन में पीछे जाने का उपाय नहीं है। इसलिए तुम घड़ी, दो घड़ी के लिए लौट जाओ, फिर वापस लौट आना पड़ेगा। उपाय तो आगे जाने का है। ज्ञानी बुलाते हैं आगे, कि बढ़ आओ! ज्ञानी भी कहते हैं, मत रुको सेतु पर।

अकबर ने फतेहपुर सीकरी बनाई। नयी बस्ती थी, नयी राजधानी थी। बड़ी मेहनत से बनाई गई थी। अरबों रुपये खर्च किए गए थे। फिर अकबर ने अपने पंडितों को, अपने दरबारियों को, अपने नवरत्नों को कहा कि कोई एक वचन खोजो दुनिया के साहित्य से जो इस फतेहपुर सीकरी के दरवाजे पर लिखा जा सके। बड़ा बहुमूल्य वचन लोगों ने खोजा; वह वचन है जीसस का। उस वचन का अर्थ है--जो फतेहपुर सीकरी के द्वार पर खुदा है--कि यह संसार एक सेतु है; इससे गुजर जाओ, इस पर घर मत बनाना। दिस वर्ल्ड इ.ज लाइक ए ब्रिज; पास थ्रू इट, गो बियांड इट, बट डोंट मेक योर हाउस ऑन इट।

सेतु का अर्थ होता हैः दो किनारों के मध्य में। सेतु पर जो है उसमें हमेशा तनाव होगा। तुम जिस अवस्था में हो वह अवस्था नहीं है, वह एक बीमारी है। इसलिए तो तुम बेचैन हो। मनुष्य सदा बेचैन रहेगा। पशु बेचैन नहीं है। परमात्मा बेचैन नहीं है। मनुष्य बेचैनी है। मनुष्य एक गहन संताप है। रहेगा ही। क्योंकि दो अतियां उसे खींच रही हैं। या तो गिर जाओ और बन जाओ पशु। कभी संभोग में, कभी शराब में--वही घटना घटती है, गिर जाते हो वापस, थोड़ी देर के लिए पशुओं के जगत में लीन हो जाते हो। थोड़ी देर को शांति मिलती है।

पर वह थोड़ी देर को ही हो सकता है। क्षणभंगुर! इसलिए तो तुम्हारे सारे सुख क्षणभंगुर हैं। क्षणभंगुर का इतना ही मतलब है कि जब तुम मूढ़ होते हो तभी तुम्हें सुख मिलता है। और मूढ़ता तुम क्षण भर को ही सम्हाल सकते हो। और उसके लिए भी तुम्हारे शरीर की केमिस्ट्री का बदला जाना जरूरी है। सेक्स में भी बदल जाती है। खूब भोजन कर लेते हो तब भी बदल जाती है शरीर की रसायन। शराब पी लेते हो, एल एस डी ले लेते हो, तब भी बदल जाती है शरीर की रसायन। शरीर की रसायन बदल जाए तो तुम थोड़ी देर के लिए पशु हो पाते हो फिर से। तब यह अंधी, मूढ़ प्रकृति के तुम हिस्से हो जाते हो।

मूर्च्छित हो जाओ तो तुम मूढ़ जैसे हो जाते हो। सजग हो जाओ तो संतत्व उपलब्ध होता है। संतत्व में फिर कोई विचार नहीं है; यात्रा समाप्त हो गई। मूढ़ के पास भी कोई विचार नहीं है; यात्रा अभी शुरू ही नहीं हुई। मूढ़ एक तरह की शून्यता है, अभाव। संतत्व एक तरह की पूर्णता है। दोनों की एक खूबी है कि दोनों पूर्ण हैं। मूढ़ अपनी मूढ़ता में, संत अपनी पूर्णता में, पर दोनों पूर्ण हैं। इसलिए सांसारिक लोगों को अक्सर संत या तो विक्षिप्त मालूम पड़ते हैं या मूढ़ मालूम पड़ते हैं।

इस सूत्र को ख्याल में ले लो।

या तो तुम्हारी चेतना पूरी अंधकार में डूब जाए, तुम बिल्कुल अचेतन हो जाओ, तो तुम्हें सुख मिल सकेगा। या तुम्हारी पूरी चेतना चैतन्य हो जाए, सब अचेतनता मिट जाए, सब मूर्च्छा टूट जाए, सब बेहोशी गिर जाए, तुम एक जलती हुई ज्योति बन जाओ परम चैतन्य की, तब तुम आनंद में लीन हो सकोगे।

और ध्यान रखना, पीछे लौटने का कोई भी उपाय नहीं, कितनी ही कोशिश करो। पीछे लौटना ऐसा ही है जैसे कोई आदमी जमीन पर खड़े होकर छलांग लगाए; एक क्षण को हवा में उठ जाता है, दूसरे क्षण वापस जमीन पर आ जाता है। तुम्हारे चित्त की दशा से तुम पीछे नहीं जा सकते, प्रकृति पीछे जाने को मानती ही नहीं, जानती ही नहीं। जवान कैसे बच्चा होगा! बूढ़ा कैसे जवान होगा! पीछे लौटना नहीं होता, आगे ही जाना है। जीवन एक विकास है, जीवन एक सतत विकास है, परमात्मा पर पूर्णाहुति है।

"सब संसार कहता है, मेरा उपदेश मूढ़ता से मिलता-जुलता है। क्योंकि यह महान है, इसलिए यह मूढ़ता से मिलता-जुलता है। आल दि वर्ल्ड सेज, माइ टीचिंग ग्रेटली रिजेंबल्स फॉली। बिकाज इट इ.ज ग्रेट, देयरफोर इट रिजेंबल्स फॉली। और यदि मूढ़ता जैसा न लगता, तो यह कब का तुच्छ हो गया होता। इफ इट डिड नाट रिजेंबल फॉली, इट वुड हैव लांग एगो बिकम पेटी इनडीड।"

और यह महान है और सदा ही ऐसा लगता रहेगा। अगर यह महान न होता तो कभी का तुच्छ हो गया होता। इसे भी थोड़ा समझ लो। महान शिक्षाएं सदा ताजी क्यों रहती हैं? तुम उन्हें बासी नहीं कर पाते। बुद्ध को गए पच्चीस सौ साल हो गए। लाओत्से को गए भी पच्चीस सौ साल हो गए। पच्चीस सौ साल समय जरा सी भी धूल उनके ऊपर नहीं जमा पाया है। पच्चीस सौ साल! न मालूम कितने सम्राट आए और गए, कितने युद्ध हुए, कितनी क्रांतियां हुईं, समाज बदला, जीवन के ढंग, सभ्यता, संस्कृति बदली। आज कुछ भी तो वैसा नहीं है जैसा लाओत्से के समय में था। लेकिन लाओत्से बिल्कुल वैसा का वैसा, ऐसा ताजा जैसे सुबह की ओस हो, अभी-अभी खिला फूल हो, सद्यःस्नात, अभी-अभी स्नान करके आया हो। समय धूल नहीं जमा पाता महान सिद्धांतों पर।

छोटे सिद्धांत सामयिक होते हैं, महान सिद्धांत शाश्वत होते हैं, सनातन होते हैं। छोटे-छोटे सिद्धांत आते हैं, चले जाते हैं। महान सिद्धांत न तो आते हैं और न जाते हैं। जो लाओत्से कह रहा है वह लाओत्से के पहले भी मौजूद था। लाओत्से ने फिर से उसे वाणी दी। जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह सदा से मौजूद रहा है। मैं उसे फिर से वाणी दे रहा हूं। न लाओत्से का इसमें कुछ है, न मेरा इसमें कुछ है।

महान शिक्षाएं शाश्वत हैं, सनातन हैं। उन्हें कोई लाया नहीं; उन्हें कोई ले जा नहीं सकता। हां, इतना ही हो सकता है, जब कोई व्यक्ति मौजूद होता है जो अपने हृदय को माध्यम बना दे, जो अपने प्राण को बांसुरी बना दे, तब वे शिक्षाएं फिर से अनुगूंज उठा देती हैं, फिर से गीत गुनगुनाने लगती हैं। शिक्षाएं सदा मौजूद रहती हैं; उस व्यक्ति की तलाश में रहती हैं जो अपने को खुला छोड़ दे और शिक्षाएं उससे बह जाएं।

धर्म किसी की बपौती नहीं है। इसलिए तो मैं कहता हूं, धर्म न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है; धर्म तो सनातन है। कभी क्राइस्ट के ओंठों से बांसुरी ने गीत गाया; इससे गीत ईसाई नहीं हो गया। गाने वाला वही एक है। कभी लाओत्से के ओंठों पर स्वर गूंजे; गीत ओंठों के कारण भिन्न नहीं हो गया। कभी महावीर, कभी बुद्ध, कभी कृष्ण। रूप बदलते हैं, अभिव्यक्ति बदल जाती है; लेकिन सार, आत्मा वही है।

इसे ख्याल में रखो। क्योंकि ईसाई बन जाना बहुत सरल है, धार्मिक बनना बहुत कठिन। हिंदू बनना एकदम आसान है, मुफ्त; कुछ करना ही नहीं पड़ता। संयोग की बात है हिंदू घर में पैदा हो गए, हिंदू बन गए। धार्मिक बनना बड़ी क्रांति है। और जो सस्ते से राजी हो जाता है वह बहुमूल्य से वंचित रह जाता है। सस्ते से राजी मत होना। हिंदू होना इतना आसान नहीं है, न मुसलमान होना इतना आसान है, न ईसाई होना इतना आसान है जितना तुमने समझ रखा है। पैदा हो गए ईसाई घर में ईसाई हो गए। पैदाइश से धर्म का क्या संबंध है? धर्म से तो संबंध जन्म और मृत्यु का है ही नहीं। धर्म तो वही है जिसका कोई जन्म नहीं हुआ और जिसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती। तुम अपने जन्म और मृत्यु से धर्म को क्यों जोड़ रहे हो?

धार्मिक होना व्यक्ति का बड़े सचेतन अवस्था में लिया गया निर्णय है; जन्म नहीं। तुम्हें खोजना होगा; तुम्हें उठना होगा अपनी तंद्रा से; तुम्हें जागना होगा। जाग कर ही तुम धार्मिक हो सकोगे। सोए-सोए तुम हिंदू बने रहो, मुसलमान बने रहो, ईसाई बने रहो; कुछ फर्क न पड़ेगा। मंदिर-मस्जिदों में लोग सो रहे हैं। संप्रदाय एक तरह की गहन निद्रा है। जागना हो तो तुम्हें सनातन की खोज करनी पड़ेगी।

हां, जिस दिन तुम सनातन को समझ लोगे उस दिन तुम्हें उस सनातन की प्रतिध्वनियां मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में, सब जगह सुनाई पड़ने लगेगी। संप्रदाय से कोई कभी धर्म तक नहीं पहुंचता, लेकिन जो धार्मिक हो जाता है उसकी समझ में सब संप्रदाय आ जाते हैं। शास्त्र से कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचता, लेकिन जिसने सत्य का जरा सा भी स्वाद चख लिया, सभी शास्त्रों में वही स्वाद अनुभव होने लगता है। तुम्हें गवाही बनना है; धार्मिक होकर ही तुम गवाही बन सकोगे। धार्मिक होते ही सारे शास्त्र तुम्हारी गवाही पर सच होंगे, तुम कहोगे इसलिए सच होंगे। एक व्यक्ति भी धार्मिक हो जाए तो कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, लाओत्से, महावीर सभी उस व्यक्ति के माध्यम से फिर पुनः अवतरित हो जाते हैं। क्योंकि फिर से वह व्यक्ति उस अज्ञात को खींच कर तुम्हारी पृथ्वी के अंधकारपूर्ण कोने में ले आता है; फिर से उन स्वरों को गुंजा देता है जो खो गए मालूम पड़ते थे।

लाओत्से कहता है, "और यदि मूढ़ता जैसा नहीं लगता... ।"

तो महान सिद्धांत सदा ही मूढ़ता जैसे लगेंगे। और महान सिद्धांतों की यात्रा पर केवल वे ही लोग जा सकते हैं जिन्हें मूढ़ होने की हिम्मत है। तुम अगर बहुत बुद्धिमान हो तब तो क्षुद्र से ही तुम्हें संतुष्ट होना पड़ेगा। बहुत बुद्धिमानों से मूढ़ तुम कहीं भी न खोज सकोगे। ज्यादा बुद्धिमानी मत दिखलाना, अन्यथा बुद्धिमत्ता से चूक जाओगे। पहली बुद्धिमानी तो मूढ़ होने की हिम्मत है। अज्ञानी होने का साहस ज्ञान की तरफ पहला चरण है।

तुम किसको धोखा दे रहे हो?

तुमने थोड़ा कचरा इकट्ठा कर लिया है; कहीं से सुने शब्द, बाजार में सुनी बातें, मां-बाप के उपदेश, स्कूल के शिक्षकों की चर्चा, वह सब तुमने इकट्ठा कर ली है। लेकिन उसका कोई भी मूल्य नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्कूल में शिक्षक था। और जैसा कि स्कूल में शिक्षकों की आदत होती है, वह अखबार लेकर आंख बंद करके विश्राम करता था। लड़के उसे कई दफे सोया हुआ पकड़ लेते थे। आखिर लड़कों ने एक दफे कहा कि आप हमें तो सोने नहीं देते और आप खुद घुर्राटे लेते हैं! उसने कहा, मैं घुर्राटे नहीं लेता। तुम सब काम में लगे हो, उस बीच मैं स्वर्ग की यात्रा पर जाता हूं; वहां देवी-देवताओं से मिलता हूं, भगवान के दर्शन करता हूं; वहीं से तो ज्ञान लाता हूं तुम्हारे लिए रोज-रोज।

एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन बीच में जग गया; एक मक्खी उसके ऊपर भिनभिना रही थी। तो उसने देखा, एक सामने ही बैठा लड़का घुर्राटे ले रहा है। तो उसने जगाया। अब लड़के भी कुशल हो गए थे। लोग सीख लेते हैं, आखिर गुरु जब इतना ज्ञानी तो लड़के भी ज्ञानी हो गए। उस लड़के ने कहा, आप यह मत समझना कि मैं कोई सो रहा था; मैं स्वर्ग गया था। नसरुद्दीन थोड़ा चिंतित हुआ। उसने कहा कि वहां क्या देखा? उसने कहा, क्या देखा? मैंने सब देवी-देवताओं से पूछा कि मुल्ला नसरुद्दीन इधर आते हैं? उन्होंने कहा, हमने तो कभी नाम ही नहीं सुना।

न गुरु जानते हैं, न मां-बाप को कुछ पता है। कोई भी उस स्वर्ग में गए नहीं, कोई उस मोक्ष को जाना नहीं, और वे तुम्हें सिखा रहे हैं। हर बच्चे को वे सिखा रहे हैं। मैं छोटा था तो मुझे ले जाया जाता था मंदिर, कि

झुको! मैं पूछता कि अगर आपको पता हो पक्का तो मैं झुकने को राजी हूं, मुझे आप पर भरोसा है। लेकिन मुझे शक है कि आपको पता नहीं है। मुझे लगता है कि आपके मां-बाप ने आपको झुकाया, आप मुझे झुका रहे हैं। अगर आपको पक्का पता हो तो मैं भरोसे में झुकने को राजी हूं। मेरे पिता ईमानदार आदमी हैं। उन्होंने मुझे कहा, तो फिर हम ही झुकते हैं, तुम मत झुको। क्योंकि हमारी तो आदत हो गई, और न झुकने से बड़ी अड़चन होगी। अब तुम अपना सम्हालो। मगर इस तरह के कठिन सवाल मत उठाओ।

मां-बाप से सीख लिया है; स्कूल में सीख लिया है; किताबों में लिखा है। सब तरफ प्रचार हो रहा है, उससे सीख लिया है। उसको तुम ज्ञान समझ रहे हो! किसको धोखा दे रहे हो? खुद ही धोखा खा रहे हो।

एक पंडित एक गांव की यात्रा पर गया था। बड़ा पंडित था। एक छोटी सी घोड़ागाड़ी में गांव का किसान उसे ले जा रहा था। गांव में कोई यज्ञ होने को था। एक मक्खी घोड़े के आस-पास सिर के चक्कर काटती। और कभी-कभी पंडित के सिर के पास भी चक्कर काटती। पंडित बकवासी था, जैसे कि पंडित होते हैं। लंबा रास्ता था तो कुछ बातचीत चलाने के लिए उसने कहा उस देहाती से, क्यों रे--वह जो देहाती घोड़ागाड़ी को हांक रहा था--इस मक्खी का क्या नाम है? पंडितों की उत्सुकता नाम में ही रहती है। भगवान का क्या नाम है? मक्खी का क्या नाम है?

उस गांव के गंवार ने कहा कि इसका नाम घुड़-मक्खी है। घुड़-मक्खी? घुड़-मक्खी का क्या मतलब होता है? उस गांव के गंवार ने कहा कि यह घोड़े, खच्चर, गधे, उनके सिर के आस-पास चक्कर... इसलिए इसका नाम घुड़-मक्खी है। उस पंडित ने कहा, क्या तेरा मतलब कि मैं घोड़ा हूं? उस ग्रामीण ने कहा कि नहीं, आप घोड़ा बिल्कुल नहीं हैं, और घोड़ा जैसे लगते भी नहीं। तो उस पंडित को और थोड़ी बेचैनी हुई; उसने कहा, इसका क्या मतलब? तू मुझे खच्चर समझता है? उसने कहा कि नहीं, खच्चर भी आप नहीं हैं। आपके चेहरे से साफ है, आप खच्चर भी नहीं हैं। नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। तो पंडित ने कहा, अब तो एक ही विकल्प बचा, क्या तू मुझे गधा समझता है? उस ग्रामीण ने पंडित को नीचे से ऊपर तक कई बार देखा और कहा कि नहीं, गधा भी आप नहीं हैं, और गधे जैसे लगते भी नहीं हैं। लेकिन घुड़-मक्खी को धोखा देना मुश्किल है।

धोखा किसको दे रहे हो? घुड़-मक्खी तक को धोखा देना मुश्किल है, तुम परमात्मा को, अस्तित्व को धोखा देने चले हो। वह तुम्हारा पांडित्य दो कौड़ी का है; जितने जल्दी कचरेघर पर रख आओ उतना अच्छा है।

लाओत्से कहता है कि अगर मूढ़ों को ये परम सिद्धांत मूढ़ता जैसे न लगते तो वे कभी के तुच्छ हो गए होते। उनकी ताजगी है कि आज भी लाओत्से को समझने में उतनी ही अड़चन है जितनी कभी पहले थी। लाओत्से अब भी उतना ही बेबूझ है जितना कभी था। और लाओत्से सदा बेबूझ रहेगा। क्योंकि वह जिस सत्य की बात कर रहा है, सत्य का स्वभाव बेबूझ है। सत्य का स्वभाव रहस्य है। जिन्होंने अपने अज्ञान को समझ लिया वे तो शायद उसे समझने को तैयार हो जाएं, लेकिन जिन्होंने अपने अज्ञान को ज्ञान समझा है, उनके लिए वह सदा मूढ़ता जैसा ही रहेगा।

लाओत्से कहता है, "मेरे तीन खजाने हैं।"

यह लाओत्से की शिक्षाओं का सार है, निचोड़ है, नवनीत है।

"मेरे तीन खजाने हैं; उन पर पहरा दो, और उन्हें सुरक्षित रखो। पहला है प्रेम; दूसरा है अति कभी नहीं; तीसरा है संसार में प्रथम कभी मत हो। आई हैव थ्री ट्रेजर्स; गार्ड देम एंड कीप देम सेफ। दि फर्स्ट इ.ज लव; दि सेकेंड इ.ज नेवर टू मच; दि थर्ड इ.ज नेवर बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड।"

समझें। प्रेम। लाओत्से प्रार्थना नहीं कहता। क्योंकि प्रार्थना तो तुम अभी कर ही न सकोगे। अभी तो तुमने प्रेम ही नहीं किया। अभी तो प्रार्थना बड़ी दूर की बात हो जाएगी। और अभी तुम प्रार्थना अगर करोगे, बिना प्रेम किए, तो झूठी हो जाएगी प्रार्थना। क्योंकि प्रार्थना का सारा सत्य तो प्रेम से आता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ऐसा नहीं है कोई उपाय कि प्रेम को बचा कर और हम सीधे प्रार्थना में चले जाएं?

तुम प्रार्थना में जाओगे कैसे प्रेम को बचा कर? प्रेम कोई सीढ़ी होती तो हम छलांग भी लगा लेते। प्रेम सीढ़ी नहीं है, प्रार्थना का प्राण है। अगर प्रेम कोई सीढ़ी होती तो छलांग लगा कर एक दूसरी सीढ़ी पर सीधे चले जाते। लेकिन प्रेम सीढ़ी नहीं है, प्रेम प्रार्थना का सारभूत प्राण है। और जब प्रेम से ही तुम बचना चाहते हो तो तुम प्रार्थना से भी बचना चाहोगे। हालांकि प्रार्थना में धोखा देना आसान है, प्रेम में धोखा देना मुश्किल है। इसलिए लोग पूछते हैं कि प्रेम से बचने का कोई उपाय नहीं?

प्रार्थना तुम मंदिर में करते हो। लेकिन तुम प्रार्थना को सीखोगे कहां? उसका स्वाद तुम्हें कहां मिलेगा?

अगर तुमने जीवन में प्रेम जाना हो तो मंदिर के द्वार खुलेंगे। क्योंकि जीवन में जिसने प्रेम को जाना वह आज नहीं कल मंदिर के द्वार पर दस्तक देगा। क्योंकि जब प्रेम में इतना रस पाया तो प्रार्थना में कितना रस न मिलेगा! प्रेम ही तो खींचेगा। जब एक बूंद पाकर इतना मिल गया तो सागर में कितना न मिलेगा! प्रेम अगर बूंद है, बिंदु है, तो प्रार्थना सागर है, सिंधु है।

और प्रेम उपलब्ध है। और प्रेम के लिए कोई थियोलाजी, कोई धर्मशास्त्र की जरूरत नहीं। और प्रेम के लिए किसी गुरु की आवश्यकता नहीं। प्रेम तो परमात्मा ने तुम्हें दिया ही है। परमात्मा की महान अनुकंपा है कि उसने तुम्हें सारभूत दिया है, जिसको अगर तुम खोल लो तो उसी से तुम्हारा मार्ग खुल जाएगा। तुम्हारे पास उपकरण है।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः लव! एंड थ्रू लव यू विल नो गॉड। बिकाज लव इ.ज गॉड। प्रेम करो! प्रेम से तुम परमात्मा को जानोगे। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।

यहां बड़ी बारीक बात है। जीसस ने यह नहीं कहा, लव गॉड सो दैट यू कैन नो गॉड। जीसस ने यह नहीं कहा कि परमात्मा को प्रेम करो, ताकि तुम परमात्मा को जान सको। जीसस ने कहा, लव! एंड यू विल नो गॉड। प्रेम करो! और तुम परमात्मा को जान लोगे। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।

इसलिए थोड़ी देर को परमात्मा को भूल जाएं, प्रेम को ही समझ लें कि प्रेम क्या है। उसी समझ में धीरे-धीरे प्रार्थना भी प्रकट होनी शुरू हो जाती है। प्रेम की प्रगाढ़ता प्रार्थना बन जाती है।

प्रेम है दो व्यक्तियों का मिलन; प्रेम है ऐसा क्षण जहां दो व्यक्ति अपने अहंकार को अलग हटा देते हैं; जहां दो व्यक्ति अहंकार को बीच में लेकर नहीं मिलते, अहंकार को हटा कर मिलते हैं। प्रेम है समर्पण दो व्यक्तियों का, एक-दूसरे के प्रति। प्रेम है भरोसा। प्रेम है इस भांति की चेष्टा कि देह तो दो होंगी, लेकिन आत्मा एक होगी।

और प्रेम प्रशिक्षण है। अगर तुमने प्रेम ही नहीं किया--और तुमने हजार उपाय कर लिए हैं ताकि तुम प्रेम न कर सको। विवाह तुमने ईजाद कर लिया है प्रेम से बचने को। जैसे संप्रदाय ईजाद किए हैं धर्म से बचने को ऐसा विवाह ईजाद किया है प्रेम से बचने को। प्रेम को काट ही दिया है। इसीलिए तो होशियार कौमें, चालाक कौमें बच्चों को प्रेम नहीं करने देतीं; मां-बाप तय करते हैं। मां-बाप के तय करने में प्रेम को छोड़ कर और सभी चीजों का विचार किया जाता है। धन का, कुल का, पद का, प्रतिष्ठा का, सब बातों का विचार किया जाता है,

सिर्फ प्रेम को छोड़ कर। और इसीलिए तो बाल-विवाह प्रचलित रहा है। क्योंकि अगर युवक हो जाएं तो फिर तुम प्रेम को बिना विचारे छोड़ न पाओगे; फिर प्रेम भीतर घुस जाएगा।

और प्रेम सारे अर्थशास्त्र को बिगाड़ देता है। प्रेम खतरनाक सूत्र है। क्योंकि प्रेम जानता नहीं कि कौन भंगी है, कौन ब्राह्मण है। प्रेम जानता नहीं कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। प्रेम तो सिर्फ प्रेम की भाषा जानता है। और सब, कुछ नहीं जानता। प्रेम संप्रदाय नहीं जानता। इसलिए तो मैंने कहा कि विवाह और संप्रदाय समानांतर, साथ-साथ हैं। प्रेम गरीब और अमीर को नहीं जानता। अमीर गरीब के प्रेम में पड़ सकता है; गरीब सम्राट के प्रेम में पड़ सकता है। प्रेम बड़ा खतरनाक है; कहां ले जाएगा, कुछ पता नहीं।

इसलिए प्रेम को काट दो। बाल-विवाह ईजाद किया गया, ताकि प्रेम का कोई उपाय ही न रहे। फिर जब बचपन से ही एक पुरुष और स्त्री पास रहते हैं, तो उनके बीच एक तरह का लगाव बन जाता है जो प्रेम नहीं है। वह लगाव वैसे ही है जैसे बहन और भाई के बीच होता है। साथ-साथ रहने से पैदा होता है। उस लगाव में प्रेम का न तो कोई तूफान है, न कोई आंधी है।

वह लगाव औपचारिक है, फार्मल है। वह तो किसी के भी साथ बहुत दिन तक रहो तो एक लगाव बन जाता है, उसके साथ एक मैत्री बन जाती है, एक पसंद हो जाती है। वह न हो तो खालीपन लगता है; वह मौजूद न हो तो अड़चन मालूम होती है। लेकिन उसमें न तो कोई तूफान आता है, न तुम्हारे प्राणों में कभी ऐसा उन्मेष उठता है कि गीत झर जाएं; न कभी प्राणों में ऐसी कोई आंधी आती है, ऐसा कोई झंझावात, कि सब दीवारें कंप जाएं, आधार कंप जाएं, तुम्हारा घर डोलने लगे भूकंप में। नहीं, उसमें कोई एक्सटैसी, कोई समाधि का कोई क्षण नहीं आता। एक सामाजिक व्यवस्था चलती है, घर-गृहस्थी चलती है।

प्रेम तो बड़ा खतरनाक है, संन्यास जैसा खतरनाक है। विवाह समाज की संस्था है, प्रेम परमात्मा का आमंत्रण है। समाज ने अपनी व्यवस्था कर ली है, क्योंकि प्रेम के साथ समाज अड़चन में पड़ेगा। प्रेम कहां ले जाएगा, कुछ पता नहीं; किन रास्तों पर चलाएगा, कुछ पता नहीं; कहां भटकाएगा, कुछ पता नहीं। क्या परिणति होगी आखिर में, उसका कुछ पता नहीं। प्रेम का रास्ता नापा-जोखा नहीं है।

प्रेम से तुम्हें बचा दिया गया है। और प्रेम से बचने के कारण तुम्हारे जीवन में एक कमी है। क्योंकि प्रेम के बिना कोई भी तृप्त नहीं हो सकता। प्रेम के बिना तुम जीओगे, लेकिन मरे-मरे, जीओगे अपने को ढोते बोझ की तरह। प्रेम ही तृप्त कर सकता है। क्योंकि जहां दो व्यक्ति मिलते हैं और अहंकार छूटते हैं, उस दो व्यक्तियों के मिलने के क्षण में वहां एक तीसरा व्यक्ति भी मौजूद होता है, जिसका नाम परमात्मा है। क्योंकि जहां भी अहंकार छूटते हैं वहीं परमात्मा प्रवेश कर जाता है। वह उसका द्वार है।

अगर दो व्यक्तियों ने ठीक से प्रेम किया एक-दूसरे को... ।

ठीक से प्रेम करने का अर्थ है उन्होंने अहंकार हटा कर प्रेम किया, अहंकार के माध्यम से नहीं। क्योंकि जब अहंकार के माध्यम से प्रेम होता है तब तुम दूसरे को प्रेम नहीं करते, तुम दूसरे के द्वारा अपने को ही प्रेम करते हो। तब तुम दूसरे की फिक्र नहीं कर रहे हो, दूसरे का शोषण कर रहे हो। तब दूसरे की हिफाजत नहीं है, दूसरे का उपयोग है। तब दूसरा एक उपकरण है, एक वस्तु है, व्यक्ति नहीं।

जब अहंकार बीच में होता है तो जीवंत व्यक्तियों को वस्तुओं में बदल देता है। पत्नी, पति वस्तुओं जैसे हो जाते हैं; एक-दूसरे का उपयोग कर रहे हैं। कोई पुलक नहीं है; कहीं कोई फूल नहीं खिलता; कहीं कोई सुगंध नहीं बिखरती। जहां भी कोई व्यक्ति अहंकार को बीच में ले आता है, वहां पजेशन, वहां मालकियत, परिग्रह, दूसरे पर दावा, कलह, संघर्ष, तरकीबें, चालाकी, सब राजनीति प्रविष्ट हो जाती है।

लेकिन जब कोई अहंकारों को हटा देता है, और दो व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं जैसे दो ज्योतियां करीब आकर अचानक एक हो जाएं, उस घड़ी में एक संध खुलती है इस जगत में जहां से परमात्मा झांकता है। प्रेम परमात्मा की पहली अनुभूति है।

लेकिन प्रेम वंचित कर दिया गया है। प्रेम रोक दिया गया है। प्रेम के रोक देने के कारण तुम सदा अतृप्त हो, बेचैन हो, परेशान हो। कुछ कम, कुछ कम मालूम पड़ता है; कुछ कमी, कोई अभाव। यह भी साफ नहीं कि किस चीज का अभाव है, क्या चाहिए। धन भी है, धन भी इकट्ठा कर लेते हो, फिर भी अभाव। पद भी है, प्रतिष्ठा मिल जाती है, फिर भी अभाव। और यह भी तुम्हें साफ नहीं कि अभाव किस बात का। जैसे एक प्यासा आदमी है, जिसको प्यास किसी तरकीब से भुला दी गई है। वह धन इकट्ठा कर लेता है, फिर भी अभाव। क्योंकि प्यास थी, पानी की जरूरत थी, धन की जरूरत न थी। फिर इस तरह के प्यासे लोग जिनको अपनी प्यास भूल गई है, और जिन्हें प्रेम का सूत्र खो गया है जिनके हाथ से, छीन लिया गया है, और झूठी संस्थाएं जिनके हाथ में दे दी गई हैं; प्रेम के काव्य की जगह जिनको विवाह का गणित पकड़ा दिया गया है; प्रेम के धर्म की जगह जिनके हाथ में प्रेम का अर्थशास्त्र, विवाह, जो ढो रहे हैं; ये लोग मंदिर-मस्जिदों में जाते हैं, घुटने टेकते हैं, प्रार्थना करते हैं।

इनका अभाव, इनको लगता है कि शायद प्रार्थना से पूरा हो जाए, शायद योग से पूरा हो जाए, शायद ध्यान से पूरा हो जाए। और मैं तुमसे एक बात कह देना चाहता हूं कि धार्मिक पंडे-पुरोहित, मंदिर-मस्जिदों के अधिकारी, इस सत्य को बहुत पहले समझ गए कि अगर लोगों को प्रेम से वंचित कर दो तो ही मंदिरों और मस्जिदों में भीड़ रहेगी, अन्यथा नहीं। क्योंकि जब प्रेम न मिलेगा तब वे प्रार्थना मांगेंगे। अगर जगत में प्रेम अवतरित हो जाए, मंदिर-मस्जिद, पंडे-पुजारी अपने आप खो जाएं। तुम्हारा हृदय मंदिर हो जाएगा।

यह सबसे बड़ी खतरनाक साजिश है जो आदमी के साथ की गई है, कि उसका प्रेम का सूत्र काट दिया गया है। तब वह बंधा हुआ अपने आप मंदिर आएगा ही। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, उसे मंदिर आना ही पड़ेगा। क्योंकि उसे लगेगा कि कुछ कम है जो संसार में पूरा नहीं होता, तो संसार के बाहर कहीं खोजें।

जिस दिन दुनिया में प्रेम परिपूर्ण रूप से मुक्त होगा, कोई प्रेम पर बाधा और अड़चन न होगी, और प्रेम स्वयं का निर्णय होगा--मां-बाप का नहीं, परिवार का नहीं, समाज का नहीं, किसी राजनीति का नहीं--जिस दिन प्रेम स्वयं का आविर्भाव होगा, जिस दिन भीतर का हृदय खिलेगा, उस दिन मंदिर-मस्जिदों से लोग अपने आप विदा हो जाएंगे। प्रेम का मंदिर काफी मंदिर है। फिर कोई और मंदिर की जरूरत नहीं है। और तब प्रार्थना उठेगी। जब प्रेम पकता है तो पके प्रेम से जो गंध उठती है वही प्रार्थना है।

जब दो व्यक्ति इतने लीन हो जाते हैं एक-दूसरे में कि एक हो जाते हैं, तब उनको पहली दफा पता चलता है कि जब दो के एक हो जाने से इतनी अपरिसीम सुख की संभावना पैदा हुई है, तो काश हम अनंत के साथ एक हो जाएं! पहली दफा विचार उठता है कि जब एक के साथ खोकर, दो बूंद के मिलने से ऐसा महा सुख बरसा है, तो जब बूंद सागर से मिलती होगी, जब सागर बूंद से मिलता होगा, तब क्या घटता होगा? प्रेम स्वाद देता है; प्रार्थना में जाने का बल देता है; प्रार्थना की तरफ पैर उठने की हिम्मत और साहस आता है।

लेकिन प्रेम से ही तुम बच रहे हो, तो तुम कायर हो गए हो, तुममें दुस्साहस रहा ही नहीं।

लाओत्से कहता है कि तीन खजाने हैं मेरे जो मैं तुम्हें देना चाहता हूं।

"पहला है प्रेम, दूसरा है अति कभी नहीं।"

लाओत्से परमात्मा की बात ही नहीं करता, प्रार्थना की बात ही नहीं करता। क्योंकि कहता है, बीज दे दिया, बाकी घटनाएं घटती रहेंगी। बीज को बो दिया, अंकुर निकलेगा अपने आप, तुम्हें कुछ करना नहीं। वृक्ष बड़ा होगा, घनी उसकी छाया होगी, फूल लगेंगे, फल आएंगे; यह सब अपने से होगा, तुम बीज की सम्हाल कर लेना। इसलिए प्रेम की बात की है, प्रार्थना की नहीं, परमात्मा की नहीं।

अनेकों को लगता है कि लाओत्से नास्तिक है।

लाओत्से महा आस्तिक है। और तुम्हारे मंदिर-मस्जिदों में जो बैठे हैं वे सब नास्तिक हैं। उनकी साजिश गहन है, शड्यंत्र खतरनाक है। उन्होंने तुम्हारे जीवन को इस तरह से अवरुद्ध कर दिया है, इस तरह से काट दिया है; उन्होंने बीज को ही दग्ध कर दिया है। तब तुम जो भी करते हो सब झूठा-झूठा। ऐसी मेरी प्रतीति हैः जिस व्यक्ति का प्रेम झूठा, उसका पूरा जीवन झूठा होगा। क्योंकि प्रेम तक के संबंध में तुम सच्चे न हो सके तो अब तुम किस चीज के संबंध में सच्चे हो सकोगे? जब प्रेमी के साथ तुम सच्चे और प्रामाणिक न हो सके तो ग्राहक के साथ हो सकोगे? बाजार में, समाज में? जब निकटतम के साथ तुम झूठे हो, जब पत्नी को देख कर तुम मुस्कुराते हो क्योंकि मुस्कुराना चाहिए, जब तुम पिता के पैर दबाते हो क्योंकि दबाना चाहिए, जब तुम गुरु को देख कर खड़े हो जाते हो क्योंकि खड़ा होना चाहिए, तब सब खो गया। तुम्हारे जीवन में सब झूठ होगा अब। ये निकटतम बातें थीं जो हृदय के बहुत करीब थीं। ये झूठी हो गईं तो जो बहुत दूर हैं वे कैसे सच्ची होंगी?

प्रेम सच्चा हो तो तुम्हारे जीवन में सब तरफ सच्चाई आनी शुरू हो जाएगी। क्योंकि प्रेम तुम्हें बड़ा करेगा, फैलाएगा। और धीरे-धीरे अगर तुमने एक व्यक्ति के प्रेम में रस पाया तो तुम औरों को भी प्रेम करने लगोगे। मनुष्यों को प्रेम करोगे--प्रेम की लहर बढ़ती जाएगी--पौधों को प्रेम करोगे, पत्थरों को प्रेम करोगे। अब सवाल यह नहीं है कि किसको प्रेम करना है, अब तुम एक राज समझ लोगे कि प्रेम करना आनंद है। किसको किया, यह सवाल नहीं है। अब तुम यह भूल ही जाओगे कि प्रेमी कौन है। नदी, झरने, पहाड़, पर्वत, सभी प्रेमी हो जाएंगे।

लेकिन जैसे झील में कोई पत्थर फेंकता है तो छोटा सा वर्तुल उठता है लहर का, फिर फैलता जाता, फैलता जाता, दूर तटों तक चला जाता है; ऐसे ही दो व्यक्ति जब प्रेम में पड़ते हैं तो पहला कंकड़ गिरता है झील में प्रेम की, फिर फैलता चला जाता है। फिर तुम परिवार को प्रेम करते हो, समाज को प्रेम करते हो, मनुष्यता को, पशुओं को, पौधों को, पक्षियों को, झरनों को, पहाड़ों को, फैलता चला जाता है। जिस दिन तुम्हारा प्रेम समस्त में व्याप्त हो जाता है, अचानक तुम पाते हो परमात्मा के सामने खड़े हो।

प्रेम पकता है तब सुवास उठती है प्रार्थना की। जब प्रार्थना परिपूर्ण होती है तो परमात्मा द्वार पर आ जाता है। तुम उसे न खोज पाओगे। तुम सिर्फ प्रेम कर लो; वह खुद चला आता है। तुम उसे खोजने जाओगे भी कहां? पता-ठिकाना भी तो मालूम नहीं।

और डर है कि उसे खोजने तुम गए तो तुम किसी साजिश के हिस्से न हो जाओ। क्योंकि काशी में, काबा में साजिश के अड्डे हैं। वहां तुम उलझ जाओगे। और वहां बैठे लोग तुम्हें समझाएंगे कि प्रेम पाप है, और छोड़ो प्रेम और प्रार्थना करो। वे बड़े कुशल लोग हैं। वे बड़ा गहरा खेल खेल रहे हैं। और उन्होंने इतने दिन से यह जहर तुम्हारे मन पर फेंका है कि तुमको भी उनकी बात जंचेगी कि बात तो ठीक ही है; प्रेम तो लगाव है, आसक्ति है।

प्रार्थना भी लगाव है और आसक्ति है। और परमात्मा परम आसक्ति है। क्योंकि जीवन जुड़ा है। यहां हम अलग-थलग नहीं हैं; यहां हम सब संयुक्त हैं, इकट्ठे हैं। यहां तुम्हारा होना और मेरा होना दो लहरों की तरह है; नीचे छिपा सागर एक है। और एक लहर दूसरी लहर से मिल रही है। मिलने की तैयारी प्रेम है; मिल जाने का

अनुभव तत्क्षण प्रार्थना में उठा देता है। और जब प्रार्थना पूर्ण होती है, आंख तुम खोलते हो, द्वार पर पाते हो परमात्मा खड़ा है। वह सदा से खड़ा था। तुम तैयार न थे, तुम्हारी तैयारी चाहिए।

तो लाओत्से कहता है, पहला सूत्र प्रेम, पहला खजाना प्रेम। दूसरा है अति कभी नहीं।

यह भी बड़ा समझ लेना है। क्योंकि मनुष्य का मन अतियों में जीता है, एक्सट्रीम्स में। या तो तुम एक तरह की अति करते हो या दूसरे तरह की।

अभी कुछ दिन पहले की बात है। एक युवक इंग्लैंड से आया। वह उपवास में भरोसा करता है। उपवास को उसने अपनी साधना बना रखा है। शरीर दीन-हीन हो गया है। ऊर्जा क्षीण हो गई है। तो मैं उसे समझाया कि अगर मरना ही हो तो बात अलग, मजे से करो उपवास। लेकिन जीवन ऐसे न चलेगा। और ऊर्जा अगर इतनी क्षीण है तो तुम ध्यान कैसे करोगे? क्योंकि ऊर्जा तो चाहिए ही। और ध्यान के लिए तो बहुत ऊर्जा चाहिए। क्योंकि वह कोई छोटी-मोटी घटना नहीं है। तुम इतनी बड़ी क्रांति की तैयारी कर रहे हो तो बड़ा ईंधन चाहिए। अगर तुमने सब राख कर डालने का तय किया है तो एकाध चिनगारी से काम न चलेगा; दावानल, विराट लपटें चाहिए। ध्यान की यात्रा पर निकले हो; अगर थके-मांदे तुम यात्रा के पहले ही हो तो कदम कैसे उठाओगे?

कठिन था उसे समझना, फिर भी उसने समझने की कोशिश की। तीसरे दिन वह आया और उसने कहा, आपने मुसीबत में डाल दिया। मैं बहुत ज्यादा खा गया। अब मेरे पेट में दर्द है और मैं बड़ी मुसीबत में पड़ा हूं।

उपवासी, अगर उपवास छुड़ाओ, ज्यादा खा लेगा। असल में, ज्यादा खाने वाले लोग ही उपवास करते हैं। उन दोनों में संबंध है। जहां-जहां ज्यादा भोजन उपलब्ध हो जाता है वहां-वहां उपवास का संप्रदाय प्रचलित हो जाता है। अभी अमरीका में बड़े जोर से चल रहा है, उपवास करो! हर चीज के लिए उपवास कारगर है। बीमारी है तो उपवास, किसी स्त्री को सुंदर होना है तो उपवास, शरीर को सुडौल बनाना है तो उपवास, स्वस्थ बनाना है तो उपवास; सबके लिए उपवास। अमरीका इस समय ज्यादा भोजन की अवस्था में है। ऐसी दशा भारत में भी आई थी; उसी वक्त जैन पैदा हुए। आज से पच्चीस सौ साल पहले भारत ऐसे ही समृद्ध था जैसा अमरीका। बड़ा धन-धान्य था। बड़ा सुख था। लोग कहते हैं, दूध-दही की नदियां बहती थीं। खूब था भोजन करने को, और लोगों ने खूब भोजन किया होगा। तत्क्षण उपवास महत्वपूर्ण हो गया।

यह तुमने कभी ख्याल किया कि जब गरीब आदमी का धार्मिक दिन आता है तो वह भोज करता है, और जब अमीर आदमी का धार्मिक दिन आता है तो वह उपवास करता है। बड़े मजे की बात है! लेकिन सीधा है, गणित तो साफ है। मुसलमान गरीब हैं, साल भर तो खींच-तान कर चलता है। हिंदू गरीब हैं, तो किसी तरह गुजारते हैं दिन। लेकिन जब उत्सव का दिन आ जाता है, दिवाली आ गई, तो गरीब आदमी भी मिष्ठान्न खरीद लाता है। लक्ष्मी की पूजा का दिन आ गया, कि जन्माष्टमी आ गई, कि कृष्ण का जन्म हो रहा है, तो अब यह तो उत्सव का क्षण हैः खाओ, पीओ, मौज करो। ईद आ गई, तो मित्रों को भी निमंत्रित करो। गरीब हैं मुसलमान, कपड़े रोज तो बदल नहीं सकते, पर ईद के दिन नये कपड़े पहन कर निकल आते हैं। धार्मिक दिन उत्सव का दिन है।

लेकिन जैन का उत्सव का दिन आए तो वह पर्यूषण के व्रत रखता है। क्योंकि साल भर तो उत्सव चल ही रहा है, साल भर तो अति भोजन चल ही रहा है, तो अब धार्मिक दिन को कुछ तो भिन्न बनाना चाहिए। तो वह भूखा मरता है। और भूखा मरने से साल भर में जो स्वाद खो गया था वह फिर लौट आता है।

तो पर्यूषण के दिनों में जैन भोजन तो नहीं करते, भोजन की कल्पना, फैंटेसी, खूब सोचते हैं कि दस दिन कब पूरे हो जाएं। बस एक ही प्रार्थना कि दस दिन कब पूरे हो जाएं। और दस दिन के बाद क्या-क्या करना है, क्या-क्या खाना है, उसकी फेहरिस्त बनाते हैं। तो लाभ है इससे भी कि भोजन में फिर स्वाद लौट आता है। बस इतना ही लाभ है, और कोई लाभ नहीं है।

अति से जो बच जाए वही समझदार है। न तो उपवास, न अति भोजन; सम्यक आहार। जितना शरीर के लिए जरूरी है, बस उतना। न इस तरफ ज्यादा, न उस तरफ ज्यादा। क्योंकि दोनों हालतें रुग्णता की हैं। स्वास्थ्य मध्य बिंदु है। स्वास्थ्य संतुलन है।

या तो लोग बहुत सोएंगे, या बिल्कुल नहीं सोएंगे। या तो कोई काम ज्यादा कर लेंगे, पूरी जान लगा देंगे, और या फिर बिल्कुल छोड़ कर बैठ जाएंगे। नहीं, ऐसे न चलेगा। अति कितनी देर खींच सकते हो तुम? अति कभी जीवन की शैली नहीं बन सकती। कैसे बनाओगे अति को जीवन की शैली? अगर उपवास करोगे, कितने दिन जीओगे? अगर ज्यादा खाओगे, तो भी कितने दिन जीओगे? भूख भी मार डालती है; अति भोजन भी मार डालता है।

अगर जीवन का सार समझना है तो मध्य में कहीं, सम्यक, संतुलित, जितना जरूरी है बस उतना। नींद भी जितनी जरूरी है बस उतनी; भोजन भी उतना जितना जरूरी है; श्रम भी उतना जितना जरूरी है; विश्राम भी उतना जितना जरूरी है। और हर आदमी को खोजना है अपना संतुलन, क्योंकि इसके लिए कोई बंधी हुई कोटि और धारणा नहीं हो सकती। क्योंकि लोग अलग-अलग हैं।

अब बूढ़े आदमी मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, नींद नहीं आती। मैं पूछता हूं कि कितनी आती है? वे कहते हैं, बस मुश्किल से तीन-चार घंटे।

पर बूढ़े आदमी को तीन-चार घंटे पर्याप्त है। बच्चा पैदा होता है, बीस घंटे सोता है। मरते वक्त भी तुम्हें बीस घंटे सोने का इरादा है? जन्म के समय जरूरत है बीस घंटे की। क्योंकि बच्चे के शरीर में इतना काम चल रहा है कि अगर वह जागेगा तो काम में बाधा पड़ेगी। बच्चे के शरीर में निर्माण हो रहा है, उसे सोया रहना उचित है। अभी बढ़ रहा है बच्चा। गर्भ में तो चौबीस घंटे सोता है। क्योंकि उसका जरा सा भी जाग जाना, और बाधा पड़ेगी।

जब भी तुम्हारा शरीर थका होता है और निर्माण की जरूरत होती है तब नींद उपयोगी है। इसलिए तो चिकित्सक कहते हैं, अगर बीमारी हो और नींद न आए तो बीमारी से भी खतरनाक नींद का न आना है। पहले नींद लाओ, बीमारी की पीछे फिक्र करेंगे। क्योंकि आधी बीमारी तो नींद में ही ठीक हो जाएगी। तुम जब जागे रहते हो तो तुम बाधा डालते हो। और तुम्हारी ऊर्जा बाहर की तरफ बहती रहती है। जब तुम सो जाते हो, सारी ऊर्जा भीतर वर्तुलाकार घूमने लगती है। तो निर्माण होता है।

बूढ़ा आदमी तो मर रहा है। निर्माण तो कब का बंद हो चुका। अब तो चीजें टूट रही हैं। अब तो सेल नष्ट हो रहे हैं। अब तो जो भी मिट जाता है वह फिर नहीं बनता। तो उसकी नींद कम हो गई है। स्वाभाविक है। अब उसको नींद की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, कि वह सोचे कि हम जवान जब थे तो आठ घंटे सोते थे। तो तब तुम जवान थे, तुम नहीं सोते थे आठ घंटे, जवानी आठ घंटे सोती थी। तुम बच्चे थे, बीस घंटे सोते थे। तुम नहीं सोते थे, बचपना बीस घंटे सोता था।

और फिर हर व्यक्ति के जीवन में रोज बदलाहट होती है। तो व्यक्ति को सजग होकर संतुलन को सम्हालना चाहिए। जड़ नियम जो बना लेता है वह हमेशा असंतुलित हो जाएगा। क्योंकि तुम रोज बदल रहे

हो। बचपन में एक नियम बना लिया; जवान हो गए, अब क्या करोगे? जवानी में एक नियम बना लिया; अब बूढ़े हो गए, अब क्या करोगे? नहीं, आदमी को सजग रह कर रोज-रोज संतुलन खोजना पड़ता है।

जैसे तुमने कभी किसी नट को देखा हो रस्सी पर चलते। तो वह ऐसा थोड़े ही कि एक दफा सम्हाल लिया संतुलन और चल पड़े; बस एक दफा पहले कदम पर सम्हाल लिया, चल पड़े। हर कदम पर सम्हालना होता है। क्योंकि हर कदम नया कदम है; हर यात्रा नयी यात्रा है। हर पल नया है, तुम्हारा पुराने पल का जो तुमने तय किया था वह नये पल में काम न आएगा। तो नट एक लकड़ी हाथ में लिए रहता है। अगर बाएं जरा ही ज्यादा झुकता है तो तत्क्षण दाएं लकड़ी को झुका देता है ताकि संतुलन हो जाए। दाएं जरा ही ज्यादा झुकने लगता है तो तत्क्षण बाएं झुक जाता है ताकि संतुलन हो जाए। बाएं और दाएं के बीच में प्रतिपल गत्यात्मक रूप से संतुलन को साधता है।

अतियों के बीच तुम्हें गत्यात्मक रूप से संतुलन साधना होगा। और जीवन एक नट की ही यात्रा है। वहां दोनों तरफ खड्डे और खाई हैं। इधर गिरो तो खाई, उधर गिरो तो खड्डा। ठीक मध्य में खड्ग की धार की तरह बारीक है रास्ता।

इसलिए लाओत्से कहता है, अति कभी नहीं; नेवर टू मच। किसी भी चीज का नहीं।

दूसरा कोई तुम्हारे लिए सिद्धांत तय नहीं कर सकता। अब विनोबा उठते हैं सुबह तीन बजे तो उनके आश्रम में सभी को सुबह तीन बजे उठना। अब यह पागलपन है। विनोबा बूढ़े हो गए। और उनको जमता रहा है तीन बजे उठना, क्योंकि वे आठ बजे सोने भी चले जाते हैं। उनके शरीर को रास आता है; ठीक है। वह उनके लिए नियम है। इसलिए उनके आश्रम में तुम हर आदमी को दिन भर जम्हाई लेते, आंखें बंद करे, परेशान पाओगे। ब्रह्ममुहूर्त में क्या उठे, पूरा दिन निद्रा का आक्रमण होता है।

एक आदमी मेरे पास आया। उसने स्वामी शिवानंद की किताबें पढ़ लीं। उसमें उन्होंने लिखा है कि चार घंटे से ज्यादा सोना तामस का लक्षण है। अब यह आदमी अभी मुश्किल से बत्तीस साल का था, जवान था। वह चार घंटे सोने लगा। जब तामस है तो तामस से तो छुटकारा पाना ही है। तो जब चार घंटे सोने लगा तो दिन भर तामस आने लगा। पहले सात घंटे सोता था तो सात घंटे तामस था। अब चौबीस घंटे तामस हो गया। जब उसने पाया कि यह तो तामस बढ़ता ही जा रहा है तो शिवानंद की किताबें और उसने गौर से देखीं कि गुरु इस संबंध में क्या कहते हैं? तो उन्होंने बताया कि अगर तामस न मिटता हो तो उसका मतलब कि तुम भोजन ज्यादा कर रहे हो। तो भोजन एक दफा कर दिया। नींद और कमजोरी--इन दो पंखों से वह परमात्मा की यात्रा करने लगे। चौबीस घंटे भूखे और भोजन का चिंतन, और चौबीस घंटे प्यासे नींद के और जम्हाइयां।

वे मेरे पास आए। मैंने उनसे कहा कि अब किताब खतम हो गई कि उसमें और कुछ लिखा है? कुछ और लिखा हो जल्दी कर लो, नहीं तुम खतम हो जाओगे। शिवानंद का शरीर देखा है? फोटो देखी? ये उपवासी मालूम पड़ते हैं? शिवानंद को चलाने के लिए दो आदमियों के हाथ कंधों पर रख कर उनको उठाना पड़ता था। पहले उनकी फोटो तो देखते, फिर किताब पढ़ते।

पर लोगों को कोई होश से जीने की कुछ नहीं है; कुछ भी पकड़ लेते हैं; कुछ भी पकड़ लेते हैं। और शिवानंद की मृत्यु कैसे हुई? मस्तिष्क में रक्तस्राव से। स्टैलिन की हुई, समझ में आता है। शिवानंद की मस्तिष्क में रक्तस्राव से मृत्यु का मतलब है कि चित्त में बहुत तनाव, अशांति। स्टैलिन की हो, बिल्कुल मौजूं है बात, जमती है। राजनीतिज्ञ किसी और ढंग से मरे, चमत्कार है। लेकिन संन्यासी ऐसे मरे तो भी चमत्कार है।

होश रखो; सुनो, समझो, अपने जीवन को पहचानो, और अपने मार्ग एक-एक कदम आहिस्ता-आहिस्ता उठाओ। और ध्यान रखो कि अति न हो जाए।

तो मैंने उन सज्जन को कहा कि सात घंटे सोना शुरू करो।

अगर परमात्मा को ऐसा ख्याल होता कि तामस की बिल्कुल जरूरत ही नहीं तो तामस उसने बनाया ही न होता। विश्राम की जरूरत है, तामस में कुछ निंदा योग्य नहीं है। निंदा योग्य तभी है जब तामस में अति हो जाए। अब कोई दिन भर ही सोने लगे तो फिर निंदा योग्य है। लेकिन निंदा तामस के कारण नहीं है, निंदा अति के कारण है। अन्यथा तामस की भी जरूरत है, क्योंकि तामस विश्राम का सूत्र है। राजस श्रम का सूत्र है तो तामस विश्राम का सूत्र है। और दोनों संतुलित हों तो तुम्हारे जीवन में सत्व की ज्योति जलेगी। त्रिकोण, ट्रायंगल समझ लो। नीचे के दो कोण तामस और राजस, और ऊपर का उठा हुआ कोण सत्व। जब दोनों संतुलित हो जाते हैं, तब तुम्हारे भीतर संतुलन के माध्यम से धीरे-धीरे सत्व का स्वर आना शुरू होता है। सत्व का अर्थ है परम संतुलन, अल्टीमेट बैलेंस। इसलिए लाओत्से कहता है, संसार में अति कभी नहीं।

"और तीसरा, संसार में प्रथम कभी मत होना।"

वही दौड़ लोगों को परमात्मा से वंचित करवा देती है।

ऐसा हुआ कि एक राजनीतिज्ञ मित्र के साथ मैं एक यात्रा पर था। वही कार ड्राइव कर रहे थे। जाते थे हम जबलपुर से इलाहाबाद की तरफ। बीच में एक जगह मुझे ऐसा लगा कि रास्ता कुछ गलत पकड़ लिया है। मील के पत्थर देखे तो हम जा रहे थे छतरपुर की तरफ। वह तो अलग रास्ता है। मैंने उनसे कहा, क्या कर रहे हो तुम, भूल गए? उन्होंने कहा, भूला नहीं हूं। एक आदमी कार उनके आगे निकाल ले गया। और वह जा रहा है छतरपुर। और जब तक वे उसकी कार को पीछे न कर दें, अब इलाहाबाद नहीं जा सकते। दो घंटे लगे। आखिर उसको पीछे करके रहे। जब उसको पीछे कर दिया तब उन्हें शांति मिली।

दो घंटे में लौट आए, क्योंकि इलाहाबाद जाना एकदम जरूरी था। लेकिन जिंदगी में ऐसा मामला नहीं है। रास्ते इतने साफ नहीं हैं कि तुम छतरपुर गए कि इलाहाबाद गए; जिंदगी में रास्ते बहुत जटिल हैं। और जिंदगी में रास्ते ऐसे हैं कि उन पर वापस नहीं लौटा जा सकता; गए तो गए। और तुम सब यही करते रहे हो।

एक आदमी के पास तुमने देखी कि कार है; अब तुम्हारे पास भी होनी चाहिए। अब तुम एक दौड़ में लग गए। तुम भूल ही गए कि कार की तुम्हारी जरूरत थी? या इसके पास है इसलिए जरूरत पैदा हो गई! अब तुम अपना सारा जीवन दांव पर लगा कर पहले एक कार... । तब तक कोई ने बड़ा मकान बना लिया। अब यह कैसे हो सकता है कि तुम और छोटे मकान में रह जाओ। अब तुम बड़ा मकान बनाने लगे। तब तक कोई किसी फिल्म अभिनेत्री से शादी करके आ गया। रास्ता चलता ही जाता है। और लोगों को तुम्हें पीछे करना है।

आखिर में तुम पाते हो कि लोग पीछे हुए कि नहीं हुए, तुम बरबाद हो गए। जहां तुम्हें जाना था, जो तुम्हारी नियति थी, वहां तो तुम पहुंच ही न पाए। हर किसी ने तुम्हें लुभा लिया। और हर किसी ने तुम्हारे रास्ते में विघ्न खड़ा कर दिया। और हर किसी ने तुम्हें धक्का दे दिया। और हर किसी ने तुम्हें रास्ता सुझा दिया।

तुम्हारी कोई नियति है। तुम ऐसे ही अर्थहीन नहीं हो यहां, तुम कुछ होने को हो। तुम्हारे जीवन से कुछ फलित होने को है। तुम्हारी कोई पूर्णाहुति है। तुम्हारे भीतर चेतना किसी मार्ग पर जा रही है। कितनी विघ्न-बाधाएं तुम खड़ी कर रहे हो! तो मार्ग तो छूट ही जाता है; कुछ और होने में लग जाते हो।

लाओत्से इसलिए तीसरा खजाना देता है। वह कहता है, जीवन में कभी तुम प्रथम होने की चिंता मत करना।

"दि थर्ड इ.ज, नेवर बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड।"

कोशिश ही मत करना। अगर तुमने इसे जीवन की गहनतम आस्था बना लिया कि मैं किसी की प्रतिस्पर्धा में नहीं हूं, और किसी के साथ मेरी महत्वाकांक्षा की कोई दौड़ नहीं चल रही है, तो ही तुम अपनी नियति को उपलब्ध हो पाओगे। अन्यथा मुश्किल है। चार अरब आदमी हैं चारों तरफ। इसमें बड़ी धक्का-मुक्की है। और हरेक अपने-अपने ढंग से अपने काम में लगा है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मस्जिद गया। रमजान के दिन थे और सारे मुसलमान गांव के इकट्ठे थे। जब सब घुटने टेक कर नमाज पढ़ने को बैठे तो मुल्ला नसरुद्दीन का अंगरखा पीछे से थोड़ा उठा था, पाजामे का नाड़ा दिखाई पड़ रहा था। तो पीछे के आदमी ने, अच्छा नहीं लगता, एक झटका मार कर उसका अंगरखा ठीक कर दिया। उसके आगे वाले आदमी का अंगरखा ठीक ही था; एक झटका उसने मारा। तो उस आगे वाले आदमी ने पूछा कि क्यों भई, क्या बात है? उसने कहा, मुझसे मत पूछो, उसने शुरू किया है, पीछे वाले ने। हम तो सिर्फ अनुकरण कर रहे हैं। राज क्या है, हमें पता नहीं। मगर कुछ न कुछ होगा; नहीं तो वह आदमी करता ही क्यों?

हर जगह तुम डांवाडोल किए जा रहे हो। कोई भी तुम्हें कुछ भी समझाए जा रहा है। चारों तरफ से हजारों प्रवाह तुम्हारे मन पर पड़ रहे हैं। सब तुम्हें अपनी तरफ खींच रहे हैं। यह बड़ा बाजार है। कई दुकानदार हैं। वे सब तुम्हें बुला रहे हैं कि यहां आ जाओ! तुम अगर सम्हले न तो तुम इस बाजार में खो जाओगे। अनेकों खो गए हैं। सम्हलो! अपनी जरूरत पहचानो, उसे पूरा करो। अपनी आवश्यकता पहचानो, उसे पूरा करो। लेकिन दूसरे की प्रतिस्पर्धा में नहीं, क्योंकि दूसरे की प्रतिस्पर्धा तुम्हें गलत मार्ग पर ले जाएगी। अपने को पहचान कर, इस भरे बाजार से अपने को बचा कर निकल जाना है। और बचाने का सूत्र एक ही हो सकता है कि तुम पहले होने की आकांक्षा छोड़ दो। तुम अंतिम होने को राजी हो जाओ तो ही तुम अपनी नियति को पा सकोगे।

जीसस ने कहा है, जो प्रथम हैं इस संसार में वे मेरे राज्य में अंतिम खड़े होंगे, और जो अंतिम हैं वे प्रथम।

अंत में खड़ा होना एक बड़ा राज है। क्योंकि जो अंत में खड़ा है वह प्रतिस्पर्धा में उत्सुक नहीं होता। जो अंत में खड़े होने को राजी है, दुनिया उसे परेशान भी नहीं करती। उसकी कोई टांग नहीं खींचता। वे पहले ही से अंत में खड़े हैं। और कहां गिराओगे? आखिरी जगह बैठे हैं। अब यहां से और कहां भगाओगे?

कहते हैं, लाओत्से कहीं भी जाता तो सभा होती तो वह पीछे, आखिर में, जहां जूते उतारे जाते हैं, वहीं बैठता। किसी ने उससे पूछा कि लाओत्से, तुम यहां क्यों बैठे हो?

उसने कहा कि यहां से कोई कभी भगाता नहीं। क्योंकि हमने बड़ी फजीहत होते देखी है लोगों की जो प्रथम बैठते हैं। सिंहासनों पर जो बैठते हैं, उनकी टांग तो हमेशा कोई न कोई खींच ही रहा है। सिंहासन पर बैठे नहीं कि टांग खींचने वाले तैयार हुए। वे पहले ही से तैयार थे। तुम उनको धक्का-मुक्का देकर ही तो वहां पहुंच गए हो। जो तुमने किया है वही वे तुम्हारे साथ करना चाह रहे हैं।

एक ही राज है इस जगत में शांति से जीने का और अपनी नियति पूरी कर लेने का, उस अर्थ को उपलब्ध हो जाने का जिसके लिए परमात्मा ने तुम्हें जन्म दिया, वह काव्य तुमसे फूट जाए, वह गीत तुम गा लो, वह नृत्य तुमसे पूरा हो सके, एक ही रास्ता है। और वह तीसरा खजाना है लाओत्से का कि तुम महत्वाकांक्षा छोड़ दो, तुम प्रतिस्पर्धा छोड़ दो। तुम अपना जीवन जीओ। तुम दूसरे के जीवन का अनुकरण क्यों करते हो? दूसरे को जाने दो जहां जाता हो। वह उसकी मौज है। उसका रास्ता होगा। तुम उसके पीछे क्यों हो जाते हो?

किसी को मकान बनाने का राज है, बनाने दो। तुम अगर अपने झोपड़े में प्रसन्न हो तो तुम व्यर्थ की दौड़ में क्यों पड़ जाते हो? क्योंकि दौड़ समय लेगी, शक्ति लेगी, जीवन लेगी। और जो तुम पा लोगे उससे तुम्हें कभी

तृप्ति न मिलेगी, क्योंकि वह तुम्हारी कभी चाह ही न थी। इसीलिए तो इतनी अतृप्ति है। नहीं मिलती तो तकलीफ है; मिल जाए तो तुम पाते हो कोई सार नहीं, क्योंकि तुम्हारी वह चाह ही न थी।

समझ लो कि एक आदमी बांसुरी बजा रहा है। बड़ी अच्छी बजा रहा है; लोग प्रशंसा कर रहे हैं।

तुम्हें प्रशंसा पकड़ जाती है। तुम्हें गुदगुदी शुरू होती है। तुम्हारा अहंकार कहता है कि यह इससे अच्छी बजा कर बता देंगे। यह तो ठीक है कि शायद कोशिश करो तो बजा भी लोगे इससे अच्छी। लेकिन अगर बांसुरी बजाना तुम्हारे जीवन का हिस्सा ही न था, तो जिस दिन तुम अच्छी भी बजा लोगे उस दिन भी तुम पाओगे कि कुछ पाया नहीं, समय व्यर्थ गया।

कभी नकल में पत पड़ो। प्रतिस्पर्धा नकल में ले जाती है। प्रतिस्पर्धा अनुकरण में ले जाती है। तब तुम अपने स्वभाव से वंचित हो जाते हो, च्युत हो जाते हो। महत्वाकांक्षी व्यक्ति हमेशा स्वभाव से च्युत होता रहता है; भटकता रहता है सब जगह, सिर्फ अपने को छोड़ कर। अपने घर नहीं आता, और सभी घरों पर दस्तक लगाता है। और आखिर में पाता है कि बिना घर पहुंचे कब्र करीब आ गई। तब न लौटने की सामर्थ्य रह जाती है, न समय रह जाता है।

और जब तक तुम अपनी नियति पूरी न कर लो--यह जीवन का आधारभूत नियम है--तुम वापस बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्कर में फेंके जाओगे। तुम यहां कुछ उत्तीर्ण करने को हो; यहां तुम कुछ अतिक्रमण करने के लिए भेजे गए हो; कुछ जानने, सीखने, कुछ प्रौढ़ होने को। तुम प्रौढ़ हो जाओगे तो ही उठा लिए जाओगे।

जीसस ने कहा है कि जैसे कोई मछुआ जाल फेंकता ऐसा परमात्मा रोज जाल फेंकता है। मछुआ मछलियां पकड़ लेता है; जो योग्य हैं उन्हें चुन लेता है, बाकी को वापस सागर में डाल देता है। ऐसा ही परमात्मा जाल फेंकता है। बहुत पकड़े जाते हैं; बहुत कम चुने जाते हैं। केवल वे ही चुने जाते हैं जिनकी नियति पूरी हो गई, जिन्होंने अपने जीवन का सौरभ पा लिया, जिनका फूल खिल गया।

मंदिर में तुम फूल चढ़ाने जाते हो; तुम्हें पता है उसका अर्थ क्या होता है? ये बाहर के फूल चढ़ाने से उसका कोई लेना-देना नहीं। तुम खिल जाओ, फूल बन जाओ; वह तुम्हारी नियति की परिपूर्णता का प्रतीक है। तभी तुम मंदिर की वेदी पर स्वीकार हो सकोगे।

"प्रेम के जरिए आदमी अभय को उपलब्ध होता है। अति नहीं करने से आदमी के पास आरक्षित शक्ति का अतिरेक होता है। और संसार में प्रथम होने की धृष्टता नहीं करने से आदमी अपनी प्रतिभा का विकास कर सकता है और उसे प्रौढ़ बना सकता है। थ्रू लव वन हैज नो फियर। थ्रू नाट डूइंग टू मच वन हैज एंप्लीट्यूड ऑफ रिजर्व पावर। थ्रू नाट प्रिज्यूमिंग टु बी दि फर्स्ट इन दि वर्ल्ड वन कैन डेवलप वंस टैलेंट एंड लेट इट मैच्योर।"

और प्रौढ़ होकर ही तुम स्वीकार किए जा सकोगे। तुम्हारी अर्चना का दीप कच्चा रहा तो परमात्मा के मंदिर में प्रवेश न पा सकेगा। तुम जो होने को भेजे गए हो तुम अगर वही हो सके, बस, तुम उठा लिए जाओगे, चुन लिए जाओगे। और जरूरी नहीं है कि तुम पिकासो जैसे बड़े चित्रकार हो जाओ तब तुम चुने जाओ। जरूरी नहीं है कि तुम कालिदास जैसे कवि हो जाओ, तब चुने जाओ। यह सवाल ही नहीं है। तुम अगर जूते भी सीते हो, और अगर जूते सीने में भी तुमने अपना पूरा तन-प्राण, अपनी पूरी ऊर्जा संलग्न कर दी है, और अगर जूता सीना भी तुम्हारा प्रेम और प्रार्थना बन गई है, और जूते सीने को भी तुमने परम सौभाग्य की तरह स्वीकार कर लिया है, किसी निराशा में नहीं... ।

ऐसा हुआ कि अब्राहम लिंकन जब प्रेसिडेंट बना अमरीका का तो लोगों को बहुत अच्छा नहीं लगा। क्योंकि वह कुलीन घर का न था, गरीब घर का था। असल में, एक चमार का लड़का था। तो लोगों को बड़ी

बेचैनी थी कि एक चमार और प्रेसिडेंट हो गया! जिस दिन पहले दिन उसने शपथ ली और अपना पहला वक्तव्य दिया सिनेट में, एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि महानुभाव लिंकन, यह मत भूल जाना कि तुम्हारे बाप मेरे बाप के जूते सीया करते थे।

सारी सिनेट हंसी व्यंग्य से, लेकिन लिंकन ने जो उत्तर दिया वह बड़ा महत्वपूर्ण था। लिंकन ने कहा कि मैं समझ नहीं पाता कि इस बात को आज क्यों उठाया गया, लेकिन मैं धन्यवाद देता हूं कि यह बात उठाई गई। क्योंकि इस क्षण में मैं अपने पिता को शायद भूल जाता, याद न कर पाता, तुमने याद दिला दी। और जहां तक मैं समझता हूं, मैं उतना अच्छा प्रेसिडेंट न हो सकूंगा, जितने अच्छे मेरे पिता चमार थे।

और असली गणित तो वही है। प्रेसिडेंट और चमार थोड़े ही चुने जाएंगे। कितने अच्छे! कितने कुशल!

और लिंकन ने कहा कि जहां तक मुझे याद है, तुम्हारे पिता की तरफ से मेरे पिता के जूतों के संबंध में कोई शिकायत कभी नहीं आई। वे कुशल थे, अदभुत थे। और उन्होंने चमार होने में अपनी समग्रता को पा लिया था। वे आनंदित थे। मैं इतना अच्छा प्रेसिडेंट न हो पाऊंगा।

आखिरी हिसाब में, तुमने क्या किया, यह नहीं पूछा जाएगा। तुमने कैसे किया! आखिरी हिसाब में, तुमने बहुत धन इकट्ठा किया, बहुत बड़े मकान बनाए, कि बड़े चित्र बनाए, कि मूर्तियां गढ़ीं, यह नहीं पूछा जाएगा। तुमने जो भी किया, क्या उससे तुम तृप्ति पा सके? जो भी किया, क्या तुम संतुष्ट लौटे हो? जो व्यक्ति संतुष्ट लौटता है परमात्मा की तरफ वही उसके हृदय में विराजमान हो जाता है। जहां हो जैसे हो, अपनी नियति खोजो। दूसरे को भूल जाओ। दूसरे से कुछ प्रयोजन नहीं है।

"प्रेम से आदमी अभय को उपलब्ध होता है।"

और जब तक तुम प्रेम को उपलब्ध न होओगे अभय भी उपलब्ध न होगा। प्रेम के बिना तो आदमी कंपता ही रहता है भय से। क्यों? क्योंकि प्रेम के बिना जीवन में सिवाय मृत्यु के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; प्रेम के अनुभव से ही अमृत की पहली झलक आती है। फिर अभय आ जाता है।

अति न करने से मनुष्य के पास शक्ति संयोजित होती है; अपूर्व शक्ति इकट्ठी हो जाती है। क्योंकि वह गंवाता नहीं; न दाईं तरफ, न बाईं तरफ। न वह लेफ्टिस्ट होता है, न राइटिस्ट; वह गंवाता ही नहीं है। वह अपनी शक्ति को बचाता है। उसके पास इतनी ऊर्जा इकट्ठी हो जाती है कि ऊर्जा का परिमाणात्मक बल गुणात्मक क्रांति कर देता है। जैसे सौ डिग्री तक पानी को गरम करो, पानी भाप बन जाता है। निन्यानबे तक करो, नहीं बनता; अट्ठानबे तक, नहीं। निन्यानबे तक भी नहीं बनता। एक डिग्री का फासला है, लेकिन अभी भी नहीं बनता। एक डिग्री और, तत्क्षण पानी की यात्रा बदल गई। पानी नीचे बहता था, भाप ऊपर उठने लगी। आयाम अलग हो गया। पानी दिखाई पड़ता था, भाप अदृश्य होने लगी। आयाम बदल गया।

एक ऊर्जा का संगठन चाहिए भीतर। एक स्रोत चाहिए, अदम्य, भरपूर। उस ऊर्जा के होने मात्र से ही, उसकी बढ़ती हुई उठता हुआ तल, उसका बढ़ता हुआ संग्रह तुम्हारे भीतर गुणात्मक परिवर्तन ले आता है। विज्ञान एक सिद्धांत को मानता है। और वह सिद्धांत यह है दैट एवरी क्वालिटेटिव चेंज इ.ज थ्रू क्वांटिटेटिव चेंज। सब परिवर्तन, सब क्रांतियां, परिमाण के आधिक्य से गुणात्मक क्रांतियों में रूपांतरित हो जाती हैं। वही चीज निन्यानबे डिग्री पर पानी थी। वही सौ डिग्री पर भाप बन जाती है।

तुम परमात्मा को पाने चले हो; बड़ी ऊर्जा चाहिए होगी। बड़ी यात्रा है। तुम्हारे पंख बड़े सबल चाहिए। तुम बीच में चुक न जाओ। संयम! संयम का अर्थ है अति से बच जाना।

तुम्हारे तो संयमी भी अतिवादी हैं। तुम मेरे संयम का अर्थ समझ लेना। तुम तो उनको संयमी कहते हो जो अतिवादी हैं। घर छोड़ दिया, पत्नी को छोड़ कर भाग गए, धन नहीं छूते, उपवास करते हैं, सिर के बल खड़े हैं, कांटों पर लेटे हैं; उनको तुम कहते हो, कैसा संयमी आदमी!

यह संयमी नहीं है। यह तुम्हारा ही रोग है, उलटा खड़ा हो गया। शीर्षासन कर रहा है, बस। यह तुम्हीं हो उलटे खड़े। संयमी आदमी तो मध्य में होता है। संयमी आदमी में अति की कठोरता नहीं होती, मध्य का माधुर्य होता है। संयमी आदमी प्रफुल्ल होता है; न उदास, न विक्षिप्त रूप से हंसता हुआ; प्रफुल्ल, एक सहज प्रफुल्लता होती है। एक स्मित होता है संयमी आदमी के जीवन में, एक मुस्कुराहट होती है, और एक माधुर्य होता है।

तुम्हारे संयमी तो बड़े कठोर हैं। इतनी कठोरता मध्य में है ही नहीं। तुम जैसे धन के पीछे लगे हो, वे धन छोड़ने के पीछे लगे हैं। तुम जैसे स्त्रियों के पीछे भाग रहे हो, वे स्त्रियों को छोड़ कर भाग रहे हैं। लेकिन दोनों की गति समान है। दिशा अलग हो, अति समान है। तुम अगर दीवाने हो कि कैसे ज्यादा खा जाएं, वे दीवाने हैं कि कैसे और खाने में कमी कर दें।

दोनों के मध्य में कहीं छिपा है संयम।

अति न करने से आदमी के पास शक्ति आरक्षित होती है, संयम उपलब्ध होता है। और संसार में प्रथम न होने की धृष्टता से, संसार में प्रथम होने के पागलपन से जो बच जाता है, वह शांत हो जाता है।

उसकी सब अशांति खो जाती है। और उस शांति में वह चुपचाप अपने भीतर की प्रौढ़ता की तरफ गतिमान होने लगता है। बाहर की दौड़ न रही, तो ऊर्जा अब भीतर की यात्रा पर निकल जाती है। वह शायद दूसरी मूर्तियां नहीं बनाता, लेकिन खुद की मूर्ति निर्मित होती है। शायद दुनिया उसे जान भी न पाए कि वह कब जीया और कब चला गया; शायद उसकी पगध्वनि भी न सुनाई पड़े। सभी बुद्ध जाने नहीं जाते, बहुत से बुद्ध तो चुपचाप विदा हो जाते हैं, पता भी नहीं चलता। क्योंकि तुम उसे पहचान भी न पाओगे। वह इतने आखिर में खड़ा था, इतने अंत में खड़ा था। उसका कोई भी दावा न था। जिसको झेन फकीर कहते हैं कि वह इतना अति साधारण हो गया कि उसे कोई पहचान भी नहीं पाता। पहचान के लिए भी तो पताकाएं चाहिए, झंडे चाहिए, शोरगुल चाहिए। जो व्यक्ति अंत में होने को राजी है, वह दुनिया के बाहर हो गया।

अगर तुम मुझसे पूछो तो इसे मैं संन्यास कहता हूं। हिमालय पर जाने से संन्यास नहीं होगा, क्योंकि वहां भी प्रतिस्पर्धा जारी रहेगी कि कोई शिवानंद, कोई अखंडानंद, कोई फलानंद, वे अभी तक आगे हैं; कि फलाना शंकराचार्य होकर मठ पर बैठ गया है, अभी हम वहां तक नहीं पहुंचे। वहां भी राजनीति चलेगी। शंकराचार्य भी अदालतों में खड़े रहते हैं, मुकदमे लड़ते हैं कि असली शंकराचार्य कौन है।

तुम कहीं भी भाग जाओगे, उससे हल न होगा। अगर भागना ही है तो अंतिम होने में भाग जाओ। तुम जैसे हो अपने को वैसा स्वीकार कर लो। मत पड़ो प्रतिस्पर्धा में; मत करो दूसरे के साथ कोई दौड़। और तब तुम पाओगे, तुम्हारा सहज स्वभाव धीरे-धीरे विकसित होने लगा। तुम प्रौढ़ता को, मैच्योरिटी को, सघनता को, आंतरिक केंद्र को उपलब्ध हो सकोगे। जिसने बाहर की प्रतिस्पर्धा छोड़ दी उसकी अंतर्यात्रा शुरू हो जाती है।

ये तीन खजाने, लाओत्से कहता है, सम्हाल कर रखना। इन पर पहरा देना। ये बचाने योग्य हैं। और इनको जिसने बचा लिया उसने सब बचा लिया। इनको जिसने खो दिया वह भिखारी ही जीएगा और भिखारी ही मरेगा। तुमसे मैं यही कहता हूं, भिखारी मत बनना; भिखारी मत मरना; भिखारी बन कर मत जीना। तुम सम्राट होने को पैदा हुए हो। वह तुम्हारा स्वभावसिद्ध अधिकार है।

आज इतना ही।

एक सौ आठवां प्रवचन

प्रेम को सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा

Chapter 67 : Part 2

The Three Treasures

If one forsakes love and fearlessness,
Forsakes restraint and reserve power,
Forsakes following behind and rushes in front,
He is doomed!
For love is victorious in attack,
And invulnerable in defense.
Heaven arms with love
Those it would not see destroyed.

अध्याय 67: खंड 2

तीन खजाने

यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे,
कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे,
कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए,
तो उसका विनाश सुनिश्चित है।
क्योंकि प्रेम आक्रमण में जीतता है, और सुरक्षा में वह अभेद्य है।
जिन्हें वह नष्ट होने से बचाना चाहता है,
स्वर्ग उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित करता है।

प्रेम आत्मा का भोजन है। प्रेम आत्मा में छिपी परमात्मा की ऊर्जा है। प्रेम आत्मा में निहित परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है।

उसके बिना जो जीता है, भूखा ही जीता है। उसके बिना जो जीता है, वह क्षुधातुर ही जीता है। उसके बिना जो जीता है, उसका शरीर भला जीता हो, उसका मन भला जीता हो, उसकी आत्मा मरी-मरी ही रहती है। उसे आत्मा का कोई अनुभव भी नहीं होता। आत्मा उसके लिए केवल एक शब्द है--सुना गया, पढ़ा गया;

लेकिन शब्द बिल्कुल अर्थहीन है। क्योंकि बिना प्रेम के कभी किसी ने जाना ही नहीं कि वह कौन है। बिना प्रेम के तो आदमी अपने से बाहर-बाहर ही भटकता है; अपने घर को उपलब्ध नहीं हो पाता।

भीतर आने का एक ही द्वार है, वह प्रेम है। जैसे शरीर को श्वास की जरूरत है प्रतिपल; श्वास न मिले तो शरीर का जीवन से संबंध टूट जाता है। श्वास सेतु है। उससे हमारा शरीर अस्तित्व से जुड़ा है। श्वास भी दिखाई तो पड़ती नहीं, सिर्फ उसके परिणाम दिखाई पड़ते हैं कि आदमी जीवित है। श्वास चली जाती है तब भी परिणाम ही दिखाई पड़ते हैं, श्वास का जाना तो दिखाई नहीं पड़ता। यह दिखाई पड़ता है कि आदमी मुर्दा है। प्रेम और भी गहरी श्वास है, और भी अदृश्य; वह आत्मा और परमात्मा के बीच जोड़ है। जैसे शरीर और अस्तित्व के बीच श्वास ने जोड़ा है तुम्हें, वैसे ही प्रेम की तरंगें जब बहती हैं तभी तुम परमात्मा से जुड़ते हो। उस जुड़ने में ही पहली बार तुम्हें अपने होने के यथार्थ का पता चलता है। इसलिए प्रेम से महत्वपूर्ण कोई दूसरा शब्द नहीं। प्रेम से गहरी दूसरी कोई अनुभूति नहीं।

प्रेम है क्या? और जो इतना महत्वपूर्ण है, उसे हम कैसे समझें?

प्रेम की कीमिया को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

तुम अपने चेहरे को भी पहचानते हो तो इसीलिए कि दर्पण में तुमने चेहरे को देखा है। अन्यथा बताओ मुझे, कैसे अपना चेहरा पहचानते? अगर दर्पण में कभी चेहरा न देखा होता और कभी अनायास तुम्हारी तुमसे ही मुलाकात हो जाती, तो तुम पहचान न पाते। कैसे पहचानते? स्वयं को भी देखने के लिए एक दर्पण की जरूरत है।

प्रेम दूसरे की आंखों में अपने को देखना है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। जब किसी की आंखें तुम्हारे लिए आतुरता से भरती हैं, कोई आंख तुम्हें ऐसे देखती है कि तुम पर सब कुछ न्योछावर कर दे, किसी आंख में तुम ऐसी झलक देखते हो कि तुम्हारे बिना उस आंख के भीतर छिपा हुआ जीवन एक वीरान हो जाएगा, तुम ही हरियाली हो, तुम ही हो वर्षा के मेघ; तुम्हारे बिना सब फूल सूख जाएंगे, तुम्हारे बिना बस रेगिस्तान रह जाएगा; जब किसी आंख में तुम अपने जीवन की ऐसी गरिमा को देखते हो, तब पहली बार तुम्हें पता चलता है कि तुम सार्थक हो। तुम कोई आकस्मिक संयोग नहीं हो इस पृथ्वी पर; तुम कोई दुर्घटना नहीं हो। तुम्हें पहली बार अर्थ का बोध होता है; तुम्हें पहली बार लगता है कि तुम इस विराट लीला में सार्थक हो, सप्रयोजन हो; इस विराट खेल में तुम्हारा भाग है; यह मंच तुम्हारे बिना अधूरी होगी; यहां तुम न होओगे तो कुछ कमी होगी; कम से कम एक हृदय तो तुम्हारे बिना रेगिस्तान रह जाएगा, कम से कम एक हृदय में तो तुम्हारे बिना सब काव्य खो जाएगा; फिर कोई वीणा न बजेगी। ऐसा एक व्यक्ति की आंखों में, उसके हृदय में झांक कर तुम्हें पहली बार तुम्हारे मूल्य का पता चलता है। अन्यथा तुम्हें कभी मूल्य का पता न चलेगा।

तुम कितना ही धन इकट्ठा कर लो, तुम व्यर्थ ही लगोगे। क्या सार है? तुम कितने ही बड़े पदों पर पहुंच जाओ, भीतर तुम जानते ही रहोगे कि खोखले हो और पदों पर तुम जबरदस्ती पहुंचते हो। इसलिए अगर तुम लोगों की आंखों में पदों पर से देखोगे तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे बिना वे कहीं ज्यादा आनंदित होंगे; तुम्हारे होने से ही उन्हें कष्ट है; तुम्हारे न होने से बड़ी शांति होगी। तुम्हारे पास धन हो और तुम लोगों की आंखों में देखो तो तुम्हें लगेगा कि तुम शत्रु हो; तुमने जैसे उनका कुछ छीन लिया है, जो तुम्हारे हटते ही उन्हें वापस मिल जाएगा।

प्रेम के अतिरिक्त तुम न केवल अपने को अकारण पाओगे, न केवल व्यर्थ पाओगे, बल्कि तुम हजारों आंखों में अनुभव करोगे कि तुम एक दुर्घटना हो, तुम्हारा होना एक अपशकुन है, कोई तुम्हारे कारण सौभाग्य से नहीं भरा है, तुम्हारे कारण सब तरफ दुर्भाग्य के चिह्न हैं। इन दुर्भाग्य के चिह्नों में, इन दुर्भाग्य की चीखती-

पुकारती आवाजों के बीच तुम नर्क से घिर जाओगे। और अगर तुम्हें अपना जीवन नारकीय मालूम पड़ता है तो समझ लेना कि यही कारण है।

प्रेम में कोई उतरा कि स्वर्ग में उतरा। प्रेम के अतिरिक्त और सब स्वर्ग कल्पनाएं हैं, प्रतीक हैं। एक ही स्वर्ग है वास्तविक, और वह यह है कि तुम किसी के लिए इतने सार्थक हो उठो कि दूसरा अपना जीवन खोने को राजी हो जाए तुम्हारे लिए।

लेकिन इतने सार्थक तो तुम तभी हो सकोगे जब तुम दूसरे के लिए अपना जीवन खोने को राजी हो जाओ। प्रेम का अर्थ है जीवन से किसी बड़ी चीज को जान लेना, जिसके लिए जीवन भी गंवाया जा सकता है। जब तक जीवन तुम्हारे लिए सबसे बड़ी चीज है, तब तक तुम गरीब ही रहोगे। जीवन तो केवल अवसर है--जीवन से महत्तर को पा लेने का। जीवन तो केवल एक घड़ी है--अतिक्रमण के लिए; एक सीढ़ी है, जिससे तुम ऊपर उठ जाओ। जीवन मंदिर नहीं है, केवल मंदिर का द्वार है। द्वार से ही कोई कभी कैसे तृप्त हो सकेगा?

पर कैसे तुम जानोगे पहली झलक? पहली किरण कैसे उतरेगी तुम्हारे जीवन में जिससे तुम अनुभव कर पाओ कि तुम्हारे होने से कहीं कोई सौभाग्य फलित हुआ है?

यह थोड़ा सा बारीक है, नाजुक है, और एक-एक कदम सम्हाल कर रखना।

जब तुम किसी के प्रेम में उतर जाते हो--वह कोई भी हो, मित्र हो, मां हो, पति हो, पत्नी हो, प्रेयसी हो, प्रेमी हो, बच्चा हो, बेटा हो, तुम्हारी गाय हो, तुम्हारे बगीचे में खड़ा हुआ वृक्ष हो, तुम्हारे द्वार के पास पड़ी एक चट्टान हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई भी हो--जहां भी प्रेम की रोशनी पड़ती है, उस प्रेम की रोशनी में दूसरी तरफ से प्रत्युत्तर आने शुरू हो जाते हैं। प्रेम की घड़ी में तुम अकेले नहीं रह जाते; कोई संगी है, कोई साथी है। और कोई तुम्हें इतना मूल्यवान समझता है कि तुम्हें अपना जीवन दे दे; तुम किसी को इतना मूल्यवान समझते हो कि अपना जीवन दे दो। जरूर तुमने कुछ पा लिया जो जीवन से बड़ा है, जिसके सामने जीवन गंवाने योग्य हो जाता है। प्रेम का स्वर तुम्हारे जीवन में उतर आया।

ऐसा दूसरे की आंखों से घूम कर, दूसरे के दर्पण से घूम कर ही तुम्हें अपनी पहली खबर मिलती है कि मैं कौन हूं। अन्यथा तुम राह के किनारे पड़े कंकड़-पत्थर हो। प्रेम के माध्यम से गुजर कर ही पहली दफे तुम्हें अपने हीरे होने का पता चलता है। और जब ऐसी प्रतीति होने लगती है कि तुम मूल्यवान हो, तो यह बड़े राज की बात है कि जितना तुम्हें एहसास होता है तुम मूल्यवान हो, उतने ही मूल्यवान तुम होने भी लगते हो। क्योंकि अंततः तो तुम परमात्मा हो; अंततः तो तुम इस सारे जीवन का निचोड़ हो; अंततः तो तुम्हारी चेतना नवनीत है सारे अस्तित्व का। लेकिन प्रेम से ही तुम्हें पहली खबर मिलेगी कि तुम यहां यूं ही नहीं फेंक दिए गए हो। संयोगवशात तुम नहीं हो। कोई नियति तुमसे पूरी हो रही है। अस्तित्व की तुमसे कुछ मांग है। अस्तित्व ने तुमसे कुछ चाहा है। अस्तित्व ने तुम्हें कोई चुनौती दी है। अस्तित्व ने तुम्हें यहां बनाया है ताकि तुम कुछ पूरा कर सको।

दुकान और बाजार काफी नहीं हैं; उन्हें कोई दूसरा भी कर लेगा। धन इकट्ठा करना जरूरी भला हो, पर्याप्त नहीं है; क्योंकि जब तुम मरोगे, वह सब पड़ा रह जाएगा। कुछ ऐसा भी कमा लेना जरूरी है जो मौत न मिटा सके। और मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम एकमात्र संपदा है जिसे मृत्यु नहीं मिटा सकती। क्यों? क्योंकि प्रेम की संपदा के लिए तुम जीवन का दान देने को तैयार हो। जिस संपदा के लिए तुम जीवन का दान देने को तैयार हो, वह जीवन से बड़ी है। जो जीवन से बड़ी है वह मृत्यु से भी बड़ी है; क्योंकि मृत्यु तो जीवन का ही हिस्सा है।

प्रेम के क्षण में ही तुम्हें जीवन और मृत्यु के पार होने का पहला अनुभव होता है। अगर इससे तुम वंचित रह गए, अगर तुम जान ही न पाए कि प्रेम क्या है, तो तुम अकारण ही आए, अकारण ही गए; तुमने जीवन से कुछ सीखा न। तुमने फूल तो बहुत देखे, लेकिन सुवास तुम न पा सके। तुमने घटनाएं तो बहुत देखीं, बहुत ऊहापोह से गुजरे, बड़ी आपाधापी में रहे, बड़ी यात्रा की, लेकिन कहीं पहुंच न सके। अंत की यात्रा में किसी मंदिर में निवास न हो पाया; तुम राह पर ही मरे; तुम राह के भिखारी ही रहे; कोई घर न मिला, कोई जगह न मिली जहां तुम शांत हो जाते, जहां तुम आनंदित हो जाते।

प्रेम एक विराम है संसार के लिए। प्रेम के क्षण में संसार खो जाता है। प्रेम के क्षण में न बाजार है, न गणित है, न तर्क है। प्रेम के क्षण में जैसे इस बड़े मरुस्थल में एक मरूद्यान बन जाता है, एक छोटा सा हरा-भरा सरोवर! चारों तरफ रेगिस्तान है; उसके मध्य में तुम एक सरोवर में लीन हो जाते हो। उस सरोवर से तुम्हें और बड़े सरोवरों की खबर मिलती है। उस हरित उद्यान से तुम्हें और बड़ी हरियालियों के इशारे मिलते हैं। उस थोड़े से विश्राम से तुम्हें परम विश्राम की याद आती है।

प्रेम प्रशिक्षण है प्रार्थना के लिए। और जिसके पास प्रेम है, उसका भय खो जाता है। उसके पास डरने योग्य कुछ रहा ही नहीं। भयभीत तो तुम इसीलिए हो कि जीवन जा रहा है और संपदा तो तुमने कुछ कमाई नहीं। भयभीत तो तुम इसीलिए हो कि सांझ आने लगी, सूरज के ढलने का वक्त हुआ, पक्षी अपने घरों को लौटने लगे और तुम्हें अपने घर का पता भी नहीं है। भयभीत होकर तुम घबड़ा जाते हो। रात उतरने के करीब है! मौत आने लगी! और अभी तुम राह पर ही थे। अभी तुम कहीं भी पहुंचे न थे। इसलिए कंपता ही रहता है व्यक्ति, जिसके जीवन में प्रेम की छाया नहीं है। वह ऐसे ही कंपता है जैसे तूफान में वृक्ष के पत्ते कंपते हैं; या भयंकर उत्तुंग लहरें उठती हैं सागर की, छोटी सी नाव कंपती है। ऐसे ही तुम कंपते हो।

जीवन में बड़े तूफान हैं, बड़ी आंधियां हैं; और तुम्हारे पास प्रेम का लंगर भी नहीं है। नाव बड़ी छोटी है। जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण है। लहरें भयंकर हैं; और तुम्हारे पास जीवन से पार की कोई कुंजी नहीं; एक भी ऐसा अनुभव नहीं जहां तुम्हारे अंधकार में कोई किरण उतरी हो जो तुम्हारे अंधकार का हिस्सा न हो, जहां तुम्हारे हृदय में कोई वाद्य बजा हो जो तुमने न बजाया हो, जो तुम्हारे हाथों की कृति न हो, जो अनंत ने बजाया हो।

प्रेम की एक खूबी हैः तुम प्रेम कर नहीं सकते; हो जाए, हो जाए; घट जाए, घट जाए। तुम इतना ही कर सकते हो कि बाधा न डालो; जब प्रेम घटता हो तो तुम भाग मत जाओ; जब प्रेम घटता हो तो तुम पीठ न कर लो; जब प्रेम घटता हो तो तुम आंख बंद न करो। तुम इतना ही कर सकते हो कि तुम बाधा न डालो। लेकिन प्रेम को करने के लिए तुम और क्या कर सकते हो? कुछ भी नहीं।

इसलिए प्रेम तुम्हारे हाथों का संगीत नहीं है; तुमसे विराट अपनी अंगुलियां तुम्हारे ऊपर रखता है। हां, तुम चाहो तो बजने से इनकार कर सकते हो; तुम चाहो तो अकड़ में रह सकते हो; तुम इतने अकड़ सकते हो कि अनंत की अंगुलियां तुम्हारे भीतर कोई स्वर पैदा न कर पाएं।

इसलिए तो हम कहते हैं कि प्रेम पागलपन है, अंधापन है; क्योंकि पता नहीं, कहां से आता है, कहां ले जाता है। अनजान की पुकार है। अचानक तुम्हें लगता है, एक क्षण में--कोई तर्कयुक्त गणित नहीं बिठाना पड़ता कि इस व्यक्ति को मैं प्रेम करूं, कुछ सोचना नहीं पड़ता कि इस व्यक्ति में क्या-क्या प्रेम योग्य है, कुछ हिसाब नहीं लगाना पड़ता--अचानक एक क्षण में, समय का व्यवधान भी नहीं पड़ता, तुम पाते हो कि तुम प्रेम में हो, किसी व्यक्ति ने तुम्हारे हृदय को बजा दिया, किसी ने सोए तार छेड़ दिए। वह प्रेमी हो सकता है, वह गुरु हो सकता है, वह मित्र हो सकता है; लेकिन प्रेम का स्वर एक है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या नाता-

रिश्ता बनाते हो; लेकिन अचानक घटना घटती है। यह मूल्यवान है समझ लेना। क्योंकि जिसे तुम घटाते हो, वह तुमसे बड़ा न होगा; जिसे तुम कर सकते हो, वह तुमसे छोटा होगा; जो तुमसे किया जाएगा, वह तुम्हारे जीवन के पार ले जाने वाला नहीं हो सकता।

इसलिए तो बहुत बार मुझे ऐसा लगता है कि ध्यान से भी गहन है प्रेम; क्योंकि ध्यान तो तुम शुरू करते हो, कुछ तुम करते हो। ऐसे भी ध्यान हैं जिन्हें तुम शुरू नहीं करते, अगर तुम्हारी समझ हो तो तुम उन्हें पहचान लोगे। लेकिन वैसे ध्यान तुम प्रेम के बिना न पहचान पाओगे। एक बार तुमने अपने को बह जाने दिया अनंत के हाथों में; एक बार तुमने सिर्फ रोका नहीं; जहां ले जाना चाहती थीं हवाएं, तुम्हें ले गईं; जिस तरफ उड़ाना चाहती थीं, तुम उड़ गए; तुमने यह न कहा कि मुझे तो पूरब जाना है और यह तो पश्चिम की यात्रा हो रही है; तुमने यह न कहा कि मेरी तो ये अपेक्षाएं हैं, ये शर्तें हैं; तुमने न कोई शर्त रखी, न कोई बाधा खड़ी की, तुम चुपचाप समर्पित बह गए; अगर एक बार तुमने प्रेम में बहना जान लिया तो तुम्हें ध्यान की कुंजी भी हाथ लग जाएगी। क्योंकि वह भी करने की बात नहीं है, वह भी बह जाने की बात है।

कर-करके तुम क्या करोगे? तुम्हीं तो करोगे। तुम्हारे अज्ञान से ही तो तुम्हारा कृत्य उठेगा। तुम्हारे रोग से ही तो उठेगा तुम्हारा ध्यान। तुम्हारा ध्यान भी रुग्ण होगा। तुम्हारा ध्यान भी अंधकारपूर्ण होगा। तुमसे ऊपर से कुछ आए तो ही प्रकाश हो सकता है। और तुमसे ऊपर से कुछ आए, इसकी तैयारी कैसे होगी?

ध्यान दूर है, अगर प्रेम पास नहीं। अगर प्रेम पास है, तो ध्यान भी बहुत पास है। इसलिए लाओत्से, जीसस, कृष्ण प्रेम पर बड़ी प्रगाढ़ता से जोर देते हैं। वह जोर महत्वपूर्ण है।

क्या घटता है प्रेम के क्षण में?

दो व्यक्ति इतने करीब आ जाते हैं कि उन्हें ऐसा नहीं लगता कि हम दो हैं; अद्वैत घटता है प्रेम के क्षण में। ऐसा भी नहीं लगता कि हम एक हो गए, और ऐसा भी नहीं लगता कि हम दो हैं।

कबीर जो कहते हैं, कि एक कहूं तो है नहीं। कहना ठीक नहीं है; गलत होगा; क्योंकि एक है नहीं। दो कहूं तो गारी। और दो कह दूं तो गाली हो जाती है।

प्रेम के क्षण में तुम्हें पहली दफा पता चलता है--दो भी हो, एक भी हो। एक कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि दो हो; दो कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि प्रेम का स्वर ऐसा बज रहा है कि जैसे एक ही तरंग के दो छोर हों। ये दोनों हृदयों के वाद्य अलग-अलग नहीं बज रहे हैं; एक आर्केस्ट्रा है, एक साथ बज रहे हैं। उनमें एक लयबद्धता है। एक के बीच दो का होना अनुभव होता है; दो के बीच एक का होना अनुभव होता है। प्रेम पहेली हो जाती है; और परम पहेली की पहली खबर मिलती है। और जब तुम एक बार किसी को करीब आने देते हो, इतने करीब कि खतरा हो सकता है... ।

हम साधारणतः जीवन में करीब लोगों को आने नहीं देते। क्योंकि करीब का मतलब है दूसरे के हाथों में अपने को छोड़ना।

पश्चिम में वैज्ञानिकों ने अभी नयी-नयी एक खोज की है, उसको वे टेरीटोरियल इम्पेरेटिव कहते हैं। वे कहते हैं, हर पशु अपने आस-पास एक सुरक्षित क्षेत्र बना लेता है, जिसके भीतर किसी को प्रवेश नहीं करने देता। तुम भी गौर कर सकते हो। एक बंदर बैठा हो, तुम धीरे-धीरे उसके पास जाना शुरू करो, बहुत धीरे। एक सीमा तक वह बिल्कुल बेपरवाह रहेगा। समझो तुम दस फीट करीब आ गए, वह बेपरवाह है, उसे कोई मतलब नहीं तुमसे। लेकिन दस फीट के भीतर तुमने एक कदम रखा कि वह सजग हो जाएगाः अब खतरा है। तुम इतने

करीब आ रहे हो; कौन जाने, दोस्त हो कि दुश्मन हो। वैज्ञानिक कहते हैं, हर पशु की सीमा-रेखा है। उसके भीतर आने पर वह सजग हो जाता है और लड़ने को तत्पर हो जाता है।

वैसी ही सीमा-रेखा मनुष्य की भी है। समझो, एक स्त्री रास्ते पर खड़ी है। तुम उसके पास जाते हो। एक सीमा तक वह कोई फिक्र न लेगी। समझो कि तुम पांच फीट दूर हो, वह कोई फिक्र नहीं कर रही। लेकिन तुम तीन फीट दूर आ गए, अचानक वह सजग हो जाती है। अब वह तैयार है। अब तुम उसकी सीमा-रेखा के भीतर आ रहे हो, जहां खतरा हो सकता है, जहां डर है। एक स्त्री को तुम देखते रहो; वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन सेकेंड तक वह बेचैन नहीं होती, तीन सेकेंड के बाद तुमको वह लुच्चा समझेगी। तीन सेकेंड सीमा-रेखा है। इतनी देर तक ठीक है। जीवन में देखना इतना तो होगा। लेकिन तीन सेकेंड के बाद अब तुम सीमा के बाहर जा रहे हो, अब तुम सज्जनता की, शिष्टाचार की, सभ्यता की सीमा तोड़ रहे हो।

लुच्चा का मतलब तुम जानते हो? मतलब होता हैः घूर कर देखने वाला। और कोई मतलब नहीं होता। लुच्चा शब्द का ही मतलब होता हैः घूर कर देखना। लुच्चा शब्द आता है लोचन से, आंख से। उसी से आता है आलोचक; वह भी घूर-घूर कर देखता है। तो लुच्चा और आलोचक में कोई बहुत फर्क नहीं है। शब्द की दृष्टि से दोनों एक ही धातु से आते हैं। कब आदमी लुच्चा हो जाता है, एक सीमा है।

वैज्ञानिकों ने अध्ययन किया है बड़े गौर से। तो वे कहते हैं कि अगर एक स्त्री तुम्हें एक बार देखे तो कोई बात नहीं; अगर लौट कर देखे तो खतरा है। तुम एक होटल में गए और एक स्त्री बैठ कर खाना खा रही है; उसने एक दफा तुम्हें देखा, यह ठीक है। एक दफा कोई भी देखता हैः कौन आ रहा है? लेकिन अगर वह दुबारा देखे तो तुम सावधान हो जाना; वह तुम में उत्सुक है। खतरे की सीमा आ गई।

इसलिए जो लोग बहुत सी स्त्रियों के साथ खेल करते रहे हों, उन्हें बहुत सी बातों का पता चल जाता है, वे बहुत से आंतरिक कोड पहचानने लगते हैं। वे उस स्त्री के पास कभी भी न जाएंगे, जिसने एक ही दफा देखा। जिसने दुबारा देखा, उस स्त्री में निमंत्रण है; उसने कुछ कहा नहीं है, लेकिन स्त्री ने निमंत्रण दे दिया है, बड़ा अनजान। शायद उसे भी पता न हो, अचेतन में निमंत्रण दे दिया है। यह स्त्री राजी है; इससे आगे संबंध बढ़ाया जा सकता है।

अगर तुम एक स्त्री के पास खड़े हो, अगर वह तुममें उत्सुक नहीं है तो उसकी कमर पीछे की तरफ झुकी रहेगी, जैसे वह तुमसे दूर होना चाहती है। लेकिन अगर वह तुममें उत्सुक है तो वह आगे की तरफ झुकी रहेगी, जैसे वह तुम्हारे पास आना चाहती हो। उसे भी पता नहीं है, लेकिन वह निमंत्रण दे रही है; वह तुम्हें कह रही है कि पास आने को मैं तैयार हूं।

खतरा है। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति पास आता है, तुम्हारे एकांत पर दूसरे का कब्जा होना शुरू हो जाता है। तुम्हारी प्राइवेसी समाप्त हुई, तुम्हारी निजता अब निजता न रही; एक दूसरा आदमी प्रविष्ट हुआ। अब तुम्हारा बुरा भी वह जान लेगा, भला भी जान लेगा। एक फासला रखना जरूरी है; तो हम भले बने रहते हैं, बुरे को हम छिपाए रखते हैं। निकट जो आता है उसके सामने बुरा भी प्रकट हो जाएगा; तुम अपनी सहज यथार्थता में जाहिर हो जाओगे। तुम डरते हो; वह दिखाने योग्य रूप नहीं तुम्हारा, वह बताने योग्य नहीं है।

तो जैसे घरों में तुम्हारा बैठकखाना होता है, जिसको तुम सजा कर रखते हो, ऐसे तुम्हारे व्यक्तित्व का बैठकखाना है, जिसको तुम सजा कर रखते हो। वहां तक मेहमानों को तुम ले जाते हो, उससे भीतर नहीं। क्योंकि उसके भीतर तुम्हारे जीवन का यथार्थ है। अपने जीवन के यथार्थ में जिसने बहुत कुछ छिपाया हो--रुग्ण, क्रोध, घृणा, हिंसा, वैमनस्य, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर--वह किसी को पास न आने देगा। वह भयभीत होगा कि अगर

कोई पास आया तो यह सब जान लेगा; वह जीवन के अंतःगृह में प्रवेश कर जाएगा। और वहां तो तुम खुद भी जाने से डरते हो, दूसरे को ले जाने की तो बात दूर। तुम खुद भी वहां पीठ किए रहते हो। तुम खुद भी देखने से डरते हो, क्योंकि इतना कूड़ा-कचरा, इतनी गंदगी, इतनी दुर्गंध वहां है।

प्रेम के लिए एक ही बाधा है कि तुम अपने से डरे हुए हो और शायद तुम दूसरे को पास न आने दो। तो हर आदमी ने कवच बना लिया है अपने चारों तरफ, वह उसके भीतर जीता है। उस कवच के बाहर वह हाथ निकालता है--लोहे के कवच के बाहर--हाथ मिला कर फिर हाथ को भीतर ले लेता है। उसी कवच के भीतर से थोड़ा सा मुस्कुराता है; उसी कवच के भीतर से देखता है।

लेकिन कवच के बाहर जब तक कोई न आए तब तक प्रेम नहीं घट सकता। प्रेम का अर्थ हैः दूसरे को अपना इतना बना लेना कि कुछ छिपाने को न रहे, दूसरे को अपना इतना मान लेना कि जैसे वह तुम ही हो, अब उससे छिपाना क्या! अगर तुम अपने प्रेमी से कुछ छिपाते हो तो अभी प्रेम में फासला है--कुछ भी हो वह छिपाना। अगर तुमने अपने प्रेमी के सामने सब खोल दिया है--सब, बेशर्त, कुछ भी छिपाया नहीं है--तो ही तुम्हारे जीवन में वह घटना घटेगी जिसको प्रेम कहते हैं।

नहीं तो तुम अपनी सुरक्षा तैयार किए हुए हो। प्रेमी से भी तुमने बहुत सी बातें छिपा रखी हैं। और बड़े मजे की बात है, अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम अजनबियों से ऐसी बातें कह देते हो जो तुमने प्रेमियों से छिपा रखी हैं। ट्रेन में चलते हो, ऐसे ही ऐरा-गैरा कोई आदमी रास्ते में मिल जाता है, उससे तुम ऐसी बातें कह देते हो जो तुमने कभी अपनी मां से नहीं कहीं, अपने पिता से, अपनी पत्नी से नहीं कहीं। क्यों? क्योंकि अजनबी से कोई खतरा नहीं है, घड़ी भर बाद तुम अपने स्टेशन उतर जाओगे, वह कहीं और चला जाएगा। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन जिनसे चौबीस घंटे लेना-देना है उनसे तो छिपाना पड़ेगा; उनसे खतरा है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अजनबियों के साथ लोग अपने जीवन के बड़े गहरे कन्फेशन कर देते हैं, लेकिन निकट के लोगों से छिपाते हैं। क्योंकि अजनबी न तुम्हारा नाम-धाम जानता है, न तुममें उत्सुक है। तुम कहते हो तो इसलिए सुन लेता है कि चलो ठीक है, सफर है, साथ बैठे हैं तो सुन लो। अन्यथा तुम छिपाए रहते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा पर जा रहा था। और जैसा कि पति जानते हैं, उसने अपनी पत्नी से कहा कि बहुत जरूरी काम है, तीन दिन में निपट जाएगा, ऐसी आशा करते हैं। काम-धंधे की बात है, न भी निपटे, ज्यादा समय भी लग जाए, तो मैं तुम्हें वहां से कार्ड डाल दूंगा कि कितनी देर और रुकना पड़ेगा। पत्नी ने कहा, तुम फिक्र मत करो। तुम्हारे कोट में से कार्ड निकाल कर मैंने पढ़ लिया है। वह मिल गया कार्ड कि तुम पंद्रह दिन के पहले लौटने वाले नहीं हो। और यह कोई धंधे की यात्रा नहीं है।

पति हैं, पत्नी हैं, मित्र हैं, पिता हैं, बेटे हैं, एक-दूसरे से बहुत कुछ छिपा रहे हैं। उसी छिपाने में प्रेम मर जाता है, क्योंकि प्रेम किसी तरह की गुप्तता नहीं चाहता। प्रेम चाहता है प्रकटता, प्रेम चाहता है सहजता, प्रेम चाहता है खुला आकाश।

इसलिए तुम प्रेम को रोक सकते हो, ला नहीं सकते। ऐसे ही जैसे कोई अपना दरवाजा बंद कर ले; सूरज बाहर रहा आएगा, भीतर नहीं आ सकेगा। तुम कोई सूरज को भीतर थोड़े ही ला सकते हो; इतना ही कर सकते हो कि दरवाजा खोल दो; सूरज अगर है तो भीतर आ जाएगा। प्रेम को कोई पैदा नहीं कर सकता। प्रेम तो परमात्मा से अवतरित होता है। प्रेम तो परमात्मा की रोशनी है। तुम इतना ही कर सकते हो कि या तो दरवाजे बंद करके भीतर छिप रहो या दरवाजे खुले छोड़ दो ताकि प्रेम चला आए, जब भी चाहे चला आए।

लेकिन डर है, भय है। और दुष्टचक्र यह है कि जितना तुम भयभीत हो उतना ही प्रेम न आ सकेगा, दरवाजे तुम बंद रखोगे; और जितने तुम दरवाजे बंद रखोगे, उतने ही तुम भयभीत होते जाओगे। यह दुष्टचक्र है। इससे पार होना बड़ा मुश्किल मामला है। क्योंकि कहां से शुरू करें? जितना तुम अपने भीतर अपने को बंद रखोगे, प्रेम नहीं आ सकेगा; उतने ही ज्यादा तुम भयभीत होने लगोगे। क्योंकि प्रेम ही एकमात्र अभय है। प्रेम में ही तुम पहली दफा जानते हो, कोई मृत्यु नहीं है।

प्रेमी मर जाते हैं, प्रेम नहीं मरता। तो प्रेमी तो रूप थे, प्रेम ही था जो रूपायित हुआ था। मैं नहीं रहूंगा, तुम नहीं रहोगे; लेकिन जो हम दोनों के बीच घट रहा है, वह बचेगा। वह घटता ही रहेगा। किनारे खो जाते हैं, सरिता बचती है। ज्ञानी-ज्ञाता खो जाता है, ज्ञान बचता है। प्रेमी-प्रेयसी खो जाती है, प्रेम बचता है। प्रेम ही अनेक-अनेक बार रूप लेता है प्रेमी के और प्रेयसी के, ज्ञाता के और ज्ञेय के।

परमात्मा जीवन की ऊर्जा है; वह बचती है। सब रूप बनते हैं, मिटते हैं। तुम भयभीत रहोगे ही जब तक तुमने प्रेम को नहीं जाना; क्योंकि प्रेम में ही तो पहली दफे तुम्हें पता लगेगाः आ जाए मृत्यु, कुछ भी मिटेगा नहीं; आज आना हो आज आ जाए, क्योंकि जो पाना था वह पा लिया। प्रेम का एक क्षण बिना प्रेम के जीए हजारों जीवनों से बड़ा है। प्रेम का एक क्षण अनंत है। अगर तुमने एक क्षण को भी प्रेम जान लिया तो तुम मौत से कह सकते हो, अब आ जाओ, अब कोई अड़चन नहीं है; जो होना था हो गया, जो पाना था पा लिया। और वह समाधि जान ली जो मृत्यु के पार है; अब तुम आ जाओ; अब तुम्हारे आने से कुछ भी मिटेगा नहीं।

सिर्फ प्रेमी ही निश्चिंत मरता है; क्योंकि मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। उसने अपनी प्रतिमा भी देख ली है प्रेम-पात्र के द्वारा, जो अमृत की है; और उसने अपने प्रेम-पात्र की भी प्रतिमा देख ली है, जो अमृत की है। भीतर तो तुम्हारे अमृत है, मृत्यु तो बाहर-बाहर है। प्रेम तुम्हें मौका देगा कि तुम्हारा भीतर खिल जाए; तुम्हारा भीतर फूल बन जाए और तुम देख लो।

प्रेम अभय करता है।

अब कठिनाई है जो वह यह है कि तुम शुरू कहां से करो? भयभीत रहोगे, प्रेम न हो सकेगा; प्रेम न होगा, और भयभीत होओगे; और भयभीत होओगे तो और तुम सुरक्षा कर लोगे, प्रेम के होने की और संभावना समाप्त हो जाएगी। कहां से शुरू करो?

साहस की जरूरत है; दुस्साहस की जरूरत है। भयभीत हो माना, फिर भी दरवाजा खोल दो। दरवाजा खोले बिना तुम अभय न हो सकोगे। इसलिए प्रतीक्षा मत करो कि जब अभय हो जाएंगे तब दरवाजा खोलेंगे; तब तो तुम कभी भी न खोल पाओगे। दरवाजा खोलो। कंपते हाथों से खोलो। कंपती छाती से खोलो। रोआं-रोआं भयभीत हो, लेकिन दरवाजा खोलो। इसलिए कहता हूं, दुस्साहस है। भय के बावजूद दरवाजा खोलना पड़ेगा। तुम यह अगर मांग रखोगे कि जब अभय हो जाऊंगा तब दरवाजा खोलूंगा, अभी तो बहुत भयभीत हूं, दरवाजा खोलने से पता नहीं कौन भीतर आ जाए! कैसी हवाएं, कैसे तूफान, कैसी आंधियां भीतर आ जाएं! अभी तो सुरक्षित हूं अपने घर में। तो सुरक्षा तुम्हारी कब्र बन जाएगी। फिर तुम दरवाजा कभी भी न खोल सकोगे।

छोटा बच्चा चलता है। वह यह नहीं कहता कि मैं तभी चलूंगा जब गिरने का सब डर मिट जाए। छोटे बच्चे अगर ऐसा कहें तो दुनिया में कोई फिर कभी चल ही न पाए। छोटे बच्चे बड़े दुस्साहसी होते हैं। छोटा बच्चा चलना शुरू कर देता है बिना भय के। और जानता है कि हाथ-पैर कंप रहे हैं, डगमगा रहा है, सहारे की जरूरत है, फिर भी छोटा बच्चा चाहता है, सहारा मत दो। मां सहारा देती है, छोटा बच्चा उसको छोड़ कर चलना चाहता है; क्योंकि सहारा अपमान है। और सहारे से कौन कब तक चलेगा? कितने दूर तक चलेगा? सहारा तो

उधार है। दूसरे के सहारे पर कितनी देर टिका जा सकता है? छोटा बच्चा हाथ हिलाता है कि नहीं; वह अपनी तरफ से कोशिश करता है।

बड़ी महत्वपूर्ण घटना है छोटे बच्चे को चलते हुए देखना। उससे महत्वपूर्ण घटना जीवन में फिर दुबारा घटती ही नहीं, जब तक कि तुम आत्मा की यात्रा पर न निकलो। क्योंकि फिर एक नयी चाल शुरू होती है; अब वह शरीर की नहीं है, अब वह आत्मा की है। फिर तुम डगमगाते हो। छोटे बच्चे को देखो! उठाता है पैर, डरता है, सम्हालता है, कंप रहा है; फिर भी चलने की कोशिश करता है। वह यह नहीं कहता कि जब मैं चलना ठीक से कर सकूंगा, तभी चलूंगा। तो फिर ये पैर ठीक से चलेंगे कैसे? कब चलेंगे? छोटा बच्चा चलता है, गिरता है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम भी नहीं गिरोगे। गिरोगे। क्योंकि कोई भी एकदम से नहीं चल सकता। चलना एक कला है जो धीरे-धीरे आती है। बच्चा गिरेगा, घुटने टूट जाएंगे, खून निकलेगा। लेकिन इससे कुछ बाधा न पड़ेगी। इससे चुनौती मिलेगी, बच्चा और चलने की कोशिश करेगा। अगर बच्चा तुम जैसा बुद्धिमान हो और एक दफा घुटने टूट जाएं और बिस्तर पर लेट जाए, और कह दे कि बस हो गया, अब यह काम दुबारा नहीं करना। नहीं, घुटने टूटते हैं तो और आकर्षण बढ़ता है; रस आता है चुनौती से। बच्चा फिक्र नहीं करता घुटने टूटने की; फिर चलता है, फिर-फिर चलता है। बहुत बार गिरता है। कोई हिसाब है बच्चे के गिरने का? लेकिन एक दिन खड़ा हो जाता है। जिस दिन बच्चा खड़ा होता है अपने पैरों पर, उस दिन उसकी शान देखने जैसी है। कितना छोटा, कितना कमजोर, असहाय; फिर अपने पैर पर खड़ा है। उसकी शान का कोई मुकाबला नहीं।

बस वैसी शान एक दफा और आती है जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। फिर छोटा सा दीया ऐसी शान से जगमगाता है जैसे महा सूरजों को फीका कर देगा। वह बोधिवृक्ष के नीचे जब बुद्ध को ज्ञान हुआ, उस क्षण सब सूरज फीके हो गए। उस दिन एक छोटी सी बूंद ने सागर को छोटा कर दिया। उस दिन यह सारा अस्तित्व, इतना बड़ा होकर भी, बुद्धत्व से छोटा हो गया। क्योंकि एक बच्चा फिर अपने पैरों पर खड़ा हो गया; एक बच्चा फिर प्रौढ़ हुआ। अस्तित्व ने बुद्ध के द्वारा फिर से प्रौढ़ता का रस पाया। फिर से बोध का आनंद!

तो कथाएं हैं कि सारा गगन गूंज उठा अनंत-अनंत वाद्यों से; देवता नाच उठे; देवता बुद्ध के चरणों में झुके। क्योंकि जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो सारा अस्तित्व समारोह से भर जाता है; क्योंकि सारा अस्तित्व मां जैसा है। जैसे मां, जिस दिन पहले दिन उसका बच्चा खड़ा हो जाता है, अपने बल चलने लगता है, जैसी प्रफुल्लता से भर जाती है, वैसी प्रफुल्लता फूल-फूल पर, पत्ती-पत्ती पर, कण-कण पर छा जाती है। ये तो कथाएं इसी की सूचक हैं। कोई देवता हैं कहीं? कि कोई वाद्य बजाता है? कि कहीं कोई ब्रह्मा हैं जो आकर बुद्ध के चरणों में झुक जाते हैं? नहीं, ये तो सूचक हैं; ये तो काव्य-प्रतीक हैं। लेकिन इन्होंने बड़ी बात कही है।

आत्मा के पैरों के बल तुम जब खड़े हो जाओगे; जब तुम अपने दीपक स्वयं बन जाओगे। बुद्ध ने कहा है, अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बन जाओ।

कहां से शुरू करो? माना कि भय है, मान लो कि भय है; लेकिन भय को किनारे रखो और उठो। मान लो कि गिरोगे, निश्चित है कि गिरोगे; कभी कोई नहीं चल पाया बिना गिरे। बहुत बार चोट लगेगी; बहुत बार भटकोगे; भूल-चूक होगी। भूल-चूक होती ही है उससे जो चलने की कोशिश करता है; जो नहीं चलता उसी से भूल-चूक नहीं होती। तो मेरे हिसाब में तो एक ही भूल-चूक है, वह है न चलना। कोई भूल-चूक नहीं होती; तुम गोबर-गणेश की तरह बैठे रह जाते हो। हलन-चलन ही नहीं करते तो और आनंद से वंचित रह जाओगे। तुम कभी अमृत को उपलब्ध न हो सकोगे।

उठो! भय है, स्वीकार करो। भय के बावजूद खड़े होने की चेष्टा करो। भय है; द्वार खोलो। खतरा है, माना; मित्र भी आ सकता है, शत्रु भी आ सकता है। लेकिन शत्रु के भय से मित्र को गंवा देना बहुत बड़ी भूल है। आंधी-तूफानों के डर से घर के भीतर बंद होकर जी लेना, तो जैसे जीए ही न; कब्र में ही रहे और मर गए। कब्र बड़ी सुरक्षित है; और जीवन में असुरक्षा है। दुस्साहस चाहिए। धीरे-धीरे कदम सम्हलने लगते हैं। और जब कदम सम्हल जाते हैं तो सब भय मिट जाता है।

प्रेम एकमात्र कवच है। और कोई कवच नहीं है, और कोई सुरक्षा नहीं है। और तुम जितने भी इंतजाम करोगे सुरक्षा के, सब गलत सिद्ध होंगे। तुम्हारे हाथों से बनाई गई सुरक्षा मृत्यु के पार न ले जा सकेगी। मृत्यु सब सुरक्षा को तोड़ देगी।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के घर डाका पड़ा। सब लोगों ने सोचा लुट गया। और बचाने की कोशिश में मुल्ला नसरुद्दीन बुरी तरह पीटा भी गया; ऐसा पीटा गया कि मरणासन्न अस्पताल में पड़ा है। जरा सा होश आया तो उसने अपनी पत्नी के नाम पत्र लिखा, जो दूसरे गांव गई थी। और लिखा, घबड़ाना मत। संयोग और सौभाग्य की बात समझो कि एक ही दिन पहले सब बैंक में सेफ डिपाजिट में जमा करवा दिया था। कुछ गया नहीं है। कुछ ले जाने को था भी नहीं। सिवाय मेरे जीवन के, कुछ भी नहीं गंवाया है। क्योंकि वह मरणासन्न है, और मर रहा है। सिवाय जीवन के और कुछ नहीं गंवाया है!

मरते वक्त तुम भी ऐसा ही पाओगे कि सिवाय जीवन के और कुछ नहीं गंवाया है। सब बचा है, सब तिजोरी में रखा है, बैंक में जमा है; सिर्फ तुम अपने को गंवा बैठे हो! लेकिन उस जमा का करोगे क्या? जीवन को ही खोकर अगर सब बचा लिया तो क्या बचाया? अगर सब खोकर भी जीवन बच सके तो बचा लेना। उसे ही मैं दुस्साहस कह रहा हूं।

लाओत्से के शब्दों को समझें।

"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे... ।"

और वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस तरफ प्रेम, उस तरफ अभय; आया प्रेम, पीछे चला आता है अभय।

"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे, कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे, कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए, तो उसका विनाश सुनिश्चित है।"

लाओत्से यह कह रहा है कि जिसने प्रेम को छोड़ा, वह विनष्ट हो गया। और तुमने प्रेम को छोड़ कर सब बचा लिया है। तुमने अपनी होशियारी में प्रेम को छोड़ कर सब बचा लिया है। तुम अपनी होशियारी में सब गंवा बैठे हो। जिसने प्रेम को छोड़ा, उसका विनाश सुनिश्चित है। क्योंकि उसे जीवन का भोजन ही मिलना बंद हो गया।

पश्चिम में वैज्ञानिकों ने इधर बहुत सी खोजें की हैं, उनमें एक खोज प्रेम से संबंधित भी है। उन्होंने यह पाया है अनेक प्रयोगों के बाद... ।

इजिप्त में एक प्रयोग चलता था, अनाथालय में। तो अनाथालय के दो हिस्से कर दिए थे उन्होंने; दो सौ बच्चे एक तरफ, दो सौ दूसरी तरफ। इन दो सौ बच्चों को पहले खंड में सब भोजन, कपड़े, सारी सुविधाएं दी जाती थीं, सिर्फ प्रेम को छोड़ कर। नर्स आएगी, दूध दे देगी, लेकिन किसी तरह का व्यक्तिगत संपर्क नहीं करेगी, मुस्कुराएगी नहीं; कठोर, यंत्रवत। डाक्टर आएंगे, इलाज कर देंगे, लेकिन इम्पर्सनल, अवैयक्तिक; व्यक्तिगत कोई संबंध बच्चों से नहीं बनाया जाएगा। न बच्चों को थपथपाया जाएगा, न उन्हें गले लगाया जाएगा। यह एक खंड;

सारी वैज्ञानिक सुविधा दी जाएगी। और दूसरा खंड है, वहां भी उतनी ही सुविधा दी जाएगी, लेकिन बच्चों के साथ व्यक्तिगत संबंध बनाए जाएंगे। डाक्टर आएगा तो मुस्कुराएगा, बैठ कर दो बात करेगा, कभी बच्चे को गले लगा लेगा। नर्स आएगी तो थपथपाएगी, कभी बच्चे को उठा कर उछालेगी।

जो अनुभव हुआ तीन महीने के प्रयोग से वह यह हुआ कि पहले खंड के बच्चे सिकुड़ते गए। भोजन पूरा दिया जा रहा था, इलाज की पूरी व्यवस्था थी; लेकिन जीवनधारा सूखती गई। बच्चे तीन गुने ज्यादा बीमार पड़े पहले खंड में। करीब-करीब बच्चे बीमार रहे, स्वस्थ बच्चे धीरे-धीरे खो गए। दो सौ के दो सौ बच्चे धीरे-धीरे किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हो गए। दूसरे खंड के बच्चे धीरे-धीरे सभी बीमारियों के बाहर हो गए। और अगर बीमारी आती भी तो टिकती न। पहले खंड में बीमारी आ जाती तो हटती न। सब एक सा था, सिर्फ एक प्रेम के तत्व को हटा लिया था। और प्रेम भी क्या, कोई खास प्रेम नहीं दिया जा रहा था; थोड़ा थपथपा दिया, थोड़ा बच्चे से बात कर ली। लेकिन ऐसा अनुभव हुआ कि इन बच्चों को दूसरे खंड में कुछ मिल रहा था, अदृश्य, जो पहले खंड में नहीं मिल रहा था।

अमरीका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में वे एक प्रयोग कर रहे थे बंदर के बच्चों के साथ। तो एक तरफ उन्होंने बंदरिया बनाई थी, जो बिल्कुल तारों की बनी थी। उसके स्तन से बच्चा दूध पी सकता था, लेकिन सिर्फ तार ही तार थे, ठंडे तार, कि बच्चा जब दूध पीने आए तो मां से कोई ऊष्मा न मिले, कोई गर्मी न मिले; दूध पी ले। और एक दूसरी मां उन्होंने बनाई थी, जिसके तारों पर गर्म कंबल चढ़ा हुआ था और जिसके भीतर बिजली का एक छोटा सा बल्ब जलता था जिससे थोड़ी गर्मी बनी रहती थी। जो बच्चे उसके पास दूध पीते थे, वे तो स्वस्थ रहे। कोई प्रेम न था, लेकिन बच्चों को भ्रांति थी। भ्रांति तक भी कि मां ऊष्ण है। और जो बच्चे ठंडी मां के पास दूध पी रहे थे--दूध वही था--लेकिन धीरे-धीरे सूखने लगे। फिर दोनों मां को एक जगह लाकर एक ही कमरे में रख दिया और सब बच्चों को उसी कमरे में रख दिया। बच्चे दूध तो पी आते ठंडी मां के पास, लेकिन लिपट कर सोते--सारे बच्चे लिपट कर सोते--कंबल वाली मां के पास। वहां थोड़ी ऊष्मा थी, वहां थोड़ा जीवन था, वहां थोड़ी गर्मी थी। और कंबल का स्पर्श थोड़ा सा मां की भ्रांति देता था। लेकिन यह भी कोई मां हुई?

हार्वर्ड में भी पाया गया कि बच्चे को अगर ख्याल भी हो कि दूसरी तरफ से कुछ संवेदना है तो भी बच्चे को जीवन मिलता है। मां दूध ही नहीं दे रही है बच्चों को, दूध के साथ कुछ और भी दे रही है। वह और अदृश्य है, और वह और जीवन का सूत्र है। वह प्रेम है।

तुम्हारे जीवन में जितना ज्यादा प्रेम होगा उतना ही तुम पाओगे कि तुम जीवंत हो; जितना प्रेम कम होगा उतना ही तुम पाओगे, दीन, जर्जर, मुर्झाए हुए; किसी तरह चले जा रहे हो, कोई गति नहीं है; तुम ऐसी सरिता नहीं हो जो सागर तक पहुंच सके; तुम्हारे पैर ही नहीं उठ रहे हैं। तुम कहीं न कहीं किसी मरुस्थल में खो जाओगे।

इसलिए लाओत्से कहता है, जिन्होंने जीवन में प्रेम छोड़ दिया; और प्रेम छूटा कि अभय छूटा; और जिन्होंने मध्यमार्ग चलने की कला न सीखी, जो अतियों में डोलते रहे; और जिन्होंने महत्वाकांक्षा का जहर पी लिया; और जो पीछे रहने को राजी न रहे, और दौड़ कर आगे होने का पागलपन जिन पर सवार हो गया; उनका विनाश सुनिश्चित है।

"इफ वन फोरसेक्स लव एंड फियरलेसनेस, फोरसेक्स रेस्ट्रेंट एंड रिजर्व पावर, फोरसेक्स फालोइंग बिहाइंड एंड रशेज इन फ्रंट, ही इ.ज डूम्ड!"

उसे बचाने का कोई उपाय नहीं। उसका विनाश बिल्कुल निश्चित है। क्योंकि प्रेम, जब आक्रमण हो तब तुम्हें बचाता है, आक्रमण की घड़ी में प्रेम ही तुम्हारी जीत बनेगा। जब कोई तुम पर हमला करे तो प्रेम तुम्हें बचाता है।

इस बात को थोड़ा समझने की कोशिश करो।

पहली तो बात कि अगर तुम बहुत प्रेमपूर्ण हो तो हमले की संभावना सौ में से निन्यानबे प्रतिशत समाप्त हो जाती है। अगर तुम प्रेम दे रहे हो तो दूसरे में हमले की आकांक्षा को तुम वैसे ही नष्ट कर रहे हो। लेकिन फिर भी पागल लोग हैं। बुद्ध पर भी पत्थर फेंकने वाले लोग मिल ही जाते हैं। जीसस को भी आखिर सूली पर चढ़ाने वाले लोग मिल ही गए। सुकरात को जहर देने वाले लोग थे ही।

तो तुम अगर कितने ही प्रेम से भरे हो तो भी निन्यानबे प्रतिशत ही मौका कटता है; क्योंकि दूसरी तरफ ऐसे हृदय भी हैं, तुम जितने प्रेम से भरे हो उससे ज्यादा घृणा से भरे हैं। पाषाण हृदय भी हैं। इतने रुग्ण लोग भी हैं कि तुम्हारे प्रेम के कारण ही तुम पर हमला कर देंगे। उनकी बरदाश्त के बाहर होगा कि कोई इतने प्रेम में जीए। तुम उनके लिए शत्रु मालूम पड़ोगे। निन्यानबे प्रतिशत तो तुम्हारा प्रेम ही तुम्हारे ऊपर आक्रमण की संभावना को समाप्त कर देगा। एक प्रतिशत जो आक्रमण की संभावना शेष रह जाएगी, उस क्षण में भी अगर तुम्हारा हृदय प्रेम से भरा हो, तो वही तुम्हारी सुरक्षा है, और कोई सुरक्षा नहीं हो सकती।

बुद्ध पर पागल हाथी छोड़ दिया था। बड़ी हैरानी हुई कि पागल हाथी आकर बुद्ध के सामने ठिठक कर खड़ा हो गया।

पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हैः जोश देलगादो। उसने एक प्रयोग किया है सांड के साथ। उसने सांड के भीतर मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगा दिए थे और एक छोटे ट्रांजिस्टर रेडियो से उन भीतर लगे हुए तारों को संदेश दिया जा सकता था।

मस्तिष्क में केंद्र हैं; क्रोध का केंद्र है, घृणा का केंद्र है, प्रेम का केंद्र है, आक्रमण का केंद्र है, भय का केंद्र है; मस्तिष्क में सब केंद्र हैं। वैज्ञानिकों ने सारे केंद्र खोज लिए हैं। और उन केंद्रों पर अगर बिजली का प्रवाह डाला जाए, तो जिस केंद्र पर प्रवाह डाला जाता है वही केंद्र सक्रिय हो जाता है। तो अब ऐसा उपाय है कि तुम बिल्कुल शांत बैठे हो और तुम्हारी खोपड़ी पर एक खास जगह जरा सी चोट की जाए कि तुम एकदम क्रोध से भर जाओगे, क्योंकि वहां से क्रोध का जहर तुम्हारे शरीर में फैलता है।

जोश देलगादो ने एक भयंकर सांड के भीतर इलेक्ट्रोड लगा दिए, दो इलेक्ट्रोड, एक क्रोध के ऊपर और एक भय के ऊपर। और दो बटन का एक छोटा सा रेडियो वह अपने हाथ में लिए है। हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए थे इस प्रयोग को, क्योंकि यह खतरनाक से खतरनाक प्रयोग सिद्ध हो सकता है। कोई सौ कदम दूर खड़ा है सांड भयंकर। एक बटन देलगादो ने दबाया--किसी को पता नहीं कि वह क्या कर रहा है अपने हाथ में--उसने क्रोध का बटन दबाया। तो जैसे सांड को लाल झंडी दिखा दो और वह गुस्से में आ जाता है, वह कुछ भी नहीं है; क्योंकि भीतर जैसे ही बिजली का प्रवाह उसके क्रोध पर हुआ, सांड बिल्कुल पागल हो गया। वह झपटा। अकेला एक आदमी खड़ा है उसके सामने। वह इतना विक्षिप्त भाव से भागा धुआंधार कि लाखों लोग जो देखने इकट्ठे हुए थे, उन्होंने समझा कि मारा गया यह आदमी। यह प्रयोग, यह इतना पागल सांड, इससे बचने का कोई उपाय नहीं। और देलगादो के हाथ में कोई तलवार नहीं है, कोई उपाय नहीं है। एक छोटा सा ट्रांजिस्टर रेडियो लिए है, वह भी किसी को दिखाई नहीं पड़ता, वह भी उसकी हथेली में छिपा है। लोग खड़े हो गए, सांसें रुक गईं। और ठीक दो कदम पर सांड आया और देलगादो ने उसका भय का बटन दबाया, वह वहीं ठिठक गया जैसे कि

कोई भयंकर दीवाल सामने खड़ी हो गई हो। दो कदम! एक क्षण और, और उसके सींग देलगादो की छाती में घुस गए होते। वह एकदम कंपने लगा भय से।

देलगादो ने जो प्रयोग किया है वैसा प्रयोग कभी नहीं किया गया। लेकिन जिनके जीवन में प्रेम रहा है, उनके आस-पास ऐसे प्रयोग बहुत बार अपने आप हो गए हैं।

ऐसा हुआ बुद्ध के जीवन में, पागल हाथी छोड़ दिया गया। अगर तुम मेरी बात समझ सको तो देलगादो ने जो यंत्र से किया है, वह बुद्ध ने सिर्फ भाव से किया। वह भी किया, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि बुद्ध तो प्रेम से भरे हैं। पागल हाथी आया भागा हुआ। बुद्ध के भीतर से जो जीवन-ऊर्जा का प्रवाह हो रहा है, वह तो प्रेम है; तो वह उस पागल हाथी के प्रेम के केंद्र पर चोट कर रहा है, जैसे देलगादो बिजली का प्रवाह दे रहा है। प्रेम भी तो विद्युत है; प्रेम भी तो बड़ी सूक्ष्म ऊर्जा है। बुद्ध का हृदय प्रेम से भरा है; उनके आस-पास प्रेम बरस रहा है। वह हाथी अचानक आकर ठिठक कर खड़ा हो गया। और न केवल खड़ा हुआ--क्योंकि यह कोई यंत्र के द्वारा खड़ा नहीं किया गया था--वह झुका और बुद्ध के चरणों में सिर टेक दिया।

किसने बचाया? प्रेम कवच है।

लेकिन आदमी हाथियों से ज्यादा खतरनाक है। हाथी पागल भी आदमी जितना पागल नहीं, स्वस्थ आदमी जितना भी पागल नहीं। क्योंकि जीसस प्रेम से भरे रहे और लोगों ने सूली लगा दी। आदमी के अंधेपन का मुकाबला नहीं है। आदमी बेजोड़ है। कोई जानवर आदमी के जानवरपन से मुकाबला नहीं कर सकता। जिसने भेजा था पागल हाथी, देवदत्त, वह बुद्ध का चचेरा भाई था। उस पर बुद्ध का प्रेम काम न कर पाया। पागल हाथी ठहर गया। देवदत्त नये आयोजनों में लग गया; वह जीवन भर बुद्ध को मारने की चेष्टा करता रहा। कभी पहाड़ से चट्टान सरका दी उसने। शायद चट्टान भी बुद्ध को छोड़ कर मार्ग से हट कर गिर गई हो, क्योंकि बुद्ध उससे मरे नहीं। चट्टानें भी आदमी के हृदय जैसी चट्टानें नहीं।

आदमी एक अनूठी बात है। आदमी उठे तो परमात्मा जैसा है; गिरे तो पाषाण भी काफी नहीं; उनसे भी नीचे गिर जाता है। आदमी गिरे तो ठीक नर्क निर्मित कर लेता है; उठे तो उसके चारों तरफ स्वर्ग है। आदमी इस छोर से उस छोर तक फैला हुआ है। आखिरी पशुता और आखिरी परमात्मा, आदमी में दोनों संभव हैं। आदमी एक सीढ़ी है, जिसका एक छोर आखिरी जमीन में लगा है, नर्क में टिका है, और दूसरा छोर आकाश में।

"यदि कोई प्रेम और अभय को छोड़ दे, कोई मिताचार और आरक्षित शक्ति को छोड़ दे, कोई पीछे चलना छोड़ कर आगे दौड़ जाए, तो उसका विनाश सुनिश्चित है। क्योंकि प्रेम आक्रमण में जीतता है।"

अगर तुम्हारे पास प्रेम ही न रहा तो तुम्हारे पास कोई सुरक्षा न रही। तुम बिल्कुल असहाय हो फिर। और तुम उलटा ही कर रहे हो। तुम सुरक्षा के दूसरे इंतजाम जमा रहे हो जिनके कारण प्रेम भीतर न आ सकेगा। और प्रेम एकमात्र सुरक्षा है। तुम्हारे भय के कारण तुम अपनी एकमात्र सुरक्षा को बाहर कर दिए हो।

छोड़ो भय को! साहसी बनो! उठाओ कदम प्रेम में! खोने को कुछ भी नहीं है। पाने को सब कुछ है।

"और सुरक्षा में वह अभेद्य है।"

जिसके पास प्रेम है, उसकी सुरक्षा अभेद्य है। माना कि जीसस को लोगों ने सूली पर लटका दिया, मिटा दिया शरीर उनका; लेकिन जीसस के अंतर्प्राण में वे प्रवेश न कर पाए। जीसस अभेद्य ही रहे, क्योंकि आखिरी क्षण में भी जीसस ने कहा कि परमात्मा, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि ये जानते नहीं ये क्या कर रहे हैं। जीसस का प्रेम अखंड रहा। जीसस का हृदय जरा भी डगमगाया न, जरा भी क्रोध न उठा, जरा भी जहर की संभावना न बनी। ठीक हत्या की जा रही है, उस क्षण में भी जीसस की करुणा अपराजित, अजेय रही, अभेद्य रही।

इसलिए लाओत्से कहता है, "जिन्हें स्वर्ग नष्ट होने से बचाना चाहता है, उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित करता है।"

यह तो कहने की बात है। यह तो सिर्फ कहने का ढंग है। अच्छा तो यही हो कि तुम यह समझो कि जो बचना चाहते हैं, वे अपने को प्रेम से सुसज्जित कर लेते हैं। स्वर्ग तो सिर्फ साथ देता है; तुम जो करना चाहते हो, उसी में साथ दे देता है। स्वर्ग तो सहयोग है। परमात्मा तो राजी है--तुम जो होना चाहो। तुम अगर नर्क में गिरना चाहते हो तो परमात्मा का हाथ तुम्हें सहारा दे देता है। क्योंकि परमात्मा तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट न करना चाहेगा। परमात्मा जबरदस्ती तुम्हें स्वर्ग में न उठाएगा। क्योंकि जबरदस्ती भी कहीं कोई स्वर्ग में गया है? अगर तुम जबरदस्ती स्वर्ग में भेज दिए जाओ तो स्वर्ग कारागृह मालूम पड़ेगा। क्योंकि जबरदस्ती परतंत्रता है। स्वतंत्रता से तुम नर्क में भी चले जाओ तो भी स्वर्ग मालूम पड़ेगा, तुमने ही चुना है।

परमात्मा किसी के साथ कोई जबरदस्ती नहीं करता। अस्तित्व सहयोग है, और परम स्वतंत्रता है। तुम जो होना चाहो, अस्तित्व कहता है, हम तुम्हारे साथ वहीं चलने को राजी हैं। अगर तुम अपने जीवन को कब्र बनाना चाहते हो तो कब्र के लिए ईंटें जुटा देगा अस्तित्व; तुम्हारे हाथों को बल दे देगा कि तुम सब रंध्र, द्वार, सब बंद कर दो। अगर तुम स्वर्ग में उठना चाहते हो तो अस्तित्व सीढ़ियां लगा देगा, पांव-पांखड़े बिछा देगा; अस्तित्व अपनी पलकें बिछा देगा कि आओ स्वागत है। लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता को अस्तित्व बाधा नहीं देता।

मनुष्य परम स्वतंत्र है। यही उसकी गरिमा भी है, यही उसका दुर्भाग्य भी। गरिमा; क्योंकि स्वतंत्रता से बड़ा और कुछ भी नहीं है। इसलिए तो हम मोक्ष की चर्चा करते रहे हैं सदियों से। गरिमा; कि मनुष्य उठ सकता है आखिरी छोर तक, जिसके पार और कुछ भी नहीं; वह बन सकता है शिखर उत्तुंग, गौरीशंकर। और दुर्भाग्य; क्योंकि स्वतंत्रता के कारण वह नर्कों की यात्रा भी कर सकता है। तुम्हारे हाथ में है सारी बाजी! शिकायत किसी से कर न सकोगे। नर्क गए तो अपने कारण; दुखी हो तो अपने कारण; सुखी होओगे तो अपने कारण। चाहो तो विषाद की मूर्ति बन सकते हो, कोई बाधा न डालेगा; चाहो तो समाधिस्थ आनंद की प्रतिमा बन सकते हो, सारा अस्तित्व साथ देगा। हर हाल में राजी है अस्तित्व; तुम जहां जाते हो, वहीं जाने को राजी है।

इसे स्मरण रखना। यह तो कहने का ढंग है लाओत्से का कि जिन्हें वह नष्ट होने से बचाना चाहता है स्वर्ग उन्हें प्रेम के कवच से सुसज्जित कर देता है। इसका कुल मतलब इतना है कि केवल वे ही बचते हैं जो प्रेम के कवच को उपलब्ध हो जाते हैं।

ये तीन खजाने हैं लाओत्से के। प्रेम पहला खजाना; सम्हालना, बचाना। जिंदगी में बहुत आंधियां आएंगी, उस छोटे से दीये को बुझाने की संभावनाएं बनेंगी; तुम उसे बचाना, क्योंकि वही जीवन की संपदा है। कुछ भी हो, तुम प्रेम को मत खो देना।

और तुम बड़े जल्दी खो देते हो। एक आदमी धोखा दे देता है, तुम कहते हो, हमारा आदमियत पर से विश्वास उठ गया। आदमियत पर से विश्वास उठ गया? एक आदमी ने धोखा दे दिया तुम्हें, तुम्हारा पूरी आदमियत पर से विश्वास उठ गया? जैसे तुम तैयार ही बैठे थे विश्वास उठाने को। तुमने यह न कहा कि एक आदमी ने धोखा दिया है, इससे आदमियत का क्या लेना-देना!

अगर तुम प्रेम को बचाना चाहते हो तो सारी मनुष्यता भी तुम्हें धोखा दे दे, और एक आदमी बच रहे जिसने धोखा न दिया, तो भी तुम भरोसा कायम रखोगे कि अभी एक आदमी बाकी है। अभी एक आदमी काफी है भरोसे को बचाने को, अगर भरोसा बचाना है। अन्यथा एक आदमी काफी है मिटाने को। एक जगह तुम

असफल हो जाते हो, कि बस उसी असफलता को तुम अपना घर बना लेते हो कि असफल हो गए। जिंदगी में कोई सार नहीं है!

झेन फकीर जेनरेन ने कहा है कि जब पतझड़ आए और वृक्षों से पत्ते सब गिर जाएं और वृक्ष नग्न हो जाएं, तब तुम सावधान रहना, यह मत कहना कि सब जीवन उजाड़ है। क्योंकि यह केवल वसंत की तैयारी है। और जब पानी का बुलबुला फूटे तो तुम यह मत कहना कि सब जीवन पानी का बुलबुला है। तुम जल्दी मत करना निषेध को इकट्ठी करने की।

इस देश में निषेध भयंकर है। उसने तुम्हारे प्रेम को बिल्कुल मार डाला है। सब संसार माया है। सब सुख दुख हैं। सब क्षणभंगुर है! कुछ सार नहीं। उससे तुम परमात्मा को उपलब्ध नहीं हुए हो; उससे तुम भयंकर विषाद में डूब गए हो। उससे तुम ऊपर उबरे नहीं हो; उससे तुम्हारी नाव पत्थरों से बोझिल हो गई है, और यात्रा कठिन हो गई है। उसके कारण तुम्हारे जीवन में परमात्मा का आनंद तो नहीं उतरा, केवल संसार की उदासी सघन हो गई है। तुम्हारे आस-पास वह शांति तो नहीं पैदा हुई जो कि आनंद की छाया है, तुम्हारे पास शांति पैदा हो गई है जो मरघट की छाया है। श्मशान जैसे तुम शांत हो गए हो--उदास, हारे-थके, पराजित।

नहीं; एक आदमी धोखा दे तो मनुष्यता से विश्वास मत उठा लेना। और अगर ठीक से समझो तो जिस आदमी ने धोखा दिया है, यह आदमी भी इसी कृत्य में पूरा नहीं हो जाता है; इसके जीवन में करोड़ों कृत्य हैं। एक आदमी जीवन में करोड़ों काम करता है; उसके एक काम ने धोखा दिया, उसके करोड़ों काम से क्यों आस्था उठा लेते हो? इस क्षण में इस आदमी ने धोखा दिया, लेकिन भविष्य तो सदा उन्मुक्त है; दूसरे क्षण यह बदल सकता है। जल्दी निर्णय क्यों ले लेते हो?

और धोखे से धोखा देने वाला आदमी भी पूरा तो धोखे में नहीं जीता; जी नहीं सकता। झूठ से झूठ बोलने वाला आदमी भी तो कभी-कभी सच बोलता है। बेईमान से बेईमान भी तो कभी-कभी ईमानदार होता है। तुम क्यों इसकी बेईमानी को आधार बना लेते हो?

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम धोखा खाओ; मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम अपने प्रेम को मत मरने देना। प्रेम बड़ा छोटा दीया है, और आंधियां बहुत हैं। सब तरफ से बुझाने के लिए आंधियां हैं। और अगर तुमने बुझाने में खुद सहयोग दिया तो कौन तुम्हारे दीये को बचाएगा?

कैसी भी स्थिति हो, कैसा भी मनुष्य हो, कैसे भी लोग हों तुम्हारे आस-पास, कैसा ही परिवार हो, कैसे ही संबंधी हों, तुम एक बात ख्याल रखना, उन सब के बावजूद तुम प्रेम के दीये को बचा लेना। क्योंकि उससे ही तुम बचोगे। इनके धोखे तो सपने जैसे हैं, पानी पर खींची लकीरें हैं--बनेंगी, मिट जाएंगी। किसी ने तुम्हारी जेब से चार पैसे निकाल लिए; क्या बनता-बिगड़ता है? थोड़ी-बहुत देर बाद तुम अपने ही हाथ से निकालते; किसी दूसरे हाथ ने वह काम कर दिया है। धन्यवाद देना और आगे बढ़ जाना।

जीसस ने कहा है, कोई तुमसे कोट छीन ले, कमीज भी दे देना; मगर प्रेम को बचाना। कोई तुमसे कहे एक मील बोझा ढो चलो, तुम दो मील तक साथ चले जाना; क्योंकि हो सकता है, संकोची आदमी, दो मील ले जाना चाहता हो और एक ही मील कहा; मगर प्रेम को बचा लेना। क्योंकि जो प्रेम करेगा, वह परमात्मा को जानेगा। क्योंकि परमात्मा प्रेम है।

अगर तुम एक ही बात को बचा लो जीवन में तो कुछ चिंता करने की जरूरत नहीं है। छोड़ दो फिक्र परमात्मा की, छोड़ दो फिक्र मोक्ष की; अगर प्रेम का दीया बच गया तो सब बच जाएगा। तुमने मूल आधार बचा लिया है, बुनियाद बचा ली है। भवन बना लेना बहुत कठिन नहीं है।

लेकिन बिना आधार के तुम भवन तो बना लेते हो, और आधार नहीं होता। आज नहीं कल, भवन गिरता है। और उसके गिरने में तुम भयंकर पीड़ा पाते हो। क्योंकि उसके गिरने में तुम्हारा सारा श्रम, सारी ऊर्जा, सारा जीवन व्यर्थ हो जाता है।

प्रेम है एकमात्र अभेद्य सुरक्षा; उसे बचा लो।

और जो प्रेम में जीता है--यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि जीवन का गणित बहुत एक-दूसरे सेशृंखलाबद्ध है--जो प्रेम में जीता है वह हमेशा संतुलित होता है। उसके जीवन में एक बैलेंस होता है। क्रोध में बैलेंस टूटता है, संतुलन टूटता है। क्योंकि क्रोध में तुम वह कर बैठते हो जो नहीं करना था। क्रोध में तुम वह कर बैठते हो जिसके लिए तुम पछताओगे। प्रेम से कभी कोई नहीं पछताया है। और अगर तुम प्रेम के कारण पछताए हो तो समझना कि प्रेम नहीं, कुछ और रहा होगा। वासना रही होगी, मोह रहा होगा, लोभ रहा होगा, काम रहा होगा; प्रेम नहीं। प्रेम के कारण कोई कभी नहीं पछताया। प्रेम पछतावा जानता ही नहीं है। प्रेम का कोई पश्चात्ताप नहीं है।

प्रेम एक संतुलन देता है। क्योंकि प्रेम तुम्हारे व्यक्तित्व को एक माधुर्य देता है, एक स्निग्धता देता है। प्रेम तुम्हारे रोएं-रोएं को एक हलकी शांति, एक रस देता है। उस रस के कारण तुम अति पर जाने से बचने लगते हो। क्योंकि अगर अति पर जाओगे तो रस टूटता है। उस रस के कारण तुम अति पर नहीं जाते।

प्रेमी ऐसे चलता है जैसे गर्भवती स्त्री चलती है--ऐसा जीवन में चलता है। क्योंकि वह दौड़ नहीं सकती, उसे पता है कि एक और जीवन सम्हाल रही है; दौड़ेगी, गर्भपात हो सकता है। गर्भवती स्त्री कैसे चलती है, कभी गौर से देखा? कुछ उसके पास सम्हालने को है; वह कुछ सम्हाल कर चलती है। उसकी चाल में एक शालीनता है, एक खजाना है; अपने से भी महत्वपूर्ण कोई भीतर छिपा है--जिसके जन्म के लिए वह कितनी ही पीड़ा झेलने को तैयार है; जिसके जन्म के लिए वह अपने जीवन को भी खोने को तैयार हो सकती है। प्रेमी भी ऐसे ही जीता है; उसके भीतर कुछ सम्हालने के लिए कोई दीया जल रहा है भीतर।

ऐसी पुरानी कथा है कि एक संन्यासी ने सम्राट जनक को कहा कि मैं भरोसा नहीं कर सकता कि आप इस सब गोरखधंधे में--राज्य, महल, संपत्ति, शत्रु, मित्र, दरबार, राजनीति, कूटनीति, वेश्याएं, नाच-गान, शराब--इस सबके बीच, और आप परम ज्ञानी रह सकते हैं। मैं भरोसा नहीं कर सकता। क्योंकि हम तो झोपड़ों में भी रह कर न हो सके। और हम तो नग्न रह कर भी जंगलों में खड़े रहे और संसार से छुटकारा न मिला। तो आपको कैसे मिल जाएगा? भरे संसार में हैं, संसार के मध्य में खड़े हैं।

जनक ने बिना उत्तर दिए दो सैनिकों को आज्ञा दीः पकड़ लो इस संन्यासी को! संन्यासी बहुत घबड़ाया। उसने कहा, हद हो गई! हम तो सोचते थे कि आप महा करुणावान और ज्ञानी हैं। तो आप भी साधारण सम्राट ही निकले। पर जनक ने उनकी कुछ बात सुनी नहीं, और कहा कि आज रात नगर की सबसे सुंदर वेश्या नृत्य करने आने वाली है महल में, तो बाहर मंडप बनेगा, उसका नृत्य चलेगा। इससे सुंदर कोई स्त्री मैंने नहीं देखी। नृत्य चलेगा, दरबारी बैठेंगे, संगीत होगा, रात भर जलसा रहेगा। तुम्हें एक काम करना है। ये दो सैनिक तुम्हारे दोनों तरफ नंगी तलवार लिए चलेंगे और तुम्हारे हाथ में एक पात्र होगा--तेल से भरा, लबालब भरा, कि एक बूंद और न भरी जा सके--उसे सम्हाल कर तुम्हें सात चक्कर लगाने हैं। और अगर एक बूंद भी तेल की गिरी, ये तलवारें तुम्हारी गर्दन पर उसी वक्त उतर जाएंगी।

संन्यासी फंस गया, अब क्या करे! और यह आदमी कम से कम मौका दे रहा है एक सात दफे चक्कर लगाने का, वैसे भी मरवा सकता है। तो एक अवसर तो है कि शायद कोशिश कर लें। सुंदर स्त्री का नाच शुरू हुआ। उसने पहले अपने आभूषण फेंक दिए, फिर वह अपने वस्त्र फेंकने लगी, फिर वह बिल्कुल नग्न हो गई। बड़ा मधुर

संगीत था। बड़ा प्रगाढ़ आकर्षण था। लोग मंत्रमुग्ध बैठे थे। ऐसा सन्नाटा था, जैसा मंदिरों में होना चाहिए; लेकिन केवल वेश्याघरों में होता। दो तलवारें नंगी और वह संन्यासी बीच में फंसा हुआ बेचारा।

अब तुम सोच ले सकते हो, गृहस्थ होता तो भी चल लेता। संन्यासी! संन्यासी के मन में स्त्री का जितना आकर्षण होता है, गृहस्थ के मन में कभी नहीं होता। जैसे भूखे के मन में भोजन का आकर्षण होता है; भरे पेट के मन में क्या आकर्षण होता है? अगर वेश्या के घर में ही पड़े रहने वाले किसी आदमी को यह काम दिया होता, उसने मजे से कर दिया होता; इसमें कोई अड़चन न आती। लेकिन संन्यासी ने सपने में देखी थीं नग्न स्त्रियां; जब ध्यान करने बैठता था तब दिखाई पड़ती थीं। आज जीवन में पहला मौका मिला था जब देख लेता एक झलक। और कोई अड़चन न थी, बिल्कुल किनारे पर ही सब घटना घट रही थी। आवाज सुनाई पड़ने लगी कि उसने अपने आभूषण फेंक दिए हैं। सैनिक बात करने लगे, जो दोनों तरफ चल रहे थे कि अरे, उसने कपड़े भी फेंक दिए! अरे, वह बिल्कुल नग्न भी हो गई! और वह अपना दीया सम्हाले है और बूंद तेल न गिर जाए। उसने सात चक्कर पूरे कर लिए, एक बूंद तेल न गिरी।

सम्राट ने उसे बुलाया और कहा, समझे? जिसके पास कुछ सम्हालने को हो, सारी दुनिया चारों तरफ नाचती रहे, कोई अंतर नहीं पड़ता। तुझे अपना जीवन बचाना था, तो वेश्या नग्न हो गई तो भी तेरी आंख उस तरफ न गई। ये सैनिक बड़ी रसभरी चर्चा कर रहे थे--ये मेरे इशारे थे कि तुम रसभरी चर्चा करना, लुभाना--और दोनों तरफ से बोल रहे थे, और इन दोनों के बीच तू फंसा था; फिर भी तूने ध्यान न छोड़ा, तूने ध्यान अपने पात्र पर रखा। भरा पात्र था, कुशल से कुशल व्यक्ति भी मुश्किल में पड़ जाता। बड़े सात लंबे चक्कर थे। एक बूंद तेल गिर जाती, गर्दन तेरी उतर जाती। जीवन तुझे बचाना था।

जनक ने कहा, कुछ मेरे पास है जिसे मुझे बचाना है।

और जब तुम्हारे पास कुछ बचाने को होता है तो वही तुम्हें बचाता है। प्रेम जब जिसके भीतर होता है, प्रेम को तुम बचाते हो, प्रेम तुम्हें बचाता है। तुम प्रेम को सम्हालते हो, प्रेम तुम्हें सम्हालता है। प्रेम को बचाना। प्रेम से संतुलन आ जाएगा, क्योंकि कुछ बचाने को है। तुम अतियों पर न जाओगे।

और जिसने प्रेम जान लिया, वह महत्वाकांक्षा पर हंसने लगता है; क्योंकि महत्वाकांक्षा प्रेम के अभाव में पैदा होती है। जिनके जीवन में प्रेम नहीं है, वे धन पाना चाहते हैं। धन सब्स्टीट्यूट है। प्रेम तो न मिला, किन्हीं आंखों ने ऐसा तो न कहा कि धन्यभाग हैं कि तुम हो; किन्हीं हाथों ने छुआ नहीं और कहा नहीं कि फूल की पंखुरियां भी इतनी कोमल नहीं; किसी ने गले न लगाया और कहा कि तुम्हीं मेरी आत्मा हो और तुम्हारे बिना सब सूना हो जाएगा। किसी ने तुम्हारे लिए गीत न गाए। किसी ने वीणा न बजाई। कोई आनंदमत्त होकर तुम्हारे चारों तरफ नाचा नहीं। अब एक कमी रह गई। तो अब तुम कोशिश कर रहे हो कि धन हो जाए तो लोग कहें कि हां, तुम कुछ हो; खूब धन है तुम्हारे पास, ऐसा किसी के भी पास नहीं। कि पद मिल जाए, कि तुम राष्ट्रपति हो जाओ, कि प्रधानमंत्री हो जाओ, कि सारी दुनिया कहे कि हां, सिद्ध कर दिया कि तुम कुछ हो।

मेरे जानने में, जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही राजनीति में उतरते हैं; जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही धन की दौड़ में लगते हैं; जिनका प्रेम असफल हो गया है, वे ही प्रसिद्धि की आकांक्षा करते हैं। वे सब्स्टीट्यूट हैं, परिपूरक हैं। पर ध्यान रखना, प्रेम का कोई परिपूरक नहीं है। आखिर में तुम धन कमा लोगे, बड़ी से बड़ी कुर्सी पर बैठ जाओगे और भीतर पाओगे वही रिक्तता। क्योंकि प्रेम को सिर्फ प्रेम ही भर सकता है, कोई और नहीं। प्रेम की आकांक्षा को सिर्फ प्रेम ही तृप्त कर सकता है।

तुम थोड़ा सोचो, किसी को प्यास लगी है, वह पानी मांग रहा है; तुम उसे करेंसी नोट दे रहे हो। किसी को प्यास लगी है, वह पानी मांग रहा है; तुम कह रहे हो कि हम तुम्हें राष्ट्रपति बनाए देते हैं। वह कहेगा, हमें पानी चाहिए। पानी के लिए कुछ भी तो परिपूरक नहीं हो सकता। साधारण प्यास के लिए परिपूरक नहीं मिल सकता तो प्रेम की प्यास के लिए परिपूरक मिल जाएगा? कोई परिपूरक नहीं है।

इसलिए जिसने प्रेम को सम्हाला, उसका संतुलन सम्हल जाता है। जिसने संतुलन सम्हाल लिया, वह आगे होने की दौड़ में कभी भी उतरता ही नहीं। तुम उसे राजी ही न कर पाओगे।

च्वांगत्सु की कथा से पूरी करूं।

बैठा है च्वांगत्सु एक तालाब के किनारे; मारता है मछली। सम्राट ने भेजे हैं अपने मंत्री और कहा कि सुनो, राजा चाहता है कि तुम आ जाओ और प्रधानमंत्री हो जाओ। बैठा रहा च्वांगत्सु। आंख भी मछली से न हटाई। अपनी बंसी को सम्हाले रहा। देखा भी नहीं वजीरों की तरफ। इतना ही कहा कि देखते हो उस किनारे कछुए को? कीचड़ में कछुआ अपनी पूंछ हिला कर मजा कर रहा है, आनंदित हो रहा है। कछुए का मजा कीचड़ में है। देखते हो उस कछुए को? उन्होंने देखा और उन्होंने कहा, हम कुछ समझे नहीं, कछुए से इसका क्या लेना-देना?

तो च्वांगत्सु ने कहा, हमने सुना है कि सम्राट के महल में सोने में मढ़ा एक मरा हुआ कछुआ है तीन हजार साल पुराना। उसकी पूजा की जाती है। वह राज्य चिह्न है। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि अगर इस कछुए को तुम कहो कि चल राजमहल, सोने में मढ़ देंगे; तेरी पूजा होगी हजारों-हजारों साल तक; सम्राट झुकेंगे तेरे सामने। तो यह कछुआ वहां जाना पसंद करेगा या कीचड़ में अपनी पूंछ हिलाना ही पसंद करेगा?

उन वजीरों ने कहा कि कछुआ तो कीचड़ में पूंछ हिलाना ही पसंद करेगा। क्या सार मरने में? और क्या सार सोने में मढ़े जाने में? और क्या सार पूजा-पत्री में?

तो च्वांगत्सु ने कहा, जाओ। कह देना सम्राट से कि हम भी कीचड़ में ही पूंछ हिलाना पसंद करते हैं। जब कछुआ इतना समझदार है तो हम कोई उससे ज्यादा नासमझ हैं? हम मगन हैं अपने आनंद में! तुम्हारे महलों की, तुम्हारे सिंहासनों की, तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा की हमें जरूरत नहीं।

जो प्रेम में मगन है उसे किसी और चीज की जरूरत नहीं। प्रेम तृप्त कर जाता है; दौड़ छूट जाती है। और महत्वाकांक्षा जिसकी छूट गई, उसका मन गिर जाता है। मन महत्वाकांक्षा है। जिसकी महत्वाकांक्षा छूट गई, वह अ-मन हो जाता है, नो-माइंड हो जाता है। और उसी घड़ी में द्वार खुलते हैं जो सदा से बंद हैं, और तुम पाते हो, प्रभु द्वार पर खड़े हैं। प्रभु सदा से ही द्वार पर खड़े थे, लेकिन तुम्हारी नजर कहीं और थी। जब तुम प्रेम से भरे, संतुलन में डूबे, महत्वाकांक्षा-मुक्त खड़े हो जाते हो, तब कोई पर्दा न रहा, सब पर्दे उठ जाते हैं।

बहुत दौड़ लिए सिंहासनों की दौड़ में, बहुत तरह के स्वर्ण से ढंके जा चुके। और हर बार स्वर्ण ने कब्र बनाई, जीवन का संगीत और जीवन की समाधि न दी। अब समय है, जाग जाना चाहिए।

कबीर कहते हैं, जाग सके तो जाग।

आज इतना ही।

एक सौ नौवां प्रवचन

परमात्मा परम लयबद्धता है

Chapter 65

The Grand Harmony

The ancients who knew how to follow the Tao
Aimed not to enlighten the people,
But to keep them ignorant.
The reason it is difficult for the people to live in peace
Is because of too much knowledge.
Those who seek to rule a country by knowledge
Are the nation's curse.
Those who seek not to rule a country by knowledge
Are the nation's blessing.
Those who know these two (principles)
Also know the ancient standard,
And to know always the ancient standard
Is called the Mystic Virtue.
When the Mystic Virtue becomes clear, far-reaching,
And things revert back (to their source),
Then and then only emerges the Grand Harmony.

अध्याय 65

भव्य लयबद्धता

जो ताओ का अनुगमन करना जानते थे,
उन पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया;
बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे।
कारण है कि लोगों के लिए शांति में रहना कठिन है, अतिशय ज्ञान के चलते।
जो ज्ञान से किसी देश पर शासन करना चाहते हैं, वे राष्ट्र के अभिशाप हैं।

जो ज्ञान से देश पर शासन करना नहीं चाहते, वे राष्ट्र के वरदान हैं।
जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं,
और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहाता है।
जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है,
और चीजें अपने उदगम को लौट जाती हैं;
तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।

ज्ञान और ज्ञान में बड़ा भेद है।

एक तो ज्ञान है जो तुम्हें बिल्कुल मिटा जाता है, भीतर बच रहती है एक गहन शांति, एक निबिड़ मौन। सब स्वर खो जाते हैं, सब विचार विलीन हो जाते हैं; रह जाता है मौन संगीत। इस शून्य की तरफ जो ज्ञान ले जाए वह ज्ञान और। उस ज्ञान को ही लाओत्से अज्ञान कहता है। क्योंकि जिसे तुम ज्ञान कहते हो, अगर वही ज्ञान है, तो जिसे लाओत्से ज्ञान कहता है उसे अज्ञान ही कहना उचित है। क्योंकि वहां कुछ भी तो जानने को बचता नहीं, न जानने वाला ही बच रहता है। जानने का उपद्रव ही समाप्त हो जाता है। इतनी परिपूर्ण शून्यता होती है जैसे आकाश हो बिना बदलियों का। विचार तो बादलों की भांति हैं। वे आकाश नहीं हैं; आकाश में उठ गया उत्पात हैं। जहां विचार ही नहीं हैं वहां ज्ञान कैसे होगा?

इसलिए लाओत्से उसे अज्ञान कहता है।

तुम चाहो तो उसे परम ज्ञान कह सकते हो। शब्द में मत उलझ जाना। और लाओत्से का शब्द बिल्कुल ठीक है। अज्ञान का अर्थ हैः जहां कोई ज्ञान की तरंग नहीं रह गई; अभाव हो गया जानने का। और जहां जानना बिल्कुल मिट जाता है वहीं तो पहली दफा जानने की वास्तविक क्षमता का उदय होता है। क्योंकि उसी शून्य में तो सत्य की परख आती है। और उसी रिक्तता में ही तो उतरता है परमात्मा। उसी द्वार पर तो दस्तक पड़ती है प्रभु की जिस द्वार के भीतर सन्नाटा हो जाता है। जब तक भीतर शोरगुल है तब तक शोरगुल ही तो उसे भीतर न आने देगा। और जब तक भीतर बहुत-बहुत बदलियां घिरी हैं तब तक तुम अंतर-आकाश को कैसे जान पाओगे?

दूसरा ज्ञान है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। वह ज्ञान तुम्हारे भीतर किसी शून्यता से नहीं जन्मता, वरन विपरीत शब्दों से, सिद्धांतों से, शास्त्रों से तुम अपने को भर लेते हो। उसे भरेपन को भी ज्ञान हम कहते हैं।

तो एक तो ज्ञान है शून्यता का, और एक ज्ञान है शब्दों के भराव का। जैसे आकाश बादलों से इतना घिर गया कि अब कहीं से कोई नील-आकाश दिखाई नहीं पड़ता। सब तरफ बदलियां ही बदलियां घिरी हैं। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर जानकारियों की पर्तें ही पर्तें हो जाती हैं तब तुम लगते तो हो कि बहुत जानकार हो, और तुम जैसा अज्ञानी कोई भी नहीं होता। जानते बहुत हो और जानते कुछ भी नहीं। ऐसी गति होती है। बताना चाहो तो बहुत बता सकते हो, शास्त्र तुम्हें कंठस्थ हो जाते हैं, लेकिन तुम्हारे जीवन में कहीं वह सुरभि नहीं उठती जो ज्ञानी के जीवन में उठनी चाहिए। तुम्हारे पास मुर्दा शब्द होते हैं। मरघट और लाशें तुमने इकट्ठी कर लीं। तुम उस मूल स्रोत तक नहीं पहुंचे जहां भीतर ज्ञान का आविर्भाव होता है। तुमने तो कचरा बटोर लिया राह के किनारे से। दूसरों ने छोड़ी थी जो जूठन, उसे तुमने इकट्ठा कर लिया। वे कितने ही सुंदर शब्द हों--बुद्ध के हों, महावीर के हों, कृष्ण के हों, क्राइस्ट के हों--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम उधार से कभी भी वास्तविक को न पा सकोगे।

लाओत्से कहता है, ऐसा ज्ञान खतरनाक है। क्योंकि ऐसा ज्ञान तुम्हारे और तुम्हारी वास्तविकता के बीच दीवार बन जाता है। और इस ज्ञान के चलते तुम धीरे-धीरे भूल ही जाओगे कि तुम अज्ञानी हो। और यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जो व्यक्ति यह भूल जाए कि मैं अज्ञानी हूं, उसके ज्ञान की तरफ जाने का मार्ग ही सदा के लिए खो गया। अज्ञान की स्मृति बनी रहे तो तुम यात्रा करते रहोगे खोज की। तुम चेष्टा करोगे, उठोगे, चलोगे; कुछ उपाय करोगे।

अगर तुम्हें यह ख्याल हो गया कि तुमने तो जान लिया... । और कितनी सरलता से यह ख्याल नहीं हो जाता है! पढ़ लिए उपनिषद, वेद, गीता; आ गया ख्याल कि जान लिया; दोहराने लगे शब्द बासे, तोतों की तरह, रटने लगे। रटन बिल्कुल व्यवस्थित हो गई, कहीं कोई भूल-चूक नहीं है तुम्हारी रटन में। तुम वे ही शब्द दोहराते हो जो कृष्ण दोहराते हैं। कृष्ण से भला भूल-चूक हो जाए, तुमसे नहीं होती। क्योंकि कृष्ण ने तो पहली ही बार दोहराए थे, कोई और रिहर्सल का मौका तो मिला न था। और तुमने तो बहुत बार दोहराए हैं; रिहर्सल ही रिहर्सल चलता रहा है। कृष्ण अगर फिर से कहेंगे गीता तो बड़ी भिन्न हो जाएगी। कहां याद किए बैठे रहेंगे कि क्या कहा था अर्जुन से! बड़े रूपांतरण हो जाएंगे। अर्जुन भी बदल चुका होगा; कृष्ण भी बदल चुके होंगे; परिस्थिति भी नयी हो गई होगी। कृष्ण अगर फिर से गीता कहेंगे तो तुम्हारी गीता से उसका तालमेल न के बराबर होगा। लेकिन तुम जो गीता याद किए बैठे हो वह कभी न बदलेगी। संसार बदलता रहेगा, गंगा बहती रहेगी, तुम्हारी गीता थिर और जड़ हो जाएगी। तुम्हारी गीता मुर्दा होगी। जीवन तो बदलता है, जीवन तो प्रतिपल प्रवाहमान है।

पंडित के पास जो ज्ञान है वह ज्ञान नहीं है; वह ज्ञान का धोखा है। लाओत्से कहता है, पंडित होने से तो अज्ञानी होना बेहतर। कम से कम अज्ञानी की संभावना तो है। पंडित ने तो संभावना भी बंद कर ली। पंडित तो ऐसी दशा में है जैसे किसी बीमार आदमी को ख्याल आ जाए कि वह स्वस्थ हो गया; स्वास्थ्य के संबंध में किताबें पढ़ ले, और स्वास्थ्य की चर्चा से भर जाए, और सोच ले कि स्वस्थ हो गया, क्योंकि स्वास्थ्य के संबंध में मुझे इतना पता है।

लेकिन स्वास्थ्य के संबंध में पता होने से क्या कोई स्वस्थ होता है? स्वस्थ होने का रास्ता कुछ और है; स्वास्थ्य के संबंध में पता होने से नहीं। स्वस्थ होना एक जीवंत प्रक्रिया है, जानकारी नहीं। नहीं तो डाक्टर कभी बीमार ही न पड़ें। डाक्टर भी बीमार पड़ता है। जानता है बहुत स्वास्थ्य के संबंध में, इससे क्या फर्क पड़ता है!

जानकारी से स्वास्थ्य नहीं आता। जानकारी से आत्मा का भी अनुभव न होगा। लेकिन जानकारी खड़ी हो जाती है पर्त बांध कर। जानकारी ज्ञान की झूठी प्रतिछवि है, खोटा सिक्का है। लगता है बिल्कुल असली सिक्के जैसा। और जिन्होंने असली सिक्का न जाना हो उनकी मजबूरी साफ है। क्योंकि वे पहचानें भी कैसे कि यह खोटा है?

तो क्या है पहचान जिससे तुम समझ लोगे कि तुम्हारा ज्ञान खोटा है? एक ही पहचान है, और वह यह कि तुम्हारा ज्ञान तुम्हें शांति दे तो समझना कि सच और तुम्हारा ज्ञान तुम्हें और अशांत करे तो समझना कि खोटा। तर्क से निर्णय नहीं होगा; तुम्हारे भीतर के स्वास्थ्य, तुम्हारे भीतर की निर्मलता, तुम्हारे भीतर की शांति से ही निर्णय होगा।

लाओत्से कहता है कि अज्ञानी बेहतर। क्योंकि अज्ञानी विनम्र होगा, और अज्ञानी कहेगा मैं जानता नहीं हूं। सीखने को तैयार होगा। अज्ञानी शिष्य होने को तत्पर होगा। तथाकथित ज्ञानी शिष्य नहीं होना चाहेगा। वह तो शिष्य होने के पहले गुरु हो गया है। उसने तो जान ही लिया है। अब तो वह दूसरों को जनाने को तैयार है।

और जो उसने जाना है वह जीवन नहीं है। क्योंकि तुम्हें उसके पैरों में जीवन की कोई भनक न मिलेगी। तुम्हें उसकी आंखों में जीवन की कोई छाया न मिलेगी। तुम्हें उसके हृदय के पास जीवन की कोई धड़कन न मिलेगी। तुम सब तरफ से उसे मुर्दा पाओगे। लेकिन जानकारी का बड़ा संग्रह कर लिया है उसने। सिक्कों की तरह उसने ज्ञान इकट्ठा कर लिया है।

ज्ञान ऐसा ही है जैसा कभी तुमने इंग्लैंड की महारानी को लोगों से हाथ मिलाते देखा हो। अब हाथ मिलाने का इतना ही प्रयोजन है कि दो व्यक्तियों के शरीर निकट आएं, एक-दूसरे की चमड़ी एक-दूसरे का स्पर्श करे, सीमा टूटे। दोनों की सीमाएं करीब आएं, एक-दूसरे की ऊष्मा एक-दूसरे में बहे; प्रेम का थोड़ा सा प्रवाह हो; हाथ से ऊर्जा का थोड़ा लेन-देन हो। वही प्रयोजन है हाथ मिलाने का। लेकिन इंग्लैंड की महारानी हाथ मिलाती है तो दस्ताने पहने हुए। अब हाथ मिलाने की जरूरत ही न रही, क्योंकि दस्ताना न मिलने देगा। दस्ताना इसलिए है कि कहीं साधारण आदमी, और महारानी के हाथ से हाथ मिला ले! तो बंद ही कर दो बेहतर है हाथ मिलाना। लेकिन हाथ मिलाना भी जारी है और बीच में दस्ताना भी है।

ज्ञानी और जीवन के बीच दस्ताना आ जाता है। जहां भी वह जाता है जीवन में, उसका ज्ञान आड़ बन कर खड़ा हो जाता है। तब ऊपर-ऊपर लगता है कि वह हाथ भी मिला रहा है, लेकिन भीतर-भीतर दोनों के शरीर करीब नहीं आते। ज्ञानी अगर वृक्ष के पास से निकलता है तो दस्ताना रहता है।

एक महात्मा थे। उनका बड़ा नाम था। वे एक बार मेरे पास मेहमान हुए तो उन्हें मैं सुबह-सुबह घुमाने ले गया। जैसा पंडित होना चाहिए वैसे वे पंडित थे। ऐसी कोई भी बात मुश्किल थी जो वे न जानते हों। मेरे अनुभव में नहीं आई ऐसी कोई बात जो वे न जानते हों। ऐसी क्षुद्र बातें भी वे जानते थे जिनका कोई प्रयोजन समझ में नहीं आता। उन्हें जंगल में भी मैं ले जाकर देखा तो ऐसा एक वृक्ष नहीं था, जिसका नाम उन्हें मालूम न हो। जंगली पक्षियों को भी मैंने उनको दिखा कर देखा, ऐसा कोई पक्षी न था जिसका नाम उन्हें मालूम न हो। और नाम से ही निपटारा कर देते थे वे। मैंने उनको कहा कि देखें, सूरज की किरण इस पक्षी पर कितनी सुंदर पड़ रही है! तो वे कहते, पक्षी? यह नीलकंठ है। नीलकंठ नहीं देखा कभी? कि यह चिड़िया कितना मीठा गीत गा रही है! वे कहते, गौरैया है। गौरैया कभी सुनी नहीं? जो भी उनसे कहो, वे तत्क्षण जानकारी खड़ी कर देते थे। और जब जानकारी ही है, गौरैया का पता ही है, तो गौरैया का गीत कौन सुने? और नीलकंठ ही हैं, तो अब इनमें परेशान होने की क्या जरूरत? कौन देखे इनका नीला कंठ, नाम से तृप्ति हो गई। कभी-कभी सूरज की किरण में नीलकंठ का कंठ ऐसा चमकता है, ऐसा अपरिसीम सौंदर्य उसमें उठता है! लेकिन उनकी आंखों में मैंने कभी कोई झलक न देखी। वे एक चलते-फिरते कंप्यूटर थे। जो भी कहो, वे फौरन बता दें कि इसका नाम यह है।

नाम देने को लोग ज्ञान समझते हैं। और नाम देने से ज्ञान का क्या संबंध है? शब्द नीलकंठ से नीलकंठ का क्या संबंध है? नीलकंठ को तो पता भी नहीं होगा कि उनका नाम नीलकंठ है। गुलाब के फूल को तो पता भी नहीं है कि नाम गुलाब है। जैसे ही तुमने कहा, यह गुलाब है, द्वार बंद हो गए। अब क्या जरूरत रही। तुम जानते ही हो, नाम तक तुम्हें पता है। अब और जानने को क्या बचा?

नाम गुलाब में न तो गुल है और न आब है; कुछ भी नहीं है। नाम गुलाब में न तो फूल है और न आभा है फूल की। गुलाब तो सिर्फ एक प्रतीक है, इशारा है। गुलाब गुलाब शब्द पर समाप्त नहीं होता, शुरू होता है। अगर तुमने उसी को समाप्ति समझ ली तो तुम वंचित रह जाओगे। तुम जीवन में जीओगे, लेकिन तुम्हारे चारों तरफ एक पर्दा होगा शब्दों का। शब्दों के माध्यम से तुम गुलाब के पास जाओगे, नीलकंठ के पास जाओगे, सूरज के पास जाओगे, सभी से तुम वंचित रह जाओगे। और इन्हीं शब्दों के माध्यम से तुम अपने करीब आओगे।

तो अगर उन सज्जन से मैं कहता कि कभी ध्यान करें! उन्होंने कहा, क्या ध्यान करना है? और वेद-उपनिषद पहले ही कह गए कि भीतर आत्मा है, सिद्ध ही हो गई बात।

वेद-उपनिषद ने सिद्ध कर दी, इससे तुम्हारे लिए सिद्ध नहीं हो गई। वेद-उपनिषद के ऋषियों ने जल पी लिया था इसलिए तुम्हारी प्यास बुझ गई, ऐसा नहीं है। जब तुम्हें प्यास लगती है तो तुम्हीं को पानी पीना पड़ता है। तुम यह नहीं कहते कि वेद-उपनिषद के ऋषि पी चुके खूब पानी और तृप्ति हो गई, हम क्यों पीएं? वेद-उपनिषद के ऋषियों ने प्रेम किया, इससे तुम प्रेम करने से नहीं रुकते। लेकिन वेद-उपनिषद ने कह दिया कि भीतर आत्मा है, अब खोजने को क्या बचा? वे कहते कि शास्त्र को ठीक से पढ़ लो, पता चल जाएगा कि भीतर आत्मा है। यही पंडित करते रहे हैं। उन्हें लगता है कि जैसे जीवन का सारा समाधान किताब में है। किताब में इशारे हो सकते हैं, लेकिन समाधान तो जीवन का जीवन में ही है।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था। अभी-अभी बेटा बाहर पड़ोस के लड़के से कुश्ती लड़ कर लौटा था। काफी घूंसामारी हुई थी, कपड़े फट गए थे, चेहरे से खून निकल रहा था। फिर मुल्ला ने यही मौका ठीक समझा कि जब गरम हो स्थिति तभी समझा देना चाहिए। तो उसने कहा कि देखो, अब तुम बड़े होने लगे, और अब तुम्हें सभ्यता-संस्कृति सीखनी चाहिए। और संस्कृति का पहला सूत्र यह है कि झगड़ों को शांति से निपटाना चाहिए। यह घूंसेबाजी जिंदगी में चलाओगे तो मुश्किल में पड़ोगे। और ऐसी कौन सी समस्या है जिसको शांति से बैठ कर तर्क और विचार और बुद्धि से न निपटाया जा सके! मुल्ला ने कहा कि मैंने कुरान-वेद सब पढ़ डाले। हर समस्या, बड़ी से बड़ी समस्या भी आदमी शांति से बैठ कर, विचार से समझ कर, एक-दूसरे की स्थिति, एक-दूसरे का दृष्टिकोण ख्याल में लेकर हल कर सकता है।

उस लड़के ने कहा, लेकिन यह समस्या ही ऐसी है कि इसका और कोई हल ही न था।

नसरुद्दीन ने कहा, मैं यह मान ही नहीं सकता। मैंने ऐसी कोई समस्या देखी नहीं आज तक। तू समस्या बोल क्या थी? उसने कहा कि आप मानो, यह समस्या ही ऐसी थी। समस्या यह थी कि वह लड़का कह रहा था कि वह मुझ को चित्त कर सकता है चारों खाने। और मैं कह रहा था मैं उसको कर सकता हूं चित्त चारों खाने। अब इसको शांति से कैसे तय करो? इसका एक ही उपाय है कि करके देख लो कौन किसको कर सकता है।

जीवन जीकर ही हल हो सकता है। कोई दूसरा उपाय जीवन के समाधान का नहीं है। जो दूसरे तरह का ज्ञान है वह बिना जीवन में उतरे तुम्हें समाधान दे देता है। वे समाधान झूठे हैं, सस्ते हैं बहुत। तुमने उन समाधानों के लिए कुछ चुकाया नहीं। तुमने उन समाधानों के लिए कुछ खोया नहीं। तुमने उन समाधानों के लिए अपने को दांव पर नहीं लगाया। तुम मुफ्त, भीख में, उन समाधानों को घर में ले आए हो। काश! जिंदगी इतनी सस्ती होती। जिंदगी इतनी सस्ती नहीं है। और अच्छा ही है कि जिंदगी इतनी सस्ती नहीं है; अन्यथा तुम्हारी समाधि भी कितनी सस्ती होती! और तुम्हारा परमात्मा को पा लेना भी कितना सस्ता होता! दो कौड़ी का होता।

नहीं, यहां तो स्वयं ही चलना पड़ेगा अपने ही पैरों से। भटकन भी होगी, भूल भी होगी, गिरोगे भी। अनेक बार उठोगे, गिरोगे, उठोगे, खोजोगे। यहां मार्ग बना-बनाया तैयार नहीं है कि किसी और ने बना दिया है। कोई हाईवे नहीं है, जो तैयार है सरकार की तरफ से कि तुम उस पर चल जाओ। यहां तो चल-चल कर ही एक-एक कदम अपना मार्ग खुद ही बनाना पड़ता है। यहां तो तुम जितना चलते हो उतना ही मार्ग बनता है।

और इसलिए केवल दुस्साहसियों के लिए ही सत्य है। कायर पंडित हो जाते हैं; साहसी प्रज्ञा को उपलब्ध होते हैं। पांडित्य महानतम कायरता है। वह अपने को धोखा देना है।

लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"जो ताओ का अनुगमन करना जानते थे, उन पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया; बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे।"

बात बड़ी बेबूझ मालूम पड़ेगी कि ज्ञानी पुरुष लोगों को अज्ञानी रखना चाहते थे?

निश्चित ही। ज्ञानी पुरुष पहले भी लोगों को अज्ञानी रखना चाहते थे, और ज्ञानी पुरुष अब भी, अगर तुम ज्ञानी भी हो गए हो, तो तुम्हारा ज्ञान छीन लेना चाहते हैं। सदगुरु वही है जो तुम्हारा ज्ञान छीन ले। जिस गुरु के पास से तुम थोड़े ज्यादा जानकार होकर लौटो, समझ लेना वह गुरु नहीं है, शिक्षक है। शिक्षक सिखाता है जानकारी, गुरु छीन लेता है। गुरु मिटाता है जानकारी। गुरु अगर कुछ भी सिखाता है तो एक ही बात सिखाता है। वह सिखाता है कलाः जो सीखा है उसको अनसीखा करने की। वह तुम्हारी स्लेट को साफ करता है।

तुमने काफी गूद डाला है अपना मन; न मालूम क्या-क्या लिख लिया है--काम का, बेकाम का, कारण-अकारण, संगत-असंगत। तुम्हारा मन एक गुदी हुई स्लेट है, जिसमें अब कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या तुमने लिखा था, क्या तुम लिख रहे थे। तुम खुद भी नहीं पढ़ सकते अपने लिखे हुए को जो तुमने अपने मन पर लिख लिया है। वहां भीतर आंख डालोगे तो बड़ी घबड़ाहट होगी। जैसे ही लोग ध्यान शुरू करते हैं, मेरे पास आने लगते हैं कि बड़ा कनफ्यूजन पैदा हो रहा है, बड़ी विभ्रांति आ रही है। कोई ध्यान से कहीं विभ्रांति आती है? लेकिन ध्यान से यह घटना घटती है कि तुम जरा भीतर देखने में समर्थ हो जाते हो। और भीतर तो विभ्रांति भरी पड़ी है। तुमने अपने मन की स्लेट पर क्या-क्या लिख दिया है, अब उसको पढ़ना भी मुश्किल है।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में दो घटनाएं हैं। एक घटना है कि गांव के एक आदमी ने आकर कहा कि पत्र लिख दो। क्योंकि वही पढ़ा-लिखा आदमी है गांव में। तो नसरुद्दीन ने कहा, न लिख सकूंगा, क्योंकि मेरे पैर में बहुत दर्द है। उस आदमी ने कहा, लेकिन पैर में दर्द से और पत्र लिखने का क्या संबंध? तुम भलीभांति चंगे बैठे हो। हाथ से लिखना है पत्र कि पैर से? नसरुद्दीन ने कहा, तू समझता नहीं, यह जरा मामला जटिल है। क्योंकि लिख तो दूं, लेकिन पढ़ने के लिए मुझे दूसरे गांव भी जाना पड़ता है। पढ़ेगा कौन? और मेरे पैर में दर्द है।

और दूसरी घटना है कि एक आदमी ने पत्र लिखवाया; नसरुद्दीन ने पूरा पत्र लिख दिया। फिर उस आदमी ने कहा कि भई कहीं कुछ भूल-चूक न हो गई हो, आप जरा पढ़ कर सुना दो। तो मेरे प्यारे भाई, बस उतना ही वह पढ़ पाया। फिर बार-बार उसी को पढ़े। उस आदमी ने कहा, आगे क्यों नहीं पढ़ते? क्या इतना ही लिखा है? नसरुद्दीन ने कहा कि देख, लिखना हमारा काम है, कोई पढ़ना तो नहीं। लिख दिया, अपनी झंझट खतम हुई। अब यह झंझट उनकी है जिनको पढ़ना हो। देहाती बोला, बात तो ठीक है। और फिर पता दूसरे का है तो यह गैर-कानूनी भी है, नसरुद्दीन ने कहा, किसी दूसरे के नाम लिखा गया पत्र पढ़ना गैर-कानूनी है; तू मुझको उलझा मत।

तुम्हारा मन है। तुमने लिखा है। तुम स्वयं भी पढ़ न सकोगे कि क्या लिख लिया है। जो तुमने लिखा है उसमें से नब्बे प्रतिशत तो अचेतन में लिखा है, मूर्च्छा में लिखा है, बेहोशी में लिखा है। थोड़ा सा ही होश में लिखा है। वह भी सब गड्ड-मड्ड हो गया है। तुम्हारे सपने भी लिखे हैं तुम्हारे मन पर; तुम्हारी जागृति भी लिखी है; तुम्हारी निद्रा भी लिखी है। तुमने शराब पीकर भी लिखा है कभी; कभी ध्यान करके भी लिखा है। वह सब मिश्रित हो गया है।

सदगुरु का पहला काम है कि वह इस सब कचरे को हटा दे। इसके पहले कि नये बीज बोए जाएं, माली पुरानी जड़ों को निकाल कर बाहर फेंक देता है; घास-पात को उखाड़ देता है; जमीन को साफ कर लेता है। फिर

ही नये बीज बोए जाते हैं। इसके पहले कि वास्तविक ज्ञान तुम में जग सके, तुमने जो झूठा ज्ञान सीख लिया है, जो घास-पात उगा लिया है, वह हटा देना जरूरी है। क्योंकि घास-पात का एक गुण है कि अगर वह मौजूद रहे तो असली के भी बीजों को छिपा लेगा। अगर तुम पंडित होकर मेरे पास आओ और तुम अपने पांडित्य को बचाना चाहो, तो जो भी मैं दूंगा, तुम्हारे पांडित्य के कचरे में वह भी खो जाएगा।

कबीर के पास एक पंडित आया। ज्ञानी था; काशी में बड़ा उसका नाम था। और कबीर सभी को शिक्षा देते थे जो भी आता। लेकिन उस पंडित को कहा कि नहीं भाई, तू हमको मुसीबत में मत डाल। उसने कहा, लेकिन आप किसी को मना नहीं करते। और मैं तो पात्र हूं। मैंने कुपात्रों को भी आपके घर आते देखा है। और मुझे मना करते हो? कबीर ने कहा कि तू इतना जानता है, और तेरे मन की भूमि पर इतने घास-पात उगे हैं कि जो बीज हम डालेंगे वह खो जाएगा। नहीं, तू इस झंझट में हमको मत डाल।

कबीर बार-बार कहे हैंः हीरा हिरायल कीचड़ में। तो हम इस कीचड़ में हीरा न डालेंगे। कीचड़ तो रहेगी और हीरा और खो जाएगा।

सदगुरु साफ करता है। एक बार तुम्हारे मन की स्लेट बिल्कुल पोंछ कर साफ कर दी जाए। न तुम हिंदू रह जाओ, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई, न पारसी; तुम्हारी मन की स्लेट साफ हो जाए। तो ज्ञान कहीं बाहर से थोड़े ही लाना है। तुम्हारे घास-पात में ही दबे पड़े हैं वे बीज जिनसे गुलाब के फूल उठ आएंगे। लेकिन घास-पात दबाए हुए है बुरी तरह। और गुलाबों को सम्हालना पड़ता है। घास-पात को सम्हालना नहीं पड़ता; वह अपने आप ही बढ़ता है। उसके लिए पानी देने की भी जरूरत नहीं है। वह अपना इंतजाम खुद ही कर लेता है। और तुम एक बार काट दो घास-पात को, वह हजार बार बढ़ेगा। उसकी जड़ें उखाड़ देनी पड़ेंगी।

जड़ें उखाड़ने के लिए लाओत्से कह रहा है कि पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा ही नहीं किया। क्योंकि पहले घास-पात बोओ, फिर उसे उखाड़ो, इससे बेहतर है कि स्लेट को साफ ही रहने दो। बल्कि वे उन्हें अज्ञानी रखना चाहते थे।

अज्ञानी का अर्थ है सरल; अज्ञानी का अर्थ है निर्दोष; अज्ञानी का अर्थ है छोटे बच्चों की भांति। अज्ञानी का अर्थ है कुंआरे; अज्ञानी का अर्थ है जिसके मन में कुछ व्यर्थ नहीं प्रविष्ट किया; जो कुछ जानता नहीं। जो कुछ भी नहीं जानता उसके जीने का मजा ही और है। उसे हर चीज अनपेक्षित है। छोटे बच्चों को गौर से देखें। एक तितली उड़ जाती है और बच्चा ऐसा नाच उठता है कि तुम्हें अगर कुबेर का खजाना भी मिल जाए तो भी तुम इस भांति न नाच सकोगे। क्या मामला है? बच्चे की चेतना में क्या घटता है? दौड़ पड़ा तितली के पीछे। एक घास में उगा हुआ फूल तोड़ आता है और ऐसा प्रसन्न लौटता है नाचता हुआ घर कि कोई बड़ी संपदा लेकर आ रहा है। घास पर जमी ओस को अपने मुंह पर लगा लेता है, और उसकी प्रसन्नता देखो। क्या है बच्चे की चेतना में? जिसको लाओत्से अज्ञान कह रहा है वही। बच्चा जानता नहीं। जो जानता नहीं, उसे हर चीज नयी है। जो जानता नहीं उसके पास अतीत से तौलने का तो कोई उपाय नहीं। वह यह तो नहीं कह सकता कि यह ओस है, यह गुलाब है, यह तितली है। बच्चे को कुछ पता ही नहीं; अतीत का कोई अनुभव नहीं है। अनुभव न होने के कारण हर घड़ी बच्चा जीवन को नया अनुभव करता है।

तुम्हारा पुराना अनुभव बीच में आ जाता है; ज्ञान बीच में खड़ा हो जाता है। तुम सोच ही नहीं सकते, कितना फासला है। तुम एक छोटे बच्चे को दौड़ते तितली के पीछे शायद कहोगे कि मत दौड़, कुछ भी नहीं है, बस एक तितली है। लेकिन तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कह रहे हो। और बच्चे तुम्हें बिल्कुल नहीं समझ पाते। तितली उनके लिए एक इतना अज्ञात अनंत का द्वार है! यह उनके भरोसे के बाहर है कि इतना सौंदर्य भी है

जगत में! बच्चा दौड़ रहा है। तुम्हें लगता है तितली के पीछे दौड़ रहा है। बच्चा तो अनंत और अज्ञात के पीछे दौड़ रहा है। छोटे बच्चे तितलियों को पकड़ लेंगे तो तोड़ कर उनके भीतर देखना चाहते हैं। शायद तुम सोचते हो बच्चे हिंसक हैं, तो तुम गलती में हो। बच्चे तो सिर्फ अज्ञात के भीतर झांकना चाहते हैं कि क्या छिपा है? कोई हिंसा से उनका लेना-देना नहीं है। वे तो भीतर देखना चाहते हैं: क्या है? रहस्य क्या है? क्यों यह तितली इतनी सुंदर है? और कैसे उड़ती थी? इसके प्राणों का स्रोत कहां है?

अज्ञानी बच्चे जैसा होगा। अज्ञान का अर्थ है तुम्हें वे बातें न सिखाई जाएं जिनके सीख लेने से तुम्हारे हाथों पर और जीवन पर दस्ताने पैदा हो जाते हैं। जब फिर से कभी कोई व्यक्ति संतत्व को उपलब्ध होता है तो फिर बच्चों जैसा हो जाता है।

रामकृष्ण के संबंध में कथा है कि वे छोटी-छोटी चीज में बड़े उत्सुक हो जाते थे। और लोग दुखी होते थे इससे, शिष्यों को बेचैनी होती थी। क्योंकि शिष्य चाहते लोग समझें कि वे सब चीजों के पार हो गए हैं। और वे छोटी-छोटी चीजों में उत्सुक हो जाते। पत्नी भोजन भी बना कर लाती तो ब्रह्मचर्चा छोड़ देते थे वे। ब्रह्मचर्चा चल रही थी; शिष्यों को समझा रहे थे; पत्नी भोजन की खबर लेकर आ जाती तो वे एकदम उठ कर खड़े हो जाते, वे भूल ही जाते ब्रह्मचर्चा। वे झांक कर पहले थाली में देखते--क्या भोजन बना है! बीच-बीच में ब्रह्मचर्चा छोड़ कर, कथा है, कि वे चौके में पहुंच जाते थे, जरा झांक आते थे--क्या बन रहा है! पत्नी भी उनकी कहती थी कि परमहंसदेव, यह शोभा नहीं देता। लोग क्या कहेंगे? अगर उनको यह पता चल जाए कि तुम बीच चर्चा में, ब्रह्म की बातें समझाते-समझाते बीच-बीच में, चौके में आकर देख भी जाते हो कि आज क्या बन रहा है, तो लोग क्या कहेंगे!

वे कोई भी परमहंस रामकृष्ण को न समझ पाते थे। वे सब ज्ञान से जी रहे थे कि रामकृष्ण को कैसा होना चाहिए, सिद्धांत, कि ऐसे महापुरुष कहीं भोजन की फिकर करते हैं! ऐसे महापुरुष तो स्वाद ही नहीं लेते! लेकिन रामकृष्ण छोटे बच्चे की भांति हो गए हैं।

यह जो बालपन है, इस बालपन का जो सौंदर्य है, उसी को लाओत्से अज्ञान कह रहा है। कभी इस पृथ्वी पर अधिक लोग ऐसे ही थे। फिर ज्ञान ने भ्रष्ट किया; वेदों-कुरानों ने मिटाया; आदमी की खोपड़ी को भर दिया शब्दों से। और उसके जीवन का सारा सौंदर्य नष्ट हो गया। सारी पुलक चली गई। नाच खो गया। गीत कंठ में ही दब गए। हृदय की धड़कन धीमे-धीमे धीमी होती हुई बिल्कुल खो गई। बस खोपड़ी का शोरगुल रह गया।

लाओत्से यह कह रहा है कि हृदय से है रास्ता सत्य का, मस्तिष्क से नहीं। कितना तुम सोचते हो, इससे तुम करीब न पहुंच जाओगे सत्य के। कैसे तुम जीते हो, एक निर्दोषता में, बच्चे जैसे, उससे ही पहुंचोगे।

रामकृष्ण को बड़ी अड़चन थी। क्योंकि पूजा-पाठ करने के लिए रखा गया था उनको दक्षिणेश्वर में। पुजारी थे। तो पुजारी का तो काम पंडित का है। और ये तो बिल्कुल गैर-पंडित जैसे आदमी थे। इनका तो कभी-कभी झगड़ा भी हो जाता था काली से। अब यह कहीं संभव है पुजारी कि झगड़ा कर ले? लेकिन प्रेमी कर सकता है। और प्रेम न हो तो पूजा क्या? कभी-कभी बड़ा झगड़ा हो जाता।

एक बार तो इतने गुस्से में आ गए कि तलवार उठा ली, कहा कि अब होता हो ज्ञान तो इसी वक्त हो जाए नहीं तो गर्दन काट कर रख देता हूं, बहुत हो गया! और कहते हैं, उसी दिन रामकृष्ण को ज्ञान हुआ। एक काली के मंदिर में तलवार रखी थी, काली की सजावट का हिस्सा थी, उसको उठा लिया, निकाल लिया म्यान से। कोई भी नहीं था। क्योंकि उनकी पूजा कितनी देर चले उसका कोई हिसाब न था। लोग आते थे दस-पांच मिनट शुरू में, जब घंटा बजता। और यह सब होता तो लोग तभी चले जाते। क्योंकि उनका तो घंटों चलता था; कभी-

कभी छह-छह घंटा। अब उतनी देर कौन लोग वहां बैठे रहें? और कौन यह बकवास सुने कि वे बातचीत कर रहे हैं, चर्चा हो रही है, जवाब-सवाल हो रहे हैं। कोई नहीं था मंदिर में। खींच ली तलवार और कहा कि अब बहुत हो गया, कर चुके काफी पूजा, और अब आज दांव पर पूरा लगा देते हैं। खींची तलवार अपनी गर्दन तक--और सब बदल गया एक क्षण में। तलवार हाथ से नीचे गिर गई; मंदिर खो गया; काली खो गई; रामकृष्ण खो गए। अठारह घंटे कोई होश नहीं आया। अठारह घंटे बाद होश आया तो आंख से आंसू बह रहे थे और वे चिल्ला रहे थे कि अब वापस मत भेज! अब जब दिखा ही दिया है तो अब वापस क्यों भेजती है! अब मुझे भीतर ही रहने दे। उस दिन घटना घट गई।

अब पंडितों ने कहीं भी नहीं लिखा है कि तलवार उठा कर और पूजा करना। और पंडितों ने लिखा होता और तुम तलवार उठाते भी तो वह औपचारिक होती, वह हार्दिक न होती। तुम जानते थे कि कौन मार रहा है, कौन मारने जा रहा है।

रामकृष्ण भोग लगाते तो पहले खुद को लगा लेते, फिर काली को। मंदिर की कमेटी थी ट्रस्टियों की। एतराज उठाया और बुलाया और कहा कि यह नहीं चलेगा। रामकृष्ण ने कहा, तो नहीं चलेगा तो अपनी नौकरी सम्हालो। क्योंकि मेरी मां जब मुझे खाना बना कर खिलाती थी तो पहले खुद चख लेती थी। जब मां तक बेटे के लिए खाना देने के पहले चख लेती है और देखती है कि देने योग्य है भी या नहीं, तो मैं बिना चखे भगवान को भोग नहीं लगा सकता। पता नहीं, देने योग्य है भी या नहीं। तो तुम सम्हाल लो।

अब किसी शास्त्र में नहीं लिखा है कि भगवान को भोग लगाने के पहले खुद चख लेना। लेकिन हृदय के शास्त्र में तो यही बात लिखी है। प्रेम नियम नहीं जानता, क्योंकि प्रेम आत्यंतिक नियम है। पूजा कोई औपचारिक क्रिया-कांड नहीं है, पूजा तो हृदय का उन्मेष है। लेकिन उसके लिए बड़ी सरलता चाहिए। और रामकृष्ण बड़े सरल आदमी थे। बेपढ़े-लिखे थे; दूसरी क्लास; वह भी पास नहीं थे। उतना थोड़ा सा ज्ञान था। ग्रामीण थे; कुछ जानते नहीं थे। और इस सदी में सब जानने वालों को पीछे छोड़ दिया। इस सदी में उनका आविर्भाव ऐसा हुआ कि एक बेपढ़ा-लिखा, एक गंवार गांव का, बड़े से बड़े पंडितों को फीका कर गया।

हृदय का एक कण भी तुम्हारी बुद्धि की समस्तता से ज्यादा मूल्यवान है। भाव की एक छोटी सी ऊर्मि भी तुम्हारी खोपड़ी के बड़े से बड़े सागर से बड़ी है--एक छोटी सी लहर। क्योंकि वह जीवंत है।

लाओत्से कहता है कि ताओ का अनुगमन करना जो जानते थे, उन पूर्व-पुरुषों ने लोगों को ज्ञानी बनाने का इरादा नहीं किया; बल्कि वे उन्हें अज्ञानी ही रखना चाहते थे। क्योंकि उनके अज्ञान में एक गरिमा थी, एक सरलता थी, एक सौम्यता थी। उस अज्ञान में एक हृदय का भाव था। उस अज्ञान में एक खूबी थी जो शिक्षा ने नष्ट कर दी।

आज दुनिया की बड़ी से बड़ी जो तकलीफ है वह यही है कि लोग बहुत शिक्षित हो गए। और सभी समझदार लोग कह रहे हैं कि युनिवर्सल एजुकेशन, सार्वभौम शिक्षा चाहिए। एक आदमी न बचे जो अशिक्षित हो; सब को शिक्षित करना है। चाहे उनकी मर्जी हो चाहे न हो, सबको अनिवार्य रूप से शिक्षित करना है। अज्ञानी किसी को छोड़ना ही नहीं है। और बिना सोचे-समझे हम मनुष्य को शिक्षित किए जा रहे हैं। और शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ है कि आदमी जंग खा गया है; उसकी सब सरलता खो गई। शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ, आदमी कठोर हो गया है, उसकी सारी सौम्यता खो गई। शिक्षा का कुल परिणाम इतना हुआ कि आदमी ज्ञानी नहीं हुआ, चालाक हो गया है। शिक्षा चालाक बनाती है। शिक्षित आदमी शोषण करने में कुशल हो जाता है। वह इस तरह की तरकीबें बिठाता है कि खुद काम न करना पड़े और दूसरों से काम ले ले।

शिक्षित आदमी के पूरे जीवन की योजना ही यह होती है कि उसे कुछ न करना पड़े और वह दूसरों का शोषण कर ले।

और शिक्षित आदमी चालाक हो जाता है कि जो चीज बिना काम किए मिलती हो, कैसे बिना कुछ किए चीजें मिल जाएं, यही उसकी पूरी कुशलता हो जाती है। और यही तो चोरी है। चोरी और क्या है? चोरी का एक ही अर्थ है कि जिसके लिए हमने श्रम न किया हो उसे पा लेने की कोई तरकीब। दूसरे की जेब से कैसे पैसा निकल आए, बिना हाथ डाले, उसकी कुशलता शिक्षित आदमी में आ जाती है।

और शिक्षित आदमी महत्वाकांक्षी हो जाता है; वह सबसे ऊपर पहुंचना चाहता है। और शिक्षित आदमी के जीवन से प्रेम तिरोहित हो जाता है; क्योंकि प्रेम गणित में बैठता नहीं, बल्कि गणित को गड़बड़ करता है। शिक्षित आदमी के जीवन से सौंदर्य, काव्य, धर्म, सब खो जाता है। उसके पास तो सिर्फ हिसाब रह जाता है--गणित और तर्क, और शोषण की कला, और महत्वाकांक्षा का ज्वर। शिक्षित आदमी ज्वरग्रस्त है।

डी.एच.लारेंस ने, जो कि इस सदी में लाओत्से को प्रेम करने वाले थोड़े से लोगों में एक था, एक सुझाव दिया था। वह सुझाव मुझे बहुत प्रीतिकर लगता है। वह सुझाव था कि सौ वर्ष के लिए सब युनिवर्सिटीज, सब कालेज, सब स्कूल, सब बंद कर देने चाहिए। सौ वर्ष के लिए आदमी को बिल्कुल बिना शिक्षा के छोड़ देना चाहिए। तो जो भी हमने कोई दस हजार वर्षों में आदमी के मन में कचरा भर दिया है, वह स्लेट साफ हो जाए। जैसे किसान दो-चार साल मेहनत करने के बाद खेत को खाली छोड़ देता है, बिना फसल के, ताकि खेत अपनी ऊर्जा को पुनः उपलब्ध कर ले। ऐसा मुझे भी लगता है कि सौ साल के लिए अगर आदमी को शिक्षा से स्वतंत्र कर दिया जाए तो लोग वापस उस अवस्था में पहुंच जाएंगे जिनकी लाओत्से चर्चा कर रहा है। लोग सरल हो जाएंगे; शोषण खो जाएगा। न पूंजीवाद की जरूरत होगी; न समाजवाद की जरूरत होगी। लोग थोड़े से तृप्त हो जाएंगे। और इतना काफी है कि हरेक को तृप्त कर सके। जल की कमी नहीं; भोजन की कमी नहीं; छाया मिल सकती है शरीर को।

लेकिन महत्वाकांक्षा के लिए तो कभी भी कुछ पूरा नहीं है। महत्वाकांक्षा दौड़ाती है, और दौड़ाती है; थकाती है, और मार डालती है। जीवन को जानने से वंचित ही रह जाते हैं।

"कारण है कि लोगों के लिए शांति में रहना कठिन है, अतिशय ज्ञान के चलते।"

जैसे ही ज्यादा ज्ञान हो जाता है, वैसे ही खुद की शांति भी खो जाती है। क्योंकि मन में विचार ही विचार भर जाते हैं। रात सोते भी हैं तो भी विचार चलते ही रहते हैं। उठते हैं तो चलते ही रहते हैं। विचारों का इतना झंझावात कि शांति खो जाती है; भीतर उतरना ही मुश्किल हो जाता है; नाव को ले जाना ही मुश्किल हो जाता है यात्रा पर।

और हमारी पूरी शक्ति इसमें लग रही है कि कैसे हम लोगों को ज्यादा ज्ञानी बना दें। और लोग जितने ज्ञानी होते जाते हैं उतने ही मुर्दा होते जाते हैं।

कभी ठेठ गांव में जाकर देखना चाहिए। ठेठ गांव से मेरा मतलब जहां अभी सरकार बिजली न पहुंचा पाई हो; जहां स्कूल न खोल पाई हो; जहां समाज-सुधारक अभी तक न पहुंचे हों और लोगों को शिक्षित न कर पाए हों; जहां नेतागणों की गति न हो पाई हो; और जहां क्रांतिकारियों की कोई खबर न पहुंची हो; कोई आदि-आदिमवासियों का गांव। तब एक दूसरे ही तरह के मनुष्य का दर्शन होता है। उसके शरीर का सौष्ठव अलग, उसके प्राणों का ढंग अलग, उसके जीने के नियम अलग।

बर्मा के जंगलों में अभी-अभी एक जाति के संबंध में कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। तो वे कहते हैं, उस जाति को याद ही नहीं है कि वहां किसी ने कभी सपना देखा हो। सपना नहीं देखा किसी ने! लोग इतने शांत हैं कि सपना क्यों देखें? सपना तो अशांति का हिस्सा है। उस छोटे से कबीले में कभी कोई युद्ध नहीं हुआ, कोई झगड़ा नहीं हुआ। कोई और ढंग होगा उनके होने का; क्योंकि हम तो दो घड़ी पास नहीं बैठ सकते और झगड़ा शुरू हो जाता है। और झगड़े हमारे इतने बारीक हैं कि कहना मुश्किल है।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसके गांव के धर्मगुरु में झंझट थी, और एक-दूसरे में कलह हो जाती थी। अंततः बात अदालत में पहुंच गई। और मजिस्ट्रेट ने कहा कि तुम दोनों ही समझदार आदमी हो; क्यों व्यर्थ के उत्पात खड़े कर लेते हो? इसको निपटा लो। और मैं नहीं चाहता कि तुम दोनों भले आदमियों को अदालत में आना पड़े और अदालत तक बात खींची जाए। तुम आपस में ही निपटा लो। धर्मगुरु ने कहा, ठीक। जब धर्मगुरु ने कहा ठीक तो नसरुद्दीन ने भी कहा, चलो ठीक। निकलने को हुए अदालत से बाहर कि नसरुद्दीन ने पूछा कि कहो, अब मेरे संबंध में क्या विचार हैं? ठीक से सुनना। नसरुद्दीन ने कहा कि कहो, अब मेरे संबंध में क्या विचार हैं? उस आदमी ने कहा, वही विचार हैं जो तुम्हारे मेरे संबंध में हैं। नसरुद्दीन लौटा और उसने कहा कि देखिए, फिर शुरू कर दिया इसने! नसरुद्दीन ने न्यायाधीश से कहा कि देखिए महानुभाव, फिर शुरू कर दिया इसने! क्योंकि मेरे ख्याल तो इसके संबंध में बहुत बुरे हैं। और यह कह रहा है यही ख्याल इसके मेरे संबंध में हैं। झगड़ा शुरू हो गया।

सभ्य आदमी जैसे बिना झगड़े के रह नहीं सकता। उसकी सब सभ्यता के भीतर, संस्कार के भीतर झगड़ा छिपा है। क्योंकि अशांत आदमी बिना झगड़े के रह कैसे सकता है? वह मैत्री भी करता है तो उसमें शत्रुता का दंश होता है। वह प्रेम भी करता है तो उसमें घृणा का जहर होता है। वह पास भी आता है तो दूर खिंचा रहता है।

उस कबीले ने इतिहास में कभी कोई झगड़ा नहीं किया; कोई झगड़ा नहीं हुआ। अगर एक कबीले में ऐसा हो सकता है तो सारी दुनिया में भी ऐसा हो सकता है। अगर थोड़े से लोगों में ऐसा हो सकता है तो सब में क्यों नहीं हो सकता? हमारे रहने के ढंग में कहीं कोई कठिनाई है, कहीं कोई गड़बड़ है, कहीं कोई मूल भूल है।

और लाओत्से कहता है कि अतिशय ज्ञान के चलते शांति असंभव है।

और जब व्यक्ति शांत नहीं होता तो वह अपनी अशांति दूसरों पर निकालता है। तब वह अपनी अशांति दूसरों पर फेंकता है; दूसरों को उत्तरदायी ठहराता है। तब संघर्ष शुरू होते हैं। और यही संघर्ष बढ़ते-बढ़ते बड़ी कलह का रूप लेते हैं। धर्म लड़ते हैं, राष्ट्र लड़ते हैं; जातियां लड़ती हैं।

अगर हम मनुष्य का इतिहास गौर से देखें तो सिवाय लड़ाई के आदमी ने अब तक कुछ किया ही नहीं है। तीन हजार सालों में कोई पंद्रह हजार युद्ध हुए। हिसाब लगाया है इतिहासज्ञों ने तो वे कहते हैं कि तीन हजार सालों में ऐसे कुछ ही दिन हैं जब कहीं न कहीं युद्ध न हो रहा हो, कुछ ही दिन हैं जब कहीं भी युद्ध नहीं हो रहा। नहीं तो कहीं न कहीं युद्ध हो रहा है; कभी वियतनाम है, कभी कंबोदिया है, कभी कश्मीर है, कभी इजरायल है। कहीं न कहीं युद्ध हो रहा है। पृथ्वी कहीं न कहीं बड़े गहरे घाव से भरी रहती है, और मनुष्यता का प्राण कहीं न कहीं तड़पता रहता है, छुरा कहीं न कहीं छाती में भुंका ही रहता है।

क्या कारण होगा? क्या आदमी शांति से नहीं रह सकता? क्या आकाश के तारे और सूरज और वृक्ष और पक्षियों के गीत और पृथ्वी की हरियाली तृप्त होने के लिए काफी नहीं है? क्या परमात्मा ने जो दिया है वह कम है, इतना कम है कि हमें लड़ना ही पड़ेगा? हम उसे भोग नहीं सकते? क्या यह नहीं हो सकता कि जितनी ऊर्जा

हमारी युद्धों में लगती है उतनी ऊर्जा जीवन के उत्सव में लग जाए? कि जिस शक्ति को हम नष्ट करते हैं युद्धों में... । क्योंकि करीब-करीब हर राष्ट्र की सत्तर प्रतिशत शक्ति युद्ध में लगती है। और बाकी तीस प्रतिशत जो है उसको भी अगर हम बहुत गौर से देखें तो घरेलू युद्ध न हो जाएं उनमें लगी रहती है। कहीं कोई आंदोलन है; कहीं कोई घेराव है; कहीं कोई उपद्रव है। आदमी बिना उपद्रव के एक क्षण नहीं है। और अपने उपद्रवों को बड़े अच्छे-अच्छे नाम देता है; कभी धर्मयुद्ध, जेहाद, कभी क्रांति, कभी इंकलाब, कभी स्वतंत्रता। बड़े अच्छे-अच्छे नाम देता है। और अच्छे नामों के पीछे छिपी रहती है सिर्फ अशांति, लड़ने की आकांक्षा। कोई बहाना मिल जाए और हम लड़ लें। कोई भी बहाना मिल जाए हम लड़ लें।

बहाना न हो तो हम ईजाद करते हैं। हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि अगर कोई दुश्मन न हो तुम्हारा, तो ईजाद कर लेना चाहिए, क्योंकि बिना दुश्मन के किसी भी राष्ट्र में शांति रखना असंभव है। क्योंकि लोग अगर बाहर न लड़ेंगे, तो भीतर लड़ेंगे। अगर हिंदुस्तान-पाकिस्तान न लड़ेंगे, तो इंदिरा और जयप्रकाश उपद्रव खड़ा करेंगे। इसलिए हर राजनीतिज्ञ कोशिश करता है कि बाहर कहीं न कहीं उपद्रव चलता रहे। जैसे ही बाहर उपद्रव जोर से चलता है, भीतर उपद्रव की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

इसे देखें गौर से। हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान थे; पाकिस्तान नहीं बंटा था, हिंदू-मुसलमान लड़ते थे। तब तुमने कभी न सुना था कि हिंदी भाषी और गैर-हिंदी भाषी लड़ते हैं। तब तुमने कभी न सुना था कि मराठी और गुजराती लड़ सकते हैं। तब तुमने कभी न सुना था कि कन्नड़ और मराठी लड़ सकते हैं। दोनों हिंदू थे; लड़ने का कोई सवाल ही न था। लड़ाई बाहर चल रही थी; हिंदू-मुसलमान के बीच थी। अशांति वहां निकल जाती थी। फिर पाकिस्तान बंट गया। अब अशांति वहां निकलने का कोई कारण न रहा। अब हमें नये उपाय खोजने पड़ेंगे। अशांति तो है। तो अब कन्नड़ और मराठी लड़ेंगे। तो अब हिंदी और गैर-हिंदी भाषी लड़ेगा। और तुम यह मत सोचना कि यह झगड़ा मिट जाए तो कुछ हल होता है। सोच लो कि गुजरात को बिल्कुल सबसे अलग काट कर कर दिया जाए, तो कच्छी और गुजराती लड़ेगा; सौराष्ट्र का रहने वाला गुजराती से लड़ेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम बांटते जाओ। जब तक दो आदमी हैं, लड़ाई जारी रहेगी। और अगर एक ही बचा तो वह आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि कहां जाएगी अशांति? अशांति को कहीं तो निकालना पड़ेगा। और लाओत्से उसका मूल कारण कह रहा है कि लोगों को तुमने इतने विचार दे दिए हैं कि अब उनके मन शांत नहीं हो पाते।

"जो ज्ञान से किसी देश पर शासन करना चाहते हैं वे राष्ट्र के अभिशाप हैं। जो ज्ञान से देश पर शासन नहीं करना चाहते, वे राष्ट्र के वरदान हैं।"

ये बड़ी उलटी बातें मालूम पड़ती हैं, पर बड़ी महत्वपूर्ण और बड़ी सत्य हैं।

"जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं। और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहाता है। जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है और चीजें अपने उदगम को लौट जाती हैं, तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।"

तो लाओत्से कहता है, जो इन दो सिद्धांतों को समझ लेते हैं कि अज्ञान में लोग शांत होते हैं और ज्ञान में अशांत हो जाते हैं; अज्ञान में लोग सरल होते हैं और ज्ञान में जटिल और कुटिल हो जाते हैं; अज्ञान में निर्दोष होते हैं, ज्ञान में चालाक, जो इन दोनों सिद्धांतों को जानता है उसे उस प्राचीन मानदंड का भी अनुभव हो जाएगा। वह प्राचीन मानदंड, रहस्यमय सदगुण उसको कहता है लाओत्से, वह प्राचीन मानदंड क्या है? वह प्राचीन मानदंड यह है कि तुम्हारा जीवन का अंतिम लक्ष्य जीवन के मूल स्रोत को पा लेना है; वहीं पहुंच जाना है जहां से तुमने शुरू किया था। वह प्राचीन मानदंड है। लक्ष्य, अंत, प्रारंभ से भिन्न नहीं है। जीवन वर्तुलाकार है।

जैसे वर्तुल जहां से शुरू होता है वापस वहीं पूरा हो जाता है। और जीवन में सारी गति वर्तुलाकार है। तारे वर्तुलाकार घूमते हैं; सूरज वर्तुलाकार घूमता है; पृथ्वी वर्तुलाकार घूमती है। मौसम आते हैं एक वर्तुल में। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म-मृत्यु एक वर्तुल में घूमते हैं। सारी जीवन की गति सर्कुलर है, वर्तुलाकार है। और वर्तुल का लक्षण यह है कि चीजें वहीं आकर पूर्ण होती हैं जहां से शुरू हुई थीं। इसका अर्थ हुआः प्रथम कदम ही अंतिम कदम सिद्ध होता है। सारी यात्रा के बाद तुम अपने घर ही वापस लौट आते हो। यह है प्राचीन मानदंड।

लेकिन साधारणतः शिक्षा, ज्ञान, पांडित्य तुम्हें सिखाता है कि कोई लक्ष्य पाना है जो तुम्हारे पास नहीं है; कोई महत्वाकांक्षा पूरी करनी है; एक रेखा में चलना है। जैसे समझो। एक बच्चा पैदा हुआ। क्या लेकर पैदा होता है? खाली हाथ पैदा होता है। मरता है तब भी खाली हाथ मरता है। वही अवस्था वापस लौट आती है। जो इन दोनों को जोड़ लेता है और समझ लेता है कि इसके बीच सारा खेल है। धन आता है, जाता है; जीत होती है, हार होती है; असफलता, सफलता; पाना, खोना; लेकिन सब बीच में है। अंत में तो वहीं लौट आते हैं जहां से चले थे। खाली हाथ फिर खाली हो जाते हैं। जिसने इस बात को समझ लिया, उसने जीवन के सदगुणों का सार समझ लिया, उसने जीवन का रहस्यमय सदगुण समझ लिया, उसने वह अनूठा मानदंड पहचान लिया। क्योंकि तब वह ध्यान रखेगा कि आज नहीं कल हाथ खाली हो जाने हैं। और जिसको यह पता है कि अंत में हाथ खाली हो जाने हैं, जैसा आया था वैसा ही जाना है, वह सफलता में बहुत पागल भी न होगा, विफलता में बहुत दुखी भी न होगा; न तो सफलता में नाचेगा, और न विफलता में मुर्दा की तरह बैठ जाएगा; क्योंकि वह जानता है अंततः सब चला जाएगा। हाथ ही पास रह जाएंगे, खाली हाथ। तो आना-जाना खेल रह जाएगा। उसमें ज्यादा मूल्य नहीं है।

लेकिन सारी शिक्षा क्या सिखाती है? सारी शिक्षा वर्तुलाकार नहीं सिखाती जीवन को, रेखाबद्ध, लीनियर बताती है। शिक्षा कहती है, आज तुम्हारे पास एक रुपया है, कल दो होने चाहिए, परसों तीन होने चाहिए। आज दस हजार हैं, कल पचास हजार होने चाहिए। रेखाबद्ध तुम्हें बढ़ते जाना चाहिए। मरते वक्त करोड़ों रुपये तुम्हारे पास होने चाहिए; तभी तुम सफल हुए। अन्यथा तुम असफल हो गए। महत्वाकांक्षा चलती है एक रेखा में और जीवन चलता है वर्तुल में। महत्वाकांक्षा कहती है, जन्म हो गया, अब मृत्यु होनी ही नहीं चाहिए। अब तो जीओ, और जीने का हर उपाय करो। मरते दम तक भी मरने को टालो।

और पश्चिम में बहुत से उपाय खोज लिए गए हैं। तो बहुत से लोग मुर्दों की भांति टंगे हैं, अस्पतालों में टंगे हैं। इंजेक्शन दिए जाते हैं, वे जिंदा हैं। लेकिन उनकी स्थिति साग-सब्जी से ज्यादा नहीं है। मरना नहीं चाहते, और जीना तो जा चुका है। क्योंकि जीवन वर्तुलाकार है। तो अब वे टंगे हैं--बड़ी पीड़ा में, बड़े कष्ट में। छोड़ नहीं सकते हैं, जीवन को छोड़ने की हिम्मत नहीं है। सब उपाय किए जा रहे हैं कि वे किसी तरह बचे रहें। उनका कोई बचने का अर्थ भी नहीं है, कोई उपयोग भी नहीं है; उनके खुद के लिए भी नहीं है, दूसरे के लिए भी नहीं है। वे एक बोझ हैं। लेकिन अस्पतालों में किसी की टांगें बंधी हैं, किसी के हाथ बंधे हैं, और उनको इंजेक्शन दिए जा रहे हैं और आक्सीजन दी जा रही है। और उनको जिलाया जा रहा है। यह जबरदस्ती है।

यह रेखाबद्ध तर्क का परिणाम है। मरो मत! एक दफे पैदा हो गए, अब मरना नहीं है। एक दफे पद पर पहुंच गए, अब हटना नहीं है पद से। अब और ऊपर जाना है। और कहीं ऊपर जाने को न हो तो जिस पद पर पहुंच गए हैं आखिर में उसको पकड़े रखना है। उसको छोड़ना नहीं है आखिरी दम तक। धन जो मिल गया उसको बढ़ाते जाना है। उसी रेखा में बढ़ते चले जाना है--बिना सोचे कि जब दस हजार से सुख न मिला तो दस

लाख से कैसे मिल जाएगा! और जब दस हजार में इतना विषाद है तो दस लाख में तो और बढ़ जाएगा! और जब दस हजार में इतने हारे-थके मालूम पड़ रहे हैं तो दस लाख में क्या गति होगी!

लाओत्से कह रहा है कि जीवन का मापदंड है कि तुम स्मरण रखना कि वर्तुलाकार है सब। आज जवान हो, सदा नहीं रहोगे। और जब जवानी जाने लगे तो पकड़ना मत। विदा दे देना, शांति से विदा दे देना। क्योंकि वर्तुल अब लौटने लगा। पक्षी अपने घर आने लगा। आना ही पड़ेगा घर। यह बात अगर गहरी समझ में आ जाए तो तुम्हारे जीवन में एक सदगुण आ जाएगा, जो साधारण नीति नहीं दे सकती; जो केवल प्रज्ञा से ही पैदा होता है। तब तुम चीजों को आएंगी तो स्वागत करोगे, जाएंगी तो स्वागत करोगे। तुम जानोगे, जो आया है वह जाएगा। तुम जवान हो जाओगे तो प्रसन्न रहोगे; जवानी जाने लगेगी तो प्रसन्न रहोगे। क्योंकि ज्वार आता है तो फिर भाटा भी होगा; चांदनी रातें आएंगी, फिर अंधेरी रातें भी आएंगी। और तुम यह याद रखोगे, आखिर में वही रह जाना है जो तुम प्रथम में थे। और वह कभी खोने वाला नहीं। इसलिए भय क्या है?

खाली हाथ तो सदा तुम्हारे पास होंगे ही। नग्न तुम पैदा हुए थे, नग्न ही तुम विदा हो जाओगे। न कुछ लेकर आए थे, न कुछ लेकर जाना है। अगर यह बोध गहन हो जाए तो जीवन में एक अनासक्ति आती है। वह अनासक्ति अनासक्ति का व्रत लेने से नहीं आती। वह अनासक्ति तो इस समझ का सहज परिणाम है।

"जो इन दोनों सिद्धांतों को जानते हैं, वे प्राचीन मानदंड को भी जानते हैं। और प्राचीन मानदंड को सदा जानना ही रहस्यमय सदगुण कहलाता है।"

तो दो तरह के सदगुण हैं। एक तो साधारण सदगुण है जिसको हम आरोपित कर लेते हैं। सच बोलना चाहिए। क्योंकि सिखाया गया है, भय दिया गया है कि नहीं सच बोले तो नरक में पड़ोगे, नहीं सच बोले तो स्वर्ग न मिलेगा। भय है, लोभ है, शिक्षा है, संस्कार है। लेकिन यह वास्तविक सदगुण नहीं है। भय के कारण सच बोल रहे हो तो सच तुम्हारा भय से छोटा है। लोभ के कारण सच बोल रहे हो तो सच भी तुम्हारा लोभ का ही हिस्सा है। और सत्य कैसे लोभ का हिस्सा हो सकता है? और सत्य कैसे भय का हिस्सा हो सकता है? सत्य तो अभय है। सत्य तो निर्लोभ है। सिखाया गया है। और सब शिक्षाएं लोभ और भय पर ही खड़ी हैं।

रहस्यमय सदगुण लोभ और भय पर नहीं खड़ा है; बोध पर खड़ा है। तुमने जीवन को समझने की कोशिश की और पाया कि यहां न कुछ बचता है, न बचाने योग्य है; झूठ किसलिए बोलना है? झूठ बोल इसीलिए रहे थे कि कुछ बच जाए। चार पैसे ज्यादा बच सकते थे अगर झूठ बोल देते। सच बोलते तो चार पैसे ज्यादा लग जाते।

मुल्ला नसरुद्दीन के लड़के से मैंने पूछा कि तेरी उम्र क्या है? तो उसने कहा कि पहले यह जगह बताइए, किस जगह--बस में, ट्रेन में, घर में? क्योंकि बस में मैं सुनता हूं चार साल, घर में सुनता हूं छह साल। तो कुछ पक्का नहीं है कितनी उमर है। निर्भर करता है, कौन सी स्थिति है।

चार पैसे बच जाएं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को लेकर ट्रेन में बैठा है। और टिकट कलेक्टर ने पूछा, कितनी उमर? तो उसने कहा कि चार साल। उसने कहा कि मालूम तो सात साल का होता है। नसरुद्दीन ने लड़के की तरफ देखा और कहा कि मैं क्या करूं! अब यह चिंता-फिकर करता है अभी से इसीलिए इतना बूढ़ा दिखाई पड़ता है। बाकी है तो चार ही साल का। चिंता-फिकर के कारण सात साल का मालूम पड़ रहा है।

दो पैसे के लिए आदमी झूठ बोल रहा है। दो पैसे के लिए आदमी बेईमानी कर रहा है। दो पैसे के लिए आदमी हिंसक हो जाता है। लेकिन जिसको बोध आ गया इस बात का कि लौट जाना है वर्तुल को उसी जगह जहां से हम आए थे, वहां मुट्ठी खुल जाएगी। जिन पैसों के लिए बेईमानी की थी, झूठ बोले थे, हिंसा की थी,

वैमनस्य किया था, मुट्ठी खुल जाएगी, पैसे पड़े रह जाएंगे। पैसे तो पड़े रह जाएंगे, लेकिन पैसों के लिए हमने जो किया था वह हमारे चित्त का हिस्सा हो जाएगा; वह हमें भटकाएगा जन्मों-जन्मों में। वह बार-बार हमें बेईमानी के मार्ग पर ले आएगा और बार-बार झूठ का, प्रलोभन का बीज हम बोते रहेंगे।

लाओत्से कहता है कि जीवन के रहस्य को समझना हो तो इस बात को पहले समझ लेना कि सब चीजें अपनी मूल अवस्था में लौट जाती हैं। जहां से तुम आए थे वहीं तुम चले जाते हो। तो यहां अगर तुम हो तो इस मकान को, इस संसार को, सराय से ज्यादा मत समझना। रुके हैं रात, ठीक; सुबह विदा हो जाना है। और अगर तुमने वर्तुलाकार जीवन का अनुशासन निर्मित किया तो तुम धार्मिक हो।

इसे तुम समझ लो, यह गणित की बात है। अगर तुमने जीवन को एक रेखा में सीधा निर्मित किया तो तुम संसारी हो; अगर तुमने जीवन को वर्तुलाकार निर्मित किया तो तुम संन्यासी हो, तुम धार्मिक हो। और इन दोनों गणितों का अलग-अलग फैलाव है। जो रेखाबद्ध बढ़ता है वह कहता है, दस रुपये हैं तो ग्यारह होने चाहिए, ग्यारह हैं तो बारह होने चाहिए। वह निन्यानबे का चक्कर जिसको हम कहते हैं वह रेखाबद्ध गणित है।

तुमने वह कहानी जरूर सुनी होगी कि एक नाई है जो सम्राट के हाथ-पैर दाबता है, मालिश करता है। और सम्राट से सदा ज्यादा प्रसन्न रहता है। उसकी खुशी का कोई अंत नहीं है। और सम्राट को हमेशा हारा-थका पाता है। आखिर सम्राट ने भी एक दिन हिम्मत जुटा कर कहा कि सुन भाई, तेरा राज क्या है? तू इतना प्रसन्न क्यों रहता है? उसने कहा, राज तो मुझे पता नहीं, लेकिन मैं कोई कारण नहीं पाता दुखी होने का। और मैं कोई बहुत समझदार नहीं हूं इसलिए मैं कुछ ज्यादा बता नहीं सकता। लेकिन मैं बड़ा खुश हूं। सम्राट ने अपने वजीर से पूछा। वजीर ने कहा कि राज मैं बता सकता हूं; यह अभी निन्यानबे के चक्कर में नहीं है। राजा ने कहा, क्या मतलब? यह चक्कर क्या है? वजीर ने कहा, आप निन्यानबे रुपये रख कर एक थैली में, इसके घर में फिंकवा दो।

उसी रात निन्यानबे सोने के सिक्के उसके घर में फेंक दिए गए। उसको एक रुपया, एक सिक्का रोज मिलता था सम्राट के घर से--मालिश करने का, सेवा करने का। वह रोज के लिए पर्याप्त था। वह खूब मजे से खाता-पीता, रात चादर ओढ़ कर सोता। कल की कोई फिकर न थी। कल फिर मालिश करेगा, फिर एक रुपया मिल जाएगा। उसकी मस्ती का कोई अंत न था। गणित ही पैदा न हुआ था। लेकिन निन्यानबे ने दिक्कत डाल दी। उसने निन्यानबे गिने तो उसने सोचा कि कल तो उपवास कर लेना उचित है; एक रुपया बच जाए तो सौ हो जाएं। अब निन्यानबे में कुछ ऐसा है कि आदमी का मन सौ करना चाहता है एकदम से। तुमको भी मिल जाएं निन्यानबे तो जो पहला ख्याल उठेगा वह यह कि सौ कैसे हो जाएं। कुछ अधूरा लगता है निन्यानबे में, कुछ कमी लगती है। और एक रुपये की कुल कमी है; कोई ज्यादा भी कमी हो तो आदमी सोचे कि मुश्किल है। एक ही रुपये का मामला है। नाई ने सोचा कि आज उपवास ही कर लो। एक दिन खाना न खाएंगे तो एक रुपया बच जाएगा, सौ हो जाएंगे।

नाई उस दिन आया तो, लेकिन अब भूखा आदमी तो उदास। पैर तो दाबे उसने, लेकिन बेमन से। और पैर भी दाब रहा था तो उसके भीतर तो गणित वही चल रहा था कि एक बच जाएगा, सौ हो जाएंगे। गजब हो गया। पता नहीं कौन निन्यानबे डाल गया! सम्राट ने पूछा कि आज कुछ उदास-उदास मालूम पड़ते हो? उसने कहा, नहीं, ऐसी कुछ बात नहीं। जरा ऐसे ही, धार्मिक त्यौहार है, उपवास किया है। और उपवास की तो शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा है।

सौ पूरे हो गए, लेकिन अब दौड़ शुरू हो गई। नाई ने सोचा, जब निन्यानबे से सौ हो सकते हैं, तो एक सौ एक भी हो सकते हैं। अब रुकने का कोई उपाय न रहा। महीने भर में तो वह दीन-हीन हो गया, जर्जर हो गया।

कई उपवास कर लिए। सस्ती चीजें खरीद कर खाने लगा। दूध लेना बंद कर दिया, चाय ही पीने लगा। अब बचाना था।

वैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ मनुष्य के मन में जहां भी अधूरापन हो उसे पूरा करने की एक बड़ी गहरी पकड़ है। आदमी में ही नहीं, वे जानवरों में भी यह अनुभव करते हैं। तो उन्होंने बंदरों के पास भी प्रयोग करके देखे हैं। बंदर के पास चॉक से एक वर्तुल खींच दो अधूरा, और चॉक वहीं छोड़ दो; बंदर फौरन आकर वर्तुल को पूरा कर देगा। उसको भी अड़चन मालूम होती है कि यह अधूरा जान खाएगा, इसको पहले पूरा करो तो निश्चिंत हो जाओ।

मगर सीधी रेखा की खराबी यह है कि वह कहीं पूरी होती नहीं। वर्तुल तो पूरा हो सकता है, सीधी रेखा कैसे पूरी होगी? वह तो चलती ही जाती है। तो निन्यानबे से सौ पर जाती है, सौ से एक सौ एक पर जाती है। अब अनंत है; अब इसका कहीं कोई अंत नहीं।

महीने भर बाद राजा ने कहा कि तू समझ नहीं रहा है। तेरी हालत खराब हुई जा रही है। तू तो मुझसे भी बदतर हुआ जा रहा है। तो उसने कहा, आप पुराने अनुभवी हैं, मैं नया ही नया सिक्खड़ ही हूं, बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मगर मेरी जान ले ली किसी आदमी ने जिसने निन्यानबे रुपये मेरे घर में फेंक दिए। अब मैं आपको बताए देता हूं, कोई धार्मिक उपवास वगैरह नहीं कर रहा हूं। मेरा छुटकारा करा दो किसी तरह वह निन्यानबे रुपये से।

पुरानी कहानी है कि एक गांव में एक जवान आदमी था। और वह इतना जवान था, और इतना मस्त था--एक फकीर का लड़का था, मांग लेता था और सोया रहता था--कि राजा की सवारी निकलती तो वह हाथी की पूंछ पकड़ कर खड़ा हो जाता तो हाथी रुक जाता। राजा को बड़ा अपमान मालूम पड़ता। यह तो हद हो गई! बीच बाजार में खड़ा कर देता वह हाथी को। राजा ने कहा, यह तो बरदाश्त के बाहर है कि एक आदमी ऐसा भी है कि हमारे हाथी को रोक ले और हाथी न हिले! और हम कुछ भी न कर पाएं, अवश टंगे रह जाते हैं। इसको ठीक करना पड़ेगा। पूछा अपने वजीरों को कि क्या उपाय है? उन्होंने कहा, आप ऐसा करें इसे कुछ काम लगा दें। यह आदमी बिल्कुल खाली है; यह बिल्कुल मस्त है। यह मांग लेता है, खा लेता है, सो जाता है। इसकी शक्ति का कहीं कोई ह्रास नहीं हो रहा। उसने कहा, इसको काम में लगाएंगे कैसे? यह मानेगा नहीं। उन्होंने कहा, मान जाएगा; एक छोटा काम हम जाकर लगा देते हैं। कहा, एक रुपया रोज तुझे मिलेगा; जिस मंदिर के सामने तू सोया रहता है यहां दीया जला दिया कर शाम को ठीक छह बजे। पर ध्यान रहे, ठीक छह बजे। जिस दिन भी देर-अबेर हुई, रुपया नहीं मिलेगा। उसने कहा, यह भी कोई बात है।

मगर अब यह छह बजे उसके पीछे पड़ गए। कभी घड़ी सोची न थी; कभी समय का कोई हिसाब न रखा था। कोई जरूरत ही न थी। अब तक तो ऐसे जी रहा था जैसे समय है ही नहीं। अब पहली दफा समय उसकी चेतना में प्रविष्ट हुआ। अनंत तो वर्तुलाकार है; समय रेखाबद्ध है। अब उसको फिकर लगी रहती। वह कई दफे जाकर बाजार में घंटाघर में देख कर आता कि कहीं छह तो नहीं बज गए। रात सोता तो भी फिकर लगी रहती कि कहीं छह तो नहीं बज गए। तुम कहोगे, नासमझ था, क्योंकि रात क्या सोचना? तुम भी दफ्तर की बात रात सोचते हो, दुकान की बात रात सोचते हो। वह भी अपनी दुकान की बात सोचता है। दुकान छोटी हुई तो इससे क्या फर्क पड़ता है? अब उसने भिक्षा मांगनी भी बंद कर दी। अब रुपया ही मिल जाता था तो मजे से खाने-पीने लगा। लेकिन वह छह बजे एक कांटे की तरह चेतना में चुभ गया।

महीने भर बाद राजा की सवारी निकली। हाथी की पूंछ पकड़ी, घिसट गया। हाथी रुक न सका।

जीवन बड़ी विराट ऊर्जा है। तुम अगर घिसट गए हो तो सिर्फ इसलिए घिसट गए हो कि उस विराट ऊर्जा को तुमने वर्तुलाकार न बना कर रेखाबद्ध बनाने की चेष्टा की है। धन से, राजनीति से, पद से तुम सीधे चलने की कोशिश कर रहे हो कि कहीं अंत ही न हो।

बुद्ध ने कहा है, जो चीज भी प्रारंभ होती है उसका अंत होता है। इस सत्य को जिसने जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। तब यह संसार एक माया हो जाता है, एक सपना, जो आज है और कल नहीं हो जाएगा। बचेगा तो वही जो तुम जन्म के साथ लेकर आए थे। उतना ही। और उतनी तुम्हारी संपदा है। और उतना काफी है। क्योंकि वहीं परमात्मा छिपा है। उससे ज्यादा की किसी को भी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें जो चाहिए वह तुम्हें मिला ही हुआ है। और तुम्हें जो नहीं चाहिए उसकी दौड़ में तुम उसे खो रहे हो जो तुम्हें मिला हुआ है। यह है मूल मापदंड।

"और प्राचीन मानदंड को जानना ही रहस्यमय सदगुण है।"

तब तुम्हारे जीवन में एक नीति की सुवास उठेगी। उस सुवास में न तो गंध होगी लोभ की, न दुर्गंध होगी भय की। वह सुवास अपार्थिव है।

तो दो तरह के नैतिक व्यक्ति हैं। एक तो वे नैतिक व्यक्ति हैं जो गणित के हिसाब से नैतिक हो गए हैं। डर है पुलिसवाले का, अदालत का, मुकदमे का, नरक का, स्वर्ग का; वे भयभीत हैं। अगर भय उठा लो, वे अभी बेईमान हो जाएंगे, अभी चोर हो जाएंगे। उनकी नैतिकता वास्तविक नहीं है, जबरदस्ती आरोपित है।

और एक धार्मिक व्यक्ति की नैतिकता है, जो इसलिए नैतिक है कि वह जानता है यहां कुछ पकड़ने को ही नहीं है, कुछ बचाने को ही नहीं है। और बचाओ, कितना ही बचाओ, छूट ही जाएगा। तो पकड़ने का सार क्या है? जो छूट ही जाना है, उसे छोड़ देना ही उचित है। जो मिट ही जाना है, वह मिट ही गया, ऐसा जान लेना उचित है। जो तुमसे छीन लिया जाएगा, अगर तुम खुद दे दो तो संन्यास है। मौत जो छीनेगी, वह अगर तुम खुद दे दो तो संन्यास है। मौत को जो संन्यास बना लेता है वह परम ज्ञानी है। मौत तो करेगी वही; उसमें कुछ बदलाहट होने वाली नहीं है। तुम्हें वह अपवाद नहीं देगी; मौत छीन लेगी सब। अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ जाए तो तुम अपनी मौज से ही छोड़ देते हो सब। तुम कहते हो, तब ठीक है। पानी पर खिंची रेखा है; खिंच भी नहीं पाती, मिट जाती है। कौन इसके लिए पागल हो? रेत का बनाया घर है; हवा का जरा सा झोंका गिरा देता है। कौन इसके लिए दीवानगी करे?

जैसे ही तुम्हें यह मापदंड ख्याल में आने लगा, तो लाओत्से कहता है, "जब रहस्यमय सदगुण स्पष्ट, दूरगामी बनता है... ।"

कि दूर तक तुम्हें दिखाई पड़ने लगता है जीवन का अर्थ वर्तुलाकार है, कि तुम देखते हो कि दूर जाकर रेखा मुड़ गई है, और वहीं आ गई है जहां से शुरू हुई थी।

"और चीजें उदगम की ओर लौट जाती हैं।"

जब तुम्हें दिखाई पड़ता है कि हर गंगा गंगोत्री चली आती है वापस।

"तब, और तभी, उदय होता है भव्य लयबद्धता का।"

तब तुम्हारे जीवन में एक संगीत का जन्म होता है, एक ऐसी लयबद्धता का जिसे तुमने कभी जाना नहीं। तब सब अशांति खो जाती है, सब तनाव झर जाते हैं सूखे पत्तों की भांति। तुम्हारे जीवन में एक भीतरी हरियाली आ जाती है, एक अनूठा स्रोत आ जाता है। तुम्हारा सब रेगिस्तान खो जाता है। तुम एक मरूद्यान हो जाते हो। अंधकार मिट जाता है। भीतर का दीया अपनी पूरी शक्ति में प्रकट हो जाता है, दीप्तमान हो जाता है।

इस आत्यंतिक लयबद्धता का नाम ही परमात्मा है। लाओत्से परमात्मा का नाम उपयोग नहीं करता, क्योंकि पंडितों ने उसका नाम इतना उपयोग किया है कि वह नाम गंदा हो गया, वह जूठा हो गया। पंडितों ने उस नाम को बिगाड़ डाला। उन पंडितों की बास शब्द में भर गई। इसलिए लाओत्से परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं करता। लेकिन वह उस परमात्मा की ही बात कर रहा है जब वह कहता है परम लयबद्धता।

"दि एनशिएंट्स हू न्यू हाऊ टु फालो दि ताओ एंड नाट टु एनलाइटेन दि पीपुल, बट टु कीप देम इग्नोरेंट। दि रीजन इट इ.ज डिफीकल्ट फॉर दि पीपुल टु लिव इन पीस इ.ज बिकाज ऑफ टू मच नालेज। दोज हू सीक टु रूल ए कंट्री बाइ नालेज आर दि नेशंस कर्स। दोज हू सीक नाट टु रूल ए कंट्री बाइ नालेज आर दि नेशंस ब्लेसिंग। दोज हू नो दीज टू (प्रिंसिपल्स) आल्सो नो दि एनशिएंट स्टैंडर्ड। एंड टु नो आलवेज दि एनशिएंट स्टैंडर्ड इ.ज काल्ड दि मिस्टिक वर्च्यू। व्हेन दि मिस्टिक वर्च्यू बिकम्स क्लियर, फार-रीचिंग, एंड थिंग्स रिवर्ट बैक (टु देयर सोर्स), देन एंड देन ओनली इमर्जेज दि ग्रैंड हार्मनी।"

भव्य लयबद्धता का तभी जन्म होता है। वह लयबद्धता तुम्हारे भीतर छिपी है। तुम रेखाबद्ध चलना बंद कर दो, तुम वर्तुलाकार बना लो जीवन को, तत्क्षण तुम्हें अपने भीतर छिपे हुए संगीत के स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे। वे स्वर परमात्मा के स्वर हैं। वे स्वर शून्यता के, मोक्ष के स्वर हैं। और तुम्हारे भीतर ऐसी अनंत फूलों की वर्षा हो जाएगी। उस आनंद की, जिसकी तुम खोज कर रहे हो और दर-दर भीख मांग रहे हो, तुम्हारे भीतर अहर्निश वर्षा होने लगेगी। उसे तुम लेकर ही आए हो। तुम उसे खो रहे हो, क्योंकि तुम एक गलत ढंग से जी रहे हो। तुम्हारे जीने का ढंग रेखाबद्ध है, लीनियर है। और जीने का वास्तविक ढंग सर्कुलर, वर्तुलाकार ही हो सकता है।

जिसने इस प्राचीन मानदंड को पहचान लिया, वह सब पा लेता है जो भी पाने योग्य है। वह मिला ही हुआ है। तुमने उसे कैसे खोया, यह बड़े रहस्य की बात है। तुम कैसे उससे चूकते चले जाते हो, यह बड़ा अदभुत है। ज्ञान से वह न मिलेगा; ज्ञान को पोंछ कर मिटा डालने से। जीने से मिलेगा; जानने से नहीं। प्रेम से मिलेगा; तर्क से नहीं। हृदय से जुड़ेगा संबंध उससे। सारी चेष्टा यही है कि कैसे तुम खोपड़ी से थोड़े नीचे उतर आओ; कैसे तुम हृदय में धड़कने लगो; कैसे तुम विचारो कम, अनुभव ज्यादा करो। इतना ही करना है। फासला बहुत बड़ा नहीं है। सिर से हृदय के बीच जरा सा ही फासला है। चाहो तो एक कदम में भी पूरा कर सकते हो। और चाहो तो अनंत जन्मों तक प्रतीक्षा कर सकते हो। तुम्हारी मर्जी। दरवाजा इस वक्त भी खुला है। लेकिन तुम अगर स्थगित करना चाहो तो तुम्हारी मर्जी। इस क्षण ही पा सकते हो। न तो तुम्हारे कर्म बाधा बनेंगे, न तुम्हारा अतीत का अज्ञान बाधा बनेगा। कोई बाधा नहीं है। क्योंकि अगर हमें कुछ और पाना होता जो हमें मिला ही न था तो बाधा बन सकती थी। पाना हमें अपना स्वभाव है। पाना वही है जो हम पाए ही हुए हैं।

आज इतना ही।

एक सौ दसवां प्रवचन

श्रेष्ठता वह जो अकेली रह सके

Chapter 66

The Lords Of The Ravines

How did the great rivers and seas become the Lords of the Ravines?
By being good at keeping low.
That was how they become the Lords of the Ravines.
Therefore in order to be the chief among the people,
One must speak like their inferiors.
In order to be foremost among the people,
One must walk behind them.
Thus it is that the Sage stays above,
And the people do not feel his weight;
Walk in front,
And the people do not wish him harm.
Then the people of the world are glad
To uphold him forever.
Because he does not contend,
No one in the world can contend against him.

अध्याय 66

घाटियों के स्वामी

यह कैसे हुआ कि महान नदी और समुद्र खड्डों के, घाटियों के स्वामी बन गए?
झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।
इस तरह वे खड्डों-घाटियों के स्वामी बन गए।
इसलिए लोगों के बीच प्रधान होने के लिए
किसी को उनके अनुगत की तरह बोलना चाहिए।
लोगों के बीच उनका अगुआ होने के लिए

किसी को उनके पीछे-पीछे चलना चाहिए।

इस तरह संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते;

वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।

और तब संसार के लोग खुशी-खुशी और सदा के लिए उन्हें सिर-आंखों पर रखते हैं।

क्योंकि वे कलह नहीं करते, इसलिए संसार में कोई उनके विरुद्ध संघर्ष नहीं कर पाता।

इस सदी के एक बहुत बड़े मनसविद अल्फ्रेड एडलर ने मनुष्य के जीवन की सारी उलझनों का मूल स्रोत हीनता की ग्रंथि में पाया है। हीनता की ग्रंथि का अर्थ है कि जीवन में तुम कहीं भी रहो, कैसे भी रहो, सदा ही मन में यह पीड़ा बनी रहती है कि कोई तुमसे आगे है, कोई तुमसे ज्यादा है, कोई तुमसे ऊपर है। और इसकी चोट पड़ती रहती है। इसकी चोट भीतर के प्राणों को घाव बना देती है। फिर तुम जीवन के आस्वाद को भोग नहीं सकते; फिर तुम सिर्फ जीवन से पीड़ित, दुखी और संत्रस्त होते हो।

हीनता की ग्रंथि, इनफीरियारिटी कांप्लेक्स, अगर एक ही होती तो भी ठीक था। तो शायद कोई हम रास्ता भी बना लेते। अल्फ्रेड एडलर ने तो हीनता की ग्रंथि शब्द का प्रयोग किया है; मैं तो बहुवचन का प्रयोग करना पसंद करता हूंः हीनताओं की ग्रंथियां। क्योंकि कोई तुमसे ज्यादा सुंदर है। और किसी की वाणी में कोयल है, और तुम्हारी वाणी में नहीं। और कोई तुमसे ज्यादा लंबा है; कोई तुमसे ज्यादा स्वस्थ है। किसी के पास ज्यादा धन है; किसी के पास ज्यादा ज्ञान है; किसी के पास ज्यादा त्याग है। कोई गीत गा सकता है; कोई संगीतज्ञ है; कोई प्रतिमा गढ़ता है; कोई चित्रकार है; कोई मूर्तिकार है। करोड़-करोड़ लोग हैं तुम्हारे चारों तरफ, और हर आदमी में कुछ न कुछ खूबी है। बिना खूबी के तो परमात्मा किसी को पैदा करता ही नहीं। और जिसके भीतर हीनता की ग्रंथि है उसकी नजर सीधी खूबी पर जाती है कि दूसरे आदमी में कौन सी खूबी है। क्योंकि जाने-अनजाने वह हमेशा तौल रहा है कि मैं कहीं किसी से पीछे तो नहीं हूं! तो उसकी नजर झट से पकड़ लेती है कि कौन सी चीज है जिसमें मैं पीछे हूं। तो जितने लोग हैं उतनी ही हीनताओं का बोझ तुम्हारे ऊपर पड़ जाता है। तुम करीब-करीब हीनताओं की कतार से घिर जाते हो। एक भीड़ तुम्हें चारों तरफ से दबा लेती है। तुम उसी के भीतर तड़फड़ाते हो। और बाहर निकलने का कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि क्या करोगे तुम?

एक आदमी ने मुझे कहा, कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। दो साल पहले अपनी प्रेयसी के साथ समुद्र के तट पर बैठा था। एक आदमी आया, उसने पैर से रेत मेरे चेहरे में उछाल दी और मेरी प्रेयसी से हंसी-मजाक करने लगा। तो मैंने पूछा कि तुमने कुछ किया? उसने कहा, क्या कर सकता था? मेरा वजन सौ पौंड, उसका डेढ़ सौ पौंड। फिर भी तुमने कुछ तो किया होगा? उसने कहा, मैंने किया यह कि स्त्रियों की तो फिक्र ही छोड़ दी उस दिन से। हनुमान अखाड़े में भर्ती हो गया। हनुमान चालीसा पढ़ता हूं और दंड-बैठक लगाता हूं। फिर डेढ़ सौ पौंड मेरा भी वजन हो गया दो साल में। फिर मैंने एक स्त्री खोजी, गया समुद्र-तट पर। वहां बैठा भी नहीं था कि एक आदमी आया, उसने फिर लात मारी रेत में, मेरी आंखों में धूल भर दी, फिर मेरी प्रेयसी से हंसी-मजाक करने लगा।

मैंने कहा, अब तो तुम कुछ कर सकते थे।

उसने कहा, क्या कर सकते थे? मैं डेढ़ सौ पौंड का, वह दो सौ पौंड का।

तो अब क्या करते हो?

उसने कहा, फिर अब हनुमान चालीसा पढ़ता हूं; फिर हनुमान अखाड़े में व्यायाम करता हूं। लेकिन अब आशा छूट गई। क्योंकि दो सौ पौंड का हो जाऊंगा, क्या भरोसा कि ढाई सौ पौंड का आदमी नहीं आ जाएगा।

तुम कभी भी हीनता के बाहर नहीं हो सकते उस रास्ते से। कितने लोग हैं! कितने विभिन्न रूप हैं! कितनी विभिन्न कुशलताएं हैं, योग्यताएं हैं! तुम उसमें दब मरोगे। अल्फ्रेड एडलर ने मनुष्य की सारी पीड़ाओं और चिंताओं का आधार दूसरे के साथ अपने को तौलने में पाया है।

गहरे जैसे-जैसे एलडर गया उसको समझ में आया कि आदमी क्यों आखिर अपने को दूसरे से तौलता है? क्या जरूरत है? तुम तुम जैसे हो; दूसरा दूसरा जैसा है। यह अड़चन तुम उठाते क्यों हो? पौधे नहीं उठाते। छोटी सी झाड़ी बड़े से बड़े वृक्ष के नीचे निश्चिंत बनी रहती है; कभी यह नहीं सोचती कि यह वृक्ष इतना बड़ा है। छोटा सा पक्षी गीत गाता रहता है; बड़े से बड़ा पक्षी बैठा रहे, इससे गीत में बाधा नहीं आती कि मैं इतना छोटा हूं, क्या खाक गीत गाऊं! पहले बड़ा होना पड़ेगा। छोटे से घास में भी फूल लग जाते हैं; वह फिक्र नहीं करता कि इतने-इतने बड़े वृक्षों के नीचे तुम फूल उगाने की कोशिश कर रहे हो, पागल हुए हो! पहले बड़े हो जाओ; फिर फूल लाना। नहीं, प्रकृति में तुलना है ही नहीं; सिर्फ आदमी के मन में तुलना है।

तुलना क्यों है? तो एडलर ने कहा कि तुलना इसलिए है कि तुम--और सारी मनुष्यता--एक गहन दौड़ से भरी है। उस दौड़ को एडलर कहता हैः दि विल टु पावर, शक्ति की आकांक्षा। कैसे मैं ज्यादा शक्तिवान हो जाऊं! फिर चाहे वह धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, यश हो, कुशलता हो, कुछ भी हो। कैसे मैं शक्तिशाली हो जाऊं, यही मनुष्य की सारी दौड़ का आधार है। और जब तुम शक्तिशाली होना चाहोगे तो तुम पाओगे कि तुम शक्तिहीन हो। जितना ही तुम शक्तिशाली होना चाहोगे उतनी ही तुम्हारी अशक्ति का तुम्हें पता चलेगा। क्योंकि जगह-जगह तुम्हारी शक्ति की सीमा आ जाएगी। सिकंदर और नेपोलियन और हिटलर भी चुक जाते हैं। उनकी भी शक्ति की सीमा आ जाती है। आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसी जगह नहीं पहुंच पाया जहां वह कह सके कि शक्ति की मेरी आकांक्षा तृप्त हो गई। जो कभी नहीं हुआ वह कभी होगा भी नहीं। और तुम अपने को अपवाद मानने की कोशिश मत करना।

लाओत्से है मार्ग। एडलर ने प्रश्न तो खड़ा कर दिया, उलझन भी साफ कर दी, लेकिन मार्ग एडलर को भी नहीं सूझता कि बाहर इसके कैसे हुआ जाए। पश्चिम के मनोविज्ञान के पास मार्ग है ही नहीं। अभी पश्चिम का मनोविज्ञान समस्या को समझने में ही उलझा है। अभी समस्या ही समझ में नहीं आई है पूरी तरह तो उसके बाहर जाने की तो बात ही बहुत दूर है। कैसे कोई बाहर जाए? तो एडलर का तो सुझाव इतना ही है कि तुम्हें अतिशय की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए; सामान्य रूप से जो उपलब्ध हो सकता है उसका प्रयास करना चाहिए।

लेकिन इससे कुछ हल न होगा। क्योंकि कहां अतिशय की सीमा शुरू होती है? कौन सी चीज सामान्य है? जो तुम्हारे लिए सामान्य है वह मेरे लिए सामान्य नहीं। जो मेरे लिए सामान्य है, तुम्हारे लिए अतिशय हो सकती है। एक आदमी एक घंटे में पंद्रह मील दौड़ सकता है; वह उसके लिए सामान्य है। तुम एक घंटे में पांच मील भी दौड़ गए तो मुसीबत में पड़ोगे। वह तुम्हारे लिए सामान्य नहीं है। कौन तय करेगा? कहां तय होगी यह बात कि क्या सामान्य है? औसत क्या है? एडलर कहता है, औसत में जीना चाहिए; तो तुम इतने ज्यादा पीड़ित न होओगे। लेकिन औसत कहां है? कैसे तय करोगे? और तुम ही तो तय करने वाले हो और तुम ही रुग्ण हो। तुम्हारे रोग से ही तय होगा कि औसत क्या है। अगर तुमसे कोई पूछे कि एक आंकड़ा बता दो, कितने रुपये से तुम राजी हो जाओगे; कैसे बता पाओगे? और अगर कोई कहता हो कि जितना तुम बताओगे उतना हम देने

को तैयार हैं; तब तुम और मुसीबत में पड़ जाओगे। दस हजार? मन कहेगा, क्यों दस हजार की बात कर रहे हो जब बीस मांगे जा सकते हैं?

एक बड़ी पुरानी कहानी है। एक युवक सत्य की खोज में था। वह सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण हो गया। उसको भरोसा था कि अब गुरु कह देगा कि अब तुम जा सकते हो संसार में, अब तुम योग्य हो गए। लेकिन गुरु ने कहा, तू सब परीक्षाएं उत्तीर्ण हो गया; आखिरी बाकी रह गई है। और आखिरी परीक्षा मैं नहीं ले सकता हूं; उस परीक्षा का स्वभाव ही ऐसा है--वह तू पीछे समझ पाएगा--कि उस परीक्षा के लिए मुझे तुझे कहीं भेजना होगा। तो युवक ने कहा, भेजें। उसने सम्राट के पास भेजा।

गांव में जो सम्राट था, उसका नियम था कि जो व्यक्ति भी पहले उसके द्वार पर आ जाए सुबह, वह जो भी मांगे, वह सम्राट दे देता था। लेकिन लोग सुखी थे, सरल थे, और महत्वाकांक्षा का ज्वर पकड़ा न था। इसलिए कोई आता ही न था। कई दिन तो ऐसे ही निकल जाते थे कि सम्राट उठता और दरवाजे पर कोई होता ही नहीं। लोग उस अवस्था में रहे होंगे जिसकी लाओत्से बात करता है कि जब ज्ञान की बीमारी उन्हें पकड़ी न थी।

लेकिन यह युवक तो ज्ञान की बीमारी में पड़ गया था। यह तो सब परीक्षाएं उत्तीर्ण कर आया था। यह तो सुशिक्षित हो गया था। तो उसने सोचा कि सुबह ही वहां पहुंच जाना चाहिए, जब सम्राट के पास ही जा रहे हैं। तो वह तीन बजे रात से ही वहां जाकर खड़ा हो गया कि कहीं ऐसा न हो कि कोई और पहले पहुंच जाए। कोई आया भी नहीं, कोई क्यू भी न लगा। सुबह जब भोर हुई, सम्राट बाहर आया, तो वह अकेला ही था। पता था उसे कि सम्राट पूछेगा, क्या चाहते हो? तो वह सोचता रहा; सोच-सोच कर उसका सिर घूमने लगा। जितना उसने सोचा उतने ही आंकड़े बड़े होते गए। आंकड़ों की कोई कमी है!

सम्राट आया। उसने कहा, क्या चाहते हो? उस युवक ने कहा कि तय नहीं कर पा रहा हूं। क्या आप इतनी कृपा करेंगे कि आप बगीचे का एक चक्कर लगा लें, तब तक मैं और सोच लूं।

सम्राट एक चक्कर लगा कर लौट आया। उस युवक ने कहा कि नहीं, मैं न सोच पाऊंगा, क्योंकि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मैं जितना ही सोचता हूं, पाता हूं वह कम है। अरबों-खरबों पर पहुंच गया है हिसाब भीतर, लेकिन फिर भी मैं सोचता हूं, यह भी हो सकता है कि सम्राट के पास इससे ज्यादा हो। और जो शेष रह जाएगा वह जिंदगी भर खलेगा। तो अब तो मैं एक ही प्रार्थना करता हूं कि जो भी आपके पास है सब मुझे दे दें। आप जो कपड़े पहने हैं इन्हीं को पहने हुए बाहर निकल जाएं।

सोचा था कि सम्राट घबरा जाएगा, बचने की तरकीब करेगा। लेकिन सम्राट प्रफुल्लित हो गया। उसने आकाश की तरफ हाथ उठाया और कहा, परमात्मा, धन्यवाद! जिस आदमी की मुझे प्रतीक्षा थी वह आ गया।

वह लड़का थोड़ा घबराया। उसने कहा, बात क्या है? आप बड़े प्रसन्न मालूम होते हैं! उसने कहा, मैं बहुत थक गया इस महल, इस साम्राज्य, इस उपद्रव से। कोई मांगने ही नहीं आता। अब किसी को जबरदस्ती तो दिया नहीं जाता। अब तुम आ ही गए अपनी तरफ से, तुम्हारी बड़ी कृपा है। तुम भीतर जाओ; मैं बाहर जाता हूं। उसने कहा कि एक कृपा और करें, आप एक चक्कर और लगा आएं, मुझे एक बार और सोच लेने दें। इतना समय दिया, थोड़ा समय और! सम्राट ने कहा कि नहीं, अब तुम कह ही चुके हो। पर युवक ने पैर पकड़ लिए। तो सम्राट ने कहा, तुम्हारी मर्जी। सम्राट एक चक्कर लगा कर आया, वहां युवक को उसने पाया नहीं। दरबान को वह कह गया था कि जब सम्राट ही भागने को उत्सुक है तो हम क्यों फंसें! वह भाग गया था।

कहां तय करोगे? सब पर ही जाकर तय होगा। और सब पाकर भी तृप्ति नहीं होती। सम्राट प्रसन्न है देने को। सब भी मिल जाए तो तुम्हारी हीनता का कुआं भरेगा नहीं; वह दुष्पूर है। वह खड्ड ऐसा है कि उसमें कोई तलहटी नहीं है। तुम जितना डालते जाओगे उतना ही वह पीता जाएगा। और जितना ज्यादा तुम पीते जाओगे उतना ही पता चलेगा कैसे हीन हो।

नहीं, एडलर के पास सुझाव नहीं है। एडलर कहता है, समझाने-बुझाने से, एक बौद्धिक प्रौढ़ता से सब ठीक हो जाएगा। लेकिन सब ठीक हुआ नहीं है, खुद एडलर के जीवन में ही ठीक न हुआ। एडलर था शिष्य फ्रायड का। लेकिन फिर महत्वाकांक्षा पकड़ गई कि यह तो शिष्य ही रहूंगा; कितना ही बड़ा हो जाऊं; गुरु फ्रायड ही रहेगा। तो गुरु से झगड़ कर अलग हो गया। और फिर पूरी जिंदगी कोशिश की कि एक अलग ही मनोविज्ञान को निर्मित कर ले। वही महत्वाकांक्षा जिसको वह दूसरों में हल करने जा रहा है, वही महत्वाकांक्षा खुद पकड़ ली। और फ्रायड और एडलर के बीच बड़ी वैमनस्य की स्थिति बनी रही।

जो अपना नहीं हल कर पाता वह दूसरे का कैसे हल कर पाएगा?

एक बड़ा प्रसिद्ध मजाक है एडलर के संबंध में कि वह एक सभा में बोलता था तो उसने अपना सिद्धांत समझाया। और जब भी वह सिद्धांत समझाता था तो वह यह कहता था कि जिन-जिन लोगों में किसी तरह की कमी होती है, वे ही लोग उस कमी को पूरी करने के लिए महत्वाकांक्षा से भर जाते हैं।

अक्सर देखा गया है कि काना आदमी चालाक हो जाता है। पुरानी कहावतें हैं कि काने से जरा सावधान रहना। काना सुबह मिल जाए तो अपशगुन रहा है--सारी दुनिया में। क्या कारण है? क्योंकि काने के पास एक आंख कम है, उस आंख की कमी वह कैसे पूरी करेगा? उसे पूरा करना ही पड़ेगा। वह चालाकी से पूरी करता है; वह ज्यादा चालाक हो जाता है। वह एक ही आंख से दो आंख का काम लेने की कोशिश करने लगता है। इससे चालाकी पैदा होती है। वह कनिंग हो जाता है। इसलिए काने आदमी को तुम सीधा-सरल न पाओगे; उसमें कुछ न कुछ तिरछापन होगा। और काने सब तरह की कोशिश करेंगे कि आंख वालों को कैसे हरा दें। क्योंकि इसके सिवा वे अपनी श्रेष्ठता कैसे सिद्ध कर पाएंगे?

एडलर कहता था कि बचपन में जो लोग ठीक से नहीं चल पाते या जो बच्चे देर से चलते हैं, वे बड़े दौड़ाक हो जाते हैं बाद में। वे दुनिया में जो ओलंपिक प्रतियोगिताएं जीतते हैं वे वही बच्चे हैं जो बचपन में देर से चले। क्योंकि उनको कमी पूरी करनी है; उनको दुनिया को दिखला देना है कि तुम यह मत समझना कि हम कोई धीमे-धीमे चलने वाले हैं। हमारा कोई मुकाबला ही नहीं है। यह समझा रहा था एडलर एक सभा में। एक आदमी ने उठ कर कहा, और क्या हम यह समझें कि जिनके मन में कुछ खराबी होती है वे मनोवैज्ञानिक हो जाते हैं?

इस मजाक में थोड़ी सचाई मालूम पड़ती है। क्योंकि न तो फ्रायड स्वस्थ है मन से जिसने इस सदी के मनोविज्ञान को जन्म दिया। न उसका प्रतिस्पर्धी एडलर, जुंग, वे स्वस्थ हैं। मानसिक रूप से वे सभी रुग्ण मालूम होते हैं।

पूरब के पास हल है। लाओत्से के पास हल है।

लाओत्से कहता है कि शक्ति की आकांक्षा में ही रोग है। दि विल टु पावर, वहीं सारी बीमारी है। और जब तक वह आकांक्षा ही न छूट जाए तब तक तुम कोई हल न खोज पाओगे। इतना कर सकते हो कि कुछ लोग थोड़े कम बीमार, कुछ लोग थोड़े ज्यादा बीमार। लेकिन फासला मात्रा का रहेगा, गुण का अंतर नहीं होगा। कुछ

लोग सामान्य रूप से अस्वस्थ, कुछ लोग असामान्य रूप से अस्वस्थ। लेकिन फासला मात्रा का होगा, गुण का न होगा।

लाओत्से कहता है, एक और ही रास्ता है। और वह रास्ता हैः घाटी के राज को जान लेना। वर्षा होती है; पहाड़ खाली रह जाते हैं, घाटियां भर जाती हैं, लबालब भर जाती हैं। राज क्या है? राज यह है कि घाटी पहले से ही खाली है। जो खाली है वह भर जाता है। पहाड़ पहले से ही भरे हैं, वे खाली रह जाते हैं। अहंकार रोग है, तो निरहंकारिता में राज है, कुंजी है।

तुम जब तक दूसरे से अपने को तौलोगे और दूसरे से आगे होना चाहोगे तब तक तुम पाओगे कि तुम सदा पीछे हो। जिसने आगे होना चाहा, वह सदा पाएगा कि वह पीछे है। जिसने प्रतिस्पर्धा की, वह सदा पाएगा कि हार गया। लेकिन जो पीछे होने को राजी हो गया, जीवन की इस व्यर्थ दौड़ को देख कर, समझ कर, ध्यान से जो पीछे खड़ा हो गया, और जिसने कहा हम दौड़ते नहीं आगे होने को, लाओत्से कहता है, एक अनूठा चमत्कार घटित होता है कि जो आगे होने की दौड़ में होते हैं वे हीन हो जाते हैं और जो पीछे खड़े हो जाते हैं उनकी श्रेष्ठता की कोई सीमा नहीं है।

सच तो यह है कि पीछे तुम खड़े ही जैसे होते हो वैसे ही श्रेष्ठ हो जाते हो, हीनता मिट जाती है। क्योंकि तुलना ही न रही तो हीन कैसे हो सकते हो? किसी से तौलोगे तो पीछे हो सकते हो। तौलते ही नहीं किसी से, पीछे, सबसे पीछे ही खड़े हो गए, अपने तईं खड़े हो गए, अपने हाथ से ही संघर्ष छोड़ दिया और पीछे आ गए, अब तो तुम्हें हीनता का कैसे बोध होगा? हीनता का घाव भर जाएगा; और श्रेष्ठता के फूल उस घाव की जगह प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। श्रेष्ठ केवल वे ही हो पाते हैं जो श्रेष्ठ होने की दौड़ में नहीं पड़ते। और हीन से हीनतर होता जाता है मनुष्य, जितनी ही दौड़ में पड़ता है।

अब लाओत्से के वचन हम समझने की कोशिश करें।

"यह कैसे हुआ कि महान नदी और समुद्र खड्डों के, घाटियों के स्वामी बन गए? झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।"

उनकी कला एक ही है कि वे झुकना जानते हैं। झुकना बड़ी से बड़ी कला है। वस्तुतः जहां जितनी झुकने की क्षमता होगी उतना जीवन होगा। जीवन का लक्षण ही झुकना है।

छोटा बच्चा, देखो, कितना लोचपूर्ण है। जैसा चाहो वैसा झुक जाए, हाथ-पैर के पीछे जैसे हड्डियां नहीं हैं। लेकिन बूढ़ा आदमी हड्डी ही हड्डी हो जाता है। लोच खो जाती है; झुकना बंद हो जाता है; सख्त हो जाता है। पक्षाघात की अवस्था आ गई। बूढ़ा आदमी झुक नहीं सकता शरीर से। यही तो मौत का लक्षण है कि अब मौत करीब आ रही है। क्योंकि जीवन तो वहीं बहता है जहां झुकना है। और न केवल शरीर के संबंध में यह सच है, मन के संबंध में भी यही सच है। छोटा बच्चा मन से झुकने को हमेशा राजी है। इसीलिए तो छोटे बच्चे सीखने में समर्थ हैं। बूढ़ा आदमी सीखने में असमर्थ हो जाता है। मन भी नहीं झुकता।

बगीचे में जाकर माली से पूछो! तो वह कहता है कि वृक्ष को अगर झुकाना हो, कोई ढंग देना हो, तो वह तभी दिया जा सकता है जब पौधा छोटा हो और लोचपूर्ण हो। जब पौधा सख्त हो जाएगा, फिर झुकाओगे तो शाखाएं टूट जाएंगी। कभी तेज तूफान आता है तो बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, छोटे-छोटे घास के पौधे बच जाते हैं। होना तो उलटा चाहिए था कि निर्बल घास के छोटे-छोटे पौधे, जिनमें कोई प्राण नहीं, जिनमें कोई बल नहीं दिखाई पड़ता, तूफान इनको मिटा जाता, ये नष्ट हो जाते। बड़े वृक्ष जो आकाश को छूते हैं, जिनकी शाखाओं ने बड़ा जाल फैलाया है, जिनके अहंकार की कोई सीमा नहीं, जो उठे हैं उत्तुंग, चांद-सूरज को छूने की जिनकी दौड़

है, वे गिर जाते हैं। तूफान उन्हें मिटा जाता है। कोई तरकीब घास का पौधा जानता है जो बड़े वृक्ष को भूल गई। बड़ा वृक्ष सख्त हो गया है; टूट सकता है, झुक नहीं सकता।

अकड़ वाले आदमी के लिए हम यही तो कहते हैं कि वह आदमी ऐसी अकड़ वाला है कि टूट सकता है, झुक नहीं सकता। और समस्त अहंकारियों की शिक्षा यही है कि टूट जाना, मगर झुकना मत।

लाओत्से की शिक्षा बिल्कुल भिन्न है। लाओत्से कहता है, ऐसा टूटने की जल्दी क्या! ऐसा टूटने का आग्रह क्या! आत्मघात के लिए इतनी उत्सुकता क्यों है? झुक जाना, क्योंकि झुकने में ही तुम तूफान को जीत सकोगे। तुम टूटो कि न टूटो; तूफान तुम्हारी फिक्र करता है? तूफान को पता भी न चलेगा कि तुम टूट गए। तूफान अपनी राह से चला जाएगा। तुम नाहक मिट जाओगे।

छोटे घास के पौधे की भांति हो जाना। तूफान आता है, घास का पौधा जमीन पर लेट जाता है। अकड़ रखता ही नहीं; जरा भी ना-नुच नहीं करता। यह भी नहीं कहता कि कैसे करूं, यह ठीक नहीं है। क्यों मुझे झुका रहे हो? बात ही नहीं उठाता। तूफान आता है, तूफान के साथ ही झुक जाता है। तूफान बाएं बह रहा हो तो बाएं, तूफान दाएं तो दाएं; दक्षिण तो दक्षिण, उत्तर तो उत्तर। तूफान जहां जा रहा हो, घास का छोटा पौधा तूफान के साथ मैत्री कर लेता है, सहयोग कर लेता है। तूफान के विरोध में खड़ा नहीं होता, तूफान की धारा में बह जाता है। और जिस घास के पौधे ने तूफान में बहने की कला जान ली, वह तूफान पर सवार हो गया; उसे तूफान मिटा न सकेगा। अब आ जाएं और बड़े तूफान भी, अब महा तूफान और आंधियां उठें, तो भी इस पौधे को कुछ भी न कर सकेंगे। वह सो जाएगा जमीन पर, तूफान गुजर जाएगा।

तूफान सदा नहीं रहते; आते हैं, चले जाते हैं। तूफान के जाने के बाद तुम देखोगे, बड़े-बड़े वृक्ष उखड़े पड़े हैं, उनकी जड़ें टूट गईं, उनके प्राण-पखेरू उड़ गए; छोटे-छोटे घास के पौधे वापस लहलहा रहे हैं--पहले से भी ज्यादा ताजे। तूफान सिर्फ उनकी धूल झड़ा गया; इससे ज्यादा कुछ भी तूफान न कर पाया।

लाओत्से को बहुत प्रिय है झुकने की कला। वह कहता है, जब तुम्हें कोई झुकाने आए तुम पहले से ही झुक जाना। तुम उसे इतना भी मौका मत देना कि झुकाने की कोशिश उसे करनी पड़े।

जैसे कभी-कभी छोटा बच्चा अपने बाप से कुश्ती लड़ता है तो बाप क्या करता है? कुश्ती लड़ता है; बाप जरा खेल-खाल करके लेट जाता है; छोटा बच्चा छाती पर सवार हो जाता है। और वह कहता है, जीत गए! बाप का गौरव इसमें है कि वह छोटे बच्चे के साथ झुक जाता है। यही उसकी श्रेष्ठता है। जो बाप छोटे बच्चे से लड़ने लगे उसको तुम मूढ़ कहोगे। लड़ने में मूढ़ता है; झुक जाने में बोध है, समझ है। और बेटा अगर यह भी अनुभव कर ले कि हम जीत गए तो हर्ज क्या है? जितनी तुम्हारी समझ गहरी होगी उतना ही तुम दूसरे को जीतने का मौका दोगे। अभी नासमझ है, बच्चा है। अभी जीतने में रस है। जीत लेने दो। उतना ही तुम्हारे जीवन से संघर्ष और प्रतिरोध कम हो जाएगा। तुम सभी को जीतने का मजा लेने दोगे।

और लाओत्से कहता है, आखिर में वह उन्होंने जो जीतना समझा था, वे पाएंगे कि जीते तुम और हारे वे। बच्चा कभी तो बड़ा होगा। तब जानेगा कि बाप का कितना गहन प्रेम था कि वह हार गया था। बच्चा कभी तो जागेगा और समझेगा। बच्चे को हराने की कोशिश मत करना, क्योंकि उसमें तुम बच्चे के विकास की संभावना को तोड़ दोगे। लड़ते वे ही हैं जो बचकाने हैं। और लड़ने वाला कभी जीतता नहीं, क्योंकि एक बार तुम्हें लड़ने की लत पड़ गई तो तुम मुश्किल में पड़ोगे।

प्रसिद्ध कहानी है मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में कि वह जिस चाय-घर में चाय पीने आता था उसके सामने बैठा रहता अक्सर एक लड़का था शैतान, वह आता और उसकी पगड़ी को हाथ मार देता। पगड़ी नीचे गिर

जाती; वह उठा कर अपनी पगड़ी फिर बांध लेता। न तो उसने कभी उस लड़के को कुछ कहा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। चाय-घर के दूसरे लोगों ने भी कई दफे कहा कि नसरुद्दीन, यह जरा जरूरत से ज्यादा बात हुई जा रही है। और तुम इस लड़के को बिगाड़ रहे हो। और अब यह इसने नियम बना लिया; यह रोज आता है। तुम आए नहीं कि वह आया नहीं। और यह क्या बात है! एक दफा एक चांटा उसको रसीद कर दो। नसरुद्दीन ने कहा, ठहरो, जिंदगी खुद ही उसको चांटा रसीद कर देगी।

कई दिन बीत गए। लोग पूछते भी, कब जिंदगी चांटा रसीद करेगी? कहां है जिंदगी? पर एक दिन वह घड़ी आ गई। एक अफगान सैनिक, जहां नसरुद्दीन बैठा करता था, एक दिन सुबह आकर वहीं चाय-घर में बैठा। उसने उसी रंग की पगड़ी बांध रखी थी जैसी नसरुद्दीन की थी। पीठ के पीछे से लड़के को कुछ दिखाई न पड़ा। उसने पगड़ी को एक हाथ मारा। उस अफगान सैनिक ने तलवार निकाली और लड़के की गर्दन काट दी। नसरुद्दीन ने कहा, देखते हो! बुरी लत आखिर बुरा परिणाम ले आती है। हमारा तो कुछ भी न बिगड़ा, लड़का जान खो बैठा।

नासमझ अगर जीत भी जाए तो अंततः बुरी तरह हारेगा। क्योंकि जीतने की लत पकड़ गई, स्वाद लग गया। समझदार हारता चला जाता है, समझदार अपने को अस्तित्व के विपरीत खड़ा नहीं करता। वह धारा के विपरीत नहीं बहता; जिस तरफ नदी बहती है उसी तरफ बहता है। और जिसने धारा के साथ बहना सीख लिया उसकी शक्ति नष्ट नहीं होती। तैरने में शक्ति नष्ट होती है। और धारा के विपरीत बहने में तो बहुत शक्ति नष्ट होती है। क्योंकि धारा से लड़ना पड़ता है। और आज नहीं कल तुम हार जाओगे, थक जाओगे, और तब धारा तुम्हें अवश बहा कर ले जाएगी। तब तुम दुखी, पीड़ित, संतप्त, विषाद में, हारे हुए, सर्वहारा, पराजित विदा होओगे। लेकिन जो धारा के साथ बहता रहा उसे धारा कभी भी पराजित न कर पाएगी। जो हार ही गया उसको तुम हराओगे कैसे? जो पहले से ही अंतिम बैठ गया उसे तुम अब और कहां पीछे हटाओगे? जिसने दावा न किया उसके दावे का खंडन नहीं किया जा सकता। और जिसने कभी घोषणा न की अपने अहंकार की उसके अहंकार को तुम चोट कैसे पहुंचाओगे?

लाओत्से कहता है कि खड्ड और घाटियां समुद्रों और महानदियों से भर गए हैं। कैसे हुआ यह? झुकने और नीचे होने में कुशल होने के कारण। सागर की सारी कुशलता यही है कि वह नीचे है। छोटे-छोटे झरने भी उससे ऊपर हैं। इतना विराट सागर है, और नीचे है। और जितना नीचे है उतनी ही उसकी विराटता बढ़ती जाती है। क्योंकि उसके नीचे होने के कारण सभी झरनों को उसी में आकर गिर जाना पड़ता है। जो ऊंचा रहेगा वह सूख जाएगा। जो नीचा रहेगा उसकी तरफ सारे झरने बहते रहते हैं।

जीवन में, पूरब ने, झुकने का राज बहुत-बहुत रूपों में समझा। और बहुत-बहुत रूपों ने पूरब की आत्मा को सागरों और नदियों से भर दिया।

पश्चिम से युवक मेरे पास आते हैं तो वे पूछते हैं कि गुरु के चरणों में झुकने में क्या फायदा?

गुरु के चरणों का सवाल नहीं है। वह प्रासंगिक ही नहीं है। प्रासंगिक तो इतना है कि झुकने में क्या फायदा? और झुकने के फायदे का कोई अंत नहीं है। क्योंकि जब तुम झुकते हो तभी कुछ तुम में बहना शुरू होता है। सागर में ही नदियां नहीं बहतीं जब वह नीचे झुका होता है, तुम भी जब झुके होते हो तो अनंत-अनंत चेतना की नदियां तुम्हारी तरफ बहनी शुरू हो जाती हैं। और गुरु के चरणों में जो सचमुच झुका है... ।

क्योंकि सिर झुकाने का नाम सचमुच झुकना नहीं है। क्योंकि हो सकता है तुम औपचारिक रूप से झुका रहे हो। क्योंकि घर में परंपरा रही, बड़े-बूढ़ों ने सिखाया है; सदा से चला आया है इसलिए झुक रहे हो। झुकना

चाहिए, कर्तव्य है, इसलिए झुक रहे हो। और लोग क्या कहेंगे, इसलिए झुक रहे हो। और लोग झुक रहे हैं, इसलिए झुक रहे हो, क्योंकि अनुकरण नहीं तो अच्छा न मालूम पड़ेगा। जैसा देश वैसा वेश। अब इतने लोग झुक रहे हैं तो हम भी झुक जाओ। लेकिन यह झुकना नहीं है। सिर का झुकना अहंकार का झुकना नहीं है।

अगर तुम भीतर से भी झुक जाओ, किसी औपचारिकता से नहीं, बल्कि इस कुंजी को समझ कर कि झुकने में मिलता है, झुकने में तुम गड्ढे बन जाते हो। और चेतना भी ऐसे ही बहती है जैसा जल बहता है। और जब तुम्हारी चेतना गड्ढे की तरह किसी के सामने झुक जाती है तो तत्क्षण चेतना का प्रवाह शुरू हो जाता है।

मेरे पास इतने लोग आते हैं; इतने लोग झुकते हैं। मैं अलग-अलग उनको बता सकता हूं कि किसकी चेतना भीतर झुकी और किसने सिर्फ सिर झुकाया। क्योंकि उनके वास्तविक झुकने में तत्क्षण मेरे भीतर कुछ होना शुरू हो जाता है। अगर वे यूं ही झुके हैं तो मेरे भीतर कुछ भी नहीं होता। जैसे ही कोई व्यक्ति सच में ही झुकता है, तत्क्षण मेरी ऊर्जा उसकी तरफ बहनी शुरू हो जाती है।

जीवन ऊर्जा का प्रवाह है। ऊर्जा भी तलहटी खोजती है--नदियों की भांति। शिष्यत्व का अर्थ है इस रहस्य को समझ लेना। और जब तुम झुकोगे वस्तुतः, जैसा मुझे अनुभव होता है, तुम्हें भी अनुभव होगा। तुम भी तत्क्षण पाओगेः कोई चीज बही जाती है तुम में; भरे देती है तुम्हें; लबालब हुए जाते हो तुम। तुम्हारे पात्र के ऊपर से बहने लगेगी, इसे तुम पाओगे। और एक दफा इसका स्वाद तुम्हें आ गया तब तुम जिंदगी में सब तरफ झुकना सीख लोगे।

एक और बड़े रहस्य की बात है। अगर तुम किसी संत के चरणों में झुको तो लाभ होता है। और लाभ यह होता है कि उसकी ऊर्जा तुम्हारी तरफ बहती है। अगर तुम किसी असंत के चरणों में झुको तो भी लाभ होता है। उसकी जो दुर्गंध से भरी ऊर्जा है तुम्हारी तरफ नहीं बह सकती। क्योंकि दुर्गंध हमेशा ऊपर उठना चाहती है, नीचे नहीं जाना चाहती। असंत का व्यक्तित्व तो अहंकार का व्यक्तित्व है। असंत से कुछ सीखना हो तो अकड़ कर जाना। तो तुम्हारी दोस्ती बनेगी। तब तुम एक ही जैसे रहोगे। तब तालमेल बैठेगा। अगर बुरे के पास जाना हो तो अहंकारी होकर जाना। तभी बुरे से संबंध बनेगा। क्योंकि बुरे का अर्थ है दो अहंकार। अगर बुरे के चरणों में तुम झुके तो बुरा तुम्हें बिगाड़ न पाएगा। यह बड़े रहस्य की बात है।

इसलिए हमने पूरब में एक हिसाब बना रखा था; चरणों में झुकना सहज कर दिया था। किसी के भी चरणों में झुक जाना है। कोई अड़चन की बात नहीं है। अगर भला होगा आदमी तो लाभ होगा; अगर बुरा होगा तो तुम उसकी बुराई से सुरक्षित रहोगे। बुरा आदमी अहंकार से ही संबंध बना सकता है, निरहंकार से नहीं। वे आयाम मिलते नहीं। अगर तुम विनम्र होकर शैतान के चरणों में भी झुक जाओ तो शैतान तुम्हारा कुछ बिगाड़ न सकेगा।

फकीर हुई है एक औरत, राबिया। कुरान में वचन है कि शैतान को घृणा करो। उसने काट दिया था। एक दूसरा फकीर, हसन, घर में मेहमान था। उसने कुरान देखी और उसने कहा कि यह तो कुफ्र है। यह किस काफिर ने वचन काटा? कुरान में कोई सुधार नहीं किया जा सकता।

राबिया ने कहा, यह मुझे ही करना पड़ा। पहले तो सब ठीक था। लेकिन जब परमात्मा के चरणों में झुकने का राज जाना, जब परमात्मा के प्रेम का राज जाना, तो एक बात और भी समझ में आ गईः परमात्मा प्रेम करने से मिलता है और शैतान घृणा करने से। अगर शैतान को घृणा की तो वह मिलता रहेगा; अगर शैतान के साथ अहंकार का कोई भी संबंध बना कर रखा तो वह जगह-जगह मिलता रहेगा। तो राबिया ने कहा, अब तो शैतान

भी सामने खड़ा हो तो मैं ऐसे ही उसके चरणों में झुकती हूं जैसे परमात्मा के चरणों में। अब मुझे कुछ फर्क न रहा। और जब से ऐसा हुआ तब से मैं शैतान से सुरक्षित हूं और परमात्मा मेरी तरफ बहा चला जा रहा है।

तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम गुरु के ही चरणों में झुकना। वह एक हिस्सा है, पहलू। तुम बुरे से बुरे आदमी के चरणों में भी झुकना, वह दूसरा पहलू है। और तुम ऐसी अदभुत अनुभूतियों से गुजरोगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। बुरे आदमी के चरणों में झुक कर देखना, और तुम अचानक पाओगे उसकी बुराई तुम्हारे लिए निरस्त्र हो गई। बुरे आदमी के चरणों में तुम झुके नहीं कि बुरा आदमी भी तुम्हारे लिए भला हो गया; वह दुनिया भर के लिए बुरा हो। इसलिए तुम शर्त मत रखना कि किसके चरणों में झुकना है। झुकना ऐसी कीमिया है, इतनी बड़ी कीमिया है, कि तुम जहां भी झुकोगे लाभ ही होगा।

और एक बार पूरब ने झुकने का राज समझ लिया तो फिर पूरब कहीं भी झुकने लगा--नदी, पहाड़, पत्थर, वृक्ष--कहीं भी झुकने लगा। क्योंकि तब उसने पाया कि झुकने में तो पाना ही पाना है; जितना झुका उतना पाया। यह थोड़ा कठिन है। क्योंकि वैज्ञानिक कोई उपाय नहीं है इसे सिद्ध करने का। अगर तुम जाकर एक वृक्ष के पास भी विनम्रता से, अहोभाव से झुक जाते हो, तो वृक्ष की ऊर्जा तुम्हारी तरफ प्रवाहित होने लगती है। और वृक्ष के पास बड़ी शुद्ध ऊर्जा है। अभी वृक्ष मनुष्य नहीं हुआ है; अभी वृक्ष विकृत नहीं हुआ है। एक भी वृक्ष ऐसा नहीं है जो पागल हो। सभी वृक्ष स्वस्थ हैं। आदमियों में पागल होते हैं। जानवरों में भी थोड़े होते हैं जो अजायबघरों में रहते हैं। लेकिन वृक्षों में तो कोई पागल होता ही नहीं। वहां ऊर्जा बड़ी शुद्ध और हरी है, ताजी है। वृक्ष की पत्तियां ही हरी नहीं हैं, वृक्ष के भीतर बहता हुआ हरित-प्रवाह है ऊर्जा का। अगर तुम झुके, तुम वृक्ष के पास से ताजे होकर लौटोगे, तुम नये होकर लौटोगे। वृक्ष भी व्यक्ति है। और बड़ा आदिम है; इसलिए बड़ा शुद्ध है। स्रोत के ज्यादा करीब है; अभी यात्रा पर नहीं निकला है। तुम तो काफी यात्रा कर चुके हो, बहुत दूर जा चुके हो। पहाड़ और भी करीब हैं। नदियां... सभी कुछ। एक दफा पूरब को पता चल गई कुंजी, तो कुंजी कोई साधारण न थी, "मास्टर की" थी। उससे सभी ताले खुल सकते थे। उससे बुरे से सुरक्षा थी, भले का प्रवाह था; जीवन की ऊर्जा को ताजा करने के उपाय थे।

तुम जरा कोशिश करके देखो। पहले तो तुमको लगेगा कि बड़ा पागलपन है कि एक वृक्ष के पास झुके बैठे हैं। लेकिन जल्दी ही तुम्हें अनुभव होगा कि कुछ बहा आ रहा है जो तुम्हारे मस्तिष्क को तरोताजा कर जाता है, जो भीतर की धूल को झड़ा देता है। और एक दफा तुम समझ गए झुकने का मजा और झुकने का आनंद, फिर तुम्हें कोई राजी न कर पाएगा कि तुम अकड़ कर खड़े हो जाओ। क्योंकि तब तुम जानोगेः अकड़ मौत है; झुकना जीवन है। लोच आत्मा है; बे-लोच हो जाना जड़ता है।

लाओत्से कहता है, "झुकने और नीचे रहने में कुशल होने के कारण।"

झुकना सीखो। लेकिन झुकना तो कभी-कभी होगा। चौबीस घंटे झुके रहो। तब तुमने दूसरी बात सीख लीः नीचे रहना। गुरु मिला, तुम झुके। वृक्ष पास आया, तुम झुके। नदी के पास गए, तुम झुके। झुकोगे; फिर खड़े हो जाओगे। तो झुकना शुरुआत है। और जब कभी-कभी झुकने में इतना मिलता है तो फिर दूसरा कदम है नीचे हो जाना। फिर झुकने की जरूरत ही नहीं; तुमने होना ही अपना नीचे बना लिया। तुम एक गड्ढे की भांति हो रहे। अब तुम्हें रोज-रोज झुकना नहीं पड़ता, घड़ी-घड़ी झुकना नहीं पड़ता। तुम गड्ढे की भांति हो रहे।

ऐसा हुआ कि जुन्नून, इजिप्त का एक बहुत बड़ा फकीर, अपने गुरु के पास था। वह रोज आता, रोज झुकता। जितने बार मौके मिलते उतने बार झुकता। गुरु कुछ काम के लिए भेजते, फिर लौट कर आता तो फिर झुकता। गुरु कहते, पानी ले आओ! पानी लेने जाता तो जाते वक्त झुकता, लौट कर आता तो फिर झुकता। लोगों

में, और शिष्यों में तो मजाक हो गई थी कि जुन्नून पागल है। एक दफा आए, झुक गए। अब दिन भर गुरु के पास रहना हो और दिन भर झुकना हो, तो यह तो पागलपन है। फिर एक दिन लोगों ने देखा बीस साल के बाद--बीस साल ऐसे ही जुन्नून झुकता रहा--एक दिन लोगों ने देखा कि वह आकर चुपचाप गुरु के पास बैठ गया और झुका नहीं। लोग समझे कि अब यह बिल्कुल ही पागल हो गया। अब तक एक अति की, अब दूसरी अति कर रहा है। शिष्यों ने गुरु से पूछा कि जुन्नून क्या बिल्कुल पागल हो गया है? गुरु ने कहा, नहीं, झुकने का अभ्यास पूरा हो गया। अब वह झुका ही हुआ है। अब झुकने की जरूरत नहीं; अब उसने दूसरी अवस्था पा ली जहां वह नीचा ही है। झुकना तो पड़ता है, क्योंकि तुम बार-बार खड़े हो जाते हो, बार-बार ऊंचे हो जाते हो। इसलिए झुकना पड़ता है।

तिब्बत में एक पूरा ध्यान का प्रयोग है जिस प्रयोग में शिष्य को एक हजार बार गुरु के सामने झुकना पड़ता है। दो हजार बार, तीन हजार बार, पांच हजार बार। गुरु बैठा है अपने कमरे में, शिष्य बाहर है, काम कर रहा है। लेकिन उसको दिन में पांच हजार बार गुरु की दिशा में साष्टांग दंडवत करनी है। क्या राज है उस पांच हजार बार झुकने का? और इतना ध्यान लग जाता है उस झुकने से, कुछ और करना नहीं पड़ता। बस इतना ही याद रखना है कि पांच हजार बार दिन में झुक जाना है। ऐसा भी नहीं है कि गुरु के चरण वहीं हों; मील, दो मील दूर भी हो सकता है शिष्य; लेकिन जिस दिशा में गुरु है उस तरफ झुकते रहना है। गुरु से कुछ लेना-देना भी नहीं है। गुरु तो बहाना है। असली बात तो झुकना है। गुरु तो खूंटी है। कोई भी खूंटी काम कर देगी। झुकने को टांगना है।

पश्चिम के लोग बड़ी मुश्किल में रहे हैं। क्योंकि वे समझ ही नहीं पाते, हिंदू देखो सूरज के सामने सूर्य-नमस्कार कर रहे हैं! सूर्य को कुछ नमस्कार करने से होने वाला है। वह कोई सवाल ही नहीं है। नमस्कार करने की कला है, उसको सीखना है। सूरज भी काफी ठीक है। सूर्य-नमस्कार ध्यान का एक गहरा प्रयोग है। सूरज के कारण नहीं, अगर तुमने सूरज के कारण समझा तो तुम भूल गए, झुकने के कारण।

तो पहला कदम है कि झुको। फिर दूसरा कदम है कि नीचे होने में कुशल हो जाओ। तब सारा संसार तुम्हारी तरफ बहता रहेगा; तुम्हारी संपदा का अंत न होगा। तुम कितनी ही उलीचो और बांटो अपने आनंद की संपदा को, वह बढ़ती ही जाएगी। क्योंकि तुमने गड्ढा बना लिया। अमृत चला आ रहा है। तुम दोनों हाथ उलीचते रहो, कुछ भी चुकेगा न। जितना उलीचोगे उतना पाओगे, बढ़ता चला जाता है।

"इस तरह वे खड्डों-घाटियों के स्वामी बन गए। लोगों के बीच प्रधान होने के लिए किसी को उनके अनुगत की तरह होना चाहिए।"

अगर तुमने लोगों के आगे होने की कोशिश की तो लोग तुम्हें पीछे पहुंचा देंगे। लोग यानी अहंकार से भरी हुई प्रतिमाएं हैं; पागल हैं। तुमने अगर आगे होने की कोशिश की तो वे घसीट कर तुम्हें पीछे कर देंगे। तुमने अगर पीछे होने की कोशिश की तो वे तुम्हें सिर-आंखों पर उठा लेंगे। जब तुम उनके अहंकार पर चोट नहीं करते तब वे तुम्हें स्वीकार कर लेते हैं, जब तुम उनके अहंकार पर चोट करते हो तब उनका अहंकार प्रतिशोध से भर जाता है। और लोग तो पागल हैं।

तो लाओत्से कहता है, अगर तुम चाहते हो कि सच में ही तुम लोगों के आगे हो जाओ तो कला है पीछे हो जाना। लेकिन यहां एक बात समझ लेना कि अगर तुम आगे होने के लिए ही पीछे हो रहे हो तो तुम चूक जाओगे। क्योंकि वह तो कोई बात न हुई। तुम किसको धोखा दोगे? तो इसको ऐसा मत समझना कि अगर तुम

चाहते हो आगे होना तो पीछे हो जाओ। क्योंकि अगर आगे होने की चाह है और पीछे होना केवल एक साधन है, तो तुम पीछे हो ही नहीं रहे।

बायजीद के एक शिष्य ने उससे कहा कि मैंने तुम्हारे वचनों में पढ़ा और तुमसे सुना कि अगर तुम स्त्रियों को छोड़ दोगे तो स्त्रियां तुम्हारे पीछे आएंगी, अगर तुम धन छोड़ दोगे तो धन की देवी तुम्हारा पीछा करेगी। आज बीस साल हो गए, और अभी तक कोई आया नहीं। तो बायजीद ने कहा, वह आएगा भी नहीं, क्योंकि तुम पीछे लौट-लौट कर देख रहे हो। वह धन की देवी आएगी भी नहीं, क्योंकि तुम धोखा नहीं दे सकते धन की देवी को। तुम पीछे लौट कर देख रहे हो। तो तुम धोखा अपने को ही दे रहे हो।

अगर तुम श्रेष्ठ होना चाहो लोगों में इसलिए पीछे खड़े हो जाओ, तो तुम कभी भी लाओत्से को न समझ पाओगे। हां, अगर तुम पीछे खड़े हो जाओ तो तुम श्रेष्ठ हो जाओगे। वह बाइ-प्रोडक्ट है, वह परिणाम है। वह जो पीछे हो जाता है उसको लोग सिर-आंखों पर उठा लेते हैं। इसलिए नहीं कि उसकी चाह थी, बल्कि इसलिए कि जो पीछे हो जाता है वह श्रेष्ठ हो जाता है। उसे श्रेष्ठ होने की चाह नहीं है। पीछे हो जाने में श्रेष्ठ हो जाना छिपा है। श्रेष्ठ होने की चाह तो निकृष्ट मन की चाह है। श्रेष्ठ होने की चाह तो हीनता की चाह है। उसने सब हीनता छोड़ दी; उसने हीनता इस तरह छोड़ दी कि अब वह सब के पीछे खड़ा हो सकता है--अपनी महा गरिमा में। अब वह अपनी गरिमा को अपने भीतर सम्हाले हुए है। अब किसी के आगे होने से आगे होने का सवाल नहीं है। अब वह अपने भीतर है, और परम आनंदित है। और उसका दीया जल गया है। अब वह श्रेष्ठ है। लोग उसे सिर-आंखों पर उठा लेंगे।

लेकिन इस कामना से तुम पीछे मत खड़े होना, नहीं तो तुम्हारा दीया बुझा ही रहेगा। तुम पीछे खड़े ही नहीं हो। तुम तो प्रतीक्षा करोगे कि कब लोग आएं, कब आंखों पर उठाएं। तुम बार-बार लाओत्से की किताब पढ़ोगे कि कहीं कुछ भूल-चूक तो नहीं हो गई पढ़ने में! अभी तक लोग आए नहीं! अभी तक सिर-आंखों पर उठाया नहीं! कितनी देर हुई जाती है! जीवन खोया जा रहा है!

"किसी को उनके अनुगत की तरह बोलना चाहिए।"

इसलिए संत आदेश नहीं देते, सिर्फ उपदेश देते हैं। आदेश तो सम्राट देते हैं; उनकी मालकियत है। उपदेश का तो अर्थ होता है केवल सलाह। मानो तो ठीक, न मानो तो भी ठीक है। और संत बिना मांगे सलाह भी नहीं देते। बुद्ध का तो नियम था कि जब तक कोई तीन बार न पूछे वे जवाब न देते थे। इसलिए बुद्ध की किताबों को पढ़ना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि तीन बार आदमी सवाल पूछता है, और तब बुद्ध तीन बार जवाब देते हैं। बहुत लंबा हो जाता है, छः गुना हो जाता है काम।

बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप तीन बार के लिए क्यों रुकते हैं?

बुद्ध ने कहा कि जो मांगता है उसी को मिल सकता है। और तीन बार पूछने का केवल इतना ही प्रयोजन है कि वस्तुतः तुम पूछना ही चाहते हो, ऐसे ही जिज्ञासा से नहीं आ गए हो। तुम्हारे प्राण दांव पर लगे हैं, तभी सलाह दी जा सकती है। लेने वाला तैयार हो, तभी दी जा सकती है। लेने वाला आतुर हो, तभी दी जा सकती है। लेने वाला प्यासा हो, तभी।

और पूछा गया कि आप तीन बार फिर उत्तर क्यों देते हैं?

बुद्ध ने कहा, लेने वाला कितना ही तैयार हो, पर सोया हुआ है। एक बार में न सुन पाए शायद, दोबारा सुन ले। दोबारा न सुन पाए तो शायद तीसरी बार सुन ले।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा कि कोई तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार करे तो सात बार क्षमा कर देना। एक शिष्य ने पूछा कि ठीक, फिर आठवीं बार क्या करना? सात बार क्षमा कर दिया, फिर आठवीं बार? तो जीसस ने कहा, सात बार नहीं, सतहत्तर बार। और अगर तुम पूछोगे कि अठहत्तरवीं बार क्या करना तो मैं कहूंगा सात सौ सतहत्तर बार। क्योंकि वह तो बात ही न हुई। तुम समझे ही नहीं; चूक गए। सात बार तो सिर्फ प्रतीक है क्षमा कर देने का। क्षमा कर देना, यह मतलब है। सात बार तो इसलिए कह रहे हैं कि तुम्हारा भरोसा नहीं है।

एक ईसाई फकीर के संबंध में कहानी है कि एक आदमी आया और उसने उसके एक गाल पर चांटा मारा। तो उसने दूसरा गाल सामने कर दिया, जैसा कि जीसस का उपदेश है, कि जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, दायां उसके सामने कर देना। वह आदमी भी दुष्ट था। उसने भी जीसस की किताब पढ़ी थी। उसने कहा कि तुम हमको न धोखा दे सकोगे। उसने दाएं गाल पर भी एक चांटा मार दिया। जैसे ही उसने दाएं गाल पर चांटा मारा, वह फकीर झपटा और उस आदमी की छाती पर सवार हो गया। उसने कहा, अरे यह तुम क्या करते हो? जीसस को मानने वाले होकर और यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा कि जीसस ने कहा है कि जब बाएं पर कोई मारे, दायां कर देना। अब दाएं पर जब कोई मारे, उसके आगे उन्होंने कुछ कहा भी नहीं है। और दाएं के आगे कुछ है भी नहीं। अब हम स्वतंत्र हैं। जीसस का वचन कर दिया, निपटा दिया। अब तुम हमसे मुकाबला करो।

तुम सभी सिद्धांतों को चुका देते हो, और जल्दी ही तुम प्रकट हो जाते हो।

ऐसी भूल मत करना। प्रथम होने के लिए अंतिम खड़े मत हो जाना। नहीं तो बहुत पछताओगे। उससे तो बेहतर तुम कोशिश में ही लगे रहना प्रथम होने की। तो कम से कम लाओत्से को तो दोष न दोगे कि हम इसकी किताब की उलझन में पड़ गए, पीछे खड़े हो गए। न कोई आया, न बैंड-बाजे बजे, न कोई स्वागत-समारंभ हुआ।

"लोगों के बीच उनका अगुआ होने के लिए किसी को उनके पीछे-पीछे चलना चाहिए।"

ध्यान रखना, यह लाओत्से परिणाम की बात कर रहा है, चाह की बात नहीं कर रहा है। अगर तुम पीछे-पीछे चलोगे तो तुम अचानक पाओगे कि तुम अगुआ हो गए हो। यह परिणाम है पीछे चलने का। इसके लिए तुम्हारी चाह की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम्हारी चाह आई कि लाओत्से का सिद्धांत काम न करेगा। क्योंकि तुम फिर पीछे चल ही नहीं रहे, तुम चल तो रहे हो आगे ही।

लाओत्से का उपयोग साधन की तरह नहीं किया जा सकता। किसी ज्ञानी का उपयोग साधन की तरह नहीं किया जा सकता। ज्ञानी साध्य है, वह साधन नहीं है। और लोग उनका साधन की तरह उपयोग करते हैं। साधन की तरह उपयोग करते हैं, बस इसलिए चूक जाते हैं। और फिर उनको जीवन में अनुभव होता है कि नहीं, ये बातें तो सही सिद्ध नहीं होतीं। ये होंगी भी नहीं। लाओत्से, कृष्ण, क्राइस्ट साध्य हैं; तुम उनका अपने लोभ, अपनी वासना, अपनी तृष्णा के लिए उपयोग नहीं कर सकते हो। तुम अगर उनकी मान कर चलो तो तुम एक दिन अचानक पाओगे कि जो-जो उन्होंने कहा था वह रत्ती-रत्ती, सौ प्रतिशत सही उतरता है। क्योंकि जो उन्होंने कहा है वह उनके जीवन में सही उतरा है, तभी कहा है।

"इस तरह संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते।"

अगर तुम किसी के ऊपर रहोगे तो लोग तुम्हारा बोझ अनुभव करेंगे। और बोझ को कौन सहना चाहता है? बोझ को फेंक देना चाहता है कोई भी। बोझ तो आत्मघाती हो जाता है। उसमें तो तुम्हारी आत्मा तड़फने लगती है, तुम्हारे पंख कट जाते हैं। पति पत्नी के ऊपर है तो बोझ है। पत्नी पति के ऊपर है तो बोझ है। पिता बेटे के ऊपर है तो बोझ है। और बेटा कोशिश करेगा, कब इस बोझ को उतार कर रख दे। और सारी जिंदगी में हर

आदमी की कोशिश है कि कैसे ऊपर हो जाए। और इसलिए तुम सभी पर बोझ बन जाते हो, पत्थर की तरह लटक जाते हो गर्दनों में। और हरेक चाहता है कि तुमसे छुटकारा कैसे हो।

लाओत्से कह रहा है, संत भी ऊपर होते हैं, लेकिन उनके होने की कला बड़ी अनूठी है। वे नीचे हो जाते हैं, और इसलिए लोग उन्हें सिर-आंखों पर ले लेते हैं। वे खुद ऊपर नहीं बैठते, लोग उन्हें ऊपर बिठा देते हैं। और जब कोई अपनी ही मौज से किसी को अपने सिर पर लेता है तब बोझ मालूम नहीं पड़ता। जब कोई जबरदस्ती तुम्हारे सिर पर होता है तब बोझ मालूम पड़ता है। इसलिए प्रेम निर्बोझ कर देता है।

और संत बड़ा प्रेम जगाते हैं। क्योंकि जो आदमी सबसे पीछे बैठा है वह तुम्हारे अहंकार को तो चोट देता ही नहीं; उससे तुम्हारा कोई संघर्ष ही नहीं है। अचानक उसकी विनम्रता तुम्हें छूने लगती है। उसके पास एक विनम्रता का वातावरण होता है; एक अलग ही ऊर्जा का प्रवाह होता है। अहंकारी आदमी को कहने की जरूरत भी नहीं पड़ती कि अहंकारी है, तुम फौरन समझ जाते हो कि अहंकारी है। उसकी चाल में, उसके उठने-बैठने में, हर तरफ अकड़ है। हर तरफ वह दिखला रहा है कि मैं कुछ हूं, समझे? जानते हो मैं कौन हूं? विनम्र आदमी ऐसे है जैसे छिपा है, जैसे नहीं चाहता कि तुम्हारी आंख में पड़े, जैसे नहीं चाहता कि तुम्हारे रास्ते को काटे, जैसे नहीं चाहता कि आवाज हो जाए, पगध्वनि भी तुम्हें सुनाई पड़े और बाधा पड़े।

झेन फकीर कहते हैं कि जब किसी व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है--और वे ठीक कहते हैं--तो शिष्य को बताना नहीं पड़ता गुरु को आकर कि ज्ञान हो गया; शिष्य के आते ही गुरु कह देता है कि तो हो गया, बात पूरी हो गई। ऐसा भी हुआ है कि रिंझाई जब ज्ञानी हुआ और अपने गुरु के झोपड़े की तरफ गया, तो वह बाहर सीढ़ियां चढ़ रहा था और गुरु ने भीतर कोठे से चिल्ला कर कहा, तो रिंझाई पा गया! अभी गुरु ने देखा नहीं, सिर्फ पगध्वनि सुनी थी। रिंझाई चकित हुआ। और शिष्य चकित हुए। उन्होंने गुरु से पूछा कि बात क्या है? तो उन्होंने कहा कि जब अहंकारी चलता है तो उसकी पगध्वनि अलग होती है, उसके पैर में भी चोट होती है। वह पैर की आवाज से भी कहता है, मैं आता हूं, राह करो! और जब विनम्र आदमी आता है तो उसके पैरों में वह चोट नहीं होती, उसके पैरों में माधुर्य आ जाता है। उसके पैर ऐसे आते हैं कि किसी को बाधा न पड़ जाए, किसी के सुर-संगीत में कोई व्यवधान न आ जाए, मेरे चलने से भी किसी को कोई अड़चन न हो जाए। वह ऐसे आता है जैसे छाया आती है।

रिंझाई ने खुद एक गीत लिखा है कि जब कोई ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है तो वह ऐसे हो जाता है जैसे वृक्ष की छाया सीढ़ियों को बुहारती है, लेकिन धूल उड़ती नहीं। वृक्ष की छाया सीढ़ियों को बुहारती है, लेकिन धूल उड़ती नहीं। एक दूसरे गीत में रिंझाई ने कहा है, जैसे बगुलों की कतार आकाश में उड़ती है। न तो बगुले चाहते हैं कि झील में प्रतिबिंब बने और न झील की कोई आकांक्षा है प्रतिबिंब बनाने की। प्रतिबिंब बनता है और मिट जाता है; न झील को पता चलता, न बगुलों को पता चलता। ऐसा है व्यक्ति जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है। किसी को पता न चले; प्रतिबिंब भी बने तो आहट न हो। छाया भी बुहारे तो धूल का एक कण भी कंपे न। इतनी भी हिंसा नहीं चाहता।

निश्चित ही, उसके पैर की गति, उसके पैर की आवाज, सब बदल जाती है। उसकी पगध्वनि में पैसिविटी होती है, एक्टिविटी नहीं। उसकी पगध्वनि में कर्म नहीं होता, अकर्म की दशा होती है। वह चलता नहीं, जैसे कोई उसे चला रहा है। वह भीतर खाली हो गया है, शून्य। और उसके शून्य की प्रतिध्वनि उसके प्रत्येक कृत्य में मिलती है।

"संत ऊपर होते हैं, और लोग उनका बोझ अनुभव नहीं करते।"

क्योंकि लोग स्वयं ही उन्हें ऊपर उठा लेते हैं। तुम किसी के ऊपर बैठने की कोशिश मत करना। तुम जिसके भी ऊपर बैठ जाओगे वही तुम्हारा दुश्मन हो जाएगा। और इसी तरह तो तुमने हजार तरह के दुश्मन अपने आस-पास इकट्ठे कर लिए हैं। और तुम्हारी पूरी चेष्टा यह है कि किसी के भी ऊपर बैठ जाएं। छोटा सा बच्चा भी घर में पैदा होता है तो मां और बाप उसके ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू कर देते हैं। छोटे से बच्चे को भी तुम छोड़ते नहीं, उसकी भी सवारी करते हो। और तब अगर बच्चे मां-बाप के दुश्मन हो जाते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं। अगर पति-पत्नी के बीच तालमेल खो जाता है तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि दोनों एक-दूसरे के ऊपर सवारी की कोशिश में संलग्न हैं--कौन किसको डॉमिनेट करे, कौन किसको चलाए, कौन असली मालिक है?

क्या तुम इतने हीन हो कि तुम्हें छोटे बच्चे से भी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है? क्या तुम इतने हीन हो कि तुम अपनी पत्नी के ऊपर भी निर्बोझ नहीं हो सकते? क्या तुम इतने हीन हो कि तुम अपने पति को भी निर्बोझ नहीं छोड़ पाते?

जितनी श्रेष्ठता होती है उतना ही आदमी दूसरे को निर्बोझ छोड़ देता है। और जितनी हीनता होती है उतना ही आदमी दूसरे की छाती पर सवार होता है। क्यों? क्योंकि जब तुम श्रेष्ठ होते हो, लोग स्वयं ही तुम्हें सिर पर उठा लेते हैं। जब तुम निकृष्ट होते हो तभी तुम्हें खुद सीढ़ी लगा कर लोगों के सिर पर चढ़ना पड़ता है। क्योंकि निकृष्ट को कौन सिर पर रखेगा!

इसलिए तो तुम्हारी राजनीति निकृष्ट लोगों का धंधा हो जाती है। उसमें जो निम्नतम हैं समाज में, वे संलग्न हो जाते हैं। क्योंकि राजनीति सीढ़ी है जिससे पूरे मुल्क की छाती पर और सिर पर चढ़ कर बैठा जा सकता है। अगर दुनिया की राजधानियां, परमात्मा कुछ तरकीब करे, और एकदम से विलीन हो जाएं, सिर्फ राजधानियां, तो दुनिया में नब्बे प्रतिशत पाप एकदम विलीन हो जाएंगे। दिल्ली, लंदन, वाशिंगटन, मास्को, पेकिंग एकदम से समाप्त हो जाएं। क्योंकि वहां सब पागल, सब तरह के हीन-ग्रंथि से भरे लोग इकट्ठे हो गए हैं। राजधानियां घेर ली जानी चाहिए, और उनको मानसिक अस्पतालों में बदल दिया जाना चाहिए। वहां सब के इलाज की जरूरत है। और वे निकृष्टतम लोग हैं, क्योंकि निकृष्ट ही सिर पर चढ़ना चाहता है।

श्रेष्ठ को तो तुम सिर पर बिठा लो तो भी वह कहता है कि क्षमा करो, मुझे नीचे उतरने दो, क्यों नाहक कष्ट कर रहे हो! क्या कारण है इसका? कारण यह है कि श्रेष्ठ इतना श्रेष्ठ है अपने भीतर कि अब किसी के सिर पर बैठ कर थोड़े ही श्रेष्ठ होना है। और किसी के सिर पर बैठ कर कभी कोई श्रेष्ठ हुआ है? श्रेष्ठता जब वस्तुतः होती है तो उसकी गरिमा आंतरिक है; किसी दूसरे से उसका कोई संबंध नहीं। दूसरे के मत, दूसरे के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं। श्रेष्ठता अकेली जी सकती है। श्रेष्ठ व्यक्ति हिमालय के एकांत में भी उतना ही श्रेष्ठ होगा।

तुम्हारे प्रधानमंत्री को, तुम्हारे राष्ट्रपति को जंगल के एकांत में ले जाओ। जैसे-जैसे भीड़ छंटने लगेगी वैसे-वैसे राष्ट्रपति छोटा होने लगेगा। जब ठेठ तुम जंगल में ले जाओगे, और वहां कोई भी न रहेगा, अकेला राष्ट्रपति रह जाएगा, तो वृक्षों के कौए भी ज्यादा श्रेष्ठ मालूम पड़ेंगे। वह कुछ भी नहीं है, ना-कुछ है। उसकी सारे होने की ताकत तो लोगों की भीड़ पर थी, जिनके सिर पर वह चढ़ना सीख गया था। जब लोग ही जा चुके, सीढ़ी गिर गई।

नेपोलियन जब हार गया तो उसे सेंट हेलेना के द्वीप में बंद कर दिया गया। हारे नेपोलियन की बड़ी दुर्दशा होती है। जीत थी तो वह संसार का मालिक था, हार गया तो दो कौड़ी का हो गया। लेकिन फिर भी, जैसे रस्सी जल जाती है और अकड़ रह जाती है; रस्सी तो जल गई, लेकिन मरते दम तक नेपोलियन ने कपड़े न बदले। सड़ गए, गंदे हो गए; फट गए। बहुत बार कहा गया कि नये कपड़े आपके लिए उपलब्ध हैं, आप पहन लें।

उसने कहा कि नहीं। मरते वक्त उसने अपनी डायरी में लिखा है कि ये कपड़ों की बात ही और, ये सम्राट के कपड़े हैं। और तुम कितने ही ताजे और नये कपड़े ले आओ, वे एक कैदी के कपड़े होंगे।

राख हो गई सब, लेकिन अकड़ बाकी है। अभी भी वह चलता है तो उसी अकड़ से। फटे हैं कपड़े, पुराने हैं कपड़े, जराजीर्ण हो गए, लेकिन वह अब भी अपने को सोच रहा है कि सम्राट है। मरते समय उसने लिखा है कि मान लिया कि मैं अब सम्राट नहीं हूं, लेकिन इसे तो कोई भी इनकार न करेगा कि मैं एक हारा हुआ सम्राट हूं। हारा हुआ हूं माना, मगर हूं तो सम्राट ही। मगर हारे हुए सम्राट का क्या मतलब होता है?

आदमी जितना भीतर अभाव अनुभव करता है हीनता का, हीनता का कीड़ा जितना भीतर काटता है, उतने ही बाहर उपाय करता है कि कैसे उसे ढांक ले। बाहर रोशनियां जलाता है ताकि भीतर का अंधेरा न दिखाई पड़े। भीतर तो हर कोई जानता है कि मैं ना-कुछ हूं, इसलिए दूसरों पर अकड़ जताता है। और ध्यान रखना, जितना ही कोई अकड़ जताए दूसरों पर उतना ही छोटा आदमी भीतर छिपा है। बड़े आदमी की तो अकड़ होती ही नहीं। बड़ा आदमी तो ऐसा होता है जैसे हो ही न। महानता शून्यता है। और जब तुम कहीं भी उस शून्यता को देखते हो तब अचानक तुम्हारा सिर झुक जाता है। तब तुम किसी को सिर पर रख लेना चाहते हो।

संत ऊपर होते हैं, अपने कारण नहीं, लोग उन्हें ऊपर उठा लेते हैं। लोग उन्हें बिना ऊपर उठाए रह नहीं सकते; क्योंकि उनको ऊपर उठाने में ही पंख मिलते हैं, उनको ऊपर उठाने में तुम उनके साथ उड़ना शुरू करते हो। उनको तुम जितना ऊपर उठाते हो उतना ही तुम भी ऊपर उठते हो।

निकृष्ट आदमी को ऊपर बिठाना खतरनाक है। क्योंकि जितना ही तुम निकृष्ट को ऊपर बिठाते हो, तुम नीचे दबते हो, तुम और छोटे होते जाते हो। गुलाम होना बुरा है, क्योंकि तुम जब भी गुलाम होने को राजी हो जाते हो किसी के, तभी तुम्हारे भीतर सब सिकुड़ने लगता है; तुम और गुलाम होने लगते हो।

लेकिन दास होने का मजा और। गुलामी और दासता में फर्क है। गुलाम तो जबरदस्ती बनाया जाता है, दूसरा तुम्हारी छाती पर सवार हो जाता है। और दास होने का मतलब है, तुम किसी को अपने सिर पर उठा लेते हो। तो गुलामी परतंत्रता है, और दास हो जाने से बड़ी स्वतंत्रता नहीं।

इसलिए कबीर कहते हैं, कहे दास कबीर।

यह जो दास है कबीर का यह गुलाम नहीं है; यह दासता अंगीकार की है, यह छोटा होना अपनी तरफ से स्वीकार किया है, यह पीछे होना अपनी तरफ से साधा है; अपने को ना-कुछ बनाने में स्वेच्छा से चेष्टा की है।

"वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।"

जब तुम लोगों के आगे चलना चाहोगे तो लोग तुम्हारी हानि चाहेंगे। क्योंकि तुम उन्हें आगे होने देने में बाधा हो, तुम उनके दुश्मन हो। इसलिए राजनीति में कोई दोस्त नहीं होता। राजनीति में दो तरह के दुश्मन होते हैंः प्रकट दुश्मन, अप्रकट दुश्मन। प्रकट दुश्मन से भी अप्रकट दुश्मन ज्यादा खतरनाक होता है।

इसलिए मैक्यावेली ने, जिसने कि राजनीति की बाइबिल या वेद लिखा, अपनी किताब दि प्रिंस में कुछ सुझाव दिए हैं। उसने कहा है कि राजनीतिज्ञ को, राजा को, सम्राट को, किसी को भी भूल कर कभी मित्र नहीं मानना चाहिए, अन्यथा वह पछताएगा। क्योंकि जो आज मित्र है वह कल शत्रु हो सकता है। और उसने यह भी कहा कि शत्रु के संबंध में भी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए कि कभी मित्रता बनने का मौका आए तो वह बात बाधा बने। क्योंकि वहां कोई भी शत्रु हो सकता है, कोई भी मित्र हो सकता है।

राजनीतिज्ञ के आस-पास जो लोग होते हैं वे भी शत्रु हैं, क्योंकि वे भी कोशिश कर रहे हैं कि तुम जिस सिंहासन पर हो, वे हो जाएं। तो कुछ शत्रु बाहर चेष्टा करते हैं, वहां से आने की; और कुछ शत्रु घर के भीतर होते हैं और वहां से चेष्टा करते हैं। राजनीतिज्ञ का मित्र कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि जो महत्वाकांक्षा तुम्हें ले आई है वही दूसरों को भी ले आई है।

तो इंदिरा को डर कोई जयप्रकाश से ही नहीं है, यशवंतराव चव्हाण से भी उतना ही है; ज्यादा। और बाहर के दुश्मन से तो सुरक्षा करना आसान है, भीतर के दुश्मन से सुरक्षा करना मुश्किल है; क्योंकि वह भीतर है। इसलिए तो इंदिरा को रोज-रोज पोर्टफोलियो बदलने पड़ते हैं कि किसी को भी यह भ्रांति न हो जाए कि तुम जम गए। उखाड़ते रहना पड़ता है। तुमको पक्का पता रहना चाहिए कि तुम जम नहीं गए हो, कि तुम और आगे जाने की कोशिश करने लगो। तुम जहां हो वहीं रहने में तुम्हें लगाए रखना पड़ता है, कि तुम किसी तरह वहीं बने रहो। क्योंकि तुम्हें अगर यह पक्का भरोसा हो जाए कि तुम जहां हो वहां से तुम्हें कोई नहीं हटा सकता, तो तुम और ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू कर दोगे।

इसलिए हर राजनीतिज्ञ को अपने कैबिनेट को हमेशा उखड़ी हालत में रखना पड़ता है, कंपाए रखना पड़ता है। तो किसी को भी पक्का भरोसा न हो जाए कि यह कुर्सी तय हो गई। अगर यह तय हो गई तो तुम्हारी शक्ति ऊपर वाली कुर्सी की तरफ जाने में संलग्न हो जाएगी। इसलिए इस कुर्सी को हिलाए रखना पड़ता है कि तुम्हारी ताकत इसी पर बैठे रहने में लगी रहे, और तुम्हारी ताकत आगे न जा पाए। राजनीति में मित्रता संभव नहीं है। क्योंकि महत्वाकांक्षी की क्या मित्रता हो सकती है!

हम सब महत्वाकांक्षी हैं अगर, हम सब एक-दूसरे के दुश्मन हैं तब। क्योंकि हम वही पाने की कोशिश कर रहे हैं जो दूसरे भी कर रहे हैं। और वह न्यून है--चाहे धन हो, चाहे पद हो। सारा संसार उसी को पाना चाह रहा है; इसलिए सारा संसार एक-दूसरे का दुश्मन है। और एक कलह सतत चलती रहती है। शिष्टाचार में छिपी, संस्कृति में ढंकी, वस्त्रों में, शब्दों में, बातों में छिपाई हुई, लेकिन भीतर एक संघर्ष चल रहा है।

"संत आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते।"

क्योंकि संत तो पीछे चलता है, लोग ही उसको पकड़ कर आगे ले आते हैं। और जैसे ही लोग उसे छोड़ दें, वह फिर पीछे चला जाता है। ऐसी अनूठी घटना इस देश में घटी है कि सम्राट से भी ऊपर जंगल में बसे ऋषि का स्थान हो गया था। वह हट गया था पीछे। लेकिन सम्राट जाकर उसके चरण छूता। जिसके पास कुछ भी न था उसके चरण वह छूता जिसके पास सब कुछ था। एक बड़ा अनूठा प्रयोग था।

ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ। जो सम्राट था उसके वजीर ने कहा कि आप चलें, नगर के बाहर स्वागत करें। सम्राट नया-नया था, अकड़ से भरा था। उसने कहा कि क्यों मैं जाऊं? आखिर बुद्ध एक भिखारी ही हैं। और आना होगा तो खुद महल आ जाएंगे। और मेरी क्या जरूरत है जाने की? उस बूढ़े वजीर ने तुरंत इस्तीफा लिख दिया। उसने कहा कि फिर मेरा इस्तीफा सम्हाल लें। क्योंकि इतने छोटे आदमी के नीचे काम करना फिर मुझे मुश्किल है। तुम में बड़प्पन है ही नहीं। वह सम्राट बोला, बड़प्पन नहीं है? बड़प्पन की वजह से ही तो मैं जा नहीं रहा हूं।

उस बूढ़े वजीर ने कहा, इसे हम बड़प्पन नहीं कहते। बुद्ध कभी सम्राट थे, और उन्होंने उस सम्राट होने को छोड़ कर भिक्षुक का पात्र लिया। इसलिए भिक्षुक का पात्र साम्राज्य से बड़ा है। साम्राज्य को छोड़ दिया इस पात्र के लिए। अगर तुम्हें दिखाई पड़ता हो तो तुम एक अवस्था पीछे हो अभी बुद्ध से। क्योंकि सम्राट होने के बाद वे

भिक्षु हुए हैं। अभी तुम सम्राट ही हो, अभी भिक्षु होने में तुम्हें बहुत देर है। और तुम्हें चलना होगा प्रणाम करने को, और झुकना होगा चरणों में। अन्यथा मेरा इस्तीफा सम्हाल लें।

एक अनूठा प्रयोग पूरब में हुआ है, और वह यह कि जो सबसे पीछे है उसके चरणों में वह झुके जो सबसे आगे है। क्योंकि सबसे आगे, तो अभी भी बचकाना है, महत्वाकांक्षा की दौड़ है, ज्वर है। जो सबसे पीछे खड़ा है वह प्रौढ़ हो गया। अब उसकी कोई प्रतियोगिता किसी से भी न रही। अब प्रतिस्पर्धा बिल्कुल शून्य हो गई। इस शून्य प्रतिस्पर्धा में ही तो पहली दफा आत्म-गौरव का जन्म होता है। अब कोई छीना-झपटी नहीं है। अब धन बाहर नहीं है, धन भीतर है। अब किसी से कुछ पाना नहीं है, अब जो पाना है वह मिला ही हुआ है। अब भीतर का दीया जलता है, अब बाहर की रोशनियों का कोई सवाल न रहा। अब हो जाए गहन अंधकार बाहर, तो भी अंतर न पड़ेगा। कोई भी न हो बाहर, सारी पृथ्वी खाली हो जाए, तो भी इसके एकांत में वही शांति और वही आनंद होगा जो भीड़ के रहते था। अब जंगल और बाजार में कोई फर्क न रहा। अब तुम क्या कहते हो, अच्छा या बुरा, कोई उसकी संगति नहीं है।

इतनी आत्म-गरिमा में प्रतिष्ठित जो है उसी का नाम संत है।

"वे आगे-आगे चलते हैं, और लोग उनकी हानि नहीं चाहते। और तब संसार के लोग खुशी-खुशी और सदा के लिए उन्हें सिर-आंखों पर रखते हैं। क्योंकि वे कलह नहीं करते, इसलिए संसार में कोई उनके विरुद्ध संघर्ष नहीं कर पाता।"

संत से लड़ना मुश्किल है। लड़े कि हारे। संत से अगर लड़े कि हारना सुनिश्चित है। संत को हराया नहीं जा सकता। क्यों? क्योंकि संत की कोई जीतने की आकांक्षा नहीं है। जो जीतना ही नहीं चाहता उसे तुम हराओगे कैसे?

रामकृष्ण से विवाद करने आए थे केशवचंद्र। हराने आए थे; हार कर लौटे। क्योंकि रामकृष्ण ने विवाद किया ही नहीं। उलटी ही हो गई बात सब। केशवचंद्र करने लगे तर्क की बात कि ईश्वर नहीं है, सिद्ध करने लगे। और हर तर्क पर रामकृष्ण उठ-उठ कर उनको गले लगाने लगे और कहने लगे, वाह-वाह, बिल्कुल ठीक कहा। थोड़ी देर में केशवचंद्र मुरझा गए कि अब करना क्या? जो भीड़ देखने आई थी रामकृष्ण की पराजय को, वह भी बड़ी बेचैन हो गई कि यह किस तरह का विवाद हो रहा है!

तो केशवचंद्र ने कहा, आप मेरी सब बातों को हां कहते हैं तो आप पराजय स्वीकार करते हैं?

रामकृष्ण ने कहा, मैंने कभी दावा ही कहां किया तुम्हें जीतने का? तुम्हारी जैसी प्रतिभा को और मुझ जैसा गंवार जीत सकेगा? असंभव! मगर एक बात तुमसे कहता हूं कि मैं तो बेपढ़ा-लिखा हूं, परमात्मा की कोई बहुत बड़ी प्रतिभा मुझसे प्रकट नहीं हो रही है; तुम्हें देख कर मुझे पक्का भरोसा आ गया कि परमात्मा है। इतनी प्रतिभा! ऐसा तर्क! कैसे गजब की बातें तुमने कहीं! जहां इतनी प्रतिभा हो सकती है वहां परमात्मा होना ही चाहिए। क्योंकि पदार्थ से ऐसी प्रतिभा कैसे पैदा होगी? और यह मानने को मैं राजी नहीं हूं केशव, कि तुम सिर्फ मिट्टी-पत्थर हो। तुम्हारे भीतर ऐसा संगीत बज रहा है बुद्धिमत्ता का, वह संगीत खबर देता है कि परमात्मा है। इसके पहले मुझे थोड़ा-बहुत शक भी रहा हो, तुम्हारे आने से वह भी मिट गया।

केशवचंद्र हार कर लौटे। क्योंकि संत की कलह क्या है? उसका दावा क्या है? उसे कुछ सिद्ध करना नहीं है। संत का कोई सिद्धांत थोड़े ही है जिसे सिद्ध करना है, कोई शास्त्र थोड़े ही है जिसे सिद्ध करना है। संत का तो एक जीवन है। और उस घड़ी में केशव की आंखें खुल गईं, और देखा संत के जीवन को, और देखी इस महिमा को,

जिसे कि विरोध भी हरा नहीं सकता, जिसे विवाद से मिटाया नहीं जा सकता; देखी इस आस्था को कि कितने ही तूफान उठाए जाएं तर्क के, आस्था का दीया डगमगाता भी नहीं, उलटे तूफान से भी जीवन ले लेता है।

तुमने देखा कभी, कि छोटे दीये बुझ जाते हैं हवा के झोंके में, लेकिन बड़ी आग लगी हो तो हवा घी का काम करती है। आग लग गई हो मकान में तो उस वक्त एक ही सुरक्षा है कि हवा न चले। क्योंकि आग लगी हो मकान में और हवा चल जाए तो आग बढ़ जाएगी; बुझना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन गणित तो देखो! छोटा सा दीया, हवा आती है तो बुझ जाता है। बड़ी आग, हवा आती है तो और जलती है।

संत इतनी बड़ी आग है कि बुझाने को तुम अगर तूफान लाओगे तो घी का काम होगा। छोटे-छोटे दीये विवाद से हार जाते हैं। बड़ी आग विवाद से बढ़ती है। छोटे-छोटे दीये, लड़ो तो हरा सकते हो उन्हें। बड़ी आग से लड़ोगे तो जलोगे, हारोगे।

लेकिन सौभाग्य है कि अगर बड़ी आग के करीब पहुंच जाओ और हार जाओ। संत के पास हार जाने से बड़ा और कोई सौभाग्य है भी नहीं। वहां से तुम जीत की अकड़ लेकर लौट जाओ, वही पराजय है। वहां तुम हार आओ, वहां तुम समर्पित हो जाओ, वही जीत है। जैसे प्रेम में हार जीत होती है वैसे ही श्रद्धा में भी हार जीत होती है। क्योंकि श्रद्धा प्रेम की ही बड़ी आग है।

संत के विरुद्ध संघर्ष करना मुश्किल है, क्योंकि संत है नहीं भीतर जिससे तुम टकरा सको। तुम संत के भीतर पाओगे महाशून्य, तुम्हें कहीं अवरोध न मिलेगा, कोई दीवाल नहीं होगी जो तुमसे लड़ने को तैयार है। तुम संत के भीतर जितने जाओगे उतना ही पाओगे कि और भीतर का आकाश खुलता चला जाता है। संत के पास जाकर तुम खो ही जाओगे। वह तो ऐसे ही है जैसे बूंद सागर में गिरती है और खो जाती है। सौभाग्य है कि संत के पास पहुंच जाओ। क्यों कहता हूं सौभाग्य? क्योंकि जो लोग बहुत चालाक हैं, समझते हैं बहुत होशियार हैं, वे संत के पास आते ही नहीं। संत से बचने का वही एक उपाय है, कि पास ही मत आओ, दूर-दूर रहो, सुनी बातों को समझो। संत के संबंध में लोग क्या कह रहे हैं उन बातों को मान लो, संत के सामने सीधे-सीधे मत आओ। तो ही बच सकते हो। अगर सीधे आ गए तो मिटोगे। और इसलिए जो बहुत चालाक हैं--अपनी मूढ़ता में चालाक हैं--वे सुनी बातों से जीते हैं। वे पास आकर देखने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते। वे आंख में आंख डाल कर देखने के लिए तैयार भी नहीं होते। खतरा है। और एक लिहाज से वे ठीक हैं, क्योंकि पास आएंगे तो उनकी जीत तो मुश्किल है। वह तो असंभव है। संत के पास आकर हारने के सिवाय और कोई संभावना ही नहीं है।

और जैसे-जैसे पास आओगे, और पास आना पड़ेगा। जैसे-जैसे पास आओगे, और प्यास बढ़ेगी, और तड़फ लगेगी। जैसे-जैसे पास आओगे वैसे-वैसे मिटने की बड़ी तीव्र आकांक्षा गहन होगी। एक दिन संत में डूबोगे। और जिस दिन संत में डूब जाओ उस दिन तुम्हारे भीतर भी संतत्व का उदय हो गया। उस दिन तुम वही न रहे जो आए थे। उस दिन आग से तुम गुजर गए और तुम्हारा सोना निखर आया। तुम शुद्ध कुंदन हो गए, सब कचरा जल गया।

संत एक क्रांति है, जिससे तुम गुजर सकते हो। और मिटने की तैयारी हो तो ही पास आना चाहिए। लोग ऐसे हैं कि पास भी आ जाते हैं, मिटने की तैयारी नहीं है। तब बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। तब उनकी दुविधा मैं देखता हूं, उनकी तकलीफ मैं देखता हूं। एक कदम पास आते हैं मेरे, एक कदम दूर जाते हैं। एक हाथ से पास आते हैं, दूसरे हाथ से अपने को सम्हाले रखते हैं।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन आई और उसने कहा, जल्दी करें! और खतरे की घड़ी है, मुल्ला फांसी लगाने की कोशिश कर रहा है। मैं उसके साथ मुल्ला के घर तक गया। राह में वह बार-बार कहने

लगी, जल्दी चलें! यह आपकी चाल ठीक नहीं; यह मामला संकट का है। मैंने कहा, तू घबरा मत। जो आदमी कभी किसी चीज में सफल नहीं हुआ वह आत्महत्या में भी सफल होगा नहीं; तू बिल्कुल बेफिक्र रह। पर उसको पसीना चू रहा है और हाथ-पैर कंप रहे हैं। वह बोली कि आत्महत्या बात और है। और चीज में सफल न हुआ हो, क्योंकि दूसरों का सवाल था। यह तो अकेले, आत्महत्या तो खुद ही करनी है। कोई बाधा भी देने वाला नहीं है। कमरा उसने बंद कर रखा है। मैंने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत कर, मैं उसे भलीभांति जानता हूं, वह सफल किसी चीज में हो ही नहीं सकता।

उसके घर पहुंचे। देखा तो इंतजाम उसने पूरा कर रखा था। रस्सी बांध रखी थी छप्पर से; एक स्टूल पर खड़ा था और रस्सी अपनी कमर में बांध रहा था। मैंने कहा, नसरुद्दीन, अगर मरना है तो कमर में रस्सी क्यों बांध रहे हो? उसने कहा कि पहले गले में बांधने की कोशिश की, पर बड़ी बेचैनी होती है। और मरना तो है ही, तो मैं कमर में बांध रहा हूं। क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं है कि आदमी आराम से मर सके?

बस ऐसी दुविधा में हैं बहुत लोग। संत के पास पहुंच जाते हैं और फिर अपने को बचाना भी चाहते हैं; कमर में रस्सी बांधते हैं। कहते हैं, गर्दन में बांधते हैं तो बेचैनी होती है। बचाते भी हैं अपने को, और बचा भी नहीं सकते हैं। क्योंकि आमंत्रण सुन लिया गया है; पुकार आ गई है; बुलावा आ गया है। और भीतर लग रहा है कि तैयार हैं, कूद लेना चाहिए, छलांग ले लेनी चाहिए। खड़े हैं गड्ढ के पास, एक क्षण में घटना घट सकती है, सिर्फ साहस चाहिए। लेकिन पकड़े हैं किनारे को। नाव में सवार हो गए हैं, और नाव की खूंटियां किनारे से बंधी हैं, उन्हें खोल नहीं रहे हैं। नाव में बैठे हैं, पतवार चला रहे हैं; और खूंटियां किनारे से बंधी हैं, रस्सियां किनारे से बंधी हैं। नाव कहीं जा नहीं रही।

ऐसी दुविधा में तुम मत पड़ना। या तो भाग खड़े होना, लौट कर पीछे देखना ही मत। और या फिर छलांग ले लेना, और फिर मत भय करना कि क्या होगा। इन दो के बीच रहोगे तो न घर के न घाट के, न संसार के न संन्यास के, न पदार्थ के न परमात्मा के। तब तुम बड़ी उलझन में रहोगे। वह किनारा छूट गया और दूसरा किनारा मिलता नहीं। और मझधार में डूबने जैसी गति हो जाएगी।

संत के पास आना हो तो पूरे, न आना हो तो भी पूरे न आना। मध्य में बड़ा तनाव पैदा हो जाता है, बड़ा संताप पैदा होता है। और कमर में रस्सियां बांध कर कोई फांसी नहीं लगती। और बेचैनी तो होगी, क्योंकि सारे अतीत को मार डालना है। बेचैनी तो होगी, क्योंकि सारी वासनाओं को जला डालना है। बेचैनी तो होगी, क्योंकि अब तक की सारी महत्वाकांक्षाओं और पागलपन को आग में गिरा देना है; राख कर देना है अहंकार को। बेचैनी तो निश्चित है। लेकिन उसी बेचैनी के बाद, उसी अंधेरी रात के बाद सुबह का जन्म है। और जिन्हें सुबह देखनी है उन्हें अंधेरी रात से गुजरने का साहस चाहिए ही।

आज इतना ही।

एक सौ ग्यारहवां प्रवचन

असंघर्षः सारा अस्तित्व सहोदर है

Chapter 68

The Virtue Of Not -Contending

The brave soldier is not violent;
The good fighter does not lose his temper;
The great conqueror does not fight (on small issues);
The good user of men places himself below others.
-- This is the virtue of not-contending,
Is called the capacity to use men,
Is reaching to the height of being,
Mated to Heaven, to what was of old.

अध्याय 68

असंघर्ष का सदगुण

वीर सैनिक हिंसक नहीं होता है;
अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता है;
बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता है;
मनुष्यों का अच्छा प्रयोक्ता अपने को दूसरों के नीचे रखता है।
-- असंघर्ष का यही सदगुण है।
इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं;
यही है अस्तित्व की ऊंचाई को छूना,
जो स्वर्ग का सखा है, पुरातन का भी।

मनुष्य के जीवन की जटिलता एक बुनियादी बात से निर्मित होती है। और वह बुनियादी बात है कि तुम जो नहीं हो वह दिखाने की कोशिश में संलग्न हो जाते हो। फिर तुम सत्य तक कभी भी न पहुंच सकोगे। क्योंकि तुमने शुरुआत ही असत्य की कर दी; यात्रा का पहला कदम ही गलत पड़ गया।

जिसके जीवन में प्रेम नहीं है वह प्रेम को दिखाने की कोशिश करता है। जिसके जीवन में वीरता नहीं है वह वीरता दिखाने की कोशिश करता है। जिसके जीवन में साहस नहीं है वह साहस के मुखौटे ओढ़ लेता है।

जो नहीं है उसे तुमने बताने की कोशिश की कि तुम भटके। पहुंचने का रास्ता तो सीधा और साफ है कि तुम जो हो वही दिखाओ। वही प्रामाणिक जीवन का लक्षण है।

लेकिन क्यों होती है यह बात पैदा? आदमी क्यों दिखाना चाहता है वह जो नहीं है? कुछ गहरे कारण हैं। समझें।

जीवन में प्रेम को पाना तो कठिन बात है, आसान नहीं। दुर्गम है रास्ता; बड़ी पहाड़ों जैसी चढ़ाई है। क्योंकि प्रेम को पाने का अर्थ है अपने को बदलना; प्रेमी होने का अर्थ है अहंकार को तोड़ना, काटना, छांटना। क्योंकि तुम जैसे हो कौन तुम्हें प्रेम कर पाएगा? तुम जैसे हो ऐसी हालत में लोग तुम्हें घृणा कर सकें, यही संभव है; प्रेम न कर पाएंगे। इतना कचरा है तुममें, उसे तो जलाना ही होगा। जब तुम निखर कर कुंदन बनोगे तभी तुम्हें कोई प्रेम कर पाएगा। और वह रास्ता बड़ा लंबा है; बड़ा मुश्किल है।

सस्ती तरकीब है दूसरी। वह यह है कि तुम फिक्र ही छोड़ो अपने को बदलने की; जो तुम सोचते हो कि तुम्हें होना चाहिए उसे तुम दिखाना शुरू कर दो। झूठा चेहरा ओढ़ लो। जीवन के साथ धोखे का खेल शुरू कर दो। नहीं है प्रेम, फिक्र छोड़ो; तुम सिर्फ प्रेम का अभिनय करो। तुम्हारे जीवन में सुगंध नहीं है, फिक्र छोड़ो; इत्र बाजार में बिकते हैं, उन्हें तुम अपने पर छिड़क लो। मुस्कुराहट नहीं है तुम्हारे भीतर, उठती नहीं है प्राणों से; तो भी ओंठों को तो तुम मुस्कुराता हुआ दिखा सकते हो। ओंठों का मुस्कुराना हृदय की मुस्कुराहट के साथ अनिवार्य तो नहीं है। ओंठ सिर्फ मुस्कुरा सकते हैं बिना हृदय से जुड़े हुए; थोड़े से अभ्यास की बात है। ओंठ का मुस्कुराना आसान है, ऊपर-ऊपर है। इतने से काम चल जाएगा। दूसरे को धोखा हो जाएगा।

और दूसरे को धोखा जैसे ही होता है, एक और बड़ा धोखा पैदा होता है, वह खुद को धोखा है। जब तुम दूसरे को देखते हो कि तुम्हारे धोखे में आ गया, और जब बार-बार तुम देखते हो कि मुस्कुराहट पर लोग भरोसा कर लेते हैं, अंततः तुम पाओगे कि तुमने भी अपनी मुस्कुराहट पर भरोसा कर लिया। क्योंकि तुम अपने संबंध में दूसरों के द्वारा ही जानते हो। दूसरे लोग कहते हैं कि तुम बड़े प्रसन्नचित्त हो, तो तुम्हें खुद भी भरोसा आ जाता है। तब धोखा मजबूत हो गया। अब तुमने दूसरों को ही नहीं धोखे में डाल दिया, अपने को भी धोखे में डाल दिया। अब आत्मवंचना परिपूर्ण हो गई। अब इसे हिलाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। और जो भी हिलाएगा वह तुम्हें शत्रु जैसा मालूम पड़ेगा। क्योंकि वह तुमसे छीने ले रहा है तुम्हारी मुस्कुराहट; वह तुमसे छीने ले रहा है तुम्हारा प्रेम का सदगुण, तुम्हारी अहिंसा, तुम्हारी दया, तुम्हारी करुणा, तुम्हारा दान। जो व्यक्ति भी तुम्हें चेताएगा कि यह सब धोखा है जो तुम कर रहे हो, वह शत्रु मालूम पड़ेगा। और जो तुम्हारी खुशामद करेगा और कहेगा कि बिल्कुल ठीक हो, तुम जैसा सदगुणी आदमी नहीं, वह तुम्हें मित्र मालूम पड़ेगा।

इसलिए तो दुनिया में खुशामद इतनी कारगर होती है। खुशामद से हर आदमी प्रभावित होता है। अगर तुम कोई ऐसा आदमी कहीं पा लो जो खुशामद से प्रभावित न होता हो तो समझना कि वह प्रामाणिक आदमी है। खुशामद का मतलब है कि तुम जो धोखा अपने को दे रहे हो हम भी उसमें साथी-सहयोगी हैं। तुम दो इंच धोखा दे रहे हो, हम चार इंच सहयोगी हैं। तब तुम्हारे धोखे को आस-पास से लोग भरने लगते हैं। और एक पारस्परिक शड्यंत्र चलता है समाज में कि तुम हमारे धोखे भरो, हम तुम्हारे धोखे भरेंगे; तुम हमारी झूठ को सम्हालो, हम तुम्हारी झूठ को सम्हालेंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन काफी हाऊस में बैठ कर कह रहा था कि आज गजब हो गया। मछली पकड़ने गया था, एक मछली मैंने पकड़ी जिसका वजन तेरह मन! किसी को भरोसा न आया। एक दूसरे आदमी ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मैं भी गया था मछली मारने। मछली तो नहीं पकड़ पाया, बंसी में कोई और चीज उलझ गई। खींचा ऊपर तो देखा एक लालटेन है। और लालटेन पर लिखा हुआ है कि महान सिकंदर की लालटेन है यह; बड़ी प्राचीन। और इतना ही नहीं कि सिकंदर की लालटेन मिल गई, भीतर अभी भी ज्योति जल रही थी। नसरुद्दीन ने कहा, ऐसा करो भाई, हम अपनी मछली का वजन थोड़ा कम कर लेते हैं, तुम कम से कम यह लालटेन की बत्ती बुझा दो।

धोखे हैं। एक पारस्परिक हिसाब है कि कितनी दूर तक धोखे में लोग साथ देंगे।

इस धोखे के जाल को हिंदुओं ने माया कहा है। तुम यह न समझना कि जो संसार बाहर है वह माया है। ये वृक्ष और चांद-तारे, ये माया नहीं हैं। माया तो वह संसार है जो तुमने झूठ के आधार पर अपने चारों तरफ खड़ा कर रखा है। और जब माया से तुम मुक्त होओगे तो ऐसा नहीं है कि ये झाड़, चांद-तारे विलीन हो जाएंगे। सिर्फ तुमने जो संसार बना रखा था झूठ का, वह विलीन हो जाएगा। और जब तुम्हारे पास इतने झूठ हैं; पर्त दर पर्त झूठ ही झूठ इकट्ठे हो गए हैं। अगर आदमी को उघाड़ो तो प्याज की पर्तों जैसे झूठ निकलने शुरू हो जाते हैं। खोजना ही मुश्किल है कि तुम्हारी मूल स्वभाव की पर्त कहां है। इतनी पर्तें हैं। इतना जाल तुमने अपने चारों तरफ खड़ा कर रखा है।

लेकिन जिनको भी लोगों के मन की थोड़ी समझ है, तुम उन्हें धोखा न दे पाओगे। क्योंकि वस्तुतः उनका मापदंड यही है कि जो तुम दिखाते हो, निन्यानबे प्रतिशत मौके यही हैं कि वह तुम हो नहीं सकते। अगर तुम ज्यादा मुस्कुराते हो तो उसका कारण यही होगा कि भीतर बहुत उदासी है। अन्यथा इतने मुस्कुराने की जरूरत न थी। अगर तुम ऊपर से बड़ा प्रेम दिखलाते हो तो उसका निन्यानबे प्रतिशत कारण तो यही होगा कि भीतर तुम घृणा से भरे हो। और उस घृणा को छिपाने का और कोई उपाय नहीं है। अन्यथा तुम्हारा वीभत्स रूप दिखाई पड़ेगा। अन्यथा तुम्हारे भीतर की गंदगी बाहर प्रकट होने लगेगी। तो तुम सब तरह से अपने को साज-संवार लिए हो।

लेकिन तुमने जो-जो बाहर से दिखलाया है, जानने वाले जानते हैं कि भीतर तुम उसके ठीक विपरीत होओगे। निन्यानबे प्रतिशत मैं कहता हूं, क्योंकि सौवां कभी-कभी कोई बुद्ध होता है जो बाहर और भीतर एक जैसा होता है। तुम बाहर कुछ, भीतर कुछ। बाहर कुछ, भीतर कुछ, इतना ही नहीं; तुम जैसे बाहर, ठीक उससे विपरीत भीतर। असल में, तुमने बाहर को बनाया ही है भीतर के विपरीत, ताकि तुम धोखा दे सको।

यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो आदमी साहस की बहुत बातें करता हो, तुम समझ लेना कि भीतर भयातुर है, भय-कातर है। नहीं तो साहस की इतनी चर्चा की कोई जरूरत न थी।

काफी हाऊस में एक सैनिक आया हुआ था। और वह कह रहा था कि आज बड़ी घमासान लड़ाई हुई, और मैंने कम से कम सौ आदमियों के सिर घास-पात की तरह काट डाले। नसरुद्दीन बैठा सुनता रहा। और उसने कहा, ऐसा एक समय मेरे जीवन में भी आया था। मैं भी युद्ध में गया था। सैनिक को पसंद तो न आई यह बीच में बात उठा देनी, लेकिन अब जब बात उठ ही गई थी तो रोकना मुश्किल था। तो उसने कहा कि क्या हुआ उस युद्ध में? नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी अनेक लोगों के पैर काट डाला था घास-पात की तरह। सैनिक ने कहा, अच्छा हुआ होता कि तुम सिर काटते, क्योंकि ऐसी हमने कभी कोई बात नहीं सुनी कि युद्ध में गए और पैर काट

आए। नसरुद्दीन ने कहा, क्या करूं, सिर तो कोई पहले ही काट चुके थे। सिर थे ही नहीं वहां, मैं तो गया और घास-पात की तरह पैर काट डाले।

जहां भी तुम साहस की चर्चा सुनो वहां समझ लेना कि भीतर भयभीत आदमी छिपा है। वह बहादुरी की बात ही इसीलिए कर रहा है ताकि कोई पहचान न ले कि मेरी अवस्था क्या है।

जिन लोगों को तुम प्रेम की बहुत चर्चा करते सुनो, समझ लेना कि प्रेम के जीवन में वे असफल हुए हैं। कवि हैं, साहित्यकार हैं; प्रेम की बड़ी चर्चा करते हैं, गीत गाते हैं। लेकिन यह बड़ी हैरानी की बात है कि जिन कवियों ने भी प्रेम के गीत गाए हैं वे प्रेम में असफल लोग थे। नहीं तो कोई प्रेम ही करेगा, गीत किसलिए गाएगा? जब प्रेम ही तुम कर सकते हो तो गीत बनाने की फुरसत किसे है? गीत तो बना कर तुम अपने आस-पास एक धुंध पैदा करते हो, ताकि प्रेम की कमी पूरी हो जाए। भूखा आदमी ही सपने देखता है भोजन के, भरे पेट आदमी नहीं। अगर तुम्हारे सपने में प्रेम आता है तो उसका अर्थ है तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं। सपना तो परिपूरक है। जो जीवन में नहीं हो पा रहा है उसे तुम सपने में पूरा कर रहे हो। जो वस्तुतः नहीं मिल पा रहा है उसे तुम कल्पना में पूरा कर रहे हो।

तो कवि प्रेम के गीत लिखते हैं। उनके गीत बड़े मधुर हो सकते हैं। लेकिन उन गीतों के पीछे बड़ी पीड़ा छिपी है। तुम एक भी ऐसा कवि न पाओगे जो प्रेम में सफल हुआ हो। क्योंकि जो प्रेम में सफल हो जाता है, प्रेम इतना बड़ा गीत है कि और दूसरे गीत वह गाता नहीं। उसके जीवन में प्रेम का गीत होगा, लेकिन वह प्रेम के सपने नहीं देखेगा।

इसे तुम जीवन का आधारभूत नियम समझ लो।

ऐसा हो जाता है कि गरीब आदमी के घर मेहमान आ जाएं तो वह पास-पड़ोस से कुर्सी, फर्नीचर, सोफा, दरी, बिछौना, मांग लाता है। गरीब आदमी ही यह करता है, धोखा देना चाहता है मेहमान को। मेहमान को दिखाना चाहता हैः सब ठीक है, बड़े मजे से जी रहे हैं। वह सब उधार है, लेकिन दूसरे की आंख में एक प्रतिमा बनानी है।

और यही हम पूरे जीवन करते हैं--सुबह से सांझ तक। रास्ते पर कोई मिल जाता है और तुमसे पूछता है, कैसे हैं? और आप कहते हैं, बिल्कुल ठीक। और ऐसे भावावेश से कहते हैं कि भरोसा आ जाए। और कुछ भी ठीक नहीं है जीवन में। बिल्कुल ठीक तो दूर, कुछ भी ठीक नहीं है, सब गैर ठीक है। लेकिन जब दूसरे से आप कहते हैं, सब ठीक; तब क्षण भर को खुद भी भरोसा आ जाता है। इसे जरा ख्याल करना। जब कोई आदमी पूछे, कैसे हैं? और जब कहें कि सब ठीक। तब क्षण भर को देखना कि भीतर इस कहने मात्र से कि सब ठीक, क्षण भर को ठीक सब लगने लगता है।

आदमी दूसरे को धोखा देते-देते खुद को धोखा दे लेता है। और जिस दिन तुम खुद को धोखा देने में सफल हो गए उस दिन तुम्हें फिर इस धोखे के बाहर आने का कोई उपाय न रहा। यही तो पागल का लक्षण है। पागल का अर्थ है जिसने अपने को धोखा देने में परिपूर्ण कुशलता पा ली, पूर्ण सफल हो गया। अब तुम लाख समझाओ उसे कि तू नेपोलियन नहीं है, लेकिन वह अपने को नेपोलियन मानता है।

एक आदमी का इलाज हो रहा था। उसको भ्रांति थी कि वह नेपोलियन है। इलाज जब पूरा हो गया तो चिकित्सक ने कहा, अब तुम ठीक हो गए हो। अब तुम घर जा सकते हो। वह आदमी बड़ी प्रसन्नता से खड़ा हो गया, और उसने कहा कि जरा जोसेफाइन को फोन करके तो बता दो--जोसेफाइन, नेपोलियन की पत्नी--कि अब मैं ठीक हो गया हूं और घर आ रहा हूं।

पागल को उसके घेरे के बाहर लाना मुश्किल हो जाता है। और पागल भी बड़ा तर्कयुक्त ढंग से अपनी व्यवस्था करता है।

मुल्ला नसरुद्दीन रोज अपने घर के बाहर उठ कर मंत्र फूंक कर कुछ फेंकता। पड़ोस के लोगों ने पूछा कि यह तुम क्या करते हो तंत्र-मंत्र? उसने कहा कि इन मंत्रों के बल से गांव में शेर, जंगली जानवर, सिंह नहीं आ पाते। तो लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, तुम पागल हो। यहां कोई शेर, जंगली जानवर हैं ही कहां? नसरुद्दीन ने कहा कि इससे साफ सिद्ध होता है कि मंत्र कारगर है; सब भाग गए। यही तो मैं कह रहा हूं। इसीलिए तो सिंह और जंगली जानवर यहां नहीं हैं; क्योंकि रोज मैं मंत्र फेंक रहा हूं।

पागल को उसके तर्क के बाहर लाना मुश्किल है। पागल बड़े तर्कनिष्ठ होते हैं। तुम किसी पागल से बात करो। तुम जो सब से बड़ी अड़चन पाओगे वह यह कि उसे उसके तर्क के बाहर लाना मुश्किल है। और वह अपने तर्क को सब तरफ से सिद्ध करता रहता है।

ऐसा हुआ; मुसलमान खलीफा हुआ उमर। उसने एक आदमी को जेलखाने में डलवा दिया, क्योंकि उसने घोषणा की कि मैं ईश्वर का पैगंबर हूं। इसलाम यह मानता नहीं कि मोहम्मद के बाद कोई पैगंबर हो सकता है। उमर बहुत नाराज हुआ। उसने उस आदमी को बंधवा लिया, जेल में डलवा दिया। और कहा, दो दिन बाद मैं आऊंगा। और दो दिन उसकी बड़ी मरम्मत की गई, पीटा गया, मारा गया, सब तरह सताया गया, भूखा रखा गया, रात सोने नहीं दिया गया, कि अपने रास्ते पर आ जाए।

दो दिन बाद उमर जेलखाने गया। वह आदमी खंभे से बंधा था, लहूलुहान था। उमर ने पूछा, अब क्या ख्याल हैं? उसने कहा, ख्याल! जब परमात्मा ने मुझे भेजा पैगंबर की तरह तो उसने कहा था, पैगंबर हमेशा पीटे जाते हैं, मारे जाते हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि मैं पैगंबर हूं, क्योंकि पैगंबरों को सदा इतिहास में सताया गया है।

तभी दूसरे खंभे से बंधे एक आदमी ने चिल्ला कर कहा कि यह आदमी बिल्कुल गलत कह रहा है! उमर ने उससे पूछा कि आप कौन हैं? उसने कहा कि मैं स्वयं परमात्मा हूं! और मैंने इसे कभी भेजा नहीं। यह सरासर झूठ है। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं।

किसी भी पागल को उसके तर्क के बाहर लाना एकदम असंभव है। क्योंकि तुम जो भी उपाय करोगे, पागल उस उपाय को ही अपना तर्क बना लेगा।

तुम्हें भी तुम्हारे पागलपन से बाहर लाना बहुत कठिन है। लेकिन अभी तुम बिल्कुल पागल नहीं हो गए हो, इसीलिए आशा है। थोड़ा सा किनारा बाकी है जहां तुम संदिग्ध हो। जब तुम बिल्कुल असंदिग्ध हो जाओगे अपने झूठ में तब तुम्हें खींच कर बाहर लाना मुश्किल हो जाएगा। अभी तुम्हें थोड़ा संदेह है खुद भी कि तुम हंसते हो वह वास्तविक है या नहीं! तुम रोते हो, वह वास्तविक है या नहीं! यह संदेह ही तुम्हारा सबसे बड़ा सहारा है। इसी संदेह के सहारे तुम बाहर आ सकोगे। इस संदेह को प्रगाढ़ करो। और अपनी एक-एक जीवन-विधि को, शैली को जांचो-परखो, कसो--कि तुमने प्रेम सच में किया है या तुम शब्दों की ही बात करते रहे हो? क्योंकि अगर तुम एक भी चीज सच में कर सको तो तुम्हारे झूठ का पूरा भवन गिर जाएगा। सत्य की बड़ी शक्ति है।

मैं कहता हूं, एक भी चीज अगर तुम सत्य कर सको तो झूठ का पूरा भवन गिर जाएगा। इसलिए यह सवाल नहीं है कि तुम बहुत सत्य करो, तब कहीं यह भवन गिरेगा; एक सत्य गिरा देगा पूरे भवन को। असत्य कितने ही हों, कमजोर और नपुंसक हैं; उनमें कोई बल नहीं है। तुम एक तरफ से भी अगर सत्य होने शुरू हो

जाओ, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे पूरे जीवन में असत्य की जड़ें उखड़नी शुरू हो गईं। तुम एक कदम सत्य की तरफ उठा लो, तुम एक झूठ का चेहरा गिरा दो; बाकी चेहरे भी उखड़े-उखड़े हो जाएंगे। जहां से तुम्हें शुरू करना हो वहां से शुरू करो। लेकिन इसे जरा समझ लेना कि तुम जो-जो दिखा रहे हो उससे विपरीत तुम्हारी दशा होगी।

पंडित दिखलाता फिरता है कि कितना ज्ञानी है, और भीतर गहन अज्ञान है। उसी को छिपाने के लिए तो शास्त्रों का सहारा लिया है, शब्द और सिद्धांतों से ओढ़ लिया है अपने को, रामनाम की चदरिया ओढ़ ली है। भीतर गहन अंधकार है। उस अंधकार को छिपाना है; कोई जान न ले, किसी को पता न चल जाए।

लेकिन किसी को पता चले न पता चले, यह सवाल नहीं है। वह अंधकार तुम्हारे भीतर है तो तुम उसी अंधकार में जीओगे, उसी में डूबोगे। उस अंधकार को मिटाना जरूरी है। अगर बीमारी है भीतर तो तुम ऊपर-ऊपर स्वस्थ होने की धारणा को मत बना लेना। नहीं तो वही धारणा तुम्हारी बीमारी को बढ़ाने का कारण बनेगी। और जो अभी छोटा सा फोड़ा था, कल नासूर हो जाएगा। और जो कल नासूर है, वह परसों कैंसर हो जाएगा।

बीमारी भी बढ़ती है, रुकती नहीं। बीमारी का भी अपना जीवन है। तुम जितना उसे छिपाते हो घाव को, छिपा सकते हो, सुंदर फूल बांध सकते हो घाव के ऊपर; इससे कुछ होगा न। इससे भीतर की बदबू दूसरों तक भले न पहुंचे, लेकिन तुम्हारे भीतर बढ़ती जाएगी। घाव ही रह जाएगा आखिर में। और यही होता है कि लोग मरते समय तक पहुंचते-पहुंचते पाते हैंः सारा जीवन एक पीड़ा, एक घाव हो गया, जिसमें कभी कोई आनंद न जाना, और जहां कभी कोई जीवन की पुलक न उठी, जीए जैसे जीए ही नहीं; घसिटते रहे। जीवन नृत्य न था, उत्सव न था।

लाओत्से कहता है, "वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।"

हिंसक आदमी को होना पड़ता है इसलिए ताकि वह दिखला दे दुनिया को कि मैं बहादुर हूं। इसलिए जो बहादुर है वह हिंसक नहीं हो सकता।

इसलिए तो हमने वर्धमान को महावीर कहा। वीर ही नहीं कहा, महावीर कहा। क्योंकि वर्धमान ने जैसी अहिंसा प्रकट की वह केवल महावीर ही कर सकता है। महावीर उनका नाम नहीं है, नाम तो उनका वर्धमान है। लेकिन महावीर कहने के पीछे कारण है। क्योंकि सिर्फ वीर ही हिंसा से मुक्त हो सकता है। और महावीर ही केवल समस्त हिंसा से मुक्त हो सकता है। वीरता इतनी स्पष्ट है स्वयं के समक्ष कि सिद्ध कहां करनी है! सिद्ध तो तुम वही करते हो जो तुम्हें पता है कि है नहीं। जिस दिन तुम्हें पता है कि है, उस दिन तुम सिद्ध करना छोड़ देते हो।

हिटलर कायर है और वर्धमान वीर है। हिटलर को तुम्हें पढ़ना और समझना चाहिए; लाओत्से को समझने के लिए बड़ा सहयोगी होगा। हिटलर से बड़ा कायर आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है। वह रात अंधेरे में सो नहीं सकता था; प्रकाश जला कर ही सोता था। और भयभीत इतना था कि किसी पर कभी भरोसा नहीं कर सकता था। इसलिए उसने शादी नहीं की। क्योंकि शादी हो जाएगी तो कम से कम पत्नी पर तो भरोसा करना ही पड़ेगा, इतना भरोसा कि कमरे में उसके साथ सोए। और रात को उठ कर गर्दन दबा दे! क्या पता दुश्मनों से मिली हो! मरते दम तक उसने शादी न की। मरने के ठीक घड़ी भर पहले शादी की। जब सब पक्का हो गया कि अब आत्महत्या ही करनी है, अब कुछ करने को नहीं बचा। जब जहां हिटलर ठहरा था उस जगह पर भी बम गिरने लगे बर्लिन में, और हार बिल्कुल सुनिश्चित हो गई, अब कोई उपाय न रहा, एक घड़ी भर की

बात है और जर्मनी का पतन हो जाएगा, तब उसने जो पहला काम किया वह यह कि जिसको वह जिंदगी भर से स्थगित कर रहा था, शादी करने को, उसने एक पुरोहित को बुलवाया जो पहला काम किया और कहा कि पहले मेरी शादी कर दो। पुरोहित भी चकित हुआ कि इस घड़ी में शादी!

लेकिन कारण यह था कि हिटलर सदा डरा रहा--क्या भरोसा एक अनजान-अपरिचित स्त्री? और सभी अनजान-अपरिचित हैं। किससे परिचय है किसका? अपने से ही परिचय नहीं, तो दूसरे से क्या परिचय? पता नहीं स्त्री किसी की जासूस हो, किसी से मिली हो; रात एक साथ सोना खतरनाक, असुरक्षित। अब कोई डर न रहा। उसने शादी करवाई। और शादी होने के बाद जो दूसरा काम किया वह आत्मघात। दोनों ने आत्मघात कर लिया।

इतना भयभीत आदमी! जरा-जरा सी बात से वह मूर्च्छित हो जाता था। अगर कोई उसके विपरीत कुछ कह दे, तो ऐसा कई बार हिटलर के जीवन में घटा कि उसको मिरगी आ जाती थी, विपरीत बात भी नहीं सुन सकता था। क्योंकि विपरीत का मतलब कि उसे शक आ जाता अपने पर कि मैं भी कहीं गलत हो सकता हूं। उसके निकट के लोग भी बड़े परेशान रहते थे कि उससे कहीं ऐसी कोई बात न हो जाए कि वह गिर पड़े, मिरगी आ जाए, चक्कर आ जाए, बेहोश हो जाए। उसकी हर बात माननी चाहिए। वह एक छोटे बच्चे की भांति था, जो हर छोटी बात में पैर पटकने लगेगा और सिर फोड़ने लगेगा। उसकी हर बात माननी ही चाहिए। वह हर बात का ज्ञाता है। और ज्ञान उसे कुछ भी न था। इस कमजोर आदमी ने सारी दुनिया को हिंसा में डुबा दिया। दूसरा महायुद्ध, दुनिया का बड़े से बड़ा युद्ध था। करोड़ों लोग मारे गए। भयंकर हिंसा हुई, जैसी कभी न हुई थी। और जिस आदमी के कारण हुई वह महा कायर था।

कायर हमेशा हिंसक होगा। कायर को हिंसक होना ही पड़ेगा। नहीं तो अपनी कायरता को छिपाएगा कहां? हिंसा के धुएं में ही छिपाएगा।

मैंने सुना है कि ईसप एक कहानी लिखना चाहता था, लिख नहीं पाया। किन्हीं सूत्रों से वह कहानी मुझ तक पहुंच गई, मैं तुमसे कह देता हूं। कहानी है कि एक गधे की बड़ी आकांक्षा थी कि जंगल के सम्राट सिंह से दोस्ती कर ले। गधों की सदा यही आकांक्षा होती है। और किसी तरह गधे ने सिंह को राजी कर लिया। क्योंकि गधे तरकीब जानते हैं स्तुति की, खुशामद की। असल में, गधों ने ही तो सिंह को समझा दिया है कि तुम सम्राट हो। अन्यथा इसका कोई प्रमाण है? और गधे ने बड़ी स्तुति की। सिंह प्रसन्न हो गया। उसने कहा, तुम तो वजीर बनाने योग्य हो। गधे ने कहा, आप जैसा बुद्धिमान ही केवल पहचान सकता है; बाकी लोग तो मुझे गधा समझते हैं। क्योंकि लोग समझ ही नहीं सकते; इतनी बुद्धि कहां!

सिंह ने उसे साथ ले लिया। और पहले ही दिन दोनों गए शिकार के लिए। तो गधा अपनी बहादुरी दिखाना चाहता था। दोनों रुके एक मांद के बाहर जहां कुछ जंगली भेड़ें रहती थीं गुफा में। गधा भीतर गया। उसने कहा, तुम बाहर बैठो; मैं अभी ऐसा उत्पात मचाऊंगा भीतर जाकर कि भेड़ें अपने आप बाहर आ जाएंगी। तुम मार लेना और भोजन कर लेना, और मेरे लिए भी बचा लेना।

सिंह बाहर बैठा रहा। और गधे ने निश्चित ही ऐसा भयंकर उत्पात मचाया, इतनी धूल उड़ाई, इतनी दुलत्तियां झाड़ीं कि घबड़ा गईं भेड़ें और बाहर निकलने लगीं। सिंह ने खूब भोजन किया, गधे के लिए भी बचाया। और जब गधा आया तो उसने पूछा कि कहो कैसा रहा मेरा कृत्य? सिंह ने कहा कि अगर मुझे पता न होता कि तू एक गधा मात्र है तो मैं खुद भाग खड़ा होता, इतना उत्पात तूने मचा दिया था। कई बार मैंने अपने को रोका, सम्हाला, कि अरे गधा ही है! नहीं तो कई बार भागने की हालत आ गई थी।

गधा जब उत्पात मचाएगा तो अतिशय मचाएगा। जब भी कायर आदमी बहादुरी दिखाएगा तो अतिशय दिखाएगा। और दिखाने का उपाय क्या है? एक ही उपाय है कि मिटाओ, हिंसा करो, तोड़ो-फोड़ो, ताकि दुनिया जान ले कि तुम कितने शक्तिशाली हो। अशक्त शक्ति का दिखावा करना चाहता है। लेकिन जिसके पास शक्ति है वह दिखावे की बात ही भूल जाता है। दिखाने का कोई सवाल ही नहीं है; जो है वह है। और वह इतना आश्वस्त है उसके होने से कि अब किसी का प्रमाणपत्र तो चाहिए नहीं।

एक दूसरी कहानी है ईसप की कि सिंह गया है जंगली जानवरों से पूछने। पूछा उसने भेड़िए से कि कौन है सम्राट वन का? उसने कहा कि महाराज, आप! यह भी कोई पूछने की बात है? पूछा उसने हिरनों से। उन्होंने सामूहिक स्वर से कहा कि आप! इसमें कोई संदेह है क्या? ऐसा पूछता हुआ अकड़ से भरता हुआ वह हाथी के पास पहुंचा। और हाथी से उसने पूछा कि कौन है सम्राट वन का? हाथी ने उसे सूंड में लपेटा और फेंका कोई पचास फीट दूर। हड्डी-पसली चकनाचूर हो गई। लंगड़ाता हुआ हाथी के पास आया और कहा कि अगर उत्तर मालूम न हो तो इतना परेशान होने की क्या जरूरत! अगर उत्तर पता नहीं तो कह देते कि पता नहीं।

जिसको उत्तर पता है उसे उत्तर देना भी नहीं पड़ता। प्रमाण लेने ही वही जाता है जो संदिग्ध है। जो असंदिग्ध है उसे किसका प्रमाण चाहिए? कौन प्रमाण देगा उसे? और जिनसे तुम प्रमाण मांग रहे हो वे कौन हैं? उनके प्रमाण का कितना मूल्य है? और हम चौबीस घंटे प्रमाण मांग रहे हैं। हमारे प्राणों की बड़ी अकुलाहट है, कोई कह दे कि तुम बड़े सुंदर हो। किससे प्रमाण मांग रहे हो? कोई कह दे कि तुम बड़े बुद्धिमान हो; कोई कह दे कि तुम जैसा बहादुर कोई भी नहीं। पर तुम प्रमाण किससे मांग रहे हो? और जो तुम्हें प्रमाण दे रहा है वह कौन है? जो तुम्हारी खुशामद कर रहा है वह तुमसे भी गया-बीता होगा। उस गए-बीते के प्रमाण पर तुम्हारी बुद्धिमानी, तुम्हारा सौंदर्य, तुम्हारी बहादुरी निर्भर है।

लाओत्से कहता है कि जो वीर है, वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।

एक बड़ी अनूठी इतिहास में घटना घटी है भारत के। और वह घटना यह है कि भारत में जितने बड़े अहिंसक पैदा हुए, सब क्षत्रिय घरों में पैदा हुए; एक भी ब्राह्मण घर में अहिंसक पैदा नहीं हुआ। ब्राह्मण घर में तो परशुराम पैदा हुए, जिन जैसा हिंसक खोजना कठिन है। कहते हैं उन्होंने अनेक बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। तो अगर ब्राह्मणों में तुम्हें खोजना हो कोई बड़े से बड़ा नाम तो वह परशुराम का है। उस नाम से ऊपर कोई नाम नहीं जाता; क्योंकि ब्राह्मणों में वही एक आदमी है जिसको अवतार होने की प्रतिष्ठा हमने दी है। और परशुराम फरसा लिए खड़े हैं। वह फरसा उनका प्रतीक हो गया। नाम तो उनका राम ही रहा होगा। परशुराम का मतलब हैः फरसा वाले राम। हिंसक बड़े से बड़ा भारत ने पैदा किया परशुराम, वह ब्राह्मण घर से आया। और अहिंसक भारत ने पैदा किए--सारे अहिंसक--चौबीस जैनों के तीर्थंकर, वे क्षत्रिय; चौबीस बुद्ध, सब क्षत्रिय।

क्षत्रिय घरों से आए अहिंसक और ब्राह्मण घर से आया हिंसक; यह जरा सोचने जैसा है, मामला क्या है?

परशुराम आश्वस्त नहीं हैं। सारी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दें तभी उनको आश्वासन मिलेगा कि वे कुछ हैं। लेकिन महावीर, बुद्ध आश्वस्त हैं। उन्हें अपने होने में कोई संदेह नहीं है। वे चींटी को भी बचा कर चलते हैं; चींटी को भी मारना उन्हें कठिन है। परशुराम को सारी पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर देना आसान है।

असल में, ब्राह्मण के मन में हमेशा एक कुंठा रही है। और वह कुंठा यह है कि वह दुर्बल है, दीन है। और माना कि क्षत्रिय उसकी पूजा भी करते हैं, तो भी ताकत तो क्षत्रिय के हाथ में ही है। और माना कि पुरोहित क्षत्रिय उसे ही बनाते हैं, चरण भी उसके छूते हैं, लेकिन वास्तविक ताकत--डी फेक्टो ताकत--वह तो क्षत्रिय के

हाथ में है। वह चाहे तो क्षण भर में ब्राह्मण की गर्दन उतार दे। अगर ब्राह्मण पूज्य है तो वह भी क्षत्रिय की स्वीकृति के कारण। वह जिस दिन अस्वीकार कर दे उस दिन मिट्टी में मिल जाएगा। तो ब्राह्मणों के मन में सदियों से एक पीड़ा रही है, वह है क्षत्रिय को किसी तरह नीचा दिखाने की। परशुराम तो उसी की कथा हैं। वह सारी पीड़ा ब्राह्मणों के भीतर इकट्ठी हो गई, कि वे दीन हैं, हीन हैं, ना-कुछ हैं, भिखारी हैं। और क्षत्रिय आदर भी देता है तो भी वह उसकी मरजी है; न दे तो कुछ कर न सकोगे। और शायद आदर देना भी उसकी कुशलता है और राजनीति है; क्योंकि आदर देकर वह तुमको सांत्वना देता है। और दुनिया में सभी राजनीतिज्ञ जानते हैं कि ब्राह्मण को आदर देना ठीक है; नहीं तो ब्राह्मण उपद्रवी सिद्ध हो सकता है, भयंकर उपद्रव उससे हो सकता है। दुनिया में जितने उपद्रव आते हैं वे ब्राह्मण से आते हैं। ब्राह्मण यानी इंटेलिजेंसिया; ब्राह्मण यानी वह जो बुद्धिमान है, सोच-विचार सकता है।

भारत बहुत प्राचीन देश है, इसने समझ लिए हैं रहस्य, तो इसने ब्राह्मण को आदर दे दिया। इसलिए भारत में कभी क्रांति नहीं हो सकती; क्योंकि बिना ब्राह्मण के क्रांति करेगा कौन? क्षत्रिय शांति में उत्सुक हो सकता है, क्रांति में नहीं। ब्राह्मण क्रांति में उत्सुक होता है। क्योंकि ब्राह्मण को लगता है, हूं तो मैं इतना बड़ा जानकार, लेकिन ताकत मेरे हाथ में बिल्कुल नहीं है। वह बगावत सुलगाता है, विद्रोह जगाता है। और जो हिंदुस्तान ने किया था--पांच हजार साल में कोई क्रांति भारत में नहीं हुई--उसका राज यह है कि ब्राह्मण को इतना आदर दे दिया, उसकी इतनी स्तुति कर दी। वह था कुछ नहीं; उसके भीतर कुछ भी नहीं थी ताकत। लेकिन एक ताकत थी, वह बगावत सुलगा सकता है। वह लड़ेगा नहीं; लेकिन दूसरों को लड़वा सकता है, वह दूसरों को भड़का सकता है। उसके पास वाणी की कुशलता है, तर्क का आधार है। वह शोषित जनों को उपद्रव में उतार सकता है।

जो भारत ने किया था वही सोवियत रूस में किया जा रहा है आज। आज सोवियत रूस में लेखकों का, प्रोफेसरों का, कवियों का, वैज्ञानिकों का--ब्राह्मणों का--जितना आदर है उतना किसी का भी नहीं। क्योंकि सोवियत रूस भी अब क्रांति नहीं चाहता। और सोवियत रूस में तब तक क्रांति न हो सकेगी। और जो थोड़ी-बहुत चिनगारियां आती हैं, किसी पास्तरनेक सोल्झेनिस्तीन से, वे सब ब्राह्मणों की चिनगारियां हैं। कोई ब्राह्मण नाराज हो जाता है तो वह गड़बड़ शुरू करता है।

खुद ब्राह्मण उपद्रव नहीं करेगा; लेकिन उपद्रव करवा सकता है। ऐसी किताबें लिख सकता है; बगावती स्वर जगा सकता है। और कभी अगर हजारों साल का क्रोध इकट्ठा हो जाए ब्राह्मण का तो फिर परशुराम पैदा होते हैं। परशुराम हजारों साल की पीड़ा का संगृहीत रूप है। वह अवतरण है सारी हिंसा का जो ब्राह्मण में इकट्ठी हो गई। थोड़ा सोचो! किसी ने कभी सोचा नहीं ठीक से कि आखिर परशुराम को ब्राह्मणों की किस पीड़ा ने पैदा किया होगा कि परशुराम ने सात बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया! काट डाले क्षत्रिय। क्या कारण रहा होगा? क्षत्रियों से ऐसी क्या नाराजगी रही होगी?

नाराजगी गहरी है। क्षत्रिय पैर तो छूता है, लेकिन वह सिर्फ दिखावा है। तलवार उसी के हाथ में है। और ब्राह्मण को वह कितने ही ऊंचे बिठा दे, वह उसी के इशारे पर ऊंचा बैठा है। जिस दिन इशारा करेगा, नीचे उतर आना पड़ेगा।

तो ब्राह्मणों ने तो बड़े से बड़ा हिंसक पैदा किया और क्षत्रियों ने बड़े से बड़े अहिंसक पैदा किए। दो धर्म दुनिया में अहिंसक धर्म हैंः बौद्ध और जैन; दोनों क्षत्रियों से पैदा हुए।

असल में, जितना आश्वस्त हो व्यक्ति अपने साहस का उतना ही दिखाने का मोह चला जाता है। दिखाना किसको है? और बात इतनी प्रगाढ़ है कि दिख ही जाएगी। दिखाने के लिए प्रयास क्या करना है? तुम्हारे भीतर जो भी होता है वस्तुतः, तुम उसे दिखाना नहीं चाहते। जो नहीं होता वही तुम दिखाना चाहते हो। क्योंकि तुम्हें पता है, अगर तुमने न दिखाया तो किसी को दिखाई पड़ेगा कैसे? है तो है ही नहीं।

सुंदर स्त्री आभूषणों से मुक्त हो जाती है; कुरूप स्त्री कभी भी आभूषणों से मुक्त नहीं हो सकती। सुंदर स्त्री सरल हो जाती है; कुरूप स्त्री कभी भी नहीं हो सकती। क्योंकि उसे पता है, आभूषण हट जाएं, बहुमूल्य वस्त्र हट जाएं, सोना-चांदी हट जाए, तो उसकी कुरूपता ही प्रकट होगी। वही शेष रह जाएगी, और तो वहां कुछ बचेगा न। सुंदर स्त्री को आभूषण शोभा देते ही नहीं, वे थोड़ी सी खटक पैदा करते हैं उसके सौंदर्य में। क्योंकि कोई सोना कैसे जीवंत सौंदर्य से महत्वपूर्ण हो सकता है? हीरे-जवाहरातों में होगी चमक, लेकिन जीवंत सुंदर आंखों से उनकी क्या, क्या तुलना की जा सकती है? जैसे ही कोई स्त्री सुंदर होती है, आभूषण-वस्त्र का दिखावा कम हो जाता है। तब एक्झिबीशन की वृत्ति कम हो जाती है। असल में, सुंदर स्त्री का लक्षण ही यही है कि जिसमें प्रदर्शन की कामना न हो। जब तक प्रदर्शन की कामना है तब तक उसे खुद ही पता है कि कहीं कुछ असुंदर है, जिसे ढांकना है, छिपाना है, प्रकट नहीं करना है। स्त्रियां घंटों व्यतीत करती हैं दर्पण के सामने। क्या करती हैं दर्पण के सामने घंटों? कुरूपता को छिपाने की चेष्टा चलती है; सुंदर को दिखाने की चेष्टा चलती है।

ठीक यही जीवन के सभी संबंधों में सही है। अज्ञानी अपने ज्ञान को दिखाना चाहता है। वह मौके की तलाश में रहता है; कि जहां कहीं मौका मिले, जल्दी अपना ज्ञान बता दे। ज्ञानी को कुछ अवसर की तलाश नहीं होती; न बताने की कोई आकांक्षा होती। जब स्थिति हो कि उसके ज्ञान की कोई जरूरत पड़ जाए, जब कोई प्यास से मर रहा हो और उसको जल की जरूरत हो तब वह दे देगा। लेकिन प्रदर्शन का मोह चला जाएगा।

अज्ञानी इकट्ठी करता है उपाधियां कि वह एम.ए. है, कि पीएचड़ी. है, कि डी.लिट. है, कि कितनी ऑननेरी डिग्रियां उसने ले रखी हैं। अगर तुम अज्ञानी के घर में जाओ तो वह सर्टिफिकेट दीवाल पर लगा रखता है। वह प्रदर्शन कर रहा है कि मैं जानता हूं।

लेकिन यह प्रदर्शन ही बताता है कि भीतर उसे भी पता है कि कुछ जानता नहीं है। परीक्षाएं उत्तीर्ण कर ली हैं, प्रमाणपत्र इकट्ठे कर लिए हैं। लेकिन जानने का न तो परीक्षाओं से संबंध है, न प्रमाणपत्रों से। जानना तो जीवन के अनुभव से संबंधित है। जानना तो जी-जीकर घटित होता है, परीक्षाओं से उपलब्ध नहीं होता। परीक्षाओं से तो इतना ही पता चलता है कि तुम्हारे पास अच्छी यांत्रिक स्मृति है। तुम वही काम कर सकते हो जो कंप्यूटर कर सकता है। लेकिन इससे बुद्धिमत्ता का कोई पता नहीं चलता। बुद्धिमत्ता बड़ी और बात है; कालेजों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में नहीं मिलती। उसका तो एक ही विश्वविद्यालय है, यह पूरा अस्तित्व। यहीं जीकर, उठ कर, गिर कर, तकलीफ से, पीड़ा से, निखार से, जल कर आदमी धीरे-धीरे निखरता है, परिष्कृत होता है।

"वीर सैनिक हिंसक नहीं होता।"

हो नहीं सकता।

"अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता।"

क्योंकि क्रोध कमजोरी का लक्षण है। जितने जल्दी क्रोध आ जाता है उतने ही जल्दी समझ लेना कि तुम्हारी क्षमता चुक गई।

मैंने सुना है, एक गांव में एक यहूदी फकीर था। वह गांव में नया-नया आया था। उस गांव की भाषा नहीं जानता था। लेकिन गांव का जो सभागृह था--पुराने दिनों की बात है जब शास्त्रार्थ रोज ही चलते थे--वह वहां रोज नियमित उपस्थित होता था। पंडितों में विवाद होते। वह भाषा तो जानता ही नहीं था।

एक दिन लोगों ने पूछा कि तुम किसलिए परेशान होते हो? तुम किसलिए जाते हो वहां? तुम भाषा तो समझते नहीं। और विवाद संस्कृत में चलता है; तुम्हें तो उसका कोई पता ही नहीं। एक शब्द तुम्हारी समझ में न आएंगे। पर तुम इतनी तत्परता से सुनते हो; क्या सुनते हो?

उसने कहा कि मैं सुनता नहीं वे क्या बोल रहे हैं। मैं तो सिर्फ यह देखता हूं कि दोनों विवादी में किसको पहले क्रोध आ गया। मैं समझ जाता हूं कि वह हार गया। वह मैं उतनी भाषा मैं समझता हूं। जिसको क्रोध आ गया उसने स्वीकार कर लिया कि वह हार गया। अब कितनी ही देर लगाए आखिरी निर्णय के होने में, लेकिन वह हार चुका। और उस फकीर ने कहा कि यह मैं देख रहा हूं कि जिसको मैं पहले तय कर देता हूं कि यह हार गया, वही आखिर में घोषणा होती है कि वह हार गया। मगर मैं घड़ी भर पहले जान लेता हूं। जैसे ही क्रोध आंखों में आना शुरू हुआ, उसका मतलब है आदमी की क्षमता चुक गई। उसकी सीमा आ गई।

उथला है आदमी तो जल्दी क्रोध हो जाता है। जितना गहरा होता है उतना क्रोध मुश्किल हो जाता है। और जब कोई बिल्कुल असीम होता है, तब तो क्रोध असंभव हो जाता है। तुम्हारा क्रोध तुम्हारे व्यक्तित्व की गहराई का पता देता है। किसी ने जरा सा कुछ कह दिया, तुम क्रोधित हो गए; उसका मतलब है कि तुम्हारे व्यक्तित्व की गहराई चमड़ी से ज्यादा गहरी नहीं है। तुम्हारा जानवर जल्दी प्रकट हो जाता है; बस जरा ही पीछे छिपा है। यह जो ऊपर तुमने मनुष्यता का आवरण ओढ़ रखा है, यह बहुत गहरा नहीं है; जरा सा कोई आदमी हंस दे, गाली दे दे, और यह आवरण टूट जाता है। क्रोध परीक्षा है।

लाओत्से कहता है, अच्छा लड़ाका जो योद्धा है वह क्रोध नहीं करता।

ताओवादियों की बड़ी प्रसिद्ध कथा है कि एक सम्राट, वर्ष की अंतिम प्रतियोगिता होने वाली थी मुर्गों की लड़ाई की, वह अपने मुर्गे को भी युद्ध में भेजना चाहता था। तो उसने एक बहुत बड़े झेन फकीर को बुलाया। क्योंकि उस झेन फकीर की बड़ी प्रसिद्धि थी कि उसे युद्ध में कोई हरा नहीं सकता। हराना तो दूर, उसके पास आकर लोग हारने को उत्सुक हो जाते थे। उसके पास हार कर प्रसन्न होकर लौटते थे। उसके साथ हार जाना बड़ी महिमा की बात थी। तो सम्राट ने सोचा कि यह फकीर अगर मुर्गे को तैयार कर दे।

फकीर को बुलाया। मुर्गा फकीर ले गया। तीन सप्ताह बाद सम्राट ने खबर भेजी, मुर्गा तैयार है? फकीर ने कहा, अभी नहीं। अभी तो दूसरे मुर्गे को देख कर वह सिर खड़ा करके आवाज देता है। सम्राट थोड़ा हैरान हुआ कि यह तो ठीक ही लक्षण है। क्योंकि लड़ना है तो सिर खड़ा करके आवाज न दोगे तो दूसरे मुर्गे को डराओगे कैसे?

खैर, कुछ देर और प्रतीक्षा की। फिर तीन सप्ताह बाद पुछवाया। फकीर ने कहा, अभी भी नहीं। अब पुरानी आदत तो जा चुकी है, लेकिन दूसरा मुर्गा आता है तो तन जाता है, तनाव भर जाता है। और तीन सप्ताह बीत गए। फिर पुछवाया। फकीर ने कहा कि अब थोड़ा-थोड़ा तैयार हो रहा है, लेकिन अभी थोड़ी देर है। अब दूसरा मुर्गा कमरे के भीतर आए तो खड़ा तो रहता है, लेकिन भीतर व्यथित हो जाता है, भीतर एक तनाव की रेखा खिंच जाती है। और तीन सप्ताह बाद फकीर ने कहा, अब मुर्गा बिल्कुल तैयार है। अब वह ऐसे खड़ा रहता है जैसे न कोई आया, न कोई गया। और अब कोई फिक्र नहीं है। पर सम्राट ने कहा कि यह मुर्गा जीतेगा कैसे?

उस फकीर ने कहा, तुम फिक्र ही मत करो; अब हारने की कोई संभावना ही न रही। दूसरे मुर्गे इसे देखते ही भाग खड़े होंगे। इसको लड़ना नहीं पड़ेगा। इसकी मौजूदगी काफी है।

और यही हुआ। जब प्रतियोगिता में मुर्गा खड़ा किया गया। तो दूसरे मुर्गों ने सिर्फ झांक कर उस मुर्गे को देखा; न तो उसने आवाज दी, क्योंकि वह कमजोरी का लक्षण है, वह भय का लक्षण है। भय को छिपाने के लिए वह जोर से कुकडूं कूं बोलता है। वह डरवाना चाहता है आवाज से, लेकिन खुद डरा हुआ है। न तो उस मुर्गे ने आवाज दी, न उस मुर्गे ने देखा। जैसे कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी गुजर जाता है। ऐसे वह मुर्गा खड़ा ही रहा, जैसे पत्थर की मूर्ति हो। दूसरे मुर्गों ने देखा, उनको कंपकंपी छूट गई। क्योंकि यह तो बड़ा, यह तो मुर्गे जैसा मुर्गा ही नहीं है! इसके पास जाना तो खतरे से खाली नहीं है। वे भाग खड़े हुए। प्रतियोगिता में दूसरे मुर्गे उतर ही न सके।

लाओत्से कहता है, "अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता।"

यह कथा मुर्गे की ताओवादियों की कथा है। यह लक्षण है योद्धा का कि वह क्रोध न करे, कि वह उत्तप्त न हो जाए, कि उसका मन ज्वरग्रस्त न हो, कि वह ऐसा शांत बना रहे जैसे बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया हो।

इसलिए जापान और चीन में योद्धा का शिक्षण ध्यान का शिक्षण है। ऐसा दुनिया में कहीं भी नहीं हुआ। और इसलिए जैसी कुशलता जापानियों ने पाई है युद्ध की कला में वैसी कोई जाति नहीं पा सकी। छोटी कौम है जापानियों की, लेकिन उन्होंने पहली दफा उन्नीस सौ पांच में रूस को चारों खाने चित्त कर दिया। पहली दफा पूरब के किसी देश ने पश्चिम के देश को युद्ध में हराया। और दूसरे महायुद्ध में भी उन्होंने बड़ी अदभुत स्थिति प्रकट की। और एटम और हाइड्रोजन बम अगर न गिराया जाता तो जापानियों को मिटाना मुश्किल था। असल में, एटम और हाइड्रोजन बम गिरा कर अमरीका ने कोई बहादुरी का लक्षण नहीं दिखाया। यह तो कमजोरी की ही बात हुई। यह तो ऐसा ही हुआ कि दूसरे के पास तलवार न हो और तुम तलवार भोंक दो। यह तो केवल शस्त्र की ही खूबी रही, बहादुरी की न। और जापान ने प्राण कंपा दिए सारे यूरोप और पूरे अमरीका के। क्योंकि जापानी जिस निर्भय से युद्ध में जाता है, कोई दूसरी कौम नहीं जाती; जिस शांति से युद्ध में जाता है, कोई दूसरी कौम नहीं जा सकती। क्योंकि जापान में एक शिक्षण है समुराई का, वह ध्यान का शिक्षण है। युद्ध के मैदान पर तलवार से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है ध्यान का शिक्षण। इतना शांत, उस मुर्गे जैसा। उस शांति से उसका बल आता है। उस शांति से मृत्यु का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

इसलिए तुम चकित होगे कि जापान में ऐसे बहुत से मंदिर हैं जिनमें सिर्फ तलवार चलाना सिखाया जाता है। वे हैं मंदिर, लेकिन ध्यान की प्रक्रिया तलवार चलाना है। वे कहते हैं, तलवार चलाते वक्त तुम तलवार ही हो जाओ, और तुम इतने शांत हो जाओ कि तलवार चले और तुम न रहो। फिर तुम्हें कोई हरा नहीं सकता। और ऐसी घटनाएं घटी हैं कि जब कभी दो ऐसे व्यक्तियों में युद्ध हो गया, संघर्ष हो गया, जो दोनों ही ध्यान में निष्णात थे, तो निर्णय नहीं हो पाता। महीनों संघर्ष चलता है, निर्णय नहीं हो पाता। क्योंकि जब कोई व्यक्ति बिल्कुल शांत होता है तो दूसरे व्यक्ति के हमला करने के पहले वह सुरक्षा कर लेता है। वह इंट्यूटिव है; वह प्रज्ञात्मक है। जब ध्यान गहरा हो जाता है तो दूसरा व्यक्ति तलवार से कहां हमला करने वाला है--अभी उसने किया नहीं है, अभी सिर्फ सोचा है--पर उसके विचार की प्रतिछवि आ जाती है। और इसके पहले कि वह हमला करे, ढाल जगह पर तैयार होती है; हमले के पहले बचाव हो जाता है। और तब बड़ा मुश्किल हो जाता है। अगर दोनों ही व्यक्ति एक-दूसरे के विचार पढ़ने में कुशल हों तो हार असंभव है।

एक झेन फकीर के पास, जो तलवार चलाना सिखाता था, एक युवक आया। और उस युवक ने कहा कि मुझे भी स्वीकार कर लें शिष्य की भांति। उस फकीर ने कहा, लेकिन तुम, तुम तो पूर्ण निष्णात मालूम होते हो! तुम्हें शिक्षण की कोई जरूरत नहीं। तुम क्या मुझसे मजाक करने आए हो या मेरी परीक्षा लेने? क्योंकि मैं देख पा रहा हूं कि तुम तो पूरे कुशल हो। तुम उतने ही कुशल हो जितना मैं। उस युवक ने कहा, आप यह क्या कह रहे हैं? मैंने कभी तलवार हाथ में नहीं उठाई, कोई शिक्षण नहीं लिया। नहीं, आपको कुछ भ्रांति हो गई। पर उस गुरु ने कहा, अगर मुझे भ्रांति हो जाए तो मैं गुरु नहीं। तुम मुझे धोखा देने की कोशिश मत करो। तुम मुझे सच-सच कहो। उस युवक ने कहा, लेकिन मैं सच ही कह रहा हूं। तो गुरु ने कहा, तुमने फिर कुछ और तो नहीं सीखा है?

उसने कहा कि मैं सिर्फ... । जापान में टी सेरेमनी होती है, चाय को पीने को उन्होंने एक धार्मिक उत्सव बना रखा है। तो उसने कहा कि मैं तो सिर्फ चाय पिलाने की कला में निष्णात हूं।

तो उस फकीर ने कहा, बात साफ हो गई। कला कोई भी हो, बात तो एक ही है। चाहे तलवार चलाओ, चाहे प्याली में चाय ढालो, लेकिन अगर ध्यान से किया जाए तो दोनों एक ही तरह की बातें हैं; कोई फर्क नहीं है।

अगर ध्यानपूर्वक चाय ढाली जाए प्याली में, या ध्यानपूर्वक कोई तलवार उठाए, या ध्यानपूर्वक कोई तीर चलाए, या ध्यानपूर्वक कोई रास्ते पर चले--असली सवाल ध्यानपूर्वक होना है। और जब कोई ध्यानपूर्वक जीता है तो उसके जीवन से क्रोध विलीन हो जाता है।

क्रोध इसीलिए है कि तुम्हें ध्यान का कोई पता नहीं। क्रोध इसीलिए है कि तुम्हें अपनी गहराई का कोई पता नहीं। तुम अपने घर के बाहर-बाहर जी रहे हो, इसलिए उथले हो। उथलेपन में क्रोध है। जैसे नदी गहरी हो जाती है और शोरगुल बंद हो जाता है, जैसे घड़ा भर जाता है फिर आवाज नहीं आती, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति गहरा होता है तब उसके जीवन से क्रोध विलीन हो जाता है। और योद्धा को तो गहरा होना ही चाहिए। ऐसे तो सभी योद्धा हैं, क्योंकि जीवन एक संघर्ष है।

"बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता है।"

असल में, छोटी बातों के लिए जो लड़ता है उसके जीवन में बड़ा छोटापन है, बड़ा ओछापन है। तुमने कभी गौर किया कि तुम किन बातों के लिए लड़ते हो? अगर तुम गौर से खोजोगे तो तुम पाओगे बातें बड़ी छोटी हैं, और लड़ाई बड़ी मचाते हो। राह से जाते थे, किसी ने मुस्कुरा दिया; दुश्मनी हो गई। किसी ने एक शब्द कह दिया, और जिंदगी भर तुम उसको बोझ की तरह ढोते हो। तुम लड़ते किन बातों पर हो? बहुत छोटी बातें हैं। विचार करोगे तो हंसोगे अपने ऊपर कि यह भी कुछ लड़ने योग्य था! और एक बात स्मरण रखना। अगर छोटी बातों के लिए लड़े तो छोटे रह जाओगे। एक बड़ी प्रसिद्ध कहावत है अरब में कि आदमी अपने दुश्मन से पहचाना जाता है। अगर तुमने छोटे दुश्मन चुने तो तुम आदमी छोटे हो। अगर तुमने बड़े दुश्मन चुने तो तुम आदमी बड़े हो। तुम किन चीजों से लड़ते हो? उनसे ही तो तुम्हारा व्यक्तित्व निर्मित होगा।

अगर तुम बड़ी चीजों के लिए लड़ते हो, तुम अचानक बड़े हो जाओगे। और जब यह बात तुम्हें समझ में आ जाएगी तो तुम लड़ोगे ही नहीं; क्योंकि इतनी कोई भी बड़ी चीज नहीं है कि जिससे लड़ कर तुम विराट हो सको। सभी चीजें छोटी हैं। कोई छोटी, कोई बड़ी, लेकिन अंततः सभी चीजें छोटी हैं। इसलिए जिसको विराट के साथ एक होना है वह असंघर्ष का सदगुण सीख लेता है। वह लड़ता ही नहीं; वह लड़ने योग्य ही नहीं पाता।

जीसस के वचन हैं, कोई मारे एक गाल पर चांटा, दूसरा कर देना।

इनका राज क्या है? इनका राज यह है कि यह बात लड़ने योग्य है ही नहीं। चांटा ही मार रहा है; गाल पर ही मार रहा है; बिगाड़ क्या लेगा? लेकिन इससे अगर तुम लड़ने लगे तो लड़ाई के द्वारा तुम इसी की स्थिति में आ जाओगे जहां यह खड़ा है। आखिर तुम भी क्या करोगे? दुश्मन जिसको तुमने चुना वह तुम्हें बदल देगा अपने ही ढंग में। मित्र इतना नहीं बदलते जितना दुश्मन बदल देते हैं। अगर लड़ना ही हो तो किसी बड़ी बात के लिए लड़ना।

लेकिन कौन सी बड़ी बात है जिसके लिए तुम लड़ोगे? खोजने निकलोगे तो पाओगे ही नहीं कि कोई भी बड़ी बात है। किसी आदमी ने गाल पर एक चांटा मार दिया; हवा का एक झोंका समझ लेना। लड़ने की क्या बात है? और तुम पाओगे, अगर तुम न लड़े तो तुम बड़े हो गए, उसी क्षण बड़े हो गए; तुम ऊपर उठे, साधारण मनुष्यता से पार गए। साधारण क्षुद्र जीवन की बातों से ऊपर उठे।

तो जीसस सूली पर चढ़ते वक्त भी प्रार्थना करते हैं, क्षमा कर देना परमात्मा इनको; क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

अगर जीसस ने कहा होता कि नष्ट कर देना इन सबको; ये तेरे बेटे का जीवन छीने ले रहे हैं। तो जीसस एकदम छोटे हो गए होते, वहीं सिकुड़ गए होते। सारी बात ही खत्म हो जाती। आखिरी कसौटी सूली पर थी। उस कसौटी पर वे पूरे उतर गए। वही बड़े से बड़ा चमत्कार है। उन्होंने अंधों की आंखें खोलीं या नहीं खोलीं, सब व्यर्थ की बातचीत है। लंगड़ों को चलाया या नहीं चलाया, कोई हिसाब रखने की जरूरत नहीं है। लेकिन सूली पर उन्होंने प्रमाण दे दिया आखिरी कि वे निश्चित ही बेटे परमात्मा के हैं। वे इतने बड़े हैं कि जो सूली पर लटका रहे हैं उनको क्षमा कर सकते हैं।

"अच्छा लड़ाका क्रोध नहीं करता। बड़ा विजेता छोटी बातों के लिए नहीं लड़ता। मनुष्यों का अच्छा प्रयोक्ता अपने को दूसरों से नीचे रखता है। असंघर्ष का यही सदगुण है।"

असंघर्ष शब्द को ठीक से समझ लो।

हमारे भीतर एक वृत्ति है जो हमें चौबीस घंटे लड़ाती है। उस वृत्ति के कारण हम हर घड़ी जैसे सचेत हैं कि कोई संघर्ष होने की तैयारी है। पति घर आता है, तैयार हो जाता है कि पत्नी क्या पूछेगी, वह क्या जवाब देगा; पत्नी क्या कहेगी, वह कैसे संघर्ष करेगा। आदमी बाजार जाता है तो संघर्ष की तैयारी है; घर आता है तो संघर्ष की तैयारी है। मित्रों से मिलता है तो भी तैयार होकर मिलता है, जैसे कि वहां भी कलह है। हमारे भीतर कोई सूत्र है--वह सूत्र अहंकार का है--जो हमसे कहता है कि सब तरफ लड़ाई चल रही है, सम्हल कर चलना, तैयार होकर चलना, इंतजाम करके चलना। क्योंकि जिन्होंने इंतजाम नहीं किया वे हार जाते हैं। और इसीलिए तो तुम्हारे जीवन में इतना तनाव है; तुम शांत नहीं हो सकते। क्योंकि संघर्ष जिसकी वृत्ति है वह शांत कैसे होगा?

असंघर्ष को जो अपनी वृत्ति बना ले, जीवन की शैली बना ले, कि कोई लड़ाई नहीं हो रही है, कोई दुश्मन नहीं है, सारा संसार मित्र है, यह सारा अस्तित्व परिवार है, यहां कोई तुम्हें मिटाने को उत्सुक नहीं है; जिसके मन में ऐसा भाव आ जाए, और अद्वैत की जो खोज में लगा हो, उसके लिए तो यह भाव धारा की तरह है जो सागर में ले जाएगा। कोई दुश्मन नहीं है; फूल-पत्ते, वृक्ष, आकाश, चांद, तारे, सब तुम्हारे लिए हैं। इन सबने तुम्हें सम्हाला हुआ है।

और अगर कभी कहीं जीवन में कहीं कुछ कलह जैसी मालूम पड़ती है तो भी तुम उसे सर्जिकल जानना कि जैसे डाक्टर कभी तुम्हारे हाथ-पैर से फोड़े को काटता है, पीड़ा देता है, लेकिन पीड़ा देने के लिए नहीं, पीड़ा

से छुटकारे के लिए। अगर जीवन में कहीं तुम्हें चोट पड़ती है, वह चोट भी तुम्हारे हित के लिए है, कल्याण के लिए है।

बायजीद एक रास्ते से गुजर रहा था। पत्थर से चोट लग गई; पैर लहूलुहान हो गया। वहीं बैठ कर उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि धन्यवाद।

साथियों ने कहा, क्या पागलपन है! पैर से खून बह रहा है; धन्यवाद किस बात का दे रहे हो? इस परमात्मा का तुम पर कौन सा अनुग्रह है? अगर परमात्मा इतना ही प्रेम करता था तो पत्थर राह से हटा देना था, या पत्थर को फूल कर देता, या तुम्हें ख्याल दे देता कि नीचे पत्थर है और तुम बच कर निकल जाते।

बायजीद ने कहा, तुम समझते नहीं; सूली भी हो सकती थी; सिर्फ इसी चोट से उसने बचा दिया। उसके अनुग्रह का कोई अंत नहीं है।

यह देखने का ढंग है। सूली भी हो सकती थी; और केवल पत्थर की चोट से बचा दिया। धन्यवाद देना जरूरी है। यह उस आदमी की दृष्टि है जिसने जीवन को एक परिवार की तरह देख लिया, जिसने जान लिया कि परमात्मा साथ दे रहा है। कभी अगर तोड़ता भी है तो इसीलिए कि उस तोड़ने से तुम्हें निखार सके। कभी अगर कष्ट भी देता है तो इसीलिए ताकि तुम्हें कष्ट के बीच भी शांत रहने की क्षमता की सुविधा दे सके। कभी अगर तुम्हें मारता भी है तो इसीलिए ताकि तुम मृत्यु में भी जीवन के उठते हुए रूप का दर्शन कर सको। असंघर्ष बड़े से बड़ा गुण है। लड़ने का भाव रोग है। असंघर्ष, किसी से कोई वैमनस्य नहीं।

महावीर का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः वैरं मज्झ न केणई। किसी से मेरी कोई शत्रुता नहीं, सभी से मेरी मित्रता है।

किसी ने महावीर के कान में खीलें ठोंक दिए थे। और महावीर बिल्कुल निर्दोष थे। महावीर खड़े थे मौन। वे बारह वर्ष मौन रहे ताकि मन बिल्कुल शांत हो जाए; शब्द का उपयोग न किया। नग्न खड़े थे एक जंगल में। एक चरवाहा अपनी गायों को चरा रहा था। उसने महावीर से कहा कि अरे सुन--उसने सोचा खड़ा है कोई नंगा आदमी--जरा मेरी गाय देखते रहना; मैं जरा काम से गांव जा रहा हूं।

अब महावीर बोलते तो थे नहीं, इसलिए कह न सके कि नहीं भई, मैं न देख सकूंगा; मैं अपने काम में लगा हूं। आंखें बंद हैं; बोलते नहीं थे। चुप ही खड़े रहे। बोलते नहीं थे, इशारा भी नहीं करते थे। क्योंकि इशारा भी बोलना है। उसमें कोई सार नहीं, फिर मौन रहने का कोई अर्थ नहीं। वे वैसे ही खड़े रहे। वह आदमी मौन को सम्मति मान कर कि महावीर देख लेंगे; या हो सकता है, गूंगा हो आदमी; गांव चला गया। वह गांव चला गया; गाएं उठीं और जंगल में अंदर चली गईं।

जब वह आदमी लौटा, वहां गाएं नदारद थीं। महावीर वहीं खड़े थे। उसने कहा, तो अच्छा तो बने तुम साधु खड़े हो! गाएं नदारद कर दीं! गाएं कहां हैं? और महावीर मौन हैं, इसलिए बोल सकते नहीं। वे वैसे ही खड़े रहे। वह इतना क्रोध में आ गया कि सुनता नहीं है? बहरा है? तो अब मैं तुझे बहरा ही बनाए देता हूं। उसने दोनों कान में दो लकड़ियां ठोंक कर पत्थर से अंदर कर दीं; दोनों कान फोड़ दिए। लहूलुहान महावीर खड़े हैं।

कथा कहती है कि इंद्र को, देवताओं को पीड़ा हुई कि इस निर्दोष आदमी को इतना कष्ट! अकारण!

ये कथाएं भी बड़ी अर्थपूर्ण हैं। ये इतना ही कह रही हैं कि अस्तित्व भी पीड़ा अनुभव करता है जब तुम निर्दोष होते हो। कोई देवता वहां बैठे हैं ऐसा नहीं, कि कोई इंद्र वहां सोच रहा है ऊपर आकाश में बैठा। लेकिन कथा तो सांकेतिक है; अस्तित्व तुम्हारे लिए पीड़ा अनुभव करता है जब तुम निर्दोष होते हो। जब पूरा अस्तित्व अनुभव करता है तुम्हारी सरलता को तब अस्तित्व भी पीड़ित होता है।

इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि आप इतनी आज्ञा दें कि मैं आपकी रक्षा के लिए साथ-साथ रहूं। क्योंकि आप हैं मौन, और इस तरह की दुर्घटनाएं बड़ी पीड़ादायी हैं। महावीर ने--यह तो कोई बाहर की वाणी की बात नहीं थी, क्योंकि वे तो मौन थे, बाहर तो बोल नहीं सकते थे, लेकिन भीतर उनके भाव ने उत्तर दे दिया, इंद्र तो भाव को समझेगा--उत्तर दे दिया कि नहीं, इसके द्वारा भी बहुत कुछ मिला है, इस पीड़ा से भी बहुत कुछ पाया है, क्योंकि पीड़ा बाहर-बाहर रही और भीतर का आनंद अखंडित रहा। यह बड़ी अच्छी परीक्षा रही; धन्यवाद है उस चरवाहे का! उसने एक अवसर दिया पीड़ा के ऊपर उठने का। तो यह अकारण नहीं है; इसलिए रक्षा की कोई जरूरत नहीं है।

असंघर्ष का अर्थ है कि शत्रुता नहीं है। यह अस्तित्व घर है; हम यहां कोई अजनबी नहीं हैं। और अस्तित्व हमारी सार-सम्हाल रख रहा है, इसलिए लड़ना किसी से भी नहीं है। और जो आ भी जाए लड़ने वह भी छिपा हुआ मित्र ही है, शत्रु के भीतर छिपा हुआ मित्र है।

जीसस ने कहा है, रेसिस्ट नाट ईविल। बुराई से भी संघर्ष मत करो। क्योंकि जिससे तुम संघर्ष करोगे उसी जैसे हो जाओगे। संघर्ष ही मत करो। असंघर्ष सूत्र हो जाए।

"इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं।"

और लाओत्से कहता है, जो असंघर्ष को उपलब्ध हो जाता है वह मनुष्यों का उपयोग करने लगता है। अनजाने सारा अस्तित्व उसके लिए सहयोगी हो जाता है; सारे मनुष्य उसके लिए सहयोगी हो जाते हैं; वे उसके चाकर हो जाते हैं; बिना जीते वे उससे हार जाते हैं; बिना उन्हें हराने की कोशिश किए वह अचानक पाता है कि सभी उसके चाकर हो गए हैं।

"इसे ही मनुष्यों को प्रयोग करने की क्षमता कहते हैं। यही है अस्तित्व की ऊंचाई को छूना।"

जब तुम्हारे जीवन में कोई संघर्ष न रहा, एक मैत्री का विराट भाव व्याप्त हो गया, तो तुमने अस्तित्व के ऊंचे से ऊंचे शिखर को छू लिया। क्योंकि इसी दशा का नाम प्रेम है।

"अस्तित्व का यह ऊंचे से ऊंचा शिखर, यही है स्वर्ग का सखा।"

और इसी के आस-पास स्वर्ग बसा है। प्रेम के आस-पास बसा है स्वर्ग। और असंघर्ष से उपलब्ध होता है प्रेम।

"पुरातन का भी।"

और प्राचीन में, प्रारंभ में जहां तुम थे, जिस परम आनंद में, वह भी इसी के आस-पास है। प्रारंभ भी इसी के आस-पास; अंत भी इसी के आस-पास। प्रेम के आस-पास सारी यात्रा है। प्रेम उपलब्धि है और प्रेम ही प्रस्थान। प्रेम ही पहला कदम है और प्रेम ही अंतिम मंजिल। लेकिन प्रेम को पाना हो तो असंघर्ष का जीवन चाहिए। महावीर इस जीवन को अहिंसा का जीवन कहते हैं; बुद्ध करुणा का जीवन कहते हैं; जीसस प्रेम का जीवन कहते हैं; मोहम्मद प्रार्थना का जीवन कहते हैं। पर बात वही है, सार प्रेम है। और प्रेम तभी उदय होगा, तभी फूटेगा बीज प्रेम का, जब तुम असंघर्ष की भूमि को निर्मित कर पाओगे।

अन्यथा प्रेम का बीज न फूटेगा। लड़ने की वृत्ति से भरे तुम कैसे प्रेम कर पाओगे? लड़ने को आतुर, तो प्रेम भी घृणा हो जाएगा, और प्रेम भी विषाक्त हो जाएगा। लड़ने को आतुर तुम्हारा ध्यान भी क्रोध हो जाएगा। तभी तो दुर्वासा ऋषि जैसे लोग पैदा होते हैं। लड़ने को आतुर, तो ध्यान भी क्रोध हो जाता है। और जहां वरदान बरसते, वहां से अभिशाप का जहर बहने लगता है।

संक्षिप्त में: प्रेम है प्रारंभ, प्रेम है अंत। असंघर्ष की चाहिए भूमि; उसमें प्रेम के बीज को पल्लवित होने दो। उसी में प्रार्थना के फूल लगेंगे और उसी में परमात्मा के फल। और फलों से ही वृक्ष पहचाने जाते हैं। जब तक तुम परमात्मा को न पा लो तब तक तुम पहचाने न जा सकोगे कि तुम कौन हो।

लोग मुझसे पूछते हैं कि हम जानना चाहते हैं हम कौन हैं।

तुम तब तक न जान सकोगे जब तक तुम पूर्ण न हो जाओ, जब तक तुम अपनी नियति को न पा लो। कैसे कोई वृक्ष जानेगा वह कौन है, जब तक बीज वृक्ष न बन जाए, फूल न लग जाएं, फल न लग जाएं। गंगोत्री में गंगा अपने को नहीं पहचान पाएगी। वह पहचान तो होगी अंत में, जहां विराट हो जाएगा रूप, मिलन होगा सागर से।

"दि ब्रेव सोल्जर इ.ज नाट वायलेंट। दि गुड फाइटर डज नाट लूज हिज टेम्पर। दि ग्रेट कांकरर डज नाट फाइट ऑन स्माल इसूज। दि गुड यूजर ऑफ मेन प्लेसेज हिमसेल्फ बिलो अदर्स। दिस इ.ज दि वर्च्यू ऑफ नान-कंटेंडिंग; इ.ज कॉल्ड दि कैपेसिटी टु यूज मेन; इ.ज रीचिंग टु दि हाइट ऑफ बीइंग; मेटेड टु हेवन, टु व्हाट वा.ज ऑफ ओल्ड।"

आज इतना ही।

एक सौ बारहवां प्रवचन

आक्रामक नहीं, आक्रांत होना श्रेयस्कर है

Chapter 69

Camouflage

There is the maxim of military strategists:
I dare not be the first to invade, but rather be the invaded.
Dare not press forward an inch, but rather retreat a foot.
That is, to march without formations,
To roll not up the sleeves,
To charge not in frontal attacks,
To arm without weapons.
There is no greater catastrophe than to underestimate the enemy.
To underestimate the enemy might entail the loss of my treasures.
Therefore when two equally matched armies meet,
It is the man of sorrow who wins.

अध्याय 69

छद्मावरण

सैन्य रणनीतिज्ञों का यह सूत्र है:
मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता,
बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं।
एक इंच आगे बढ़ने के बजाय
एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।
उसका अर्थ है: सैन्यदल के बिना कूच करना, आस्तीन नहीं समेटना,
सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियार-बंद रहना।
शत्रु की शक्ति को कम कर आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है;
शत्रु की शक्ति का अवमूल्यन मेरे खजाने नष्ट कर सकता है;
इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं,

तब जो सदाशयी है, झुकता है, वह जयी होता है।

मनुष्य ने दो तरह के जीवन-दर्शन जाने हैं। एक जीवन-दर्शन है अहंकार का, और एक जीवन-दर्शन है निरहंकारिता का।

अहंकार का जीवन-दर्शन अपने आप में परिपूर्ण शास्त्र है। और वैसे ही निरहंकार का जीवन-दर्शन भी अपने आप में परिपूर्ण है। अहंकार के जीवन-दर्शन की अंतिम उपलब्धि नरक है--अपने आस-पास दुख और पीड़ा का एक साम्राज्य। और निरहंकार जीवन-दर्शन की अंतिम उपलब्धि मोक्ष है--मुक्ति, सच्चिदानंद।

लेकिन अहंकार का जीवन-दर्शन आश्वासन देता है मोक्ष तक पहुंचाने का, और अहंकार का जीवन-दर्शन सब तरह के प्रलोभन देता है। अहंकार के द्वार पर भी लिखा है स्वर्ग, और अहंकार के आमंत्रण बड़े ही भुलावेपूर्ण हैं। वे ऐसे ही हैं जैसे कोई मछलियां पकड़ने जाता है तो कांटे पर आटा लगा देता है। कोई मछलियों को आटा खिलाने के लिए नहीं; खिलाना तो कांटा है। लेकिन आटे के बिना कांटा मछलियों तक पहुंचेगा नहीं। अहंकार बड़े प्रलोभन देता है; दुख के कांटे पर बड़ा आटा लगा देता है। आटे के लोभ में ही हम उसे निगल जाते हैं। और फिर बहुत देर हो गई होती है; फिर उसे थूक देना संभव नहीं। कांटा छिद गया होता है; घाव बन गए होते हैं। और फिर अहंकार के कारण ही यह कहना भी बहुत मुश्किल होता है कि हमने भूल की।

यह जिंदगी की बड़ी गहरी बातों में नहीं, छोटी-छोटी बातों में भी ऐसा है। तुम कभी भोजन करते समय गरम आलू मुंह में रख लेते हो, तो भी उसे थूकते नहीं। जलता है मुंह, तो भी अहंकार कहता है अब सब के सामने इसे बाहर थूकना कैसे संभव है। मुंह जल जाए, लेकिन तुम गरम आलू को भी किसी तरह गटक जाते हो। और ऐसा कोई गरम आलू के साथ ही नहीं है। यह तो तुम्हारे जीवन का दृष्टिकोण है। तुमने जो चुन लिया वह गलत कैसे हो सकता है? तुम उसे थूक कर कैसे स्वीकार करोगे कि तुमसे भूल हो गई। तुमसे और कहीं भूल होती है? तो जलता होता है मुंह, तो भी तुम चेहरे पर प्रसन्नता बनाए रखते हो।

कहानी है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी नाराज थी पति पर। और जब पत्नियां नाराज होती हैं तो किसी न किसी रूप में प्रतिशोध लेती हैं। उसने सूप बनाया, और इतना गरम कि मुल्ला पीएगा तो जलेगा। लेकिन बातचीत में भूल गई, और भूल ही गई कि सूप दुश्मन की तरह बनाया है, और मुल्ला को जलाने को बनाया है। तो खुद बातचीत में भूल कर सूप को पीना शुरू कर दिया। जल गया कंठ। आंख से आंसू बहने लगे। लेकिन अब यह कहना कि इतना गरम सूप पी गई है, और यह कहना कि यह बनाया था मुल्ला के लिए, मुश्किल। और यह स्वीकार कर लेने पर तो फिर मुल्ला पीएगा ही नहीं। तो आंख से आंसू बहते रहे, लेकिन वह सूप पीए गई। मुल्ला ने पूछा, क्या बात है, आंख से आंसू बह रहे हैं? तो उसने कहा कि मुझे मेरी मां की याद आ गई; ऐसा ही सूप मेरी मां भी बनाया करती थी। और इसलिए आंख से आंसू बह रहे हैं। और कोई बात नहीं।

मुल्ला ने भी सूप चखा। वह तो जलती आग था। उसकी भी आंख से आंसू बहने लगे, लेकिन वह भी पीए चला गया। पत्नी ने पूछा, क्या बात है मुल्ला, तुम्हारी आंख से आंसू क्यों बह रहे हैं? तो उसने कहा, मेरी आंख से इसलिए आंसू बह रहे हैं कि तुम्हारी मां मर गई, और तुम्हें क्यों छोड़ गई! तुम्हें भी ले जाती तो अच्छा होता।

जीवन में रोज छोटे-छोटे कामों में भी तुम्हारा मूल जीवन-दर्शन प्रकट होता है। तुम भूल स्वीकार नहीं कर सकते। अहंकार कभी भूल स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि अगर भूल स्वीकार की तो ज्यादा देर न लगेगी जब कि तुम्हें यह भी पता चल जाएगा कि अहंकार तो महा भूल है। इसलिए अहंकार कोई भूल स्वीकार नहीं

करता। क्योंकि कहीं से भी भूल स्वीकार की गई तो ज्यादा देर न लगेगी कि तुम पाओगे कि अहंकार तो महा भूल है। इसलिए अहंकार भूलों का निषेध करता है, इनकार करता है; वह उनको स्वीकार नहीं करता।

और अहंकार की बड़ी से बड़ी भूल यह है कि जो अंत में दुख देता है, उसमें प्रारंभ में वह सुख देखता है। जहां-जहां प्रारंभ में सुख दिखाई पड़े वहां-वहां अंत में तुम पाओगे कि दुख मिलेगा। क्योंकि सुख इतना सस्ता नहीं हो सकता कि प्रारंभ में मिल जाए। सुख तो यात्रा की मंजिल की सुवास है। वह यात्रा का पहला पड़ाव नहीं है, न द्वार है। वह तो यात्रा का अंत है। सुख तो उपलब्धि है। इसलिए जहां-जहां पहले सुख मिलता है वहां-वहां पीछे दुख मिलेगा। और जहां-जहां पहले दुख दिखाई पड़ता है, अगर तुमने साहस रखा तो तुम पाओगे कि पीछे वहीं से महा सुख के द्वार खुलते हैं।

दुख को झेलने की जिसकी क्षमता है वही सुख को पा सकेगा। दुख को सुखपूर्वक झेल लेने की जिसकी सामर्थ्य है महा सुख उस पर बरसेगा। लेकिन जिसने कहा कि दुख को मैं झेलना ही नहीं चाहता, मैं तो पहले ही कदम पर सुख चाहता हूं, वह आटे के लोभ में बड़े कांटों में उलझ जाएगा।

तो अहंकार का एक जीवन-दर्शन है जो शुरू में सुख का आभास खड़ा करता है, सब तरफ फंदा है वहां। वहां एक दफा भीतर उतर गए तो लौटना कठिन होता जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था कि अब मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ रहा हूं, ऐसा मालूम पड़ता है। क्या आप उचित समझते हैं कि अब मैं विवाह कर लूं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अभी तुम प्रौढ़ नहीं हुए, विवाह के योग्य नहीं हुए। जब प्रौढ़ हो जाओ तब मुझसे कहना। उस लड़के ने पूछा, और मैं यह भी जान लूं कि प्रौढ़ होने का लक्षण क्या है? यानि कब मेरा प्रौढ़ होना सिद्ध होगा? नसरुद्दीन ने कहा, जब तुम विवाह का ख्याल ही भूल जाओगे तभी तुम प्रौढ़ हुए। जब तक तुम्हारे मन में ख्याल उठता रहे कि विवाह करना है तब तक समझना अभी बचकाने हो, विवाह के योग्य नहीं। और जब तुम्हें समझ में आ जाए कि विवाह बेकार है तब तुम प्रौढ़ हो गए। तब अगर तुम्हें विवाह करना हो तो मुझसे कहना।

यह कठिन शर्त मालूम पड़ती है, लेकिन जीवन की भी यही शर्त है। तुम जब तक सुख के लिए बहुत आतुर हो तब तक तुम प्रौढ़ नहीं हुए, और तुम दुख में फंसोगे। क्योंकि हर जगह दुख ने छद्म-आवरण बना रखा है सुख का। नहीं तो दुख को कौन चुनेगा, सोचो! कांटे को कौन मछली चुनेगी? कांटे को चुनने को तो कोई भी राजी नहीं है। दुख को तो कोई भी न चुनेगा इस संसार में, अगर दुख पर दुख ही लिखा हो। लेकिन सब जगह दुख पर सुख लिखा है, स्वागतम बने हैं; द्वार पर ही बैंड-बाजे बज रहे हैं कि आओ, स्वागत है!

और तुम्हारा अहंकार ऐसा है कि तुम एक बार द्वार में प्रविष्ट हो जाओ तो लौटना तुम्हें अपने ही कारण मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि दुनिया में भद्द होगी; लोग हंसेंगे कि तुम गए और वापस लौट आए! फिर तो आगे ही आगे तुम चलते जाते हो। पीछे लौटना अहंकार को बहुत मुश्किल है। इसी तरह तो तुम संसार में गहरे उतर गए हो। एक दुख को छोड़ते हो, दूसरा चुन लेते हो। और भी गहन दुख में पड़ते जाते हो। और अगर कोई आदमी तुम्हारे बीच से इस सबको छोड़ कर जाता है तो तुम कहते होः एस्केपिस्ट है, पलायनवादी; देखो भाग खड़ा हुआ। तो तुम दूसरों को भी नहीं भागने देते। घर में आग लगी हो और अगर कोई घर के बाहर जाता है तो तुम कहते होः एस्केपिस्ट है, पलायनवादी है, भगोड़ा है; देखो भाग रहा है।

तो न केवल तुम अपने को रोकते हो, अहंकारियों की भीड़ दूसरों को भी निकलने नहीं देती। समझ में भी किसी को आ जाए तो भी तुम सब तरह की बाधा खड़ी करते हो कि वह निकल न जाए। क्योंकि न केवल उसके भागने से यह सिद्ध होगा कि उसने जान लिया जहां दुख था वहां सुख की भ्रांति हुई थी, उसके भागने से तुम्हें

अपने पैरों पर भी अविश्वास आ जाएगा। और एक के भागने से अनेक को यह हिम्मत आनी शुरू हो जाएगी कि हम भी भाग जाएं। इसलिए तुम एक को भी भागने नहीं देते।

लेकिन इस सूत्र को ख्याल में रख लेनाः जहां-जहां तुम सुख पहले चरण में पाओ, समझ लेना कि धोखा है। क्योंकि पहले चरण में अगर सुख मिलता होता तो सारा संसार कभी का सुखी हो गया होता। सुख तो अंतिम चरण की उपलब्धि है। सुख तो पुरस्कार है। सुख तो पूरी जीवन-यात्रा का निचोड़ है। सुख तो सार है सारे अनुभवों का। सुख खुद कोई अनुभव नहीं है; सुख तो सारे अनुभवों के बीच से गुजर कर तुम्हें जो प्रौढ़ता उपलब्ध होती है, जो जागृति आती है, उस जागृति की छाया है। सुख अपने आप में कोई अनुभव नहीं है; सुख जागे हुए आदमी की प्रतीति है। और जागना तो मंजिल पर होगा, अंत में होगा। प्रथम तो तुम कैसे जाग सकोगे?

इसलिए जहां-जहां सुख हो वहां-वहां सावधान हो जाना। और अहंकार की यह तरकीब अगर तुम्हारी समझ में आ जाए तो बहुत कुछ साफ हो जाएगा। अहंकार की यह रणनीति है। इसी तरह उसने तुम्हें फंसाया है--व्यक्ति को भी, समाज को भी, राष्ट्रों को भी, सभ्यताओं को भी। इस अहंकार की रणनीति के कुछ सूत्र समझ लेने चाहिए तो लाओत्से आसान हो जाएगा। लाओत्से अहंकार की रणनीति के बिल्कुल विपरीत है।

लेकिन दुनिया में दो आदमी हुए हैं जो अहंकार की रणनीति के बड़े से बड़े प्रस्तोता हैं। एक आदमी हुआ पश्चिम में, मैक्यावेली; और एक आदमी हुआ भारत में, चाणक्य। उनके नाम ही अलग हैं, उनकी बुद्धि बिल्कुल समान है। मैक्यावेली कहता है कि सुरक्षा का सबसे बड़ा उपाय आक्रमण है। दि ग्रेटेस्ट डिफेंस इ.ज टु अटैक। और कभी दुश्मन को मौका मत दो कि वह हमला तुम पर करे। क्योंकि वह तो हार की शुरुआत हो गई। हमेशा आक्रमण तुम करो; आक्रांत दूसरे को होने दो। एक बार दूसरे ने हमला कर दिया तो तुम्हारी हार तो शुरू हो गई। आधे तो तुम हार ही गए। कभी मौका मत दो दूसरे को आक्रमण करने का। इसके पहले कि कोई आक्रमण करे तुम आक्रमण कर दो। तो तुम्हारी जीत सुनिश्चित होती है।

क्यों ऐसा होता होगा? क्योंकि अहंकार के भीतर बड़ा भय भरा हुआ है। अहंकार बिल्कुल रेत का भवन है। या तो तुम दूसरे को डरा दो, अन्यथा दूसरा तुम्हें डरा देगा। और एक बार तुम डर गए तो सम्हलना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि अहंकार का भवन आश्वस्त नहीं है। भीतर कोई आश्वासन नहीं है; भीतर तो तुम कंप ही रहे हो। और एक बार अगर दूसरे ने हमला कर दिया और कंपकंपी तुम्हारी बाहर आ गई, तो न केवल तुम कंपोगे, दूसरे भी जान लेंगे कि तुम कंप रहे हो। और दूसरों की आंखों में देख कर अपना कंपन तुम इतने कंप जाओगे कि तुम गिर जाओगे। तो अच्छा यह है कि तुम दूसरे पर पहले हमला कर दो, ताकि उसकी कंपकंपी बाहर आ जाए, उसका भय बाहर आ जाए, वह घबड़ा जाए। वह अगर घबड़ा गया तो हार हो गई।

अहंकार के भीतर भय छिपा है। सभी अहंकारों के भीतर भय छिपा है। और भय के छिपने का कारण है। क्योंकि अहंकार की मृत्यु होने वाली है। अहंकार वास्तविक नहीं है; इंद्रधनुष जैसा है; क्षण भर का खेल है। क्षण भर का संयोग है कि आकाश में बदलियों में पानी के कण लटके हैं और सूरज की किरणें उन पानी के कणों से गुजर रही हैं। यह क्षण भर का संयोग है। थोड़ी ही देर में सूरज नीचे उतर जाएगा, किरणों और पानी की बूंदों का कोण टूट जाएगा। इंद्रधनुष विदा हो जाएगा। या थोड़ी ही देर में बूंदें बरस जाएंगी, बादल खाली हो जाएगा। किरणें गुजरती रहेंगी, लेकिन इंद्रधनुष न बनेगा। इंद्रधनुष जैसा है अहंकार। संयोग है, सत्य नहीं है। कुछ चीजों के जोड़ से निर्मित है; जोड़ के टूटते ही खो जाएगा। इसलिए अहंकार सदा डरा हुआ है।

अगर कहीं इंद्रधनुष में भी कोई चेतना होती तो तुम सोच सकते हो, इंद्रधनुष कंपता ही रहता--अब गया, तब गया। पल का भरोसा नहीं है। ऐसी ही दशा अहंकार की है। शरीर, मन और आत्मा के एक खास कोण पर

मिलने से अहंकार निर्मित होता है। वह कोण टूट जाए, अहंकार विलीन हो जाता है। ध्यान की प्रक्रिया में हम उस कोण को तोड़ने का ही प्रयोग करते हैं कि वह कोण टूट जाए। एक दफा कोण टूटा कि तुम अचानक जाग कर देखते हो, तुम हो ही नहीं। तुम्हारे भीतर कुछ और है जिसको तुमने पहचाना भी न था कभी। परमात्मा है, तुम नहीं हो।

पर कोण टूटे तो अहंकार का इंद्रधनुष विसर्जित हो जाता है, कोण बना रहे तो चलता रहता है। और तुम्हारी पूरी चेष्टा कोण को सम्हालने की रहती है कि जितना बैंक बैलेंस है वह कम न हो जाए, जितनी बाजार में प्रतिष्ठा है वह नीचे न गिर जाए। येन केन, कैसे भी तुम अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखते हो। घर सब खोखला हो जाता है तो भी बाहर तुम अपनी अकड़ को कायम रखते हो। भीतर दिवाला निकल जाता है तो भी बाहर तुम रईस की तरह ही चलते हो। सम्हालना है किसी तरह कोण को; जरा भी हिल जाए कोण, टूट जाएगा। सब तरह से तुम सम्हालते हो। सब तरह से धोखा देते हो। दूसरों को देते हो वह तो ठीक है, लेकिन वह गौण है। मूलतः अपने को देते हो।

अहंकार एक संयोग है और आत्मा एक सत्य है। संयोग के कारण तुम आत्मा को भूल जाते हो। इंद्रधनुष में रंग बहुत सुंदर हैं; आकाश तो खाली है। कहना चाहिए आकाश में कोई रंग नहीं है। आकाश तो रंगहीन है, निर्गुण है। आकाश को कौन देखता है? इंद्रधनुष होता है तो तुम आकाश की तरफ आंख उठाते हो। और इंद्रधनुष में बड़ा रस मालूम पड़ता है। सपने जैसा है, लेकिन बड़ा रंगीन है। और अहंकार भी सपने जैसा है, बड़ा रंगीन है। आत्मा निर्जन है, शून्य है, निराकार है; वहां कोई रंग नहीं है, कोई आकृति नहीं है, कोई परिभाषा नहीं है। सूने आकाश की भांति है। तो इंद्रधनुष को तुम सम्हालते हो। जो नहीं है उसे सम्हालते हो, और जो है उसे भूल जाते हो। आंखें गड़ जाती हैं क्षणभंगुर पर, और शाश्वत का विसर्जन हो जाता है, विस्मरण हो जाता है।

इसलिए जितने भी अहंकार के समर्थक हैं, चाणक्य, मैक्यावेली, वे कहते हैं, दूसरे पर हमला कर देना पहले, नहीं तो तुम्हारी हार शुरू हो गई। दूसरे को पहले भयभीत कर देना, नहीं तो वह तुम्हें भयभीत कर देगा। इसके पहले कि कोई तुम्हें कंपाए, तुम दूसरे को कंपा देना। तुम इतना कंपा देना कि वह खुद को सम्हालने में लग जाए और तुम्हें कंपाने की क्षमता न रह जाए।

लाओत्से इनसे बिल्कुल विपरीत है। लाओत्से की रणनीति का पहला सूत्र है कि "मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता, बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं। एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।"

दुनिया का कौन राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, रणनीतिज्ञ लाओत्से से राजी होगा? लेकिन बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट राजी होंगे। क्योंकि लाओत्से यह कह रहा है कि आक्रमण करने में तो तुम्हारा अहंकार मजबूत ही होगा, आक्रांत होने में शायद टूट जाए। आक्रमण में तो तुम दूसरे का शायद तोड़ दो, लेकिन उससे तुम्हें क्या लाभ है? आक्रांत होने में तुम्हारा टूट जाएगा। और इससे बड़ी क्या विजय हो सकती है कि अहंकार टूट जाए! तुम कंप जाओ तुम्हारी जड़ों से, इससे ज्यादा श्रेयस्कर कुछ भी नहीं है। क्योंकि उस कंपने में ही शायद तुम्हें इंद्रधनुष की तरफ से ध्यान हट जाए, और आत्मा की तरफ, आकाश की तरफ ध्यान उठ जाए।

एक बात तो निश्चित है कि जैसे तुम हो अगर तुम ऐसे ही सम्हले रहे तो तुम परमात्मा को कभी न पा सकोगे। तुम्हें हिल जाना तो जरूरी है। आए एक तूफान और गिरा दे तुम्हारे भवन को; आए आंधी और हिला दे तुम्हें जड़ों से; आए भयंकर झंझावात, टुकड़े-टुकड़े हो जाए तुम्हारा इंद्रधनुष, तो ही शायद तुम जाग सको।

और लाओत्से कहता है कि तुम आक्रमण मत करना, तुम आक्रांत होना। दूसरा आक्रमण करे, ठीक; तुम आक्रमण मत करना। क्योंकि आक्रांत होने की दशा में ही तुम जाग सकते हो। गहन दुख में ही तुम जागोगे। सुख में तो तुम नींद से भर जाते हो। सुख में तो तुम सम्मोहित हो जाते हो। विजय जब हो रही हो तब कभी कोई जागा है? जब तुम जीत रहे हो संसार में तब कभी संन्यास का ख्याल उठा है? जब तुम्हारा भवन बड़ा होता जाता है और धन का अंबार लगता जाता है तब तुमने कभी बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट के संबंध में सोचा है? जब सब तरफ सुख है--लगता है कि सुख है--जब सब तरफ जीत है, जब सब तरफ सफलता मिलती है, तब तुम्हें कभी परमात्मा का स्मरण आता है?

नहीं आता। कोई कारण नहीं है। तुम खुद ही काफी मालूम पड़ते हो। परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है। और सब चीजें इतनी ठीक जा रही हैं कि यह ख्याल ही नहीं आता कि जिस नाव में हम यात्रा कर रहे हैं वह कागज की है। यात्रा सब ठीक चल रही है तो कागज की नाव कैसे हो सकती है!

डूबते हो, तभी पता चलता है कि नाव कागज की थी। मिटते हो, गिरते हो, तभी पता चलता है कि जिसका सहारा लिया था वह कोई सहारा न था। जब आक्रांत होते हो सब तरफ से, सब तरफ से तुम्हारे संसार का दिवाला निकल जाता है, बैंक्रप्ट हो जाते हो, तभी तुम्हें याद आती है कि जिन चीजों पर भरोसा किया था वे भरोसे योग्य ही न थीं; जिन-जिन का सहारा लिया था वे सहारे न थे, सहारे की भ्रांतियां थे; और जिसको अपना जाना था वह अपना न था। वे सब किसी और बात के कारण संगी-साथी थे; दुख में सब छोड़ जाते हैं। सब प्रेम खोखला मालूम होने लगता है। सब आसक्ति के पीछे कुछ और दिखाई पड़ता है। लोभ होगा, धन होगा--और हजार बातें होंगी--लेकिन प्रेम नहीं। जब तुम सब भांति आक्रांत और टूट कर गिर गए होते हो तब तुम्हारे पास कोई होता है तो ही पता चलता है कि कोई प्रेम था, कोई संगी-साथी था; अन्यथा कुछ पता नहीं चलता।

बौद्ध कथा है, एक बौद्ध भिक्षु गांव से गुजरता है। एक वेश्या ने देखा; मोहित हो गई। संन्यासी और वेश्या दो छोर हैं विपरीत, और विपरीत छोरों में बड़ा आकर्षण होता है। वेश्या को साधारण सांसारिक व्यक्ति बहुत आकर्षित नहीं करता; क्योंकि वह तो उसके पैर दबाता रहता है, वह तो सदा दरवाजे पर खड़ा रहता है कि कब बुला लो। वेश्या को अगर आकर्षण मालूम होता है तो संन्यासी में, जो कि ऐसे चलता है रास्ते पर जैसे उसने उसे देखा ही नहीं। जहां उसका सौंदर्य ठुकरा दिया जाता है, जहां उसके सौंदर्य की उपेक्षा होती है, वहीं प्रबल आकर्षण होता है, वहीं पुकार उठती है--चुनौती! वेश्या बड़ी सुंदरी थी।

उन दिनों भारत में एक रिवाज था कि गांव की या नगर की जो सबसे सुंदर युवती होती उसका विवाह नहीं करते थे, क्योंकि वह ज्यादती होगी गांव के साथ। कोई एक उसका मालिक हो जाए--बड़े समाजवादी लोग थे--इतनी सुंदर स्त्री का एक मालिक हो जाए तो सारा गांव जलेगा। इस झगड़े को खड़ा करना ठीक नहीं। इसलिए सबसे सुंदर लड़की को नगरवधू की तरह घोषित कर देते थे कि वह सारे गांव की पत्नी है। वेश्या का वही मतलब। और उसका बड़ा सम्मान था, बड़ा आदर था। क्योंकि सम्राट भी उसके द्वार पर आते थे। वह नगरवधू थी। आम्रपाली का तुमने नाम सुना, वैसी ही नगरवधू वह भी थी।

भिक्षु वहां से गुजर गया। वह द्वार पर खड़ी थी। भिक्षु की आंख भी न उठी; वह कहीं और लीन था, किसी और आयाम में था, किसी और जगत में था। वह भागी, भिक्षु को रोका। रोक लिया तो भिक्षु रुक गया, लेकिन उसके चेहरे पर कोई हवा का झोंका भी न आया, आंख में कोई वासना की दीप्ति न आई। वह वैसे ही खड़ा रहा। उस वेश्या ने कहा, क्या मेरा निमंत्रण स्वीकार करोगे कि एक रात मेरे घर रुक जाओ? उस भिक्षु ने कहा, आऊंगा जरूर, लेकिन तब जब जरूरत होगी। वेश्या तो कुछ समझी नहीं, वह समझी कि शायद भिक्षु को अभी

जरूरत नहीं है। भिक्षु कुछ और ही बात कह रहा था। और ठीक ही है, भिक्षु और वेश्या की भाषा इतनी अलग कि समझ मुश्किल। दुखी, पराजित, क्योंकि यह पहला पुरुष था जिसने निमंत्रण ठुकराया था, वह लौट गई। लेकिन जीवन भर यह याद कसकती रही, घाव की तरह पीड़ा बनी रही।

उम्र ढल गई। कितनी देर लगती है उम्र के ढलने में? सूरज जब उग आता है तो डूबने में देर कितनी? जवानी आ जाती है तो कितनी देर रुकेगी? वह बुढ़ापे का पहला चरण है। बुढ़ापे ने द्वार पर दस्तक दे दी जवानी के साथ ही। जल्दी ही शरीर चुक गया; वह स्त्री कोढ़ग्रस्त हो गई। उसका सारा शरीर भयानक रोग से भर गया। उसके शरीर से बदबू आने लगी। जिन्होंने उसके द्वार पर नाक रगड़ी थी, जो उसके द्वार पर खड़े प्रतीक्षा करते थे क्यू लगा कर, उन्होंने ही उसे निकाल गांव के बाहर फेंक दिया। दुर्गंध से भरी स्त्री की कौन फिकर करता है? सौंदर्य भयानक कुरूपता में बदल गया। जिस शरीर में स्वर्ण काया मालूम होती थी, वह काया देखने योग्य न रही, वीभत्स हो गई। आंख पड़ जाए तो दो-चार दिन ग्लानि होती रहे, वमन की इच्छा हो। गांव के बाहर फेंकने के सिवाय कोई उपाय न रहा। अमावस की रात; वह प्यासी गांव के बाहर मर रही है। वह पानी के लिए पुकारती है। किसी का हाथ बढ़ता है अंधेरे में और उसे पानी पिलाता है। और वह पूछती है, तुम कौन हो?

बीस साल पहले की बात, उस भिक्षु ने कहा, मैं वही भिक्षु हूं। मैंने कहा था, जब जरूरत होगी तब मैं आ जाऊंगा। और मुझे पता था कि यह जरूरत जल्दी ही आएगी। क्योंकि कितने दिन तक शरीर को भोगा जा सकता है? और कितने दिन तक शरीर को बेचा जा सकता है? आज तुझे जरूरत है, मैं हाजिर हूं।

आज वेश्या को समझ में आया कि जरूरत का मतलब भिक्षु की जरूरत न थी। भिक्षु तो वही है जिसकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इस क्षण में ही, उस भिक्षु ने कहा, अब तू पहचान सकेगी कि तुझे कौन प्रेम करता है। वे जो तेरे द्वार पर इकट्ठे होते रहे थे उनका तुझसे कोई भी प्रयोजन न था; वे अपने को ही प्रेम करते थे। तुझे भोगते थे पदार्थ की तरह, वस्तु की तरह। उन्होंने तेरी आत्मा को कभी कोई सम्मान न दिया था। और प्रेम तो तभी पैदा होता है जब तुम किसी की आत्मा को सम्मान देते हो।

लेकिन वैसा प्रेम तो पैदा कैसे होगा? तुमने अभी अपनी ही आत्मा को सम्मान नहीं दिया तो तुम दूसरे की आत्मा को तो पहचानोगे कैसे? सम्मान कैसे दोगे? तो प्रेम तो इस जगत में कभी-कभी घटता है जब दो आत्माएं एक-दूसरे को पहचानती हैं। यहां तो अपनी ही आत्मा को पहचानना इतना दूभर है, इतना मुश्किल है, कि कठिन है यह संयोग कि दो आत्माएं एक-दूसरे को पहचान लें।

मनुष्य जान ही नहीं पाता सफलता में कि कभी जरूरत भी पड़ेगी। जब सब ठीक चल रहा होता है, सब तार-धुन बंधी होती है, जीवन की सीढ़ियों पर तुम रोज आगे बढ़ते जाते हो, तब तुम्हें ख्याल भी नहीं होता कि ह्नास भी होता है जीवन में। विकास ही नहीं, ह्नास भी। इवोल्यूशन ही नहीं होती दुनिया में, इनवोल्यूशन भी होती है। और तभी तो वर्तुल पूरा होता है। बढ़ते जाते हो, बढ़ते जाते हो। सदा नहीं बढ़ते जाओगे। बढ़ने में से ही घटना शुरू हो जाता है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि घटना हो गया शुरू। वहीं पहुंच जाते हो जहां से शुरू हुए थे। शून्य से शून्य तक पहुंच जाना है। जो व्यक्ति इसको पहचान लेगा वह आक्रांत होना पसंद करेगा, आक्रमण करना नहीं। क्योंकि शून्य होना नियति है।

यह व्यक्ति के संबंध में भी सच है, राष्ट्रों के संबंध में भी सच है। व्यक्ति तो कभी-कभी हुए हैं, कोई बुद्ध, कोई लाओत्से, जिसने आक्रांत होना पसंद किया, लेकिन आक्रमण करना नहीं। राष्ट्र अब तक ऐसे नहीं हुए हैं। इसलिए दुनिया में कोई भी राष्ट्र धार्मिक नहीं है। लोग सोचते हैं कि भारत धार्मिक है, गलती ख्याल है। कोई राष्ट्र अब तक धार्मिक नहीं हुआ। अभी तो कभी-कभी व्यक्ति ही हो पाए हैं बड़ी मुश्किल से; राष्ट्र का होना तो

करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है। करोड़-करोड़ लोग कैसे धार्मिक हो पाएंगे? राष्ट्र तो राजनैतिक ही रहे हैं। और राष्ट्र तो चाणक्य और मैक्यावेली से ही राजी हैं, लाओत्से से राजी नहीं हैं। तो दिल्ली में जहां राजनीतिज्ञ रहते हैं, उसका नाम हमने चाणक्यपुरी रखा हुआ है। जिन्होंने रखा सोच कर ही रखा होगा। उनको कुछ याद न पड़ा और कोई नाम। चाणक्य की स्मृति आई। वे सब चाणक्य हैं छोटे-मोटे, छुटभैया; बहुत बड़े चाणक्य भी नहीं हैं। लेकिन रास्ते पर तो वही हैं; रास्ता वही है--आक्रमण का, दूसरे को मिटा डालने का।

दूसरे को मिटाने में एक आभास होता है; और वह आभास कि मैं न मिट सकूंगा। जब भी तुम दूसरे को मिटाते हो तब तुमको अपने शाश्वत होने की भ्रांति होती है। तुम सोचते हो कि देखो, मैं तो मिटा सकता हूं, मुझे कौन मिटा सकेगा? इसलिए तो आक्रमण में इतना मजा है, इतना रस है।

लेकिन तुम मिटोगे। नेपोलियन, सिकंदर, हिटलर, कोई भी बचता नहीं। और तब तुम्हारी सब विजय की यात्राएं पड़ी रह जाएंगी। तुम मिटोगे। लेकिन जब तुम किसी को मिटाते हो तो क्षण भर को ऐसी भ्रांति होती है कि तुम्हें कौन मिटा सकेगा! तुम अपराजेय हो, तुम्हारी जीत आखिरी है। लेकिन ऐसी भ्रांति तुम्हीं को होती है, ऐसा मत समझना। सदा से होती रही है। और भ्रांति एक न एक दिन टूट जाती है। क्योंकि मौत तुम्हारी भ्रांतियों को नहीं देखती; मौत में तो वही बचता है जो सच्चा है। मौत परीक्षा है। सब झूठ गिर जाता है।

तो मौत सिकंदर को भी गांव के साधारण आदमी के साथ बराबर कर देती है। मौत भिखारी और सम्राट को बराबर कर देती है। दोनों एक से पड़े रह जाते हैं। सम्राट और भिखारी की लाश में रत्ती भर भी तो फर्क नहीं होता; दोनों धूल में पड़ जाते हैं और दोनों धूल में गिर जाते हैं। उमर खय्याम ने कहा है, डस्ट अनटू डस्ट। धूल धूल में गिर जाती है। और धूल अमीर की कि गरीब की, कोई भी तो अंतर नहीं है। क्या तुम किसी मरे हुए आदमी की लाश से पता लगा सकोगे कि यह सम्राट था कि भिखारी था? अमीर था कि गरीब था? सफल था कि असफल था? मौत उस सब को तोड़ देती है जो तुमने सपने की तरह बनाया था।

लाओत्से कहता है, आक्रांत हो जाना बेहतर, आक्रमण करना बेहतर नहीं।

और अगर तुम आक्रांत होने की कला सीख जाओ तो शत्रु भी तुम्हें मित्र ही मालूम पड़ेगा। क्योंकि जिसने तुम्हें मिटाया उसने ही तो तुम्हें बोध दिया उसका जो मिट नहीं सकता है। तब तुम शत्रु को भी धन्यवाद दोगे। अभी तो हालत ऐसी है कि मरते वक्त तुम मित्र की भी शिकायत ही करोगे। क्योंकि जब सब छूटने लगेगा तब तुम्हें लगेगा, जो संगी-साथी थे सब व्यर्थ, जिन्होंने सहारा दिया सब व्यर्थ, जो हमने किया वह सब व्यर्थ, समय यों ही गंवाया, कमाई कोई भी न हो सकी। लेकिन जो आक्रांत होने को राजी है, जो हार जाने को राजी है--बहुत कठिन है हार जाने को राजी होना, इसलिए तो धर्म कठिन है--लेकिन जो हार जाने को राजी है वह उसे पा लेता है जिसकी फिर कोई हार नहीं। आक्रांत ही किसी दिन विजेता हो पाता है। ऐसे विजेताओं को हमने जिन कहा है--बुद्ध को, महावीर को--कि उन्होंने जीत लिया। और जीता उन्होंने हार कर।

"सैन्य रणनीतिज्ञों का यह सूत्र हैः मैं आक्रमण में आगे होने का साहस नहीं करता, बल्कि आक्रांत होना पसंद करता हूं।"

मिट जाना बेहतर है मिटाने की बजाय। क्योंकि जितना तुम मिटाते जाओगे उतनी ही तुम्हारी भ्रांति मजबूत होती चली जाती है। मिटा देने दो सारी दुनिया को तुम्हें; तुम राजी हो जाओ मिटने से। और तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे भीतर कुछ बच रहा है जो कोई भी नहीं मिटा सकता। उसकी पहली दफा तुम्हें स्मृति आएगी। जब जो भी मिट सकता है मिट गया, जो भी हार सकता है हार गया, जो भी खोया जा सकता है

खो गया, तब तुम्हें पहली दफा उस परम धन का स्मरण आएगा जिसे न कोई छीन सकता, न कोई मिटा सकता। तुम पहली दफा इंद्रधनुष से हटे और आकाश की तरफ तुम्हारी दृष्टि मुड़ी।

ऐसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कुछ लोग, जो मरने की आखिरी घड़ी में पहुंच गए थे और किसी कारण बचा लिए गए, उनके जो अनुभव हैं वे बड़े अनूठे हैं। कभी कोई आदमी पहाड़ से गिर गया; आल्प्स की चढ़ाई कर रहा था, पैर फिसल गया और गिर गया। भयंकर खड्ड! निश्चित है कि वह मर रहा है, अब कोई बचने का उपाय नहीं। मौत घट गई। लेकिन संयोगवशात नहीं टकराया चट्टानों से उसका सिर, गिर गया नीचे हरी दूब पर, और बच गया। इस तरह के आदमी का अनुभव यह है कि मरने के क्षण में उसने परम आनंद का अनुभव किया। वह जो थोड़ी सी देर क्षण भर को बीती पहाड़ से गिरने में और घास पर आने में, उस बीच उसने जीवन का परम आनंद जाना। और ऐसी एकाध घटना नहीं है; ऐसी हजारों घटनाएं हैं। कि कोई आदमी नदी में डूब रहा था--और बिल्कुल डूब चुका था, अपनी तरफ से तो मर चुका था--फिर लोगों ने खींच लिया, पानी निकाल डाला, और वह बच गया। ऐसे लोगों का भी यह अनुभव है कि उन्होंने उस डूबने के पहले क्षण में तो बड़ी पीड़ा जानी, क्योंकि वे मर रहे हैं, सब तरफ से वे घबरा गए; लेकिन थोड़ी ही देर में यह तय हो गया कि मरना है और वे राजी हो गए। करेंगे भी क्या? कोई सुनने वाला नहीं। दूर-दूर तक आवाज गूंजती है, कोई उत्तर नहीं। राजी हो गए। और जैसे ही राजी हुए, एक अपरिसीम आनंद उतरने लगा। जैसे पर्दा हट गया, सब दुख खो गया।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृत्यु का यह जो अनुभव कुछ लोगों को हुआ है, लाओत्से उसी अनुभव की चर्चा कर रहा है कि तुम मिट जाओ, आक्रांत हो जाओ। और यही तो समर्पण का सार सूत्र है कि तुम मिट जाओ। अगर तुम अपने हाथ से मिटने को राजी हो जाओ, लड़ो न, तो इसी क्षण समाधि घटित हो सकती है। समाधि पाने की चेष्टा से नहीं, क्योंकि वह भी संघर्ष है। आनंद को पाने की कोई कोशिश से नहीं, क्योंकि वह भी लड़ाई है। तुम राजी हो जाओ, जीवन जहां ले जाए। तत्क्षण तुम पाओगे, तुम्हारे राजी होते ही मृत्यु जैसी घटना घट गई; अहंकार मर गया। और जो बच गया वह सच्चिदानंद है।

तो जो कभी-कभी आकस्मिक रूप से किसी दुर्घटना में घटा है, उसी को ही व्यवस्था दे दी है योग ने, तंत्र ने, धर्म ने; उसका विज्ञान बना दिया है। इसलिए जीसस कहते हैं, जब तक तुम मरोगे नहीं तब तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं है। और जब तक तुम मिटोगे नहीं तब तक तुम उसे न पा सकोगे जो कभी नहीं मिटता है। इसलिए कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, मामेकं शरणं व्रज, सर्वधर्मान परित्यज्य। सब छोड़-छाड़ कर तू मेरी शरण आ जा। अर्जुन को भी वह मौत जैसी लगती है। इसलिए तो इतना संघर्ष करता है, इतनी लंबी गीता चलती है। वह लड़ता है सब तरफ से, तर्क खड़े करता है; वह शरण जाना नहीं चाहता। क्योंकि शरण जाने का मतलब हैः मिट गए। शरण जाने का मतलब हैः अब हम न रहे; किसी और की मरजी को हमने अपनी मरजी बना लिया। शरण जाने का अर्थ हैः अब अहंकार को खड़े होने की कोई जगह न बची।

शिष्यत्व तभी उपलब्ध होता है जब कोई इतनी हिम्मत जुटाता है और किसी के चरणों में आकर मर जाता है। और कह देता है, जो था वह मर गया। अब मेरी कोई मरजी नहीं। अब जहां ले जाओ, जैसे ले जाओ, जो करवाओ, मैं चलूंगा। अब मैं छाया की तरह हो गया। अब मैं न सोचूंगा; अब सब सोचना-विचारना छोड़ दिया।

यह तो मृत्यु है। और इसी मृत्यु में तुम्हें पहली दफे अमृत का पता चलेगा। जैसे कि काले ब्लैकबोर्ड पर कोई सफेद चाक से लिख देता है तो दिखाई पड़ता है; सफेद दीवाल पर लिखे तो दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे ही जब तुम्हारा अहंकार बिल्कुल मर रहा होता है, उसकी मृत्यु की कालिमा चारों तरफ घिर जाती है, और उसी

कालिमा में पहली दफे तुम्हारे अमृत की शुभ्र रेखा दिखाई पड़ती है, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ती। मर कर ही जानता है कोई अमृत क्या है; मिट कर ही जानता है कोई सनातन क्या है, शाश्वत क्या है। क्षणभंगुर टूटता है सपना तो शाश्वत का सूर्योदय होता है।

लाओत्से कहता है, आक्रांत होना उचित है। अहंकार को दौड़ाओ मत, गिरा दो।

"एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फुट पीछे हटना श्रेयस्कर है।"

अगर लाओत्से की सुनी जाए बात तो यह सारी पृथ्वी शांति से भर सकती है। लेकिन जिनकी बात चलती है, जिनका सिक्का चलता है, वे चाणक्य और मैक्यावेली हैं। लाओत्से का सिक्का चलता नहीं। और जिस पर चल गया, उसने परम आनंद को जान लिया। हट जाओ पीछे। लाओत्से ने एक पूरा का पूरा निरहंकार-रणनीति का शास्त्र निर्मित किया है। वह कहता है, जो हट जाए वही सम्मान योग्य है। उलटी ही उसकी धारणा है। वह कहता है, जो हट जाए वही सम्मान योग्य है। हम हटने वाले को कायर कहते हैं। हम कहते हैं, जो हट जाए वह कायर है। और हमारी इन्हीं धारणाओं ने मनुष्य को युद्धों से भर दिया है। जो हट जाए वह विनम्र है, हमने ऐसा क्यों न कहा? और धारणाओं पर बहुत कुछ निर्भर करता है। दो आदमी लड़ते हैं। तो जो छाती पर चढ़ जाता है उसको हम फूलमालाएं पहनाते हैं। जो हार गया, जो जमीन पर चारों खाने चित्त पड़ा है, उसको कोई उठाने भी नहीं जाता। तुम हिंसा का इतना सम्मान क्यों करते हो? यह जो आदमी छाती पर चढ़ गया है यह हिंसक है, यह जंगली जानवर जैसा है।

इसलिए तुम अपने पहलवानों को देखो। तुम्हारे जो बड़े पहलवान हैं वे जंगली जानवरों जैसे दिखाई पड़ेंगे। यह कोई शरीर का सौष्ठव नहीं है। और न ही तुम्हारे पहलवानों के शरीर स्वस्थ होते हैं। सभी घातक बीमारियों से मरते हैं। गामा टी बी से मरता है। और चालीस साल के बाद सभी पहलवान अड़चन में पड़ना शुरू हो जाते हैं। क्योंकि शरीर के साथ उन्होंने जबरदस्ती की है। ये जो उनकी फूली हुई मसलें दिखाई पड़ती हैं ये जबरदस्ती और अपने शरीर के साथ की गई हिंसा के सबूत हैं। यह जंगलीपन है। यह कोई शरीर का सौष्ठव नहीं है, न कोई शरीर का सौंदर्य है। यह पशुता है। और एक आदमी दूसरे को चारों खाने चित्त कर देता है इसको हम विजेता मानते हैं, हिंद-केसरी! यह पागलों की दुनिया मालूम पड़ती है। तुम सम्मान हिंसा को क्यों देते हो? दुष्ट को क्यों देते हो? तुम कायर क्यों कहते हो जो हार गया?

मूल्य बदल जाएं, अगर जो हार गया उसको तुम विनम्र कहने लगो, जीवन की पूरी व्यवस्था बदल जाए। जो हट गया उसको तुम शिष्ट कहो, जो आगे बढ़ गया उसको तुम अशिष्ट कहो, तो जीवन और नयी यात्रा पर निकल जाए। कभी न कभी लाओत्से सुना जाएगा। क्योंकि मैक्यावेली और चाणक्य दुनिया को जहां ले आए हैं, वह कोई अच्छी दशा नहीं है। युद्ध और युद्ध, कलह और कलह, और हर जगह गलाघोंट प्रतिस्पर्धा है। और जो आदमी जितने लोगों के गले घोंट दे उतना महान हो जाता है। और जो आदमी जितने लोगों के सिरों की सीढ़ियां बना ले और बैठ जाए सिंहासन पर, वह विजेता हो जाता है।

तुम्हारे मूल्यांकन पागलपन के मूल्यांकन हैं। यह नीति नीति नहीं मालूम पड़ती। तुम्हारी राजनीति, राजनीति नहीं मालूम पड़ती, अनीति मालूम पड़ती है। कोमल को, विनम्र को तुम्हारे जीवन-शास्त्र में कोई भी जगह नहीं है। तूफान आता है, बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, लड़ते हैं, घास का पौधा बच जाता है। लेकिन घास के पौधे का तुम्हारे मन में कोई सम्मान नहीं है। तुमने विनम्रता की शक्ति बिल्कुल नहीं पहचानी। तुम यही कहे चले जाते हो कि टूट जाना भला, लेकिन झुकना मत। और झुकना लोच है। और झुकना जीवंतता है। जो नहीं झुक सकता वह बूढ़ा है, उसकी हड्डियां अकड़ गई हैं, पक्षाघात से भरा है।

किसी न किसी दिन लाओत्से समझ में आएगा तो तुम जिनका सम्मान करते थे उनको तुम पैरालाइज्ड कहोगे, और जिनको तुमने फूलमालाएं पहनाई थीं, हिंद-केसरी कहा था, उनको तुम जंगली जानवर मानोगे। वैसे तुम्हारे हिंद-केसरी में भी छिपा तो है ही रहस्य, केसरी जंगली जानवर ही है। जिनको तुमने पद्मभूषण और महावीर चक्र बांटे थे उनका तुम मानसिक इलाज करवाओगे, और जिनको तुम भारत-रत्न कहते थे उनको तुम भारत की मिट्टी कहना भी पसंद न करोगे। लेकिन मूल्यांकन की पूरी क्रांति घटित हो जाती है।

लाओत्से विनम्रता की राह से चल रहा है। वह कह रहा है, हट जाओ, यह सौष्ठव है। राह दे दो।

"एक इंच आगे बढ़ने की बजाय एक फीट पीछे हटना श्रेयस्कर है।"

क्यों? क्योंकि आगे जाने की यात्रा अहंकार की यात्रा है। उसमें बहुत लोग गए, किसी ने कुछ पाया नहीं। तुम हटते जाओ। तुम्हारा मन कहेगा, ऐसे हटने लगे तो सारी दुनिया हमें हटा ही डालेगी। कोई हर्जा नहीं है। कहां पहुंच जाओगे? सबसे आखिर में खड़ा कर देगी।

लेकिन सबसे आखिर में होने में हर्ज क्या है? और जिन्होंने भी जाना है उन्होंने सबसे आखिर में खड़े होकर जाना है। क्योंकि वहां न संघर्ष है, न प्रतियोगिता है, न प्रतिस्पर्धा है। बुद्ध और महावीर अगर भिखारी हो जाते हैं राह के तो उसका कारण क्या है? क्या कुछ भिखारी होने में कोई सत्य के मिलने की ज्यादा सुविधा है?

नहीं, वे असल में प्रतिस्पर्धा से हट रहे हैं। बड़ी कलह थी, बड़ी प्रतिस्पर्धा थी। वे प्रतिस्पर्धा से हट रहे हैं, वे ना-कुछ होने को राजी हैं; लेकिन लड़ कर कुछ होने को राजी नहीं हैं। क्योंकि लड़ कर भी हुए तो क्या हुए! जबरदस्ती हुए तो क्या हुए! वे चुपचाप हट गए हैं। वे भगोड़े नहीं हैं, पलायनवादी नहीं हैं। उनके पास बड़ी गहरी दृष्टि है। उन्होंने देख लिया कि लड़ कर भी पाओगे क्या? बढ़ कर भी जाओगे कहां? क्योंकि जो बिल्कुल आगे पहुंच गए हैं वे बड़े दुख में खड़े हैं। वे पीछे हट गए हैं; उन्होंने प्रतिस्पर्धा छोड़ दी है। वे गांव के भिखारी हो गए। जहां सम्राट थे वहां भिक्षा का पात्र ले लिया हाथ में। वे सिर्फ यह कह रहे हैं कि हम दौड़, उपद्रव, झगड़ा, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता से बाहर हैं। हम पर कृपा करो। हमने सब मैदान छोड़ दिया।

कृष्ण का एक नाम मुझे बहुत प्रीतिकर है, वह है रणछोड़दास। उसका मतलब होता है, जो युद्ध से भाग खड़ा हुआ, जिसने रण छोड़ दिया। ऐसा कोई नाम दुनिया में किसी ने भी किसी अवतार को नहीं दिया है। रणछोड़दास जी की प्रतिमाएं हैं, मंदिर हैं।

और सारी रणनीति लाओत्से की रणछोड़दास जी की है। छोड़ दो झगड़ा; बाहर हट जाओ। जहां कलह पाओ वहां से चुपचाप हट जाओ। क्योंकि कलह तुम्हें मिटा देगी; चाहे तुम जीतो, चाहे तुम हारो। कलह तुम्हें हरा देगी; चाहे तुम जीतो, चाहे तुम हारो। जीते तो भी आखिर में पाओगे हार गए, हारे तब तो पाओगे ही कि हार गए। कलह जहां हो वहां से हट जाओ। क्योंकि कलह में होना जीवन की ऊर्जा का क्षरण है। कलह में होना जीवन की ऊर्जा पर जंग लगवाना है। तुम चुपचाप हट जाओ। जैसे धूप में खड़ा आदमी हट जाता है वृक्ष की छाया में, ऐसे ही प्रतियोगिता की धूप में खड़े हुए समझदार हट जाता है अप्रतियोगिता की छाया में। तब वहां परम विश्राम है। और उस परम विश्राम में ही तुम स्वयं को जान सकोगे। क्योंकि वहां अहंकार तो बच ही नहीं सकता।

अहंकार तो जीता है प्रतियोगिता से, महत्वाकांक्षा से। कलह भोजन है अहंकार के लिए, अकेले में नहीं जी सकता। अकेले में तो गिर जाता है। उसके पास पैर ही नहीं हैं अकेले में। वह तो दूसरे से लड़ने के सहारे चलता है। अहंकार तो ऐसा ही है जैसे कोई साइकिल चलाता है तो पैडल चलाता है। पैडल चलाता रहे तो साइकिल

चलती है। पैडल चलाना रोक दे, थोड़ी-बहुत देर चल जाए, घाट हो तो थोड़ी और ज्यादा चल जाए, बाकी फिर अपने आप रुक जाती है। सम्हल नहीं सकती। अहंकार साइकिल जैसा है, तुम चलाते रहो।

छोटे बच्चे से चलना शुरू हो जाता है, कि क्लास में प्रथम आना है, कि नंबर एक खड़े होना है। शुरू हो गई यात्रा। छोटे-छोटे बच्चे विक्षिप्त होने लगते हैं। परीक्षा में प्रथम खड़े होना है। रुग्ण मां-बाप हैं। अगर प्रथम न आया बच्चा तो इज्जत का सवाल है। अगर प्रथम न आया तो घर में कोई सम्मान न मिलेगा। मां-बाप पीछे लगेंगे कि प्रथम आओ। क्योंकि यह शिक्षण है प्रथम होने का। आज नहीं कल बाजार में फिर इसका उपयोग करना है। अगर अभी से तुम ढीले पड़े और पीछे खड़े होने को राजी हो गए, तो जिंदगी में क्या करोगे? जिंदगी में बड़ी लड़ाई है। छोटे से बच्चे में जहर डालना शुरू हो जाता है। फिर जिंदगी भर यह जहर चलता है--धन, मकान, पद, प्रतिष्ठा--सब जगह प्रतिस्पर्धा है। किसी को हराना है, किसी को चारों खाने चित्त करना है।

लाओत्से कहता है, अगर कोई तुम्हें चारों खाने चित्त करने आए, उसे कष्ट भी मत देना, तुम खुद ही लेट जाना, चारों खाने चित्त हो जाना। और उससे कहना, तू बैठने का छाती पर थोड़ा मजा ले ले जितना तुझे लेना हो, फिर जब तुझे जाना हो चले जाना।

वह आदमी का तुमने मजा ही छीन लिया उस आदमी का। क्योंकि मजा तो तुम्हारे लड़ने में और तुम्हारे हराए जाने में था। अगर तुम लड़े ही न, मजा ही गया। वह आदमी कहेगा, लेटे रहो, हम कहीं किसी और को खोजते हैं। तुमसे क्या सार है! तुम पड़े रहो चारों खाने चित्त; तुम्हारे ऊपर कोई आकर नहीं बैठेगा। क्योंकि उसमें मजा ही क्या है तुम्हारे ऊपर बैठने में? तुम लड़ते ही नहीं। तुम हारे ही हुए हो। मजा तो है कि तुम्हें हराया जाए। मजा तो यह है कि तुम लड़ो। और जितना बड़ा दुश्मन हो उतना ज्यादा मजा है। जितना शक्तिशाली दुश्मन हो उतना ज्यादा मजा है। ऐसे दुश्मन से क्या सार! क्योंकि इससे अहंकार को कोई भोजन न मिलेगा।

लाओत्से इसलिए कह रहा है कि तुम न तो खुद अपने अहंकार को बढ़ाओ और न अपने कारण दूसरे के अहंकार को भोजन दो। क्योंकि वह भी पाप है। तुम उसको भी गलत इंद्रधनुषों में उलझा रहे हो। तुम खुद उलझ रहे हो और दूसरे को उलझा रहे हो। तुम हार ही जाओ। तुम सर्वहारा हो जाओ।

और जो सर्वहारा हो गया वही संन्यासी है। अब उसकी किसी से कोई वैमनस्य की दशा न रही। महावीर कहते हैं, मित्ति मे सब्ब भुए सू; वैरं मज्झ न केणई। सबसे मेरी दोस्ती है, और किसी से मेरा वैर नहीं। यह तभी घट सकता है जब तुम सर्वहारा होने की कला सीख लो। और यह बड़ी से बड़ी कला है। और पृथ्वी उसी दिन स्वर्ग बन सकेगी जिस दिन इस कला के व्यापक विस्तार की संभावना हो जाएगी कि सब शिक्षणशालाएं विनम्रता सिखाएंगी, प्रथम होने का अहंकार नहीं; कि मां-बाप हारना सिखाएंगे, जीतना नहीं; कि सम्मान उसका होगा जो पीछे हट जाता है, उसका नहीं जो आगे बढ़ जाता है।

बड़ी पुरानी कथा है चीन में कि एक अजनबी विदेश से आया। वह जैसे ही उतरा नाव से, घाट पर बड़ी भीड़ लगी देखी। दो आदमी लड़ रहे थे; दोनों लाओत्से के अनुयायी मालूम पड़ते। बड़ा झगड़ा चल रहा था। बड़ी गालियां दे रहे थे, घूंसे उठाते थे, दौड़ते थे। लेकिन हमला नहीं हो रहा था। बस यह सब बातचीत चल रही थी। और चेहरे पर क्रोध भी नहीं था उनके। गालियां भी दे रहे थे, लेकिन क्रोध भी नहीं था। वह अजनबी बड़ा हैरान हुआ। थोड़ी देर खड़ा देखता रहा, फिर उसने कहा, यह मामला क्या है! इतने जोश में दिखाई पड़ते हैं, लेकिन टूट क्यों नहीं पड़ते? और यह भीड़ खड़ी क्या देख रही है?

तो लोगों ने कहा कि भीड़ यह देख रही है कि जो पहले टूट पड़े वह हार गया। बस भीड़ विदा हो जाएगी। बात खतम हो गई। ये एक-दूसरे को उकसा रहे हैं कि पहले तुम आक्रमण कर दो, क्योंकि जिसने आक्रमण कर दिया वह हार गया। इनकी पूरी कोशिश यह है कि दूसरा इतना प्रोवोकेशन में आ जाए, इतना उत्तेजित हो जाए कि हमला कर बैठे। बस हमला किया कि भीड़ विसर्जित हो जाएगी। बात खतम हो गई। जिसने हमला किया वह हार गया।

कभी ऐसी दुनिया बनेगी जब हमला करने वाला हारा हुआ समझा जाएगा; तब जीवन एक नयी यात्रा पर निकलेगा।

लाओत्से कहता है, "सैन्यदल के बिना कूच करना, आस्तीन नहीं समेटना, सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियारबंद रहना।"

यह न केवल व्यक्तियों के लिए, बल्कि राष्ट्रों के लिए भी सुझाव है। कमजोर आदमी जल्दी से आस्तीन समेट लेता है। असल में, कमजोर आदमी जल्दी से क्रोध में आ जाता है। क्रोध कमजोरी का लक्षण है। क्रोध का अर्थ ही है कि तुम्हारी बुद्धि की सीमा आ गई; इसके पार अब तुम बुद्धू होने को राजी हो। तुम्हारी समझ खो गई; अब तुम पागल होने को राजी हो। क्योंकि क्रोध क्षण भर के लिए आ गया पागलपन है। क्रोध की और पागल की अवस्था में भेद समय का है, गुण का नहीं है। क्रोध का अर्थ है टेंपरेरी, अस्थायी पागलपन। और पागलपन का अर्थ है स्थायी क्रोध। पागल चौबीस घंटे उत्तेजित है। उसने समझ को बिल्कुल ही ताक पर रख दिया। तुम कभी-कभी ताक पर रखते हो। फिर थोड़ी देर बाद फिर उठा कर सम्हाल लेते हो, कि गलती हो गई, पछतावा कर लेते हो। लेकिन क्रोध में तुम जो करते हो वह पागल ही कर सकता है।

तुम अगर क्रोध में अपनी अवस्था देखना चाहो तो कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध की सब भाव-भंगिमा करना। तब तुम्हें पता लगेगा, कैसे सुंदर तुम दिखाई पड़ते हो जब तुम क्रोध में आ जाते हो! उचकना, कूदना, गाली देना, चीजें तोड़ना-फोड़ना; आईने के सामने जरा देखते रहना अपने को। यही तुम्हारी क्रोध की स्थिति है। क्रोध में तुम बताते हो कि तुम विकसित नहीं हो पाए, तुम्हारे पास चैतन्य की क्षमता नहीं है। क्रोध का अर्थ है कि तुम अपने भीतर नहीं हो, बाहर हो। तो कोई भी तुम्हें हिला देता है बाहर से; कोई भी डांवाडोल कर देता है। जरा सी बात, और तुम्हारा संतुलन खो जाता है। यह संतुलन है ही नहीं; किसी तरह तुम अपने को सम्हाले हो।

"आस्तीन नहीं समेटना, सैन्यदल के बिना कूच करना, सीधे हमलों से चोट नहीं करना, बिना हथियारों के हथियारबंद रहना।"

इस लाओत्से के वचन पर एक पूरा शास्त्र जूडो का निर्मित हुआ है। और वह शास्त्र यह है कि सीधा हमला न करना। जूडो का प्रशिक्षार्थी जब किसी से लड़ता है तो हमला नहीं करता, हमला झेलता है। जूडो की पूरी कला है हमले को झेलना। और हमले को इस तरह झेलना कि शरीर में कोई प्रतिशोध और प्रतिरोध न हो।

समझो कि आप एक घूंसा मुझे मारें। तो जो सहज सामान्य वृत्ति होगी वह यह होगी कि घूंसे के विपरीत मैं अपने हाथ को खड़ा कर दूं, ताकि हाथ पर घूंसा पड़ जाए और मेरे चेहरे को नुकसान न पहुंचे। लेकिन हाथ अकड़ा होगा, हड्डी सख्त होगी। क्योंकि जब कोई हमला कर रहा है तो जितना हाथ अकड़ा होगा--यह हमारा ख्याल है--उतनी ही चोट आसानी से बचाई जा सकेगी, क्योंकि हाथ अकड़ा होगा तो शक्तिशाली होगा।

जूडो कहता है, बिल्कुल गलत है बात। दूसरे की चोट से तुम्हारा हाथ नहीं टूटता, तुम्हारी अकड़ से टूटता है। क्योंकि दूसरा एक ऊर्जा फेंक रहा है घूंसे के द्वारा, और तुम्हारा हाथ अकड़ा है। उस ऊर्जा और तुम्हारे हाथ में

संघर्ष हो जाता है। अकड़ की वजह से हड्डी टूट जाती है। तुम कहोगे लोगों से जाकर कि इसने मेरी हड्डी तोड़ दी। जूडो कहता है, तुम गलती बात कर रहे हो; हड्डी तुमने खुद तोड़ ली। काश तुम हड्डी को लोचपूर्ण रखते! भीतरी, बारीक फासला है। तुम हड्डी को ऐसे रखते जैसे यह आदमी चोट करने नहीं आ रहा, आलिंगन करने आ रहा है, प्रेम करने आ रहा है।

और तुम्हारी तो दशा इतनी विकृत हो गई है कि कोई आलिंगन भी करे तो भी तुम हड्डी को मजबूत रखते हो कि पता नहीं क्या इरादा हो। कभी तुमने गौर किया कि कोई तुम्हें आलिंगन में भर ले तो भी तुम सम्हले रहते हो। चारों तरफ देखते हो, कोई... इसका इरादा क्या? मुस्कुराते हो, लेकिन छूटना चाहते हो। हड्डी अकड़ी रहती है आलिंगन में भी। इसलिए प्रेम तक भी तुम में प्रवेश नहीं कर पाता।

जूडो कहता है कि जब तुम्हारे हाथ पर कोई चोट मारे, तुम्हारा हाथ कोमल हो। अगर हाथ कोमल है तो एक बहुत बड़ी ऊर्जा की घटना घटती है। वह घटना यह है कि घूंसा एक खास मात्रा की ऊर्जा और विद्युत लेकर आ रहा है। वह आदमी नासमझ है। वह अपनी ऊर्जा गंवाने को तैयार है। क्योंकि जब तुम किसी को घूंसा मारते हो तो तुम्हारी खास मात्रा में ऊर्जा व्यय हो रही है। घूंसा ऐसे ही नहीं मारा जाता। इसीलिए तो दो-चार-दस घूंसों के बाद तुम थक जाओगे; क्योंकि ऊर्जा चुक गई।

जूडो कहता है, जब कोई तुम्हें ऊर्जापूर्ण हाथ से चोट कर रहा है तब तुम पीने को तत्पर रहो, लड़ने को नहीं। वह जो ऊर्जा आ रही है तुम्हारे हाथ पर, उसको तुम पी जाओ, विरोध मत करो, तुम खाली जगह दे दो। इसको लाओत्से ने कहा है स्त्रैण होने की कला। जैसे स्त्री पी जाती है पुरुष की ऊर्जा को ऐसे तुम इस ऊर्जा को पी जाओ। जगह दे दो; कोमल रहो। और तुम पाओगे कि जो ऊर्जा उसने फेंकी वह तुम्हारे शरीर का हिस्सा हो गई। और अब तो इसको जांचने के वैज्ञानिक उपाय भी हैं। बराबर निश्चित ही उसकी शरीर की ऊर्जा तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर जाती है। इसको लाओत्से कहता है बिना चोट किए, बिना हराए हराना। तुम उसको चोट करने दो।

मगर जूडो सीखने में लोगों को दस से लेकर बीस साल तक लग जाते हैं। क्योंकि हमारी आदतें लड़ने की इतनी पुरानी हैं कि उनको छोड़ना मुश्किल। बार-बार लौट आती हैं। जब कोई जूडो सीख लेता है, तुम उसे हरा नहीं सकते। और वह तुम्हें हराएगा नहीं, और तुम हार जाओगे। क्योंकि वह तुम्हें थका डालेगा। तुम चोट करोगे, और वह तुम्हारी ऊर्जा को पीता रहेगा। पांच-सात मिनट के भीतर तुम पाओगे तुम थक गए। तब तुम्हें सिर्फ हाथ का धक्का दे देना काफी है और तुम चारों खाने चित्त पड़े होगे। उतना भी जरूरी नहीं है। अगर जूडो का आदमी पूरा कुशल हो तो तुम्हें एक ऐसी हालत में ला देगा थका-थका कर कि तुम खुद ही गिर कर चारों खाने चित्त हो जाओगे। तुम उससे हाथ जोड़ लोगे कि तू भैया, जा!

बड़ा महत्वपूर्ण शास्त्र है दुनिया में। बहुत कम शास्त्र इतने महत्वपूर्ण हैं जितना जूडो या जुजुत्सु या अकीदो। ये तीन शास्त्र जापान और चाइना में विकसित हुए। बड़ी अदभुत कलाएं हैं।

तुमने देखा, शराबी रास्ते पर गिर पड़ता है तो चोट नहीं आती। शराबी कोमलता से गिरता है। उसे पता ही नहीं कि वे गिर रहे हैं, तो अकड़ेंगे कैसे? तुम गिरो, पच्चीस जगह हड्डियां टूट जाएंगी। शराबी रात भर पड़ा रहता है सड़क पर, अनेक जगह गिरता है, फिर उठता है। सुबह तुम देखो, वे नहा-धोकर फिर दफ्तर की तरफ जा रहे हैं। बिल्कुल ठीक-ठाक हैं। रात तुम सोचते हो कि इनको तो अस्पताल में न मालूम कितने दिन रहना पड़ेगा।

शराबी जूडो जानता है; पता नहीं है उसे। लेकिन वह होश में ही नहीं है, तो गिरता है तो वह समझता ही नहीं कि गिर रहे हैं। वह गिर जाता है। बस गिर जाता है; कोई लड़ाई नहीं है। और जब लड़ाई नहीं होती तो

पृथ्वी और उसके बीच कलह नहीं है। और जब कोई लड़ाई नहीं है तो वह बिल्कुल गिर जाता है, जैसे कि मां की गोद में गिर रहा हो। इसलिए हड्डियां नहीं टूटतीं।

छोटे बच्चे भी दिन भर गिरते हैं, और कुछ नहीं बिगड़ता। अभी उन्होंने हार्वर्ड में एक प्रयोग किया। एक पहलवान को रखा एक बच्चे के पीछे कि आठ घंटे जो बच्चा करे वही तुम्हें करना है। तो देखें कि बच्चे के पास ऊर्जा कितनी है! छह घंटे बाद पहलवान पस्त हो गए। और उसने कहा कि हाथ जोड़े! बहुत पैसा उसको दिया जाने वाला था। उसने कहा, लेकिन यह आठ घंटा हम पूरा नहीं कर सकते। यह हमें मार ही डालेगा। और बच्चा और मजे में आ गया। जब उसने देखा कि कोई उसका अनुकरण करता है--वह उचकता है तो पहलवान उचकता है, वह गिरता है तो पहलवान गिरता है--तो बच्चे ने तो पूरा आनंद लिया। और बच्चा बिल्कुल नहीं थका था। वह आठ घंटे के बाद बिल्कुल ताजा था। रोज तो थोड़ा सो भी जाता था, आज सोया भी नहीं। इस पहलवान को उसने बिल्कुल मिट्टी में मिला दिया। लेकिन बच्चे की कला क्या है? वह सिर्फ गिरता है, चोट नहीं खाता। जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है वैसे-वैसे चोट लगनी शुरू होने लगती है। जैसे-जैसे अहंकार निर्मित होता है वैसे-वैसे बचाव शुरू हो जाता है।

तुमने बचाया कि तुम मुश्किल में पड़ोगे। लाओत्से कहता है, बचाओ मत। और इसको वह कहता है बिना हथियार के हथियारबंद रहना। सारे संसार को तुम स्वीकार कर लो।

और अब गहरी बात! यह तो बाहर की बात है। इसका एक गहरा पहलू है। और वह पहलू हैः भीतर के शत्रुओं के साथ भी यही व्यवहार करना। कि लोभ है, क्रोध है, काम है; इनसे भी तुम लड़ना मत। अन्यथा तुम हार जाओगे। इनसे भी तुम द्वंद्व में मत पड़ जाना; अन्यथा तुम मिट जाओगे। क्रोध के साथ भी तुम पीछे हट जाना। क्रोध को कहना कि ठीक है आ जा। क्रोध तुम्हारी छाती पर बैठे, बैठ जाने देना, तुम चारों खाने लेट जाना, कि बैठ! क्रोध से लड़ना मत। अगर तुम क्रोध से लड़े तो क्रोध जीतेगा, तुम हारोगे। तुम लाख कसमें खाओ, पश्चात्ताप करो; कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि क्रोध तुम्हारी ही ऊर्जा है, उससे लड़ने का मतलब है तुम अपने को दो खंडों में बांट रहे हो। तुम्हीं लड़ोगे क्रोध की तरफ से; और तुम्हीं लड़ोगे क्रोध के विरोध की तरफ से।

यह तो पागलपन है। यह तो ऐसा हुआ कि वृक्ष को पानी भी सींच रहे हैं, शाखाओं को भी काटे जा रहे हैं। पानी भी दिए जाते हैं; शाखाएं भी काटते हैं। तुम ही हो दोनों तरफ। जैसे बाएं-दाएं हाथ को तुम लड़ाओगे तो कौन जीतेगा? हां, तुम चाहो धोखा अपने को देना तो दाएं को बाएं के ऊपर कर लो और सोच लो कि जीत गए। लेकिन तुम किसी और को धोखा नहीं दे रहे, अपने को धोखा दे रहे हो। एक क्षण में चाहो तो बाएं को फिर दाएं के ऊपर कर लो। वही तुम कर रहे हो। जिंदगी-जिंदगियों से क्रोध से लड़ते हो। कौन है वहां लड़ने को जिससे तुम लड़ रहे हो? तुम्हारी ही ऊर्जा।

तुम लड़ो मत। तुम ऊर्जा को वापस पी जाओ। क्रोध का अर्थ हैः ऊर्जा दूसरे की तरफ जानी शुरू हुई है--विनाश के लिए। तुम शांत हो जाओ। तुम क्रोध को कहो कि हमारी कोई लड़ाई ही नहीं है। तू हो, तू रह। उठने दो धुआं क्रोध का तुम्हारे चारों तरफ; घिरने दो धुएं को। तुम कुछ मत करो। तुम शांत भीतर बैठे रहो। तुम लड़ो ही मत। तुम अचानक पाओगे, क्रोध धीरे-धीरे आत्मसात हो गया, खुद में फिर वापस डूब गया। वह तुम्हारी ही लहर थी; जैसे सागर में लहर उठती ऐसे फिर वापस सो गई। और जब तुम एक दिन इस कला को सीख लोगे कि क्रोध तुममें ही वापस सो जाता है तो तुम पाओगे कि कितनी ऊर्जा तुम्हारे पास है! अनंत ऊर्जा के तुम धनी हो जाते हो।

कामवासना उठती है; देखते रहो। लड़ो मत। न भोगने जाओ, न लड़ने जाओ। क्योंकि भोगोगे तो भी खोओगे। लड़ोगे तो भी खोओगे। अगर लड़ने और भोगने में ही चुनना हो तो भोगना बेहतर; क्योंकि ऊर्जा तो दोनों कारण खो जाएगी। अगर लड़ने और भोगने में चुनना हो तो भोगना बेहतर। कम से कम कुछ उपयोग तो हो जाएगा।

इसलिए मुझसे अगर तुम पूछो तो हिमालय में रहते संन्यासी से बाजार में रहते गृहस्थ का मेरा चुनाव है। वह बेहतर। क्योंकि कम से कम ऊर्जा का कुछ उपयोग तो हो रहा है। संन्यासी तो सिर्फ ऊर्जा से लड़ रहा है। और लड़ने वाला ज्यादा कठिनाई में पड़ेगा अंततः। क्योंकि लड़ने से कभी कोई समझ नहीं आती। भोग से तो ज्ञान आ भी जाए, त्याग से कभी ज्ञान नहीं आता।

इसलिए तो परमात्मा भोगी पैदा करता है, त्यागी पैदा नहीं करता। त्यागी खुद बन जाते हैं। परमात्मा की समझ साफ है कि परमात्मा भोगी पैदा करता है, क्योंकि पता है कि भोग की ही समझ से एक दिन योग का जन्म होगा। भोग में से गुजर कर ही एक दिन समझ परिपक्व होगी, योग का फल पकेगा। इसलिए परमात्मा संसार बनाता है; संसार से गुजरना अपरिहार्य है। अगर तुमने लड़ना शुरू कर दिया, काम की ऊर्जा से लड़े तो तुम अपने से ही लड़ रहे हो, तुम धीरे-धीरे विक्षिप्त हो जाओगे।

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में गांव का काजी बना दिया गया, गांव का न्यायाधीश हो गया। पहला ही मुकदमा आया। और मुकदमा बड़ा उलझन से भरा था। एक पति और पत्नी में झगड़ा हुआ था। और वे अदालत में काजी के पास आ गए थे। पति के कान से खून बह रहा था और वह कह रहा था कि पत्नी ने उसका कान काट लिया। और पत्नी इनकार कर रही थी। तो नसरुद्दीन ने कहा कि इस पर फिर विचार करना पड़ेगा, यह तो बड़ी जटिल बात है। पत्नी इनकार करती है। और कोई गवाह नहीं है। क्योंकि घर में वे दोनों अकेले थे, रात में झगड़ा हुआ। पत्नी कहती है, मैंने काटा नहीं। इन्होंने खुद ही अपना कान काट लिया, पत्नी कह रही थी। सारी अदालत राजी हो गई कि कोई अपना कान कभी काट सकता है! लेकिन नसरुद्दीन इतनी आसानी से राजी नहीं हो सकता। उसने कहा कि एक घंटे का मुझे समय चाहिए।

दरवाजा बंद करके बगल के कमरे में गया। सब तरह उछला-कूदा अपने कान को काटने के लिए। कई दफे सिर टकरा गया दीवार से, कभी जमीन पर गिरा, सब छिल गया, लहूलुहान हो गया, लेकिन कान न काट पाया। थका-मांदा चारों खाने चित्त पड़ा सोचने लगा कि क्या मामला क्या है! तो उसे याद आया कि यह काम बड़ी कुशलता का मालूम पड़ता है, इसके लिए अभ्यास की जरूरत है। कई दफे कान के बिल्कुल करीब भी पहुंच गया था, मगर चूक गया। यह मालूम होता है कि कोई योग का अभ्यास है; यह इतनी जल्दी हल नहीं हो सकता। लेकिन एक बात हाथ आ गई; सूत्र पकड़ में आ गया।

वह बाहर आया। उसे देख कर उसकी अदालत भी हैरान हुई--कि सब कपड़े फट गए, लहूलुहान! पूछा कि क्या हुआ? उसने कहा कि मैंने पहले कोशिश की कि यह आदमी झूठ बोल रहा है या सच? या पत्नी झूठ बोल रही है या सच? अब एक काम किया जाए कि इस आदमी के शरीर को जांचा जाए। अगर इसको जगह-जगह चोट लगी हो तो इसी ने काटा है। क्योंकि मेरी हालत देख रहे हो! काटने की कोशिश में यह हालत हो गई। तो पत्नी ने नहीं काटा है। लेकिन देखा गया आदमी, उसको कहीं चोट नहीं थी। तो नसरुद्दीन ने कहा, इससे जाहिर होता है कि यह आदमी बड़ा कुशल है। यह बड़ा अभ्यासी, हठयोगी मालूम होता है। यह सालों के अभ्यास से ऐसी कला और सिद्धि आती है आदमी को। अपना ही कान काटना कोई आसान मामला नहीं है।

और सब हठयोगी यही कर रहे हैं--अपना ही कान काटने की कोशिश कर रहे हैं। तुम उछलो-कूदो कितने ही, उलटे-सीधे कितने ही खड़े होओ, अपना कान न काट पाओगे। अपने को तुम काट ही न पाओगे। क्योंकि वहां तुम ही हो, दूसरा नहीं है। लड़ो काम से, क्रोध से, तुम कभी जीत न पाओगे। और तुम सदा पाओगे कि काम और क्रोध तुम्हारे मन पर सवार हैं। जिससे तुम लड़े वह तुम्हारा पीछा करेगा।

लाओत्से कहता है, आत्मसात कर लो।

तो अगर भोग और त्याग में चुनना हो तो मैं भोग के पक्ष में। लेकिन अगर भोग और योग में चुनना हो तो मैं योग के पक्ष में। क्योंकि योग अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है। वह भोग के अनुभव से ऊपर जाना है।

अब तुम एक प्रयास करके देखोः जब क्रोध उठे, द्वार बंद कर लो, शांत बैठ जाओ, उठने दो क्रोध को। तुम न तो क्रोध किसी पर प्रकट करो, और न तुम क्रोध के विपरीत लड़ो और उसे दबाओ। तुम उठने दो क्रोध को, उसे पूरी छूट दे दो कि तुझे जो होना है हो। मन में बड़े विचार उठेंगे, बड़ी तरंगें आएंगी, किसी की हत्या कर देनी है। उठने दो तरंगें, कोई चिंता नहीं, तुम दूर खड़े देखते रहो, जैसे सिर्फ एक दर्शक हो। कितनी देर यह टिकेगा? थोड़ी ही देर में तुम पाओगे लहरें जा चुकीं, सब शांत हो गया। ऊर्जा वापस अपने स्रोत में गिर गई।

ऐसे ही कामवासना की ऊर्जा भी वापस अपने स्रोत में गिर जाती है। और जो इस कला में निष्णात हो जाता है उसके पास इतनी ऊर्जा होती है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

महावीर ने तो कहा है, अनंत वीर्य! ऐसा व्यक्ति अनंत ऊर्जा से भर जाता है।

इतनी ऊर्जा हो तुम्हारे पंखों में तो ही परमात्मा की तरफ उड़ पाओगे। तो न तो तुम्हारा त्यागी उड़ पाता है, क्योंकि वह लड़ने से ही मरा जा रहा है; न तुम्हारा भोगी उड़ पाता है, क्योंकि वह भोग में टूटा जा रहा है; दोनों से अलग है यात्रा। भोग में योग को साध लो। मेरी संन्यास की वही परिभाषा है कि तुम जहां हो वहीं अपनी ऊर्जा को आत्मसात करने लगो, व्यर्थ मत गंवाओ। न लड़ने की कोई जरूरत है, न फेंकने की कोई जरूरत है। लीन कर लेना है।

तो जब क्रोध आए तब तुम लड़ने आगे मत बढ़ो, तुम पीछे हट जाओ। जब क्रोध की बिजली चमके तब तुम कोई संघर्ष खड़ा मत करो, तुम शांत बैठ जाओ। चमकने दो बिजली, वह तुम्हारी ही ऊर्जा है। और जल्दी ही तुम पाओगे--जैसा मैंने कहा, कमजोर क्रोध करता है; शक्तिशाली करुणा करता है, वह भी तुमसे कह देना चाहिए--जब शक्ति बहुत होती है तब क्रोध तो होता ही नहीं, करुणा ही होती है। वह बहुत शक्ति का लक्षण है। क्रोध तो कम शक्ति का लक्षण है। क्रोध तो दिवालिया शक्ति का लक्षण है। करुणा महान शक्ति का लक्षण है। गहन होती है शक्ति, तब तुमसे करुणा ही पैदा हो सकती है।

और क्रोध और करुणा की शक्ति एक ही है, मात्रा का ही भेद है। कामवासना छोटी शक्ति का लक्षण है; प्रेम महान शक्ति का लक्षण है। जब शक्ति विराट होती है तो प्रेम बन जाती है; जब शक्ति क्षुद्र होती है, बूंद-बूंद चूती है, तब कामवासना बन जाती है। शक्तियां वही हैं। जब शक्ति कम होती है तब अहंकार बन जाती है; जब विराट होती है तो परमात्मा बन जाती है। जब तुम छोटे-छोटे होते हो, थोड़े-थोड़े होते हो, तो तुम्हारी सीमा होती है; जब तुम ओवरफ्लो होते हो, बहने लगते हो चारों तरफ कूल-किनारे तोड़ कर, तब तुम विराट हो जाते हो।

आत्मसात करो शक्ति को; छिद्रों से बाहर मत जाने दो। और लड़ो भी मत। कितनी देर टिकेगा क्रोध, यह कभी तुमने ख्याल किया? कितनी देर टिकेगा दुख? कितनी देर टिकेगा तुम्हारा सुख? सभी क्षणभंगुर हैं। तुम जरा रुको तो। वे अपने आप आते हैं और चले जाते हैं। तुम नाहक बीच में खड़े हो जाते हो। तुम अपने को हटा

लो। सुबह होती है, सांझ होती है; ऐसे ही दुख आते हैं, सुख आते हैं। वर्षा होती है, ग्रीष्म होता है; ऐसे ही क्रोध आता है, दया आती है। वसंत है और पतझड़ है; ऐसे ही तुम्हारे मन के मौसम हैं। तुम जल्दी मत करो। सब अपने से आता है, चला जाता है। तुम्हारी कोई जरूरत ही नहीं है बीच में आने की। तुम थोड़े दूर खड़े होना सीख लो। जरा सा फासला, और बड़ी क्रांति हो जाती है।

तो भीतर के लिए भी यही रणनीति है।

"शत्रु की शक्ति को कम कर आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है। शत्रु की शक्ति का अवमूल्यन मेरे खजाने को नष्ट कर सकता है। इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं तब जो सदाशयी है, झुकता है, वही जीतता है, वही जयी होता है।"

बाहर के युद्ध के लिए भी शत्रु की शक्ति को कभी कम मत मानना। अन्यथा वही तुम्हारी हार बनेगी। शत्रु की शक्ति को अपने से ज्यादा ही मानना, तो ही तुम तत्पर रह सकोगे, तो ही तुम सजग रहोगे। जिसने शत्रु की शक्ति को कम मान लिया, वह हारने के रास्ते पर जा चुका।

लेकिन अहंकार हमेशा उलटा करता है। अहंकार अपनी शक्ति को बहुत मानता है; दूसरे की शक्ति को हमेशा कम करके मानता है। अहंकार खुद को तो फुला कर रखता है; दूसरे को सिकुड़ा कर देखता है। इसलिए अहंकार जगह-जगह पराजित होता है और दुख पाता है। विनम्रता सदा दूसरे को बड़ा मानती है। अपने को सदा छोटा मानती है। इसलिए अगर विनम्र आदमी से कभी कोई अहंकारी आदमी जूझ जाए तो अहंकारी हारेगा ही। उसके हारने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। इसलिए नहीं कि विनम्र उसे हराता है, बल्कि उसका अहंकार ही उसे हरा देता है।

मैंने सुना है कि एक राजनीतिज्ञ को एक जंगल में एक आदिवासी कौम ने पकड़ लिया। वह आदिवासी कौम नरभक्षी है। आदिवासी कौम का जो प्रधान था वह कभी-कभी राजधानी भी गया था उत्सवों में। गणतंत्र दिवस, स्वतंत्रता दिवस, उसको निमंत्रण मिलते थे। वह अकेला आदमी था जो राजधानी होकर आया था। सारा कबीला तो उत्सुक था कि जल्दी से जल्दी इस राजनीतिज्ञ का भुरता बनाया जाए और खा लिया जाए। वे भूखे थे। बहुत दिन से आदमी नहीं मिला था। लेकिन वह कबीले का जो प्रमुख था वह उसकी बड़ी प्रशंसा और स्तुति कर रहा था कि तुम महान से महान नेता हो, तुम जैसा बुद्धिमान नेता संसार में कहीं भी नहीं है। असली में तुम्हीं को प्रधानमंत्री होना चाहिए। लेकिन लोग नासमझ हैं और तुमको अभी तक नहीं पहचान पाए।

आखिर लोग परेशान हो गए। एक ने आकर कान में कहा कि क्या बकवास लगा रखी है! हम भूखे हैं, इसका भुरता बनाएं। उसने कहा, तुम ठहरो। यह राजनीतिज्ञ है। पहले इसे फुला देने दो तो जरा यह ज्यादा बड़ा हो जाएगा, तो सब का पेट भर सकेगा। जरा बड़ा इसे कर लेने दो।

अहंकार को फुलाए जाओ, वह बड़ा होता जाता है। वह रबड़ के फुग्गों जैसा है। और उसे पता नहीं कि जितना बड़ा होगा उतना ही फूटने के करीब आ रहा है। अहंकार अपने से ही टूटता है, किसी को तोड़ने की जरूरत नहीं। वह खुद आत्मघाती है।

लाओत्से कहता है, शत्रु की शक्ति को कम आंकने से बड़ा अनर्थ नहीं है। उससे तुम्हारा जीवन का खजाना नष्ट हो सकता है। इसलिए जब दो समान बल की सेनाएं आमने-सामने होती हैं, तब वही जीतता है जो सदाशयी है, झुकता है, विनम्र है।

विनम्रता में बड़ी सुरक्षा है; अहंकार में बड़ी असुरक्षा है। क्योंकि विनम्रता को तोड़ा नहीं जा सकता; अहंकार तो अपने आप ही टूट रहा है। तुम्हारे सहारे के बिना भी टूट जाएगा। तुम्हें तोड़ने की जरूरत भी नहीं है। अहंकार तो अपने आप ही जहर है। विनम्रता अमृत है।

यह बाहर के शत्रुओं के संबंध में तो सच है ही, भीतर के शत्रुओं के संबंध में भी सच है। तुम क्रोध को छोटा करके मत मानना, नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे। बहुत लोगों ने माना और मुश्किल में पड़े हैं। तुम कामवासना को छोटा करके मत मानना। जिन्होंने माना वे झंझट में पड़ गए हैं। कामवासना बड़ी ऊर्जा है। सारी प्रकृति का खेल उसमें छिपा है। सारी प्रकृति की जीवन-धारा है काम-ऊर्जा, छोटा करके मत मानना। छोटा करके मानने वाले सब तरफ हैं। वे तुम्हें जगह-जगह मिल जाएंगे।

एक संन्यासी मेरे पास आए। वे कुछ दिन मेरे पास रुके। मैंने उनको कहा कि तुम और सब तो ठीक है, मगर ये लकड़ी की खड़ाऊं घर में मत पहनो। दिन भर खटर-पटर! तुम जहां जाते हो यह तो बड़ा उपद्रव है। उन्होंने कहा, यह तो पहननी ही पड़ेगी; क्योंकि नहीं तो ब्रह्मचर्य खंडित हो जाएगा। मैंने कहा, क्या पागलपन की बात है! लकड़ी की खड़ाऊं से ब्रह्मचर्य का क्या लेना-देना? उन्होंने कहा, आपको पता होना चाहिए, मेरे गुरु ने बताया है, और ऐसी पुरानी धारणा है भारत में कि दोनों अंगुलियों के बीच में, अंगूठे और अंगुली के बीच में जब लकड़ी की खड़ाऊं पकड़ी जाती है, तो वहां कोई नस है, उस नस पर दबाव पड़ने से आदमी ब्रह्मचारी रहता है। कितना छोटा करके मान रहे हो तुम ब्रह्मचर्य को और कामवासना को! तो मैंने उनसे कहा, तुझे ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ? उसने कहा, अभी हुआ तो नहीं इसीलिए तो खड़ाऊं छोड़ भी नहीं सकता। यह तर्क होता है भीतर। अभी हुआ नहीं। कितने दिन से खड़ाऊं पहनते हो? उसने कहा, कोई आठ साल हो गए। तो आठ साल में भी ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं हुआ। थक गया तेरा अंगूठा भी, नस भी अब तक जड़ हो चुकी होगी। और अगर नसबंदी ही करवानी है तो अस्पताल में जाकर करवा लो। खड़ाऊं का झंझट काहे के लिए लेकर चलना?

छोटा करके मत मान लेना, नहीं तो तुम जो उपाय करोगे वे बहुत छोटे होंगे। और उन उपायों से तुम जो पाना चाहते हो वह बहुत बड़ा है। बहुत से लोग इसी तरह के उपाय कर रहे हैं। एक योगी को मैं जानता हूं, जो आएंगे तो वे पहले पूछते हैं कि इस जगह पर कोई स्त्री तो नहीं बैठी थी? मैं पूछा कि यह मामला क्या है? उन्होंने कहा, दस मिनट तक उस स्थान पर स्त्री की शक्ति, स्त्रैण-शक्ति की तरंगें रहती हैं, और उनसे ब्रह्मचर्य में खंडन हो जाता है।

अब यह पागल है। स्त्री बैठी थी, उस जगह बैठने में इनको घबराहट और डर है। और यह पूरी पृथ्वी स्त्री है। जहां बैठोगे वहीं स्त्री है। इसीलिए तो हम पृथ्वी को माता कहते हैं। और कैसे बचोगे तुम स्त्री से? स्त्री से पैदा हुए हो। तुम्हारे रोएं-रोएं में स्त्री है। जब एक बच्चे का जन्म होता है तो आधा तो दान बाप का होता है, आधा मां का होता है। तो तुम्हारा आधा शरीर स्त्री है, आधा पुरुष है। एक-एक कण में स्त्री और पुरुष छिपे हैं। और तुम कुर्सी पर बैठने में डर रहे हो और आधी स्त्री भीतर लिए चल रहे हो। जिसको तुम हिमालय चले जाओ, कैलाश, तो भी कोई उपाय नहीं है। वह तुम्हारे साथ ही रहेगी। तुम्हारे शरीर का कण-कण स्त्री-पुरुष के मेल से बना है। और इतने अगर डरे हुए हो कि दस मिनट पहले बैठी हुई स्त्री की तरंगें तुम्हें दिक्कत देंगी, तब तुम बच न पाओगे। सब तरफ स्त्रियां घूम रही हैं, तरंगें ही तरंगें हैं। जहां जाओगे वहीं स्त्रियां हैं, पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही हैं। कहां जाओगे? बचोगे कहां?

लेकिन तुमने शत्रु को छोटा करके मान लिया है। इसलिए तुम छोटे-छोटे उपाय कर रहे हो। तुम चम्मचों से सागर को खाली करने की कोशिश में लगे हो। यह कभी खाली न होगा।

भीतर की शक्तियों को भी छोटा करके मत मानना। क्रोध भी बड़ी विराट शक्ति है। इसीलिए तो जिंदगी भर कोशिश करके भी मिटता नहीं। रोज तय करते हो कि अब न करेंगे, और जब आता है तब बिल्कुल भूल जाते हो। जब आता है तब याद ही नहीं रहती। सब निर्णय, सब संकल्प मिट्टी हो जाते हैं। जब आता है तो झंझावात की तरह पकड़ लेता है। हां, जब चला जाता है तब तुम फिर बुद्धिमान हो जाते हो। फिर पछताने लगते हो कि यह गलती हो गई आज। अब दोबारा न करूंगा। और तुम यह भी नहीं सोचते कि यह बात तुम कितनी बार कह चुके हो कि दुबारा न करूंगा। कामवासना पकड़ती है तब तुम बिल्कुल पागल हो जाते हो। हां, जब कामवासना जा चुकी तब तुम्हें सब ब्रह्मचर्य की बातें याद आने लगती हैं। तब तुम सोचने लगते हो कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। उठा लेते हो किताबें और ब्रह्मचर्य के शास्त्र पढ़ने लगते हो और निर्णय करते होः बस अब यह आखिरी हो गया। और तुम कभी यह पूछते भी नहीं कि कितनी बार तुमने कहा कि यह आखिरी हो गया। और इतने बार हार कर भी, तुम्हारी बेशर्मी की हद है, कि तुम फिर-फिर वही कहे चले जाते हो कि अब की बार आखिरी हो गया। शरम भी नहीं आती। यह भी नहीं देख पाते कि कितनी बार पराजित हो चुके। फिर अब किस मुंह से यह निर्णय कर रहे हो। कम से कम यह मुंह ही बंद कर दो, यह निर्णय ही छोड़ दो।

एक बूढ़े आदमी ने कलकत्ते में मुझे कहा। वे एक बहुत अनूठे आदमी थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने चार बार ब्रह्मचर्य का निर्णय जीवन में लिया। एक मूरख सज्जन भी मेरे पास बैठे थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने कहा, तुम प्रभावित न होओ, पहले पूछो तो कि ब्रह्मचर्य का संकल्प भी चार बार लेना पड़ता है? तो पहली बार लिया उसका क्या हुआ? फिर दूसरी बार लिया उसका क्या हुआ? फिर तीसरी बार लिया उसका क्या हुआ? तुम इतने प्रभावित! वे चार बार से बहुत प्रभावित हुए, कि चार बार! मैंने कहा, यह चार बार का मतलब क्या होता है? और मैंने कहा कि तुम जल्दी मत करो, क्योंकि मेरा हिसाब कुछ और है। मैं यह पूछता हूं कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? तो उन्होंने कहा, मैं इतना हार गया कि फिर मेरी हिम्मत ही न रही।

वह आदमी ईमानदार है। फिर मेरी हिम्मत न रही। चार बार बहुत हो गया। जब बार-बार हारना है और पराजय बार-बार होनी है, तो अब निर्णय भी किस मुंह से लेना? क्या सार है लेने का?

शक्ति को छोटी करके मत मानना। सब शक्तियां विराट हैं; क्योंकि सभी शक्तियां परमात्मा से ही आती हैं। सभी शक्तियां विराट हैं। चाहे ऊपर से तुम्हें लहर छोटी दिखाई पड़ती हो, नीचे तो सागर ही छिपा है। क्रोध भी उसका है, काम भी उसका है। तुम छोटा करके मत मानना। खड़ाऊंओं से हल न होगा।

जिस दिन तुम यह समझोगे कि यह सभी विराट का है, और सभी विराट है, उस दिन तुम लड़ाई तो उठाओगे ही नहीं। विराट से क्या लड़ना है? तब तुम दर्शक हो जाओगे, द्रष्टा हो जाओगे। और जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर साक्षी हो जाता है, हट जाता है, लड़ाई नहीं करता, चुपचाप देखता है। जो भी विराट की लीला चल रही है उसका निरीक्षण करता है, बिना किसी निर्णय के। न तो कहता है यह बुरा है, न कहता है वह भला है। न तो ब्रह्मचर्य के पक्ष में है, न काम के पक्ष में है। देखता है कि क्या हो रहा है, कैसा यह खेल है! कि काम उठता है, अगर तुम उस बीच उसके साथ जुड़ जाओ, साक्षी-भाव खो जाए तो भोग लोगे; अगर उस बीच तुम उससे लड़ने लगो तो ब्रह्मचर्य का संकल्प कर लोगे। लेकिन अगर तुम सिर्फ देखते रहो, कर्ता बनो ही न, इधर न उधर, इस तरफ न उस तरफ, न पक्ष में न विपक्ष में, तो तुम एक बड़े अनूठे रहस्य पर पहुंचते हो; वही काम-ऊर्जा वापस तुम में समा जाती है। तुमसे ही उठी थी; वर्तुल पूरा हो जाता है। तुम उसका कोई उपयोग नहीं करते--न लड़ने में, न भोगने में। उपयोग ही नहीं होता। कामवासना फिर वापस अपने में समा जाती है। और जब कामवासना वापस तुम में समाती है तब तुम इतनी मधुरिमा से भर जाओगे, ऐसी मिठास उठने लगेगी

पूरे व्यक्तित्व में, ऐसी गहन शांति का तुम्हें अनुभव होगा जो बिल्कुल अपरिचित है। कोई सुर बजने लगेगा तुम्हारे भीतर जब शक्ति तुम्हारी तुम में वापस लौट आती है।

वह मिलन है। उसी का नाम योग है। जहां से उठी शक्ति वहीं वापस मिल जाए, उसका नाम योग है। वह परम संभोग है। वहां तुमने अपने को ही अपने में भोग लिया। वहां एक ने एक को ही भोग लिया। वहां दूसरे की जरूरत न रही; वहां तुम्हें अपना ही स्वाद आ गया। और वह स्वाद इतना महान है कि सब स्वाद फीके पड़ जाते हैं। और वह नृत्य इतना अनूठा है। जब शक्ति तुममें नाचती हुई वापस लौट आती है, बिना संसार में खोए, बिना भोगी बने, बिना त्यागी बने, जब ऊर्जा तुममें वापस लौट आती है नाचती हुई, तब तुम मंदिर बन जाते हो।

उस घड़ी में जो घटता है उसका नाम समाधि है।

आज इतना ही।

एक सौ तेरहवां प्रवचन

मुझसे भी सावधान रहना

पहला प्रश्नः आपको देख कर मेरे मन में भाव उठता है कि मैं भी आप जैसी ऊंचाई को कभी छुऊं। क्या यह भी तुलना है? हीनता की ग्रंथि का परिणाम है?

दूसरे जैसे होने की आकांक्षा हीनता से ही जन्म पाती है; अपने जैसे होने की आकांक्षा आत्म-गरिमा से पैदा होती है। दूसरे जैसे तुम होना भी चाहो तो हो न सकोगे। कोई उपाय नहीं है। उस चेष्टा में तुम नष्ट ही होओगे। और जितने ही तुम नष्ट होओगे उतनी ही हीनता भरती जाएगी। जितनी हीनता होगी उतना तुम और दूसरे जैसे होना चाहोगे। एक दुष्टचक्र में फंस जाओगे।

दूसरे को प्रेम करो, श्रद्धा करो, सम्मान करो; लेकिन होना तो सदा अपने ही जैसे चाहो। क्योंकि अन्यथा कोई गति नहीं है। तुम जैसा न कभी कोई हुआ है, न कभी कोई होगा। तुम बेजोड़ हो। और जब तक तुम अपने भीतर छिपे बीज को ही वृक्ष न बना लोगे तब तक कोई संतृप्ति नहीं होगी। तुम्हारी नियति पूरी होनी चाहिए। तुम मेरे जैसे होने को पैदा नहीं हुए हो। तुम किसी दूसरे जैसे होने को पैदा नहीं हुए हो। तुम तो बस तुम ही होने को पैदा हुए हो। बहुत से आकर्षण आएंगे जीवन में, लेकिन उन आकर्षणों को समझना, सीखना, लेकिन उन जैसे होने की कोशिश मत करना। उन सब आकर्षणों को, श्रद्धाओं को, प्रेमों को आत्मसात कर लेना, लेकिन बनना तो तुम तुम जैसे ही।

रिंझाई का गुरु मर गया था तो लोगों में बड़ी चर्चा थी। और रिंझाई को उत्तराधिकारी बना गया था गुरु। और रिंझाई गुरु जैसा बिल्कुल नहीं था। एक दिन लोग इकट्ठे हुए, और उन्होंने कहा कि तुम तो अपने गुरु जैसे बिल्कुल ही नहीं हो। न तुम्हारा व्यवहार वैसा है, न तुम्हारा आचार वैसा है, तो तुम कैसे उत्तराधिकारी हो? और किस आधार पर तुम्हें गुरु ने उत्तराधिकार दिया, यह हमारी समझ के बाहर है।

तो रिंझाई ने कहा, मेरे गुरु भी उनके गुरु जैसे नहीं थे, और मैं भी उन जैसा नहीं हूं। यही मेरे शिष्यत्व का अधिकार है। न मेरे गुरु किसी जैसे थे और न मैं अपने गुरु जैसा हूं। यही मेरे और मेरे गुरु में समानता है। यहीं से हम जुड़े हैं। इसलिए अपने जैसे शिष्यों को तो उन्होंने चुना नहीं; मुझे चुना है। क्योंकि उनके जैसे जो शिष्य हो गए थे वे तो नकली हो गए, वे कार्बन कापी हो गए। उनकी प्रामाणिकता खो गई। उनकी अपनी कोई आत्मा न रही। वे थोड़े उधार हो गए। उनका जीवन बाहर से नियंत्रित हो गया। किसी दूसरे की प्रतिमा के अनुसार उन्होंने अपना आयोजन कर लिया। उनका जीवन भीतर से नहीं फूटा; उन्होंने जीवन को बाहर से सीख लिया। वह अभिनय है; वह जीवन की वास्तविक खिलावट नहीं है।

आत्मा भीतर से बाहर की तरफ खुलती है; अनुकरण बाहर से भीतर की तरफ जाता है। अनुकरण तुम्हें नकली बना देगा। इसलिए बड़ी नाजुक बात है। और सब सीखना, नकल मत सीखना। हालांकि नकल सरल है, और सब कठिन है। नकल बिल्कुल आसान है; छोटे बच्चे कर लेते हैं; बंदर कर लेते हैं। आदमी की कोई गरिमा नहीं है नकलची होने में कोई बड़ा गौरव नहीं है। और सरल है इसलिए प्रलोभन है।

तुम ठीक मेरे जैसे उठ-बैठ सकते हो। मेरे जैसा भोजन कर सकते हो। मेरी जैसी बात कर सकते हो। उससे क्या होगा? उससे तुम किसी ऊंचाई को न पहुंच जाओगे। बल्कि जिस ऊंचाई पर तुम पहुंचने को पैदा हुए थे

उससे वंचित हो जाओगे। नाजुक है बात, क्योंकि जो भी हमें प्रीतिकर लगते हैं, मन कहता है उन्हीं जैसे हो जाएं। इस प्रलोभन से बच जाना सबसे बड़ा काम है साधक के लिए। गुरु से भी सावधान होना जरूरी है। कहीं ऐसा न हो कि तुम उसके प्रभाव में इतने प्रभावित हो जाओ कि तुम अपनी नियति की जो गति थी उसे छोड़ दो और रास्ते से उतर जाओ। न तो मैं किसी जैसा हूं, न तुम्हें मेरे जैसे होने की कोई जरूरत है।

दूसरी बात, दूसरे जैसा होना हो तो चेष्टा करनी पड़ती है। स्वयं जैसे होने के लिए क्या चेष्टा करनी पड़ेगी? स्वयं जैसे तो तुम हो ही। लेकिन तुमने कभी अपने को प्रेम नहीं किया। तुमने कभी अपनी आत्मा को कोई सम्मान भी नहीं दिया। तुमने कभी अपनी गरिमा को स्वीकार ही नहीं किया।

और सब धर्म, सब संस्कृतियां, सभ्यताएं, तुम्हें आत्म-निंदा सिखाते हैं। वे कहते हैं, तुम जैसा बुरा और कौन! साधु-संतों को सुनने जाओ, उनकी सारी चर्चा तुम्हारी निंदा से भरी है। तुम कीड़े-मकोड़े हो, तुम नारकीय हो। और तुम में जो कुछ है सब निंदा योग्य है। तुम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो स्वीकार के योग्य हो। काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, मत्सर है, तुम चारों तरफ नरक से घिरे हो। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी सिर्फ तुम्हारी निंदा ही कर रहे हैं। और सब तरफ से तुम्हें निंदा मिलती है। धीरे-धीरे तुम आत्मनिंदा से भर जाते हो। फिर तुम किसी और जैसे होना चाहते हो।

यह एक गहरा शड्यंत्र है। जब तक तुम्हें तुम्हारी निंदा से न भरा जाए तब तक कोई भी व्यक्ति तुम्हारा अगुआ, नेता, गुरु न बन पाएगा। तो जिनको अगुआ बनना है, नेता बनना है, गुरु बनना है, वे पहले तुम्हारी निंदा करेंगे। वे पहले तुम्हें डगमगा देंगे; वे पहले तुम्हें हिला देंगे; तुम्हारे पैरों के नीचे की जमीन खींच लेंगे। जब तुम बिल्कुल कंप जाओगे, डरने लगोगे, घबरा जाओगे, अपने चारों तरफ नरक ही नरक दिखाई पड़ने लगेगा, तब तुम किसी के पैर पकड़ लोगे। इसी तरह तो इतने गुरु पलते-पुसते हैं। हजारों गुरुओं में कभी कोई एक गुरु होता है, नौ सौ निन्यानबे तो केवल तुम्हारी आत्मनिंदा से जीते हैं। तुमको भयभीत कर देते हैं, तुम्हें अपराध-भाव से भर दिया, अब तुम्हें पूछना ही पड़ेगा--मार्ग क्या है? अब तुम्हें नकल करनी ही पड़ेगी। क्योंकि तुम गलत हो और वह सही है।

मेरे पास तुम हो। तो मैं तुमसे यह कहने को नहीं हूं यहां कि मैं सही हूं और तुम गलत हो। मैं तुम्हें जरा भी तुम्हारे होने से नहीं डिगाना चाहता। मैं तो चाहता हूं कि तुम अपने होने में पूरी तरह से थिर हो जाओ। तुम्हारे भीतर का दीया जरा भी न कंपे; कितने ही बड़े झंझावात उठें, तुम अकंप रह सको। मैं तुम्हें तुम्हारे होने में मजबूत करना चाहता हूं। मैं तुम्हें और कोई अनुशासन नहीं देता, एक ही अनुशासन देता हूं कि तुम सदा सचेत रहना और अपने जैसे होने में लगे रहना। जो तुम्हारी निंदा करे, उसे तुम शत्रु समझना। वह शत्रु है, क्योंकि वह हीनता पैदा करेगा। और हीनता एक दफा पैदा हो गई कि तुम किसी का अनुसरण करोगे--कोई आदर्श, कोई प्रतिमा--किसी के पीछे चलने लगोगे। यह सीधा सा गणित है। पहले आदमी को डरा दो। डर जाए तो वह मार्ग पूछता है। पहले उसे घबड़ा दो। पहले तुम उसे इतना बुरा बता दो कि वह अपने से अतृप्त हो जाए। तब वह तुमसे पूछने लगेगा।

जो भी तुम्हारी निंदा करे, और जो भी तुम्हें चाहे कि तुम किसी और जैसे हो जाओ, वहां से हट जाना। वह तुम्हारी हत्या करने को तत्पर है। हत्या बड़ी बारीक है, सूक्ष्म है। खून भी न बहेगा, और तुम कट जाओगे। कहीं आवाज भी न होगी, और तुम जन्मों-जन्मों के लिए भटक जाओगे।

तुम स्वयं परमात्मा की कृति हो। तुम्हें सुधारने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई जरूरत भी नहीं है। तुम्हें सुधारने वालों ने ही तुम्हें इस दुर्दशा में पहुंचा दिया है। तुम सिर्फ अपने प्रति जागो। तुम अपने भीतर उसे खोज लो जो परमात्मा का दान है, प्रसाद है। तुम अपने खजाने से थोड़े परिचित हो जाओ।

तो मैं यहां तुम्हें कोई अनुकरण करने के लिए नहीं कह रहा हूं। अगर अनुकरण करना है तो अपने भीतर का; अगर कहीं जाना है तो अपने भीतर; अगर कहीं पहुंचना है तो अपने भीतर। तुम मुझसे सदा सावधान रहना। क्योंकि खतरा हो सकता है। मेरे बिना चाहे भी खतरा हो सकता है। क्योंकि तुम मुझे भी दूसरे गुरुओं जैसा ही सोचोगे। तुमने बहुत गुरुओं के पास बहुत कुछ सीखा है। वह कचरा तुम यहां भी ले आए हो। तो जब मैं तुमसे कुछ कहूंगा तो तुम उसी कचरे से उसकी व्याख्या करोगे। मैं यहां हूं कि तुम्हें तुम जैसा बनने में सहायता दे सकूं। और अगर जरा भी तुम्हें ऐसा लगे कि तुम मेरी नकल पर उतारू हो गए हो तो भाग खड़े होना, लौट कर पीछे मत देखना। क्योंकि नकल खतरनाक है। नकल से सावधान रहना। सब नकल हीनता की ग्रंथि से पैदा होती है। और तुम हीन नहीं हो। तुम्हारे पास सब है जो होना चाहिए। बस तुम्हें पता नहीं है। खजाने पर बैठे हो, चाबी खो गई है। चाबी भी कहीं दूर नहीं खो गई है, कहीं तुम्हारे ही भीतर खो गई है। उसे खोज लेना है। तुम्हारा मार्ग परमात्मा से सीधा जुड़ा है। एक बार तुम भीतर उतरे कि तुम सीधे ही जुड़ जाते हो। तब तुम गुरु को धन्यवाद इसलिए नहीं देते कि उसने तुम्हें परमात्मा से मिला दिया, बल्कि इसलिए देते हो कि वह तुम्हारे और परमात्मा के बीच में खड़ा न हुआ, जब वक्त आया तो चुपचाप हट गया।

साधारण जिनको तुम गुरु कहते हो वे तुम्हें परमात्मा से मिलने न देंगे। बात वे परमात्मा के मिलाने की करेंगे, लेकिन सदा वे बीच में खड़े रहेंगे। वे दीवाल हैं, द्वार नहीं। जो भी किसी को कह रहा है कि मैं आदर्श हूं, मेरे जैसे हो जाओ, वह आदमी जहर फैला रहा है।

मेरा प्रेम है बुद्ध से, क्राइस्ट से, कृष्ण से, लाओत्से से। लेकिन उस प्रेम के कारण न तो मैं लाओत्से जैसा हो गया हूं, न बुद्ध जैसा, न क्राइस्ट जैसा। मैं हूं तो अपने जैसा। अगर मैं लाओत्से पर भी बोलता हूं तो मैं वही बोल रहा हूं जो मैं बिना लाओत्से के बोलता। लाओत्से तो बहाना है। पुरानी खूंटी है; काम योग्य है; कुछ टांगा जा सकता है। बल्कि कह तो मैं वही रहा हूं जो मैं कहूंगा; लाओत्से पैदा न भी हुआ होता तो भी कहता। मैं लाओत्से के बहाने अपने को ही कह रहा हूं। कृष्ण के बहाने भी अपने को कह रहा हूं।

इसलिए यह कुछ पक्का मत समझना कि लाओत्से तुम्हें मिल जाए और तुम पूछो कि मैंने ऐसा-ऐसा लाओत्से के संबंध में कहा है तो जरूरी नहीं कि वह राजी हो। आवश्यकता भी नहीं है। हो सकता है वह राजी न हो। कृष्ण से तुम पूछो कि मैंने जो गीता की व्याख्या की है उससे वे राजी हैं? जरूरी नहीं कि वे राजी हों। पूरी संभावना तो यह है कि वे राजी नहीं होंगे। क्योंकि वे उन जैसे, मैं मैं जैसा। जो मैं कह रहा हूं वह मैं ही कह रहा हूं। लाओत्से, कृष्ण, बुद्ध तो बहाने हैं। तुम ऐसा समझ ले सकते हो कि वे हुए हों, न हुए हों, कोई फर्क मुझे पड़ता नहीं।

तुम पूछ सकते हो कि मैं क्यों उनके नाम से कुछ कह रहा हूं?

प्रेम मेरा उनसे है। और वास्तविक प्रेम तभी संभव है जब तुम प्रेमी जैसे न हो जाओ। नहीं तो प्रेम खो जाएगा। क्योंकि दो व्यक्ति जब बिल्कुल एक जैसे हो जाते हैं तो दोनों के बीच का आकर्षण खो जाता है। शिष्य जब बिल्कुल गुरु जैसा हो जाएगा तो दोनों के बीच का आकर्षण खो जाएगा। आकर्षण तो होता है विरोध में; विरोधी ध्रुवों में आकर्षण होता है।

खलील जिब्रान ने कहा है कि तुम प्रेम तो करना, लेकिन प्रेमपात्र से एक मत हो जाना। तुम प्रेम तो करना, लेकिन मंदिर के स्तंभों की भांति, जो दूर खड़े रहते हैं और एक ही छप्पर को सम्हालते हैं। स्तंभ करीब आ जाएं, छप्पर गिर जाएगा। फासला रखना।

गुरु के इतने पास होना, इतने पास होना जितने हो सको, फिर भी एक फासला रखना। अगर तुम अपनी आत्मा में थिर रहे तब तो फासला रहेगा। एक मंदिर तो बनेगा; तुम गुरु के साथ उस मंदिर को उठाने में एक स्तंभ हो जाओगे। लेकिन स्तंभ दूर-दूर होते हैं। एक ही छप्पर को सम्हालते हैं, लेकिन उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है।

जो गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को मार दे, वह गुरु नहीं है। जो गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को निखार दे, इतना निखार दे कि अब शिष्य अपने होने से तृप्त हो जाए, संतुष्ट हो जाए, वही गुरु है।

मुझे देख कर तुम्हारे मन में अभीप्सा उठे ऊंचाइयां छूने की, ठीक है। लेकिन मेरी जैसी ऊंचाइयां नहीं; तुम्हारी जैसी ही ऊंचाइयां। मुझे देख कर तुम्हें अभीप्सा उठे परमात्मा को पाने की, लेकिन वह प्यास तुम्हारी हो। वह प्यास को तुम मेरे शब्दों में मत बांधना। तुम्हारा संगीत तुमसे उठेगा। मेरे संगीत को देख कर तुम्हें अपने संगीत की याद आ जाए, बस काफी है। तुम भी खिलोगे, लेकिन तुमसे जो सुवास निकलेगी वह तुम्हारे ही फूल की होगी, वह मेरी नहीं होगी। मेरी सुवास से तुम्हें अपनी सुवास का भूला हुआ स्मरण आ जाए, विस्मृति हो गई है जिसकी उसकी स्मृति आ जाए, बस इतना काफी है।

जिस दिन तुम खिलोगे तो मेरे जैसी तुम्हारी सुवास नहीं होगी, तुम्हारी सुवास तुम्हारे जैसी होगी। होना भी यही चाहिए। पता नहीं तुम चंपा के फूल हो; पता नहीं तुम चमेली के फूल हो; पता नहीं तुम कमल हो। पता नहीं तुम कौन हो। क्योंकि जब तक तुम्हारा बीज नहीं टूटा है, पता भी कैसे हो सकता है। बीज से तो पहचानना मुश्किल है। अनंत बीज हैं, और हर बीज का अपना ही फूल है। और वह एक ही बार खिलता है। फिर दोबारा इस पृथ्वी पर वह नहीं खिलेगा। इसलिए इस पृथ्वी को तुम उसकी सुगंध से वंचित मत करना। नकलची मत बन जाना।

दो शब्द हैं हमारे पासः अनुकरण और अनुसरण। अनुसरण तो करना गुरु का, अनुकरण मत करना। अनुसरण का मतलब हैः गुरु की प्रज्ञा, गुरु का बोध, गुरु की समझ को आत्मसात करना। अनुकरण का अर्थ हैः जैसा गुरु है, वैसा होने की कोशिश करना। शिष्य सीखता है; सीखता है अपनी ही नियति को पाने के लिए। सदगुरु तुम्हें अपने ढंग में नहीं ढालना चाहता, और सदशिष्य कभी किसी के ढंग में ढलना नहीं चाहता। ढंग तो तुम्हारा हो।

ऐसा हुआ, एक मुसलमान फकीर था, जुन्नून। इजिप्त में हुआ। वह कहा करता था कि परमात्मा ने सभी चीजें पूर्ण बनाई हैं, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण ही पैदा हो सकता है। जैसा ईशावास्य उपनिषद में कहा है कि उस पूर्ण से पूर्ण ही पैदा होता है और फिर भी पीछे पूर्ण छूट जाता है, ऐसा जुन्नून भी कहा करता था कि परमात्मा ने हर चीज पूरी बनाई है। गांव में एक तार्किक था। तार्किक भी था, बड़ा पंडित भी था। वह एक दिन जुन्नून को सुनने आया। जुन्नून ने कहा कि परमात्मा ने हर चीज परिपूर्ण बनाई है। उस तार्किक ने कहा, रुको! वह एक आदमी को साथ ले आया था, एक कुबड़े को। जो बिल्कुल झुका जा रहा था, जिससे खड़े होते नहीं बनता था, जिसके हाथ-पैर तिरछे थे, जिसकी कमर बिल्कुल झुक गई थी। उसने कहा कि देखो इस आदमी को! यह भी पूर्ण है? और यह भी परमात्मा ने बनाया? जुन्नून हंसा और उसने कहा कि इससे पूर्ण कुबड़ा हमने कभी देखा ही नहीं। बहुत कुबड़े देखे; यह परिपूर्ण है।

परमात्मा ने परिपूर्ण से कुछ कम बनाया ही नहीं। तुम भी परिपूर्ण हो। बस जरा याद दिलानी है, सुरति जगानी है। जरा सा होश सम्हालना है।

मेरे जैसे होने की भूल कर भी चेष्टा मत करना। वह तो तुम हो न पाओगे। और उस होने में तुम जो हो सकते थे वह भटक जाएगा। तब तुम मुझे कभी क्षमा न कर पाओगे। मैंने कभी चाहा न था कि तुम मेरे जैसे होओ, लेकिन अगर तुम उसमें लग गए तो तुम मुझसे सदा नाराज रहोगे। तुम मुझे फिर कभी क्षमा न कर पाओगे। क्योंकि मैंने तुम्हारी एक जिंदगी खराब कर दी। ध्यान रहे, मैं अपने हाथ बिल्कुल खींचे लेता हूं; मेरी जिम्मेवारी बिल्कुल नहीं है। अगर कभी तुम पछताओ तो दोष मुझे मत देना। वह मैंने कभी चाहा ही नहीं था।

लेकिन नकल आसान है, मुफ्त मिल जाती है। क्या लगता है नकल में? बड़ी आसान है। और सस्ते को पकड़ने का मन होता है। मंहगे में तो मूल्य चुकाना पड़ेगा। अगर तुम्हें मेरे जैसा होना है, तुम थोड़े दिन में ही कुशल हो जाओगे। तुम्हें अगर अपने जैसा होना है तो तुम्हें अज्ञात की यात्रा करनी पड़ेगी। मैं तो यहां मौजूद हूं। तो तुम मुझे देख सकते हो; उठना, बैठना, बोलना, सब सीख सकते हो। लेकिन तुम तो अभी मौजूद नहीं हो। तुम तो कभी मौजूद होओगे। अभी तुम बीज में छिपे पड़े हो। तो अभी तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम कौन हो, क्या हो, क्या होने की संभावना है। तो अज्ञात की यात्रा है। नक्शा साफ नहीं है। नक्शा है ही नहीं। रास्ते कहां हैं, कुछ पता नहीं है। एक-एक कदम चलना होगा और रास्ता बनाना होगा। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे बनेगी मंजिल; प्रकट होओगे तुम। और तब तुम मुझे धन्यवाद दे सकोगे। अगर तुम तुम ही हुए तो तुम मुझे धन्यवाद दे पाओगे, अगर तुमने नकल की तो तुम मुझे कभी क्षमा न कर सकोगे।

दूसरा प्रश्नः जीवन की गति वर्तुलाकार है, इस नियम से दिन और रात तथा माह और ऋतु की तरह क्या हम भी अपने को बार-बार मात्र दोहराते रहते हैं?

साधारणतः हां। जब तक तुम मूर्च्छित हो तब तक तुम प्रकृति के हिस्से हो, तब तक तुम ऋतु, वर्ष, माह, दिन और रात की तरह ही वर्तुलाकार भटकते रहते हो, वही-वही दोहरता रहता है बार-बार। इसीलिए तो हिंदुओं ने इसे जीवन का वर्तुल कहा है--संसार। संसार का अर्थ है चाक। बैलगाड़ी के चाक की तरह घूमते रहते हो। कुछ नया नहीं होता। बहुत बार जन्मे, बहुत बार वही वासना, वही लोभ, वही तृष्णा, वही क्रोध। बहुत बार बूढ़े हुए, बहुत बार मरे। वही भय। फिर जन्मे। यह बिल्कुल चाक की तरह घूम रहा है--बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जन्म, मृत्यु, फिर जन्म, फिर मृत्यु--इसमें कुछ भी नया नहीं हो रहा है।

लेकिन नया हो सकता है, अगर तुम जाग जाओ। क्योंकि जागते ही तुम प्रकृति के हिस्से नहीं रह जाते, परमात्मा के हिस्से हो जाते हो। प्रकृति यानी सोया हुआ परमात्मा। परमात्मा यानी जागी हुई प्रकृति। बस इतना ही फर्क है। जैसे एक सोया हुआ आदमी और एक जागा हुआ आदमी। सोया हुआ आदमी भी जाग सकता है; जागा हुआ आदमी भी सो सकता है। कोई बुनियादी फर्क नहीं है।

लेकिन फर्क बड़ा है। घर में आग लगी हो तो सोया आदमी पड़ा रहेगा, जागा हुआ आदमी बाहर निकल जाएगा। घर में संगीत बज रहा हो तो सोया आदमी सोया रहेगा, उसे पता ही न चलेगा कि अमृत की वर्षा हो रही थी; जागा हुआ आदमी सरोबोर हो जाएगा। सूरज निकले, सोया हुआ आदमी सोया ही रहेगा, जैसे अभी रात ही है; जागा हुआ आदमी पक्षियों के कलरव को सुनेगा, सूरज की उठती प्रतिमा को देखेगा। वह सुबह का मनमोहक रूप सोए को पता ही न चलेगा; जागा ही पी सकेगा उस सौंदर्य को।

प्रकृति है अभी तुम्हारे भीतर। उसका अर्थ है, तुम अभी सोए हुए हो। तो अभी पुनरुक्ति होगी। प्रकृति पुनरुक्ति करती है। प्रकृति रिपीटीशन है। पत्ते गिर जाते हैं, फिर लौट आते हैं। सब वही का वही होता रहता है। प्रकृति में तुम कोई फर्क देखते हो? सब वही का वही होता रहता है। फिर सूरज निकलता है; फिर सांझ होती है।

लेकिन तुम्हारे भीतर संभावना है कि तुम जाग जाओ, तो तत्क्षण तुम इस चके के बाहर हो जाते हो। उसी को हम आवागमन के बाहर होना कहते हैं। तुम होश से भर जाओ, तत्क्षण चीजें बदल जाती हैं। फिर कल तक तुमने जो क्रोध किया था, तुम दोबारा आज न कर सकोगे। जागा हुआ आदमी कैसे क्रोध करेगा? यह तो ऐसे ही है जैसे जागा हुआ आदमी अपना हाथ आग में डाले। जागा हुआ आदमी क्यों अपना हाथ आग में डालेगा?

क्रोध आग से भी बदतर है। क्योंकि आग तो केवल हाथ को जलाती है, चमड़ी को जलाती है, क्रोध तुम्हारी अंतरात्मा तक को झुलसाता है और जलाता है। आग की पहुंच तो ऊपर ही ऊपर है, क्रोध का जहर तो तुम्हारे प्राणों के गहनतम में प्रवेश कर जाता है। जागा हुआ आदमी कैसे घृणा करेगा? क्योंकि घृणा करके तुम दूसरे को थोड़े ही नुकसान पहुंचाते हो, घृणा करके तुम अपने को ही नष्ट करते हो। घृणा आत्मघात है। घृणा का अर्थ है अपने को जहर देते रहना। दूसरे को नुकसान होगा कि नहीं होगा, यह गौण है। लेकिन जो आदमी घृणा में जीता है, वह धीरे-धीरे अपने भीतर मरता जाता है। घृणा धीमे-धीमे मौत की तरफ ले जाती है। जो आदमी जागा हुआ है वह कैसे तृष्णा करेगा? क्योंकि तृष्णा सिवाय दुख के और कहीं नहीं ले जाती।

पर यह जागे को दिखाई पड़ता है। उसके पास आंख है। वह देखता है कि यह रास्ता तो सिर्फ दुख में ले जाता है। तो क्यों अपने पैर उस पर उठाएगा? सोया हुआ आदमी, जैसे नशे में चल रहा हो, जैसे उसे पता न हो, कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है, बार-बार उन्हीं रास्तों पर चला जाता है। उन्हीं रास्तों पर जाना सुगम है सोए आदमी को। क्योंकि नये रास्ते पर जागरण की जरूरत पड़ेगी। पुराने रास्ते की आदत हो जाती है।

तुमने कभी ख्याल किया? तुम साइकिल से या कार से घर लौटते हो, तुम्हें याद नहीं रखना पड़ता कि अब बाएं घूमें कि दाएं घूमें। सोया हुआ शरीर सब करता रहता है। अचानक तुम पाते हो कि दफ्तर से दरवाजे के सामने खड़े हो। बीच का रास्ता यंत्रवत पूरा हो गया। तुम वहीं पहुंच जाते हो। इतनी बार आए-गए हो कि अब होश की कोई जरूरत नहीं। हां, घर बदल लो तो तुम्हें कुछ दिन होश से आना पड़ेगा। अगर होश से न आओ तो तुम पुराने घर पर पहुंच जाओगे।

दूसरे महायुद्ध में ऐसा हुआ कि एक आदमी को चोट लग गई और उसकी स्मृति खो गई, स्मृति बिल्कुल खो गई। उसे यह भी याद न रहा कि मेरा नाम क्या है। उसे यह भी याद न रहा कि मैं किस फौज का हिस्सा हूं। युद्ध के मैदान पर कहीं उसका नंबर भी गिर गया जब उसे चोट लगी। तो बहुत मुश्किल हो गई कि वह कौन है। यही पता लगाना मुश्किल हो गया।

उसे पूरे इंग्लैंड में घुमाया गया--शायद कहीं याद आ जाए! बड़े-बड़े नगरों में ले जाया गया। वह जाकर खड़ा हो जाए, उसे कुछ याद न पड़े। लेकिन एक छोटे गांव पर--ट्रेन यूं ही रुकी थी, वहां तो उतारने का ख्याल भी न था--जैसे ही उसने गांव की तख्ती पढ़ी, कुछ हुआ। वह नीचे उतर गया। जो साथी थे उन्होंने रोकना भी चाहा कि तू क्या कर रहा है! लेकिन वह उतरा और भागा गांव के भीतर। जो उसे लेकर चल रहे थे वे उसके पीछे भागे। वह भागता हुआ एक दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया। उसने कहा, यह मेरा घर है। और सब याददाश्त वापस लौट आई। इतनी बार इस घर आया-गया था, इतनी बार इस स्टेशन के नाम को पढ़ा था, छिपी पड़ी थी कहीं मूर्च्छा में बात। जरूरत न पड़ी याद करने की। घर के द्वार पर खड़ा हो गया। पिता ने पहचान लिया कि मेरा लड़का है। सूत्र मिल गया। याददाश्त धीरे-धीरे वापस लौट आई।

तुम भी बिल्कुल भूल गए हो कि तुम कौन हो। और जन्मों-जन्मों में तुम बहुत जगह गए हो, बहुत यात्राएं की हैं। और उन यात्राओं में तुम अभी भी भटक रहे हो। कोई चाहिए जो सूत्र पकड़ा दे; तुम्हें थोड़ी सी याद आ जाए; तुम अपने घर के सामने खड़े हो जाओ। एक बार याद आ जाए तुम्हें भीतर के परमात्मा की, फिर सब धीरे-धीरे याद आ जाएगा।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इसी बात की कोशिश हैं कि तुम्हें अपनी थोड़ी सी स्मृति आ जाए। किसी तरह शरीर से एक क्षण को भी तुम छूट जाओ, तो तुम प्रकृति से छूट गए। किसी तरह क्षण भर को मन बंद हो जाए तो तुमने इस भटकाव में जो शब्द और सिद्धांत और शास्त्र इकट्ठे कर लिए हैं, उनको तुम भूल गए। जिस क्षण शरीर और मन से तुम जरा सी देर को भी टूट गए उसी क्षण तुम अपने घर के सामने खड़े हो जाओगे। इतना तुम्हें पहचान में आ गया--यह घर है! फिर सब याददाश्त वापस लौटने लगेगी।

और जैसे ही तुम जागना शुरू हो जाते हो, घर को पहचान लेते हो, अपने को पहचान लेते हो, थोड़ा ही सही, एक किरण भी हाथ में आ जाए, तो सूरज तक पहुंचने का रास्ता खुल गया। फिर तुम्हारे जीवन में पुनरुक्ति बंद हो जाएगी। फिर तुम्हारे जीवन में हर घड़ी नयी होगी। प्रकृति तो पुरानी है; वर्तुलाकार घूमती रहती है। परमात्मा सदा नया है। तुम भी सदा नये होने की क्षमता रखते हो। और तब प्रतिपल नया होगा। सुबह वही होगी, लेकिन तुम्हारे लिए वही नहीं होगी। सांझ वही होगी, लेकिन तुम्हारे लिए वही नहीं होगी। क्योंकि तुम नये होओगे। और जब तुम नये होते हो तो तुम्हारी दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदलती है तो सारी सृष्टि बदल जाती है। नये होने की कला तुम्हें सीखनी पड़ेगी। अन्यथा तुम पुनरुक्त हो रहे हो; मशीन की तरह ही चल रहे हो। मशीन नया कर भी नहीं सकती।

पश्चिम में बड़े महत्वपूर्ण कंप्यूटर निर्मित हुए हैं। एक आदमी को जो गणित हल करने में सौ साल लगें, वे एक सेकेंड में कर सकते हैं। ऐसे सवाल जिनको कि तीन हजार वैज्ञानिक हजार साल में पूरा कर पाएं, वे एक सेकेंड में हल कर देते हैं। लेकिन कंप्यूटर नया कुछ भी नहीं कर सकता। तुमने जो उसे पहले सिखा दिया है वही कर सकता है। उससे रत्ती भर नया नहीं कर सकता। कंप्यूटर की खोज से ऐसा लगा था कि हमने आदमी से भी बड़ा मस्तिष्क खोज लिया। क्योंकि आदमी के मस्तिष्क की सीमा है, कंप्यूटर की कोई सीमा नहीं है। सारी दुनिया की पुस्तकें एक कंप्यूटर में भरी जा सकती हैं। और तुम कहीं से भी सवाल पूछ लो, कंप्यूटर जवाब दे देगा। वेद हो, कि कुरान, कि बाइबिल, कि लाओत्से, कि महावीर, कि बुद्ध, कि कृष्ण, सारे ग्रंथ एक कंप्यूटर में रखे जा सकते हैं। और कंप्यूटर इतना छोटा कि तुम अपनी जेब में रख ले सकते हो। और तुम जब चाहो, जो पूछना चाहो, तत्क्षण--एक सेकेंड की भी झिझक नहीं होती--कंप्यूटर जवाब दे देगा। लेकिन फिर भी कंप्यूटर एक काम नहीं कर सकता और वह यह कि नया--नया एक शब्द कंप्यूटर नहीं ला सकता। जो उसे दिया गया है, उसको दोहरा देगा।

तो वैज्ञानिक पहले बड़े प्रसन्न हुए थे, फिर बड़े उदास हो गए। क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क की गरिमा उसका संग्रह नहीं है; उसके नये को--एकदम नये को--पहचान लेने की क्षमता, एकदम नये को जन्म देने की क्षमता, एकदम मौलिक को प्रारंभ करने की क्षमता है। वह कोई यंत्र कभी भी न कर पाएगा। यंत्र कर कैसे सकता है? जो हमने उसे सिखा दिया वही कर सकता है।

अगर तुम भी वही कर रहे हो जो तुम्हें समाज ने सिखा दिया, अगर तुम भी वही कर रहे हो जो प्रकृति ने तुम्हारे भीतर, तुम्हारे क्रोमोसोम में, तुम्हारे मूल कोष्ठों में जिसका ब्लू-प्रिंट रख दिया, अगर तुम भी वही कर रहे हो तो तुम भी यंत्र हो। मनुष्य अभी पैदा नहीं हुआ।

गुरजिएफ कहा करता था कि मैं इस सिद्धांत को नहीं मानता कि हर आदमी के भीतर आत्मा है। उसकी बात में थोड़ी सचाई है। वह कहता था, अधिक लोग तो यंत्र हैं, कभी किसी आदमी में आत्मा होती है। अधिक लोग तो मशीन हैं, मनुष्य नहीं हैं।

और वह ठीक कह रहा है। क्योंकि जहां तक सौ में निन्यानबे आदमियों का संबंध है, वे यंत्रवत जी रहे हैं, उनको आत्मवान कहना व्यर्थ ही है। कहते हैं आत्मवान उनको हम उनकी संभावना के कारण, उनकी वास्तविकता के कारण नहीं। वास्तविकता तो यंत्रवत है।

लड़का जवान हुआ; उसकी काम-ऊर्जा पक गई; अब उसके मन में स्त्री का ख्याल उठने लगा। यह तुम नहीं कर रहे हो। यह तो तुम्हारे शरीर के कोष्ठों में छिपा हुआ है; वे कोष्ठ ही तुमसे करवा रहे हैं। यह तो तुम्हारे शरीर के भीतर दौड़ते हुए हारमोन तुमसे करवा रहे हैं। तो बूढ़े आदमी को भी अगर हारमोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं तो वह फिर से काम-ऊर्जा से भर जाता है पागल की तरह। अगर जवान आदमी से भी उसके सारे सेक्स के हारमोन निकाल लिए जाएं तो वह नपुंसक हो जाता है, उसके मन से वासना उठ जाती है; दौड़ नहीं रह जाती, शिथिल हो जाता है।

यही तरकीब तो उपवास करने वालों ने खोज ली थी। ज्यादा देर उपवास करो तो ऊर्जा काम-कोष्ठों को नहीं मिलती; नहीं मिलती तो वासना नहीं मालूम पड़ती। तो शरीर को ऐसा रखो कि बस काम के लायक शक्ति मिले, उससे ज्यादा नहीं, तो काम-ऊर्जा अपने आप क्षीण हो जाती है। लेकिन जिस दिन भोजन करोगे ठीक से उस दिन वापस लौट आएगी। तो धोखा तुम किसी को दे नहीं पाओगे; अपने को ही दे रहे हो।

अभी तो तुम्हारा जीवन बिल्कुल यंत्रवत है। काम पकड़ लेता है तो तुम पकड़े गए। तुम जानते भी नहीं, कहां से काम पकड़ लेता है। तुम्हारे ही कोष्ठों में, रोएं-रोएं में छिपा है काम। क्रोध पकड़ लेता है, वह भी तुम्हारे रोएं-रोएं में छिपा है। हिंसा पकड़ लेती है तो तुम्हें लगता है कि जैसे तुम पजेस्ड हो, किसी ने तुम्हारे ऊपर हावी हो गया और तुमसे कुछ करवा रहा है। और तुम्हें करना पड़ता है। तुम न करो तो बेचैनी; करके तुम पछताते हो। तुम यंत्रवत हो, मूर्च्छित हो। इसलिए तुम दोहरते रहोगे। यह दोहराव बिल्कुल ही व्यर्थ है। यह पुनरुक्ति कहीं भी नहीं ले जाती, चाक घूमता रहता है अपनी ही जगह पर।

तुम थोड़ा जागो। और मजे की बात यह है कि जागना तुम्हारे शरीर में कहीं भी छिपा हुआ नहीं है; जागना कहीं और से आता है। जागने की क्षमता तुम्हारे मन की भी क्षमता नहीं है, तुम्हारे शरीर की भी क्षमता नहीं है। वही जागने की क्षमता तुम्हारी आत्मा की क्षमता है। जागते ही तुम आत्मवान हो जाते हो।

तो जब क्रोध आए तो तुम क्रोध की कम फिक्र लो, जागने की ज्यादा फिक्र लो। क्रोध को जाग कर देखो। कामवासना आए तो कामवासना की चिंता मत लो, जाग कर कामवासना को देखो। जाग कर तुम दूर हो रहे हो; एक फासला पैदा हो रहा है। जब भी तुम्हारे भीतर कोई वासना तुम्हें पकड़ ले तब तुम जागने की कोशिश करो।

कठिन होगा। मुझसे लोग कहते हैं कि आप कहते हैं क्रोध में जागो; क्रोध में तो हमें याद ही नहीं रह जाती। धीरे-धीरे रहेगी। कोशिश करोगे तो आएगी। क्योंकि बुद्ध को आई, कृष्ण को आई, क्राइस्ट को आई। कोई कारण नहीं तुम्हें क्यों न आए? क्योंकि तुम भी उसी बीज से बने हो। जब दूसरे वृक्ष बड़े हो गए, बीज टूट गए और फूल खिल गए, तो तुम्हारा बीज भी फूट सकता है। सतत श्रम की जरूरत है। सतत पहरेदारी रखनी पड़ेगी। आज नहीं होगा, कल होगा। कल नहीं होगा, परसों होगा। एक काम तुम करते ही रहोः कुछ भी स्थिति हो, जागने की कोशिश करते रहो। एक दिन अचानक तुम पाओगे, बात घट गई। अचानक सौ डिग्री तक जागना आ

गया, एक विस्फोट हो गया। और जिस दिन जागरण का विस्फोट होता है, उससे अनूठी कोई घटना इस संसार में नहीं है। जैसे हजार-हजार सूर्य एक साथ निकल आए हों!

श्री अरविंद ने कहा है कि जब जागा तब पाया कि जिसे अब तक प्रकाश समझा था वह तो महा अंधकार है, और जिसे अब तक जीवन समझा था वह तो मृत्यु की पुनरुक्ति है। जब जाना जीवन तब यह पहचान आई। जब जाना असली प्रकाश को तब पहचान आई कि जिसको हम अब तक प्रकाश समझते थे वह तो कुछ भी नहीं है।

और जब यह जागरण आता है तब तुम्हें अपने स्वरूप की पहली दफा प्रतीति होती है। उस प्रतीति को शब्दों में कहने का कोई उपाय नहीं।

चेष्टा करो! बुद्ध के आखिरी क्षण, विदा होते समय के शब्द हैं कि आनंद, चेष्टा में सतत संलग्न रहना! एक क्षण को प्रमाद न करना! जरा भी सुस्ती को मत भीतर बैठने देना! क्योंकि जरा सी सुस्ती, और बहुत कुछ खो जाता है। तू श्रम करते ही रहना जब तक कि जाग ही न जाए, तब तक मानना अपने लिए कोई चैन नहीं है। अथक श्रम करना!

बहुत चोट करनी पड़ेगी तभी यह अंधेरा टूटेगा; क्योंकि अंधेरा कितने दिनों से तुमने सम्हाल रखा है। पत्थर की तरह जड़ हो गई है तुम्हारी अवस्था। पर्त बहुत मजबूत हो गई है। आत्मा भीतर छिपी है, झरना भीतर है, लेकिन द्वार बंद हो गए हैं। चोट करने से द्वार टूटेंगे। सतत चोट करने से द्वार टूटेंगे। धीमी ही चोट क्यों न हो, सतत चाहिए। पानी गिरता है, धीमी-धीमी चोट करता है, चट्टानें टूट जाती हैं। तो तुम्हारी स्मृति की जलधार गिरती रहे तुम्हारे यंत्रवत चट्टानों पर, आज नहीं कल चट्टानें टूट जाएंगी। आज लगेगा कि जलधार इतनी कोमल है, इतनी सख्त चट्टानों को कैसे तोड़ेगी? लेकिन सतत जलधार भी अगर सतत बनी रहे तो बड़े से बड़े पहाड़ टूट जाते हैं। पत्थर कमजोर है, सातत्य के सामने कमजोर है।

लेकिन तुम्हारी तकलीफ मैं समझता हूं। एक दिन प्रयास करते हो, दस दिन आराम करते हो। फिर एकाध दिन जोश चढ़ जाता है, फिर एकाध दिन प्रयास कर लेते हो, फिर दस दिन आराम कर लेते हो। ऐसे बनाते हो, मिटा देते हो। स्थिति वही की वही बनी रहती है। हर बार बनाते हो, हर बार मिटा देते हो। पानी सींच देते हो एक दिन, दस दिन फिक्र नहीं करते। तब तक वृक्ष कुम्हला जाता है, सूख जाता है। फिर बीज बोते हो, फिर थोड़ी साज-सम्हाल करते हो, फिर भूल जाते हो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि बड़ा आनंद आ रहा था ध्यान में, लेकिन फिर टूट गया।

मैं समझ ही नहीं पाता कि जब आनंद आ रहा था तो फिर क्यों टूट गया? और वे ठीक कह रहे हैं कि आनंद आ रहा था। लेकिन आनंद के लिए भी तुम्हारी चेष्टा सतत नहीं रह पाती। मन हजार बातें सुझा देता है। मन कहता है, आज सुबह सो जाओ, कल कर लेना।

मन बहुत कुशल है कल का आश्वासन देने में। और कल कभी आता नहीं। जो आता है वह आज है। करना हो तो आज कर लेना। न करना हो तो कल पर टाल देना। और क्या पा लोगे? अगर एक घड़ी बिस्तर में आज और पड़े रहे तो कितना मिल जाएगा? बिस्तर में कितने दिन तो पड़े रहे हो। जिंदगी ऐसे ही तो बिताई हैं बहुत सी। साठ साल जीओगे तो बीस साल तो बिस्तर में ही पड़े रहोगे। और एक घड़ी ज्यादा पड़े रहने से क्या मिल जाएगा? उठ आओ! मत सुनो मन की!

और मन तभी तुमसे कहना शुरू करता है जब देखता है, अब खतरा है। एक सीमा तक मन बिल्कुल फिक्र नहीं लेता। तुम करते रहो ध्यान; मन को कोई चिंता नहीं है। लेकिन जहां मन देखता है कि अब चोट इतनी पड़

रही है कि टूटने की संभावना है, वहीं मन पच्चीस उपाय खोज देता है। तुम पच्चीस तरकीबें निकाल लेते हो कि आज तबीयत ठीक नहीं है, कि शरीर स्वस्थ नहीं है।

यह शरीर जाएगा; स्वस्थ रहे, अस्वस्थ रहे; चिता पर चढ़ेगा। इसे तुम हमेशा चिता पर चढ़ा हुआ समझो। ध्यान ही बचेगा। तो शरीर न हो ठीक तो भी ध्यान को मत छोड़ो; क्योंकि हो सकता है मन सिर्फ तरकीब निकाल रहा हो कि शरीर ठीक नहीं है।

और मन की तरकीबों का अंत नहीं है। ऐसे तुम दिन भर रहे आते हो, न चींटी काटती है, न हाथ-पैर में खुजलाहट उठती है, न खांसी आती है; ध्यान करने बैठे, सब शुरू।

यह बहुत हैरानी की बात है कि चौबीस घंटे यह आदमी ठीक था; ध्यान करने बैठता है, लगता है चींटियां चढ़ रही हैं, पैर में खुजलाहट आ रही है, अब यह गर्दन दुखने लगी, अब यहां यह होने लगा, वहां वह होने लगा। और तुम्हें पता है कि तुमने कई बार आंख खोल कर भी देखा है, वहां चींटी नहीं है। पैर पर कोई चढ़ ही नहीं रहा है। मन धोखे दे रहा है। मन कह रहा है कि हिलो, क्योंकि तुम्हारे हिलने में मन का जीवन है, और तुम्हारे थिर हो जाने में मन की मृत्यु है। तो मन अपने को बचा रहा है।

और क्या हर्जा है? चींटी अगर चढ़ भी गई तो क्या हर्जा है? काट ही लेगी तो क्या बिगड़ जाएगा? तुम कभी सोचते ही नहीं कि दांव पर क्या लगा है? पैर पर काट ही लेगी चींटी तो काट लेगी। क्या बिगड़ जाएगा?

लेकिन तुम ध्यान खोने को राजी हो, चींटी के काटने को सहने को राजी नहीं हो। इतनी सी भी कीमत न चुकाओगे जागने के लिए! अगर कमर में थोड़ा दर्द हो रहा है तो होने दो। कमर का ही दर्द है; कोई बहुमूल्य खजाना दांव पर नहीं लग गया है। ध्यान के बाद विश्राम कर लेना थोड़ा। नहीं लेकिन, कमर में दर्द है तो तुम ध्यान, परमात्मा सब भूल जाते हो। तत्क्षण कमर का दर्द सब कुछ हो जाता है। यह मन तुम्हें अटका रहा है। मन तुम्हें कह रहा है कि शरीर से लगे रहो। शरीर में हजार उत्पात पैदा कर रहा है।

मत सुनो। उपेक्षा करो। कह दो कि ठीक है, यह शरीर जाएगा, यह तो चिता पर चढ़ेगा। चींटी ने काटा तो चढ़ेगा, न काटा तो चढ़ेगा। कमर में दर्द रहा तो चढ़ेगा, न रहा दर्द तो चढ़ेगा। इसकी अब हम बहुत चिंता नहीं ले रहे हैं। मन से कह दो कि तू बकवास बंद कर। अपने मन से बात करना शुरू करो। उसे कहना शुरू करो कि जो हमने निर्णय किया है वह हम करेंगे, तू बीच-बीच में मत आ।

और अगर तुमने उससे ठीक से बात की तो तुम चकित हो जाओगे, अगर तुमने बलपूर्वक बात की तो वह बीच में आना बंद हो जाता है। गुलाम गुलाम है। मुंह लगा गुलाम है, बस इतनी ही बात है। बहुत उसकी सुनी है तो वह सुनाता है, वह रास्ते बताता है। तुम एक दफा कह दो कि चुप हो जाओ! तो मन चुप हो जाता है। कह कर देखो। बलपूर्वक कह कर देखो। ऐसे डरे-डरे मत कहना, ऐसा मत कहना कि हमें मालूम तो है कि वह चुप होगा नहीं। तो तुम कह ही नहीं रहे हो। कह दो कि चुप हो जाओ! अगर तुमने ठीक से कहा, तुम पाओगे, तत्क्षण मन चुप हो जाता है। मन तुम्हारा गुलाम है, तुम्हारा यंत्र है; तुम मालिक हो। अपनी मालकियत की घोषणा करो। यह कोई दमन नहीं है मन का, यह सिर्फ मालकियत की घोषणा है। यह सिर्फ यह कहना है कि मैं मालिक हूं, निर्णायक मैं हूं; तेरा काम मेरे निर्णय में साथ पहुंचाना है। जल्दी ही तुम पाओगे, मन हट जाता है।

मन के हटते ही शरीर के उत्पात बंद हो जाते हैं, और जागरण की धीमी-धीमी ज्योति उठनी शुरू हो जाती है। गहन अंधकार के बाद जैसे सुबह, मरुस्थलों में भटकने के बाद जैसे अचानक मिल गया मरूद्यान, ऐसा ही वह जागरण है। हजारों-हजारों जन्मों तक धूप में चलने के बाद जैसे मिल गई वृक्ष की छाया, ऐसा ही शीतल वह जागरण है। प्यासे को जैसे पानी, भूखे को जैसे भोजन, ऐसी ही आत्मा की प्यास के लिए वह जलस्रोत है।

और एक बार तुम्हें उस जलस्रोत की थोड़ी सी भी समझ आ जाए कहां है, तब तुम पाओगे कि तुम चाहे बाहर से कितने ही भिखारी हो, भीतर से तुम सम्राट हो। और बाहर से प्रकृति ने तुम्हें घेरा है, लेकिन भीतर से तुम परमात्मा हो। जैसे हर मिट्टी के दीये में ज्योति है ऐसे हर मिट्टी की तुम्हारी देह में परमात्मा की ज्योति है। लेकिन तुम मिट्टी के दीये से इतने उलझे हो कि तुम्हें याद ही नहीं आती कि ज्योति भी है। मिट्टी का दीया ज्योति को सम्हालने को है, लेकिन मिट्टी के दीये को सम्हालने में तुम ज्योति को भूल गए हो।

स्मरण करो ज्योति का! और ज्योति के स्मरण का अर्थ है, चौबीस घंटे कुछ भी करो, एक काम भीतर जारी रखो कि जाग कर करेंगे। साइकिल चला रहे हो रास्ते पर, जाग कर चलाओ। और तुम फर्क अनुभव करोगे फौरन। अगर तुम जाग कर चलाओगे, तुम पाओगे तत्क्षण पूरे शरीर की दशा बदल गई। भोजन कर रहे हो, जाग कर करो। तत्क्षण तुम पाओगे, गुण बदल गया, भीतर की चेतना का गुण और हो गया। एक हलकी शांति, एक सौम्यता, एक मधुरिमा तुम्हें घेर लेगी।

अन्यथा तुम यंत्र हो। अभी तो तुम यंत्र हो। अभी मनुष्य होना नाममात्र को है। मनुष्य होने का अर्थ तो है जागना, पुनरुक्ति को तोड़ देना, मौलिक में प्रवेश, नये में--शाश्वत नये में--पदार्पण।

तीसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि जो तुम हो उस यथार्थ स्थिति को अनाक्रामक ढंग से, बिना निंदा-स्तुति के देखो। लेकिन मेरी वह स्थिति इतनी भयावह है कि उस ओर आंख उठाना कठिन हो जाता है। क्या बताने की कृपा करेंगे कि इस भय से पहले कैसे निपटा जाए?

कोई स्थिति इतनी भयावह नहीं है कि तुम आंख उठा कर न देख सको। और आंख उठा कर देखो या न देखो, इससे स्थिति तो बदलती नहीं है। वह भयावह है तो है। वस्तुतः उसे भयावह कहना भी व्याख्या है। क्यों कहते हो उसे भयावह? मन में कामवासना है; क्यों कहते हो भयावह? क्या भय है? देखने में क्या डर है? भीतर नरक ही क्यों न उबल रहा हो, देखने की क्षमता तो जुटानी ही पड़ेगी। क्योंकि वही उसके ऊपर उठने का मार्ग है।

अब तुम पूछते हो कि भय से पहले कैसे निपटा जाए?

बिना देखे तो किसी चीज से निपटा नहीं जा सकता। तुम ऐसी बातें पूछ रहे हो कि बिना पानी में उतरे तैरना कैसे सीखा जाए? पानी में तो उतरना ही पड़ेगा। तैरना सीखना तभी संभव हो पाएगा। मत उतरो बहुत गहरे में, लेकिन पानी में किनारे तो उतरो। गले-गले तक जाओ, लेकिन थोड़ा जाओ तो, हाथ-पैर तड़फड़ाओ। थोड़ा सीखो, उथले में ही सीखो; जब सीख आ जाएगी तो फिर तुम गहरे में भी जा सकोगे। लेकिन अगर तुमने यह तय कर लिया कि हम तो पहले तैरना सीखेंगे फिर पानी में उतरेंगे, तब फिर बड़ी मुश्किल है। फिर कोई उपाय नहीं है।

भय से पहले निपटोगे तुम कैसे? कौन निपटेगा? तुम ही तो भय हो, तुम ही कंप रहे हो, अब निपटेगा कौन? जागो और भय को देखो, ताकि तुम भय से अलग हो जाओ। न जागोगे, न भय को देखोगे, तो अलग न हो सकोगे। जो अलग हो जाता है वही तो निपट सकेगा। और मजा यह है कि जो अलग हो जाता है उसे निपटने के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ता। अलग होना ही सूत्र है। तुम जिस मनोदशा से अलग हो गए वही मिट जाती है। क्योंकि तुम्हारे सहारे के बिना कोई मनोदशा जी नहीं सकती।

कामवासना है। तुम अलग हो गए, तुमने अपने को दूर खड़ा कर लिया और कहा कि मैं साक्षी हूं, देखूंगा। बस, प्राण निकल गए कामवासना के। क्योंकि तुम्हारा ही सहारा था। तुमसे ही तो ऊर्जा मिलती थी। तुम्हीं दूर खड़े हो गए। कितनी देर कामवासना चलेगी? कुछ पुरानी ऊर्जा थोड़ी बहुत पास होगी, थोड़ी बहुत देर में समाप्त हो जाएगी। तुम पाओगे, काम-ऊर्जा पड़ी है; जैसे सांप निकल गया और उसकी पुरानी चमड़ी पड़ी रह जाती है, वैसी पड़ी है, उसमें कोई प्राण नहीं है। जैसे कारतूस चला हुआ पड़ा है, उसमें अब कुछ प्राण नहीं है।

प्राण कौन देता है? तुम्हारे भय के भी तुम्हीं तो जन्मदाता हो। बस, दूर होना कला है।

देखना ही पड़ेगा। कितनी ही भयावह स्थिति हो, आंख खोलनी ही पड़ेगी। तुम कहो कि आंख बिना खोले भय मिट जाए; मुश्किल है। क्योंकि आंख बंद करने के कारण ही तो भय है। तुम आंख खोलो, देखो चारों तरफ; भय नहीं है।

और भयभीत तुम्हें कर दिया है धर्मगुरुओं ने। क्योंकि हर चीज की निंदा कर दी है; हर चीज को निंदित कर दिया है। इसलिए भय स्वाभाविक है। तुम जो भी करो वही पाप मालूम पड़ता है। और जब सब तरफ पाप मालूम पड़ता है तो तुम कंपते हो, डरते हो, घबराते हो। नरक निश्चित है। तुम सोच भी नहीं सकते कि तुम स्वर्ग कैसे जाओगे! धर्मगुरुओं ने जो व्यवस्था दी है उसमें तुम्हारा नरक निश्चित है। अगर वह व्यवस्था सच है तो स्वर्ग कोई कभी पहुंचा होगा, यह भी संदिग्ध है। सब निंदित है। तो तुम घबरा ही जाओगे।

मैं तुमसे कहता हूं, कुछ निंदित नहीं है; सभी स्वीकृत है। और जिन्हें तुम निंदा करके पा रहे हो कि राह के पत्थर हैं, वे पत्थर नहीं हैं, वे राह की सीढ़ियां हैं।

कामवासना के दो रूप हैं। राह पर पत्थर पड़ा हो। एक तो यह रूप है कि तुम वहां जाकर अटक जाते हो। अब वहां से आगे कैसे जाएं? दूसरा कामवासना का यह रूप है कि तुम पत्थर पर चढ़ जाते हो, पत्थर को सीढ़ी बना लेते हो। तो अब तक तुम चल रहे थे जिस तल पर, अब तुम्हारा तल ऊपर हो जाता है।

नासमझ सीढ़ियों को पत्थर समझ लेते हैं; समझदार पत्थरों को सीढ़ियां बना लेते हैं। इतना ही फर्क है समझदारी और नासमझी में। तुम्हें पता ही नहीं कि अगर तुम कामवासना को सीढ़ी बना लो तो वही ब्रह्मचर्य बन जाएगी। क्रोध को सीढ़ी बना लो, वही करुणा हो जाएगा। तो क्रोध में करुणा छिपी है। क्रोध तो ऊपर की खोल है, भीतर तो करुणा ही छिपी है। कामवासना तो ऊपर की खोल है, भीतर तो ब्रह्मचर्य ही छिपा है।

थोड़ा सोचो, अगर कामवासना न होती तो तुम ब्रह्मचर्य को कैसे उपलब्ध होते? और ब्रह्मचर्य के आनंद को कैसे उपलब्ध होते अगर कामवासना न होती? तो तुम कामवासना को कामवासना की तरह मत देखो। तुम उसे ब्रह्मचर्य का ही एक कदम समझो।

अगर क्रोध न होता तो तुम करुणा को कैसे उपलब्ध होते? कहो, कोई उपाय है? कोई उपाय नहीं है। क्रोध ही तो करुणा बनेगा। तो तुम क्रोध को क्रोध की तरह क्यों देखते हो? तुम उसके, क्रोध के पूरे विस्तार को क्यों नहीं देखते कि वही अंत में करुणा बन जाता है।

तुम्हारी हालत वैसी है जैसे कोई आदमी खाद को भर कर बगीचे में लाए तो उसमें से बदबू आती है। खाद है सड़ा हुआ, सड़ी गंध उससे उठती है। तुम अगर उतना ही देख लो और समझ लो कि ये बगीचे तो ठीक नहीं। लेकिन तुम्हें ख्याल रखना चाहिए कि वही खाद पड़ेगी वृक्षों की जड़ों में, उसी खाद से फूल उठेंगे; उनकी बड़ी सुगंध है। सब दुर्गंधें सुगंधों में बदल जाती हैं। तुम जल्दी कर लेते हो; निर्णय ले लेते हो। उससे मुश्किल में पड़ जाते हो।

थोड़ी देर समझो कि अगर भय तुम्हारे भीतर हो ही न तो तुम्हारे जीवन में अभय की घड़ी कैसे आएगी? तुम अगर भटको न तो तुम पहुंचोगे कैसे? तुमसे अगर भूल न हो तो तुमसे ठीक कैसे होगा? इसलिए मैं तुम्हारे सब पापों को स्वीकार करता हूं। क्योंकि हर पाप में मुझे पुण्य की झलक दिखाई पड़ती है। वहीं पुण्य छिपा है। तुम्हारे वेश्याघरों में ही तुम्हारे मंदिर भी छिपे हैं। तुम जल्दी मत करो, अन्यथा तुम लौट जाओगे वेश्याघर को वेश्याघर समझ कर, मंदिर से वंचित हो जाओगे। मैं जानता हूं, भीतर मंदिर है। तुमसे कहता हूं, डरो मत, आओ।

कुछ मिटाना नहीं है जीवन में; कुछ नष्ट नहीं करना है। प्रत्येक चीज को उसकी पूर्णता तक पहुंचाना है। और हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुंच कर अपने से विपरीत में बदल जाती है। यही तो लाओत्से की सारी गहरी से गहरी समझ है कि हर चीज अपनी पूर्णता पर पहुंच कर अपने से विपरीत में बदल जाती है। दुर्गंध सुगंध हो जाती है, क्रोध करुणा हो जाता है, काम ब्रह्मचर्य बन जाता है, संसार मुक्ति हो जाता है।

इसलिए तो मैं कहता हूं कि मेरे संन्यासियों को संसार नहीं छोड़ना है। क्योंकि वहीं मोक्ष का राज भी छिपा है। भाग गए वहां से तो हिमालय में भटकोगे; मोक्ष न पा सकोगे। उस बाजार के शोरगुल में ही एक अनंत शांति छिपी है। जिस दिन तुम जागोगे उस दिन तुम पाओगे कि ठेठ बाजार में शांत होने की कला है। कहीं जाना नहीं है, सिर्फ जो तुम हो उसे उसकी पूर्णता की तरफ ले जाना है। रुको मत, बढ़ते जाओ। कहीं मत रुको, जब तक कि ऐसी घड़ी न आ जाए जिसके पार जाने को कोई जगह ही न बचे। जहां तक जगह बचे, चलते जाओ।

झेन फकीर लिंची से किसी ने पूछा कि धर्म क्या है?

उसने कहा, बढ़ते जाओ।

उसने कहा कि यह भी कोई बात हुई? बढ़ते जाओ से हम क्या समझें?

लिंची ने कहा, सब कह दिया; ज्यादा कहने से बिगड़ जाएगा।

कहीं रुको मत। रुकना पाप है। बढ़ते जाना पुण्य है। पाप से भी गुजरो, लेकिन बढ़ते जाओ। और तुम अचानक पाओगे कि बढ़ते ही बढ़ते पाप पुण्य हो जाते हैं, पत्थर सीढ़ियां बन जाते हैं, बंधन मुक्ति हो जाती है। इसलिए ज्ञानियों ने, जैसा तिलोपा ने कहा, कि संसार और मोक्ष एक ही हैं। जिसने दो समझे वह भूल में पड़ गया; जिसने दो समझे वह चुनाव में पड़ गया। संसार में ही जो बढ़ता जाए, बढ़ता जाए, एक दिन अचानक पाता है कि मोक्ष आ गया।

तो मैं तुम्हें न तो निंदा करने को कहता हूं, न किसी चीज को पाप कहता हूं। कोई चीज पाप है नहीं। हो कैसे सकती है? इस विराट की लीला में पाप आएगा कहां से? तुम्हारी भूल होगी, बस इतना ही हो सकता है। तुमने कुछ गलत समझ कर ली होगी, तुमने कोई व्याख्या कर ली होगी। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त करता हूं। बस इतना ही तुमसे कहता हूं कि कहीं रुकना मत। वेश्यागृह से भी गुजरना पड़े तो गुजरना; रुक मत जाना वहां। रुकने में भूल है, क्योंकि फिर मंदिर तक न पहुंच पाओगे।

और दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं जो पाप में रुक जाते हैं; उनको हम भोगी कहते हैं। और एक वे हैं जो पाप से डर कर भाग जाते हैं; उनको हम त्यागी कहते हैं। दोनों नहीं पहुंच पाते।

योगी मैं उसको कहता हूं जो न तो भागता और न रुकता; जो बढ़ता ही चला जाता है। हर अनुभव को जीता है, और हर अनुभव से सार निचोड़ लेता है। योगी तो मधुमक्खियों की भांति है, हर फूल से गुजरता है, चुन लेता है सार, उड़ जाता है।

जीवन के सभी पहलुओं को जानो। भय भी बुरा नहीं है, क्रोध भी बुरा नहीं है। बुरा है तुम्हारा रुक जाना। जानो और बढ़ जाओ। जानो और पार कर जाओ। अतिक्रमण तुम्हारा सूत्र हो, ट्रांसेंडेंस। हर चीज को जानना है और पार हो जाना है। जानते ही पार हो जाते हो। जानना अतिक्रमण है।

लेकिन तुम अगर कहो कि बिना आंख खोले कैसे निपटा जाए? तुम कभी न निपट सकोगे। क्योंकि आंख ही खोलना तो निपटने का उपाय है। कितना ही डर हो, खोलो आंख। आंख बंद करने से डर मिटता कहां है? लेकिन शुतुरमुर्ग का तर्क हमारे मन में है। देखता है दुश्मन को शुतुरमुर्ग, रेत में सिर गड़ा कर खड़ा हो जाता है। सोचता है, न दिखाई पड़ेगा दुश्मन, न रहेगा दुश्मन। पर यह तर्क कहीं काम आता है? दुश्मन को तो तुम दिखाई पड़ ही रहे हो। असली सवाल तो वह है। दुश्मन तुम्हें खा जाएगा। शुतुरमुर्ग अगर सिर ऊपर रखता तो शायद कोई रास्ता भी खोल लेता।

शुतुरमुर्ग मत बनो। आंख खोलो और देखो। कुछ भयावह नहीं है, क्योंकि कुछ बुरा नहीं है। क्योंकि कुछ बुरा हो नहीं सकता है। एक-एक पत्ते पर परमात्मा का हस्ताक्षर है। बुरा कुछ हो नहीं सकता है। पाप में भी वही छिपा है। बड़ा अनूठा खिलाड़ी है कि पाप में भी छिपा है! वह छिपने की जगह है उसकी, आड़ है। जैसे बच्चे आंख-मिचौनी खेलते हैं तो वहीं छिपते हैं जहां कम से कम संभावना हो पकड़ने की। परमात्मा भी वहीं छिपा है जहां कम से कम संभावना है तुम्हारे जाने की। मंदिर तुम जाओगे उसे खोजने, तुम उसे न पाओगे। मंदिर में वह छिपा नहीं है। तुम जहां से बच रहे हो वहीं वह छिपा है। वहीं थोड़े खोदने की जरूरत है। जिन्होंने भी उसे पाया है उन्होंने उसे संसार की गहनता में पाया है, सब अनुभवों से गुजर कर पाया है।

भगोड़े मत बनो। भागना कहीं नहीं है। जहां-जहां तुम्हें लगता हो कि यहां कैसे हो सकता है, मैं तुमसे कहता हूं, वहीं है। तुम कैसे सोच सकते हो कि क्रोध में और करुणा हो सकती है? लेकिन वहीं है। तुम कैसे सोच सकते हो कि कामवासना में ब्रह्मचर्य हो सकता है? वहीं है। और तुम कैसे सोच सकते हो कि संसार में संबोधि छिपी होगी? वहीं है।

चौथा प्रश्नः जगत द्वंद्व है; जगत के सभी नियम विपरीत पर खड़े हैं। फिर हमें द्वंद्व के बाहर होने का उपदेश क्यों दिया जाता है? क्या हम जगत के बाहर हैं?

हो तो नहीं, लेकिन हो सकते हो। और कोई तुम्हें उपदेश नहीं दे रहा है जगत के बाहर होने का। तुम ही पूछते हुए आए हो कि द्वंद्व में घिरे हैं, बड़ी अशांति है, क्या करें? द्वंद्व में रहोगे तो अशांति रहेगी। क्योंकि जहां दो हैं वहां कलह होगी। पुरानी कहावत है, जहां बरतन होते हैं वहां थोड़े बजते हैं। जब तक एक न रह जाए तब तक शांति हो नहीं सकती। तुम्हें कोई उपदेश नहीं दे रहा है कि तुम निर्द्वंद्व हो जाओ। तुम ही पूछते हुए आए हो कि मन अशांत है, संतप्त है, दुखी है, क्या करें? तुम पूछते हो, इसलिए मैं कहता हूं कि दुखी तुम इसलिए हो कि तुम अभी दो के साथ हो। और किसी तरह एक को पाना है। एक को पा लो, अशांति मिट जाएगी।

इसलिए महावीर ने तो मोक्ष को जो नाम दिया वह नाम ही कैवल्य है। महावीर ने बड़ा प्यारा शब्द चुना। कैवल्य का अर्थ है बिल्कुल अकेले बचे, केवल तुम, कोई न बचा। अकेली चेतना रह गई। तो संघर्ष किससे होगा? द्वंद्व किससे होगा? वही परम शांति का क्षण है।

संसार द्वंद्व है। संसार अशांति है। संसार दुख है। अगर तुम राजी हो दुख से, मजे से राजी रहो। मैं कौन जो तुम्हें खींच कर दुख के बाहर करूं? अगर तुम्हें मजा आ रहा है दुख में; पूरा मजा लो। लेकिन फिर पूछते मत

फिरो कि दुख से बाहर कैसे होना? तुम अगर अपनी राजी से, अपनी खुशी से दुखी हो, फिर बिल्कुल ठीक है। फिर मैं तुम्हें बाधा न दूंगा। लेकिन तुम्हारी बड़ी अजीब गति है। द्वंद्व से दुखी हो, दुख के बाहर होना चाहते हो, और फिर पूछते हो कि द्वंद्व के बाहर होने का उपदेश क्यों दिया जा रहा है जब सारा संसार ही द्वंद्व है?

सारा संसार द्वंद्व है, लेकिन जिसको यह द्वंद्व पता चलता है वह चेतना अलग है। जो इस द्वंद्व को देखता है, साक्षी है, वह अलग है, वह संसार के बाहर है। द्वंद्व को तो पता भी कैसे चलता कि द्वंद्व है, अगर निर्द्वंद्व मौजूद न हो?

इसे थोड़ा समझो। अगर तुम्हारे भीतर कोई शांत केंद्र न हो तो तुम्हें अशांति का पता कैसे चलेगा? किसको पता चलेगा कि अशांति है? अशांति को पता चलेगा कि अशांति है? अशांति को तो पता ही कैसे चल सकता है अशांति का? कोई शांत केंद्र तुम्हारे भीतर छिपा होना चाहिए जिसको पता चलता है अशांति का। दुख का किसे पता चलता है? अगर दुख ही दुख हो तो दुख का पता ही नहीं चल सकता। तुम्हारे भीतर आनंद का कोई स्वर बज ही रहा होगा। उसी से तो तुम तौलते हो कि दुख है। नहीं तो तुम तौलते कैसे हो? तुम कैसे मुझसे आकर कहते हो कि मैं दुखी हूं? कैसे कहते अशांत हूं? कैसे कहते हो कि अज्ञान में भटक रहा हूं, अंधकार में जी रहा हूं? तुम्हें कुछ न कुछ अनजानी पहचान है प्रकाश की। तौलोगे कैसे अन्यथा?

वह जहां से यह धीमी-धीमी, अनजानी पहचान आ रही है, वह जगह द्वंद्व के बाहर है। और तुम चाहो तो वहां थिर हो सकते हो। लेकिन तुम्हारी मौज। संसार में ही रहना हो, द्वंद्व में ही रहना हो, मजे से रहो।

लेकिन वहां तुम रहना नहीं चाहते। तुम्हारी तकलीफ मुझे पता है। तुम्हारी तकलीफ यह है कि जो नहीं हो सकता, वह तुम करना चाहते हो। तुम रहना तो चाहते हो द्वंद्व में, और आनंदित रहना चाहते हो। मनुष्य की सारी प्रार्थनाएं एक वाक्य में संगृहीत हैं--कि हे परमात्मा! कोई ऐसी तरकीब बताओ कि दो और दो चार न हों। बस, असंभव किसी तरह हो। क्योंकि तुम्हें लगता है द्वंद्व में रागरंग भी है; तुम्हें लगता है द्वंद्व में सुख भी है; सारी वासनाएं उस तरफ ले जाती हैं। चहल-पहल वहां है। मगर उस चहल-पहल में अशांति है। तो तुम मेरे पास चले आते हो--या किसी के पास जाते हो--कि शांति कैसे हो जाए? वहीं अड़चन शुरू होती है। तुम चाहते हो कि द्वंद्व को भोगते हुए शांत कैसे हो जाएं।

यह नहीं हो सकता। मैं तुम्हें बताता हूं कि शांति की यह राह है, कि तुम शांत हो जाओ। लेकिन तब द्वंद्व खो जाएगा। द्वंद्व को भी तुम पकड़े रखना चाहते हो। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, महत्वाकांक्षा तो नहीं छूटती, लेकिन शांति की बड़ी आकांक्षा है। अब यह हो कैसे सकता है? लोग मुझसे पूछते हैं कि जो हम कर रहे हैं, जैसा हम कर रहे हैं, क्या वैसे ही करते-करते कुछ घटना नहीं घट सकती? तो फिर घटना घटानी ही क्यों है? अगर तुम राजी हो तो फिकर छोड़ो। राजी भी नहीं हैं, क्योंकि दुख मिल रहा है। और सुख की आशा बनी है वहीं।

एक मित्र हैं बंबई में, और वे बंबई में हमेशा अशांत रहते हैं। तो मैं कश्मीर गया तो वे मेरे साथ कश्मीर गए। पहलगांव में बड़ी शांति थी। दूसरे दिन वे कहने लगे कि यहां तो मन ऊबता है।

बंबई में अशांत थे कि यह बंबई जो है पागलपन है; पहलगांव में भी अशांत हो गए, क्योंकि शांति उबाने लगी। अब वे चाहते हैं पहलगांव की शांति बंबई में, या पहलगांव में बंबई का उपद्रव। उस उपद्रव के बिना भी नहीं जी सकते; उस उपद्रव के साथ भी नहीं जी सकते।

यह नहीं हो सकता। तुम्हें बदलना पड़ेगा। अगर द्वंद्व दुख दे रहा है तो तुम्हें निर्द्वंद्व होना पड़ेगा; तुम्हें तीसरा सूत्र खोजना पड़ेगा जो दोनों के बाहर है। अगर तीसरा सूत्र तुम खोज लो और तीसरे सूत्र में तुम पूरी

तरह लीन हो जाओ, तो जरूर असंभव भी घट सकता है। तब एक दिन तुम बाजार में वापस आ सकते हो, और तुम्हारे भीतर पहलगांव की शांति होगी। तुम बीच बंबई में खड़े हो सकते हो, शेयर मार्केट में, लेकिन पहलगांव की शांति तुम्हारे भीतर होगी। तब तुम वहां होओगे भी और नहीं भी होओगे। तब बाहर से तुम वहां होओगे, भीतर से तुम वहां नहीं होओगे। लेकिन यह तो आखिरी घटना है; यह पहले नहीं घट सकती।

पहले तो तुम्हें यह तय करना ही होगा कि दुख के ऊपर उठना है तो द्वंद्व को छोड़ना है। दुख के ऊपर उठ कर, द्वंद्व को छोड़ कर एक दिन तुम्हारे भीतर ऐसी गरिमा का उदय होगा, ऐसी गहन शांति जन्मेगी कि फिर तुम लौट आ सकते हो बाजार में। तब तुम्हें कोई बंधन न होगा; तब तुम्हें कोई द्वंद्व न छुएगा, कोई द्वैत न छुएगा।

आखिर परमात्मा भी तो द्वंद्व में ही रह रहा है; उसे नहीं छूता। क्योंकि वह द्वंद्व में है और नहीं है। द्वंद्व में ऐसे है जैसे कोई अभिनेता होता है। तुम द्वंद्व में कर्ता की तरह हो, तुम वहां बंट जाते हो। तुम अभिनेता नहीं हो। तुम्हारा धन खो जाता है तो तुम्हारी आंख से अभिनेता के आंसू नहीं बहते, असली आंसू बहते हैं। तुम सच में ही रोते हो। तुम्हारी पत्नी खो जाए तो तुम सच में ही चिल्लाते हो, छाती पीटते हो; वैसा नहीं जैसा रामलीला में राम की सीता खो जाती है तो वे पूछते हैं वृक्षों से, कहां मेरी सीता!

लेकिन तुम जानते हो कि वे बिल्कुल नहीं पूछ रहे, केवल अभिनेता हैं। भीतर कुछ नहीं हो रहा, सब बाहर-बाहर हो रहा है। आंसू भी लाते हैं तो नाटक कंपनियां मिर्च का मसाला रखती हैं। वे जल्दी से, हाथ में मिर्च लगाए रखते हैं, आंख पर मीड़ लेते हैं; आंसू बहने लगते हैं। रामचंद्रजी को भी रामलीला में थोड़ी सी मिर्च आंख में लगानी पड़ती है, तब आंसू आते हैं।

अब आंसू कोई तुम्हारी आज्ञा से तो चलते नहीं। और असली आंसू एक बात है; नकली लाना बड़ी मुश्किल बात है। कभी नकली आंसू लाकर देखो, तब पता चलेगा। आज अभ्यास करना बैठ कर कि नकली आंसू किसी तरह आ जाएं। वे बिल्कुल न आएंगे। बिल्कुल सूख जाएंगी आंखें; पता ही न चलेगा कि आंखों में कोई आंसू भी हैं कहीं।

जिस दिन व्यक्ति अपने भीतर की गहन शांति में थिर हो जाता है उस दिन जगत एक अभिनय है। इसलिए हमने इसे लीला कहा है। उस दिन वह सब करता है--वह बाजार जाता, वह दुकान चलाता, वह पत्नी को सम्हालता, बच्चों को सम्हालता--वह सब करता है, और फिर भी अकर्ता बना रहता है। वही सिद्ध की दशा है। लेकिन उसके पहले तुम्हें साधक होने से गुजरना पड़ेगा। तुम्हें द्वंद्व से हटना पड़ेगा।

हटने की कला को ही मैं जागरण कहता हूं। जाग कर देखते रहो। जागते-जागते, जागते-जागते, तुम्हारे भीतर तीसरी स्थिति खड़ी हो जाएगी। दो बाहर रह जाएंगे, तीसरा भीतर हो जाएगा। वह तीसरा दो के पार है। उस पार का अनुभव होने लगे, फिर कोई कठिनाई नहीं है। फिर कोई गाली दे, निंदा करे, स्तुति करे, सब बराबर है। फिर कोई अंतर नहीं पड़ता है। फिर एक विराट अभिनय है, बड़ा मंच है, चल रहा है। तुम्हें दिया गया पात्र तुम्हें पूरा कर देना है, तुम्हारा अभिनय तुम्हें पूरा कर देना है। तब तुम बदलना भी नहीं चाहते।

ऐसी कथा है कि जापान में एक फकीर हुआ, जो कि हत्यारा था। पहले सैनिक था, तब भी लोगों को लगता था कि वह मारता जरूर है, लेकिन मारता नहीं। उसकी झलक उसके निकट के लोगों को पता चलती थी। फिर वह एक ही काम सीखा था। मुक्त हो गया सेना से, तो उसने बधिक का धंधा कर लिया, बूचर बन गया। कहते हैं, वह जिंदगी भर पशुओं को ही काटता रहा। सम्राट भी उसके पास शिक्षा लेने आते थे।

अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि यह बात शोभा नहीं देती कि तुम और पशुओं को काटो। वह हंसता और कहता, जो परमात्मा ने काम पकड़ा दिया वह कर रहे हैं, न हमने चुना, न हमारी कोई जिम्मेवारी। उसकी

मर्जी है कि हम बधिक रहें, हम बधिक हैं। न कोई वैमनस्य है इन पशुओं से, न कोई शत्रुता है। न इन्हें बचाने का कोई अपना आग्रह है, न मिटाने का कोई अपना आग्रह है। जो मिल गया है अभिनय वह पूरा किए दे रहे हैं।

कहते हैं, वह परम मुक्ति को उपलब्ध हुआ। तुम अहिंसा साध-साध कर भी न हो पाओगे, और कभी-कभी हत्यारे भी मुक्त हो गए हैं। असली राज न तो अहिंसा में है और न हिंसा में है; असली राज तो जीवन को अभिनय बना लेने में है। तुम कर्ता न रह जाओ। अब तुमने अगर एक मक्खी को नहीं मारा या एक चींटी को नहीं मारा तो तुम हिसाब लिख लेते हो कि आज एक चींटी बचाई। मगर तुम कर्ता हो, तुम कुछ कर रहे हो।

कर्तृत्व बंधन है; साक्षित्व मुक्ति है। तुम कर्ता न रहो; धीरे-धीरे साक्षी हो जाओ। कर्ता में द्वंद्व है, साक्षी अद्वैत अवस्था है। जिस दिन यह घट जाएगा उस दिन सब ठीक है, उस दिन कोई फर्क नहीं पड़ता। क्या करते हो, क्या नहीं करते हो, सब बराबर है। यह जगत स्वप्न से ज्यादा नहीं। यह तुम्हें सत्य मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम सोए हो। तुम जागोगे तो पाओगे, सब सपना खो गया। साधु भी सपने में साधु है और असाधु भी सपने में असाधु है। जागा हुआ न तो साधु है न असाधु। जागे हुए को हम संत कहते हैं, सिद्ध कहते हैं। वह न अच्छा है न बुरा; वह सिर्फ जाग गया। सपना खो गया। न उसे कुछ अच्छा बचा, न कुछ बुरा; न शुभ, न अशुभ; न पाप, न पुण्य। इसलिए संतत्व आखिरी शिखर है।

लेकिन उस तक बड़ी यात्रा करनी है। और एक-एक कदम चलोगे तो पहुंच जाओगे। क्योंकि हजारों मील की यात्रा भी एक कदम से शुरू होती है।

आज इतना ही।

एक सौ चोदहवां प्रवचन

संत को पहचानना महा कठिन है

Chapter 70

They Know Me Not

My teachings are very easy to understand and very easy to practise,
But no one can understand them and no one can practise them.
In my words there is a principle.
In the affairs of men there is a system.
Because they know not these,
They also know me not.
Since there are few that know me,
Therefore I am distinguished.
Therefore the Sage wears a coarse cloth on top
And carries jade within his bosom.

अध्याय 70

वे मुझे नहीं जानते

मेरे उपदेश समझने में आसान हैं, और साधने में भी आसान हैं।
लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है, और न कोई उन्हें साध सकता है।
मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।
मनुष्य के कारबार में एक व्यवस्था है।
क्योंकि इन्हें वे नहीं जानते हैं, वे मुझे भी नहीं जानते हैं।
चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, इसलिए मैं विशिष्ट हूं।
इसलिए संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं,
लेकिन भीतर हृदय में मणि-माणिक्य लिए रहते हैं।

जीवन सरल है, लेकिन तुम जटिल हो। इसलिए चलते हो साथ-साथ, जीवन के समानांतर; लेकिन जीवन से कभी मिलन नहीं हो पाता। जब तक कि तुम भी जीवन जैसे सरल न हो जाओ तब तक मिलन हो भी न सकेगा। क्योंकि समान से समान का मिलन हो सकता है, सरल से सरल का, जटिल से जटिल का।

जटिलता मन की है। और मन की जटिलता को समझ लो तो शेष सब समझ में आ जाता है। मन की जटिलता यह हैः अगर फूल को देखो तुम, तो फूल को नहीं देखते, फूल के संबंध में सोचने लगते हो। संबंध में सोचा कि दूर निकल गए। फूल को ही देखते, सोचते न; फूल के सौंदर्य को जीते, सोचते न; फूल को पीते, सोचते न; फूल को घेर लेने देते तुम्हें सब ओर से, सोचते न; फूल को जाने देते हृदय तक, हृदय को जाने देते फूल तक, विचार की बाधा खड़ी न करते, तो सब सरल था। लेकिन देखा भी नहीं कि सोचना शुरू हो जाता है।

सोचने से ही तुम जीवन से दूर हो जाते हो। प्रेम नहीं करते, प्रेम के संबंध में सोचते हो। उत्सव नहीं मनाते, उत्सव के संबंध में सोचते हो। जीते नहीं, जीने के संबंध में विचार करते हो। और जितना तुम विचार से घिरते जाओगे उतना ही जीवन दूर होता जाएगा। विचार का अर्थ है दूर जाने की यात्रा। फिर एक विचार दूसरे विचार में ले जाता है; दूसरा तीसरे विचार में ले जाता है। फिर अनंतशृंखला हो जाती है। पहला कदम चूके कि फिर तुम चूकते ही चले जाते हो। पहले कदम पर ही जीने और विचार के फासले को ठीक से समझ लेना। जीना हो तो जीना निर्विचार में है; सोचना हो तो सोचना निर्जीवन है। इस जटिलता के कारण जीवन सरल होते हुए भी उपलब्ध नहीं हो पाता।

जीसस ने कहा है, देखो लिली के फूलों को! वे सोचते नहीं। लेकिन उनके सौंदर्य के सामने सम्राट सोलोमन का सौंदर्य भी फीका है।

फूल कल के संबंध में विचार नहीं करते; आज काफी है। आज इतना काफी है कि कल के संबंध में सोचने की जगह कहां? आज बहुत है। आज को उत्सव मना लेना है। तुम्हारे पास भी आज बहुत है। लेकिन तुम कल के संबंध में सोच रहे हो--जो अभी आया नहीं, और जो कभी आएगा भी नहीं। और तुम्हारी आदत निर्मित हो रही है। जब कल आएगा तो वह आज की तरह आएगा। और आज से टूटने की तुम्हारी आदत मजबूत होती चली जा रही है। कल भी तुम आगे आने वाले कल के लिए सोचोगे। ऐसे तुम जीओगे, और कभी न जी पाओगे। मरते क्षण भी तुम परलोक के संबंध में सोचोगे।

चूक जाने की यह कला है, जीवन से चूक जाने की कला है कि तुम सदा वहां मत रहो जहां जीवन है, कहीं और रहो। या तो अतीत में, जो जा चुका, मन बड़ा रस लेता है; या भविष्य में, जो आया नहीं, मन बड़ी कल्पना करता है। बस यह क्षण, जो आ गया है, जो अभी है, जो मौजूद है, जो वर्तमान है, जहां जीवन का द्वार है, बस इस क्षण में मन की कोई अभीप्सा नहीं, कोई प्यास नहीं। और यह क्षण बहुत छोटा है। यह क्षण इतना छोटा है कि तुम जरा सा हिले कि चूक जाओगे। और मन तो कंप रहा है; अतीत और भविष्य के बीच झूले मार रहा है। बस यहां नहीं रुकता, घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता है बाएं से दाएं; मध्य में नहीं ठहरता।

इसलिए जितना बड़ा विचारक उतना ही जीवन से दूर। पहले वह प्रेम के संबंध में सोचता है; फिर प्रेम के संबंध में जो सोचा उसके संबंध में सोचता है। ऐसे चलता जाता है। फिर कोई अंत नहीं है।

यह तो पहली बात ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि जटिल तुम हो; जीवन सरल है। जीवन अभी उपलब्ध है; तुम अभी मौजूद नहीं। लौट आओ वर्तमान में, समेट लो अपने को पीछे से और आगे से, ठहर जाओ यहीं और अभी, और कुछ भी तुमने कभी खोया नहीं है। और कुछ भी पाने को नहीं रह जाता। सब तुम पा लोगे।

पर वर्तमान के क्षण में रुकना ही तो अड़चन है। तुम इस बात को भी सुन कर यही सोचते होः अच्छा, तो कल अभ्यास करेंगे, तो कल कोशिश करेंगे वर्तमान में आने की। आज तो उलझनें और हैं। फिर इतने जल्दी किया भी नहीं जा सकता। तो तुम इसे भी स्थगित करते हो। तुम ध्यान को भी स्थगित करते हो। और ध्यान का अर्थ कुल इतना ही हैः वर्तमान में होना।

मेरे पास लोग आते हैं। उनको मैं कहता हूं, ध्यान करो। तो वे कहते हैं, करेंगे। पर अभी बहुत उलझनें हैं; अभी लड़की की शादी निपटानी है। जैसे लड़की की शादी निपटाना ध्यान में कोई बाधा बनती हो। कि अभी बहुत काम-धाम है, उलझनें हैं सिर पर; और फिर अभी जीवन पड़ा है; फिर ध्यान तो वृद्धावस्था की बात है। वह तो चौथा चरण है, चौथा आश्रम है। आखिर में कर लेंगे।

ध्यान का अर्थ ही होता है वर्तमान में होना। तुम उसे भी टालते हो। और जब भी तुमसे कहा जाए ध्यान, तुम तत्क्षण पूछते हो, विधि क्या है? विधि का मतलब है, तुम अभ्यास करोगे। अभ्यास का मतलब है, कल पर टालोगे। अभ्यास का अर्थ ही होता है, तुमने टाल दिया कल पर। ध्यान अभ्यास नहीं है। ध्यान तो जागरण है। अभी हो सकता है। अभ्यास किया तो कभी न होगा, क्योंकि अभ्यास की बात में ही तुम भूल गए, चूक गए।

कृष्णमूर्ति निरंतर अपना सिर ठोंक लेते हैं। क्योंकि वे जीवन भर से समझा रहे हैं कि ध्यान की कोई विधि नहीं। और उनको वर्षों से सुनने वाले बार-बार फिर पूछते हैं, तो कैसे करें?

अब जब विधि नहीं है, तो कैसे करें पूछना बिल्कुल असंगत है। कैसे का तो मतलब होता है अभ्यास; कैसे का तो अर्थ होता है करेंगे तब मिलेगा। और ध्यान का अर्थ है कि वह मिला ही हुआ है इस क्षण। तुम कुछ मत करो; तुम सिर्फ रुक जाओ; तुम न करने में हो जाओ और ध्यान बरस जाएगा। तुम्हारे करने में ही चूका है; तुम्हारे न करने में मिलन है।

जीवन तो सरल है, लेकिन मन जटिल है। लाओत्से के इन वचनों को समझने की कोशिश करो।

"मेरे उपदेश समझने में आसान हैं, और साधने में भी।"

क्योंकि लाओत्से का उपदेश ही क्या है! सच कहो तो यह कोई उपदेश है! लाओत्से का उपदेश तो जीवन ही है। जीवन को उपलब्ध हो जाओ। जो मिला ही है, उसे पुनः पा लो। जो तुम्हारे भीतर जगा ही है, उसे पहचान लो। जो तुम हो, उसके रस, उसके स्वाद को पा लो। लाओत्से का उपदेश यानी जीवन। लाओत्से कोई परमात्मा की बात करता नहीं। परमात्मा की बात भी वस्तुतः जीवन से बचने की तरकीब है मन की। जीवन है; परमात्मा कहां है? और जीवन को ही जिन्होंने उसकी गहनता में जान लिया उन्होंने परमात्मा को जान लिया।

लेकिन मैंने अब तक एक आदमी नहीं देखा जो मुझसे पूछने आया हो कि जीवन कैसे जीएं। मुझसे लोग पूछने आते हैं, परमात्मा को कैसे खोजें? एक आदमी नहीं आया जो पूछता हो जीवन कैसे जीएं। और जीवन है; और परमात्मा तो सिर्फ शब्द है। लेकिन परमात्मा के खोजी हैं; क्योंकि परमात्मा को खोजने में तो जन्म-जन्म लगेंगे। अगर तुम जीवन की बात मुझसे पूछोगे तो अड़चन में पड़ोगे। क्योंकि जीवन तो अभी यहां द्वार पर खड़ा है; अभी जी सकते हो। अगर परमात्मा को मिल कर नाचना है तो जन्मों-जन्मों की यात्रा है; पता नहीं कभी पूरी होगी कि नहीं होगी। लेकिन अगर जीवन को पाकर नाचना है तो तुम्हें कोई भी तो नहीं रोक रहा है। तुम नाच उठो अभी। द्वार पर जीवन बरस रहा है, सूरज उगा है, पक्षी गीत गा रहे हैं, सब तरफ उत्सव है। तुम किसकी खोज कर रहे हो? तुम क्यों नहीं उस उत्सव में सम्मिलित हो जाते अभी?

अगर तुम जीवन की पूछोगे तो अभी मिल सकता है। इसलिए तुम जीवन की पूछते ही नहीं। तुम पूछते हो, परमात्मा कहां है? परमात्मा का रूप क्या है? परमात्मा है या नहीं? तुम परमात्मा को तर्क से सिद्ध करते

हो, असिद्ध करते हो, सिद्धांत बनाते हो। और जो है वह तो सिर्फ जीवन है। उसका कोई सिद्धांत है? उसका कोई शास्त्र है? बिना वेद के पक्षी जी रहे हैं, बिना बाइबिल के वृक्ष जी रहे हैं, बिना कुरान के आकाश जी रहा है। तुम क्यों नहीं जी सकते? तुम क्यों शास्त्र को बीच में लाते हो? कहीं कोई गहरी चालाकी है जो तुम अपने साथ खेल रहे हो; कोई खेल है जिसमें तुम अपने को धोखा दे रहे हो।

एक दिन मैं मुल्ला नसरुद्दीन के घर गया, वह पेशेंस खेल रहा था, ताश खेल रहा था अकेला ही। मैं बैठा उसका खेल देखता रहा। मैंने देखा कि वह कई बार अपने को ही धोखा दे रहा है। अकेले ही खेल रहा है, दोनों तरफ से चालें खुद ही चल रहा है, लेकिन उसमें भी धोखाधड़ी कर रहा है।

मैंने पूछा कि नसरुद्दीन, धोखा दे रहे हो? उसने कहा, कहां दिया! धोखा वगैरह कुछ नहीं दे रहा हूं; नियम से खेल रहा हूं। मैंने कहा, तुम्हारे अतिरिक्त यहां कोई भी नहीं है। तुम्हीं दोनों तरफ से चालें चल रहे हो। धोखा भी देने का क्या सार है? उसने कहा, मैंने कभी धोखा दिया ही नहीं। अभी भी वह धोखा दे रहा है। मैंने पूछा, यह तो असंभव मालूम पड़ता है कि तुम अकेले हो, धोखा दो और पता न चले! उसने कहा कि मैं काफी होशियार हूं धोखा देने में; देता हूं और पता भी नहीं चलने देता।

किसको धोखा दे रहे हो तुम शास्त्रों को बीच में लाकर? शास्त्रों की दीवाल खड़ी करके तुम किसे रोक रहे हो? तुम जीवन के ही प्रवाह को रोक रहे हो। तुम सूर्य की किरणों को रोक रहे हो। तुम पक्षियों के गीत को रोक रहे हो। तुम अपने को ही रोक रहे हो। लेकिन एक बार तुम शास्त्र में उलझ गए कि फिर तुम गहन जंगल में खो गए। शब्दों के जंगल से बाहर आना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि बाहर आने का उपाय नहीं मिलता। एक शब्द दूसरे शब्द में ले जाता है; दूसरा तीसरे शब्द में ले जाता है। और इतना जाल खड़ा हो जाता है कि जितना तुम सुलझाते हो, लगता है और उलझने लगा।

जीवन के संबंध में पूछो। जीवन ही परमात्मा है। और जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है।

लेकिन तुम्हारे धर्मगुरु तो जीवन की निंदा कर रहे हैं। उन्होंने तो परमात्मा को जीवन के विपरीत खड़ा कर रखा है। वे तो कहते हैं, जिसे परमात्मा की तरफ जाना हो उसे जीवन को काट डालना पड़ेगा। उनकी तो सारी सिखावन यही है कि तुम जीवन को काटो, पत्तों को, शाखाओं को, जड़ों को। जिस दिन तुम जीवन को बिल्कुल काट डालोगे उस दिन तुम्हें परमात्मा मिलेगा। उनकी बात तुम्हें जंचती है। जंचती है, क्योंकि जीवन को काटने में तुम्हारे मन की हिंसा पूरी होती है। और जीवन को काटने में कल पर टालने की सुविधा मिलती है।

और जीवन को काटते रहोगे तो तुम कभी भी न पा सकोगे परमात्मा को। क्योंकि अगर परमात्मा कहीं था तो जीवन की धड़कन में था; जहां हृदय धड़कता है, जहां श्वास चलती है, वहीं परमात्मा छिपा था। परमात्मा जीवन की ऊर्जा का नाम है।

लेकिन अगर जीवन ही परमात्मा है तो फिर मंदिरों की और मस्जिदों की जरूरत क्या रहेगी? जीवन तो बिना मंदिर-मस्जिद के मौजूद है। अगर जीवन ही परमात्मा है तो कुरान, बाइबिल और वेद की क्या जरूरत है? जीवन का तो अपना ही वेद है; जीवन तो खुद ही वेद है। तो पुरोहित जी न सकेगा; धर्मगुरु बच न सकेगा। उसका धंधा ही मिट जाएगा। वह तुम्हें जीवन के विपरीत खड़ा करता है। क्योंकि जीवन के विपरीत खड़े होने में ही उसका धर्म और उसका धंधा खड़ा होता है। मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे फैलते चले जाते हैं। सारी पृथ्वी भर गई उनसे, और आदमी के जीवन में कहीं कोई आनंद की पुलक नहीं है; आदमी के जीवन में कहीं कोई रस की धार नहीं बहती।

इसे ठीक से समझ लो। क्योंकि यह मैं किसी और के संबंध में नहीं कह रहा हूं, यह तुम्हारे साथ भी यही हो रहा है। जीवन को करो प्रेम; जीवन को मानो अहोभाग्य; जीवन है परम आशीर्वाद। और अगर जीवन में कहीं बुराई दिखती हो तो जानना कि तुम्हारी ही कोई भूल है। जीवन को काटने में मत लग जाना। जहां तुम्हें बुराई दिखती है वहां भी कुछ भला छिपा होगा। जरा और गहरे खोजना, जल्दी निर्णय मत लेना। क्योंकि तुमने जल्दी निर्णय लिया तो पुरोहित और पंडित तुम्हें शोषण करने को तैयार खड़े हैं। तुमने जरा भी कहा कि यह गलत है कि उन्होंने कहा कि हम तो पहले से ही कहते हैं कि जीवन गलत है, और नर्क है, और पाप है। सुनो हमारी! खोजो परमात्मा को! हम तुम्हें परलोक का मार्ग दिखाते हैं।

बस यही लोक है। इसी लोक में गहरे जाने के उपाय हैं। परलोक कहीं भी नहीं है। यही क्षण है। यद्यपि इस क्षण के बड़े गहरे आयाम हैं। तुम चाहो तो नदी को ऊपर से देख कर लौट आ सकते हो। तुम चाहो तो नदी की सतह पर तैर सकते हो। तुम चाहो तो नदी में गहरी डुबकी लगा सकते हो। नदी में गहरे होने के बहुत उपाय हैं। अथाह है जल जीवन का। अगर कहीं भूल दिखाई पड़े तो जल्दी मत करना। क्योंकि उसी भूल के नीचे गहराई में कुछ छिपा होगा। अगर कहीं कठोरता भी मालूम पड़े तो भी जल्दी निंदा मत करना। वहीं कठोरता के भीतर कहीं कोमलता छिपी होगी। और अगर कहीं तुम्हें ऐसा लगे कि अन्याय हो रहा है तो भी निर्णायक मत बनना। क्योंकि जब तक तुम पूर्ण को न जान लो तब तक तुम निर्णय कैसे करोगे? तुम्हें अन्याय दिख सकता है कहीं। क्योंकि तुम खंड को ही जानते हो। तुम्हें पूरे का कुछ भी पता नहीं है।

छोटा सा बच्चा पैदा होता है; पहला ही काम तो करता है कि चीख कर रोता है, चिल्लाता है। धर्मगुरुओं ने इसका भी शोषण कर लिया। उन्होंने कहा, रोते हुए ही तुम पैदा होते हो। जन्म ही रुदन है, दुख है। जन्म की शुरुआत दुख से होती है।

वे बिल्कुल ही गलत बात कह रहे हैं। बच्चा दुख के कारण नहीं रोता। और बच्चे के रोने और चिल्लाने के पीछे जीवन की अभीप्सा छिपी है, दुख नहीं।

बच्चा चिल्लाता है; उसके माध्यम से उसका फेफड़ा, गला साफ होता है, और श्वास की धारा शुरू होती है। चिकित्सक जानते हैं कि अगर बच्चा तीन मिनट तक न रोए-चिल्लाए तो बचाना मुश्किल है; मर जाएगा। क्योंकि अब तक तो मां की श्वास से जीता था; अब अपनी श्वास लेनी है। तो वह जो चीखना है, रोना है, चिल्लाना है, वह सिर्फ गले का साफ करना है। उसमें न तो कोई पीड़ा है; अगर हम बच्चे को जान सकें तो उसके भीतर छिपा अहोभाव है। उसने पहली स्वतंत्रता की श्वास ली। वह पहली दफा अपने तईं चिल्लाया है, आवाज दी है, पुकार दी है। वहां दुख जरा भी नहीं है। वहां पीड़ा जरा भी नहीं है। हां, तुम व्याख्या कर ले सकते हो। और धर्मगुरु उसको पकड़ लेता है कि देखो रोने से... ।

तुम्हें पता होना चाहिए कि रोने का अनिवार्य संबंध दुख से नहीं है। कभी आदमी सुख में भी रोता है। कभी तो महासुख में ऐसे आंसू बहते हैं जैसे दुख में कभी भी नहीं बहे। रोने का कोई संबंध दुख से नहीं है अनिवार्य। दुख में भी आदमी रोता है; सुख में भी आदमी रोता है। महासुख और आनंद में भी लोगों को रोते हुए पाया गया है। आंसू तो केवल, जब भी तुम्हारे भीतर कोई चीज लबालब हो जाती है, इतनी हो जाती है कि तुम सम्हाल नहीं पाते, तभी बहते हैं। वह बच्चे की पहली पुकार है, जीवन की पुकार है। वह जीवन का पहला कदम है।

लेकिन धर्मगुरु ने उसकी भी निंदा कर दी। धर्मगुरु ने कुछ छोड़ा ही नहीं, उसने हर चीज की निंदा कर दी। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसने हर चीज को बुरा बता दिया है। और तुम्हें इस बुराई से इतना आक्रांत कर दिया है, यह व्याख्या तुम्हारे मन में भी इतनी गहरी बैठ गई है। और व्याख्या के परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

फ्रांस में एक बहुत बड़ा चिकित्सक है जिसने एक अनूठी बात खोजी है। वह पूरी मनुष्यता को जैसे भूल ही गई व्याख्या के कारण। बच्चे पैदा होते हैं; तो हम सोचते हैं कि मां को बड़ी पीड़ा होती है, प्रसव-पीड़ा होती है। क्योंकि सारी दुनिया में करीब-करीब, कम से कम सभ्य लोगों में तो पीड़ा होती ही है। और असभ्यों की तो हम फिक्र ही नहीं करते। आदिम जातियों में पीड़ा नहीं होती। बच्चा पैदा होता है; मां काम करती रहती है खेत में, बच्चा पैदा हो जाता है, टोकरी में बच्चे को रख कर वह फिर काम में लग जाती है। कोई प्रसव-पीड़ा नहीं होती। लेकिन सारी सभ्य जातियों में होती है। सभ्यता से प्रसव-पीड़ा का क्या संबंध होगा?

यह व्याख्या है, जो गहरे बैठ गई। प्रसव पीड़ा है, यह ख्याल, यह विचार गहरे बैठ गया।

फ्रांस में एक चिकित्सक ने स्त्रियों को सम्मोहित किया प्रसव के पहले और उन्हें यह धारणा दी कि प्रसव बड़ा आनंदपूर्ण है। होश में आ गईं, पर यह धारणा उसने सम्मोहन के द्वारा उनमें गहरे बिठा दी कि प्रसव बड़ा समाधिपूर्ण है; समाधिस्थ आनंद, आखिरी आनंद प्रसव में होगा।

होना भी यही चाहिए, क्योंकि बड़ी से बड़ी घटना घट रही है; एक नये जीवन का पदार्पण हो रहा है। यह दुख में कैसे होगा? और मां बड़े से बड़ा कृत्य कर रही है इस जगत में। कोई चित्रकार कितना ही बड़ा चित्र बना ले, कोई मूर्तिकार कितनी ही बड़ी मूर्ति गढ़ ले, कोई संगीतज्ञ कितने ही बड़े संगीत को जन्म दे दे; फिर भी एक साधारण स्त्री के सृजन का मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि सब सृजन--संगीत का, कि मूर्ति का, कि चित्र का, कि काव्य का--मुर्दा है। एक साधारण सी स्त्री की भी सृजन की क्षमता, बड़े से बड़े चित्रकार, मूर्तिकार, स्रष्टा में नहीं है। एक जीवंत व्यक्ति को जन्म दे रही है। यह तो अहोभाव का क्षण होना चाहिए; यह तो बड़े उत्सव का क्षण होना चाहिए। यह दुख का कैसे हो गया? धर्मगुरु ने इतनी निंदा की है कि यह गहरे बैठ गया।

तो इस चिकित्सक ने सम्मोहित किया स्त्रियों को और फिर उनको बच्चे हुए। और वे इतनी आनंदित हुईं। दुख की तो बात ही अलग रही, प्रसव देना एक आनंद की घटना हो गई; ऐसे आनंद की घटना कि उन स्त्रियों ने कहा कि फिर दुबारा ऐसा आनंद नहीं जाना।

उसने कोई लाखों प्रयोग करवाए। और अब तो वह सम्मोहित भी नहीं करता। अब तो वह कहता है, देख लो, इतनी स्त्रियों को आनंदपूर्ण प्रसव हो रहा है! उसने चित्र प्रकाशित किए हैं, फिल्में बनाई हैं। उन स्त्रियों के चेहरे पर वही भाव है जो कभी बुद्ध के चेहरे पर दिखाई पड़ता है, या कभी मीरा के चेहरे पर दिखाई पड़ता है। वही नृत्य, वही आनंद। और कुछ भी खास घटना नहीं घट रही है, बच्चे का जन्म हो रहा है। न चीख है, न पुकार है; न रोना है, न आंसू हैं। बिल्कुल उलटी स्थिति है। और उसकी बात सारी दुनिया में प्रचारित हो रही है। रूस में तो उन्होंने हर अस्पताल में प्रयोग शुरू कर दिए। क्योंकि स्त्री के लिए अकारण कष्ट दे रहे हो। जो घटना महासुख बन सकती थी उसको हमने दुख बना दिया।

जल्दी मत करना। जहां भी तुम दुख पाओ, समझना कि कहीं कुछ भूल हो रही है। क्योंकि गहरे में तो सुख ही होगा; क्योंकि गहरे में परमात्मा है। हर घटना के पीछे छिपा है वही। तो ऊपर-ऊपर से निर्णय मत ले लेना; भीतर जाना। जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। और जीवन की निंदा जिसने की, उसके मंदिर के द्वार सदा के लिए बंद हो गए। फिर वह भटके काशी, काबा, कैलाश, उसके मंदिर के द्वार बंद हो गए। फिर वह

करे सत्संग, सुने रामायण, गीता, वेद, करे पाठ, कुछ भी न होगा। जीवन पास था; वह शब्दों में खो गया। जीवन यहां था; वह वहां दूर भटकने लगा।

लाओत्से कहता है, "मेरे उपदेश समझने में आसान हैं।"

और आसान क्या हो सकती है बात? सीधे-सीधे हैं।

"और साधने में भी आसान हैं।"

क्योंकि जब बात ही सीधी-सादी है। तुम्हें कोई जीवन सिखाना पड़ेगा?

यह तो ऐसा ही हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन पकड़ लिया गया मछली मारते एक ऐसे तालाब पर जहां मछली मारना वर्जित था। जब पुलिस ने उसे पकड़ लिया और पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो? तख्ती दिखाई नहीं पड़ती कि यहां मछली मारना वर्जित है? यह सम्राट का अपना तालाब है, इसमें कोई मछली नहीं मार सकता। नसरुद्दीन ने कहा, मछली मार कौन रहा है? लेकिन उसकी बंसी में फंसी एक मछली तड़प रही थी। तो उन्होंने कहा, फिर यह क्या हो रहा है? उसने कहा कि मछली को तैरना सिखा रहा हूं।

तुम्हें जीवन सिखाना ऐसा ही है जैसे मछली को कोई तैरना सिखाए। सिखाना क्या है? जीवन तो है ही। तुम क्या सीखने के लिए भटकते फिर रहे हो? और तुम सीखने के लिए भटकते हो तो कोई न कोई चालबाज मिल जाता है जो सिखाने लगता है। तुम मानते ही नहीं, तुम कहते हो, सीखेंगे ही। मछली तैरने के सीखने की आकांक्षा करती है; कोई न कोई नसरुद्दीन मिल जाएगा जो तैरना सिखा देगा।

जीवित तुम हो। सब तुम्हारे पास है। और लाओत्से का कोई और उपदेश तो नहीं है, जीवन ही उपदेश है। इसलिए वह कहता है कि मेरे उपदेश समझने में आसान और मेरे उपदेश साधने में आसान हैं। साधना क्या है?

लेकिन तब दूसरे दो वचन तुम्हें बड़े हैरानी के लगेंगे, और बड़े सच।

"लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है, और न कोई उन्हें साध सकता है।"

पहली बात समझ में आती है कि जीवन ही अगर उपदेश है तो सरल है। न कोई योग करना है; न कोई शीर्षासन करने हैं; न कोई नौली-धोती करनी है; न कोई उलटा-सीधा जीवन को करना है। न कुछ त्यागना है, न कुछ छोड़ना है; जीना है। जहां हो, जैसे हो, उसे ही परमात्मा का आशीर्वाद मान कर चुपचाप जी लेना है। उसी आशीर्वाद के भाव से प्रार्थना का जन्म होगा। उसी आशीर्वाद के भाव में गहराई उतरेगी, अथाह का प्रारंभ होगा।

"लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है... ।"

क्योंकि तुम जिस बुद्धि से समझने की कोशिश करते हो वही तो नासमझी है।

इसलिए लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन कोई उन्हें समझ नहीं सकता। क्योंकि समझने की कोशिश बुद्धि की है। और जीवन बुद्धि से ज्यादा गहरा है। जीवन को जी सकते हो, समझोगे कैसे? प्रेम में उतर सकते हो; प्रेम को समझोगे कैसे? सौंदर्य को पी सकते हो; समझोगे कैसे? क्या है सौंदर्य?

सौंदर्य पर हजारों शास्त्र लिखे गए हैं; अब तक कोई सौंदर्य की व्याख्या नहीं कर पाया कि क्या है सौंदर्य। जिन्होंने भी व्याख्याएं की हैं, वे सब हार गए, थक गए। और यह भी नहीं कह सकते कि सौंदर्य नहीं है, इसलिए व्याख्या किसकी करें! सौंदर्य तो है, सब तरफ है। सौंदर्य से भरा है अस्तित्व। तो यह तो कह ही नहीं सकते कि सौंदर्य नहीं है। लेकिन क्या है सौंदर्य? कैसे कहो? कैसे परिभाषा बनाओ? शब्द में कैसे समझाओ? सौंदर्य का शास्त्र नहीं बन पाता। सौंदर्य है भरपूर, और शास्त्र नहीं बन पाता।

तो लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन न कोई उन्हें समझ सकता है और न कोई उन्हें साध सकता है। समझने की बात ही नहीं है। यही तो समझना है। बात जीने की है।

कबीर ने कहा हैः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।

कोई लिखा-लिखी की होती, समझ लेते, पढ़ लेते। यह देखा-देखी बात! देखने की है। सौंदर्य देख सकते हो, समझ नहीं सकते। सौंदर्य को अनुभव कर सकते हो, समझ नहीं सकते। अनुभव संपूर्ण का होता है; समझ बुद्धि की होती है। समझ तो सिर्फ विचार की होती है, अनुभव तन-प्राण सबका होता है, इकट्ठे का होता है। रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित होता है। जब फूल को तुम खिलते देखते हो और सौंदर्य की प्रतीति होती है, तो क्या प्रतीति खोपड़ी में ही होती है? रोएं-रोएं पर छा जाता है फूल। उसके खिलने में तुम भी कहीं भीतर खिल जाते हो। उसके साथ एक रास बन जाता है, एक रंग बन जाता है। आंख, कान, सब तरफ से प्रवेश कर जाता है। बुद्धि को भी उसका अंश मिलता है, पर अंश ही मिलता है। समग्र शरीर पर व्याप्त हो जाता है; समग्र आत्मा पर फैल जाता है।

समझ तो केवल बुद्धि की है, शब्दों की है; अनुभव जीवन का है।

इसलिए लाओत्से कहता है, समझने में आसान, लेकिन कोई समझ न पाएगा। और साधने में आसान, लेकिन कोई साध न सकेगा।

जीवन को कोई साध सकता है? जो मिला ही हुआ है उसे साधोगे कैसे? साधना तो उसे पड़ता है जिसे हम लेकर नहीं आते। सीखना तो उसे पड़ता है जो हमारा स्वभाव नहीं है। सीखने का अर्थ ही होता है पर-भाव।

एक बच्चा पैदा होता है। उसे हम जो-जो बातें सिखाते हैं वे उसके स्वभाव में नहीं हैं। अगर हम न सिखाते तो वे कभी अपने आप पैदा न होतीं। लेकिन कुछ बातें अपने आप पैदा हो जाती हैं। वह उसका स्वभाव है। बच्चा जवान होता है और प्रेम की आकांक्षा उठती है। बच्चा जवान होता है और प्रेम की पुकार उठती है। क्या तुम सोचते हो अगर एक बच्चे को ऐसा बड़ा किया जाए कि उसे पता ही न चले कि प्रेम जैसी कोई घटना होती है, कोई प्रेम का शास्त्र उसके पास न आने दिया जाए, वात्स्यायन की कोई खबर उसे न मिले, खजुराहो, कोणार्क के मंदिर देखने को न मिलें, किसी पुरुष को कभी किसी स्त्री के प्रेम में पड़े होने की खबर उसे न मिले--हम उसे ठेठ जंगल में पाल सकते हैं, छिपा कर रख सकते हैं--लेकिन एक घड़ी आएगी जब उसके भीतर प्रेम का उदय होगा। तब न वात्स्यायन की जरूरत होगी, न खजुराहो की जरूरत होगी। उसने शायद अपने जीवन में कोई स्त्री न भी देखी हो, तो भी उसके सपनों में स्त्री की छाया पड़ने लगेगी; उसे रूप भी स्त्री का पता न हो, पर रूप की प्यास उठने लगेगी। उसे कुछ भी कभी न समझाया गया हो कि क्या है प्रेम, क्या है काम, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह स्वभाव है। वह जागेगा।

पशुओं को, पक्षियों को, पौधों को कौन सिखा रहा है? कहां है विश्वविद्यालय जहां पशु-पक्षियों और पौधों को प्रेम सिखाया जा रहा है? स्वभाव से उठती है बात। और जीवन तुम्हारा स्वभाव है। साधना क्या है?

साधना उन चीजों को पड़ता है जो स्वभाव नहीं हैं। हां, इस बच्चे को भाषा नहीं आएगी, अगर न सिखाई गई। तो यह गणित नहीं सीख लेगा; यह तर्कशास्त्र नहीं सीख पाएगा, अगर न सिखाया गया। यह बच्चा सभ्य नहीं हो सकेगा, अगर न सिखाया गया। इसे सभ्यता का कोई पता न होगा।

ऐसा बहुत बार हुआ है कि कुछ बच्चों को भेड़ियों ने पाल लिया है। छोटे बच्चों को उठा ले गए। ऐसी तीन घटनाएं हैं; इस सदी में ही घटी हैं। अभी कुछ वर्ष पहले एक बच्चे को लखनऊ के पास पकड़ा गया जो भेड़ियों ने पाला था। वह भेड़ियों जैसा चलता था, आदमियों जैसा चलता भी नहीं था। दो पैर पर भी खड़ा नहीं होता था।

शायद वह भी हम सिखाते हैं। बच्चा अपने आप अगर छोड़ दिया जाए तो शायद चारों हाथ-पैर से चलेगा, क्योंकि वही सुगम है। दो पैर पर खड़ा होना तो बड़ा हठयोग है बच्चे के लिए। धीरे-धीरे अभ्यास होने से खड़ा हो जाता है। कोई भाषा नहीं बोलता था, क्योंकि भाषा कैसे सीखता? लेकिन एक बात अनुभव की गई उस बच्चे में कि अगर वह अशांत होता और कोई प्रेमपूर्ण स्त्री उसके ऊपर हाथ फेर देती तो वह शांत हो जाता। वह जो स्त्री का स्पर्श, वह उसे शांत करता। उसे मां का स्पर्श बन जाता होगा। उसे कभी मां का स्पर्श याद भी नहीं। प्रेम की आकांक्षा उसमें भी थी। लेकिन और उसके पास कुछ भी न था। वह बिल्कुल जंगली जानवर था। मांस कच्चा खाता था। छह महीने लग गए उसे भोजन खिलाने में सिखाने में। छह महीने लग गए उसको किसी तरह खड़ा करने में। छह महीने में वह मर भी गया।

और मेरा अपना ख्याल है कि उसको सिखाने की यह जो चेष्टा की गई, इसमें वह मर गया। अन्यथा वह बड़ा स्वस्थ था जब आया था। क्योंकि उसके ऊपर यह भारी हो गया। बारह साल का बच्चा था, उसको यह सिखाना बहुत भारी हो गया। यह इतना ज्यादा तकलीफदेह हो गया कि वह मर गया। जैसे-जैसे सिखाया वैसे दुर्बल होता गया।

जीवन को सिखाने की जरूरत ही नहीं है। जीवन कोई सभ्यता थोड़े ही है। जीवन कोई शिक्षण थोड़े ही है। जीवन तो तुम हो। तो जीवन को जानने के लिए तो तुमने जो सीख लिया है उसको थोड़ा अनसीखा करना ही हितकर होता है, ताकि तुम थोड़े मुक्त हो सको बंधनों से, ताकि तुम थोड़े अपने चारों तरफ की दीवाल को तोड़ कर बाहर आ सको।

तो लाओत्से अगर कुछ भी कह रहा है तो वह यह कह रहा है कि तुमने जितना सीख लिया है वह जरूरत से ज्यादा है। कामचलाऊ को बचा लो, बाकी को छोड़ दो। या जो तुम बचाओ उसको भी बाहर-बाहर रखो, भीतर मत ले जाओ। उसे तुम्हारे प्राणों को आक्रांत मत करने दो। जीवन को सिखाना नहीं है। जीवन तुम हो।

इसलिए लाओत्से कहता है, न कोई उसे साध सकता है; समझने में आसान, और कोई समझ नहीं सकता।

और जब तक तुम समझने की कोशिश करोगे, तुम वंचित रहोगे समझने से। साधने में आसान; और कोई साध नहीं सकता। जीवन को साधने की कोशिश मत करना। जीवन को तुम्हारे साधने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन लंगड़ा नहीं है कि उसे शिक्षा की बैसाखियां चाहिए हों। जीवन के पास अपने पंख हैं, अपने पैर हैं। तुम सिर्फ जीवन को खुला, मुक्त छोड़ देना। और तुम पाओगे कि जीवन चलने लगा अपने आप। जीवन के पास परमात्मा की ऊर्जा है। यह पूरा अस्तित्व उसे साथ दे रहा है। जीवन पंगु नहीं है। और न जीवन कमजोर है। जीवन के पास बड़ी ऊर्जा है। तुम सिर्फ एक मौका देना कि तुम बाधा मत डालना, और जीवन चलने लगेगा, दौड़ने लगेगा। और जीवन उड़ने भी लगेगा। कोई आकाश इतना बड़ा नहीं है जहां जीवन उड़ न सके। बड़े से बड़े आकाश को छोटा सा आंगन बना लेगा।

लेकिन साधने की कोशिश तुमने की कि चूक जाओगे; समझने की कोशिश की कि नासमझी पैदा होगी। इसलिए तो पंडितों से ज्यादा अज्ञानी और नासमझ खोजना मुश्किल है। साधने की कोशिश की कि तुम भटक जाओगे। क्योंकि तुम जो भी करोगे वह तुम करोगे, तुम्हारी बुद्धि करेगी, जो कि बहुत छोटी है, और उस पर करेगी जो बहुत बड़ा है। अंश अंशी को साधने लगे, खंड अखंड को साधने लगे। तो मुश्किल में पड़ जाएगा। एक ही साधना है कि तुम खंड का आग्रह छोड़ दो, तुम खंड को अखंड में डुबा दो, तुम बूंद को सागर में गिरा दो। फिर सागर ही सम्हाल लेगा। तुम यह मत पूछो कि फिर बूंद का क्या होगा, फिर बूंद कहां जाएगी, भटक तो न

जाएगी। तुम बूंद को बचाओ मत। और सागर को सिखाने की कोशिश मत करो। और सागर को बांधने की चेष्टा मत करो; सागर को साधने की चेष्टा मत करो।

अगर लाओत्से को ठीक से समझो तो कोई साधना नहीं है। इसलिए लाओत्से ने किसी योग की विधियों की कोई बात नहीं की। न कोई पद्धतियां, न कोई मार्ग। साधना ही नहीं है। लाओत्से यह कह रहा है कि तुम्हें मिला है, उसे भोगो; तुम्हें मिला है, उसे जीओ।

तुम जीने में कृपणता कर रहे हो। तुम जीने तक में कंजूस हो। तुम श्वास तक डरे-डरे लेते हो। कोई आदमी पूरी श्वास नहीं लेता। फेफड़ों में, वैज्ञानिक कहते हैं, छह हजार छिद्र हैं। और स्वस्थ से स्वस्थ आदमी भी जो श्वास लेता है वह केवल दो हजार छिद्रों तक जाती है। चार हजार छिद्र तो बिना उपयोग के पड़े रहते हैं। तुम श्वास तक पूरी नहीं ले रहे, कैसे घबड़ाए हुए हो? और श्वास लेने में क्या तुम्हारा खो रहा है? लेकिन श्वास के साथ आता है जीवन; श्वास के साथ आती है ऊर्जा। और ऊर्जा का भय है।

छोटे बच्चे पूरी श्वास लेते हैं। कभी छोटे बच्चे को लेटा हुआ देखो जब वह सो रहा हो। तो उसकी छाती नहीं उठती, उसका पेट ऊपर उठता है। वह श्वास का पूरा ढंग है। क्योंकि तब श्वास पेट तक जा रही है, नाभि तक जा रही है, गहरे से गहरे छिद्रों तक फेफड़े में श्वास जा रही है। इसलिए छोटे बच्चे के जीवन में जो तरलता होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है। उसके जीवन में जो कोमलता होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है। छोटे बच्चे में जो ताजगी होती है वह तुम्हारे जीवन में खो जाती है।

फिर छोटा बच्चा क्यों ऐसी गहरी श्वास लेना बंद कर देता है?

तुम जरा बच्चों को ध्यान करो। अगर तुमने बच्चे को कभी डांटा, तत्क्षण तुम पाओगे, उसकी श्वास धीमी हो जाती है और गहरी नहीं जाती। वह घबरा गया। क्योंकि जब भी तुम डांटते हो तभी तुम यह कह रहे हो कि तुम गलत हो। और जीवन में जब भी कोई गलत चीज मालूम पड़ती है तो जीवन सिकुड़ता है। तुमने कहा, ऐसा मत करना! तो तुमने एक द्वार बंद कर दिया जीवन का। तुमने कहा, बाहर मत जाना! तुमने दूसरा द्वार बंद कर दिया। तुमने कहा, अंधेरे में निकलना मत! तुमने तीसरा द्वार बंद कर दिया। तुमने कहा, इतना शोरगुल मत करो! तुम द्वार बंद करते जा रहे हो। बच्चा श्वास कैसे ले? क्योंकि श्वास तो ऊर्जा पैदा करेगी। ऊर्जा पैदा होगी तो बच्चा दौड़ेगा, अंधेरे को भी जानना चाहेगा, समुद्र में भी उतरना चाहेगा, वृक्ष पर भी चढ़ना चाहेगा। इसलिए अब एक ही उपाय है कि बच्चा ऊर्जा पैदा न होने दे। कमजोर हो जाए, खुद ही पेड़ पर चढ़ने में डरने लगे, तो तुम्हें डराने की जरूरत न रहे। तुम्हारे नियमों के कारण बच्चा अपने को कमजोर कर लेता है।

अगर तुम्हारे नियम न हों तो हर बच्चा वृक्षों पर चढ़ेगा, हर बच्चा नदियों में तैरेगा, हर बच्चा पहाड़ की यात्रा पर जाएगा, और जीवन के सभी अभियान करेगा। अगर तुम्हारे निषेध-नियम न हों तो बच्चा वह सब जानना चाहेगा जो जीवन जानना चाहता है। जो उसका भीतर का जीवन कहेगा जानो, वह जानेगा। बुरे को भी जानेगा, क्योंकि वह भी जीवन का आयाम है; भले को भी जानेगा, क्योंकि वह भी जीवन का आयाम है। क्रोध भी करेगा, करुणा भी करेगा, हंसेगा भी, रोएगा भी। वह जीवन के सब आयाम को अनुभव करेगा। और तब तुम पाओगे, उसकी श्वास पूरे छह हजार छिद्रों तक जाती है। तब उसके पास एक जीवन होगा जो ऊपर से बह रहा है; भरा-पूरा जीवन होगा।

लेकिन सभ्यता ने बहुत विषाक्त कर दिया है। इधर जो लोग भी गहन ध्यान में उतरना शुरू होते हैं, और विशेषकर सक्रिय ध्यान में, जिसमें श्वास का बड़ा प्रयोग है, वे मेरे पास आना शुरू हो जाते हैं। वे कहते हैं कि बड़ी अजीब-अजीब बातें श्वास की चोट से उठनी शुरू हो रही हैं! कि कभी इतना क्रोध अनुभव नहीं किया था;

क्रोध अनुभव हो रहा है! और कोई कारण नहीं है। और कभी इतनी उदासी नहीं थी; उदासी अनुभव हो रही है! और कोई कारण नहीं है। वे दबी हुई, जो श्वास कम लेकर जिनको दबा दिया था, वे सब वृत्तियां वापस उठनी शुरू हो जाती हैं। डायाफ्राम के पास तुम्हारे सब दबे हुए मनोवेग पड़े हैं। उन पर जैसे ही चोट लगती है वे सब जगने शुरू हो जाते हैं। घबराहट होती है कि कहीं पागल तो न हो जाएंगे!

हद्द आश्चर्य है कि जीवन को सिकोड़ कर तुम स्वस्थ बने हो, और जीवन को फैलाते ही पागल होने का डर पैदा होता है। तुम्हें इतना डरा दिया गया है। तुम्हें समझाया ही यह गया है कि तुम मरे-मरे जीना। क्योंकि तुम अगर प्रगाढ़ता से जीओगे तो बुराई भी आएगी। और तुम्हें संस्कृत होना है, सभ्य होना है, सज्जन होना है, साधु बनना है। असाधु को काट कर तुम्हारा आधा जीवन काट दिया गया है। अगर परमात्मा भी असाधुता को काट दे संसार से तो परमात्मा भी तुम जैसा ही रुग्ण, खोजता फिरेगा किसी गुरु को कि जीवन को कैसे सीखें? कि जीवन को कैसे साधें?

जीवन में बुराई भलाई का अनिवार्य अंग है, अंधेरा प्रकाश के साथ-साथ है, मृत्यु जीवन का अंग है।

लाओत्से कहता है, न तो तुम साध सकोगे, न तुम समझ सकोगे, यद्यपि बात समझने में आसान है और साधने में भी।

"क्योंकि मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।"

वह क्या है सिद्धांत लाओत्से का? उसका मूल आधार क्या है?

उसका मूल आधार हैः जीवन को तुम बेशर्त स्वीकार करो। बेशर्त शब्द स्मरण रखो। जीवन पर कोई शर्त मत लगाओ। क्योंकि तुम्हारी सब शर्तें जीवन को काटेंगी। जीवन को निषेध मत दो। जीवन को विधेय बनाओ। द्वार बंद मत करो; सब बंद द्वार खोल दो। जीवन अपने आप में परिपूर्ण है, तुम्हें कुछ और करने की जरूरत नहीं है। तुम उसमें सुधार करना बंद करो। सुधार करने से ही तुमने उसमें बिगाड़ कर दिया है। सुधार-सुधार कर ही तुमने जहर डाल दिया है।

लाओत्से का मूल सिद्धांत हैः जीवन को बेशर्त स्वीकार करो। डरो मत; कुछ भी खोने को नहीं है। डरोगे तो भी मरोगे; तो भी सब खो जाएगा जो तुम्हारे पास है। जी लो अभय से, परिपूर्ण अभय से।

लेकिन तुम्हारे भीतर, जब मैं यह कह रहा हूं तब भी मैं जानता हूं, बेचैनी आ गई होगी--अभय से जी लो! फिर पाप का क्या होगा? अभय से जी लो! फिर बुराई का क्या होगा? अभय से जी लो! फिर नियम, शास्त्र, समाज, सभ्यता, संस्कृति, इसका क्या होगा? और बड़े आश्चर्य की तो बात यह है कि अगर तुम अभय से जीओ तो पाप धीरे-धीरे परमात्मा में लीन हो जाता है। निषेध तुम करो ही मत तो निषेध करने को कुछ बचता ही नहीं; सभी विधेय हो जाता है। तुम अचानक पाते हो कि जगत एक संगीतपूर्ण लयबद्धता है जिसमें बुराई का भी अपना स्थान है, जिसमें बुराई वर्जित नहीं है; वरन भलाई में स्वाद डालती है। बुराई नमक है जिसके बिना भलाई बेस्वाद हो जाती है।

तुम थोड़ा सोचो। एक आदमी जो क्रोध कर ही न सकता हो उसकी करुणा में कितनी गहराई होगी? छिछली होगी, उथली होगी; उसकी करुणा नपुंसक होगी, उसमें बल न होगा। जो आदमी क्रोध कर सकता हो, जिसने क्रोध पर कोई निषेध न लगाया हो, बल्कि जिसने क्रोध को जीया हो--और जीकर ही क्रोध करुणा बन गया हो, जितना क्रोध को जाना हो उतनी करुणा उपजने लगी हो, जितना अपने भीतर की हिंसा को पहचाना हो उतनी ही भीतर की अहिंसा जगने लगी हो--उसकी करुणा में एक गहराई होगी, अतल गहराई होगी। वह गहराई क्रोध के कारण आ रही है। जिस आदमी ने कामवासना जानी ही नहीं, उसके ब्रह्मचर्य में क्या होगा?

उसके ब्रह्मचर्य को तुम नपुंसकता से ज्यादा और क्या नाम दे सकोगे? और नपुंसक ब्रह्मचर्य कोई ब्रह्मचर्य है! लेकिन जिसने वासना का उभार जाना, जिसने वासना का ज्वार जाना, जिसने वासना को जीया, उसके अनंत-अनंत रूपों में पहचाना; उस पहचान, उस स्वाद, उस अनुभव से ब्रह्मचर्य का जन्म होगा। तो ब्रह्मचर्य एक शिखर होगा--जो घाटियों को पार कर गया, जिसने अंधेरी घाटियां छोड़ दीं, जो अंधेरी घाटियों के ऊपर उठ गया। उस ब्रह्मचर्य का रस और, रहस्य और, ऊर्जा और।

जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। क्योंकि सभी बुराइयां अंततः भली हो जाती हैं। जो बेशर्त जीता है उसे शुरू में तो कठिनाई होगी। क्योंकि चारों तरफ समाज है; चारों तरफ निषेध लिए हुए लोग हैं। चारों तरफ अदालतें, नरक, स्वर्ग, सब खड़े हैं; पंडित, पुजारी, पुरोहित--सब मुर्दा--लेकिन तुम्हें भी मुर्दा बनाने को उत्सुक। स्वाभाविक है यह, क्योंकि जो खुद भी नहीं जी रहा है वह दूसरे को जीने न देगा। जो खुद जीने से वंचित रह गया है उसकी ईर्ष्या भयंकर होती है। तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हें जीने न देंगे। क्योंकि वे मर रहे हैं। उन्होंने अपने को काट डाला है। उन्होंने अपनी जड़ें तोड़ ली हैं। वे चाहेंगे कि तुम भी अपनी जड़ें तोड़ लो। उनकी ईर्ष्या भयंकर है। और उनकी ईर्ष्या धर्म के आवरण में छिपी है, इसलिए तुम पहचान भी न सकोगे। उनकी ईर्ष्या निंदा बन गई है। उनकी ईर्ष्या ने तुम्हारे लिए नरकों का इंतजाम किया है।

जो व्यक्ति भी जी नहीं पा रहा है ठीक से वह दूसरे को भी जीने नहीं देगा। तुम मुस्कुराओगे तो उसे पीड़ा होगी। वह तुम्हारी मुस्कुराहट पर भी जहर डाल देगा और कहेगा कि यह पाप है। तुम नाचोगे तो उसे पीड़ा होगी, क्योंकि वह लंगड़ा है। उसके हाथ-पैर उसने खुद ही काट डाले हैं। वह तुम्हारे उत्सव को मिटा डालना चाहेगा। वह सारे जगत को उदासी और मरघट से भर देना चाहेगा।

लेकिन जिस व्यक्ति ने जीवन को बेशर्त जीया है वह दूसरों को भी मुक्त करेगा। और उसे ही मैं सदगुरु कहता हूं जिसने जीवन को जीया है; और जो तुम्हारे प्रति ईर्ष्या से नहीं भरा है, क्योंकि भरने का कोई कारण ही नहीं है। जो तुम्हारे प्रति करुणा से भरा है। जिसने जीवन को जीया है वह तुम्हें भी जीवन को जीने में सहारा देगा। वह तुम्हें काटेगा नहीं, जोड़ेगा। वह तुम्हारी पंगुता को मिटाएगा, तुम्हारे पक्षाघात को पिघलाएगा। वह तुम्हें फिर से जीवन देना चाहेगा। जिसने महाजीवन को जाना है वही केवल तुम्हें जीवन देने को उत्सुक हो सकता है।

लेकिन जो खुद अपने को मार रहे हैं, आत्मघाती हैं, वे तुम्हें भी मार डालना चाहेंगे। और उनका जाल बड़ा है, और उनका जाल बड़ा पुराना है। और उनके जाल के बाहर आना बड़ा ही मुश्किल है।

इसलिए लाओत्से कहता है, उपदेश सुनने में मेरे आसान, साधने में भी। लेकिन तुम सुन न सकोगे; समझ भी न सकोगे; साध भी न सकोगे। क्योंकि चारों तरफ जो जाल है वह उसके विपरीत है; जीवन के विरोध में खड़ा है सारा जाल। इसलिए तुम्हें अपने जीवन की हिम्मत खुद ही जुटानी पड़ेगी। साहस, पहले कदम पर बड़े साहस की जरूरत है--कि जो होगा होगा। और जो जीवन जाना ही है वह ठीक है। निंदा होगी, होगी। तुम निंदा को सह लेना, लेकिन जीवन को मत काटना। सारी दुनिया तुम्हें पापी कहे तो तुम सुन लेना, लेकिन तुम जीवन को काटने का पाप मत करना। तुम एक दिन परमात्मा तक पहुंच जाओगे। जीवन को जिसने काटा वह परमात्मा तक कभी भी नहीं पहुंच सकता है।

"मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है।"

वह सिद्धांत है बेशर्त जीवन का स्वीकार। कोई छोटी-छोटी बात मत लगाना कि लोग क्या कहेंगे। तुम लोगों के कहने के लिए यहां नहीं हो। और तुम कुछ भी करो, लोग कभी तुम्हारे संबंध में भला कहते हैं क्या?

बड़ी पुरानी कथा है कि शिव पार्वती को लेकर एक पूर्णिमा की रात घूमने निकले हैं। और शिव तो जीवन के प्रतीक हैं; जीवन का महाभोग, बेशर्त भोग, उसके ही प्रतीक हैं। दोनों चल रहे हैं। साथ में नंदी चल रहा है। कुछ लोग मिले राह पर। उन्होंने कहा, ये मूर्ख देखो दोनों! जब नंदी साथ है तो पैदल क्यों चल रहे हैं?

अब उनका कुछ लेना-देना नहीं, न नंदी से, न शिव से, न पार्वती से। लेकिन लोग कुछ तो कहेंगे। लोग बिना निर्णय लिए नहीं रह सकते।

तो शिव ने कहा, ठीक। तो शिव नंदी पर बैठ गए। पार्वती चलने लगी। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, यह देखो मूरख आदमी! खुद चढ़ा है नंदी पर और पत्नी को पैदल चला रहा है। हद हो गई असभ्यता की। तो शिव नीचे उतर आए; पार्वती को नंदी पर चढ़ा दिया। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, यह देखो औरत निर्लज्ज! पति पैदल चल रहा है, पत्नी नंदी पर चढ़ी है। ऐसा न कभी सुना न देखा। तो शिव ने कहा, अब क्या करें? दोनों नंदी पर चढ़ गए। फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा, हद हो गई। नंदी की जान ले लोगे? दो-दो चढ़े हैं। नंदी का भी तो कुछ सोचो। तो शिव ने कहा, अब क्या करें? अब तो एक ही उपाय है। और वे लोग जो यह कह रहे थे कि कुछ तो सोचो, इससे तो अच्छा हो कि तुम दोनों नंदी को अपने सिर पर रख लो बजाय दो-दो उसके ऊपर चढ़ो। तो शिव ने कहा, चलो अब यही करें। तो उन्होंने नंदी को बांधा। बामुश्किल तो नंदी को बांध पाए। दोनों ने कंधे पर रखा। नंदी तड़फ रहा है। फिर वे एक नदी के पुल पर आए। वहां बड़ी भीड़ थी और लोग कहने लगे, हद हो गई मूर्खता की! बहुत मूर्ख देखे भई, ये महामूर्ख हैं। नंदी पर चढ़ने के लिए है कि उसको कंधे पर ढोने के लिए? अब बड़ी मुश्किल थी। अब कोई विकल्प ही न छूटा था। और तभी नंदी तड़फड़ाया जोर से और पुल से नीचे गिरा। शिव ने पार्वती को कहा कि देख ले, कुछ भी करो, लोग तो निंदा करेंगे ही।

क्योंकि यह सवाल नहीं है कि तुम कुछ करते हो, इसलिए वे निंदा करते हैं। वे निंदा करना चाहते हैं, इसलिए कोई भी बहाना खोज लेते हैं। निंदा करेंगे ही। क्योंकि निंदा में ही उनके अहंकार की तृप्ति है। तुम्हारा करना तो सिर्फ बहाना है उनके लिए। तुम कुछ भी करो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हर हालत में निंदा पाओगे।

लोगों की फिक्र छोड़ दो। समझदार उनकी फिक्र नहीं करता। वे क्या कहते हैं, वह उनकी वे जानें। वे कहते हैं, खुद सुनें। समझदार उनकी चिंता नहीं करता। समझदार तो अपने जीवन को ऐसे जीता है जैसे वह अकेला है, यहां कोई दूसरा है ही नहीं। तुम ऐसे ही जीयो कि तुम जैसे अकेले हो; तभी तुम्हारे जीवन में वह सूत्र आ जाएगा जिसको लाओत्से कहता है मेरा सिद्धांत। बेशर्त जीओ। कुछ खोने को नहीं है, और पाने को सब कुछ है, अगर बेशर्त जीए।

लाओत्से कहता है, "मेरे शब्दों में एक सिद्धांत है, और मनुष्यों के कारबार में एक व्यवस्था है।"

क्या है व्यवस्था मनुष्य के कारबार में जो मनुष्य को दिखाई नहीं पड़ती? वह व्यवस्था यह है कि जीवन का सारा कारबार विरोधियों के मिलन से निर्मित है। और मन विरोधियों के मिलन को बरदाश्त नहीं कर पाता। यहां जीवन और मृत्यु दोनों साथ-साथ हैं, और मन दोनों को साथ-साथ समझ भी नहीं पाता, सोच भी नहीं पाता, विपरीत कैसे साथ हो सकते हैं? मन कहता है, विपरीत साथ नहीं हो सकते; विपरीत विपरीत हैं। और लाओत्से कहता है कि सारे कारबार में एक व्यवस्था है। विपरीत विपरीत हैं ही नहीं, सहयोगी हैं, कांप्लीमेंटरी हैं।

ये दो बातें अगर ख्याल में रह जाएं कि जीवन को बेशर्त जीओ, और विपरीत को विपरीत मत मानो, सहयोगी मानो, तो तुम मुक्त हो जाओगे। अगर तुमने विपरीत को विपरीत माना तो तुम चुनाव करोगे। तब तुम

असाधु के खिलाफ साधु बनोगे। तब तुम आधे रहोगे। और आधा जीवन कोई जीवन है? असाधु कहां जाएगा तुम्हारा फिर? वह बोझ की तरह तुम्हारे ऊपर लटका रहेगा। काट थोड़े ही सकते हो! क्योंकि जीवन की व्यवस्था यह है कि तुम साधु असाधु दोनों हो; जैसे बाएं और दाएं पैर की जरूरत है चलने के लिए।

अब कहीं कोई अगर धर्म पैदा हो जाए जो कहे कि बायां पैर बुरा और दायां पैर अच्छा--और ऐसे लोग हैं, बाएं हाथ को बुरा मानते हैं; दायां अच्छा और बायां बुरा--तो तुम बाएं पैर का करोगे क्या? बाएं के बिना चलोगे कैसे? अगर बाएं को काट डाला तो चल न पाओगे। और अगर बाएं को बांध दिया तो घिसटोगे।

तुमने बच्चों का खेल देखा है, लंगड़ी दौड़। वही तुम्हारा पूरा जीवन। उसमें दो बच्चे एक-एक टांग बांध लेते हैं। तो तीन टांगें हो जाती हैं चार की जगह। और फिर वे दौड़ते हैं। तुम्हारा जीवन एक लंगड़ी दौड़ है जिसमें तुमने एक टांग को समाज की टांग से बांध लिया है, और फिर दौड़ने की कोशिश कर रहे हो। सभ्यता की टांग से बांध लिया है, फिर दौड़ने की कोशिश कर रहे हो। कहीं नहीं पहुंचते। जहां थे वहीं मरते हो। जहां पाया था अपने को जन्म के क्षण, वहीं तुम पाओगे मरते वक्त। रत्ती भर यात्रा नहीं हुई। पैर तुम्हारे मुक्त ही नहीं हैं।

विपरीत सहयोगी हैं। इसलिए लाओत्से साधु का पक्षपाती नहीं है। मैं भी नहीं हूं। और संत हम उस आदमी को कहते हैं जिसने अपनी साधुता और असाधुता में संगीत खोज लिया, जिसने असाधुता का भी उपयोग कर लिया, जिसने बुराई को काट कर न फेंका। वह कोई बहुत कुशल कारीगर नहीं है जो चीजों को फेंक दे। कुशल कारीगर तो वही है कि हर चीज का उपयोग कर ले। और चीजों का मूल्य चीजों पर नहीं होता, उनके उपयोग पर होता है। कैसे तुम उन्हें जमाते हो, इस पर निर्भर करता है। पूर्ण के भीतर कोई खंड किस भांति जमाया गया है, इस पर निर्भर करता है।

संगीत शोरगुल है, लेकिन कुशल कलाकार उस शोरगुल को ऐसा जमाता है कि तुम्हारा हृदय नाच उठता है। संगीत है तो शोरगुल। एक बंदर को पकड़ा दो सितार; वह भी बजाएगा, लेकिन तुम्हें पागल कर देगा--अगर बजाता रहा। सितार वही है, लेकिन उसी को कोई कुशल संगीतज्ञ छूता है, स्वरों के बीच जो वैपरीत्य है, विरोध है, वह खो जाता है, स्वर एक संगीत में बंध जाते हैं, और सभी स्वरों के मेल से एक चीज पैदा होती है जो स्वरों के पार है। संगीत स्वरों का जोड़ नहीं है, स्वरों के जोड़ से कुछ ज्यादा है। वह जो कुछ ज्यादा है वही तो कुशल संगीतज्ञ की कला है।

सौंदर्य फूल के अंगों का जोड़ नहीं है, उससे कुछ ज्यादा है। इसीलिए तो उसकी व्याख्या नहीं हो पाती। प्रेम दो प्रेमियों का मिलन नहीं है; किसी तीसरे का अवतरण है। दो तो केवल मौजूदगी हैं; उन दो के बीच में तीसरा उतर आता है। इसीलिए तो प्रेम अव्याख्य है। और इसीलिए तो प्रेम परमात्मा जैसा है, और प्रेम प्रार्थना बन जाता है। इसलिए प्रेम को कोई समझा न सकेगा। तुम प्रेमियों को समझा सकते हो, प्रेमी की व्याख्या हो सकती है, उसका सब पता-ठिकाना बता सकते हो। लेकिन प्रेम का कोई पता-ठिकाना है? जब दो व्यक्ति विरोध की तरह पास नहीं आते, सहयोग की तरह पास आते हैं, जब दो व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बिल्कुल लीन होने को पास आते हैं, तब प्रेम का अवतरण हो जाता है। वे भूमि बन जाते हैं, प्रेम अवतरित हो जाता है।

जीवन में बुराई और भलाई है, पाप और पुण्य है, अंधेरा और प्रकाश है, मृत्यु और जीवन है। इन दोनों के बीच जब कोई संबंध खोज लेता है, संगीत, तब संतत्व का जन्म होता है। संतत्व की व्याख्या नहीं हो सकती। साधु की व्याख्या हो सकती है, असाधु की व्याख्या हो सकती है। साधु का तुम सम्मान करोगे, असाधु की निंदा करोगे। संत को तुम पहचान भी न पाओगे। वह अव्याख्य है। और संत के विपरीत तुम्हारे असाधु भी होंगे और

तुम्हारे साधु भी होंगे। क्योंकि न तो असाधु उसे आत्मसात कर पाएंगे, क्योंकि साधु उसके भीतर छिपा है; न साधु उसे आत्मसात कर पाएंगे, क्योंकि असाधु को भी उसने आत्मलीन कर लिया है।

इसलिए जब बुद्ध पैदा होते हैं, या क्राइस्ट पैदा होते हैं, तो तुम हैरान होओगे कि बुरे आदमी तो उनके विपरीत थे ही, भले आदमी भी उनके विपरीत थे। वह बड़ा चमत्कार मालूम पड़ता है। लेकिन कुछ चमत्कार नहीं, बात सीधी-साफ है। गणित साफ-सुथरा है। जीसस को बुरे आदमियों ने सूली नहीं दी; भले आदमियों ने सूली दी। बुरे आदमी तो विपरीत थे ही। उन्होंने फिक्र ही न की, कि यह आदमी का कुछ खास मतलब ही नहीं है। लेकिन भले आदमियों ने सूली दी। वे बरदाश्त न कर सके। क्योंकि जीसस एक संगीत हैं, जो भले और बुरे के पार उठ गया; जहां बुराई ने अपनी बुराई खो दी, भलाई ने अपनी भलाई खो दी; जहां दोनों एक हो गए, और एक अनूठी घटना, जिसकी व्याख्या करनी मुश्किल है।

"क्योंकि वे इन्हें नहीं जानते--मेरे एक सिद्धांत को और मनुष्यों के जीवन की विपरीत के बीच संगीत की व्यवस्था को--वे मुझे भी नहीं जानते हैं।"

क्योंकि जो जीवन को ही नहीं जानते, वे लाओत्से को कैसे जान पाएंगे? लाओत्से यानी जीवन का शुद्धतम रूप, लाओत्से यानी जिंदगी का सारभूत रूप, जरा भी जिसे गढ़ा नहीं गया, अनगढ़ पत्थर; जिस पर जरा भी सामाजिक शिष्टाचार, सभ्यता, संस्कृति की छाप नहीं डाली गई; अनगढ़ पत्थर, किसी पहाड़ी नदी में लुढ़कता राज हो, किसी आदमी के हाथ ने जिसे छुआ नहीं; जिस पर मनुष्य की कोई छाप नहीं है। हां, प्रकृति की काई कितनी ही जमी हो, और बहते हुए नदियों और पहाड़ों में कितने ही रूप और रंग जिसने लिए हों, लेकिन मनुष्य की जिस पर कोई छाप नहीं, ऐसा अनगढ़ पत्थर। उसे तुम कैसे पहचान सकोगे?

"वे मुझे भी नहीं जानते हैं। चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं... ।"

यह वचन बड़ा अनूठा है।

"... इसलिए मैं विशिष्ट हूं।"

साधारणतः हम उस आदमी को विशिष्ट कहते हैं जिसे बहुत लोग जानते हैं। जिसे सारी दुनिया जानती है वह विशिष्ट। लाओत्से बड़े मजे की बात कह रहा है।

वह कह रहा है, "चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, इसलिए मैं विशिष्ट हूं।"

कनफ्यूशियस को बहुत लोग जानते थे लाओत्से के समय में; लाओत्से को कोई नहीं जानता था। कनफ्यूशियस आदर्श पुरुष था--पुरुषोत्तम, नीति-निष्ठ, आचारवान। उसकी साधुता में जरा भी कमी न थी। तुम कनफ्यूशियस में इंच भर भूल न खोज सकते थे। वह पूर्ण महात्मा था। उसे लोग जानते थे। साधु उसे श्रेष्ठ साधु मानते थे, आदर्श, जैसा उन्हें होना है। असाधु भी उससे ईर्ष्या करते थे, जैसे घाटियां ईर्ष्या करती हों पहाड़ों से, अंधेरी रात ईर्ष्या करती हो दिन से। असाधु भी सपने में सोचते थे कि कभी कनफ्यूशियस जैसे हो जाएं। और साधु भी सोचते थे कि कभी यह आदर्श पूरा होगा चलते-चलते। शिखर था कनफ्यूशियस चीन में। लाओत्से को कोई भी नहीं जानता था। क्योंकि लाओत्से को पहचानना मुश्किल। कनफ्यूशियस था किसी के आंगन में लगे हुए साफ-सुथरे बगीचे की भांति, जहां हर चीज कटी है, साफ-सुथरी है, जहां माली के हाथ के स्पष्ट चिह्न हैं, जहां तुम भूल नहीं खोज सकते, जहां उद्यान के सब नियमों का पालन किया गया है। और लाओत्से था किसी पहाड़ी जंगल की भांति, जहां कोई नियम नहीं है, जहां कोई व्यवस्था नहीं मालूम होती। या कोई ऐसी व्यवस्था है जो अदृश्य है और दिखाई नहीं पड़ती।

है तो जंगल की भी व्यवस्था, क्योंकि जंगल भी जीता है। और क्या तुम्हारे बगीचे जीएंगे जंगल के सामने--कमजोर, दीन-हीन! लेकिन जंगल में सब समाविष्ट है। सूखे पत्ते भी गिरे हैं, वे भी समाविष्ट हैं। सूखी डालें भी पड़ी हैं, वे भी समाविष्ट हैं, इरछे-तिरछे वृक्ष हैं, वे भी समाविष्ट हैं। जंगल के भीतर प्राण तो महान है, लेकिन रूप पर कोई काट-छांट नहीं की गई है। जंगल वैसा ही है जैसा परमात्मा ने चाहा है। जंगल में भय लगेगा; बगीचे में तुम विश्राम कर सकते हो निश्चिंत होकर।

और जंगल में सौंदर्य देखना हो तो तुम्हारे भीतर भी जंगली आत्मा चाहिए। नहीं तो तुम्हें सौंदर्य दिखाई न पड़ेगा। बगीचे का सौंदर्य तो कोई भी देख लेगा; उसके लिए किसी विराट जंगल जैसी आत्मा की जरूरत नहीं है। वह तो दुकान और बाजार में बैठा आदमी भी बगीचे के सौंदर्य को पहचान लेता है। क्योंकि वह आदमी का ही बनाया हुआ है और आदमी की समझ में आता है। जंगल परमात्मा का बनाया हुआ है और परमात्मा जैसे तुम न हो जाओ तो समझ में नहीं आता। अराजकता दिखाई पड़ती है ऊपर से और भीतर बड़ा संगीत छिपा है। ऊपर सब अस्तव्यस्त मालूम होता है और सारी अस्तव्यस्तता में एक व्यवस्था छिपी है।

तो लाओत्से को तो लोग नहीं समझ पाए। कोई जानता भी न था। अभी भी शक है कि लाओत्से कभी हुआ कि नहीं। अभी भी इतिहासज्ञ मानने को राजी नहीं हैं कि यह आदमी कभी हुआ। यह तो मालूम होता है कि एक मिथ, एक पुराण है। कहीं ऐसे आदमी होते हैं? कहीं कोई जीवित आदमी इस तरह की बातें कहता है? उनको भरोसा नहीं आता। कब पैदा हुआ? किस घर में पैदा हुआ? कोई हिसाब-किताब भी नहीं है उसका। आदमी ही हिसाब-किताब का न था। कनफ्यूशियस के संबंध में सब साफ-सुथरा है।

या ज्यादा उचित होगा कोई निकट का उदाहरण जो तुम्हें समझ में आ जाए। महात्मा गांधी ठीक कनफ्यूशियस जैसे आदमी हैं--साफ-सुथरे, गणित बिल्कुल चौकस, रत्ती भर भूल तुम न खोज सकोगे। महात्मा हैं, आदर्श व्यक्ति हैं; चौबीस घंटे हिसाब रखते हैं नियम से जीने का। और एक आदमी था इस मुल्क में उसी समय, अरुणाचल के पहाड़ पर बैठा हुआ, रमण। कोई हिसाब-किताब नहीं है, न कोई नियम-व्यवस्था है। दुनिया में बहुत कम लोग रमण को जान पाए। गांधी को न जानने वाला आदमी खोजना मुश्किल है; रमण को जानने वाला आदमी खोजना मुश्किल है। गांधी इतिहास-पुरुष होंगे, रमण भूल जाएंगे। संदेह उठना शुरू होगा किसी न किसी दिन कि यह आदमी हुआ कि नहीं हुआ। क्योंकि इस आदमी ने ऐसा कुछ भी तो नहीं किया है जिसका चिह्न घटनाओं पर छूट जाए। गांधी को तो मानना ही पड़ेगा। भारत की आजादी है; अछूतों का उद्धार है। हजार कृत्य हैं एक आदमी के पास; हजार कृत्यों पर इसके हस्ताक्षर हैं। घटनाओं की दुनिया में इसकी बड़ी पकड़ थी। अखबार पर इसकी छाप थी। जहां भी कुछ घट रहा था वहां यह आदमी मौजूद था। यह आदमी जहां मौजूद था वहां चीजें घटना शुरू हो जाती थीं। घटनाक्रम में इस आदमी की गति थी। वहां रमण थे, वे लाओत्से जैसे; कुछ भी कर नहीं रहे थे। कुछ किया ही नहीं तो इतिहास क्या बनेगा? अब न करने का कोई इतिहास तो होता नहीं। दुनिया में कोई ऐसी बड़ी क्रांति नहीं करी कि जिसको लिखा जाए। करोड़ों-करोड़ों लोगों का जीवन नहीं बदल डाला; उनके जीवन की व्यवस्था नहीं बदल डाली। कौन फिक्र करेगा?

एक इटालियन विचारक लेंजा देलवास्तो रमण के आश्रम गया। तीन दिन रहा, और उसने कहा कि यह आदमी अपने काम का नहीं। फिर गांधी के आश्रम आया, और उसने कहा कि यह आदमी है। यह रमण भी कोई आदमी है? खाली बैठा है। कुछ सेवा करो! दुनिया में इतना कष्ट है, कष्ट को मिटाओ! इतने बीमार हैं! इतनी पीड़ा है! यह किस तरह का अध्यात्म कि तुम खाली बैठे हो। इस अध्यात्म को पहचानना बहुत मुश्किल है। और यही एक मात्र अध्यात्म है। लेंजा देलवास्तो गांधी से जाकर दीक्षित हुआ; रमण को छोड़ आया और गांधी से

दीक्षित हुआ। लोगों के दुर्भाग्य का कोई हिसाब नहीं है। गांधी ने नाम दिया शांतिदास। लेंजा देलवास्तो शांतिदास हो गए, लेकिन जहां शांति थी वहां से चूक गया। गांधी के पास तो भयंकर अशांति थी।

लेकिन गांधी को करोड़ों लोग जानेंगे। रमण को कौन जानेगा? रमण को वे थोड़े से लोग जानेंगे जो गहन शांति में प्रवेश करेंगे, जो अस्तित्व को अनुभव करेंगे। वे रमण को जानेंगे। और तभी वे जान पाएंगे कि अक्रिया की भी एक क्रिया है। और अक्रिया की विराट ऊर्जा है। वह ऊपर से चोट नहीं करती, कहीं भीतर से काम करती है; प्रत्यक्ष आक्रमण नहीं करती, परोक्ष से प्रवेश करती है। लेकिन वह अदृश्य का खेल है। दृश्य के जगत में तो गांधी का मूल्य होगा। अदृश्य! लेकिन अदृश्य को कितने लोग जानते हैं? सूक्ष्म को कितने लोग जानते हैं? गांधी सतह पर हैं, जहां सारी दुनिया खड़ी है। रमण गहराई में हैं, जहां कोई गोताखोर ही पहुंच पाएगा।

इसलिए लाओत्से कहता है, "चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, मैं विशिष्ट हूं।"

विशिष्ट को बहुत लोग जान ही कैसे सकते हैं? क्योंकि लोग तो उसी को जान सकते हैं जो उन जैसा हो, जो उनकी भाषा में आता हो। लोग तो उसी को जान सकते हैं जिनसे उनका कोई संबंध बनता हो।

गांधी से संबंध बनता है। पीड़ा है, और गांधी कोढ़ी का पैर दाब रहे हैं। संबंध बनता है। गुलामी है, और गांधी गुलामी को तोड़ रहे हैं; जीवन को दांव पर लगा रहे हैं। संबंध बनता है। गांधी में ऐसा कुछ भी तो नहीं है जो तुम्हारे लिए बेबूझ हो। सब तो साफ-साफ है; गणित सीधा है। तुम्हारी भाषा में और गांधी की भाषा में कहीं रत्ती भर भी तो फर्क नहीं है। भला तुम गांधी न होओ, लेकिन होना तो तुम भी गांधी ही चाहते हो। आदर्श तो वही है। वे हो गए हैं; तुम कल हो जाओगे। तुम कोशिश करोगे; वे मंजिल पर पहुंच गए हैं, तुम रास्ते पर हो। लेकिन रास्ता एक ही है। वे दस कदम आगे होंगे; तुम दस कदम पीछे हो। या दस मील आगे होंगे; तुम दस मील पीछे हो। लेकिन तुम में और गांधी में एक तारतम्य है; भेद नहीं है। गांधी बिल्कुल समझ में आते हैं; रमण बिल्कुल समझ में नहीं आते। क्योंकि वे उस रास्ते पर ही नहीं मालूम पड़ते जिस पर तुम हो। वे चलते ही नहीं मालूम पड़ते, रास्ते की तो बात दूर। वे बैठे मालूम पड़ते हैं।

लाओत्से और तुममें बड़ा फर्क है। भाषा ही नहीं मिलती; दोनों के बीच कोई कम्युनिकेशन का, संवाद का साधन नहीं जुड़ता। दोनों जैसे बिल्कुल अपरिचित, अजनबी हैं; दो अलग-अलग लोकों के वासी हैं। कैसे तुम जान पाओगे? कैसे तुम पहचानोगे? तुम लाओत्से के पास से गुजर जाओगे, लेकिन तुम्हें महात्मा दिखाई न पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारे महात्मा सतह पर हैं। तुम्हारे महात्मा तुम्हारी भाषा में आते हैं। तुम्हारे साग-सब्जी तौलने के बटखरों से तुम्हारे महात्मा भी तुल जाते हैं। तुम्हारे फुट-इंचों से तुम्हारे महात्मा भी नप जाते हैं। फुट-इंच तुम्हारे हैं; नाप तुम्हारा है। और तुम्हारे महात्मा भी बहुत बड़े नहीं हो सकते जो तुम्हारे फुट-इंच से नप जाते हैं। लेकिन तुम कैसे नापोगे लाओत्से को? थाह नहीं है। फुट-इंचों का काम नहीं है। तुम कैसे नापोगे लाओत्से को? तुम्हारे बटखरे बड़े छोटे हैं। उनसे कोई तालमेल ही नहीं उठता; उनसे कोई संबंध ही नहीं जुड़ता।

और इसलिए तुम चूक जाओगे। लाओत्से के पास से गुजरोगे, लाओत्से दिखाई न पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि तुम न गुजरे होओ। इतने लंबे समय से तुम पृथ्वी पर हो। न मालूम कितनी बार लाओत्से जैसे व्यक्तियों के पास से गुजरने का मौका मिला होगा। लेकिन वे तुम्हें दिखाई नहीं पड़े; क्योंकि उनमें ऐसा कुछ भी न दिखाई पड़ा जिसे तुम तौल लेते। तुमने उन्हें अस्पताल में सेवा करते न पाया। तुमने उन्हें जाकर गरीब को भूदान करते न देखा। तुमने उन्हें समाज की सामान्य क्षुद्र व्यवस्थाओं में कोई क्रांति करते न देखा। उन्होंने दहेज-प्रथा के खिलाफ कोई आंदोलन न चलाया। और न हरिजनों का उद्धार करने की कोई चेष्टा की। इनको तुम पहचानोगे कैसे?

ये तो ऐसे थे जैसे वृक्ष हों। ये तो ऐसे थे जैसे पहाड़ी चट्टानें हों। ये तो ऐसे थे जैसे पहाड़ी झरने हों। ठीक है, थोड़ी देर तुम इनके पास बैठ लिए--एक जंगली सौंदर्य था इनके पास--फिर तुम अपनी राह पर हो लिए। ये तुम्हारे काम के न थे। तुम इनका उपयोग न कर सके, इसलिए तुम इनसे वंचित हो गए। और तुम इनका उपयोग कर भी नहीं सकते। विराट का उपयोग नहीं हो सकता। विराट आकाश का क्या उपयोग करोगे? छोटे-छोटे आंगन चाहिए तुम्हें। तुम्हारे महात्मा छोटे-छोटे आंगन हैं, फुलवारियां हैं।

इसलिए लाओत्से कहता है, चूंकि बहुत कम लोग मुझे जानते हैं, मैं विशिष्ट हूं। लोग पास से गुजर जाते हैं, और पहचानते नहीं; मैं विशिष्ट हूं।

विशिष्ट की यह परिभाषा बड़ी अनूठी है।

"इसलिए संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं, लेकिन भीतर हृदय में मणि-माणिक्य लिए रहते हैं।"

संत के मणि-माणिक्य उसके कपड़ों पर नहीं जड़े हैं; साधु के मणि-माणिक्य उसके कपड़ों पर जड़े हैं। साधु को तुम ऊपर से ही पहचान लेते हो। वह नग्न खड़ा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह धूप में खड़ा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह भूखा खड़ा है; उपवास कर रहा है। कैसे बचोगे पहचानने से? वह शीर्षासन कर रहा है; कांटों पर लेटा है। तुम भागोगे कहां? तुम बचोगे कैसे? उसके सब मणि-माणिक्य ऊपर जड़े हैं।

साधु एक्झिबीशनिस्ट हैं, प्रदर्शनवादी हैं। असाधु और साधु में बहुत फर्क नहीं है। वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। असाधु भी चर्चा करते हैं अपनी असाधुता की। अगर तुम चोरों-डाकुओं के पास जाओ तो वे सब दावा करते हैं कि कितनों को लूटा, कितनों को मारा। झूठे दावे! मारे होंगे दो तो बताते हैं बीस। कारागार में चले जाओ, पागलखाने में चले जाओ। पूछो। तो तुम पाओगे, वहां अपराधी बता रहे हैं, एक-दूसरे पर रोब गांठ रहे हैं। काटी होगी जेब, बताते हैं खजाना लूट लिया। असाधु भी प्रदर्शनवादी है। वह भी कोई छोटा असाधु नहीं होना चाहता। वह भी कहता है, मुझसे बड़ा कोई असाधु नहीं। तुम्हारे साधु भी प्रदर्शनवादी हैं। वे कहते हैं, हमने इतने उपवास किए, इतनी तपश्चर्या की, इतने हजार दफे माला फेरी, लाख राम के नाम लिख डाले। वे भी हिसाब रखे हुए हैं। उनसे बड़ा कोई साधु नहीं है।

संत का कोई दावा नहीं है; क्योंकि न तो वह साधु है कि दावा कर सके और न असाधु है कि दावा कर सके। उसमें रात और दिन मिल गए हैं। रात भी प्रकट दिखाई पड़ती है--गहन अंधकार! भरी दोपहरी भी साफ है--सूरज जलता है! साधु तो संध्या जैसा है, जहां दिन और रात मिलते हैं; सब धुंधला-धुंधला है। वास्तविक संत संध्या जैसा है, जहां सब धुंधला है, जहां कुछ साफ नहीं है। रहस्यपूर्ण है; न रात है, न दिन है; दोनों मिल गए हैं। न जीवन है, न मृत्यु है; दोनों मिल गए हैं। न शुभ है, न अशुभ है; दोनों मिल गए हैं। संत का जीवन तो संध्या का जीवन है, जहां सब मिल गया है। जान सकेंगे वे ही जो मधुर के संगीत को सुन सकते हैं। जिनको दोपहरी की आदत है उनको संध्या न जंचेगी। उसमें त्वरा नहीं है, तेजी नहीं है; सब धीमा-धीमा, फीका-फीका है। जिनको गहन अंधेरी रात की आदत है, उनको भी संध्या जंचेगी नहीं। अंधकार की तीव्रता, अंधकार का घनापन वहां नहीं है, सब विरल है। रात भी साफ है; दिन भी साफ है। संध्या धुंधली है। संत धुंधला है। उसे वे ही पहचान सकते हैं जिनको धुंधले में देखने की आंखें हों जिनके पास, जो रहस्य में झांक सकते हों। जहां सीमाएं खो जाती हैं, वहां जिनको देखने की क्षमता हो। जहां परिभाषाएं मिट जाती हैं, जहां द्वंद्व लीन हो जाता है, वहां जिनके पास पहचान हो, वहां गति करने की जिनके पास क्षमता हो, वे थोड़े से लोग ही पहचान सकेंगे।

और तब संत के भीतर बड़े मणि-माणिक्य हैं। काश तुम संध्या में झांक सको! तो संध्या में सारा दिन भी छिपा है और सारी रात भी। काश तुम अपरिभाष्य में झांक सको! तो सब सत्य भी वहीं छिपे हैं, सब असत्य भी।

काश तुम एक संत में झांक सको! तो तुम्हें जीवन के सभी राज वहां मिलते हुए मिलेंगे। शुभ और अशुभ वहां आलिंगन किए खड़े हैं। वहां प्रथम और अंत एक साथ मौजूद हैं।

"संत बाहर से तो मोटा कपड़ा पहनते हैं, लेकिन भीतर हृदय में मणि-माणिक्य लिए रहते हैं।"

बाहर उनका कोई भी दावा नहीं है। इसलिए अगर तुम्हें दावेदारों को ही पहचानने की आदत है तो तुम संत को कैसे पहचान पाओगे? उसका कोई भी दावा नहीं है। संत बिना दावे के जीता है--बिना शर्त, बिना दावे के। संत सिर्फ जीता है। अगर तुम्हें जीवन की सुगंध पहचानने की कला आ गई तो तुम पहचान सकोगे। और तब संत से एक द्वार खुलता है, जो द्वार तुम्हें ठीक परमात्मा के मंदिर में पहुंचा दे।

लेकिन संत को पहचानना मुश्किल है। संत बिल्कुल सरल है, इसीलिए पहचानना मुश्किल है। संत जीवन जैसा सरल है, इसीलिए पहचानना मुश्किल है। संत को साधना भी मुश्किल है। साधु को साध सकते हो; असाधु को साध सकते हो। साधु हम कहते ही हैं उसको क्योंकि उसने बहुत साध लिया। असाधु भी इसीलिए कहते हैं कि उसने विपरीत साध लिया। संत को तुम न साध सकोगे, न समझ सकोगे।

संत को तो तुम सिर्फ अगर मौका दे दो तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने का, संत के पास तो तुम अगर बैठ जाओ दो घड़ी, विश्राम कर लो, साधना की बात छोड़ दो, विधि-विधान छोड़ दो, संत के संग-साथ हो लो थोड़ी देर, दो कदम चल लो, दो कदम बैठ लो, तो संत संक्रामक है, तो उसका हृदय तुममें डोल जाएगा, उसकी धड़कन तुम्हारी धड़कन का भाग बन जाएगी। और तभी पहचान संभव है। तुम अगर संत को थोड़ी देर जी लो। इसलिए एकमात्र रास्ता है लाओत्से, रमण जैसे व्यक्तियों को जानने काः उनके पास होने की कला। वही शिष्यत्व है। सीखने को वहां कुछ है नहीं। तुम मछली हो; तैरना तुम जानते हो।

एक छोटी सी कहानी; विवेकानंद को बहुत प्रिय थी यह कहानी।

बड़ी पुरानी कहानी है कि एक सिंहनी एक पहाड़ी से छलांग लगाई दूसरी पहाड़ी पर। गर्भिणी थी; छलांग की चोट में बच्चा नीचे गिर गया। नीचे भेड़ों का एक झुंड गुजरता था। भेड़ों ने बच्चे को बड़ा कर लिया। भेड़ों के साथ बड़ा हुआ सिंह, लेकिन उसको याद तो यही रही कि मैं भेड़ हूं। वह भेड़ों जैसा ही मिमियाता। बड़ा हो गया, भेड़ों से बड़ा ऊंचा हो गया। न तो भेड़ें उससे डरतीं, न वह भेड़ों को खाता। उसे याद ही नहीं थी कि वह सिंह है।

एक दिन एक सिंह ने हमला किया भेड़ों के इस झुंड पर। देख कर सिंह चकित हुआ कि एक सिंह भी भेड़ों में घसर-पसर करता हुआ भाग रहा है! न तो भेड़ें उससे डरी हैं; न वह भेड़ों पर हमला कर रहा है। यह चमत्कार था! उसे भरोसा ही न आया। वह भागा; बामुश्किल इस सिंह को पकड़ पाया। पकड़ा तो वह मिमियाता था, रोता था, जैसे भेड़ें रोती हैं। और उस सिंह ने उसको बहुत डांटा-डपटा कि तू यह क्या कर रहा है? तुझे पता है तू कौन है? लेकिन वह मिमियाता ही रहा। वह भागना चाहता था। किसी तरह पकड़ कर सिंह उसे नदी के किनारे लाया। शांत जल में उसने कहा, झांक! दोनों ने सिर जल में किए।

क्षण भर में क्रांति हो गई। वह जो सिंह अपने को भेड़ समझता था, अचानक सिंहनाद निकल गया उसके मुंह से। सब बदल गया। बात ही बदल गई। उसकी आंखें और हो गईं। उसकी चाल और हो गई। कुछ करना न पड़ा। एक दूसरे सिंह के साथ पानी के दर्पण में अपनी छवि को पहचान लिया।

बस संत के पास होने से इतना ही हो सकता है। संत कुछ सिखाता नहीं; तुम जो हो, वही तुम्हें बता देता है।

आज इतना ही।

एक सौ पंदरहवां प्रवचन

मूर्च्छा रोग है और जागरण स्वास्थ्य

Chapter 71

Sick-Mindedness

Who knows that he does not know is the highest;
Who (pretends to) know what he does not know is sick-minded.
And who recognizes sick-mindedness as sick-mindedness
is not sick-minded.
The Sage is not sick-minded.
Because he recognizes sick-mindedness as sick-mindedness,
Therefore he is not sick-minded.

अध्याय 71

रुग्ण मानसिकता

जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है;
जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता,
वह मन से रुग्ण है।
और जो रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानता है,
वह मन से रुग्ण नहीं है।
संत मन से रुग्ण नहीं हैं।
क्योंकि वे रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानते हैं,
इसलिए वे मन से रुग्ण नहीं हैं।

अस्तित्व का ज्ञान असंभव है। उसे जानने का कोई उपाय नहीं है।

उपाय नहीं है, क्योंकि अस्तित्व मनुष्य के पूर्व है; मनुष्य के पश्चात भी है। मनुष्य तो एक छोटी सी तरंग है उठी सागर में। तरंग कैसे सागर को जान सकेगी? तरंग न थी तब भी सागर था, तरंग न हो जाएगी तब भी सागर होगा। क्षण भर को तरंग है। सागर शाश्वत है। तरंग की सीमा है, ओर-छोर है। सागर का कोई ओर-छोर

नहीं, कोई सीमा नहीं। छोटी सी तरंग कैसे समा पाएगी पूरे सागर को अपने ज्ञान में? इठला सकती है; थोड़ी देर बेहोशी में यह भान भी बना सकती है कि जान लिया। लेकिन वह भ्रांति ही सिद्ध होगी।

माना कि पक्षी आकाश में उड़ सकते हैं। लेकिन कितने दूर? आकाश का कोई ओर-छोर है? पक्षियों के पंख आकाश की विराटता को कैसे नाप पाएंगे? जहां तक पक्षी उड़ लेंगे, समझेंगे वहीं आकाश का अंत आ गया। पंखों की सामर्थ्य जहां चुक जाती है वहां आकाश का अंत नहीं है, सिर्फ पंखों की सामर्थ्य चुक गई है। पक्षी भी इठला सकते हैं कि जान लिया, माप लिया, यात्रा कर आए। लेकिन क्या है उस यात्रा का मूल्य? और विराट की तुलना में क्या उसका अर्थ है?

मनुष्य भी विचार के पंख से थोड़ा सा जानने की कोशिश करता है; उड़ता है थोड़ा, तड़फड़ाता है। उस तड़फड़ाहट को तुम आकाश का माप लेना मत समझ लेना। उस तड़फड़ाहट की थोड़ी-बहुत उपयोगिता हो सकती है, लेकिन अंतिम अर्थों में कोई सार्थकता नहीं है। अंश पूर्ण को कभी भी जान नहीं सकता। यह तो ऐसे ही होगा कि जैसे मेरे हाथ मेरे पूरे शरीर को जानने का दावा करें। हाथ कैसे पूरे शरीर को जान सकेंगे? हाथ उतना ही जान सकते हैं जितने में वे हैं। शरीर उनसे बड़ा है। हम इस विराट की तुलना में अणु-मात्र भी तो नहीं हैं। यह अणु कैसे परम को जान सकेगा?

इसलिए जानने के दावे सिर्फ अज्ञानी करते हैं। ज्ञानी तो एक बात जान पाता है कि ज्ञान संभव नहीं है। ऐसा जानते ही सारी अकड़ खो जाती है। ऐसा जानते ही सारा अहंकार गिर जाता है। और उस निरहंकार अवस्था में कुछ घटता है, जिसे ज्ञान तो नहीं कह सकते, लेकिन जिसे अज्ञान कहना भी गलत होगा। मेस्टर इकहार्ट ने, जर्मनी के एक बहुत बड़े ईसाई फकीर ने, इस घड़ी के संबंध में एक वचन कहा है जो बड़ा स्मरणीय है। उसने कहा है, जब मैंने जान लिया कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तत्क्षण एक पर्दा उठ गया; परमात्मा सामने खड़ा था। लेकिन तब मैं मौजूद न था। और इकहार्ट ने कहा, अगर क्षमा करें मुझे और भाषा की भूल-चूक न निकालें तो मैं कहना चाहूंगा, परमात्मा ने मेरे द्वारा स्वयं को जाना उस क्षण में। जैसे परमात्मा की ऊर्जा बही मुझसे और लौट गई अपने को स्रोत में। परमात्मा ने ही परमात्मा को जाना, मेरे माध्यम से। तब वे आंखें मेरी न थीं; तब उन आंखों में परमात्मा ही देख रहा था। परमात्मा ही देखने वाला था और परमात्मा ही देखा जाने वाला था। मैं तो खो गया था।

पूर्ण ही पूर्ण को जान सकेगा। जब तुम मिट जाओगे तब तुम पूर्ण हो जाते हो। जब लहर मिट जाती है तो सागर हो जाती है। उस घड़ी में जानना हो सकता है।

अब यह बड़ी उलझन की बात है। जब तक तुम चाहो कि जानना हो जाए तब तक हो न सकेगा; क्योंकि तुम मौजूद रहोगे। जब तुम राजी हो जाओगे अज्ञान के लिए भी, तभी तुम मिट जाओगे।

ज्ञान अहंकार का सबसे बड़ा सहारा है। इसलिए धन छोड़ दो, कुछ भी न होगा। धन छोड़ कर यह मत सोचना कि अहंकार छूट गया। त्यागियों का अहंकार तो और भी गहन हो जाता है। क्योंकि त्यागियों को ख्याल होता है, उनके पास त्याग है। तुम्हारे पास तो धन है, ठीकरे हैं, जो आज नहीं कल मौत छीन लेगी। त्यागी को ख्याल होता है, उसने ऐसे सिक्के कमा लिए जो मौत के बाद भी उसके साथ जाएंगे। तुम्हारा बैंक बैलेंस यहीं है; उसका बैंक बैलेंस परलोक में है। उसने खाते आगे खोल दिए। और तुम्हारा धन तो चोरी जा सकता है; त्याग की कैसे चोरी करिएगा? तुम्हारे धन का तो दिवाला निकल सकता है; त्यागी का दिवाला कभी नहीं निकलता। उसका धन ज्यादा सूक्ष्म है। न छीना जा सकता, न चुराया जा सकता; न बाजार में कोई परिवर्तन हो जाए,

इससे उसके त्याग के मूल्य में कोई परिवर्तन होता है। उसका अर्थशास्त्र ज्यादा गहरा है। तुम्हारे अर्थशास्त्र की नींव रेत पर रखी होगी; उसके अर्थशास्त्र की नींव चट्टानों पर रखी है।

इसलिए त्यागी तो धनी से भी ज्यादा अहंकारी हो जाता है। परिवार छोड़ सकते हो, धन छोड़ सकते हो, पद-प्रतिष्ठा छोड़ सकते हो; कुछ भी न होगा, जब तक ज्ञान न छोड़ो। क्योंकि ज्ञान गहरी से गहरी संपदा है। और ज्ञान की अकड़ गहरी से गहरी है। इसलिए तुम अक्सर देखोगे कि पंडित चाहे फकीर हो, कपड़े-लत्ते फटे-पुराने हों, लेकिन उसकी अकड़ और है। ब्राह्मण की अकड़ पांडित्य की अकड़ से पैदा हुई है। क्षत्रियों की तलवार में भी वह धार नहीं है जो ब्राह्मण के चेहरे पर होती है। बड़े से बड़े धनी के भी भीतर वैसा अहंकार नहीं है जो ब्राह्मण जब चलता है तो उसकी चाल में होता है। उसके पास कुछ भी नहीं है, लेकिन ज्ञान की संपदा है। इसलिए मैं देखता हूं कि कभी यह तो हो भी जाए कि पापी पहुंच जाए परमात्मा के पास, लेकिन पंडित कभी नहीं पहुंचता है। पंडित के पहुंचने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि उसकी दीवाल बड़ी सूक्ष्म है, बड़ी मजबूत है। और उसके अहंकार की बड़ी गहनता में छिपी है, जिसको पहचानने के लिए बड़ी प्रगाढ़ और तीव्र आंखें चाहिए।

जिसने ज्ञान को छोड़ दिया उसके पास कुछ भी नहीं बचता; वह भीतर खाली हो जाता है। तिजोरी में रखा हुआ धन तो तिजोरी में रखा है; ज्ञान का धन भीतर भरा है। और जब तक तुम ज्ञान से भरे हो तब तक तुम अज्ञानी ही रहोगे। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर न उतर सकेगा। लहर मिटेगी न तो सागर उतरेगा कैसे? बूंद खोने को राजी न होगी तो विराट कैसे होगी? तब तुमने क्षुद्र को ही सब कुछ मान लिया। और तुम क्षुद्र में ही कैद हो जाओगे। अज्ञान को अनुभव कर लेना ज्ञान का पहला चरण है। अज्ञान को भर लेना ज्ञान से, और महा अज्ञान में गिर जाना है।

उपनिषदों में बड़ा प्यारा वचन है। ऐसा वचन दुनिया के किसी भी शास्त्र में नहीं। उपनिषद कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में, ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। अज्ञानी का भटकना तो समझ में आ जाता है। हम सभी जानते हैं कि अज्ञानी भटकता है। जो जानता ही नहीं वह भटकेगा ही। लेकिन उपनिषद कहते हैं, जिसको भ्रांति है कि जानता हूं, वह महा अंधकार में भटक जाता है। तो अज्ञानी तो छोटे-मोटे अंधकार में होते हैं, पुकार लिए जा सकते हैं; प्रकाश से बहुत दूर नहीं हैं; पास ही उनका डेरा है। ज्ञानी बड़ी दूर की यात्रा पर निकल जाता है। सूरज की तरफ पीठ कर लेता है ज्ञानी। ज्ञानी यानी पंडित; ज्ञानी यानी प्रज्ञावान नहीं, कोई बुद्ध नहीं, कोई कृष्ण नहीं, पंडित! जिसने शब्दों को सीख लिया है; जिसने शास्त्रों को कंठस्थ कर लिया है; जिसने उधार विचारों से अपने को भर लिया है; और अब इस उधार और जूठन पर जिसकी सारी अकड़ है।

पहली बात ख्याल में ले लें: अंश अंशी को नहीं जान सकता है, खंड अखंड को नहीं पहचान सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। उपाय है तो यह कि खंड खुद भी अखंड हो जाए। ईश्वर को जाना नहीं जा सकता, लेकिन ईश्वर हुआ जा सकता है। जानने में तो फासला है, दूरी है; होने में कोई फासला नहीं है, कोई दूरी नहीं है। तुम ईश्वर होकर ही ईश्वर को जान पाओगे। तुम तुम रहते ईश्वर को न जान सकोगे।

इसलिए तो ज्ञानियों ने अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा की है। उस घोषणा में तुम अहं शब्द पर जोर मत देना। उस घोषणा में ब्रह्मास्मि पर जोर है। मैं ब्रह्म हूं, इसका अर्थ ही होता है कि मैं नहीं हूं और ब्रह्म है। अगर तुम इसका ऐसा अर्थ करो कि मैं ब्रह्म हूं तो तुम भूल में पड़ जाओगे। मैं ब्रह्म हूं, इसका अर्थ ही होता है कि अब मैं नहीं हूं, ब्रह्म ही है; इसलिए मैं ब्रह्म हूं। यह मैं के मिटने पर घटती है घटना। यह कोई मैं की उदघोषणा नहीं है।

ईश्वर हुआ जा सकता है; ईश्वर को जाना नहीं जा सकता। तुम अस्तित्व में डूब सकते हो, खो जा सकते हो; तुम अस्तित्व के साथ एक हो जा सकते हो, एकरस। उस एकरसता में ही ज्ञान है। लेकिन तब तुम जानने

वाले न रहोगे, और न कोई होगा जिसे तुमने जाना। एक ही बचेगा, जो स्वयं को ही जानता है। तुम जा चुके होओगे।

इसलिए लाओत्से बहुत जोर देता हैः अज्ञान से तो छूटना ही है, ज्ञान से भी छूटना है। अज्ञान से छूटे, यह काफी नहीं है। जरूरी है, पर्याप्त नहीं है। अभी ज्ञान से भी छूटना है। बीमारी से तो छूटना ही है, औषधि से भी छूटना है। कुछ बीमार होते हैं कि बीमारी से तो छूट जाते हैं, फिर औषधि से उलझ जाते हैं, फिर औषधि नहीं छूटती। क्योंकि डर लगता है, अगर औषधि छोड़ी तो कहीं बीमारी न लौट आए। तब फिर औषधि भी बीमारी हो गई।

बीमारी से भी छूटना है और सजगता रखनी है कि औषधि से जकड़ न हो जाए। कांटा पैर में लग जाए उसे तो निकालना ही है, लेकिन जिस कांटे से उसे निकालना है उसे घाव में नहीं रख लेना है। दोनों कांटों को एक साथ ही फेंक देना है। कांटे तो कांटे ही हैं। गड़ा हुआ कांटा भी कांटा है, और जिस कांटे से तुमने उसे निकाला वह भी कांटा है। दोनों को साथ ही फेंक देना है।

अज्ञान तो मिटाना ही है; ज्ञान भी मिटाना है। ज्ञान से अज्ञान निकल जाए, तब तुम ज्ञान से अगर जकड़ जाओ, तो तुमने बंधन बदल लिए, बंधन मिटे नहीं। पहले तुम्हारे पास जंजीरें थीं लोहे की थीं, अब तुम्हारे पास जंजीरें सोने की हैं, या हो सकता है प्लैटिनम की हों। जंजीरें बदल गईं; सुंदर जंजीरें आ गईं; बड़ी प्यारी जंजीरें आ गईं, कीमती और बहुमूल्य। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हारा कारागृह कायम रहा।

और लोहे की जंजीरों को तो तोड़ने का मन भी होता है, सोने की जंजीरों को तोड़ने का मन भी न होगा। कारागृह और भी गहन हो गया, मजबूत हो गया। अब तो जंजीरें आभूषण जैसी मालूम पड़ेंगी। अब तुम इसे कारागृह मानोगे ही न; तुमने बहुत सजा लिया।

अज्ञानी अंधकार में रहता है, बे-सजे अंधकार में; उसका घर खंडहर जैसा है। और जिनको तुम ज्ञानी कहते हो, उन्होंने घर को ठीक सजा लिया। उनका घर महलों जैसा है जो बड़ा बहुमूल्य है। लेकिन वह घर वही है जिसमें अज्ञानी रहता था। क्योंकि अहंकार में कोई अंतर नहीं पड़ा है, घर बदला नहीं गया है।

अज्ञान से तो छूटना ही है, ज्ञान से भी छूटना है। और तब एक अनूठे अज्ञान का जन्म होता है, जहां न ज्ञान है, न जहां अज्ञान; जहां जानने का दावा ही खो गया होता है। तो न जहां कोई न जानने वाला होता है, न जानने वाला होता है; जहां एक विराट शून्य छा जाता है; जहां भीतर कोई विचार की तरंग नहीं उठती; जहां परम मौन हो जाता है; उस मौन के क्षण में ही कोई प्रवेश करता है परमात्मा के मंदिर में। अस्तित्व तभी खोलता है द्वार जब तुम मिट जाते हो।

जलालुद्दीन रूमी की बड़ी प्यारी कविता है कि प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी। भीतर से पूछा गयाः कौन है? प्रेमी ने कहा, मैं तेरा प्रेमी। और भीतर सन्नाटा हो गया, उदास सन्नाटा। उसने बार-बार दरवाजा खटखटाया, भीतर से आवाज आई कि अभी तू तैयार नहीं। और द्वार तभी खुल सकते हैं जब तू तैयार हो। लौट जा! तैयार होकर वापस लौट।

प्रेमी वर्षों तक पहाड़ों में, जंगलों में, मौन में, शांति में, ध्यान में डूबा रहा। चांद उगे, गए; दिन, रातें, महीने, वर्ष बीते। और तब एक दिन प्रेमी वापस लौटा, द्वार पर दस्तक दी। फिर वही सवालः कौन है? इस बार उसने कहा, तू ही है; मैं नहीं। द्वार खुल गए।

जिस दिन भी तुम कह सकोगे अस्तित्व के द्वार पर जाकरः तू ही है, मैं नहीं; उस दिन द्वार खुले ही हैं। अगर ठीक से समझो तो द्वार कभी बंद ही न थे, तुम्हारे मैं ने ही द्वार बंद किए थे। पर्दा परमात्मा पर नहीं पड़ा

है; पर्दा तुम्हारी आंख पर पड़ा है। परमात्मा पर से पर्दा नहीं उठाना है; नहीं तो एक आदमी उठा देता और सब दर्शन कर लेते। बुद्ध उठा देते, महावीर उठा देते, कृष्ण उठा देते, और बाकी अपनी जगह खड़े-खड़े दर्शन कर लेते। पर्दा अगर परमात्मा पर पड़ा होता तो एक बार उठ जाता, बात खतम हो गई। पर्दा हर आदमी की आंख पर पड़ा है। इसलिए बुद्ध कितना ही पर्दा उठाएं, तुम्हारी आंख से न उठेगा। महावीर कितना ही उठाएं, तुमसे न उठेगा। महावीर उठाएंगे तो उनका ही पर्दा उठेगा; तुम उठाओगे तो तुम्हारा उठेगा।

द्वार बंद नहीं हैं। तुम्हारे मैं की ही एक दीवाल है, जिसमें तुम ही घिरे हो। और ज्ञान तुम्हारे मैं को बड़ी गहरी शक्ति देता है। अज्ञान में तो तुम कंपते हो; ज्ञान में तुम अकड़ जाते हो। जैसे ही तुम्हें लगता है मैं जानता हूं, वैसे ही तुम्हारा भय खो जाता है। जैसे ही तुम्हें लगता है मैं जानता हूं, वैसे ही तुम कुछ और हो गए। इसे भी छोड़ देना है। अन्यथा तुम ज्ञान से जकड़े रहोगे। ज्ञान तुम्हारा बंधन हो जाएगा। और ज्ञान तो वही है जो मुक्त करे। तो जो ज्ञान बंधन बना ले वह अज्ञान से बदतर है। यह पहली बात।

दूसरी बात ख्याल में रख लेनी जरूरी है कि जिसे हम ज्ञान कहते हैं वह है क्या? वस्तुतः वह ज्ञान है? या कि ज्ञान का धोखा है?

ऐसा समझो कि अंतरिक्ष की यात्रा पर तुम्हें मंगल ग्रह का एक यात्री मिल जाए, और तुमसे पूछे, कहां रहते हो? और तुम कहो, कोरेगांव पार्क। और वह पूछे, कभी सुना नहीं, कहां है यह कोरेगांव पार्क? और तुम कहो, पूना। और वह कहे कि यह तो एक उलझन को तुम दूसरी उलझन से सुलझाते हो, कहां है पूना? और तुम कहो, महाराष्ट्र। वह पूछे, कहां है महाराष्ट्र? तो तुम कहो, भारत। और वह कहे, कहां है भारत? तो तुम कहो, पृथ्वी पर। वह पूछे, कहां है पृथ्वी? और तुम कहो कि सौर परिवार में। पर वह कहे कि तुम बात का हल नहीं कर रहे हो। तुम उत्तर नहीं दे रहे हो। मैं पूछता हूं अ, तुम बताते हो ब। जब मैं पूछता हूं ब, तो पता चलता है वह भी तुम्हें पता नहीं है, तब तुम बताते हो स।

तुम एक अनजान को दूसरे अनजान से हल कर रहे हो। तुम्हें किसी का भी पता नहीं है। क्योंकि जैसे ही उसका सवाल उठता है, तुम फिर पीछे कहीं और हट जाते हो; तुम कहते हो महाराष्ट्र, भारत, सौर परिवार। कहां है सौर परिवार? अगर पूछने वाला पूछता ही जाए तो एक घड़ी ऐसी आ जाएगी जब तुम्हें कहना पड़ेगा पता नहीं। और जब आखिरी बात पता नहीं है तो पहली बात, जिसको तुम आखिरी से हल करना चाहते थे, वह कैसे पता हो सकती है?

वैज्ञानिकों में एक मजाक चलता रहा है। एडिंग्टन ने अपनी किताबों में उस मजाक की चर्चा की है। और वह यह है कि वैज्ञानिक से अगर पूछो कि व्हाट इ.ज मैटर? पदार्थ क्या है? तो वह कहता है, नाट माइंड। पदार्थ की परिभाषा? तो वह कहता है, जो मन नहीं। और पूछो, मन क्या है? तो वह कहता है, जो पदार्थ नहीं।

पर ज्ञान कहां है? हम पूछते हैं एक बात, तुम दूसरे अज्ञान पर हट जाते हो। हम पूछते हैं, मन क्या है? तुम कहते हो, पदार्थ नहीं। स्वभावतः सवाल उठता है कि पदार्थ क्या है जिसको तुम मन को समझाने के लिए उपयोग में ला रहे हो? तुम तत्क्षण कहते हो, जो मन नहीं। जानते तुम दोनों को नहीं हो। एक अज्ञान से तुम दूसरे अज्ञान को छिपाने की कोशिश कर रहे हो।

हमारा सारा ज्ञान ऐसा है, कामचलाऊ है, यूटिलिटेरियन है; उसकी उपयोगिता है। लेकिन उसकी सार्थकता क्या है? हम जानते क्या हैं? छोटी-छोटी बातें भी तो हमें पता नहीं हैं।

डी.एच.लारेंस से एक छोटे से बच्चे ने पूछा कि वृक्ष हरे क्यों हैं? और लारेंस ने लिखा है कि मेरा सारा ज्ञान मिट्टी में गिर गया। वृक्ष हरे क्यों हैं? कुछ उत्तर न सूझा।

लारेंस बहुत ईमानदार आदमी है। बच्चे तो तुमसे भी ऐसे सवाल पूछते हैं जिनको बड़े-बड़े दार्शनिक जवाब नहीं दे सकते। लेकिन तुम उनका मुंह बंद करने की कोशिश करते हो। क्योंकि तुम यह मानने में डरोगे कि बच्चे के सामने तुम कहो कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे पता नहीं। हर बाप बच्चे का मुंह बंद करता है। वह कहता है, जब बड़े हो जाओगे तब जान लोगे। और खुद को भी पता नहीं है; बड़ा वह हो गया है। और जब तक बच्चा बड़ा होगा, जान नहीं पाएगा, लेकिन उसके बच्चे पैदा हो जाएंगे जो जान लेने लगेंगे। वह उनसे कहेगा, जब बड़े हो जाओगे तब जान लोगे। डी.एच.लारेंस ईमानदार आदमी है। उसने कहा कि वृक्ष हरे क्यों हैं, मुझे पता नहीं। वृक्ष हरे हैं क्योंकि हरे हैं। मुझे पता नहीं।

तुम्हें पता है, वृक्ष हरे क्यों हैं? तुम कहोगे कि नहीं, वैज्ञानिक को पता है। वह बता देगा कि क्लोरोफिल के कारण वृक्ष हरे हैं। लेकिन क्लोरोफिल वृक्षों में क्यों है? बात तो वहीं की वहीं रही, कोई हल नहीं होता इससे। हम पूछते हैं, वृक्ष हरे क्यों हैं? तुम सवाल को एक कदम पीछे हटा देते हो, तुम कहते हो, क्लोरोफिल के कारण। लेकिन क्लोरोफिल क्यों है वृक्षों में? जरा ही तुम ज्ञान को पूछते चले जाओ दो-चार कदम, और पाओगे अज्ञान आ गया। जहां-जहां ज्ञान पाओ, जरा पूछने की हिम्मत करना, दो-चार कदम भी न चल पाओगे कि अज्ञान आ जाएगा। और जैसे ही अज्ञान खुलेगा वैसे ही पता चलेगा कि ज्ञान सिर्फ ढांकना था।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बाजार गया था पत्नी के लिए साड़ी खरीदने। पत्नी भी चकित थी, क्योंकि पैसे उसके पास न थे। पर ईद करीब आ गई थी और कुछ भेंट वह देना चाहता था। खाली जेब चलने लगा तो पत्नी ने पूछा, खाली जेब? उसने कहा, घबरा मत, हर चीज में से रास्ता है। पत्नी ने कहा, होगा। साथ गई।

मुल्ला नसरुद्दीन ने दो साड़ियां चुनीं डेढ़-डेढ़ सौ रुपये की। पत्नी भी चकित हुई, इतनी कीमती साड़ियां खरीद रहा है और जेब खाली है! दुकानदार ने पैकेट भी बांध दिया, बिल भी तैयार करने लगा। तब उसने अचानक मन बदल लिया और उसने कहा कि ठहरो। बजाय दो साड़ियों के डेढ़-डेढ़ सौ की मैं यह तीन सौ की एक ही साड़ी ले लेता हूं। तीन सौ की साड़ी बांध दी गई। दबा कर साड़ी वह बाहर निकलने लगा। दुकानदार ने कहा, सुनिए, आप पैसा चुकाना भूल गए। उसने कहा, पैसा किस बात का? उन दो साड़ियों के बदले में ली है। दुकानदार ने कहा, वह तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन उन दो का पैसा कहां चुकाया? उसने कहा, जो खरीदी नहीं उनका पैसा क्यों चुकाएं? वे तो आपके पास ही हैं।

आदमी का सारा ज्ञान ऐसा गोल-गोल है, किसी चीज का कुछ भी पता नहीं है। लेकिन सब चीजों पर हमने लेबल लगा दिए हैं कि पता है। जरूरी है। छोटा बच्चा जैसे पैदा होता है तो हम एक नाम रख देते हैं कि राम। पता हमें कुछ भी नहीं है कि इनका नाम क्या है। लेकिन बिना नाम के काम न चलेगा। एक लेबल लगा दिया कि इनका नाम राम, और हम उन्हें राम कहने लगे। उन्होंने भी सुना, वे भी अपने को राम मानने लगे। अब रास्ते पर कोई गाली दे देता है राम को और वे झगड़ा करने को खड़े हो जाते हैं। जो बिना नाम के आया था; जिसका कोई नाम नहीं था; न किसी को पता है। कामचलाऊ एक नाम चिपका दिया है ऊपर से, नहीं तो मुश्किल पड़ेगी। घर में दस बच्चे हैं, किसको बुलाइएगा? और फिर इतनी बड़ी दुनिया है, अगर सब लोग बिना नाम के घूम रहे हों तो बड़ी अड़चन आ जाएगी। तो झूठा नाम भी बड़ा काम का है। लेकिन फिर कोई गाली दे दे राम को तो वे लकड़ी लेकर खड़े हैं, जान देने-लेने को राजी हैं--उस नाम के लिए जिसको वे लेकर कभी आए न थे; उस नाम के लिए जिसको लेकर वे कभी जाएंगे न; जो कि बीच की दुनिया की उपयोगिता थी; जिसकी कोई सार्थकता नहीं थी।

न तो नाम तुम्हारा है, न तुम्हारा कोई पता-ठिकाना है कि तुम कहां से आए हो, कि तुम कहां जा रहे हो, कि तुम क्यों आए हो, कि तुम क्यों जी रहे हो, कि तुम क्यों मर रहे हो। गहन अज्ञान है। लेकिन अज्ञान से घबराहट होती है, डर लगता है। तो हम अज्ञान के ऊपर ज्ञान को चिपका कर बैठ गए हैं। उससे थोड़ी सांत्वना मिलती है; सब चीजें मालूम होता है कि जानी-पहचानी हैं।

अजनबी आदमी तुम्हें ट्रेन में मिल जाता है, तुम अगर अकेले डब्बे में हो तो पहला काम तुम करना चाहते हो कि जान लो इस आदमी का नाम क्या है? कहां का रहने वाला है? हिंदू है कि मुसलमान है कि ईसाई है? थोड़ा पता-ठिकाना कर लो। क्योंकि अकेले इसके साथ बैठे हो; सो जाओ, बिस्तर उठा कर ले जाए, पेटी खोल ले, क्या करे, गर्दन पर सवार हो जाए। थोड़ी जानकारी जरूरी है। लेकिन जानकारी तुम किससे लोगे? उसी आदमी से! और जानकारी वह क्या दे सकता है? वह कहेगा, हां, मेरा नाम राम है, मैं हिंदू हूं। अगर तुम भी हिंदू हो तो आश्वस्त हुए। अगर तुम मुसलमान हो तो दुश्मन कमरे में है। इसे कुछ पता नहीं इसके नाम का, इसे कुछ पता नहीं इसके धर्म का। धर्म भी दिया हुआ है। वह भी मां-बाप दे रहे हैं। नाम भी मां-बाप दे रहे हैं। तुम्हारी सारी आइडेंटिटी, तुम्हारा सारा पता किसी के द्वारा दिया गया है। और पूछोगे किससे तुम? इसी आदमी से। बातचीत कर लोगे; थोड़ी जान-पहचान कर लोगे। अब यह आदमी अजनबी न रहा।

लेकिन तुमने कभी सोचा कि जिस पत्नी के साथ तुम तीस साल से रह रहे हो वह अभी भी अजनबी है, स्ट्रेंजर है। जान क्या पाए हो? तीस साल रह कर भी तो जानना संभव नहीं है। छोड़ो पत्नी को, अपने साथ तो तुम पचास साल से रह रहे हो; अपने को जान पाए हो? वह भी कुछ पता नहीं है। पूछो किससे? तुम्हें खुद ही अपना पता नहीं है। तुम पूछोगे किससे? और जब तुम्हें पता नहीं तो किसको पता होगा?

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन पोस्ट आफिस गया एक पार्सल छुड़ाने। क्लर्क ने गौर से देखा, आदमी थोड़ा संदिग्ध मालूम पड़ा। उसने कहा कि लेकिन पक्का क्या कि यह नाम तुम्हारा ही है? और नाम तुम्हारे ही पार्सल है। उसने कहा कि प्रमाण है। जेब से उसने अपना पासपोर्ट निकाला, खोल कर बताया कि देख लो यह फोटो। उस क्लर्क ने गौर से फोटो देखा, नसरुद्दीन की तरफ देखा। कहा कि बिल्कुल तुम ही हो। पार्सल दे दी।

अब मजा यह है कि तुम पूछोगे किससे? नसरुद्दीन से ही पूछ रहे हो। उसी का पासपोर्ट है, उसी का फोटो है, मान लिया। लेकिन यह आदमी नसरुद्दीन है जिसके नाम पार्सल है, इसका क्या प्रमाण है?

कोई भी प्रमाण नहीं है। लेकिन जिंदगी चल रही है। जिंदगी बिना प्रमाण के चल जाती है। लेकिन सत्य की खोज बिना प्रमाण के न चलेगी। तुम जो भी जानते हो, उससे तुमने किसी तरह जिंदगी में काम चला लिया है। लेकिन क्या वह ज्ञान है? क्या जानते हो तुम?

अब तक दुनिया में हजारों तरह की ज्ञान की धाराएं बनीं और सब एक समय के बाद अंधविश्वास हो जाती हैं। कभी वे ज्ञान की धाराएं थीं; अब वे अंधविश्वास हैं। दुनिया ने जितनी चीजों को अब तक ज्ञान समझा था, सब कचरे की टोकरी में जा चुका है। और तुम यह मत सोचना कि जिसे तुम ज्ञान समझ रहे हो वह कचरे की टोकरी में नहीं चला जाएगा। वह भी रोज जा रहा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अब तो विज्ञान पर भी भरोसा करना मुश्किल है। क्योंकि हर दिन सब बदल जाता है। विज्ञान पर बड़ी किताबें लिखना मुश्किल हो गया। क्योंकि जब तक किताब पूरी होगी तब तक विज्ञान बदल जाता है। तो छोटी-छोटी किताबें लिखी जाती हैं, पीरियाडिकल्स में लेख लिखे जाते हैं बिल्कुल छोटे। क्योंकि इसके पहले कि लेख छपे, कहीं ऐसा न हो कि बात बदल जाए। इतनी जल्दी सब करना पड़ता है। तीन सौ साल में विज्ञान तीस हजार बार बदल चुका है। कुछ भी

तय नहीं है। सब बदल रहा है। और जो कल सही था वह आज गलत हो जाता है। जो आज गलत है वह कल सही हो सकता है। जो आज सही है वह कल गलत हो सकता है।

आदमी का ज्ञान कामचलाऊ है। उसके ज्ञान में कभी भी जड़ें न होंगी। हो नहीं सकतीं। परमात्मा ही जान सकता है ठीक-ठीक क्या है। आदमी तो बाहर-बाहर घूमता है; कुछ भी इकट्ठा कर लेता है; भरोसा कर लेता है कि ज्ञान है; काम चला लेता है। काम भी चल जाता है। और यहीं कठिनाई है कि जिन चीजों से काम चल जाता है, हम समझते हैं कि वे ठीक होनी चाहिए, सत्य होनी चाहिए। जरूरी नहीं है। तुम्हारा भरोसा कि वे सत्य हैं काफी है। उनका सत्य होना जरूरी नहीं।

देखो, दुनिया में कितनी पैथीज हैं! एलोपैथी है, आयुर्वेद है, यूनानी है, होमियोपैथी है, नेचरोपैथी है, एक्युपंक्चर है, हजार... । कौन ठीक है? अब तो वैज्ञानिक भी संदिग्ध हो गए हैं कि कुछ साफ मामला नहीं है कौन ठीक है। क्योंकि सभी इलाजों से मरीज ठीक होते पाए जाते हैं। और करीब-करीब अनुपात बराबर है। इस बात को देख कर कि होमियोपैथी से भी मरीज ठीक हो जाता है, एलोपैथी से भी ठीक हो जाता है, आयुर्वेद से भी ठीक हो जाता है--मरीज बड़े अनूठे हैं, कोई एक सिद्धांत को मान कर नहीं चलते मालूम होता है, बीमारी भी बड़ी अजीब है--तो पश्चिम में बहुत से प्रयोग किए गए जिसको वे प्लेसबो कहते हैं। एक मरीज को एलोपैथी की दवा दी जाती है। उसी बीमारी के दूसरे मरीज को सिर्फ पानी दिया जाता है। और बताया नहीं जाता कि किसको दवा दी जा रही है, किसको पानी दिया जा रहा है। बड़ी हैरानी है, सत्तर परसेंट दोनों ठीक हो जाते हैं! पानी जिसको मिलता है, वह भी उतना ही ठीक हो जाता है; जिसको दवा मिलती है, वह भी उतना ही ठीक हो जाता है।

तो ऐसा लगता है कि आदमी ठीक होना चाहता है इसलिए ठीक हो जाता है। और जिसका जिस पर भरोसा हो। अगर होमियोपैथी पर तुम्हें भरोसा है तो एलोपैथी तुम्हें ठीक न कर पाएगी। अगर एलोपैथी पर तुम्हें भरोसा है तो होमियोपैथी तुम्हें ठीक न कर पाएगी। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हें ठीक करता है। इसीलिए तो राख भी दे देता है कोई तो कभी काम कर जाती है।

मैं एक साधु को जानता हूं। उन्होंने मुझे कहा। ग्रामीण हिस्से में रहते हैं। बड़े सरल आदमी हैं। बेपढ़ा-लिखा इलाका है। आदिमवासी हैं सब आस-पास बस्तर में जहां उनका निवास है। बेपढ़े-लिखे लोग, जंगली लोग हैं। उन्होंने मुझे कहा कि एक दफे एक आदमी आया। लगता था कि वह क्षयरोग से बीमार है। उनको औषधि का थोड़ा ज्ञान है। तो उन्होंने कुछ दवा--अब वहां कुछ था नहीं लिखने को; ईंट का एक टुकड़ा पड़ा था; उस ईंट के टुकड़े पर ही उन्होंने लिख दिया कि तुम जाकर बाजार से और ये दवा ले लेना।

वह आदमी गैर पढ़ा-लिखा। वह कुछ समझा नहीं कि क्या मामला है। वह घर गया, उसने समझा कि यह ईंट दवा है, उसको घोंट-घोंट कर वह पी गया। जब तीन महीने में बिल्कुल ठीक हो गया तब वह आया कि थोड़ी औषधि और दे दें; ऐसे तो मैं बिल्कुल ठीक हो गया। उन्होंने कहा, भई औषधि तो बाजार में मिलेगी। उसने कहा, बाजार जाने की क्या जरूरत? आपने दी थी वह काम कर गई। उन्होंने पूछा, क्या किया तुमने? उसने कहा कि हम तो घोल-घोल कर पी गए उसको और बिल्कुल ठीक हो गए हैं। और बिल्कुल ठीक था, चंगा खड़ा था।

तो वह साधु मुझसे कह रहे थे कि फिर मैंने उचित न समझा कहना कि वह ईंट थी और उसको पीने से टी.बी. ठीक नहीं होती। लेकिन जब ठीक हो ही गई तो अब कुछ कहना ठीक नहीं है, अब चुप ही रह जाना उचित है। और एक ईंट के टुकड़े पर वही मंत्र लिख कर दे दिया जो पहले लिखा था--वही दवाई का नाम। क्योंकि उसने कहा कि मंत्र लिख देना आप। ईंट तो हमारे गांव में भी है, लेकिन मंत्रसिक्त बात ही और है।

अब तो प्लेसबो पर सारी दुनिया में प्रयोग हुए हैं। और पाया गया है कि कोई भी दवा हो, सत्तर प्रतिशत मरीज तो ठीक होते ही हैं। इसलिए दवा का कोई बड़ा सवाल नहीं मालूम पड़ता।

क्या ज्ञान है? बुद्ध ने ज्ञान की परिभाषा की हैः जिससे काम चल जाए। यह समझ में आती है परिभाषा। ज्ञान का यह अर्थ नहीं कि यह सत्य है; ज्ञान का इतना ही अर्थ है कि जिससे काम चल जाए। वही ज्ञान है, कामचलाऊ ज्ञान है। जब काम न चले तो अज्ञान हो जाता है वही। जब काम चला देता है तो ज्ञान हो जाता है वही।

डाक्टरों को पता है कि जब भी कोई नयी दवा निकलती है तो पहले तीन-चार महीने बहुत काम करती है, फिर धीरे-धीरे असर कम होने लगता है। दवा वही; असर क्यों कम होने लगता है? पहले जब दवा निकलती है, नयी दवा, तो तीन-चार महीने तो ऐसा काम करती है जादू का कि लगता है कि अब इससे बेहतर दवा इस बीमारी के लिए नहीं हो सकेगी। क्योंकि डाक्टर भी नये के भरोसे से भरा होता है; मरीज भी नयी दवा के भरोसे से भरा होता है। और जब मरीज शुरू में ठीक होते हैं तो दूसरे मरीजों में भी संक्रामक खबर फैल जाती है कि यह दवा काम करती है।

लेकिन फिर धीरे-धीरे उत्साह तो सभी चीजों में क्षीण हो जाता है। चार-छह महीने में डाक्टर का उत्साह भी क्षीण हो जाता है। एकाध-दो मरीज ऐसे भी निकल आते हैं जिनको तुम ठीक ही नहीं कर सकते। उनके कारण दवा पर भरोसा गिर जाता है। जिद्दी तो सब जगह होते हैं। तीस परसेंट लोग जिद्दी होते हैं हर चीज में। बीमारी में सौ में से सत्तर आदमी जिद्दी नहीं होते, तीस आदमी जिद्दी होते हैं। वे किसी चीज में भरोसा नहीं उनका। वे पक्के नास्तिक हैं हर चीज में। हर चीज को वे इनकार की भाषा में देखते हैं। इस कारण उन पर कोई परिणाम नहीं होता। जैसे ही वे आदमी आ गए, और उन पर परिणाम न हुआ, मरीजों में भी खबर पहुंच जाती है कि अब काम न हो सकेगा। यह दवा भी गई। तब तत्क्षण दूसरी दवा खोजनी पड़ती है।

जो काम करे वह ज्ञान। मगर यह तो बड़ी कमजोर परिभाषा हुई। ज्ञान की परिभाषा तो होनी चाहिएः जो सदा है वही ज्ञान। लेकिन वैसा ज्ञान तो मनुष्य के पास नहीं है। वैसा ज्ञान तो तभी उपलब्ध होता है जब तुम अपनी मनुष्यता को भी छोड़ कर अतिक्रमण कर जाते हो। और तुम्हारी जानकारियां सिर्फ अज्ञान को छिपाने के उपाय हैं। उससे तुम जी लेते हो सुविधा से। लेकिन सुविधा से जी लेने का नाम जीवन के रहस्य को जान लेना नहीं है।

यह दूसरी बात। और तीसरी बात; फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

जब भी तुम किसी चीज को जानते हो तो जानने का अर्थ ही होता है कि तुममें और जिसे तुम जान रहे हो एक फासला है। वहां तुम बैठे हो, मैं तुम्हें देख रहा हूं। यहां मैं बैठा हूं, तुम मुझे देख रहे हो। अगर हम बहुत करीब आ जाएं तो देखना कम होने लगेगा। अगर हम अपने चेहरे बिल्कुल करीब कर लें, तो हम देख ही न पाएंगे। अगर हम दोनों की आंखें इतने करीब आ जाएं कि एक-दूसरे को छूने लगें, तो फिर कुछ भी न दिखाई पड़ेगा। ज्ञान के लिए फासला चाहिए, दूरी चाहिए। और यही अड़चन है। क्योंकि जिससे हम दूर हैं उसे हम जान कैसे सकेंगे?

इंद्रियां उसे ही जान सकती हैं जो दूर है। और परमात्मा को, सत्य को जानने का एक ही उपाय है कि वह इतने पास आ जाए, इतने पास आ जाए कि हम और उसके बीच कोई भी रत्ती भर का फासला न रहे। तो परमात्मा को इंद्रियों से न जाना जा सकेगा। क्योंकि इंद्रियां तो दूर को ही जान सकती हैं। अतींद्रिय अनुभव से ही परमात्मा को जाना जा सकेगा। लेकिन तुम्हारा तो सारा ज्ञान इंद्रियों का है। कुछ तुमने आंख से जाना है,

कुछ हाथ से जाना है, कुछ कान से जाना है। लेकिन सब जाना है इंद्रियों से। इंद्रियां मन के द्वार हैं। जो-जो इंद्रियां जान कर लाती हैं, मन को दे देती हैं। मन ज्ञानी बन जाता है। मन के पीछे छिपी है तुम्हारी चेतना।

और एक और ज्ञान है जो दूरी से नहीं जाना जाता, जो पास होने से जाना जाता है। जो प्रेम जैसा है; ज्ञान जैसा कम। परमात्मा को तो प्रार्थना में जाना जा सकेगा; जब हृदय भरा होगा गहन प्रेम से। परमात्मा को आंखों से तो नहीं देखा जा सकता। आंखों से तो जो देखा जा सकता है वह संसार है। या चाहो तो ऐसा कहो कि आंखों से जब तुम परमात्मा को देखते हो तो जो तुम्हें दिखाई पड़ता है वह परमात्मा का एक अंश है, संसार। जब तुम आंख बंद करके देखोगे तब तुम उसे देख पाओगे जो परमात्मा है। जब तुम सारी इंद्रियों को बंद करके देखोगे तब तुम उसे जान पाओगे जो परमात्मा है। क्योंकि इंद्रियों के बंद होते ही मन का व्यापार बंद हो जाता है।

विज्ञान, ज्ञान, सब इंद्रियों के ही माध्यम से जाने गए हैं। इसलिए लाओत्से कहता है, ज्ञानी का पहला लक्षण है यह जान लेना कि जो हम जानते हैं वह ज्ञान नहीं है। और इस ज्ञान से हमारा छुटकारा हो तो फिर परम ज्ञान की दिशा में पैर बढ़ें। जिसने इसी को ज्ञान समझ लिया वह इसे छाती से लगा कर बैठ जाता है; वह इसे मंजिल समझ लेता है। फिर यात्रा अवरुद्ध हो जाती है।

अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।

"जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है।"

इस ज्ञान को लाओत्से सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कहता हैः इस जानने को कि मैं नहीं जानता हूं। अज्ञानी है, ज्ञानी है, और परम ज्ञानी है। अज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता भी नहीं, लेकिन यह भी नहीं जानता कि मैं नहीं जानता हूं। ज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता नहीं, लेकिन जानता है कि जानता हूं। परम ज्ञानी का अर्थ हैः जो जानता है कि नहीं जानता हूं। तो परम ज्ञानी में एक बात तो अज्ञानी की है, नहीं जानता हूं। और एक बात ज्ञानी की है कि जानता हूं। अज्ञानी और ज्ञानी दोनों के पार हो जाता है परम ज्ञानी। अज्ञानी जानता नहीं, लेकिन यह भी नहीं जानता कि मैं नहीं जानता हूं। परम ज्ञानी भी नहीं जानता, लेकिन जानता है कि नहीं जानता हूं। ज्ञानी जानता नहीं, लेकिन जानता है कि जानता हूं। परम ज्ञानी इतना ही जानता है कि नहीं जानता हूं। इन दोनों के समन्वय में परम ज्ञान की प्रज्ञा का प्रज्वलन होता है।

सुकरात ने कहा है कि जब मैं जवान था तब मैं जानता था मैं सब जानता हूं। ऐसा कुछ भी न था जो मेरी जवानी की अकड़ में मैं न जानता होऊं। फिर मैं बूढ़ा हुआ। तब धीरे-धीरे मेरे ज्ञान के भवन की ईंटें गिरने लगीं। प्रौढ़ता आई; हिम्मत आई स्वीकार करने की कि बहुत सी बातें मैं नहीं जानता हूं। और जैसे ही यह हिम्मत आई वैसे ही पता लगा कि जानता तो बहुत कम हूं, न जानना तो बहुत बड़ा है। और आखिरी क्षणों में सुकरात ने कहा है कि अब जब कि जीवन की धारा पूरी जा चुकी, जब मैं अब परिपूर्ण रूप से विनम्र हो गया हूं, वह दंभ और अहंकार खो गया, शरीर और मन की अकड़ जाती रही, और मौत ने द्वार पर दस्तक दे दी है, तो अब मैं कह देना चाहता हूं संसार को कि मैं सिर्फ एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।

ऐसा हुआ, कि यूनान में एक बहुत प्रसिद्ध मंदिर है, डेलफी का मंदिर। उस मंदिर के पुजारी पर देवी का अवतरण होता था। और वह मंदिर का पुजारी, जब देवी का अवतरण होता था, तो कई तरह की घोषणाएं करता था। वे सदा सच होती थीं। कुछ लोग डेलफी के मंदिर गए थे। जो भी लोग पूछते थे देवी की आविष्ट अवस्था में, पुजारी उत्तर देता था। किसी ने यह पूछ लिया कि यूनान में सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है? तो पुजारी ने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है! सुकरात परम ज्ञानी है।

वे लोग डेलफी के मंदिर से वापस आए। उन्होंने सुकरात से कहा कि डेलफी के पुजारी ने देवी की आविष्ट दशा में घोषणा की है कि तुम सबसे बड़े ज्ञानी हो।

सुकरात ने कहा, कहीं जरूर कुछ भूल हो गई होगी। तुम वापस जाओ और पुजारी को कहो कि सुकरात तो स्वयं कहता है कि मुझसे बड़ा अज्ञानी और कोई भी नहीं; मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

लोग वापस गए। लोगों ने पुजारी को कहा कि आप तो कहते हैं, लेकिन खुद सुकरात इनकार करता है। और उसने कहा कि कहीं कोई भूल हो गई; तुम जाओ वापस और जाकर बता दो कि सुकरात ने तो कहा है कि मैं इतना ही भर जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। मुझसे बड़ा अज्ञानी कौन है! डेलफी के मंदिर की देवी हंसी और उसने कहा, इसीलिए तो हम उसे परम ज्ञानी कहते हैं। इसीलिए कि सुकरात स्वयं कहता है कि मैं अज्ञानी हूं, इसीलिए तो हमने उसे परम ज्ञानी कहा है। भूल कहीं भी नहीं हुई है। और हमारे वक्तव्य में और सुकरात के वक्तव्य में विरोध नहीं है। सुकरात जो कह रहा है उसी के कारण तो हम कहते हैं वह परम ज्ञानी है। अगर उसने स्वीकार कर लिया होता दुर्भाग्य से कि वह परम ज्ञानी है तो हमें अपना वक्तव्य बदलना पड़ता। फिर वह ज्ञानी न रह जाता।

ज्ञान विनम्र है; ज्ञान आत्यंतिक रूप से विनम्र है। ज्ञान का कोई भी दावा नहीं है।

"जो जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, वह सर्वश्रेष्ठ है।"

लेकिन ध्यान रखना, सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी घोषणा मत करना। अन्यथा चूक जाओगे। आदमी का मन बहुत बेईमान है। इस वचन को पढ़ कर तुम्हें भी लग सकता हैः तब तो बात सीधी साफ है; घोषणा कर दो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं और सरलता से सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी घोषणा की, तब तो तुम चूक गए। यह सर्वश्रेष्ठ होने का उपाय नहीं है। ऐसा जिसके जीवन में घट जाता है, सर्वश्रेष्ठता छाया की भांति उसका पीछा करती है। यह परिणाम है; उपाय नहीं। तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए अगर अज्ञान का दावा करोगे तो वह दावा भी ज्ञान का ही दावा है और अहंकार का ही दावा है। तुम यह मत सोचना कि ज्ञान का ही दावा हो सकता है। आदमी चालाक है; अज्ञान का भी दावा कर सकता है। लेकिन दावे में बात है। और अगर सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ही दावा कर रहे हो तो कठिनाई में पड़ जाओगे।

और बहुत से धार्मिक लोगों को मैं ऐसी कठिनाई में पड़ा देखता हूं। मेरे पास धार्मिक लोग आ जाते हैं; मुझसे आकर कहते हैं कि पापी तो सुख में हैं, और हम पुण्य कर रहे हैं, फिर भी दुख में हैं। और शास्त्रों में कहा है, पुण्यात्मा को सुख मिलता है, स्वर्ग मिलता है।

वे सुख और स्वर्ग पाने के लिए पुण्य कर रहे हैं। वहीं चूक हो गई। पुण्य का पहला लक्षण तो यह है कि वह निर्लोभ होगा। अगर पुण्य भी लोभी हो तो पाप और पुण्य में फर्क क्या है? अब वे देख रहे हैं बैठे, राह लगाए हुए, हिसाब-किताब किए हुए बैठे हैं कि इतना पुण्य कर दिया और अभी तक सुख नहीं मिला। और शास्त्र में लिखा है, सुख मिलेगा। और जब सुख ही नहीं मिल रहा है तो स्वर्ग का क्या भरोसा करें? जब अभी नहीं मिल रहा तो आगे का क्या भरोसा करें? मिले न मिले! कोई लौट कर बताता भी तो नहीं। कहीं ऐसा न हो कि पाप से भी चूक जाएं, पुण्य करके फिजूल समय गंवाएं, और कुछ भी न मिले।

और उनको दिख रहा है कि पापी को सुख मिल रहा है। इसे थोड़ा समझें। जब किसी को दिखाई पड़ता है कि पापी को सुख मिल रहा है तब वह पुण्य के द्वारा ऐसा ही सुख चाहता है जैसा पापी को पाप के द्वारा मिल रहा है। पुण्यात्मा को तो दिखाई पड़ेगा कि पापी दुखी है। पुण्यात्मा को कभी दिखाई ही नहीं पड़ सकता कि

पापी और सुखी हो सकता है। यह असंभव है! सिर्फ पापी मन को ही दिखाई पड़ता है कि पापी सुखी है। यही तुम्हारा सुख है। यही तुम्हारी सुख की परिभाषा है। यही तुम चाहते हो।

तुम भी चाहते हो कि धन का अंबार लग जाए। कुछ हिम्मतवर हैं, वे चोरी करके और तस्करी करके कर रहे हैं। तुम जरा कमजोर हिम्मत के हो, तुम दान-दक्षिणा देकर कर रहे हो। लेकिन चाहते तुम वही हो। तुम जरा डरे हुए आदमी हो, कायर हो। कहीं पकड़ा न जाओ, तो तुम सुगम उपाय खोज रहे हो। कुछ लोग पुलिस के अधिकारियों को रिश्वत देकर कर रहे हैं; तुम परमात्मा को रिश्वत देकर कर रहे हो। बाकी तुम करना वही चाहते हो। तुम्हारे मन के तर्क में जरा भी भेद नहीं है। और तुम्हारी आकांक्षा भी वही है। तुम बिना दांव पर अपने को लगाए पापी का सुख पाना चाहते हो। तुम ज्यादा चालाक हो।

पापी तो सीधा-सादा है। उसके गणित में बहुत जटिलता नहीं है। उसे जो चाहिए वह पागल होकर कर रहा है। चाहे किसी भी तरह मिले, येन केन प्रकारेण, कुछ भी हो परिणाम, वह लगा है। चोरी करेगा, डाका डालेगा, सब करेगा। वह कम से कम हिम्मतवर है। और जो चाहता है उसे करने की सीधी कोशिश कर रहा है। तुम बेईमान हो और तुम चालाक हो। तुम जेब भी काटना चाहते हो, और दूसरे की जेब में हाथ भी नहीं डालना चाहते। तुम चाहते हो कि दूसरे की जेब अचानक तुम्हारी जेब में अपने आप उलट जाए। या दूसरा खुद अपनी जेब में हाथ डाले और तुम्हारी जेब में पैसे रख दे। और तुम कर क्या रहे हो इसके लिए?

तुम सुबह रोज बैठ कर आधा घंटा राम-राम, राम-राम कर लेते हो; या थोड़े से चने-फुटाने रख लिए हैं, वे तुम भिखारियों को बांट देते हो; या जो दवाइयां तुम्हारे घर में काम नहीं आईं, तुम अस्पताल में दे आते हो। या जो कपड़े अब तुम्हारे योग्य नहीं रहे, वे तुम दान कर देते हो; बंगला देश भेज देते हो। तुम्हारा पुण्य बड़ा दीन है। और भीतर तुम्हारा वही मन छिपा है जो पापी का है। तब तुम चिंता में पड़ते हो।

अगर तुमने सच में ही पुण्य किया हो तो पुण्य के करने में ही महासुख बरस जाता है। कहीं बाद में थोड़े ही सुख मिलने वाला है! स्वर्ग कल थोड़े ही मिलने वाला है! न तो स्वर्ग कल है और न नरक कल है। तुम जो करते हो उस कृत्य में ही तो तुम पर दुख या सुख बरस जाता है।

कभी चोरी करके देखो। तब तुम पाओगे, कैसी छाती धड़कती है! कैसी चिंता, बेचैनी, परेशानी, घबराहट, भय! सो नहीं सकते, खुद के ही पैरों से डर जाते हो और चौंक जाते हो; खुद की ही आवाज डराती है। वह जो चोरी कर रहा है, तुम उसका भवन ही मत देखो कि उसने बड़ा भवन बना लिया है। तुम उसकी अंतरात्मा भी देखो कि प्रतिपल वह गल रहा है और प्रतिपल घाव बन रहे हैं। और प्रतिपल डरा हुआ है, बेचैन है, परेशान है, कंप रहा है। तुम उसके वस्त्र मत देखो, तुम उसके प्राण देखो। तुम उसके पास धन मत देखो, तुम उसकी भीतर की दशा देखो। तब तुम पाओगे, वह महा दुख में है; नरक उसे मिल रहा है।

लेकिन जिसने सच में ही दान दिया है--और दान का अर्थ है, किसी लोभ के कारण नहीं। क्योंकि लोभ अगर दान में हो तो वह दान कैसे होगा? तब तो सौदा होगा। और जिन्होंने शास्त्रों में तुम्हें वचन दिया है कि यहां एक पैसा दो और एक करोड़ गुना स्वर्ग में पाओगे, वे बेईमान हैं। और वे तुम्हारा मन जानते हैं। तुम्हारे शोषण का उन्होंने उपाय किया था। तुम इससे कम में दोगे भी नहीं। तुम थोड़ा सोचो भी तो! जुआरी भी इतना नहीं पाता कि एक पैसा लगाए, एक करोड़ गुना पाए। तुम्हारी आकांक्षा बड़ी भयंकर है; एक पैसा देकर एक करोड़ गुना तुम वहां पाना चाहते हो। काशी में और प्रयाग के पंडे तुम्हें शोषण कर रहे हैं इसीलिए। तुम्हारे लोभ का शोषण है। तुम चोर हो। क्योंकि एक पैसा देकर एक करोड़ गुना पाना चोरी की आकांक्षा है। इसलिए तुम्हें दूसरे चोर मिल जाएंगे जो तुमसे ज्यादा कुशल हैं और तुम्हारा शोषण करेंगे। अगर तुम बेईमान नहीं हो तो तुम्हें

कोई बेईमान नहीं मिल सकता। अगर तुम चोर नहीं हो तो तुम्हारी चोरी नहीं की जा सकती। अगर तुम लोभी नहीं हो तो तुम्हारा शोषण नहीं किया जा सकता।

एक आदमी कुछ दिन पहले मेरे पास आया। और उसने कहा, एक साधु मुझे धोखा दे गया। वह बड़ा नाराज था; साधुओं के बड़े खिलाफ था। क्या धोखा दिया उसने? उसने कहा कि उसने पहले तो पता नहीं क्या किया कि एक नोट के दो नोट बना दिए। और फिर उसने कहा कि तुम्हारे पास जितने नोट हों सब ले आओ; मैं दोहरे कर देता हूं। तो हमने सब, जो भी घर में जेवर-जवाहरात था सब बेच दिया, सबके नोट कर लिए। और वह आदमी सब लेकर नदारद हो गया। वह बड़ा बेईमान था।

मैंने कहा, बेईमान तुम हो; वह नंबर दो था। तुम सौ के नोट के दो नोट बनाना चाहते थे, इस बात को तुम नहीं सोचते, और उसको तुम बेईमान कह रहे हो! अगर तुम न होओ तो उसके होने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम आधार हो, तुम जड़ हो। और सजा अगर मिलनी चाहिए, तो मुझसे अगर सजा मिलती हो तो पहले तुम, फिर हम उसको देखेंगे। लेकिन पहले तुम सजावार हो। तुम सौ रुपये के दो सौ रुपये करना चाहते थे, इसमें तुम्हें बेईमानी न दिखाई पड़ी? और जो ऐसा करने आएगा, वह साधु होगा? तो वह आदमी साधु नहीं था, यह तुम भी जानते हो। तुम भी साधु नहीं हो, तुम भी जानते हो। तुम दोनों गुंडे हो। दोनों का मेल मिल जाता है।

पापी को तुम देखते हो कि सुख पा रहा है। इसका मतलब है कि वही सुख तुम्हारी भी आकांक्षा है।

नहीं, कोई पापी कभी सुख नहीं पाता। पुण्य के अतिरिक्त कोई सुख है ही नहीं। लेकिन पुण्य तक उठना बड़ा कठिन है। पुण्य का अर्थ है, निर्लोभ दान। पुण्य का अर्थ है, जो तुम्हारे पास है उसमें दूसरे को सहभागी बनाना। पुण्य का अर्थ है, जो सुख तुम्हें मिला है उसमें दूसरे को साझी बनाना--बेशर्त, कुछ पाने की आकांक्षा से नहीं।

कभी तुमने ख्याल किया हो, कोई रास्ते पर गिर पड़ा और तुमने उसे हाथ का सहारा देकर उठा दिया। उस क्षण अचानक तुम स्वर्ग में पहुंच जाते हो। कुछ भी तुमने किया नहीं है, सिर्फ हाथ बढ़ा दिया है और उसे उठा लिया है। लेकिन तुम्हारी चाल बदल जाती है। तुम्हारे भीतर की उदासी टूट जाती है। जैसे सुबह हो गई अचानक; जैसे बादल घिरे थे आकाश में, और थोड़ा सा बादल फट गए और तुम्हें नीला आकाश दिखाई पड़ा। न तो उस समय तुम्हें पुण्य का ख्याल था, न शास्त्र का ख्याल था। बस सहज मनुष्यता के कारण घट गया। कोई आदमी गिर रहा था, तुमने उठा लिया। तुमने सोचा भी न कि इस समय फोटोग्राफर आस-पास है या नहीं? कोई अखबार वाला है या नहीं? खाली सड़क पर उठाने का फायदा क्या है? उस वक्त तुमने यह भी न सोचा कि परमात्मा का कोई आदमी लिख रहा है इस समय या नहीं? तुमने यह भी खड़े होकर विचार न किया कि इसको उठाएंगे तो क्या लाभ होगा भविष्य में? तुमने कुछ सोचा ही न। अनसोचे क्षण में तुम झुके, तुमने उठा लिया। तुमने धन्यवाद की भी आकांक्षा न की। तुम अपनी राह चले गए। अगर उस आदमी ने धन्यवाद भी न दिया तो भी तुम्हें मन में ऐसा न लगा कि कैसा आदमी था! मैंने इतना सहारा दिया, इसने धन्यवाद भी न दिया!

अगर तुम्हें इतना भी लग जाए कि इसने धन्यवाद नहीं दिया तो तुम चूक गए। तब स्वर्ग बिल्कुल पास था और तुम फिर नरक में गिर गए। स्वर्ग होने का एक ढंग है। नरक भी होने का एक ढंग है।

इसलिए ख्याल रखना, लोभ के कारण दान दोगे तो वह लोभ का ही विस्तार है। अगर तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए ऐसी धारणा अपने मन में जमा लो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं तो इससे तुम सर्वश्रेष्ठ भी न हो जाओगे और न न जानने का वह अमृत तुम्हें मिलेगा, न न जानने की वह गहन शांति तुम्हें मिलेगी। तुम चूक

जाओगे। और सभी शास्त्रों के साथ तुमने ऐसा ही किया है। तुम अपनी ही समझदारी से नासमझ हो; तुम अपनी कुशलता से चूकते हो।

मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं कि ध्यान तो घटित होगा, लेकिन तुम ध्यान की बहुत अपेक्षा मत करो। क्योंकि अपेक्षा बाधा बन जाएगी। अगर तुम शांत होकर बैठे हो तो तुम बहुत ज्यादा आकांक्षा मत करो कि कब शांत होंगे। शांति की बात ही छोड़ दो। तुम सिर्फ शांत होकर बैठ जाओ। जब होंगे, होंगे। जल्दी मत करो। तो वे कहते हैं, अच्छा ऐसा ही करेंगे। दो-चार दिन बाद आकर वे कहते हैं कि जैसा आपने कहा था वैसा ही किया, लेकिन शांति अभी तक नहीं आई। चूकते ही जाते हैं। वह भी किया, लेकिन पीछे खड़े वे देखते ही रहे कि शांति आ रही कि नहीं। चार दिन हो गए, अभी तक नहीं आई!

शांति आती है उन क्षणों में जब तुम बिल्कुल मौजूद नहीं होते। तुम्हारी मौजूदगी अशांति है। जब तुम इतने गैर-मौजूद हो जाते हो, सारी आकांक्षाएं, वासनाएं, चिंताएं छोड़ कर बैठ रहते हो, जैसे कुछ करने को नहीं है, कुछ होने को नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कुछ पाने को नहीं है, जब तुम ऐसे बैठ रहते हो, अचानक तुम पाते हो, वर्षा होने लगी, मेघ घिर गए; शांति सब तरफ बरस रही है। तुम सराबोर हुए जा रहे हो। तुम मदमस्त हुए जा रहे हो।

लेकिन जीवन में जो भी घटता है सर्वश्रेष्ठ, वह तुम्हारे कारण नहीं घटता। तुम्हारे कारण तो निकृष्ट ही घटता है। इसीलिए तो ज्ञानियों ने कहा है कि परम ज्ञान या परम अनुभूति प्रसाद है परमात्मा का, हमारा प्रयास नहीं।

तो तुम सर्वश्रेष्ठ होने के लिए मत अज्ञान की घोषणा कर देना। हां, अज्ञान की घोषणा तुम्हारे जीवन में आ जाए तो तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओगे। वह परिणाम है।

"जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता, वह मन से रुग्ण है।"

लाओत्से कहता है, वह बीमार है; उसे मनोचिकित्सा की जरूरत है। तुम अगर इसको सोचोगे तो तुम पाओगे, तब तो करीब-करीब हर आदमी मन से बीमार है। क्योंकि ऐसा आदमी मुश्किल ही है पाना जो सीधा-सीधा कह सके मैं नहीं जानता।

तुमसे अगर कोई पूछता है, परमात्मा है? तो तुमने कभी यह जवाब दिया कि मैं नहीं जानता। नहीं, या तो तुमने कहा, नहीं है। अगर तुम नास्तिक हो, कम्युनिस्ट हो, तो तुमने कहा, नहीं है। वह भी ज्ञान का दावा है कि मुझे पता है, नहीं है। या तुमने कहा, है। वह भी ज्ञान का दावा है। लेकिन कभी तुम्हारे मन से सीधी-साफ बात उठी कि मुझे पता नहीं है; जो कि असलियत है। तुमसे कोई कुछ भी पूछे, उत्तर देने की बड़ी जल्दी और तैयारी है। ऐसा क्षण नहीं आता जब तुम निरुत्तर खड़े रह जाओ और वास्तविक रूप से कह दो कि नहीं, मुझे पता नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन से एक आदमी ने आकर कहा कि मैं गुरु की तलाश में हूं। और कई गुरुओं के पास गया, लेकिन कुछ पाया नहीं। कुछ है नहीं उनमें। जल्दी ही उनका ज्ञान चुक जाता है। कोई रहस्य नहीं है ऐसा जो चुके ही न। तो किसी ने तुम्हारी मुझे खबर दी कि तुम्हारे पास बड़ा रहस्यपूर्ण गुप्त ज्ञान है। मैं उसी को जानने आया हूं। नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक, तुम मेरी सेवा में रहो, तैयारी करो। जब तुम तैयार हो जाओगे तब मैं गुप्त ज्ञान तुम्हें दे दूंगा। उस आदमी ने कहा कि ठीक है; सेवा शुरू करने के पहले मैं यह भी पूछ लेना चाहता हूं कि तैयारी की कसौटी, मापदंड क्या होगा कि मैं तैयार हो गया! नसरुद्दीन ने कहा, मापदंड यह होगा जिस दिन तुम यह

कहने की हिम्मत जुटा सकोगे कि जो गुप्त ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूं तुम उसे गुप्त रखने में समर्थ हो गए हो और किसी को बताओगे नहीं। उस आदमी ने कहा कि बात बिल्कुल ठीक है।

तीन वर्ष सेवा की। बार-बार उसने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा, रुको, तैयार हो जाओ। आखिर तीन वर्ष पर उसने कहा, अब मैं बिल्कुल तैयार हो गया हूं। और आप जो भी ज्ञान मुझे देंगे मैं उसे गुप्त रखूंगा।

नसरुद्दीन ने कहा, तब बात खतम हो गई। क्योंकि मेरे गुरु ने भी मुझसे यही कहा था कि जो भी ज्ञान मैं तुम्हें दे रहा हूं, गुप्त रखना। मैं भी गुप्त रखे हूं। और तुम गुप्त रख सकते हो तो मैं भी गुप्त रख सकता हूं। तुमने मुझे समझा क्या है? और अब जब बात उठ ही गई है तो मैं तुम्हें बता दूं कि मेरे गुरु के गुरु ने भी यही कहा था। और मेरे गुरु ने भी मुझे कभी बताया नहीं। ऐसा सदा से चला आया है। और तुमको भी मैंने बताया नहीं, लेकिन इससे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। तुम शिष्य खोज सकते हो, बताने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

गुप्त ज्ञान चल रहे हैं। न तुम्हें पता है, न तुम्हारे गुरु को पता है, न तुम्हारे शिष्य को पता है। पता होना बड़ा कठिन है; इतना आसान नहीं है। लेकिन दावेदारी बहुत आसान है। तुम भी बताना चाहोगे। कोई पूछ भर ले। तुम प्यासे तड़प रहे हो, चारों तरफ घूम रहे हो कि कोई मिल भर जाए जो पूछ ले तुमसे कुछ, और तुम बता दो।

एक बड़े मनोवैज्ञानिक के संबंध में मैंने सुना है कि वह एक बड़े अमीर आदमी की चिकित्सा कर रहा था, मनोविश्लेषण कर रहा था। एक दिन अमीर आदमी को आने में देर हो गई; कोई पांच-दस मिनट देर से पहुंचा।

उस मनोचिकित्सक ने बड़ी नाराजगी से कहा कि सुनो, अगर तुम न आए होते पांच मिनट और तो मैंने तुम्हारे बिना ही शुरू कर दिया होता!

आदमी इतना ज्यादा बताने को उत्सुक है कि तुम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि दूसरा आदमी सुनने को मौजूद भी है! जब तुम लोगों से बात करते हो तब दूसरा अक्सर मौजूद नहीं होता, भागने की तैयारी में होता है। लेकिन तुम बताने के लिए पकड़े रखते हो उसको। और जिन चीजों का तुम्हें कोई भी पता नहीं है। क्या पता है? ईश्वर का पता है? मोक्ष का पता है? स्वर्ग-नरक का पता है? पाप-पुण्य का पता है? शुभ-अशुभ का पता है? जीवन-मृत्यु का पता है? क्या पता है? लेकिन सबको तुम ऐसा मान कर चलते हो कि पता है। थोड़ी जांच-परख करो।

गुरजिएफ के पास जब रूस का एक बहुत बड़ा विचारक ऑसपेंस्की गया। और ऑसपेंस्की ने बड़ी ऊंची किताबें लिखी थीं। एक किताब तो उसकी अनूठी है मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में। अगर पांच किताबों के नाम मुझे लेने को कहा जाए तो एक उसकी किताब का नाम लूंगा। उसकी किताब हैः टर्शियम आर्गानम। बड़ी अनूठी गणित और दर्शन की किताब है। कभी हजार साल में एकाध वैसी किताब पैदा होती है। तो वह आदमी जग-जाहिर था। और गुरजिएफ को कोई भी नहीं जानता था। गुरजिएफ एक साधारण फकीर था। जब ऑसपेंस्की गया तब यह किताब प्रसिद्ध हो चुकी थी, छप चुकी थी। गुरजिएफ से ऑसपेंस्की ने कहा कि मैं कुछ पूछने आया हूं।

गुरजिएफ ने कहा, बताऊंगा। लेकिन पहले यह कोरा कागज हाथ में ले लो, बगल के कमरे में चले जाओ, और इस पर एक फेहरिस्त बना दो, एक तरफ लिख दो जो तुम जानते हो, और दूसरी तरफ लिख दो जो तुम नहीं जानते हो। क्योंकि तुम बड़े ज्ञानी हो, तुम्हारी किताब मैंने देखी है, तुम शब्दों के संबंध में बड़े कुशल हो। तो तुम साफ खुद ही लिख दो कि जो तुम जानते हो। उसकी हम कभी चर्चा न करेंगे। जब तुम जानते ही हो, बात खतम हो गई। और साफ-साफ लिख दो जो तुम नहीं जानते हो। बस उसकी मैं तुमसे चर्चा करूंगा।

ऑसपेंस्की ने लिखा है कि मेरी जिंदगी में इतना कठिन क्षण कभी आया ही न था। उस कागज को लेकर मैं कमरे में चला गया। और सर्दी के दिन थे, बरफ पड़ रही थी, और मेरे माथे से पसीना चूने लगा। कलम उठाऊं, समझ में न आए कि क्या लिखूं? क्या जानता हूं? इस गुरजिएफ ने तो मुसीबत में डाल दिया। बहुत बार कोशिश की कि हां, यह मैं जानता हूं। लेकिन जब लिखने गया तब मुझे साफ हो गया कि जानता तो यह भी मैं नहीं हूं। उधार है सब जानकारी, दूसरों से सीख ली है; अपना तो कोई भी अनुभव नहीं है।

घड़ी भर बाद आकर कोरा कागज गुरजिएफ को दे दिया, और कहा, कुछ भी नहीं जानता हूं; आप शुरू कर सकते हैं। और गुरजिएफ ने ऑसपेंस्की को और ही ढंग का आदमी बना दिया, एक अनूठा ही आदमी बना दिया; उसका सारा जीवन रूपांतरित कर दिया।

लेकिन उस रूपांतरण की बुनियाद रखी है ऑसपेंस्की के स्वीकार में कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। और बड़ा कठिन रहा होगा ऑसपेंस्की जैसे जग-जाहिर व्यक्ति को, जिसको लोग ज्ञानी समझते थे, उसे यह लिखना निश्चित ही मुश्किल पड़ा होगा, यह कहना मुश्किल पड़ा होगा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

जिस दिन तुम कह सकते हो कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तुम कोरे कागज की तरह हो जाते हो। और अब इस कोरे कागज पर कुछ लिखा जा सकता है।

"जो उसे भी जानने का ढोंग करता है जो वह नहीं जानता, वह मन से रुग्ण है।"

वह बीमार है। उसके इलाज की जरूरत है। इस अर्थ में सभी लोग बीमार हैं। क्योंकि तुमने सभी ने दावे किए हैं उन बातों को जानने के जिन्हें तुम बिल्कुल नहीं जानते।

"और जो रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानता है, वह मन से रुग्ण नहीं है।"

लेकिन अगर तुम पहचान लो अपनी इस रुग्ण दशा को, तो तुम स्वस्थ होने शुरू हो गए। जिस आदमी को समझ में आ जाए कि मैं जानता तो नहीं हूं, लेकिन दावा करता हूं, उसका सुधार शुरू ही हो गया। वह यात्रा पर चल पड़ा। उसकी बदलाहट निकट है। उसका इलाज प्रारंभ हो गया। उसके जीवन में औषधि आ गई। ऐसा ही जैसे रात सपने में अगर तुम्हें पता चल जाए कि यह सपना है, तो नींद टूट जाती है। जब तक पता चलता है, यह सपना नहीं है, सत्य है, तभी तक नींद रहती है। पता चलना शुरू हुआ कि यह सपना है कि सपना गया। तुम आधे जागे हो ही गए।

ठीक ऐसे ही अगर मन के रोग तुम्हें पहचान में आ जाएं। और यह बड़ा से बड़ा रोग है। मनुष्यता ज्ञान से बिल्कुल विक्षिप्त हो गई है। तुम्हें समझ में आ जाए कि यह रोग है, जानता तो मैं कुछ भी नहीं हूं। तत्क्षण तुम सरल होने लगोगे, तुम्हारी ग्रंथियां खुल जाएंगी।

"संत मन से रुग्ण नहीं हैं।"

और लाओत्से कहता है, वही संत है जो साफ-साफ जानता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता। जितना तुम जागोगे उतना ही तुम्हें पता चलेगा कि तुम क्या जानते हो! एक ऐसी घड़ी आती है कि सब ज्ञान खो जाता है; तुम परम अज्ञान में खड़े रह जाते हो। उस परम अज्ञान के मौन का कोई मुकाबला नहीं है। उस परम अज्ञान की शांति का कोई मुकाबला नहीं है। उस परम अज्ञान में बड़ा प्रकाश है। और तुम्हारे ज्ञान में महा अंधकार था। उस परम ज्ञान--या परम अज्ञान--के क्षण में अचानक तुम खो गए, मिट गए, पिघल गए, और तुम्हारी जगह कुछ और अवतरित होने लगा। वही सत्य है। वही ब्रह्म है।

"संत मन से रुग्ण नहीं हैं। क्योंकि वे रुग्ण मानसिकता को रुग्ण मानसिकता की तरह पहचानते हैं, इसलिए मन से रुग्ण नहीं हैं।"

बड़ी अनूठी क्रांति घटित होती है अगर तुम अपनी स्थिति को ठीक-ठीक पहचान लो। स्थिति को ठीक-ठीक पहचान लेना, क्रांति शुरू हो गई। अगर कोई पागल आदमी मान ले और जान ले कि पागल है, वह आदमी ठीक होना शुरू हो गया। पागल कभी नहीं मानते। पागलखाने में जाकर तुम देखो, कोई पागल मानने को राजी नहीं हो सकता कि वह पागल है। सारी दुनिया को पागल समझता है, खुद को पागल नहीं समझता।

जो लोग पागलों की चिकित्सा करते हैं, वे कहते हैं कि जब कोई पागल यह समझने लगता है कि वह पागल है, तब हम जानते हैं कि अब वह ठीक होने के करीब आ गया। क्योंकि इतना होश आ जाना कि मैं पागल हूं, काफी ठीक हो जाना है। कौन जानेगा कि मैं पागल हूं! जो जान रहा है वह पागलपन से अलग हो गया, भिन्न हो गया। मन दूर रह गया; चेतना ऊपर उठ गई। तभी तो चेतना जान सकती है कि मैं पागल हूं।

अब यह तो बड़ी अदभुत बात हो गई। यह तो ऐसा उलटा हो गया हिसाब कि जो समझते हैं कि हम पागल नहीं हैं वे पागल हैं। और जो समझते हैं कि हम पागल हैं वे पागल नहीं हैं।

तुम्हें कभी ख्याल आया कि तुम पागल हो? कभी तुम शांत होकर भीतर मन को देखे कि कितना पागलपन चल रहा है? कभी एक कोरे कागज को लेकर बैठ जाओ और मन में जो भी चलता हो लिख डालो। जैसा चलता हो वैसा ही लिख डालो; जरा भी बदलो मत। तुम बड़े हैरान होगे, तुम पाओगे कि यह तो बिल्कुल पागलपन है।

लेकिन तुम पीठ किए खड़े हो अपने ही मन की तरफ, और तुम्हारा पागलपन बढ़ता जाता है। हर आदमी पागल होने के करीब है। मनसविद कहते हैं कि सौ में से पचहत्तर आदमी बिल्कुल पागलपन के करीब ही खड़े हैं। जरा सा धक्का--दिवाला निकल जाए, पत्नी मर जाए, बच्चा मर जाए, कोई एक्सीडेंट हो जाए, आग लग जाए मकान में--जरा सा धक्का, और वे पागल हो जाएंगे। वे निन्यानबे डिग्री पर हैं। एक डिग्री और, सौ डिग्री पर वे पागल हो जाएंगे।

हर आदमी करीब-करीब पागलपन के करीब है, मगर पता किसी को भी नहीं। मजे से तुम जीए चले जाते हो; अपने पागलपन को भीतर दबाए रखते हो, बाहर एक चेहरा बनाए रखते हो। इस चेहरे के पीछे झांकना जरूरी है। अन्यथा खतरा है कि तुम कभी पागल हो जाओगे। या तो मनुष्य विक्षिप्त हो सकता है या विमुक्त हो सकता है, दो उपाय हैं। जो विमुक्त न होगा वह विक्षिप्त हो जाएगा। और जिसे विक्षिप्त होने से बचना हो उसे विमुक्त होने की चेष्टा करनी चाहिए। और विमुक्त होने का पहला लक्षण कि तुम अपने पागलपन को ठीक-ठीक पहचान लो, सब तरफ से उसका निरीक्षण कर लो। इस निरीक्षण में ही तुम पाओगे कि तुम मालिक होने लगे। मन का ठीक-ठीक निरीक्षण तुम्हें मन का मालिक बना देगा।

और अगर तुम अपने रोग को जान लो, जैसा रोग है, तो एक बड़ी सूत्र की बात है। शरीर की चिकित्सा में निदान के बाद औषधि की जरूरत पड़ती है, डायग्नोसिस पहले। और जो लोग शरीर की चिकित्सा करते हैं उन्हें पता है कि असली चीज डायग्नोसिस है; निदान बड़ी से बड़ी चीज है; औषधि तो कोई भी बता देगा, एक दफा निदान हो जाए बीमारी का। तो ठीक से समझा जाए तो नब्बे प्रतिशत तो निदान और दस प्रतिशत औषधि--शरीर की चिकित्सा में। मन की चिकित्सा में सूत्र और भी गहन है। वहां तो सौ प्रतिशत निदान। क्योंकि निदान ही वहां चिकित्सा है। तुम अगर ठीक से जान लो कि तुम्हारी बीमारी क्या है, बात समाप्त हो गई। तुम सचेतन हो जाओ बीमारी के प्रति, तुम्हारी सचेतना की अग्नि में ही बीमारी राख हो जाती है।

इसलिए ज्ञानियों ने एक ही बात कही है बार-बार, हजार बार, कि तुम जाग जाओ तो मन समाप्त हो जाता है; तुम होश से भर जाओ, बस इतना ही काफी है। बुद्ध ने कहा है, सम्यक स्मृति, राइट माइंडफुलनेस।

कृष्णमूर्ति चिल्लाए चले जाते हैं, अवेयरनेस, जागो, होश सम्हाल लो। कबीर कहते हैं, सुरति, होश। महावीर से किसी ने पूछा, साधु कौन? तो महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि। जो सोया हुआ नहीं, वह साधु, वह मुनि। और असाधु कौन? तो महावीर ने कहा, सुत्ता अमुनि। जो सोया हुआ है, जो जागा हुआ नहीं, वह असाधु। महावीर ने यह नहीं कहा कि जो बुरा करता है वह असाधु; महावीर ने यह नहीं कहा कि जो भला करता है वह साधु। महावीर ने कहा, जो जागा हुआ है वह साधु, और जो सोया हुआ है वह असाधु।

तुम्हारे सोए होने में ही सारा रोग है। तुम्हारे जागने में ही निदान है।

आज इतना ही।

एक सौ सोलहवां प्रवचन

संत स्वयं को प्रेम करते हैं

Chapter 72

On Punishment (1)

When people have no fear of force,
Then (as is the common practice) great force
descends upon them.
Despise not their dwellings,
Dislike not their progeny.
Because you do not dislike them,
You will not be disliked yourself.
Therefore the Sage knows himself, but does not show himself,
Loves himself, but does not exalt himself.
Therefore he rejects the one (force) and accepts
the other (gentility).

अध्याय 72

दंड (1)

जब लोगों को बल का भय नहीं रहता,
तब, जैसा आम चलन है, उन पर महाबल उतरता है।
उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो,
उनकी संतति का तिरस्कार मत करो।
क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते,
इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।
इसलिए संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं,
वे अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं।
इसलिए एक को, शक्ति को, वे अस्वीकार करते हैं,
और दूसरे को, कुलीनता को, स्वीकार करते हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक वे जो अंधेरे में जीते हैं और दूसरे वे जो आलोक में जीते हैं।

अंधेरे में जीने वाले को स्वयं का कोई पता नहीं। और जिसे स्वयं का पता नहीं है उसे दूसरों का क्या पता हो सकता है। उसका सारा जीवन ही एक गहन भ्रांति होता है। उसका जीवन ऐसा है जैसा एक सपना, जो निद्रा में देखा गया है और जागने पर जिसकी धूल भी हाथ में नहीं आती।

जो आलोक में जीता है--आलोक का अर्थ ही है कि वह स्वयं के प्रकाश को उपलब्ध हुआ--वह अपने को भी देखता है, दूसरे को भी देखता है। उसका जीवन आंख वाले का जीवन है, जाग्रत का जीवन है। उसके जीवन में ही सत्य की प्रतीति होती है।

जो अंधेरे में जीता है उसका सारा जीवन भय की एक लंबी कथा होगी। वह भयभीत ही जीएगा। कारण स्पष्ट है। जिसे अपना पता नहीं वह कंपता ही रहेगा। उसके पास खड़े होने की जगह नहीं। और उसे खुद का भरोसा नहीं है। उसे यह भी भरोसा नहीं है कि वह है भी या नहीं। उसे यह भी पक्का पता नहीं है--कहां से आता है, कहां जाता है। कुछ सूझ-बूझ नहीं पड़ता; अंधेरे में टटोलता है। अंधे आदमी की तरह कोशिश करता है कि मार्ग को खोज ले। लेकिन सिवाय भटकन के और कुछ हाथ लगता नहीं।

अंधेरे में जीने वाला आदमी जीवन भर भयाक्रांत जीता है। यह उसका लक्षण है। हर चीज भय से ही उठती है उसके भीतर। अगर वह धन कमाता है तो भय के कारण; शायद धन से सुरक्षा मिल जाए। अगर वह नैतिक आचरण करता है तो भय के कारण कि शायद नीति कवच बन जाए। अगर वह मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है तो भय के कारण कि शायद परमात्मा का सहारा मिल जाए। भयभीत आदमी का परमात्मा भी भय का ही एक रूप होता है। उसका भगवान उसके भय से ही जन्मता है। वह उसका अनुभव नहीं है; वह उसके भय का प्रक्षेपण है। मानता है परमात्मा को, क्योंकि बिना माने और भी भयभीत होगा। विश्वास से थोड़ा सा भय को सहारा मिलता है, थोड़ी सांत्वना मिलती है। रात अंधेरी भला हो, लेकिन कोई ऊपर बैठा है जो देखता है। कितनी ही जीवन में अर्थहीनता हो, लेकिन अंततः किसी परमात्मा ने सृष्टि को बनाया है; जरूर कोई अर्थ होगा। और मुझे पता न हो, लेकिन उसे पता है। मैं भटकूं, लेकिन अगर उसकी शरण गया तो वह मुझे उठा लेगा। ऐसा भयभीत आदमी सोचता है।

मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे ऐसे भयभीत आदमियों से भरे हुए हैं। वस्तुतः भयभीत आदमी ही वहां जाता है। अंधे ही वहां इकट्ठे होते हैं। अमावस की गहरी रात में ही तुम्हारे सारे तीर्थों का जन्म है। तुम्हारी पूजा, तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारी स्तुतियों की विधियां, गौर से देखना, तुम्हारे भय से उठी हैं। तुम डर रहे हो। तुम कंप रहे हो। वह कंपन ही तुम प्रार्थना बना लेते हो। उसी कंपन से ओंकार का नाद उठ रहा है। ऐसे ही जैसे अंधेरी रात में कोई आदमी एकांत गली से गुजरता है, जोर से गीत गुनगुनाने लगता है। जिसने कभी गीत न गाया उसको भी अंधेरे में गीत गाने का ख्याल आता है। क्या होगा कारण? अपनी ही आवाज को सुन कर लगता है, अकेला नहीं हूं। जोर से अपनी ही आवाज की गूंज में अंधेरे और स्वयं के बीच एक पर्दा खड़ा हो जाता है। गुनगुनाहट हिम्मत दे देती है। कदमों में बल आ जाता है। पर यह सब गुनगुनाहट, यह सब बल उठ रहा है भय से।

भय से कहीं शक्ति का जन्म हुआ है? इसलिए तो सारा धर्म करीब-करीब व्यर्थ चला जाता है। क्योंकि सारा धर्म मनुष्य के भय से जुड़ जाता है।

यह जो भयभीत आदमी है इसकी मनस-दशा को ठीक से समझ लेना चाहिए, क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर तुम्हारी मनस-दशा भी इसी भयभीत आदमी की मनस-दशा होगी। और तुमने अगर इसे ठीक से न

समझा तो तुम दूसरी तरह के आदमी कभी भी न बन सकोगे। इस भयभीत आदमी को न तो प्रेम का कोई उपाय है, न प्रार्थना का। क्योंकि प्रेम तो तभी जन्मता है जब भय समाप्त हो जाता है। और प्रार्थना तो अभय में पैदा होती है। अभय की भूमि चाहिए, तभी प्रार्थना का बीज खिलता है। और अभय से उठे स्वर ही परमात्मा तक पहुंचते हैं।

भयभीत आदमी क्यों भयभीत है? उसके भय का मूल कारण क्या है?

मूल कारण हैः अमावस की अंधेरी रात में, आत्म-अज्ञान की अंधेरी रात में मौत ही सत्य मालूम होती है, जीवन सत्य मालूम नहीं होता। मौत प्रतिपल आती मालूम होती है, और जीवन तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। जीवन के नाम पर तो आपाधापी मालूम होती है, व्यर्थ की दौड़ मालूम होती है, जिसका कोई प्रयोजन, जिसका कोई अर्थ कहीं दिखाई नहीं पड़ता। और मृत्यु प्रतिपल आती मालूम पड़ती है, हर क्षण उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ती है। जगह-जगह वही द्वार पर दस्तक देती है। अंधेरी रात में तुम क्यों डर जाते हो? मौत मालूम होने लगती है सब तरफ छिपी हुई; कहीं पत्ता भी हिलता है तो लगता है मौत के चरण पड़ रहे हैं। हवा का झोंका द्वार को खटखटाता है, लगता है, मौत ने दस्तक दी।

जैसी अंधेरी रात में दशा होती है, उससे भी भयंकर दशा आत्म-अज्ञान की है। क्योंकि अंधेरी रात का अंधेरा तो बाहर है, आत्म-अज्ञान का अंधेरा भीतर है। भीतर का अंधेरा बहुत गहन है। भयभीत, अंधेरे में डूबा आदमी मौत को ही सच मानता है, जीवन को नहीं। जीवन तो अभी आया, अभी गया। जीवन तो ऐसा है, अंधेरी रात में जैसे जुगनू की चमक; हुई कि न हुई। और इस जुगनू की चमक का उपयोग भी क्या करोगे? उस जुगनू की चमक में जी तो नहीं सकते। उस जुगनू की चमक से कोई प्रकाश तो नहीं हो सकता, कोई रास्ता तो दिखाई नहीं पड़ सकता। वस्तुतः जुगनू की चमक के बाद रात का अंधेरा और घना हो जाता है। ऐसा ही अंधेरे में जीने वाले आदमी का जीवन है--जुगनू की चमक की भांति। अंधेरा भयंकर है, और जीवन बस जुगनू जैसा है। मौत व्यापक है, विराट है, और जीवन बस जरा सी चहल-पहल है। फिर मौत आएगी, पर्दा गिरेगा, सब मिट्टी में मिट्टी मिल जाएगी।

घबड़ाहट स्वाभाविक है। अगर तुम मिट्टी से ही बने हो तो अभय हो भी कैसे सकता है? अगर तुम मिट्टी के ही पुतले हो और अभी तभी गिरे। जरा सी वर्षा आएगी और रंग-रोगन बह जाएगा। और जरा सा झोंका आएगा और तुम्हारा भवन गिर जाएगा। जरा सी देर की बात और है, और तुम कब्र पर पहुंच जाओगे; जिन्हें तुमने अपना कहा था वे ही तुम्हें चिता पर जला आएंगे। बस जरा सी देर और है। इस जरा सी देर को कोई कैसे जीवन माने? इस जरा सी देर के कारण ही कोई कैसे आश्वस्त हो? यह थोड़ा सा जो क्षणभंगुर जीवन है बुलबुले जैसा, इससे कैसे कोई भरोसा करे? डर स्वाभाविक है।

आलोक में जीने वाले आदमी का जीवन बिल्कुल भिन्न है। जिसने स्वयं को जाना उसने एक बात जानी कि मौत झूठ है, जीवन सत्य है। जिसने स्वयं को पहचाना, उसे पता चला, मैं तो अमृत हूं। मृत्यु न तो कभी हुई है और न कभी हो सकेगी। मृत्यु सबसे ज्यादा असंभव घटना है जो कभी हुई नहीं, कभी होगी भी नहीं; जिसका होना हो ही नहीं सकता। जो है वह मिट कैसे सकता है? रूप बदलते होंगे, वस्त्र बदलते होंगे, घर बदलते होंगे, यात्रा नये आयाम लेती होगी; लेकिन जो है वह सदा है, शाश्वत है।

पर यह तो दिखता है आलोक में। जैसे ही यह दिखाई पड़ता है कि मृत्यु नहीं है, भय विसर्जित हो जाता है। और तभी उठती है प्रार्थना। तब उस प्रार्थना में मांग नहीं होती। तब उस प्रार्थना में अनंत धन्यवाद होता है। और तभी जुड़ते हैं हाथ। लेकिन तब किसी तीर्थयात्रा पर जाने की जरूरत नहीं होती। तुम जहां हो, तुम जैसे हो,

वहीं चारों तरफ तीर्थ हो जाता है। सारा अस्तित्व तीर्थ हो जाता है; क्योंकि सब तरफ उसी अमृत की धुन बज रही है। जो तुम्हारे भीतर जागा है, आज तुम पाते हो इस जागरण के क्षण में कि सभी जगह वही जागा हुआ है। पत्ते-पत्ते में, पत्थर-पत्थर में वही झांक रहा है। जो अमृत धुन तुम्हारे भीतर बजी है वही धुन सारे लोक-लोकांतर में बज रही है। चांद-तारों में भी उसी की गूंज है। नदी-झरनों में भी उसी का गीत है। पशु-पक्षियों में भी उसी के बोल हैं।

जिस दिन तुम अपने को पहचान लेते हो, अचानक तुम सारे अस्तित्व को पहचान लेते हो। उस पहचान से भय तो विसर्जित हो जाता है और जन्म होता है प्रेम का। अज्ञान के साथ भय है, ज्ञान के साथ प्रेम है। और दुनिया में दो तरह के आदमी हैं। एक जो भय के आधार से जीते हैं। वे जीते क्या हैं, उनका जीना नाम मात्र को है। और दूसरे जो प्रेम के आधार से जीते हैं। उनका ही जीवन है। भय से तो केवल लोग मरते हैं, बार-बार मरते हैं। कहावत है, कायर हजार बार मरता है। हजार भी कम है। कायर प्रतिपल मरता है, क्योंकि मौत हर घड़ी मालूम पड़ती है। सब तरफ मौत ही दिखाई पड़ती है। कायर मरा हुआ ही जीता है। सिर्फ ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति एक बार मरता है; कायर हजार बार मरता है।

ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति एक बार मरता है। वह मरण भी बड़ा अनूठा है। वही मरण तो रूपांतरण है भय से प्रेम में। वही मरण तो रूपांतरण है अंधकार से प्रकाश में। वही मरण क्रांति है। उसी को हम समाधि कहते हैं। पुराना मर जाता है; नये का जन्म होता है। और ऐसे नये का जन्म होता है जो फिर कभी पुराना नहीं पड़ता। क्योंकि जो पुराना पड़ जाए वह नया है ही नहीं; जो आज नया है, कल पुराना पड़ जाएगा। वह आज भी क्या खाक नया था जिसको थोड़ा सा समय पुराना कर देगा? ऐसे नये का जन्म होता है जो सनातन, शाश्वत नया है; जो फिर कभी पुराना नहीं पड़ता। उसी को हम धर्म की भाषा में परमात्मा कहते हैं।

मनुष्य मिट जाता है और परमात्मा का जन्म होता है। तुम जैसे हो वैसे खो जाते हो; तुम जैसे होने चाहिए उसका जन्म होता है। तुम तो बिल्कुल विलीन हो जाते हो अंधकार के साथ ही, क्योंकि तुम अंधकार की ही कृति थे। तुम अंधकार में ही बने थे; तुमने अंधकार में ही अपने को सम्हाला था; अंधकार ही तुम्हारी ईंट थी जिससे तुम्हारे जीवन का भवन बना था। मौत के आधार पर तुमने नींव रखी थी। जैसे ही तुम प्रकाश में आते हो वह सब व्यर्थ हो जाता है। तुम्हारी नींव, तुम्हारा भवन, तुम्हारा जीवन, तुम्हारी नीति, तुम्हारा आचरण, सब व्यर्थ हो जाता है। वह अंधकार के साथ ही गिर जाता है। जैसे सुबह जाग कर सपना गिर जाता है, ऐसे ही प्रकाश में उठ कर अंधकार और अंधकार का जीवन गिर जाता है।

ये दो प्रकार के मनुष्य हैं। और तुम ठीक से अपने को पहचान लेना कि तुम किस प्रकार के हो। तुम्हारा अहंकार तो कहेगा कि तुम दूसरे प्रकार के हो। और तुम्हारी असलियत को अगर तुम देखोगे तो तुम पाओगे कि तुम पहले प्रकार के हो। और अगर तुमने धोखा दे लिया कि तुम दूसरे प्रकार के हो तो तुम दूसरे प्रकार के कभी भी न हो पाओगे। इसी को लाओत्से ने मानसिक रुग्णता कहा है।

जो तुम हो वैसा ही अगर अपने को तुमने जाना तो क्रांति शुरू हो गई। अगर तुम यह भी पहचान लो कि तुम भय से भरे हुए व्यक्ति हो, इतना बोध भी भय के बाहर जाने के लिए पहला कदम हो गया। अगर तुम यह पहचान लो कि तुम मंदिर भय के कारण जाते हो तो व्यर्थ ही जाते हो, क्योंकि भय से तो परमात्मा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। तुम अगर प्रार्थना भय के कारण करते हो तो जिससे तुम भय के कारण प्रार्थना करते हो उसे तुम प्रेम नहीं कर सकते। भय से कहीं प्रेम उपजा है? भय से घृणा पैदा हो सकती है, प्रेम नहीं। जिससे तुम भयभीत हो वह दुश्मन मालूम होता है, मित्र नहीं। डर के कारण भला तुम उसकी खुशामद करो। तो तुम्हारी

स्तुतियां परमात्मा की खुशामद से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन अगर तुम गहरे में झांकोगे तो अपने ही भीतर तुम परमात्मा के प्रति विरोध पाओगे। क्योंकि जो तुम्हें डरा रहा है उसे तुम प्रेम कैसे कर सकते हो!

एक शब्द है, धार्मिक लोगों के लिए उपयोग में आता हैः ईश्वर-भीरु, गॉड-फियरिंग। इससे गलत कोई शब्द नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी को हम कहते हैं ईश्वर-भीरु, ईश्वर से डरा हुआ।

धार्मिक आदमी डरा हुआ होता ही नहीं; ईश्वर से तो बिल्कुल ही नहीं। ईश्वर से और भयभीत? तो फिर तुम अभय कहां पाओगे? फिर तो कोई शरण न रही। अगर ईश्वर भी डराता है तो फिर तो इस जगत में कोई उपाय न रहा कि तुम अभय को उपलब्ध हो जाओ। फिर क्या शैतान की शरण जाकर तुम अभय को उपलब्ध होओगे? अगर ईश्वर से भी भय है, तब तुम बचोगे कहां? तुम कहां छिपाओगे अपना सिर?

नहीं, ईश्वर-भीरु शब्द एकांत रूप से गलत है, पूर्ण रूप से गलत है। धार्मिक व्यक्ति भीरु नहीं होता, अधार्मिक व्यक्ति भीरु होता है। हालांकि अधार्मिक व्यक्ति भी प्रार्थना-पूजा करता मिल जाएगा। अक्सर तो यह होगा कि अधार्मिक ही पूजा-प्रार्थना करता मिलेगा, क्योंकि वह भयभीत है। अपने भय को मिटाने के लिए उसे कुछ उपाय करना जरूरी है। वह कंप रहा है, उसे सहारा लेना जरूरी है। धार्मिक व्यक्ति का पूरा जीवन प्रार्थना होता है। वह प्रार्थना करता नहीं; उसका होने का ढंग प्रार्थना है। वह मंदिरों-मस्जिदों में नहीं जाता; वह जहां भी जीता है वहीं मंदिर-मस्जिद बन जाते हैं। उसके होने में छिपा है उसका राज। उसके उठने-बैठने में, उसकी धड़कन-धड़कन में, उसकी श्वास-श्वास में प्रार्थना छिपी है। शब्दों से वह कहे, न कहे। और शब्दों से कहने को है क्या?

परमात्मा से जब तुम शब्दों में बात करने लगते हो तभी तुम चूक जाते हो। क्योंकि परमात्मा की भाषा शब्द नहीं है। परमात्मा की भाषा मौन है। जब तुम कुछ कहते हो तब तुम यह मान ही लेते हो कि परमात्मा को भी तुम्हारे सलाह की, तुम्हारे कहने की जरूरत है। तुम कहोगे तब उसे पता चलेगा? तुम उसे इतना अज्ञानी मान रहे हो? अस्तित्व को तुम्हारा पता नहीं है? तुम कहोगे तब, निवेदन करोगे तब। और क्या तुम निवेदन करोगे तुम्हारे अज्ञान में? क्या तुम मांगोगे? जो तुम मांगोगे वह जहर होगा। जो भी तुम मांगोगे, मांग कर उलझोगे, मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि मांग उठेगी तुम्हारे अंधकार से; मांग उठेगी तुम्हारे अज्ञान से।

तो प्रार्थना न तो मांग है, प्रार्थना न तो शब्द है, न निवेदन है; प्रार्थना तो हृदय की एक भाव-दशा है। प्रार्थना तो होने की एक शैली है। उसके लिए कोई मंदिर-मस्जिद, कोई तीर्थ आवश्यक नहीं। उसके लिए तो तुम्हें अपने को बदलना होगा। ये तो उन आदमियों की तरकीबें हैं--तीर्थ, मंदिर, मस्जिद--जो अपने को नहीं बदलना चाहते। जो अंतर्यात्रा पर जाने को राजी नहीं हैं वे तीर्थयात्रा पर निकल जाते हैं।

तीर्थयात्रा पलायन है। जाना था भीतर, चल दिए काशी, काबा, कैलाश। इस तरह अपने को भ्रांति हो जाती है कि बड़ा कृत्य कर रहे हैं, धर्मयात्रा हो रही है। जाना था स्वयं में। स्वयं तो यहीं मौजूद था। तीर्थ में पहुंच कर स्वयं का होना ज्यादा नहीं हो जाएगा। इतना ही रहेगा जितना यहां है। और अगर भीतर मुड़ना था तो यहां भी मुड़ सकते थे; कहीं भी मुड़ सकते थे। भीतर के मुड़ने का स्थानों से कोई संबंध, लेन-देन नहीं है। ऐसा नहीं है कि पृथ्वी पर कुछ स्थान हैं जहां भीतर मुड़ना आसान है। मनोदशाएं हैं जहां भीतर मुड़ना आसान है, स्थान नहीं। और मनोदशाएं तुम्हारे हाथ की बात है।

इस बात को ठीक से समझ लो, भय में कोई धार्मिक नहीं हो सकता और भय में कोई आस्तिक नहीं हो सकता। भय में जो आस्तिकता है वह झूठी है, वह खोटा सिक्का है। उसे तुम यहां भला चला लो, यहां भला लोगों

को तुम धोखा दे लो, क्योंकि लोग भी तुम जैसे ही अंधकार में हैं, कुछ अड़चन नहीं है उनको धोखा देने में; लेकिन तुम परमात्मा को धोखा न दे पाओगे, तुम समग्र को धोखा न दे पाओगे। तुम्हें भय के बाहर आना होगा।

इस भय के कारण ही तुम्हारा धर्म, तुम्हारा समाज, तुम्हारी सभ्यता, तुम्हारी संस्कृति, सब भय-आधारित हो गए हैं। राज्य भी तुम्हें डराता है; तभी तुम्हें काबू में रख पाता है। धर्मगुरु भी तुम्हें डराते हैं; तभी तुम्हें काबू में रख पाते हैं। तुम जहां जाओ वहीं तुम्हारे लिए दंड का विधान है। तुम इतने भयभीत हो कि तुम एक ही भाषा समझते हो जो दंड की है, या पुरस्कार की है, वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

छोटे बच्चे और बड़े-बूढ़ों में कोई फर्क मालूम नहीं होता, कोई विकास होता नहीं दिखाई पड़ता। छोटे बच्चे को स्कूल में हम डराते हैं कि पिटेगा, मारा जाएगा, दंड दिया जाएगा, अगर ठीक व्यवहार न किया। और अगर ठीक व्यवहार किया तो पुरस्कृत किया जाएगा, मिठाइयां भेंट मिलेंगी। वही खेल जारी है बूढ़े आदमी को भी। अगर ठीक से जीए तो स्वर्ग, अगर जरा गैर-ठीक जीए कि नरक। बच्चों में और बूढ़ों में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। वही भय और प्रलोभन का जाल है। राज्य भी वही करता है। अगर ठीक-ठीक व्यवहार किया तो भारत-रत्न बन जाओगे; अगर ठीक व्यवहार न किया तो कारागृह में सड़ोगे। नीति भी वहीः ठीक व्यवहार किया तो समाज सिर आंखों पर ले लेगा; अगर जरा समाज की लीक से यहां-वहां हटे कि निंदा के स्वर गूंज उठेंगे, आंखों में सब तरफ तुम्हें अपमान ही दिखाई पड़ेगा, सम्मान खो जाएगा। यह भयभीत आदमी के कारण राज्य भी, धर्म भी, नीति भी, सब भयभीत आदमी को सम्हालने के लिए भय से भर गए हैं।

जो आदमी प्रेम को उपलब्ध होता है--और प्रेम को उपलब्ध आदमी ही संतत्व को उपलब्ध होता है--वह भय से नहीं जीता; न भय के आधार से उसकी नीति होती है। तुम अगर दान देते हो तो भय के कारण कि नरक जाने से बच जाओ, कि स्वर्ग का पुरस्कार मिले। प्रेम से भरा हुआ आदमी देता है, क्योंकि देने में आनंद है; देने के बाहर और कोई उपलब्धि नहीं है। देता है, क्योंकि देना इतनी अदभुत मनोस्थिति है, देने में ऐसे फूल खिल जाते हैं भीतर आत्मा में जो और किसी तरह नहीं खिलते, देने के क्षण में ऐसी वीणा बजने लगती है हृदय में जो और कभी नहीं बजती। देने के बाहर कोई पुरस्कार नहीं है; देने में ही पुरस्कार है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लो, क्योंकि तुम्हारे भय के कारण सब सिद्धांत विकृत हो गए हैं। तुम्हें समझाया जाता रहा है कि अगर तुम अच्छा कर्म करोगे तो अगले जीवन में अच्छा जीवन पाओगे; अगर बुरा कर्म करोगे तो अगले जीवन में बुरा जीवन पाओगे।

अगले जीवन तक रुकने की जरूरत क्या है? आग में हाथ अभी डालोगे, अभी जलोगे कि अगले जीवन में जलोगे? फूल को नाक के पास ले जाओगे तो नासापुट अभी गंध से भर जाएंगे कि अगले जीवन में भरेंगे? अगले जीवन तक टालने की जरूरत क्या है? यह तुम्हारा परमात्मा बड़ा उधार मालूम पड़ता है। परमात्मा तो बिल्कुल नगद है; अभी है। कल तक टालने की जरूरत क्या है? अस्तित्व कुछ भी टालता नहीं। अभी तुम झाड़ से गिरोगे तो फ्रैक्चर अभी होगा कि अगले जीवन में होगा? ग्रेविटेशन का नियम अभी परिणाम दे देगा, इसी क्षण दे देगा। कौन हिसाब रखेगा इस सब का कि तुम अगले जीवन में चढ़े थे वृक्ष पर और अब इस जीवन में गिरोगे? इस जीवन में चढ़ोगे और अगले जीवन में गिरोगे, कौन यह हिसाब रखेगा? कहां यह हिसाब रहेगा?

नहीं, प्रकृति बिल्कुल नगद है। तुम अभी क्रोध करो, अभी जलोगे, अभी झुलसोगे, अभी पा लोगे कष्ट। तुम अभी पुण्य करो, अभी हर्षोन्माद से भर जाओगे, अभी तुम्हारे जीवन में एक पुलक और नृत्य आ जाएगा। जीवन नगद है। लेकिन भयभीत आदमी ने उसको भी उधार करवा लिया है। क्योंकि भयभीत आदमी आज को तो मान ही नहीं सकता। भयभीत आदमी सदा यह चेष्टा कर रहा है कि आज तो गया ही उसके लिए, कल को सम्हाल ले।

भयभीत आदमी को आज तो जाया हुआ मालूम पड़ता है, जा चुका; अब उस पर हाथ कहां है? कल सम्हल जाए किसी तरह।

लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, यह जीवन तो गया।

तुम आए कैसे अगर यह जीवन जा चुका? तुम यहां मेरे पास बैठे हो भले-चंगे, श्वास ले रहे हो, मुझे देख रहे हो, बोल रहे हो। तुम कहते हो, यह जीवन जा चुका। तुम किसको धोखा दे रहे हो? तुम कुछ भी करना नहीं चाहते, इसलिए अब तुम कह रहे हो जीवन जा चुका।

अब तो कुछ ऐसा बताएं, वे मुझसे कहते हैं, कि अगली सुधर जाए, आने वाला जीवन सुधर जाए।

भयभीत आदमी हमेशा कल की तरफ देखता है; अभय से भरा आदमी आज को जीता है। भयभीत आदमी के कारण कर्म का पूरा सिद्धांत विकृत हो गया। कर्म का सिद्धांत सीधा-साफ है कि तुम करो, तत्क्षण फल है। मैं कहता हूं, तत्क्षण! एक क्षण का भी फासला नहीं है कर्म में और फल में। हो नहीं सकता। तुम अगर दान दोगे तो अभी आनंद पा लोगे। बात चुक गई। तुम अगर चोरी करोगे तो अभी पीड़ा पा लोगे। बात चुक गई। तुम क्रोध करोगे, अभी जलोगे-झुलसोगे। तुम ईर्ष्या से भरोगे, अभी जहर तुम्हारे भीतर फैल जाएगा। तुम्हारा जीवन एक फफोले, फोड़े की तरह हो जाएगा। तुम मवाद से भर जाओगे अभी।

अस्तित्व नगद है, इसे बहुत ख्याल में रख लेना। लेकिन तुम कहते हो कि आज क्रोध करेंगे, कल दंड मिलेगा। इससे सुविधा मिल जाती है कि कोई हर्जा नहीं, आज तो अब जो हो रहा है कर लो, कल का कल देखेंगे। और फिर पुरोहितों ने तुम्हें रास्ते भी बता दिए हैं कि अगर क्रोध हो जाए, कोई हर्जा नहीं। गंगा-स्नान कर लेना, पाप धुल जाते हैं। मंदिर में जाकर नारियल चढ़ा आना, पाप से छुटकारा हो जाएगा। इधर चोरी करना, उधर थोड़ा दान दे देना। इधर धोखा देना, उधर जाकर एक मंदिर या धर्मशाला बनवा देना।

दूसरी बात तुम ख्याल ले लोः बुरे कर्म को किसी अच्छे कर्म से काटा नहीं जा सकता, न किसी अच्छे कर्म को किसी बुरे कर्म से काटा जा सकता है। अच्छे और बुरे कर्म का मिलन ही नहीं होता। वे तो रेल की पटरियों की भांति समानांतर चलते हैं; कहीं उनका कोई मिलन नहीं होता। लेकिन भयभीत आदमी ने सोच रखा है कि कर लेंगे कुछ उपाय, कुछ धोखा दे देंगे। और मिलन हो भी जाए तो कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि बुरे को करने में ही बुरे का फल मिल गया। अब करोगे क्या? भले को करने में भले का फल मिल गया। कर्म संचित नहीं होते; प्रतिपल निपट जाते हैं।

इसीलिए तो इस बात की संभावना है कि अगर तुम परिपूर्ण मन से पुकारो तो इसी क्षण मुक्त हो जाओगे। नहीं तो तत्क्षण मुक्ति का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। कितने जन्मों से तुम जी रहे हो? कितने कर्म तुमने इकट्ठे कर लिए हैं? अगर सब का हिसाब होना है तो कोई उपाय नहीं है।

मैंने सुना है, एक ईसाई फकीर बोल रहा था। ईसाइयों की मान्यता है कि एक जजमेंट, आखिरी निर्णय का दिन होगा, कयामत का, जब सब मुर्दे उठाए जाएंगे और परमात्मा निर्णय करेगा। जब वह फकीर बोल रहा था, मुल्ला नसरुद्दीन कंप रहा था, घबड़ा रहा था। सुन रहा था उसको; वह बड़ा ही वीभत्स वर्णन कर रहा था कि कैसे-कैसे कष्ट लोगों को मिलेंगे जिन्होंने पाप किए हैं। तो हाथ-पैर भय से भी कंप रहे थे। और जीभ में लार भी आ रही थी, क्योंकि वह वर्णन कर रहा था स्वर्ग के भी--कैसे-कैसे भोग वहां मिलेंगे, कैसे-कैसे सुखों की वहां वर्षा होगी जिन्होंने पुण्य किए हैं।

फिर आखिर में मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा हुआ और उसने कहा, एक सवाल है; क्या एक ही दिन में सब निर्णय हो जाएगा? सब मुर्दों का जितने अब तक हुए? और उनके सब कर्मों का? उस आदमी ने कहा, हां। उसने

कहा, एक बात और। क्या औरतें भी वहां मौजूद रहेंगी कि सिर्फ आदमी? उसने कहा, औरतें भी रहेंगी। उसने कहा कि फिर कोई फिक्र नहीं; निर्णय हो नहीं सकता। एक दिन में! सारी औरतें! वे इतना कोलाहल मचाएंगी, और इतनी बकवास करेंगी; फिर कोई डर नहीं है।

ये सारे सिद्धांत भयभीत आदमी के कारण निर्मित हो गए हैं। न कहीं कोई कयामत का दिन है। और अगर कहीं है तो वह अभी है, इसी वक्त है। निर्णय आखिर में नहीं होगा। आखिर तो है ही नहीं अस्तित्व में। न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है। यह तो अनंत धारा है। जिसका प्रारंभ नहीं है उसका अंत कैसे होगा? आखिर तो कभी आएगा ही नहीं। तो फिर हिसाब कब होगा?

हिसाब प्रतिपल होता जाता है। हिसाब करना ही नहीं पड़ता, हिसाब तो नियम से प्रतिपल हो जाता है। तुम उलटे-सीधे चलो, गिरो, पैर टूट जाता है। तुम सम्हल कर चलो, घर बिना पैर तोड़े लौट आते हो।

प्रेम को उपलब्ध व्यक्ति जीवन के इस नगदपन को अनुभव कर लेता है तब फिर वह किसी भय के कारण बुराई से नहीं रुकता, न किसी लोभ के कारण भलाई करता है। वरन उसका अनुभव ही उसके जीवन की नीति हो जाती है। वह शुभ करता है, क्योंकि आनंद मिलता है शुभ करने में। करने से नहीं, करने में। और दुख मिलता है बुरा करने में; बुरा करने से नहीं। और प्रतिपल जीवन, जैसा तुम चलते हो, जैसा तुम होते हो, वैसा तुम्हें देता चला जाता है। एक अनूठी नीति का जन्म होता है प्रकाश को उपलब्ध आदमी में। वह नीति, दूसरों के साथ अच्छा करना, इस पर आधारित नहीं होती। क्योंकि प्रकाश को उपलब्ध व्यक्ति दूसरों की तरफ उन्मुख ही नहीं होता। वह नीति निर्मित होती है, क्योंकि अच्छा करने में आनंद है।

तुम्हें मैं यह बात कहूं, तुम्हें थोड़ी कठिन लगेगी, लेकिन समझने की कोशिश करना। ज्ञानी से ज्यादा स्वार्थी आदमी संसार में होता ही नहीं। स्वार्थ ही बच रहता है। लेकिन स्वार्थ शब्द बड़ा अच्छा है। उसका अर्थ होता है, स्वयं का अर्थ ही बच रहता है। शेष सब स्वार्थ से ही उठता है। परार्थ भी स्वार्थ की गंध है।

दूसरे के साथ अच्छा करो, यह बात ही गलत है। क्योंकि तुम अपने साथ अच्छा नहीं कर सके हो, दूसरे के साथ क्या खाक करोगे? तुम अभी अपने को प्रेम नहीं कर पाए, दूसरे को कैसे प्रेम करोगे? तुम अपने प्रति करुणावान नहीं हो, दूसरे के प्रति कैसे करुणावान हो जाओगे? तुम्हारे भीतर मरुस्थल है और दूसरे के लिए तुम वर्षा का मेघ बनना चाहते हो! तुम भीतर अंधेरे से भरे हो, दीया बुझा है, और दूसरों के बुझे दीयों को जलाने चले हो! तुम कृपा करना, कहीं तुम किसी का जला हुआ दीया मत बुझा देना। तुम अपने मरुस्थल को जरा दूर ही रखना। तुम भला सोचते हो दूसरे पर मेघ बना रहे हैं, तुम अपने मरुस्थल को मत दूसरे पर बरसा देना।

स्वार्थ को पहले उपलब्ध हो जाओ। पहले स्वयं का अर्थ समझ लो। पहले स्वयं में ठहर जाओ। पहले भूल जाओ सब को, ताकि तुम अपने को जान सको। और दूसरे तुम्हें बाधा न दें। एक बार तुम्हारे जीवन में स्वार्थ पूरा हो जाए, तुम अपने अर्थ को पूरा जान लो, और तुम्हारे जीवन का दीया जल जाए, फिर परार्थ तो अपने आप उठेगा।

जो प्रेम से भरा है वह प्रेम ही दे सकेगा। वह चाह कर भी घृणा नहीं दे सकता, घृणा उसके पास न रही। जो करुणा से भरा है वह करुणा ही दे सकेगा। जो है, तुम वही तो दे सकोगे। जो नहीं है, उसे दोगे कैसे? तब तुम्हारे जीवन में एक परार्थ की गंध होगी जो गहन स्वार्थ से उठती है। स्वार्थ और परार्थ में विरोध नहीं है। परार्थ तो फूल है, स्वार्थ के वृक्ष पर लगता है।

और तुम्हारे नीतिशास्त्री तुम्हें कुछ उलटा समझा रहे हैं। वे समझा रहे हैं, छोड़ो स्वार्थ को। तुम तो जाओ मरीज के पैर दबाओ, अस्पताल में बैठो, सेवा करो, सर्वोदय में भर्ती हो जाओ; यह करो, वह करो। स्कूल

चलाओ, अस्पताल खोलो, अनाथालय चलाओ, धर्मशालाएं बनाओ। वे तुम्हें जो भी सिखा रहे हैं, उससे ठीक है, धर्मशालाएं बन जाएंगी, लोग ठहरेंगे; अस्पताल में मरीजों की चिकित्सा होगी। अच्छा है, कुछ बुरा नहीं है। लेकिन तुम इस भूल में मत पड़ना कि धर्म को उपलब्ध हो जाओगे। अच्छा है, लेकिन काफी नहीं है। अच्छा है, चोरी न करने से धर्मशाला खोल कर बैठ गए; अच्छा है। डाकू न बने और एक आश्रम चलाने लगे; अच्छा है। कम से कम डाकू न बने, इतनी बड़ी कृपा है। लेकिन इसे पर्याप्त मत समझ लेना। इसमें अपने को भटका मत लेना। क्योंकि कुछ लोग हैं जो बुराई में भटक गए हैं, कुछ लोग हैं जो भलाई में भटक गए हैं। कुछ असाधु होकर भटक रहे हैं परमात्मा से, कुछ साधु होकर भटक रहे हैं।

और लाओत्से का भरोसा संत में है; न तो साधु में और न असाधु में। लाओत्से कहता है कि संत ऐसा व्यक्ति है जो अपने में ठहर गया और अब उसके जीवन की सारी गतिविधियां इसी अपने में ठहरे होने से उठती हैं। उससे शुभ ही पैदा होता है, क्योंकि अशुभ पैदा हो नहीं सकता। वह जो भी करेगा वह ठीक होगा। उसे ठीक, सोच-सोच कर करना नहीं पड़ता। वह विचार करके ठीक नहीं करता। वह ऐसा नहीं सोचता कि यह कर्तव्य है इसलिए करूं, यह अकर्तव्य है इसलिए न करूं। ऐसी बात नहीं है। वह तो जैसे पानी ढलान की तरफ बहता है ऐसा संत का स्वभाव शुभ की तरफ बहता है। पानी सोचता थोड़े ही है कि इधर ढाल है इधर चलें, उधर चढ़ाव है उधर जाना ठीक नहीं। चढ़ाव की तरफ जाओगे भी कैसे? संत जिस तरफ बहता है वहीं शुभ है। शुभ के अतिरिक्त वह कहीं बहता ही नहीं। लेकिन पहली घटना है संतत्व की। पहली घटना है भय से प्रेम की तरफ आ जाने की, अंधकार से आलोक की तरफ आ जाने की।

अब हम लाओत्से के वचन को समझने की कोशिश करें।

"जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, तब, जैसा आम चलन है, उन पर महाबल उतरता है।"

भयभीत लोगों का समाज, राज्य, नीति, धर्म लोगों को डरा कर ही संयम में बांधे हुए है। इसलिए लाओत्से कहता है कि ऐसे लोग अगर कभी निर्भय हो जाएं तो खतरा पैदा होता है। अंधेरे में जो आदमी है उसका निर्भय हो जाना खतरनाक है। क्योंकि निर्भय होते ही वह ऐसे चलने लगेगा जैसे प्रकाश में आदमी को चलना चाहिए। लेकिन प्रकाश तो है नहीं। टकराएगा, चोट खाएगा; सिर फोड़ लेगा।

तीन शब्द हैं हमारे पास, उन तीनों का स्वभाव समझ लेना चाहिए। एक शब्द है भय, दूसरा शब्द है निर्भय, और तीसरा शब्द है अभय। अभय तो प्रकाशित आदमी का लक्षण है। भय और निर्भय दोनों अंधेरे में होते हैं। अंधेरे में कुछ लोग होते हैं जो भयभीत होते हैं। अंधेरे में कुछ लोग होते हैं जो अपने भय को दबा कर और निर्भय होने की अकड़ बना लेते हैं, जिनको हम बहादुर कहते हैं।

ये बहादुर ज्यादा नुकसान करते हैं, क्योंकि ये ऐसे चलने की कोशिश करते हैं जो कि केवल प्रकाश में ही संभव है। ये अभय की कोशिश करते हैं, और अंधेरे में रहते हुए! उससे निर्भय तो मालूम पड़ते हैं कि बिल्कुल नहीं डरते, लेकिन इन्हीं लोगों ने सारे संसार को कष्ट से भर दिया है। हिटलर, नेपोलियन, सिकंदर, ये अभय नहीं हैं; महावीर, कृष्ण, बुद्ध, इन जैसे अभय नहीं हैं; मगर निर्भय हैं। जहां शैतान भी जाने से डरे वहां भी ये घुस जाएंगे। लेकिन ये अपना ही सिर नहीं तोड़ते, ये अपने पीछे हजारों लोगों को भी चला लेते हैं। क्योंकि भयभीत लोग जब भी पाते हैं कि कोई निर्भय है, उसको नेता मान लेते हैं। जब भी भयभीत लोग देखते हैं कि कोई आदमी बिल्कुल नहीं डरता तो वे सोचते हैं, यह आदमी ठीक है, इसके पीछे चलो। इस तरह अंधे अंधों के पीछे चलते हैं।

कबीर ने कहा है, अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।

अंधे अंधों को चलाते हैं और दोनों कुएं में गिर जाते हैं। इससे तो वे ही अंधे बेहतर हैं जो डरते हैं। कम से कम डर के कारण वे सीमा के बाहर नहीं जाते।

इसलिए सवाल भय से निर्भय हो जाने का नहीं है। जो भयभीत है वह साधु होगा; जो निर्भय हो गया वह असाधु हो जाएगा। जो भयभीत है वह नीति-आचरण से चलेगा; जो निर्भय हो गया वह नीति-आचरण को ताक पर रख देगा। वह डरता ही नहीं, वह किसी से नहीं डरता। जो निर्भय है वह अपराधी हो जाएगा।

अब यह बड़ी सोचने जैसी बात है। अगर तुम्हें भयभीत आदमी देखने हैं वस्तुतः तो साधुओं में पाओगे। आश्रमों में बैठे हैं, डरे हुए लोग हैं। इतना डर गए हैं कि बाजार में जा नहीं सकते, दुकान पर बैठ नहीं सकते, स्त्री को देख कर आंख बंद कर लेते हैं। रुपया दिखाई पड़ता है तो उनके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। कामिनी-कांचन उनका प्राण लिए ले रहा है। वे डरे हुए लोग हैं। जेलखानों में, कारागृहों में, राजधानियों में, पागलखानों में तुम्हें वह आदमी मिलेगा जो डरा हुआ नहीं है। जो निर्भय है वह असाधु है।

राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ, वे सब असाधु हैं। वे डरे हुए नहीं हैं। वे अगर तुम्हारी रामलीला के मैदान पर आ भी जाते हैं, राष्ट्रपति और तुम्हारे प्रधानमंत्री, तो सिर्फ तुम्हें खुश करने को। उन्हें कोई रामलीला से लेना-देना नहीं है। उनको वोट चाहिए। वे तुम्हारे मंदिरों में जाकर सिर भी झुका लेते हैं। वे मंदिरों को सिर नहीं झुका रहे, तुम्हारी नासमझी को सिर झुका रहे हैं। उनको मंदिर में सिर झुकाते देख कर तुम समझते हो कैसे धार्मिक व्यक्ति हैं! जैसे ही उनके हाथ में ताकत आएगी वे खतरनाक सिद्ध होंगे; क्योंकि उनको कोई भय नहीं है।

अंधेरे में दो तरह के लोग हैंः भय और निर्भय। अगर अंधेरे में ही चुनना हो तो लाओत्से कहता है, भयभीत होना बेहतर। अंधेरे को चुनने की कोई जरूरत नहीं है। प्रकाश को तुम चुन सकते हो। लेकिन अगर अंधेरे में ही जीने का तय कर लिया हो, कसम खा ली हो, तो फिर भय को चुनना बेहतर। कम से कम भय के कारण दूसरों को नुकसान तो न पहुंचाओगे।

हिटलर ने करोड़ों लोग मारे; स्टैलिन ने करोड़ों लोग मारे। जरा भी भय नहीं है। इससे तो वह जैन साधु बेहतर जो चींटी को बचा कर चल रहा है। हालांकि दोनों अज्ञानी हैं। क्योंकि यह ख्याल कि तुम मार सकते हो उतना ही गलत है जितना यह ख्याल कि तुम बचा सकते हो। दोनों अज्ञानी हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, न हन्यते हन्यमाने शरीरे, शरीर को काट डालो तो भी उसे मारा नहीं जा सकता; नैनं छिन्दंति शस्त्राणि, छेद डालो शस्त्रों से तो भी छिदता नहीं। तो बचाना भी भूल है; मारना भी भूल है। ज्ञानी तो जानता है कि मृत्यु होती ही नहीं। लेकिन अज्ञान के जगत में, अंधेरे में, भयभीत! भयभीत होना ही बेहतर है, कम से कम चींटी को बचा कर चल रहे हो। चींटी मरती या न मरती तुम्हारे पैर से, यह सवाल नहीं है; लेकिन भय के कारण तुम अपनी सीमा बांध कर जी रहे हो।

जैन साधु अपनी आसनी भी साथ लिए चलते हैं; बिछा कर उसी पर बैठते हैं। एक पुराना भय है कि पता नहीं किसी की आसनी पर बैठो और उस पर स्त्रियां बैठी हों पहले, कोई पापी बैठा हो। तो स्त्रियों के स्त्रैण-अणु छूट जाते हैं; पापी के पाप के अणु छूट जाते हैं। तो अपनी आसनी साथ ही लेकर चलो, उसी पर बैठो।

एक बार ऐसा हुआ कि एक जैन साधु मेरे साथ यात्रा पर थे। हम दोनों कार में बैठे तो वे बाहर ही खड़े रहे। मैंने कहा, आप अंदर आएं। उन्होंने कहा, रुकिए, मेरी आसनी आ जाने दें। मैंने कहा, आसनी का क्या करना है? गद्दी बिल्कुल ठीक है। पता नहीं गद्दी पर कौन-कौन बैठा हो! तो गद्दी पर उन्होंने आसनी रख ली, फिर वे आसनी पर बैठ गए। फिर वे निश्चिंत हो गए। अब कोई भय नहीं है, सुरक्षा है।

भयभीत आदमी कैसी छोटी-छोटी सुरक्षाएं बना रहा है। आसनी बचा रही है पाप से। काश, पाप इतना सस्ते में बचता होता! और अब उनको कोई भय नहीं है कि वे मखमल की गद्दी पर बैठे हैं। क्योंकि ऊपर उन्होंने आसनी रख ली है। वे तो आसनी पर बैठे हैं, मखमल की गद्दी से उन्हें क्या लेना-देना? मखमल की गद्दी पर तो मैं बैठा था, वे आसनी पर बैठे थे।

राजेंद्र प्रसाद जब पहली दफा राष्ट्रपति हुए तो भवन तो वाइसराय का था, और साधु पुरुष कैसे उस भवन में रहें? साधु पुरुष हमेशा समझौता निकाल लेते हैं। और गांधी का तो आधार ही समन्वय और समझौता था। तो उन्होंने क्या किया? वाइसराय के भवन में जिस कमरे में वे बैठते थे उसकी सुंदर बहुमूल्य दीवारों पर उन्होंने चटाई जड़वा दी। निश्चिंत बैठ गए फिर, कोई डर न रहा। चटाई ने सुरक्षा कर ली। अब यह कोई वाइसराय का भवन थोड़े ही रहा, गांधी की कुटिया हो गई। आदमी के धोखे देने का अंत नहीं है! और इस कारण लोग प्रशंसा करेंगे कि कैसा साधु पुरुष कि वाइसराय के भवन में चटाई लगा कर बैठ गया।

भई चटाई ही लगानी थी तो वाइसराय के भवन में बैठने की कोई जरूरत नहीं, चटाई की कुटी में बैठ जाते। रहना तो वाइसराय के भवन में है, लेकिन चटाई लगा कर। तो ऐसे साधुता भी चल जाती है, असाधुता भी बच जाती है। इसको समझौता, ऐसे एक बीच का रास्ता निकाल लिया। दुकानदार की तरकीब, चालाकी। लेकिन फिर भी ठीक है। भय के कारण ही हो रहा है यह कि कहीं स्वर्ग न खो जाए। चटाई लगा कर स्वर्ग बचाया जा रहा है।

लाओत्से कहता है, अगर अंधेरे में ही जीने की कसम खा ली हो तो भयभीत होना ही बेहतर, भीरु होना बेहतर। क्योंकि अगर तुम निर्भय हुए तो तुम खतरनाक हो जाओगे।

आस्तिक भय में जीते हैं; नास्तिक निर्भय हो जाता है। दोनों अंधेरे में हैं। न आस्तिक को पता है ईश्वर के होने का, न नास्तिक को पता है ईश्वर के न होने का। दोनों को कुछ पता नहीं है। दोनों अंधेरे में हैं। लेकिन आस्तिक भय में जीता है; नास्तिक निर्भय हो जाता है। इसलिए नास्तिक खतरनाक सिद्ध होता है।

अब तक मनुष्य-जाति के इतिहास में नास्तिकों के हाथ में सत्ता न आई थी। इधर इस सदी में रूस और चीन में नास्तिकों के हाथ में सत्ता आ गई। वे बड़े खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। आस्तिकों ने बहुत जघन्य अपराध किए हैं, लेकिन नास्तिक उनको मात कर रहे हैं। क्योंकि नास्तिक बिल्कुल निर्भय है। उसे फिक्र ही नहीं। वह कहता है, कुछ मरता ही नहीं; आदमी काट दो, बात खतम। आदमी तो यंत्र है, मिट्टी की देह है; गिर गई, गिर गई। कोई अड़चन नहीं। माओ ने हजारों लोग काट डाले चीन में रत्ती भर भी बिना बेचैन हुए। तो ऐसी निर्भयता तो खतरनाक है।

लाओत्से कहता है, अगर बदलना हो तो भय से निर्भय में मत बदलना, भय से अभय में बदलना।

अभय बात ही अलग है। अभय का मतलब बहादुरी नहीं है। क्योंकि बहादुरी तो सिर्फ भयभीत आदमी में होती है। बहादुरी तो भयभीत आदमी को अपने को छिपाने का ढंग है। भयभीत आदमी अपने को भयभीत नहीं मानना चाहता तो बहादुरी पकड़ लेता है। अभय आदमी में न तो भय होता है और न निर्भयता होती है। अभय आदमी का भय के जगत से संबंध ही छूट जाता है। तो वह निर्भय भी कैसे हो सकता है?

इसलिए शब्दकोश में मत देखना इन शब्दों के अर्थ, क्योंकि वहां तो अभय का अर्थ भी निर्भय लिखा है। जीवन के शब्दकोश में अभय का निर्भय से कोई संबंध नहीं है और न भय से कोई संबंध है। अभय तो बात ही तीसरी है। अभय का तो प्रकाश से संबंध है; भय और निर्भय का अंधकार से संबंध है।

लाओत्से कहता है, जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, जब वे निर्भय हो जाते हैं, तब अनिवार्य हो जाता है कि उनको महान रूप से दंडित किया जाए, महाबल उनके ऊपर उतरे।

कोई उतारता नहीं; यह जीवन का सहज नियम है। जैसे मैंने कहा कि तुम अगर अकड़ कर चढ़े वृक्ष पर तो गिरोगे। वृक्ष पर तो सम्हल कर चलना जरूरी है, सम्हल कर चढ़ना जरूरी है। अकड़ में गिरोगे तो हड्डी-पसली टूट जाएगी। ऐसा नहीं कि कोई तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ रहा है, या पृथ्वी की कोई आकांक्षा थी कि तुम्हारी हड्डी-पसली टूट जाए। या वृक्ष का कोई इरादा था कि तुमको गिरा दे। नहीं, तुम्हारी अकड़ से ही तुम गिर गए। वृक्ष को पता भी नहीं है। पृथ्वी शांत अपने मौन में लीन है। कहीं कोई खबर भी नहीं हुई है। तुम अपने ही हाथ से उलझ गए।

अकड़ोगे तो गिरोगे। अगर अंधेरे में रहते निर्भय होने की कोशिश करोगे तो सिर टकराएगा दीवालों से, लहूलुहान होओगे।

तो लाओत्से कहता है, जब लोगों को बल का भय नहीं रहता, तब उन पर महाबल उतरता है। वे अपने ही हाथ से दंडित होते हैं।

संत क्या करे? इन लोगों को, जो भय में जीते हैं और कभी-कभी निर्भय होने की कोशिश करके अपने ही हाथ से दंडित होते हैं, क्या इनकी निंदा करे जैसा कि साधु करते रहे हैं?

लाओत्से कहता है, "नहीं, उनके निवासगृहों की निंदा मत करो, उनकी संतति का तिरस्कार मत करो। क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते, इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।"

साधुओं की आम वृत्ति है असाधुओं की निंदा करना। साधुओं को सुनने तुम जाओगे तो तुम असाधुओं के प्रति सिवाय गाली-गलौज के और कुछ भी न पाओगे। हां, गाली-गलौज बड़ी सुसंस्कृत होगी; तुम शायद पहचान भी न पाओ; बड़ी अलंकृत होगी। लेकिन काव्य में भी गाली ही छिपी होगी। उनके बड़े से बड़े उपदेश में भी निंदा छिपी होगी--तुम्हारे भय की, तुम्हारे लोभ की, तुम्हारी कामवासना की, तुम्हारे क्रोध की, तुम्हारे नारकीय जीवन की। उनके कारण तुम्हारे जीवन को वे नारकीय कहते हैं। उनकी व्याख्या निंदा की है। और तुम्हारी निंदा से छिपे-छिपे वे अपनी प्रशंसा करते हैं। तुम्हारी निंदा तो केवल बहाना है, असलियत में वे अपनी प्रशंसा करते हैं।

इसे थोड़ा समझो। यह कहना तो बहुत मुश्किल है कि मैं भला आदमी हूं। क्योंकि जिससे भी कहो वह भी कहेगा, क्या अपने ही मुंह मियां मिट्ठू बनते हो! यह तो कहना मुश्किल है कि मैं भला आदमी हूं। तब एक रास्ता है इसको कहने का कि तुम यह भी न कह सको कि मियां मिट्ठू बनते हो। मैं कहता हूं कि तुम बुरे हो। तुम्हारी बुराई को मैं ऐसा रंगता हूं कि अनजाने तुम्हारी बुराई की पृष्ठभूमि में मेरी भलाई की रेखा उभरनी शुरू हो जाती है।

तुमने सुनी होगी प्रसिद्ध कहानी कि अकबर ने अपने दरबारियों को कहा एक लकीर खींच कर कि इसे छोटा कर दो बिना छुए। दरबारी तो न कर सके, लेकिन बीरबल उठा और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। उसे छुआ ही नहीं, और लकीर छोटी हो गई। बड़ी लकीर खींच दी।

साधु तुम्हारी निंदा करते हैं; वे तुम्हें छोटा करते जाते हैं; उनकी लकीर बड़ी होती जाती है। वे तुम्हें बिल्कुल क्षुद्र कर देते हैं, वे महान हो जाते हैं।

संत का लक्षण है कि वह तुम्हारी निंदा न करेगा। क्योंकि निंदा तो बताती है कि वह साधु है, संत नहीं। और साधु-असाधु दोनों एक ही जगत के निवासी हैं। वे एक-दूसरे की तरफ पीठ करके चल रहे हैं, लेकिन उनमें

गुणात्मक भेद नहीं है। एक चोरी करता है; एक ने अचौर्य की कसम खा ली है। एक कामवासना में लिप्त है; दूसरा कामवासना से लड़ने में लिप्त है। लेकिन लिप्तता में कोई भेद नहीं है। चाहे तुम स्त्रियों में आकर्षित होकर उनके सपने देखो और चाहे तुम स्त्रियों से भयभीत होकर उनके सपनों से लड़ो, तुम्हारी नजर तो स्त्रियों पर ही लगी रहती है।

और अक्सर होता ऐसा है कि भोगी तो चाहे स्त्री को भूल भी जाए, त्यागी नहीं भूल पाता। त्यागी को तो चारों तरफ स्त्री घेरे रखती है--उसके सपने में, उसकी कल्पना में। और जितना उसके सपने में और कल्पना में घेरती है स्त्री, उतना ही वह जोर से निंदा करता है। वह कहता है, स्त्री नरक की खान। जितना वह घबड़ाता है भीतर स्त्री के रूप से, उतना ही बाहर वह निंदा करता है।

ऐसा हुआ। एक झेन फकीर औरत हुई। युवा थी, बहुत सुंदर थी। और कथा है कि जिन-जिन आश्रमों में गई उन सबने उसे इनकार कर दिया। कोई आश्रम उसको दीक्षा देने को तैयार नहीं। कारण उन्होंने बताया कि तू इतनी सुंदर है कि हमारे साधुओं को बड़ी मुश्किल खड़ी होगी; तू कहीं और जा। लेकिन कोई लेने को राजी न था; कोई उसे दीक्षा देकर साध्वी बनाने को राजी न था। और उसके प्राणों में बड़ी उत्कंठा थी कि वह साध्वी हो जाए। तो कथा है कि उसने अपने चेहरे को जला लिया। जब वह चेहरे को जला कर गई तो स्वीकृत कर ली गई।

तो तुम्हारे साधुओं की आंख भी लगी तो चमड़ी पर ही है। जला हुआ चेहरा स्वीकृत हो सकता है; सुंदर चेहरा स्वीकृत नहीं होता। क्योंकि सुंदर चेहरा तो वैसे ही सता रहा है; सपनों में सता रहा है। और वास्तविक रूप से मौजूद हो जाए तो और मुसीबत खड़ी हो जाएगी।

ईसाइयों ने इस तरह के आश्रम बना रखे हैं, ऐसे आश्रम हैं, जहां कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती। सैकड़ों साल से किसी स्त्री ने आश्रम में प्रवेश नहीं किया है। और ऐसे आश्रम हैं जहां कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता। मध्य युग में एक बड़ी अनूठी घटना घटी वहां। वह घटना यह थी कि स्त्रियां, जिनके आश्रम में कोई पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता, धीरे-धीरे मिरगी की बीमारी की शिकार होने लगीं। उन्हें फिट आने लगे। और फिट की अवस्था में वे उस तरह की भाव-भंगिमा करने लगीं जैसी स्त्रियां संभोग में करती हैं। और उन स्त्रियों ने कहा कि शैतान उनके साथ संभोग कर रहा है। यह बीमारी इतने जोर से फैली कि कुछ समझ में न आया कि क्या किया जाए। और अनेक साध्वियां इसकी शिकार हो गईं।

अब मनसविद कहते हैं कि कुछ मामला न था। न कोई शैतान संभोग कर रहा था; न कोई शैतान है। मगर स्त्रियों ने इतनी-इतनी कामना की भीतर पुरुष की कि कल्पना सजीव हो गई। और पुरुष का अभाव इतना ज्यादा भीतर भर गया कि कल्पना को उन्होंने यथार्थ मान लिया।

इसका तुम्हें भी अनुभव हो सकता है। अगर तुम इक्कीस दिन के लिए मौन में चले जाओ, भोजन न करो, उपवास कर लो, तो तुम सातवें-आठवें दिन उपवास के बाद पाओगे कि तुम्हें भोजन यथार्थ रूप से दिखाई पड़ना शुरू हो गया। सपने में लड्डू बरसते हुए मालूम होंगे पहले, फिर धीरे-धीरे लड्डू ज्यादा वास्तविक होने लगेंगे। जैसे-जैसे भूख बढ़ेगी वैसे-वैसे कल्पना प्रगाढ़ होने लगेगी। अगर तुम इक्कीस दिन मौन में उपवास कर जाओ तो इक्कीस दिन करीब आते-आते तुम पाओगे कि तुम काल्पनिक भोजन कर रहे हो।

साधु डरता है, भयभीत है; असाधु डरता नहीं। इतना ही फर्क है। उनके दोनों के जीवन व्यवस्था में कोई अंतर नहीं; उनका तल एक है। और साधु अपना सम्मान करने का एक ही उपाय पाता है कि तुम्हारी निंदा करता रहे। तुम्हारी निंदा से वह अपने को भी समझाता है। वह एक तरकीब है। जब वह तुम्हारे सामने निंदा करता है कामवासना की, तब वह अपने को भी समझा रहा है कि कामवासना नरक है, पाप है। और जब

तुम्हारी आंखों में झलक देखता है कि बिल्कुल ठीक कह रहा, तुम जब ताली बजाते हो, तब उसे फिर भरोसा आ जाता है, फिर-फिर भरोसा आ जाता है कि मैं बिल्कुल ठीक हूं।

और तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम्हें पता है कि कामवासना तुम्हें बहुत कष्टों में डाले हुए है। तो जब कोई निंदा करता है, तुम स्वीकार करते हो। करना ही पड़ेगा। तुम पीड़ा में हो। तुम्हें भी पता है कि क्रोध ने कष्ट दिया है। तुम्हें भी पता है कि ईर्ष्या ने जलाया है; फफोले पड़ गए हैं भीतर। तो जब भी कोई इनकी निंदा करता है, तुम्हारा सिर भी हिलता है कि बात तो ठीक है। जब तुम्हारा सिर हिलते देखता है साधु, तब उसे फिर वापस भरोसा आ गया।

भरोसा बड़ी अजीब चीज है। मुल्ला नसरुद्दीन एक मकान बेचना चाहता था। तंग आ गया था, कोई खरीदार न मिलता था। एक एजेंट को बुलाया। एजेंट ने विज्ञापन दिया अखबारों में। मुल्ला ने विज्ञापन पढ़ा, बड़ा प्रभावित हुआ। एजेंट ने ऐसा वर्णन किया था मकान का कि सुंदर झील के किनारे, बड़े वृक्षों के पास, बड़ा प्राचीन भवन है, जिसका लंबा इतिहास है, बड़े कुलीन लोग जिसमें रह चुके हैं। मुल्ला का अनुभव तो कहता था, सिर्फ खंडहर है, और झील के नाम पर एक गंदी तलैया है जिसमें सिवाय मच्छरों के और कुछ भी पैदा नहीं होता, और प्राचीनता के नाम पर सिर्फ पलस्तर गिरता है। अनुभव तो यह था। लेकिन जब विज्ञापन पढ़ा, और बार-बार पढ़ा, तो गया भागा हुआ एजेंट के पास और कहा, बेचना नहीं है मकान! जैसा मकान मैं चाहता था वैसा ही तो यह मकान है--झील के किनारे, प्राचीन।

तुम्हें खुद भी भरोसा करना हो तो दूसरों की आंखों से देखना शुरू करना पड़ता है। साधु निंदा करता है असाधुता की। वह अपने ही भीतर के हिस्से का खंडन कर रहा है जिसे वह आत्मसात नहीं कर पाया है, जो उसे सता रहा है। तुम्हारे बहाने वह उसकी निंदा करता है। तुम्हारी आंखों में आश्वासन देख कर उसे आश्वासन वापस आ जाता है; लड़ाई उसकी फिर शुरू हो जाती है। साधु और असाधु समझौते में हैं, एक ही शड्यंत्र में हैं। वे एक-दूसरे को सम्हाले हुए हैं। असाधु सम्हाले हुए है साधु को। असाधु के बिना साधु एक क्षण न जी सकेगा। साधु सम्हाले हुए है असाधु को। क्योंकि साधु आशा देता है असाधु को कि कोई हर्जा नहीं, आज असाधु हैं, कल तुम जैसे हम भी हो जाएंगे। थोड़ा सा ही समय और है। लड़की की शादी निपट जाए, दुकान व्यवस्थित हो जाए, हमें भी साधु के जीवन में ही तो जाना है। असाधु को साधु आशा है भविष्य की, और साधु को असाधु का नरक इस बात का निश्चय है कि मैं ठीक हूं। दोनों अंधेरे में हैं। और अंधेरे से उठना है।

जो अंधेरे से बाहर उठ गया उसको लाओत्से संत कहता है। संत का अर्थ है, जिसने अपनी असाधुता को दबाया नहीं और जिसने साधुता को फुलाया नहीं; जो असाधुता-साधुता के द्वंद्व के बाहर हो गया; जो भय और निर्भयता के बाहर हो गया; जो जाग गया; जिसने सब सपने छोड़ दिए साधु-असाधु के, अच्छे-बुरे के; जो गुणातीत हो गया; जिसने चुना नहीं, एक के पक्ष में दूसरे को न चुना; जो च्वाइसलेस, चुनावरहित हो गया।

"उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो।"

क्योंकि उनका कोई कसूर नहीं है। वे अंधेरे में हैं, इसलिए उनके निवास-गृह भी अंधेरे में हैं। और निंदा से तुम उनकी सहायता भी न कर पाओगे। निंदा से तुम उन्हें और भी निंदित कर दोगे, आत्मग्लानि से भर दोगे। यह मेरा अनुभव है कि जहां-जहां धर्मगुरु ज्यादा संख्या में होते हैं वहां-वहां लोग आत्मविश्वास खो देते हैं; वहां लोगों की आत्मग्लानि सघन हो जाती है; वहां लोग अपने ही प्रति इतनी निंदा से भर जाते हैं कि परमात्मा को खोजना तो दूर, खड़े होना उनकी हिम्मत के बाहर हो जाता है; यात्रा पर जाना तो बहुत दूर, पैर उठाने का भी सामर्थ्य खो जाता है।

मेरे पास लोग आते हैं, धर्मगुरुओं के मारे हुए, तब वे मुझसे कहते हैं कि हम पापी, हम महापापी, हमें उबारो। उनका यह कहना कि हम पापी, हम महापापी, अपने भीतर के परमात्मा का अस्वीकार है। उनका भरोसा डगमगा गया। उनकी आस्था टूट गई। इतनी निंदा की गई है उनकी कि वे अब यह मान ही नहीं सकते कि वे भी उबर सकते हैं। मैं उनसे कहता हूं, उबर जाओगे। वे कहते हैं, जन्मों-जन्म लगेंगे, हम बहुत पापी हैं, आपको पता नहीं। हम बहुत अपराधी हैं, हमने बड़े पाप किए हैं।

बर्ट्रेंड रसेल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ईसाई कहते हैं कि पापियों को सदा-सदा के लिए नरक में डाल दिया जाएगा--सदा-सदा के लिए! अनंत काल के लिए! रसेल ने लिखा है, यह तो अन्यायपूर्ण मालूम पड़ता है। उसने कहा कि अगर मैंने जिंदगी में जितने पाप किए हैं सबकी मैं फेहरिस्त बना दूं, जो किए हैं उनकी भी और जो केवल मैंने सोचे हैं, किए नहीं, उनकी भी, तो कठोर से कठोर न्यायाधीश भी मुझे चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकता। लेकिन धर्मगुरु कह रहे हैं कि अनंत काल तक सड़ाए जाओगे।

कसूर तो बहुत छोटा मालूम पड़ता है, दंड बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है। जैसे धर्मगुरुओं को मजा आ रहा है। नरक का वर्णन तुमने कभी साधुओं के मुंह से सुना? नरक का वर्णन करने में वे ऐसे कुशल हैं कि तुम्हारा रोआं-रोआं कंपा देंगे। आग, जलते हुए कड़ाहे, जलाए जाओगे लेकिन जलोगे नहीं। क्योंकि जल गए एक दफा तो फिर मजा ही क्या। जलाए जाओगे बार-बार, अनंत बार, और जलोगे नहीं, बचोगे। मर ही गया मरीज तो एक ही दफे में कष्ट खतम हो गया। कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर में से छेद करके घूमेंगे चारों तरफ और तुम मरोगे नहीं। भूखे रहोगे, प्यासे रहोगे; मरोगे नहीं।

कष्ट देने की इतनी इच्छा, सताने की इतनी वृत्ति जिन हृदयों से उठी होगी, उनके भीतर असाधु छिपा है, साधु ऊपर है। नरक की कल्पना ही असाधुओं की है, जिनको मनोवैज्ञानिक सैडिस्ट कहते हैं, जो दूसरों को दुख देने में रस लेते हैं। अब यह इतना दुख! तुमने कभी सोचा, तुमने पाप क्या किया है?

एक आदमी मेरे पास आया। वह कहता है, मैं बहुत पापी हूं। मैंने कहा, तू पहले पाप तो बता। वह कहता है, मैं सिगरेट पीता हूं।

कुछ पाप भी तो ढंग का करो। सिगरेट पी रहे हैं, धुआं बाहर-भीतर निकाल रहे हैं; इसमें पाप क्या है? मूर्खता हो सकती है, पाप तो नहीं है। नासमझी हो सकती है, बुद्धिहीनता हो सकती है कि धुएं को बाहर-भीतर करते रहते हैं और इसमें रस लेते हैं; मगर निर्दोष है। इसमें पाप क्या है? और सजा तो मिल ही जाएगा। अस्थमा हो जाएगी, टी.बी. हो जाएगी, कैंसर हो जाएगा। अब इसके लिए और अलग से नरक का इंतजाम करने की जरूरत क्या है? कैंसर काफी नहीं है? साधुओं को नहीं लगता काफी; वे कहते हैं, कैंसर से क्या हल होगा! सजा बड़ी चाहिए।

तुमने पाप भी क्या किया है? मैं कभी-कभी, पापों के संबंध में जब लोग मुझसे आकर कहते हैं, तो मैं हैरान होता हूं कि तुमने पाप भी क्या किया है!

नहीं, वे कहते हैं, आपको पता नहीं एक स्त्री के पीछे मैं दीवाना हो गया।

तो क्या पाप है? तुम्हारा एक देवता नहीं है शास्त्रों में जो दीवाना न हुआ हो। तुम इतने क्यों घबड़ा रहे हो? और परमात्मा भी स्त्री में उत्सुक होना चाहिए, नहीं तो बनाता नहीं। पाप कहां है? सारा अस्तित्व स्त्री-पुरुष के मेल से बना है। वृक्ष भी नर और मादा हैं; पशु-पक्षी भी; पौधे भी। ऐसा लगता है कि जीवन की ऊर्जा इस द्वंद्व के बिना थिर नहीं रह सकती। स्त्री और पुरुष का भेद और आकर्षण सृष्टि का सारा राज है। इसमें पाप कहां है!

जवान आदमी आ जाते हैं और कहते हैं कि मन में बड़ा पाप है, स्त्रियों की तरफ मन में आकांक्षा पैदा होती है।

वह तुमने तो पैदा नहीं की; की हो तो परमात्मा ने ही पैदा की होगी। और आखिरी निर्णय अगर कभी कोई होना है तो वही जिम्मेवार होगा। तुम इतना क्या परेशान हो रहे हो? और स्त्री में ऐसा क्या पाप है? अगर तुम्हारे पिता के मन में पाप न उठा होता तो तुम न होते। उनके पिता के मन में पाप न उठा होता तो तुम्हारे पिता भी न होते। बड़ी कृपा थी उनकी कि उन्होंने ब्रह्मचर्य नहीं रखा।

जीवन की सामान्य स्वाभाविकता को निंदित कर दिया गया है। इतना निंदित कर दिया गया है कि तुम कैसे मान सकोगे कि तुम मंदिर हो परमात्मा के। तुम तो वेश्यालय मालूम पड़ते हो, मंदिर नहीं; बूचरखाना मालूम पड़ते हो, मंदिर नहीं। और हो तुम मंदिर। इतनी निंदा के बाद तुम कैसे खोज पाओगे उस सूत्र को जो परमात्मा का है, तुम्हारे भीतर छिपा है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो।"

अंधेरे में रहते हैं माना, उन पर दया करो, निंदा मत करो। उन्हें बाहर निकालने की कोशिश करो। निंदा करोगे तो वे और भी अंधकार में गिर जाएंगे। उन्हें उठाओ, सहारा दो, बल दो, हिम्मत दो। और उनसे कहो, घबड़ाओ मत, कुछ भी पाप नहीं है। परमात्मा हर पाप से बड़ा है। और तुम्हारे पुण्य की क्षमता तुम्हारे सब पापों के जोड़ से अनंत गुना बड़ी है। और तुमने जो किया है वह ना-कुछ है; तुम जो हो वह विराट है। तुम्हारे कृत्यों से तुम्हारी आत्मा का कोई मूल्यांकन नहीं होता। कृत्य तो क्षुद्र हैं। उठो!

इसलिए उपनिषद--जो संतों के वचन हैं, साधुओं के नहीं--उपनिषद कहते हैं, तुम ब्रह्म हो। और उपनिषद कहते हैं, सब कुछ ब्रह्ममय है; अन्न भी ब्रह्म है। इसलिए भूख लगे और तुम भोजन करो, तो तुम ब्रह्म को ही भोजन कर रहे हो। स्त्री भी ब्रह्म है। आकर्षण जगे, तो तुम यह फिक्र करना कि वह आकर्षण भी परमात्मा का ही आकर्षण बन जाए। स्त्री के माध्यम से भी तुम परमात्मा को ही खोजना। तुम अपने सब आकर्षणों को परमात्मा की ही खोज बना लेना। तब तुम्हारा मार्ग विधायक हुआ।

इसलिए संत निंदा नहीं करता, संत स्वीकार करता है। संत तुम्हारे अंधकार पर जोर नहीं देता, तुम्हारे प्रकाश की संभावना पर जोर देता है। साधु तुम्हारे अंधकार पर जोर देता है।

"उनके निवास-गृहों की निंदा मत करो। उनकी संतति को तिरस्कार मत करो। क्योंकि तुम उनका तिरस्कार नहीं करते, इसलिए तुम खुद भी तिरस्कृत नहीं होओगे।"

और संत का कोई तिरस्कार नहीं हो सकता, क्योंकि उसने कभी किसी का तिरस्कार नहीं किया है। यह तुम्हारे भी हित में है। लाओत्से कहता है, संत के भी हित में है।

"संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं।"

दिखाने की आकांक्षा अज्ञान से पैदा होती है। जो अपने को नहीं जानता वह दिखाना चाहता है। क्योंकि दिखाने से ही उसे पता चलता है कि मैं कौन हूं, दूसरों के द्वारा ही पता चलता है कि मैं कौन हूं। जो अपने को जानता है उसे दूसरे के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं। वह दिखाता नहीं फिरता; वह जानता है वह कौन है। जब तुम दिखाने की आकांक्षा से भरो तो समझ लेना कि तुम्हें पता नहीं है कि तुम कौन हो। तुम दूसरों से पूछ रहे हो कि मैं कौन हूं।

कोई कह देता है, आप बड़े सुंदर! तुम सुंदर हो जाते हो। देखो फिर तुम्हारे पैर की गति, तुम्हारी शान, अकड़ वापस लौट आई। रीढ़ सीधी हो गई। लाख दफे कोशिश की थी आसन लगा कर रीढ़ को सीधा करने की,

न होती थी। किसी ने कह दिया, बड़े सुंदर हो! रीढ़ एकदम सीधी हो गई। किसी ने कह दिया, तुम जैसा सच्चरित्र कोई भी नहीं! देखो उस क्षण में हजार-हजार फूल खिलने लगे; तुम बड़े प्रसन्न हो। किसी ने निंदा कर दी और किसी ने कह दिया, तुम और सुंदर? जरा आईने में शक्ल तो देखो! तुम उदास हो गए, भीतर सब मुर्दा हो गया, सब फूल मुर्झा गए। और किसी ने कह दिया कि दुश्चरित्र हो, और किसी ने निंदा कर दी, और तुम वही हो गए। तुम लोगों के मतों पर जीते हो। इसलिए तो तुम लोगों से भयभीत रहते हो कि लोग क्या कह रहे हैं। लोग जो कह रहे हैं वही तुम्हारी आत्मा है? वही तुम्हारी आइडेंटिटी है? वही तुम्हारी पहचान है?

संत अपने को जानता है, इसलिए दिखाता नहीं। कोई कारण नहीं दिखाने का, संत अपने को जानता ही है। तुमसे पूछने की कोई जरूरत नहीं कि मैं कौन हूं। तुम्हारे मत से नहीं जीता संत; संत अपने भीतर से जीता है। तुम अगर सब भी चले जाओ पृथ्वी से, अकेला संत रह जाए, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा। उसका होना वैसा ही रहेगा। एकांत में या भीड़ में, कोई अंतर नहीं है। बाजार में या हिमालय में, कोई भेद नहीं है। क्योंकि तुम्हारे ऊपर संत निर्भर नहीं है।

"वे अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं।"

यह भी थोड़ा सोच लेने जैसा है। तुम अपने को प्रेम करते ही नहीं, इसीलिए उछालते हो। उछालने का मतलब है, कोई दूसरा तुम्हें प्रेम करे, इसका निमंत्रण। स्त्रियां देखो कितनी मेहनत उठाती रहती हैं आईने के सामने खड़ी-खड़ी! घंटों! हर पति जानता है कि तुम बजाते रहो हार्न बाहर, वह स्त्री कहती है, अभी आई। एक मिनट में आई, स्त्री कहती है। मैंने तो एक स्त्री को यह भी कहते सुना--उनके पति के साथ मैं कार में बैठा हूं, जाने की पति को जल्दी है, वे हार्न बजा रहे हैं--उसने बाहर झांका और कहा, क्यों हार्न बजाए जा रहे हैं? क्यों सिर खा रहे हैं? हजार बार कह चुकी कि अभी एक मिनट में आई।

हजार बार! और अभी एक मिनट पूरा नहीं हुआ। क्या कारण होगा स्त्री को इतना ज्यादा दर्पण के सामने तल्लीन होने में? वह तैयारी कर रही है उछालने की। राह पर, बाजार में, सिनेमागृह में, क्लब-घर में, मंदिर में, वह उछालने की तैयारी कर रही है।

मैं एक जैन घर में रहता था। तो जब भी कभी कोई जैन उत्सव होता, जो घर की गृहिणी थी वह अपने सब सोने के आभूषण निकाल लेती। मैं उसको पूछा कि मंदिर में? तो उसने कहा, और कोई मौका ही नहीं मिलता दिखाने का। धार्मिक स्त्री है, सिनेमा जाती नहीं, क्लब से कोई संबंध नहीं, होटल जा नहीं सकती, सात्विक शाकाहारी है। पति का भी इन चीजों में रस नहीं है। अब एक मंदिर ही बचा। पर स्त्री तो स्त्री है, मंदिर हो कि क्लब, फर्क क्या पड़ता है? वृत्ति तो वही है, उछालना है।

उछालने का अर्थ यह है कि तुम अपने को प्रेम नहीं कर पाए; तुम किसी और की प्रतीक्षा कर रहे हो जो तुम्हें प्रेम करे। और कोई तुम्हें प्रेम करे, तो ही तुम्हारा भय कम हो। जो व्यक्ति अपने को प्रेम करता है वह उछालता नहीं फिरता। और मजा तो यह है कि तुम जितना मांगोगे कि कोई तुम्हें प्रेम करे, मांगे से प्रेम नहीं मिलता। बिन मांगे मोती मिलें, मांगे मिले न चून। प्रेम ऐसी चीज है जो मांगने से मिलती ही नहीं। तुम्हें प्रेम मांग कर कभी भी न मिलेगा। तुम भिखारी ही रहोगे। और जहां भी मिलेगा, तुम पाओगे कि धोखा हुआ। हर बार तुम पाओगे कि धोखा हुआ; असली न था। प्रेम तो उन्हें मिलता है जो प्रेम पाने के योग्य होते हैं। और प्रेम पाने के योग्य होने की पहली शर्त हैः तुम अपने को प्रेम करो। तभी तो कोई दूसरा तुम्हें प्रेम कर सकेगा। तुमने कभी अपने को प्रेम ही नहीं किया और दूसरे की आकांक्षा कर रहे हो कि वह तुम्हें प्रेम करे। जो गलती तुमने नहीं की वह दूसरा क्यों करेगा? तुम तो अपनी निंदा करते हो और दूसरे से चाहते हो तुम्हें प्रेम करे।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम अकेले में ऊब जाते हैं, हमें कोई संगी-साथी चाहिए। मैं कहता हूं, जब तुम खुद ही से अकेले में ऊब जाते हो तो दूसरा तुमसे ऊबेगा। जब तुम खुद भी अपने साथ रहने को राजी नहीं तो कौन तुम्हारे साथ रहने को राजी होगा? और वह दूसरा भी अपने से ऊबा हुआ होगा, तभी तो तुम्हारी तलाश में आ रहा है। तो दो ऊबे हुए आदमी जब मिलते हैं तो तुम सोच सकते हो क्या परिणाम होगा। जो हर विवाह में हो जाता है। पति-पत्नी ऐसे ऊब कर बैठे रहते हैं। पति-पत्नियों के चेहरे देखो; उनसे ज्यादा उदास चेहरे तुम कहीं भी न पाओगे। अगर तुम पुरुष को जरा प्रसन्न देखो तो समझना कि पत्नी उसकी नहीं है जो पास बैठी है, किसी और की होगी। अगर पुरुष को तुम रास्ते पर किसी स्त्री के साथ चलते हुए आनंद भाव में देखो, यह उसकी पत्नी नहीं है। क्योंकि उसकी पत्नी के साथ तो वह ऐसा डरा हुआ और कंपा हुआ और उदास और ऊबा हुआ चलता है कि तुम देख ही सकते हो, फौरन पहचान सकते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन मुझसे कहा कि मैं आदमियों को देख कर बता सकता हूं कि यह आदमी विवाहित है कि गैर-विवाहित। मैंने कहा, जरा मुश्किल मामला है। खैर, जो भी लोग आएं मुझसे मिलने, तुम नोट करते जाओ, और पीछे पता लगा लेंगे। उसने नोट किया और उसने बिल्कुल ठीक-ठीक बता दिया। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि तरकीब क्या है तेरी? उसने कहा, तरकीब यह हैः जो आदमी शादीशुदा है वह बाहर पड़े हुए बिछावन पर पैर पोंछता है, जो गैर-शादीशुदा है वह सीधा चला आता है। पत्नी का भय! नहीं तो कौन पोंछता है पैर। अभ्यस्त हो गए हैं वे।

जीवन तुम्हारे भीतर से बाहर की तरफ जाएगा; बाहर से भीतर की तरफ नहीं आता। तुमने अगर अपने को प्रेम किया है तो तुम पाओगे बहुत लोग तुम्हें प्रेम करेंगे। तुम अगर अपने को प्रेम करने में समर्थ हो गए तो तुम पाओगे अनंत-अनंत प्राणों से तुम्हारी तरफ प्रेम की धारा बहनी शुरू हो जाती है। तुम अगर अपने को प्रेम न कर पाए, जो कि तुम्हारे साधुओं की शिक्षा के कारण असंभव हो गया है, तो तुम्हें कोई भी प्रेम न कर सकेगा।

मेरे हिसाब में, अगर तुमने अपने को प्रेम किया तो तुम पाओगे अनंत लोग तुम्हें प्रेम करते हैं। और यह प्रेम बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है। एक दिन अचानक तुम पाते हो कि परमात्मा का प्रेम भी तुम पर बरसा। तुम योग्य होते जाते हो। तुम इतने योग्य होते जाते हो, तुम अपने आप में इतने पूरे होते जाते हो कि वही प्रेम की पूर्णता एक दिन तुम्हारे ऊपर परमात्मा की वर्षा बनेगी।

परमात्मा को खोजने तुम जाओगे कहां? उसका कोई पता-ठिकाना नहीं। सच तो यह है कि परमात्मा तक कोई आदमी कभी नहीं पहुंचता; जब भी घटना घटती है परमात्मा आदमी तक आता है। इसके अतिरिक्त रास्ता भी नहीं है। जिस दिन तुम योग्य हो और तुम अपने प्रेम से इतने परिपूर्ण हो और तुम इतने तृप्त हो अपने प्रेम से कि तुम्हारे जीवन में कोई शिकायत नहीं है, कोई भिक्षा की इच्छा नहीं रही अब, तुम सम्राट हो गए हो; तुम आनंदित हो, जो तुम्हें मिला है बहुत है; ऐसी भाव-दशा में अचानक एक दिन द्वार पर दस्तक पड़ती है--परमात्मा द्वार पर खड़ा है!

अपने को प्रेम करो। और तब बड़ी कठिनाई होगी। जैसे-जैसे तुम अपने को प्रेम करोगे तुम अपने को बदलने भी लगोगे, क्योंकि प्रेम के योग्य भी तो बनाना होगा। एक बार तुम्हें यह ख्याल आ जाए कि अपने को प्रेम करना है तो तुम्हें बहुत सी क्षुद्रताएं दिखाई पड़ने लगेंगी जो कि प्रेम न करने देंगी। उन क्षुद्रताओं को तुम्हें छोड़ देना होगा। वे तुम्हारी समझ से छूट जाएंगी। अगर तुम्हें अपने को प्रेम करना है तो प्रेम-पात्र के योग्य भी तो बनना होगा। तब तुम पाओगे कि बहुत सी क्षुद्रताएं असंभव हो गई हैं। क्योंकि कैसे तुम कर सकते हो वे क्षुद्रताएं? अगर करोगे तो निंदा शुरू हो जाती है।

अगर तुमने जरा सी बात में क्रोध किया तो तुम खुद आत्म-निंदित हो जाओगे कि यह क्या क्षुद्रता है! यह क्या उथलापन है! जरा सी बात में और गरम हो गया। इतनी भी शीतलता न थी कि इतनी सी बात को सह जाता। तुम अचानक पाओगे कि अगर अपने को प्रेम करना है तो क्रोध धीरे-धीरे छूटेगा। अगर अपने को प्रेम करना है घृणा धीरे-धीरे गिरेगी। नहीं तो तुम प्रेम न कर पाओगे। जब अपने को प्रेम करना है तो अपने को तैयार भी करना होगा। तुम धीरे-धीरे अपने को निखारने में लग जाओगे।

अब तक तुमने दूसरों के लिए अपने को तैयार किया था, तो तुम बाहर से सजाते थे--अच्छे वस्त्र पहनते थे, गंध छिड़कते थे, फूल बालों में खोंस लेते थे, रंग-रोगन कर लेते थे--बाहर से अपने को सजा-संवार कर जाते थे। जब तुम अपने को प्रेम करोगे तो बाहर की सजावट तो काम न आएगी, क्योंकि तुम तो भीतर हो। और तुम कितना ही रंग ऊपर पोत लो चेहरे के, तुम्हें तो अपना असली चेहरा पता ही है।

नहीं, जब तुम अपने को प्रेम करोगे तो तुम्हें भीतर सजाना पड़ेगा; भीतर काशृंगार शुरू होगा। और भीतर काशृंगार ही साधना है।

"संत अपने को जानते हैं, पर दिखाते नहीं। अपने को प्रेम करते हैं, पर उछालते नहीं। इसलिए एक को, शक्ति को वे अस्वीकार करते हैं; और दूसरे को, कुलीनता को स्वीकार करते हैं।"

संत शक्ति को अस्वीकार करते हैं, शांति को स्वीकार करते हैं। शक्ति को अस्वीकार करते हैं, गहन विनम्रता को स्वीकार करते हैं। क्या है राज इस बात का?

शक्ति को वही आदमी स्वीकार करता है जो भयभीत है। भय के कारण तुम शक्ति को स्वीकार करते हो। भय के कारण शक्ति ही तो बचाव बन सकती है। तो तुम चाहते हो धन इकट्ठा कर लूं; समय पड़ेगा, काम आएगा। तलवार खरीद लूं; दुश्मन आएगा, हाथ रहेगी, मौके पर काम आ जाएगी। मित्र बना लूं, क्योंकि शत्रुओं का डर है। किसी पद पर पहुंच जाऊं, क्योंकि पद पर जो आदमी है उसके पास ज्यादा ताकत है। प्रधानमंत्री हो जाऊं, तो उसके पास बड़ी ताकत है, बड़ी फौजें हैं, सुरक्षा है। भयभीत आदमी शक्ति की खोज करता है और शक्ति को मानता है।

तुम तो इस बात को क्राइटेरियन समझ लो, मापदंड, कि जो आदमी भी शक्ति की खोज में है वह भीरु है। नहीं तो शक्ति की खोज क्यों करता? जो आदमी भय से मुक्त हो गया, अभय हो गया, उसकी शक्ति की आकांक्षा खो जाती है। वह शक्ति की कोई आकांक्षा नहीं करता--न धन में, न पद में, न प्रतिष्ठा में। शक्ति की आकांक्षा ही खो जाती है। और जहां शक्ति की आकांक्षा खो जाती है वहीं विशिष्टता है।

लाओत्से कहता है, वही कुलीन है।

तुम्हारे किस कुल में तुम पैदा हुए उससे तुम कुलीन नहीं होते। जिस दिन तुम विनम्रता के कुल में पैदा होते हो उसी दिन कुलीन होते हो। जिस दिन तुम्हारी शक्ति की आकांक्षा छूट जाती, अहंकार विलीन हो जाता, भय चला जाता, निंदा खो जाती और तुम अपने भीतर तृप्त-संतुष्ट हो जाते हो, एक गहन परितोष तुम्हारे भीतर उठता है जैसे सुबह का सूरज उगता हो, उस परितोष के प्रकाश में तुम वस्तुतः कुलीन हुए।

बुद्ध ने कहा है बुद्ध के पिता से। क्योंकि बुद्ध के पिता ने जब बुद्ध वापस लौटे तो कहा कि तू हमारे कुल में पैदा हुआ! और हमारे कुल में कभी भिखारी नहीं हुए और तू भीख मांगता है, हमें शर्म आती है! तू सम्राट है; भीख मांगने की कोई जरूरत नहीं। और मैं तेरा पिता हूं, मैं तुझे अभी भी क्षमा कर सकता हूं; तू वापस लौट आ। बुद्ध ने कहा, आप अपनी तरफ से ठीक ही कहते हैं। लेकिन अब मैं दूसरे कुल में पैदा हो गया हूं। वह कुल आपका था जहां यह शरीर पैदा हुआ। और अब तो मैं बुद्धों के कुल में पैदा हो गया हूं। वहां आपके शरीर का, आपके कुल

का, आपके साम्राज्य का, आपके सम्राट होने का कुछ भी लेना-देना नहीं। और जहां तक मैं जानता हूं, जिस कुल में मैं हूं, वैसे व्यक्ति सदा ही रास्ते के भिखारी रहे हैं।

कुलीन तुम तभी होते हो जब तुम जाग आते हो अंधेरे से। तब तुम बुद्धों के कुल में पैदा हुए। संन्यास उस यात्रा का पहला कदम है जिसके अंत में व्यक्ति बुद्धों के कुल में पैदा होता है।

आज इतना ही।

एक सौ सतरवां प्रवचन

मुक्त व्यवस्था--संत और स्वर्ग की

Chapter 73

On Punishment (2)

Who is brave in daring (you) kill,
Who is brave in not daring (you) let live.
In these two,
There is some advantage and some disadvantage.
(Even if) Heaven dislikes certain people,
Who would know (who are to be killed and) why?
Therefore even the Sage regards it as a difficult question.
Heaven's Way (Tao) is good at conquest without strife,
Rewarding (vice and virtue) without words,
Making its appearance without call,
Achieving results without obvious design.
The heaven's net is broad and wide.
With big meshes, yet letting nothing slip through.

अध्याय 73

दंड (2)

तुम उसकी हत्या कर देते हो जो आक्रमण करने में साहसी है,
तुम उसे जीने देते हो जो आक्रमण नहीं करने में साहसी है।
इन दोनों में,
कुछ लाभ भी हैं और कुछ हानि भी।
यद्यपि स्वर्ग कुछ लोगों को नापसंद कर सकता है,
तो भी कौन जानता है कि किन्हें मारा जाए, और क्यों?
इसलिए संत भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।
स्वर्ग का मार्ग--ताओ--बिना संघर्ष के विजय में कुशल है;

बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है;
बिना बुलावे के वह प्रकट होता है,
बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।
स्वर्ग का जाल व्यापक और विस्तृत है।
उसमें बड़े-बड़े छिद्र हैं, तो भी उससे कुछ भी निकल नहीं पाता।

समाज निर्भय के विरोध में है, क्योंकि निर्भय के साथ असुरक्षा जुड़ी है। निर्भय खतरे में ले जा सकता है। निर्भय उन रास्तों पर ले जा सकता है जो कहीं न जाते हों। निर्भय लीक से उतर कर चलने की कोशिश करता है। नियम, व्यवस्था, परंपरा, इन्हें तोड़ने में निर्भय को बड़ा रस है। समाज भयभीत को बचाता है, निर्भय को नष्ट करता है। क्योंकि समाज को लगता है कि भयभीत समाज को बचाता है और निर्भय समाज को नष्ट कर देगा।

इसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें। निर्भय ही अपराधी बन जाता है। निर्भय ही क्रांतिकारी बन जाता है। निर्भय के बुरे रूप भी हैं; निर्भय के भले रूप भी हैं। अपराधी और क्रांतिकारी में एक समानता है--दोनों तोड़ते हैं। अपराधी उच्छृंखल है; किसी और बड़ी व्यवस्था के लिए नहीं तोड़ता, तोड़ने के रस के कारण ही तोड़ता है, विध्वंसक है। क्रांतिकारी भी विध्वंसक है, लेकिन इस आशा में तोड़ता है कि शायद तोड़ने से और बेहतर का निर्माण हो सके। हो या न हो, यह निश्चय नहीं।

समाज तो अपराधी और क्रांतिकारी को एक ही दृष्टि से देखता है। समाज के लिए तो दोनों से भय का द्वार खुलता है। समाज जीना चाहता है परिचित के साथ--जिस रास्ते का जाना-माना रूप है, जिस रास्ते का नक्शा है, जिस समुद्र में बहुत बार यात्रा की जा चुकी है, और अब कोई भय नहीं है; खो जाने का, मिट जाने का, बर्बाद हो जाने का कोई डर नहीं है। तभी समाज कदम उठाता है। इसलिए समाज हमेशा परंपरा, रूढ़ि, लकीर से बंधा होता है।

निर्भय अनजान में जाना चाहता है, अपरिचित सागरों की यात्रा करना चाहता है; जहां कभी कोई नहीं गया है वहां पदचिह्न छोड़ना चाहता है। समाज इसमें खतरा देखता है।

समाज अपराधी के भी विपरीत है, क्योंकि वह नियम तोड़ता है। और नियम टूटने लगें तो समाज का कोई अस्तित्व बच नहीं सकता। समाज अंततः नियमों का एक जाल है। और एक बार लोगों की आस्था नियम से उठनी शुरू हो जाए तो उस आस्था को जमाना मुश्किल है।

इसलिए जो व्यक्ति भी इस तरह का दुस्साहस करता है, समाज उसे भयंकर रूप से दंडित करता है। और बड़े से बड़ा दंड है जीवन को छीन लेना; बड़े से बड़ा दंड है मृत्यु-दंड; उस आदमी के जीवन की संभावना को ही नष्ट कर देना। इसका अर्थ हुआ कि समाज ने तय कर लिया कि इस आदमी से अब कोई भी आशा नहीं है; इसलिए इसे और जीने की कोई सुविधा नहीं दी जा सकती। इस आदमी को समाज ने मान लिया कि असाध्य है। जब तक साध्य मालूम होता है तब तक समाज छोटे दंड देता है; जब असाध्य मालूम होता है, असंभव मालूम होता है, तब समाज उस आदमी से जीवन छीन लेता है। जीवन छीनने का अर्थ है कि हम तुमसे परिपूर्ण रूप से हताश हो गए और अब तुमसे हमें कोई भी आशा नहीं कि तुम वापस मार्ग पर चल सकोगे। कुमार्ग पर चलना तुम्हारे जीवन की शैली हो गई। अब यह कोई फुटकर कृत्य नहीं है; तुम्हारे होने का ढंग ही हो गया। इसलिए तुम्हारे होने को हम मिटा देंगे।

समाज जब यह निर्णय लेता है तो इसके साथ ही दूसरा निर्णय भी जुड़ा है। जैसे वह निर्भीक को मिटाता है, दुस्साहसी को, उसके साथ ही साथ वह भीरु को बचाता है।

लाओत्से तो उसे भी साहसी कहता है। और वह समझने जैसा है।

लाओत्से कहता है, कुछ साहसी हैं आक्रमण करने में, और कुछ साहसी हैं आक्रमण न करने में। भीरु का भी तो एक प्रकार का साहस है। जब निमंत्रण आता है अनजान का, जब बुलाते हैं ऐसे रास्ते अनचीन्हे, अनपहचाने, तब साहस करके वह लीक से ही रुका रहता है। वह भी साहस है। दुस्साहसी उसे कहता है कि तुम में कोई भी साहस नहीं, क्योंकि दुस्साहसी से वह विपरीत है। लेकिन जब चारों तरफ से निमंत्रण मिल रहा हो स्वच्छंदता का, बुलावा आ रहा हो अनचीन्हे रास्तों पर जाने का, अपरिचित सागर का आमंत्रण आ गया हो, तब तट से बंधे रहना, वह भी साहस है; वह भी टेंपटेशन को, उत्तेजना को रोकना है।

लाओत्से कहता है, भीरु भी साहसी है। भय को पकड़े रखता है, चाहे कुछ भी हो; रास्ते को छोड़ता नहीं, नियम को तोड़ता नहीं; आंख बंद रख कर माने चला जाता है कि रूढ़ि ठीक है। समाज इसे बचाता है, क्योंकि समाज इसके द्वारा ही बचता है। समाज भीरु की बड़ी प्रशंसा करता है। वह उसे सज्जन कहता है; दुस्साहसी को दुर्जन कहता है। भीरु को साधु कहता है; दुस्साहसी को असाधु कहता है। क्योंकि भीरु ही कवच है समाज का।

इसलिए समाज की पूरी चेष्टा होती है कि जैसे ही नया बच्चा पैदा हो उसे भयभीत कर दिया जाए, उसे डराया जाए, हजार डर उसके मन में बिठा दिए जाएं। तो ही वह समाज के काम का हो सकेगा। तो ही वह राज्य का, समाज का, संस्कृति का सम्मान करेगा। उसे इतना डरा दिया जाए कि उसमें इतनी सुविधा ही न रह जाए कि वह कभी समाज से विपरीत पैर उठा सके। इसलिए नरकों का भय है, स्वर्गों का प्रलोभन है। इसलिए यहां भी, पृथ्वी पर भी हजार तरह के दंड हैं, हजार तरह के पुरस्कार हैं।

तुम किस आदमी को भला कहते हो? कौन सा आदमी शुभ है?

अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम्हारा सब शुभ भय के आस-पास निर्मित है। तुम कहते हो, यह आदमी चोर नहीं है। लेकिन तुमने कभी यह विचार किया कि जो चोर नहीं है उसने क्या चोरी इसलिए नहीं की है कि वस्तुतः उसकी अंतरात्मा से चोरी का भाव चला गया? या कि इसलिए नहीं की है कि वह चोर जैसा साहस नहीं जुटा पाया? चोर होना साधारण तो नहीं है, असाधारण कृत्य है। चोर होने के लिए एक विशेष तरह की प्रतिभा और क्षमता चाहिए। अपने ही घर रात अंधेरे में चलने में डर लगता है; दूसरे के अपरिचित घर में अंधेरे में दीवाल तोड़ कर घुस जाना और ऐसे चलना जैसे अपने बाप का घर हो और इस तरह सामान उठाना कि आवाज न हो, हृदय न धड़के। तुम्हारी तो छाती इतनी धड़कने लगेगी कि हाथ-पैर हिल न सकेंगे।

चोर भी एक तरह की कुशलता है दुस्साहस की। हत्यारा भी एक तरह की कुशलता है आत्यंतिक दुस्साहस की। दूसरे को मिटाने की बात ही सोचने के लिए बड़ी तैयारी चाहिए; दूसरे को मिटाने के लिए खुद को मिटाने की तैयारी चाहिए। क्योंकि जब तुम दूसरे को मिटाने जाते हो तो खुद को भी दांव पर लगाते हो। तुम दूसरे को मिटा दो और तुम बिना दांव पर लगे मिटा दो, ऐसा तो नहीं हो सकता। अपराधी के भी गुण हैं।

गैर-अपराधी जिसको तुम कहते हो, साधु जिसे कहते हो, उसके भी गहरे दुर्गुण हैं। भय के कारण अधिक लोग साधु हैं। चोरी नहीं कर सकते; इसलिए नहीं कि अचौर्य को उपलब्ध हो गए हैं, बल्कि इसलिए कि इतने भयभीत हैं कि चोरी की तरफ साहस नहीं होता। अगर उनको भी कोई पक्का भरोसा दिला दे कि न तो रास्ते पर पुलिस है, न अदालत में न्यायाधीश है, न ऊपर कोई परमात्मा है, न पाताल में कोई नरक है; अगर उन्हें कोई बिल्कुल ही भय से मुक्त कर दे, वे भी चोरी पर निकल जाएंगे। यही तो समाज का डर है कि कहीं लोग भय से

मुक्त न हो जाएं। इसलिए समाज हजार तरह के भय खड़े करता है। समाज एक ही तरकीब जानता है मनुष्य को नियंत्रण में रखने की, वह भय है। साधु निन्यानबे प्रतिशत भय के कारण होता है। यह भी कोई साधुता हुई?

असाधु निन्यानबे प्रतिशत निर्भय के कारण होता है। अगर निर्भय पर ध्यान रखो तो असाधु में भी गुण दिखाई पड़ेगा। अगर भय पर ध्यान रखो तो साधु में भी दुर्गुण दिखाई पड़ेगा। अगर कृत्य पर ध्यान रखो तो साधु में गुण दिखाई पड़ेगा, असाधु में दुर्गुण दिखाई पड़ेगा।

समाज कृत्य की फिक्र करता है, तुम्हारी अंतरात्मा की नहीं। इसलिए साधु का सम्मान करता है, असाधु का अपमान करता है। क्योंकि समाज का संबंध उससे है जो तुम करते हो। जब तुम कुछ करते हो तभी समाज के जीवन में कोई चीज प्रवेश पाती है। अगर तुम सोचते रहते हो, कोई हर्जा नहीं है। अगर एक आदमी बैठ कर दिन-रात चोरी का चिंतन करता है तो भी अदालतें उस पर मुकदमा नहीं चला सकतीं। क्योंकि चिंतन निजी है, विचार वैयक्तिक हैं। तुम सारी दुनिया की हत्या रोज करो मन में तो भी तुम पर किसी को मारने का मुकदमा नहीं चल सकता। क्योंकि जब तक तुम विचार करते हो तब तक समाज में तुम उतरते ही नहीं। जैसे ही तुम कृत्य करते हो, तुम समाज में आते हो। विचार जब कृत्य बनता है तभी सामाजिक बनता है; जब तक विचार रहता है तब तक निजी है।

इसलिए समाज कहता है, तुम्हें सोचना हो तो मजे से सोचो। समाज मौके भी देता है सोचने के कि तुम सोचने में ही चुक जाओ, ताकि करो न। फिल्में हैं हत्याओं से भरी हुई, डकैतियों से भरी हुई, व्यभिचार से भरी हुई। समाज उन्हें प्रकट रूप से दिखाता है। किताबें हैं अश्लील, गंदी से गंदी, हत्याओं से भरी, सब तरह के व्यभिचारों में लिप्त; वे उपलब्ध हैं। समाज को इसमें कोई ज्यादा चिंता नहीं पैदा होती।

मनसविद तो कहते हैं कि हत्या की फिल्म को देख कर हत्या के भाव का रेचन होता है। जब तुम हत्या की फिल्म देख लेते हो तो तुम्हारे हत्या करने का जो भीतर छिपा हुआ भाव है उसका निष्कासन हो जाता है, तुम थोड़े हलके हो जाते हो। तुम दूसरों को व्यभिचार करते देख लेते हो फिल्म में या उपन्यास में, तुम्हारी व्यभिचार करने की वृत्ति को थोड़ी सी राहत मिल जाती है।

समाज पूरा मौका देता है; सोचो मजे से, भाव करो मजे से। पूरी स्वतंत्रता है। कृत्य में भर मत लाना। क्योंकि जैसे ही कृत्य में आया वैसे ही समाज की नींव डगमगाती है।

धर्म के संबंध में बात बिल्कुल भिन्न है। धर्म को इसकी चिंता नहीं कि तुमने किया या नहीं; धर्म को चिंता है कि तुमने सोचा या नहीं। क्योंकि धर्म निजी है, वैयक्तिक है। तुमने कितने ही साधुता के कृत्य किए हों, और अगर विचार असाधुता के हैं, तो धर्म की नजर में तुम साधु नहीं हो, समाज की नजर में साधु हो। अगर तुम्हारे भीतर भावनाएं पाप की हैं और तुम कृत्य पुण्य के करते हो। और अक्सर ऐसा होता है कि भावनाओं को छिपाने के लिए आदमी विपरीत कृत्य करता है। जिनके मन में पाप की बड़ी भावना है वे अपनी दीवाल पर लिख लेते हैंः ब्रह्मचर्य ही जीवन है। वह दीवाल पर जो उन्होंने लिख रखा है, टेबल पर जो मोटो रख कर बैठे हैं, ठीक उससे उलटी उनकी दशा होगी। सोचो, जिस आदमी को कामवासना की तीव्र विक्षिप्तता न उठती हो वह क्यों दीवाल पर लिख कर बैठेगा कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है? बीमार आदमी औषधि साथ रखता है; स्वस्थ आदमी तो नहीं।

जिसने अपने दरवाजे पर लिख रखा हैः आनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पालिसी। यह आदमी बेईमान है। इससे तुम जरा सावधान रहना, अपनी जेब बचाना। क्योंकि जो आदमी लिख कर बैठा है कि ईमानदारी ही श्रेष्ठतम नीति है, यह आदमी बेईमान होना ही चाहिए। अन्यथा इसे लिखने का सवाल ही न था। तुम्हें पक्का पता है, जहां-जहां

तुम लिखा देखो कि यहां शुद्ध घी बिकता है, वहां तुम थोड़े संदिग्ध हो जाना। क्योंकि घी लिखना काफी है, शुद्ध! घी में शुद्ध आ ही जाता है। घी में अशुद्ध का क्या सवाल है?

शुद्ध लिखने में ही बात छिपी है। अशुद्ध को ढांकने के लिए शुद्ध लिखा जाता है। पाप को ढांकने के लिए पुण्य लिखा जाता है। और लिखने की सबसे सुगम व्यवस्था है कृत्य। तुम जो भीतर हो उसे छिपाने के लिए सुगमतम मार्ग है कि तुम ऐसा कुछ करो जो उसके विपरीत है। तुम सारी दुनिया को धोखा दे दोगे।

तो यहां व्यभिचारी मन वाला व्यक्ति ब्रह्मचारी होकर बैठ जाता है। कृत्य में होता है ब्रह्मचर्य, भाव में होता है व्यभिचार। यहां भाव में सारी दुनिया की संपत्ति पर कब्जा कर लेने की आकांक्षा वाला व्यक्ति सब धन छोड़ कर त्यागी हो जाता है। धोखा बड़ा गहरा है। और ठीक से सावधानीपूर्वक उसमें उतरना जरूरी है और समझना जरूरी है। अन्यथा तुम भी वही कर सकते हो। क्योंकि जिन्होंने किया है वे भी तुम जैसे ही मनुष्य हैं। तुम यह मत सोचना कि यह मैं किसी और के लिए कह रहा हूं। यह मैं तुमसे ही कह रहा हूं। यह बात सीधी-सीधी है। तुम भी अगर अपने जीवन की थोड़ी जांच-परख करोगे, विश्लेषण करोगे, तो जल्दी ही पहचान लोगे कि तुम जो करते हो वह उसे छिपाने का उपाय होता है तुम जो हो।

और संत का अर्थ है, तुम जो हो उसी को प्रकट हो जाने देना। साधु वह है जो भीतर असाधु है और बाहर साधु का कृत्य करता है। असाधु वह है जो भीतर भी असाधु है और बाहर भी असाधु का कृत्य करता है। संत वह है जो भीतर भी साधु है और बाहर भी साधु का कृत्य करता है। इस संसार में असाधु भी सच्चा है, संत भी सच्चा है; साधु सबसे बड़ा धोखा है। असाधु बाहर-भीतर एक जैसा है। भीतर चोरी है, बाहर भी चोरी है। संत भी बाहर-भीतर एक जैसा है। भीतर भी ब्रह्मचर्य है, बाहर भी ब्रह्मचर्य है। साधु प्रवंचना है; साधु धोखा है। साधु इस संसार में सबसे बड़ा झूठ है। वह भीतर असाधु है, बाहर साधु है। भीतर पाप है, बाहर पुण्य है। भीतर तो चाहेगा गर्दन दबा दे और बाहर वह मंत्र जपता रहता हैः अहिंसा परमो धर्मः। अहिंसा परम धर्म है। असाधु सच्चा है, जैसा भीतर वैसा बाहर। संत भी सच्चा है, जैसा भीतर वैसा बाहर। इसलिए संत में और असाधु में एक तरह की समानता है; एक तरह की सच्चाई की समानता है। दोनों बड़े भिन्न हैं, बिल्कुल विपरीत हैं, लेकिन एक सच्चाई की समानता है। दोनों प्रामाणिक हैं।

तुम कभी अपराधियों को देखो जाकर। तुमने देखा नहीं, क्यों अपराधी की तुम्हारे मन में इतनी निंदा है कि तुम उसे कभी देखते ही नहीं। जब निंदा इतनी हो तो आंख देखने की फिक्र ही छोड़ देती है; पर्दा पड़ जाता है। कभी कारागृह में जाकर अपराधियों को गौर से देखो। तुम अपराधियों की आंख में तुम्हारे साधुओं से ज्यादा साधुता पाओगे। एक सरलता मिलेगी; वे जैसे भीतर हैं वैसे बाहर हैं। साधु की आंख में तुम्हें एक जटिलता मिलेगी; दो पर्तें मिलेंगी साधु की आंख में। ऊपर की पर्त पर मुस्कुराहट होगी, भीतर की पर्त पर उदासी होगी। ऊपर की पर्त पर ईमानदारी होगी, भीतर की पर्त पर बेईमानी होगी। साधु दोहरा है। साधु द्वंद्व है।

इसलिए लाओत्से की पूरी चेष्टा है कि तुम असाधु को छोड़ कर कहीं साधु मत हो जाना। अगर उठना ही हो तो असाधु से संतत्व में उठना। साधु कोई उठना नहीं है। साधु तो फिर असाधु ही बने रहने का और भी ज्यादा समाज-सम्मत उपाय है। समाज राजी हो जाएगा, तुम्हारे कृत्य बदल गए। समाज को कुछ लेना-देना नहीं। तुम किसी की हत्या नहीं करते, किसी की स्त्री की तरफ बुरे भाव से नहीं देखते, किसी की स्त्री को लेकर नहीं भाग जाते, किसी की चोरी नहीं करते; बात खतम हो गई। समाज तुमसे निश्चिंत हो गया। तुम जानो तुम्हारे भीतर का।

लेकिन धर्म अभी निश्चिंत नहीं होता। धर्म कहता है, जब तक तुम भीतर से न बदले तब तक तुम्हारे बाहर से बदलने का क्या अर्थ है? धर्म के लिए कृत्य महत्वपूर्ण नहीं है; धर्म के लिए भाव महत्वपूर्ण है। धर्म तुम्हारी अंतरात्मा को बदलने में उत्सुक है; तुम्हारे आचरण को बदलने में नहीं। हां, अंतरात्मा की बदलाहट से आचरण बदल जाएगा, वह दूसरी बात है। पर वह धर्म की चिंता नहीं है। वह अपने आप होगा। वह ऐसे ही होगा जैसे तुम्हारे पीछे तुम्हारी छाया चलती है।

तुमने कभी विचार किया या कभी देखा कि जो आदमी चोर है वह जब चोरी नहीं भी करता तब भी तो उसकी भाव-दशा चोर की ही होती है। चोरी नहीं भी करता--कोई चोर चौबीस घंटे तो चोरी करता नहीं, रोज तो चोरी करता नहीं--जब चोर चोरी नहीं करता तब वह कौन होता है? क्या वह अचोर होता है? कृत्य तो नहीं है। लेकिन कृत्य के न होने से क्या चोर अचोर हो जाता है? दो चोरी के बीच में चोर कैसा होता है? अंतरधारा बहती रहती है चोरी की; मौके की तलाश में होता है। जब मौका मिल जाएगा तब चोर हो जाएगा। चोर तो है ही। मौके के कारण चोर नहीं बनता; मौके के कारण भीतर की अंतरधारा प्रकट हो जाती है। अभी छिपा था, अब प्रकट हो जाता है। अभी ढंका था, अब अनढंका हो जाता है। लेकिन भीतर की धारा तो चोर की ही होगी।

जब कोई करुणावान व्यक्ति, कोई बुद्ध पुरुष, कोई करुणा का कृत्य नहीं कर रहा होता--न किसी के पैर दबा रहा है; न कोई गिर गया है उसे उठा रहा है; न कोई डूब रहा है पानी में उसे बचा रहा है; न किसी के मकान में आग लगी है और जाकर सेवा कर रहा है--जब दो करुणा के कृत्यों के बीच में बुद्ध पुरुष होते हैं तब कैसे होते हैं? कोई कृत्य तो नहीं होता, लेकिन भीतर बुद्धत्व की धारा होती है; भीतर करुणा बहती रहती है। उसी तरह जैसे चोर में चोरी बहती रहती है, कामी में काम बहता रहता है, लोभी में लोभ बहता रहता है, वैसे ही बुद्ध में ध्यान बहता रहता है, करुणा बहती रहती है, प्रेम बहता रहता है। दो करुणा के कृत्यों के बीच में भी बुद्ध बुद्ध होते हैं। कृत्य के कारण कोई बुद्ध नहीं होता; अंतरधारा के कारण कोई बुद्ध होता है।

अब जरा ऐसा सोचो कि बुद्ध बैठे हैं, कोई करुणा नहीं कर रहे हैं। और एक चोर उनके पास बैठा है, कोई चोरी नहीं कर रहा है। दोनों एक जैसे हैं क्या इस वक्त? बुद्ध कोई बुद्धत्व का काम नहीं कर रहे हैं; चोर कोई चोरी का काम नहीं कर रहा है; दोनों पास बैठे हैं। बाहर से देखने पर तो दोनों एक जैसे हैं। समाज के लिए तो दोनों बराबर हैं। क्योंकि समाज तो केवल कृत्य को पहचानता है, आचरण को पहचानता है। जब तक कोई चीज आचरण न बन जाए, समाज की आंख की पकड़ में ही नहीं आती। तो अभी समाज के लिए तो दोनों बिल्कुल एक जैसे हैं। लेकिन क्या तुम कह सकोगे कि दोनों एक जैसे हैं? दोनों में उतना ही अंतर है जितना पृथ्वी और आकाश में। कृत्य बिल्कुल नहीं है, पर अंतरधारा मौजूद है। चोर चोर है; बुद्ध बुद्ध हैं।

तुम्हारे करने से तुम नहीं हो; तुम्हारे करने पर तुम्हारा होना निर्भर नहीं है। तुम्हारे होने से तुम्हारा कृत्य आता है। इसलिए मैं कहता हूं, धर्म सामाजिक घटना नहीं है; धर्म समाज से बड़े बाहर की घटना है। संप्रदाय सामाजिक घटना है। हिंदू होना सामाजिक है; मुसलमान होना सामाजिक है; जैन होना सामाजिक है। धार्मिक होना सामाजिक नहीं है। क्योंकि हिंदू, मुसलमान, जैन, पारसी, ईसाई, वे सबके सब तुम्हारे कृत्य की ही फिक्र कर रहे हैं। ईसाइयों की दस आज्ञाएं हैं; उनमें एक भी आज्ञा नहीं है होने के संबंध में। चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, दूसरे की स्त्री को बुरे भाव से मत देखो; सब कृत्यों की बातें हैं।

समझ लो कि एक आदमी न चोरी करता, न किसी की स्त्री को लेकर भागता, न किसी की हत्या करता। क्या इतने न करने से वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा? उसकी अंतरधारा का क्या होगा? कृत्य तो रोका जा

सकता है। अंतरधारा? उसे बदलना तो बड़ी क्रांति है। उसके लिए तो बड़े आंतरिक जीवन से गुजरना जरूरी है। उसके लिए तो बड़ी अग्नि से गुजरना जरूरी है। उसके लिए तो अपने को आमूल बदल लेना होगा।

सभी संप्रदाय समाज के हिस्से हैं। वे समाज के वैसे ही हिस्से हैं जैसे अदालत। अदालत भी तुम्हें डराती है; संप्रदाय भी तुम्हें डराते हैं। धर्म समाज के बिल्कुल बाहर है। धर्म तो अभय को उपलब्ध करवाता है। धर्म भय के बाहर ले जाता है; निर्भय के भी बाहर ले जाता है। धर्म अंधकार के बाहर प्रकाश की तरफ ले जाता है। धर्म आरोहण है आत्म-अज्ञान से आत्म-ज्ञान में। वह एक आंतरिक क्रांति है।

इसलिए समाज धर्म के भी विपरीत होता है। क्योंकि समाज को डर लगता है कि ये धार्मिक व्यक्ति भी समाज को ऐसे ही लगते हैं जैसा निर्भय व्यक्ति लगता है; यद्यपि वह निर्भय नहीं है, वह अभय है। पर इतनी बारीक चीजें समाज की बुद्धि के बाहर हैं। समाज की बुद्धि तो बड़ी मोटी, कामचलाऊ बुद्धि है। वहां हिसाब बहुत बाजारू है। वहां बारीक, सूक्ष्म और नाजुक की कोई गति नहीं है। वह तो ऐसे ही है जैसे कि कोई साग-सब्जी तौलने वाले के पास तुम हीरे लेकर पहुंच जाओ और वह साग-सब्जी तौलने के बटखरों से हीरों को तौल दे। वह उसकी पकड़ के बाहर है। हीरे कहीं साग-सब्जी तौलने वाले बटखरों से तौले जाते हैं?

समाज की बुद्धि तो बड़ी साधारण, स्थूल है। समाज तो भीड़ है। भीड़ के पास कोई प्रतिभा होती है? भीड़ के पास तो निम्नतम प्रतिभा होती है। मनसविद कहते हैं कि अगर भीड़ के अलग-अलग व्यक्तियों की बुद्धि नापी जाए तो उसका जोड़ भी भीड़ की बुद्धि नहीं होता। यहां तुम अगर सौ मित्र बैठे हो, तो तुम्हारी प्रत्येक व्यक्ति का बुद्धि-माप अलग-अलग ले लिया जाए, तो उतना जोड़ भी तुम्हारी भीड़ का नहीं होता। और एक और अनूठी घटना मनसविद कहते हैं कि भीड़ में व्यक्ति अपनी बुद्धिमत्ता को भी खो देता है, और भीड़ में जो आखिरी आदमी होता है वह निर्णायक होता है, प्रथम आदमी निर्णायक नहीं होता। भीड़ में बुद्धिमान आदमी खो जाता है और मूढ़ प्रधान हो जाते हैं। क्योंकि भीड़ एक तरह का पतन है। तुम अपना दायित्व खो देते हो। एकांत में मनुष्य का निजता का फूल खिलता है; भीड़ में सारी प्रतिभा खो जाती है।

इसलिए तुम्हें कभी अनुभव हुआ होगा, जब भी तुम भीड़ से लौटते हो तो तुम्हें लगता है तुम कुछ खोकर लौटे। और दुनिया में जो बड़े से बड़े पाप होते हैं वे भीड़ के कारण होते हैं। अकेले आदमियों ने बड़े पाप नहीं किए हैं। हिंदुओं की भीड़ जो पाप कर सकती है वह कोई हिंदू अकेले में नहीं कर सकता। मुसलमानों की भीड़ जो कर सकती है भीड़ की तरह, एक मुसलमान अकेले में नहीं कर सकता। लाखों की हत्या की जा सकती है। तुम एक-एक मुसलमान और एक-एक हिंदू से पूछो कि क्या सार हुआ तुम्हें इन मुसलमानों के घरों में आग लगा देने से, या हिंदुओं का मंदिर जला देने से? अगर तुम एक-एक मुसलमान से पूछो तो वह भी डरेगा। वह भी कहेगा कि नहीं, यह उचित नहीं हुआ। और मुझे पता नहीं कैसे हो गया! मैंने कुछ किया भी नहीं, भीड़ में साथ हो गया। भीड़ तुम्हें पोंछ देती है। तुम्हारे दायित्व को, तुम्हारी समझ को, तुम्हारी प्रतिभा को धूल भर देती है। भीड़ एक बड़ा पतन है।

अगर बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट और मोहम्मद जंगल की तरफ भागते हैं तो उसका कारण यह नहीं है कि समाज बुरा है, उसका कुल कारण इतना है कि वे चाहते हैं कि एकांत मिल जाए। भीड़ की खींचती हुई आकर्षण की धारा नीचे की तरफ लाती है; वे अकेले होना चाहते हैं। क्योंकि दुनिया में जीवन का श्रेष्ठतम फूल अकेले में ही खिला है। कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण भीड़ में नहीं पैदा हुआ; भीड़ में नहीं हो सकता। एकांत में! हां, फूल खिल जाए, फिर वह भीड़ में वापस लौट आता है। लेकिन खिलने की घटना अकेले में होती है।

इसलिए एकांत का इतना मूल्य है। वह भीड़ की दुर्गति से बचने का उपाय है। कुछ बातें और समझ लें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

लाओत्से कहता है कि बुरे को, असाधु को, दुस्साहसी को समाज मिटा देता है; भले को, सज्जन को, साधु को बचा लेता है। संत कहां हैं फिर? संत के साथ समाज बड़ी दुविधा में रहता है। क्योंकि संत में लक्षण तो दोनों के होते हैं--साधु के, असाधु के। क्योंकि वह तो निर्द्वंद्व है, अद्वैत है। उसमें तो साधु-असाधु दोनों मिल कर एक हो गए हैं। वह तो संगीत है जीवन के विरोधों का। संत के साथ समाज क्या करे? बड़ी दुविधा खड़ी होती है।

तो समाज एक रास्ता निकालता है। जब संत जीवित होता है तब उसका विरोध करता है, जैसे असाधु का करना चाहिए। जब संत मर जाता है तब उसका सम्मान करता है, जैसा साधु का करना चाहिए। यह समझौता है समाज का। संत का न तो विरोध किया जा सकता है पूरे मन से, क्योंकि समाज को भी प्रतीत होता है कि आदमी गलत तो नहीं है। जीसस को पूरे मन से विरोध भी तो नहीं किया जा सकता; फांसी लगाते वक्त भी तो मन को चोट लगती है, कचोट होती है। लेकिन फांसी लगानी होगी। क्योंकि यह आदमी समाज के नियम तुड़वाए दे रहा है; प्रकट व्यवहार इसका असाधु का है। यह होगा भीतर साधु, लेकिन बाहर तो यह जो भी कर रहा है उससे समाज की नींव को डगमगा दिया है। समाज का भवन गिराए दे रहा है। जो-जो नियम थे, सब तोड़ दिए हैं। यह आदमी खतरनाक है। यद्यपि इस खतरनाक आदमी के भीतर भी गंध तो मिलती है किसी अपूर्व घटना की। लेकिन उस घटना के लिए इस आदमी की खतरनाक जीवन-व्यवस्था को भी तो बरदाश्त नहीं किया जा सकता। तो जीसस को सूली लगा दी। जिन्होंने सूली लगाई, वही ईसाई हो गए। जिन्होंने सूली लगाई, वे ही जीसस के भक्त हो गए। और ऐसी घटना बनी कि यहूदी धर्म सिकुड़ कर छोटा हो गया और ईसाइयत फैल कर विराट सागर बन गई।

हां, सूली लगा देने के बाद इस आदमी का कृत्य का जीवन तो समाप्त हो गया, आचरण तो समाप्त हो गया। अब बच गई केवल भीतर की बात। तो भीतर की पूजा की जा सकती है। भीतर से तो कोई डर नहीं है। जीसस की हत्या का अर्थ यह है कि तुम्हारे शरीर को समाज बरदाश्त न कर सकेगा; तुम्हारे व्यवहार को, आचरण को बरदाश्त न कर सकेगा। हां, तुम्हारी आत्मा की हम पूजा करेंगे सदा-सदा।

इसलिए संत जब मर जाते हैं तभी पूज्य हो पाते हैं। संत को जीते जी पूजना थोड़े से दुस्साहसी लोगों की ही बात है। समाज और भीड़ संत को जीते जी नहीं पूज सकती। संत बड़ी दुविधा में डाल देता है। क्योंकि संत दुविधाओं का जोड़ है, विरोधों का समागम है।

अब हम सूत्र में उतरने की कोशिश करें।

"तुम उसकी हत्या कर देते हो जो आक्रमण करने में साहसी है। तुम उसे जीने देते हो जो आक्रमण नहीं करने में साहसी है। इन दोनों में कुछ लाभ भी हैं और कुछ हानि भी।"

क्या लाभ हैं और क्या हानियां हैं, विचारणीय है। जो भयभीत आदमी है उसके कुछ लाभ भी हैं। बड़े से बड़ा लाभ तो यह है कि जो जान लिया गया है उसे वह बचाता है। नहीं तो वह जो निर्भीक आदमी है, वह उस सबको गंवा देंगे जो हजारों-हजारों साल में जाना गया है। जो ज्ञान की संपदा है उसे भयभीत आदमी बचाता है। वह सांप की तरह कुंडल मार कर बैठ जाता है अतीत पर; वह तुम्हें छूने नहीं देता, परंपरा तोड़ने नहीं देता; लीक से उतरने नहीं देता।

लीक का मतलब ही यह है कि हजारों-हजारों साल के अनुभवों का निचोड़ है वह। किसी एक आदमी के कहने पर लीक छोड़ी नहीं जा सकती। तुम एक हो; वह हजारों-हजारों वर्षों का अनुभव है। तुम भटका सकते हो; तुम निचोड़ को गंवा देने का कारण बन सकते हो। और वह जो लीक है वह भी तो बुद्ध पुरुषों के ही चरणों का चिह्न है।

इसे थोड़ा समझ लें। वह भी तो कभी संतों ने चल कर ही उस रास्ते को निर्मित किया था जिसको आज भयभीत आदमी पकड़े हुए है। वह उसे छोड़ने न देगा। अगर भीरु लोग न होते तो बुद्ध के वचन न बचते। कौन बचाता? अगर भीरु लोग न होते तो मंदिरों में प्रतिमाएं न होतीं महावीर की। कौन बचाता? अगर निर्भीक लोगों की बातें सुनी गई होतीं तो न मंदिर होते, न मस्जिद होती, न बुद्ध का स्मरण होता, न क्राइस्ट का स्मरण होता। सब खो गया होता। क्योंकि निर्भीक सदा तुम्हें लीक के बाहर ले जाता है।

इसे थोड़ा बारीकी से समझो तो भीरु बचाता है। वह संरक्षक है। वह नये को पैदा नहीं कर सकता, लेकिन एक बार नया पैदा हो जाए तो वह उसे बचाता है। वह नये को पैदा होने में सहायता भी नहीं दे सकता, वह नये का दुश्मन है। लेकिन पुराने का प्रेमी है। एक दफा नये को तुम पैदा कर दो तो नया पुराना हो जाता है। पुराना होते ही से भीरु उसे बचाता है।

इसे तुम ऐसा समझो कि तुम मुझे सुनने आए हो। मैं कुछ नयी बातें कह रहा हूं। बहुत थोड़े से लोग मुझे सुनने आ पाएंगे। वे बहुत अल्प होंगे। क्योंकि नये की सुनने की क्षमता भीरु आदमी में होती ही नहीं। लेकिन ध्यान रखना, जैसे ही मैं विदा हो जाऊंगा, जो मैंने कहा था उसको तुम न बचा सकोगे; उसको भीरु आदमी बचाएगा। तुम तो फिर कोई नयी बात कहने आ जाएगा तो उसको सुनने चले जाओगे। भीरु नहीं जाएगा। वह अभी मुझे सुनने नहीं आया। वह कल जब मेरी बात को पकड़ लेगा तो वह किसी और को सुनने नहीं जाएगा। वही बचाने वाला होगा।

भीरु संरक्षक है। निर्भीक जन्मदाता है। तुम ऐसा समझो कि इस जीवन के रहस्य में निर्भीक मां है और भीरु दाई है। और मां जन्म देकर विदा हो जाती है और दाई के ऊपर ही सारा दायित्व है। निर्भीक पैदा करने में समर्थ है; वह नया रास्ता बनाता है। भीरु देखता रहता है। जब तक कि रास्ता पूरा न बन जाए, जब तक कि बहुत लोग रास्ते पर चल न लें, जब तक कि भीरु को खबर न मिल जाए, आश्वासन न हो जाए विश्वस्त सूत्रों से कि हां, वह रास्ता पहुंचाता है, तब तक भीरु कदम नहीं उठाता। जैसे ही रास्ता सुनिश्चित हो जाता है, नक्शे उपलब्ध हो जाते हैं, भीरु सोच-विचार लेता है, सुरक्षा-असुरक्षा की सब बात तय हो जाती है, तब भीरु कदम उठाता है। फिर वह बचाता है उस रास्ते को। इसी तरह वह पुराने रास्तों को बचा रहा है।

और भी एक बात समझ लेने जैसी है कि भीरु कसौटी है। जब भीरु किसी रास्ते पर जाने लगे, उसका अर्थ यह है कि सब कसौटियों पर वह रास्ता खरा उतर गया। निर्भीक तो नये पर जाने को आतुर होता है, बिना चिंता किए कि कहीं जाएगा यह रास्ता या नहीं जाएगा! तो निर्भीक सौ में से निन्यानबे मौकों पर तो भटकता है। वह तो कोई भी आवाहन मिल जाए उसे नये का तो तत्पर होता है जाने को। लेकिन नया सदा ठीक ही थोड़ी होता है। न तो पुराना सदा गलत होता है, न नया सदा ठीक होता है। नया बहुत बार गलत होता है, पुराना भी बहुत बार ठीक होता है। नये-पुराने से ठीक-गलत का कोई संबंध ही नहीं है। भीरु कसौटी है। जब भीरु भी जाने लगे तब समझना कि मार्ग सारी कसौटियों पर पूरा उतरा। तभी तो भीरु जाएगा, अन्यथा वह जाने वाला नहीं। भीरु बचाता है। भीरु कसौटी है।

लेकिन उसके खतरे भी हैं। क्योंकि वह नये पर जाने नहीं देता, वह पुराने को पकड़े रहता है। चाहे पुराने से कहीं पहुंच भी न रहा हो तो भी पकड़े रहता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम बीस साल से मंत्र का जाप कर रहे हैं। मैं उनसे पूछता हूं, कुछ हो रहा है? तो कुछ हो तो नहीं रहा। मंत्र छोड़ो, मैं तुम्हें कुछ और बताऊं। वे कहते हैं, यह कैसे हो सकता है? मंत्र तो गुरु ने दिया था। बीस साल करते भी हो गए; अब छोड़ तो नहीं सकते। कुछ हो भी नहीं रहा। कहीं पहुंच भी नहीं रहे। जैसे निर्भीक नये के प्रति आतुर होता है वैसा भीरु पुराने के प्रति आविष्ट होता है। इतने दिन से कर रहे हैं; कैसे छोड़ दें? वे यह भी सोचते ही नहीं कि पहुंच रहे हैं, नहीं पहुंच रहे हैं? औषधि काम कर रही है, नहीं कर रही है? वह सिर्फ पकड़ने का आदी होता है।

तो भीरु बचाता तो है, लेकिन वह कचरे को भी बचा लेता है। वह गलत को भी बचा लेता है। वह बचाने में ही उत्सुक है। वह अंधी दाई है। उसे पता भी नहीं रहता कि बच्चा मरा हुआ है। तो भी बचाए रखती है, छाती से लगाए रखती है। तुमने कभी बंदरिया को देखा हो, मरे बच्चे को छाती से लगाए वह कई दिनों तक घूमती रहती है। उसे पता ही नहीं कि बच्चा मर गया है।

भीरु को पता ही नहीं चलता कि चीजें जीवित होती हैं वे भी मर जाती हैं; जो मार्ग कभी पहुंचाता था, वह सदा नहीं पहुंचाएगा। मार्ग भी जीते हैं और मर जाते हैं। धर्म भी जन्मते हैं और मर जाते हैं। विचार की पद्धतियां कभी जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं, मरती हैं। इस जगत में हर चीज का मौसम है और हर चीज की अवस्था है। जैसे बच्चे, बूढ़े ऐसे ही धर्म भी बचपन, जवानी, बुढ़ापे से गुजरते हैं। आज से पांच हजार साल पहले कोई चीज जवान थी, वह कभी की मर चुकी। भीरु उसे छाती से लगाए बैठा रहता है। वह यह मान ही नहीं सकता कि जो कभी जिंदा था वह मर कैसे सकता है। वह कहता है, हमारा धर्म सनातन है।

कोई धर्म सनातन नहीं होता। सनातन अस्तित्व है। धर्म तो अस्तित्व की सुनी गई प्रतिध्वनि है किसी प्रज्ञावान पुरुष में। जब प्रज्ञावान पुरुष जीवित होता है तो उसकी सुनी गई प्रतिध्वनि में प्राण होते हैं, बल होते हैं। जैसे-जैसे प्रज्ञावान पुरुष विदा हो जाता है वैसे-वैसे रूढ़ि बन जाती है, जो ज्ञान था वह शास्त्र बन जाता है। जो शब्द निशब्द से आते थे, अब केवल शब्दों की ही भरमार रह जाती है। जो कभी उस प्रज्ञावान पुरुष के शून्य से पैदा होते थे, अब वे केवल शास्त्रों की व्याख्या से पैदा होते हैं। जो कभी ध्यानस्थ समाधि से आए थे, अब वे केवल पंडित के पांडित्य से आते हैं। अब पुरोहित कब्जा कर लेता है।

बुद्ध ने कहा है कि मेरा धर्म पांच सौ साल से ज्यादा नहीं जीएगा। लेकिन अभी भी जी रहा है। कैसे जी रहा है? बंदरिया मरे बच्चे को लेकर घूम रही है। बुद्ध खुद कह गए हैं कि मेरा धर्म पांच सौ साल से ज्यादा नहीं जीएगा। अब बुद्ध की भी सुनने को, जो बुद्ध को मानता है, वह राजी नहीं। वह पकड़े है छाती से। धर्म मर चुका है। उसके प्राण खो गए, उसकी जीवंत गरिमा जा चुकी; अब कुछ सार नहीं है। लेकिन प्राचीन मार्ग है। बुद्ध के द्वारा पैदा हुआ है। अनेक लोग उस पर चल कर प्राचीन समय में बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं। भीरु उसको पकड़े बैठा है। वह छोड़ेगा नहीं।

भीरु बचाता है। लेकिन उसके पास बोध नहीं है। वह गलत को भी बचा लेता है; मुर्दा को भी बचा लेता है; सड़े-गले को भी बचा लेता है। वह सिर्फ बचाता रहता है। वह बचाने में पागल है। उसका रस बचाने में है। वह यह नहीं देखता कि क्या बचा रहा है। वह चुनाव नहीं कर सकता; जैसे निर्भीक चुनाव नहीं कर सकता कि वह कहां जा रहा है, क्यों जा रहा है; बस नये का बुलावा काफी है।

इसलिए निर्भीक के हाथ में अगर दुनिया हो तो दुनिया में कभी किसी वृक्ष की जड़ें न जम पाएंगी। जमने के पहले कोई दूसरी पुकार आ जाएगी; इस वृक्ष को सम्हालने के पहले दूसरा वृक्ष बुला लेगा। अगर निर्भीक के हाथ में दुनिया हो तो दुनिया में फैशन होंगी, धर्म नहीं हो सकता।

अमरीका में वह हालत है आज। अमरीका आज जवान से जवान मुल्क है; इसलिए बड़ा निर्भय है। आज अमरीकन की चाल में जो निर्भय है, दुनिया की किसी कौम की चाल में नहीं है। हो नहीं सकता। क्योंकि अमरीका का कुल इतिहास तीन सौ साल का है। कोई इतिहास है तीन सौ साल भी? बिल्कुल जवान है। जवान भी कहना ठीक नहीं है; बालपन है। तो अमरीका में हर चीज फैशन की तरह है। दो-चार साल टिक जाए तो बहुत। जब आती है आंधी तो ऐसा लगता है कि पूरा अमरीका आत्मसात कर लेगा। कभी महर्षि महेश योगी, कभी मेहरबाबा, कभी सूफीज्म, कभी झेन। अभी आंधी चल रही है तिब्बेतन धर्म की। क्योंकि तिब्बत से लामा भाग खड़े हुए हैं, तिब्बत को छोड़ना पड़ा है। वे सब अमरीका पहुंच गए हैं। बड़ी जोर की आंधी है। पर दो-चार साल से ज्यादा कुछ भी नहीं चलता। क्योंकि अमरीका में अभी भीरुता नहीं है चीजों को पकड़ने की। सुनी आवाज; नया कुछ भी मिला, गए। वह ऐसे ही जैसे कि नये वस्त्र पहनने का आकर्षण होता है; नयी किताब पढ़ने का आकर्षण होता है; नयी स्त्री में सौंदर्य दिखता है; नये पुरुष में सौंदर्य दिखता है। नये का सेंसेशन है, नये की दौड़ है। पर वह फैशन से ज्यादा नहीं। फैशन कितनी देर टिकती है? उसकी कोई जड़ें नहीं होतीं।

एक दिन राह पर मैंने मुल्ला नसरुद्दीन को देखा भागते, एक बंडल बगल में दबाए। मैंने पूछा, क्या इतनी जल्दी है? कहां भागे जा रहे हो? उसने कहा, पत्नी के लिए साड़ी खरीदी है; बातचीत में मत लगाएं, रोकें मत, मुझे जाने दें। मैंने कहा, इतनी क्या जल्दी है? साड़ी खरीदी है, पहुंच जाएगी। उसने कहा, इसके पहले कहीं फैशन बदल जाए! साड़ियों का कोई भरोसा है? कितनी देर फैशन चलता है?

अमरीका में सब चीजें फैशन हैं। निर्भीक के लिए नये में रस है। नया गलत हो तो भी रस है; नया सड़ा-गला हो तो भी रस है; नया किसी सार का न हो, दो कौड़ी का हो, तो भी रस है। वह पुराने हीरे को भी नयी कौड़ी के लिए फेंक सकता है। यह उसका खतरा है। यह उसका दुर्गुण है।

पुराने के साथ, भीरु के साथ यह खतरा है कि अगर नया हीरा भी उसे मिल रहा हो तो भी वह कौड़ी को रखेगा छाती से लगा कर, वह हीरे से भी डरेगा। वह कहेगा, नया है; क्या भरोसा? पुराने का भरोसा है। अगर पुराने भीरु आदमी को समझाना भी हो कुछ नया तो नयी शराब को भी पुरानी बोतल में ढाल कर देना पड़ता है।

इसलिए तो मुझे लाओत्से और बुद्ध और कृष्ण पर बोलना पड़ता है; अन्यथा कोई कारण नहीं है। शराब मेरी है। मेरी ही बोतल भी हो सकती है। मगर मैं चाहूंगा कि भीरु भी उत्सुक हो जाए। वह मुझे सुनने न आएगा, लेकिन मैं गीता पर बोलूंगा तो सुनने आ जाता है। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। शराब तो मेरी है। बोतल कृष्ण की सही। बोतल का भी कोई मूल्य है! तो चलो लाओत्से सही, बुद्ध सही; तुम्हारी नासमझी को थोड़ी तृप्ति मिले, यही सही। नासमझी की तृप्ति से भी अगर कहीं तुम्हारे कानों में मेरे शब्द पड़ जाएं, बोतल के बहाने तुम आ जाओ और शराब मेरी पी लो, बात हो गई।

पुराना होना चाहिए, भीरु आदमी को। फिर पुराना कुछ भी हो। प्राचीन उसका आब्सेशन है, उसकी विक्षिप्तता है; वह प्राचीन का दीवाना है। वह बचाता है। कचरे को भी बचा लेता है, मुर्दे को भी बचा लेता है, सड़े-गले को भी बचा लेता है। क्रांति होने ही नहीं देता। खतरा भी साफ है; लाभ भी साफ है। बचा सकता है वह। जीवंत को भी वही बचाता है।

नये का खतरा और गुण भी साफ है। जीवंत को नया ही खोज पाता है। वही जो भूल करने को तैयार है वही तो नये को खोज पाएगा। जो भूल करने से डरता है वह नये को खोज ही नहीं सकता। जो सौ रास्तों पर जाने को तैयार है चाहे वे गलत हों, वही तो एक उस रास्ते पर पहुंच पाएगा जो सही हो सकता है। सही को खोजने का रास्ता ही क्या है और? गलत करने की हिम्मत! गलत में उतरने का दुस्साहस! भटकने के लिए जो राजी है वही तो हीरा खोज लाएगा। तुम अगर भटकने से डरे हो, हीरा नहीं खोज पाओगे। तो लाभ है निर्भीक का कि वह नये को खोजता है, नये को जन्म देता है। खतरा है निर्भीक का कि नये के नाम पर वह कूड़ा-करकट भी बटोर लाता है, कंकड़-पत्थर ले आता है। वह कहता है, ये नये हैं। और क्या पुराने हीरे को लिए बैठे हो? फेंको!

इसलिए लाओत्से कहता है, "कुछ लाभ भी हैं, कुछ हानि भी।"

संत न तो साधु है, न असाधु; न तो भयभीत-भीरु, न निर्भीक-निर्भय। संत को न नये से संबंध है, न पुराने से; संत को सत्य से संबंध है। सत्य नया भी हो सकता है, पुराना भी। वस्तुतः सत्य न तो नया होता है, न पुराना; सत्य तो शाश्वत है। वह सदा पुराना है और सदा नया है। चिरनूतन! चिरपुरातन! संत की नजर न तो नये से आविष्ट होती है, न पुराने के प्रति पागल होती है। संत नये को जन्म देता है और पुराने को बचाता भी है। वस्तुतः संत नये को जन्म देकर ही पुराने को बचाता है। यह उसकी तरकीब है। यही रास्ता है पुराने को बचाने का कि नये को जन्म दो। वह पुराना हो गया है इसीलिए कि तुम उसे फिर-फिर जन्म नहीं दे पा रहे हो। किसी भी चीज को नया रखने का एक ही रास्ता है और वह यह है कि उसे प्रतिपल जन्म दो। बुद्धत्व कोई नयी चीज को थोड़े ही लाता है; वही जो सदा से थी, उसे फिर से नये रूप में ले आता है। पुराने रूप पुराने पड़ गए। पुराना ढंग-ढांचा जराजीर्ण हो गया। पुराना अब सम्हाल नहीं पाता उस आत्मा को। पुराने घर को आत्मा ने छोड़ दिया, क्योंकि वह घर रहने योग्य न रहा, खंडहर हो गया।

बुद्ध पुरुष नया घर बनाते हैं। आत्मा तो पुरानी ही है सदा। नया रूप देते हैं; नया निमंत्रण भेजते हैं आत्मा को कि अवतरित हो जाओ। बुद्ध पुरुष बार-बार धर्म को अवतरित करते हैं।

धर्म तो एक ही है। धर्म का अर्थ है स्वभाव, जिसको लाओत्से ताओ कहता है; वह तो एक ही है। वह न नया है, न पुराना है; वह समय के बाहर है। जब भी हम उसे समय में लाते हैं तो रूप देना पड़ता है। रूप पुराने पड़ जाएंगे। जब रूप पुराने पड़ जाएंगे तो रूपों को तोड़ देता है संत पुरुष, नये रूप ले आता है।

लेकिन संत को पहचानना कठिन है। क्योंकि तुम्हारी भाषा में भयभीत भी समझ में आ जाता है, निर्भीक भी समझ में आ जाता है। निर्भीक है क्रांतिकारी, भीरु है परंपरावादी। वे दोनों तुम्हारी समझ में आते हैं, क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संत कठिन होगा समझनाः परंपरावादी धन क्रांतिकारी। वह दोनों है एक साथ; वह सबको समेट लिया है उसने; न तो क्रांति वर्जित है, न परंपरा वर्जित है। और जब क्रांति और परंपरा का मेल होता है, तभी--केवल तभी--जैसे शरीर और आत्मा का मेल होता है तभी जीवन प्रकट होता है, ऐसे ही परंपरा और आत्मा का जब मेल होता है तभी धर्म प्रकट होता है, धर्म का जीवन प्रकट होता है। परंपरा है शरीर; क्रांति है आत्मा।

अगर तुम ऐसी कीमिया बना सको कि तुम परंपरा और क्रांति को, दोनों को एक साथ सम्हाल लो--एक हाथ में क्रांति, एक हाथ में परंपरा--तो ही तुम संतत्व को उपलब्ध हो पाओगे। तब तुम में वे सारे गुण होंगे जो निर्भीक के हैं और वे दुर्गुण न होंगे जो निर्भीक के हैं; वे सारे गुण होंगे जो भीरु के हैं और वे दुर्गुण न होंगे जो भीरु के हैं। तब तुमने सदगुणों का समुच्चय पैदा कर लिया।

"यद्यपि स्वर्ग कुछ लोगों को नापसंद कर सकता है, तो भी कौन जानता है कि किन्हें मारा जाए और क्यों?"

लाओत्से कहता है कि उस परम स्वभाव के कुछ लोग अनुकूल होंगे, कुछ लोग प्रतिकूल होंगे। जो प्रतिकूल होंगे वे अपने आप ही कष्ट पाते रहेंगे। लेकिन कौन निर्णय करे कि किसे मारा जाए? क्यों मारा जाए?

"संत पुरुष भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"

साधु-असाधु के तो बस के बाहर है यह तय करना। क्योंकि साधु का तो निर्णय पहले से है कि असाधु को मारा जाए और असाधु भी निर्णीत है कि साधुओं को मिटाया जाए। उनका द्वंद्व तो साफ है।

"संत पुरुष भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"

किसे मारा जाए? किसे बचाया जाए? क्यों? यह जटिल है प्रश्न। और जितना तुम्हारा ज्ञान गहन होगा उतना ही जटिल होता जाता है। क्योंकि एक ऐसी घड़ी आती है तुम्हारे परम ज्ञान की जब तुम देखते हो कि चीजें प्रतिपल अपने से विपरीत में रूपांतरित होती रहती हैं। जिस असाधु को तुमने आज मार दिया, क्या तुम निश्चित हो सकते हो कि वह कल साधु न हो जाता? क्योंकि हमने बाल्मीकि को साधु होते देखा है असाधु से। तो इस असाधु को मारने में तुम्हारा क्या निर्णय है कि यह कल साधु न हो जाता? कौन कह सकता है कि तुमने असाधु मारा और कल होने वाला साधु नहीं मार दिया? बहुत असाधु साधु हुए हैं। वस्तुतः साधु होने का एक ही उपाय है और वह असाधु होने से निकलता है।

एक छोटे चर्च में एक पादरी बच्चों को समझा रहा था कि परमात्मा तक पहुंचने का उपाय क्या है, स्वर्ग को पाने का उपाय क्या है, कैसे कोई व्यक्ति परमात्मा की अनुकंपा पा सकता है। आशा कर रहा था कि बच्चे जवाब देंगे; कोई कहेगा प्रार्थना, कोई कहेगा पूजा-अर्चना, कोई कहेगा ध्यान, पुण्य कृत्य, आचरण, सदाचरण। एक छोटे बच्चे ने हाथ ऊपर उठाया। पादरी ने पूछा कि क्या है मार्ग परमात्मा को पाने का? उसने कहा, पाप। क्योंकि बिना पाप किए प्रायश्चित्त न हो सकेगा। बिना प्रायश्चित्त के कभी कोई उपलब्ध हुआ है।

किसे मिटाया जाए? पापी को तुम मिटा रहे हो तो तुम बीज रूप में पुण्यात्मा को मिटा रहे हो। क्योंकि पापी कभी पुण्यात्मा होगा ही। पापी कब तक पापी रह सकता है? अगर पापी होने में पीड़ा है तो बस थोड़ी प्रतीक्षा की बात है। धैर्य रखो, मिटाओ मत। पापी अपनी पीड़ा से ही पुण्यात्मा होगा। और तुम मिटा कर उसे पुण्यात्मा न बना सकोगे। क्योंकि जिसे तुमने मिटा दिया उसे तुम प्रतिशोध से भर दोगे।

इसे थोड़ा समझ लो। जिसको भी समाज मिटाने को राजी हो जाता है वह भी समाज के प्रति प्रतिरोध से भर जाता है। और उसके प्रतिरोध का अर्थ होगा कि तुम जो चीज बदलना चाहते हो, वह वह न बदले। अपराधियों को दंड दे-देकर हमने अपराधी बढ़ाए हैं, कम नहीं किए। क्योंकि दंड अहंकार को चोट पहुंचाता है। और जब तुम किसी को दंड देते हो तो उसके मन में यही भाव उठता है कि और करके दिखाऊंगा, यही करके दिखाऊंगा, यद्यपि अगली बार थोड़ी कुशलता से करूंगा कि पकड़ा न जा सकूं। इसके अतिरिक्त कोई भाव नहीं उठता। दंड देने से तुमने कभी किसी को बदलते देखा है? कभी दुनिया में ऐसा हुआ है कि दंड देकर कोई बदला हो?

लेकिन अंधापन हद्द है! हम दंड दिए जाते हैं। हम जितना दंड देते हैं उतने कारागृह बड़े होते जाते हैं। हर साल नये कारागृह बनते हैं, नयी अदालतें खड़ी होती हैं, नये पुलिस, नये संरक्षक, और यह बढ़ता जाता है सिलसिला। इसका कोई अंत नहीं मालूम होता। ऐसा लगता है, अगर ऐसा ही चलता रहा तो कभी न कभी पूरी पृथ्वी अपराधगृह हो जाएगी। संख्या बढ़ती ही जाती है।

दंड से कोई भी तो कभी रूपांतरित नहीं हुआ। दंड से तो आदमी पतित ही हुआ है।

मनसविद कहते हैं कि जो आदमी एक बार दंडित हो जाता है फिर वह बार-बार कारागृह आने लगता है। और हर बार बड़ी सजा पाता है, क्योंकि हर बार बड़ा अपराध करके आता है। तुम भी जानते हो, छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं कि उनसे तुम कहो कि मत करो यह, तो उनके भीतर एक प्रबल आकांक्षा पैदा होती है करने की। क्योंकि आखिर तुम जब कहते हो मत करो, तो तुम उसके अहंकार को भयंकर आघात पहुंचा रहे हो। करके ही वह अपने अहंकार को बचा सकेगा, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

तुम्हें पता नहीं कि तुमने कितने अपराध बच्चों में इसीलिए पैदा करवा दिए हैं क्योंकि तुमने सिखाया कि मत करो। असल में, बच्चों को पता ही नहीं होता कि झूठ बोलना पाप है। जब तुम कहते हो कि झूठ बोलना पाप है तब उन्हें पहली दफा पता चलता है कि झूठ बोलने में जरूर कोई रस होगा। क्योंकि पाप में रस होता ही है। जिन चीजों को तुमने पाप कहा है वे सब रसपूर्ण हो गईं; तुम्हारे पाप कहने से और भी रसपूर्ण हो गईं। और तुमने जिन चीजों के लिए दंड दिया है, वर्जना की है, उनमें आकर्षण पैदा हो गया।

यहां दरवाजे पर लिख दो कि भीतर झांकना मना है। फिर यहां से कोई हिम्मतवर निकल न सकेगा बिना झांके। झांकेगा ही। तुमने जहां-जहां लिखा देखा हो कि यहां पेशाब करना मना है, वहां तुम्हें नीचे सौ आदमियों के चिह्न पेशाब करने के वहीं मिलेंगे उसी वक्त। असल में, जिस दीवाल पर लिखा हो यहां पेशाब करना मना है, वहां आते ही अचानक पेशाब लग आती है।

किसी ने कभी ऐसा किया नहीं, लेकिन तुम करके देखना। अगर कोई दीवाल बचानी हो तो उस पर लिख देना कि यहां से बिना पेशाब किए जाना सख्त मना है; अगर गए तो बहुत बुरा होगा। वहां जिस आदमी को पेशाब भी लगी हो वह भी रोक लेगा। आखिर आदमी आदमी है; इज्जत का सवाल है। ऐसे कोई मजबूर कर सकता है? ऐसे कोई जबरदस्ती कर सकता है किसी पर?

अहंकार जबरदस्ती से प्रतिशोध करता है, प्रतिरोध करता है, रेसिस्ट करता है।

इसलिए लाओत्से कहता है, "कौन जानता है किन्हें मारा जाए और क्यों? संत भी इसे कठिन प्रश्न की तरह लेते हैं।"

यह निर्णय करना मुश्किल है। यह निर्णय वस्तुतः किया ही नहीं जा सकता। फिर हम कौन हैं निर्णय करने वाले? जीसस ने कहा है, जज यी नाट, तुम निर्णय लो ही मत। क्योंकि तुम्हारे सब निर्णय गलत होंगे।

"स्वर्ग का मार्ग--ताओ--बिना संघर्ष के विजय में कुशल है।"

मारने की जरूरत नहीं है। तुम छोड़ो परमात्मा पर। तुम छोड़ो जीवन के परम रहस्य पर। वह बिना मारे बदलने में समर्थ है। वह बिना मिटाए रूपांतरित करवा देता है। उसकी कला क्या है?

उसकी कला कि जब भी तुम पाप करते हो, तुम स्वयं ही पीड़ा पाते हो। पाप में ही उसका दंड छिपा है। कोई तुम्हें दंड नहीं देता, इसलिए तुम प्रतिशोध भी नहीं कर सकते। तुम अपने ही द्वारा दंड पाते हो। अगर कोई तुम्हें दंड न दे तो पाप करके तुम पाओगे तुमने अपने को ही दंडित किया। जैसे सिर फोड़ लिया दीवाल से जब कि दरवाजा खुला था और तुम बिना सिर फोड़े निकल सकते थे। कितनी देर तुम सिर फोड़ते रहोगे? तुम्हारा ही सिर है। तुम कितनी देर तक अपने को पीड़ा में डुबाए रखोगे? कब तक तुम नरक को निर्मित करोगे?

स्वर्ग का मार्ग, ताओ--धर्म का मार्ग या परमात्मा का मार्ग--तुम्हें दंडित करना नहीं है, और न तुम्हें पुरस्कृत करना है। तुम्हें छोड़ देना है स्वतंत्र, ताकि तुम अपने ही कृत्यों से दंडित हो जाओ, अपने ही कृत्यों से पुरस्कृत। किसी और के विरोध में प्रतिशोध में तुम्हारे अहंकार के खड़े होने का उपाय भी नहीं छोड़ा गया है।

तुम अकेले छोड़ दिए गए हो। तुम्हें पूरा दायित्व दे दिया गया है। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। भोग लो पीड़ा भोगनी हो तो, लेकिन जानना कि तुमने ही चुनी थी। पा लो आनंद अगर पाना हो। पुण्य के साथ आ जाता है आनंद, जैसे फूलों के साथ सुवास; पाप के साथ आ जाती है पीड़ा। जुड़े हैं। कोई और तुम्हें देता नहीं, तुम्हीं देते हो। तुम्हीं बोते हो, तुम्हीं फसल काटते हो। कोई दूसरा बीच में आता नहीं।

यही है वह कुशल मार्ग, जिसको लाओत्से कहता है, बिना संघर्ष के विजय में कुशल है।

"बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है।"

बिना शब्द के! कोई आवाज नहीं होती कि तुम दंडित किए जा रहे हो और दंड घटित हो जाता है। कोई न्यायाधीश नहीं बैठा है जो तुम्हें धन्यवाद देता हो, पुरस्कार देता हो, और तुम पुरस्कृत हो जाते हो।

"बिना शब्द के वह पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है।"

बिना शब्द के घट रहा है, क्योंकि पाप में ही छिपा है उसका दंड और पुण्य में ही छिपा है उसका पुरस्कार। बाहर नहीं है, बाहर से नहीं आता, तुम्हारे ही कृत्य के भीतर से खिलता है। इसलिए बिना शब्द के घटित हो जाता है।

अगर लाओत्से की मानी जा सके बात तो पृथ्वी पर सब दंड और पुरस्कार की व्यवस्थाएं बंद कर दी जानी चाहिए। क्योंकि दंड देकर हम किसी को बदल नहीं पाए; पुरस्कार देकर किसी को बदल नहीं पाए। आदमी गिरता ही गया है। असल में, समाज ने सोचा है कि परमात्मा की व्यवस्था से भी श्रेष्ठ व्यवस्था की जा सकती है। वहीं भूल है। छोड़ दो लोगों को उनके ही कृत्यों पर, ताकि वे खुद ही निर्णय ले सकें, ताकि वे खुद ही जान सकें कि कौन सा कृत्य दुख में ले जाता है। किस रास्ते पर कांटे हैं और किन रास्तों पर फूल हैं, उन्हें चुनने दो। कोई दूसरा बीच में न आए। तो जल्दी ही निर्णय हो जाएगा। देर न लगेगी, वे खुद ही जान लेंगे। उलझाव नहीं होगा; सीधी बात होगी। गणित साफ होगा। पर समाज डरता है कि ऐसा लोगों को छोड़ दें तो कहीं बिगड़ न जाएं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, बुद्धिमान लोग, विचारशील लोग, वे कहते हैं कि आप जो बातें कहते हैं उससे तो स्वच्छंदता फैल जाएगी। मैं उनसे पूछता हूं, क्या तुम कह सकते हो कि स्वच्छंदता फैली नहीं है? वे कहते हैं, आप जो कहते हैं उससे तो लोग बड़े अपराधी हो जाएंगे। मैं उनसे पूछता हूं, क्या लोग अपराधी नहीं हैं? इससे ज्यादा पाप और क्या हो सकता है दुनिया में? इससे बुरा और क्या हो सकता है जैसा है?

वे अकारण डरे हुए हैं, व्यर्थ ही भयभीत हैं। और मजा यह है कि उनकी व्यवस्था के कारण लोग ज्यादा पापी हैं। उनकी व्यवस्था के कारण लोग यह देख ही नहीं पाते कि पाप में उसकी पीड़ा है। तुम पीड़ा देते हो तो उनको लगता है, न्यायाधीश पीड़ा दे रहा है, समाज पीड़ा दे रहा है। तुम्हारी पीड़ा के कारण उनमें विरोध पैदा होता है। विरोध के कारण वे उन्हीं कृत्यों को बार-बार दोहराते हैं जो तुम रोकना चाहते हो। और कुशलता से दोहराते हैं। और जितने लोग जेलों में बंद हैं उनसे हजार गुने लोग बाहर मौजूद हैं जो वही कृत्य कर रहे हैं, लेकिन ज्यादा कुशलता से कर रहे हैं।

असल में, बड़े पापी सदा बाहर रहते हैं, छोटे पापी फंस जाते हैं। बड़े पापी राजधानियों में बैठे हैं; छोटे पापी जेलों में सड़ रहे हैं। जो बहुत कुशल है उसको कानून पकड़ नहीं पाता। कैसा भी कानून बनाओ, कुशल आदमी कानून से बाहर निकलने का रास्ता खोज लेता है। कितनी भी व्यवस्था करो, आखिर जो व्यवस्था करता है आदमी वह आदमी ही है। तो आदमी की व्यवस्था को दूसरा आदमी तोड़ सकता है, क्योंकि दोनों की बुद्धिमत्ता एक जैसी है। तो दिल्ली में बैठ कर लोग कानून बनाते रहते हैं। जो कानून बनाने वाले हैं, वह भी

आदमी की बुद्धि है। और सारे मुल्क में बैठ कर लोग कानून तोड़ते रहते हैं, क्योंकि वहां भी आदमी की बुद्धि है। आदमी ऐसा कानून कभी भी न बना सकेगा जिसे आदमी न तोड़ सके। सिर्फ परमात्मा ही ऐसा नियम बना सकता है जो आदमी न तोड़ सके।

लेकिन तुम्हारे कानून की वजह परमात्मा के कानून अंधेरे में पड़ गए हैं। वे पीछे हो गए हैं। तुम पापी को देखने ही नहीं देते कि पाप के कारण तुझे दुख मिल रहा है। तुम्हारी अदालतें उसे धोखा दे देती हैं। वह सोचता है, अदालतें दुख दे रही हैं। अगर न पकड़ाया गया होता तो क्यों ऐसा दुख मिलता? अगली बार ऐसी कोशिश करूंगा न पकड़ा जाऊं। उसकी नजर ही तुम खराब किए दे रहे हो। पाप का दुख भीतर से आ रहा है; तुम बाहर से दुख देने की कोशिश में उसकी नजर को बाहर अटका रहे हो। वह देख ही नहीं पाता कि सिर मैं खुद ही तोड़ रहा हूं दीवाल से टकरा कर, कोई अदालत नहीं मुझे दंड दे रही। मैं मर रहा हूं खुद ही पाप में डूब-डूब कर; मैं जीवन को खो रहा हूं। और जहां आनंद का नृत्य हो सकता था वहां केवल पीड़ा के आंसू हैं। और कांटे मैंने ही बोए हैं, कोई दूसरा मेरे लिए नहीं बो रहा है। तुम्हारी समाज की व्यवस्था ऐसी भ्रांति पैदा करती है कि दूसरे तुम्हारे लिए कांटे बो रहे हैं। तो प्रतिकार लो, लड़ो, संघर्ष करो।

लाओत्से कहता है, "बिना संघर्ष के ताओ, स्वर्ग का मार्ग, विजय में कुशल है। बिना शब्द के पाप और पुण्य को पुरस्कृत करता है। बिना बुलावे के वह प्रकट हो जाता है।"

तुम्हें बुलाने की भी जरूरत नहीं है। अदालत को तो बुलाना पड़ेगा। पुलिस को आवाज देनी पड़ेगी। कानून को पुकारना पड़ेगा, तब कानून आएगा। परमात्मा का मार्ग तुम्हारे बुलावे के लिए प्रतीक्षा नहीं करता। तुमने कुछ किया, वहीं परमात्मा का नियम मौजूद है। तुमने कुछ सोचा, वहीं परमात्मा का नियम मौजूद है। इधर भाव की तरंग हिली, वहां फल तैयार होने लगा। यहां विचार उठा, वहां परिणाम शुरू हो गया। देर नहीं है क्षण भर की।

"बिना बुलावे के वह प्रकट होता है। बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।"

न तो उसने जाल बिछाया है अदालतों का; न हर चौराहे पर पुलिस के आदमी खड़े किए हैं। न कानूनों की कोई किताब है, कोई इंडियन पेनल कोड नहीं है; न कोई धाराएं हैं। तुम बचना भी चाहोगे तो कैसे बचोगे? कानून की धाराएं होतीं तो वकील कर लेते। परमात्मा और तुम्हारे बीच तुम वकील भी तो नहीं कर सकते।

हालांकि तुमने करने की कोशिश की है। और कुछ लोगों ने दावे किए हैं कि वे वकील हैं। तुम्हारे पुरोहित हैं, पंडे हैं, वे दावे करते हैं कि हम वकील हैं। तुम घबड़ाओ मत, हम इंतजाम जमा देंगे। तुम हमें पैसा दो, फीस चुका दो; हम यज्ञ करवा देंगे, हम पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, परमात्मा को राजी करवा देंगे। तुम बेफिक्री से चोरी करो। छोटा मंदिर बना दो घर में, हम आकर घंटी हिला कर पूजा कर जाएंगे तुम्हारी तरफ से।

वकील हैं। लेकिन वहां वकालत चल नहीं सकती। क्योंकि वहां कोई नियम-कानून नहीं हैं, तोड़ोगे कैसे? कानून लिखा हो, तोड़ा जा सकता है। जिस स्त्री से तुमने विवाह किया हो, तलाक लिया जा सकता है। लेकिन जिस स्त्री से विवाह न किया हो, प्रेम किया हो, तलाक कैसे लोगे? विवाह के साथ तलाक है। कानून के साथ तोड़ने का उपाय है। अगर तुमने लिख कर दे दिया है कोई दस्तावेज तो बच सकते हो। लेकिन जब तुमने कुछ लिखा हुआ ही नहीं है, सब अनलिखा है, कहां बचोगे? कहां भागोगे? कहां से तरकीब निकालोगे?

लाओत्से बड़ी महत्वपूर्ण बात कह रहा है। वह कह रहा है, "बिना स्पष्ट योजना के फल प्राप्त करता है।"

परमात्मा ने कोई योजना का जाल नहीं बिछाया हुआ है। नहीं तो कुछ न कुछ कुशल लोग निकल आते जो उसमें से बाहर निकल जाते। जाल ही नहीं है, बचोगे कैसे? भागोगे कहां? जहां जाओगे उसे ही पाओगे। स्पष्ट उसकी योजना नहीं है। सब बड़ा रहस्यपूर्ण है। इसलिए बचने का उपाय नहीं है।

"स्वर्ग का जाल व्यापक और विस्तृत है।"

सब तरफ है। जहां तुम हो वहीं है। तुम भी स्वर्ग के जाल के हिस्से हो।

"उसमें बड़े-बड़े छिद्र हैं, तो भी उसमें से कुछ निकल नहीं पाता।"

बड़े-बड़े छिद्र का अर्थ है, बड़ी स्वतंत्रता है। फिर भी तुम भाग न पाओगे। क्योंकि जहां भी तुम जाओगे उसी को पाओगे। उसी का नियम हमेशा नीचे पैरों के तुम्हारी भूमि बनाता है। उसी का नियम आकाश बनाता है। उसी का नियम तुम्हें बनाता है। स्वतंत्रता पूरी है। तुम जो भी चाहो करो। तुम बुरा करो तो भी वह मौजूद है, और तत्क्षण तुम दुख पाओगे। तुम भला करो तो भी वह मौजूद है, तत्क्षण तुम पाओगे कि अमृत की तुम्हारे आस-पास वर्षा हो गई। स्वतंत्रता तुम्हें पूरी है। तुम नरक बनाना चाहो नरक बनाओ; स्वर्ग बनाना चाहो स्वर्ग बनाओ। लेकिन तुम जाल के बाहर न जा सकोगे। छेद बड़े-बड़े हैं। बड़ी खूबी की बात है कि परमात्मा ने किसी की स्वतंत्रता को जरा भी नहीं रोका है। परमात्मा ने तुम्हें इतनी स्वतंत्रता दी है कि वह कभी तुम्हारे आस-पास सामने खड़ा भी नहीं होता, क्योंकि उसके खड़े होने से परतंत्रता आ सकती है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं पड़ता? मैं उनसे कहता हूं, क्योंकि वह चाहता है तुम स्वतंत्र रहो। वह दिखाई पड़े, तुम्हारी स्वतंत्रता खंडित हो जाएगी। परमात्मा सामने खड़ा हो; तुम कैसे पाप कर पाओगे? परमात्मा मौजूद हो तो अंकुश पैदा हो जाएगा। उसकी मौजूदगी ही अंकुश पैदा कर देगी। जैसे छोटा बच्चा बैठा हो, सिगरेट पी रहा हो, और बाप आ जाए! तो जल्दी से सिगरेट को छिपा लेगा। स्वतंत्रता खो गई। अगर परमात्मा मौजूद हो तो उसकी मौजूदगी, उसकी महिमा, तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगी।

इसलिए मैं कहता हूं, उसकी बड़ी कृपा है कि वह तुम्हें कहीं मिलता नहीं। फिर भी तुम उससे बच न पाओगे। स्वतंत्रता पूरी है, लेकिन स्वतंत्रता के नीचे भी आधार उसी का है। उसने खुला आकाश तुम्हें दिया है कि जहां तक उड़ना चाहो उड़ो; अपने पंख भी तोड़ लेना हो तो भी कोई हर्जा नहीं, उड़ो और तोड़ डालो। आत्महत्या करनी हो तो भी स्वतंत्र हो, कोई रोकेगा न, कोई हाथ बीच में आकर कहेगा न कि यह क्या कर रहे हो? मैंने तुम्हें जीवन दिया और तुम जीवन नष्ट कर रहे हो? कोई तुम्हें रोकेगा न, कोई प्रतिध्वनि सुनाई न पड़ेगी। तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो। और फिर भी तुम उससे बच नहीं सकते।

"बड़े-बड़े छिद्र हैं उसके जाल में, तो भी उसमें से कुछ निकल नहीं पाता।"

यह तो बड़ी जटिल बात हो गई। तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो, फिर भी स्वच्छंद नहीं। तुम्हारी स्वतंत्रता बेशर्त है, फिर भी तुम्हारी स्वतंत्रता अराजकता नहीं है। तुम्हारी स्वतंत्रता के पीछे भी नियम है।

उस नियम को ही लाओत्से ताओ कहता है। उसी नियम को हमने इस मुल्क में धर्म कहा है, बुद्ध ने धम्म कहा है। धर्म और ताओ का एक ही अर्थ होता है। धर्म का अर्थ होता है जिसने तुम्हें धारण किया है। तुम उससे भाग न सकोगे। क्योंकि वही तुम्हें धारण किए है, तुम भागोगे कहां? तुम जाओगे कहां? जहां जाओगे, उसी के हाथ तुम्हें सम्हाले हैं। नरक में भी वही तुम्हें सम्हालेगा; स्वर्ग में भी वही तुम्हें सम्हालेगा। तुम और सब चीजों से भाग सकते हो, तुम अपने जीवन के आंतरिक धर्म से न भाग सकोगे। धर्म वही है जो तुम्हें सम्हाले है, और सदा तुम्हें सम्हालेगा। तुम्हारी बुराई में भी सम्हालेगा; तुम्हारी भलाई में भी सम्हालेगा। तुम्हें अड़चन भी न देगा कि तुम यह मत करो।

परमात्मा तुमसे कभी कहता ही नहीं कि तुम क्या करो और क्या न करो। करने की पूरी स्वतंत्रता है। लेकिन एक बात ध्यान रखनाः हर कृत्य का परिणाम है; उसको भोगने के लिए भी तुम राजी रहना। कृत्य की स्वतंत्रता है, परिणाम का बंधन है। तुम पाप करने को स्वतंत्र हो, लेकिन पीड़ा भोगने में परतंत्र हो। तुम पुण्य करने को स्वतंत्र हो, लेकिन सुख लेने में परतंत्र हो। वह तुम्हें लेना ही पड़ेगा। अब तक ऐसा हुआ ही नहीं कि कोई आदमी ने पुण्य किया हो और सुख लेने से छुटकारा पा लिया हो। वह नहीं हो सकता। बीज बोने में तुम स्वतंत्र हो, लेकिन फिर फल भी तुम्हें ही काटने पड़ेंगे। वहां तुम्हारी स्वतंत्रता नहीं है। इसलिए बीज बोते वक्त सावधानी बरतना।

हमारी सबकी चेष्टा यही है कि बीज तो हम कड़वे बोएं, और फल हम मीठे काट लें। पाप तो हम करें, और सुख मिल जाए। यही तो हमारी सारी चेष्टा है। यह चेष्टा सफल न होगी। कृत्य के लिए तुम स्वतंत्र हो; फिर परिणाम हर कृत्य का बंधा हुआ है।

ऐसा हुआ। बड़ी मीठी घटना है कि मोहम्मद के शिष्य अली ने मोहम्मद से पूछा कि आपकी बातें सुन कर ऐसा लगता है कि हम परम स्वतंत्र भी हैं और परम परतंत्र भी; ये दोनों विरोधाभास कैसे फलित हो रहे हैं?

मोहम्मद तो सीधे-सादे आदमी थे। वे कोई बड़े दार्शनिक न थे, कुछ पढ़े-लिखे न थे। इसलिए मोहम्मद की बात में जो सचोट अभिव्यक्ति है, वह तुम्हें मुश्किल से कहीं मिलेगी। कभी किसी कबीर में मिल सकती है; महावीर में न मिलेगी वह चोट, कृष्ण में न मिलेगी, बुद्ध में न मिलेगी। क्योंकि वे बड़े परिष्कृत लोग थे, बड़े सुसंस्कृत लोग थे। मोहम्मद तो बिल्कुल अपढ़ गंवार। लिखना भी पता नहीं कि कैसे लिखें। बड़ी चोट है, क्योंकि उनकी जीवन की अनुभूति सीधी-सीधी है। शब्दों की आड़ नहीं है, शास्त्रों का फैलाव नहीं है।

मोहम्मद ने कहा, तू ऐसा कर अली कि खड़ा हो जा और कोई भी एक पैर ऊपर उठा ले। अली ने बायां पैर ऊपर उठा लिया। मोहम्मद ने कहा कि अब तू दायां भी उठा ले। उसने कहा, अब आप जरा ज्यादती कर रहे हैं। बायां जब उठा लिया तो अब दायां नहीं उठा सकता। मोहम्मद ने पूछा कि मैं तुझसे यह पूछता हूं कि जब मैंने पहली दफा तुझसे कहा कि कोई भी पैर उठा ले, तब तू स्वतंत्र था या नहीं?

अली ने कहा, बिल्कुल स्वतंत्र था; चाहता तो दायां उठाता, चाहता तो बायां।

लेकिन अब तू क्या अनुभव कर रहा है? बायां तूने उठा लिया, अब दायां क्यों नहीं उठा सकता? अब तू परतंत्र अनुभव कर रहा है। बिल्कुल स्वतंत्र था शुरू में, तू कोई भी पैर उठा लेता, लेकिन उस पैर के उठाने के कारण अब तू परतंत्र है।

अब उसका परिणाम है कि अब तू दाएं को नहीं उठा सकता; बायां उठा लिया, अब दायां नहीं उठा सकता। मोहम्मद ने कहा, ऐसी ही है परम स्वतंत्रता मनुष्य की, और ऐसी ही है परम परतंत्रता।

कृत्य करने को तुम राजी हो। जो भी कृत्य तुमने किया, बिल्कुल स्वतंत्र थे। कोई तुमसे कह न रहा था कि तुम यह करो। लेकिन जब तुमने कृत्य कर लिया, एक पैर उठ गया, दूसरा पैर बंध गया। वह दूसरा पैर है परिणाम का। कर्म की स्वतंत्रता है, कर्म-फल की स्वतंत्रता नहीं।

इसलिए अगर तुम चाहते हो कि परिपूर्ण स्वतंत्र रहो तो कर्म करने के पहले सोच लेना। कर्म करने के बाद तुम स्वतंत्र न रह जाओगे। छूट बड़ी है, बड़े-बड़े छेद हैं उसके जाल में, लेकिन तुम उससे भाग न पाओगे। कोई उससे बच नहीं सकता है। प्रत्येक कृत्य के पहले स्वतंत्रता तुम्हारे द्वार पर खड़ी होती है। और प्रत्येक कृत्य के बाद परतंत्रता खड़ी हो जाती है।

इसलिए तो हिंदू कहते रहे हैं कि कर्म से जो छूट गया वही वस्तुतः छूटता है। जो कर्म से छूट जाता है वह न तो स्वतंत्र रह जाता, न परतंत्र; उसको हम मुक्त कहते हैं। वह दोनों से मुक्त हो जाता है। उसका फिर कोई आवागमन नहीं है। फिर जैसे अब वह परमात्मा के जाल में फंसी मछली न रहा, बल्कि स्वयं परमात्मा का जाल हो गया, परमात्मा के साथ एक हो गया।

हमारे पास तीन शब्द हैं जो बड़े महत्वपूर्ण हैं। और वैसे शब्द दुनिया की और भाषाओं में नहीं हैं, वह भी विचारणीय है। एक शब्द है नरक; दुनिया की भाषाओं में उसके लिए शब्द हैं। स्वर्ग; उसके लिए भी शब्द हैं। तीसरा शब्द है मोक्ष; उसके लिए दुनिया की किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है। नरक, बुरा तुमने किया उसका परिणाम है। स्वर्ग, भला तुमने किया उसका परिणाम है। मोक्ष, तुमने कुछ भी न किया, न भला न बुरा; न सोचा, न भला न बुरा; न भाव किया, न भला न बुरा; तुम निर्भाव, निर्विचार, अकर्ता हो गए, अकर्म में डूब गए; उस दशा में जो फलेगा वह मोक्ष है। उस दशा में तुम परमात्मा ही हो गए। वह परम मुक्ति है।

स्वर्ग भी बंधन है, क्योंकि सुख लेने के लिए तुम मजबूर किए जाओगे। उससे तुम बच नहीं सकते। तुमने पुण्य किया, सुख तुम्हें लेना ही पड़ेगा। तुम यह नहीं कह सकते कि पुण्य मैंने किया, अब मैं सुख नहीं लेना चाहता। वह मजबूरी है। वह लेना ही पड़ेगा। पाप किया, दुख लेना ही पड़ेगा। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं नहीं लेना चाहता। एक पैर उठा लिया, दूसरा फंस गया।

एक ऐसी भी दशा है चेतना की जब तुम न पुण्य करते न पाप, जब तुम करते ही नहीं, जब तुम अकर्ता हो जाते हो। वही परम समाधि है। उस परम समाधि को उपलब्ध व्यक्ति परमात्मा हो जाता है।

आज इतना ही।

एक सौ अठाहरवां प्रवचन

अभय और प्रेम जीवन के आधार हों

Chapter 74

On Punishment (3)

The people are not afraid of death;
Why threaten them with death?
Supposing that the people are afraid of death,
And we can seize and kill the unruly,
Who would dare to do so?
Often if happens that the executioner is killed.
And to take the place of the executioner
Is like handling the hatchet for the master carpenter.
He who handles the hatchet for the master carpenter
Seldom escapes injury to his hands.

अध्याय 74

दंड (3)

लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं;
तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?
मान लो कि लोग मृत्यु से भयभीत हैं,
और हम उपद्रवियों को पकड़ कर मार सकते हैं;
कौन ऐसा करने की हिम्मत करेगा?
अक्सर ऐसा होता है कि बधिक मारा जाता है।
और बधिक की जगह लेना ऐसा है,
जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए।
जो महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी हाथ में लेता है,
वह शायद ही अपने हाथों को जख्मी करने से बच पाता है।

मनुष्य आज तक भय को आधार बना कर जीया है। इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं है कि जीवन नरक हो गया हो। भय नरक का द्वार है। प्रेम अगर स्वर्ग का द्वार है तो भय नरक का।

समाज की, राज्य की सारी व्यवस्था भय-प्रेरित है। हमने डरा कर लोगों को अच्छा बनाने की कोशिश की है। और डर से बड़ी कोई बुराई नहीं है। यह तो ऐसे ही है जैसे कोई जहर से लोगों को जिलाने की कोशिश करे। भय सबसे बड़ा पाप है। और उसको ही हमने आधार बनाया है जीवन के सारे पुण्यों का। तो हमारे पुण्य भी पाप जैसे हो गए हैं। हो ही जाएंगे।

इसे हम थोड़ा समझने की कोशिश करें। सुगम है लोगों को भयभीत कर देना। प्रेम से आपूरित करना तो बहुत कठिन है, क्योंकि प्रेम के लिए चाहिए एक आंतरिक विकास। भय के लिए विकास की कोई भी जरूरत नहीं। एक छोटे से बच्चे को भी भयभीत किया जा सकता है। लेकिन छोटे से बच्चे को तुम प्रेम कैसे सिखाओगे? प्रेम तो लोग नहीं सीख पाते मृत्यु के क्षण तक; अधिक लोग तो बिना प्रेम सीखे ही मर जाते हैं।

छोटे बच्चे को अच्छा काम करवाना हो तो क्या करोगे?

भयभीत करो, मारो, डांटो, डपटो, भूखा रखो, दंड दो। छोटा बच्चा असहाय है। तुम उसे डरा सकते हो। वह तुम पर निर्भर है। मां अगर अपना मुंह भी मोड़ ले उससे और कह दे कि नहीं बोलूंगी, तो भी वह उखड़े हुए वृक्ष की भांति हो जाता है। उसे डराना बिल्कुल सुगम है, क्योंकि वह तुम पर निर्भर है। तुम्हारे बिना सहारे के तो वह जी भी न सकेगा। एक क्षण भी बच्चा नहीं सोच सकता कि तुम्हारे बिना कैसे बचेगा।

और मनुष्य का बच्चा सारे पशुओं के बच्चों से ज्यादा असहाय है। पशुओं के बच्चे बिना मां-बाप के सहारे भी बच सकते हैं। मां-बाप का सहारा गौण है; जरूरत भी है तो दो-चार दिन की है; महीने, पंद्रह दिन की है। मनुष्य का बच्चा एकदम असहाय है। इससे ज्यादा असहाय कोई प्राणी नहीं है। अगर मां-बाप न हों तो बच्चा बचेगा ही नहीं। तो मृत्यु हमेशा किनारे खड़ी है। मां-बाप के सहारे ही जीवन खड़ा होगा। मां-बाप के हटते ही, सहयोग के हटते ही, जीवन नष्ट हो जाएगा। इसलिए बच्चे को डराना बहुत ही आसान है। और तुम्हारे लिए भी सुगम है। क्योंकि डराने में कितनी कठिनाई है? आंख से डरा सकते हो; व्यवहार से डरा सकते हो। और डरा कर तुम बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हो।

वहीं भ्रांति हो जाती है। क्योंकि भय तो पहली बुराई है। अगर बच्चा डर गया और डर के कारण शांत बैठने लगा, तो उसकी शांति के भीतर अशांति छिपी होगी। उसने शांति का पाठ नहीं सीखा; उसने भय का पाठ सीखा। अगर डर के कारण उसने बुरे शब्दों का उपयोग बंद कर दिया, गालियां देनी बंद कर दीं, तो भी गालियां उसके भीतर घूमती रहेंगी, उसकी अंतरात्मा की वासिनी हो जाएंगी। वह ओंठों से बाहर न लाएगा। उसने पाठ यह नहीं सीखा कि वह सदव्यवहार करे, सदवचन बोले, भाषा का काव्य सीखे, भाषा की गंदगी नहीं। वह नहीं सीखा, उसने इतना ही सीखा कि कुछ चीजें हैं जो प्रकट नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनसे खतरा है।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को सिखा रहा था कि गालियां देना बुरा है। बेटा बड़ा होने लगा था, आस-पड़ोस भी जाने लगा था, स्कूल भी; वह गालियां सीख कर आने लगा था। सब तरफ गालियों का बाजार है। तो मुल्ला नसरुद्दीन ने वही किया जो कोई भी पिता करेगा। उसने बच्चे को कहा कि यह देखो, यह दंड की व्यवस्था है। अगर तुमने इस तरह की गाली दी कि तुमने किसी को गधा कहा, उल्लू का पट्ठा कहा, तो तुम्हें चार आने--तुम्हें जो रुपया एक रोज मिलता है--उसमें से चार आने कट जाएंगे, एक बार तुमने गाली दी तो। दो बार दी, आठ आने कट जाएंगे। चार बार तुमने इस तरह की गाली का उपयोग किया, पूरा रुपया कट जाएगा। ज्यादा गाली दी, कल का रुपया भी आज कटेगा। नंबर दो की गाली, पिता ने कहा, कि और अगर तुमने किसी

को कहा साला, बदमाश, तो आठ आने कटेंगे। ऐसा उसने फेहरिस्त बना दी, चार तरह की गहरी से गहरी गालियां बता दीं। एक रुपया कटने का इंतजाम कर दिया अगर चौथे ढंग की गाली दी। लड़के ने कहा, यह तो ठीक है, लेकिन मुझे ऐसी भी गालियां मालूम हैं कि पांच रुपया भी काटो तो भी कम पड़ेगा। उनका क्या होगा?

ऊपर से तुम दबा दोगे, भीतर चीजें भरी रह जाएंगी। ऊपर से तुम ढक्कन बंद कर दोगे, आत्मा में धुआं गूंजता रह जाएगा। यह ढक्कन भी तभी तक बंद रहेगा जब तक भय जारी रहेगा। कल बच्चा जवान हो जाएगा, तुम बूढ़े हो जाओगे, तब भय उलटे रूप ले लेगा। तब तुमने जो-जो दबाया था वही-वही प्रकट होने लगेगा। बहुत कम बच्चे हैं जो बड़े होकर अपने बाप के साथ सदव्यवहार कर सकें। पैर भी छूते हों तो भी उसमें सदभाव नहीं होता। बूढ़े बाप के साथ अच्छा व्यवहार करना बड़ा ही कठिन है। कारण?

कारण है कि जब तुम बच्चे थे तब बाप ने जो व्यवहार किया था वह अच्छा नहीं था। इसे तो कोई भी नहीं देखता कि बाप बेटे के साथ बचपन में कैसा व्यवहार कर रहा है। यह सभी को दिखाई पड़ेगा कि बेटा बाप के साथ बुढ़ापे में कैसा व्यवहार कर रहा है। लेकिन जो तुम बोओगे उसे काटना पड़ेगा। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। आज बच्चा सबल हो गया है, बाप अब बूढ़ा होकर दुर्बल हो गया है, इसलिए नाव उलटी हो गई है। अब बच्चा भयभीत करेगा। अब वह जवान है, अब वह तुम्हें डराएगा। वह तुम्हें दबाएगा।

भय से कुछ भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ दब जाता है। और जब भय की स्थिति बदल जाती है तो बाहर आ जाता है। तो तुम्हें समाज में दिखाई पड़ेंगे लोग जो भय के कारण अच्छे हैं। उनका अच्छा होना नपुंसक ब्रह्मचर्य जैसा है। वे जबरदस्ती अच्छे हैं। अच्छा होना नहीं चाहते; अच्छे का उन्हें स्वाद ही नहीं मिला। वे सिर्फ बुरे से डरे हैं और घबड़ा रहे हैं, और भीतर कंप रहे हैं। इस कंपन के कारण लोग अच्छे हैं।

इसलिए अच्छे आदमी में भी तो फूल खिलते दिखाई नहीं पड़ते। उलटा ही दिखाई पड़ता है, कभी-कभी बुरा आदमी तो मुस्कुराते और हंसते भी मिल जाए, अच्छा आदमी तुम्हें हंसते भी न मिलेगा। वह इतना डर गया है कि हंसी में भी पाप मालूम पड़ता है। वह इतना भयभीत हो गया है कि जीवन को कहीं से भी अभिव्यक्ति देने में डर लगता है कि कहीं कोई भूल न हो जाए, कहीं कोई गलती न हो जाए। वह कंप-कंप कर पैर रख रहा है; सम्हल-सम्हल कर चल रहा है। साफ-सुथरी जमीन पर भी वह ऐसे चलता है जैसे नट रस्सी पर चल रहा हो।

इस भयभीत आदमी को तुम साधु कहते हो? यह भयभीत आदमी साधु नहीं है; यह केवल भयभीत है। साधुता का भय से क्या संबंध? साधुता कहीं भय से पैदा हो सकती है? साधुता का स्वर तो अभय में होता है। भय तो असाधु को ही पैदा करता है, डरे हुए असाधु को। इतना डरा हुआ असाधु है कि अपराध नहीं कर सकता डर के कारण। डर के कारण जो अपराध नहीं कर रहा है वह भीतर तो अपराध करता ही रहेगा।

इसलिए जिनको तुम अपराधी कहते हो वे निर्भीक लोग हैं, और जिनको तुम सज्जन कहते हो, साधु-चरित्र कहते हो, वे भयभीत-भीरु लोग हैं। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि अपराधी तो कभी-कभी छलांग ले लेता है संतत्व की, तुम्हारा जिसको तुम सज्जन आदमी कहते हो वह कभी छलांग नहीं ले पाता। छलांग लेने की हिम्मत ही उसमें नहीं है। भय के कारण ही तो वह अच्छा है। और भय के कारण छलांग कैसे लेगा? वह जिंदगी भर सोचता रहेगा, खड़ा रहेगा, विचार करेगा; छलांग नहीं ले सकेगा। अपराधी कभी-कभी छलांग ले सकता है, एक क्षण में छलांग ले सकता है। क्योंकि कम से कम निर्भीक है। डर के कारण जीवन की व्यवस्था उसने नहीं बनाई है।

दूसरा एक पहलू इस बात का और भी समझ लेना जरूरी है कि जब तुम समाज में डर को आधार बना लेते हो नीति का, तो जो भीरु हैं वे और भीरु हो जाते हैं और जो निर्भीक हैं वे और निर्भीक हो जाते हैं। घर में अगर पांच बच्चे हैं, तो जो उनमें से ज्यादा उपद्रवी है वह और उपद्रवी हो जाएगा तुम्हारे डराने से, और जो उपद्रवी थे ही नहीं वे डर कर बिल्कुल मुर्दा हो जाएंगे, वे मिट्टी के लोंदे हो जाएंगे।

भय का परिणाम दो प्रकार से फलित होता है। जब तुम किसी को भयभीत करते हो, अगर वह अहंकार में अभी कच्चा है तो डर जाएगा, और डर कर भला हो जाएगा; और अगर अहंकार में पक्का हो गया है तो तुम्हारे डराने के कारण वही काम करके दिखाएगा जो तुम चाहते थे कि वह न करे। तो तुम्हारा भय उसके लिए चुनौती बन जाएगा और उसके जीवन में अपराध की भावना पैदा करेगा। तो भय ने कुछ लोगों को भीरु बना कर गोबर-गणेश कर दिया है। उनके जीवन में कोई ऊर्जा नहीं रही। वे मरे-मरे जी रहे हैं; लाश की तरह उनका जीवन है। और कुछ लोगों को भय ने चुनौती दे दी है; वे दुष्ट-अपराधी हो गए हैं। क्योंकि तुमने जो कहा था मत करो, उनके अहंकार ने उसको चुनौती मान लिया और उसे करके वे दिखा कर रहेंगे। चाहे कुछ भी हो जाए, जीवन दांव पर लगा देंगे।

ये दोनों ही दुष्परिणाम हैं। दोनों से ही समाज बड़ी विकृत दशा में भर गया है। या तो भयभीत लोग हैं जो अच्छे हैं; और या निर्भीक लोग हैं जो बुरे हैं। होना इससे उलटा चाहिए कि अच्छा आदमी निर्भीक हो और बुरा आदमी भीरु हो। लेकिन भय के शास्त्र ने स्थिति उलटी कर दी है। अच्छे आदमी में निर्भीकता होनी चाहिए, बुरे आदमी में भीरुता होनी चाहिए। लेकिन बुरा तो अकड़ कर चलता है; अच्छे की रीढ़ टूट गई है। भय के शास्त्र ने ये दो परिणाम दिए हैं; दोनों ही महा घातक हैं।

प्रेम का शास्त्र इसके बिल्कुल विपरीत है। वह अच्छे को अभय करता है, बुरे को भयभीत करता है। भयभीत करता नहीं, बुरा अपने आप भयभीत होता है। अच्छा अपने आप अभय को उपलब्ध होता है। क्योंकि जितनी ही प्रेम में गति होती है उतना ही अभय उपलब्ध होता है; प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति डरता नहीं; कोई कारण डरने का न रहा। प्रेम मृत्यु से भी बड़ा है। तुम प्रेम को मृत्यु से भी नहीं डरा सकते। तुम कहो, हम मार डालेंगे! तो प्रेम मरने को तैयार हो जाएगा, लेकिन डरेगा नहीं। प्रेमी मर सकता है शांति से; जीवन को भी दांव पर लगा सकता है। क्योंकि जीवन से भी बड़ी चीज उसे मिल गई। जब बड़ी चीज मिलती हो, छोटी चीज को दांव पर लगाया जा सकता है।

तुम डरते हो जीवन के खोने से, क्योंकि जीवन से बड़ा तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं है। और तुम तब तक डरते ही रहोगे जब तक जीवन से बड़ा कुछ तुम्हारे हाथ में न आ जाए। परमात्मा हाथ में आ जाए, प्रेम हाथ में आ जाए, प्रार्थना आ जाए, ध्यान आ जाए, समाधि आ जाए, तब तुम जीवन को ऐसे दे दोगे जैसे कुछ मूल्य ही न था। तुमने जीवन का सार पा लिया। जीवन के अवसर से जो मिलने वाली थी सुगंध वह तुम्हें मिल गई। अब तुम जीवन को दे सकते हो। अब कोई तुमसे जीवन छीनता हो तो तुम हंसते हुए मर सकते हो। अब तुम्हें कोई डरा न सकेगा।

और जो जीवन छोड़ सकता है उसे तुम कैसे डराओगे? क्योंकि डर तो मूलतः मृत्यु का डर है। सब डर मौलिक रूप से मृत्यु का डर है। अब तुम क्या डराओगे?

सिकंदर ने एक भारतीय संन्यासी को कहा कि अगर तुम मेरे साथ चलने को राजी न हुए तो तुम्हारी गर्दन काट दूंगा। उस संन्यासी ने कहा, जिस गर्दन को काटने की तुम धमकी दे रहे हो उसे मैं बहुत पहले काट

चुका हूं। अगर तुम्हें मजा आए तो तुम काट डालो। लेकिन एक बात ध्यान रखना, तुम भी गिरते देखोगे गर्दन को जमीन पर और मैं भी गिरते देखूंगा।

सिकंदर तो बेबूझ हालत में हो गया। उसकी कुछ समझ में न पड़ा। वह तो तलवार की भाषा जानता था, केवल भय की भाषा जानता था। कभी प्रेमी से तो उसका मिलना ही न हुआ था। किसी ऐसे व्यक्ति को तो उसने देखा ही न था जो प्रार्थना को उपलब्ध हुआ हो। उसने तलवार तो म्यान में रख ली और उस आदमी को कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि बात क्या है! लेकिन लाखों लोगों को मैंने डरा दिया है। और अगर मैं पहाड़ों को भी कहूं कि चलो मेरे साथ, तो वे भी चलने को राजी हो जाएंगे। एक नंगा फकीर! तेरे पास है क्या जिसके बल पर तू डर नहीं रहा है?

उस फकीर ने कहा, जीवन से जो पाना था वह मैंने पा लिया; अब जीवन को छीन कर तुम कुछ भी न छीन पाओगे। नवनीत तो पा लिया है, अब तो जीवन की छाछ पड़ी रह गई है। तुम उसे ले जाओ। डर तो तब तक था जब तक जीवन दूध था और नवनीत पाया नहीं था। तुम ले जाते तो सब ले जाते। अब तो छाछ पड़ी रह गई है। जो पाना था वह पा लिया। अगर तुम्हें डराना था तो कुछ समय पहले आना था।

स्वभावतः, जब तुम भोजन कर चुके और कोई थाली को छीनने लगे तो तुम भेंट ही कर दोगे, यह जूठन को ले जाए, हर्ज क्या है! लेकिन तुम भूखे बैठे थे, भोजन शुरू भी न हुआ था, और कोई थाली छीनने लगा, तब कठिनाई होगी। जिसने जीवन के अवसर का उपयोग कर लिया--अवसर के उपयोग का एक ही अर्थ है कि जिसने जीवन के पार कुछ जान लिया, जिसके लिए जीवन सीढ़ी हो गया और जो सीढ़ी से पार हो गया--जिसने जीवन की सरिता को जीवन के पार के सागर से मिला दिया, अब सरिता बचे या सूख जाए, अब कोई अंतर नहीं पड़ता।

प्रेम का शास्त्र तो सिखाता है अभय; प्रेम में लिप्त व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो जाता है। और प्रेम में लिप्त व्यक्ति के जीवन में शुभ का संचार होता है--चुपचाप, पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। एक मां अपने बेटे को प्रेम करती हो तो प्रेम के कारण बेटा शांत होता है; मां मौजूद होती है। क्योंकि प्रेम का प्रतिकार असंभव है। प्रेम की तो प्रतिध्वनि ही होती है। भय का प्रतिकार होता है, कोई प्रतिध्वनि नहीं होती। एक मां अगर अपने बेटे को प्रेम करती है तो मां मौजूद है इसलिए बेटा चुप बैठता है। एक बाप अगर अपने बेटे को प्रेम करता है तो प्रतिध्वनि होती है बेटे से भी प्रेम की। बाप काम कर रहा है तो बेटा सम्हल कर चलता है, आवाज न हो।

यह तो शांति और तरह की है। यह प्रेम का प्रतिफल है। यहां भीतर अशांति को बेटा दबा नहीं रहा है। बाप की मौजूदगी और बाप का प्रेम एक शांति को जन्म दे रहा है। अगर बाप की भाषा में काव्य हो और बाप की भाषा में संस्कार हो और बाप ने बेटे के आस-पास शब्दों के गीत निर्मित किए हों, तो बेटे से गाली निकलना असंभव होता है। इसलिए नहीं कि वह डरता है, बल्कि इसलिए कि बाप के प्रेम ने उसे इतने ऊपर उठाया है कि गाली देकर नीचे गिरना असंभव हो जाता है।

प्रेम से शुभ का संचार होता है सहज। तुम जिसे प्रेम करते हो तुम उसे ऊपर उठा लेते हो, आकाश में उठा देते हो। तुमने अगर किसी भी व्यक्ति को प्रेम किया तो तुमने कीचड़ से कमल को ऊपर उठा लिया। जैसे कीचड़ से कमल पार हो जाता है ऐसे ही जिसे तुम प्रेम करते हो, प्रेम के क्षण में ही तत्क्षण क्रांति घटित होती है--कीचड़ नीचे पड़ी रह जाती है, कमल पार हो जाता है। बड़ा फासला हो जाता है। तुम कभी किसी को प्रेम करके देखो। जिसे तुम प्रेम करते हो, अगर तुम्हारा प्रेम प्रगाढ़ है, तो तुम्हारे प्रेम की प्रगाढ़ता के अनुपात में ही उस व्यक्ति में परमात्मा का जन्म होना शुरू हो जाता है।

असंभव है प्रेम से बचना। प्रेम से भागना असंभव है। प्रेम के विरोध में जाना असंभव है। प्रेम इस जगत में सबसे बड़ी शक्ति है। वह एक बाढ़ की भांति आता है और तुम्हें निखार जाता है।

लेकिन प्रेम की कमी हमने भय से पूरी करनी चाही है। और परिवार के बीज भय में बोए जाते हैं। फिर परिवार से समाज बनता है; समाज से राष्ट्र बनता है; राष्ट्रों से संसार बन जाता है। और बीज बुनियाद में भय का है। इसलिए हर जगह भय का साम्राज्य है। जब भी तुम्हें किसी को सुधारना हो, भयभीत करो।

धर्मगुरु भी वही करता है। राजनेता करे, समझ में आता है; क्योंकि राजनेता से हम कोई बड़ी समझ की आशा नहीं कर सकते। समझदार होता तो राजनेता ही न होता। राजनीतिज्ञ से हम कोई मानवीय जीवन की गहराई का बोध नहीं मांग सकते। वही बोध होता तो वह महत्वाकांक्षा की दुनिया में न होता। राजनेता को छोड़ दें। लेकिन धर्मगुरु भी भय की ही बात करता है; नरकों की बात करता है कि सड़ाए जाओगे, गलाए जाओगे, मारे जाओगे। वह भी भय से ही चाहता है लोग धार्मिक हो जाएं।

अब यह बिल्कुल असंभव है। भय से कभी कोई धार्मिक नहीं हुआ। भय ही तो अधर्म का मूल है। प्रेम धर्म का मूल है। भय का अर्थ है, हम तुम्हें काटेंगे, बदलेंगे। प्रेम का अर्थ है, तुम जैसे हो हम तुम्हें वैसा ही स्वीकार करते हैं। और मजा तो यह है कि भय काट-काट कर भी नहीं बदल पाता, और प्रेम बिना काटे बदल देता है। जैसे ही तुम किसी को प्रेम करते हो, बदलाहट शुरू हो गई। प्रेम की आंख पड़ी नहीं कि किरण आ गई अंधेरे में; प्रेम का स्पर्श हुआ नहीं कि दूसरे जगत का बुलावा आ गया। तुम जिसे प्रेम करते हो, तत्क्षण तुम उसे कुलीन कर देते हो। वह साधारण मनुष्य-जाति का हिस्सा नहीं रहा। पंख लग गए। अब तुम्हारे प्रेम को पाने के लिए, अब तुम्हारे प्रेम को बनाए रखने के लिए, अब तुम्हारे प्रेम की वर्षा जारी रहे इसके लिए वह रोज-रोज ऊपर उठता जाएगा।

प्रेम नहीं कहता कि बदलो; और बदलता है। भय कहता है कि बदलो, नहीं बदलोगे कष्ट पाओगे; और कभी नहीं बदल पाता। इसे तुम जीवन की कीमिया का बहुत आधारभूत नियम समझ लेना कि जो किसी को बदलना चाहता है वह कभी नहीं बदल पाता। बदलने वाले ही लोगों को बिगाड़ते हैं। समाज-सुधारक समाज को नष्ट और भ्रष्ट करते हैं। अच्छे मां-बाप बच्चों को नरक की यात्रा पर भेज देते हैं। कहावत है कि नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से भरा पड़ा है। अच्छी करते हो आकांक्षा, लेकिन अगर आकांक्षा भय पर ही आधार बना रही है तो तुम नरक ही भेजोगे, स्वर्ग न भेज पाओगे। इसलिए तो सारी मनुष्य-जाति ऐसी भय-कातर, ऐसी दुख में पड़ी है, ऐसी सड़ी-गली अवस्था में है। सिवाय दुर्गंध के कुछ उठता हुआ नहीं मालूम पड़ता।

तो भय ने उन लोगों को मिटाया जो भयभीत हो गए। और भय ने उन लोगों को भी मिटा दिया जो भय के विपरीत खड़े हो गए। घर में अगर पांच बच्चे हैं तो शायद चार डर जाएंगे। लेकिन एक उनमें जरूर ऐसा होगा जो तुम्हारे डराने के कारण ही बगावती हो जाए। तुमने जो-जो कहा है, वही तोड़ेगा। तुमने कहा है, मत जाओ अंधेरे में बाहर। तो अंधेरे में बुलावा अनुभव होगा। तुमने कहा, मत तैरो नदी में जाकर। तो नदी में एक अदम्य आकर्षण हो जाएगा, एक अनिवारणीय आमंत्रण मिल जाएगा नदी से। जाना ही पड़ेगा; कोई अब रोक न सकेगा।

तुम्हारा निषेध रस पैदा करेगा अहंकारी में, और जिनके अहंकार कच्चे हैं उनको भयभीत कर देगा, भयातुर कर देगा। जो भयभीत हो जाएगा वह जिंदगी भर डरता रहेगा। दफ्तर में जाएगा तो दफ्तर के मालिक से डरेगा; विवाह करेगा तो पत्नी से डरेगा; बच्चे पैदा हो जाएंगे तो बच्चों से डरेगा; रास्ते पर चलेगा तो डरेगा; घर में बैठा होगा तो डरेगा। उसके जीवन में एक कंपन समाविष्ट हो जाएगा। भय उसका स्वभाव हो जाएगा।

और जो चुनौती ले लिया और अहंकार की यात्रा पर निकल गया, वह जिंदगी भर तोड़ने में संलग्न रहेगा। अगर वह असंस्कृत हुआ तो अपराधी हो जाएगा; अगर संस्कृत हुआ तो क्रांतिकारी हो जाएगा। अगर नासमझ हुआ तो चोरी करेगा, डकैती करेगा।

चंबल की घाटी के डाकू हैं। जब जयप्रकाश ने उन डाकुओं को मुक्त किया तो किसी मित्र ने मुझे आकर कहा। मैंने कहा कि दोनों एक ही तरह के लोग हैं। जरा भी फर्क नहीं है। जयप्रकाश और डाकुओं का मिलन एक जैसा है; दोनों की जीवन-ऊर्जा एक जैसी है। जयप्रकाश सुसंस्कृत आदमी हैं; डाकू असंस्कृत हैं। देवीसिंह और दूसरे असंस्कृत लोग हैं। बाकी उनके भी जीवन का आधार यही है कि समाज ने जो भी कहा है न करो, उसे वे तोड़ रहे हैं, मिटा रहे हैं। निर्भीक लोग हैं; पूरे राज्य के खिलाफ एक छोटी सी बंदूक के सहारे खड़े हैं। और जयप्रकाश, जयप्रकाश की भी वृत्ति वही है। ऐसा समझो कि डाकू शीर्षासन कर रहा हो। तो अराजकता, पूर्ण क्रांति की बातें। अच्छे शब्दों के पीछे भी बगावत है; अच्छे शब्दों के पीछे भी आकर्षण तोड़ने का है, मिटाने का है; बनाने का नहीं है।

और जयप्रकाश ज्यादा लोगों को नुकसान पहुंचा पाएंगे। देवीसिंह कितने लोगों को नुकसान पहुंचा पाएगा? देवीसिंह बहुत से बहुत धन छीन लेगा कुछ लोगों का। लेकिन जयप्रकाश पूरी जीवन की व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं। और फिर भी लोग सम्मान करेंगे।

तो निर्भीक आदमी के दो वर्ग हैं। अगर वह सुसंस्कृत हो तो वह क्रांतिकारी हो जाता है। क्रांति भी अपराध का एक ढंग है। अगर असफल हो जाए तो लोग उसको बगावती गिनते हैं; अगर सफल हो जाए तो वह महा नेता हो जाता है। लेनिन, माओ, कैस्त्रो, स्टैलिन, हो ची मिन्ह, इनके जीवन में और डाकुओं के जीवन में कोई बुनियादी भेद नहीं है। भेद इतना ही है कि डाकू छोटे पैमाने पर उपद्रव करता है, ये बड़े पैमाने पर उपद्रव करते हैं। और इनके उपद्रव के पीछे एक दर्शनशास्त्र है। डाकू के पास कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। इनके उपद्रव के पीछे एक फलसफा है और उस फलसफे की आड़ में सभी चीजें सुंदर हो जाती हैं। इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो।

चोर क्या कह रहा है? चोर की चोरी क्या कहती है? चोर इतना ही कह रहा है कि हम व्यक्तिगत संपत्ति के नियम को नहीं मानते। बिना जाने। डाकू क्या कह रहा है? डाकू यह कह रहा है कि हम तुम्हारी व्यक्तिगत संपत्ति की नियम की व्यवस्था को नहीं मानते। भला उसे पता भी न हो, भला इतने शब्दों में वह कह भी न सके, उसे भी साफ न हो। वह कर क्या रहा है? व्यक्तिगत संपत्ति के नियम को तोड़ रहा है। वह कहता है, हम इसको वर्जना नहीं मानते। कोई चीज किसी की नहीं है, जिसके हाथ में बल है उसकी है। इतना ही कह रहा है

समाजवाद, साम्यवाद क्या कह रहा है? लेनिन, माओ, स्टैलिन, हो ची मिन्ह क्या कह रहे हैं? वे इसको बड़ा विस्तीर्ण शास्त्र बना रहे हैं। वे कह रहे हैं, व्यक्तिगत संपत्ति को न बचने देंगे।

लेकिन मजा यह है कि व्यक्तिगत संपत्ति को मिटा डालो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिन लोगों के हाथ में सत्ता होती है वे पूरी संपत्ति के उसी तरह मालिक हो जाते हैं जैसा कि राकफेलर, फोर्ड या बिड़ला कभी भी नहीं हो पाते। स्टैलिन तो पूरे मुल्क की संपत्ति का मालिक हो गया। मालकियत जाती नहीं, क्योंकि जो भी राज्यसत्ता में होता है उसके ऊपर फिर कोई भी नहीं। स्टैलिन बड़े से बड़ा डाकू है जिसके हाथ में बीस करोड़ का मुल्क पड़ गया। डाकुओं ने कितने लोग मारे हैं? स्टैलिन ने अपने जीवन में अंदाजन एक करोड़ लोग मारे। जिसने भी ना-नुच की उसी को खत्म किया। जितने साथी थे क्रांति में, धीरे-धीरे सबको मार डाला, क्योंकि उनसे खतरा था। सबको साफ कर दिया और सारे मुल्क की संपत्ति का मालिक बन बैठा।

अगर तुम असंस्कृत हो तो किसी पर डाका डाल दोगे; अगर तुम सुसंस्कृत हो, तुम पूर्ण क्रांति का नारा दोगे। और तुम ज्यादा खतरनाक हो, और तुम्हें कोई भी पकड़ न पाएगा। क्योंकि तुम बड़ी कुशलता से शब्दों के जाल में सारी व्यवस्था जमाओगे।

मैंने सुना एक दिन कि मुल्ला नसरुद्दीन साम्यवादी हो गया। तो मैं उसके घर गया। उससे पूछा मैंने कि क्या हो गया? उसने कहा कि मैं साम्यवादी हो गया। मैंने कहा, तुम्हें पता है साम्यवाद का मतलब क्या होता है?

उसने कहा, मुझे सब पता है। तो मैंने कहा, अगर तुम्हारे पास दो कारें हों तो क्या तुम एक उस आदमी को देना पसंद करोगे जिसके पास एक भी नहीं है? उसने कहा, निश्चित! पूर्ण रूप से निश्चित। अगर तुम्हारे पास दो मकान हों, मैंने पूछा, क्या तुम एक उसको दे दोगे जिसके पास एक भी नहीं? उसने कहा कि बिल्कुल दे दूंगा, अभी दे दूंगा। फिर मैंने पूछा, और अगर तुम्हारे पास दो गधे हों तो क्या तुम एक उसको दे दोगे जिसके पास एक भी नहीं? उसने कहा, कभी नहीं। तो मैंने कहा, यह कैसा साम्यवाद? उसने कहा, मेरे पास दो गधे हैं! दो कारें तो हैं नहीं, न दो मकान हैं।

जो नहीं है, वह हम दे देंगे। और दूसरे के पास जो है वह हम छीन लेंगे।

दूसरे के पास जो है उसको छीनने का अपराधी भी उपाय करता है। उसका उपाय बड़ा छोटा है, बहुत छोटा है। उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। दूसरे के पास जो है उसे छीनने का साम्यवादी भी उपाय करता है, लेकिन उसका उपाय बड़ा व्यवस्थित है। उसकी स्ट्रैटेजी है, उसका पूरा रणशास्त्र है। वह पहले तो विचार का प्रवाह फैलाता है। और निश्चित ही उसका विचार सभी को अपील होता है, क्योंकि ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसके पास सब कुछ हो। सभी के ऊपर लोग हैं जिनके पास बहुत कुछ है। और तुम उनसे छीनना चाहोगे।

इसलिए साम्यवाद की अपील है। जब भी साम्यवाद तुम्हें समझाता है कि सब संपत्ति बंट जाएगी, तब तुम कभी यह नहीं सोचते कि तुम्हारे दो गधे बंटेंगे। तुम सोचते होः पड़ोसी की दो कार बंटेंगी, दूसरे पड़ोसी के दो मकान बंटेंगे। एक मकान तुम्हें भी मिलेगा; एक कार तुम्हें भी मिलेगी। तुम सदा यह सोचते हो कि दूसरे का बंटेगा, तुम पाने वाले होओगे। तुम कभी यह नहीं सोचते कि तुम्हारे दो गधे बंटेंगे।

यही तो कठिनाई हुई। रूस में क्रांति हुई तो सारा मुल्क प्रसन्न था, क्योंकि लोगों ने सोचा था कि दूसरों का बंटेगा। लेकिन जब उनका बंटना शुरू हुआ तब बड़ी कठिनाई आई। जिसके पास चार मुर्गियां थीं, उसकी भी स्टैलिन ने बांट करने की कोशिश की। जिसके पास थोड़ी सी खेती थी उसको भी बांटने की कोशिश की। एक करोड़ लोग जो मारे गए वे अमीर नहीं थे। अमीर कहीं होते हैं एक करोड़ किसी मुल्क में? वे गरीब लोग थे जिन्होंने अपनी छोटी-छोटी संपत्ति का आग्रह किया कि हम न बंटने देंगे। इन्हीं ने क्रांति की थी।

यह बड़ा मजा है! ये ही क्रांति के जाल में पड़े थे। ये आश्वासन से भर गए। इन्होंने कभी सोचा ही नहीं था कि मेरे पास की दस एकड़ जमीन बंट जाएगी। इन्होंने सोचा था, बंटेगा बिड़ला, बंटेगा राकफेलर, बंटेगा कोई और; मिलेगा मुझे।

मिलने की भाषा सिखाता है साम्यवाद। वही तो डाकू और चोर की भाषा है। उसकी अपील है। लेकिन जब बंटाव हुआ तब पता चला कि मेरा भी बंट रहा है। तब कठिनाई खड़ी हो गई। कितने अमीर हैं? दस, बीस, पचास, सौ। उनको बांटने से तुम्हारे हाथ में रत्ती भर भी नहीं आएगा। क्योंकि तुम हो करोड़ों, अरबों। लेकिन तुम्हारा बंटेगा। छोटे-छोटे किसानों ने बंटने से इनकार किया कि जब उनकी मुर्गियां जाने लगीं सामूहिक फार्म में

तब उन्होंने इनकार कर दिया। जब उनकी खेती होने लगी सामूहिक तब वे लड़ने को खड़े हो गए। एक करोड़ छोटे-छोटे किसान और गरीब कटे। और फिर भी मुल्क में कोई साम्यवाद तो आया नहीं।

साम्यवाद कभी आ नहीं सकता, क्योंकि आदमी इतने भिन्न हैं। और वर्ग सदा रहेंगे। नये वर्ग खड़े हो गए। और अब इन नये वर्गों को सम्हाल रखने के लिए इतना इंतजाम करना पड़ा स्टैलिन को, हिंसा का, भय का इतना आयोजन करना पड़ा, जितना कि मनुष्य-जाति में कभी भी नहीं हुआ था। लोग अकेले में भी बात करते रूस में डरने लगे, क्योंकि दीवारों को भी कान हो गए। जरा किसी ने बात की विपरीत, और वह आदमी नदारद हो गया, फिर उसका पता ही नहीं चला कि वह कहां गया। स्टैलिन ने जितनी सुविधा से हत्या की, कभी किसी ने नहीं की।

लेकिन स्टैलिन महा नेता हो गया। साम्यवाद के इतिहास में उसकी कथा स्वर्ण-अक्षरों में लिखी जाएगी। है सिर्फ बड़ा डाकू, लेकिन डाकू एक दर्शनशास्त्र के साथ। दुनिया के सब राजनेता डाकुओं से भिन्न नहीं हैं। करते वही हैं, लेकिन उनके पास कुशलता है।

तो ध्यान रखना, या तो भय तुम्हें इतना भयभीत कर देगा कि तुम जिंदगी भर मुर्दे की तरह जीओगे। या भय तुम्हें इतनी चुनौती से भर देगा कि तुम जिंदगी भर बगावती की तरह जीओगे। लेकिन दोनों हालत में तुम जीवन से वंचित रह जाओगे। क्योंकि जीवन तो उसे मिलता है जो न भीरु है और न बगावती है। तभी तो जीवन-चेतना स्वयं में ठहर पाती है। भयभीत दूसरे से डरता रहता है; निर्भीक दूसरे को डराने की कोशिश करता रहता है। दोनों हालत में जीवन-ऊर्जा व्यर्थ होती है, नष्ट होती है।

तो न तो भयभीत ने कभी परमात्मा को जाना और न निर्भीक ने कभी परमात्मा को जाना। इन दोनों से अलग एक जीवन-दशा है जिसको मैं अभय कहता हूं। अभय न तो भयभीत होता है और न निर्भीक होता है। अभय का मतलब यह है कि न तो वह किसी को डराना चाहता है और न किसी से डरता है। चेतना अपने में थिर हो जाती है। और जब चेतना अपने में लौटती है, अपने में गिरती है जब चेतना की धारा, तो जीवन का परमानंद, परम-स्वाद उपलब्ध होता है।

अब हम लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करें।

"लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं; तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?"

पहली बात, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"

क्योंकि अगर वे मृत्यु से भयभीत होते तो उनके जीवन में क्रांति घटित हो जाती। लोग सोचते हैं, मृत्यु सदा दूसरे की होती है। और सोचना ठीक भी है, क्योंकि तुम सदा दूसरे को मरते देखते हो, खुद को तो तुमने मरते कभी देखा नहीं। कभी इस पार का पड़ोसी मरता है, कभी उस पार का पड़ोसी मरता है। हमेशा दूसरा मरता है। लाश तो निकलती है, लेकिन किसी की निकलती है। तुमने अपनी लाश तो निकलती देखी नहीं। उसे तुम कभी देखोगे भी नहीं; दूसरे देखेंगे उसे। तो ऐसा लगता है मृत्यु सदा दूसरे की होती है--एक बात।

जिसको ऐसी याद आ गई कि मृत्यु मेरी होती है, वह तो खुद बदल जाएगा। तुम्हें उसे भयभीत करने की जरूरत न रहेगी। क्योंकि जिसे यह दिखाई पड़ा कि मृत्यु मेरी होने वाली है, वह तो एक अर्थ में इस जीवन के प्रति जो उसकी वासना है, तृष्णा है, उसको छोड़ देगा। क्योंकि जब मरना ही है, जब क्षण भर ही यहां होना है, तो इतना आग्रह होने का क्या मूल्य रखता है? तो उसकी तृष्णा विलीन हो जाएगी।

जिसको मृत्यु दिखाई पड़ने लगी उसकी तृष्णा विलीन हो जाएगी। और जिसकी तृष्णा विलीन हो जाती है वह आदमी बुरा तो हो ही नहीं सकता। बुरे तो हम तृष्णा के कारण होते हैं; वासना के कारण बुरे होते हैं। दूसरे से हम छीनते इसी आशा में हैं कि वह हमारे पास बचेगा--सदा और सदा।

लेकिन जब हम ही खो जाने को हैं, और क्षण भर बाद आ जाएगा मृत्यु का संदेशा और हमें विदा होना होगा, तो क्या छीनना है किसी से? अगर कोई दूसरा भी हमसे छीन ले जाए तो हम ले जाने देंगे। क्योंकि दूसरा शायद भ्रांति में हो कि सदा यहां रहना है; हम इस भ्रांति में नहीं हैं।

जिसको मृत्यु का स्मरण आ गया, जिसे मृत्यु का बोध हो गया, उसे तुम्हें थोड़े ही बदलना पड़ेगा! समाज को थोड़े ही बदलना पड़ेगा! वह बदल जाएगा स्वयं।

जिनको तुम्हें बदलना पड़ता है उनको मृत्यु की याद भी नहीं है। वे बिल्कुल भूले हुए हैं। वे ऐसे जी रहे हैं जैसे सदा रहना है। वे इस तरह के मजबूत मकान बना रहे हैं कि जैसे सदा रहना है। वे इस तरह का बैंक बैलेंस इकट्ठा कर रहे हैं कि जैसे अनंत काल तक उन्हें यहां रहना है। इंतजाम वे बड़ा लंबा कर रहे हैं और उन्हें पता नहीं कि घड़ी भर की बात है, रात भर का विश्राम है इस धर्मशाला में, और सुबह विदा हो जाना होगा। बड़ी व्यवस्था कर रहे हैं छोटे से समय के लिए। धर्मशाला में टिके हैं, आयोजन ऐसा कर रहे हैं जैसे कि किसी महल में सदा-सदा के लिए आवास करना हो।

जिनको मृत्यु का जरा सा भी स्मरण आ गया वे तो खुद ही सजग हो गए। उनसे बुराई तो अपने आप गिर जाएगी, तुम्हें उसे गिराना न पड़ेगा।

तो लाओत्से कहता है, लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, अन्यथा वे धार्मिक हो जाते।

बुद्ध को मृत्यु दिखाई पड़ गई, क्रांति घटित हो गई। एक आदमी को मरते देख लिया, पूछा सारथी को, क्या मुझे भी मरना पड़ेगा? सारथी डरा, कैसे कहे? पर उसने कहा कि झूठ भी तो मैं नहीं बोल सकता हूं। आप पूछते हैं तो मजबूरी में डालते हैं, मुझे कहना ही पड़ेगा। यद्यपि कहना नहीं चाहिए। यह भी कैसे अपशकुन भरे शब्द कि मैं आपसे कहूं कि आप भी मरेंगे! लेकिन झूठ नहीं बोला जा सकता। मरना तो सभी को पड़ेगा। रंक हो कि राजा, भिक्षु हो कि सम्राट, मरना तो पड़ेगा ही। आपको भी मरना पड़ेगा। बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो, बात खत्म हो गई।

वे एक उत्सव में जा रहे थे। राज्य का सबसे बड़ा उत्सव था। उन्होंने कहा, अब कोई उत्सव न रहा। जब मौत होने ही वाली है, सब उत्सव व्यर्थ हो गए। अब तुम रथ वापस घर लौटा लो। अब मुझे कुछ और करना पड़ेगा। अब उत्सवों में समय खोने का समय न रहा। मौत किसी भी घड़ी हो सकती है, तो हो ही गई। अब मुझे मौत को ध्यान में रख कर कुछ करना पड़ेगा। अब तक मैं ऐसे जी रहा था कि मौत पर मैंने ध्यान ही न दिया था। तो अब तो जीवन की पूरी शैली बदलनी पड़ेगी। एक महान तथ्य जीवन में प्रविष्ट हो गया--मृत्यु। अब जीवन को मुझे ऐसे बनाना पड़ेगा जैसे उस आदमी को बनाना चाहिए जो अभी यहां है और कल विदा हो जाएगा। तो मुझे मृत्यु के पार की भी अब चिंता करनी होगी। अब तुम घर लौटा लो। अब यह सब राग-रंग व्यर्थ हो गया। मैं तो ऐसे ही जी रहा था जैसे सदा रहूंगा।

मृत्यु का तथ्य जिसे दिखाई पड़ जाए वह तो खुद ही रथ वापस लौटा लेता है। तुम्हें उसे धमकाना नहीं पड़ता, डराना नहीं पड़ता। वह तो अपनी वासना को खुद ही वापस लौटा लेता है। जब जीवन ही खो जाएगा तो जीवन की तृष्णा का क्या मूल्य है?

इसलिए लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"

काश भयभीत होते, तो तुम्हें उन्हें बदलना पड़ता? वे खुद ही बदल जाते।

"और जो मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, तब उन्हें मृत्यु की धमकी क्यों दी जाए?"

तब तुम उन्हें क्यों मृत्यु की धमकी दे रहे हो? क्यों डरा रहे हो? कोई अर्थ न होगा उस धमकी का। उस धमकी से वे ही डर जाएंगे जिनके अभी जीवन में पैर भी न पड़े थे, जिन्होंने अभी चलना भी न सीखा था वे घबड़ा कर बैठ जाएंगे। उस भय के कारण उनके जीवन में क्रांति तो न होगी, पक्षाघात हो जाएगा। उस भय के कारण वे पैरालाइज्ड हो जाएंगे।

निश्चित ही, अगर किसी आदमी को पक्षाघात हो जाए तो उसके जीवन में बुराई अपने आप कम हो जाती है। अब आप अस्पताल में पड़े हैं, उठ नहीं सकते। चोरी कैसे करेंगे? दूसरे की स्त्री को लेकर भागेंगे कहां? चल ही नहीं सकते, भागने का उपाय न रहा; दूसरी स्त्री का सवाल ही नहीं उठता। जेब कैसे काटेंगे? चुनाव कैसे लड़ेंगे? पक्षाघात में पड़े हैं तो बुराई अपने आप बंद हो गई। लेकिन क्या पक्षाघात से बुराई का बंद करना उचित है? तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अगर सभी लोगों को पक्षाघात हो जाए, पैरालाइज्ड हो जाएं, तो दुनिया से बुराई मिट जाएगी।

बुराई तो मिट जाएगी, लेकिन सारे लोग पक्षाघात से घिर जाएं यह तो महा बुराई हो जाएगी। ये तो मुर्दा हो गए। और यही किया गया है अब तक। भय तुम्हें लकवा लगा देता है। भय के कारण तुम्हारे हाथ-पैर जड़ हो जाते हैं; तुम्हारी चेतना गतिमान नहीं रह जाती। गत्यात्मकता खो जाती है; तुम्हारे जीवन की ऊर्जा डायनेमिक नहीं रहती। तुम्हारे जीवन की ऊर्जा बंधी-बंधी हो जाती है। जैसे नदी ने बहना बंद कर दिया और वह छोटी तलैया हो गई--बंद अपने में। सड़ती है, बहती नहीं; कहीं जाती नहीं, वहीं पड़ी रहती है। अब तक का नीति-शास्त्र और समाज-शास्त्र भय के द्वारा लोगों को पक्षाघात पैदा कर रहा है।

पक्षाघात शुभ नहीं है। भला पक्षाघात से तुम कितने ही नैतिक मालूम पड़ो, लेकिन पड़े पक्षाघात में सोचोगे तो अनीति, सोचोगे तो पाप। पक्षाघात तुम्हारे शरीर को रोक देगा, लेकिन तुम्हारे मन को तो नहीं। तुम्हारा मन तो विक्षिप्त की भांति घूमेगा। और वही मन वस्तुतः निर्णायक है।

तो लाओत्से कहता है, "क्यों उन्हें मृत्यु की धमकी दी जाए?"

उससे कुछ सार न होगा, बल्कि खतरा होगा। कुछ जो अभी जीवन में चलना ही सीख रहे थे वे डर के मारे बैठ जाएंगे। और कुछ जो जीवन से मुक्त होने के करीब आ रहे थे, जीवन ने ही जिन्हें इतना सता दिया था, जीवन की पीड़ा ने ही जिन्हें इतना उबा दिया था कि वे करीब आ रहे थे कि जीवन के पार होने की चेष्टा करें, वे तुम्हारी धमकी से चुनौती समझ लेंगे, वे वापस लड़ने को जीवन में खड़े हो जाएंगे। भयभीत और भयभीत हो जाएंगे, निर्भीक और निर्भीक हो जाएंगे। यह बड़ी उलटी घटना है। तुम चाहते थे कि निर्भीक भयभीत हो जाएं; वे नहीं होंगे।

ऐसा एक गांव में हुआ। एक राजपथ पर छोटा सा गांव था--दोनों तरफ रास्ते के किनारे बसा। बड़ा राजपथ था और कारें बड़ी तेज गति से गुजरतीं, बसें और ट्रक, और गांव को बड़ा खतरा था। तो गांव की पंचायत ने तय किया था कि गांव के भीतर कोई भी बीस मील से ज्यादा रफ्तार से वाहन न गुजरे।

लेकिन छोटा गांव, कौन फिक्र करे? उनकी तख्ती को कोई पढ़ता ही न था। वह लगा रखी थी तख्ती, लेकिन कोई उसकी चिंता ही न लेता था। तो उन्होंने सोचा कि शायद बीस मील की बात ठीक नहीं है, हम सिर्फ इतना ही लिखें कि कृपया अत्यंत धीमी गति से यहां से गुजरें। और पंचायत का एक आदमी खड़ा किया गया जो जांच करे खड़े होकर कि इसका कोई परिणाम होता है कि नहीं।

उस आदमी ने सात दिन बाद रिपोर्ट दी और कहा, जो लोग "बीस मील की रफ्तार से चलें" उसको पढ़ कर बीस मील की रफ्तार से चलते थे वे लोग तो पांच मील की रफ्तार से चलने लगे और जो उस बीस मील की तख्ती को देख कर अपनी पचास मील की रफ्तार कायम रखते थे अब वे सत्तर मील से चल रहे हैं।

अक्सर ऐसा ही पूरे जीवन में हो रहा है। निर्भीक डरता नहीं तुम्हारे डराने से, बल्कि और उत्तेजित हो जाता है। भयभीत वैसे ही भयभीत था, वह और भयभीत हो जाता है। एक पक्षाघात से घिर जाता है, दूसरा अहंकार की अकड़ से। दोनों ही समाज के लिए घातक हैं।

लाओत्से कहता है, "मान लो लोग मृत्यु से भयभीत हैं, और हम उपद्रवियों को पकड़ कर मार सकते हैं, तो भी कौन ऐसा करने की हिम्मत करेगा?"

हिम्मत की गई है। करनी नहीं चाहिए; जो नहीं होना था वह हुआ है। हमने सदा यह कोशिश की है कि उपद्रवियों को मार डालो। हत्यारों की हमने हत्या कर दी है कानून के नाम पर। अदालतें समाज के द्वारा नियुक्त की गई हत्या की संस्थाएं हैं। जिस चीज का हम दंड देते हैं वही हम खुद करते हैं। एक आदमी ने किसी की हत्या की; फिर हम अदालत में उस पर कानून का जाल बिछा कर बड़े ढंग से करते हैं, योजना से करते हैं। उस आदमी को मौका नहीं देते कहने का कि कोई अन्याय किया गया। बड़ी न्याय की व्यवस्था जमाते हैं, लेकिन करते हम वही हैं जो उसने किया था। हम उसकी हत्या कर देते हैं। हमारी हत्या न्याय, और उसकी हत्या अन्याय! और उसने हत्या की तो वह हत्यारा, और हमारा न्यायाधीश हत्या करता है तो वह हाथ भी नहीं धोता; उसकी चेतना पर कोई चोट भी नहीं पड़ती।

मनसविद कहते हैं कि हत्यारे और न्यायाधीश एक ही तरह के वर्ग से आते हैं, उनकी चेतना का गुणधर्म एक जैसा है। पुलिसवाले और गुंडे एक ही वर्ग से आते हैं; उनकी चेतना का गुणधर्म एक जैसा है। पुलिसवाले को गुंडा होना ही चाहिए, नहीं तो वह गुंडों से व्यवहार न कर सकेगा। अगर तुम जाकर पुलिसवालों की भाषा सुनो, तो वे जैसी गालियां देंगे वैसी गाली बुरे से बुरा आदमी नहीं देता। और वे जैसा व्यवहार करेंगे, वह तुम्हें पता नहीं चलता, क्योंकि तुम्हें कभी उनके व्यवहार का मौका नहीं आता, लेकिन जिन लोगों को उनके साथ व्यवहार करना पड़ता है वे जानते हैं कि इससे ज्यादा बुरे आदमी खोजने मुश्किल हैं। असल में, फर्क इतना ही है कि वे राज्य के द्वारा नियुक्त गुंडे हैं, दूसरे गुंडे अपनी मर्जी से गुंडे हैं। बस इतना ही फर्क है।

न्यायाधीश हत्यारे हैं, लेकिन बड़ी व्यवस्था से। उनका चोगा, उनके सिर पर लगाए गए विग, व्यवस्था, चारों तरफ गंभीर, काले कोटों से घिरे हुए वकील--ऐसा लगता है कि कुछ हो रहा है, कोई न्यायपूर्ण बात हो रही है। लेकिन हो क्या रहा है? इस सारे जाल के भीतर हो इतना ही रहा है कि जो बुरे आदमियों ने किया है, समाज उनके साथ वही बुराई करना चाहता है; समाज प्रतिशोध लेना चाहता है। तुम हत्या को कानून के शब्दों में रख कर बदल नहीं सकते। हत्या तो हत्या है। राज्य ने की या व्यक्ति ने की, कोई फर्क नहीं पड़ता। हत्या तो हत्या ही रहती है।

और एक बड़ी समझ लेने जैसी बात है कि जो लोग हत्या करते हैं वे उस करने के कारण हत्या के जो परिणाम हैं उनकी चेतना पर, उससे बच नहीं सकते। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर तुमने बुरे आदमी को दंड देकर ठीक करने की कोशिश की तो इस कोशिश में धीरे-धीरे तुम भी बुरे हो जाओगे। क्योंकि तुम दंड दोगे। दंड देना कोई बड़ा शुभ कृत्य नहीं है। तुम मारोगे। मारना कोई शुभ कृत्य नहीं है। तुम कोड़े चलाओगे; तुम सजाएं दोगे। तुम्हारी आत्मा यह सब करने के कारण धीरे-धीरे सख्त, कठोर, पथरीली होती जा रही है।

और न्यायाधीशों से ज्यादा पथरीली आत्मा तुम कहीं भी न पाओगे। क्योंकि हत्यारा तो शायद भावावेश में हत्या करता है, न्यायाधीश बड़ी शीतलता से हत्या करते हैं, कोल्ड मर्डर।

एक आदमी से तुम्हारा झगड़ा हो गया, तुम क्रोध में आ गए, भावाविष्ट हो गए, उत्तप्त हो गए; उस उत्तप्त बेहोशी में तुमने हत्या कर दी। यह हत्या क्षम्य भी हो सकती है, क्योंकि तुम अपने होश में न थे, तुम बेहोश थे। शायद भविष्य में अदालतें इसे क्षमा करेंगी। जैसे अभी अगर सिद्ध हो जाए कि आदमी पागल था तो फिर पागल को सजा नहीं दी जा सकती। लेकिन क्रोध में भी तो आदमी पागल हो जाता है, क्षण भर को सही। स्थायी पागल न हो; पहले पागल न था, बाद में पागल न रहा; लेकिन उस क्षण में तो पागल हो ही जाता है। उस पागलपन में हत्या करता है। यह क्षमा-योग्य हो सकती है। लेकिन न्यायाधीश सोच-विचार कर, गणित से, कैलकुलेशन से हत्या करता है। उसकी हत्या अक्षम्य है। व्यक्ति हत्या करते हैं भावाविष्ट होकर; समाज हत्या करता है गणित के हिसाब से। समाज की हत्या बिल्कुल अक्षम्य है।

लेकिन लाओत्से जैसे व्यक्तियों की बात कोई सुनता नहीं। इसलिए धीरे-धीरे समाज के पास आत्मा तो पत्थर हो जाती है। जो समाज लोगों को आत्मा देना चाहता है उसके पास खुद ही कोई आत्मा नहीं होती। जो न्यायाधीश लोगों को बदलना चाहता है, उसके पास ही बदलने वाली कोई अंतस-चेतना नहीं होती। जो राजनीतिज्ञ समाज के भ्रष्टाचार को दूर करना चाहते हैं, उनका सारा जीवन भ्रष्टाचार से लिप्त होता है। वे वहां तक पहुंच ही नहीं सकते जहां तक पहुंच गए हैं बिना भ्रष्टाचार के।

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि जिस यात्रा से तुम गुजरते हो वह तुम्हें बदल देती है। अक्सर ऐसा हुआ है, रोज ऐसा होता है, पूरा इतिहास भरा पड़ा है कि क्रांतिकारियों ने जिनको मिटाना चाहा, अंततः क्रांतिकारी उन्हीं जैसे हो जाते हैं। इस मुल्क में अभी हुआ। उन्नीस सौ सैंतालीस में यह मुल्क आजाद हुआ। जो लोग सत्ता में आए वे अंग्रेजों से बदतर सिद्ध हुए। अंग्रेजों ने इतनी हत्या कभी भी नहीं की थी मुल्क में जितनी इन थोड़े से वर्षों में भारतीयों ने खुद सत्ता में होकर की। इतना भ्रष्टाचार न था जितना भ्रष्टाचार आजादी के इन दिनों में बढ़ा।

क्यों ऐसा होता है? क्योंकि तुम जो करने जाते हो वह तुम्हें भी बदलता है। असल में, सत्ता में पहुंचते-पहुंचते ही जिन सीढ़ियों को पार करना पड़ता है वे तुम्हारी आत्मा का हनन कर देती हैं। जब तक तुम पहुंचते हो तब तक तुम उसी जैसे हो गए होते हो।

एक बहुत पुरानी चीन में कहावत है कि बुरे आदमी से कभी दुश्मनी मत बनाना। क्योंकि बुरे आदमी से तुम दुश्मनी बनाओगे, धीरे-धीरे तुम बुरे हो जाओगे। क्योंकि बुरे आदमी के साथ उसी की भाषा में बोलना पड़ेगा, बुरे आदमी के साथ उसी के ढंग से लड़ना पड़ेगा, बुरे आदमी के साथ वही व्यवहार करना पड़ेगा जो वह समझ सकता है। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम बुरे आदमी हो गए।

अगर लड़ाई भी लेनी हो तो किसी अच्छे आदमी से लेना। अगर लड़ना ही हो तो संतों से लड़ना। तो तुम संतों जैसे हो जाओगे। क्योंकि जिससे हमें लड़ना हो उसी के जैसे होना पड़ता है। और कोई उपाय नहीं है। चोर से लड़ोगे, चोर हो जाओगे। बेईमान से लड़ोगे, बेईमान हो जाओगे। क्योंकि बेईमानी का पूरा शास्त्र तुम्हें भी सीखना पड़ेगा। नहीं तो जीत न सकोगे।

हिटलर हार गया, लेकिन सारी दुनिया को बदल गया। क्योंकि जो लोग उससे लड़े वे सब धीरे-धीरे हिटलर जैसे हो गए। हिटलर हार कर भी जिंदा है। और हिटलर के बाद दुनिया में करीब-करीब अधिक मुल्क फैसिस्ट हो गए। भाषा, नाम उनका न हो फैसिज्म, लेकिन हिटलर बदल गया लोगों को; जिनको भी उससे लड़ना पड़ा उनको डेमोक्रेसी छोड़ देनी पड़ी। क्योंकि उससे लड़ना हो तो डेमोक्रेसी नहीं चल सकती। हिटलर से

लड़ना था तो इंग्लैंड को तत्क्षण चर्चिल को ताकत देनी पड़ी, क्योंकि हिटलर जैसा दुष्ट आदमी चर्चिल के अतिरिक्त इंग्लैंड में दूसरा नहीं मिल सकता था। हिटलर से चर्चिल ही लड़ सकता था। वह भी हिटलर के ही ढंग का आदमी था; उसमें कोई फर्क न था। हिटलर को हराना जिन लोगों ने किया उनकी सबकी जीवन-चेतना वह बदल गया। वह सारी दुनिया में हार कर भी फैसिज्म की ताकतों को बढ़ावा दे गया। दुनिया में करीब-करीब सब जगह लोकतंत्र की जड़ें हिल गईं, और सब जगह अधिनायकशाही प्रविष्ट हो गई।

अभी बंगला देश में यह घटना घटी। आजादी आए देर नहीं हुई, लोकतंत्र की हत्या हो गई। मुजीबुर्रहमान अधिनायक हो गए। कहते वे यही हैं अभी कि बुराई को मिटाना है। लेकिन बुराई को मिटाने में तुम्हें बुरा होना पड़ता है। लेकिन तुम थोड़े दिन में भूल ही जाओगे कि बुराई मिटी या न मिटी। कभी बुराई मिटी नहीं है आज तक। इसलिए अब इस अधिनायकशाही का अंत कब होगा? बुराई कभी मिटेगी नहीं और अधिनायक कहेगा, अभी बुराई मिटी नहीं इसलिए मुझे अधिनायक रहना है। और जैसे-जैसे अधिनायकशाही मजबूत होती जाएगी वैसे-वैसे वह स्वभाव बन जाएगी। सारी दुनिया में स्वागत किया गया, क्योंकि मुजीबुर्रहमान कहते हैं कि यह दूसरी क्रांति है।

यह क्रांति की हत्या है; यह दूसरी क्रांति नहीं है। क्रांति हो भी न पाई थी कि मर गई। बच्चा मरा हुआ ही पैदा हुआ। और सारी दुनिया में ऐसा हुआ है। लेकिन आदमी इतिहास को दोहराए चला जाता है। स्टैलिन चाहता था कि रूस का छुटकारा जार से हो जाए और स्टैलिन जार जैसा हो गया छुटकारे में। तुम जिस तरह की जीवन-व्यवस्था को तोड़ना चाहते हो तुम भी वैसे हो जाओगे।

हमने तो बड़े अच्छे लोग भेजे थे सत्ता में, अच्छे से अच्छे लोग, जिनको हम समझते थे अच्छे लोग। क्योंकि गांधी ने बड़े सेवक तैयार किए थे, बड़े त्यागी तैयार किए थे। वे सब भोगी सिद्ध हुए। वह सब त्याग दो कौड़ी में मिल गया। जैसे ही सत्ता आई वैसे ही सब रूप बदल गया। क्यों? क्योंकि उनको लड़ना पड़ा, चारों तरफ की बुराई है उससे लड़ना पड़ा। वह बुराई उन्हें बुरा कर गई।

जिससे तुम दुश्मनी लोगे, तुम कभी न कभी उसी जैसे हो जाओगे। इसलिए मैं कहता हूं, शैतान से मत लड़ना। परमात्मा से प्रेम करना; शैतान से मत लड़ना। शैतान से लड़ने की तरफ ध्यान ही मत देना। क्रोध से मत लड़ना, करुणा को जगाना; क्रोध पर ध्यान ही मत देना। कामवासना से मत लड़ना, अन्यथा तुम और कामी हो जाओगे। और अगर कामवासना से लड़-लड़ कर तुम्हारा ब्रह्मचर्य भी पैदा हो गया तो वह ब्रह्मचर्य का गुणधर्म भी कामवासना का होगा, वह भिन्न नहीं हो सकता। इसलिए ठीक दिशा में ध्यान देना जरूरी है।

लाओत्से कहता है, "मान लो लोग मृत्यु से भयभीत हैं, और हम उपद्रवियों को पकड़ कर मार भी सकते हैं, तो भी ऐसा करने की हिम्मत कौन करेगा?"

क्योंकि जो मारेगा वह उपद्रवियों जैसा ही हो जाएगा। जो उनकी हत्या करेगा, जो बुराई को तोड़ेगा, वह तोड़ने में ही बुरा हो जाएगा।

"अक्सर ऐसा होता है कि बधिक मारा जाता है।"

मारने वाला मारने की प्रक्रिया में ही मारा जाता है। भला वस्तुतः न मारा जाए, लेकिन मारा जाता है, खो देता है अपने को।

"और बधिक की जगह लेना ऐसा है जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए।"

जब भी तुम बधिक की जगह लेते हो, जैसे ही तुम तय करते हो कि किसी को डराना है, धमकाना है, मिटाना है, क्योंकि भलाई को जन्म इसी तरह मिलेगा, तभी तुम गलती कर रहे हो। क्योंकि बुराई से भलाई को जन्म नहीं मिल सकता। मिटाना, डराना, धमकाना बुराई है। बुराई से कभी भलाई का जन्म नहीं होता।

अभी मैंने, जब हिंदुस्तान और चीन पर युद्ध के बादल छा गए और दोनों मुल्क संघर्ष के लिए करीब आए तो एक जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। मैंने उनसे कहा कि आपने भी आशीर्वाद दिया सेनाओं को, यह कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि अहिंसा परमो धर्मः। उन्होंने कहा, निश्चित दिया, क्योंकि अहिंसा की रक्षा के लिए युद्ध जरूरी है।

अहिंसा की रक्षा के लिए युद्ध जरूरी है! यह वचन तो बिल्कुल ठीक लगता है, लेकिन तुम इसमें थोड़ा सोचो इसका क्या अर्थ हुआ? अहिंसा की रक्षा भी हिंसा से होगी? तो तुम हिंसा अहिंसा के नाम पर करोगे; बस इतनी ही बात हुई, और तो कोई फर्क न हुआ। और अगर अहिंसा की रक्षा भी हिंसा से होती है तो अहिंसा नपुंसक है। तो फिर अहिंसा की बकवास ही छोड़ो। कम से कम ईमानदारी ग्रहण करो, प्रामाणिक रूप से यह कहो कि हिंसा के बिना कोई उपाय नहीं है, इसलिए हिंसा करेंगे। बात तो अहिंसा की करोगे, और फिर जब रक्षा करनी पड़ेगी तो हिंसा का ही सहारा लेना पड़ेगा। अहिंसा इतनी कमजोर है? और जब तुम हिंसा करोगे अहिंसा के नाम से तो तुम में और हिंसक में फर्क क्या रह जाएगा? हां, तुम जरा ज्यादा चालाक हो, तुम ज्यादा बेईमान हो। इतना ही फर्क। हिंसक कम से कम साफ-सुथरा है। अहिंसा की रक्षा हिंसा से कैसे हो सकती है?

लोग कहते हैं, धर्म खतरे में है। फिर धर्म की रक्षा हिंसा से करते हैं। धर्म अहिंसा है, प्रेम है। और तुम हिंसा करोगे तो धीरे-धीरे तुम अधार्मिक हो जाओगे। और जब तक तुम रक्षा करके निबटोगे, तुम पाओगे तुम्हारी जीवन-चेतना हिंसात्मक हो गई। क्योंकि तुम जो करते हो उसका अभ्यास तुम्हारे जीवन को बदल जाता है। तुम वही हो जाते हो जो तुम करते हो। तुम उसके साथ तादात्म्य बना लेते हो।

इसलिए लाओत्से कहता है, बधिक की जगह लेना खतरनाक है। क्योंकि तुम बधिक हो जाओगे। और तुम बधिक हो गए और बधिक को ही मिटाना चाहते थे! उपद्रवी को मिटाना चाहते थे, लेकिन मिटाने में तुम स्वयं उपद्रवी हो गए। बुरे को कोई बुराई से नहीं मिटा सकता। घृणा घृणा से नहीं मिटाई जा सकती; घृणा घृणा से बढ़ेगी। बुराई बुराई से नहीं मिटाई जा सकती; बुराई बुराई से बढ़ेगी। बुराई को मिटाना हो तो भलाई चाहिए। घृणा को मिटाना हो तो प्रेम चाहिए। पाप को मिटाना हो तो पुण्य चाहिए।

और समाज यही कोशिश करता रहा है कि बुराई को बुराई से मिटा दे। तुम उपद्रव करते हो तो पुलिस का डंडा तुम्हारे सिर पर पड़ जाता है। पुलिस कहती है कि तुम उपद्रव कर रहे थे, इसलिए डंडा मारना जरूरी है। लेकिन पुलिस का डंडा खुद ही उपद्रव है। इस जाल के बाहर कैसे निकला जाए?

जाल के बाहर रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। उलझन बड़ी गहरी है। क्योंकि डंडे के जो मालिक हैं, वे कहते हैं कि अगर डंडा न उठे तो उपद्रव बहुत बढ़ जाएगा। इसलिए डंडा उठाना जरूरी है। और डंडे से कोई उपद्रव दबता नहीं। डंडे से इतना ही होता है कि दूसरी दफे उपद्रवी भी डंडा लेकर आ जाता है। हमारी सारी व्यवस्था ऐसी है।

रवींद्रनाथ ने एक संस्मरण लिखा है। उनका बड़ा घर था, बड़ा परिवार था। उनके दादा को राजा की उपाधि थी। और इतना पैसा था, सुविधा थी, कि ऐसा भी हो जाता था कि जो मेहमान एक दफा मेहमान की तरह आया फिर वह गया ही नहीं, वह वहीं रहने ही लगा। ऐसे परिवार में कोई सौ लोग थे। तो मनों दूध

खरीदा जाता था। और बंगाल में तो बहुत दूध की जरूरत है, क्योंकि सारे बंगालियों के मिष्ठान्न छेना से बनते हैं, दूध बहुत चाहिए। हर भोजन के साथ संदेश तो चाहिए ही। बहुत दूध खरीदा जाता था।

तो एक व्यक्ति के हाथ में परिवार के, रवींद्रनाथ के एक भाई के हाथ में जिम्मा था दूध को देखने का। तो दूध में पानी मिल कर आता था। तो भाई बिल्कुल गणित-कुशल था, प्रशासक बुद्धि का था। उसने एक और इंसपेक्टर नियुक्त किया जो लोग दूध लाते थे उन पर। जब से इंसपेक्टर नियुक्त किया तब से दूध में और पानी मिलने लगा; क्योंकि इंसपेक्टर का भी भाग जुड़ गया। वह भी जिद्दी आदमी था। उसने एक और बड़ा इंसपेक्टर, इंसपेक्टर के ऊपर नियुक्त कर दिया। तब तो एक दिन गजब हो गया। एक मछली भी आ गई दूध में। पानी ऐसा मिलाया गया, पोखर से सीधे ही डाल दिया; उसमें एक मछली भी चली आई।

रवींद्रनाथ के पिता ने रवींद्रनाथ के भाई को बुलाया और कहा कि तुम विदा करो इंसपेक्टरों को। क्योंकि यह जाल तो बढ़ जाएगा। अगर तुमने अब और एक इंसपेक्टर नियुक्त किया तो धीरे-धीरे पानी ही आएगा, दूध आएगा ही नहीं। क्योंकि सबका भाग निर्धारित होता जा रहा है। लेकिन वह जिद्दी था, उसने कहा कि इसका मतलब यह हुआ, इसका मतलब केवल इतना ही है कि एक ठीक योग्य आदमी और चाहिए ऊपर। रवींद्रनाथ के पिता ने कहा, तुम देखो, क्या घटना घटी है! दूध पहले आ रहा था, पानी मिला था माना; लेकिन इतना पानी मिला नहीं था।

ज्यादा सुरक्षा की व्यवस्था करोगे, असुरक्षा हो जाएगी। भरोसे से चलता है जीवन; इतने भय और इतनी व्यवस्था से नहीं चलता। व्यवस्था बिगाड़ देती है, अव्यवस्था ले आती है। उपद्रवी डंडे लेकर आ जाएंगे; पुलिस गैस के गोले लेकर आएगी; उपद्रवी गोले लेकर आएंगे। ऐसे ही तो दुनिया में क्रांतियां खड़ी होती हैं। जितना राज्य दबाना चाहता है उतना ही लोग बगावत करते हैं। जितनी बगावत करते हैं, राज्य और दबाना चाहता है। क्योंकि गणित साफ है कि नहीं दबाओगे तो क्या होगा! ऐसे ही तो बड़े-बड़े साम्राज्य गिरते हैं। ऐसे ही ब्रिटिश साम्राज्य भारत में गिरा। ऐसे ही यह कांग्रेस गिरेगी। ऐसे ही इनके पीछे जो आएंगे वे गिरेंगे। गिरने का सूत्र यह है कि तुम्हारे गणित में भूल है।

मगर कठिनाई यह है कि वे भी क्या करें। उनसे अगर बात करो तो उनके सामने भी यही सवाल है कि इसको रोकें कैसे?

ऊपर से बदलाहट नहीं की जा सकती। क्रांति, बदलाहट जड़ से लानी होती है। ऊपर से बदलने जाओगे, कुछ भी न बदलेगा। मूल भय पर खड़ा है। वहीं भूल है। मूल प्रेम पर खड़ा होना चाहिए। एक-एक परिवार से प्रेम की व्यवस्था बननी शुरू होनी चाहिए। डराओ मत बच्चों को। वक्त लगेगा, समय लगेगा, दो-चार पीढ़ियां अगर प्रेम में जीने की कोशिश करें तो ऐसी घड़ी आएगी जहां उपद्रव शांत हो जाएंगे। कोई इतना अशांत न होगा कि उपद्रव करने की कोशिश करे।

और तात्कालिक व्यवस्था कुछ भी करने का बड़ा प्रयोजन नहीं है। तात्कालिक व्यवस्था से कुछ भी नहीं होता, सनातन व्यवस्था चाहिए। बीमारी गहरी है, ऊपर से चोट करने से मिटती नहीं। तुम थोड़ी-बहुत देर के लिए दबा दो, फिर बीमारी खड़ी हो जाएगी। मौलिक रूपांतरण चाहिए।

उसी मौलिक रूपांतरण के लिए लाओत्से के वचन हैं।

वह कहता है, "बधिक की जगह लेना ऐसा है जैसे कोई महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी लेकर चलाए। जो महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी हाथ में लेता है, वह शायद ही अपने हाथों को जख्मी होने से बचा पाए।"

ऐसा हुआ कि मुल्ला नसरुद्दीन एक स्कूल में मास्टर था। एक औरत एक दिन आई अपने बेटे को लेकर और उसने कहा कि कुछ इसे डराओ-धमकाओ, क्योंकि यह बिल्कुल बगावती हुआ जाता है। न किसी की सुनता, न कोई आज्ञा मानता। सब अनुशासन इसने तोड़ डाला है। हम बड़े बेचैन हैं। इसे थोड़ा डराओ-धमकाओ। इसे रास्ते पर लाओ। ऐसा सुनते ही नसरुद्दीन ऐसा उछला-कूदा, ऐसा चीखा-चिल्लाया कि बच्चा तो डरा ही डरा, औरत बेहोश हो गई। उसने इतना न सोचा था कि यह... । वह तो समझी कि यह आदमी पागल हो गया या क्या हुआ। बच्चा भाग खड़ा हुआ। औरत बेहोश हो गई। और नसरुद्दीन खुद इतना घबड़ा गया कि खुद भी बच्चे के पीछे भाग खड़ा हुआ।

घड़ी भर बाद झांक कर उसने देखा कि औरत होश में आई या नहीं। जब औरत होश में आ गई तब वह भीतर आकर, वापस अपने आसन पर बैठा। उस औरत ने कहा कि यह जरा ज्यादा हो गया, मेरा मतलब ऐसा नहीं था। मैंने यह नहीं कहा था कि मुझे डरा दो।

नसरुद्दीन ने कहा कि देख, भय का शास्त्र किसी की चिंता नहीं करता। जब बच्चे को मैंने डराया तो भय थोड़े ही देखता है कि कौन बच्चा है और कौन तू है। जब भय पैदा किया तो वह सभी के लिए पैदा हो गया। बच्चा तो डरा ही डरा, अब सपने में भी मेरी सूरत देख कर कंप जाएगा। लेकिन भय किसी का पक्षपात नहीं करता। तू भी डरी। और तेरी छोड़, मेरी हालत पूछ! मैं तक घबड़ा गया। अब इस बच्चे को मैं भी देख लूंगा तो मेरे हाथ-पैर कंपेंगे। मैं खुद ही आधा मील का चक्कर लगा कर आ रहा हूं; बामुश्किल रोक पाया अपने को भागने से। ऐसी घबड़ाहट पकड़ गई।

इसे ध्यान में रखो। नसरुद्दीन ठीक कह रहा है। भय से जब तुम किसी को भयभीत करते हो तो तुम दूसरे को ही भयभीत नहीं करते, अपने को भी भयभीत कर लेते हो। जब तुम बुराई से किसी को डराते हो तब तुम खुद भी डर जाते हो। यह दुधारी तलवार है। और इसे सम्हाल कर हाथ में उठाना, क्योंकि तुम्हारे हाथ भी लहूलुहान हो जाएंगे।

लाओत्से कह रहा है कि कोई कलाकार काष्ठकार होता है, निष्णात होता है अपनी कुल्हाड़ी को पकड़ने में। तुम उसकी कुल्हाड़ी पकड़ कर मत चलाना। नहीं तो तुम अपने हाथों को जख्मी होने से न बचा पाओगे।

जीवन का शास्त्र बड़ा बारीक, नाजुक है। और जीवन के शास्त्र को सम्हल कर एक-एक कदम होशपूर्वक कोई चले तो ही अपने को बचा पाएगा जख्मी होने से। अन्यथा तुम दूसरे को सुधारने में अपने को बिगाड़ लोगे, दूसरे को बनाने में खुद मिट जाओगे।

ऐसा मैंने सुना है कि इजिप्त में एक बादशाह पागल हो गया। और पागल हो गया शतरंज खेलते-खेलते। इतना शतरंज के खेल का उसे शौक था कि रात भर चालें चलता रहे नींद में। सुबह होते ही से सब काम छोड़ कर वह शतरंज की चाल पर बैठ जाए; दिन देखे न रात। धीरे-धीरे वह पगला गया; धीरे-धीरे बस शतरंज ही रह गई, और सब भूल गया। चिकित्सक बुलाए गए। चिकित्सकों ने कहा, यह हमारे हाथ की बात नहीं। अगर कोई शतरंज का बड़ा खिलाड़ी इसके साथ शतरंज खेले तो शायद कुछ हल हो जाए।

तो राज्य के सबसे बड़े खिलाड़ी को बुलाया गया। वह राजी हो गया सम्राट को सुधारने को। एक साल तक, कहते हैं, वह उसके साथ खेल खेलता रहा। और वह सही साबित हुआ, सम्राट ठीक हो गया एक साल के बाद, लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया। पागल के साथ शतरंज खेलना! एक तो शतरंज वैसे ही पागल करने वाला खेल, फिर पागल के साथ खेलना! तो सम्राट तो कहते हैं ठीक हो गया साल भर में, लेकिन खिलाड़ी पागल हो गया।

चिकित्सकों से खिलाड़ी के घर के लोगों ने पूछा, अब क्या करें? उन्होंने कहा कि और कोई बड़ा खिलाड़ी खोजो जो राजी हो इसको सुधारने को। मगर तब कोई खिलाड़ी राजी न हुआ, क्योंकि बात फैल गई कि जो सुधारेगा वह पागल हो जाएगा।

बुरे को सुधारने में सम्हल कर कदम उठाना। पहले अपनी तरफ गौर से देख लेना, कहीं बुरे को सुधारने में तुम बुरे तो न हो जाओगे! गलत को सुधारने में गलत तो न हो जाओगे! वेश्या को सुधारने सोच-समझ कर जाना; शराबी को सुधारने होश से जाना।

एक युवक अभी कुछ दिन पहले मेरे पास आया और उसने कहा कि मैं बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। लंदन में कोई संस्था होगी जो शराबियों को सुधारने का काम करती है। पश्चिम में ऐसी बहुत सी संस्थाएं हैं। बड़ी अंतर्राष्ट्रीय एक संस्था हैः अल्कोहलिक अनॉनिमस। वैसी कोई संस्था में वह शराबियों को सुधारने के काम में लगा होगा। शराबी सुधरे कि नहीं, वह शराब पीना सीख गया। अब वह कहता है, मुझे कौन सुधारे?

जरा सम्हल कर सुधारने की बात में उतरना। क्योंकि वह महा काष्ठकार की कुल्हाड़ी है। बुद्धों ने वह काम किया है; वह तुमसे न हो सकेगा। तुम उस कुल्हाड़ी को हाथ में लेकर चलाओगे, तुम अपने ही हाथ-पैर काट लोगे। बुद्ध वह काम कर सकते हैं, क्योंकि उन्हें करना नहीं पड़ता, उनकी मौजूदगी सुधारती है। वही तो कला है। उनका होना सुधारता है; उनका अस्तित्व, उनका पूरा समग्र चैतन्य। उनकी मौजूदगी से क्रांति घटित होती है।

बुद्ध पुरुष के पास होने से तुम बदलने शुरू हो जाते हो। वह तुम्हें बदलना नहीं चाहता। उसकी कोई चाह नहीं रही; इसीलिए तो वह बुद्ध पुरुष है। वह तुम्हें बदलने की भी चाह नहीं रखता। वह तुम्हें तुम्हारी समग्रता में स्वीकार करता है; तुम जैसे हो भले हो। इसी स्वीकार से तुम्हारी क्रांति शुरू होती है। वह तुम्हें प्रेम करता है; तुम जैसे हो, बेशर्त, वैसे ही प्रेम करता है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे हो जाओ तब मैं तुम्हें प्रेम करूंगा। वह कहता है, तुम जैसे हो परिपूर्ण हो; मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। उसका हृदय तुम्हें अंगीकार कर लेता है। वह तुम्हें आलिंगन कर लेता है; एक गहन तल पर तुम्हें स्वीकार कर लेता है। उसी स्वीकृति से तुम्हारे जीवन में क्रांति घटनी शुरू होती है। उसका प्रेम तुम्हें बदलता है। उसकी करुणा तुम्हें बदलती है। उसकी चेतना तुम्हें बदलती है। वह तुम्हें नहीं बदलता; वह तुम्हें बदलना भी नहीं चाहता।

और जो तुम्हें बदलना चाहते हैं वे तुम्हें तो बदल ही नहीं पाते, तुम्हें बदलने में खुद बदल जाते हैं। तुम भी दूसरे को बदलने की चेष्टा में मत लगना। उससे बड़ी भूल नहीं है। अगर किसी को भी तुम्हें बदलना हो तो खुद को बदलना। तुम जिस दिन बदल जाओगे, तुम एक जले हुए दीये होओगे। तुम्हारी रोशनी तुम्हारे चारों तरफ पड़ेगी। जो भी वहां से निकलेगा उस रोशनी का दान ले लेगा। जो भी वहां से निकलेगा वह रोशनी उसे जीवन का दर्शन करा देगी। बदलाहट निष्क्रिय चेतना से घटती है, सक्रिय चेतना से नहीं।

जो भी किसी को बदलना चाहता है वह अहंकारी है। यह बदलने की तरकीब भी अहंकार का खेल है। बदलने के नाम पर वह दूसरे की गर्दन को पकड़ना चाहता है। बदलने के नाम पर वह दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहता है जैसा कोई वस्तुओं के साथ करता है। वह कहता है, तुम्हारा यह पैर काटेंगे, तुम्हारी यह गर्दन अलग करेंगे; तुमको सुंदर बनाएंगे, तुम्हें शुभ बनाएंगे। वह तुम्हें विध्वंस करना चाहता है। सुधारक की वृत्ति में बड़ी हिंसा छिपी है। और तुम्हारे तथाकथित महात्मा सभी हिंसक हैं। वे तुम्हें बदलना चाहते हैं।

वस्तुतः बुद्ध पुरुष तुम्हें स्वीकार करता है। बदलने को क्या है? तुम भले हो, तुम सर्वांग भले हो जैसे हो। तुम्हारे होने में रत्ती भर भी कुछ बुद्ध पुरुष को शिकायत नहीं है। और तब क्रांति घटित होती है। तब भभक कर क्रांति घटित होती है। उस परिपूर्ण स्वीकार में ही तुम्हारा जीवन एक नयी यात्रा पर निकल जाता है।

आज इतना ही।

एक सौ उन्नीसवां प्रवचन

राजनीति को उतारो सिंहासन से

Chapter 75

On Punishment (4)

When people are hungry,
It is because their rulers eat too much tax-grain.
Therefore the unruliness of hungry people
Is due to the interference of their rulers.
That is why they are unruly.
The people are not afraid of death,
Because they are anxious to make a living.
That is why they are not afraid of death.
It is those who interfere not with their living,
That are wise in exalting life.

अध्याय 75

दंड (4)

जब लोग भूखे हैं,
तो उसका कारण है कि शासक बहुत करान्न खा जाते हैं।
इसलिए भूखे लोगों का उपद्रव,
उनके शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है।
इसी कारण वे उपद्रवी हैं।
लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं,
क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।
यही कारण है कि वे मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।
जो उनकी जीविका में हस्तक्षेप नहीं करते,
वे ही जीवन को ऊंचा उठाने का विवेक रखते हैं।

शासन का आधिक्य मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ी कठिनाई है। शासन जितना कम हो उतना श्रेष्ठ। शासन बिल्कुल न हो तो वह श्रेष्ठता की पराकाष्ठा है। शासन जितना ज्यादा हो उतना निकृष्ट, और जब शासन ही शासन रह जाए तो वह शासन का अंतिम पतन है।

शासन के आधिक्य का अर्थ हैः स्वतंत्रता की कमी। और शासन के आधिक्य का यह भी अर्थ है कि व्यक्ति को व्यक्ति होने की अब कोई सुविधा नहीं है; जैसे व्यक्ति एक कलपुर्जा हो गया। वह इस बड़े समाज के यंत्र में उसका उपयोग है; उपयोग लिया जाएगा; लेकिन व्यक्ति की आत्मा को कोई स्वीकृति नहीं है।

शासन का आधिक्य आत्मा का हनन है।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है। अमरीका में एक कुत्तों की अखिल विश्व प्रदर्शनी थी। उसमें रूस से भी कुत्ते आए थे। एक अमरीकी कुत्ते ने पूछा रूसी कुत्तों से कि सब ठीक तो है? तुम्हारे देश में सब सुख-सुविधा तो है? उसने कहा, सब सुख-सुविधा है। ऐसा भोजन कभी हमें मिलता नहीं था जैसा मिलता है। रहने के लिए जगह जैसी हमें उपलब्ध है, कभी भी रूसी कुत्तों को पहले न थी। अब हम सड़कों पर भटकते नहीं और भोजन के लिए दर-दर ठोकर नहीं खाते। अब हम बड़े प्रसन्न हैं!

लेकिन अमरीकी कुत्ते ने कहा कि तुम इतने प्रसन्न हो, लेकिन चेहरे पर प्रसन्नता मालूम नहीं होती।

उसने कहा, उसका एक कारण है; किसी को न बताओ तो कहूं। और सब तो ठीक है, भौंकने की आजादी नहीं है। और उस कुत्ते ने कहा कि भौंकने की आजादी का वही अर्थ होता है जो मनुष्य की भाषा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का। भौंक नहीं सकते। भोजन पूरा है; लेकिन व्यक्तित्व की कोई सुविधा नहीं है।

शासन जब अधिक हो जाएगा तो व्यक्तित्व को पोंछ देता है; क्योंकि व्यक्तित्व खतरा है शासन में। शासन चाहता है समाज, व्यक्ति नहीं; समूह, व्यक्ति नहीं; क्योंकि व्यक्ति के होने में ही खतरा है। क्योंकि व्यक्ति स्वतंत्रता की मांग है। व्यक्तित्व की आखिरी गरिमा परिपूर्ण मुक्ति है; और शासन का अर्थ ही बंधन है।

दूसरी बात, जैसे ही शासन बढ़ता है वैसे ही शासन अपशोषित करता है समाज को। जैसे-जैसे शासन का बोझ बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे शासन के नीचे दबे लोग दुर्बल होते जाते हैं। शासन का पेट ही नहीं भर पाता; लोगों का पेट कैसे भरे?

इसे हम चिकित्साशास्त्र से आसानी से समझ सकते हैं।

चिकित्सक कहते हैं कि मनुष्य की हड्डियों पर थोड़ी सी चर्बी चाहिए; वह चर्बी हड्डियों की रक्षा करती है। वह चर्बी हड्डियों के आस-पास एक ऊष्मा, एक गरमी बनाए रखती है। वह चर्बी जरूरत-गैर-जरूरत के समय, संकट के समय आत्मरक्षा का उपाय है। अगर बहुत दिन भूखा रहना पड़े तो वह चर्बी तुम्हारा भोजन बन जाएगी।

हर आदमी करीब-करीब तीन महीने भूखा रह सकता है, इतनी चर्बी उसके शरीर में है। इतना होना जरूरी है, अन्यथा आदमी मुश्किल में होगा। लेकिन फिर ऐसी घटना घटती है कि कुछ लोग रुग्ण हो जाते हैं और चर्बी बढ़ती चली जाती है। फिर चर्बी शरीर को बचाती नहीं, मारती है; फिर हड्डियों की सुरक्षा नहीं रहती, हड्डियों को तोड़ने वाला बोझ हो जाती है। फिर हृदय को उतनी चर्बी को खींचना मुश्किल हो जाता है, तो हृदय पर आक्रमण होने शुरू हो जाते हैं। फिर चर्बी इतनी बढ़ जाती है कि मस्तिष्क तक ऊर्जा नहीं पहुंचती, तो भीतर मस्तिष्क जड़ होने लगता है। ऐसी घटना घट सकती है कि चर्बी इतनी हो जाए कि आदमी हिल-डुल न सके; उसकी गति समाप्त हो जाए; उसका जीवन मृत्यु जैसा हो जाए।

शासन थोड़ा सा जरूरी है। अगर शासन बढ़ता जाए तो वह ऐसा ही है जैसे किसी आदमी की चर्बी बढ़ती जाए। चर्बी एक मात्रा में बचाती है; एक मात्रा के पार जाने पर मारती है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि इस पृथ्वी पर मनुष्य के आगमन के पूर्व बड़े विराट जानवर थे। हाथी उनके समक्ष कुछ भी नहीं। हाथी से दस-दस गुने बड़े जानवर थे। उनके अस्थिपंजर उपलब्ध हैं। हाथी से दस गुना बड़ा जानवर, बड़ा शक्तिशाली जानवर था, लेकिन वह बिल्कुल तिरोहित हो गया। उसका एकमात्र वंशज बची है छिपकली। छिपकली इतनी छोटी सी! वे छिपकलियां थीं हाथियों से दस गुनी बड़ी। अचानक वे कैसे विदा हो गईं दुनिया से? वैज्ञानिकों ने बहुत खोज करके पाया कि उनकी चर्बी इतनी बढ़ गई कि उस चर्बी को ढोना मुश्किल हो गया। चर्बी के बोझ के नीचे दब कर ही वे प्राणी मर गए।

शासन सुरक्षा है। शासन जरूरी है। जहां एक से ज्यादा लोग हैं, वहां कुछ नियम चाहिए, व्यवस्था चाहिए; अन्यथा बड़ी अराजकता होगी, जीना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए शासन की जरूरत है। लेकिन बस एक सीमा तक। वहीं तक शासन की जरूरत है जहां तक एक व्यक्ति को दूसरे की जीवन-स्वतंत्रता में बाधा डालने से रोकने की जरूरत है। बस! कोई व्यक्ति किसी के जीवन में बाधा न डाले, इतने दूर तक शासन का काम है।

लेकिन यह तो निषेधात्मक काम हुआ कि तुम लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा करो। लेकिन जब ताकत हाथ में आती है शासन के तो लोगों की स्वतंत्रता की रक्षा तो अलग रही, लोगों को परतंत्र बनाने की व्यवस्था शुरू हो जाती है। तुम्हारे जीवन को सुखी बनाने का उपाय तो दूर रहा, शासन-तंत्र जिनके हाथ में होता है, वे अदम्य वासना से भर जाते हैं--और शक्ति, और शक्ति! तो जिनकी वे रक्षा करने को नियत किए गए थे उनके अपशोषक हो जाते हैं। शासन छाती पर बैठ जाता है; प्रजा सिकुड़ती चली जाती है। धीरे-धीरे प्रजा का सब मांस खो जाता है, अस्थियां शेष रह जाती हैं--अस्थिपंजर!

ऐसे क्षणों में बगावत होनी स्वाभाविक है। लोग उपद्रवी हो जाएंगे। अगर लोग उपद्रवी हैं तो उसका अर्थ इतना ही है कि शासक लोगों के ऊपर अधिक भार की तरह हो गए हैं। कर बढ़ते जाते हैं, टैक्सेशन बढ़ता जाता है; नियम बढ़ते जाते हैं; स्वतंत्रता कम होती जाती है। तुम्हारे चारों तरफ लोहे की दीवाल बन जाती है नियमों की, हिलना-डुलना मुश्किल हो जाता है। और इस सबको भी लोग बरदाश्त कर लें; पेट भी भूखा होने लगता है। जीवन नीचे गिरने लगता है; जरूरत की चीजें भी उपलब्ध नहीं होतीं। और शासन विराट भवन खड़े किए चला जाता है; और शासन विराट वैभव का दिखावा करने लगता है। लोग मरते हैं, और शासन लोगों की मृत्यु से भी जीने की कोशिश करता है। ऐसी घड़ी में बगावत स्वाभाविक है, लोग उपद्रवी हो जाएंगे। और कोई न कोई उपद्रवी लोगों को भड़काने के लिए तैयार मिल जाएगा।

लोग स्वयं उपद्रवी नहीं हैं; लोग बड़े शांत हैं। लोगों की क्षमता अपार है। लोग कितना बरदाश्त करते हैं, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लोगों ने सदियों तक बरदाश्त किया है; सब तरह की तकलीफ झेल ली है। क्योंकि उपद्रव में उतरने का अर्थ होता है, अपने को भी उपद्रव में डालना। लोग चाहते नहीं कि उपद्रव हो। लेकिन एक ऐसी घड़ी आ जाती है संकट की जब कि जीवन में कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, जीना ही मुश्किल हो जाता है। उस अंतिम घड़ी में, मरता क्या न करता; उस घड़ी में ही लोग उपद्रव के लिए राजी होते हैं। और तब भी लोग राजी होते हैं, ऐसा कहना कठिन है; तब जो लोग शासन में हैं, उनके विरोधी लोग जो शासन में नहीं हैं, वे लोगों को राजी करते हैं।

लोगों ने अब तक कोई क्रांति नहीं की। लोगों का संतोष अपार है। लोग सब तरह की कठिनाइयां बरदाश्त करके चुपचाप जी लेना चाहते हैं। क्योंकि जीने में इतना रस है कि कौन उसे उपद्रव में डाले। लेकिन जब जीना मुश्किल ही हो जाए, रोटी भी उपलब्ध न हो, पानी भी उपलब्ध न हो; तब समझो कि लोग भूख, पीड़ा में सूख गए होते हैं, सूखा ईंधन हो गए होते हैं, तब कोई भी उपद्रवी, जो शासन-सत्ता में होना चाहता है और नहीं हो पाया, वह जरा सी चिनगारी लगा दे, जरा सी चकमक चला दे बगावत की, कि फिर दावानल उठ जाता है। भूख आग बन जाती है। सभी क्रांतियां भूख से पैदा होती हैं। लोग जब मरने की हालत में हो जाते हैं, तभी लड़ने को तैयार होते हैं। अन्यथा लोग तो धरती जैसे हैं--सब सहते हैं।

लाओत्से कह रहा है कि जब लोग उपद्रवी हों तब तुम उन्हें दंड देने की बजाय इस बात का विचार करना कि शासन अत्यधिक शोषण कर रहा है। अन्यथा लोग कभी उपद्रवी न होते। लोगों का उपद्रव केवल लक्षण है कि शासन ने ज्यादा चूस लिया है लोगों को। इतना चूस लिया है कि अब वे मरने को भी तैयार हैं, मारने को भी तैयार हैं। उनकी भूख ने उनके जीवन का बोध, जीवन का रस, संतोष की क्षमता, सब छीन लिया है। अब भूख इतनी विकराल है कि अब उन्हें यह भी नहीं लगता कि बचने में कोई सार है। मिटाने का एक रस पैदा हो जाता है भूख के कारण।

ऐसा ही समझो कि जैसे किसी आदमी को बुखार आ गया हो, शरीर ज्वर से भरा है, तापमान बढ़ता जाता है। ज्वर लक्षण है, बीमारी नहीं; सिम्पटम है। बीमारी तो भीतर है कहीं। ज्वर तो मित्र है; वह तो खबर दे रहा है कि अब सब तरफ से ध्यान हटा लो; भीतर कुछ रोग खड़ा हुआ है, उसे ठीक करो; उस रोग को प्रियारिटी देनी जरूरी है, प्राथमिकता देनी जरूरी है। अब तुम हजार काम कर रहे हो, ज्वर कहता है कि उसने लाल झंडी बता दी, अब तुम रुक जाओ! अब कुछ भी करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना भीतर की बीमारी से जूझना जरूरी है। पहले चिकित्सा करवा लो, विश्राम कर लो। ज्वर का अर्थ यह नहीं है कि शरीर गरम हो गया है तो उसको ठंडा करने से कुछ हल हो जाएगा। ज्वर का इतना ही अर्थ है कि भीतर कोई रोग है। उस रोग के कारण सारा शरीर उत्तप्त है, और जल रहा है और आग में पड़ा है। उस रोग को ठीक कर लो, ज्वर अपने से शमित हो जाएगा।

लाओत्से कहता है कि जब लोग उपद्रव से भरे हैं तो यह लक्षण है ज्वरग्रस्त दशा का, समाज बीमार है। तुम इन बीमारों को दंड देते हो? तुम उपद्रवियों को जेलों में डालते हो?

तो तुम ज्वर का इलाज कर रहे हो, बीमारी का नहीं। इससे तो दावानल और बढ़ेगा। इससे तो आग और फैलेगी। इससे तो जो भूखे अभी उपद्रव में सम्मिलित नहीं थे, वे भी सम्मिलित हो जाएंगे। जब लोग उपद्रव करें तो शासन को समझना चाहिए कि शासन ने सीमा से बाहर शोषण कर लिया और शासन लोगों के ऊपर छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है। अब वह गर्दन में बंधा हुआ पत्थर है, जिससे लोग घबड़ा रहे हैं, डूब रहे हैं। अब शासन बचाता नहीं है, डुबा रहा है। इसलिए अगर चिकित्सा करनी हो तो शासन को अपने ढंग और व्यवस्था की करनी चाहिए। उपद्रवियों को दंड देना व्यर्थ है।

चोर वहीं पैदा होते हैं जहां कुछ लोग बहुत संपत्ति इकट्ठी कर लेते हैं, अन्यथा चोर पैदा नहीं होते। चोर का केवल इतना ही अर्थ है कि कुछ लोगों के पास जरूरत से ज्यादा हो गया है और कुछ लोगों के पास जरूरतें भी पूरी करने योग्य नहीं बचा है। तब कलह खड़ी हो जाती है।

शासन धीरे-धीरे अपने जाल फैलाता जाता है। वह आक्टोपस की भांति है, जिसके आठ पंजे हैं, चारों तरफ फैलाता जाता है। शुरू में तो रक्षक की तरह जन्म होता है शासन का; जल्दी ही वह भक्षक हो जाता है।

क्योंकि जिसके हाथ में तुमने ताकत दे दी, ताकत देते ही उस व्यक्तित्व का गुणधर्म बदल जाता है। शक्ति के मिलते ही व्यक्ति दुरुपयोग शुरू कर देता है।

शक्ति का सदुपयोग करना बहुत कठिन है। शक्ति का सदुपयोग करना तो संत ही जानते हैं। लेकिन संत तो राजी न होंगे शासक बनने को। शक्ति की आकांक्षा संतों में नहीं होती, लेकिन शक्ति का उपयोग करना वे जानते हैं। और जिनमें शक्ति की आकांक्षा होती है, जो शक्तिवान होना चाहेंगे, वे शक्ति का उपयोग करना नहीं जानते, वे दुरुपयोग करना जानते हैं।

शक्ति की आकांक्षा दुर्बल व्यक्ति में होती है, सबल व्यक्ति में नहीं। तुम्हारे पास जो नहीं है, उसी की तो तुम आकांक्षा करते हो। इसलिए जो व्यक्ति भी राज्य में पहुंच जाता है, सत्ताधारी हो जाता है, सत्ताधारी होते ही विक्षिप्त उसकी दशा हो जाती है। फिर वह भूल ही जाता है--क्यों आया, क्यों भेजा गया, क्या कारण थे? बात तो उसने की थी कि सेवा करने को जा रहा है सत्ता में; सत्ता में पहुंचते ही वह चाहता है, सब उसकी सेवा करें। और सत्ता में पहुंचते ही वह जो व्यक्ति तुमने भेजा था, वही नहीं रह जाता; वह दूसरा ही व्यक्ति है जो पहुंचता है। भेजते तुम किसी को हो, पहुंचता कोई और है। क्योंकि मध्य में क्रांति घटित हो जाती है।

सत्ता को झेलने की क्षमता, और सत्ता मिल जाने पर अपरिवर्तित रहने की क्षमता तो संत में हो सकती है। अब यह एक उलझन है। संत शक्ति चाहता नहीं; मिल जाए तो भी राजी न होगा। क्योंकि वह अपने में काफी पर्याप्त है, वह किसी और का शासक नहीं होना चाहता। वह तो सिर्फ आत्म-शासन चाहता है, अपना शासन अपने ऊपर चाहता है। उसे दूसरों पर शासन करने में कोई रस नहीं है। वह तो रस उन्हीं को होता है जो अपने पर शासन करने में समर्थ नहीं हैं। जिनके जीवन में मालकियत नहीं है, वही किसी और के स्वामी होना चाहते हैं।

तुम संन्यासियों को मैंने स्वामी कहा है, सिर्फ इसी कारण कि तुम अपने स्वामी होना चाहना। तुम दूसरे के स्वामी होना चाहो तो तुम राजनीतिज्ञ हो; तुम अपने स्वामी होना चाहो तो तुम धार्मिक हो।

मालकियत अपनी संत चाहता है, दूसरे पर कोई मालकियत नहीं चाहता। तो संत को राजी करना मुश्किल कि वह सत्ता में चला जाए; सत्ता दो तो भी लेगा न। और संत ही योग्य था सत्ता में होने के, क्योंकि उससे दुरुपयोग नहीं हो सकता था। और जो पागल लोग सत्ता में पहुंचने के लिए दौड़ कर रहे हैं, वे सत्ता के दीवाने हैं। जब तक सत्ता नहीं मिली है, तब तक तुम उनकी आंखों में विनम्रता पाओगे, वे तुम्हारे पैर दबाएंगे। जब उनके हाथ में सत्ता होगी तब तुम्हारी गर्दन दबाएंगे। तब उनकी आंखों की विनम्रता खो जाएगी। तब तुम उनमें महा अहंकार की अग्नि को प्रज्वलित देखोगे। तब उनके पैर जमीन पर न पड़ेंगे। तभी उनका असली रूप प्रकट होगा। क्या किया जाए?

भारत ने एक इसके लिए उपाय खोजा था। वह उपाय यह था कि संत तो सत्ता में जाने को राजी नहीं है और असंत सत्ता में जाने को अति आतुर है, तो एक ही उपाय है कि जो भी सत्ता में हो वह संतों के चरणों में बैठे। और तो कोई उपाय नहीं है। इसलिए संत तो चले जाते थे जंगलों में, लेकिन सम्राट उनकी तलाश करते थे--सत्संग के लिए। क्योंकि उनसे शायद झलक, बस उनसे ही केवल झलक की आशा थी कि सत्ता का दुरुपयोग न हो पाए।

संत सत्ता से ऊपर होना चाहिए। जब संत सत्ता से ऊपर हो तो सत्ता तो उसके हाथ में नहीं है, लेकिन सत्ता उसके निर्देश से चलने लगेगी, उसके उपदेश से चलने लगेगी। संत को राजा बनाने के लिए तो राजी नहीं किया जा सकता, लेकिन राजा संत के चरणों में बैठ कर शिष्य तो बन सकता है। उसके लिए राजा को राजी

किया जाना चाहिए। तो एक तालमेल बन सकता है। तो ही यह संभव है कि शासन भक्षक न बन पाए। अन्यथा शासन भक्षक हो जाएगा।

लाओत्से बिल्कुल ठीक कह रहा है। लाओत्से कह रहा है, लोग भूखे हैं, इसलिए उपद्रवी हैं; और तुम उन्हें दंड देते हो! जब लोग उपद्रव करें तब तुम्हें दंड तो अपने को देना चाहिए, क्योंकि लोग इसकी खबर दे रहे हैं कि तुमने अब बहुत चूस लिया; अब तुम सीमा से आगे बढ़ गए; लोगों की क्षमता धैर्य की समाप्त हो गई। और लोगों की धैर्य की क्षमता बड़ी गहन है; तुम उसे भी समाप्त कर दिए! क्योंकि लोग सदियों से सहते हैं। अगर हम लोगों की सहिष्णुता का विचार करें तो वह अनंत मालूम पड़ती है। क्रांति, बगावत के लिए तो वे कभी-कभी राजी होते हैं। और वह भी लोग राजी नहीं होते, वह भी दूसरी सत्ता के लोलुप उनको भड़काते हैं, तभी राजी होते हैं।

लाओत्से के वचन हम समझने की कोशिश करें।

"जब लोग भूखे हैं, तो उसका कारण है कि शासक बहुत करान्न खा जाते हैं।"

लोगों का कर के माध्यम से इतना ज्यादा शोषण हो जाता है कि उनके पास कुछ बचता ही नहीं जीने के लिए।

"इसलिए भूखे लोगों का उपद्रव उनके शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है।"

इसलिए मूल कारण कहीं शासन में है, लोगों में नहीं है। लोग तो केवल उस मूल कारण के कारण प्रतिक्रिया करते हैं। अगर तुमने यह समझा कि लोगों में ही कारण है तो तुम उन्हीं को दबाने में लग जाओगे, उन्हीं को मारने में लग जाओगे। तब भूल हो गई। तब तुमने लक्षण को बीमारी समझ लिया। बीमारी कहीं गहरे में थी; तुम लक्षण को मिटाने में लग गए! जो अपराधी न थे, उन्हें तुमने जेलों में डाल दिया। जो अपराधी न थे, उनकी तुमने गर्दनें काट दीं। और जो वस्तुतः अपराधी थे, वे मालूम पड़ते हैं कि जैसे समाज की सुरक्षा कर रहे हैं।

लोगों के जीवन में बहुत हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। राज्य ऐसा होना चाहिए कि लोगों को पता ही न चले कि वह कहां है। राज्य ऐसा होना चाहिए कि उसकी प्रतीति न हो। क्योंकि प्रतीति का मतलब है कि राज्य हर जगह तुम्हारे रास्ते में खड़ा हो जाता है। तुम उठते हो तो राज्य का विचार करना पड़ता है, बैठते हो तो विचार करना पड़ता है, तुम हिलते हो तो विचार करना पड़ता है। राज्य ऐसा होना चाहिए कि तुम्हें तुम्हारी स्वतंत्रता पर छोड़ दे। राज्य तो तभी बीच में आना चाहिए जब तुम किसी और की स्वतंत्रता पर आघात करो; इसके पहले नहीं।

ठीक है, राज्य की व्यवस्था के लिए थोड़े से कर की जरूरत है कि राज्य की व्यवस्था चलती रहे। लेकिन जो काम साधारणतः एक आदमी कर सकता है, वही राज्य के हाथ में जाने पर पचास आदमी भी नहीं कर पाते। राज्य के हाथ में जो काम चला जाता है उसका ही पूरा होना मुश्किल हो जाता है। फाइलें सरकती रहती हैं एक टेबल से दूसरी टेबल पर। उनके अंबार हो जाते हैं। उनका कोई अंत ही नहीं मालूम पड़ता कि कोई चीज कभी पूरी होगी। छोटे-छोटे मुकदमे चलते हैं, वर्षों तक चलते रहते हैं। कोई हिसाब नहीं कि मुकदमे का इतना मूल्य ही न था; और वर्षों जितना उस पर व्यय किया जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं है। जो काम क्षण भर में निपट सकता था, वह सालों में भी नहीं निपटता मालूम पड़ता।

मेरे एक परिचित हैं; उन पर एक मुकदमा चला। वह मुकदमा उन पर उन्नीस सौ बीस में चला और अभी खतम नहीं हुआ है। उस मुकदमे में चार लोगों पर मुकदमा चला था; तीन मर चुके। जितने न्यायाधीशों ने उस मुकदमे को किया, वे सब मर चुके। जिस राज्य ने मुकदमा चलाया था, ब्रिटिश राज्य ने, वह मर चुका। जितने

वकीलों ने मुकदमे में भाग लिया था, वे सब मर चुके। सिर्फ एक आदमी बच रहा है। वे मुझसे कहते हैं कि जब तक मैं न मर जाऊं, यह खतम न होगा; अब बस मेरे मरने की और बात है, तभी यह खतम होगा।

पचास साल कोई मुकदमा चल रहा है! लेकिन उसका कोई अंत ही नहीं मालूम पड़ता। उसमें से नये जाल निकलते आते हैं, चीजें आगे बढ़ती चली जाती हैं। सरकार जैसे हर चीज को स्थगित करने की बड़ी गहरी तरकीब है। फिर इस पर व्यय होता है, करोड़ों रुपये का व्यय होता है। वह सारा व्यय उन लोगों के पास से आ रहा है जिनके पेट भूखे हैं। यहां लोगों को रोटी नहीं मिलती, वहां व्यर्थ की बातें वर्षों तक चलती रहती हैं जिनका कोई अंत नहीं आता। और सभी सरकारी नौकर कुशल हो जाते हैं टालने में। किसी को कुछ जरूरत ही नहीं मालूम पड़ती कि कोई चीज कभी अंत होनी चाहिए।

मैंने सुना है कि दिल्ली के एक दफ्तर में--बड़ा दफ्तर, बड़ा कारोबार--किसी की टेबल कभी खाली नहीं, सब की टेबलों पर फाइलों के अंबार लगे हैं। सिर्फ एक आदमी की टेबल सदा खाली, जैसे कि हर काम वह रोज निपटा रहा है। लोग चिंतित हुए कि ऐसा कहीं हुआ है?

आखिर एक आदमी ने उससे पूछा कि तुम किस तरकीब से काम करते हो? तुम्हारी टेबल पर कभी फाइल नहीं रहती! हर चीज तुम रोज निपटा देते हो जो कि बिल्कुल असंभव है; कभी हुआ ही नहीं राज्यों के इतिहास में! तुम्हारी तरकीब क्या है? और तुम कभी थके-मांदे भी नहीं दिखते। कभी ऐसा भी नहीं कि तुम समय के बाद काम करते दिखते हो। तुम ठीक ग्यारह बजे आते हो, ठीक पांच बजे चले जाते हो। और टेबल सदा खाली!

उस आदमी ने कहा, इसकी एक तरकीब है। तरकीब यह है कि कुछ भी आए, मैं बिना फिक्र उस पर लिख देता हूंः सेंड इट टु दयाराम फार फर्दर एक्सप्लेनेशंस--इसे भेज दो दयाराम के पास और आगे की जानकारी के लिए। अब मैं सोचता हूं, इतना बड़ा दफ्तर है, कोई न कोई दयाराम होगा ही।

उस आदमी ने, जो पूछ रहा था, सिर ठोंक लिया। उसने कहा, दयाराम मैं हूं! और मेरी टेबल पर चल कर देखो। तो तुम्हारी कृपा है यह कि सारी दुनिया की फाइलें मेरी टेबल पर चली आ रही हैं! और मैं कोई हल ही नहीं कर पा रहा हूं कि उनका हल कैसे हो।

भेज रहे हैं लोग एक से दूसरे के पास। नीचे की पहली पायदान से शुरू होती है फाइल और वह प्रधानमंत्री तक जाती है। वर्षों लगते हैं। फिर प्रधानमंत्री से वापस लौटती है कोई नयी जानकारी के लिए। फिर वर्षों लगते हैं। ऐसे ही सब डोलता रहता है। राज्य काम तो करता ही नहीं, सिर्फ टालता है। जो काम राज्य के हाथ में चला जाता है, वही होना बंद हो जाता है। और फिर भी, मजे की बात है, राजनेता कहे चले जाते हैं समाजवाद के लिए। जो उनके पास है, कुछ भी उनसे होता नहीं; लेकिन वे चाहते हैं कि सारे मुल्क का सारा काम उनके हाथ में हो जाए। वह फिर कब होगा? फिर उसके होने की कोई संभावना ही नहीं है। और इस सब व्यवस्था को जमाए रखने में--यह सब मुफ्त नहीं जमती--इस व्यवस्था को जमाए रखने में सारा राज्य का शोषण चलता है।

मैं एक सरकारी कालेज में कुछ दिन तक प्रोफेसर था। तो मैं चकित हुआ, किसी प्रोफेसर को कोई पढ़ाने की न इच्छा है, न कोई उत्सुकता है। लोग प्रोफेसर्स के कामन रूम में बैठ कर गपशप करते हैं, बातचीत चलाते हैं। लड़के आते हैं, चले जाते हैं, कोई किसी को उत्सुकता नहीं है। मैंने एक मित्र को पूछा कि यह मामला क्या है? तो उसने कहा, यह कोई प्राइवेट कालेज नहीं है, सरकारी कालेज है। प्राइवेट कालेज में पढ़ाई वगैरह होती है। यह सरकारी कालेज है, यहां कोई किसी को जरूरत नहीं है कुछ करने की। यहां तो जो नासमझ हैं वे ही पढ़ाते हैं; जो समझदार हैं वे राजनीति करते हैं। जो समझदार हैं वे वाइस चांसलर का इलेक्शन लड़ने का उपाय कर

रहे हैं; और ऊपर कैसे चढ़ जाएं, प्रिंसिपल कैसे हो जाएं, हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट कैसे हो जाएं, उस काम में लगे हैं। नासमझ कुछ छोटे-मोटे नये जो आ जाते हैं, जिनको अभी पता नहीं कि क्या करना, वे क्लासों में पढ़ाते हैं।

सरकारी होते ही कोई भी काम स्थगित हो जाता है। और यह सब भयंकर भार है।

लाओत्से कहता है, लोग भूखे हैं, उपद्रव पैदा होगा। लेकिन शासकों के हस्तक्षेप से यह सब हो रहा है। लोगों को उनके जीवन पर छोड़ दो; वे अपने लायक कमाने में सदा समर्थ थे; वे अपना पेट भर लेने में सदा समर्थ थे। जानवर, पशु-पक्षी समर्थ हैं; आदमी क्यों समर्थ न होगा!

बहुत मजे की घटना घटती रहती है! राज्य कहता रहता है, गरीबी मिटानी है। और राज्य की वजह से गरीबी पैदा होती जाती है। जो गरीबी पैदा कर रहे हैं वे उसको मिटाने का नारा देकर लोगों को धोखा देते रहते हैं।

राज्य जितना कम होगा उतने ही लोग संपन्न होंगे। क्योंकि लोग अपने पेट भरने लायक काफी पैदा कर लेते हैं; उसके लिए कोई कमी नहीं है। और लोगों की कोई बहुत महत्वाकांक्षाएं नहीं हैं। भरपेट रोटी मिल जाए, तन भर कपड़ा मिल जाए, विश्राम के लिए छप्पर मिल जाए--इतनी लोगों की आकांक्षा है। लोगों की आकांक्षाएं बहुत नहीं हैं। उपद्रव तो उन लोगों के साथ है जिनकी बहुत आकांक्षाएं हैं। वे बहुत थोड़े लोग हैं। और उन्होंने सारे समाज को उपद्रव में डाल दिया है। उनकी थोड़ी सी वासनाओं की पूर्ति के लिए सारा समाज भूखा मरता है, सड़ता है, बीमार रहता है, दीन-दरिद्र रहता है। समय के पहले मर जाते हैं लोग--हस्तक्षेप राज्य में!

गरीब भी प्रसन्न था; अब अमीर भी प्रसन्न नहीं है। गरीब भी कमा लेता था रोटी अपने लायक; सांझ को बैठ कर ढपली बजाता था, गीत गाता था; वर्षा आती थी तो आल्हा-ऊदल पढ़ता था। रात देर तक अलाव जला कर गपशप करता था; गहरी नींद सोता था। गरीब की कोई बहुत आकांक्षा नहीं है। लोगों की कोई बहुत आकांक्षा नहीं है। थोड़े से विक्षिप्त लोग हैं, उनकी बड़ी भयंकर आकांक्षाएं हैं जो कभी पूरी नहीं हो सकतीं। उनकी न पूरी होने वाली आकांक्षाओं के लिए लोगों की सहज आकांक्षाएं, जो सदा पूरी हो सकती हैं और पूरी होनी चाहिए, वे पूरी नहीं हो पातीं। समाज थोड़े से पागलों के कारण परेशान है।

जरूरत की चीजें पर्याप्त हैं प्रकृति में। भोजन जमीन बहुत दे सकती है--पेट भरने लायक। लेकिन अगर पेट की जगह पागलपन हो तो पागलपन को भरने लायक जमीन अन्न नहीं दे सकती। पानी बहुत है। आकाश बड़ा है; सबके लिए छाया हो सकती है। लेकिन जैसे ही कुछ पागल लोग, एंबीशस जिनको हम कहते हैं, महत्वाकांक्षी, और महत्वाकांक्षा पागलपन का गहरे से गहरा रूप है, जैसे ही महत्वाकांक्षियों के जाल में समाज पड़ जाता है वैसे ही अड़चन खड़ी हो जाती है। उन पागलों की पूर्ति के लिए सब मिट जाते हैं; और फिर भी पागलों की तो कोई पूर्ति होती नहीं; वह भी हो जाती तो भी कोई बात थी।

लाओत्से कहता है, लोगों का उपद्रव पैदा होता है शासन के अति भार से। शासन लोगों की रोटी छीन लेता है; और प्रतिपल हस्तक्षेप करता है। हस्तक्षेप ऐसा है कि आदमी को लगता है कि वह बिल्कुल स्वतंत्र ही नहीं है, कुछ भी करने को स्वतंत्र नहीं है। सब तरफ परतंत्रता खड़ी है। और परतंत्रता के नियम इतने ज्यादा हैं कि अब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो अपने को अपराधी अनुभव न करे। क्योंकि अगर जीना है तो कोई न कोई नियम तोड़ना पड़े, नहीं तो जी नहीं सकते। या तो मर जाओ, आत्मघात कर लो; और या फिर अपराधी हो जाओ। राज्य ने दो ही विकल्प छोड़े हैं। हर आदमी अपराधी अनुभव करता है, क्योंकि उसे लगता है, कहीं थोड़ा सा टैक्स बचा लिया, कहीं कुछ और नियम तोड़ दिया, जो चीज नहीं ले आनी थी वह ले आए, जो नहीं खरीदना था वह खरीद लिया, जो नहीं बेचना था वह बेच दिया। हर पल ऐसा लगता है कि आदमी कहीं न

कहीं जुर्म कर रहा है, अपराध कर रहा है। और वह स्थिति बहुत अच्छी नहीं है जहां पूरे समाज के सभी लोग आत्म-अपराध से भर जाएं और जहां उनको प्रतिपल डर लगता हो कि आज पकड़े कि कल पकड़े, कि कब खुल जाएगा यह भंडा, पता नहीं।

और कोई अपराधी नहीं है। नियम अपराधी हैं, अति नियम अपराधी हैं। अब जैसे कि कोई यही नियम बना दे कि तुम बाहर खड़े होकर खुले आकाश में सांस नहीं ले सकते हो। तो फिर तुम लोगे सांस तो अपराधी अनुभव करोगे। और यह घड़ी कभी न कभी आ जाएगी, क्योंकि हवा विषाक्त होती जा रही है। पश्चिम में तो हो ही गई है। पश्चिम में छोटे-छोटे बच्चे स्कूल नकाब पहन कर जा रहे हैं जिसके साथ एक आक्सीजन की थैली जुड़ी होती है। क्योंकि सड़कों पर जो हवा है, कारों के अत्यधिक चलने से वह विषाक्त हो गई है; उसको पीना खतरनाक है।

इस बात की बहुत संभावना है कि ऐसा वक्त आ जाएगा पचास साल के भीतर, जब केवल शासक ही खुले आकाश में हवा ले सकेंगे, क्योंकि उनके पास ही सुविधा होगी। बाकी लोग तो अपनी-अपनी थैली लटका कर, जैसे अभी टिफिन लटका कर दफ्तर जाते हैं, ऐसे ही अपनी-अपनी आक्सीजन की थैली लटका कर दफ्तर जाने लगेंगे। हवा भी कम पड़ जाएगी, ऐसा मालूम पड़ता है। भोजन कम पड़ गया है, पानी कम पड़ गया है, हवा भी कम पड़ जाएगी। ऐसा लगता है कि जीवन कम पड़ता जाता है। कौन इस जीवन को चूस लिए जा रहा है? यह कहां जीवन की इतनी ऊर्जा विलीन हो जाती है? कौन इसे हड़प जाता है?

कहीं भी तुम जी रहे हो, राज्य का हाथ तुम्हारे खीसे में है। तुम कुछ भी करो, तुम कुछ भी बनाओ, तुम कुछ भी कमाओ, अधिक हिस्सा राज्य के पास चला जाता है। तुम्हें तो उतना ही छोड़ा जाता है जितने में तुम जिंदा रहो और काम करते रहो, मर न जाओ।

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक गधा खरीदा था। जिससे खरीदा था, उसने कहा कि इस गधे से मेरा बड़ा लगाव है; मजबूरी में बेच रहा हूं। बड़ा प्यारा जानवर है। इसको इतना भोजन नियम से देना, इतना पानी, इतनी व्यवस्था, तो सदा तुम्हारी सेवा करेगा।

बेचने वाला बड़ा दुख में था, गधे से बिछुड़ रहा था। नसरुद्दीन ने कहा, तू फिक्र मत कर। घर आकर लेकिन उसने हिसाब लगाया कि जितना खाने का उसने बताया है, यह तो बहुत ज्यादा है। पहले मैं कोशिश करूं कि इससे आधे में काम चल जाएगा कि नहीं। तो उसने गधे को आधा भोजन देना शुरू किया। काम चल गया; गधा यद्यपि थोड़ा दुबला हो गया। पर नसरुद्दीन ने कहा कि अब जरा ठीक ही लगते हो, थोड़े सुडौल हो गए। फिर उसने कहा जब आधे से चल जाता है तो और आधे से क्यों न चल जाएगा! तो और आधा कर दिया। उतने में भी काम चल गया, लेकिन गधा थोड़ा दुबला होता गया। लेकिन दुबलापन तो धीरे-धीरे आया, नसरुद्दीन को दिखाई भी न पड़ा। जब, उसने कहा, इतने से ही काम चलने लगा तो बिल्कुल बिना भोजन के भी चल सकता है; थोड़ा दुबला ही होगा, और क्या होगा! उसने भोजन ही बंद कर दिया। जिस दिन उसने भोजन बंद किया, उसके दूसरे दिन ही गधा मर गया। तो नसरुद्दीन ने कहा, अगर थोड़े दिन और जी जाता तो बिना ही भोजन का अभ्यासी हो जाता। वक्त के पहले मर गया।

वक्त के पहले मर गया! भोजन न देने से मर गया, ऐसा नहीं। इसकी मौत आ गई बेचारे की। थोड़े दिन की बात थी कि अभ्यास पक्का हो जाता, बिना ही भोजन के जी जाता!

जनता मरती चली जाती है; राज्य बहाने खोजता चला जाता है। क्यों ऐसा हो रहा है? कभी कहता है, जनसंख्या बढ़ गई, इसलिए ऐसा हो रहा है। कभी कहता है, युद्ध हो गया, उसमें ज्यादा खर्च हो गया, इसलिए ऐसा हो रहा है। कभी प्रकृति पर थोपता है कि बादल न बरसे; कभी धूप ज्यादा आ गई; कभी बाढ़ आ गई। लेकिन एक बात पर कभी राज्य ध्यान नहीं देता कि तुम भोजन खींचे चले जा रहे हो, और तुम्हारी विराट देह और विराट होती चली जा रही है, और लोग उसके नीचे दबते जा रहे हैं, मरते जा रहे हैं। बादलों पर दोष देते हो, नदियों पर दोष देते हो, संख्या पर दोष देते हो, सब चीजों पर दोष देते हो; सिर्फ एक अपने पर कभी दोष नहीं देते--और जो कि नब्बे प्रतिशत कारण है। राज्य नब्बे प्रतिशत कारण है लोगों की भूख, बीमारी, गरीबी, उपद्रव का। लेकिन राज्य अपने को कैसे दोष दे? कोई अपने को दोष नहीं देता।

लाओत्से कहता है, "... शासकों के हस्तक्षेप से पैदा होता है। इसी कारण वे उपद्रवी हैं।"

तुम उन्हें दंड मत दो; तुम उनके पेट को भरो। और उनका उपद्रव खो जाएगा। तुम उन्हें जेलखानों में मत भेजो। उन्हें कपड़े और मकान की जरूरत है। उनकी जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो रही हैं, इसलिए वे उपद्रवी हैं।

बड़ी महत्वपूर्ण बात इसके आगे लाओत्से ने कही है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।"

इसे समझें। इस पर मैं निरंतर जोर देता रहा हूं।

मनुष्य की सीढ़ी के तीन पायदान हैं। पहला उसका शरीर; दूसरा उसका मन; तीसरी उसकी आत्मा। और इन तीन पायदानों पर जो चढ़ जाता है, वह चौथे को उपलब्ध होता है, जिसे हम परमात्मा कहते हैं।

जिसकी शरीर की जरूरतें पूरी न होंगी, वह दूसरे पायदान पर न चढ़ पाएगा। जो भूखा है--तो हमने कहा है, भूखे भजन न होईं गोपाला--वह कैसे भजन करेगा? भूखे को भजन चाहिए नहीं, भोजन चाहिए। और जब प्राणों में भूख भरी हो और रोआं-रोआं भूखा हो, तो तुम कैसे भजन करोगे? तब ब्रह्म की याद न आएगी; तब तो भोजन ही तुम्हारे चारों तरफ घूमता रहेगा। और इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। यह स्वाभाविक है। यह बिल्कुल ठीक है। ऐसा होना ही चाहिए। यह प्रकृति का नियम है। इसमें तुम अपने को दोषी मत ठहराना कि मुझे भोजन की याद क्यों आती है जब मैं भजन करने बैठता हूं! साफ है कि तुम भूखे हो। और शरीर पहली जरूरत है। शरीर अगर पूरा न हो तो मन की जरूरतें उठ ही न पाएंगी। भूखे भजन नहीं होता, ऐसा ही नहीं; भूखे चिंतन भी नहीं होता, विचार भी नहीं होता।

अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर बच्चों को ठीक-ठीक भोजन न मिले तो उनका बुद्धि-अंक नीचे रह जाता है, उनका आई.क्यू. नीचे रह जाता है। अगर बच्चों को ठीक-ठीक पौष्टिक आहार न मिले बचपन में तो सदा के लिए उनकी बुद्धि कमजोर रह जाती है; उनकी बुद्धि कभी भी ऊंचाई को उपलब्ध नहीं हो सकती। जीवन-ऊर्जा ही नहीं है इतनी कि उसको इतनी ऊंचाई पर ले जा सके।

शरीर की जरूरतें पूरी जब हो जाती हैं तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं। वह दूसरा पायदान है। शरीर की जरूरत हैः रोटी, पानी, छप्पर, कपड़ा। बहुत छोटी जरूरतें हैं।

और ध्यान रखना, आवश्यकता और वासना में बड़ा फर्क है। आवश्यकता तो स्वाभाविक है; वासना विक्षिप्त है। भूख लगे तो भोजन करना स्वाभाविक है। लेकिन भोजन के बाद भी अगर कोई चौबीस घंटे भोजन का चिंतन करता रहे और विचार करता रहे, तो आब्सेशन हो गया, तो वह भोजन के पीछे पागल है। भोजन,

पेट भर जाए, तब भी कोई खाता चला जाए, तो वह विक्षिप्त है। उसकी चिकित्सा की जरूरत है। वह भोजन से शरीर को मार डालेगा।

जिस चीज की जरूरत पूरी हो जाए, उस जरूरत के पीछे पागल की तरह लगे रहना रोग है। वासना रोग है, आवश्यकता स्वाभाविक है। आवश्यकता पूरी करना और वासना से बचना! आवश्यकता तो रोटी की है, पानी की है; वासना स्वाद की होती है। आवश्यकता तो कपड़ों की है, शरीर ढंकना चाहिए; सर्दी है, गरमी है, जरूरत है। शरीर तो ढंका जा सकता है, लेकिन वासना का शरीर तुम कभी न ढंक पाओगे। कितने ही बहुमूल्य वस्त्र तुम्हारे पास आ जाएं, वासना कायम रहेगी। वासना दुष्पूर है। आवश्यकता की पूर्ति तो बिल्कुल सरल है।

तो तुम कैसे तय करोगे, क्या है वासना? क्या है आवश्यकता? सोचना। जो चीज पूरी हो सके वह आवश्यकता है; जो कभी पूरी न हो सके वह वासना है। तुम एक मकान में रहते हो, सोचते हो बड़ा महल हो जाए। तो विचारना कि बड़ा महल होने से और बड़े महल की वासना उठेगी या नहीं? अगर उठेगी तो झोपड़े में ही रहना बेहतर है; कुछ अर्थ नहीं है बड़े महल में जाने से भी। क्योंकि और बड़ा महल पकड़ेगा। वासना के पूरे होने का कोई उपाय नहीं है। आवश्यकता तो बड़ी निर्दोष है, बड़ी सरल है। उसमें कोई जटिलता ही नहीं है। आवश्यकता तो भिखारी की भी पूरी हो सकती है; वासना सम्राट की भी पूरी नहीं होती। वासना का पूरा होना स्वभाव ही नहीं है।

शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं। संगीत है, साहित्य है, नृत्य है, काव्य है। जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी होती हैं, मन की जरूरतें आनी शुरू होती हैं।

मन की जरूरतें जब पूरी होने लगती हैं। सुन लिया बहुत संगीत, थोड़ी शांति मिली; लेकिन वह शांति और बड़ी शांति की आकांक्षा जगा गई। थोड़ा सा स्वाद पाया ध्यान का, अब संगीत काफी नहीं मालूम पड़ता। अब तो उस संगीत में जाना है जो शाश्वत है, जो आदमी के द्वारा पैदा नहीं होता, जो परमात्मा से उठता है। अब तो उस संगीत में खो जाना है जिसके स्वर भी शून्य हैं। पढ़ा काव्य को, गीत गाए, गुनगुनाए, पक्षियों के गीत सुने, खिलते फूलों को देखा, सौंदर्य को पहचाना, स्वर को जाना, लय की समझ आई, छंद का बोध हुआ; लेकिन सब कम पड़ जाएगा!

मन तो केवल झलक देता है, क्योंकि मन तो दर्पण है। उसमें तो प्रतिबिंब बनते हैं। लेकिन प्रतिबिंब अच्छे हैं। अगर तुम प्रतिबिंब में ही उलझ गए तो खतरा है। जिसके प्रतिबिंब बनते हैं मन में, अगर दर्पण में देख कर तुम उसकी यात्रा पर निकल गए, दर्पण की तरफ कर ली पीठ, खोजने लगे उसको जिसकी छाया पड़ती थी दर्पण में। संगीत में सुना था कुछ, वह छाया ध्यान की है।

इसलिए संगीत सुनते कभी-कभी एकदम ध्यान लग जाएगा; सुनते-सुनते ही सब शांत हो जाएगा। फूल को देखते-देखते फूल भूल जाएगा; कोई सौंदर्य सब तरफ से घेर लेगा। दर्पण को छोड़ कर तीसरी यात्रा शुरू होती है--तीसरा पायदान--कि मन में जिसकी छाया बनती थी, अब हम उसको खोजने निकलते हैं। मन की आवश्यकताएं जब पूरी हो जाती हैं तो लोग आत्मा की आवश्यकताओं में उठते हैं। तब प्रार्थना, पूजा, अर्चना, ध्यान, उनका रस लगता है। तब संन्यास।

भूखा आदमी गीत भी नहीं समझ सकता। भूखे के कान पर तुम वीणा बजाओ तो उसे सिर्फ स्वरों का उत्पात मालूम पड़ेगा। भूखा आदमी कहेगा, बंद करो! अभी यह क्षण सुनने का नहीं। बंद करो यह वीणा! इससे चोट पड़ती है। इससे हृदय में घाव होता है। भूखा आदमी चांद को भी देखे तो चांद भी उदास मालूम पड़ता है।

भूखा आदमी फूल को भी देखे तो फूल को भी खा जाने का मन होता है, फूल के सौंदर्य को अनुभव करने का नहीं।

जैसे शरीर की जरूरत पूरी होती है, मन की जरूरत उठती है। जो लोग शरीर की जरूरत में ही उलझे रह जाते हैं, उसे वासना बना लेते हैं, वे अभागे हैं। उन्होंने पहले पायदान को ही घर बना लिया। वह सीढ़ी थी, उससे आगे जाना था। अभी बहुत रहस्य बाकी थे। वे भवन के बाहर सीढ़ियों पर ही मकान बना कर रह गए। आवश्यक था सीढ़ियों को पार करना, लेकिन सीढ़ियों पर रुक जाना नहीं। जिसने आवश्यकता को वासना बना लिया, वह सीढ़ियों पर रुक जाएगा। वह जिंदगी भर खाने में लगा रहेगा, कपड़े पहनने में लगा रहेगा, मकान बनाने में लगा रहेगा। बहुत लोग उसी तरह सीढ़ियों पर जीवन बिता रहे हैं। उनके दुर्भाग्य की सीमा नहीं है! उन्हें पता ही नहीं कि सीढ़ियां आगे ले जाती हैं; सीढ़ियां कोई घर नहीं हैं।

दूसरी जगह है मन। कुछ लोग मन में खो जाते हैं। फिर उनका यही राग-रंग हो जाता है--संगीत सुनना है, चित्र देखने हैं, फिल्म, उपन्यास। जरूरी था, लेकिन काफी नहीं। उससे भी जागना है; उससे भी ऊपर जाना है। तब कभी ध्यान, संन्यास की महिमा प्रकट होती है। और वह भी सीढ़ी ही है; उसके भी पार जाना है। तब कहीं परमात्मा के जीवन में, परमात्मा के मंदिर में प्रवेश होता है। तब नदी सागर में गिरती है।

लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं।"

क्योंकि जो व्यक्ति मृत्यु से भयभीत हो जाएगा, वह तो धार्मिक हो जाएगा। मृत्यु का भय तो तभी पकड़ता है जब जीवन की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं। मृत्यु का भय तो दूसरे चरण पर पकड़ता है। जब शरीर भूखा होता है तब तो जीवन ही तुम्हारे पास नहीं, मृत्यु की तुम क्या चिंता करोगे? अभी पेट भरना है; मृत्यु की कौन फिक्र करता है? अभी तो तुम आजीविका जुटाने में लगे हो, अभी जीवन ही नहीं थिर हो पाया; मरने की बात ही कहां सोचने की सुविधा है?

तो लाओत्से कहता है, "लोग मृत्यु से भयभीत नहीं हैं, क्योंकि वे जीविका कमाने के लिए चिंतित हैं।"

उनका पेट भूखा है; भजन वे नहीं कर सकते। अभी मौत का बोध भी नहीं उठता उन्हें। बुद्ध को उठा मौत का बोध, क्योंकि शरीर की जरूरतें पूरी थीं, मन की जरूरतें पूरी थीं, अब जीवन में ऐसा कुछ भी न था जो जानने को बचा हो। जब जीवन में जानने को कुछ भी नहीं बचता, तभी तो आंख ऊपर उठती है; तभी तो याद आती है कि यह जीवन तो समाप्त हो जाएगा; क्या इसके पार भी कुछ है? क्या मृत्यु के पार भी कोई जीवन है?

बुद्ध के समय में भारत में बड़ी धार्मिक घटना घटी। क्योंकि देश बड़ा संपन्न था; देश बड़ा सुखी था। लोगों के पेट भरे थे। उनके खलिहान खाली न थे। लोग प्रसन्न थे। बुद्ध के पीछे हजारों-लाखों लोग चल पड़े। महावीर के पीछे हजारों-लाखों लोग चल पड़े। देश निश्चित ही बड़ी अदभुत शांति की अवस्था में रहा होगा। भूख नहीं थी; भजन हो सका। तो बुद्ध के समय में भारत ने शिखर देखा अपनी संपन्नता का।

लाओत्से कहता है, लोग मृत्यु से भयभीत नहीं, क्योंकि जीवन ही उनके पास नहीं। खोने को कुछ पास नहीं, मृत्यु छीनेगी क्या उनसे? वे आजीविका जुटाने में लगे हैं, किसी तरह रोटी-रोजी पूरी हो जाए।

गरीब आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। व्यक्तिगत अपवाद मिल जाएं, वह बात और। लेकिन नियम यही है कि धार्मिक आदमी होने के लिए शरीर की जरूरतें पूरी हो जानी कम से कम जरूरी हैं, अन्यथा आदमी वहीं उलझा रहेगा।

मैं देखता हूं कि अगर मेरे पास धनी व्यक्ति आता है तो उसके सवाल कभी-कभी धार्मिक होते हैं; गरीब आदमी आता है, उसका सवाल धार्मिक होता ही नहीं। मुझसे लोग कहते हैं कि आप गरीबों के लिए क्यों नहीं कुछ करते? यहां आपके आश्रम में गरीब के लिए प्रवेश नहीं मिल पाता।

उसके पीछे कारण हैं। गरीब जब भी मेरे पास पहुंच जाता है तभी मैं अपने को असहाय पाता हूं; क्योंकि मैं जो कर सकता हूं, वह उसकी मांग नहीं है। जो वह चाहता है, उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। हमारे बीच सेतु निर्मित नहीं हो पाता। एक गरीब आदमी आता है। वह कहता है कि मुझे नौकरी नहीं है। वह ध्यान की बात ही नहीं पूछता। उसको प्रार्थना से कुछ लेना-देना नहीं है। वह मेरा आशीर्वाद चाहता है कि नौकरी मिल जाए।

अब मेरे आशीर्वाद से अगर नौकरी मिलती होती तो मैं एक दफा सभी को आशीर्वाद दे देता। इसको बार-बार करने की क्या जरूरत थी? मेरे आशीर्वाद से कुछ मिल सकता है, लेकिन वह नौकरी नहीं है। वह तुम्हारी मांग नहीं है। तब मैं बड़े पेशोपस में पड़ जाता हूं।

कोई आ जाता है कि बीमार है, आशीर्वाद दे दें!

बीमार को अस्पताल जाना चाहिए। उसको मेरे पास आने का कोई कारण नहीं है; उसको इलाज की जरूरत है। जब भी गरीब आदमी आता है तो मैं पाता हूं कि उसकी कोई चिंतना धार्मिक है ही नहीं। वह मेरे पास आना भी चाहता है तो इसलिए आना चाहता है।

कभी-कभी कोई धनी आदमी आता है तो उसकी चिंतना धार्मिक होती है। वह भी कभी-कभी। तब वह कभी पूछता है कि मन अशांत है, क्या करूं? गरीब आदमी पूछता ही नहीं कि मन अशांत है। मन का अशांत होना एक खास विकास के बाद होता है। अभी पेट अशांत है; अभी मन को अशांत होने का उपाय भी नहीं है। पेट भर जाए तो मन अशांत होगा। मन भर जाए तो आत्मा बेचैन होगी। असल में, जब आत्मा बेचैन हो तभी मेरे पास आने का कोई अर्थ है। आत्मा बेचैन हो तो मेरे आशीर्वाद से कुछ हो सकता है, मेरे निकट होने से कुछ हो सकता है। जो मैं तुम्हें दे सकता हूं, वह धन और है। जो धन तुम मांगते हो, वह मेरे पास नहीं।

तो गरीब आदमी जैसे ही पास आता है, मुझे बड़े पेशोपस में डाल देता है कि करो क्या? उसकी पीड़ा मैं समझता हूं। उसकी कठिनाई मुझे साफ है; उससे भी ज्यादा साफ है जितनी उसे साफ है। क्योंकि मैं जानता हूं कि कितनी दयनीय दशा है कि एक आदमी कह रहा है कि मुझे नौकरी नहीं है! यह कितनी कष्टपूर्ण दशा है कि एक आदमी बीमार है और इलाज का इंतजाम नहीं जुटा पा रहा है! तभी तो वह मेरे पास आया है, नहीं तो वह अस्पताल जाता। उसकी आकांक्षा बड़े क्षुद्र की है। वह सुई मांगने आया है; मैं इधर तलवार देने को तैयार हूं। लेकिन उसका क्या प्रयोजन है? वह कहता है, कपड़े फटे हैं, सुई मिल जाए तो मैं सी लूं। मैं उसे तलवार भी दे दूं तो वह क्या करेगा? कपड़े और फाड़ लेगा। तलवार से तो कोई कपड़े सीए नहीं जाते।

गरीब आदमी के मन में धर्म का विचार ही नहीं उठ पाता। अपवाद छोड़ दें। कभी सौ में एक आदमी गरीब होकर भी धार्मिक हो सकता है; लेकिन उसके लिए बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। अमीर आदमी बिना बुद्धि के भी धार्मिक हो सकता है; गरीब आदमी को बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। गरीब आदमी को इतनी बुद्धिमत्ता चाहिए कि जो उसके पास नहीं है, उसकी व्यर्थता को समझने की क्षमता चाहिए।

अब बड़ा मुश्किल है! जो तुम्हारे पास है, उसकी व्यर्थता तक नहीं दिखाई पड़ती; तो जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी व्यर्थता तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगी? जिनके पास महल हैं, उन्हें नहीं दिखाई पड़ता कि महलों में कुछ नहीं है, तो तुम्हारे पास तो महल हैं नहीं, तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा कि महलों में कुछ नहीं है?

इसलिए अपवाद। कभी सौ में एक प्रतिभावान व्यक्ति बिना महलों में गए, सिर्फ विचार से समझ लेता है कि वहां कुछ नहीं है; बिना धन पाए समझ लेता है कि धन में कुछ सार नहीं है; बिना पद पाए समझ लेता है कि पद में कुछ है नहीं। कहते तो बहुत लोग हैं यह। गरीब कहते हैं अक्सर कि क्या रखा धन में! मगर यह संतोष के लिए कहते हैं। यह उनकी समझ नहीं है; यह सांत्वना है। ऐसा वे अपने मन को समझाते हैं कि रखा ही क्या है!

यह वही हालत है जो लोमड़ी ने अंगूर की तरफ छलांग मार कर अनुभव की थी। अंगूर तक नहीं पहुंच सकी, फासला बड़ा था। चारों तरफ उसने देखा कि कोई देख तो नहीं रहा, क्योंकि बेइज्जती का सवाल था। एक खरगोश झांक रहा था। उस खरगोश ने कहा, क्यों मौसी, क्या मामला है? उस लोमड़ी ने कहा, मामला कुछ नहीं; अंगूर खट्टे हैं। छलांग छोटी है, इसे कहने में तो अहंकार को चोट लगती है। अंगूर खट्टे हैं, छलांग की जरूरत ही नहीं; बेकार सोच कर छोड़ दिए हैं।

बहुत से गरीब आदमी कहते मिलेंगेः क्या रखा धन में! क्या रखा महलों में! क्या रखा पदों में! इससे यह मत समझ लेना कि समझ आ गई है। यह तो सिर्फ सांत्वना है। यह तो गरीब को अपने मन को समझाने का उपाय है। जो पाया नहीं जा सकता, उसमें कुछ रखा ही नहीं है, इसलिए तो हम नहीं पा रहे हैं, नहीं तो कभी का पाकर बता देते, यह वह कह रहा है। वह कह रहा है, अंगूर खट्टे हैं!

लेकिन जब कभी गरीब आदमी को वस्तुतः समझ होती है। ऐसा हो जाता है क्योंकि अनंत जन्मों से समझ संगृहीत होती है। किसी जन्म में तुम अमीर भी रहे हो, महलों में भी रहे हो, बड़े सुख जाने हैं। तो उस सबसे संगृहीत समझ के आधार पर कभी कोई गरीब भी धार्मिक हो सकता है। अन्यथा गरीब आदमी की आकांक्षा धार्मिक तक पहुंच नहीं पाती। उसकी छलांग छोटी है। उसकी मांग छोटी चीजों की है।

अब मेरी तकलीफ तुम समझ सकते हो। तकलीफ यह है कि मैं उसे कुछ देना चाहूं, जरूर देना चाहूं; लेकिन जो मैं देना चाहता हूं, वह उसके काम का नहीं है। जो वह मांगने आया है, वह न तो मेरे पास है, न देने योग्य है, न मांगने योग्य है। लेकिन उसकी समझ तो उसे तभी आएगी जब वह गुजर जाए जीवन के अनुभव से।

जब किसी व्यक्ति की आजीविका के सब साधन पूरे हो जाते हैं, जीवन सुस्थिर हो जाता है, तब मृत्यु का ख्याल आता है। आजीविका कमाने की आपाधापी में मृत्यु का ख्याल किसको आता है? आदमी जीता है और मर जाता है--बिना ख्याल किए कि मौत आ रही है। जब तुम शांति से बैठ सकते हो, घड़ी भर दौड़ बंद कर सकते हो, छप्पर के नीचे विश्राम करते हो, तब तुम्हें कभी ख्याल आता है कि मौत करीब आ रही है। मौत के लिए थोड़ी सी सुविधा चाहिए। और जिसको मौत का ख्याल आया, वही व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। इसलिए तो पशु-पक्षी धार्मिक नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हें मौत का कोई पता ही नहीं है। इतना होश ही नहीं है कि मौत का पता आ जाए। जिनको मौत की चोट ख्याल में आ जाती है उनके जीवन में एक नये अध्याय का प्रारंभ होता है।

"क्योंकि वे जीविका के लिए चिंतित हैं, यही कारण है कि वे मृत्यु से भयभीत नहीं हैं। जो उनकी जीविका में हस्तक्षेप नहीं करते, वे ही जीवन को ऊंचा उठाने का विवेक रखते हैं।"

और लाओत्से कह रहा है, राज्य को कुछ ऐसा करना चाहिए कि लोगों की जीविका में हस्तक्षेप न हो। कम से कम उनकी जीविका उन्हें पूरी मिल जाए, क्योंकि तभी उनके जीवन का विवेक ऊंचा उठेगा। उनकी शरीर की जरूरतें पूरी करो, पूरी हो जाने दो, ताकि वे शरीर से ऊपर उठ सकें। उनकी मन की जरूरतें भी पूरी करो, ताकि वे मन से ऊपर उठ सकें; उनके जीवन में भी आत्मबोध आ सके। वह सुबह हो जहां वे आत्मा की जरूरतों का ख्याल, आत्मा की बेचैनी और प्यास, आत्मा की तड़फ और अभीप्सा पैदा हो सके।

वह आदमी अभागा है जिसके जीवन में आत्मा की तड़प न आई। वह मंदिर के बाहर-बाहर भटकता रहा। वह मंदिर के भीतर प्रविष्ट ही न हुआ। धन्यभागी है वह व्यक्ति जिसके जीवन में आत्मा की तड़पन आ गई; जिसकी आत्मा ने पंख फड़फड़ाए और परमात्मा के आकाश को खोजने की अभीप्सा से भर गई। ऐसे व्यक्ति के जीवन में विवेक अपनी चरम सीमा को छूता है।

और विवेकशील कहीं उपद्रवी हुए हैं? और विवेकशील कभी अपराधी हुए हैं? और विवेकशीलों ने जीवन को कभी तहस-नहस और नष्ट-भ्रष्ट करने की कोई आकांक्षा की है?

लाओत्से यह कह रहा है कि जब तक लोग शरीर के तल पर ही जीएंगे तब तक उपद्रवी रहेंगे। उनको कभी भी भड़काया जा सकता है। वे सूखा ईंधन हैं, कोई भी उनमें आग लगा सकता है। और आग लग जाए, पकड़ जाए, तो फिर हवाएं ही उसे फैला देती हैं। जब तक लोगों का जीवन-विवेक ऊपर न उठे तो तुम दंड देकर उसे ऊपर न उठा सकोगे; न उनकी हत्याएं करके ऊपर उठा सकोगे। क्योंकि मृत्यु का उन्हें भय ही नहीं है। तुम मारने की धमकी भी दो, कुछ न होगा। तुम छीनने की धमकी दो, कुछ न होगा। तुम उन्हें जेलखानों में डाल दो, कुछ न होगा। क्योंकि असलियत ऐसी है कि जेलखाने उनके घरों से बेहतर हैं और वहां कम से कम भोजन दो बार नियम से मिल जाता है। जेलखाने ज्यादा सुखद हैं। तुम उन्हें जेलखानों में डाल कर उपद्रव से न बचा सकोगे, बल्कि उपद्रव की शिक्षा दोगे। तुम उन्हें मार कर, मिटाने की धमकी देकर कुछ भी रूपांतरण न कर पाओगे। क्योंकि मरने की उन्हें कोई चिंता ही नहीं, उन्हें जीने की चिंता है। मरने की किसको चिंता है? मार डालो; तुम्हारी गोलियां उनकी छातियों को छेद देंगी, लेकिन उन्हें बदल न पाएंगी। तुम्हारे कोड़े उनके शरीरों पर पड़ेंगे, लेकिन वे कोड़े उन्हें जगा न पाएंगे।

उन्हें जगाओ। और उनके जगाने का एक ही उपाय है कि राज्य उनका शोषण न करे; राज्य उन्हें जीने दे अपने ढंग से; बीच-बीच में खड़ा न हो। राज्य धन को इतना न चूस ले कि उनके पास कुछ बचे ही न। जैसे ही उनके पेट भरे होंगे, वे सुविधापूर्ण होंगे, वैसे ही कोई उनसे उपद्रव न करवा सकेगा, वैसे ही कोई उन्हें अपराध की तरफ न ढकेल सकेगा। और उनके जीवन में धीरे-धीरे मृत्यु का दर्शन शुरू होगा। उस दर्शन से वे धार्मिक हो जाएंगे।

धर्मशास्त्रों के अध्ययन से कोई धार्मिक नहीं होता; धार्मिक होने के लिए मृत्यु का शास्त्र पढ़ना जरूरी है। पंडित-पुजारियों की बकवास से कोई धार्मिक नहीं होता; धार्मिक होने के लिए मृत्यु के स्वर सुनने जरूरी हैं। मृत्यु सबसे बड़ा गुरु है। लेकिन आजीविका में उलझे लोग उस स्वर को नहीं सुन पाते, और आजीविका में उलझे लोग सब तरह के अपराध, उपद्रव, बगावतें, विद्रोह, विनाश में संलग्न हो जाते हैं।

लाओत्से का सूत्र स्पष्ट है। लाओत्से कह रहा है, स्वभाव पर छोड़ दो लोगों को। उनको ज्यादा नियोजित मत करो, ज्यादा शासित मत करो। वे शासन के लिए पैदा नहीं हुए हैं, जीने के लिए पैदा हुए हैं। और वे अपने जीवन का मार्ग खोज लेंगे। पशु-पक्षी खोज लेते हैं; आदमी क्यों न खोज लेगा। लेकिन राज्य कहता हैः हम बीच में आएंगे, क्योंकि तुम ठीक से नहीं खोज पाओगे; तुम अपना पेट ठीक से न भर पाओगे, इसलिए हम व्यवस्था देंगे; तुम फैक्ट्री ठीक से न चला पाओगे, इसलिए राष्ट्रीयकरण करेंगे।

और सब राष्ट्रीयकरण राज्यीकरण है; राष्ट्र का नाम व्यर्थ और झूठा है। राष्ट्रीयकरण का अर्थ कुल जमा इतना है कि सब सत्ता राज्य के हाथ में है। व्यापार, व्यवसाय, उद्योग, खेती-बाड़ी, सब राज्य के हाथ में है। और जितना राज्य के हाथ मजबूत होते जाते हैं, उतने लोग सूखते जाते हैं। फिर तुम कहते हो, लोग उपद्रव करते हैं। फिर उनको उपद्रव से रोकने के लिए या तो उन्हें मारो, कारागृहों में डालो। जितना तुम उन्हें मारते, कारागृह में

डालते, और लोग दूसरे उपद्रवी होते चले जाते हैं। फिर भी सीधी सी बात नहीं दिखाई पड़ती कि यह बीमारी का लक्षण है। बीमारी राज्य में छिपी है!

राज्य कम से कम हो तो सौभाग्य है, और ज्यादा हो जाए तो दुर्भाग्य है। राज्य की एक मात्रा जरूरी है, बस एक मात्रा। और मात्रा भी होमियोपैथी के डोज जैसी होनी चाहिए, एलोपैथी का डोज नहीं। बस एक जरा सी मात्रा राज्य की जरूरी है।

और उसको मैं फिर से तुम्हें याद दिला दूं। राज्य का काम नकारात्मक है। उसका काम इतना ही है कि वह लोगों को एक-दूसरे के जीवन में बाधा डालने से रोके। बस, इससे ज्यादा नहीं है। जब तक लोग अपना काम कर रहे हैं और अपनी मस्ती में हैं तब तक राज्य को बीच में आने की कोई जरूरत नहीं है। राज्य का काम ऐसा है जैसा चौराहे पर खड़े पुलिसवाले का है। जब तक लोग बाएं चल रहे हैं उसे बीच में आने की जरूरत नहीं है, न कुछ कहने की जरूरत है। हां, जब कोई आदमी रास्ते के बीच में चलने लगे और बाधा बन जाए तब उसे आने की जरूरत है। जब तक लोग अपने मार्ग से चल रहे हैं, अपने ढंग से काम कर रहे हैं, ठीक उन्हें अपना काम करने दो। चौराहे पर खड़े पुलिसवाले से ज्यादा राज्य की कोई जरूरत नहीं है।

और राज्य के अधिकारियों को इतने सम्मान और इतनी पूजा की भी कोई जरूरत नहीं है। वे सेवक हैं, मालिक नहीं। कोई तुम चौराहे पर खड़े पुलिसवाले के चरण नहीं छूते; लेकिन दिल्ली में बैठे बड़े पुलिसवाले, राष्ट्रपति हों, प्रधानमंत्री हों, उनके चरण छूने की भी कोई आवश्यकता नहीं है, और न ही उनके गुण-गौरव की कोई आवश्यकता है। लेकिन वे छा जाते हैं सारे समाज पर। सारे अखबार भरे हैं उनसे। सारा रेडियो, टेलीविजन भरा है उनसे। सब तरफ उनका गुणगान चल रहा है।

इस गुणगान का बड़ा खतरनाक परिणाम होता है। इसका परिणाम यह होता है कि जो सत्ता में नहीं हैं, वे भी पागल हो जाते हैं सत्ता में पहुंचने को, सत्ता की दौड़ पैदा होती है। तो सभी महत्वाकांक्षियों को सत्ता चाहिए। तब इतना भयंकर संघर्ष मच जाता है, और वह संघर्ष उपद्रव का कारण होता है।

शासकों को बहुत सम्मान देने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे एक काम कर रहे हैं, उनकी एक उपयोगिता है; बात खतम हो गई। उनकी उपयोगिता कोई ऐसी नहीं है कि उन्हें सिर-आंखों पर लिया जाए। भंगी रास्ता साफ कर रहा है, ठीक है, धन्यवाद! पुलिसवाला चौराहे पर खड़ा अपना काम कर रहा है, धन्यवाद! प्रधानमंत्री दिल्ली में अपना काम कर रहा है, धन्यवाद! बात खतम होनी चाहिए। इससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं।

जिस दिन हम राजनीतिज्ञों को आदर देना कम कर देंगे उस दिन दूसरे लोगों में भी राजनीति में उतरने का पागलपन कम हो जाएगा।

राजनीति से बड़ी घटनाएं घट रही हैं दुनिया में, उनको आदर दो। कोई गीत गा रहा है, किसी ने एक नया गीत बनाया है, किसी ने बांसुरी पर नयी धुन उठाई है; किसी ने नृत्य में एक नया रंग जोड़ दिया है; किसी ने फूलों के चित्र बनाए हैं, ऐसे कि परमात्मा भी ईर्ष्या करे। इनको प्रसन्नता दो, इनको प्रशंसा दो, इनको आदर दो, क्योंकि ये जीवन में कुछ जोड़ रहे हैं; जीवन को समृद्ध बना रहे हैं; जीवन को ज्यादा उत्सव में परिणत कर रहे हैं।

राजनेता कर क्या रहा है? जीवन को कौन सा दान है उसका?

ज्यादा से ज्यादा उसकी स्थिति इतनी है जैसे द्वार पर बैठा पहरेदार है। ठीक है, काम ठीक करे तो धन्यवाद! काम न ठीक करे तो कान पकड़ कर उसको अलग कर देना है।

कवि हैं, चित्रकार हैं, नृत्यकार हैं, मूर्तिकार हैं, संगीतज्ञ हैं, जो जीवन पर बड़ी अहर्निश वर्षा कर रहे हैं; जो मन की जरूरतें पूरी कर रहे हैं; उनको धन्यवाद दो। किसान है, मजदूर है; उसको धन्यवाद दो, क्योंकि वह शरीर की जरूरतें पूरी कर रहा है। फिर कोई संत है जो आत्मा की प्यास को वर्षा दे रहा है, जो मेघ बन कर बरस रहा है; उसको धन्यवाद दो।

राजनीतिज्ञ का काम एक कोने में पर्याप्त है। सारे जीवन पर छा जाए आकाश की तरह, यह विक्षिप्त बात है। लेकिन राजनीति छा गई है, इस बुरी तरह छा गई है कि उसने कुछ और छोड़ा ही नहीं है। यह सूचक है इस बात का कि लोग साफ नहीं हैं कि बीमारी कहां है, और इलाज जारी है। तो इलाज और खतरनाक बन जाता है। बीमारी बहुत गहन में राजनीति के समादर में है।

राजनीति को उतारो सिंहासन से! इसलिए नहीं कि किसी और को सिंहासन पर बिठालना है। राजनीतिज्ञ भी चिल्लाते हैं, उतरो सिंहासन से, जनता आती है! मगर वे इसलिए चिल्लाते हैं कि तुम उतरो, हम आ रहे हैं। राजनीतिज्ञों को नहीं उतारना है सिंहासन से, राजनीति को उतार दो सिंहासन से। राजनीति सेवा से ज्यादा नहीं है। जो अच्छा करे उसे प्रमाणपत्र दे देना धन्यवाद का। लेकिन इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। लेकिन चौबीस घंटे और सब जीवन के आकाश पर उसको छा जाने दिया है। उससे भयानक परिणाम हुए हैं। तो जो रक्षक था वह भक्षक हो गया है। जो सेवक था वह शासक हो गया है। और जनता दबी जाती है और लोग सिकुड़ते जाते हैं। उनकी आत्मा खो गई है, उनका मन खो गया है। उनका शरीर भी पूरी तरह बचा नहीं, वह भी खोता जा रहा है।

लाओत्से का विश्लेषण, लाओत्से का निदान अचूक है। और जब तक यह निदान लागू न होगा, संसार व्यथित रहेगा। अगर कोई क्रांति करने जैसी है तो वह लाओत्से की क्रांति है। वह राजनीति को उसके पद से हटा देने की क्रांति है।

आज इतना ही।

एक सौ बीसवां प्रवचन

धर्म का सूर्य अब पश्चिम में उगेगा

पहला प्रश्नः आपने कहा कि विकास की तीन क्रमिक सीढ़ियां हैं--शरीर, मन, आत्मा। पश्चिमी सभ्यता ने शरीर और मन के तल पर काफी विकास किया है। लेकिन परिणाम में विषाद, अर्थहीनता और निराशा हाथ आई है। कृपया समझाएं कि सहज परिणाम की तरह पश्चिम की मनीषा ने तीसरे चरण की ओर विकास क्यों नहीं किया है?

पहली बात, प्रकृति का सारा विकास अचेतन है। प्रकृति अस्तित्व को मनुष्य तक ले आई है चुपचाप, बिना किसी साधना के। लेकिन मनुष्य का विकास अब अचेतन नहीं होगा। मनुष्य उस जगह खड़ा है जहां से चेतन विकास की प्रक्रिया शुरू होती है। अब तो जो साधना करेगा, जो श्रम करेगा, वही ऊपर उठेगा।

मनुष्य अचेतन विकास और चेतन विकास के बीच की कड़ी है। प्रकृति तो अचेतन है; वह तुम्हें मनुष्य होने तक ले आई। तुमने खुद क्या किया है मनुष्य होने तक? तुम्हारा अर्जन नहीं है मनुष्यता की उपलब्धि। करोड़ों-करोड़ों वर्षों में प्रकृति की बड़ी धीमी गति से, ट्रायल और इरर--करना, भूलना, सुधारना--ऐसे प्रकृति तुम्हें इस किनारे तक ले आई है जिसका नाम मनुष्यता है। लेकिन इससे आगे प्रकृति तुम्हें न ले जा सकेगी। उसने तुम्हें मनुष्यता के तट पर छोड़ दिया; अब आगे तो तुम्हें सचेतन रूप से विकास करना होगा। अन्यथा तुम मनुष्य होकर ही बार-बार मरते रहोगे। इसी को हिंदुओं ने आवागमन की पुनरुक्ति का सिद्धांत कहा है। तुम बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाओगे जैसे तुम मनुष्यत्व को उपलब्ध हुए हो। बुद्धत्व के लिए तो तुम्हें सचेत रूप से चेष्टा करनी होगी।

तो मनुष्य के बाद की जो सीढ़ियां हैं वे ये तीन सीढ़ियां हैं।

पहली बात है, शरीर के तल पर तुम्हें स्वस्थ होना पड़ेगा; शरीर के तल पर तुम्हें आजीविका अर्जित करनी होगी। प्रकृति पशु-पक्षियों को आजीविका के लिए मजबूर नहीं करती; आजीविका उपलब्ध है। पौधों को पानी चाहिए, पानी उपलब्ध है; भोजन चाहिए, भोजन उपलब्ध है। लेकिन मनुष्य को तो शरीर के तल पर भी श्रम करना होगा तो ही शरीर बचेगा; अन्यथा शरीर भी खो जाएगा। और यह सौभाग्य है; यह दुर्भाग्य नहीं है। क्योंकि जो मुफ्त मिलता है वह मिलता ही कहां? जो चेष्टा से मिलता है वही तुम्हारी संपदा है। जिसे तुम श्रम से अर्जित करते हो केवल वही तुम्हारा है। शेष सब मिला था मुफ्त; मुफ्त ही छीन लिया जाएगा। जिसे तुमने मेहनत से पाया है, जिसके लिए तुम्हारे प्राणों को कष्ट झेलना पड़ा है, जिसके लिए तुमने कुछ ऊर्जा व्यय की है, वह तुमसे न छीना जा सकेगा।

शरीर के तल से ही यात्रा शुरू हो जाती है सचेतन। तुम्हें शरीर को सम्हालने के लिए व्यवस्था करनी पड़ेगी, अन्यथा तुम जी भी न सकोगे। जब शरीर परिपूर्ण स्वस्थ होगा, भरा-पूरा होगा, तब जरूरी नहीं है कि मन की आवश्यकताएं पैदा हो जाएं। यह भी हो सकता है कि तुम शरीर के ही जीवन में परिभ्रमण करने लगो। तब बड़ी उदासी आएगी। क्योंकि शरीर की दौड़ पूरी हो गई और आगे कोई यात्रा का द्वार न खुला। उदासी का एक ही अर्थ है, वह तभी आती है जब एक पड़ाव आ जाता है और आगे का रास्ता नहीं सूझता। उदास सभी नहीं

होते, केवल सौभाग्यशाली होते हैं। दुखी होना एक बात है, दुखी तो सभी होते हैं; उदास सिर्फ सौभाग्यशाली होते हैं।

उदासी बड़ा गुण है। उदासी का अर्थ यह है कि यहां तक यात्रा थी, पा लिया; अब? वह जो अब है, जब वह सामने खड़ा हो जाता है और कोई द्वार नहीं दिखता, कोई मार्ग नहीं दिखता, तब उदासी घेरती है। उदासी का अर्थ है, अब वही-वही दोहरा-दोहरा कर करना पड़ रहा है जो कर चुके। अब उस करने में न तो कोई रस मालूम पड़ता है, न उस करने से कोई आनंद की झलक मिलती है। वह रस उबाने वाला हो गया अब। संभोग कर लिया, भोजन कर लिया, विश्राम कर लिया, भवन बना लिए, सब व्यवस्था कर ली सुविधा की। अब? शरीर का काम पूरा हो गया; अब तुम्हारी प्राण-ऊर्जा नयी यात्रा पर जाना चाहती है और द्वार नहीं मिलता। इसका नाम उदासी है।

अगर तुम इस उदासी को तोड़ने के लिए सतत रूप से जागरूक न हुए, और तुमने कोई प्रयास न किया, तो द्वार अपने आप न खुलेगा। मनुष्य के जीवन में अपने आप अब कुछ भी न होगा; अर्जित करना होगा। मनुष्य की यही गरिमा है कि वह भिखारी नहीं है, वह दान नहीं मांगता; वह केवल अपने श्रम का पुरस्कार चाहता है। उससे ज्यादा का मांगना कोई सार्थक भी नहीं है। और मिल भी जाए तो मिलेगा नहीं; मिल भी जाए तो बोझ होगा, क्योंकि तुम्हारी तैयारी न होगी उसे भोगने की।

अगर तुमने श्रम किया तो तुम मन की यात्रा पर निकलोगे। काव्य है, संगीत है, सौंदर्य है; ये बारीक स्वाद हैं। भोजन है, संभोग है; ये बहुत स्थूल स्वाद हैं। इसका अर्थ है कि तुम्हारी चेतना बहुत परिष्कृत नहीं है। जो आदमी संगीत में रस ले पाता है; जो आदमी काव्य की गहनताओं में उतर पाता है; जो सुबह उगते सूरज के सौंदर्य में वैसा ही रस पाता है जैसा कि संभोग में भी नहीं पाया; उससे भी बड़े रस का अनुभव करता है रात आकाश के तारों में, नदी की कलकल में, गिरते झरने के संगीत में; भोजन से भी जो स्वाद नहीं पाया उससे भी गहन स्वाद अनुभव करता है; इस आदमी की मन की यात्रा शुरू हो गई।

लेकिन मन की यात्रा भी जल्दी ही पड़ाव पर पहुंच जाएगी। फिर उदासी पकड़ लेगी। और पहली उदासी से दूसरी उदासी ज्यादा सघन होगी। क्योंकि शरीर से मन की यात्रा पर जाना बहुत कठिन नहीं है। शरीर और मन बड़े करीब हैं; इतने करीब हैं कि जरा सी समझ हो कि तुम शरीर से और मन की यात्रा पर निकल जाओगे। वे पड़ोसी हैं। दोनों के मकान में बहुत अंतर नहीं है, जरा सा अंतर है। वस्तुतः अंतर नहीं है; जैसे यह कमरा है और पास का कमरा है, बीच में द्वार है। शरीर से तुम मन में जा सकते हो, क्योंकि शरीर की भाषा और मन की भाषा में स्थूल और सूक्ष्म का भेद है, लेकिन कोई मौलिक भेद नहीं है। संगीत में भी वही अनुभव होता है जो संभोग में--बड़े सूक्ष्म तल पर। सौंदर्य में भी वही स्वाद आता है जो भोजन में--बहुत सूक्ष्म तल पर। लेकिन भाषा एक ही है।

जो जानते हैं, वे कहते हैं, शरीर और मन दो नहीं है; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा समझो कि शरीर है मन का प्रकट रूप और मन है शरीर का अप्रकट रूप। ऐसा समझो कि तुमने बर्फ के एक टुकड़े को पानी में तैरा दिया है। तो नौ हिस्सा पानी में छिप जाता है बर्फ का टुकड़ा और एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता रहता है। जो ऊपर दिखाई पड़ता है वह तुम्हारा शरीर है, जो भीतर डूबा हुआ है वह तुम्हारा मन है। इसलिए मन और शरीर दो हैं, ऐसा कहना उचित नहीं। एक ही हैं, एक ही चीज के दो छोर हैं। मन थोड़े गहरे में है, शरीर थोड़े ऊपर है।

इसलिए शरीर से मन में जाने में बहुत कठिनाई नहीं है। वहां भी उदासी पकड़ती है। लेकिन वह उदासी बहुत बड़ी नहीं है; थोड़े ही श्रम से टूट जाएगी। लेकिन जब शरीर और आत्मा के बीच तुम खड़े हो जाओगे तब

महा उदासी तुम्हें पकड़ लेगी। वह उदासी केवल बुद्धों को पकड़ती है। उसे तुम दुख मत मान लेना, अभिशाप मत समझ लेना। वह तो वरदान है। क्योंकि उसी हताशा से तो तुम जाग सकोगे, खोद सकोगे। उसी प्यास में तो तुम तड़पोगे और आखिरी सरोवर के किनारे आ सकोगे। प्यास ही न हो तो कोई सरोवर तक कैसे जाएगा?

इसलिए प्यास को तुम दुर्भाग्य मत समझो। हां, प्यास अगर धीमी-धीमी लगी हो कि टाली जा सके तो दुर्भाग्य समझना। प्यास ऐसी अदम्य रूप से पकड़ ले कि रोआं-रोआं जले, एक क्षण चैन न मिले, सागर जब तक न पहुंच जाओगे तब तक विश्राम न कर सकोगे, ऐसे आविष्ट हो जाओ; प्यास न रहे, बल्कि तुम ही प्यास हो जाओ, रोआं-रोआं पुकारे; तभी तुम पार कर पाओगे वह दूरी जो मन और आत्मा के बीच है। वह दूरी बहुत बड़ी है।

शरीर और मन के बीच दूरी है ही नहीं; है तो अत्यल्प है। मन और आत्मा के बीच दूरी अत्यंत है; अत्यंत भी कहना ठीक नहीं, अनंत है। क्योंकि मन क्षणभंगुर, आत्मा शाश्वत; मन पानी का बुलबुला, अभी है, अभी फूट जाए; आत्मा, न जिसका कोई आदि, न कोई अंत, जो सदा है। भाषा ही और। दोनों के बीच कोई भी तालमेल नहीं, कोई भी सेतु नहीं। बहुत थोड़े लोग ही पार कर पाते हैं।

थाईलैंड में एक मंदिर है। और उस मंदिर में एक बड़ी प्राचीन कथा है, और बड़ी मधुर है। उस मंदिर में एक विजय-स्तंभ है जिसमें सौ सीढ़ियां हैं, टावर है। उन सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर जाकर चारों तरफ बड़ा सुंदर दृश्य है। कथा यह है कि उस विजय-स्तंभ की पहली सीढ़ी पर एक अदृश्य पशु का वास है; पहली सीढ़ी पर एक अदृश्य पशु का वास है। वह पशु सांप जैसा है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता, अदृश्य है। और जब भी कोई व्यक्ति चढ़ता है सीढ़ियां तो जितनी व्यक्ति की चेतना की ऊंचाई होती है--समझो दस सीढ़ियों तक--तो वह सांप दस सीढ़ियों तक उसके साथ जाता है। वहीं तक जा सकता है जहां तक व्यक्ति की चेतना की ऊंचाई है। बीस सीढ़ियों तक, तो बीस सीढ़ियों तक जाता है। उस सांप को अभिशाप है कि जब तक वह तीन बार आखिरी सीढ़ी तक नहीं पहुंच जाएगा तब तक मुक्त न हो सकेगा। और अब तक अनंत-अनंत काल में केवल एक बार वह आखिरी सीढ़ी तक पहुंच पाया है।

हजारों यात्री आते हैं रोज। मंदिर बड़ा तीर्थ का स्थान है। हजारों यात्री चढ़ते हैं उन सीढ़ियों पर। कभी एक सीढ़ी, कभी दो सीढ़ी, कभी तीन सीढ़ी; आधे तक भी कभी-कभी पहुंच पाया है। आखिरी सीढ़ी पर, कहते हैं, केवल एक बार जब कोई बुद्ध पुरुष आया होगा। वह प्रतीक्षा उसे करनी है। और अब वह थक गया है, हताश हो गया है। क्योंकि अनंत काल में केवल एक बार बुद्धत्व के साथ आखिरी सीढ़ी तक पहुंचा है। और तीन बार पहुंचना है। अब तो उसने आशा भी खो दी होगी। तीन बुद्धों को पाना मुश्किल है अनंत काल में!

निश्चित ही, मन और आत्मा के बीच फासला बहुत बड़ा होगा। कितने करोड़-करोड़ लोग पैदा होते हैं, लेकिन कभी कोई एक उस परम दशा को उपलब्ध होता है, जिसको उपलब्ध किए बिना कोई भी चैन से न रह सकेगा; जिसको उपलब्ध करना प्रत्येक की नियति है; जिसको तुम कितना ही टालो, तुम टाल न पाओगे; जिसे तुम्हें पाना ही होगा; जिससे बचने की कोई सुविधा नहीं है। फासला बहुत है। और बड़े श्रम की जरूरत है; अभीप्सा की जरूरत है, आकांक्षा की नहीं। अभीप्सा का अर्थ होता है, तुम सब दांव पर लगा दो; तुम कुछ भी न बचाओ। तो ही शायद कदम उठ पाए, और तुम वह छलांग ले सको जो तुम्हें मन से आत्मा में उतार दे।

स्वभावतः, पश्चिम में बड़ी निराशा है, अर्थहीनता है, विषाद है। लेकिन इससे पूरब के लोग समझते हैं कि हम बड़े सौभाग्यशाली! इस भूल में मत पड़ना। इस भूल में कभी भी मत पड़ना, क्योंकि पूरब में धर्मगुरु, साधु-संन्यासी लोगों को यही समझाते हैं कि तुम सौभाग्यशाली हो; पश्चिम में देखो कितना विषाद है!

तुम अभागे हो। तुम्हारी शरीर की जरूरतें पूरी नहीं हुईं। इसलिए तुम में से बहुतों को तो पहला विषाद भी नहीं पकड़ा है जो कि शरीर से मन में जाने में पकड़ता है। तुम्हारी मन की जरूरतें भी पूरी नहीं हुईं। इसलिए तुम्हें दूसरा विषाद भी नहीं पकड़ा है। तुम यह मत सोचना कि तुम बड़े सौभाग्यशाली हो।

अगर तुम सौभाग्यशाली हो तो पशुओं के संबंध में क्या कहोगे? वे तो बहुत सौभाग्यशाली हैं, तुमसे भी ज्यादा। और अगर पशुओं के भी गुरु होंगे, शंकराचार्य होंगे, तो वे उनको समझा रहे होंगे कि तुम आदमियों से बेहतर अवस्था में हो कि देखो, कितने परेशान, चिंता से मरे जाते हैं, शांति नहीं; तुम कम से कम शांत तो हो।

फिर पौधों की क्या कहो? पौधों के शंकराचार्य उनको समझा रहे होंगे कि तुम तो पशुओं से भी बेहतर हो। इनको तो फिर भी थोड़ा रोटी-रोजी के लिए यहां-वहां जाना पड़ता है, थोड़ा श्रम करना पड़ता है; कभी मिलती भी है, कभी नहीं भी मिलती; तुम तो अपनी जड़ जमाए खड़े हो। वर्षा में वर्षा हो जाती है; जमीन से भोजन मिल जाता है; तुम्हारा तो कहना ही क्या!

फिर पत्थर हैं, चट्टानें हैं, पहाड़ हैं। उनके शंकराचार्य उनको समझा रहे होंगे कि तुम्हारा सौभाग्य तो अनंत है। कभी-कभी वर्षा नहीं भी होती तो पौधे तक बेचैन हो जाते हैं। कभी-कभी जमीन अपना सत्व खो देती है तो पौधों को भोजन नहीं मिलता। लेकिन चट्टान! तू तो अहोभागी है! तुझे फिक्र ही नहीं; वर्षा हो तो ठीक, वर्षा न हो तो ठीक; जमीन में सत्व बचे तो ठीक, जमीन का सत्व खो जाए तो ठीक। तू तो परम समाधि में लीन है।

स्मरण रखना, मूर्च्छा समाधि नहीं है। और जो होश से भरता है वही विषाद से भरता है। मूर्च्छित आदमी में कोई विषाद होता है? इसलिए तुम पाओगे, मनुष्य-जाति में जो सबसे छिछले लोग हैं, उनको तुम ज्यादा प्रसन्न पाओगे--सड़कों पर घूमते, होटलों में बैठे, क्लबघरों में, रोटरी, लायंस--जो सबसे छिछले लोग हैं, तुम उन्हें वहां बड़ा प्रसन्न पाओगे। जो आदमी जितना ज्यादा विचार में पड़ेगा, जितनी जिसकी चेतना में सघनता आएगी, उतनी ही उसकी मुस्कुराहट खो जाएगी। क्योंकि तब उसे दिखाई पड़ेगाः जो मैं जी रहा हूं, यह भी कोई जीवन है? रोटरी क्लब का सदस्य हो जाना कोई भाग्य है? नियति है? अच्छे होटल में भोजन कर लेने से क्या मिलेगा? थोड़ी देर का राग-रंग है, सपना है; खो जाएगा।

जिस आदमी में विचार का जन्म होगा वह उदास हो जाएगा, वह बड़े विषाद से भर जाएगा। ये सब खिलौने मालूम पड़ेंगे, जिन्हें तुमने जीवन समझा। और मौत द्वार पर खड़ी है। जो किसी भी क्षण पकड़ लेगी और खिलौने पड़े रह जाएंगे। न तुम्हारे धन की, न तुम्हारी संपत्ति की, न तुम्हारे पद की, न तुम्हारी प्रतिष्ठा की मृत्यु कोई चिंता करेगी; क्षण भर का भी मौका न देगी। तुम कितना ही कहो कि मैं पार्लियामेंट का मेंबर हूं, जरा रुक जाओ; वह न रुकेगी। सब पड़ा रह जाएगा--तुम्हारी पार्लियामेंट, तुम्हारे खिलौने, तुम्हारे पद, प्रतिष्ठाएं, सब कूड़ा-कर्कट में पड़ी रह जाएंगी। जैसे ही मौत द्वार पर दस्तक देगी, तत्क्षण तैयार हो जाना पड़ेगा जाने को। बबूला फूट गया।

जिस आदमी में विचार होगा, जिसमें थोड़ा विमर्श होगा, वह चिंतित तो हो ही जाएगा। यहां तो सिर्फ मूढ़ ही निश्चिंत मालूम पड़ते हैं। या तो बुद्ध निश्चिंत होते हैं या मूढ़ निश्चिंत होते हैं। और तुम निश्चिंत होओ तो यह मत सोच लेना कि बुद्ध हो गए। क्योंकि बुद्ध तो कभी करोड़ों-करोड़ों वर्षों में कोई एकाध होता है; करोड़ों में से संभावना एक की बुद्ध होने की है, शेष की तो मूढ़ होने की है।

पूरब बहुत मूढ़ है। पूरब शरीर के तल से भी नीचे जी रहा है--बड़े परिमाण में। थोड़े से पूरब के लोग मन के तल पर जी रहे हैं। और बहुत थोड़े से लोग आत्मा में प्रवेश करने की चेष्टा कर रहे हैं।

लेकिन पश्चिम में बड़ा प्रवाह आया है। शरीर की जरूरतें पूरी हो गई हैं, भूख मिट गई है, भोजन पर्याप्त हो गया है। इसलिए शरीर से जो जीवन उलझा था वह मुक्त हो गया है। शरीर में जो ऊर्जा लग जाती थी--भोजन कमाने में, रोटी बनाने में, कपड़ा पाने में--वह समाप्त हो गई है। तो जो ऊर्जा मुक्त हो गई है शरीर के जीवन से, वह मन में काम आ रही है। इसलिए लोग ज्यादा संगीत में डूबे हैं, ज्यादा साहित्य में डूबे हैं। कोई मूर्ति बना रहा है, कोई पेंटिंग कर रहा है। पश्चिम में ऐसा आदमी पाना मुश्किल है जिसकी कोई हॉबी न हो।

पूरब में ऐसा आदमी पाना कभी-कभी होता है जिसकी कोई हॉबी हो। जीवन ही काफी है, हॉबी की फुरसत कहां है? आठ-दस घंटे दफ्तर और दुकान में काम करके कोई लौटता है, बारह घंटे खेत में श्रम करके कोई लौटता है; अब पेंटिंग करने की ऊर्जा कहां है? अब गीत बनाए कौन? प्राण तो पसीने में बह गए, अब गीत गाए कौन? भीतर सब रिक्त हो गया। किसी तरह पड़ जाता है, सो जाता है। सुबह उठ कर फिर वही दौड़ शुरू हो जाती है। कौन सुने आकाश का संगीत? किसको समय है कि आंखें खोले और आकाश के तारों को देखे? इतनी फुरसत किसे है? कौन देखे फूलों को? फूल को देखने के लिए सुविधा चाहिए, थोड़ी चैन चाहिए। फूल को पहचानने को तो काफी विराम की दशा चाहिए।

तो पश्चिम में लोग मन के तल पर हैं, और इसलिए महा विषाद से घिर गए हैं। क्योंकि अब आगे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। जान लिया संगीत, गा लिए गीत, बना ली मूर्तियां, चित्र बना लिए, घर सौंदर्य से भर गया। अब? एक चट्टान खड़ी हो गई है सामने। अब जीवन अर्थहीन मालूम पड़ता है। अर्थ तो आता है लक्ष्य से; जब लक्ष्य खो जाता है तो अर्थ खो जाता है।

गरीब आदमी का लक्ष्य है रोटी। तो अभी जीवन में अर्थ है, क्योंकि रोटी पानी है। असल में, अर्थ को सोचने की सुविधा नहीं है। फिर अमीर आदमी का लक्ष्य है मन के वैभव, मन का सुख-सौष्ठव, मन का संगीत। लोग सोचते हैं कि जब सब होगा तो सुनेंगे शांति से लेट कर संगीत, सुनेंगे पक्षियों को। लेकिन वह भी चुक जाता है, क्योंकि वह भी सब प्रकृति का ही है, वह भी ऐंद्रिक है। जिस दिन वह भी चुक जाता है उस दिन महा विषाद घेर लेता हैः अब किसलिए जीएं? शरीर भरा-पूरा, मन भी भरा-पूरा, कुछ पाने को नहीं दिखाई पड़ता; कहीं जाने को नहीं दिखाई पड़ता; जो पाना था, पा लिया; जो मिल सकता था बाजार में, खरीद लिया; जिसकी सुविधा थी समाज में, वह भी पा लिया; संस्कृति जो दे सकती थी श्रेष्ठतम--मोझर्ट और वेजनर और बीथोवन, सब सुन लिए; और कालिदास और भवभूति, सब पढ़ लिए। अब? अब क्या? जब यह अब खड़ा हो जाता है मन के बाद, तब लगता है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं।

इसलिए पश्चिम के बड़े से बड़े विचारक--सार्त्र, जेस्पर्स, हाइडेगर--वे सब विषाद से भरे हैं। वे उसी दशा में हैं जिस दशा में बुद्ध ने महल छोड़ा था। जिस रात बुद्ध महल को छोड़ कर गए थे, महा विषाद से भरे थे। वह विषाद उनके प्राणों को काट रहा था। एक आरे की तरह उनका जीवन कट रहा था दुख से; सब था और कोई सार न था। सब व्यर्थ था; जिंदगी सिर्फ एक ऊब थी। जिस रात बुद्ध ने छोड़ा था घर वह अमावस की रात थी, और भीतर भी अमावस की निराशा घिरी थी, अमावस जैसा अंधेरा घिरा था। सार्त्र, हाइडेगर, मार्शल उसी अवस्था में हैं पश्चिम में। कठिनाई उनकी यह है कि पश्चिम की पूरी जीवन-व्यवस्था आत्मा को अस्वीकार करती रही है। और जिसे तुम अस्वीकार करते हो वह द्वार बिल्कुल बंद हो जाता है।

पूरब की जीवन-व्यवस्था आत्मा को सदा स्वीकार करती रही है। जिस दिन तुम थक जाओगे मन से, सब नहीं समाप्त हो गया; अभी एक चीज और बाकी है। पूरब की हवा में एक चीज सदा बाकी है। असल में, तुम

उसी के लिए अब तक शरीर की तैयारी कर रहे थे, मन की तैयारी कर रहे थे; अब तो मौका आ गया जब अब तुम उसकी खोज में लग सकते हो जो वास्तविक खोज है।

पश्चिम मानता है शरीर और मन को; उसके आगे उसकी मान्यता नहीं है, बस। इसलिए पश्चिम में बड़ा उपद्रव है। जब मन चुक जाता है, मन के भोग चुक जाते हैं, तब पश्चिम में एक उदासी घेर लेती है और सिर्फ आत्महत्या उपाय दिखती है। आत्म-साधना नहीं, आत्महत्या उपाय दिखती है। यहीं पूरब और पश्चिम का फर्क है। पूरब की धारा जब सब चुक जाए तब एक नया लक्ष्य देती है--आत्मा, जो पश्चिम में नहीं है।

इसलिए सार्त्र घूम-घूम कर उदासी पर लौट आता है। बुद्ध जब उदास हुए तो गोल उदास चक्कर में नहीं घूमने लगे; जब उदास हुए पूरे तो आत्मा की खोज पर निकले। क्योंकि हवा पूरब की बड़े अनादि काल से आत्मा का गुणगान कर रही है। और हर आदमी प्रतीक्षा कर रहा है कि कब वह मौका आएगा जब मेरी छोटी जरूरतें पूरी हो जाएंगी, तब मैं उस बड़ी जरूरत की तरफ यात्रा पर निकल जाऊंगा। जाने-अनजाने, गहरे अचेतन में वह आत्मा की खोज छिपी है; तुम्हें पता हो, न पता हो। तुम शरीर में भोग रहे हो, भोगते रहो; लेकिन तुम्हारे भीतर अचेतन कोने में एक आवाज खड़ी है कि कब उठोगे इससे? कब जागोगे इससे? यहां बेहोश से बेहोश आदमी के भीतर भी एक स्वर गूंज रहा है, वह स्वर पूरब की संस्कृति का स्वर है। वही तो पूरब का भाग्य है।

पूरब दरिद्र है, दीन है, वह दुर्भाग्य है। जब भी पूरब में कभी पश्चिम जैसी सुविधा होगी--जब थी, जैसे बुद्ध के समय में थी, तो हजारों-लाखों लोग आत्मा की खोज पर गए, और सैकड़ों लोगों ने आत्मा के दर्शन किए। जैसे वह हमारा नियत कार्यक्रम है, जब सब काम चुक जाएगा तब हम तीर्थ-यात्रा पर निकल जाएंगे, तब वह अनंत की यात्रा शुरू होगी।

तो बुद्ध को उपाय था, संस्कृति में एक द्वार था। पश्चिम की संस्कृति मन पर पूरी हो जाती है। इसलिए पश्चिम की संस्कृति में मन की वासना पूरे होने पर दीवाल आ जाती है, द्वार नहीं आता। इसलिए वहां इतनी उदासी है। लेकिन यह ज्यादा देर नहीं रहेगी, क्योंकि कोई भी संस्कृति ज्यादा देर कैसे उदासी को बरदाश्त कर सकती है? और आत्महत्या कहीं लक्ष्य बन सकता है? आदमी खोज ही लेगा, दीवाल को तोड़ ही देगा, दरवाजा बना ही लेगा। इसलिए तो हजारों लोग पश्चिम से मेरे पास चले आ रहे हैं; खोज रहे हैं।

कल ही एक युवक मेरे पास आया। बड़ा लेखक है, दस-बारह बड़ी प्रसिद्ध किताबों का लेखक है। पश्चिम में बड़ा नाम है, इज्जत है, प्रतिष्ठा है, पैसा है, सब है। उसके आने के पहले मैंने उसकी किताबें पढ़ी हुई थीं। मुझे कभी ख्याल भी न था कि यह व्यक्ति कभी आ जाएगा। वह मौजूद हो गया। खोज पर है। सूफियों के पास गया है। तिब्बेतन लामाओं के पास गया है। गुरजिएफ की व्यवस्था में शिक्षा पाई है। खोज रहा है--दूर-दूर तक खोज रहा है।

दीवाल टूटेगी। कितनी देर दीवाल टिक सकती है? पश्चिम जल्दी ही बड़ी धार्मिक क्रांति के निकट पहुंच रहा है। उसके पहले आसार तो आ गए। सूरज की पहली किरण तो फूट गई है। सुबह होने के करीब है। इसलिए पश्चिम अब पूरब की तरफ उन्मुख है।

अब यह बहुत बड़ी मजेदार घटना घट रही है। पूरब का समझदार आदमी पश्चिम की तरफ देख रहा है। पूरब में जो समझदार हैं--वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर--वे पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं। क्योंकि वहां है राज शरीर के विज्ञान का, मन के विज्ञान का। सब पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं। तुम्हारे गांव में भी डाक्टर हो, उसके पास अगर डिग्री लंदन की है तो बात और। और यहीं पूना की डिग्री है तो ठीक है। सर्जन हो और एफ.आर.सी.एस. है तो बात और! क्योंकि ज्ञान वहां है शरीर और मन का। हम तो उधार हैं उस मामले में।

हमारे पास वह कुछ भी नहीं है। हम वहां जा रहे हैं। शरीर और मन की शिक्षा के लिए पूरब पश्चिम के चरणों में बैठ रहा है; और आत्मा की शिक्षा के लिए पश्चिम पूरब के चरणों में झुक रहा है। एक बड़ी अनूठी घटना घट रही है।

पूरब से घूम कर जब कोई आदमी पूरब की यात्रा से पश्चिम लौटता है तो जो खबरें ले जाता है वे अध्यात्म की हैं--ध्यान की हैं, योग की हैं, संन्यास की हैं। पश्चिम से जब कोई आदमी पूरब लौट कर आता है तो वह जो खबरें लाता है, वे विज्ञान की हैं; धर्म की नहीं हैं, अध्यात्म की नहीं हैं।

पूरब को सीखना पड़ेगा पश्चिम से शरीर और मन का शास्त्र। और जितने जल्दी सीख ले उतना बेहतर। काफी हमने उपेक्षा कर ली उसकी; समय है कि हम समझ लें। और ध्यान रहे कि अगर पूरब ने मन और शरीर का शास्त्र ठीक से समझ लिया और व्यवस्था बना ली तो पूरब का कोई मुकाबला न रह जाएगा। अध्यात्म का शास्त्र तो उसके पास है; नीचे की दो सीढ़ियां टूट गई हैं। ऊपर की तीसरी सीढ़ी है। और नीचे की दो सीढ़ियां न बनें तो तुम कैसे तीसरी सीढ़ी पर पहुंचोगे? तुम गुणगान कर सकते हो, स्तुति कर सकते हो तीसरी सीढ़ी की, चढ़ नहीं सकते। इसलिए तुम पूजा कर रहे हो गीता की, उपनिषद की, वेद की। वेद, गीता, उपनिषद सीढ़ियां हैं, जिन पर चढ़ो। पूजा करने से क्या होगा? लेकिन चढ़ोगे तुम कैसे, पहली दो सीढ़ियां टूटी हुई हैं।

अगर ठीक से समझो तो पश्चिम इस समय तुमसे बेहतर हालत में है। उसकी पहली दो सीढ़ियां तैयार हैं; तीसरी नहीं है। तीसरी बनाई जा सकती है। वह तीसरी की तलाश में लगा है। वह जल्दी ही तीसरी को बना लेगा। इसके पहले कि वह तीसरी को बनाए, तुम पहली दो जो खो गई हैं, मिट गई हैं, उनको सुधार लो; उखड़ गई हैं, उनको जमा लो। अन्यथा अध्यात्म के लिए भी तुम्हें सीखने पश्चिम जाना पड़ेगा। और इससे बड़े दुर्भाग्य की कोई बात न होगी। सदियों-सदियों तक हमने उस पूरे शास्त्र को निर्मित किया है, और तुम्हें उसे भी सीखने पश्चिम जाना पड़े और क्या दुर्भाग्य होगा? लेकिन पहली दो सीढ़ियां न हों तो तीसरी सीढ़ी भी टूट जाएगी, बच नहीं सकती। कैसे तुम सम्हालोगे? क्योंकि वे दो सीढ़ियां ही उसका आधार हैं।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि गरीब धार्मिक नहीं हो सकता; उसकी दो सीढ़ियां खो गई हैं। अमीर जरूरी नहीं है कि धार्मिक हो जाए, लेकिन चाहे तो हो सकता है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। अमीर होने से कोई धार्मिक हो जाएगा, यह जरूरी नहीं है, लेकिन चाहे तो हो सकता है। अमीर होने से उस जगह तो आ जाता है जहां इस जीवन का सब व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। जब तक तुम्हारे पास धन नहीं है, धन की व्यर्थता न दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुम्हारे पास सुंदर स्त्रियां नहीं हैं तब तक सुंदर स्त्रियों की व्यर्थता न दिखाई पड़ेगी। और जब तक तुमने पदों पर बैठ कर नहीं देखा तभी तक पदों की मूर्खता दिखाई न पड़ेगी। जब तुम जीवन का सब राग-रंग देख लेते हो तभी तुम्हें पता चलता है कि यह तो सब नासमझी है।

लेकिन जरूरी नहीं है। जैसा मैंने कल कहा कि अगर गरीब आदमी को धार्मिक होना हो तो बड़ा कल्पनाप्रवण, संवेदनशील, बड़ी गहरी बुद्धिमत्ता चाहिए, ताकि वह उसको भी देख ले जो उसके पास नहीं है, और इतने गहरे में देख ले कि उसकी व्यर्थता दिखाई पड़ जाए। अमीर आदमी को अगर धार्मिक होना हो तो बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है, न बहुत संवेदनशीलता की जरूरत है। न्यूनतम बुद्धि से भी काम चल जाएगा। इसलिए बुद्धू अमीर भी धार्मिक हो सकता है, चाहे तो। केवल बुद्धिमान गरीब धार्मिक हो सकेगा, वह भी बहुत श्रम करे तो। क्योंकि अमीर उस स्थिति में होता है जहां चीजों की व्यर्थता दिखाई पड़नी ही चाहिए, अगर थोड़ी भी बुद्धि हो। और अगर किसी अमीर को तुम पाओ कि वह धार्मिक नहीं हुआ तो समझना कि वह इतनी गई-बीती बुद्धि का है कि उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता; वह अंधा है। अमीर बिल्कुल अंधा हो तो ही

धार्मिक होने से बच सकता है, नहीं तो धार्मिक हो ही जाएगा। क्योंकि क्या पाता है? महलों के भीतर रिक्तता है, सूना हृदय है, प्रेम के कोई मेघ नहीं बरसते, न कोई अमृत की धार बहती है, न कहीं कोई आनंद का निनाद सुना जाता है; बड़े महल करीब-करीब कब्रों जैसे हैं जहां सब मुर्दा है। अमीरों के पास बाहर सब कुछ होता है, भीतर कुछ भी नहीं। बुद्धू से बुद्धू को भी दिखाई पड़ सकता है कि भीतर कुछ भी नहीं है।

इसलिए पश्चिम ज्यादा देर निराश न रहेगा, ज्यादा देर हताश न रहेगा; राह तोड़ ही लेगा। और वही कोशिश चल रही है। इसलिए पश्चिम पूरब की तरफ दौड़ रहा है--सीखने उस शास्त्र को जिससे तीसरी सीढ़ी निर्मित हो जाए, बंद दीवाल टूट जाए, द्वार बन जाए। एक बार पश्चिम के हाथ में कुंजियां आ गईं कि तुम्हें पश्चिम जाना पड़ेगा सीखने धर्म को भी। क्योंकि पश्चिम बड़ा कुशल है; जिस चीज को भी करता है, फिर बड़ी संलग्नता से करता है।

अब यहां मैं देखता हूं, भारतीय संन्यासी हैं, उनमें मैं वैसी समग्रता नहीं देखता, ध्यान भी करते हैं तो कुनकुना-कुनकुना। ऐसा कर लेते हैं, क्योंकि मैं कहता हूं। करने में ऐसा लगता है कि मैंने कहा इसलिए कर रहे हैं। पूरा प्राण दांव पर नहीं लगाते, कुछ बचाते हैं। पश्चिम का संन्यासी आता है, पूरा प्राण दांव पर लगा देता है। कुछ भी नहीं बचाता, जिंदगी को दांव पर लगा देता है। जल्दी ही परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

रोज मैं देख कर चकित हूं! भारतीय आता है, वह कहता है कि यह ध्यान किया, यह जमता नहीं; वह ध्यान किया, वह भी नहीं जमता; इसको करने में सांस पर तकलीफ मालूम होती है, उसको करने में पैर थक जाते हैं। हजार बहाने हैं। अभी कोई बता दे कि सोने की खदान है तो वह पहाड़ चढ़ जाए। अभी खबर भर मिल जाए उसको कि कहीं धन बंट रहा है तो वह जी-जान दांव पर लगा दे। लेकिन ध्यान में वह कहता है, पैर दुखते हैं; ध्यान में वह कहता है कि इतनी देर सांस नहीं ली जाती। पश्चिम से जो लोग आते हैं वे यह नहीं कहते; वे पहले पूरा दांव लगाते हैं, पूरा करके देखते हैं। उनकी अगर कोई तकलीफ होती है तो वह चौथे चरण की होती है ध्यान की, तीन चरणों की कभी नहीं। और जब भी भारतीय आते हैं तो तीन चरणों की कठिनाई होती है, चौथे की वह बात ही नहीं, क्योंकि चौथा तो आता ही नहीं। जब तीन ही पूरे नहीं होते तो चौथा कैसे आएगा?

इससे मैं चकित हूं कि बात क्या है! पश्चिम जो भी करता है परिपूर्णता से करता है। या तो करता नहीं या करता है तो परिपूर्णता से करता है। पूरब कुछ ढुलमुल हालत में है; करता भी है, अधूरा करता है। पूरब का मन बड़ी दुविधा में दिखता है। पूरब की स्थिति ऐसी है कि वह चाहता है संसार भी सम्हाल ले और परमात्मा को भी सम्हाल ले। वह एक कदम इस नाव में और दूसरा कदम उस नाव में। और दोनों नावें दो अलग दिशाओं में जा रही हैं। वह संकट में पड़ता है। दांव पर लगाने की हिम्मत पूरब ने खो दी है।

और उसका कारण वही है कि पहली दो सीढ़ियां नहीं हैं। दांव पर लगाने की हिम्मत तो तभी आती है जब तुम समझ लेते हो कि यहां कुछ सार्थक है ही नहीं, लगा दो। जब तक तुम्हें लगता है कि यहां संसार में कुछ सार्थक है बचाने योग्य, इसको जरा साथ में ही लेकर अगर धर्म की यात्रा पर जा सके तो अच्छा होगा, तब तक तुमने पहली दो सीढ़ियां पार नहीं की हैं।

इसलिए तुम यह पूछ कर अपने मन में बहुत प्रसन्न मत होना कि पश्चिम बहुत निराश है, विषाद है, अर्थहीन अनुभव कर रहा है। सौभाग्य होगा कि तुम भी इतने ही विषाद से घिर जाओ और इस व्यर्थ के जीवन को तुम भी व्यर्थ जानो; इस अर्थहीन दौड़ को तुम भी अर्थहीनता की तरह पहचान लो; तुम भी इतने हताश हो जाओ कि जीवन में कुछ भी सार न दिखाई पड़े, ताकि तुम पूरे जीवन को दांव पर लगा सको। वह आगे की

छलांग तुम्हें पूरा का पूरा मांगती है; अधूरे से काम न चलेगा। आधा कहीं कोई यात्रा पर गया है? आधे घर और आधे यात्रा पर? जाना हो तो पूरे ही जाना होगा।

कबीर ने कहा हैः जो घर बारे आपना चले हमारे संग। जला दो घर तो हमारे साथ चल सकते हो।

वे किस घर की बात कह रहे हैं? वे उस घर की बात कह रहे हैं जिसको तुम बचाना चाहते हो। तुम घर भी रहना चाहते हो और यात्रा पर भी जाना चाहते हो। असल में, तुम मुफ्त में पाना चाहते हो परमात्मा को। या तुम परमात्मा को भी इसीलिए पाना चाहते हो ताकि संसार के संबंध में कुछ वरदान मांग लो।

तुमने कभी सोचा, अगर परमात्मा तुम्हें मिल जाएगा तो तुम क्या मांगोगे? सोचना ईमानदारी से कि अगर परमात्मा मिल ही जाए कल सुबह उठते ही से, तुम क्या मांगोगे? एक कागज पर जरा लिखना। तीन चीजें तुम मांग सकते हो, तो लिखना कि कौन सी तीन चीजें मांगोगे। तुम खुद ही चकित होओगे कि क्या मांगने की आकांक्षा आ रही है--कि एक सुंदर पत्नी, फिल्म अभिनेत्री, कोई बड़ा मकान, कि बड़ी कार, कि मुकदमे में जीत--क्या मांगोगे? तुम जो मांगोगे, उससे पता चलेगा कि तुम कहां हो। तुम्हारी मांग तुम्हें बता देगी। क्या तुम परमात्मा को देख कर मांगने की चेष्टा करोगे या सच में ही देख कर इतने परितृप्त हो जाओगे कि कहोगे कि कुछ भी मांगना नहीं? मांगने की चेष्टा में ही छिपा है कि परमात्मा की चाह न थी; चाह कुछ और थी, परमात्मा का तो उपयोग था। मांग तो कुछ और ही रहे थे; परमात्मा से मिलेगा, इसलिए परमात्मा की भी खोज थी। लेकिन परमात्मा लक्ष्य न था; लक्ष्य तो वही है जो तुम मांगना चाहते हो। मिला परमात्मा और तुमने मांग ली इंपाला कार; इंपाला कार लक्ष्य था। तो परमात्मा न हुआ, इंपाला कार का कोई दुकानदार हुआ। और तुम्हारी नजर इंपाला कार पर थी और परमात्मा से भी तुमने वही मांगा। तुम जब मंदिर जाते हो, क्या मांगते हो, सोचना थोड़ा। तुम्हारी मांग ही तुम्हारे और परमात्मा के बीच में बाधा है।

वे दो सीढ़ियां नहीं हैं तुम्हारे जीवन में, इसलिए हजार तरह की मांगें खड़ी हो गई हैं। अगर तुम परमात्मा से ही तृप्त हो सको तो समझना कि दो सीढ़ियों को तुम पार कर गए।

इसलिए अपने मन में बहुत प्रसन्न मत होना। क्योंकि मैं यह देखता हूं कि पूरब के लोग बड़ी रुग्ण सांत्वना से भर गए हैं। वे अपने को संतोष दिलाते रहते हैं कि पश्चिम में तो बड़ा विषाद है, लोग दुखी हैं। देखो पश्चिम में कितने लोग आत्महत्या करते हैं, यहां कोई करता है? आत्मा भी तो होना चाहिए आत्महत्या करने के पहले; हत्या किसकी करोगे! पश्चिम में कितने लोग पागल हो जाते हैं; यहां कोई होता है? पागल होने के लिए बुद्धि भी तो चाहिए। जिनकी बुद्धि नहीं है, उनको कभी पागल होते देखा है? जो हो वही तो खो सकते हो। पश्चिम सोचता है, प्रगाढ़ता से सोचता है, इसलिए पागल हो जाता है। तुमने कभी सोचा है? तुम्हारा सोच-विचार क्या है? अखबार पढ़ने से ज्यादा तुम्हारा कोई सोच-विचार है? अखबार पढ़ कर तुम सोच रहे हो पागल हो जाओगे? तुमने किसी विचार को इतनी गहनता से समझने की कोशिश की है कि तुम्हारा सारा जीवन आंदोलित हो जाए, कि तुम कंप जाओ, कि तुम्हारी जमीन से जड़ें हिल जाएं, कि तुम्हारी बुनियाद गिर जाए? तुमने कभी कुछ नहीं सोचा है। तुमने क्या सोचा है? पागल कैसे हो जाओगे? और जिंदगी में तुमने पाया कुछ नहीं है अभी; आत्महत्या के करीब तुम आओगे कैसे? आत्महत्या के करीब तो वही आता है जिसने जीवन को सारा देख लिया और पाया कि व्यर्थ है; अब कुछ करने को नहीं दिखाई पड़ता, आत्महत्या कर लूं! मिटा दूं इस जीवन को!

इस घड़ी में ही दो रास्ते खुलते हैं--या तो आत्महत्या या आत्मक्रांति। अगर कोई द्वार न दिखे तो आदमी आत्महत्या कर लेता है। अगर कोई द्वार दिख जाए तो रूपांतरित हो जाता है। आत्महत्या की घड़ी को ही पूरब

ने आत्मक्रांति में बदल लिया है। पश्चिम तैयार है अब पूरब की क्रांति के लिए। और पूरब तो अभी पश्चिम की क्रांति के लिए तैयार हो रहा है। पूरब के गुरु अब मार्क्स, एंजिल्स, स्टैलिन, लेनिन, माओत्से-तुंग। तुम बातें कितनी ही करो वेद की और उपनिषदों की, तुम्हारे गुरु माओ, महावीर नहीं। उनकी तो तुम सिर्फ पूजा करते हो! पश्चिम देख रहा है उपनिषद की तरफ, वेद की तरफ, गीता की तरफ। वह घड़ी आ गई है जहां शरीर और मन की यात्रा पूरी हो गई है। अभी हताशा है; जल्दी ही आनंद की वर्षा भी हो जाएगी। अभी उदासी है; अगर मार्ग मिल गया तो जितनी गहन उदासी है उतना ही हर्षोन्माद भी हो जाएगा। वह अनुपात हमेशा बराबर होता है।

तुम कितने उदास हो परमात्मा के बिना, इस पर ही निर्भर करेगा कि परमात्मा को पाकर तुम कितने आनंदित होओगे! अगर परमात्मा को बिना पाए तुम सिर्फ दो इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर दो इंच आनंद की वर्षा होगी, बस। अगर परमात्मा को बिना पाए तुम सौ इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर सौ इंच वर्षा हो जाएगी। अगर परमात्मा को बिना पाए तुम पांच सौ इंच उदास हो तो परमात्मा को पाकर तुम चेरापूंजी में हो जाओगे, पांच सौ इंच मेघ बरस जाएंगे। कितनी तुम्हारी उदासी है परमात्मा को बिना पाए उतना ही तुम्हारा आनंद होगा परमात्मा को पाकर। आनंद की मात्रा वही होगी जो उदासी की सघनता है। प्यास ही तो तय करेगी कि तृप्ति कितनी होगी! प्यासे ही नहीं थे, ऐसा ही कोकाकोला दिखाई पड़ गया, इसलिए प्यास पैदा हो गई; ऐसे भूल-चूक से आ गए किसी सदगुरु के पास। कोई मित्र जा रहा था और तुम खाली बैठे थे, तो कहा चलो, खाली बैठे क्या करते। कोई प्यास ही न थी। सुन लीं बातें आनंद की, अमृत की, और एक झूठी प्यास पैदा हो गई। तुम्हें परमात्मा मिल भी जाए तो कोई तृप्ति न होगी। वस्तुतः तुम्हें मिल भी जाए तो तुम उसे पहचान भी न पाओगे। उसे पहचानने को बड़ी गहन प्यास चाहिए।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि मुझे तुम कम पहचान पाओगे, पश्चिम के लोग ज्यादा। वहां बड़ी हताशा है। इसलिए तुम्हें कई दफे हैरानी होगी कि पश्चिम के लोग क्यों चले आते हैं! जब वे मेरे पास आते हैं तो उन्हें कोई द्वार दिखाई पड़ता है जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। जब वे मेरे पास आते हैं तो उनके जीवन में कुछ नये का उदय होता है जो तुम्हारे जीवन में नहीं होता। तुम हताश ही नहीं हो। तुम उदास ही नहीं हो। और अगर तुम उदास भी हो तो उन चीजों के लिए हो जो चीजें पहली दो सीढ़ियों से संबंधित हैं।

अपने को सौभाग्यशाली मत समझ लेना; अपने को सौभाग्यशाली समझ लेना खतरनाक है। क्योंकि उसमें फिर अगर तुम लिप्त होकर बैठ गए तो तुम्हारी यात्रा अवरुद्ध हो जाएगी। और सांत्वना झूठी मत दे देना अपने को। और यह मत सोचना कि पश्चिम के लोग पूरब आ रहे हैं, तो हम पूरब के लोग बड़ी ऊंची अवस्था में हैं इसलिए आ रहे हैं। यह भी भ्रांति है तुम्हारी। कभी कोई एकाध आदमी उस अवस्था में होता है; कोई पूरा पूरब उस अवस्था में नहीं है। लेकिन हमारे मन में ऐसा होता है कि बुद्ध पूरब में पैदा हुए, महावीर पूरब में पैदा हुए और हम भी पूरब में पैदा हुए! तो जैसे कोई हमारी जाति बुद्ध और महावीर की है, जैसे हम उनके वंशज हैं।

बुद्ध का वंशज केवल वही हो सकता है जो बुद्धत्व को उपलब्ध हो। बुद्ध का वंशज भूगोल से तय नहीं होता, चेतना से तय होता है। तुम व्यर्थ अपनी प्रशंसा करके और व्यर्थ अपने अहंकार को आभूषणों से सजा कर तृप्त होकर मत बैठ जाना, क्योंकि वह तुम्हारी मौत हो सकती है। वे आभूषण जंजीरें सिद्ध होंगे, और वह झूठी सांत्वना कब्र बन जाएगी।

जागो! मुझे पता है कि तुम्हारी दो सीढ़ियां टूटी हुई हैं। इसलिए तुम्हें बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत है, बहुत होश की जरूरत है। और इसलिए मैं ऐसी विधियां तुम्हारे लिए दे रहा हूं जो छलांग लगाने की हैं और सीढ़ियां

चढ़ने की नहीं हैं। क्योंकि सीढ़ियां टूटी हुई हैं, उनको बनाने अगर बैठा जाए तो वे कब बनेंगी, कुछ पता नहीं है। लेकिन जब सीढ़ी टूटी होती है तो आदमी दो सीढ़ियां इकट्ठी भी छलांग लगा कर चढ़ जाता है। तुम छलांग लगाओगे तो ही पहुंच पाओगे। पश्चिम को छलांग लगाने की जरूरत नहीं है, वह दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है; तीसरी सीढ़ी मिल भर जाए, वह पैर रख देगा। लेकिन पूरब को तो छलांग लगानी पड़ेगी; दो सीढ़ियां चूक गई हैं। और चूकने का कारण है। उसको भी तुम समझ लो। उसका गणित है। अकारण कुछ भी नहीं होता।

जब भी कोई मुल्क समृद्ध होता है तब उस मुल्क को पता चलता है, समृद्धि बेकार है। जैसे ही मुल्क को पता चलता है समृद्धि बेकार है, वह आत्मा की खोज में लग जाता है, परमात्मा की खोज में लग जाता है, वह मोक्ष की यात्रा पर निकल जाता है। और जीवन की दो सीढ़ियों की तरफ नकार का भाव पैदा हो जाता है--बेकार है। उन दो सीढ़ियों की साज-सम्हाल बंद हो जाती है। उनकी कोई फिक्र नहीं लेता। उनकी निंदा शुरू हो जाती है। समाज धीरे-धीरे-धीरे-धीरे पदार्थ, शरीर के विरोध में हो जाता है। और जिसके तुम विरोध में हो वह सीढ़ी टूट जाती है। और जब सीढ़ी टूट जाती है तब ऐसी अड़चन आ जाती है जिसमें हम हैं।

जब कोई समाज गरीब होता है तब धन में मूल्य मालूम होता है, तब वह धन के पीछे पड़ जाता है। जब वह धन के पीछे पड़ जाता है तब धर्म की उपेक्षा हो जाती है। जब धन इकट्ठा कर लेता है तब उसे पता चलता है कि यह तो बेकार है। तब धन की आकांक्षा शुरू होती है।

ऐसा एक वर्तुल है। गरीब समाज धन में उत्सुक होता है; धन पाकर पाता है कि यह तो बेकार की मेहनत हुई, तब वह धर्म में उत्सुक होता है। जब धर्म में उत्सुक होता है तो धन की उपेक्षा हो जाती है। जब धन की उपेक्षा हो जाती है तो धीरे-धीरे समाज फिर गरीब हो जाता है। ऐसा चक्र की तरह सारी बात घूमती जाती है।

पूरब अमीर था, बहुत अमीर था। लोग कहते थे, सोने की चिड़िया है। वह था। उस सोने की चिड़िया के दिनों में उसने पाया कि सब सोना व्यर्थ है; सोने की चिड़िया होने में कोई सार नहीं। वह दूध और दही की नदियां सब व्यर्थ हैं। इस संसार में सब असार है। यह सब माया है, सपना है--ऐसा पाया। और यह पाना सच है। जब ऐसा पाया कि यह सब सपना है, तो सपने की कौन फिक्र करता है? कौन साज-सम्हाल रखता है? उपेक्षा हो गई। जब उपेक्षा हो गई तो पूरब धीरे-धीरे-धीरे-धीरे गरीब हो गया। अब जब गरीब हो गया तो सीढ़ियां टूट गईं; अब धर्म से कोई संबंध न रहा। अब उत्सुकता है--कैसे धन वापस मिले? कैसे शरीर वापस मिले? कैसे मन के सुख वापस मिलें?

अब पश्चिम अमीर है। पश्चिम गरीब था जब पूरब अमीर था। करीब-करीब ऐसा है कि जैसा सूरज जब पूरब में होता है तो पश्चिम में रात होती है; जब पश्चिम में सूरज होता है तो पूरब में रात हो जाती है। जो बाहर के सूरज के संबंध में सच है वही भीतर के सूरज के संबंध में भी सच है। जब पूरब में प्रकाश था तो पश्चिम अंधकार में था; गहन रात थी वहां। लोग भयंकर गरीबी में थे। धर्म की कोई बात ही न थी; कोई पूछने का सवाल ही न था।

फिर अब पश्चिम में सूरज उग रहा है। पूरब में गहन अंधेरी रात है। सारा पूरब धीरे-धीरे कम्युनिज्म की अमावस में दबा जा रहा है। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः धन महत्वपूर्ण है, धर्म नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः पदार्थ महत्वपूर्ण है, परमात्मा नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः यही संसार सब कुछ है, और कोई संसार नहीं। कम्युनिज्म का अर्थ होता हैः सपना ही सत्य है, और कोई सत्य नहीं। इसको सम्हाल लो, सब सम्हल जाएगा। पूरब कम्युनिस्ट होता जा रहा है। सब तरफ पूरब की पुरानी व्यवस्था टूटती जाती है। इसे बचाना मुश्किल है। पश्चिम धीरे-धीरे धार्मिक होता जा रहा है। पूरब का जवान कम्युनिस्ट होता है। और अगर पूरब में

कोई जवान कम्युनिस्ट न हो तो लोगों को शक होता है कि यह आदमी जवान ही कैसा! समाजवादी, साम्यवादी, नाम कुछ भी हों, लेकिन पूरब का जवान आदमी कम्युनिस्ट होता है।

पश्चिम में जवान आदमी हिप्पी हो गया है। हिप्पी का अर्थ समझते हैं? हिप्पी का अर्थ है कि इस संसार में कुछ सार नहीं। कपड़े-लत्ते कैसे ही हुए, तो चल जाएगा। नहाए, न नहाए, तो चल जाएगा। पैसे पास हुए, न हुए, तो चल जाएगा। न बड़े मकान की जरूरत है, न बड़ी कार की जरूरत है। पैदल चल लिए, तो चल जाएगा; राह में चलते ट्रक वाले से प्रार्थना कर ली, उसने बिठा लिया, तो चल जाएगा। पश्चिम में अमीर से अमीर घरों के लड़के और लड़कियां हिप्पी हो गए हैं। हिप्पी पश्चिम का संस्करण है संन्यास का। वह पश्चिमी ढंग है संन्यासी होने का।

बुद्ध ने हजारों लोगों को संन्यासी कर दिया था। संन्यास का अर्थ ही थाः इस जिंदगी की हम चिंता नहीं करते, उपेक्षा करते हैं। एक बार भोजन मिल गया तो ठीक है, न मिला तो भूखे सो जाएंगे।

पश्चिम का जवान आदमी तो समाज के बाहर हट रहा है; एक तरह के संन्यास का जन्म हो रहा है। और पूरब का जवान आदमी संसार में प्रवेश कर रहा है। सूरज पश्चिम में उग रहा है, पूरब में डूब रहा है। और यह स्वाभाविक है। लेकिन अगर समझ हो तो अंधेरी रात में भी तुम परिपूर्ण प्रकाशित हो सकते हो, और नासमझी हो तो सूरज उगा हो तो भी आंख बंद करके अंधेरे में बैठ सकते हो।

इसलिए इससे कुछ बहुत परेशान मत हो जाना। जिसको समझ है, वह भीतर का दीया जला लेता है और बाहर के सूरज की चिंता छोड़ देता है। और जो नासमझ है, वह सूरज भी उगा रहता है तो आंख बंद करके खड़ा रहता है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि हिंसा से अहिंसा नहीं आ सकती, लेकिन कृष्ण और मोहम्मद ने तो युद्ध के विराट हिंसा-कार्य में सक्रिय भाग लिया। वे युद्ध से किस ढंग की अहिंसावी शांति लाना चाहते थे?

हिंसा से शांति नहीं आ सकती, यह कृष्ण भी जानते हैं और मोहम्मद भी। और आई भी नहीं। महाभारत के बाद कौन सी शांति आई भारत में? युद्ध तो हुआ; शांति कौन सी आई? मुल्क अशांत रहा। हिंसा मिट नहीं गई; हिंसा जारी रही। मोहम्मद के युद्धों के बाद कौन सी शांति आ गई है मुसलमानों में? वस्तुतः वे और अशांत हो गए। मोहम्मद की तलवार उनके लिए बहाना बन गई तलवार चलाने का। मोहम्मद का युद्ध उनको हर युद्ध को करने के लिए तर्क बन गया। मुसलमान अशांत रहे हैं, युद्धखोर रहे हैं। कृष्ण भी हार गए, मोहम्मद भी हार गए; हिंसा से अहिंसा आ ही नहीं सकती।

लेकिन तब तुम पूछोगे, फिर कृष्ण को, मोहम्मद को क्या यह दिखाई नहीं पड़ा?

यह भलीभांति दिखाई पड़ा; लेकिन इसके अतिरिक्त कोई उपाय न था। यह मजबूरी थी। यह था कम से कम बुराई को चुनना। इसे तुम थोड़ा समझ लेना।

सवाल यह नहीं था कृष्ण के सामने कि युद्ध से अहिंसा आएगी कि नहीं; वह तो उन्हें भी साफ है कि युद्ध से कहीं अहिंसा आती है! हिंसा से कैसे अहिंसा का जन्म हो सकता है? और घृणा से कैसे प्रेम पैदा होगा? और शत्रु बनाने से कैसे कोई मित्र हो जाएगा? पागलपन है। मारने से कहीं कोई जीता है? आग लगाने से कहीं वृक्षों में फूल खिलेंगे? और कांटे बोने से क्या तुम सोचते हो कि फूलों की शय्या बन जाएगी? यह तो कृष्ण को भी

पता है। कोई कृष्ण नासमझ नहीं हैं। कृष्ण से समझदार आदमी खोजना मुश्किल है। कृष्ण को भलीभांति पता है कि युद्ध से कोई शांति नहीं होगी; हिंसा से कोई अहिंसा नहीं आएगी।

लेकिन यह सवाल ही नहीं है कृष्ण के सामने; सवाल ही दूसरा था। सवाल था दो तरह की हिंसाओं के बीच चुनने का; अहिंसा और हिंसा के बीच चुनाव का सवाल ही नहीं था। युद्ध खड़ा था सामने। या तो कौरवों की हिंसा जीतेगी या पांडवों की हिंसा जीतेगी, चुनाव था दो हिंसाओं के बीच में। अगर कृष्ण के सामने अहिंसा और हिंसा का चुनाव होता तो स्वभावतः वे अहिंसा चुनते। लेकिन वह चुनाव न था। चुनाव थाः ये दो तरह की हिंसाएं आमने-सामने खड़ी थीं युद्ध में; इसमें जो सबसे कम बुरा था, उसे चुनने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। पांडव कौरवों से कम बुरे थे, बस इतनी ही बात है। और अगर पांडव हारते हैं तो कौरव जीतेंगे, वह बहुत भयंकर हिंसा जीतेगी। अगर कौरव जीतते हैं तो हिंसा पूरी तरह जीतती है। अगर पांडव जीतते हैं तो हिंसा आधी तरह जीतती है।

यही तो पूरे गीता का राज है। वह राज यह है कि दुर्योधन ने तो नहीं पूछा कि मैं युद्ध करूं या न करूं; दुर्योधन के मन में तो सवाल भी न उठा। दुर्योधन के सामने सवाल तो वही था जो अर्जुन के सामने था। मित्र-परिजन खड़े थे, अपने ही सगे-संबंधी खड़े थे--उस तरफ भी, इस तरफ भी। परिवार का ही गृहयुद्ध था। सब बंट गए थे। इस तरफ भाई खड़ा था, दूसरा भाई उस तरफ खड़ा था। कृष्ण एक तरफ खड़े थे, उनकी युद्ध की सेना दूसरी तरफ खड़ी थी। अपनी ही सेना से लड़ रहे थे। गृहयुद्ध था। ठीक-ठीक गृहयुद्ध था। लेकिन दुर्योधन को सवाल भी न उठा। अर्जुन को सवाल उठा। इसलिए अर्जुन कम हिंसक है इसलिए सवाल उठा।

और अर्जुन ने पूछा कि इससे तो अच्छा है मैं छोड़ कर चला जाऊं। अपनों को ही मार कर क्या पा लूंगा? और अगर इन सबको मार कर राज्य मिल भी गया तो उस राज्य का भी क्या मूल्य है? इतने खून के बाद इस खून से सने राज्य को पाकर मेरा मन तो सदा पीड़ा ही पाता रहेगा। वह कोई सुख की अवस्था न होगी; वह तो एक दुखस्वप्न हो जाएगा। ये सब अपने ही हाथ से काटे गए लोगों के चेहरे मुझे याद आते रहेंगे। न मैं ठीक से भोजन कर सकूंगा, न रात सो सकूंगा। इससे तो बेहतर है मैं भाग जाऊं, युद्ध से पलायन कर जाऊं। सिर्फ जीतने की आकांक्षा से इतना बड़ा रक्तपात मुझसे नहीं होता। अर्जुन ने कहा कि मेरे गात शिथिल हुए जाते हैं; मेरा गांडीव मेरे हाथ से छूटा जाता है; मेरे हाथ कंप रहे हैं। इससे खबर दी अर्जुन ने कि यह आदमी कम हिंसक है।

दुर्योधन को तो कोई सवाल ही न उठा। वह असंदिग्ध रूप से हिंसक है। अर्जुन की हिंसा में कम से कम विचार है, बोध है, होश है। यह छोड़ने को राजी है। यह धन को, राज्य को त्याग देना चाहता है। इसके भीतर एक समझ है। इसीलिए तो कृष्ण ने इतनी मेहनत करके इसे राजी किया कि तू लड़!

अब सारा गणित इतना है कि कृष्ण को दिखाई पड़ा साफ-साफ कि अर्जुन का लड़ना, अर्जुन का जीतना, कम बुरे लोगों के हाथ में सत्ता जाएगी। तो जहां दो बुराइयों में चुनना हो वहां कम बुराई को ही चुनना उचित है।

इस संसार में भलाई और बुराई के बीच तो चुनाव बहुत मुश्किल से खड़ा होता है; यहां तो चुनाव हमेशा कम बुराई और ज्यादा बुराई के बीच खड़ा होता है। यह तो ऐसे ही है कि जैसे तुम डाक्टर के पास जाओ और डाक्टर तुमसे कहे कि यह पैर इतना खराब है कि इसे काट डालो; अगर न काटोगे तो दोनों पैर खराब हो जाएंगे। क्या करोगे? डाक्टर के पास जाते हो, वह कहता है, यह एक दांत सड़ गया है, इसे अलग कर दो; अगर इसे अलग न किया तो बाकी दांत भी सड़ जाएंगे। क्या करोगे? कोई दांत निकालना सुखद तो नहीं है। एक पैर काटना कोई सुखद तो नहीं है। और डाक्टर कोई पैर काटने का हिमायती तो नहीं है कि वह कहता है सब लोग

एक पैर काट डालो। न; वह यह कह रहा है कि इस स्थिति में अगर पैर न काटा गया तो दूसरा पैर भी काटना पड़ेगा। तो विकल्प दो हैं, या तो दोनों पैर कटेंगे या एक कटेगा। तो बेहतर है एक काट डालो। अब कोई विकल्प और है नहीं। विकल्प अगर यह हो कि दोनों पैर बचते हों तो डाक्टर भी नहीं कहेगा कि एक पैर काट डालो; वह कहेगा, कोई सवाल ही नहीं है। अगर सब दांत बचते हों तो डाक्टर भी कहेगा कि इलाज कर लो, दांत बचा लो।

कृष्ण ने सब तरह की कोशिश कर ली थी कि युद्ध टल जाए। सब तरह की कोशिश पांडवों ने कर ली थी कि युद्ध टल जाए। लेकिन वह संभव नहीं था। दूसरी तरफ बड़ा युद्धखोर आदमी था। हिंसा उसकी आंखों में थी। वह बिल्कुल विक्षिप्त था। ऐसी अवस्था में यही एक उपाय था कि या तो संसार को दुर्योधन के हाथों में छोड़ दिया जाए; ये पांचों पांडव संन्यासी हो जाएं, हिमालय चले जाएं--जिसकी उनकी तैयारी थी; वे छोड़ देना चाहते थे। और इसलिए एक बड़ी बेबूझ घटना घटती है कि कृष्ण को युद्ध के लिए उन्हें तैयार करना पड़ता है। क्योंकि कृष्ण को लगता है कि अगर युद्ध ही होना है तो भले आदमी जीतें, जिनका युद्ध पर भरोसा नहीं है। अगर युद्ध ही होना है तो वे लोग जीतें जो छोड़ने को तैयार थे। अगर युद्ध ही होना है तो अर्जुन जीते, दुर्योधन न जीते।

दो बुराइयों में कम बुराई को चुनने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

वही अवस्था मोहम्मद की भी थी। वे जिनसे भी लड़े हैं, उसका कारण कुल इतना था कि जिन लोगों के बीच वे थे, वे लड़ाई के अतिरिक्त दूसरी कोई भाषा ही नहीं समझते थे। कोई उपाय ही न था। जब तुम संसार में खड़े होते हो तो संसार में जो विकल्प होते हैं उन्हीं में से तो चुनोगे। मोहम्मद जिन खूंखार लोगों के बीच में थे, वे सिर्फ तलवार की भाषा समझते थे। और अगर मोहम्मद लड़ने को राजी नहीं हैं तो जितने लोग मोहम्मद के पास ध्यान में, प्रार्थना में, धर्म में उत्सुक हुए थे, वे सब काट डाले जाएंगे। तो उपाय एक ही था--या तो धार्मिक लोग कट जाएं, अधार्मिक लोग जीत जाएं। या फिर धार्मिक लोग लड़ें।

यद्यपि लड़ने से कोई शांति नहीं आती, न कहीं हिंसा से अहिंसा आती है। लेकिन अच्छे आदमी की हिंसा से थोड़ी अच्छी हिंसा आती है, बुरे आदमी की हिंसा से बुरी हिंसा आती है। और अगर बुरी हिंसा, अच्छी हिंसा में चुनना हो तो अच्छी हिंसा ही बेहतर है।

इसे ख्याल में रखोगे तो दुविधा न पड़ेगी। कोई कृष्ण में और महावीर में भेद नहीं है; परिस्थिति में भेद है। और इसलिए कृष्ण और महावीर को मानने वाले व्यर्थ का विवाद करते रहे हैं। परिस्थिति दोनों की भिन्न है। महावीर कह रहे हैं कि मांस मत खाओ, क्योंकि मांस खाना या न खाना दो विकल्प हैं। महावीर कह रहे हैं, देख कर चलो, क्योंकि चींटी व्यर्थ दबा कर मर जाए पैर के नीचे; बचाई जा सकती है तो क्यों मारते हो?

महावीर ने जो परिस्थिति चुनी है मनुष्य के लिए वह साधक की है। वे संन्यासी से बात कर रहे हैं। अगर महावीर खड़े होते कृष्ण की जगह तो जो सलाह कृष्ण ने दी है, मैं कहता हूं कि वही सलाह महावीर ने दी होती। क्योंकि कोई और उपाय न था; वह परिस्थिति साफ थी। लेकिन महावीर वहां नहीं थे; महावीर की परिस्थिति और थी। महावीर किसी युद्ध के मैदान पर नहीं खड़े थे। महावीर संन्यस्त हैं, उन्होंने संसार छोड़ दिया है। वे जो सलाह दे रहे हैं वह संन्यासी को दे रहे हैं। वे उससे कह रहे हैं कि तू अहिंसा की तरफ बढ़ और हिंसा को छोड़, क्योंकि हिंसा से हिंसा ही पैदा होती है। लेकिन महावीर क्या करते कृष्ण की स्थिति में? या तो वे कह देते मैं सलाह नहीं देता, जो कि उचित न होता; और या वे वही सलाह देते जो कृष्ण ने दी है।

कई बार मैंने इस बात को सोचा है कि अगर परिस्थिति वही हो और ज्ञानी बदल दिया जाए तो क्या ज्ञानी दूसरी सलाह दे सकेगा? और मैंने बहुत सोच कर यही पाया है कि असंभव है! ज्ञानी वही सलाह देगा,

क्योंकि कोई उपाय ही नहीं है। अगर महावीर होते अरब में और हिंदुस्तान में नहीं--क्योंकि हिंदुस्तान की हवा और, हिंदुस्तान की बात और। हजारों-हजारों साल की अहिंसा का शिक्षण है इस मुल्क के पास। ठीक वेदों से लेकर, और महावीर चौबीसवें तीर्थंकर हैं, उनके पहले तेईस महान विराट पुरुषों ने अहिंसा के फूल बिछाए हैं; एक धारा है; पीछे से आता एक महान प्रवाह है! उस प्रवाह के कारण पूरे मुल्क में अहिंसा की भाषा को समझने की क्षमता है। तो महावीर यह बात कह सके। मोहम्मद के पीछे कोई प्रवाह नहीं है। मोहम्मद पहले हैं; महावीर आखिरी हैं। एक बड़ी धारा के महावीर आखिरी पुरुष हैं। और मोहम्मद एक बड़ी धारा के पहले पुरुष हैं। बड़ा फर्क है। फिर अरब, जहां सिवाय जंगली, खूंखार लोगों के और कोई भी नहीं; जिनके पास न कोई संस्कृति है, न कोई सभ्यता है; जिनके पास कोई अतीत नहीं है; जिनकी अतीत में कोई जड़ें नहीं हैं; जिनके पीछे कोई इतिहास नहीं है; जो बिल्कुल असंस्कृत हैं। इन आदमियों से अगर तुम अहिंसा की बात करते तो तुम ही मूढ़ सिद्ध होते। क्योंकि इनसे बात ही नहीं की जा सकती; अहिंसा का कोई अर्थ ही नहीं होता। हिंसा एकमात्र बात थी जिसे वे समझ सकते थे।

तो मोहम्मद ने उन्हें समझाने की चेष्टा स्वभावतः उन्हीं की भाषा में की, और कोई उपाय नहीं था। तो मोहम्मद ने भी तलवार उठाई। लेकिन तलवार पर मोहम्मद ने लिख रखा थाः शांति मेरा संदेश है। यह तलवार की भाषा से शांति समझाने का उपाय है। कोई और रास्ता नहीं था। तो तलवार पर लिखना पड़ा है बेचारे मोहम्मद को अपना संदेश कि शांति मेरा संदेश है। इसलाम शब्द का अर्थ होता है शांति। शांति भी समझानी पड़ी तो तलवार से। क्योंकि जो समझने वाले थे उन पर सब निर्भर करता है।

आखिर जब मैं तुम्हें समझाता हूं तो तुम्हारी ही भाषा में बोलना पड़ेगा, और तो कोई उपाय नहीं है। या मैं अपनी भाषा बोलता रहूं, जिस भाषा को तुम समझते ही नहीं, तो मैं पागल हूं। महावीर अगर मोहम्मद की जगह होते, वही तलवार महावीर के हाथ में होती और वही संदेश होता कि शांति मेरा संदेश है। और मोहम्मद अगर भारत में पैदा होते महावीर के समय में, तो वे चौबीसवें तीर्थंकर हो जाते। कोई बचने का उपाय न था।

लेकिन परिस्थिति बदल जाती है रोज। और परिस्थिति तय करती है कि क्या कहा जाए, क्या न कहा जाए; कहां तक लोग बढ़ सकेंगे, कहां तक लोग जा सकेंगे; कितने दूर तक लोगों की चेतना को खींचा जा सकता है। कहीं ऐसा तो न होगा कि जो हम कहें, वह लोगों को असंभव मालूम पड़े, इसलिए वे उसकी बात ही छोड़ दें।

ऐसा समझो कि अगर मैं तुम्हें कोई बात बताऊं, वह इतनी दूर मालूम पड़े कि जैसे एवरेस्ट का शिखर हो, तो तुम बात ही छोड़ दो, तुम कहो कि यह अपने से होने वाला नहीं है; अपनी जिंदगी ठीक, और अपन ठीक। लेकिन मैं तुम्हें एक छोटी सी पहाड़ी बताऊं जिसको तुम चढ़ सकते हो, फिर तुम्हें और बड़ी पहाड़ी बताऊं; क्योंकि छोटी पहाड़ी पर चढ़ने के बाद तुम्हारा साहस बढ़ जाएगा, स्वयं में आस्था बढ़ जाएगी; फिर और बड़ी पहाड़ी बताऊं। एक दिन जब तुम्हें रस पकड़ जाए पहाड़ों को चढ़ने का, तब मुझे बताना भी न पड़ेगा, तुम खुद ही पूछने लगोगे कि अब आखिरी बता दें! बार-बार चढ़ने-उतरने का क्या सार; अब उसको ही चढ़ लें जिसके बाद चढ़ने को फिर कुछ बचता नहीं है।

तुम्हें देख कर बोलना पड़ता हैः तुम्हारी समझ कहां तक खींची जा सकती है? कहीं ऐसा तो न होगा कि बात बिल्कुल तुम्हारे सिर पर से निकल जाएगी।

और निश्चित ही अर्जुन भला आदमी था, अत्यंत भला था। अन्यथा कभी युद्ध के मैदान में किसी को इतना होश आता है कि सोचे? क्रोध से, ज्वर से भरा हुआ जब दुश्मन सामने खड़ा हो, तुम्हें भी ख्याल आता है कभी? जब दूसरा तुम्हें गाली दे रहा हो और शंख बजा दिए हों युद्ध के, तब तुम्हें यह ख्याल आता है कि मारूं, न

मारूं? मारना उचित होगा कि न मारना? ख्याल की बात कहां, तुम्हें होश ही नहीं रह जाता। युद्ध के क्षण में होश की बात करनी, युद्ध के क्षण में इस तरह बोलना जैसा संन्यासी को शोभा देता है; सैनिक की बात ही नहीं है अर्जुन में।

और यह, जिस गणित को मैं निरंतर तुम्हें समझाता हूं, उसे फिर तुम्हें समझाऊं: जब कोई सैनिक अपनी सैन्य शक्ति की पराकाष्ठा पर होता है तब संन्यास का जन्म हो जाता है। क्योंकि जान लिया सब; अर्जुन ने सब जान लिया खेल मारने का, मरने का। वह कोई छोटा-मोटा सैनिक नहीं है; उससे बड़ा कोई सैनिक नहीं हुआ। वह प्रतिमान है सैनिकों का। उसने सब जान लिया; सब तरह के खेल हिंसा के जान लिए। इस तरफ या उस तरफ उसका कोई भी मुकाबला नहीं है। वह बेजोड़ है। इस बेजोड़ सैनिक के मन में संन्यास का भाव आ रहा है। छोटे-मोटे सैनिक के मन में नहीं आता; अभी सेना की यात्रा बाकी है, अभी लड़ना बाकी है। यह लड़ चुका, जीत चुका, सब देख चुका; सबको व्यर्थ पाया, संन्यास का भाव उठ रहा है।

इसलिए तुम चकित होओगे, क्षत्रियों ने जितने संन्यासी पैदा किए हैं, और जितने गहन संन्यासी, उतने ब्राह्मणों ने पैदा नहीं किए। क्षत्रियों की बात ही और है। उन्होंने देख लिया सब राग-रंग हिंसा का, इसलिए अहिंसा की बात उनकी समझ में आती है।

इसलिए मैं गांधी और महावीर की स्थिति को बड़ा भिन्न मानता हूं। महावीर क्षत्रिय हैं; गांधी बनिया हैं। महावीर जिनको समझा रहे थे वे सब सैन्य-जीवन में निष्णात लोग थे; गांधी जिनको समझा रहे थे वे सब डरे हुए, डरपोक लोग थे, भयभीत लोग थे। अन्यथा एक हजार साल तक कोई कौम गुलाम रहती है? और एक छोटी सी कौम इतनी विराट कौम को तीन सौ साल तक, दो सौ साल तक गुलाम रख ले! उसके पहले आठ सौ साल तक इसलाम गुलाम रखे! एक हजार साल लंबे समय तक जो कौम गुलाम रही हो, वह कोई बहादुरों की कौम नहीं हो सकती। वे डरपोक हैं, कमजोर हैं, कायर हैं। गांधी कायरों से बोल रहे थे।

और इसलिए गांधी की अहिंसा सिर्फ एक तरकीब थी। मनुष्य बहुत तरकीबें खोजता है अपनी कायरता को छिपा लेने की। और गांधी की बात कायरों को जंच गई और काम भी कर गई। काम भी कर गई, लेकिन काम होते ही सब बिखर गया। क्योंकि जैसे ही कायर ताकत में आए, फिर वे भूल गए अहिंसा वगैरह। बिल्कुल आसान था ब्रिटिश हुकूमत से लड़ना अहिंसा से, क्योंकि हिंसा से लड़ने की हमारी कोई सामर्थ्य ही न थी। लेकिन जैसे ही शक्ति में आई अहिंसकों की सेना, वैसे ही वे सब हिंसक हो गए, वैसे ही उठा ली बंदूक।

यह कायर की अहिंसा थी जो अपने को छिपा रहा था। अन्यथा असली रूप तो तब प्रकट होता जब सत्ता हाथ में आती। अगर ये असली अहिंसक थे तो जब तुम बिना सत्ता के अहिंसक रह सके तो सत्ता में तो तुम्हें बिल्कुल अहिंसक हो जाना था। जब दुश्मन से तुम लड़ सके अहिंसा से तो अपने ही लोगों को समझाने में अहिंसा काम न आई? अपने ही लोगों की छाती में गोली दागने में तुम्हें रास्ता दिखाई पड़ता है?

साफ है मामला। तुम्हारे हाथ में गोली न थी, न हाथ तैयार थे, न हिम्मत थी गोली चलाने की अंग्रेज के खिलाफ। लेकिन अब ये गरीब हिंदुस्तानियों के खिलाफ तो तुम गोली मजे से चला सकते हो; कोई अड़चन नहीं है। हाथ में बंदूक भी है, ताकत भी है, चलाओ गोली।

तो जितनी गोली इन पच्चीस साल की आजादी में अहिंसावादियों ने चलाई है, गांधीवादियों ने चलाई है, उतनी अंग्रेजों ने अपने पूरे दो सौ साल में नहीं चलाई थी। सच बात तो यह है कि गांधी की अहिंसा जीत सकी, क्योंकि अंग्रेज कौम बड़ी विशिष्ट कौम है। अन्यथा जीत नहीं सकती थी।

थोड़ी देर को समझो कि अंग्रेजों की जगह जर्मन होते; गांधी-वांधी की कोई स्थिति नहीं थी। अंग्रेज बड़ी सुसंस्कृत कौम है। वह अहिंसा की भाषा को समझ सकी। जर्मन होते, मिट्टी में मिला देते। गांधी को कोई इतना सम्हाल कर रखने की जरूरत नहीं। तुम थोड़ा सोचो, अंग्रेज गांधी को न मार पाए और हिंदुओं ने खुद मार दिया! अंग्रेजों को क्या दिक्कत थी इस आदमी को मिटाने में? इतना आसान मामला था, इससे ज्यादा आसान कुछ भी नहीं था कि इस आदमी को मिटा दो, झंझट खतम करो।

लेकिन नहीं; अंग्रेज जाति के पास एक अंतःकरण है, एक समझ है; उदार है। यह आदमी अहिंसक था तो इसको मिटाया नहीं; इसको बचाया, सम्हाला; इसको सब तरह से सम्हाला; और धीरे से इसको राज्य भी सौंप दिया। फिर हमने ही मार डाला। वल्लभ भाई पटेल न बचा सके जो कि गांधी के सरदार थे, और अंग्रेज बचाए रहे। और ऐसी संभावना है पूरी कि गांधी के मारने में जाने-अनजाने गांधीवादियों का भी हाथ है। कहता हूं, जाने-अनजाने। अचेतन मन से वे भी चाहते थे कि अब यह बुड्ढा खतम हो, क्योंकि अब यह एक उपद्रव था। पहले तो यह नेता था, अब यह एक उपद्रव था। पहले तो यह कायरों को छिपाने का आवरण था। और अब? अब यह हर चीज में अड़ंगा डाल रहा था। क्योंकि यह अब भी अपनी अहिंसा का राग लगाए हुए था।

गांधी की अहिंसा वस्तुतः कायर आदमी की सांत्वना है। और गांधी ने पूरा अहिंसा का शास्त्र बड़ी कायरता से विकसित किया। अगर तुम गांधी का जीवन ठीक से समझने की कोशिश करो तो तुम पाओगे, यह आदमी अपनी जवानी में बहुत कायर आदमी था। इतना कायर कि कहना मुश्किल है। जब वे भारत से यूरोप की यात्रा पर जा रहे थे तो कसम मां ने दिला दी ब्रह्मचर्य की।

वह कसम भी कायरता में ही खाई होगी; क्योंकि मां कहती थी, जाने न देंगे, अगर ब्रह्मचर्य की कसम न खाई। तो कसम खा ली, क्योंकि जाना था। एक सज्जन से मित्रता हो गई जहाज पर। और जब कैरो में जहाज रुका तो वे सज्जन वेश्या के घर जा रहे थे, जैसा कि जहाज में यात्रा करने वाले लोग, हर जगह जहां जहाज रुकता है, स्त्रियों की तलाश करने निकलते हैं। और हर जहाजी नगर वेश्याओं का घर हो जाता है। वह आदमी एक वेश्या के यहां जा रहा था। उसने कहा कि आओ, चलो भी!

गांधी इतने कायर कि उससे यह न कह सके कि मुझे नहीं जाना है। तब तुम्हें समझ में आएगा कि ब्रह्मचर्य का व्रत भी कैसे लिया होगा। मां ने कहा लो, तो ले लिया। इस आदमी ने कहा चलो, तो अब उनको ऐसा लगा अगर मैं कहूं कि मुझे नहीं जाना है या ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया है तो यह आदमी समझेगा कि पता नहीं नपुंसक है, क्या है, क्यों डरता है। डर के मारे उसके साथ चले गए। हाथ-पैर कंप रहे हैं, क्योंकि व्रत लिया है। डर लग रहा है कि अब यह बड़ी मुसीबत हुई। और इसको भी न नहीं कह सकते और वह आदमी ऐसा है जिद्दी कि वह सुनेगा भी नहीं। वह ठीक वेश्या के घर ले गया। उसने जाकर वेश्या के कमरे में उनको प्रवेश भी करवा दिया।

वे उस वेश्या से भी न कह सके कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है और मुझ पर कृपा करो, मुझे जाने दो, मैं बड़ी भूल में आ गया। वे आंख बंद करके बैठ गए वहां। हाथ कंप रहे हैं, पसीना बह रहा है; वह वेश्या बेचारी सेवा कर रही है कि यह मामला क्या हो गया! किसी तरह हिम्मत जुटा कर वहां से वापस लौटे।

उनका अगर पूरा जीवन पढ़ो तो तुम पाओगे कि सारे जीवन का सूत्र कायरता थी। वे भीरु आदमी थे और उनका धर्म भीरु का धर्म था। और उसी भीरुता में से उन्होंने धीरे-धीरे अहिंसा का शास्त्र निकाला। तो कायरता तो छिप गई और अहिंसा ऊपर आ गई।

मगर बहुत मुश्किल है, क्योंकि एक दफा जब हम एक आदमी को स्वीकार कर लेते हैं, पूजने लगते हैं, तो कभी उसके जीवन का ठीक-ठीक विश्लेषण नहीं करते, और कभी उसके जीवन की पर्तों में नहीं उतरते कि उसका जीवन कैसे निर्मित हुआ।

महावीर की बात और है। वह एक क्षत्रिय की अहिंसा थी। वह अहिंसा किसी कायरता से पैदा नहीं हो रही थी। वह अहिंसा बड़े अभय से आई थी। और कृष्ण भी क्षत्रिय हैं; वे भी समझ लेते महावीर की अहिंसा को। मोहम्मद भी क्षत्रिय हैं; वे भी समझ लेते महावीर की अहिंसा को। ये लड़ाके हैं, और अहिंसा तो आखिरी लड़ाई है। तब तुम प्रेम से लड़ते हो, मगर वह लड़ाई है। हिंसा में तुम घृणा से लड़ते हो, क्योंकि तुम्हें अपने प्रेम का भरोसा नहीं है। और हिंसा में तुम तलवार उठाते हो, क्योंकि तुम्हें अपने बल पर भरोसा नहीं है, तलवार का सहारा लेते हो।

अहिंसा आदमी की आखिरी ताकत है। तब वह तलवार छोड़ देता है, क्योंकि हाथ काफी हैं। तब वह शस्त्र छोड़ देता है, क्योंकि हृदय काफी है। तब वह हमला नहीं करता, क्योंकि प्रार्थना काफी है। तब वह तुम्हें अपने प्रेम से हरा देता है। वह तुम्हें हराना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह भी व्यर्थ है। वह तुम्हारे ऊपर जीतना भी नहीं चाहता, क्योंकि वह भी हिंसा है। वह तुमसे हार जाता है, और तुम्हें हरा देता है।

वही लाओत्से का पूरा शास्त्र है कि तुम हारो। और तुम जिससे हार जाओगे उसे तुम हरा दोगे। इसलिए लाओत्से स्त्रैण शक्ति का बड़ा हामी और बड़ा तरफदार है। वह कहता है, स्त्री की ताकत क्या है? स्त्री की ताकत यह है कि वह जिसको प्रेम करती है उससे हार जाती है। और तुम्हें पता है कि वह हार कर तुम पर पूरा कब्जा कर लेती है। तुम्हें लगता है तुम जीत गए; जीतती वही है।

एक कमजोर से कमजोर स्त्री जो तुम्हारे प्रेम में तुमसे हार जाती है, और तुम्हारे कंधे का ऐसा ही सहारा लेती है जैसे कोई लता वृक्ष का सहारा लेकर चढ़ती है--बिल्कुल कमजोर, अपने में खड़ी भी न हो सकेगी लता, वृक्ष का सहारा चाहिए। एक स्त्री बिल्कुल हार जाती है; लता की तरह तुम्हारे चारों तरफ लिपट जाती है--बिल्कुल हारी हुई। लेकिन अंततः तुम पाओगे कि वह जीत गई, तुम हार गए। वह बिना कहे, जो करवाना चाहती है, करवा लेती है। वह बिना इशारे के तुम्हें चलाती है। वह तुम्हारे पीछे होती है, लेकिन वस्तुतः तुम्हारे आगे होती है। उसकी तरकीब आगे होने की यही है कि वह तुम्हारे पीछे हो जाती है। वह तुम्हें प्रेम में दबा लेती है। वह तुम्हें सेवा से भर देती है। वह तुम्हारे आस-पास इतनी कोमल हवा को पैदा कर देती है कि तुम उस हवा को तोड़ना भी न चाहोगे।

जब भी कोई स्त्री प्रेम में होती है तब जो घटना घटती है वही अहिंसक के पास भी घटती है। हिंसा पुरुष के मन का लक्षण है। अहिंसा स्त्री के हृदय का भाव है।

अहिंसा से ही अहिंसा आती है; हिंसा से कभी अहिंसा नहीं आती। लेकिन ऐसी स्थितियां हो सकती हैं जब हिंसा-अहिंसा के बीच चुनाव ही नहीं होता; चुनाव अच्छी हिंसा और बुरी हिंसा के बीच होता है। और कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि चुनाव अच्छी अहिंसा और बुरी अहिंसा के बीच होता है। और यही मैं फर्क करता हूं महावीर और गांधी की अहिंसा में। महावीर की अहिंसा, बात और। उसके भीतर अभय है; वह अच्छी अहिंसा है। गांधी की अहिंसा, बात और। उसके भीतर भय है और कायरता है। वह बुरी अहिंसा है।

तो चार चीजें हैं संसार में। हिंसा और अहिंसा दो चीजें ही होतीं तो आसान हो जाता मामला; जटिल है मामला। यहां अच्छी अहिंसा भी है, रुग्ण अहिंसा भी है। यहां स्वस्थ हिंसा है और रुग्ण हिंसा भी है। और इन चारों के बीच केवल वही चुनाव कर सकता है जिसकी अंतःप्रज्ञा बहुत थिर हो गई हो। जब तुम चीजों के आर-

पार देखने में समर्थ हो जाओगे तुम्हारे ध्यान से, तभी तुम्हें साफ हो पाएगा। क्योंकि बुरी अहिंसा भी अहिंसा मालूम पड़ती है और अच्छी हिंसा भी हिंसा मालूम पड़ती है। इसलिए तुम्हें या तो मोहम्मद और कृष्ण हिंसक मालूम पड़ेंगे, अगर तुम अच्छी हिंसा को देखने में समर्थ नहीं हो। और या तुम्हें गांधी अहिंसक मालूम पड़ेंगे, अगर तुम बुरी अहिंसा को पहचानने में समर्थ नहीं हो।

तुम्हारी प्रज्ञा इतनी गहन जब हो जाएगी, जब विचार शांत हो जाएंगे और तुम्हारा मन का दर्पण उजला होगा, धूल हट गई होगी, तभी तुम देख पाओगे। और तब तुम हर जगह यह बात पाओगे कि यहां अच्छा चरित्र भी है और बुरा चरित्र भी है; यहां अच्छे अपराधी हैं, बुरे अपराधी भी हैं; यहां संत भी अच्छे हैं और बुरे संत भी हैं। क्योंकि तुम्हें यह लगेगा कि यह तो बड़ी मैं अटपटी बात कह रहा हूं, क्योंकि संत यानी अच्छा। लेकिन संतत्व भी अगर भय पर खड़ा हो तो बुरा और असंतत्व भी अगर अभय पर खड़ा हो तो अच्छा।

जीवन थोड़ा जटिल है; उतना सरल नहीं जितना तुम गणित को सरल पाते हो। और जीवन की जटिलता को पहचानने की क्षमता जब तक विकसित न हो, तब तक बहुत सी बातें जो मैं तुमसे कहता हूं, तुम समझ न पाओगे। और डर यह है कि तुम कहीं उलटा न समझ लो। इसलिए बहुत होश से मेरे साथ चलना, क्योंकि बहुत बार मैं बहुत खतरनाक रास्ते पर चलता हूं। चलना जरूरी है, क्योंकि ऐसे ही चल-चल कर तुम्हारा अभ्यास भी होगा और खतरनाक रास्ते भी सुगम और सरल हो जाएंगे।

आखिरी सवालः एक मित्र ने पूछा है कि अठारह वर्ष की उम्र से, कैसे प्रबुद्ध हो जाएं, इसकी ही उत्कंठा रही है। प्रबुद्धता तो नहीं मिली, एक सतत सिरदर्द पैदा हो गया है; एक तनाव, एक बेचैनी। और वह बेचैनी धीरे-धीरे चौबीस घंटे का सिरदर्द बन गई है। तो अब क्या करें?

बन ही जाएगी। क्योंकि प्रबुद्धता को पाने की आकांक्षा प्रबुद्धता के पाने में बाधा है। तुम उसे इस तरह न पा सकोगे, चाह कर न पा सकोगे। क्योंकि चाह तो तनाव पैदा करेगी; तनाव सिरदर्द बन जाएगा। और इस संसार की चीजों को पाना हो तो शायद तुम कोशिश करके पा भी लो; उस संसार की चीजें तो तुम्हारी मौन दशा में ही अवतरित होती हैं। उनको पाने का ढंग ही यही है कि तुम्हारे भीतर पाने वाला भी खो जाए। अन्यथा सिरदर्द पैदा हो जाएगा।

अब क्या किया जाए?

प्रबुद्धता को पाने का ख्याल छोड़ दो। इस क्षण आनंदित और शांत होने की फिक्र लो। कल की बात ही मत पूछो और कल की बात ही मत सोचो। यह क्षण आनंद में बीत जाए, काफी। क्योंकि दूसरा क्षण इसी क्षण से तो पैदा होगा। अगर यह क्षण आनंद में बीत गया तो दूसरा क्षण भी अपने आप और गहरे आनंद में बीतेगा। आएगा कहां से दूसरा क्षण? दूसरा क्षण भी तुमसे ही पैदा होता है। तुम अगर प्रसन्न हो अभी तो कल भी प्रसन्न होओगे। तुम कल की बात ही मत पूछो। आज जीओ! और जो व्यक्ति भी आज जीता है, उसके सिरदर्द खो जाते हैं।

फिर भी, हो सकता है, लंबे अभ्यास से सिरदर्द न केवल मानसिक रहा हो, शारीरिक हो गया हो; न केवल मन में रहा हो, बल्कि मस्तिष्क के स्नायुओं में प्रवेश कर गया हो। तो फिर एक काम करो; सिरदर्द को हटाने की कोशिश मत करो, लाने की कोशिश करो।

यह तुम्हें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा, लेकिन यह बड़ा अदभुत उपाय है। और न केवल सिरदर्द में, बहुत सी बातों में कारगर है।

सिरदर्द को तुम जितना हटाने की कोशिश करते हो, तुम उतने ही तनाव से भर जाते हो। और सिरदर्द पैदा हो जाता है। पहला सिरदर्द तो रहता ही है; दूसरा सिरदर्द कि सिरदर्द को कैसे हटाएं। सिरदर्द है, उसे स्वीकार कर लो। स्वीकार करते ही, तुम्हारे स्नायु शिथिल हो जाएंगे। स्वीकार करते ही आधा सिरदर्द तो गया। न केवल स्वीकार कर लो, बल्कि अहोभाव से परमात्मा के प्रति अनुगृहीत भी हो जाओ--कि तूने सिरदर्द दिया, जरूर कोई कारण होगा, जरूर कोई राज होगा, हम स्वीकार करते हैं। हमें कुछ पता भी नहीं कि इस सिरदर्द से कल क्या फायदा होने वाला है। कुछ पता नहीं। हम स्वीकार करते हैं।

तुम सिरदर्द को लाने की कोशिश करो कि आ जाए। जब सिरदर्द हो, तब तुम पूरी कोशिश करो कि वह अपनी पूरी त्वरा को उपलब्ध हो जाए, तीव्रता को उपलब्ध हो जाए। और तुम चकित हो जाओगे कि कुछ ही दिनों में जितना तुम लाने की कोशिश करते हो उतना ही वह आना मुश्किल हो गया। और जितना तुम उसे त्वरा देने की कोशिश करते हो वह उतना ही कम हो गया। और जितना तुम स्वीकार करते हो वह उतना ही समाप्त हो गया।

यही लाओत्से की विधि है। जीवन के दुख को स्वीकार कर लो और दुख चला जाता है। जो भी हो रहा है, उसे स्वीकार कर लो; संघर्ष मत करो। संघर्ष के हटते ही सभी चीजें सरल और शुभ और शांत और आनंदपूर्ण हो जाती हैं।

एक युवक यहां पूना में है। वह एक कालेज में प्रोफेसर है। उसने कोई पांच साल पहले मुझे आकर कहा कि एक बड़ी मुसीबत है उसकी। और मुसीबत यह है कि वह भूल जाता है और बार-बार इस तरह चलने लगता है जिस तरह स्त्रियां चलती हैं। तो कालेज में तो मुसीबत हो ही जाएगी। कहीं भी होओ तो मुसीबत होगी, लोग हंसेंगे; फिर कालेज तो सबसे ज्यादा खतरनाक जगह हो गई। वहां हजार, पांच सौ विद्यार्थी, और कोई प्रोफेसर स्त्रियों जैसा चले, तो वह तो मजाक का, हंसी का आधार बन गया। और वह जितना इससे बचने की कोशिश करता है--क्योंकि वह सम्हल कर जाता है, एक-एक कदम सम्हल कर उठाता है--लेकिन जितना ही वह बचने की कोशिश करता है उतनी ही मुश्किल में पड़ जाता है।

तो मैंने उस युवक को कहा, तू एक काम कर, तू स्त्रियों जैसा चलने का अभ्यास कर। हंसी तो हो ही रही है, मजाक तो हो ही रही है, बदनामी तो हो ही रही है; अब इससे ज्यादा कुछ और होगा नहीं। अब जब हो ही रहा है स्त्री जैसा चलना, तो कुशलता से चलो।

उसने कहा, क्या आप कहते हैं! मैं मरा जा रहा हूं इसको हटा-हटा कर और आप कहते हैं कि अभ्यास करूं?

मैंने कहा, तू हटा-हटा कर हटा नहीं पाया, हमारी भी बात सुन ले। तू कल अब कालेज जा और घर से ही स्त्री जैसा चलने की कोशिश करता हुआ जा।

डरा बहुत, पर उसने हिम्मत की। और तीन महीने तक निरंतर, जब भी वह कालेज जाए, तो होशपूर्वक स्त्री जैसा चलने की कोशिश करे। लेकिन तीन महीने में एक बार भी सफल न हो पाया, स्त्री जैसा न चल पाया।

मन का एक यंत्र है; कुछ चीजें हैं जो अचेतन हैं। अगर तुम उन्हें चेतन बना लोगे, विलीन हो जाएंगी। कुछ चीजें इसीलिए जीती हैं, क्योंकि तुम उनसे लड़ते हो। अगर तुम स्वीकार कर लो, वे समाप्त हो जाएंगी।

यही मैं सिरदर्द के संबंध में कहता हूं। और यही तुम्हारे जीवन की बहुत सी चीजों के संबंध में तुम प्रयोग करके देखना। अलग-अलग होंगे उपद्रव तुम्हारे जीवन में, लेकिन स्वीकार करना, अहोभाव से स्वीकार करना, और फिर देखना, तुमने उनका प्राण ही छीन लिया! तुमने उनकी जड़ काट दी! तुमने मूल स्रोत पर चोट कर दी!

आज इतना ही।

एक सौ इक्कीसवां प्रवचन

जीवन कोमल है और मृत्यु कठोर

Chapter 76

Hard And Soft

When man is born, he is tender and weak;
At death, he is hard and stiff,
When the things and plants are alive,
They are soft and supple;
When they are dead, they are brittle and dry.
Therefore hardness and stiffness are
the companions of death,
And softness and gentleness are
the companions of life.
Therefore when an army is headstrong,
It will lose in battle.
When a tree is hard, it will be cut down.
The big and strong belong underneath.
The gentle and weak belong at the top.

अध्याय 76

कठोर और कोमल

जब आदमी जन्म लेता है,
वह कोमल और कमजोर होता है;
मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है।
जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं,
तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं;
और जब वे मर जाते हैं,
वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।

इसलिए कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं;
और कोमलता और मृदुता जीवन के साथी हैं।
इसलिए सेना जब हठी होगी,
वह युद्ध में हार जाएगी।
जब वृक्ष कठिन होगा, वह काट दिया जाएगा।
बड़े और बलवान की जगह नीचे है।
सौम्य और कमजोर की जगह शिखर पर है।

लाओत्से से ज्यादा सूक्ष्म जीवन का निरीक्षक खोजना कठिन है। निरीक्षण तो बहुत लोग जीवन का करते हैं, लेकिन निरीक्षण में शुद्धता नहीं होती; चित्त दर्पण की भांति नहीं होता; विचारों से भरा होता है। इसलिए निरीक्षण निरीक्षण न रह कर व्याख्या बन जाता है; विचार सम्मिलित हो जाते हैं। और विचार निरीक्षण की शुद्धता को नष्ट कर देते हैं।

दो तरह के निरीक्षण हैं। एक निरीक्षण है जब तुम विचारों से भरे हुए जीवन को देखते हो। तब तुम जीवन को नहीं देखते। तुम अपने विचारों की ही छवि जीवन में देख लोगे। तब तुम अपने विचारों को ही जीवन पर आरोपित कर लोगे। तब तुम जो देखना ही चाहते थे वही देख लोगे। वही नहीं, जो है, वरन वह जो तुम पहले से ही मान बैठे थे--तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी धारणा, तुम्हारा धर्म, तुम्हारा शास्त्र, तुम जीवन में देख लोगे। और तब तुम जीवन के सम्यक निरीक्षक नहीं हो।

जीवन को तो ऐसे देखा जाना चाहिए जैसे दर्पण देखता है--खाली; शून्य। जिसके पास अपना जोड़ने को कुछ भी नहीं है, जो सिर्फ दिखलाता है वही जो है। शांत झील; एक तरंग भी नहीं। उगता है चांद, बदलियां आकाश में गतिमान होती हैं; बनता है प्रतिबिंब। फिर एक और झील है, तरंगायित, लहरों से भरी। तब भी चांद का प्रतिबिंब तो बनता है, लेकिन हजार-हजार खंडों में टूट जाता है। तुम चांद को खोज न पाओगे। लहर-लहर पर चांद फैला होगा। तुम्हें पूरी झील पर ही चांदनी फैली हुई मालूम पड़ेगी। चांद को पकड़ना मुश्किल होगा।

तुम्हारा मन विचार की तरंगों से भरा है। जब तुम पांडित्य लेकर आते हो प्रकृति के पास तब तुम चूक जाते हो। तब तुम्हें जरूर कुछ दिखाई पड़ेगा, लेकिन तुम इस धोखे में मत पड़ना कि जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है वह सत्य है। वह केवल तुम्हारे विचार की अनुगूंज है। तुमने जो पहले से ही स्वीकार कर लिया था, वही प्रतिफलित हो रहा है। लाओत्से बड़ा शुद्ध निरीक्षक है। वह कोई विचार लेकर प्रकृति के पास नहीं गया है। उसने तथ्यों को सीधा-सीधा देखना चाहा है। बड़ा कठिन है; शायद इससे कठिन और कुछ भी नहीं है। क्योंकि यही तो मार्ग है सत्य के उदघाटन का।

लाओत्से न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न जैन है, न बौद्ध है। लाओत्से का कोई धर्म नहीं है। लाओत्से का कोई शास्त्र भी नहीं है। लाओत्से ने जो भी देखा है वह किसी शास्त्र, किसी शब्द की आड़ से नहीं देखा; सब हटा कर देखा है। इसलिए जो लाओत्से को दिखाई पड़ा है वह बहुत कम लोगों को दिखाई पड़ता है।

महावीर के वचनों में भी ऐसी शुद्धता नहीं है, क्योंकि महावीर के वचन बड़ी प्राचीन परंपरा पर आधारित हैं। कृष्ण के वचनों में भी ऐसी शुद्धता नहीं है, क्योंकि कृष्ण के वचन तो वेदों और उपनिषदों का सार हैं। बुद्ध के वचन महावीर और कृष्ण के वचनों से ज्यादा शुद्ध हैं, फिर भी लाओत्से के मुकाबले वैसी शुद्धता नहीं है। बुद्ध बगावती हैं। उन्होंने वेदों को इनकार कर दिया है, शास्त्रों को इनकार कर दिया है, उपनिषदों को ताक

पर रख दिया है। लेकिन अगर कोई गौर से खोजेगा तो बुद्ध के प्राणों में उपनिषदों की गूंज मौजूद है; वह खो नहीं गई है। तुम उनके वचनों में छिपा हुआ उपनिषद पा लोगे। तुम उनके एक-एक शब्द में, भारत का जो पूरा अतीत है, उसका रंग पाओगे, गंध पाओगे।

मनुष्य-जाति के इतिहास में लाओत्से जैसा दूसरा व्यक्ति खोजना करीब-करीब असंभव है। कोई गूंज नहीं है अतीत की। किसी शास्त्र की कोई प्रतिध्वनि नहीं है। जैसे लाओत्से पहला आदमी है; उसके पहले जैसे आदमी हुए ही न हों। जैसे कोई संस्कृति, सभ्यता लाओत्से के पहले थी ही नहीं; जैसे कोई कंडीशनिंग नहीं है, कोई संस्कार नहीं है। लाओत्से बिल्कुल पहले आदमी की तरह जगत को देख रहा है।

और जिस दिन तुम भी इस तरह देख सकोगे जैसे पीछे कोई अतीत हुआ ही नहीं, जैसे तुम अभी और यहां बस पहली बार अवतरित हुए हो, खाली और शून्य, उस क्षण तुम लाओत्से को समझ पाओगे। उसके पहले तुम लाओत्से की व्याख्या समझ लोगे, लाओत्से को न समझ पाओगे। लाओत्से को समझने के लिए लाओत्से जैसा हो जाना जरूरी है। यह पहली बात ख्याल रखनी आवश्यक है।

लाओत्से को समझने की चेष्टा में इस बात का ध्यान रखना कि लाओत्से किसी सिद्धांत को सिद्ध करने नहीं निकला है। उसका कोई सिद्धांत ही नहीं है। वह तो जीवन के सिद्धांत को खोजने निकला है। वह आरोपित नहीं कर रहा है कुछ, अगर कुछ हो जीवन में तो उसे खोलने की कोशिश कर रहा है। वह तथ्यों के ऊपर पड़े घूंघट को उठा रहा है। उस घूंघट को उठाने में भी उसकी कला अनूठी है। क्योंकि वह घूंघट भी बहुत तरह से उठाया जा सकता है। रास्ते पर चलती एक स्त्री का घूंघट जबरदस्ती उठाया जा सकता है; बलात उसे निर्वस्त्र किया जा सकता है। लेकिन तब तुम देह को ही खोज पाओगे; उस देह के भीतर छिपी गरिमा विलुप्त हो जाएगी। क्योंकि बलात, सौंदर्य को देखा ही नहीं जा सकता। सौंदर्य नाजुक है, टूट जाता है। सौंदर्य अति कोमल है; आक्रामक रूप से तुम सौंदर्य के रहस्य को कभी भी न जान पाओगे। यह तो ऐसा है जैसे झपट कर फूल तोड़ लिया, पंखुड़ियां उखाड़ दीं, और खोजने लगे कि सौंदर्य कहां है?

तुम राह चलती एक स्त्री को निर्वस्त्र कर सकते हो, लेकिन नग्न न कर पाओगे। यही तो महाभारत की मीठी कथा है कि दुर्योधन द्रौपदी को नग्न करना चाहता है; कर नहीं पाया। कहानी का अर्थ इतना ही है कि जब तुम जबरदस्ती किसी को नग्न करने की चेष्टा करोगे तब तुम हारोगे। कोई कृष्ण ने द्रौपदी का चीर बढ़ा दिया हो, ऐसा मत समझ लेना। कौन बैठा है किसी का चीर बढ़ाने को? लेकिन जीवन की व्यवस्था ऐसी है कि उसमें जब तुम जबरदस्ती किसी के वस्त्र उतारना चाहोगे तब चीर बढ़ता ही चला जाता है--जैसे कि चीर बढ़ता चला जाता है। तुम करते हो जितनी जबरदस्ती उतना ही रहस्य छिपता चला जाता है। रहस्य को खोलना हो तो फुसलाना पड़ता है, आक्रमण नहीं। रहस्य को खोलना हो तो प्रेम भरे आग्रह से जाना पड़ता है, हिंसात्मक दुराग्रह से नहीं।

दुर्योधन तो प्रतीक है उन सबका जिन्होंने जीवन के रहस्य को जबरदस्ती खोलना चाहा है। दुर्योधन बड़ा वैज्ञानिक है। और विज्ञान की यही विधि है। विज्ञान बलात्कार है, जबरदस्ती है। और इसलिए विज्ञान जितना ही चीजों को खोल रहा है, चीर बढ़ता जा रहा है। और चीर बढ़ता ही चला जाएगा।

एक बड़े वैज्ञानिक को मैं पढ़ रहा था, हेजेन बर्ग को। तो हेजेन बर्ग ने कहा है कि पहले हम सोचते थे कि अणु पर सब समाप्त हो जाता है। डेमोक्रीटस से लेकर अब तक यही ख्याल था कि अणु का अर्थ है आखिरी टुकड़ा, उसके आगे विभाजन संभव नहीं है। लेकिन फिर चीर बढ़ गया। अणु टूटा, परमाणु आया। फिर सोचा गया कि परमाणु बस आखिरी बात आ गई, रहस्य खुल गया। लेकिन चीर बढ़ गया। जब-जब जाना कि रहस्य

खुल गया, तभी चीर बढ़ गया। परमाणु भी टूट गया। अब इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोटान। और हेजेन बर्ग ने लिखा है कि अब हम उतने आश्वासन से नहीं कह सकते कि यही आखिरी है। जल्दी ही इलेक्ट्रान भी टूटेगा। चीर बढ़ता ही चला जाता है। चीर बढ़ता ही चला जाएगा। क्योंकि रहस्य पीछे सरकता जाता है।

मैंने कहा कि तुम किसी स्त्री को निर्वस्त्र कर सकते हो, नग्न नहीं। और जब तुम निर्वस्त्र कर लोगे तब स्त्री और भी गहन वस्त्रों में छिप जाती है। उसका सारा सौंदर्य तिरोहित हो जाता है; उसका सारा रहस्य कहीं गहन गुहा में छिप जाता है। तुम उसके शरीर के साथ बलात्कार कर सकते हो, उसकी आत्मा के साथ नहीं। और शरीर के साथ बलात्कार तो ऐसे है जैसे लाश के साथ कोई बलात्कार कर रहा हो। स्त्री वहां मौजूद नहीं है। तुम उसके कुंआरेपन को तोड़ भी नहीं सकते, क्योंकि कुंआरापन बड़ी गहरी बात है।

लाओत्से वैज्ञानिक की तरह जीवन के पास नहीं गया निरीक्षण करने। उसने प्रयोगशाला की टेबल पर जीवन को फैला कर नहीं रखा है। और न ही जीवन का डिसेक्शन किया है, न जीवन को खंड-खंड किया है। जीवन को तोड़ा नहीं है। क्योंकि तोड़ना तो दुराग्रह है; तोड़ना तो दुर्योधन हो जाना है। द्रौपदी नग्न होती रही है अर्जुन के सामने। अचानक दुर्योधन के सामने बात खतम हो गई; चीर को बढ़ा देने की प्रार्थना उठ आई। वैज्ञानिक पहुंचता है दुर्योधन की तरह प्रकृति की द्रौपदी के पास; और लाओत्से पहुंचता है अर्जुन की तरह--प्रेमातुर; आक्रामक नहीं, आकांक्षी; प्रतीक्षा करने को राजी, धैर्य से, प्रार्थना भरा हुआ। लेकिन द्रौपदी की जब मर्जी हो, जब उसके भीतर भी ऐसा ही भाव आ जाए कि वह खुलना चाहे और प्रकट होना चाहे, और किसी के सामने अपने हृदय के सब द्वार खोल देना चाहे।

तो जो रहस्य लाओत्से ने जाना है वह बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी नहीं जान पाता। क्योंकि जानने का ढंग ही अलग है। लाओत्से का ढंग शुद्ध धर्म का ढंग है। धर्म यानी प्रेम। धर्म यानी अनाक्रमण। धर्म यानी प्रतीक्षा। और धीरे-धीरे राजी करना है। धर्म एक तरह की कोर्टिंग है। जैसे तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते हो, उसे धीरे-धीरे राजी करते हो। हमला नहीं कर देते।

विज्ञान अति आतुर है, अधैर्यवान है। वह जल्दी हमला कर देता है। और तब उसके हाथ में जो लगता है वह कचरा है। उसकी उपयोगिता कितनी ही हो, उसमें अर्थ बहुत ज्यादा नहीं है। उससे यंत्र बन सकते हों, क्योंकि यंत्र मुर्दा हैं। और विज्ञान जबरदस्ती में प्रकृति को मार लेता है। इसलिए मृत्यु का जो राज है वह तो उसे पता चल जाता है; इसलिए यंत्र बना लेता है, क्योंकि यंत्र यानी मुर्दा चीजें। लेकिन जीवन का रहस्य नहीं खोल पाता।

लाओत्से ऐसा गया है जीवन के तथ्यों के पास जैसा सुहागरात के दिन कोई अपनी नववधू के पास जाता है, आहिस्ता-आहिस्ता घूंघट उठाता है; उतना ही उठाता है जितने से ज्यादा वधू को राजी पाता है, उससे ज्यादा नहीं। और तब धीरे-धीरे जीवन अपने सब रहस्य खोल देता है। और लाओत्से के समक्ष जीवन ने ऐसे रहस्य खोल दिए हैं जो बहुत बड़े-बड़े वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, तार्किकों के समक्ष छिपे रह गए हैं। लाओत्से के सामने छोटी-छोटी चीजों ने बड़े-बड़े द्वार खोल दिए हैं; राह के किनारे पत्थर माणिक-मोती हो गए हैं।

लाओत्से को समझोगे तो पाओगे वह बहुत छोटी-छोटी चीजों की बात कर रहा है। लेकिन छोटी-छोटी चीजें बहुत बड़ी हो गई हैं। वैज्ञानिक बड़ी-बड़ी चीजों की बात करते हैं और बड़ी-बड़ी चीजें बहुत छोटी हो जाती हैं। वैज्ञानिक अगर चांद-तारों की भी बात करे तो छोटे हो जाते हैं। लाओत्से अगर फूल-पत्तों की भी बात करता है तो बड़े हो जाते हैं। धर्म का स्पर्श प्रत्येक चीज को विराट कर देता है। विज्ञान का स्पर्श प्रत्येक चीज को क्षुद्र कर देता है।

और वही स्पर्श पाने योग्य है जिससे हर कण ब्रह्म हो जाए। उस स्पर्श का क्या करोगे जिससे ब्रह्म को छुओ और वह अणु हो जाए? क्षुद्र को बना कर तुम क्या करोगे? क्योंकि जितना तुम्हारे पास क्षुद्र इकट्ठा हो जाएगा, उसमें घिरे--ध्यान रखना--तुम भी क्षुद्र हो जाओगे। तुम जो खोजोगे वह तुम्हें निर्मित करेगा। तुम जो उघाड़ लोगे वह तुम्हें भी बनाएगा। क्योंकि उघाड़ने वाला बाहर नहीं रह सकता घटना के। इसलिए जो क्षुद्र की खोज में लगता है और क्षुद्रतर को पाता चला जाता है, वह धीरे-धीरे क्षुद्र हो जाता है। हो ही जाएगा। लेकिन जो क्षुद्र को विराट करने की कला जानता है, जो जहां छूता है वहीं से अनंत का द्वार खुलने लगता है, उसके स्पर्श में धर्म आ गया। उसका स्पर्श पारस हो गया। और उसके स्पर्श में वह स्वयं भी तो घिर जाएगा, वह स्वयं भी धीरे-धीरे विराट हो जाएगा।

इन तथ्यों को ख्याल में रखो, फिर लाओत्से की बड़ी छोटी-छोटी बातों में छिपे बड़े राजों को समझना कठिन न होगा।

कहता है लाओत्से, "जब आदमी जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है।"

सभी के घरों में बच्चे जन्म लेते हैं। लेकिन तुमने कभी यह देखा कि बच्चे कोमल हैं, कमजोर हैं? सभी के घर में बूढ़े मरते हैं। तुमने कभी यह देखा कि बूढ़े कठोर और सख्त हैं? अगर तुमने यह देखा तो तुम्हें जीवन का एक बड़ा रहस्य हाथ आ गया कि अगर चाहते हो कि सदा जीवित रहो तो कोमल बने रहना। किसी भी कारण से सख्त मत हो जाना। क्योंकि सख्ती हर हालत में मौत की खबर है।

और तुम्हें हजार तरह की सख्तियों ने घेर लिया है। फिर तुम तड़फड़ाते हो। और फिर तुम कहते हो, जीवन कहां है? अपने हाथ मरते हो, आत्मघात करते हो। क्योंकि सख्त होते चले जाते हो। और फिर पूछते हो, जीवन कहां? फिर पूछते हो, शांति नहीं। फिर पूछते हो, आनंद नहीं। फिर पूछते हो, जीवन की पुलक खो गई; नृत्य खो गया; काव्य नहीं। होगा कैसे? तुम सख्त हो, और सख्त बहुत-बहुत आयाम से हो।

और तुम्हारी सारी दीक्षा-शिक्षा तुम्हें सख्त बनाने की है। हिंदू कहते हैं, मजबूती से हिंदू हो जाओ, सख्त हिंदू। मुसलमान समझाते हैं, कठोर मुसलमान। कोई तुम्हें डिगा न सके; पत्थर की चट्टान हो जाओ। ईसाई सिखाते हैं कि चाहे मर जाना, मगर अपना सिद्धांत कभी मत छोड़ना। और तुम ऐसे लोगों की बड़ी प्रशंसा करते हो कि कितना दृढ़ आदमी है! लेकिन तुम्हें पता है कि दृढ़ता यानी सख्ती! सख्ती यानी मौत!

लाओत्से बड़ा छोटा सा तथ्य पकड़ रहा है। पर यह बड़ी खुली आंखों से देखी गई बात है। देखता है, "जब आदमी जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है; मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है। जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं; और जब वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं। इसलिए कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं, और कोमलता और मृदुता जीवन के साथी हैं।"

यह किसी शास्त्र का वचन नहीं है। ऐसा तुमने किसी शास्त्र में लिखा देखा है? किसी उपनिषद में, किसी वेद में, किसी बाइबिल में, किसी कुरान में यह वचन है? अगर तुम खोजने चलोगे तो पाओगे, इससे विपरीत वचन तुम्हें सब शास्त्रों में मिल जाएंगे। यह वचन तो तुम्हें केवल जीवन के शास्त्र में मिलेगा। इसलिए लाओत्से बड़ा ताजा है--सुबह की ओस की भांति, रात के चांद-तारों की भांति, वृक्षों में आई नयी कोंपलों की भांति। एकदम ताजा है; जीवन से सीधी खबर ला रहा है। उसका संदेश जीवंत है। वह किसी शास्त्र को सिद्ध करने में नहीं लगा है। वह सिर्फ इतना कह रहा है कि जरा जीवन को गौर से देखो, और कुंजियां तुम्हें मिल जाएंगी।

तुमने अगर कुंजियां खोई हैं तो कहीं और नहीं, शास्त्रों में खो दी हैं। कोई हिंदू होकर बैठ गया है, कोई मुसलमान होकर बैठ गया है। दोनों मर गए। जिंदा आदमी कहीं हिंदू होता है? जिंदा आदमी कहीं मुसलमान

होता है? जिंदा आदमी कहीं जैन होता है? जिंदा आदमी किसी संप्रदाय में हो कैसे सकता है? क्योंकि संप्रदाय तो मरा हुआ रूप है धर्म का। जिस धर्म का प्राण जा चुका वह संप्रदाय है। जहां से आत्मा निकल चुकी और लाश पड़ी रह गई, वह संप्रदाय है।

कभी जैन जीवित था जब महावीर जिंदा थे। तुम्हारे कारण जैन जीवित नहीं था, वह महावीर के कारण जीवित था। फिर महावीर की सुगंध गई, महावीर की लाश को तो तुम दफना आए; लेकिन महावीर के शब्दों की लाश को तुम ढो रहे हो। जो तुमने महावीर के शरीर के साथ किया था वही तुम्हें महावीर के शब्दों के साथ भी करना था, क्योंकि शब्द भी लाश हैं। सत्य तो निःशब्द है। वह जब महावीर उन शब्दों को बोलते थे तब उसमें जीवन था। क्योंकि भीतर निःशब्द से वे शब्द आते थे। भीतर के मौन से उनका जन्म होता था। भीतर के बोध से सिक्त थे वे, तरोताजा थे। अभी-अभी बगीचे से तोड़ा गया फूल था। अभी-अभी, क्षण भी न हुआ था, तोड़ा था और तुम्हें दिया था महावीर ने। लेकिन तुम्हारे हाथों में फूल कितनी देर जिंदा रहेगा? तोड़ते ही फूल की मृत्यु शुरू हो गई। थोड़ी-बहुत देर हरियाली रहेगी; वह भी थोड़ी देर में खो जाएगी। और जब महावीर खो जाएंगे, बगीचा खो जाएगा, जहां से फूल आते थे वह स्रोत खो जाएगा। तुम मुर्दा उन फूलों को लिए चलते रहोगे।

बाइबिलों में तुमने देखा होगा लोग फूलों को रख देते हैं। फिर फूल सूख जाते हैं; धब्बे छूट जाते हैं बाइबिल के पन्नों पर थोड़े से फूल के रंग के। एक मुर्दा फूल रखा रह जाता है, एक याददाश्त फूल की कि कभी जीवित था।

बाइबिल में रखा यह फूल ही मुर्दा नहीं है, बाइबिल में रखे शब्द भी इतने ही मुर्दा हैं। सिर्फ याददाश्त हैं कि कभी जीवन उनमें था, सिर्फ स्मृतियां हैं, पदचिह्न हैं। नदी तो खो गई है सागर में, सिर्फ सूखे तट, रेत का फैलाव छूट गया है। उससे खबर मिलती है कि कभी यहां नदी थी। पर नदी अब वहां है नहीं।

संप्रदाय मृत घटना है। इसलिए सांप्रदायिक आदमी को तुम बहुत सख्त पाओगे। और धार्मिक आदमी को तुम सदा कोमल पाओगे। इससे तुम पहचान कर लेना। धार्मिक आदमी सुनम्य होगा। तुम उसे विनम्र पाओगे। वह झुकने को राजी होगा; वह दूसरे को समझने को राजी होगा। वह नये सत्यों को जगह देने को राजी होगा। अगर तुम नया आकाश दिखाओगे तो वह आंख नहीं बंद कर लेगा; वह अपने पुराने आकाश से नये आकाश को जोड़ कर और बड़े आकाश का मालिक हो जाएगा। तुम उसे अगर नया सत्य दोगे तो वह यह नहीं कहेगाः यह मैं नहीं मान सकता, क्योंकि यह मेरे शास्त्र में नहीं है! शास्त्र कितने छोटे हैं; सत्य कितना बड़ा है। सत्य किसी शास्त्र में कभी पूरा नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति हमेशा सुनम्य होगा; वह छोटे बच्चे की भांति होगा।

लाओत्से कहता है, कोमल और कमजोर। और यहीं सारा राज है। कोमलता तो तुम भी चाहोगे, लेकिन कमजोरी तुम न चाहोगे। और कोमलता सदा कमजोरी के साथ होती है। कमजोरी तुम नहीं चाहते, इसलिए तुम सख्त होना चाहते हो। क्योंकि सख्ती हमेशा ताकत के साथ होती है। गणित सीधा है कि आदमी क्यों सख्त होना पसंद करता है। क्योंकि सख्त होने में ताकत मालूम पड़ती है, और कोमल होने में कमजोरी मालूम पड़ती है।

लेकिन लाओत्से यह कहता है कि जीवन ही कमजोर है; सिर्फ मौत ताकतवर है।

तुम मरे हुए आदमी को मार सकते हो? कोई उपाय ही न रहा। तुम मरे हुए आदमी के साथ क्या कर सकते हो? मरे हुए आदमी को बदल सकते हो? अगर वह हिंदू था तो तुम उसको मुसलमान बना सकते हो? कैसे बनाओगे? मरे हुए आदमी के साथ तुम कुछ भी नहीं कर सकते। वह इतना सख्त हो गया, उसकी दृढ़ता का

कोई अंत नहीं है। उसकी ताकत की कोई सीमा नहीं है। तुम लाख सिर पटको, तुम अंधे आदमी के हृदय तक आवाज न पहुंचा सकोगे, मरे हुए आदमी तक आवाज न पहुंचा सकोगे। जीवित आदमी निश्चित ही कमजोर है। जीवन का लक्षण कमजोर है। कमजोरी बड़ी गहन बात है। कमजोर का इतना ही अर्थ हो सकता है कि जो टूट सकता है, जो मिट सकता है, जो खो सकता है।

फूल उगता है; पास ही एक चट्टान पड़ी होती है। कल भी पड़ी थी, परसों भी पड़ी थी। कल भी पड़ी रहेगी, परसों भी पड़ी रहेगी। फूल सुबह उगा है, सांझ खो जाएगा। इसलिए क्या तुम कहोगे कि चट्टान फूल से श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्यादा मजबूत है? फूल को चाहो तो हाथ में मसल दो, और मिट्टी हो जाएगा। चट्टान को तोड़ना इतना आसान नहीं। शायद चट्टान को तोड़ने में तुम खुद ही टूट जाओ। और फूल को तुम्हें मसलने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ समय की बात है; सुबह उगा है, सांझ अपने से ही गिर जाएगा। लेकिन फूल के पास जीवन है। और फूल के पास एक सौंदर्य है। माना घड़ी भर को है, लेकिन है। और इसीलिए फूल कमजोर है, क्योंकि उसके पास कुछ है जो खो सकता है। चट्टान के पास कुछ भी नहीं है जो खो सके। ध्यान रखना, जिसके पास कुछ है वह कमजोर होगा, और जिसके पास कुछ भी नहीं है वह मजबूत होगा। और जितनी तुम्हारी भीतर की संपदा बढ़ती जाएगी, तुम उतने कमजोर होते जाओगे। क्योंकि उस संपदा के खोने की उतनी ही संभावना बढ़ती जाएगी।

बुद्ध से ज्यादा कमजोर आदमी तुम न पा सकोगे। लाओत्से से कमजोर आदमी तुम न पा सकोगे। क्योंकि वे कोमल हैं, और जीवन की महा संपदा के मालिक हैं। एक फूल नहीं खिला है बुद्ध और लाओत्से में, हजारों फूल खिले हैं। जिसके पास है, उसके पास ही तो खोने की संभावना होती है। जिसके पास है ही नहीं, वह खोएगा क्या?

मैंने सुना है। जापान में एक फकीर हुआ। पुरानी कहानी है कि सम्राट जब गांव के चक्कर लगाते थे रात में। सम्राट चक्कर लगा रहा था राजधानी का, कई बार उसने देखा कि वह फकीर हमेशा उसे जागा मिला। वह एक वृक्ष के नीचे या तो बैठा रहता, या खड़ा रहता, या चलता रहता। लेकिन जागा मिला। कभी गया--आधी रात गया, सुबह गया, सांझ गया--जब भी जाकर देखा, सारी बस्ती भला सो गई हो, वह फकीर जागा हुआ था। सम्राट बड़ा हैरान हुआ। उसने एक दिन, उसकी उत्सुकता न रुक सकी तो उसने पूछा कि मैं एक सवाल पूछना चाहता हूं। बहुत बार यहां से निकलता हूं, तुम पहरा किस चीज का दे रहे हो? क्योंकि सूखे रोटियों के टुकड़े पड़े देखे मैंने। टूटा-फूटा बरतन है। कोई चुरा कर ले जाने की भी चेष्टा न करेगा। फटी गुदड़ी है। जराजीर्ण वस्त्र हैं। तुम्हारे पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता, जिस पर तुम पहरा दे रहे हो। तुम पहरा किस चीज का दे रहे हो?

वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, कुछ है जो भीतर है। और जब से वह पैदा हुआ है तब से खोने का डर भी पैदा हो गया। मैं बड़ा कमजोर और कोमल हूं। भीतर कोई चीज खिल रही है, जैसे एक कली खिल रही हो। अब तक तो बंजर था तुम्हारे जैसा ही; मजे से सोता था। कुछ था ही नहीं; खोने को कोई डर ही न था; एक रेगिस्तान था। अब एक छोटा सा मरूद्यान पैदा हो रहा है। अब भय लगता है। अब हाथ-पैर कंपते हैं। अब डर लगता है कि जो हुआ है कहीं वह न न हो जाए। और घटना इतनी कोमल है और इतनी सूक्ष्म है कि जरा भी चूक गया तो खो जाएगी, यह पक्का है। फूल अभी पक्का हाथ में आया भी नहीं है, सिर्फ आभास मिलने शुरू हुए हैं।

जब तुम ध्यान करने उतरोगे तब तुम्हें पता लगेगा कि भीतर एक फूल खिलना शुरू होता है। तब तुम्हारा एक-एक कदम सम्हल कर पड़ने लगेगा। तब तुम एक-एक शब्द होश से बोलोगे; क्योंकि तुम डरोगे, तुम्हारा ही

कोई शब्द तुम्हारे ही प्राणों में उठती हुई नयी संभावना को नष्ट न कर दे। तब तुम क्रोध न कर सकोगे; इसलिए नहीं कि तुम दूसरों पर करुणावान हो गए हो, बल्कि अब तुम्हारे पास एक संपत्ति है जो क्रोध की आग में जल सकती है, झुलस सकती है। तुम झगड़ा न करोगे। तुम विवाद में न पड़ोगे। क्योंकि तुम जानते हो, तुम्हारे पास कुछ बचाने योग्य है जो विवाद में चूक सकता है, नष्ट हो सकता है।

कुछ बहुमूल्य जब पैदा होता है तो तुम कमजोर हो जाते हो, इसको ध्यान में रखना। जैसे कि स्त्री जब गर्भवती होती है और एक नया जीवन उसके गर्भ में होता है तब कमजोर हो जाती है। लेकिन गर्भवती स्त्री से ज्यादा सुंदर स्त्री कहीं होती ही नहीं। और गर्भवती स्त्री के चेहरे पर जैसे सौंदर्य की आभा प्रकट होती है वैसी आभा इस स्त्री के चेहरे पर भी पहले न थी। क्योंकि गर्भवती स्त्री मरूद्यान हो रही है; पहले मरुस्थल थी। अब जीवन का उसमें फूल लग रहा है। लेकिन तब वह कोमल हो जाती है। तब वह पैर भी सम्हाल कर चलती है; उठती है तो सम्हाल कर उठती है। कुछ है जो बचाने योग्य है। उससे भी ज्यादा मूल्यवान उसमें कुछ है। अपने जीवन को खोकर भी, एक नये जीवन का सूत्रपात हो रहा है, उसे बचाना है। एक फूल खिल रहा है जो किसी भी क्षण मुर्झा सकता है।

इस दुनिया में तुम चट्टानों को ताकतवर पाओगे, फूलों को कमजोर। इससे एक बड़ी भयंकर स्थिति पैदा होती है। वह स्थिति यह है कि कहीं तुम चट्टान न होने की आकांक्षा कर लो। माना कि चट्टान मजबूत है, लेकिन मुर्दा है। उसकी मजबूती को क्या करोगे? उसका मुर्दापन तुम्हें भी मार डालेगा। उस चट्टान को तोड़ने न तो शैतान बच्चे आएंगे, उस चट्टान को मिटाने न तो पशु-पक्षी आएंगे, उस चट्टान को न तो तोड़ने माली आएगा, उस चट्टान को तोड़ने कोई भी नहीं आएगा। बड़ी सुरक्षित है चट्टान। लेकिन उस सुरक्षा का तुम करोगे क्या? वह कब्र की सुरक्षा है।

जीवन तो कोमल है, और जीवन कमजोर है। और जब तक तुम कोमल और कमजोर होने को राजी हो तभी तक तुम जीवन के धनी रहोगे। जिस दिन तुम सख्त और ताकतवर हुए उसी दिन तुम्हारे हाथ से जीवन की धारा सूखनी शुरू हो गई। क्योंकि केवल मृत्यु ही सख्त और शक्तिशाली हो सकती है। और तुम सब शक्तिशाली होना चाहते हो। इसलिए तुम कब्रें बन गए हो।

धार्मिक व्यक्ति कमजोर होना चाहता है। यह कमजोर शब्द तुम्हारे मन में तो बड़ी निंदा से भरा है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति के लिए यही जीवन की सबसे बड़ी गहरी संपदा है कि वह कमजोर होना चाहता है। जब वह घुटने टेकता है और प्रार्थना के लिए आकाश की तरफ सिर उठाता है तब वह एक छोटे बच्चे से भी ज्यादा कमजोर है। वह कंपता है। उसके शब्द तुतला कर निकलते हैं। परमात्मा से क्या बोले? रोता है। घुटने टेक कर झुका हुआ बैठा व्यक्ति जो प्रार्थना में लीन है वह फिर से छोटा बच्चा हो गया है। उसके भीतर एक नये बच्चे का जन्म हो रहा है। उसको ही हम द्विज कहते हैं; जब तुम्हारे भीतर ऐसे कमजोर नये कोमल बच्चे का जन्म फिर से हो जाए तो तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ। तब तक तुम मरुस्थल थे, अब तुम अपने को ही जन्म देने की संभावना से भरे। अब तुम्हारे भीतर एक गर्भ का सूत्रपात हुआ जिससे तुम्हारा शाश्वत रूप, सनातन रूप प्रकट होगा।

लाओत्से ने बात पकड़ ली है। कोमलता तो तुम भी चाहोगे, लेकिन कमजोरी नहीं चाहते। इसी से उपद्रव है। और कोमलता हमेशा कमजोर होगी। कोमलता कहीं सख्त हो सकती है?

तो तुम हर हालत में जब भी शक्ति चाहते हो--और तुम शक्ति चाहते हो। नीत्शे कहता है कि आदमी के भीतर एक ही आकांक्षा, दि विल टु पावर, शक्ति की आकांक्षा है। नीत्शे और लाओत्से दो विरोधी छोर हैं। दोनों को साथ-साथ पढ़ना बड़ा उपयोगी है। क्योंकि तब तुम चीजों को ठीक उनकी अति में पाओगे।

नीत्शे कहता है, शक्ति की आकांक्षा एकमात्र आत्मा है। और नीत्शे कहता है, मैंने फूल देखे, चांद-तारे देखे, झरने देखे, जल-प्रपात देखे, लेकिन मुझे सौंदर्य न मिला। सौंदर्य तो मुझे तब दिखाई पड़ा जब मैंने सैनिकों की एक टुकड़ी को कवायद करते देखा, और उनकी संगीनों पर चमकता हुआ सूरज देखा, और उनके पैरों की ताकत देखी, और जो छंद पैदा हो रहा था उनके चलने से, और उनकी संगीनों पर आई हुई सूरज की किरणों की चमक से जो रूप पैदा हो रहा था, उस क्षण मैंने सौंदर्य जाना।

यह सौंदर्य बड़ा सख्त सौंदर्य है। असल में, इसको जानने के लिए बड़ा पथरीला हृदय चाहिए। कोई आश्चर्य नहीं कि नीत्शे पागल होकर मरा। और कोई आश्चर्य नहीं है कि लाओत्से परम ज्ञानी होकर मरा।

शक्ति की आकांक्षा विक्षिप्तता में ले जाएगी। और तुम सब तरफ से शक्ति चाहते हो। धन इकट्ठा करते हो तो इसीलिए क्योंकि धन शक्ति का माध्यम है। जितना ज्यादा धन होगा उतनी शक्ति होगी। अगर तुम्हारी जेब में लाखों रुपये हैं तो इन लाखों रुपयों के कारण तुम बड़े शक्तिशाली हो। तुम जो चाहो करो। स्त्रियों को खरीदना हो खरीदो। नौकरों को खरीदना हो खरीदो। धन ने बड़ी सुविधा बना दी है। बिना धन के आदमी बहुत शक्तिशाली नहीं हो सकता। जब दुनिया में धन नहीं था और विनिमय की मुद्रा नहीं थी, तो लोग इतने शक्तिशाली नहीं हो सकते थे जितने धन के द्वारा हो गए। इसीलिए तो धन का इतना मूल्य हो गया लोगों के मन में। सब कुछ धन मालूम होता है।

तुम्हारी जेब में एक रुपया पड़ा है तो एक रुपया नहीं पड़ा है, हजारों चीजें पड़ी हैं। तुम चाहो तो एक आदमी को कहो, पांव दाबो! तो वह पैर दाबेगा। यह उसमें पड़ा है रुपये में। तुम एक स्त्री को कहो कि चलो प्रेम करो! वह प्रेम करेगी। यह पड़ा है उस एक रुपये में। भूखे हो, भोजन पड़ा है; प्यासे हो, पानी पड़ा है। एक रुपये में कितनी चीजें पड़ी हैं! इनको तुम बिना रुपये के कैसे खीसे में रखते? इसलिए रुपया प्रतीक हो गया शक्ति का। उसमें बड़ी चीजें छिपी हैं। तुम जो चाहो, जब चाहो, उसी वक्त होगा। इसलिए सब छोड़ो फिक्र, सिर्फ रुपया कमाओ।

शक्ति का खोजी कहता है कि रुपया कमाओ। फिर सब पीछे अपने आप चला आएगा।

जीसस का वचन हैः फर्स्ट यी सीक दि किंगडम ऑफ गॉड, देन आल एल्स विल कम आटोमेटिकली बाइ इटसेल्फ। पहले खोज लो परमात्मा का राज्य और पीछे सब अपने आप चला आएगा।

शक्ति का पुजारी कहता हैः फर्स्ट यी सीक दि किंगडम ऑफ दि रूपी, देन एवरी थिंग विल फालो आटोमेटिकली। पहले रुपये का राज्य खोज लो, और तब सब अपने आप चला आएगा। और कुछ खोजने की जरूरत नहीं। पद चाहिए, पद मिलेगा; प्रतिष्ठा चाहिए, प्रतिष्ठा मिलेगी। रुपये का खोजी कहता है, धर्म चाहिए? वह भी मिलेगा। मंदिर बना देना, धर्मशाला बना देना, दान कर देना। रुपया होगा तो सब मिलेगा।

शक्ति का खोजी रुपया खोजता है, या राजनीति खोजता है। क्योंकि जितने बड़े पद पर होगा उतने हजारों लोग उसके हाथ में होंगे; उनका जीवन और मरण उसके हाथ में होगा। आखिर राष्ट्रपति होने का क्या सुख होता होगा? क्योंकि राष्ट्रपति होने के लिए लोग कैसे दुखस्वप्न से गुजरते हैं! कैसा कष्ट पाते हैं! हजार तरह की गालियां, घेराव, हजार तरह के उपद्रव, लेकिन राष्ट्रपति होकर रहते हैं। और जब राष्ट्रपति हो जाते हैं तो उनको मिलता क्या है? मिलती है ताकत। अगर चालीस करोड़ का मुल्क है तो चालीस करोड़ लोगों की जिंदगी और मौत उनके हाथ में है। युद्ध में उतार दें मुल्क को तो लाखों लोग मर जाएंगे। युद्ध को बचा दें तो लाखों लोग बच जाएंगे। बड़ी ताकत है।

शक्ति का खोजी सभी तरह से शक्ति खोजता है।

अगर वह विवाह भी करता है तो एक पत्नी पर ताकत के लिए। अगर पत्नी विवाह करती है तो एक पति को गुलाम बनाने के लिए। अगर ऐसा आदमी बच्चे भी पैदा करता है तो सिर्फ ताकत के लिए। क्योंकि बच्चों से ज्यादा निरीह तुम कहां पा सकोगे किसी को! तुम्हारे ही बच्चे, जितनी मालकियत तुम उन पर कर सकते हो, किसी और पर दुनिया में न कर सकोगे। अगर तुम बहुत बड़े समाज के मालिक नहीं हो सकते तो कम से कम एक छोटे परिवार के मालिक तो हो सकते हो। तानाशाह तुम्हारे लिए स्टैलिन जैसा बनना मुश्किल होगा तो अपने-अपने घर में तो हर आदमी तानाशाह हो सकता है। वहां तो तुम्हारी आज्ञा चलेगी।

लेकिन जितनी तुम्हारे पास ताकत आती है, ध्यान रखना, उतने ही तुम मरते चले जाते हो, उतने ही तुम सख्त हो जाते हो। तुम्हारी नम्यता खो जाती है; तुम झुक नहीं सकते। धनपति कैसे झुकेगा? अकड़ा रहता है। त्यागी कैसे झुकेगा? अकड़ा रहता है।

ऐसा हुआ। एक जैन मुनि हैं आचार्य तुलसी। बहुत वर्ष पहले उन्होंने एक सम्मेलन किया। मुझे भी बुला भेजा। उन दिनों मोरारजी देसाई सत्ता में थे। वे भी आए। स्वभावतः, आचार्य तुलसी ऊंचे स्थान पर बैठे, सबको नीचे बिठाया। मोरारजी को बात खल गई। मोरारजी भी कोई छोटे महात्मा तो हैं नहीं। दोनों पद के आकांक्षी। अन्यथा निमंत्रित किया था लोगों को तो आचार्य तुलसी को साथ ही बैठना था। अतिथि थे ये लोग, और बुलाए गए थे। लेकिन वे अपने ऊंचे पद पर बैठे; सबको नीचे बिठाया। और किसी को तो नहीं अखरा, लेकिन मोरारजी को कष्ट हो गया। तो मोरारजी ने पहला ही सवाल पूछा कि यह जो गोष्ठी बुलाई गई है इसको हम इस सवाल से ही शुरू करें; मैं आपसे पूछता हूं कि आप ऊपर क्यों बैठे हैं और हम लोग नीचे क्यों बैठे हैं?

दो पदाकांक्षियों की मुठभेड़ हो गई। तुलसी भी थोड़े बेचैन हुए। जवाब भी कुछ न सूझा कि अब जवाब क्या दें! बात ही कोई सिद्धांत की होती तो समझा देते; जीवन की आ गई तो मुश्किल है। इधर-उधर देखने लगे। इतना ही कह सके कि चूंकि परंपरा है कि गुरु ऊपर बैठे। तो मोरारजी ने कहा, आप हमारे गुरु नहीं हैं। आप जिनके गुरु हों उनके साथ ऊपर बैठें; हम तो मेहमान हैं, और समानता की अपेक्षा रखते हैं।

मैंने देखा यह तो बात बिगड़ गई, और अब आगे कुछ चर्चा का कोई उपाय न रहा। तो मैंने आचार्य तुलसी को कहा कि अगर आप मुझे कहें तो मैं मोरारजी को जवाब दूं। और अगर मोरारजी मेरा जवाब सुनने को राजी हों तो। अन्यथा मेरे बोलने का कोई सवाल नहीं। तुलसी जी तो चाहते थे कोई झंझट टले। उन्होंने कहा, जरूर। मोरारजी ने कहा, ठीक है आप जवाब दें; जवाब चाहिए।

मैंने उनको पूछा कि पहली तो बात यह, प्रश्न से ही हम जवाब की खोज करें। आपको यह अखरा क्यों? तुलसी जी ऊपर बैठे हैं; छिपकली देखिए और ऊपर बैठी है; कौआ और ऊपर बैठा है। अब इनसे कोई झगड़ा करने जाएंगे? न छिपकली से कोई झगड़ा, न कौआ से। तुलसी जी से भी क्या झगड़ा? बैठे रहने दें। यह कष्ट क्यों? यह पीड़ा कहां हो रही है? आप भी ऊपर बैठना चाहते थे; उस आकांक्षा को चोट लगी है। और मैं आपसे यह पूछता हूं कि जहां तुलसी जी बैठे हैं अगर वहीं आप भी बिठाए गए होते तो आपने यह सवाल पूछा होता? हम सब नीचे होते, आप भी उनके साथ ऊपर होते, आपने यह सवाल पूछा होता? इसलिए आप यह मत कहिए कि हम नीचे क्यों बिठाए गए हैं; आप इतना ही कहिए कि मैं नीचे क्यों बिठाया गया हूं। हम में मैं को मत छिपाइए; मैं को सीधा करिए। और अगर आप अपने मैं को ठीक से समझ लें तो तुलसी जी के मैं को समझने में कोई अड़चन न रहेगी। आप दोनों एक ही रास्ते के यात्री हैं। आपको अखर रहा है कि नीचे क्यों बिठाया गया; उनको मजा आ रहा है कि मोरारजी को नीचे बिठा दिया। दोनों की भाषा एक है। सवाल उठता नहीं है। अगर हम जो नीचे बैठे हैं इस तरह बैठे रहें कि जैसे हमें नीचे बिठाया या नहीं बिठाया बराबर है, तुलसी जी का मजा

खो जाएगा नीचे बिठाने का। रस भी इसी में है कि भारत के वित्त मंत्री को नीचे बिठा दिया। और आपका कष्ट भी इसी में है कि भारत का वित्त मंत्री और नीचे बिठा दिया! आपका कष्ट और उनका सुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। या तो वे अपना सुख छोड़ें, नीचे आ जाएं। या आप अपना कष्ट छोड़ दें और नीचे बैठने को राजी हो जाएं।

पर आदमी के अंधेपन की कोई सीमा नहीं है। मोरारजी को तो फिर भी समझ में आया--इसीलिए मैं कई बार अनुभव करता हूं कि राजनीतिज्ञ भी उतने राजनीतिज्ञ नहीं होते जितने तुम्हारे साधु पुरुष होते हैं--मोरारजी ने तो कहा कि सोचेंगे इस बात पर, विचार करेंगे। और बात को लीपापोती करके दूसरी चर्चा शुरू की। जब सब विदा हो रहे थे और मैं विदा लेने लगा तुलसी जी से तो उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहा कि आपने अच्छा मुंहतोड़ जवाब दिया मोरारजी को। तब मैं बहुत चकित हुआ! यह जवाब मोरारजी को, तुलसी जी को नहीं? यह जवाब तो दोनों को था।

पदाकांक्षी त्याग से भी पद की ही तलाश करते हैं। महत्वाकांक्षी चाहे धन इकट्ठा करें, चाहे धन छोड़ें, हर हालत में पद की ही आकांक्षा काम करती रहती है।

मुझे अभी पिछले सप्ताह ही एक पत्र मिला है तीन साध्वियों का तुलसी जी की, कि चूंकि वे मेरी किताबें पढ़ती थीं इसलिए तुलसी जी ने उन्हें संघ से निष्कासित कर दिया। उन्होंने लिखा है कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गई हैं कि अब क्या करें। और उनका कहना यह है कि उनके आदेश के बिना हमने यह हिम्मत कैसे की कि आपकी किताबें पढ़ें!

तो यह कोई साधु होना न हुआ; यह तो सैनिक होने से भी बदतर हो गया। सैनिक को भी कम से कम इतनी स्वतंत्रता है कि वह कौन सी किताब पढ़ना चाहे पढ़े। लेकिन किताब पढ़ने के लिए भी परतंत्रता! वह भी पूछा जाना चाहिए; आज्ञा के अनुसार। और चूंकि मना किया गया था, फिर भी उन्होंने किताब पढ़ीं, उन्होंने उन्हें निकाल बाहर कर दिया। अब वृद्ध साध्वियां, जिन्होंने जीवन कुछ किया नहीं, कुछ करने का उपाय भी नहीं है। उनमें से एक तो बीमार है जो चल-फिर भी नहीं सकती, जिनका कोई परिवार नहीं। उन्हें ऐसा फेंक देना साधुता का लक्षण तो नहीं। गहन असाधुता छिपी है।

लेकिन महत्वाकांक्षी हमेशा असाधु होता ही है। उसकी आकांक्षा यह होती है कि मुझसे ऊपर कोई भी नहीं।

तुलसी जी मुझसे ध्यान के संबंध में समझना चाहते थे। तो उन्होंने कहा, हम बिल्कुल एकांत में बात करेंगे। पर मैंने कहा, क्या एकांत की जरूरत है! और लोग भी मौजूद हो सकते हैं। क्योंकि और सब बातें तो आपने सबके सामने मुझसे की हैं। उन्होंने कहा, नहीं, यह जरा गहन बात है, एकांत में ही करेंगे। और एकांत में करने का कुल कारण इतना कि तुलसी जी के अनुयायियों को अगर पता चल जाए कि तुलसी जी भी ध्यान के संबंध में किसी से पूछते हैं, इन्हें अभी ध्यान का पता नहीं, तो पद संकट में पड़ जाएगा।

न कभी ध्यान किया है, न कभी ध्यान के संबंध में कुछ जाना है। शास्त्रों को पढ़ कर पंडित हो गए हैं लोग; कुछ जाना नहीं है। शब्द में कुशल हैं, लेकिन स्वयं में कोई गति नहीं है। हो भी नहीं सकती। क्योंकि स्वयं में तो गति तभी होती है जब तुम कोमल और कमजोर होने को राजी हो।

शक्ति की आकांक्षा का अर्थ है, तुम दूसरे पर कब्जा करना चाहते हो। और अगर गौर से देखो, बहुत गौर से देखो, तो कमजोर आदमी ही दूसरे पर कब्जा करना चाहता है। अब तुम बड़ी जटिलता में पड़ोगे। और कमजोर होने को जो राजी है वही असली शक्तिशाली है। क्योंकि उसे कोई भय ही नहीं है। ठीक है, अगर

कमजोर और कोमलता जीवन का लक्षण है तो वह राजी है। वह मिटने को राजी है, लेकिन जीवन को खोने को राजी नहीं है। वह चट्टान होने के लिए तैयार नहीं है, वह फूल ही होने के लिए तैयार है। माना कि सांझ फूल गिर जाएगा, गिरेंगे। लेकिन जब तक फूल है तब तक फूल एक ऐसे अनंत को ला रहा है पदार्थ के जगत में, एक ऐसे सौंदर्य को उतार रहा है, रूप में उसे ला रहा है जिसका कोई रूप नहीं है। इतनी देर को सही, लेकिन जीवन की धड़कन अगर इतनी देर भी बजेगी, अगर वीणा जीवन की इतनी देर भी बजेगी तो बहुत है। एक क्षण भी बजेगी तो अनंत है। पत्थर की तरह अनंतकाल तक भी पड़े रहेंगे तो उसका कोई मूल्य नहीं है।

"आदमी जब जन्म लेता है, वह कोमल और कमजोर होता है। मृत्यु के समय वह कठोर और सख्त हो जाता है। जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं। और जब वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।"

जाओ, जीवन को देखो-परखो, और तुम लाओत्से की बात सही पाओगे। छोटे-छोटे पौधे बच जाते हैं, आंधी आती है, और बड़े-बड़े वृक्ष गिर जाते हैं। बड़े वृक्ष अकड़े खड़े हैं। अपनी ताकत से आंधी से लड़ना चाहते हैं। छोटे वृक्ष कमजोर हैं; लड़ते नहीं, सिर्फ झुक जाते हैं। आंधी आती है, चली जाती है, छोटे वृक्ष फिर खड़े हो जाते हैं। और बड़े वृक्ष गिर गए, फिर उनके उठने का कोई उपाय नहीं रह जाता। जब सख्त गिरता है, तो सिर्फ मरता है। जब कोमल गिरता है, कुछ अंतर नहीं पड़ता, फिर उठ कर खड़ा हो जाता है। कोमल नम्य है, लोचपूर्ण है; झुक सकता है। जितने तुम लोचपूर्ण हो उतने ही तुम जीवंत हो।

क्या तुम अपने सिद्धांतों में लोचपूर्ण हो? क्या तुम आस्तिक हो, और नास्तिक की बात भी शांति से सुन सकते हो? क्योंकि हो सकता है वह सही हो। अगर तुम लोचपूर्ण हो तो तुम्हारे भीतर ज्ञान की धारा जीवंत रहेगी। क्या तुम अपने विरोधी की बात उतनी ही शांति से सुन सकते हो जितनी तुम अपनी ही बात शांति से सुनते हो? अगर तुम सख्त हो तो तुम कहोगे कि नहीं, विरोधी की बात ही क्यों सुननी?

ऐसा शास्त्रों में लिखा है--हिंदुओं के शास्त्रों में भी, जैनों के शास्त्रों में भी। हिंदुओं के शास्त्रों में लिखा है कि अगर पागल हाथी तुम्हारा पीछा करता हो और जैन मंदिर पास हो जिसमें शरण लेकर तुम आत्म-रक्षा कर सकते हो, तो भी जैन मंदिर में मत जाना। पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में संकट के काल में शरण लेना भी पाप है। वही बात जैनों के शास्त्रों में भी लिखी है। बड़े सख्त लोग, पागलपन की सीमा पर सख्त। और ऐसे लोग कैसे जीवंत ज्ञान को उपलब्ध हो सकेंगे!

जीवन की धारा तो बड़ी कोमल है, लोचपूर्ण है। न तो सिद्धांतों में सख्त होना, न मान्यताओं में, न विश्वासों में सख्त होना। और तभी तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर ज्ञान प्रतिपल बढ़ता जाता है। जिस क्षण तुम सख्त होते हो वहीं ज्ञान का विकास रुक जाता है। अगर प्रतिपल ज्ञान को जन्म देना है तो उसका अर्थ हुआ, प्रतिपल ज्ञान का बालक जन्म लेगा; तुम लोचपूर्ण रहोगे। मरते दम तक लोचपूर्ण रहोगे; मरते दम तक तुम आग्रह न करोगे कि जो मैं कहता हूं वही सही है। तुम सदा यही कहोगे कि ऐसा मैंने जाना, पर अन्यथा भी सही हो सकता है; क्योंकि मैंने पूरा जीवन नहीं जाना। जीवन बड़ा है, मैं बहुत छोटा हूं। मैंने सागर का एक किनारा जाना; सभी किनारे ऐसे ही होंगे, कहना जरूरी नहीं है। कहीं चट्टानें होंगी, कहीं रेत का फैलाव होगा, कहीं वृक्ष होंगे, कहीं पहाड़ होंगे। सागर के किनारे अलग-अलग होंगे। हजार-हजार रूप होंगे। यही सागर होगा। मैंने जो जाना, जो कोना मैंने जाना, वह ऐसा है। और कोनों की मुझे कुछ खबर नहीं है। दूसरा भी ठीक होगा। तुमसे जो बिल्कुल विरोध में बोल रहा है वह भी ठीक हो सकता है, क्योंकि जीवन इतना बड़ा है कि सभी विरोधाभासों को अपने में समा लेता है।

जीवन की विराटता का अर्थ ही यही है। वहां सभी असंगतियां एक ही संगीत की लयबद्धता में खो जाती हैं। हेराक्लाइटस का वचन बहुत प्यारा है। हेराक्लाइटस कहता है, गॉड इ.ज समर एंड विंटर, डे एंड नाइट, लाइफ एंड डेथ, हंगर एंड सेटाइटी। ईश्वर सब है। ग्रीष्म भी वही है और शीत भी वही; और दिन भी वही, रात भी वही; हार भी वही, जीत भी वही; भूख भी वही, परितृप्ति भी वही।

तुमने किसी किनारे से जाना हो कि ईश्वर प्रकाश है, और कोई दूसरा आकर कहे कि ईश्वर महा अंधकार है, तो लड़ने मत खड़े हो जाना। क्योंकि ईश्वर दोनों है। अन्यथा महा अंधकार कहां होगा?

दुनिया के अधिक शास्त्रों में लिखा है ईश्वर प्रकाश है। पर जीसस जिस संप्रदाय में दीक्षित हुए और जिस साधना-पद्धति से उन्होंने परमात्मा को पाया उस संप्रदाय का नाम है इसेनीज। वे अब तो करीब-करीब खो गए। लेकिन उन्हीं के आश्रमों में जीसस का पालन-पोषण हुआ और जीसस बड़े हुए। उनके वचनों में लिखा हैः ईश्वर महा अंधकार है। और इसेनीज के पास अपने तर्क हैं। वह कहता है, अंधकार में जैसी शांति है वैसी प्रकाश में कहां? प्रकाश तो एक उत्तेजना है। इसलिए तुम अगर बहुत प्रकाश हो तो सो भी नहीं सकते। तो परम विश्राम कैसे कर सकोगे परमात्मा में? वह महा अंधकार है। और प्रकाश की तो हमेशा सीमा दिखाई पड़ती है; महा अंधकार की कोई सीमा नहीं। और परमात्मा असीम है। और प्रकाश को तो पैदा करो तब पैदा होता है, और ईंधन चुक जाने पर समाप्त हो जाता है। उसका आदि है, अंत है। अंधकार अनादि-अनंत है। न तो कोई पैदा करता, न कोई कभी बुझा पाया; सदा है।

इसेनीज की बात में भी अर्थ है। जो कहते हैं परमात्मा प्रकाश है, उनकी बात में भी अर्थ है। पर कुछ और दूसरे कोने से उनकी बात में अर्थ है। वे कहते हैं, परमात्मा प्रकाश है, क्योंकि परमात्मा के होते ही सब ऐसा ही साफ दिखाई पड़ने लगता है जैसा प्रकाश में। ठीक है बात। अंधकार में तो आदमी अंधा हो जाता है, प्रकाश में दिखाई पड़ता है, दर्शन होता है। अंधकार में तो भय लगता है, प्रकाश में निर्भय-अभय हो जाता है। उनकी बात में भी सत्य है। असल में, अगर तुम नम्य हो तो तुम्हें असत्य कहीं दिखाई ही न पड़ेगा। अगर तुम नम्य हो तो तुम्हें हर जगह सत्य दिखाई पड़ जाएगा। और अगर तुम्हें हर जगह सत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो ही तुमने जीवन का पाठ सीखा।

अकड़ से मत भर जाना, सख्त मत हो जाना, अन्यथा तुम मृत्यु को बुला रहे हो। लोचपूर्ण बने रहना मरने के आखिरी क्षण तक, और तुम मृत्यु को हरा दोगे। मृत्यु आएगी जरूर, लेकिन तुम्हें मार न पाएगी। क्योंकि मृत्यु केवल उसी को मार पाती है जो सख्त हो गया। मृत्यु आएगी जरूर, देह भी चली जाएगी; लेकिन तुम अछूते रह जाओगे। तुम्हें मृत्यु छू भी न पाएगी। तुम कमल जैसे रह जाओगे; मृत्यु का जल तुम्हें स्पर्श भी न कर पाएगा--अगर तुम लोचपूर्ण हो। अगर तुम सख्त हो तो ही मरोगे। सख्ती के कारण तुम मरते हो, तुम्हारे कारण नहीं। सख्ती की खोल तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है और कस देती है, और तुम मर जाते हो।

तो न तो संप्रदाय में, न सिद्धांत में, न शास्त्र में, किसी भी चीज में सख्त मत हो जाना। लेकिन सख्ती बड़े अनूठे ढंग से आती है। मुझे तुम सुनते हो, मुझे प्रेम करते हो। कोई मेरे खिलाफ बोलता हो, तुम तत्क्षण सख्त हो जाओगे। मरे! तुम गए! तुमने मुझसे जीवन न पाया, मौत पाई।

वह भी सही हो सकता है, लोचपूर्ण रहना। उसकी बात भी गौर से सुन लेना, और भी गौर से सुन लेना, जितना कि तुम मुझे प्रेम करने वाले की बात सुनते हो। क्योंकि मुझे प्रेम करने वालों से तुम्हारा मिलना ज्यादा होगा। तुम उनके बीच घूमोगे। उनसे तुम्हारी मैत्री होगी। लेकिन जो मुझे घृणा करता हो उसकी बात बहुत गौर से सुन लेना। क्योंकि वह एक दूसरा पहलू प्रकट कर रहा है। और सत्य बड़ा है। तुम यह मत कहना कि तुम गलत

हो। वह भी सही हो सकता है। उसकी बात इतने गौर से सुनना और कोशिश करना कि उसमें भी कुछ सत्य हो तो निकाल लो।

असल में, सत्य के खोजी को सत्य की खोज है। कहां से मिलता है, यह क्या देखना है? प्यासा पानी चाहता है। नदी का है कि कुएं का है कि नल से आता है कि वर्षा का है, क्या लेना-देना? प्यासे को पानी चाहिए। सत्य के प्यासे को सत्य की खोज है। वह अपना द्वार बंद नहीं करता, सब तरफ से खुला रहता है। और जो भी आए, सत्य का खोजी उसमें से अपने सत्य के पानी को खोज लेता है। और उसे धन्यवाद दे देता है।

और अगर तुम, जो मुझे गाली दे रहा हो, उसको भी धन्यवाद दे सको, तो तुमने उसे भी बदलने की शुरुआत कर दी। वह तुम्हें न मार पाया; तुमने उसे जीवन देना शुरू कर दिया। क्योंकि वह चौंकेगा। वह भरोसा न कर सकेगा। तुमने उसे हिला दिया। तुम मेरे कारण कोई संप्रदाय अपने आस-पास मत बना लेना। तुम मुझे प्रेम करना, लेकिन मुझे तुम्हारा कारागृह मत बना लेना। और प्रेम मंदिर भी बन सकता है और कारागृह भी। तुम्हारे हाथ में है। अगर प्रेम लोचपूर्ण बना रहे तो मंदिर है और अगर लोच खो जाए तो कारागृह है। और फासला बहुत बारीक है। और एक-एक कदम सम्हल कर चलोगे तो ही बच पाओगे। अन्यथा संप्रदाय से बचना बहुत मुश्किल है; करीब-करीब असंभव है। क्योंकि जिसको भी हम प्रेम करते हैं, बस हम प्रेम करते हैं और अंधे हो जाते हैं।

और तुम दूसरे अंधों को पहचान लोगे, लेकिन अपना अंधापन तुम्हें पहचान में न आएगा। तुम पहचान लोगे कि यह आदमी पागल है महावीर के पीछे, यह आदमी पागल है बुद्ध के पीछे, यह आदमी पागल है कृष्ण के पीछे, तुम दूसरों को पहचान लोगे। लेकिन दूसरों को पहचानने से कुछ सार नहीं है। अपना ख्याल रखना कि तुम कहीं किसी संप्रदाय में तो नहीं बंध जाते हो! तुम कहीं मेरे शब्दों को शास्त्र तो नहीं बना रहे हो!

इसलिए मैं रोज अपने भी विरोध में बोले चला जाता हूं, ताकि तुम शास्त्र बना ही न पाओ। जब तुम शास्त्र बनाने बैठोगे, तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। मैंने करीब-करीब सब बातें कह दी हैं जो कही जा सकती थीं। कृष्ण ने तो एक पहलू कहा है, इसलिए शास्त्र बन सकता है। लाओत्से ने एक पहलू कहा है, शास्त्र बन सकता है। कृष्णमूर्ति, जो कि शास्त्र के बिल्कुल विपरीत हैं, उनका शास्त्र निश्चित बनेगा। क्योंकि उनसे ज्यादा कंसिस्टेंट और संगत आदमी खोजना मुश्किल है। चालीस साल में एक बात के सिवा उन्होंने कुछ कहा ही नहीं है। वे उसी को दोहरा रहे हैं। मेरा तुम शास्त्र न बना सकोगे, क्योंकि जो भी कहा जा सकता है वह सब मैंने कह दिया है। इसकी बिल्कुल मैंने फिक्र नहीं की है कि मैं अपना ही विरोध कर रहा हूं, कि आज कुछ, कल कुछ। जब तुम शास्त्र बनाने बैठोगे, तुम पागल हो जाओगे। तुम मुझमें से सिद्धांत निकाल ही न सकोगे। मैंने इंतजाम कर दिया पूरा।

लेकिन प्रेम इतना अंधा है कि मेरे इंतजाम को तोड़ सकता है। क्योंकि जब तुम किसी आदमी को प्रेम करते हो तो तुम उसका विरोध देख ही नहीं पाते, उसका विरोधाभास भी नहीं देख पाते। वह खुद अपने ही सिद्धांतों के विपरीत बोल रहा है, यह भी नहीं देख पाते। तुम भरोसा रखते हो कि वह ठीक ही बोल रहा होगा, संगत ही बोल रहा होगा; सब ठीक ही होगा। क्योंकि प्रेम ठीक तो पहले मान लेता है, फिर विचार करता है। डर है कि तुम शास्त्र बना लो। उससे मुझे कोई नुकसान नहीं है। मेरा उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। लेकिन तुम मर जाओगे। शास्त्रों के नीचे दब कर बहुत लोग मर चुके हैं। तुम मत मरना। उसका होश रखना।

"जब वस्तुएं और पौधे जीवंत हैं, तब वे कोमल और सुनम्य होते हैं; और जब वे मर जाते हैं, वे भंगुर और शुष्क हो जाते हैं।"

इसलिए पंडितों को तुम सदा शुष्क पाओगे, तुम वहां रसधार न पाओगे। तुम वहां तर्क तो बहुत पाओगे, काव्य तुम्हें बिल्कुल न मिलेगा। पंडित बिल्कुल शुष्क होगा। क्योंकि पंडित से ज्यादा मुर्दा और क्या होता है? बुद्ध में तो एक काव्य है; शब्दों में एक लय है, एक सौंदर्य है। तुम पाओगे कि शब्द किसी भीतर की आर्द्रता से आ रहे हैं, गीले हैं। अभी भी ओस सूखी नहीं है। लेकिन पंडित के शब्द बिल्कुल सूखे हैं। तुम अगर बुद्ध के शब्दों को जलाओगे तो धुआं ही धुआं पैदा होगा। बहुत गीले हैं, प्रेम से भरे हैं। लेकिन अगर तुम पंडित के शब्दों को जलाओगे तो अग्नि बिल्कुल ठीक से जलेगी; जरा भी धुआं पैदा न होगा। बिल्कुल सूखे हैं; भीतर कोई रसधार ही नहीं है। उधार हैं; भीतर से आए ही नहीं हैं, जीवन में डूबे ही नहीं हैं। उन्होंने जीवन का पानी जाना ही नहीं है, केवल तर्क की सूखी धूप जानी है।

ख्याल रखना, जब भी तुम कुछ बोलो वह तुम्हारे पांडित्य से न आए। अगर पांडित्य से आता है, बेहतर है बिना बोले रह जाना, मत बोलना। जब भी कुछ बोलो तो ध्यान रखना, वह तुम्हारे हृदय से डूब कर आए। और जब भी वह हृदय से डूब कर आएगा, तुम पाओगे उसमें रस है। वह दूसरे को भी भिगाएगा, वह दूसरे को भी अपने में डुबा लेगा। पंडित दूसरे को हो सकता है कनविंस भी कर दे, कोई सिद्धांत सिद्ध कर दे दूसरे के सामने, लेकिन कभी किसी दूसरे को कनवर्ट नहीं कर पाता। वह कितना ही समझा दे, तर्क दे दे; दूसरा शायद तर्क का उत्तर भी न दे पाए, कसमसाए, लेकिन उत्तर न हो पास तो मानना पड़े कि ठीक है, भाई ठीक है; लेकिन कभी किसी के दूसरे के हृदय को रूपांतरित नहीं कर पाता पंडित। क्योंकि जब अपने ही हृदय से शब्द न आते हों तो दूसरे के हृदय तक नहीं पहुंच सकते। जितनी गहराई से शब्द आता है उतनी ही गहराई तक दूसरे में जाता है। खोपड़ी से आता है, खोपड़ी तक जाता है; कंठ से आता है, कंठ तक जाता है; हृदय से आता है, हृदय तक जाता है; अगर आत्मा से आता है, आत्मा तक जाता है। बस उतनी ही गति होती है दूसरे में, जितनी गहराई से आता है। वही अनुपात।

जब भी कोई चीज मर जाती है तो शुष्क हो जाती है। तुमने मरे आदमी की लाश देखी, कैसी अकड़ जाती है! वैसे ही पंडित के शब्द हैं, वैसे ही सांप्रदायिक की मान्यताएं हैं, विश्वास हैं।

"कठोरता और दुर्नम्यता मृत्यु के साथी हैं।"

तुम मौत से तो बचना चाहते हो और कठोरता को साधते हो। तुम मौत से तो बचना चाहते हो और अनम्यता को साधते हो। तो तुम एक हाथ से जो बचाना चाहते हो उसी को दूसरे हाथ से मिटाते हो। तुम्हारी गति ऐसी ही है जैसा पश्चिम में अभी मस्तिष्क के सर्जन एक नतीजे पर पहुंचे हैं। वह नतीजा यह है कि आदमी के भीतर दो मस्तिष्क हैं, और दोनों बीच में जुड़े हैं। अगर उनको दोनों को बीच से काट दिया जाए तो एक आदमी दो आदमियों की तरह व्यवहार करने लगता है। तो उसका बायां हाथ किसी चीज को उठाता है, लेकिन दाएं हाथ को पता नहीं चलता। दायां उसको फिर उठा कर वहीं के वहीं रख देता है। जैसे दो आदमी। और बड़ी बेबूझ स्थिति पैदा हो जाती है। वह एक हाथ से खाना खाता है, क्योंकि एक मस्तिष्क अनुभव कर रहा है भूख का; और दूसरे हाथ से वह हाथ धो रहा है और भोजन से उठ रहा है, और एक हाथ अभी भोजन जारी रखे है। करीब-करीब जीवन की अवस्था में तुम्हारी स्थिति ऐसी ही है। तुम एक हाथ से बनाते हो, दूसरे से मिटाते हो; एक हाथ से मांगते हो, दूसरे से इनकार करते हो; एक हाथ से द्वार खोलते हो, दूसरे से बंद करते हो।

इसी से तो इतनी चिंता तुम्हारे जीवन में पैदा हो गई है। चिंता का अर्थ है, तुम कुछ ऐसा कर रहे हो जो स्व-विरोधी है। एंग्जायटी का इतना ही अर्थ होता है, चिंता का, कि तुम अपने ही विपरीत कुछ करने में लगे हो। तुम्हें पता न होगा। और सबसे बड़ी विपरीतता यह--कौन आदमी है जो मरना चाहता! कोई नहीं मरना चाहता

है; लेकिन हर आदमी सख्त हो जाता है, अनम्य हो जाता है, अकड़ जाता है, और अभ्यास करता है जीवन भर अनम्य होने का। फिर मौत तो स्वाभाविक है। अगर नहीं मरना है और अमृत को जानना है, तो नम्यता को मत खोना।

साक्रेटीज मर रहा था। जब वह मर रहा है तब भी उसकी नम्यता कायम है। ठीक मरते वक्त सब साथी, मित्र, शिष्य रो रहे हैं। साक्रेटीज ने कहा, चुप रहो! अभी रोने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि अभी तो मैं जिंदा हूं। और दूसरी बात, अभी पक्का कहां है कि मैं मर ही जाऊंगा! एक शिष्य ने कहा कि कितनी देर लगेगी, सूरज ढलने के करीब आ गया है। सूरज ढलते वक्त ही आपको जहर दिया जाना है। जहर बाहर पीसा जा रहा है। उसकी आवाज सुनाई पड़ रही है। आपको घबराहट नहीं लग रही है? एक शिष्य ने पूछा।

सुकरात ने कहा कि दो ही संभावनाएं हैं। एक तो कि मैं मर ही जाऊंगा। अगर मर ही गए तो डरने का क्या कारण? जब बचे ही नहीं, तो डरे भी कौन? अगर मर ही गए बिल्कुल, जैसा कि नास्तिक कहते हैं, तो भय किस बात का है? जन्म के पहले नहीं थे, उससे कोई चिंता पैदा होती है? मृत्यु के बाद फिर वैसे ही हो जाएंगे जैसे जन्म के पहले नहीं थे। चिंता का क्या कारण है? तुमने कभी चिंता की कि जन्म के पहले नहीं थे, तो बैठे हैं चिंता में कि कितना दुख पाया, जन्म के पहले नहीं थे! नहीं होने से कोई दुख होता है? जब थे ही नहीं तो दुख किसको होगा? सुकरात ने कहा कि हो सकता है नास्तिक सही हों और मैं बिल्कुल ही मर जाऊं, तो भय किस बात का? जितनी देर जीया, ठीक। फिर मर गए, बात खतम हो गई। रहे ही न, तो अब बात कौन चलाए? और हो सकता है आस्तिक सही हों कि मैं मरने के बाद बच जाऊं। और अगर बच ही गए तो मरना हुआ ही नहीं; चिंता क्यों करना?

यह खुले हुए आदमी का लक्षण है; इतना नम्य कि मरते क्षण में भी!

भय के कारण भी आदमी मरते वक्त आस्तिक हो जाता है; सोचने लगता है कि शायद परमात्मा हो ही; प्रार्थना कर लो। मरते-मरते अधिक नास्तिक आस्तिक हो जाते हैं। मरने के पहले ही, जवान आदमी अधिक नास्तिक होते हैं, जैसे-जैसे बुढ़ापा आता है आस्तिक होने लगते हैं। इसलिए मंदिरों-मस्जिदों में, गिरजाघरों में तुम बूढ़ों को बैठे पाओगे। जवान आदमी मधुशाला में मिलेंगे, क्लबघर में मिलेंगे, वेश्यागृह में मिलेंगे; बूढ़े मंदिर में मिलेंगे। अभी जवान को फिक्र नहीं है, अभी पक्का भरोसा है। जैसे पैर डगमगाएंगे, भरोसा कम होगा। जैसे ही भरोसा कम होगा, घबराहट पकड़ेगी, मंदिर की तरफ चलने लगेगा, भगवान का सहारा लेगा।

साक्रेटीज न तो भयभीत है, न कोई सहारा ले रहा है। वह कहता है, मुझे पता ही नहीं है कि बचूंगा या नहीं बचूंगा, तो पता तो चल जाने दो। तभी कुछ निर्णय किया जा सकता है। यह लोचपूर्णता है।

तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुमने कितने निर्णय कर लिए हैं! तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुमने कितने सिद्धांत मान लिए हैं! तुम्हें कुछ भी पता नहीं है, और तुम कितने ज्ञानी होकर बैठे हो! गहन अज्ञान पर पांडित्य को तुमने छा दिया है; पता ही नहीं चलता तुम्हारे अज्ञान का कि कहां है। उस पांडित्य के कारण ही तुम सख्त हो गए हो, तुम्हारी लोच खो गई है।

मेरे पास पंडित आ जाते हैं। तो जितना जड़-बुद्धि मैं उनको पाता हूं उतना किसी को भी नहीं पाता। खोपड़ी उनकी बिल्कुल भरी, हृदय बिल्कुल खाली। वे खुद बोलते ही नहीं, उपनिषद उनमें से बोलता है। वे खुद बोलते ही नहीं, गीता उनमें से दोहरती है। टेप रेकार्डर हो सकते हैं, आदमी नहीं हैं। ग्रामोफोन के रेकार्ड हो सकते हैं, मनुष्य नहीं हैं। और ग्रामोफोन के रेकार्ड भी घिसे-पिटे; वह भी कोई ताजा रेकार्ड नहीं कि अभी ले आए बाजार से; घिसा-पिटा! अक्सर तो ऐसी हालत है उनकी जैसा ग्रामोफोन के रेकार्ड में कहीं लकीर टूटी

होती है और सुई फंस जाती है और वही लकीर दोहरती जाती हैः हरे कृष्ण हरे राम, हरे कृष्ण हरे राम, हरे कृष्ण हरे राम। इसको वे मंत्र कहते हैं। यह केवल टूटा हुआ ग्रामोफोन रेकार्ड है जिसमें सुई फंस गई। वे उसी को दोहराए चले जाते हैं। आगे जाने का उपाय नहीं, पीछे लौटने का उपाय नहीं; बस एक ही लकीर दोहरती रहती है।

एक गहन जड़ता पंडितों में दिखाई पड़ती है। छोटे बच्चे कहीं ज्यादा ज्ञानपूर्ण होते हैं। अज्ञान उनका है, लेकिन अभी ढंका नहीं। अभी खुले आकाश जैसा है; अभी सब रास्ते खुले हैं; अभी वे कहीं भी जा सकते हैं, अभी उनकी मुक्ति साफ है। तुम छोटे बच्चे की भांति सदा बने रहना--सीखने को तत्पर, सदा उत्सुक-आतुर। पंडित का अर्थ है, जो सिखाने को उत्सुक है, सीखने को नहीं। पंडित का अर्थ है, जो शिष्य की तलाश में है, गुरु की तलाश में नहीं।

सीखने को उत्सुक व्यक्ति हमेशा, हर जगह खोज रहा है; खोजी है। जहां से मिल जाए, धन्यवाद देगा और ले लेगा। और अतीत को कभी भी बोझिल नहीं होने देता, भविष्य को खुला रखता है। अतीत को कभी भविष्य और अपने बीच में दीवाल नहीं बनने देता कि मैंने जान लिया, अब जानने को क्या है, अब जाना कहां है।

कितना ही जाना हो, वह ना-कुछ है उसके मुकाबले जो अभी जानने को शेष है। और सब कुछ जान लिया हो तो भी इस जगत में कुछ है जो अज्ञेय है, जो जानने से जाना ही नहीं जाता। वही परमात्मा है। वह तो होने से जाना जाता है, जानने से नहीं जाना जाता।

"इसलिए सेना जब हठी होगी, वह युद्ध में हार जाएगी।"

क्योंकि हठ सख्ती है।

"जब वृक्ष कठिन होगा, वह काट दिया जाएगा। बड़े और बलवान की जगह नीचे है, सौम्य और कमजोर की जगह शिखर पर है।"

इसलिए मैं कहता हूं कि लाओत्से ओस की तरह ताजा है। उसने जिंदगी से सीधा पीया है, जिंदगी के घाट से सीधा पीया है, किसी शास्त्र से नहीं। वह कहता है कि बड़ा और बलवान तुम्हें दिखाई पड़ता है शिखर पर है; तुम गलती में हो। सिर्फ कोमल, नम्य, कमजोर शिखर पर है; क्योंकि कोमल और नम्य सुंदर है, सत्य है, जीवंत है। जड़ें जमीन में हैं; वे मजबूत हैं। फूल शिखर पर है; वह कमजोर है। बड़े पत्थर, मजबूत पत्थर नींव में पड़े हैं मंदिर की; स्वर्ण-शिखर कमजोर, नम्य, ऊपर है। और जीवन में भी यही सत्य है। अगर इससे विपरीत तुम्हें दिखाई पड़ता हो तो उसका केवल एक ही कारण होगा कि तुम शीर्षासन कर रहे हो।

अब अगर तुम शीर्षासन करके खड़े हो जाओ।

मैंने सुना है, एक गधा एक बार पंडित जवाहरलाल नेहरू को मिलने गया। वे उस वक्त शीर्षासन कर रहे थे। सुबह का वक्त था, वे अपने लान में शीर्षासन कर रहे थे। सिपाही भी द्वार पर खड़ा झपकी ले रहा था। और कोई आदमी गुजरता तो वह रोकता भी; गधा जा रहा था, उसने कहा जाने दो, गधा क्या बिगाड़ लेगा! कोई शड्यंत्रकारी भी नहीं हो सकता; कोई बम भी नहीं रख सकता। गधा ही है। थोड़ा-बहुत घास-पात चर लेगा, चला जाएगा।

लेकिन वह गधा बोलने वाला गधा था, वह कोई साधारण गधा नहीं था। अखबार पढ़-पढ़ कर वह बोलना सीख गया था। उसने जाकर पंडित नेहरू के पास खड़े होकर कहा कि सुनिए पंडित जी!

वे थोड़े घबरा गए। उन्होंने आंख उठा कर देखा। वे भूल ही गए कि मैं शीर्षासन कर रहा हूं। तो उन्होंने कहा कि ऐसा गधा मैंने कभी भी नहीं देखा; तू उलटा क्यों खड़ा है?

उस गधे ने कहा, महानुभाव, आप शीर्षासन कर रहे हैं; मैं उलटा नहीं खड़ा हूं।

जब तुम शीर्षासन करते होते हो तो जो चीज ऊपर है वह नीचे मालूम पड़ती है, जो नीचे है वह ऊपर मालूम पड़ती है। तुमने जीवन को शीर्षासन करके देखा है, इसीलिए तुम्हें दिल्ली में जो लोग बैठे हैं वे ऊपर मालूम पड़ते हैं, और जो आदमी सड़क के किनारे गड्ढा खोद रहा है वह तुम्हें नीचे मालूम पड़ता है। जिन्होंने बहुत धन इकट्ठा कर लिया है, बिरला हैं, राकफेलर हैं, वे तुम्हें ऊपर मालूम पड़ते हैं। और जो भिखारी वृक्ष के नीचे भर दोपहरी में शांति से सोया है वह तुम्हें नीचे मालूम पड़ता है। तुम शीर्षासन कर रहे हो।

लाओत्से ने जिंदगी को सीधा खड़े होकर देखा है। उसने देखा है कि सम्राटों के हृदयों में शांति नहीं, न प्रेम है, न आनंद है। कभी-कभी भिखारी के जीवन में आनंद की वर्षा तो होते देखी है, लेकिन सम्राटों के जीवन में कभी नहीं देखी। अन्यथा बुद्ध नासमझ थे कि महलों को छोड़ कर और भिखारी हो जाते? कि महावीर पागल थे? जिसे तुमने ऊपर देखा है, वह तुम्हारी कहीं न कहीं कोई भूल है। क्योंकि हमने उस ऊपर से बैठे आदमी को नीचे उतरते देखा है। बुद्ध और महावीर ईर्ष्या से भर गए हैं भिखारियों की, इसीलिए भिक्षु हो गए। उन्होंने कुछ जीवन का राज देखा। लाओत्से वही कह रहा है। उन्होंने देखा कि जीवन तो बड़ी छोटी-छोटी चीजों में आनंदित है। पद, शक्ति की दौड़ से जीवन का आनंद खो जाता है।

तुम जिस दिन ना-कुछ हो रहोगे उस दिन जीवन बरस जाएगा। इसलिए भिखारी जिस शांति से सोता है, सम्राट नहीं सोता। साधारण आदमी जिसको हम कहें, जिसको कोई भी नहीं जानता, वह जिस भांति प्रेम करता है, उस भांति, जिन लोगों को बहुत लोग जानते हैं, वे लोग प्रेम नहीं कर पाते।

अमरीका की बड़ी अभिनेत्री थी--बड़ी से बड़ी अभिनेत्री--मर्लिन मनरो। उसने आत्महत्या की। उसने बहुत बार विवाह किया। उस जैसी सुंदर स्त्री न थी इस सदी में। दुनिया के बड़े से बड़े लोग उससे विवाह को आतुर थे। और भरी जवानी में उसने आत्महत्या की। और आत्महत्या का कारण उसने यह लिखा कि मैं प्रेम करने में बिल्कुल असमर्थ हूं, और मैं कोई प्रेम नहीं पा सकी। साम्राज्ञी थी वह सिनेमा जगत की, लेकिन प्रेम न पा सकी। क्या हो गया? क्या अड़चन आ गई?

असल में, प्रेम उसी हृदय में उपजता है जिस हृदय में शक्ति की आकांक्षा नहीं उपजती। जहां शक्ति की आकांक्षा उपज गई वहीं प्रेम मर जाता है, प्रेम का दम घुट जाता है। और जिसने प्रेम न जाना उसने क्या जाना? वह बैठा रहे शिखर पर, जीवन को गंवा दिया उसने। जिसने धन जाना और धर्म न जाना, उसने जीवन को गंवा दिया। उसने कुछ भी न जाना। जिसने शब्द जाने, शास्त्र जाने और सत्य को न जाना, वह वंचित रह गया। जब सब तरफ सब कुछ भरा था और मिल सकता था तब भी वह खाली हाथ प्यासा लौट गया।

लाओत्से कहता है, उसका निरीक्षण यह है, कि बड़े और बलवान नीचे हैं, सौम्य और कमजोर शिखर पर हैं। और जिस दिन तुम सीधे खड़े होकर देखोगे--और जब मैं कहता हूं सीधे खड़े होकर तो मेरा मतलब होता है निर्विचार होकर देखोगे, विचार ने तुम्हारी खोपड़ी उलटी कर दी है--जिस दिन तुम निर्विचार होकर देखोगे उस दिन यह जीवन का सीधा सा सत्य तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि साधारण होना ही यहां असाधारण होना है। ना-कुछ होना ही यहां सब कुछ होने का उपाय है।

चुपचाप जी लेना--जैसे वृक्ष जीते हैं, पशु-पक्षी जीते हैं, चांद-तारे जीते हैं--कि किसी को तुम्हारी खबर भी न हो, तुम्हारे पदचिह्न इतिहास के पृष्ठों पर पड़ें ही न। समय की धार में तुम्हारी रेखा भी न उभरे, तुम्हारा हस्ताक्षर कहीं भी दिखाई न पड़े। ऐसे जी लेना जैसे पानी पर किसी ने लकीर खींची हो, खींची और मिट गई।

तब तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में बड़े फूल खिलते हैं। जब तुम ना-कुछ होने को राजी होते हो, शून्य होने को, तब तुम्हारे भीतर पूर्ण होने की क्षमता आ जाती है।

सिर्फ शून्य ही पूर्ण हो सकता है। इसलिए शून्य को मैं परमात्मा का मंदिर कहता हूं। और साधारण होने को संन्यास कहता हूं। असाधारण होने की आकांक्षा पागलपन में ले जाती है। और असाधारण होने की आकांक्षा बड़ी साधारण है, सभी की है। और जिसने साधारण होना चाहा वही असाधारण हो जाता है। क्योंकि साधारण कौन होना चाहता है? निर्विचार होकर देखोगे तो जो लाओत्से की समझ है वही तुम्हारी समझ भी हो जाएगी। और मैं फिर से कहता हूं, लाओत्से से ज्यादा जीवन का सीधा निरीक्षक खोजना मुश्किल है।

आज इतना ही।

एक सौ बाईसवां प्रवचन

संत संसार भर को देता है, और बेशर्त

Chapter 77

Bending The Bow

The Tao (way) of Heaven, is it not like the bending of a bow?
The top comes down and the bottom-end goes up.
The extra (length) is shortened, the insufficient (width) is expanded.
It is the way of Heaven to take away from those that have too much;
And to give to those that have not enough.
Not so with man's way. He takes away from those that have not;
And gives it as tribute to those that have too much.
Who can have enough and to spare to give to the entire world?
Only the man of Tao.
Therefore the Sage acts, but does not possess,
Accomplishes, but lays claim to no credit,
Because he has no wish to seem superior.

अध्याय 77

धनुष झुकाना

स्वर्ग का ताओ-मार्ग, क्या वह धनुष के झुकाने जैसा नहीं है?
शिखर नीचे चला आता है और अधोभाग ऊपर उठ जाता है;
अतिरिक्त (लंबाई) छोटा होता है और अपर्याप्त (चौड़ाई) बढ़ जाता है।
स्वर्ग का ढंग है कि वह उनसे छीन लेता है, जिनके पास अतिशय है;
और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।
मनुष्य का ढंग यह नहीं है। वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है;
और उसे वह भेंट के रूप में उन्हें दिए देता है, जिनके पास अतिशय है।
कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है?
केवल ताओ का व्यक्ति।

इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते;

संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते; क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।

जीसस का वचन है कि जो यहां प्रथम हैं वे मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होंगे, और जो यहां अंतिम हैं वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे।

अंतिम प्रथम हो जाता है; प्रथम अंतिम हो जाते हैं।

लेकिन साधारणतः मनुष्य की दौड़ प्रथम होने की है। और प्रथम होने की दौड़ में जो पड़ा वह अंततः पाएगा कि अंतिम हो गया, और बुरी तरह अंतिम हो गया। और जो अंतिम होने के लिए राजी है वह अंततः पाता है कि समग्र अस्तित्व ने ही उसे प्रथम बना दिया। यह पहेली सी मालूम पड़ेगी, पर यह जीवन की कुंजियों में से एक है। और इसे बहुत सूक्ष्मता से, इसकी एक-एक पर्त को समझ लेना जरूरी है।

सभी के भीतर कामना है प्रथम होने की; कामना बुरी भी नहीं है। कामना के पीछे जरूर कोई राज है। असल में, प्रत्येक व्यक्ति प्रथम होने को ही बना है; इससे कम किसी की भी नियति नहीं है। परमात्मा से कम पर राजी होने का उपाय भी नहीं है। उससे कम पर तुम राजी हो गए तो तुम दुखी और विपन्न ही रहोगे, पीड़ा ही रहेगी। एक संताप तुम्हें घेरे ही रहेगा; एक बेचैनी, एक कमी, कुछ खोया-खोया, कुछ जो पाया जा सकता है और नहीं पाया जा सका। जैसे कोई वृक्ष फूलने से वंचित रह गया हो; पत्ते लगे हों, हरियाली आई हो; फिर कलियां न लगीं, फिर फूल न खिले, फिर फल न लगे। जैसे कोई वृक्ष निष्फल रह गया हो, बांझ रह गया हो, ऐसा तुम अनुभव करोगे।

प्रथम होने की आकांक्षा के भीतर यही गहन बात छिपी है कि तुम्हारी नियति प्रथम होना है। तुम पैदा ही प्रथम होने को हुए हो। तुम्हारा स्वभाव ही प्रथम होना है। तुम किसी से पीछे रहने को नहीं हो। और प्रथम तो परमात्मा ही है। शेष सब तो उसके पीछे ही होगा। इसलिए जब तक तुम परमात्मा न हो जाओ, उस परम पद को न पा लो, तब तक तुम दौड़ोगे, भागोगे, चाहोगे, भटकोगे, हारोगे, विषाद से भरोगे, चूकोगे बहुत बार।

कामना तो ठीक है, लेकिन कामना काफी नहीं है, समझ भी चाहिए। यह तो ठीक है कि तुम प्रथम होना चाहते हो, लेकिन गलत ढंग से अगर तुम प्रथम होना चाहे तो कभी भी न हो पाओगे। प्रथम होने का ठीक ढंग भी है, गलत ढंग भी है। समझ की कमी है; भाव तो बिल्कुल ठीक ही उठा है। सिंहासन पर होने को ही तुम पैदा हुए हो। वह तुम्हारा स्वभाव-सिद्ध अधिकार है। लेकिन कौन सा सिंहासन?

आदमी के बनाए सिंहासनों पर होने से तुम तृप्त न हो पाओगे, जब तक परमात्मा ही तुम्हें सिंहासन पर न बिठा दे। तब तक सभी सिंहासन कामचलाऊ होंगे; आज होंगे, कल छीन लिए जाएंगे। आदमी का दिया कितनी देर टिक सकता है? और आदमी इधर देता है, उधर छीनने को तैयार हो जाता है। और आदमी का सिंहासन आदमी का ही बनाया सिंहासन है। आदमी की सामर्थ्य क्या है? तुम पद पर होना चाहते हो, वह तो ठीक है। तुम परम पद पर होना चाहते हो, वह भी ठीक है। लेकिन राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री होने से हल न होगा। वहां भी तुम पाओगेः पा लिए पद मनुष्य के, लेकिन भीतर की आकांक्षा तो अतृप्त ही रह गई। जल-स्रोत भी करीब आ गया, और प्यास मिटती भी नहीं। तो जल-स्रोत धोखा होगा, मृग-मरीचिका होगा। पदों पर पहुंच कर भी तो आदमी कहां परम पद को उपलब्ध हो पाता है! वहां भी तो भूख उतनी ही रह जाती है, प्यास उतनी ही बनी रहती है, दौड़ उतनी ही जारी रहती है। धन पाकर भी तो परम धन नहीं मिलता।

असल में, आकांक्षा तो बिल्कुल ठीक है, लेकिन कैसे उस आकांक्षा को पूरा करें, वहां कहीं भूल हो रही है। धर्म तुम्हारे भीतर की परम अभीप्सा को पूरा करने की विधि है। अधर्म भी तुम्हारे भीतर की अभीप्सा को पूरा करने की विधि है; लेकिन गलत। अधर्म भी रास्ता दिखाता है कि आओ।

ऐसी कथा है कि जीसस जब परम क्षण के करीब आए और जब उनकी प्रार्थना पूरी होने को हुई, और जब परमात्मा उन्हें अंगीकार करने को राजी हो गया, एक क्षण की देर थी कि जीसस तो मिट जाएंगे और क्राइस्ट का जन्म हो जाएगा, तभी शैतान बीच में आ खड़ा हुआ। और शैतान ने कहा, तुम जो चाहते हो मैं पूरा करने को राजी हूं। तुम्हें सारे संसार का सम्राट बनना है? बस कहो, कहने की देर है और मैं तुम्हें बना दूं। तुम्हें धन चाहिए? अपरिसीम धन चाहिए? कुबेर का खजाना चाहिए? बोलो! तुम बोले कि मैं पूरा कर दूं। तुम्हारी जो भी कामना हो, जिस लिए तुम प्रार्थना कर रहे हो, तुम बता दो।

जीसस ने कहा, हट शैतान, मेरे पीछे हट! मैं तुझसे नहीं मांग रहा हूं। और तुझसे अगर जो भी लेने को राजी हो गया वह सदा-सदा भटकेगा। तेरे धन से तो निर्धन होना बेहतर। और तेरे राज्य से तो भिखारी होना बेहतर। क्योंकि तू मृग-मरीचिका है। तू धोखा है।

जब भी कोई खोजने निकलेगा तब हजार धोखों के जाल भी हैं। कोई शैतान नहीं तुम्हें धोखा दे रहा है; तुम्हारा मन ही सस्ता रास्ता चुनता है। वह कहता है, सिंहासन चाहिए? दिल्ली चलो। धन चाहिए? धन कमाओ। बाजार है, चोरी करो, बेईमानी करो, लूटो-खसोटो। रास्ता तो यह है, हम बताए देते हैं तुम्हें जो चाहिए। मंदिर में प्रार्थना करने किसलिए जा रहे हो? पूजा-अर्चना किसकी कर रहे हो? विधि हमारे पास है। मन तुम्हें रास्ता दे देता है।

और मन के रास्ते पर चल-चल कर तुम जन्मों-जन्मों भटके हो। अभी भी मंजिल करीब नहीं दिखाई पड़ती, उतनी ही दूर है, जितनी पहले दिन तुम्हारी चेतना के लिए रही होगी। रत्ती भर भी यात्रा नहीं हो पाई। चले बहुत हो, लेकिन एक वर्तुलाकार परिधि में घूम रहे हो। कोल्हू के बैल जैसी तुम्हारी यात्रा है। चलता दिन भर है, पहुंचता कहीं भी नहीं। सांझ पाता है वहीं खड़ा है। फिर भी दिन भर चलता है इसी आशा में कि शायद कहीं पहुंच जाएगा।

कोल्हू के बैल को चलाने के लिए उसका मालिक उसकी आंखों के दोनों तरफ पट्टियां बांध देता है, ताकि उसे आस-पास दिखाई न पड़े, सिर्फ सामने दिखाई पड़े। तांगे में घोड़े को जोतते हैं तो उसके पास भी पट्टियां बांध देते हैं, उसे सामने दिखाई पड़े। सामने दिखाई पड़ने से भ्रांति पैदा होती है; रास्ता गोलाकार है, यह नहीं दिखाई पड़ता। जब सामने दिखाई पड़ता है, रास्ता सीधा मालूम पड़ता है। अगर वह आस-पास देख ले तो पता चल जाए कि यह तो मैं वहीं के वहीं घूम रहा हूं।

मन भी रेखाबद्ध कोल्हू के बैल की तरह चलता है। उसे दिखाई नहीं पड़ता कि मैं वहीं-वहीं घूम रहा हूं। थोड़ा जाग कर, थोड़ा मन से दूर खड़े होकर देखो। वही क्रोध, वही काम, वही लोभ बार-बार तुम करते रहे हो। नया क्या है? हर बार किया है, पछताया है। पछतावा तक नया नहीं है, वही तुम बार-बार करते रहे हो। लेकिन दिखाई नहीं पड़ता। तुम सोचते हो यात्रा हो रही है। यात्रा नहीं हो रही, तुम सिर्फ चल रहे हो, पहुंच नहीं रहे। जरा सी भी तो तृप्ति की गंध नहीं आती। जरा सा भी तो परितोष नहीं बरसता। कहीं से भी तो कोई दीया नहीं जलता दिखाई पड़ता। अंधेरा वैसा का वैसा है।

आकांक्षा तो ठीक है, परम पद चाहिए; विधियां गलत हैं। और विधियों को जिसने ठीक कर लिया, उसकी आकांक्षा पूरी हो जाती है। बुद्ध ने बार-बार कहा है कि तुम मुझसे गंतव्य मत पूछो, गंतव्य तो तुम्हें ही पता है। तुम सिर्फ केवल मुझसे विधियां सीख लो। मंजिल मत पूछो, मंजिल तो तुम्हें भी पता है; मार्ग भर पूछ लो।

बुद्ध के वचनों में कहीं भी मंजिल का उल्लेख नहीं है, सिर्फ मार्ग का।

मंजिल किसे पता नहीं है?

आंखें अंधी हों तो भी आदमी आनंद खोज रहा है। पैर लंगड़े हों तो भी आदमी आनंद खोज रहा है। बीमार हो, स्वस्थ हो, बच्चा हो, जवान हो, बूढ़ा हो, आदमी आनंद खोज रहा है। पौधे, पक्षी, सभी आनंद खोज रहे हैं। मार्ग, मार्ग भला गलत हो, मंजिल किसी की भी गलत नहीं है। सुर-तान बंधी है भीतर मंजिल की तरफ। लेकिन कैसे पहुंचें? कहां है आनंद? कहां है स्वर्ग का राज्य? ताओ का अर्थ भी होता है मार्ग। ताओ मंजिल नहीं है। मंजिल देने की जरूरत ही नहीं है। उसकी खबर लेकर तो तुम पैदा ही हुए हो। वह तो तुम्हारा ब्लू-प्रिंट है; वह तो तुम्हारे रोएं-रोएं में लिखी है। उसे किसी से भी सीखने की जरूरत नहीं है। वह तुम सीखे हुए ही आए हो। अगर तुम उसे सीखे हुए न आए होते तो कोई तुम्हें सिखा भी न सकता था।

थोड़ी देर को सोचो, अगर आनंद की अभीप्सा ही तुम्हारे भीतर न होती, तो बुद्ध सिर पटकें और मर जाएं, कहीं आनंद की अभीप्सा पैदा करवाई जा सकती है? अभीप्सा भीतर हो तो कोई जगा दे; अभीप्सा भीतर हो तो कोई जला दे। अभीप्सा ही भीतर न हो तो क्या करोगे तुम? अगर बुद्ध पुरुषों का तुम पर प्रभाव पड़ता है, अगर सदगुरु तुम्हें अनुप्रेरित करते हैं, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो तुम चाहते थे, उस चाह को ही उन्होंने निखार कर साफ कर दिया। जो तुम चाहते ही थे सदा से उसी को उन्होंने तुम्हें समझा दिया। जो तुम्हारे भीतर छिपा ही था उसी को उन्होंने प्रकट कर दिया। जो अनजाना था, अपरिचित था, धुंधला-धुंधला था, उसे उन्होंने साफ कर दिया।

कोई किसी को मंजिल नहीं दे सकता। मार्ग दिया जा सकता है। ताओ का अर्थ है मार्ग।

बुद्ध के वचनों का जो सबसे महत्वपूर्ण संग्रह है उसका नाम है धम्मपद। उसका अर्थ होता हैः दि राइट वे। धम्म का अर्थ होता है ठीक और पद का अर्थ होता है जिस पर चला जाए, जिस पर पैर पड़ें। बुद्ध ने कहा है, तुम्हारे पास सब है, सिर्फ कैसे तुम उस तक पहुंचो, बस उस मार्ग की जरूरत है।

मार्ग क्या है? मार्ग है कि अगर तुम प्रथम होना चाहते हो तो अंतिम हो जाओ, तुम प्रथम हो जाओगे। अगर तुम सदा ही अंतिम रहना चाहते हो तो तुम्हारी मर्जी, प्रथम होने की दौड़ में लग जाओ। तुम सदा अंतिम रह जाओगे। लेकिन तब रोना मत, पछताना मत। यह मत कहना कि मैंने इतनी दौड़ की, इतना श्रम किया, इतना कष्ट उठाया, और फिर भी मैं अंतिम हूं। तुम अंतिम अपने कारण हो। अगर तुम सच में ही प्रथम होना चाहते हो तो तुम प्रथम होने की दौड़ छोड़ दो। क्यों? क्योंकि प्रथम होने की दौड़ तुम्हें अपने स्वभाव से वंचित करा देगी। जैसे ही तुम किसी के साथ प्रतिस्पर्धा में लगते हो, नजर बाहर हो जाती है।

प्रथम होने की दौड़ का अगर ठीक-ठीक अर्थ निकालना चाहो, निचोड़, सार, तो क्या है? प्रथम होने की दौड़ का अर्थ है दूसरे को पीछे करने की दौड़। तुम्हारा संबंध दूसरे से हो जाता है। तुम दूसरे को देखने लगते हो। तुम दूसरे की चालों का जवाब देने लगते हो। तुम दूसरे से संघर्ष करने लगते हो। तुम दूसरे को मिटाने में लग जाते हो। तुम दूसरे को गिराने में लग जाते हो। क्योंकि वही एकमात्र रास्ता दिखाई पड़ता है कि कैसे तुम प्रथम हो जाओगे। जितने प्रतिस्पर्धी हैं, उनको समाप्त करना होगा, तभी तो प्रथम हो सकोगे।

जो आदमी प्रथम होने की दौड़ में लगता है उसकी नजर दूसरे से उलझ जाती है। और जो दूसरे से उलझ गया वह अपने को खो देता है। और अपने को पा लेना ही प्रथम होना है। क्योंकि तुम परमात्मा हो ही। तुम्हारे परमात्मा को खोने का एक ही ढंग है कि तुम दूसरे से उलझ जाओ। तो तुम्हारी नजर अपने पर लौटना मुश्किल हो जाती है। कैसे आएगी?

राजनीतिज्ञ हमेशा दूसरे की सोचता है। इंदिरा के सपनों में जयप्रकाश होंगे, जयप्रकाश के सपनों में इंदिरा होगी। न जयप्रकाश को अपना पता, न इंदिरा को अपना पता। फुरसत कहां? दूसरे पर नजर है। जो पहुंच गया पद पर उसकी भी नजर दूसरे पर है। क्योंकि लोग पैर खींच रहे हैं, उनसे बचना जरूरी है। क्योंकि दूसरों को भी प्रथम होना है। और सभी तो प्रथम नहीं हो सकते इस संसार में। सभी तो दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। अन्यथा सिंहासन भारत जितना बड़ा बनाना पड़ेगा। वह सिंहासन ही न रह जाएगा। वह भारत ही हो जाएगा। तुम बैठे ही हो सिंहासन पर; फिर कोई जरूरत ही नहीं दिल्ली जाने की। सिंहासन पर तो कोई एक बैठ सकता है। और पचास करोड़ प्रतिस्पर्धी होंगे जो सब तरफ से तुम्हारे रोएं-रोएं को खींच रहे हैं।

तो जो पद पर बैठा है वह भी निश्चिंत नहीं है कि अपनी सोच ले। पद पर जो बैठा है उसे पद की रक्षा करनी है; जो पा लिया उसकी रक्षा करनी है। अन्यथा एक क्षण में ही खो जाएगा। चारों तरफ दुश्मन मौजूद हैं; दुश्मन ही दुश्मन हैं। और जो पद पर नहीं पहुंचा है वह भी कैसे निश्चिंत होकर ध्यान करे? वह कैसे आंख बंद करे? वह कैसे प्रार्थना-पूजा में उतरे? सोचता है, जब सिंहासन पर पहुंच जाएंगे, जब सब पा लेंगे, तब कर लेंगे पूजा। अभी क्या जल्दी है? और अभी अगर पूजा में लग गए तो ये दूसरे जो आगे निकले जा रहे हैं, और आगे निकल जाएंगे। करोड़ों लोग चल रहे हैं सिंहासन की खोज में। तुम पूजा के लिए बैठ गए रास्ते के किनारे उतर कर, भटक जाओगे, पीछे छूट जाओगे। फुरसत कहां है? भागो, दौड़ो। न सोओ, न ठीक से भोजन करो।

प्रेम खो जाता है, प्रार्थना की तो बात दूर। पद का आकांक्षी न प्रेम कर सकता है, न दो क्षण बैठ कर गीत सुन सकता है। न संगीत का रस ले सकता है, न फूलों को देख सकता है। सारी ऊर्जा उसे लगानी पड़ती है प्रतिस्पर्धा में। भयंकर संघर्ष है। उस संघर्ष में सुविधा नहीं। सोचता है, सिंहासन पर पहुंच कर! सिंहासन पर पहुंचा आदमी डरा हुआ है पूरे वक्त। क्योंकि चली आ रही है भीड़ हजारों प्रतिस्पर्धियों की। वे सभी जान लेने को तत्पर हैं।

सिंहासन पर बैठा भी दूसरों को देखता रहता है; सिंहासन पर जो नहीं हैं वे भी दूसरों को देखते रहते हैंः कोई आगे न निकल जाए। जो पीछे हैं उन्हें पीछे रखना है। जो आगे हैं उन्हें भी पीछे करना है। एक पल खोने को नहीं है। जिंदगी एक कशमकश मालूम होती है, एक गहन संघर्ष और एक युद्ध। कैसे तुम अपनी तरफ देखोगे?

जिसने पहले होने की दौड़ में भाग ले लिया, वह और सबको देखेगा, अपने भर को न देख पाएगा। और जो अपने को न देख पाएगा वह कैसे प्रथम होगा? क्योंकि प्रथम तो तुम हो ही। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। तुम खोजते कहां हो? तुम पाने कहां चले हो? तुम दूसरों के द्वार पर दस्तक दे रहे हो, और तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। उसे तुम लेकर ही आए हो। वह तुम्हारी निजता है, तुम्हारा स्वभाव है।

इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि जो प्रथम होने की दौड़ में लग जाएगा वह परमात्मा के राज्य में अंतिम रह जाएगा।

दौड़ में कुछ बुराई न थी। अभीप्सा बिल्कुल ठीक थी। लेकिन विधि गलत हो गई। अगर तुम वस्तुतः प्रथम होना चाहते हो तो जीसस ठीक कहते हैं कि तुम अंतिम खड़े हो जाओ। क्योंकि जो अंतिम खड़ा है उसे कोई भी

भय नहीं, उससे कोई कुछ छीन नहीं सकता। उसके पास कुछ है ही नहीं, तुम छीनोगे क्या? तो वह निश्चिंत बैठ सकता है। वह आंख बंद करके ध्यान कर सकता है। वह अपने स्वभाव में उतर सकता है। उसकी किसी से कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वह अंतिम है। उससे पीछे कोई है ही नहीं जो उससे आगे निकलना चाहे। उसके आगे जो है वह तो प्रसन्न है कि तुम ध्यान कर रहे हो, बैठे हो, बहुत अच्छा, कृपा है; ऐसे ही बैठे रहना। नहीं तो एक प्रतियोगी और बढ़ जाता है।

इसीलिए तो संसारी लोग संन्यासियों का पैर छूते हैं। वे कहते हैं, बड़ी कृपा! संन्यास ले लिया, बड़ा अच्छा किया। वे यह कह रहे हैं कि चलो, इतने प्रतिस्पर्धी कम हुए। अगर तुम्हारा खुद का बेटा संन्यास ले ले तो तुम दुखी होते हो, किसी दूसरे का बेटा ले ले तो तुम उसको धन्यवाद देने जाते हो कि सौभाग्यशाली हो, धन्यभाग तुम्हारे कि ऐसा बेटा घर में पैदा हुआ। और तुम्हारा बेटा संन्यास ले ले? तुम्हारा बेटा संन्यास ले ले तो तुम्हारी महत्वाकांक्षा की रीढ़ टूट जाती है। इसके ही सहारे तो तुम आशा कर रहे थे। तुम्हारे तो पैर टूट चुके हैं दौड़-दौड़ कर। अब यह तुम्हारी बैसाखी था। जो महत्वाकांक्षा तुम पूरी नहीं कर पाए हो और सड़ गए, अब तुम चाहते थे इसके कंधे पर सवार होकर पूरी कर लो। और यह संन्यास ले रहा है!

जब बुद्ध ने संन्यास लिया होगा तो बुद्ध के पिता को, तुम सोच सकते हो, कैसी पीड़ा हुई होगी। इकलौता बेटा था। साम्राज्य के बढ़ने की इसी से आशा थी; सम्हालने की भी इसी से आशा थी। बुढ़ापे में घर छोड़ कर भाग गया; सब महत्वाकांक्षाएं चकनाचूर हो गई होंगी।

नहीं, दूसरे का बेटा जब संन्यास लेता है तब तुम प्रसन्न होते हो। तुम शायद सोचते होओगे कि संन्यास का तुम्हारे मन में बड़ा आदर है; तो तुम बड़ी गलती में हो। क्योंकि संन्यास का ही आदर होता तो तुमने खुद ही संन्यास ले लिया होता। अगर संन्यास की ही समझ होती तो तुमने अपने बेटों को भी अनुप्रेरित किया होता कि जाओ, क्यों देर कर रहे हो, क्यों गंवा रहे हो! नहीं, संन्यास का तुम्हारे मन में न तो समादर है, न संन्यास के प्रति कोई प्रेम, कोई आस्था, कोई श्रद्धा का भाव है। लेकिन तुम धन्यवाद देने जाते हो कि जितने प्रतियोगी कम हुए उतना ही अच्छा। तो तुम भी संन्यासी हो गए, अच्छा हुआ।

बुद्ध के नाम के कारण बुद्धू शब्द प्रचलित हुआ है। शायद बुद्ध के पिता ने सबसे पहले कहा होगाः यह बुद्ध क्या हुआ, बुद्धू! सब छोड़-छाड़ कर भाग गया। दूसरे समझदारों ने भी कहा होगा। और जब किसी का बेटा ध्यान करने बैठने लगता है तो वह कहता है, क्या बुद्धू की तरह बैठे हो! उठो, काम में लगो; ऐसे बैठने से दुनिया न चलेगी। बुद्ध जैसे परम पुरुष के नाम के पीछे बुद्धू जैसी गाली जुड़ गई। कुछ कारण होगा।

और ऐसा बुद्ध के साथ ही नहीं हुआ है, ऐसा बहुत ज्ञानी पुरुषों के साथ हुआ है। गोरख के पीछे गोरखधंधा शब्द चल पड़ा है। क्योंकि गोरख ने बड़ी विधियां खोजीं, ध्यान की बड़ी गहन विधियां खोजीं। और बड़ा ही सूक्ष्म उन विधियों का जाल था। तो लोग एक-दूसरे को कहने लगे, उठो! क्या गोरखधंधे में पड़े हो? गोरखधंधे का मतलब कि यह गोरख की झंझट में उलझ गए? बचो इससे! इसमें उलझे कि गए।

महावीर के पीछे एक शब्द चलता है जो है नंगा-लुच्चा। तुमने कभी सोचा भी न होगा, क्योंकि तुम किसी को गाली देते हो तब कहते हो कि नंगा-लुच्चा। लेकिन वह आया महावीर से है। महावीर नग्न रहते थे, और बालों की लोंच करते थे। क्योंकि बालों को कटाते नहीं थे। वे कहते थे कि इतना भी साधन का उपयोग करना, उस तरह का उपयोग करना व्यर्थ है। बिना साधन के जो चीज हो सकती है उसमें साधन की निर्भरता क्यों? तो वे अपने बाल को लोंच लेते थे। नंगा-लुच्चा महावीर के आधार पर बना शब्द हैः जो नंगे रहते हैं और अपने बाल लोंचते हैं।

महापुरुषों के साथ तुम्हारे भीतर की आकांक्षा किस भांति प्रकट हुई है, यह तुम समझ सकते हो। तुमने गालियां दी हैं! बातें तुम पूजा की करते हो। लेकिन यह इस तरह पैदा हुआ होगा कि जब किसी का बेटा, किसी का पति घर छोड़ कर महावीर के पीछे चलने लगा होगा, तो लोगों ने कहा होगा, क्या नंगे-लुच्चों की बातों में पड़े हो? जब कोई गोरखधंधे में उलझने लगा होगा, तब लोगों ने कहा होगा कि बचो, अपने को बचाओ; यह गोरखधंधा है; इसमें कुछ सार नहीं। गोरख भूल गए; गोरखधंधा याद है। महावीर कितने लोगों को पता हैं? जो लोग नंगा-लुच्चा शब्द प्रयोग करते हैं, उनमें से लाखों को महावीर का कोई पता नहीं है। और बुद्धू का प्रयोग तो सभी लोग करते हैं; लेकिन बुद्ध से किसका क्या जोड़ है?

जीवन बड़ा जटिल है। और बड़ी से बड़ी जटिलता यह है कि तुम जो पाने निकले हो, अगर वह तुम्हें मिला ही हुआ था तो तुम्हारे पाने की हर कोशिश उसके मिलने में बाधा होगी। कैसे तुम उसे पा सकोगे जो मिला ही हुआ है? उसे पाने का तो एक ही उपाय है कि तुम पाने की सब दौड़ छोड़ कर थोड़ी देर शांत होकर बैठ कर अपने को पहचान लो तुम कौन हो। उसी पहचान से तुम्हारा पद तुम्हें मिल जाएगा। तुम सिंहासन पर विराजमान ही हो। अब तुम किस और सिंहासन की खोज कर रहे हो?

इसलिए जीसस कहते हैं कि जो अंतिम है वह मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम है। है ही। कोई ऐसा नहीं कि परमात्मा अंतिम को बड़ा प्रेम करता है, इसलिए उठा कर उसको सिंहासन पर रख देता है। परमात्मा हो या न हो, अंतिम सिंहासन पर पहुंच ही जाएगा। अंतिम सिंहासन पर है ही। अंतिम होने में ही मिल जाता है सिंहासन। क्योंकि जब तुम सबके पीछे खड़े हो जाते हो, कतार में बिल्कुल आखिरी, तुम्हें कोई धक्का-मुक्का नहीं देता।

क्यू में खड़े होकर देख लो। अगर तुम बिल्कुल आखिर में हो, तुम्हें बिल्कुल धक्के-मुक्के न लगेंगे। अगर तुम बीच में हो, धक्के-मुक्के खाओगे। अगर प्रथम हो तो पिटाई भी हो सकती है। अगर तुम आखिर में खड़े हो तो तुम्हारा कोई भी दुश्मन नहीं है; सभी तुम्हारे मित्र हैं। तुम सभी की मैत्री पाओगे। अगर तुम प्रथम खड़े हो तो सभी तुम्हारे दुश्मन हैं। जो मित्र की तरह दिखाई पड़ते हैं वे भी दुश्मन हैं। क्योंकि भीतर तो उनके भी वही आकांक्षा लगी है कि कब तुम हटो, कब तुम विदा हो जाओ, ताकि वे तुम्हारी जगह पर आरूढ़ हो जाएं।

अंतिम खड़ा होना दो तरह से हो सकता है। एक तो कि तुमने कोशिश तो की थी प्रथम खड़े होने की, लेकिन तुम्हारे पैर न टिक पाए, धक्का-मुक्की भारी थी, तुम कमजोर सिद्ध हुए; लोग ज्यादा मजबूत थे, और उन्होंने तुम्हें पीछे कर दिया। यह अंतिम होने से तुम यह मत सोचना कि परमात्मा के राज्य में तुम प्रथम हो जाओगे। क्योंकि भला तुम पीछे खड़े हो, लेकिन आकांक्षा तो तुम्हारी पहले ही खड़े होने की है। भला तुम कमजोर हो इसलिए असहाय हो। इस असहाय अवस्था में तुम्हें स्वभाव का पता न चलेगा।

इसलिए एक बात जो जीसस ने नहीं कही है, मैं उसमें जा.ेड देता हूं कि जो सभी अंतिम खड़े हैं वे सभी परमात्मा के राज्य में प्रथम न हो जाएंगे। क्योंकि हजार अंतिम खड़े लोगों में नौ सौ निन्यानबे तो मजबूरी में खड़े हैं। मजबूरी कोई मुक्ति नहीं है। वे वहां खड़े इसलिए हैं कि लोगों ने जबरदस्ती वहां उन्हें खड़ा कर दिया है, मजबूर कर दिया है। मगर उनके प्राण तड़प रहे हैं। सपना तो वे प्रथम खड़े होने का ही देख रहे हैं।

नहीं, ये लोग प्रथम न हो पाएंगे। असलियत में प्रथम पहुंचो, असलियत में प्रथम पहुंचने की कोशिश करो, या तुम्हारे सपनों में तुम प्रथम होने की कोशिश करो; कोई भेद नहीं है। कभी खाली कुर्सी पर बैठे-बैठे ख्याल आ जाता है कि प्रधानमंत्री हो गए। तब तुम थोड़ी देर को रसलीन हो जाते हो। तब तुम योजनाएं भी बनाने लगते

हो कि क्या करोगे, क्या करवा दोगे दुनिया में। कोई भेद नहीं है, सपना देखो या सच्चाई में पहुंच जाओ; लेकिन तुम्हारी भीतर की आकांक्षा प्रथम होने के लिए दौड़ कर रही है।

अंतिम तो वही है जो स्वेच्छा से अंतिम है; जिसे किसी ने पीछे नहीं कर दिया है; जो खुद पीछे हो गया। किसी कमजोरी के कारण नहीं, किसी गहरी समझ के कारण; किसी असहाय अवस्था के कारण नहीं, बोधपूर्वक।

और स्वेच्छा शब्द भी ठीक नहीं है। क्योंकि उसमें भी लगता है कि जैसे थोड़ी सी तकलीफ रही, समझा लिया, सांत्वना कर ली और हट गए। नहीं, स्वेच्छा शब्द भी कमजोर है। अगर ठीक ही कहना हो, तो जो उत्सवपूर्वक अंतिम खड़ा है, अहोभाव से, आनंद से अंतिम खड़ा है, अंतिम होने में जिसने जीवन की कृतार्थता जानी है, जो अंतिम होकर परमात्मा को धन्यवाद दे रहा है, जो अंतिम होकर यह कह रहा है, पा लिया! यही तो पाना था। सांत्वना नहीं है, बड़ा परितोष है, बड़ी गहन तृप्ति है। आनंद से नाच रहा है, क्योंकि अंतिम है। गीत गा रहा है, क्योंकि अंतिम है। अब गीत गा सकता है, क्योंकि अंतिम है, अब कोई प्रथम होने की दौड़ न रही। अब नाच सकता है, क्योंकि अब अंतिम है। अब धन्यवाद दे सकता है, अब प्रार्थना कर सकता है। अब घुटने टेक कर आकाश के सामने झुक सकता है। अब पैरों के लिए और कोई काम न रहा, अब पैर प्रार्थना में झुक सकते हैं। अब हृदय के लिए और कोई उलझन न रही; अब हृदय रस-विभोर हो सकता है। जो रस-विभोर होकर अंतिम है वही जीसस के अर्थों में पहुंच सकेगा।

इसलिए सभी अंतिम न पहुंच जाएंगे, क्योंकि सभी अंतिम ही नहीं हैं। अंतिम तो वही है जो प्रसन्नता से अंतिम है, जो हार्दिकता से अंतिम है, जो संपूर्णता से अंतिम है। इसी को मैं संन्यासी कहता हूं। संन्यास का अर्थ हैः अहोभावपूर्वक अंतिम खड़े हो जाने की दशा; जिसने सब प्रतिस्पर्धा छोड़ दी। प्रतिस्पर्धा यानी राजनीति। प्रतिस्पर्धा यानी दूसरे के गले काटने की चेष्टा। प्रतिस्पर्धा अहंकार की दौड़ है। जो अंतिम है वह विनम्र हो जाता है, अहंकार की दौड़ समाप्त हो गई। यह जो अंतिम खड़ा आदमी है, इसने दूसरे की तरफ देखना ही बंद कर दिया; जैसे दूसरा है ही नहीं। यह अकेला ही है। यह सारा विराट आकाश, ये अनंत-अनंत चांद-तारे इस अकेले के लिए हैं। दूसरा खो गया; क्योंकि दूसरा तभी तक है जब तक तुम उसके लिए सोच रहे हो।

इसे तुम समझ लेना। दूसरा तभी तक है जब तक तुम उसके विचार में पड़े हो। जब विचार ही न दूसरे का रहा तो दूसरा खो गया। होगा न होगा, कोई अर्थ न रहा। तुम्हारे लिए आकाश अकेले का हो गया; तुम परम स्वतंत्र हो उड़ने को अब। अब तुम्हारे पंख बंधे नहीं हैं। संसार में जिसने दौड़ छोड़ दी उसके पास सारी ऊर्जा बच जाती है। वही ऊर्जा तो पंख बनती है परमात्मा की तरफ जाने का। अब तुम्हारी उड़ान मुक्त है। और ध्यान रखना, परमात्मा की तरफ यात्रा में कोई स्पर्धा नहीं है; कोई स्पर्धा कर भी नहीं रहा है।

मैंने सुना है, एक नया दुकानदार मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में आया। वह वहां दुकान खोलना चाहता था। नसरुद्दीन पुराना दुकानदार है तो उसने सलाह ली, गांव-बाजार के संबंध में जानकारी ली। और बातचीत में उसने कहा कि मैं एक ईमानदार आदमी हूं; और ईमान से ही काम करना चाहता हूं। ईमानदारी ही मेरी दुकानदारी है। नसरुद्दीन ने कहा, तुम बेफिक्र रहो; तब तो तुम बिल्कुल निश्चिंत, आ सकते हो। क्योंकि तुम्हारा कोई प्रतिस्पर्धी इस गांव में नहीं है। ईमानदारी में कौन प्रतिस्पर्धा कर रहा है? अगर बेईमान होते तो मुश्किल में पड़ते। ईमानदारी? मजे से आओ। अकेले ही हो। और किसी को कोई झगड़ा नहीं है, तुम मजे से अपनी ईमानदारी करो।

ईमानदारी में कौन स्पर्धा कर रहा है? और धर्म तो वहां कोई तुम्हारे साथ दौड़ ही नहीं रहा। तुम अकेले ही दौड़ रहे हो। जहां भी खड़े हो जाओ वहीं प्रथम हो। न दौड़ो तो भी प्रथम, दौड़ो तो भी प्रथम। वहां कोई

तुम्हारे साथ दौड़ ही नहीं रहा। और बात कुछ ऐसी है कि धर्म के जगत में प्रतिस्पर्धी हो ही नहीं सकता। क्योंकि धर्म के जगत में प्रवेश ही तब होता है जब प्रतिस्पर्धा गिर जाती है। नहीं तो कोई धर्म के जगत में प्रवेश नहीं करता।

अगर तुम मुझसे परिभाषा पूछो तो यह परिभाषा हुईः संसार का अर्थ है प्रतिस्पर्धा का जगत, और परमात्मा का अर्थ है गैर-प्रतिस्पर्धा का जगत। वहां तुम नितांत अकेले हो। महावीर ने तो उस स्थिति को कैवल्य कहा है; बिल्कुल अकेले, इतने अकेले कि केवल तुम हो, और कोई भी नहीं बचता। कहीं कोई दीवार नहीं। कहीं कोई रोकने वाला नहीं। कहीं कोई जंजीर नहीं। स्वभावतः, तुम प्रथम हो जाओगे। जहां तुम अकेले हो वहां तुम्हारे द्वितीय होने का उपाय भी कहां? कौन तुम्हें द्वितीय करेगा? तुम चाहो तो क्यू में खड़े हो जाओ, तो भी तुम प्रथम ही रहोगे।

जार्ज माइक्स ने इंग्लैंड के संबंध में एक किताब लिखी है। और उसने लिखा है कि इंग्लैंड अकेला मुल्क है जहां एक आदमी भी बस-स्टैंड पर हो तो क्यू में खड़ा होता है। सारी दुनिया में अकेला ही मुल्क है। एक आदमी भी, जहां कोई है ही नहीं, वह भी क्यू में ही खड़ा रहता है।

परमात्मा के जगत में, तुम चाहो क्यू में खड़े हो जाओ, तुम ही अंतिम हो, तुम ही प्रथम हो।

कुछ और बातें समझ लें, फिर हम इस सूत्र में आसानी से गति कर पाएंगे।

प्रथम होने की दौड़ तुम्हारे भीतर की जरूर किसी गहरी हीनता से पैदा होती है। तुम क्यों दूसरे को पीछे करना चाहते हो? तुम डरते हो कि कहीं दूसरा तुम्हें पीछे न कर दे। तुम डरते हो कि कहीं तुम्हारी हीनता जगत में प्रकट न हो जाए, कोई तुम्हें हरा न दे।

मेरा अनुभव है कि लोग प्रतिपल सुरक्षा में लगे रहते हैं। तुम अपने निकटतम मित्रों के साथ भी सुरक्षा का उपाय करते रहते हो। कोई ऐसी बात न कह दे, कोई ऐसा विवाद न उठ आए, जिसमें तुम हार जाओ। तुम ऐसी चर्चा में नहीं पड़ते जिसमें कोई संघर्ष पैदा हो जाए, कोई प्रतिस्पर्धा हो जाए। तुम अपने को बचाए फिरते हो। तुम सब तरफ से यह कोशिश करते हो कि कोई ऐसी स्थिति न बने जिसमें तुम किसी भांति पीछे दिखाई पड़ जाओ।

इसका सीधा-सीधा अर्थ है, गहनता में तुम जानते ही हो कि तुम पीछे हो और हीन हो। अन्यथा यह इतनी हीनता की ग्रंथि क्यों? इतना भय किसका? अगर यह बात तुम्हें ठीक से समझ आ जाए तो हीनता की ग्रंथि से ही प्रथम होने की दौड़ पैदा होती है। इसलिए राजनीति में तुम पाओगे कि सबसे ज्यादा हीनता-ग्रंथि पीड़ित लोग तुम्हें मिलेंगे। या तो पागलखाने में मिलेंगे और या राजधानियों में मिलेंगे। पागल भी वे इसीलिए हो गए हैं कि हीनता ने उनको इतना-इतना हीन कर दिया कि वे कल्पनाएं करने लगे अपने कुछ होने की।

जब हिटलर जिंदा था तो पागलखानों में ऐसे कई लोग थे जिन्होंने अपने को एडोल्फ हिटलर घोषित कर दिया। क्या मुश्किल थी उन बेचारों की? उनकी मुश्किल यह थी कि हो तो न सके वे एडोल्फ हिटलर, तब एक ही उपाय रहा अपनी हीनता से मुक्त होने का कि उन्होंने मान ही लिया कि वे एडोल्फ हिटलर हैं। और तुम उनको समझा भी नहीं सकते किसी तरह कि वे नहीं हैं। पागल के भीतर प्रवेश करना मुश्किल है। वह सब तरफ से दुर्ग खड़ा कर लेता है।

खलिल जिब्रान ने लिखा है कि उसका एक मित्र पागल हो गया तो वह उसे मिलने गया। वह पागलखाने की दीवार के भीतर बगीचे की एक बेंच पर बैठा हुआ था, बड़ा प्रसन्न था। जिब्रान ने सोचा था उदास पाऊंगा

उसे; प्रसन्न पाकर जिब्रान थोड़ा उदास हुआ। वह इतना प्रसन्न था कि जैसे उसे पता ही न हो कि वह पागलखाने में है। और जिब्रान तो सांत्वना, धीरज धराने आया था। उसकी कोई जगह न रही। वह बड़ा ही प्रसन्न था। इतना प्रसन्न वह कभी बाहर नहीं था। जिब्रान उसके पास बैठ गया। उसकी प्रसन्नता देख कर जिब्रान ने कहा कि तुम्हें पता है कि तुम कहां हो?

उस आदमी ने कहा, मुझे और पता न होगा? मैं उस पागलखाने को, जिससे तुम आ रहे हो, दीवार के उस तरफ छोड़ आया। यहां बड़ी शांति है। थोड़े से लोग हैं, और सभी समझदार। अब भूल कर मैं तुम्हारे पागलखाने में वापस नहीं आना चाहता।

जिब्रान गया था सांत्वना बंधाने, कोई उपाय न था। पागलपन के घेरे के भीतर तुम प्रवेश नहीं कर सकते। तुम सोचते हो कि वे पागल हैं और पागल सोचते हैं कि तुम सब पागल हो।

हर आदमी अपने आस-पास एक घेरा बना लेता है; उस घेरे के भीतर जीता है। तुम अपने को जो समझते हो, दुनिया में कोई तुमको वैसा नहीं समझता। इस पर तुमने कभी ख्याल किया? तुम अपने को सुंदर समझते हो; कोई उतना सुंदर तुम्हें नहीं समझता। तुम अपने को बुद्धिमान समझते हो; उतना बुद्धिमान तुम्हें कोई नहीं समझता। न तुम्हारी पत्नी समझती है, न तुम्हारा बेटा समझता है। तुम अपने भीतर अपने को न मालूम क्या समझते रहते हो। वह पागलपन है। वही थोड़ा और बढ़ जाए... ।

पंडित नेहरू एक पागलखाने में गए बरेली। और एक पागल उस दिन मुक्त हो रहा था, तो उनके हाथ से मुक्त करवाया गया। ऐसे ही पूछ लिया उत्सुकतावश कि इस आदमी का पागलपन क्या था?

तो उस आदमी ने कहा कि मेरा पागलपन? मैं जब तीन साल पहले आया तो अपने को पंडित जवाहरलाल नेहरू समझता था। मगर इन लोगों की कृपा कि बिल्कुल ठीक कर दिया, रास्ते पर लगा दिया। अब वह झंझट न रही। उस पागल ने पूछा, और आप कौन हैं? मैंने तो पूछा ही नहीं। तो नेहरू ने कहा कि मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू हूं। वह पागल खिलखिला कर हंसा। उसने कहा, घबराओ मत, तीन साल लगेंगे, अगर इन्हें एक मौका दो। मुझको भी ठीक कर दिया, ये तुम्हें भी ठीक कर देंगे।

पागल की अपनी दुनिया है। और तुम ध्यान रखना, जब तक तुम्हारी कोई निजी दुनिया है तब तक तुम थोड़े न बहुत पागल हो। क्योंकि ज्ञानी की कोई निजी दुनिया नहीं रह जाती। ज्ञानी के भीतर अपने प्रति कोई भाव ही नहीं रह जाता। न वह दूसरे के संबंध में कोई भाव रखता है, न अपने प्रति कोई भाव रखता है। वह खाली हो जाता है। और खाली हो जाना विमुक्ति है। जब तक तुम सोचते हो, मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं, तब तक तुम समझना कि जो तुम हो उसको दबाने का तुम उपाय कर रहे हो। मूढ़ आदमी अपने को बुद्धिमान समझता है; कुरूप अपने को सुंदर समझता है। यही उपाय है कुरूपता से बचने का और ढांकने का। दीन-हीन अपने को बड़ा शक्तिशाली समझता है। असहाय अपने को बड़ा अहंकारी समझता है। तुम जो भी अपने को समझते हो, ख्याल करना, वह तुम्हारी दशा से बिल्कुल विपरीत होगा। और तुम जो भी समझते हो, वह सभी गलत है।

अंतिम खड़े हो जाने का अर्थ है, तुम अपनी सब दौड़ छोड़ देते हो--बाहर की, भीतर की। न तुम बाहर से किसी की प्रतिस्पर्धा में हो, न भीतर से। तभी तो तुम्हारी विक्षिप्तता शांत होती है, और धीरे-धीरे तुम्हें वह दिखाई पड़ता है जो तुम हो। उसको ही आत्मज्ञान कहा है। आत्मज्ञान तुम्हें राम-राम जपने से न मिलेगा, न राम चदरिया ओढ़ लेने से मिलेगा, न माला फेरने से मिलेगा। आत्मज्ञान तो तुम्हें मिलेगा, अगर तुम अंतिम खड़े होने की सामर्थ्य जुटा लो। और कोई उपाय नहीं है। और सब उपाय धोखे हैं, तरकीबें हैं। और सब उपाय ऐसे ही हैं जैसे बीमारी तो कैंसर की है और तुम मलहम-पट्टी कर रहे हो। उसका कोई अर्थ नहीं है। बीमारी बहुत गहरी है;

तुम चमड़ी पर मालिश में लगे हो। इस तरह हो सकता है तुम अपने को समझा लो, भुला लो, वंचना दे लो; लेकिन तुम रूपांतरित न हो पाओगे।

अंतिम खड़े हो जाने का अर्थ हैः तुम जैसे हो, वैसे ही अपने को जान लेना। और जब कोई प्रतिस्पर्धा न रही तो डर क्या है? तुम अपने को खोल कर देख लोगे। अगर दीन हो तो दीन हो; अगर मूढ़ हो तो मूढ़ हो; अज्ञानी हो तो अज्ञानी हो। दावा किसके सामने करना है ज्ञान का? जब प्रतिस्पर्धा न रही तो किसको धोखा देना है?

और ध्यान रखना, जब तुम दूसरों को धोखा देना बंद कर देते हो, तभी तुम अपने को धोखा देना बंद करते हो। क्योंकि वे दोनों चीजें संयुक्त हैं। दूसरे को धोखा देने का बहुत गहरा अर्थ अपने को ही धोखा देना है। दूसरे को जब तुम धोखा देने में सफल हो जाते हो तब तुम्हें खुद भी धोखा आ जाता है कि ठीक है, जब इतने लोग मुझे बुद्धिमान समझते हैं तो जरूर मैं बुद्धिमान होना चाहिए। ऐसा कैसे हो सकता है! इतने लोग थोड़े ही धोखा खा जाएंगे? मेरे कहने से कोई इतने लोग थोड़े ही मान लेंगे? बात कुछ होनी ही चाहिए मुझमें। तुम धोखा दूसरे को देने जाते हो; अपने को दे लेते हो। इस धोखे में अगर रहोगे, तो तुमने जीवन बहुत गंवाए, यह जीवन भी गंवा दोगे। जागने का समय आ गया। ऐसे भी काफी सो लिए हो।

और अगर जागना हो, पंक्ति में पीछे खड़े हो जाओ, पंक्ति को छोड़ दो। खोने को कुछ भी नहीं है पंक्ति को छोड़ने में, सिवाय तुम्हारी आत्म-वंचनाओं के। पाने को कुछ भी नहीं है पंक्ति के भीतर खड़े होकर, किसी ने कभी कुछ नहीं पाया। सिकंदरों ने नहीं पाया, तुम क्या पाओगे!

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक चोर घुस गया। मुल्ला ने देखा कि चोर घुस गया है तो वह एक बड़ी अलमारी में छिप कर खड़ा हो गया। पीठ कर ली दरवाजे की तरफ और अलमारी में छिप कर खड़ा हो गया। जब चोर वहां आया तो वह बहुत हैरान हुआ। उसने दीया जब जला कर देखा कि मुल्ला छिपा खड़ा है, उसने कहा, अरे नसरुद्दीन, हम तो सोचते थे तुम बड़े बहादुर आदमी हो! और तुम इस तरह डर कर क्यों खड़े हो?

नसरुद्दीन ने कहा कि भाई, बहादुर तो हम हैं ही। और यह तुमसे किसने कहा कि हम डर कर खड़े हैं? हम तो शरम के मारे खड़े हैं। बीस साल से इस मकान में हम रह रहे हैं। खोज-खोज कर मर गए, कुछ न पाया। अब तुम खोजने आए हो। शरम के मारे खड़े हैं कि तुम खाली हाथ लौटोगे। आए इतनी दूर से, इतनी मेहनत की, और कुछ न पाया। तो अपनी दीनता की शरम--कि घर में कुछ है नहीं। और अगर तुम राजी होओ तो मैं भी तुम्हें साथ दूं खोजने में। बीस साल कोशिश करके यहां हमने कुछ खोज नहीं पाया।

तुम अगर सिकंदरों से पूछो तो वे भी आखिर में अलमारियों में छिप कर खड़े हो जाते हैं। कुछ नहीं पाया; शरम के मारे खड़े हो जाते हैं। सिकंदर ने मरते वक्त कहा कि मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, क्योंकि मैं चाहता हूं लोग ठीक से देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। और अकेली अरथी है दुनिया में जो हाथ लटकी हुई निकली। क्योंकि सिकंदर की आज्ञा थी, इसलिए मानी गई। उसके दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके थे। लाखों लोग उसकी अरथी को देखने इकट्ठे हुए थे। पूछने लगे कि यह क्या मामला है? इस तरह की अरथी कभी देखी नहीं! सांझ होते-होते राजधानी के लोगों को पता चला कि सिकंदर की मर्जी थी कि उसके हाथ बाहर लटके रहें, ताकि लोग ठीक से पहचान लें कि मैं भी कुछ पाकर नहीं जा रहा हूं; खाली हाथ जा रहा हूं।

जहां से सिकंदर खाली हाथ लौट जाते हैं वहां तुम पंक्ति में खड़े होकर करोगे भी क्या? प्रथम पहुंचे हुए लोग भी खाली हाथ जाते हैं। खोने को कुछ भी नहीं है पंक्ति अगर छोड़ दो; पाने को बहुत कुछ है।

लेकिन पंक्ति छोड़ने में डर लगता है। क्योंकि पंक्ति में जो खड़े हैं वे कहते हैं, अरे, भगोड़े हो गए? संन्यास ले लिया? पलायनवादी! एस्केपिस्ट!

पंक्ति में जो खड़े हैं स्वभावतः ऐसा कहेंगे; क्योंकि तभी वे पंक्ति में खड़े रह सकते हैं। अन्यथा तुम्हारा पंक्ति को छोड़ कर जाना उनको दीनता और शरम से भर देगा। जब वे तुमसे कहते हैं एस्केपिस्ट, पलायनवादी, भगोड़े, तो वे यह कह रहे हैं कि हम भगोड़े नहीं हैं, हम डट कर खड़े रहेंगे। वे अपनी आत्म-रक्षा कर रहे हैं। बहुत से लोग इसीलिए पंक्ति में खड़े हैं डर के मारे कि अगर निकलेंगे तो लोग कहेंगे, भाग गए! मैदान छोड़ दिया! पीठ दिखा दी! हमने न सोचा था कि तुम इतने कमजोर साबित होओगे!

बुद्ध से भी यही कहा गया। खुद बुद्ध के सारथी ने बुद्ध से यह कहा, जो छोड़ने गया था उन्हें जंगल में। उसे पता न था। बुद्ध ने कहा, चलो जंगल, तो वह चल पड़ा। जब बुद्ध रुके एक नदी के किनारे, उन्होंने कहा, अब तुम वापस लौट जाओ। और अपने हाथ के आभूषण और गले के आभूषण सब उतार कर दे दिए। तो सारथी ने कहा, यह पलायन है। सारथी! उसने भी बुद्ध को शिक्षा दी। क्योंकि वह भी पंक्ति में खड़ा है। माना कि बहुत दूर पीछे खड़ा है, लेकिन बिल्कुल पीछे तो नहीं खड़ा है, उससे भी पीछे लोग हैं। और बुद्ध तो प्रथम खड़े थे। उसने कहा, यह पलायन है, यह भागना है। योग्य नहीं है मेरे कि मैं आपको शिक्षा दूं, लेकिन आप भगोड़ापन कर रहे हैं। हिम्मतवर लड़ते हैं; पीठ नहीं दिखा देते।

बुद्ध ने कहा कि मैं जहां से भाग रहा हूं वहां आग लगी है। और जब किसी के घर में आग लगती है और कोई आदमी बाहर भाग कर आता है, उसे तुम भगोड़ा कहते हो? उस वक्त क्या तुम यह कहोगे कि खड़े रहो भीतर! क्या पीठ दिखा रहे हो? जल जाओ, मगर बाहर मत निकलना। अगर कोई आदमी ऐसा डट कर भीतर खड़ा रहे, तुम उसको बहादुर कहोगे कि मूर्ख? उस सारथी ने कहा, मुझे कहीं आग नहीं दिखाई पड़ती। महल। वहां कैसी आग? सुंदर पत्नी। वहां कैसी आग?

बुद्ध ने कहा, जो तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, वह मुझे दिखाई पड़ रहा है; क्योंकि तुम्हारे पास देखने की आंखें नहीं हैं। वहां महल नहीं है, सिवाय लपटों के। और वहां कोई सुंदर पत्नी नहीं है, सिवाय लपटों के। मैं भाग नहीं रहा हूं।

यह बड़े मजे की बात है। जिंदगी इतनी जटिल है कि कभी-कभी भगोड़े ही साहसी होते हैं; और जो खड़े हैं, लड़ रहे हैं, वे कमजोर होते हैं इसलिए खड़े हैं। लेकिन खड़े होने वालों की बड़ी भीड़ है; भीड़ से कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब भी तुम छोड़ने को, पीछे जाने को हटोगे, भीड़ तुम्हें कहेगीः कहां जाते हो? छूट गई हिम्मत? साहस मिट गया? डटे रहो। टूट जाओ, झुको मत। यही बहादुरों का लक्षण है।

संन्यासी भगोड़ा लगता है। संन्यासी भगोड़ा है नहीं। वह वहां से हट रहा है, जहां आग लगी है।

अब हम लाओत्से के सूत्र को समझें।

"स्वर्ग का, ताओ का मार्ग, क्या वह धनुष के झुकाने जैसा नहीं है?"

लाओत्से कहता है कि स्वर्ग का मार्ग ऐसा है, जैसे कोई धनुर्धर प्रत्यंचा को खींचता है और धनुष को झुकाता है। तीर चलता तभी है जब धनुष झुकता है। और जब कोई प्रत्यंचा को खींचता है तो क्या घटना घटती है? जो सिरा ऊपर था वह झुक कर नीचे आ जाता है; जो सिरा नीचे था वह उठ कर ऊपर जाता है। और जितना ही बड़ा धनुर्धर होगा उतनी ही बड़ी यह घटना घटेगी। ऊपर का सिरा नीचे आएगा; नीचे का सिरा ऊपर जाएगा।

कहता है लाओत्से, "स्वर्ग का ताओ-मार्ग, क्या वह मनुष्य के द्वारा धनुष के झुकाने जैसा नहीं है? शिखर नीचे चला जाता है, अधोभाग ऊपर उठ जाता है।"

और एक संतुलन निर्मित हो जाता है। जो आगे था वह पीछे खींच लिया जाता है; जो पीछे था वह आगे बढ़ा दिया जाता है। और जीवन एक संतुलन में आ जाता है। जीवन की अति खो जाती है।

संतुलन सार है लाओत्से के वचनों का। प्रथम होना भी सार्थक नहीं है, अंतिम होना भी सार्थक नहीं है। यहां जीसस और लाओत्से में तुम्हें फर्क साफ दिखाई पड़ेगा। जीसस कहते हैं, जो प्रथम खड़ा है वह अंतिम हो जाए, क्योंकि वही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होने का उपाय है। लाओत्से यह नहीं कहता। लाओत्से कहता है कि प्रथम और अंतिम तो एक ही द्वंद्व के दो भाग हैं। इसलिए लाओत्से जीसस से गहरा जाता है। या तो तुम प्रथम खड़े होते हो, या जब तुम सब छोड़ देते हो, तुम अंतिम खड़े हो जाते हो। लाओत्से कहता है कि जीवन का मार्ग तो संतुलन है।

तो वह यह नहीं कहता कि जो अंतिम हैं वे प्रथम हो जाएंगे और जो प्रथम हैं वे अंतिम हो जाएंगे। लाओत्से कहता है, जो अंतिम हैं वे थोड़े ऊपर आ जाएंगे; जो प्रथम हैं वे थोड़े नीचे आ जाएंगे; और एक जगह दोनों एक समान लयबद्धता में लीन हो जाएंगे; एक संतुलन निर्मित हो जाएगा।

"शिखर नीचे चला जाता है, अधोभाग ऊपर उठ जाता है। अतिरिक्त लंबाई छोटी हो जाती है... ।"

धनुष लंबा था; चौड़ाई छोटी थी, लंबाई ज्यादा थी; वह असंतुलन था। जब प्रत्यंचा खींची जाती है तो लंबाई छोटी हो जाती है।

"अतिरिक्त लंबाई छोटी हो जाती है, अपर्याप्त चौड़ाई बड़ी हो जाती है।"

खिंची हुई प्रत्यंचा में धनुष की चौड़ाई और लंबाई बराबर हो जाती है।

"स्वर्ग का ढंग है, वह उससे छीन लेता है जिसके पास अतिशय है, और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।"

क्योंकि स्वर्ग निरंतर संतुलन बना रहा है। तो जो पीछे खड़े हैं उनको आगे ले आता है; जो आगे खड़े हैं उनको पीछे ले आता है। जिनके पास बहुत है उनसे छीन लेता है; और जिनके पास बहुत नहीं है उन्हें दे देता है। पहाड़ों को गिराता है, घाटियों को भरता है। अहंकारियों को काटता है; विनीत को, विनम्र को देता है। अकड़े हुओं से छीन लेता है; और जिनकी नमने की क्षमता है उनको बांट देता है। जहां कमी है वहां भरता है; जहां ज्यादा है वहां से हटाता है। सारी प्रकृति सदा एक गहरे संतुलन की चेष्टा में संलग्न है।

"स्वर्ग का ढंग है, उनसे छीन लेता है जिनके पास अतिशय है, और उन्हें दिए देता है जिनको पर्याप्त नहीं है।"

इसलिए अगर तुम्हें प्रथम होना हो तो अंतिम खड़े हो जाना। क्योंकि स्वर्ग का नियम तुम्हें खींच कर आगे ले आएगा। और अगर तुम्हें अंतिम ही होना हो तो तुम प्रथम की कोशिश करना। आखिर में तुम पाओगे तुम खींच कर पीछे ले आए गए। लाओत्से की विचार-पद्धति जीसस से गहरी जाती है। लेकिन विधि तो वही रहेगी जो जीसस की है। तुम यह मत सोचना कि हम बीच में खड़े हो जाएं। बीच में तो तुम पता भी न लगा पाओगे कहां बीच है, कहां मध्य है। और मध्य में होने का तो अर्थ यह हुआ कि संघर्ष जारी रहेगा। क्योंकि कुछ तुम्हारे पीछे होंगे, कुछ तुम्हारे आगे होंगे। जो पीछे हैं वे आगे जाना चाहेंगे। तुम्हें अपने मध्य को भी बचाना पड़ेगा। जो आगे हैं वे तुम्हें आगे न बढ़ने देंगे। जो पीछे हैं वे तुम्हें पीछे खींचेंगे। मध्य में भी संघर्ष जारी रहेगा। इसलिए उपाय तो वही है जो जीसस कह रहे हैं। लेकिन लाओत्से की समझ और ऊंचाई पर ले जाती है।

लाओत्से यह नहीं कहता कि तुम अंतिम खड़े होओगे तो तुम प्रथम हो जाओगे। और यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। क्योंकि आदमी का अहंकार ऐसा है कि वह इसीलिए अंतिम खड़ा हो सकता है ताकि प्रथम हो जाए। तब भीतर-भीतर तो वह प्रथम होना चाहता है। गहरे में तो वह प्रथम होना चाहता है। अब मानते नहीं हैं जीसस और कहते हैं कि यही रास्ता है प्रथम होने का कि अंतिम खड़े हो जाओ, इसलिए अंतिम खड़ा हो जाता है। लेकिन अंतिम वह होना नहीं चाहता, होना तो प्रथम चाहता है।

तो आदमी इतना बेईमान है और इतना चालाक है, इतना चालाक है कि अपने साथ भी चालाकी कर लेता है; अपनी ही एक जेब में से चुरा कर दूसरी जेब में रख लेता है। तो जीसस की बात से खतरा है। वह खतरा यह है कि तुम विनम्र हो सकते हो सिर्फ इसीलिए ताकि परमात्मा के राज्य में तुम्हारे अहंकार की पूर्ति हो।

जीसस के मरने के दिन, एक ही रात पहले, जीसस के शिष्य जीसस से पूछते हैं कि स्वर्ग के राज्य में यह तो निश्चित है कि आप परमात्मा के पास बैठे होंगे, हम बारह शिष्यों की क्या दशा होगी? हम कहां-कहां खड़े होंगे, कहां बैठेंगे? परमात्मा के दरबार में हमारी जगह का क्या हिसाब है? हममें से, बारह में से कौन आपके पास होगा और कौन दूर होगा?

ये शिष्य जीसस को समझे ही नहीं। ये जीसस के साथ भी इसीलिए हैं कि वहां प्रथम होने का मौका सुविधा से मिल जाएगा। अपना ही आदमी परमात्मा का बेटा है। तो यह तो भाई-भतीजावाद हुआ वहां भी कि तुम जब प्रथम खड़े होओगे, परमात्मा के पास, तो हमारी क्या स्थिति होगी? जाने के पहले कम से कम यह तो बता जाओ। यह कोई धार्मिक व्यक्तियों का लक्षण न हुआ। इसलिए जीसस के वचन और जीसस की जीवन-चेतना बिल्कुल ही ईसाइयत ने मार डाली, क्योंकि इन बारह आदमियों ने ईसाइयत को खड़ा किया, जिनको कोई समझ नहीं है, जो जीसस को बिल्कुल चूक ही गए। वहां भी प्रतिस्पर्धा जारी है। परमात्मा के राज्य में भी प्रथम होने का मोह जारी है। और जब तक तुम प्रथम होना चाहते हो, तुम ध्यान रखो, तुम हीन ही रहोगे।

जब हम कहते हैं कि अंतिम खड़े हो जाओ तो तुम प्रथम हो जाओगे, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम तुम्हें प्रथम होने की तरकीब बता रहे हैं। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि जो भी अंतिम हो जाता है वह प्रथम हो जाता है। वह उसका परिणाम है, वह सहज घटता है। लेकिन अंतिम होने का अर्थ है प्रथम होने की सारी आकांक्षा को छोड़ देना। तभी वह महान घटना घटती है। इसलिए लाओत्से, जो अंतिम खड़े हैं उनको यह नहीं कहता कि तुम प्रथम हो जाओगे। न, वह बात ही काट देता है। क्योंकि उससे तुम्हारे धोखा देने की संभावना है।

लाओत्से कहता है, स्वर्ग का ढंग है, उनसे छीन लेता है जिनके पास अतिशय है, उन्हें दे देता है जिनके पास पर्याप्त नहीं है। तो परमात्मा के राज्य में अंतिम प्रथम नहीं हो जाएंगे और प्रथम अंतिम नहीं हो जाएंगे। न तो परमात्मा के राज्य में कोई प्रथम रह जाएगा और न कोई अंतिम रह जाएगा। परमात्मा के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होगा। प्रथम और अंतिम तो दूसरे के साथ तुलना है। परमात्मा के राज्य में प्रथम व्यक्ति का अर्थ हुआ दूसरे पीछे खड़े हैं; वह तो फिर भी नजर दूसरे पर रही। परमात्मा के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति स्वयं होगा। तुलना टूट जाएगी, कंपेरिजन खो जाएगा। परमात्मा के राज्य में तुम तुम होओगे, मैं मैं होऊंगा। न तुम मुझसे आगे होओगे, न मैं तुमसे पीछे। न मैं तुमसे आगे, न तुम मुझसे पीछे। प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूरी खिलावट में खिल जाएगा। कमल गुलाब से पीछे है या आगे? कमल कमल है, गुलाब गुलाब है। कौन पीछे है? कौन आगे है? परमात्मा के राज्य में सभी खिल जाएंगे। कोई आगे-पीछे नहीं होगा। आगे-पीछे की धारणा ही सांसारिक धारणा है। वह अहंकार की ही तुलना है।

लाओत्से कहता है, सब सम हो जाएगा, एक संगीत पैदा होगा। सबके पास बराबर होगा। सभी अद्वितीय होंगे अपनी निजता में, लेकिन सभी के पास बराबर होगा।

"मनुष्य का ढंग यह नहीं है।"

मनुष्य का ढंग परमात्मा के ढंग से बिल्कुल उलटा है।

"वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है।"

तुम गरीबों से तो छीनते हो और अमीरों को भेंट दे आते हो। दीन-दरिद्र से तो छीन लेते हो और सम्राट के चरणों में चढ़ा आते हो। जिसे कोई जरूरत न थी उसे तो तुम भेंट देते हो, और जिसे जरूरत थी उसे तुम इनकार कर देते हो, उससे उलटा छीन लेते हो। तुम भिखारी के खीसे से निकालते हो और सम्राटों के खीसों में डालते हो। तुम उसे भोजन का निमंत्रण दे आते हो जिसका पेट भरा ही हुआ है, जो तुम्हारी थाली पर बैठ कर थोड़ा स्वाद लेगा इधर-उधर, और सब पड़ा छोड़ जाएगा। और जो तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने खड़ा होता है, उससे तुम कहते हो, आगे जाओ, यहां खड़े मत हो। जो भूखा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है वह तो आगे हटा दिया जाता है। और भरे पेट लोग, तुमने जो भी बनाया है उनके स्वागत-समारोह में, उसे वैसा ही पड़ा छोड़ जाएंगे।

असल में, तभी तुम प्रसन्न होते हो जब कोई सब पड़ा छोड़ जाए। उसका अर्थ हुआ कि कोई बड़ा मेहमान तुम्हारे घर आया था। अगर सब जो तुमने परोसा था वह सब खा जाए, तो तुम समझोगे कहां के दीन-दरिद्र को घर बुला बैठे! तो शिष्टाचार भी यह कहता है कि किसी के घर अगर बुलाए जाओ तो भूख भी लगी हो तो भी खाना मत। क्योंकि भूख के कारण तुम नहीं बुलाए गए हो। और भूख के कारण तो तुम अगर खड़े होते द्वार पर तो हटा दिए गए होते। तुम भरे पेट के कारण बुलाए गए हो। तुम बुलाए ही इसलिए गए हो कि तुम्हारे पास बहुत है; वे तुम्हें और देना चाहते हैं। इसलिए तुम भूल कर भी यह प्रकट मत करना कि तुम्हें भूख लगी है। तुम थाली पर ऐसे बैठना जैसे उपेक्षा से; ऐसा जरा सा दाना यहां से ले लेना, जरा सा सूप यहां से चख लेना, एकाध रोटी का टुकड़ा तोड़ लेना, और सब ऐसे ही कचरे में डला रह जाने देना। तभी घर के लोग प्रसन्न होंगे कि कोई बड़ा आदमी घर आया था। अगर तुमने सभी भोजन कर लिया तो वे भी दुखी होंगे, कहां के भिखारी को बुला बैठे! गलती हो गई। दोबारा तुम्हें निमंत्रण न मिलेगा। आदमी के ढंग बड़े अजीब हैं।

ऐसा हुआ, कि उर्दू में बहुत बड़ा महाकवि हुआ गालिब। दिल्ली के सम्राट ने गालिब को किसी उत्सव में निमंत्रण दिया। बड़ा निमंत्रण था, बड़ा भोज था। लेकिन सम्राट को गालिब के वचनों में लगाव था, उसके गीतों में रस था। गालिब के मित्रों ने कहा कि जा रहे हो तो थोड़ा सोच-समझ कर जाओ। ये कपड़े तुम्हारे ठीक नहीं हैं, ये सम्राट के दरबार के योग्य नहीं हैं। ये फटे-पुराने कपड़े पहन कर जाओगे, कोई पहचानेगा भी नहीं। और डर यह है कि पहरेदार शायद तुम्हें भीतर न घुसने दें। पर उसने कहा कि निमंत्रण मुझे मिला है! यह निमंत्रण-पत्र मेरे पास है, यह तो मैं दिखा सकता हूं। उन्होंने कहा, तुम इस भूल में मत पड़ो, ढंग से जाओ। कोई निमंत्रण-पत्र नहीं पूछेगा। इस हालत में तो पूछेगा और भरोसा भी नहीं करेगा कि तुम्हें मिल कैसे गया! पर गालिब को बात जंची नहीं। गालिब ने कहा, मुझे बुलाया है, वस्त्रों को तो नहीं।

तो वैसे ही गया। द्वारपाल ने भीतर घुसने ही न दिया। धक्का-मुक्की की हालत आ गई। उसने निकाल कर अपना निमंत्रण-पत्र दिखाया। उसने कहा, फेंक निमंत्रण-पत्र! किसी का चुरा लिया होगा। तू भाग जा यहां से, नहीं तो हम पकड़वा देंगे।

गालिब उदास घर लौटा। मित्र तो जानते ही थे। तो उन्होंने इंतजाम कर रखा था। कपड़े उधार ले आए थे; शेरवानी, पगड़ी, सब तैयार कर रखी थी, जूते। घर लौट कर आया तो उन्होंने कहा, समझ गए? फिर

गालिब कुछ बोला नहीं, उसने पहन लिए उधार कपड़े, वापस गया। वही पहरेदार झुक कर सलाम किए। आदमियों की थोड़े ही कोई पूछ है, कपड़े की पूछ है। यह भी न पूछा--गालिब बेचारा खीसे में हाथ डाले था कि जल्दी से निकाल कर कार्ड बता देगा--लेकिन किसी ने कार्ड पूछा ही नहीं। बात ही बदल गई।

वह भीतर गया। सम्राट ने अपने पास बिठाया। जब वह भोजन करने लगा तो सम्राट थोड़ा हैरान हुआ कि यह क्या कर रहा है! उसने मिठाइयां उठाईं, अपने कोट को छुआईं और कहा, ले कोट, खा ले! पगड़ी को छुआया और कहा, ले पगड़ी, खा ले! सम्राट ने कहा कि माफ करें। कवियों से विचित्र व्यवहार की अपेक्षा होती है, लेकिन इतना विचित्र व्यवहार! यह तुम क्या कर रहे हो? उसने कहा, मैं तो आया था, लेकिन लौटा दिया गया। अब तो कपड़े आए हैं। मैं आया था, लेकिन लौटा दिया गया। अब तो जिनके सहारे मैं आया हूं पहले उनको भोजन देना जरूरी है। अब तो मैं नंबर दो हूं।

आदमी का व्यवहार स्वर्ग के व्यवहार से भिन्न है। यहां जिनके पास है उनको दिया जाता है, जिनके पास नहीं है उनसे छीन लिया जाता है। स्वर्ग का व्यवहार स्वभावतः इससे उलटा है। जिनके पास नहीं है उन्हें दिया जाता है, जिनके पास है उनसे छीन लिया जाता है। क्योंकि स्वर्ग एक संतुलन है। स्वर्ग न तो गरीब का है न अमीर का। क्योंकि गरीबी एक बीमारी है और अमीरी भी एक बीमारी है। क्योंकि दोनों अतिशय हैं। अमीर के पास अमीरी ज्यादा है, गरीब के पास गरीबी ज्यादा है। गरीब से थोड़ी गरीबी छीन कर अमीर को देना जरूरी है। अमीर से थोड़ी अमीरी छीन कर गरीब को देना जरूरी है। मध्य हमेशा संतुलित है और स्वस्थ है।

"मनुष्य का ढंग यह नहीं है। वह उनसे छीन लेता है जिनके पास नहीं है, और उन्हें दे देता है--कर के रूप में, भेंट के रूप में--जिनके पास अतिशय है।"

"कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है?"

मनुष्य तो देता है उसको जिसके पास है। और स्वर्ग का राज्य देता है उसे जिसके पास नहीं है। लाओत्से संत को स्वर्ग से भी ऊपर उठा देता है। लाओत्से कहता है, कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है? जो किसी से छीन कर किसी को नहीं देता? स्वर्ग का राज्य भी किसी से छीन कर किसी को देता है। लेकिन कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है?

"केवल ताओ का व्यक्ति।"

इसे थोड़ा समझें। क्योंकि संत स्वर्ग से ऊपर है। संत में स्वर्ग है, स्वर्ग में संत नहीं। संत का घेरा बड़ा है।

ऐसी यहूदी कथा है कि एक यहूदी फकीर झुसिया ने रात सपना देखा कि वह स्वर्ग पहुंच गया है। वह बड़ा हैरान हुआ; उसने कभी सोचा भी न था। स्वर्ग में महान-महान संत हैं सदियों पुराने। पूरे अनंत काल से चले आ रहे। वे सब, कोई झाड़ के नीचे बैठा प्रार्थना कर रहा है, कोई सड़क के किनारे बैठे घुटने टेक कर हाथ जोड़े है। वह बिल्कुल हैरान हुआ। उसने कहा कि हमने तो सोचा था कम से कम स्वर्ग में जाकर तो यह छुटकारा मिलेगा प्रार्थना से। प्रार्थना तो स्वर्ग आने के लिए ही करते थे; अब ये लोग किसलिए प्रार्थना कर रहे हैं? और सारा स्वर्ग प्रार्थना और पूजा से गूंज रहा है। बात तो ठीक है; क्योंकि यह अगर यहां भी जारी है तो छुटकारा फिर कहां होगा? तो उसने पूछा किसी देवदूत को कि यह क्या हो रहा है? यह स्वर्ग है कि नरक? क्योंकि हमने तो सोचा था आदमी जब दुखी होता है तो प्रार्थना करता है, पूजा करता है। यहां तो सुख ही सुख है। तो ये सब लोग पूजा क्यों कर रहे हैं?

उस देवदूत ने कहा, संत की प्रार्थना में स्वर्ग है। स्वर्ग यहां है नहीं। इन सब की प्रार्थनाओं के कारण स्वर्ग है; संत के हृदय में स्वर्ग है। उस देवदूत ने कहा कि तुम यह भ्रांति छोड़ दो कि संत स्वर्ग में जाता है; संत जहां जाता है वहां स्वर्ग जाता है।

स्वर्ग कोई भौगोलिक स्थिति नहीं है कि उठे और टिकट खरीदी, पहुंच गए। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने ऐसी ही हालत बना दी है कि स्वर्ग जैसे कोई भौगोलिक स्थिति है। इधर दो दान, उधर नाम लिख दिया, कि इनका पक्का हो गया, रिजर्वेशन हो गया। अब तुम्हें कोई भी रोकेगा नहीं। कोई दरवाजा थोड़े ही है वहां। न कोई द्वारपाल हैं। सब दरवाजे, सब द्वारपाल कथाएं हैं। स्वर्ग तो भाव-दशा है। प्रार्थना के क्षण में स्वर्ग में तुम होते हो। या ज्यादा अच्छा होगाः स्वर्ग तुम में होता है।

संत स्वर्ग से ऊपर है। स्वर्ग तो केवल संतुलन कर पाता है। संतुलन ठीक है, लेकिन काफी नहीं। संतुलन बिल्कुल ठीक है। संतुलन ऐसा है, जैसे कोई आदमी जो बीमार नहीं है, बिल्कुल ठीक है, स्वस्थ है। अगर डाक्टर के पास ले जाओ तो कोई बीमारी पकड़ में नहीं आती, और डाक्टर कह देता है कि बिल्कुल ठीक है। लेकिन तुम्हें पता है कि डाक्टर के बिल्कुल ठीक कह देने से काफी नहीं है, पर्याप्त नहीं है। जितना होना चाहिए उतना नहीं है। स्वास्थ्य तो एक अहोभाव है, एक पुलक है। स्वास्थ्य केवल बीमारी का अभाव नहीं है। स्वास्थ्य का अपना एक भाव है, एक अपनी पाजिटिविटी है, अपनी विधायकता है। कभी-कभी तुम पाते हो कि एक वेल-बीइंग, एक प्रसन्नता रोएं-रोएं में भरी है। किसी सुबह, अचानक, अकारण कभी तुम पाते हो, सब पुलकित है, सब आह्लादित है।

इस आह्लाद को डाक्टर पकड़ न पाएगा। अगर तुम उसके पास जाओगे कि बताओ मैं आह्लादित क्यों हूं? या कहां कारण है? वह न पकड़ पाएगा। डाक्टर तो केवल बीमारी पकड़ सकता है; ज्यादा से ज्यादा बीमारी का अभाव बता सकता है कि कोई बीमारी नहीं, तुम ठीक हो। मेडिकली फिट का अर्थ नहीं होता कि तुम परम स्वस्थ हो। मेडिकली फिट का इतना ही अर्थ होता है कि कोई बीमारी नहीं है; संतुलित हो। स्वास्थ्य तो एक बाढ़ है, ऐसा पूर कि किनारे तोड़ कर बह जाता है।

प्रकृति तो संतुलन से जीती है; संत समाधि से जीता है। इसलिए लाओत्से कहता है कि कौन है जिसके पास पर्याप्त है? इतना पर्याप्त है कि सारे संसार को दे दे?

"केवल ताओ का व्यक्ति।"

संत किसी से छीनता नहीं। क्योंकि उसकी संपदा छीनने वाली संपदा नहीं है। उसके पास अपनी संपदा है जो वह देता है। जो भी लेने को राजी हो उसे दे देता है। और उसके पास इतना भरपूर है! एक अलग सूत्र काम करता है संत के लिए। जैसे मनुष्य का सूत्र हैः उससे छीन लो जिसके पास नहीं है, उसको दे दो जिसके पास है। स्वर्ग का या प्रकृति का सूत्र हैः जिसके पास है उससे ले लो और उसे दे दो जिसके पास नहीं है, ताकि संतुलन हो जाए। संत का तीसरा सूत्र है। उसका सूत्र यह है कि जो भी तुम्हारे पास है तुम बांटते जाओ। जितना तुम बांटते हो उतना वह बढ़ता है। तुम दो। किसी से छीन कर किसी को देना नहीं है। संत के पास खुद है। उसे अपने हृदय को उलीचना है।

कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए, यही संतन का काम।

उलीचते जाओ! और जैसे कोई कुएं को उलीचता है, और नये जल-स्रोत के झरने निकलते आते हैं, और कुआं फिर भर गया, फिर भर गया, फिर भर गया। ऐसा संत अपने को बांटता जाता है। और उसके पास इतना

है कि वह सारे संसार के लिए देने के लिए पर्याप्त है। वह संपदा और! वह संपदा बांटने से बढ़ती है। इस संसार की संपदा बांटने से घटती है।

एक भिखारी एक द्वार पर खड़ा है। घर की गृहिणी ने उसे भोजन दिया, कपड़े दिए। उसे उस पर बड़ी दया आई। और दया का कारण यह था कि उसके चेहरे से बड़ा संपन्न होने का भाव था, जैसे कभी उसके पास संपत्ति रही हो, सुविधा रही हो। उसके चेहरे पर संस्कार था, एक कुलीनता थी। वह भिखारी मालूम नहीं पड़ता था। उसके कपड़े फटे-पुराने थे, लेकिन भीतर से एक सुसंस्कृत व्यक्ति की आभा थी। भोजन के बाद, कपड़े देने के बाद उस गृहिणी ने पूछा, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? उस आदमी ने कहा, जल्दी ही तुम्हारी भी हो जाएगी। इसी तरह हुई! जो आया द्वार पर उसको ही दिया; मांगा भोजन तो कपड़े भी दिए। तुम्हारी भी हो जाएगी।

इस संसार की संपत्ति को बांटो तो घटती है। अगर ठीक से समझो तो उसको संपत्ति ही क्या कहना जो बांटने से घट जाए? वह विपत्ति है, संपत्ति है नहीं। जो बांटने से घट जाए वह संपत्ति ही नहीं है। क्योंकि संपत्ति का तो तभी पता चलता है जब तुम बांटो और बढ़े।

संत के पास एक संपत्ति है--उसके आनंद की, उसके ध्यान की, उसकी समाधि की--जो जितनी बांटी जाए उतनी बढ़ती है। उसे घटाने का कोई उपाय नहीं। उसके घटाने का एक ही उपाय है कि उसे मत बांटो। तो वह सड़ जाती है। इसीलिए तो बुद्ध चले जाते हैं जंगल, जब वे अज्ञानी हैं; महावीर चले जाते हैं पहाड़ों में, जब वे अज्ञानी हैं; जीसस एकांत में, मोहम्मद एकांत में। और जब संपदा बरसती है उन पर तो भागे हुए बाजार में आ जाते हैं। क्योंकि अब बांटना पड़ेगा। पाने के लिए अकेला होना जरूरी था। बांटने के लिए तो दूसरे चाहिए। इसलिए समस्त ज्ञानी पुरुष ज्ञान की खोज में एकांत में जाते हैं। लेकिन फिर क्या होता है? ज्ञान को पाते ही तत्क्षण भागते हैं समाज की तरफ। क्योंकि सड़ जाएगा स्रोत; जिस कुएं से कोई पानी न भरेगा, वह गंदा हो जाएगा। अब चाहिए कि कोई पानी भरे, अब लोग आएं और अपने प्यास के घड़े लटकाएं संत के हृदय में--भरें, उलीचें। संत द्वार-द्वार जाता है बांटने को, देने को। जो भी राजी हो उसे देने को वह तैयार है। और कभी-कभी तो ऐसी घड़ी आ जाती है कि तुम चाहे राजी न भी हो, वह देता है। क्योंकि सवाल तुम्हारे लेने का नहीं है, सवाल उसके देने का है। अन्यथा सड़ेगा।

तिब्बत में एक बहुत बड़ा संत हुआ, मिलरेपा। उसने जिंदगी भर इनकार किया लोगों को समझाने से। शास्त्र न लिखा; न किसी को समझाए। और जब भी कोई उसका शिष्य बनने आए तो वह ऐसी कठिन शर्तें बताए कि कोई शिष्य न हो सके। उसकी शर्तों को पूरा करना मुश्किल।

फिर उसके मरने का दिन आया और उसने घोषणा कर दी कि तीसरे दिन मैं मर जाऊंगा। और जो आदमी पास था उससे कहा कि तू भाग कर बाजार में जा और जो भी राजी हो लेने को उसको बुला ला। पर उस आदमी ने कहा कि जीवन भर तो आप ऐसी शर्तें लगाते रहे कि हजारों लोग आए, लेकिन शर्तें ऐसी कठिन थीं कि कौन पूरा करे! कोई पूरा न कर सका तो आपने किसी को शिष्य की भांति स्वीकार न किया, न किसी को दीक्षा दी। अब आप क्या आखिरी वक्त में दिमाग आपका खराब हो गया है? आप कहते हैं किसी को भी! क्या मतलब? शर्तों का क्या होगा?

उसने कहा, तू शर्तों की फिक्र छोड़। वे शर्तें तो इसलिए थीं कि मेरे पास था ही नहीं। अब मेरे पास है। और अब इसकी फिक्र छोड़ कि कौन लेने को राजी है या कौन नहीं। जो तुझे मिल जाए! तू बाजार में डुंडी पीट दे कि मिलरेपा बांट रहा है; आ जाओ। और जिसको भी लेना हो आ जाए।

एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारे पास इतना होता है कि बांटे बिना न चलेगा, बोझ हो जाएगा। संत के पास इतना है कि सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है; क्योंकि वह घटता नहीं।

उसी संपदा को खोजो जो देने से कम न होती हो। तभी तुम सम्राट हो सकोगे, अन्यथा तुम भिखारी रहोगे। जो देने से कम होती हो वह संपदा तुम्हें भिखारी ही बनाए रखेगी। छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, पर रहोगे भिखारी ही। बड़े से बड़ा अमीर भी भिखारी ही रहता है। क्योंकि उसकी संपदा देने से घट जाएगी। तो वह मांगता ही रहता हैः लाओ! वह बुलाता ही रहता है कि आओ, और लाओ! उसके और की दौड़ कम नहीं होती। क्योंकि मांगने से बढ़ती है, छीनने से बढ़ती है संपदा; देने से घटती है। संत के पास एक संपदा है जो देने से बढ़ती है, बांटने से बढ़ती है।

"केवल ताओ का व्यक्ति। इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते। संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"

"संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं करते।"

वे देते हैं, लेकिन देकर इतना भी नहीं चाहते कि तुम उनके अनुगृहीत हो जाओ। क्योंकि वह तो अधिकृत करना होगा, वह तो तुम पर मालकियत करनी होगी। यह बड़ी अनूठी बात है। संत देते हैं और तुम्हीं को मालिक बनाते हैं। संत देते हैं और इतना भी नहीं चाहते कि तुम उनके अनुगृहीत हो जाओ। उतना भाव भी संतत्व में कमी होगी। तुम धन्यवाद दो, उसकी भी आकांक्षा हो तो अभी संत संसार का ही हिस्सा है। तब वह तुम्हारे धन्यवाद की संपत्ति जोड़ रहा है। संत का अर्थ ही यह है कि तुम उसे अब कुछ भी देने में समर्थ नहीं रहे; वह तुम्हारे देने की सीमा के बाहर हो गया। तुम अपना सब कुछ भी दे डालो तो भी संत तुम्हारे देने की सीमा के बाहर हो गया है। और संत तुम्हें जो भी दे रहा है, वह ऐसा है कि तुम उसे लेने में डरना मत।

तुम लेने में भी डरते हो। क्योंकि तुम्हें लगता है, जिससे भी लेंगे उसके अनुगृहीत हो जाते हैं, एक ऑब्लिगेशन हो जाता है। तुमने केवल संसार की चीजें ली हैं। तो किसी से अगर दो पैसे ले लिए तो उसका भार तुम्हारी छाती पर बैठ जाता है। वह आदमी रास्ते पर मिलता है तो इस भांति देखता है कि दो पैसे दिए हैं। इसलिए इस संसार में तुम्हें जो भी कुछ दे देता है वह तुम्हें अधिकृत कर लेता है, पजेस करता है। वह कहता है, मैंने तुम्हें प्रेम दिया। दूसरों की तो बात छोड़ दो, मां, जिसका प्रेम शुद्धतम कहा जाता है, वह भी अपने बेटे से कहती है कि मैंने तुझे पाला-पोसा, बड़ा किया, इतना तेरे लिए श्रम उठाया, गर्भ में ढोया, कष्ट पाए, और तू कुछ भी नहीं कर रहा है!

तो मां का प्रेम तक जहां अधिकृत करता हो तो वहां दूसरे प्रेमों का तो क्या कहना? और घृणा की तो बात ही क्या पूछनी है? यहां तो तुम्हें कोई कुछ देता है सिर्फ इसीलिए ताकि तुम्हें अधिकृत कर ले। कब्जा करना चाहता है। यहां देना तो राजनीति का हिस्सा है। इसलिए तुम संतों से लेने में भी डरते हो। तुम भयभीत होते हो कि कहीं इनसे लिया, ऐसा न हो कि अधिकृत हो जाएं। लेकिन संत तो वही है जो पजेस नहीं करता, अधिकृत नहीं करता।

ऐसी कथा है कि जुन्नून एक सूफी फकीर हुआ। वह इतना परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया कि देवदूत उसके द्वार पर प्रकट हुए। और उन्होंने कहा कि परमात्मा ने खबर भेजी है कि हम तुम्हें वरदान देना चाहते हैं, तुम जो भी वरदान मांगो मांग लो।

जुन्नून ने कहा, बड़ी देर कर दी; कुछ वर्ष पहले आते तो बहुत मांगने की आकांक्षाएं थीं। अब तो हम परमात्मा को दे सकते हैं। अब तो इतना है! उसकी कृपा वैसे ही बरस रही है। अब हमें कुछ चाहिए नहीं। उसने वैसे ही बहुत दे दिया है, इतना दे दिया है कि अगर उसको भी कभी जरूरत हो तो हम दे सकते हैं।

लेकिन देवदूतों ने जिद्द की। ऐसा घटता है। जब तुम नहीं मांगते तब सारी दुनिया देना चाहती है, सारा अस्तित्व देना चाहता है। जब तुम मांगते थे, हर द्वार से ठुकराए गए। देवदूतों ने कहा कि नहीं, यह तो ठीक न होगा। कुछ तो मांगना ही पड़ेगा। जुन्नून ने कहा कि तो फिर तुम्हें जो ठीक लगता हो दे दो। तो उन्होंने कहा, हम तुम्हें यह वरदान देते हैं कि तुम जिसे भी छुओगे, वह अगर मुर्दा भी हो तो जिंदा हो जाएगा, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाएगा। उसने कहा, ठहरो! ठहरो! अभी दे मत देना। देवदूतों ने कहा, क्या प्रयोजन ठहरने का? उसने कहा, ऐसा करो, मेरी छाया को वरदान दो, मुझे मत। क्योंकि अगर मैं किसी को छुऊंगा और वह जिंदा हो जाएगा तो उसे धन्यवाद देना पड़ेगा। सामने ही रहूंगा खड़ा। और इस संसार में लोग धन्यवाद देने से भी डरते हैं। मरना पसंद करेंगे, लेकिन अनुगृहीत होना नहीं। इससे उनके अहंकार को चोट लगती है। तुम ऐसा करो, मेरी छाया को वरदान दे दो। मैं तो निकल जाऊं, मेरी छाया जिस पर पड़ जाए, वह ठीक हो जाए। ताकि किसी को यह पता भी न चले कि मैंने ठीक किया है। और मैं तो जा चुका होऊंगा, और छाया को धन्यवाद देने की किसको जरूरत है?

यह जुन्नून बड़ी समझ की बात कह रहा है। संत अगर देना भी चाहें तो तुम लेने को राजी नहीं होते। संत अगर उंडेलना भी चाहें तो तुम्हारा हृदय का पात्र सिकुड़ जाता है। तुम लेने तक में भयभीत हो गए हो। तुम्हारे प्राण इतने छोटे हो गए हैं, देना तो दूर, तुम लेने तक में भयभीत हो। तुम्हारे जीवन के बहुत से अनुभवों से तुमने यही सीखा हैः जिससे भी लिया उसी ने गुलाम बनाया। उसी अनुभव के आधार पर तुम संतों के साथ भी व्यवहार करते हो। बड़ी भूल हो जाती है। संत तो वही है जो तुम्हें देता है और मुक्त करता है, और देता है और तुम्हें मालिक बनाता है।

"संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं; संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते।"

ऐसे ही जैसे छाया ने सब कर दिया, उन्होंने कुछ नहीं किया। इसलिए संत कभी भी नहीं कहते कि हमने यह किया, हमने यह किया। जहां यह आवाज हो करने की, वहां तुम समझना कि संतत्व नहीं है। संत तो ऐसे हो जाते हैं जैसे बांस की पोंगरी, गीत परमात्मा के हैं। संत निमित्त मात्र हो जाते हैं। संत अपने को बिल्कुल हटा लेते हैं। संत पारदर्शी हो जाते हैं। तुम अगर उनमें गौर से देखोगे तो परमात्मा को खड़ा पाओगे; तुम उनको खड़ा हुआ न पाओगे।

इसलिए तो हमने बुद्ध को भगवान कहा, महावीर को भगवान कहा। महावीर ठीक तुम्हारे जैसे, बुद्ध ठीक तुम्हारे जैसे। लेकिन जिन्होंने गौर से देखा, उन्होंने पाया कि वहां बुद्ध हैं ही नहीं, वे तो निमित्त हो गए। वह घर तो खाली है; वहां तो परमात्मा ही सिंहासन पर विराजमान है।

इसलिए बुद्ध के संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने चालीस वर्ष निरंतर बोला, और एक शब्द नहीं बोला। और चालीस वर्ष निरंतर उन्होंने यात्रा की, और एक कदम नहीं चले। इसका अर्थ समझ लेना। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा ही बोला, परमात्मा ही चला। बुद्ध तो उसी दिन समाप्त हो गए जिस दिन समाधि उपलब्ध हुई।

"संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"

वरिष्ठ दिखने की कामना तो हीन-ग्रंथि से पैदा होती है। संत तो परमात्मा को उपलब्ध हो गए; कोई हीनता न बची, कोई हीनता की रेखा न बची। कुछ पाने को न बचा। अब हीनता कैसी? नियति पूरी हो गई;

गंतव्य उपलब्ध हो गया; मंजिल आ गई। अब कुछ और इसके आगे नहीं है। इसलिए अब तुमसे वरिष्ठ होने की, श्रेय लेने की बात ही नासमझी की है। और अगर कोई श्रेय लेना चाहे तो समझना कि उसकी मंजिल अभी नहीं आई। और अगर कोई वरिष्ठ होना चाहे तो समझना कि अभी राह पर है, राहगीर है, अभी पहुंचा नहीं।

सदगुरु को पहचानने के जो सूत्र हैं, उनमें एक सूत्र यह भी है कि वह वरिष्ठ न होना चाहेगा, वह श्रेय न लेना चाहेगा। तुम अगर उसके पास ज्ञान को भी उपलब्ध हो जाओगे तो वह यही कहेगा कि तुम अपने ही कारण उपलब्ध हो गए हो; मैं तो केवल बहाना था।

बुद्ध मरने लगे, आनंद रोने लगा। तो बुद्ध ने कहा, रुक, क्यों रोता है? आनंद ने कहा कि आपके बिना मैं कैसे ज्ञान को उपलब्ध होऊंगा?

बुद्ध ने कहा, पागल! ज्ञान को तो तू ही उपलब्ध होता, मेरे रहते या न रहते कोई फर्क नहीं पड़ता। मेरी मौजूदगी तो सिर्फ बहाना है। और अगर तूने मुझे प्रेम किया है तो मेरी मौजूदगी सदा बनी रहेगी। उस बहाने का तू कभी भी उपयोग कर सकता है।

वैज्ञानिक एक शब्द का प्रयोग करते हैं, वह है कैटेलिटिक एजेंट। कुछ घटनाएं घटती हैं किन्हीं चीजों की मौजूदगी में। जिन चीजों की मौजूदगी में घटती हैं उनकी मौजूदगी से कुछ भी क्रिया नहीं होती; सिर्फ मौजूदगी! हाइड्रोजन आक्सीजन मिलते हैं, लेकिन विद्युत की मौजूदगी चाहिए। विद्युत के कारण नहीं मिलते, विद्युत का जरा सा भी उपयोग नहीं होता। लेकिन बिना मौजूदगी के नहीं मिलते; मौजूदगी चाहिए। बस सिर्फ मौजूदगी काफी है।

तो संत तो कैटेलिटिक एजेंट हो जाता है। उसकी मौजूदगी में कुछ घटनाएं घटती हैं। वह उनका श्रेय नहीं लेता।

तुम निकलते हो, और राह के किनारे अगर पक्षी भी गीत गाने लगे तो तुम समझते हो शायद तुम्हारी वजह से ही गा रहा है; कि फूल खिल जाए तो तुम सोचते हो शायद तुम्हारी वजह से ही खिल रहा है। अहंकारी आदमी अपने को केंद्र मानता है सारे अस्तित्व का; सब कुछ उसकी वजह से हो रहा है।

संत का अहंकार टूट गया; सब कुछ अपने आप हो रहा है।

तो बुद्ध ने कहा कि तू अपने ही कारण ज्ञान को उपलब्ध होगा। तेरा भीतर का ही दीया जलेगा। मेरी मौजूदगी गैर-मौजूदगी का कोई सवाल नहीं है। और अगर तुझे बहाना ही लेना हो तो तेरे लिए मैं सदा मौजूद हूं। क्योंकि शरीर ही गिर रहा है, मैं तो रहूंगा।

संत जरा सा भी श्रेय लेने की आकांक्षा नहीं रखते। तभी तो वे संत हैं। संतत्व खिलता ही तब है जब सारी हीनता गिर जाती है। जब कोई अपने भीतर की परम आत्यंतिक श्रेष्ठता को उपलब्ध हो जाता है तब तुमसे धन्यवाद भी क्या मांगेगा?

"कौन है जिसके पास सारे संसार को देने के लिए पर्याप्त है? केवल ताओ का व्यक्ति। इसलिए संत कर्म करते हैं, लेकिन अधिकृत नहीं; संपन्न करते हैं, लेकिन श्रेय नहीं लेते। क्योंकि उन्हें वरिष्ठ दिखने की कामना नहीं है।"

आज इतना ही।

एक सौ तेईसवां प्रवचन

निर्बल के बल राम

Chapter 78

Nothing Weaker Than Water

There is nothing weaker than water,
But none is superior to it in overcoming the hard,
For which there is no substitute.
That weakness overcomes strength
And gentleness overcomes rigidity,
No one does know; No one can put into practice.
Therefore the Sage says:
"Who receives unto himself the calumny of the world
Is the preserver of the state.
Who bears himself the sins of the world
Is the king of the world."
Straight words seem crooked.

अध्याय 78

पानी से दुर्बल कुछ नहीं

पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है,
लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है;
उसके लिए उसका कोई पर्याय नहीं है।
यह कि दुर्बलता बल को जीत लेती है और मृदुता कठोरता पर विजय पाती है;
इसे कोई नहीं जानता है; इसे कोई व्यवहार में नहीं ला सकता है।
इसलिए संत कहते हैंः
"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है।
जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है।"
सीधे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।

मैं लाओत्से को देखता हूं--बहुत सी स्थितियों में। कभी जलप्रपात के पास बैठे हुए। जल की कोमल धार गिरती है कठोर चट्टानों पर। कोई सोच भी नहीं सकता कि चट्टानें राह दे देंगी; कोई तर्क-विचार नहीं कर सकता कि चट्टानें टूटेंगी और पानी मार्ग बना लेगा। लेकिन जीवन में होता यही है। चट्टानें धीरे-धीरे टूट कर रेत हो जाती हैं, बह जाती हैं, और जल मार्ग बना लेता है। पहले क्षण में तो जल को भी भरोसा न आ सकता था कि जिस चट्टान पर गिर रहा हूं वह टूट सकती है। लेकिन सतत, कमजोर भी सातत्य से बलवान हो जाता है।

लाओत्से जलप्रपात के पास ऐसे ही नहीं बैठा है। जलप्रपात उसके लिए एक बहुत बड़ा विमर्श, ध्यान हो गया। उसने कुछ पा लिया। उसने देख लिया कमजोर का बल और बलवान की कमजोरी। पत्थर टूट गया, बह गया; जल को न हटा पाया, न तोड़ पाया।

कमजोर को तुम तोड़ोगे कैसे? कमजोर का अर्थ ही है कि जो टूटा हुआ है, जो नम्य है, जो टूटने को तैयार है। जो टूटने को तैयार है वह चुनौती नहीं देता कि मुझे तोड़ो। जो टूटने को तैयार है उससे किसी के भी मन में यह अहंकार नहीं जगता कि इसे तोडूं। पानी तो तरल है, टूटा ही हुआ है, बह ही रहा है। और उसे क्या बहाओगे? चट्टान सख्त है, कठोर है, जमी है; बहने की उसकी कोई क्षमता नहीं है। और जब भी तरल और कठोर में संघर्ष होगा, तरल जीत जाएगा, कठोर टूटेगा। क्योंकि तरल जीवंत है और कठोर मृत है।

जीवन सदा कमजोर है, इसे जितनी बार दोहराया जाए, उतना भी कम है। जीवन सदा कमजोर है; मृत्यु सदा मजबूत है। लेकिन कितनी बार मृत्यु दुनिया में घटती है, फिर भी मृत्यु जीत नहीं पाती। रोज घटती है, फिर भी हारी हुई है। जीवन फिर-फिर मृत्यु को पार करके ऊपर उठ आता है। हर मृत्यु के बाद जीवन पुनः अंकुरित हो जाता है। हर कब्र पर फूल खिल जाते हैं; हर लाश की राख पर फिर नये अंकुर उठ आते हैं। मृत्यु अनंत-अनंत बार आई है; जीवन को मिटा नहीं पाती। और जीवन कितना कमजोर है? जीवन से कमजोर और क्या?

मृत्यु चट्टान जैसी है; जीवन जलधार जैसा। लेकिन अंततः मृत्यु राख होकर बह जाती है; जीवन बचा रहता है। जिसने यह जान लिया उसने अमृत का सूत्र जान लिया। उसने जान लिया कि मरना चाहे कितनी ही बार पड़े, मृत्यु जीत न सकेगी। मृत्यु मुर्दा है, उसके जीतने का उपाय कहां? जीवन जीवंत है, उसके हारने की संभावना कहां?

लाओत्से को और स्थितियों में भी देखता हूं। देखता है लाओत्सेः एक छोटा सा बच्चा एक बड़े बलवान आदमी के कंधे पर बैठा जा रहा है। खड़ा है किनारे; राह से लोग गुजर रहे हैं। वह सोचता है, आदमी इतना बलवान है, कमजोर बच्चे को क्यों कंधे पर लिए है? बच्चे की कोमलता ही, उसकी कमजोरी ही, उसे कंधे पर चढ़ा देती है। बलवान नीचे हो जाता है; कमजोर ऊपर हो जाता है।

देखता है लाओत्से--पूर्णिमा की रात होगी, झुरमुट के पास से गुजरता है--एक शक्तिशाली युवक एक कोमल सी दिखने वाली युवती के चरणों में झुका है, याचना कर रहा है प्रेम की। स्त्री कमजोर है; बड़े से बड़े पुरुष को झुका लेती है। सिकंदर भी, नेपोलियन भी किसी स्त्री के चरणों में ऐसे झुक जाते हैं जैसे भिखारी हों। बड़ी सेनाएं उन्हें नहीं झुका सकतीं; पर्वत भी उनसे लड़ने को राजी हों तो पर्वतों को उखड़ जाना पड़ेगा। नेपोलियन के सामने आल्प्स पर्वत को झुक जाना पड़ा; किसी ने कभी पार न किया था, नेपोलियन ने पार कर लिया। सिकंदर ने सारी दुनिया रौंद डाली; बड़े-बड़े योद्धाओं को मिट्टी में मिला दिया। लेकिन एक कोमलगात, एक स्त्री, फूल जैसी, और सिकंदर वहां घुटने टेके खड़ा है।

लाओत्से देखता है। पूरे चांद की रात, झुरमुट में देखी घटना, ऐसे ही नहीं देखता। लाओत्से जो भी देखता है, वहां से जीवन का सार ले लेता है; कमजोर जीत जाता है, बलवान हार जाता है। बलवान होने की एक ही कला है, वह है कमजोर हो जाना। जीतने का एक ही मार्ग है, वह है जल की भांति हो जाना। इसलिए लाओत्से स्त्री की महिमा के इतने गुणगान गाता है कि संसार में कभी किसी ने नहीं गाए। अगर कभी भी सोचा जाएगा कि किस व्यक्ति ने स्त्री को सबसे ज्यादा समझा है तो लाओत्से का कोई मुकाबला नहीं। और स्त्री के गुणगान का कारण क्या है? उसके गुणगान का कारण है कि स्त्रैण-गुण कोमल है, जल जैसा है; उसमें एक बहाव है। पुरुष सख्त है, पत्थर जैसा है। और कोमल सदा सख्त को झुका लेता है। चट्टान सदा टूट जाती है जलधार के सामने।

लाओत्से गुजर रहा है एक बाजार से। मेला भरा है। एक बैलगाड़ी उलट गई है; दुर्घटना हो गई है। मालिक था, हड्डी-पसलियां टूट गई हैं। बैल तक बुरी तरह आहत हुए हैं। गाड़ी तक चकनाचूर हो गई है। एक छोटा बच्चा भी गाड़ी में था; दुर्घटना जैसे उसे छुई ही नहीं।

तुमने अक्सर देखा होगा, कभी किसी मकान में आग लग गई है, सब जल गया, और एक छोटा बच्चा बच गया। कभी कोई छोटा बच्चा दस मंजिल ऊपर से गिर जाता है, और खिलखिला कर खड़ा हो जाता है, और चोट नहीं लगती। लोगों में कहावत है, जाको राखे साइयां मार सके न कोए। इसमें परमात्मा का कोई सवाल नहीं है। क्योंकि परमात्मा को क्या भेद है--कौन छोटा, कौन बड़ा!

नहीं, राज कुछ और है। वह लाओत्से जानता है। बच्चा कमजोर है। अभी बच्चा सख्त नहीं हुआ। अभी उसकी हड्डियां पथरीली नहीं हुईं। अभी उसकी जीवन-धार तरल है। जितनी हड्डियां मजबूत हो जाएंगी उतनी ही ज्यादा चोट लगेगी। बैलगाड़ी उलटेगी, तो बूढ़े को ज्यादा चोट लगेगी, बच्चे को न के बराबर। क्योंकि बच्चा इतना कोमल है; जब गिरता है जमीन पर तो उसका कोई प्रतिरोध नहीं होता जमीन से। वह जमीन के खिलाफ अपने को बचाता नहीं। उसके भीतर बचाव का कोई सवाल ही नहीं होता; वह जमीन के साथ हो जाता है। वह गिरने में साथ हो जाता है। वह समर्पण कर देता है, संघर्ष नहीं। कठोरता में संघर्ष है।

जब तुम गिरते हो तो तुम लड़ते हुए गिरते हो, तुम गिरने के विपरीत जाते हुए गिरते हो, तुम अपने को बचाते हुए गिरते हो, तुम मजबूरी में गिरते हो। तुम्हारी चेष्टा पूरी होती है कि न गिरें, बच जाएं, आखिरी दम तक बच जाएं। तो तुम्हारी हड्डी-हड्डी, रोएं-रोएं में सख्ती होती है कि किसी तरह बच जाएं। और जब बचने का भाव होता है तो सब चीजें सख्त हो जाती हैं। बच्चे को पता ही नहीं होता क्या हो रहा है। वह ऐसे गिरता है जैसे कोई नदी की धार में धार के साथ बहता हो। तुम धार के विपरीत तैरते हुए गिरते हो। तुम्हारी विपरीतता में, तुम्हारी सख्ती में ही तुम्हारी चोट छिपी है। बच्चा बच जाता है।

लाओत्से खड़ा है नदी के किनारे। एक आदमी डूब गया है। लोग उसकी लाश को खोज रहे हैं। आखिर में लाश खुद ही पानी के ऊपर तैर आई है। और लाओत्से बड़ा चकित होता हैः जिंदा आदमी तो डूब गया और मुर्दा ऊपर तैर आया, मामला क्या है? क्या नदी जिंदा को मारना चाहती थी और मुर्दे को बचाना चाहती है? जिंदा आदमी डूब जाते हैं और मुर्दा तैर आते हैं।

नहीं, लाओत्से समझ गया राज को। मुर्दा ऊपर तैर आता है, क्योंकि मुर्दे से ज्यादा और कमजोर क्या? मर ही गया, अब उसका कोई विरोध न रहा। जिंदा आदमी डूबता है, क्योंकि नदी से लड़ता है। अगर जिंदा भी मुर्दावत हो जाए तो नदी उसे भी ऊपर उठा देगी। तैरने की सारी कला ही इतनी है कि तुम नदी में मुर्दे की भांति हो जाओ। तो जो लोग तैरने में कुशल हो जाते हैं वे नदी में बिना हाथ-पैर तड़फड़ाए भी पड़े रहते हैं मुर्दे

की तरह। नदी उनको सम्हाले रहती है। उन्होंने नदी पर ही छोड़ दिया सब। कमजोर का अर्थ यह है कि अपना बल क्या? इसलिए अपने पर भरोसा क्या? छोड़ देते हैं।

ऐसा लाओत्से जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से सारभूत को चुनता रहा है। उसने किसी वेद से और उपनिषद से ज्ञान नहीं पाया है। उसने जीवन का शास्त्र सीधा समझा है; जीवन के पन्ने, जीवन के पृष्ठ पढ़े हैं। और उनमें से उसने जो सबसे सारभूत सूत्र निकाला है वह है कि इस संसार में अगर तुमने शक्तिशाली होने की कोशिश की तो तुम टूट जाओगे, और अगर तुमने निर्बल होने की कला सीख ली तो तुम बच जाओगे।

भक्त गाते हैंः निर्बल के बल राम। जो बात स्वभावतः घटती है वह राम पर आरोपित कर रहे हैं। भक्त की भाषा में राम का अर्थ सारा अस्तित्व है।

लाओत्से कोई भक्त नहीं है। वह राम और परमात्मा जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता। पर बात वह भी यही कह रहा हैः निर्बल के बल राम। जितना जो निर्बल है उतना ही राम का बल उसे मिल जाता है। लाओत्से भी यही कह रहा है कि जो जितना कमजोर है, अस्तित्व उसे उतनी ही ज्यादा शक्ति दे देता है। और जो अकड़ा हुआ है अपनी शक्ति से, अस्तित्व उससे उतना ही विमुख हो जाता है। जब तुम अकड़े तब तुम अकेले; जब तुम विनम्र तब सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ।

स्वभावतः, कमजोर बलवान हो जाएगा और बलवान कमजोर रह जाएंगे। बलवान होने की आकांक्षा अहंकार है। और अहंकार से ज्यादा बड़ी बीमारी, बड़ी उपाधि, बड़ा रोग खोजना मुश्किल है। कैंसर है अहंकार आत्मा का। अभी तो शरीर के कैंसर का ही कोई इलाज नहीं है तो आत्मा के कैंसर का तो कभी कोई इलाज नहीं होगा। अहंकार का अर्थ हैः मैं लड़ूंगा, जीतूंगा, अपने ही पर खड़ा रहूंगा। न मुझे किसी राम की सहायता की जरूरत है, न अस्तित्व की सहायता की जरूरत है। मैं अकेला काफी हूं।

कैसे तुम सोचते हो कि तुम अकेले काफी हो? एक क्षण भी तो जी नहीं सकते श्वास न आए, हवाओं में उदजन न हो, आक्सीजन न हो, सूरज न हो, ताप न मिले; तुम बचोगे? नदियां सूख जाएं; तुम्हारे भीतर जल की धार सूख जाएगी। सूरज बुझ जाए; तुम्हारे भीतर शरीर की ऊष्मा खो जाएगी। श्वास न आए; एक क्षण में तुम टूट जाओगे। फिर भी तुम्हारा अहंकार कहता है, अपने पर जीऊंगा, मुझे किसी के सहारे की जरूरत नहीं। बिना सहारे के एक पल भी जी सकते हो?

तुम जुड़े हो। अस्तित्व चौबीस घंटे तुम्हें दे रहा है इसीलिए तुम हो, चाहे तुम भूल ही गए हो। क्योंकि अस्तित्व देने में शोरगुल नहीं मचाता, और न देते वक्त डुंडी पीटता है कि कितना दान दिया। पता ही नहीं चलता कि तुम प्रतिपल अस्तित्व के सहारे जी रहे हो। तुम एक क्षण भी उसके विपरीत न जी सकोगे। लेकिन अहंकार तुम्हें यह भ्रांति पैदा करवा देता हैः अपने बल जी लूंगा। उसी दिन तुम कमजोर हो जाते हो। जिसने कहा अपने बल जी लूंगा, वह कमजोर। हालांकि वह समझ रहा है कि ताकतवर। और जिसने कहा कि राम के बल के बिना और कोई बल कहां, वह दिखता तो निर्बल है पर उसकी सबलता का कोई मुकाबला नहीं।

अब हम लाओत्से के इन वचनों को समझने की कोशिश करें।

"पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं। उसके लिए पानी का कोई मुकाबला नहीं; वह अद्वितीय है। उसका कोई पर्याय नहीं।"

पानी की निर्बलता क्या है? समझें। पानी को गिलास में डाल दो, गिलास के ढंग का हो जाता है; लोटे में रख दो, लोटे का आकार ले लेता है। पानी का अपना कोई आकार नहीं। उसका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं। यह उसकी पहली निर्बलता है। पानी की अपनी कोई आकृति नहीं। इतना निर्बल है कि अपने आकार को भी नहीं

सम्हाल सकता; जैसा ढाल दो वैसा हो जाता है। जरा भी जिद्द नहीं करता कि यह क्या कर रहे हो? मुझे क्यों लोटे का आकार का बनाए दे रहे हो? पानी में प्रतिशोध नहीं है, विरोध नहीं है, रेसिस्टेंस नहीं है। तुमने जैसा ढाला वैसा ही ढल जाता है। एक दफे भी आवाज नहीं देता कि यह क्या कर रहे हो? मेरा आकार बिगाड़े देते हो! इसलिए हमें लगेगाः बड़ा निर्बल है। न कोई व्यक्तित्व, न कोई अहंकार की घोषणा।

पत्थर को इतनी आसानी से न ढाल सकोगे। सब तरह की अड़चन खड़ी करेगा। छेनी-हथौड़ी लानी पड़ेगी; बड़ी कुशलता से मेहनत करनी पड़ेगी तब कहीं तुम पत्थर को आकार दे पाओगे। इंच-इंच लड़ेगा; प्रतिपल विरोध करेगा। तुम चाहे सुंदर मूर्ति ही गढ़ रहे होओ, अनगढ़ पत्थर भी विरोध करेगा। वह कहेगा, रहने दो मुझे जैसा मैं हूं। तुम हो कौन बदलने वाले? तुम्हारी छेनी-हथौड़ी से भी लड़ेगा, संघर्ष देगा। वह पत्थर का बल है। वह तुम्हें ऐसे ही नहीं बदल लेने देगा। बिना संघर्ष के तुम इंच भर भी जीत न सकोगे।

लेकिन पानी ऐसा निर्बल है कि एक क्षण को भी विरोध खड़ा नहीं करता। तुम इधर ढालते हो, उधर वह ढल जाता है। न छेनी लानी पड़ती न हथौड़ी; कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता। लेकिन यही उसका बल भी है। पत्थर को--वह कितना ही बलवान मालूम पड़ता हो--तोड़ा जा सकता है, आकार दिया जा सकता है, मूर्ति बनाई जा सकती है। तुमने कभी किसी को पानी की मूर्ति बनाते देखा? पत्थर लड़ता है, लेकिन ढाला जा सकता है। पानी ढलने को बिल्कुल तैयार है। कैसे ढालोगे? तुम भला सोच लो कि तुमने पानी को आकार दे दिया, लेकिन पानी अपने निराकार होने में लीन रहता है। गिलास में ढालते हो तो भी तुम सोचते हो कि आकार मिल गया। आकार मिला नहीं है। गिलास से बाहर निकालो पानी को, वह फिर निराकार है। पानी अपने निराकार में लीन रहता है। ऊपर से दिखाई पड़ती है जो निर्बलता वही उसकी बड़ी सबलता है। पानी निराकार है; पत्थर आकार है। पानी परमात्मा के ज्यादा निकट है। अहंकार नहीं है पानी के पास कोई।

पानी को भी जमा कर अगर तुम बर्फ बना लो तो संघर्ष शुरू हो जाता है। अहंकार की भी ऐसी ही तीन दशाएं हैं। जैसे पानी जम जाए बर्फ, ऐसा जो गहन अहंकारी होता है उसके भीतर पत्थर जैसा अहंकार होता है, बर्फ जैसा। अहंकार की दूसरी अवस्था है पानी जैसी तरल। यह विनम्र आदमी है; तुम उसे जैसा ढालो वैसा ढल जाए; तुम उसे जहां चलाओ चल जाए; जो किसी तरह का प्रतिरोध नहीं करता; कोई संघर्ष नहीं करता; हवाएं जहां ले जाएं वहां जाने को राजी है; जिसकी अपनी कोई मर्जी नहीं; तरल। और फिर अहंकार की आखिरी अवस्था है जैसे भाप। खो ही जाए, इतना भी न बचे जितना कि पानी है, विराट आकाश में लीन हो जाए। जैसे-जैसे तरल होता है पत्थर का बर्फ वैसे-वैसे निराकार के करीब आता है। फिर जैसे-जैसे वाष्प बनता है तो निराकार के साथ बिल्कुल लीन हो जाता है।

अपने भीतर खोजना कि अहंकार किस दशा में है। अक्सर तो तुम पाओगे, पत्थर की तरह है। हर वक्त संघर्ष में लीन है, और हर वक्त सुरक्षा के लिए तत्पर है, कि कहीं कोई हमला न कर दे, कि कहीं कोई हंस न दे, कि कहीं कोई चोट न पहुंचा दे। तुम पूरे वक्त अपने को बचा रहे हो। और बचाने योग्य भीतर कुछ भी नहीं है। व्यर्थ ही पहरा दे रहे हो; अभी पहरा देने योग्य संपदा भी पास में नहीं है। व्यर्थ ही पूरे समय संघर्ष कर रहे हो। लोग जिंदगी भर लड़ते रहते हैं कि कोई हमें पिघला न दे, कोई चोट न पहुंचा दे, कोई छेनी-हथौड़ा लाकर थोड़ी सी आकृति न दे दे। छोटे-छोटे बच्चे तक लड़ते हैं। छोटे से बच्चे से कहो, मत जाओ बाहर! और वह उसी क्षण बाहर जाना चाहता है। क्योंकि तुमने उसके अहंकार को चुनौती दे दी। तुम यह कह रहे हो कि कौन बड़ा है? किसका अहंकार बड़ा है? कौन बलशाली है?

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था। दवा सामने रखी थी, वह पीने से इनकार कर रहा था। मां थक गई थी। सब कुछ कर चुकी थी। मार-पीट भी हो चुकी थी। आंसू जम गए थे सूख कर, लेकिन वह बैठा था और दवा नहीं पी रहा था तो नहीं पी रहा था। नसरुद्दीन ने उसे कहा कि देख बेटा, मुझे मालूम है कि दवा कड़वी है। मैं भी तेरे जैसा कभी छोटा बच्चा था; दवा मुझे भी कभी पीनी पड़ती थी। लेकिन तेरे जैसा नहीं था मैं; मैं एक बार संकल्प कर लेता था कि रहने दो कड़वी, पीऊंगा! तो अपने संकल्प का पक्का साबित होता था, और पीकर रहता था।

उस लड़के ने नसरुद्दीन की तरफ देखा, और कहा कि संकल्प का पक्का मैं भी हूं। मैंने संकल्प किया है कि नहीं पीऊंगा। रखी रहने दो दवा को; देखें क्या होता है! मैं आपका ही बेटा हूं। संकल्प मेरा भी पक्का है।

छोटे-छोटे बच्चे भी सीख रहे हैं अहंकार की कला--कैसे अपने को बचाना, अपनी बात को। और जानते हैं क्या करने से अपनी सुरक्षा होगी। और धीरे-धीरे निष्णात होते जाते हैं।

नसरुद्दीन के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि घर में उसका नाम, जब वह बच्चा था, उलटी खोपड़ी था। क्योंकि जो भी उससे कहो वह उससे उलटा करता था। तो घर के लोग समझ गए थे, नसरुद्दीन का बाप भी समझ गया था, कि जो करवाना हो उससे उलटी बात कहो। गणित सीधा था। चाहते हो बाहर न जाए, इससे कहो कि देखो, बाहर जाओ! अगर न गए तो ठीक न होगा। तो वह घर में ही बैठा रहेगा। बाहर न भेजना हो तो बाहर भेजने का आदेश दे दो; वह घर में बैठा रहेगा। फिर लाख उपाय करो वह बाहर नहीं जा सकता।

एक दिन दोनों चले आ रहे थे गांव के बाहर से। गधे पर नमक की बोरियां लादी थीं। नमक खरीदने गए थे। जब नदी के पुल पर से गुजर रहे थे तो बाप ने देखा कि बोरियां नमक की बाएं तरफ ज्यादा झुकी हैं, और हो सकता है न सम्हाली गईं तो गिर जाएं। लेकिन नसरुद्दीन से कुछ भी करवाना हो तो उलटी बात कहनी जरूरी है। तो बाप ने कहा कि देख नसरुद्दीन, बोरियां दाईं तरफ ज्यादा झुकी हैं। थोड़ा बाईं तरफ झुका दे।

झुकी थीं बाईं तरफ, झुकवानी थीं दाईं तरफ; ठीक उलटी बात कही। लेकिन नसरुद्दीन ने जैसा बाप ने कहा वैसा ही कर दिया। बोरियां, जो कभी गिर सकती थीं, फौरन नदी में गिर गईं।

बाप ने कहा, नसरुद्दीन, यह तेरे आचरण के बिल्कुल विपरीत है!

नसरुद्दीन ने कहा, शायद आपको पता नहीं कि कल मैं अठारह साल का हो गया, अब मैं प्रौढ़ हूं। अब बचपने की बातें ठीक नहीं। अब मैं वही करूंगा जो किया जाना चाहिए। अब जरा सोच-समझ कर आज्ञा देना।

छोटे बच्चे भी संघर्ष में लीन हो जाते हैं। बड़े-बूढ़ों की तो बात ही क्या, छोटे बच्चे तक विकृत हो जाते हैं। फिर यह विकृति जीवन भर पीछे चलती है। और तब तुम तड़पते हो और चिल्लाते हो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हमें हृदय का कुछ पता नहीं चलता; कि हृदय है, इसका भी पता नहीं चलता। तुम यह मत सोचना कि यह होगा किसी और के संबंध में सही; तुम्हें भी पता नहीं है हृदय के होने का। वह जो धक-धक हो रही है वह हृदय की नहीं है, वह तो फेफड़े की है। वह तो केवल खून के चलने की चाल का तुम्हें पता चल रहा है। हृदय की धक-धक तो तुमने अभी सुनी ही नहीं। उसे तो केवल वही सुन पाता है जो अहंकार की चट्टान को तोड़ देता है। तब जीवन का सारा रूप बदल जाता है। तब तुम कुछ और ही देखते हो। तब यह सारा अस्तित्व अपनी परिपूर्ण महिमा में प्रकट होता है।

क्योंकि तुम्हारे पास हृदय ही नहीं है, वीणा के तार ही टूटे पड़े हैं, अस्तित्व कैसे गीत को गाए? कैसे गाए अपने गीत को तुम्हारे हृदय की वीणा पर? अहंकारी के पास कोई हृदय नहीं होता। अहंकार कीमत मांगता है। और सबसे पहली कुर्बानी हृदय की है। क्योंकि हृदय का अर्थ है तरलता।

तुम जितना हार्दिक आदमी पाओगे उतना तरल पाओगे। इसीलिए तो हम कहते हैं--किसी आदमी में अगर तरलता न हो तो कहते हैं--इसका हृदय पाषाण हो गया, पत्थर हो गया। हम कहते हैं, पत्थर भी पिघल जाए लेकिन इस आदमी का हृदय नहीं पिघलता। यह मुहावरा कीमती है। यह घटना तब घटती है जब अहंकार इतना मजबूत हो जाता है कि अहंकार के परकोटे में छिप जाता है हृदय, अहंकार के पत्थरों में छिप जाता है। उसका पता ही खो जाता है। वह तुम्हारे भीतर होता है, पड़ा रहता है निर्जीव, निष्क्रिय।

हृदय तरल है, और आत्मा वाष्पीभूत रूप है, अहंकार पत्थर की तरह है जमा हुआ बर्फ। इसलिए अहंकार तुम्हारी खोपड़ी में जीता है, मस्तिष्क में, विचार में। वे सब मुर्दा हैं। अहंकार उन हड्डियों-पसलियों को इकट्ठा कर लेता है। उस अस्थिपंजर--विचारों के अस्थिपंजर--के ऊपर अकड़ कर बैठ जाता है। वहीं उसकी गति है। उससे नीचे, उससे गहरे में उसकी कोई गति नहीं है।

उससे नीचे हृदय है, जहां सब तरल है, पानी की तरह है। और उससे भी गहराई में तुम्हारी आत्मा है जो वाष्प की तरह है, जो कि लीन, शून्य है, जिसको तुम छू न सकोगे, जिसे तुम देख न सकोगे, जिसे तुम मुट्ठी में बांध न सकोगे, जिसका कोई स्पर्श नहीं हो सकता और न कोई दर्शन हो सकता है। क्योंकि तुम ही वही हो।

और जिसे भी अंतर्यात्रा करनी हो, उसे पहले मस्तिष्क की बर्फ पिघलानी पड़ती है। उसके पिघलने पर पहली दफा तरल हृदय का पता चलता है। फिर तरल हृदय को भी तपश्चर्या, योग, ध्यान से वाष्पीभूत करना होता है। और जैसे-जैसे तरल हृदय वाष्पीभूत होने लगता है, तुम्हें पहली दफा आत्मा के आकाश का अनुभव होता है। सब द्वार गिर जाते हैं, सब दीवालें मिट जाती हैं। अनंत आकाश है। जितना अनंत आकाश तुमसे बाहर है उतना ही अनंत आकाश तुम्हारे भीतर है; उससे रत्ती भर भी कम नहीं है। और चांद-तारों का सौंदर्य कुछ भी नहीं है जब तुम्हें भीतर के चांद-तारे दिखाई पड़ेंगे। तब बाहर के सूर्योदय का कोई भी अर्थ नहीं है, क्योंकि कबीर कहते हैं कि मेरे भीतर हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ उग गए हैं।

जब तुम भीतर के आकाश को देख पाओगे तब तुम समझोगे कि तुमने कितनी बड़ी कीमत पर क्षुद्र से अहंकार को सजा कर, क्षुद्र से अहंकार को लेकर बैठ गए थे। एक पत्थर की पूजा कर रहे थे, और जीवंत भीतर तड़प रहा था। पक्षी भीतर मौजूद था जो आकाश में उड़ सकता था, और तुम पक्षी को तो भूल ही गए थे, लोहे के पिंजड़े को पकड़ कर बैठ गए थे। और उसकी ही पूजा चल रही थी।

लाओत्से कहता है, "पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है।"

और अगर कठिन को जीतना हो तो पानी जैसे हो जाना। और तुमसे ज्यादा कठिन क्या है? अगर तुम्हें स्वयं को भी जीतना हो तो पानी जैसे तरल हो जाना, तो ही जीत पाओगे, अन्यथा नहीं। यह जीत की बात किसी और को जीतने के लिए नहीं है, जीत की बात अंततः तो आत्म-विजय के लिए है।

दूसरे को जीतने जो चला है वह तो कठोर होगा ही। तुमने कभी किसी आदमी को झगड़े में पानी उठा कर किसी को मारते देखा है? लोग पत्थर उठा कर मारते हैं, पानी उठा कर नहीं। जब कोई दूसरे से लड़ने चलेगा तब तो तुम्हारा पूरा तर्क तुम्हें कहेगा कि पत्थर जैसे हो जाओ! पीस डालो दूसरे को पत्थर के नीचे!

लेकिन ध्यान रखना, जब तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होते हो तभी एक बड़ी भारी घटना तुम्हारे भीतर घट रही है। उसका तुम्हें पता नहीं है। जब तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होते हो तब तुम अपने लिए भी पत्थर जैसे हो जाते हो। क्योंकि जो तुम्हारा व्यवहार दूसरे के लिए है वही अंततः तुम्हारा व्यवहार अपने लिए हो

जाता है। जो अभ्यास तुम दूसरे के साथ करते हो वही अभ्यास तुम्हारा कारागृह हो जाएगा; उसी अभ्यास में तुम बंद हो जाओगे।

अगर तुम दूसरे के लिए पत्थर जैसे होना चाहते हो तो चौबीस घंटे दूसरे मौजूद हैं। घर आओ तो पत्नी है, बेटे हैं, बच्चे हैं, नौकर-चाकर हैं। बाहर जाओ तो बाजार है, भीड़ है, सब तरफ दुश्मन हैं। कठोर आदमी के लिए मित्र तो कहीं भी नहीं हैं, प्रतियोगी हैं, प्रतिस्पर्धी हैं। बाहर जाओ तो, घर आओ तो, चौबीस घंटे तुम्हें दूसरे से संघर्ष करना पड़ रहा है। तुम्हारे सपने तक में तुम दूसरों से लड़ते रहते हो। अगर चौबीस घंटे तुमने यह अभ्यास किया कठोरता का, तो तुम सोचते हो तुम अपने प्रति पत्थर होने से बच जाओगे? यह अभ्यास इतना मजबूत हो जाएगा कि तुम अपने प्रति भी पथरीले हो जाओगे।

मैं बहुत मुश्किल से ऐसे आदमी के करीब आ पाता हूं कभी। हजारों लोग मेरे करीब आते हैं। इतने करीब आते हैं जितने वे करीब किसी आदमी के न आते होंगे। मेरे सामने अपना हृदय खोल कर रख देते हैं। न भी रखें तो मुझसे बचने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन कभी-कभी ऐसा घटता है कि ऐसा आदमी मुझे दिखाई पड़ता है जो अपने को प्रेम करता हो--कभी! जितने लोग आते हैं, उनमें से अधिक लोग खुद को घृणा करते हैं। उन्हें पता भी नहीं है, लेकिन दूसरे को घृणा करते-करते, दूसरे के प्रति पथरीले होते-होते, चलते-चलते अभ्यास के, वे अपने प्रति भी पथरीले हो गए हैं। अब पत्थर होना उनकी सहज आदत हो गई है, वह उनका दूसरा स्वभाव हो गया है। अब वे अकेले में भी बैठे हैं जहां कोई दूसरा नहीं है तो भी पत्थर की तरह बैठे हैं। इस पत्थर होने से छुट्टी लेना आसान नहीं है। यह उनके रग-रेशे में समा गया है। वे खुद को भी निंदा करते हैं, घृणा करते हैं।

दूसरे के प्रति तुम्हारा जो व्यवहार है, ध्यान रखना, अंततः वही तुम्हारा अपने प्रति व्यवहार हो जाएगा। जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः जो तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ हो, वही तुम दूसरे के साथ करना। और इस वचन का इतना ही अर्थ नहीं है कि जो तुम चाहते हो दूसरे तुम्हारे साथ करें, वही तुम उनके साथ करना; इस वचन का गहरे से गहरा अर्थ यह है कि तुम जो दूसरों के साथ करोगे, अंततः तुम अपने साथ भी करोगे। वह तुम्हारे जीवन की शैली और पद्धति हो जाएगी।

इसलिए भूल कर भी पत्थर जैसे होने की सुविधा मत बनाना। कठिन से कठिन समय भी हो तो भी तुम कठोर मत बनना। तुम तरल रहना। अगर तुम्हें कभी जीवन की गहरी अनुभूतियों में उतरना है तो तुम्हें पिघलना ही होगा। तो दूसरा जब गालियों की वर्षा भी कर रहा हो तब भी तुम भीतर तरल रहना।

जीसस के बड़े प्यारे वचन हैं। जीसस और लाओत्से में बड़ा तालमेल है। जीसस का वचन है कि तुम्हारा कोई कोट छीने तो तुम कमीज भी दे देना; और कोई तुम्हें दो मील चलने को कहे बोझ ढोने को तो तुम चार मील चले जाना; और कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे तो तुम देर मत करना, दूसरा गाल उसके सामने कर देना।

इन सारी बातों का क्या अर्थ है? इन सारी बातों का इतना ही अर्थ है कि तुम कठोर मत होना, तुम तरल रहना, तुम पानी की भांति रहना। वह कहे दो मील, तुम कहना हम चार मील तैयार। तुम बहने को तत्पर रहना। तुम साथ जाने को राजी रहना। तुम सहयोग करना दुश्मन के साथ भी।

और अगर तुमने दुश्मन के साथ सहयोग किया तो तुम पाओगे कि दुश्मन दुश्मन न रहा; क्योंकि सहयोग करने की कला दुश्मन को रूपांतरित कर देती है। और अगर तुमने दुश्मन के साथ भी सहयोग किया तो मित्रों के साथ तो तुम कितना न कर पाओगे। और मित्रों के साथ जब तुम इतना कर पाओगे तो तुम उसका तो कोई हिसाब ही नहीं लगा सकते कितना तुम अपने साथ न कर पाओगे।

दुश्मन सबसे दूर है। बीच में मित्र हैं। फिर तुम हो। दुश्मन तुम्हारा अड्डा है जहां तुम सीखोगे क्या करनाः कठोर होना? दुश्मन के साथ कठोर हुए तो मित्र के साथ भी कठोरता जारी रहेगी। और तुम जो विनम्रता दिखलाओगे वह चेहरे पर होगी, वह असली में भीतर नहीं होगी। और अपने साथ--जो कि आखिरी मित्रता है--वहां भी तुम वही व्यवहार करोगे। बुद्ध ने कहा है, तुम ही हो अपने मित्र और तुम ही हो अपने शत्रु। अगर तुम कठोर होने का अभ्यास कर लेते हो--घृणा का, ईर्ष्या का, मत्सर का--तो तुम अपने दुश्मन हो जाओगे। और अपने तुम ही हो मित्र, अगर तुमने प्रेम का, करुणा का, तरलता का अभ्यास किया, अगर तुमने बहने का अभ्यास किया।

तुमने कभी सोचा! हर चीज, छोटी-छोटी चीज बहुत विचार और विमर्श करने जैसी है। जब तुम घृणा से भरे होते हो तब तुम्हारे भीतर सब बहाव बंद हो जाता है। और जब मैं कह रहा हूं बहाव बंद हो जाता है, तो मैं शाब्दिक रूप से कह रहा हूं; ऐसा निश्चित हो जाता है, शब्दशः हो जाता है। यह कोई प्रतीक नहीं है। जब तुम घृणा से भरे होते हो तब तुम बंद हो जाते हो, तुम्हारी जीवन-ऊर्जा बाहर की तरफ बहती नहीं। जब तुम प्रेम और करुणा से भरे होते हो तब? तब तुम्हारी ऊर्जा बहती है, तब तुम्हारे चारों तरफ झरने निकल पड़ते हैं। जब तुम प्रेमपूर्ण होते हो तब तुम अनायास बंटने को आतुर होते हो, बांटना चाहते हो, दूसरे को साझीदार बनाना चाहते हो, सहभागी बनाना चाहते हो। तुम्हारा हाथ फैलता है और दूसरे के हाथ को अपने हाथ में लेना चाहता है। तुम अपने द्वार खोलना चाहते हो। तुम चाहते हो कोई तुम्हारे भीतर अंतरतम में प्रवेश करे और तुम्हारे खजाने में साझी हो जाए। जब तुम घृणा से भरे होते हो, तत्क्षण सब द्वार-दरवाजे बंद हो जाते हैं। तुम अपने भीतर रुक जाते हो, बहाव रुक जाता है।

न केवल इतना, बल्कि घृणा से भरे हुए आदमी के पास जाकर तुम अनुभव करोगे कि जैसे तुम किसी पत्थर के पास से गुजर रहे हो जिसमें कोई संवेदन नहीं है। जहां से कोई रिस्पांस, जहां से कोई प्रत्युत्तर नहीं आता, जहां से कोई प्रतिध्वनि भी नहीं गूंजती। मुर्दा घाटियां भी प्रतिध्वनि से भर जाती हैं; लेकिन घृणा में बंद आदमी, कठोर हुआ आदमी, घाटियों से बदतर हो जाता है। तुम गीत गाओ, उसके भीतर कोई गूंज पैदा नहीं होती। तुम हाथ बढ़ाओ, उसके भीतर से कोई तुम्हारी तरफ नहीं बढ़ता। तुम उसके पास जाओ, वह तुमसे हटता है। चाहे वस्तुतः शरीर से न हटा हो, लेकिन भीतर हटता है।

जब तुम प्रेम से भरे आदमी के पास जाते हो तब तुम पाते हो एक आमंत्रण, एक बुलावा। तुम कभी भी बिना बुलाए मेहमान नहीं हो वहां। प्रेम से भरे आदमी को पाकर तुम अनुभव करोगे जैसे वह तुम्हारी ही जन्मों-जन्मों से प्रतीक्षा कर रहा था, तुम्हारे लिए ही द्वार खोल कर बैठा था, पता नहीं तुम कब आ जाओगे। तुम वहां बिना बुलाए मेहमान नहीं हो। वहां द्वार पर ही स्वागतम लिखा है। तुम पाओगे, वह बांटने को राजी है। जो भी है उसके पास वह तुम्हारे साथ साझीदार हो जाना चाहता है। उसके हाथ बढ़े हैं। वह आलिंगन को तत्पर है।

हेनरी थारो अमरीका में एक बहुत बड़ा विचारक और एक बड़ा साधक हुआ। उसने धीरे-धीरे अनुभव किया... । उसकी जीवन-धारा बड़ी प्रवाहमान थी। उसने अनुभव किया--अमरीका में तो जैसे हाथ मिलाने की विधि है, पद्धति है--तो उसने अनुभव किया कि सभी लोगों से हाथ मिलाते वक्त एक सी प्रतीति नहीं होती। किसी के हाथ में से कुछ बहता हुआ आता है। किसी के हाथ में से कुछ बहता हुआ नहीं आता। किसी का हाथ तो शोषक मालूम पड़ता है कि उसने तुम्हें चूस लिया, लेकिन दिया कुछ भी नहीं। और किसी का हाथ तुम्हें आपूर कर देता है, भर देता है और लेता कुछ भी नहीं, मांगता कुछ भी नहीं।

तुम भी ख्याल करना, जब तुम लोगों से हाथ मिलाओ तब ख्याल करना, दूसरे हाथ से कोई जीवन-ऊर्जा आती है दौड़ कर तुम्हारे स्वागत को? शरीर तो विद्युत-प्रवाह है। वैज्ञानिक कहते हैं, बायो-इनर्जी। दौड़ रही है जीवन-ऊर्जा, एक वर्तुल में दौड़ रही है। तुम्हारे चारों तरफ एक वर्तुल में जीवन-ऊर्जा दौड़ रही है।

दूसरों के प्रति घृणा से भरा हुआ और अपने प्रति घृणा से भरा हुआ आदमी इस जीवन-ऊर्जा को सख्त कर लेता है, यह पथरीली हो जाती है। पानी की तरह तरल आदमी इसे तरल कर लेता है। और मजा यह है कि जितनी यह तरल होती है उतने ही नये झरने तुम्हारे भीतर फूटने लगते हैं। क्योंकि तुम भीतर अनंत हो। तुम भीतर महासागर हो। तुम जितना बांटोगे उतना ही तुम्हें भीतर के नये झरनों का बोध होगा। तुम जितना दोगे उतना ही पाओगे। यहां से पानी बाहर जाएगा और तुम भीतर से पाओगे नये झरनों ने तुम्हें फिर भर दिया। तुम जितना रोकोगे उतना ही सड़ोगे। तब तुम एक डबरे हो जाओगे जिसमें सिर्फ गंदगी पलेगी, मच्छरों का आवास होगा, बदबू उठेगी। जीवन की सतत धार रुक जाएगी।

परमात्मा तुम्हारे कुएं से प्रतिपल बहने को तैयार है, लेकिन तुम बहने को तैयार नहीं हो। थोड़ा सहयोग दो। थोड़ा बहो, और देखो। इतने कंजूस होने की कोई भी जरूरत नहीं है। और जिस जीवन के लिए तुम इतने कृपण हो वह जीवन अनंत है। तुम कितना ही लुटाओ लुटेगा न। तुम कितना भी बांटो बंटेगा न, बढ़ेगा। बढ़ता चला जाता है।

लाओत्से कहता है, "पानी से दुर्बल कुछ भी नहीं है, लेकिन कठिन को जीतने में उससे बलवान भी कोई नहीं है।"

अगर तुम बहने को राजी हो प्रेम से तो तुम कठोर से कठोर को भी जीत लोगे। इसलिए नहीं कि तुम जीतना चाहते थे; क्योंकि जो जीतना चाहता है वह तो तरल हो ही न सकेगा; बल्कि इसीलिए कि तुम्हारी जीतने की कोई आकांक्षा ही न थी। तुम तो सिर्फ जीवन में सहभागी बनाना चाहते थे। मित्र था या शत्रु, यह उसकी दृष्टि थी; तुम तो सभी को देना चाहते थे, तुम बांटने को तत्पर थे, और तुम्हारी कोई शर्त न थी। और तुम पाओगे कि कठोर से कठोर हार जाता है।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है। वे एक पहाड़ के पास से गुजरते थे। गांव के लोगों ने रोका। वह रास्ता निर्जन हो गया था; वहां कोई जाता न था। क्योंकि वहां एक हत्यारे ने वास कर लिया था। और उस हत्यारे ने कसम ले ली थी कि वह एक हजार आदमियों की गर्दन काटेगा और उनकी अंगुलियों की माला पहनेगा। उस आदमी का नाम अंगुलीमाल हो गया था। उसने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार ही डाले थे। इसलिए अब लोग इतने डर गए थे कि जिसका कोई हिसाब नहीं। खुद उसकी मां उससे मिलने जाना बंद कर दी थी। क्योंकि वह ऐसा पागल था और हजारवें आदमी की प्रतीक्षा कर रहा था कि यह भी हो सकता है कि वह मां की भी गर्दन उतार दे और अंगुलियों की माला बना कर पहन ले। मां भी जहां जाने से डरने लगी हो, तुम सोच सकते हो खतरा कैसा था! जहां मां भी पथरीली हो गई हो, तुम सोच सकते हो कि खतरा कैसा था! जहां मां ने भी बेटे को देना बंद कर दिया हो वहां तुम सोच सकते हो कि खतरा कैसा था!

लोगों ने बुद्ध को कहा, आप वहां मत जाएं। यह आदमी पागल है। यह तुम्हारी फिक्र न लेगा और न यह समझेगा कि तुम कौन हो। यह समझ ही नहीं सकता; इसकी बुद्धि मारी गई है।

लेकिन बुद्ध ने कहा, यह भी तो सोचो, वह हजारवें आदमी की प्रतीक्षा कर रहा है। और कोई भी न जाएगा तो उस बेचारे का क्या होगा? तुम उसकी तकलीफ भी तो समझो। वह कब तक ऐसी प्रतीक्षा करता रहेगा? और मेरे शरीर से जो होना था वह हो चुका, जो पाना था, वह पा लिया। अब इस शरीर का और क्या

इससे अच्छा उपयोग हो सकता है कि इस आदमी की प्रतिज्ञा पूरी हो जाए? कौन जाने यह प्रतिज्ञा पूरे होने पर इसका पागलपन खो जाए? मुझे जाना ही होगा, बुद्ध ने कहा।

गांव में खबर पहुंच गई कि ये बुद्ध उस अंगुलीमाल से भी ज्यादा पागल मालूम होते हैं। बुद्ध के शिष्य भी डरे। प्रतिज्ञा ली थी सदा साथ चलने की, वे सब भूल गईं प्रतिज्ञाएं। पास-पास चलने में बड़ा रस आता था, क्योंकि प्रतिष्ठा मिलती थी। अब खतरे का मामला था। बुद्ध के पास जो चलता था वह बड़े सम्राटों की नजरों में भी आ जाता था। अब आज कौन जाएगा साथ? लोगों के कदम धीमे हो गए। बुद्ध पहली दफा अकेले चले उस रास्ते पर। साथी थे, लेकिन वे काफी पीछे थे, अचानक उनके पैरों की गति धीमी हो गई थी। ऐसा कभी न हुआ था। और जब लोगों ने अंगुलीमाल को देखा कि वह एक चट्टान पर फरसे पर धार रख रहा है तब तो वे ठहर ही गए।

अंगुलीमाल ने आंख उठाई। पीत वस्त्रों में आते हुए सुंदर इन बुद्ध को देखा; एक चमत्कार घटित हुआ। वह हमें चमत्कार लगता है, क्योंकि हमें प्रेम की परिभाषा नहीं आती, और न हमें प्रेम के गणित का कोई पता है। लेकिन चमत्कार नहीं, सीधा गणित है। उसने बुद्ध को देखा। उसके जीवन में पहली दफे करुणा का भाव उठा। यह आदमी इतना निरीह मालूम हुआ, इतना कमजोर, कि इसको मारना? एक भिक्षु को? और इसके चेहरे पर ऐसी स्निग्धता और ऐसी शांति कि क्षण भर को अंगुलीमाल को भी दया आ गई। कोई जीवन-ऊर्जा प्रवाहित हो रही है; पानी पत्थर को तोड़ रहा है, जलधार कठोर पत्थर को गिराए दे रही है।

अंगुलीमाल थोड़ा घबराया। जो अंगुलीमाल से घबराते थे उनसे अंगुलीमाल कभी नहीं घबराया था। अंगुलीमाल थोड़ा घबराया। यह अतिशय हुआ जा रहा है। उसने खड़े होकर आवाज दी कि रुक जाओ भिक्षु वहीं! आगे मत बढ़ो! तुम्हें शायद पता नहीं है। क्या तुम्हें गांव के लोगों ने नहीं बताया? लगता है अनजान-अपरिचित तुम चले आए हो इस मार्ग पर। मैं हूं अंगुलीमाल। शायद तुमने नाम सुना हो। यह देखते हो, नौ सौ निन्यानबे लोगों की अंगुलियों की माला पहने बैठा हूं। एक आदमी की कमी रह गई है। मेरी मां भी आना बंद कर दी है। आ जाए तो उसकी मैं गर्दन उतार दूं। तुम लौट जाओ। अनजान देख कर मुझे तुम पर दया आती है।

अंगुलीमाल समझ नहीं पा रहा है। कैसे समझ पाएगा! यह दया अंगुलीमाल के कारण नहीं आ रही है, नहीं तो पहले भी आ गई होती। नौ सौ निन्यानबे आदमी मार चुका और दया न आई। और आज अचानक दया आ रही है! अंगुलीमाल के कारण नहीं आ रही है। यह घटना बुद्ध के कारण घट रही है। वह जो बहता हुआ प्रेम का प्रवाह है, वह दूसरे को भी रूपांतरित करता है। वह बड़ी अनजान शक्ति है, दिखाई नहीं पड़ती। एक हृदय से दूसरे हृदय तक जाते हुए बीच के रास्ते में तुम उसे कहीं पकड़ कर प्रयोग न कर पाओगे कि कैसी है। शायद छलांग लेती है, शायद बीच में कोई रास्ता पूरा करती ही नहीं। अभी यहां और युगपत वहां, जैसे बीच में कोई यात्रा नहीं होती। इतनी त्वरा है।

वे कहते हैं प्रकाश की गति एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील है--प्रति सेकेंड! लेकिन प्रकाश को भी वे पकड़ पाए हैं, प्रेम को अभी तक नहीं पकड़ पाए। शायद प्रेम की गति कभी पकड़ में न आ सके। आना भी नहीं चाहिए। क्योंकि प्रेम तो प्रकाश से भी गहरा प्रकाश है, महाप्रकाश है। और जब सूरज भी ठंडे हो जाएं तब भी प्रेम ठंडा नहीं होता। जब सूरज भी बुझ जाएं और मृत्यु का अंधेरा उन पर छा जाए तब भी प्रेम का गीत तो गुनगुनाया ही जाता है। प्रेम की वीणा बजती ही रहती है। अंधेरा हो या प्रकाश, दिन हो या रात, जीवन हो या मृत्यु, सुख हो या दुख, प्रेम को कुछ भी मिटा नहीं पाता।

अंगुलीमाल को पता नहीं है, लेकिन उसके मन में करुणा का जन्म हो गया। और बुद्ध मुस्कुराए। बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल, तुम प्रतीक्षा करते एक आदमी की। मैंने सोचा इस शरीर का सब काम पूरा हो ही चुका है, जो पाना था पा लिया, जो जानना था वह जान लिया, अब दुबारा आना भी नहीं है, अगर मैं इतने काम आ जाऊं कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो जाए! इसलिए मैं जान कर आ रहा हूं; मैं कोई अनजान नहीं हूं। मुझ पर दया करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारी दया का भिखारी नहीं हूं। मैं कुछ देने आ रहा हूं, लेने नहीं। इस शरीर का काम पूरा हो चुका अंगुलीमाल, तुम बिल्कुल निर्भय होकर मुझे मार सकते हो।

ऐसा आदमी तो पहले कभी आया न था। जो आए थे वे या तो मृत्यु से डरते थे और भागते थे। जो आए थे या तो भीरु लोग थे, भाग जाते थे; या बहादुर लोग थे, तलवार निकाल कर लड़ने को खड़े हो जाते थे। उन दोनों तरह के आदमियों से अंगुलीमाल भलीभांति परिचित था। उन दोनों से वह निपट सकता था। उसमें कोई अड़चन न थी। यह आदमी कुछ तीसरी तरह का है। अंगुलीमाल ने नीचे से ऊपर तक देखा। तलवार की तो बात दूर, हाथ में कुछ भी नहीं है, भिक्षा-पात्र है। अंगुलीमाल ने फिर एक बार कहा। इस आदमी पर उसे बड़ी दया आने लगी, जैसे कोई छोटा बच्चा आ रहा हो, और उसके हाथ कंपने लगे। और उसने कहा कि मैं फिर तुम्हें कहता हूं कि आगे मत बढ़ो! मैं आदमी बुरा हूं, वहीं रुक जाओ!

और बुद्ध ने एक बड़ा अनूठा वचन कहा है जो मुझे बड़ा ही प्यारा रहा। बुद्ध ने कहा, अंगुलीमाल, मुझे रुके सालों हो गए, तब से मैं चला ही नहीं। जब मन रुक जाता है तो कैसा चलना? मैं तुमसे कहता हूं कि तू ही चल रहा है, मैं नहीं चल रहा हूं। मैं तो खड़ा हुआ हूं। तू गौर से देख!

बुद्धों से बात करना ठीक नहीं, खतरे से खाली नहीं। अंगुलीमाल फंस गया। वह हंसा जोर से। और उसने कहा कि तुम पागल हो। मुझे पहले ही शक हो गया था कि कोई पागल ही ऐसा आएगा। चलते हुए को खड़ा हुआ कहते हो और मुझ खड़े हुए को चलता हुआ! मैं समझा नहीं, क्या तुम्हारा मतलब है?

और जब कोई बुद्ध से पूछने लगे तो गया, फिर उसके बचने का कोई उपाय नहीं। अंगुलीमाल ने पूछा, और वहीं वह हार गया। वह भूल ही गया कि मारना है इस आदमी को; मैं हूं बधिक, काटना है इस आदमी को। हिंसा जैसी चीज करनी हो तो बुद्ध जैसे लोगों के साथ जल्दी कर लेनी चाहिए। इसमें देर करना खतरनाक है। जरा सा अवसर, कि बुद्ध की ऊर्जा तुम्हें आपूरित कर लेगी, सब तरफ से घेर लेगी, तुम्हें निरस्त्र कर देगी।

बुद्ध पास आ गए हैं। और बुद्ध ने कहा, तू गौर से देख, मेरी आंखों में देख। मन ठहर गया; वासना रुक गई; चलना कैसा?

ऐसे कठिन सवाल अंगुलीमाल ने न तो कभी सोचे थे, न मौका आया था। सीधा-सादा आदमी था।

अपराधियों से ज्यादा सीधे-सादे आदमी दुनिया में खोजने मुश्किल हैं। सज्जन तो जरा तिरछे होते हैं, दुर्जन बिल्कुल सीधा होता है। उसका गणित साफ है। वह कोई छिपाधड़ी धोखाधड़ी नहीं करता। बुरा है, यह उसे भी स्पष्ट है। वह पाखंडी नहीं है। पाखंडी खोजना हों तो मंदिर-मस्जिदों, गुरुद्वारों में खोजने चाहिए। वे तुम्हें तिलक लगाए, माला फेरते मिलेंगे। अपराधियों में पाखंडी नहीं हैं। वे सीधे-सादे लोग हैं। बुरे हैं, खतरनाक हैं, पर पाखंडी नहीं हैं।

वह अपने सिर पर हाथ रख कर सोचने लगा। उसने कहा, तुम मुझे बिगूचन में डालते हो। बुद्ध ने कहा, तू बातचीत में मत पड़, अन्यथा तू उलझ जाएगा। तू अपना काम कर। तू उठा अपना फरसा और मुझे काट दे। लेकिन काटने के पहले मैं तुझसे एक बात पूछता हूं। इसके पहले कि तू मुझे काटे, मरते आदमी की एक इच्छा पूरी कर दे। यह जो सामने वृक्ष है, इसके कुछ पत्ते फरसे से काट कर मुझे दे दे।

उसने उठाया फरसा, पत्ते क्या उसने एक शाखा काट दी और कहा, यह लो। इसका क्या करोगे?

बुद्ध ने कहा, बस यह आधा काम तूने कर दिया, आधा और। इसे तू वापस जोड़ दे।

उसने कहा, तुम निश्चित पागल हो। टूटी शाखा कहीं वापस जोड़ी जा सकती है?

तो बुद्ध ने कहा, बस एक सवाल और, फिर मैं कुछ भी न पूछूंगा। तू मेरी गर्दन काट; बात खतम कर। क्या तू उस आदमी को बहादुर कहता है जो तोड़ सकता है और जोड़ नहीं सकता? क्या उसको तू शक्तिशाली कहता है जो तोड़ सकता है और जोड़ नहीं सकता? या उसे शक्तिशाली कहता है जो जोड़ सकता है? यह शाखा तो बच्चे भी तोड़ देते अंगुलीमाल, तू कोई बहादुर नहीं है। हम तो सोचे थे कुछ बहादुर आदमी मिलेगा। तूने नौ सौ निन्यानबे आदमी मार डाले, तूने कभी यह सोचा कि एक चींटी भी तू बना नहीं सकता, एक सूखे पत्ते को हरा नहीं कर सकता, टूट गई डाल को वापस जोड़ नहीं सकता, जीवंत नहीं कर सकता! मारना तो बहुत आसान है अंगुलीमाल, जिलाना?

अंगुलीमाल का फरसा नीचे गिर गया। वह बुद्ध के चरणों पर गिर गया। और उसने कहा, मुझे जिलाने की कला सिखाओ। मैं तो यही सोचता था कि यह बलवान होना है, लेकिन साफ हो गई है बात कि यह कोई बल नहीं है।

अहंकार का बल कोई बल नहीं है। वह तोड़ता है; वह बनाता नहीं। तो इसे तुम बल की परिभाषा समझ लो कि शक्ति सदा सृजनात्मक है। निर्बलता सदा विध्वंसात्मक है। लेकिन निर्बलता बलपूर्ण मालूम होती है, क्योंकि वह तोड़ती है। हिटलर और नेपोलियन और माओ और स्टैलिन सब कमजोर लोग हैं। बड़े बलशाली मालूम पड़ते हैं, क्योंकि तोड़ने में बड़े कुशल हैं; अंगुलीमाल के वंशज हैं। अंगुलीमाल भी झेंप जाए। अंगुलीमाल ने तो नौ सौ निन्यानबे लोग ही मारे थे, स्टैलिन ने कितने मारे हिसाब लगाना मुश्किल है। अंदाज एक करोड़। हिटलर ने कितने मारे मुश्किल है पता लगाना। एक करोड़ से भी ज्यादा। मिटाना बल नहीं है। लेकिन मिटाने वाला आदमी बलपूर्वक मिटाता है और देखने वालों को लगता है बड़ी शक्ति प्रकट हो रही है।

सृजन शक्तिशाली है, लेकिन सृजन बड़ा कमजोर मालूम पड़ता है। किसी कवि को कविता लिखते देख कर तुम्हें कभी ख्याल उठा है कि यह कवि बलशाली है? किसी चित्रकार को चित्र बनाते देख कर तुम्हें लगा है कि यह महा शक्तिशाली व्यक्ति है? या किसी मूर्तिकार को गढ़ते हुए मूर्ति को? कौन सोचेगा कि चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, नर्तक, ये बलशाली हैं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, यही असली बलशाली हैं। ये निर्बल दिखाई पड़ते हैं; इनकी निर्बलता जल जैसी है। हिटलर, माओत्से तुंग, स्टैलिन बलशाली मालूम पड़ते हैं, इनका बल पत्थर जैसा है। इनके नीचे दब कर कोई मर सकता है। इनके द्वारा किसी के ऊपर जीवन की वर्षा नहीं हो सकती।

राजनीति में मत खोजना बल, न खोजना धन में, न खोजना पद-प्रतिष्ठा में, क्योंकि वहां पत्थर ही पत्थर हैं। जितना तुम्हारे पास धन हो जाएगा उतनी ही तुम्हारी आत्मा सिकुड़ जाएगी और पथरीली हो जाएगी। जितने बड़े पद पर तुम पहुंचोगे, पहुंच ही न पाओगे अगर पथरीला हृदय न हो। क्योंकि लोगों के हृदय पर पैर रखने पड़ेंगे, सिर काटने पड़ेंगे, लोगों की सीढ़ियां बनानी पड़ेंगी, लोगों का साधनों की तरह उपयोग करना पड़ेगा। धोखाधड़ी, बेईमानी, पाखंड, सब करना पड़ेगा, तभी तुम पहुंच पाओगे बड़े पदों पर। तुम पत्थर हो जाओगे। राष्ट्रपति होते-होते भीतर की आत्मा बिल्कुल ही मर गई होती है। वहां कोई होता ही नहीं, सिंहासन पर मुर्दे बैठे रहते हैं।

सृजन है असली बल, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि वह जल की तरलता जैसा है। जो बनाते हैं उन्हें सम्मान देना; जो मिटाते हैं उनसे सम्मान वापस ले लो। अंगुलीमालों की पूजा बहुत हो चुकी। उस पूजा में खतरा है, क्योंकि तुम भी जिसकी पूजा करते हो उसी जैसे होने लगते हो। तुम जिसको आदर देते हो उसी जैसे होने लगते हो। तुम जिसको आदर्श की तरह देखते हो, अनजाने तुम अपने को उसी के रूप में ढालने लगते हो। पत्थरों की पूजा बहुत हो चुकी। जलधार को समझो, सृजन की धार को समझो। कमजोर दिखाई पड़ती चीजों को खोजो। तुम पाओगे वहां बड़ा बल छिपा है।

कोई वीणा पर एक धुन उठा रहा है। क्या है ताकत वहां? एक पत्थर मार दो, वीणा भी टूट जाएगी, संगीत खो जाएगा। बड़ा कोमल फूल है संगीत का। लेकिन काश तुम उसे बरस जाने दो अपने ऊपर तो तुम नये हो जाओगे, तुम्हें अपने ही भीतर नये आयाम मिल जाएंगे। तुम अपने ही भीतर आंगन की जगह आकाश को खोज लोगे। छोटी क्षुद्र सीमाएं गिर जाएंगी। असीम की झलक मिलने लगेगी।

एक नर्तक नाच रहा है। उसके घूंघर बज रहे हैं। क्या है वहां? शरीर की ऊर्जा से एक संगीत पैदा कर रहा है; एक लयबद्धता पैदा कर रहा है; शरीर की गति से एक अदृश्य लोक निर्मित कर रहा है। एक क्षण को यह जगत खो जाता है अगर तुम उसके नृत्य में खो जाओ। एक क्षण को अपने नृत्य के द्वार से तुम्हें वह किसी दूसरे ही जगत का दर्शन करा देता है। बड़ा बलशाली है; लेकिन कितना निर्बल। उठाओ एक पत्थर और मार दो, नृत्य भी गिर जाएगा, नर्तक भी गिर जाएगा। फूल जैसा कमजोर है, यहां जो भी महत्वपूर्ण है।

और लाओत्से कहता है, "कठिन को जीतने में उससे बलवान और कोई नहीं है। उसका कोई पर्याय ही नहीं है। यह कि दुर्बलता बल को जीत लेती है, और मृदुता कठोरता पर विजय पाती है। इसे कोई नहीं जानता है, न ही इसे कोई व्यवहार में ला सकता है।"

इसे कोई नहीं जानता, क्योंकि तुम जानते तो तुम्हारे जीवन में वह अपने आप घट जाता। यह थोड़ा समझने के लिए, थोड़ी नाजुक बात है।

लाओत्से यह कह रहा है, जो जान लेता है वह हो जाता है। जानने और होने में फासला नहीं है। जीवन में कुछ चीजें हैं बाहर की, उन्हें तुम पहले जानो, फिर जानने के बाद अभ्यास करना पड़ता है। और भीतर के जगत का नियम बिल्कुल अनूठा है। वहां जानना ही पर्याप्त है; जानो कि हो गए। तुमने अगर समझ ली यह बात--मेरे समझाने से नहीं, लाओत्से के समझाने से नहीं, जीसस के प्रभाव में नहीं--तुमने यह बात समझ ली तुम्हारी ही बुद्धि की आभा में। तुमने सोचा, ध्यान किया, जीवन का दर्शन किया, जगह-जगह गए, घूंघट उठाया प्रकृति का और पहचानने की कोशिश की कि कौन है विजेता? अंततः कौन जीत जाता है--कमजोर कि सबल? तुमने असली बल की खोज की। तुमने असली शक्ति के स्रोत को देख लिया। तुमने! ध्यान रखना। मेरे दिखाने से भी तुम देख सकते हो, वह उधार होगा। मेरी बात के प्रभाव में भी तुम्हें दिख सकता है, वह दर्शन सपने का दर्शन होगा। नहीं, मेरी बात के प्रभाव में नहीं। मेरी बात तो इतना ही करवा दे कि तुम जीवन में खोजने निकल जाओ और तुम जीवन को खुली आंख से देखने लगो, बस काफी है। जीवन में जिस दिन तुम देख लोगे कि निर्बलता कठोरता पर विजय पा लेती है, स्त्री पुरुष पर जीत जाती है, विनम्र अहंकारी पर जीत जाता है, ना-कुछ जिसके पास सब कुछ है उसे हरा देता है, भिक्षु के भीतर तुम जिस दिन छिपे सम्राट को देख लोगे, उस दिन अभ्यास करना पड़ेगा? फिर क्या तुम निर्बल होने का अभ्यास करोगे? अभ्यास की बात ही क्या रही!

यह तो ऐसे ही है कि तुम पत्थर हाथ में लेकर चल रहे थे और एक दिन अचानक जीवन ने तुम्हें उस खदान के निकट पहुंचा दिया जहां हीरे-जवाहरात भरे थे, तुम्हें दिखाई पड़ गया कि यह जो हाथ में तुम लिए हो वह पत्थर है। क्या तुम उसे छा.ेडने का अभ्यास करोगे? क्या तुम किसी गुरु के पास जाकर कहोगे कि कैसे अब इस पत्थर को छोडूं? छोड़ने का भी कहीं कोई अभ्यास करना पड़ता है? पकड़ने का अभ्यास करना पड़ता है, छोड़ना तो क्षण में हो जाता है। पकड़ने का अभ्यास करना पड़ता है। छोड़ दोगे तुम। पूछने जाओगे किसी से? छोड़ दोगे, यह कहना भी ठीक नहीं है। छूट जाएगा; दिखते ही छूट जाएगा। हाथ खुल जाएंगे; पत्थर गिर जाएगा। हाथ बंधे थे इसलिए कि सोचा था हीरा है। हाथ खुल जाएंगे, जैसे ही दिखाई पड़ जाएगा हीरा नहीं है।

शक्ति की तलाश में तुम भटकते रहे हो जन्मों-जन्मों से। उसको तुमने हीरा समझा है। जिस दिन तुम देखोगे कि निर्बलता बल है, उसी क्षण पत्थर हाथ से गिर जाएगा। अचानक तुम पाओगे सब बदल गया। अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। अभ्यास का तो कोई प्रयोजन ही नहीं है। ऐसे ही जैसे तुम्हें बाहर जाना होता है तो तुम दरवाजे से निकल जाते हो। तुम सोचते भी नहीं, कहां है दरवाजा? पूछते भी नहीं, कहां है दरवाजा? सोच-विचार भी नहीं करते, कैसे निकलें? बस निकल जाते हो। दरवाजा तुम्हें दिखाई पड़ता है। अब क्या पूछना है? क्या सोचना है?

अंधा आदमी निकलना चाहे इस कमरे के बाहर तो पहले पूछेगा, कहां है दरवाजा? टटोलेगा। सोचेगा कि जिस आदमी से पूछा है यह विश्वसनीय है या नहीं! कहीं मजाक तो नहीं कर रहा है कि अंधे को टकरवा दे और गिरवा दे और हंसी करे! तो भी अंधा पूछ कर भी लकड़ी से जांच-पड़ताल करेगा, क्योंकि कई बार लोग मजाक कर गए हैं। और इतने कठोर लोग भी हैं कि अंधों से भी मजाक कर लेते हैं। इतने पथरीले लोग भी हैं कि अंधा गिर जाए उस पर भी हंस लेते हैं। तो अंधा सोचेगा, विचारेगा, हिसाब लगाएगा, लकड़ी से जांच-पड़ताल करेगा, दरवाजे के पास पहुंचेगा, बड़ी व्यवस्था से निकलेगा। उसकी सारी व्यवस्था इसीलिए है कि उसे दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई पड़ जाए तो वह पूछेगा भी नहीं किसी से। जरूरत ही न रही।

इसलिए लाओत्से कहता है, "इसे कोई नहीं जानता है; इसे कोई व्यवहार में नहीं ला सकता है।"

क्योंकि जब तक तुम जानते नहीं तब तक तो तुम व्यवहार में लाओगे कैसे? और जब तुम जान लोगे तब व्यवहार में लाने की जरूरत ही न रही, व्यवहार में आ जाएगा। इसलिए असली बात है जान लेना। ज्ञान ही क्रांति है। मगर ज्ञान उधार न हो, बासा न हो, तभी ज्ञान है। अपना हो, मौलिक हो, सीधा-सीधा जाना गया हो, प्रत्यक्ष हो, परोक्ष न हो, किसी और का बताया हुआ न हो; अन्यथा तुम अंधे रहोगे। कितना ही वेद चिल्लाते रहें कि ब्रह्म है और कुछ भी नहीं है। लेकिन कौन जाने कोई मजाक कर रहा हो। अंधे आदमी से मजाक की जाती है। कौन जाने जिन्होंने वेद लिखे वे खुद ही धोखे में रहे हों? विश्वास कैसे करो? उपनिषद चिल्लाते हैं, भरोसा नहीं आता। भरोसा तो तुम्हें तभी आएगा जब तुम देख लोगे, एक झलक मिल जाए। और वह झलक अगर तुम्हें चाहिए हो तो उपनिषद, वेदों को एक तरफ रख देना। तभी किसी दिन तुम्हारे जीवन में वेद और उपनिषद सच हो पाएंगे। तुम गवाह बन सकते हो वेद-उपनिषदों की सचाई के, अनुयायी नहीं। तुम अगर उन्हें मान कर चले तो तुम कभी न पहुंचोगे। अगर तुम उन्हें हटा कर चले तो तुम जरूर पहुंच जाओगे। और एक दिन तुम गवाह बन सकोगे कि उपनिषद ठीक कहते हैं।

शास्त्रों से सिद्धांत सीखा नहीं जा सकता; शास्त्रों में सिद्धांत है। सीखा तो जीवन से ही जा सकता है। कोई जीवन के शास्त्र का पर्याय नहीं है। जिस दिन तुम जान लोगे जीवन से उस दिन सब शास्त्र तुम्हारे लिए सही हो जाएंगे। और ध्यान रखना, मैं कहता हूं सब शास्त्र।

जब तक तुम शास्त्रों को मान कर चलोगे तब तक वेद सही रहेगा तो कुरान गलत रहेगा; कुरान सही रहेगा तो वेद गलत रहेगा, बाइबिल गलत रहेगी; बाइबिल सही रहेगी तो धम्मपद गलत रहेगा। अगर तुम शास्त्र को मान कर चलते हो तो तुम या तो हिंदू होगे, या मुसलमान, या ईसाई, या जैन, या बौद्ध, या सिक्ख; धार्मिक नहीं।

जिस दिन तुम जीवन के शास्त्र को पढ़ लोगे... । तो जीवन के शास्त्र पर किसी की बपौती नहीं है। वह न हिंदू का है, न मुसलमान का है। जिस दिन तुम जीवन का शास्त्र पढ़ लोगे उस दिन तुम सारे शास्त्रों के गवाही हो जाओगे कि कुरान भी ठीक कहती है, बाइबिल भी ठीक कहती है, वेद भी ठीक कहते हैं, उपनिषद भी ठीक कहते हैं। क्योंकि अब तुमने जीवन की भाषा समझ ली। अब संस्कृत धोखा न दे सकेगी, अरबी छिपा न सकेगी। अब अरबी में कही जाए बात कि संस्कृत में कि हिब्रू में, कोई फर्क न पड़ेगा। तुमने जीवन से पढ़ ली। अब किसी भी भाषा में कही जाए, किसी भी ढंग से कही जाए, कोई भी रूप दिया जाए, तुम पहचान ही लोगे। तुम्हें स्वाद मिल गया पानी का, अब पानी मानसरोवर का हो कि काबा का, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम स्वाद जानते हो। तुम पानी को चख लोगे, तुम पहचान लोगे, तुम्हारे ओंठों ने स्वाद जान लिया। तब सभी शास्त्र सही हो जाते हैं।

जब तक तुम्हारे लिए एक शास्त्र सही रहे और दूसरा गलत रहे, तब तक समझना कि तुम जीवन के शास्त्र से बच रहे हो। जीवन का शास्त्र वह मूल स्रोत है जहां से सब शास्त्रों का जन्म होता है, जहां से सब ज्ञानी खबर लाते हैं। तुम भी उसी स्रोत से खबर लाओ। और कोई रास्ता नहीं है।

"इसलिए संत कहते हैंः जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है। जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है। सीधे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।"

जब तुम्हें कोई गाली देता है तब तुम दो काम कर सकते हो। एक जो तुम करते हो कि जब तुम्हें कोई गाली देता है तो तुम भी गाली देते हो। अगर ताकतवर दिखाई पड़ता है तो भीतर देते हो, ऊपर से मुस्कुराते हो। अगर कमजोर दिखाई पड़ता है तो ऊपर से देते हो।

एक छोटे स्कूल में पादरी बच्चों को समझा रहा था कि क्षमा करना चाहिए, क्षमा बड़ा गुण है। जब तुम्हें कोई गाली दे, क्षमा कर दो। फिर उसने एक छोटे बच्चे से पूछा कि बोलो, तुम्हें समझ में आया? उसने कहा, बिल्कुल समझ में आया। अपने से बड़ों को तो मैं बिल्कुल सरलता से क्षमा कर देता हूं, लेकिन अपने से छोटों को क्षमा करना असंभव है।

अपने से बड़ों को सरलता से क्षमा कर देता हूं; अपने से छोटों को क्षमा करना असंभव है। कमजोर को क्षमा करना असंभव है, ताकतवर को तो तुम क्षमा कर ही देते हो; क्योंकि झंझट है। लेकिन जिस दिन तुम कमजोर को क्षमा कर देते हो, उस दिन तुम्हारे जीवन में एक रूपांतरण होता है।

तो एक तो व्यवहार है गाली देने का--या तो ऊपर से दो या भीतर से दो।

मैंने सुना है कि एक साधारण सिपाही पहले महायुद्ध में पुरस्कृत हुआ। एक साधारण सा सैनिक उसकी वीरता के कारण मेजर बना दिया गया। वह एक दिन जनरल के साथ रास्ते से गुजर रहा है और सभी सैनिक सलामी मारते हैं। वह जब भी सलामी सुनता है तो धीरे से भीतर कहता हैः दि सेम टु यू, वही तुम्हारे लिए भी। जनरल थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, तुम यह बार-बार क्या करते हो कि दि सेम टु यू? ऊपर से सलामी करते हो और धीरे से यह क्या कहते हो कि वही तुम्हारे लिए भी? उसने कहा, आपको पता नहीं कि भीतर-भीतर ये लोग क्या कह रहे हैं। मुझे पता है; मैं सैनिक रह चुका हूं। भीतर ये गाली दे रहे हैं; ऊपर से सलाम मार रहे हैं। इसलिए मैं धीरे से कह देता हूंः दि सेम फॉर यू। इनकी असली हालत मुझे पता है। मैं रह चुका हूं सैनिक।

आदमी का यह तो सहज व्यवहार है कि गाली कोई दे तो वह गाली दे। या तो ऊपर से दे सके तो ऊपर से दे, न दे सके ऊपर से तो भीतर से दे। क्योंकि बिना दिए उसे बेचैनी अनुभव होगी।

और लाओत्से कह रहा है, जब तुम्हें कोई गाली दे तो तुम उसे पी जाओ, तुम उत्तर मत दो। तुम किसी तरह का बाहर या भीतर प्रतिकार मत करो।

और लाओत्से एक ऐसी गहन बात कह रहा है कि अगर तुम कर पाओ तो तुम चकित हो जाओगे कि तुमने कितनी ऊर्जा अब तक व्यर्थ गंवाई! जब तुम किसी की गाली को चुपचाप पी जाते हो तो उसकी गाली तुम्हें मजबूत कर जाती है, शक्तिशाली कर जाती है। एक तो तुम गाली देने में जितनी ऊर्जा खर्च करते, क्रोधित होते, परेशान होते, बेचैन होते, उससे बच जाते हो। और उसने गाली के द्वारा जो ऊर्जा तुम्हारी तरफ फेंकी है, तुम उसे भी लीन कर लेते हो, तुम उसको भी आत्मसात कर लेते हो। वह गाली देकर कमजोर हो गया, वह गाली देकर छोटा हो गया, सिकुड़ गया। उसकी गाली को तुमने आत्मसात कर लिया। तुम सबल हो गए। हालांकि दुनिया यह कहेगी कि यह आदमी कितना निर्बल है कि लोग इसको गाली देते हैं और यह गाली का जवाब भी नहीं देता! लोग तुम्हें निर्बल कहेंगे। लेकिन जीवन के शास्त्र से अगर तुम पूछो तो तुम सबल हो रहे हो।

लाओत्से के इन वचनों के आधार पर एक पूरा शास्त्र विकसित हुआ है। जुजुत्सु, जूडो, अकीदो, अनेक नामों से उस शास्त्र का चीन और जापान में विकास हुआ। न केवल गाली के लिए लाओत्से कहता है, जब तुम्हें कोई घूंसा मारे तब भी तुम उसके घूंसे को पी जाओ। घूंसा तो शुद्ध ऊर्जा है, तुम उसको फेंको मत, तुम उसे लीन कर लो, आत्मसात कर लो, तुम उसे स्वीकार कर लो। जैसे किसी आदमी ने कोई चीज भेंट दी है। तुम उसे पी जाओ। और जुजुत्सु को जो लोग ठीक से अभ्यास कर लेते हैं--क्योंकि जुजुत्सु का अभ्यास बड़ा कठिन है, तुम्हारी सारी जीवन की व्यवस्था के बिल्कुल प्रतिकूल है, कोई मारे, उसकी ऊर्जा को पी जाओ--तो ऐसी घटनाएं घटती हैं कि कमजोर से कमजोर आदमी बलवान से बलवान आदमी को चारों खाने चित्त गिरा देता है। सिर्फ उसकी ऊर्जा पीकर।

अभी पश्चिम में नारियों का बड़ा विराट आंदोलन चल रहा है। और पश्चिम के सभी बड़े नगरों में जुजुत्सु की क्लासें हैं; खासकर स्त्रियों के लिए। स्त्रियों का जो आंदोलन चल रहा है स्वातंष्य का। क्योंकि स्त्री पुरुष से और किसी तरह से तो लड़ नहीं सकती, मगर अगर जुजुत्सु सीख ले तो तुम्हारा पहलवान भी स्त्री को हरा नहीं सकता।

ऊर्जा को पी जाने की कला! दूसरे ने घूंसा मारा, तुम जगह दे दो अपने शरीर में उसको। कड़े मत हो जाओ, हड्डियां तुम्हारी मजबूत न हो जाएं। अन्यथा टूट जाएंगी। तुम उसको पी लो। उसके घूंसे को पड़ जाने दो, जैसे तकिए पर पड़ रहा हो और तकिया जगह दे दे, ऐसा तुम अपने शरीर को तकिए जैसी जगह दे जाने दो। तुम अचानक पाओगे, एक ऊर्जा का बड़ा गहन प्रवाह तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो गया और वह आदमी कमजोर हो गया। दस-पांच घूंसे उसे मारने दो और उसे कमजोर होने दो। कहते हैं कि अगर तीन मिनट कोई व्यक्ति जुजुत्सु की हालत में रह जाए तो सबल से सबल व्यक्ति अपने आप ही हांफने लगेगा और गिर जाएगा।

और यह कोई कथा नहीं है। लाखों लोग जुजुत्सु का प्रयोग करते हैं जापान और चीन में। और अब पश्चिम में उसकी हवा जोर से फैल रही है। और मैं भी मानता हूं कि स्त्रियों को हर जगह वह कला सीख लेनी चाहिए। अन्यथा स्त्री कभी भी बलवान न हो सकेगी। स्त्री का बल उसकी निर्बलता में है। इसलिए अगर मनुष्य-जाति को कभी भी स्त्रियों को मुक्त होते देखना है तो लाओत्से स्त्रियों का गुरु होगा, और कोई गुरु नहीं हो सकता। क्योंकि लाओत्से ने सिखाई है कलाः निर्बल कैसे बलवान है। फिर कोई स्त्री पर बलात्कार नहीं कर सकता। जुजुत्सु

जानने वाली स्त्री पर कभी कोई बलात्कार नहीं कर सकता। जुजुत्सु जानने वाली स्त्री पर गुंडे हमला नहीं कर सकते।

पर वह एक अनूठी ही कला है। अब पश्चिम में उस पर काफी काम चल रहा है, और वैज्ञानिक भी राजी होते जा रहे हैं कि बात सच है। क्योंकि एक घूंसे का अर्थ होता है काफी ऊर्जा वह आदमी अपने शरीर की इकट्ठी कर रहा है और फेंक रहा है। तुम उसे वापस मत लौटाओ; तुम उसे लीन कर लो। तुम उसे पी जाओ। तुम उसे निमज्जित हो जाने दो। तुम उसे पचा लो।

"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है।"

वही समाज का संरक्षक है। संत समाज की सुरक्षा है। संत के नीचे जब भी कोई समाज जीता है तो बड़ी सुरक्षा में है। संत तो ऐसे है जैसे बहुत बड़ा वृक्ष, जिसके नीचे छाया है, जिसकी छाया में तुम बैठ सकते हो। और जिसकी छाया को कोई भी डगमगा नहीं सकता, और जिसके नीचे शीतलता की वर्षा होती ही रहेगी। क्योंकि उसने वह कीमिया सीख ली है कि वह संसार की गालियों को शांति में बदल लेता है; संसार के क्रोध को प्रेम में बदल लेता है।

यही तो असली अल्केमी है। तुमने अल्केमी और अल्केमी को मानने वाले लोगों का नाम सुना होगा। और तुमने सुना होगा कि वे लोहे को सोने में बदलने की कोशिश करते हैं। तुम यह मत समझना कि वे लोहे को सोने में बदलने की कोशिश करते हैं। लोहा और सोना तो प्रतीक हैं। लोहा है क्रोध; सोना है प्रेम। लोहा है मूर्च्छा; सोना है जागृति। लोहा है घृणा, ईर्ष्या, मत्सर; सोना है करुणा। लोहे को सोने में बदल लेने का कुल इतना ही अर्थ है कि दुनिया तुम्हें कुछ भी दे, कांटे फेंके, लेकिन तुम्हारे भीतर वह कला होनी चाहिए कि कांटे तुम्हारे भीतर फूल हो जाएं।

और यह कला है। अगर तुम लड़ो मत। अगर तुम स्वीकार कर लो। अगर तुम अहोभाव से स्वीकार कर लो। अगर तुम गाली को भी अहोभाव से स्वीकार कर लो कि जरूर इसके पीछे भी कोई राज होगा, जरूर इसके पीछे भी कोई छिपा रहस्य होगा। और परमात्मा ने अगर ऐसी स्थिति बनाई है कि गाली मिले तो वह हमसे ज्यादा जानता है। जिसने दिया है जन्म, जिसने दिया है जीवन, वह निश्चित हमसे ज्यादा जानता है। अस्तित्व हमसे बहुत बड़ा है। इस क्षण में उसने गाली दिलवाई है; जरूर कोई राज होगा, कोई रहस्य होगा, कोई छिपी बात होगी। हम जल्दी न करें। हम स्वीकार कर लें। तब तुम पाओगे दुख में भी सुख की सुवास आने लगी। और क्रोध से भी करुणा जन्मने लगी। और तुम्हारे भीतर हर कांटा फूल बन जाता है। फेंके जाते हैं अंगारे और तुम्हारे भीतर सब शीतल हो जाते हैं।

"जो संसार की गालियों को अपने में समाहित कर लेता है, वह राज्य का संरक्षक है। जो संसार के पाप अपने ऊपर ले लेता है, वह संसार का सम्राट है।"

कहीं भी कुछ बुरा हो रहा है, कहीं भी कोई पाप हो रहा है, जो अपने को जिम्मेवार मानता है, जो समझता है कि मेरा उसमें हाथ है, और जो उसे अपने ऊपर ले लेता है, वही सुरक्षा बन जाता है, वही सम्राट है। सम्राट वे नहीं हैं जो सिंहासनों पर बैठे हैं। सम्राट वे हैं जिन्हें तुम शायद खोज भी न पाओगे। सम्राट वे हैं जिन्होंने तुम्हारे सारे पाप को अपने ऊपर ले लिया है, जिन्होंने तुम्हारे सारे पापों की अग्नि को अपने भीतर शीतल करने की व्यवस्था कर ली है, जो तुम्हें शुद्ध करने की प्रक्रिया हैं।

जीसस के संबंध में ईसाइयों का विश्वास है कि उन्होंने सारे संसार के पाप अपने ऊपर ले लिए। सारे संसार का पाप उन्होंने अपनी सूली में समाहित कर लिया। सारे संसार को जो दुख मिलना चाहिए पापों के कारण, वह उन्होंने सूली पर झेल लिया उस एक क्षण में।

यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है। संत का अर्थ ही यही है। इसके कारण बहुत से प्रतीक संसार में फैल गए। और प्रतीक धीरे-धीरे अर्थहीन हो जाते हैं।

तुम पाप करते हो, तुम जाकर गंगा में स्नान कर आते हो। प्रतीक तो बड़ा कीमती है, क्योंकि तीर्थ का अर्थ ही वह होता है जहां तुम्हारे सब पाप ले लिए जाएं। मूलतः तो गंगा में लोग तीर्थ के लिए स्नान के लिए नहीं जाते थे, क्योंकि गंगा के किनारे संतों का वास था। गंगा तो बाद में धीरे-धीरे-धीरे-धीरे प्रतीक की तरह महत्वपूर्ण हो गई। संत रहे न रहे, गंगा महत्वपूर्ण हो गई। लेकिन गंगा के किनारे संतों का वास था; उनके कारण गंगा तीर्थ बन गई।

संतों के पास जाने का अर्थ ही यह है कि कोई, जो तुम्हारे लोहे को सोने में बदल देगा, जो पारस की तरह है। उसका स्पर्श तुम्हें रूपांतरित कर देगा, तुम्हारी विकृति को जो सुकृति में बदल देगा। तुम्हारी निम्नता को जो रूपांतरित करेगा। तुम्हारी अधोगामी ऊर्जा को जो ऊर्ध्वगामी कर देगा। संत के संस्पर्श का इतना ही अर्थ है, जो तुम्हारे दुख, तुम्हारी पीड़ाएं, तुम्हारा पाप, तुम्हारा अंधकार ले लेगा, और तुम्हें प्रकाश दे देगा। संत ले सकता है तुम्हारा पाप, क्योंकि पाप को संत पुण्य में बदलने की कला जानता है। तुम सोचते हो कि तुम पाप दे आए; संत तो हर चीज से पुण्य निकाल लेने की कला जानता है। तुम्हारा पाप भी संत के पास पुण्य हो जाता है। लेकिन तुम हलके हो जाते हो और संत तुम्हें पुण्य से भर देता है।

इसका क्या अर्थ है? इसका गूढ़ अर्थ केवल इतना ही है जैसे चुंबक के पास लोहा खिंचा चला जाता है; और चुंबक के पास अगर लोहा बहुत देर रह जाए तो लोहे में भी चुंबक का गुण आ जाता है। बस इतना ही अर्थ है। सत्संग का इतना ही अर्थ है, संतों के पास होने का इतना ही अर्थ है कि तुम अगर उनके पास थोड़ी देर रह गए... ।

रहना बहुत मुश्किल है, क्योंकि पाप की लत तुम्हें दूर जाने को कहेगी। रहना मुश्किल है, क्योंकि संत तुम्हें रूपांतरित करेगा और तुम्हारा अहंकार बाधा डालेगा। रहना मुश्किल है, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि बड़े सिद्धांतों को माने बैठी है; संत तुम्हारे सब सिद्धांतों को तोड़ेगा। तुम्हें बड़ी नाराजगी आएगी। तुम्हें बड़ा क्रोध होगा। तुम्हारी मान्यताएं खंडित होंगी। तुम्हारे आदर्श गिरेंगे। तुमने जिन मूर्तियों को परमात्मा की समझा है, वह पत्थर कहेगा। तुम्हें बड़ी बेचैनी होगी। तुम्हारी बुद्धि राजी न होना चाहेगी। तुम्हारा अहंकार इनकार करेगा। तुम्हारा समग्र व्यक्तित्व पाप की मांग करेगा। और तुम्हारा जो जीवन का पुराना ढांचा है, तुम उसमें वापस लौट जाना चाहोगे।

इसलिए संत के पास रहना कठिन है। अगर कोई रह जाए--उस रहने के लिए बड़ा धीरज चाहिए, बड़ी क्षमता चाहिए, प्रतीक्षा की कला चाहिए, जल्दबाजी और निर्णय से बचने की क्षमता चाहिए--अगर कोई संत के पास रह जाए, धीरे-धीरे-धीरे-धीरे कुछ करे भी न, सिर्फ रह जाए, सिर्फ संत को अपने भीतर मिलने दे और निमज्जित होने दे, संत की ऊर्जा के साथ अपनी ऊर्जा को एक होने दे, थोड़ा सा भी संस्पर्श हो जाए, तो जैसे पारस की कथा है कि वह लोहे को सोने में बदल देता है, ऐसा पारस कहीं होता नहीं, कहानी है। लेकिन संत के पास ऐसा पारस है। संत ऐसा पारस है।

लाओत्से कहता है, "वही संसार का सम्राट है।"

और फिर वह कहता है, "ये सीधे-सादे शब्द टेढ़े-मेढ़े दिखते हैं।"

क्योंकि तुम सम्राट को सिंहासन पर खोजते हो; वहां नहीं है सम्राट, सिंहासन खाली है। वहां मुर्दे, पापी, हत्यारे बैठे हुए हैं। तुम राजधानियों में खोजते हो; वहां नहीं है। तुम सत्ताधिकारियों में खोजते हो; वहां नहीं है। तुम बलशालियों में खोजते हो; वहां नहीं है। संत तो तरल है, पानी की तरह तरल है। वाष्प की तरह अदृश्य है। बड़ी गहन तुम्हें खोज करनी पड़ेगी। और उन जगहों में खोजना पड़ेगा जहां तुम सोचते ही नहीं थे। हो सकता है तुम्हारे पड़ोस में हो, और वहां तुमने कभी नहीं खोजा। क्योंकि अपने पड़ोसी में कभी कोई संत देख सकता है? असंभव!

मैं बहुत से गांवों में रहा हूं। दुनिया के दूर-दूर कोने से लोग आ जाते हैं, लेकिन पड़ोसी नहीं आता। यह नियम मैंने समझ लिया कि यह पक्का नियम है, इसमें कुछ हो ही नहीं सकता। एक मकान में मैं आठ साल रहा। मेरे ऊपर ही जो सज्जन रहते थे, वे कभी मुझसे मिलने नहीं आए। करीब-करीब रोज सीढ़ियों पर या रास्ते पर मिलना-जुलना हो जाता। नमस्कार हो जाती। वह भी मुझे ही करनी पड़ती। इतना खतरा भी उन्होंने कभी नहीं लिया कि अपनी तरफ से नमस्कार करें। फिर आठ साल बाद--वे किसी कालेज के प्रिंसिपल थे; बदली हो गई--जब मैं उनके गांव में बोलने गया, तब उन्होंने मुझे सुना। रोने लगे आकर मेरे पास कि मैं भी कैसा अभागा हूं कि आठ साल ठीक तुम्हारे सिर पर था! मैंने कहा, इसीलिए चरणों में आने में कठिनाई हुई। सिर पर थे, चरणों में आने में बहुत कठिनाई है। चलो देर-अबेर जब आ गए, कुछ देर नहीं हो गई। अभी भी आ गए तो ठीक।

मुल्क के मैं बहुत से नगरों में रहा हूं। लेकिन देख कर चकित हुआ, इसको मैंने फिर मान लिया कि यह कोई सिद्धांत ही होना चाहिए कि पड़ोसी नहीं आएगा। आ ही नहीं सकता। क्योंकि पड़ोसी में, तुम्हारे पड़ोसी में और परमात्मा हो सकता है? असंभव! तुम्हारे रहते और तुम्हारे पड़ोसी में? यह संभव ही नहीं हो सकता।

सीधी-सीधी बातें भी तुम्हारे टेढ़े-मेढ़े मन के कारण टेढ़ी-मेढ़ी दिखाई पड़ती हैं। पड़ोसी में भी परमात्मा है। और ऐसा नहीं कि तुम में नहीं है। तुम में भी परमात्मा है। लेकिन तुम न तो अपने पड़ोसी में मान सकते हो, और न अपने में मान सकते हो। और परमात्मा कहीं बहुत दूर आकाश में छिपा नहीं है; यहां जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं में छिपा है। परमात्मा कोई ऐसा सत्य नहीं है जिसे तुम एक दिन आखिर में उघाड़ लोगे; हर तथ्य के भीतर छिपा है सत्य। तथ्य तो सिर्फ घूंघट है, जरा सा उठाओ और वहीं से तुम्हें सत्य मिलना शुरू हो जाएगा।

लाओत्से ने बहुत से तथ्यों पर से वस्त्र उठाए हैं। और यह एक गहनतम तथ्य है कि जीवन में कोमल होना, तो तुम जीवंत होओगे। सख्त हुए कि मरे। कमजोर होना, तो ही तुम बलशाली रहोगे। बलशाली हुए कि तुमने अपने को गंवा दिया। जो अपने को बचाएगा वह गंवाएगा। और जो अपने को बिल्कुल गंवा कर एकदम निर्बल हो जाता है, निश्चित ही राम उसके हैं। निर्बल के बल राम!

आज इतना ही।

एक सौ चौबीसवां प्रवचन

प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए जिम्मेवार है

Chapter 79

Peace Settlements

Patching up of the great hatred
Is sure to leave some hatred behind.
How can this be regarded as satisfactory?
Therefore the Sage holds for the left tally,
And does not put the guilt on the other party.
Virtuous man is for patching up,
The vicious is for fixing guilt.
But the way of Heaven is impartial,
It sides only with the good man.

अध्याय 79

सुलह-समझौता

भारी वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है;
इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है?
इसलिए समझौते में संत अपने को दुर्बल पक्ष मानते हैं,
दूसरे पक्ष पर कसूर नहीं मढ़ते।
पुण्यवान आदमी समझौते के पक्ष में होता है;
पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में।
लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है;
वह केवल सज्जन का साथ देता है।

जीवन में उत्तरदायित्व की समस्या बड़ी से बड़ी समस्या है। और अगर ठीक समाधान न खोजा जाए तो जीवन की पूरी यात्रा ही भ्रांत और भटक सकती है। साधारणतः सदा ही दूसरे को दोषी ठहराने का मन होता है,

क्योंकि यही अहंकार के लिए तृप्तिदायी है। मैं, और कैसे गलत हो सकता हूं? मैं कभी गलत होता ही नहीं। मैं तो खड़ा ही इस भित्ति पर है कि गलती मुझसे नहीं हो सकती।

जैसे ही यह समझ आनी शुरू हुई कि गलती मुझसे भी हो सकती है, मैं का भवन गिरने लगता है। और जिस दिन यह दिखाई पड़ता है कि मैं ही सारी भूलों के लिए उत्तरदायी हूं, उस दिन अहंकार ऐसे ही तिरोहित हो जाता है जैसे सुबह के सूरज उगने पर ओस-कण। अहंकार कहीं पाया ही नहीं जाता, अगर यह समझ में आ जाए कि उत्तरदायी मैं हूं। जिसने यह जान लिया कि दायित्व मेरा है उसका अहंकार मर जाता है। और जिसने यह कोशिश की कि हर हालत में दूसरा जिम्मेवार है उसका अहंकार और भी सुरक्षित होता चला जाता है।

अहंकार को समझने की पहली बातः क्यों हम दूसरे पर दायित्व को थोपते हैं? जब भी भूल होती है तो दूसरे से ही क्यों होती है? और यही दशा दूसरे की भी है; वह भी दोष दूसरे पर थोप रहा है। तब संघर्ष पैदा होता है, कलह पैदा होती है। फिर समझौता भी कर लिया जाए तो भी कलह का धुआं तो शेष ही रह जाता है। क्योंकि समझौता तब तक सत्य नहीं हो सकता जब तक कि बुनियादी रूप से मैं यह न जान लूं कि जिम्मेवार मैं हूं। तब तक सब समझौता कामचलाऊ है, ऊपर-ऊपर है। तब ऐसा ही है कि आग को हमने राख में दबा दिया; अंगारे मौजूद हैं, और कभी भी फिर विस्फोट हो जाएगा। अवसर की तलाश रहेगी; समझौता टूटेगा; संघर्ष फिर ऊपर आ जाएगा। क्योंकि समझौते में हमने यह तो स्वीकार किया ही नहीं गहरे में कि भूल हमारी है। अगर हमने यह जान लिया कि भूल हमारी है तब तो समझौते का कोई सवाल नहीं। तब तो हम झुक जाते हैं; तब तो हम समग्र रूप से स्वीकार कर लेते हैं। तब तो किसी को क्षमा भी नहीं करना है। तब तो भूल अपनी ही थी।

कहते हैं नेपोलियन जब हार गया, और जब पराजित नेपोलियन को सेंट हेलेना के द्वीप में ले जाया गया, तो उसके किसी मित्र ने उसे कहा कि अब तुम व्यर्थ चिंता का बोझ मत ढोओ; जो हुआ, हुआ; अब तुम माफ कर दो दुश्मनों को और जीवन के इन आखिरी क्षणों में शांति से जी लो। नेपोलियन के शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं। नेपोलियन ने कहा, आई कैन फॉरगिव देम, बट आई कैन नाट फॉरगेट; मैं उन्हें क्षमा तो कर सकता हूं, लेकिन भूल नहीं सकता।

और अगर भूल नहीं सकते तो यह क्षमा कैसी? यह क्षमा मजबूरी की क्षमा है। यह क्षमा असहाय की क्षमा है। अब कुछ और किया नहीं जा सकता, इसलिए नेपोलियन क्षमा कर रहा है। लेकिन भीतर आग सुलग रही है। भीतर अभी भी वह क्रुद्ध है। और कभी अवसर आ जाए, सुविधा मिल जाए, तो फिर लड़ने को तत्पर हो सकता है।

यदि तुमने दूसरे पर दोष मढ़ने को जीवन की शैली बना लिया हो तो तुम कभी धार्मिक न हो पाओगे--एक बात निश्चित! तुम संसार में कितने ही सफल हो जाओ, तुम कितना ही धन कमा लो, कितनी ही यश-प्रतिष्ठा, लेकिन तुम वस्तुतः असफल ही रह जाओगे। क्योंकि तुम्हारे भीतर कोई क्रांति घटित न हो सकेगी। और एक ही क्रांति है, वह भीतर की क्रांति है। बाहर तुम कितना पा लेते हो उसका बहुत मूल्य नहीं है; क्योंकि भीतर तो तुम बढ़ते ही नहीं, भीतर तो तुम बचकाने रह जाते हो। बाहर की साधन-सामग्री बढ़ जाती है, भीतर का मालिक कली की तरह बंद रह जाता है। और जब तक कली न खिले तब तक जीवन में कोई सुवास न होगी। स्वर्ग तो बहुत दूर, सुवास भी नहीं हो सकती। और भीतर की कली तब तक न खिलेगी जब तक तुम्हारी दृष्टि में यह रूपांतरण न आ जाए कि भूल मेरी है।

धर्म की शुरुआत होती है इस बोध से कि भूल मेरी है। ऐसा ही नहीं कि कभी-कभी भूल मेरी होती है। अगर कभी-कभी का तुमने हिसाब रखा तो कौन निर्णय करेगा? अगर तुमने सोचा कि कभी मेरी भूल होती है,

कभी और की भूल होती है, तब तुम आधे-आधे ही रहोगे। यह सवाल नहीं है कि भूल किसकी होती है, भूल तो दूसरे की भी होती है। लेकिन धार्मिक दृष्टि का यह आधार है कि जब भी कहीं कुछ गड़बड़ हो रही है तो भूल मेरी है, पूर्णतः भूल मेरी है, समग्रतः भूल मेरी है। ऐसे बोध के आते ही अहंकार गिर जाता है और तुम्हारे भीतर एक क्रांति शुरू हो जाती है, तुम बदलना शुरू हो जाते हो।

पूरब और पश्चिम की दृष्टियों में यही भेद है। पश्चिम ने, दूसरे की भूल है, इस बात को इतने गहरे से अंगीकार किया है कि बड़े-बड़े दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान निर्मित हो गए हैं इसी आधार पर। अगर तुम फ्रायड के पास जाओ या फ्रायड के मनोविश्लेषक के पास, तो तुम्हारी बीमारी के लिए वह हमेशा किसी दूसरे को जिम्मेवार ठहराएगा। अगर तुम भयभीत हो तो वह तुम्हारे बचपन में खोजेगा कि शायद तुम्हारे पिता ने तुम्हें डराया हो। अगर तुम प्रेम करने में असमर्थ हो और तुम्हारे भीतर प्रेम नहीं खिलता, तो जरूर तुम्हारी मां ने कुछ किया होगा; तुम्हें प्रेम न दिया होगा, तिरस्कारा होगा, अंगीकार न किया होगा, तुमसे मां ने जल्दी ही अपना स्तन छुड़ा लिया होगा। लेकिन फ्रायड हमेशा भूल खोजेगा दूसरे में।

अब यह एक बहुत दुष्टचक्र है। अगर तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है इसलिए तुम क्रुद्ध हो, तो तुम्हारे क्रोध को बदलने का उपाय ही न रहा। क्योंकि तुम्हारे पिता को बदलना पड़े। हो सकता है, पिता स्वर्गवासी हो गए हों। मौजूद भी हों, तो भी अगर तुम्हारे पिता फ्रायड के पास जाएं तो उनको भी वह यही समझाएगा कि तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ कुछ गलत किया होगा; तुम्हारी मां ने, बचपन में किसी दूसरे ने, समाज ने, परिवेश ने कुछ किया होगा। पर मूल आधार यह है कि भूल तुम्हारी नहीं हो सकती। भूल सदा किसी और की होगी। और अगर इस तरह तुम पीछे चलो तो तुम पाओगे कि फ्रायड जैसे व्यक्ति के मन में भी ईसाइयत का बहुत ही पुराना सिद्धांत काम कर रहा है। वह यह है कि आदम ने मूल पाप किया; उसका फल आदमी भोग रहे हैं।

ईसाइयत की धारणा यह है कि तुम अगर दुख पा रहे हो तो वह आदम के पाप का फल है; पहले आदमी का। और अगर हम फ्रायड को--जो कि ईसाई नहीं मालूम पड़ता--अगर उसकी चिंतन-धारा को भी उसके ठीक अंत तक खींच कर ले जाएं तो उसका परिणाम यही होगा। तुम्हारी गलती तुम्हारे पिता पर, तुम्हारे पिता की गलती उनके पिता पर, उनके पिता की गलती उनके पिता पर, अंततः आदम पकड़ में आएगा। और आदम को बदलने का अब क्या उपाय है? तो इसका अर्थ यह हुआ कि बदलाहट हो ही नहीं सकती।

इसलिए फ्रायड का प्रभाव जितना पश्चिम में बढ़ता चला गया उतनी ही धार्मिक क्रांति की संभावना क्षीण होती चली गई। बदलोगे कैसे? तुम्हारा कोई कसूर नहीं है, तुम्हारी कोई भूल नहीं है। भूल किसी और की है। और जब तक और न बदल जाए तब तक तुम बदल नहीं सकते।

अब यह बहुत आश्चर्य की बात है--और इसे मैं कहता हूं कि धारणाएं अचेतन से काम करती हैं--फ्रायड चाहे कितना ही बचना चाहे यहूदी और ईसाई धारणाओं से, वे उसके अचेतन में छिपी हैं। उसने कभी नहीं कहा कि आदम के पाप का फल हम भोग रहे हैं। लेकिन उसने जो सिद्धांत बनाया उसका तार्किक निष्कर्ष यही होता है।

मार्क्स है, जो कि अपने को बिल्कुल धर्म-विरोधी समझता है, ईसाइयत का कट्टर दुश्मन समझता है, लेकिन उसकी भी धारणा वही है कि जब भी कहीं कोई भूल है, समाज जिम्मेवार है, तुम नहीं। कोई और जिम्मेवार है। और जब तक समाज न बदलेगा तब तक तुम न बदल सकोगे। और समाज कब बदलेगा? तुम

थोड़ी देर के लिए हो; समाज कब बदलेगा? और तुम अगर समाज के बदलने के लिए प्रतीक्षा किए तो तुम तो मिट्टी में मिल जाओगे। समाज तो सदा रहेगा; तुम आज हो कल नहीं होओगे।

और समाज बदलेगा कब? दस हजार साल का तो इतिहास हमारे सामने है; समाज कभी बदला नहीं। बदल कर भी नहीं बदला। बड़ी-बड़ी बदलाहटें हो गईं और समाज का मूल रूप वही का वही रहा। समाज की बदलाहट तो ऐसी ही लगती है जैसे ऊपर-ऊपर के रंग बदल जाते हैं और भीतर की आत्मा पर कोई स्पर्श नहीं होता। गिरगिट जैसी है बदलाहट समाज की। गिरगिट रंग बदलता रहता है, लेकिन गिरगिट गिरगिट है। भीतर वही रहता है; बाहर के रंग बदल जाते हैं। समाज कब बदलेगा?

अंग्रेजी में एक शब्द है, उटोपिया। उटोपिया उस परिकल्पित समाज के लिए दिया गया नाम है जो कभी होगा, जिसको गांधी रामराज्य कहते हैं। उटोपिया शब्द बड़ा मूल्यवान है। वह जिस लैटिन मूल धातु से आता है उसका अर्थ होता है नो व्हेयर। उटोपिया का मतलब होता है नो व्हेयर, जो कहीं है ही नहीं और न कहीं होगा; सिर्फ ख्याल में है। रामराज्य का अर्थ होता है, जो न था कभी, न है और न कभी होगा; कल्पना है।

तुम रामराज्य की प्रतीक्षा करोगे अपनी बदलाहट के लिए? जब सब ठीक हो जाएगा तब तुम बदलोगे?

फिर तुम कभी न बदल पाओगे। फिर तो यह तरकीब हो गई आत्मा के रूपांतरण से बचने की। न बदलेगा समाज, न तुम्हें बदलने की जरूरत होगी। यह तो तुम्हें बहाना मिल गया। और बहाने तो तुम बहुत चाहते हो। क्योंकि रूपांतरण कष्टप्रद है; रूपांतरण तपश्चर्या है; यात्रा दुरूह है। क्योंकि यात्रा पहाड़ की तरफ जाती है, वह ढलान की तरफ नहीं है। वासनाएं ढलान की तरफ हैं। वासनाओं में उतरने के लिए तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता; पानी जैसे नीचे की तरफ बहता है ऐसे तुम वासनाओं में बहते चले जाते हो। जैसे एक पत्थर लुढ़कता है पहाड़ के शिखर से और खाई की तरफ चला जाता है। कुछ पत्थर को करना नहीं पड़ता; जमीन का गुरुत्वाकर्षण ही सब कर देता है। लेकिन पत्थर को चढ़ाना हो पहाड़ पर, तब श्रमसाध्य हो जाता है। शिखर पर पहुंचना हो तुम्हें जीवन के, तो तपश्चर्या!

लेकिन ये बहाने, कि जब पूरा समाज बदलेगा तभी तो तुम बदल सकोगे, फिर तुम्हें कभी न बदलने देंगे। और ऐसा समाज कभी होने वाला नहीं है। मान लें, सिद्धांततः, तर्क के लिए कि ऐसा समाज किसी दिन हो जाएगा, तो मैं तुमसे कहता हूं, अगर ऐसा समाज हो गया और फिर तुम बदले तो वह बदलाहट दो कौड़ी की होगी। पहली तो बात, ऐसा समाज कभी होगा नहीं। दूसरी बात, अगर ऐसा समाज कभी हो और तब तुम बदलो तो तुम्हारी बदलाहट दो कौड़ी की होगी। क्योंकि उसका अर्थ यह होगा कि समाज के कारण तुम बुरे थे, अब समाज के कारण भले हो; न तुम अपने कारण बुरे थे, न अपने कारण भले हो। इससे तुम्हारी आत्मा कैसे पैदा होगी? सभी लोग अच्छे हैं, इसलिए तुम अच्छे हो; सभी लोग बुरे थे, तुम भी बुरे थे। तुम लोगों की छाया हो। तुम्हारे पास आत्मा कैसे होगी? तुम केवल लोगों की प्रतिगूंज हो। तुम्हारे पास अपना स्वर कैसे होगा?

और आत्मा का अर्थ होता हैः तुम कुछ हो, तुम्हारे भीतर कुछ सघन-चेतना है। और सघन-चेतना का एक ही अर्थ है कि विपरीत परिस्थिति में भी तुम तुम ही रहोगे। परिस्थिति तुम्हें न बदल सकेगी, यही तो आत्मा का अर्थ है।

इसलिए मार्क्स, फ्रायड आत्म-क्रांति को भयानक रूप से हानि पहुंचाने वाले विचारक हैं। क्योंकि वे दूसरे पर दोष डाल देते हैं। और इसे कोई कभी नहीं सोचता कि तुम किसको दोषी ठहराओ।

समझो, एक सात मंजिल मकान है और एक आदमी खिड़की से कूद कर आत्महत्या कर लिया। कौन दोषी है? फ्रायड से पूछो, वह बचपन में खोजेगा। वह यह न कहेगा इस आदमी ने आत्महत्या की है; वह खोजेगा

बचपन में। कोई बचपन का ट्रॉमा, कोई बचपन की दुखद घटना इसे आत्मघाती बना दी है। वह बचपन में जाएगा, और बचपन में वह मां-बाप की खोज करेगा। फ्रायड के जो बहुत गहरे अनुयायी हैं, उनमें एक है ओटो रैंक। वह तो बचपन में ही नहीं जाता, गर्भ की अवस्था तक जाता है कि गर्भ की अवस्था में कुछ घटा होगा--मां गिर पड़ी होगी, चोट खा गई होगी, दुखी हुई होगी, संतप्त हुई होगी--उसका घाव इस बच्चे पर रह गया।

अगर मार्क्स से पूछो तो वह कहेगा, कोई आर्थिक, सामाजिक, गरीबी होगी, दुकान का दिवाला निकलने के करीब है। मार्क्स खोजेगा धन में, फ्रायड खोजेगा अतीत स्मृतियों में। लेकिन सीधा यह आदमी जिम्मेवार है, कोई भी न कहेगा। और अगर हम इस तरह खोजने चलें तो बड़ी कठिनाई होगी।

कौन जिम्मेवार है? इसकी पत्नी जिम्मेवार है जो इसे घर में चौबीस घंटे कलह की अवस्था बनाए रखती है? या इसकी प्रेयसी जिम्मेवार है जो इसे पत्नी से अलग करने की कोशिश के लिए चौबीस घंटे लड़ती रहती है? या इसका बेटा जिम्मेवार है जो कि शराबी हो गया है और उसके कारण यह पीड़ित और परेशान है? या इसकी लड़की जिम्मेवार है? यह हिंदू है और लड़की ने एक मुसलमान से शादी कर ली है, जो इसके हृदय में छुरे के घाव की तरह चुभ गया है। या इसका धंधा जिम्मेवार है जो कि रोज गिरता जा रहा है और इसकी आर्थिक परिस्थिति उलझती जा रही है? या वह आर्किटेक्ट जिम्मेवार है जिसने खिड़की ठीक इसकी कुर्सी के पीछे बनाई? क्योंकि मनसविद कहते हैं कि अगर खिड़की बहुत दूर होती, उतने दूर चल कर जाता, उतनी देर में भी बदल सकता था भाव। खिड़की बिल्कुल पीछे थी। क्षण भर का मौका न मिला, भावावेश पकड़ा मरने का और मौका मिल गया, सीधी खिड़की थी, कूद गया। या वह मैनेजर जिम्मेवार है जिसने सातवीं मंजिल पर आफिस बनाने की जिद की और पहली मंजिल पर बनाने को राजी न हुआ? या बिजली की कंपनी जिम्मेवार है कि बिजली अचानक बंद हो गई, और इस आदमी का पंखा न चला, और वह पसीने से तरबतर हुआ, और परेशान था, और उस परेशानी के क्षण में यह आत्मघात पकड़ गया? या वह मक्खी जिम्मेवार है जो उसके चारों तरफ चक्कर लगा रही थी, उसके सिर को खाए जा रही थी? जिसको वह भगाने की कोशिश कर रहा था और भागने को वह राजी न थी। मक्खी बड़ी जिद्दी होती हैं। पिछले जन्मों में सभी मक्खियां हठयोगी रही हैं। उनको जहां से भगाओ, वहीं वापस लौट कर आती हैं। मक्खी ने उसे चिड़चिड़ा कर दिया। कौन जिम्मेवार है? अगर खोजने निकलोगे तो तुम पाओगे, सारा संसार जिम्मेवार है, सिर्फ इस आदमी को छोड़ कर। यह भी खूब खोज हुई।

लेकिन पश्चिम का पूरा जोर इस बात पर है कि दायित्व दूसरे का है। क्योंकि पश्चिम में अहंकार को सबल करने की चेष्टा की गई है। पश्चिम का पूरा मनसशास्त्र, अहंकार को कैसे परिपक्व किया जाए, इसकी चेष्टा है। पश्चिम में मनसविद कहता है, अगर किसी का अहंकार परिपक्व न हो तो वह ठीक से प्रौढ़ नहीं हुआ। तो अहंकार परिपक्व होना चाहिए, आक्रामक होना चाहिए। और अहंकार के आक्रमण का यही अर्थ होता है कि सारी दुनिया जिम्मेवार है, सिर्फ मुझे छोड़ कर।

कुछ आश्चर्य नहीं है कि पश्चिम विक्षिप्त होता जो रहा है। कुछ आश्चर्य नहीं है कि पश्चिम में सब सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं, धन है, वैभव है, लेकिन आत्म-क्रांति संभव नहीं हो पा रही। एक पत्थर की तरह अटका है। करीब आ गए हैं मंदिर के, लेकिन द्वार बिल्कुल बंद मालूम पड़ता है, दीवाल दिखाई पड़ती है।

फ्रायड ने अपने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया और उसने कहा कि मुझे इस बात की कोई भी आशा नहीं कि मनुष्य कभी भी सुखी हो सकेगा। हो ही नहीं सकता। क्योंकि कारण अनंत हैं। और जब तक सब कारण ठीक न बैठ जाएं, और सारा अस्तित्व ठीक न हो जाए, तब तक कोई आदमी सुखी कैसे हो सकता है?

किसी ने फ्रायड को पूछा कि जब कोई आदमी सुखी ही नहीं हो सकता तो तुम लोगों की चिकित्सा क्या करते हो?

तो उसने कहा, हम इतना ही करते हैं कि लोग सामान्य रूप से दुखी रहें, असामान्य रूप से दुखी न हो जाएं। बस, इससे ज्यादा हम कोई अपेक्षा नहीं करते। सामान्य रूप से दुखी रहें, असामान्य रूप से दुखी न हो जाएं। बस हम थोड़ा सा दुख कम कर सकते हैं, सुख की तो कोई संभावना नहीं।

और यहां पूरब में हमने बिल्कुल उलटी ही बात कही कि सुख तो दूर, सुख का भी कोई मूल्य है, आनंद की संभावना है। आनंद का अर्थ है महासुख। आनंद का अर्थ है ऐसा सुख जो शुरू तो होता है, लेकिन अंत नहीं होता। आनंद का अर्थ है ऐसा सुख जो शाश्वत है। जिसकी फिर अहर्निश वर्षा होती रहती है; फिर कभी प्यासा नहीं होता कोई उसे पाकर, एक दफा पी लिया जिसने आनंद का जल वह सदा के लिए तृप्त हो जाता है, सदा-सदा के लिए। सुख तो क्षणभंगुर है; अभी है, अभी खो जाएगा। उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। पानी पर खींची गई लकीर है, बनी भी नहीं कि मिट जाएगी। और कितनी ही चेष्टा करो, मिट ही जाएगी। उसे बचाने का उपाय नहीं है। सुख का स्वभाव नहीं कि वह बचे। यहां पूरब में लोग हुए जिन्होंने कहा कि सुख की तो बात ही छोड़ो, सुख तो दो कौड़ी का है, हम आनंद का आश्वासन देते हैं।

इस आश्वासन का आधार क्या है? इस आश्वासन का आधार है कि तुम दूसरे पर दायित्व मत डालो। जीवन की भूल-चूक को, जीवन के दुख-पीड़ा को, जीवन के संताप को किसी और के कंधे पर मत रखो। तुमने रखा कि फिर तुम दुखी ही रह जाओगे। क्योंकि उसी कोशिश में तुम्हारा अहंकार मजबूत होता जाएगा। और सुख की क्षीणता होती जाएगी। आनंद तो दूर, सुख भी न पा सकोगे। पूरब ने कुछ और ही बात कहीः सारी स्थिति का दायित्व अपने ऊपर ले लो; दायित्व लेते ही तुम्हारे भीतर आत्मा का जन्म शुरू हो जाता है।

किसी ने तुम्हें गाली दी। निश्चित ही, अगर उस आदमी ने गाली न दी होती तो तुम्हें क्रोध न आया होता। यह सीधी-साफ बात है। तुम अपने रास्ते पर चले जा रहे थे गीत गुनगुनाते; क्रोध का सवाल ही न था, तुम बड़े प्रसन्न थे, पैरों में पुलक थी, अभी सुबह थी, रात विश्राम करके ताजा थे, स्नान करके घर से निकले थे, गीत गुनगुना रहे थे। एक आदमी ने गाली दे दी। साफ है कि इस आदमी की गाली ने तुम्हें क्रोधित किया।

लेकिन नहीं, जल्दी मत करना। इतना साफ नहीं है। क्योंकि पूरब यह कहता है कि अगर क्रोध तुम्हारे भीतर न होता तो इस आदमी की गाली निष्फल चली जाती; यह गाली तो देता, लेकिन तुम्हारे भीतर गाली कहीं छिद न सकती थी; इसका तीर आर-पार निकल जाता। तुम्हारे भीतर क्रोध न होता तो क्रोध यह आदमी पैदा नहीं कर सकता था। इसलिए मूल कारण यह आदमी नहीं है; निमित्त से ज्यादा नहीं है। पश्चिम इसको कहता है मूल कारण; पूरब इसको कहता है निमित्तमात्र।

ऐसा ही समझो कि तुमने एक कुएं में बाल्टी डाली। कुएं में पानी ही न था। अब तुम क्या करोगे? थोड़ी देर खखोड़ोगे, आवाज करोगे, खींच कर वापस अपनी खाली बाल्टी लिए घर चले जाओगे। तुम्हारे भीतर क्रोध न हो, किसी ने गाली की बाल्टी तुम्हारे भीतर डाली; क्या भर लेगा? क्या निकाल लेगा? बाल्टी खाली लौट आएगी। कुएं में पानी होता है तो बाल्टी पानी निकाल सकती है। इसलिए बाल्टी पानी निकालती है यह सिर्फ निमित्त है; कुएं में पानी होता है तो ही निकालती है। मूल कारण कुएं में पानी का होना है।

कितना ही तुम गीत गुनगुना रहे हो, गीत ऊपर-ऊपर है; नीचे क्रोध चल रहा है, भभक रहा है। जरा सी गाली! बारूद मौजूद है, कोई चिनगारी फेंक दे जरा सी, बस विस्फोट हो जाता है। चिनगारियों से विस्फोट नहीं

होते, जो बारूद तुम अपने भीतर लेकर चलते हो उससे ही विस्फोट होते हैं। तुम बड़ी बारूद लिए चल रहे हो। कारण वहां है।

तो जब कोई तुम्हें गाली दे तो दो उपाय हैं। या तो तुम जिम्मेवार उसे समझो कि इस आदमी ने क्रोधित करवा दिया! या तुम अपने को जिम्मेवार समझो कि मेरे भीतर क्रोध था, इस आदमी की बड़ी कृपा कि गाली देकर भीतर का दर्शन करवा दिया। तब तुम शत्रु को धन्यवाद दे सकोगे। और जिस दिन तुम शत्रु को धन्यवाद दे सकोगे कि तुम्हारी बड़ी कृपा है, मुझे तो पता ही नहीं था, मैं गीत गुनगुना रहा था--इस गीत की गुनगुनाहट में हम भूले ही रह जाते--तुमने भीतर की आग दिखा दी, धन्यवाद! जैसे ही तुम अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेते हो, पहली दफे तुम्हारे भीतर व्यक्तित्व का जन्म होता है। तुम स्वतंत्र हुए। तुमने यह कहा कि मैं कारण हूं। तुमने मालकियत अपने हाथ में ले ली; मालिक दूसरा न रहा।

इस बात को ठीक से समझ लेना। जब भी तुम दूसरे को जिम्मेवार ठहराते हो, तुम दूसरे को मालिक बना रहे हो। दूसरा गाली देता है तो तुम क्रोधित हो जाते हो। दूसरा स्वागत करता है तो तुम प्रसन्न हो जाते हो। दूसरा फूलमाला चढ़ाता है तो तुम्हारे आनंद का अंत नहीं है, और दूसरा जरा सा हंस देता है व्यंग्य में, और तुम्हारे सब भवन गिर जाते हैं। तो दूसरा मालिक है।

फ्रायड और मार्क्स और वे सारे लोग जो कहते हैं दूसरा जिम्मेवार है, वे तुम्हारी मालकियत छीने ले रहे हैं, वे तुम्हें गुलाम बना रहे हैं। फ्रायड और मार्क्स की सारी धारणा मनुष्य को गुलाम और गहरा गुलाम बनाएगी, आत्मवान नहीं। मालकियत तुम्हारे हाथ में होगी कैसे? जब सब चीजों के लिए दूसरा जिम्मेवार है तो तुम कौन हो? तुम तो लहरों पर हवा के झोंकों में भटकते हुए एक लकड़ी के टुकड़े हो। जब लहर पूरब जाती, तुम पूरब जाते; हवा दक्षिण जाती, तुम दक्षिण जाते; हवा नहीं चलती, तुम वहीं पड़े रह जाते हो जहां हवा छोड़ देती है। तुम कौन हो? तुम्हारा होना कहां है? तुम्हारे अस्तित्व की अभी पहली खबर भी तुम्हें नहीं मिली, और तुम्हारी आत्मा ने मालकियत का अभी तक कोई दावा नहीं किया, कोई उदघोषणा नहीं की।

जिस क्षण तुम कहते हो कि जिम्मेवार मैं हूं, तुम मालिक बनने शुरू हो गए, तुम्हारे भीतर रूपांतरण शुरू हुआ। अब न केवल सुख में, न केवल दुख में, हर हालत में, कोई भी मनोदशा हो, तुम ही अपने को कारण समझोगे। उपनिषदों में ऋषि कहते हैं कि कोई अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता; पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई पुत्रों को प्रेम नहीं करता; पुत्रों के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। प्रेम हो, घृणा हो; सुख हो, दुख हो; क्रोध हो, करुणा हो; हर हालत में तुम अपने पर ही लौट आते हो।

यह पूरब की गहनतम खोज है। तुमसे ही तुम्हारा प्रारंभ है, और तुम पर ही तुम्हारा अंत है। जिस दिन तुम यह जान लोगे, पहचान लोगे... ।

और कोई कठिनाई नहीं है, सारा जीवन इसका शास्त्र है। थोड़ा पढ़ना सीखो। थोड़े शब्दों के अर्थ सीखो। थोड़े जीवन के संकेत को पहचानो। और तुम जान लोगे कि तुम ही मालिक हो। फिर तुम्हारी मर्जी, तुम्हें क्रोधित होना हो क्रोधित हो जाना, लेकिन जिम्मेवार दूसरे को भूल कर मत ठहराना।

और तब तुम पाओगे तुम क्रोधित भी नहीं हो सकते। क्योंकि क्रोध तभी संभव है जब दूसरा जिम्मेवार हो। नहीं तो क्रोध किस पर करना? किस कारण करना? धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन का वैमनस्य गिरने लगा। तुम समझौता नहीं करते, न ही तुम किन्हीं शर्तों पर किसी तरह की शांति की व्यवस्था करते हो; तुम बेशर्त अपने मालिक हो जाते हो, और दूसरे पर से सारी जिम्मेवारी हटा लेते हो। तुम अपने संसार खुद हो जाते हो। तुम्हारे जीवन में केंद्र का जन्म हो जाता है। एक आधारभूत स्थिति तुम्हारे भीतर बनने लगती है। इसी

आधारभूत स्थिति पर फिर तुम्हारे जीवन के सारे स्वर्ग का आरोहण, जीवन के सारे संगीत का जन्म संभव हो पाता है।

मत ठहराओ किसी और को दोषी। मत ठहराओ किसी और को उत्तरदायी। सब तरफ से उत्तरदायित्व खींच लो। अपने केंद्र स्वयं हो जाओ। तब तुम्हारे जीवन में क्रांति संभव है। इससे कम पर क्रांति न होगी। और तुमने और तरह के तो सब उपाय किए हैं। दूसरा गाली देता है; तुम अपने को समझाते हो कि झगड़ा करना उचित नहीं, असभ्य है, शिष्टाचार के विपरीत है। लेकिन ऊपर से चाहे तुम झगड़ा न करो, भीतर झगड़ा शुरू हो गया। कोई अपमान करता है; तुम सोचते हो कि अरे छोड़ो भी, कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाता है।

यह तो अहंकार का विचार हुआ--कुत्ते भौंकते रहते हैं, हाथी निकल जाता है। तुम हाथी हो; बाकी लोग कुत्ते हैं। यह कोई बड़ी समझदारी की बात न हुई। यह तो बड़ा अहंकार हुआ। और दोषी तो तुम ठहरा ही रहे हो। अपने को समझा रहे हो कि दूसरे कुत्ते हैं, तुम हाथी हो। ऐसा संतोष पैदा कर रहे हो।

यह संतोष काफी संतोष नहीं है। इस संतोष के भीतर असंतोष छिपा है; जल्दी ही प्रकट हो जाएगा। तुम ज्यादा देर शांत न रह सकोगे। यह शांति थेगड़े वाली शांति है; ये थेगड़े छिपा न सकेंगे तुम्हारी अशांति को। सच तो यह है, ये और बुरी तरह प्रकट करेंगे।

ऐसा हुआ कि एक भिखमंगा एक घर के द्वार पर भीख मांग रहा था। उसकी कमीज फटी थी। गृहिणी को दया आ गई और उसने कहा कि तुम्हारी कमीज निकाल दो; जब तक तुम भोजन करोगे तब तक मैं तुम्हारी कमीज सी दूं। फटी कमीज। क्यों फटी कमीज पहने फिर रहे हो? उस आदमी ने कहा कि नहीं, क्षमा करें। आपकी बड़ी कृपा, लेकिन कमीज सीने को मैं न दे सकूंगा। गृहिणी हैरान हुई। उसने कहा, बात क्या है? उस आदमी ने कहा कि थेगड़े से तो गरीबी बहुत जाहिर होती है; थेगड़े का तो मतलब है कि घर से ही फटी कमीज पहन कर निकले हैं। फटी कमीज से तो इतना ही हो सकता है कि रास्ते में फट गई हो; घर जाकर बदल लेंगे। फटी कमीज से पक्का नहीं लगता कि आदमी गरीब है। फटी कमीज से तो इतना ही लगता है कि रास्ते में फट गई हो, कोई वृक्ष की टहनी में उलझ गई हो; घर लौट कर बदल लेंगे। लेकिन थेगड़ा लगी कमीज से तो गरीबी बिल्कुल जाहिर होती है। उसका मतलब घर से ही थेगड़ा लगा पहन कर निकले हैं। नहीं, उस आदमी ने कहा, गरीब हूं, लेकिन इतना गरीब नहीं कि दुनिया में जाहिर करता फिरूं कि घर से ही थेगड़ा लगी कमीज को पहन कर निकले हैं।

बुरा होना भी बेहतर है थेगड़े लगे भले होने से, क्योंकि थेगड़ों के पीछे बुरा होना प्रकट हो रहा है। बुरे आदमी में भी एक तरह की सच्चाई और प्रामाणिकता होती है जो थेगड़े लगे सज्जन में नहीं होती। थेगड़े मत लगाना। और तुमने सबने यह कोशिश की है, क्योंकि वह आसान लगता है। कमीज बदलना मंहगा काम है; थेगड़ा लगाना बहुत आसान है। क्रोध आता है तो लोग थेगड़े लगा लेते हैं; मूल को बदलने की फिक्र न करके समझा लेते हैं कि क्रोध कोई सज्जन का काम नहीं; समझा लेते हैं कि क्रोध हमें करना नहीं है; कसम ले लेते हैं कि हम क्रोध न करेंगे; क्रोध करेंगे तो अपने को दंड देंगे, उपवास रख लेंगे एक दिन का। यह सब थेगड़े लगाना है। मंदिर में भीड़ के सामने कसम ले लेंगे कि अब से मैं क्रोध न करूंगा।

ऐसे आदमियों को तुम जरा गौर से देखो। तो तुम तो कभी-कभी क्रोध करते हो, ऐसे आदमियों को तुम चौबीस घंटे क्रोध में तपता हुआ पाओगे। तुम्हारा तो कभी-कभी विस्फोट होता है, ऐसे आदमियों में तुम कभी क्रोध का विस्फोट न देखोगे, क्योंकि कसम ले ली है; लेकिन क्रोध इकट्ठा होता जाता है। दर पर्त जमता जाता है,

पर्त-पर्त जमता जाता है। ऐसा आदमी क्रोधी हो जाता है। क्रोध नहीं करता, उसके होने का ढंग ही क्रोध हो जाता है। वह तुमसे भी ज्यादा जलता है। उसने थेगड़ा लगाने की कोशिश की।

हमेशा स्मरण रखोः जीवन को बदलना हो तो पत्तों को मत काटो, शाखाओं से मत उलझो; जड़ की तरफ जाओ। जड़ कहां है? जड़ यहां है; दूसरे को दोषी ठहराना जड़ है। उसकी आड़ में तुम्हारा अहंकार खड़ा होता है। बस फिर जाल शुरू हो गया। फिर अहंकार और भी दूसरे को दोषी ठहराएगा। जितना दूसरे को दोषी ठहराएगा उतना अहंकार बड़ा होता जाएगा। अब तुम एक ऐसे उपद्रव में पड़े जिससे बाहर आना मुश्किल मालूम होगा।

लेकिन मुश्किल नहीं है, समझ के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं है। नासमझ के लिए बहुत मुश्किल है; क्योंकि नासमझ पत्तियां काटने लगेगा। अहंकार की जड़ तो न गिराएगा, अहंकार को सजाने में लग जाएगा। वह कहेगा, हाथी है, कुत्ते भौंकते रहते हैं।

तुम्हारे नीति के बहुत से वचन सिवाय अहंकार के अलंकरण के और कुछ भी नहीं हैं। तुम्हारे हितोपदेशों में सिवाय अहंकार को सजाने के और कुछ भी नहीं है। छोटे-छोटे बच्चों को तुम अहंकार देते हो। छोटे-छोटे बच्चों से तुम कहते हो कि देखो, इस तरह झगड़ना ठीक नहीं; तुम कुलीन हो! याद रखो, किस कुल में पैदा हुए हो! हाथियों के कुल में पैदा हुए हो और कुत्तों के भौंकने से नाराज हो रहे हो। छोटे-छोटे बच्चों को तुम अहंकार दे रहे हो कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है कि तुम क्रोध करो। तुम जड़ नहीं काट रहे, तुम जड़ को बढ़ा रहे हो, पानी दे रहे हो। तुम बच्चे से कह रहे हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं। तुम बच्चे को कह रहे हो, तुम्हारा अहंकार इतना बड़ा है, तुम ऐसे बड़े कुल में पैदा हुए हो। देखो, तुम्हारे पिता, उनके पिता, कभी क्रोध नहीं किए, और तुम क्रोध कर रहे हो! तुम बच्चे को अहंकार दे रहे हो। और अहंकार जड़ है सारे उपद्रवों की, और तुम सोचते हो कि तुम उपद्रवों से बचा रहे हो बच्चे को।

लेकिन सारा जीवन ऐसा चल रहा है; इसलिए तो सारा जीवन एक कलह हो गया है। वहां शांति नहीं है। और अगर कभी शांति होती भी है तो बस थेगड़े वाली शांति होती है। भीतर कुछ और ही छिपा होता है; ऊपर-ऊपर थेगड़े हैं। तुम गौर से देखोगे तो अपने को पाओगे कि तुम भिखारी की गुदड़ी जैसे हो जिसमें थेगड़े ही थेगड़े लगे हैं। तुम्हारे भीतर कुछ भी साबित नहीं है; छेद और थेगड़े। इससे तुम आत्मवान कैसे बनोगे!

लाओत्से के सूत्र को समझने की कोशिश करो।

"भारी वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है। पैचिंग अप ए ग्रेट हेट्रेड इ.ज श्योर टु लीव सम हेट्रेड बिहाइंड।"

अगर घृणा में तुमने थेगड़े लगाए तो कुछ न कुछ घृणा पीछे शेष रह जाएगी। रह ही जाएगी। थेगड़े में छिप जाएगा फटा हुआ कपड़ा; मिट तो न जाएगा। अगर तुमने दुश्मन से सुलह करने की कोशिश की तो सुलह के भीतर सुलगती आग सदा ही बनी रहेगी। सुलह का मतलब ही होता है कामचलाऊ। सुलह का मतलब यह होता है कि अभी लड़ने का ठीक समय नहीं। सुलह का मतलब यह होता है कि अभी परिस्थिति इस योग्य नहीं कि लड़ो। सुलह का मतलब होता है लड़ाई को कल पर टालना। ठीक अवसर पर, ठीक मौके पर, जब तुम्हारा हाथ ऊपर होगा तब तुम देख लोगे। इसलिए दुनिया में कितनी शांति-संधियों पर हस्ताक्षर होते हैं! और सब शांति-संधियां युद्धों में नष्ट होती हैं। जब शांति-संधियों पर हस्ताक्षर होते हैं तभी साफ रहता है कि युद्ध होने के करीब है। थेगड़े लगाए जाते हैं; राष्ट्र भी लगाते हैं, व्यक्ति भी लगाते हैं। सब अपना-अपना चेहरा बचाने की कोशिश में होते हैं। जब तुम ताकतवर हो जाते हो तब तुम फिक्र छोड़ देते हो; फिर चेहरा बचाने की कोई जरूरत नहीं।

जर्मनी ने शांति-संधि पर हस्ताक्षर किए पहले महायुद्ध के बाद, सिर्फ इसलिए किए कि कमजोर पड़ गया, युद्ध ने जराजीर्ण कर दिया। लेकिन वह सिर्फ तैयारी के लिए था। बीस साल लगे तैयार होने में; फिर दूसरा युद्ध खड़ा हो गया। यह उसी दिन जाहिर था, क्योंकि सुलह के भीतर सुलगती हुई आग थी।

पाकिस्तान और हिंदुस्तान कितने ही शिमले-समझौते करें। सब थेगड़े हैं। क्योंकि भीतर सुलगती हुई आग है। मिलते भी हैं, हाथ भी बढ़ाते हैं, तो भीतर दुश्मनी है।

राजनीतिज्ञ मिलते हैं तो मुस्कुराते हैं; भीतर तलवारें छिपी हैं। मुस्कुराहटों में जो चमक है वह तलवारों की है; वह कोई हृदय की नहीं है। और भीतर तैयारी चल रही है। भीतर तैयारी चल रही है सारी दुनिया में हर घड़ी युद्ध की; और हर घड़ी शांति की बातें हो रही हैं। राजनीतिज्ञ कबूतर उड़ा रहे हैं शांति के; और रोज फैक्टरियां बड़ी करते जा रहे हैं युद्ध के सामान की। भीतर बम बन रहे हैं; जमीन के नीचे सुरंगें बिछाई जा रही हैं; ऊपर कबूतर उड़ाए जा रहे हैं। किसको धोखा दिया जाता है? सारे राजनीतिज्ञ शांति की बात करते हैं; फिर युद्ध क्यों होता है? बड़ी बेबूझ बात मालूम पड़ती है। जब सारे ही दुनिया के राजनीतिज्ञ शांति के पक्ष में हैं तो युद्ध कौन करवा रहा है?

नहीं, वे कहते हैं कि शांति के लिए युद्ध करना जरूरी है। वहीं सारा जाल है; शांति के लिए युद्ध करना जरूरी है। युद्ध मालूम होता है मूल चीज है। शांति तो दो युद्धों के बीच का समय है, जब लोग युद्ध की तैयारी करते हैं। बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं। अभी तीसरा महायुद्ध भभक रहा आदमी के भीतर। कभी थोड़ा सा विस्फोट वियतनाम में होता है, कभी इजरायल में होता है, कभी बंगला देश में होता है। ये छोटे-छोटे विस्फोट हैं। ये आने वाले महा विस्फोट की खबरें हैं। ये छोटे-छोटे धक्के हैं भूकंप के। किसी भी दिन महा विस्फोट हो सकता है, और सारा मनुष्य अग्नि में समाहित हो सकता है। और राजनीतिज्ञ शांति की बातें किए चले जाएंगे। और शांति की सभाएं होती रहेंगी; कबूतर उड़ते रहेंगे। जैसे कि कबूतर उड़ाने से कोई शांतियां होती हैं। कबूतर और बम को कैसे जोड़ोगे? लेकिन आदमी के अंधेपन का कोई अंत नहीं है।

और यही दशा व्यक्ति-व्यक्ति की है। तुम पड़ोसी को देख कर मुस्कुराते हो, नमस्कार करते हो। ये सब थेगड़े हैं। भीतर कलह है; मुस्कुराहट कलह को छिपाने का ढंग है। मुस्कुराहट का मतलब ही यह है कि कुछ भीतर उबल रहा है जिसको छिपाना जरूरी है। तुम्हारी जयरामजी के पीछे भी आग है। अगर गौर से देखोगे, अगर अपना थोड़ा निरीक्षण करोगे, तो तुम पाओगे। और तुमने जितनी सुलह कर ली हैं, हर सुलह के पीछे वैर शेष रह गया है। वह इकट्ठा होता जा रहा है। उसकी राख जमती जा रही है। वह राख तुम्हारी कब्र बन जाएगी। इससे तो बेहतर था वैर को निकल ही जाने देते। जो होता होता, थेगड़े तो न लगाते। लेकिन थेगड़े लगाना समझदारी मालूम पड़ती है।

मैं तुमसे कहता हूं, या तो वैर को निकल ही जाने देना, या तो लड़ ही लेना। कबूतर क्यों उड़ाना? कबूतरों का क्या कसूर? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? या तो लड़ ही लेना, लेकिन प्रामाणिकता से। और या प्रामाणिकता से जड़ काट देना संघर्ष की। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम लड़ने को प्रामाणिकता से राजी हो जाओ तो तुम जड़ काट दोगे। क्योंकि कौन लड़ना चाहता है? लड़ना तो सिर्फ विनाश है इस बहुमूल्य जीवन का, जिसे तुम फिर से न पा सकोगे; जो फिर से मिलेगा, पक्का नहीं है। क्योंकि कोई मरा हुआ आदमी लौट कर नहीं कहता। इस अमूल्य अवसर को, जो तुम्हें यूं ही मिला है, तुम वैर में गंवाओगे? नहीं, अगर तुम ठीक प्रामाणिक हो जाओ और लड़ने में प्रामाणिक हो जाओ, तो तुम अचानक पाओगे लड़ने में कोई अर्थ नहीं है।

लेकिन लड़ने को तुम छिपाए रखते हो; ऊपर-ऊपर शांति की पर्त बनाए रखते हो। यह शांति की पर्त ही खतरनाक है। इसकी वजह से तुम अपनी असलियत को नहीं देख पाते कि तुम्हारे भीतर घृणा की कितनी मवाद है। उसको नहीं देख पाते, वह भीतर बढ़ती रहती है। अगर तुम देख लो तो तुम खुद ही उसका आपरेशन करने को राजी हो जाओगे। वह तो कैंसर है।

मेरा अनुभव है, अगर कोई पति अपनी पत्नी से दिल खोल कर लड़ लेता है, पत्नी पति से दिल खोल कर लड़ लेती है, बादल जल्दी ही छंट जाते हैं, शांति हो जाती है। लेकिन वह शांति सुलह की नहीं है, वह शांति वास्तविक है। बादल आए और गए। तूफान उठा और गया। और तूफान के बाद की जो शांति है वह बड़ी प्रामाणिक है। जो पति-पत्नी लड़ते नहीं कभी, वे खतरनाक हैं। जो कभी साफ-साफ नहीं लड़ते; जो अपने बीच भी कूटनीति चलाते हैं, कि पत्नी को अगर पति को मारना हो तो बेटे की पिटाई करती है। यह कूटनीति है। मारना किसी को था, मारा किसी को। अक्सर बच्चे पिटते हैं दोनों तरफ से, क्योंकि वे कमजोर हैं और दोनों के बीच में खड़े हैं। पत्नी अगर पति से सीधा लड़ ले, उसके मन में जो उठा है उठ आने दे, छिपाए न... ।

लेकिन कैसे न छिपाए? क्योंकि पाठ पढ़ाया गया हैः सती-सावित्री होना है, सीता होना है। सीता को जंगल में फेंक आए राम, अकारण, जिसके लिए जरा भी कोई आधार नहीं है। एक धोबी ने कह दिया कि मैं कोई राम नहीं हूं, अपनी पत्नी से, कि तू रात भर घर से गायब रही और तुझे दूसरे दिन स्वीकार कर लूं। मैं कोई राम नहीं हूं कि बरसों सीता नदारद रही, कहां रही, क्या हुआ, कुछ पता नहीं, रावण ने क्या किया, क्या नहीं किया, कुछ मालूम नहीं, और फिर स्वीकार कर लिया। मैं कोई राम नहीं हूं। बस इतनी सी धोबी की बात पर! और कथा यह है कि राम अग्नि-परीक्षा भी ले चुके थे सीता की। वह भी व्यर्थ हो गई? इस एक मूढ़ के कहने पर सीता को फिंकवा दिया जंगल में। और सीता गर्भवती थी! और सीता ने कुछ भी न कहा।

ऐसे आरोपण किए गए हैं आदर्शों के तुम्हारे ऊपर। तो पत्नी सोचती है, सीता-सावित्री होना है, लड़ना कैसे? लेकिन लड़ना तो भीतर है, ऊपर-ऊपर सुलह है। ऊपर-ऊपर सीता है; भीतर-भीतर आग जल रही है। और पति को भी आदर्श सिखाए गए हैं। सच्चा तो किसी को नहीं होना है।

आदर्श झूठ के जन्मदाता हैं। जितने आदर्श तुम्हें सिखाए गए हैं उतने ही अप्रामाणिक तुम हो गए हो। क्योंकि आदर्श का मतलब उसको पूरा करना है जो तुम नहीं हो; वैसा आचरण करना है जैसा तुम नहीं हो; वैसा व्यवहार करना है जो तुम नहीं कर सकते हो। आदर्श का मतलब ही यह होता है, तुम्हें अपने को दबाना है और आदर्श को प्रकट करना है। तुम एक झूठ हो गए हो। और तुम्हारा वह जो दबा हुआ रूप है वह प्रकट होगा जगह-जगह से, हजार ढंग से प्रकट होगा। मवाद को तुम भीतर कैसे रोकोगे? मलहम-पट्टी करके और ऊपर से एक फूल चिपका लोगे, इससे कुछ हल होने वाला है?

प्रत्येक पुरुष के आदर्श हैं। प्रत्येक स्त्री के आदर्श हैं। संघर्ष मुश्किल है। और तब असली संघर्ष शुरू होता है, जिसमें जीवन डूब जाते हैं। तब घड़ी-घड़ी कलह होती है। स्त्री बरतन भी रखती है तो जोर से। पति दरवाजा भी खोलता है तो दुश्मनी से। बेटे पिट जाते हैं, बेटियां कुट जाती हैं। और उनका जीवन भी उपद्रव के जाल में संलग्न हो जाता है। पति घर आता है तो डरा हुआ; पत्नी अपने से भयभीत हो जाती है कि कहीं कलह न हो जाए, फिर कहीं वही बात न निकल आए जो कल निकल आई थी। और वह निकलेगी, क्योंकि जिससे तुम बचना चाहते हो उससे बचना असंभव है। जिसे तुम दबाते हो वह उभरेगा। जिससे तुम भयभीत हो, जाहिर है कि वह तुमसे ज्यादा ताकतवर है, तभी तो तुम भयभीत हो। फिर कलह होती है। और कलह को ऊपर से हम थेगड़ों से ढांकते जाते हैं। फिर जीवन का प्रेम ही नष्ट हो जाता है। क्योंकि जहां प्रामाणिकता न रही वहां प्रेम कैसा?

मैं तुमसे कहता हूं, ऐसा भूल कर मत करना। किसी को सीता नहीं होना है। एक सीता काफी है। किसी को राम बनने की जरूरत नहीं है। नहीं तो धोबी तुम्हें परेशान करेंगे। तुम्हें तुम्हीं होना है, और तुम्हें प्रामाणिकता से होना है। और तब एक अनूठा जीवन में रहस्य खुलता है। अगर पति-पत्नी दिल खोल कर कलह कर लेते हैं; जो कहना है कह लेते हैं। स्वभावतः, जीवन में धूल इकट्ठी होती है। चौबीस घंटे साथ रहने से कलह भी होती है, संघर्ष भी होता है। मन मेल भी नहीं खाते कभी, बड़े से बड़े प्रेमियों में भी विरोध हो जाता है। धारणाएं मेल नहीं खातीं, विचार मेल नहीं खाते। स्वाभाविक है। इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं है। क्रोध इकट्ठा होता है; धूल जमती है; धुआं आता है। निकालो! अगर तुम्हारा प्रेम समर्थ है तो इस सबको पार करके भी बचेगा। और निश्चित ही, अगर इस सबको पार करके तुम्हारा प्रेम बचेगा तो निखर कर बचेगा। और ये सब आएंगे और चले जाएंगे, आकाश तो बना रहता है। बादल आते हैं, घिरते हैं, तूफान उठते हैं, आकाश बना रहता है। आकाश डरता है बादलों से? भयभीत होता है? तुम्हारा प्रेम अगर है तो सब कलह के बादल आएंगे और चले आएंगे, और हर तूफान के बाद तुम पाओगे एक गहन शांति आ गई। वह शांति सुलह की नहीं है, वह शांति वास्तविक है। वह दो व्यक्तियों ने अपनी व्यर्थता को फेंक दिया; दो व्यक्ति शांत हो गए, और उस शांति में करीब आ गए।

और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाएगा तब तुम पाओगे कि प्रामाणिक होने का मजा कैसा है। प्रामाणिकता ही धर्म है। और तब धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जितने तुम प्रामाणिक बनोगे और जितनी तुम्हारे जीवन में शांति, वास्तविक शांति--सुलह नहीं, सुलह झूठी शांति का नाम है--जितनी वास्तविक शांति के क्षण आने लगेंगे, जितना तुम्हारे जीवन में बादल हटने लगेंगे और खुले आकाश का दर्शन होगा, जितना तुम आकाश की नीलिमा में तिरने लगोगे, उतना ही तुम पाओगे कि हर क्रोध व्यर्थ था, हर संघर्ष बेबुनियाद था; तुम पीड़ा अपनी दूसरे के कंधों पर व्यर्थ ही डाल रहे थे।

उस शांति में ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा, क्योंकि शांति आंख है। उसमें वे सब उलझनें साफ हो जाती हैं जो कि क्रोध से भरी आंखों में कभी साफ नहीं हो सकतीं। तब तुम पाओगे कि जिम्मेवार तो तुम ही थे। तुम घर क्रोधित लौटे थे दफ्तर से; मालिक ने कुछ कहा था, दफ्तर की हालत कुछ थी। क्रोध से तुम भरे चले आए थे और पत्नी पर टूट पड़े थे। कोई भी छोटी बात पकड़ ली होगी कि रोटी क्यों जल गई। कोई भी छोटी बात पकड़ ली होगी कि तुम्हारा अखबार क्यों फट गया, कि तुम्हारी बटन क्यों नहीं सीयी गई है। यह छोटी सी बात बहुत बड़ी हो गई, क्योंकि भीतर तुम क्रोध से उबल रहे थे और बहाना खोज रहे थे। और अगर तुम इसको गौर से देखते जाओगे तो धीरे-धीरे पाओगे, दुनिया में कोई तुम्हें क्रोधित नहीं कर रहा है। तुम क्रोधित होना चाहते हो, दूसरे अवसर बन जाते हैं। कोट है तुम्हारे पास क्रोध का, खूंटी तुम किसी को भी बना लेते हो और टांग देते हो। जिस दिन यह तुम्हें दिखाई पड़ेगा उस दिन तुमने आत्मवान होना शुरू किया। तुम्हें किसी मंदिर जाने की जरूरत न आएगी, न किसी मस्जिद जाने की। तुम जहां हो, वहीं से तुम्हारी आत्मा का पहला सूत्रपात हो गया। तुम्हारा पुनर्जन्म शुरू हुआ।

लाओत्से कहता है, "वैर में सुलह के बाद भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है।"

यह सुलह किस काम की? क्योंकि जो बच गया है, जो अंगारा शेष रह गया है, वह फिर आग पैदा कर देगा। एक छोटी चिनगारी भी काफी है।

"इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है?"

सुलह से संतोष मत करना, शांति से संतोष करना। और सुलह और शांति का फर्क साफ समझ लेना। सुलह का अर्थ है, लड़ने से बचने की कोशिश; शांति का अर्थ है, लड़ने के पार हो जाना। शांति का अर्थ है, लड़ाई खो गई, लड़ाई का मूल कारण खो गया। सुलह का अर्थ है, मूल कारण मौजूद है, लेकिन लड़ाई करना अभी सुविधापूर्ण नहीं है; इसलिए सुलह कर ली। देखेंगे कल। लोग कहते हैं न झगड़े में, देख लेंगे। उसका मतलब यह है कि अभी सुविधा नहीं है, देख लेंगे वक्त पर, कभी मौके की तलाश रखेंगे। लोग जिंदगी भर मौके की तलाश करते हैं। निश्चित ही, उनके भीतर घाव बना रहता होगा हरा, सूखने न देते होंगे।

"इसलिए समझौते में संत अपने को दुर्बल पक्ष मानते हैं, और दूसरे पक्ष पर कसूर नहीं मढ़ते।"

संत का अर्थ ही यही है, जो दूसरे पर कसूर नहीं मढ़ता, हर हालत में अपना कसूर खोज लेता है। तुम हर हालत में दूसरे का कसूर खोज लेते हो। और मैं कहता हूं, हर हालत में। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि दूसरा क्या कर रहा है, तुम हर हालत में कसूर खोज लेते हो। कसूर खोजना ही चाहते हो, खोज ही लोगे। तुम्हें भलीभांति अनुभव से भी पता है कि जब तुम्हें कसूर ही खोजना हो, तब दुनिया में तुम्हें कोई ताकत रोक नहीं सकती कसूर खोजने से। कुछ न कुछ तुम खोज ही लोगे। कितना ही अतर्क्य मालूम पड़े, तर्कहीन मालूम पड़े, और कितना ही असंगत मालूम पड़े दूसरों को, तुम्हें नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन संत इससे ठीक विपरीत है।

कबीर ने कहा है, निंदक नियरे राखिए, आंगन-कुटी छवाय।

जो तुम्हारी निंदा करते हों उनको तुम मेहमान की तरह घर में ही रख लो, पास ही रखो उनको सदा। क्योंकि वे एक बहुत बड़ा काम करते हैं, वे हमेशा तुम्हें कसूरवार ठहराते हैं। और संत अपने कसूर के खोजने में लगा है। जो भी उसे बता दे उसकी भूल, वह तैयार है। क्योंकि जैसे ही वह अपनी भूल को देख लेता है वैसे ही बदलने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

तुम अपनी भूलें बचा रहे हो; तुम अपने दोष बचा रहे हो; तुम अपने दोषों की भी रक्षा करते हो। और तब अगर तुम्हारा जीवन नरक हो जाता है तो कौन जिम्मेवार है? तुमने गलत-गलत तो बचाया, तुमने सब इकट्ठा कर लिया; तुमने कभी स्वीकार ही न किया कि मुझमें कोई गलती है। इसलिए सब गलतियां बसती चली गईं। स्वीकार करते तो वे सब मिट सकती थीं। तुमने अगर शांत भाव से स्वीकार किया होता कि मैं क्रोधी आदमी हूं... । ध्यान रखना, अगर तुमने किसी दिन यह स्वीकार कर लिया कि मैं क्रोधी आदमी हूं तो तुम्हारा क्रोधी आदमी मरने लगा। क्योंकि कहीं क्रोधी यह स्वीकार करते हैं कि मैं क्रोधी? असंभव! तुमने अगर स्वीकार कर लिया कि मैं अहंकारी हूं, दंभी हूं--कहीं अहंकारी यह स्वीकार करते हैं? यह तो विनम्रता का सूत्रपात हो गया। यह तो विनम्रता के अंकुर निकलने लगे। तुमने अगर स्वीकार कर लिया कि मैं पागल हूं तो तुम स्वस्थ होने लगे। क्योंकि पागल कहीं स्वीकार करते हैं? पागलों को समझा सकते हो कि तुम पागल हो? कोई उपाय नहीं।

मनसविद कहते हैं कि जब तक पागल को समझाया जा सके कि वह पागल है, और वह मानने को राजी हो, तब तक वह पागल नहीं है। रुग्ण होगा, लेकिन अभी पागल नहीं है। अभी इलाज बिल्कुल आसान है। लेकिन जिस दिन पागल को समझाना असंभव हो जाता है कि वह पागल है, उस दिन वह सीमा के बाहर चला गया। अब उसे वापस लौटाना बहुत मुश्किल है।

तुम मानते नहीं कि तुम क्रोधी हो। तुम मानते नहीं कि तुम लोभी हो। तुम मानते नहीं कि तुम कामी हो। तुम मानते नहीं कि तुम दंभी हो। तुम इन सबको बचा रहे हो। अब तुम खुद ही सोच लो, कांटों को बचाओगे तो नरक के अतिरिक्त कहां पहुंचोगे? वे कांटे तुम्हें चुभेंगे जो तुमने बचा लिए हैं। कोई अगर कहे कि यह कांटा लगा

है, तो तुम उससे लड़ने को खड़े हो जाते हो। कबीर कहते हैं, आंगन-कुटी छवाय! उसको तो घर में ही बसा लो। क्योंकि कांटे बताता है तो निकालने की संभावना है।

लेकिन नहीं, तुम तो उनको आंगन-कुटी छवा कर रखते हो जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, खुशामद करते हैं। जो तुमसे कहते हैं कि अहो, तुम जैसा कभी कोई हुआ! ऐसा सुंदर, ऐसा शालीन, ऐसा गरिमापूर्ण! तुम तो प्रतिमा हो आदर्श की! उनको तुम घर रखना चाहते हो। और वे दुश्मन हैं। क्योंकि वे तुम्हें भ्रांति से भर रहे हैं। वे तुम्हें काट डालेंगे। उनका कोई प्रयोजन है। पहले वे तुम्हें फुलाएंगे; फिर अपना प्रयोजन पूरा कर लेंगे।

ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो खुशामद के चक्कर में न पड़ जाता हो। बहुत मुश्किल है। अगर तुम खोज लो कोई आदमी ऐसा जो खुशामद के चक्कर में न पड़ता हो, तो समझ लेना कि संत है। क्योंकि खुशामद के चक्कर में वही नहीं पड़ता जो अपने दोष देखना शुरू कर देता है। तुम उसको धोखा न दे सकोगे। उसे पता है कि वह क्रोधी है, और तुम कह रहे हो कि आप जैसा शांत पुरुष कभी देखा नहीं! आपके पास ही आकर आनंद की वर्षा हो जाती है! पास आते हैं ऐसा लगता है स्नान हो गया, चित्त शुद्ध हो जाता है! संत के पास जाकर, तुम्हें अगर संतों की पहचान करनी हो तो एक काम तुम कर सकते हो, यह कसौटी हैः उनकी स्तुति करना।

ऐसा हुआ, एक आदमी आया बायजीद को मिलने। बायजीद एक सूफी फकीर हुआ। और वह आदमी बड़ी प्रशंसा करने लगा कि तुम सूफियों के सम्राट हो! फकीर बहुत देखे, पर तुमसे कोई तुलना नहीं! बायजीद सिर झुकाए बैठा रहा, और उसकी आंखों से आंसू गिरते रहे। शिष्य थोड़े हैरान हुए।

वह आदमी जा भी न पाया था कि एक और आदमी आ गया, और वह गालियां देने लगा और बायजीद को अनाप-शनाप कहने लगा कि तुम शैतान हो और धर्म को नष्ट कर रहे हो! और तुम जो सिखा रहे हो यह शास्त्रों की शिक्षा नहीं है! तुम शैतान के ही दूत हो, परमात्मा के नहीं! और तुम मोहम्मद के खिलाफ हो! और उसने बड़ी गालियां दीं और बड़ी निंदा की। बायजीद के आंसू वैसे के वैसे बहते रहे; वह आंख झुकाए बैठा रहा।

दोनों चले गए। शिष्यों ने पूछा कि हम कुछ समझे नहीं, मामला क्या है? एक आदमी प्रशंसा कर रहा था तब भी आप रोते रहे और एक आदमी गाली दे रहा था तब भी रोते रहे। राज क्या है? यह बड़ा विरोधाभासी व्यवहार है।

बायजीद ने कहा, जो आदमी स्तुति कर रहा था तब मैं रो रहा था कि बेचारा, इसको कुछ भी पता नहीं। मेरी दशा मुझे पता है। मैं रो रहा था, क्योंकि मेरी दशा मुझे पता है कि मैं कैसा साधारण आदमी हूं। मुझे फकीर कहना भी उचित नहीं है। और यह कह रहा है तुम सम्राट हो फकीरों के। मैं रो रहा था, क्योंकि मुझे अपनी हालत का पता है।

तो शिष्यों ने पूछा, फिर आप क्यों रो रहे थे जब दूसरा आदमी आपकी निंदा कर रहा था?

उसने कहा, तब भी मैं रो रहा था, क्योंकि वह बिल्कुल ठीक कह रहा था। यही मेरी हालत है जो वह कह रहा था। शिष्यों ने कहा, हम क्या करें? क्योंकि हमें पहला आदमी बिल्कुल ठीक लगा और दूसरा बिल्कुल गलत लगा। बायजीद ने कहा, दोनों की ठीक से सुनो, उससे तुम्हारे मन में संतुलन आएगा। क्योंकि एक पलड़े को नीचे झुका रहा है, एक ऊपर उठा रहा है। अगर तुम दोनों की बिल्कुल ठीक से सुनोगे तो दोनों के मध्य में संतुलन आ जाएगा। बस मध्य में रुको; न स्तुति, न निंदा। वे दोनों एक-दूसरे के परिपूरक थे। ऐसा समझो कि वे एक ही आदमी की दो तस्वीरें थे। और दोनों--दोनों ही--गौर से सुनने योग्य हैं। और तुम एक को मत चुनना। तुम अगर पहले को चुनोगे तो भी तुमसे गलती हो जाएगी; क्योंकि तुम मेरे प्रति बहुत ज्यादा आशाओं से भर जाओगे। अगर दूसरे को चुन लोगे तो तुम भाग जाओगे और दुश्मन हो जाओगे। और जो मुझसे मिल सकता था, चूक

जाओगे। तुम दोनों की बिल्कुल ठीक से सुन लो। और दोनों में चुनाव मत करना। दोनों एक-दूसरे को काट देंगे और तुम संतुलन को उपलब्ध हो जाओगे।

संत स्तुति में पीड़ा पाता है। क्योंकि स्तुति तो उनकी की जानी चाहिए जो स्तुति से प्रभावित होते हैं। संत को तुम प्रभावित नहीं कर सकते। संत का अर्थ ही यह है कि जिसने सारे दोषों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है। अब तुम उसे धोखा नहीं दे सकते। खुशामद वहां सार्थक नहीं है। वहां अगर तुम निंदा करते जाओ तो शायद स्वीकार भी कर लिए जाओ, स्तुति करते जाओ तो स्वीकार न हो सकोगे।

"संत अपने को हमेशा दुर्बल पक्ष मानते हैं जिसका कसूर है, और दूसरे पक्ष पर कसूर नहीं मढ़ते। पुण्यवान आदमी समझौते के पक्ष में होता है, पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में।"

पापी की पूरी चेष्टा यह होती है कि वह सिद्ध कर दे कि तुम गलत हो। इसमें उसे बड़ा रस है, क्योंकि यही उसके पापी बने रहने का बचाव है, पापी बने रहने की सुरक्षा है, वह सदा कोशिश करता है कि तुम जिम्मेवार हो। पापी कसूर मढ़ने के पक्ष में है, पुण्यवान सदा समझौते के पक्ष में है। और सदा दोषी अपने को मानने को राजी है। पुण्यवान झुकने को राजी है, वह कोमल है जल की भांति। पापी झुकने को राजी नहीं, वह सख्त है पत्थर की भांति। इसलिए आखिर में उसे टूटना पड़ेगा; क्योंकि नम्य जीतता है, अनम्य टूटता है। पुण्यवान है छोटे बच्चे की भांति, ताजा, कोमल; पापी है बूढ़े की भांति। सभी पापी बूढ़े होते हैं। अंग्रेजी में मुहावरा हैः ओल्ड सिनर, बूढ़े पापी। असल में, सभी पापी बूढ़े होते हैं। कोई बच्चा पापी नहीं होता। पाप के लिए बड़ा अनुभव चाहिए, जीवन के उतार-चढ़ाव देखने चाहिए। पाप के लिए बड़ी शिक्षा चाहिए। सभी बच्चे पुण्यवान होते हैं।

असल में, पुण्य स्वभाव है, शिक्षा नहीं। पुण्य स्वभाव है, संस्कृति नहीं। पुण्य कोई सिखावन नहीं है, पुण्य तो स्वाभाविक ढंग है। पाप अनुभव है। और जितने ज्यादा लोग अनुभवी होते जाते हैं उतने पाप में कुशल होते जाते हैं, उतना झूठ, बेईमानी, उतना हिसाब-किताब, उतना गणित उनके जीवन में बैठने लगता है। उतना ही हृदय उनका नष्ट होता जाता है।

"लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है।"

यह एक बहुत अनूठी बात कह रहा है, और बड़ी विरोधाभासी, लाओत्से।

"लेकिन स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है।"

दूसरे वचन से तो लगता है निष्पक्ष नहीं है। स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है। इसका तो मतलब हुआ कि सज्जन के पक्ष में है। निष्पक्ष कहां? ऐसा वचनः बट दि वे ऑफ हेवन इ.ज इंपार्शियल; इट साइड्स ओनली विद दि गुड मैन। इस विरोधाभासी वचन को समझने की कोशिश करना।

स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है; यहां तक तो कोई कठिनाई न थी। वर्षा पापी पर भी होती है, पुण्यात्मा पर भी। सूरज निकलता है तो पापी को भी प्रकाश देता है, पुण्यात्मा को भी। फूल खिलते हैं तो पुण्यात्माओं के लिए ही नहीं खिलते, पापी के लिए भी खिलते हैं। अगर इतनी ही बात होती कि स्वर्ग का ढंग निष्पक्ष है तब तो कोई हर्ज न था। लेकिन दूसरे वचन में लाओत्से बड़े से बड़ा विरोधाभास खड़ा करता है। और लाओत्से लाजवाब है विरोधाभास खड़े करने में। वह कहता है, वह केवल सज्जन का साथ देता है। दूसरे वचन में लाओत्से कह रहा है, फूल खिलते हैं केवल पुण्यात्मा के लिए, सूरज निकलता है केवल पुण्यात्मा के लिए, रोशनी है पुण्यात्मा के लिए, वर्षा होती है पुण्यात्मा के लिए, पापी के लिए नहीं। क्या अर्थ होगा इसका?

इसका अर्थ सीधा है। और लाओत्से के वचन कितने ही टेढ़े-मेढ़े लगें, अगर तुम्हें जरा ही समझ हो तो उसकी कुंजी सीधी है। वह यह कह रहा है कि परमात्मा तो निष्पक्ष है, सूरज निकलता है तो पुण्यात्मा के लिए

ही नहीं निकलता, लेकिन पुण्यात्मा ही उसका लाभ ले पाता है; पापी तो आंखें बंद किए खड़ा रह जाता है। वर्षा होती है तो कोई परमात्मा पुण्यात्मा के लिए ही वर्षा नहीं करता, लेकिन पुण्यात्मा ही नाचता है उस वर्षा में; पापी तो घर के भीतर छिप जाता है।

कबीर ने कहा हैः चहुं दिशि दमके दामिनी, भीजै दास कबीर।

पापी तो छिपे हैं अपनी-अपनी गुफाओं में, चारों तरफ चमकती है उसकी रोशनी, बिजलियां चमकती हैं; दास कबीर भीज रहा है। कुछ जीवन की बात ऐसी है कि फूल की सुगंध केवल फूल के खिलने से तुम्हें नहीं मिलती, तुम्हारे नासापुटों की तैयारी भी चाहिए। और तुम अगर मछलियों की ही गंध को सुगंध मानते रहे हो तो फूल खिलेंगे और तुम्हारे लिए नहीं खिलेंगे। नहीं कि तुम्हारे लिए नहीं खिले, बल्कि तुम खुद अपने हाथ से वंचित रह जाओगे।

जिब्रान की एक छोटी सी कहानी है। एक आदमी एक रास्ते पर चलते-चलते गिर पड़ा; भरी दोपहरी थी; बेहोश हो गया। जिस राह पर बेहोश हुआ उस राह के दोनों तरफ गंधियों की दुकानें थीं, सुगंध बेचने वालों की दुकानें थीं। दुकानदार भागे, उनके पास जो श्रेष्ठतम गंध थी... । क्योंकि अगर श्रेष्ठतम गंध सुंघाई जाए तो बेहोश आदमी होश में आ जाता है। गंध उसके प्राणों तक चली जाती है, और बड़ी धीमी सी सरसराहट देती है उसकी चेतना को, और वह जाग जाता है। उन्होंने गंध सुंघाई, लेकिन वह आदमी हाथ-पैर तड़फाने लगा; होश में न आया। जब वे उसे गंध सुंघाएं तो वह और बेचैन मालूम पड़े। भीड़ इकट्ठी हो गई। एक आदमी भीड़ में खड़ा था। उसने कहा, ठहरो, तुम उसे मार डालोगे। मैं उसे जानता हूं, वह एक मछलीमार है और मछलियां बेचने का काम करता है। मैं भी पहले वही काम करता था। वह केवल एक ही गंध जानता है, वह मछलियों की सुगंध। उसकी टोकरी कहां है?

पास ही भीड़ में उसकी टोकरी पड़ी थी। उस आदमी ने उस टोकरी पर थोड़ा सा, जिसकी मछलियां वह बेच आया था, टोकरी पर थोड़ा सा पानी छिड़का और उस आदमी के मुंह पर टोकरी रख दी। उसने गहरी सांस ली; होश में आ गया। और उसने कहा कि वह कौन है जिसने यह सुगंध मेरे पास लाई! ये तो मुझे मार डालते। ये लोग मेरी जान लिए ले रहे थे।

सूर्य निकलता है। किसी के लिए नहीं, सूर्य तो सिर्फ निकलता है। निष्पक्ष है। स्वर्ग का नियम निष्पक्ष है। मगर तुम अपनी आंखें बंद किए खड़े रह सकते हो। तो सूर्य तुम्हारी आंखें जबरदस्ती नहीं खोलेगा। जिनकी खुली आंखें हैं वे दर्शन कर लेंगे, उनके सिर नमस्कार में झुक जाएंगे; जिनकी आंखें बंद हैं वे वंचित रह जाएंगे।

इसलिए लाओत्से कहता है, स्वर्ग का राज्य और उसके नियम तो निष्पक्ष हैं, लेकिन वह केवल सज्जन का साथ देता है।

ऐसा नहीं कि वह सज्जन का साथ देता है, संत का साथ देता है, बल्कि ऐसा कि संत ही समझ पाता है कि उसके साथ कैसे हो जाएं। पापी तो लड़ता है धार से, उलटा बहता है, उलटा बहने की कोशिश करता है। बह तो नहीं सकता; हारेगा, थकेगा, टूटेगा। संत धार के साथ जाता है। पापी गंगोत्री की तरफ तैरता है; लड़ने में उसे मजा है। पुण्यात्मा गंगा के हाथ में अपने को छोड़ देता है; सागर की तरफ बहने लगता है।

परमात्मा के साथ होने का ढंग ही तो संतत्व है। जिसको वह ढंग आ गया, उसके लिए ही फूल खिलते हैं; उसके लिए ही चांद-तारे चलते हैं; उसके लिए सूरज निकलता है। उसके लिए जीवन एक धन्यता है, अहोभाव है।

तुम्हारे लिए भी वह सब हो रहा है, लेकिन तुम कुछ उलटे खड़े हो। और तुम्हें जो मिलता है तुम उसके प्रति भी धन्यवाद नहीं देते। इसलिए और जो मिल सकता था उससे वंचित रह जाते हो।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा अमीर आदमी था। उसने अपने गांव के सब गरीब लोगों के लिए, भिखमंगों के लिए माहवारी दान बांध दिया था। किसी भिखमंगे को दस रुपये मिलते महीने में, किसी को बीस रुपये मिलते। वे हर एक तारीख को आकर अपने पैसे ले जाते थे। वर्षों से ऐसा चल रहा था। एक भिखमंगा था जो बहुत ही गरीब था और जिसका बड़ा परिवार था। उसे पचास रुपये महीने मिलते थे। वह हर एक तारीख को आकर अपने रुपये लेकर जाता था।

एक तारीख आई। वह रुपये लेने आया, बूढ़ा भिखारी। लेकिन धनी के मैनेजर ने कहा कि भई, थोड़ा हेर-फेर हुआ है। पचास रुपये की जगह सिर्फ पच्चीस रुपये अब से तुम्हें मिलेंगे। वह भिखारी बहुत नाराज हो गया। उसने कहा, क्या मतलब? सदा से मुझे पचास मिलते रहे हैं। और बिना पचास लिए मैं यहां से न हटूंगा। क्या कारण है पच्चीस देने का? मैनेजर ने कहा कि जिनकी तरफ से तुम्हें रुपये मिलते हैं उनकी लड़की का विवाह है और उस विवाह में बहुत खर्च होगा। और यह कोई साधारण विवाह नहीं है। उनकी एक ही लड़की है, करोड़ों का खर्च है। इसलिए अभी संपत्ति की थोड़ी असुविधा है। पच्चीस ही मिलेंगे। उस भिखारी ने जोर से टेबल पीटी और उसने कहा, इसका क्या मतलब? तुमने मुझे क्या समझा है? मैं कोई बिरला हूं? मेरे पैसे काट कर और अपनी लड़की की शादी? अगर अपनी लड़की की शादी में लुटाना है तो अपने पैसे लुटाओ।

कई सालों से उसे पचास रुपये मिल रहे हैं; वह आदी हो गया है, अधिकारी हो गया है; वह उनको अपने मान रहा है। उसमें से पच्चीस काटने पर उसको विरोध है।

तुम्हें जो मिला है जीवन में, उसे तुम अपना मान रहे हो। उसमें से कटेगा तो तुम विरोध तो करोगे, लेकिन उसके लिए तुमने धन्यवाद कभी नहीं दिया है। इस भिखारी ने कभी धन्यवाद नहीं दिया उस अमीर को आकर कि तू पचास रुपये महीने हमें देता है, इसके लिए धन्यवाद। लेकिन जब कटा तो विरोध।

जीवन के लिए तुम्हारे मन में कोई धन्यवाद नहीं है, मृत्यु के लिए बड़ी शिकायत। सुख के लिए कोई धन्यवाद नहीं है, दुख के लिए बड़ी शिकायत। तुम सुख के लिए कभी धन्यवाद देने मंदिर गए हो? दुख की शिकायत लेकर ही गए हो जब भी गए हो। जब भी तुमने परमात्मा को पुकारा है तो कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई शिकायत। तुमने कभी उसे धन्यवाद देने के लिए भी पुकारा है? जो तुम्हें मिला है उसकी तरफ भी तुम पीठ किए खड़े हो। और इस कारण ही तुम्हें जो और मिल सकता है उसका भी दरवाजा बंद है।

निश्चित ही, परमात्मा का नियम तो निष्पक्ष है, लेकिन तुम नासमझ हो। और जो तुम्हें मिल सकता है, जो तुम्हें मिलने का पूरा अधिकार है, वह भी तुम गंवा रहे हो। लेकिन वह तुम अपने कारण गंवा रहे हो; उसका जिम्मा परमात्मा पर नहीं है।

परमात्मा निष्पक्ष है; वह केवल सज्जन का साथ देता है।

सज्जन का साथ परमात्मा नहीं देता; वह तो चल रहा है, सज्जन उसके साथ हो लेता है; दुर्जन उसके विपरीत हो जाता है। दुर्जन हमेशा विपरीत चलने में रस पाता है, क्योंकि वहीं लड़ाई और कलह और वहीं अहंकार का पोषण है। सज्जन सदा झुकने में, समर्पण में रस पाता है, क्योंकि वहीं असली अहोभाव है, वहीं जीवन का संगीत और नृत्य और फूल, वहीं जीवन का स्वर्ग और जीवन की परम धन्यता है। वहीं आत्यंतिक अर्थों में जिसको महावीर और बुद्ध ने निर्वाण कहा है, उस निर्वाण की परम शांति है, उस निर्वाण का महासुख है।

आज इतना ही।

एक सौ पच्चीसवां प्रवचन

राज्य छोटा और निसर्गोन्मुख हो

Chapter 80

The Small Utopia

(Let there be) a small country with a small population,
Where the supply of goods are tenfold or hundredfold, more than they can use.
Let the people value their lives and not migrate far.
Though there be boats and carriages, none be there to ride them.
Though there be armor and weapons, no occasion to display them.
Let the people again tie ropes for reckoning,
Let them enjoy their food, beautify their clothing,
Be satisfied with their homes, delight in their customs.
The neighboring settlements overlook one another
So that they can hear the barking of dogs and crowing of cocks of their neighbors,
And the people till the end of their days shall never have been outside their country.

अध्याय 80

छोटा आदर्श राज्य

छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो,
जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी है--
उससे ज्यादा जितना वे खर्च कर सकते हैं।
लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें।
वहां नाव और गाड़ियां तो हों, लेकिन उन पर चढ़ने वाले न हों।
वहां कवच और शस्त्र तो हों, लेकिन उन्हें प्रदर्शित करने का अवसर न हो।
गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें,
वे अपने भोजन में रस लें; अपनी पोशाक सुंदर बनाएं;
अपने घरों से संतुष्ट रहें; अपने रीति-रिवाजों का मजा लें।

पास-पड़ोस के गांव एक-दूसरे की नजर में हों,
ताकि वे एक-दूसरे के कुत्तों का भौंकना और मुर्गों की बांग सुन सकें;
और लोग अपने अंतिम दिनों तक भी अपने देश से बाहर न गए हों।

लाओत्से आदर्शवादी नहीं है। यही उसका आदर्श है। इस मूलभूत बात को पहले समझ लें।

आदर्शवादी का अर्थ है जिसने जीवन की सहजता और निसर्ग के पार, जीवन की सहजता और निसर्ग से ऊपर, जीवन की सहजता और निसर्ग के विपरीत, कोई आदर्श नियत किया है; जो मनुष्य से कहता है, तुम्हें ऐसा होना चाहिए; जो मनुष्य को जैसा वह है वैसा स्वीकार नहीं करता; जो मनुष्य के जीवन में एक द्वंद्व पैदा करता है। तुम जैसे हो, निंदित; तुम्हें कुछ और होना चाहिए, तभी तुम स्वीकार योग्य हो सकोगे। आदर्श का अर्थ है मनुष्य के जीवन में एक कलह का सूत्र। आदर्श का अर्थ है मनुष्य की प्रकृति की गहन निंदा, और कहीं दूर आकाश में ऐसी प्रतिमा का निर्माण, जैसा मनुष्य को होना चाहिए।

लाओत्से आदर्शवादी नहीं है। लाओत्से मनुष्य के निसर्ग को उसकी परिपूर्णता में स्वीकार करता है। वह तुमसे नहीं कहता कि तुम्हें ऐसा होना चाहिए, वह तुमसे कहता है, यह होने की दौड़ छोड़ो। जब तक तुम अपने से भिन्न कुछ होना चाहोगे तब तक तुम मुसीबत में रहोगे। तुम तो वही हो जाओ जो तुम हो। दौड़ो नहीं, अपने को स्वीकार करो।

निसर्ग ही परम निष्पत्ति है; उसके पार कुछ भी नहीं है। उसके पार मनुष्य के मन की अंधी दौड़ है, और कल्पनाएं हैं, और सपनों के इंद्रधनुष हैं, जिन्हें न कभी कोई पूरा कर पाया है--क्योंकि वे पूरे किए ही नहीं जा सकते--और न कभी कोई पूरा कर सकेगा। क्योंकि उनका स्वभाव ही असंभव पर निर्भर है। आदर्श ही क्या अगर असंभव न हो! आदर्श का प्राण ही उसका असंभव होना है। और वहीं उसकी अपील है, आकर्षण है। क्योंकि अहंकारी आदर्श में इसीलिए उत्सुक होता है कि वह असंभव है; वह गौरीशंकर जैसा है, जिस पर चढ़ना करीब-करीब होगा नहीं। और गौरीशंकर पर तो कोई चढ़ भी जाए, आदर्श पर कोई कभी नहीं चढ़ पाता। तुम जितने उसके करीब पहुंचते हो उतना ही तुम्हारा अहंकार आदर्श को ऊंचा उठाने लगता है। इसलिए तुम कभी करीब नहीं पहुंचते; तुम में और तुम्हारे आदर्श में सदा उतनी ही दूरी रहती है जितनी पहले थी, अंतिम दिन भी उतनी ही दूरी रहती है।

आदर्शवादी अपने को ही काटता है, तोड़ता है, किसी प्रतिमा के अनुसार, जो उसकी कल्पना ने तय किया है। ऐसे वह भग्न होता है, भ्रष्ट होता है। ऐसे धीरे-धीरे वह प्रतिमा तो कभी निर्मित नहीं होती जो उसके सपनों ने संजोई थी; लेकिन जो प्रतिमा प्रकृति ने उसे दी थी वह जरूर खंडित और खंडहर हो जाती है। तुम परमात्मा तो नहीं बन पाते; आदमियत भी खो जाती है। तुम जो होना चाहते थे, वह तो नहीं हो पाते; तुम जो थे, वह भी खो जाता है। विषाद के सिवाय हाथ में कुछ भी लगता नहीं।

सभी आदर्शवादी दुखी मरते हैं, क्योंकि असफल मरते हैं। तुम अगर आदर्शवादियों का जीवन ठीक से समझने की कोशिश करो तो तुम उनसे ज्यादा तनावग्रस्त आदमी न पाओगे। वे जीवन की हर छोटी सी चीज को समस्या बना लेते हैं; जीवन को जीने की कला भूल ही जाते हैं। वे जीवन के साथ शत्रुता का व्यवहार करते हैं, मित्रता का नहीं।

ऐसा हुआ कि मैं विनोबा के एक आश्रम में, बोधगया में, मेहमान था। पता नहीं कैसे उन्होंने मुझे आमंत्रित कर लिया। जो युवती मेरे भोजन और मेरी देख-रेख के लिए तय की गई थी, आश्रमवासिनी, वह मुझे अति

उदास दिखाई पड़ी, मुर्दा-मुर्दा मालूम हुई। तो दूसरे-तीसरे दिन मैंने उससे पूछा कि तू इतनी उदास क्यों है? तो वह रोने लगी, जैसे किसी ने उसका घाव छेड़ दिया। उसने अपनी पूरी कहानी मुझे कही।

उसने मुझे कहा कि मैं बड़ी पापिनी हूं; मुझसे बड़ा अपराधी और कोई भी नहीं; और अपने ही पाप में दबी मैं मर रही हूं। पूछा कि क्या तूने पाप किया होगा? अभी तेरी कोई इतनी उम्र भी नहीं कि बहुत पाप तू कर सके। तू मुझे कह। उसने कहा कि मैं इस आंदोलन में सम्मिलित हुई भूदान के, तो विनोबा ने मुझे ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा दिया। और वह मैं सम्हाल न पाई। और एक युवक के प्रेम में पड़ गई। वह युवक भी ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। तो प्रेम हमें पाप जैसा लगने लगा, क्योंकि प्रेम के कारण ही तो ब्रह्मचर्य का व्रत टूट रहा है। आत्मग्लानि भर गई। अपराध। तो विनोबा के सामने हम दोनों ने प्रार्थना की कि आप ही कुछ उपाय बताएं, हम बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। न हम प्रेम छोड़ सकते हैं, और न ही हमारी तैयारी है कि हम व्रत को तोड़ दें, क्योंकि वह तो जीवन भर के लिए दुख हो जाएगा। तो हम मझधार में उलझ गए हैं।

विनोबा पहले तो नाराज हुए, क्योंकि व्रत को तोड़ने की बात ही साधु पुरुषों को बुरी लगती है। लेकिन कोई उपाय न देख कर उन्होंने कहा, फिर ऐसा करो, तुम दोनों विवाह कर लो।

युवक-युवती प्रसन्न हुए। उनका विवाह भी हो गया। वे विनोबा से आशीर्वाद लेने गए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और आशीर्वाद देते समय कहा कि अब तुम ऐसा करो, तुम्हारा विवाह भी हो गया, अब तुम दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। भीड़ की करतल ध्वनि! बड़ी सभा थी। विनोबा का प्रवाह वाणी का, व्यक्तित्व का प्रभाव! मन तो उनके सकुचाए कि यह तो फिर वही झंझट खड़ी हुई। लेकिन अहंकार जागा। और इतनी भीड़ के सामने कैसे इनकार करो कि हम ब्रह्मचर्य का व्रत लेने को तैयार नहीं हैं! अहंकार ने सिर उठाया। प्रेम को दबा दिया। निसर्ग को दबा दिया क्षण के प्रभाव में। और इतने लोगों की नजरें अहंकार को बढ़ाने में बड़ा काम करती हैं। फिर लोग क्या कहेंगे कि विनोबा ने कहा और हम व्रत न ले सके! दोनों ने व्रत ले लिया।

अब और भयंकर संघर्ष शुरू हुआ। अब पति-पत्नी हो गए। अब तक तो दूर-दूर थे; अब एक मकान में हो गए। और अब एक चौबीस घंटे निसर्ग से कलह की स्थिति बन गई। तो उस युवती ने कहा कि हम रात सोते थे, तो युवक दूसरे कमरे में, मैं दूसरे कमरे में। वह ताला लगा देता और चाबी खिड़की से मेरे कमरे में फेंक देता कि कहीं रात, किसी अचेतन प्रवाह में, किसी वृत्ति के वेग में, कहीं व्रत न टूट जाए।

सो सकेंगे? शांत हो सकेंगे? बेचैनी बढ़ती गई। युवती को हिस्टीरिया के फिट आने लगे। और युवक इसको और न सह सका, इस अवस्था को, तो पदयात्रा पर निकल गया। जब मैं गया तो पति मौजूद न था। फिर भी वह युवती यह नहीं समझ पा रही है कि भूल कहीं विनोबा की है। कहीं साधु पुरुष भूल करते हैं? वे तो सदा तुम्हें ऊंचा ही उठाने में लगे रहते हैं। भूल है तो तुम्हारी ही है।

तो आत्मग्लानि से भरी जा रही है। और अनेक बार सोचती है कि आत्महत्या कर लूं, क्योंकि कहीं व्रत न टूट जाए; उससे तो बेहतर खुद ही मिट जाना है। यह युवती शांति को, ध्यान को, समाधि को उपलब्ध हो सकेगी? इस युवती के तो जीवन की साधारण स्वाभाविकता ही नष्ट हो गई। अब तो इसके लिए कोई द्वार न रहा। यह सिर्फ ग्लानि से भरेगी, सड़ेगी। इसमें आत्मा का जन्म होगा? इसका तो शरीर भी मर गया।

निसर्ग के विपरीत ले जाने वाले दुश्मन हैं। और अगर कहीं कोई परमात्मा है तो वह निसर्ग के साथ बह कर ही उपलब्ध होता है, विपरीत चल कर नहीं। अगर कहीं कोई ब्रह्मचर्य है तो वासना की समझ से ही उसका फूल खिलता है, वासना से लड़ कर नहीं।

आदर्शवादी का अर्थ है जो तुम्हें तुम्हारी प्रकृति के खिलाफ संघर्ष में उतरवा दे। एक बार तुम फंस गए तो उस जाल के बाहर आना करीब-करीब मुश्किल है। क्योंकि जाल ऐसा है कि तुम्हें खुद भी लगेगा कि बात तो बिल्कुल ठीक है। ब्रह्मचर्य में क्या भूल है? ब्रह्मचर्य से सुंदर और क्या? वासना से ज्यादा दूषित और क्या? वासना तो गंदगी है और ब्रह्मचर्य तो फूल है! लेकिन तुम्हें पता, कमल कीचड़ में खिलता है। माना कि वासना कीचड़ है, लेकिन कमल कीचड़ के खिलाफ नहीं खिल सकता। और माना कि ब्रह्मचर्य कमल है, लेकिन कमल कीचड़ से ही उपजता है। कमल कीचड़ का ही रूपांतरण है। कमल कीचड़ ही है अपनी परिपूर्ण नैसर्गिक अवस्था में खिल गया; कीचड़ में जो छिपा था वह प्रकट हो गया।

आदर्शवादी कीचड़ और कमल को लड़ाता है। और जैसे ही लड़ाई शुरू हो जाती है, तुम कीचड़ ही रह जाते हो। कमल फिर पैदा ही नहीं होगा। क्योंकि कमल तो कीचड़ का ही प्रवाह है। कमल तो कीचड़ से ही आता है। कीचड़ और कमल के बीच कोई दुश्मनी नहीं है; बड़ी गहन दोस्ती है। वासना से ही खिलता है ब्रह्मचर्य का कमल। करुणा का कमल आता है क्रोध से ही। त्याग भोग का सार है। उपनिषद कहते हैंः त्येन त्यक्तेन भुंजीथा। उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। भोगोगे ही नहीं, त्यागोगे कैसे? भोग को ही न जाना, त्याग को तुम जानोगे कैसे? त्याग तो बहुत दूर है। भोग तो मार्ग है; त्याग मंजिल है। मार्ग का ही त्याग कर दिया; मंजिल कैसे मिलेगी?

तो दुनिया में दो तरह के लोग हैं। और बड़ी समझदारी की जरूरत है चुनाव करने की, अन्यथा तुम किसी न किसी जाल में उलझ ही जाओगे। एक तरह के लोग हैं जिनको हम कहें आदर्शवादी, आइडियलिस्ट। उसमें दुनिया में जितने सौ प्रसिद्ध लोग हैं, उनमें से निन्यानबे आ जाते हैं। निन्यानबे महापुरुष आदर्शवादी हैं। उन्होंने ही तो नरक बना दिया पृथ्वी को। उनके ही पदचिह्नों पर चल कर तो तुम भटके हो। लेकिन गणित ऐसा है कि तुम्हें यह कभी समझ में न आएगा कि महात्मा ने डुबाया; तुम्हें यही समझ में आएगा कि तुम खुद ही डूबे, क्योंकि तुमने महात्मा की मानी न। महात्मा की मान कर ही डूबे हो तुम। लेकिन भीतर तर्क यही कहेगा कि अगर मान लेते और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते तो क्यों डूबते? डूबे इसलिए कि तुम माने नहीं!

अब यह बड़ा जटिल जाल है। जटिल इसलिए है कि तुम्हारा मन कहेगा कि जो महात्मा ने कहा था वह कर लेते और फिर न पहुंचते तब महात्मा का दोष था। तुम पूरा किए ही नहीं तो पहुंचोगे कैसे? और महात्मा ने जो कहा था वह ऐसा था कि वह पूरा किया ही नहीं जा सकता। इसलिए जाल भयंकर है।

महात्मा ने कहा था, प्रकृति से लड़ो। तुम प्रकृति के पुतले हो; लड़ोगे कैसे? रोआं-रोआं प्रकृति का है, धड़कन-धड़कन प्रकृति की है, श्वास-श्वास प्रकृति की है; जिस ऊर्जा से तुम लड़ने चले हो, वह भी प्रकृति की है। प्रकृति में ही छिपा है परमात्मा। परमात्मा कोई प्रकृति का शत्रु नहीं है; प्रकृति में ही छिपा है, प्रकृति का ही गहनतम रूप है। अगर प्रकृति मंदिर है तो परमात्मा विराजमान प्रतिमा है उस मंदिर में ही।

असंभव को जब तुम करने में लग जाओगे तो एक कठिन जाल पैदा होगा। वह कठिन जाल यह है कि असंभव पूरा न होगा, और जब पूरा न होगा तब तुम कैसे कह सकोगे कि जो बताया गया था वह गलत था। तब तुम्हें ऐसा लगेगा कि पूरा न कर पाया, यह मेरी कमजोरी है। तब तुम आत्मग्लानि से भरोगे। तब तुम निंदा से भरोगे। तब तुम स्वयं को घृणा करने लगोगे; स्वयं को ऐसा देखोगे जैसे पाप की खान। बड़े मजे की बात है, महात्मा तुम्हें आत्मा तो नहीं दे पाते, तुम्हारी आत्मा को कलुषित कर देते हैं।

मैं उन्हें महात्मा नहीं कहता। मेरे तो महात्मा की परिभाषा यही है कि जिसके पास तुम्हें आत्मा उपलब्ध हो। लाओत्से मेरे अर्थों में महात्मा है। सौ में कभी एक महापुरुष लाओत्से जैसा होता है जो प्रकृति को स्वीकार

करता है, और उसी गहन स्वीकार में से सूत्र को खोज लेता है जिसके सहारे तुम धीरे-धीरे बिना किसी असंभव प्रक्रिया में उतरे मंजिल को उपलब्ध हो जाते हो। और गुरु तो वही है जो तुम्हें ऐसा मार्ग दे दे जो सुगमता और सहजता से जीवन के परम निष्कर्ष को निकट ले आए।

तुम बहुत चकित होओगे, क्योंकि लाओत्से जो आदर्श बता रहा है, वे तुम्हें आदर्श जैसे ही न लगेंगे। लाओत्से ब्रह्मचर्य की बात ही नहीं करता, क्योंकि लाओत्से जानता है कि अगर तुमने सहजता सीख ली और सहजता से कामवासना को जी लिया तो ब्रह्मचर्य अपने से पैदा हो जाएगा। उसकी चर्चा की कोई जरूरत नहीं है। ब्रह्मचर्य की चर्चा तो वहां चलती है जहां वह पैदा नहीं हो पाता। वहां ब्रह्मचर्य का बड़ा गुणगान चलता है, बड़ी स्तुति चलती है। वह स्तुति इसीलिए चल रही है। वह धुआं है, जिसके भीतर दबी हुई वासना पड़ी है। और जीवन भर लोग संघर्ष करते हैं, कुछ भी तो उपलब्ध नहीं कर पाते। फिर भी तुम नहीं जागते।

महात्मा गांधी ने जीवन भर ब्रह्मचर्य के लिए चेष्टा की; अंत तक उपलब्ध नहीं कर पाए। फिर भी तुम नहीं जागते। और महात्मा गांधी नहीं कर पाए तो तुम सोचते हो, तुम कर लोगे? तुम्हें यह ख्याल ही नहीं आता कि महात्मा गांधी जितना श्रम तुम कर सकोगे? अथक श्रम किया; उनके श्रम में कोई जरा भी कमी नहीं है। लेकिन श्रम करने से ही थोड़े मंजिल पास आ जाती है; दिशा भी तो ठीक होनी चाहिए। तुम कितना ही दौड़ो, दौड़ने से थोड़े ही मंजिल पर पहुंच जाओगे। कभी-कभी धीमे चलने वाला भी मंजिल पहुंच सकता है, अगर दिशा ठीक हो; और दौड़ने वाला भटक जाए, अगर दिशा गलत हो। सच तो यह है, दिशा गलत हो तब तो धीमे ही चलना ठीक है; दौड़ने से तो बहुत दूर निकल जाओगे। दिशा गलत हो तब तो बैठे रहना ही बेहतर है। जल्दी मत करना दौड़ने की, क्योंकि नहीं तो वापस लौटने का फिर श्रम उठाना पड़ेगा।

महात्मा गांधी ने बड़ा श्रम किया। अगर उनके श्रम पर ध्यान दो तो वह चेष्टा अनूठी है, बहुत कम लोगों ने की है। लेकिन उस श्रम के कारण कुछ उपलब्ध नहीं हुआ। गांधी आदमी ईमानदार थे; तुम्हारे हजारों महात्मा उतने ईमानदार भी नहीं हैं। क्योंकि गांधी को जो उपलब्ध नहीं हुआ, उन्होंने स्वीकार भी किया कि उपलब्ध नहीं हुआ। तुम्हारे हजारों महात्मा स्वीकार भी नहीं करते। वे तो कहे चले जाते हैं कि उन्हें उपलब्ध हो गया जो उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ है। वे उसकी घोषणा करते रहते हैं कि उन्होंने पा ही लिया जो उन्होंने बिल्कुल नहीं पाया है, जिसकी गंध भी उन्हें नहीं मिली है। तो गांधी ईमानदार हैं, लेकिन गलत हैं। कोई ईमानदारी से ही तो ठीक नहीं हो जाता। ईमानदारी ठीक है अपने आप में। इसलिए मुझे आशा है कि अगले जन्म में गांधी रास्ते को पकड़ लेंगे, क्योंकि ईमानदारी का एक सूत्र उनके हाथ में है। तुम्हारे महात्माओं को तो अनेक-अनेक जन्मों तक भटकना पड़ेगा। उनके पास तो ईमानदारी का सूत्र भी नहीं है।

गांधी ने स्वीकार किया है कि सत्तर साल की उम्र में भी उनको स्वप्नदोष हो जाता है। हो ही जाएगा। इसमें कसूर वासना का नहीं है; इसमें कसूर गांधी का वासना के खिलाफ लड़ने का है। तुम जिस चीज से लड़ोगे वही तुम्हारे सपनों को घेर लेगी। तुम जिस चीज से दिन भर जूझोगे, तो दिन भर तो तुम जूझ सकते हो, क्योंकि चेतन मन काम करता है। लेकिन रात चेतन मन सो जाएगा; जिसने व्रत लिया, संकल्प किया, वह मन तो सो जाएगा। रात तो दूसरा मन जगेगा जिसे तुम्हारे व्रत का कोई पता ही नहीं है। रात तो नैसर्गिक मन जगेगा। सांस्कृतिक, सामाजिक, सभ्यता का दिया हुआ मन तो थक गया दिन भर में, वह सो जाएगा। वह तो बहुत छोटा सा है, दसवां हिस्सा है तुम्हारे मन का; वह जल्दी थक जाता है, दिन भर के काम में, व्यवसाय में रुक जाता है। रात तो तुम्हारा जो नौ गुना बड़ा मन है प्रकृति का, वह जागेगा। उसको पता ही नहीं कि तुम महात्मा हो; उसको पता ही नहीं कि तुमने ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया है; उसने यह खबर ही नहीं सुनी। तुम्हारे चेतन

मन और अचेतन मन के बीच बड़ा फासला है; खबर तक नहीं पहुंचती, संवाद का साधन भी नहीं है। और तुम्हें पता भी नहीं है कि तुम कैसे खबर पहुंचाओ। लड़ाई भी कोई संवाद की व्यवस्था है? खबर पहुंचाने का मतलब होता है कि चेतन और अचेतन करीब आएं। लड़ाई से तो दूरी बढ़ती जाती है। जिससे भी तुम लड़ोगे उससे दूरी बढ़ जाती है। दुश्मन से कहीं निकटता हो सकती है?

तो गांधी के चेतन-अचेतन मन में जितना फासला है उतना तुम्हारे चेतन-अचेतन मन में भी नहीं है; भारी फासला है! उन्होंने तो अचेतन को बिल्कुल दूर फेंक दिया है जैसे उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उससे तो घबड़ाहट है, दुश्मनी है; उसी से तो लड़ाई है; उसी के कारण तो बार-बार कामवासना मन को पकड़ती है। रात चेतन मन तो सो गया, अचेतन जागा। अब इस अचेतन को न महात्मा होने का पता है, न सभ्यता-संस्कृति का कोई पता है; यह तो नैसर्गिक मन है। यह तो वैसा ही है जैसा पशुओं का है, साधारण आदमियों का है, पक्षियों का है। इस नैसर्गिक मन की वासना तो अछूती, अदम्य है; वह उठेगी, सपने बनाएगी। जिसे तुम जीवन में जागते में नहीं भोग पाए, अचेतन मन उसे निद्रा में सपने बना कर भोग लेगा। स्वप्नदोष स्वाभाविक है।

तुम्हारे सौ में से निन्यानबे महात्मा स्वप्नदोष से पीड़ित होंगे। लेकिन कौन कहे? और कह कर कौन झंझट ले? वे राजी भी नहीं होंगे। लेकिन गांधी ईमानदार हैं; उन्होंने स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति में ही उनके अगले जन्मों की संभावना है कि वे रूपांतरित हो जाएं। लेकिन गांधी के पीछे बहुत से अनुयायी पैदा हो जाएंगे। ये अनुयायी बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे, और ये अनुयायी ऐसी स्थिति में आ जाएंगे जिसको कि करीब-करीब विक्षिप्तता कहा जा सकता है।

अब गांधी कहते हैं, अस्वाद व्रत है! स्वाद मत लो!

तुम्हें भी बात जमती है कि क्या भोजन में स्वाद ले रहे हो? रखा क्या है भोजन में? निंदा के स्वर बड़ा तर्क रखते हैं अपने पीछे, क्या रखा है भोजन में? कोई भी निंदा कर सकता है भोजन की। और तुम्हें भी निंदा जमती है, क्योंकि तुम कभी ज्यादा खा जाते हो, कभी पेट में तकलीफ होती है, वजन बढ़ता जाता है, चर्बी बढ़ती जाती है, बीमारियां आती हैं। तुम्हें भी लगता है कि ज्यादा भोजन करके तुम दुख ही तो पा रहे हो। और इतनी बार तो भोजन कर लिया, कुछ मिला तो है नहीं। इस स्वाद में रखा भी क्या है? जरा सा जीभ पर स्पर्श हुआ, स्वाद खो गया। और जिंदगी भर तो यही दोहरा रहे हो। अस्वाद व्रत है! स्वाद मत लो! बिना स्वाद के भोजन करो!

अब बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। यह होगा कैसे? बिना स्वाद के भोजन कैसे करोगे? और जितना भोजन बिना स्वाद के करने की कोशिश करोगे, तुम पाओगे, स्वाद की आकांक्षा उतनी ही प्रगाढ़ होती जाती है।

गांधी अपने भोजन को बिगाड़ने के लिए नीम की चटनी साथ में रख लेते थे।

अब नीम की भी कोई चटनी होती है? लेकिन अस्वाद जिसने व्रत ले लिया, उसके काम की है। लेकिन नीम की चटनी भी स्वाद है; कड़वा स्वाद है। उससे तुम स्वाद को मार सकते हो, अस्वाद को उपलब्ध नहीं हो सकते। वह तो तरकीब छिपाने की है, वह तो भोजन को बिगाड़ने की है। ध्यान रखें, कुस्वाद अस्वाद नहीं है, वह भी स्वाद है। लेकिन अगर नीम की चटनी खा ली भोजन के साथ बार-बार तो भोजन का स्वाद बिगड़ जाएगा; तुम कैसे अस्वाद को उपलब्ध हो जाओगे?

लेकिन अनुयायी तो मिल जाते हैं इन बातों के लिए भी। और फिर एक बड़े महिमाशाली व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। लुई फिशर अमरीका से गांधी को मिलने आया। तो वे तो मेहमानों के भी भोजन में चटनी रखवा देते थे। लुई फिशर साथ ही बैठा भोजन करने। प्रसिद्ध विचारक, लेखक, और गांधी पर उसने बाद में बड़ी

महत्वपूर्ण किताब लिखी। तो गांधी ने चटनी रखवाई; वह उनका खास, सबसे ज्यादा मनचीता हिस्सा था भोजन का। क्योंकि अस्वाद सधे कैसे! जीभ को खराब कर लो। क्या जरूरत है रोज-रोज नीम की चटनी खाने की! जीभ पर तेजाब लगवा दो, जल जाए। स्वाद के जो छोटे-छोटे अणु हैं जीभ पर, कोष्ठ हैं, जिनसे स्वाद आता है, उनको जला दो। वह भी लोगों ने किया है। सूरदास ने अपनी आंखें फोड़ ली थीं, सिर्फ इसलिए ताकि सुंदर स्त्रियां दिखाई न पड़ें। क्योंकि सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं तो वासना जगती है।

लुई फिशर को भी चटनी रखवा दी। लुई फिशर ने गांधी को चटनी खाते देख कर चखा। उसे क्या पता कि यह नीम है! वह तो कड़वा जहर थी। उसका तो सारा मुंह खराब हो गया। लेकिन अब गांधी से कैसे कहे? यही तकलीफ है। और गांधी बड़े रस से ले रहे हैं चटनी को; एक कौर दूसरी चीज का लेते हैं तो चटनी जरूर उसमें मिला लेते हैं। तो लुई फिशर ने सोचा कि होगा कोई भारतीय रिवाज, कोई रहस्यपूर्ण बात होगी; जब इतना बड़ा महात्मा करता है, तो कुछ रहस्य होगा! झंझट में बोलना ठीक भी नहीं, कुछ कहना ठीक भी नहीं। और पश्चिम के लोग इस अर्थ में थोड़े सोच-विचारपूर्ण हैं कि दूसरे की संस्कृति का ख्याल रखो; इसका कोई रहस्य होगा, धार्मिक अर्थ होगा; गांधी करते हैं तो निष्प्रयोजन तो नहीं करेंगे। पर उसने देखा कि अगर मैं भी इस चटनी को मिला कर खाऊं तो सारा भोजन ही खराब हो जाएगा और यह तो वमन की हालत हो जाएगी। तो उसने सोचा, बेहतर है इस चटनी को एकबारगी इकट्ठा गटक जाओ, एक ही दफे झंझट होगी, और फिर शांति से भोजन कर लो। तो वह चटनी को गटक गया। गांधी ने कहा कि और चटनी ले आओ; लुई फिशर को बहुत पसंद पड़ी मालूम होता है।

शिष्य ऐसे ही फंसे हैं! शिष्य पूरी की पूरी चटनी इकट्ठी गटक जाते हैं। वे अपना बचाव खोज रहे हैं। लेकिन बचाव है नहीं। लुई फिशर जैसे बुद्धिमान आदमी में यह कहने का साहस नहीं है कि मैं यह चटनी नहीं खाऊंगा। बड़े लोगों का प्रभाव एक तरह की गुलामी मालूम पड़ता है। जैसे तुम गुलाम हो! जैसे तुम्हारे पास अपनी कोई अंतस-चेतना न रही, कि प्रभावशाली लोग जो करते हैं वह ठीक ही करते हैं। और अक्सर प्रभावशाली लोग गलत करते हैं, क्योंकि उनके सारे प्रभाव की गहराई में तो अहंकार होता है। उनके प्रभाव का कारण ही यही है कि उन्होंने अहंकार को खूब सजाया है; कभी-कभी प्रकट हो जाता है। लेकिन इतिहास उसको भी भूल जाएगा।

गांधी के एक शिष्य मेरे पास थे। उनका नाम तुमने सुना होगा--स्वामी आनंद। एक रात हम साथ ही सोए। तो उन्होंने मुझे कहा कि शुरू-शुरू में जब गांधी भारत आए अफ्रीका से तो वे उनका प्रेस रिपोर्टर का काम करते थे--आनंद स्वामी। तो गांधी ने एक व्याख्यान दिया जिसमें उन्होंने बड़े भद्दे, अभद्र शब्दों का उपयोग किया अंग्रेजों के खिलाफ, जैसी कि लोगों को गांधी से अपेक्षा न थी। आनंद स्वामी ने जो रिपोर्ट बनाई उसमें वे भद्दे शब्द, गालियों जैसे शब्द छोड़ दिए। सोचा कि उत्तेजना में कह गए हैं, बाद में खुद भी पछताएंगे।

गांधी ने दूसरे दिन जब रिपोर्ट पढ़ी, आनंद स्वामी को बुलाया और बहुत पीठ थपथपाई और कहा, तुमने ठीक किया, ऐसा ही करना चाहिए। क्योंकि उत्तेजना के क्षण में जो निकल गया उसको जनता तक पहुंचाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जैसा ही रिपोर्टर होना चाहिए!

आनंद स्वामी बहुत प्रभावित और प्रसन्न। वे मुझे इसीलिए सुना रहे थे कि गांधी ने कितनी मेरी प्रशंसा की। और मैंने उनसे कहा कि अगर मैं गांधी की जगह होता तो उसी दिन तुम्हारा-मेरा संबंध समाप्त था, क्योंकि तुमने झूठ फैलाया! गांधी ने अगर अपशब्द उपयोग किए थे तो अपशब्द रिपोर्ट में होने चाहिए। तुम भी बेईमान हो और तुम्हारे गांधी भी बेईमान हैं जो उन्होंने तुम्हारी पीठ ठोंकी और कहा कि तुमने ठीक किया। गांधी को तो

लगा कि ठीक किया, क्योंकि उत्तेजना के क्षण में, जब अहंकार पहरे पर नहीं होता, चीजें निकल जाती हैं। मगर वे वास्तविक हैं, अन्यथा निकलेंगी कहां से? वे भीतर हैं, इसलिए तो बाहर आ जाती हैं। अनगार्डेड मोमेंट, पहरे पर नहीं थे गांधी उस वक्त, बोलने में बह गए। मगर वह असलियत है। न होता भीतर तो निकलता कैसे? तुमने झूठ का प्रचार किया। मैंने कहा कि तुम ऐसा सोचो कि गांधी ने गालियां न दी होतीं और तुमने जोड़ दी होतीं रिपोर्ट में तो गांधी क्या कहते? क्या तुम्हारी पीठ ठोंकते? वे तुम्हें अलग करते उसी वक्त। वे कहते, तुमने यह झूठ कैसे जोड़ा?

गालियां न दी जाएं और जोड़ दी जाएं तो झूठ; और गालियां दी जाएं और निकाल ली जाएं तो झूठ नहीं? वह निषेधात्मक झूठ। तुम गांधी की प्रतिमा को सीधा-सीधा क्यों नहीं रखते? फिर बाद में इतिहास में लोग लिखेंगे कि गांधी ने अंग्रेजों के खिलाफ कभी एक अपशब्द का उपयोग नहीं किया! और गांधी की प्रतिमा झूठी होगी। फिर उससे लोग अनुप्राणित होते हैं, प्रभावित होते हैं।

गांधी कहते थे कि मेरा राजनीति में कोई बड़ा लगाव नहीं है। लेकिन सुभाष के खिलाफ उन्होंने पट्टाभि सीतारामैया को खड़ा किया चुनाव में। फिर एक क्षण में भूल हो गई उनसे, क्योंकि सुभाष जीत गए और पट्टाभि हार गए, तो गांधी के मुंह से निकल गया कि यह मेरी हार है। पट्टाभि सीतारामैया की हार मेरी हार है तो पट्टाभि सीतारामैया की जीत गांधी की जीत होती। निष्पक्ष नहीं हैं! सुभाष को हराने के लिए पूरी-पूरी योजना थी, कुशल राजनीति थी। लेकिन ये सब तथ्य धीरे-धीरे हटा दिए जाते हैं।

गांधी के अंतिम जीवन में उनको खुद ही शक आ गया कि जीवन भर का ब्रह्मचर्य कुछ सार नहीं लाया, तो जीवन के अंत में तंत्र की तरफ झुके। जिस तंत्र की मैं बात कर रहा हूं उसको जीवन के अंत में गांधी झुके। मुझे गालियां पड़ रही हैं, पड़ती रहेंगी; लेकिन गांधी का पूरा जीवन कहता है कि आखिर में उनको याद आई कि वह जीवन भर उन्होंने व्यर्थ गंवाया। यह ब्रह्मचर्य ऐसे उपलब्ध नहीं होता! ब्रह्मचर्य उपलब्ध होने के रास्ते और हैं! तब वे तंत्र की तरफ झुके। लेकिन शिष्य घबड़ाए, क्योंकि शिष्यों ने तो पूरी जिंदगी उनका पीछा ब्रह्मचर्य के कारण किया था कि वे महान ब्रह्मचारी हैं। और उन्होंने भी ब्रह्मचर्य के व्रत लिए थे; अब यह क्या होने लगा!

तो तुम चकित होओगे कि गांधी के जीवन का वह हिस्सा शिष्यों ने छोड़ ही दिया, उसकी वे बात ही नहीं करते। गांधी के जीवन लिखे जाते हैं, किताबें छापी जाती हैं; वह हिस्सा छोड़ दिया जाता है। तो एक झूठी प्रतिमा बनाई जाती है। जब कि जीवन भर के अनुभव के बाद गांधी का यह ख्याल कि तंत्र में शायद कोई रास्ता हो ब्रह्मचर्य को पाने का, इस बात की घोषणा है कि संघर्ष का रास्ता कहीं भी नहीं ले जाता। गांधी जैसे महापुरुष को भी नहीं ले जाता, तुम्हें कहां ले जाएगा!

लेकिन गांधी के शिष्यों ने गांधी की गर्दन पकड़ ली जब गांधी ने तंत्र के प्रयोग किए। शिष्य भी छोड़ कर जाने लगे। शिष्यों में भी बात फैल गई कि यह आदमी बिगड़ गया है, आखिरी में पतन हो गया। वे ही शिष्य अब बड़े-बड़े गांधीवादी हैं जिन्होंने अंत में गांधी को त्याग दिया। लेकिन फिर सत्ता आई गांधी के शिष्यों के हाथ में। जो छोड़ कर चले गए थे वे वापस लौट आए। अब वे बड़े-बड़े गांधीवादी हैं। लेकिन वे सब गांधी के अंतिम क्षण में विरोध में थे, क्योंकि गांधी एक ऐसा काम कर रहे थे जो उनकी समझ के बिल्कुल बाहर था। गांधी एक नग्न युवती के साथ एक साल तक बिस्तर पर साथ-साथ सोते रहे। यह उनके लिए घबड़ाने वाली बात थी।

मगर वह प्रयोग भी गांधी का बहुत गहरा नहीं जा सका, क्योंकि जीवन भर का संस्कार और जीवन भर की धारणा। तो उन्होंने उस प्रयोग को भी अपनी ही परिभाषा दे दी; वह तंत्र का प्रयोग न रहा। लिया उन्होंने तंत्र से, ध्यान उनका तंत्र पर गया; लेकिन परिभाषा उन्होंने अपनी दे दी। ऐसे ही तो सत्य विकृत होते हैं।

उन्होंने कहा कि मैं यह तंत्र का प्रयोग इसलिए नहीं कर रहा हूं कि मुझे इससे कुछ पाना है; सिर्फ एक कसौटी! मैं जांचना चाहता हूं कि मेरे भीतर ब्रह्मचर्य अभी तक गहरे गया है या नहीं। अगर नग्न युवती मेरे पास सोई हो रात भर तो मेरे मन में वासना उठती है या नहीं, इसकी मैं जांच कर रहा हूं।

अगर वासना न उठती हो तो जांच करनी पड़ेगी? जांच की जरूरत है? तुम्हारे सिर में जब दर्द नहीं होता तो क्या तुम डाक्टर के पास जाते हो कि जरा जांच करके बताओ, मेरे सिर में दर्द है या नहीं? जब नहीं होता तब तुम जानते हो; जब होता है तब भी तुम जानते हो। सारी दुनिया भी कहे कि तुम्हारे सिर में दर्द नहीं है और तुम्हें हो रहा है, तो क्या फर्क पड़ेगा उस प्रमाण से? तुम्हें हो रहा है, सारी दुनिया कहती रहे कि नहीं हो रहा है, इससे क्या फर्क पड़ रहा है? कौन जान सकता है तुम्हारे सिर के दर्द को सिवाय तुम्हारे? कोई भी नहीं जान सकता। तुम्हारा सिर, तुम्हारा दर्द! और क्या इसकी कोई परीक्षा करनी पड़ती है, जांच करनी पड़ती है कि हो रहा है कि नहीं हो रहा? जब वासना तुम्हारे मन में होती है तो क्या पूछना पड़ता है किसी से कि वासना है या नहीं?

किया तो तंत्र का प्रयोग, लेकिन व्याख्या अपनी करके उसको भी खराब कर लिया। गांधी ब्रह्मचर्य के संबंध में असफल मरे। लेकिन इसमें गांधी का कोई कसूर नहीं है। गांधी ने मेहनत पूरी की; रास्ता गलत था। गांधी का श्रम पूजा योग्य है, लेकिन दिशा भ्रांत थी। जाना था पूरब, चल पड़े पश्चिम। दौड़े बहुत, थका डाला; कुछ उठा न रखा, सब किया जो करना था; लेकिन दिशा ही गलत थी।

लाओत्से निसर्ग को स्वीकार करके बढ़ता है। वह तुमसे यह नहीं कहता कि तुम्हें कोई आदर्श पुरुष होना है; वह तुमसे कहता है कि तुम साधारण हो जाओ, बस काफी है। असाधारण नहीं, तुम बस साधारण हो जाओ। तुम इतने साधारण हो जाओ कि न किसी को तुम्हारी खबर रहे, न तुम्हें किसी की खबर रहे। तुम जीवन में ऐसे साधारण हो जाओ कि तुम्हारे जीवन में कोई कलह और संघर्ष न रहे। प्यास लगे तो पानी पीओ। और जब प्यास लगे तो क्या जरूरत है अस्वाद से पानी पीने की? पूरे स्वाद से पीओ! लेकिन स्वाद को परमात्मा के प्रति धन्यवाद बना लो, अहोभाव बना लो। भोजन ही करना है तो स्वाद से करो!

ध्यान रहे, धर्मगुरु लोगों को समझाते हैं कि भोजन में स्वाद लेना पशुओं जैसा है। वे बिल्कुल गलत कहते हैं। पशु तो भोजन में स्वाद लेते ही नहीं, सिर्फ मनुष्य लेता है। वह मनुष्य की गरिमा है और ऊंचाई है। पशु तो भोजन में स्वाद लेते ही नहीं। पशुओं का भोजन तो बिल्कुल यांत्रिक है। तुम एक भैंस को छोड़ दो। उसका बंधा हुई घास है, वह वही घास चुन-चुन कर खा लेगी, दूसरे घास को छोड़ देगी। भैंस स्वाद लेती है? कभी भूल कर मत सोचना। कोई जानवर भोजन में स्वाद नहीं लेता। भोजन करता है, बिल्कुल अस्वाद से करता है; स्वाद का कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए तो जानवर एक ही भोजन को सतत करते रहते हैं, कभी परिवर्तन नहीं करते। स्वाद जहां भी होगा वहां परिवर्तन होगा। क्योंकि एक ही स्वाद अगर तुम रोज-रोज लेते रहोगे तो ऊब जाओगे। भैंस कभी नहीं ऊबती; साफ है कि उसे कोई स्वाद नहीं है। तुम एक ही सब्जी रोज खाकर देखो--आज अच्छी लगेगी, कल साधारण हो जाएगी, परसों ऊब आने लगेगी, चौथे दिन तुम थाली पटक दोगे उठा कर पत्नी के सिर पर कि बहुत हो गया।

स्वाद का अर्थ ही होता है परिवर्तन। पशु परिवर्तन नहीं करते, इसलिए जाहिर है कि उनको स्वाद का कोई सवाल नहीं है। भोजन! तो पशु तो अस्वाद व्रत को उपलब्ध हैं; सिर्फ आदमी के जीवन में स्वाद उठा है।

तुमने कभी देखा पशुओं को संभोग करते? उनको कोई रस नहीं आता। दो पशुओं को तुम कभी भी संभोग करते देखो, तुम उनमें कोई रस न पाओगे। वे संभोग यंत्रवत करते हैं--जैसे कोई मजबूरी है, करना पड़ रहा है।

और संभोग करने के बाद तुम उनके चेहरे पर कोई शांति न पाओगे; न कोई आनंद का भाव पाओगे। संभोग कर लिया, निपट गए, चल पड़े अपने-अपने रास्ते पर।

सिर्फ मनुष्य संभोग में स्वाद ले सकता है; भोजन में स्वाद ले सकता है; गंध में स्वाद ले सकता है। पशुओं को गंध तो आती है मनुष्य से ज्यादा, लेकिन गंध में स्वाद नहीं है। तुमने किसी पक्षी को फूल को खोंसे हुए देखा है? कि किसी भैंस को कि फूल को पास लेकर गंध ले रही है? पशुओं की गंध की शक्ति तीव्र है, वे मील भर दूर से भी गंध ले लेते हैं, लेकिन गंध में कोई स्वाद नहीं है। पशु बिल्कुल अस्वाद में जीते हैं।

मनुष्य के जीवन में स्वाद पहली दफा उठता है। वह चेतना की ऊपर की सीढ़ी पर संभव है; नीचे की सीढ़ी पर संभव नहीं है। इसलिए अगर तुम अस्वाद साधोगे तो पशुओं जैसे हो सकते हो, परमात्मा जैसे नहीं। परमात्मा जैसे तो तुम तभी हो पाओगे, जब तुम्हारे छोटे-छोटे स्वाद में तुम्हें परम स्वाद आने लगेगा। तब तो उपनिषद के ऋषियों ने कहा, अन्नं ब्रह्म! निश्चित ही, ये अलग तरह के लोग हैं गांधी से। गांधी कहते हैं, नीम ब्रह्म! और ये उपनिषद के ऋषि कहते हैं, अन्नं ब्रह्म! कहते हैं, स्वाद! इतना स्वाद कि साधारण अन्न में से ब्रह्म प्रकट होने लगे! पी रहे हैं जल, लेकिन इतनी परितृप्ति कि कंठ पर जल का स्पर्श ब्रह्म का स्पर्श हो जाए! हवा का एक झोंका फूल की गंध ले आया है। नाक सिकोड़ कर महात्मा बन कर मत बैठ जाना, क्योंकि उस गंध में परमात्मा तुम्हारी तरफ आया है। वह हवा का झोंका परमात्मा को तुम्हारी तरफ बहा लाया है। तुम महात्मा बन कर अकड़ कर मत बैठ जाना; नाक बंद मत कर लेना--अस्वाद।

नहीं, लाओत्से तुम्हें आदर्श नहीं बनाना चाहता, तुम्हें नैसर्गिक बनाना चाहता है। सौ में एक ही महापुरुष तुम्हें नैसर्गिक बनाना चाहता है। क्यों? ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि तुम नैसर्गिक बनना नहीं चाहते। नैसर्गिक बनने में तुम्हें कोई मजा ही नहीं है, क्योंकि न कोई संघर्ष है वहां, न अहंकार की तृप्ति है। इसलिए तुम्हारे सौ महात्माओं में निन्यानबे वे हैं जो तुम्हें अहंकार की तृप्ति देना चाहते हैं--संघर्ष का मजा, चुनौती, लड़ाई, जीतने का मजा; न सही जीता दूसरे को, तो खुद ही को जीतो! महात्माओं के वचन हैं कि दूसरे को क्या जीतना; असली जीत तो खुद को जीतना है। मगर जीतने का रस कायम है!

लाओत्से कहता है, जीतना ही क्या? न दूसरे को, न अपने को। जीतने की कोई जरूरत ही नहीं, क्योंकि जीतने का मतलब हिंसा, जीतने का मतलब संघर्ष, द्वंद्व, कलह, तनाव, बेचैनी, संताप। दूसरे को जीता तो, अपने को जीता तो, लड़ाई तो रहेगी ही। लाओत्से कहता है, लड़ो ही मत; स्वीकार करो।

जो-जो व्यक्ति तुम्हें लड़ने की सिखाते हैं उन-उनका तुम पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि तुम लड़ने को तत्पर खड़े हो। अगर दूसरे से न लड़े तो अपने से ही लड़ना पड़ेगा। बिना लड़े तुम्हारा मन मानता नहीं, क्योंकि बिना लड़े अहंकार निर्मित नहीं होता।

इसे ठीक से समझ लो। इसे मैं हजार-हजार बार दोहराता हूं कि तुम लड़ाई की उत्सुकता में हो, तत्पर हो, खोज रहे हो कि कहीं लड़ाई मिल जाए। और निश्चित ही, दूसरे से लड़ना जरा मंहगा काम है, क्योंकि दूसरा ऐसे ही खाली नहीं बैठा रहेगा।

इसलिए बहादुर दूसरों से लड़ते हैं; कायर खुद से लड़ते हैं। क्योंकि दूसरे से लड़ने में खतरा है; खुद से लड़ने में तो कोई खतरा ही नहीं है, निहत्थे। खुद से लड़ने का मतलब है तुम अपने को दो हिस्सों में बांट लेते होः शरीर, आत्मा; लड़ाओ! निम्न प्रकृति, उच्च परमात्मा; लड़ाओ! ऊर्ध्वगामी ऊर्जा, अधोगामी ऊर्जा; लड़ाओ! तुम अपने भीतर दो हिस्से कर लेते हो। तुम अपने भीतर अंधेरा पक्ष और उजाला पक्ष कर लेते हो। यह रही पूर्णिमा, यह रही अमावस; संघर्ष शुरू! शुभ-अशुभ, हिंसा-अहिंसा, स्वाद-अस्वाद, वासना-ब्रह्मचर्य; लड़ाओ!

सारा खेल इस बात का है कि तुम किसी भांति अपने से लड़ो। लड़ो तो अहंकार निर्मित होता है। इसलिए जैसा अहंकार तुम्हारे साधुओं के पास होता है--जैसा तीखा, प्रखर, धार वाला--वैसा असाधुओं के पास नहीं होता। असाधु दूसरों से लड़ रहे हैं। दूसरे से लड़ाई कभी भी निर्णीत नहीं हो पाती; विजय कभी आखिरी नहीं हो पाती। क्योंकि दूसरा फिर तैयार होकर आ जाएगा। आज हार गया, कल फिर तैयार हो जाएगा। और यह दूसरा हार गया; हजार दूसरे हैं, वे तुम्हें हराएंगे। दूसरे से लड़ाई तो अनंत है; वह कभी तय नहीं हो पाएगी कि तुम निश्चित रूप से जीत गए। लेकिन खुद से लड़ाई तो बड़ा सुविधापूर्ण काम है--अपनी ही छाती पर चढ़ कर बैठ गए।

यह सबसे कठिन काम है दुनिया में, अपनी छाती पर चढ़ कर बैठना। सोचो, कैसे बैठोगे अपनी छाती पर चढ़ कर? लेकिन बहुत बैठ गए हैं। जो बैठ जाते हैं वे तुम्हारे महात्मा हैं। लेकिन यह लड़ाई भी कभी पूरी नहीं होती, क्योंकि जिसकी छाती पर तुम बैठे हो, वह भी तुम्हीं हो। उसे तुम दबा लो क्षण भर को, वह भी प्रकट होगा आज नहीं कल। और ध्यान रखें, जब भी कभी महात्मा छाती पर से उतरता है अपनी तो जितना बड़ा शैतान उसमें से निकलेगा उतना शैतान साधारण आदमी से नहीं निकल सकता। क्योंकि उसका शैतान बिल्कुल ताजा है, उसका उपयोग ही नहीं हुआ। महात्मापन तो उसका बासा पड़ गया है, सेकेंड हैंड है; खूब उपयोग कर लिया है; लेकिन उसका शैतान बिल्कुल ताजा बैठा है; उसने उपयोग करने ही नहीं दिया; वह उसके भीतर छिपा है। अस्वाद तो थक गया, लेकिन स्वाद की कामना अनथकी भीतर पड़ी है--कुंआरी, ताजी! ब्रह्मचर्य तो जराजीर्ण हो गया; वासना प्रतीक्षा कर रही है कि कब ब्रह्मचर्य को धक्का देकर गिरा दे।

इसलिए मेरे निरीक्षण में, जवान आदमी अगर ब्रह्मचर्य का व्रत ले तो कुछ वर्ष तक सफल हो सकता है। लेकिन कोई चालीस और पैंतालीस साल के करीब उपद्रव शुरू होता है, क्योंकि ब्रह्मचर्य की शक्ति थकनी शुरू हो जाती है और जवानी की ताकत जो दबा रही थी वह भी क्षीण होने लगती है। इसलिए तुम्हारे महात्माओं का पतन अगर होता है तो वह पैंतालीस साल के करीब होता है। पैंतालीस साल के करीब महात्मा से सावधान रहना, क्योंकि दबाने के लिए जिस जवानी की जरूरत थी, अब वह शिथिल हो रही है। ब्रह्मचारी बुढ़ापे में कामवासना से भर जाते हैं।

अब यह बिल्कुल विपर्य हो गया। जवानी में कामवासना से भरे रहते, कुछ हर्ज न था। जवानी में कामवासना स्वाभाविक थी। उसे अगर ठीक से भोग लेते, जान लेते, पहचान लेते, तो बूढ़े होते-होते उसके पार हो गए होते। लेकिन जवानी में ब्रह्मचर्य से लड़ने का मजा लिया; फिर बुढ़ापे में वासना--अनथकी और ताजी--हमला करती है। इसलिए बूढ़े आदमियों के मस्तिष्क जितने गंदे होते हैं, उतने जवान आदमियों के कभी नहीं होते।

हां, बूढ़े आदमी का मस्तिष्क तभी ताजा और स्वस्थ होता है जब उसने वासना को जी लिया हो और पार हो गया हो; स्वाद को भोग लिया हो और स्वाद ब्रह्म हो गया हो; वासना को जी लिया हो और अब वासना अपने आप ही रूपांतरित होकर ब्रह्मचर्य बन गई हो।

अनुभव के बिना कोई शुद्धि नहीं है। इसलिए लाओत्से तुमसे कहता है, अनुभव! और जीवन का सरल अनुभव--न केवल व्यक्ति के लिए, बल्कि समाज के लिए भी।

लाओत्से के सुझाव बड़े नैसर्गिक हैं। कोई सुनेगा नहीं। मेरे सुझाव भी बड़े नैसर्गिक और सीधे हैं। कोई सुनेगा नहीं। सुन भी लेगा तो करेगा नहीं; क्योंकि उनमें अहंकार की कोई तृप्ति नहीं है। मैं सिखा रहा हूं ना-कुछ हो जाना; तुम कुछ होना चाहते हो। अगर धन की दुनिया में न हो पाए तो धर्म की दुनिया में हो जाओ। देखो

तुम्हारे शंकराचार्यों को बैठे हुए अपनी-अपनी पीठ पर! उनकी अकड़ देखो! दुकान पर बैठे दुकानदार की भी कमर झुक गई, लेकिन शंकराचार्यों की नहीं झुकती। राजनीति में दौड़ने वाला नेता भी थक गया है, कभी-कभी धर्म की बात भी सोचने लगता है; लेकिन शंकराचार्य शुद्ध अहंकार के शिखर हैं।

तुम्हारे अहंकार की तृप्ति नहीं है लाओत्से में! और अगर तुम लाओत्से को सुन पाओ तो तुम्हारे भीतर छिपे परमात्मा की परितृप्ति हो सकती है।

लाओत्से के सूत्र को हम समझें।

"छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो।"

लाओत्से बड़े देशों के पक्ष में नहीं है, मैं भी नहीं हूं। क्योंकि बड़े देश महामारियों की भांति हैं। जितना बड़ा देश होगा उतनी बड़ी हिंसा होगी। जितना बड़ा देश होगा उतनी बड़ी राजनीति होगी, उतना उपद्रव होगा। जितना बड़ा देश होगा उतना दूसरों के लिए आतंक होगा। और बड़े देश का मतलब यह है कि विभिन्न-विभिन्न तरह के लोग, विभिन्न रीति-रिवाज, विभिन्न जीवन की शैलियां, उनको जबर्दस्ती एक ही थैले में बंद करने की कोशिश। कोई तृप्त न होगा।

और बड़े राज्य का आकर्षण क्या है? गांधी का मन नहीं था कि भारत बंटे। अच्छी-अच्छी बातों में बड़ी अजीब बातें छिपाई जाती हैं। अखंड भारत! जनसंघी चिल्लाते रहते हैंः अखंड भारत! जितना बड़ा राज्य हो, उसके ऊपर कब्जा होने पर उतना ही बड़ा राजनीतिज्ञ हो जाता है। छोटे मुल्क के नेता की उतनी ही कीमत होती है जितना छोटा मुल्क। इसलिए कोई राजनीतिज्ञ देश को छोटा नहीं करना चाहता। इसलिए तो पाकिस्तान मुसलमानों को ही काट दिया बंगला देश में। इसलाम का राज्य है, इसलामी देश है, और मुसलमानों को काट दिया बंगला देश में। क्योंकि बंगला देश अलग हो, पाकिस्तान आधा मर गया उसी दिन अलग होते ही से। मियां भुट्टो आधे हैं अब। वह ताकत न रही, वह बल न रहा। क्योंकि बड़ा देश हो तो बड़ी ताकत।

मगर तुम भेद मत समझना कि कुछ भेद है। नागालैंड में हिंदुस्तान वही कर रहा है। नागा अलग रहना चाहते हैं। कश्मीर में पाकिस्तान, हिंदुस्तान दोनों ने वही किया। कश्मीर अलग रहना चाहता है। आज नहीं कल तमिलनाडु अलग रहना चाहेगा। तुम भी वही करोगे। तुम भी हिंदुस्तानी हो, लेकिन हिंदुस्तानी को काटोगे, उसी तरह जैसा बंगाल में हुआ। क्योंकि कोई नहीं चाहता राजनीतिज्ञ कि देश छोटा हो जाए। देश के छोटे होने का मतलब है कि राजनीतिज्ञ छोटा होता जाता है। अगर देश जिले के बराबर है तो प्रधानमंत्री की हैसियत डिप्टी कलेक्टर से ज्यादा नहीं है। जितना बड़ा हो देश उतने अहंकार का फैलाव और सुख है।

फिर बड़ा देश हो तो हिंसा होगी, क्योंकि इतने विभिन्न लोगों को जबर्दस्ती एक ढांचे में ढालना पड़ेगा। अब चेष्टा चलती है कि हिंदी राष्ट्रभाषा हो जाए। यह जबर्दस्ती है, क्योंकि सारे मुल्क की राष्ट्रभाषा हिंदी है नहीं। तमिल तमिल को चाहता है, तेलगू तेलगू को चाहता है, बंगाली बंगाली को चाहता है, मराठी मराठी को चाहता है। और इन आकांक्षाओं में कुछ भी बुराई नहीं है। यह सीधी बात है कि अपनी मातृभाषा हर आदमी चाहता है बोले, प्रसन्न हो, गाए, अपने गीत रचे। अब जबर्दस्ती एक भाषा को थोपना पड़ेगा, क्योंकि देश बड़ा है, आज नहीं कल। और हिंदी की कलह चलती ही रहेगी। इस तरह हर चीज में जबर्दस्ती करनी पड़ती है। जहां जितने विभिन्न लोग होंगे, उतनी जबर्दस्ती हो जाएगी। बड़ा मुल्क एक बड़ा हिंसा का युद्ध हो जाता है। हर छोटी बात में कलह हो जाती है। और बड़े युद्ध का आकर्षण इसीलिए है कि लड़ना है किसी और बड़े दुश्मन से तो बड़े रहो; छोटे हो गए तो हार जाओगे। बड़े होने का रस लड़ाई के लिए है।

लाओत्से कहता है, "छोटी आबादी वाला छोटा सा देश हो।"

उसका मतलब यह है कि एक ही तरह के लोग, एक भाषा बोलने वाले लोग, एक रीति-रिवाज के लोग, जो परिवार की तरह रह सकें, ऐसा छोटा सा देश हो। कोई बड़े देशों की जरूरत नहीं है। वह राजनीति को जड़ से काट रहा है। राजनीतिज्ञ यह बरदाश्त न करेगा कि देश छोटे हों। राजनीतिज्ञ विस्तारवादी है, साम्राज्यवादी है। जितना बड़ा देश हो, उतना ही राजनीतिज्ञ की प्रतिभा बढ़ती जाती है और शिखर बड़ा होता जाता है।

लाओत्से कह रहा है, धार्मिक आदमी चाहेगा कि देश छोटे हों, इतने छोटे हों कि वहां एक ही तरह के लोग एक परिवार को बना कर रह जाएं। अच्छी दुनिया तभी पैदा होगी जब देश बहुत छोटे हों। छोटे देश लड़ न सकेंगे, बड़ी लड़ाई न कर सकेंगे। होगी भी लड़ाई तो छोटी-मोटी होगी--जैसे हाकी का मैच हो गया या फुटबाल का मैच हो गया, ऐसी होगी। कोई लड़ाई बड़ी नहीं हो सकती। बड़ा देश बड़ी लड़ाई करता है। बड़े देशों के साथ महायुद्ध आते हैं। छोटे देशों के साथ अगर कभी होगा भी तो छोटा-मोटा झगड़ा होगा--एक गांव दूसरे गांव से झगड़ा कर ले। उसकी भी जरूरत न पड़े अगर लाओत्से की बात सुनी जाए।

"जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी हो, उससे ज्यादा जितना वे खर्च कर सकते हैं।"

यह कैसे होगा? आवश्यकता और वासना का फर्क ख्याल में ले लेना चाहिए तो यह हो सकता है। आवश्यकताएं तो बहुत थोड़ी हैं आदमी की; आवश्यकताएं तो पूर्ण हो सकती हैं, कोई अड़चन नहीं है; सब की पूरी हो सकती हैं। वासना नहीं पूरी हो सकती, वासना तो एक आदमी की नहीं पूरी हो सकती; सबका तो सवाल ही नहीं है।

वासना का अर्थ हैः जो तुम्हें नहीं चाहिए उसकी मांग। वह कैसे पूरी होगी? आवश्यकता का अर्थ हैः जो जरूरत है उसकी मांग; वह पूरी हो सकती है। भोजन चाहिए, पानी चाहिए, निश्चित, कपड़ा चाहिए, छप्पर चाहिए। पूरा हो सकता है। इसमें कौन सी अड़चन है? और जब यह पूरा हो जाए तो तुम वृक्ष के नीचे बैठ कर बांसुरी बजा सकते हो। इसके पूरे होने में अड़चन कहां है? पशु-पक्षी पूरा कर लेते हैं; वृक्ष खड़े-खड़े पूरा कर लेते हैं, चल कर भी कहीं नहीं जाते; तो आदमी पूरा न कर सकेगा--जो शिखर है, जीवन के विकास की सर्वोत्तम कृति है?

बड़ी सरलता से पूरा हो सकता है। जमीन बहुत खुशहाल थी; जमीन फिर खुशहाल हो सकती है। आदमी की विक्षिप्तता रोकनी जरूरी है। कुछ चाहें गैर-जरूरी हैं। जैसे तुम्हें कोहिनूर चाहिए। अब कोहिनूर को खाओगे, पीओगे, क्या करोगे? बच्चा बीमार होगा तो कोहिनूर की दवाई बनाओगे? भूख लगेगी, कोहिनूर से पेट भरेगा? लेकिन तुम तैयार हो कि चाहे भूखे रहना पड़े, चाहे बच्चा मर जाए, लेकिन कोहिनूर होना चाहिए। पागल मालूम होते हो। कोहिनूर को सिर पर रख कर घूमोगे?

जापान में ऐसा हुआ। एक बड़ा फकीर था। सम्राट उससे प्रभावित हो गया। और जब सम्राट प्रभावित होते हैं तो सम्राटों की अपनी भाषा, अपना ढंग, अपना पागलपन। प्रभावित हो गया तो उसने बड़े बहुमूल्य हीरे-जवाहरातों जड़ी हुई एक पोशाक बनवाई मखमल की, एक ताज बनवाया। क्योंकि सम्राट का गुरु! ताज और पोशाक लेकर वह उस फकीर की पहाड़ी पर गया जहां फकीर एक झाड़ के नीचे रहता था। और उसने उसे भेंट किया।

फकीर ने कहा, तुम दुखी होओगे अगर लौटाऊं, लेकिन मेरी भी फजीहत मत करवाओ। सम्राट ने कहा, मतलब? उस फकीर ने कहा, यहां न तो कोई आदमी आता न जाता। और राजधानियों से तो यहां कोई आता ही नहीं, जो इन कपड़ों को समझ सकता है और इस ताज को समझ सकता है। यहां तो जंगली जानवरों से मेरी दोस्ती है; हिरण हैं, मोर हैं, यही मेरे पास आते-जाते हैं। वे बहुत हंसेंगे और मेरी मजाक उड़ाएंगे कि यह आदमी

देखो, पागल हो गया। यह क्या पहने हुए है! तो मेरी फजीहत मत करवाओ। मैं स्वीकार कर लेता हूं, फिर तुम इन्हें ले जाओ। क्योंकि यह भाषा यहां बिल्कुल बेकार है। इसका मैं करूंगा क्या? और ये पक्षी हंसेंगे, जानवर हंसेंगे। बड़ी बेइज्जती होगी।

उसने ठीक कहा। पशु-पक्षी हीरे-जवाहरातों की फिक्र नहीं करते। लेकिन क्या उनके सौंदर्य में कोई कमी है? जब मोर नाचता है तो कौन से कोहिनूर उसका मुकाबला कर सकते हैं! लेकिन तुम नाच भूल गए; अब तुम्हें कोहिनूर चाहिए। जब कोयल गाती है तो कौन से कोहिनूर की जरूरत है? लेकिन तुम गीत भूल गए; तुम्हें कोहिनूर चाहिए।

जीवन बड़ा सरल हो सकता है, जरा सी समझ होनी चाहिए। आवश्यकता बराबर पूरी करो। क्योंकि आवश्यकता पूरी न होगी तो तुम जीओगे कैसे? गीत कैसे गाओगे? नाचोगे कैसे? परमात्मा का धन्यवाद कैसे दोगे? आवश्यकता निश्चित पूरी करो। लेकिन थोड़ा समझने की कोशिश करो कि आवश्यकता वह है जो जरूरी है, वासना वह है जो बिल्कुल गैर-जरूरी है; जिसका कोई उपयोग नहीं है; जिसका एक ही उपयोग है कि वह अहंकार को भरती है। जिसके पास कोहिनूर है, उसका अहंकार मजबूत होता है; बस।

वासना वह है जो अहंकार को भरती है; आवश्यकता वह है जो शरीर को तृप्त करती है। तुम तृप्ति की खोज करो। तुम्हारा निसर्ग तृप्त हो।

लेकिन तुम्हारे महात्मा तुम्हें उलटा समझा रहे हैं। वे तुम्हें समझा रहे हैं, आवश्यकता काटो। वे तुमसे कह रहे हैं, वासना को बढ़ाओ कि मोक्ष छूने लगे। कोहिनूर तो दो कौड़ी का है, मोक्ष पाओ। धन पाकर क्या करोगे? परमात्मा को पाना है। वे तुम्हारी वासना को तो भयंकर रूप से बड़ा कर रहे हैं।

क्या करोगे परमात्मा का? भूख लगेगी, खाओगे? प्यास लगेगी, पीओगे? बच्चा बीमार होगा तो सिल पर घिस कर दवाई बनाओगे परमात्मा की? क्या करोगे? मोक्ष का क्या करना है?

तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हारी वासनाओं को इस पृथ्वी से दूसरे लोक में ले जा रहे हैं, बदल नहीं रहे। और कोहिनूर तो मिल भी जाए; मोक्ष और उपद्रव हो गया। कोहिनूर तो फिर भी पृथ्वी का हिस्सा है, मिल सकता है; मोक्ष को कहां पाओगे? अब तुम बड़े बेचैन और पागल हुए।

तो दुनिया में धन के दीवाने हैं और धर्म के दीवाने हैं। और मेरे अनुभव में ऐसा आया कि धन के दीवानों को तो थोड़ा-बहुत समझा दो तो समझ में भी आता है; धर्म का दीवाना सुनता ही नहीं। क्योंकि वह धर्म को पहले से ही महान समझ रहा है।

निश्चित ही, परमात्मा तुम्हारे जीवन में आएगा, लेकिन कोहिनूर की तरह नहीं। परमात्मा तुम्हारे जीवन में आएगा भूख में भोजन की तरह, प्यास में पानी की तरह, आनंद में एक गीत और नृत्य की तरह। मोक्ष तुम्हें मिल सकता है; मोक्ष तुम्हें मिलेगा जब तुम्हारी वासना छूट जाएगी, क्योंकि वही बंधन है। आवश्यकता मुक्ति है; वासना बंधन है। जब तुम सिर्फ आवश्यकता को पूरा कर लोगे, तुम पाओगे, तुम मुक्त हो।

कितनी छोटी सी जरूरत है जीवन की! थोड़े से श्रम से पूरी हो जाती है। और श्रम भी एक जरूरत है। इसे थोड़ा समझ लो। थोड़े से श्रम से आवश्यकता पूरी होती है। और उतना श्रम, वह भी जरूरी है, वह भी आवश्यकता है, नहीं तुम मुर्दा हो जाओगे। उतना श्रम तुम्हारे जीवन को जीवंत रखने के लिए जरूरी है। वासना पूरी नहीं होती और इतना श्रम करना पड़ता है कि जिसका कोई अंत नहीं। वह श्रम भी घातक हो जाता है।

जिस आदमी को चालीस साल के करीब हार्ट अटैक का दौरा न हो, समझना कि जीवन में असफल रहा। सफल आदमियों को तो होता ही है। सफलता का मतलब ही तब पता चलता है जब हार्ट अटैक हो। तुमने कभी

किसी भिखारी को हार्ट अटैक होते देखा? होने का कोई कारण ही नहीं है। इतना तनाव भी तो होना चाहिए। हार्ट अटैक तो उनको होता है जिन्होंने धन कमा लिया और जो सोच रहे थे कि धन कमा कर भोगेंगे। जब भोगने का वक्त आता है, हार्ट अटैक हो जाता है। जब पद पर पहुंच गए तब हार्ट अटैक हो जाता है। जब सब ठीक होने के करीब मालूम हो रहा था तब खुद गैर-ठीक हो जाते हैं। जब भूख थी तब भोजन न किया; क्योंकि भोजन कैसे कर सकते हैं जब तक महल न निर्मित हो जाए? फिर महल निर्मित हो गया, भोजन तैयार हो गया, भूख न रही। अब खा नहीं सकते; अब भोजन कर नहीं सकते। क्योंकि इस बीच खुद नष्ट हो गए।

यह बड़े मजे की बात है। मकान तो बन जाता है; तुम खंडहर हो जाते हो। धन तो इकट्ठा हो जाता है; तुम बिल्कुल निर्धन हो जाते हो। जिंदगी का साज-संवार पूरा होते-होते-होते जिसको संगीत उठाना था, वही मर जाता है। सितार तो तैयार रहती है, संगीतज्ञ मर जाता है।

आवश्यकताएं बहुत थोड़ी हैं। और जो भी व्यक्ति ठीक से पहचान ले क्या है आवश्यकता और क्या है वासना, उसे मैं बुद्धिमान कहता हूं। उसने वेद न जाने हों, उपनिषद न पढ़े हों; कोई जरूरत नहीं। और क्या इतनी छोटी सी बात के लायक बुद्धि तुम्हारे पास नहीं है? सबके पास है। इतनी बुद्धि तो परमात्मा ने सबको दी है। तुम उपयोग नहीं कर रहे। तुम चालबाज हो। तुम खुद को धोखा दे रहे हो। इतनी सीधी-सीधी बात है। इसके लिए कोई बहुत गणित थोड़े ही बिठाना पड़ेगा कि क्या वासना है और क्या आवश्यकता है?

आवश्यकता को पूरा करो; भूल कर मत काटना। और वासना की दौड़ को पहले कदम पर ही रोक देना। क्योंकि बाद में रुकना मुश्किल हो जाता है; दौड़ पकड़ जाती है तो ज्वार आ जाता है दौड़ का, बुखार आ जाता है। फिर रुकना मुश्किल हो जाता है। पहले कदम पर समझ कर रुक जाना। मत मांगना व्यर्थ की चीजें, क्योंकि उनको पाकर भी क्या करोगे? सार्थक वही है जो तृप्ति देता हो। और तब तुम निश्चित पाओगे कि जिंदगी में चैन की बांसुरी बजने लगी।

लाओत्से कहता है, "जहां जिन्सों की पूर्ति दस गुनी या सौ गुनी है।"

अगर लोग आवश्यकताओं से जीएं तो हजार गुनी पूर्ति है। तुम्हारी प्यास से पानी बहुत ज्यादा है। तुम्हारी भूख से भोजन बहुत ज्यादा है। तुम्हारे तन को ढंकने से बहुत ज्यादा कपड़े हो सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन अगर तुम वासना का तन ढंकना चाहते हो तो सारी दुनिया के कपड़े तुम्हारी वासना के तन को भी न ढंक सकेंगे। तुम सारी दुनिया को नंगा कर दो तो भी तुम नंगे रहोगे; तुम्हारी वासना का तन न ढंक सकेगा। इसे पहचानो। यह जीवन में क्रांति का सूत्रपात है।

"लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें।"

लाओत्से कहता है, जीवन को मूल्य दो। अहोभाग्य है कि तुम जीवित हो। और कोई चीज मूल्यवान नहीं है; जीवन मूल्यवान है। जीवन को तुम किसी चीज के लिए भी खोने के लिए तैयार मत होना, क्योंकि कोई भी चीज जीवन से ज्यादा मूल्यवान नहीं है।

लेकिन तुम जीवन को तो किसी भी चीज पर गंवाने को तैयार हो। एक आदमी ने गाली दे दी; तुम तैयार हो कि अब चाहे जान रहे कि जाए! इस आदमी ने किया ही क्या है? एक गाली पर तुम जीवन को गंवाने को तैयार हो? धन कमा कर रहेंगे, चाहे जान रहे कि जाए।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर में चोर घुसे और उन्होंने छाती पर उसके बंदूक रख दी और कहा कि चाबी दो, अन्यथा जीवन! मुल्ला ने कहा, जीवन ले लो; चाबी न दे सकूंगा। चोर भी थोड़े हैरान हुए; कहा, नसरुद्दीन! थोड़ा सोच लो, क्या कह रहे हो? उसने कहा, जीवन तो मुझे मुफ्त मिला था; तिजोड़ी के लिए मैंने बड़ी ताकत

लगाई, बड़ी मेहनत की। जीवन तुम ले लो; चाबी मैं न दे सकूंगा। और फिर यह भी है कि तिजोड़ी तो बुढ़ापे के लिए बचा कर रखी है। जीवन भला ले लो, चलेगा; तिजोड़ी असंभव।

कहां-कहां तुम जीवन को गंवा रहे हो, थोड़ा सोचो। कभी धन के लिए, कभी पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए। जीवन ऐसा लगता है, तुम्हें मुफ्त मिला है। जो सबसे ज्यादा बहुमूल्य है उसे तुम कहीं भी गंवाने को तैयार हो। जिससे ज्यादा मूल्यवान कुछ भी नहीं है, उसे तुम ऐसे फेंक रहे हो जैसे तुम्हें पता ही न हो कि तुम क्या फेंक रहे हो। और क्या कचरा तुम इकट्ठा करोगे जीवन गंवा कर?

लोग मेरे पास आते हैं। उनसे मैं कहता हूं, ध्यान करो। वे कहते हैं, फुर्सत नहीं। क्या कह रहे हैं वे? वे यह कह रहे हैं, जीवन के लिए फुर्सत नहीं है। प्रेम करो! फिर फुर्सत नहीं है। कब फुर्सत होगी? मरोगे तब फुर्सत होगी? तब कहोगे कि मर गए; अब कैसे ध्यान करें?

जीवन के लिए तुम्हारे पास फुर्सत ही नहीं है। कभी बैठते हो दो घड़ी, जैसे कोई भी काम न हो? उठाई बांसुरी, बजाने लगे; कि कुछ न किया, बैठ गए अपने बच्चों के साथ, खेलने लगे; कि कुछ न किया, लेट गए वृक्ष के तले, आने दी धूप, जाने दी छाया, पड़े रहे, कुछ न किया। नहीं, तुम कहोगे कि फुर्सत कहां है? तब तुम जीवन का स्वर सुन ही न पाओगे। क्योंकि जीवन के स्वर को केवल वे ही सुन सकते हैं जो बड़ी गहरी फुर्सत में हैं; काम जिन्हें व्यस्त नहीं करता।

और काम व्यस्त करेगा भी नहीं, अगर तुम आवश्यकताओं पर ही ठहरे रहो। काम की व्यस्तता आती है वासना से। कमा लीं दो रोटी, पर्याप्त है। फिर तुम पाओगे फुर्सत जीवन को जीने की। अन्यथा आपाधापी में सुबह होती है सांझ होती है, जिंदगी तमाम होती है। मरते वक्त ही पता चलता है कि अरे, हम भी जीवित थे! कुछ कर न पाए। ऐसे ही खो गया; बड़ा अवसर मिला था!

"लोग अपने जीवन को मूल्य दें।"

और लाओत्से बड़ी अनूठी बात कहता है, "और दूर-दूर यात्रा न करें।"

लोग दूर-दूर की यात्रा क्यों करते हैं? दूर-दूर की यात्रा अंतर्यात्रा से बचने का साधन है। भीतर न जाकर, यहां-वहां जाते हैं। चले काशी। कहां जा रहे हैं? तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं। भीतर जाते, वहां है काशी। चले काबा। हज करने जा रहे हैं, हाजी होना है। भीतर जाते, वहां है काबा। वहां मोहम्मद भी, वहां कृष्ण भी, वहां बुद्ध भी, वहां तुम्हारा जीवन का सर्वोत्तम रूप विराजमान है। वहां पुरुषोत्तम बैठा है।

लाओत्से कहता है, लोग दूर-दूर प्रव्रजन न करें, यहां-वहां न जाएं। क्योंकि बाहर की यात्रा में समय खो जाता है; भीतर की यात्रा के लिए मौका नहीं मिलता। और जाकर करोगे भी क्या? पक्षी वहां भी यही गीत गाते हैं; वृक्ष वहां भी यही फूल खिलाते हैं; आकाश वहां भी ऐसा ही है और ऐसे ही तारे हैं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं सारी दुनिया से यात्रा करते। वे कहते हैं कि बस एक दिन यहां, फिर नेपाल जाना है। तुम यहां किसलिए आए? कि बस आना था। लंदन से यहां आना था; यहां से नेपाल जाना है! नेपाल से कहां जाओगे? काबुल जाना है। तो ऐसे ही जाते-जाते-जाते चले जाओगे? रुकोगे कहीं? नहीं, वे कहते हैं कि बहुत दिन की अभिलाषा है कि नेपाल जाना है। बहुत दिन की अभिलाषा थी कि मेरे पास आना है। वे कहते हैं, वह अभिलाषा पूरी हो गई, आ गए। अब चले। ऐसे ही नेपाल में जाओगे; क्या पाओगे वहां? आकाश यही है सब जगह; चांद-तारे यही हैं; यही आदमी हैं; यही रंग-रूप हैं; यही संसार है। दूसरे चांद-तारों पर भी अगर आदमी होगा तो सब यही होगा! कहां जाना है?

लाओत्से कहता है, "लोग अपने जीवन को मूल्य दें, और दूर-दूर प्रव्रजन न करें। वहां नाव और गाड़ियां तो हों, उस राज्य में, लेकिन उन पर चढ़ने वाले न हों। वहां कवच और शस्त्र तो हों, लेकिन उन्हें प्रदर्शित करने का अवसर न हो। गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें।"

गणित ने लोगों को बहुत नुकसान पहुंचाया है। तुम एक थोड़ा सोचो, अगर तुम अंगुलियों पर ही गिन सकते हो या रस्सी में गांठ बांध कर गिन सकते हो तो तुम कितने धन की कामना करोगे? सोचो! रस्सी पर कितनी गांठें बांधोगे? थक जाओगे। लेकिन गिनती ने बड़ी सुविधा बना दी है--शंख, महाशंख, जो भी तुम्हें सोचना हो। गिनती ने वासना को बड़ी गति दी। जिंदगी का काम तो अंगुलियों पर गिनने से चल जाता है। और बड़ी गिनती की जरूरत नहीं है। वासना का काम नहीं चलता। वासना के लिए बड़ी संख्या चाहिए, बड़ा फैलाव चाहिए। सब संख्याएं छोटी पड़ जाती हैं; वासना का फैलाव सब संख्याओं से बड़ा है।

लाओत्से कहता है, लोग फिर से गांठें बांधने लगें रस्सियों पर, क्योंकि गणित लोगों को चालाक बनाता है।

असल में, सब शिक्षा लोगों को चालाक बनाती है। शिक्षित आदमी और सीधा-सादा, जरा कठिन है। क्योंकि शिक्षा आदमी को कुटिल, होशियार, चालबाज बनाती है। शिक्षा लोगों को, दूसरों का शोषण कैसे किया जाए अपनी वासना के लिए, इसकी कला देती है।

लाओत्से कहता है, लोग फिर से अशिक्षित हो जाएं, क्योंकि शिक्षा ने कुछ दिया नहीं। लोगों का जीवन खो गया शिक्षा में; कुछ पाया नहीं।

"गिनती के लिए लोग फिर से रस्सी में गांठें बांधना शुरू करें। वे अपने भोजन में रस लें।"

तुमने सुना है किसी महात्मा को कहते कि वे अपने भोजन में रस लें?

"अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"

तुमने सुना है कभी किसी महात्मा को कहते?

"अपने घरों से संतुष्ट रहें। अपने रीति-रिवाज का मजा लें।"

लाओत्से यह कह रहा है, कर लो सब चीजें सरल; कुछ हर्जा नहीं है। भोजन में रस लो। न लेने में हर्जा है। क्योंकि अगर भोजन में रस न लिया तो वह जो रस लेने की वासना रह जाएगी, वह किसी और चीज में रस लेगी। और वह रस तुम्हें अप्राकृतिक बनाएगा। और वह रस तुम्हें विकृति में ले जाएगा। स्वाभाविक रस ले लो; अस्वाभाविक रस के लिए बचने ही मत दो जगह। छोटी-छोटी चीजों में रस लो, उसका अर्थ है। स्नान करने में रस लो। वह भी अनूठा अनुभव है, अगर तुम मौजूद रहो। गिरती जल की धार, किसी जलप्रपात के नीचे। बहती नदी में, बहती जल की धार, उसका शीतल स्पर्श।

अगर तुम मौजूद हो और रस लेने को तैयार हो तो छोटी-छोटी चीजें इतनी रसपूर्ण हैं कि कौन फिक्र करता है मोक्ष की? मोक्ष की फिक्र तो वे ही करते हैं जिनके जीवन में सब तरफ रस खो गया। कौन चिंता करता है मंदिर-मस्जिदों की? अपने छोटे घर में संतुष्ट रहो; वही मंदिर है। संतोष मंदिर है। अपने छोटे से घर को मंदिर जैसा बना लो; संतुष्ट रहो। उसे बड़ा करने की जरूरत नहीं है। बड़े से तो वासना पैदा होगी। उस छोटे में संतोष भर देने की जरूरत है। तब आवश्यकता तृप्त हो जाएगी। कितना बड़ा घर चाहिए आदमी को? छोटा सा घर और संतोष, बहुत बड़ा घर हो जाता है। और बड़े से बड़ा घर और असंतोष, बड़ा छोटा हो जाता है। महलों में तुम पाओगे इतनी जगह नहीं है जितनी छोटे घर में जगह होती है।

मैंने सुना है, एक फकीर हुआ। वह रात सोने जा ही रहा था कि किसी ने द्वार पर दस्तक दी। बड़ी छोटी झोपड़ी थी; पति और पत्नी सो सकते थे, बस इतनी ही जगह थी। पति ने पत्नी से कहा, द्वार खोल। बाहर तूफान है। शायद कोई भटका हुआ यात्री। पर पत्नी ने कहा, जगह कहां? उसने कहा कि दो के सोने के लायक काफी है, तीन के बैठने के लिए काफी है। यह कोई महल नहीं है कि यहां जगह कम हो जाए। यह तो गरीब का घर है; यहां जगह की क्या कमी? दरवाजा खोल दिया गया; मेहमान भीतर आ गया। वे तीनों बैठ गए। थोड़ी ही देर बीती होगी कि फिर किसी ने द्वार पर दस्तक दी। फकीर ने कहा मेहमान से, जो कि द्वार के पास बैठा था, कि द्वार खोल। तो उस मेहमान ने कहा, जगह कहां? फकीर ने कहा, यह कोई महल नहीं है, पागल! तीन के बैठने के लिए काफी है; चार के खड़े होने के लिए काफी है। गरीब का घर है, यहां बहुत जगह है। हम जगह बना लेंगे।

उस फकीर ने बड़ी अनूठी बात कही कि यह कोई महल नहीं है कि जगह कम पड़ जाए। महल में कितनी जगह होती है, मगर सदा कम होती है। वासना जहां है, असंतोष जहां है, अतृप्ति जहां है, वहां सभी छोटा हो जाता है। जहां तृप्ति है, वहां सभी बड़ा हो जाता है। छोटा सा घर महल हो सकता है--तृप्ति से जुड़ जाए। बड़े से बड़ा महल झोपड़े जैसा हो जाता है--अतृप्ति से जुड़ जाए। तो तुम क्या करोगे? महल चाहोगे कि छोटे से घर को तृप्ति से जोड़ लेना चाहोगे?

लाओत्से कहता है, "भोजन में रस लें। अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"

लाओत्से बड़ा नैसर्गिक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। मोर नाचता है, देखो उसके पंख! पक्षियों के रंग! तितलियों के रूप! प्रकृति बड़ी रंगीन है। आदमी उसी प्रकृति से आया है। थोड़ी रंगीन पोशाक एकदम जमती है। इतना स्वीकार है। जब पशु-पक्षी तक रंग से आनंदित होते हैं।

पुराने दिनों में आदमी सुंदर पोशाक पहनते थे, थोड़ा-बहुत आभूषण भी पहनते थे। शानदार दुनिया थी। फिर बात बदल गई। आदमी नहीं पहनते अब शानदार पोशाक; औरतें पहनती हैं। यह अप्राकृतिक है। क्योंकि स्त्री तो अपने आप में सुंदर है। उसके लिए सुंदर पोशाक की जरूरत नहीं है। प्रकृति में देखो। मोर के पंख हैं; मादा मोर के पंख नहीं हैं। वह नर है जो पंख फैलाता है। जो कोयल गीत गाती है वह नर है। मादा कोयल के पास गीत नहीं है। उसका तो मादा होना ही काफी है। नर को थोड़ी जरूरत है; वह उतना सुंदर नहीं है।

इसलिए पुराने दिनों में लोग थोड़ा आभूषण पहनते, थोड़ी रंगीन पोशाक। कोई बड़ी मंहगी नहीं, रंगों का कोई बड़ा मूल्य थोड़े ही है। सस्ते रंग हैं, जगह-जगह मिल जाते हैं, सरलता से उपलब्ध हैं। और कोई हीरे-मोती थोड़े ही लगा लेने हैं; फूल भी लगाए जा सकते हैं। लकड़ी के टुकड़ों से भी आभूषण बन जाते हैं।

लाओत्से कहता है, "अपनी पोशाक सुंदर बनाएं।"

तुम्हारे साधु पुरुष इन छोटी-छोटी बातों में तुम्हें सुख नहीं लेने देते। तुम्हारे साधु पुरुष बड़े कठोर हैं। वे जीवन में रस लेने के दुश्मन हैं। लाओत्से कहता है, जो सहज है वह ठीक है। सहज यानी ठीक। यह बिल्कुल सहज है।

मुर्गा देखो; कलगी है। मुर्गी बिना कलगी के है। क्या शान से चलता है मुर्गा! सारा जगत मात है! लोग सुंदर पोशाक पहनें, शान से चलें, गीत गाएं, नाचें, भोजन में रस लें। छोटा छप्पर हो, लेकिन संतोष का बड़ा छप्पर हो! अपने रीति-रिवाज का मजा लें। इस चिंता में न पड़ें कि कौन सी रीति ठीक है, कौन सा रिवाज गलत है। कोई रीति-रिवाज ठीक-गलत नहीं है, मजे में सारी बात है। तुम्हें आनंद आता है तो बिल्कुल ठीक है, होली मनाओ! इस फिक्र में मत पड़ो कि मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं। इस चिंता में पड़ने की जरूरत क्या है? ये मनोवैज्ञानिकों से पूछने की आवश्यकता कहां है? और कहीं मनोवैज्ञानिकों से पूछ कर कुछ निर्णय होगा?

मनोवैज्ञानिक कहेगा कि होली का मतलब है कि लोग दमित हैं, लोगों के भीतर दमन है, दमन को निकाल रहे हैं। उन्होंने होली का मजा भी खराब कर दिया। अब तुम किसी पर पिचकारी नहीं चला सकते, क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसका मतलब तुम दमन निकाल रहे हो। तुम किसी पर रंग नहीं फेंक सकते, गुलाल नहीं फेंक सकते। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, तुम किसी पर पत्थर फेंकना चाहते थे, वह तुम नहीं फेंक पाए, यह बहाना है। तुम जबर्दस्ती किसी के मुंह पर रंग पोत रहे हो, यह हिंसा है।

मनोवैज्ञानिक होली तक न करने देंगे; दीवाली पर दीये न जलाने देंगे। वे कोई न कोई मतलब निकाल लेंगे। मनोवैज्ञानिकों का एक ही काम हैः बैठे हुए मतलब निकालते रहें और चीजों का रहस्य खराब करते रहें। उनकी जिंदगी तो खराब हो ही गई; वे दूसरों की जिंदगी खराब कर रहे हैं।

लाओत्से कहता है, इसकी फिक्र मत करो कि रीति-रिवाज का क्या अर्थ है। रीति-रिवाज मजा देता है, बस काफी है। मजा अर्थ है। होली भी मनाओ, दीवाली भी मनाओ। कभी दीये भी जलाओ, कभी रंग-गुलाल भी उड़ाओ। लाओत्से यह कह रहा है, जिंदगी को सरल और नैसर्गिक रहने दो। उस पर बड़ी व्याख्याएं मत थोपो।

"पास-पड़ोस के गांव एक-दूसरे की नजर में हों, ताकि वे एक-दूसरे के कुत्तों का भौंकना और मुर्गों की बांग सुन सकें। और लोग अपने अंतिम दिनों तक भी अपने देश से बाहर न गए हों।"

लाओत्से यह कह रहा है, गांव पास-पड़ोस में होंगे, लेकिन क्या जरूरत है दूसरे गांव में जाने की? वह भी मन की रुग्ण दशा है जो भटकती है। अपना गांव काफी है। अपना आकाश बहुत। अपने फूल पर्याप्त। तो लाओत्से कहता है कि इतने पड़ोस में गांव होंगे कि कुत्ते भौंकेंगे तो आवाज सुनाई पड़ेगी, मुर्गे सुबह बांग देंगे तो भोर में उनकी आवाज सुनाई पड़ेगी पड़ोस के गांव की, पड़ोस के गांव में लोग सांझ को रोटियां बनाएंगे तो आकाश में उनका धुआं दिखाई पड़ेगा। इतने करीब भी जो गांव हैं, उन तक भी लोग क्यों जाएं?

जो तृप्त है वह कहीं नहीं जाता; अतृप्त भटकता है। जो तृप्त है वह ठहर जाता है। तृप्ति एक बड़ा ठहराव है; एक शांत झील जिसमें लहर भी नहीं उठती यात्रा की, तरंग भी नहीं उठती।

पश्चिम में लोग बहुत अशांत हैं तो बड़ी यात्रा शुरू हो गई।

एक मित्र मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछा, आप कहां जा रहे हैं? उन्होंने कहा, अब मैं यूनान जा रहा हूं। सारी दुनिया देख डाली है, बस एक सपना और रह गया है--यूनान देखने का। उम्र उनकी कोई पैंसठ साल; थक गए हैं। सारी दुनिया देख डाली है, एक सिर्फ यूनान रह गया है, वह कहीं बिना देखा न रह जाए। मैंने उनसे पूछा कि सारी दुनिया देख कर क्या पाया? कंधे बिचकाए उन्होंने। कहा, पाया तो कुछ भी नहीं। तो मैंने कहा, वह यूनान देख कर और क्या पा लोगे जब सारी दुनिया देख कर न पाया? नहीं, उन्होंने कहा कि एक बात अटकी न रह जाए मन में। पता नहीं, जो कहीं नहीं मिला वह यूनान में मिल जाए!

लोग भटक रहे हैं, यहां से वहां जा रहे हैं। एक बेचैनी है चित्त की। इसलिए पश्चिम की बेचैनी के कारण रोज स्पीड बढ़ती जाती है। तुमने कभी ख्याल न किया हो, अगर तुम कभी कार चलाते हो तो जिस दिन तुम बेचैन होते हो, उस दिन एक्सीलरेटर ज्यादा दबता है; उस दिन तुम सीमा के बाहर गाड़ी को चलाते हो। बेचैनी तीव्रता चाहती है। इसलिए पश्चिम में बेचैनी के कारण नये-नये साधन खोजे जा रहे हैं। चांद पर जाना है।

यहां कुछ न मिला; तुम चांद को खराब करने और किसलिए जा रहे हो? कृपा करो, अपनी बीमारी को यहीं जमीन तक सीमित रखो। चांद को क्यों भ्रष्ट करने का विचार किया? जहां तुम्हारे चरण पड़ेंगे वहीं उपद्रव शुरू हो जाएगा। नहीं लेकिन बेचैनी है! चांद पर जाना है। कहां रुकेगी यह बेचैनी?

लाओत्से कहता है, पड़ोस के गांव में भी जाने की क्या जरूरत है?

इसे थोड़ा समझ लेना। इसका मतलब है। इसका मतलब है कि जब तुम अपने भीतर ठहर जाते हो तो सब बाहरी यात्राएं रुक जाती हैं, व्यर्थ हो जाती हैं। तुम इतने प्रसन्न हो, जहां हो वहीं आकाश का कोना तुम्हारे लिए मोक्ष हो गया; वहीं स्वर्ग अवतरित हुआ है। अब और कहां जाना है?

कहता है लाओत्से, छोटा हो देश ताकि बड़ी राजनीति के जाल खड़े न हों। लोगों की वासनाएं न हों; आवश्यकताएं बराबर तृप्त की जाएं। ताकि जितनी आवश्यकताएं हैं उससे हजार गुनी पूर्ति के साधन हों। कोई दीन-दरिद्र अनुभव न करे। लोग शिक्षा, संस्कार, सभ्यता, गणित भूल जाएं; फिर से गिनने लगें अंगुलियों पर या बांधने लगें गांठें रस्सियों में, ताकि चालाकी खो जाए। सभ्य आदमी बड़ी बुरी तरह से छिपा हुआ असभ्य है। असभ्य भी इतने असभ्य नहीं। असभ्य बड़े सीधे-सादे लोग हैं।

लाओत्से कहता है, लोग वापस प्रकृति के साथ दोस्ती बना लें, दुश्मनी छोड़ दें। और जीवन की छोटी-छोटी चीजें प्रार्थनापूर्ण हो जाएं, अहोभाव हो जाएं। कोई उनकी निंदा न करे। उनकी निंदा करके ही उपद्रव हुआ है।

जीवन अपने आप में मूल्यवान है; उसकी इनट्रिंजिक वैल्यू है, उसकी आंतरिक मूल्यवत्ता है। जीवन किसी और कारण से मूल्यवान नहीं है। जीवन अपने आप में मूल्य है, आखिरी चरम मूल्य है। लोग जीएं और लोगों का जीवन एक नृत्य और गीत बन जाए। इस गीत और नृत्य से ही परमात्मा की सुगंध उठेगी। इस गीत और नृत्य से ही, कभी तुम पाओगे, तुम्हारे चरण मंदिर के द्वार पर आ गए।

जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। जीवन की गहनता ही है परमात्मा। और जीवन के अतिरिक्त कोई तीर्थ नहीं है। जीवन में ही जो उतर जाता है वह तीर्थ पर पहुंच जाता है।

आज इतना ही।

एक सौ छब्बीसवां प्रवचन

परमात्मा का आशीर्वाद बरस रहा है

Chapter 81

The Way Of Heaven

True words are not fine-sounding;
Fine-sounding words are not true.
A good man does not argue;
He who argues is not a good man.
The wise one does not know many things;
He who knows many things is not wise.
The Sage does not accumulate (for himself).
He lives for other people, and grows richer himself;
He gives to other people, and has greater abundance.
The Tao of Heaven blesses, but does not harm.
The way of the Sage accomplishes, but does not contend.

अध्याय 81

स्वर्ग का ढंग

सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते हैं; कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते।
सज्जन विवाद नहीं करता है; जो विवाद करता है, वह सज्जन नहीं।
बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता है;
जो बहुत बातें जानता है, वह बुद्धिमान नहीं।
संत अपने लिए संग्रह नहीं करते।
वे दूसरे लोगों के लिए जीते हैं, और स्वयं समृद्ध होते जाते हैं;
वे दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं।
स्वर्ग का ताओ आशीर्वाद देता है, लेकिन हानि नहीं करता।
संत का ढंग संपन्न करता है, लेकिन संघर्ष नहीं करता।

मनुष्य जैसा है वैसा एक झूठ है, एक गहरा असत्य, एक मिथ्यात्व, एक वंचना; पर्त दर पर्त झूठ और झूठ। जैसे प्याज को कोई छीले, और हर पर्त के बाद नयी पर्त निकलती आए, ऐसे मनुष्य का झूठ है। गहरी झूठ की आदत है।

सत्य अपने आप में न तो कर्ण-मधुर है और न कठोर; न तो मीठा है न कड़वा। लेकिन मनुष्य इतना असत्य है; इस कारण सत्य के शब्द सदा ही कठोर मालूम पड़ेंगे। तुम्हारे असत्य के कारण। सत्य तो निष्पक्ष है। सत्य का कोई स्वाद नहीं है। सत्य तो स्वादातीत है। लेकिन तुम्हें स्वाद आएगा, तुम पर निर्भर करेगा। अगर तुम सच्चे हो तो सत्य से ज्यादा कर्ण-मधुर और कुछ भी नहीं। अगर तुम झूठ हो, जैसे कि तुम बड़ी मात्रा में हो, तो सत्य हर जगह से चोट करेगा, चुभेगा, कांटे जैसा मालूम पड़ेगा।

इसे ठीक से समझ लेना, तो ही लाओत्से के वचन समझ में आ सकेंगे। अन्यथा भूल हो सकती है।

जिस व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व के झूठ का परित्याग कर दिया, जो सहज और सरल हो गया, उसके लिए सत्य तो अमृत जैसा मालूम होगा। उसके लिए बस सत्य ही पीने जैसा लगेगा। वह वर्षों प्यासा रह सकता है। जैसे चातक की कथा है कि स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता है। सरोवर भरा है जल से, लेकिन स्वाति की बूंद की प्रतीक्षा करता है। ऐसे ही बहुत ज्ञान भरा रहे सब तरफ, लेकिन सत्य का खोजी, सत्य की बूंद की प्रतीक्षा करता है। वही है अमृत, वही बूंद बनेगी मोती उसके हृदय में जाकर, उसी बूंद से उसके मोक्ष का द्वार खुलेगा।

सत्य अपने आप में न तो मीठा है न कड़वा। जो सत्य को उपलब्ध हो गया है, जो सत्य हो गया है, उसे न तो सत्य मीठा मालूम पड़ेगा न कड़वा। सत्य तो उसके होने के ढंग में एक हो जाएगा। उसका कोई स्वाद ही न आएगा। स्वाद तो उसका आता है जो हमसे विजातीय हो, हमसे भिन्न हो। तुम्हें अपना ही स्वाद आता है? अपना क्या स्वाद! सत्य को जो उपलब्ध हो गया है उसे सत्य का कोई भी स्वाद न आएगा; उसे पता ही न रहेगा कि सत्य क्या है, असत्य क्या है। वह तो भूल ही जाएगा, संसार क्या है, मोक्ष क्या है। ये तो सब सपने हो जाएंगे, जो टूट गए। वह नींद तो मिट गई। जो सत्य में जाग गया है, सपनों के स्वाद उसके खो ही जाएंगे।

लेकिन तुम जागे नहीं, तुम गहन निद्रा में हो। इसलिए जो भी जगाएगा वह कड़वा मालूम पड़ेगा। जो भी जगाएगा! क्योंकि नींद को तुमने बड़ा मधुर मान रखा है। तो जो भी तुम्हारी नींद तोड़ेगा वही दुश्मन मालूम पड़ेगा। सुबह कभी तुम्हें उठना हो पांच बजे तो तुम कह कर सोते हो कि मुझे उठा देना। तुम ही कह कर सोते हो कि उठा देना, और सुबह पांच बजे जब तुम्हें कोई उठाने लगता है तो शत्रु जैसा मालूम पड़ता है। नींद बड़ी मधुर लग रही है तुम्हें, और झूठ बड़े प्यारे लग रहे हैं। झूठ को ही तुमने अपने चारों तरफ बसाया है। वही तुम्हारा घर है। वही तुम्हारी दुनिया है। उसके टूटने में लगता है तुम ही टूट जाओगे। नींद टूटने में ऐसा लगता है तुम टूट रहे हो।

जागरण का तो कोई पता नहीं है, नींद का ही पता है। उसी नींद में मीठे सपने भी देखे हैं। माना कि दुखद स्वप्न भी देखे हैं, लेकिन आदमी दुख-स्वप्नों को तो भूलता चला जाता है; मीठे स्वप्नों को याद रखता है। दुख को तो स्मृति के बाहर कर देता है; सुख कीशृंखला को संजो लेता है। उसी की याद में जो सुख अतीत में पाया, और उसी की आशा में कि फिर-फिर उसी सुख को भविष्य में पाऊंगा, आदमी चाहता है सोया रहे। तो जो भी जगाएगा वह शत्रु मालूम पड़ेगा। सुबह की अजान, मस्जिद से उठती हुई, कर्ण-मधुर नहीं मालूम होगी, कड़वापन लगेगा। कड़वापन तुम्हारे कारण। ऐसा ही समझो कि बहुत दिन तुम बीमार रहे हो; बुखार से अभी-अभी उठे हो। मिष्ठान्न भी मीठा नहीं लगता। तुम्हारी जीभ अस्वस्थ है। मिठाई की मिठास, मिठास और मिठाई में कम, तुम्हारी जीभ पर निर्भर है।

तुम उदास हो; आकाश में पूर्णिमा का चांद निकला हो, वह भी उदास लगता है। लगता है रो रहा है जार-जार। अगर तुम बहुत दुखी हो--कोई मर गया है, प्रीतम से छूट गए हो, कोई दुर्घटना घटी है--लगेगा कि चांद से आंसू टपक रहे हैं। फूल कुम्हलाए हुए दिखाई पड़ेंगे। वृक्षों में सन्नाटा होगा उदासी का। तुम जैसे होते हो वही व्याख्या तुम्हारे चारों तरफ फैल जाती है। फिर प्रीतम घर लौट आया है; तो अमावस की रात भी पूर्णमासी से ज्यादा उजाली मालूम पड़ेगी; सूखे कुम्हलाए फूलों में भी नये जीवन का आविर्भाव दिखाई पड़ेगा; सूख गए पत्ते हरे मालूम पड़ेंगे। जब तुम्हारे भीतर सावन है तो सब तरफ सावन हो जाता है। जब तुम्हारे भीतर मरुस्थल है, सब तरफ मरुस्थल हो जाता है। क्योंकि तुम केंद्र हो तुम्हारे जगत के। और तुमसे ही व्याख्या उठती है।

तो जब लाओत्से कहता है कि सत्य शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते, और कर्ण-मधुर शब्द सत्य नहीं होते, तो तुम से कुछ कह रहा है। यह सत्य के संबंध में वह कुछ भी नहीं कह रहा है; क्योंकि सत्य के संबंध में तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वह स्वयं ही कहता है पहले सूत्र में ताओ तेह किंग के कि जो कहा जा सके वह सत्य नहीं है; जो नहीं कहा जा सके वही सत्य है। तो सत्य के संबंध में तो लाओत्से कुछ भी नहीं कह रहा है, तुम्हारे संबंध में कह रहा है। तुम इतने झूठ हो गए हो कि तुम्हें सत्य का स्वाद ही खो गया है। तुम इतने विपरीत चले गए हो कि सत्य तुम्हें निकट नहीं मालूम पड़ता, दूर मालूम पड़ता है। दूर ही नहीं मालूम पड़ता, दुश्मन मालूम पड़ता है।

मैंने सुना है कि बर्नार्ड शॉ से उसके एक विरोधी ने कहा कि तुम मेरे संबंध में झूठी बातों का प्रचार बंद करो, अन्यथा मुझसे बुरा कोई भी न होगा! बर्नार्ड शॉ ने कहा, रुको, पहले ठीक से सोच लो। अभी मैं तुम्हारे संबंध में झूठी बातों का प्रचार कर रहा हूं, अगर मैं सत्य बातों का प्रचार करने लगूं तब?

बर्नार्ड शॉ यह कह रहा है कि ये तो झूठी बातें हैं तुम्हारे संबंध में, ये इतना दुख दे ही हैं; अगर सत्य बातों का प्रचार करूं तो कितना दुख न देंगी! तुम मेरी अनुकंपा अनुभव करो कि मैं तुम्हारे संबंध में सत्य बातें नहीं कह रहा हूं।

तुम्हारे संबंध में कोई झूठ कह देता है। अगर वह सच में ही झूठ है तो तुम परेशान नहीं होते। उसमें कोई सचाई होगी, तभी तुम परेशान होते हो। अगर उसमें बिल्कुल ही सचाई न हो तो परेशानी होती ही नहीं। उसमें जितनी ज्यादा सचाई होगी उतनी परेशानी बढ़ती जाती है।

तुम बेईमान हो और कोई बेईमान कह देता है। तो तुम तलवार निकाल कर खड़े हो जाते हो, क्योंकि यह तो जीवन का सवाल हो गया। हो तुम बेईमान, और अगर यह बात फैल गई कि बेईमान हो तो बेईमानी करने की सुविधा क्षीण हो जाएगी। बेईमानी तो तभी तक कर सकते हो जब तक लोग मानते हैं कि तुम ईमानदार हो। लोग जब तक मानते हैं ईमानदार हो तभी तक तो बेईमानी की गुंजाइश है। बेईमानी के अपने पैर नहीं हैं; वह भी ईमानदारी के कंधों पर बैठ कर चलती है। झूठ के अपने कोई पैर नहीं हैं; वह भी सत्य का सहारा लेता है। तो अगर कोई तुमसे कह दे कि तुम झूठे हो, अगर तुम सच में ही झूठे हो तो तुम उबल पड़ोगे, भयंकर क्रोध का जन्म होगा। वह क्रोध ही बता रहा है कि सत्य ने चोट की। और अगर वह झूठ ही था बिल्कुल तो तुम हंस कर निकल जाते।

इसलिए तो संतों को तुम गाली देते हो, वे हंस कर निकल जाते हैं। इसलिए नहीं कि तुम कुत्ते हो और वे हाथी हैं, कि भौंकते रहें कुत्ते, हाथी कोई फिक्र नहीं करता। नहीं, यह तो बड़े अहंकार की भावना हो गई। वे सिर्फ इसलिए हंस कर निकल जाते हैं कि बात में कोई बल ही नहीं है; क्रोध के लायक मामला ही नहीं है; हंसने योग्य ही है। और तुम पर उन्हें दया आती है कि तुम कैसे झूठ में पड़े हो।

सत्य चोट करता है, क्योंकि तुम झूठे हो। सत्य कड़वा लगता है, क्योंकि तुम झूठे हो। जिसने भी हिम्मत की तुमसे सत्य कहने की उससे ही तुम्हारी दुश्मनी बन जाएगी।

ऐसा हुआ। मेरे एक परिचित थे, ख्यातिनाम व्यक्ति थे, सेठ गोविंद दास। संसद के सदस्य थे पचास वर्षों से। दुनिया में कोई आदमी इतने लंबे समय तक किसी संसद का सदस्य नहीं रहा। कोई सौ किताबों के लेखक थे। जीवन भर राजनीति और साहित्य में बिताया था। फिर उनके लड़के की मृत्यु हो गई। लड़का मध्यप्रदेश में उपमंत्री था। और उससे उन्हें बड़ी आशाएं थीं, बड़ी महत्वाकांक्षाएं थीं। उसकी मृत्यु जैसे उनकी ही महत्वाकांक्षा की मृत्यु थी। बड़े दुखी हो गए, आत्महत्या की बात सोचने लगे। और पहली दफा साधु-संतों के पास जाना शुरू किया।

उसी दुख की घड़ी में वे मेरे पास भी आ गए। मुझसे कहने लगे कि मैं आचार्य तुलसी के पास गया था, जैन मुनि, प्रसिद्ध जैन मुनि, और उनसे जब मैंने कहा कि मेरे बेटे की मृत्यु हो गई है, आप कुछ खोज कर बताएं कि उसका जन्म हो गया या नहीं, तो उन्होंने आंख बंद की और वे ध्यान में लीन हो गए। और फिर उन्होंने कहा कि आप बड़े सौभाग्यशाली हैं, आपका बेटा तो स्वर्ग में देवता हो गया।

बड़े प्रसन्न मेरे पास आए। कहने लगे, आदमी तो यह है आचार्य तुलसी। बड़े साधु-संन्यासी देखे, बाकी ऐसा गहरा खोजी नहीं देखा। मैंने उनसे कहा कि मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो स्वर्ग-नरक के संबंध में तुलसी जी से बहुत आगे है। आप उनके पास जाएं। कभी आप इलाहाबाद जाएं तो वहां एक स्वामी राम हैं उनसे आप मिलें। उनका अन्वेषण स्वर्ग-नरक में तुलसी जी से बहुत आगे है। तुलसी जी तो अभी सिक्खड़ हैं।

जरूर कहा कि जाऊंगा। गए। राम स्वामी को मैंने खबर कर दी थी कि भई क्या-क्या कहना। उन्होंने आंख बंद की। आंख ही बंद नहीं की, बड़े हाथ-पैर फड़फड़ाए, और चिल्लाए, और चीखे, और खड़े हुए। सेठ जी बहुत प्रभावित हुए कि यह तो तुलसी जी ने भी नहीं किया था। फिर उन्होंने बिल्कुल उसी भावदशा में कहा, एक ग्राम है जबलपुर के पास, सालीवाड़ा ग्राम उसका नाम है। सेठ जी चौंके। उनका ही गांव है छोटा; खेती-बाड़ी और बगीचा वहां है। सालीवाड़ा! और वहां एक पीपल का वृक्ष है बड़ा प्राचीन। तब तो पक्का हो गया, यह आदमी बड़ा गहरा है। है वृक्ष वहां। उसी वृक्ष पर तुम्हारा लड़का प्रेत होकर रहने लगा है। बहुत धक्का लगा। प्रेत? और राम ने कहा, थोड़ा सोच-समझ कर जाना, क्योंकि खतरनाक प्रेत हो गया है।

क्योंकि राजनीतिक जब मरते हैं तो खतरनाक प्रेत होते ही हैं। कभी राजनीतिक को स्वर्ग जाते सुना?

सेठ जी की सब आस्था डगमगा गई। इस आदमी पर भरोसा न आया कि यह भी कोई साधु है! और फिर कहा उस स्वामी ने, और जबलपुर में एक मंदिर है, गोपालदास जी का मंदिर। वह सेठ जी का ही पुश्तैनी मंदिर है। वहां भी तुम्हारा लड़का रोज शाम को छह बजे आता है, पूजा में सम्मिलित होने।

लौट कर आए। बिल्कुल उदास हो गए थे। लड़का मरा था, उससे भी ज्यादा दुखी होकर लौटे। कहने लगे, यह कहां भेज दिया आपने! यह आदमी तो दुष्ट है। और यह सच नहीं हो सकता, यह बात बिल्कुल झूठ है। यह मैं मान ही नहीं सकता। तुलसी जी बिल्कुल ठीक हैं।

मैंने कहा, आप थोड़ा सोचो। तुलसी जी के ठीक होने का आपके लिए कोई प्रमाण है? आपकी वासना के, आपकी महत्वाकांक्षा के अनुकूल है। आपका बेटा और स्वर्ग में पैदा न हो, यह हो ही कैसे सकता है! अहंकार की तृप्ति होती है। यहां भी आप चाहते थे मुख्य मंत्री हो जाए, यहां भी आप सोचते थे कि जवाहरलाल के बाद जगमोहन दास के अलावा कोई आदमी भारत में है ही नहीं काम का। तो जवाहरलाल के बाद अगर भारत में

समझ होगी तो जगमोहन दास, उनका लड़का ही प्रधानमंत्री होना चाहिए। वह यहां नहीं हो पाया तो अब कम से कम स्वर्ग में पैदा हो जाए। और मैंने कहा, अगर दोनों में कोई सच हो सके तो यह राम स्वामी ही सच हो सकता है, क्योंकि लड़का मरा राजनीति के तनाव में ही। चौबीस घंटे की कलह और संघर्ष और राजनीति का उपद्रव और दांव-पेंच, वही उसे ले डूबा। स्वर्ग जाने की अगर इन सबको सुविधा है तो साधु-संत कहां जाएंगे?

मैंने कहा, तुलसी जी से फिर पूछना कि अगर राजनीतिज्ञ स्वर्ग में देवता होने लगे तो तुम्हारा क्या होगा? तुम कहां जाओगे? कोई जगह ही नहीं बचती फिर। नहीं, न तो तुलसी जी सच हैं और न कोई राम स्वामी सच हैं। राम स्वामी तो निश्चित झूठ थे वह तो मेरे कहे से उन्होंने सब किया था। लेकिन तुम वही सुनना चाहते हो जो तुम्हारे अहंकार को, तुम्हारे झूठ को परिपुष्ट करे।

फिर वे कभी राम स्वामी के पास दोबारा नहीं गए। वे लोगों को कहते रहे, वह भी कोई साधु! बहुत दुष्ट प्रकृति का आदमी है। मेरा तो लड़का मर गया, और उसने इस तरह की बातें कहीं। मगर डर के मारे वे सालीवाड़ा जाना बंद कर दिए। और गोपालदास जी के मंदिर भी सुबह जाने लगे शाम की बजाय। क्योंकि शाम को, हो न हो कहीं सच हो यही। भीतर तो डर। लेकिन राम स्वामी के खिलाफ जब तक वे जिंदा रहे--अब तो वे भी चले गए--वे जब भी मुझे मिलते तो उनके खिलाफ जरूर कुछ कहते।

सत्य और असत्य का बड़ा सवाल नहीं है। तुम जहां हो, उसे जो परिपुष्ट करे वह मधुर लगता है। तुम्हारी जो मनोकामना है उसे जो परिपुष्ट करे वह मधुर लगता है, वह मीठा लगता है, वह अपना लगता है। जो तुम्हारी धारणा को तोड़े वह शत्रु लगता है; बात कड़वी लगती है। तुम्हारी जड़ों को हिलाए उसे तुम कैसे मित्र मान सकते हो? वह तो मृत्यु जैसा मालूम होता है। इसीलिए तो तुमने जहर दिया सुकरातों को, सूलियों पर चढ़ाया तुमने क्राइस्टों को, पत्थर मारे बुद्धों को; और चालबाजों को तुमने पूजा है, झूठों को तुमने पूजा है।

लेकिन इसमें कुछ असंगति नहीं; गणित साफ है। तुम झूठे हो; तुम झूठों को ही पूज सकते हो। तुलसी जी ने होशियारी की। आंख बंद करके जो बात उन्होंने बताई कि तुम्हारा लड़का स्वर्ग में पैदा हो गया है, यह बड़ी होशियारी की बात है। यह राजनीतिक दांव-पेंच है। तुम जो चाहते थे वह कह दिया।

तुम जो चाहते हो वह ठीक हो ही नहीं सकता; तुम ठीक नहीं हो। इसलिए सत्य कड़वा लगता है।

लाओत्से के वचन को हम समझने की कोशिश करें।

"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते।"

क्योंकि तुम असत्य हो; और तुम्हारे कानों में इतने असत्य भरे हैं कि सत्य का पहले तो प्रवेश का ही उपाय नहीं। सत्य को तुम भीतर ही न जाने दोगे। क्योंकि वह तुम्हें डगमगा देगा, वह तूफान की तरह आएगा, आंधी की तरह आएगा; तुम्हारे सारे जीवन को ध्वस्त कर देगा। तो सत्य को तुम पहले तो सुनते ही नहीं। अगर भूल-चूक से सुन लिया तो तुम उसकी व्याख्या अपने हिसाब से कर लेते हो। फिर तुम व्याख्या में उसे लीप-पोत देते हो। तुम्हारी व्याख्या ऐसी है जैसे कि कड़वी गोली किसी को देनी हो तो शक्कर चढ़ा दी।

तो तुम व्याख्या कर लेते हो कड़वे सत्यों की, और व्याख्या करके तुम निश्चिंत हो जाते हो। या तो तुम सुनते नहीं, या सुनते हो तो गलत सुनते हो। और अगर इन दोनों बातों को तोड़ कर कोई व्यक्ति तुम्हारे भीतर सत्य को पहुंचा दे तो वह व्यक्ति प्रीतिकर नहीं मालूम होता। गुरु कभी प्रीतिकर मालूम नहीं हो सकता। गुरु तो तभी प्रीतिकर मालूम होगा जब तुम मिटने को तैयार हो जाओगे।

मेरे पास इतने लोग आते हैं; उनमें तीन कोटियों के लोग हैं। एक वे हैं जो इसलिए आते हैं कि मैं उनकी मान्यताओं को पुष्ट कर दूं। वे मेरे पास आते ही नहीं; वे अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए आते हैं। वे जो मानते

हैं, अगर मैं भी कह दूं कि ठीक है, तो उनके चित्त की प्रसन्नता देखने जैसी होती है। उनका अहंकार पुष्ट हुआ। वे गीता के भक्त थे, और मैंने गीता की प्रशंसा कर दी; तत्क्षण मैं उनके लिए ज्ञानी हो जाता हूं। मैं ज्ञानी हो जाता हूं, क्योंकि वे ज्ञानी हैं, और गीता में उनकी श्रद्धा है और मैंने भी कह दी बात। मैंने उनकी ही बात कह दी। ऐसे लोग मुझसे आकर कहते हैं कि आपने जो कहा वह हमारी ही बात कह दी; चित्त प्रसन्न हो गया; बड़े आनंदित जा रहे हैं।

ऐसा मौका कम ही आ पाता है। ऐसे लोगों को मैं आनंदित नहीं भेजता। क्योंकि वह तो गलती हो जाएगी। यह तो गलत तरह का आनंद होगा। यह तो दवा न होगी, जहर होगा। इनके अहंकार को तो तोड़ना है। और अगर इनके अहंकार में गीता की बुनियाद रखी है तो गीता को भी तोड़ना जरूरी है, ताकि इनका अहंकार गिर जाए। अगर इन्होंने अपने अहंकार को कृष्ण के सहारे खड़ा कर रखा है तो कृष्ण को भी खींच लेना जरूरी है, ताकि इनका अहंकार गिर जाए।

एक मित्र कुछ ही दिन पहले आए। आते ही से हाथ जोड़ कर कहा कि और सब ठीक है, आप कभी रामायण पर बोलें। आए थे मुझे सुनने को। रामायण के भक्त हैं। मैंने कहा, राम में मेरा कोई लगाव नहीं। इसलिए नहीं कि राम में मेरा कोई लगाव नहीं है। जैसे ही मैंने कहा राम में मेरा कोई लगाव नहीं, उनके चेहरे पर अंधेरे बादल घिर गए। और मैंने कहा, तुलसीदास होंगे अच्छे कवि, लेकिन उनके संतत्व में मेरा भरोसा नहीं। पैर के नीचे से जमीन खिसक गई; फिर दोबारा उनके मुझे दर्शन ही न हुए। आए थे यहां रुकने दस दिन कि हां सुनेंगे। लेकिन दूसरे दिन सुबह वे दिखाई ही नहीं पड़े। सांझ मिल कर ही निबटारा हो गया।

वे आए थे सुनने कि मैं राम की प्रशंसा करूं। राम की प्रशंसा में मुझे कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन मुसलमान से करता हूं मैं राम की प्रशंसा, राम के भक्त से नहीं करता। लोग मुझसे पूछते हैं, यह लाओत्से पर आप किसलिए बोल रहे हैं? तो मैं कहता हूं, यहां कोई चीनी नहीं है इसलिए। अगर चीन जाऊं तो लाओत्से पर भूल कर नहीं बोलूंगा। क्योंकि वहां लाओत्से के आधार पर अहंकार खड़े हो गए हैं। वहां तो लोग बड़े प्रसन्न होंगे कि ठीक; उनकी ही बात को मैं ठीक कह रहा हूं।

इसे थोड़ा समझ लें। यह मेरा गणित थोड़ा समझ में आ जाए तो अच्छा। न कुछ लेना-देना है लाओत्से से, न कुछ लेना-देना है कृष्ण से। अगर सवाल है कुछ तो मेरे और तुम्हारे बीच है। तुम्हें तोड़ना है। तुम्हारे अहंकार को गिराना है। और जो-जो सहारे तुमने ले रखे हैं वे भी हटाने पड़ेंगे। नहीं कि वे सहारे गलत थे, बल्कि उन सहारों से तुमने एक गलत अहंकार खड़ा कर लिया था। इसलिए कभी हटाऊंगा और कभी जमाऊंगा। क्योंकि कभी मुझे लगेगा कि कोई ऐसा आदमी आ गया, कोई जैन आ जाए, तो मैं राम की प्रशंसा करता हूं। गहरे में सवाल इस तरह के आदमी के साथ यह होता है कि वह जो मानता है उसकी परितृप्ति हो जाए, उसका अहंकार भर जाए; मैंने भी हां भर दी, मैंने भी प्रमाण पत्र दे दिया कि वह ठीक है। जब राम का भक्त कहता है राम पर कुछ बोलें, तो वह यह नहीं कह रहा है कि राम से उसको कुछ लेना-देना है, वह यह कह रहा है कि मेरी जो मान्यताएं हैं उनको तृप्त करें, मेरी मान्यताओं पर जल सींचें। राम से कोई मतलब नहीं है। मेरे अहंकार को थोड़ा और बढ़ा दें कि मैं लौट कर जाकर कह सकूं कि मैं सदा ठीक था, सदा ही ठीक था। मैं और तर्क और प्रमाण जुटा लूं अपने ठीक होने के।

नहीं ऐसी भूल मैं नहीं करता। ऐसा आदमी अगर बहुत हिम्मतवर हो तो ही मेरे पास टिक सकता है, नहीं तो भाग जाएगा। उसके बचने का कोई उपाय नहीं। बहुत साहसी हो कि अपने अहंकार को टूटता देख सके और रुक जाए, तो ही रुक पाएगा। लेकिन तो ही रुके तो कोई अर्थ है। तुम्हारे अहंकार को बचा कर तुम्हें मैंने रोक भी

लिया अपने पास तो तुम्हारी भीड़ को इकट्ठा करके क्या करूंगा? तुम्हारी भीड़ नहीं चाहिए, तुम्हारा निरहंकार भाव चाहिए। एक भी व्यक्ति मेरे पास हो, लेकिन निरहंकार की भाव-दशा में हो, तो जो मैं चाहता हूं--जो परम फूल मुक्ति का--वह उसमें खिल सकता है।

दूसरी तरह के लोग हैं जो इस आशा में मेरे पास आते हैं, उनकी कोई मान्यताएं नहीं हैं, वे मान्यताओं की तलाश में आते हैं, कि कुछ भरोसे के लिए मिल जाए, कुछ विश्वास करने को सहारा मिल जाए। वे डगमगा रहे हैं। शायद शिक्षा ने, आधुनिक जगत ने उन्हें ठीक-ठीक आधार नहीं दिए मान्यताओं के, धर्म की ठीक-ठीक शिक्षा नहीं हो पाई बचपन में, तो उनका अहंकार थोड़ा डांवाडोल है, संदिग्ध है। वे आते हैं इस तलाश में कि मैं उनके अहंकार को असंदिग्ध कर दूं, उन्हें कुछ मान्यताएं दे दूं। उनके पास मान्यताएं नहीं हैं, वे मेरे पास मान्यता लेने आते हैं।

वे भी गलत लोग हैं। क्योंकि मैं किसी को मान्यता देना नहीं चाहता। मैं तुम्हें ज्ञान देना चाहता हूं, मान्यता नहीं। मान्यता तो झूठ है। मान्यता का तो अर्थ हैः जो तुम नहीं जानते उसे मान लिया; जिसे नहीं देखा उसे स्वीकार कर लिया; जिसका कोई स्वाद नहीं लिया उस पर उधार भरोसा कर लिया। किसी और की आंख से देखने का नाम मान्यता है। वे चाहते हैं कि मेरी आंख से देखना हो जाए। मेरी आंख से तुम कैसे देख सकोगे? तुम अपनी ही आंख से देख सकोगे। और मेरी आंख से अगर देखा तुमने तो तुम्हारी आंख अंधी हो जाएगी। और तुम्हें मैं अंधा नहीं बनाना चाहता, मैं तुम्हें तुम्हारी आंख देना चाहता हूं। विश्वास नहीं, मान्यता नहीं, बोध!

दूसरी तरह का व्यक्ति उतना कठिन नहीं जितना पहली तरह का व्यक्ति। लेकिन वह भी हैरान होता है। वह आया था अपनी मान्यताओं को मजबूत करने, और उसके पास जो थोड़ी-बहुत संदिग्ध मान्यताएं थीं वे भी मैं तोड़ डालता हूं।

फिर एक तीसरी तरह का व्यक्ति है, जिसकी न कोई मान्यता है, न जो किसी मान्यता की तलाश में आया है। वही सत्य का खोजी है। उसके लिए सत्य बिल्कुल कर्ण-मधुर होगा। उस पर माधुर्य की वर्षा हो जाएगी। उसके चारों तरफ काव्य की धुन बजने लगेगी। उसे मैं एक गीत की तरह लपेट लूंगा चारों तरफ से। तत्क्षण उसके भीतर नये का आविर्भाव होने लगेगा। उसके भीतर के मंदिर की घंटियां बजने लगेंगी, अर्चना के दीये जल जाएंगे, धूप से सुगंध उठने लगेगी। अगर तुम शून्य होकर आए हो तो सत्य मधुर लगेगा, अति मधुर लगेगा। उससे मीठा कहीं कुछ है? तुम पर निर्भर है, कैसे तुम आए हो।

तीसरी तरह का आदमी तो बहुत मुश्किल कभी-कभी आता है। दूसरी तरह के लोगों को थोड़ी कम मेहनत से तीसरी तरह का आदमी बनाया जा सकता है। पहली तरह के लोगों को बड़ी मुश्किल से तीसरी तरह का आदमी बनाया जा सकता है। पहले तो वे रुकते ही नहीं, बनाने का मौका नहीं देते; भाग जाते हैं। उनकी मान्यता को जरा चोट लगी कि वे भागे। वे छुईमुई हैं।

तुमने एक पौधा देखा होगा, लजनू। उसको छू दो, बस उसकी पंखुड़ी बंद हो जाती हैं एकदम, सब पत्ते बंद हो जाते हैं। वह बिल्कुल मुर्दे की तरह हो जाता है। ऐसे ही पहली तरह के लोग हैं--छुईमुई। उनकी मान्यता को छू दो कि बस समाप्त; वे बंद हो गए। फिर तुमसे उनका कोई लेना-देना न रहा। फिर वे कभी तुम्हारी तरफ आंख उठा कर न देखेंगे। उनकी आंख बंद हो गई। तुम उनके लिए रहे नहीं, वे तुम्हारे लिए न रहे। सब सेतु टूट गए। इस तरह का आदमी सबसे ज्यादा अधार्मिक आदमी है। और इसी तरह के लोग मंदिर-मस्जिदों में अड्डा जमा कर बैठे हैं। तो बड़ी दुर्घटना घट गई है। अधार्मिक धार्मिक स्थलों में अड्डा जमा लिए हैं।

दूसरी तरह का आदमी मध्य बिंदु में है। वह धार्मिक भी हो सकता है, अधार्मिक भी हो सकता है। अगर कोई उसकी मान्यताएं मजबूत कर दे और नयी मान्यताएं दे दे, तो वह मंदिरों में सम्मिलित हो जाएगा। वह भी अधार्मिक हो जाएगा। और अगर वह सौभाग्य से किसी ऐसे व्यक्ति के पास पहुंच जाए जो उसकी डगमगाती हुई मीनारों को बिल्कुल गिरा दे, खाली कर दे, नग्न और शून्य, चित्त में कोई धारणा न रह जाए, तभी तो तुम सत्य के निकट आ सकोगे। शून्य चित्त हो तो सत्य अमृत की वर्षा है; भरा हुआ चित्त हो तो सत्य बड़ा दुखदायी है।

पर लाओत्से ठीक ही कह रहा है। क्योंकि शून्य चित्त तो कभी करोड़ में एकाध का होता है। वह अपवाद है। उसे नियम के भीतर लेने की जरूरत नहीं है। वह तो केवल नियम को ही सिद्ध करता है।

"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते।"

कैसा दुर्भाग्य है कि सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते! कैसा दुर्भाग्य है कि कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते! होना तो इससे उलटा ही चाहिए कि झूठ कड़वा हो। लेकिन तुमने खूब अभ्यास कर लिया है झूठ का। अभ्यास से कड़वी चीजें भी मधुर लगने लगती हैं।

पहली दफा तुम सिगरेट पीना शुरू करते हो; कड़वी है। खांसी आती है; आंख में आंसू आ जाते हैं; जरा भी स्वाद नहीं आता। अभ्यास करना पड़ता है। थोड़े ही दिनों में तुम अभ्यस्त हो जाते हो। तिक्त कड़वापन खो जाता है; मधुर मालूम पड़ने लगता है धुएं का पीना। शराब तुम पीना शुरू करते हो, तिक्त है। फिर अभ्यास की जरूरत है। एक बार अभ्यास हो गया तो शराब में बड़ी मधुरिमा मालूम होने लगती है; भागे चले जा रहे हो मधुशाला की तरफ।

झूठ का अभ्यास हो जाए तो मधुर लगने लगता है। और झूठ का लंबा अभ्यास है। इस जन्म में भी बहुत लंबा अभ्यास है। और पिछले जन्मों की लंबी यात्रा है। उसमें झूठ ही परिपोषित किया गया है।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर मैं एक दिन मेहमान था। उसकी पत्नी अमीर घर की लड़की है। और जैसा अमीर घर की लड़कियां होती हैं, एक तो पत्नियां वैसे ही उपद्रव, गरीब घर की हों तो भी, अमीर घर की पत्नी तो फिर बहुत उपद्रव। वह हर छोटी बात में याद दिला देती है मुल्ला को कि यह शानदार मकान न होता अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते; यह कार न खड़ी होती पोर्च में अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते; जिस कुर्सी पर आराम से बैठे हो यह कुर्सी घर में न होती, भीख मांग रहे होते, अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते। मैं मेहमान था। भोजन की थाली लग गई थी, और उसने अपना राग छेड़ दिया कि यह चांदी की थालियों में भोजन चल रहा है, अगर मेरे बाप के पास पैसे न होते तो मुल्ला तुम भीख मांगते! मुल्ला ने कहा, अब मैं सच बात कह ही दूं, अब बहुत हो गया। मैं तुझसे कहता हूं कि अगर तेरे बाप के पास पैसे न होते तो तू भी यहां न होती, टेबल और कुर्सी का तो सवाल ही नहीं है। तेरे बाप के पास पैसे न होते तो तू भी यहां न होती। हमने कोई तुझसे विवाह नहीं किया, तेरे बाप के पैसों से विवाह किया है।

प्रेम तो झूठ है। सौ में निन्यानबे मौके पर कभी पैसे के लिए है, कभी प्रतिष्ठा के लिए है, कभी चमड़ी के लिए है, और कभी बहुत क्षुद्र बातों के लिए है, जिनका तुम हिसाब ही न लगा सकोगे कि कैसा पागलपन है! पैसे के लिए बहुत मौकों पर प्रेम का आवरण खड़ा हो जाता है। प्रतिष्ठा के लिए, पद के लिए, कुलीनता के लिए, बड़ा घर, बड़े संबंधी, आर्थिक लाभ, कभी स्त्री की चमड़ी सुंदर है इसलिए; वह भी ऊपर-ऊपर है, क्योंकि स्त्री चमड़ी नहीं है, चमड़ी से बहुत ज्यादा है। और चमड़ी तो भूल जाएगी दो दिन बाद; रोज तो भीतर की आत्मा के साथ रहना पड़ेगा। कभी आंखों के लिए कि आंखें सुंदर हैं। लेकिन कहीं आंखों के साथ रहने से कुछ काम चला है! कि कभी नाक का आकार, कि कभी वाणी की मधुरता, और कभी-कभी और भी क्षुद्र बातों के लिए प्रेम का आवरण

खड़ा हो जाता है, स्त्री का चलने का ढंग, कि उसके मुड़ने का ढंग, कभी बहुत छोटी-छोटी बातों के लिए। लेकिन तुम इन सबको प्रेम का आवरण दे देते हो। छोटी बातें बड़ी मालूम होने लगती हैं। लेकिन यह आवरण टूटेगा, जब तक कि प्रेम ही न हो।

और प्रेम अकारण है; प्रेम का कोई कारण नहीं है। न तो नाक का झुकाव, न आंख का मछलियों जैसा होना; कोई कारण नहीं है प्रेम का। प्रेम अकारण भावदशा है; अतर्क्य। तुम यह नहीं बता सकते कि क्यों। क्यों का अगर उत्तर दे सको तो तुम्हारा प्रेम झूठा है। तुम क्यों का उत्तर खोजो, और खोजो, और न पा सको, तो तुम्हारा प्रेम सच्चा है। तुम कहो कि क्यों तो कुछ भी नहीं मिलता, कारण तो कुछ भी नहीं मिलता, बस हृदय है कि बहा जाता है। अगर तुम कारण बता सको कि इस कारण से प्रेम है, तो प्रेम नहीं है। कारण ही महत्वपूर्ण है, धन, पद, प्रतिष्ठा, कुछ भी नाम हो उसका। और आज नहीं कल चुक जाएगा। कारण सदा चुक जाते हैं। कारण शाश्वत नहीं हो सकते; कारण तो क्षणभंगुर जीवन है उनका। अकारण प्रेम शाश्वत हो सकता है। वही प्रेम है। फिर जिससे तुमने प्रेम किया है, उसका शरीर भी छूट जाए तो भी प्रेम नहीं छूटता।

अभी मैं जैकुलिन के चित्र देख रहा था। दूसरा पति मर गया, ओनासिस। लेकिन जैकुलिन के चेहरे पर कोई उदासी और दुख नहीं है। ओनासिस की संपत्ति ही कारण रही होगी प्रेम का। और कैनेडी से भी प्रेम नहीं रहा होगा, क्योंकि इधर कैनेडी मरा नहीं कि उधर नयी साज-सज्जा, नये विवाह का आयोजन हो गया। शायद आयोजन पहले से ही तैयार था। शायद कैनेडी से भी प्रेम इसीलिए लगा लिया होगा कि कैनेडी की बड़ी संभावनाएं थीं भविष्य में, कभी न कभी वह आदमी प्रेसिडेंट होने ही वाला था। उसमें प्रतिभा थी, दौड़ थी, गति थी, महत्वाकांक्षा थी, अदम्य महत्वाकांक्षा थी। शायद उस अदम्य महत्वाकांक्षा के कारण ही यह स्त्री कैनेडी के प्रेम में पड़ गई होगी। फिर धन था अपार। कैनेडी मरा नहीं कि ओनासिस। और ओनासिस तो बूढ़ा आदमी था; उनहत्तर साल का होकर मरा। फासला लंबा है। जैकुलिन पैंतालीस साल की है। कुछ इस बूढ़े से प्रेम के कारण विवाह न किया होगा। दुनिया के थोड़े से संपत्तिशालियों में एक था ओनासिस; उसकी संपत्ति से प्रेम किया होगा। इधर ओनासिस मरा नहीं कि सारे अमरीका में चर्चा शुरू है कि अब कौन? जैकुलिन किसके साथ विवाह करने वाली है? और देर न लगेगी। और अब तो देर करने का समय भी नहीं है; पैंतालीस साल की है। जल्दी ही करनी पड़ेगी; नहीं तो समय गुजर जाएगा।

सारी प्रेम की कथा के पीछे अक्सर कुछ और ही छिपा होता है। तुम्हारी मित्रता के पीछे कुछ और ही छिपा होता है। तुम्हारी मुस्कुराहट के पीछे कुछ और ही छिपा होता है। कोई भी चीज सरल नहीं मालूम पड़ती कि तुम सिर्फ मुस्कुरा रहे हो, पीछे कुछ भी नहीं है; कि तुम सिर्फ प्रेम कर रहे हो, पीछे कुछ भी नहीं है; कि तुम किसी के प्रति मित्रता का हाथ बढ़ा दिए हो अकारण, पीछे कुछ भी नहीं है।

जिस दिन तुम सच होने शुरू हो जाओगे, जब तुम्हारा प्रत्येक कृत्य अपने आप में समग्र होगा और उसके पार कुछ भी न होगा, तब तुम्हें सत्य बड़ा कर्ण-मधुर मालूम पड़ेगा; उससे ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। तुम उसे आलिंगन कर लोगे। उससे सुंदर कुछ भी नहीं है। उससे संगीतपूर्ण कुछ भी नहीं है।

लेकिन तुम्हारे विसंगीत में, तुम्हारे भीतर के कोलाहल में, तुम्हारे कपट के जाल में जब संगीत की किरण आती है, तो तुम्हारे कारण संगीत की किरण संगीत की किरण नहीं मालूम पड़ती, उपद्रव मालूम पड़ती है। तुम अंधकार के इतने आदी हो गए हो कि जब प्रकाश तुम्हारे द्वार आता है तो तुम आंख बंद कर लेते हो, तुम तिलमिला जाते हो। तुम्हारी तिलमिलाहट प्रकाश के कारण नहीं है, तुम्हारी तिलमिलाहट लंबे दिनों तक अंधकार में रहने के कारण है।

"सच्चे शब्द कर्ण-मधुर नहीं होते; कर्ण-मधुर शब्द सच्चे नहीं होते।"

ऐसे बनने की कोशिश करना कि सत्य तुम्हें कर्ण-मधुर हो सके। और तब तक समझना कि यात्रा करनी है जब तक सत्य कर्ण-मधुर न हो जाए। चाहे कितना ही काटता हो, चाहे आरे की तरह तुम्हारी आत्मा को टुकड़े-टुकड़े कर देता हो, तो भी तुम अपने को इस योग्य बनाते जाना कि सत्य प्रीतिकर लगे। क्योंकि उसी प्रीति से तो परमात्मा तक पहुंचने का सेतु बनेगा।

और अगर असत्य कर्ण-मधुर लगता है, और जानते हो कि असत्य है... ।

कोई तुमसे कह देता है, अहा, कितने सुंदर हो! और तुम्हें खुद ही शक है, आईने में तुमने खुद ही शक्ल बहुत बार देखी है। तुम खुद भी नहीं कह सकते इतने विश्वास से कि अहा, कितने सुंदर हो। लेकिन दूसरे पर तुम भरोसा कर लेते हो। असत्य कितना सुंदर मालूम पड़ता है! और असत्य को जब तक तुम सुंदर मालूम करते हो, सुखद, प्रीतिकर, तब तक तुम कैसे सत्य से संबंध जोड़ पाओगे? तब तो जोड़ना बिल्कुल मुश्किल है। असत्य तुम्हें लूट ही लेगा, असत्य तुम्हें बुरी तरह दबा डालेगा। और तुम धीरे-धीरे इतने झूठ हो जाओगे कि तुम यह भरोसा भी न ला सकोगे कि सत्य जैसी कोई चीज होती है।

"सज्जन विवाद नहीं करता।"

विवाद तो वे ही करते हैं जिन्हें अपने सत्य पर भरोसा नहीं है। विवाद तो पैदा ही तब होता है जब तुम दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो। लेकिन यह बड़ा जटिल है। जब भी तुम दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो तो असलियत में तुम दूसरे के माध्यम से अपने सामने कुछ सिद्ध करना चाहते हो। तुम संदिग्ध हो। हिंदू सिद्ध करना चाहता है हिंदू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। यह संदिग्ध है आदमी। यह तर्क का जाल फैला कर अपने को भरोसा दिलाना चाहता है। और दूसरे को दिला पाए या न दिला पाए, अपने को तो दिला ही लेगा। दूसरे के सामने हम सिद्ध करने की कोशिश करते हैं, ताकि दूसरे की आंखों में देख लें कि हमारा तर्क सार्थक है, तो हमें भी ख्याल आ जाए।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। उसकी रंग-बिरंगी पोशाक और उसके चलने का ढंग, कुछ आवारा बच्चे उसके पीछे हो लिए हैं। कोई कंकड़ मार रहा है; कोई मजाक कर रहा है। उनसे छुटकारा पाने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सुनो, तुम्हें खबर है कि आज राजमहल में भोज दिया जा रहा है सारे नगर को! बच्चे साथ हो लिए। वे भूल गए कंकड़-पत्थर फेंकना; वे बात गौर से सुनने लगे। बच्चे बात गौर से सुनने लगे, मुल्ला भी गरमा गया; बातचीत में ज्यादा गरमी आ गई; वाचाल हो गया; भोजनों की चर्चा करने लगा कि कैसे-कैसे, क्या-क्या बन रहा है महल में आज, और तुम यहां क्या कर रहे हो! बात में जोश आ गया, जैसा कि बोलने वालों को अक्सर आ जाता है। बोलने से गरमी बढ़ती है। और अगर सुनने वाले उत्सुक दिखाई पड़ें तो बुखार और बढ़ता है। जब बुखार तेजी से हो जाता है तो सन्निपात। फिर बोलने वाला कुछ भी बोलता है। इतनी उसने जोर से चर्चा की और इतनी प्रगाढ़ता से भोजनों का विवरण दिया कि उसकी खुद की जीभ में लार आने लगी।

बच्चे तो उसे छोड़ कर भागे महल की तरफ। जब बच्चे भागने लगे आगे की छाया में, और दूर खोने लगे सड़क पर, तो मुल्ला भी दौड़ने लगा। एक बार उसने अपने आपसे कहा, यह क्या कर रहा है नसरुद्दीन! पर उसने कहा कि बात में जरूर कुछ मामला होना ही चाहिए, नहीं तो बच्चे इतने जल्दी भरोसा नहीं कर सकते थे। कौन जाने भोज दिया ही जा रहा हो? हर्ज भी क्या है? देख तो लेना ही चाहिए चल कर।

खुद ही झूठ को गढ़ा था। तुम ख्याल करो, ये कहानियां केवल कहानियां नहीं हैं। तुमने बहुत से झूठ गढ़े थे; फिर धीरे-धीरे तुमने खुद ही उन पर विश्वास कर लिया। जब तुम दूसरे को विश्वास दिला देते हो तो तुम्हें खुद विश्वास आ जाता है। दूसरे के चेहरे में तुम अपनी तस्वीर देख लेते हो, और भरोसा आ जाता है कि ठीक होना ही चाहिए। दुनिया में जो लोग दूसरे के सामने कुछ सिद्ध करने में लगे रहते हैं वे वे ही लोग हैं जिनके भीतर अभी कुछ भी सिद्ध नहीं हो पाया है।

"सज्जन विवाद नहीं करता।"

सज्जन वक्तव्य देता है। कह देता है जो उसे ठीक लगता है। वह किसी विवाद के लिए उत्सुक नहीं है, वह कुछ सिद्ध करने को उत्सुक नहीं है। वह कोई तर्क, वह कोई वकील नहीं है, वह कोई वकालत नहीं कर रहा है किसी सिद्धांत की। अपने अनुभव की बात कह देता है।

उपनिषद जब पहली दफा पश्चिम में अनुवादित हुए तो अनुवाद करने वाले बड़े चकित हुए कि उपनिषदों में कोई तर्क नहीं हैं, सिर्फ स्टेटमेंट हैं, वक्तव्य हैं। उपनिषद कहते हैं, ब्रह्म है; तुम भी ब्रह्म हो। मगर कोई तर्क नहीं देते; कोई सिलोजिज्म कोई अरस्तू के ढंग का कि क्यों ऐसा है। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं देते। वक्तव्य देते हैं; सीधे-सादे वक्तव्य हैं। जानना हो, तुम भी जान लो। बाकी उपनिषद का ऋषि सिद्ध करने की कोई कोशिश नहीं कर रहा है। जब भीतर सब सिद्ध हो जाता है तो कौन फिक्र करता है किसी के सामने सिद्ध करने की?

तो एक तो वे लोग हैं जो दूसरों के सामने सिद्ध करके अपने को भरोसा दिलाना चाहते हैं। और दूसरे वे लोग हैं जिन्होंने अनुभव कर लिया, खुद सिद्ध हो गए। अब वे किसी के सामने कुछ सिद्ध नहीं करना चाहते हैं।

और मजा यह है कि जो दूसरे को चेष्टा करते हैं सिद्ध करने की, खुद चाहे धोखे में पड़ जाएं, दूसरे को कभी धोखा नहीं दे पाते। तुमने कभी कोशिश की कि जब भी तुम तर्क से किसी को समझाने की कोशिश करते हो, तो यह हो सकता है तुम उसका मुंह बंद कर दो--तर्क तीखा प्रहार है; किसी का मुंह बंद कर सकता है--लेकिन क्या तुमने कभी यह पाया कि तर्क से तुमने कभी किसी दूसरे पर विजय कर ली हो, दूसरे के हृदय को जीत लिया हो? मुंह बंद कर सकते हो। मुंह बंद करने से कहीं हृदय जीता जाता है? वह आदमी कसमसाएगा। वह आदमी भीतर से तो जानता ही है कि मामला गलत है। सिर्फ तुम तर्क दे रहे हो। और तर्क तो गलत से गलत बात के लिए भी दिए जा सकते हैं। तर्क को कोई चिंता ही नहीं है कि तुम किसके लिए दे रहे हो। तर्क तो वेश्या है। वह किसी के भी साथ जाने को तैयार है। इसलिए तो कहा जाता है कि वकील और वेश्या स्वर्ग नहीं जा सकते। किसी के संगी-साथी नहीं हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने वकील के घर गया। और उसने जाकर विस्तार से, एक मुकदमा उस पर चलने वाला है, उसकी सारी बात कही। सारी बात कह कर उसने कहा कि क्या ख्याल है आपका जीत सकूंगा या नहीं? वकील ने कहा कि जीत सौ प्रतिशत निश्चित है; इसमें तो कोई मामला ही नहीं है। तुम जीते ही हुए हो, बस थोड़ा अदालत से गुजरना है, प्रक्रिया से। अन्यथा तुम जीते ही हुए हो। मुल्ला ने नमस्कार की और चलने लगा। वकील ने कहा, कहां जाते हो, मेरी फीस? और सारा इंतजाम? उसने कहा, कोई जरूरत नहीं है। यह तो मैंने विपक्षी की तरफ से सारी बात कही थी। अब लड़ने की कोई जरूरत ही नहीं। यह तो मेरे विरोधी की तरफ से मैंने मामला पेश किया था। और तुम कहते हो कि सौ प्रतिशत जीत, तो मामला खतम ही है। हार ही जाना बेहतर, अदालत तक जाने की जरूरत क्या है?

लेकिन नसरुद्दीन गलत है। वकील तो हर हालत में यही कहता; तुम अपना मुकदमा रखते तो भी कहता कि सौ प्रतिशत जीत है; वकील तो हर हालत में कहेगा कि जीत है। और ऐसा भी नहीं है कि जीत नहीं हो

सकती; सिर्फ बड़ा वकील चाहिए। अदालत सत्य और असत्य के बीच थोड़े ही निर्णय करती है, छोटे वकील और बड़े वकील के बीच निर्णय करती है। कोई अदालत दुनिया में कैसे सत्य और असत्य का निर्णय कर सकेगी? अदालतों का काम है सत्य और असत्य का निर्णय? समाधि में ही तय हो सकता है कि क्या सत्य और क्या असत्य। अदालत कैसे करेगी? अदालत तो इतना ही कर सकती है कि किसकी तरफ से बड़ा वकील लड़ रहा है, किसकी तरफ से छोटा वकील लड़ रहा है। कौन ज्यादा फीस दे सकता है, वह सत्य होकर निकल आता है। कौन कम फीस दे सकता है, वह असत्य हो जाता है। अमीर जीत जाता है; गरीब हार जाता है। वकील पर निर्भर है, तर्क पर निर्भर है कि तुम कितना मंहगा और सुसंस्कृत तर्क खरीद सकते हो, बस। तर्क का कोई पक्ष नहीं है, किसी के भी साथ हो लेता है।

सज्जन विवाद नहीं करता, क्योंकि सज्जन का तर्क पर भरोसा नहीं है, अनुभव पर भरोसा है।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लो। पंडित का तर्क पर भरोसा है; पंडित तर्क देता है। वह सिद्ध कर सकता है कि ईश्वर है या नहीं। ऐसे ही पंडित और दूसरे पंडितों को पैदा कर देते हैं जो नास्तिकों के पंडित हैं। क्योंकि जब तुम तर्क देते हो कि ईश्वर है, तुम ईश्वर को अदालत में खड़ा कर दिए। अब नास्तिक भी तर्क दे सकता है, बड़े तर्क दे सकता है। कभी तुमने सुना कि कोई आस्तिक किसी नास्तिक को तर्क से आस्तिक बना पाया हो? या कभी कोई नास्तिक किसी आस्तिक को तर्क से नास्तिक बना पाया हो?

तर्क से बदलाहट होती ही नहीं, हृदय अछूता रह जाता है। सारी बदलाहट हृदय की है, भाव की है। तुम्हारा हृदय प्रेम से जीता जाता है, तर्क से नहीं। तर्क तो तुम्हारे हृदय के पास भी न पहुंच पाएगा, फटक भी न पाएगा पास। सज्जन तुम्हें जीतता है अपने होने से। उसका व्यक्तित्व ही उसका एकमात्र तर्क है। उसका होना ही एकमात्र प्रमाण है।

मेस्टर एकहार्ट हुआ, जर्मनी का एक बहुत बड़ा रहस्यवादी संत। एक तर्कनिष्ठ पंडित उसके पास गया और उसने कहा, एकहार्ट, मैंने सुना है कि तुम ईश्वर में भरोसा करते हो। तुम मेरे सामने सिद्ध करो, मैं तुम्हें चुनौती देता हूं! एकहार्ट ने कहा, चुनौती हम स्वीकार करते हैं, लेकिन हमारे सिद्ध करने के ढंग अलग-अलग हैं। तुम बातचीत करोगे, मैं मौन बैठूंगा; तुम बुद्धि का फैलाव करोगे, मैं हृदय को बहाऊंगा। तो कह नहीं सकता कि हमारा मेल कहीं हो पाएगा कि नहीं हो पाएगा। क्योंकि हम अलग-अलग तरह के लोग हैं। मेरा होना ही प्रमाण है ईश्वर का। मेरी तरफ देखो! मेरी आंखों में झांको! क्या तुम्हें मेरी आंखों में वैसी झील दिखाई पड़ती है जिसका कोई अंत न हो? अगर दिखाई पड़ती है तो परमात्मा के बिना यह कैसे हो सकता है? मेरे पास आओ। मेरे हाथ को अपने हाथ में ले लो। अनुभव करो। क्या कोई प्रेम तुम्हारी तरफ बह रहा है अकारण? अगर अनुभव कर सको तो बिना परमात्मा के यह कैसे हो सकता है? मैं प्रार्थना करने बैठूंगा। तुम बैठो, देखो, आंख से अपूर्व आंसू बहते हैं आनंद के। तुम मेरे आंसुओं को समझो। क्या बिना गहन प्रेम के यह संभव है? क्या बिना गहरी विरह-वेदना के यह संभव है? अगर परमात्मा न हो तो इतने विराट प्रेम की प्यास मुझमें कैसे हो सकती है? तुम मुझे जानो, शायद तुम पहचान लो। लेकिन तर्क मेरे पास कोई भी नहीं। मैं ही तर्क हूं।

संत स्वयं तर्क है। और जो संत को समझ सकते हैं उनके लिए परमात्मा एक सिद्धांत हो जाता है। क्योंकि संत ही असंभव है बिना परमात्मा के। संत प्रमाण हो जाता है। संत इस पृथ्वी के गहन अंधकार में उस महा-प्रकाशवान की छोटी सी किरण है। माना कि मिट्टी का दीया है, मगर ज्योति उसी परमात्मा की है। और अगर तुम मिट्टी के दीये में जलती ज्योति को पहचान लो तो आकाश के महासूर्यों में भरोसा आ जाएगा।

लेकिन संत विवाद नहीं करता। विवाद तो हिंसा है, असज्जन का लक्षण है। विवाद जबरदस्ती है तुम्हें दबाने की। विवाद हिंसात्मक आक्रमण है तुम्हारे ऊपर। विवाद का अर्थ है कि मैं सिद्ध करके रहूंगा और तुम्हें झुकना पड़ेगा। विवाद तलवार है, सूक्ष्म, शब्दों की, तर्क की, लेकिन है तलवार। और तुम विवाद के सामने अगर झुक गए, अगर तुमने ऐसे तर्क मान लिए जिन्हें तुम्हारा हृदय इनकार करता था तो तुम भटक जाओगे। तुम आस्तिक भी हो सकते हो तर्क मान कर, तब भी तुम आस्तिक न हो पाओगे। क्योंकि आस्तिकता का कोई संबंध ही तर्क से नहीं है। तुम नास्तिक भी हो सकते हो। दोनों बराबर हैं। आस्तिक और नास्तिक में जरा भी फर्क नहीं है। अगर तुमने तर्क के कारण, विचार के कारण आस्तिकता और नास्तिकता को चुन लिया, तुम में कोई बहुत फर्क नहीं है। तुम एक ही नदी के दो किनारे हो।

फर्क तो उस आदमी में है जिसने तर्क के कचरे को एक तरफ फेंक दिया, और हृदय की पुकार सुनी, आह्वान सुना अपनी ही गहराइयों का। धरातल पर, सतह पर जो हो रहा था उसकी चिंता छोड़ दी विचार की तरंगों की, गहन में उतरा, भीतर की पुकार सुनी, और उस भीतर की पुकार के सहारे चलने लगा। वही आस्तिक है। लेकिन उसको आस्तिक कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह नास्तिक के विरोध में नहीं है। वस्तुतः वह आस्तिकता-नास्तिकता के पार हो गया, क्योंकि तर्क के पार हो गया।

"सज्जन विवाद नहीं करता।"

वह कुछ भी सिद्ध करने के लिए उत्सुक नहीं है। अगर उसका होना ही काफी प्रमाण नहीं है तो वह चिंता नहीं करता। क्योंकि जब उसका होना ही प्रमाणित नहीं कर सकता तो और क्या प्रमाणित करेगा?

"बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता; जो बहुत बातें जानता है वह बुद्धिमान नहीं है।"

बुद्धिमान व्यक्ति एक ही बात जानता है; उसका सारा जानना एक का ही जानना है। वह हजार ढंग से वही कहता है, वह एक ही कहता है। उसका स्वर एक है। वाद्य वह कोई भी चुने, कभी वीणा पर बजाए, कभी बांसुरी पर, कभी सितार को छेड़े, कभी तबले पर, मृदंग पर। लेकिन उसका स्वर एक है, उसका गीत एक है। वह गाता एक ही बात है। मैं तुमसे रोज बोलता हूं, और ऐसा रोज बोलता रह सकता हूं अनंत काल तक। मगर मैंने तुमसे एक बात छोड़ कर दूसरी बात नहीं कही है। बहुत-बहुत द्वारों से मैं तुम्हें एक ही द्वार पर ले आया हूं। बहुत-बहुत शब्दों से एक निशब्द की तरफ ही इशारा किया है।

लाओत्से कहता है, बुद्धिमान आदमी बहुत बातें नहीं जानता। वह एक को ही जान लेता है; क्योंकि उस एक को ही जान लेने से सब जान लिया जाता है।

उद्दालक का बेटा श्वेतकेतु घर लौटा तो उसके पिता ने पूछा, तू क्या-क्या जान कर लौटा है? तो उसने कहा, सब जान कर लौटा हूं। ज्योतिष, गणित, व्याकरण, भाषा, भूगोल, इतिहास, पुराण, वेद, स्मृतियां, श्रुतियां; सभी जान कर लौटा हूं। बाप ने कहा, तूने वह एक जाना या नहीं जिसको जान लेने से सब जान लिया जाता है? श्वेतकेतु बहुत अकड़ से आया था, सब जान कर आया था, प्रमाणपत्र लेकर आया था गुरुकुल से। गुरुओं ने बड़ी प्रशंसा की थी, क्योंकि बड़ा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। स्मृति उसकी अपार थी; वेद कंठस्थ हो गए थे। सोचा था बाप बहुत प्रभावित होगा। और बाप ने एक अजीब सा सवाल पहले ही क्षण में पूछ लिया कि बेटा जमीन पर गिर गया, अहंकार टूट गया। कहा कि नहीं, उस एक को तो जान कर नहीं आया जिसको जानने से सब जान लिया जाता है। सब जान कर आया हूं; एक का मुझे कोई भी पता नहीं है। गुरुओं ने उसकी बात ही नहीं की। यह सवाल ही वहां नहीं उठा। तो बाप ने कहा, वापस जा। सब जानने से क्या होगा? यह तो सब असार है। तू तो एक को ही जान कर लौट। उस एक को ही जान लेने से सब जान लिया जाता है।

वापस लौट गया श्वेतकेतु एक को जानने।

लाओत्से कहता है, "बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता है; जो बहुत बातें जानता है वह बुद्धिमान नहीं है।"

बहुत के जानने का आग्रह ही इसलिए होता है कि तुम एक से चूक रहे हो। एक को पा लोगे, तृप्त हो जाओगे; जानने की प्यास ही बुझ जाएगी। इसलिए बहुत बातें जानते हो, जानने की चेष्टा करते हो, और जान लें, और जान लें, क्योंकि प्यास मिटती नहीं। तुम्हारा ज्ञान, जिसको तुम ज्ञान कहते हो, कितना ही पीए चले जाओ, कंठ सूखता ही चला जाता है; प्यास मिटती नहीं। प्यास नहीं मिटती तो मन होता है और पीयो, और पीयो। शायद पर्याप्त नहीं पी रहे हैं। इसलिए आदमी ज्ञान को इकट्ठा करता चला जाता है।

वह ज्ञान का सागर हो सकता है, लेकिन प्यास न मिटेगी। क्योंकि सागर से कहीं प्यास मिटी है? प्यास के लिए तो छोटा सा एक का झरना चाहिए। बड़े से बड़ा सागर भी प्यास न बुझा सकेगा। वह बहुत खारा है। तुम सब जान लो, सागर जैसा तुम्हारा ज्ञान हो जाए विस्तीर्ण, फिर भी तुम प्यासे रहोगे। तृप्ति तो उसके झरने से मिटती है, तृप्ति तो उसके झरने से होती है; वह एक का झरना है। उस एक को ही उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, उस एक को ही लाओत्से ताओ कहता है। उस एक को तुम जो भी नाम देना चाहो दे दो, परमात्मा कहो, निर्वाण कहो, सत्य कहो, पर वह एक है। और वह एक तुमसे दूर नहीं; तुम्हारे भीतर है।

असल में, जो स्वयं को जान लेता वह सब जान लेता। क्योंकि स्वयं सबका सार-संचित है; स्वयं के भीतर सारा ब्रह्मांड छिपा है छोटे से पिंड में। अनंत आकाश समाया है तुम्हारे छोटे से हृदय में। वह बीज-रूप है, यह विराट वृक्ष-रूप है। बीज को जिसने जान लिया उसने पूरे वृक्ष को जान लिया। क्योंकि बीज में सारा ब्लू-प्रिंट है, पूरे वृक्ष की एक-एक पत्ती छिपी है। अभी प्रकट नहीं हुई है, छिपी है। तुम्हारे भीतर सारा ब्रह्मांड छिपा है। इसलिए उपनिषद कहते हैं, तत्वमसि। वह तुम ही हो।

यह श्वेतकेतु जब गुरु के पास गया तब यह वचन बोला गया। श्वेतकेतु वापस लौटा और उसने गुरु से कहा--उदास होकर, चिंतित होकर--इतना सब सीखा, लेकिन पिता प्रसन्न न हुए और उन्होंने एक सवाल किया जिसका मैं जवाब न दे पाया। उन्होंने पूछा, उस एक को जाना जिसको जानने से सब जान लिया जाता है?

गुरु ने कहा, तत्वमसि श्वेतकेतु। वह तू ही है श्वेतकेतु, जिस एक की तेरे पिता ने बात उठाई। अच्छा हुआ तू वापस लौट आया, क्योंकि हम उस एक का इशारा तभी कर सकते हैं जब कोई प्यासा होकर आए। इसके पहले तूने और सबके जानने के लिए चेष्टा की, जिज्ञासा की, वह तूने जाना। अब तू एक की जिज्ञासा लेकर आया; अब तू उसे भी जान लेगा। लेकिन वह तू ही है। इसलिए कहीं और नहीं जाना है, भीतर जाना है। किसी और से नहीं पूछना है, भीतर डूबना है। अब शास्त्र बेकार हैं, उच्छिष्ठ हैं। अब वेदों में कुछ सार नहीं, क्योंकि वह तो निशब्द है, वहां तो मौन में उतरना है।

बुद्धिमान एक को जानता है, और एक को जान कर सबको जान लेता है। बुद्धिहीन अनेक को जानता है, और अनेक को जान-जान कर एक को भी खो देता है। एक साधे सब सधे। और जिसने एक को साध लिया उसने सब साध लिया। और जिसने अनेक को साधना चाहा वह तीन-तेरह बांट हो गया, वह खंड-खंड हो गया। वह अनेक के साथ अनेक हो गया। इसीलिए तो तुम एक भीड़ हो। अभी तुम्हारे भीतर व्यक्तित्व नहीं। एक नहीं तो व्यक्तित्व कैसे होगा? तुम तो एक भीड़ हो। बहुत तरह के लोग तुम्हारे भीतर हैं।

सुना है मैंने कि बायजीद जब अपने गुरु के पास गया, तो जैसे ही गुरु के झोपड़े में प्रविष्ट हुआ और कहा कि मैं अब सब छोड़ कर आ गया हूं आपके चरणों में, अब और प्यासा न रखें, अब मुझे तृप्त कर दें, बायजीद के

गुरु ने ऐसा चारों तरफ देखा। सन्नाटा था, और कोई न था, बायजीद खड़ा था। और गुरु ने कहा, तू आ गया वह तो ठीक, लेकिन यह भीड़ क्यों साथ लेकर आया है? वहां कोई था ही न। बायजीद ने लौट कर पीछे देखा खुद भी कि कोई भीड़ है? आस-पास कोई भी न था। बायजीद ने कहा, कैसी भीड़? मैं बिल्कुल अकेला आया हूं। बायजीद के गुरु ने कहा, आंख बंद कर और भीड़ को पाएगा। और कहते हैं बायजीद ने आंख बंद की और भीड़ को पाया।

क्योंकि तुम अभी एक नहीं हो, बहुत हो। पत्नी के सामने तुम्हारा कोई और चेहरा है; ग्राहक के सामने दुकान पर तुम्हारा कोई और चेहरा है; बेटे के सामने तुम्हारा कोई और चेहरा है। नौकर के सामने तुम्हारी अकड़ ही और। अमीर को देख कर तुम कैसी पूंछ हिलाने लगते हो; गरीब को देख कर कैसे अकड़ जाते हो। तुम्हारे कितने चेहरे हैं! तुम्हारे कितने रूप हैं! यह भीड़ है तुम्हारे भीतर। तुम्हारे भीतर अभी एक स्वर तो बजा ही नहीं। तुम हो कौन? तुम अभी पूछोगे मैं कौन हूं, उत्तर न पाओगे। क्योंकि बहुत उत्तर मिलेंगे। कोई कहेगा कि तुम फलाने के बेटे हो; तुम फलाने के बाप हो; तुम उसके पति हो; तुम इसके नौकर हो, उसके मालिक हो। तुम पूछोगे मैं कौन हूं, हजार उत्तर आएंगे भीतर। उत्तरों से घाटी गूंज उठेगी। उनमें से कोई भी उत्तर सही नहीं है। क्योंकि एक ही तुम हो सकते हो।

न तो तुम किसी के पति हो, और न किसी के मित्र, न किसी के शत्रु। इन सबको छोड़ो। तुम अपने में क्या हो? ये तो दूसरों से संबंध हैं; यह तुम्हारा होना नहीं है। यह तुम्हारा अस्तित्व नहीं है, तुम्हारा स्वरूप नहीं है। ये तो नाटक में मिले तुम्हें अभिनय हैं। कभी बाप हो, कभी बेटे हो, कभी मित्र हो, कभी शत्रु हो, ठीक है; लेकिन ये तुम नहीं हो। तुम्हारा मौलिक स्वरूप क्या है--जो तुम जन्म के पहले थे? जो तुम मरने के बाद होओगे? जो तुम समाधि के एकांत में होओगे वह तुम कौन हो? जो उस एक को जान लेता है, जो जान लेता है मैं कौन हूं, उसने सब जान लिया।

इसलिए हम ज्ञानी को सर्वज्ञ कहते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब मत समझना जैसा कि समझ लिया जाता है। लोग बिल्कुल लिटरल शब्दों को पकड़ लेते हैं। महावीर के लिए कहा गया है शास्त्रों में कि वे सर्वज्ञ हैं। तो जैनों ने बिल्कुल ऐसा पकड़ लिया है कि जैसे अगर महावीर से तुम पूछो कि साइकिल का पंचर कैसे जोड़ा जा सकता है तो वे बता देंगे। सर्वज्ञ! कि तुम्हारी कार बिगड़ गई हो तो वे मेकेनिक का काम कर देंगे; कि तुम्हें बुखार चढ़ा है तो वे प्रिस्क्रिप्शन दवाई का लिख देंगे।

सर्वज्ञ का यह मतलब नहीं है। सर्वज्ञ का इतना ही मतलब है कि जिसने स्वयं को जाना उसने सब जान लिया जो जानने योग्य है। कोई साइकिल का पंचर जोड़ने की कला जानने योग्य बात है? उसकी उपयोगिता होगी; सत्य उसमें कुछ भी नहीं है। उपादेयता होगी; लेकिन आत्यंतिक कोई भी सार उसमें नहीं है। महावीर ने सब जान लिया, इसका केवल इतना अर्थ है कि एक को जान लिया जिसमें सब छिपा है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम उनसे कुछ भी पूछोगे तो जान लिया।

लेकिन जैनों ने ऐसी हवा उड़ाई कि महावीर सर्वज्ञ हैं, और वे सब जानते हैं।

बुद्ध ने बड़ी मजाक की है फिर। बुद्ध का मजाक सार्थक है। बुद्ध ने महावीर की मजाक नहीं की है, जैनों की ही मजाक की है। लेकिन महावीर की मजाक करना पड़ी, क्योंकि ये जैन अपनी मूढ़ता को महावीर के सर्वज्ञ के सहारे सम्हाल रहे हैं। महावीर की सर्वज्ञता इनकी मूढ़ता के लिए आधार बन रही है। तो बुद्ध ने बड़ी गहरी मजाक की है। और बुद्ध ने कहा है कि कोई-कोई कहते हैं कि ज्ञात-पुत्र महावीर सर्वज्ञ है, लेकिन मैंने यह भी सुना है कि ज्ञात-पुत्र महावीर कभी-कभी ऐसे मकान के सामने भीख मांगने खड़े हो जाते हैं जिसमें वर्षों से कोई

नहीं रहता। कैसी सर्वज्ञता? यह भी पता नहीं कि इस घर में कोई रहता ही नहीं, वर्षों से खाली पड़ा है, उसके सामने भीख मांगने खड़े हो जाते हैं। यह कैसी सर्वज्ञता? राह पर चलते हैं, अंधेरा होता है सुबह का, सोए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है कि कुत्ता है। यह कैसी सर्वज्ञता?

बुद्ध महावीर का मजाक नहीं कर रहे हैं। क्योंकि बुद्ध कैसे महावीर का मजाक कर सकते हैं? वह तो अपना ही मजाक होगा। जैनों का मजाक कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, कैसे मूढ़ हो तुम! देखते भी नहीं कि महावीर ऐसे घर के सामने भी भीख मांगते हैं जहां कोई नहीं है, फिर तुम सर्वज्ञ कहे जा रहे हो!

सर्वज्ञ का अर्थ इतना है कि जिसने स्वयं को जान लिया उसने जो जानने योग्य है वह सब जान लिया। ये तो सब न जानने योग्य बातें हैं। इनको जान कर भी क्या होगा?

बुद्धिमान व्यक्ति बहुत बातें नहीं जानता, एक को ही जान लेता है, सार को पकड़ लेता है।

सूफियों में कहानी है कि एक सम्राट यात्रा को गया। लौटते समय उसने अपनी पत्नियों को लिखा--उसकी एक हजार पत्नियां थीं--कि मैं आ रहा हूं, तो तुम सब खबर भेजो कि तुम्हारे लिए क्या ले आऊं। तो किसी ने हीरे-जवाहरातों के बहुमूल्य आभूषण मांगे; किसी ने स्वर्ण के बहुमूल्य पात्र बुलवाए; किसी ने अनूठी सुगंधियों को लाने के लिए लिखा; अलग-अलग, हजार पत्नियां थीं। सम्राट ने उनके पत्र देखे और फाड़ कर फेंकता गया। सिर्फ एक पत्नी ने लिखा था कि तुम घर वापस लौट आओ, यही भेंट है; और कुछ चाहिए नहीं। तुम आ गए, सब आ गया।

ज्ञानी परमात्मा को मांगता है। अज्ञानी और सब मांगता है; परमात्मा से भी मांगता है तो और सब मांगता है। ज्ञानी सिर्फ एक को जान लेना चाहता है। एक आ गया, सब आ गया। प्रीतम आ गया, सब आ गया। और भेंट की बात ही बेहूदी है।

तो उस पत्नी ने कहा, तुम्हें पा लिया, सब पा लिया। क्या इसका मतलब यह हुआ कि सम्राट के आ जाने से हीरे-जवाहरातों के आभूषण आ जाएंगे, कि स्वर्ण-कलश आ जाएंगे, कि सारी दुनिया की संपदा आ जाएगी?

नहीं, यह मतलब नहीं हुआ। अगर ऐसा तुम समझे तो गलत समझे। लेकिन जिसके हृदय में प्रेम है, उसके लिए सब आ गया। हीरे-जवाहरात आ गए; स्वर्ण-कलश आ गए। प्रेमी के आने में सब आ गया। तुम्हें दिखाई भी न पड़ेगा, तुम्हें तो सिर्फ प्रेमी आता दिखाई पड़ेगा, हाथ खाली दिखाई पड़ेंगे। लेकिन जिसके हृदय में प्रेम है उसके लिए सब आ गया। कुछ पाने योग्य और बचा ही न। लाने की कोई जरूरत न थी। तुम आ गए, सब आ गया।

बुद्धिमान एक को जान लेता है; निर्बुद्धि अनेक के पीछे दौड़ता, भटकता और पागल हो जाता है। अनेक के पीछे दौड़ोगे तो पागल हो ही जाओगे। बहुत सी नावों में एक साथ यात्रा कैसे करोगे? बहुत दिशाओं में कैसे चलोगे? एक की खोज वाला धीरे-धीरे, धीरे-धीरे शांत होकर विमुक्त हो जाता है; अनेक की खोज वाला धीरे-धीरे अशांत होते-होते विक्षिप्त हो जाता है।

विक्षिप्तता और विमुक्तता ये दो छोर हैं। मध्य में खड़े हो तुम। अगर अनेक की खोज की तो विक्षिप्तता की तरफ बढ़ते जाओगे, पागल होओगे ही। वह तार्किक निष्कर्ष है। अगर एक की खोज की तो पागलपन मिटता जाएगा। शांत हो जाओगे, प्रफुल्लित हो जाओगे, खिल जाओगे। एक मेधा प्रकट होगी, एक प्रतिभा का प्रकाश आने लगेगा। जैसे-जैसे एक की तरफ बढ़ोगे वैसे-वैसे संगठित होने लगोगे। जैसे-जैसे एक के पास पहुंचोगे वैसे-वैसे भीड़ छंटने लगेगी; तुम भी एक होने लगोगे। क्योंकि समान ही समान को जान सकता है। जब तुम एक हो

जाओगे तभी तुम एक को जान पाओगे। जब तुम अनेक हो जाओगे तभी तुम अनेक के साथ संबंध बना पाओगे। अनेकता विक्षिप्तता में ले जाएगी। एकता विमुक्ति है।

"संत अपने लिए संग्रह नहीं करते। दूसरों के लिए जीते हैं, और स्वयं समृद्ध होते जाते हैं। दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं।"

संत अपने लिए संग्रह नहीं करते, क्योंकि अपने लिए जीते नहीं।

दो तरह के जीने के ढंग हैं। एक तो अपने लिए जीने का ढंग है जो तुम जानते हो। और इसीलिए परेशान हो। अपने लिए जो जी रहा है वह सारी दुनिया की शत्रुता में जीएगा। सब दुश्मन हैं। जो अपने लिए जी रहा है, शत्रुता उसका आधार है। जो अपने लिए जी रहा है वह जी ही न पाएगा; शत्रुता में ही उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। एक दूसरा ढंग हैः दूसरे के लिए जीना। जो दूसरे के लिए जीता है मित्रता उसका आधार है। अब कोई डर ही न रहा किसी से कुछ। कोई दूसरा छीन ही नहीं सकता; हम दूसरे के लिए ही जी रहे हैं। महावीर ने कहा हैः मित्ति मे सब्ब भुए सू, वैरं मज्झ न केणई। मेरी मित्रता है सबसे, सारे भूमंडल से--सब्ब भुए सू। और वैर मेरा किसी से भी नहीं। कोई कारण ही न रहा वैर का। महत्वाकांक्षा न रही; स्वयं के लिए जीने का पागलपन न रहा। वासना की जगह करुणा जीवन का सूत्र हो गया। वासना का मतलब है छीनो; करुणा का मतलब है दो।

बड़ी पुरानी भारतीय कथा है कि देव, दानव और मानव तीनों प्रजापति के पास उपस्थित हुए ठीक सृष्टि के प्रारंभ में और उन्होंने कहा, हमें उपदेश दें हम क्या करें?

प्रजापति ने कुछ उपदेश नहीं दिया, जोर से निनाद कियाः दो, दो, दो। यह तो निनाद दो, दो, दो, दानवों ने नहीं सुना, केवल देवताओं ने सुना। वस्तुतः प्रजापति ने दो, दो, दो, दान-दान-दान ऐसा कहा न था, सिर्फ इतना ही कहा थाः द, द, द। देवताओं ने सुना द; निश्चित अर्थ हैः दान, दो। मानवों ने, मनुष्यों ने सुना द--दमन, दबाओ। अपने अनुसार ही तो सुना जाएगा। प्रजापति ने तो जैसे द, द, द, जैसे छोटे बच्चे उदघोष कर दें ऐसा उदघोष किया। दानवों ने क्या समझा? उन्होंने समझा दुष्टता। द, उन्होंने व्याख्या की दुष्टता, क्रूरता, छीनो, सताओ। देवताओं ने समझाः दो, दान, करुणा। मनुष्यों ने सोचाः दबाओ अपनी वासनाओं को, इच्छाओं को, दमन, संयम। हम वही सुनते हैं जो हम हैं; जो कहा जाता है वह नहीं सुनते। वह हम सुन भी कैसे सकेंगे?

"संत अपने लिए संग्रह नहीं करते।"

इसलिए नहीं कि संग्रह बुरा है, बल्कि इसलिए कि संतों ने अपने अनुभव से जाना है कि जितना तुम संग्रह करोगे उतना ही तुम दीन होते चले जाओगे, दरिद्र हो जाओगे, जितना तुम दोगे उतने ही समृद्ध हो जाओगे। असल में, तुम उसी चीज के मालिक होते हो जिसे तुम दे सकते हो। तुमने कभी देकर देखा कि देते वक्त कैसी परितृप्ति होती है! जैसी लेते वक्त कभी नहीं होती। और छीनते वक्त तो हो ही कैसे सकती है? जब तुम किसी की जेब से कुछ निकालते हो, तो तुम चाहे हीरा भी निकाल लो, लेकिन परितृप्ति नहीं हो सकती। भीतर एक बेचैनी होती है, भीतर पूरे प्राण आकुल होते हैं। कुछ तुम कर रहे हो जो तुम्हारी प्रकृति के विपरीत है; अन्यथा बेचैनी क्यों? परेशानी क्यों?

अगर तुम अपनी बेचैनी के इंगित को भी समझ लो तो तुम समझ जाओगे कि कुछ तुम्हारी प्रकृति के प्रतिकूल हो रहा है। लेकिन तुम साधारण सी चीज किसी को भेंट दे देते हो--किसी मित्र को, किसी के विवाह में, किसी के जन्मदिन पर, या अकारण किसी गरीब को कुछ दे देते हो, राह चलते भिखारी को दो पैसे दे देते हो--देते वक्त तुमने देखा, एक बड़ी गहरी परितृप्ति, एक परितोष तुम्हें घेर लेता है। जैसे स्वाभाविक है। जैसे दान स्वाभाविक है, स्वभाव के अनुकूल है; और छीनना स्वभाव के प्रतिकूल है।

अगर तुम्हें दान देते वक्त परितृप्ति न मालूम हो तो समझना कि तुमने दान गलत कारणों से दिया। अन्यथा परितृप्ति होगी ही। अब कोई राजनेता आ गया कि चुनाव में आपकी सहायता की जरूरत है। देना तुम चाहते नहीं, लेकिन अगर न दो तो यह आदमी कभी न कभी बदला ले सकता है, कहीं जीत गया चुनाव तो फिर झंझट खड़ी करेगा, तो दे देना अच्छा है। तो होशियार आदमी दोनों पार्टियों के उम्मीदवारों को दे देते हैं। तुम शांत रहो, क्योंकि तुमसे शैतान होने की संभावना है, तुम कभी भी शैतानी कर सकते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि तुम्हारे इलाके से दो आदमी चुनाव में खड़े हुए हैं; दोनों में से तुम किसको अच्छा समझते हो? उसने कहा कि दोनों एक-दूसरे से ज्यादा बुरे हैं। दोनों एक-दूसरे से ज्यादा बुरे हैं; लेकिन परमात्मा का धन्यवाद, शुक्र अल्लाह का उसने कहा कि केवल दो में से एक ही चुना जा सकता है। नहीं तो और मुसीबत होती। शुक्र अल्लाह का कि दो में से एक ही चुना जा सकता है। यही एक आशा है। बाकी दोनों एक-दूसरे से बुरे हैं।

राजनेता आ जाता है, उसको भी देना पड़ता है, मुस्कुरा कर देना पड़ता है। लेकिन भीतर तुम्हें बेचैनी मालूम होती है, सुख नहीं मालूम होता। राह पर एक भिखमंगा मांगने खड़ा हो जाता है। चार आदमी क्या कहेंगे देख कर अगर तुम न दोगे--कि दो पैसे न दिए! अरे कंजूस, इतना कंजूस कि दो पैसे न निकले, और गिड़गिड़ा रहा था भिखमंगा! और भिखमंगे बड़ा शोर मचाते हैं, ताकि और लोग भी देख लें, पैर पकड़ लेते हैं, इज्जत का सवाल बना देते हैं। तो दो पैसे तुम देते हो; लेकिन परितोष नहीं होता।

परितोष तो तभी होगा जब तुम हृदय से देते हो, और कोई कारण देने का नहीं है। अगर कारण है तो वह दान ही न रहा; वह भी धंधे का हिस्सा है, सौदा है। वह भी बाजार में प्रतिष्ठा खरीद रहे हो दो पैसे देकर भिखमंगे को। उसको तुम मूल और ब्याज से वसूल करके रहोगे। इसी बाजार से वसूल करोगे। इसी राजनेता को जिसको तुमने हजार रुपये दे दिए हैं चुनाव में लड़ने के लिए, तुम दस हजार के लाइसेंस निकलवा कर रहोगे। सब सौदा है।

लेकिन दान सौदा नहीं है। दान का अर्थ हैः दे दिया, और देने में इतना पा लिया कि अब इसके आगे पाने का कोई सवाल ही नहीं उठता; जितना दिया उससे ज्यादा देने में ही पा लिया।

संत संग्रह नहीं करते, क्योंकि उन्हें एक कला आ गई है। वह कला है, वे देकर इतना पा लेते हैं कि रोक कर उसको गंवाने को वे राजी नहीं। दूसरे के लिए जीते हैं, क्योंकि उन्होंने यह जाना कि जितना तुम दूसरे के लिए जीते हो उतना ही तुम्हारा जीवन परमात्ममय होता जाता है। परमात्मा अपने लिए नहीं जीता, इसीलिए तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। कभी वृक्ष के लिए जीता है तो वृक्ष दिखाई पड़ता है; कभी झरने के लिए जीता है तो झरना दिखाई पड़ता है; कभी फूल के लिए जीता है तो फूल खिल जाता है; कभी आदमी के लिए जीता है तो आदमी प्रकट होता है। परमात्मा को तुम सीधा कहीं न पा सकोगे, क्योंकि वह अपने लिए जीता ही नहीं।

इसीलिए तो मुसीबत है। नास्तिक पूछता है, कहां है? दर्शन करवा दो!

उसका दर्शन नहीं करवाया जा सकता। अगर वह अपने लिए जीता होता तो उसका पता-ठिकाना अब तक हमने लगा लिया होता--कहां रहता है? क्या करता है? वह जीता है सबके लिए; जीता है सब में। सब होकर जीता है। उसका अपना अलग होना नहीं है; फूल में, पत्ते में, पहाड़ में, चांद-तारों में, जहां है वही है।

जिस दिन तुम समझोगे इस राज को कि परमात्मा सब में जी रहा है उस दिन तुम पाओगे कि संत होने की एक ही कला है कि तुम भी सब में जीना शुरू कर दो। जितना-जितना तुम अपने में कम जीओगे, उतना ही उतना पाओगे महाजीवन तुम पर उतरने लगा।

वे दूसरों के लिए जीते हैं; स्वयं समृद्ध होते चले जाते हैं लेकिन। संग्रह नहीं करते, जीते हैं दूसरे के लिए, और स्वयं समृद्ध होते चले जाते हैं।

यह समृद्धि, जिसे तुम समृद्धि कहते हो, वह नहीं है। और तुम जिसे समृद्धि कहते हो उसे संत समृद्धि कहते ही नहीं। तुम्हारी संपत्ति को संत विपत्ति कहते हैं। तुम्हारी संपदा विपदा है। संत एक भीतरी समृद्धि से जीता है। उसकी प्रचुरता आंतरिक है। वह भीतर से भरा हुआ जीता है। आपूर, ऊपर से बहता हुआ जीता है। उसकी संपदा आंतरिक है। और जितना ही वह बांटता है, यह संपदा बढ़ती जाती है। बाहर की संपदा को बांटो, घटेगी; भीतर की संपदा को रोको, घटेगी। बाहर की संपदा को बांटो, समाप्त हो जाएगी; भीतर की संपदा को बांटो, बढ़ती चली जाएगी।

"दूसरों को दान देते हैं, और स्वयं बढ़ती प्रचुरता को उपलब्ध होते हैं। स्वर्ग का ताओ आशीर्वाद देता है, लेकिन हानि नहीं करता। संत का ढंग संपन्न करता है, लेकिन संघर्ष नहीं करता।"

वह जो परमात्मा का आत्यंतिक नियम है ताओ, ऋत, वह आशीर्वाद देता है, हानि नहीं करता। और अगर हानि होती है तो तुम्हारे अपने कारण होती है। तुम आशीर्वाद को भी अभिशाप में बदलने में बड़े कुशल हो। तुम अभिशाप को भी झेलते हो और आशीर्वाद को भी अभिशाप बना लेते हो। लेकिन परमात्मा की तरफ से कोई अभिशाप नहीं आता। अगर तुम्हारा जीवन अभिशप्त हो तो समझ लेना कि तुम परमात्मा के विपरीत जी रहे हो, तुम अपने ढंग से जीने की कोशिश कर रहे हो, तुम संघर्ष कर रहे हो, और तुम्हारे भीतर एक रेसिस्टेंस है, तुम परमात्मा की धारा में बह नहीं रहे।

लाओत्से से किसी ने पूछा कि तूने परमात्मा को पाया, सत्य को, ताओ को, कैसे? कैसे तुझे बोध हुआ? तो कहते हैं, लाओत्से ने कहा कि मैंने एक वृक्ष के ऊपर से एक सूखे पत्ते को गिरते देखा।

पतझड़ के दिन रहे होंगे, लाओत्से टिका बैठा रहा होगा वृक्ष से, शांत, मौन देखता रहा होगा प्रकृति को। टूटा एक पत्ता वृक्ष से, गिरने लगा नीचे। हवा ने कभी उसे बाएं उड़ाया तो बाएं चला गया, हवा ने कभी दाएं झुकाया तो दाएं झुक गया। पत्ते ने कोई संघर्ष न किया, वह हवा से लड़ा ही नहीं। वृक्ष से टूटने के समय भी उसने कोई जिद न की कि मैं जुड़ा ही रहूं; चुपचाप टूट गया। पीछे उसने घाव भी न छोड़ा वृक्ष में। शायद वृक्ष को पता भी न चला हो कि कब सूखा पत्ता जराजीर्ण पुराना होकर गिर गया, पक गया और गिर गया। हवा ने नीचे गिरा दिया तो पत्ता जमीन पर पड़ गया; फिर हवा का झोंका आया तो पत्ता आकाश में उड़ गया।

लाओत्से ने कहा, उसी दिन से मैं उस सूखे पत्ते जैसा हो गया, अपना संघर्ष छोड़ दिया; हवा जहां ले जाए। मेरी अपनी कोई मंजिल न रही, उसकी मंजिल को ही मैंने अपनी मंजिल बना लिया। और मुझे कुछ पता नहीं कि उसकी मंजिल क्या है, लेकिन होगी कोई। अपनी नियति को मैंने अलग न बांटा, मैंने अपने को अलग-थलग खड़ा न किया; मैं नदी की धार में बहने लगा। धार जहां ले जाए वहीं जाने लगा। और तत्क्षण सब रूपांतरित हो गया।

संघर्ष सत्य को पाने का मार्ग नहीं है। समर्पण! और जैसे ही तुम समर्पित हो, अचानक तुम पाते हो, सब तरफ से उसके आशीर्वाद बरसने लगे। वे सदा से बरस रहे थे, लेकिन तुम उलटे जा रहे थे, और तुम उन्हें अभिशाप में रूपांतरित कर रहे थे। तुम अगर जीवन में दुखी हो तो जानना कि परमात्मा के विपरीत चल रहे हो। क्योंकि परमात्मा दुख जानता ही नहीं। दुख तुम्हारी जिद्द है। दुख परमात्मा की नियति से अपनी नियति अलग बनाने की चेष्टा का परिणाम है। समग्र से पृथक होने की जो तुम्हारी धारणा है वही तुम्हारा नरक है। समग्र के साथ तुम एक हो गए, स्वर्ग का द्वार खुल गया।

आज इतना ही।

एक सौ सत्ताईसवां प्रवचन

प्रेम और प्रेम में भेद है

पहला प्रश्नः एक प्रेम कारागृह बन जाता है और एक प्रेम मंदिर। क्या प्रेम और प्रेम में भी भेद है?

प्रेम और प्रेम में बहुत भेद है, क्योंकि प्रेम बहुत तलों पर अभिव्यक्त हो सकता है। जब प्रेम अपने शुद्धतम रूप में प्रकट होता है--अकारण, बेशर्त--तब मंदिर बन जाता है। और जब प्रेम अपने अशुद्धतम रूप में प्रकट होता है, वासना की भांति, शोषण और हिंसा की भांति, ईर्ष्या-द्वेष की भांति, आधिपत्य, पजेशन की भांति, तब कारागृह बन जाता है।

कारागृह का अर्थ हैः जिससे तुम बाहर होना चाहो और हो न सको। कारागृह का अर्थ हैः जो तुम्हारे व्यक्तित्व पर सब तरफ से बंधन की भांति बोझिल हो जाए, जो तुम्हें विकास न दे, छाती पर पत्थर की तरह लटक जाए और तुम्हें डुबाए। कारागृह का अर्थ हैः जिसके भीतर तुम तड़फड़ाओ मुक्त होने के लिए और मुक्त न हो सको; द्वार बंद हों, हाथ-पैरों पर जंजीरें पड़ी हों, पंख काट दिए गए हों। कारागृह का अर्थ हैः जिसके ऊपर और जिससे पार जाने का उपाय न सूझे।

मंदिर का अर्थ हैः जिसका द्वार खुला हो; जैसे तुम भीतर आए हो वैसे ही बाहर जाना चाहो तो कोई प्रतिबंध न हो, कोई पैरों को पकड़े न; भीतर आने के लिए जितनी आजादी थी उतनी ही बाहर जाने की आजादी हो।

मंदिर से तुम बाहर न जाना चाहोगे, लेकिन बाहर जाने की आजादी सदा मौजूद है। कारागृह से तुम हर क्षण बाहर जाना चाहोगे, और द्वार बंद हो गया! और निकलने का मार्ग न रहा!

मंदिर का अर्थ हैः जो तुम्हें अपने से पार ले जाए; जहां से अतिक्रमण हो सके; जो सदा और ऊपर, और ऊपर ले जाने की सुविधा दे। चाहे तुम प्रेम में किसी के पड़े हो और प्रारंभ अशुद्ध रहा हो; लेकिन जैसे-जैसे प्रेम गहरा होने लगे वैसे-वैसे शुद्धि बढ़ने लगे। चाहे प्रेम शरीर का आकर्षण रहा हो; लेकिन जैसे ही प्रेम की यात्रा शुरू हो, प्रेम शरीर का आकर्षण न रह कर दो मनों के बीच का खिंचाव हो जाए, और यात्रा के अंत-अंत तक मन का खिंचाव भी न रह जाए, दो आत्माओं का मिलन बन जाए।

जिस प्रेम में अंततः तुम्हें परमात्मा का दर्शन हो सके वह तो मंदिर है, और जिस प्रेम में तुम्हें तुम्हारे पशु के अतिरिक्त किसी की प्रतीति न हो सके वह कारागृह है। और प्रेम दोनों हो सकता है, क्योंकि तुम दोनों हो। तुम पशु भी हो और परमात्मा भी। तुम एक सीढ़ी हो जिसका एक छोर पशु के पास टिका है और जिसका दूसरा छोर परमात्मा के पास है। और यह तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम सीढ़ी से ऊपर जाते हो या नीचे उतरते हो। सीढ़ी एक ही है, उसी सीढ़ी का नाम प्रेम है; सिर्फ दिशा बदल जाएगी। जिन सीढ़ियों से चढ़ कर तुम मेरे पास आए हो उन्हीं सीढ़ियों से उतर कर तुम मुझसे दूर भी जाओगे।

सीढ़ियां वही होंगी, तुम भी वही होओगे, पैर भी वही होंगे, पैरों की शक्ति जैसा आने में उपयोग आई है वैसे ही जाने में भी उपयोग होगी, सब कुछ वही होगा; सिर्फ तुम्हारी दिशा बदल जाएगी। एक दिशा थी जब तुम्हारी आंखें ऊपर लगी थीं, आकाश की तरफ, और पैर तुम्हारी आंखों का अनुसरण कर रहे थे; दूसरी दिशा होगी, तुम्हारी आंखें जमीन पर लगी होंगी, नीचाइयों की तरफ, और तुम्हारे पैर उसका अनुसरण कर रहे होंगे।

साधारणतः प्रेम तुम्हें पशु में उतार देता है। इसलिए तो प्रेम से लोग इतने भयभीत हो गए हैं; घृणा से भी इतने नहीं डरते जितने प्रेम से डरते हैं; शत्रु से भी इतना भय नहीं लगता जितना मित्र से भय लगता है। क्योंकि शत्रु क्या बिगाड़ लेगा? शत्रु और तुम में तो बड़ा फासला है, दूरी है। लेकिन मित्र बहुत कुछ बिगाड़ सकता है। और प्रेमी तो तुम्हें बिल्कुल नष्ट कर सकता है, क्योंकि तुमने इतने पास आने का अवसर दिया है। प्रेमी तो तुम्हें बिल्कुल नीचे उतार सकता है नरकों में। इसलिए प्रेम में लोगों को नरक की पहली झलक मिलती है। इसलिए तो लोग भाग खड़े होते हैं प्रेम की दुनिया से, भगोड़े बन जाते हैं। सारी दुनिया में धर्मों ने सिखाया हैः प्रेम से बचो। कारण क्या होगा? कारण यही है कि देखा कि सौ में निन्यानबे तो प्रेम में सिर्फ डूबते हैं और नष्ट होते हैं।

प्रेम की कुछ भूल नहीं है; डूबने वालों की भूल है। और मैं तुमसे कहता हूं, जो प्रेम में नरक में उतर जाते थे वे प्रार्थना से भी नरक में ही उतरेंगे, क्योंकि प्रार्थना प्रेम का ही एक रूप है। और जो घर में प्रेम की सीढ़ी से नीचे उतरते थे वे आश्रम में भी प्रार्थना की सीढ़ी से नीचे ही उतरेंगे। असली सवाल सीढ़ी को बदलने का नहीं है, न सीढ़ी से भाग जाने का है; असली सवाल तो खुद की दिशा को बदलने का है।

तो मैं तुमसे नहीं कहता हूं कि तुम संसार को छोड़ कर भाग जाना; क्योंकि भागने वाले कुछ नहीं पाते। सीढ़ी को छोड़ कर जो भाग गया, एक बात पक्की है कि वह नरक में नहीं उतर सकेगा; लेकिन दूसरी बात भी पक्की है कि स्वर्ग में कैसे उठेगा? तुम खतरे में जीते हो, संन्यासी सुरक्षा में; नरक में जाने का उसका उपाय उसने बंद कर दिया। लेकिन साथ ही स्वर्ग जाने का उपाय भी बंद हो गया। क्योंकि वे एक ही सीढ़ी के दो नाम हैं। संन्यासी, जो भाग गया है संसार से, वह तुम्हारे जैसे दुख में नहीं रहेगा, यह बात तय है; लेकिन तुम जिस सुख को पा सकते थे, उसकी संभावना भी उसकी खो गई। माना कि तुम नरक में हो, लेकिन तुम स्वर्ग में हो सकते हो--और उसी सीढ़ी से जिससे तुम नरक में उतरे हो। सौ में निन्यानबे लोग नीचे की तरफ उतरते हैं, लेकिन यह कोई सीढ़ी का कसूर नहीं है; यह तुम्हारी ही भूल है।

और स्वयं को न बदल कर सीढ़ी पर कसूर देना, स्वयं की आत्मक्रांति न करके सीढ़ी की निंदा करना बड़ी गहरी नासमझी है। अगर सीढ़ी तुम्हें नरक की तरफ उतार रही है तो पक्का जान लेना कि यही सीढ़ी तुम्हें स्वर्ग की तरफ उठा सकेगी। तुम्हें दिशा बदलनी है, भागना नहीं है। क्या होगा दिशा का रूपांतरण?

जब तुम किसी को प्रेम करते हो--वह कोई भी हो, मां हो, पिता हो, पत्नी हो, प्रेयसी हो, मित्र हो, बेटा हो, बेटी हो, कोई भी हो--प्रेम का गुण तो एक है; किससे प्रेम करते हो, यह बड़ा सवाल नहीं है। जब भी तुम प्रेम करते हो तो दो संभावनाएं हैं। एक तो यह कि जिसे तुम प्रेम करना चाहते हो, या जिसे तुम प्रेम करते हो, उस पर तुम प्रेम के माध्यम से आधिपत्य करना चाहो, मालकियत करना चाहो। तुम नरक की तरफ उतरने शुरू हो गए।

प्रेम जहां पजेशन बनता है, प्रेम जहां परिग्रह बनता है, प्रेम जहां आधिपत्य लाता है, प्रेम न रहा; यात्रा गलत हो गई। जिसे तुमने प्रेम किया है, उसके तुम मालिक बनना चाहो; बस भूल हो गई। क्योंकि मालिक तुम जिसके भी बन जाते हो, तुमने उसे गुलाम बना दिया। और जब तुम किसी को गुलाम बनाते हो तो याद रखना, उसने भी तुम्हें गुलाम बना दिया। क्योंकि गुलामी एकतरफा नहीं हो सकती; वह दोधारी धार है। जब भी तुम किसी को गुलाम बनाओगे, तुम भी उसके गुलाम बन जाओगे। यह हो सकता है कि तुम छाती पर ऊपर बैठे होओ और वह नीचे पड़ा है; लेकिन न तो वह तुम्हें छोड़ कर भाग सकता है, न तुम उसे छोड़ कर भाग सकते हो। गुलामी पारस्परिक है। तुम भी उससे बंध गए हो जिसे तुमने बांध लिया। बंधन कभी एकतरफा नहीं होता। अगर तुमने आधिपत्य करना चाहा तो दिशा नीचे की तरफ शुरू हो गई।

जिसे तुम प्रेम करो उसे मुक्त करना; तुम्हारा प्रेम उसके लिए मुक्ति बने। जितना ही तुम उसे मुक्त करोगे, तुम पाओगे कि तुम मुक्त होते चले जा रहे हो, क्योंकि मुक्ति भी दोधारी तलवार है। तुम जब अपने निकट के लोगों को मुक्त करते हो तब तुम अपने को भी मुक्त कर रहे हो; क्योंकि जिसे तुमने मुक्त किया, उसके द्वारा तुम्हें गुलाम बनाए जाने का उपाय नष्ट कर दिया तुमने। जो तुम देते हो वही तुम्हें उत्तर में मिलता है। जब तुम गाली देते हो तब गालियों की वर्षा हो जाती है। जब तुम फूल देते हो तब फूल लौट आते हैं। संसार तो प्रतिध्वनि करता है। संसार तो एक दर्पण है जिसमें तुम्हें अपना ही चेहरा हजार-हजार रूपों में दिखाई पड़ता है।

जब तुम किसी को गुलाम बनाते हो तब तुम भी गुलाम बन रहे हो; प्रेम कारागृह बनने लगा! यह मत सोचना कि दूसरा तुम्हें कारागृह में डालता है। दूसरा तुम्हें कैसे डाल सकता है? दूसरे की सामर्थ्य क्या? तुम ही दूसरे को कारागृह में डालते हो तब तुम कारागृह में पड़ते हो; यह साझेदारी है। तुम उसे गुलाम बनाते हो; वह तुम्हें गुलाम बनाता है। पति-पत्नियों को देखो, वे एक-दूसरे के गुलाम हो गए हैं। और स्वभावतः, जो तुम्हें गुलाम बनाता है उसे तुम प्रेम कैसे कर पाओगे? भीतर गहरे में रोष होगा, क्रोध होगा; गहरे में प्रतिशोध का भाव होगा। और वह हजार-हजार ढंग से प्रकट होगा; छोटी-छोटी बात में प्रकट होगा। क्षुद्र-क्षुद्र बातों में पति-पत्नियों को तुम लड़ते पाओगे। प्रेमियों को तुम ऐसी क्षुद्र बातों पर लड़ते पाओगे कि यह तुम मान ही नहीं सकते कि इनके जीवन में प्रेम उतरा होगा। प्रेम जैसी महा घटना जहां घटी हो वहां ऐसी क्षुद्र बातों की कलह उठ सकती है? यह क्षुद्र बातों की कलह बता रही है कि सीढ़ी नीचे की तरफ लग गई है।

जब भी तुम किसी पर आधिपत्य करना चाहोगे, तुमने प्रेम की हत्या कर दी। प्रेम का शिशु पैदा भी न हो पाया, गर्भपात हो गया; अभी जन्मा भी न था कि तुमने गर्दन दबा दी।

प्रेम खिलता है मुक्ति के आकाश में; प्रेम का जन्म होता है स्वतंत्रता के परिवेश में। कारागृह में प्रेम का जन्म नहीं होता; वहां तो प्रेम की कब्र बनती है। और जब तुम दूसरे पर आधिपत्य करोगे तब तुम धीरे-धीरे पाओगे, प्रेम तो न मालूम कहां तिरोहित हो गया और प्रेम की जगह कुछ बड़ी विकृतियां छूट गईं--ईर्ष्या। जब तुम दूसरे पर आधिपत्य करोगे तब ईर्ष्या पैदा हो जाएगी।

अगर तुम्हारी पत्नी किसी के साथ थोड़ी हंस कर भी बोल रही है; प्राण कंपित हो गए। यह तो पत्नी तुम्हारे कारागृह के बाहर जाने के लिए कोई झरोखा बना रही है। यह तो सेंध मालूम पड़ती है; दीवाल तोड़ कर बाहर निकलने का उपाय है। तुम्हारी पत्नी और किसी और के साथ हंसे? तुम्हारी पत्नी और किसी और से बात करे? तुम्हारा पति किसी और स्त्री के सौंदर्य का गुणगान करे? नहीं, यह असंभव है। क्योंकि यह तो प्रथम से ही खतरा है। यह तो स्वतंत्र होने की चेष्टा है। इसको पहले ही प्रेमी मार डालते हैं। ईर्ष्या का जन्म होता है।

और ध्यान रखना, अगर तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो तो वस्तुतः उस स्त्री के द्वारा तुम सभी स्त्रियों को प्रेम करते हो। वह स्त्री प्रतिनिधि है, वह प्रतीक है। उस स्त्री में तुमने स्त्रैणता को प्रेम किया है। जब तुम किसी एक पुरुष को प्रेम करते हो तो उस पुरुष में तुमने सारे जगत के पुरुषों को प्रेम कर लिया जो आज मौजूद हैं, जो कभी मौजूद थे, जो कभी मौजूद होंगे। व्यक्तित्व तो ऊपर-ऊपर है, भीतर तो शुद्ध ऊर्जा है पुरुष होने की या स्त्री होने की। जब तुम एक स्त्री के सौंदर्य का गुणगान करते हो तब यह कैसे हो सकता है कि सौंदर्य को परखने वाली ये आंखें राह से गुजरती दूसरी स्त्री को, जब वह सुंदर हो, तो उसमें सौंदर्य न देखें? यह कैसे हो सकता है? यह तो असंभव है। लेकिन इस सौंदर्य के देखने में कुछ पाप नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि जब तुमने एक दीये में रोशनी देखी और आह्लादित हुए तो दूसरे दीये में रोशनी देख कर तुम आह्लादित न हो जाओ?

लेकिन एक स्त्री कोशिश करेगी कि तुम्हें अब सौंदर्य कहीं और दिखाई न पड़े। और एक पुरुष कोशिश करेगा, अब स्त्री को यह सारा संसार पुरुष से शून्य हो जाए, बस मैं ही एक पुरुष दिखाई पड़ूं। तब एक बड़ी संकटपूर्ण स्थिति पैदा होती है। स्त्री कोशिश में लग जाती है इस पुरुष को कहीं कोई सुंदर स्त्री दिखाई न पड़े। धीरे-धीरे यह पुरुष अपनी संवेदनशीलता को मारने लगता है, क्योंकि संवेदनशीलता रहेगी तो सौंदर्य दिखाई पड़ेगा। सौंदर्य का किसी ने ठेका नहीं लिया है; जहां होगा वहां दिखाई पड़ेगा। और अगर प्रेम स्वतंत्र हो तो हर जगह हर सौंदर्य में इस व्यक्ति को अपनी प्रेयसी दिखाई पड़ेगी, और प्रेम गहरा होगा।

लेकिन स्त्री काटेगी संवेदनशीलता को; पुरुष काटेगा स्त्री की संवेदनशीलता को; दोनों एक-दूसरे की संवेदना को मार डालेंगे। और जब पुरुष को कोई भी स्त्री सुंदर नहीं दिखाई पड़ेगी तो तुम सोचते हो घर में जो स्त्री बैठी है वह सुंदर दिखाई पड़ेगी? वह सबसे ज्यादा कुरूप स्त्री हो जाएगी। उसी के कारण सौंदर्य का बोध ही मर गया। तो तुम सोचते हो जिस स्त्री को कोई पुरुष सुंदर दिखाई न पड़ेगा उसे घर का पुरुष सुंदर दिखाई पड़ेगा? जब पुरुष ही सुंदर नहीं दिखाई पड़ते तो इस भीतर का जो पुरुषत्व है वह भी अब आकर्षण नहीं लाता।

तुम ऐसा ही समझो कि तुमने तय कर लिया हो कि तुम जिस स्त्री को प्रेम करते हो, बस उसके पास ही श्वास लोगे, शेष समय श्वास बंद रखोगे। और तुम्हारी स्त्री कहे कि देखो, तुम और कहीं श्वास मत लेना! तुमने खुद ही कहा है कि तुम्हारा जीवन बस तेरे लिए है। तो जब मेरे पास रहो, श्वास लेना; जब और कहीं रहो तो श्वास बंद रखना। तब क्या होगा? अगर तुमने यह कोशिश की तो दुबारा जब तुम इस स्त्री के पास आओगे तुम लाश होओगे, जिंदा आदमी नहीं। और जब तुम और कहीं श्वास न ले सकोगे तो तुम सोचते हो इस स्त्री के पास श्वास ले सकोगे? तुम मुर्दा हो जाओगे।

ऐसे प्रेम कारागृह बनता है। प्रेम बड़े आश्वासन देता है--और आश्वासनों को पूरा कर सकता है--लेकिन वे पूरे हो नहीं पाते। इसलिए हर व्यक्ति प्रेम के विषाद से भर जाता है। क्योंकि प्रेम ने बड़े सपने दिए थे, बड़े इंद्रधनुष निर्मित किए थे, सारे जगत के काव्य का वचन दिया था कि तुम्हारे ऊपर वर्षा होगी; और जब वर्षा होती है तो तुम पाते हो कि वहां न तो कोई काव्य है, न कोई सौंदर्य; सिवाय कलह, उपद्रव, संघर्ष, क्रोध, ईर्ष्या, वैमनस्य के सिवाय कुछ भी नहीं। तुम गए थे किसी व्यक्ति के साथ स्वतंत्रता के आकाश में उड़ने; तुम पाते हो कि पंख कट गए। तुम गए थे स्वतंत्रता की सांस लेने; तुम पाते हो गर्दन घुट गई।

प्रेम फांसी बन जाता है सौ में निन्यानबे मौके पर; लेकिन प्रेम के कारण नहीं, तुम्हारे कारण। तुम्हारे धर्मगुरुओं ने कहा है, प्रेम के कारण। वहां मेरा फर्क है। और तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें ज्यादा ठीक मालूम पड़ेंगे, क्योंकि जिम्मेवारी तुम्हारे ऊपर से उठा रहे हैं वे। वे कह रहे हैं, यह प्रेम का ही उपद्रव है; पहले ही कहा था कि पड़ना ही मत इस उपद्रव में, दूर ही रहना। तो तुम्हारे धर्मगुरु प्रेम की निंदा करते रहे हैं। तुम्हें भी जंचती है बात; जंचती है इसलिए कि तुम्हारे धर्मगुरु तुम्हें दोषी नहीं ठहराते, प्रेम को दोषी ठहराते हैं। मन हमेशा राजी है, दोष कोई और पर जाए; तुम हमेशा प्रसन्न हो।

मैं तुम्हें दोषी ठहराता हूं, सौ प्रतिशत तुम्हें दोषी ठहराता हूं। प्रेम की जरा भी भूल नहीं है। और प्रेम अपने आश्वासन पूरे कर सकता था। तुमने पूरे न होने दिए; तुमने गर्दन घोंट दी। सीढ़ी ऊपर ले जा सकती थी; तुम नीचे जाने लगे। नीचे जाना आसान है; ऊपर जाना श्रमसाध्य है। प्रेम साधना है। और प्रेम को कारागृह बनाना ऐसे ही है जैसे पत्थर पहाड़ से नीचे की तरफ लुढ़क रहा हो; जमीन की कशिश ही उसे खींचे लिए जाती है।

ये दोनों यात्राएं समान नहीं हैं, क्योंकि ऊपर जाने में तुम्हें बदलना पड़ेगा। क्योंकि ऊपर जाना है तो ऊपर जाने के योग्य होना पड़ेगा; प्रतिपल तुम्हारे चेतना के तल को ऊपर उठना पड़ेगा, तभी तुम सीढ़ी पार कर सकोगे। नीचे गिरने में तो कुछ भी नहीं करना पड़ता।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटों के लिए एक साइकिल खरीद लाया था। दो बेटे। तो उसने कहा कि दोनों आधा-आधा साइकिल से खेलना; कोई झगड़ा खड़ा न हो। एक दिन उसने देखा कि बड़ा बेटा बार-बार ऊपर टेकरी पर जाता है और वहां से साइकिल पर बैठ कर नीचे आता है। कई बार उसे टेकरी से साइकिल पर बैठे हुए देखा। तो उसने बुला कर कहा कि मैंने कहा था, छोटे बेटे को भी आधा-आधा। उसने कहा, आधा ही आधा कर रहे हैं। छोटा बेटा ऊपर की तरफ ले जाता है साइकिल; हम ऊपर से नीचे की तरफ लाते हैं--आधा-आधा।

अब पहाड़ी पर साइकिल को ले जाना, चढ़ने का तो सवाल ही नहीं। किसी तरह हांफता हुआ छोटा बेटा ऊपर तक पहुंचा देता है। और बड़ा बेटा उस पर बैठ कर नीचे की यात्रा कर लेता है। समान नहीं है; आधी-आधी नहीं है यात्रा। नीचे की यात्रा यात्रा ही नहीं है; गिरना है, पतन है; तुम जहां थे वहां से भी नीचे उतरना है।

तो जो व्यक्ति प्रेम को ईर्ष्या, आधिपत्य, पजेशन बना लेगा, वह जल्दी ही पाएगा, प्रेम तो खो गया; आग तो खो गई प्रेम की, आंखों को अंधा करने वाला धुआं छूट गया है। घाटी के अंधकार में जीने लगा, पहाड़ की ऊंचाई तो खो गई और पहाड़ की ऊंचाई से दिखने वाले सूर्योदय-सूर्यास्त सब खो गए। अंधी घाटी है; और रोज अंधी होती चली जाती है। तुम्हारे भीतर का पशु प्रकट हो जाता है सरलता से; उसके लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ती।

जिसको प्रेम को ऊपर ले जाना है, उसे प्रेम को तो वैसे ही साधना होगा जैसे कोई योग को साधता है। क्योंकि दोनों ऊपर जा रहे हैं; तब साधना शुरू हो जाती है। प्रेम तप है; जैसे कोई तप को साधता है वैसे ही प्रेम की तपश्चर्या है। और तप इतना बड़ा तप नहीं है, क्योंकि तुम अकेले होते हो। प्रेम और भी बड़ा तप है, क्योंकि एक दूसरा व्यक्ति भी साथ होता है। तुम्हें अकेले ही ऊपर नहीं जाना है; एक दूसरे व्यक्ति को भी हाथ का सहारा देना है, ऊपर ले जाना है। कई बार दूसरा बोझिल मालूम पड़ेगा। कई बार दूसरा ऊपर जाने को आतुर न होगा, इनकार करेगा। कई बार दूसरा नीचे उतर जाने की आकांक्षा करेगा। लेकिन अगर हृदय में प्रेम है तो तुम दूसरे को भी सहारा दोगे, सम्हालोगे; उसे नीचे न गिरने दोगे। तुम्हारा हाथ करुणा न खोएगा; तुम्हारा प्रेम जल्दी ही क्रोध में न बदलेगा। कई बार तुम्हें धीमे भी चलना पड़ेगा, क्योंकि दूसरा साथ चल रहा है। तुम दौड़ न सकोगे। इसलिए मैं कहता हूं, तप इतना बड़ा तप नहीं है; क्योंकि तप में तो तुम अकेले हो, जब चाहो दौड़ सकते हो। प्रेम और भी बड़ा तप है।

लेकिन प्रेम के द्वार पर तो तुम ऐसे पहुंच जाते हो जैसे तुम तैयार ही हो। यहीं भूल हो जाती है। दुनिया में हर आदमी को यह ख्याल है कि प्रेम करने के योग्य तो वह है ही। यहीं भूल हो जाती है। और सब तो तुम सीखते हो, छोटी-छोटी चीजों को सीखने में बड़े जीवन का समय गंवाते हो। प्रेम को तुमने कभी सीखा? प्रेम को कभी तुमने सोचा? प्रेम को कभी तुमने ध्यान दिया? प्रेम क्या है? तुम ऐसा मान कर बैठे हो कि जैसे प्रेम को तुम जानते ही हो। तुम्हारी ऐसी मान्यता तुम्हें नीचे उतार देगी, तुम्हें नरक की तरफ ले जाएगी।

प्रेम सबसे बड़ी कला है। उससे बड़ा कोई ज्ञान नहीं है। सब ज्ञान उससे छोटे हैं। क्योंकि और सब ज्ञान से तो तुम जान सकते हो बाहर-बाहर से; प्रेम में ही तुम अंतर्गृह में प्रवेश करते हो। और परमात्मा अगर कहीं छिपा है तो परिधि पर नहीं, केंद्र में छिपा है।

और एक बार जब तुम एक व्यक्ति के अंतर्गृह में प्रवेश कर जाते हो तो तुम्हारे हाथ में कला आ जाती है; वही कला सारे अस्तित्व के अंतर्गृह में प्रवेश करने के काम आती है। तुमने अगर एक को प्रेम करना सीख लिया तो तुम उस एक के द्वारा प्रेम करने की कला सीख गए। वही तुम्हें एक दिन परमात्मा तक पहुंचा देगी।

इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम मंदिर है। लेकिन तैयार मंदिर नहीं है। एक-एक कदम तुम्हें तैयार करना पड़ेगा। रास्ता पहले से पटा-पटाया तैयार नहीं है, कोई राजपथ है नहीं कि तुम चल जाओ। चलोगे एक-एक कदम और चल-चल कर रास्ता बनेगा--पगडंडी जैसा। खुद ही बनाओगे, खुद ही चलोगे।

इसलिए मैं प्रेम के विरोध में नहीं हूं, मैं प्रेम के पक्ष में हूं। और तुमसे मैं कहना चाहूंगा कि अगर प्रेम ने तुम्हें दुख में उतार दिया हो तो अपनी भूल स्वीकार करना, प्रेम की नहीं। क्योंकि बड़ा खतरा है अगर तुमने प्रेम की भूल स्वीकार कर ली। तो यह मैं जानता हूं कि तुम साधु-संतों की बातों में पड़ कर छोड़ दे सकते हो प्रेम का मार्ग, क्योंकि वहां तुमने दुख पाया है। तुम थोड़े सुखी भी हो जाओगे; लेकिन आनंद की वर्षा तुम पर फिर कभी न हो पाएगी। कैसे तुम चढ़ोगे? तुम सीढ़ी ही छोड़ आए! गिरने के डर से तुम सीढ़ी से ही उतर आए। चढ़ोगे कैसे? गिरोगे नहीं, यह तो पक्का है।

जिसको हम सांसारिक कहते हैं, गृहस्थ कहते हैं, वह गिरता है सीढ़ी से; जिसको हम संन्यासी कहते हैं पुरानी परंपरा-धारणा से, वह सीढ़ी छोड़ कर भाग गया। मैं उसको संन्यासी कहता हूं जिसने सीढ़ी को नहीं छोड़ा; अपने को बदलना शुरू किया, और जिसने प्रेम से ही, प्रेम की घाटी से ही धीरे-धीरे प्रेम के शिखर की तरफ यात्रा शुरू की।

कठिन है। जीवन की संपदा मुफ्त नहीं मिलती; कुछ चुकाना पड़ेगा; अपने से ही पूरा चुकाना पड़ेगा; अपने को ही दांव पर लगाना पड़ेगा। और प्रेम जितनी कसौटी मांगता है, कोई चीज कसौटी नहीं मांगती। इसलिए कमजोर भाग जाते हैं। और भाग कर कोई कहीं नहीं पहुंचता। प्रेम के द्वार से गुजरना ही होगा। हां, उसके पार जाना है, वहीं रुक नहीं जाना है। वह सिर्फ द्वार है।

जापान में एक मंदिर है--वैसे ही सब मंदिर होने चाहिए--वह मंदिर सिर्फ एक द्वार है। उसमें कोई दीवाल नहीं है और भीतर कुछ भी नहीं है; सिर्फ एक द्वार है।

मंदिर एक द्वार है; किसी अज्ञात लोक की तरफ खुलता है; अतीत पीछे छूट जाता है, भविष्य की तरफ खुलता है; समय पीछे छूट जाता है, कालातीत की तरफ खुलता है; क्षुद्र, क्षणभंगुर पीछे छूट जाता है, शाश्वत के प्रति खुलता है। लेकिन सिर्फ एक द्वार है। जो मंदिर में रुक गया वह नासमझ है। मंदिर कोई रुकने की जगह नहीं; पड़ाव कर लेना, रात भर के लिए विश्राम कर लेना, लेकिन सुबह यात्रा पर निकल जाना है।

प्रेम को कैसे मंदिर बनाओगे? आधिपत्य मत करना जिससे प्रेम करो। जिससे प्रेम करो उस प्रेम के आस-पास ईर्ष्या को खड़े मत होने देना। जिसको प्रेम करो उससे अपेक्षा मत करना कुछ; दे सको, देना, मांगना मत। और तुम पाओगे, प्रेम रोज गहरा होता है, रोज ऊपर उठता है। और तुम पाओगे कि धीरे-धीरे, धीरे-धीरे नये पंख उगने लगे तुम्हारे जीवन में; चेतना नयी यात्रा पर जाने के लिए समर्थ होने लगी। लेकिन इन भूलों के प्रति सजग रहना। ये भूलें बिल्कुल सामान्य हैं और तुम प्रेम में पड़ते भी नहीं कि ये भूलें शुरू हो जाती हैं। तुम अपेक्षा शुरू कर देते हो। जहां अपेक्षा की वहां सौदा शुरू हो गया; प्रेम न रहा।

तुम जिसको प्रेम करो, उसे स्वयं होने की पूरी स्वतंत्रता देना। कई बार मौके होंगे, बहुत सी बातें होंगी जो तुम न चाहोगे। लेकिन तुम्हारी चाह का सवाल क्या है? दूसरा व्यक्ति पूरा व्यक्ति है अपनी निजता में; तुम

हो कौन? वह जैसा है तुम उसे प्रेम करने के अधिकारी हो, लेकिन तुम उसे काट-छांट मत करना। तुम यह मत कहना कि तू ऐसा हो जा, तब हम तुझे प्रेम करेंगे।

एक महिला मेरे पास आती है। प्रेम-विवाह किया था; लेकिन एक छोटी सी बात पर सब नष्ट हो गया कि पति सिगरेट पीते हैं। वह यह बरदाश्त नहीं कर सकती; उनके मुंह से बास आती है। रात उनके साथ सो नहीं सकती; दूसरे कमरे में पति सोते हैं। बीस साल इस छोटी सी बात की कलह में बीत गए हैं कि पति पर जिद्द है कि वह सिगरेट छोड़े। पति की भी जिद्द है कि पत्नी चाहे छूट जाए, सिगरेट नहीं छूट सकती। और दोनों प्रेम में थे, और मां-बाप के विरोध में शादी की थी। शादी बड़ी मुश्किल थी; दोनों अलग-अलग जाति के हैं, अलग धर्मों के हैं। दोनों के परिवार विरोध में थे। सब दांव पर लगा कर शादी की थी, और सब दांव सिगरेट पर लग गया। मैंने उन्हें कहा, तुम कभी यह भी तो सोचो कि तुमने किस छोटी सी बात के लिए सब खो दिया है! लेकिन अहंकार प्रबल है। और पत्नी कहती है कि मैं अपनी शर्त से नीचे उतरने को राजी नहीं हूं। बीस साल गए, और जिंदगी चली जाएगी।

लेकिन जब तुम किसी एक व्यक्ति को प्रेम करते हो, समझ लो उसे पायरिया हो जाए तो क्या करोगे? उसके मुंह से थोड़ी बास आने लगे तो क्या करोगे? क्या प्रेम इतना छोटा है कि उतनी सी बास न झेल सकेगा? समझो कि कल वह आदमी बीमार हो जाए, लंगड़ा-लूला हो जाए, बिस्तर से लग जाए, तो तुम क्या करोगे? कल बूढ़ा होगा, शरीर कमजोर होगा, तो तुम क्या करोगे?

प्रेम बेशर्त है। प्रेम सभी सीमाओं को पार करके मौजूद रहेगा--सुख में, दुख में, जवानी में, बुढ़ापे में।

सिगरेट को पत्नी नहीं झेल पाती। प्रेम सिगरेट से छोटा मालूम पड़ता है, सिगरेट बड़ी मालूम पड़ती है। उसके लिए प्रेम खोने को राजी है, लेकिन प्रेम के लिए सिगरेट की बास झेलने को राजी नहीं है। पति पत्नी से दूर रहने को राजी है, लेकिन सिगरेट छोड़ने को राजी नहीं है। धुआं बाहर-भीतर लेना ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ता है, पत्नी कौड़ी की मालूम पड़ती है। यह कैसा प्रेम है? लेकिन अक्सर सभी प्रेम इसी जगह अटके हैं। सिगरेट की जगह दूसरे बहाने होंगे, दूसरी खूंटियां होंगी; लेकिन अटके हैं।

अगर तुमने चाहा कि दूसरा ऐसा व्यवहार करे जैसा मैं चाहता हूं; बस तुमने प्रेम के जीवन में विष डालना शुरू कर दिया। और जैसे ही तुम यह चाहोगे, दूसरा भी अपेक्षाएं शुरू कर देगा। तब तुम एक-दूसरे को सुधारने में लग गए। प्रेम किसी को सुधारता नहीं। यद्यपि प्रेम के माध्यम से आत्मक्रांति हो जाती है, लेकिन प्रेम किसी को सुधारने की चेष्टा नहीं करता। सुधार घटता है, सुधार अपने से होता है। जब तुम किसी को आपूर प्रेम करते हो, इतना प्रेम करते हो जितना कि तुम्हारे प्राण कर सकते हैं, रत्ती भर बाकी नहीं रखते, तो क्या प्रेमी में इतनी समझ न आ सकेगी तुम्हारे इतने प्रेम के बाद भी कि सिगरेट छोड़ दे? इतनी समझ न आ सकेगी इतने बड़े प्रेम के बाद? तब तो प्रेम बहुत नपुंसक है। और प्रेम नपुंसक नहीं है; प्रेम से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। तुम्हारा प्रेम ही छुड़ा देगा। लेकिन अपेक्षा मत करना। अपेक्षा की कि घाटी की तरफ तुम उतरने लगे। अपेक्षा की और सुधारना चाहा कि बस मुसीबत हो गई।

छोटे-छोटे बच्चे तुम्हारे घर में पैदा होंगे। उनको तुम प्रेम करते हो, लेकिन प्रेम से ज्यादा उनकी सुधार की चिंता बनी रहती है। बस उसी सुधार में तुम्हारा प्रेम मर जाता है। कोई बच्चा अपने मां-बाप को कभी माफ नहीं कर पाता, नाराजगी आखिर तक रहती है। पैर भी छू लेता है, क्योंकि उपचार है, छूना पड़ता है; लेकिन भीतर? भीतर मां-बाप दुश्मन ही मालूम होते रहते हैं। क्योंकि ऐसी छोटी-छोटी चीजों पर उन्होंने बच्चे को सुधारने की कोशिश की। बच्चे को क्या समझ में आता है? उसे समझ में आता है कि जैसा मैं हूं वैसा प्रेम के योग्य नहीं; जैसा

मैं हूं उतना काफी नहीं; जैसा मैं हूं उसको काटना-पीटना, बनाना पड़ेगा, तब प्रेम के योग्य हो पाऊंगा। बच्चे को इसमें निंदा का स्वर मालूम पड़ता है। निंदा का स्वर है।

ध्यान रखना, प्रेम सिर्फ प्रेम करता है, किसी को सुधारना नहीं चाहता। और प्रेम बड़े सुधार पैदा करता है। प्रेम की छाया में बड़ी क्रांतियां घटती हैं। अगर मां-बाप ने बच्चे को सच में प्रेम किया है, बस काफी है। बस काफी है, उतना प्रेम ही उसे सम्हालेगा; उतना प्रेम ही उसे गलत जाने से रोकेगा; उतना प्रेम ही, जब भी वह राह से नीचे उतरने लगेगा, मार्ग में बाधा बन जाएगा। याद आएगी मां की, पिता की, उनके प्रेम की--और उनके बेशर्त प्रेम की--बच्चे के पैर पीछे लौट आएंगे।

लेकिन तुम प्रेम नहीं करते, तुम सुधारते हो। जब तुम सुधारते हो तब तुम्हारे सुधारने की आकांक्षा ही बच्चे के पैरों को गलत मार्ग पर जाने का आकर्षण बन जाती है। बच्चे झूठ बोलेंगे, सिगरेट पीएंगे, गालियां बकेंगे, अभद्रता करेंगे, सिर्फ इसलिए कि तुम सुधारना चाहते हो। तुम उनके अहंकार को चोट पहुंचा रहे हो। वे भी अहंकार से उत्तर देंगे। एक संघर्ष शुरू हो गया। और संघर्ष बड़ा मूल्यवान है, क्योंकि मां-बाप से बच्चों को पहली दफा प्रेम की खबर मिलती थी, वह विषाक्त हो गई।

जो लड़का अपनी मां को प्रेम नहीं कर सका, वह किसी स्त्री को कभी प्रेम नहीं कर पाएगा, हमेशा अड़चन खड़ी होगी। क्योंकि हर स्त्री में कहीं न कहीं छिपी मां मौजूद है। हर जगह हर स्त्री मां है। मां होना स्त्री का गहरा स्वभाव है। छोटी सी बच्ची भी पैदा होती है तो वह मां की तरह ही पैदा होती है। इसलिए गुड्डियों को लगा लेती है बिस्तर से और सम्हालने लगती है, घर-गृहस्थी बसाने लगती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बाहर गई थी। और छोटी लड़की ने, जिसकी उम्र केवल सात साल है, उस दिन भोजन की टेबल पर सारा कार्यभार सम्हाल लिया था और बड़ी गुरु-गंभीरता से एक प्रौढ़ स्त्री का काम अदा कर रही थी। लेकिन उससे छोटा बच्चा पांच साल का, उसे यह बात न जंच रही थी। तो उसने कहा कि अच्छा मान लिया, मान लिया कि तुम मां हो, लेकिन मेरे एक सवाल का जवाब दो कि सात में सात का गुणा करने से कितने होते हैं? उस लड़की ने गंभीरता से कहा, मैं काम में उलझी हूं, तुम डैडी से पूछो।

छोटी सी बच्ची! लेकिन हर लड़की मां पैदा होती है और हर पुरुष अंतिम जीवन के क्षण तक भी छोटा बच्चा बना रहता है। कोई पुरुष कभी छोटे बच्चे के पार नहीं जाता। हर पुरुष की आकांक्षा स्त्री में मां को खोजने की होती है और स्त्री की आकांक्षा पुरुष में बच्चे को खोजने की होती है। इसलिए जब कोई एक पुरुष एक स्त्री को गहरा प्रेम करता है तो वह छोटे शिशु जैसा हो जाता है। और प्रेम के गहरे क्षण में स्त्री मां जैसी हो जाती है। उपनिषद के ऋषियों ने आशीर्वाद दिया है नव-विवाहित युगलों को कि तुम्हारे दस बच्चे पैदा हों और अंत में ग्यारहवां तुम्हारा पति तुम्हारा बेटा हो जाए। उन्होंने बड़ी ठीक बात कही है।

लेकिन मां से अगर बच्चे को प्रेम की सीख न मिल पाई--बेशर्त प्रेम की--फिर कहां सीखेगा? पहली पाठशाला ही चूक गई। और अगर लड़की को अपने बाप से प्रेम न मिल पाया, वह किसी भी पुरुष को प्रेम न कर पाएगी। कुआं पहले झरने पर ही जहरीला हो गया। और फिर जब तुम प्रेम से उलझन में पड़ते हो तब तुम्हारे साधु-संन्यासी खड़े हैं सदा तैयार कि जब तुम उलझन में पड़ो, वे कह दें, हमने पहले ही कहा था कि बचना कामिनी-कांचन से, कि स्त्री सब दुख का मूल है। वे कहेंगे, हमने पहले ही कहा था कि स्त्री नरक की खान है।

तुम्हारे शास्त्र भरे पड़े हैं स्त्रियों की निंदा से। पुरुषों की निंदा नहीं है, क्योंकि किसी स्त्री ने शास्त्र नहीं लिखा। नहीं तो इतनी ही निंदा पुरुषों की होती, क्योंकि स्त्री भी तो उतने ही नरक में जी रही है जितने नरक में तुम जी रहे हो। लेकिन चूंकि लिखने वाले सब पुरुष थे, पक्षपात था, स्त्रियों की निंदा है। किसी तुम्हारे संत-

पुरुषों ने नहीं कहा कि पुरुष नरक की खान। स्त्रियों के लिए तो वह भी नरक की खान है, अगर स्त्रियां पुरुष के लिए नरक की खान हैं। नरक दोनों साथ-साथ जाते हैं--हाथ में हाथ। अकेला पुरुष तो जाता नहीं; अकेली स्त्री तो जाती नहीं। लेकिन चूंकि स्त्रियों ने कोई शास्त्र नहीं लिखा--स्त्रियों ने ऐसी भूल ही नहीं की शास्त्र वगैरह लिखने की--चूंकि पुरुषों ने लिखे हैं, इसलिए सभी शास्त्र पोलिटिकल हैं; उनमें राजनीति है; वे पक्षपात से भरे हैं।

तब तुम्हारे साधु-संन्यासी तैयार हैं, अपनी बंसी में आटा लगाए बैठे हैं कि कब तुम घबड़ा जाओ कि फंस जाओ। जैसे ही तुम घबड़ाए गृहस्थी से, उनका राग जारी ही था, वे तैयार ही थे कि आ जाओ, भागो; हम पहले ही कहते थे; अब तक भटके, अब भागो, छोड़ दो सब।

लाखों-करोड़ों लोगों को प्रेम के जीवन से खींच लिया लोगों ने। और उससे उन्हें कुछ मिला नहीं। हां, इतना जरूर हुआ कि नरक खो गया; लेकिन सीढ़ी भी खो गई जो स्वर्ग तक ले जा सकती थी।

मैं चाहता हूं, तुम अपने जीवन को ठीक से पहचानो; यही जीवन सीढ़ी बनेगा स्वर्ग की। तुम जहां हो वहीं से मार्ग है। कहीं और भाग कर जाना नहीं है। नरक अभी है; वह तुम्हारे कारण है। जरा सी समझ, और नरक की हवाएं स्वर्ग की हवाओं में रूपांतरित हो जाती हैं, नरक की लपटें स्वर्ग की शीतलता में रूपांतरित हो जाती हैं। जरा सी समझ। जरा सा होश।

होशपूर्वक प्रेम मंदिर बन जाता है; मूर्च्छापूर्वक प्रेम कारागृह बन जाता है। इसलिए अगर तुम प्रेम के साथ ध्यान को जोड़ सको--प्रेम धन ध्यान--फिर सब ठीक है। प्रेम धन मूर्च्छा--सब गलत है।

प्रेम से नहीं बचना है; प्रेम में ध्यान और जोड़ देना है। ध्यानपूर्ण प्रेम का नाम ही प्रार्थना है। और तब तुम्हारा छोटा सा बच्चा जिसे तुम प्रेम करते हो तुम्हें छोटा बच्चा नहीं दिखाई पड़ेगा; तुम्हें छोटे से बालकृष्ण के दर्शन उसमें होने शुरू हो जाएंगे। तब उसके ठुमक-ठुमक कर चलने में तुम्हें सूरदास के पदों का अर्थ दिखाई पड़ने लगेगा; तब उसके नन्हे-नन्हे पैरों में बजती पैजनिया उस परम परमात्मा का संगीत हो जाएगा।

जहां तुम हो, प्रेम से मत भागना, प्रेम में ध्यान को जोड़ लेना, इतनी ही मेरी शिक्षा है। और प्रेम मंदिर बन जाएगा।

दूसरा प्रश्नः हम हैं झूठे लोग और लाओत्से हैं सहज और सरल। क्या ये विपरीत छोर कभी मिल पाएंगे?

विपरीत छोर सदा मिल सकते हैं; गहरे में मिले ही हुए होते हैं। क्योंकि विपरीत छोर एक ही चीज के दो छोर हैं; अलग हैं नहीं। इसलिए तुम मिलाने की कोशिश मत करना; मिलाने की कोशिश में मुश्किल होगी; तुम समझने की कोशिश करना कि मिले ही हुए हैं।

जटिलता और सहजता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सत्य और झूठ भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। रात और दिन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मिले ही हुए हैं। तुम्हारे मिलाने की कोई जरूरत नहीं है। जागने की और जानने की जरूरत है कि मिले ही हुए हैं। और जैसे ही तुम जाग कर जानोगे कि मिले ही हुए हैं, तुम तत्क्षण सरल हो जाओगे।

लाओत्से होने के लिए तुम्हें अपनी जटिलता से संघर्ष नहीं करना है, नहीं तो छोर कभी न मिल पाएंगे। क्योंकि जटिलता से जितना संघर्ष करोगे, उतने और जटिल होते जाओगे। यह बड़े सोच लेने की जरूरत है कि जटिल आदमी जब जटिलता से लड़ता है तो और जटिल हो जाता है; जटिलता दुगनी हो जाती है। पहली

जटिलता तो मौजूद ही होती है, अब एक लड़ाई की और जटिलता पैदा हो जाती है। और फिर अगर ऐसा ही तुम करते चले जाओ तो जिसको तर्क-शास्त्री कहते हैं इनफिनिट रिग्रेस, फिर तो तुम अनंतकाल तक करते चले जाओ, कुछ भी न होगा। एक झूठ से लड़ोगे; तुम्हें दूसरा झूठ खड़ा करना पड़ेगा। क्योंकि झूठ से लड़ना हो तो झूठ से ही लड़ा जा सकता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में बैठ कर घर आ रहा है। उसने ऊपर की सीट पर एक टोकरी रखी है, जिस टोकरी के ऊपर कई छेद बने हैं। एक आदमी उस टोकरी में उत्सुक हो गया खास कर छेद क्यों हैं। उसने पूछा कि माफ करें, ऐसी टोकरी मैंने कभी देखी नहीं; इसमें इतने छेद क्यों बने हुए हैं?

नसरुद्दीन ने कहा कि इस टोकरी में एक नेवला है, उसको हवा लेने के लिए सांस की जरूरत है न।

वह आदमी और हैरान हो गया। उसने कहा, नेवला किसलिए है? कहां ले जा रहे हो?

तो नसरुद्दीन ने कहा, अब तुम पूरी बात ही समझ लो, अन्यथा तुम्हारी उत्सुकता बढ़ती चली जाएगी। मेरी पत्नी को रात सपने में सांप दिखाई पड़ते हैं, तो नेवला ले जा रहा हूं सांपों को डराने के लिए।

उस आदमी ने कहा, हद कर दी! सपने में दिखाई पड़ते हैं तो नकली हैं सांप।

तो नसरुद्दीन ने कहा, यह नेवला कोई सच है? है थोड़े ही; बस, ख्याल लिए जा रहे हैं। क्योंकि झूठे सांपों को डराने के लिए असली नेवले की थोड़े ही जरूरत है। और झूठे सांप से असली नेवले को मिलाओगे कैसे? झूठे सांप से तो झूठे नेवले की ही लड़ाई हो सकती है।

अगर तुम्हें कोई झूठी बीमारी पकड़ जाए तो असली चिकित्सा की जरूरत है? तो और मुश्किल में पड़ोगे। झूठी अगर बीमारी पकड़ जाए तो एलोपैथ डॉक्टर के पास मत जाना, नहीं तुम बहुत झंझट में पड़ोगे। क्योंकि उसकी दवाई और जटिलता पैदा करेगी। अगर झूठी बीमारी पकड़ जाए तो उसके लिए ही संत हैं, साधु हैं, साईंबाबा हैं, वहां जाना। क्योंकि झूठी बीमारी के लिए झूठी राख की जरूरत है; वह काम करती है। असली बीमारी के लिए असली दवा की जरूरत है; झूठी बीमारी के लिए झूठी दवा की जरूरत है।

जब तुम एक झूठ से लड़ते हो तब तुम दूसरा झूठ खड़ा करते हो। फिर तुम और घबड़ा जाओगे कि दूसरा भी झूठ है तो इससे भी लड़ना है, तो तीसरा झूठ खड़ा करते हो। फिर इसका कोई अंत नहीं है। फिर दर पर्त, पर्त दर पर्त झूठ बढ़ता चला जाएगा। तुम अपने ही उपद्रव में ग्रस्त हो जाओगे।

नहीं, झूठ अगर है तो लड़ना नहीं है उससे, सिर्फ जानना है, जागना है। जागते ही झूठ गिर जाता है। तुम्हारी जटिलता झूठ है, वास्तविक तो नहीं। वस्तुतः तो तुम उतने ही सरल हो जितना लाओत्से। तुम्हारे प्राणों के प्राण में तो तुम उतने ही सरल हो जितना कि कोई बुद्ध पुरुष। जरा भी भेद नहीं है, रत्ती भर भेद नहीं है। क्योंकि अगर वहां भेद हो गया होगा तो फिर कोई सुधारने का उपाय नहीं है। वहां तो तुम वैसे ही सरल हो जैसे नवजात शिशु, सुबह पड़ी ओस, सांझ को निकला पहला तारा, एकदम ताजे। लाओत्से, बुद्ध और महावीर और कृष्ण की ताजगी में और तुम्हारी भीतर की ताजगी में रत्ती भर फासला नहीं है, फर्क नहीं है। तुम वही हो जो वे हैं। फासला है तो तुम्हारे ऊपर की पर्तों में है। वह तुमने जो झूठ के वस्त्र पहन रखे हैं।

उन झूठ के वस्त्रों से लड़ने की कोई जरूरत नहीं; सिर्फ समझ लेना है कि वे झूठ हैं। उनको उतारना भी न पड़ेगा, क्योंकि उतारने का तो मतलब तब होता जब वे सच्चे होते। तुम हो तो नग्न ही; झूठ के वस्त्र पहने हुए हैं। उनको उतारना थोड़े ही पड़ेगा; जान लोगे, देख लोगे, उतर गए। होश काफी है। सजगता काफी है।

इसलिए तो सारे बुद्ध पुरुष एक ही बात कहे चले जाते हैंः ध्यान, ध्यान, ध्यान। ध्यान का अर्थ हैः तुम जाग जाओ, बस। तुम जरा होश से अपने को देखो।

समझो तुम घर आए, पत्नी के लिए तुम द्वार पर ही तैयार होने लगे, तुमने ओंठों पर मुस्कान खींच ली, जो कि झूठ है। ओंठों का अभ्यास कर लिया है तो ओंठ खींच लेते हो तुम। कुछ लोग तो इतना अभ्यास कर लेते हैं कि नींद में भी उनके ओंठ ढीले नहीं होते, खिंचे ही रहते हैं। अभ्यास ज्यादा हो जाए तो हंसने की जरूरत ही नहीं रहती, बस ओंठ खिंचे ही रहते हैं। तुमने ओंठ खींच लिए हैं। अब क्या करना पड़ेगा इस झूठी मुस्कान से हटने के लिए?

जरा होश करो, ओंठ वापस लौट जाएंगे अपनी जगह। होश आते ही कि तुम्हारे भीतर कोई हंसी नहीं तो क्यों ओंठ पर ला रहे हो? और तुम किसे धोखा दे रहे हो? पत्नी को? दुनिया में कोई कभी नहीं दे पाया; तुम असंभव करने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारे खिंचे हुए ओंठ से कुछ अंतर न पड़ेगा। बल्कि तुम्हारे खिंचे ओंठ सिर्फ इतनी ही खबर पत्नी को देंगे कि जरूर कोई अपराध करके आ रहे हो। नहीं तो हंस क्यों रहे हो? मुस्कुरा क्यों रहे हो? किसको धोखा देने की कोशिश कर रहे हो? तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी है। तुम अपने को ही धोखा दे रहे हो। थोड़े जागो। कुछ करो मत, मुस्कुराहट को खिंची रहने दो; तुम सिर्फ जाग कर देखो कि यह झूठ है। और तुम पाओगे कि ओंठ अपनी जगह आ गए।

यह मुट्ठी मैं बांधे हुए हूं जबरदस्ती। इसको खोलने के लिए कुछ करना थोड़े ही पड़ेगा; सिर्फ मुझे इतना समझ लेना जरूरी है कि मैं जबरदस्ती बांधे हूं, अकारण बांधे हूं, इसका कोई सार नहीं; मुट्ठी खुल गई। खोलना थोड़े ही पड़ती है, सिर्फ बांधना पड़ती है। और जब समझ आ गई तो बांधना छूट जाता है, खुल जाती है।

समझ सरल है; नासमझी जटिल है। ज्ञान बिल्कुल सरल है; अज्ञान बहुत जटिल है।

तो तुम यह मत पूछो कि लाओत्से जैसे सरल होने के लिए तुम्हें क्या करना पड़ेगा। तुम हो ही; बस जाग कर देखना है अपने स्वभाव को। संपदा तुम्हारे पास है, कहीं खोजने नहीं जाना; सिर्फ आंख खोलनी है। तुमने खोया कुछ भी नहीं है; सिर्फ ख्याल है कि खो दिया है। स्मरण ले आना है। खो तो तुम सकते ही नहीं, क्योंकि अगर खो सकते तो फिर पाने का कोई उपाय न था। कौन खोएगा? तुम्हारा स्वभाव है सरलता।

जटिल होने के लिए तुम्हें चेष्टा करनी पड़ती है। जटिल होने के लिए तुम्हें सदा अपने पहरे पर रहना पड़ता है। तुम ख्याल करोः जटिल होने के लिए कुछ करना पड़ता है। सरल होने के लिए क्या करना है? ऐसे ही समझो कि किसी आदमी को कहीं जाना हो तो चलना पड़ता है। और कहीं न जाना हो, घर में ही बैठना हो, तो चलना पड़ता है? आदमी बैठ जाता है। घर में तो है ही। जब भी तुम्हें कुछ करना पड़ता है, उसका अर्थ हैः कुछ तुम पाने चले हो जो तुम्हारे स्वभाव में नहीं है।

ऐसा हुआ, बोधिधर्म के पास चीन का सम्राट मिलने आया। और उस सम्राट ने कहा कि मैं बड़ा क्रोधित हो जाता हूं और कुछ क्रोध के लिए उपाय बताओ, कैसे इससे छुटकारा पाऊं? तो बोधिधर्म ने पूछा, तुम चौबीस घंटे क्रोध में रहते हो या कभी-कभी? उसने कहा कि चौबीस घंटे तो कौन क्रोध में रहता है? कभी-कभी! तो बोधिधर्म ने कहा, बहुत फिक्र मत करो। क्योंकि जो कभी-कभी है, वह स्वभाव नहीं हो सकता; स्वभाव तो चौबीस घंटे होता है।

स्वभाव का मतलब है कि सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते, खाते-पीते, पुण्य करते, पाप करते, चोरी में, साधुता में, सदा साथ है। स्वभाव यानी तुम। स्वभाव को कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। स्वभाव कोई कृत्य थोड़े ही है; स्वभाव तो तुम्हारा बीइंग है, तुम्हारा अस्तित्व है।

इसलिए यह पूछो ही मत कि हम क्या करें कि विरोधी छोर मिल जाएं; विरोधी छोर मिले ही हुए हैं। तुम कृपा करके कुछ करो मत; थोड़ा न-करने में ठहरो; थोड़ी देर के लिए कुछ मत करो। थोड़ी देर तुम चुप बैठ

जाओ और कुछ मत करो। रोज अगर तुम एक घड़ी भर चुप बैठ जाओ और कुछ न करो। विचार आएंगे, आने दो, जाने दो। उनको रोको भी मत, क्योंकि वह भी करना है। यह भी मत करो कि इनको न आने देंगे, क्योंकि वह भी करना है। तुम कुछ करो ही मत; जो हो रहा है होने दो। पाप के विचार उठ रहे हैं, उठने दो। तुम कौन है? आया है धुआं, चला जाएगा अपने आप; अपने आप आया है, अपने आप चला जाएगा। तुम जरा चुपचाप बैठे रहो, देखते रहो।

अगर तुम इतना ही कर लो, घड़ी भर खाली बैठना, तुम अचानक एक दिन पाओगे लाओत्से भीतर अपनी पूरी गरिमा में प्रकट हो गया है; बुद्ध विराजमान हैं, तुम बोधिवृक्ष बन गए; तुम्हारी छाया में बुद्धत्व विराजमान है; तुमने पा लिया परम। उसे तुमने कभी खोया न था। सारी कठिनाई मूर्च्छा की है।

जो तुमसे कहता है, ईश्वर को खोजना है, कहीं ईश्वर आकाश में है, वह तुम्हें भटकाएगा। मैं तुमसे कहता हूं, ईश्वर को खोजना नहीं; तुमने कभी खोया नहीं; ईश्वर तुम्हारे भीतर है, तुम हो। तुम्हारे भीतर कहना भी ठीक नहीं, तुम हो। जरा धूल जम गई है यात्रा की; स्नान की जरूरत है, बस। लंबी यात्रा करके आ रहे हो, धूल-धूसरित हो गए हो। बहुत झूठ जीए हैं, झूठ की पर्तें तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठी हो गई हैं। लेकिन झूठ की ही पर्तें हैं, कुछ भय का कारण नहीं है। सत्य बलशाली है। झूठ की पर्तों का क्या बल है? सत्य का दीया जला, झूठ की पर्तें तिरोहित हो गईं; जैसे अंधेरा मिट जाता है दीये के जलते।

इसे अगर तुम स्मरण रख सको तो यह समस्त शास्त्रों का सार है कि तुम परमात्मा हो; थोड़े सोए हुए, थोड़े अलसा गए हो, थोड़ी झपकी खा गई; बस। थोड़ा आंखों में पानी मार लो, एक कप चाय पी लो, थोड़ा होश सम्हालो। कुछ कभी खोया नहीं है। किसी ने कभी कुछ खोया नहीं है। क्योंकि खोना संभव ही नहीं है।

तीसरा प्रश्नः आप बहुधा कहते हैं कि अति पर ही रूपांतरण घटित होता है; लेकिन लाओत्से कहते हैं कि शुरू में ही रुक जाना, बात छोटी हो तभी उसे सुलझा लेना। दोनों बातों को सुन कर साधक की उलझन बढ़ जाती है। कृपया इसका समाधान करें।

उलझन बढ़ाना ही चाहते हो तो हर चीज सुन कर बढ़ जाएगी। ऐसा लगता है उलझन की तलाश में हो, खोज रहे हो कि कहां उलझन बढ़ जाए। अन्यथा बात बिल्कुल सीधी है, उलझन का कोई सवाल ही नहीं है।

दोनों में कोई विरोध नहीं है। पहला कदम भी अति है और अंतिम कदम भी अति है; दोनों एक्सट्रीम हैं। पहला कदम उठाने के पहले ही रुक जाना, यह एक अति। और अंतिम कदम उठाने के बाद ही रुक सकोगे, यह दूसरी अति। इसमें भेद जरा भी नहीं है। लाओत्से भी कह रहा है कि अति पर ही रूपांतरण होगा; मैं भी कह रहा हूं, अति पर ही रूपांतरण होगा। लाओत्से कह रहा है, पहले कदम के पहले ही रुक जाना। और तुमने पहला कदम उठा लिया है, इसलिए मैं कह रहा हूं, अब आखिरी कदम उठा लो। अब तुमको लाओत्से काम नहीं आएगा, मैं काम आऊंगा। क्योंकि लाओत्से का अब तुम क्या करोगे? तुम पहला कदम तो कब का उठा चुके। कितना चल चुके संसार में! अब कोई पहला कदम उठाने का सवाल है? हजारों कदम उठा लिए, हजारों मील की लंबी यात्रा पर तुम आ चुके। तो अब मैं तुमसे कहता हूं, देर मत करो; अब पूरी ही कर लो यात्रा और आखिरी कदम उठा लो।

क्रांति या तो पहले कदम के पहले होती है या आखिरी कदम के बाद होती है, मध्य में नहीं हो पाती। क्योंकि मध्य में तुम अधकचरे होते हो। वहां क्रांति कैसे हो सकती है? या तो तब जब तुम बिल्कुल सरल बालक

की तरह थे, कि जटिलता तुम्हें छुई ही न थी, तुम बिल्कुल कुंआरे थे, तुमने वासना जानी ही न थी, तब। और या फिर वासना को जान ही लो पूरा, उसके सब रूपों में जान लो, ताकि मन में अटका हुआ कहीं कोई भाव न रह जाए कि कुछ अनजाना रह गया। उसे जान लो सब रूपों में, शुभ-अशुभ, ताकि भर जाए मन, ताकि तुम ऊब जाओ, ताकि तुम अपनी पीड़ा से ही जागने लगो; आखिरी कदम उठा लो। कुनकुने-कुनकुने क्रांति नहीं होती।

लाओत्से बिल्कुल ठीक कहता है; जरा भी भूल नहीं है। लेकिन किसके काम पड़ेगी लाओत्से की बात? तुम्हारे काम पड़ेगी? तुमने काफी कदम उठा लिए हैं। कहां खोज पाओगे तुम वह आदमी जो पहला कदम नहीं उठाया है? कैसे खोजोगे उस आदमी को?

लाओत्से की बात ठीक है, लेकिन काम की नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह काम की है। मैं तुम्हें देख कर कह रहा हूं। मैंने अभी तक एक आदमी नहीं देखा जिसने पहला कदम न उठाया हो। क्योंकि वैसा आदमी मेरे पास भी कैसे आएगा? मेरे पास आने के लिए भी काफी कदम उठा लिए हों तभी तो आ पाओगे। तो इसलिए कहता हूं, आखिरी कदम उठा लो। और बहुत देर हो गई, ऐसे भी बहुत चल लिए; कुछ ज्यादा बचा नहीं है, थोड़े कोने-कातर में कहीं पड़ा रह गया है, उसको भी निबटा लो। मेरा आग्रह यह है कि कहीं तुम आधे मन से क्रांति में मत चले जाना, नहीं तो वह जो आधा मन पीछे रह गया है, बार-बार खींचेगा।

हमारे पास एक शब्द हैः योगभ्रष्ट। उसका कुल मतलब इतना ही होता है कि किसी आदमी ने आधे में कदम उठा कर योगी हो गया। अभी संसार से परिपूर्ण रूप से तृप्त न हुआ था या अतृप्त न हुआ था। अभी संसार कुछ रह गया था मन में, कहीं वासना दबी थी, कहीं रस कायम था; अभी सोचता था, कुछ जानने को बातें बाकी रह गईं, समय के पहले उठा लिया गया; कच्चा था, पका न था। कच्चा फल किसी ने तोड़ लिया; घाव रह गया वृक्ष में भी और फल भी अधूरा रह गया। अभी रसधार बह रही थी। अभी वृक्ष से टूटने का समय न आया था। अभी परिपक्वता न हुई थी। ऐसा कोई बीच में कोई दुर्घटना के कारण हो गया।

दुर्घटनाएं संभव हैं। पढ़ लिया कोई शास्त्र, हो गए प्रभावित क्षण भर को; क्षण भर में कर बैठे कोई गलती, निकल पड़े घर से। अब लौटना मुश्किल; लोग हंसेंगे। और साधु-संन्यासी तरकीब जानते हैं। जब भी वे किसी को दीक्षा देते हैं तो भारी बैंड-बाजा बजवाते हैं, ताकि सबको पता चल जाए कि यह आदमी ने संन्यास ले लिया। कोई मेरे जैसा चुपचाप थोड़े ही दे देते हैं कि किसी को पता ही नहीं चलता। तुमको ही पता नहीं चलता कि तुम कैसे संन्यासी हो गए, दूसरे की तो बात अलग। न कोई बैंड-बाजा बजता, न कोई हाथी पर यात्रा निकलती, शोभायात्रा। वह तरकीब है। उसके पीछे कारण है। वह बड़ा ट्रेड सीक्रेट है। क्योंकि जब हाथी पर निकल गई यात्रा तो अहंकार चढ़ गया हाथी। अब आसानी से लौट न पाओगे। खुद पत्नी हाथ जोड़ेगी।

ऐसा हुआ। मेरे एक मित्र जैन संन्यासी हैं। समझ आई कि यह तो आधे में भाग खड़े हुए। तो मैंने कहा, छोड़ दो। उन्होंने कहा, छोड़ दो? अपने बाप को पूछता हूं कि घर आ जाऊं? वे कहते हैं, अब हमारी बदनामी करवाओगे। पत्नी को पूछता हूं। पत्नी कहती है, भूल कर इस घर में कदम मत रखना। पहले छाती पीट-पीट कर रोती थी। और अब कहती है, अब बदनामी होगी।

वे हाथी पर चढ़ गए। अब अपने ही लोग लेने को तैयार नहीं हैं। अब कोई लेने को तैयार नहीं है। अब जहां जाएंगे वहां पदभ्रष्ट, पतित समझे जाएंगे। वह चढ़ाना एक तरकीब है। वह तरकीब है जिससे लौटना संभव न रहे। इसलिए खूब बैंड-बाजे बजते हैं, स्वागत-समारंभ होता है, कोई बड़ी भारी घटना घट रही है।

हो क्या रहा है? क्या घटना घट रही है? एक आदमी घर छोड़ कर जा रहा है; इतने शोरगुल की क्या जरूरत है? अगर समझपूर्वक जा रहा है तो खुद ही कहेगा, यह शोरगुल किसलिए? अब तक नासमझ था, अब

समझ आ गई, बात खत्म हो गई! अब तक नाली में पड़ा था, क्योंकि होश न था, अब होश आ गया। शराबी रात नाली में गिर गया, सुबह होश आ जाता है तो तुम बैंड-बाजा बजा कर जुलूस निकालते हो कि अब इसको होश आ गया? अब यह नाली से उठ गया? होश आ गया, अपने आप खुद घर पहुंच जाता है।

लेकिन शोरगुल मचाने के पीछे कारण है। वह कारण यह है कि तुम्हारे अहंकार को इतना फुला दिया जाए कि जब तुम खुद ही घर में जाना चाहो तो दरवाजा छोटा मालूम पड़े और कोई तुम्हें लेने को राजी न होगा फिर। खुद तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे हाथ जोड़ेंगे कि अब तुम ऐसी भूल--एक भूल तो यह की कि भाग गए, अब यह दूसरी भूल और न करो। सारा संसार तुम्हें रोकेगा। अब तुम्हारे अहंकार का सवाल है, इज्जत का सवाल है।

तो उन संन्यासी को उनके पिता ने कहा कि आत्महत्या कर लो, लेकिन घर मत आना। हमारा भी तो कुछ सोचो।

अब वे संन्यासी पड़े हैं बेमन से। वासना घर की तरफ भाग रही है; परमात्मा की याद नहीं आती, पत्नी की याद आती है। पढ़ते हैं शास्त्र; मन में संसार चलता है। और दूसरों को भी समझा रहे हैं। वे मुझसे कहते थे, मेरी तकलीफ यह है कि अब मैं दूसरों को भी यही समझा रहा हूं कि छोड़ो, कहां पड़े हो! और मैं खुद मुसीबत में हूं कि क्यों छोड़ा। यहां आकर न तो कुछ आनंद मिल रहा है, न कोई मोक्ष का स्वाद आ रहा है। और अब ऐसा लगता है कि जो मिल रहा था, शायद वही मिल सकता है, और ज्यादा मिल नहीं सकता।

न घर के न घाट के। कहते हैं नः धोबी का गधा, न घर का न घाट का। वैसी दशा हो जाएगी, कच्चा कोई टूट जाएगा तो। तो मैं नहीं कहता कि तुम कच्चे लौट जाना। इसलिए मैं कहता हूं, अति से क्रांति होती है। तुम जी ही लो, तुम भरपूर जी लो। तुम्हें जितना भोजन में रस हो उसे पूरा कर लो; वमन की स्थिति आ जाने दो। तुम खुद ही अपने अनुभव से परिपक्व हो जाओ। संसार में कुछ बचे ही न--इसलिए नहीं कि शास्त्र कहते हैं--इसलिए कि तुमने जाना। इसलिए नहीं कि साधु-संन्यासी गुणगान करते हैं मोक्ष के आनंद का; उससे कुछ न होगा; उससे तुम लोभ में पड़ जाओगे। बहुत से लोभी उसमें फंस गए हैं। वह दुर्घटना है।

तुम, परमात्मा को मिलने से परम आनंद होगा, इस लोभ में मत पड़ना। क्योंकि जो परमात्मा में आनंद की तलाश में जा रहा है, अभी उसकी सुख की भूख समाप्त नहीं हुई। तुम यह मत सोचना कि मोक्ष में अहर्निश वर्षा हो रही है अमृत की। अमृत की आकांक्षा से अगर तुम जा रहे हो तो अभी मृत्यु का भय तुम्हारा समाप्त नहीं हुआ; अभी तुम मौत से डरे हुए हो। और यह मत सोचना कि स्वर्ग में अप्सराएं नाच रही हैं, जिनकी स्वर्ण-काया है, और जिनकी देह से पसीना और पसीने की बदबू कभी नहीं आती; सदा फूलों की बहार! और जो सोलह साल से ज्यादा जिनकी उम्र कभी होती नहीं, रुक गई हैं सोलह साल पर, रिटार्डेड, वहां से आगे वे बढ़ती नहीं हैं, ऐसी अप्सराएं तुम्हारे आस-पास नाच रही हैं स्वर्ग में। बैठे हैं कल्पतरु के नीचे, जो भी इच्छा है फौरन पूरी हो जाती है।

अगर इस वासना से तुम धर्म की तरफ गए हो तो दुर्घटना होगी। क्योंकि न तो ऐसा कहीं कोई स्वर्ग है--यह तो साधुओं द्वारा फेंका गया जाल है मछलियों को फांसने के लिए--न कहीं कोई ऐसी अप्सराएं हैं, कंचन-स्वर्ण की कोई देह नहीं हैं कहीं, और न ही कहीं कोई कल्पतरु हैं जिनके नीचे बैठ कर सब वासनाएं पूरी हो जाएं। तो फिर तुम अभी वासनाओं से भरे हो। संसार में जो नहीं पूरा कर पाए, वह कल्पतरु के नीचे पूरा करने की चेष्टा कर रहे हो। संसार की स्त्रियों से जो नहीं मिल सका, वह अप्सराओं से आशा बांधे हुए हो। मगर फंसे हो; अभी अनुभव नहीं हुआ।

ज्ञानी तो कहेगा कि अगर स्वर्ग में भी अप्सराएं हैं तो फिर यहीं क्या बुरा? और अगर वहां भी वासनाएं ही तृप्त होंगी कल्पतरु के नीचे तो यहां क्या बुराई है?

मैंने तो एक उलटी ही कहानी सुनी है। मैंने तो सुना है कि एक फकीर रात सोया और उसने देखा कि वह कल्पतरु के नीचे बैठा है। बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा हैः कल्पतरु। निऑन के अक्षरों में लिखा है, चमक रहा है। अरे, उसने कहा, आ गए स्वर्ग! देखें शास्त्र में जो लिखा है, सच है या नहीं? उसने फौरन आज्ञा दी--कोई वहां दिखाई तो पड़ता नहीं--भोजन! बड़े सुंदर थाल सजे आ गए। उसने कहा, निश्चित है। अप्सराएं! अप्सराएं नाचने लगीं; वाद्य-संगीत बजने लगे।

ऐसा कुछ दिन चला। लेकिन कितनी देर चला सकते हो इसको? इससे भी ऊब आने लगी। जब भोजन कहो तब भोजन आ जाए; जब बिस्तर लगवाओ, बिस्तर लग जाए; जब अप्सराएं कहो, अप्सराएं नाचने लगें; कितनी देर चलाओगे इसको?

आदमी थोड़ा बेचैन होने लगा। उसने कहा कि भई, कुछ काम भी करने को मिल सकता है कि नहीं? आखिर बैठे-बैठे कब तक यह चलेगा; कुछ करना भी!

आवाज आई, यही तो तकलीफ है। यहां काम नहीं है। यहां तो तुम जो चाहो बिना काम के पूरा होता है। काम का कोई सवाल ही नहीं है।

तो उसने कहा, इससे तो नरक में बेहतर।

भीतर से आवाज आई, और तुम समझ क्या रहे हो कहां हो? यह नरक ही है!

तुम्हारे कल्पवृक्ष तुम्हें नरक में ही ले जाएंगे, क्योंकि तुम्हारे कल्पवृक्षों की तलाश ने ही तो तुम्हारे संसार को नरक बना दिया है। तुम्हारा संसार संसार के कारण थोड़े ही नरक है; तुम्हारी वासनाओं के कारण नरक है। वासनारहित होकर जब इसी संसार को कोई देखता है तो परमात्मा को विराजमान पाता है। सब जगह उसी का हस्ताक्षर, उसी के पदचिह्न; पत्ते-पत्ते में वही, कण-कण में वही, हर जगह वही, अनेक रूपों में वही रूपायित, हर आकार में वही निराकार। यह तो तुम्हारी वासना के कारण संसार नरक हो गया है; संसार के कारण संसार नरक नहीं है। संसार तो मोक्ष है। तुम हो नरक का सूत्र।

अधूरे टूट गए, तो तुम जहां भी जाओगे वहीं संसार बना लोगे।

मैंने सुना है। एक सूफी कहानी है। एक आदमी था। गांव के लोग उसको बुद्धू समझते थे, इसलिए उसका नाम बेवकूफ रख लिया था। और वह धीरे-धीरे आदी हो गया था; गांवों में ऐसा अक्सर हो जाता है। बेवकूफ ही उनका नाम हो गया था। और उनकी पत्नी का नाम फजीती था। फजीती, उपद्रव। और बेवकूफ की पत्नी होएगी ही फजीती। इसमें कोई, बिल्कुल बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है।

एक दफा फजीती से बेवकूफ का झगड़ा हो गया और फजीती भाग गई। तो उसे खोजने निकला। बड़ी मुश्किल में पड़ गया, क्योंकि बेवकूफ बिना फजीती के रह भी नहीं सकता। फजीती के साथ भी नहीं रह सकता बेवकूफ और बिना फजीती के भी नहीं रह सकता। तुम्हें भी पता है। पत्नी के बिना भी नहीं रह सकते हो और पत्नी के साथ भी नहीं रह सकते हो। यही तो फजीता है। खोजते हुए एक सूफी फकीर के पास पहुंच गया। और उसने कहा कि महाराज, यहां मेरी पत्नी को तो नहीं देखा? उसने पूछा, तुम हो कौन? उसने कहा कि मेरा नाम बेवकूफ है और मेरी पत्नी का नाम फजीती है, और वह घर छोड़ कर भाग गई है। उस सूफी फकीर ने कहा, नासमझ, बेवकूफ अगर पक्का है तो फजीती कहीं भी मिल जाएगी। तू फिक्र क्यों कर रहा है?

तो संसार तुम्हें कहीं भी मिल जाएगा। तुम फिक्र क्या कर रहे हो? आश्रम में मिल जाएगा, हिमालय पर मिल जाएगा। बेवकूफ होना जरूरी है, फजीती कहीं भी मिल जाएगी। संसार भरा है फजीतियों से; इसमें कहीं खोजने की जरूरत है? कहां भटक रहा है? तू सिर्फ बैठ जा, फजीती खुद आएगी। बेवकूफ होना पर्याप्त है। इसलिए तुम संसार को छोड़ कर न भाग सकोगे; तुम जहां जाओगे वहीं संसार आ जाएगा।

पक कर ही कोई क्रांति घटती है; कच्चे तो तुम नासमझ ही रहोगे। इसलिए कहता हूं, देर न करो; पको। अनुभव में जाओ। प्रत्येक चीज को होश से जीओ। और धीरे-धीरे तुम खुद ही देख लोगे, इस संसार में न तो कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है।

इस बात को मैं फिर से दोहरा दूं। अगर तुम कच्चे हो तो तुम समझोगे, संसार में कुछ छोड़ने योग्य है। अगर तुम पके हो तो तुम पाओगे, न तो कुछ पकड़ने योग्य है, न कुछ छोड़ने योग्य है। त्याग करने योग्य भी क्या है यहां? जब भोग करने योग्य ही कुछ नहीं है तो त्याग करने योग्य भी कुछ नहीं है।

तो जो आदमी भोग के विपरीत त्याग करता है उसकी नासमझी बदलती नहीं। जिसके लिए भोग और त्याग दोनों व्यर्थ हो जाते हैं, न पकड़ने योग्य, न छोड़ने योग्य। यहां संपदा ही नहीं है, पकड़ोगे क्या और छोड़ोगे क्या? त्याग भी अज्ञानी करता है, भोग भी अज्ञानी करता है; ज्ञानी तो सिर्फ जाग जाता है और पाता है कि भोग-त्याग दोनों सपने के हिस्से थे, गहरी निद्रा में घटते थे, जागने पर नहीं घटते हैं। ज्ञानी तो सिर्फ जीता है; न भोगता, न त्यागता। ज्ञानी तो साक्षी होता है, न तो भोक्ता बनता और न त्यागी बनता, कर्ता नहीं बनता। कर्ता ही तो अज्ञानी होना है।

लाओत्से और मेरी बात में कोई विरोध नहीं है। लाओत्से वह बात कह रहा है जो तुम्हारे बहुत काम की नहीं है। मैं वह बात कह रहा हूं जो तुम्हारे काम की है। बातें दोनों सही हैं◌ः अति पर क्रांति घटित होती है।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा था, परमात्मा सामने मौजूद हो तो सोचो कि क्या मांगोगे? आप हमारे सामने मौजूद हैं और कहते हैं कि पूछना हो तो पूछो। मैं कागज और कलम लेकर बैठता हूं और मेरी मांगें और प्रश्न लिखना चाहता हूं। घंटे निकल जाते हैं तो पाता हूं कि कागज कोरा का कोरा ही रह जाता है; लेकिन कागज और कलम हाथ से गिरते नहीं क्यों?

महत्वपूर्ण है। समझना जरूरी है।

तीन दशाएं हैं। एक तो तुम कागज-कलम लेकर बैठो कि क्या मांगना है, क्या पूछना है, और तत्क्षण हजारों प्रश्न उठ आएं, हजारों मांगें उठ आएं, जैसा कि सौ में निन्यानबे लोगों के लिए घटेगा। तुम यह तय न कर पाओगे कि अब क्या छोड़ें और क्या मांगें। हजार-हजार मांगें उठ आएंगी। तुम बड़ी बिगूचन में पड़ जाओगे कि क्या चुनें और क्या छोड़ें। कागज छोटा मालूम पड़ेगा, मांगें ज्यादा मालूम पड़ेंगी। कलम की स्याही पर्याप्त न मालूम पड़ेगी। प्रश्न बहुत उठेंगे, अनंत उठेंगे। एक तो यह दशा है।

साधारणतः जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी ध्यान का कोई अनुभव नहीं किया है, उसकी यह दशा है। अगर जीवन में ध्यान की थोड़ी झलक आनी शुरू हुई तो यह स्थिति पैदा होगी कि तुम कागज-कलम लेकर बैठोगे, हाथ रुके रहेंगे; कुछ भी सूझेगा न क्या पूछें! कुछ पूछने योग्य न लगेगा। कुछ मांगने योग्य न लगेगा। मन खाली रहेगा और मन की तरह ही कोरा कागज कोरा रह जाएगा। लेकिन हाथ से कलम-कागज गिरेंगे भी नहीं।

फिर एक तीसरी दशा है जो समाधिस्थ की दशा है। उसके हाथ से कागज-कलम भी गिर जाएंगे। क्योंकि ध्यान की अवस्था मध्य में है। तुम सोच भी नहीं पाते, क्या पूछें! कुछ उठे भी पूछने योग्य तो लगता नहीं पूछने योग्य, व्यर्थ मालूम पड़ता है, कूड़ा-कर्कट मालूम पड़ता है।

ध्यान की थोड़ी सी झलक ने सब प्रश्न व्यर्थ कर दिए; ध्यान की थोड़ी सी झलक ने सब मांगें व्यर्थ कर दीं। लेकिन अचेतन में ऐसा लगता है कि शायद कुछ पूछने जैसा बाकी हो; शायद कोई प्रश्न जो ख्याल में न आ रहा हो, अभी बाकी हो। इसलिए हाथ में कागज-कलम पकड़े रह जाते हो। संदेह है। ध्यान अभी समाधि नहीं बनी। अभी असंदिग्ध नहीं हो कि सच में ही कोई सवाल नहीं रहा; हो सकता है यह सवाल ठीक न हो, लेकिन कोई सवाल भीतर छिपा हो और पीछे आता हो। माना कि ये मांगें व्यर्थ हो गईं, लेकिन शायद कोई मांग हो अंतरतम में छिपी, जो कतार में बहुत पीछे खड़ी हो और आ रही हो पास। इसलिए छोड़ भी नहीं पाते कागज-कलम; शायद कोई ठीक-ठीक प्रश्न, कोई ठीक-ठीक मांग उठ ही आए। प्रतीक्षा करते हो!

तीसरी अवस्था है समाधिस्थ की, जिसका चेतन और अचेतन एक हो गया। अब वह सब तरफ देख पाता है। अचेतन छिपा नहीं है अंधेरे में; प्रतीक्षा की कोई जरूरत नहीं है; रोशनी है भीतर। कोई प्रश्न नहीं है, कोई मांग नहीं है; कागज-कलम गिर जाते हैं।

ये तीन दशाएं हैं। साधारण चित्त की दशाः प्रश्न ही प्रश्न, इतने कि कहां सम्हालो! मांगें ही मांगें, इतनी कि अंत नहीं मालूम होता! फिर ध्यान की मध्यस्थ अवस्था हैः जब विचार थोड़े शांत हो गए; मन थोड़ा तल्लीन होने लगा; उखड़ा वृक्ष थोड़ा-थोड़ा जमने लगा, जड़ें पकड़ने लगा। अभी पकड़ ही नहीं लीं पूरी जड़ें, आश्वस्त नहीं है, लेकिन अब चंचल भी नहीं है। अभी बिल्कुल मिट नहीं गया, लेकिन शांत हुआ। विक्षिप्तता चली गई है; विमुक्ति आने को है। जो व्यर्थ था वह जा चुका है; सार्थक के आने की प्रतीक्षा है। घर अभी खाली है। संसार हटने लगा पीछे मन से; परमात्मा अभी विराजमान नहीं हो गया है। सिंहासन संसार से तो खाली हो गया है; लेकिन प्रभु के पदार्पण की थोड़ी देर है।

तीसरी अवस्था है जब कि सिंहासन फिर भर गया। एक तो चंचल मन है--भरा हुआ मन, व्यर्थ कचरे से, कूड़े से। फिर ध्यानस्थ का मन है--शून्य मन, खाली मन। फिर समाधिस्थ का मन है--फिर भर गया, सार्थक से, सार से, परमात्मा से।

तो एक तो भरे हुए तुम हो, संसार से; फिर एक भरे हुए संत हैं, परमात्मा से। और तुम दोनों के बीच में साधक है; संसार से खाली, परमात्मा से अभी भरा नहीं। इसलिए ऐसा होगाः कोरा कागज कोरा रह जाएगा, फिर भी हाथ से कलम छूटने की हिम्मत न आएगी। लगेगा, शायद! शायद! अब आता हो, अब मांग उठती हो, कौन जाने? क्योंकि बहुत अंधेरा है भीतर। थोड़ा सा कोना प्रकाशित हो गया है। उस प्रकाशित में तो तुम आश्वस्त हो कि कोई मांग नहीं, कोई प्रश्न नहीं। लेकिन अंधेरे में जो दबे कोने हैं, उनके संबंध में कौन भरोसा दिलाए? शायद कोई तरंग उठ आए। इसलिए।

लेकिन कीमती दशा है। इतना भी कुछ कम नहीं। विक्षिप्तता से इतना भी छूट जाना बहुत है, आधी मंजिल पूरी हो गई। और जब आधी पूरी हो गई तो शेष आधी भी पूरे होने में कोई देर नहीं है; वह भी जल्दी पूरी हो जाएगी। जिसने पहला कदम उठा लिया उसका आखिरी कदम भी उठ ही गया।

कहता है लाओत्से, एक-एक कदम चल कर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।

बीज हाथ में आ गया तो वृक्ष को कितनी देर लगेगी? बीज आ गया तो वृक्ष आ ही गया, संक्षिप्त में, सार में। अव्यक्त में आया है अभी, जल्दी ही व्यक्त हो जाएगा; अंकुरित होगा, शाखाएं निकलेंगी, पल्लवित होगा, फूल लगेंगे। पर बीज हाथ में आ गया।

ध्यान बीज है; समाधि वृक्ष। जल्दी ही, जल्दी ही, अगर कोई सम्यकरूपेण चलता जाए अपनी ऊर्जा को सम्हाल कर, व्यर्थ से बचा कर, राह से यहां-वहां ज्यादा न उतरे, समय और शक्ति को व्यय न करे; सम्हाल कर--क्योंकि अभी तुम्हारे पास ऊर्जा भी थोड़ी है--संचित किए हुए, संयमित किए हुए चलता जाए, जल्दी ही मंजिल आ जाती है। फिर कुछ सम्हालने की जरूरत नहीं रहती। फिर बहो बाढ़ आई नदी की भांति; फिर लुटाओ, फिर बांटो। और जितना कोई बांटता है उस संपदा को उतनी ही बढ़ती चली जाती है। परमात्मा को कोई कभी बांट कर चुका पाया? फिर अनंत के द्वार खुल गए।

लेकिन तब तक बहुत सम्हाल-सम्हाल कर एक-एक कदम रखना है; ऊर्जा कम है, शक्ति सीमित है, मार्ग लंबा है। मंजिल जब तक नहीं मिली, दूर ही समझना। है तो बहुत पास; लेकिन अगर पास समझ ली तो यह डर है कि तुम ऊर्जा को यहां-वहां व्यय कर दो कि इतने पास है, पहुंच ही जाएंगे। नहीं, मंजिल दूर है, ऐसा जानना। जब तक मिल ही न जाए तब तक मंजिल बहुत दूर है। जिसको मिल जाती है, वह कहता है, एकदम पास थी। साधक के लिए यही समझना उचित है कि मंजिल बहुत दूर है, राह लंबी है, चलना काफी है; और ऊर्जा कम है, सीमित है; संरक्षित करना है। पहुंचे हुए सिद्ध सदा कहते हैं, मंजिल मिली ही है। वे भी ठीक कहते हैं; वह दूर कभी थी ही नहीं। लेकिन यह मिल जाने के बाद का बोध है।

इसलिए सिद्धों के वचन भी बहुत सोच-विचार कर लेना। कभी-कभी सिद्धों के वचन भी तुम्हें भटकाने का कारण बन सकते हैं, क्योंकि तुम भटकने को इतने उत्सुक हो कि तुम उनके सहारे भी भटक सकते हो। अपने भटकने की उत्सुकता को ध्यान में रखना सदा और अपनी आकांक्षा को ध्यान में रखना कि तुम उलझन में पड़ने के लिए तत्पर हो। सम्हालना। अगर सम्हाले चले, अगर ध्यान आ गया है, जल्दी ही समाधि भी द्वार पर दस्तक देगी।

और एक बात ख्याल रखना, आखिरी बात, कि ध्यान तो तुम्हें करना पड़ता है, समाधि तुम्हें करनी नहीं पड़ती; वह आती है। तुम तो ध्यान किए चले जाओ। तुम तो कोरे कागज की भांति होते चले जाओ। तुम तो यही फिक्र करो कि सब समाप्त हो जाए--प्रश्न, मांग, आकांक्षाएं, अपेक्षाएं--सब समाप्त हो जाए; तुम तो कोरे कागज हो जाओ। जिस दिन तुम पूरे कोरे कागज हो जाओगे, अचानक पाओगे, उसी कोरे कागज पर परमात्मा का वेद उतरना शुरू हो गया है।

आज इतना ही।

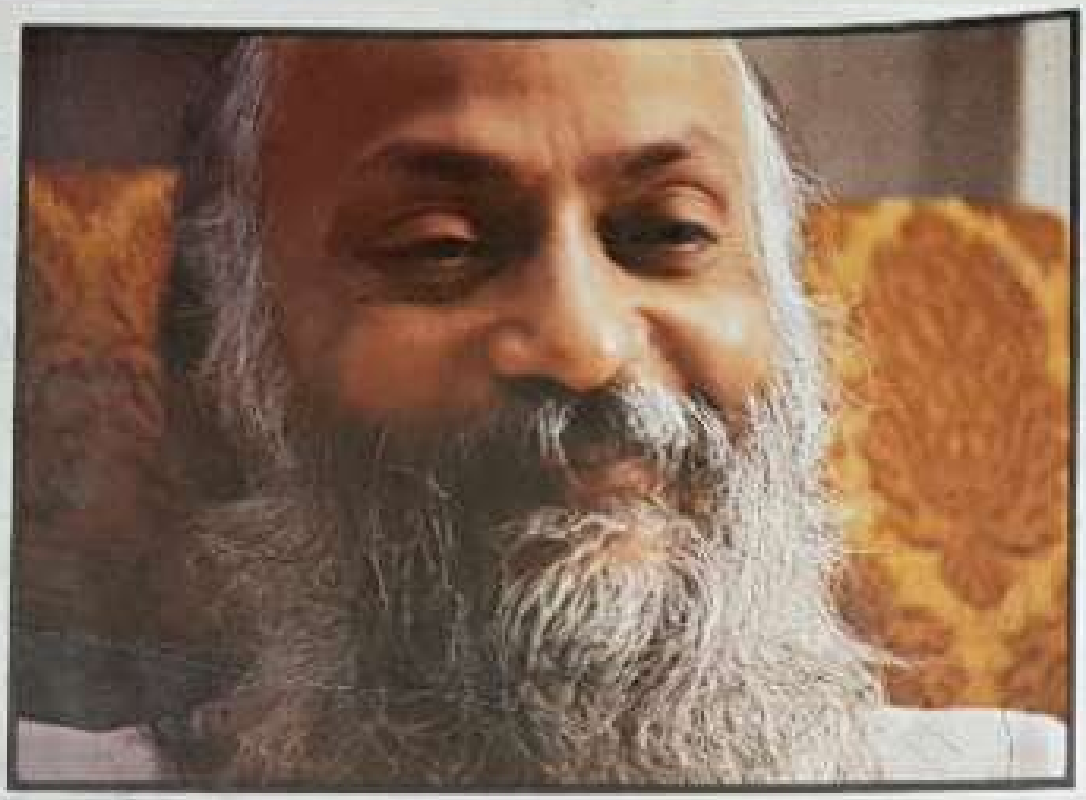

महान शिक्षाएं शाश्वत हैं

छोटे सिद्धांत सामयिक होते हैं; महान सिद्धांत शाश्वत होते हैं, सनातन होते हैं। छोटे-छोटे सिद्धांत आते हैं, चले जाते हैं; महान सिद्धांत न तो आते हैं न जाते हैं। जो लाओत्से कह रहा है वह लाओत्से से पहले भी मौजूद था; लाओत्से ने फिर से उसे वाणी दी। जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह सदा से मौजूद रहा है; मैं उसे फिर से वाणी दे रहा हूं। न लाओत्से का इसमें कुछ है, न मेरा इसमें कुछ है। महान शिक्षाएं शाश्वत हैं, सनातन हैं।

—भगवान श्री रजनीश